

अथ स्कन्दपुराणान्तर्गतेवाखण्डस्य सूचीपत्रं व्याख्यायते ॥

विषयः	अ०	पृ०	विषयः	अ०	पृ०
देवोंके स्वरूपका निरूपण व स्कन्दसे शिवका समस्त मन्दिरोंको कहना	१	६	आख्यानसमेत नर्मदाकीर्तन व कर्तव्यीर्याजुनका आख्यान	२०	५०
नर्मदोत्पत्ति, लिङ्ग व देवताओंका पूजन व अमरकण्टक का माहात्म्य	२	१४	इहतीर्नर्मदाके समागममें द्वाख्यान का निरूपण	१५	१०२
नर्मदाका द्वितीयावतार व तीर्थयात्रादि का प्रमाण	३	२६	परमतीर्थसङ्ख्यब्रह्माहात्म्य व नागेश्वरका आख्याने	१६	१०४
राजाभिहितरयतेजाको नर्मदाको मर्त्यलोकमें लेआना	४	२६	नर्मदाके उत्तरतटमें जनकतीर्थ व जनक का योग	१७	१०६
राजापुरगुरुकुको शिवकी तपस्यासे नर्मदा का उतारना	५	३६	सृष्टि-ब्रह्मरसतसारस्वततीर्थका माहात्म्य	१८	११०
मेकनकभ्याका अवतार व तीर्थोंका श्रवण	६	४२	शार्ङ्गिहट्टेश्वरतीर्थ व ब्रह्महत्याछेदनतीर्थका माहात्म्य	१९	१२०
महापवित्रतीर्थ में अश्वमेधसे उपजा नदीका निरूपण	७	४६	नर्मदा व कुब्जाके समागम तीर्थका माहात्म्य	२०	१२२
नर्मदाके उत्तरतटमें परमतीर्थ त्रिपुरीका माहात्म्य	८	५७	रेवाकुब्जाके समागममें घीमान् रन्तिदेवको कथा व विवशाघ्रकी उत्पत्ति	२१	१३५
भगीरथको भागीरथीको जाना व अर्कतीर्थका माहात्म्य	९	६४	नर्मदाकी माहात्म्य में हरिकेशका उपाख्यान	२२	१४२
सोमतीर्थका माहात्म्य व मतङ्गालयनका निरूपण	१०	६६	कुब्जाकी उत्पत्ति व सुवर्ण नामक गन्धर्वका उपाख्यान व चित्राक्षदेवका शापमोचन	२३	१४८
योगतीर्थ, ध्रुवतीर्थ व वाराहतीर्थादिका माहात्म्य	११	७३	स्वर्गसोपानरूप सपादकोटितीर्थोंका निरूपण	२४	१५३
देवपूजित गाङ्गालेभूनामक शैवसंगम	१२	८२	मण्डपेश्वरतीर्थ में दशलक्षतीर्थ व गर्दभीतीर्थका वर्णन	२५	१६७
परमतीर्थबालुकेश्वर व मत्स्येश्वरका निरूपण	१३	९१	गौरीकण्ठ में तिजोदकदान से पितरों की अक्षयवृत्ति	२६	१८१
देवसेवित तापीसंगम व शिवमहिमा का निरूपण	१४	९७	तीर्थोंकोमें विख्यातमान्धाताका उपाख्यान	२७	१८४
				२८	१८६

विषयाः

बलिनन्दनवणासुरका उपाख्यान व अमरेश्वरका माहात्म्य

हिरण्यवेगानदी व रेवाचरसगम का वर्णन

राजाहिरण्यबाहु व दत्तात्रिका का शापसे मुरुहना व पञ्चलिंगका माहात्म्य

यक्षपर्वतपै ब्रह्मादिदेवोंका यज्ञकरना व ब्राह्मणको अपनी भार्यासमेत स्वर्गमेजाना

नर्मदाके उत्तरतटमें द्यतीपातेश्वर व पातालेश्वरलिंगका निरूपण

अयोध्यानायक इन्द्रद्युम्नका उपाख्यान व नीलगंगाका अवतरण होना

वैद्यपर्वतपै मान्धाताका जाना व जालेश्वरलिंगका उठना

राजपर्वतसुदानका उपाख्यान व कपिलावतारका निरूपण

दत्तपुत्रविश्रवाका उपाख्यान व कल्पान्तका दर्शन

यमेश्वरलिंगका उपाख्यान व चक्रस्वामीका वर्णन

भुनामकराजाका उपाख्यान व विमलेश्वर लिङ्गका निरूपण

चन्द्र व सूर्य के ग्रहण में सूत्रयागका वर्णन

कोदितार्य तथा कावेरीतीर्थका निरूपण

चण्डेश्वरलिंगके दर्शन व चण्डवेगाका माहात्म्य

पररडीसंगम व पररडीश्वर लिंगदर्शन की महिमा

महर्षिच्यवन व दुर्वासाका उपाख्यान तथा पररडीतीर्थका निरूपण

शल्यातीर्थ व विशल्यातीर्थका माहात्म्य

तीर्थराज तथा भृगुपर्वत की महिमा का निरूपण

अकारोत्पत्तिलक्षणवाले अकारनाथ की महिमा

अ०	पृ०	विषयाः	अ०	पृ०
२९	२०२	अकारोक्त वचनको सुन ब्रह्मा को अकारकी स्तुति करना	४८	३१८
३०	२०६	रेवाकपिलाका संगम व वाराह का स्वर्गरोहण	४९	३२५
३१	२१३	कपिलाभाह्मत्य व राजा धुन्धुमारका स्वर्ग में जाना	५०	३३१
३२	२१७	द्वीपादिकोंका संख्यान, मुत्तुमुन्द व कुवलययाश्वका स्वर्गमें जाना	५१	३३८
३३	२२०	पापीपुरुषोंका यमलोक में जाना व नरकोंका वर्णन	५२	३५१
३४	२२७	पञ्चनायक व सौ नरकोंका निरूपण	५३	३५५
३५	२४२	यमराजको निजदूतों से पापियों की कर्मगति को कहना	५४	३६१
३६	२४५	राजाहरिश्चन्द्रका उपाख्यान व गोदानमहिमा	५५	३६४
३७	२५१	अशोकवनिकातीर्थ व मतङ्गाश्रमका निरूपण	५६	३६८
३८	२५८	किंसी दुराचारी वनदाही व्याधका व्याख्यान	५७	३७३
३९	२६७	ब्रह्मर्ष्यका माहात्म्य व शिवलोकका वर्णन	५८	३८३
४०	२७१	दानधर्मका माहात्म्य व शिवमहिमाका निरूपण	५९	३८६
४१	२८१	कोदितार्यका माहात्म्य व युवनाश्वराजाका उपाख्यान	६०	३९८
४२	२८५	मर्मदानदीका कीर्तन व राजा रन्तिदेवका उपाख्यान	६१	४०६
४३	२६२	एकसौआठतीर्थ शक्तियों व मातृस्तुतिका वर्णन	६२	४०६
४४	२६८	पितरोके उद्धाराय रन्तिदेव को यज्ञ कराना व कुब्जा का माहात्म्य	६३	४१६
४५	३०१	सुवर्णद्वीप का उपाख्यान व विष्णुजीका कीर्तन	६४	४१६
४६	३०५	माण्डव्यका आश्रम व अशोकेश्वरलिंगका वर्णन	६५	४२३
४७	३१४	अशोकवनिकामें टिके हुए तीर्थोंका निरूपण	६६	४३१

विषयः

चागीशाचासुराडा व राजा ब्रह्मदत्तका उपाख्यान
हरिश्चन्द्रसे प्रेतोंका उपाख्यान व वाराहमहिमा वर्णन
देवपथतीर्थका माहात्म्य व शिवजीका स्तवनरूपण
ययातिराजाका उपाख्यान व शुक्रतीर्थकी महिमा
द्विपेश्वरलिंग की महिमा व सर्वदेवकृत शिवस्तुति
परमपदके विषयमें ब्रह्माको विष्णुकी स्तुतिकरना
मयको रावणके लिये मन्दोदरीको देना व मेघनादेश्वर लिंगका माहात्म्य
परमप्यारे इन्द्र सखा दारुक तीर्थका उपाख्यान
देवतीर्थ में तैत्तिरीय देवताओंको तपस्याकर सिद्धिको पाना
दारुकवनके प्रसंगमें पतितलिङ्गी गुहावासी शंकरका कीर्तन
महाभाग दानव करज का उपाख्यान व करजेश्वर की महिमा
कुरण्डलेश्वर तीर्थ में देवधारको देवसिद्धि का पाना
पिण्णलेश्वर तीर्थ में योगी पिण्णबाद को सिद्धिहोना
विमलेश्वरतीर्थ में देवशिला गुहावती तीर्थ की महिमा
अलिङ्गी शिवको तपसे विश्वरूप होना व पञ्चलिंगकी महिमा
मयूर कुम्भकृत तीर्थ व राजर्षि युक्कण्डाश्रम का निरूपण
चन्द्रेश्वर, रमेश्वर, हरिणेश्वर, लुब्धकेश्वर, धनुरीश्वर व बाणेश्वरका कीर्तन
निरञ्जननैवेद्य व अन्धक का उपाख्यान
अन्धक को शिवका वरदे भृङ्गीरीटिनामक अपना गण बनाना

विषयः

ब्रह्मादि देवताओं समेत महेशका प्रभास में जाना तथा शूलभेद का उपजना
उत्तानपाद राजाको महेशसे सिद्धिको पूछना व उनको महादानकी महिमा कहना
श्राद्ध, दान व तीर्थादि का कीर्तन व शूलभेद की महिमा
कुटुम्ब समेत महर्षि दीर्घतपाको स्वर्ग में जाना
तीर्थदर्शी नरनायक विजयसेन का उपाख्यान
शंघरी समेत शंखको स्वर्ग में जाना व देवत्वको पाना
महाभक्तिमती रानीभानुमती को स्वर्ग में जाना
पुष्करिणीतीर्थ व अर्कतीर्थ की महिमाका निरूपण
सर्वपापहारक आदित्येश्वरतीर्थ का कीर्तन
करञ्जेश्वरको जाना व अगस्त्यतीर्थ का वर्णन
नन्देश्वरतीर्थका माहात्म्य व भस्मासुर का वध
धनदतीर्थ तथा नागतीर्थ की महिमा का कीर्तन
नर्मदा के दक्षिण किनारे गोपालेश्वर की महिमा
गौतमेश्वर तथा शङ्खचूड़तीर्थ की महिमा
महात्मा पराशर तीर्थकी महिमाका कीर्तन
भीमेश्वर तथा नन्दितीर्थ का निरूपण
वदणेश्वर तथा तीर्थपञ्चकका वर्णन
सर्वपापहारक धनुमदीश्वरका कीर्तन
सोमनाथतीर्थ की महिमा का निरूपण

अ० ५० ५१ ५२ ५३ ५४ ५५ ५६ ५७ ५८ ५९ ६० ६१ ६२ ६३ ६४ ६५ ६६ ६७ ६८ ६९ ७० ७१ ७२ ७३ ७४ ७५ ७६ ७७ ७८ ७९ ८० ८१ ८२ ८३ ८४ ८५ ८६ ८७ ८८ ८९ ९० ९१ ९२ ९३ ९४ ९५ ९६ ९७ ९८ ९९ १०० १०१ १०२ १०३ १०४

अ० ६७ ६८ ६९ ७० ७१ ७२ ७३ ७४ ७५ ७६ ७७ ७८ ७९ ८० ८१ ८२ ८३ ८४ ८५ ८६ ८७ ८८ ८९ ९० ९१ ९२ ९३ ९४ ९५ ९६ ९७ ९८ ९९ १०० १०१ १०२ १०३ १०४

विषयः

पिङ्गवावर्ततीर्थं व कपिलेश्वरतीर्थं का वर्णन
 पूतकेश्वरतीर्थं व चक्रतीर्थं का माहात्म्य
 चण्डमुण्डोपाख्यातं व चन्द्रादित्येश्वर की महिमा
 यमहासतीर्थकी महिमाका निरूपण ...
 कोटीश्वर व द्वीपेश्वर व्यासतीर्थ का वर्णन
 त्रिलोकविल्यात प्रभासतीर्थका निरूपण

अः पृ०

१०५ ६४७

१०६ ६४८

१०७ ६४९

१०८ ६५०

१०९ ६५१

११० ६५२

विषयः

वासुकीयतीर्थं व मार्कण्डेयेश्वरतीर्थ की महिमा
 संकर्णतीर्थं तथा मन्मथेश्वरतीर्थकी महिमा
 ब्रह्मदत्ताष्टाक परश्वतीर्थ की महिमा
 सौवर्णतीर्थं व सोमायतीर्थका माहात्म्य
 यागडातीर्थं व चक्रतीर्थ की महिमा का निरूपण
 महापापयिनीशक धूमपाततीर्थ का निरूपण

अ० पृ०

१११ ६५३

११२ ६५४

११३ ६५५

११४ ६५६

११५ ६५७

११६ ६५८

इति श्रीमद्विष्णुशतशक्तिपरमं कवितं रेखावर्गस्य सूचीपत्र समाप्ति पत्राणि ॥

अथ स्कन्दपुराणरेवाखण्ड सटीक

स्नान करतेहुये गजोंके गण्डस्थल से गिरेहुये मदमें जो मदिरा के समान गंध है तिस करके मतवाला होरहा है भौरों का समूह जिसमें और स्नान करने से सिद्ध नामक देवताओं की स्त्रियों के दोनों कुचोंसे छूटेहुये केसर के संयोग से पीला होरहा और सायङ्काल व प्रातःकाल मुनिलोगों के कर्म मे लगेहुये कुश व फूलों से ढका है किनारे परका जल जिसका और हाथी व हाथियों के बच्चोंके शुण्डादण्ड से रोंक दीर्घहैं तरङ्गें जिसकी ऐसा नर्मदाका जल तुम्हारी रत्नाकरै ॥ १ ॥ मार्कण्डेयजी बोले कि

मज्जन्मातङ्गण्डच्युतमदमदिरामोदमत्तालिजालं स्नानैः सिद्धाङ्गनानांकुचयुगविगलत्कुङ्कुमासङ्गपिङ्गम् ॥
सायंप्रातर्मुनीनांकुशकुसुमचयच्छन्नतीरस्थनीरं पायादोनर्ममदाग्मः करिकरभकराक्रान्तरंहस्तरङ्गम् ॥ १ ॥ मार्क
ण्डेयउवाच ॥ हिमवच्छिखरेभ्ये सिद्धगन्धर्वसेविते ॥ यक्षविद्याधराकीर्णे नानागणसमन्विते ॥ २ ॥ ब्रह्मविष्णुसु
राः सर्वे स्कन्दनन्दिगणेश्वराः ॥ चन्द्रादित्यौग्रहस्माद्धं नक्षत्रध्रुवमण्डलम् ॥ ३ ॥ वायुश्चवरुणश्चैव कुबेरोथयमस्त
था ॥ इन्द्राद्यादेवतास्सर्वे गन्धर्वगणएवच ॥ ४ ॥ ब्राह्मयाद्यामातरश्चैव ऋषयश्चतपोधनाः ॥ मूर्तिमन्तश्चतीर्थानि च
ण्डभृङ्गिमहाबलाः ॥ ५ ॥ दानवासुरदैत्याश्च पिशाचाभूतराक्षसाः ॥ सूर्यकोटिसमप्रख्यं मणिमाणिक्यशोभित

सिद्ध व गन्धर्वों से सेवित यक्ष व विद्याधरों से व्याप्त अनेक प्रकार के देवगणों से युक्त रमणीक हिमालय के शिखर में ॥ २ ॥ ब्रह्मा, विष्णु, सब देवता, स्वामिकाचिकेय, नन्दीश्वर, गणेश सब ग्रहोंकरके सहित चन्द्रमा व सूर्य नक्षत्र सहित ध्रुवमण्डल ॥ ३ ॥ वायु, वरुण, कुबेर, यमराज और इन्द्रादि सब देवता और गन्धर्वों के गण ॥ ४ ॥ ब्राह्मीश्रादि मातृगण और तपही जिनका धन ऐसे ऋषि और मूर्तिधारण किये सब तीर्थ और बड़े बलवाले चण्ड व भृङ्गो ॥ ५ ॥ और दानव व असुर व दैत्य

और पिशाच व भूत व राक्षस ये सबलोग करोड सूर्यके समान तेजवाले मणि और माणिक से जोभित ॥ ६ ॥ रत्न व वैदूर्यकी मीठीवाली हजारों जानलियों से युक्त कमल व नीलकमलों से युक्त तथा अनेक वृक्षोंसे युक्त ॥ ७ ॥ इच्छा करनेलायक अभीष्ट फलदायक फलेफूले वृक्षों से युक्त हंस तथा पनडुब्बी पक्षियों से व्याप्त और चक्रवा व चकई के शब्दों से गुञ्जित ॥ ८ ॥ और काक व कोयलके शब्दोंसे भरेहुये अनेक प्रकार के पक्षियों से व्याप्त सिद्धों से सेवित जो महादेवजी का स्थान तिस को प्राप्त होतेहुये ॥ ९ ॥ वहाँपर बैठेहुये लोक के कल्याण करनेवाले शङ्करजी की कोई स्तुति करते हैं और कोई शिवजी के सम्मुख नाच रहे हैं ॥ १० ॥ व पार्वतीजी

म ॥ ६ ॥ रत्नवैदूर्यसौपानवापीकूपसहस्रकम् ॥ पद्मनीलोत्पलोपेतं नानावृक्षसमन्वितम् ॥ ७ ॥ काङ्क्ष्यं कामफलै
वृक्षैः पुष्पितैः फलितैर्युतम् ॥ हंसकारण्डवाकीर्णं चक्रवाकोपकूजितम् ॥ ८ ॥ काककोकिलसंघुष्टं नानापक्षिसमा
कुलम् ॥ स्थानं सर्वैहरस्यापुः सिद्धैश्चपरिसेवितम् ॥ ९ ॥ तत्रासीनमहादेवं शङ्करं लोकशङ्करम् ॥ स्तुवन्तः केपिदेवे
शं केचिन्मृत्यन्तिचाग्रतः ॥ १० ॥ दिव्यसिंहासनासीनमुमयासहितं हरम् ॥ तेषां मध्ये समुत्थाय स्कन्दो वचनमब्रवी
त ॥ ११ ॥ कृताञ्जलिपुटो भूत्वा साष्टाङ्गं प्रणिपत्य च ॥ सृष्टिसंहारकर्तारं सुरासुरनमस्कृतम् ॥ १२ ॥ ब्रह्मविष्टि एवन्द्र
वरदम्भक्तानां भक्तवत्सलम् ॥ इयमवकासितकण्ठाय ज्ञाताज्ञातस्वरूपिणे ॥ १३ ॥ ईश्वराया विनाशाय गजचर्म
वगुण्ठिने ॥ कपालमालाभरणद्वीपिचर्ममधराय च ॥ १४ ॥ भस्मोद्धूलितदेहाय नमस्ते स्तुपिनाकिने ॥ अनन्तानन्त
रूपाय कालाय परमेष्ठिने ॥ १५ ॥ सर्वोवामस्तथाधोरस्तत्पुरुषाय ते नमः ॥ ईशानाय परेशाय सदाशिवनमोस्तु

के सहित दिव्य सिंहासनपर बैठेहुये महादेवजी से उठके स्वामिकासिकेयजी वचन बोलेहुये ॥ ११ ॥ दोनों हाथ जोड़कर और साष्टाङ्ग प्रणाम करके जोकि महा-
देवजी सृष्टि संहार करते हैं व जिनको देवता दैत्यों ने नमस्कार किया है ॥ १२ ॥ व ब्रह्मा, विष्णु और भक्तोंके वर देनेवाले हैं भक्तवरसलहै उनसे स्कन्दजी कहते हैं कि हे
त्रिलोचन ! नीलकण्ठ, ज्ञात, अज्ञात पदार्थ जिनका रूप है ॥ १३ ॥ ईश्वर, नाशरहित, गजचर्म के ओढ़नेवाले, गुण्डमाला के धारण करनेवाले, व्याघ्रचर्म पहने
हुये ॥ १४ ॥ भस्म से विभूषित देहवाले, अनन्तोंके धरनेवाले, धनुषके धरनेवाले, अनन्तोंके अनन्तरूप, कालरूप, परमेष्ठी ॥ १५ ॥ सर्वो ज्ञात, वामदेव तथा अधोर, तत्पुरुष,

ईशान, परमेश्वर, सदाशिव ॥ १६ ॥ ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद जिनका रूप है, महाप्रलय का अग्नि जिनका रूप है, अन्तर्यामीरूप से सब लोगोंके हृदयमें वास करने वाले ॥ १७ ॥ पार्वतीजी जिनका आवाञ्मूर्त है, अतिशय करके जो वृद्ध हैं, कल्याणरूप रूपरहित पृथिवीआदि महाभूत जिनका स्वरूप हैं ॥ १८ ॥ शिव जिनका नाम है, यह सब संसार जिनहीं का रूप है, भयानक रूपवाले और जटाओं के धारण करनेवाले आपके नमस्कार है यह चरानर सब जगत् आपही से व्याप्त है ॥ १९ ॥ हे ईशान ! आपको जाने या विना जाने जिह्वाकी चञ्चलता से मैंने क्लेशित किया सो मेरे अपराध को क्षमा कीजिये ॥ २० ॥ तब महादेवजी बोले कि हे सुव्रत

ते ॥ १६ ॥ ऋग्यजुःसामरूपाय अथर्वायनमोस्तुते ॥ नमःकालाग्निरूपाय सर्वलोकनिवासिने ॥ १७ ॥ नमःकान्ता
द्धेदेहाय वर्षिष्ठाय च ते नमः ॥ अंनमः शिवाय रूपाय भीमाय भवरूपाय भीमरूपकपर्दि
ने ॥ त्वया व्याप्तं जगत् सर्वं त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥ १९ ॥ जिह्वाचापल्यभावेन खेदितोसिमया प्रभो ॥ क्षमस्व भमईशान
अज्ञानाज्ज्ञानतोपिवा ॥ २० ॥ ईश्वर उवाच ॥ वरं वृणीष्व भद्रन्तेस्तवे नानेन सुव्रत ॥ ददामि तेन सन्देहो वरं मनसिका
ङ्क्षितम् ॥ २१ ॥ स्कन्द उवाच ॥ यदि तुष्टोसि मे देव वरं दातुं मम चेच्छसि ॥ उत्तरे तु दिशाभागे हर्म्यहि ममयाः शुभाः ॥ २२ ॥
सप्तभौमास्तु विस्तीर्णहेमप्राकारतोरणाः ॥ नानामणिसमुक्ताद्या वज्रवैद्यमण्डिताः ॥ २३ ॥ तत्रैव मधुरावाणी वेणु
वीणाः सहस्रशः ॥ प्रेक्षणीयैर्नृत्यगर्गा र्त्तैर्दिव्यकान्तिमनोहरैः ॥ २४ ॥ कस्यैतानि गृहाणीति मे रोक्षतस्ततः शिव ॥ त्वत्प्र
सादा तु पृच्छामि परं कौतूहलं हि मे ॥ २५ ॥ ईश्वर उवाच ॥ शृणु स्कन्द सुरश्रेष्ठ कथ्यमानं निबोध मे ॥ भृगुस्थाने पुरेये

स्कन्दजी ! तुम्हारा कल्याण हो हम तुम्हारी स्तुति से प्रसन्न होंगे तुम्हारे मनोवाञ्छित वरको निःसन्देह देते हैं ॥ २१ ॥ महादेवजी का वचन सुनके स्कन्दजी बोले तो हुये कि
हे महाराज ! जो आप मुझसे प्रसन्न हो और मुझे वर देने की इच्छा करते हो तो उत्तर दिशा में सुवर्णके बने हुये ॥ २२ ॥ सात २ चौकवाले, ब्रह्मभारी, सुवर्णके परकोटोंवाले,
बड़े बड़े फाटकवाले, अनेक मणि, मुक्ता, हीरा और पद्माओंसे भूषित ॥ २३ ॥ जिनमें वंशी, सितार आदिकी मधुरावाणी सुन पड़ती है, देखने लायक नृत्य, गान जिनमें हो रहे
हैं ॥ २४ ॥ हे शिवजी ! ये सुमेरु पहाड़ के उत्तर में किसके मन्दिर हैं मुझको बड़ा आश्चर्य है सो मैं आपको प्रसन्नता से पूछता हूँ मुझसे कहिये ॥ २५ ॥ तब महादेवजी

बोले कि हे देवताओं में श्रेष्ठ स्कन्दजी ! मेरे कहने को सुनो और समझो जे मनुष्य भृगुस्थान, सूर्यग्रहण में कुरुक्षेत्र प्रभासक्षेत्र, रुद्रपद, केदारक्षेत्र, कनखल ॥ २६ ॥ २७ ॥ हे पुत्रक ! भैरवक्षेत्र, ललिताक्षेत्र और शिवनदी (नर्मदा) में शिवका ध्यानकरके शिवध्यान में तत्पर जो लोग मरगये हैं ॥ २८ ॥ ये रमणीक मन्दिर व अपने कर्मफलों से कमाये हुये सप्तभूमिवाले दिव्यघरों समेत वस्त्र और वडेभोग उन्हें किहें और मन्दिरों के भोग सुखोंको मैंने उन्हींके वारते दिये हैं यह सुनके स्कन्दजी फिर बोलेते हुये कि हे भगवन् ! सै-कड़ो, हजारों चौकवाले, पन्ना और मणियोंसे भूषित ॥ २९ ॥ ३० ॥ वड़े रक्किवाड़वाले दरवाजे जिनमें लगे हैं देखने लायक, मनोहर और दिव्य नृत्य, गान, उत्सवोंसे युक्त ॥ ३१ ॥

वै राहुसूर्यसमागमे ॥ २६ ॥ कुरुक्षेत्रे प्रभासे च मोक्षे रुद्रपदे तथा ॥ केदारक्षेत्रे कस्थाने रुद्रकनखले तथा ॥ २७ ॥ भैरवेलालिताक्षेत्रे शिवंध्यात्वाचपुत्रक ॥ येमृताः शिवनद्यान्तु शिवध्यानपरायणाः ॥ २८ ॥ तेषां गृहाणि रम्याणि स्वयंकर्मफलजितैः ॥ सप्तभूमौ गृहैर्दिव्यैर्वस्त्रभोगाश्च पुष्कलाः ॥ २९ ॥ दत्तानि च मयैतेषां हर्म्यभोगसुखानि च ॥ स्कन्द उवाच ॥ सहस्रशतभौमाश्च वैदूर्यमणिमण्डिताः ॥ ३० ॥ कूटैः कपाटैर्नद्धा सिद्धद्वाराण्यनेकशः ॥ नित्योत्सवैर्नृत्यगीतैः काम्यैर्दिव्यैर्मनोहरैः ॥ ३१ ॥ असंख्याता गृहारम्याः सूर्यकोटिसमप्रभाः ॥ कस्यैतानीह हर्म्याणि पूर्वभागे महेश्वर ॥ ३२ ॥ दक्षिणे पश्चिमे चैव नानाभोगाः सहस्रशः ॥ सुरेन्द्रभवने भोगाः कलानाहन्ति षोडशीम् ॥ ३३ ॥ केन कर्मविपाकेन शुभेनाप्यशुभेन वा ॥ कूष्माण्डवासिनश्चक्रे घोरमज्जन्ति तामसे ॥ ३४ ॥ पूयशोणितकूपेषु कृमि कीटपतङ्गिनः ॥ तिर्यग्योनिगताः पापैः पीड्यमानास्तुमानुषाः ॥ ३५ ॥ दारिद्र्यदुःखिता दीनाः पच्यमाना बुभुक्षि

कोटि सूर्यके समान तेजवाले, अगणित सूर्यरुके पूर्व दिशा में ये किसके मन्दिर हैं ॥ ३२ ॥ तथा सूर्यरुके दक्षिण न पश्चिम में अनेक भोगों से युक्त, इन्द्रलोक के भोग जिनकी सोलहवीं कलाको नहीं पाते हैं ॥ ३३ ॥ वे मन्दिर किसके हैं और मनुष्य किस शुभाशुभ कर्मके फलसे कूष्माण्डनामक नरक में वास करते हैं तथा घोर तामस नरक में डूबते हैं ॥ ३४ ॥ पीन, रक्तके कुत्राओंमें कीड़े होके रहते हैं पापोंसे पीड़ित पशु, पत्नी की योनिमें प्राप्त होते हैं ॥ ३५ ॥ दरिद्र से दुःखित, भूखे, दीन और नरकमें पचते

ये रहते हैं और हे प्रभो ! किस कर्म के फलसे शुभाशुभगति होती है ॥ ३६ ॥ यह सब यथायोग्य अपनी प्रसन्नतासे आप हमसे कहें तब महादेवजी बोले कि हे षण्मुख ! वे मनुष्य नर्मदाके तटमें व तिग्मसङ्गममें मृत्युको प्राप्त हुये हैं ॥ ३७ ॥ सुमेरुके पूर्व भागमें ये मन्दिर उन्हीं मनुष्योंके हैं अकारनाथके दक्षिण भागमें तथा अमरकण्टक के पूर्व भाग में ॥ ३८ ॥ नर्मदा के कोटितीर्थ में हे स्कन्दजी ! जे मनुष्य मरे हैं वे मनुष्य इन रमणीक मन्दिरोंमें वास करते हैं ॥ ३९ ॥ जे मनुष्य भृगुपात करते हैं वे पूर्व भाग में ॥ ४० ॥ नर्मदा के कोटितीर्थ में हे स्कन्दजी ! जे मनुष्य मरे हैं वे मनुष्य इन रमणीक मन्दिरोंमें वास करते हैं ॥ ४० ॥ और अग्नि व जल में वानप्रस्थाश्रम के अनन्तर प्रवेश करते हैं जिन्होंने नर्मदा, कपिलके सङ्गममें दान, तप किया है वेही मनुष्य इन मन्दिरों में रहते हैं ॥ ४० ॥ और

ताः ॥ केनकर्मविपाकेन शुभाशुभगतिः प्रभो ॥ ३६ ॥ एतत्सर्वयथान्यायं कथयस्व प्रसादतः ॥ ईश्वर उवाच ॥ ये मृता नर्मदातीरे सङ्गमेति गमदंशिते ॥ ३७ ॥ तेषां गृहाणिरम्याणि पूर्वभागे च षण्मुख ॥ अंकारदक्षिणे भागे पूर्वतोऽमरकण्टके ॥ ३८ ॥ नर्मदाकोटितीर्थे च ये मृताः स्कन्दमानुषाः ॥ ३९ ॥ हर्म्यमनोरमैर्मये तेव सन्ति नरोत्तमाः ॥ ४० ॥ भृगो वग्नौ जले वापि रेवा कपिलसङ्गमे ॥ दानं दत्तं तपस्तप्तं तेव सन्ति गृहैरिमैः ॥ ४१ ॥ गोदावरीपयस्विन्यान्तपत्याञ्चैव सङ्गमे ॥ त्र्यम्बकैर्धौतपापैश्च हिमाद्रौ विन्ध्यपर्वते ॥ ४२ ॥ महेश्वरमये सह्ये गोकर्णैश्च महाबले ॥ हरिश्चन्द्रपुरे चन्द्रे श्रीशैले त्रिपुरान्तके ॥ ४३ ॥ कृष्णायां ससमुद्रायामेकादश्यां महानदे ॥ कार्तिकेयो निकुण्डे च ये अग्र्यन्ते च पुनः ॥ ४४ ॥ सरस्वत्या न्यजेत् प्रायाम्येह मये तेषां श्रेष्ठास्स्वयम्भुवः ॥ नानाभोगांश्च भुञ्जन्ति यथा शक्रस्त्रिविष्टपे ॥ ४५ ॥ तेषां गृहाणिरम्याणि नानाभोगाश्च पुष्कलाः ॥ एतान् प्रभासे शशिभूषणे ॥ पारियात्रे महाकाले प्रयागे च महापथे ॥ ४६ ॥ तेषां गृहाणिरम्याणि नानाभोगाश्च पुष्कलाः ॥

गोदावरी, पयस्विनी, तपती नदी का संगम, त्र्यम्बकेश्वर, हिमालय, विन्ध्याचल ॥ ४१ ॥ माहेश्वरक्षेत्र, सह्यपर्वत, गोकर्ण, हरिश्चन्द्रपुर, श्रीशैल, त्रिपुरान्तक क्षेत्र ॥ ४२ ॥ समुद्रसहित कृष्णानदी, एकादशके दिन महानद, कार्तिकमें योनिकुण्ड इन स्थानोंमें हे पुत्र ! जे मनुष्य मृत्युको प्राप्त होते हैं ॥ ४३ ॥ वे मनुष्य सुमेरुके दक्षिण दिशाके मन्दिरोंमें वास करते हैं जैसे कि इन्द्र स्वर्गमें अनेक भोग भोगते हैं वैसेही वे भी भोग भोगते हैं ॥ ४४ ॥ सरस्वती प्रभासे क्षेत्र, पारियात्रपर्वत, महाकाल, प्रयाग और महापथमें ॥ ४५ ॥ जे लोग प्राण छोड़ते हैं उनके वास करनेके वारते रमणीक, अनेक भोगोंसे युक्त मणि, माणिक्य की दीप्तिसे प्रकाशित तेरह करोड मन्दिर

सुमेरुके उत्तरभागमें मिलते हैं ॥ ४६ ॥ इसीप्रकारसे पूर्वभागमें एकड़स करोड़ और दक्षिणमें नवकरोड़ सुवर्णके महल हैं ॥ ४७ ॥ और पश्चिममें मोतीके समान प्रकाश वाले सोलह करोड़ मन्दिर हैं तीर्थ व दानके प्रभाव से ॥ ४८ ॥ हमारी प्रसन्नता से सुमेरुके उत्तर, दक्षिण और पश्चिमवाले, मनोहर, देवताओंके बनाये हुये मन्दिरों में अनेक भोगोंको भोगते हैं वहां देवताओं के कागिर विन्नकर्म रहते हैं ॥ ४९ ॥ व हे महासेन ! सुमेरुके ऊपर सब रत्नोंमें जटित मन्दिरको देखते हो जिसके पूर्व भागमें नर्मदा स्नानकरनेवाला जन फलको प्राप्त होता है ॥ ५० ॥ हे स्कन्द ! देवताओंके हितके लिये जो आपने हमसे प्रश्न किया वह सब हम आपसे कहा ॥ ५१ ॥

मणिमाणिक्यदीप्ताभाः सौम्येकोटित्रयोदश ॥ ४६ ॥ एवंतथैकविंशत्या पूर्वैचैवोपवेशिताः ॥ दक्षिणेनवकोट्यस्तु भुताहमर्याहिरण्मयाः ॥ ४७ ॥ गृहामौक्तिकसंकाशाः कोट्यः षोडशवारुणे ॥ तीर्थयात्राविशेषेण दानधर्मविशेष तः ॥ ४८ ॥ भुज्जन्ति विविधान् भोगान् मया तुष्टेन पुत्रक ॥ मेरोरुत्तरतोभागे दक्षिणे वारुणे तथा ॥ ४९ ॥ क्रीडन्ति च म नोहारि मन्दिरैर्देवानिर्मिते ॥ देवानां वार्द्धकिस्तत्र कर्ता विश्वस्य कर्मणः ॥ ५० ॥ सर्वरत्नमयं हर्ष्यम्भुवनोपरि पश्य सि ॥ पूर्वभागमहासेन नार्म्मदः फलमश्नुते ॥ ५१ ॥ एतत्ते कथितं स्कन्द परिष्टुन्त्वया च यत् ॥ देवानां च हितार्थाय तु भ्यंसर्वमयानघ ॥ ५२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे रेवाखण्डे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ *

स्कन्द उवाच ॥ श्रोतुकामा इमे सर्वे ब्रह्मविष्णुसुरोत्तमाः ॥ प्रभावमीदृशं यस्य तीर्थस्यास्य महत्फलम् ॥ १ ॥ नर्मदायास्तथोत्पत्तिं सङ्गमलिङ्गपूजनम् ॥ पर्वकाले च देवानां पर्वतैर्मरकटके ॥ २ ॥ आख्या न सहितं देव कथयस्व यथा र्थतः ॥ तीर्थयात्राफलं सम्यग्वंशो मन्वन्तराणि च ॥ ३ ॥ भक्त्या युक्तं च यत्किञ्चित् कथयस्व प्रसादतः ॥ सूत उवाच ॥

इति श्रीस्कन्दपुराणे रेवाखण्डे प्राकृतभाषाऽनुवादप्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥
स्कन्दजी बोले कि हे भगवन् ! ये सब ब्रह्मा विष्णु आदि देवता इस नर्मदातीर्थ का प्रभाव व फल सुनने की इच्छा कर रहे हैं ॥ १ ॥ नर्मदा की उत्पत्ति, संगम, लिंग और देवताओं का पर्वकाल में पूजन अमरकण्टक का माहात्म्य ॥ २ ॥ कथा के सहित यथार्थसे आप कहें और तीर्थयात्राका फल, वंश और मन्वन्तर ॥ ३ ॥

भक्ति करनेलायक और जो कुछही अच्छेप्रकार से आप कहें सूतजी शौनक से कहते हैं यह पुराना, रकन्दजीका कहाहुआ, पवित्र आख्यान सुनके ॥ ४ ॥ भूत, भविष्य कालके तत्त्वके जाननेवाले, सात कल्पतक जीनेवाले, ऋषियोंके सहित मार्कण्डेयमुनि उस समयमें आतेहुये ॥ ५ ॥ जोकि सब कामनाओंसे पूर्ण व श्रेष्ठ व अपनेही प्रभावसे पूजित और सवालाल, बड़े तेजवाले ऋषि जिनके साथमेंहैं ॥ ६ ॥ और जो श्रीमान् ब्रह्मर्षि, राजर्षि व देवर्षि इन्होंने से वीचमें युक्त वनाश्रममें ॥ ७ ॥ तीर्थयात्रा के फलको पाके नर्मदाकेतट में बैठेथे उन मार्कण्डेयजी के बड़े प्रभावको सुनके लोमहर्षणजी ॥ ८ ॥ पापों के नाश करनेवाले, मार्कण्डेयऋषि के देखनेको आतेहुये

श्रुत्वाख्यानमिदंपुण्यं पुराणंस्कन्दकीर्तितम् ॥ ४ ॥ भविष्यभूततत्त्वज्ञः सप्तकल्पानुवर्तकः ॥ आजगामाथमार्कण्ड
ऋषिभिःसहितस्तदा ॥ ५ ॥ सर्वकामममृद्धात्माश्रेयान्स्वेनैवपूजितः ॥ सपादलक्षमधिकमृषीणांचोग्रतेजसाम् ॥ ६ ॥
ब्रह्मर्षयोदेवर्षयस्तथाराजर्षयःपरे ॥ एतैःपरिवृतःश्रीमान्मध्यैरयाश्रमम्प्रति ॥ ७ ॥ तीर्थयात्राफलंप्राप्य नर्मदा
तटमाश्रितः ॥ श्रुत्वा महान्तंमार्कण्डप्रभावंलोमहर्षणः ॥ ८ ॥ आजगामततोद्द्रष्टुमृषिकल्मषनाशनम् ॥ नर्मदा
प्रवहेपुण्ये सिद्धगन्धर्वसेविते ॥ ९ ॥ यक्षविद्याधराकीर्णे किन्नरैरुपशोभिते ॥ नानादेवगणाकीर्णे नानागणनिपेवि
ते ॥ १० ॥ रेवावतरणंश्रुत्वा प्रभावंपुण्यमद्भुतम् ॥ ननुतुंदेवतास्तत्र सिद्धविद्याधरानराः ॥ ११ ॥ कहारैःशतपत्रैश्च
पुन्नागैर्नागचम्पकैः ॥ आम्रजम्बूकपित्थैश्च दाडिमैःपनसैस्तथा ॥ १२ ॥ निम्बजम्बीरनारङ्गैःकदलीषण्डमण्डितैः ॥
कुमुदैर्नागवल्क्याद्यैश्शालैर्यैश्चतमालकैः ॥ १३ ॥ बीजपूरकखर्जूरैर्द्राक्षामधुरपाटलैः ॥ बिल्वचन्दनपील्वार्द्यैः क

सिद्धगन्धर्वोंसे सेवित पवित्र, यक्ष, विद्याधरों से व्याप्त, किन्नरों से शोभित, अनेक प्रकारके देवगणों से व्याप्त और अनेक गणोंसे भोजित नर्मदा के तटमें ॥ १० ॥
नर्मदा का अवतरण व पवित्र, प्रभाव सुनके देवता, सिद्ध, विद्याधर और मनुष्य नाचनेलगे ॥ ११ ॥ जोकि नर्मदा का तट कह्लार, शतपत्र, कमल, पुन्नाग, नाग, चम्पा,
आम्र, जामुन, कैथ, अनार, कटहर ॥ १२ ॥ नींब, जम्बीरी, नारंगी, केला, कोकाबेली, पान, सांखु, आमनूत ॥ १३ ॥ विजौरा, खजूर, मुनक्का, पाढर, बेल, चन्दन, पिलुआ,

कुरैया ॥ १४ ॥ और भी सब कामना के देनेवाले, फले फूले वृत्तों से शोभित है और हंस, पनडुब्बी, चकई और चक्रवाओं से शोभित ॥ १५ ॥ और कोयल, मोर, सुआ और भी अनेक पक्षियों के शब्दसे भरहुआ है पूर्वजन्मका स्मरण है जिनको ऐसे पक्षी मनुष्य की वाणी से बोल रहे हैं ॥ १६ ॥ और पर्वतपर गन्धर्व, किन्नर, यक्ष, विद्याधरों की जोड़ी विहार करती हैं ॥ १७ ॥ जोकि देखनेलायक, दिव्य गन्धर्वों के नृत्य व वंशी, सितारआदि के शब्दों से शोभित ॥ १८ ॥ गीत और बाजाओं के शब्दसे स्वर्ग और भूमिको भरहा है और जे ब्रह्मर्षि, देवर्षि और राजर्षि ॥ १९ ॥ उनके वेदध्वनिमुक्त यज्ञों व अग्निहोत्रोंसे प्रकाशित है ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद

दम्बकुटजैस्तथा ॥ १४ ॥ सर्वकामफलैर्वृक्षैः फलितं पुष्पितं भृशम् ॥ हंसकारण्डवाकीर्णं चक्रवाकोपशोभितम् ॥ १५ ॥
कोकिलाबहिर्णशुकैर्नातापक्षिभिर्नादितम् ॥ जातिस्मराः पक्षिणश्च व्याजहुर्मानुषीन्द्रिरम् ॥ १६ ॥ गन्धर्वकिन्नरयुतै
र्यक्षविद्याधरैः ॥ क्रीडते मिथुनं दिव्यं शनैर्गिरिवरोत्तमे ॥ १७ ॥ दिव्यगन्धर्वनृत्यैश्च वेणुवीणासहस्रशः ॥ दिव्यो
द्भवैः प्रेक्षणीयैः शोभितैर्गिरिगङ्गरे ॥ १८ ॥ गतिध्वनिनिनादेन दिवं भूमिं व्यनादयन् ॥ ब्रह्मर्षयो देवर्षयस्तथा राजर्षयः
परे ॥ १९ ॥ वेदध्वनितयज्ञानामग्निहोत्रप्रकाशतः ॥ ऋग्यजुःसामथर्वाणि चातुर्वर्ण्या द्विजोत्तमाः ॥ २० ॥ पुल
स्त्यश्च वसिष्ठश्च पुलहश्च क्रतुस्तथा ॥ भृगुरत्रिर्मरीचिश्च भारद्वाजोथकाश्यपः ॥ २१ ॥ मनुष्यमोद्गिराश्चैव शातातप
राशरौ ॥ आपस्तम्बोथशम्बोथ काव्यः कात्यायनो मुनिः ॥ २२ ॥ गौतमः शङ्खलिखितौ दत्तः कात्यायनिस्तथा ॥ जा
मदग्न्यो याज्ञवल्क्य ऋष्यशृङ्गो विभाण्डकः ॥ २३ ॥ गर्गशौनकादालभ्या व्यास उद्दालकः शुकः ॥ नारदः पर्वतश्चैव
दुर्वासाश्चोग्रतापसः ॥ २४ ॥ शाकल्यो गालवश्चैव जाबालिमुद्गलस्तथा ॥ विश्वामित्रः कौशिकश्च ऋषयो देवसम्म
और अथर्ववेद पढ़नेवाले ब्राह्मणोंसे व्याप्त है ॥ २० ॥ अब उसी स्थानमें पुलस्त्य, वसिष्ठ, पुलह, क्रतु, भृगु, अत्रि, मरीचि, भारद्वाज, काश्यप ॥ २१ ॥ मनु, यम, अंगिरा,
शातातप, पराशर, आपस्तम्ब, शम्ब, काव्य, कात्यायन मुनि ॥ २२ ॥ गौतम, शङ्ख, लिखित, दत्त, कात्यायनि, परशुराम, याज्ञवल्क्य, ऋष्यशृङ्ग, विभाण्डक ॥ २३ ॥
गर्ग, शौनक, दालभ्य, व्यास, उद्दालक, शुक, नारद, पर्वत, उग्रतपस्वी दुर्वासा ॥ २४ ॥ शाकल्य, गालव, जाबालि, मुद्गल, विश्वामित्र और भी देवताओं के समान

ऋषि ॥ २५ ॥ धर्म, शतानन्द, वैशम्पायन, त्रैलोक्य, जुहुति, श्रावसु ॥ २६ ॥ महात्मा बालखिल्य और जे पृथिवीपर कर्मकरके वेदके बलसे देवलोक को जातेहैं ॥ २७ ॥ और भी धार्मिक अपने तेजसे प्रकाशित होरहे विना धुये के अग्निके समान ऋषि आतेहुये ॥ २८ ॥ उनमें कोई एक महीने के व्रत करनेवाले हैं कोई एक पक्षके, कोई तीन दिनके, कोई सान्तपन करनेवाले, कोई निराहार हैं ॥ २९ ॥ कोई फूल, फलोंके आहारकरते, कोई वायुभक्षण करते हैं, कोई गोबर, कोई जल आहार करते हैं ॥ ३० ॥ कोई विद्वान् अग्निहोत्र करतेहैं कोई मोक्षप्रतिपादन करनेवाले वेदके अर्थ के विचारनेवाले हैं कोई इतिहास, पुराण, श्रुति, ताः ॥ २५ ॥ तथाधर्मशतानन्दवैशम्पायनवैष्णवाः ॥ शाकलायनवार्द्धक्यौ जुहुतिश्रावसुस्तथा ॥ २६ ॥ बालखिल्यमहात्मानो भूमिमण्डलवासिनः ॥ ब्रह्मदण्डसमारुह्य देवलोकं व्रजन्ति ये ॥ २७ ॥ एतेचान्येऽव्रजंस्तत्र ऋषयो धार्मिकाः परे ॥ ज्वलन्तस्तेजसासर्वे निर्दूमा इव पावकाः ॥ २८ ॥ मासोपवासिनः केचित्केचित्पक्षोपवासिनः ॥ त्रिरात्रकाः सान्तपना निराहारास्तथापरे ॥ २९ ॥ केचित्पुष्पफलाहाराः शान्तावाताशिनस्तथा ॥ केचिद्रोमयमक्षयाश्च जलाहारास्तथापरे ॥ ३० ॥ साग्निहोत्राश्च विद्वांसो मोक्षवेदार्थचिन्तकाः ॥ इतिहासपुराणादिश्रुतिस्मृतिविशारदाः ॥ ३१ ॥ एतेचान्ये च बहवो मार्कण्डेयन्तपस्विनः ॥ एतैश्चान्यैश्च सन्तिष्ठन् ऋक्षैरिव निशाकरः ॥ ३२ ॥ तीर्थयात्राफलं श्रुत्वा धर्ममपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ अभिज्ञैर्ब्राह्मणैस्सार्द्धं द्रौपद्याप्रियया सह ॥ ३३ ॥ विद्वद्भिर्वेदविद्भिश्च ब्रह्मिष्ठैर्ब्रह्मचिन्तकैः ॥ नर्मदातीरमायातो मार्कण्डेयाश्रममप्रति ॥ ३४ ॥ प्रदक्षिणं त्रिः प्रणम्य साष्टाङ्गञ्च पुनः पुनः ॥ उपविष्टस्तदा तत्र भ्रातृभिस्सह धर्मजः ॥ ३५ ॥ उपविष्टं नृपन्हुद्वा मार्कण्डेयो महासुनिः ॥ उवाच वचनं देवं धर्मपुत्रं युधिष्ठि

और स्मृतियों के जाननेवालेहैं ॥ ३१ ॥ इन और भी बहुतसे तपस्वियों करके मार्कण्डेयजी शोभितहुये जैसे नक्षत्रों करके चन्द्रमा शोभित हो ॥ ३२ ॥ तबतक तीर्थयात्रा के फलको सुनके समझदार ब्राह्मण, अपनी प्रिया द्रौपदी ॥ ३३ ॥ ब्रह्मिष्ठ, ब्रह्मचिन्तक, विद्वान्, ब्राह्मणों के सहित राजा युधिष्ठिर मार्कण्डेयजी मुनिके आश्रममें आतेहुये ॥ ३४ ॥ तीनबार प्रदक्षिणा व बार २ साष्टाङ्ग प्रणाम करके भाइयों के सहित राजा युधिष्ठिर वहांपर बैठतेहुये ॥ ३५ ॥ महासुनि मार्कण्डेय राजा

को बैठे देखके धर्म के पुत्र युधिष्ठिर से वचन बोलते हुये ॥ ३६ ॥ हे नृपशार्दूल ! भाई और ब्राह्मणों के सहित आपकी कुशल है तब हंसके राजा मार्कण्डेयमुनिसे बोले ॥ ३७ ॥ कि आज हमारा जन्म सफलहुआ और हमारा जीवनभी सफल है आज आपके चरणकमल के देखने से हम कुतकुत्य हुये सूर्यके समान प्रकाश करतेहुये तपोवनको देखके ॥ ३८ ॥ आज हमारे अन्तःकरणका मल नष्ट होगया और पापोंके नाश होनेसे मन निर्मल होगया ॥ ३९ ॥ हे विभो ! उत्तरदिशा की मनोहर देवभूमि में विहार करके सातजन्मों के पापसे हम छुटगये ॥ ४० ॥ तीनोंलोकोंमें रहनेवाली गङ्गादेवी, यमुना, सरस्वती, गङ्गाद्वार, हिमालय, कुब्जाग्र, ब्रह्मयोनि ॥ ४१ ॥

रम् ॥ ३६ ॥ कुशलं नृपशार्दूल आतृभिर्ब्राह्मणैस्सह ॥ प्रहस्यसोऽब्रवीद्वाक्यं मार्कण्डेयु निसत्तमम् ॥ ३७ ॥ अद्य मे सफलं जन्म जीवितं च मुजीवितम् ॥ कृतकृत्यो भवन्त्वद्य त्वत्पादाम्बुजदर्शनात् ॥ ३८ ॥ अद्य मेन्तर्मन्तर्मन्तं नष्टं पापोच्छेदनं निर्मलम् ॥ दृष्ट्वा तपोवनं सर्वं ज्वलन्तं सूर्यवर्चसम् ॥ ३९ ॥ निर्मुक्तः किल्बिषादस्मात्सजन्मान्तराद्दिभो ॥ रन्त्वा चोत्तरदिग्भागे देवभूमि मनोहराम् ॥ ४० ॥ गङ्गान्त्रिणथगान्देवी यमुनाञ्च सरस्वतीम् ॥ गङ्गाद्वारं हिमस्थानं कुब्जान् ग्रंथयोनिकम् ॥ ४१ ॥ उग्रं कनखलञ्चैव केदारम् भैरवन्तथा ॥ नैमिषञ्च गयातीर्थं कुरुक्षेत्रञ्च पुष्करम् ॥ ४२ ॥ वाराणसीं प्रयागञ्च गङ्गासागरसङ्गमम् ॥ कालञ्जराञ्चाप्यतीर्थं प्रभासं शशिभूषणम् ॥ ४३ ॥ पुण्यान्येतानि चान्यानि त्यक्त्वा क्षेत्राणि सुव्रत ॥ सेव्यते केन कार्थ्येण न मर्मदैवमहानदी ॥ ४४ ॥ भविष्यभूततत्त्वज्ञ त्रिकालज्ञ त्रिवेदिक ॥ श्रोतुकामा इमं सर्वे कथयस्व प्रसादतः ॥ ४५ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ शृणुराजन्महाबाहो ब्राह्मणैर्भ्रातृभिस्सह ॥ तत्ते हं कथयिष्यामि पुराणं स्कन्दकीर्तितम् ॥ ४६ ॥ स्वप्नमुपेयमुनय आदिकल्पे कृतं युगे ॥ देवानां सङ्गमेतत्र कैलासे च शिवा

उग्र, कनखल, केदार, भैरव, नैमिष, गया, कुरुक्षेत्र, पुष्कर ॥ ४२ ॥ काशी, प्रयाग, गङ्गासागर, तालझर, आप्यतीर्थ, प्रभास और शशिभूषण ॥ ४३ ॥ इनको और भी पवित्रतीर्थों को छोड़के आप नर्मदाही नदी का किस प्रयोजन से सेवन करते हो ॥ ४४ ॥ हे त्रिकालज्ञ भगवन् ! ये सब लोग इस कारण को सुना चाहते हैं सो आप प्रसन्नता से कहें ॥ ४५ ॥ तब मार्कण्डेयजी बोले कि हे महाबाहो राजन् ! आप ब्राह्मण और भाइयों के सहित सुनें हम स्वाभिकान्तिकेयका कहाहुआ पुराण

कि हे देवताओ ! जो तुम लोगोंको भी नहीं प्राप्त होसक्ती जोकि मांगने लायक नहींहै उसको तुम मांगते हो इस नर्मदा के वेगको कौन सहसक्ता है ॥ ५६ ॥ इसके वेगसे सब जगत् जलहोके बहजायगा इससे जो सुखसे आसके ऐसी और नदीको तुम मांगो ॥ ५७ ॥ तब देवता बोले कि शोकतारिणी नर्मदा को छोड़के और कौन नदी पापियोंको तारसक्तीहै ॥ ५८ ॥ देवताओं के वचनको सुनके शिवजीने नर्मदाको बुलाया तब सब आभूषणों से भूषित नर्मदादेवी आतीहुई ॥ ५९ ॥ मगर पर सवार हुई महादेवजी की आज्ञासे प्रत्यक्षहुई और बोलीं कि हे देव ! जो आपको कहनाहो मुझसे कहिये और मेरे ऊपर आपको कृपा करनी चाहिये ॥ ६० ॥ महा-

सुराः ॥ वेगं शक्नोति कस्मो दुन्ततो य भ्रमणस्य च ॥ ५६ ॥ तोयम्भूतं जगत्सर्वं निपतिष्य ज्जवेन तु ॥ याचध्वस न्यासं स
रितं सुखसाध्यान्तरङ्गिणीम् ॥ ५७ ॥ देवा ऊचुः ॥ कान्या तारयितुं शक्ता पुण्या सोढुं सरिद्धरा ॥ मुक्त्वा त्रिनयने शानो
नर्मदां शोकतारिणीम् ॥ ५८ ॥ देवानां वचनं श्रुत्वा समाहूता सरिद्धरा ॥ आगता च ततो देवी सर्वाभरणभूषिता ॥ ५९ ॥
प्रत्यक्षा मकरारूढा देवदेवस्य चाज्ञया ॥ देवमेदेहि वक्तव्यं कर्तव्या तु कृपामयि ॥ ६० ॥ निशम्य तद्वचस्सौम्यं नर्मदा
यास्त्रिलोचनः ॥ उवाच वचनं इलक्षणं मर्त्यलोकेद्यगम्यताम् ॥ ६१ ॥ लोकानां च हि तार्थाय मर्त्यानाञ्च विशेषतः ॥ न
र्ममदो वच ॥ तवाज्ञाञ्च करिष्ये हं निराधारा कथं विभो ॥ ६२ ॥ कोमान्धर्तुञ्च शक्नोति महीयास्यति विप्लवम् ॥ आदि
देशततः सर्वान् पर्वतान् परमेश्वरः ॥ ६३ ॥ आदिश्यैतां श्रतान् सर्वांस्ततो देवः स्वयं शिवः ॥ पर्वता ऊचुः ॥ न शक्नुमो वयं
सर्वे धर्तुं वेगञ्च नार्ममदम् ॥ ६४ ॥ भेदमाप्नोति वै प्रृथ्वी शतधा यायान्ति भूभृतः ॥ ऋक्षवानवर्षाद्वेवन्दे ह्यज्ञान्निदशे

देवजी नर्मदा का ऐसा सौम्य वचन सुनके स्नेहयुक्त वचन बोले कि हे नर्मदे ! आजही तुम मनुष्यलोक को जावो ॥ ६१ ॥ सब लोकोंके हितके लिये और मनुष्योंके तो विशेषही हितके वास्ते तब नर्मदाजी बोलीं कि हे भगवन् ! मैं निराधार होके आपकी आज्ञा कैसे करसक्ती हूँ ॥ ६२ ॥ मेरे धारण करने को कौन समर्थ है मेरे गिरने से पृथिवी नष्ट होजागी तब महादेवजी पर्वतों को आज्ञा देतेहुये ॥ ६३ ॥ इस प्रकार आज्ञा देके महादेवजी आप सबजगद् हुये तब महादेवजी से पर्वत बोले कि हे महादेव ! हमलोग नर्मदा के वेगको नहीं धारण करसक्ते ॥ ६४ ॥ क्योंकि जब नर्मदा के वेगसे पृथिवी फटजायगी तब पहाड़ों के सैकड़ों टुकड़े होजायेंगे

तब ऋक्षान् पर्वत बोला कि हे देव ! आप मुझको आज्ञा देवें ॥ ६५ ॥ मैं सत्य व आपकी कृपासे नर्मदाको धारण करूंगा तब हे नगाधिप युधिष्ठिर ! जम्बूद्वीपमें नर्मदा देवी उतरीगई ॥ ६६ ॥ फिर सब पर्वत और जङ्गलों के सहित सब पृथ्वीमें फिराके देवताओंने नर्मदासे कहा कि हे सुव्रते ! अब तुम मर्यादा को धारण करो ॥ ६७ ॥ सो नर्मदा इक्षीसहजार योजनका जिनका प्रमाणहै ऐसे सात पातालों को फाड़ कर रसातल को जातीहुई ॥ ६८ ॥ फिर प्रलय होनेपर नर्मदाजी देवलोकको चलीगई यह पहले मन्वन्तरमें नर्मदा के प्रथम अवतरणकी कथा कहीगई ॥ ६९ ॥ हे अर्पाप ! आदिकल्प के दूसरे स्वरोचिप मन्वन्तर में प्रथमयुग में सागर, नदी, तीर्थ और

इवर ॥ ६५ ॥ धार्यामिचसत्येन त्वत्प्रसादादुमापते ॥ ततोऽवतारितादेवी जम्बूद्वीपेनराधिप ॥ ६६ ॥ चारयित्वा महींसर्वो
सशैलवनकाननाम् ॥ ततोदेवगणैरुक्ता मर्यादां व हसुव्रते ॥ ६७ ॥ एकविंशत्सहस्राणि योजनानां प्रमाणतः ॥ साभि
त्त्वासप्तपातालान् रसातलतलययौ ॥ ६८ ॥ देवलोकं जगामाथ प्रलये समुपस्थिते ॥ प्रथमाकथिताराजन्नवतार
स्य कल्पना ॥ ६९ ॥ स्वरोचिषे द्वितीये तु आदिकल्पे युगेनघ ॥ नसागरानसरितो नतीर्थानिनसङ्गमः ॥ ७० ॥ त्रेतायु
गेवतीर्णानि पुराभागीरथीसरित् ॥ जङ्गनाचुलुकेनैव हृदि मध्ये व्यवस्थिता ॥ ७१ ॥ साकथंसेव्यते राजन्सेवन्ते न्यानादीं सुराः ॥
तु कल्पगाम् ॥ अज्ञानतमसाच्छन्ना विष्णुमायाविमोहिताः ॥ ७२ ॥ त्यक्त्वा वै नर्मदां राजन्सेवन्ते न्यानादीं सुराः ॥
यादृशं सूर्यदेवानां मणिरत्नप्रभासुच ॥ ७३ ॥ अन्तरं तादृशं राजन्नर्मदान्यापगामुच ॥ श्रुत्वा ख्यानमिदं पुराणं श
ङ्करस्य प्रभावतः ॥ ७४ ॥ सेव्यते सप्तगातन पुराणं स्कन्दकीर्तितम् ॥ एतत्ते कथितं राजन् यथादृष्टं यथा श्रुतम् ॥ ७५ ॥

संगम कुछ भी नहीं था ॥ ७० ॥ तब त्रेतामें गंगाजी उतरीं जिनको जहू राजाने चुल्लू से आचमन करके हृदयमें स्थापित किया ॥ ७१ ॥ पूरे कल्पभर रहनेवाली नर्मदा को छोड़के वे गंगा किस प्रकार से सेवन कीजासक्ती हैं अज्ञानरूप अन्धकार से ढकेहुये विष्णुमायासे मोहित जीव ॥ ७२ ॥ नर्मदा को छोड़कर और नदी-योंकी सेवा करते हैं जैसे मणि और रत्नोंकी प्रभाओंसे सूर्यदेव का अन्तर है मार्कण्डेयजी राजा युधिष्ठिर से कहते हैं कि महादेवजी के प्रभावसे स्कन्द के कहेहुये इस पवित्र आख्यान को सुनके हम नर्मदाका सेवन करते हैं हे राजन् ! यह इतिहास जैसा कुछ

धने देखा व मुनाथा आपसे कहा ॥ ७६ ॥ आप इन वेदपाटी ब्राह्मणों करके संहित कृतकृत्यहो और वंशजय से रहित आप परमपद को प्राप्तहोगे ॥ ७६ ॥ इस पवित्र पापनाशक आख्यान को सुनके गोहत्या का पापभी नष्ट होताहै ॥ ७७ ॥ इति श्रीरुक्मण्यपुराणोवाखण्डेनाकृतभाषातुत्रोद्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ ७८ ॥ पर्वत फिर राजा युधिष्ठिर मार्कण्डेयजी से बोले कि हे भगवन् ! नर्मदा का पवित्र दूसरा अवतार, संगम, वाणलिंग, तीर्थयात्रा का प्रमाण, युग और सन्वन्तर ॥ ७९ ॥ पर्वत का माहात्म्य, नर्मदा में यथोचित कर्म करना, तीर्थ २ में देवताओं का पर्वकाल ॥ २ ॥ शहरका माहात्म्य, उसमें वाम, भृगुका पवित्र कीर्तिन और ब्रह्महत्या से छूट-

कृतकृत्यः सर्वकामान्ब्राह्मणैर्वेदपारगैः ॥ प्राप्तोऽपि परमस्थानं वंशजयविवर्जितम् ॥ ७६ ॥ श्रुत्वा ख्यानमिदं पुरयं पवित्रमघ नाशनम् ॥ ये शृण्वन्ति सदानित्यं गोहत्याचप्रणश्यति ॥ ७७ ॥ इति श्रीरेवासुरादे आदिकल्पकथनं द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ रेवावतरणं पुण्यं सङ्गमलङ्घनमर्चितम् ॥ तीर्थयात्राप्रमाणञ्च युगमन्वन्तराणि च ॥ १ ॥ पर्वतस्य तु माहात्म्यं तत्र नद्यां यथोचितम् ॥ पर्वकालस्तु देवानां तीर्थं यथोचितम् ॥ २ ॥ पत्तनस्य तु माहात्म्यं तत्र वासं यथोचितम् ॥ भृगोस्तु कीर्तनं पुण्यं ब्रह्महत्याविमोचनम् ॥ ३ ॥ केनावतीर्य काय्येण जम्बूद्वीपे सरिद्धरा ॥ शिवलोकंगता सा तु तन्मेव दमहामुने ॥ ४ ॥ उक्तानुक्तञ्च यत्किञ्चित्कथयस्व प्रसादतः ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ श्रूयतां राजराजोद्भद्र कथ्यमानं निबोध मे ॥ ५ ॥ हिरण्यकशिपुश्चासीद्युगेचाद्ये महासुरः ॥ शिवप्रसादसम्पन्नो ह्यलं मातृवलोकतः ॥ ६ ॥ निर्जिता देवतास्तेन पलायनपरायणाः ॥ जग्मुः शरणमुद्धिरना भयार्ताभयविह्वलाः ॥ ७ ॥ शङ्खचक्रधरं देवं संसारार्णवतारण

जाना ॥ ३ ॥ व हे महामुने! किसप्रयोजनसे जम्बूद्वीपमें नर्मदाजी अवतार लेके फिर शिवलोकको चलीगई यह सब मुझसे कहो ॥ ४ ॥ और भी जो कुछ मैंने पूछाहो या न पूछाहो अपनी प्रसन्नतासे कहिये मार्कण्डेयजी बोले कि हे राजेन्द्र ! आप सुनें और मेरे कहने को समझें ॥ ५ ॥ पूर्वकालमें सत्ययुगमें महादेवके प्रसादसे युक्त और अपनी माता दितिके बलसे प्रबल हिरण्यकशिपु नामका महाअसुर होताहुआ ॥ ६ ॥ उससे जीतेहुये घबड़ाने व भागतेहुये सब देवता विष्णुकी शरणको प्राप्त हुते ॥ ७ ॥ और

तब ब्राह्मण बोले कि हे महाराज ! स्वर्गमें लोकोंके पवित्र करनेवाली नर्मदा है उस लोकपापहारिणी को स्वर्गसे आप उतारें ॥ १८ ॥ अपने मनके वश करने वाले उन ब्राह्मणों के उसवचनको सुनके कुछ अधिक हजार वर्ष महादेवजी को आराधन करतेहुये ॥ १९ ॥ कन्द, मूत्र, फल, शाक और जलका आहार करके निर्मल अन्तःकरण से महादेवजीकी भक्तिमें तत्पर होतेहुये ॥ २० ॥ तब सन्तुष्टहो महादेवजी बोले कि हे पुत्र ! अपने मनका प्यारा यथेष्ट वर मांगो मैं तुम्हारे लिये देऊंगा इसमें कोई सन्देह नहींहै ॥ २१ ॥ तब पुरुरवा बोले कि हे महादेव ! जो आप मुझ से प्रसन्नहैं और मुझको वर देने की इच्छा करतेहो तो सब लोकोंके हितके

ज नर्मदालोकपावनी ॥ अवतारयतांस्वर्गल्लोकानांपापहारिणीम् ॥ १८ ॥ तेषांतद्वचनंश्रुत्वा द्विजानांविधृतात्मना
म् ॥ आराधयामासेदमयुतंसाग्रमेवच ॥ १९ ॥ कन्दमूलफलैःशार्कैर्जलाहारैस्तथापिसः ॥ शिवभक्तिगरोनित्यं
विशुद्धेनान्तरात्मना २० ॥ ततस्तुष्टोमहादेवोवरंवरयपुत्रकः॥ददामितेनसन्देहोयथेष्टमनसेप्सितम् ॥ २१ ॥ पुरुरवाउवा
च ॥ यदितुष्टोमहादेव वरंदातुंममेच्छसि ॥ हितायसर्वलोकानामवतारयनर्मदाम् ॥ २२ ॥ नवखण्डास्सप्तद्वीपा
स्त्वापगास्सरितस्तथा ॥ निमग्नंनरकेधोरै जगत्सर्वमयाश्रुतम् ॥ २३ ॥ लब्धयोजनपर्यन्तं जम्बूद्वीपंनिराश्रयम् ॥ नदे
वास्तृप्तिमायान्ति नमातृपितृमानुषाः ॥ २४ ॥ एतच्छ्रुत्वामहादेवो नरदेवस्यभाषितम् ॥ हरउवाच ॥ उवाचदुर्लभंदे
वैरयाच्ययाच्यतेनृप ॥ २५ ॥ वरमन्यंप्रयच्छामि वर्जयित्वातुनर्मदाम् ॥ पुरुरवाउवाच ॥ नान्यंवरंमहादेव प्राण
त्यागेपिप्रार्थये ॥ २६ ॥ ज्ञात्वातुनिश्चयंराज्ञस्तपसोग्रेणसाधनम् ॥ आज्ञापितामेकलासावतरत्वंसुरेश्वरि ॥ २७ ॥ पुरू

वास्ते नर्मदाको उतारो ॥ २२ ॥ नवखण्ड सातद्वीप और सब नदियां भी हैं लेकिन सब जगत् घोरनरकमें डूबाहै यह मैंने सुनाहै ॥ २३ ॥ एकलाख योजनका जम्बूद्वीप निराधार होरहा है देवता, माता, पितर और मनुष्य तृप्तिको नहीं प्राप्त होते ॥ २४ ॥ महादेवजी राजाके इस वचनको सुनके बोले कि हे नृप ! देवताओं को दुर्लभ और मांगने के अयोग्यवर को आप मांगतेहो ॥ २५ ॥ नर्मदा को छोड़के और वरको हम देंगे तब पुरुरवा बोले कि हे महादेव ! हम मरण पर्यन्त भी दूसरे वरको नहीं मांगेंगे ॥ २६ ॥ राजाके उग्रतप से साधन को निश्चय जानके महादेवजी नर्मदाको आज्ञा देतेहुये कि हे सुरेश्वरि ! तुम उतारो ॥ २७ ॥ पुरू-

रवाके तपोबलसे तुम मनुष्यलोक का हितकरो आज्ञाको पाके वे नर्मदाजी महादेवजीके आगे स्थितहुई ॥ २८ ॥ व हाथ जोड कहनेलगीं कि आज मुझको आज्ञा दीजावे तब महादेवजी नर्मदासे बोले कि हे भेवे ! तुम हमारी आज्ञासे स्वर्गलोकसे मनुष्यलोक को जावो ॥ २९ ॥ हे कल्याणि ! इस समय पुरुषा के तप को सत्यकरो तब नर्मदा बोलीं कि हे ईश ! निराधारहोके स्वर्गसे पृथिवीको मैं कैसे जाऊं ॥ ३० ॥ तदनन्तर पार्वतीजीकेपति महादेवजी नर्मदाके वचनको सुनके आठ कुल-पर्वतोंको बुलातेहुये ॥ ३१ ॥ महादेवजी पर्वतोंसे बोले कि नदीके धारण करनेको कौन सा पर्वत समर्थ है तब पर्वत बोले कि हे भगवन् ! नर्मदाके जलके नेगसे

रवोत्पिपाकेन मर्त्यलोकहितंकुरु ॥ आज्ञापितागतासाच शिवस्याग्रेव्यवस्थिता ॥ २८ ॥ कृताञ्जलिपुटभूत्वाममादेशो
द्यदीयताम् ॥ हरउवाच ॥ स्वर्गात्प्रयाहिरेवेत्वं मर्त्यलोकंममाज्ञया ॥ २९ ॥ पुरुरवस्तपस्सत्यं कुरुकल्याणिसाम्प्र
तप ॥ नर्ममदोवाच ॥ कथमीशानिराधारा स्वर्गाद्यास्याम्यहंधराम् ॥ ३० ॥ ततस्तद्वचनंश्रुत्वा देवदेवउभापतिः ॥
ममप्राप्त्यासाससर्वानष्टौकुलनगोत्तमान् ॥ ३१ ॥ उवाचपर्वतान्देवः कःसरिद्धारणेक्षमः ॥ पर्वताऊचुः ॥ शतधाभेदमाया
नयः ॥ अभाषततोविन्ध्ययोधतुमुत्सहतेनदीम् ॥ ममपुत्रस्सुरेशाग्रथ त्वत्प्रसादान्नसंश
यः ॥ कन्दर्पपट्टविक्रमः ॥ ज्येष्ठस्सर्वगुणैर्युक्तो मान्यः सर्वमहीभुताम् ॥ ३४ ॥ देवैरपि
सन्त्येवपर्वतास्सर्वे यद्यपीहमहेश्वर ॥ ३५ ॥ तथापिधारणेशक्तः स एवेहनसंशयः ॥

अनुज्ञादिहिपर्यङ्कः क्षमस्तान्धर्तुमागाम् ॥ अनुज्ञातश्चदेवेन पर्ययं
कि हे सुरेशाग्रथ ! आपके प्रसावसे मेरा पुत्र नदी धारण करनेको समर्थ है इसमें कोई सन्देह
नहीं है ॥ ३४ ॥ देवता भी जिसको नहीं
है ॥ ३५ ॥ तथापि नर्मदाके धारण करनेमें पर्यङ्कही समर्थ है इसमें सन्देह नहीं है
उस नदीके धारण करनेको पर्यङ्क समर्थ है तब वह पर्वतश्रेष्ठ पर्यङ्क महादेवजी

से आज्ञापाके ॥ ३७ ॥ बोला कि हे महेश्वर ! आपके प्रसादसे मैं धारण करूंगा तदनन्तर देवी नर्मदाजी पर्यङ्क पर्वत की चोटीपर प्राप्तहुई ॥ ३८ ॥ जलके समूह के वेग और भ्रमण से पर्वत और जङ्गलों के सहित समस्त पृथिवी भीग गई और सब जगत् वेसमय प्रलय के भयसे घबड़ा गया ॥ ३९ ॥ तब सब देवगणों से नर्मदाजी स्तुति की गई कि हे कल्याणि ! आप मर्यादा को धारण करो क्योंकि आप लोकोंकी हितकारिणी हो ॥ ४० ॥ आपसे यह सब चराचर त्रैलोक्य व्याप्त हो रहा है तब महादेवकी आज्ञासे नर्मदाजी सङ्कोच को प्राप्तहुई ॥ ४१ ॥ पितामहोंको टूट करके इक्ष्मीम हजार योजन के प्रमाण से रसातल में वे नर्मदाजी प्रवेश करती

ङ्कस्मनगोत्तमः ॥ ३७ ॥ उवाचधारयिष्येहं त्वत्प्रसादान्ममहेश्वर ॥ ततःप्रचलितादेवी भूर्द्धिपयङ्कभूभृतः ॥ ३८ ॥ जलौघवेगभ्रमणत्सर्शलवनकानना ॥ प्लावितावसुधासर्वा अकालकलितजगत् ॥ ३९ ॥ स्तुतादेवगणैःसर्वस्तदामेकलकन्यका ॥ मर्यादांवहकल्याणि लोकानांहितकारिणी ॥ ४० ॥ त्वयाव्याप्तमिदंसर्वं त्रैलोक्यंसचराचरम् ॥ ततःसदृतरूपेण शिवाज्ञातश्चमेकला ॥ ४१ ॥ प्रमाणतोयोजनानां सहस्राण्येकविंशतिः ॥ रसातलंसाविविशे तर्पयित्वा पितामहान् ॥ ४२ ॥ स्पृशमान्वंस्वहस्तेन इत्युक्तस्सरुरवाः ॥ पीत्वाचसलिलंदत्ते पितृभ्यश्चतिलोदकम् ॥ ४३ ॥ अगमनपरमंस्थानं यत्सुरैरपिदुर्लभम् ॥ पवित्रंपरितस्सर्वं त्रैलोक्यंसचराचरम् ॥ ४४ ॥ सेव्यतेतेनकार्येण नर्मदासप्तकल्पगा ॥ एतत्तेकथितंराजन्नाख्यानञ्चशिवोदितम् ॥ ४५ ॥ वैवस्वतमिदानीन्तु द्वापरान्तेसमुद्यते ॥ त्वंराजाभ्रातृभिस्सार्द्धं सत्यसन्धोदृढव्रतः ॥ ४६ ॥ त्रेतायाःप्रथमेपादे गङ्गाभागीरथीस्मृता ॥ अदहत्कपिलश्चास्य पितृणामयु

हुई ॥ ४२ ॥ और पुरुरवासे मेरे जलको छुओ तब पुरुरवाने जलको पीके पितरों को तिलोदक दिया ॥ ४३ ॥ जोकि देवताओंको भी दुर्लभ परम स्थान है तिसको पुरुरवा के पितर प्राप्तहुये और सब चराचर तीनोंलोक चारों तरफसे पवित्र होगये ॥ ४४ ॥ इसी हेतुसे सातो कल्पमें रहनेवाली नर्मदा का हम सेवन करतेहैं हे राजन् ! इस महादेवके कहेहुये आख्यानको मैंने तुम्हारे लिये कहा ॥ ४५ ॥ इस समय मैं वैवस्वत मन्वन्तर है तिसके द्वापर के अन्तमें सत्यप्रतिज्ञा

वाले दृढ़व्रत भाइयों के सहित तुम राजाहुये हो ॥ ४६ ॥ त्रेताके पहले चरण में भागीरथी गङ्गा हुई इन भागीरथके साठ हजार पितरोंको कपिलने भरम कर दिया था ॥ ४७ ॥ वे लोग विष्णुकी मायासे मोहित होकर सातवें रसातलको प्राप्तहुयेथे इसी प्रकार और एक मन्दकिनी नामकी दूसरी गङ्गाहैं ॥ ४८ ॥ मयोदाको नहीं छोड़ते ऐसे सातों समुद्र नर्मदाहूके जलसे पूर्णहोगये और वैसेही त्रेताके तीसरे चरण में सरस्वतीनदी पृथिवीपर उतरें ॥ ४९ ॥ वह सरस्वती स्थानेश्वर को गई फिर गङ्गाके समागम में प्राप्तहुई कनखल में गङ्गा पवित्रहैं तथा सागरसङ्गम में पवित्रहैं ॥ ५० ॥ ऊर्ध्वतीर्थ, प्रयाग और काशी में विशेष करके पवित्र है और प्राची सरस्वती जहां

तानिषद ॥ ४७ ॥ मोहितामाययाविष्णोर्गताससरसातलम् ॥ एवंमन्दकिनीनाम त्वन्यागङ्गासरिद्वरा ॥ ४८ ॥ मेक
लातोयसम्पूर्णास्सागरास्सप्तयन्त्रिताः ॥ तृतीयेचतथापादे अवतीर्णासरस्वती ॥ ४९ ॥ स्थानेश्वरगतासातु पुनर्गङ्गा
समागमे ॥ गङ्गाकनखलेपुण्या गङ्गासागरसङ्गमे ॥ ५० ॥ ऊर्ध्वतीर्थेप्रयागेचवाराणस्यांविशेषतः ॥ प्राचीसरस्वतीय
त्र कुरुक्षेत्रेचपुरयदा ॥ ५१ ॥ प्रणष्टेद्वादशादित्येप्रलयेसमुपस्थिते ॥ सप्तकल्पक्षयेवृत्ते नमृतातेननर्मदा ॥ ५२ ॥ स
रितश्चक्षुर्गयान्ति गङ्गाद्याश्चसहस्रशः ॥ नर्ममदातिष्ठतेद्वी सप्तकल्पानुगामिनी ॥ ५३ ॥ ब्राह्मीसरस्वतीमूर्तिवैष्णवी
त्रिपथास्मृता ॥ नर्ममदाशाङ्करीमूर्तिर्नद्यास्तिस्त्रिदेवताः ॥ ५४ ॥ गङ्गाचयमुनाचैव सरयूश्चसरस्वती ॥ शतभागाच
न्द्रभागा रम्यासिन्धुर्महानदी ॥ ५५ ॥ इरावतीचकपिलानर्मदासवितस्तिका ॥ दण्डकीगण्डकीचैव घर्घराचमहान
दी ॥ ५६ ॥ शोणोमहानदश्चैव वेदिकाचतरङ्गिणी ॥ ब्रह्मवाहाविष्णुवाहा सारङ्गागौतमीतथा ॥ ५७ ॥ विश्ववाहाधेनुम
हैं वहां कुरुक्षेत्र मे पुण्यकी देनेवाली हैं ॥ ५१ ॥ बारहों स्त्रियों के नाश होनेपर और प्रलय के आनेपर सांतो कल्पोंके क्षयहोनेपर नहीं नष्टहुई इससे नर्मदा कही
जाती हैं ॥ ५२ ॥ गङ्गाआदि हजारों नदियां नाशको प्राप्त होजाती हैं नर्मदादेवी सात कल्पपर्यन्त बनीरहती हैं ॥ ५३ ॥ सरस्वती ब्रह्माकी मूर्तिहैं और गंगाजी
विष्णुकी नर्मदा शिवजीकी ये तीनों नदिया तीनों देवताही हैं ॥ ५४ ॥ गंगा, यमुना, सरयू, सरस्वती, शतद्रू, चन्द्रभागा, रमणीक महानदीसिन्धु ॥ ५५ ॥ इरावती,
कपिला, नर्मदा, वितस्ता, दण्डकी, गण्डकी, महानदीघर्घरा ॥ ५६ ॥ महानद शोणभद्र, वेदिका, तरंगिणी, ब्रह्मवाहा, विष्णुवाहा, सारंगा वैसेही गौतमी ॥ ५७ ॥

विश्ववाहा, धेनुमती, अपारा, अपरा वैसेही वेन्नवती, कुचुदा, महातापी, पयोष्णी ॥ ५८ ॥ वेणा, दुग्धिका, शिप्रा, अजहासा, अम्रमती, कृष्णा, भीमरथी और महा-
नदी तुंगभद्रा ॥ ५९ ॥ गोदावरी जिसका नाम दक्षिणगंगा है औरभी जो सब नदियां, सब तीर्थ और समुद्र हैं ॥ ६० ॥ उनमें कटपोंतक रहनेवाली नर्मदाको छोड़ के
ये सब नदियां नाशको प्राप्तहोती हैं और गंगादेवी क्या वर्णन कीजाती हैं जिन को महादेवजी ने शिरभे धारण किया है ॥ ६१ ॥ और भाजात्परमेस्वर महादेवजी
के आगे शरीर में स्थित होनेवाली पार्वतीजी की क्या प्रशंसा करनी नर्मदाजी वर्णन करने के योग्य हैं जोकि सातकल्पो तक बनी रहती है ॥ ६२ ॥ वे देश, पर्वत

ती अपाराअपरातथा ॥ वेन्नवतीचकुमुदा महातापीपयोष्णिका ॥ ५८ ॥ वेणाचदुग्धिकाशिप्राजहासाअम्रमतीतथा ॥
कृष्णाभीमरथीचैव तुङ्गभद्रामहानदी ॥ ५९ ॥ गोदावरीतिविख्याता गङ्गासादक्षिणास्मृता ॥ नद्यश्चैवतथाचान्याः
र्वतीर्यानिसागराः ॥ ६० ॥ सर्वास्ताःप्रलयंयान्ति वज्जयित्वातुकल्पगाम् ॥ गङ्गाकिंवर्ण्यतेदेवी हरेणशिरसाधृता ॥
६१ ॥ गौरीवार्द्धशरीरस्था शिवस्यपरमेष्ठिनः ॥ नर्मदावर्ण्यतेदेवी सप्तकल्पानुगामिनी ॥ ६२ ॥ तेदेशाःपर्वताःपु
ण्यास्तेग्रामास्तेपिचाश्रमाः ॥ यत्रयातासरिच्छेष्टा नर्मदासप्तकल्पगा ॥ ६३ ॥ त्रिभिस्सारस्वतंपुण्यं सप्ताहेनतुया
मुनम् ॥ सद्यःपुनातिगाङ्गेयं दर्शनादेवनर्मदा ॥ ६४ ॥ रेवातटेपुयेवृक्षाः पतिताःकालपर्यये ॥ नर्मदातोयसंस्पृ
ष्टास्तेपियान्तिपराङ्गतिम् ॥ ६५ ॥ रेवायायत्रकुत्रापि सङ्गमेभरतर्षभ ॥ स्नानंदानंजपोहोमः स्वाध्यायःपितृपूजन
म् ॥ ६६ ॥ देवताराधनंदीक्षा न्यासोदेहविसर्जनम् ॥ यत्किञ्चित्क्रियेतमर्त्यैस्तदनन्तफलंस्मृतम् ॥ ६७ ॥ गोसह

वे ग्राम और वे आश्रमभी पवित्रहैं जिनमें नदियों में श्रेष्ठ सातकल्प पर्यन्त रहनेवाली नर्मदाजी विश्रमान हैं ॥ ६३ ॥ सरस्वतीका जल तीन दिनमें पवित्र करताहै और
यमुनाका सात दिनमें और गंगाजल तत्कालमें व नर्मदाका दर्शनमात्रही से पवित्र करदेताहै ॥ ६४ ॥ नर्मदाके तटमें जो वृक्षहैं वे कालयोगसे गिरे और नर्मदा के जल के
स्पर्शको प्राप्तहुये तो वे भी श्रेष्ठगतिको प्राप्तहोते हैं ॥ ६५ ॥ हे भरतर्षभ ! नर्मदाके संगममें जहां कहीं स्नान, दान, जप, होम, वेदपाठ, पितृपूजन ॥ ६६ ॥ देवाराधन,

मन्त्रोपदेश, संन्यास और देहका त्याग या जो कुछ मनुष्योंकरके किया जाता है उसके फलका अन्त नहीं है ॥६७॥ गोसहस्र, गोशत, गोदान और महादानोको वैशाखी अथवा माघी, कार्तिकी, ग्रहण, अयन ॥ ६८ ॥ मेप और तुलाकी संक्रान्ति, अन्य संक्रान्ति, व्यतीपात, वैधृति, अमावास्या, तिथिक्षय, तिथिवृद्धि, मन्वादि तिथि, युगादि तिथि ॥ ६९ ॥ बल्पादि तिथि, माता व पिताका दयाह, ३० कारनाथ, मृगुक्षेत्र और संगममें जो करता है ॥ ७० ॥ और जो श्रेष्ठ मनुष्य नर्मदा में स्नान, दान, जप और होम, पूजन आदि करता है वह अश्वमेधके फलको पाता है ॥ ७१ ॥ और ब्रह्महत्याआदि पापोंसे छूट जाता है इसमें कोई संशय नहीं है अपने आगेकी सौपीढ़ी और अपने पीछेकी

स्रशतन्धेनुं महादानानि कृत्स्नशः ॥ वैशाख्यामथवामादयां कार्तिक्यां ग्रहणायने ॥ ६८ ॥ विषुवे संक्रमेमानोऽर्थता पाते च वैधृतौ ॥ दशैदिनक्षये वृद्धौ मन्वादिषु युगादिषु ॥ ६९ ॥ कल्पादौ च युगादौ च मातापित्रोः क्षये हनि ॥ अंकारे वा भृगोः क्षेत्रे विशेषादुपसङ्गमे ॥ ७० ॥ रेवायां स्नानदानानि जपहोमार्चनादिकम् ॥ यः कुर्यान्मनुजश्रेष्ठः सोऽश्वमेधफलं लभेत् ॥ ७१ ॥ ब्रह्महत्यादिभिः पापैर्मुच्यते नात्र संशयः ॥ कुलानां शतमागामि समतीतन्तया शतम् ॥ ७२ ॥ उद्धरे दात्मना साद्धं रेवातीर्थं वगाहनात् ॥ ग्रामाद्धं ग्राममेकं वा यो दद्यान्न नर्मदा तटे ॥ ७३ ॥ सलभे द्विपुलां लक्ष्मीं मित्यन्त फलमश्नुते ॥ नर्मदातीरसम्भूतां मृदं मूर्द्ध्नि विभर्तियः ॥ ७४ ॥ विभर्ति मूर्तिमर्कस्य तमोनाशाय केवलम् ॥ यत्र यत्र न रः स्नायान्न नर्मदायां युधिष्ठिर ॥ ७५ ॥ प्राप्नुयादश्वमेधस्य फलमेतच्छ्रवोदितम् ॥ नर्मदातोयपानस्य स्नानस्य प्रेक्षणस्य च ॥ ७६ ॥ अपि चान्द्रायणशतं तुल्यम् भवति वानवा ॥ नर्मदां कीर्तयेद्यस्तु प्रातरुत्थाय मानवः ॥ ७७ ॥ स

सौपीढ़ी ॥ ७२ ॥ अपने सहित नर्मदा तीर्थमें स्नान करनेसे उद्धार करता है आधा गांव या पूरा गांव जो नर्मदाके तटमें देता है ॥ ७३ ॥ वह बहुत लक्ष्मी व अत्यन्त फल को प्राप्त होता है नर्मदा के किनारे की मट्टी जो अपने मस्तकपर धारण करता है ॥ ७४ ॥ वह केवल अन्धकार नाश करने को मानो सूर्यनारायण की मूर्ति को धारण किये है हे युधिष्ठिर ! मनुष्य जहा जहां नर्मदा में स्नान करेगा वहा वहां ॥ ७५ ॥ अश्वमेधके फल को पावेगा यह शिवजी ने कहा है नर्मदाका जलपान व स्नान व

दर्शन के ॥ ७६ ॥ बराबर सौ चान्द्रायण होते या नहीं जो मनुष्य प्रातःकाल उठके नर्मदाको कर्तन करता है ॥ ७७ ॥ उसका सात जन्मका कियाहुआ पाप उमीजण में नष्ट होता है और जहां संगम और बाणलिङ्ग से युक्त नर्मदाजी हैं वहां स्नान करके अश्वमेध के फल और शिवपुरको प्राप्त होता है ॥ ७८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे रेवाखण्डे प्राकृतभाषाऽनुवादरेवाद्वितीयावतारकथनं नमस्तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

राजा युधिष्ठिरजी बोले कि हे भगवन् ! पूर्वकालमें राजा हिरण्यतेजा करके मनुष्यलोक में नर्मदादेवी किस प्रकार से उतारी गई सो सब कहनेका आप योग्यहो ॥

सृजन्मकृतं तत्त्वणादेव न दधति ॥ सङ्गमेन समायुक्ता नर्मदालिङ्गसङ्गता ॥ हयमेधफलंतत्र स्नात्वा शिवपुरं ब्रजे त् ॥ ७८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे रेवाखण्डे रेवाद्वितीयावतारकथनं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ * ॥ * ॥

युधिष्ठिरउवाच ॥ हिरण्यतेजसा पूर्वं राज्ञा नर्मदाकथम् ॥ मर्त्येऽवतारिता देवी तत्सर्वं वक्तुमर्हसि ॥ १ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ हिरण्यतेजाराजर्षिः सोमवंशे महीपते ॥ सर्वधर्मभृतां श्रेष्ठः प्रजापतिः सोमोऽभवत् ॥ २ ॥ एकच्छत्रांशशासोर्षी सौलवनकाननाम् ॥ ह्यया ताचन्द्रपुरी तस्य शक्रस्यैवामरावती ॥ ३ ॥ निराबाधाः प्रजास्तत्र भयदारिद्र्यवर्जिताः ॥ चिरायुषो नरास्तत्र समालचन्तु जीविनः ॥ ४ ॥ स्वयं कामदुवाधेनुर्धराणि सस्यशालिनी ॥ कौशेयपट्टवस्त्राश्च वक्ष्ये क्षेममुद्रवाः ॥ ५ ॥ एतस्मिन्नन्तरे प्राप्ते ह्यमावास्यां रविग्रहे ॥ सत्कारो न्नास्ति देवानां पितृणाञ्च विशेषतः ॥ ६ ॥ वापीकूपसरोदिव्यं जम्बूद्वीपः प्रकीर्तितः ॥ स्रवन्ती निम्नगाकाचित्तिस्मिन् द्वीपेन विद्यते ॥ ७ ॥ गवांशतसंहराणि हेमरत्नं

१ ॥ मार्कण्डेयजी बोले कि हे महीपते ! चन्द्रवंशमें सब धर्मधारियोंमें श्रेष्ठ प्रजापति के समान हिरण्यतेजा नामके राजर्षिहुये ॥ २ ॥ पहाड़ और जंगलों के सहित एकही जिसमें छत्र ऐसी पृथिवीकी राज्य करते थे उनकी राजधानी चन्द्रपुरी नाम से विद्विन इन्द्र की अमरावती के तुल्य होती हुई ॥ ३ ॥ बाधासे रहित व भय और दरिद्रीसे रहित दीर्घआयु लाखवर्ष जीनेवाली प्रजा होती हुई ॥ ४ ॥ श्रमीष्ट समयमें दुग्ध देनेवाली गौ व सब अन्नसे युक्त पृथिवी व हर एक वृक्षमें रेशमी कपड़े होते थे ॥ ५ ॥ एक समयमें अमावास्या को सूर्यग्रहण प्राप्त होनेपर जिसमें देवता और पितरोंका विशेष संस्कार होता है ॥ ६ ॥ उस समयमें इस जम्बूद्वीपमें बाबली, कूप,

तालाब अनेक थे परन्तु नदी कोई नहीं थी ॥ ७ ॥ राजाजी लाखों गौवें, सुवर्ण, गणित, रत्न, खजाने, घोड़े और मतवाले श्रमणित श्रेष्ठ हाथी राहु से ग्रसे रुर्य के होनेपर ब्राह्मणों को देतेहुये और अपने पुरोहित को हजारों मोहर और मणियोंको दिया ॥ ८ ॥ व हे भारत ! हव्य और वव्य से पितरों को भी तुम करतेहुये राजा ने देखा कि पितरों को जलपान का बड़ा क्लेश है ॥ १० ॥ तुपासे गला, तालु और ओठ सूखते हैं जिनके, मटीलेजल पीनेसे दुःखी, नेगे, भैले कपड़े वाले मैकड़ों और हजारों पितरोंको ॥ ११ ॥ हिरण्यतेजा राजर्षिने देखा तब राजा पितरों से बोले कि भयानकरूपवाले प्रेत से होरहे और भूखसे तुम कौन हो ॥ १२ ॥

मणींस्तथा ॥ कोशंहयानसंख्यातान्मत्तांश्चरदन्तिनः ॥ ८ ॥ ग्रस्तेचराहुणामूर्यं ब्राह्मणान्प्रददीच्छपः ॥ पुरोधसं हस्ताणि हेमरत्नमणींस्तथा ॥ ९ ॥ अतर्पयन्तिपतृश्रापि हव्यकव्येनभारत ॥ कश्मलंजलपानञ्चापश्यत्पितृज्जगुप्सि तम् ॥ १० ॥ क्षुत्क्षामकण्ठताल्वोष्ठांकश्मलांश्चसृग्दम्भसा ॥ नरनान्मलिनवस्त्रांश्च शतशोथसहस्रशः ॥ ११ ॥ हि रण्यतेजाराजर्षिः पश्यतिस्मतदापितृन् ॥ हिरण्यतेजाउवाच ॥ केयूर्यविकृताकाराः प्रेतभृताबुभुक्षिताः ॥ १२ ॥ म उजन्तेनरकेघोरे रौरवेलोमहर्षणे ॥ कथयध्वंयथान्यायं कर्मणाकेनपाविताः ॥ १३ ॥ पितरुचुः ॥ शृणुराजन्म हाभाग कथ्यमानंनिबोधच ॥ सरिद्धीनिमिदन्द्वापं धर्मकर्मविनाशितम् ॥ १४ ॥ नदेवास्तृप्तिमायान्ति पितरोवाक थञ्चन ॥ पितृन्मोचयितुंशक्ता दुराराध्यासुरैरपि ॥ १५ ॥ आगमिष्यतिद्विपेस्मिन् रेवामुक्तिर्भविष्यति ॥ एतत्तेकथि तंराजन्यथेषुंक्तुमर्हसि ॥ १६ ॥ हिरण्यतेजाउवाच ॥ पितृणांमोक्षणंकार्यं यथायान्तिपराङ्गतिम् ॥ मयाराज्येनकि रोवां जिससे खड़ेहों ऐसे घोर रौरवनरकमें डूबरहे अपने को यथार्थ कहो और किस कर्मसे पवित्र होसकेहो ॥ १३ ॥ तब पितरबोले कि हे महाभाग, राजन् ! हमारे कहने को आप सुनें और समझें कि यह द्वीप नदियोंसे रहित होनेसे धर्म के कर्मों से भी रहित है ॥ १४ ॥ विना नदीके देवता व पितर किसी तरह तृप्त नहीं हो सके देवताओंसे भी प्रसन्न होना जिसका कठिनहै पितरों के छुटानेमें समर्थ ॥ १५ ॥ नर्मदा जो इस द्वीपमें आवेगी तो मुक्ति होसकीहै हे राजन् ! यह आपसे कहा गया अब जैसा उचित हो आप करिये ॥ १६ ॥ तब हिरण्यतेजा बोले कि पितरों का छुटादेना हमारा कार्य है जिससे पितर उचमंगति को प्राप्तहोवें राज्यसे हमारा

क्या कार्य है और हमारा जीना भी वृथा है ॥ १७ ॥ इस प्रकार कहके सिद्धि के देनेवाले उदयपर्वत को राजा चलेगये कन्द, मूल और फलों का आहार करते शिवजी के ध्यानमें तत्पर ॥ १८ ॥ देवताओं के हजार वर्षतक उग्रतप में स्थित हुये वहाँ शिवजी ने राजाकी श्रेष्ठभक्तिको निश्चय से जानकरके ॥ १९ ॥ उस समय बैलपर सवार तीन नेत्रवाले देवताओं के देवता महादेवजीने उन राजाको प्रत्यक्ष अपने दर्शन दिये ॥ २० ॥ हे भारत! उस राजाने महादेवजी का ऐसा रूप देखके तीनबार प्रदक्षिणा करके और साष्टाङ्ग प्रणामकरके ॥ २१ ॥ बड़े तेजवाले महादेवजीकी स्तुति किया कि हे देवताओंके ईश्वर! आपके नमस्कार हैं व हे विशूलपाणे!

कार्यजीवितञ्चनिरर्थकम् ॥ १७ ॥ एवमुक्त्वाययौराजा ह्युदयमिद्धिपर्वतम् ॥ कन्दमूलफलाहारः शिवध्यानपरायणः ॥ १८ ॥ दिव्यवर्षसहस्रन्तु उग्रतपसिसंस्थितः ॥ राज्ञस्तुपरमाम्भक्तिं ज्ञात्वैतत्र त्र्यम्बकः ॥ १९ ॥ वृषारूढस्त्रिनेत्रश्च देवदेवोमहेश्वरः ॥ प्रत्यक्षन्तस्य राज्ञश्च तदात्मानमदर्शयत् ॥ २० ॥ सदृष्ट्वा तादृशं रूपं देवदेवस्य भारत ॥ त्रिःप्रदक्षिणमावृत्य साष्टाङ्गप्रणिपत्य च ॥ २१ ॥ स्तोत्रं चकार देवस्य शम्भोरभिततेजसः ॥ नमस्तेऽस्तुसुरेशान शूलपाणेनमोस्तुते ॥ २२ ॥ पृथिव्यापश्यतेजश्च वायुराकाशमेव च ॥ शब्दं स्पर्शश्च रूपश्च रसोगन्धश्च पञ्चभूतः ॥ २३ ॥ बुद्धिर्मनस्त्वहङ्कारः प्रकृतिश्च गुणालयः ॥ सर्वाक्षः सर्वगो देवस्स कलौ निष्कलोऽव्ययः ॥ २४ ॥ जिह्वाचापल्यभावेन क्लेशतोसिमया प्रभो ॥ ब्रह्मविष्णवादिदैवैश्च तवाद्यन्तं न लभ्यते ॥ २५ ॥ कथन्तुमानुषाः पापाः स्तोतुं शक्ताः उमाधवम् ॥ हिरण्यतेजसः स्तोत्रं श्रुत्वा देवो जगत्पतिः ॥ २६ ॥ वरं दृष्टुमहभाग यत्ते मनसि रोचते ॥ उवाच च चनराजा शूलपाणि महेश्वर

आपके नमस्कार हैं ॥ २२ ॥ पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश, शब्द, स्पर्श, रूप, रस व पांचवां गन्ध ॥ २३ ॥ बुद्धि, मन, अहङ्कार, प्रकृति और माया व तीनों गुण इन सबके अधिष्ठाता आपही हो सब पदार्थों में प्राप्त, कलाओं के सहित व कलाओंसे रहित आपहो ॥ २४ ॥ हे प्रभो! जिह्वाकी चञ्चलतासे आपको क्लेशित किया ब्रह्मा और विष्णु आदि देवताओं से भी आपका आदि अन्त नहीं पाया जाता ॥ २५ ॥ ऐसे पार्वतीजीके पति आपकी स्तुति करनेको पापी मनुष्य कैसे समर्थ हो सके हैं हिरण्यतेजा का स्तोत्र सुनके जगत् के पति महादेवजी बोले ॥ २६ ॥ कि हे महाभाग! जो तुम्हारे मनमें हो वह वर मांगो तब विशूल-जिनके हाथमें ऐसे महेश्वर

जीसे राजा वचन बोले ॥ २७ ॥ कि हे देवेश ! जो आप प्रसन्नहो और मुझको वर देनेकी इच्छा करते हो तो सात कल्पतक बहनेवाली नर्मदादेवी को दारुण और घोरनरक में डूबते पितरों के लिये उतारो जिससे वे मरे पितर तप्तहो छूटें और परमगतिको प्राप्तहों ॥ २८ ॥ हे उमापते ! इस वरको आपकी प्रसन्नता से हम चाहतेहैं तब महादेवजी बोले कि हे तात ! मांगने के अयोग्यवरको आपने मांगा क्योंकि नर्मदाजी तो ब्रह्मा, विष्णु, देवता और दैत्य ॥ ३० ॥ तथा और भी अल्पजीवी जीवों से नहीं उतारी जासक्ती हैं इससे तुम्हारा कल्याणहो तुम और वरको मांगो उसको मैं इसीसमय तुम्हें देऊंगा ॥ ३१ ॥ तब महाभाग राजा चन्द्रमा

श्वरम् ॥ २७ ॥ यदितुष्टोसिदेवेश वरंदातुंममेच्छसि ॥ सप्तकल्पवहान्देवीं नर्मदामवतारय ॥ २८ ॥ पितृणांमज्जतांधीरे नरकेदारुणभूशम् ॥ मुच्यन्तेतेयथाप्रेतास्तृप्तायान्तिपराङ्गतिम् ॥ २९ ॥ एवंरमहंमन्ये त्वत्प्रसादादुमापते ॥ ईश्वरउवाच ॥ अयाच्ययाचितन्तात ब्रह्मविष्णुसुरासुरैः ॥ ३० ॥ नावतारयितुंशक्या तयान्यैरल्पजीविभिः ॥ अन्ययाचस्वमद्रन्ते वरंदास्येधुनातव ॥ ३१ ॥ राजोवाच ॥ ततोरजामहाभागः प्रोवाचशशिभूषणम् ॥ त्वयितुष्टमहादेवे लोकनाथेजगद्गुरौ ॥ ३२ ॥ साध्यासाध्यंनवक्तव्यं त्रिषुलोकेषुकिञ्चन ॥ जन्मान्तरसहस्रेण वरंनान्यंदृणोऽयमम् ॥ ३३ ॥ त्यक्त्वाचैवसरिच्छेष्टां नर्मदांसप्तकल्पगाम् ॥ दीयतांममदेवेश भृत्यभृत्योस्मिशाधिमाम् ॥ ३४ ॥ हिरण्यतेजसोज्ञात्वा निश्चयंमानसन्तदा ॥ आहूतात्ततोदेवी नर्मदालोकपावनी ॥ ३५ ॥ सकरासनमारूढा दिव्याभरणभूषिता ॥ श्यामवर्णामहातेजा शिवस्याग्रेव्यवस्थिता ॥ ३६ ॥ उमामहेश्वरैनत्वा पादग्रहणपूर्वकम् ॥ उवाचवच

जिनका भूषण ऐसे शिवजी से बोले कि जगत के गुरु लोकों के नाथ महादेव आपके प्रसन्न होनेपर ॥ ३२ ॥ तीनोंलोकों में कुछ भी राध्य असाध्य नहीं कहा जासक्ता और हम नो हजारों जन्मों करके दूसरे वरको नहीं मांगते ॥ ३३ ॥ सातकल्पतक बहनेवाली नादियों में श्रेष्ठ नर्मदा को छोड़के तिससे हे देवेश ! आप मुझे उसे देवें मैं आपके दासोंका दासहूँ मुझे आज्ञादीजिये ॥ ३४ ॥ तब हिरण्यतेजा के मनका निश्चय जानके तदनन्तर लोकोंको पवित्र करनेवाली नर्मदादेवी बुलाई गई ॥ ३५ ॥ मगरपर सवार दिव्य आभूषणों से भूषित श्याम जिनका रंग बड़े तेजवाली नर्मदाजी शिवके आगे स्थित होतीहुई ॥ ३६ ॥ चरण स्पर्शपूर्वक महादेव

और पार्वती के नमस्कार करके नर्मदादेवी बोलीं कि हे देव ! मैं किस वारते स्मरण की गई हूँ ॥ ३७ ॥ हे देव ! मुझे आप आज्ञा देवें मैं आपकी आज्ञा में स्थित हूँ तब महादेवजी बोले कि हे नर्मदे ! राजा हिरण्यतेजा राज्यको छोड़के ॥ ३८ ॥ चौदह हजार वर्षतक घोररूप दारुण तप किया देवताओं की हजारों वर्षतक उग्रतप में स्थित रहे ॥ ३९ ॥ कन्द, मूल और फलोंका आहार करते शिवके ध्यानमें तत्पर रहे तिससे जम्बूद्वीपकी पृथिवी में तुम अवतारको धारण करो ॥ ४० ॥ हे वरारोहे ! संसारसमुद्र से तारनेवाली तुम शीघ्रही जावो और नरकमें पड़ेहुये प्रेतरूप सत्र पितरोंको उद्धार करो ॥ ४१ ॥ जिससे पापोंके समूह से छूटजावें और पापोंसे छूटेहुये

नंदेवी किमर्थ देवसंस्मृता ॥ ३७ ॥ आदेश देवमेदेहि त्वदादेशो स्थिता ह्यहम् ॥ हिरण्यतेजा नृपतिस्तस्य
क्वाराज्यं च नर्मदे ॥ ३८ ॥ चतुर्दशंतपस्तेपे घोररूपं मुदारुणम् ॥ दिव्यवर्षसहस्रन्तु उग्रतपसि संस्थितः ॥ ३९ ॥ क
न्दमूलफलाहारः शिवध्यानपरायणः ॥ जम्बूद्वीपे वतारन्तु कुरुष्व धरणीतले ॥ ४० ॥ निप्रयाहि वरारोहे संसारा
र्णवतारिणि ॥ प्रेतरूपान्पितृन्सर्वान्नरकस्थान्समुद्धर ॥ ४१ ॥ मुच्यन्ते येन चाधौघाद्भूतपापाय भेषितम् ॥ नर्मदो
वाच ॥ महेश्वरं शूलपाणिमेवमस्त्विति चाब्रवीत् ॥ ४२ ॥ निराधारा कथन्देव जम्बूद्वीपे समाश्रये ॥ आहूतास्ते त
स्तत्र पर्वताश्च कुलाकुलाः ॥ ४३ ॥ क्षणमात्रन्तु तिष्ठन् येन यातिसरिद्धरा ॥ ऊचुश्च पर्वतास्तत्र अशक्ताधारणे वय
म् ॥ ४४ ॥ नर्मदोवाच ॥ अशक्तान्धारणे चैनान्प्रपश्यामि जगत्पते ॥ ममतो यौघपातेन कल्लोलप्रवणावृताः ॥ ४५ ॥

शतभाभेदमायान्ति गिरयो वज्रदारिताः ॥ तेषां मध्ये समुत्थाय प्राब्रवीदुदयाचलः ॥ ४६ ॥ शिवप्रसादसम्पन्नो ह्यहं धा
येष्टगतिं को प्राप्तो हों तब नर्मदा शूलपाणि महादेवजी से बोलीं कि ऐसा ही हो ॥ ४२ ॥ परंतु हे देव ! निराधार मैं जम्बूद्वीप का किस प्रकार आश्रयण कर सकी हूँ
तदनन्तर महादेव करके वहा वे कुलपर्वत बुलाये गये ॥ ४३ ॥ महादेवने पर्वतों से कहा कि तुम लोग क्षणमात्र स्थिर हो जावो जिससे नदियों में श्रेष्ठ नर्मदा पृथिवी
को जावे तब पर्वतों ने उन महादेवजी से कहा कि हम धारण करने में अशक्त हैं ॥ ४४ ॥ तब नर्मदा बोलीं कि हे जगत्पते ! अपने धारण करने में मैं इनको अशक्त
देखती हूँ क्योंकि मेरे जलसमूह के गिरने से कल्लोलों की टक्करों से युक्त ॥ ४५ ॥ मानो वज्रसे फाड़े हुये पर्वत सैकड़ों टुकड़े होके फूटेंगे तब उन पर्वतों के मध्यमे से

उठके उदयपर्वत बोला ॥ ४६ ॥ कि महादेवजी के प्रसाद से युक्त मैं धारण करने को समर्थ हूँ तदनन्तर उदयाचल की चोटीपर अपने चरण को देके नर्मदादेवी बहती हुई ॥ ४७ ॥ आकाश से छूटों नर्मदादेवी पृथिवीतल में गिरतीहुई फिर वायुके समान वेगवाली होके पश्चिम दिशाको आश्रयण किया ॥ ४८ ॥ जम्बूद्वीपमें मय चराचर लोक बेसमय की पीड़ासे पीडित हुआ वहे भारत ! तीनों लोकोंमें बड़ा हाहाकार होताहुआ ॥ ४९ ॥ रोयें खड़ेकरनेवाले भयानक कलकलाशब्द को सुनके पाताल से प्रचण्ड तेजवाला लिंग उठताहुआ ॥ ५० ॥ और हुङ्कारही करके नर्मदा से वचन बोला कि हे भद्रे ! हे सब पापोंकी हरनेवाली ! हे सुव्रते ! मर्यादा

रयितुं क्षमः ॥ ततः प्रचलितादेवी दत्त्वापादं नगोपरि ॥ ४७ ॥ गगनात्प्रच्युतादेवी पपातधरणीतले ॥ वायुवेगापुनर्भूत्वा
वारुणीन्दिशमाश्रिता ॥ ४८ ॥ अकालपीडितेलोके जम्बूद्वीपे चार्वरे ॥ हाहाकारो महानासीन्निष्ठुलोकेषु भारत ॥ ४९ ॥
श्रुत्वा च कलकलाशब्दं भीष्मणलोमहर्षणम् ॥ पातालादुत्थितं लिङ्गं ज्वलितं दीप्ततेजसम् ॥ ५० ॥ हुङ्कारेणैव तद्भद्रे न मम
दामब्रवीद्वचः ॥ सर्वपापहरे देवि मर्यादां व ह सुव्रते ॥ ५१ ॥ त्वद्वारणार्थं मीशेन निष्ठुष्टाः पर्वतास्त्रयः ॥ विन्ध्यश्च तु र्थकस्तत्र
श्रेष्ठस्सर्वमहीभृताम् ॥ ५२ ॥ मेरुश्चाहिमवांस्तत्र कैलासश्च तृतीयकः ॥ तदा भित्त्वा त्रिशूलेन कीलितं तव मुधातले ॥ ५३ ॥
द्वात्रिंशत्सहस्राणि प्रवाहः पूर्वं पश्रिमे ॥ सहस्राद्धश्च विस्तारं दक्षिणोत्तरमानतः ॥ ५४ ॥ नृत्यन्ति देवताः सर्वाः शङ्खवा
दित्रयानि स्वर्गैः ॥ सिद्धा विद्याधराय च्छा गन्धर्वाः किन्नरा नराः ॥ ५५ ॥ आदित्या वसवो रुद्रा विश्वेदेवा मरुद्गणाः ॥ स्तुवन्ति त परया
भक्त्या नर्मदां सप्तकल्पगाम् ॥ ५६ ॥ हिरण्यतेजाराजर्षिर्नर्मदां चेदमब्रवीत् ॥ अनुग्रहः कृतो देवि पितृणान्तराणां

को धारण करो ॥ ५१ ॥ तुम्हारे धारण करने के वास्ते ईश्वर करके तीन पर्वत उत्पन्न किये गये और वहां सब पर्वतों में श्रेष्ठ चौथा विन्ध्यभी उत्पन्न किया गया ॥ ५२ ॥
सुमेरु, हिमवान् और तीसरा कैलास उस समय में त्रिशूलसे फाड़के पृथिवी में इन पर्वतों को कील दिया ॥ ५३ ॥ इनका लम्बान पूर्व पश्चिम बत्तीस हजार और
चौड़ान उत्तर दक्षिण पांचगौ का है ॥ ५४ ॥ शङ्ख और बाजों के शब्दोंके साथ सब देवता नाचते हैं सिद्ध, विद्याधर, यक्ष, गन्धर्व, किन्नर, नर ॥ ५५ ॥ आदित्य, वसु, रुद्र, विश्वे-
देव, और मरुद्गण, सात कल्प तक रहनेवाली नर्मदा की बडीं भक्ति से स्तुति करते हैं ॥ ५६ ॥ हिरण्यतेजा राजर्षि नर्मदासे यह बोले कि हे देवि ! मेरे पितरोंके तारनेके वास्ते

आपने बड़ा श्रुग्रह किया ॥ ५७ ॥ तब नर्मदा बोली कि हे राजन्! तुमसे अधिक दूसरा पृथिवीमें कौन है जिस बड़े तेज वाले दुमरे राजा का ऐसा प्रभाव हो ॥ ५८ ॥ हे अनघ! जिससे हमारे लिये आपने महादेव का तप किया इससे अपने रनिवास व सम्बन्धियों के सहित तुम्हारे जे माता व जे पित के कुल के पुरुष होंगे ॥ ५९ ॥ हे नृपते! वे हमारे प्रभाव से पार्वती व महादेव के पुरको प्राप्त होंगे तब राजा देवताओं में श्रेष्ठ नर्मदा के नमस्कार करके कहा कि हे वरानने! मैं तुम्हारा पुत्र हूँ ॥ ६० ॥ और विधिपूर्वक स्नान करके पितर और देवताओं का तर्पण करते हुये वहां श्राद्ध व पिण्डदान किया ॥ ६१ ॥ सब पितर नरक से निकल के देवयान मार्ग में स्थित होते हुये कुम्भि, यम ॥ ५७ ॥ उवाच कल्पगाराजं स्वतो न्यः को नु वै भुवि ॥ प्रभाव ईदृशो यस्य राज्ञश्चाभितेजसः ॥ ५८ ॥ तपस्तप्त्वा भेहशस्य समर्थं त्वयतोऽनघ ॥ मातृकाः पितृका ये सान्तः पुरपरिग्रहाः ॥ ५९ ॥ मम प्रसावान् नृपते उमा माहे श्वरं पुरम् ॥ नमस्कृत्य सुरश्रेष्ठां पुत्रो हन्ते वरानने ॥ ६० ॥ स्नानं कृत्वा च विधिवत्पितृन्देवांश्च तर्पयन् ॥ श्राद्धं पिण्डप्रदानञ्च तत्र सर्वमकल्पयत् ॥ ६१ ॥ नरकादुद्धृतास्सर्वे देवयानपथे स्थिताः ॥ कुम्भिकीटपतङ्गाश्च पक्षिणश्चाण्डजाश्च ये ॥ ६२ ॥ भूतग्रामस्समग्रश्च रेजे विद्याधरे पुरे ॥ एतत्ते कथितं राजन्नादिसर्गावकल्पनम् ॥ ६३ ॥ कीर्तितानि मयारैवावताराणि विशाम्पते ॥ आगता ये न मार्गेण लोकानुग्रहकाम्यया ॥ ६४ ॥ एषोऽवतारः प्रथम आदिकल्पे कृते भुगे ॥ द्वितीयस्तु तथा स्कन्द दक्षसाविणीके न्तरे ॥ ६५ ॥ तृतीयः पुरुरवसा तथा वैष्णवके न्तरे ॥ एतत्ते कथितं राजन्यथा दृष्टम् पुरातनम् ॥ ६६ ॥ स्नानावगाहनात्पानात्स्मरणात्कीर्तनादपि ॥ अनेकभावि कंधोरमघं नश्यति तत्क्षणात् ॥ ६७ ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ कैकीट, पतङ्ग, पक्षी और जे अण्डजा ॥ ६८ ॥ व सब प्राणियों का समूह ये विद्याधरों के पुरमें शोभित होते हुये हे राजन्! आदि सर्गमें नर्मदा का अवतरण यह आपसे कहा ॥ ६३ ॥ हे विशाम्पते! ये नर्मदा के अवतार मैंने कहे लोकों के ऊपर अनुग्रह की कामना करके जिस प्रकार नर्मदा आई ॥ ६४ ॥ यह पहला अवतार आदिकल्प के उत्पद्युग में हुआ है स्कन्द! वैसीही दूसरा अवतार दक्षसाविणी मनुके अन्तरमें हुआ ॥ ६५ ॥ तीसरा अवतार पुरुरवा राजा करके वैष्णव मनुके अन्तर में कराया गया है राजन्! यह पुराना वृत्तान्त जैसा देखा गया तैसा आपसे कहा गया ॥ ६६ ॥ स्नान, तैरना, जलपान, स्मरण और नाम कीर्तन से अनेक जन्मों का घोर पाप उसी क्षण नष्ट

होता है ॥ ६७ ॥ युधिष्ठिरजी बोले कि हे सुव्रत, मार्कण्डेयजी ! कैलास, हिमवान् और सुमेरु ये तीनों पर्वत नर्मदा के तटमें किस प्रयोजन से रथापित किये गये ॥ ६८ ॥ मार्कण्डेयजी बोले कि मार्गको छोड़के बहनेवाली नर्मदा के धारण करने को विन्ध्योचल नहीं समर्थ हुआ तब अपने जलके प्रवाह से पृथिवीतलको डूबा ॥ ६९ ॥ वरके बहती हुई नर्मदा को देखके लोकके कल्याण करनेवाले शङ्करजीने त्रिशूलसे पृथिवी फाड़के तीनों पर्वत कील दिये ॥ ७० ॥ इसी अन्तरमें वेदव्य पर्वतमें नर्मदा प्राप्त हुई हे अनघ ! यह सब वृत्तान्त संक्षेप से मुक्त करके कहा गया ॥ ७१ ॥ हे भारत ! इसी प्रकारसे और भी जो २ कुछ तुम इच्छा करते हो वह हम कहेंगे ॥ ७२ ॥

लासोहिमन्मरुः केनकार्येणसुव्रत ॥ नर्मदातीरमासाद्य निजिप्ताःपर्वतास्त्रयः॥ ६८ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ उन्मा
गंगाभिनीरेवां विन्ध्योवैधर्तुमक्षमः ॥ आपगातोयपूरेण प्लावितंजगतीतलम् ॥ ६९ ॥ कृत्वाव्रजन्तीन्दृष्ट्वावै शङ्क
रोलोकशङ्करः ॥ भिन्वाभूमिन्विशूलेन कीलिताःपर्वतास्त्रयः ॥ ७० ॥ अव्रान्तरेचवैदृश्यं गिरौवैपय्यकल्पत ॥ एत
त्सर्वसमासेन शंसितंचमयानघ ॥ ७१ ॥ कथयिष्येतथैवान्यद्यद्यदिच्छसिभारत ॥ ७२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणोरेवाल
ण्डेचतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

युधिष्ठिरउवाच ॥ राज्ञावतारितारेवा कथं वै पुरुकुत्सुना ॥ तत्सर्वं श्रोतुमिच्छामि त्वत्तोब्रह्मविदांवर ॥ १ ॥ मार्कण्डेय
उवाच ॥ शृणुराजन् कथां दिव्यां पुरास्कन्दस्य कीर्तिताम् ॥ तत्तेहं कथयिष्यामि शिवेनोक्तं श्रुतं मया ॥ २ ॥ क्षत्रियस्य
कुलोत्पन्नः पुरुकुत्सुर्महायशः ॥ तेन वर्षसहस्रं वै पूर्वमाराधितो हरः ॥ ३ ॥ तपसा च भवेनोक्तं कस्त्वया प्रार्थितो वरः ॥

इति श्रीस्कन्दपुराणोरेवाखण्डे प्राकृतभाषाऽनुवादे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

युधिष्ठिरजी बोले कि हे ब्रह्मविद्वाओं में श्रेष्ठ ! राजा पुरुकुत्सु करके नर्मदा किस प्रकार उतारी गई वह सब हम आपसे सुनने की इच्छा करते हैं ॥ १ ॥ मार्कण्डेयजी बोले कि हे राजन् ! पूर्वजन्म में स्कन्दजी की कही हुई दिव्य कथा को सुनो महादेव के कहे हुये अपने सुने उस सब वृत्तान्त को हम आपसे कहेंगे ॥ २ ॥ क्षत्रियकुलमें उत्पन्न यशस्य गयश्री पुरुकुत्सु नामक राजा हुये उने करके हजार वर्ष पर्यन्त महादेवजी आराधन किये गये ॥ ३ ॥ तपस्यासे प्रसन्न महादेव करके कहा गया

कि तुम जिस वरको चाहते हो वह वर हम तुमको देते हैं जिससे तुम सुखी होवो ॥ ४ ॥ इस प्रकार कहे गये राजाने कहा कि हम आपकी आज्ञा से मांगते हैं हे देव ! जो
३३ लिये आप जगन्नाथो ! मैं अपने कामको कहूँ ॥ ५ ॥ नर्मदा नामसे प्रसिद्ध बड़े भाग्यवाली नदी है हे शम्भो ! उस दिव्यरूपवाली कुमारी नदीको आप उतारें ॥ ६ ॥
राजाके उक्त वचन को सुनके महादेव विस्मय को प्राप्त हुये और कहा कि हे स्कन्दजी ! बहुत कालनक कष्टित हुये महात्मा क्षत्रियकरके देवताओं को भी असाध्य
और प्रार्थनाके अयोग्य वर मांगा गया अपने अभिप्राय को जिसने कह दिया उस राजर्षि से फिर हमने कहा कि श्रीगुरुद्वारे किसी साध्य वर को तुम मांगो ॥ ७ ॥ ८ ॥

ददामित्वं वरं ह्येतन्मम सुखमेधसे ॥ ४ ॥ एवमुक्तस्तदाराजा प्रार्थये हन्तवाज्ञया ॥ यदि तुष्टोसि मे देव काश्यतत्कथयाम्य
हम् ॥ ५ ॥ आस्तेन दीमहाभागा नर्मदानामविश्रुता ॥ अवतारयतां शम्भो कुमारो दिव्यरूपिणीम् ॥ ६ ॥ तस्य तद्वच
नं श्रुत्वा शम्भुर्विस्मयमागतः ॥ सुचिरं क्लिश्यमानेन क्षत्रियेण महात्मना ॥ ७ ॥ अप्रार्थये प्रार्थितं स्कन्द दुःसाध्यं नि
दर्शयैरपि ॥ उक्ताशयः सराजर्षिः साध्यं किञ्चिन्निषेवय ॥ ८ ॥ मम वाक्यन्तु तच्छ्रुत्वा क्षत्रियस्तु सविह्वलः ॥ अपतत्समहा
भागो मूर्च्छितो धरणीतले ॥ ९ ॥ आश्वासितो मया तत्र स्वस्थो भव विशाम्पते ॥ मर्त्यलोकसि रच्छ्रेष्ठां नर्मदां मवतार
ये ॥ १० ॥ तस्यास्त्वागमनं श्रुत्वा त्रस्ता देवास्तस्मात्सवाः ॥ कः शक्नुयादि मन्मथं सोढुं वेगञ्च नार्मदम् ॥ ११ ॥ धरणी
भारभूना च नष्टा भ्रष्टाश्च पर्वताः ॥ अशक्तास्तोयवर्षस्य धारणे सरितस्तथा ॥ १२ ॥ अस्ति सिद्धो महापुरुषः पथ्यङ्कोना
मपर्वतः ॥ ससहेतमहाभारं वोढुं वेगञ्च नार्मदम् ॥ १३ ॥ सर्वदेवागतास्तत्र प्रार्थितुं न गौत्तमम् ॥ पृष्टास्तु पर्वतेन्द्रेण

हमारे इस वचनको सुनके वह महाभाग क्षत्रिय विह्वल व मूर्च्छित होके पृथिवी में गिरपड़ा ॥ ६ ॥ उस समय मैं हम करके राजाका आश्वास किया गया और कहा
कि हे विशाम्पते ! तुम स्वस्थ होवो ! हम नदियों में श्रेष्ठ नर्मदाको मनुष्यलोकमें उतारते हैं ॥ १० ॥ उस नदीका आगमन सुनके इन्द्रसहित सब देवता उरगये क्यों
कि नर्मदा के इस भार व वेगके सहने के लिये कौन समर्थ है ॥ ११ ॥ भारसे दबी हुई पृथिवी नष्ट होजायगी व पर्वत भ्रष्ट होजायेंगे और नदियां जलवृष्टि के धारण
में अशक्त होजायेंगी ॥ १२ ॥ सिद्ध और महापवित्र पर्यङ्क नामक पर्वत है वह नर्मदाके भार व वेगको सहसक्ता है ॥ १३ ॥ तब सब देवता उस उत्तम पर्वत की

प्रार्थना करने को जातेहुये पर्वतराजसे पूछेभी गये कि आपलोग किस कार्य के निमित्त आये हैं ॥ १४ ॥ देवता बोले कि इक्ष्वाकुवंश में पैदाहुआ पुरुकुत्स राजाहै उस करके पवित्र नर्मदा नामकी नदी उतारीगई है ॥ १५ ॥ उसका तेज, शब्द, भार, गिरना और वेग धारण करने को हे पर्वतों में उत्तम ! तुमको छोड़के कोई पर्वत समर्थ नहीं है ॥ १६ ॥ पर्यङ्क बोला कि महादेवी नर्मदा आवे मैं धारण करूंगा कोई संशय नहीं आतीहुई महापवित्र नदीको अभी धारण करताहूँ ॥ १७ ॥ राजा और सब देवताओं के सहित बड़ेवेगसे नर्मदादेवी चलीं और उस पर्यङ्क पर्वतही की चोटियों में होके पूर्वकाल में राजा पृथुने अश्वमेध से यजन कियाथा ॥ १८ ॥ १९ ॥

केनकार्येणचागताः ॥ १४ ॥ देवाऊचुः ॥ इक्ष्वाकुवंशसम्भूतः पुरुकुत्सुर्नराधिपः ॥ तेनावतारितापुण्या नदीना
मनातुनर्मदा ॥ १५ ॥ तेजःशब्दश्चभारश्च तस्याःपातरयन्तथा ॥ असमर्थानगवोदुन्वामृतेगिरिसत्तम ॥ १६ ॥ प
र्यङ्कउवाच ॥ आगच्छतुमहादेवी धारयामिनसंशयः ॥ आगच्छन्तीमहापुण्यां धारयामिचसाम्प्रतम् ॥ १७ ॥ च
लितानम्मदाशीघ्रं वेगेनसमुपस्थिता ॥ कृत्वातस्योत्तमाङ्गेषु पर्यङ्कस्यैवभूभुतः ॥ १८ ॥ राज्ञातुसहितादेवी त्रिदशैर
पिमंयुता ॥ वैन्येनतुराचेष्टमश्मधेनभूभुजा ॥ १९ ॥ मत्स्थानेचवैन्यस्य वेणुस्तम्बोमहानभूत ॥ यंदृष्ट्वाविस्म
यंप्राप्तास्सर्वेदेवाससवासवाः ॥ २० ॥ वेणोस्तास्यैवमूलालु निर्गतासामहानदी ॥ कृताञ्जलिपुटादेवास्स्थिताःसर्वत्रसं
स्थिताः ॥ २१ ॥ जयशब्दंप्रकुर्वन्तस्त्रिदशाब्रह्मवादिनः ॥ गणगन्धर्वयक्षाश्च मरुतश्चतथाश्विनौ ॥ २२ ॥ पिशाचा
राक्षसानागा ऋषयश्चतपोधनाः ॥ सर्वेपाद्येनचाप्येण भीतास्तेकिङ्कराश्च ॥ २३ ॥ पाद्योपसंग्रहंकृत्वा नर्ममंदांशर

उनके यज्ञस्थान में बड़ा बासों का झुंड जमाथा जिसको देखके इन्द्रसहित सब देवता विस्मयको प्राप्तहुये ॥ २० ॥ उसी वींसे के बेटके जड़से महानदी नर्मदाजी निकलीं वहांपर सब देवता हाथजोड़ेहुये स्थितहुये ॥ २१ ॥ वेद पढ़नेवाले देवता जयशब्द को करते थे व गण, गन्धर्व, यक्ष, मरुत तथा अश्विनीकुमार ॥ २२ ॥ पिशाच, राक्षस, नाग और तपोधन ऋषि डरेहुये सेवकोंके तुल्य सबलोग अर्घ और पायसे ॥ २३ ॥ पूजन करके नर्मदाकी शरण को प्राप्तहुये और कहा कि आज हम

लोगोंका जन्म सफल है और आज हमारा तप सफल है ॥ २४ ॥ हे देवि ! यहां तुम्हारे दर्शन से सब देवता कृतार्थ हुये हम उसीको पुरुष मानते हैं जिसके यह नर्मदानदी उतारी गई ॥ २५ ॥ सब देवता कहते हैं कि मनुष्यलोक श्रेष्ठ होगया व ऋषि और देवताओं ने कहा कि हे नर्मदे ! अपने हाथने तुम देवताओंको छुवो पाप जिनके नष्ट होगये ऐसे सब देवता-जिससे पवित्रताको प्राप्त होवें तब नर्मदाने कहा कि हे देवगणोंको नहीं स्पर्श करेंगी ॥ २६ ॥ २७ ॥ हम अबतक कुमारी हैं हमारा पति नहीं है बड़ा कष्ट है चिन्तासे देवता विह्वल होगये ॥ २८ ॥ तुम्हारे तुल्य रूपयुक्त उत्तमवर कहासे मिलसक्ता है जिस करके तुम लोकमें दिखाईगई हो

एङ्गताः ॥ अद्यनःसफलंजन्म तपोद्यसफलञ्चनः ॥ २४ ॥ कृतार्थादेवताःसर्वा देवित्वदर्शनादिह ॥ तमेवपुरुषंमन्ये ये नैपाह्यवतारिता ॥ २५ ॥ चदन्तिदेवतास्सर्वा मर्त्यलोकःपरंगतः ॥ ऋषिभिर्देवैःप्रोक्ता स्पृशहस्तेनदेवताः ॥ २६ ॥ ये नपूतत्वमायान्ति नर्मदेनष्टकित्विषाः ॥ नर्ममदातुवदत्तयेवं नस्पृशामिसुरान्नगणान् ॥ २७ ॥ कुमारीह्यहमद्यापि ममभर्तानविद्यते ॥ अहो कष्टन्तुदेवाश्च चिन्तयाविह्वलीकृताः ॥ २८ ॥ त्वत्तुल्योरूपसम्पन्नः कुतःप्राप्योवरोत्तमः ॥ ये नत्वंदर्शितालोकं सतेभर्ताभविष्यति ॥ २९ ॥ ब्रह्मणस्पृशशपात्समुद्रःपुरुकुत्सुकः ॥ गतोमर्त्यमहाबाहुरिक्ष्वा कुकुलनन्दनः ॥ ३० ॥ पुरुकुत्सुर्वरस्तेस्तु क्षत्रियोदेवसन्निभः ॥ उद्वाहितातदातेन क्षत्रियेणतुनर्मदा ॥ ३१ ॥ उवाच वचनंदेवान्नर्ममदासप्तकल्पगा ॥ देवत्वमीदृशंयस्य प्रजाधर्मव्यवस्थिताः ॥ ३२ ॥ किमन्यत्तस्यवाच्यंस्यात्पुरुकु त्सोर्महात्मनः ॥ स्वयम्भुवोयथापुत्रो मानसःपरिकीर्तितः ॥ ३३ ॥ पुरुकुत्सुस्तथाचायं सर्वधर्मपरायणः ॥ उवाचव

वही तुम्हारा पति होगा ॥ २९ ॥ पूर्वकाल में ब्रह्माके शापसे समुद्र मनुष्यलोकमें प्राप्तहो महाबाहु इक्ष्वाकुकुलको आनन्द करनेवाला पुरुकुत्सु राजाहुआ ॥ ३० ॥ देवताओं के तुल्य पुरुकुत्सु क्षत्रिय तुम्हारा वरहो तब उस क्षत्रिय करके नर्मदा धिवाही गई ॥ ३१ ॥ सात कल्पतक रहनेवाली नर्मदा देवताओं से वचन बोली कि जिसका इस प्रकारका देवता होनाहै, जिसकी प्रजा धर्ममें स्थितहै ॥ ३२ ॥ उस महात्मा पुरुकुत्सु को और कुछ क्या कहना है ब्रह्माका जैसे मानस पुत्र कहाजाता

है ॥ ३३ ॥ इसी प्रकार सब धर्ममें तत्पर ये पुरुकुत्स भी हैं राजा पुरुकुत्स भी नर्मदा से बचन बोले ॥ ३४ ॥ कि हे नर्मदे ! तुम देवताओं की कन्याहो आप मुझपर प्रसन्नहोवो हमारे पितर स्वर्गको जात्रे और हमारा बड़ा यशहो ॥ ३५ ॥ तब नर्मदा बोली कि हे राजेन्द्र ! ऐसा हीहो हमसे जो २ तुम इच्छा करनेहो वह सब आपका हमारे प्रसाद से होगा ॥ ३६ ॥ यह कह करके उस समय उस पर्वतसे निकलीहुई नदियों में श्रेष्ठ नर्मदादेवी पश्चिम दिशाको चली गई ॥ ३७ ॥ समस्त पृथिवी, पर्वत और शिखरों को विद्वारण करके धनुष से छूटे बाणके तुल्य वेगसे नर्मदाजी जातीहुई ॥ ३८ ॥ वज्रसे मोरेहुये के तुल्य उन सबको चूर्णकरके विन्ध्या-

चंनराजा पुरुकुत्सुश्च नर्मदाम् ॥ ३४ ॥ नर्मदे देवकन्यात्वं प्रसादः क्रियतां मयि ॥ यान्तु मे पितरः स्वर्गं मम चारतु महद्यशः ॥ ३५ ॥ नर्मदेवा च ॥ एवंभवतुराजेन्द्र मत्तस्त्वं यद्यदिच्छसि ॥ तत्सर्वं भवतश्चाद्य मत्प्रसादाद्भविष्यति ॥ ३६ ॥ एवमुक्त्वा ययौ देवी वारुणीञ्च दिशान्तदा ॥ निष्क्रान्ता पर्वतात् तस्मात्पथ्यङ्कात्सरितां वरा ॥ ३७ ॥ याति वेगान्नथा देवी धनुर्मुक्तः शरो यथा ॥ विदार्य मेदिनीं सर्वां पर्वताञ्चिच्छ खराणि च ॥ ३८ ॥ चूर्णयित्वा चतान्सर्वान्वज्राशस्त्रैस्तानि च ॥ यत्र यत्र गता विन्ध्ये तत्र तत्रावगाह्यते ॥ ३९ ॥ तत्र गङ्गा सहस्रस्य फलं स्यात्तीर्थं वर्जिते ॥ तदास्तुता महादेवी नर्मदा लोकावनी ॥ ४० ॥ ऋषिभिर्वैदिकैः सर्वैस्सुखसन्तानकारिका ॥ वेदाधर्मस्य मूलानि स्मृतिः पुष्पफलानि च ॥ ४१ ॥ भक्षयन्ति हि जाः पुरया अग्निहोत्रपरायणाः ॥ सेवन्ते नर्मदान्तेऽपि स्वर्गसोपानपद्धतिम् ॥ ४२ ॥ यत्र यत्र गता स्कन्द तत्र तत्रैव दुर्लभा ॥ दर्शने नर्मदायास्तु अग्निष्टोमफलं लभेत् ॥ ४३ ॥ ये तु संस्नान्ति सेवन्ते नर्मदामप्यकामतः ॥ फलं बहु

चलमें जहा - नर्मदाजी गई वहां २ स्नान किया जाता है ॥ ३६ ॥ वहां तीर्थरहित स्थानमें भी स्नान करने से हजार गंगास्नान का फल होता है तब वेदके पढ़नेवाले यमरुत ऋषियों करके लोकोंको पवित्र करनेवाली सुख और सन्तानकी करनेवाली नहादेवी नर्मदा स्तुति की गई धर्मवृत्त की जड़ वेद हैं और स्मृति फूल व फल है ॥ ४० ॥ ४१ ॥ अग्निहोत्रमें तत्पर पवित्र जे ब्राह्मण धर्मके फलोंको भोगते हैं स्वर्गकी सीढ़ी नर्मदा को वे भी सेवते हैं ॥ ४२ ॥ हे स्कन्दजी ! जहां २ नर्मदाजी गई वहां २ दर्लभ ही हैं नर्मदाके दर्शनमें अग्निष्टोम यज्ञका फल प्राप्त होता है ॥ ४३ ॥ जे मनुष्य नर्मदाको स्नान व निष्काम सेवन करते हैं वे भी बहुत सुवर्णदान के फलको

पावेंगे ॥ ४४ ॥ जहाँ शुभ शिवजीके स्थानमें पवित्र नर्मदा विद्यमानहै वहाँ लाख गङ्गास्नानके समान फल होताहै ॥ ४५ ॥ अग्निहोत्रसे जो पुण्यहै और पितरोंके श्राद्धमें जो फलहै वह सब उसको नर्मदाके जलसे प्राप्तहोता है ॥ ४६ ॥ ब्राह्मण लोग जो कुछ वैदिककर्म सदा किया करते हैं वही शुद्धि नर्मदा के तट में होती है इसमें कोई विचार नहीं करना चाहिये ॥ ४७ ॥ जहाँ नर्मदा का संगम है वहाँ शिवक्षेत्रहै वह स्थान तो लाखगंगा से विशेष है ॥ ४८ ॥ नर्मदा के नामका लेना और तीर्थ के संगम में दानदेना हे राजन् ! इसके बराबर कुछ नहीं है यह हम सत्य कहते हैं ॥ ४९ ॥ जे बुद्धिमान् प्रातःकाल उठके नर्मदा को स्मरण करते हैं

सुवर्णस्य तोपिप्राप्स्यन्तिमानवाः ॥ ४४ ॥ यत्रयत्रगतापुण्या शिवस्यायतनेशुमे ॥ गङ्गास्नानस्यलक्ष्णेण तत्रस्नानं समम्भवेत् ॥ ४५ ॥ अग्निहोत्रेणयत्पुण्यंपितृश्राद्धेणयत्फलम् ॥ सर्वसम्पद्येततस्य नर्मदायाजलेनतु ॥ ४६ ॥ यत्किञ्चिद्वैदिकं कर्म ब्राह्मणाः कुर्वन्ते सदा ॥ नर्मदायास्तटेशुद्धिर्नान्नकार्यं विचारणा ॥ ४७ ॥ नर्मदासङ्गमोयत्र शिवजे त्रिविनिर्दिशेत् ॥ गङ्गाया लक्ष्मन्नेन तत्स्थानन्तु विशिष्यते ॥ ४८ ॥ कीर्तनं नर्मदायास्तु दानं तीर्थस्य सङ्गमे ॥ न तेन सदृशं राजन्सत्यमेतद्ब्रवीम्यहम् ॥ ४९ ॥ नर्मदां प्रातस्तथाय ये स्मरन्ति विचक्षणाः ॥ पूर्वजन्मकृतं पापं कञ्च विनश्यति ॥ ५० ॥ नर्मदां मानवः कश्चित्त्रयत्रावगाहते ॥ शतजन्मार्जितपापं तत्क्षणात्तद्विधुवम् ॥ ५१ ॥ नर्मदायास्तटैव प्राणांस्त्यजतिमानवः ॥ कल्पकोटिसहस्राणि स्वर्गलोकेमहीयते ॥ ५२ ॥ येऽप्यधर्मपराधीना नर्मदायां कथञ्चन ॥ तेषिरुद्रत्वमायान्ति सत्यमेतद्ब्रवीम्यहम् ॥ ५३ ॥ प्रायश्चित्तानि दीयन्ते यत्रैवानविद्यते ॥ रेवातोयेतु

उनका पूर्वजन्म और इस जन्मका कियाहुआ पाप नष्ट होजाताहै ॥ ५० ॥ जो कोई मनुष्य चाहे जहाँ नर्मदास्नान करता है उसके हजारों जन्मका जमा किया पाप उसीक्षण निश्चय नष्ट होता है ॥ ५१ ॥ और नर्मदा के तट में जो मनुष्य प्राणों को त्यागता है वह हजारों कोटि कल्पतक स्वर्गलोकमें पूजित होता है ॥ ५२ ॥ जे मनुष्य अधर्मही करते हैं परन्तु किसीतरह नर्मदा में मरे तो वे भी महादेवही के भावको प्राप्त होतेहैं यह हम सत्य कहते हैं ॥ ५३ ॥ जहा नर्मदा नहीं है वहां प्राय-

रिचित्त कियेजातेहैं व नर्मदाजल के प्राप्त होनेपर तो प्रायश्चित्त नहीं है ॥ ५४ ॥ महापवित्र सात कल्पतक रहनेवाली नर्मदाको भक्तिरके जो निरन्तर स्मरण करता है वह शिवही कहागया है ॥ ५५ ॥ वहाँपर दासोंकी जड़में स्थित वैद्येश्वरदेवको पापों के नाश करनेवाले स्वर्ग और मोक्षके देनेवाले जानो ॥ ५६ ॥ विन्ध्यही के मानसपुत्र आठ पर्वत कहेगये हैं जिनमें पहला सब पर्वतोंमें श्रेष्ठ पर्यंक जानने योग्यहै ॥ ५७ ॥ असिताङ्ग, वराङ्ग, पावक, जातवेदा, कदम्ब, सुग्नायक, वैसेही और भी जे पर्वतहैं ॥ ५८ ॥ वे धर्म कर्म में तत्पर उन महात्माओं करके पूजन कियेजाते उदयसे अस्ततक पश्चिम दिशाको चलेगये हैं ॥ ५९ ॥ उस नर्मदा की डेढ़सौ

संप्राप्ते प्रायश्चित्तनविद्यते ॥ ५४ ॥ नर्मदाञ्चमहापुण्यां सप्तकल्पाधिवासिनीम् ॥ सततंयःस्मरेद्भक्त्या सशिवःपरि
कीर्तितः ॥ ५५ ॥ तत्रवैण्येश्वरदेवं वेणुमूलेव्यवस्थितम् ॥ स्वर्गदम्भमोक्षदंविद्धि लोकानांपापनाशनम् ॥ ५६ ॥ वि
न्ध्यस्यैवतथाचाष्टौ मानसाःपरिकीर्तिताः ॥ पृथङ्कःप्रथमोज्ञेयः श्रेष्ठःसर्वमहीभृताम् ॥ ५७ ॥ असिताङ्गोवराङ्गश्च तथा
अथैवापिपर्यन्ताः ॥ पावकोजातवेदाश्च कदम्बःसुरनायकः ॥ ५८ ॥ अर्चितास्तैर्महाभागैर्धर्मकर्मपरारयैः ॥ उद्गमा
भिर्गमयावदाम्नीन्दिशमास्थिताः ॥ ५९ ॥ सार्द्धमेकशतन्तस्याः प्रवाहाःपरिकीर्तिताः ॥ क्रोशार्द्धस्यत्रिभागञ्च वि
स्तारःपरिकीर्तितः ॥ ६० ॥ शिवस्यवर्ततेचात्र ब्रह्मविष्णुविदौजसाम् ॥ कोटिभिस्त्रिदशानान्तु कान्याधर्तुंप्रशक्य
ते ॥ ६१ ॥ आनमानमात्मनामातु बभारपरमेश्वरी ॥ त्रिदशानांहितार्थाय मानवानाञ्चभारत ॥ ६२ ॥ लज्जयोजनप
ट्यन्तं जम्बूद्वीपप्रचक्षते ॥ द्विगुणःपरिवेषस्तु लवणोदस्तुभारत ॥ ६३ ॥ सहस्रयोजनंविद्धि कन्याद्वीपञ्चभारत ॥ त

धारायें कहीगई हैं और पञ्चाव भाषका विस्तार कहागया है ॥ ६० ॥ शिव, ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र और तैत्तिष करोड़ देवताओं को और कौन धारण करसक्ती है ॥ ६१ ॥
हे भारत ! देवता और मनुष्यों के दिनेक दिनेय सब धर्मिया परमेश्वरी ने आपकी से आपकी धारण किया ॥ ६२ ॥ हे भारत ! एकलाख योजनका जिसका प्रमाण ऐसा
साय्द्वीप को कहते हैं उससे दूना आठगुण का समुद्र है ॥ ६३ ॥ हे भारत ! एक हजारयोजन का कन्याद्वीप जानो वह द्वीप पांचसौ योजनतक गम्य (जानेके योग्य)

है बाकी रहा सो अगम्य है ॥ ६४ ॥ इसमें पुण्य और पापके हिसाबसे शुभ और अशुभ फल होता है प्रथम मनुष्य होके फिर देवभावको प्राप्त होता है ॥ ६५ ॥ पुण्यके क्षीण होने पर फिर मनुष्यभावको प्राप्त होता है हे भारत ! इमको तुम कर्मभूमि जानो वह पृथक् २ तुम्हारा जानाही है ॥ ६६ ॥ धर्मरूप कर्म से सुकृत करनेपर स्वर्ग होताही है इमी नदीप्रवाहवाले कर्मभूमि के हिस्सेमें कल्पोत्तक रहनेवाली नर्मदा की स्थितिहै ॥ ६७ ॥ लोकों के तारने के वास्ते नदियोंमें श्रेष्ठ नर्मदाने अनन्तार लिया स्वर्ग और पौरा इमी नर्मदाके तटके आश्रितहैं ॥ ६८ ॥ हे राजन् ! जैसा कुछ देवताओं करके देखागया वह आपसे मैंने कहा ॥ ६९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणैरद्वैतखण्डे

स्याः पञ्चशतीगम्या त्वगम्या च तथा परा ॥ ६४ ॥ शुभाशुभफलञ्चान्न पुण्यपापविभागयोः ॥ प्रथमं मानुषोऽर्जुन ॥ ६५ ॥ त्वमुपपद्यते ॥ ६५ ॥ क्षीणे पुण्ये पुनर्याति मानुषत्वं पृथक् पृथक् ॥ कर्मभूमिमां विद्धि विदितं तव भारत ॥ ६६ ॥ धर्मैरण कर्मणा स्वर्गस्यादेवमुकृते कृते ॥ नद्याः प्रवाहे भूभागे कल्पगाया व्यवस्थितिः ॥ ६७ ॥ लोकानान्तारणाथार्थम् अ वतीर्णा सरिद्धरा ॥ अन्नस्वर्गश्च मोक्षश्च नर्मदा तीरमाश्रितौ ॥ ६८ ॥ एतत्ते कथितं राजन् पृथग् दृष्टुं सुरोत्तमैः ॥ ६९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणैरद्वैतखण्डे नर्मदायाः ॥ ५ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

युधिष्ठिर उवाच ॥ मुने मे कलकन्याया अवतारः श्रुतो मया ॥ इदानीं श्रोतुमिच्छामि तीर्थानि च यथाक्रमम् ॥ १ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ शृणुराजन् महाभाग कथ्यमानं निबोध मे ॥ वत्सगुल्मस्तस्मात्स्थाय बह्वैभ्युक्कच्छकः ॥ २ ॥ स नान्तरेऽपि तीर्थानां संख्याकेन तु शक्यते ॥ तथापि ते प्रवक्ष्यामि यथा दृष्टं विशाम्पते ॥ ३ ॥ नर्मदासौ मयभागे तु अनन्तपुर

प्राकृतभाषाऽनुवादे नर्मदाचतुर्थवतारे पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

युधिष्ठिरजी बोले कि हे मुने ! मेकलकन्या (नर्मदा) का अवतार मैंने सुना अब इस समयमें तीर्थों को क्रममें सुनने की इच्छा करता हूँ ॥ १ ॥ मार्कण्डेय ना बोले कि हे महाभाग, राजन् ! हम कहते हैं आप सुनो वत्सगुल्मस्थानसे लेके जहाँ तक भृगुकच्छ है ॥ २ ॥ इसके बीचमें जो तीर्थ हैं उनकी संख्या किसमें की जासकी है तथापि हे विशाम्पते ! जैसा देखा है वैसा आपसे कहेंगे ॥ ३ ॥ नर्मदाके उत्तर तरफ नाशरहित अनन्तपुर है और सब पापोंका हरनेवाला बड़ा अनन्त-

सिद्धिलिङ्ग है ॥ ४ ॥ वैश्रवण, कौबेर, धनद, सणिभद्र, और यज्ञनाम के तीर्थहूँ नर्मदातीर्थ के प्रभावसे ॥ ५ ॥ मोक्ष और सब कामनाओं के देनेवाले व पवित्र व सबलोकों के वास्ते स्थित हैं वहाँ सब देवता हैं जिनमें ऐसे पवित्र ऋषियों के आश्रमहूँ ॥ ६ ॥ सान्निध्य, कौशिक, अधर्मपणमुनि, शाकल्य, कुशाकर्णि, शरभङ्ग, अग्निगर्भ ॥ ७ ॥ ये व और भी तारीफ करनेवाले बहुत से मुनि तपकरके इसतीर्थके माहात्म्यसे स्वर्गको गये ॥ ८ ॥ निषादयोनिको प्राप्त ऋषियों में श्रेष्ठ वाल्मीकिजी इस तीर्थके प्रभावसे ब्रह्मतेजवाले शरीर को धारण करतेहुये ॥ ९ ॥ इक्ष्वाकु, कुवलयशत्रु, दिलीप, नहुष, बेणु, राजा ययाति, अजपाल और मन्वयम् ॥ अनन्तसिद्धिलिङ्गश्च सर्वपापहरं परम् ॥ १० ॥ तीर्थवैश्रवणनाम कौबेरन्धनदन्तथा ॥ मणिभद्रतथायज्ञ तत्तीर्थस्य प्रभावतः ॥ ११ ॥ मोक्षदं कामदं पुण्यं सर्वलोकव्यवस्थितम् ॥ ऋषीणामाश्रमं पुण्यं सर्वदेवमयं शुभम् ॥ १२ ॥ सावर्णिः कौशिकश्चैव मुनिश्चैवाधर्मपणः ॥ शाकल्यश्च कुशाकर्णिः शरभङ्गोऽग्निगर्भगः ॥ १३ ॥ एते चान्ये च बहवो मुनयः शंसितव्रताः ॥ अस्य तीर्थस्य माहात्म्यात्तपस्तप्त्वा दिवङ्गताः ॥ १४ ॥ वाल्मीकिर्ऋषिवर्यो वै नैषादीं योनिमाश्रितः ॥ प्रभावात्तस्य तीर्थस्य ब्रह्मतेजोवपुर्धरः ॥ १५ ॥ इक्ष्वाकुः कुवलयशत्रुः दिलीपो नहुषस्तथा ॥ वेणुर्ययातीराजा च अजपा लस्मै ह्यहयः ॥ १६ ॥ एते चान्ये च राजानो ह्यनन्तपुरवासिनः ॥ अत्रान्तरे मेहशानं मेकलातीरमाश्रितम् ॥ १७ ॥ तमभ्यर्च्य विधानेन सर्वे ते त्रिदिवङ्गताः ॥ अखिलैरन्यतीर्थैश्च चिरकालफलप्रदैः ॥ १८ ॥ अत्रास्ते स्वर्गदः श्रीमान्स्वयंदेवो महेश्वरः ॥ तीर्थसप्तऋषिनाम सप्तसारस्वतं तृप ॥ १९ ॥ अमर्त्यसुभवं लिङ्गन्तथैवारण्यकेश्वरम् ॥ अधौघनाशनं तीर्थं तथान्यत्कल्मषापहम् ॥ २० ॥ पञ्चब्रह्ममयन्तीर्थं सहस्रशिरसं हरम् ॥ वाराहं वामनं तीर्थं यमतीर्थं महोत्कट

हेहय ॥ १० ॥ ये व और भी अनन्तपुरके रहनेवाले वे सब राजा इसीस्थान में नर्मदातट में विद्यमान उन महादेवजी को विधान से पूजन करके स्वर्गको जातेहुये और सब तीर्थ बहुकाल में फल देते हैं ॥ ११ ॥ १२ ॥ हे तृप ! यहाँ स्वर्गके देनेवाले श्रीमान् महादेव आपही विद्यमान हैं सप्तऋषि नामका तीर्थ, सप्तसारस्वत ॥ १३ ॥ अमर्त्यसुभवलिंग, इसीप्रकार आरण्यकेश्वर, अधौघनाशन तीर्थ वैसेही कल्मषापहतीर्थ ॥ १४ ॥ पञ्चब्रह्ममयतीर्थ, सहस्रशिरस, हंतीर्थ, वाराह, वामनतीर्थ

महाउत्कट यमतीर्थ ॥ १५ ॥ सौरभङ्ग, सहस्राश्रमेध, महामख, हिरण्यगर्भ, सावित्र, चातुर्वेद और पावन ॥ १६ ॥ ये सब तीर्थलोकों को पवित्र करनेवाले हैं यह जानो इसी प्रकार पर्यक पर्वतरो, पश्चिम अनन्तपुरतक शुभक्षेत्र है ॥ १७ ॥ इसके बीचमें दान और धर्मसे रहित भी जे मनुष्य मरे वेभी जबतक चौदहो इन्द्र रहेगे तबतक स्वर्ग में पूजित होतेहैं ॥ १८ ॥ तिसके अनन्तर सबसे उत्तम द्वीपेश्वर नामका व्यासजीका तीर्थहै वहां स्नानकरके मनुष्य अश्वमेध के फलको पाता है ॥ १९ ॥ तदनन्तर कामिकतीर्थ है ऐसातीर्थ है हुआहै न हुआहै न होगा हे भारत ! जो व्यामतीर्थकी प्रदक्षिणा करताहै ॥ २० ॥ उस करके मानो सातो द्वीपवालीपृथिवी

म् ॥ १५ ॥ सौरभङ्गसहस्रन्तु अश्वमेधमहामखम् ॥ हिरण्यगर्भसावित्र्यं चातुर्वेदं च पावनम् ॥ १६ ॥ एतत्सर्वविजं
नीहि लोकानां पावनं परम् ॥ तथानन्तपुरं यावत्पर्यङ्कात्पश्चिमेष्टुमम् ॥ १७ ॥ अत्रान्तरेमृतायेच दानधर्ममविवर्जि-
ताः ॥ तेष्वर्गमहीयन्ते यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥ १८ ॥ ततोद्वीपेश्वरं नाम व्यासतीर्थमनुत्तमम् ॥ तत्र स्नात्वा तु भते ह
यमेधफलं नरः ॥ १९ ॥ कामिकं तत्परं तीर्थं न भूतं न भविष्यति ॥ प्रदक्षिणाञ्च यः कुर्याद्वा स तीर्थस्य भारत ॥ २० ॥ प्रद-
क्षिणीकृततेन सप्तद्वीपावसुन्धरा ॥ नरो वा यदि वानारी शिवलोकं महीयते ॥ २१ ॥ द्वीपेश्वरे तत् स्नात्वा वृषभं यः प्रय-
च्छति ॥ काञ्चनेन विमानेन रुद्रलोकं महीयते ॥ २२ ॥ कार्तिकस्य चतुर्दश्यां कृष्णपक्षे जितेन्द्रियः ॥ स्नापयेद्यः शि-
वं तत्र ह्युपवासपरायणः ॥ २३ ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तो रुद्रलोकं महीयते ॥ व्यासतीर्थं नुवै गत्वा सर्वैर्ब्रह्मादयः सुराः ॥ २४ ॥
स्तुवन्ति भावितात्मानं ऋषयश्च तपोधनाः ॥ ये चान्ये सिद्धगन्धर्वकिन्नरो रगराक्षसाः ॥ २५ ॥ नर्मदा तटमाश्रित्य मो-

प्रदक्षिणा कीगई नर हो यानारीहो वह शिवलोक में पूजित होताहै ॥ २१ ॥ तदनन्तर द्वीपेश्वर में स्नान करके जो वृषभका दानकर्त्ता है वह सुवर्ण के विमानकरके रुद्रलोक में जाताहै ॥ २२ ॥ जो मनुष्य उपवास में तत्पर इन्द्रियों को जीतिहुये कार्तिककृष्णकी चतुर्दशी में वहां शिवजी को स्नान कराता है ॥ २३ ॥ सब पापों से छुटाहुआ वह मनुष्य रुद्रलोक में पूजित होता है ब्रह्माआदि सब देवता और तपोधन ऋषि व्यासतीर्थ को जाके आत्मज्ञानी शङ्करजी की स्तुति करतेहैं औरभी जो

सिद्ध, गन्धर्व, किन्नर, सर्प, और राक्षस ॥ २४ ॥ २५ ॥ पापों से रहित नर्मदाके तटमें रह करके आनन्द भोगते हैं व भंगल शब्दों से युक्त अनेक प्रकार के स्तोत्रों से स्तुति भी करते हैं ॥ २६ ॥ सो कहते हैं कि जिसके अद्भुतशक्ति है जिसके समान शक्तिवाला दूसरा वीर नहीं है वह देव चाहे जिसको उच्चकरे और चाहे जिसको नीच करे जो देवताओं से श्रेष्ठ चन्द्रशेखर भूतोंका भी पतिहोके श्रेष्ठ देवताओंसे पूजित होता है ॥ २७ ॥ क्षीरामुद्रके मन्यनसे पैदाहुये विषको महादेव को छोड़के किसने कण्ठमें धारण किया इसको क्या ब्रह्मा व और देवता व विष्णुजनि नहीं देखा ॥ २८ ॥ जिन महादेव करके एक वाणसे त्रिपुर भस्म कर दिया गया और मस्तक

दन्तेगतकल्मषाः ॥ स्तुवन्तिविविधैः स्तोत्रैर्मांस्तुतिस्तुतिस्तुतिः ॥ २६ ॥ यस्यास्तिशक्तिरसशक्तिरिहप्रवीरः प्रोर्ध्वी करोतुयदिवावनतिकरोतु ॥ यः पूजितः सुरवरः शशिशेखरेण नाराधितः सपदिभुतपतिः सुरैर्वा ॥ २७ ॥ किंवा नष्टं हि पिता महेन नवासुरैर्वा मधुसूदनेन ॥ क्षीरोदमन्योद्भवकालकूटं कण्ठे धृतं केन हरं विहाय ॥ २८ ॥ एकेन दग्धं त्रिपुरं शरेण का मोललाटाक्षि निरीक्षणेन ॥ भिन्नोऽन्धकः शूलवरेण येन कस्तेन साङ्गकुस्तो विरोधम् ॥ २९ ॥ जलौघकल्लोलतरङ्गभङ्गा गङ्गाधृता येन जटाग्रभागे ॥ पादाम्बुजाङ्गुष्ठनिर्पीडनेन पपातलङ्काधिपतिर्विसंज्ञः ॥ ३० ॥ सुरासुराणामिहयत्समं च विध्वंसितो दक्षमखः क्षणेन ॥ प्रणम्य दक्षः क्षयकारकस्य लेभे वरं तारकमारकस्य ॥ ३१ ॥ सर्वस्य पूज्यं हि वरोत्तमाङ्गं स मपूज्यते लिङ्गं वरं हरस्य ॥ अनेन पर्य्याप्तमतीव मूढः प्राप्तुं पदं यच्च त्रितयत्करोति ॥ ३२ ॥ ब्रह्मात्रहृद्द्वो हरि रत्रलिङ्गं सुरासुरा मे टिके नेत्रके देखने से कामदेव और विश्वल से अन्धकासुर विदारण किया गया उन महादेव के साथ कौन विरोध करसक्ता है ॥ २९ ॥ जलके समूह के कल्लोल व तरंगों का लय जिनमें हो रहा ऐसी गंगाजी जिन महादेव करके जटाओं के अगिलेभाग में धारण की गई और जिनके चरणकमल के अंगूठे की दावस लङ्काधिपति (रावण) बहोश होके गिरता हुआ ॥ ३० ॥ जिन महादेव करके देवता और दैत्योंके प्रत्यक्ष क्षणमात्र में दक्षका यज्ञ विध्वंसकर दिया गया तत्पश्चात् प्रलयके करनेवाले और तारकासुर के मारनेवाले महादेव को प्रणामकरके दक्षका भी प्राप्त हुये ॥ ३१ ॥ और सबका शिरही पूजन किया जाता है परन्तु महादेव का लिङ्गही पूजा जाता है इसीसे सब पूर्ण है अत्यन्त मूढ़ भी जिसपद प्राप्ति की इच्छा करता है लिङ्गपूजनसे उसीपदको प्राप्त होता है ॥ ३२ ॥ यद्यपि वृद्ध ब्रह्माजी, विष्णु,

देवता और दैत्य सब लिंगहीको पूजते हैं तथापि लोग इस विचार को किया करते हैं कि महादेव से अधिक व उनके द्वारा कौन देवता है ॥ ३३ ॥ जिन्हीं महादेव करके चक्रदेके त्रिणु चक्राङ्क कियेगये और कमलासन की पदवीदे के ब्रह्मा सरोरुहाङ्क कियेगये और लिंग व भगके चिह्नसे युक्त सब जगत जिन्हीका है तब भी विचार करते है सो कोई आश्चर्य नहीं क्योंकि हाथमें बंधेहुये नयेकङ्कण को मूर्खलोग आरसीसे देखते हैं ॥ ३४ ॥ पुण्यका देनेवाला सब पापोंका नाश करने वाला पवित्र महादेवका स्तोत्र महात्मा व्यास करके कियागया ॥ ३५ ॥ अर्घ और पाद्यकरके विधिपूर्वक पूजनकर मधुर वचनबोले कि हे देव ! मेरे ऊपर आप प्रस-

श्रैवममर्चयन्ति ॥ तथापि नूनं सुविचारयन्ति कोवाधिको वास्ति स मोहरेण ॥ ३३ ॥ तेनैव चक्राङ्कसरोरुहाङ्कौ लिङ्गाङ्कितं य
स्य जगद्भगाङ्कम् ॥ हस्ते प्रबद्धेन वक्त्रेणैव पश्यन्ति मूढाः खलुदर्पणेन ॥ ३४ ॥ पुण्यं पवित्रं स्तवनं व्यासेनोक्तं महात्म
ना ॥ कृतन्देवाधिनाथस्य सर्वकलमपनाशनम् ॥ ३५ ॥ प्रतिपूज्य यथान्यायमर्घपाद्यैरनुक्रमात् ॥ उवाच मधुरं वाक्यं
प्रसादः क्रियतां मयि ॥ ३६ ॥ देयन्तस्य फलं देवयः पुमाञ्छुद्धयार्चति ॥ इति स्तुत्वा महेशानं ऋषयः शंसितव्रताः ॥ ३७ ॥
नर्मदादक्षिणैकूले प्रयातास्ते यथा तथम् ॥ अन्ये च ऋषयो देवा द्वे पायनमथाब्रुवन् ॥ ३८ ॥ आश्रमस्ते महाभाग वाय
सैराकुलीकृतः ॥ यथानवायसाः केपि प्रविशन्ति तपोवनम् ॥ ३९ ॥ अग्र्यन्ते ते सदा सर्वे मूर्ध्ना तेषां विशीर्यते ॥ व्यासेन
शप्तास्ते सर्वे वायसामहोभयात् ॥ ४० ॥ तस्मिन् स्तीर्थे महाराज प्रविशन्ति न कर्हिचित् ॥ ऋषयो वचनं श्रुत्वा व्यासस्य
तुमहात्मनः ॥ ४१ ॥ नर्मदादक्षिणैकूले सर्वमेव कृतं क्षणात् ॥ तिष्ठन्ति मुनयस्सर्वे देवस्याराधने रताः ॥ ४२ ॥ आरा

जताकरै ॥ ३६ ॥ हे देव ! जो श्रद्धासे आपका पूजन करे उसको आप फल देवै इस प्रकार महात्मा ऋषि महादेवजी की स्तुतिकरके ॥ ३७ ॥ नर्मदा के दक्षिण तटमें यथेष्ट चलेजातेहुये तदनन्तर और ऋषि न देवता व्यास से बोले ॥ ३८ ॥ कि हे महाभाग ! आपका आश्रम कौबो करके ब्याप्त रहता है इससे कौवा जिस तरह तपोवनमें न प्रवेश करै सो करो ॥ ३९ ॥ तब व्यासने कह दिया कि वे सब कौवा मरजायेंगे और उनका शिर फटजायगा जो इस आश्रम में आवेंगे व्यासकरके शापित होगये सब कौवा बड़ेभयसे ॥ ४० ॥ उसतीर्थमें कभी प्रवेश नहीं करते ऋषिलोग महात्मा व्यासका वचन सुनके ॥ ४१ ॥ नर्मदाके दक्षिणतटमें व्यासजी

के आराधनमें तत्पर सब मुनिलोग रहते हैं ॥ ४२ ॥ विधिपूर्वक महादेवका आराधन करके व्यासके कियेहुये यस्यारितशक्तिः इत्यादि स्तोत्रो रतुति करतेहुये ॥ ४३ ॥ भक्तिसे व्यासकरके कियेहुये देवताओं के ईश्वर महादेव के स्तोत्रको प्रातःकाल जो कोई प्रयत्न से पाठकर्त्ता व स्मरण करता है वह समय पर महादेव का गण होता है ॥ ४४ ॥ पवित्र इस व्यासाष्टक को जो महादेव के समीप पाठकर्त्ता है उस पर व्यास और नर्मदा प्रसन्न होते हैं ॥ ४५ ॥ इसप्रकार महात्मा व्यासजी करके स्तुति कियेगये महादेव व्यासपर प्रसन्नहोके इस वचन को बोले ॥ ४६ ॥ कि हे विप्र! ठहरेहुये हम क्या करें तुम अपने अभीष्टवर को मागो प्राप्तहुये हम तुमको

ध्वविधिनादेवमस्तुवन्परमेश्वरम् ॥ यस्यास्तिशक्तिरित्यादिव्यासस्तुतिपरायणाः ॥ ४३ ॥ स्तोत्रन्तदेतत्त्रिदशेश्वर

स्य व्यासेनभक्त्याकृतमीश्वरस्य ॥ प्रातःपठेद्यस्मरतिप्रयत्नात्कालेसजातोनुचरोहरस्य ॥ ४४ ॥ व्यासाष्टकमिद

म्पुण्यं यःपठेच्छिवसन्निधौ ॥ व्यासस्तस्यभवेत्प्रीतो नर्मदाचप्रसीदति ॥ ४५ ॥ एवंस्तुतोमहादेवो व्यासेनतुमहा

त्मना ॥ शिवोव्यासस्यसन्तुष्ट इदं वचनमब्रवीत् ॥ ४६ ॥ किङ्करोमिस्थितोविप्र वरं ब्रूहि यथेप्सितम् ॥ वरं ददामितेप्री

तो येन त्वं सुखमेधमे ॥ ४७ ॥ व्यास उवाच ॥ नर्मदादक्षिणकूले तिष्ठत्वञ्चोत्तरे शिव ॥ आश्रमास्तेभविष्यन्ति सर्वेषु

एयतमास्मृताः ॥ ४८ ॥ एवमुक्त्वा ततो व्यासं तत्रैवान्तरधीयत ॥ व्यासोपि चात्र वत्स्यामि दक्षिणं नर्मदे ब्रज ॥ ४९ ॥

ततश्च दण्डकाष्टेन चालयामास नर्मदाम् ॥ नर्मदाचाब्रवीद्वाक्यं पूर्वमार्गेण सागता ॥ ५० ॥ ततो व्यामस्तु संक्रुद्धो यु

गान्ताग्निरिवाभवत् ॥ व्यासस्तु कुपितो राजन्सन्तीर्णो द्विजसत्तमः ॥ ५१ ॥ हुङ्कारिता च सा देवी नागता तत्र नर्मदा ॥

वरदेते हैं जिससे तुम सुखी होवो ॥ ४७ ॥ तब व्यासजी बोले कि हे शिव! आप नर्मदाके दक्षिण और उत्तरतटमें स्थित होवो ये सब आपके पवित्र आश्रम होजावेंगे ॥

४८ ॥ महादेवजी व्याससे ऐसा ही हो इसप्रकार कहकर वहाँ अन्तर्द्वान होजातेहुये व्यासभी नर्मदासे कहा कि हे नर्मदे! हम यहां बसेंगे तुम दक्षिणको हटजावो ॥ ४९ ॥ तदनन्तर काष्ठके दण्डसे नर्मदा को चलातेहुये पूर्वमार्ग से आई हुई नर्मदा वचन बोली ॥ ५० ॥ तब क्रोधको प्राप्तहुये व्यास महाप्रलय के अग्नि के समान होतेहुये हे राजन्! ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ व्यास क्रुद्ध होके नर्मदाके नर्मदा उतरगये ॥ ५१ ॥ हुङ्कार शब्दकरके नर्मदादेवी बुलाई भी गई परन्तु वहां नहीं आई और व्याससे कहा कि

कहा गया है और श्राद्ध में तीन लाख तीर्थ पुराणों में कहे गये हैं ॥ ५ ॥ हे नृपसत्तम ! वे सब यहां स्थित हैं जहां देवताओं के स्वामी मधुदैत्य के मारनेवाले माधवजी रहते हैं ॥ ६ ॥ व हजार जिनके शिर और उत्पलावर्त जिनका नाम ऐसे विष्णु और महादेव ये दोनों और तीसरी नर्मदा हैं ॥ ७ ॥ हे राजन् ! उस नर्मदाका इन्द्रादिक देवताओं से क्या वर्णन होसकता है महाराज ! उसमें स्नान करके फिर जन्म नहीं होता है ॥ ८ ॥ व पापयोनि में नहीं प्रवेश करता और यमलोक को नहीं देखता है और महादेव के पूजन से गणपति के स्थानको प्राप्त होता है ॥ ९ ॥ जहां शङ्ख, चक्र और गदा के धारण करनेवाले प्रकटहुये हरिभगवान् ब्रह्मा और इन्द्रादि

वै ॥ ५ ॥ तीर्थानां तानि तत्रैव तिष्ठन्ति नृपसत्तम ॥ यत्र तिष्ठति देवेशो माधवो मधुसूदनः ॥ ६ ॥ उत्पलावर्तनामा च सहस्रमस्तको हरिः ॥ हरश्च द्विविधावैतौ तृतीया चैव नर्मदा ॥ ७ ॥ तस्याः किं वर्यते राजन्दैवैरपि सवासवैः ॥ तत्र स्नानं त्वामहाराज सम्भवो न पुनर्भवेत् ॥ ८ ॥ पापयोनिञ्च न विशेषमलोकं न पश्यति ॥ अर्चना देवदेवस्य गाणपत्यमवाप्यते ॥ ९ ॥ उत्पन्नो हि हरिर्धनं शङ्खचक्रगदाधरः ॥ उपास्यते सुरैः सर्वैर्ब्रह्मशक्रपुरोगमैः ॥ १० ॥ क्रोशमात्रं हरिर्ज्ञेयं कथं शोचन्ति मानवाः ॥ अत्रान्तरे मृताये च कृमिकीटपतङ्गमाः ॥ ११ ॥ तेषु यान्ति हरैर्लोकं किंपुनर्बुद्धिं वा नृप ॥ अत्र शः स्ववशोपि स्मयात्प्राणत्यागं करोति यः ॥ १२ ॥ दशवर्षसहस्राणि राजा वैद्याधरेपुरे ॥ तिलोदकप्रदानेन पिएडदा नेन भारत ॥ १३ ॥ पितरस्तस्य तृप्यन्ति तृप्ता यान्ति पराङ्गतिम् ॥ एकादश्यां निराहारो गन्धधुष्पैस्समर्चयेत् ॥ १४ ॥ रात्रौ जागरणं कृत्वा दीपमालां प्रबोधयेत् ॥ द्वादश्यां पञ्चगव्यन्तु हविष्यान्नेन पारणम् ॥ १५ ॥ भक्त्या तु भोजयेद्दिप्रा

सब देवताओं करके उपासना किये जाते हैं ॥ १० ॥ एककोसही भर का विष्णुजी का क्षेत्र है मनुष्य क्यो शोच करते हैं क्योंकि इसके बीच में कीड़े व पक्षी तक जो मरते हैं ॥ ११ ॥ वे भी विष्णुलोक को प्राप्त होते हैं हे नृप ! फिर वैष्णव तो क्या किन्तु परवश या अपने वश भी हो जो प्राणत्याग करता है ॥ १२ ॥ वह दश हजार वर्ष तक विद्याधरों के पुर में राजा होता है और तिलोदक के देने से व पिएडों के देने से हे भारत ! ॥ १३ ॥ उस दाता के पितर तृप्त होते हैं और तृप्त हुये परम गतिको प्राप्त होते हैं व जो एकादशी को निराहार होकर सुगन्धित फूलों से पूजन करे ॥ १४ ॥ और रात्रि में जागरण करके दियाली जलावे द्वादशी को पञ्च-

गव्य और हविष्यान्न से पारणकरे ॥ १५ ॥ और भक्तिसे दक्षिणा सहित हजार ब्राह्मणों को भोजन करावे और सावधान व पवित्रहोके “ॐ नमो भगवते वासुदेवाय” इस मन्त्रको जो जपता है ॥ १६ ॥ हे युधिष्ठिर ! उसका फिर गर्भधान व जन्म नहीं होता व अनेक जन्मोंका घोरपाप भस्म होजाता है जैसे अग्नि रुई के ढेर को जलाता है ॥ १७ ॥ जैसे अग्नि सम्पूर्ण काष्ठों को उसीक्षण जलाता है इसी प्रकार इस तीर्थ का पुण्य उसीक्षण सब पापोंको भस्म करता है अनेक कल्प तक रहनेवाले देवनारायण और महादेव ॥ १८ ॥ दक्षिण दिशाके आश्रित होकर नर्मदा के तटमें स्थित है वे दोनों देवेश देवता और दैत्योके गण वैसेही सिद्ध,

न सहस्रं च स दक्षिणान् ॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ इमं मन्त्रं जपन् यस्तु शुचिर्भूत्वा समाहितः ॥ १६ ॥ न तस्य पुनराधानं जन्म चैव युधिष्ठिर ॥ अनेक भाविकंधोरं तूत्तराशिभिर्वा नलः ॥ १७ ॥ तत्क्षणादहते कृत्स्नमेधांसी वहताशनः ॥ कल्पकल्पानुगौ देवौ नारायणमहेश्वरौ ॥ १८ ॥ दक्षिणान्दिशमास्थाय रेवतीरे व्यवस्थितौ ॥ अचिंतौ तौ च देवेशौ सुराग्रहणैस्तथा ॥ १९ ॥ सिद्धविद्याधरैर्यक्षैर्गन्धर्वैः किन्नरैर्नरैः ॥ स्थाणुः पुण्यजलावर्ते ह्यवतारः पुराकृतः ॥ २० ॥ अबुग्रहाय लोकानां देवानां हितकाम्यया ॥ न नादमु महानादं घोररूपं भयानकम् ॥ २१ ॥ पिनाकिना च शूलेन भित्त्वा चैव रसातलम् ॥ समानीता च सावित्री स्वर्गसोपानपद्धतिः ॥ २२ ॥ मानवाः क्षीणपापाश्च तथा यान्ति पराङ्गतिम् ॥ अज्ञानतमसा ध्वस्ता नावरोहन्ति ये जनाः ॥ २३ ॥ आत्मानं नावमन्यन्ते पापे पहतचेतसः ॥ कल्पगण्येन सेवन्ते तेषां जन्म

विषाधर, यक्ष, गन्धर्व, किन्नर, और नरोंकरके पूजन किये जाते हैं लोकोंपर दया करनेके वास्ते और देवताओं के हितकी कामनाकरके पवित्रजल के अमर में महादेवजी ने पूर्वकाल में अवतार को धारण किया घोररूप भयानक बड़े रावद को करते हुये ॥ १६ ॥ २० ॥ २१ ॥ महादेव करके विशूल से रसातल को फाड़कर स्वर्गकी सीढ़ी सावित्री लाई गई ॥ २२ ॥ पाप जिनके क्षीण होगये ऐसे मनुष्य जिस सावित्री करके परमगति को प्राप्त होते हैं व जो मनुष्य इस तीर्थमें स्नान नहीं करते वे अज्ञानरूप अन्धकार से नष्ट हैं ॥ २३ ॥ व पापोंसे चित्त जिनका अष्ट है वे आत्मा को नहीं मानते व कल्पपर्यन्त रहनेवाली नर्मदा का जो सेवन नहीं करते उनका जन्म

निष्फल है ॥ २४ ॥ हे राजन् ! इसी स्थानमें आपही से प्रकटहुये महात्मा महादेवजी के अष्टाईस लिंग पूजन के बारे विद्यमान हैं ॥ २५ ॥ वे कौनहैं कि स्थानेश्वर, महादेव, शूलपाणि, वैसेही अपर राप्तेश्वर, कल्पेश, हिरण्य, जातवेदा ॥ २६ ॥ प्राजापत्य, सिद्धनाथ, शशांकनयन, अनुकेश, वैसेही स्कन्द, आश्विन तथा तैजस ॥ २७ ॥ ब्रह्मेश्वर, अग्निगर्भ, श्रीकण्ठ, उमापति, नीलकण्ठ, खट्वाह, महाकाल, घटेश्वर ॥ २८ ॥ त्रिलोचन, त्र्यम्बक, देवदेव और महेश्वर हे भारत ! ये न औरभी यहां सिद्धलिंग हैं ॥ २९ ॥ जैसे अनङ्गलिङ्ग, रतिकी प्रीतिसे युक्त कामदेवलिंग और सिद्धमन्त्ररलिंग हैं व जहां अनेगत्रयोदशी ॥ ३० ॥ तथा हे नृप ! वहाही रम्भा तृतीया और

निरर्थकम् ॥ २४ ॥ अष्टाविंशतिरत्रैवल्लिङ्गानान्तुस्वयम्भुवाम् ॥ पूजनेसंस्थिताराजिच्छ्वस्यचमहात्मनः ॥ २५ ॥ स्थानेश्वरं महादेवं शूलपाणिन्तथापरम् ॥ सप्तेश्वरंचकल्पेशं हिरण्यं जातवेदसम् ॥ २६ ॥ प्राजापत्यं सिद्धनाथं शशाङ्कनयनं तथा ॥ अनुकेशं तथा स्कन्दमाश्विनन्तैजसं तथा ॥ २७ ॥ ब्रह्मेश्वरंचाग्निगर्भं श्रीकण्ठश्च उमापतिम् ॥ नीलकण्ठश्च खट्वाहं महाकालं घटेश्वरम् ॥ २८ ॥ त्रिलोचनं त्र्यम्बकश्च देवदेवं महेश्वरम् ॥ एतान्यन्यानि चैव हे सिद्धलिङ्गानि भारत ॥ २९ ॥ अनङ्गं कामदेवश्च रतिप्रीतिसमन्वितम् ॥ सिद्धमन्वन्तरं चैव यत्राऽनङ्गत्रयोदशी ॥ ३० ॥ रम्भा तृतीया तत्रैव तथा कृष्णाष्टमी नृप ॥ विद्याधरी च तत्रैव उर्वशी च तिलोत्तमा ॥ ३१ ॥ अहल्या मेनका चैव तथा न्याश्रय राज्ञः ॥ दाक्षायणी चानुमती चम्पका सम्भरायणी ॥ ३२ ॥ एताश्चान्याश्च तत्रैव बह्व्यः सिद्धा विशाम्पते ॥ केशवस्य पुरीरम्या पुरयापापहरानृप ॥ ३३ ॥ सुरासुराणां सर्वेषां दानवानाञ्च भारत ॥ स्वर्गमार्गप्रदा देवी तथा हरिहरात्मिका ॥ ३४ ॥ एतत्तेकीर्तिं तराजन् यथादृष्टं पुरातनम् ॥ स्नानावमाहनात्पानाच्छ्रवणात्कीर्तनादपि ॥ ३५ ॥ अनेकभा

कृष्णाष्टमी और वहाही विद्याधरी, उर्वशी, तिलोत्तमा ॥ ३१ ॥ अहल्या, मेनका तथा और भी उत्तम स्त्रियां जैसे दाक्षायणी, अनुमती, चम्पका और सम्भरायणी ॥ ३२ ॥ ये व और भी बहुतसी स्त्रियां हे निशाम्पते ! वहाही सिद्धहुई हैं व हे नृप ! पापोंकी हरनेवाली व पवित्र व रमणीय केशवजीकी पुरी है ॥ ३३ ॥ देवता, दैत्य और सब दानवोंको स्वर्गमार्गकी देनेवाली देवी हे भारत ! हरिहररूपही है ॥ ३४ ॥ हे राजन् ! यह पुराना वृत्तान्त जैसा देखागया वैसा कहागया स्नान, तैरने, जलपान करने, सुनने और

कहने से भी ॥ ३५ ॥ अनेक जन्मोंका घोरपाप उत्तीक्षण नष्ट होता है तदनन्तर हे महाभाग ! वहां सब पापोंका हरनेवाला नर्मदाके उत्तर तटमें श्रेष्ठ कपिलातीर्थ है हे राजन् ! इन्द्रियोंको जीतेहुये स्त्री या पुरुष वहां स्नानकरके ॥ ३६ ॥ देवता और पितरोंका तर्पण करके तीनों ऋणोंसे छूटजाता है व ब्राह्मणों को भोजन करवाके परमगति को प्राप्तहोता है ॥ ३८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणरेवाखण्डेप्राकृतभाषाऽष्टादशोऽध्यायः ॥ ७ ॥

मार्कण्डेयजी बोले कि इसके अनन्तर और तीनोंलोक में विदित त्रिपुरीनामसे प्रसिद्ध परमतीर्थ नर्मदाके उत्तरतटमें है ॥ १ ॥ जिसमें हे भारत ! सवालाखतीर्थ

विकंघोरमधनश्रयतितत्क्षणात् ॥ ततस्तस्मिन्महाभाग कपिलातीर्थमुत्तमम् ॥ ३६ ॥ रेवाया उत्तरेकूले सर्वपापहरं पर

म् ॥ तत्रस्नात्वा नरो राजन्नारीवापि जितेन्द्रिया ॥ ३७ ॥ तर्पयित्वा पितृन् देवान्मुच्यते च ऋणत्रयात् ॥ ब्राह्मणान्भोज

यित्वा तु लभते परमाज्ञातिम् ॥ ३८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणरेवाखण्डेऽष्टादशोऽध्यायः ॥ ७ ॥

मार्कण्डेय उवाच ॥ अथान्यत्परमं तीर्थं त्रिषुलोकेषु विश्रुतम् ॥ त्रिपुरीनाम विख्यातं रेवाया उत्तरे तटे ॥ १ ॥ सप्ता

दलक्षतीर्थानि यत्र तिष्ठन्ति भारत ॥ शतमष्टोत्तरं तत्र लिङ्गानान्तु स्वयम्भुवाम् ॥ २ ॥ त्रिपुरः पतितो राजन् देवदेव न शू

लिना ॥ स्तोतव्यं किं परन्तत्र सुरासुरनिषेवितम् ॥ ३ ॥ लोकानुग्रहकन्दवं स्वयं विद्धि महेश्वरम् ॥ गोकर्णनाम विख्या

तम् भोगदम्भमोज्ज्वलायकम् ॥ ४ ॥ कीर्तनाद्देवदेवस्य स्तपनेनार्चनेन च ॥ तोयेन नर्मदायास्तु ब्रह्महत्याप्रणश्यति ॥ ५ ॥

गन्धधूपप्रदीपैश्च तथा विभवविस्तरैः ॥ अपि वर्षसहस्रेण पुण्यसंख्यानज्ञायते ॥ ६ ॥ यदा तदा शिवेदानं तस्य संख्या

रहते है और वहा एकसौ आठ आपसे प्रकटहुये शिवजीके लिंगहैं ॥ २ ॥ हे राजन् ! त्रिशूल को धारण किये देवताओं के भी देवता महादेव करके त्रिपुरासुर यन्

गिराया गया देवता और दैत्योंकरके सेनित यह तीर्थ इससे अधिक और क्या प्रशंसनीय है ॥ ३ ॥ लोकोंपर दया करनेवाले भोग और मोक्षके देनेवाले गोकर्णनाम से विदितको साक्षात् महादेवही जानो ॥ ४ ॥ यहां महादेवके नामलेने, स्नानकराने और नर्मदाके जलसे पूजन करनेसे ब्रह्महत्या नष्ट होती है ॥ ५ ॥ चन्दन, धूप, दीप और विभक्तानुसार पूजन के विस्तारों करके जो पुण्य होता है उसकी गणना हजारवर्ष करके भी नहीं होसक्ती ॥ ६ ॥ जब कभी शिव के निमित्त दान किया जावे

उसकी संख्या नहीं है हे राजन् ! धन्य वे मनुष्य हैं जो रत्नान करके शिवको देखते हैं ॥ ७ ॥ हे नृप ! जो मनुष्य त्रिपुरी में बास करता है वह कैलास में रहता है जो अपनी इच्छा से व बिना इच्छा त्रिपुरी में प्राणों का त्याग करता है ॥ ८ ॥ वह हंसों से युक्त और बुद्धघण्टिकाओं के शब्द से युक्त, विमान वरके और धारण कियेहुये प्रकाशमान सुवर्ण के छते करके ॥ ९ ॥ और भस्मरी बाजा, नृत्य, गान और उत्सवों से युक्त देवता और दैत्यों करके देखा जाता हुआ सब आभूषणों से भूषित ॥ १० ॥ जब तक इच्छा करता है तब तक महादेवजी के स्थान में बहुत भोगों को व इसीप्रकार और भी जो विषय मनुष्यों करके कामना किये जाते हैं उनको त ॥ १० ॥

नविद्यते ॥ धन्यास्तेमानवाराजस्नात्वापश्यन्ति ये हरम् ॥ ११ ॥ कैलासे सवसे नमस्तर्हि त्रिपुर्यो यो वसे नृप ॥ अकामा रक्ता मतो वापि प्राणत्यागं करोति यः ॥ १२ ॥ हंसयुक्तविमानेन किङ्किणीरवशालिना ॥ छत्रेण ध्रियमाणेन सौवर्णेन चिराज ता ॥ १३ ॥ भस्मरीतूर्यवाद्येन मृत्युगीतोत्सवेन च ॥ सुरासुरैर्वीक्ष्यमाणस्सर्वालङ्कारभूषितः ॥ १४ ॥ भुङ्क्ते तु विपुलान्भोगान् यावदिच्छन्महेश्वर ॥ एवमेवापि चान्यानि यानि काम्यानि मानुषैः ॥ १५ ॥ त्रिपुरारिस्तु देवेशो यत्र तिष्ठति भारत ॥ त्रयस्त्रिंशत्प्रसिद्धानां देवानां कोटिभिः शिवः ॥ १६ ॥ त्रिपुर्यो निवसेद्यस्माच्छिवक्षेत्रमतः स्मृतम् ॥ क्रोशद्वयप्रमाणन्तु शिवक्षेत्रं प्रकीर्तितम् ॥ १७ ॥ अत्रान्तरे मृता ये च ते प्रयान्ति शुभाङ्गतिम् ॥ ब्रह्मणा तु पुरा चेष्टं ब्रह्मयज्ञं मखोत्तमम् ॥ १८ ॥ शक्रेण देवराजेन कृतं क्रतुशतम्पुरा ॥ गोकर्णेश्च महादेवं सर्वसिद्धिप्रदायकम् ॥ १९ ॥ वटेऽश्वरं तथा चान्यसिद्धलिङ्गं सुरेश्वरम् ॥ ईश्वरश्चैव कामेशमश्विनश्चैव कामेश्वरमेव च ॥ सर्वेश्व

भी भोगता है ॥ ११ ॥ हे भारत ! देवताओं के ईश्वर त्रिपुरारि जहाँ रहते हैं जिससे तैतीस करोड़ प्रसिद्ध देवताओं के सहित शिवजी त्रिपुरी में रहते हैं इस से शिवक्षेत्र कहा जाता है दो कोस के प्रमाण का शिवक्षेत्र कहा गया है ॥ १२ ॥ १३ ॥ इस के बीचमें जो मरे हैं वे शुभगति को प्राप्त होते हैं व पूर्वकाल में ब्रह्मा करके यज्ञों में उत्तम ब्रह्मयज्ञ किया गया है ॥ १४ ॥ और देवताओं के राजा इन्द्र करके भी पूर्वकाल में सौ यज्ञ किये गये यहा सब सिद्धियों के देनेवाले गोकर्ण महादेव ॥ १५ ॥ वटेऽश्वर वैसेही दूसरा देवताओं का ईश्वर सिद्धलिङ्ग ईश्वर, अश्विन कुमार करके पूजन किये गये कामेश महादेव ॥ १६ ॥ अनङ्ग, वामदेव, कपोतेश्वर,

सर्वेश्वर, सोमनाथ, ऋणमोचन ॥ १७ ॥ कपालमोचन देव, तथा पापों के नाश करनेवाले इन्द्रेश्वर, ब्रह्मेश, महादेव, नारायणेश्वर, ॥ १८ ॥ विश्वदेव, सिद्धनाथ, अमरेश्वर, चान्द्रलिङ्ग, सिद्ध, विद्याधर, यज्ञ वैसेही उपमारहित वासवलिङ्ग ॥ १९ ॥ ईशान, अग्निगर्भ, कुबेर तथा अतुल गायत्र और सावित्र लिङ्ग हैं रोहिणीतीर्थ ॥ २० ॥ दक्षयज्ञ को विनाश करनेवाली दक्षकी कन्या सतीजी, सूर्यकी स्त्री रत्नावली, सूर्यमामा और वारुणी ये सिद्धदेवी हैं ॥ २१ ॥ त्रिणु, मरीचि, मैत्रेय, विभाण्ड के पुत्र ऋष्यशृंग, तपस्वी सौनल, गर्ग, उद्यतपस्वी दुर्वाण ॥ २२ ॥ हे नृपसत्तम ! और पांच हजार सिद्ध त्रिपुरी में रहते हैं हजारवर्ष तक भी त्रिपुरी स्तुति करने

रंसोमनाथं ऋणमोचनमेवच ॥ १७ ॥ कपालमोचनन्देवंतथान्यमघनाशनम् ॥ इन्द्रेश्वरञ्चब्रह्मेशं शिवंनारायणंम
वम् ॥ १८ ॥ विश्वदेवंसिद्धनाथममरञ्चान्द्रमेवच ॥ सिद्धंविद्याधरंयज्ञमतुलंवासवन्तथा ॥ १९ ॥ ईशानमग्निगर्भं
ञ्च कुबेरमतुलन्तथा ॥ गायत्रञ्चैवसावित्रं रोहिणीतीर्थमेवच ॥ २० ॥ दाक्षायणीचैवसती दक्षयज्ञहरास्मृता ॥ रत्ना
वलीसूर्यपत्नी सूर्यभामाचचारुणी ॥ २१ ॥ विष्णुर्मरीचिमैत्रेय ऋष्यशृङ्गोविभाण्डजः ॥ तपस्वीशौनकोगर्गो दुर्वा
साउग्रतापसः ॥ २२ ॥ पञ्चायुतानिसिद्धानि त्रिपुर्यान्ृपसत्तम ॥ अपिवर्षसहस्राणि नस्तोतुंशक्यतेपुरी ॥ २३ ॥
त्रिपुरीक्षेत्रमाहात्म्यं शक्रेणापिनराधिप ॥ अनेकानिसहस्राणि क्षत्रियाणांयुधिष्ठिर ॥ २४ ॥ दीक्षायाज्ञविधानेन ना
कष्टमुपासते ॥ इतिहासंप्रवक्ष्यामि आदिकल्पेकृतयुगे ॥ २५ ॥ स्वायम्भुवेन्तरप्राप्ते कापिलेकालसंज्ञके ॥ मनु
र्नामपुराराजा चक्रवर्तीमहायशः ॥ २६ ॥ अयोध्यांसपुरीलेभे सूर्यवंशोमहीपतिः ॥ समाराध्यमहादेवं शङ्करंमधुसू

को शक्य नहीं होसक्ती ॥ २३ ॥ हे नराधिप ! त्रिपुरी क्षेत्र का माहात्म्य इन्द्र से भी नहीं कहा जासक्ता है हे युधिष्ठिर ! अनेक हजार क्षत्रिय ॥ २४ ॥ यज्ञकी दीक्षा के विधान से स्वर्ग में वास करते हैं पहले कल्प के सत्ययुग में हुये इतिहास को हम कहेंगे ॥ २५ ॥ कपिल का अवतार जिसमे हुआ है काल जिसका दूसरा नाम है ऐसे स्वायम्भुव मन्वन्तरके प्राप्त होनेपर पूर्वकाल में बड़े यशस्वी मनुनाम चक्रवर्ती राजा होते हुये ॥ २६ ॥ वे सूर्यवंशी राजा कल्याणकारी महादेव और विष्णु को

प्रसन्न करके अयोध्यापुरी को प्राप्त हुये ॥ २७ ॥ जो कि विश्वकर्मा करके बनाई गई और दानवों करके भी तोड़ने योग्य नहीं थी हजारों वावली, कुंवा, खाई और शहरपनाह से युक्त थी ॥ २८ ॥ हे राजन् ! जैसे अलका नाम से प्रसिद्ध कुबेर की पुरी है वैसीही और इन्द्रकी अमरावतीपुरी के तुल्य अयोध्या भी सुन्दर होती हुई ॥ २९ ॥ धन और अन्न से भरी हुई शहरकी शोभा बढ़ानेवाली चीजों से भूषित वेदों के शब्द से पृथिवी को स्वर्ग के समान बना दिया था ॥ ३० ॥ सम्पूर्ण वेद पढ़ेहुये अग्निहोत्री विद्वान् ब्राह्मणों से युक्त जिसमें चारोंवर्णों का धर्म और प्राकृत मनुष्य वास करते हैं ॥ ३१ ॥ जहाँकी सब प्रजा सवालखवर्ष जीती है दरिद्र, बुढ़ापा

दनम् ॥ २७ ॥ अक्वध्यादानैवैयातु निर्मिताविश्वकर्मणा ॥ वार्पिकूपसहस्रेण परिखाट्टालकेनवा ॥ २८ ॥ धनदस्यपुरी यद्वदलकानामविश्रुता ॥ अयोध्याशोभनाराजञ्चक्रकस्येवामरावती ॥ २९ ॥ धनधान्यसमाकीर्णा सर्वालङ्कारभूषिता ॥ ब्रह्मवोपनिनादेन भूमिन्दिवमिवाकरोत् ॥ ३० ॥ साग्निहोत्रैश्चविद्वद्ब्राह्मणैर्वेदपारगैः ॥ चतुर्वर्णाश्चधर्मश्च प्राकृतादृतरजनाः ॥ ३१ ॥ सपादलक्षवर्षाणि प्रजासर्वाचजीवति ॥ नकार्पण्यजरारोगा दुर्मिक्षंनतुमृत्युभीः ॥ ३२ ॥ स्वयंकामदुग्धाधेनुः पृथिवीसस्यशालिनी ॥ अन्यायेनचभूतेषु दत्ताहर्तानविद्यते ॥ ३३ ॥ नवखण्डांससदीपां सशैलवनकाननाम् ॥ शशासमेदिनीसर्वा यथाशकस्त्रिविष्टपम् ॥ ३४ ॥ एकपत्नीगृह्यददृग्गृहस्थस्यैविराजते ॥ यज्ञदानसहस्रेण तर्पितास्सर्वदेवताः ॥ ३५ ॥ ययंप्राथयतेकामं तन्तमापनसंशयः ॥ एकोदोषः परंतत्र नदीनैवान्विद्यते ॥ ३६ ॥ राहुसोमसमायोगे देवत्वातंसमाययौ ॥ स्नानंकर्तुंसमाधाय ब्राह्मणैर्वेदपारगैः ॥ ३७ ॥ विमानानांसह

रोग, दुर्मिक्ष और मृत्यु का भय जिसमें नहीं है ॥ ३२ ॥ गौत्रों आपही से दुग्ध देनेवाली हैं पृथिवी सब अन्नों से युक्त है प्राणियों में दिये हुये का अन्यायसे हरनेवाला कोई नहीं है ॥ ३३ ॥ इस प्रकारकी अयोध्या में रहकर नवखण्ड, सातहीप, पहाड़ और जंगलों करके सहित पृथिवी की राज्य राजामनु करतेहुये जैसे इन्द्र स्वर्ग की राज्य करें ॥ ३४ ॥ जैसे एकपत्नीवाले गृहस्थ का गृह शोभित हो इसी प्रकार राजाका गृह शोभित होता है हजारों यज्ञ और दानोंसे सब देवता तृप्त कियेगये ॥ ३५ ॥ जिस जिस कामको चाहा उस उस को प्राप्तहुये इसमें कोई संशय नहीं है परन्तु वहा एक यही दोष था कि कोई नदी नहीं थी ॥ ३६ ॥ चन्द्रग्रहण में स्नान करने के

वारते वेदपाठी ब्राह्मणों के सहित राजा देवखात को जाते हुये ॥ ३७ ॥ शङ्ख, तूर्य्य, वेणु और वीणा के शब्द से युक्त हजारों सवारियों करके सहित स्त्रियों के गणों करके देखेजाते, रानी व परिवारके सहित श्रेष्ठ राजा उस स्थान को प्राप्त होकर पर्व के समय में स्नान, दान, होम आदि कर्म को समाप्त करके ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ देवताओं से रचित पवित्र अयोध्या नगरी में प्रवेश किया पौर्णमासी को पहर भर रात्रि के व्यतीत होनेपर राजाके स्वस्थ होनेपर ॥ ४० ॥ आकाशमें गीत और बाजाओं के शब्द से युक्त आकाशगाभियों के हजारों घोड़ों के आभूषणों का शब्द सुनपड़ा ॥ ४१ ॥ मकान के ऊपर शोभित हो रहे राजा देवताओं की मनोहर

स्वेण गत्वादेशं नृपोत्तमः ॥ शङ्खतूर्य्यनिनादेन वेणुवीणास्वनेन च ॥ ३८ ॥ सान्तःपुरपरीवारो वीक्ष्यमाणोऽङ्गनागणैः ॥ निर्वर्त्यपर्वकालेतु दानहोमविधिक्रियाम् ॥ ३९ ॥ विवेशनगरीं पुण्यामयोध्यान्देवनिर्मिताम् ॥ पौर्णमास्याद्भूते यामे स्वस्थैश्चैव नृपोत्तमे ॥ ४० ॥ श्रूयते किङ्किणीशब्द आकाशे व्योमचारिणाम् ॥ गीतवादिब्रह्मकुतः सहस्रं पङ्क्तिं वाजिनाम् ॥ ४१ ॥ मनोहराणां यानानां नट्टद्वयैव दिवौ कसाम् ॥ जगाम विस्मयं राजा भवनोपरि शोभितः ॥ ४२ ॥ कस्यैतानि विमानानि समैव भवनोपरि ॥ शयने शयने चैव कामभोगविवर्जितः ॥ ४३ ॥ शोकोपहतचित्तस्तु चिन्तया व्याकुलीकृतः ॥ किमिदं साहसं लोके विमानानां न भोपरि ॥ ४४ ॥ एवं चिन्तयतस्तस्य सानिष्क्रान्तानि शान्तपः ॥ उदिते च तथा सूर्ये धर्मकर्मसमाप्य वै ॥ ४५ ॥ वशिष्ठं प्राहराजर्षिरभिवाद्य नमस्कृतम् ॥ उपविष्टं यथान्यायमासने देवनिर्मिते ॥ ४६ ॥ इति हासपुराणादि श्रावयन् विधिपूर्वकम् ॥ मनुना च पुराष्टो वशिष्ठो मुनिपुङ्गवः ॥ ४७ ॥ कस्यैता

सवारियों को देखकर विस्मय को प्राप्त हुये ॥ ४२ ॥ मेरे ही मकान के ऊपर ये किसके विमान हैं जिनमें हर एक शय्या काम भोगों से रहित दीखती है ॥ ४३ ॥ शोक से विगड़ा है चित्त जिसका और चिन्ता करके व्याकुल किये गये राजाने कहा कि लोकमें आकाश के ऊपर विमानों का यह क्या आश्चर्य्य है ॥ ४४ ॥ हे नृप ! इस प्रकार चिन्ता करते हुये उस राजा की वह रात्रि व्यतीत होगई और सूर्य के उदय होनेपर धर्म के कर्म को समाप्त कर ॥ ४५ ॥ अभिवादन करके नमस्कार किये हुये देवराचित आसनपर सहित नीति के चूँटे वशिष्ठजी से राजर्षि मनुजी बोले ॥ ४६ ॥ विधिपूर्वक इतिहास और पुराण आदिको को सुनाते हुये मुनियों में श्रेष्ठ वशिष्ठजी

मनुकरके प्राचीन समय में पूँछेगये ॥ ४७ ॥ कि हे महामुने ! मेरे ऊपर किसके ये विमान हैं और किस कर्म के फल व दान व नियम से मिलते हैं ॥ ४८ ॥ हे त्रिकालज्ञ ! हे महाभाग ! मेरे सन्देश है सो कहो किस देश में किया गया यज्ञ स्वर्ग व अभीष्ट फलका देनेवाला होता है ॥ ४९ ॥ जिससे नित्य मृत्युरहित अक्षय लोकों को मैं प्राप्त होऊँ क्षत्रिय के वंश में उत्पन्न हुआ जो पृथिवी को शिक्षा देता है ॥ ५० ॥ उसका यही काम है कि यज्ञ करके माता पिता के वंशको स्वर्ग को पहुँचावे उत्पन्न वही हुआ है कि जिससे भूलोक सब प्रकार दोषों से रहित किया जाय ॥ ५१ ॥ और पुत्र तो केवल माता को लेश देने के वास्ते होते हैं मनुराजा से इस

निविमानानि ममोपरिमहामुने ॥ केनकर्मविपाकेन दानेननियमेनच ॥ ४८ ॥ संशयोमेमहाभाग त्रिकालज्ञनिवेदय ॥ कस्मिन्देशेकृतोयज्ञः स्वर्गकामफलप्रदः ॥ ४९ ॥ येनयाम्यक्षयाँल्लोकान्नित्यानन्तकविवर्जितान् ॥ क्षत्रवंशसमुत्पन्नो यस्तुवैशिन्नतेज्जितिम् ॥ ५० ॥ मातृकपैतृकवंशंयज्ञमिष्ट्वादिवनयेत् ॥ सजातोयेनभूलोकः सर्वथाऽवद्यवर्जितः ॥ ५१ ॥ अन्येषुत्रत्वमापन्नास्तेतुक्लेशायकेवलम् ॥ एवमुक्तोवशिष्टस्तु मनुनाब्राह्मणैस्सह ॥ प्रसन्नस्त्वब्रवीत्तन्तु वशिष्ठोमुनिसत्तमः ॥ ५२ ॥ शृणुष्वत्वंमहाभाग कथ्यमानंनिबोधमे ॥ ब्रह्मणागदितंपूर्वं कश्यपस्यमहामुनेः ॥ ५३ ॥ दक्षस्यात्रैगुणैश्चैव प्रजापतिरकल्पयत् ॥ वेदश्रुतपुराणोक्तं तत्रकृत्स्नंमयाश्रुतम् ॥ ५४ ॥ हन्तेतेकथयिष्यामि यथावदनुपूर्वशः ॥ पुराणवेदबाह्यन्तु कर्मयत्तिक्रियेतनृप ॥ ५५ ॥ नतत्सन्तःप्रशंसन्ति धर्ममहानिश्रजायते ॥ नर्मदातीरमाश्रित्य त्रिपुरीनामविश्रुता ॥ ५६ ॥ यैरिष्टंतत्रयज्ञैस्तु दानहोमबलिक्रिया ॥ तेषांराजन्विमानानि स्थिता

प्रकार कहेहुये ब्राह्मणों के सहित व मुनियों में श्रेष्ठ वशिष्ठजी प्रसन्न होकर राजा से बोले ॥ ५२ ॥ कि हे महाभाग ! मेरे कहने को तुम सुनो और समझो पूर्वकाल में महामुनि कश्यप से जो ब्रह्मा ने कहा है ॥ ५३ ॥ और दक्ष, अग्नि और बृहस्पति से भी प्रजापति जीने वेद व शास्त्र और पुराणों में कहे हुये वृत्तान्त को कहा था वही मैंने भी सम्पूर्ण सुना था ॥ ५४ ॥ उसको प्रसन्नतापूर्वक हम क्रमसे यथावत् आप से कहेंगे हे नृप ! पुराण और वेद से बाहर जो कर्म कियाजाताहै ॥ ५५ ॥ महात्मा लोग उसकी प्रशंसा नहीं करते क्योंकि उससे धर्म की हानि होती है नर्मदा के तट में त्रिपुरी नाम से विख्यात एक स्थान है ॥ ५६ ॥ उस में जिन्होंने

यज्ञों से यजन किया है और दान, होम और बलि कर्मों को भी किया है हे राजन् ! आपके मकान पर उन्हीं के विमान ठहरे थे ॥ ५७ ॥ उस पुरी के उल्लंघन करने को इन्द्र सहित सब देवता समर्थ नहीं हो सके किन्तु वे विमान स्वर्ग को नाघ जाते हैं और विमानों के स्वामी शिवजी के साथ आनन्द भोगते हैं ॥ ५८ ॥ हे राजेन्द्र ! विषाद को छोड़ो कर्मों की गति कठिन है और क्षेत्र में हजार गुना किया दान, तप और होम ॥ ५९ ॥ नर्मदा के तट में एक गुने किये के बराबर नहीं होता महादेव का सुनाया और रक्तदजी का कहा हुआ यह पुराण है ॥ ६० ॥ हे महाराज ! जम्बूद्वीप में एकही नर्मदा देवी ने पापी और दुराचारियों को स्वर्ग

न्युपरिवेदमनः ॥ ५७ ॥ नतालङ्घयितुं शक्ताः सर्वदेवास्सवासवाः ॥ अतिक्रामन्ति ते स्वर्गं शिवेन सह मोदते ॥ ५८ ॥ विषादन्त्यजराजेन्द्र गहनाकर्मणाङ्गतिः ॥ अन्यक्षेत्रे सहस्रान्तु दत्तं तं संहतं तथा ॥ ५९ ॥ एकं तु कल्पगातीरे तुल्यं भवति वानवा ॥ शिवेन श्रावितं चासीत्पुणं स्कन्द कीर्तितम् ॥ ६० ॥ जम्बूद्वीपे महाराज एका देवी तु नर्मदा ॥ पापकर्मदुराचारान्नयते स्म दिवौकसम् ॥ ६१ ॥ तेषां यान्ति न सन्देहः कल्पगातो यदर्शनात् ॥ धर्मध्वजाश्च ये मर्त्यास्त्रिषु लोकेषु विश्रुताः ॥ ६२ ॥ संसाराणं वमनानां पापेषु हतचेतसाम् ॥ यानरूपा वरारोहा नैलोक्ये सचराचरे ॥ ६३ ॥ एकवक्त्रस्तु तत्पुण्यं न गुणान्स्तोतुमर्हति ॥ त्यक्त्वा चैव महाभाग ब्रह्मविष्णुमहेश्वरान् ॥ ६४ ॥ संख्यां कर्तुं न शक्नोति तपसोदा न कर्मणां ॥ न गङ्गा यमुना चापि न दीचैव सरस्वती ॥ ६५ ॥ इरावती वितस्ता च विपाशा कपिला तथा ॥ शोणश्च घर्घरश्च

को पहुँचाया ॥ ६३ ॥ जो- मनुष्य तीनों लोकों में धर्मध्वज कहे जाते हैं वे भी नर्मदाजल के दर्शन से निःसन्देह स्वर्ग को जाते हैं ॥ ६२ ॥ सहित चराचर के तीनों लोकों में पापों से अष्टचित्तवाले संसारसमुद्र में डूबे हुये जीवों के स्वर्ग जाने के वास्ते सवारी रूप वरारोहा (नर्मदा) ही है ॥ ६३ ॥ हे महाभाग ! ब्रह्मा, विष्णु और महादेव को छोड़कर और एक मुखवाला पुरुष नर्मदा के पुण्य व गुणों की स्तुति करने को योग्य नहीं हो सक्ता है ॥ ६४ ॥ नर्मदा के तट में किये हुये तप, दान और सत्कर्मों के पुण्य की संख्या करने को कोई समर्थ नहीं हो सक्ता है गङ्गा, यमुना, सरस्वती, इरावती, वितस्ता, विपाशा तथा कपिला, शोणभद्र, घर्घर,

सारंगी तथा बदरी, पवित्र महानदी तापी, गण्डकी, पयोष्णी महापवित्र तुंगभद्रा, महानदी भीमरथ्या, तीर्थ और समुद्र जो जम्बूद्वीप में हैं वे कोई नर्मदा की बराबरी नहीं करसके देवखात, तड़ाग, गड्डा और नदियों में ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ ६८ ॥ यज्ञोसे यजनकरके हे नृपोत्तम ! मनुष्य क्या फल पाता है और क्षेत्रमें कियाहुआ पाप पुण्यक्षेत्रमें नष्ट होजाता है ॥ ६९ ॥ परन्तु पुण्यक्षेत्रमें कियाहुआ पाप वज्रलेप होता है हे भारत ! जैसे पाप वैसेही धर्म एकतुल्य है अर्थात् धर्मभी क्षेत्रके माहात्म्य से घटा बढ़ा करता है ॥ ७० ॥ तिससे चञ्चल जीवनके वास्ते पाप कभी न करै राजा नर्मदा का यशस्वरूप पवित्र इस आख्यानको सुनकर ॥ ७१ ॥ तदनन्तर मन्त्री और

व सारङ्गाबदरीतथा ॥ ६६ ॥ पुण्यामहानदीतापी गण्डकीचपयोष्णिका ॥ तुङ्गभद्रामहापुण्या भीमरथ्यामहानदी ॥ ६७ ॥ तीर्थानिसागराणि हि जम्बूद्वीपेवसन्ति हि ॥ देवखाततडागेषु गर्तेषु च सरित्सु च ॥ ६८ ॥ किं फलं लभते भर्तय इष्टायैर्ज्ञैर्नृपोत्तम ॥ अन्यक्षेत्रे कृतं पापम् पुण्यक्षेत्रे विनश्यति ॥ ६९ ॥ पुण्यक्षेत्रे कृतं पापं वज्रलेपो भविष्यति ॥ अयं यथा तथा धर्मः समम्भारतवर्तते ॥ ७० ॥ तस्मात्पापं न कुर्वीत चञ्चले जीविते सति ॥ श्रुत्वा ख्यानमिदं राजा नर्मदा कीर्तनं शुभम् ॥ ७१ ॥ आदिदेश ततोऽमात्यान् मृत्यांश्चैव सहस्रशः ॥ राजोपस्करमादाय यूयङ्मच्छतमाचिरम् ॥ ७२ ॥ धेनूनां पञ्चलजाणि सवत्सानाञ्च भारत ॥ श्यामकर्णहयानाञ्च लक्ष्मेकं शितत्विषाम् ॥ ७३ ॥ शयुतं च करीन्द्राणां घण्टाभरणसंयुजाम् ॥ ७४ ॥ हिरण्यकोटीः पञ्चाशत् सर्वासु खण्यस्तथा ॥ सुमुहूर्तैः सुनक्षत्रैश्चन्द्रैश्चैकादशशुभैः ॥ ७५ ॥ नानादेशान् नृपैस्सार्द्धं गीतवादित्रमङ्गलैः ॥ ७६ ॥ ब्राह्मणैर्वेदविद्भिश्च प्रा

हजारों नौकरों को आज्ञा देतेहुये कि तुम सब राजसी सामान लेकर चलो देर मतकरो ॥ ७२ ॥ हे भारत ! बछड़ोंके सहित पांचलाल गौवें, सफेद एकलाल श्याम कर्यं घोड़े ॥ ७३ ॥ घण्टा, कण्ठा, भूल और अम्बारीआदि भूषणों से सजेहुये दश हजार हाथी ॥ ७४ ॥ पचास करोड़ मोहर और सब प्रकारकी मणियों को लेकर शुभमुहूर्त, शुभनक्षत्र, ग्यारहवें शुभचन्द्रमा में ॥ ७५ ॥ अनेक देशोंके राजाओं के सहित, मंगलगीत और बाजाओं से युक्त दिव्यसवारी पर सत्राहुये बारबार रूति

किये जाते ॥ ७६ ॥ वेदवेत्ता ब्राह्मणों करके सहित, राजा सात करपतक बहनेवाली देवता और दैत्योंसे नमस्कार कीगई पवित्र नर्मदा के समीप विद्यमान त्रिपुरी को जातेहुये ॥ ७७ ॥ नर्मदा के जलदर्शन से रानी व परिवार के सहित राजा अनेक जन्मों के पापों से छूटगये ॥ ७८ ॥ समुद्रपर्यन्त पृथिवी में जितने तीर्थहैं वे सभी नर्मदाही के जलके स्पर्शसे पवित्रहुये हैं ॥ ७९ ॥ विधिपूर्वक स्नान करके पितर और देवताओं का तर्पण करतेहुये चन्दन और पुष्पआदि से महादेवका पूजन करके ॥ ८० ॥ सब धर्मों में तत्पर महाबाहु राजा यज्ञके वास्ते दशयोजन का मण्डप बनवातेहुये ॥ ८१ ॥ और भी जो कुछ भोजनके पात्र थे वे सब सुवर्ण व चांदीके थे

याच्चत्रिपुरीनृपः ॥ सप्तकल्पवहांपुण्यां सुरासुरनमस्कृताम् ॥ ७७ ॥ आजन्मरूढैस्तुपापैस्सान्तःपुरपरिच्छदः ॥
विमुक्तः पृथिवीपालः कल्पगातोयदर्शनात् ॥ ७८ ॥ पृथिव्यांयानितीर्थानि आसमुद्रान्तगोचरे ॥ मेकलातोयसंस्प
शात्पवित्राणीहतान्यपि ॥ ७९ ॥ स्नानं कृत्वायथान्यायं पितृन्देवांश्चतर्पयन् ॥ अर्चयित्वा महेशानं गन्धपुष्पविले
पनैः ॥ ८० ॥ दशयोजनपर्यन्तं यज्ञरूपंचमण्डपम् ॥ अकारयन्महाबाहुः सर्वधर्मपरायणः ॥ ८१ ॥ हेमरूप्यमयं
सर्वं यच्चान्यद्भोज्यभाजनम् ॥ अगस्त्येगौतमोगर्गो विष्णुः शातातपस्तथा ॥ ८२ ॥ अत्रिश्चैव शिशुश्च पुलस्त्यः
पुलहः क्रतुः ॥ भृगुरग्निर्मरीचिश्च कश्यपोथमनुस्तथा ॥ ८३ ॥ दुर्वासायाज्ञवल्क्यश्च भरद्वाजोथमल्लुकः ॥ विश्वामित्रो ज
मदगनी ऋष्यशृङ्गो विभाण्डकः ॥ ८४ ॥ दक्षः पराशरो व्यासः काषायण बृहस्पती ॥ एते चान्ये च बहव ऋषयः शंसित
व्रताः ॥ ८५ ॥ चतुर्विधावेदविदो यज्ञकर्मविशारदाः ॥ तीर्थैव पुष्करं यद्ब्रह्मविष्णुशिवात्मकम् ॥ ८६ ॥ तत्र प्रावर्तय

यज्ञ कराने के वास्ते अगस्त्य, गौतम, गर्ग, विष्णु और शातातप ॥ ८२ ॥ अत्रि, वशिष्ठ, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, भृगु, अग्नि, मरीचि, कश्यप, तथा मनु ॥ ८३ ॥ दुर्वासा, याज्ञवल्क्य, भरद्वाज, भल्लुक, विश्वामित्र, जमदग्नि, विभाण्डक के पुत्र ऋष्यशृङ्ग ॥ ८४ ॥ दक्ष, पराशर, व्यास, काषायण और बृहस्पति ये व और भी बहुत प्रशंसा करनेयोग्य व्रत करनेवाले ऋषि ॥ ८५ ॥ जोकि चारोंवेद व विद्याश्रो के जाननेवाले व यज्ञकराने में प्रवीण थे वे सब आये पुष्करतीर्थ जैसे ब्रह्मा, विष्णु, और

शिवजी का स्वरूप है यह तीर्थभी ऐसाही है ॥ ८६ ॥ जिससे उत्तम कोई भी यज्ञ नहीं है ऐसे अवशम्भयज्ञ को वहां प्रवृत्त करतेहुये सब देवता और देवताओं के राजा पाकशासन (इन्द्र) बुलायेगये ॥ ८७ ॥ अर्घ, पाद्य, मधुपर्क और विष्टों से सब तृप्त कियेगये तदनन्तर वेदोक्तकर्म से यज्ञ समाप्त कियागया ॥ ८८ ॥ माला, बजुल्ला, कडा, कण्ठा औरभी मृपणों से विभवानुसार सब ब्राह्मण प्रसन्न कियेगये ॥ ८९ ॥ कोई हाथियोंपर सवार और कोई घोड़ोंपर कोई और भी विन्य सवारियों पर सवार दिव्य मालाओं को धारण कियेहैं ॥ ९० ॥ वहाँके पत्नी व और भी वनवर जीव जिन्होंने यज्ञके उच्छिष्टमें तृष्णाकी वे सब सुवर्णमय होगये ॥ ९१ ॥

चाज्ञं हयमेधमनुत्तमम् ॥ आहूतादेवताः सर्वा देवेन्द्रः पाकशासनः ॥ ८७ ॥ तर्पिता अर्घपाद्यैश्च मधुपर्कैश्च विष्टैः ॥ ततो निवर्तितो यज्ञो यथोक्तो विदकर्मणा ॥ ८८ ॥ तर्पिता ब्राह्मणाः सर्वे यथा विभवविस्तरैः ॥ हारकेयूरकटकैः कण्ठा भरणभूषणैः ॥ ८९ ॥ केचित्कुञ्जरमारूढास्तथा च हयसंस्थिताः ॥ दिव्ययानसमारूढा दिव्यमालावलम्बिनः ॥ ९० ॥ वयांसिपद्भिणो यत्र तथान्ये वनचारिणः ॥ यज्ञोच्छिष्टेषु लुलिता जाताः सर्वे हिरण्मयाः ॥ ९१ ॥ ययंकामं प्रार्थय ते तं तं प्राप्नोत्यसंशयम् ॥ घोषणा क्रियतां श्रेष्ठे दण्डहस्तैस्तु किङ्करैः ॥ ९२ ॥ पितृदेवमनुष्याश्च तृप्तायान्तिपराङ्मतिम् ॥ ब्रह्मविष्णुमहेशाना वरं दत्त्वा दिवं ययुः ॥ ९३ ॥ अत्र यज्ञस्तपोदानं सर्वं भवति चान्नयम् ॥ एवं निवर्तितो यज्ञो राज्ञश्चामि ततेजसः ॥ ९४ ॥ कृताञ्जलिपुटो भूत्वा मनु रित्याह कल्पगाम् ॥ चान्द्रायणसहस्रस्य सोमयागशतस्य च ॥ ९५ ॥ त्वत्तोयपांनमात्रेण समम्भवति वानवा ॥ लोकानां तारणार्थाय अवतीर्णामहानदी ॥ ९६ ॥ त्वया व्याप्तं जगत्कृत्स्नं

फिर राजाकी आज्ञाहुई कि चौबदार्गों करके राज्यमें पुकार दियाजावे कि जिस २ मनोरथ को जो चाहता हो वह उस २ मनोरथ को निरसन्देह प्राप्तहोवे ॥ ९२ ॥ पितर, देवता और मनुष्य तृप्तहोकर परमगति को प्राप्तहुये ब्रह्मा, विष्णु और महादेव वर देकर स्वर्गको चलेगये ॥ ९३ ॥ इस क्षेत्रमें कियाहुआ यज्ञ, तप और दान सब अन्नय होताहै बड़े तेजवाले राजाका यज्ञ इस प्रकार समाप्तहुआ ॥ ९४ ॥ हाथ जोड़कर राजा मनु नर्मदासे यह बोले कि हे नर्मदे! हजार चान्द्रायण और सौ सोमयागका फल ॥ ९५ ॥ केवल तुम्हारे जल पानेके फलके बराबर नहीं होताहै लोकोंके तारनेके वास्ते महानदी तुमने अत्रतारको धारण कियाहै ॥ ९६ ॥ तुम्हींसे सब जगत् और

चराचलोक व्याप्त होरहें स्नान, तैरना, जलपान, स्मरण और कीर्त्तनसे भी ॥६७॥ अनेक जन्मोंके पापको तुम्हारा जल भस्म करदेताहै जैसे रुईकी राशिको अग्नि भस्मकरताहै इसमें कुछ विचार करना योग्य नहींहै ॥ ६८ ॥ पितरोंके हितकी कामनाकरके स्वर्गकी सीढ़ी होरहीहो हे वरारोहे ! चारों प्रकारके भूतभाग को स्वर्गको पहुँचावो ॥६९॥ हे देवि ! लोकने जितनी नदिश्रां व अनेक प्रकारके तीर्थहैं उनकी तुम माताहो और पितरों की श्रेष्ठ तारनेवाली हो ॥ १०० ॥ तुम्हारे बिना जो तीर्थ व शुभफल देनेवाला धर्मकर्महै वह अन्धोहै जैसे सूर्यके बिना जगत् अन्धाहै ॥१॥ जैसे सूर्य और चन्द्रमा का प्रभाव सब प्राणियों में समान है और जैसे अन्नों और

लोकाश्चैव चराचराः ॥ स्नानावगाहनत्पानात्स्मरणात्कीर्त्तनादपि ॥ ९७ ॥ अनेकभाविकंपापं तूलराशि मिवानलः ॥ दहत्येवं हितोयन्ते नानकायार्थाविचारणा ॥ ९८ ॥ स्वर्गसोपानभूतासि पितृणां हितकाम्यया ॥ दिवं नय वरारोहे भूतग्रा मश्चतुर्विधम् ॥ ९९ ॥ याः काश्चित्सरितोलोकै तीर्थानि विधानि च ॥ तेषां त्वं जननी देवि पितृणान् तारिणी परा ॥ १०० ॥ त्वया विना तु यतीर्थं धर्मकर्म शुभोदयम् ॥ सूर्येणैव विहीनं हि निरालोकं जगद्यथा ॥ १ ॥ सूर्या चन्द्रमसोर्भाव ससामान्यस्सर्वजन्तुषु ॥ समं वर्षति पर्जन्यः सस्येषु च तृणेषु च ॥ २ ॥ तथा त्वं सर्वलोकानां माता चैव गरीयसी ॥ अपि वर्षसहस्रेण गुणान्बुकीर्त्तयितुं शुभे ॥ ३ ॥ ब्रह्मा बृहस्पतिश्चैव नशक्तोऽपि वरानने ॥ स्तोत्रं श्रुत्वा महाभागा मनोरमिततेज सः ॥ ४ ॥ प्रत्युवाच वरारोहा मकरासनसंस्थिता ॥ सर्वाभरणशोभाढ्या चन्द्रकान्तिनिभानना ॥ ५ ॥ वरं वृणु महाभाग तुष्टास्मि मनसीप्सितम् ॥ नमस्कृत्य महादेवी राजा वचनमब्रवीत् ॥ ६ ॥ यदि तुष्टा वरारोहे वरं दातुं ममैच्छसि ॥ तीर्थभूतं

तुर्णोंमें मेघ वरावर वरसता है ॥ २ ॥ इसी प्रकार सब लोकोंकी तुम श्रेष्ठ माताहो हे शुभे ! हे वरानने ! हजारवर्षकरके भी तुम्हारे गुणोंके कहने को ब्रह्मा और बृहस्पति भी नहीं समर्थ हैं पड़ेतेजवाले मनुके स्तोत्रको महाभागवाली नर्मदाजी नमस्कार ॥ ३ ॥ ४ ॥ मगरपर सवार व श्रेष्ठ जिनका आरोहहै सब आभूषणों की शोभा से युक्त चन्द्रमा की कान्ति के समान मुखवाली नर्मदाजी बोलो ॥५॥ किं हे महाभाग ! हम प्रसन्न हैं तुम अपने मनका अभीष्टवर मांगो तब महादेवी को नमस्कार

करके राजा वचन बोले ॥ ६ ॥ कि हे वरारोहे ! जो आप प्रगल्भ हो और मुझको वर देनेकी इच्छा करती हो तो हे वरवर्णिनि ! सब जगत् को पवित्र करदीजिये ॥ ७ ॥ और अयोध्या के देशमें अनेक नदियां होजावें स्वर्गमें गंगाआदि अनेक प्रकारकी नदियां विद्यमान हैं ॥ ८ ॥ वे सब जिसतरह इस देशमें गिरें सो हे कश्यप ! आप करें ॥ ९०६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेप्राकृतभाषास्तुवादेशिपुरीवर्णनोनामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ ॥ ॥

नर्मदा बोली कि हे नृपोत्तम ! ऐसाके पहले चरण में तुम्हारे वंशमें भगीरथ ऐसे प्रसिद्ध राजाहोंगे वेगंगाको लावेगे ॥ १॥ तोंमैं उरपन्नहुये साठ हजार राजा सगर

जगत्सर्वैकुरुववर्चसिनि ॥ ७ ॥ अयोध्याविषयेदेशे खवन्त्यस्मस्मभवन्तिवति ॥ नानाविधास्तुसरितो गङ्गाद्यास्तुसुरालये ॥

८ ॥ यथाचपलितस्सर्वास्तथात्वंकल्पगेकुरु ॥ ९०६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेत्रिपुरीवर्णनोनामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

नर्मदोवाच ॥ त्रेतायांप्रथमेपादे तववंशेनृपोत्तम ॥ भगीरथइतिख्यातस्सगङ्गामानयिष्यति ॥ १ ॥ सागराःपष्टि

साहस्रा अलाबुजसमुद्भवाः ॥ कपिलस्यतुमार्गेण हयेपातालगामिनि ॥ २ ॥ पितुराज्ञावसानेतु विदार्यधरणीन्ततः ॥

हयंतुवासुदेवेन सागरास्तोविदुर्बुधाः ॥ ३ ॥ प्रविष्टास्सागरास्तेतु रसातलतलङ्घताः ॥ तानहंपूरयिष्यामि आत्मतोयेन

सुव्रत ॥ ४ ॥ एवंदृतोवरस्तावच्छेषंष्टुणुनरेश्वर ॥ पादेद्वितीयेत्रेतायाः कालिन्दीचसरस्वती ॥ ५ ॥ सरयूर्गण्डकीना

म महाभागाविनिस्तृताः ॥ भगीरथइतिख्यातस्तववंशेभविष्यति ॥ ६ ॥ भागीरथीचविख्याता भविष्यतिसिन्धुः ॥

गङ्गाचजाल्हीचैव समभागाप्रकीर्तिता ॥ ७ ॥ ख्यातियास्यन्तितास्सर्वाः कन्याद्वीपेनसंशयः ॥ आगच्छन्तीतुसागङ्गा

के पुत्र कपिलदेव के मार्गसे पाताल में घोंड़के जानेपर ॥ २॥ पिताकी आज्ञाके अनन्तर पृथिवी को फाड़कर ईश्वर की इच्छा से वे बुद्धिमान् लोग घोंड़ेको जानगये ॥

३ ॥ और वे सगर के पुत्र उसमें प्रविष्ट हो रसातल को प्राप्तहुयेहे सुव्रत ! उन को हम अपने जलसे पूर्ण करेंगे ॥ ४ ॥ हे नरेश्वर ! इस प्रकार यह वर तुमको

दियागया अब बाकीरहे को तुम मांगो अन्ताके दूसरे चरण में कालिन्दी, सरस्वती ॥ ५ ॥ सरयू और महाभागा गण्डकी निकलेंगी तुम्हारे वंशमें भगीरथ इस

नामसे प्रसिद्धहोंगे ॥ ६ ॥ इसीरंग नदियोंमें श्रेष्ठ गंगाभागीरथी नामसे विदित होंगी और वेही गंगा, जाल्ही और समभागा कही जायेंगी ॥ ७ ॥ ये सब नदियां कन्याद्वीप

में प्रसिद्धि को प्राप्त होंगी आती हुई वे गंगा महर्षि जहनुकरके ॥ ८ ॥ हाथसे खींचकर पीछाली गई जैसे कोई साधारण जलको पीजावे तब देवताओं के हजार वर्ष तक जहनुके पेटमें घूमती रहती ॥ ९ ॥ उस समयमें वे भगीरथ राजा सूखेमुख के हागये और कहा कि मेरा किया हुआ तप निष्फल हुआ और महादेवजी की सेवा निष्फल होगई ॥ १० ॥ मुझ करके यह सब चराचर जगत् सेवन किया गया अब क्या कलं फिर निश्चय करके महादेव के शरण गये ॥ ११ ॥ फिर महादेवजी की आज्ञा से संयुक्त होकर लोकोंके हितकी कामना करके बड़े यशवाले राजा मोहसे फिर गंगके समीप आये ॥ १२ ॥ तब क्रोधसे संयुक्त जहनुवि वचन बोले कि हे राजन् !

जहनुनाच महर्षिणा ॥ ८ ॥ हस्तेना कृष्यसापीता यथान्यः प्राकृतं जलम् ॥ दिव्यं वर्षसहस्रन्तु उदरे च विसर्पिता ॥ ९ ॥

विषुषवदनो राजा तदा सीत्समगीरथः ॥ निष्फलं मे तपस्तप्तं शिवसेवा च निष्फला ॥ १० ॥ मया तु सेवितं ह्येतज्जगत्सर्वं चराचरम् ॥ किङ्करोमीति निश्चित्य महेशं शरणं गतः ॥ ११ ॥ शिवाज्ञां संयुतो भूत्वा लोकानां हितकाम्यया ॥ आगतश्च पुनर्मोहात्तां गङ्गां समहाययाः ॥ १२ ॥ उवाच वचनं राजन् ऋषिः क्रोधसमन्वितः ॥ गङ्गायामोक्षणं कर्तुं यो मा माराधयिष्यति ॥ १३ ॥ गङ्गायामोक्षेण तत्र कर्तव्यं नात्र संशयः ॥ तस्य तद्वचनं श्रुत्वा जहोरभितते जसः ॥ १४ ॥ तमे वाराधयामास तपसोऽग्रेण भारत ॥ ततस्तुष्टस्तुभगवान्मुमोचोत्तरवाहिनीम् ॥ १५ ॥ ततः प्रभृतिलोके स्मिञ्जाल्हीति प्रकीर्तिता ॥ एतत्ते कथितं राजंस्त्रेतायां यद्भविष्यति ॥ १६ ॥ तत्रैवान्यं प्रवक्ष्यामि मर्कटीतीर्थं मुत्तमम् ॥ यत्र स्नात्वा महा

राज कामतोऽकामतोऽपि वा ॥ १७ ॥ चान्द्रायणशतस्योक्तं यत्पुण्यं तदवाप्नुयात् ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ संक्षेपाच्छ्रुतमेत गंगाके छुड़ाने के वास्ते जो मेरा आराधन करेगा ॥ १३ ॥ तो गंगाका छोड़ देना अवश्य ही करना होगा उन बड़े तेजवाले जहनुके इस वचन को सुनकर ॥ १४ ॥ हे भारत ! उग्रतप से उन्हींका आराधन किया तदनन्तर भगवान् जहनु सन्तुष्ट हुये और उत्तरवाहिनी (गंगा) को छोड़ दिया ॥ १५ ॥ तबसे इस लोकमें गंगाजी जाल्ही नाम से कही गई है राजन् ! यह तुमसे कहा गया जो त्रेतामें होगा ॥ १६ ॥ अब वहींपर दूसरे उत्तम मर्कटीतीर्थको कहेंगे हे महाराज ! कामना व विना कामना के जिसमें स्नान करके ॥ १७ ॥ सौ चान्द्रायण का जो पुण्य कहा गया है उसको पाता है युधिष्ठिरजी बोले कि हे तपोधन ! यह संक्षेप से सुना हे सुव्रत ! वह मर्कटीतीर्थ

किस प्रकारका है उसको मुझ से विस्तार से कहो तब मार्कण्डेयजी बोले कि त्रेतायुगमें बड़े तपवाले सत्यसेन राजाहुये ॥ १८ ॥ १९ ॥ उनकी प्यारी शृङ्गारवह्वरी नाम करके रानीहुई वह पूर्वजन्मकी जाननेवाली थी और बड़ी सुन्दरभी थी परंतु केवल वानर के मुखके समान मुखवाली थी ॥ २० ॥ किसी समयमें वे राजा रानी सहित शिकार के वारते अनेक वृक्ष व लताओं से युक्त नर्मदा के तटको गये ॥ २१ ॥ तदनन्तर उस रानीको वहां ठहराकर आप दूसरे वनको गये वहां विहारकरतीहुई वह रानी बांसकी झाडीमें अपने शिरको ॥ २२ ॥ देखकर विस्मयको प्राप्तहुई और अपने समीप में स्थित किसी सिपाही से कहा कि इस खोपड़ी को लेकर नर्मदा के

द्वि विस्तरेणतपोधन ॥ १८ ॥ कथन्तुमर्कटीतीर्थं तन्मेकथयमुव्रत ॥ आसीत्त्रेतायुगेराजा सत्य
सेनोमहातपाः ॥ १९ ॥ राज्ञीतस्यप्रियाचासीन्नाम्नाशृङ्गारवह्वरी ॥ जातिस्मरातुभुगा केवलंमर्कटानना ॥ २० ॥
कदाचित्समर्हपालो मृगयांप्रिययासह ॥ जगामनर्मदातीरं नानाद्रुमलतायुतम् ॥ २१ ॥ स्थापयित्वातुतान्देवीं वना
न्तरमगात्ततः ॥ क्रीडमानाचसातत्र वंशगुल्मेस्वकंशिरः ॥ २२ ॥ दृष्ट्वाविस्मयमापन्ना पाद्वस्त्रं कञ्चिदब्रवीत् ॥ गृ
हीत्वैतच्छिरः शीघ्रंनर्मदायाजलोक्षिप ॥ २३ ॥ निक्षिप्तमात्रेशिरसि राज्ञीचन्द्राननाभवत् ॥ एतस्मिन्नन्तरेराजा
प्राप्तस्तत्रप्रियान्तिकम् ॥ २४ ॥ सदृष्ट्वातादृशंतस्या मुखंपूर्णशशिस्रभम् ॥ पृच्छत्तिस्मप्रियांराजा विस्मयाविष्टचेत
नः ॥ २५ ॥ कथयामासवृत्तान्तं पूर्वजन्मसमुद्भवम् ॥ अत्राहंमर्कटीवासं तीरैर्वनामर्मदेशुभे ॥ २६ ॥ कदाचित्क्रीडमा
नाहं वंशंभिन्वाह्यकामतः ॥ ततःकालवशाज्जीर्णं शरीरंपतितंजले ॥ २७ ॥ शिरस्तत्रैवसंलग्नं कपिवक्त्रास्मितेन

जलमें शीघ्र डालदो ॥ २३ ॥ शिरको पानीमें डालतेही रानी चन्द्रमा के समान मुखवाली होगई इसी अन्तर में राजा-वहां अपनी प्रिया के समीप आगये ॥ २४ ॥
उस रानी के वैसे पूर्णचन्द्रमा के समान शोभावाले मुखको देखकर विस्मयसे युक्त वे राजा रानी से पूछतेहुये ॥ २५ ॥ तब रानीने अपने पूर्वजन्म का हाल वहां कि
इस शुभ नर्मदा के तटमें मैं वानरी हुईथी ॥ २६ ॥ किसी समय में विहार करती हुई मैं निष्प्रयोजन बांसको फाड़कर निकली तो मेरा शिर बांसमें उलझगया तद-
नन्तर कालवशा से शरीर तो जीर्ण होकर जलमें गिरगया ॥ २७ ॥ परन्तु शिर बांसही में उलझारहा निश्चय इसी कारणसे मेरा मुख वानर के मुखके सदृश

हुआ हे प्रिय ! इस समयमें शिरको नर्मदाके जलमें डालतेही ॥ २८ ॥ तीर्थके माहात्म्यसे मेरा मुख चन्द्रबिम्बके समान शोभावाला होगया बेराजा तीर्थ के माहात्म्य को सुनकर विस्मयसे अद्भुत नेत्रधाले होगये ॥ २९ ॥ अपने पुरोहितको बुलाकर वहां स्नान करने को उद्यतहुये वहां विधिपूर्वक स्नानकरके सौकरोड़ मोहरों को दिया ॥ ३० ॥ हे राजेन्द्र ! तबसे मर्कटतीर्थ कहाजाता है उसके पूर्वभाग में अतिउत्तम भृगुतीर्थ विद्यमान है ॥ ३१ ॥ उसमें कार्तिकी को स्नान करके मनुष्य पाप से छूटजाता है और वहां स्वर्ग और मोक्षके देनेवाले नरकेश्वर देव हैं ॥ ३२ ॥ जहां महादेव के आगे सामने एक बांस देख पड़ता है उस निर्मल बांसके समीप है ॥ इदानीं नर्मदातीर्थे निजिसे शिरसिप्रिय ॥ ३३ ॥ मुखमें तीर्थमाहात्म्याचन्द्रबिम्बसमप्रभम् ॥ श्रुत्वासतीर्थमाहात्म्यं विस्मयोत्फुल्ललोचनः ॥ ३४ ॥ पुरोहितसमाहूय स्नातुं तत्र प्रचक्रमे ॥ स्नात्वा तत्र विधानेन हेमकोटिशतं ददौ ॥ ३५ ॥ तदा प्रभृतिराजेन्द्र मर्कटतीर्थमुच्यते ॥ पूर्वभागस्थितं तस्य भृगुतीर्थमनुत्तमम् ॥ ३६ ॥ तत्र स्नात्वा तु कार्तिक्यां नरः पापात् प्रमुच्यते ॥ स्वर्गदोमोक्षश्चैव देवस्तु नरकेश्वरः ॥ ३७ ॥ देवस्य चाग्रैव शो वै समुखो यत्र दृश्यते ॥ पूर्वभागे स्थितं तत्र तस्मिन्वंशे तु निर्मले ॥ ३८ ॥ त्रिलोचन इति ख्यातं तथैव भृगुकुटिस्थितम् ॥ तृतीयलोचनं दृष्ट्वा भृगुस्तु मुनिसत्तमः ॥ ३९ ॥ प्रणम्य दण्डवद्भूमौ स्तोतुं समुपचक्रमे ॥ भृगुरुवाच ॥ प्रणमामि जने संस्थं भूतेशां भृतिदंहरम् ॥ ४० ॥ भाव्यं भर्गपशुपतिं भुवनेश्वरमेव च ॥ दोषमात्रविहीनञ्च नित्यविज्ञानविग्रहम् ॥ ४१ ॥ परद्रव्यापहरणात् परदारनिषेवणात् ॥ पराभवात् पराभूतं रत्नमाङ्गलमषात्प्रभो ॥ ४२ ॥ आत्माभिमानमुदितं क्षणभङ्गुरकेतया ॥ वहांही पूर्वभाग में स्थित ॥ ४३ ॥ त्रिलोचन इस नामसे विदित तथा तीसरा नेत्र भौहों के मध्यमें विद्यमान देखकर सुनियों में श्रेष्ठ भृगुजी ॥ ४४ ॥ दण्डके समान पृथिवी में गिरकर स्तुति करने को प्रारम्भ किया भृगुजी बोले कि सब में स्थित, भूतों के ईश्वर, ऐश्वर्य के देनेवाले, संहार करनेवाले, कल्याणरूप, तेजस्वरूप, पशु (नन्दीश्वर) के पति ऐमेही भुवनों के ईश्वर, दोषमात्र रोहित नित्य ज्ञानही जिनका रूप ऐसे महादेवजी को मैं प्रणाम करता हूं ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ हे प्रभो ! और की द्रव्यके हरने, और की स्त्री के सेवने, पराभव और भी पापसे पराजयको प्राप्त हो रहे मेरी रत्नाकरों ॥ ४७ ॥ हे परमेश्वर ! जगभंगुरशरीरमें उदय हो रहा

हे आत्माभिमान जिसको ऐसे दीन व कुमारों के सम्मुख होकर मुझको पालो ॥ ३८ ॥ मुझ दीन आत्मण के वारते ज्ञान के देनेवाले हूँ जिये मुझ होरे मुझ हो देखकर सदा कल्याण के करनेवाले आप क्यों विलम्ब करते हो ॥ ३९ ॥ हे हर ! तृष्णा का अत्यन्त नाश करो और मुझको निश्चल लक्ष्मी देवो जब आपके निमित्त तीर्थयात्रा मात्र ही मोह को निःशेष नाश करती व पापको हरती और संसार से छुटाती तो भी हे महेशान ! आप मेरा संग्रह नही करते ॥ ४० ॥ ऐश्वर्य के कारण मैं मूढ़ हो रहे पुरुष का त्याग करना निष्फल है इस भृगुजी के कहे हुये करुणाहृदय नामक स्तोत्र को ॥ ४१ ॥ प्रातःकाल उठके जो पाठ करता है वह परमगति को प्राप्त होता है इस स्तोत्र

कुपयाभिमुखं दीनं त्राहि मां परमेश्वर ॥ ३८ ॥ दीनद्विजवरस्यार्थं प्रज्ञाने परितो भव ॥ दृष्ट्वा सदा शङ्करस्त्वं मूढं माङ्गि विलम्ब
से ॥ ३९ ॥ तृष्णां हरहरात्यर्थं लक्ष्मीं मे देहि निश्चलाम् ॥ ४० ॥ नित्यं छिनत्ति मोहं पापं हन्ति तारणं विदधाति ॥ तव ती
र्थमात्रगमनं तदपि न सञ्चितं महेशान ॥ ४१ ॥ भूतिमूलविमूढस्य विभागन्तान्निरर्थकम् ॥ करुणाहृदयं नाम स्तोत्रमे
तद्भृगूदितम् ॥ ४२ ॥ यः पठेत्प्रातस्तथाय स्यात्ति परमाङ्गतिम् ॥ स्तोत्रेणानेन सन्तुष्टः शिवः प्रोवाच तं भृगुम् ॥ ४३ ॥ सर्व
दास्यामि ते विप्र वरं यन्मनसाप्यस्य ख्यातिर्भवति भूतले ॥ ४४ ॥ भृगुरुवाच ॥ यदि तुष्टोसि
देवेश वरं दातुमिच्छसि ॥ मम नाम्नास्य तीर्थस्य ख्यातिर्भवति भूतले ॥ ४५ ॥ अवतारय चात्मानं भृगुक्षेत्रं मे हेश्वर ॥
शङ्कर उवाच ॥ एवं भवतु विप्रेन्द्र तव नाम्ना भविष्यति ॥ ४६ ॥ क्षेत्रं पापहरं पुण्यं देवानामपि दुर्लभम् ॥ पितृपुत्रविस्वादः
क्रोधाज्जातः कथञ्चन ॥ ४७ ॥ अस्य तीर्थस्य माहात्म्यात्स तु शान्तिं तद्गमिष्यति ॥ ततः प्रभृति ये देवा ब्रह्माद्याः किञ्च

मे सन्तुष्ट हुये महादेवजी उन भृगुजी से बोले ॥ ४३ ॥ कि हे विप्र ! जो तुम्हारे मनमें हो वह सब वर हम तुमको देंगे और फिर देवताओं को भी दुर्लभ प्रशंसा करने के योग्य सिद्धि हो भी देवों ॥ ४४ ॥ तब भृगुजी बोले कि हे देवेश ! जो आप प्रसन्न हो और मुझको वर देने की इच्छा करें तो तो पृथिवी में इस तीर्थ की ख्याति मेरे नाम में होवे ॥ ४५ ॥ और हे महेश्वर ! भृगुक्षेत्र मैं आप अपने को उतारो तब महादेवजी बोले कि हे विप्रेन्द्र ! ऐसा ही हो तुम्हारे ही नाम से होगा ॥ ४६ ॥ देवताओं को भी दुर्लभ व पापों का हरनेवाला व पवित्र यह क्षेत्र है किसी प्रकार जो क्रोध से पैदा हुआ पिता और पुत्र का झगड़ा होगा ॥ ४७ ॥ वह इस तीर्थ के माहात्म्य से

शान्तिको प्राप्तहोगा तबसे लेकर ब्रह्मादिक जो देवता, किन्नर और नर ॥ ४८ ॥ भृगुक्षेत्र जो उपासना करते हैं जहां महादेव प्रसन्नहुये हैं उसके दर्शन और स्पर्शन से ब्रह्महत्या करके छूटजाता है ॥ ४९ ॥ उसमें जो स्नान करता है वह तीनों ऋणसे छूटजाता है वहां हे राजन् ! स्वयम्भू करके सत्ययुगमें अवतार कियागया है ॥ ५० ॥ हे नरश्रेष्ठ ! उसी क्षेत्रमें आठ रुद्र कहेगये हैं भृगु, शूली, वेद, चन्द्रमुख ॥ ५१ ॥ अट्टहास, काल, कराली और अष्टम हे युधिष्ठिर ! उस क्षेत्रमें आठ रुद्र उत्पन्नहुये ॥ ५२ ॥ तिससे भृगुक्षेत्र रम्य और धन्य कहागया है, अयन, विषुव, संक्रान्ति, ग्रहण ॥ ५३ ॥ व्यतीपात, दिनजय और गजच्छाया में स्नान, दान, होम, तर्पण

रानराः ॥ ४८ ॥ उपासतेभृगुक्षेत्रं यद्रतुष्टोमहेइवरः ॥ दर्शनान्स्पर्शनान्तस्य मुच्यतेब्रह्महत्यया ॥ ४९ ॥ स्नानंयःकु
स्तेतत्र मुच्यतेसंऋणत्रयात् ॥ अवतारःकृतोराजन्युगेतत्रस्वयंभुवा ॥ ५० ॥ तत्रक्षेत्रेनरश्रेष्ठ अष्टौरुद्राःप्रकीर्तिताः ॥
भृगुश्चैवतथाशूली वेदश्चन्द्रमुखस्तथा ॥ ५१ ॥ अट्टहासस्तथाकालः करालीचाष्टमस्तथा ॥ अष्टौरुद्रास्समुत्पन्नारत
स्मिन्क्षेत्रेयुधिष्ठिर ॥ ५२ ॥ तेनरम्यञ्चधन्यञ्च भृगुक्षेत्रमुदाहृतम् ॥ अयनेविषुवैवैव संक्रान्तौग्रहणेषुच ॥ ५३ ॥ व्य
तीपातेदिनच्छेदे ध्यायान्तुगजस्यच ॥ स्नानंदानंतथाहोमं तर्पणंदेवतार्चनम् ॥ ५४ ॥ सर्वतदक्षयंराजंस्तस्मिन्क्षे
त्रेनसंशयः ॥ स्नातस्यचभृगुक्षेत्रे एकरात्रोषितस्यच ॥ ५५ ॥ यत्पुण्यंजायतेपुंसो नतत्क्रतुशतैरपि ॥ दर्शेभाद्रपदेमा
से शुक्लपक्षेविशेषतः ॥ ५६ ॥ नरःप्रदक्षिणांकृत्वा भृगुतीर्थस्यसंयतः ॥ तत्क्षणाद्विरजोभूत्वा शिवलोकेमहीयते ॥ ५७ ॥
अस्यतीर्थस्यमाहात्म्यान्मुच्यतेसर्वपातकैः ॥ मर्कट्याःपश्चिमेभागे ह्यर्कनीर्थमुदाहृतम् ॥ ५८ ॥ तत्रनित्यंस्थितोभा

और देवताओं का पूजन ॥ ५४ ॥ हे राजन् ! उस भृगुक्षेत्रमें यह सब अक्षय होता है इसमें कुछ संशय नहीं है भृगुक्षेत्र में स्नान करनेवाले और एकरात्रि व्रत करने वाले पुरुष को जो पुण्यहोता है वह सौ यज्ञोंकरके भी नहीं होता अमावास्या को व भाद्रपदेके महीने के शुक्लपक्ष में विशेष करके ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ संयमी मनुष्य भृगु तीर्थकी प्रदक्षिणाकरके उसीक्षण निर्मल होकर शिवलोक में पूजित होनाहै ॥ ५७ ॥ इसी तीर्थके माहात्म्य से सब पापोंकरके छूटजाता है मर्कटीतीर्थके पश्चिमभाग

में अर्कतीर्थ कहा गया है ॥ ५८ ॥ हे राजन् ! सब देवताओं कम्के नमस्कार किये गये सूर्य वहा नित्यही स्थित रहते हैं उनकी प्रदक्षिणाकर मनुष्य सब पापोंसे छूट जाता है ॥ ५९ ॥ उस देवका माहात्म्य संक्षेपसे सुनो कि पूर्वकाल में नामसे मोहन नामका गन्धर्वराज होता हुआ ॥ ६० ॥ ब्रह्माके आराधनमें तत्पर वह ब्रह्माकी सभा को प्राप्त हुआ अपने इश्वररूपसे अहङ्कारको प्राप्त हो रहा वहाँ दुर्वासजीको देखकर ॥ ६१ ॥ वह अज्ञान और अपमान करके हे नृप ! मुनिको हँसता हुआ उस समयमें मुसकुराते मुखवाले गन्धर्वराजको देखकर मुनिने उसको शाप दे दिया ॥ ६२ ॥ कि रूपसे अभिमान को प्राप्त हो रहा तू चित्रकुष्ठी और दुराचारी हो तदनन्तर वह

तुः सर्वदेवनमस्कृतः ॥ नरः प्रदक्षिणां कृत्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ५९ ॥ माहात्म्यं तस्य देवस्य शृणु राजन् समासतः ॥ पु
रा गन्धर्वराजस्तु मोहनो नाम नमतः ॥ ६० ॥ ब्रह्मणस्तु सभां प्राप्तस्तदाराधनतत्परः ॥ तत्र दुर्वाससमदृष्ट्वा रूपेणानि
न गर्वितः ॥ ६१ ॥ अज्ञानेनावमानेन सजहासमुनिं नृप ॥ स्मेराननं समालोक्य तं शशाप मुनिस्तदा ॥ ६२ ॥ चित्रकु
ष्ठी दुराचारी भवत्वं रूपगर्वितः ॥ स तु शापमया त्राह मुनिं गन्धर्वराट् ततः ॥ ६३ ॥ आपान्तं कुरु मे विप्र बालिशस्य प्रसा
दतः ॥ दुर्वासोऽवाच ॥ गच्छ गन्धर्वराज त्वं त्रिपुट्यो निर्ममदा तटम् ॥ ६४ ॥ अस्मिन्नास्ते स्वयं देवः समग्रभयनाशनः ॥
भासते भास्करं नाम विख्यातं चोत्तरे तटे ॥ ६५ ॥ तत्र स्नानान्महाराज आपान्तस्ते भविष्यति ॥ स जगाम पुनर्नत्वा ततो
वैनर्ममदा तटम् ॥ ६६ ॥ तत्र स्नात्वा विधानेन पूजयामास भास्करम् ॥ त्रिरात्र्याराधितो भानुः प्रातः प्रोवाच तं नृप ॥ ६७ ॥
वरं तृणम् हाभाग यत्ते मनसि वर्तते ॥ गन्धर्व उवाच ॥ यदि तुष्टोसि देवेश वरं दातुमिहेच्छसि ॥ ६८ ॥ चित्रकुष्ठं विनश्ये त

गन्धर्वराज शापके भयसे मुनिसे बोला ॥ ६३ ॥ कि हे विप्र ! अपनी प्रसन्नतासे मुझ मूर्खके शापका अन्त करो तब दुर्वास बोले कि हे गन्धर्वराज ! तू त्रिपुरासे नर्मदा के तटको जा ॥ ६४ ॥ जहाँ सब भयोंके नाश करनेवाले सूर्यदेव आपही रहते हैं नर्मदा के उत्तरतट में भास्कर नामसे विख्यात तीर्थ प्रकाश करता है ॥ ६५ ॥ हे महाराज ! उसमें स्नान करनेसे तुम्हारे शापका अन्त हो जायगा वह फिरसे नमस्कार करके नर्मदाके तटको जाता हुआ ॥ ६६ ॥ वहाँ विधान से स्नान करके सूर्यकी पूजा करता हुआ हे नृप ! तीन रात्रि तक आराधन किये गये सूर्य प्रातःकाल उस गन्धर्वसे बोले ॥ ६७ ॥ कि हे महाभाग ! जो तुम्हारे मन में हो उस वरको मांगो

तब गन्धर्व बोला कि हे देवेश ! जो आप प्रसन्नहो और वर देनेकी इच्छा करते हो ॥ ६८ ॥ तो हे प्रभो ! तुम्हारे प्रसाद से मेरा चित्रकुष्ठ नष्ट होजावे तब उस गन्धर्वराज से सूर्यने कहा कि ऐसाही हो ॥ ६९ ॥ हे भारत ! इसके अनन्तर शापसे छूटाहुआ गन्धर्व अपने पुर को जाताहुआ हे राजन् ! इस महादेवजी के कहेहुये को भेने तुमसे कहा ॥ ७० ॥ हे भारत ! वहाँ पुत्र के वास्ते सावित्रीका आराधन होताहै मनुष्य उस तीर्थमें स्नान करके और सूर्यका पूजन करके ॥ ७१ ॥ पुत्रवाला और रोगसे मुक्त होजाताहै इसमें कोई संशय नहीं है वहींपर दक्षिण भाग में कोटीश्वर महादेव हैं ॥ ७२ ॥ मनुष्य विधानसे उनको पूजकरके करोड लिंगके पूजन के

तत्प्रसादेनमेप्रभो ॥ एवमस्त्वितितं ग्राह गन्धर्वाधिपतितदा ॥ ६९ ॥ शापान्मुक्तोजगामाथ स्वपुरम्प्रतिभारत ॥ एतत्तेक थितं राजञ्छिवेनपरिकीर्तितम् ॥ ७० ॥ सावित्र्याराधनंतत्र पुत्रार्थं किलभारत ॥ तस्मिंस्तीर्थेनरः स्नात्वा समभ्यर्च्य च भास्करम् ॥ ७१ ॥ पुत्रवान्व्याधिसुक्तश्च जायेतेनात्र संशयः ॥ कोटीश्वरन्तु तत्रैव विद्धि दक्षिणभागतः ॥ ७२ ॥ तमभ्यर्च्य विधानेन कोटिलिङ्गार्चनात्फलम् ॥ नरः प्राप्नोति राजेन्द्र सत्यं सत्यं वदाम्यहम् ॥ ७३ ॥ कोटितीर्थेनरः स्नात्वा मुच्यते सर्वकिल्बिषैः ॥ तत्र यस्मिन्त्यजेत्प्राणानवशः स्ववशोपि वा ॥ ७४ ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तश्चिश्चलोकमहीयते ॥ ७५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे रेवाखण्डेऽर्कतीर्थमाहात्म्येनवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ * ॥

मार्कण्डेय उवाच ॥ दक्षिणेतस्य तीर्थस्य कल्पगातीरमाश्रितम् ॥ सोमेनाराधितं तीर्थं भुक्तिमुक्तिफलप्रदम् ॥ १ ॥ तत्र स्नात्वा दिवं यांति मृतास्तेन पुनर्भवाः ॥ दक्षिणेतस्य देवस्य स्थितः शक्रेश्वरः शिवः ॥ २ ॥ शक्रेणाराधितः पूर्वं सर्वफलकोपाताहै हे राजेन्द्र ! यह हम सत्य २ कहते हैं ॥ ७३ ॥ कोटितीर्थमें स्नान करके मनुष्य सब पापोंसे छूटजाताहै वहाँ परवश या अपने वशहोकर जो प्राणों को त्यागताहै ॥ ७४ ॥ वहाँ सब पापोंसे छूटाहुआ शिवलोकमें पूजित होताहै ॥ ७५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे रेवाखण्डे प्राकृतभाषाऽनुवादोऽर्कतीर्थमाहात्म्येनवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

मार्कण्डेयजी बोले कि उस तीर्थ के दक्षिणमें नर्मदा के तट के आश्रित चन्द्रमा करके आराधन किया हुआ भुक्ति फल देनेवाला तीर्थहै ॥ १ ॥ वहाँ स्नान करके स्वर्ग को जाते है और वहा परके मरे फिर पैदा नहीं होते उन देवके दक्षिणमें शक्रेश्वर महादेव स्थित हैं ॥ २ ॥ जो कि पूर्वकालमें इन्द्र करके सब कामनाओं

की वृद्धि के वास्ते आराधन कियेगये और भी तीर्थ जो कि ब्रह्मकुण्ड ऐसा कहा गया है उसको कहेंगे ॥ ३ ॥ जहां पर भगवान् विष्णुजी रहते हैं और नर्मदा उत्तर-वाहिनी हैं हे महाराज ! वहां स्नान करके वैष्णवलोक को पाता है ॥ ४ ॥ अमावास्या व व्यतीपात में तिलोदक देने से और श्राद्ध के करने से पितरो की अक्षय तृप्ति होती है ॥ ५ ॥ जहां उत्तरवाहिनी नर्मदा और पश्चिमवाहिनी गङ्गा जहां हैं हे नृपश्रेष्ठ ! उस क्षेत्रको जावो जहां प्राची सरस्वती हैं ॥ ६ ॥ ब्रह्मकुण्ड के उत्तरभाग में अम्बरीष नाम से विदित सनातन देव मधुसूदन माधव को जानो ॥ ७ ॥ हे नराधिप ! जो मनुष्य एकादशी में स्नान करके और अम्बरीष का पूजन करके सब पापों

कामसमृद्धये ॥ अन्यतीर्थप्रवक्ष्यामि ब्रह्मकुण्डमिति स्मृतम् ॥ ३ ॥ यत्रास्ते भगवान्विष्णू रेवाचोत्तरवाहिनी ॥ तत्र स्नात्वा महाराज वैष्णवं लोकमाप्नुयात् ॥ ४ ॥ दर्शंचैव व्यतीपाते तिलतोयप्रदानतः ॥ श्राद्धस्य करणात्तत्र पितॄणां तृप्तिरक्षया ॥ ५ ॥ उदीचीनर्मदायत्र प्रतीचीयत्र जाह्नवी ॥ क्षेत्रंगच्छन् पश्रेष्ठ प्राचीयत्र सरस्वती ॥ ६ ॥ ब्रह्मकुण्डो नरेभागे विद्धि देवं सनातनम् ॥ अम्बरीषमिति ख्यातं माधवं मधुसूदनम् ॥ ७ ॥ एकादश्यां समभ्यर्च्य स्नात्वा यस्तु नराधिप ॥ मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं मगच्छति ॥ ८ ॥ तस्यैव पश्चिमे भागे हंसतीर्थं नराधिप ॥ तत्र स्नात्वा पुराराज नहं सौवैत्रिदिवङ्गताः ॥ ९ ॥ तत्रापि कुरुते श्राद्धं दानञ्चैव नराधिप ॥ हंसतीर्थं प्रभावेण तिर्थग्यो नौ न जायते ॥ १० ॥ पश्चिमे तस्य भागे तु लिङ्गं परममिद्धिदम् ॥ महाकालं मिति ख्यातं यन्मयाराधितम् पुरा ॥ ११ ॥ तमभ्यर्च्य विधानेन शिवलो कं मवाप्नुयात् ॥ अथान्यत्संप्रवक्ष्यामि तीर्थराजमनुत्तमम् ॥ १२ ॥ मातृतीर्थमिति ख्यातं लिङ्गञ्च मातृकेश्वरम् ॥

से छुटजाता है वह विष्णुलोक को जाता है ॥ ८ ॥ उसी के पश्चिम भाग में हे नराधिप ! हंसतीर्थ है हे राजन् ! पूर्वकाल में वहा स्नान करके हेस निश्चय स्वर्ग को प्राप्त हुये ॥ ९ ॥ हे नराधिप ! वहां भी श्राद्ध और दानको जो करता है वह हंसतीर्थ के प्रभावसे तिर्थग्योनि में नहीं उत्पन्न होता है ॥ १० ॥ उसके पश्चिम भाग में परमसिद्धिका देनेवाला लिङ्ग है महाकाल नामसे विदित जो पूर्वकाल में मुक्त करके आराधन किया गया है ॥ ११ ॥ उसको विधि से पूजन करके शिवलोकको प्राप्त होता है अब इसके अनंतर अतिउत्तम दूसरे तीर्थराज को कहेंगे ॥ १२ ॥ मातृतीर्थ इस नाम से विदित है और वहां मातृकेश्वरलिङ्ग है हे राजेन्द्र ! उसमें

स्नान कियेहुये को अश्वमेध का फल होता है ॥ १३ ॥ उसके प्रवाह को अतिक्रमण करके जो नर्मदा का श्रेष्ठ उत्तर तट है उसमें सप्तविंशोद्भव नाम वाले शिव लोकों में गायेजाते हैं ॥ १४ ॥ वहां स्नान करके पितरों के लिये जल व पिण्डोंके देने से सब कामनाओं से पूर्ण शिवलोकमें पूजित होता है ॥ १५ ॥ हे युधिष्ठिर ! वहां कुछ भी जो दान दियाजाता है उसकी संख्या नहीं है यह भगवान् शिवजीने कहा है ॥ १६ ॥ उससे पश्चिममें ब्रह्मेश्वर इस नाम से सुना गया लिङ्ग है जो कि ब्रह्मा करके सिद्ध कियागया व शीघ्रही सब काम फलका देनेवाला है ॥ १७ ॥ उस देवके दर्शनसे सब पापोंसे छुटजाता है मंगल व चतुर्दशी में उस लिंग को विधि

तत्रस्नातस्यराजेन्द्र हयमेधफलम्भवेत् ॥ १३ ॥ तत्प्रवाहमतिक्रम्य यद्वारेवोत्तरंमहत ॥ सप्तविंशोद्भवशिवस्तत्रलो
केषुगीयते ॥ १४ ॥ तत्रस्नात्वापितृभ्यश्च तोयपिण्डप्रदानतः ॥ सर्वकामसमृद्धात्मा शिवलोकैर्महीयते ॥ १५ ॥ त
त्रयद्दीयतेदानं किञ्चिद्वापियुधिष्ठिर ॥ तस्यसंख्यानविद्येतइत्याहभगवाञ्छिवः ॥ १६ ॥ ततःप्रतीच्यालिङ्गन्तु ब्रह्मे
श्वरमिति श्रुतम् ॥ ब्रह्मणासाधितंसद्यःसर्वकामफलप्रदम् ॥ १७ ॥ दर्शनात्तस्यदेवस्य सर्वपापैःप्रमुच्यते ॥ अङ्गारेवा
चतुर्दश्यां तदभ्यर्च्यविधानतः ॥ १८ ॥ शिवभक्तिपरोमर्त्यः शिवलोकैर्महीयते ॥ अन्यतीर्थप्रवक्ष्यामि स्वर्गद्वारम
नुत्तमम् ॥ १९ ॥ तत्रस्नातो नरव्याघ्र स्वर्गलोकैर्महीयते ॥ तत्रपश्चिमभागेतु लिङ्गसिद्धेश्वरम्परम् ॥ २० ॥ तत्रसिद्धे
श्वरंचैव तीर्थपापप्रणाशनम् ॥ तत्रस्नात्वादिवंयान्ति येमृतानपुनर्भवाः ॥ २१ ॥ पौषमासिसिताष्टस्यान्तमभ्यर्च्यवि
धानतः ॥ दत्त्वातुकेपिलांभिलुं स्वर्गलोकैर्महीयते ॥ २२ ॥ तस्मादुत्तरतोविद्धि सङ्गमलोकविश्रुतम् ॥ गङ्गायमुनयोर्नि

से पूजन करके ॥ १८ ॥ शिवभक्ति में तत्पर मनुष्य शिवलोक में पूजित होता है और भी अतिउत्तम स्वर्गद्वार नारा तीर्थ को कहते हैं ॥ १९ ॥ हे नरव्याघ्र ! उसमें स्नान करनेवाला स्वर्गलोक में पूजित होता है वहां पश्चिमभाग में श्रेष्ठ सिद्धेश्वर लिंग है ॥ २० ॥ वहांही पापों का नाश करनेवाला सिद्धेश्वर तीर्थभी है उसमें स्नान करके जे मरे हैं वे स्वर्ग को जाते हैं व फिर नहीं उत्पन्न होते हैं ॥ २१ ॥ पूसमहीने में शुक्लपक्ष की अष्टमीमें विधि से उस को पूजन करके और कपिला गौ को दान

करके स्वर्गलोक में पूजित होता है ॥ २२ ॥ हे नराधिप ! तिससे उत्तर लोक में विदित गङ्गा, यमुना और नर्मदा के नित्य सङ्गम को जानो ॥ २३ ॥ हे राजेन्द्र ! उसमें स्नान करनेवाले को अश्वमेध का फल होता है वहाँ पितरों की प्रीति के बढानेवाले श्राद्धको करै ॥ २४ ॥ तब राजा बोले कि हे मुने ! इस स्थान में गङ्गा और यमुना किस प्रकारसे आईं हे मुनिपुंगव ! यह सब विस्तारसे कहो ॥ २५ ॥ तब मार्कण्डेयजी बोले कि हे महाभाग, राजन् ! मुझ करके कहा जाता जो वृत्तान्त तिसको तुम सुनो और समझो कि धर्म में परायण, शिवजी के भक्त, महायोगी, वेदों के जाननेवालोंमें श्रेष्ठ बृहमहीनेके बाद भोजन करनेवाले धर्मात्मा मत्तंग नामके

तयं रेवायाश्चनराधिप ॥ २३ ॥ तत्रस्नातस्यराजेन्द्र अश्वमेधफलम्भवेत् ॥ श्राद्धतत्रप्रकुर्वीत पितृणांप्रीतिवर्द्धनम् ॥ २४ ॥ राजोवाच ॥ गङ्गाचयमुनाचात्र समायतेकथम्मुने ॥ एतद्विस्तरतस्सर्वं प्रब्रूहिमुनिपुङ्गव ॥ २५ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ शृणुराजन्महाभाग कथयमानंनिबोधमे ॥ मतङ्गोनामराजर्षिरासीद्धर्मपरायणः ॥ २६ ॥ शिवभक्तोमहायोगी त्रिपुट्यविद्वित्तमः ॥ षण्मासभोजीधर्ममाहत्वाकरिवरस्वयम् ॥ २७ ॥ षष्ठेमासेतुसंप्राप्ते यथावद्विधिपूर्वकम् ॥ पितृयज्ञन्तुनिर्वर्त्य शेषंभुङ्क्तेनराधिप ॥ २८ ॥ एवंतपसितप्ततु कालेनमहताततः ॥ सप्तर्षयस्समायातास्ते नमर्गिणभारत ॥ २९ ॥ सतान्दृष्ट्वानमस्कृत्य अर्धपादैरपूजयत् ॥ कुशासनोपविष्टांस्तु प्रोवाचमुनिसत्तमः ॥ ३० ॥ धन्योस्मिपितृमेधेयत्संप्राप्तमभवादृशाः ॥ तत्तस्यवचनंश्रुत्वा मतङ्गस्यमहासुनेः ॥ ३१ ॥ ऋषयश्चिन्तयामासुरन्योन्यंवेतदानुप ॥ मांसेनपितृमेधोऽस्य कथंत्याज्योभवेदिति ॥ ३२ ॥ चिन्ताविष्टान्मुनीन्दृष्ट्वा वशिष्ठःप्राहतंमुनि

राजर्षि त्रिपुरी में होते हुये वे आपही ने एक श्रेष्ठ हाथी को मारकर ॥ २६ ॥ २७ ॥ हे नराधिप ! छठे महीने के प्रातः होनेपर यन्त्रात् विधिपूर्वक पितृयज्ञ को करके शेष को खाते थे ॥ २८ ॥ हे भारत ! इस प्रकार बहुत काल तक तप करते हुये मतङ्ग के समीप उसीमार्ग से सप्तर्षि आतेहुये तदनन्तर ॥ २९ ॥ उन मतङ्गजीने उनको देखकर नमस्कार करके अर्ध और पाद्य से पूजन किया और कुशासन पर बैठे हुये ऋषियों से मुनिश्रेष्ठ मत्तंगजी बोले ॥ ३० ॥ कि हम धन्य है जिससे कि मेरे पितृयज्ञ में आपलोग प्राप्तहुये उन महासुनि मत्तंगजी के उस वचनको सुनके ॥ ३१ ॥ हे नृप ! उससमय में ऋषिलोग परस्पर विचार करनेलगे कि इनका पितृयज्ञ मांस

से होगा यह किस प्रकार त्याग करनेयोग्य है ॥ ३२ ॥ चिन्तामें मग्न मुनियों को देखकर उन मतंग मुनिजी से वशिष्ठजी बोले कि हे महासुने ! गंगा यमुनाके संगम में स्नान करके ॥ ३३ ॥ हम सब लोग भोजन करके इसमें कुछ विचार नहीं कर्तव्य है उन वशिष्ठजीके उस वचनको सुनकर उनसे हैसते हुये मतंगजी बोले ॥ ३४ ॥ कि गंगा यमुना के संगममें यहीं स्नान होगा यह कहकर और ध्यानमें स्थित होकर मुनियोंमें श्रेष्ठ वे मतंगजी वैसेही गंगा और यमुना को बुलाते हुये उसीक्षण दोनों प्राप्त हुई तब मतंग ने कहा कि हे मुनियो ! गंगा यमुनाके संगममें आपलोग स्नान करै ॥ ३५ ॥ वे उन महात्मासुनि के वैसे अद्भुत कर्मको देखकर विस्मित

म ॥ गङ्गायमुनयोयोगे स्नानंकृत्वामहासुने ॥ ३३ ॥ भोक्ष्यामहेवयंसर्वे नात्रकाट्याविचारणा ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वा
मतङ्गःप्राहतान्हसन् ॥ ३४ ॥ गङ्गायमुनयोयोगे स्नानंचात्रमविष्यति ॥ इत्युक्त्वाध्यानमास्थाय सगङ्गायमुनान्त
था ॥ ३५ ॥ समाह्वयन्मुनिश्रेष्ठः समायातेतुतत्तज्जणात् ॥ स्नानंकुरुध्वंमुनयो गङ्गायमुनसङ्गमे ॥ ३६ ॥ तेदृष्ट्वातादृ
शंकर्म मुनेस्तस्यमहात्मनः ॥ विस्मयाविष्टहृदयाः प्रशशंसुश्चतुंमुनिम् ॥ ३७ ॥ ततस्तुमुनयस्सर्वे स्नानंकृत्वायथा
विधि ॥ पितृयज्ञन्तुनिर्वर्त्य मतङ्गस्यययुर्दिवम् ॥ ३८ ॥ गङ्गाचयमुनाचैव प्रविष्टेसप्तकल्पगाम् ॥ इत्थंससङ्गमोजा
तस्सर्वपापहरःपरः ॥ ३९ ॥ अमासोमसमायोगे स्नानंयःकुरुतेनरः ॥ सर्वधर्मसुसम्पन्नादिशवभक्तिपरायणः ॥ ४० ॥
उद्धृत्यपूर्वजान्सप्त सप्तचैवापरांस्तथा ॥ दिव्यदेहसमापन्नोदिव्याभरणभूषितः ॥ ४१ ॥ दिव्ययानसमारूढस्तूय
मानोप्सरोगणैः ॥ तत्तज्जणाद्विरजोभूत्वा स्वर्गलोकेमहीयते ॥ ४२ ॥ अस्यतीर्थस्यमाहात्म्यान्मुच्यतेसर्वपातकैः ॥ नैर
हृदयहोतेहुये उन मुनिकी प्रशंसा करतेहुये ॥ ३७ ॥ तदनन्तर सब मुनिलोग विधिपूर्वक स्नान करके और मतंगकी पितृयज्ञ समाप्त करके स्वर्गको चलेगये ॥ ३८ ॥
गंगा और यमुना नर्मदा में प्रवेश करती भई इस प्रकार सब पापों का हरनेवाला श्रेष्ठ वह सेगम प्रकटहुआ ॥ ३९ ॥ सब धर्मोंसे युक्त महादेव की भक्तिमें तत्पर जो
मनुष्य सोमवती अमावास्याको उक्त संगममें स्नान करताहै ॥ ४० ॥ वह दिव्यदेह से युक्त व दिव्य आभूषणों से भूषित इधर व उधर के सात २ पुरुषों को उद्धारकर
के ॥ ४१ ॥ दिव्य सवारी पर सवार अप्सराओं के समूहोंसे रतुति कियाजाता उसी क्षण निर्मल होकर स्वर्गलोक में पूजित होताहै ॥ ४२ ॥ इस तीर्थके माहात्म्य से

सब पापोंसे छुटजाता है क्रोधको जितेहुये और इन्द्रियों को जीते छह महीनेतक निरन्तर ॥४३॥ जो स्नान करताहै और वहां महादेवजीका पूजन करताहै वह यात्री किसी कारणसे म्लेच्छदेश में व अन्यत्र ॥ ४४ ॥ जहा कहीं मरा तो यह भी महादेवके समीप प्राप्तहोता है स्नान, दान, तप और होम व जो कुछ पूर्वमें यहा संगम में कियाजाताहै उसके पुण्यकी संख्या नहींहै हे राजन् ! मुझकरके यह त्रिपुरीक्षेत्रका वर्णन तुमसे कियागया ॥ ४५ ॥ हे राजेन्द्र ! जिसका सुनना देवताओं को भी दुर्लभहै हे महाराज ! इस पवित्र नर्मदाके कीर्तन को सुनकर ॥४७॥ नर्मदाको नमस्कार करके अभीष्ट सवारीपर सवार होकर देवरचित पवित्र अयोध्यापुरी में प्रवेश

अथान्यत्परमन्तीर्थं सुरासुरनमस्कृतम् ॥ योगतीर्थमितिख्यातं सर्वपापप्रणाशनम् ॥ १ ॥ योगीस्नात्वाविधानेन करतेद्वये ॥ ४८ ॥ बड़े आनन्द से युक्त पहलेकी तरह वे रहनेलगे हे राजन् ! यह क्रमसे आप से यथावत् कहागया ॥ ४९ ॥ जैसे पूर्वसमय में महादेव करके महात्मा स्वामिकार्त्तिकेय से कहागया था इसके सुनने और कहने से शिवलोकमें पूजित होताहै ॥ ५० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेराखण्डेप्रकृतभाषास्तुवादेमातङ्गास्थानंनाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

अब इसके अनन्तर देवता और देव्यों करके नमस्कार किया गया सब पापों का नाश करनेवाला योगार्थ नाम से विदित, दूसरा परमार्थ कहलाता है ॥ १ ॥

जिसमें विधिपूर्वक स्नानकरके योगके अन्तमें योगी स्वर्गको प्राप्तहुआ है राजन्! उसमें मनुष्य स्नान करके तिर्यग्योनि में नहीं जाता ॥ २ ॥ सब पापों से छूटाहुवा विष्णुलोक में पूजित होताहै अब इसके अनन्तर और भी परमतीर्थ है जिसमें ध्रुवजी प्रकाश करते हैं ॥ ३ ॥ जो मनुष्य सबकाम फलके उदयवाले ध्रुवतीर्थमें स्नान करके ध्रुवेश्वर महादेवजी को भक्तिसे पूजन करता है ॥ ४ ॥ वह दश हजार वर्षतक विद्याधरों के उत्तम पुरमें राजाहोताहै व एक नाक्षत्रनाम का तीर्थ नर्मदाके तट में विद्यमान है ॥ ५ ॥ जहां सब पापोंके नाश करनेवाले ऋक्षेश्वर महादेवहैं जिस स्थान में सचाईस नक्षत्र सिद्धिको प्राप्तहुयेंहैं ॥ ६ ॥ उस तीर्थके माहात्म्यसे देवता

योगान्तेत्रिदिवंगतः ॥ तत्रस्नात्वानरोराजंस्तिर्यग्योनौनगच्छति ॥ २ ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोकैर्महीयते ॥
अथान्यत्परमंतीर्थं ध्रुवोयत्रप्रकाशते ॥ ३ ॥ ध्रुवतीर्थेनरःस्नात्वा सर्वकामफलोदये ॥ ध्रुवेश्वरंमहादेवं भक्त्यायत्तु
प्रपूजयेत् ॥ ४ ॥ दशायुतानिराजावै पुरेवेद्याधरेशुभे ॥ नाक्षत्रनामतीर्थन्तु नर्मदातीरमाश्रितम् ॥ ५ ॥ यत्रद्भुत्तेश्व
रोदेवः सर्वपापप्रणाशनः ॥ सप्तविंशतिसंसिद्धिं नक्षत्राणिगतानिवै ॥ ६ ॥ तस्यतीर्थस्यमाहात्म्याद्विविदीव्यन्तिदे
वताः ॥ तत्रस्नात्वादिवंगान्ति येमृतानपुनर्भवाः ॥ ७ ॥ अथान्यत्परमंतीर्थं वाराहनामविश्रुतम् ॥ नर्मदाशर्मदायत्र
विख्याताशूकरानदी ॥ ८ ॥ महाशूकररूपेण धात्रीयत्रसमुद्भूता ॥ एकादश्यांनरस्सनात्वा कृत्वाचैवयथोदितम् ॥ ९ ॥
उपवासपरोभूत्वा द्वादश्यान्तुयुधिष्ठिर ॥ वैष्णवस्तुचिर्भूत्वा वाराहंचसमर्चयेत् ॥ १० ॥ पुष्पोपहारधूपैश्च गन्धदीप
विलेपनैः ॥ वर्षलक्षन्तुसाग्रवै लोकेक्रीडतिवैष्णवे ॥ ११ ॥ ब्रह्मचारीजितक्रोधो विष्णुधर्मपरायणः ॥ गङ्गाशोभजय

रूप से आकाश में प्रकाश करते हैं वहां स्नानकरके जे मरगये वे स्वर्गको जातेहैं व फिर उत्पन्न नहीं होतेहैं ॥ ७ ॥ अब इसके अनन्तर एक और वाराहनामसे प्रसिद्ध परमतीर्थ है और जहां कल्याण देनेवाली नर्मदाजी शूकरानदी नामसे विख्यात हैं ॥ ८ ॥ जहां महाशूकररूप करके पृथ्वी उद्धार कीगई है वहां मनुष्य एकादशी में स्नान करके और यथोक्तकर्म करके ॥ ९ ॥ द्वे युधिष्ठिर ! उपवास में तत्पर होके द्वादशी में जो वैष्णव पवित्रहो वाराहजी को पुष्पोपहार, धूप, दीप आर चन्दनादि से पूजन करता है वह कुछ अधिक एकलाख वर्षतक वैष्णवलोक में विहार करता है ॥ १० ॥ ११ ॥ व जो क्रोधको जीतेहुये, वैष्णवधर्म में तत्पर, ब्रह्मचारी मनुष्य

भास्तिरो वैष्णव ब्राह्मणोंको भोजन कराताहै वैसेही ॥ १२ ॥ बल और आपूर्णोंसे भुषित विशेषसे विष्णुधर्मों को लिखवाके विशेषकर वेदपाठी ब्राह्मणको देताहै ॥ १३ ॥ और सावधान होताहुआ पुराण नर्मदाख्यान को सुनवाता है उसको ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर ये तीनों देवता वरके देनेवाले होतेहैं यह सत्यहै इसमें विचार नहीं करनेयोग्यहै वं नर्मदाख्यानमें श्रद्धारोंकी जो संख्याहै व पत्रोंकी जो संख्याहै ॥ १४ ॥ १५ ॥ उतने हजारयुग पर्यन्त स्वर्गलोकमें पूजित होताहै क्योंकि विद्यादानसे बड़ा दूसरा दान लोकों में नहीं कहाजाताहै ॥ १६ ॥ जैसे विना दियाकी रात्रि और विनासूर्यका आकाश इसी प्रकार विद्याहीन सब जगत् अन्धकार में डूबजाताहै ॥ १७ ॥

तेयस्तु विप्रान्वैष्णवकांस्तथा ॥ १२ ॥ लेखयित्वा विष्णुधर्मन्ब्रह्मालङ्कारभूषितान् ॥ निवेदयेद्ब्राह्मणाय श्रोत्रियाय विशेषतः ॥ १३ ॥ पुराणं नर्मदाख्यानं श्रावयेच्च समाहितः ॥ वरदाश्च त्रयोदेवा ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥ १४ ॥ भवन्ति तस्य सत्यं वै नात्र काय्या विचारणा ॥ यावदक्षरसंख्यानं यावत्पत्रसमुच्चयः ॥ १५ ॥ तावद्युगसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते ॥ विद्यादानात्परंदानं नान्यं लोकेषु गीयते ॥ १६ ॥ अदीपाच्च यथारात्रिरनादित्यं यथानभः ॥ विद्याहीनं तथा सर्वमन्धेतमसि मज्जति ॥ १७ ॥ एतत्ते कथितं सर्वं विद्यादानस्य यत्फलम् ॥ सर्वदानफलंतस्य विद्यादानप्रभावतः ॥ १८ ॥ अथान्यत्परमं तीर्थं चान्द्रायणमिति स्मृतम् ॥ शशाङ्करोहिणीयुक्ते पौर्णमास्यां महोत्सवे ॥ १९ ॥ शशाङ्कभूपणं देवं सर्वसिद्धिप्रदायकम् ॥ अर्चयित्वा विधानेन स्वर्गलोके महीयते ॥ २० ॥ पौर्णमास्यान्तुकुरुते राहुसूर्यसमागमे ॥ तिलोदकं पिण्डदानं पुनः परमधार्मिकः ॥ २१ ॥ पितरस्तस्य तृप्यन्ति पापेपहतचेतसः ॥ सर्वपाप्मनरुदयुक्तञ्च

विद्यादान का जो फल है वह यह सब तुमसे कहा गया विद्यादान के प्रभावसे विद्यादेनेवाले को सब दानोका फल प्राप्त होता है ॥ १८ ॥ अब इसके अनन्तर चान्द्रायण नामका परमतीर्थ कहा गया है रोहिणीसे युक्त चन्द्रमावाली पौर्णमासी महोत्सव में ॥ १९ ॥ सब सिद्धियों के देनेवाले शशाङ्कभूषण महादेवजी को विधानसे पूजकरके स्वर्गलोक में पूजित होताहै ॥ २० ॥ राहुसूर्यसमागम (सूर्यग्रहण) व पौर्णमासी में जो परमधार्मिक पुत्र तिलोदक व पिण्डदान करताहै ॥ २१ ॥

उसके पापी भी पितर तृप्त होजाते हैं और कलियुग करके आवृत्त (धिरा) सब जगत् पाखण्ड से मुक्तहोगया है ॥ २२ ॥ व पुराण, वेदोंके धर्म, दान, यज्ञ और तप यह सब पुण्य पापकर्मों और हेतुवादी नग्न मलिन दीन दिगम्बरों करके आच्छादित होगया है इससे लोकमें धर्ममें तत्पर पुरुषों करके कलियुग बिषे नर्मदा नदीही नित्य उपासना करने के योग्यहै ॥ २३ ॥ उत्तरायण में द्वादशादित्यतीर्थ पुण्यका बढानेवाला है हे राजन् ! वहाँ मनुष्य स्नानकरके व संक्रान्तिव विषुव कालमें सूर्य को पूजकरके सूर्यलोक में पूजित होताहै वहाँ एक ब्राह्मण के भोजन कराने से एकलक्ष ब्राह्मण भोजन करानेका फल होताहै ॥ २५ ॥ तिल अन्न

आवृत्तकलिनातथा ॥ २२ ॥ पुराणवेदधर्मोश्च दानंयज्ञस्तपस्तथा ॥ आच्छादितमिदंपुण्यं हेतुकैःपापकर्मभिः ॥ २३ ॥ नग्नैर्मलिनदीनैश्च कलौलोकैर्दिगम्बरैः ॥ तस्माद्धर्मपरैर्नित्यमुपास्यानमर्मदानदी ॥ २४ ॥ सौम्येतुद्वादशादित्यतीर्थपुण्यविवर्द्धनम् ॥ तत्रस्नात्वानरराजन्नर्चयित्वातुभास्करम् ॥ २५ ॥ संक्रान्तौविषुवैवैव सूर्यलोकैर्महीयते ॥ एकस्मिन्नभोजितेविप्रे लक्ष्मभवतिभोजितम् ॥ २६ ॥ तिलान्नश्चहिरण्यञ्च यथाशक्त्याददातियः ॥ शुक्लपक्षस्यमावस्य शुभाषष्ठीचसप्तमी ॥ २७ ॥ तस्यांदानप्रभावेण ह्युपवासपरायणः ॥ दशवर्षसहस्राणि सूर्यलोकैर्महीयते ॥ २८ ॥ तीर्थमाप्सरसंनाम याम्यान्दिशिसमाश्रितम् ॥ चम्पकासीमपानामा केशिनीभामिनीतथा ॥ २९ ॥ कौमुदीसुप्रभाचैव उत्पलाचमहोदया ॥ निषादयोर्निसंप्राप्ताः पूर्वजन्मनिभारत ॥ ३० ॥ एतात्राप्सरससन्देवं गौरीचैवसुरेश्वरी ॥ माधेमासितृतीयायां निराहाराश्चनिर्जलाः ॥ ३१ ॥ उदैकैःस्नापयित्वातु वित्त्वपन्नैरपूजयन् ॥ दशवर्षसहस्राणि साव

व सुवर्ण यथाशक्ति माघ शुक्लपक्षकी शुभषष्ठी व सप्तमी जोहै उसमें जो देताहै और आप उपवास करताहै उसदानके प्रभावसे दश हजारवर्ष तक सूर्यलोक में पूजित होताहै ॥ २७ ॥ २८ ॥ दक्षिणादिशामें टिका आप्सरस नामतीर्थ है वहाँ चम्पका, सीमपा, अनामा, केशिनी तथा भामिनी ॥ २९ ॥ कौमुदी, सुप्रभा, उत्पला और महोदया हे भारत ! पूर्वजन्ममें निषाद योनिको भलीभांति प्राप्तहुई ॥ ३० ॥ ये स्त्रियां और सुरेश्वरी गौरी जी भी माघकेमहीनेमें तृतीया बिषे निराहार और निर्जलहोकरके आप्सरस

गङ्गादेवजी को ॥३१॥ सावधान होतीहुई निरन्तर दशहजारवर्षतक नर्मदा के जल से स्नान कारवाके बिल्वपत्रों से पूजन करतीहुई ॥ ३२ ॥ तदनन्तर वे सत्र कामोंसे युक्त व अग्निराओं से भलीभाति पूजित व सब अलङ्कारों की शोभासे युक्त व अनेकप्रकारके वस्त्रोंसे भूषितहुई ॥३३॥ उस तीर्थके माहात्म्य से परमसिद्धिको प्राप्तहुई अब इसके अनन्तर और भी अतिउत्तम पुण्यतीर्थ को कहते हैं ॥३४॥ जिसमें विधिपूर्वक स्नान करनेवाले को कन्यादान का फल होताहै उत्तरदिशा में शङ्करनामका लिंग कहागया है ॥ ३५ ॥ हे नराधिप ! अमात्रास्या में उन देवको पूजकरके सब पापोंसे छूटाहुआ ब्रह्मलोक में पूजित होताहै ॥ ३६ ॥ अब इसके अनन्तर लोकमें

धानास्तुनामदैः ॥ ३२ ॥ सर्वकामसमृद्धास्ता अप्सरोभिः सुपूजिताः ॥ सर्वालङ्कारशोभाढ्या नानावसनभूषिताः ॥ ३३ ॥ तस्य तीर्थस्य माहात्म्यात्सं सिद्धिपरमाङ्गताः ॥ अथान्यत्कथयिष्यामि पुण्यतीर्थमनुत्तमम् ॥ ३४ ॥ यत्र स्नातस्य विधिवत्कन्यादानफलम्भवेत् ॥ शङ्करनामलिङ्गन्तु उत्तरस्यान्दिशि स्मृतम् ॥ ३५ ॥ अर्चयित्वा तु तन्देवन्दर्शयेच्चैव नराधिप ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तो ब्रह्मलोकं महीयते ॥ ३६ ॥ अथातः संप्रवक्ष्यामि सङ्गमलोकविश्रुतम् ॥ दत्तात्रेयानदीयत्र सङ्गतासहरं वया ॥ ३७ ॥ सौम्यभागे वरारोहा सुरासुरनमस्कृता ॥ तत्र स्नात्वा च दत्त्वा च अर्चयित्वा तु केशवम् ॥ ३८ ॥ पापिष्ठा ये दुराचारा धर्मकर्मबहिष्कृताः ॥ प्रभावात्तस्य तीर्थस्य तोपियान्तिहरेः पुरम् ॥ ३९ ॥ मेधातिथिः करः स्फुण्डः सार्वणिः कौशिको मनुः ॥ काश्यपो गालवश्चैव मैत्रेयस्तपसां निधिः ॥ ४० ॥ एते चान्येऽपि बहवो ऋषयः संशितव्रताः ॥ तीर्थस्यास्य प्रभावेण सं सिद्धिपरमाङ्गताः ॥ ४१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणैवास्वरुडे तीर्थमहिम वर्णनो नामैकादशोऽध्यायः ११

त्रिदित संगम को कहते है जहा नर्मदा के साथ दत्तात्रेयानदी मिली है ॥ ३७ ॥ उत्तरके तरफ देवता और दैत्योसे नमस्कार कीगई नदी है उसमें स्नानकर और दानदेकर व केशवका पूजन करके ॥३८॥ जे पापिष्ठ और धर्मकर्मसे रहित दुराचारी है वेभी उस तीर्थके प्रभावसे हरिके पुर्वको प्राप्तहोते हैं ॥३९॥ मेधातिथि, कर, स्कन्द, सार्वणि, कौशिक, मनु, काश्यप, गालव और तपोनिधि मैत्रेय ॥ ४० ॥ ये व और भी उत्तम व्रतवाले बहुत ऋषि इस तीर्थके प्रभाव से परमसिद्धिको प्राप्तहुये ॥४१॥ इति श्रीस्कन्दपुराणैवास्वरुडे प्राकृत भाषाऽनुनादे तीर्थमहिम वर्णनो नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

॥ ॥

॥ ॥

॥

॥

॥

॥

॥

॥

॥

॥

॥

॥

॥

॥

मार्कण्डेयजी बोले कि हे राजेन्द्र ! अब दक्षिण दिशाके आश्रित देवनाछाँसे पूजित गांजालभेद नामके शैवसंगम को सुनो ॥१॥ वहाँ रत्नानकरके जो भरे वे स्वर्गको जाते व फिर नहीं उत्पन्न होते हैं व जो देवता और पितरों का तर्पण पिण्डदान करेगा ॥ २ ॥ उसके पितर जबतक सूर्य, चन्द्र और नक्षत्र रहते हैं तबतक तुम्हारे हृते हैं भेडेउत्सव मे व कार्तिकी पौर्णिमासी अथवा पर्वमे ॥ ३ ॥ भिद्धिके देनेवाले गांजालेश्वर लिंगको पूजनकरै पूर्वकालमें कन्यापुरके चक्रवर्त्ती राजा हरिकेश ॥ ४ ॥ इस तीर्थके प्रभाव से बछड़ा और गौबोंकी हत्यासे छूटगये यह सुनके युधिष्ठिर बोले कि हे तात ! मुझको यह बहुत बड़ा लोमहर्षण संशय है ॥ ५ ॥ कि उक्त राजाको

मार्कण्डेयउवाच ॥ अथशृणुष्वराजेन्द्र दक्षिणान्दिशमाश्रितम् ॥ शैवंगाञ्जालभेदञ्च सङ्गमसुरपूजितम् ॥ १ ॥ तत्ररत्नान्वादिवंयान्ति येमृतानपुनर्भवाः ॥ यःकुथर्यात्पितृदेवानां तर्पणंपिण्डपातनम् ॥ २ ॥ पितरस्तस्यतृप्यन्ति यावच्चन्द्रार्कतारकम् ॥ महोत्सवेचकौमुद्यां कार्तिक्यांचैवपर्वणि ॥ ३ ॥ गाञ्जालेश्वरलिङ्गञ्च अर्चयेत्सिद्धिदायकम् ॥ हरिकेशश्चक्रवर्ती कन्यापुरपतिःपुरा ॥ ४ ॥ तीर्थस्यास्यप्रभावेण सुक्तोभूद्वत्सगोविधात् ॥ युधिष्ठिरउवाच ॥ ममास्ति संशयस्तात सुमहाल्लोमहर्षणः ॥ ५ ॥ कथंराजनिगोहत्या कथंमुक्तश्चगोविधात् ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ शृणुराज न्कथान्दिव्यामितिहासंपुरातनम् ॥ ६ ॥ सोमवंशेनृपश्चासीत्सत्यधर्मव्रतस्थितः ॥ देवानीकइतिख्यातो हरिकेशस्तदात्मजः ॥ ७ ॥ सर्वलक्षणसम्पूर्णश्चक्रवर्तीमहाबलः ॥ अनेकाश्चमत्वास्तेन राजन्निष्ठा महत्तमना ॥ ८ ॥ ख्यातंकन्यापुरंतस्य धनदस्यालकायथा ॥ चिरायुषःप्रजास्सर्वाधनधान्यसमन्विताः ॥ ९ ॥ तुङ्गभद्रेतिविख्याता श्रीशैलेत्रिपुरा

कैसे गोहत्या हुई और उससे छूटभी कैसे गये तब मार्कण्डेयजी बोले कि हे राजन् ! पुराने इतिहास व दिव्यकथा को सुनो ॥ ६ ॥ चन्द्रवंश में सत्य व धर्म के व्रतमें स्थित देवानीक नामसे प्रसिद्ध राजाहुये उनके पुत्र हरिकेश हुये ॥ ७ ॥ जोकि सब लक्षणों से युक्त महाबलवाले चक्रवर्त्ती थे हे राजन् ! उन महात्मा राजाकरके अनेक राज कियेगये ॥ ८ ॥ उनकी कन्यापुर राजधानी कुबेरकी झलकापुरी के समान होतीहुई वहाँकी सब प्रजा धन और अन्नसे युक्त दीर्घ आयुर्दायवाली होती हुई ॥ ९ ॥

त्रिपुर के समीप श्रीशैलमें तुंगभद्रानदी प्रसिद्ध है जोकि मल्लिकार्जुन के दर्शन से पातालगङ्गा कहीगई है ॥ १० ॥ तदनन्तर उस पर्वत के पूर्वभागमें श्रीधामनामका वनहै जोकि अनेक मुनियों से व्याप्त व करोड़ों देवताओं से युक्तहै ॥ ११ ॥ वहां शिव परमात्मा करके ललिताजी विवाही गई पूर्वसमयमें प्रजापतिजी ने इन ललिताजी का आयुषा नाम रक्खा था ॥ १२ ॥ व उन्हीं का सुप्रभा नाम विख्यात होताहुआ हे विशाम्पते ! पार्वतीजी का यह पहला अवतार तुमसे कहागया ॥ १३ ॥ दूसरे अवतार में हिमवान् की पुत्री, पार्वती और उमा कहीगई तीसरे में दक्षदुहिता और गौरीनाम से विदितहुई ॥ १४ ॥ हे राजसत्तम ! सुप्रभाके समीप इस दुएय

नितके ॥ उक्तापातालगङ्गेति मल्लिकार्जुनदर्शनात् ॥ १० ॥ पूर्वभागेततस्तस्य श्रीधामं नाम खेटकम् ॥ नाना मुनिसमाकीर्णं देवकोटिसमावृतम् ॥ ११ ॥ ललितोद्वाहितातत्र शिवेन परमात्मना ॥ पुरात्वस्यायुषानाम प्रजापतिरकल्पयत् ॥ १२ ॥ सुप्रभानामतस्यास्तु विख्यातमभवत्तथा ॥ देव्याः पूर्वावतारोयं कथितस्तौ विशाम्पते ॥ १३ ॥ द्वितीयं हिमवत्पुत्री पार्वती च उमा तथा ॥ तृतीये दक्षदुहिता नाम्ना गौरीति विश्रुता ॥ १४ ॥ पुण्यतीर्थे च चेत्त्रैस्मिन्हारिकेशः प्रतापवान् ॥ सुप्रभानिकटेनाम सुप्रभो राजसत्तम ॥ १५ ॥ शशासमेदिनीं राजा सर्वधर्मपरायणः ॥ लब्धमेकन्तुदोग्रीणां राहुसूर्यसमागमे ॥ १६ ॥ निष्काणान्तु सहस्रं वै प्रतिगङ्गामकल्पयत् ॥ सर्वाभरणशोभाढ्यामेकांगं चोपवेशयत् ॥ १७ ॥ ब्राह्मणांश्च समाहूय वेदविद्यावहुश्रुतान् ॥ पञ्चभिर्दिवसैः पूर्वं राहुसूर्यसमागमे ॥ १८ ॥ प्रयागेतत्र योगेवा इत्युक्तं चेदपारगैः ॥ देवोपकृतयोगेन पूर्वकर्मकृतेन च ॥ १९ ॥ आग्नेयीहूयते चेष्टी राजानलसमागमे ॥ अग्नावाहवनीयेन रोद्रेर्म

तीर्थक्षेत्रमें प्रताप व सुन्दर शोभावाले हरिकेश नाम ॥ १५ ॥ राजा सब धर्मों में तत्परहो पृथ्वीका राज्य करतेहुये सूर्यग्रहणमें एकलाल गौत्रे ॥ १६ ॥ व हजार मोहर गंगा के तटमें देतेहुये और सब आभूषणों की शोभा से युक्त एक गौ स्थापित करतेहुये ॥ १७ ॥ सूर्यग्रहण में पांच दिनसे पहले वेदविद्या से युक्त बहुश्रुत ब्राह्मणों को बुलाके पूर्वोक्त दान दिया ॥ १८ ॥ वेदपाठी ब्राह्मणों करके यह कहागया कि इस योगमें प्रयागके समान पुण्यहोता है प्रारब्ध के योगसे अथवा पूर्वकर्म के कारण

करके बड़ा अनर्थ हुआ ॥ १६ ॥ कि राजाकरके यहां अग्निसमागम विषे आहवनीय अग्नि में बड़े तेजवाले रौद्रभंत्रों से आग्नेयी इष्टि की गई ॥ २० ॥ उस समय में महाप्रलय के अग्नि के तुल्य प्रभावाला पाताल से पृथ्वी फोड़कर अग्नि निकला उसी से सब गोमण्डल और दश हजार ब्रह्मचारी भस्महोगये ॥ २१ ॥ उस समस्त मण्डप और पुरको भस्म होगया देखकर दुःखी जिनका मन होगया ऐसे राजा हरिकेश अग्नि में प्रवेश करने के वारते ॥ २२ ॥ रानियों व समय के जानने वाले मन्त्रियों व सेनाओं के सहित उग्रीही आसन से उठे त्यौही ॥ २३ ॥ हे भारत ! तीनों लोकों में बड़ा हाहाकार होताहुआ फिर राजा वेदपाठी ब्राह्मणों

नवैरसुतेजसैः ॥ २० ॥ पातालादुत्थितोवह्नियुगान्ताग्निसमप्रभः ॥ दग्धंगोमण्डलं कृत्स्नमयुतं ब्रह्मचारिणाम् ॥ २१ ॥

भस्मीभूतञ्च तत्सर्वं मण्डपं पुरमेव हि ॥ हरिकेशो विषखात्मा प्रवेष्टुं वै हुताशनम् ॥ २२ ॥ आसनादुत्थितो राजा सा

न्तःपुरपरिच्छदः ॥ अमात्यैस्संवृतस्तावत्समयज्ञैर्वलौत्तरैः ॥ २३ ॥ हाहाकारो महानासीत्त्रिषु लोकेषु भारत ॥ उवाच

वचनं राजा ब्राह्मणान्वेदपारगान् ॥ २४ ॥ ब्राह्मणस्यैव हत्याया गवांचैव विशेषतः ॥ अपि वर्षसहस्रेण निष्कृतिर्न विधी

यते ॥ २५ ॥ धेनूनांचैव वत्सानां ब्राह्मणानां यथा गतिः ॥ सागतिर्मे भवेन्नित्यं सत्यमेतद्गवाम्यहम् ॥ २६ ॥ ब्राह्मण उ

वाच ॥ गच्छत्वं च महाभाग कल्पग्रामं पुरोत्तमम् ॥ अगस्तिर्भगवान्यत्र कश्यपो भृगुरेव च ॥ २७ ॥ भारद्वाजोऽत्रिगर्गो च

गौतमो मनुरेव च ॥ याज्ञवल्क्यो वशिष्ठश्च ऋषयः शंसितव्रताः ॥ २८ ॥ तत्र गत्वामहाराज प्रायश्चित्तं प्रगृह्यताम् ॥ मह

र्षिणां भवेन्नैव वेदशास्त्रार्थदर्शिनाम् ॥ २९ ॥ एवमुक्तो ययौराजा पादचारी द्विजैस्सह ॥ विवेश नगरीं पुरयां ब्रह्मलोक

से वचन बोले ॥ २४ ॥ कि ब्राह्मण और गौवों की हत्याका प्रायश्चित्त विशेष करके हजार वर्ष करके भी नहीं होसक्ता ॥ २५ ॥ इससे गौवों व बछड़ों और ब्राह्मणों की जैसी गति हुई है वही गति हमारी भी नित्य होवे यह हम सत्य कहते हैं ॥ २६ ॥ तब एक ब्राह्मण बोला कि हे महाभाग ! तुम पुरोंमें उत्तम कल्पग्राम को जावो जहा भगवान् अगस्ति, कश्यप और भृगु ॥ २७ ॥ भारद्वाज, अत्रि, गर्ग, गौतम, मनु, याज्ञवल्क्य, वशिष्ठ और भी प्रशंसित व्रतवाले ऋषिलोग रहते हैं ॥ २८ ॥ हे महाराज ! वहां जाकर वेद और शास्त्रार्थ के देखनेवाले महर्षियों के मतकरके प्रायश्चित्त ग्रहण करो ॥ २९ ॥ हे नृप ! इस प्रकार कहेगये राजाने ब्राह्मणों करके

सहित पैदल द्रहलोक के समान पवित्र नगरी में प्रवेश किया ॥ ३० ॥ वहां वे राजा उन महर्षियोंको देखकर श्रमिवादनपूर्वक प्रणामकरके निश्चय बहुत देरतक उन्हीं के आगे खड़े रहे ॥ ३१ ॥ तब ऋषि बोले कि हे नृपश्रेष्ठ ! हम लोगों के हजारों कर्मों का फलरूप आपका आगमन अति उत्तम हुआ आपके आगमन का क्या प्रयोजन है यह हम लोगों से सत्य कहिये ॥ ३२ ॥ उन ब्रह्मर्षी ऋषियों के उस वचन को सुनके हाथ जोड़कर अपना वृत्तान्त कहते हुये ॥ ३३ ॥ कि हे ब्राह्मणो ! भलीभाति सिद्ध भी कार्य प्रारब्ध से नष्ट हो जाता है एकलाख गौवें और दशहजार ब्राह्मण जल गये ॥ ३४ ॥ इसका प्रायश्चित्त आप बतलावें हम इसको बड़ा अनुग्रह मानते हैं तब

समान् ॥ ३० ॥ महर्षीस्तत्र तान् दृष्ट्वा सोमिवाद्यप्रणम्य च ॥ निश्चयं चिरकालं नु तेषामेवाग्रतः स्थितः ॥ ३१ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ स्वागतं ते नृपश्रेष्ठ फलं कर्मसहस्रशः ॥ किमागमनकार्यं च सत्यमेतद्ददस्वनः ॥ ३२ ॥ तेषां तद्वचनं श्रुत्वा ऋषीणामूर्ध्वरेतसाम् ॥ कृताञ्जलिपुटो भूत्वा वृत्तान्तं स्वन्यवेदयत् ॥ ३३ ॥ देवाद्विपद्यन्ते कार्यं संसिद्धमपि मां द्विजाः ॥ दशायुतं गनान्दग्धं द्विजानामयुतं तथा ॥ ३४ ॥ अनुग्रहं बहूं मन्ये प्रायश्चित्तमथोदितम् ॥ ब्राह्मणा ऊचुः ॥ दश लक्षाणि गायत्र्या स्तीर्थे तीर्थे जपं कुरु ॥ ३५ ॥ अयुतं नु गवान्दत्त्वा सहिरयं नृपोत्तम ॥ कोटिहोमन्तु कुर्वीत सहस्र शतदक्षिणम् ॥ ३६ ॥ प्रयागं च महातीर्थं गच्छेद्द्वाराणसीं शुभाम् ॥ केदारं च तथेशानं गङ्गासागरसङ्गमम् ॥ ३७ ॥ पितृतीर्थं गयाञ्चैव नैमिषं पुष्करं तथा ॥ मायापुरीं हरिद्वेत्रं गङ्गाद्वारं महाफलम् ॥ ३८ ॥ तीर्थेष्वेतेषु चान्येषु यावद्वादश वत्सरान् ॥ ३९ ॥ अनेन क्रमयोगेन शुद्धिस्तेनान्न संशयः ॥ मुक्तिस्ते भवितारान् ब्राह्मणानां प्रभावतः ॥ ४० ॥ दत्त

ब्राह्मण बोले कि प्रतितीर्थ में गायत्री का दशलाख जप करो ॥ ३५ ॥ व हे नृपोत्तम ! सुवर्ण सहित दशहजार गौवों का दान करके एकलक्ष दक्षिणा के सहित करोड़ श्राद्धतियों से हवन करो ॥ ३६ ॥ महातीर्थ प्रयाग, शुभरूप काशी, केदार तथा ईशान, गंगासागरसंगम, पितरों का तीर्थ गया, नैमिष, पुष्कर तथा मायापुरी, हरिद्वेत्र और महाफलवाले गंगाद्वारको जावो ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ इन तथा और भी तीर्थों में बारह वर्ष तक इस पूर्वोक्त कर्म के करने से आपकी शुद्धि होगी इसमें संशय नहीं है हे

राजन् ! ब्राह्मणों के प्रभाव से आपकी मुक्ति होगी ॥ ६४ ॥ वेदके वाक्य से ब्राह्मणों के तुमको प्रायश्चित्त दिया गया इससे ब्राह्मणों के चरणों की पूजा विधिसे करना चाहिये ॥ ४१ ॥ इसके अनन्तर राजा सोमसव यज्ञ करने के वास्ते कुरुक्षेत्र को जाते हुये अपने पापों का प्रायश्चित्त इस प्रकार समझकर सरस्वतीनदी के आश्रित हुये ॥ ४२ ॥ शिवजी का स्तोत्र, हर, विष्णु, सरस्वती का जप किया और यह कहते हैं कि कुरुक्षेत्र को जायेंगे और कुरुक्षेत्र में बसेंगे ॥ ४३ ॥ कुरुक्षेत्र के नाम करके भी मनुष्य पापसे छूट जाता है इस संसार में समस्त शब्दरूप श्रौषधों से नाशकर दिये गये हैं सब प्राणियों के कलङ्क जिस करके और मुनियों करके उपामना

न्ते श्रुतिवाक्येन प्रायश्चित्तं द्विजोत्तमैः ॥ पादपूजाद्विजेन्द्राणां कर्तव्याचविधानतः ॥ ४१ ॥ कुरुक्षेत्रं जगामाथ कर्तुं सोमसंवन्तपः ॥ विचिन्त्यैवं स्वाधन्यासं सरस्वत्यां समाश्रयत् ॥ ४२ ॥ जपति स्म शिवस्तोत्रं हरं विष्णुं सरस्वतीम् ॥ कुरुक्षेत्रं गमिष्यामि कुरुक्षेत्रे वसाम्यहम् ॥ ४३ ॥ कुरुक्षेत्रस्य नाम्नापि नरः पापात्प्रमुच्यते ॥ अखिलशब्दमहोषधप्रज्ञा खितसकलभूतकलङ्का ॥ मुनिभिरुपासिततीर्थं सरस्वतीं हरहरतु मे दुरितम् ॥ ४४ ॥ राज्ञस्तद्वचनं श्रुत्वा प्राह पापहरानदी ॥ विषादन्त्यजराजेन्द्र शृणु मे वचनं परम् ॥ ४५ ॥ उपदेशं प्रदास्यामि स्थातुं तव नृपोत्तम ॥ अनेकसाविकंधोरं स्मरणादेव नश्यति ॥ ४६ ॥ ब्रह्महत्या सहस्रन्तु गोहत्या लक्षमेव च ॥ न च मोचयितुं शक्ता गङ्गा चैव संहरिद्वरा ॥ ४७ ॥ चराचरस्य लोके स्मिन्कर्त्रीतिष्ठति कल्पगा ॥ दीपादित्यादिभिर्बोध्य यथान्धत्वं प्रणश्यति ॥ ४८ ॥ तथानाशयते पापं कल्पगा सरितां वरा ॥ दानैर्दग्धापुराचाहं क्षत्रियाणामनेकधा ॥ ४९ ॥ अस्ताहन्ते न पापेन नृपदक्षिणया ततः ॥ शुक्लतः

किया जाता है स्नान स्थान जिसका ऐसी सरस्वती हमारे पापको हरे ॥ ४४ ॥ राजा के इस वचनको सुनके पापों की हरेनेवाली सरस्वतीनदी बोली कि हे राजेन्द्र ! विषादको छोड़ो और हमारे श्रेष्ठ वचन को सुनो ॥ ४५ ॥ हे नृपोत्तम ! हम तुम्हारे रहने के वास्ते उपदेश देती हैं जिसके स्मरण मात्रसे अनेक जन्मों का घोर पाप नष्ट हा जाता है ॥ ४६ ॥ हजारों ब्रह्महत्या और लाखों गोहत्या छुड़ाने को नदियों में श्रेष्ठ गंगाजी नहीं समर्थ हो सकती ॥ ४७ ॥ इस कामकी करनेवाली इस चराचरलोक में नर्मदही विद्यमान हो रही हैं दीप और सूर्य आदि के द्वारा देखकर जैसे अन्धत्व दूर होता है ॥ ४८ ॥ इसी प्रकार नदियों में श्रेष्ठ नर्मदाजी पापको नाश करती हैं पूर्व

कालमें क्षत्रियों के अनेक प्रकार के दानोंकरके हम दग्ध होगई थीं ॥ ४९ ॥ हे नृप ! उस पापकरके अथवा दक्षिणा करके अस्तहुई हम अपने शुक्लवर्ण से कृष्ण वर्णको प्राप्तहुई हे पृथिवीपते ! ॥ ५० ॥ राहुकरके सूर्यको अस्तहुये पर हे नराधिप ! कोटितीर्थ में स्नान करने के वारते हम बारहवे और चौबीसवें वर्षमें जातीरहीं ॥ ५१ ॥ सो अब तुम हमारा शरीर तेजके समान उज्ज्वल प्रत्यक्ष देखो हे नृपश्रेष्ठ ! स्नान और शिवका पूजन करके बहुत सुवर्ण जिसमें दियाजावे ऐसे उत्तम यज्ञको वहां करो तिससे तुम्हारी निष्कृति होजायगी और जो ब्राह्मण व गौर्वें मरी है उनकी हड्डियोंको जल में बहादो ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ नर्मदा के जलके स्पर्श से स्वर्ग में देव

कुण्णतांचाहं प्राप्ताभोःपृथिवीपते ॥ ५० ॥ द्वादशाब्देचतुर्विंशे स्नानं कर्तुं समागमम् ॥ अस्ते वै राहुणासूर्यं कोटिती
र्थे नराधिप ॥ ५१ ॥ प्रत्यक्षं मे शरीरन्तर्व पश्यते जस्समुज्ज्वलम् ॥ स्नात्वा तु शिवमभ्यर्च्य बहुस्वर्णं मखोत्तमम् ॥ ५२ ॥
कुरुत नृप श्रेष्ठ तेन ते निष्कृतिर्भवेत् ॥ ये मृता ब्राह्मणा गावस्तेषामस्थिप्रवाहनम् ॥ ५३ ॥ नर्ममदोदकसम्पर्काद्विवि
देवत्वमाप्स्यते ॥ तिलोदकप्रदानेन तेषां मुक्तिः पराभवेत् ॥ ५४ ॥ श्रुत्वा तत्कथितं वाक्यं सरस्वत्या नृपश्रताम् ॥ नमस्कृ
त्य ससुत्थाय कन्यापुरमगात्ततः ॥ ५५ ॥ सान्तःपुरपरीवारो मुदा परमयानुपः ॥ तेनाज्ञासास्ततोभृत्याः सर्वसम्भार
संभृताः ॥ ५६ ॥ यज्ञोपस्करमादाय मेकलायत्रगच्छत ॥ अस्थिभस्मयथान्यायं नीतं कर्म करैस्ततः ॥ ५७ ॥ प्रावा
हयत्कल्पगायां मन्त्रसुक्तेन वारिणा ॥ अस्थ्यादिपूजयित्वा च यथाविधमनुत्तमम् ॥ ५८ ॥ देवांश्च ब्राह्मणांस्तत्र तर्पयि

भाव प्राप्त होगा और तिलोदक के देने से उनकी परममुक्ति होगी ॥ ५४ ॥ इस सरस्वती के कहे हुये वचनको सुनकर राजा उन सरस्वतीजी के नमस्कार करके तेदनन्तर उठकर कन्यापुर को जाते हुये ॥ ५५ ॥ रानी व परिवार के सहित बड़े आनन्द से युक्त राजा होते हुये तेदनन्तर राजाकरके सब सामान से युक्त नौकर लोग आज्ञा दिये गये ॥ ५६ ॥ राजाने कहा कि यज्ञका सामान लेकर तुम सब जहां नर्मदा हैं वहां को जावो तदनन्तर नौकरों करके हड्डी व भस्म नर्मदा के तट में प्राप्त की गई ॥ ५७ ॥ मन्त्रयुक्त जलकरके नर्मदा में अस्थिआदि को बहादिया व विधिपूर्वक अति उत्तम पूजन करके ॥ ५८ ॥ हाथ जोड़िये देवता और ब्राह्मणों को

वहाँ तुमकरके कृतकृत्य होतेहुयें वहाँ एक सोता निकला व नर्मदा में प्रवेश करता हुआ ॥ ५९ ॥ हे नृप ! वह नर्मदासंगम गांजाल नामसे विदित होताहुआ न करोइ सूर्यके समान तेजवाला गांजालसिद्धलिंगभीहै ॥ ६० ॥ जो कालाग्निकरके भस्म करदियेगये थे वे सब दिव्यसवारी पर सवार आशीर्वाद देनेमें तत्पर हरिकेशकी स्तुति करतेहुये ॥ ६१ ॥ कि हे महाभाग ! आपके प्रमाद से हम सब स्वर्गमें देवभाव को प्राप्तहुये देवताओं की हुन्दुभी, वेणु और वीणाओं के शब्दों करके युक्त ॥ ६२ ॥ दिव्य सवारियों पर सवार वे सब वैष्णवपद को प्राप्तहुये और राजाओं में श्रेष्ठ हरिकेशभी परमआनन्द से युक्त ॥ ६३ ॥ सात कल्पतक बहनेवाली लोकलोक पवित्र

त्वाकृताञ्जलिः ॥ प्रवाहोनिर्गतस्तत्र नर्मदायांसमाविशत् ॥ ५९ ॥ सगाञ्जालेतिविख्यातो नर्ममदासङ्गमोन्मृप ॥ गा
ञ्जालसिद्धलिङ्गञ्च सूर्यकांटिसमप्रभम् ॥ ६० ॥ दिव्ययानसमारूढा दग्धाःकालाग्निनातुये ॥ आशीर्वादपरास्सर्वे ह
रिकेशंप्रतुष्टुवुः ॥ ६१ ॥ त्वत्प्रसादान्महाभागदिविदेवत्वमागताः ॥ देवदुन्दुभिनिघोषैर्वेणुवीणारवैस्तथा ॥ ६२ ॥ दि
व्ययानसमारूढा गतास्तेवैष्णवम्पदम् ॥ हरिकेशोन्मृपश्रेष्ठः परयाचमुदायुतः ॥ ६३ ॥ सप्तकल्पवहान्देवी नर्ममदा
लोकपावनीम् ॥ नमस्कृत्यसरिच्छ्रेष्ठां स्तुतिचक्रैस्समाहितः ॥ ६४ ॥ नमस्तेस्तुसरिच्छ्रेष्ठे सप्तकल्पनिवासिनि ॥ यत्र
तत्रनरःस्नात्वा मुक्तोभवतिकल्मषात् ॥ ६५ ॥ नतस्यपुनरावृत्तिर्घोरिसंसारसागरे ॥ जन्मान्तरसहस्रेण नत्वांस्तमम
यतेवली ॥ ६६ ॥ जह्नुनाहिपुरापीता कर्तोयेनजाल्मी ॥ त्वयाचपूरितंसर्वं विश्वंचैवचराचरम् ॥ ६७ ॥ त्वत्प्रसादा
न्महादेवि मुक्तिश्चापिभवाणवात् ॥ प्रत्यक्षाकल्पगैतच्च स्तोत्रंश्रुत्वानृपोदितम् ॥ ६८ ॥ नर्ममदोवाच ॥ वरंष्टुणुमहाभा

करनेवाली नदियों में श्रेष्ठ नर्मदादेवी को नमस्कार करके सावधान होकर स्तुति करतेहुये ॥ ६४ ॥ हे सरिच्छ्रेष्ठ ! हे सप्तकल्पनिवासिनि ! आपके लिये नमस्कार है जहा कहीं आपमे स्नान करके मनुष्य पापसे छूटजाताहै ॥ ६५ ॥ इस घोरसंसारसागरमें फिर उसकी आवृत्ति नहीं होती हजारजन्मों करके भी कोई बली तुमको नहीं रोकसक्ता ॥ ६६ ॥ पूर्वकाल में जह्नुकरके हाथसे गंगाजी पीडालीगई तुमकरकेसब चराचर विश्व पूर्ण करदियागया ॥ ६७ ॥ हे महादेवि ! तुम्हारे प्रसादसे संसारसमुद्र से मुक्ति होतीहै राजाकरके कहे इसस्तोत्रको सुनके नर्मदाजी प्रत्यक्ष होतीहुई ॥ ६८ ॥ नर्मदा बोली कि हे महाभाग ! जो तुम्हारे मनमें वर्तमान हो उस वरको मांगो

नर्मदाके उसवचन को सुनकर हरिकेश यह बोले ॥ ६९ ॥ कि हे देवि ! जो तुम मुझे वर देनेको उद्यत हो तो मुझको पवित्रकरो स्नान, श्रवण, स्मरण और धर्त्तनसे भी सात जन्मोंका कियाहुआ पाप शीघ्रही नाशहोजावे तब नर्मदा बोली कि हे नृपश्रेष्ठ ! ऐसाही हो हमारे प्रसाद से सब होगा ॥ ७० ॥ ७१ ॥ इस प्रकार कहकर नर्मदाजी वहीं अन्तर्धान होगई सब अलङ्कारों से भूषित चक्रवर्त्ती हरिकेश साष्टाङ्ग प्रणाम करके अभीष्टसवारी पर सवार होकर जैसे अमरावतीमें इन्द्र वैसेही पवित्र अपने नगरमें प्रवेश किया ॥ ७२ ॥ ७३ ॥ तदनन्तर कुछकाल राज्यकरके रानी और परिवारके सहित स्वर्गमें संपूर्ण भोगोंको भोगतेहुये ॥ ७४ ॥ हे महाभाग !

ग यत्तेमनसि वर्तते ॥ तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा हरिकेशो ब्रवीदिदम् ॥ ६९ ॥ यदि मे वरदादेवि पूतं मां परिकल्पय ॥ स्ना नावगाहनात्पानात्स्मरणात्कीर्त्तनादपि ॥ ७० ॥ सप्तजन्मकृतं पापं सद्य एव प्रणश्यतु ॥ रेवो वाच ॥ एवमस्तु नृपश्रेष्ठ मत्प्रसादाद्भविष्यति ॥ ७१ ॥ एवमुक्त्वा ततो देवी तत्रैवान्तरधीयत ॥ हरिकेशश्चक्रवर्ती साष्टाङ्गं प्रणिपत्य च ॥ ७२ ॥ कामिकं यानमारुह्य सर्वालङ्कारभूषितः ॥ विवेश नगरं पुण्यं यथाशक्रो मरावतीम् ॥ ७३ ॥ कालान्तरतः प्राप्ते राज्यं कृत्वा सुरालये ॥ सान्तःपुरपरीवारो भोगान्मुहूर्त्तैस्मपुष्कलान् ॥ ७४ ॥ एतत्ते कथितं राजन् महाभाग विशाम्पते ॥ द्वाप रं वंशमैक्ष्वाकं ब्राह्मणैर्वैवस्वतं तथा ॥ ७५ ॥ कापिलं पुष्करं चेति सप्तकल्पान्विदुर्बुधाः ॥ कापिलं प्रथमं विद्धि प्राजापत्यं द्वितीयकम् ॥ ७६ ॥ ब्राह्मणैश्च ब्रह्मसावित्रं बार्हस्पत्यं प्रभासकम् ॥ महेन्द्रमग्निकल्पं वैजयन्तं मारुतं तथा ॥ ७७ ॥ वैष्णवं ब्रह्मरूपञ्च ज्योतिषञ्च चतुर्दशम् ॥ एते कल्पास्तु संख्यातान्मृतायेषु नर्मदा ॥ ७८ ॥ एतत्ते कथितं राजन्निब्रूहि त्विहास

हे विशाम्पते ! हे राजन् ! यह आख्यान आप से कहागया द्वापर, वंश, ऐक्ष्वाक, ब्राह्म तथा वैवस्वत ॥ ७५ ॥ कापिल और पुष्कर इन सातकल्पोंको विद्वान् जानते हैं पहला कल्प कापिल जानो दूसरा प्राजापत्य ॥ ७६ ॥ ब्राह्म, रौच, सावित्र, बार्हस्पत्य, प्रभासक, महेन्द्र, अग्निकल्प, वैजयन्त तथा मारुत ॥ ७७ ॥ वैष्णव, ब्रह्मरूप और चौदहवां ज्योतिष ये कल्प गिनेगये जिनमें नर्मदाजी नहीं मरें ॥ ७८ ॥ हे राजन् ! यह पुराना इतिहास तुमसे कहागया यह धन, यश और आयुर्दाय का

देवता नहीं समर्थ होसके ॥ ७ ॥ हे यक्ष ! थोड़ी बुद्धिवाले दानव और मनुष्य क्या हैं तब शंकुकर्ण देवताओं के ईश्वर-करोड़ सूर्य के समान तेजवाले प्रचण्ड प्रकाश वाले महादेव को समाकराके कहा कि अज्ञान से यह काम किया गया इससे मुक्त पुत्रके विषयमें क्षमा करनी चाहिये ॥ ८ ॥ महादेवजीसे वचन बोला कि हे महेश्वर ! वरदेवो नसन्नकरके यक्षने कहा कि आपके वशको प्राप्त हो रहे भृत्यको ॥ १० ॥ गणोंके मध्यमें हे सुरसत्तम ! गणभाव देवो व यक्षतीर्थ इस नाम से विख्यात और बालुकेश्वर लिंग ॥ ११ ॥ इस तीर्थमें करने को हे देवेश ! आप योग्य हो जिससे सब चराचर करके यहां उत्तरायणमें स्नान दान करना उत्तम होवे ॥ १२ ॥ हे शंकर !

सः ॥ क्षमयित्वा तु देवं शङ्कुकर्णो महेश्वरम् ॥ ८ ॥ सूर्यकोटिसमप्रख्यं ज्वलन्तं दीप्ततेजसम् ॥ अज्ञानात्कृतमेतत् क्षन्तव्यमपि पुत्रके ॥ ९ ॥ उवाच वचनं देवं वरं देहि महेश्वर ॥ प्रसाद्य चाब्रवीद्यक्षस्तव भृत्यं वशङ्गतम् ॥ १० ॥ गणत्वं गणमध्ये तु देहि हे सुरसत्तम ॥ यक्षतीर्थमिति ख्यातं लिङ्गं बालुकेश्वरम् ॥ ११ ॥ कर्तुं महसि देवेश तीर्थेऽस्मिन्स चराचरैः ॥ अयने चोत्तरे ह्यत्र स्नान दानमनुत्तमम् ॥ १२ ॥ इमं वरमहं मन्ये यदि तुष्टोसि शङ्कर ॥ शङ्कर उवाच ॥ सर्वका मफलावाप्तिं प्रसादाद्भविष्यति ॥ १३ ॥ एवमुक्त्वा महेशानस्तत्रैवान्तरधीयत ॥ शङ्कुकर्णो महातेजास्तीर्थस्यास्य प्रभावतः ॥ १४ ॥ दिव्ययानं समासृज्य ययौ माहेश्वरम्पुरम् ॥ अथान्यत्परमं तीर्थं सर्वपापप्रणाशनम् ॥ १५ ॥ दिश्याम्यां समाख्यातं नाम्ना पूर्णमनोरथम् ॥ पुण्यकीर्तनं लिङ्गन्तु ब्रह्महत्याप्रणाशनम् ॥ १६ ॥ तत्र स्नात्वा महाराज गोसहस्रफलं लभेत् ॥ हरिवर्मापुराचार्यो द्विराटनगराधिपः ॥ १७ ॥ सर्वधर्मगुणोपेतो यज्ञयाजी महायशः ॥ इष्टस्त जो आप प्रसन्न होवो तो हम इसी वर को चाहते हैं तब महादेवजी बोले कि सब मनोवाञ्छित फलकी प्राप्ति हमारे प्रसादसे होगी ॥ १३ ॥ महादेवजी ऐसे कहकर वहीं अन्तर्धान होगये व बड़े तेजवाले शंकुकर्ण भी इस तीर्थके प्रभावसे ॥ १४ ॥ दिव्य सवारी पर चढ़कर महादेवजी के पुरको चले गये अब इसके अनन्तर एक और सब पापोंका हरनेवाला परमतीर्थ ॥ १५ ॥ दक्षिणदिशामें पूर्णमनोरथ नाम से विख्यात और ब्रह्महत्याका नाश करनेवाला पुण्यकीर्तन लिंगभी है ॥ १६ ॥ वहां स्नान करके हे महाराज ! हजार गोदानका फल होता है पूर्वकाल में विराटनगर के राजा हरिवर्मा होते हुये ॥ १७ ॥ जो कि सब धर्म और गुणों से युक्त यज्ञोंका करनेवाला,

बड़ा यशस्वी होता हुआ जिसकरके वहां नर्मदाके तटमें बड़ा यज्ञ किया गया ॥ १८ ॥ भारभर सुवर्ण के सहित वहां एकलाख गोदान दिया और देवता, ब्रह्मा, विष्णु और बृहस्पति वहां तुल्य किये गये ॥ १९ ॥ नाना रत्नोंसे भूषित ब्राह्मण भक्तिकरके पूजन किये गये मनोरथ जिनके पूर्ण हुये ऐसे सब देवता राजाकी प्रशंसा करते हुये ॥ २० ॥ अब इसके अनन्तर एक और तीर्थ कहते हैं जोकि सब तीर्थों में अति उत्तम व नर्मदा और मत्स्याके संगम में सब देवता दैत्योंकरके नमस्कार किया गया है ॥ २१ ॥ हे अनघ ! नाभाग राजा और आपस्तम्बपुत्रि का संवाद है चाक्षुष मन्वन्तर में द्वापरयुग के प्रान्तहुये पर ॥ २२ ॥ मत्स्येश्वर नामकरके विदित जलके मध्यमें स्थित

ब्रमहायज्ञो येनैवैकल्पगातटे ॥ १८ ॥ गोलजंतव्रदत्तश्च हेमभारपरिष्कृतम् ॥ देवाश्चतर्पिपतास्तत्र ब्रह्माविष्णुबृहस्पतिः ॥ १९ ॥ ब्राह्मणाः पूजिता भक्त्या नानारत्नविभूषिताः ॥ प्रशशंसुश्च नृपतिं सुराः पूर्णमनोरथाः ॥ २० ॥ अथान्यत्कथयिष्यामि तीर्थातीर्थमनुत्तमम् ॥ रेवामत्स्यासमायोगे सुरासुरनमस्कृतम् ॥ २१ ॥ नाभागस्य च संवादमापस्तम्बस्य चानघ ॥ मन्वन्तरैर्चाक्षुषैर्वै संप्राप्ते द्वापरे युगे ॥ २२ ॥ नाम्नामत्स्येश्वरं लिङ्गं जलमध्ये व्यवस्थितम् ॥ पूज्यते नागकन्याभिर्नतं पश्यन्ति मानुषाः ॥ २३ ॥ महातेजोमणिमयं चन्द्रबिम्बसमप्रभम् ॥ स्मरणाद्यस्य देवस्य ब्रह्महत्याप्रणश्यति ॥ २४ ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ साधुभिः सह संवासात्के गुणाः परिकीर्तिताः ॥ काः कथाः कानि पुराणानि सङ्गमे साप्तकल्पगे ॥ २५ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ अत्रैवोदाहरन्तीमिति हासमुपगतनम् ॥ नाभागस्य च संवादमापस्तम्बतपोनिधेः ॥ २६ ॥ महर्षिश्चात्मवान्पूर्वमापस्तम्बो द्विजोत्तमः ॥ उपवासकृतारम्भो बभूव भगवांस्तथा ॥ २७ ॥ नित्यं क्रोधं

लिंग जोकि नागकन्याओं करके पूजन किया जाता उसको मनुष्य नहीं देखते ॥ २३ ॥ मणियों से बना बड़ा तेजवाला चन्द्रबिम्बके समान प्रभावाला जिस देव के स्मरण से ब्रह्महत्या नष्ट होती है ॥ २४ ॥ तब युधिष्ठिर बोले कि महात्माओं के साथ वास करनेसे कौन २ गुण कहे गये व कौन २ कथा और नर्मदा के संगम में कौन २ पुराण होते हैं ॥ २५ ॥ तब मार्कण्डेयजी बोले कि यहीं पर इस पुराने इतिहास को कहते हैं नाभगराजा और तपोनिधि आपस्तम्ब का संवाद है ॥ २६ ॥ मनके वश करनेवाले ब्राह्मणों में श्रेष्ठ अवतारम्भ के करनेवाले सब ऐश्वर्योसे युक्त पूर्वकालमें आपस्तम्बमहर्षि होते हुये ॥ २७ ॥ क्रोध, काम, लोभ और मोहको नित्यही त्याग

करके नर्मदा और मत्स्या के संगममें जल में प्रवेश किया ॥ २८ ॥ वहाँ मल्लाहों करके नदीके जलके मैत्रमें मछलियोंके साथ जालोसेवे महात्माभी खींचलियेगये ॥ २९ ॥ फिर उस जल से ब्रह्मनन्दन आपस्तम्ब को देवकर मल्लाह लोग भयसे बचड़ागये ॥ ३० ॥ शिरोसे ऊंचा प्रणाम करके इस वचन को बोले कि अज्ञान से इस काम के करनेवाले हमलोगों के अपराध को क्षमा करो ॥ ३१ ॥ और हे सुव्रत ! आज हम आप का क्या प्रियकरें सो आज्ञादेवो तब मुनि मछलियों के उस कियेगये महानाशको देखकर ॥ ३२ ॥ बड़ी कृपासे युक्त व दुःखित हो मल्लाहों से बोले कि

चकामञ्च लोभं मोहं विमृज्य च ॥ रेवामत्स्यासमायोगे विवेश सलिलाशये ॥ २८ ॥ समत्स्यैः सलिलावर्ते सरितश्चानु
गैस्तदा ॥ तत्रान्योत्पतितैर्जलैस्समानीतो महायशः ॥ २९ ॥ तस्मादुत्तारयामासुस्सलिलाद्ब्रह्मनन्दनम् ॥ तन्द
द्वातपसादीप्तं कैवर्तं भयविह्वलाः ॥ ३० ॥ शिरोभिः प्राणिपत्योच्चैरिदं वचनमब्रुवन् ॥ अज्ञानात्क्रियमाख्यानमस्माकं क्ष
न्तुमर्हसि ॥ ३१ ॥ किंवा किञ्च प्रियन्तेऽद्य तदाज्ञापय सुव्रत ॥ समुनिस्तन्महद्दृष्ट्वा मत्स्यानां कदनं कृतम् ॥ ३२ ॥
कृपया परयाविष्टो दाशान् प्रोवाच दुःखितः ॥ दुःखितानीह भूतानियोनभूतैः पृथग्विधैः ॥ ३३ ॥ केवलान्मसुखेच्छातो वेन्द
शंसतरोस्तिकः ॥ ३४ ॥ अहो स्वस्थेष्वकास्त्रयं स्वाथैश्चैव बलिर्वृथा ॥ ३५ ॥ ज्ञानिनामपि चेद्यस्तु केवलान्माहितेरतः ॥
ज्ञानिनो हि यथा स्वार्थमाश्रित्य ध्यानमाश्रिताः ॥ ३६ ॥ दुःखार्तानीह भूतानि प्रयान्ति शरणं ततः ॥ यो भिवाञ्छति भो
क्तुं वै सुखान्येकान्ततोजनः ॥ ३७ ॥ पापात्परतरं तं हि प्रवदन्ति मुमुक्षुवः ॥ को नु मे स्यादुपायो हि येनाहं दुःखितात्मना

इस संसारमें मूर्खप्राणियोंकरके दुःखित कियेगये जीवोंकी जो पुरुष केवल अपने सुखकी इच्छासे रक्षा नहीं करता उससे और दूरमा क्रूर कौनहैं ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ बड़े खेदकी
वाचीहै कि जो जीव आपही स्वस्थ नहींहैं उनमें निर्दय होना और अपने वास्ते भोगदेना यह वृथा है ॥ ३५ ॥ ज्ञानियों के मध्य में भी जो केवल अपने ही हित में
तत्पर है जैसे कि ज्ञानीजन अपने स्वार्थ के आश्रित होकर ध्यान के आश्रित होते हैं ॥ ३६ ॥ इस संसार में दुःख से कष्टित जीव शरण को प्राप्तहोते हैं जो
मनुष्य केवल सुखों को ही भोग करने की इच्छा करता है ॥ ३७ ॥ मुमुक्षुलोग उसको निश्चय पापीने पापी कहते हैं वह कौन उपाय हमको सिद्धहोवे कि जिसकरके

दुखिया मनवाले ॥३८॥ जीवोंके भीतर पैठकर उनके सब दुःखोंका भोगनेवाला मैं होऊँ जो कुछ हमारे पुण्यहोवे वह दीनोंके पास चलाजावे ॥ ३९ ॥ और उन दीनोंकरके जो पाप कियागया हो वह सब हमारे पास आजावे उन दरिद्री और विकलाङ्ग रोगी दुखियों को देखकर ॥ ४० ॥ जिसके दया नहीं उत्पन्नहोती वह राजस है यह हमारा सिद्धान्त है प्राणोंकी सन्देह को प्राप्तहोरेह और भयसे घबड़ायेहुये प्राणियों की ॥ ४१ ॥ जो समर्थ होकर भी रक्षा नहीं करता वह दुःखी प्राणियों के पापको भोगतहै डरानेहुये रक्षाकरने के वारते बुलायेगये जीवोंको जो सुखहोताहै ॥ ४२ ॥ स्वर्ग और मोक्ष उसकी सोलहवीं कलाको नहीं प्राप्त होसके इससे इन दीन अतिदुःखित

मू ॥ ३८ ॥ अन्तःप्रविश्यभूतानां भवेयं सर्वदुःखमुक् ॥ यन्ममास्तिशुभं किञ्चित् दीनानुपगच्छतु ॥ ३९ ॥ अत्कृतं दुः
ष्ठकृतैश्च तदशेषमुपैतुमाम् ॥ दृष्ट्वा तान्कृपणान्व्यङ्गाननङ्गानो गिणस्तथा ॥ ४० ॥ दयानजायते यस्य सरच्च इति मे
मतिः ॥ प्राणसंशयमापन्नान्प्राणिनो भयविह्वलान् ॥ ४१ ॥ योनरक्षति शक्तोऽपि स तत्पापं समश्नुते ॥ आहूतानां भया
तानां सुखं यदुपजायते ॥ ४२ ॥ तस्य स्वर्गपवर्गौ च कलानाहं न्तिषोडशीम् ॥ तस्माच्चैतानहं दीनाञ्छकुंभीनान्मुहुः
खितान् ॥ ४३ ॥ यादृङ्मात्रं न पश्यामि किंपुनस्त्रिदशालयम् ॥ निशम्यैतन्मुनेर्वक्त्रं दाशास्ते जातसंभ्रमाः ॥ ४४ ॥
यथार्थं न्तु तथा सर्वं नामागान्यन्यवेदयन् ॥ नामागोपिततः श्रुत्वा तन्द्रष्टुं ब्रह्मनन्दनम् ॥ ४५ ॥ त्वरितः प्रययौ तत्र सा
मात्यस्स पुरोहितः ॥ ससम्यक्पूजयित्वा तु देवकल्पं नृपस्ततः ॥ ४६ ॥ प्रोवाच भगवन् विद्वान्किं करोमि तवाज्ञया ॥ आप
स्तम्ब उवाच ॥ श्रेणमहता विष्टाः कैवर्ता दुःखजीविनः ॥ ४७ ॥ मम मूल्यं प्रयच्छेति यद्योग्यं मन्यसे नृप ॥ नामाग उ

मछलियों की रक्षा करने के बराबर हम ॥ ४३ ॥ मोक्षको भी नहीं देखते फिर स्वर्ग तो क्या पदार्थ है इस मुनिके वचन को सुनकर वे मछलाहलोग सम्भ्रनको प्राप्त हुये ॥ ४४ ॥ और वह सब वृत्तान्त नामागसे यथार्थ कहतेहुये तदनन्तर नामाग भी वृत्तान्त को सुनकर उन ब्रह्मनन्दनको देखनेके लिये ॥ ४५ ॥ पुरोहित और मन्त्रियों करके सहित बड़ेवेग से वहां जातेहुये तदनन्तर देवताओंके तुल्य आपरतम्ब का अच्छेप्रकार पूजनकरके वे राजा ॥ ४६ ॥ बोले कि हे भगवन् ! हे विद्वन् ! आपकी आज्ञाकरके हम क्या करें तब आपरतम्ब बोले कि दुःखहीसे जिनका जीवन ऐसे ये मछलाह बड़ेभ्रमसे युक्तहोरेहैं ॥ ४७ ॥ सो हे नृप ! जो हमारे योग्य मानते हो वह हमारा

मूल्य इनको देवों तब नाभाग बोले कि एकल्लाख आपका मूल्य हम निषादोंको देतेहैं ॥४८॥ हे भगवन्, ब्रह्मनन्दन ! यह धन आपके निष्कयके चारते लायागया है तब आपस्तम्ब बोले कि हे पार्थिव ! सौहजार करके हम आपके खरीदने के योग्य नहीं होसके ॥ ४९ ॥ हमारे बराबर जो मूल्यहो वह दियाजावे आप मन्त्रियों करके सहित विचारो तब नाभागबोले कि हे द्विजोत्तम ! करोड़ रुपया मूल्य निषादों को दियाजावे ॥ ५० ॥ जो यह भी योग्य न हो तो और दियाजावे तब आपस्तम्ब बोले कि हे राजन् ! करोड़ या इससे अधिक भी हमारेयोग्य नहीं होसक्ता हे पार्थिव ! ॥ ५१ ॥ हमारे बराबर मूल्य दियाजावे आप ब्राह्मणोंसे पूछो तब राजाबोले कि

वाच ॥ सहस्रांशितमूल्यं निषादेभ्योददाम्यहम् ॥ ४८ ॥ निष्कयार्थं हि भगवन्नातं तं ब्रह्मनन्दन ॥ आपस्तम्ब उवाच ॥ नाहं शतसहस्रेण नियम्यः पार्थिवत्वया ॥ ४९ ॥ सदृशं दीयतां मूल्यममात्यैस्सहचिन्तय ॥ नाभाग उवाच ॥ कोटिं प्रदीयतां मूल्यं निषादेभ्यो द्विजोत्तम ॥ ५० ॥ यद्येतदपि योग्यं नो ततोभूयः प्रदीयताम् ॥ आपस्तम्ब उवाच ॥ राजन्ना हावयं कोटिमधिकं चापि पार्थिव ॥ ५१ ॥ सदृशं दीयतां मूल्यं ब्राह्मणैस्सहसंवद ॥ राजोवाच ॥ अर्द्धराज्यं समस्तं वा निषादेभ्यः प्रदीयते ॥ ५२ ॥ एतन्मूल्यमहं मन्ये किं वालं मन्यसे द्विज ॥ आपस्तम्ब उवाच ॥ अर्द्धराज्यं समस्तं वा नाहं महाभिवै नृप ॥ ५३ ॥ सदृशं दीयतां मह्यं ऋषिभिस्सहचिन्तय ॥ महर्षेस्तद्वचः श्रुत्वा नाभागस्तु विवादयन् ॥ ५४ ॥ चिन्तयामास धर्मात्मा सामात्यस्स पुरोहितः ॥ ततः कश्चिद्विष्टतत्र लोमशस्तु महातपाः ॥ ५५ ॥ नाभागमब्रवीन्मा भैस्तोषयिष्यामि तं मुनिम् ॥ राजोवाच ॥ ब्रूहि मूल्यं महाभाग मे ज्ञाति कुलबान्धवान् ॥ ५६ ॥ निर्दग्धवानृषिः कुद्वस्त्रैस्तो

आधा या समस्त राज्य निषादोंको दियाजावे ॥ ५२ ॥ इस मूल्यको हम ठीक मानते अथवा हे द्विज ! आप किसको पूरा मूल्य समझतेहो तब आपस्तम्ब बोले कि हे नृप ! आधे या समस्त राज्यके योग्य हम नहीं होसके ॥ ५३ ॥ हमारे बराबर दियाजाये ऋषियोंकरके सहित विचारो तब विवाद करतेहुये नाभागजी महर्षिके इस वचनको सुनकर ॥ ५४ ॥ अपने मन्त्री और पुरोहित करके सहित धर्मात्मा राजा विचार करतेहुये तदनन्तर वहाँ कोई चड़े तपबाले लोमशऋषि ॥ ५५ ॥ नाभाग से बोले कि तुम मत डरो हम उन मुनिको प्रसन्न करलेवेंगे तब राजाबोले कि हे महाभाग ! मूल्यको बतादो नहीं तो हमारे ज्ञाति, कुल और बान्धवोंको ॥ ५६ ॥ और

सब चराचर त्रैलोक्यको कुछहुये ऋषि जलादोंगे फिर बहुत छोटा विषयात्मा दीन मनुष्य क्या वस्तु है ॥ ५७ ॥ तब लोमशबोले कि हे महाराज ! तुम समर्थहो और ब्राह्मण जगतके पूज्यहैं और गौर्वेभी दिव्य होतीहैं तिससे इनका मूल्य गौर्वे दीजावें ॥ ५८ ॥ तदनन्तर मन्त्री और पुरोहित करके सहित वचनको सुनकर बड़े आनन्दसे युक्त वे राजा मुनिसे यह वचनबोले ॥ ५९ ॥ कि हे भगवन् ! अब आपका अभीष्ट करदिया गया इसमें कोई संशय नहींहै तिससे अब आप उठो उठो हे मुनिसत्तम ! यह मूल्य आपके बहुतही योग्यहै ॥ ६० ॥ तब आपस्तम्ब बोले कि हे पार्थिव ! हम अतिप्रसन्नताके साथ अभी उठते हैं आपकरके हम बहुत अच्छे खरीदेगये गौर्वेके ब्यंस्सचराचरम् ॥ किंपुनर्मनिर्वदीनमत्यल्पं विषयात्मकम् ॥ ५७ ॥ लोमशउवाच ॥ त्वंसमर्थो महाराज जगत्पूज्यो हि ब्यंस्सत्तमाः ॥ गावश्चादिव्यास्तस्माद्वै मूल्यमस्मै प्रदीयताम् ॥ ५८ ॥ ततः श्रुत्वा तु वचनं ससामात्यपुरोहितः ॥ हर्षेण म हताविष्टः प्रोवाचेदंबवचोमुनिम् ॥ ५९ ॥ उत्तिष्ठोत्तिष्ठ भगवन् कृतमेवं न संशयः ॥ एतद्योग्यतमं मूल्यं भवतो मुनिसत्तमम् ॥ ६० ॥ आपस्तम्बउवाच ॥ उत्तिष्ठाम्येव संप्रीत्या सम्यक् क्रीतोस्मि पार्थिव ॥ गोभ्यो मूल्यं न पश्यामि पवित्रं पापनाशनम् ॥ ६१ ॥ गावः प्रदक्षिणीकार्थ्या वन्दनीया हि नित्यशः ॥ मङ्गलाय तनो दिव्याः स्सृष्टास्त्वेताः स्वयं भुवा ॥ ६२ ॥ अप्या गाराणि विप्राणां देवतायतनानि च ॥ यद्गोमयेन शुद्ध्यन्ति किं ब्रूमो ह्यधिकंततः ॥ ६३ ॥ गोसूत्रं गोमयं क्षीरं दधिसर्पिस्तथैव च ॥ गवां पञ्चपवित्राणि पुनन्ति सकलं जगत् ॥ ६४ ॥ गावो मे चाग्रतो नित्यं गावः पृष्ठत एव च ॥ गावो मे हृदयैश्च वगवां मध्येव साम्यहम् ॥ ६५ ॥ एवं यः पठते नित्यं त्रिसन्ध्यं नित्यतः शुचिः ॥ मुच्यते सर्वपापेभ्यः स्वर्गलोकं स गच्छति ॥ ६६ ॥

बराबर पवित्र और पापोंका नाश करनेवाला दूसरा मूल्य हम नहीं देखते ॥ ६१ ॥ गौर्वे नित्यही प्रदक्षिणा और नमस्कार करने के योग्यहैं मङ्गल का स्थानहैं और दिव्यहैं ब्रह्माकरके ये उत्पन्नकी गईहैं ॥ ६२ ॥ जिनके गोबरसे ब्राह्मणोंके घर और देवताओंके मन्दिर शुद्ध होतेहैं तो इनसे श्रेष्ठ और हम किसको कहें ॥ ६३ ॥ गोमूत्र, गोमय, दूध, दही और घी गौर्वेके ये पांच पवित्रहैं और ये सम्पूर्ण जगतको पवित्र करते हैं ॥ ६४ ॥ हमारे आगे व पीछे व हृदयमें गौर्वे निरन्तर वासकरैं और गौर्वे के मध्य में हम वासकरैं ॥ ६५ ॥ इसप्रकार पवित्र व नियमवान् होकर तीनों सन्ध्याओं में जो नित्य पाठकरता है वह सब पापोंसे छुटजाता है और स्वर्गलोक

को जाता है ॥ ६६ ॥ प्रथम गोप्रास देनेमें प्रेम प्रतिदिन भक्तिसे करना चाहिये इसको विनाकिये आपही भोजन करताहुआ दुर्गति को प्राप्तहोता है ॥ ६७ ॥ उसकर के अग्नि अच्छे प्रकार से हवन कियेगये और पितर भी तुस कियेगये और उसीकरके देवता भी पूजितहुये जो निरन्तर गवाहिक (गोप्रास) देताहै ॥ ६८ ॥ (गोप्रास देनेके मन्त्रका अर्थ) सुरभीकी कन्या जगतकी पूज्य विष्णुपदमें नित्य रहनेवाली सब देवताओंकी मूर्ति सुभकरके दियेगये प्रासको देखा ॥ ६९ ॥ वेदोंकी रक्षा करने से और गौवों के खुजलाने से और दरिद्री व कष्टितकी रक्षा करनेसे स्वर्गमें पूजित होताहै ॥ ७० ॥ यज्ञकी आदि मध्य और अन्त गौवेंही कहीं

अग्नेग्रासपरोभावः कर्तव्योभक्तितोन्वहम् ॥ अकृत्वास्वयमाहारं कुर्वन्नाप्रोतिदुर्गतिम् ॥ ६७ ॥ तेनाग्नयोद्भुता रसम्यक् पितरश्चापितर्पिताः ॥ देवाश्च पूजितास्तेनयोददातिगवाहिकम् ॥ ६८ ॥ (मन्त्रः) सौरभेयीजगत्पूज्या नित्यं विष्णुपदे स्थिता ॥ सर्वदेवमयी ग्रासं मया दत्तं प्रतीक्षताम् ॥ ६९ ॥ रक्षणाद्ब्रह्मपुत्राणां गवां कं एह्यनात्तथा ॥ क्षीणार्तरक्षणाच्चैव ततः स्वर्गं महीयते ॥ ७० ॥ आदिर्हि गावो यज्ञस्य मध्यं चान्यं प्रकीर्तिताः ॥ चरन्ति तस्मिन् सकलं क्षीराज्यममृतं तथा ॥ ७१ ॥ तस्माद्भावः प्रदातव्याः पूजनीया हि नित्यशः ॥ स्वर्गस्य सङ्गमायै तास्मो पानं हि विनिर्मिताः ॥ ७२ ॥ एतच्छ्रुत्वा निषादास्ते गवां माहात्म्यमुत्तमम् ॥ प्राणिपत्य महाभागमापस्तम्बमथाब्रुवन् ॥ ७३ ॥ निषादा ऊचुः ॥ सम्भाषादर्शनं स्पर्शवर्णनं कीर्तनं तथा ॥ पावनानि समस्तानि साधूनामिति नः श्रुतम् ॥ ७४ ॥ सम्भाषादर्शनं चैव मिहास्माभिः कृतं तद्विज ॥ कुरुष्वानुग्रहं तस्मान्त्वां वयं शरणं तदा ॥ ७५ ॥ आपस्तम्ब उवाच ॥ एतां गं प्रतिगृह्णन्तु ततस्ते मुक्तं किल्बिषाः ॥

गईहें वे गौवें दूध, घी और अमृत सभी देताहैं ॥ ७१ ॥ तिससे नित्यही गौवें देने और पूजनेके योग्यहैं स्वर्गके जानिके वास्ते ये गौवें नसेनीरूप रचीगईहें ॥ ७२ ॥ वे निषाद इस गौवोंके उत्तम माहात्म्य को सुनकर महाभाग आपस्तम्बजी को प्रणाम करके तदनन्तर बोले ॥ ७३ ॥ निषाद कहतेहुये कि महात्माओंका सम्भाषण करना, दर्शन, स्पर्शन और उनका वर्णन ये सब पवित्र हैं यह हमलोगोंका सुनाहुआ है ॥ ७४ ॥ सो हे द्विज ! हमलोगों करके यहां आपसे वात्ता व दर्शन कियागया तिससे आप कृपाकरें हम सब आपके शरणागतहैं ॥ ७५ ॥ तब आपस्तम्ब बोले कि इस गौ को तुम ग्रहणकरो तिससे तुम्हारे सबपाप छूटजायेंगे जल

से पैदाहुये मत्स्योंके सहित सब निपाद स्वर्गको जाचोगे ॥ ७६ ॥ निन्दितकर्म करके भी प्राणियों की प्राप्ति पैदाकरके चाहे हम नरकको देखें चाहे स्वर्गमें वसें ॥ ७७ ॥ मुक्त से मन, वचन और कर्मकरके जो कुछ सुकृत कियागया हो तिससे सब दुःखी शुभगति को प्राप्तहोवें ॥ ७८ ॥ तदनन्तर उन भावितात्मा महर्षि आपस्तम्ब के प्रसादसे और उनके उक्त वचन से मछलियों करके सहित निपाद लोग स्वर्ग को प्राप्तहुये ॥ ७९ ॥ तिन मछलियों व उनसे जीविका करनेवाले निषादों को स्वर्गको गये देखकर तदनन्तर मन्त्री और सेवकों के सहित वे राजा विस्मय से यह बोले ॥ ८० ॥ कि कल्याण की इच्छा करनेवाले पुरुषों करके महात्मा व पवित्र

निपादाश्चगतास्स्वर्गं सहमत्स्यैर्जलोद्भवैः ॥ ७६ ॥ प्राणिनांप्रीतिमुत्पाद्य निन्दितेनापिकर्मणा ॥ नरकंयदिपश्यामि
वत्स्थामिस्वर्गमेववा ॥ ७७ ॥ यन्मयामुकृतंकिञ्चिन्मनोवाक्कायकर्मभिः ॥ कृतंतेनापिदुःखार्तास्सर्वेयान्तुशुभांग
तिम् ॥ ७८ ॥ ततस्तस्यप्रसादेन महर्षेर्भावितात्मनः ॥ निषादास्तेनवाक्येन सहमत्स्यादिवंगताः ॥ ७९ ॥ तान्दृष्ट्वा
थगतान्स्वर्गं समत्स्यान्मत्स्यजीविनः ॥ सामात्यभृत्योनृपतिर्विस्मयादिदमव्रवीत् ॥ ८० ॥ सेव्याःश्रेयोर्थिभिस्सन्त
स्तीर्थेषुयजलोत्तमम् ॥ क्षणोपासनमप्यत्र नतेषांनिष्फलम्भवेत् ॥ ८१ ॥ सद्भिस्सहसमासीत सद्भिःकुर्वीतसत्कथा
म् ॥ आपस्तम्बोमुनिस्तत्र लोमशश्चमहातपाः ॥ ८२ ॥ पदैस्तुविविधैरिष्टैर्वोधयामासतुर्दृष्टम् ॥ ततःसंधारयामास
धर्ममबुद्धिसुदुर्लभाम् ॥ ८३ ॥ तथेतिकृत्वाचोक्ताच नृपंतप्रशंसतुः ॥ अहोधन्योसिराजेन्द्र यत्तेधर्मपराभतिः ॥ ८४ ॥
धर्मःसुदुर्लभःपुंसां विशेषेणमहीक्षिताम् ॥ यदिराज्यमदाविष्टःस्वधर्मनपरित्यजेत् ॥ ८५ ॥ ततोजगतिकस्तस्मा

जलवाले उत्तम तीर्थही सेवन करने के योग्यहैं यहां क्षणमात्र भी कियागया इन का सेवन निष्फल नहीं होसक्ता ॥ ८१ ॥ महात्माओं के साथ बैठे और महात्मा-
ओंशिवाही उत्तम आर्त्ताकरे तदनन्तर वहां आपस्तम्ब मुनि और महातपा लोमश जी ॥ ८२ ॥ प्यारे अनेक प्रकारके पदोंकरके राजाको बोध करातेहुये तदनन्तर राजा
ने अतिदुर्लभ धर्मबुद्धि को धारण किया ॥ ८३ ॥ राजासे इस प्रकार कहकर उक्त राजाकी प्रशंसा करतेहुये कि हे राजेन्द्र ! बड़ा आनन्द है कि तुम बड़े धन्यहो
जिससे तुम्हारी बुद्धि धर्ममें तरफ़ होरही है ॥ ८४ ॥ धर्म तो सबही मनुष्यों को अतिदुर्लभ है परन्तु राजाओं को तो विशेषकर अतिदुर्लभ है जो राज्यमद से युक्त

राजा निज धर्मको न छोड़े ॥ ८५ ॥ तो फिर जगतमें उससे अधिक और कौन होसक्ताहै धर्म, राज्य और मोह सदा अटल हैं ॥ ८६ ॥ और नरक तो बडाही निश्चलहै तिससे जे राज्यकी निन्दा करते वेही बुधैं जो मनुष्य विषय में लोलुप है वहही मूढ़ राज्यको उत्तम मानता है ॥ ८७ ॥ बुद्धिमान लोग तो राज्यको हमेशा नरक हीके समान देखते हैं तिससे शोक, मोह और मद तुमको कभी नहीं करना चाहिये ॥ ८८ ॥ हे महाराज ! जो अपनी अटलगति चाहते हो तब मार्कण्डेयजी बोले कि यह कहकर वे दोनों महात्मा अपने २ आश्रम को चलेगये ॥ ८९ ॥ नाभागभी वरको पाकर प्रसन्नहो अपने पुरमें प्रवेश किया हे राजन् ! यह तुम से कहा महात्मा-

तुनरभ्यधिकोभवेत् ॥ भुवंधर्मश्चराज्यं वै मोहश्चैव सदाध्रुवः ॥ ८६ ॥ महाध्रुवश्चनरको राज्यं निन्दन्ति ते बुधाः ॥ रा-
ज्यं हि मन्यते मूढो नरो विषयलोलुपः ॥ ८७ ॥ मनीषिणस्तु पश्यन्ति सदैव नरकोपमम् ॥ तस्माच्छोकश्च मोहश्च नर-
कं तव्यो मदस्त्वया ॥ ८८ ॥ यदीच्छसि महाराज शाश्वतौ गतिमात्मनः ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ इत्युक्त्वा तौ महात्मानौ
जगमतुः स्वं स्वमाश्रमम् ॥ ८९ ॥ नाभागोऽपि वरं लब्ध्वा प्रहृष्टस्त्वविशत्पुरम् ॥ एतत्ते कथितं राजन्ये गुणाः सत्समागमे ॥
९० ॥ माहात्म्यं वै गवान्तर्द्वत्किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ रेवामत्स्यासमायोगे गवां माहात्म्यमुत्तमम् ॥ ९१ ॥ तत्र स्ना-
त्वा महाराज मत्स्येऽश्वरमथार्चय ॥ आपस्तम्बो महाभागो निषादामत्स्यजीविनः ॥ ९२ ॥ मत्स्यैस्सह गताः स्वर्गं तीर्थं
स्यास्य प्रभावतः ॥ दिव्यकान्तिधरास्सर्वे लोके क्रीडन्ति वैष्णवे ॥ ९३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे रेवाखण्डे मत्स्येऽश्वरती-
र्थवर्णनो नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

ओके समागम में जो गुण होते हैं ॥ ९० ॥ और इसीतरह गौवोंका माहात्म्यभी कहा अब फिर तुम क्या सुनने की इच्छा करते हो नर्मदा और मत्स्याके समागम में गौवोंका उत्तम माहात्म्य है ॥ ९१ ॥ हे महाराज ! वहा स्नान करके मत्स्येश्वरका पूजन करे गृहभाग आपस्तम्ब और मछलियों से जीविका करनेवाले निषाद ॥ ९२ ॥ मछलियों करके सहित इस तीर्थके प्रभाव से स्वर्गको जातेहुये दिव्य शोभा को धारण किये सब वैष्णवलोक में विहार करते हैं ॥ ९३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे रेवाखण्डे प्राकृतभाषाऽनुवादमत्स्येश्वरतीर्थवर्णनो नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

मार्कण्डेयजी बोले कि अब इसके अनन्तर पापोंके छुड़ानेवाले और तीर्थको कहते हैं मत्स्या और पवित्र तार्पिके संगम में देवताओं करके सेवित तीर्थ है ॥ १ ॥ मत्स्यदेवनाम के महादेव नागकन्याओं वरके पूजन क्रियोगे हैं वहां स्नानकरके स्वर्गको जाते हैं और जो वहां मरे हैं वे फिर नहीं उत्पन्न होते ॥ २ ॥ मत्स्यतीर्थ के प्रभावसे पांचमुख और तीन नेत्रवाले होजाते हैं कलहंस नामसे त्रिदित ध्यानमें तत्पर एक देवर्षि हुये ॥ ३ ॥ ब्रह्मर्षियों करके सेवित परम रमणीक उनका वहां आश्रमथा उसमें शाक, मूल और फलोंके आहार करनेवाले जप और ध्यान में तत्पर कलहंसजी ॥ ४ ॥ शिवके ध्यानमें लगेहुये सब प्राणियों के हितमें रत सादेदश

मार्कण्डेयउवाच ॥ अथान्यत्कथयिष्यामि तीर्थपापविमोक्षणम् ॥ मत्स्यायाः शुभताप्याश्च सङ्गमेसुरसेवितम् ॥

१ ॥ देवोमत्स्येऽश्वरोनास नागकन्याभिरर्चितः ॥ तत्रस्नात्वादिवंयान्ति येमृतानपुनर्भवाः ॥ २ ॥ पञ्चवक्त्रास्त्रिनेत्रा

श्च मत्स्यतीर्थप्रभावतः ॥ कलहंसइतिख्यातो देवर्षिर्ध्यानतत्परः ॥ ३ ॥ तस्याश्रमंपरंरम्यं ब्रह्मर्षिविनिषेवितम् ॥ शा

कमूलफलाहारो जपध्यानपरायणः ॥ ४ ॥ सोतिष्ठदयुतसार्द्धमेकपादेनभारत ॥ शिवध्यानपरोभूत्वा सर्वभूतहिते

तः ॥ ५ ॥ ततस्तुध्यानयोगेन तस्यदेवः शतक्रतुः ॥ चक्रमपेतपसाचासौ देवराजोभविष्यति ॥ ६ ॥ हरिष्यतिनसन्देहो

पुरीचैवामरावतीम् ॥ ब्राह्मणश्चसुरेशानः कुब्जोवामनरूपधृक् ॥ ७ ॥ जगामवृद्धरूपेण कलहंसाश्रमम्प्रति ॥ उवाच

वचनंशक्रो ब्राह्मणंतपसिस्थितम् ॥ ८ ॥ किमर्थंतपसेशीघ्रं काममेतद्ब्रवीहिमे ॥ आराधयसिक्कंदं सत्यमेतत्तपो

धम् ॥ ९ ॥ संहृत्यतपसायोगं प्रहसन्नब्रवीद्वचः ॥ जानामित्वांमहाभाग शक्रस्त्वंत्रिदशेश्वरः ॥ १० ॥ नकामेयेहमिन्द्र

हजारवर्षतक एक पांवसे खड़े रहे हे भारत ! ॥ ५ ॥ तब उनके तप और ध्यानयोगकरके इन्द्रदेव कांपतेहुये कि यह देवराज होजायगा ॥ ६ ॥ अमरावतीपुरीको हरलेगा इस में कोई सन्देह नहीं है तब इन्द्र कुबेर वामनब्राह्मण का रूप धारण कियेहुये ॥ ७ ॥ कलहंस के आश्रम को वृद्धरूप से प्राप्तहुये तपस्या में स्थित कलहंस ब्राह्मण से इन्द्र वचन बोले ॥ ८ ॥ कि किसवारते शीघ्रता से तप करतेहो अपनी उस कामनाको मुझसे कहो हे तपोधन ! किस देवका आराधन करतेहो सो सत्य कहो ॥ ९ ॥ तब कलहंस तपसे अपने योगको खींचकर हैंसतेहुये वचन बोले कि हे महाभाग ! हम तुमको जानते हैं कि तुम देवताओं के ईश्वर इन्द्रहो ॥ १० ॥ हम इन्द्रहोनेकी

कामना नहीं करते तुम यथेष्ट राज्यकरो हम महादेवजी को आराधन करते और किसी देवको कभी नहीं ॥ ११ ॥ उस महर्षि के इस वचन को सुनकर इन्द्र बोले कि हे महाभाग ! वरमांगो जिससे शङ्करजीको देखोगे ॥ १२ ॥ तब कलहंस बोले कि विना महादेवके हम और देवतासे वर नहीं मांगते हे शक्त ! तुम विजयी होवो हम और वर नहीं मांगेंगे ॥ १३ ॥ इस प्रकार कहेगये इन्द्र सबकामोंसे युक्त चलेगये व देवताओं के देवता महादेवजी उसकी श्रेष्ठभक्ति को जानकर ॥ १४ ॥ कालेकण्ठ और तीन नेत्रवाले अपने स्वरूप को दिखातेहुये तदनन्तर महादेवजी के रूपको देखकर और साष्टाङ्ग प्रणाम करके ॥ १५ ॥ सुनियों में श्रेष्ठ कलहंसजी स्तुति करनेको

त्वंराज्यंकुरयथेप्सितम् ॥ आराधयाम्यहं देवं नान्यं देवं कथंचन ॥ ११ ॥ एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य महर्षेरब्रवीद्दृषः ॥ वरं वृणु महाभाग यथाद्रक्ष्यसि शङ्करम् ॥ १२ ॥ कलहंस उवाच ॥ विना हन्यम्बकं याचै नान्यद्देवादहो वरम् ॥ विजयी भवशक्तं नान्यं वृणु एवेवरन्त्वहम् ॥ १३ ॥ एवमुक्तो ययौ शक्रस् सर्वकामसमन्वितः ॥ ज्ञात्वा तस्य परां भक्तिं देवदेवो महेश्वरः ॥ १४ ॥ अदर्शय दथात्मानं नीलकण्ठं त्रिलोचनम् ॥ दृष्ट्वा रूपं महेशस्य साष्टाङ्गं प्रणिपत्य च ॥ १५ ॥ कलहंसो मुनिश्चैष्ठस्तोतुं समुपचक्रमे ॥ नमोस्तु ते महादेव नीलकण्ठ त्रिलोचन ॥ १६ ॥ नमश्शिवाय शान्ताय शूलहस्त नमोस्तु ते ॥ नमः शिवाय सम्भवाय अनाथाय नमो नमः ॥ १७ ॥ द्यम्बकाय महादेवेत्यादिनामादिभिस्तुत ॥ अंनमो देवाय शम्भवाय भूर्भुवः स्वः सोम रुद्र ध्वान्तसूर्याय नमो रुद्राग्नये नमः ॥ १८ ॥ नमश्शम्भोपञ्चवक्त्र महाशिव नमोस्तुते ॥ स्वयम्भुवनपाताल नीलकण्ठ नमोस्तुते ॥ १९ ॥ ब्रह्मशर्वसुरेशानहरिहराय नमो नमः ॥ ज्ञानशक्तिक्रियाशक्तिचरा

उपस्थाप्य कि हे नीलकण्ठ, त्रिलोचन, महादेव ! तुम्हारे लिये नमस्कार है ॥ १६ ॥ हे शूलहस्त ! शिव, शान्तरूप आपके लिये नमस्कार है और कल्याणरूप जगत के बना नेवाले व कोई भाजिए नहीं हे जिनका ऐसे आपके लिये नमस्कार है ॥ १७ ॥ हे महादेव ! इत्यादि नामोंसे स्तुति को प्राप्त ! द्यम्बक व प्रकाश करनेवाले व यन्त्राणां जिनसे होता है भूतल, आकाश, स्वर्ग, चन्द्रमा, घोर अन्धकार, सूर्य और महाप्रलयके अग्नि जिनके रूप हैं ऐसे आपके लिये नमस्कार है ॥ १८ ॥ हे यशस्व व ॥ हे पञ्चवक्त्र ! हे गदाशिव ! आपके लिये नमस्कार है हे ब्रह्मा, वन और पातालरूप ! हे नीलकण्ठ ! तुम्हारे लिये नमस्कार है ॥ १९ ॥ ब्रह्मा, महादेव, इन्द्र, हरि,

और हररूपके लिये नमस्कारहै ज्ञान और कर्मकी जिसमें शक्तिहै ऐसा चराचर आपही का रूपहै तिन आपके लिये नमस्कार है सुवर्णरूप पार्वतीजी के पति जो आप हैं तिनके लिये नमस्कार है ब्रह्मा, विष्णु और महादेवरूप सर्वज्ञ जो आपहैं तिन के लिये नमस्कारहै नमस्कार है ॥ २० ॥ २१ ॥ सद्योजात तथा अधोर और तत्पुरुष के लिये नमस्कार है यह सब चराचर तीनोंलोक तुम्हींसे व्याप्त हो रहे हैं ॥ २२ ॥ आदि, मध्य और अन्तरूप आपही हो तिनके लिये नमस्कार है और हे कलह व कालरूप ! आपके लिये नमस्कार है हे श्रीकण्ठ ! हे उरगभूषण ! पार्वती करके शोभितहै आधा देह जिनका ऐसे आपके लिये नमस्कारहै ॥ २३ ॥ अनन्त

चरनमोस्तुते ॥ २० ॥ हाटकायनमस्तुभ्यमुमानाथनमोस्तुते ॥ ब्रह्मविष्णुमहेशाय सर्वज्ञायनमोनमः ॥ २१ ॥ सद्योजातस्तथाधोरस्तत्पुरुषायनमोनमः ॥ त्वयाव्याप्तमिदं सर्वं त्रैलोक्यंसचराचरम् ॥ २२ ॥ आदिमध्यान्तरूपाय कलिकालनमोस्तुते ॥ उमाकान्ताद्धेहाय श्रीकण्ठोरगभूषण ॥ २३ ॥ अनन्तगुणरूपाय नागयज्ञोपवीतिने ॥ शब्दस्पर्शश्चगन्धश्च रसोरूपंचपञ्चमम् ॥ २४ ॥ बुद्धिर्मनस्त्वहङ्कारो ह्यष्टमूर्तेनमोस्तुते ॥ सूयोर्योर्यमाभगस्त्वष्टा पूर्णार्कः सवितारविः ॥ २५ ॥ गभस्तिमांश्चत्वंकालो मृत्युर्धाताप्रकाशकः ॥ पृथिव्यापस्तथातेजो वायुराकाशमेवच ॥ २६ ॥ सोमोबृहस्पतिः शुक्रो बुधोज्ञारकण्वच ॥ इन्द्रोविवस्वान्दीप्तांशुः शुचिः शौरिर्जनेश्वरः ॥ २७ ॥ कलास्तेविष्णुब्रह्माद्या वेदेवैश्रवणोयमः ॥ कलाकाष्ठासुहृतांश्च पञ्चमासतेवस्तथा ॥ २८ ॥ संवत्सरस्त्वमेवासि कालचक्रोविभावसुः ॥ पुरुषः

गुणही जिनका रूपहै सौँका यज्ञोपवीत धारण करनेवाले आपके लिये नमस्कारहै शब्द, स्पर्श, गन्ध, रस व पाँचवाँ रूप ॥ २४ ॥ बुद्धि, मन और अहङ्कार येही आठतत्व हैं मूर्ति जिनकी ऐसे हे अष्टमूर्ते ! तुम्हारे लिये नमस्कार है सूर्य, अर्यमा, भग, त्वष्टा, पूषा, अर्क, सविता, रवि ॥ २५ ॥ गभस्तिमान्, काल, मृत्यु और प्रकाश करनेवाले धाता ये बारहो सूर्य तुम्हीहो व पृथिवी, जल, तेज, वायु और आकाश आपहीहो ॥ २६ ॥ चन्द्रमा, बृहस्पति, शुक्र, बुध और मंगल आपहीहो इन्द्र, विस्ववान्, दीप्तांशु, शुचि, शौरि, जनेश्वर ॥ २७ ॥ विष्णु और ब्रह्माआदि देवता सब आपही की कलहैं चारोंवेद, कुबेर, यम, कला, काष्ठा, सुहृते, पक्ष, मास तथा ऋतु ॥ २८ ॥

संवत्सर और कालही जिनका चक्र ऐसे सूर्य आपही हो प्रत्यक्ष व परोक्ष पुराणपुरुष और अटलयोग तुम्हींहो ॥ २६ ॥ लोकोंके ईश्वर, देवताओं के ईश्वर, संसार के वननेवाले, अन्धकार के हरनेवाले, जलके अधिष्ठाता, शीतल तेजवाले, जलवृष्टि करनेवाले, जीनेका कारण, शत्रुओं के नाश करनेवाले ॥ ३० ॥ भूत काल, देवता जिनसे तुप्तहोते ऐसे यज्ञ आपही के स्वरूप हैं, भूतोंके पति, सब लोकपालों करके सेवित, विचार करनेवाले व शोभन जिनका पतनहै अर्थात् जीव व ईश्वररूप प्राणियों के आदिरूप हे सदाशिव ! आपके लिये नमस्कार है ॥ ३१ ॥ हे प्रभो ! जिहाकी चञ्चलतासे मुझकरके आप कष्टित कियेगयेहैं क्योंकि ब्रह्मा और विष्णुआदि देवताओं करके भी जिनका अन्त नहीं मिलता ॥ ३२ ॥ तिनकी रक्षितकरनेको संसारसमुद्र में डूबेहुये जीवोंके मध्यमें कौन समर्थ होसक्ता है इससे हे

शाश्वतयोगो व्यक्ताव्यक्तःसनातनः ॥ २६ ॥ लोकाध्यक्षःसुराध्यक्षो विश्वकर्मातमोनुदः ॥ वरुणःशीतभारश्च जीमूतोजीवनोरिहा ॥ ३० ॥ भूतोयज्ञोभूतपतिर्लोकपालैर्निषेवितः ॥ मनस्सुपर्णोभूतादिस्सदाशिवनमोस्तुते ॥ ३१ ॥ जिह्वाचापल्यभावेन खेदितोसिमयाप्रभो ॥ ब्रह्मविष्णवादिभिर्देवैर्यस्यान्तोनैवलभ्यते ॥ ३२ ॥ भवसागरमग्नानां कस्तोतुंशक्तिमान्भवेत् ॥ अज्ञानाज्ज्ञानतोवापि शूलपाणेश्वरमस्वतत् ॥ ३३ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ श्रुत्वास्तोत्रमिदं देवः कलहंसस्यभारत ॥ वरं वृणुमहाप्राज्ञ प्रीतस्स्तोत्रेणतेनघ ॥ ३४ ॥ कलहंसउवाच ॥ यदितुष्टोसिमेदेव वरं दातुमिहेच्छसि ॥ कलहंसेश्वरं नाम तीर्थलिङ्गसुरेश्वर ॥ ३५ ॥ अक्षयादेवदेवानां होमदानवलिंकियाः ॥ अत्राक्षयंकृतं सर्वं त्वत्प्रसादान्महेश्वर ॥ ३६ ॥ शिवाज्ञावर्त्तते तत्र नरस्स्वर्गमवाप्नुयात् ॥ उत्क्रान्तिं कुस्तयेस्तु अवशःस्ववशोपिवा ॥ ३७ ॥

शूलपाणे ! जाने या विनाजाने जो कुछ कहागया उसको आप क्षमाकीजिये ॥ ३३ ॥ मार्कण्डेयजी बोले कि हे भारत ! महादेवजीने इस कलहंसके स्तोत्रको सुनकर कहा कि हे महाप्राज्ञ ! हे अनघ ! तुम्हारे स्तोत्रकरके हम प्रसन्नहैं सो तुम वरमांगो ॥ ३४ ॥ तब कलहंस बोले कि हे देव ! जो आप प्रसन्नहो और यहां मुझको वर देनेकी इच्छा करतेहो तो हे सुरेश्वर ! कलहंसेश्वर नामका तीर्थ व लिंग होजावे ॥ ३५ ॥ और हे देवदेव ! यहां कियेहुये होम, दान और बलिदान आदि कर्म अक्षय होवें किन्तु हे महेश्वर ! यहां भियादृष्टा सबही आपके प्रसादसे अक्षय होवे ॥ ३६ ॥ हे शिव ! आपकी यहां आज्ञा होजावे कि जो मनुष्य परवश व अपने वश होकर प्राण

त्यागकरे वह स्वर्गको प्राप्तहोवे ॥ ३७ ॥ हे शङ्कर ! इस स्तोत्रकरके जो तुम्हारी स्तुति करताहै व जो स्तुतिकरोगा वह यदि ब्राह्मणका मारनेवाला व दारुका पीनेवाला व सुवर्णका चुरानेवाला व गुरुस्त्री का भोग करनेवालाहो ॥ ३८ ॥ तोभी इस तीर्थ के प्रभाव से सब शिवजी के स्थानको प्राप्तहोवें सब कामोंकी सिद्धिके वास्ते हम इसी वरको अच्छा समझतेहैं ॥ ३९ ॥ तब महादेवजी बोले कि चराचर तीनों लोकमें जिस २ कामकी इच्छाकरोगा हमारे प्रसाद से वह सब होगा इसमें कोई सन्देह नहीं है ॥ ४० ॥ हे नृप ! यह कहकर महादेवजी कैलासस्थान को चलेगये तदनन्तर वे जितेन्द्रिय कलहंस ब्रह्मिष्ठ मुनियों करके सहित ॥ ४१ ॥ कुछ अधिक दश

स्तेवनानेनयस्तौति यस्त्वांस्तोष्यतिशङ्कर ॥ ब्रह्महावासुरापोवा स्तेयीचगुरुतल्पगः ॥ ३८ ॥ तीर्थस्यास्यप्रभावेण सर्वैयान्नुशिवालयम् ॥ इदंवरसहमन्ये सर्वकामसमृद्धये ॥ ३९ ॥ ईश्वरउवाच ॥ ययंकामयतेकामं त्रैलोक्येसचराचरे ॥ मत्प्रसादान्नसन्देहः सर्वमेतद्भविष्यति ॥ ४० ॥ एवमुक्त्वाययौदेवः कैलासनिलयंनृप ॥ कलहंसोथमुनिभिर्ब्रह्मिष्ठैस्सजितेन्द्रियः ॥ ४१ ॥ वर्षायुतानिमात्राणि मुहुक्तेभोगाञ्छिवालये ॥ दिव्ययानसमारूढस्स्तूयमानोप्सरोगणैः ॥ ४२ ॥ वेणुर्वाणानिनादेन सर्वालङ्कारभूषितः ॥ दशवर्षसहस्राणि तथैवशिवसन्निवो ॥ ४३ ॥ दक्षिणोत्तरदिग्भागपञ्चक्रोशप्रमाणतः ॥ स्नानात्तत्रदिव्याति श्रियतेविबुधोभवेत् ॥ ४४ ॥ एतत्तेकथितंराजनकलहंसस्यकीर्तनम् ॥ स्वाराचिषेन्तरेप्राप्ते आदिकल्पेकृत्युगे ॥ ४५ ॥ कलहंसस्यचाख्यानान्नसीदन्तिकलौजनाः ॥ पुत्रदारावृत्तानाधमा

हजारवर्ष पर्यन्त शिवजी के स्थानमें भोगोंको भोगते हुये दिव्य सवारीपर चढ़ेहुये अष्टराओं के गणोंकरके स्तुति कियेजाते ॥ ४२ ॥ वंशी और सितार के शब्दोंसे युक्त, सब आभूषणों से भूषित, दश हजार वर्षतक इसी प्रकार शिवजी के समीप रहतेहुये ॥ ४३ ॥ दक्षिण और उत्तरदिग्भाग के पांचकोस के प्रमाण में स्नानकरने से स्वर्गको जाताहै और वहां जो मरता है वह देवता होताहै ॥ ४४ ॥ हे राजन् ! यह कलहंस का यश तुमसे कहागया जोकि स्वाराचिष मन्वन्तर में आदिकल्प के सत्ययुग के प्राप्तहुये हुआ ॥ ४५ ॥ कलहंस के आख्यान से कलियुग में मनुष्य कष्टित नहीं होते पुत्र और स्त्रियों करके युक्त व पाप, माया और मोहसे रहित

विषय का निश्चय करसक्ते थे ॥ ७ ॥ मन कर के ब्रह्मके विचार करनेवाले ब्राह्मणलोग वास करते थे करोड़ों ऋषियों से युक्त वहा जमदग्निजी का आश्रम होता हुआ ॥ ८ ॥ कश्यप, गालव, गर्ग, वादरायण, शाकट, अत्रि, वशिष्ठ, पुलह, क्रतु ॥ ९ ॥ भृगु, मरीचि, महातपस्वी भारद्वाज, शाकल्य, ऋष्यशृङ्ग, मनु, विष्णु, यम, अङ्गिरा ॥ १० ॥ वशिष्ठके पुत्र, दक्ष, संवर्त, शातानप, पराशर, आपस्तम्ब, शुक्र, व्यास, कात्यायन, बृहस्पति ॥ ११ ॥ हारीत, शङ्ख, लिखित, याज्ञवल्क्य, गौतम, अगस्त्य, पात्रक, उग्रतपस्वी दुर्वासा ॥ १२ ॥ शतानन्द, जह्नु, वैशम्पायन, जैमिनि, लोमश, विहङ्ग, शौनक, हरि ॥ १३ ॥ ये व और भी बहुत से मुनि दृढ़व्रत आश्रमंजमदग्नेश्च ऋषिकोटिसमावृतम् ॥ ८ ॥ कश्यपोगालवोगर्गो वादरायणशाकटौ ॥ अत्रिश्चैव वशिष्ठश्च पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः ॥ ९ ॥ भृगुश्चैव मरीचिश्च भारद्वाजो महातपाः ॥ शाकल्यः ऋष्यशृङ्गश्च मनुर्विष्णुर्यमोङ्गिराः ॥ १० ॥ वशिष्ठदत्तौ संवर्तः शातानप पराशरौ ॥ आपस्तम्बोऽथ नोव्यासाः कात्यायन बृहस्पती ॥ ११ ॥ हारितः शङ्खलिखितौ याज्ञवल्क्यौ च गौतमः ॥ अगस्त्यः पात्रकाख्यश्च दुर्वासा उग्रतापसः ॥ १२ ॥ शतानन्दस्तथा जह्नुर्वैशम्पायन जैमिनी ॥ लोमशश्च विहङ्गश्च शौनको हरिरेव च ॥ १३ ॥ एते चान्येऽपि मुनयो बहवः संशितव्रताः ॥ उवलन्तस्तपसा तत्र सूर्यतेजस्समप्रभाः ॥ १४ ॥ चतुर्विद्यावेदविदः श्रुतिस्मृतिविशारदाः ॥ संवत्सरकृताहारा अपहारकरास्तथा ॥ १५ ॥ मासोपवासिनश्चान्ये तथापक्षोपवासिनः ॥ शाकाहारानिराहारास्तथान्ये मारुताशनाः ॥ १६ ॥ कन्दमूलफलाहारा महात्मानस्तथापरे ॥ इतिहासपुराणादिनानाशास्त्रविचिन्तकाः ॥ १७ ॥ मोक्षोपायधृतात्मानो मौनिकाश्च नमौ निवाले व तपस्या करके दहकते हुये और सूर्यके समान तेज व प्रकाशवाले ब्रह्म रहते थे ॥ १४ ॥ सब विद्या और चारोंवेदों के जाननेवाले तथा श्रुति व स्मृति में प्रवीण ब्राह्मण जिनमें कोई सालभर के बाद एकवार भोजन करते व कोई नहींभी करते ॥ १५ ॥ कोई एकमास निरन्तर व्रत करते कोई एकपक्ष व्रत करनेवाले हैं कोई शाकका आहार करते कोई निराहार रहते कोई वायुके भोजन करनेवाले हैं ॥ १६ ॥ व कोई महात्मा कन्द, मूल और फलोंके आहार करनेवाले और इतिहास पुराण आदि अनेक शास्त्रोंके विचार करनेवाले हैं ॥ १७ ॥ मोक्षके उपायोंमें अपने मनको लगाकर ब्रह्म मौनी भी हैं और मौनी नहीं भी हैं कोई एकपात्रसे खड़े कोई आधिपात्रसे खड़े पृथिवी

में कारणमात्रही का भोगकरहे है ॥ १८ ॥ नर्मदापुर मे वास करनेवालों का आख्यान हम कहते हैं महादेवजीमें तत्पर नर्मदापुरमें निवास करतेहुये जमदग्निजी ॥ १९ ॥ नर्मदा के सङ्गम में स्नानकरके और वही मनके हरनेवाले अगों व अनेकप्रकार के सुगन्धित फूलोंसे महादेवजी का पूजन करके ॥ २० ॥ दक्षिणामूर्तिके आश्रित होकर जप करतेहुये विद्यमान रहे व एक मात पर्यन्त जप करतेहुये उन मुनिके प्रत्यक्ष देवताओं के देवता महादेवजी ॥ २१ ॥ सिद्धेश्वर नामका लिंगही जिनका रूप है जहां देवता और दैत्य सिद्धहुये है वहही देव है भारत ॥ २२ ॥ कि तुम्हारी भक्तिकरके सन्तुष्ट हैं और रुद्रजाप्य से भी हम प्रसन्न

काः ॥ एकपादार्द्धपादाश्च भूमौकारणभोजिनः ॥ १८ ॥ आख्यानं कथयिष्यामि नर्ममदापुरवासिनाम् ॥ जमदग्निस्तु निवसन्मुनिः शिवपरायणः ॥ १९ ॥ नर्मदासङ्गमेस्नात्वा तत्राभ्यर्च्य महेश्वरम् ॥ विविर्धैर्गन्धपुष्पैश्च तथागुरुमनोहरैः ॥ २० ॥ दक्षिणाध्वर्तिमाश्रित्य जपन्नासीत्तथा मुनेः ॥ मासंच जपतस्तस्य देवदेवो महेश्वरः ॥ २१ ॥ सिद्धेश्वरं नाम लिङ्गं सिद्धाय त्रसुरासुराः ॥ उवाच वचनं देवो ब्राह्मणं प्रतिभारत ॥ २२ ॥ तुष्टो हंतवमक्त्या तु रुद्रजाप्येन तोषितः ॥ जमदग्निरुवाच ॥ यदि तुष्टो महादेव वरं दातुं मेच्छसि ॥ २३ ॥ होमार्थं चैव धेनुं मे ददस्व परमेश्वर ॥ धर्मकर्मशुभार्थेषु शिवपूजासु तर्पणे ॥ २४ ॥ पितृकार्ये देवकार्ये गावः पुण्यतमा स्मृताः ॥ एतस्मात्कारणादींश्च होमधेनुं प्रयच्छ मे ॥ २५ ॥ दत्ताचैव महाभाग सर्वकामसमृद्धये ॥ एवमुक्त्वा ददौ राजस्तत्रैवान्तरधीयत ॥ २६ ॥ यान्यान्प्राथयते कामांस्तांस्तान्प्राप्नोत्यसौ ततः ॥ ऋषीणांच सहस्राणि कामैर्भोजयते द्विजः ॥ २७ ॥ हिरण्यैः स्वर्णपत्रैर्नानाभक्ष्यैश्चैव

विधेयगैः तब जमदग्नि बोले कि हे महादेवजी ! जो आप प्रसन्नहो और मुझको वर देने की इच्छा करतेहो ॥ २३ ॥ तो हे परमेश्वर ! मुझको होमके वास्ते गौ को देवो क्योंकि धर्म, कर्म, शुभ अर्थ, शिवपूजा, तर्पण ॥ २४ ॥ पितृकर्म और देवकर्ममें गौवें अत्यन्त पवित्र कहींगई हैं इसी कारणसे हे ईश ! होमधेनुको मुझे देवो ॥ २५ ॥ तब महादेवजी ने कहा कि हे महाभाग ! सब कामोंकी सिद्धिके वास्ते गौ तुमको दीगई हे राजन् ! शिवजी इसप्रकार कहकर गौ देतेहुये और वही अन्तर्द्वान् होगये ॥ २६ ॥ उस गौ से ये जमदग्निजी जिन २ कामों को चाहते हैं उन २ को प्राप्त होते हैं हजारों ऋषियों को इच्छा भोजन कराते हैं ॥ २७ ॥ सुवर्ण के पात्र

देनेसे पूर्वपुरुष स्वर्गको जातेहैं ॥ ४६ ॥ हे राजन् ! यह उत्तम नर्मदापुरका माहात्म्य आपसे कहागया इसके श्रवण करने से और कहनेसे स्वर्गमें देवभाव प्राप्तहोता है ॥ ४७ ॥ इति श्रीरुक्मण्डपुराणेवाल्मेकीप्रकृतभाषास्तुवादेकार्त्तवीर्याख्यानेपञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

मार्कण्डेयजी बोले कि अब इसके अनन्तर और भी लोकोंमें विदित, देवता और दैत्योकरके सेवित, बृहती और नर्मदा के संगम का कहते हैं ॥ १ ॥ जोकि अनेकवृक्ष और लताओं से व्याप्त, विन्ध्यपर्वतसे शोभित, चम्पा, मौलसिरी, अशोक व स्तवकों से भी युक्त ॥ २ ॥ व पुन्नाग, चिरायता, सुगन्धवाले नागकेसर, चेंबली,

मार्कण्डेयउवाच ॥ अथान्यंसंप्रक्षयामि सङ्गमंलोकविश्रुतम् ॥ बृहत्यानर्ममदायास्तु सुरासुरनिषेवितम् ॥ १ ॥ ना नाद्रुमलताकीर्णं विन्ध्यपर्वतमेवितम् ॥ चम्पकैर्बकुलैर्युक्तमशोकैस्तवकैरपि ॥ २ ॥ पुन्नागैःकिङ्किरतैश्च सुगन्धैर्ना गकेशैः ॥ मल्लिकोत्पलजातीभिः पाटलैःपारिजातैः ॥ ३ ॥ आम्रजम्बूकपित्थैश्च श्रीफलैःपनसैस्तथा ॥ खर्जूरैर्वेदरी मिश्र दाडिमैर्बीजपूरकैः ॥ ४ ॥ अरुणकैःक्षीरवृक्षैर्नारङ्गरूपशोभितैः ॥ भरणायात्मवर्गस्य संविधायवनेचरः ॥ ५ ॥ सुखगण्डूषसलिलं शिवायससमाहरत् ॥ अज्ञानभक्तिगर्भस्तु स्नापयित्वाफलंददौ ॥ ६ ॥ वासरेवासरेचैव निषादोध र्ममतत्परः ॥ सौम्यायनेचचक्षुर्बै दत्त्वासौम्यं तथात्मनः ॥ ७ ॥ एवंसम्पूजयामास त्र्यम्बकंविधिपूर्वकम् ॥ एतत्तेकथितं राजन्कल्पगानेत्रसङ्गमम् ॥ ८ ॥ युधिष्ठिरउवाच ॥ भगवच्छ्रेष्ठुमिच्छामि महाकौतूहलं हि मे ॥ संजातोमुनिशार्दूल

गुलाब, जाही, पाइर, पारिजात ॥ ३ ॥ आंब, जासुन, कैथा, बेल, कटहर, छांहारे, बेरी, अनार, खिजरी और नारंगीआदि वृक्षसे शोभित होरहहैं उस स्थानमें एक निषाद अपने कुटुम्ब के पोषण के वास्ते भोजन रखकर ॥ ५ ॥ महादेवजी के वास्ते वह जलको मुंहमें भरकर लेगया अनवूझ भक्तिसे युक्त महादेवको स्नान कराके एकफल अर्पण करताहुआ ॥ ६ ॥ राज २ धर्ममें तत्पर निषाद उत्तरायण में अपने बावेंनेत्रको अर्पणकरके ॥ ७ ॥ इसप्रकार विधिपूर्वक महादेवजी को पूजाताहुआ हे राजन् ! यह नर्मदानेत्रसङ्गम आप से कहागया ॥ ८ ॥ तब युधिष्ठिरजी बोले कि हे भगवन् ! हम सुनने की इच्छा करते हैं यह बड़ा आश्चर्य हम

को हुआ कि हे मुनिशार्दूल ! वह नेत्रसंगम कैसे हुआ ॥ ९ ॥ तब मार्कण्डेयजी बोले कि एक दिन व्यतीपात और संक्रान्ति के होनेपर वह निषाद फूलोंको लेकर शिवालय में प्रवेश किया ॥ १० ॥ वहां महादेवजी के तीसरे नेत्रको नहीं देखा तब विस्मयसे युक्त होकर विचार करने लगा ॥ ११ ॥ कि किस पार्थिकके इन देवका नेत्र हरलियागया हे भारत ! यह कहकर तीखेबाण से अपने नेत्रको ॥ १२ ॥ निकालकर महादेवजीके मस्तक में लगा दिया इस काम के करनेमें उसको कम्प नहीं हुआ और दीनता भी नहीं हुई और उसका मनभी और भावको नहीं प्राप्त हुआ ॥ १३ ॥ तदनन्तर महादेवजी निषाद पर प्रसन्नहुये हे भारत ! हंसतेहुये महादेवजी

सकथं नेत्रसङ्गमः ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ एकस्मिन्वासरंप्राप्ते व्यतीपातेचसंक्रमे ॥ सपुष्पभारमादाय प्रविवेशशिवालये ॥ १० ॥ तृतीयमीक्षणंतत्र देवस्यचनपश्यति ॥ तदातुचिन्तयामास विस्मयाविष्टचेतनः ॥ ११ ॥ केनापहतमंतस्यनेत्रंदेवस्यपाप्मना ॥ इत्युक्त्वाचस्वकंनेत्रं तीक्ष्णबाणेनभारत ॥ १२ ॥ ललाटेदेवदेवस्य उत्कृत्यसंन्यवेशयत ॥ नक्रम्पोनचकार्पण्यं नान्यथातम्यमानसम् ॥ १३ ॥ ततस्तुष्टःसुरेशानो निषादमप्रतिभारत ॥ प्रहसन्नब्रवीद्देवो वरं वृणुयथेप्सितम् ॥ १४ ॥ शिवप्रसादसम्पन्ना बुद्धिरन्याप्रचक्रमे ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ श्रुत्वातुवचनंशम्भोः साष्टाङ्गप्रणिपत्यसः ॥ १५ ॥ यदिदुष्टोसिदेवेश वरंदातुममेच्छसि ॥ निषादास्तइमेसर्वे मृगपक्षिगणैस्सह ॥ १६ ॥ सपुत्रदारपशवो येचान्येषापयोनयः ॥ त्वत्प्रसादान्महेशान शिवलोकंप्रयान्तुते ॥ १७ ॥ एतद्वरमहंमन्ये भूतानांहितकाम्यया ॥ एतच्छ्रुत्वावचस्तस्य निषादाधिपतेःशिवः ॥ १८ ॥ उवाचसर्वकामाप्तिं मत्प्रसादान्ममाप्स्यसि ॥ एवमुक्त्वाशिवो

बोले कि तुम अपना अभीष्ट वर मांगो ॥ १४ ॥ महादेव के प्रसादसे युक्त उसकी बुद्धि निर्मल होगई मार्कण्डेयजी बोले कि महादेवजी के वचन को सुनकर वह साष्टाङ्ग प्रणामकरके बोला ॥ १५ ॥ कि हे देवेश ! जो आप प्रसन्नहो और मुझको वर देनेकी इच्छा करतेहो तो मृग और पक्षियों करके सहित ये सब निषादा ॥ १६ ॥ और भी पपी अपने पुत्र स्त्री और पशुओं के सहित हे महेशान ! आपके प्रसाद से शिवलोक को प्राप्तहोवें ॥ १७ ॥ प्राणियों के हितकी कामना करके हम इसीवर को चाहते हैं महादेवजी निषादोके स्वामीके इस वचन को सुनकर ॥ १८ ॥ बोले कि हमारे प्रसाद से तुम सब कामोंको प्राप्त होगे हे राजन् ! यह कहकर महादेवजी

वहीं अन्तर्धान होगये ॥ १६ ॥ फिर दिव्य विमान पर सवार, अपने सेवकों करके सहित, सुवर्ण के छत्रको धारण किये, अप्सराओंके गणोंकरके चमर दुरायेजाते हैं जिसके ऊपर, दिव्यआभूषणों की शोभासे युक्त, सब अलङ्कारों से विभूषित, दिव्यवस्त्रोंको धारण किये, दिव्यचन्दनको लगायेहुये, देवता और दैत्योंकरके स्तुति किया जाता व वंशी और सितारकी आवाजें आगे जिसके होरहीं ऐसा निपाद इस तीर्थके प्रभावसे शिवजीके पुरको शीघ्र जाताहुआ ॥ २०॥ २१॥ २२ ॥ हे राजन् ! शिवनेत्रहृदके आश्रित इस चरित्रको तुमसे कहा सैकड़ों पापयोनियोंमें रत होरहे मनुष्य ॥ २३ ॥ नर्मदा और शिवके संयोग में परमसिद्धिको प्राप्तहुये परवश व अपने वश होकर जो

राजस्तत्रैवान्तरधीयत ॥ १९ ॥ दिव्ययानसमारूढो निषादेनुचरैस्सह ॥ धृतस्वर्णतपत्रस्तु वीज्यमानोप्सरोगणैः ॥ २० ॥ दिव्याभरणशोभाढ्यः सर्वालङ्कारभूषितः ॥ दिव्यवस्त्रपरीधानो दिव्यगन्धानुलेपनः ॥ २१ ॥ सुराधुरैस्स्तूयमानो वे पुत्रीणापुरस्सरः ॥ प्रायान्छिवपुरंक्षिप्रं तीर्थस्यास्यप्रभावतः ॥ २२ ॥ एतत्तेकथितंराजजिच्छ्वनेत्रहृदाश्रितम् ॥ अने कशतसंख्याताः पापयोनिरतानराः ॥ २३ ॥ नर्मदाशिवसंयोगे संसिद्धिपरमाङ्गताः ॥ अवशस्स्ववशोवापि यस्तु प्राणान्परित्यजेत् ॥ २४ ॥ वसेद्वर्षसहस्राणि उमामाहेश्वरपुरे ॥ श्रवणात्कीर्तनाच्चापि मुच्यतेभवबन्धनात् ॥ २५ ॥ धन्यास्तेपुरुषाराजन्ये स्त्रियन्तेशिवायने ॥ नतेषांगभम्भूतिश्च जन्मचैवयुधिष्ठिर ॥ २६ ॥ पुत्रदारपरिश्रुता मोहजाल समावृताः ॥ कल्पगान्तुनपश्यन्ति पापेपहतचेतसः ॥ २७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणैरवाखण्डेनमर्मदासाहात्म्येहृदाख्या नंनामषोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

प्राणों को त्यागता है ॥ २४ ॥ वह हजारों वर्ष पार्वती और महादेवजी के पुरमें वास करता है सुनने और कहने से भी संसारबन्धन से छूटजाता है ॥ २५ ॥ हे राजन् ! के मनुष्य धन्यहैं जो इस शिवजी के स्थान में मरते हैं हे युधिष्ठिर ! उनकी गर्भमें स्थिति और जन्म नहीं होता है ॥ २६ ॥ पुत्र और स्त्रियोंसे ग्रसेहुये और मोहजाल में लपटेहुये व पापोंसे नष्टहोगई है बुद्धि जिनकी ऐसे मनुष्य नर्मदाको नहीं देखते हैं ॥ २७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणैरवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनुवादेनर्मदामाहात्म्येहृदाख्या नंनामषोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

मार्कण्डेयजी बोले कि अब इसके अनन्तर सहस्रयज्ञ नामसे विख्यात तीनों लोकों में विदित मुष्मत्कर्क कहें जाते और परमतीर्थ को जानो ॥ १ ॥ वहां स्नान, जप और महादेव का पूजन करके उसकी इस घोर संसारसागर में फिर आवृत्ति नहीं होती है ॥ २ ॥ तुमसे पुराने आख्यान व इतिहास को कहते हैं तारवलि नामका नाग, कम्बल और अश्वतर ॥ ३ ॥ और सफेद सर्प और सुजङ्ग व और भी सर्प ये सब अनेक प्रकार के फूल व चन्दनों करके नागेश्वर को पूजते थे ॥ ४ ॥ कभी नागों के समूह एकत्र होकर महादेव का पूजन कर रहे थे तबतक गर्ग, अधमर्षण, व्यवन, शौनक, अङ्गिरा ॥ ५ ॥ ये व और भी वेदविद्या के पारगन्ता बहुत से ब्राह्मण नागों

मार्कण्डेय उवाच ॥ अथान्यत्परमंतीर्थं कथ्यमानं निबोध मे ॥ सहस्रयज्ञं विख्यातं त्रिपुलोकैषु विश्रुतम् ॥ १ ॥ तत्र स्नात्वा च जप्त्वा च पूजयित्वा महेश्वरम् ॥ नतस्य पुनरावृत्तिर्घोरैः संसारसागरे ॥ २ ॥ कथयामि तवाख्यानमिति हासम्पुनरातनम् ॥ तारावलिर्नाम नागः कम्बलाश्वतरौ तथा ॥ ३ ॥ इवेतौ रगास्तथा चान्ये भुजङ्गाश्च तथा परे ॥ नागेश्वरं ते च यान्ति नाना पुष्पविलेपनैः ॥ ४ ॥ नागपूजाः समासाद्य पूजयन्ति महेश्वरम् ॥ गर्गोऽधमर्षणश्चैव च्यवनः शौनकोऽङ्गिराः ॥ ५ ॥ एते चान्येऽपि बहवो ब्रह्मविद्याङ्गपारगाः ॥ नागानां चाश्रमं हर्तुं तत्र सर्वे ह्यपस्थिताः ॥ ६ ॥ ततस्तैः कुपितैर्नागैर्दृष्टाश्चैव द्विजोत्तमाः ॥ विषाघ्रातान्मुनीन् दृष्ट्वा कुपितश्चाधमर्षणः ॥ ७ ॥ बाहनं वासुदेवस्य पक्षिराजं समाह्वयत् ॥ तत्तत्तन्नादागतः पक्षी गरुडः क्रोधमूच्छतः ॥ ८ ॥ कृताञ्जलिपुटो भूत्वा ब्राह्मणं चेदमब्रवीत् ॥ भुजङ्गान् भक्षयिष्यामि ब्राह्मणानि विषास्ततः ॥ ९ ॥ ब्रह्मशापमया तेन गरुडेन विषोऽल्पणः ॥ भक्षिताः पन्नगास्सर्वे मोचिता मुनयो विषात् ॥ १० ॥

के आश्रम को हरलेने के वास्ते वहां सब उपस्थित हुये ॥ ६ ॥ तदनन्तरं क्रोधको प्राप्त हुये उन नागों के वे सब उत्तम ब्राह्मण उस लिये गये विषसे डसे हुये मुनियों को देखकर अधमर्षणजी कुपित हुये ॥ ७ ॥ वासुदेवजी के बाहन पक्षिराज (गरुड) को बुलाते हुये व उसी क्षण क्रोधसे बड़े हुये पक्षी गरुडजी आगये ॥ ८ ॥ दोनों हाथ जोड़कर ब्राह्मण से यह बोले कि सर्पों को हम खाजार्थेगे तिससे ब्राह्मण निर्विष होजायेंगे ॥ ९ ॥ ब्राह्मणों के शापके भयसे कष्टित हो रहे गरुडकरके विषसे

डरावने सब सर्प खाथ डालेगये और विषसे मुनिलोग छुडा दियेगये ॥ १० ॥ सर्पोंको खाकर गरुडजीको अपने स्थानमें गये पर वाक्रीरहे जो सर्प वे सब रसातल को प्रवेशकर गये ॥ ११ ॥ नर्मदाकी वृद्धिको प्राप्तहुयेपर नर्मदाजीका प्रवाह क्षणभर में सर्पोंकी हड्डियों को बोरदिया तिससे सब सर्प स्वर्गको जातेहुये ॥ १२ ॥ सर्प योनिको छोडकर महादेवजी के लोकमें विहार करतेहुये नागेश्वर और नर्मदा के संगे से पाप छूटजाते हैं ॥ १३ ॥ वहां नागकुण्ड भी विद्यमान है जोकि तीनों लोकों में विदित है वहां स्नान कियेहुये जो नागेश्वर का पूजन करता है वह स्वर्ग को जाताहै ॥ १४ ॥ हे राजन् ! यह पुराना इतिहास तुमसे कहागया जिसके

पक्षीन्द्रेचगतेस्थाने भक्षयित्वाप्यजहमान् ॥ अवशिष्टास्तुयेनागा विविशुस्तेरसातलम् ॥ ११ ॥ आप्लवेचसु संप्राप्ते प्रवाहोनार्मदःक्षणात् ॥ अस्थीनिस्त्रावयामास ततोनागादिवंययुः ॥ १२ ॥ सर्पयोनिपरित्यज्य लोकैक्रीडन्तिशाम्भवे ॥ नागेश्वरस्यरेवायाः सम्पर्कात्पापमोक्षणम् ॥ १३ ॥ तत्रनागहृदश्चास्ते त्रिषुलोकेषुविश्रुतः ॥ तत्र स्नातोदिवंयाति योनागेश्वरमर्चयेत् ॥ १४ ॥ अयंतेकथितोराजन्नितिहासःपुरातनः ॥ श्रवणात्कीर्तनाद्वापि मुच्यते भवबन्धनात् ॥ १५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणैरेवाखण्डेनागेश्वराख्यानं नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ *

मार्कण्डेयउवाच ॥ अथान्यत्कथयिष्यामि तीर्थचजनकोत्तमम् ॥ रेवायाउत्तरेकूले सर्वसिद्धिप्रदायकम् ॥ १ ॥ अश्वमेधन्तुतत्रैव शतमेधं तथापरम् ॥ सहस्रमेधं विज्ञेयं सुरासुरनमस्कृतम् ॥ २ ॥ लक्षमेधं तथाचान्यं शिवेनपरि कीर्तितम् ॥ जनकोनामराजर्षिर्यत्रेष्ट्वात्रिदिवंययौ ॥ ३ ॥ स्वरोचिषेन्तरेप्राप्ते त्रेतायांचनराधिप ॥ पुरोधसंयाज्ञव

सुनने और कहने से संसारबन्धन से छूटजाता है ॥ १५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणैरेवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनुवादेनागेश्वराख्यानं नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ ॐ ॥

मार्कण्डेयजी बोले कि अब इसके अनन्तर नर्मदाके उत्तरतट में सब सिद्धियोंके देनेवाले एक और उत्तम जनकतीर्थ को कहते हैं ॥ १ ॥ वहीं अश्वमेध वैसेही शतमेध और सुर व असुरों करके नमस्कार कियागया सहस्रमेध जाननेयोग्य है ॥ २ ॥ और वैसेही अन्य लक्षमेध शिवजी करके कहागया है जनकनामके राजर्षि

जहां यज्ञकरके स्वर्गको जातेहुये ॥ ३ ॥ हे नराधिप ! स्वरोचिप गन्वन्तरके प्राप्तहोनेपर त्रेतायुग में ब्रह्मके जाननेवालों में उत्तम ब्रह्मर्षि याज्ञवल्क्य पुरोहित को ले कर ॥ ४ ॥ ब्रह्मर्षियों के गणोंकरके सेवित, सिद्ध और गन्धर्वों के गीताँसे युक्त, वेदोंके शब्दोंसे गुँजरहे, अभीष्टफल देनेवाले व फूलेफले वृक्षोंसे युक्त, शुभ, जैसे देव-ताओंकी बन्नाईहुई कुँवरजी की श्रलकापुरी हो तहत शोभित, अनेक मुनिवृन्दों करके सेवित, पवित्र कश्यपजी के आश्रमको सैकड़ों दूध देनेवाली दिव्य कामधेनुओं को तथा ॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥ यथाविधि यज्ञ करने के वारते यज्ञ करानेवाले ऋत्विज लोग औरभी सब यज्ञके सामान को लेकर जनक राजा जातेहुये ॥ ८ ॥ तदनन्तर

त्वयं ब्रह्मर्षिब्रह्मवित्तमम् ॥ ४ ॥ कश्यपस्याश्रमं पुण्यं ब्रह्मर्षिगणसेवितम् ॥ सिद्धगन्धर्वगीताढ्यं वेदध्वनिनिनादितम् ॥ ५ ॥ युक्तकामफलैर्वृक्षैः पुष्पितैः फलितैः शुभम् ॥ धनदस्य पुरीयद्वदलकादेव निर्मिता ॥ ६ ॥ तद्वच्चशोभितं नानामुनिवृन्दनिषेवितम् ॥ कामधेनूस्तथा दिव्याः शतसंख्याः पयस्विनीः ॥ ७ ॥ याज्ञिकादृत्विजश्चैव क्रतुकर्तुं यथाविधि ॥ यज्ञोपस्करसंभारं सर्वमादाय गच्छति ॥ ८ ॥ आदिदेशततो मर्त्यान्भृत्यान्चैव सहस्रशः ॥ भक्ष्यभोज्यादिसंभारसंख्यां कर्तुं न शक्यते ॥ ९ ॥ एवं प्रवर्तितस्तत्र लक्षमेधः क्रतूत्तमः ॥ जगृह्य यज्ञभागंच शक्राद्याः सुरसत्तमाः ॥ १० ॥ निवर्तितस्ततो यज्ञो हरिब्रह्माशतक्रतुः ॥ नानाविधैस्तथारत्नैर्वासोयुग्मैश्च तर्पिताः ॥ ११ ॥ स्वस्वयानं समारूढा जग्मुर्देवास्त्रिविष्टपम् ॥ नर्मदावभृथं स्नात्वा पुत्रदारोपशोभितः ॥ १२ ॥ हरं हरिंचार्चयित्वा वरदानप्रभावतः ॥ दिव्ययानं समारूढो यथाशक्रो मरुसह ॥ १३ ॥ धृतस्वर्णतपत्रस्तु वीज्यमानोऽप्सरोभिश्च नानाल

हजारों मनुष्य और सेवकोंको आज्ञा देतेहुये भक्ष्य और भोजनआदिके सामानोंकी संख्या करनेको शक्य नहीं होसकी ॥ ९ ॥ यज्ञों में उत्तम लक्षमेध वहां इसप्रकार प्रवृत्तहुआ इन्द्रआदि उत्तम देवता यज्ञभागको ग्रहण करतेहुये ॥ १० ॥ तदनन्तर यज्ञ समाप्त कियागया विष्णु, ब्रह्मा और इन्द्र अनेक प्रकारके रत्न व कपड़ों के जोड़ों करके प्रसन्न कियेगये ॥ ११ ॥ अपनी २ सवारीपर सवार देवता स्वर्गको जातेहुये राजा नर्मदा में यज्ञान्तस्नान करके पुत्र और स्त्रियोंकरके शोभितहुये ॥ १२ ॥ महादेव और विष्णुजी का पूजनकरके वरदानके प्रभावसे दिव्य सवारी पर सवार जैसे देवताओं करके सहित इन्द्र ॥ १३ ॥ वैसेही सुवर्ण के छत्रको धारणकिये अप्सराओं

के गणोंकरके हवा किये जाते और उन्हीं से गाये जा रहे अनेक अलङ्कारों से भूषित ॥ १४ ॥ जनक राजा देखे गये तदनन्तर धर्मराजजी उठे व सवारीके आगे पावोंसे चलेतेहुये अर्ध और पाद्यआदि पूजन के सामानसे युक्त ॥ १५ ॥ हाथ जोड़ेहुये होकर इस वचन को बोले कि तप, ध्यानयोग, दान और देवताओं के पूजनकरके ॥ १६ ॥ महादेव और नर्मदा के प्रसाद से तुमकरके सबलोक जीत लियेगये तब यशस्वी धर्मराज से जनक राजा बोले ॥ १७ ॥ कि जैसे प्रकाश करनेवाले सूर्य है इसी प्रकार आपकी भी मूर्ति है ब्रह्मा, विष्णु और इसी प्रकार महादेवजी सब कर्मों के सान्नी हैं ॥ १८ ॥ इस प्रकार जनक के संवाद से धर्म और अधर्म का विचार

झारभूषितः ॥ १४ ॥ दृष्टोजनकराजातद्धर्मराजस्तमुत्थितः ॥ यानस्याग्रेपादचारी अर्धपाद्यादिसंयुतः ॥ १५ ॥ कृ
ताञ्जलिपुटोभूत्वा वचनंचेदमब्रवीत् ॥ तपसाध्यानयोगेनदानदेवांचनैरपि ॥ १६ ॥ शिवरेवाप्रसादेन जितालोकास्तन्
याखिलाः ॥ उवाचजनकोराजा धर्मराजंयशस्विनम् ॥ १७ ॥ तथैवतवमूर्तिश्च यथाभानुःप्रभाकरः ॥ ब्रह्माविष्णु
स्तथाशम्भुः साक्षीसकलकर्मणाम् ॥ १८ ॥ एवंजनकसंवादे धर्माधर्मविचाराणात् ॥ एतस्मिन्नन्तरेप्राप्तः किङ्किणी
जालमण्डितम् ॥ १९ ॥ वेणुवीणिनिनादाढ्यमप्सरोगणसेवितम् ॥ विमानं दिव्यमारूढो देवराजः शतक्रतुः ॥ २० ॥
नारदः पर्वतश्चैव तथान्येमुनिसत्तमाः ॥ धर्मराजपुरंप्राप्ताः श्रुत्वाजनकमागतम् ॥ २१ ॥ अध्यासुस्तमकुध्यन्तमास
नानिमहान्तित्व ॥ प्रसमीक्ष्ययथार्हन्तु पूजिताश्चपृथक्पृथक् ॥ २२ ॥ तेषामध्येमहाराज नारदो धर्ममब्रवीत् ॥ केदे
शाः पर्वताः पुण्याः कानद्यश्चाश्रमाश्चके ॥ २३ ॥ कानितीर्थानिलोकेस्मिन्यत्रदत्तहृतंतपः ॥ नर्त्तयितेमनुष्याणां

होरहा था इसी अन्तर में छुद्रघण्टिकाओं के जालोंसे भूषित, वंशी और सितारों के शब्दोंसे युक्त, अप्सराओं के गणोंसे सेवित ऐसे दिव्य विमानपर चढ़ेहुये देवताओं के राजा इन्द्र प्राप्तहुये ॥ १९ ॥ नारद, पर्वत तथा और भी उत्तमपुनि जनकको आये सुनकर धर्मराजके पुरको प्राप्तहुये ॥ २१ ॥ और कोध नहीं करतेहुये उन धर्मराज को देखकर बड़े २ आसनों पर जाबैठे यथायोग्य पृथक् २ पूजन कियेगये ॥ २२ ॥ उनके मध्यमें हे महाराज ! नारदजी धर्मसे बोले कि वे कौन देश, पर्वत व कौन

पवित्र नदियाँ और कौन आश्रम ॥ २३ ॥ और कौन तीर्थ इस लोकमें हैं जिनमें दिया गया दान, होम, तप मनुष्यों का नहीं क्षीण होता वह हमसे तत्त्वसे कहो ॥ २४ ॥ हे महाराज ! आपको हम जानते हैं कि सूर्य के पुत्र हो सो आप हमसे आज सब के स्वरूप को यथावत क्रमसे वर्णन करो ॥ २५ ॥ तब धर्म बोले कि हे मुनिशार्दूल ! शिवलोक में जैसा सुना गया है सो आप सुनो मथुरा में कल्माषपाद राजा विख्यात हुये ॥ २६ ॥ इसी प्रकार नाभागनाम के राजर्षि श्रयोध्यके राजा हुये व महात्मा नाभागराजर्षि का विमान ऊपर ॥ २७ ॥ और कल्माषपाद का विमान नीचे सब देवताओं करके देखा गया तब उन दोनों महात्माओं का वहाँ शिवलोक में

तन्मेकथयतत्त्वतः ॥ २४ ॥ जानामित्वां महाराजसूर्यपुत्रो ब्रवीहि मे ॥ स्वरूपमद्य सर्वेषां यथावदनुपूर्वशः ॥ २५ ॥ धर्म उवाच ॥ श्रूयतां मुनिशार्दूल शिवलोकियथाश्रुतम् ॥ कल्माषपादो विख्यातो मथुरायां नराधिपः ॥ २६ ॥ नाभागो नाम राजर्षिरयोध्याधिपतिस्तथा ॥ यानंचोपरिराजर्षेर्नाभागस्य महात्मनः ॥ २७ ॥ अधः कल्माषपादस्य दृश्यते सर्वदेवतैः ॥ शिवलोकविवादो भूतयोस्तत्र महात्मनोः ॥ २८ ॥ कल्माषपाद उवाच ॥ पुष्करेदशयज्ञाश्च मया चेष्टा विधानतः ॥ गङ्गायां नैमिषारण्ये प्रभासे शशिभूषणे ॥ २९ ॥ गङ्गायामुनयो र्योगे वाराणस्यान्तथैव च ॥ इष्टं यज्ञशतं सग्रं मया तत्र महेश्वर ॥ ३० ॥ अधोभागे विमानो मे नाभागस्य ममोपरि ॥ कल्पगां वज्रं यित्वा तु तीर्थैर्ताथैर्मखोत्तमाः ॥ ३१ ॥ कृतमयामहादेव विमानं मे तथाप्यधः ॥ ईश्वर उवाच ॥ शृणुराजन् महाभाग कथ्यमानं निबोध मे ॥ ३२ ॥ लक्ष्मधेनं नाम तीर्थं रेवाया उत्तरेतटे ॥ लक्ष्मधेनं नमना लिङ्गतं तत्र परं स्मृतम् ॥ ३३ ॥ चकार तत्र नाभागो यज्ञमेकं यथोदितम् ॥

विवाद हुआ ॥ २८ ॥ कल्माषपाद बोले कि पुष्कर में मुष्करके विधिसे दशयज्ञ किये गये और गङ्गा, नैमिषारण्य, प्रभास, शशिभूषण ॥ २९ ॥ प्रयाग वैसे ही काशी में हे महेश्वर ! कुल अधिक सौ यज्ञ मुष्करके किये गये ॥ ३० ॥ फिर मेरा विमान नीचे और मेरे ऊपर नाभाग का विमान यह क्या है नर्मदा को छोड़कर हर एक तीर्थ में उत्तम यज्ञ ॥ ३१ ॥ हे महादेव ! मुष्करके किये गये तब भी मेरा विमान नीचे हो तब महादेवजी बोले कि हे महाभाग, राजन् ! मुष्करके कहे जाते को सुनो व समझो ॥ ३२ ॥ नर्मदा के उत्तरतट में लक्ष्मधेन नाम करके वहाँ श्रेष्ठ लिंग भी कहा गया है ॥ ३३ ॥ वहाँ नाभाग यथार्थ एक यज्ञ को

करतेहुये उस तीर्थपर कियेहुये यज्ञके माहात्म्यसे इसका विमान ऊपर हुआ ॥ ३४ ॥ नर्मदाको छोड़कर असंख्यतीर्थोंमें भी हे राजसत्तम ! तुमकरके यज्ञन कियागया इसीमे तुम्हारा विमान नीचेहुआ ॥ ३५ ॥ धर्म बोले कि महादेवजी से परे दूसरा देवता नहीं है और नर्मदा से श्रेष्ठ नदी नहीं है सत्यसे परे दूसरा धर्म नहीं है और सब प्राणियों में दया करना यह भी परमधर्म है ॥ ३६ ॥ सूर्यलोक में मुझकरके सुना गया और सूर्यकरके महादेवजी से सुनागया यह सब पुराना वृत्तान्त आपसे कहा गया जैसा देखागया था ॥ ३७ ॥ शिवजीके ध्यानमें तत्पर जो नर्मदातटमें बसताहै निश्चय करके यमराज उसके राजा नहीं होते और वह यमलोक को नहीं देखता

तत्तीर्थयज्ञमाहात्म्याद्यानमस्योपरिस्थितम् ॥ ३४ ॥ असंख्येष्वपितीर्थेषु त्वयेष्टराजसत्तम ॥ विहायकल्पमान्तेन त वयानमवस्थितम् ॥ ३५ ॥ धर्ममनुवाच ॥ नशङ्करात्परादेवो नरेवायाः परानदी ॥ नस्तयादपरोधर्मो कारुण्यं सर्व जन्तुषु ॥ ३६ ॥ मयाश्रुतं सूर्यलोके सूर्येणापि महेश्वरात् ॥ एतत्ते सर्वमाख्यातं यथादृष्टं पुरातनम् ॥ ३७ ॥ वामीयो नर्मदातीरे शिवध्यानपरायणः ॥ न तस्यैवैयमः शास्ता यमलोकं न पश्यति ॥ ३८ ॥ ब्रह्माविष्णुः शिवः शास्ता सत्य मेव यथोदितम् ॥ धर्ममराज्ञा समग्रन्तु नारदाच्चा महर्षयः ॥ ३९ ॥ धर्माख्यानमिदं श्रुत्वा मुदा परमया युताः ॥ स्वस्वयां न संमामुह्य शक्राच्छिदिवं ययुः ॥ ४० ॥ धर्माख्यानमिदं पुण्यमिति हासपुरातनम् ॥ कथितं तव यत्नेन विदेहाद्यानराधि पाः ॥ ४१ ॥ दानयज्ञप्रभावेण त्रिदिवं वरमायुः ॥ ४२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे रेवाखण्डे जनकयज्ञोनामाष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

युधिष्ठिर उवाच ॥ सप्तसारस्वतं तीर्थं शंसे न महामुने ॥ उत्पत्तिं चास्य तीर्थस्य कथं यं स्वयथार्थतः ॥ १ ॥ मार्कण्डेय है ॥ ३८ ॥ ब्रह्मा, विष्णु और महादेवही उसके राजा होते यह सत्यही है धर्मराजकरके कहेहुये इस समग्र धर्माख्यान को नारदआदि महर्षि सुनकर बड़े आनन्द से युक्त हुये अपने २ विमानों पर चढ़कर इन्द्रादिक देवता स्वर्गको जातेहुये ॥ ३९ ॥ ४० ॥ यह पवित्र धर्माख्यान व पुराना इतिहास यज्ञकरके आपसे कहागया जिसमे जनकआदि राजा ॥ ४१ ॥ दान और यज्ञके प्रभावसे श्रेष्ठ स्वर्गको जातेहुये ॥ ४२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे रेवाखण्डे प्राकृतभाषाऽनुवादजनकयज्ञोनामाष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

युधिष्ठिरजी बोले कि हे महामुने ! सप्तसारस्वत तीर्थको आप मुझसे कहे और इस तीर्थकी उत्पत्तिभी यथार्थ से कहो ॥ १ ॥ तब मार्कण्डेयजी बोले कि सप्त-

सारवत नामका गन्धर्व शिवजीके यशका गानेवाला व सितार, वंशी और भी दर्शनीय वाजाओं के बजाने व गाने में प्रवीण होताहुआ ॥ २ ॥ मणिमद्रा व सुमद्रा और वैसेही हेमगभी इन अप्सराओं करके प्रतिदिन विहार करताहुआ ॥ ३ ॥ मदिराके पीनेसे बेहोश, कामसे कष्टित और कामसे मोहको प्राप्त होरहा महादेवजी की पूजाको छोड़कर भक्ष्य और भोजनमें रतहोताहुआ ॥ ४ ॥ कुब्जकाल के व्यतीत होने पर महादेवजी के दर्शन को गया पहाड़ों में उत्तम कैलास में गाने व नाचने से महादेवजीकी स्तुति करताहुआ ॥ ५ ॥ बहुत कालके बाद आयेहुये उस गन्धर्व को देखकर महादेव की भक्तिसे विमुख उक्त गन्धर्व को नन्दीश्वरजी क्रोधसे शाप

उवाच ॥ सप्तसारस्वतोनाम गन्धर्वः शिवगायनः ॥ वीणावेणुप्रेक्षणीययन्त्रगीतविशारदः ॥ २ ॥ मणिमद्रासुमद्राच हेमगर्भा तथापरा ॥ अभिर्वराप्सरोभिश्च चिक्रीडेप्रतिवासरम् ॥ ३ ॥ मदिरानष्टचैतन्यः कामार्तः काममोहितः ॥ विहायशङ्करीम्पूजां भक्ष्यभोज्यरतोभवत् ॥ ४ ॥ कियत्यपि गतेकाले ययौद्रष्टुसुमापतिम् ॥ गीतनृत्यैश्चतुष्टय कैलासेतं नगोत्तमे ॥ ५ ॥ गन्धर्वतंसमालोक्य चिरकालेसमागतम् ॥ शशापनन्दीकोपेन शिवभक्तिपराङ्मुखम् ॥ ६ ॥ चाण्डाल्योनिगच्छत्वं पापस्यास्यप्रभावतः ॥ क्षुत्त्वामस्त्वं निराहारो मर्त्यलोकेचरिष्यसि ॥ ७ ॥ प्रसाद्यनन्दिनं सोऽथ गन्धर्वोवाक्यमब्रवीत् ॥ शापस्यानन्तं महाभाग दातुं मे त्वमिहाहसि ॥ ८ ॥ नन्दुवाच ॥ नर्मदायां व्यतीपाते स्नात्वा भ्यर्च्य महेश्वरम् ॥ अन्तं शापस्य संप्राप्य पुनस्त्वं चागमिष्यसि ॥ ९ ॥ एवं तद्वचनं श्रुत्वा चाण्डाल्योऽयं निमाश्रितः ॥

जातिस्मरत्वं संप्राप्य सशैलवनद्वाननाम् ॥ १० ॥ वंशमधरणीं सर्वो तीर्थयात्राप्रसङ्गतः ॥ अथ चक्राङ्गयोगेन नर्मदा देते हुये ॥ ६ ॥ कि इस पापके प्रभावसे तू चाण्डालयोनिको प्राप्तहो छुधासे दुर्बलहो निराहार तू मनुष्यलोक में घूमता रहेगा ॥ ७ ॥ इसके अनन्तर वह गन्धर्व नन्दीश्वरको प्रसन्नकरके वचन बोला कि हे महाभाग ! मेरे शापके अन्तके देनेको आप योग्यहो ॥ ८ ॥ तब नन्दीश्वर बोले कि व्यतीपातयोगके होनेपर नर्मदा में स्नानकरके और महादेव का पूजन करके शापके अन्तको प्राप्त होकर तू फिर आवेगा ॥ ९ ॥ इस प्रकार नन्दीश्वर के वचन को सुनकर चाण्डालयोनिको प्राप्तहुआ वह भी जातिस्मरत्वको प्राप्तहोकर पर्वतों और जलों तथा जङ्गलों करके सहित ॥ १० ॥ समस्त पृथिवीपर तीर्थयात्रा के प्रसंग से घूमताहुआ इसके अनन्तर दैवयोग से

नर्मदाके तटमें आताहुआ ॥ ११ ॥ नहीं जाकर शङ्करस्थण्डिलमें यजन करताहुआ मनके हरनेवाले अनेक पुष्पोपहार व सितार के बाजोंकरके ॥ १२ ॥ गन्धर्व की भक्तिको जानकर महादेवजी प्रत्यक्षहुये स्थण्डिल से जलमें महापवित्रलिंग प्रकटहुआ ॥ १३ ॥ गाने व बजानेसे प्रसन्न कियेगये महादेवजी उरा गन्धर्वसे बोले कि हे महाभाग ! जो तेरे मनमें हो वह वर तू मांगले ॥ १४ ॥ नर्मदाजल के संयोग से तू परमगतिको प्राप्तहोगा तब गन्धर्व बोला कि हे महेशान ! जो प्रसन्नहो और यहां वर देने की इच्छा करतेहो ॥ १५ ॥ तो हे महादेव ! सप्तसारस्वततीर्थ और सारस्वतलिंग आपके प्रसाद से पृथिवीतल में ख्यातिको प्राप्तहोवे ॥ १६ ॥ तिर्यग्योनि में

तीरमागतः ॥ ११ ॥ शङ्करस्थण्डिलेयागं तन्नगत्वाचकारसः ॥ पुष्पोपहारैर्विविधैर्वाणावाद्यैर्मनोहरैः ॥ १२ ॥ गन्धर्वभक्तिविज्ञाय प्रत्यक्षोभून्महेश्वरः ॥ स्थण्डिलादुत्थितंलिङ्गं महापावनमम्भसि ॥ १३ ॥ उवाचतंमहादेवो गीतवादि व्रतोपितः ॥ वरंष्टुणुमहाभाग यत्तेमनासिवर्तते ॥ १४ ॥ कल्पगतोयसंस्पर्शात्प्राप्नोषिपरमाङ्गतिम् ॥ गन्धर्वउवाच ॥ यदितुष्टोमहेशान वरन्दालुमिहेच्छसि ॥ १५ ॥ सप्तसारस्वतंतीर्थं लिङ्गंसारस्वतंतथा ॥ ख्यातियातुमहादेवत्वत्प्रसादान्महीतले ॥ १६ ॥ तिर्यग्योनिगताःपापाश्चाण्डालाश्चनराधमाः ॥ सर्वेतेत्रिदिवंयान्तु तीर्थस्यास्यप्रभावतः ॥ १७ ॥ एवमस्त्वितितंचोक्त्वा महेशोन्तरधीयत ॥ दिव्ययानसमारूढः सर्वलङ्कारभूषितः ॥ १८ ॥ शिवलोकमवाप्स्येवं यथापूर्वतथैवसः ॥ सप्तसारस्वतेस्नात्वा अर्चयित्वाष्टषड्वजम् ॥ १९ ॥ कुलैकविंशमुद्धृत्य स्वर्गलोकेमहीयते ॥ तत्रस्नात्वादिवंयान्ति येमृतानपुनर्भवाः ॥ २० ॥ शिवाज्ञावर्ततेराजंस्तत्रयस्त्रिदिवंजयेत् ॥ युधिष्ठिरउवाच ॥ कस्मिंश्चास्य

प्राप्तहोरेहे पापी व चाण्डाल अधम मनुष्य ये सब इस तीर्थके प्रभावसे स्वर्गको जावें ॥ १७ ॥ ऐसाहीहो ऐसे उस गन्धर्व से कहकर महादेवजी अन्तर्धान होगये व गन्धर्व भी दिव्य सवारीपर सवार, सब आभूषणों से भूषित ॥ १८ ॥ महादेवके लोकको प्राप्तहोकर पूर्वही के समान होगया सप्तसारस्वतमें स्नानकरके और महादेवजी को पूजकरके ॥ १९ ॥ इक्कीसकुल को उद्धार करके स्वर्गलोक में पूजित होता है वहां स्नान करके स्वर्गको जाते हैं और जो मरजाते हैं वे फिर उत्पन्न नहीं होते हैं ॥ २० ॥ हे राजन् ! शिवजी की आज्ञा है कि इस तीर्थके वासी स्वर्गको जीतते हैं तब युधिष्ठिरजी बोले कि हे मुने ! इस जगत का रचनेवाला व नाश और

पालन करनेवाला कौन है ॥ २१ ॥ हे तपोधन ! यह यथार्थ विस्तारसे आप कहो यह सब आनन्द से युक्त हम आपसे सुननेकी इच्छा करते हैं ॥ २२ ॥ तब मार्कण्डेय जी बोले कि पूर्वसमय भवामिकात्तिकेय के कहेहुये पुराण को मैंने जैसा सुना है राजन् ! उसी प्रकार यथार्थ आपसे कहूँगा आप सुनो ॥ २३ ॥ वत्पान्तके करनेवाले महादेवजी स्कन्दकरके पूर्वकाल में पूछेगये कि यह सब चराचर किस प्रकार प्रलयको प्राप्तहोता है ॥ २४ ॥ ये देवता वहाँ को जातेहैं और वैसे इनकी स्थितिहोती है और ब्रह्माजी कहाँको जाते हैं व विष्णुजी कहाँको जाते हैं ॥ २५ ॥ व द्रव्यश्रंग, पद और क्रमोंकरके सहित देव वहाँको जातेहैं और समुद्र, द्वीपसयुक्त सब

जगतो हर्ताघर्ताचिभोमुने ॥ २१ ॥ यथार्थमेतदाचक्ष्व विस्तरेणतपोधन ॥ त्वत्तोहंश्रोतुमिच्छामि सर्वमेतन्मुदायुतः ॥
२२ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ यथाश्रुतंमयापूर्वं पुराणंस्कन्दकीर्तितम् ॥ तथातेकथयिष्यामि शृणुराजन्यथार्थतः ॥
२३ ॥ स्कन्देनतुपुरापृष्टो हरःकल्पान्तकारकः ॥ चराचरमिदंसर्वं कथंगच्छन्त्यमीदेवाः कथंचैषांस्थितिर्भवेत् ॥ कचगच्छतिवैब्रह्मा कुत्रगच्छतिकेशवः ॥ २४ ॥ वेदास्तुकुत्रगच्छन्ति सषडङ्गपदक्रमाः ॥ अग्नयःपर्वतास्सर्वे समुद्रद्वीपसंयुताः ॥ २५ ॥ सिद्धास्सर्वेसनचत्राः सूर्याद्याश्चतथाग्रहाः ॥ पातालभुवनदीनि देवल्लोकाश्चशाश्वताः ॥ २६ ॥ कल्पान्तेचसुरश्रेष्ठ क्लीयन्तेचदेवताः ॥ हरउवाच ॥ कथयामिपरंशुहं सृष्टिसंहारकारकम् ॥ २७ ॥ प्रलयेसर्वभूतानि स्थावराणिचराणिच ॥ शिवलिङ्गेविलीयन्ते नष्टेजगतिशाश्वते ॥ २८ ॥ शून्यंचैतज्जगत्सर्वं त्रैलोक्यंसचराचरम् ॥ आतिष्ठतियदावह्निर्विस्फुरन्सर्वतोमुखः ॥ २९ ॥ ततोदृहस्पतिर्गार्ग्यन्वेदत्रयसमन्वितम् ॥

अग्नि व पर्वत ॥ २६ ॥ और सब सिद्ध तथा नक्षत्रों के सहित सूर्य आदिग्रह, पातालआदि भुवन और हमेशा रहनेवाले देवल्लोक ॥ २७ ॥ व देवता हे सुरश्रेष्ठ ! कल्पान्त में कहाँ लीन होजाते हैं तब महादेवजी बोले कि परमगुप्त सृष्टि और संहार करनेवाले को हम कहते हैं ॥ २८ ॥ प्रलय में इस नित्य जगत् के नष्टहोनेपर स्थावर और जंगम सब प्राणी शिवजीके लिंगमें लयको प्राप्तहोते हैं ॥ २९ ॥ यह सम्पूर्ण चराचर त्रैलोक्य जगत् शून्य होजाता है जिससमय में सब तरफ जिनका मुखहै ऐसे फैलतेहुये अग्निदेव उठतेहैं ॥ ३० ॥ तदनन्तर तीनों वेदोंको बृहस्पतिजी गातेहैं उसी समय में कूर्मरूपको धारण किये, बड़े प्रकाशवाले व

बड़ेबलवाले महाप्रज्वलित हो रहे अग्निदेव सब नरकोंको भस्म कर देते हुये तदनन्तर सम्पूर्ण भस्महोगया और पाताल व नागोंके लोक ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ व चौदहो भुवन कालरूप अग्निकरके भस्म कर दियेगये व वेदशब्दों से उत्पन्नहुये सब चराचर को लपटों की मालाओं से भस्म होनेपर ॥ ३३ ॥ और पहाड़ों व जलों और जंगलों करके सहित सम्पूर्ण तीनों लोकोंके नष्टहोने पर व मायाके तीन गुणों से उत्पन्नहुये इस सम्पूर्ण जगतके प्रलयको प्राप्तहोनेपर ॥ ३४ ॥ तदनन्तर सब देवताओं करके सहित ब्रह्माजी नष्टहोते हैं व ब्रह्माण्ड व देवताओं करके सहित सब प्राणियोंको नाशकरके ॥ ३५ ॥ देवताओं करके पूजित उत्तम घाटवाली एक नर्मदा स्थित

तदैवातिबलोदेवः कूर्मरूपोमहाद्युतिः ॥ ३१ ॥ नरकांश्चादहत्सर्वस्ततः प्रज्वलितोमहान् ॥ सर्वन्दग्धन्तुपातालना गानांभुवनानिच ॥ ३२ ॥ कालरूपेणदग्धानि भुवनानिचतुर्दश ॥ ज्वालामालाकुलीभूते वाङ्मयेसचराचरे ॥ ३३ ॥ नष्टेनैविष्टेपेसर्वे सशैलवनकानने ॥ मायामयेतुसर्वेस्मिन्निगुण्येप्रलयंगते ॥ ३४ ॥ विनश्यतिततोब्रह्मा सहितःसर्वदे वतैः ॥ नाशयित्वाचभूतानि ब्रह्माण्डेस्सहदैवतैः ॥ ३५ ॥ स्थितातुनम्मर्मदाचैका सुतीर्थसुरपूजिता ॥ नम्मर्मदायावता रोयं मर्त्यलोकेव्यवस्थितः ॥ ३६ ॥ गतमिन्द्रसहस्रन्तु यावद्देदशपञ्चच ॥ अतीतंब्रह्माण्षट्कं सप्तमोयंप्रजापतिः ॥ ३७ ॥ तदेवमग्निमध्यस्थं तेनसर्वमचेतनम् ॥ अव्यक्तेसर्वभूतानांभीशेजागर्तिजाग्रति ॥ ३८ ॥ यदास्वपितिशान्ता त्मा तदासर्वनिर्माहितम् ॥ सविष्णुःसृष्टिकर्ताच हर्ताचिजगतःप्रभुः ॥ ३९ ॥ एकीभूतेषुभूतेषु व्यपास्यन्सर्वतेजसा म् ॥ पुनःसृष्टिप्रकुस्ते देवदेवःसदाशिवः ॥ ४० ॥ ब्रह्माभूत्वासृजल्लोकं विष्णुर्भूत्वाह्यपालयत् ॥ रुद्रःकालाग्निरूपेण

रहती है यह नर्मदा का अवतार मनुष्यलोक में सर्वदा बना रहता है ॥ ३६ ॥ जबतक एक हजार पन्द्रह इन्द्र व्यतीत होगये और ब्रह्मा व्यतीत होगये ये सातवें प्रजापति विद्यमान हैं ॥ ३७ ॥ इससे तबतक सो इस प्रकार अग्निके मध्यमें स्थित सब अचेतन जगत अव्यक्त सर्वभूतों के ईश्वर के जागतेहुये जा- गता है ॥ ३८ ॥ और जिस समय शान्तरूप होकर परमात्मा सोता है तब यहभी सब सोजाता है वही प्रभु विष्णु जगत्की सृष्टिका करनेवा हरनेवाला है ॥ ३९ ॥ सब प्राणियों को एकही रूपहोनेपर सबके तेजोको पृथक्कर करताहुया देवताओंका देवता सदाशिव फिर सृष्टिको करता है ॥ ४० ॥ ब्रह्माहोकर सब लोकोंको रचा और

विष्णु होकर पालन किया और अन्तमें कालाग्निरूप करके वही रुद्रहोकर नाश करता है ॥ ४१ ॥ यह सब हमकरके कहा गया अब और क्या पूछते हो यह नर्मदाजी महादेवजी की इडानाम की कला है ॥ ४२ ॥ इसीसे इस लोकमें शिवजी के ध्यानमें तत्पर नर्मदाजी अक्षय हैं व आठ हजार चारोंयुगका ब्रह्माजीका अहोरात्र (दिन रात) होता है ॥ ४३ ॥ इसी प्रमाणसे वे ब्रह्मा सौवर्ष जीते हैं और ब्रह्मा के सौ अहोरात्र करके विष्णुका एक अहोरात्र होता है ॥ ४४ ॥ व विष्णुके चौदह हजार अहोरात्रका रुद्रका आधा निमेष होता है इतनेमें असंख्य ब्रह्मा नष्ट होजाते हैं ॥ ४५ ॥ तिसमें देवताओं के बारह हजार वर्ष में चारोंयुग व्यतीतहोते है यही दैवतयुग कहा

हरत्यन्ते स एव हि ॥ ४१ ॥ तन्मया कथितं सर्वं किमन्यत्परिष्टच्छसि ॥ इडानामकलाहोपा शम्भो वै सप्तकल्पगा ॥ ४२ ॥ अक्षयातेन लोके स्मिञ्छिवध्यान परायणा ॥ अष्टौ युगसहस्राणि अहोरात्रं प्रजापतेः ॥ ४३ ॥ अर्नैव तु मानेन शतं ब्रह्मासजीवति ॥ पितामहशतेनैव विष्णोर्मानं विधीयते ॥ ४४ ॥ निमेषार्द्धञ्च शम्भोस्तु सहस्राणि चतुर्दश ॥ एता वति विनश्यन्ति ह्यसंख्याताः पितामहाः ॥ ४५ ॥ तत्र द्वादशसाहस्रं दैवतं युगमुच्यते ॥ तदेकसप्ततियुगं मन्वन्तरमिहोच्यते ॥ ४६ ॥ एतच्चतुर्दशगुणं कल्पमाहुर्मनीषिणः ॥ हरार्कचन्द्रमनवः शक्रस्यायुः प्रकीर्तितम् ॥ ४७ ॥ लोकपाला द्योदेवाः साध्याश्चैव मरुद्गणाः ॥ अष्टाविंशतिपर्यन्तं युगानां सन्ति तेऽपि च ॥ ४८ ॥ एतत्ते कल्पगा कालमानं निगदितं मया ॥ येमृताः कल्पगतीरे दानयज्ञतपस्मिथताः ॥ ४९ ॥ दुर्गमं यमलोकञ्च न पश्यन्ति कदाचन ॥ तपसा ध्यानयोगेन ब्रह्मार्चन परायणाः ॥ ५० ॥ नर्मदातीरमासाद्य ये त्रप्रासादकारकाः ॥ दारुणं नरकं घोरं नाश्रयन्ते यमालयम् ॥ ५१ ॥

जाता है और वह इकहत्तर चतुर्गुणी का यहां मन्वन्तर कहा जाता है ॥ ४६ ॥ इसी मन्वन्तरके चौदहगुने को परिणित लोग कल्प कहते हैं यही हर, सूर्य, चन्द्र, मनु और इन्द्रकी आयु कही गई है ॥ ४७ ॥ लोकपाल आदिदेवता, साध्य और मरुद्गण अष्टादश युग पर्यन्त ये भी रहते हैं ॥ ४८ ॥ यह नर्मदा के कालका प्रमाण मुझकरके तुम से कहा गया दान, यज्ञ और तपमें स्थित जो नर्मदा के तटमें मेरे हैं ॥ ४९ ॥ वे दुर्गम यमलोक को कभी नहीं देखते तप और ध्यान योगकरके जो ब्रह्मके पूजनमें तत्पर हैं ॥ ५० ॥ अथवा नर्मदाके तटको प्राप्त हो यहां जो धर्मशालाके बनवानेवाले हैं वे दारुण व घोरनरकरूप यमालयके आश्रित नहीं होते हैं ॥ ५१ ॥

उत्तम बुद्धिवाले वृद्धावस्था में नर्मदाही का सेवन करते यही परमध्यान है बाकी और सब निरर्थक है ॥ ५२ ॥ नर्मदा के दक्षिणतट में अशोकवनिकामें अशोक-
नननाम का तीर्थ विद्यमान है व वहां ॥ ५३ ॥ सब पापोंका नाश करनेवाला अशोकेश्वर लिंगभी है वहां एकलाख गौवें देनेसे जो फलहै वह वहां जानेवाले को
होता है ॥ ५४ ॥ सप्तसारस्वतलिंग वैसेही सुरार्चितलिंग व सातर्षनामका लिंग वैसेही योगेश्वरलिंग ॥ ५५ ॥ तथा चन्द्रकान्तलिंग और वरुणेश्वरलिंग को परम
भक्तिसे पूजन करके यमलोक को नहीं देखता है ॥ ५६ ॥ हे भारत ! तिलोदकदेने व पिण्डदान करने से अपने इधर उधर के सौ पुरुषोंको घोरनरक से शीघ्रही

नर्मदान्तुनिषेवन्ते वार्द्धक्येतुसुबुद्धयः ॥ एतदेवपरंध्यानं शेषमन्यन्निरर्थकम् ॥ ५२ ॥ नर्मदादक्षिणेतीरे अ
शोकवनिकासुच ॥ अशोकजननं नाम तीर्थतत्रव्यवस्थितम् ॥ ५३ ॥ अशोकेश्वरलिङ्गन्तु सर्वपापप्रणाशनम् ॥ तत्र
गोलचदानेन यत्फलंतत्रगच्छतः ॥ ५४ ॥ सप्तसारस्वतलिङ्गं तथालिङ्गसुरार्चितम् ॥ सातर्षनामलिङ्गंच लिङ्गयोगे
श्वरंतथा ॥ ५५ ॥ चन्द्रकान्तंतथालिङ्गं वरुणेश्वरमेवच ॥ अभ्यर्च्यपरयाभक्त्या यमलोकंनपश्यति ॥ ५६ ॥ तिलो
दकप्रदानेन पिण्डपातेनभारत ॥ पितृन्समुद्धरत्याशु घोरतृपूवंपरंशतम् ॥ ५७ ॥ तत्रदत्तंहृत्यच्च तस्यसंख्यानविध
ते ॥ पुरादेवगणास्सर्वे तीर्थस्यास्यप्रभावतः ॥ ५८ ॥ संसिद्धिपरमांप्राप्य दिविदेवत्वमाययुः ॥ संसारसागरेराजन्सञ्च
रन्तिनदारुणे ॥ ५९ ॥ युधिष्ठिरउवाच ॥ लिङ्गानि कीर्तितानीह तथातीर्थानिन्यानिच ॥ नानाख्यानसमेतानि प्रसादा
त्कथयस्वमे ॥ ६० ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ शृणुराजन्महाभाग इतिहासंपुरातनम् ॥ नागेश्वरंसिद्धलिङ्गं स्थितन्नाग

उच्चार करता है ॥ ५७ ॥ वहां जो दिया व हवन कियागया उसकी संख्या नहीं है पूर्वकालमें सब देवगण इस तीर्थ के प्रभाव से ॥ ५८ ॥ परमसिद्धिको प्राप्तहो-
कर स्वर्गमें देवभाव को प्राप्तहुये वे हे राजन् ! दारुण संसारसागर में नहीं घूमते हैं ॥ ५९ ॥ तब युधिष्ठिर बोले कि यहां आपने जिन लिंगवतीर्थों को कहाहै उनको
आख्यानों के सहित प्रसन्नता से आप मुझसे कहें ॥ ६० ॥ तब मार्कण्डेयजी बोले कि हे महाभाग ! हे राजन् ! पुराने इतिहासको आप सुनें नागेश्वर सिद्धलिंग शुभ

नागहृदमें स्थित है ॥ ६१ ॥ जो कि सब लोकों को सिद्धि का देनेवाला व नागकन्याओं करके पूजन किया गया है ब्रह्मदेवजही जिनका शरीर व शोभावाले व बारहों सूर्य के समान व अग्नि के तुल्य प्रकाशमान नाम से अधमर्षण ऋषि व आपस्तम्ब व मैत्रेय व संवर्त व अग्नि ॥ ६२ ॥ ६३ ॥ ये व और भी उत्तम व्रतवाले बहुत से अरसी हजार मुनीन्द्र ऋषि हे नृप ! उस आश्रममें रहते थे ॥ ६४ ॥ कन्द, मूल और फलों के आहार करनेवाले व कोई शाकाहार व कोई जलाहार वेमे ही कोई गोबर के भक्षण करनेवाले ॥ ६५ ॥ व कोई चान्द्रायण व्रत में तत्पर हो रहे श्रुति और स्मृतिमें प्रवीण मोक्ष के उपाय को खोज रहे अतिशय करके ब्रह्म के

हृदयुमे ॥ ६१ ॥ सिद्धिदं सर्वलोकानां नागकन्याभिरर्चितम् ॥ ब्रह्मतेजोवपुः श्रीमान्नाम्नाचैवाघमर्षणः ॥ ६२ ॥ द्वाद
शादित्यसंकाशो दीप्यमान इवानलः ॥ आपस्तम्बोयमैत्रेयसंवर्तश्चात्रिरेव च ॥ ६३ ॥ एते चान्येपि बहव ऋषयस्सं
शितव्रताः ॥ अयुतानि मुनीन्द्राणामष्टौ तत्राश्रमे नृप ॥ ६४ ॥ कन्दमूलफलाहाराः शाकाहारास्तथा परे ॥ जलाहारास्त
थैवान्ये केचिद्विधमयमक्षिणः ॥ ६५ ॥ चान्द्रायणपराश्चान्ये श्रुतिस्मृतिविशारदाः ॥ मोक्षोपायं विचिन्वन्ति ब्रह्मि
ष्ठा ब्रह्मवित्तमाः ॥ ६६ ॥ अधमर्पाश्रमपदं ब्रह्मलोकसमं नृप ॥ धर्मस्तु वैश्यरूपेण जिज्ञासार्थं समागमत् ॥ सप्तसा
रस्वते तर्था सोर्चित्वा वृषभध्वजम् ॥ ६७ ॥ गन्धपुष्पैस्तथा दीपैरुपहारैर्मनोरमैः ॥ वर्तेरन्वृषयस्तत्र शतमष्टोत्तरन्त
था ॥ ६८ ॥ भिक्षाचमिक्षेवेदत्ता कौपीनमृगचर्म च ॥ साष्टाङ्गञ्च नमस्कृत्य तान् देवर्षिगणान्मुनीन् ॥ ६९ ॥ मासो
पवासनिरतो नाशिकारण्यमागमत् ॥ पुत्रदारस्नुषास्तस्य नित्यं तद्गतमानसाः ॥ ७० ॥ मासे मासे त्वतिक्रान्ते र

जानेवाले ब्रह्मिष्ठ हैं ॥ ६६ ॥ हे नृप ! वह अधमर्षण ऋषि का आश्रम ब्रह्मलोक के समान होता हुआ ब्राह्मणों की परीक्षा लेने के वास्ते वैश्य के रूप करके धर्म आते हुये वे सप्तसारस्वत तीर्थमें चन्दन, पुष्प व दीप और मनोहर उपहारोंसे महादेव का पूजन करके वहां एक ठौ आठ ऋषि वर्तमान थे ॥ ६७ ॥ ६८ ॥ उन भिक्षुओं को भिक्षा दी और कौपीन तथा मृगचर्म दिया और उन देवर्षिगण और मुनियों को साष्टांग नमस्कार करके ॥ ६९ ॥ एक २ महीने के अन्तमें तत्पर नाशिकारण्य को

आताहुआ उसके पुत्र, स्त्री और वधू नित्यही उसीमें मन लगाये रहती थीं ॥७०॥ हे नृप! महीने में सूर्यसंक्रान्तिके व्यतीत होनेपर निराहार तप करतेहुये उक्त वैश्यको ब्रह्मचरु व्यतीत होगये ॥ ७१ ॥ न पदार्थों का भोग और न कृपणता, न मान और न मत्सर न काम, क्रोध और लोभ उसके हुये क्योंकि हे भारत ! ये सब उसकरके जीत लिये गये ॥ ७२ ॥ और यही सङ्कल्प उसके रहा कि मेरे धनकी कमाई वेद व ब्राह्मणों के अर्थ होवे इस प्रकार नित्य विष्णु के धर्म में तत्पर और विष्णुही के आराधन में तत्पर हो रहा ॥ ७३ ॥ उत्तरायण के महीने में सप्तसारस्वत तीर्थ में स्नान करके और लिङ्गरूप जनार्दन देव को पूज करके ॥ ७४ ॥ विभव के अनुसार

विसंक्रमणेनृप ॥ ऋतवः षडतिक्रान्ता निराहारं तपस्यतः ॥ ७१ ॥ नभोगोनचर्कार्पण्यं नमानोनचमत्सरः ॥ नकामक्रोधलोभाश्च निर्जितास्तेनभारत ॥ ७२ ॥ वेदार्थे ब्राह्मणार्थे च समवित्तस्य चार्जनम् ॥ विष्णुधर्ममपरो नित्यं विष्ण्वाराधनतत्परः ॥ ७३ ॥ उत्तरेचायेनेमासे सप्तसारस्वते तथा ॥ स्नात्वा देवं समभ्यर्च्य लिङ्गरूपं जनार्दनम् ॥ ७४ ॥ यथा विभवयोगेन भिन्नान्दत्त्वा यथापुरा ॥ हरउवाच ॥ वरम्ब्रूहि महाभाग सिद्धस्त्वं धर्ममतीयतः ॥ ७५ ॥ महाराज महभाग यत्ते मनसि वर्तते ॥ इदं विमानमारुह्य दिव्यभोगमुखं कुरु ॥ ७६ ॥ पुत्रदारस्नुषोपेतो विष्णुलोकमितीव्रज ॥ शार्ङ्गउवाच ॥ यदि तुष्टोसि मे देव वरं दातुं यथेप्सितम् ॥ ७७ ॥ वरं दशसहस्राणि लोक्यान्तु द्विजोत्तमाः ॥ इदं वरमहं मन्ये हरेर्नान्यं कदाचन ॥ ७८ ॥ ऋषय उचुः ॥ वैश्यः पापो दुराचारो महातालाघवं यतः ॥ सर्वेषामेव वर्णानां ब्राह्मणो गुरु रूच्यते ॥ ७९ ॥ त्रीन्वर्णान्याजयित्वा च त्वं यदा दिवमानयेः ॥ न दृष्टं न श्रुतं चासीदेवं श्रुतिपुराणयोः ॥ ८० ॥ ब्राह्मण

पहलेकी तरह भिक्षा देकर स्थित हुआ तब महादेवजी बोले कि हे महाभाग ! तुम वरमांगो जिससे धर्मसे तुम सिद्ध होगये ॥ ७५ ॥ हे महाराज ! हे महाभाग ! जो तुम्हारे मनमें हो इस विमानपर सवार होकर दिव्य भोगों के सुखको करो ॥ ७६ ॥ पुत्र, स्त्री और वधू करके सहित यहांसे विष्णुलोक को जाओ तब शार्ङ्ग वैश्य बोला कि हे देव ! जो मुझ से प्रसन्न हो और अभीष्ट वर देने की इच्छा करते हो ॥ ७७ ॥ तो दश हजार ब्राह्मण उत्तम लोक को जावे परमेश्वर से इसी वरको हम चाहते और कभी किसी को नहीं ॥ ७८ ॥ तब ऋषि बोले कि यह वैश्य बड़ा दुराचार पापी है जिससे बड़ोंकी लघुता होती है क्योंकि सब धर्मोंका ब्राह्मणही गुरु कहा जाता है ॥ ७९ ॥

तीन वर्णों को यजन कराके जब तुम स्वर्ग को पहुँचावोगे तो ऐसा वेद और पुराण में देखा व सुना नहीं है ॥ ८० ॥ ब्राह्मण के अपमान से भी कहीं धर्म होसक्ता है तप और ध्यान व धर्म कराके हे मुने ! स्वर्ग को नहीं जावोगे ॥ ८१ ॥ हजार वर्ष कराके भी तुमको स्वर्ग दुर्लभ है इससे इस समय हे वैश्य ! तुम धर्मपूर्वक अपने घरको जावो ॥ ८२ ॥ वह वैश्य ब्राह्मणों कराके इस प्रकार कहा गया तब उनको साष्टाङ्ग प्रणाम कराके मुनिश्रेष्ठ विमुक्त से वैश्य वचन बोला ॥ ८३ ॥ जाने व बिनाजाने क्रोध करने को योग्य नहीं होता ज्ञान से रहित, श्रद्धासे हीन तुम को देवता नहीं ग्रहण करसक्ता ॥ ८४ ॥ क्रोधकरके सहित ब्राह्मण कराके जो

स्यापमानेन धर्मोवैजायतेकचित् ॥ तपसाध्यानधर्मभ्यां नयास्यसिदिवमुने ॥ ८१ ॥ अपिवर्षसहस्रेण दुर्गम स्तेमुरालयः ॥ ब्रजत्ववैश्यधर्मेण स्वगृहंप्रतिसाम्प्रतम् ॥ ८२ ॥ सश्वमुक्तोविप्रैस्तान्साष्टाङ्गंप्रणिपत्यच ॥ उवाचवच नवैश्यो विमुक्तमुनिपुङ्गवम् ॥ ८३ ॥ अज्ञानाज्ज्ञानतोवापि कोपंकर्तुं न युज्यते ॥ अज्ञातं त्वानगृह्णीयाच्छ्रद्धाहीनश्च देवता ॥ ८४ ॥ सक्रोधेन तपस्तप्तं सर्वभवति निष्फलम् ॥ देवतैरपि दुर्ज्ञेया गहनाकर्मणो गतिः ॥ ८५ ॥ सत्येन ध्रिय ते धर्मस्ततः स्वर्गः प्रजायते ॥ स्वकर्म निरतश्चैव मुद्वरन्तं तथा द्विजम् ॥ ८६ ॥ वैश्यं ब्राह्मणमित्याहुर्ब्राह्मणं वैश्यमेव च ॥ निष्ठुरं निर्धृणं क्रूरं कृतघ्नं दीर्घकोपिनम् ॥ ८७ ॥ द्विजं वाचालं रूपन्तु दूरतः परिवर्जयेत् ॥ ब्राह्मणा ऊचुः ॥ को भवान्वैश्यरूपेण ब्रह्माशक्रोजनार्दनः ॥ ८८ ॥ साङ्गोपाङ्गास्तथावेदास्त्वयि धर्मः प्रतिष्ठितः ॥ शार्ङ्ग उवाच ॥ धर्मो हं

तप किया जाता वह सब निष्फल होता है कर्मकी गति बहुत कठिन है देवताओं कराके भी दुर्ज्ञेय है ॥ ८५ ॥ सत्य कराके धर्म धारण किया जाता है तिमसे स्वर्ग होता है अपने कर्ममें तत्पर तथा ब्राह्मण के उच्चार करनेवाले ॥ ८६ ॥ वैश्य को ब्राह्मण कहते हैं और अपने कर्म से रहित ब्राह्मण को वैश्य कहते हैं दया से रहित, निष्ठुर, क्रूर, उपकार को नहीं माननेवाले बड़े क्रोधी ॥ ८७ ॥ वक्तादी ब्राह्मणको दूरसे छोड़देवे तब ब्राह्मण बोले कि वैश्य के रूपको धारण किये आप कौन हो ब्रह्मा व इन्द्र व विष्णु हो ॥ ८८ ॥ साङ्गोपाङ्ग वेद वैसेही धर्म आपही में स्थित है तब शार्ङ्ग बोला कि हम धर्म हैं आप लोगों की परीक्षाके वास्ते वैश्यरूपसे यहां

पर आये हैं ॥ ८६ ॥ अब इस विमानपर सवार होकर आपलोग वैष्णवपदको जावो तब वे लोग विमानपर सवार होकर स्वर्ग को प्राप्त हुये ॥ ८७ ॥ सप्तगार-
स्वत तीर्थ और हरिहरदेव को नमस्कार करके अपने पुत्रादिकों से युक्त वैश्य भी विष्णुलोक को प्राप्त हुआ ॥ ९१ ॥ हे राजन् ! यह उत्तम नर्मदातीर्थ आपमे कहा
गया ॥ ९२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेप्राकृतभाषानुवादेष्टुष्टिसंहारसारस्वततीर्थकथननामैकोनविंशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ ॥ ॥ ॥

फिर मार्कण्डेयजी बोले कि शाण्डिल्या और नर्मदाका सङ्गम सब पापोंका हरनेवाला और श्रेष्ठ है व सब पापोंका हरनेवाला, श्रेष्ठ, शाण्डिल्येश्वर लिङ्ग भी है ॥ १० ॥
वैश्यरूपेण जिज्ञासार्थमिहागतः ॥ ८९ ॥ इदंविमानमारुह्य गम्यतां वैष्णवंपदम् ॥ एतेविमानमारुह्य सम्प्राप्तास्त्रिद-
शालयम् ॥ ९० ॥ सप्तसारस्वतंनत्वा तीर्थन्देवंहरंहरिम् ॥ वैश्यःपुत्रादिभिर्युक्तो प्रापलोकन्तुवैष्णवम् ॥ ९१ ॥ एत-
त्तेकथितंराजन्नर्मदातीर्थमुत्तमम् ॥ ९२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेष्टुष्टिसंहारसारस्वततीर्थकथननामैकोनविं-
शोऽध्यायः ॥ १६ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

मार्कण्डेयउवाच ॥ शाण्डिल्याकल्पगायोगस्सर्वपापहरःपरः ॥ शाण्डिल्येश्वरलिङ्गंच सर्वपापहरंपरम् ॥ १ ॥
स्नातमान्नोनरस्तिमन्नर्चयित्वामहेश्वरम् ॥ कर्मभूमिन्नलभते हरस्यवचनंयथा ॥ २ ॥ तिलोदकप्रदानेन हविषा
पिण्डपातनात् ॥ तृप्यन्तिपितरस्तस्य यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥ ३ ॥ राहुसोमसमायोगे कुरुक्षेत्रेमहाफलम् ॥ तत्रैव
जन्मराजर्षेः कार्त्तवीर्य्यंनृपस्यच ॥ ४ ॥ स्नात्वाभ्यर्च्यमहादेवं गन्धपुष्पाद्युपस्करैः ॥ सूर्य्याचन्द्रमसौयावदुमामा
हेश्वरेपुरे ॥ ५ ॥ मुङ्क्तेमविधान्भोगांस्तावद्वैशिवसन्निधौ ॥ तत्रशाण्डिल्यकौण्डिन्यौ मारुट्योमुनिसत्तमः ॥ ६ ॥

उसमे स्नानमात्रकियाहुआ मनुष्य महादेवका पूजनकरके कर्मभूमिको नहीं प्राप्तहोता ऐसा महादेवका वचनहै ॥ २ ॥ तिलोदक देनेमे और खीरके पिण्डदान से जब तक
चौदहो इन्द्र रहते तबतक उसके पितर तृप्त रहते हैं ॥ ३ ॥ चन्द्रग्रहणमे कुरुक्षेत्रणमे कुरुक्षेत्रविषे महाफल होताहै वहीं पर राजर्षि कार्त्तवीर्य्य राजाका जन्मभी है ॥ ४ ॥ स्नान करके
और चन्दन पुष्प आदि सामग्रीसे महादेवका पूजनकरके सूर्य और चन्द्रमा जबतक रहते तबतक पार्वती और महादेवजीके पुरमे वह महादेवजीके समीप अनेक भोगों

को भोगतहै वहां शाण्डिल्य, कौण्डिन्य और मुनियोंमें श्रेष्ठ मानेइय ॥१६॥ अइतेजवाले कौशिक, कश्यप और भृगु जप और ध्यान में तत्पर ये व और भी बहुतसे ब्राह्मण ॥ ७ ॥ साठहजार मुनि उग्रतपमें स्थितहुये रहतेथे शाण्डिल्य और नर्मदाके सङ्गमें उन शाण्डिल्यजी का रम्य आश्रम है ॥ ८ ॥ शाण्डिल्यपुर इस नामसे विख्यात ब्रह्मर्षियों करके सेनित है नर्मदा के दक्षिण तट में द्वादशादित्य तीर्थ है ॥ ९ ॥ इसी प्रकार देवदारुतीर्थ है तथा और देववनभी है उस सङ्गमें में दशलाख तीर्थ विद्यमानहै ॥ १० ॥ द्वादशादित्य नामका यह तीर्थ सब पापोंका नाश करनेवालाहै और भी जौन लिङ्ग हे अनघ ! तुमसे कहे गये ॥ ११ ॥ एक मूषक विलौटा

कौशिकश्चमहातेजाः कश्यपोभृगुरेवच ॥ एतेचान्येपिवहवो जपध्यानपरायणाः ॥ ७ ॥ मुनीनांपट्टिसाहस्रं त
परमुग्रैव्यवस्थितम् ॥ तस्याश्रमपदंरम्यं शाण्डिल्याकल्पगायुजि ॥ ८ ॥ शाण्डिल्यपुरमित्येवं ब्रह्मर्षिविनिषेवित
म् ॥ द्वादशादित्यतीर्थं च नर्मदादक्षिणेतटे ॥ ९ ॥ देवदारुतथातीर्थमन्यद्देवनंतथा ॥ दशलक्षाणितीर्थानि तत्र
तिष्ठन्तिसङ्गमे ॥ १० ॥ द्वादशार्कमिदन्नाम तीर्थपापप्रणाशनम् ॥ अन्यानियानिलिङ्गानि कथितानितवानघ ॥ ११ ॥
मूषकश्चतथातीर्थं माज्जोरैणैवमक्षितः ॥ निशायांमूषकः कश्चिदटमानइतस्ततः ॥ १२ ॥ माज्जोरैणततस्सोपि भ
क्षितश्चधृतःपुरा ॥ ततोमेधागमेकालेप्रवाहस्तत्रनिर्गतः ॥ १३ ॥ अस्थिप्रवहणंतस्य निमग्नंतत्रसङ्गमे ॥ तीर्थस्यास्य
प्रभावेण यक्षराजोभवन्तप ॥ १४ ॥ बृहद्वृन्दस्समाख्यातो यज्ञायुतसमावृतः ॥ हंसयुक्तविमानेन यक्षलोकमहीय
ते ॥ १५ ॥ अथान्यत्कथयिष्यामि शाण्डिल्याननर्मदाश्रितम् ॥ नाम्नाचाप्सरसंलिङ्गं मुक्ताश्चाप्सरसोयतः ॥ १६ ॥

करके तीर्थ में खाय डाढागया रात्री में एक मूषक इधर उधर घूमता हुआ ॥ १२ ॥ तदनन्तर वह पकडकर विलौटा करके पूर्वकाल में भक्षण करडाला गया तदनन्तर वर्षाकालमें नर्मदाका प्रवाह बड़ा निकला ॥ १३ ॥ उस सङ्गममें उस मूषकके हाड छुबगये इस तीर्थके प्रभावकरके हे नृप ! वह यक्षराज होगया ॥ १४ ॥ बृहद्वृन्द इस नामसे विख्यात व दश हजार यक्षों से युक्त हंस जिसमें जुते हुये ऐसे विमान करके यक्षलोक में पूजित हुआ ॥ १५ ॥ अब और शाण्डिल्या और नर्मदाके

आश्रित तीर्थ को कहते हैं कि आप्सरस नाम करके विख्यात लिङ्ग जिससे अप्सरायें सुक्त होती हुई ॥ १६ ॥ वही ज्ञानरूपमय सिद्धलिङ्ग महादेव कहेगये हैं तब युधिष्ठिरजी बोले कि किसकारणसे अप्सराओंको शाप दियागया और वे सङ्गमको कैसे प्राप्त हुई ॥ १७ ॥ और शाप से उनका मोक्ष कैसे हुआ यह इस समय हमको विदित करो तब मार्कण्डेयजी बोले कि हे राजन् ! तुम यथार्थ इस वृत्तान्त को सुनो हे अनघ ! हम तुमसे कहते हैं ॥ १८ ॥ कि पूर्वकालमें महादेव के यहां के वसन्त के उत्सव (जलसा) को छोड़कर इन्द्र के जलसे को चलीगई उर्वशी वैसेही रम्भा, अहल्या व तिलोत्तमा ॥ १९ ॥ धृताची, मेनका, चित्ररेखा और शालिनी ये

ज्ञानरूपमयन्देवं सिद्धलिङ्गप्रकीर्तितम् ॥ युधिष्ठिरउवाच ॥ कस्मादप्सरसःशप्ताः कथंयाताश्चसङ्गमम् ॥ १७ ॥ कथञ्चमोज्ञाणंशापाद्विदितंकुरुसाम्प्रतम् ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ शृणुराजन्यथान्यायं कथयामितवानघ ॥ १८ ॥ मधू त्सवंशिवस्याग्रे विहायेन्द्रोत्सवङ्गताः ॥ उर्वशीचतथारम्भाअहल्याचितिलोत्तमा ॥ १९ ॥ धृताचीमेनकाचैव चित्ररेखा चशालिनी ॥ एताश्चाप्सरसोबह्व्यस्मन्वैदेवनिर्मिताः ॥ २० ॥ वसन्तेताविशान्तिस्मंशक्रलोकंमुखैस्सह ॥ मदिरान न्दपानेन मोहिताःकामपीडिताः ॥ २१ ॥ समतीतेवसन्तेतु उमामाहेश्वरंपुरम् ॥ कैलासनिलयन्देवं समाराधयितुं गताः ॥ २२ ॥ शापस्यभयभीतास्ता देवदेवस्यसुव्रताः ॥ साष्टाङ्गंप्रणिपत्याथ मन्त्रगीतेनतुष्टुबुः ॥ २३ ॥ ताश्चैवा प्सरसोगौरी ज्ञात्वातत्रपराङ्मुखीः ॥ गौर्य्याःपरमचित्तज्ञास्सर्वाभरणभूषिताः ॥ २४ ॥ अनङ्गकुसुमाचान्या रूपयौ

बहुत सी अप्सरायें सब देवताओं करके रचीगई ॥ २० ॥ वे सब देवताओं करके सहित वसन्त में इन्द्रलोक को जाती हुई वहां आनन्द से मदिरा के पीनेसे काम करके पीड़ित मोहको प्राप्त होती हुई ॥ २१ ॥ व वसन्त के व्यतीत होने पर पार्वती और महादेव के पुर को कैलासवासी महादेव के प्रसन्न करने के वास्ते जाती हुई ॥ २२ ॥ व देवताओं के देवता महादेवजी के शापके भय से डरी हुई शोभन व्रतवाली अप्सरायें साष्टांग प्रणाम करके तदनन्तर मन्त्रों के गाने से स्तुति करती हुई ॥ २३ ॥ वहां उन अप्सराओं को पार्वती जी अपने से विमुख जान करके पार्वतीजी की पूरी मनसा की जानेवाली, सब आभूषणों से भूषित ॥ २४ ॥

रूप और युवावस्था को प्राप्त होरही अनङ्गकुसुमा, धनपाली, व्योमरेखा ॥ २५ ॥ चामरग्राहिणी, गान्धर्वी, हेमदण्डा और प्रतीहारा ये पार्वती जी की सखियां अप्सराओं से बोलीं ॥ २६ ॥ कि पार्वती और महादेवजी के पुरको तुम सब नहीं आई आज यही तुम सबोंका अतिदुःसह अपराध हुआ ॥ २७ ॥ इसी अपराध करके मनुष्यलोक में तुम सब बकरी होवोगी कुछ अधिक देवताओं के सौ वर्षतक इसी प्रकार तुम दुःखित रहोगी ॥ २८ ॥ तब अप्सरायें बोलीं कि हे वररोहे ! हे पार्वति ! हम सबों के शापके अन्त को देने के लिये तुम योग्य होसक्ती हो उनके इस वचन को सुन करके पार्वतीजी वचन बोलीं ॥ २९ ॥ कि नर्मदा के

वनशालिनी ॥ धनपाली तथा चान्या व्योमरेखा तथा परा ॥ २५ ॥ चामरग्राहिणी चान्या गान्धर्वी च तथा परा ॥ हेमदण्डा प्रतीहारा ऊचुरप्सरसः प्रति ॥ २६ ॥ उमामाहे इश्वरन्नाम भवत्योनसमागताः ॥ अपराधोयमेवाद्य भवतीनां सुदुस्सहः ॥ २७ ॥ अनैनैवापराधेन अजामर्त्यैर्भविष्यथ ॥ दिव्यं वर्षशतं साग्रमेवंभवतदुःखिताः ॥ २८ ॥ अप्सरस ऊचुः ॥ शापान्तन्नो वरारोहे दातुमर्हसि पार्वति ॥ इति तासां वचः श्रुत्वा देवी वचनमब्रवीत् ॥ २९ ॥ शार्ङ्गिण्यलया कल्पगायोगे नर्मदादक्षिणेतटे ॥ तत्र स्नात्वा दिवं यान्ति शार्ङ्गिण्यलये इश्वरपूजनात् ॥ ३० ॥ गौरीतीर्थं नुतनैव ज्ञातुं योग्यं हि कल्पगाम् ॥ उत्तीर्णं तेन मार्गेण लग्नास्कन्दस्य पृष्ठतः ॥ ३१ ॥ तत्र स्नात्वा शिवं नत्वा कैलासं चागमिष्यथ ॥ शापअष्टास्तुतास्सर्वाः क्षमाङ्गत्वा अतिदुःखिताः ॥ ३२ ॥ शापावसानेन संप्राप्ते कल्पगतीरमाश्रिताः ॥ तत्र स्नात्वा तु शार्ङ्गिण्यल्यं पूजयित्वा विधानतः ॥ ३३ ॥ अजरूपधरास्सर्वास्तिस्मिन्नाप्सरसः ज्ञातात् ॥ दिव्ययानसमारूढास्सर्वान्

दक्षिण तट में शार्ङ्गिण्यलया और नर्मदा के योग में स्नान करके और वहां शार्ङ्गिण्येश्वरके पूजन से स्वर्ग को जाते हैं ॥ ३० ॥ वहीं नर्मदा के सङ्गम में गौरीतीर्थ भी जानना चाहिये हम स्कन्दजी की पीठी पर चढ़कर उसी मार्गसे नर्मदा को उतरी रहीं ॥ ३१ ॥ वहा स्नान करके शिवजीके नमस्कार करके कैलास को आवोगी शाप से भ्रष्ट हुई वे सब अप्सरायें पृथिवीको जाकर बड़ी दुःखित हुई ॥ ३२ ॥ शापकी समाप्ति के प्राप्त होने पर नर्मदा के तटके आश्रित हुई वहां स्नान करके और विधि से शार्ङ्गिण्यल्य का पूजन करके ॥ ३३ ॥ बकरी के रूपको धारण किये हुई वे सब उस तीर्थ में जणमात्र से अप्सरा होगईं सब आभूषणों से भूषित और दिव्य रत्ना-

रियों पर सवार ॥ ३४ ॥ उसी प्रकार गौरीतीर्थ को पहले की तरह प्राप्त हुई वह अजातीर्थ नाम से विख्यात हुआ और इमीप्रकार अजेश्वर महादेवभी हुये ॥ ३५ ॥ और वैसेही सब पापों का हरनेवाला आप्तस लिङ्ग है वहां व्यतीपात में स्त्री व पुरुष स्नान करके ॥ ३६ ॥ परवश व अपने वश होकर जो प्राण त्याग करताहै वह दश हजार वर्षतक विद्याधरो के पुर में राजा होता है ॥ ३७ ॥ एक और कनकाको मोक्ष देनेवाला पवित्र, कनकेश्वर लिङ्ग है व वहां ज्वरेश्वर लिंग भी है जहां ज्वर नहीं आता है ॥ ३८ ॥ ज्वरसे युक्त ऋषिलोग जहां ज्वर से रहित होते हुये और पञ्चब्रह्मेश्वर नाम का लिंग पापों का छुड़ानेवाला है ॥ ३९ ॥ मलकेतु नाम का असुर

झारभूषिताः ॥ ३४ ॥ गौरीतीर्थतथैवापुर्ण्यथापूर्वतथैवतु ॥ अजातीर्थमितिख्यातं देवश्चाजेश्वरस्तथा ॥ ३५ ॥ सर्वपापहरंचैव लिङ्गमाप्तसंतथा ॥ तत्रस्नात्वाव्यतीपाते नारीवायदिवानरः ॥ ३६ ॥ अवशस्स्ववशावापि प्राणत्यागं करोति यः ॥ दशवर्षसहस्राणि राजाविद्याधरेपुरे ॥ ३७ ॥ कनकेश्वरमन्यतु कनकामोक्षदंशुभम् ॥ ज्वरेश्वरंतत्रलिङ्गं ज्वरोयत्रनविद्यते ॥ ३८ ॥ ज्वरिताऋषयोयत्र बभूवुज्वरवर्जिताः ॥ पञ्चब्रह्मेश्वरन्नाम लिङ्गपापविमोचनम् ॥ ३९ ॥ असुरोमलकेतुश्च शक्रस्यैवभयेनतु ॥ पञ्चब्रह्मात्मकैर्मन्त्रैस्स्थण्डिलस्थन्तुशङ्करम् ॥ ४० ॥ नानाविधैःपुष्पधूपैस्सम्पूज्यस्वपुंरंयौ ॥ अपराह्णैयसंस्मार सपापोलिङ्गमैशकम् ॥ ४१ ॥ नमस्कृत्वाथनिर्माल्यं यावदुद्धर्तुमिच्छति ॥ तावत्तत्स्थानुभूतं वै लिङ्गं दृष्ट्वा महासुरः ॥ ४२ ॥ विषसादमहाबाहुः किमेतदिति विस्मितः ॥ आकाशवाचाचोक्तं वै विषादं त्यज पुत्रक ॥ ४३ ॥ पञ्चब्रह्मेश्वरन्नाम लिङ्गमेतन्महासुर ॥ आकाशवचनं श्रुत्वा नमस्कृत्य दिवं ययौ ॥ ४४ ॥

इन्द्र के भय से पांच ब्रह्मात्मक मन्त्रों से वेदी पर स्थित महादेवजी को ॥ ४० ॥ अनेक प्रकार के पुष्पों और धूपों से पूजन करके अपने पुरको चला गया तदनंतर अपराह्ण समय में वह पापी महादेवजी के लिंग को स्मरण करता हुआ ॥ ४१ ॥ तदनन्तर नमस्कार करके जब तक निर्माल्य उठाने की इच्छा करता हुआ तब तक स्थाणुरूप होगये उस लिंगको देखकर वह महासुर ॥ ४२ ॥ महाबाहु विषादको प्राप्त हुआ और यह क्या होगया ऐसे कहकर विरमयको प्राप्त हुआ तब आकाशवाणी करके कहा गया कि हे पुत्रक ! विषादको छोड़ दो ॥ ४३ ॥ हे महासुर ! यह पञ्चब्रह्मेश्वर नामका लिंग है आकाशवाणीको सुनकर नमस्कार करके स्वर्गको जाता हुआ ॥ ४४ ॥

पञ्चब्रह्मेश्वरलिंग तथा पुष्पेश्वरलिंग इसी प्रकार तीसरे स्थण्डिलेश्वरलिंग को जानो ॥ ४५ ॥ नित्य और नैपिच्छिक कार्य में और चन्द्र, सूर्य के ग्रहण में श्रद्धा करके लंगम में स्नान करके तीनों लिंगों के पूजन से ॥ ४६ ॥ पितर स्वर्ग को जाते हैं जैसे पिण्डदान आदि करके जबतक सौ मन्वन्तर होते हैं तबतक ब्रह्मा के पुर में आनन्द करता है ॥ ४७ ॥ नर्मदा के दक्षिण दिशामें गोप्यलिंग विद्यमान है उसके पूजन से ब्रह्महत्या इत्यादिक पाप पात रात्रि में नाश होता है ॥ ४८ ॥ त्वष्टा और पूषा इन नामों से विख्यात, बली, समुद्र में विहार करनेवाले ब्रह्मराक्षस हुये वे दोनों इन्द्र करके अपने वज्र से मारे गये ॥ ४९ ॥ ब्रह्मा आदि देवताओं करके

पञ्चब्रह्मेश्वरलिंगं लिङ्गपुष्पेश्वरन्तथा ॥ तृतीयन्तुतथाविद्धि लिङ्गैस्वस्थारिण्डलेश्वरम् ॥ ४५ ॥ नित्येनैमित्तिकेकार्थ्ये ग्रहणेचन्द्रसूर्ययोः ॥ श्रद्धयासङ्गमेस्नात्वा लिङ्गत्रितयपूजनात् ॥ ४६ ॥ गच्छन्तिपितरःस्वर्गं हविर्दानादिभिर्भयथा ॥ मन्वन्तरशतंयावन्मोदतेब्रह्मणःपुरे ॥ ४७ ॥ नर्मदायाम्यभागेतु गोप्यलिङ्गव्यवस्थितम् ॥ ब्रह्महत्यादिकं पापं सप्तरात्रेणनश्यति ॥ ४८ ॥ त्वष्टापूषेतिविख्यातौ बलिनौब्रह्मराक्षसौ ॥ वज्रेणस्वेनशक्रेण हतौतौसिन्धुचारिणौ ॥ ४९ ॥ बुद्ध्वाब्रह्मादिभिर्देवैर्ब्रह्महात्वेषवासवः ॥ इन्द्राण्यार्चैवसंत्यक्तस्सर्वैस्सुरगणैस्तथा ॥ ५० ॥ ब्रह्महत्यासमायुक्तस्सम्प्राप्तोवैहिमालयम् ॥ चन्द्रहीनायथारात्रिरनादित्यंयथानभः ॥ ५१ ॥ इयमाभातिवैतद्वच्छक्रहर्हीनामरावती ॥ ततोदेवगणैस्सर्वैः प्रेषितोहव्यवाहनः ॥ ५२ ॥ शक्रस्यान्वेषणार्थाय कृशानोगम्यतान्त्वया ॥ जलेदृष्ट्वा निवर्त्यार्थदेवतास्संन्यवेदयत् ॥ ५३ ॥ ततस्सम्प्रेषितोदेवैस्सर्वव्यापीप्रभञ्जनः ॥ सतंप्रवेशयामास प्रोवाचान्निदशे

यह इन्द्र ब्रह्महत्यागर्है यह जानकर इन्द्राणी और वैसेही सब देवताओं करके इन्द्र छोड़ दिये गये ॥ ५० ॥ ब्रह्महत्या से युक्त इन्द्र हिमालय को प्राप्त हुये जिसप्रकार चन्द्रमा से रहित रात्रिहो और सूर्य से रहित आकाश हो ॥ ५१ ॥ इसी तरह इन्द्र से रहित यह अमरावती पुरी होरही है तदनन्तर सब देवगणों करके अग्नि भजे गये ॥ ५२ ॥ देवताओं ने कहा कि इन्द्र के खोजने के वास्ते हे कृशानो ! तुम जावो जल में इन्द्र को देखकर तदनन्तर लौटकर सब देवताओं से कह दिया ॥ ५३ ॥

तदनन्तर देवताओं करके सर्वव्यापी वायु भेजे गये वे अग्नि वायु को प्रवेश करा दिया तब वायुजी इन्द्र से बोले ॥ ५४ ॥ कि देवताओं की आज्ञा सेही हम आप के लेने निमित्त आये हैं ऐसे कहकर उनको दिव्य अमरावती पुरीमें लाकर तदनन्तर ब्रह्मा और विष्णु आदि सब देवगण इन्द्र काके सहित पर्वतों में उत्तम कैलाम में जहां भगवान् महादेव रहे वहां जाते हुये ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ देवता और दैत्यों करके नमस्कार किये गये महादेवजी के नमस्कार करके बैठे हुये देवताओं से भगवान् महादेवजी यथान्याय पूछते हुये ॥ ५७ ॥ आप लोगों के आनेका क्या काम है और कहां से आपलोगों को भय आगया तब देवता बोले कि ये देवताओं के

इवरम् ॥ ५४ ॥ देवानां शासनादेव समागच्छञ्चत्वत्कृते ॥ तमानीयपुरंदिव्यं ब्रह्मविष्णुपुरस्सराः ॥ ५५ ॥ ततोदेव गणास्मर्वे शक्रेणसहितागताः ॥ ईशानोभगवान्यत्र कैलासेपर्वतोत्तमे ॥ ५६ ॥ नमस्कृत्यमहादेवं सुरासुरनमस्कृतम् ॥ प्रविष्टास्तुयथान्यायं पप्रच्छभगवान्हरः ॥ ५७ ॥ किमागमनकार्यंवो कुतोवोभयमागतम् ॥ इवाञ्जुः ॥ एष त्वांप्रतिसम्प्रष्टुं देवराजःशतक्रतुः ॥ ५८ ॥ मोक्षिणंब्रह्महत्यायाः स्याद्यथैवितथाकुरु ॥ इश्वरउवाच ॥ वाराणस्यां क्रतुंचेष्ट्वा हयमंधयथाविधि ॥ ५९ ॥ तीर्थयात्राक्रमेणैवब्रह्महत्याप्रणश्यति ॥ नमस्कृत्यततोदेवं सुराःकाशीपुरंयुः ॥ ६० ॥ यज्ञोपस्करमादाय तत्रचेष्टोमस्वोत्तमः ॥ पौष्करन्नैमिषारण्यंकुरुक्षेत्रं तथापुनः ॥ ६१ ॥ केदारंभैरवंतीर्थं गङ्गासागरसङ्गमम् ॥ ओर्ध्वनीर्थप्रयागञ्च प्रभासंशशिभूषणम् ॥ ६२ ॥ बभ्रमुस्सर्ततीर्थानि पृथिव्यांयानिकानिच ॥ कृष्णमस्यशरीरार्द्धमर्द्धगौरनिरीक्ष्यच ॥ ६३ ॥ विस्मयंपरमंजम्बुसर्वदेवगणस्तथा ॥ वाराणसीपुरीं गत्वा सुरा

राजा इन्द्र आप से पूछने के वास्ते आये हैं ॥ ५८ ॥ ब्रह्महत्या का मोक्ष जिस प्रकार होवे वैसा आपकरै तब महादेवजी बोले कि काशी में विधिपूर्वक अश्वमेधयज्ञ करके ॥ ५९ ॥ तीर्थयात्रा के क्रम करके ही ब्रह्महत्या नष्ट होती है तदनन्तर महादेव को नमस्कार करके देवता काशीपुरी को जानें हुये ॥ ६० ॥ यज्ञका सामान लेकर वहां यज्ञों में उत्तम अश्वमेध यज्ञ किया गया फिर पुष्कर, नैमिषारण्य तथा कुरुक्षेत्र ॥ ६१ ॥ केदार, भैरवतीर्थ, गंगासागरसंगम, ओर्ध्वतीर्थ, प्रयाग, प्रभास और शशिभूषण ॥ ६२ ॥ पृथ्वी में जितने कुछ तीर्थ रहे उन सब में घूमने रहे परब्रह्म इन्द्र का आश्राय शरीर काला और आधा गोरा देवगण ॥ ६३ ॥

सब देवगण परम विस्मय को प्राप्तहुये फिर काशीपुरी को जाकर देवताओं ने इन्द्र से कहा ॥ ६४ ॥ कि यह काशीपुरी अन्तरिक्ष में विद्यमान कहीं गई है इसके समान और पुरी नहीं है इसके पांच कोसके मध्यमें ब्रह्महत्या नहीं आती है ॥ ६५ ॥ हे देव ! हे देवराज ! हे शतक्रतो ! पुराणोंमें सुनाजाता है कि जबतक गंगाव काशीव संगम में पापी रहता है ॥ ६६ ॥ तबतक ब्रह्महत्या नहीं आती इससे निकल गयेपर फिर प्रवेश करती है ॥ ६७ ॥ तब काशीजी बोलों कि ब्रह्महत्या के हरने में नर्मदा को छोड़कर हम कोई समर्थ नहीं हैं ॥ ६८ ॥ ब्रह्महत्या जिस तरह नष्ट होती है वह उपदेश हम तुम को देती हैं नर्मदा के दक्षिण भाग में शाण्डिल्या और नर्मदाके

विज्ञापयन्ति तम् ॥ ६४ ॥ अन्तरिक्षे पुरीख्याता वाराणस्य समातथा ॥ पञ्चक्रोशान्तरतस्या ब्रह्महत्या न संप्रति ॥ ६५ ॥ पुराणेश्रूयते देव देवराज शतक्रतो ॥ यावत्तिष्ठति गङ्गायां वाराणस्यां समागमे ॥ ६६ ॥ न तावद्ब्रह्महत्या तु निर्गमे पुनराविशति ॥ ६७ ॥ काश्यवाच ॥ नाहं समर्था हरणे मुक्त्वा काचित्कुलपगम् ॥ ६८ ॥ ब्रह्महत्या यथानश्येदुपदेशं ददामि ते ॥ शाण्डिल्यानर्ममदायोगे याम्येभागे तु नार्ममे दे ॥ ६९ ॥ तत्र स्नात्वा महाराज त्रीणि लिङ्गानि चार्चयेत् ॥ पञ्चब्रह्मे श्वरन्देवं पुष्पेश्वरमथापरम् ॥ ७० ॥ तृतीयन्तु तथा शक्र लिङ्गैर्वैमर्थाणि दले श्वरम् ॥ शिवेन कीर्तितं पूर्वं पार्वत्याः पणमुत्स्य च ॥ ७१ ॥ काशीपुर्ण्यावचः श्रुत्वा देवदेवः शतक्रतुः ॥ तन्देशं समनुप्राप्य सर्वस्नानादिकं व्यधात् ॥ ७२ ॥ तत्क्षणाद्विव्यदेहश्च सूर्यसंक्रमणयौ ॥ शरीरात्तस्य निर्गत्य ब्रह्महत्या हवासवम् ॥ ७३ ॥ अस्य तीर्थस्य माहात्म्यादेकहत्या तैव वका ॥ ब्रह्महत्या सहस्रं हि तमस्सूर्योदये यथा ॥ ७४ ॥ तीर्थेऽस्मिन्नविशेद्धत्या योजनानि चतुर्दश ॥ एतस्मिन्नन्तरे शक्रं प्र

योग में ॥ ६६ ॥ स्नान करके हे महाराज ! वहाँ पञ्चब्रह्मेश्वरदेव और पुष्पेश्वर और वैमर्था तीसरे स्थण्डिलेश्वरलिङ्ग इन तीनों लिङ्गों को पूजन करे यह महादेव करके पूर्व समयमें पार्वती और स्वामिकार्त्तिक से कहा गया है ॥ ७० ॥ देवताओं के देवता इन्द्र काशीपुरी के वचन को सुनकर उसी देशको प्राप्त होकर सब स्नान आदि कर्म को किया ॥ ७२ ॥ उसी क्षण दिव्यदेह होकर सूर्य के समीप प्राप्त हुये उन इन्द्र के शरीर से निकल कर ब्रह्महत्या इन्द्र से बोली ॥ ७३ ॥ कि इस तीर्थ के माहात्म्य से आपही की एक ब्रह्महत्या क्या है हजारों ब्रह्महत्यायें नष्ट होती हैं जैसे सूर्यके उदय में अन्धकार नष्ट होता है ॥ ७४ ॥ इस तीर्थ में चौदह

योजन से हत्या प्रवेश नहीं करती इसी अन्तर में इन्द्र से प्रत्यक्ष नर्मदाजी बोली ॥ ७५ ॥ कि हे महाराज ! तुरहारा कल्याण हो अब इस समय आप अपने घरको जावो नर्मदा के इस वचन को सुनकर नर्मदा के नमस्कार करके ॥ ७६ ॥ बड़े आनन्द से युक्त व अस्सराओं के गणोंसे व्याप्त, सिद्ध व गन्धर्वों से सेवित, दिव्य सवारी पर चढ़ेहुये ॥ ७७ ॥ इन्द्र पहले की तरह वहाँ बैठे, दिव्यछाताको लगाये हुये, अस्सराओं के गणोंसे हवा कियेजाते ॥ ७८ ॥ देवताओं के गणोंकरके स्तुति कियेजारहे अमरावतीपुरी में प्रवेश करतेहुये यह वृत्तान्त महादेव करके पार्वती व स्वामिकार्त्तिक से कहागया ॥ ७९ ॥ वही ब्रह्मर्षियों के प्रत्यक्ष मुक्तकरके हे राजन् !

त्यक्षं प्राह कल्पगा ॥ ७५ ॥ शिवस्मस्तु महाराज स्वग्रहं या हि साम्प्रतम् ॥ इति तस्या न च श्रुत्वा नमस्कृत्य तु नर्मदा
म् ॥ ७६ ॥ दिव्यं यानं समारूढो बुदा परमया युतः ॥ अप्सरोगणसङ्कीर्णं सिद्धगन्धर्वसेवितम् ॥ ७७ ॥ तत्रारूढस्मुर
पतिर्यथा पूर्वतथैव च ॥ धृतदिव्या तपत्रस्तु वीज्यमानोऽप्सरोगणैः ॥ ७८ ॥ स्तूयमानस्मुरगणैः प्रविवेशामरावतीम् ॥
शिवेन कथितं ह्येतत्पार्वत्याः पश्य सुखस्य च ॥ ७९ ॥ अयातु कथितं राजंस्तव ब्रह्मर्षिपूर्वकम् ॥ ८० ॥ इति श्रीस्कन्दपुरा
णे रेवाखण्डे ब्रह्महत्याच्छेदनो नाम विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥ * ॥ * ॥

युधिष्ठिर उवाच ॥ भूयश्चेच्छाम्य ग्रहं श्रोतुं नर्मदातीर्थकीर्तनम् ॥ तृप्तिर्नैवाधिगच्छामि शृण्वन्नपि महामुने ॥ १ ॥
इदानीं श्रोतुमिच्छामि रेवाकुब्जासमागमम् ॥ आख्यानमसहितं ब्रह्मन्कथयस्व प्रसादतः ॥ २ ॥ कुब्जिकाकर्मणो
न त्रिषु लोकेषु विश्रुता ॥ एतन्नस्त्वं परं ब्रह्मन् संशयं छेत्सुमहसि ॥ ३ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ शृणुराजन्कथां दिव्यां सर्व
आप से कहागया ॥ ८० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे रेवाखण्डे प्राकृतभाषाऽनुवादं ब्रह्महत्याच्छेदनो नाम विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥ * ॥ * ॥

युधिष्ठिर बोले कि फिर भी हम नर्मदातीर्थ का कीर्तन सुननेकी इच्छा करते हैं हे महामुने ! सुनते भी हम तृप्तिको नहीं प्राप्तहोते ॥ १ ॥ अब इस समयमें हम नर्मदा और कुब्जाके समागमको सुननेकी इच्छा करते हैं सो हे ब्रह्मन् ! आख्यानकरके सहित अपनी प्रसन्नतासे कहो ॥ २ ॥ किस कर्मकरके कुब्जिका तीनों लोकों में विदितहुई है ब्रह्मन् ! हमारे इस बड़े संशयको काटनेकेलिये आप योग्यहो ॥ ३ ॥ तब मार्कण्डेयजी बोले कि हे राजन् ! सबपापोंको नाश करनेवाली दिव्यकथाको

मुनो जोकि महादेवही करके पार्वती और स्वात्मिकार्त्तिकसे हमारे प्रत्यक्षकहीगई है ॥ ४ ॥ और ब्रह्माआदि ऋषि और महादेवजीके अनुचारी गणोंके भी प्रत्यक्षही कही गई अनेकनक्षत्र सूर्यही के योगसे जगत् के प्रकाश करनेवाले हैं ॥ ५ ॥ चन्द्रमा और सूर्यही के समीप होनेपर आकाशमें नक्षत्र प्रकाश करते हैं पितर देवता और मनुष्यों को संसारमें सुदृ के तारने में नर्मदा को छोड़कर और नदी नहीं समर्थ होसक्ती वहां जिन्होंने स्नान कियाहै वे स्वर्गको जातेहैं और जो मरेहैं वे फिर उत्पन्न नहीं होते ॥ ६ । ७ ॥ एक हजार चान्द्रायण और वैसेही दश हजार ब्रह्मकुर्वं नर्मदाजल के पीने के बराबर होते या नहीं ॥ ८ ॥ तिलोदकके देनेसे पितरोंकी अन्नय

पापप्रणाशिनीम् ॥ कथितामीश्वरेणैव पार्वत्याः परमुखस्यमे ॥ ४ ॥ ऋषीणांब्रह्ममुख्यानां गणानांचानुचारिणा
म् ॥ नानाऋक्षाणिसूर्यस्य जगदुद्योतकारिणः ॥ ५ ॥ शशिसूर्योपगमने ताराभान्तिनमस्तले ॥ नान्यापयस्विनी
शक्ता संसारार्णवतारणे ॥ ६ ॥ पितृदेवमनुष्याणां सुक्त्वा चैवतुकल्पगाम् ॥ तत्रस्नातादिवंयान्ति ये मृतानपुनर्भवाः ॥
७ ॥ चान्द्रायणसहस्रं च ब्रह्मकूर्चायुतं तथा ॥ नर्मदातोयपानेन तुल्यं भवतिवानवा ॥ ८ ॥ तिलोदकप्रदानेन पितृणां
प्रीतिरन्नया ॥ गायन्ति पितरोगाथां तथैव च पितामहाः ॥ ९ ॥ मातामहाद्यास्सततं सर्वे एव परस्परम् ॥ अपि स्यात्स्व
कुलेस्माकं पुत्रः परमधार्मिकः ॥ १० ॥ हविस्ति तल्युतं दद्याद्वोरेवासलिलाङ्घितम् ॥ वर्षलक्षं तथा तेन तृप्तायामः पराङ्ग
तिम् ॥ ११ ॥ यज्ञक्रियाकृता तेन समग्राभूरिदक्षिणा ॥ एतत्ते कथितं राजञ्छिवेनोक्तं यथापुरा ॥ १२ ॥ स्वाराचिषेन्त
रे प्राप्ते आदिकल्पे कृत्युगे ॥ मागयांगच्छ्वकौन्तेय मागङ्गा मासरस्वतीम् ॥ १३ ॥ तत्र गच्छन्तु पश्वेऽष्टयत्र कुब्जासनर्म

प्रीति होतीहै पितर, पितामह व मातामह आदि सभी आपसमें निरन्तर गाथाको गाते हैं कि कोई भी हमारे कुलमें परमधार्मिक पुत्रहोवे ॥ १० ॥ जो नर्मदाके जलसे पूजित तिलोंसे युक्त खीरको देवे उसरो एकलाख वर्षतक तृप्तहुये हम परमगति को प्राप्तहोवे ॥ ११ ॥ उसकरके बड़ी दक्षिणावाला मानो सब यज्ञकर्म किया गया स्वाराचिषे मन्वन्तरमें आदिकल्पके सत्ययुगके प्राप्त होनेपर हे राजन् ! महादेवकरके पूर्वकालमें जैसा कहागया वही सुभकरके आपसे कहागया तिससे हे कौन्तेय !

गया, गंगा और सरस्वती को मतजावो ॥ १२१३ ॥ हे नृपश्रेष्ठ ! जहाँ नर्मदा करके सहित कुब्जाहै वहाँको जावो काशी, प्रयाग, गंगासागरसंगम ॥ १४ ॥ केदार, कनखल, प्रभास, शशिभूषण, हरिदचन्द्रपुर, चान्द्र, श्रौशैल, त्रिपुरान्तक ॥ १५ ॥ माहेन्द्र, मलय, गोकर्ण, महावल, कालञ्जर, नीलकण्ठ, धोडालेगये हैं पाप जिसकरके ऐसा व्यम्बक ॥ १६ ॥ रुद्रकोटि, हिमस्थान, भैरव और महापथ ये व और भी तीर्थ उक्तार्थकी सोलहवी कलाको नहीं प्राप्तहोते ॥ १७ ॥ पुराणमें कहे हुये और भी अनेक प्रकार के हजारों तीर्थ ऐसेही हैं ब्रह्मा, विष्णु और महादेवकरके इसका प्रमाण सिद्धिके वास्ते कहागया है ॥ १८ ॥ नर्मदा और कुब्जाके समा-

दा ॥ वाराणसीप्रयागञ्च गङ्गासागरसङ्गमम् ॥ १४ ॥ केदारं कनखलं च प्रभासं शशिभूषणम् ॥ हरिश्चन्द्रपुरं चान्द्रं श्रीशैलं त्रिपुरान्तकम् ॥ १५ ॥ माहेन्द्रं मलयं चैव गोकर्णञ्च महाधलम् ॥ कालञ्जरञ्च नीलकण्ठञ्च व्यम्बकं धूतकिल्बिषम् ॥ १६ ॥ रुद्रकोटिं हिमस्थानं भैरवञ्च महापथम् ॥ तीर्थान्येतानि चान्यानि कलान्नाहन्ति षोडशीम् ॥ १७ ॥ नाना तीर्थसहस्राणि पुराणेकीर्तितानि च ॥ ब्रह्मविष्णुशिवोक्तं हि तत्प्रमाणं हि सिद्ध्यै ॥ १८ ॥ सोमप्रसिद्धामावास्या रेवा कुब्जासमागमे ॥ एरण्ड्यां च एण्डवेगायां रेवया सहसङ्गमे ॥ १९ ॥ राजन्दर्शयदासोमः संविशेद्रविमण्डले ॥ व्यतीपाते च संक्रान्तौ वैधृतौ विषुवे तथा ॥ २० ॥ दक्षोत्तरायणे चैव षडशीतिमुखे तथा ॥ दर्शे स्याद्विंशतिगुणं व्यतीपाते समांशतः ॥ २१ ॥ संक्रमे वैधृतौ राजञ्च तार्द्धपरिकीर्तितम् ॥ अमासोमसमायोगे राहुसोमसमागमे ॥ २२ ॥ कुरुक्षेत्राच्छतगुणं पुण्यमाह शिवस्स्वयम् ॥ विल्वाम्रकंसिद्धलिङ्गं ब्रह्महत्याव्यपोहनम् ॥ २३ ॥ दर्शनात्स्पर्शनात्तस्य शिव

गममें सोमवती अमावास्या प्रसिद्धहै एरण्डी और चण्डवेगाके नर्मदाकरके सहित समागममें भी वही अमावास्या प्रसिद्धहै ॥ १९ ॥ हे राजन् ! जिस समयमें अमावास्या को सूर्यमण्डलमें चन्द्रमा प्रवेशकरै वह दिन व्यतीपात, संक्रान्ति, वैधृति वैसेही विपुत्र ॥ २० ॥ दक्षिणायन, उत्तरायण और षडशीतिमुख में उसी प्रकार का फल होताहै अमावास्या को बीसगुना और व्यतीपात में बराबर फलहोताहै ॥ २१ ॥ और हे राजन् ! संक्रान्ति और वैधृतिमें पचासगुना कहागया है व अमावास्या और चन्द्रमा के योगमें अथवा राहु और चन्द्रमा के योगमें ॥ २२ ॥ कुरुक्षेत्रमें सौगुने पुण्यको महादेवजी ने आपही कहाहै वहाँ बिल्वाम्रक नामका सिद्धलिङ्ग

ब्रह्महत्या का नाश करनेवाला है ॥ २३ ॥ उसके दर्शन व स्पर्शनसे महादेवजीके लोकमें पूजित होता है और दूसरा कुब्जेश्वरलिंग है उसको मनुष्य नहीं देखपाते हैं ॥ २४ ॥ वह नर्मदा और कुब्जिकाके मध्यमें है नागकन्याओं करके पूजाजाता है स्वरोचिष मन्वन्तरमें आदिकल्प के सत्ययुग के प्राप्तहोनेपर ॥ २५ ॥ कालाग्नि रुद्रके समान, करोड सूर्यके समान तेजवाला, जलतेहुये अग्निके तुल्य प्रभावाला, पातालसंगमको फाड़कर ॥ २६ ॥ देवताओं के बुलानकी इच्छा करके हे नृपो-चम ! अकारसे एक जौभर छोटा कुब्जेश्वरलिंग नर्मदा के मध्यमें उठताहुआ ॥ २७ ॥ इस चराचर लोककी पृथिवीमें जितने तीर्थहै वे सब इससे आघाजौभर कम

लोकेमहीयते ॥ कुब्जेश्वरन्तथैवान्यन्नतत्पश्यन्तिमानवाः ॥ २४ ॥ नर्मदाकुब्जिकामध्ये नागकन्याभिरच्यते ॥ स्वरोचिषेन्तरेप्राप्ते आदिकल्पेकृतेयुगे ॥ २५ ॥ कालाग्निरुद्रसंकाशं भित्त्वापातालसङ्गमम् ॥ सूर्यकोटिसमप्रख्यं प्रदीप्तज्वलनप्रभम् ॥ २६ ॥ उत्थितं कल्पगामध्ये देवावाहनकाम्यया ॥ अंकारस्ययवैकेनहीं नलिङ्गं नृपोत्तम ॥ २७ ॥ पृथिव्यां या नितीर्थानि लोकेस्मिन्सचराचरे ॥ हीनान्यस्माद्यवाङ्मन सत्यमेतच्छिवोदितम् ॥ २८ ॥ तत्रयस्त्यजतिप्राणानमासोमसमागमे ॥ दिव्ययानसमारूढः स्तूयमानोप्सरोगणैः ॥ २९ ॥ धृतदिव्यातपत्रस्तु सर्वालङ्कारभूषितः ॥ त्रिशच्छतसहस्राणि वसेच्छिवपुरेशुभे ॥ ३० ॥ त्यजेद्धितत्रयः प्राणान्नवशस्स्ववशोपिवा ॥ दशवर्षसहस्राणि राजाविद्याधरेपुरे ॥ ३१ ॥ रन्तिदेवश्चक्रवर्ती शक्रतुल्योमर्हापतिः ॥ अयोध्याधिपतिः श्रीमान्सर्वधर्मभृतां वरः ॥ ३२ ॥ कण्वाश्रमपदेरम्ये सुरासुरनिषेविते ॥ आख्यानसहितं राजञ्छृणुवेदयथाक्रमम् ॥ ३३ ॥ तीर्थसंख्याप्र

हैं यह महादेव करके सत्य कहागया है ॥ २८ ॥ अमावास्या और चन्द्रमा के योग में जो वहां प्राण छोड़ता है वह दिव्य सवारीपर सवार और अप्सराओं के गणों करके स्तुति कियाजाता ॥ २९ ॥ दिव्यछाता को धारण कियेहुये, सब आम्षणों सेभूषित, तीसलास वर्षतक उत्तम महादेव के पुरमें वास करताहै ॥ ३० ॥ परवश व अपने वशहोकर जो वहां प्राणोंको छोड़ताहै वह दश हजार वर्षतक विद्याधरों के पुरमें राजा होताहै ॥ ३१ ॥ इन्द्रके तुल्य पराक्रमवाले अयोध्याके स्वामी सब धर्मधारियों में श्रेष्ठ श्रीमान् चक्रवर्ती राजा रन्तिदेव ॥ ३२ ॥ देवता और दैत्योंकरके सेवित रमणीक कण्वमुनि के आश्रममें यज्ञ करतेहुये हे राजन् ! उस आख्यानके

सहित जिस क्रमसे हम जानते हैं तिमको तुम सुनो ॥ ३३ ॥ इसमें तीर्थोंकी संख्याका प्रमाण व पुराना इतिहास है एक समयमें कार्तिकीको पर्वतोंमें उत्तम कैलास विषे महादेवजीके समीप ॥ ३४ ॥ ब्रह्मा, विष्णु और इन्द्र इत्यादिक देवता जातेहुये वहां करोड़ों गणोंकरकेयुक्त, पर्वतीजी करके सहित महादेवजी बैठेहुयेथे ॥ ३५ ॥ इसीप्रकार नन्दी, स्कन्द, देवता और दैत्यों करके सेवित महाकाल, नदियां, समुद्र, पर्वत और करोड़ों तीर्थ भी विद्यमान रहे ॥ ३६ ॥ उनके मध्यमें स्कन्दजी उठकर वचन बोलेतेहुये कि हे शङ्कर ! ये किसके विमान आकाशमें प्रकाश करते हैं ॥ ३७ ॥ जिनमें सुवर्णकेपरकोटे और फाटकवाले गाने व नाचनेकी आवाजकरके स्त्रियोंके मनके हरनेवाले

माणञ्च इतिहासपुरातनम् ॥ हरान्तिकेचकार्तिक्यां कैलासेपर्वतोत्तमे ॥ ३४ ॥ ब्रह्मादयोगतास्तत्र विष्णुशक्रपुरो गमाः ॥ उमयासहितोरुद्रो गणकोटिसमन्वितः ॥ ३५ ॥ नन्दिस्कन्दमहाकालसुरासुरनिषेवितः ॥ सरितस्सागराः शैलास्तीर्थानांकोटयस्तथा ॥ ३६ ॥ तेषामध्येसमुत्थायस्कन्दोवचनमब्रवीत् ॥ कस्यैतानि विमानानि दीव्यन्तेदि विशङ्कर ॥ ३७ ॥ साप्तभौमाष्टहारम्या हेमप्राकारतोरणाः ॥ गीतन्तयनिनादेन कामिनीनांमनोहराः ॥ ३८ ॥ ईश्वर उवाच ॥ शृणुस्कन्दमहाभाग कथ्यमानंयथोदितम् ॥ तीर्थदानप्रभावेण तीर्थज्येष्ठक्रमेणतु ॥ ३९ ॥ येमृतानम्म दातारि पर्वतेऽमरकण्टके ॥ माहेश्वरादितीर्थेषु भृगुकञ्चावसानतः ॥ ४० ॥ इमानिन्यानितीर्थानि लिङ्गमूर्तिधराणि च ॥ सरितश्चापिगङ्गाद्यास्तासुदानप्रभावतः ॥ ४१ ॥ एतत्तेकथितंस्कन्द हर्म्यास्सन्तिसमुद्धृताः ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥

रमणीक सातरचौककोमकान शोभित होरहे हैं ॥ ३८ ॥ तब महादेवजी बोले कि हे स्कन्द ! जैसा कहागया है अब कहेजाते उस वृत्तान्तको सुनो तीर्थोंमें दान के प्रभावकरके व तीर्थों में ज्येष्ठतीर्थ के क्रमकरके जो होता है उसको कहते हैं ॥ ३९ ॥ नर्मदा के तटमें व अमरकण्टक पर्वत में व भृगुकञ्चतक माहेश्वरादि तीर्थोंमें जो मरे है ॥ ४० ॥ उनके अथना ये जो लिगरूप मूर्तियोंके धारण करनेवाले तीर्थ है व गंगाआदि नदियां हैं उनमें दान करने के प्रभावसे अर्थात् दान करनेवालों के ॥ ४१ ॥ उड़तेहुये विमानों में ये महल विद्यमान हैं हे स्कन्द ! यह तुमसे कहागया तब मार्कण्डेयजी बोले कि हे महाराज ! इसीप्रकार पूर्वकाल में पर्वतों में श्रेष्ठ

कैलास पर्वत बिषे ॥ ४२ ॥ शङ्करजी से तीर्थोंको ब्रह्माजी विधिपूर्वक पूछतेहुये कि पृथिवीपर सब देवखात, तड़ाग वैसेही समुद्र और पर्वतोंसे उत्पन्नहुई गंगाआदि सब नदियां हैं हे देव ! उनमें उत्तम कितनी हैं सो आप अपनी प्रसन्नता से कहें ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ तब महादेवजी बोले कि परम पवित्र पापोंके नाश करनेवाले तीर्थ को हम कहते हैं कौतुक से तुम करके नदियों में उत्तम नदी पूछीगई ॥ ४५ ॥ सो सब नदियों के मध्यमें नर्मदा उत्तम है तीनोंलोकोंमें सुन्दर यहां सबकी माता नर्मदाही नदीहै ॥ ४६ ॥ तब ब्रह्माजी बोले कि गंगाजीको छोड़कर आपकरके नर्मदा क्यों वर्णन कीजातीहै यह सब लोकों और सब देवताओंके विशेष विरुद्धहै ॥ ४७ ॥ तब

एवंपुरामहाराज कैलासेपर्वतोत्तमे ॥ ४२ ॥ ब्रह्मापप्रच्छतीर्थानां शङ्करंविधिपूर्वकम् ॥ देवखातानिसर्वाणि सरितस्मा
गरास्तथा ॥ ४३ ॥ नद्यस्सर्वाश्चमृष्टे गङ्गाद्यागिरिसम्भवाः ॥ उत्तमाःकतिचिद्देव कथयस्वप्रसादतः ॥ ४४ ॥ हरउ
वाच ॥ कथयामिपरतीर्थं पवित्रंपापनाशनम् ॥ कौतुकेनत्वयापृष्टा नदीनामुत्तमानदी ॥ ४५ ॥ सर्वासांसरितामध्य
उत्तमासप्तकल्पगा ॥ सर्वेषांजननीचेह नदीत्रैलोक्यसुन्दरी ॥ ४६ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ सुरसिन्धुपरित्यज्य नर्ममदावर्य
तेकथम् ॥ विरुद्धसर्वलोकानां देवानांचविशेषतः ॥ ४७ ॥ ब्रह्माणस्तुवचःश्रुत्वा अगस्त्योवाक्यमब्रवीत् ॥ मध्येपदेनि
युक्तश्च वक्तुमेवन्नयुज्यते ॥ ४८ ॥ धर्मार्त्सर्वेदेमूलाब्राह्मणवेदसम्भवाः ॥ वेदहीनानसिद्ध्यन्ति यज्ञदानविधिक्रि
याः ॥ ४९ ॥ स्वयम्भूर्भगवाञ्छम्भुः शम्भुश्चभगवान्हरिः ॥ वेदाश्चभगवाञ्छम्भुः कल्पगाशम्भुसम्भवा ॥ ५० ॥
अव्यक्ताव्यक्तरूपेण जगतःकारणेच्छया ॥ संहारसृष्टिरूपेण प्रलयोत्पत्तिकारिणी ॥ ५१ ॥ भगीरथनेमिनीता हरिणा

ब्रह्माके वचनको सुनकर अगस्त्यजी वचन बोले जो पूछा नहीं गयाहै उसको वातोंके मध्यमें इसप्रकार कहनेको योग्य नहींहै परन्तु हम कहतेहैं ॥ ४८ ॥ कि वेदही जिनका मूलहै ऐसे सबधर्महैं और ब्राह्मण वेदोंके आश्रयहैं वेदोंके बिना यज्ञदानआदि विधिरूपकर्म सिद्ध नहीं होते ॥ ४९ ॥ भगवान् महादेवही ब्रह्माहैं और भगवान् महादेवही विष्णुहैं और वेदभी भगवान् महादेवही हैं नर्मदाजी भी महादेवहीसे उत्पन्नहुई हैं ॥ ५० ॥ जगत के वल्याण की इच्छा से सूक्ष्मरूपवाली आप स्थूलरूप से विद्यमान

हुई संहार और सृष्टिरूपकरके प्रलय और उत्पत्तिकी करनेवाली हैं ॥ ५१ ॥ और भगीरथ के रथकी पुटियों की गड़गड़ाहट से लाई हुई व हरिकरके यहां उतारी गई गंगा सो जह्मुनि करके खुल्लू से पीडाली गई ॥ ५२ ॥ क्रोधको प्राप्त हो रहे मुनि उनको पीके ध्यानमें तत्पर स्थित हुये देवताओं की हजार वर्ष तक वे गङ्गा उन जह्मके पेटमें स्थित रहों ॥ ५३ ॥ तब देवताओं को बड़ा विस्मय व कुतूहल हुआ ब्रह्मा आदि सब देवता उनके आश्रमको जाकर ॥ ५४ ॥ शापकी शङ्का से घबड़ा रहा है मन जिनका ऐसे वे देवता मुनिसे बोले कि हे मुने ! पापोंकी नाश करनेवाली पवित्र महानदी को आप छोड़ दें ॥ ५५ ॥ लोकोंके सन्तापको हरनेवाली यह नदी

नावतारिता ॥ गङ्गा सा जह्मनापीता मुनिना चुलुकेन च ॥ ५२ ॥ क्रुद्धः पीत्वा मुनिस्तान्तु स्थितो ध्यानपरायणः ॥ दिव्यं वर्षसहस्रान्तु सातुतस्योदरे स्थिता ॥ ५३ ॥ विस्मयो देवतानां हि समापेदे कुतूहलम् ॥ ब्रह्माद्या देवतास्सर्वा गत्वा तस्याश्रमं प्रति ॥ ५४ ॥ शापशङ्काकुलात्मानो मुनिं विज्ञापयन्ति ते ॥ महानदीं मुने सुञ्च पवित्रां पापनाशिनीम् ॥ ५५ ॥ मर्त्ये बहुतु सानित्यं लोकसन्तापहारिणी ॥ देवता ऋषिप्रोक्तेन मुक्ता तेन महानदी ॥ ५६ ॥ मुक्ता तु जह्मना तत्र तेन सा जाह्नवी स्मृता ॥ सा तु किं वर्यते ब्रह्मन् पीता या जह्मना पुरा ॥ ५७ ॥ मया चुलुकमन्त्रेण शोषिता स्सप्तसागराः ॥ हरिश्च भगवाञ्जम्भुश्च मृगश्रमभगवानिति ॥ ५८ ॥ विन्ध्यसप्तशैलराजो नर्मदायाः प्रभावतः ॥ तेनोद्धता देवमार्गा वर्तमानानि वारिताः ॥ ५९ ॥ यज्ञपर्वतपर्यङ्का बुभौ विन्ध्यमुतौ पुरा ॥ मयानि वारितौ बुध्वा देवमार्गं प्रवृत्तये ॥ ६० ॥ एवं विगर्हितो ब्रह्मा

मनुष्यलोकमें नित्यही बहा करै देवता व ऋषियों करके कहे गये जह्मकरके महानदी छोड़ दी गई ॥ ५६ ॥ वहां जह्मकरके छोड़ी गई इससे वे गंगाजी जाह्नवी कही गई हे ब्रह्मन् ! वह क्या वर्यन की जावे जो पूर्वकाल में जह्मकरके पीडाली गई ॥ ५७ ॥ हम करके खुल्लू मात्र से सातों समुद्र पीडाले गये इससे विष्णु हैं सो भगवान् महानदी हैं और महादेव हैं सो विष्णु ही हैं ॥ ५८ ॥ नर्मदा के प्रभाव से सातों कुलपर्वतों का राजा विन्ध्याचल हुआ वृद्धिको प्राप्त हुये विन्ध्याचलकरके देवमार्ग रोक दिया गया ॥ ५९ ॥ यज्ञपर्वत और पर्यङ्क ये दोनों विन्ध्याचल के पुत्र पूर्वकाल में वृद्धिको प्राप्त हो रहे सो मुष्मकरके देवमार्ग की प्रवृत्तिके वास्ते बुद्धिकरके निवारण कर दिये गये ॥ ६० ॥ इस

प्रकार आपस के संवाद से ब्रह्माजी समझा दियेगये तदनन्तर अगस्त्य पर सब देवता प्रसन्नहुये हे भारत ! ॥ ६१ ॥ तत्र देवताओं के नक्कारे बजे और फूलोंकी वर्षा भी हुई हे राजन् ! यह पुराना इतिहास तुमसे कहागया ॥ ६२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेवाखण्डेप्राकृतभाषास्तुवादेकुब्जामाहात्म्यएकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥ ॐ ॥

युधिष्ठिरजी पूछते है कि नर्मदा और कुब्जा के समागममें रमणीक कएवमुनिके आश्रममें बुद्धिमान् रन्तिदेवका यज्ञ किस प्रकारहुआ ॥ १ ॥ हम सम्पूर्ण सुननेकी इच्छा करते हैं महादेवजी के कहहुयेको कहो तब मार्कण्डेयजी बोले कि समागम सुननेकी कायनाकरहे सब मुनिलोग सुने ॥ २ ॥ यह पुराना इतिहास पुण्यरूप मुष्करके

संवादेनपरस्परम् ॥ ततस्तुष्टास्सुरास्सर्वे ह्यगस्त्यं प्रतिभारत ॥ ६१ ॥ देवदुन्दुभयोनेदुः पुष्पवृष्टिः पपातच ॥ इति ते कथितो राजन्नितिहासः पुरातनः ॥ ६२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे रेवाखण्डेकुब्जामाहात्म्यएकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ कथन्निवर्तितो यज्ञो रन्ति देवस्य धीमतः ॥ कएवाश्रमपदे रम्ये रेवाकुब्जसमागमे ॥ १ ॥ निखिलं श्रोतुमिच्छामि कथयस्व शिशिवोदितम् ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ शृण्वन्तु मुनयस्सर्वे श्रोतुकामास्स समागमम् ॥ २ ॥ मया ख्यातमिदं पुण्यमितिहासं पुरातनम् ॥ शण्डामर्कौथराजर्षिर्भानसो ब्रह्मणस्सुतः ॥ ३ ॥ सूर्यतेजस्समप्रख्यस्तेजसा प्रज्वलन्निव ॥ ब्रह्मिष्ठस्सत्यवादी च वेदवेदाङ्गपारगः ॥ ४ ॥ ब्रह्मचारी जितक्रोधस्सर्वभूतहितरतः ॥ षडशीतिसहस्राणि मुनीनां दीप्ततेजसाम् ॥ ५ ॥ तपस्तत्रैव तप्यन्ते भोजोपायविचिन्तकाः ॥ कन्दमूलफलाहारजलाहारास्तथा परे ॥ ६ ॥ मासोपवासिनश्चान्ये तथा पक्षोपवासिनः ॥ चरन्तिके सान्तपनं प्राजापत्यं तथैव च ॥ ७ ॥ चान्द्रायणपराश्रान्ये

कहागया है शण्डामर्कनामके राजर्षि ब्रह्मके मानसपुत्र हुये ॥ ३ ॥ जो कि सूर्यके गमान तेजवाले, तेजकरके प्रकाश करहे. ब्रह्मिष्ठ, सत्यके कहनेवाले, वेद और वेदांगों के जाननेवाले ॥ ४ ॥ ब्रह्मचारी, क्रोधको जीतेहुये, सब प्राणियों के हितमें तत्पर हुये व प्रचण्ड तेजवाले छियासी हजार मुनि ॥ ५ ॥ मोक्षके उपाय के विचारनेवाले कन्द, मूल और फलों के आहार करनेवाले तथा कोई जलाहार करनेवाले व कोई महीनाभरके व्रत करनेवाले व कोई पक्षभरके व्रत करनेवाले उसी आश्रम में

तप करतेहुये कोई सान्तपन करते हैं और वैसेही कोई प्राजापत्य करतेहैं ॥६॥ ७॥ व कोई चान्द्रायण में तत्पर हैं व कोई ब्रह्मकूर्चपान करते हैं सब शण्डामर्क के आश्रित होरहे सबके गुरुवेही थे ॥ ८॥ वेदकी ध्वनियों करके आकाश और पृथिवीसे शब्द करारहेहैं वहां हवन कियेगये अग्नि धूमसे रहित होतेहुये ॥ ९॥ काग और क्रोधसे रहित, इन्द्रियों के जीतनेवाले, ब्रह्मा के समान ब्राह्मणोंकरके युक्त शण्डामर्क का दिव्य आश्रम होताहुआ ॥ १०॥ इसी प्रकार सब कामना के फलोंसे युक्त, फूले वृक्षोंकरके अतिशोभित होताहुआ सब आश्रयों के गुरु रन्तिदेव राजा होतेहुये ॥ ११॥ पर्वतों व जलों और जंगलोंकरके सहित पृथिवी रन्तिदेव

ब्रह्मकूर्चास्तथापरे ॥ शण्डामर्काश्रितास्सर्वे सर्वेषां गुरुरेव च ॥ ८ ॥ वेदध्वनितनिर्घोषैर्दिवभूमिव्यनादयन् ॥ निर्धूमो
ज्वलनस्तत्र हूयमानो हुताशनः ॥ ९ ॥ कामक्रोधविनिर्मुक्तैर्ब्रह्मचारिजितेन्द्रियैः ॥ शण्डामर्काश्रमादिव्यं युक्तं ब्रह्म
समद्विजैः ॥ १० ॥ तथा कामफलैर्वृक्षैः पुष्पितैस्त्वतिशोभितम् ॥ सर्वाश्रमगुरुश्चासीदन्तिदेवो महीपतिः ॥ ११ ॥
शासिताधरणीतेन सशैलवनकानना ॥ ननराः शोकमात्सर्यरोगदारिद्र्यदुःखिताः ॥ १२ ॥ चिरायुषः प्रजास्सर्वा ध
नधान्यसमाकुलाः ॥ स्वयं कामदुघागावः पृथिवीसम्यशालिनी ॥ १३ ॥ कौशेयपट्टसूत्रं च सर्वेषां विमलंचितम् ॥ प
र्जन्यः कामवर्षी च काले काले ऋतावृतौ ॥ १४ ॥ नानापुराणि रम्याणि हेमरत्नान्वितानि च ॥ नानाचामरमाला च हे
मरत्नावगुणिठता ॥ १५ ॥ किङ्किणीजालसञ्जन्ना मणिमालाविलम्बिता ॥ बुद्बुदैरर्द्धचन्द्रैश्च पारिजातकदम्बकैः ॥ १६ ॥

करके पालितहुई उनकी राज्यमें शोक, मात्सर्य, रोग और दरिद्रकरके दुःखित मनुष्य नहीं होतेहुये ॥ १२॥ सब प्रजा दीर्घ आयुवाली धन और अन्नसे युक्त होतीहुई व
गौत्रे अभीष्ट समय में दुग्धकी देनेवाली और पृथिवी अन्नसे पूर्णहुई ॥ १३॥ सबके रेशमी निर्मलवस्त्र होतेहुये व समय २ में ऋतु २ में इच्छानुकूल वर्षा करनेवाले
मेघ होतेहुये ॥ १४॥ अनेक शहर सुवर्ण और रत्नोंसे युक्त रमणीक होतेहुये व रत्नों के कामवाली सोनेकी डांडीसे युक्त चामरों की माला जहां विद्यमान है ॥ १५॥
सोनेकी बुद्बुदघटिकाओं से व्याप्त मणियों की माला जहां हरएक स्थान में लटक रहीहैं व बुलबुला के आकारवाले और आधे चन्द्रमा के समान आकारवाले और

पारिजात व कदम्बक नामके मन्दिरों करके ॥ १६ ॥ और शहरपनाह के दिव्यफाटकोंकरके युक्त अनेक प्रकार के आनकनाम के बाजाओं करके शब्दायमान हो रही अनेकफूलों से भरेहुये नाच व गाने के महलों से शोभित ॥ १७ ॥ व जहां सुवर्ण के खजानों करके युक्त होनेसे सब पृथ्वी सुवर्णमयी होरही है व देवताओं के देवता महादेव का मन्दिर अनेक उत्तम रत्नोंसे जडित जहां विद्यमान होरहा है ॥ १८ ॥ जैसा कि मेरुपर्वत, कैलास में विराजमान है रत्नोंसे जडित शिला व अनेक शिखरों से शोभित ॥ १९ ॥ रत्नोंकी मालाओं से भूषित, चन्द्रशाला (धरके ऊपर का घर) व भरोलाओं करके युक्त व पचास सातचौकवाले उसीप्रकार दश हजार

गोपुरैश्चमहादिव्यैर्नानानकनिनादिता ॥ नाट्यहर्म्यैश्चसङ्गीतैर्विचित्रकुसुमावृतैः ॥ १७ ॥ भूमिर्हंसमयीचैव चा
चिंतायत्रसञ्चितैः ॥ प्रासादश्चमहारत्नैर्देवदेवस्यशूलिनः ॥ १८ ॥ मेरुमन्दरकैलासे यादृशश्चविराजते ॥ नानारत्न
शिलाभिश्च अनेकशिखरोत्करैः ॥ १९ ॥ चन्द्रशालागवाक्षैश्च रत्नमालाविभूषितैः ॥ शतार्द्धसास्रभूमैश्च तथैवायुत
भूमिकैः ॥ २० ॥ चन्द्राननपताकामिदंज्ञैश्चापिविराजिता ॥ एवंविधानुपश्रेष्ठ सर्वशोभासमन्विता ॥ २१ ॥ रन्तिदेव
स्यराजर्षेरयोधयानगरीशुभा ॥ इत्थंशशासधरणीं यथाशक्रस्त्रिविष्टपम् ॥ २२ ॥ नृपयोगसहस्रैश्च भूमिष्टुण्डदाह
सः ॥ पुरोधसंवशिष्टश्च पप्रच्छमुनिसत्तमम् ॥ २३ ॥ कस्मिंस्तीर्थेतुनिर्विघ्ना यज्ञसिद्धिर्महामुने ॥ इतितस्यवचःश्रुत्वा
राजर्षेर्मुनिसत्तमः ॥ २४ ॥ उवाचरन्तिदेवश्च वशिष्ठोब्रह्मवित्तमः ॥ दुर्वासाःकश्यपोगर्गोऽनारदःपर्वतःक्रतुः ॥ २५ ॥

अग्निश्चशौनकश्चैव बृहस्पतिरथाङ्गिराः ॥ भृगुरत्रिस्तथावत्स्यः पुलस्त्यःपुलहस्तथा ॥ २६ ॥ काश्यपोगालवश्चैवऋ
चौकवाले महलों से व्याप्त ॥ २० ॥ चन्द्राकार पताका व यज्ञोंकरके प्रकाशित हे नृपश्रेष्ठ ! सब शोभासे युक्त इस प्रकार की ॥ २१ ॥ राजर्षि रन्तिदेवकी अयोध्यान-
गरी मोक्षको देनेवाली होतीहुई इस प्रकार पृथिवी का पालन करतेहुये जैसे इन्द्र स्वर्गको पालते हैं ॥ २२ ॥ वे राजा अनेक हजार यज्ञोंकरके पृथिवी को जलादेते
हुये व मुनियों में श्रेष्ठ अपने पुरोहित वशिष्ठ से पूछतेहुये ॥ २३ ॥ किं हे महामुने ! किस तीर्थ में निर्विघ्न यज्ञकी सिद्धि होतीहै उन राजर्षिके इस वचन को सुनकर
मुनिश्रेष्ठ ॥ २४ ॥ अतिशयकरके ब्रह्मके जाननेवाले वशिष्ठजी ने रन्तिदेव से यह कहा कि दुर्वासा, कश्यप, गर्ग, नारद, पर्वत, क्रतु ॥ २५ ॥ अग्नि, शौनक, बृह-

रपति, आङ्गिर, भृगु, अत्रि, वत्स्य, पुलस्त्य वैसेही पुलह ॥ २६ ॥ काश्यप, गालत्र, ऋष्यशृङ्ग, विभाण्डक व हम ये मुनि तथा और ब्रह्मतेजवाले सब मुनि ॥ २७ ॥
हे नराधिप ! इन सबका और हमारा भी यही मत है कि सब तीर्थों में श्रेष्ठ पुराणों में कहाहुआ तीर्थ ॥ २८ ॥ व और तीर्थों से करोड़का करोड़गुना पुण्य बहा होता है
जहां नर्मदा विद्यमान है तब राजाने उन वशिष्ठजी से यह कहा कि ऐसाही है आपकरके यह सत्य कहागया है ॥ २९ ॥ तदनन्तर रोवक, मन्त्री और पुराहित को
आज्ञा देतेहुये कि यज्ञका सामान शीघ्रही तैयार कियाजावे ॥ ३० ॥ तदनन्तर अनेक देशोंको शीघ्र जानवाले दूतोंको भेजतेहुये राज्यमें डंका पीटदियाजावे कि राजा

प्यश्रुङ्गोविभाण्डकः ॥ अहञ्चमुनयश्चैते मुनयो ब्रह्मवर्चसः ॥ २७ ॥ सर्वेषां मतमेवैव समैवैव नराधिप ॥ अन्यतीर्थो
त्परं तीर्थं पुराणेपरि कीर्तितम् ॥ २८ ॥ कोटिकोटिगुणं पुण्यं कल्पगायत्रवर्तते ॥ एवमेवेति तं ब्रूयात्सत्यमेतत्स्वयं योदित
म् ॥ २९ ॥ ततश्चाज्ञापयामास भृत्यामात्यपुरोधसः ॥ यज्ञोपस्करसम्भारः शीघ्रमेव विधीयताम् ॥ ३० ॥ आदिदे
शततोदूना नानादेशेषु सत्वरान् ॥ घोषणाक्रियतां राष्ट्रं समागच्छन्तु भूमिषाः ॥ ३१ ॥ आगतस्ते तत्सर्वं रन्ति देवस्य
शासनात् ॥ यथाविभवशोभाल्याः शक्रतुल्या महीभृतः ॥ ३२ ॥ गावश्च दशलक्षाणि सवत्साश्च पयस्विनीः ॥ हेमभा
रैर्भूषिताश्च कामधेनुपयस्विनीः ॥ ३३ ॥ लक्षमेकंहयानान्तु अश्रुतं दन्ति नान्तथा ॥ मणिमणि कयरत्नानां तत्र सं
ख्या न विद्यते ॥ ३४ ॥ अनेकानि सहस्राणि करभानाश्च भारत ॥ दिव्ययानं समस्तस्य सान्तःपुरपरिच्छदः ॥ ३५ ॥

नानातूर्यैर्गीतवाद्यैर्भक्तलातीरमागतः ॥ तत्र भाण्डपकुण्डानि यज्ञधूपहिरण्यपायाः ॥ ३६ ॥ नानामष्टधाणि
लोग हमारे यज्ञमें आवे ॥ ३१ ॥ तदनन्तर रन्ति देव की आज्ञा से अपने विभवके अनुसार शोभासे युक्त, इन्द्रके तुल्य वे सब राजालोग आतेहुये ॥ ३२ ॥ व दूव
वाली, चकड़ों करके सहित, सुवर्ण के आभूषणों से भूषित, दानधेनु के तुल्य दश लाख गौवं ॥ ३३ ॥ और एक लाख घोड़े तथा दश हजार हाथी व मणि और
माणिक आदि रत्नोंकी तो वहा कुछ मंख्याही नहीं है ॥ ३४ ॥ हे भारत ! और अनेक हजार उट यज्ञमें जातेहुये व रानी और सामान के गहित दिव्य सवारी पर
सवार होकर ॥ ३५ ॥ अनेक प्रकार के गीत व वाजाओं से युक्त राजा नर्मदातट को जातेहुये वहा मण्डप व कुण्ड और यज्ञ के खम्भा चुनगुनी के बनानेगये ॥ ३६ ॥

अनेक प्रकारके भक्ष्य और विविध प्रकारके भोज्य तैयार कियेगये व अनेक प्रकारके गहने और रत्नोंके ब्राह्मण लोग भूषित कियेगये ॥ ३७ ॥ रानीकरके सहित राजा यज्ञदीक्षाको ग्रहण करतेहुये तदनन्तर शोभित नर्मदाके तटमें यज्ञ प्रवृत्त कियागया ॥ ३८ ॥ वहाँ धुवां करके रहित अग्नि प्रत्यक्ष जलतेहुये ब्रह्मा और इन्द्रआदि देवता, लोकपाल, मरुद्गण ॥ ३९ ॥ विश्वदेवा, साध्य, वसु, चन्द्रमा, सूर्य, नदियां, समुद्र, पर्वत, सब तीर्थ व पहाड़ी नदियां ॥ ४० ॥ मातृगण, यक्ष, नाग और राजसों करके सहित, सिद्ध गन्धर्व, पार्वती करके सहित महादेव व देवताओं के ईश्वर विष्णु ॥ ४१ ॥ इन सबके यज्ञभागों को राजा पृथक् २ देतेहुये हे राजन् ! इसी अन्तर में

भोज्यानि पक्वानिविधानि च ॥ नानाभरणैश्च ब्राह्मणास्समलंकृताः ॥ ३७ ॥ यज्ञदीक्षाञ्च जग्राह पत्न्या सह नराधिपः ॥ ततः प्रवर्तितो यज्ञो रेवातीरे सुशोभने ॥ ३८ ॥ तत्र ज्वलति निर्द्धूमः प्रत्यक्षो हव्यवाहनः ॥ ब्रह्मशक्रादयो देवा लोकपाला मरुद्गणाः ॥ ३९ ॥ विश्वे देवाश्च साध्याश्च वसवश्चन्द्रमास्करौ ॥ सरितस्सागराश्चैलास्सर्वतीर्थानि चापगाः ॥ ४० ॥ मातरस्सिद्धगन्धर्वास्सयक्षोरगराक्षसाः ॥ उमयासाहितोरुद्रो विष्णुश्चैव सुरेश्वरः ॥ ४१ ॥ सर्वेषां यज्ञमागांश्च पृथक् पृथक् गल्पयत् ॥ एतस्मिन्नन्तरे राजन्वेदध्वनिनिवेदितम् ॥ ४२ ॥ विस्मिता ह्यभवन् सर्वे श्रुत्वा स्मृतिभयानकम् ॥ दानवा बलवन्तो ह्य ते कौञ्चपुरवासिनः ॥ ४३ ॥ महाबाहुस्सुबाहुश्च दैत्यकोटि समावृताः ॥ आगतान् मम दातीरे स्मृत्य बलवाहनाः ॥ ४४ ॥ दक्षिणां दिशमाश्रित्य यज्ञविघ्नं विचक्रिरे ॥ ब्रह्माद्या मुनयस्सर्वे भयत्रस्ताश्च कम्पिरे ॥ ४५ ॥ उवाच वचनं ब्रह्मा देवतुल्यं पुरोधसम् ॥ मया विधिर्विस्मृतश्च मन्त्रादीनां महाभयात् ॥ ४६ ॥ उवाच रन्ति देवश्च

वेदोंकी ध्वनिसे सूचित कियेहुये ॥ ४२ ॥ स्मरण करनेसे भयानक कर्मको आज सुनकर वे कौञ्चपुरके रहनेवाले, जलवाले, सब दानव लोग विस्मित हुये ॥ ४३ ॥ व करोड़ों दैत्योंसे युक्त व सेवक, सेना और सवारियों करके सहित महाबाहु और सुबाहुआदि राजस नर्मदा के तटमें आतेहुये ॥ ४४ ॥ दक्षिण दिशा के आश्रित होकर यज्ञमें विघ्नको करतेहुये तब ब्रह्माआदि सब मुनि भयसे घबड़ायेहुये कांपने लगे ॥ ४५ ॥ देवताओं के तुल्य पुरोहित से ब्रह्माजी वचन बोले कि महाभय से मन्त्रादिकों की

विधिको हम भूलगये ॥४६॥ फिर रन्तिदेवसे कहा कि तुम यज्ञके विधनको निवारण करो तब ब्रह्मिष्ठ रन्तिदेव राजा उस वचन को सुनकर ॥४७॥ बोले कि जो हमारे सत्य व महादेव की भक्तिमें तत्पर बुद्धिहोवे तो दुष्ट दैत्य व राजस व और भी जो विधनके करनेवाले होंवे ॥ ४८ ॥ वे सब नाशको प्राप्त होजावें जैसे सूर्यके उदय में अन्धकार नष्ट होजाता है पापों से रहित देवता हमारे सामर्थ्य को देखें ॥ ४९ ॥ हे राजन् ! इम प्रकार कहकर तदनन्तर कुशाग्रसे नर्मदाके प्रवाह को दुष्टोंकी रक्षा के वास्ते दक्षिणदिशामें कल्पित करतेहुये ॥ ५० ॥ और वहां शङ्ख, चक्र और गदाके धारण करनेवाले विष्णुभी राजाकरके स्मरण कियेगये और देवयान के

यज्ञध्वंसनिवारय ॥ ब्रह्मिष्ठस्तद्वचःश्रुत्वा रन्तिदेवोमर्हपतिः ॥ ४७ ॥ यदिमेविद्यतेसत्यं शिवभक्तिपरामतिः ॥ दे
त्यराजसदुष्टाश्च येचान्येविघ्नकारकाः ॥ ४८ ॥ सर्वेतेविलयंयान्ति तमस्सूर्योदयेयथा ॥ पश्यन्तुममसामर्थ्यं देवा
विगतकल्मषाः ॥ ४९ ॥ एवमुक्त्वाततोर्राजन्कुशाग्रेणतुनार्मदः ॥ प्रवाहोदुष्टरत्नार्थं दक्षिणस्यांप्रकल्पितः ॥ ५० ॥
विष्णुश्चैवस्मृतस्तत्र शङ्खचक्रगदाधरः ॥ उत्तरेदेवयानस्यप्रवाहःपरिकल्पितः ॥ ५१ ॥ एवंकृत्वातुघोरेण देवमन्त्रेण
सुव्रतः ॥ जुहावाहवनीयेतु कुण्डेबिल्वाभ्रवेतसम् ॥ ५२ ॥ तस्मात्समुत्थितंलिङ्गं ज्वलत्कालानलप्रभम् ॥ नान्तोनो
दिर्नमद्व्यञ्च तस्यलिङ्गस्यभारत ॥ ५३ ॥ ततस्सुरासुरास्सर्वे चक्रुस्तोत्रमिदम्पुरः ॥ ॐ नमोभुवनेशाय आदिदेव
नमोस्तुते ॥५४॥ चराचरव्यापकाय सृष्टिसंहारकारिणे ॥ स्तोत्रंश्रुत्वामहादेवः शान्तरूपोजगत्पतिः ॥ ५५ ॥ बभूवपरम

उत्तरभी रक्षाके वास्ते प्रवाह कल्पित कियागया ॥ ५१ ॥ इसप्रकारकरके सुन्दर व्रतवाले राजा घोर देवमन्त्रसे आहवनीयकुण्डमे बेल और अमलबेतसका हवन करते हुये ॥ ५२ ॥ तब उस कुण्ड से जलतेहुये कालाग्नि के तुल्य प्रभावाला लिंग उठताहुआ हे भारत ! उस लिंगका आदि, मध्य और अन्त नहीं दीखता ॥ ५३ ॥ तदनन्तर सब देवता व दैत्य इस स्तोत्रको आगे पढ़तेहुये कि चौदहो भुवनों के मालिक के लिये नमस्कारहै व हे आदिदेव ! आपके लिये नमस्कारहै ॥५४॥ चराचर में व्यापक व सृष्टि और संहार करनेवाले के लिये नमस्कारहै शान्तरूप जगत् के पति महादेवजी स्तोत्र को सुनकर ॥ ५५ ॥ चराचर के गुरु महादेव परमप्रसन्नहुये

तत्र बुद्धिमान् रन्तिदेव राजाके ऐसे उस कर्मको देखकर ॥ ५६ ॥ दानवोंका राजा वहा आकर रन्तिदेवका पूजन करताहुआ और मुझको आज्ञा दीजात्रे मे क्या करूं ऐसे कहताहुआ ॥ ५७ ॥ तब हे भारत ! हेरातेहुये राजा वचनबोले कि अतिथिके सत्कार करने के समयमें तुम प्राप्तहुयेहो इससे तुमको यज्ञभाग हम देतेहैं ॥ ५८ ॥ देवता और दानवों को सब यज्ञभाग यथायोग्य देकर बड़ेआनन्दसे युक्त हुये ॥ ५९ ॥ वे सब दानव अपनी२ सवारीपर सवार होकर देवताओं करके सेवित जगत्पति (शिव) जी के बिल्वाम्रक लिंग नाम ॥ ६० ॥ महादेवको नमस्कार करके रन्तिदेवकी स्तुति करतेहुये तदनन्तर आनन्दहो रहे सब देवता रन्तिदेवका सत्कार

प्रीतश्चराचरगुरुस्तदा ॥ तदृष्टद्वातादृशंकर्म रन्तिदेवस्यधीमतः ॥ ५६ ॥ आगत्यदानवाधीशो रन्तिदेवमपूजयत् ॥ आदेशोदीयतांमहां किङ्करोमीतिचाब्रवीत् ॥ ५७ ॥ उवाचवचनंराजा प्रहसन्निवभारत ॥ आतिथ्यकालेसम्प्राप्ते यज्ञभागंददामिते ॥ ५८ ॥ देवानांयज्ञभागश्च दानवानांचसर्वशः ॥ परिकल्प्यथान्यायं मुदापरमयायुतः ॥ ५९ ॥ स्वस्वयानंसमारुह्य दानवास्तेचसर्वशः ॥ लिङ्गं बिल्वाम्रकन्नाम जुष्टदैवैर्जगत्पतेः ॥ ६० ॥ नमस्कृत्यमहादेवं रन्तिदेवंप्रतुष्टुबुः ॥ ततःप्रमुदितादेवा रन्तिदेवमपूजयन् ॥ ६१ ॥ उमयासहदेवेशं गणकोटिसमन्वितम् ॥ ब्रह्माविष्णुश्चदेवाश्चवरन्दत्त्वादिवंययुः ॥ ६२ ॥ गतेषुतेषुदेवेषुरन्तिदेवःपुरंययौ ॥ कदाचिद्वृत्रहातत्र ब्रह्महत्यासमावृतः ॥ ६३ ॥ रेवाकुब्जासभायोगे सर्वस्नानादिकंव्यधात् ॥ तत्क्षणादिव्यदेहस्तु सूर्यसंकाशतेजसः ॥ ६४ ॥ शरीरात्तस्म्यनिर्गत्य ब्रह्महत्याहवासवम् ॥ अस्यतीर्थस्यमाहात्म्यादेकहत्यातैवैवका ॥ ६५ ॥ ब्रह्महत्यासहस्रंहितमस्मूर्योदयेयथा ॥ ती

करतेहुये ॥ ६१ ॥ पार्वती करके सहित और कराड़ों गणोंकरके युक्त महादेव और ब्रह्मा, विष्णु व सब देवता वरको देकर स्वर्गको जातेहुये ॥ ६२ ॥ उन देवताओं के गयेपर रन्तिदेव भी अपनेपुर को जातेहुये किसी समयमें ब्रह्महत्या करके युक्त इन्द्र वहा ॥ ६३ ॥ नर्मदा और कुब्जा के समागम मे सब स्नानआदि कर्म करते हुये उसीक्षण मे दिव्यदेह होगये व सूर्यके समान तेजवाले ॥ ६४ ॥ उनके शरीरसे निकलकर ब्रह्महत्या इन्द्रसे बोली कि इस तीर्थके माहात्म्य से एक तुम्हांगीही

ब्रह्महत्या क्या है ॥ ६५ ॥ इस तीर्थमें चौदह योजनके अन्तर्गत हजारों ब्रह्महत्या नाशहोती हैं जैसे सूर्योदय होनेपर अंधकार नष्टहोजाता है ॥ ६६ ॥ इसी अन्तर में नर्मदा प्रत्यक्ष इन्द्रसे बोली कि हे महाभाग ! तुम्हारी शान्तिहो अब इससमय यथेच्छ अपने स्थानको जावो ॥ ६७ ॥ उसके इस वचन को सुनकर नर्मदा को नमस्कार करके अप्सराओं के गणोंसे संयुत व दिव्य गन्धर्वा के नादसे भरेहुये दिव्य विमानपर सवार होकर बड़े आनन्द से युक्त हुये जैसे उस विमान में बैठेहुये पहले शोभित होतेथे उसीप्रकार सुशोभित हुये ॥ ६८ ॥ व दिव्य छाता को लगाये, अप्सराओं के गणों से हवा कियेजारहे, देवताओं के गणोंकरके स्तुति किये

थेस्मिन्विनशेद्यावद्योजनानिचतुर्दश ॥ ६६ ॥ एतस्मिन्नन्तरे शक्रं प्रत्यजं प्राह कल्पगा ॥ शान्तिस्तेस्तु महाभाग यथेष्टं गच्छ सांप्रतम् ॥ ६७ ॥ इति तस्यावचः श्रुत्वा तानमस्कृत्य कल्पगाम् ॥ दिव्ययानं समारुह्य मुदा परमया युतः ॥ ६८ ॥ अप्सरोगणसंयुक्तं दिव्यगन्धर्वनादितम् ॥ तत्रारूढस्सुरपतिर्यथापूर्वतथैव सः ॥ ६९ ॥ धृतदिव्यातपत्रस्तु वीज्यमानोऽप्सरो गणैः ॥ स्तूयमानस्सुरगणैः प्रविवेशामरावतीम् ॥ ७० ॥ शिवेन कथितं पूर्वं पार्वत्याः षण्मुखस्य च ॥ मया च कथितं राज्ञं जंस्तव ब्रह्मर्षिपूर्वकम् ॥ ७१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे रेवाखण्डे बिल्वाग्रकोत्पत्तिवर्णनो नाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ हरिकेश इति ख्यातश्शालग्रामे द्विजोत्तमः ॥ शिलोञ्जवृत्तिर्धर्ममात्मा सत्यव्रतपरायणः ॥ १ ॥ ब्राह्मणी सुव्रता तस्य धर्मपत्नी यशस्विनी ॥ पतिव्रता महाभागा पतिशुश्रूषणे रता ॥ २ ॥ कालेऽतुं मती सा तु ऋतु

जाते हुये अमरावती में प्रवेश करते हुये ॥ ७० ॥ पूर्वकाल में यह इतिहास महादेव करके पार्वती और स्वामिकार्तिकके प्रत्यक्ष कहा गया है राजन् ! इन ब्रह्मर्षियोंके प्रत्यक्ष सुभक्तके भी तुमसे कहा गया ॥ ७१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे रेवाखण्डे प्राकृतभाषानुवादे बिल्वाग्रकोत्पत्तिवर्णनो नाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥ ॐ

मार्कण्डेयजी बोले कि शालग्राम में शीला बानकर भोजन करनेवाले, धर्मात्मा, सत्यव्रतमें तत्पर, ब्राह्मणों में उत्तम हरिकेश इस नामसे प्रसिद्ध होते हुये ॥ १ ॥ उनकी धर्मपत्नी ब्राह्मणी, उत्तम व्रतवाली, बड़ी यशवाली, पतिव्रता, पतिकी सेवा में तत्पर, बड़भागिनी होती हुई ॥ २ ॥ वह स्त्री समयपर रजोवती हुई और वे ब्राह्मण

भी ऋतुकाल बिपे अपनी स्त्रीमें गमनकिया उसके कपिलापुरमें सौ पुत्र उत्पन्न होतेहुये ॥ ३ ॥ शीलाकी वृत्तिके योगकरके वे ब्राह्मण एक सेरभर अन्न पैदा करतेहुये व लुधासे दुर्बल होरहे वे बालक बड़े दीनहोकर रोतेहुये तदनन्तर ॥ ४ ॥ बालकों को लुधित देखकर माता बड़े शोकसे विह्वल होरही और बहुत दुःख से विकल निन्दा करतीहुई ब्राह्मणी अपने पति से बोली ॥ ५ ॥ कि वृद्ध माता व पिता और पतिव्रता स्त्री व छोटे बालक ये यन्नकरके पोषण करने के योग्य होते हैं यह सनातनधर्महै ॥ ६ ॥ अपने पालन करनेयोग्य जीवोंका और पुत्रोंका तो विशेषही पोषण करना धर्महै ब्राह्मणी के इस वचन को सुनकर शोकसे विह्वल ॥ ७ ॥ हरिकेश हे

गार्मीचसद्विजः ॥ तस्यपुत्रशतं जज्ञेकपिलापुरमाश्रितम् ॥ ३ ॥ शिलोच्छृत्तिर्योगेन प्रस्थमेकमुपार्जयत् ॥ क्षुत्क्षामां स्तेचशिशवो रुदन्तिकरुणन्ततः ॥ ४ ॥ शिशून्बुभुक्षितान्दृष्ट्वा माताशोकार्तिविह्वला ॥ गर्हयन्तीसुदुःखार्ता ब्राह्मणी पतिमब्रवीत् ॥ ५ ॥ वृद्धौचमातापितरौ साध्वीभार्य्यासुतःशिशुः ॥ भरणीयाःप्रयत्नेन एषधर्ममस्सनातनः ॥ ६ ॥ भरणंपोष्यवर्गस्य पुत्राणाञ्चविशेषतः ॥ एतच्छ्रुत्वातुवचनं ब्राह्मण्याःशोकविह्वलः ॥ ७ ॥ हरिकेशोब्रवीद्वाक्यं ब्राह्मणीं प्रतिभारत ॥ नमयासञ्चितंधान्यं नवित्तंशुहमेधिना ॥ ८ ॥ ग्रामेग्रामेभिन्नयित्वा सविभागंपृथक्पृथक् ॥ ददामि परमंधान्यं नान्यांवृत्तिन्तुकारये ॥ ९ ॥ ब्राह्मणयुवाच ॥ बालहत्यासमंयापं बालेवृद्धेक्षुधादिते ॥ तस्मात्प्रतिग्रहंकृत्वा भर्तव्याममपुत्रकाः ॥ १० ॥ पुत्रेणलोकंजयति पुत्रेणसुखमेधते ॥ पुत्रेणस्वर्गमाप्नोति पितॄणांपरमागतिः ॥ ११ ॥ अम्बरीषस्यनृपतेर्योध्याधिपतेःकिल ॥ वर्तमानेमहायज्ञे कुरुक्षेत्रेद्विजोत्तमाः ॥ १२ ॥ गताश्चब्राह्मणास्तत्र प्रति

भारत ! ब्राह्मणी से वचन बोलते हुये कि मुझ गृहस्थकरके अन्न व धन नहीं संचय कियागया ॥ ८ ॥ गांव २ में भिक्षा मांगकर यथाभाग अलग २ संवको उत्तम अन्न देतेहैं दूसरी जीविका तो हम करतेही नहीं ॥ ९ ॥ तब ब्राह्मणी बोली कि बालक व वृद्धके भूखों मरने से बालहत्या के बराबर पापहोता है इससे दान लेकर हमारे पुत्र पोषण करनेयोग्य हैं ॥ १० ॥ पुत्रसे लोकको जीतता है और पुत्रसे सुख बढ़ता है पुत्रसे स्वर्गको पाताहै पुत्र पितरों की परमगति है ॥ ११ ॥ असिद्ध है कि अयोध्याके स्वामी राजा अम्बरीष के कुरुक्षेत्रमें होरहे महायज्ञ में शालग्रामके रहनेवाले उत्तम ब्राह्मण दान लेनेकी इच्छा करके गयेथे वहां वे ब्राह्मणलोग गाँव

और सुवर्ण धनको पाकर ॥ १२ । १३ ॥ अनेक आभूषणों की शोभासे युक्त व भलीभांति अलङ्कारों से संयुत आये है सो जहाँ सब शालग्रामनिवासी ब्राह्मणगये रहे वहाँ आपभी जावो ॥ १४ ॥ तदनन्तर पुत्रोंके वास्ते हरिकेश भी रक्षित कुरुजाङ्गलमें होरहे राजा अम्बरीषके महायज्ञमें ॥ १५ ॥ ब्राह्मणी और पुत्रोंको लेकर कु-रुक्षेत्र को जातेहुये जहाँ वे ऋत्विज लोग रहे उस यज्ञमें प्रवेश किया ॥ १६ ॥ और वे ब्राह्मण वेदके स्वरसे आयेहुये देवताओं को आकाश में देखकर स्थितहुये जिस क्षेत्रके प्रभावसे यम, अङ्गिरा, मुनि विष्णु, वशिष्ठ व दत्त ॥ १७ ॥ प्रसन्नमनवाले बृहद्विष्णु, शातातप, पराशर, आपस्तम्ब, शुक्राचार्य, व्यास, कात्यायन, बृह-

अहजिघृक्षया ॥ गाःकाञ्चनंधनंप्राप्य शालग्रामनिवासिनः ॥ १३ ॥ नानाभरणशोभाढ्या आगतास्समलंकृताः ॥
याहियत्रद्विजास्सर्वे शालग्रामनिवासिनः ॥ १४ ॥ सुतार्थहरिकेशोथ रक्षितेकुरुजाङ्गले ॥ अम्बरीषस्यनृपतेर्वर्तमाने
महामखे ॥ १५ ॥ गृहीत्वाब्राह्मणीपुत्रान्कुरुक्षेत्रंजगामह ॥ प्रविष्टश्चाध्वरेतस्मिन्यत्रतेसन्तिऋत्विजः ॥ १६ ॥ ब्रह्म
घोषस्वरैरेव सदृष्ट्वादिविदेवताः ॥ यमोङ्गिरामुनिर्विष्णुर्वशिष्ठोदक्षएवच ॥ १७ ॥ बृहद्विष्णुःप्रसन्नात्मा शातातप
पराशरौ ॥ आपस्तम्बोशनोव्यासाःकात्यायनबृहस्पती ॥ १८ ॥ हारीतःशङ्खलिखितौ याज्ञवल्क्योथगौतमः ॥ दुर्वा
साःकाश्यपोगर्गो भारद्वाजोत्रिरेवच ॥ १९ ॥ नारदःपर्वतश्चैव पुलस्त्यःपुलहःऋतुः ॥ विभाण्डकोभृगुश्चैव शाकटो
वादरायणः ॥ २० ॥ बालखिल्याब्रह्मपुत्रा ब्रह्मतेजोवपुर्द्वराः ॥ अष्टाशीतिसहस्राणि ब्रह्मदण्डसमारुहन् ॥ २१ ॥
अम्बरीषोमहाराज दृष्ट्वाब्राह्मणपुङ्गवम् ॥ ब्रह्मर्षीस्तान्नमस्कृत्य अर्घपादौरपूजयत् ॥ २२ ॥ किमर्थमागतोविप्र

स्पति ॥ १८ ॥ हारीत, शङ्ख, लिखित, याज्ञवल्क्य, गौतम, दुर्वासा, काश्यप, गर्ग, भारद्वाज, अत्रि ॥ १९ ॥ नारद, पर्वत, पुलस्त्य, पुलह, ऋतु, विभाण्डक, भृगु, शा-
कट, बादरायण ॥ २० ॥ बालखिल्य नामके ब्रह्माजी के पुत्र, ब्रह्म तेजके धारणकरनेवाले और भी अष्टासी हजार मुनि ब्रह्मलोकको जातेहुये ॥ २१ ॥ अन हे महाराज !
अम्बरीष राजा उन श्रेष्ठ ब्राह्मण व उन ब्रह्मर्षियोंको देखकर नमस्कार करके अर्घ और पाद्य से पूजन किया ॥ २२ ॥ और कहा कि हे विप्र ! स्त्री और पुत्रोत्पत्तिके-

सहित आप किसवारते आयेहो हे सुव्रत ! हम इसको बड़ा अनुग्रह समझते हैं जो आप हम से बोलते हैं ॥ २३ ॥ आतिथ्य के समय में प्राप्तहुये आप जो उचितहो उसको मागो तब ब्राह्मण बोले कि हे भूप ! हमारे एकएक पुत्रकेलिये सौवर्ष की जीविकाकेवारते आप शीघ्र धन देवो और होमके लिये उत्तम गौ और भी सुवर्ण केभार से युक्त इश हजार गौवें ॥ २४ ॥ २५ ॥ एककरोड़ अश्वर्फी और उत्तम कपड़ा व गहना देवो राजा उस ब्राह्मण के इस वचन को सुनकर ॥ २६ ॥ उत्तम श्रद्धा से युक्त कहेहुये सब पदार्थों को देकर सवारियों से शालग्रामस्थानको शीघ्र पहुँचा देतेहुये तदनन्तर ॥ २७ ॥ यज्ञको करके वे राजर्षि बहुतकाल पर्यन्त देवताओं

समार्यस्सहपुत्रकैः ॥ अनुग्रहमिममन्ये यन्मांवदसिसुव्रत ॥ २३ ॥ आतिथ्यकालेसम्प्राप्तो याचयस्वयथोचितम् ॥
ब्राह्मणउवाच ॥ वित्तंवर्षशतंयावदैकैकायसुतायमे ॥ २४ ॥ त्वन्देहिजीवनायाशु होमधेनुंतथोत्तमाम् ॥ अयुतन्तु
गवांभूप हेमभारपरिष्कृतम् ॥ २५ ॥ कोटिमेकांहिरयस्यवस्त्रभूषणमुत्तमम् ॥ इतितस्यवचःश्रुत्वा द्विजस्यप्रथिवी
पतिः ॥ २६ ॥ श्रद्धयापरयायुक्तस्सर्वदत्त्वायथोदितम् ॥ शालग्रामपदंयानैः शीघ्रंप्रावेशयत्ततः ॥ २७ ॥ क्रतुमि
ष्ट्वासराजर्षिर्मुमुदेदेववच्चिरम् ॥ नानाविधान्समुक्त्वाथ भोगान्पलीसुतैस्सह ॥ २८ ॥ कालान्तरेततःप्राप्ते ऋषिर्मु
त्युवशङ्गतः ॥ मरुदेशेनिरुदकेब्रह्मरत्नस्त्वमागतः ॥ २९ ॥ राजप्रतिग्रहाद्दुष्टात्पुनर्जन्मनविद्यते ॥ ब्राह्मण्यंयःपरित्य
ज्य द्रव्यलोभेनमोहितः ॥ ३० ॥ विषयामिषलुब्धस्तु कुर्याद्राजप्रतिग्रहम् ॥ नरकैरैश्वेधोरे तस्येहपतनंध्रुवम् ॥
३१ ॥ वृत्तादावाग्निननादग्नाः प्ररोहन्तिघनागमे ॥ राजप्रतिग्रहाद्ब्रह्मधनप्ररोहन्तिकर्हिचित् ॥ ३२ ॥ शोचन्तिपूर्व

के तुल्य आनन्द करतेहुये व वे हरिकेश ब्राह्मण भी अपनी स्त्री व पुत्रों के सहित अनेक प्रकार के भोगोंको भोगकर ॥ २८ ॥ कालान्तर के प्राप्त होनेपर वे ऋषि मृत्युके वशको प्राप्तहुये तदनन्तर निर्जल मारवाड़ देशमें ब्रह्मराक्षस होतेहुये ॥ २९ ॥ राजा के दुष्टप्रतिग्रह लेनेसे फिर मनुष्य जन्म होना कठिन है द्रव्य के लोभ से मोहको प्राप्त होरहा जो ब्राह्मणताको छोडकर ॥ ३० ॥ विषयों में लोभको प्राप्तहोरहा यहां राजाके दानको लेताहै उसको घोर रौरवनरक में अवश्य गिरना पड़ता है ॥ ३१ ॥ दावानल से जलेहुये वृक्ष वर्षाकालमें फिर जाम उठतेहैं परन्तु राजा के प्रतिग्रह से जलेहुये ब्राह्मण कभी नहीं हरियाते ॥ ३२ ॥ पूर्वजन्म व और

जन्मोंके कियेहुये पापोंको शोच करते हैं अब वह ब्राह्मण भी कहता है कि स्त्री और पुत्रोंके पीछे मैं नरकसमुद्र में प्राप्तहुआ ॥ ३३ ॥ ऐसे कहकर पुत्र और स्त्रीके सहित कुरुक्षेत्रको गया वहां भुंखा बारह वर्षतक रहकर ॥ ३४ ॥ जूठा व मैला भोजन करताहुआ राक्षसीयोंनि को प्राप्तहोइहा काशी, प्रयाग, पुष्कर वैसेही नैमिष ॥ ३५ ॥ गङ्गासागरसंगम वैसेही कनखल, महापवित्र केदार, प्रभास और शशिभूषणआदि ॥ ३६ ॥ सब तीर्थोंमें घूमकर पापयोंनि में रमताहुआ हे नृप ! चिन्ता करनेलगा कि यह मेरी देह किसीतरह नहीं छूटती ॥ ३७ ॥ इससे अब अपने पाप नी शुद्धिके वारते अग्निमें प्रवेशकरूं तब पुत्रोंके सहित व उत्तम व्रतवाली उसकी।

जन्मानि अन्यजन्मकृतानिच ॥ भार्य्यापुत्रकृतैर्नैव गतोहन्नरकार्णवम् ॥ ३३ ॥ एवमुक्त्वाकुरुक्षेत्रं पुनदारादिभि रसह ॥ तत्रद्वादशवर्षाणि उपित्वास्तुबुधक्षितः ॥ ३४ ॥ उच्चिष्टं कर्मलं भुङ्क्ते राक्षसीयानिमाश्रितः ॥ वाराणसीप्र यागन्तु पुष्करन्नीमिषंतथा ॥ ३५ ॥ गङ्गासागरसम्भेदक्षेत्रं कनखलंतथा ॥ केदारञ्च महापुण्यं प्रभासं शशिभूषण म् ॥ ३६ ॥ अटित्वासर्वतीर्थानि पापयोनिरतो नृप ॥ चिन्तयामास देहम्मे न निवृत्तं कथञ्चन ॥ ३७ ॥ तस्मात्पापवि शुद्ध्यर्थं प्रविशामि हुताशनम् ॥ भार्य्या तस्य सपुत्रा चै भर्तारं सुव्रताऽब्रवीत् ॥ ३८ ॥ किञ्चिद्विज्ञापयामित्वां यदि माम न्यसेविभो ॥ क्षणमात्रेण दुःखेन साधयामि सुखं बहु ॥ ३९ ॥ ब्राह्मणस्य हि धर्मोऽयं सर्वस्तद्वह्नि साधने ॥ तत्समाहृत्य दारूणि प्रदीप्य च हुताशनम् ॥ ४० ॥ अहं विशाम्य विधवा भर्तारं प्रथमं हुतम् ॥ न पश्यामि पतन्तं वै ज्वलनेदारु णेभृशम् ॥ ४१ ॥ उक्ता सा काशवाण्या च माते मृत्युभयं शुभे ॥ श्रूयतां मम वाक्यं हि यथा धर्मो न हीयते ॥ ४२ ॥ कु

स्त्री अपने पति ब्रह्मराक्षस से बोली ॥ ३८ ॥ कि हे विभो ! कुछ मैं आपसे कहती हूं जो आप मुझको मानतेहो तो सुनो कि मैं क्षणमात्र के दुःखसे बड़े सुखको सिद्ध करतीहूं ॥ ३९ ॥ ब्राह्मण का यह सब धर्म अग्निही से सिद्ध होताहै इससे लकड़ियों को जमाकरके और अग्नि को जलाकर ॥ ४० ॥ सौभाग्यवती मैं पहिले शीघ्र अग्निमें प्रवेश करती हूं क्योंकि अतिदारुण अग्निमें प्रथम गिरतेहुये अपने पति को मैं नहीं देखसक्ती हूं ॥ ४१ ॥ तब आकाशवाणी करके वह स्त्री कहीगई

कि हे शुभे ! तुझको मृत्युमे भय मतहोवे मेरी बातको सुनो जिससे धर्म नष्ट नहीं होगा ॥ ४२ ॥ कुब्जा और नर्मदाके समागममें ब्रह्मराक्षस छूटजाताहै वहा स्नान करके विट्वासक लिंगके पूजनसे स्वर्गको जाताहै ॥ ४३ ॥ व ब्रह्मलोक को प्राप्तहोताहै और राक्षसयोनि से मोक्ष होताहै तब ब्रह्मराक्षस बोला कि हे वराहो ! तुम कौनहो और किसकी स्त्रीहो हे यशस्विनि ! ॥ ४४ ॥ पूर्वजन्म में कियेहुये शुभकर्मोंसे प्राणियोंके अनुग्रहके वास्ते आपका दर्शन होताहै तब आकाशवाणी बोली कि सब प्राणियों की कल्याण करनेवाली प्रत्यक्ष अत्रत्यक्ष रूपवाली हम है ॥ ४५ ॥ यह कहकर वह देवी वहीं अन्तर्धान होगई व पुत्र और स्त्रीकरके सहित हरिकेश

ब्जारेवासमायोगे ब्रह्मरजोविमोक्षणम् ॥ तत्रस्नात्वा दिवंयाति विल्वाञ्जकसमर्चनात् ॥ ४३ ॥ लुरतेब्रह्मलोकंचर
चोयोनेश्चमोक्षणम् ॥ ब्रह्मराक्षसउवाच ॥ कामित्वंचवराहोहे कस्यचारियशस्विनि ॥ ४४ ॥ अनुब्रह्मार्थभूतानां पूर्वज
न्मकृतैश्शुभैः ॥ आकाशवाण्युवाच ॥ धन्याहंसर्वभूतानामव्यक्ताव्यक्तरूपिणी ॥ ४५ ॥ एवमुक्त्वा तु सादेवी तत्रैवा
न्तरधीयत ॥ पुत्रदारान्वितोनत्वा हरिकेशसुरेश्वरम् ॥ ४६ ॥ सस्त्राप्तस्सुमुदायुक्तः कुब्जारेवासमागमम् ॥ तत्र
स्नात्वा यथान्यायमर्चयित्वा महेश्वरम् ॥ ४७ ॥ हुताशनंप्रविचिह्नः स्मृत्वा देवं हरिहरम् ॥ स्वीयं गृहमिवाह्वयाः का
मक्रोधविवर्जिताः ॥ ४८ ॥ तत्क्षणाद्विव्यदेहास्तु ब्रह्मतेजोवपुर्द्वाराः ॥ दिव्ययानंसमारुह्य ब्रह्मलोकमवाप्नुयुः ॥ ४९ ॥
पुत्रदारसमायुक्तो हरिकेशो नृपोत्तम ॥ तस्य तीर्थस्य माहात्म्याद्विविदीव्यतिदेववत् ॥ ५० ॥ शतमष्टोत्तरं तत्र लिङ्गा
नां पुण्यसङ्गमे ॥ मार्कण्डेश्वरमित्येकं महेश्वरमेव च ॥ ५१ ॥ शूलपाणितथैवान्यमगस्त्येश्वरमेव च ॥ एतान्य

महादेव के नमस्कार करके ॥ ४६ ॥ बड़े आनन्द से युक्त कुब्जा और नर्मदा के समागमको प्राप्तहुये वहां सविधि स्नानकरके और महादेवका पूजन करके ॥ ४७ ॥ काम और क्रोधसे विवर्जित व क्लेशरहित हरिहरदेवको स्मरण करके अपने मकान की नाई अग्निम सब प्रवेश करतेहुये ॥ ४८ ॥ उसी क्षणसे दिव्यदेववाले ब्रह्मतेज वाले शरीर को धारण कियेहुये दिव्यसवारी पर सवार हो सब ब्रह्मलोक को प्राप्त होतेहुये ॥ ४९ ॥ हे नृपोत्तम ! पुत्र और स्त्री के सहित हरिकेश ब्राह्मण उस तीर्थ के माहात्म्य से स्वर्गमें देवताओंके समान विहार करते हुये ॥ ५० ॥ उस पवित्र संगममें एकसौ आठ लिंगहैं मार्कण्डेश्वर यह एक और महेश्वर ॥ ५१ ॥ वैसेही

अन्य शूलपाणि और अगस्त्येश्वर ये व और भी यहां सिद्धलिंग हैं ॥ ५२ ॥ हे सुव्रत ! यह सब यथार्थ आप से कहा गया कुब्जा और नर्मदा का सङ्गम देवता और दैत्योंकरके सेवन किया गया है ॥ ५३ ॥ सात कल्पतक रहनेवाली नर्मदा को जो प्रातःकाल भक्तिसे कीर्त्तन करता है वह सब पापोंसे छूटा हुआ महादेवजी के पुरको प्राप्त होता है ॥ ५४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणोरेवाखण्डेप्राकृतभाषानुवादकुब्जामाहात्म्ये त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

युधिष्ठिरजी बोले कि जिस कुब्जामें गन्धर्व, सर्प और राक्षसभी सब पापोंसे छूटे व निर्मलविच्छहये उस कुब्जाकी उत्पत्ति को ॥ १ ॥ हे महामुने ! विस्तार से न्यानिचैवेह सिद्धलिङ्गानिसन्तिवै ॥ ५२ ॥ एतत्सर्वेयथान्यायं कथितंतवमुब्रत ॥ कुब्जारेवासमायोगं सुरासुरनिषेवितम् ॥ ५३ ॥ प्रातर्यःकीर्तयेद्भक्त्या नर्मदांसप्तकल्पगाम् ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तः सशैवलभतेपुरम् ॥ ५४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणोरेवाखण्डेकुब्जामाहात्म्ये त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥ *

युधिष्ठिरउवाच ॥ समुत्पत्तिचकुब्जाया यस्याविमलमानसाः ॥ सर्वपापविनिर्मुक्ता गन्धर्वोऽरगराक्षसाः ॥ १ ॥ एतद्देशोऽस्मिन्महामुने ॥ कथयतांमुनिशार्दूल समाख्यानं पुरातनम् ॥ २ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ शृणु राजन्कथां दिव्यां सर्वपापप्रणाशिनीम् ॥ चित्राङ्गदः शक्रमुतो गन्धर्वः काममोहितः ॥ ३ ॥ समालम्ब्य कुमारिणां दशलक्षानिभारत ॥ रेमेयथेच्छया सोऽपि पश्चान्मुक्तश्चकिल्बिषात् ॥ ४ ॥ आख्यानं कथयिष्यामि यथावृत्तं पुरातनम् ॥ सुवर्णो नाम गन्धर्वस्तस्य भार्या यशस्विनी ॥ ५ ॥ हे मगभैति विख्याता शक्रस्यैव यथाशची ॥ सुता तस्यास्सुका

हम सुननेकी इच्छा करते हैं सो हे मुनिशार्दूल ! इस पुराने आख्यानको आप कहो ॥ २ ॥ तब मार्कण्डेयजी बोले कि हे राजन् ! सब पापोंकी नाश करनेवाली दिव्य कथाको आप सुनो कि इन्द्रका पुत्र चित्राङ्गद नामका गन्धर्व कामसे मोहको प्राप्त हो रहा ॥ ३ ॥ हे भारत ! दशलाख कुमारियों को लेकर इच्छानुसार रमता हुआ पीछेसे वह भी पापसे छूट गया ॥ ४ ॥ हम पुराने आख्यान को कहेंगे जैसा हुआ है सुवर्ण नामका एक गन्धर्व हंता हुआ उसकी स्त्री यशवाली ॥ ५ ॥ हे मगर्भा इस

नाम से विख्यात जैसी इन्द्रकी इन्द्राणी वैसीही होतीहुई उसकी एक कन्या कामदेवकी भी मोहनेवाली सुकामा इस नामसे विदितहुई ॥ ६ ॥ रूप और जवानी से युक्त वह कुबेरकरके ब्याहीगई पार्वतीकी सेवाके योगमें उसके पुत्रभी होताहुआ ॥ ७ ॥ केतुमाल इस नामसे विख्यात वह विद्याधरों के पुरमें राजाहुआ उसकी बड़ी रूपवाली शशिरेखा नामकी प्यारी स्त्रीहुई ॥ ८ ॥ वह मनकी रमानेवाली रति और प्रीति इन दो कन्याओं को उत्पन्न करतीहुई व वह केतुमाल अपनी कन्याओंको पाणिग्रहणपूर्वक कामदेवको देताहुआ ॥ ९ ॥ अब वे दशलाख कन्या जोकि चित्राङ्गद गन्धर्वके पास रहती थीं सब आभूषणोंमें भूषित सवारी पर चढ़ीं

मेति विदितानङ्गमोहिनी ॥ ६ ॥ रूपयौवनसम्पन्ना उढावैधनदेनसा ॥ गौर्याराधनयोगेन तस्याःपुत्रोप्यजायत ॥

७ ॥ केतुमालइतिख्यातो राजावैद्याधरेपुरे ॥ शशिरेखाप्रियातस्य माय्यवैरूपशालिनी ॥ ८ ॥ द्वेकन्येजनयामास रतिःप्रीतिर्मनोरमे ॥ ददौसकामदेवाय पाणिग्रहणपूर्वकम् ॥ ९ ॥ कन्यानांदशलक्षाणि भूषणैर्भूषितानिच ॥ तास्तु यानसमारूढाः कामरूपामनोरमाः ॥ १० ॥ विचित्रवस्त्राभरणा गौर्याराधनतत्पराः ॥ तावन्नमुज्जयतेताभिस्ताम्बूलं भोजनादिकम् ॥ ११ ॥ यावन्नकार्यंमस्माभिरितिसङ्कल्पमादधुः ॥ नित्यंतौर्यत्रिकन्तास्तु चक्रुःसर्वासमाहिताः ॥ १२ ॥ वसन्तेसमनुप्राप्ते द्रष्टुं प्रेक्षणेकम्पुरा ॥ पुष्पकेणविमानेन जग्मुस्ताइन्द्रमन्दिरम् ॥ १३ ॥ क्रीडयित्वायथा न्यायं मदिरामदविह्वलाः ॥ अट्टष्ट्वैवभवानींताश्चक्रुस्ताम्बूलभक्षणम् ॥ १४ ॥ चित्राङ्गदस्यचापारं रूपं दृष्ट्वावरा ज्ञनाः ॥ मोहितानाभिजानन्ति मदिरोन्मत्तमानसाः ॥ १५ ॥ तैश्चापिकाभितास्सर्वा गन्धर्वोर्मुदिताननाः ॥ ना

हुई यथेष्टरूपकी बनानेवाली मनकी रमानेवाली ॥ १० ॥ विचित्रवस्त्र और आभूषणोंको धारण कियेहुई पार्वतीकी सेवामें तत्पर होरहीं इस संकल्पको करतीहुई कि जबतक पार्वतीजी का पूजन न करेंगी तबतक भोजन व ताम्बूल को नहीं खावेंगी वे सब सावधान होकर पार्वतीजी के आगे नित्य नृत्य करतीहुई ॥ ११ ॥ १२ ॥ प्राचीनसमय में वसन्त के प्राप्तहोने पर उत्सव देखने के वास्ते पुष्पक विमान करके वे सब इन्द्रके मन्दिर को जातीहुई ॥ १३ ॥ मदिरा के मदसे विह्वल होरही यथेष्ट क्रीडाकरके पार्वती के दर्शन किये विनाही ताम्बूल भक्षण करतीहुई ॥ १४ ॥ वे वराहना गन्धर्वकन्या चित्राङ्गद को अपाररूप को देखकर मदिरा के मदसे मत-

वाले मनवाली मोहको प्राप्त होरहीं कुछ नहीं जानती हुई ॥ १५ ॥ उन गन्धर्वों करकेभी प्रसन्नमुखवाली सब गन्धर्वकन्या कामना की गई कामके वेगसे अनेक प्रकार के हावभावों करके स्वर्ग में कीड़ा करती हुई ॥ १६ ॥ एक वर्षके व्यतीत होनेपर वे सब गन्धर्वपुर को आती हुई फिर पार्वतीजी को देखनेके लिये उमामाहे-श्वरपुरको जाती हुई ॥ १७ ॥ तदनन्तर देवी पार्वतीको नमस्कार करके इस वचन को बोलीं कि हे ईशानि ! अपने नियम से टली हुई हम सबकी आप रक्षा करें ॥ १८ ॥ तदनन्तर पापकर्म में रमेहुये उन गन्धर्वोंपर पार्वतीजी क्रोध करती हुई और यह कहा कि जो लोग ब्रह्मोंको नष्ट करते हैं और जो लोग परल्लियोंको अष्ट

नाविधैस्तथाकायैश्चिक्रीडुर्मन्मथादिवि ॥ १६ ॥ अतीतवत्सरेतास्तु गन्धर्वपुरमागताः ॥ गौरीन्द्रपुंसमाजगमुहमा माहेश्वरम्पुरम् ॥ १७ ॥ नमस्कृत्यततोदेवीमिदंवचनमब्रुवन् ॥ रक्षस्वास्माकमीशानि च्युतानानियमात्स्वकात् ॥ १८ ॥ ततश्चुकोपदेवीतान्पापकर्मरतान्प्रति ॥ ब्रतादिकहतायेये परदारविदूषकाः ॥ १९ ॥ अपनपादुराचारास्स वलोकवहिष्कृताः ॥ तदधर्मस्यपापस्यानिष्कृतिर्दरणीतले ॥ २० ॥ कुमारिकामयेद्यस्तु कामलोभनमोहितः ॥ षष्टिर्षसहस्राणि विष्टायां जायतेकृमिः ॥ २१ ॥ एतस्मिन्नन्तराजंस्तताश्चित्राद्भद्रस्तुवन् ॥ प्रणम्यशिरसाद्देवीमिदं वचनमब्रवीत् ॥ २२ ॥ शापस्यमभयाद्भूरि विललापनराधिप ॥ अकार्यंकृतमस्माभिर्गन्धर्वतनयान्वितैः ॥ २३ ॥ प्रायश्चित्तकिमस्याद्य पापस्यगदनिष्कृतिम् ॥ उवाचवचनन्देवी गन्धर्वकाममोहितम् ॥ २४ ॥ धर्मक्रियाविलुप्त

करते हैं ॥ १६ ॥ लज्जासे रहित, बुरे आचरण करते हैं सब लोकोंके बाहर कर दियेगये उनके अर्बम व पापका प्रायश्चित्त पृथिवी में नहीं है ॥ २० ॥ जो कामके लोभसे मोहको प्राप्त होकर कुमारीकी इच्छा करता है वह साठिहजार वर्षतक विष्ठा में कीड़ाहोता है ॥ २१ ॥ इसी अन्तरमे हे राजन् ! स्तुति करताहुआ चित्राद्भद्र गन्धर्व शिरसे देवीको प्रणाम करके तदनन्तर हम वचनको बोला ॥ २२ ॥ हे नराधिप ! और शापके भयमे वह विलाप भी बहून करता हुआ और कहा कि गन्धर्वोंके पुत्रोंसे युक्त मुझकरके अयोग्यकाम किया गया ॥ २३ ॥ आज इस पापका क्या प्रायश्चित्तहोगा इसकी निष्कृति आप मुझमें कहे तब कामसे मोहित गन्धर्वसे देवी वचन बोली ॥ २४ ॥

कि धर्म कर्ममे रहित और स्वर्गसे गिरेहुये पुरुष को जो कुमारी के अष्ट करने में पाप होता है वह बड़े पुरुषों के रोये खडे करनेवाला होता है ॥ २५ ॥ कन्या के दुष्ट करनेमें जो पाप है उसका प्रायश्चित्त नहीं विधान किया गया है हमारी गन्धर्वकन्यायें मदिरा के पीनेसे मोहित करदी गई ॥ २६ ॥ कामसे मोहित तुम सब हजारों गन्धर्व इस पापकरके कुबरे, बौना और अङ्गोंसे हीन होजावोगे ॥ २७ ॥ कन्याओं के बिगाडनेके दोषसे कुबरे और वानरोंके सरीखे सुखवाले देवताओं के हजार वर्षतक मनुष्यलोक में विचरोगे ॥ २८ ॥ अपने कर्म से कियेहुये दोषकरके पृथिवीमें पापको भोगो इसप्रकार देवीकरके शाप दियेगये वे सब गन्धर्व मनुष्यलोक

स्य स्वर्गलोकच्युतस्य च ॥ कुमारीदूषणेपापं महतांलोमहर्षणम् ॥ २५ ॥ कुमारीदूषणेपापे निष्कृतिर्न विधीयते ॥ म मगन्धर्वकन्याश्च मधुपानैर्विडम्बिताः ॥ २६ ॥ यूयं त्वनेन पापेन गन्धर्वाः काममोहिताः ॥ कुब्जावामनहीनाङ्गा भविष्यथ सहस्रशः ॥ २७ ॥ दिव्यवर्षसहस्रन्तु मर्त्यलोकैश्चरिष्यथ ॥ कन्याविकृतदोषेण कुब्जामर्कटकाननाः ॥ २८ ॥ स्वकर्मकृतदोषेण पापमुञ्जन्तु भूतले ॥ एवं शप्तास्तु ते देव्या सर्वे मर्त्यसमागमन् ॥ २९ ॥ शोचन्तः स्वानि कर्मणि पूर्वजन्मकृतानि च ॥ बभ्रुस्सर्वतीर्थानि लोकैश्चैव चराचरे ॥ ३० ॥ विपस्नवदनास्सर्वे पापेनानेन कर्षिताः ॥ शापस्या न्तन्न विन्दन्ति सर्वतीर्थान् भ्रमन्त्यपि ॥ ३१ ॥ एकविंशतिलक्षाणि गन्धर्वानि तथानघ ॥ न देवान् च तीर्थानि पापस्यास्य विशुद्धये ॥ ३२ ॥ नान्यद्वायुज्यते कर्म मुक्त्वा चैव हुताशनम् ॥ कर्मणां दोषदाहेन मुञ्चामः पापकर्मणः ॥ ३३ ॥ दत्तोस्माकं महाशापो पापमार्गनिवर्तकः ॥ एतस्मिन्नन्तरे प्राप्सुस्स कुबेरस्सुराधिपः ॥ ३४ ॥ सम्प्राप्तौ नैमिषारण्ये य

को जातेहुये ॥ २९ ॥ पूर्वजन्म से कियेहुये अपने पापोंको सोचतेहुये इस चराचर लोकके सब तीर्थोंमें अमतेहुये ॥ ३० ॥ इस पापसे खींचेगये, विषादयुक्त सुखवाले सब गन्धर्व सब तीर्थोंमें अमतेहुये भी शापके अन्तको नहीं पातेहुये ॥ ३१ ॥ हे अनघ ! इक्कीसलाख गन्धर्व तथा देवता और तीर्थ इस पापकी शुद्धिके वास्ते नहीं होसके ॥ ३२ ॥ और भी अग्निको छोड़कर कोई कर्म योग्य नहीं होसका इससे कर्मोंके दोषके जलाने से हम पापकर्म से छूटजावेंगे ॥ ३३ ॥ पापकी राहका छुडा-नेवाला महाशाप हमको दिया गया है इसी अन्तर में कुबेर के सहित इन्द्र आते हुये ॥ ३४ ॥ जहाँ चित्रांगद आदि गन्धर्व रहे उसी नैमिषारण्य में प्राप्तहुये वे देव

उन गन्धर्वों को देखकर बोले कि तुम जलो मत क्षणमात्र ठहरो ॥ ३५ ॥ जबतक कि उसामहेश्वरपुर में हम जाकर तुम्हारा हाल कहूँ इस प्रकार कहकर पर्वतों में उत्तम कैलास को इन्द्र जातेहुये ॥ ३६ ॥ पार्वती करके सहित महादेव को साष्टाङ्ग प्रणामकरके बोले कि हे देवि ! हे संसारसमुद्र से तारनेवाली ! आप की जयहो ॥ ३७ ॥ यह सब चराचर त्रैलोक्य तुम्हीं से रचाहुआ है शक्तिरूप से सब प्राणियों में भी तुम्हीं व्याप्त होरही हो ॥ ३८ ॥ इत्यादि वचनों से इसप्रकार देवीजी की इन्द्र खुति करतेहुये स्तोत्रोंसे खुति कीगई महादेवीजी इन्द्र से वचन बोलीं ॥ ३९ ॥ कि तुम्हारे कौन पीड़ा उत्पन्नहुई है सो हमसे यथार्थ कहो तब हे

त्रिचिन्नाङ्गदादयः ॥ तान्दृष्ट्वासोब्रवीदेवः क्षणमात्रं प्रतीक्षत ॥ ३५ ॥ उसामहेश्वरयावद्विचिन्मगत्त्रायथोदितम् ॥ एवमुक्त्वा ययोदेवः कैलासं पर्वतोत्तमम् ॥ ३६ ॥ साष्टाङ्गचनमस्कुत्स्य उभयासहितं हरम् ॥ जयदेवि सुरेशानि संसारार्णवं तारिणि ॥ ३७ ॥ त्वया सृष्टमिदं सर्वं त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥ व्यापिनी शक्तिरूपेण सर्वेषां प्राणिनामपि ॥ ३८ ॥ इत्येव मादिभिर्वाक्यैर्देवीन्तुष्टाववासवः ॥ स्तौत्रैस्स्तुता महादेवी शक्रं वचनमब्रवीत् ॥ ३९ ॥ आर्तिः कर्तुं समुत्पन्ना यथार्थं कथयस्व मे ॥ उवाच वचनं शक्रः पार्वतीं प्रतिभारत ॥ ४० ॥ वरदायुदिमै देवि वरं दातुं त्वमिच्छसि ॥ चिन्नाङ्गदादिषु स्य मोक्षणां क्रियतां शुभे ॥ ४१ ॥ देव्युवाच ॥ शिवाज्ञावर्तते लोकैः पापस्यास्य विशुद्ध्ये ॥ तस्मात्पापविशुद्ध्यर्थं निषु लोकेषु विश्रुतम् ॥ ४२ ॥ देवदेवं महादेवं याचस्व परमेश्वरम् ॥ एवं देव्यान्वचः श्रुत्वा शक्रः प्रोवाच शङ्करम् ॥ ४३ ॥ निष्कृतिस्त्वस्य पापस्य क्रियतां वचनान्मम ॥ शङ्कर उवाच ॥ यज्ञापाकाश्रमं गत्वा मेकलातीरमाश्रितम् ॥ ४४ ॥ यज्ञप भारत ! इन्द्र पार्वतीजी के प्रति वचन बोले ॥ ४० ॥ कि हे देवि ! जो आप वर की देनेवाली हो और मुझको वर देनेके लिये इच्छा करती हो तो हे शुभे ! चिन्नाङ्गदा आदि गन्धर्वों के पापोंको छुड़ा दीजिये ॥ ४१ ॥ तब देवीजी बोलीं कि लोकमें इस पापकी निशुद्धिके वास्ते महादेवजी की आज्ञा वर्तमान है इससे पापोंकी निशुद्धि के वास्ते तीनों लोकों में विख्यात ॥ ४२ ॥ देवताओं के देवता परमेश्वर महादेवजी से याचनाकरो इस प्रकार देवी के वचन को सुनकर इन्द्र महादेवजी से बोले ॥ ४३ ॥ कि इस पापका प्रायश्चित्त हमारे वचन से किया जावे तब महादेव जी बोले कि नर्भदा के तटमें विद्यमान यज्ञपाकाश्रम को जाकर ॥ ४४ ॥ विन्ध्या-

चलके उत्तम पुत्र यज्ञपर्वत को प्राप्तहोकर वहां परमसिद्धि का देनेवाला यज्ञेश्वर देवर्लिंग है ॥ ४५ ॥ और भी नर्मदातटके आश्रित विन्वाम्बक नामका दूमरा लिंग है उस पुण्यस्थान में इस शापका अन्त होगा ॥ ४६ ॥ इन्द्रने इस वृत्तान्त को गन्धर्गों से कहदिया तब हे महाराज ! कुयरेपन को प्राप्त होरहे इक्कीसलाख गंधर्व उस संगम में शापसे छूटगये ॥ ४७ ॥ हे नृपश्रेष्ठ ! इसीसे वह कुब्जा महानदी कहीजाती है दिव्य सवारियों पर सवार मरुद्गणों करके स्तुति कियेजाते ॥ ४८ ॥ पार्ष्णिसे छूटेहुये, बिल्वाम्बकलिंग को पूजन करके परमआनन्द से युक्त गन्धर्व अपने लोकको प्राप्तहुये ॥ ४९ ॥ जैसे पूर्वकाल में रहे वैसेही इस तीर्थके प्रभाव से

वर्तमासाद्य विन्ध्यस्यैवसुतोत्तमम् ॥ तत्रयज्ञेश्वरन्देवं लिङ्गपरमसिद्धिदम् ॥ ४५ ॥ बिल्वाम्बकं तथा चान्यत्कल्पणा तीरमाश्रितम् ॥ पुण्यस्थाने सुतत्रास्य शापस्यान्तो भविष्यति ॥ ४६ ॥ एकविंशतिलक्षाणि तत्र मुक्तानि सङ्गमे ॥ गन्धर्वाणां महाराज कुब्जभावमुपेयुषाम् ॥ ४७ ॥ महानदी नृपश्रेष्ठ कुब्जातेन प्रकीर्तिता ॥ दिव्ययानसमारूढाः स्तूयमाना मरुद्गणैः ॥ ४८ ॥ मुदा परमया युक्ता गान्धर्वलोकमाप्नुयुः ॥ बिल्वाम्बकं पूजयित्वा गन्धर्वागतकिल्बिषाः ॥ ४९ ॥ यथा पूर्वतथेदानीं तीर्थस्यास्य प्रभावतः ॥ हर्षेण महता युक्तः शक्रोऽपि त्रिदिवालयम् ॥ ५० ॥ जगाम त्रिदशैस्सा ह्यर्द्धं परिपूर्णमनोरथः ॥ षडस्य चोत्तरभागे षडस्य दक्षिणे तथा ॥ ५१ ॥ एवन्ते कथितो राजन् रेवा कुब्जा समागमः ॥ अनेके यस्य माहात्म्या तस्य सिद्धिपरमाङ्गताः ॥ ५२ ॥ श्रवणात्कीर्तनाद्वापि मुच्यते भवबन्धनात् ॥ ५३ ॥ इति श्रीस्कन्द पुराणे रेवा खण्डे कुब्जामाहात्म्ये चित्राङ्गदशापमोचनो नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

अबभी होगये व बड़े आनन्दसे युक्त इन्द्रभी पूरे मनोरथवाले होकर देवताओं के सहित स्वर्गको जातेहुये व छह तीर्थ इसके उत्तरभागमें और वैमैही छह इसके दक्षिणभागमें भी हैं ॥ ५० ॥ ५१ ॥ हे राजन् ! इस प्रकार नर्मदा और कुब्जाका समागम तुमसे कहागया जिसके माहात्म्यसे अनेक लोग परमसिद्धि को प्राप्तहुये ॥ ५२ ॥ जिसके सुनने और कहनेसे संसारबन्धन से छूटजाता है ॥ ५३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे रेवा खण्डे चित्राङ्गदशापमोचनो नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

मार्कण्डेयजी बोले कि अब और सब पापोंके हरनेवाले स्वर्गकी नसेनी के तुल्य सत्र तीर्थोंमें उत्तम दिव्य तीर्थ को कहते हैं ॥ १ ॥ हे नृप ! माहेश्वरपुर में सवाकरोड़ तीर्थ रौद्र और वारुणतीर्थके कोसभरके प्रमाणमें हैं ॥ २ ॥ हे महाराज ! इसके बीचमें शिवक्षेत्र कहागया है इसमें जो प्राणत्याग करताहै वह महादेवजी के लोकमें आनन्दित होताहै ॥ ३ ॥ तिर्यग्योनि में प्राप्त होरहे जे पापी कीड़े, पत्नी और सृगआदि पशुहैं वेभी शिवजी के स्थानको प्राप्तहोते हैं जहां महादेवजी देवताहैं ॥ ४ ॥ तिलोदकके देनेसे उसके माता और पिताके कुलके पितर महाप्रलयतक तृप्त रहतेहैं ॥ ५ ॥ वहां ब्रह्मा करके असंख्य उत्तम यज्ञ कियेगये और इन्द्र

मार्कण्डेयउवाच ॥ अथान्यत्कथयिष्यामि तीर्थानां तीर्थसुत्तमम् ॥ सर्वपापहरंदिव्यं स्वर्गसोपानसन्निभम् ॥
१ ॥ सपादकोटितीर्थानि पुरेमाहेश्वरेनृप ॥ रौद्रवारुणमासाद्य क्रोशमात्रप्रमाणतः ॥ २ ॥ अत्रान्तरेमहाराज शिव क्षेत्रमुदाहृतम् ॥ प्राणत्यागञ्चयः कुश्यान्चिद्वलोकैश्चमोदते ॥ ३ ॥ तिर्यग्योनिगताः पापाः कीटपक्षिभृगादयः ॥ तेषुपिपयन्तिशिवस्थानं यत्रदेवोमहेश्वरः ॥ ४ ॥ तिलोदकप्रदानेन मातृकाः पितृकास्तथा ॥ पितरस्तस्यतृप्यन्ति या वदाभूतसम्पुवम् ॥ ५ ॥ तत्रेष्टाब्रह्मणा पूर्वमसंख्येयामखोत्तमाः ॥ शक्रश्चदेवराजत्वं तत्रेष्टासमवाप्तवान् ॥ ६ ॥ कात्स्न्यैतत्रैव कृतं यज्ञशतम्पुरा ॥ अयोध्यायां पुरा जग्न्यज्ञदानपरायणः ॥ ७ ॥ आदित्यस्य सुतश्चासीत्सूर्यवंशे महीपतिः ॥ जित्वासुरांस्तथा दैत्यान् रक्षोगणसमन्वितान् ॥ ८ ॥ मनुर्नाम्ना चक्रवर्ती शक्रादीशान्द्रुणोत्तमः ॥ पुरोत्तमेन स पर्पन्ति मृत्युरोगजरास्तथा ॥ ९ ॥ शतार्द्धसाप्तभौमैश्च गृहैर्मम यैश्च शूभैः ॥ वापीकूपतडागानां दीर्घिकानां शतैस्तु

भी वहीं यज्ञकरके देवताओं की राज्यको प्राप्तहुये ॥ ६ ॥ और पूर्वकालमें वहीं कार्त्तवीर्य राजाकरके सौयज्ञ कियेगये हे राजन् ! पूर्वकाल में यज्ञ और दानमें तत्पर सूर्यवंश में सूर्य के पुत्र अयोध्यामें राजाहुये असुर तथा दैत्य और राक्षसों को जीतकर ॥ ७ ॥ चक्रवर्त्ती व इन्द्र और महादेवसे गुणों में उत्तम मनु नाम करके विदितहुये उस उत्तम अयोध्यापुरीमें मृत्यु, रोग और वृद्धावस्था नहीं आती ॥ ८ ॥ सुवर्णके बनेहुये शुभ, सात २ चौकवाले पचास महलोंकरके शोभित और सैकड़ों

वावली, कुवां और तालाबों व दीर्घिकाओं (बड़ी बावलियों) से युक्त ॥ १० ॥ देखनेलायक अनेकप्रकारके रूपवाले पुरुषोंसे सुशोभित, अंगरी और भितारकी आवाजों से युक्त और भी हजारों बाजाओंके शब्दसे गूँजरही ॥ ११ ॥ कुबेरकी अलकापुरीकी नाई और इन्द्रकी अमरावतीकी तरह देवताओंकी रत्नीहुई अयोध्यापुरी वैसेही विराजमान होतीहुई ॥ १२ ॥ वहा ढाईलाख वर्ष सब प्रजा जीवतीहुई वहाँ सूर्यवंशमें सालङ्कायन राजर्षि परमधार्मिक होतेहुये ॥ १३ ॥ जिन्होंने अनेकप्रकारके हजारों यज्ञोंकरके इसपृथिवीको जलादिया न वह देश, न वह तीर्थ, न वह राज्य, न वह आश्रम वाकीरहा ॥ १४ ॥ जहाँ सालङ्कायन राजाकरके महायज्ञोंसे यजन न कियागया

ना ॥ १० ॥ सुशोभिताप्रेक्षणयैर्नानारूपैर्विलासिभिः ॥ वेणुवीणाध्वनियुता नानावाद्यैस्सहस्रशः ॥ ११ ॥ अलक्षेव कुबेरस्य शक्रस्येवामरावती ॥ पुरीविराजतेतद्वदयोध्यादेवनिर्मिता ॥ १२ ॥ लक्षाणिद्वेचसाङ्घाणि प्रजाजीवन्तितत्र च ॥ तत्रैववंशेराजर्षिरभूत्परमधार्मिकः ॥ १३ ॥ नानामखसहस्रैर्योददाहपृथिवीमिमाम् ॥ नतद्देशोनततीर्थं नतद्राष्ट्रं नचाश्रमः ॥ १४ ॥ नैष्टयत्रमहायज्ञैः सालङ्कायनभूभृता ॥ सस्यमालाधृतापृथ्वी धनधान्यसमन्विता ॥ १५ ॥ स्वयं कामदुधागावः पट्टुवस्त्रंमहीरुहाः ॥ यज्ञैस्सर्वैर्विवाहैश्च वेदैर्माङ्गल्यमङ्गलैः ॥ १६ ॥ एवन्तुसतंतधानी कालेनमहताततः ॥ अनावृष्टिरभूद्राष्ट्रे पुराद्वादशवर्षिकी ॥ १७ ॥ मृताजानपदास्सर्वे द्विपदाश्चचतुष्पदाः ॥ तृणगुल्मलतावल्लयोभूतग्रामंचतुर्विधम् ॥ १८ ॥ हाहाकारोमहानासीद्देवासुरवृणांतथा ॥ सालङ्कायनराजर्षिश्चिन्तयामासभारत ॥ १९ ॥

जन्मप्रभृतिमेपापं किञ्चिदेवनविद्यते ॥ पूजयामिहरिन्देवंसंसारार्णवतारणम् ॥ २० ॥ ब्राह्मणांश्चमुनींश्चैव तर्पयामाहो अन्नके समूहको धारण कियेहुई पृथिवी धन और धान्यसे युक्त होतीहुई ॥ १५ ॥ गौवें आपही अभीष्टसमयमें दूधदेनेवाली होतीहुई और वृक्ष रेशमी वस्त्रोंको देतेहुये यज्ञ व वेद और सब विवाहआदि मङ्गलकामोंसे पृथिवी निरन्तर शोभित होतीहुई इस प्रकार बहुतकाल व्यतीत हुआ तदनन्तर पूर्वकालमें उस देशमें बारह वर्षकी अनावृष्टि होतीहुई ॥ १६ ॥ १७ ॥ सब देशवासी मनुष्य और पशु मरतेहुये घास, फूस, लता, बेली और चारो प्रकारका भूतग्राम नष्ट होताहुआ ॥ १८ ॥ उससमयमें देवता, दैत्य और मनुष्यों का बड़ा हाहाकार हुआ हे भारत ! तब सालङ्कायनराजर्षि चिन्ता करतेहुये ॥ १९ ॥ जन्म से लेकर आजतक कुछ मेरा पाप नहीं

जानपडता संसारसमुद्र से तारनेवाले हरिदिव का हम पूजन करतेहैं ॥ २० ॥ ब्राह्मण और मुनियों को मैंने यथेष्ट तुल किया यह कहकर बुद्धिमें वृद्धरूपति के समान ब्रह्मवादी वशिष्ठजी को ॥ २१ ॥ साष्टाङ्ग प्रणाम करके भक्तिसे राजा पूछतेहुये किहे त्रिप्र ! यह चारहवर्षकी अनावृष्टि क्यों हुई ॥ २२ ॥ ब्राह्मण और देवताओं का अपराध मुझकरके कुछभी नहीं कियागया हे अनुग्रहतत्पर ! यह मुझको बड़ा संग्रह है आप इसको जानते हो ॥ २३ ॥ तब वशिष्ठजी बोले कि हे महाबाहो, राजन् ! अनावृष्टि के कारणको आप सुनो पूर्वकाल के वार्षिक्यज्ञ में वृद्धमुनियों ने कहाहै ॥ २४ ॥ समझें उनके वचन को सुनकर उपाय करना चाहिये तबतक

सचेच्छया ॥ बृहस्पतिसमंबुद्ध्या वशिष्ठब्रह्मवादिनम् ॥ २१ ॥ पप्रच्छन्नृपतिर्मक्त्वा साष्टाङ्गप्रणिपत्यच ॥ अनावृष्टिर्भूद्विप्र कथंहादशवार्षिकी ॥ २२ ॥ नापराधोमयाकिञ्चित्कृतोब्राह्मणदेवयोः ॥ संशयोमेमहांस्तत्र वेदालुग्रहतत्पर ॥ २३ ॥ वशिष्ठउवाच ॥ शृणुराजन्महाबाहोअनावृष्टेश्चकारणम् ॥ पुरासंविंत्सरयज्ञो वृद्धाश्चमुनयोवदन् ॥ २४ ॥ तेषां चवचनंश्रुत्वा कर्तव्यंजनसंसदि ॥ तावदेवमुनिश्चानिः पुलस्त्यःपुलहःक्रतुः ॥ २५ ॥ भृगुरग्निर्मरीचिश्चकश्यपोथवि भारदुकः ॥ जमदग्निश्चमाण्डव्योयमोविष्णुस्तथाङ्गिराः ॥ २६ ॥ बृहस्पतिस्तथादक्षः शातातपपराशरौ ॥ उशना गौतमश्चैव व्यासःकात्यायनस्तथा ॥ २७ ॥ विश्वामित्रोथशाण्डिल्यो कक्षःकात्यायनिस्तथा ॥ हारीतःशङ्खलि खितौ याज्ञवल्क्योथगालवः ॥ २८ ॥ आत्रेयश्शौनकोगर्गो जह्नुर्द्वालुकस्तथा ॥ कौशिकोभार्गवोगस्त्यो दुर्वासा इच्छयवस्तथा ॥ २९ ॥ एतेचान्येपिबहवो ऋषयस्सूर्यवर्चसः ॥ ३० ॥ धर्माणामुपदेष्टारो वेदशास्त्र लुप्याग्निनः ॥

अत्रिमुनि, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु ॥ २५ ॥ भृगु, अग्नि, मरीचि, कश्यप, विभाण्डक, जमदग्नि, माण्डव्य, यम, विष्णु, वैभेही अङ्गिरा ॥ २६ ॥ बृहस्पति वैभेही दक्ष, शातातप, पराशर, शुक्र, गौतम, व्यास तथा कात्यायन ॥ २७ ॥ विश्वामित्र, शाण्डिल्य, कक्ष, कात्यायनि, हारीत, शङ्ख, लिखित, याज्ञवल्क्य, गालव ॥ २८ ॥ आत्रेय, शौनक, गर्ग, जह्नु, उदालक वैभेही कौशिक, भार्गव, दुर्वासा तथा वयव न ये व औरभी बृहत्तमे ऋषि, सूर्यके समान तेजवाले ॥ २९ ॥ धर्मोंके

सिखानेवाले, वेद और शास्त्रके अनुकूल बर्ताव करनेवाले, निश्चय से अनावृष्टि को जानकर अयोध्या को जातेहुये ॥ ३१ ॥ परमधार्मिक वे राजा आये हुये मुनिया को देखकर हे महाभाग ! स्वर्गमें दूसरे इन्द्रके नाई उठतेहुये ॥ ३२ ॥ व अर्ध और पाद्यआदि से आपही वे राजा उनका यथायोग्य पूजन करके देखने में उत्तम आसनपर बैठेहुये उन मुनियों से अनावृष्टि का कारण पूछतेहुये तब सालङ्कायन राजासे मुनिलोग वचन बोलेतेहुये ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ कि भूत और भविष्यकाल के तत्त्वके जाननेवाले और सात कल्पतक रहनेवाले सबके गुरु महात्मा मार्कण्डेय का पूजन करो ॥ ३५ ॥ उनके आश्रम को जाकर ब्राह्मणों करके सहित विचारकरो

अनावृष्टिपूर्वैज्ञात्वा प्रत्ययोध्यप्रतस्थिरे ॥ ३१ ॥ आगतान्समुनीन्द्रद्वारा राजापरमधार्मिकः ॥ उदतिष्ठन्महाभाग दिविशक्रद्वारपरः ॥ ३२ ॥ तानभ्यर्च्ययथान्यायमर्घपाद्यादिभिस्स्वयम् ॥ उपविष्टान्यथान्यायमासनेशुभदर्शने ॥ ३३ ॥ सकारणमनावृष्टेस्तान्प्रच्छमहात्मनः ॥ अनुवन्मुनयोवाक्यं सालङ्कायनभूपतिम् ॥ ३४ ॥ भविष्यभूततत्त्वज्ञं सप्तकल्पान्तवासिनम् ॥ मार्कण्डेयंमहात्मानं सर्वपाण्डुरुमर्चय ॥ ३५ ॥ तस्याश्रमपदंगत्वा ब्राह्मणैस्सहचिन्तय ॥ ययंधर्ममसवदति तंतंकर्तुमिहार्हसि ॥ ३६ ॥ एवमुक्तोद्विजैस्सर्वैस्सालङ्कायनभूपतिः ॥ उवाचवचनंसर्वान्मुनीन्द्राञ्च सितव्रतान् ॥ ३७ ॥ अनुग्रहमिमंमन्ये प्रसादंमुनिसत्तमाः ॥ आदिदेशततोराजा आतरोद्धारपालकैः ॥ ३८ ॥ सुधन्व वीरधन्वानौ प्रतीहारौमहान्वौ ॥ रथेहयानियुज्यन्तां ब्राह्मणारोहणम्प्रति ॥ ३९ ॥ ब्रह्मशर्मादेवशर्मा मन्त्रिणौतत्त्वदर्शिनौ ॥ पप्रच्छभामनार्थाय कर्तव्यञ्चयथादिशत् ॥ ४० ॥ मन्त्रिणानूचतुः ॥ समयज्ञोमहाबाहो त्वमेवविहितंकु

जिस २ धर्मको वे कहें उस २ को यहा करने के लिये तुम योग्यहो ॥ ३६ ॥ इस प्रकार सब ब्राह्मणों करके कहेंगये सालङ्कायन राजा सग श्रेष्ठ ब्रतवाले मुनियों से वचन बोले ॥ ३७ ॥ हे श्रेष्ठ मुनियो ! इस आपके इस प्रसाद को बड़ा अनुग्रह समझते हैं यह कहकर तदनन्तर राजा द्वारपालक, अपने भाई, महाबली, प्रतीहार सुधन्वा और वीरधन्वाको आज्ञादेतेहुये कि ब्राह्मणोंके चढ़नेके वास्ते रथमें घोड़े जोतेजावे ॥ ३८ ॥ तत्त्वके देखनेवाले ब्रह्मशर्मा और देवशर्मा इन दोनों मन्त्रियों

से जानेके वारते पूँछतेहुये और करनेके योग्य कामोंको आज्ञा दिया ॥ ४० ॥ तब दोनों मन्त्री बोले कि हे महाबाहो ! आप समय के जाननेवाले हो उचित हो सो करिये तब धर्मशास्त्र के जाननेवाले राजा उन मन्त्रियों के वचन को सुनकर ॥ ४१ ॥ प्रसन्नता से स्नेहवाला होरहा है मन जिनका ऐसे राजा रसीली वाणीसे बोले कि ब्राह्मणों करके सहित हमको वहां अवश्य जाना है जहां मार्कण्डेय मुनि रहते हैं ॥ ४२ ॥ इस प्रकार कहकर हे भारत ! ब्राह्मणों करके सहित दिव्यसवारीपर चढ़ेहुये राजा जातेहुये और नर्भदाके तटको प्राप्तहुये ॥ ४३ ॥ व धर्मारण्यको प्राप्तहो वे राजा मुनियो वरके सहित बैठेहुये नमस्कार करने के योग्य

रु ॥ राजातद्वचनंश्रुत्वा धर्मशास्त्रविशारदः ॥ ४१ ॥ उवाचश्लक्ष्णयावाचा हर्षगद्गदमानसः ॥ गन्तव्यंब्राह्मणै
स्सार्द्धं यत्रकल्पान्तगोमुनिः ॥ ४२ ॥ एवमुक्त्वाययौराजाब्राह्मणैस्सहभारत ॥ दिव्ययानसमारूढस्सम्प्राप्तःकल्पगा
तटम् ॥ ४३ ॥ धर्मारण्यंसमासाद्य मार्कण्डमुनिभिस्सह ॥ ससमीपेसमासीनं प्रणम्यप्रणतिं नमः ॥ ४४ ॥ आपृ
ष्टःकुशलन्तेन तेनैवैब्रह्मवादिना ॥ उवाचवचनंराजा मार्कण्डेजानचक्षुषम् ॥ ४५ ॥ अद्यमेकुशलं ब्रह्मंस्त्वत्पादाम्बु
जदर्शनात् ॥ किन्तुमांवाधतेनित्यं भविष्यंचैवतत्त्ववित् ॥ ४६ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ अपमार्गेणप्रजानान्देवब्राह्म
णहिंसया ॥ वर्णाश्रमविलोपेन अधर्मौधर्मबाधकः ॥ ४७ ॥ शम्भुर्नपूज्यतेयत्र रुद्रभागोनदीयते ॥ देशे तस्मिन्न
नावष्टिर्दुर्भिक्षंमरणंध्रुवम् ॥ ४८ ॥ विनश्यन्तिप्रजाराष्ट्रे अल्पायुर्नृपतिर्भवेत् ॥ अब्रह्मण्याब्राह्मणाश्च शुद्रावैब्रह्मवा

मार्कण्डेयजी को प्रणामकरके समीप में बैठगये ॥ ४४ ॥ तब उन राजा और उन ब्रह्मवादी मुनिकरके आपस में कुशलप्रश्न हुआ फिर ज्ञानही जिनके नेत्र ऐसे मार्कण्डेयजीसे राजा वचन बोले ॥ ४५ ॥ हे ब्रह्मन् ! आज आपके चरणकमलों के दर्शन से मेरा कुशल है परन्तु हे तत्त्ववित् ! कुछ भविष्यवाती हमको नित्य बाधा करती है ॥ ४६ ॥ तब मार्कण्डेयजी बोले कि प्रजाओं की कुचाल से और देवता व ब्राह्मणों की पीड़ासे वर्णाश्रमधर्म के लोपसे जो अधर्म होताहै वह धर्मको बाधताहै ॥ ४७ ॥ जिस देशमें महादेवजी नहीं पूजेजाते और रुद्रका भाग नहीं दियाजाता उस देशमें अनावृष्टि, दुर्भिक्ष और मरण अवश्य होताहै ॥ ४८ ॥

राज्यमें प्रजा नाशको प्राप्त होती है और राजा अल्पायु होजाता है व ब्राह्मण ब्रह्मकर्म से हीन होजाते हैं और शूद्र वेदोंकी वाचा करते हैं ॥ ४६ ॥ व जब शूद्र शैवमन्त्रोंको जपते हैं और ब्रह्मसूत्रको धारण करते हैं तभी गृहस्थ फकीरोंके चिह्नोंको धारण करते हैं और ब्रह्मचारी ब्रतोंको छोड़देते हैं ॥ ५० ॥ ऐसे पाप करनेवालों को राजा अपने देशसे निकाल देवै और उनके बायें तरफ यज्ञोपवीत व उसीतरह अग्निसे दागकर जनेऊके आकार बनवादेवै ॥ ५१ ॥ और लोकमें निन्दित गदहे की सवारी उनको करादेवै हे राजन् ! यह अनावृष्टिका कारण आपसे कहागया ॥ ५२ ॥ अनावृष्टि से अन्नकी हानि होती व अन्नकी हानिसे प्रजा मरती व प्रजा

दिनः ॥ ४९ ॥ शिवजपंयज्ञसूत्रं शूद्रोधारयतेयदा ॥ अलिङ्गिनो लिङ्गिनश्च अब्रताव्रतधारिणः ॥ ५० ॥ स्वपापंकृतवन्तश्च तान्स्वराष्ट्रे प्रवासिनः ॥ सव्याङ्गे ब्रह्मसूत्रं च वह्निमूत्रञ्च कारयेत् ॥ ५१ ॥ गर्दमारोहणन्तस्य कारयेच्छोकगर्हितम् ॥ एतत्ते कथितं राजन्ननावृष्टेश्च कारणम् ॥ ५२ ॥ अनावृष्ट्या सम्यहानिस्तत्त्वयान्मिष्यते प्रजा ॥ प्रजाक्षयाद्विदहानिस्तद्धानौ यज्ञसंज्ञयः ॥ ५३ ॥ तत्त्वया हर्महानिश्च तद्धानौ वर्णसङ्करः ॥ तत्सङ्करात्कर्ममूलोपः पतनं नरके ध्रुवम् ॥ ५४ ॥ गङ्गासागरसम्भेदे चाण्डालास्सप्तसाम्प्रतम् ॥ कणधूमं पिबन्त्याशु ऊर्ध्वपादाह्वयः शिराः ॥ ५५ ॥ चकम्पिरे सुरास्सर्वे सिद्धगन्धर्वकिन्नराः ॥ देवराजसुरैस्सार्द्धमासनाच्चलितो नृप ॥ ५६ ॥ तपसस्तु प्रभावो यमपि दृष्टो नराधिप ॥ नैमिषे च महारण्ये सुरासुरनमस्कृते ॥ ५७ ॥ शतमष्टोत्तरं सर्वे तापसाः शूद्रजन्मनः ॥ ब्रह्मकर्म समासाद्य स्थिता धर्मप

के नाशसे वेदकी हानि होती और वेदकी हानि होनेपर यज्ञोंका नाश होता है ॥ ५३ ॥ व यज्ञोंके नाशसे धर्मकी हानि होती व धर्मकी हानि होनेपर वर्णसङ्कर होजाता व वर्णसङ्कर होनेसे कर्मों का लोप होता और कर्मोंके लोपसे निश्चय नरकमें गिरना होता है ॥ ५४ ॥ इस समय त्रिषे गङ्गासागरसंगम में सात चाण्डाल नीचेको गिर किये और ऊपर को पावें कियेहुये अन्नका धुवां शीघ्र पीते हैं ॥ ५५ ॥ इस काम से सब देवता, सिद्ध व गन्धर्व और किन्नर कांपतेहुये और हे नृप ! देवताओं करके सहित इन्द्र अपने आसन से चलतेहुये ॥ ५६ ॥ हे नराधिप ! तपस्या का यह प्रभाव देखागया और देवता व दैत्योंकरके नमस्कार कियेगये नैमिष महावन

में ॥ ५७ ॥ सद्य एक्सौ, आठ शुद्धलोग तपस्वी, धर्म में तत्पर, ब्रह्मकर्म को प्राप्त होकर स्थित हैं ॥ ५८ ॥ अधर्म करनेवाले गुरुषों के पापसे राजा लित हो जाता है व जिनका यज्ञ नहीं होना चाहिये उनके यज्ञ करनेवालों के स्थानमें अनादृष्टि सदा होती है ॥ ५९ ॥ और देवताओं के भी देवता महादेवजी के पूजन के न करने से न स्वर्ग, न मोक्ष और पूर्णभोग भी नहीं प्राप्त होते ॥ ६० ॥ ब्रह्मा, विष्णु और इन्द्र आदि सब देवता महादेवजी को पूजते हैं फिर विचारे पापी मनुष्य व पापजीवी राजा क्या हैं ॥ ६१ ॥ जो मनुष्य महादेव का पूजन नहीं करते वे पापभागी स्वर्ग, मोक्ष और भोगफलको नहीं पाते ॥ ६२ ॥ तिससे हे नृप ! ब्राह्मणोंकरके सहित

रायणाः ॥ ५८ ॥ अधर्मचारिणंपुंसां राजापपेन लिप्यते ॥ अयज्ञयाजकस्थाने अनादृष्टिर्भवेत्सदा ॥ ५९ ॥ अपूजनात्तथानित्यं देवदेवस्य शूलिनः ॥ नस्वर्गो नापवर्गश्च न भोगाश्चापि पुष्कलाः ॥ ६० ॥ ब्रह्मविष्णुसुरेन्द्राद्या अर्चयन्ति सहेश्वरम् ॥ किम्पुनर्मानुषाः पापा राजानः पापजीविनः ॥ ६१ ॥ नार्चयन्ति सहेश्चर्ये तेनराः पापभागिनः ॥ न च स्वर्गस्य मोक्षस्य फलं भोगमवाप्नुयुः ॥ ६२ ॥ तस्मान् नृपत्वं श्रेयांसि ब्राह्मणैस्सहचिन्तय ॥ नर्मदातीरमासाद्य रुद्रयज्ञं समारभ ॥ ६३ ॥ तेषां शिरांसि होमस्मिन्पातय त्वं यथाविधि ॥ समर्चय सुरेशानं ततश्शान्तिर्भविष्यति ॥ ६४ ॥ कामवर्षी च पृज्जन्त्यः पुनस्सृष्टिः प्रवर्तते ॥ सुच्यतां पापदोषेण राज्यं स्वर्गमवाप्स्यसि ॥ ६५ ॥ तवैतत्कथितं राजन्यथा हृष्टं भयानघ ॥ तस्य तद्वचनं श्रुत्वा राजा परमधार्मिकः ॥ ६६ ॥ नमस्कृत्य मुनिश्रेष्ठं ऋषिभिस्सह भारत ॥ अनुग्रहमिमं नये त्वत्प्रसादाद्यथोदितम् ॥ ६७ ॥ आदिदेश प्रतीहारान्यज्ञसम्भारसिद्धये ॥ गत्वाऽयोध्यां पुरीं रम्यां प्रादिशम्मुखस

तुम कल्याणोंको विचारो व नर्मदाके तट में प्राप्त होकर तुम रुद्रयज्ञको करो ॥ ६३ ॥ और उन चारण्डालों के शिरोंको इस होममें तुम डाल देवों और महादेवजी का विधिपूर्वक पूजन करो तब शान्ति होगी ॥ ६४ ॥ मेघ समय में जल बरसें गे फिर सृष्टि होगी तुम पापदोष से छूट जावोगे राज्य और स्वर्गको पावोगे ॥ ६५ ॥ हे अनघ ! हे राजन् ! आपसे यह कहा गया जैसा मुझकरके देखा गया था परमधार्मिक राजा उन मार्कण्डेयजीके इस वचन को सुनकर ॥ ६६ ॥ हे भारत ! ऋषियोंकरके सहित मुनियों में श्रेष्ठ मार्कण्डेय जी को नमस्कार करके कहा कि प्रसन्नतापूर्वक आपके इस कहने को हम बड़ा अनुग्रह समझते हैं ॥ ६७ ॥ तदनन्तर यज्ञ

की सामग्री तैयार करने के लिये द्वारपालों को राजा आज्ञा देतेहुये और कहा कि रम्य अयोध्यापुरी को तुम जाकर यज्ञ के वारते हमारी आज्ञा को कहो ॥ ६८ ॥ कि यज्ञ का सामान लेकर सब लोग आगे वैसेही एक हजार आठ हमारी रानी और राजकुमार ॥ ६९ ॥ और अनेक देशों के सब राजा यात रात्रि के अन्दर प्रवृत्त होनेवाले यज्ञ में आगे ॥ ७० ॥ वे दोनों प्रतीहार राजाके नमस्कार करके अयोध्यापुरी को जातेहुये और राजा करके कहीहुई आज्ञा को वहां कहते हुये ॥ ७१ ॥ तदनन्तर एक हजारआठ रानी दिव्य वस्त्रों को धारण किये और जे राजकुमार व राजा लोग व और भी जो घर के काम करनेवाले हैं ॥ ७२ ॥ रम्या और उर्वशीके

म्भवम् ॥ ६८ ॥ यज्ञोपस्करमादाय सर्वरागम्यतामिति ॥ राजीनाञ्चकुमाराणां सहस्रंसाष्टकंतथा ॥ ६९ ॥ सर्वोश्चैव महीपालान्नानदेशसमुद्भवान् ॥ सप्तरात्राभ्यन्तरतो यथायज्ञःप्रवर्तते ॥ ७० ॥ नमस्कृत्यगतोत्तोलु प्रतीहारौपुरम्प्रति ॥ कथयामासुस्तत्र यथोद्दिष्टंनृपेणतु ॥ ७१ ॥ अष्टोत्तरसहस्रन्तु राज्ञीनां दिव्यवाससाम् ॥ कुमारयेचराजा नोयेचान्येगृहकर्मिणः ॥ ७२ ॥ असूताक्षतयोनीनां लक्षमेकन्तुयोषिताम् ॥ रम्भोर्वंशीसमानानां रूपेणाप्रतिम त्विषाम् ॥ ७३ ॥ महोरस्स्कन्धगात्राणां बाहानामयुतानिषट् ॥ सुवर्णरत्नपूर्णानां गुद्राणामयुतन्तथा ॥ ७४ ॥ सब त्सानांचधेनूनां त्रिशल्लक्षाण्यन्त्रितः ॥ पाण्डुराणांहयानान्तु अयुतानिदशैवतु ॥ ७५ ॥ घण्टाभरणशोभानां दन्तिनामयुतंतथा ॥ यज्ञोपस्करमादाय सर्वसम्भारसम्भृतम् ॥ ७६ ॥ प्रस्थितौनम्मर्मांराज्ञे सन्निवेशयताम्पुरः ॥ प्रणम्यचाव्रवीद्राजा सप्तकल्पान्तवासिनम् ॥ ७७ ॥ आदेशोदीयतांमह्यं मख्यत्रप्रवर्तते ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ वैदूर्य

समान व रूपकरके और स्त्री जिनके बराबर नहीं होसक्ती व पुत्र जिनके नहीं हुये व योनि जिनकी क्षत नहीं हुई ऐसी एकलाख स्त्रियां ॥ ७३ ॥ और बड़ी छाती और बांधिवाले साठहजार घोड़े सुवर्ण और रत्नोंकरके सहित दशहजार मुद्रा ॥ ७४ ॥ बछड़ों के सहित तीसलाख गौवं और भी एकलाख सफेद घोड़े ॥ ७५ ॥ घण्टा और अम्बागी आदि आभूषणों की शोभा से युक्त दशहजार हाथी और भी सब यज्ञ का सामान लेकर ॥ ७६ ॥ वे दोनों द्वारपालक नर्मदा को यात्रा करतेहुये और राजा के प्रत्यक्ष सब सामान को स्थापित करदिया तब राजा सात कल्पों के अन्त में भी वास करनेवाले मार्कण्डेयजी को प्रणाम करके बोले ॥ ७७ ॥ कि अब

सुभक्तो आप करके आज्ञा दीजावे जहां यज्ञ किया जावे तब मार्कण्डेयजी बोले कि वैदूर्यपर्वत के पश्चिममें यज्ञयूप और मण्डप को बनवावो ॥ ७८ ॥ और भी सब यज्ञकी तैयारी वहीं कराइये तब राजा वशिष्ठ, वामदेव, भृगु, अङ्गिरा ॥ ७९ ॥ पुलस्त्य, पुलह, भारद्वाज, कश्यप, याज्ञवल्क्यमुनि, दुर्वासा मुनि ॥ ८० ॥ विभाण्डक, पर्वत, विश्वामित्र, नारद, शौनक, गर्ग, संवर्त्त, पराशर ॥ ८१ ॥ आपस्तम्ब, शुक्राचार्य, व्यास, कात्यायन, गौतम, हारीत, शङ्ख, लिखित, ऋष्यशृङ्ग, सोमप ॥ ८२ ॥ और अट्ठासीहजार बालखिल्य नामक मुनियों को यज्ञ के वास्ते वरण करते हुये सब देवताओं करके नमस्कार करने के योग्य पर्वत के समान यज्ञ शोभित

स्यचचारुण्यां यज्ञयूगंश्चमण्डपान् ॥ ७८ ॥ अन्यांश्चयज्ञसम्भारान्सर्वास्तत्रैवकारय ॥ वशिष्ठं वामदेवञ्च भृगुमङ्गिरसं तथा ॥ ७९ ॥ पुलस्त्यं पुलहं चैव भारद्वाजञ्च कश्यपम् ॥ याज्ञवल्क्यं मुनिञ्चैव मुनिं दुर्वासं तथा ॥ ८० ॥ विभाण्डकं पर्वतञ्च विश्वामित्रञ्च नारदम् ॥ शौनकञ्चैव गर्गञ्च संवर्त्तञ्च पराशरम् ॥ ८१ ॥ आपस्तम्बोशनो व्यासान् सकात्यायनगौतमम् ॥ हारीतं शङ्खं लिखितौ ऋष्यशृङ्गञ्च सोमपम् ॥ ८२ ॥ अष्टाशीतिसहस्राणि बालखिल्यान्मुनींस्तथा ॥ सर्वदेवनमस्कार्यो यज्ञपर्वतसंज्ञितः ॥ ८३ ॥ हिरण्मयामहास्तम्भा यादृशैरुपशोभिताः ॥ बहुधायत्रशोभन्ते तथोक्ते यज्ञमण्डपे ॥ ८४ ॥ कुण्डस्थलीः सुवास्सर्वाः कृत्वा हेममयानृपः ॥ नानाविधैर्भक्ष्यभोज्यै रसैश्च विविधैस्तथा ॥ ८५ ॥ सरितस्सागराञ्चैलांस्तीर्थराजञ्च सर्वशः ॥ लोकपालान्महाबाहुरासुरान्दैत्यदानवान् ॥ ८६ ॥ चन्द्रादित्यौ ग्रहैस्सार्द्धं नक्षत्रध्रुवमण्डलम् ॥ ब्रह्माद्यांश्च सुरांस्तत्र मरुतो देवतास्तथा ॥ ८७ ॥ विष्णुञ्चैव सुरेशानं

हुआ ॥ ८३ ॥ यज्ञमण्डपमें सुवर्णके बड़े बड़े खम्भे अनेक प्रकारके शोभित हो रहे हैं ॥ ८४ ॥ कुण्ड, वेदी और सुवासों को सुवर्ण के बनवाके अनेक प्रकार के चर्चण व भोजन करने योग्य अन्नों व अनेक प्रकार के रसों करके राजा सबका सत्कार करते हुये ॥ ८५ ॥ तदनन्तर नदी, समुद्र, पर्वत, तीर्थ, तीर्थराज (प्रयाग), लोकपाल, असुर, दैत्य, दानव ॥ ८६ ॥ ग्रहों करके सहित चन्द्र व सूर्य, नक्षत्रों करके सहित ध्रुवमण्डल, ब्रह्मादि देवता, मरुत्नामके देवता ॥ ८७ ॥ और यज्ञमें सब देवताओं

के स्वामी साक्षात् यज्ञपुरुष विष्णुजी को और करोड़ों गणोंकरके सहित महादेव जी को राजाने आवाहन किया ॥ ८८ ॥ तदनन्तर वेदपाठी ब्राह्मणों करके आवाहन किये गये अग्नि करोड़ों सूर्य के समान प्रभावाले, धुवांरहित, जलतेहुये ॥ ८९ ॥ वेद के शब्दों करके आकाश और पृथिवी को शब्दायमान करतेहुये आये फिर राजाने वशिष्ठजी से कहा कि कणधूम के आहार करनेवाले उन सात चाण्डालों को बुलावो ॥ ९० ॥ व नैमिषारण्य के रहनेवाले उन शूद्रों को आप बुलावें तब वशिष्ठजी बोले कि हे पार्थिव ! हम इसको क्या समझते हैं जो आप हंससे कहतेहो ॥ ९१ ॥ तदनन्तर कुशाग्रसे राजा उन चाण्डालों व शूद्रोंके शिरों को काटकर

यज्ञोत्पुरुषंस्वयम् ॥ आवाहयन्महादेवं गणंकोटिसमन्वितम् ॥ ८८ ॥ आवाहितस्ततश्चाग्निब्राह्मणैर्वेदपारगैः ॥ निहू मःप्रज्वलंश्चैव सूर्य्यकोटिसमप्रभः ॥ ८९ ॥ वेदध्वनितनिर्घोषैर्दिवभूमिञ्चनदयन् ॥ कणधूमकृताहारंश्चाण्डाला न्सप्तवानय ॥ ९० ॥ तानानय तथाशूद्रान्नैमिषारण्यवासिनः ॥ अशुष्टुवाच ॥ अनुग्रहमिममन्ये यन्मांवदसिपार्थि व ॥ ९१ ॥ कुशाग्रेणतताराजा तेषांभूद्वान्यपतयत् ॥ तन्दृष्ट्वामानुषंहोमं सामिषंप्रेतरूपिणम् ॥ ९२ ॥ प्रणष्टतो यारेथातु विहायन्निदिवङ्गता ॥ होमावसानेसम्प्राप्ते स्नानार्थेनर्ममदांययुः ॥ ९३ ॥ शुष्कतोयान्ततोपश्यन्नर्मदांशं सितव्रताः ॥ विरुमयंपरमंप्राप्तः प्राहदुर्वाससंष्टुपः ॥ ९४ ॥ कुकोपराजाविप्रेषु पापकर्मादुरासदः ॥ पर्जन्यार्थंवृष्टिका मैः कृतोयज्ञोनिर्धकः ॥ ९५ ॥ पयःपुरातनंनष्टं नजातंवर्षणंकंचित् ॥ राज्ञस्तुवचनंश्रुत्वा दुर्वासाश्चाब्रवीन्नृपम् ॥ ९६ ॥ सुनींश्चसर्वंस्तत्रस्थान्धर्ममतत्त्वविशारदान् ॥ उदकंसर्वलोकानामीप्सितञ्चनसंशयः ॥ ९७ ॥ ब्राह्मणानां

अग्निमें डालदिया मामसहित प्रेतरूपी इस मानुष होमको देखकर ॥ ९२ ॥ जल जिसका नष्ट होगया ऐसी नर्मदा अपने स्थान को छोड़कर स्वर्ग को चलीगई होम की समाप्ति के प्राप्त होनेपर स्नान के वास्ते सबलोग नर्मदा को गये ॥ ९३ ॥ वहाँ उत्तम व्रतवाले ऋषिलोग सूखे जलवाली नर्मदा को देखते हुये तब बड़े आश्चर्य्य को प्राप्तहुये राजा दुर्वासाजीसे बोले ॥ ९४ ॥ पापकर्मी व जबरदस्त राजाने ब्राह्मणोंपर कोप किया और कहा कि यदीकी कामनावाले हमलोगों करके मेवों के वास्ते ग्रह निरर्थकयज्ञ कियागया ॥ ९५ ॥ कि जिससे पुराना भी जल नष्ट होगया और वर्षा कहीं नहीं हुई राजा के इस वचन को सुनकर दुर्वासाजी राजा से बोले ॥ ९६ ॥ और

वहां बैठेहुये धर्मतत्त्व के जाननेवाले सब ऋषियों से भी बोले कि जल तो सबही लोकोंको प्रियहै इसमें कोई संशय नहीं है ॥ ६७ ॥ तप, होम और वेदों के मन्त्र ब्राह्मणोंके वशमें रहतेहैं और हे नृप ! दक्षिणा और यज्ञकी रक्षा यजमानके वशमें होती है ॥ ६८ ॥ यज्ञका जो कुछ सामान वेदसे कहागयाहै वह सब यजमानके अधीन है और वेदकी जड़ ब्राह्मण हैं ॥ ६९ ॥ नर्मदा जल से रहित होगई और मेघ जल नहीं बरसते किया सबही कुछगया और श्रुति यह पुरानी है ॥ ७० ॥ जो चलीगई है उस नदियों में श्रेष्ठ नर्मदाकी तुम राह देखो तब दुर्वासा के इस वचनको सुनकर राजाने यह कहा कि क्षमा कीजिये ॥ ७१ ॥ हे युधिष्ठिर ! वशिष्ठ और

तपोहोमो वेदमन्त्रावशोस्थिताः ॥ दक्षिणायज्ञरक्षा च यजमानवशेनृप ॥ ६८ ॥ यज्ञोपस्करणं किञ्चिच्चान्यदेदस
मिमम ॥ तत्सर्वं यज्ञमानेन वेदमूलं द्विजोत्तमाः ॥ ६९ ॥ वितोयानमर्मदाजाता पृज्जन्यो नैव वर्षति ॥ तत्सर्वं कृतमे
वन्तु श्रुतिरेषासनातनी ॥ ७० ॥ याययौ तां प्रतीक्षस्व नर्मदामापगोत्तमाम् ॥ तस्य तद्वचनं श्रुत्वा क्षमस्वेत्यब्रवीन्नु
पः ॥ ७१ ॥ वशिष्ठो वामदेवश्च वदत्येवं युधिष्ठिर ॥ काशीपुथ्यार्थं प्रयागेवा गङ्गायमुनसङ्गमे ॥ २ ॥ तत्रैव वर्तते यज्ञः सत्य
मेव तपोधनाः ॥ केचिदाहुः कुरुक्षेत्रं स्थाने यत्र सरस्वती ॥ ३ ॥ समुद्दिष्टानि तीर्थानि मुनिभिस्तु पृथक् पृथक् ॥ अब्रवी
त्सहसाराजन्दुर्वासारौ द्रुतापसः ॥ ४ ॥ नारदोऽपि मुनिश्चेष्टस्तापसो गतकिल्बिषः ॥ सरस्वत्यां महाराज तत्र तोयन्निवि
द्यते ॥ ५ ॥ तेषां तद्वचनं श्रुत्वा सालङ्कायनभूषतिः ॥ अब्रवीच्च ततो वाक्यं सर्वान्दृषिगणान् प्रति ॥ ६ ॥ क्षणमेकं प्रतीक्ष
ध्वं यावद्बहतिकल्पगा ॥ इत्युक्त्वासनृपश्चेष्टस्ततस्तुष्टावकल्पगाम् ॥ ७ ॥ नमस्तेस्तु सुरेशानि नमस्ते शङ्करात्मजे ॥

वामदेवजी ने भी यही कहा कि काशीपुरी व प्रयाग, गंगा यमुनाके सङ्गममें ॥ २ ॥ हे तपोधनलोगो ! वहीं यज्ञ कियाजावे यह भी सत्यही है औरोंने कहा कि कुरुक्षेत्र अच्छा है जिस स्थान में सरस्वती विद्यमान है ॥ ३ ॥ ऐसे मुनियोंके पृथक् २ तीर्थ बतलायेगये हे राजन् ! तब फिरभी क्रोधी तपस्वी दुर्वासाजी सहसा बोले ॥ ४ ॥ और मुनियों में श्रेष्ठ, पापरहित, तपस्वी नारदभी बोले कि हे महाराज ! सरस्वती में तो वहां जलहै नहीं ॥ ५ ॥ उन रावके इस वचन को सुनकर सालङ्कायन राजा सब ऋषिगणों से वचन बोले ॥ ६ ॥ कि आपलोग क्षणमात्र देखो जबतक नर्मदाजी बहती हैं राजाओंमें श्रेष्ठ वे सालङ्कायन राजा यह कहकर फिर नर्मदा की

रतुति करतेहुये ॥ ७ ॥ कि हे सुरेशानि ! आपके लिये नमस्कार है और हे शङ्करजीकी पुत्री ! तुम्हारे लिये नमस्कार है इडा, पिंगला, उमा, गङ्गा, सरस्वती ॥ ८ ॥ वेदों की माता गायत्री, सावित्री, सरस्वती, ब्राह्मी, वैष्णवी और गौरी आपही हो सब लोकोंकी माताहो और यशवाली हो ॥ ९ ॥ पृथिवी में जितने कुछ तीर्थ कहेगयेहैं वे सब आपही करके व्याप्तहैं और सब चराचर जगत् भी तुम्हींसे व्याप्तहै ॥ १० ॥ हम उसको नहीं देखते जोकि तुम्हारे जलसे व्याप्त न देखाजाताहो तुम्हारे जलमें स्नानमात्रही से तुमहोकर परमगति को प्राप्तहोते हैं ॥ ११ ॥ बड़े तेजवाले राजाके इस स्तोत्रको सुनकर मगरपर चढ़ीहुई नर्मदादेवी प्रत्यक्ष होतीहुई ॥ १२ ॥ और

इडाचपिङ्गलाचैव उमागङ्गासरस्वती ॥ ८ ॥ गायत्रीवेदमाताच सावित्रीचसरस्वती ॥ ब्राह्मीचवैष्णवीगौरी लोकमा
तायशस्विनी ॥ ९ ॥ समुद्दिष्टानितीर्थानिपृथिव्यांयानिकानिच ॥ त्वयावृत्तानिसर्वाणि जगच्चसचराचरम् ॥ १० ॥ न
तत्पश्यामित्वद्वारावृतंयन्नप्रदृश्यते ॥ त्वत्तोयस्नानमात्रेण तृप्तायान्तिपराङ्गतिम् ॥ ११ ॥ श्रुत्वास्तोत्रमिदन्देवी रा
ज्ञश्चामिततेजसः ॥ मकरासनमारूढा प्रत्यक्षासप्तकल्पगा ॥ १२ ॥ ग्राहब्रूहिर्वरंराजन्यत्तेमनसिचतते ॥ राजोवाच ॥
पूर्वान्सप्तपरान्सप्त प्रवाहानक्षयान्कुरु ॥ १३ ॥ वरमेतमहमन्ये सप्तकल्पान्तवासिनि ॥ नर्मदोवाच ॥ दत्तोवरोम
याह्येष सत्यंतवनराधिप ॥ १४ ॥ एवमुक्त्वासरिच्छ्रेष्ठा जलौघेनपरिप्लुता ॥ प्रवाहैर्विस्तृतैस्तत्र वहन्तीसाव्यवस्थि
ता ॥ १५ ॥ तन्दृष्ट्वातादृशंकर्म सालङ्कायनभूपतेः ॥ तुष्टुबुर्मुनयस्सर्वे सत्यधर्मपरायणाः ॥ १६ ॥ स्नानावगा
हनंपानं चक्रुस्तेपितृतर्पणम् ॥ ततोनिवर्तितोयज्ञो विप्रैस्सर्वस्वदक्षिणैः ॥ १७ ॥ योयत्कामयतेकामं तत्तस्मैप्रतिपा

बोलीं कि हे राजन् ! जो तुम्हारे मनमें हो उस वरको मांगो तब राजा बोले कि सात पूर्वके और सात पश्चिम के प्रवाह अक्षयकरो ॥ १३ ॥ हे सातकल्पतक रहने वाली ! हम इसी वरको मांगते हैं तब नर्मदाजी बोलीं कि हे नराधिप ! तुमको यह वर मुझकरके सत्यही दियागया है ॥ १४ ॥ इस प्रकार कहकरके नदियोंमें श्रेष्ठ वे नर्मदा जलसमूह से पूर्णहोकरहीं बड़े २ प्रवाहों से बहतीहुई वहां स्थित होतीहुई ॥ १५ ॥ सालङ्कायन राजा के इस प्रकार के इस कर्मको देखकर सच्चिधर्म में तत्पर सब मुनिलोग रतुति करतेहुये ॥ १६ ॥ स्नान, अवगाहन, जलपान और पितरों का तर्पण सब लोग करतेहुये तदनन्तर सब कुछ जिन्होंने दक्षिणा में पाया

ऐसे ब्रह्मणों करके यज्ञ समाप्त कियागया ॥ १७ ॥ जो जिसको चाहता था उसके लिये वह यथेष्ट कियागया वस्त्र और आभूषणों के दान व सुन्दर सवारियों से ॥ १८ ॥ सालंकायन राजाकरके ऋत्विज् लोग पूजन कियेगये ब्रह्मा, विष्णु और महादेव एकबारही सब पूजन कियेगये ॥ १९ ॥ तदनन्तर शिवालय में जाकर देव-ताओं करके पूजन कियागया सब कामफलोंका देनेवाला, पार्वतीकरके सहित, सुक्ति और मुक्तिका देनेवाला शिवस्वरूप माहेश्वरनाम से विदित लिंगको ॐमहे-श्वर, देव, शम्भु के लिये नमस्कार नमस्कार है ॥ २० ॥ २१ ॥ इत्यादि मन्त्रकरके विधिसे पूजन करके हाथ जोड़ेहुये होकर राजा वहीं स्थित होतेहुये ॥ २२ ॥ तदन-

दितम् ॥ ब्रह्मालङ्कारदानैश्च दिव्ययानैस्सुशोभनैः ॥ १८ ॥ ऋत्विजःपूजितास्सर्वे सालङ्कायनभूयता ॥ युगपत्पूजि-
तास्सर्वे ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥ १९ ॥ ततःशिवाल्यंगत्वाल्लिङ्गत्रिदशपूजितम् ॥ नाम्नामाहेश्वराख्यातं सर्वकामफ-
लप्रदम् ॥ २० ॥ उमयासहितशम्भुं सुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ॥ ॐमहेश्वरायदेवाय शम्भवायनमोनमः ॥ २१ ॥ इत्या-
दिनातुमन्त्रेणसमभ्यर्चयैविविधानतः ॥ कृताञ्जलिपुटोभूत्वास्थितस्तत्रैवपार्थिवः ॥ २२ ॥ ततोविनिर्गतादेवीपदमूलेनशू-
लिनः ॥ प्रवाहोनर्मदाभेदे नामर्मदस्सुरपूजितः ॥ २३ ॥ ईश्वराद्यास्तथादेवास्सर्वेतुष्टास्तुभारत ॥ वरंयाचस्वभूपाल
यथेष्टंमनसेप्सितम् ॥ २४ ॥ उवाचवचनन्देवान् राजापरमधार्मिकः ॥ यदिमेवरदायूयं कामदाश्चप्रसादतः ॥ २५ ॥
इदंस्थानन्तुनत्याज्यमीश्वराद्यैस्सुरैरपि ॥ यान्तुराष्ट्रेप्रजावृद्धिमनावृष्ट्याप्रपीडिताः ॥ २६ ॥ इदंवरमहंमन्ये पापा
यान्तुत्रिविष्टपम् ॥ अग्निश्चाहवनीयोत्रस्वयंतिष्ठतिसर्वदा ॥ २७ ॥ देवाल्मनुः ॥ यत्त्वयाभाषितंराजंस्तत्सर्वन्तुभवेदिति ॥

न्तर नर्मदादेवी महादेवजी के चरणके नीचे से निकली वह नर्मदाजी का प्रवाह देवताओं करके पूजितहुआ ॥ २३ ॥ हे भारत ! फिर सन्तुष्टहुये महादेवआदि सब देवताओं ने कहा कि हे भूपाल ! यथेष्ट अपने मनका अभीष्टवर तुम मांगो ॥ २४ ॥ तब परमधार्मिक राजा देवताओं से वचन बोले कि जो आपलोग अपनी प्रसन्नता से हमको वर व कामना के देनेवालेहो ॥ २५ ॥ तो महादेव आदि देवताओं करके यह स्थान त्याग नहीं कियाजावे और राज्यमें अनावृष्टि से पीडित होरही प्रजा वृद्धिको प्राप्तहोवे ॥ २६ ॥ इसी वरको हम चाहतेहैं कि पापीभी स्वर्गको जावे और आहवनीय अग्नि यहां सर्वदा आपही बनेरहे ॥ २७ ॥ तब देवता बोले कि हे

राजन् ! जो आपकरके कहा गया है वह सबहोगा यह कहकर आकाशचारी सब देवता अन्तर्द्धान होगये ॥ २८ ॥ देश फिर वृद्धिको प्राप्त किया गया और इन्द्र अभीष्ट समयमें वर्ष करनेवालेहुये यज्ञको समाप्त करके दिव्यमन्त्रियों से युक्त ॥ २९ ॥ हजारों राजा और अपनी रानी व सामानके सहित राजा देवताओं से रची हुई रमणीक अयोध्यापुरी में प्रवेश करतेहुये ॥ ३० ॥ हे राजन् ! यह उमाहादेस्वरपुरका वृत्तान्त तुमसे कहा गया है जिससे तीर्थयात्रियों में प्राप्त हो रहे, पापी, गण्डु, पत्नी और मर्पश्चादि व जो परवश व अपनेवश हो शिवलोक को प्राप्त होता है ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणरेवाखण्डेप्राकृतभाषासुत्रादेषञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

एवमुक्त्वाययुस्सर्वैह्यन्तर्द्धानश्चखेचराः ॥ २८ ॥ पुनःप्रवर्द्धितंराष्ट्रं कामवर्षीचवासवः ॥ यज्ञनिवर्तयित्वा तु दिव्यामात्यै र्समाहृतः ॥ २९ ॥ महीपालसहस्रैस्तु सान्तःपुरपरिच्छदः ॥ विवेशनगरंरम्यामयोध्यान्देवनिर्मिताम् ॥ ३० ॥ एतत्तेकथितंराजन्नुमामाहादेस्वरमप्रति ॥ तीर्थयग्योनिगताःपाषा मृगपक्षिसरीसृपाः ॥ ३१ ॥ अवशःस्ववशोवापि शिवलोकमवाप्नुयात् ॥ ३२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणरेवाखण्डेपञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥ *

मार्कण्डेयउवाच ॥ अथान्यत्कथयिष्यामि मण्डपेश्वरमुत्तमम् ॥ स्नातमात्रो नरस्तत्रनविशेद्यो निसङ्कटम् ॥ १ ॥ दशलक्षाणितीर्थानि तस्मिंस्तिष्ठन्तिभारत ॥ मण्डपेश्वरतीर्थस्य कूर्ममृद्धिवदर्चनम् ॥ २ ॥ सुरासुरगणैरिष्टं तस्मिंस्तीर्थेनराधिप ॥ अनेकभाविकंपापं तत्क्षणादेवनश्यति ॥ ३ ॥ तिलोदकप्रदानेनपिण्डपातेनभारत ॥ तृप्यन्तिपित रस्सर्वे यावत्तिष्ठतिकल्पगा ॥ ४ ॥ तत्रयस्त्यजतिप्राणानवशस्स्ववशोपिवा ॥ दशवर्षसहस्राणि राजवैद्याधरेषुरे ॥ ५ ॥

मार्कण्डेयजी बोले कि अब और उत्तम मण्डपेश्वर तीर्थको कहते हैं जिसमें स्नानमात्र कियेहुआ मनुष्य योनि के सङ्कट को नहीं प्राप्तहोता है हे भारत ! उस तीर्थमें दशलाखतीर्थ और विद्यमान हैं मण्डपेश्वरतीर्थ का कछुये के बढने के समान पूजन होता है अर्थात् कछुवा जैसे मानसी प्रेमसे बढ़ता है वैसेही इसका भी मानसपूजन होता है ॥ १ । २ ॥ हे नराधिप ! उस तीर्थमें देवता और दैत्योंकरके यजन किया गया है अनेक जन्मोंका पाप उसीक्षणही नष्ट होता है ॥ ३ ॥ तिलोदक व पिण्डोंके देनेसे जन्मतक सब पाप नष्ट रहते हैं ॥ ४ ॥ वहां परवश व अपने वशहोकर जो प्राणोंको छोड़ता है वह दशहजार वर्ष

तक विद्याधरों के पुरमें राजा होता है ॥ ५ ॥ बादरायण और शाकटनाम के दो ब्रह्मा के मानस पुत्रहुये वे महर्षिगणों करके सेवित पवित्र अगस्त्य के आश्रम में रहते थे ॥ ६ ॥ महादेवजी की भक्तिमें परायण कन्द, मूल, फल और शाककरके अपनी आजीविका करते थे एक समयके प्राप्तहुये पर राजाके पुत्र, अयोध्या के स्वामी, शोभावाले, इन्द्रके तुल्य पराक्रमी अजापाल राजा जोकि एकसौ आठ व्याधों को बकरी बनाकर रक्षा करतेहुये ॥ ७ ॥ ८ ॥ उक्त राजाके समय में कुंवर के समान धनाढ्य सत्तालाख वर्ष प्रजा जीवतीथी तथा राजा पुरीकी राज्यकरतेहुये ॥ ९ ॥ व किसी समयमें वही महाभाग राजा सेनाके सहित और हजारों राजाओं के साथ व

मानसौब्रह्मणःपुत्रौ बादरायणशाकटौ ॥ अगस्त्यस्याश्रमंपुण्यं महर्षिगणसेवितम् ॥ ६ ॥ कन्दमूलफलैश्श
कैःशिवभक्तिपरायणैः ॥ एकदावसरेप्राप्ते अजापालोन्मुपात्मजः ॥ ७ ॥ अयोध्याधिपतिःश्रीमाञ्चकतुल्यपराक्र
मः ॥ अष्टोत्तरंशतंव्याधानजाःकृत्वाररत्नच ॥ ८ ॥ सपादलक्षंजीवन्ति प्रजास्तस्मिन्महर्षिपतौ ॥ धनाढ्याधनदस्ये
व प्रशशासपुरीन्तथा ॥ ९ ॥ सकदाचिन्महाभागः ससैन्योमृगयाङ्गतः ॥ महीपालसहस्रेण मुदापरमयायुतः ॥
१० ॥ सोऽपश्यत्पर्वतस्याग्रे मेरुतुल्येमहीपतिः ॥ पुष्पारामसहस्राणि हर्म्याणिविविधानिच ॥ ११ ॥ तत्रैवशतसाह
स्रं यतीनामूर्द्ध्वरेतसाम् ॥ भक्त्याभ्यर्च्यविधानेन देवेशंचमुनीस्तथा ॥ १२ ॥ प्रणम्योवाचमधुरं बादरायणशाकटौ ॥
पितृणांतारणार्थाय श्राद्धकालत्वसिद्धये ॥ १३ ॥ महानयंभवद्भिश्च प्रसादःक्रियताम्मयि ॥ अभ्यर्च्यतान्मुनीन्सर्वान्प्र
णिपत्यस्थितस्ततः ॥ १४ ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वाअजापालस्यभूभुतः ॥ ऋषीणांतापसौवृद्धौ बादरायणशाकटौ ॥ १५ ॥

बड़े आनन्द करके युक्त शिकार को गये ॥ १० ॥ उन राजाने सुमेरु के तुल्य पर्वतकी चाटीपर हजारों फुलवारी व अनेकप्रकारके महलोंको देखा ॥ ११ ॥ वहींपर हजारों जितेन्द्रिय संन्यासियोंको और महादेवव मुनियोंको विधिपूर्वक भक्तिमें पूजनकरके ॥ १२ ॥ बादरायण व शाकट से नमस्कार करके मधुरवाणी को बोले पितरों के तारने के वास्ते जो श्राद्ध है तिसर्वा सिद्धिके लिये ॥ १३ ॥ राजाने कहा कि आप लोगों करके मेरे ऊपर यह बड़ा अनुग्रह कियाजावे यह कहकर उन सब मुनियों का पूजन करके और नमस्कार करके स्थित होतेहुये ॥ १४ ॥ उन अजापाल राजाके इस वचनको सुनकर ऋषियोंमें वृद्ध, तपस्वी बादरायण और शाकट ॥ १५ ॥

ये दोनों अजापालराजा से वचनबोले कि उत्तमव्रतवाले सबही मुनि राजाके दानके लेनेवाले नहीं होते ॥ १६ ॥ राजासे दान लेना बड़ाघोर व पाप और बड़ा डरावना होता है नरक में घोरपीडा सहने को कौन शक्तिवाला होसक्ता है ॥ १७ ॥ हे नृपश्रेष्ठ ! आपका कल्याण हो और आपको मार्ग सुख देनेवाला होवे यह कहकरके उन मुनियों ने अपनी वाणीको रोककिया ॥ १८ ॥ ब्राह्मणों के शापके भयसे डरे हुये राजा खुपहोगये तदनन्तर घण्टाआदि आभूषणों से भूषित दशहजार हाथी ॥ १९ ॥ और सुवर्ण का बनावहुआ उत्तम एक मठ एक ब्राह्मणको संकल्प करके दे दिया और कालञ्जर पर्वत की तीन प्रदक्षिणा राजा करतेहुये ॥ २० ॥ भक्तिसे युक्त

ऊचतुस्तौतुवचनमजापालन्नराधिपम् ॥ नराजग्राहकास्सर्वे मुनयश्शंसितव्रताः ॥ १६ ॥ राजप्रतिग्रहोघोरो रौद्रःपापोभयावहः ॥ नरकेयातनाद्धोरां कस्मोदुंशक्तिमान्भवेत् ॥ १७ ॥ स्वस्तितेऽस्तुनृपश्रेष्ठ पन्थानस्सन्नुते शिवाः ॥ एवमुक्त्वातुचक्रुस्ते मुनयोवाक्यसंयमम् ॥ १८ ॥ ब्रह्मशापभयाद्भीतो नृपस्तूष्णीं बभूवुह ॥ गजानां दशसाहस्रं घण्टाभरणभूषितम् ॥ १९ ॥ प्रादाद्विप्रायसङ्कल्प्य मठं हेममयं शुभम् ॥ कालञ्जरगिरिराजा विश्वकारप्रदं क्षिणम् ॥ २० ॥ नमस्कृत्वा महेशानं भक्तियुक्तं सुहृद्वृतः ॥ जगामस्वपुरं राजा यथाशक्रो मरावतीम् ॥ २१ ॥ गते तस्मिन्महीपाले ऋषयः काममोहिताः ॥ केचिद्भजसमारूढा नानारत्नसमन्विताः ॥ २२ ॥ केचिदश्वसमारूढा वीज्यमानाश्च चामरैः ॥ लभन्ते विविधान्भोगान्स्ते ब्रह्मर्षिपतिपोधनाः ॥ २३ ॥ देवस्वभक्तकास्सर्वे स्त्रीलोभवशर्वर्तिनः ॥ सुखञ्च परमं प्राप्ता देवद्रव्येन राजसाः ॥ २४ ॥ कालान्तरे ततः प्राप्ते सर्वे मृत्युवशज्ञताः ॥ वर्जयित्वा तु विप्रौ द्वौ चादरायणशः

और अपने मित्रोंकरके सहित महादेवजी के नमस्कार करके राजा अपने पुरको जातेहुये जैसे इन्द्र अमरावती को जावे ॥ २१ ॥ उन राजाके गयेपर कामसे मोहित ऋषिलोग अनेक रत्नोंसेयुक्त कोई हाथियों पर चढ़ेहुये ॥ २२ ॥ और कोई बौड़ोंपर सवार चामरोंसे हवा कियेजारहे वे तपोधन ब्रह्मर्षि अनेक भोगोंको प्राप्त हो रहे हैं ॥ २३ ॥ देवताओं की द्रव्यका भोग करतेहुये सब स्त्री के लोभके वशमें पड़ेहुये रजोगुणी लोग उस देवद्रव्य करके बड़ेसुल को प्राप्त होतेहुये ॥ २४ ॥

तदनन्तर कालान्तर के प्राप्त होनेपर वे सब मृत्युके वशकी प्राप्त होतेहुये बादरायण और शाकट इन दोनों ब्राह्मणोंको छोड़करके ॥ २५ ॥ देवता को अर्पित कियेहुये पदार्थोंके भक्षण करने से वे सब पापी मुनिश्रेष्ठ कुत्ताकी योनिको प्राप्तहुये और अशुद्धवस्तुओंके भक्षण करनेवालेहुये ॥ २६ ॥ उन लोगोंके संगसे वे भी दोनों मुनि कुत्ते के मुखके समान मुखवाले होगये सब लोग अपने कर्मोंका शोच करतेहुये मनुष्योंकी वाणी बोलतेहैं ॥ २७ ॥ वे दोनों बादरायण और शाकट कुत्ताकी योनिको प्राप्त होरहे मुनियोंसे पूछतेहुये कि तुम लोग किस कर्मकरके कुत्तेकी योनिको प्राप्तहुये हो ॥ २८ ॥ तब ऋषि बोले कि देवता, गुरु और महादेवकी द्रव्यके दान व भोजन व

कटौ ॥ २५ ॥ श्वयोनिसमनुप्राप्तास्मर्वते मुनिपुङ्गवाः ॥ अमेध्यभक्षकाः पापादेव निर्माल्यभक्षणात् ॥ २६ ॥ तेषां सम्पर्कभावेन श्ववक्त्रौ द्वाबुपस्थितौ ॥ शोचन्तस्स्वानिकर्ममार्णि व्याहरन्तः स्वकाङ्गिरम् ॥ २७ ॥ पप्रच्छतुश्श्वयोनौस्तौ बादरायणशाकटौ ॥ कर्मणा केन यूयं श्वयोनिसमुपागताः ॥ २८ ॥ देवद्रव्ये गुरुद्रव्ये द्रव्ये च एङ्गीश्वरस्य च ॥ त्रिविधं पातकं दृष्टं दानभक्षणलङ्घनात् ॥ २९ ॥ तस्मात्सम्पर्कदोषेण सारमेयत्वमागताः ॥ बभ्रुमुस्सर्वतीर्थानि दिव्यं वर्षशतन्तथा ॥ ३० ॥ नैमिपारण्यमासाद्य यथायोगं व्यवस्थिताः ॥ तेषां तद्वचनं श्रुत्वा बादरायणशाकटौ ॥ दिव्यं वर्षशतन्तथा ॥ ३१ ॥ जगमतुर्ब्रह्मलोकन्तौ ब्रह्मपुत्रौ यशस्विनौ ॥ अभिवाद्यथान्यायं ब्रह्माणं जगताम्पतिम् ॥ ३२ ॥ ऊचतुश्चस्वष्टत्तान्तं पितरं तत्त्वदर्शिनम् ॥ अत्यन्तौ मुनिशार्दूलौ दृष्ट्वा तौ विद्वतानौ ॥ ३३ ॥ उवाच वचनं श्रीमान् ब्रह्मालोकपितामहः ॥ देवद्रव्यापहारेण दुष्कृतं स्वर्गगर्हितम् ॥ ३४ ॥ सुरासुरगणैर्यत्तु लङ्घितुं नैव शक्यते ॥ किम्पुन मनुषैः क्षुद्रैर्देवद्रव्यैः ॥ ३५ ॥ इमं संसर्गं दोष करके हम कुत्तेकी योनिको प्राप्तहुये सब तीर्थों में देवताओं के सौ वर्षतक अगते रहे ॥ ३० ॥ नैमिषारण्यको भी प्राप्तहोकर जैसेके तैसे वनरहे बादरायण और शाकट उनके इस वचनको सुनकर ॥ ३१ ॥ वे दोनों यशस्वी ब्रह्माके पुत्र ब्रह्मालोकको जातेहुये जगत के पति ब्रह्माका यथायोग्य अभिवादन करके ॥ ३२ ॥ तत्त्वके देखनेवाले अपने पितासे अपना वृत्तान्त कहतेहुये मुनियों में श्रेष्ठ उन दोनोंको अत्यन्त धिगड़े मुहँवाले देखकर ॥ ३३ ॥ लोकके पितामह श्रीमाय ब्रह्माजी वचन बोले कि देवताओं की द्रव्यके हरने से बड़ा पापहोता जिससे स्वर्ग कभी नहीं हो

सक्ता ॥ ३४ ॥ देवता और दैत्यों करके भी जो अतिक्रमण करनेको योग्य नहीं है वह देवद्रव्य से जीविका करनेवाले जुद्धमनुष्यों करके कैसे होसकत है ॥ ३५ ॥ उन का तो घोरनरक में गिरना अवश्यही कहागया है उनकी निष्कृति तो लोकों की पवित्र वरनेवाली नर्मदाही कहीगई है ॥ ३६ ॥ नर्मदा के जलमें स्नानकरके और महादेव को पूजन करके सब पापों से छूटजाता है यह हमकरके सत्य कहागया है ॥ ३७ ॥ बादरायण और शाकट ब्रह्माके वचनको सुनकर ऋषियों करके सहित बहाही नर्मदातटके आश्रित होतेहुये ॥ ३८ ॥ इस पापके शुद्ध करने के वास्ते इस लोक में और नदी नहीं है तदनन्तर वे सब मुनिलोग पूर्वजन्म के कियेहुये पापको स्मरण

व्योपजीविकैः ॥ ३५ ॥ तेषान्तुनियतञ्चारे नरकेपतनंस्मृतम् ॥ निष्कृतिर्नर्मदातेषां विहितालोकपावनी ॥ ३६ ॥
 स्नात्वातुकल्पगातोयेऽभ्यर्चयित्वावृषध्वजम् ॥ मुच्यतेसर्वपापेभ्यस्सत्यमेतन्मयोदितम् ॥ ३७ ॥ पितामहवचःश्रु
 त्वा बादरायणशक्तौ ॥ ऋषिभिस्सहतत्रैव नर्मदातीरमाश्रितौ ॥ ३८ ॥ सरिन्नान्यास्तिलोकैस्मिन्पापस्यास्यवि
 शुद्ध्ये ॥ ततस्तेमुनयस्सर्वेस्मरन्तःपूर्वदुष्कृतम् ॥ ३९ ॥ षण्मासाभ्यन्तरेराजिच्छिवध्यानपरायणाः ॥ निष्कलम
 पावभूवुस्ते तीर्थस्यास्यप्रभावतः ॥ ४० ॥ बल्याद्यामुनयस्सर्वे शतक्रतुपुरोगमाः ॥ ददृशुस्तेक्रतुवरंशिवैनवयथोदि
 तम् ॥ ४१ ॥ गृहीत्वाथमुनीन्सर्वे ब्रह्माद्याश्चसुरासुराः ॥ सुप्रभांस्तांस्तुदेवत्वं मण्डपेश्वरदर्शनात् ॥ ४२ ॥ तेनालिङ्ग
 न्तुविख्यातं लोकैस्मिन्मण्डपेश्वरम् ॥ स्वारोचिषेन्तरेप्राप्ते त्रेतायान्तुनृपोत्तम ॥ ४३ ॥ क्षत्रियाणांसहस्राणि तत्र
 सिद्धानिभारत ॥ एतत्सर्वसमाख्यातं समासेनमयानघ ॥ ४४ ॥ श्रवणात्कीर्तनाद्राजन् हयमेधफलंलभेत् ॥ ४५ ॥ युधि

करतेहुये ॥ ३६ ॥ महादेवके ध्यान में तत्पर हे राजन् ! छह महीनेमें इस तीर्थ के प्रभाव से वे पापरहित होजातेहुये ॥ ४० ॥ वे बलिआदि सब मुनि इन्द्रसहित महादेव कर
 किये हुये श्रेष्ठ यज्ञ को देखतेहुये ॥ ४१ ॥ तदनन्तर सब ब्रह्माआदि देवता और असुर भी मण्डपेश्वर के दर्शन से सुन्दर शोभावाले होरहे उन मुनियों को लेकर
 देवभावको प्राप्त करतेहुये ॥ ४२ ॥ इसी से इस लोकमें मण्डपेश्वरलिंग विख्यात हुआ है नृपोत्तम ! स्वारोचिष मन्वन्तर के त्रेतामें ॥ ४३ ॥ हे भारत ! हजारों क्षत्रिय
 लोग यहां सिद्ध होतेहुये हे अनघ ! यह सब संक्षेपसे सुभकरके कहागया ॥ ४४ ॥ हे राजन् ! इसके सुनने और कहने से अश्वमेधके फलको पाताहै ॥ ४५ ॥ युधिष्ठिरजी

बोले कि अमरेश्वरके पूर्व और पर्यङ्कके परिचममें ॥ ४६ ॥ हे तपोधन ! तीर्थोंकी संख्याको कमकरके कहो ॥ ४७ ॥ मार्कण्डेयजी बोले कि हे गहाभाग, राजन् ! पूर्वभाग में स्थित पापोंके नाश करनेवाले श्वेतकिंशुकनामक तीर्थको सुनो जिसमें स्नान कियेहुये मनुष्य सुखरूप से स्वर्गको जातेहुये ॥ ४८ ॥ व वहीं परमसिद्धि का देने वाला श्वेतकिंशुकनामक लिंगहै और स्वर्गफल के देनेवाले ताटकेश्वर देवभी हैं ॥ ५० ॥ व पापोंका नाश करनेवाला वर्ण इस नामका और तीर्थ है जहां लोकमें वरके देनेवाले त्र्यम्बक महादेव हैं ॥ ५१ ॥ उस तीर्थके माहात्म्य से गण्डेश स्वर्गको जातेहुये वहां गण्डकेश्वर लिंग और वैसेही शुल्लेश्वर लिंगहै ॥ ५२ ॥ नर्मदा और दन्ति-

ष्ठिरउवाच ॥ अमरेश्वरपूर्वपणपर्यङ्कात्पश्चिमेतथा ॥ ४६ ॥ तीर्थसंख्याक्रमेणैवकथयस्वतपोधन ॥ ४७ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ शृणुराजन्महाभाग पूर्वभागेव्यवस्थितम् ॥ ४८ ॥ श्वेतकिंशुकनामानं तीर्थपापप्रणाशनम् ॥ नराःसुखेनरूपेण यत्रस्नातादिवङ्गताः ॥ ४९ ॥ श्वेतकिंशुकनामास्ति लिङ्गपरमसिद्धिदम् ॥ ताटकेश्वरदेवश्च तत्रस्वर्गफलप्रदः ॥ ५० ॥ अन्यत्तुवर्णनामेति तीर्थपापप्रणाशनम् ॥ त्र्यम्बकरतुमहादेवो यत्रलोकेश्वरप्रदः ॥ ५१ ॥ तस्यतीर्थस्यमाहात्म्याद्गण्डेशस्त्रिवङ्गतः ॥ गण्डकेश्वरलिङ्गन्तु लिङ्गशुक्लेश्वरन्तथा ॥ ५२ ॥ नर्मदादन्तिवनिकासङ्गमोलोकविश्रुतः ॥ तत्रलिङ्गेश्वरलिङ्गं सर्वसिद्धिप्रदायकम् ॥ ५३ ॥ बालकेश्वरलिङ्गन्तु तथान्यत्पूर्णकेश्वरम् ॥ रेवायाउत्तरेकूले नर्मदापुरमुत्तमम् ॥ ५४ ॥ तीर्थकपिशिलानाम सर्वानर्थविदूषणम् ॥ लिङ्गसिद्धेश्वरन्नाम तथान्यन्नाडकेश्वरम् ॥ ५५ ॥ अत्रान्तरेनृपश्रेष्ठ दशलक्ष्णाणिनामतः ॥ तीर्थानिदशलक्ष्णाणि कीर्तितानियथाक्रमम् ॥ ५६ ॥ ततो गच्छेन्नृपश्रेष्ठ वैदूर्यात्पश्चिमांदिशम् ॥ शशभीनर्ममदायोगं सर्वपापप्रणाशनम् ॥ ५७ ॥ मुक्तिदं मुक्तिदं चैव लिङ्गवैशशभेश्वरविकाका सङ्गम लोकं विदितं वहां सब सिद्धियों का देनेवाला लिंगेश्वरलिंग है ॥ ५३ ॥ बालकेश्वर और अन्य पूर्णकेश्वर लिंगभी वहां हैं नर्मदाके उत्तरतट में उत्तम नर्मदापुर है ॥ ५४ ॥ सब अनर्थों का नाश करनेवाला कपिशिलानाम का तीर्थहै वहां सिद्धेश्वर वैसेही अन्य नाडकेश्वर लिंगहै ॥ ५५ ॥ हे नृपश्रेष्ठ ! इसी अनन्तर में दशलक्ष्णानाम के दशलक्ष तीर्थ यथाक्रम कहे गये हैं ॥ ५६ ॥ हे नृपश्रेष्ठ ! तदनन्तर वैदूर्यपर्वत से पश्चिमदिशा को जावे जहा सब पापोंका नाश करने-

वाला शशमी और नर्मदाका योग है ॥ ५७ ॥ वहां मुक्ति और सुक्ति देनेवाला शशभेश्वरलिंग है जोकि गर्दभयोनिसे छुटानेवाला तीनोंलोकों में विख्यात हैं ॥ ५८ ॥
हे नराधिप ! वहां मण्डलेश्वर नामका तीर्थ और लिंगभी है जहां माण्डलिक राजा और अजापाल मनुजी सिद्धहुये हैं ॥ ५९ ॥ वहां यज्ञकरके मनुय फिर संसारमें नहीं आता है तिलोदक व पिण्डदान से हे भारत ! ॥ ६० ॥ जबतक चन्द्रमा व सूर्य रहते तबतक उसके पितर तृप्त रहते हैं वहां जो दान किया जाता उसके पुण्यकी संख्या नहीं है ॥ ६१ ॥ तदनन्तर सब तीर्थों में श्रेष्ठ व शुभ कान्तारकर्तृथ वी जावे वहां स्नान करनेवाले स्वर्गको जाते हैं और जो मंगेहें वे फिर उत्पन्न नहीं होते

रम् ॥ त्रिषुल्लोकेषु विख्यातं गर्दभयोनिमोज्ज्वलम् ॥ ५८ ॥ मण्डलेश्वरनामैह तीर्थलिङ्गं नराधिप ॥ यत्र माण्डलिकाः
सिद्धा अजापालो मनुस्तथा ॥ ५९ ॥ तत्र चेष्टा तु मनुजसम्पन्नैश्च पुनर्भवे ॥ तिलोदकप्रदानेन पिण्डपातेन भारत ॥
६० ॥ पितरस्तस्य तृप्यन्ति यावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥ तत्र प्रदीयते दानं तस्य संख्यानविद्यते ॥ ६१ ॥ कान्तारकं ततो गच्छेत्तत्
वर्तृथं वरं शुभम् ॥ तत्र स्नाता दिव्यं नित्ये मृतान पुनर्भवाः ॥ ६२ ॥ सपादलक्षमधिकं तीर्थानां मण्डलेश्वरे ॥ कीर्तितं
तत्र राजेन्द्र यथा दृष्टं यथा श्रुतम् ॥ ६३ ॥ त्रेतायां रघुवंशे तु कुमारौ रामलक्ष्मणौ ॥ मैथिल्या सह राजेन्द्र उतीर्णौ यत्र क
ल्पगाम् ॥ ६४ ॥ जगम तुः पितुराज्ञां वै कुर्वन्तौ विष्णुरूपिणौ ॥ स्नात्वा तीर्थं वरेतत्र भक्त्याभ्यर्च्य महेन्द्रवरम् ॥ ६५ ॥
राजतीर्थन्तु तद्गोप्यं लिङ्गं वै लक्ष्मणेन्द्रवरम् ॥ सीतेश्वरन्तर्था लिङ्गं सुरासुरनमस्कृतम् ॥ ६६ ॥ तत्र स्नात्वा च यित्वा तु
शूलपाणिं महेन्द्रवरम् ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तो गाणपत्यमवाप्नुयात् ॥ ६७ ॥ ततो गच्छेन्नुपश्रेष्ठ पुण्यतीर्थं शिवालये
है ॥ ६८ ॥ मण्डलेश्वर में कुछ अधिक सवालख तीर्थ हैं हे राजेन्द्र ! सो सब आप से देखे और सुनेके अनुसार कहेगये ॥ ६९ ॥ त्रेता विपे रघुवंश में हुये राम
और लक्ष्मणनाम के राजकुमार सीताकरके सहित हैं हे राजेन्द्र ! जहां नर्मदा को उतरे ॥ ६४ ॥ और पिताकी आज्ञा करते हुये विष्णुरूप आप उस श्रेष्ठतीर्थमें स्नान
करके और महादेव का पूजन करके जाते हुये ॥ ६५ ॥ वहां छिपाने योग्य राजतीर्थ है और देवता व दैत्योंकरके नमस्कार कियेगये लक्ष्मणेश्वर व सीतेश्वरलिंग हैं ॥ ६६ ॥
वहां स्नानकरके व शूलपाणि महादेव का पूजन करके सब पापों से छुटाहुआ गणों की राज्यको प्राप्त होता है ॥ ६७ ॥ तदनन्तर हे नृपश्रेष्ठ ! पुण्यतीर्थ शिवालयेको

जावे वहां रमणीक उस माहिष्मतीपुरी को देखकर कभी नीचेको नहीं गिरता ॥ ६८ ॥ जहां कालाग्नि रुद्र कोई कारणों-करके जलतेहुये ऐसे विद्यमान होरहे हैं और वहां तैतीस करोड़ लिङ्ग हैं ॥ ६९ ॥ हे नराधिप ! तदनन्तर कोटितीर्थ में कोटीश्वरलिंग है वहां उस लिंगके पूजनसे करोड़यज्ञोका फल होता है ॥ ७० ॥ वहां पर दियेहुये दानकी करोड़गुनी संख्या होजाती है व मुक्ति और मुक्तिफलका देनेवाला दशाश्वमेधतीर्थ है ॥ ७१ ॥ वहां तिलोदकके देनेसे पितरोंकी उत्तम गति होती है व स्नानमात्र कियेहुये मनुष्य सूर्यके तेजके समान तेजवाला होता है ॥ ७२ ॥ वहां सामान्य से पांचपुर महादेवकरके कहेगये हैं प्रभास, कुरुक्षेत्र वैसेही शुभ

म् ॥ माहिष्मतीपुरीरम्यां तान्दृष्ट्वानच्युतः कचित् ॥ ६८ ॥ यत्र कालाग्नि रुद्रोऽस्ति प्रज्वलन्निवहेतुभिः ॥ त्रयस्त्रिंशत्तु तिष्ठन्तु लिङ्गानां कोटयस्तथा ॥ ६९ ॥ ततः कोटीश्वरं लिङ्गं कोटितीर्थेनराधिप ॥ यज्ञकोटिफलंतत्र तस्य लिङ्गस्य पू जनात् ॥ ७० ॥ तत्र दत्तस्य दानस्य कोटिसंख्या तु विधत्ते ॥ दशाश्वमेधतीर्थन्तु मुक्तिमुक्तिफलप्रदम् ॥ ७१ ॥ तिलो दकप्रदानेन पितृणां गतिरुत्तमा ॥ स्नातमात्रो नरस्तत्र सूर्यतेजस्समप्रभः ॥ ७२ ॥ पुराणि पञ्चसामान्या च्छम्भुना कीर्तितानि वै ॥ प्रभासश्च कुरुक्षेत्रं तथा मायापुरी शुभा ॥ ७३ ॥ अवनती च महाकालं तथा माहेश्वरम्पुरम् ॥ एतेषु च स मग्रेषु विद्धि लिङ्गान्यनुक्रमात् ॥ ७४ ॥ अत्र दत्तं हुतं चेष्टमक्षयादपि चाक्षयम् ॥ अवशस्स्ववशो वापि प्राणत्यागं करोति यः ॥ ७५ ॥ स याति परमं स्थानं यत्र देवो महेश्वरः ॥ कीर्तयेत्प्रातस्तथाय पुण्यान्येतानि यो नरः ॥ ७६ ॥ न स पापेन लिप्येत यमलोकं न पश्यति ॥ तीर्थेऽपि पीलिका नाम गता यत्र पिपीलिकाः ॥ ७७ ॥ शिवलोकं महाभाग सर्वलोकोत्तमो

मायापुरी ॥ ७३ ॥ अवनती महाकाल और माहेश्वरपुर इनसर्वांमें क्रमसे लिंगोंको भी जानो ॥ ७४ ॥ यहांपर जो दिया गया वह जन किया गया वह अक्षयसे भी अक्षय होता है और परवश व अपने वश होकर जो प्राणत्याग करता है ७५ ॥ वह जहां महेश्वरदेवजी रहते हैं उस परमस्थानको जाता है और जो मनुष्य प्रातःकाल उठकर इन पुण्यलिंगों का कीर्तन करता है ॥ ७६ ॥ वह पापसे नहीं लिप्त होना और यमलोक को भी नहीं देखता है एक पिपीलिका नामका तीर्थ है

हे महाभाग ! जहां सब लोकों में उत्तम से उत्तम शिवलोक की पिपीलिका जाती हुई व बन्ध्या और नर्मदा का समायोग देवता और दैत्योंकरके नमस्कार किया गया है ॥ ७७ ॥ ७८ ॥ हे राजेन्द्र ! जिस संगम में मुनिकेश्वरलिंग है उसको योगी देखते हैं व मनुष्य उसको नहीं देख पाते हैं ॥ ७९ ॥ नर्मदा के दक्षिणतट में वह नगर विख्यात है हे नराधिप ! जहा दशहजार लिंग व तीर्थ हैं ॥ ८० ॥ वहां चण्डीश्वर तथा उडुगणेश्वर नाम और वकेश्वरलिंगको जानो जहां बगुला स्वर्गको जाते हुये ॥ ८१ ॥ गङ्गावह नामका तीर्थ सब सिद्धियों का देनेवाला है और हे भारत ! वहां निर्मल अङ्गोरेश ऐसा लिंगभी जानना चाहिये ॥ ८२ ॥ सोमतीर्थ और इसके आगे

सप्तमम् ॥ बन्ध्यारेवासमायोगं सुरासुरनमस्कृतम् ॥ ७८ ॥ सङ्गमेयत्रराजेन्द्र लिङ्गैवमुनकेश्वरम् ॥ योगिनस्तत्तुप
श्यन्ति नतत्पश्यन्तिमानुषाः ॥ ७९ ॥ विख्यातंतत्तुनगरं नर्मदादक्षिणेतटे ॥ अयुतंयत्रलिङ्गानां तीर्थानाञ्चनरा
धिप ॥ ८० ॥ लिङ्गंचण्डीश्वरन्नाम तथैवोडुगणेश्वरम् ॥ वकेश्वरन्तत्रविद्धि वकायत्रदिवङ्गताः ॥ ८१ ॥ तीर्थगङ्गा
वहनाम लिङ्गैवसर्वसिद्धिदम् ॥ अङ्गोरेशमितिज्ञेयं विमलंतत्रभारत ॥ ८२ ॥ सोमतीर्थमितिज्ञेयं शुक्लतीर्थमतः
परम् ॥ तीर्थानानिरसन्नाम ध्रुवतीर्थंनराधिप ॥ ८३ ॥ अनेकानिसहस्राणि तीर्थानांचैवभारत ॥ तीर्थोपिपीलिका
नाम भुक्तिसुक्तिप्रदायकम् ॥ ८४ ॥ क्रोशमात्रन्तुविज्ञेयं पूर्वपश्चिमतस्तथा ॥ तीर्थानामयुतंसाङ्गं ऋषिदेवनिषे
वितम् ॥ ८५ ॥ तत्रदशहृतंचैव तस्यसंख्यानविद्यते ॥ तत्रयस्सन्त्यजेत्प्राणानवशस्स्ववशोपिवा ॥ ८६ ॥ सर्वपाप
विनिर्मुक्त उभामाहेश्वरेशुरे ॥ मोदतेसर्वकामैस्तुयावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥ ८७ ॥ यस्मादेवंशिवंतस्मादचयेच्छान्त

शुक्लतीर्थ जाननेयोग्य है नराधिप ! जहा तीर्थों में श्रेष्ठ निरसनाम, ध्रुवतीर्थ है ॥ ८३ ॥ हे भारत ! और भी अनेकों हजार तीर्थ हैं पिपीलिका नामका तीर्थ मुक्ति और सुक्ति का देनेवाला है ॥ ८४ ॥ नर्मदा के पूर्व और परिचम कोराभरतक ऋषि और देवताओं करके सेवन किये गये पन्द्रह हजार तीर्थ जाननेयोग्य हैं ॥ ८५ ॥ वहां पर देय और होमेहुये की कुछ संख्या नहीं है वहापर जो कोई अवश व अपने वश होकर प्राणोंको छोड़ता है ॥ ८६ ॥ वह सब पापों से छुटाहुआ जयतक चौदह इन्द्र

रहते तबतक उमानाहेश्वरपुर में सब कामनाओं से युक्त आनन्द करता है ॥ ८७ ॥ जिससे ऐसा है तिससे शान्तमन होकर महादेव का पूजन करे जो सबका मित्र और नित्य सबपर दया करनेवाला होता है वह परमपद को प्राप्त होता है ॥ ८८ ॥ हे नराधिप ! क्षणमात्र करके जो पुण्य होता है वह निश्चय करके सौ वर्ष से नहीं और सैकड़ों यज्ञों से भी नहीं होता व हे राजन् सैकड़ों तीर्थोंकरके भी सिद्ध करने की योग्य नहीं होसकता तिससे दीन और अनाथ सब प्राणियों में दया की भावना करता हुआ शिवपूजन करे ॥ ८९ ॥ ९० ॥ हे राजन् ! पुण्यवाले पुरुषों मेंही सदैव मैत्री और मुदिता होती है व सब प्राणियों में पुण्यवालेही को सुख होता है यह

मानसः ॥ मैत्रः कारुणिको नित्यं प्राप्नोति परमं पदम् ॥ ८८ ॥ क्षणमात्रेण यत्पुण्यं ततः कुर्यान्नराधिप ॥ न तद्वर्षशते
नापि न तु यज्ञशतैरपि ॥ ८९ ॥ शक्यं साधयितुं राजंस्तथा तीर्थशतैरपि ॥ सर्वप्राणिषु कारुण्यं दीनानाथेषु भावयन् ॥
९० ॥ मैत्री च सुदिताराजन् पुण्यशीलेषु सर्वदा ॥ पुण्यवत्सु खमपेक्ष्य सर्वप्राणिषु यत्नतः ॥ ९१ ॥ अक्षेत्रे तु कृतं पुण्यं
समम्भवति भारत ॥ नर्मदासङ्गमो यत्र तत्र संख्या न विद्यते ॥ ९२ ॥ अन्यदेशे कृतं पापं पुण्यक्षेत्रे विनश्यति ॥ पुण्य
क्षेत्रे कृतं पापं वज्रलोपो भविष्यति ॥ ९३ ॥ उत्तीर्णो नर्मदां यत्र कार्तिकेयो महाबलः ॥ लिङ्गतत्र च विज्ञेयं सिद्धिदं कार्ति
केश्वरम् ॥ ९४ ॥ चन्द्रेश्वरन्तथा लिङ्गं लिङ्गैश्च शिखीश्वरम् ॥ शक्तीश्वरन्तथा चान्यत्सर्वपापप्रणाशनम् ॥ ९५ ॥ ए
ते पाञ्चैव लिङ्गानां मर्चनं भक्तिभावतः ॥ ब्रह्महत्यादिकात्पापान्मुच्यते नात्र संशयः ॥ ९६ ॥ शिवलोकमवाप्नोति पितॄणां

विचारकरके यत्ने से पुण्यही को करे ॥ ९१ ॥ जहां क्षेत्र नहीं है वहां किया गया पुण्य हे भारत ! साधारण होता है और जहां नर्मदा का सङ्गम है वहां की कुछ संख्याही नहीं है ॥ ९२ ॥ और जगह में किया हुआ पाप पुण्यक्षेत्र में नष्ट होजाता है और पुण्यक्षेत्र में किया हुआ पाप वज्रलोप होजाता है ॥ ९३ ॥ वड़े बलवाले कार्तिकेयजी जहां नर्मदा उतरे थे वहां सिद्धिके देनेवाले कार्तिकेश्वरलिंगको जानना चाहिये ॥ ९४ ॥ चन्द्रेश्वरलिङ्ग वैसेही एक और सब पापोंका नाश करनेवाला शक्तीश्वरलिङ्ग भी वहां है ॥ ९५ ॥ इन लिंगोंका भक्तिभाव से पूजन करने से ब्रह्महत्या आदि पापोंसे छूटजाता है इसमें कोई संशय नहीं है ॥ ९६ ॥

और शिवलोकको प्राप्तहोता है उसके पितरों को स्वर्गकी प्राप्तिहोती है ॥ ६७ ॥ युधिष्ठिरजी बोले कि हे भगवन् ! माहिष्मती के पाँचवम तिलेशके सर्माप में सब पापों के नाश करनेवाले देवता और दैत्योंकरके नमस्कार कियेगये रासभी और नर्मदा के संगम के सुनने की हम इच्छा करते हैं ॥ ६८ ॥ ६९ ॥ तत्र मार्कण्डेय जी बोले कि हे महाभाग, राजन् ! पुराने इतिहास को सुनो नर्मदा और गर्दभी का सङ्गम तिर्यग्योनि से छुड़नेवाला है ॥ १०० ॥ हे महाराज ! जिस पापनाशन तीर्थमें सुतेजास्त्री और हरिकेश ब्राह्मण की अपार गर्दभयोनि से मुक्ति हुई ॥ १ ॥ व हे युधिष्ठिर ! बड़े समर्थ हविर्धाननाम के राजर्षि होतेहुये और ब्रह्मज्ञानियों में श्रेष्ठ

स्वर्गतिस्तथा ॥ ९७ ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ भगवञ्छ्रोतुमिच्छामि माहिष्मत्यास्तुपश्चिमे ॥ ९८ ॥ सन्निधौचितिलेशस्य स
र्वपापप्रणाशनम् ॥ रासभीनर्मदाम्बेदं सुरासुरनमस्कृतम् ॥ ९९ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ शृणुराजन्महाभाग इतिहा
संपुरातनम् ॥ नर्मदगर्दभीभेदं तिर्यग्योनिविमोक्षणम् ॥ १०० ॥ यस्मिंस्तूर्थमहाराज सुतेजाहरिकेशयोः ॥ अ
पाराद्रासमन्वाच्च मुक्तिः कल्मषनाशने ॥ १ ॥ हविर्द्धानस्तुराजर्षिरासीत्कल्पोयुधिष्ठिर ॥ आत्रेयस्य सुतश्चासीद् ब्र
ह्मर्षिर्ब्रह्मचित्तमः ॥ २ ॥ पावकस्य सुताया तु पाणिग्रहणधर्मतः ॥ हविर्द्धानायसादत्ता सुतेजानामनामतः ॥ ३ ॥ कु
शवल्कपरीधाना कन्दमूलफलाशिनी ॥ रूपयौवनसम्पन्ना पार्वतीव मनोहरा ॥ ४ ॥ हविर्द्धानस्तुराजर्षिर्ऋतुबुद्ध्या
गतस्तुताम् ॥ आगतोसौ युवातत्र सर्वशस्त्रविशारदः ॥ ५ ॥ महर्षिन्त्वागतं ज्ञात्वा सुतेजाकामितुङ्गता ॥ सहसालंकृता
न्तान्तु करंजग्राहसंहिजः ॥ ६ ॥ तेन साधर्षितातत्र यथेष्टं कामपीडिता ॥ अग्निहोत्रस्य शालायां दाम्पत्यं कामसंयु

आत्रेयके पुत्र हरिकेशनामक वक्षर्षि भी होतेहुये ॥ २ ॥ व जो नाम से सुतेजानाम की अग्निकी कन्याथी वह विवाहकी रीतिसे हविर्द्धान के वारते दी जातीहुई ॥ ३ ॥
जोकि कुश व भोजपत्रों को पहिरनेवाली और कन्द, मूल और फलोंको भोजन करनेवाली, रूप और जवानी से भरीहुई पार्वती के समान मनोहर होती हुई ॥ ४ ॥
हविर्द्धानराजर्षि ऋतुसंयय को जानकर उस स्त्री के साथ गमन करतेहुये तबतक सब शास्त्रोंके जाननेवाले वे युवा हरिकेश वहां आतेहुये ॥ ५ ॥ आयेहुये महर्षि को
जानकर सुतेजा कामना के वारते जातीहुई उन हरिकेश ब्राह्मणने भी आभूषणोंसे भूषित उस स्त्रीका सहसा हाथ पकड़लिया ॥ ६ ॥ वहां कामसे पीड़ित वह स्त्री उम

ब्राह्मण करके यथेष्ट धर्षित कीगई व अग्निहोत्रकी शाला में कामसे युक्त स्त्री पुरुष का संयोग होताहुआ ॥ ७ ॥ धर्म और अधर्म के जाननेवाले वे महात्मा हविर्द्वा नि देखतेहुये उस अग्निकी कन्या को देलकर उदारानिमुखवाले होगये ॥ ८ ॥ पापकर्मका करनेवाला, दुष्ट, पापात्मा, ब्राह्मण अवध्य है व यह दुष्टा हमारी स्त्री भी स्त्री होलेसे अवध्य है ॥ ९ ॥ इस प्रकार निचारकरके अपनी स्त्री के भ्रष्ट करनेवाले उस ब्राह्मण से हविर्द्वा नि बोले कि साता, गुरुकी स्त्री, बहिन और कन्या में ॥ १० ॥ गमनकरके अग्निमें प्रवेशकरै तब मनुष्य शुद्ध होता है इससे हे ब्राह्मण ! तू और यह हमारी स्त्री गदहा और गदही होजा ॥ ११ ॥ देवताओं के हजार वर्षतक तम् ॥ ७ ॥ ददृशे समहात्मवै धर्म्मधर्मविशारदः ॥ आसीद्विषण्वदनो दृष्ट्वा तां पावकात्मजाम् ॥ ८ ॥ अवध्यो ब्राह्मणो दुष्टः पापात्मा पापकर्मकृत ॥ इयञ्च पत्नी दुष्टामे न वध्यास्त्री न्च भावतः ॥ ९ ॥ तमुवाच विचार्यैवं ब्राह्मण नन्दारक पंकम् ॥ मातरं गुरुपत्नीञ्च स्वसारं दुहितरन्तथा ॥ १० ॥ गत्वा तु प्रविशेदग्निं ततः शुद्धेत मानवः ॥ गर्दभस्त्वं भवेद्विप्र गर्दभी च तथा विधि ॥ ११ ॥ दिव्यं वर्षसहस्रन्तु अमेध्यं भक्षयिष्यथः ॥ सुते जा हरिकेशौ तु हविर्द्वा निःशशापतौ ॥ १२ ॥ पीडितौ कर्मणा तेन गतो वदरिकाश्रमम् ॥ हिमस्थानञ्च केदारं भैरवैर्नैमिषं तथा ॥ १३ ॥ सूर्याक्षं च गयातीर्थं गङ्गा सागरसङ्गमम् ॥ वाराणसीं प्रयागञ्च ओर्ध्वतीर्थञ्च पुष्करम् ॥ १४ ॥ योगीश्वरं रुद्रकोटिं महेन्द्रं ब्रह्मसम्भवम् ॥ प्रभासं च्चक्रुर्ब्रजे त्रीर्थसौम्ये श्वरन्तथा ॥ १५ ॥ अनेकानि च तीर्थानि पृथिव्यां यानि च ॥ सार्द्धं तथा तपस्विन्या हवि र्द्वा नि स्वयं शापतः ॥ १६ ॥ अनेकदुःखसम्पन्नो हरिकेशो भ्रमन्महीम् ॥ स्वरयोनियुक्तस्तु परदारभिकर्षकः ॥ १७ ॥

अशुद्ध भक्षण करोगे इस प्रकार सुतेजा और हरिकेश इन दोनोंको हविर्द्वा नि शापदेतेहुये ॥ १२ ॥ उस कर्मकरके पीडित वे दोनों बदरिकाश्रम को जातेहुये और हिमालय, केदार, भैरव तथा नैमिष ॥ १३ ॥ सूर्याक्ष, गयातीर्थ, गङ्गासागरसंगम, काशी, प्रयाग, ओवतीर्थ, पुष्कर ॥ १४ ॥ योगीश्वर, रुद्रकोटि, महेन्द्र, ब्रह्मसम्भव, प्रभास, कुक्षेत्र तथा सौम्येश्वरतीर्थ ॥ १५ ॥ और भी जो कोई पृथिवीपर तीर्थ हैं उन सबमें हविर्द्वा नि के शापसे उस तपस्विनी स्त्रीकरके सहित ॥ १६ ॥ अनेक

दुःखोंकरके युक्त व परस्त्री के अष्ट करनेवाले व गदहे की योनिमें पड़ेहुये हरिकेश पृथिवी में अमतेहुये ॥ १७ ॥ बहुत कालकरके उसी ह्मीकरके सहित, उसी गदहे के रूपकरके हरिकेश वहा अगस्त्य महासुनि को प्राप्तहुये ॥ १८ ॥ वहां गिरकर साष्टाङ्ग मुनिके नमस्कार करके कहा कि गुरुस्त्री मे गमन करनेवाले व परस्त्री मे गमन करनेवाले पार्ष्णीके पापका ॥ १९ ॥ प्रायश्चित्त हे द्विजोत्तम ! मुझको विधान से दियाजावे ब्रह्मलोक के बराबर स्थान में स्थित होरहे आप इस योनिको छुटा देवो ॥ २० ॥ तब अगस्त्यने उनसे कहा कि तुम हविर्दानके समीप जावो उनके इस वचन को सुनकर सुतेजाके संगको प्राप्तहोरहे हरिकेश ब्रह्मचारी मुनियों के

कालेनभूयसातत्र हरिकेशस्तथासह ॥ तैर्नैवस्वरूपेण अगस्त्यश्चमहामुनिम् ॥ १८ ॥ नमस्कृत्यमुनिं तत्र साष्टाङ्गं प्रणिपत्य च ॥ गुरुत्वरूपगपापस्य परदारमिगाभिनः ॥ १९ ॥ प्रायश्चित्तविधानेन दीयतामभेद्विजोत्तम ॥ मोचयत्वमिमां योनिं ब्रह्मलोकपदस्थितः ॥ २० ॥ हविर्दानान्तिकं याहितो गस्त्य उवाच तम् ॥ तस्य तद्वचनं श्रुत्वा मुनीनामूद्धरे तसाम् ॥ हरिकेशोऽब्रवीद्वाक्यं सुतेजासहसङ्गतः ॥ २१ ॥ अनुग्रहमिमं मन्ये ब्राह्मणानां न संशयः ॥ ततो गता तु ते राजन् हविर्दानस्य चाश्रमम् ॥ २२ ॥ नमस्कृत्य मुनिश्रेष्ठं हरिकेशोऽब्रवीद्वचः ॥ गुरुतत्पगपापोहं क्षमस्व मयि पुनर्युक्ते ॥ २३ ॥ शपान्तं च वरं मन्ये दातुमर्हसि सुव्रत ॥ तस्य तद्वचनं श्रुत्वा हरिकेशस्य दुर्मतेः ॥ २४ ॥ उवाच च चर्चनं विप्रस्तं वै गर्दभरूपिणम् ॥ स्वकर्मणा तनुं त्वं हि गार्दभो प्राप्तवानसि ॥ २५ ॥ जन्मान्तरकृतैश्चैव कर्मभिः कर्मकारिभिः ॥

अत्यक्ष वचन बोले ॥ २१ ॥ कि यह हम ब्राह्मणों का बड़ा अनुग्रह मानते हैं इस में कोई संशय नहीं है तदनन्तर हे राजन् ! वे दोनों उस हविर्दान के आश्रमको जातेहुये ॥ २२ ॥ मुनियों में श्रेष्ठ हविर्दान के नमस्कार करके हरिकेश यचन बोलतेहुये कि गुरुस्त्री के गमन करनेका पापवाला मैं हूँ सो मुझ पुत्रमें आप क्षमा कीजिये ॥ २३ ॥ और शपान्तहीको हम वर मानतेहैं सो हे सुव्रत ! आप मुझको देनेको योग्यहो उस दुर्मति हरिकेश के इस वचनको सुनकर ॥ २४ ॥ उस गदहे के रूपवाले से हविर्दान वचन बोले कि अपने कर्मकरके तू गदहे के शरीर को प्राप्तहोरहा है ॥ २५ ॥ कर्मकारियों करके और जन्ममें कियेहुये कर्मोंकरके शुभ

व अशुभफल अवश्य प्राप्तहोता है इसमें कोई संशय नहीं है ॥ २६ ॥ हे विप्र ! कर्मोंका यह फल इन्द्रसहित देवताओं करके भी जानने के योग्य नहीं होसक्ता, कर्मोंकी गति बहुत कठिन है ॥ २७ ॥ तिससे हे ब्राह्मण ! तेरा दोष किसीतरह नहीं होसक्ता किन्तु और जन्ममें कियेहुये कर्मकरके यह कर्म तुझकरके कियागया ॥ २८ ॥ तिससे इस गदही करके सहित नर्मदातट में तू अग्निमें प्रवेशकर वहां महादेवजी से वरको प्राप्तहोकर फिर तू उत्तमगति को प्राप्त होगा ॥ २९ ॥ हे राजन् ! इस प्रकार कहागया हरिकेश उस गदही करके सहित जाताहुआ हरिकेश और सुतेजा नर्मदातटके समीप ॥ ३० ॥ लकड़ी जमाकरके अग्निमें प्रवेश किया

शुभंवाप्यशुभंवापि प्राप्यतेनात्रसंशयः ॥ २६ ॥ कर्मणाञ्चविपाकोयमपिदैवस्सवासवैः ॥ ज्ञातुन्नशक्यतेविप्रग्रह
नाकर्मर्म्णाङ्गतिः ॥ २७ ॥ दोषोनविद्यतेचैव तद्ब्राह्मणकथञ्चन ॥ किन्तुजन्मान्तरेयेन कर्मर्म्णातत्कृतंतव ॥ २८ ॥
तस्माद्विशुताशनन्त्वमनयामेकलातटे ॥ शङ्कराद्वरमासाद्य तावत्प्राप्स्यसिसद्गतिम् ॥ २९ ॥ एवमुक्तोययौराजन्ह
रिकेशस्तयासह ॥ हरिकेशस्सुतेजाच नर्मर्म्मादीरसन्निधौ ॥ ३० ॥ दारुणिचसमाहृत्य प्रविष्टौचहुताशनम् ॥ त
त्क्षणाद्विव्यदेहौतु स्नात्वास्पृष्ट्वाह्युभावपि ॥ ३१ ॥ कामिकंयानमारूढौ सर्वालङ्कारभूषितौ ॥ अस्यतीर्थस्यसाहा
त्म्याद्यथालक्ष्मीजनार्दनौ ॥ ३२ ॥ भुञ्जन्तौविविधान्भोगान्मात्वासाहेश्वरंपुरम् ॥ तेनासौसङ्गमःपुरयस्तिर्यग्भयोनि
विमोक्षणः ॥ ३३ ॥ हरिकेशेश्वरंलिङ्गं सुतेजानिर्मितंतथा ॥ हविर्द्धानिश्वरन्नाम चतुर्थोऽगस्त्यनिर्मितम् ॥ ३४ ॥ च
त्वारिपुरयलिङ्गानिकाममोक्षप्रदानितु ॥ तिलोदकप्रदानेन तस्मिंस्तोर्थेनराधिप ॥ ३५ ॥ मातृकंपैतृकंचैव नरकादु

उसोक्षण दोनों दिव्यदेह होगये नर्मदा में स्नान और स्पर्श करके ॥ ३१ ॥ सब अलङ्कारों से भूषित, यथेष्ट सवारीपर चढ़ेहुये इस तीर्थ के माहात्म्य से जैसे लक्ष्मी और विष्णुहोवें ॥ ३२ ॥ इसीतरह साहेश्वरपुर को जाकर अनेक भोगोंको भोगते हुये इसीति यह तिर्यग्योनि का छुड़ानेवाला पवित्र संगम है ॥ ३३ ॥ वहां हरिकेशेश्वरलिङ्गहै और सुतेजाकरके रचाहुआ लिङ्गहै हविर्द्धानिश्वर और चौथा अगस्त्य का स्थापन कियाहुआ लिङ्गहै ॥ ३४ ॥ ये चारो पुरयलिङ्ग काम और मोक्षके देने

वाले हैं हे नराधिप ! उस तीर्थमें तिलोदक के देनेसे ॥ ३५ ॥ माता और पिता के कुल के पितरों को नरकसे उद्धार करता है वहां स्नान करनेवाले स्वर्गको जाते हैं और जो मरे हैं वे फिर उत्पन्न नहीं होते हैं ॥ ३६ ॥ हे राजन् ! यह पुराना इतिहास तुमसे कहा गया ॥ १३७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डे प्राकृतभाषाऽनुवादे गदर्भी तीर्थवर्णनो नाम षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

फिर मार्कण्डेयजी बोले कि तदनन्तर सब देवताओं करके नमस्कार किये गये गौरीखण्ड को जात्रे वहां स्नान करके मनुष्य सब तीर्थों के फलको पाता है ॥ १ ॥

छरेत्पितृन् ॥ तत्र स्नाता दिव्यान्ति ये मृतान पुनर्भवाः ॥ ३६ ॥ एतत्ते कथितं राजन्नाख्यानञ्च पुरातनम् ॥ १३७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डे गदर्भी तीर्थवर्णनो नाम षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

मार्कण्डेय उवाच ॥ गौरीखण्डे ततो गच्छेत्सर्वदेवनमस्कृतम् ॥ तत्र स्नानेन लभते सर्वतीर्थफलान्नरः ॥ १ ॥ तिलोदकप्रदानेन पितृणां तृप्तिरक्षया ॥ जायते च नृपश्रेष्ठ नात्र कार्या विचारणा ॥ २ ॥ गौरीखण्डे श्वरन्नाम लिङ्गं पापहरं परम् ॥ तत्र ज्ञेयं मणिमयं जलमधेयव्यवस्थितम् ॥ ३ ॥ न तत्पश्यन्ति मनुजास्सर्वे देवैस्तु प्रजितम् ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ गौरीखण्डे श्वरन्नाम तस्मिन् तीर्थे कथमुने ॥ ४ ॥ कथ्यताञ्च यथान्यायं विदितं यत्तु साम्प्रतम् ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ पुरा देवगणैस्सर्वैः कुमारः शङ्करात्मजः ॥ ५ ॥ सेनापत्येनियुक्तश्च तारकस्य बधम्प्रति ॥ कामितास्तेन तत्रैव सर्वास्ताः

और तिलोदक के देने से हे नृपश्रेष्ठ ! पितरों की अन्नय तृप्ति होती है इसमें कुछ विचार नहीं करना चाहिये ॥ २ ॥ वहां पापोंका हरनेवाला श्रेष्ठ गौरीखण्डेश्वर नाम लिंग जलके मध्यमें विद्यमान मणियों से रचित जानना चाहिये ॥ ३ ॥ उसको मनुष्य नहीं देख पाते हैं किन्तु सब देवताओं करके ही पूजन किया जाता है युधिष्ठिरजी बोले कि हे मुने ! गौरीखण्डेश्वर नाम उस तीर्थमें किस प्रकार आये ॥ ४ ॥ सो जो विदित हो वह आपकरके इस समय यथायोग्य कहा जावे तब मार्कण्डेयजी बोले कि पूर्वकाल में सब देवगणों करके महादेवजी के पुत्र, कुमार ॥ ५ ॥ तारकासुर के मारने के वास्ते सेनापतिके अधिकारमें स्थापन किये गये वही उक्त

सेनापति करके वे सब देवताओं की स्त्रियां कामना की गई ॥ ६ ॥ तदनन्तर वे सब उमामाहेश्वरपुर में प्रातर्की गई पार्वतीजी स्त्रियोंके सहित प्राप्तहुये कुमारजी की सुनकर उदासीन होगई ॥ ७ ॥ जिस २ स्थान में कुमारने उनकी कामनाकी वही २ पार्वतीजी प्राप्तहुई ॥ ८ ॥ माताको देखकर कुमार लज्जित होगये और मोर पर सवार हुये देवताओं करके सहित चलेगये ॥ ९ ॥ पीछेसे रोतीहुईकी नाई जाग्रही माता देवी पार्वतीजी महोदेवका पूजन करके नर्मदाको उतरीं ॥ १० ॥ इसी से तीनों लोकोंमें वह तीर्थ गौरीखण्ड नामसे विख्यात हुआ वहां कुमारेश्वर नाम का लिङ्ग स्थापित किया गया ॥ ११ ॥ मयूरेश्वर लिंगभी मुक्ति और मुक्तिफल का

सुरयोषितः ॥ ६ ॥ उपालब्धास्ततस्सर्वा उमामाहेश्वरेशुरे ॥ उपालब्धन्तुतंश्रुत्वा विषसाचैवपार्वती ॥ ७ ॥ कामितंय त्रयत्रैव तत्रतत्रेश्वरेश्वरी ॥ ८ ॥ दृष्ट्वाथलज्जितःसोपि पद्मिणासौसमाययौ ॥ देवैःपरिवृतःश्रीमानमयूरस्थोमहाबलः ॥ ९ ॥ पृष्ठतोनुगतामाता रुदतीवसुरेश्वरी ॥ उत्तीर्णाकल्पगान्देवी पूजयित्वा महेश्वरम् ॥ १० ॥ गौरीखण्डन्तु विख्यातं त्रिषुलोकेषुतेनतत् ॥ लिङ्गप्रतिष्ठितं त्र कुमारेश्वरसंज्ञितम् ॥ ११ ॥ मयूरेश्वरलिङ्गन्तु मुक्तिमुक्तिफलप्रदम् ॥ यस्यदेवस्यमाहात्म्यानमयूरास्त्रिदिवङ्गताः ॥ १२ ॥ अर्चनात्तस्यदेवस्य तिर्थार्थयोर्निर्नजायते ॥ ततो गच्छेन्महाराज करमर्दासमागमम् ॥ १३ ॥ तत्रस्नातो महाराज सभवेन पुनर्भवेत् ॥ करमर्द्देश्वरलिङ्गं पूजयेत्तत्रभारत ॥ १४ ॥ पि तृणांतर्पणत्तत्र स्वर्गप्राप्नोतिमानवः ॥ युधिष्ठिरउवाच ॥ कथयस्वमहाभाग करमर्दासमुद्भवम् ॥ १५ ॥ भविष्यभूततत्त्वज्ञस्त्रिकालज्ञस्त्रिवेदवित् ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ कथयामि यथादृष्टं शृणु चैकमनानुप ॥ १६ ॥ मैत्रेयस्याश्रमं पुण्यं ऋ देवेनाला है जिस देव के माहात्म्य से मयूर स्वर्गको जातेहुये ॥ १२ ॥ उन देवके पूजन करने से तिर्थार्थोनि नहीं होती है महाराज ! तदनन्तर करमर्दा के समगम को जावै ॥ १३ ॥ वहां जिसने स्नान किया है महाराज ! वह फिर संसारमें नहीं होता है भारत ! वहां करमर्द्देश्वर लिंगका पूजन करे ॥ १४ ॥ व वहां पितरोंके तर्पण करनेसे मनुष्य स्वर्गको प्राप्तहोता है युधिष्ठिरजी बोले कि हे महाभाग ! करमर्दाकी उत्पत्तिको कहो ॥ १५ ॥ आप भूत और भविष्यके तत्त्वके ज्ञान-नेवालेहो और तीनोंकाल व तीनों वेदों को जानतेहो तब मार्कण्डेयजी बोले कि हे नृप ! जैसा देखा है वैसाही हम कहते है तुम एकाग्रमन होकर सुनो ॥ १६ ॥

ऋषियों करके सेवित, मैत्रेयमुनिका पवित्र आश्रम होताहुआ जब वहां कन्द, मूल और फलोंके आहार करनेवाले हजारों मुनि तप करनेके वास्ते सदा वास करतेहुये तब किसीकालमें उस मुनिवरके आश्रम में ॥ १७ ॥ १८ ॥ हे नृप ! एकछत्र राज्य करनेवाले कुशध्वज नामके राजा सूर्यग्रहण में नर्मदा के तटपर आतेहुये ॥ १९ ॥ वहां उतरेहुये सब मुनियों के यथायोग्य नमस्कार करके कहा कि आज पितरों के श्राद्धका समय है आपलोग मुझपर प्रसन्नता करिये ॥ २० ॥ तब ऋषि बोले कि एकवार ब्याईहुई, दूधकी देनेवाली, बछड़ों के सहित, सुन्दर रत्नवाली, घण्टा और आभूषणोंकरके सोहतीहुई एकलाख गौवाँको ॥ २१ ॥ देवता और पितरोंके

षिभिस्तुनिषेवितम् ॥ मुनीनान्तुसहस्राणिकन्दमूलफलाशिनम् ॥ १७ ॥ निवसन्तियदातत्र तपःकर्तुन्निरन्तरम् ॥ कस्मिंश्चिदन्यकालेतु तस्मिन्मुनिवराश्रमे ॥ १८ ॥ राजाकुशध्वजोनामएकच्छत्राधिपोत्तप ॥ आगमन्मेकलातीरंराहुसूर्यसमागमे ॥ १९ ॥ अवतीर्णान्मुनीन्सर्वान्यथार्हंप्रणिपत्यच ॥ पितॄणांश्राद्धकालोद्य प्रसादःक्रियतांमयि ॥ २० ॥ ऋषय ऊचुः ॥ गवां दशायुतान्येकप्रसूतानांपयोमुचाम् ॥ सवत्सानांसुवर्णानां घण्टाभरणशोभिनाम् ॥ २१ ॥ यदि शक्रोषिदातुन्त्वं होमार्थोपितुदेवयोः ॥ तत्रप्रवर्ततांश्राद्धं सत्यमेतत्तवोदितम् ॥ २२ ॥ तेषांतद्वचनंश्रुत्वा मुनीनामूर्ध्वरेतसाम् ॥ कुशध्वजोऽब्रवीद्वाक्यं ब्राह्मणांस्तान्यथार्थतः ॥ २३ ॥ अनुग्रहमिममन्ये यथोक्तंब्रह्मचारिभिः ॥ ददाम्यहन्नसन्देह इहैवमुनिपुङ्गवाः ॥ २४ ॥ भोजयित्वाततःश्राद्धे ब्राह्मणांस्तान्नुपोत्तमः ॥ सकुशंजलमादाय तेभ्योदत्ता तुगास्तदा ॥ २५ ॥ दत्त्वादानंमुदायुक्तः सजगामस्वकम्पुरम् ॥ स्थितास्तुब्राह्मणास्तत्र होमकार्यार्थं सिद्धये ॥ २६ ॥

अर्थ व होमके लिये देनेको जो आप समर्थ होवों तो श्राद्ध प्रवृत्तहोवे यह हमलोगों करके तुमसे सत्य कहागयाहै ॥ २२ ॥ उन ऊर्ध्वरेता मुनियोंके इस वचन को सुनकर उन ब्राह्मणों से कुशध्वज यथार्थ वचन बोलेतेहुये ॥ २३ ॥ जैसा ब्रह्मचारियों करके कहागया इसको हम अनुग्रह मानते हैं हे मुनिश्रेष्ठो ! हम यहाँ गौवें देदेवोंगे इसमें कोई सन्देह नहीं है ॥ २४ ॥ तदनन्तर श्राद्धमें उन ब्राह्मणोंको भोजन कराके श्रेष्ठ राजा ने कुशसहित जल लेकर उनके वास्ते उसी समय में गौवें भी देदीं ॥ २५ ॥ दानको देकर बड़े आनन्द से युक्त वे राजा अपने पुरको चलेगये और ब्राह्मणलोग होम करनेके लिये वहाँ स्थित होतेहुये ॥ २६ ॥

एक दिन घोररूप बड़ी डाढ़ोंवाले, भयानक, डरावने मुहँवाले, भूखे राजस प्राप्तहुये ॥ २७ ॥ तब ब्राह्मणों की गौवोंको खानेके वास्ते प्राप्तहो रहे उन भयानकरूपवाले तीक्ष्णशब्द के करने में तत्पर हो रहे राजसों को- देखकर ॥ २८ ॥ अपने उस स्थान से भागीहुई गौवें नर्मदाके जलमें प्रवेशकर जातीहुई वे सब कामधेनु उसीक्षणमें दिव्यलोक में स्थित होतीहुई ॥ २९ ॥ तदनन्तर वे सब भूखेराक्षस ब्राह्मणों के भक्षण करनेको प्राप्तहुये वे सब उत्तमव्रतवाले ब्राह्मण परमेश्वर का स्मरण करते हुये ॥ ३० ॥ राजसों करके पीड़ित नर्मदा के जलमें पैठजाते हुये वहाँ विष्णुके पसीना का प्रवाह नर्मदाको जाताहुआ ॥ ३१ ॥ सब देवताओं करके नमस्कार किया

एकस्मिन्वासरेप्राप्ता राजसाघोररूपिणः ॥ बुभुक्षितामहादंष्ट्रा विह्वतास्याभयानकाः ॥ २७ ॥ ब्राह्मणानां तद्गा
वै भक्षितुं ममुपागतान् ॥ दृष्ट्वा तान्विह्वताकारां स्तीव्रनादपरायणान् ॥ २८ ॥ प्रणष्टास्तुततः स्थानान्नामर्मदाजल
माविशन् ॥ तत्क्षणाद्विव्यलोकस्थास्सर्वास्ताः कामधेनवः ॥ २९ ॥ ततस्तेक्षुधितास्सर्वे ब्राह्मणान्भक्षितुङ्गताः ॥ हरिं
स्मरन्ति ते सर्वे ब्राह्मणाश्शंसितव्रताः ॥ ३० ॥ रेवाजलं प्रविष्टा वै राक्षसैः परिपीडिताः ॥ विष्णोः प्रस्वेदजस्तत्र प्रवाहो न
र्ममदाङ्गतः ॥ ३१ ॥ गोपदं दृश्यते तत्र सर्वामरनमस्कृतम् ॥ करमर्द्देश्वरं लिङ्गं विष्णुचक्राद्विनिस्सृतम् ॥ ३२ ॥ प्रति
ष्ठितं च तत्रैव विष्णुना प्रभविष्णुना ॥ गावश्च ब्राह्मणाश्चैव सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ॥ ३३ ॥ ब्रह्मलोकंगतास्यैव तीर्थस्यास्य
प्रभावतः ॥ करमर्द्देश्वरं तीर्थं सर्वपापप्रणाशनम् ॥ कीर्तितं कर्मण तनमह्याममिततेजसा ॥ ३४ ॥ तत्र स्नाता दिव्यान्ति
ये मृतानपुनर्भवाः ॥ श्रवणात्कीर्तनादस्य गोसहस्रफलं लभेत् ॥ ३५ ॥ इति श्रीरेवाखण्डे सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

गया गौवों के चरणों का चिह्न वहाँ दीखता है और करमर्द्देश्वर लिंग विष्णुजी के चक्र से निकला ॥ ३२ ॥ परमभगवान्वाले विष्णुजी करके वहाँ प्रतिष्ठित किया गया गौवें और ब्राह्मण इस तीर्थ के प्रभावसे ब्रह्मलोकको जातेहुये आपसे हम यह सत्य कहते हैं पृथिवीमें उस बड़े तेजवाले कर्मकरके करमर्द्देश्वरतीर्थ सब पापोंका नाश करनेवाला कहा गया है ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ वहाँ स्नान करनेवाले मनुष्य स्वर्गको जाते हैं और वहाँ के मरेहुये फिर जन्म नहीं पाते इसके सुनने और कहने से हजार गोदानका फल होता है ॥ ३५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे रेवाखण्डे प्राकृतभाषाऽनुवादे करमर्द्देश्वरकीर्तनं नाम सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥ ॥ ॥

युधिष्ठिरजी बोले कि राजाओं में श्रेष्ठ मान्धाता राजा तीनों लोकोंमें विदित होतेहुये इमसे उन बुद्धिमान् का चरित हम सुनने की इच्छा करते हैं ॥ १ ॥ तब मार्कण्डेयजी बोले कि हे महाभाग, राजन् ! जो तुम हमसे पूछते हो वह सुनो इक्ष्वाकुवंश में पैदाहुये युवनाश्व नामक राजा होतेहुये ॥ २ ॥ उन राजाने बड़ी दक्षिणावाली यज्ञोंसे यजन किया परन्तु वे दृढव्रत, महात्मा, राजर्षि पुत्रों रहित रहे ॥ ३ ॥ इससे वह राज्य मन्त्रियों के अग्नीन करके राजा बनमें जारहे शास्त्र में देखीहुई विधि करके अपनी बुद्धि से मनको रोककर ॥ ४ ॥ फल व जड़ोंको भक्षण करते हुये उन्होंने बड़ा तप किया एक दिन प्यास से विकल अत्यन्त

युधिष्ठिरउवाच ॥ मान्धाताराजशार्दूलस्त्रिषुलोकेषुविश्रुतः ॥ एतदिच्छाम्यहंश्रोतुं चरितंतस्यधीमतः ॥ १ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ शृणुराजन्महाभाग यन्मानन्वंपरिपृच्छसि ॥ इक्ष्वाकुवंशसम्भूतो युवनाश्वोमहीपतिः ॥ २ ॥ सोयजत्पृथिवीपालः क्रतुभिर्भूरिदक्षिणैः ॥ अनपत्यस्तुराजर्षिस्समहात्मादृढव्रतः ॥ ३ ॥ मन्त्रिष्ववाधायतद्राज्यंवननिष्ठोमर्हापतिः ॥ शास्त्रदृष्टेनविधिना संयम्यात्मानमात्मना ॥ ४ ॥ फलमूलानुभक्तश्च सचचारमहत्तपः ॥ शुष्ककण्ठः पिपासार्तः पानीयार्थेभृशान्द्रपः ॥ ५ ॥ सम्प्रविश्याश्रमस्यान्तः पानीयंसोभ्ययाचत ॥ तस्यशुष्केणकण्ठेन क्रोशतस्तुतदाभृश ॥ ६ ॥ नाश्रौषीद्वचनंतत्र चातकस्यैववासवः ॥ भगवांस्तुतदाकश्चिद्विस्तस्यमहीपतेः ॥ ७ ॥ पुत्रीयमग्रतःकृत्वा मप्यभिमन्त्रितम् ॥ रात्रौचकलशंतत्र जलपूर्णपिपासितः ॥ ८ ॥ अभ्यद्रवत्सवेगेन पीत्वापस्तत्रचास्वपत् ॥ सपीनोय पिपासार्तोमहीपतिः ॥ ९ ॥ अग्निर्निर्वर्तितस्तस्यसुखीचैवाभवत्तदा ॥ ततस्तेचाप्यबुध्यन्त सुनयदशं

राज्य पानी के भारसे आश्रम के भीतर पैठकर पानीको मांगते हुये तब सूखेगले से बड़ेजोर चिछाते हुये उन राजा के ॥ ५ ॥ ६ ॥ रात्रि रात्रि को शयन को शयन कीपाया प्यासे ॥ ७ ॥ राजा बड़ेवेग से दौड़े और उसी जलको पीके सोरहे प्याससे विकल वे राजा ठंडे पानी बहुतसी यज्ञों कीगइ ॥

को पीकर ॥ ६ ॥ अग्नि उनकी शान्तहुई और तब सुखीभी होतैहुये तदनन्तर श्रेष्ठव्रतवाले उन मुनिलोगों ने भी इस कामको जाना ॥ १० ॥ तब कुपितहोकर उन राजासे पूछा कि यह किसका काम है तब युवनाश्व बोले कि यह काम मेराही है यह बात सत्यह ॥ ११ ॥ तब युवनाश्व राजासे भार्गव भगवान् यह बोले कि तपसे भराहुआ यह जल पुत्रके वास्ते स्थापन कियागया था ॥ १२ ॥ दारुणतप के आश्रित होकर सुभ्रकरके तुम्हारे पुत्रके वास्ते यह काम कियागया हे राजेन्द्र ! जिससे तुम्हारे बलवान् पुत्रहोत्रे ॥ १३ ॥ बड़ा बलवाला व बड़ा पराक्रमवाला तपोबलसे युक्त सब धर्मोंमें अत्यन्त तत्पर इन्द्रके समान पुत्रहोगा ॥ १४ ॥ मन्त्रोंसे

सितव्रताः ॥ १० ॥ कस्येदं कर्म कुपिताः पप्रच्छुस्तं नृपन्तदा ॥ युवनाश्वो ममेत्येवं सत्यं समभिपद्यते ॥ ११ ॥ युवनाश्व मिदं प्राह भगवान् भार्गवंस्तदा ॥ सुतार्थं स्थापितं ह्येतत्तपसा चैव सम्भृतम् ॥ १२ ॥ मया कर्म कृतञ्चैतत्तपसा स्थापयदारुणम् ॥ पुत्रार्थं तव राजेन्द्र येन तेवलवान् भवेत् ॥ १३ ॥ महाबलो महावीर्यस्तपोबलसमन्वितः ॥ सुतश्शक्रसमोत्यर्थं सर्वधर्मपरायणः ॥ १४ ॥ विधिना मन्त्रयुक्तेन मयैतदुपपादितम् ॥ अभक्षणं त्वयाराजन्नयुक्तंकृतमत्रैव ॥ १५ ॥ नूनन्दैव कृतं त्वद्य यत्तत्त्वं कृतवानसि ॥ पिपासुना च यत्पीतं विधिमन्त्रपुरस्कृतम् ॥ १६ ॥ जलं त्वयामहाराज तेन त्वं वीर्यवानसि ॥ अन्वहं कर्म कृत्वापि महान्तं सुखमाप्स्यसि ॥ १७ ॥ विधास्यामो वयं चात्र पुत्रेष्टिपरमान्तदा ॥ वीर्येण शक्रतुल्यं त्वं पुत्रं वै जनयिष्यसि ॥ १८ ॥ ततो वर्षशते पूर्णे तस्य राज्ञो महात्मनः ॥ वामपाश्वी विनिर्भिद्य सुतस्सूर्य इवापरः ॥ १९ ॥ निश्चक्राम महातेजा न च तं मृत्युराविशत् ॥ युवनाश्वस्य नृपतेस्तदद्भुतमिवाभवत् ॥ २० ॥ ततश्शक्रो महातेजा

युक्त विधिसे सुभ्रकरके यह काम कियागया सो हे राजन् ! अभक्षणको तुमने भक्षण किया इससे तुमकरके यहां अयोग्य काम कियागया ॥ १५ ॥ आज जो तुमने किया है वह निश्चय से प्रारब्धकाही कियाहुआ है जो प्यासे आपकरके विधिपूर्वक मन्त्रों से संस्कृत जल पीडालागया हे महाराज ! इसीसे तुम गर्भवले होगये निरन्तर कर्मको करके भी बड़े सुखको प्राप्त होगे ॥ १६ ॥ १७ ॥ हमलोग तुम्हारे वास्ते यहां परमपुत्रेष्टि करेंगे तब पराक्रम करके इन्द्रके तुल्य तुम पुत्र पैदा करोगे ॥ १८ ॥ तदनन्तर सौवर्णिके पूर्णहोनेपर उन महात्मा राजाकी बाईकोखको फाड़कर दूसरे सूर्यसरीखा पुत्र ॥ १९ ॥ बड़ा तेजवाला निकल आताहुआ व उसकी मृत्यु नहीहुई

यह युवनाश्व राजाको आश्चर्यसा होताहुआ ॥ २० ॥ तदनन्तर बड़े तेजवाले इन्द्र उस लड़केको देखनेके लिये आतेहुये उन इन्द्रसे देवता पूछतेहैं कि यह बालक
 क्या पवित्रा ॥ २१ ॥ उन देवताओंसे इन्द्र यह कहतेहुये कि यह बालक मुझको पवित्रा तदनन्तर इन्द्र उसके मुहमें अपनी तर्जनी अंगुलीको लगादिया ॥ २२ ॥
 तदनन्तर प्रसन्न होरहा वह बालक इन्द्रकी उस प्रदेशिनीको पीताहुआ इन्द्र इस बालकका ठीक अर्थवाले मान्धाता इसनामको रखतेहुये ॥ २३ ॥ वहां वह मही-
 पाल बालक इन्द्रकरके दीहुई प्रदेशिनीको पाकरके सोलहवर्षतक बढ़ताहुआ किन्तु ॥ २४ ॥ तब उस महाराजको ध्यानमात्रहीसे आयुर्वेदआदि शास्त्र और दिव्य सब शास्त्र
 स्तन्द्रपुंसमुपागतः ॥ शक्रं पृच्छन्ति तन्देवास्सुतः किन्धास्यतीत्ययम् ॥ २१ ॥ एष मान्धास्यतीत्येवं शक्रः प्रोवाच
 तान्सुरान् ॥ प्रदेशिनीञ्च तस्यास्ये ततः शक्रस्समादधौ ॥ २२ ॥ सतांबालस्ततो हृष्टः पपौ तस्य प्रदेशिनीम् ॥ मान्धा-
 तेति च नामास्य शक्रश्चक्रे यथार्थवत् ॥ २३ ॥ अवाप्य सशिशुस्तत्र शक्रदत्तां प्रदेशिनीम् ॥ अवद्धंत महीपालः किन्तु
 षोडशिकास्समाः ॥ २४ ॥ आयुर्वेदादिशास्त्राणि दिव्यशास्त्राणिसर्वशः ॥ उपतस्थुर्महाराजं ध्यानमात्रेण तन्तदा ॥
 २५ ॥ धनुराजगवन्नाम शराश्च शृङ्गोद्भवाश्च ये ॥ अभेद्यं कवचञ्चैव सद्यस्तमुपतस्थिरे ॥ २६ ॥ सोमिषिक्तो मघवता देवैस्सा
 ऋचभारत ॥ धर्मैर्मेणचाक्रमल्लोकान्सर्वान्विष्णुरिव क्रमैः ॥ २७ ॥ तस्याप्रतिहतंचक्रं प्रचचार महात्मनः ॥ शतानि चै-
 वराजानस्स्वयमेवोपतस्थिरे ॥ २८ ॥ तस्यैव मभवत्पूर्वं वसुधावसुधापते ॥ तेनेष्टविधैर्यज्ञैर्बहुभिश्चाप्तदक्षिणैः ॥ २९ ॥
 हृष्टमना महातेजास्स्वधर्मप्राप्य पुष्कलम् ॥ शक्रस्याच्छांसं धीमाल्लब्धवानमितद्युतिः ॥ ३० ॥ आपालिता च
 उपस्थित होतेहुये ॥ २५ ॥ आजगव नाम धनुष व जे सींगोंके बनेहुये बाण वे और अभेद्य बस्तर शीघ्रही उनको उपस्थित होतेहुये ॥ २६ ॥ हे भारत ! देवताओंकरके
 सहित इन्द्रकरके अभिषेक कियेगये मान्धाता विष्णुकी नाई धर्मकरके सब लोकों को क्रमसे आक्रमण करते हुये ॥ २७ ॥ उन महात्मा का चक्र वरोंक चलताहुआ
 और सैकड़ों राजालोग आपही मिलतेहुये ॥ २८ ॥ हे वसुधापते ! पूर्वकाल में उन राजाकी पृथिवी इस प्रकारकी होतीहुई उन राजाकरके अनेक प्रकारकी पूरीदक्षिणा
 वाली बहुतसी यज्ञ की गई ॥ २९ ॥ प्रसन्न मनवाले, बुद्धिमान् व अमित दीप्तिवाले और बड़े तेजवाले राजा मान्धाता पूरे अपने धर्मको पाकरके इन्द्रके आश्रमे आसनको

प्राप्त होते हुये ॥ ३० ॥ उन बुद्धिमान् राजाकरके धर्म से पृथिवी पालन की गई और समुद्र व शहरों करके सहित आज्ञामात्रही से जीतली गई ॥ ३१ ॥ हे महाराज ! उक्त राजाकरके करी हुई दक्षिणावाली यज्ञोत्तरके चारो समुद्रपर्यन्त पृथिवी व्याप्त होगई कोई जगह खाली नहीं रही ॥ ३२ ॥ दशकोड वर्षतक उन महात्मा राजाकी राज्य होती हुई एक समयमें बारहवर्ष की अनावृष्टि में उक्त महात्मा राजा करके ॥ ३३ ॥ इन्द्र के देखते हुये अन्नवृद्धि के वास्ते वर्षा करवा दी गई सोमवंशमें उत्पन्न हुआ, श्रेष्ठ, गन्धर्वों का राजा मान्धाता करके प्रेरित हुआ वहां जाकर अपने बाणोंसे जीतकर मेघको लाता हुआ इस प्रकार महात्मा मान्धाता करके चारो प्रकार

पृथिवी तेन धर्मैर्णदीमता ॥ निजिजताशासनादेव सरत्वाकरपत्तना ॥ ३१ ॥ तत्कृतानां महाराजं क्रतूनां दक्षिणावताम् ॥ चतुरन्तामहीव्याप्ता नासीत्किञ्चिदनावृतम् ॥ ३२ ॥ दशलक्षसहस्राणि राज्यंतस्य महात्मनः ॥ तेन द्वादशवर्षिष्वयामनावृष्ट्यां महात्मना ॥ ३३ ॥ दृष्टिं च समस्य दृष्ट्वर्थं मिषतां च जपाणिना ॥ तेन सोमकुलोत्पन्नो गन्धर्वोधिपतिर्महान् ॥ ३४ ॥ गत्वा समानयन्मेघं प्रमथ्याभिहितशरैः ॥ प्रजाश्चतुर्विधास्तेन धृतास्तत्र महात्मना ॥ ३५ ॥ तेनास्मास्तपसालोकाः स्थापिताः स्वेन तेजसा ॥ तस्यैव देववसतिस्थानमादित्यतेजसः ॥ ३६ ॥ यस्म्यपुण्यतमे देशे दृश्यतेऽमरकण्टकः ॥ इष्ट्वा तत्र क्रतुशतमोङ्कारस्यैव चाग्रतः ॥ ३७ ॥ राज्ञा च पर्वते तस्मिन्स्तोत्रमेतदुदाहृतम् ॥ नमस्ते कालमेघाय कालात्मक नमोऽस्तुते ॥ ३८ ॥ कालाधिप नमस्तेस्तु कालरूपः प्रवर्तसे ॥ कालात्मा कालरूपेण विश्वात्मा विश्वरूपपट्टक ॥ ३९ ॥ विश्वेश्वर नमस्तेस्तु कालत्यागे प्रवर्तकः ॥ भवाय भवनाशाय भवोद्भव नमोऽस्तुते ॥ ४० ॥ अं नमो महादे

की प्रजा पाली गई ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ तपस्या से उन राजाको लोक प्राप्त हुये और अपने तेजकरके स्थापन किये गये सूर्यके समान तेजवाले उन्हीं राजाका यह देव स्थान है ॥ ३६ ॥ जिनके बड़े पुण्यवाले देशमें अमरकण्टक दीखता है वहां ७०ङ्कारनाथहीके आगे सौयज्ञोंको करके ॥ ३७ ॥ राजाकरके उसी पर्वतपर यह स्तोत्र कहा गया है कि काले मेघों के समान रूपवाले आपके लिये नमस्कार है और कालही जिनका आत्मा ऐसे आपके लिये नमस्कार है ॥ ३८ ॥ हे कालके स्वामी ! आप के लिये नमस्कार है कालरूप होकर आपही प्रवृत्त होते हो कालरूप करके आप कालात्मा होते हो संसार के धारण करनेवाले आप विश्वात्मा हो ॥ ३९ ॥ हे विश्वेश्व-

श्वर ! आपके लिये नमस्कार है हे भवोद्भव ! कालगति के प्रवृत्त करनेवाले आपहीहो, संसाररूप और संसार के नाश करनेवाले आपके लिये नमस्कार है ॥ ४० ॥ महादेव के लिये नमस्कार है कल्याणस्वरूप व संसारके उत्पन्न करनेवाले के लिये नमस्कार है नामरहित होने से जप जिनका नहीं होसक्ता, उत्पत्तिरहित, गायारूप स्थानमें वीर्यके सीचनेवाले के लिये नमस्कार है ॥ ४१ ॥ प्रभाव करनेवाले, अत्यन्तकल्याणरूप, क्षमारहित आपके लिये नमस्कार है तीन नेत्रवाले, तीन मूर्तिवाले, तीनोंलोको के स्वामी आपके लिये नमस्कार है ॥ ४२ ॥ कालरहित व अजर और अमर के लिये नमस्कार है आदिदेव अकारनाथ

वाय शम्भवायभवायच ॥ अजपायअजाताय अजायतनमीदुषे ॥ ४१ ॥ प्रभवायशिवतराय अक्षमायनमोनमः ॥
त्र्यम्बकायत्रिमूर्ताय त्रिलोकेशायतेनमः ॥ ४२ ॥ अकालायअजराय अमरायनमोनमः ॥ अक्षरमादिदेवश्च यैवेध्या
यन्तिनित्यशः ॥ ४३ ॥ नतेषांपुनरावृत्तिर्घोरसंसारसागरे ॥ श्रुत्वास्तोत्रमिदन्देव अक्षरःकालरूपधृक् ॥ ४४ ॥ प्रत्यु
वाचमहीपालं देवदेवउमापतिः ॥ वरंवृणीष्वभद्रन्ते स्तोत्रेणानेनमुव्रत ॥ ४५ ॥ तुष्टोस्मीतिनसन्देहो यथेष्टतद्दाम्य
हम् ॥ मान्धातोवाच ॥ यदितुष्टोसिदेवेश वरन्दतुन्त्वमिच्छसि ॥ ४६ ॥ वैदूर्योनामशैलेन्द्रो मान्धाताख्यानमह
ति ॥ देवस्थानमिदन्देव त्वत्प्रसादाद्भविष्यति ॥ ४७ ॥ अत्रदानंतपःपूजा तथाप्राणविसर्जनम् ॥ येकुर्वन्तिनरास्तेषां
शिवलोकैर्निवासिताः ॥ ४८ ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वा मान्धातुःपरमेश्वरः ॥ उवाचवचनन्देवो मान्धातारंमहीपतिम् ॥ ४९ ॥

का जो निरन्तर ध्यान करते हैं ॥ ४३ ॥ घोर संसार समुद्र में फिर उनकी उत्पत्ति नहीं होती कालरूपधारी अकारनाथ देव इस स्तोत्रको सुनकर ॥ ४४ ॥ देवताओंके देवता पार्वतीजी के पति महादेवजी राजासे बोले कि हे सुव्रत ! वरदान को मांगो तुम्हारा कल्याण होवे इस स्तोत्रसे ॥ ४५ ॥ हम प्रसन्नहैं तुम्हारे श्रमीष्ट को हम देंगे इसमें कोई सन्देह नहीं है तब मान्धाता बोले कि हे देवेश ! जो आप प्रसन्नहो और वर देने की इच्छा करतेहो ॥ ४६ ॥ तो हे देव ! वैदूर्यनाम का पर्वतराज मान्धाता नामवाला होनेको योग्य होसक्ता है और आपके प्रसादसे यह देवस्थान होजावे ॥ ४७ ॥ यहांपर दान, तप, पूजा और प्राणोंका त्याग जो मनुष्य करें उनका शिवलोक में वासहोवे ॥ ४८ ॥ उन मान्धाता के उस वचन को परमेश्वरजी सुनकर मान्धाता राजासे महादेवजी वचन बोले ॥ ४९ ॥

हे नृपश्रेष्ठ ! हमारे प्रसाद से यह सब होगा ऐसाही हो यह महादेवजी से कहकर वरदान को पाकर राजा ॥ ५० ॥ शीघ्रही अपनी पुरीको जातेहुये जैसे इन्द्र अमरावती को जावें यह सब मान्धाता का उत्तम चरित तुमसे कहागया ॥ ५१ ॥ हे अनघ ! हे महीपाल ! जो पर्वत हमारे सामने तुम करके देखागया था तब से वही वैदूर्यपर्वत मान्धातानाम से कहाजाताहै ॥ ५२ ॥ इसी तीर्थके माहात्म्य से मान्धाताआदि राजा लोग सब कामनाओं से युक्त विष्णुलोक में विहार करते हैं ॥ ५३ ॥ इसके सुनने व कहने से अश्वमेध के फलको पाताहै ॥ ५४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनुवादमान्धातुरुपाख्यानेऽष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

सर्वमेतन्तृपश्रेष्ठ मत्प्रसादाद्भविष्यति ॥ एवमस्त्वितितंचोक्त्वा वरंलब्ध्वामर्हीपतिः ॥ ५० ॥ जगामस्वाम्पुरींशी
भ्रं यथाशक्रोमरावतीम् ॥ एतत्तेसर्वमाख्यातं मान्धातुश्चरितंमहत ॥ ५१ ॥ योममाग्रेमर्हीपाल दृष्टोद्वैत्वयानघ ॥
तदाप्रभृतिमान्धाता वैदूर्योगीयतेगिरिः ॥ ५२ ॥ अस्यतीर्थस्यमाहात्म्यान्मान्धातृप्रमुखानृपाः ॥ सर्वकामसमु
द्युक्ता लोकेक्रीडन्तिवैष्णवे ॥ ५३ ॥ श्रवणात्कीर्तनाद्वापि हयमेधफलंलभेत ॥ ५४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणैरपाखण्डे
मान्धातुरुपाख्यानेऽष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

मार्कण्डेयउवाच ॥ कृतेयुगेथसम्प्राप्ते बलिर्नाममहासुरः ॥ तस्यपुत्रोमहावीर्यस्सहस्रभुजविश्रुतः ॥ १ ॥ दिव्यं
वर्षसहस्रन्तु तेनचाराधितोहरः ॥ तुष्टेनतेनसम्प्रोक्तः प्रार्थयस्ववरंवर ॥ २ ॥ यत्किञ्चिद्वैवरंप्रोक्तं तद्वास्यामिनसंश
ः ॥ बाणसुरोवदत्येवं यदितुष्टोसिमेप्रभो ॥ ३ ॥ पुरंभवतुमेदिव्यमजेयंसर्वदैवतैः ॥ त्वामेववर्जयित्वातु दुष्प्राप्यंस

मार्कण्डेयजी बोले कि इसके अनन्तर सत्ययुगके प्राप्त होने पर बलिनामका महाअसुर होताहुआ हजार भुजावाला प्रसिद्ध बड़ा पराक्रमी उसका पुत्र होता
आ ॥ १ ॥ देवताओं के हजार वर्षतक उस करके महादेवजी आराधन कियेगये व प्रसन्नहुये महादेव करके कहागया कि हे वर ! तू वरको मांगले ॥ २ ॥ जो तू वर
गा वह हम देगे इसमें कुछ संशय नहीं है बाणसुर इस प्रकार कहताहै कि हे प्रभो ! जो मेरे लिये प्रसन्नहो ॥ ३ ॥ तो सब देवताओं करके जीतने के अयोग्य

दिव्य मेरा शहर होजावे तुम्हीं को छोड़कर और सब देवताओं के प्राप्त होने योग्य न हो ॥ ४ ॥ जो मेरे स्थिर होने पर स्थिर बनारहे और मेरे चलने पर चलाकरे हे देव ! मेरे मन के अनुकूल मेरा शहर व मकान सदा बनारहे ॥ ५ ॥ बड़ा यशवाला बलिका पुत्र बाणासुर उन महादेवजी करके कहा गया कि ऐसा ही हो तदनन्तर यह विष्णुकरके भी कहा गया कि महादेव तुझसे क्या मांगेये ॥ ६ ॥ तब बाणासुर बोला कि महादेव करके मेरे वास्ते शहरों में श्रेष्ठ शहर दिया गया सब देवताओं के जीतने के अयोग्य और असुरोंको भी दुर्लभ ॥ ७ ॥ जो महादेव करके तेरे वास्ते तेरे मनका शहर दिया गया तो मुझकरके भी दूसरा वैसा ही शहर दिया गया ॥ ८ ॥ विष्णु

वैदेवतैः ॥ ४ ॥ मयि तिष्ठतियत्तिष्ठेन्मयि गच्छति गच्छतु ॥ कामिकं भवनन्देव पुरं भवतु मे तदा ॥ ५ ॥ उक्तो बाणासुर स्तेन बलिपुत्रो महायशः ॥ विष्णुना भिहितश्चासौ किन्त्यया प्रार्थितो हरः ॥ ६ ॥ बाण उवाच ॥ मह्यं दत्तं महेशेन पुरम्पु रवरोत्तमम् ॥ अजेयं सर्वदेवानां मसुराणाञ्च दुर्लभम् ॥ ७ ॥ यदि दत्तं महेशेन पुरं तु भ्यं यथेप्सितम् ॥ मया पिते प्रदत्तञ्च द्वितीयन्तादृशं पुरम् ॥ ८ ॥ विष्णुनापि पुरन्दत्तं द्वितीयञ्च मनोरमम् ॥ एकीभूतौ तु तौ देवावृचतुस्तौ बलेस्तु तम् ॥ ९ ॥ गच्छ बाणासुर क्षिप्रं यत्रास्ते कमलासनः ॥ गतस्तत्र बलेः पुत्रो यत्रा तिष्ठति पतिता महः ॥ १० ॥ परिष्वज्य स्वह स्तेन पृष्ठश्चैव स्वयम्भुवा ॥ बहु वर्षं सहस्रन्तु तपोघोरं त्वया कृतम् ॥ ११ ॥ वरस्तु कस्त्वया प्राप्तस्तपसाराध्य शङ्करम् ॥ ब्रह्मणो वचनं श्रुत्वा प्रत्युवाच महासुरः ॥ १२ ॥ मया तु प्रार्थितो रुद्रो दत्तस्तेन प्रसादतः ॥ कामरूपं पुरं प्राप्तं मनोरम्यं मनोरमम् ॥ १३ ॥ तादृशन्तु पुरन्दत्तं द्वितीयं विष्णुना पुनः ॥ बाणासुरवचः श्रुत्वा प्रत्युवाच महासुरम् ॥ १४ ॥ त्वया तु

करके भी दूसरा मनका रमानेवाला शहर दिया गया फिर महादेव और विष्णु दोनों देव एकत्र होकर बलिके पुत्रसे कहते हुये ॥ ६ ॥ कि हे बाणासुर ! जहां ब्रह्मा हैं वहां को तुम शीघ्र जावो तब बलिका पुत्र वहां गया जहां ब्रह्मा विद्यमान थे ॥ १० ॥ अपने हाथसे आलिङ्गन करके ब्रह्माजी करके पूछा गया कि बहुत हजार वर्ष तक तुम करके घोर तप किया गया ॥ ११ ॥ उस तपकरके महादेवजीको प्रसन्न करके तुमको क्या वर प्राप्त हुआ ब्रह्मा के वचनको सुनकर बाणासुर बोला ॥ १२ ॥ कि मुझकरके महादेवजी प्रार्थना किये गये सो उनकरके प्रसन्नतापूर्वक वर दिया गया सुन्दर मनका रमानेवाला, मेरी इच्छा के श्रुतकूल रूपवाला शहर मुझको मिला ॥ १३ ॥ और

फिर उसीके समान त्रिणुकरके भी दूसरा पुर दियागया बाणासुर के वचनको सुनकर ब्रह्माजी फिर महाअसुरसे बोले ॥ १४ ॥ तुम करके प्रार्थना कियेगये रुद्र उन महात्माकरके पुर दियागया सुझकरके भी तुम्हारेवास्ते पुरही दियागया तिससे यह त्रिपुर कहागयाहै हे राजन् ! इस प्रकार प्राप्तहुआ है वर जिसको ऐसा बड़ाबल व पराक्रमवाला असुर होगया ॥ १५ ॥ हजार भुजाओं से विस्तारको प्राप्त होरहा सब देवताओं करके अवध्य दानव, देवता, यक्ष, विद्याधर, गन्धर्व और राजसों के जो पुरथे वे सब उसकरके तोड़डालेगये और स्थण्डिल नाश करदियेगये ॥ १६ ॥ १७ ॥ व हे भारत ! पूर्वकाल में इन्द्रकी अमरावतीपुरी भी उस करके भग्न करदीगई

प्रार्थितोरुद्रो दत्तन्तेनमहात्मना ॥ मयापितेपुरन्दत्तं तेनासौत्रिपुरस्मृतः ॥ एवंप्राप्तवरोरजन्महाबलपराक्रमः ॥
१५ ॥ सहस्रभुजविस्तीर्णस्त्ववध्यस्सर्वदैवतैः ॥ पुराणिदानवानान्तु अमराणान्तुयानिच ॥ १६ ॥ यक्षविद्याधराणा
न्तु गन्धर्वाणाञ्चरत्तसाम् ॥ भग्नानितानिसर्वाणि स्थण्डिलानिहतानिच ॥ १७ ॥ भग्नमरावतीतेन पुराशक्र
स्यभारत ॥ त्रिपुरं ह्यभवत्सर्वं कैलासः केवलं पृथक् ॥ १८ ॥ उद्धिग्नमानसा देवा हरपार्श्वमुपाययुः ॥ वरोदत्तस्त्वया तस्मै
ब्रह्मणा विष्णुनापिच ॥ १९ ॥ तेन सार्द्धन्तु संग्रामे शक्तिर्नास्तीति कस्यचित् ॥ यस्तस्य पुरतस्तिष्ठेत्तमसौ भस्मतान्नये
त् ॥ २० ॥ एवं श्रुत्वा शिवो वाक्यं परं कौतूहलं ततः ॥ सम्प्रेषितास्तदा देवा ब्रह्मविष्णुपुरोगमाः ॥ २१ ॥ समेत्य गम्य
तान् देवांस्त्रिशत्कोट्यो महाबलाः ॥ विनाशयत्यत्नेन त्रिपुरं पुरसंस्थितम् ॥ २२ ॥ ततो गतास्सुरास्सर्वे बद्धवैरास्सहस्र

सब त्रिपुरही होगया केवल कैलासही बाकी रहगया ॥ १८ ॥ घबड़ाने मनवाले देवता महादेवजी के समीप को जातेहुये और कहा कि बाणासुर के लिये आप व ब्रह्मा और विष्णुकरके वर दियागया है ॥ १९ ॥ संग्राम में उसके साथ लड़ने को किसीकी सामर्थ्य नहीं है जो कोई उसके सामने खड़ाहो उसको वह भस्म कर सकाहै ॥ २० ॥ तदनन्तर इस प्रकार महादेवजी वचन सुनकर पुरमश्राएचर्यको प्राप्त हुये उस समय में महादेव करके ब्रह्मा और विष्णुआदि देवता भेजेगये ॥ २१ ॥ महादेवजीने कहा कि हे देवताओं ! तीसकरोड़ बड़े बलवाले आपलोग इकट्ठे होकरजावो और यत्नसे पुरमें वर्तमान त्रिपुर को विनाशकरो ॥ २२ ॥ तदनन्तर अतितीक्ष्ण

और पैने दियारवाले, वैरको बांधिहुये, सब हजारों देवता जहां बाणासुरका पुर था वहांको जातेहुये ॥ २३ ॥ सुन्दर युद्धके बलसे युक्त वे बलवाले सब देवता मार्ग, पुर और देशोंको भवोंकी तरह ढांकतेहुये ॥ २४ ॥ थोड़ेही कालकरके मनके विचारकी नाई वे सब त्रिपुरको प्राप्तहुये जैसे धनुष से छूटेहुये बाण जावें ॥ २५ ॥ जो सिंगही उस बाणासुर करके दशोदिशा देखनेके वारते भेजेगये थे वे सब बाणासुर से कहतेहुये कि हे प्रभो ! आप वेखटके कैसे हारेहो ॥ २६ ॥ तब बाणासुर करके भी कहागया कि आज मेरा वर सफलहोगया इच्छा कियाहुआही फल प्राप्त होगया कि अब वे देवतान्त्रोग कहांको जावेंगे ॥ २७ ॥ तब उसकरके एक क्षणमात्रहीमे वे

शः ॥ बाणासुरपुरं यत्र सुतीक्ष्णनिशितायुधाः ॥ २३ ॥ सुयुद्धबलसम्पन्नास्सर्वेतेवलशालिनः ॥ मार्गम्पुरञ्चदेशञ्च
छादयन्तो घनाहव ॥ २४ ॥ संनिभैर्नैव कालेन मनसा चिन्तितेन च ॥ सर्वेते त्रिपुरं प्राप्ता धनुःक्षिप्ताः शराहव ॥ २५ ॥
द्रष्टुं दशदिशस्तेन प्रेषिता ये च किङ्कराः ॥ ऊर्ध्वबाणासुरेणापि वरो
द्यसफलो मम ॥ समीहितफलं प्राप्तं कुतो गच्छन्ति ते सुराः ॥ २७ ॥ तेन ते क्षणमात्रेण सर्वे देवाजितास्तदा ॥ हतानि च
ततो ह्यपि पात्रके भोजनं यथा ॥ २८ ॥ इन्द्रस्यापि हतं वज्रं कैवैकेशवस्य तु ॥ जलं पितामहस्य अपि पाशञ्चवरूपस्य
च ॥ २९ ॥ कुबेरस्य गदाञ्चैव मरुतश्चाङ्कुशान्तथा ॥ यमस्यापहृतो दण्डः शक्तिर्वैश्वानरस्य च ॥ ३० ॥ कामरूपं तु
रन्तस्य हरदत्तं प्रसादतः ॥ न शक्यते सुरैस्सर्वैर्ब्रह्मविष्णुपुरोगमैः ॥ ३१ ॥ बाधितुन्दैत्यराजस्य समन्तान् मिमितैरपि ॥
सुराबाणासुरेणैव ततो युद्धे पराजिताः ॥ ३२ ॥ भगनास्तूसाहरहिता हरपार्श्वभुषागताः ॥ शिवेनोक्तास्तु ते सर्वे तत्र ग

सब देवता जतिलियेगये तदनन्तर उनके सब अस्त्र छीन लियेगये जैसे पात्रमें भोजन कर लिया जावे ॥ २८ ॥ इन्द्रका वज्र, विष्णुका चक्र व ब्रह्माका कमण्डलु और वरुणका पाश उसने हर लिया ॥ २९ ॥ व कुबेरकी गदा वैसेही मरुतका आंगुस, यमराज का दण्ड और अग्नि की शक्ति उसकरके हरली गई ॥ ३० ॥ महा-
देवकरके प्रसन्नतासे दियागया कामरूप उस दैत्यराजका पुर ब्रह्मा, विष्णुआदि सब देवताओंकरके चारोंतरफसे मिलकर भी बाधा करनेको योग्य नहीं होसक्ता बाणासुर
करकेही सब देवता युद्धमें पराजित कियेगये तदनन्तर ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ दृष्टफूटे, उत्साह रहित महादेवजी के समीप जातेहुये व वे सब महादेव करके पूछेंगे कि वहां

जाकर तुम लोगों करके क्या किया गया ॥ ३३ ॥ उसके साथ तुम लोगों करके संग्राम कैसा किया गया तब देवताओं ने कहा कि हे महादेव ! आप क्या कहते हो हम लोग उसके काममें कुछ सामर्थ्य नहीं कर सकते ॥ ३४ ॥ उसके साथ लड़ाई में किसीने सामना नहीं किया देवताओं के वचन को सुनकर क्रोधको प्राप्त हुये महादेवजी बोले ॥ ३५ ॥ कि इस महादुष्ट त्रिपुर को हम नाश करेंगे अथवा धनुषको खींचकर हम असुरको जला देंगे ॥ ३६ ॥ जिससे जो कोई नर जीतारहेगा वह देवताओंका दास होगा पतिव्रताके प्रसादसे यह त्रिपुर देवता और दैत्योंकरके ॥ ३७ ॥ धर्मणा करनेको शक्य नहीं है इससे पातिव्रत्य भङ्ग करनेके वास्ते हम नारदको

त्वातु किं कृतम् ॥ ३३ ॥ संग्रामः कीदृशस्तेन भवद्भिस्सह निर्मितः ॥ ततः किं कथ्यते देव न शक्तास्तस्य कर्मणि ॥ ३४ ॥ न तेन सह संग्रामे सम्मुखं केनचित्कृतम् ॥ देवता वचनं श्रुत्वा क्रुद्धः प्रोवाच शङ्करः ॥ ३५ ॥ त्रिपुरञ्च महादुष्टमि मं व्यापादयाम्यहम् ॥ अथवा चापमाकृष्य ह्यसुरं प्रदहाम्यहम् ॥ ३६ ॥ येन जीवन्नरो यस्तु सुराणां किङ्करो भवेत् ॥ पतिव्रता प्रसादेन त्रिपुरञ्च सुरासुरैः ॥ ३७ ॥ न शक्यं धर्षितुं तस्मान्नारदं प्रेषयाम्यहम् ॥ नारदः प्रेषितस्तत्र क्षोभयत्वं पतिव्रताः ॥ ३८ ॥ एवमुक्तस्तु देवर्षिर्वाणासुरपुरं ययौ ॥ त्वरितं पुरमध्ये तु यत्र बाणासुरो नृपः ॥ ३९ ॥ तन्तु देव नृपि दृष्ट्वा ह्यसुरो वाक्यमब्रवीत् ॥ नमस्कृत्य च साष्टाङ्गमर्धपादैः प्रपूज्य च ॥ ४० ॥ कुतो नागमनं तेद्य किं वाकार्यं महासुने ॥ तस्य तद्वचनं श्रुत्वा मुनिः प्रोवाच तन्तदा ॥ ४१ ॥ कुशलन्ते वलेः पुत्र सादरन्ते पुनः पुनः ॥ बाणासुरोऽब्रवीद्वाक्यं कुशलं न वदर्शनात् ॥ ४२ ॥ देवर्षिरुपविष्टस्तु दिव्यासनमुशोभितः ॥ राज्ञीचाभ्यर्चयत्तत्र स तस्यै नारदस्तदा ॥ ४३ ॥

भेजते हैं यह कहकर नारदको वहां भेजते हुये और कहा कि पतिव्रता स्त्रियों को तुम बिगाड़ देवो ॥ ३८ ॥ इस प्रकार कह गये नारदजी बाणासुर के पुरको जाते हुये बड़े वेगसे जहां बाणासुर राजा था वहां शहरके मध्यमें जा पहुँचे ॥ ३९ ॥ उन देव नृपि को देखकर बाणासुर साष्टाङ्ग नमस्कार व अर्धपाद्यसे पूजन करके वचन बोला ॥ ४० ॥ कि हे महासुने ! आज तुम्हारा आगमन यहां कहाँ से हुआ और क्या आपका कार्य है उसके इस वचनको सुनकर मुनिजी उस समय उससे बोले ॥ ४१ ॥ कि हे बलिके पुत्र ! तेरी कुशल है, आदरपूर्वक बार २ पूछते हुये कि तेरी कुशल है तब बाणासुर वचन बोला कि आपके दर्शनसे मेरी कुशल है ॥ ४२ ॥

दिव्यआसन पर सुन्दर शंभाको प्राप्त होरहे नारदजी बैठे वहां रानीभी नारदजी का पूजन करती हुई तब वे नारदमुनिजी उस रानीको पुराण और वेदोंके बाहरवाले वृत्तान्त सिखादिये उस समय में देवमुनि (नारद) जी स्त्रियोंके चित्तको चलायमानकरके ॥ ४३४४ ॥ फिर श्रीमान् नारदजी पर्वतों में उत्तम कैलास को आतेहुये महादेवजीके नमस्कार करके वृत्तान्तको कहदिया ॥ ४५ ॥ कि हे देव ! शाखानगरों के सहित, देवताओंके कण्टक, त्रिपुर को नाशकरो तब उस अपने स्थान कैलास से प्रभु शिवजी निकलते हुये ॥ ४६ ॥ अपनेही मार्ग से जहां वह त्रिपुरासुर था वहांको चले उनके साथ पार्वतीजी, चण्डेश्वर, नन्दी, महाकाल, महेश्वर ॥ ४७ ॥ वृष,

पुराणवेदबाह्यानि वृत्तान्यादेशयन्मुनिः ॥ नारीणांचलितंचित्तं कृत्वादेवमुनिस्तदा ॥ ४४ ॥ आगतोनारदः श्रीमान्कैलासंपर्वतोत्तमम् ॥ नमस्कृत्यमहादेवं वृत्तान्तंसन्यवेदयत् ॥ ४५ ॥ घातयन्त्रिपुरन्देव सपुरंसुरकण्टकम् ॥ निर्गतस्तु हरस्तस्मात्कैलासंनिलयात्प्रभुः ॥ ४६ ॥ स्वकीयेनैवमार्गेण यत्रासौ त्रिपुरासुरः ॥ देवीचण्डेश्वरोनन्दी महाकालो महेश्वरः ॥ ४७ ॥ वृषोभृङ्गिरिटिश्रैव विघ्नेशस्स्कन्दंएवच ॥ पुष्पदन्तोमहावीरो घण्टाकर्णोमहोदरः ॥ ४८ ॥ गोमुखोहस्तिकर्णश्च स्थूलजङ्घोवृकोदरः ॥ गणाः पञ्चदशत्वेते हरतुल्यपराक्रमाः ॥ ४९ ॥ अस्ति सिद्धो महाक्षेत्रं श्रीशैलो नामपर्वतः ॥ तत्रस्थित्वामहादेवो हन्तव्यस्त्रिपुरः प्रिये ॥ ५० ॥ स्थानं माहेश्वरंचक्रे व्यापीतत्रापि नाकधृक् ॥ एकपादेन ब्रह्माण्डं पातालंचापरेण च ॥ ५१ ॥ हिमवन्तंधनुःकृत्वा गुणंकृत्वा तु वासुकिम् ॥ शरैर्वैश्वानरंकृत्वा तस्याग्रं कालमेवतु ॥ ५२ ॥ रथं भूमण्डलंकृत्वा वेदान्कृत्वा ह्यांस्तथा ॥ रश्मौस्तक्षककर्कोटौ ब्रह्माणंसारं भिस्वयम् ॥ ५३ ॥

भृङ्गिरिटि, विघ्नेश, स्कन्द, पुष्पदन्त, महावीर, घण्टाकर्ण, महोदर ॥ ४८ ॥ गोमुख, हस्तिकर्ण, स्थूलजङ्घ और वृकोदर ये महादेव के तुल्य पराक्रमवाले पन्द्रहगण थे ॥ ४९ ॥ व जहां महाक्षेत्र श्रीशैलनाम का सिद्धपर्वतहै वहां स्थित होकर महादेवजी ने पार्वतीजी से कहा कि हे प्रिये ! यहांपर त्रिपुरासुर मारनेयोग्य होगा ॥ ५० ॥ यह कहकर उसीको अपना स्थान किया और वहां पिनानाम के धनुषको धारण किये हुये आप विराटरूपको धारण किया एकपादे से ब्रह्माण्ड और दूसरे से पाताल को दबाया ॥ ५१ ॥ हिमवान् पर्वत को धनुषकरके और वासुकि नागको रोदाकरके अग्नि को बाणकरके और कालको उसका अग्रभाग अर्थात् गांसी करके ॥ ५२ ॥

व पृथिवी को रथकरके और उसी प्रकार वेदोंको धोड़ेकरके तत्तक और कंकोटक नागको रस्सी और स्वयं ब्रह्माहीको साराथि ॥ ५३ ॥ और चाकोंकी रक्षा करनेवाले वासुदेव और सात अधोरमन्त्र तथा मन्त्रराज पाशुपत मन्त्रको बनाकर ॥ ५४ ॥ देवताओं के हजार वर्षतक उसीजगह को टिकाश्रय करके स्थित होतेहुये महादेव जी पार्वतीजीसे कहतेहैं कि हे प्रिये ! वहां बहुत कालतक स्थित हो रहे जो हमहैं उनका ॥ ५५ ॥ गणेशजी गुप्त व प्रकट शरीरको बनाकर विघ्न करतेहुये हम बायें पावेंसे नखभर स्थानसे टलगये ॥ ५६ ॥ इससे मुक्तसे यह त्रिपुरासुर नहीं मारागया तब हम गणेशसे कहा कि हे गणाधीश ! जगत्के नाश करनेवाले त्रिपुरासुरकी रक्षा

चक्ररत्नवासुदेवमघोरमन्त्रसप्तकम् ॥ तथापाशुपतञ्चैव मन्त्रराजंतथैवच ॥ ५४ ॥ दिव्यवर्षसहस्रन्तुस्थानंकृत्वास्थि
तोभवत् ॥ तिष्ठतोममत्तत्रैव कालेनमहताप्रिये ॥ ५५ ॥ लक्ष्यालक्ष्येतनूकृत्वा गणेशोविघ्नमाचरत् ॥ वामपादनखा
त्रेण चलितःस्थानकादहम् ॥ ५६ ॥ ततोमयाहतोनासौ रक्षितुंत्रिपुरंकथम् ॥ प्रवृत्तोसिगणाधीश जगद्विध्वंसकारक
म् ॥ ५७ ॥ इतिस्यवचःश्रुत्वा विघ्नेशोवाक्यमब्रवीत् ॥ अहन्नविघ्नयेत्वाञ्चेत् कथमन्येचयन्तिमाम् ॥ ५८ ॥ अपू
जितेमयिविभो यःकार्यं कर्तुमिच्छति ॥ तस्मैविघ्नंप्रदास्यामि सुरासुरगणेष्वपि ॥ ५९ ॥ एवमस्त्वितंप्राह शङ्करस्त
दनन्तरम् ॥ वध्यंचैवगतोलक्ष्यं संशक्तस्त्रिपुरम्प्रति ॥ ६० ॥ तापसोयंदुराचारो दैत्यःपरपुरञ्जयः ॥ विनाशायाम्यदुष्ट
स्य कञ्चाहंप्रेषयेशरम् ॥ ६१ ॥ त्रिपुरस्यवधार्थायक्षिप्रंपाशुपतमहत् ॥ अस्त्रमन्यद्विधास्यामीत्युक्त्वादेवोहरःपु

करनेको तुम कैसे प्रवृत्त हो रहेहो ॥ ५७ ॥ महादेवके इसवचनको सुनकर गणेशने कहा कि जो हम आपर्हीका विघ्न न करें तो और लोग हमारा पूजन कैसेकरें ॥ ५८ ॥
विना हमारे पूजन किये हे विभो ! जो कोई कार्य करनेकी इच्छा करताहै वह देवता व दैत्य कोईहो हम उसका विघ्न अवश्य करतेहैं ॥ ५९ ॥ तब महादेवने उनगणे-
शजीसे कहा कि ऐसाही हो यह कहकर वध करने योग्य त्रिपुरासुरसे लड़नेको सन्नद्धहो रहे महादेव निशानाके सम्मुख प्राप्तहुये ॥ ६० ॥ और कहा कि शत्रुओंके पुरोंका
जीतनेवाला यह बड़ा दुराचार तपस्वी दैत्यहै इससे इसदुष्टके मारनेके वास्ते हम किस बाणको चलायें ॥ ६१ ॥ यद्यपि त्रिपुरके नाश करनेको पाशुपत अस्त्र ठीकहै

और शीघ्रकारी भी है परन्तु हम और दूसरेही असलको चलावेंगे यह कहकर महादेवजीने अधोरअसलसे जीर्णहोरहे त्रिपुरको तीन खण्डकरके भस्मकरदिया और उसको वहां नर्मदाके जलमें गिरादिया तदनन्तर महादेवजी पार्वतीजीमें कहतेहैं कि हे भवानि ! दानवों करके सहित, पुत्रों के तरफ देखरहों उनकी स्त्रिया मेरे शरण आतीहुई और रोतीहुई सैकड़ों हजारों स्त्रिया गिररहीहैं ॥ ६२ ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ उस निर्दय अग्निने उन सब स्त्रियोंके पतियोंको भस्मकरदिया व एक शहर श्रीशैलपर्वत पर गिरा और दूसरा अमरकण्टकमें ॥ ६५ ॥ और हे प्रिये ! तीसरा गङ्गासागरसङ्गममें गिरा पुत्र, पौत्र, स्त्री, मणि, सोना और शहर ॥ ६६ ॥ ये सब विनाशको प्राप्तहोरहे हैं परन्तु यहां एक

रम् ॥ ६२ ॥ अधोरास्त्रेणतद्दधं त्रिखण्डजर्जरकृतम् ॥ पातितन्तुजलेतत्र ततोमांशरणङ्गताः ॥ ६३ ॥ भवानिदान
वैस्साङ्गं तेषांपत्न्यःसुतेक्षणाः ॥ आपतन्तिरुदन्यस्ताश्शतशोथसहस्रशः ॥ ६४ ॥ सर्वासान्निर्दयोवह्निस्सदाहपती
स्तथा ॥ श्रीशैलेपतितंचैकमन्यचामरकण्टके ॥ ६५ ॥ गङ्गासागरसम्भेदे तृतीयञ्चतथाप्रिये ॥ पुत्रपौत्रकलत्राणि
मणिहेमपुशाणिच ॥ ६६ ॥ विनाशयान्तितान्यत्र लिङ्गमेकन्ननश्यति ॥ लिङ्गानानवकोटीनां यद्येकमपिदह्यते ॥
६७ ॥ प्राणत्यागंकरिष्यामिहुताशोस्मिस्तदाधुवम् ॥ दग्धन्तुत्रिपुरंक्रुत्स्नमघोरास्त्रेणदारुणम् ॥ ६८ ॥ पातितंनग्मं
दामध्ये उवलत्कालानलप्रभम् ॥ तद्भिन्नासप्तपातालं रसातलतलंययौ ॥ ६९ ॥ तेनजालेश्वरंतीर्थं त्रिषुलोकेषुवि
श्रुतम् ॥ अर्चनात्तस्यदेवस्य मुच्यतेब्रह्महत्यया ॥ ७० ॥ कल्पकोटिसहस्राणि वसेच्छिवपुरेसुखी ॥ तत्रस्नात्वादिवया
न्तियेमृतानपुनर्भवाः ॥ ७१ ॥ तिलोदकप्रदानेन पिण्डपतनभारत ॥ पितरस्तस्यतृप्यन्ति शिवोयावच्चकल्पगा ॥ ७२ ॥

हमारा लिङ्ग नहीं नष्टहुआ हमारे नवकरोड लिङ्ग वहां रहे उनमेंसे जो एकभी जलजाता ॥ ६७ ॥ तोहम उसी अग्निमें निश्चय अपने प्राणोंका त्याग करदेते सम्पूर्ण दारुण त्रिपुर अधोरअसल करके भस्म करदियागया ॥ ६८ ॥ जलतेहुये महाप्रलय के अग्नि के समान प्रभावाला नर्मदाके मध्य में गिरादियागया वह सात पातालों को फाड़कर पाताल को चलागया ॥ ६९ ॥ इससे वह जालेश्वर तीर्थ तीनों लोकों में प्रसिद्ध हुआ उस देवके पूजनसे ब्रह्महत्यासे छूटजाताहै ॥ ७० ॥ हजारों करोड़ कल्पभर महादेवके पुष्पमें सुखी रहताहै वहां स्नान करके स्वर्गको जातेहैं और जो मरे हैं वे फिर उत्पन्न नहीं होतेहैं ॥ ७१ ॥ हे भारत ! तिलोदकके देने व पिण्डोंके देनेसे

जबतक महादेव और नर्मदाजी रहती हैं तबतक उसके पितर तृप्त रहते हैं ॥ ७२ ॥ डिङ्करोड़ लिंग गङ्गासागरसङ्गममें गिरे और डिङ्करोड़ लिङ्ग पुरवर्द्धनमें गिरे ॥ ७३ ॥
और पांचकरोड़ त्रिपुरके समीप श्रीशैलमें गिरे और साढ़ेतीनकरोड़ श्रमरकण्टकमें गिरे ॥ ७४ ॥ इतने बाणलिंग मुक्ति और मुक्तिके देनेवाले हैं त्रिपुरके नाश करनेवाले,
महाप्रलयके रुद्राग्निके समान जलतेहुये अघोर अरुको ॥ ७५ ॥ नर्मदाको छोड़कर और कौन नदी धारण करनेको समर्थ होसकी ऐसा वह अरु नर्मदाके जलमें गिरता
हुआ ॥ ७६ ॥ त्रिपुरवधसे प्रकटहुआ यह जालेश्वरतीर्थ तुमसे कहागया इसको कोई चराचरलोक नहीं जानते ॥ ७७ ॥ जिस त्रिपुरासुर करके संग्रामों में ब्रह्मादिक

सार्द्धकोटिश्रिलिङ्गानां गङ्गासागरसङ्गमे ॥ सार्द्धकोटिश्रपतिता लिङ्गानांपुरवर्द्धने ॥ ७३ ॥ दशार्द्धकोटिःपतिता
श्रीशैलेत्रिपुरान्तिके ॥ तिस्रःकोट्योर्द्धकोटीच पतितामरकण्टके ॥ ७४ ॥ एतानिबाणलिङ्गानि मुक्तिमुक्तिप्रदा
नितु ॥ त्रिपुरघ्नमघोरास्त्रं ज्वलत्कालाग्निरुद्रवत् ॥ ७५ ॥ कल्पगांवर्जयित्वा तु कान्याधारयितुंक्षमा ॥ एतादृशानुप
तितं तदस्त्रं कल्पगाजले ॥ ७६ ॥ जालेश्वरन्तुकथितं त्रिपुरघ्नमिदन्तव ॥ एतत्तीर्थं न जानन्ति लोकाश्च सचराचराः ॥
७७ ॥ दहन्तं त्रिपुरं दृष्ट्वा देवा विस्मयमागताः ॥ ब्रह्माद्या देवता येन संग्रामेषु पराजिताः ॥ ७८ ॥ शरैर्णैकेन तद्दीर्घं कृ
तं भस्मैकपुञ्जवत् ॥ बाणासुरः पुरे दग्धे भीतः स्तोत्रमिदं जर्गो ॥ ७९ ॥ अंनमोऽनादिदेवेश विघ्नेश्वरमहेश्वर ॥ सर्व
ज्ञानहज्जानप्रदानैकनमोस्तुते ॥ ८० ॥ अनन्तगुणरत्नाय परेशाय नमोस्तुते ॥ परात्परपरातीत उत्पत्तिस्थान
कारक ॥ ८१ ॥ सर्वार्थसाधनोपाय विश्वेश्वरनमोस्तुते ॥ निरञ्जन निराधारस्वभाव निरुद्रव ॥ ८२ ॥ प्रसन्नपरमे

देवता पराजय को प्राप्तहुये उस त्रिपुर को जलतेहुये देखकर सब देवता विस्मयको प्राप्तहुये ॥ ७८ ॥ एकही बाणसे उसका पराक्रम भस्मकासा ढेर करदिया
गया अपने शहर के जलेपर डराहुआ बाणासुर इस स्तोत्रको पढ़ताहुआ ॥ ७९ ॥ हे अञ्जनादिदेव, ईश, विघ्नेश्वर, महेश्वर, सर्वज्ञ, अज्ञानके नाश करनेवाले, ज्ञान
के देनेमें एक आप के लिये नमस्कार है नमस्कार है ॥ ८० ॥ व अनन्तगुणरत्न, परेश आपके लिये नमस्कार है व हे परात्परपरातीत ! व हे उत्पत्ति और स्थिति
करनेवाले ! ॥ ८१ ॥ हे सबके प्रयोजन सिद्ध करनेमें उपायरूप ! हे विश्वेश्वर ! आपके लिये नमस्कार है हे मायारहित ! हे निराधारस्वभाववाले ! हे निरुद्रव ! ॥ ८२ ॥

हे प्रसन्न ! हे परम ! हे ईशान ! हे योगेश्वर ! आपके लिये नमस्कार है हे असुरध्वन ! हे पिशाचध्वन ! हे भूत और वेतालों के नाश करनेवाले ! ॥ ८३ ॥ हे भूतनाथ ! हे जगन्नाथ ! हे सर्वधार ! आपके लिये नमस्कार है हे सृष्टि, संहार, मोक्ष और सातो पातालों के आश्रय ! ॥ ८४ ॥ हे श्रीकण्ठ ! हे नीलकण्ठ ! हे ईश ! हे महाकण्ठ ! आपके लिये नमस्कार है व तीननेत्रवाले, त्रिशूल धारण करनेवाले, तीनों लोक जिन्हीं का रूप है ऐसे आपके लिये नमस्कार है ॥ ८५ ॥ व हे कपालों से भूषित अङ्गवाले ! हे चन्द्रशेखर ! हे देवताओं व दैत्यों के नमस्कार किये गये ! मुण्डों के धारण करनेवाले व पार्वती करके शोभित हो रहे हैं आधा देह जिनका ऐसे आपके लिये नमस्कार है ॥ ८६ ॥ तुम्हारे रूप में विद्यमान, सर्वत्र व्याप्त होने से चल और स्वभाव से अचल शरीरवाला, व्यापक, चर्मदृष्टि में नहीं देखा जाता, भीतर और बाहर निर्मल

शानयोगेश्वर नमोस्तुते ॥ असुरघ्न पिशाचघ्न भूतवेतालनाशन ॥ ८३ ॥ भूतनाथ जगन्नाथ सर्वधार नमोस्तुते ॥ सृष्टि संहार निर्वाण सप्तपाल संश्रय ॥ ८४ ॥ श्रीकण्ठ नीलकण्ठेश महाकण्ठ नमोस्तुते ॥ त्र्यम्बकाय त्रिशूलाय त्रिलोकाय च ते नमः ॥ ८५ ॥ कपालिने कपालैश्च बद्धाङ्गशशिशेखर ॥ उमाकान्ताद्धिदेहाय सुरासुर नमस्कृत ॥ ८६ ॥ यत्र त्वरूप संस्थं चलमचल तनुं व्यापकं लक्ष्य हीनं तेजोभ्यन्तर्मरालं घनमघनमजं स्फाटिकं स्फाटिकाभम् ॥ रक्तनीलं च पीतं, सितमसितमनेकाल्परूपं प्रयुक्तं मध्यान्तादिव्यपे तं स्फुटतनुरहितं लिङ्गरूपं नमामि ॥ ८७ ॥ मध्याह्ने लक्ष्ययोगे न हृदयकमले धारणीशे न हंसे नाकाशे वायुतत्त्वेन लघरणिजले विद्यते नैव शक्यम् ॥ नो नादे नैव चिन्दौ न करणनिलये नादि मध्यावसाने स्थानेष्वेव प्रवद्धो न च नियमयितुं संसदाद्यं नमामि ॥ ८८ ॥ जिह्वाचापल्यभावेन वर्णितम् मे महाप्रभो ॥

मूर्ति में स्थित होने से घन, वास्तव में स्वरूपरहित, स्फटिकका सा स्वच्छ उसी के समान है प्रकाश जिसमें प्रत्येक पदार्थ में विद्यमान होने से लाल, नीला, पीला, सफेद, कालारङ्गवाला अनेक प्रकार के छोटे भी हैं रूप जिसके, माया में प्रतिबिम्बित होने से चेतनरूप से सर्वत्र है प्रयोग जिसका, मध्य, अन्त और आदि में रहित, प्रकट शरीर से रहित जो लिंगरूप तेज है जिसके हम नमस्कार करते हैं ॥ ८७ ॥ व मध्याह्नकाल में सूर्य में रुद्रका वास होता है इसमें मध्याह्न, सम्प्रज्ञात समाधि, हृदयकगल, चन्द्रमा, सूर्य, आकाश, वायु, अग्नि, पृथिवी, जल, नाद, बिन्दु, आत्मा, आदि, मध्य और अन्त इन स्थानों में शास्त्र से यद्यपि व्यापकरूप से आप वेषे भी हो परन्तु

नियम करनेको शक्य नहीं होसके कि इन्हींमें होसके अन्यत्र नहीं ऐसे आप को हम नमस्कार करतेहैं ॥ ८८ ॥ हे महाप्रभो ! जिह्वाकी चञ्चलता से मुझकरके वर्णन कियागया सो हे सुरेशान ! आप करके जमा कियाजावे आपका वर्णनकरने को कौन समर्थ होसकतहै ॥ ८९ ॥ मार्कण्डेयजी कहतेहैं कि बाणासुरकी स्तुतिको सुनकर ये भगवान् महादेवजी सन्तुष्ट होतेहुये और हे भारत ! फिर महादेवजी उस असुरसे वचन बोले ॥ ९० ॥ कि हे दैत्यनायक ! सेवा और अपराधसे उत्पन्न हुआ यह तेरा काम जमा कियागया अब तेरा कल्याण हो जो तेरे मनमें हो उस वरको तू मागले ॥ ९१ ॥ उस समयमे दैत्योंका स्वामी बाणासुर महादेवजीके वचन को सुनकर देवता और दैत्योंकरके नमस्कार कियेगये महादेवजीको प्रणाम करके वचन बोला ॥ ९२ ॥ कि हे देव ! जो आप मुझपर सन्तुष्ट हो और वर देने की

ज्वन्तव्यंतसुरेशानकस्त्वां वर्णयितुं क्षमः ॥ ८९ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ श्रुत्वा स्तुतिं च बाणस्य तुष्टोऽसौ भगवान्हरः ॥ उवाच वचनं शम्भुरसुरं प्रति भारत ॥ ९० ॥ सेवापराधजो ह्येष ज्ञान्तस्ते दैत्यनायक ॥ वरं दृष्ट्वा ष्वभद्रन्ते यत्ते मनसि वरं तै ॥ ९१ ॥ शिवस्य वचनं श्रुत्वा बाणो दैत्यपतिस्तदा ॥ प्रणम्य चाब्रवीद्वाक्यं सुरासुरनमस्कृतम् ॥ ९२ ॥ यदि तुष्टोऽसि मे देव वरन्दातुं त्वमिच्छसि ॥ अनेनैव शरीरेण सान्तःपुरपरिच्छदः ॥ ९३ ॥ तव लोकगमिष्यामि यत्र जन्मनविद्यते ॥ अत्रोत्पत्तिविपत्तिभ्यां निर्विषोऽसुरयोनिषु ॥ ९४ ॥ त्रिभिर्देवैः पुरन्दरं भिन्नं तत्रिपुरन्तव्या ॥ कथं तत्पतितं भूमौ गतं हना कर्मणा हतिः ॥ ९५ ॥ दाता बलिः प्रार्थयिता च विष्णुर्दानं महीवाजिमखस्य कालः ॥ आसीत् फलं बन्धनमेव तस्य न मोस्तु तस्यै भवितव्यतार्यै ॥ ९६ ॥ स्वर्गो दुर्गस्सुरास्सैन्यं गजाश्चैरावतादयः ॥ शस्त्रं वज्रमवाप्यास्ते यत्र देवोच्छ्रम्य

इच्छा करतेहो तो अपने परिवारसहित मैं इसी शरीर करके ॥ ९३ ॥ आपके लोक को जाऊं जहाँ जन्म नहीं होताहै क्योंकि यहाँ तो असुरयोनि में उत्पत्ति और विपत्तियों करके मुझको वैराग्य होरहा है ॥ ९४ ॥ क्योंकि तीनों देवताओं करके मुझको तीन शहर दियेगये वे तीनों आपकरके तोड़ दियेगये और पृथिवी में भी गिरपड़े यह कैसे हुआ कर्मोंकी गति बहुत कठिन है ॥ ९५ ॥ दान करनेवाले राजा बलि व दान लेनेवाले विष्णु व पृथिवीका दान और अश्वमेधयज्ञ का समय इन सब बातोंका फल हुआ यजमानका बन्धन इससे उस होनदारा के लिये नमस्कारहै ॥ ९६ ॥ स्वर्ग तो किला और देवताओंकी सेना और ऐरावत आदि हाथी और वज्र

ऐसा अरु और जहां बृहस्पतिसे आचार्य हैं इनको भी प्राप्तहोकर ॥ ६७ ॥ रावणके पुत्र, मेघनाद करके इन्द्र जीतलियोगये और सब अपने वश करलियागया तो प्रारब्ध बड़ा जवरदस्त है ॥ ६८ ॥ बाणासुर के वचनको सुनकर देवताओं के देवता, वर के देनेवाले महादेवजी ने कहा कि हमारी भक्तिके प्रसादसे तू हमारे समीप को प्राप्तहोगा ॥ ६९ ॥ तदनन्तर श्रीमान् बाणासुर महादेवजी के प्रसादसे दिव्य सवारीपर चढ़ाहुआ, देवता और दैत्योंकरके नमस्कार कियागया ॥ ७० ॥ शिवजी के पुरको प्राप्त होताहुआ जहां महादेवजी रहते हैं तब हे विशाम्पते ! महादेवजी से वे नर्मदाजी वचन बोलीं ॥ १ ॥ कि हे शङ्कर ! आपके अघोरास्त्र करके मेरा

तिः ॥ ९७ ॥ निजितोमेघनादेन दशाननसुतेन च ॥ सर्वमात्मवशनीतं दैवं हि बलवत्तरम् ॥ ९८ ॥ बाणासुरवचःश्रुत्वा देवदेवोवरप्रदः ॥ ममभक्तिप्रसादेन मदन्तिकमवाप्स्यसि ॥ ९९ ॥ ततोबाणासुरः श्रीमान् देवदेवप्रसादतः ॥ दिव्यया नसमारूढस्सुरासुरनमस्कृतः ॥ १०० ॥ प्रायाच्छिवपुरं यत्र देवदेवोमहेश्वरः ॥ नर्मदासाव्रवीद्वाक्यं शम्भुप्रतिवि शाम्पते ॥ १ ॥ बिन्दुमात्रमेदग्धमघोरास्त्रेण शङ्कर ॥ ददाहि त्रिपुरं कृत्स्नं ज्वलत्कालानलप्रभम् ॥ २ ॥ शान्तञ्च ममतोयेन रसातलतलययौ ॥ ईश्वर उवाच ॥ पुरन्तु निखिलं दग्धमघोरास्त्रं सुदुस्सहम् ॥ ३ ॥ सूर्यकोटिसमप्रख्यं मध्यदेशेतवाग्भसः ॥ अगमत्सौम्यरूपत्वं प्रभावात्तवनर्मदे ॥ ४ ॥ सरितस्सागराश्शैला गङ्गाद्याश्च सहस्रशः ॥ गोप्यं तत्क्षणमात्रेण भस्मपुञ्जो यथाजलम् ॥ ५ ॥ सोढुं कान्यासरिच्छेष्टा त्वां विनाशुर्विकल्पगे ॥ एवमुक्त्वा ययौ देव

एक बिन्दु भी नहीं जला जिसने जलतेहुये प्रलयकाल के अग्नि के समान सारे त्रिपुरको भस्म करादिया ॥ २ ॥ जोकि मेरे जलसे बुझाहुआ पातालको चलागया तब महादेवजी बोले कि हे नर्मदे ! जिसकरके सारा त्रिपुर भस्मकर दियागया वह अतिदुःसह, करोड़ सूर्योंके समान तेजवाला अघोरास्त्र तुम्हारे जलके बीचमें तुम्हारे ही प्रभावसे सौम्यरूप को प्राप्तहोगया ॥ ३ ॥ ४ ॥ समुद्र, पर्वत और गङ्गाआदि हजारों नदिया उस अघोरास्त्रकरके क्षणमात्रही में भस्म होसक्ती हैं ॥ ५ ॥ इससे हे कल्पगे ! तुम्हारे विना पृथिवी में और कौन श्रेष्ठ नदी उस अलके सहन करनेको समर्थ होसक्ती है यह कहकर देवता और दैत्योंकरके नमस्कार कियेगये महादेवजी

जातेहुये ॥ ६ ॥ व हे भूप, युधिष्ठिर ! यह जालेश्वरतीर्थ का वेदानुकूल आख्यान तुमसे संक्षेप से कहागया ॥ ७ ॥ इसी प्रयोजन से सात कल्पतक रहनेवाली नर्मदा सेवन कीजाती है इस आख्यान के, सुनने व कहने से महादेवजीका अनुचर होताहै ॥ १०८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणरेवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनुवादेऽमरेश्वरमाहात्म्ये
एकोनविंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

मार्कण्डेयजी बोले कि हे राजन् ! नैमिषारण्य के रहनेवाले दश हजार ऋषि होतेहुये गर्ग, शौनक और दक्ष ये उन सबके धर्मसे पिताके बराबर रहे ॥ १ ॥ वहां स्मुरासुरनमस्कृतः ॥ ६ ॥ एतत्तेकथितंभूप आख्यानंश्रुतिसम्मिमम ॥ जालेश्वरस्यतीर्थस्य समासेनयुधिष्ठिर ॥ ७ ॥ सेव्यतेतेनकार्येण नर्मदासप्तकल्पगा ॥ श्रवणात्कीर्तनात्तस्य रुद्रस्यानुचरोभवेत् ॥ १०८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणरेवाखण्डेऽमरेश्वरमाहात्म्ये एकोनविंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

मार्कण्डेयउवाच ॥ ऋषीणामयुतराजन्नैमिषारण्यवासिनाम् ॥ गर्गश्चशौनकोदक्षस्मर्वेषांधर्मतःपिता ॥ १ ॥ तेषान्निवसतान्तत्र आश्चर्यमभवन्नृप ॥ हिरण्यानामनगरी दृष्टावायदिवाश्रुता ॥ २ ॥ हिरण्यवेगानाम्नीतु नदीषु ष्यफलदुमा ॥ धनदस्यपुरीरम्या धनाढ्याचयथास्थिता ॥ ३ ॥ साप्तभौमैर्गृहस्यैहमप्राकारतोरणैः ॥ वेणुवीणादिना दौर्धैर्गन्धर्वैर्नादितायुतैः ॥ ४ ॥ नागराःपूजितास्सर्वेवाधिष्ठितधनान्विताः ॥ अग्निहोत्रैश्चविद्वद्भिर्ब्राह्मणैर्वेदपारगैः ॥ ५ ॥ एवंविधापुरीरम्या सर्वोत्सवसमन्विता ॥ अकालेभ्रियतेयस्तु सराज्ञागृह्यतेपुनः ॥ ६ ॥ सुदापरमयायुक्तोचिते

उनके रहतेहुये हे नृप ! एक आश्चर्य होताहुआ एक हिरण्यानाम की नगरी आपकी देखी व सुनी होगी ॥ २ ॥ जिसमें फूलेफले दुर्जोंसे युक्त हिरण्यवेगा नामवाली नदी होतीहुई जैसे धनयुक्त रमणीक कुबेर की पुरी स्थित होवे ॥ ३ ॥ सुवर्ण के हाता और फाटकों से युक्त व सात २ चौकवाले रमणीक मकानों करके युक्त वंशी व सितारके वजानेवाले अयुतों गन्धर्वोंकरके नादित ॥ ४ ॥ वयहां बड़े धनसे युक्त सब शहरके रहनेवाले राजाकरके पूजित रहतेहुये व समस्त वेदोंके पढ़नेवाले अग्निहोत्री विद्वान् ब्राह्मणोंकरके युक्त ॥ ५ ॥ सब उत्सवों से युक्त इस प्रकारकी रमणीक पुरी होतीहुई जो अकाल में मरता वह राजाकरके फिर जिला दियाजाता ॥ ६ ॥

परम आनन्द से युक्त कुबेर के समान धनी राजा मुनियों में श्रेष्ठ व ब्रह्माजी के मानसपुत्र दक्षप्रजापतिजी को गिरकर नमस्कार करके उनसे अनेक हजार ब्रह्मतेज वाले मुनियोंके सुनतेहुये भलीभाति पूँछतेहुये ॥ ७ । ८ ॥ कि सौत्रामणि व सोमयज्ञ किस देशमें सिद्ध होसक्ती है हे मुनिशार्दूल ! तो मुझसे कहिये क्योंकि आप सब धर्मके जाननेवाले हो ॥ ९ ॥ तब सूर्यके पुत्र हिरण्यबाहु से दक्ष बोलतेहुये कि पुष्करनाम का तीर्थ तीनलोकों में विदित है ॥ १० ॥ हे राजन् ! उसमें जो कुछ पूजन व हवन कियागया वह सब करोड़गुना होजाता है ब्राह्मणों के प्रसाद से इसमें कुछ विचार नहीं करना चाहिये ॥ ११ ॥ उनके इस वचन को सुनकर उन

शोधनदोयथा ॥ प्रजापतिसम्प्रच्छ ब्रह्मणोमानसं सुतम् ॥ ७ ॥ प्राणिपत्यनमस्कृत्य दक्षं तम् मुनिपुङ्गवम् ॥ अनेकानि सहस्राणि मुनीनां ब्रह्मवर्चसाम् ॥ ८ ॥ सौत्रामणिरसोमसंस्था कस्मिन्देशे च सिद्ध्यति ॥ आचक्ष्व मुनिशार्दूल यतस्त्वं सर्वधर्मवित् ॥ ९ ॥ हिरण्यबाहुं प्रोवाच दक्षो वैवस्वतन्तदा ॥ तीर्थं हि पुष्करन्नाम त्रिपुलोकेषु विवश्रुतम् ॥ १० ॥ तस्मिन्निष्ठं तु रंजनं सर्वकोटिगुणं भवेत् ॥ ब्राह्मणानां प्रसादेन नात्र कार्या विचाराणा ॥ ११ ॥ तस्य तद्वचनं श्रुत्वा राजा प्रोवाच तम्मुनिम् ॥ निष्पाद्यताञ्च यज्ञो मे भगवन् पुष्करेशुभे ॥ १२ ॥ मानसं ब्रह्मणः पुत्रं सर्ववैदविशारदम् ॥ त्वास्मृते दीक्षितुं कस्य शक्तिरस्मिन्महीतले ॥ १३ ॥ एवमस्त्विदं तं प्राह दक्षो राजर्षि सत्तमम् ॥ ततो जगाम राजर्षिः पुष्करं सर्वसम्भृतः ॥ १४ ॥ गवां च दशलक्षाणि सार्द्धं लक्षन्तु वाजिनाम् ॥ द्विपञ्चाशत्सहस्राणि गजेन्द्राणां रथायुतम् ॥ १५ ॥ मणिमाणिक्यरत्नानि वस्त्राण्याभरणानि च ॥ तेषां संख्यानविद्येत कुबेरस्य धनं यथा ॥ १६ ॥ ततो भक्ष्याणि भोज्यानि

मुनिजी से राजा बोलतेहुये कि हे भगवन् ! मेरा यज्ञ सचम पुष्करतीर्थ में कराया जावे ॥ १२ ॥ सब वेदोंके जाननेवाले ब्रह्माजीके मानसपुत्र आपको छोड़कर दीक्षा दिलाने के वास्ते इस पृथिवीतल में किसकी सामर्थ्य होसक्ती है ॥ १३ ॥ तब उन श्रेष्ठ राजर्षि से दक्षने कहा कि ऐसाही हो तदनन्तर सब सामान के सहित राजर्षि पुष्कर को जातेहुये ॥ १४ ॥ दशलाल गौवें, डेढ़ लाख घोड़ों, बावन हजार हाथी, दश हजार रथ ॥ १५ ॥ मणि, माणिक्य, रत्न, वस्त्र और आभूषणोंकी कोई संख्या नहीं

रही जैसे कुँवरका धनहोवै ॥ १६ ॥ तदनन्तर अनेक प्रकार के भक्ष्य, भोज्य और पान सिद्ध कियेगये इस प्रकार पवित्र व श्रेष्ठपुष्करमें यज्ञ प्रवृत्त होताहुआ ॥ १७ ॥ तदनन्तर ब्रह्मा और देवताओं के राजा इन्द्रही बुलायेगये और देवताओं करके क्या कार्यहै इन्हीं दोनोंसे सब पूजित होजायेंगे ॥ १८ ॥ महादेवजी भागके योग्य नहीं हैं और विष्णुभी यज्ञके करानेवाले नहीं हैं न सूर्य, न चन्द्रमा और न देवताही हैं ॥ १९ ॥ क्योंकि हे भारत ! अमित तेजवाले राजाका यज्ञ तो वेदमूल ही रहा वेदोंकी ध्वनिसे व यज्ञके धुँयेसे ॥ २० ॥ हे राजन् ! पृथिवी और आकाश का बीच पत्र पूर्ण होगया इसी अन्तरमें यज्ञके छिद्रोंके छिद्रने में तत्पर होरहे ॥ २१ ॥

पानानिविविधानिच ॥ एवंप्रवर्तितोयज्ञः पवित्रेश्रेष्ठपुष्करे ॥ १७ ॥ आहूतश्चततोब्रह्मा शक्रश्चापिसुरेश्वरः ॥ अन्यदेवैश्चकिङ्कार्यं ताभ्यांसर्वप्रयुजितम् ॥ १८ ॥ नरुद्रोयज्ञमागर्हो वासुदेवस्त्वयाजकः ॥ नचादित्योनवरूपो नदेवानचचन्द्रमाः ॥ १९ ॥ वेदमूलोयतोयज्ञो राज्ञश्चामिततेजसः ॥ वेदनिर्घोषशब्देन यज्ञधूमेनभारत ॥ २० ॥ रोदस्यनन्तरंराजन्सर्वमेवप्रयुजितम् ॥ एतस्मिन्नन्तरेयज्ञच्छिद्रान्वेषणतत्पराः ॥ २१ ॥ सम्प्राप्ताराजशार्दूलवलेनवलवत्तराः ॥ पराजयञ्चदेवानामसुराणांजयन्तथा ॥ २२ ॥ कर्तुंप्रस्थापितास्सर्वे ह्यसुरादेवकण्टकाः ॥ तेभ्योनिकेतुनाप्रोक्तं देत्यानामीश्वरेणहि ॥ २३ ॥ नरुद्रोस्तिनविष्णुर्वा ब्रह्मास्तेसप्तपृथजकः ॥ नकर्तव्यंभयन्तेषां ब्राह्मणाज्ञानदुर्बलाः ॥ २४ ॥ गच्छन्तुदानवादृत्या भूतवेतालराक्षसाः ॥ पिवन्तुसोमंयज्ञाङ्गं भक्षयन्तुतथाद्विजान् ॥ २५ ॥ विध्वंसितस्ततोयज्ञो ब्राह्मणाश्चैवभक्षिताः ॥ अग्निर्विनाशितोयज्ञयूपश्चयज्ञमण्डपः ॥ २६ ॥ ऋषीणांधर्षिताःपत्न्यो नग्नरूपैस्त

हे राजशार्दूल ! सेनासे युक्त, बड़े बलवाले देवताओंके पराजय और दैत्योंके विजय करनेके वास्ते भेजेगये देवताओंके कण्टकरूप सब असुर भलीभाति प्राप्त हुये उनसे असुरों के राजा निकेतु ने कहा था ॥ २२ ॥ कि इस यज्ञमें रुद्र और विष्णु नहीं हैं ब्रह्मा हैं सो वे तो पुजारी है इससे इन लोगोंका भय नहीं करना चाहिये और ब्राह्मणलोग तो ज्ञानसे दुर्बल हैं ॥ २३ ॥ इससे दान, दैत्य, भूत, वेताल और राक्षसलोग जावें और यज्ञके अन्न सोमको पीवें और ब्राह्मणोंको भक्षण करें ॥ २४ ॥ तदनन्तर उन लोगोंकरके यज्ञ विध्वंसित करदियागया, ब्राह्मण स्वायङ्मालेगये, अग्नि दुष्कादियागया, यज्ञ का खम्भा व यज्ञका मण्डप तोड़ दियागया ॥ २५ ॥ वैसेही नङ्गे

असुरों करके जबरदस्ती ऋषियों की स्त्रियां अष्टकरडालीगई थोड़ी अवस्थावाले ऋषि भयसे विकल और प्राणों के जानेकी शङ्कासे पीडितहुये ॥ २७ ॥ तदनन्तर ब्रह्मा और देवताओंके गणोंकरके सहित इन्द्र भागगये इस प्रकार यज्ञके विध्वंस होनेपर चक्रवर्ती श्रेष्ठराजा ॥ २८ ॥ हिरण्यबाहु ब्राह्मणों पर हे भारत ! कोप करते हुये और कहा कि अतिपापी, दुराचारी, भिक्षुक वे ब्राह्मण लोग चलेगये ॥ २९ ॥ और यज्ञका सामान लेकर दैत्य भी अपने स्थानको चलेगये अब हम भी इकट्ठे अपनी रानीकरके सहित घोड़ेपर सवारहोकर चलेजार्यगे ॥ ३० ॥ क्योंकि यह समय पौरुष व कोपकरने का कदापि नहीं है जिस यज्ञमें महादेवजी देवता नहीं हैं

थाबलात ॥ कुमारारुण्यश्चैव भयार्ताः प्राणपीडिताः ॥ २७ ॥ प्रणष्टश्च ततो ब्रह्मा शक्रो देवगणैस्सह ॥ एवं यज्ञे च विध्वस्ते चक्रवर्ती द्रुपोत्तमः ॥ २८ ॥ हिरण्यबाहुः कुपितो ब्राह्मणान् प्रतिभारत ॥ पापिष्ठाश्च दुराचारा गतास्तोमिक्षुकादिजाः ॥ २९ ॥ स्वस्थानञ्च गता दैत्या गृहीत्वा यज्ञसम्भृतिम् ॥ एकाकी हयमारुह्य सहपत्न्या ब्रजाम्यहम् ॥ ३० ॥ न पौषस्य कालोऽयं कोपस्य च कथञ्चन ॥ शम्भुर्न देवतायत्र शङ्खचक्रगदाधरः ॥ ३१ ॥ कथं सिद्ध्यति यज्ञोऽसौ न सूर्यो नैव चन्द्रमाः ॥ लोलुपा ब्राह्मणाः पापास्त्वशक्ता यज्ञरक्षणे ॥ ३२ ॥ यदि मे विद्यते सत्यं भवन्तु ब्रह्मराक्षसाः ॥ सकण्टके निरुदके प्रदेशे नष्टचेतनाः ॥ ३३ ॥ दत्ताद्यैर्ब्राह्मणैस्सर्वैस्सोमिशप्तो महीपतिः ॥ अरचिता त्वं यज्ञस्य क्षत्रियाणान्तथा धमः ॥ ३४ ॥ खरो द्वादश वर्षाणि भविष्यसि न संशयः ॥ शापाद्बभूवुरन्योन्यं ते खरब्रह्मराक्षसाः ॥ ३५ ॥ एतत्ते कथितं वृत्तं न हरो न हरिः प्रभुः ॥ न यज्ञो न च तद्दानं न तपोऽध्ययनं न च ॥ ३६ ॥ वेदोक्तं कर्म न ब्राह्मणं न धर्मं न त्रिविष्टपम् ॥

और विष्णु भी नहीं हैं ॥ ३१ ॥ सूर्य नहीं हैं व चन्द्रमा भी नहीं हैं वह यज्ञ क्योंकर सिद्ध होसकै है अतिलोभी पापी ब्राह्मणलोग यज्ञरक्षा करनेको नहीं समर्थ होसकै हैं ॥ ३२ ॥ इससे जो मुझमें सत्यहोवे तो वे सब ब्राह्मण ब्रह्मराक्षस होजावें और कटाले निर्जल स्थान में बुद्धिरहित वे लोग वासकरें ॥ ३३ ॥ वह राजा भी दत्त हैं ॥ ३४ ॥ इससे जो मुझमें सत्यहोवे तो वे सब ब्राह्मण ब्रह्मराक्षस होजावें और कटाले निर्जल स्थान में बुद्धिरहित वे लोग वासकरें ॥ ३५ ॥ इससे बारह वर्ष तक तू गदहा रहेगा इसमें कोई संशय नहीं है परस्पर शाप से वे सब गदहा व ब्रह्मराक्षस होतैहुये ॥ ३६ ॥ यह वृत्तान्त आपसे कहा गया जिसमें हर व हरि प्रभु नहीं है तो न वह यज्ञ, न वह दान, न तप,

न पढ़ना ॥ ३६ ॥ न वेदोक्तकर्म, न वैदिक धर्म, न स्वर्ग, न व्रत और न वषट्कार सब पापों का नाश करनेवाला होसक्ता है ॥ ३७ ॥ इसी अन्तर में तब हे राजन्, भारत ! यज्ञ देखनेके वास्ते पुष्करमें देवर्षि नारदजी आतेहुये ॥ ३८ ॥ तदनन्तर उसी समय पापकर्मों दैत्योंकरके यज्ञके नष्टहोने पर वेदके जाननेवाले श्रेष्ठ ब्राह्मण देवर्षि नारदजीसे हिरण्यबाहु राजा वचनबोले कि हे मुनिपुङ्गव ! छुद्र ब्राह्मणोंकरके मेरा यज्ञ नाश करादिया गयाहै ॥ ३९ ॥ ४० ॥ मैं यज्ञकी रक्षाकरनेमें समर्थ रहा- यज्ञ विध्वंस करनेवालों को नाश भी करसक्ता, तीनों लोकों के जीतने में समर्थ हूं फिर दैत्य और दानवों को क्या कहनाहै ॥ ४१ ॥ परन्तु मुझ करके भी हरिहर-
नव्रतं नवषट्कारस्सर्वपापप्रणाशनः ॥ ३७ ॥ एतस्मिन्नन्तरैराजन्देवर्षिर्नारदस्तदा ॥ आजगामक्रतुर्द्रष्टुं पुष्करम्प्र-
तिभारत ॥ ३८ ॥ ततोविष्णुवितेयज्ञे दैत्यैर्दुष्कृतिकारिभिः ॥ हिरण्यबाहुश्चपरं ब्राह्मणं ब्रह्मपारगम् ॥ ३९ ॥ उवाचवच-
नं राजा देवर्षिर्नारदन्तदा ॥ नाशितो ब्राह्मणैर्यज्ञः क्षुद्रैर्ममुनिपुङ्गव ॥ ४० ॥ यज्ञधर्ममविधौ शक्तो घातयाम्यध्वरान्त-
कम् ॥ शक्तोऽस्मिन्निजगज्जेतुं किम्पुनर्दैन्यदानवान् ॥ ४१ ॥ मयाचापिकृतो यज्ञो हरिशङ्करवर्जनात् ॥ ब्रह्मशापवशा-
द्भीतो गार्दभो योनिमाश्रितः ॥ ४२ ॥ केनोपायेन देवर्षे त्रिकालज्ञानं विवेदवित् ॥ स्वर्गलोकं गमिष्यामि ऋत्विगिभ्यर्ब्राह्म-
णैस्सह ॥ ४३ ॥ अनुग्रहमिमं मन्ये यन्माप्राप्तोऽसिनारद ॥ नारद उवाच ॥ तत्र गच्छ नर श्रेष्ठ ब्राह्म-
४४ ॥ रेवाचरुहसम्भेदं पञ्चलिङ्गानि भूमिप ॥ तत्र स्नाता दिव्यान्ति ये मृतानपुनर्भवाः ॥ ४५ ॥ तत्र गच्छ नर श्रेष्ठ ब्राह्म-
णैर्ब्रह्मराक्षसैः ॥ नयज्ञानतपोदानं शिवध्यानपरो भव ॥ ४६ ॥ सद्यः प्रमुच्यते पापाद् ब्राह्मणैश्चापदुर्षितैः ॥ यत्रासु-
रहितं यज्ञं कियोगया इससे कुछ न होसका अब ब्राह्मणोंके शाप से डराहुआ मैं गदहे की योनि को प्राप्त होऊंगा ॥ ४२ ॥ इस से हे त्रिकालज्ञ, तीनों वेदोंके जानने-
वाले, देवर्षे ! किस उपाय करके ऋत्विज् ब्राह्मणों करके सहित हम स्वर्गलोक को जायेंगे ॥ ४३ ॥ हम इसको बड़ा अनुग्रह मानते हैं कि हे नारद ! जो आप हमारे पास प्राप्तहुये तब नारदजी बोले कि हे महाभाग, राजन् ! मुझकरके कहे जाते को आप सुनें व समझे ॥ ४४ ॥ हे भूमिप ! नर्मदा और चरुक का सङ्गम और पञ्चलिङ्गहैं उस में जो स्नान करते वे स्वर्ग को जाते और जो मरे वे किन्हीं नहीं होतेहैं ॥ ४५ ॥ हे नरश्रेष्ठ ! आप ब्रह्मराक्षस ब्राह्मणों करके सहित वहांको जावो

नयोंकि यज्ञ व तप और दान कुछ भी नहीं हैं केवल शिवजी के ध्यान में तत्पर होवों ॥ ४६ ॥ तो शाप से दूषित ब्राह्मणों करके सहित शीघ्रही पापसे छूटजावोंगे जहाँ बड़े भयानक रूप को धारण कियेहुआ असुर मारागया है ॥ ४७ ॥ पापप्रणाशनलिंग व ऋणमोचन व अन्य चतुष्केश्वर वैसेही और सिद्धेश्वर ॥ ४८ ॥ और पांचवां सिद्ध वारुण लिंग वहाँ प्रतिष्ठित है इसप्रकार ऐश्वर्यवाले श्रेष्ठ राजा से नारद ने कहा ॥ ४९ ॥ युधिष्ठिर जी बोले कि हे भगवन् ! जिससमय में भैरव जी नाचते हैं उस समय में कैसा रूप होता है यह सब मुझ से कहो हे प्रभो ! आप करके यह प्रसाद किया जावे ॥ ५० ॥ तब मार्कण्डेयजी बोले कि

रस्तुनिहतो भैरवंरूपमाश्रितः ॥ ४७ ॥ पापप्रणाशनलिंगं ऋणमोचनमेव च ॥ चतुष्केश्वरमपरं तथासिद्धेश्वरं परम् ॥ ४८ ॥ पञ्चमं वारुणलिंगं सिद्धं तत्र प्रतिष्ठितम् ॥ एवन्तु नारदः प्राह भगवन् तं नृपोत्तमम् ॥ ४९ ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ भगवन्कीदृशं रूपं यदानृत्यति भैरवः ॥ एतदाचक्ष्वमे सर्वे प्रसादः क्रियताम् प्रभो ॥ ५० ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ गौर्ययाष्ट एः पुराराजन्कीतुकेन सुरेश्वरः ॥ नृत्यरूपं समाख्याहि किमन्यैः कथितैर्मम ॥ ५१ ॥ शान्तरूपं ततस्त्यक्त्वा कृतं रूपं सुदारुणम् ॥ स्थितश्चैकेन पादेन प्रपीड्य वधुधातलम् ॥ ५२ ॥ द्वितीयेन च पादेन ब्रह्माण्डं सचराचरम् ॥ ख्यातं दारुवननाम पञ्चलिङ्गसमन्वितम् ॥ ५३ ॥ निहत्य चासुरं तत्र पुनर्नृत्यं मया प्रिये ॥ तस्मिन् दारुवने च एण्ड रुद्रं सुवनदारुणम् ॥ ५४ ॥ एतत्ते कथितं तं राजन् पुराणं स्कन्दकीर्तितम् ॥ शिवेन कथितं पूर्वं पार्वत्याः षण्मुखस्य च ॥ ५५ ॥ गच्छ गच्छ नृप

हे राजन् ! पूर्वकाल में आश्चर्य से पार्वती जी करके महादेवजी पूछे गये कि नाचका रूप कहे और कहींहुई बातों से मुझ को क्या है ॥ ५१ ॥ तदनन्तर महादेवजी शान्तरूप को बोंड़कर अतिदारुणरूप को धारण किया और एक पाँव से पृथ्वीतल को दबाकर स्थित हुये ॥ ५२ ॥ दूसरे पाँव से चराचर सहित ब्रह्माण्ड को दबाया पञ्चलिङ्गसे युक्त वह दारुवननाम से विदित होताहुआ ॥ ५३ ॥ महादेव जी ब्रह्मते हैं कि हे प्रिये ! इस रूप से वहाँ असुर को मारकर फिर मुझकरके नृत्य कियागया हे चण्ड ! उस दारुवन में लोकों को भय करानेवाला रुद्र है ॥ ५४ ॥ हे राजन् ! यह स्वामिकार्त्तिकजी का कहाहुआ पुराण तुम से कहागया यह

पूर्वकाल में पार्वती और स्वामिकास्तिक से महादेव करके कहागया ॥ ५५ ॥ नारद जी राजा से कहते हैं कि हे नृप ! नर्मदा और चरु के सङ्गमरूप स्थान को तुम जावो २ वहां तुम्हारे स्नान करने मात्र से शाप का अन्त होजावेगा ॥ ५६ ॥ हे राजन् ! यह कहकर देवर्षि नारदजी उस समय में चलेगये तदनन्तर हिरण्य-बाहुराजा अपने परिवार सहित शापसे अष्ट दक्ष, शौनक और गर्गादिकों से युक्त नर्मदा और चरु के सङ्गम को शीघ्रही प्राप्त होते हुये ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ वहां वे राजर्षि स्नानकरके और तिलोदक देकर उसी समय उम दारुवनमें पांचों लिङ्गोंका पूजन करके ॥ ५९ ॥ व सिद्धेश्वर, चरुलिङ्ग, ऋणमोचन, पापप्रणाशन और भुक्ति व मुक्ति

स्थानं नर्मदाचरुसङ्गमम् ॥ तत्र ते स्नातमात्रस्य शापस्यान्तो भविष्यति ॥ ५६ ॥ एवमुक्त्वा ययौराजन्देवर्षि नारदस्तदा ॥ हिरण्यबाहुर्नृपतिस्मान्तःपुरपरिच्छदः ॥ ५७ ॥ दक्षशौनकगर्गादिशपथैस्समन्वितः ॥ आजगाम ततश्शीघ्रं नर्मदाचरुसङ्गमम् ॥ ५८ ॥ तत्र स्नात्वा सराजर्षिर्दत्त्वा चैव तिलोदकम् ॥ पञ्चलिङ्गानि चाभ्यर्च्य तस्मिन्दारुवने तदा ॥ ५९ ॥ सिद्धेश्वरं चरुलिङ्गं ऋणमोचनमेव च ॥ पापप्रणाशनं चान्यच्च ण्डिकेश्वरमुत्तमम् ॥ ६० ॥ पूजयित्वा यथान्यायं भुक्तिमुक्तिफलप्रदम् ॥ स्तोत्रैस्तुष्टाविविधैः शिवभक्तिपरायणः ॥ ६१ ॥ त्वया विना तपोदानं न यज्ञं च याजनम् ॥ न स्वर्गं न च मोक्षञ्च कामयेयमहेश्वर ॥ ६२ ॥ न हरो न हरिर्यत्र सर्वतन्निष्फलं भवेत् ॥ ततस्तुष्टस्सुरेशानो वरं वृण्वित्युवाच तम् ॥ ६३ ॥ हिरण्यबाहुराजर्षिः प्रसाद्य शिवमब्रवीत् ॥ यदितुष्टोऽसि मे देव वरन्दालुं त्वमिच्छसि ॥ ६४ ॥ तदा स्याः खरयो ने मां महादेव विमोचय ॥ त्यजन्ति चात्र ये प्राणान् पापान् अपि न राधमाः ॥ ६५ ॥ तेषां नित्यं तव

के देनेवाले उत्तम चण्डिकेश्वरका विधिपूर्वक पूजन करके महादेवजी की भक्तिमें तत्पर अनेक प्रकारके स्तोत्रोंसे स्तुति करते हुये ॥ ६० ॥ ६१ ॥ कि हे महेश्वर ! आपके विना तप, दान, यज्ञ, याजन, स्वर्ग और मोक्षकी हम नहीं कामना करते हैं ॥ ६२ ॥ जहां हर व हरि नहीं हैं वह सब निष्फल है तदनन्तर महादेवजी सन्तुष्ट हुये और उस राजासे यह कहा कि तुम वरमांगो ॥ ६३ ॥ तब हिरण्यबाहु राजर्षि प्रसन्नकरके शिवजीसे बोले कि हे देव ! जो आप मुझपर प्रसन्नहो और वर देने की इच्छा करते हो ॥ ६४ ॥ तो हे महादेव ! इस गढ़दे की योनि से मुझको छुटा देवो और मनुष्योंमें अधम पापी भी जो यहां प्राणोंको छोड़ें ॥ ६५ ॥ वे भी आपके स्थानको प्राप्त होवें यह

हमारा वचन सत्य होने और यज्ञ की सिद्धि, दान, तप और श्रेय निर्दिष्ट होवें ॥ ६६ ॥ ऐसाही हो यह कहकर शिवजी अन्तर्ज्ञान होगये शाप से छूटेहुये वे धर्मात्मा दिव्यशोभावाले शरीर को धरेहुये ॥ ६७ ॥ अभीष्ट सवारी पर चढ़कर अपने परिवार के सहित, छत्रको धारण कियेहुये, मागधा करके स्तुति कियेजाते ॥ ६८ ॥ परमआनन्दसे युक्त यज्ञ कराने के वास्ते दूसरे ब्रह्मवादी याजकके ढूंढ़ने के लिये हिरण्यपुर को जातेहुये ॥ ६९ ॥ इसी अन्तर के प्राप्त होने पर उसी पुरको नारदजी भी आतेहुये ॥ ७० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणैरेवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनुवादैरेवाचरुसङ्गमवर्णनोनामत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥ ❀ ॥

स्थानं सत्यमेतद्वचोमम ॥ निर्विघ्नायज्ञसिद्धिश्च श्रेयोदानंतपस्तथा ॥ ६६ ॥ एवमस्त्वितितंप्रोक्त्वा शिवस्त्वन्तरधी यत ॥ शापान्मुक्तस्सधर्मात्मा दिव्यकान्तिवपुर्द्धरः ॥ ६७ ॥ कामिकंयानमारुह्य सान्तःपुरपरिच्छदः ॥ ध्रियमाणात पत्रश्च स्तूयमानश्चमागर्ध्वैः ॥ ६८ ॥ सुदापरमयायुक्तो हिरण्यपुरमाविशत् ॥ अन्यंयाजकमन्वेष्टुं यज्ञार्थं ब्रह्मवा दिनम् ॥ ६९ ॥ एतस्मिन्नन्तरेप्राप्ते नारदः पुरमभ्यगात् ॥ ७० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणैरेवाखण्डेरेवाचरुसङ्गमवर्णनो नामत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

युधिष्ठिरउवाच ॥ हिरण्यबाहुः शापान्ते नगरीं प्राप्यनिर्धृतः ॥ दत्तादयः कथं मुक्तास्तस्माच्छापाच्च कथ्यताम् ॥ १ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ शृणु राजन् महाबाहो कथ्यमानं निबोध मे ॥ हिरण्यबाहुनाशप्ता यावन्मुक्ता द्विजोत्तमाः ॥ २ ॥ वअ मुस्सर्वतीर्थानि आसमुद्रान्तर्गोचरे ॥ तेषां ब्रह्मादयश्शपं न निवर्तयितुं च माः ॥ ३ ॥ वाराणसी महापुण्यां गङ्गासागरस

युधिष्ठिरजी बोले कि राजा हिरण्यबाहु के शाप के अन्त होनेपर अपनी नगरी को प्राप्त होकर आनन्दित होगये फिर दत्त आदि ब्राह्मण उस शापसे किस प्रकारसे छूटे सो आप करके कहाजावे ॥ १ ॥ तब मार्कण्डेयजी बोले कि हे महाबाहो, राजन् ! आप मेरे कहने को सुनो व समझो हिरण्यबाहु करके शापित श्रेष्ठ ब्राह्मण जबतक मुक्त होवें तबतक ॥ २ ॥ समुद्र पर्यन्त के सब तीर्थों में अमतेरेहे व उनके शाप के निवृत्त करने को ब्रह्माआदि देवता समर्थ नहीं हुये ॥ ३ ॥ तब हे भारत ! महा-

पवित्र काशी, गङ्गासागरसंगम, हिमालय, केदार, मौर्वतीर्थ ॥ ४ ॥ गङ्गा, नैमिषारण्य, भैरव तथा पुष्कर वैसेही रमणीक मायापुरी तथा उग्र कनखला ॥ ५ ॥ रौद्र तथा ईशान व देवता और दैत्यों करके नमस्कार कियागया गङ्गाद्वार, हिमस्थान, प्रभास, शशिभूषण ॥ ६ ॥ रुद्रकोटिसमायोग, गंगाभेद, सरस्वती तथा स्था-
नेश्वर और वैसेही पवित्र कुरुक्षेत्र ॥ ७ ॥ कुरुक्षेत्र को जावेगे, कुरुक्षेत्रमें रहेंगे, कुरुक्षेत्रके नामकरके भी मनुष्य सब पापोंसे छूट जाताहै ॥ ८ ॥ ऐसे कहते इनतीर्थों में घूमने से विकल होरहे वे लोग शाप के अन्तको नहीं प्राप्त होतेहुये तदनन्तर पापकर्म में रतहोरहे उन ब्रह्मराक्षसों करके सब तीर्थ निन्दा कियेगये ॥ ९ ॥ तब

ज्ञमम् ॥ हिमवन्तंचकेदारमौर्वतीर्थंचभारत ॥ ४ ॥ गङ्गांचनैमिषारण्यं भैरवंपुष्करन्तथा ॥ मायापुरीन्तथारम्यामुग्रं
कनखलन्तथा ॥ ५ ॥ रौद्रचैवतथेशानं सुरासुरनमस्कृतम् ॥ गङ्गाद्वारंहिमस्थानं प्रभासंशशिभूषणम् ॥ ६ ॥ रुद्रको
टिसमायोगं गङ्गाभेदं सरस्वतीम् ॥ स्थानेश्वरन्तथापुण्यंकुरुक्षेत्रंचतथैवच ॥ ७ ॥ कुरुक्षेत्रंगमिष्यामि कुरुक्षेत्रेनैवसा
म्यहम् ॥ कुरुक्षेत्रस्यनाम्नापि नरःपापैःप्रमुच्यते ॥ ८ ॥ अमेणैवंविषसास्ते शापस्यान्तंनलेभिरे ॥ निन्दितानिच
तीर्थानि पापकर्मरतैस्ततः ॥ ९ ॥ आकाशवचनंश्रुत्वा महातीर्थानिनिन्दत ॥ हरंहरिंचयोद्वेष्टि नाभिनन्दतियस्सु
रान् ॥ १० ॥ सयातियत्रयत्रैव दुःखंप्राप्नोत्यसंशयः ॥ एतस्मिन्नन्तरेप्राप्तो नारदोदेवपूजितः ॥ ११ ॥ दक्षशीनकग
र्गोदीन्यसर्वीस्तान्मुनिसत्तमान् ॥ ब्रह्मरक्षस्तनून्ष्टुद्वा नारदोवाक्यमब्रवीत् ॥ १२ ॥ भवन्तःकर्मणकेन सञ्जाताब्र
ह्मराक्षसाः ॥ तस्याथवचनंश्रुत्वा नारदस्यमहामुनेः ॥ १३ ॥ सोभिवाद्यनमस्कृत्य दत्तोवचनमब्रवीत् ॥ यथोत्सवं

आकाशवाणी हुई कि तुमलोग महातीर्थोंकी निन्दा करतेहो जो हरि, हरकी निन्दा करता है व जो देवताओं का अभिनन्दन नहीं करताहै ॥ १० ॥ वह जहां जहां जाता है वहां वहां दुःखही पाता है इस में कोई संशय नहीं है इसी अन्तर में देवताओं करके पूजित नारदजी वहां प्राप्तहुये ॥ ११ ॥ और उन दक्ष, शौनक और गर्गआदि सब मुनिश्रेष्ठों को ब्रह्मराक्षस-शरीस्वाले देखकर नारदजी वचन बोलाते हुये ॥ १२ ॥ कि आपलोग किस कर्म से ब्रह्मराक्षस हुये तब उन नारद महामुनिजी के

वचनको सुनकर ॥ १३ ॥ अभिवादन और नमस्कार करके दक्ष वचन बोलतेहुये कि ब्रह्मलोकके वास्ते उत्साहपूर्वक जो कर्म कियागया ॥ १४ ॥ वही उलट भाव को प्राप्तहोगया कर्मकी गति बहुत कठिन है अब आप हमको ऐसा कोई कर्म बतावें जिससे हम पापको छोड़ें ॥ १५ ॥ हे नारद ! हमलोग जहाँ २ जाते वहाँ २ जल व अन्न नहीं मिलता किन्तु वहाँ २ घोर अनावृष्टि होतीहै ॥ १६ ॥ तब नारदजी बोले कि हे मुनिश्रेष्ठ ! हिरण्यपुर में स्थित होरहे धर्मात्मा हिरण्यबाहु आपलोगों करके प्रसन्न कियेजावें वे शापका अन्तकरेंगे ॥ १७ ॥ नर्मदा और चरुके संगममें यज्ञ करनेके वास्ते जाकर पाँचों लिंगोंका पूजन करके शापके अन्तकोकरेंगे ॥ १८ ॥

कृतकर्म ब्रह्मलोकहिताययत् ॥ १४ ॥ तद्विपर्ययासमापन्नंगहनाकर्ममणोगतिः ॥ कर्मोपदिशमेकिञ्चिद्येनमुञ्चामि
हुष्कृतम् ॥ १५ ॥ यत्रयत्रचगच्छामो जलमन्नंनविद्यते ॥ अनावृष्टिरभूद्घोरा तत्रतत्रैवनारद ॥ १६ ॥ नारदउवाच ॥
प्रसाद्यतांमुनिश्रेष्ठाः शापस्यान्तंकरिष्यति ॥ हिरण्यबाहुर्धर्मात्मा हिरण्यपुरमास्थितः ॥ १७ ॥ यज्ञं कर्तुं समाया
तो रेवाचरुक्कसङ्गमे ॥ पञ्चलिङ्गानिचाभ्यर्च्य शापान्तं च करिष्यति ॥ १८ ॥ एवमुक्त्वा स देवर्षिर्ब्राह्मणैश्शपापकर्षि
तैः ॥ आजगाम ततो दिव्यां हिरण्यनगरीं शुभाम् ॥ १९ ॥ हिरण्यबाहुर्दृष्टं पतिर्विशिष्टश्च महाभुनिः ॥ विलोकय तान्मुनी
न्सर्वान्सदेवर्षिपुरोगमान् ॥ २० ॥ अभिवाद्यथान्यायमर्घपाद्यैरपूजयत् ॥ नारदस्तुततोवाक्यं राजानमिदमब्र
वीत् ॥ २१ ॥ कुशलन्ते नृपश्रेष्ठ सुखं तिष्ठसि सुव्रत ॥ नारदस्य वचश्चुत्वा सर्वधर्मपरायणः ॥ २२ ॥ उवाच च वचनं रा
जा नारदं श्लक्ष्णाय गिरा ॥ अद्य मे कुशलं ब्रह्मं स्तवपादाब्जदर्शनात् ॥ २३ ॥ किङ्कर्तव्यं मया ते च ब्रह्मन् मे नृप हं कुरु ॥

इसप्रकार कहकर वे देवर्षि शापसे कष्टित ब्राह्मणों करके सहित विव्य, शुभ, हिरण्यनगरी को आतेहुये तदनन्तर ॥ १६ ॥ राजा हिरण्यबाहु और महाभुनि वशिष्ठजी नारदसहित उन सब मुनियों को देखकर ॥ २० ॥ यथार्थीति से अभिवादनकरके अर्घ्य व पाद्य से पूजन करते हुये तदनन्तर राजा से नारदजी यह वचन बोले ॥ २१ ॥ कि हे नृपश्रेष्ठ ! आपकी कुशल है व हे सुव्रत ! आप सुखसे रहतेहो तब नारदके वचनको सुनकर सब धर्मों परायण ॥ २२ ॥ राजा रसीली वाणी द्वारा नारद से वचन बोले कि हे ब्रह्मन् ! आज आपके चरणकमल के दर्शन से मेरी कुशल है ॥ २३ ॥ मुझकरके आज आपका क्या कार्य करनाहोगा

सो हे ब्रह्मन् ! मेरे ऊपर आप कृपा करें तब नारदजी बोले कि अपने राजदर्शन से ब्रह्ममुनियों के शाप का अन्तकरो ॥ २४ ॥ पाप करनेवाले महादुष्ट दैत्यों का नाशकरो बन्धन में पड़ेहुये जीव छुटाने के योग्य होते हैं ब्राह्मण तो विशेषही करके होते हैं ॥ २५ ॥ तब राजा बोले कि जे अज्ञान से वेदको पढ़ते हैं उसके अर्थ को नहीं जानते हैं क्योंकि वेदही भूतलोक का प्रमाण है हे ब्रह्मन् ! वेदही करके विधिपूर्वक कर्म के करनेवाले वे स्वर्ग को जाते हैं व जे अहंकार करके मूढ़ हो रहे दान लेने के वास्ते मिथ्या याजक होते हैं ॥ २६ ॥ २७ ॥ व महादेव और विष्णुके चैर में तत्पर होते वे नरक में पड़ते हैं अब हम अगस्त्य और वशिष्ठ इन दोनों को

नारदउवाच ॥ कुरुब्रह्ममुनीनान्तं शापान्तराजदर्शनात् ॥ २४ ॥ निपातयमहादुष्टान्दैत्यान्दुष्टकृत्कारिणः ॥ बन्ध
नस्थहिमोक्तव्या ब्राह्मणास्तुविशेषतः ॥ २५ ॥ राजोवाच ॥ वेदं पठन्ति येऽज्ञानाद्विदन्त्यर्थन्नतस्य च ॥ प्रमाणं भूत
लोकस्य तद्वत्कर्म च कुर्वतः ॥ २६ ॥ ब्रह्मन् वेदेन विधिवत्ते तु स्वर्गं प्रयान्ति वै ॥ अहङ्कारविमूढाश्च मिथ्यादानेन याज
काः ॥ २७ ॥ पतन्ति नरके विष्णुशङ्करद्वेषणेरताः ॥ अगस्त्यञ्च वशिष्ठश्च कृत्वा तौ याजकौ मुने ॥ २८ ॥ कृत्वमिष्ट्वा
विधानेन रेवाचरुक् सङ्गमे ॥ मोचयिष्याम्यहं शापात्पञ्चलिङ्गार्चनाद् द्विज ॥ २९ ॥ वेदमन्त्रहुतं तत्र स्वयं विष्णुर्ग्रहीष्य
ति ॥ रुद्रः कालाग्निरूपेण ग्राहकश्च भविष्यति ॥ ३० ॥ एवं यज्ञे तु सम्पूर्णं तुष्टे नारायणे शिवे ॥ द्विजानां मोक्षं तत्र भ
विष्यति न संशयः ॥ ३१ ॥ नमुने देवतायत्र शङ्खचक्रगदाधरः ॥ इह लोके परैश्चैव गतिस्तस्य न विद्यते ॥ ३२ ॥ एवमु
क्त्वा ययौराजा सर्वसम्भारसम्भृतः ॥ यज्ञोपस्करमादाय ब्राह्मणैर्वेदपारगैः ॥ ३३ ॥ रेवाचरुक् सङ्गमे दे यज्ञमिष्ट्वा वि

याजक बनाकर हे मुने ! ॥ २८ ॥ नर्मदा और चरुके संगम में विधान से यज्ञ करके हे द्विज ! पाँचों लिङ्गों के पूजन से ब्राह्मणों को शापसे छुटा देंगे ॥ २९ ॥ वहाँ वेदों के मन्त्रों से होमेहुये को विष्णुजी आपही ग्रहण करेंगे और रुद्रभी कालाग्निरूपसे भाग के ग्राहक होंगे ॥ ३० ॥ वहाँ इमप्रकार यज्ञ के पूर्ण होने पर व नारायण और शिव के सन्तुष्ट होने पर ब्राह्मणों का मोक्ष होजावेगा इसमें कुछ संशय नहीं है ॥ ३१ ॥ हे मुने ! जहाँ शङ्ख, चक्र और गदा के धारण करनेवाले विष्णु देवता नहीं हैं उसकी इस लोक व परलोक में गति नहीं है ॥ ३२ ॥ इसप्रकार कहकर सब सामग्रीके सहित यज्ञका सामान लेकर वेदपाठी ब्राह्मणों करके युक्त राजा

जातेहुये ॥ ३३ ॥ व नर्मदा और चरु के संगम में विधि से यज्ञको करके वे राजा पाप को छोड़ाकर उन शापित ब्राह्मणोंको छुटा दिया ॥ ३४ ॥ पाँचों लिंगों के समा-
योग में इस तीर्थ के प्रभावसे ब्रह्मयानपर चढ़े हुये, अग्निसाँझों के गणों करकेहवा किये जारहे ॥ ३५ ॥ बन्दीजानोंसे स्तुति कियेजाते, छाता लगायेहुये हैं नृप ! उमा-
महेश्वर नाम दिव्य महादेवजी के पुरको जातेहुये ॥ ३६ ॥ हे राजन् ! यह पुराना उत्तम आख्यान आप से कहगया इस पञ्चलिंग के समागमरूप पुण्य आख्यान
को सुनकर ॥ ३७ ॥ यमलोक को नहीं देखता और पापयोनियों को नहीं जाता है किन्तु अश्वमेध यज्ञ के फल को पाकर शिवलोक में पूजित होताहै ॥ ३८ ॥ पापों

धानतः ॥ विहायपापंशंसांस्तान्मोचयामाससद्विजान् ॥ ३४ ॥ पञ्चलिङ्गसमायोगे तीर्थस्यास्यप्रभावतः ॥ ब्रह्मयान
समारूढो वीज्यमानोऽप्सरोगणैः ॥ ३५ ॥ ध्रियमाणातपत्रस्तु स्तूयमानश्चवन्दिभिः ॥ प्रायाच्चिवपुरान्दिव्यमुमामा
हेश्वरन्तप ॥ ३६ ॥ एतत्तेकथितंराजन्पुराणाख्यानमुत्तमम् ॥ श्रुत्वाख्यानमिदंपुण्यं पञ्चलिङ्गसमागमम् ॥ ३७ ॥
यमलोकन्नपश्येद्दे पापयोनित्तैर्गच्छति ॥ हयमेधफलंप्राप्यशिवलोकैर्महीयते ॥ ३८ ॥ पापग्रस्तोविमूढात्माविष्णु
मायाविमोहितः ॥ कथंप्रयातिततीर्थकालग्रहवशीकृतः ॥ ३९ ॥ श्रवणात्कीर्तनादस्य मुच्यतेभवबन्धनात् ॥ ४० ॥
इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डे पञ्चलिङ्गमाहात्म्येएकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥ * ॥ * ॥

मार्कण्डेयउवाच ॥ गुह्यातिगुह्यरूपाणि पवित्राणियुधिष्ठिर ॥ श्राद्धकार्यस्यसिद्धानि तीर्थानीहनिबोधमे ॥ १ ॥
अतिगुह्यस्यपुण्यस्य सर्वतोमरकण्टके ॥ तमारभ्यगिरिश्रेष्ठं सर्वपुण्यतरंस्मृतम् ॥ २ ॥ यावत्सानर्ममदामध्ये पु
से गंगाहुआ, मूढ़बुद्धिवाला, विष्णुकी मायासे मोहित, कालग्रह करके वश करलियागया पुरुष इस तीर्थ को कैसे जासक्ता है ॥ ३९ ॥ इसके सुनने व कहने से
संसारबन्धन से छूटजाताहै ॥ ४० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेपञ्चलिङ्गमाहात्म्येएकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

मार्कण्डेय जी बोले कि हे युधिष्ठिर ! गुप्त से गुप्तरूपवाले श्राद्धकर्म में अतिपवित्र सिद्धतीर्थों को आप हम से यहां जानो ॥ १ ॥ अमरकण्टकमें सर्वत्र अत्यन्त
गुप्त पुण्यका वास है पर्वतों में श्रेष्ठ उस अमरकण्टक को लेकर सब स्थान अतिपवित्र कहागया है ॥ २ ॥ जहां तक पवित्र सोतोवाली महानदी वे नर्मदा जी है

हे भारत ! उससे अधिक पवित्र तीनों लोकों के मध्य में कोई स्थान नहीं है ॥ ३ ॥ उस स्थानके उत्तरभाग में यज्ञपर्वत नाम का पर्वत है जो कि पर्यङ्कपर्वत का भाई व विन्ध्यपर्वत का छोटा लड़का है ॥ ४ ॥ वहां पूर्वकालमें ब्रह्माजी करके सौत्रामणि नाम का यज्ञ कियागया हे भारत ! और वहीं इन्द्र करके अश्वमेध यज्ञ से यजन कियागया ॥ ५ ॥ और दधीचि व अन्य देवताओं करके भी वहीं महायज्ञों से यजन कियागया है उसी यज्ञपर्वत से चतुर्नाम की महानदी निकली है ॥ ६ ॥ और नर्मदा में गिरी है वह सङ्गम लोकों में विदितहै उसके तीर में जो प्रल्लि कुश पृथ्वी में जमे हैं ॥ ७ ॥ हे भूप ! वे श्राद्धकरने में पितरों को मोक्ष देनेवाले हैं जहां

एयस्रोतामहानदी ॥ नास्तितस्मात्परंपुण्यं त्रिपुलोकैषुभारत ॥ ३ ॥ तस्योत्तरविभागेस्ति नामतोयज्ञपर्वतः ॥ कनिष्ठोविन्ध्यपुत्रस्तु भ्रातापर्यङ्कभूभृतः ॥ ४ ॥ स्वयंभुवापुरातस्मिन्निष्ठस्सौत्रामणिर्मखः ॥ तत्रैवैष्टम्भवता हयमेधेनभारत ॥ ५ ॥ दधीचिनाथदेवैश्च तत्रैवैष्टम्भमहामखैः ॥ निष्क्रान्तापर्वतात्तस्माच्चतुर्नाममहानदी ॥ ६ ॥ पतितानर्मदायान्तु सङ्गमोलोकविश्रुतः ॥ तस्यास्तीरेतुयेदर्माःपीतवर्णाःक्षितिङ्गताः ॥ ७ ॥ ते श्राद्धकरणेभूष पितृणां मोक्षदायकाः ॥ सयावत्सङ्गमोनद्याः सयावद्यज्ञपर्वतः ॥ ८ ॥ एतस्मिन्नन्तरे राजञ्छ्राद्धं यः परिकल्पयेत् ॥ पितरस्तस्य तृप्यन्ति स्नानं कुर्यात्प्रदक्षिणम् ॥ ९ ॥ सिद्धेश्वरनामलिङ्गं चतुष्के धरमेव च ॥ संख्यानभूयोलोकैषु ख्यातमानं भया नघ ॥ १० ॥ सङ्गमेविद्यते देवो न तं पश्यन्ति मानवाः ॥ पूज्येते नागकन्याभिस्सदेवासुरसत्तमैः ॥ ११ ॥ कथयामितवा ख्यानमितिहासम्पुरातनम् ॥ ऋषिस्सुपर्णो यत्रासीद्ब्रह्मयोनिर्जितेन्द्रियः ॥ १२ ॥ पुरुहतातस्य भार्या धर्मपत्नी प

तक वह नदी का संगम है और जहांतक वह यज्ञपर्वतहै ॥ ८ ॥ हे राजन् ! इतने बीच में जो श्राद्धकरता है और स्नान व प्रदक्षिणा करता है उसके पितर तृप्त हो जाते हैं ॥ ९ ॥ वहां सिद्धेश्वर और चतुष्केश्वर नाम लिंग हैं हे भूप ! लोकों में उनके पूजन के पुण्य की कुछ संख्या नहीं है हे अनघ ! आप से कथनमात्र किया है ॥ १० ॥ सङ्गम में भी महादेवजी विद्यमान हैं परन्तु मनुष्य उनको नहीं देखते वे नागकन्या व देवता और दैत्यों करकेही पूजन किये जाते हैं ॥ ११ ॥ इस पुराणे आख्यान व इतिहास को हम आपसे कहते हैं जहां ब्रह्माजी के पुत्र जितेन्द्रिय सुपर्ण नाम के ऋषि हुये ॥ १२ ॥ उनकी धर्मपत्नी पतिव्रता पुरुहता नाम की भार्या

होतीहुई नैमिषारण्य के रहनेवाले कन्द, मूल और फलोंके खानेवाले ॥ १३ ॥ मृगचर्म व भोजपत्र आदि के ओढ़नेवाले, त्रिकाल अग्नि में हवन करनेवाले और वेदों के पढ़ने में तत्पर ॥ १४ ॥ वेद, स्मृति और पुराणों में कहेहुये मोक्ष के उपायों के विचारनेवाले, नैमिषारण्यके रहनेवाले, दशलाख ऋषि ॥ १५ ॥ और वहीं ब्रह्माजी के मानसपुत्र बालखिल्य जो कि ब्रह्मदण्डपर आरूढ़होकर देवलोकको जाते हैं ॥ १६ ॥ वहां कोई महीने भरके व्रत करनेवाले व कोई जलाहार करनेवाले व बहुत से एक पांवसे खड़े रहते ॥ १७ ॥ ऐसे २ ऋषियोंसे युक्त, सिद्ध व गन्धर्वोंसे सेवित उस रमणीक तपोवनमें पुरुहूता अपने पतिको प्रसन्न करके वचन बोली ॥ १८ ॥

तिव्रतां ॥ नैमिषारण्यवासस्य कन्दमूलफलाशिनः ॥ १३ ॥ कृष्णाजिनपरीधानवलकलादिकवाससः ॥ त्रिकालव
ह्निहोतारोवेदाध्ययनतत्पराः ॥ १४ ॥ वेदस्मृतिपुराणोक्तमोक्षोपायविचिन्तकाः ॥ ऋषयोदशलक्षाणि नैमिषारण्य
वासिनः ॥ १५ ॥ बालखिल्याश्चतत्रैव ब्रह्मणोमानसास्सुताः ॥ ब्रह्मदण्डसमारुह्य देवलोकंप्रयान्ति ते ॥ १६ ॥ मा
सोपवासिनस्तत्र जलाहारास्तथापरे ॥ तिष्ठन्तिवहवःकेचिदेकपादेनचापरे ॥ १७ ॥ तस्मिंस्तपोवनरम्ये सिद्धगन्ध
र्वसेविते ॥ प्रसाद्यचाब्रवीद्वाक्यं पुरुहूतानिजंपतिम् ॥ १८ ॥ ऋतुकालेतुपर्वणि मामभजस्वमहामुने ॥ जायतेमेयथा
पुत्रस्सर्वसन्तानपावनः ॥ १९ ॥ पुत्रेणलोकाञ्जयते तुष्यन्तिपितृदेवताः ॥ अपुत्रस्यगतिर्नास्ति तस्मात्पुत्रमजीज
नः ॥ २० ॥ ब्राह्मणउवाच ॥ अमावास्याद्यगोत्रेस्मिन्मैथुनवर्जितंप्रिये ॥ अकर्तव्यमिदंभद्रे पितृणांविजितंध्रुवम् ॥
२१ ॥ पितरस्तस्यतन्मांसं भुञ्जतेऋतुगामिनः ॥ दिव्यवर्षसहस्रन्तु तप्तमेदुष्करन्तपः ॥ २२ ॥ स्नात्वातत्क्षणमा

कि हे महामुने ! इस ऋतुकालरूप पर्व में आप हमको ग्रहणकरो जिससे सम्पूर्ण वंश का पवित्र करनेवाला हमारे पुत्र उत्पन्नहोंव ॥ १९ ॥ पुत्रसे लोकों को जीतता है पितर और देवता भी तुस होते हैं अपुत्र की गति नहीं होती तिस से आप पुत्र उत्पन्न करो ॥ २० ॥ तब ब्राह्मण बोले कि हे प्रिये ! आज अमावास्या है इस योग में मैथुन मना है हे भद्रे ! यह काम करने के योग्य नहीं है पितरोंके वास्ते यह निश्चय करके वर्जित है ॥ २१ ॥ ऋतुकाल में भी जो अमावास्या को गमन करताहै उसके पितर उसका मांस भोजन करते हैं देखो देवताओंकी हजार वर्ष तक मुग्ध करके दुष्कर तप कियागया ॥ २२ ॥ और स्नान करके क्षणमात्रसे

मेरे देखते चाण्डाल स्वर्ग को चलागया इससे सब कहेहुये को वारंवार भिक्कार है वेद व पूजन कुछ भी ठीक नहीं है ॥ २३ ॥ तब उन मुनिपर हँसकर निषाद की स्त्री वचन बोली कि हे विप्रर्षे ! विषादको छोड़ो हम यह आपसे सत्य कहती हैं ॥ २४ ॥ अहङ्कारसे मूढ़बुद्धिवाला तुम्हारे बराबर दूसरा तापस नहीं है क्योंकि स्नान, जप, होम, स्वाध्याय और शिवका पूजन कुछभी न किया ॥ २५ ॥ निरासरे वायुमात्रका भक्षण करतेहुये निष्फल क्लेश को तुम प्राप्तहुये तुम्हारा तप व ध्यान व योगही निष्फल है तो स्वर्गकी प्राप्ति कैसे होसक्ती है ॥ २६ ॥ तब जाबालि बोले कि हे वराहो ! निषादीके रूपको धारणकिये तुम कौनहो पार्वती, सरस्वती व गङ्गाहो

त्रेण चाण्डालस्त्रिवद्भतः ॥ धिक्धिक्धिर्गारितंसर्वं नवेदोनचयाजनम् ॥ २३ ॥ प्रहस्यचाब्रवीद्वाक्यं निषादीतमु
निम्प्रति ॥ विषादंत्यजविप्रर्षे सत्यमेतद्ब्रवीम्यहम् ॥ २४ ॥ अहङ्कारविमूढात्मा त्वत्समोनास्तितापसः ॥ नस्नानन्न
जपोहोमो नस्वाध्यायः शिवाचर्चनम् ॥ २५ ॥ निष्फलं क्लेशमापन्नो वायुमज्जोनिराश्रयः ॥ त्वत्तपोध्यानयोगश्च स्वर्ग
प्राप्तिश्च तत्कथम् ॥ २६ ॥ जाबालिरुवाच ॥ कासित्वंच वराहो हे निषादीरूपमाश्रिता ॥ उमासरस्वतीगङ्गा मांजिज्ञासि
तुमागता ॥ २७ ॥ अनुग्रहमिमं मन्ये धर्मं ब्रूहि शुचिस्मिते ॥ निषादो नैमिषारण्ये ममासीन्मुनिपुङ्गव ॥ २८ ॥ का
मार्तयामयादर्शं भर्ता पुत्राययाचितः ॥ अकालेयाचमानाहं तेन शप्तामहात्मना ॥ २९ ॥ सच भर्ता मया शप्तस्ततो न्यो
न्यं समागते ॥ अस्य तीर्थस्य माहात्म्यादावां मुक्तौ त्विकित्विषात् ॥ ३० ॥ तस्मान्त्वं हि मुनि श्रेष्ठ शिवाराधनतत्परः ॥ त
दर्थं कुरु कर्माणि होमजाप्यादिकं मुहुः ॥ ३१ ॥ यास्य सेत्वं समे देशे सत्यमेतद्ब्रवीम्यहम् ॥ इत्युक्त्वा साययौ स्वर्गं

हमारी परीक्षा लेनेके वास्ते आई हो ॥ २७ ॥ सो हम इसको अनुग्रह समझते हैं इस से हे शुचिस्मिते ! तुम धर्म को कहो तब निषादी बोली कि हे मुनिपुङ्गव !
नैमिषारण्यमें मेरा पति निषाद होताहुआ ॥ २८ ॥ सो अमावास्या के दिन काम से पीड़ित मुझ करके पुत्र उत्पन्न करने के वास्ते पति प्रार्थना कियागया कुसमय
में प्रार्थना करती हुई मैं उस महात्मा करके शापित होगई ॥ २९ ॥ वह पति भी मुझ करके शाप देदिया गया तदनन्तर परस्पर इसप्रकार होनेपर हम दोनों इस
तीर्थ के माहात्म्य से पापसे छूटगये ॥ ३० ॥ तिससे हे मुनिश्रेष्ठ ! तुम शिवजी के आराधनमें तत्परहो और उन्हींके वास्ते कर्म, होम, जप आदि नारंवारकरो ॥ ३१ ॥

इससे तुम उत्तम स्थान को प्राप्त होवोगे यह हम सत्य कहती हैं यह कहकर वह अपने पति करके सहित स्वर्ग को जाती हुई ॥ ३२ ॥ जाबालि भी अपने तपको छोड़कर शिवजी के आराधन में तत्पर हुये और थोड़े ही काल करके ब्रह्मलोक को प्राप्त होते हुये ॥ ३३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डे प्राकृतभाषाऽनुवादे ब्राह्मणस्य भार्यया सह स्वर्गारोहणं द्वाविंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥

मार्कण्डेयजी बोले कि नीलगङ्गा के पश्चिम में और नर्मदा के उत्तर तट पर परमसिद्धिका देनेवाला व्यतीपातेश्वर नामका लिङ्ग है ॥ १ ॥ और जगत के पति

निजभर्वासमन्विता ॥ ३२ ॥ त्यक्त्वा स्वकल्पजाबालिः शिवाराधनतत्परः ॥ अचिरैव कालेन ब्रह्मलोकमुपागतः ॥ ३३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डे ब्राह्मणस्य भार्यया सह स्वर्गारोहणं द्वाविंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥ *

मार्कण्डेय उवाच ॥ पश्चिमे नीलगङ्गाया नर्मदोत्तरकूलतः ॥ व्यतीपातेश्वरन्नाम लिङ्गं परमसिद्धिदम् ॥ १ ॥ सोमनाथं स्वयं विद्धि सोममूर्तिं जगत्पतिम् ॥ सावित्री कुण्डमित्येतद्विरूपाक्षं तनर्मदातटे ॥ नरस्य स्नानमात्रस्य कन्यादानफलम् भवेत् ॥ ३ ॥ तिलोदकप्रदानेन चान्नदानेन भारत ॥ पितरस्तस्य तृप्यन्ति सावित्रीलोकमाश्रिताः ॥ ४ ॥ दक्षस्य दुहिता चासीत् कुमुदानामविश्रुता ॥ सोमाय दत्त्वा तान्दत्तौ मुदा परमया युतः ॥ ५ ॥ तस्यां सजनयामास हिमांशुः पुत्रमद्भुतम् ॥ ज्ञात्वा मृतमयं तन्तु सुरायज्ञफलार्थिनः ॥ ६ ॥ हिमांशुं सोमपुत्रञ्च तेयुश्च मुदान्विताः ॥ अन्या सोमस्य परमा कलायाषोडशी स्मृता ॥ ७ ॥ अध्यास्ते साचन्द्रमसं पितृ

सोमनाथ को साक्षात् सोममूर्ति ही जानो वहां सावित्री और सप्तर्षियों करके तप किया गया है ॥ २ ॥ नर्मदा के तट में सावित्रीकुण्ड नामसे विख्यात तीर्थ है उसमें स्नानमात्र किये मनुष्यको कन्यादान का फल होता है ॥ ३ ॥ तिलोदक देने से व अन्न के देने से हे भारत ! उसके पितर सावित्रीलोक में रहकर तृप्त होते हैं ॥ ४ ॥ कुमुदा नाम से विख्यात एक दक्षकी कन्या होती हुई दत्त उसको चन्द्रमा को देकर परम आनन्द से युक्त होते हुये ॥ ५ ॥ उस कन्या में वे चन्द्रमा अद्भुत पुत्र उत्पन्न करते हुये यज्ञफल के अर्थी देवता लोग उस पुत्रको अमृतरूप जानकर ॥ ६ ॥ वे देवता आनन्द से युक्त चन्द्रमा के पुत्र हिमांशु को प्राप्त हुये और जो सोलहवीं

चन्द्रमा की उत्तम कला कहीगई है ॥ ७ ॥ वह पितरों के तारने के वारते चन्द्रमा में रहती है वनस्पति व गौवों के दूध व घी में चन्द्रमा के गयेपर ॥ ८ ॥ अथवा देवताओं के महात् सोमयाग में व अमावास्या में सोमको प्राप्त होनेपर सब असुर लोग पीडाला गया चन्द्रमाको सुनकर आपभी पीनेको उद्यत होतेहुये ॥ ९ ॥ तब असुरों के भयसे चन्द्रमा विन्ध्याचल के आश्रित होताहुआ व वे असुरलोग अपने भयसे गिरिदुर्ग में चन्द्रमा को स्थित सुनकर ॥ १० ॥ तदनन्तर राहु करके सूर्य के असेहुये पर हे भारत ! काय और अतिकाय आदि दानव चन्द्रमाके प्रति प्राप्त होतेहुये ॥ ११ ॥ सिंहिका के पुत्र, राहुके भाई बड़े बलवाले सब दानवलोग चन्द्रमा

णातारणायच ॥ वनस्पतौगतेसोमे गवां चिरैरहविःषुच ॥ ८ ॥ सोमपानेमहायज्ञे दर्शेदिविषदांतदा ॥ पीतंश्रुत्वासुरा र्सर्वे हिमांशुं पातुमुद्यताः ॥ ९ ॥ असुराणां भयाद्विन्ध्यं हिमांशुर्गिरिमाश्रयत् ॥ श्रुत्वातेगिरिदुर्गस्थमसुरास्स्वभ यात्तदा ॥ १० ॥ ग्रस्तेतेराहुणासूर्ये हिमांशुं प्रतिभारत ॥ कायातिकायप्रमुखास्सम्प्राप्तादानवास्ततः ॥ ११ ॥ राहो स्तुभ्रातरः सर्वे सिंहकेयामहाबलाः ॥ समाहृत्य हिमांशुस्तैस्सुधार्थैश्चिरजीविभिः ॥ १२ ॥ भूतलेपातितः पापैः क्रन्द न्तिस्मसुरास्तदा ॥ उवाच सपतन्भूमौ हिमांशुस्सोमनन्दनः ॥ १३ ॥ पातुमान्देवईशानो दानवानाम्भयङ्करः ॥ एत स्मिन्नन्तरेभूप हिमांशोरक्षणायैव ॥ १४ ॥ पातालादुत्थितं लिङ्गं ज्वलत्कालानलप्रभम् ॥ तेन बाणेन रौद्रेण हुङ्कारेण महासुराः ॥ १५ ॥ भस्मीकृतास्तु तत्रैव देवदेवनश्च लिना ॥ ततस्तमब्रवीद्देवो भयमासुरजंतयज ॥ १६ ॥ शिवभक्तिप

को अमृतके वारते खींचकर फिर उन चिरजीवी ॥ १२ ॥ पापियों करके पृथिवी में गिरादिया गया तब देवता लोग बड़ा विलाप करते हुये पृथिवी में गिरता हुआ वह चन्द्रमा का पुत्र हिमांशु बोला ॥ १३ ॥ कि दानवों के भयका करनेवाला ईशान देव हमारी रक्षाकरै इसी अन्तरमें हिमांशु की रक्षा करने के वारते हे भूप ! ॥ १४ ॥ जलताहुआ कालाग्नि के समान प्रभावाला लिङ्ग पाताल से उठताहुआ तदनन्तर उन देवताओं के देवता महादेव करके भयानक बाण व हुङ्कार से महाअसुर वहीं भस्म करदिये गये तदनन्तर उस हिमांशु से महादेवजी ने कहा कि असुरों से उत्पन्न हुये भयको तुम छोड़दो ॥ १५ ॥ हे पुत्रक ! महादेव की भक्ति में तत्पर

होकर निर्भय खड़े रहो तदनन्तर देवताओं करके सहित चन्द्रमा ब्रह्मा के स्थानको जाकर ॥ १७ ॥ वृत्तान्त को कहता हुआ तब उसके कहने से चन्द्रमा सहित वे सब ब्रह्मा आदि देवता जाते हुये ॥ १८ ॥ जहाँ नर्मदा के तट में अंकारनाथ विद्यमान हैं हे भारत ! सृष्टि और संहार के करनेवाले त्र्यम्बक देवको देखकर ॥ १९ ॥ लोकों के पितामह ब्रह्मादेव वचन बोलते हुये कि चन्द्रमा का पुत्र यह अमृतरूप श्रीमान् हिमांशु है ॥ २० ॥ सो हे नाथ ! हे देव ! दैत्योंकी शङ्कासे आप करके रक्षा करने के योग्य है सच्चाईस नक्षत्रों की गति तो चन्द्रमा है ॥ २१ ॥ और सब लोकोंकी गति आपहो इस से तुम रक्षा करने को योग्यहो उनके इस वचन को सुनकर महादेव

रोभूत्वा निर्भयस्तिष्ठपुत्रक ॥ अथसोमःसुरैस्सार्द्धं गत्वाब्रह्मनिकेतनम् ॥ १७ ॥ वृत्तान्तं कथयामास ततस्तद्वचनात्पु
ताः ॥ ब्रह्माद्यादेवतास्सर्वा जग्मुस्सोमपुरोगमाः ॥ १८ ॥ अंकारः कल्पगातीरे यत्र निष्ठितिभारत ॥ दृष्ट्वा तु त्र्यम्बकन्दे
वं सृष्टिसंहारकारकम् ॥ १९ ॥ उवाच वचनन्देवो ब्रह्मलोकपितामहः ॥ श्रीमानमृतरूपोयं हिमांशुस्सोमनन्दनः ॥
२० ॥ रत्नणीयस्त्वयानाथ देवदानवशङ्कया ॥ सप्तविंशतियोगानां गतिः प्रोक्ता तु चन्द्रमाः ॥ २१ ॥ त्वङ्गतिस्सर्वलो
कानां तस्मात्स्वन्त्रा तुमर्हसि ॥ तेषां तद्वचनं श्रुत्वा शिव उच्येयथोचितम् ॥ २२ ॥ पूजयित्वा तु देवेशं सोमनाथं जगत्प
तिम् ॥ पातालेश्वरनामानं गतास्सर्वे त्रिविष्टपम् ॥ २३ ॥ तदा प्रभृति तत्स्थानं त्रिषु लोकेषु विष्टुतम् ॥ सावित्री कुण्ड
तोयेन स्नानं कृत्वा तमर्चयेत् ॥ २४ ॥ नतस्य पुनरावृत्तिस्सत्तमे तच्चिबोदितम् ॥ प्रभासेयत्फलं राजन् दृष्ट्वा च शशिभूष
णे ॥ २५ ॥ तत्फलं नृपशार्दूल भवेदेव न संशयः ॥ कालातिक्रमणं कुर्यात्तत्र यो भक्ष्यमाश्रितः ॥ २६ ॥ नतस्य पुनरावृ

जी यथोचित वचन बोले ॥ २२ ॥ तब देवताओं के ईश्वर जगत के पति सोमनाथ पातालेश्वर जिनका दूसरा नाम है उनका पूजन करके सब स्वर्ग को चले
गये ॥ २३ ॥ तबसे लेकर वह स्थान तीनों लोकोंमें विदित होता हुआ सावित्री कुण्ड के जलसे स्नान करके उन महादेवका पूजन करें ॥ २४ ॥ उसकी फिर आवृत्ति नहीं
होती यह महादेव करके सत्य कहा गया है हे राजन् ! जो फल प्रभास व शशिभूषणमें देखा गया है ॥ २५ ॥ हे नृपशार्दूल ! वही फल होता है कुछ संशय नहीं है व

वहां जो भिक्षाके आश्रित होकर अपना काल व्यतीत करता है ॥ २६ ॥ उसकी फिर आवृत्ति नहीं होती यह हम सत्य कहते हैं हे भारत ! तिलोदक के देने व पिण्ड देने से ॥ २७ ॥ पतित जीवों को नरकसे उद्धार करता है इसमें संशय नहीं है इसके सुनने व कहने से सोमलोक में पूजित होता है ॥ २८ ॥ इति श्रीस्कन्द-पुराणेरेवाखण्डेऽष्टावक्राष्टपादपातलिश्वरमाहात्म्यं नाम त्रयविंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥

मार्कण्डेयजी बोले कि हे भारत ! अब इन्द्रद्युम्न राजाका आख्यान तुम से कहते हैं कि अयोध्या के स्वामी श्रीमान् सूर्यवंश में इन्द्रद्युम्न नाम के राजा होते तिस्रसत्यमेतद्ब्रवीम्यहम् ॥ तिलोदकप्रदानेन पिण्डपातेन भारत ॥ २७ ॥ पतितानुद्धरेज्जन्तून्तरकान्नात्रसंशयः ॥ श्रवणात्कीर्तनादस्य सोमलोकैकमहीयते ॥ २८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे रेवाखण्डे पातलिश्वरमाहात्म्यं नाम त्रयविंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥

मार्कण्डेयउवाच ॥ कथयामितवाख्यानमिन्द्रद्युम्नस्य भारत ॥ अयोध्याधिपतिः श्रीमान् सूर्यवंशे महीपतिः ॥ १ ॥ बुभुजे समर्हो सर्वा सशशासमर्हो सर्वा यथाशक्रम रावतीम् ॥ यज्ञहोमसहस्रैस्तु ददाहवमुधामिमाम् ॥ ३ ॥ यज्ञोत्सवविवाहैस्तु वेदमङ्गलमङ्गलैः ॥ चातुर्वर्ण्यस्वधर्मस्थं प्राकृताइतरेजनाः ॥ ४ ॥ कामं कामदुघाधेनुर्धरणीसम्यशालिनी ॥ पप्रच्छसतुराजर्षिर्विशिष्टं ब्रह्मवित्तमम् ॥ ५ ॥ शक्रश्चाङ्गिरसं यदयोध्याधिपतिस्तथा ॥ सोमसूर्यान्वयस्यैकं तारणञ्च पुरोधसम् ॥ ६ ॥ हयमेधं महायज्ञं कस्मिंस्ती

हुये ॥ १ ॥ राजाओंमें श्रेष्ठ, सत्य प्रतिज्ञावाले, पुष्टहै व्रत जिनका ऐसे चक्रवर्ती वे राजा पर्वतों व जलों और जङ्गलों के सहित सम्पूर्ण पृथिवी का भोग करते हुये ॥ २ ॥ और वे सम्पूर्ण पृथिवी को शिक्षा देते हुये जैसे इन्द्र अमरावतीको देवे हजारों यज्ञों के होम से इस पृथिवी को जला दिया ॥ ३ ॥ यज्ञ, उत्सव, विवाह और भी वेदोक्त मङ्गलों करके युक्त वहाके चारोंवर्ण अपने धर्म में स्थिर रहते हुये और साधारण मनुष्य भी इसी प्रकार के होते हुये ॥ ४ ॥ अभीष्ट कालमें दुग्धकी देनेवाली गौ और अन्न से युक्त पृथिवी होती हुई वे राजर्षि अतिशय करके ब्रह्मके जाननेवाले वशिष्ठजी से पूछते हुये ॥ ५ ॥ चन्द्र और सूर्यवंश के एकही तारनेवाले पुरोहितसे

अयोध्या के राजा ने इस प्रकार पूछा जैसे इन्द्र बृहस्पति से पूछें ॥ ६ ॥ राजा ने कहा कि अश्वमेध महायज्ञ हम किस तीर्थ में करें सो आप ग्रासकृता से अपने देखे व सुने के अनुसार कहो ॥ ७ ॥ तब वशिष्ठजी बोले कि हे नृप ! वेद के जाननेवाले ब्रह्मर्षि जैसा आपसे कहें उसीप्रकार ऋत्विक् ब्राह्मणों करके सहित तुमको यज्ञ करना चाहिये ॥ ८ ॥ तब मरीचि, कश्यप, अङ्गिरा, गौतम, दुर्वासा, व्यासन, धूम्र व कण्व ॥ ९ ॥ हे नृपते ! ये व और भी उत्तम व्रतवाले मुनीन्द्रलोक जो वहाँ विद्यमान थे उनसे हे महाराज ! इन्द्रधुम्नराजा पूछतेहुये ॥ १० ॥ कि किस तीर्थ में कियाहुआ यज्ञ अभीष्ट फल भोग का देनेवाला होताहै हे मुनिश्रेष्ठो ! यह सब

र्थयजाम्यहम् ॥ कथयत्वंप्रसादेन यथादृष्टंयथाश्रुतम् ॥ ७ ॥ वशिष्ठउवाच ॥ ब्रह्मर्षयोवेदविदो यथातेचाब्रुवन्नुप ॥ यज्ञोनिवर्तितव्यस्तु ऋत्विग्भिर्ब्राह्मणैस्तव ॥ ८ ॥ मरीचिःकश्यपश्चापि अङ्गिरागौतमस्तथा ॥ दुर्वासाश्च्यवनोधूम्रः कण्वश्चैवमहामुनिः ॥ ९ ॥ एतेचान्येचनृपते सुनीन्द्राश्शंसितव्रताः ॥ पप्रच्छतान्महाराज इन्द्रधुम्नोमहीपतिः ॥ १० ॥ कस्मिंस्तीर्थेऽकुतोयज्ञः कामभोगफलप्रदः ॥ एतत्सर्वंयथार्थंमे वदन्तुमुनिपुङ्गवाः ॥ ११ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ केचिद्वाराणसोभूप प्रयागञ्चतथापरे ॥ १२ ॥ अन्येवैनैमिषंतीर्थं पुष्करञ्चतथापरे ॥ कुब्जाम्रकंतथाचान्ये गङ्गाद्वारम् चिद्वाराणसोभूप प्रयागपुरीन्तथाचान्ये सर्वदेवनमस्कृताम् ॥ वदन्त्यन्येहिमस्थानं बिल्वकं नीलपर्वतम् ॥ १४ ॥ कुशावर्ततथैवान्ये तथारुद्रमहालयम् ॥ ईशानं चैवकेदारं सर्वतीर्थमयंशुभम् ॥ १५ ॥ और्वतीर्थं वदन्त्यन्ये तथावदरिकाश्च मम् ॥ कालञ्जरनीलकण्ठं देवदारुवनन्तथा ॥ १६ ॥ हेमकूटं विरूपाक्षमन्ये च एडीश्वरन्तथा ॥ भूतेश्वरम्भस्मगा

यथार्थ आप लोग हम से कहें ॥ ११ ॥ तब ऋषि बोले कि हे भूप ! इस कामके योग्य कोई काशी जी को कहते हैं और कोई प्रयाग ॥ १२ ॥ कोई नैमिष, कोई पुष्करतीर्थ, कोई कुब्जाम्रक, कोई गङ्गाद्वार ॥ १३ ॥ कोई सब देवताओं से नमस्कार कीगई मायापुरी, कोई हिमालय, कोई बिल्वक, कोई नीलपर्वत को कहते हैं ॥ १४ ॥ व कोई कुशावर्त, कोई रुद्रमहालय, कोई ईशान, कोई और्वतीर्थ, कोई बदरिकाश्रम, कोई कालञ्जर,

कोई नीलकण्ठ, कोई देवदारुवन, कोई हेमकूट, कोई विरूपाक्ष, कोई चण्डीश्वर, कोई भूतेश्वर, कोई भस्मगात्र, कोई प्रभास और कोई शशिभूषण को कहते हैं ॥ १६ ॥ १७ ॥ इतने व और भी तीर्थ हे अनघ ! आप से कहेगये यह सुनियों का अनेक प्रकार का मत कहा गया ॥ १८ ॥ तब दुर्वासा हँसते हुये की नाई उन राजा से वचन बोले कि ब्राह्मणों का ज्ञानसे जेठापन है और क्षत्रियों का बलसे ॥ १९ ॥ वैश्यों का धन और शूद्रों का जन्मसेही होताहै इससे सातकल्प पर्यन्त रहनेवाले भूत और भविष्यके तत्त्वके जाननेवाले व तीनों कालों के जाननेवाले और तीनों वेदों के जाननेवाले ब्रह्मा, विष्णु और महादेवजी के प्रमाण के

त्रं प्रभासं शशिभूषणम् ॥ १७ ॥ तीर्थान्येतानि चान्यानि कथितानि तवानघ ॥ मतान्तरं मुनीनां च विविधं परिकीर्तितम् ॥ १८ ॥ दुर्वासाश्चाब्रवीद्वाक्यं प्रहसन्निवतं नृपम् ॥ विप्राणां ज्ञानतो ज्यैष्ठ्यं क्षत्रियाणाम्नुवीर्यतः ॥ १९ ॥ वैश्यानां धान्यधनतः शूद्राणां चैव जनमतः ॥ मार्कण्डेयैर्विद्यमाने सप्तकल्पानुवर्तिनि ॥ २० ॥ भविष्यभूततत्त्वज्ञे त्रिकालज्ञेत्रयी विदि ॥ ब्रह्मविष्णुमहेशानप्रमाणज्ञे तपोधने ॥ २१ ॥ कस्यास्ति धर्मकथने सामर्थ्यं धर्मनिश्चये ॥ यथावदसि देवर्षे तथा कार्यं गम्यतां कल्पगातटे ॥ २२ ॥ मार्कण्डेयो वक्ष्यते यत्तत्र यज्ञः प्रवर्त्यताम् ॥ इन्द्रद्युम्न उवाच ॥ यथावदसि देवर्षे तथा कार्यं मयानघ ॥ २३ ॥ इत्युक्त्वा मुनिभिस्सार्द्धं गन्तुं मार्कण्डेयमाश्रमम् ॥ उवाच वचनं राजा प्रतीहारं सुवर्चसम् ॥ २४ ॥ मन्त्रिणन्देवगर्भं च बृहस्पतिसमं नृप ॥ यज्ञोपस्करसम्भारं सर्वमादाय सत्वरम् ॥ २५ ॥ आगच्छन्तु भवन्तोत्र समादेशपराय

जाननेवाले, तपही जिनका धन ऐसे मार्कण्डेयजी के विद्यमान होनेपर ॥ २० ॥ २१ ॥ धर्म के कहने व धर्म के निश्चय में किसकी सामर्थ्य है इससे हे महाराज ! जाननेवाले तटमें विद्यमान धर्माश्रम को आप चलो ॥ २२ ॥ वहां मार्कण्डेयजी जिस स्थान को कहेंगे वहीं यज्ञ कियाजावे तब इन्द्रद्युम्न बोले कि हे देवर्षे ! जैसा आप कहते हो हे अनघ ! वैसाही हमको करना चाहिये ॥ २३ ॥ यह कहकर मुनियों करके सहित मार्कण्डेयके आश्रम को जानेके वास्ते सुवर्चा नाम के डेवदीबरीदार से राजा वचन बोले ॥ २४ ॥ और हे नृप ! बृहस्पति के समान देवगर्भ नाम के मन्त्री से भी कहा कि यज्ञका सब सामान लेकर हमारी आज्ञा में तत्पर होकर आप

लोग शीघ्रही यहां आवें हम अग्निहोत्री ब्राह्मणों करके सहित नर्मदातटको जायेंगे ॥ २५॥ २६ ॥ यह सब शीघ्रही सिद्ध किया जावे जिससे यज्ञ प्रवृत्त होजावे इन सब ब्राह्मणोंकी सवारी पृथक् २ तैयार कीजावें ॥ २७॥ और इन आठसौ रानियों की सवारियां तैयार कीजावें और नवोखण्डके राजाओं व समुद्रके द्वीपोंके वासी ॥ २८ ॥ नाना प्रकारके हजारों राजालोगों के वास्ते वारंवार बुलावा देदिया जावे और चन्द्रद्वीप, सेतु, ताम्रपात्र, शिलाष्टक ॥ २९ ॥ भोगद्वीप, सौम्य, गान्धर्व, वारुण और नवां कुमारिका नामक है ये नव भेदवाले नवोखण्ड कहेगये हैं ॥ ३० ॥ इसीप्रकार जम्बू, शाक, कुश, कौच, शाल्मलि, लक्ष और पुष्कर ये सात द्वीप कहे

णाः ॥ साग्निभिर्ब्राह्मणैस्साह्यं यास्यामः कल्पगातटम् ॥ २६ ॥ शीघ्रं सम्पाद्यतां सर्वं यथायज्ञः प्रवर्त्यताम् ॥ सर्वेषामेव विप्राणां यानमेपां पृथक् पृथक् ॥ २७ ॥ शतानि चाष्टौ राज्ञीनां यानमासां प्रकल्पय ॥ नवखण्डानि तीशानां समुद्रद्वीपवासिनाम् ॥ २८ ॥ नानानृपसहस्राणां घोषणां क्रियताम् मुहुः ॥ चन्द्रद्वीपञ्चमेतुञ्च ताम्रपात्रं शिलाष्टकम् ॥ २९ ॥ भोगद्वीपञ्चसौम्यञ्च गान्धर्वं वारुणं तथा ॥ कुमारिका ख्यं नवमं नवभेदं प्रवर्तितम् ॥ ३० ॥ जम्बूशककुशकौञ्चशाल्मलिपुच्छपुष्कराः ॥ सप्तद्वीपास्समाख्याताः समुद्रांश्च निबोधमे ॥ ३१ ॥ क्षारसर्पिर्दधिर्क्षीरमदिरैश्च जलात्मकाः ॥ समुद्राः परिखाकाराः पृथिवीमानकर्तृताः ॥ ३२ ॥ एतेषां घोषणाकार्या ममादेशानुवर्तिनाम् ॥ गवाञ्चत्रीणि लक्षाणि सवत्सानां पयोमुचाम् ॥ ३३ ॥ अश्वानां श्यामकर्णानां सपादं लज्जमेव च ॥ दन्तिनामयुतं चैव घण्टाभरणभूषितम् ॥ ३४ ॥ सहस्राणि च चत्वारि यानानां कामचारिणाम् ॥ लक्षन्तु करभार्णवैर्मणिमणिक्वयमेव च ॥ ३५ ॥ अग्निशौचा

गये हैं अब समुद्रों को मुक्त से जानो ॥ ३१ ॥ खारीजलका, घीका, दहीका, दूध का, दारुका, ऊखका और शुद्ध जलका ये सात समुद्र खांवां के आकार बनेहुये पृथिवी की नापके वास्ते रचेगये हैं ॥ ३२ ॥ इनके रहनेवाले हमारी आज्ञाके अनुकूल बर्तनेवाले राजाओं को प्रसिद्ध कियाजावे और बल्लड़ों करके सहित, दूध की देनेवाली तीनलाख गौवें ॥ ३३ ॥ श्यामकर्ण सवालाख घोड़े, घण्टा और आभूषणों से भूषित दशहजार हाथी ॥ ३४ ॥ अपने मनके अनुकूल चलनेवाली चार

हजार सवारियां, एकलाख ऊंट, मणि और माणिक ॥ ३५ ॥ ब्राह्मणों के वास्ते सौनहले कपड़े, अनेकप्रकारके भक्ष्य, भोज्य और पीनेवाले अनेकप्रकारके पदार्थ ॥ ३६ ॥ एकलाख सेवक और तिल व कुश आदि कहेहुये सब पदार्थों के लाने के वास्ते राजा जी देवगर्भ मन्त्रीको आज्ञा देकर ॥ ३७ ॥ वहां विद्यमान होरहे ब्राह्मणों ३६ ॥ एकलाख सवारिपर बैठेहुये परम आनन्द से युक्त रनिवास व सामान के सहित ॥ ३८ ॥ धर्मारण्य को प्राप्त होतेहुये जहां मार्कण्डेयजी रहते थे तदनन्तर करके सहित दिव्य सवारीपर बैठेहुये परम आनन्द से युक्त रनिवास व सामान के सहित ॥ ३९ ॥ आज हम सात जन्मों करके भी किये हुये पापसे छुटगये यह कहकर मार्कण्डेयजी को साष्टाङ्ग प्रणाम अंकारनाथ, नर्मदा और वैद्यूर्यपर्वत को देखकर ॥ ४० ॥

निवस्त्राणि ब्राह्मणार्थैतथैवच ॥ नानाभक्ष्याणिभोज्यानिपानानिविविधानिच ॥ ३६ ॥ लक्ष्मकर्मकराणान्तु तिलद
र्भादिकंतथा ॥ देवगर्भसमादिश्य मन्त्रिणंवदतांवरः ॥ ३७ ॥ तत्रस्थैर्ब्राह्मणैस्सार्द्धं दिव्ययानंसमाश्रितः ॥ सुदापरमया
युक्तः सान्तःपुरपरिच्छदः ॥ ३८ ॥ धर्मारण्यंततःप्राप्तोयत्रास्तेसप्तकल्पगः ॥ अङ्कारंकल्पगांढृद्वा वैद्यूर्यपर्वतत
था ॥ ३९ ॥ मुक्तोस्मिकिल्बिषादद्य सप्तजन्मकृतादपि ॥ एवमुक्त्वोपविष्टोसौ साष्टाङ्गंप्राणिपत्यच ॥ ४० ॥ यथार्थंपू
जयामास तमृषिसनृपोत्तमः ॥ दृष्ट्वातंतृपतिप्राहमार्कण्डेयोमहासुनिः ॥ ४१ ॥ कुशलंनृपशार्दूलचिरंदृष्टोसिसुव्रत ॥
किमागमनकार्यते ब्राह्मणमुनिगुह्वैः ॥ ४२ ॥ इन्द्रद्युम्नउवाच ॥ यज्ञकर्तुंसमायातःकस्मिंस्तीर्थेद्विजोत्तम ॥ शिवेन
कथितंयत्ते पुराणंस्कन्दकीर्तितम् ॥ ४३ ॥ तदहंश्रोतुमिच्छामि यज्ञक्षेत्रफलंमहत ॥ ४४ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ पृथिव्यां

करके यह राजा बैठते हुये ॥ ४० ॥ और राजाओंमें उत्तम वे इन्द्रद्युम्न राजा उन मार्कण्डेय ऋषि का यथार्थ पूजन करते हुये उन राजाको देखकर महामुनि मार्क-
ण्डेयजी बोले ॥ ४१ ॥ कि हे नृपशार्दूल ! आपकी कुशलहै हे सुव्रत ! बहुत कालके बाद आप देखपड़े इन ब्राह्मण मुनिश्रेष्ठों करके सहित आपके आगमन का क्या
प्रयोजनहै ॥ ४२ ॥ तब इन्द्रद्युम्न राजा बोले कि हे द्विजोत्तम ! हम यज्ञ करनेके वास्ते आयेहैं सो किसतीर्थमेंकरें और शिवजीकरके स्वामिकार्तिकेयका कहाहुआ जो पुराण
तुमसे कहा गयाहै ॥ ४३ ॥ उसको हम सुननेकी इच्छाकरतेहैं और यज्ञकेवास्ते उत्तम फलका देनेवाला क्षेत्रभी जानाचाहतेहैं ॥ ४४ ॥ तब मार्कण्डेयजीबोले कि समुद्र

पर्यन्त पृथिवी में जितने तीर्थ हैं ॥ ४५ ॥ हे नराधिप ! वे सब नर्मदा में स्नान करने के वास्ते आते हैं उत्तर में जितने लिङ्ग हैं वे दक्षिणमें जितने तीर्थ हैं ॥ ४६ ॥ और वे सब कोटितीर्थ में लीन होते हैं इसी से कोटितीर्थ कहा गया है यह वृत्तान्त पूर्वकाल में महादेव करके पार्वती व स्वामिकात्तिक से कहा गया ॥ ४७ ॥ और वे सन्निधि विष्णु और इन्द्र आदि देवताओं से भी कहा गया है राजन् ! वही मुझकरके कहा गया जैसा कुछ शम्भुजी करके कहा गया था ॥ ४८ ॥ अकारनाथ के ब्रह्मा, विष्णु और इन्द्र आदि देवताओं से भी कहा गया है इसमें किया हुआ दान, होम, यज्ञ और दुष्कर तप जो है ॥ ४९ ॥ उसका अन्त नहीं है यह महादेवजी का वचन है राहु समीप नर्मदा में कोटितीर्थ कहा गया है इसमें किया हुआ दान, होम, यज्ञ और दुष्कर तप जो है ॥ ४९ ॥ उसका अन्त नहीं है यह महादेवजी का वचन है राहु

यानितीर्थानि आसमुद्रान्तगोचरे ॥ ४५ ॥ स्नानं कर्तुं समायान्ति नर्मदायान्नराधिप ॥ उत्तरेयानिलिङ्गानि यानिती
र्थानिदक्षिणे ॥ ४६ ॥ लीयन्ते कोटितीर्थेषु कोटितीर्थततः स्मृतम् ॥ शिवेन कथितं पूर्वं पार्वत्याः षण्मुखस्य च ॥ ४७ ॥
ब्रह्मविष्णवादिदेवानां शक्रस्यापि प्रकीर्तितम् ॥ तन्मया कथितं राजन् यथोद्दिष्टं तु शम्भुना ॥ ४८ ॥ अङ्कारसन्निधौ
रेवा कोटितीर्थं प्रकीर्तितम् ॥ अत्र दत्तं हुतं चैष्टं तपस्तप्तं सुदुष्करम् ॥ ४९ ॥ तस्यान्तो नैव विद्येत महेश्वरवचो यथा ॥
राहुसोमसमायोगे कुरुक्षेत्रं प्रशस्यते ॥ ५० ॥ सर्वदा सर्वकार्येषु नर्मदा पुण्यदायिनी ॥ त्रयोदशगुणं विद्धि तीर्थमाहु
र्मनीषिणः ॥ ५१ ॥ शतकोटिगुणं तत्तु कोटितीर्थं प्रचक्षते ॥ ५२ ॥ चन्द्रसूर्योपरागे तु विशेषेण नराधिप ॥ यजत्वं कोटि
तीर्थेषु यदि स्वर्गमभीप्ससि ॥ ५३ ॥ तस्य तद्वचनं श्रुत्वा राजा परमधार्मिकः ॥ पादौ जग्राह तत्रैव मुनेरभितेजसः ॥ ५४ ॥
अनुग्रहमिमं मन्ये यत्त्वया कथितं मम ॥ एतस्मिन्नन्तरे प्राप्ते यज्ञयूपानुपस्करान् ॥ ५५ ॥ नानादेशान् नृत्त्रियांश्च
और चन्द्रमा के योग में कुरुक्षेत्र प्रशंसा किया जाता है ॥ ५० ॥ और नर्मदा सब कामों में सर्वदा पुण्यकी देनेवाली है पण्डितलोग तीर्थ को औरों से तेरहगुना
कहते हैं यह तुम जानो ॥ ५१ ॥ और कोटितीर्थको सौ करोड़गुना कहते हैं ॥ ५२ ॥ और हे नराधिप ! चन्द्र और सूर्यके ग्रहणमें उल्लेखभी विशेष है इससे तुम कोटितीर्थ
में यज्ञकरो जो स्वर्गको चाहते होवो ॥ ५३ ॥ परमधार्मिक राजा उनके इस वचनको सुनकर बड़े तेजवाले मुनिके चरणोंको वहीं ग्रहण करते हुये और कहा ॥ ५४ ॥ अनेक देशों
कि हम इसको बड़ा अनुग्रह मानते हैं जोकि आपकरके हमसे यज्ञस्थान कहु दिया गया इसी अन्तरके प्राप्त हुये पर यज्ञके स्वभा आदि सामग्री ॥ ५५ ॥

के क्षत्रिय, गौर्वे, घोड़े और हाथियों को लेकर उसी क्षण में देवगर्भ प्रतीहार अर्पण करता हुआ ॥ ५६ ॥ तीसयोजनपर्यन्त यज्ञकं स्तम्भ और मण्डप को बनवाया और अपने प्रमाण युक्त अनेक प्रकार के कुण्ड भी बनवाये ॥ ५७ ॥ वेदों की ध्वनियाँ आकाश और पृथिवी को भरदेती हुई और करोड़ों सूर्यों के समान प्रभावले अग्नि वेधुयें होजातेहुये ॥ ५८ ॥ राजाने ब्रह्मा व विष्णु और रुद्रको बुलवाया तदनन्तर वहाँ ग्यारह रुद्र, बारह आदित्य ॥ ५९ ॥ विश्वदेव तथा साध्य और मरुत व वसु, लोकपाल और आठों समुद्र वैसेही नदियाँ ॥ ६० ॥ वनस्पति, पर्वत अनेकप्रकार के तीर्थ, दिक्पाल, भूतपाल, सिद्ध, गन्धर्व, किन्नर ॥ ६१ ॥ मुक्ति

गाश्चाद्वांश्चगजांस्तथा ॥ तत्क्षणाद्देवगर्भश्च प्रतीहारस्समर्पयत् ॥ ५६ ॥ त्रिशोचोजनपर्यन्तं यज्ञगृपांश्चमण्ड
पम् ॥ चकारस्वप्रमाणानि कुण्डानिविविधानिच ॥ ५७ ॥ वेदध्वनितनिर्घोषा दिवंभूमिसमस्पृशन् ॥ निर्धूमश्चाभवद्ब्र
ह्मिः सूर्यकोटिसमप्रभः ॥ ५८ ॥ ब्रह्माणञ्चतथाविष्णुं रुद्रैश्चैवसमाह्वयत् ॥ रुद्राएकादशतत्र तथादित्याश्चद्वादश ॥
५९ ॥ विश्वदेवास्तथासाध्या मरुतश्चतथावसुः ॥ लोकपालास्तथाचाष्टौ समुद्रास्सरितस्तथा ॥ ६० ॥ वनस्पत्यस्त
थाशैलास्तीर्थानिविविधानिच ॥ दिक्पालाभूतपालाश्च सिद्धगन्धर्वकिन्नराः ॥ ६१ ॥ पितरस्सोमपास्सर्वे भुक्तिभुक्ति
फलप्रदाः ॥ राजसागुह्यकाभूता उरगाश्चयथातथा ॥ ६२ ॥ सद्मवातास्तथाकाशासिनश्चतथोत्सवे ॥ घृतक्षीरवहान
द्यो दधिपायसकर्दमाः ॥ ६३ ॥ बभूवन्वपतेस्तस्य तस्मिन्यज्ञेमहोत्सवे ॥ भक्ष्यभोज्यैश्चविविधैः काभ्ययानादिभि
स्तथा ॥ ६४ ॥ तृप्तादेवाश्चमुनयो भूतग्रामंचतुर्विधम् ॥ एवंनिवर्तितोयज्ञो ब्राह्मणैर्भूरिदक्षिणैः ॥ ६५ ॥ सुरासुरैस्तथा

और मुक्तिके देनेवाले सब सोमके पीनेवाले पितर, राजस, गुह्यक, भूत, सर्प ॥ ६२ ॥ और वायुमण्डल व आकाशमण्डलके रहनेवाले देवताये सब आतेहुये राजाके उस यज्ञोत्सवमें धी और दूधकी बहनेवाली दही और खीरके कीचडवाली नदियाँ बहतीहुई ॥ ६३ ॥ उसराजाके इसयज्ञमहोत्सवमें इसप्रकार का आश्चर्य होताहुआ अनेकप्रकार के भक्ष्य, भोज्य और मनकी सवारियों करके ॥ ६४ ॥ देवता मुनि और चारोंप्रकारका भूतग्राम तब होतेहुये बड़ी दक्षिणावाले ब्राह्मणोंकरके इसप्रकार

यज्ञ कराया गया ॥ ६५ ॥ उस समयमें देवता और दैत्यों करके दिव्य स्तोत्रों से राजा इन्द्रधुम्न खुति किंगे गये व राजा देवताओं के भाग पृथक् २ कल्पित करत हुये ॥ ६६ ॥ ब्रह्माकरके जैसा कुछ रुद्रका भाग रचागया है उसी प्रकार देतेहुये तब युधिष्ठिरजी बोले कि हे महामुने ! रुद्र, आदित्य, वसु और विश्वेदेव आदि देवताओं का प्रमाण, नाम और गोत्रों को कहो तब मार्कण्डेयजी बोले कि अग्नि, आङ्गिरस, सपि, मरुत, बृहस्पति ॥ ६७ ॥ ६८ ॥ ध्रुव, धूम्र, केतु, धर, धाता और हर सब काम फलोंके देनेवाले जे ग्यारह रुद्र कहेगने हैं वे ॥ ६९ ॥ व अर्यमा, वरुण, इन्द्र, पूषा, गमस्तिमान्, मित्र, जवन्त्य, जलकृत् ॥ ७० ॥ विवस्वान्, पर्जन्य,

दिव्यैरिन्द्रधुम्नःस्तुतस्तदा ॥ यज्ञभागांश्चदेवानां पृथक्पृथगकल्पयत् ॥ ६६ ॥ तथाभागोहिरुद्राणां यथासृष्टःस्वयम्भुवा ॥ युधिष्ठिरउवाच ॥ रुद्रादित्यवसूनाञ्च विश्वेदेवहविर्भुजाम् ॥ ६७ ॥ प्रमाणानामगोत्रांश्च कथयस्वमहामुने ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ अग्निश्चाङ्गिरसस्सपिर्मरुतश्चबृहस्पतिः ॥ ६८ ॥ ध्रुवोधूम्रश्चकेतुश्च धरोधाताहरस्तथा ॥ एकादशस्मृता रुद्रास्सर्वकामफलप्रदाः ॥ ६९ ॥ अर्यमावरुणश्चेन्द्रः पूषाचैव गमस्तिमान् ॥ मित्रश्चैव समारुयातो जवन्योजलकृत्तथा ॥ ७० ॥ विवस्वांश्चैव पर्जन्यो धातावैवा दशस्मृताः ॥ कश्यपस्याशसेजातास्तेजोनिधय उत्थिताः ॥ ७१ ॥ मासावरप्रयोगेण सञ्चरन्ति परेच्छया ॥ अहोरात्रमिमेषर्वे स्वर्लोकं च तन्ततः ॥ ७२ ॥ वसुनष्टौ महाराज कथयमानाञ्छृणुष्वैव ॥ ध्रुवो धरश्च सोमश्च सावित्रो ह्यनिलोनलः ॥ ७३ ॥ प्रत्यूषश्चैव कल्पश्च अष्टौ ते वसवः स्मृताः ॥ विश्वायाश्च तथा पुत्रा विश्वेदेवाः प्रकीर्तिताः ॥ ७४ ॥ क्रतुर्दक्षस्तथा सत्यः कालः कामोन्ननिस्तथा ॥ पुरुरवो मार्द्रवसौ

और धाता ये बारह आदित्य हैं कश्यप के आश्रम में उत्पन्न हुये हैं तेजका स्थान हैं और उदय होते हैं ॥ ७१ ॥ ये सब एक २ महीने में दिन रात ईश्वरेच्छा करके सब और आकाशमें घूमा करते हैं ॥ ७२ ॥ हे महाराज ! अब मुझकरके कहेजाते आठ वसुओं को सुनो ध्रुव, अध्वर, सोम, सावित्र, अनिल, अनल ॥ ७३ ॥ प्रत्यूष, और कल्प ये आठ वसु कहे गये हैं और विश्वाके पुत्र विश्वेदेव कहे गये हैं ॥ ७४ ॥ क्रतु, दक्ष, सत्य, काल, काम, मनि, पुरुरवा, मार्द्रवस और रोचमान ये दश

विश्वेदेव हैं ॥ ७५ ॥ व मुहूर्ता के पुत्र साध्यदेवताः कहेगये हैं और उंचास मरुत नाम के देवता कहेजाते हैं ॥ ७६ ॥ हे युधिष्ठिर ! इन सबके नाम आप से कहेगये हे अनघ ! यह सब मुझकरके आपसे कहा गया जो कुछ आपकरके मुझसे पूछा गया था ॥ ७७ ॥ तदनन्तर राजा, ध्रुव और ब्राह्मणों के पुत्र मुनियों को विसर्जनकरके फिर अंकारनाथ को जानकर पूजन करते हुये ॥ ७८ ॥ मणि और माणिक्य आदि रत्नों करके लिङ्ग को भूषित किया अनेक प्रकारके गन्ध, धूप, कपूर, अगर, चन्दन, ॥ ७९ ॥ ध्वजा, छत्र, चेंदोवा, व्यजन और दिव्य चामरों करके विधान से पूजन करके यह स्तोत्र पढ़ागया ॥ ८० ॥ कि बिन्दुसे संयुक्त अंकार का

रोचमानश्चतेदश ॥ ७५ ॥ मुहूर्तायास्तथापुत्रास्साध्यादेवाः प्रकीर्तिताः ॥ एकहीनास्तुपञ्चाशन्मरुतश्चैवकीर्तिताः ॥
७६ ॥ एषान्नामानिसर्वेषां खयातान्येवयुधिष्ठिर ॥ एतत्तेकथितं सर्वं यत्पृष्टोहंतयानघ ॥ ७७ ॥ ततोध्रुवं निष्कृज्याथ सु
नींश्च ब्रह्मनन्दनाम् ॥ अङ्कारञ्च ततो ज्ञात्वा राजा पूजां चकार ह ॥ ७८ ॥ मणिमाणिक्यरत्नैश्च लिङ्गस्याभरणं कृतम् ॥
गन्धधूपैश्च विविधैः कर्पूरागुरुचन्दनैः ॥ ७९ ॥ ध्वजच्छत्रवितानैश्च व्यजनैर्दिव्यचामरैः ॥ पूजयित्वा विधानेन स्तोत्रमे
तदुदाहृतम् ॥ ८० ॥ अङ्कारं बिन्दुसंयुक्तं नित्यन्ध्यायान्ति योगिनः ॥ कामदोमोक्षदश्चैव अङ्काराय नमो नमः ॥ ८१ ॥
ब्रह्मविष्ण्वन्द्रवरद सर्वदेवनमोस्तुते ॥ कद्रुदाय प्रचेतसे सहस्राब्दाय मीढुषे ॥ ८२ ॥ याते रुद्रा शिवा तनूरा घोरा पापका
शिनी ॥ सर्वाननशिरो ग्रीवसर्वभूतशिवाय च ॥ ८३ ॥ सर्वव्यापी च भगवांस्तस्मै सर्वगते नमः ॥ सर्वतः पाणिपादान्तः

योगी लोग नित्यही ध्यान करते हैं जो कि काम और मोक्षका देनेवाला है ऐसे अंकार के लिये वारंवार नमस्कार है ॥ ८१ ॥ हे ब्रह्मा, विष्णु और इन्द्र के वर देनेवाले, सब देवताओं का स्वरूप ! आपके लिये नमस्कार है व कद्रू के खण्डन करनेवाले, वरुणरूप, हजारनेत्रवाले और वीर्य के आसेचन करनेवाले अंकारके लिये नमस्कार है ॥ ८२ ॥ हे रुद्र ! पापोंका नाश करनेवाला जो आपका अघोर शरीर है तिसके नमस्कार है चारो तरफ हैं मुख, शिर और ग्रीवा जिनकी, सब प्राणियोंके कल्याण रूप आपके लिये नमस्कार है ॥ ८३ ॥ हे सर्वग ! आप सबमें व्याप्त व ऐश्वर्यवाले हो ऐसे आपके लिये नमस्कार है, चारों तरफ हैं हाथ पाव जिनके और सब तरफ है नेत्र,

बोले कि हे नृपश्रेष्ठ ! यह सब तुम्हारा काम सिद्ध होवे ॥ ९५ ॥ यह कहकर तदनन्तर महादेवजी वहीं अन्तर्धान होगये देवता, दैत्य और आदित्य व साध्यों करके सहित हे युधिष्ठिर ! अपनी सवारीपर सवार होकर कैलासस्थानको प्राप्त होतेहुये ॥ ९६ ॥ राजाभी चारोंप्रकार के भूतग्रामको सुनादिया कि हमारी यज्ञके प्रभाव से सब उपद्रवरहित होजावें ॥ ९७ ॥ और हमारे यज्ञके प्रभाव से सब तृप्ति को प्राप्तहोवें हे भारत ! तदनन्तर राजा इन्द्रद्युम्न ब्रह्माजी की स्तुति करतेहुये ॥ ९८ ॥ तब प्रसन्नहुये ब्रह्मा उन राजा से बोले कि हे विशाम्पते ! तुम वरको मागो तब राजा बोले कि हे देव ! जो मुझपर आप प्रसन्नहो और वर देनेकी इच्छा करतेहो ॥ ९९ ॥

कारउवाच ॥ सर्वमेतन्नृपश्रेष्ठ कामस्सम्पद्यतान्तव ॥ ९५ ॥ एवमुक्त्वा ततो देवस्तत्रैवान्तरधीयत ॥ सुरासुरैस्तथादित्यैस्साध्यैस्साद्धयुधिष्ठिर ॥ स्वकीयंयानमारुह्य कैलासनिलयंययौ ॥ ९६ ॥ राजापिश्रावयामास भूतग्रामंचतुर्विधम् ॥ ममयज्ञप्रभावेण सर्वेसन्तुनिरामयाः ॥ ९७ ॥ सर्वेतु तृप्तिमायान्तु ममयज्ञप्रभावतः ॥ इन्द्रद्युम्नस्तु ब्रह्माणततस्तुष्टावभारत ॥ ९८ ॥ तुष्टः प्रोवाचधातां वरं वृणु विशाम्पते ॥ राजोवाच ॥ तुष्टोसियदिमे देव वरन्दानुमिहेच्छसि ॥ ९९ ॥ नर्मदादन्निणेकूले लिङ्गमूर्तिधरोभव ॥ इमं वरमहं मन्ये यदि तुष्टोसि मे प्रभो ॥ १०० ॥ प्राणत्यागे कृते तव ब्रह्मलोकं प्रयातुवै ॥ एवंभवतुराजेन्द्र ब्रह्मा प्रोवाच सत्वरम् ॥ १ ॥ एवमुक्त्वा ययौ ब्रह्मा रुद्रलोकं सुरैस्सह ॥ विष्णुं चैव ततो राजा साष्टाङ्गं च युधिष्ठिर ॥ २ ॥ केशवं माधवं विष्णुं गोविन्दं मधुसूदनम् ॥ पद्मनाभं हृषीकेशं श्रीधरञ्च त्रिविक्रमम् ॥ ३ ॥ दामोदरं वासुदेवं हरिञ्च प्रणमाम्यहम् ॥ शङ्खचक्रगदाशार्ङ्गं विनमालां विभूषणम् ॥ ४ ॥ लोकनाथं जगन्नाथं श्री

तो नर्मदा के दक्षिण तटमें लिङ्गरूप मूर्ति के धारण करनेवाले होवो इसी वरको हम चाहते हैं हे प्रभो ! जो आप प्रसन्नहो ॥ १०० ॥ और उस स्थान में प्राणों के त्याग करनेपर ब्रह्मलोक को जावे तब ब्रह्माने शीघ्र कहा कि हे राजेन्द्र ! ऐसाही हो ॥ १ ॥ इसप्रकार कहकर देवताओं करके सहित ब्रह्माजी रुद्रलोक को जातेहुये तदनन्तर हे युधिष्ठिर ! राजा साष्टाङ्ग प्रणामकरके विष्णुजी की स्तुति करतेहुये ॥ २ ॥ राजा बोले कि केशव, माधव, विष्णु, गोविन्द, मधुसूदन, पद्मनाभ, हृषीकेश, श्रीधर, त्रिविक्रम ॥ ३ ॥ दामोदर, वासुदेव और हरि को हम प्रणाम करते हैं शङ्ख, चक्र, गदा, शार्ङ्ग और वनमाला है भूषण जिनका ॥ ४ ॥ लोकों के नाथ,

शिर और मुख जिनके ॥ ८४ ॥ और जो सब तरफ कानवाले हैं लोकमें सब को आवरणकरके विद्यमान हो रहे हैं ऐसे आपको नमस्कार है ॥ ८५ ॥ हे महेश्वर ! जिह्वा की चञ्चलता से आप मुझकरके कष्टिन किये गये सो क्षमाकरो हे भारत ! इन्द्रधुम्न राजाकरके महादेवजी का यह स्तोत्र किया गया ॥ ८६ ॥ तदनन्तर हे भारत ! लिङ्गके मध्यमें जलतेहुये कालाग्नि के समान प्रभावाला जो दूसरा लिङ्ग देखा गया वह इन राजा से बोला ॥ ८७ ॥ कि आपका कल्याणहो जो तुम्हारे मनमें बर्तताहो वह वर तुम मांगो ॥ ८८ ॥ तब इन्द्रधुम्न बोले कि हे देव ! जो आप मुझसे प्रसन्नहो और मुझको वर देनेकी इच्छा करतेहो ॥ ८९ ॥ तो देवद्रोणी में

सर्वतोक्षिशिरोमुखः ॥ ८४ ॥ सर्वतःश्रुतिमाल्लोकैः सर्वमावृत्यतिष्ठति ॥ ८५ ॥ जिह्वाचापल्यभावेन खेदितोसिम हेइश्वर ॥ कृतंस्तोत्रमिदन्देवस्येन्द्रधुम्नेनभारत ॥ ८६ ॥ लिङ्गमध्यपरलिङ्गं ज्वलत्कालानलप्रभम् ॥ यद्दृष्टंतदुवाचैनं राजानंप्रतिभारत ॥ ८७ ॥ वरं वृणीष्वभद्रन्ते यत्ते मनसि वर्तते ॥ ८८ ॥ इन्द्रधुम्न उवाच ॥ यदि तुष्टोसि मे देव वरं न दातुं ममैच्छसि ॥ ८९ ॥ अत्र त्वमुमया साहूँ देवद्रोण्यां समर्चितः ॥ आवासं कुसुदेवेश सर्वदा यज्ञपर्वते ॥ ९० ॥ अवशः स्ववशा वापि प्राणत्यागं करोति यः ॥ तीर्थेस्मिन्देवदेशे शिवलोकं प्रयातुमः ॥ ९१ ॥ सहस्रयाजी धर्मज्ञो दानयज्ञाधिपस्तथा ॥ अन्धाश्रवामनाश्चैव तीर्थगोनिगतानराः ॥ ९२ ॥ मरणादुभयोस्साम्यं भवेदत्र महेश्वर ॥ पर्वतं वेष्टयेद्यस्तु सूत्रेणैकेन पर्वणि ॥ ९३ ॥ पृथिवीं वेष्टिता तेन स शैलवनकानना ॥ सर्वतीर्थफलवाप्तिं दिशवलोकैः प्रयात्यसौ ॥ ९४ ॥ ॐ

पूजितहुये आप पार्वतीजी करके सहित हे देवेश ! इस यज्ञपर्वत में सर्वदा वासकरो ॥ ९० ॥ और इस तीर्थमें जो परवश व अपने वश होकर प्राणोंका त्याग करे हे देवदेवेश ! वह शिवलोकको प्राप्तहोवे ॥ ९१ ॥ जो हजार यज्ञका करनेवाला धर्मका जाननेवाला दान और यज्ञोंका अधिपही हो वह और अन्धा, बौना व तीर्थगोनिमें प्राप्त हो रहे मनुष्य ॥ ९२ ॥ यहां मरनेसे इन दोनोंकी हे महेश्वर ! बराबरी होजावे और पर्व में जो इस पर्वतको एक सूत्रसे लपेटे ॥ ९३ ॥ उस करके पर्वतों व जलों और जङ्गलोंके सहित सम्पूर्ण पृथिवी मानो लपेट डाली गई ऐसा फलहोवे, सबतीर्थोंके फल की प्राप्ति होवे और वह शिवलोक को जावे ॥ ९४ ॥ तब ॐकारनाथ

जगतके नाथ, लक्ष्मीके नाथ, अतिशय करके सर्वज्ञ, श्रीकान्त, श्रीधर, श्रीश और श्रीनिवास को हम नमस्कार करते हैं ॥ ५ ॥ हे अच्युत ! हे अनन्त ! हे यज्ञेश ! हे यज्ञाधिप ! आपके लिये नमस्कार है ऋक्, साम, अथर्वरूप और यज्ञ है रूप जिनका ऐसे आपके लिये नमस्कार है ॥ ६ ॥ नृसिंह, मत्स्य, वाराह और कूर्मरूपवाले आपके लिये नमस्कार है हे पवित्र सवारीपर सवार हो रहे गरुडध्वज ! आपके लिये नमस्कार है ॥ ७ ॥ हजार शिरवाले, कलाश्रों करके सहित और कलाश्रों से रहित, जानने के योग्य, जीवरूप करके शरीरों में वास करनेवाले, इन्द्रियों के ईश्वर, सबसे पूर्वकाल में होनेवाले, प्रभु परमात्मा देवको हम नमस्कार करते

नाथं सर्ववित्तमम् ॥ श्रीकान्तं श्रीधरं श्रीशं श्रीनिवासं नमाम्यहम् ॥ ५ ॥ अच्युतानन्तयज्ञेश यज्ञाधिप नमोस्तुते ॥
ऋक्सामाथर्वरूपाय यज्ञरूपाय ते नमः ॥ ६ ॥ नृसिंहमत्स्यवाराहकूर्मरूपाय ते नमः ॥ तीर्थयानसमारूढ गरुडध्वज
ते नमः ॥ ७ ॥ सहस्रशिरसन्देवं सकलनिष्कलम्परम् ॥ वेद्यं पुरुषमध्यक्षमाद्यं नारायणं प्रभुम् ॥ ८ ॥ प्रणतोस्मि मसदा
देवं दैत्यान्तकरणं हरिम् ॥ हिरण्यगर्भं भूगर्भं यज्ञगर्भं मृतोद्भवम् ॥ ९ ॥ श्रीगर्भज्ञानगर्भाय वासुदेवनमोस्तुते ॥ त्वया
सृष्टं जगत्सर्वं चराचरमिदं प्रभो ॥ १० ॥ स्रष्टापालयिता त्वैव हर्ता त्वञ्चयुगेयुगे ॥ विश्वतश्च ध्रुवश्च त्वो विज्ञेयो विश्वतो
मुखः ॥ ११ ॥ विश्वात्मा विश्वतो देवो वासुदेवो नमोस्तुते ॥ त्वमादित्यश्च वायुश्च त्वमग्निस्त्वञ्च चन्द्रमाः ॥ १२ ॥ त्वं
धाता देवदेवेश त्वमिन्द्रस्त्वं प्रजापतिः ॥ त्वत्प्रसादात्सुरश्रेष्ठ यज्ञसिद्धिर्भूमाभवत् ॥ १३ ॥ श्रुत्वास्तोत्रमिदं देवदश

हैं ॥ ८ ॥ दैत्यों के अन्त करनेवाले हरिदेवको हम सदा प्रणत हैं हिरण्य, पृथिवी और यज्ञ हैं गर्भ में जिनके ऐसे अमृत के उत्पत्ति स्थान विष्णुके हम नमस्कार करते
हैं ॥ ९ ॥ हे वासुदेवके पुत्र ! श्री और ज्ञान हैं गर्भ में जिनके ऐसे आपके लिये नमस्कार है हे प्रभो ! यह चरावर सब जगत आपही करके रचा गया है ॥ १० ॥ और युग
युग में आपही रचने व पालने व हरनेवाले हो चारोंतरफ नेत्र व मुखवाले अव्यक्तरूप आपही जानने के योग्य हो ॥ ११ ॥ विश्वके आत्मा, सब देवतारूप शरीरों में
वास करनेवाले देव आपके लिये नमस्कार है सूर्य, वायु, अग्नि और चन्द्रमा तुम्हीं हो ॥ १२ ॥ हे देवदेवेश ! ब्रह्मा, इन्द्र और प्रजापति तुम्हीं हो हे सुरश्रेष्ठ ! आपही

के प्रसाद से मेरे यज्ञकी सिद्धि हुई ॥ १३ ॥ शंख, चक्र और गदा के धरनेवाले देव इस स्तोत्र को सुनकर ॥ १४ ॥ सत्य वचन को बोले कि हे विशाम्पते ! आप वर को मांगो हम आपको देंगे इसमें कुछ सन्देह नहीं है यज्ञकी सिद्धि को तुम प्राप्त होवोगे ॥ १५ ॥ तब राजा बोले कि ॐकारनाथ के उत्तरभाग में वैदूर्यपर्वत की चोटी पर लोकों के पवित्र करनेवाले जनार्दन आप लिङ्गरूपी होजावो ॥ १६ ॥ इसी वरको हम मानते हैं जो आप देनेकी इच्छा करते हो व यहाँ विधानसे पूजन करके मनुष्य वैष्णवस्थान को प्राप्त होंगे किन्तु तिर्यग्योनि व यमलोक को नहीं प्राप्त होंगे व वहाँ प्राणोंके त्यागकिये पर मनुष्य तुम्हारे पदको जावे ॥ १७ ॥ १८ ॥

ह्वचक्रगदाधरः ॥ १४ ॥ उवाचवचनंसत्यं वरंष्टुणुविशाम्पते ॥ ददामितेनसन्देहो यज्ञसिद्धिसवाप्स्यसि ॥ १५ ॥ राजा
जोवाच ॥ अङ्कारसौम्यभागेतु लिङ्गरूपीजनार्दनः ॥ वैदूर्यशिखरस्याग्रे भवत्वंलोकपावनः ॥ १६ ॥ इमंवरमहंमन्ये
यदिदातुमिहेच्छसि ॥ यास्यन्तिवैष्णवंस्थानमिहाभ्यर्च्यविधानतः ॥ १७ ॥ तिर्यग्योनिन्नगच्छन्ति यमलोकंतथा
नराः ॥ प्राणत्यागेकृतेतत्र नरागच्छन्तितेपदम् ॥ १८ ॥ पितृणामन्नदानेन पितरैर्वैष्णवंपदम् ॥ प्रसादात्तेचगच्छ
न्तु सत्यंसत्यंवदाम्यहम् ॥ १९ ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वा राज्ञश्चामितेतेजसः ॥ उवाचवचनंविष्णुरिन्द्रद्युम्नंविशाम्प
ते ॥ २० ॥ अवतारंकरिष्यामि इहैव नृपसत्तम ॥ सर्वमेव नृपश्रेष्ठ मत्प्रसादाद्भविष्यति ॥ २१ ॥ एवमुक्त्वाययौदेवः श
ङ्खचक्रगदाधरः ॥ मुरासुरैःस्तूयमानस्त्रिदिवंप्रतिभारत ॥ २२ ॥ एषतेकथितोराजनिन्द्रद्युम्नमहाधरः ॥ तेनासौपर्व
तःपुरायस्सर्वलोकेषुविश्रुतः ॥ २३ ॥ सिद्धेश्वरश्चब्रह्माणं विद्धिनारायणंहरिम् ॥ श्रवणात्कीर्तनादस्य विष्णुलोकेमही

पितरों के वास्ते अन्नदान करके आपके प्रसाद से पितर वैष्णवपद को जावें यह हम सत्य २ कहते हैं ॥ १६ ॥ बड़े तेजवाले उस राजाके इस वचन को सुनकर हे विशाम्पते ! विष्णुजी इन्द्रद्युम्न से वचन बोले ॥ २० ॥ हे नृपसत्तम ! हम यहीं अवतार को करेंगे और हे नृपश्रेष्ठ ! हमारे प्रसादसे सब होगा ॥ २१ ॥ हे भारत ! यह कहकर शंख, चक्र और गदाके धरनेवाले विष्णुदेव देवता और दैत्यों करके स्तुति कियेजारहे स्वर्गको चलेगये ॥ २२ ॥ हे राजन् ! यह इन्द्रद्युम्न राजाका महायज्ञ आपसे कहागया इसीसे यह पवित्र पर्वत सब लोकों में विदित हुया ॥ २३ ॥ ब्रह्माको सिद्धेश्वर और हरिको नारायणेश्वर जानो इस इतिहासके सुनने व

कहने से मनुष्य त्रिण्डलोकमें पूजित होता है ॥ २४ ॥ तदनन्तर सत्यव्रतमें स्थित हो रहे राजा तीर्थों की स्तुति करते हुये पितरों के तारनेवाले तीर्थों के लिये बार २ नज-
स्कार है ॥ २५ ॥ तब तीर्थ बोले कि हे महाभाग ! जो तुम्हारे मन में वर्तता हो वह वर मांगो तीर्थों के वचन को सुनकर इन्द्रद्युम्न बोले ॥ २६ ॥ कि अङ्कारनाथ
के समीप वर्तमान हो रहे तीर्थ में आप लोगों करके हम पर अनुग्रह करके स्थित होना योग्य है तब तीर्थलोग राजा पर ऐसा ही हो यह कहकर नर्मदा की स्तुति करते
हुये ॥ २७ ॥ कि कल्प पर्यन्त रहनेवाली महादेवजी की परमकला नदियों में श्रेष्ठ पृथिवी में सब लोकों को अत्यन्त विदित हो रही जो आपहो तिनके नमस्कार हम

यते ॥ २४ ॥ ततस्तुष्टावतीर्थानि राजासत्यव्रतेस्थितः ॥ पितृणां तारणार्थाय तीर्थेभ्यश्च नमो नमः ॥ २५ ॥ तीर्थान्यू-
चुः ॥ वरं वृणु महाभाग यत्ते मनसि वर्तते ॥ तीर्थानां वचनं श्रुत्वा इन्द्रद्युम्न उवाच ॥ २६ ॥ अङ्कारसन्निधो तीर्थे स्यात्
व्यं मदनुग्रहात् ॥ एवमस्त्विति राजानमुक्त्वा चक्रुस्सरिस्तुतिम् ॥ २७ ॥ कल्पगां त्वानं मस्कुर्मो हरस्य परमांकलाम् ॥
अतीव सर्वलोकानां सुविख्यातां सरिद्वराम् ॥ २८ ॥ नास्मत्प्रभावतः पूता किन्तु पूता स्वभावतः ॥ यद्वत्सूर्यप्रभापुण्या
वह्नेश्चापि प्रमायथा ॥ २९ ॥ हिमांशोश्चैव राजेन्द्र तथैव यं महानदी ॥ इत्युक्त्वा तच्च राजानं तीर्थान्यन्तर्दधुस्तदा ॥ ३० ॥
ततस्तुष्टावगङ्गां च अर्धदत्त्वा नृपोत्तमः ॥ गङ्गाभागीरथीदेवी तथा भोगवती शुभा ॥ ३१ ॥ जाल्हवी मोक्षदाम्बिद्रा ता
रिणी पापनाशिनी ॥ स्वर्गमन्दाकिनी चैव देवदेवनमस्कृता ॥ ३२ ॥ गायत्रीवेदमाता त्वमुमाकात्यायनी तथा ॥ कि

करते हैं ॥ २८ ॥ आप हम लोगों के प्रभावसे नहीं पवित्र हो किन्तु अपने स्वभावही से पवित्र हो जैसे सूर्य की प्रभा पुण्य है और अग्नि की प्रभा जैसे पुण्य है ॥ २९ ॥ तद-
और हे राजेन्द्र ! जैसे चन्द्रमा की प्रभा पुण्य है इसी प्रकार यह महानदी पुण्य है उन राजा से इस प्रकार कहकर तीर्थ उसी समय अन्तर्द्धान हो गये ॥ ३० ॥ तद-
नन्तर राजाओं में उत्तम इन्द्रद्युम्न राजा अर्धदेकर गङ्गाजी की स्तुति करते हुये कि गङ्गा, भागीरथी, देवी, शुभ भोगवती ॥ ३१ ॥ जाल्हवी, मोक्षदा, भद्रा, तारिणी और
पापनाशिनी ये तुम्हारे नाम हैं स्वर्ग में मन्दाकिनी कही जाती हो और देवताओं के भी देवताओं करके नमस्कार की गई हो ॥ ३२ ॥ वेदों की माता गायत्री तुम्हीं हो

और पार्वती व काल्यायनी तुम्हींहो हे देवि ! तुमको और क्या कहाजावे जोकि आप महादेवजी करके गिरसे धारण कीगईहो ॥ ३३ ॥ महादेवको छोड़कर तुम्हारी स्तुति करने को किसकी सामर्थ्य है तब गङ्गाजी बोलीं कि हे सुव्रत, महाराज ! हम तुमसे प्रसन्न हैं तुम वर को मांगो ॥ ३४ ॥ गङ्गाके वचन को सुनकर राजा गंगासे बोले कि हे देवेशि ! जो आप सन्तुष्टहो और यहां वरदेनेकी इच्छा करतीहो ॥ ३५ ॥ तो आप करके यहीं वास कियाजावे यही वरदियाजावे ॥ ३६ ॥ तब गंगाजी बोलीं कि हे राजेन्द्र ! ऐसाहीहो हम अपने अंशकरके बहेंगी ॥ ३७ ॥ तदनन्तर गङ्गाजी नदियों में श्रेष्ठ नर्मदा की स्तुति करती हुई कि हे नमस्कार करने

मन्यदपितेदेवि हरेणशिरसाधृता ॥ ३३ ॥ कस्यास्तिशक्तिरस्तोत्रंत्वामृतेचन्द्रार्द्धशेखरात् ॥ गङ्गोवाच ॥ तुष्टास्मि तेमहाराज वरंयाचस्वसुव्रत ॥ ३४ ॥ गङ्गायावचनंश्रुत्वा राजातांप्रत्युवाचह ॥ राजोवाच ॥ यदितुष्टासिदेवेशि वरंदा तुमिहेच्छसि ॥ ३५ ॥ इहैवक्रियतांवासो वरएषप्रदीयताम् ॥ ३६ ॥ गङ्गोवाच ॥ एवंभवतुराजेन्द्र भागेनैववहास्यहम् ॥ ३७ ॥ ततस्तुष्टावगङ्गातु कल्पगांसरितांवराम् ॥ श्रेष्ठान्वंकल्पणेदेवि नमस्कार्येचिरायुषि ॥ ३८ ॥ त्वत्तोयस्यप्रभावेण पावित्र्यमभवच्चमे ॥ कल्पान्तेतुक्षयंयान्ति सरितस्सागरादयः ॥ ३९ ॥ तीर्थानिचैवसर्वाणि त्वमेवात्रैवतिष्ठसि ॥ पूज्यात्रिदशवन्द्याच सुभगेचिरगामिनी ॥ ४० ॥ गौरीसमाजटाश्रेवै हरभूर्तिर्भविष्यसि ॥ एवमुक्त्वाततो गङ्गा नमस्कृत्यचमेकलाम् ॥ ४१ ॥ दिव्ययानसमारूढा स्तूयमानाप्यसुरेगणैः ॥ दुहिताहंतवहोषा धर्म

के योग्य, दीर्घ आयुर्दायवाली, कल्पगे, देवि ! आप श्रेष्ठहो ॥ ३८ ॥ तुम्हारे जलके प्रभावसे हमारी पवित्रताहुई नदी और समुद्र आदि सब जलाशय कल्पान्त में नाशको प्राप्तहोजाते हैं ॥ ३९ ॥ और सब तीर्थ भी नष्ट होजाते हैं एक तुम्हीं यहां रहतीहो हे सुभगे ! बहुतकालतक रहनेवाली आप देवताओं करके पूज्य व नमस्कार करने के योग्यहो ॥ ४० ॥ पार्वती जी के समान महादेवजी की जटाओं में रहतीहुई महादेवजी की मूर्तिही होरही हो गङ्गाजी इस प्रकार कड़कर नर्मदा के नमस्कार करके ॥ ४१ ॥ दिव्य सवारी पर चढ़ी हुई अप्सराओं के गणों करके स्तुति कीजाती आपने स्थान को जाती हुई तब सरस्वती जी नर्मदा से बोली कि हम

धर्मसे पालन कीगई आपकी कन्या है ॥ ४२ ॥ हे महाभाग, सप्तकल्पवहे, धन्ये ! आपकी सेवामें तत्पर होरही हम आपके चरणकमलों को देखने की इच्छा करके आई हैं ॥ ४३ ॥ हे धरेश्वरि, वाहिनि, महाभाग, देवि ! क्या आप मुझको नहीं जानती हो कि चौबीस वर्षके बाद हथिनीके रूप में स्थित होकर कोटितीर्थ में स्नान करने के वारते हम आई हैं चन्द्रमा व सूर्य के ग्रहणमें हे कल्पगे, देवि ! आपही विष्णुजी करके आज्ञादियेगये सत्रा करोड़ तीर्थ मुझमें स्नान करने के वारते आते हैं सब तीर्थ विद्यमान हैं जिसमें ऐसे शुभ कुरुक्षेत्रमें आपके चतुर्थांश में कौरव और पाण्डवों की सेनायें युद्धके वारते उपस्थित होती हुई उस स्थान में जो दान

तःपरिपालिता ॥ ४२ ॥ सप्तकल्पवहे धन्ये त्वच्छ्रूषापरायणा ॥ आगताहंमहाभागे त्वत्पादाब्जदिदृक्ष्या ॥ ४३ ॥

स्नानं कर्तुं तथा देवि चतुर्विंशतिवत्सरैः ॥ किन्नवेत्ति स महाभागे मान्धरे श्वरि वाहिनि ॥ ४४ ॥ करिणी रूपमास्थाय

कोटितीर्थसमागता ॥ सपादकोटितीर्थानि चन्द्रसूर्यसमेग्रहे ॥ ४५ ॥ स्नानार्थं कल्पगे देवि आदिष्टा विष्णुना स्वयम् ॥

द्वापरस्य चतुर्थांशे कुरुपाण्डवसेनयोः ॥ ४६ ॥ युद्धार्थं समितो पुञ्जं सर्वतीर्थमये शुभे ॥ तत्र यद्दीयते दानं तत्प्यते यत

पस्तथा ॥ ४७ ॥ सर्वशतगुणं तद्धि त्वत्तोये कल्पगे पुनः ॥ तदेव कोटिगुणितं राहुग्रस्ते दिवाकरे ॥ ४८ ॥ एवमुक्त्वा

महाराज कल्पगाञ्च सरस्वती ॥ इन्द्रद्युम्नश्च राजानं स्वस्थानं चाभ्यगात्पुनः ॥ ४९ ॥ इन्द्रद्युम्नस्ततो राजा स्वयं तुष्टाव

भारत ॥ त्वत्तोयस्य प्रभावेण पितृदेवाश्च तर्पिताः ॥ ५० ॥ पवित्रञ्च त्वया देवि त्रैलोक्यं स चराचरम् ॥ त्वं माता सर्वभूता

नां नृणां संसारारिणी ॥ ५१ ॥ मेकलासिमहादेवि कल्पगान्मर्मदा तथा ॥ जलपूर्णैति विख्याता विन्ध्यपर्वतभूष

द्विया जाता है वैसेही जो तप किया जाता है ॥ ४४ । ४५ । ४६ । ४७ ॥ वह सब सौ गुना होता है और फिर वही हे कल्पगे ! आपके जलमें सूर्यग्रहण में किया गया तो करोड़ गुना होजाता है ॥ ४८ ॥ हे महाराज ! इस प्रकार सरस्वती जी नर्मदा व इन्द्रद्युम्नसे कहकर फिर अपने स्थान को चली गई ॥ ४९ ॥ तदनन्तर हे भारत ! इन्द्रद्युम्न राजा नर्मदाकी आपही स्तुति करते हुये कि तुम्हारे जलके प्रभाव करके पितर और देवता तुम करादियेगये ॥ ५० ॥ और हे देवि ! आप करके चराचर तीनों लोक पवित्र करादियेगये सब प्राणियों की आपही माता हो और मनुष्यों को संसारसे तारनेवाली हो ॥ ५१ ॥ और हे महादेवि ! मेकला, कल्पगा, नर्मदा और

जलपूर्णा इन नामों से आप विख्यातहो और विन्ध्यपर्वत की आप शोभाहो ॥५२॥ हजार वर्ष करके भी आपकी स्तुति करनेको हे शुभे ! कौन समर्थ होसक्ता है राजा ! के इस स्तोत्रको सुनकर नर्मदा देवी बोलीं ॥५३॥ कि हे पार्थिव ! यहां हजारों क्षत्रियों करके यज्ञ किया गया परन्तु हे महाराज ! आपके यज्ञके बराबर न हुआ है और न होगा ॥ ५४ ॥ हे राजन् ! आपको हम वर देती हैं जिससे आप सिद्धिको प्राप्त होवोगे हे युधिष्ठिर ! उन नर्मदाजी के उस वचनको सुनकर ॥ ५५ ॥ उसी समय ब्राह्मणों करके सहित शिवजी की भक्ति में नित्य तत्पर होरहे हैं सतेहुये राजा बोले कि हे शुभे, सप्तकल्पवहे ! ॥ ५६ ॥ हे देवि ! जो मुझपर आप प्रसन्नहो और वर देने

एम् ॥ ५२ ॥ अपि वर्षसहस्रेण कस्मत्तोतुं च नमश्शुभे ॥ श्रुत्वास्तोत्रमिदन्देवी नृपस्यास्य तदा ब्रवीत् ॥ ५३ ॥ क्षत्रि
याणां सहस्रैस्तु कृतो यज्ञोत्रपार्थिव ॥ सदृशस्ते महाराज नभूतो न भविष्यति ॥ ५४ ॥ वरन्ददामिते राजन् येन सिद्धिम्
वाप्स्यसि ॥ तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा कल्पगाया युधिष्ठिर ॥ ५५ ॥ प्रहसन्न ब्रवीद्राजा ब्राह्मणैस्सहितस्तदा ॥ शिवभक्तिपरो
नित्यं सप्तकल्पवहे शुभे ॥ ५६ ॥ यदि तुष्टासि मे देवि वरन्दानुत्वं मिच्छसि ॥ प्रवाहान्कुरु सप्तत्वं दक्षिणोत्तरकूलयोः ॥
५७ ॥ सर्वतस्सर्वगे देवि यदि मां बहुमन्यसे ॥ इमं वरमहं मन्ये यदि तुष्टासि मुत्र ते ॥ ५८ ॥ तस्य तद्वचनं श्रुत्वा इन्द्रद्यु
म्नस्य भारत ॥ नर्मदाचा ब्रवीद्वाक्यमिन्द्रद्युम्नराधिप ॥ ५९ ॥ सर्वमेतत्प्रभावेण मत्प्रसादाद्भविष्यति ॥ अत्रान्तरे
च यद्दानं दीयते नात्र संशयः ॥ ६० ॥ तस्य संख्यानविधेत सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ॥ न तेषां पुनरावृत्तिरित्याह भगवान् नृप ॥

६१ ॥ अन्त्यजाः श्वपचावापि मृगाश्चैव सरीसृपाः ॥ सर्वे ते त्रिदिवं यान्ति नीलगङ्गासमागमे ॥ ६२ ॥ यज्ञमिष्टानृप

की तुम इच्छा करतीहो तो दक्षिण और उत्तरके दोनों तटोंमें सात धारा करदेवो ॥ ५७ ॥ हे सर्वगे, देवि ! चारो तरफसे इस कामको करो जो हमको बहुत मानती हो हे सुव्रते ! जो आप प्रसन्नहो तो इसी वरको हम चाहते हैं ॥ ५८ ॥ हे भारत ! उन इन्द्रद्युम्नके इस वचन को सुनकर इन्द्रद्युम्नसे नर्मदाजी वचन बोलीं कि हे नराधिप ! ॥ ५९ ॥ हमारे प्रसाद व प्रभाव से यह सब होजायगा इसमें सन्देह नहीं है व इसके बीचमें जो कुछ दान दिया जायगा ॥ ६० ॥ उसकी कुछ संख्या न होगी यह हम आपसे सत्य कहती हैं और दान देनेवालों की फिर आवृत्ति न होगी हे नृप ! यह महादेवजी ने कहा है ॥ ६१ ॥ शूद्र, चाण्डाल, पशु और कीड़े जो कोई

श्रीकृष्ण के, समाश्रय में भरोगे वे सब स्वर्ग को जावेंगे ॥ ६२ ॥ हे विशाम्पते ! राजाओं में श्रेष्ठ इन्द्रद्युम्नराजा यज्ञको करके नर्मदा और अङ्कारके नमस्कार करके
दे भाग्य ॥ ६३ ॥ सत्यप्रभ में तत्पर होकर अपनी सचारीपर सवार होकर राजाओं के गणोंकरके स्तुति कियेजारहे ॥ ६४ ॥ देवताओंकी
पूजाके अतिशय आनन्द आनन्दपूर्ण प्रवेश करतेहुये हे राजन् ! यह पुराना इतिहास आपसे कहागया ॥ ६५ ॥ तदनन्तर बहुत काल पर्यन्त बड़े बलवाले वे राजा यहाँ राज्य
का करते, राजोंको मोदेंद्वये ॥ ६६ ॥ इसके सुनने व कहनेसे हजार गोदान का फल होताहै और सुनने व कहनेवाला यमलोक व पापयोनि को नहीं प्राप्त होताहै ॥ ६७ ॥

श्रेष्ठ इन्द्रद्युम्नोविशाम्पते ॥ नर्मदाञ्चनमस्कृत्य अङ्कारश्चैवभारत ॥ ६३ ॥ स्वकीयंयानमारुह्य सत्यधर्मपरायणः ॥
युतान्पुत्रपुत्रस्रण स्तूयमानोऽप्यसुरैः ॥ ६४ ॥ विवेशनगरीम्पुण्यामयोऽध्यान्देवनिर्मिताम् ॥ एतत्तेकथितंराजन्नि
निधामंपुराननम् ॥ ६५ ॥ ततःकालेनमहता राज्यंकृत्यामहाबलः ॥ अयुतंसाग्रमेवैह सराजात्रिदिवङ्गतः ॥ ६६ ॥ अ
वणात्कीर्तनादस्य गोमहस्रफलंलभेत् ॥ यमलोकंनृपश्येच्चपापयोनिंनृगच्छति ॥ ६७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणैरेवाख
येइन्द्रद्युम्नयज्ञनीलगङ्गावतारोनामचतुर्विंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥ * ॥ * ॥

युधिष्ठिरउवाच ॥ वैदूर्यपर्वतंरम्यं सुरसिद्धनिषेवितम् ॥ मान्धाताकेनकार्येण गतौवैसप्तकल्पगाम् ॥ १ ॥ तथापा
शुपतास्त्रेण हत्वावैत्रिपुरंहरः ॥ पातालंभेदयित्वातु रसातलतलययौ ॥ २ ॥ जालेश्वरंतथालिङ्गमुत्थितंकेनहेतुना ॥
नीलगङ्गाकथंतत्र कल्पगामेदमागता ॥ ३ ॥ बाणासुरादिशवेभक्तः शिवलब्धवरश्शुचिः ॥ लिङ्गानितानितेनेह पूजिता ॥

इति श्रीमहाभारतपराशरहोमोक्तमायानुवादेइन्द्रद्युम्नयज्ञनीलगङ्गावतारोनामचतुर्विंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥

वैत्रिपुरंभी बोले कि देवता और दैत्या करके सेवित रमणीक वैदूर्यपर्वत व नर्मदाको राजा मान्धाता किस प्रयोजन से जातेहुये ॥ १ ॥ इसीप्रकार पाशुपत
पराशरहोमोक्तमायानुवादेइन्द्रद्युम्नयज्ञनीलगङ्गावतारोनामचतुर्विंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥ और जालेश्वरलिङ्ग किसप्रयोजनसे उत्थितहुआ और नीलगङ्गा

नर्मदाके सङ्गमको कैसे प्राप्तहुई ॥ ३ ॥ महादेव से पायाहै वर जिसने ऐसा महादेव जीका पवित्र भक्त बाणासुर हुआ हे महामुने ! उस करके पूजेहुये ॥ ४ ॥ संख्या करके नवकरोड़ लिङ्ग नर्मदामें क्यो डालदियेगये हे महामुने ! यह सब संक्षेपसे आप कहें ॥ ५ ॥ पार्वती, स्वामिकार्त्तिक, ब्रह्मा और विष्णु आदि देवताओंसे पूर्वकल्पमें कहेहुये स्कन्दपुराण में जैसा आपकरके सुनागयाहो ॥ ६ ॥ वैसाही हे तात ! आप करके कहाजावे जैसा महादेवजी करके कहागया है तब मार्कण्डेयजी बोले कि हे राजन्, महाबाहो ! मुझकरके कहेजारहे वृत्तान्तको सुनो और समझो ॥ ७ ॥ पूर्वकल्प के स्वारोचिषमन्वन्तर में सत्ययुग के प्राप्तहुये पर उत्तम कैलासपर्वतमें

निमहामुने ॥ ४ ॥ संखययानवकोट्यस्तु तानिचिप्तानितत्रवै ॥ एतत्सर्वसमासेन कथयस्वमहामुने ॥ ५ ॥ यथाश्रुतं पु
राकल्पे पुराणेस्कन्दकीर्त्ति ॥ ब्रह्मविष्णवादिदेवानां पार्वत्याः षण्मुखस्य च ॥ ६ ॥ तथातु कथय तान्तात यथोद्दिष्टं
शिवेन तु ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ शृणुराजन् महाबाहो कथयमानं निबोध मे ॥ ७ ॥ स्वारोचिषेन्तरे प्राप्ते आदिकल्पे कृते
युगे ॥ देवानां सङ्गमं यत्र कैलासे पर्वतोत्तमे ॥ ८ ॥ कार्तिक्याञ्च सुरास्सर्वे हरं द्रष्टुमुपागताः ॥ तत्र देवगणान्सर्वान् स्क
न्दो वचनमब्रवीत् ॥ ९ ॥ मया श्रुतं च दृष्टं च शिवेन कथितम्पुरा ॥ अष्टलक्षाणि साधूनि ग्रन्थेस्मिन्कीर्त्तितानि च ॥ १० ॥
शिवलोके शिवेनैव निबद्धानि यथा यथा ॥ तदद्भैषणवे लोके तदद्भैषणपुरे ॥ ११ ॥ सपादलजं सूर्यस्य लोकैकैव व्य
वस्थितम् ॥ १२ ॥ चतुर्भिरधिकाशीतिसहस्राणितथाक्रमम् ॥ ख्यातानि मर्त्यलोके च नात्र कार्या विचारणा ॥ १३ ॥ सू
तस्संग्रहकर्ता च संहितास्तत्र एव च ॥ कल्पस्कन्दो महास्कन्दः पुराणं सप्तधा विदुः ॥ १४ ॥ सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो म

देवताओंका सङ्गम होताहुआ ॥ ८ ॥ कार्तिकी को महादेवजी के दर्शन करने को सब देवता प्राप्त होतेहुये वहां सब देवताओं से स्कन्दजी वचन बोलतेहुये ॥ ९ ॥ कि
पूर्वकालमें महादेवजी करके यह पुराण कहागया और मुझकरके देखा व सुना गया इस ग्रन्थमें साढ़े आठलाख श्लोक कहेगये हैं ॥ १० ॥ शिवजीके लोकमें शिवहो
करके जैमे २ बांधेगये सम्पूर्ण ग्रन्थ तो वहींरहा उसका आधा विष्णुलोक में और उसका आधा ब्रह्मलोक में रहा ॥ ११ ॥ और सवालाख ग्रन्थ सूर्यलोक में स्थित
रहा ॥ १२ ॥ और चौरासी हजार श्लोक क्रमसे मनुष्यलोकमें विदितहुये इसमें कुछ विचार नहीं करना चाहिये ॥ १३ ॥ इसके संग्रह के करनेवाले सूत हुये तिसमें कल्पस्कन्द

और महास्कन्द आदि सात संहितायें हुई इसतरह सातप्रकारका यह पुराण होगया ॥ १४ ॥ सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर और वंशाऽनुचरित इन पांचों लक्षणोंवाला पुराण होता है ॥ १५ ॥ पुराण रचनाका यह कारण है कि कलियुगमें वेदसे वैदिक पदार्थोंके जानने में मनुष्यश्रुत हूँगे और थोड़ेकाल तक जीने वाले हूँगे, दुष्ट आचार करनेवाले तथा बुद्धिसे हीन होंगे ॥ १६ ॥ और वेदपाठ, वषट्कार, तप और यज्ञ कुछ भी न होगा स्त्रियों की कामना करनेवाले, लोभी, कामनाके वारसे कर्मों के करनेवाले, भीख मांगनेवाले ब्राह्मण होंगे ॥ १७ ॥ दानके लेने में तत्पर और नित्य कुटुम्ब का पोषण करना यही उनका प्रयोजन होगा

नवन्तराणि च ॥ वंशानुचरितंचेति पुराणपञ्चलक्षणम् ॥ १५ ॥ अशक्तमानुषालोके अल्पजीवेनजीविकाः ॥ बुद्धिहीनादुराचारा भविष्यन्तिकलयुगे ॥ १६ ॥ नस्वाध्यायोवषट्कारो नतपोनचयाजनम् ॥ स्त्रीकामालोलुपविप्राः काम्यकृत्यास्तुयाचकाः ॥ १७ ॥ प्रतिग्रहपरानित्यं कुटुम्बभरणार्थिनः ॥ आत्मानं नैवबुध्यन्ते स्त्रीणांस्नेहवशंगताः ॥ १८ ॥ कुकर्माणिकरिष्यन्ति धर्मिष्ठास्तापसास्तथा ॥ कलयुगेतथाप्राप्ते कालेकौलादिगम्बराः ॥ १९ ॥ एकवर्णाः प्रजास्मर्त्वा राजाम्लेच्छोभविष्यति ॥ हीनेयुगेतथाप्राप्ते बौद्धस्थैर्चैवकेशवे ॥ २० ॥ अल्पायुषश्चैवमर्त्या अल्पवीर्यपराक्रमाः ॥ नानादेशोपद्रवाश्च भविष्यन्तिमहामुने ॥ २१ ॥ वेदान्वैप्राप्यर्षियिष्यन्ति द्विजाश्चाण्डालवंशिनः ॥ वेदादेशंकरिष्यन्ति वेदविक्रयणंतथा ॥ २२ ॥ राजद्वारेगमिष्यन्ति धनप्राप्तिसमीहया ॥ विक्रयंचाग्निहोत्राणां कन्यानांविक्रयंत

आत्मा को नहीं जानेंगे किन्तु स्त्रियों के स्नेहके वशमें रहेंगे ॥ १८ ॥ धर्मिष्ठ और तापस ब्राह्मण कुकर्मों को करेंगे, कलिकाल के प्राप्त हुयेपर सब वाममार्गी और नग्न होजावेंगे ॥ १९ ॥ सब प्रजायें एक वर्ण होजावेंगी और म्लेच्छ राजा होगा कलियुग के प्राप्तहोनेपर और बौद्धावतार में विष्णुजी के स्थित होनेपर ॥ २० ॥ थोड़ी आयुर्दीयवाले और थोड़े बल पराक्रमवाले मनुष्य होवेंगे और हे महामुने ! सब देशों में अनेक उपद्रव हुआ करेंगे ॥ २१ ॥ और चाण्डालों के वंश में उत्पन्न हुये ब्राह्मणलोग वेदों को पढ़ेंगे वेदों का प्रारम्भमात्र करलेवेंगे और वेदोंको बेचेंगे ॥ २२ ॥ धनप्राप्तिकी आशाकरके ब्राह्मणलोग राजद्वार में जावेंगे अग्निहोत्र का

विक्रय और कन्याओं का विक्रय ॥ २३ ॥ करेंगे और वेदपाठी सब ब्राह्मण वंशों से रहित होंगे बारहवर्ष के पूर्ण होनेपर मनुष्य जवान और बुढ़े भी होजावेंगे ॥ २४ ॥ दश व बारह वर्षवाली स्त्री गर्भवती होगी स्त्री अपने पतिको नहीं मानेगी और पुत्र माता व पिताको नहीं मानेगा ॥ २५ ॥ बहू सासुको नहीं मानेगी और कन्या माता को नहीं मानेगी यह संक्षेपसे कहागया अब जिसका प्रारम्भहै उसको सुनो ॥ २६ ॥ हे महाराज ! यज्ञकरने के वास्ते और पितरों के तारने के वास्ते मान्धाता राजा वैदूर्यपर्वत को प्राप्त होतेहुये ॥ २७ ॥ देवताओं के हितके वास्ते महोदेवजी त्रिपुरको मारतेहुये वह त्रिपुर जलतेहुये पाशुपत अस्त्रकरके पूर्वकालमें भस्महोजाता

था ॥ २३ ॥ करिष्यन्तिद्विजास्मर्वे श्रोत्रियाव्रतवर्जिताः ॥ पूर्णेतुद्वादशेवर्षे नराः पलितयौवनाः ॥ २४ ॥ दशद्वादशवर्षा तु नारीगर्भधराभवेत् ॥ नारीनपुरुषमन्येन्नमातापितरौसुतः ॥ २५ ॥ नस्तुषामन्यतेद्वंशं दुहितामातरन्तथा ॥ एत दुद्देशतः प्रोक्तं प्रकृतं शृणुभारत ॥ २६ ॥ यज्ञकर्तुं महाराजमान्धातानृपसत्तमः ॥ वैदूर्यपर्वतप्राप्तो पितृणां तारणाय च ॥ २७ ॥ देवतानां हितार्थं वै जघान त्रिपुरं हरः ॥ ज्वलत्पाशुपतास्त्रेण तद्दग्धमभवत्पुरा ॥ २८ ॥ पातालान्तिनचानीतं लिङ्गं जालेश्वरन्तथा ॥ कामदंमोजदञ्चैव सदादेवनमस्कृतम् ॥ २९ ॥ लोकानां तारणार्थं नीलगङ्गासमागता ॥ मेघराजसमुद्भूता सर्वपापहरापरा ॥ ३० ॥ तस्यां श्राद्धं प्रकुर्वीत पितृणामक्षयेच्छया ॥ बाणसुरस्यलिङ्गानि कोटितीर्थं शिवालये ॥ ३१ ॥ पतिता निजलेचैव नर्मदायानराधिप ॥ पूजितानिपवित्राणि भुक्तिभुक्तिप्रदानितु ॥ ३२ ॥ बाण लिङ्गानिराजेन्द्र ख्यातानिभुवनत्रये ॥ नप्रतिष्ठानसंस्कारस्तेषामावाहनादिच ॥ ३३ ॥ एवमेवप्रपूज्यानि शिवरूपाणि

हुआ ॥ २८ ॥ देवताओं करके सदा नमस्कार कियागया काम और मोक्षका देनेवाला जालेश्वरलिङ्ग उस पाशुपत अस्त्रकरके पातालसे लायागया ॥ २९ ॥ और लोकों के तारने के वास्ते सब पापोंको हरनेवाली मेघराजसे उत्पन्नहुई नीलगंगा आती हुई ॥ ३० ॥ पितरों के अन्न व फलकी इच्छा करके उस नीलगंगा में श्राद्धको करे बाणसुरके पूजेहुये लिङ्ग कोटितीर्थ, शिवालये और नर्मदा के जलमें हे नराधिप ! गिरतेहुये वे लिङ्ग पूजन करनेमें पवित्रहैं और भुक्ति व सुक्ति देनेवाले हैं ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ हे राजेन्द्र ! बाणलिङ्ग तीनों भुवनों में विख्यातहैं उनकी प्रतिष्ठा, संस्कार और आवाहन आदि नहीं होताहै ॥ ३३ ॥ वैसेही पूजन करनेके योग्यहैं हे भारत !

पहले सत्ययुग में ॥ ४४ ॥ उ०कारनाथके अवतार करके वह पर्वत सम्पूर्ण पद्माका होताहुआ त्रेतामें मणियोंका और द्वापरमें सुवर्ण का होताहुआ ॥ ४५ ॥ कलियुगमें पापों के हरनेवाले जैसे, महादेव वैसाही पर्वतभी हुआ यह पुराना वृत्तान्त जैसा देखा गया वैसाही सब आप से कहा गया ॥ ४६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवा खण्डेप्राकृतभाषाऽनुवादवैदूर्यपर्वतवर्णनं नाम पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥

मार्कण्डेयजी बोले कि पूर्वकाल में अयोध्या के अधिपति, इन्द्रके तुल्य पराक्रमवाले, चक्रवर्ती, श्रीमान्, वसुदान नाम के राजर्षि होतेहुये ॥ १ ॥ वे समस्त पृथिवी

सरित् ॥ वैवस्वतान्तरे प्राप्तेराजन्नादिकृतेयुगे ॥ ४४ ॥ अङ्गारस्यावतारेण सर्वदूर्यमयोगिरिः ॥ त्रेतायुगेमणिमयो द्वापरेहैमरूपकः ॥ ४५ ॥ कलौपापहरःप्रोक्तो यथादेवस्तथागिरिः ॥ एतत्तेसर्वमाख्यातं यथादृष्टपुरातनम् ॥ ४६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डे वैदूर्यपर्वतवर्णनं नाम पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥ *

मार्कण्डेयउवाच ॥ वसुदानस्तुराजर्षिश्चक्रवर्तीपुराभवत् ॥ अयोध्याधिपतिःश्रीमाञ्चक्रतुल्यपराक्रमः ॥ १ ॥ बुभुजेपृथिवीसर्वा ग्राममेकमिवाथसः ॥ ईजेयागसहस्रेण हयमेधकृतेनच ॥ २ ॥ सपादलज्जमधिकं सर्वाजीवन्तिचप्रजाः ॥ नतत्रदीनोदुःखीवा दरिद्रोवापिकश्चन ॥ ३ ॥ स्वयंकामदुग्धाधेनुः पृथिवीसस्यशालिनी ॥ एवंपालयतस्तस्य पृथिवीपृथिवीपते ॥ ४ ॥ नर्मदादक्षिणकूले दैत्यास्त्रिदशकण्टकाः ॥ केतुमालीसुकेतुश्च सुमुखोदुन्दुभिस्तथा ॥ ५ ॥ धर्मविघ्नं च कर्तारस्समुद्रूतास्सुरालये ॥ केपिनोश्चकृतुं भयात्तदा ॥ ६ ॥ वसुदानो ब्रवीद्वाक्यं वशिष्ठं ब्रह्म

को एक आगकी नाई भोग करतेहुये और अश्वमेध नामकी हजारों यज्ञों करके पूजन करतेहुये ॥ २ ॥ उनकी राज्यमें सवालाख वर्ष सब प्रजा जीवतीरही वहाँ कोई दीन, दुःखी व दरिद्री नहीं होताहुआ ॥ ३ ॥ गौ अभीष्टसमय में आपही दूधकी देनेवाली और पृथिवी अन्नसे युक्त होतीहुई हे पृथिवीपते ! इसप्रकार पृथिवी की पालना करतेहुये उन राजाके ॥ ४ ॥ नर्मदा के दक्षिणतट में देवताओंको कण्टक के तुल्य केतुमाली, सुकेतु, सुमुख और दुन्दुभि इत्यादिक दैत्य ॥ ५ ॥ धर्म में विघ्न करनेवाले उत्पन्न होतेहुये उनके भयसे यहां देवस्थानमें यज्ञ करनेको कोई समर्थ नहीं होतेहुये तब ॥ ६ ॥ वसुदान राजर्षि ने ब्रह्मवेत्ताओं में श्रेष्ठ वशिष्ठजी से पूछा

वे सब शिवरूपही हैं हे अनघा! यह सब आपसे कहा गया जो कुछ तुम करके पूछा गया था ॥ ३४ ॥ अब हे राजन् ! पापोंकी नाश करनेवाली और दिव्य कथा को सुनो हे अनघ ! जो हमको पापोंकी नाश करनेवाली जान पड़ती है उसको हम आप से कहेंगे ॥ ३५ ॥ यहां श्रीमान्, नामसे वैदूर्यनाम का पर्वत है उसमें पवित्र तीर्थ व मन्दिर विद्यमान हैं ॥ ३६ ॥ अभीष्ट फलके देनेवाले फूले फले वृक्ष, दिव्य पक्षियोंके शब्द, वेंतके जङ्गल ॥ ३७ ॥ सांखू, ताल, सर्ज और आमनूसों करके शोभित पापोंकी नाश करनेवाली पुण्य नर्मदा नदी हे भारत ! वहां विद्यमान है ॥ ३८ ॥ तीनों लोकों में जो तीर्थ, पवित्र मन्दिर, नदियां, समुद्र, पर्वत, ब्रह्माजी के सहित

भारत ॥ एतत्तेकथितंसर्वं यत्पृष्टोहंतवयानघ ॥ ३४ ॥ शृणुराजन्कथान्दिव्यामन्यांपापप्रणाशिनीम् ॥ अधम्नी
याप्रतीतामे कीर्तयिष्यामि तेनघ ॥ ३५ ॥ अस्तीहपर्वतः श्रीमान्वैदूर्यनामनामतः ॥ तत्र पुण्यानि तीर्थानि तिष्ठन्त्या
यतनानि च ॥ ३६ ॥ कामं कामफलैर्वृक्षैः पुष्पितैः फलितैस्तथा ॥ दिव्यपक्षिनिनादैश्च वानीरवनराजिभिः ॥ ३७ ॥
शलैस्तालैश्च सरलैस्तमालैरुपशोभिता ॥ नदीपापहरा पुण्या नर्ममदा तत्र भारत ॥ ३८ ॥ त्रैलोक्येयानि तीर्थानि पु
ण्यान्यायतनानि च ॥ सरितस्सागराश्शैला देवाश्च सर्वापि तामहाः ॥ ३९ ॥ नर्ममदायां नृपश्रेष्ठ सिद्धगन्धर्वचाराणाः ॥
स्नातुमायान्ति ते सर्वे सर्वसिद्धिस्तु भारत ॥ ४० ॥ किंतत्र पर्वते राजन् यत्र विश्वावसुर्मुनिः ॥ नयत्ताधिपतिर्यत्र कुबेरो
नरवाहनः ॥ ४१ ॥ वैदूर्यशिखरे पुण्ये तत्र साक्षाद्विवस्वतः ॥ नित्यं पुष्पफलायत्र पादपाहरितच्छदाः ॥ ४२ ॥ बह्वा
श्रयं तथा तत्र दृश्यते पर्वतोत्तमे ॥ पुण्ये स्वर्गोपमे दिव्ये नित्यन्देवर्षिसेविते ॥ ४३ ॥ ह्लादिनी पुण्य तीर्थानां राजर्षे तत्र वै

सब देवता, सिद्ध, गन्धर्व और चारण नर्मदा में स्नान करने के वास्ते हे नृपश्रेष्ठ ! ये सब आते है हे भारत ! नर्मदा सब सिद्धियों की देनेवाली है ॥ ३९ ॥ ४० ॥ हे राजन् ! उस पर्वतमें क्या है जहां विश्वावसुर्मुनि और जहां यत्नों के अधिपति नरवाहन कुबेरजी नहीं हैं ॥ ४१ ॥ उस पवित्र, वैदूर्यपर्वतके शिखर में साक्षात् सूर्यका वास है और नित्य फूलेफले हरियाले पत्तोंवाले वृक्ष जहां विद्यमान हैं ॥ ४२ ॥ व वहां पर्वतों में उत्तम, पुण्य, स्वर्ग के तुल्य, सर्वदा देवर्षियों करके सेवित, दिव्य पर्वत में बड़ा आश्चर्य दीखता है ॥ ४३ ॥ हे राजर्षे ! उस पर्वतमें पुण्य तीर्थोंको आनन्द करानेवाली नर्मदा नदी विद्यमान है हे राजन् ! वैवस्वतमन्वन्तरके प्रात होनेपर

कि किस तीर्थ में अश्वमेध यज्ञ निर्विघ्न होसका है ॥ ७ ॥ यज्ञविद्याकी विधि से निश्चय करके हमसे कहाजावे बुद्धिमान् उन वसुदान राजाके उस वचन को सुन कर ॥ ८ ॥ हे भारत ! राजासे वशिष्ठजी वचन बोले कि कोई यज्ञ करनेको शक्य नहीं होसका और अश्वमेध तो विशेषही करके कठिन है ॥ ९ ॥ दक्षिण दिशा में अमरेश्वरजी की मूर्तिहै वहा इन्द्रसहित सब देवता दैत्योंकरके जीतलिये गयेहैं ॥ १० ॥ इस कारण से वे देवतालोग यज्ञभाग ग्रहण करने को कभी समर्थ नहीं होसके हे राजन् ! यह आपसे सत्य कहा गया है ॥ ११ ॥ उन वशिष्ठ महात्मा के इस वचन को सुनकर वसुदान राजाने बडा कोप किया और पुरोहितको जवाब

वित्तमम् ॥ कस्मिंस्तीर्थेहिनिर्विघ्नो हयमेधोविधीयते ॥ ७ ॥ यज्ञविद्याविधानेन निर्दिश्यममकथ्यताम् ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वा वसुदानस्यधीमतः ॥ ८ ॥ वशिष्ठश्चाब्रवीद्वाक्यं राजानंप्रतिभारत ॥ नशक्यतेमखःकर्तुं हयमेधोविशेषतः ॥ ९ ॥ अमरेश्वरस्यमूर्तिर्वै दक्षिणाशामुखेस्थिता ॥ दानवैर्निजितास्तत्र सर्वेदेवास्सवासवाः ॥ १० ॥ यज्ञभागंग्रहीतुं न शक्नुवन्तिकदाचन ॥ एतस्मात्कारणाद्राजन् सत्यमेतत्तवोदितम् ॥ ११ ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वा वशिष्ठस्यमहात्मनः ॥ बुकोपवसुदानश्च प्रत्याहचपुरोधसम् ॥ १२ ॥ हत्वैतान् राजानान्पापानद्यवैदेवकण्टकान् ॥ देवानाञ्चप्रसादेन करिष्येयागमुत्तमम् ॥ १३ ॥ एवमुक्त्वाथयौराजा सर्वसम्भारसंहृतः ॥ ब्राह्मणैस्साहितोविद्वान् ऋत्विग्भिर्बैदपारगैः ॥ १४ ॥ गवाञ्चपञ्चलक्षाणि सवत्सानांपयोमुचाम् ॥ सपादलक्षसश्वानां दन्तिनामयुतंतथा ॥ १५ ॥ मणिमाणिक्यरत्नानि हेमरूप्यवसूनिच ॥ विविधंभक्ष्यभोज्यंचआज्यंव्रीहितिलांस्तथा ॥ १६ ॥ मण्डपान्यज्ञयूपांश्च समा

दिया ॥ १२ ॥ कि आज हम इन देवताओं के कण्टकरूप पापी दैत्योंको देवताओं के प्रसादसे मारकर उत्तम यागको करेंगे ॥ १३ ॥ यह कहकर वेदके पारके जानेवाले ऋत्विक् ब्राह्मणों करके सहित सब सामानसे युक्त विद्वान् वसुदानराजा जातेहुये ॥ १४ ॥ बछड़ों करके सहित दूधकी देनेवाली पांचलाल गौवें, सवालाल घोड़े, दश हजार हाथी ॥ १५ ॥ मणि, माणिक आदिरत्न, सुवर्णका धन और अनेकप्रकार के भक्ष्य, भोज्य, घी, चावल, तिल ॥ १६ ॥ मण्डपका सामान और यज्ञ के स्तम्भों

को लेकर राजाओंमें उत्तम वसुदानराजा जातेहुये हे भारत ! इस प्रकार निर्विघ्नता से यज्ञके प्रवृत्त होने पर ॥ १७ ॥ यज्ञान्त स्नान के जलों करके भीगीहुई पृथिवी सब सुवर्ण रचित होगई उस कीचड़में जितने पशु व पक्षी गिरे ॥ १८ ॥ हे भारत ! वहां वे सब सुनहले रङ्गवाले होगये जिस यज्ञमें ब्रह्मा, विष्णु और महादेव एक साथही पूजन कियेगये ॥ १९ ॥ वहां होमसे पृथक् २ दूध और घी की धारा निकली और हे नृपसत्तम ! वहां गौवों के सूत्रकी भी धारा निकली ॥ २० ॥ वेदके पारगन्ता ऋषियों करके जो देवताओं के स्नानका जल कियागया हे नृपसत्तम ! उसका भी प्रवाह वहां निकला ॥ २१ ॥ हे नृप ! उस समयमें सब प्रवाहोंके मिलने

दायनृपोत्तमः ॥ एवंप्रवर्तितेयज्ञे निर्विघ्नेनतुभारत ॥ १७ ॥ आवभृथ्योदकैः क्लिन्ना वसुधाहेमनिर्मिता ॥ बभूवुर्ललितायै तु कर्दमेमृगपक्षिणः ॥ १८ ॥ तेहमवर्णकास्सर्वे बभूवुस्तत्रभारत ॥ युगपत्पूजितायत्र ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥ १९ ॥ होमाच्चपृथक्क्षीराज्यप्रवाहास्तत्रनिर्गताः ॥ गवांमूत्रप्रवाहश्च तत्राभून्नृपसत्तम ॥ २० ॥ स्नानोदकञ्चदेवानामृषिभिर्वैदपारगैः ॥ यत्कृतंतत्प्रवाहश्च तत्रासीन्नृपसत्तम ॥ २१ ॥ प्रवाहेषुचसर्वेषु मिलितेषुतदानृप ॥ आपगाकपिला नाम दृष्टाब्रह्मर्षिदैवतैः ॥ २२ ॥ नर्मदासङ्गमस्तत्र रुद्रावर्तः प्रकीर्तितः ॥ ततस्तुब्राह्मणास्सर्वे दक्षिणाभिः प्रपूजिताः ॥ २३ ॥ गजाश्वरथमारूढा नानाभरणभूषिताः ॥ तुष्टादेवगणास्सर्व ऊचुस्तं पार्थिवंतदा ॥ २४ ॥ वरंष्टुणुमहाभाग यज्ञेनानेनसुव्रत ॥ वसुदानउवाच ॥ रेवाकपिलसम्भेदे स्नात्वाभ्यर्च्यमहेश्वरम् ॥ २५ ॥ विमानैस्त्रिदिवंयान्तु येमृता

पर कपिला नामकी नदी ब्रह्मर्षि और देवताओं करके देखीगई ॥ २२ ॥ उसमें नर्मदा का सङ्गमहुआ वह सङ्गम रुद्रावर्त कहागया तदनन्तर दक्षिणाओं करके पूजित हुये सब ब्राह्मण ॥ २३ ॥ हाथी, घोड़े और रथोंपर सवार अनेक आभूषणों से भूषित होतेहुये प्रसन्न होरहे सब देवगण उस समय में उन राजासे वचन बोले ॥ २४ ॥ कि हे महाभाग ! इस यज्ञ करके हम सब प्रसन्न हैं इससे हे सुव्रत ! आप वरको मांगो तब वसुदानराजा बोले कि नर्मदा और कपिलाके सङ्गम में मनुष्य स्नान और महादेव का पूजन करके ॥ २५ ॥ विमानों से स्वर्गको जावें और जो मरें वे फिर उत्पन्न न होंवें इसी वरको हम मानते हैं सो सुभ्रपर कृपाकरके दिया

जाने ॥ २६ ॥ तब देवता बोले कि चिन्तना कियेहुये आपके मनोरथ अभीष्ट फल को फलेंगे हे राजन् ! वरको देकर देवतालोग प्रसन्न हुये तदनन्तर ॥ २७ ॥ अपने अपने विमानपर चढ़कर आनन्द से स्वर्गको जातेहुये राजर्षि वसुदानभी पेटपाठी ब्राह्मणों करके सहित ॥ २८ ॥ परम आनन्दसे युक्त अयोध्यापुरी को जातेहुये इस तीर्थके प्रभावकरके अपनी रानी व कुटुम्बके सहित ॥ २९ ॥ परिपूर्ण भोगोंको भोगकरके महादेवके पुरको जातेहुये यह सब नर्मदा और कपिलाके सङ्गमका वृत्तान्त आप से कहागया ॥ ३० ॥ इसके सुनने व कहनेसे संसारबन्धनसे छूटजातै ॥ ३१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणरेवाखण्डेऽष्टमोऽध्यायः ॥ ३६ ॥

नपुनर्भवाः ॥ इमंवरमहंमन्ये दीयतामदनुग्रहात् ॥ २६ ॥ देवाऊचुः ॥ कामं कामं फलिष्यन्ति चिन्तितास्तेमनोरथाः ॥
वरंदत्वाचभोरजन् प्रीतवैदेवतास्ततः ॥ २७ ॥ स्वस्वविमानमारुह्यमुदितास्त्रिदिवंययुः ॥ वसुदानोपिराजर्षिब्राह्मणै
वैदपारगैः ॥ २८ ॥ मुदापरमयायुक्तो ह्ययोध्यामाययौतदा ॥ तीर्थस्यास्यप्रभावेण सान्तःपुरपरिच्छदः ॥ २९ ॥ भो
गांश्चपुष्कलान्मुक्त्वा गतोमाहेश्वरम्पुरम् ॥ एतत्तेकथितंसर्वं रेवाकपिलसङ्गमम् ॥ ३० ॥ श्रवणात्कीर्तनादस्यमुच्य
तेभवबन्धनात् ॥ ३१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणरेवाखण्डे कपिलावतारोनामषट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥ *

मार्कण्डेयउवाच ॥ स्वायम्भुवेन्तरेप्राप्ते आदिकल्पेकृतेयुगे ॥ अरुन्धतीप्रसूताया दाक्षाययास्सुतोऽभवत् ॥ १ ॥
विश्रवानामराजाभूच्छक्रतुल्यपराक्रमः ॥ मथुराधिपतिः श्रीमांश्चक्रवर्तीमहाबलः ॥ २ ॥ निर्जितामरदैत्यश्च सराजा
मघवात्विव ॥ सर्वकामसमृद्धाश्च ब्राह्मणाश्चेतरजनाः ॥ ३ ॥ एवंशासयतः पृथ्वीं धनधान्यसमाकुलाम् ॥ नदुर्भिक्षं

स्वायम्भुवमन्वन्तर के प्राप्त होनेपर पहले कल्पके सत्ययुगमें अरुन्धतीसे उत्पन्नहुई दक्षकी कन्याके पुत्र हुआ ॥ १ ॥ यह मथुराका अधिपति, बड़े बलवाला, इन्द्र के तुल्य पराक्रमी, श्रीमान् विश्रवा नामका राजा होताहुआ ॥ २ ॥ व जीति लियेगये हैं देवता और दैत्य जिसकरके ऐसे इन्द्रके तुल्य वह राजाहुआ उसकी राज्यमें सब कामनाओं से पूर्ण ब्राह्मण और अन्य जन भी होतेहुये ॥ ३ ॥ इसप्रकार धन और अन्न से भरीहुई पृथिवी की रक्षा करतेहुये पृथिवीतल में दुर्भिक्ष और

दारिद्र्य कहीं नहीं हुआ ॥ ४ ॥ इसी अन्तरके प्राप्त होनेपर राजा अमरकण्टक को जातेहुये वहां कोटितीर्थ में स्नानकरके और महादेवजी का पूजन करके ॥ ५ ॥ हे भारत ! उन महादेवजी की दक्षिणामूर्तिके आश्रित होकर धर्म जिनको प्यारा है ऐसे राजा जबतक समाधि में स्थित होंगे ॥ ६ ॥ तबतक मध्याह्नके समय में देखा कि पश्चिमदिशामें सूर्यमण्डल से दो सूर्य पूर्वदिशा को चले गये और दो दक्षिण दिशाको ॥ ७ ॥ व दो पातालको और दो प्रचण्डरूप सूर्य ऊपरको चलेगये और हे नृप ! उस समयमें कालस्वरूप संवर्तक नामके अग्नि अतीव जलतेहुये ॥ ८ ॥ और प्रलयके करनेवाले भयानक कठिन वायु चलनेलगे दिग्दाह, भूमिकम्प और दारुण

नदारिद्र्यं क्वचिदस्तिमहीतले ॥ ४ ॥ एतस्मिन्नन्तरप्राप्ते प्रस्थितोमरकण्टकम् ॥ स्नात्वाचकोटितीर्थेवै समभ्यर्च्य
महेश्वरम् ॥ ५ ॥ दक्षिणामूर्तिमाश्रित्य तस्यदेवस्यसारत् ॥ समाधिस्थोभवेद्यावत् सराजधर्मवत्सलः ॥ ६ ॥ तावत्प
श्यतिमध्याह्ने प्रतीच्यादित्यमण्डलात् ॥ द्वौसूर्यौपूर्वदिग्भागे गतौद्वौदक्षिणांदिशम् ॥ ७ ॥ द्वौपातालं तथाचोर्ध्वौ
सूर्यौचण्डरूपिणौ ॥ कालस्संवर्तकोवह्निः प्रजज्वालतदानृप ॥ ८ ॥ रौद्राश्चदारुणावाता ववुःप्रलयकारिणः ॥ दि
ग्दाहोभूमिकम्पश्च उल्कापाताश्चदारुणाः ॥ ९ ॥ पतितास्सिद्धगन्धर्वा देवल्लोकात्सकिन्नराः ॥ विद्याधरास्तथायक्षाः
कर्मचक्षेदादिवच्युताः ॥ १० ॥ विद्याधर्योरुदन्त्यश्च तथैवाप्सरसस्तथा ॥ प्रजज्वालमहावह्निस्सैलवनकाननाम् ॥
११ ॥ भस्मीकृत्यधरांसर्वा रेवाकूलमिवागमत् ॥ तृषार्तोदाहसन्तस्तदाभून्ष्टपसत्तमः ॥ १२ ॥ समुद्यतः पयःपातु
यावत्पश्यतिमेकलाम् ॥ तावत्तन्मध्यमार्गेतु वारिकिञ्चिन्नाविद्यते ॥ १३ ॥ प्रवाहोरेणुभूतश्च दृश्यतेनतुनभर्मदा ॥

उल्कापात होनेलगे ॥ ६ ॥ और देवलोक से सिद्ध, गन्धर्व और किन्नर गिरते हुये विद्याधर और यक्षभी गिरे जैसे कर्मोकी समाप्तिमें जीव स्वर्गसे गिरे ॥ १० ॥ रोती हुई विद्याधरी और अप्सरायें भी गिरी और महाअग्नि जलताहुआ, पर्वतों व जलों और जंगलों करके सहित ॥ ११ ॥ सम्पूर्ण पृथिवीको भस्म करके मानो नर्मदाके तटको आसहुआ उससमय में दाहसे तपेहुये राजाओं में श्रेष्ठ वे राजा प्यास करके कष्टितहुये ॥ १२ ॥ पानी पीने के वास्ते उद्यत होरहे जबतक नर्मदाको देखे तबतक

नर्मदाके बीचमें जल कुछभी न रहा ॥ १३ ॥ नर्मदाकी धारा बालू होगई नर्मदा नहीं देखपड़ती नदियां, समुद्र, पर्वत और तालाबों में राजा अमरते हुये ॥ १४ ॥ परन्तु उन श्रेष्ठ राजाने पानी पीनेको कहीं भी नहीं पाया नर्मदा देवी और उत्तम विन्ध्यपर्वत को नहीं देखतेहुये ॥ १५ ॥ राजा नर्मदा के मध्यमें पैठे और चिन्ता करके व्याकुल होतेहुये कि आज पानीके बिना मेरा मरण नियत होगा इसमें कुछ संशय नहीं है ॥ १६ ॥ समस्त जगत् नष्ट होगया पानीके बिना कुछ न रहेगा राजा यह विचार करके उन्कारके आश्रित होतेहुये ॥ १७ ॥ प्यास से विकल होरहे राजा जबतक पर्वतपर चढ़नेकी इच्छाकरें तबतक इन राजाने वहां फले फूले शाखाओं

सरितस्सागराञ्छलान् बभ्रामससरांसिच ॥ १४ ॥ जलंपातुन्नकुत्रापि लब्धवान्समृत्तपोत्तमः ॥ अपश्यन्नमर्मदानन्देर्वो
चिन्ध्यंगिरिवरोत्तमम् ॥ १५ ॥ प्रविष्टो नर्मदामध्येनृपश्चिन्ताकुलोभवत् ॥ जलं विनाद्यमरणं नियतममेनसंशयः ॥
१६ ॥ अन्तर्हितं जगत्कृत्स्नं नचकिञ्चिज्जलं विना ॥ चिन्तयित्वानृपश्चेष्ट अङ्कारश्च समाश्रयत् ॥ १७ ॥ पर्वतारोह
णं यावत् तृपार्तः कर्तुमिच्छति ॥ तावत्पश्यति राजासौ तत्र वैकल्पशास्त्रिनम् ॥ १८ ॥ फलितं पुष्पितं रम्यं शाखाभिरु
पशोभितम् ॥ तन्मृद्वंशयितो राजा छायां प्राप्य सुशीतलाम् ॥ १९ ॥ शरीरममृतं भूतं जीविताशाभवत्तदा ॥ अपश्य
त्पुरुषं तत्र शयानं दीप्तं तेजसम् ॥ २० ॥ तदुच्छ्वासं नलोकवैकम्पिताश्चोर्द्धशस्तदा ॥ पातालानि तथा सप्त निःश्वासेन
युधिष्ठिर ॥ २१ ॥ कुम्भाः पार्श्वे च चत्वारस्तस्य तिष्ठन्ति सोदकाः ॥ तान्मृद्वंशानि चिन्तयामास तृपार्तो नृपसत्तमः ॥ २२ ॥
बोधये सुखसुप्तनो नादत्तं च पिबाम्यहम् ॥ किङ्करोमीति सञ्चिन्त्य तम्प्रणम्य स्थितो नृपः ॥ २३ ॥ मानुषां तनुमाश्रित्य

करके शोभित, रमणीक कल्पवृक्ष को देखा उस वृक्षको देखकर और शीतल छायाको पाकर राजा सोगये ॥ १८ ॥ राजाका शरीर अमृत होगया और जीवनकी आशा होती हुई उस वृक्षपर प्रचण्ड तेजवाले सोतेहुये पुरुषको देखा ॥ २० ॥ उसकी ऊपरवाली स्त्रास करके उससमय ऊपरके लोक कांपतेहुये और हे युधिष्ठिर ! स्वासके खींचनेसे सातों पाताल कांपतेहुये ॥ २१ ॥ उस पुरुषके दोनोंतरफ जलसे भरेहुये चार कलश विद्यमान होरहे हैं तृषासे विकल राजा उन कलशोंको देखकर विचार करतेहुये ॥ २२ ॥ कि सुखसे सोरहे इस पुरुषको हम जगावें सो ठीक नहीं है और विनादिये जलको हम पीवें नहीं तो अब क्याकरें यह विचारकर उसके नम-

स्कार करके राजा स्थित हो रहे ॥ २३ ॥ व साक्षात् प्रजापति देव जगत् के प्रभु कर्ता और हर्ता पुरुषोत्तम मनुष्य के शरीर के आश्रित होकर स्थित हो रहे हैं ॥ २४ ॥ तदनन्तर चैल पर चढ़े हुये, तीन नेत्रवाले, त्रिशूल को हाथ में लिये, पिनाक धनुष को धारण किये, प्रचण्ड तेजवाले दूसरे पुरुष को देखा ॥ २५ ॥ भस्म से उज्ज्वल हो रहा है शरीर जिसका, जटाओं के मुकुट को धारण किये, मुण्डों की माला ही है आभूषण जिसका व विजली की ज्योति के समान प्रभावाला ॥ २६ ॥ दाढ़ों के भयानक, पीले नेत्रवाला, चन्द्रमा है मुकुट में जिसके, सब के रोयें खड़े करनेवाले ऐसे रूपवाले उस पुरुष को देखकर ॥ २७ ॥ सच देवताओं करके नमस्कार किये गये देवताओं के

स्थितो यं पुरुषोत्तमः ॥ स्वयं प्रजापतिर्देवो हर्ता कर्ता जगत्प्रभुः ॥ २४ ॥ ततो पश्यद्द्वितीयञ्च पुरुषं दीप्ततेजसम् ॥ वृथा रूढं त्रिनेत्रञ्च शूलपाणिं पिनाकिनम् ॥ २५ ॥ भस्मोज्ज्वलितगान्धर्वजटा मुकुटधारिणम् ॥ कपालमालाभरणं तडिज्ज्योतिस्समप्रभम् ॥ २६ ॥ दंष्ट्राकरालं पुरुषं पिङ्गाक्षं शशिशेखरम् ॥ तन्दृष्ट्वा तादृशं रूपं सर्वेषां लोमहर्षणम् ॥ २७ ॥ राजा तुष्टावदेवेशं सर्वदेवनमस्कृतम् ॥ जयदेव महादेव आदिदेवनमोस्तुते ॥ २८ ॥ तुषामांवाधते देव शूलपाणे शृणुष्व तत् ॥ प्रयच्छ शीतलं तोयं येन जीवामि शङ्कर ॥ २९ ॥ तस्य तद्वचनं श्रुत्वा प्रहसन्नब्रवीच्छिवः ॥ जल्पत स्तस्य देवस्य चास्येदृष्टाः समन्ततः ॥ ३० ॥ सुराब्रह्मर्षयो लोकाः सप्तैव चराचराः ॥ पातालानि च भूतानि गन्धर्वो रगराक्षसाः ॥ ३१ ॥ ततो दर्शनारीञ्च समुद्दिग्नां समागताम् ॥ रजोगुणैतत्सर्वाङ्गी रुधिरं परिप्लुताम् ॥ ३२ ॥ अनन्तदीप्ततेजस्कां मारुतोद्धूतमूर्द्धजाम् ॥ बालनिधाय वामोरो कन्यांचैव स्तनान्तरे ॥ ३३ ॥ ब्रह्मसूत्रत्रिदण्डाभ्यां कुईश्वर महादेवकी राजा स्तुति करते हुये कि हे देव ! हे महादेव ! हे आप सर्वोपरि विराजमान हो आपके लिये नमस्कार है ॥ २८ ॥ हे देव ! हे शूलपाणे ! हमको तुपा बहुत बाधा करती है सो आप सुनो और हमको शीतल जल देवो हे शङ्कर ! जिससे हम जीवें ॥ २९ ॥ राजा के इस वचनको सुनकर हे सते हुये महादेव जी बोले व बोले ते हुये उन महादेवजी के मुखमें चारों तरफसे देवता, ब्रह्मर्षि सातों चराचर लोक, पाताल, भूत, गन्धर्व, सर्प और राजस देख पड़े ॥ ३० ॥ ३१ ॥ तदनन्तर घबड़ा नी व वहां प्राप्त हुई एक स्त्रीको राजाने देखा धूलि से धुरियाले हो रहे हैं सब अङ्ग जिसके, रक्तसे भीगी हुई है ॥ ३२ ॥ अनन्त और प्रचण्ड है तेज जिस

का, हवासे उड़ते हैं बाल जिसके एक बालक को अपनी बाई जङ्घापर बिठाके कन्याको स्तनों के मध्य में लगाये हुये है ॥ ३३ ॥ ब्रह्मसूत्र, त्रिदण्ड और कुण्डलों करके भूषित है इस प्रकार की उस स्त्रीको देखकर वे राजा उस समय वचन बोले ॥ ३४ ॥ कि हे लोकोपर अनुग्रह करनेवाली ! हे महादेवि ! हे देवि ! आपकी जय होवे तुपासे व्यास होरही है देह जिसकी ऐमा मैंहूँ सो आप मुझको यहां जल पिलावें ॥ ३५ ॥ राजा के इस वचन को सुनकर उन राजासे परमेश्वरी बोलीं कि हे महीप ! जो तुमको तुषा बाधगी है तो तुम मेरा दूध पीओ ॥ ३६ ॥ उसके इस वचनको सुनकर राजा चिन्ता करतेहुये व बोले कि हे देवेशि ! हम आपके दूधको

एडलाभ्यामलंकृताम् ॥ दृष्ट्वातांसततोराजा प्रोवाचवचनन्तदा ॥ ३४ ॥ जयदेविमहादेवि लोकानुग्रहकारिणि ॥ तृ
षयाप्लुतदेहोहं जलंपाययमामिह ॥ ३५ ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वा तम्प्राहपरमेश्वरी ॥ स्तन्यंपिवमहीपत्वं यदित्वांवाध
तेतृषा ॥ ३६ ॥ तस्यास्तद्वचनंश्रुत्वा चिन्तयामासपार्थिवः ॥ स्तनंपास्यामिदेवेशि नारीवचनमब्रवीत् ॥ ३७ ॥ प्रति
ज्ञातंमयापूर्वं सुतेजस्तेनृपोत्तम ॥ अग्रेन्यस्यस्तनंत्वावै पश्चादास्यामिबालकम् ॥ ३८ ॥ तस्मात्पिबमहाभागस्तन्यं
मेनास्तिपातकम् ॥ ततःप्रोवाचनृपतिस्तान्नारीङ्कासरूपिणीम् ॥ ३९ ॥ अकार्यमेतत्सर्वेषां मादृशानांकुतःकथा ॥
अन्योन्यंजल्पतान्तेषां सातत्रान्तरधीयत ॥ ४० ॥ कगतासिमहोदवीत्युक्त्वाविस्मयमागतः ॥ स्वप्नलब्धा
यथावार्तानिष्फलाप्रतिभासते ॥ ४१ ॥ इन्द्रजालमयंहन्मृगतुष्टाजलंयथा ॥ एवंचिन्तयतस्तस्यपुनरग्रेव्यवस्थि

पविगे तब वह स्त्री वंचन बोली ॥ ३७ ॥ कि हे नृपोत्तम ! हे सुतेजः ! पूर्वकालमें मुझ करके प्रतिज्ञा कीगई है कि पहले आप को दूध पिलाके पीछे बालक को देऊंगी ॥ ३८ ॥ तिससे हे महाभाग ! आप मेरे दूधको पीवें इसमें कुछ पाप नहीं है तदनन्तर उस कामरूपिणी स्त्री से राजा बोले कि ॥ ३९ ॥ यह काम तो सबके करने को अयोग्य है फिर हमसरीले पुरुषोंको तो विशेषही अयोग्य है इस प्रकार आपसमें वार्ता करतेहुये उनके मध्यसे वह स्त्री अन्तर्द्धान होगई ॥ ४० ॥ हे महादेवि ! आप कहां को चलीगई यह कहकर राजा विस्मय को प्राप्त हुई वार्ता जैसे निष्फल भासती है ॥ ४१ ॥ और इन्द्रजाल व मृगतुष्टा का जल

जैसे मिथ्याहो ऐसा यह वृत्तान्त होगया इसप्रकार चिन्ता करतेहुये उन राजाके आगे फिर वह स्त्री खड़ी होगई ॥ ४२ ॥ तब फिर उस स्त्रीको देखतेही राजा साष्टाङ्ग प्रणाम करके बोले कि हे वराहो ! तुम कौनहो ! तुम कौनहो सो हमसे सत्य कहो ॥ ४३ ॥ पार्वती, कात्यायनी, गङ्गा, गायत्री, सरस्वती, ब्रह्माणी अथवा महालक्ष्मी हो सो अपनी प्रसन्नतासे कहो ॥ ४४ ॥ और तुम्हारे समान यह पुरुष कौनहै और ये चार कलश कौनहै और बैलपर सवार तीन नेत्रवाला त्रिशूल और पिनाक धनुष को धारण किये हुये यह कौन है ॥ ४५ ॥ गोदी में लियाहुआ यह बालक कौन है और यह कन्या कौन है मैं मूर्खहूँ कुछ नहीं जानता जैसे कोई जन्म व मरण को नहीं

ता ॥ ४२ ॥ तान्दृष्ट्वैवतोरजा साष्टाङ्गप्रणिपत्यच ॥ कासित्वंहिवरारोहे सत्यमेतदब्रवीहिमे ॥ ४३ ॥ उमाकात्यायनीगङ्गा वेदमातासरस्वती ॥ ब्रह्माणीचमहालक्ष्मीः कथयस्वप्रसादतः ॥ ४४ ॥ समानःपुरुषःकोयं कुम्भाश्चत्वारएव के ॥ दृषारूढस्त्रिनेत्रश्च कोयंशूलपिनाकधृक् ॥ ४५ ॥ उत्सङ्गेनिहितःकोयं बालकःकाचकन्यका ॥ मूर्खोहंनभिजानामि जननंमरणंयथा ॥ ४६ ॥ सञ्चुवाच ॥ पृथिवीविद्धिमांराजन् सप्तद्वीपैरलंकृताम् ॥ सप्तपाताललोकैश्च सशैलवनकाननाम् ॥ ४७ ॥ सरितस्सागराश्शैला समोदरनिवासिनः ॥ व्याप्तंमयाजगत्सर्वं त्रैलोक्यंसचराचरम् ॥ ४८ ॥ पर्यङ्कशायिनन्देवं शङ्खचक्रगदाधरम् ॥ जगद्योनिहरिविद्धिसंसारार्णवतारणम् ॥ ४९ ॥ त्रिनेत्रंशूलपाणिञ्च विद्धिदेवं महेश्वरम् ॥ दृषारूढंमहादेवं लोकनाथंजगत्पतिम् ॥ ५० ॥ उत्सङ्गस्थंशिशुविद्धि ब्रह्माणंमृष्टिकारकम् ॥ त्रिभिर्व्या

जानता ॥ ४६ ॥ तब स्त्री बोली कि हे राजन् ! सातों पाताल व लोकों से युक्त व पर्वतों व जलों और जङ्गलोंवाली, सातों द्वीपों से भूषित सुभक्तों पृथिवी जानो ॥ ४७ ॥ नदियां, समुद्र और पर्वत मेरेही उदरमें बसते हैं यह चराचर तीनों लोकरूप सब जगत् सुभक्तके व्याप्त होरहा है ॥ ४८ ॥ संसार समुद्र से तारने वाले, जगत् के कारण, शङ्ख, चक्र और गदाके धारण करनेवाले पर्यङ्क पर सोनेवाले देवको हरि जानो ॥ ४९ ॥ तीन नेत्रवाले, त्रिशूल हाथमें लिये, बैलपर सवार, जगत् के पति, लोकों के नाथ, महेश्वर को महादेव जानो ॥ ५० ॥ गोदीमें विद्यमान होरहे बालकको मृष्टि करनेवाले ब्रह्मा जानो ब्रह्मा, त्रिणु और महादेव इन

तीनों करके सब जगत् व्याप्त होरहा है ॥ ५१ ॥ जगतकी सृष्टिके करनेवाले ब्रह्माजी हैं और पालनेवाले आपही विष्णुजी हैं और संहार करनेवाले रुद्रजी हैं इन्हीं तीनों करके जगत् व्याप्त होरहा है ॥ ५२ ॥ व पर्वतों पर स्थित चारों कलशों को समुद्र जानो और हमारे स्तनों के मध्यमें विद्यमान होरही कन्या को पवित्र करने वाली नर्मदा जानो ॥ ५३ ॥ राजा इस वचन को सुनकर परम विस्मय को प्राप्त होतेहुये तदनन्तर बहुत काल करके फिर सृष्टि प्रवृत्त होतीहुई ॥ ५४ ॥ सबलोकों के हितके वास्ते ब्रह्मा व विष्णु और महेश्वर अपने २ कामों को करते हैं हे युधिष्ठिर ! कल्प २ में यह सब मुझ करके देखागया है ॥ ५५ ॥ व हे भारत ! अक्षयवट

संजगत्सर्वं ब्रह्मविष्णुमहेश्वरैः ॥ ५१ ॥ जगत्सृष्टिकरो ब्रह्मा स्वयं पालयिता हरिः ॥ संहारकारको रुद्रस्त्रिभिर्व्यासं जगत्ततः ॥ ५२ ॥ कलशांश्चतुरो विद्धि समुद्रान्पर्वतस्थितान् ॥ स्तनमध्ये गतां कन्यां नर्मदां विद्धि पावनीम् ॥ ५३ ॥ एतच्छ्रुत्वा वचो राजा विस्मयं परममङ्गतः ॥ ततः कालेन महता पुनः सृष्टिः प्रवर्तते ॥ ५४ ॥ सर्वलोकहितार्थाय ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥ कल्पे कल्पे मया दृष्टमेतत्सर्वं युधिष्ठिर ॥ ५५ ॥ न्यग्रोधः कल्पवृक्षश्च अङ्कुरः सप्तकल्पगा ॥ अहं वै द्रव्यशैलश्च परलिङ्गानि भारत ॥ ५६ ॥ अक्षयं वाव्ययं चैतत् सर्वजानीहितत्त्वतः ॥ एतत्ते कथितं राजन् यत्पृष्टो हं त्वयानघ ॥ ५७ ॥ भक्तस्त्वं श्रवणे श्रद्धा पुराणानां संशयः ॥ श्रवणात्कीर्तनादस्य मुच्यते भवबन्धनात् ॥ ५८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणोरे वाखण्डे कल्पान्तदर्शनब्रामसप्तविंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥ * ॥ * ॥

युधिष्ठिर उवाच ॥ ईदृशं यस्य माहात्म्यं तीर्थस्य च परन्तप ॥ तृप्तैर्नैवाधिगच्छामि शृण्वन्वेदविदां वर ॥ १ ॥ समर्थे कल्पवृक्ष, अङ्कुरनाथ, नर्मदा, हम, वैदूर्यपर्वत और बाणलिङ्ग ॥ ५६ ॥ इन सबको तत्त्व से अक्षय और अव्यय जानो हं निष्पाप, राजन् ! यह आपसे कहा गया जो कुछ आप करके हमसे पूछागया था ॥ ५७ ॥ आप भक्तहो और पुराणों के सुनने में आपकी श्रद्धा है इसमें कुछ संशय नहीं है इसके सुनने व कहने से संसार बन्धन से छूटजाता है ॥ ५८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणोरे वाखण्डे प्राकृतभाषाऽनुवादकल्पान्तदर्शनब्रामसप्तविंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥

युधिष्ठिरजी बोले कि हे परन्तप ! जिस तीर्थ का ऐसा माहात्म्य है हे वेदविदां वर ! जिसको सुनतेहुये हम तृप्ति को नहीं प्राप्त होते हैं ॥ १ ॥ इससे सब कार्यो

में समर्थ, वेदोंके पारगन्ता ब्राह्मणों करके सहित फिर तीर्थों का माहात्म्य हे महामते ! मुझसे कहो ॥ २ ॥ तब मार्कण्डेयजी बोले कि हे महाराज ! एक तीर्थ और यमेश्वर लिङ्ग है इसके दर्शन व पूजन करने से मनुष्य यमलोक को नहीं देखता है ॥ ३ ॥ नर्मदाके दक्षिण और कपिलाके पश्चिममें रमणीक त्रिणुकी पुरी है जैसी इन्द्रकी अमरावती है ॥ ४ ॥ करोड़ों कल्प व युगों भर त्रिणुजी वहां रहते हैं पूर्वकाल में देवताओं के युद्धमें देवताओं के कण्टकरूप दैत्यों करके ॥ ५ ॥ सब देवता जीतलिये गये तब पृथिवी बहुत कष्टितहुई और ब्रह्माआदि सब देवता क्षीरसमुद्र में सोनेवाले, स्तुति करने के योग्य, अन्तःकरण में विद्यमान और नाश

स्सर्वकार्येषुब्राह्मणैर्वेदपारगैः ॥ भूयस्तीर्थस्यमाहात्म्यंनिवेदयमहामते ॥ २ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ अस्तितीर्थमहाराज लिङ्गमन्यंयमेश्वरम् ॥ दर्शनात्पूजनादस्य यमलोकन्नपश्यति ॥ ३ ॥ नर्मदादक्षिणेतीरे कपिलायाश्चपश्चिमे ॥ त्रिणुस्तत्रपुरीरभ्या शक्रस्येवामरावती ॥ ४ ॥ कल्पकोटियुगञ्चापि तस्यांतिष्ठतिमाधवः ॥ पुरादेवासुरयुद्धे दानवैर्देवक एटकैः ॥ ५ ॥ निर्जितादेवतास्सर्वास्तदासंचिधरादिता ॥ ब्रह्माद्यादेवतास्सर्वाः क्षीरोदार्यवशायिनम् ॥ ६ ॥ तुष्टुबुःप्र णिपत्यैनं स्तुत्यंचान्तस्मथमव्ययम् ॥ जयदेवजगन्नाथ दैत्यान्तकजनार्दन ॥ ७ ॥ वाराहरूपमास्थाय प्रोद्धतावसुधा त्वया ॥ उद्धृतामत्सरूपेण वेदास्सागरमध्यतः ॥ ८ ॥ कूर्मशेषादिरूपैश्च देवानामार्तिनाशनम् ॥ बलिर्वामनरूपेण त्व याबद्धोसुगारिणा ॥ ९ ॥ हिरण्यकशिपुर्देवैस्त्यस्सर्वलोकभयङ्करः ॥ त्वयान्दसिहरूपेण निहतोदेवकएटकः ॥ १० ॥ वे दमूलजगन्नाथ रत्ननशरणागतान् ॥ श्रुत्वास्तोत्रमिदं देवो ब्रह्माणंवाक्यमब्रवीत् ॥ ११ ॥ किमर्थेनत्वयाब्रह्मन् रहित त्रिणु के प्रणाम करके इनकी स्तुति करतेहुये कि हे देव ! हे जगन्नाथ ! हे जगन्निर्दण्ड ! हे जनार्दन ! आपकी जय होवे ॥ ६ ॥ ७ ॥ वाराहरूप को धारण करके आप से पृथिवी उद्धार कीगई और समुद्रके मध्यसे मत्सरूप करके वेद उद्धार कियेगये ॥ ८ ॥ कूर्म और शेष आदि रूपों करके देवताओं के क्लेशको नाश किया दैत्यों के शत्रु आप करके वामनरूपसे बालि दैत्य बाधागया ॥ ९ ॥ सब लोकों को भय करनेवाला देवताओं का कण्टक हिरण्यकशिपु दैत्य नृसिंहरूप आप करके मारागया ॥ १० ॥ हे वेदमूल, जगत्के नाथ ! शरण आवेहुये हम लोगोंकी रक्षाकरो त्रिणुदेव इस स्तोत्रको सुनकर ब्रह्मासे वचन बोले ॥ ११ ॥

कि हे ब्रह्मन् ! क्षीरसमुद्र में सोतेहुये हम तुम करके किस प्रयोजन से जगाये गये ॥ १२ ॥ तब ब्रह्माजी बोले कि हे जगन्नाथ ! आपके बिना पृथिवी दैत्यों करके व्याप्त होगई ॥ १३ ॥ जैसे सूर्य के बिना प्रकाशरहित जगत् अन्धकार करके व्याप्त होजावे ॥ १४ ॥ तब विष्णुजी बोले कि हे ब्रह्मन् ! तुम भय को शीघ्रही छोड़दो जितने जबरदस्त दैत्यों हैं उन सब दानवों को थोड़ेही कालमें हम नाश करदेवेंगे ॥ १५ ॥ इस प्रकार कहकर देवताओं करके सहित जनार्दनजी आतेहुये और सब लोकों के हितके वारते सुदर्शनचक्र करके दानवों के शिरों को भगवान् विष्णु जी काटते हुये तब भयसे कण्ठित सब दानवलोग भागने में तत्पर होतेहुये ॥ १६१७ ॥

क्षीरोदहंप्रबोधितः ॥ १२ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ त्वयाविनाजगन्नाथ क्षोणीछन्नासुरारिभिः ॥ १३ ॥ सूर्येणचविहीनंहि निरा
लोकंजगद्यथा ॥ १४ ॥ विष्णुरुवाच ॥ ब्रह्मन्भयं त्यजाशुत्वं दानवोयन्दुरासदः ॥ अचिरेणैवकालेन द्वातयामिचदा
नवम् ॥ १५ ॥ एवमुक्त्वासुरैस्सार्द्धमाजगामजनार्दनः ॥ सुदर्शनेनचक्रेण दानवानांशिरांसिच ॥ १६ ॥ चकतंभगवान्
विष्णुस्सर्वलोकहितायैव ॥ भयार्तादानवास्सर्वे पलायनपरायणाः ॥ १७ ॥ विष्णोस्त्रासानुतेसर्वे रसातलतलययुः ॥
पुनःप्रवर्तितोयज्ञो द्विजदेवतपस्विनाम् ॥ १८ ॥ तस्याम्पुर्यामहाभाग देवोभूद्वैत्यसूदनः ॥ तत्रयस्त्यजतिप्राणान
वशःस्ववशोपिवा ॥ १९ ॥ वैष्णवेनविमानेन विष्णुलोकमर्हायते ॥ कपिलापश्चिमायान्तु नीलगङ्गासमागता ॥
२० ॥ अष्टायुतानितीर्थानि विष्णुनाप्रेरितानि वै ॥ चक्रतीर्थं वामनञ्चकोटितीर्थंयुगन्धरम् ॥ २१ ॥ तत्रस्नान्त्वानरो
राजन् कोटितीर्थफलंलभेत् ॥ सुदर्शनन्नामतीर्थं दैत्यसूदनमेवच ॥ २२ ॥ विष्णवावर्तेशिवावर्तं लक्ष्म्यावर्ततथैवच ॥

विष्णुके डरसे वे सब रसातल के नीचे चलेगये फिर ब्राह्मण, देवता और तपस्वियों के यज्ञ प्रवृत्त हुये ॥ १८ ॥ हे महाभाग ! उस पुरी में दैत्यों के नाश करनेवाले विष्णुजी देवता हुये वहा परवश व अपने वश होकर जो प्राणोंको त्यागतहै ॥ १९ ॥ वह वैष्णव विमान करके विष्णुलोकमें पूजित होताहै कपिला नदीके परिचम दिशा में नीलगङ्गा आई है ॥ २० ॥ वहां अस्सीहजार तीर्थ विष्णुकरके भेजेगये हैं जैसे कि चक्रतीर्थ, वामन, कोटितीर्थ और युगन्धर इत्यादि हैं ॥ २१ ॥ हे राजन् ! उसमें स्नान करके मनुष्य कोटितीर्थ के फल को पाताहै सुदर्शन नाम का तीर्थ, दैत्यसूदनतीर्थ ॥ २२ ॥ विष्णवावर्त, शिवावर्त और लक्ष्म्यावर्त तीर्थ हैं इनमें जो

दान दिया जाता है उसकी संख्या नहीं है ॥ २३ ॥ वहाँपर विष्णुको प्रसन्नकरके अनन्त फलको पावता है एक कोस प्रमाणवाला विष्णुक्षेत्र कहा गया है ॥ २४ ॥ इतने बीचमें ब्रह्महत्या नहीं प्रवेश कर सकती यह महादेवकरके सत्य कहा गया है जो महीना भरका उपास करता अथवा अग्निहोत्र करता है ॥ २५ ॥ और पतिव्रताधर्म, सत्य वचन, वेदपाठ, यज्ञकर्म, चान्द्रायण, पराक और पितरों को तिलोदक आदिको जो करता है ॥ २६ ॥ उसके पितर तृप्त होते हैं और विष्णुलोक में विहार करते हैं एकरात्र, त्रिरात्र, कुच्छ, सान्तपन ॥ २७ ॥ अतिकुच्छ, पर्णकुच्छ, इसीप्रकार और भी वैष्णव व्रत जो करता है और दोनों पक्षोंकी एकादशी, में जो भोजन नहीं

तत्रयद्दीयतेदानं तस्यसंख्यानविद्यते ॥ २३ ॥ विष्णोस्तुप्रीणनंकृत्वा अनन्तफलमश्नुते ॥ क्रोशमात्रप्रमाणं हि विष्णुक्षेत्रप्रकीर्तितम् ॥ २४ ॥ नविशेद्ब्रह्महत्याच सत्यमेतच्छ्रवोदितम् ॥ मासोपवासंयः कुर्यादग्निहोत्रं तथैव च ॥ २५ ॥ पतिव्रतात्वं सत्यं च स्वाध्यायं यज्ञकर्म च ॥ चान्द्रायणं पराकञ्च पितृणाञ्च तिलोदकम् ॥ २६ ॥ पितरस्तस्य तृप्यन्ति लोके क्रीडन्ति वैष्णवे ॥ एकरात्रं त्रिरात्रञ्च कुच्छं सान्तपनन्तथा ॥ २७ ॥ अतिकुच्छं पर्णकुच्छं तथान्यै द्वे त्कोटिगुणं फलं वैकेशवो ब्रवीत् ॥ २८ ॥ सगच्छति परं स्थानं यत्रास्ते भगवान्हरिः ॥ अन्यक्षेत्रा शुभा ॥ ३० ॥ तत्रोपोष्य महाराज विष्णुलोकं महीयते ॥ श्रवणेद्वादशीपुण्यारोहिण्यामष्टमी यस्त्यजति प्राणान् विष्णुलोकं सगच्छति ॥ कार्तिके च वैशाख उपवासं करोति यः ॥ ३२ ॥ दशकोट्युपवासानां फलं

करता है ॥ २८ ॥ वह उत्तम स्थान को प्राप्त होता है जहाँ विष्णुभगवान् रहते हैं और क्षेत्रसे करोड़गुना फल यहाँ होता है यह केशवजीने कहा है ॥ २९ ॥ वहाँ जप व तप जो किया गया है वह सब अक्षय होता है वहाँपर श्रवण नक्षत्रयुक्त द्वादशी बहुत पुण्य है और रोहिणीमें अष्टमी शुभ है ॥ ३० ॥ इनमें वहाँ व्रतकरके हे महाराज ! विष्णुलोक में पूजित होता है चाण्डाल, इवपच अथवा तिर्यग्यानि में प्राप्त भी ॥ ३१ ॥ जो जीव यहाँ प्राणों का त्याग करता है वह विष्णुलोक को जाता है

कार्तिक अथवा वैशाख में जो उपास करता है ॥ ३२ ॥ वह मनुष्य दश करोड़ उपवासों के फलको प्राप्त होता है पूर्वकालमें स्कन्दजी के कहेहुये पुराणमें यह शिव जी करके कहा गया है ॥ ३३ ॥ वहांपर मासभर उपवास करनेवालों को अथवा पतिव्रता स्त्रियों को देख करके यमराज आपही जाकरके उनके वारते अर्घ को देते हैं ॥ ३४ ॥ साठिहजार सवारियों करके सहित भगवान् प्रभु धर्मराज आये व हजार योजन आगेसे भगवान् यमराज आते हैं ॥ ३५ ॥ सफेद वस्त्रोंको पहनेहुये धर्म और तेजही के शरीर को धारण कियेहुये सवारीके आगे खड़े होकर भक्तिकरके चरणोंको नमस्कार करते हैं ॥ ३६ ॥ उन महात्माओंको वैष्णवलोक दिखाकर फिर

प्राप्नोतिमानवः ॥ शङ्करेणपुरागीतं पुराणैस्कन्दकीर्तिते ॥ ३३ ॥ मासोपवासिनोदृष्ट्वा तत्रैवचपतिव्रताः ॥ धर्ममराजःस्वयंगत्वा अर्धैतेभ्योनिवेदयेत् ॥ ३४ ॥ षष्टियानसहस्रैस्तु आगतोभगवान्प्रभुः ॥ सहस्रयोजनंयावदायातिभगवान्यमः ॥ ३५ ॥ शुक्लवस्त्रपरीधानो धर्मतेजोवपुर्द्वरः ॥ स्थित्वायानस्यचैवाग्रे भक्त्यापादौचवन्दते ॥ ३६ ॥ प्रदृश्यवैष्णवंलोकं ततोगतवानिवर्तते ॥ प्रत्यागतेषुयानेषु अपृच्छन्स्वेच्छयायमम् ॥ ३७ ॥ ब्रह्मणोमानसाःपुत्रास्स सचैवमहर्षयः ॥ कस्माच्चकारणद्धर्मं पादचारीगतःस्वयम् ॥ ३८ ॥ कथयस्वमहाभाग परंविस्मयमागताः ॥ प्रहस्य चाब्रवीद्धर्मः शृण्वन्तुमुनिसत्तमाः ॥ ३९ ॥ पतिव्रतानांदीप्तिं च दीप्तिमासोपवासिनाम् ॥ अशक्ताद्रष्टुमेतासां विमानान्दूरतःस्थितान् ॥ ४० ॥ ताभ्यःप्रत्यागतास्सर्वे ममभृत्याभयङ्कराः ॥ एतस्मात्कारणाद्विप्राः पादचारीगतोह्यहम् ॥ ४१ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ माहात्म्याच्चामरावत्यांहरेरभितेजसः ॥ वासश्चयजनंतत्रकीर्तितंकलिनाशनम् ॥ ४२ ॥

आप लौट आते हैं व सवारियों के लौटआने पर ब्रह्माके मानसपुत्र सातों महापेलोग स्वेच्छापूर्वक यमराजसे पूछतेहुये कि हे धर्म ! आप किस कारणसे पैदल गये थे ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ मो हे महाभाग ! आप हम से कहें हमलोग परम विस्मयको प्राप्त हो रहे हैं तब हमें सके धर्मराज बोलें कि हे अतिश्रेष्ठ मुनियो ! आपलोग सुनें ॥ ३९ ॥ पतिव्रता स्त्रियों की दीप्ति व मासभर उपवास करनेवालोंकी दीप्ति और दूर विद्यमान हो रहे उनलोगों के विमानों को देखने के लिये हमलोग अशक्त हैं ॥ ४० ॥ और उन स्त्रियों के समीपसे हमारे सथ भयङ्कर द्रुत लौटआये इसी कारण से हे विप्रो ! हम पैदल गये थे ॥ ४१ ॥ तब मार्कण्डेयजी बोले कि अमरावतीमें अनन्त

तेजवाले हरिका वास है इसी माहात्म्य से वहां का पूजन कलियुग का नाश करनेवाला कहा गया है ॥ ४२ ॥ अब इसके अनन्तर नर्मदा के उत्तरतट में एक और पापों के नाश करनेवाले ब्रह्मेश इस नामसे विख्यात परमदेव भलीभांति स्थित हैं ॥ ४३ ॥ हे युधिष्ठिर ! उन देवके पूजनमें पाप नष्ट होजाता है और पूजन करनेवाले के पितर तृप्ति को प्राप्त होते हैं और ब्रह्मलोकों का प्राप्त होते हैं ॥ ४४ ॥ लङ्केश्वर से दक्षिण ओर सिद्धलिङ्ग कहा गया है उसके पूजन व स्पर्श से गणोंका स्वामी होता है ॥ ४५ ॥ सब देवताओं का रूप, कल्याणरूप, विश्वेश्वर नामका महालिङ्ग है वैशाखशुक्लपक्षकी अष्टमी में उस लिङ्गका पूजन करनेसे हजार लिङ्गों के पूजन अथान्यः परमो देवो ब्रह्मेश इति विश्रुतः ॥ रेवाया उत्तरे कूले संस्थितः पापनाशनः ॥ ४६ ॥ अर्चनात्तस्य देवस्य नश्येत् नो युधिष्ठिर ॥ पितरस्तु सिमायान्ति ब्रह्मलोकमवाप्नुयुः ॥ ४७ ॥ लङ्केश्वराद्विचिणतः सिद्धलिङ्गप्रकीर्तितम् ॥ अर्चं नात्स्पर्शनात्तस्य गाणपत्यमवाप्यते ॥ ४८ ॥ विश्वेश्वरं महालिङ्गं सर्वदेवमयं शुभम् ॥ शुक्लाष्टम्याञ्च वैशाखे लिङ्गा युतफलं लभेत् ॥ ४९ ॥ अर्चनात्तस्य लिङ्गस्य शिवस्यानुचरो भवेत् ॥ ततो गच्छेन्महाराज रेवाया उत्तरतटे ॥ ५० ॥ पापप्रणाशनं चैव लिङ्गं परमसिद्धिदम् ॥ अर्चनात्तर्पणात्स्नानाद्ब्रह्महत्यां व्यपोहति ॥ ५१ ॥ ऋणानां मोचनं चैव लिङ्गं पापप्रणाशनम् ॥ अनेकभावि कंचैव ऋणं तस्य प्रणश्यति ॥ ५२ ॥ तिलोदकप्रदानेन ऋणमोचनदर्शनात् ॥ पितरस्तस्य तुप्यन्ति यावच्चन्द्रार्क्षतारकम् ॥ ५३ ॥ अथान्यत्परमं लिङ्गं त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् ॥ दारुवने सिद्धलिङ्गं कथं पश्यन्ति कश्मलाः ॥ ५४ ॥ नर्मदाचरुसम्भेदे स्नानं कृत्वा यथोदितम् ॥ स्नापयित्वा दकेनेशं बिल्वपत्रैश्च पूजना का फल पाता है और महादेवजी का अनुचर (गण) होता है तदनन्तर हे महाराज ! नर्मदा के उत्तर तटको जावे ॥ ५५ ॥ ४६ ॥ वहां परमसिद्धिका देने वाला, पापप्रणाशन लिङ्ग है उसके पूजन व तर्पण और स्नानसे ब्रह्महत्याको दूर करता है ॥ ५६ ॥ व वही पापोंका नाश करनेवाला ऋणमोचन लिङ्ग है उसके पूजने वाले के अनेक जन्मोंका ऋण नष्ट होजाता है ॥ ५७ ॥ तिलोदक के देने से और ऋणमोचन के दर्शन से जबतक चन्द्र, सूर्य और नक्षत्र रहते हैं तबतक उसके पितर तृप्त रहते हैं ॥ ५८ ॥ अब इसके अनन्तर एक और तीनों लोकों में विदित दारुवनमें उत्तम सिद्धलिङ्ग है उसको पापी कैसे देखसके हैं ॥ ५९ ॥ नर्मदा और

वाजाओं को बजातेहुये ॥ ६१ ॥ वहां महादेवजी नाचते हैं और सब देवता नाचते हैं तिससे वह दारुवन कहागयाहै और वहां पापोंका नाश करनेवाला लिङ्गभी है ॥ ६२ ॥ उन देवके पूजन करनेसे गाणपत्यको प्राप्त होताहै वहीं सब देवताओंका स्वरूप, शुभ, विमलेश्वर लिङ्गहै ॥ ६३ ॥ वहां स्नान करनेसे स्वर्ग को जाते हैं और जो मरे हैं वे फिर नहीं होते हैं वहां देवता और दैत्य महादेव करके निर्मल देहवाले करदियेगये और हे महाराज ! सब स्वर्गको प्राप्त करदिये गये और तिलो दक व पिण्डदान करके जो मनुष्य वहां पितरों को तुप्त करता है ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ वह परम स्थान को प्राप्त होताहै जहां महेश्वरदेव रहते हैं चन्द्रमा और सूर्यका ग्रहण

श्वरंतत्रलिङ्गं सर्वदेवमयंशुभम् ॥ ६३ ॥ स्नानात्तत्रदिव्यान्ति येमृतानपुनर्भवाः ॥ निर्मलीकृतदेहास्तु कृतास्तत्रसुरा
सुराः ॥ ६४ ॥ पिनाकिनामहाराज नीतास्सर्वैत्रिविष्टपम् ॥ तिलोदकैःपिण्डदानैः पितृवृप्रीणातियोनरः ॥ ६५ ॥ सग
च्छतिपरंस्थानं यत्रदेवोमहेश्वरः ॥ चन्द्रसूर्यग्रहेप्राप्ते दानसंख्यानविद्यते ॥ ६६ ॥ शिवमभ्यर्च्यतत्रैव गाणपत्यमवा
प्नुयात् ॥ विमलेश्वरंतत्रलिङ्गं स्वयंविद्धिमहेश्वरम् ॥ ६७ ॥ व्याघ्रेश्वरंयत्रलिङ्गं व्याघ्रीयत्रदिवंगता ॥ तिलोदकप्र
दानेन हविषापिण्डदानतः ॥ ६८ ॥ पितृनुद्धरतेपुत्रः शतपूर्वास्तथापरान् ॥ वसेत्सवारुणेलोके यावदिन्द्राश्रतुर्दश ॥
६९ ॥ अर्चनात्तस्यदेवस्य कीर्तनाच्छ्रवणादपि ॥ इन्द्रलोकमवाप्नोति सत्यमेतन्मयोदितम् ॥ ७० ॥ इति श्रीस्कन्दपु
राणरेवाखण्डेचक्रस्वामिवर्णनोनामाष्टत्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३८ ॥ * ॥ * ॥

प्राप्त होनेपर जो दान कियाजाता है उसके पुण्यकी संख्या नहीं है ॥ ६६ ॥ वहीं शिवजी का पूजन करके गणोंकी राज्यको पाताहै वहां विमलेश्वरलिङ्गको साक्षात् महादेवही जानो ॥ ६७ ॥ जहां व्याघ्रेश्वर लिङ्ग है व जहा व्याघ्री स्वर्गको प्राप्त हुई है वहां तिलोदक के देने से और खीर करके पिण्डों के देने से ॥ ६८ ॥ पुत्र इधर उधर के सौ पितरों को उद्धार करताहै और वह जबतक चौदह इन्द्र रहते हैं तबतक वरुणके लोक में रहताहै ॥ ६९ ॥ उन देवके पूजन व कीर्तन व श्रवण से इन्द्रलोकको प्राप्त होताहै यह शुभ करके सत्य कहा गयाहै ॥ ७० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणरेवाखण्डेप्राकृत भाषासुत्रोद्देशचक्रस्वामिवर्णनोनामाष्टत्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३८ ॥

चरुके सङ्गम में यथोक्त स्नान करके और जलसे महादेवजी को स्नान कराके विल्वपत्रों करके पूजनसे उस पूजन करनेवालेकी पार्वती और महादेव के पुरसे फिर आवृत्ति नहीं होती है ॥ ५२ ॥ ओंवलाके बरान्न चतुष्केश्वर नामका सिद्धलिङ्ग देवता और दैत्यों करके पूजन किया गया है उसको मनुष्य नहीं देखसके है ॥ ५४ ॥ यहां जो परमधार्मिक पुत्र श्राद्ध करता है उसके पितर महाप्रलय तक तृप्तरहते हैं ॥ ५५ ॥ शाकल्य का पवित्र आश्रम दशहजार योजन का निस्तास्वाला है यज्ञपर्वता के आश्रित होकर चरुका नामकी नदी निकली है ॥ ५६ ॥ बृहस्पति जिनके पुरोहित ऐसे इन्द्र करके वहां यज्ञ कियागया राव देवताओं करके अत्यन्त पुरयवाला यह स्थान

तु ॥ ५२ ॥ नतस्य पुनरावृत्तिरुमामाहेश्वरात्पुरात् ॥ ५३ ॥ चतुष्केश्वरं सिद्धलिङ्गं भामलक्याः प्रमाणतः ॥ अर्चितं वै सुरैर्
दैत्यैर्न तं पश्यन्ति मानवाः ॥ ५४ ॥ करोत्यत्र तु यः श्राद्धं पुत्रः परमधार्मिकः ॥ पितरस्तस्य तृप्यन्ति यावदाहुतसंस्तुव
म ॥ ५५ ॥ शाकल्यस्याश्रमं पुण्यं योजनायुतविस्तरम् ॥ यज्ञपर्वतमासाद्य निःस्थिता चरुकानदी ॥ ५६ ॥ शक्रेणैष्टु
रातत्र बृहस्पतिपुरोधसा ॥ एतत्पुण्यतमं लोके गीयते सर्वदैवतैः ॥ ५७ ॥ चन्द्रसूर्योपरागे तु यत्फलं कुरुजाङ्गले ॥ रे
वाचरुकसंयोगे तत्फलं शिवकीर्तितम् ॥ ५८ ॥ तत्राख्यातं दारुवनं भुवि सर्वैर्निषेवितम् ॥ मुनीनां षष्टिसाहस्रैस्त्रेतातपसि
संस्थितैः ॥ ५९ ॥ कन्दमूलफलाहारैरग्निहोत्रपरायणैः ॥ एतत्तीर्थप्रभावेण गतास्ते ब्रह्मणः पुरीम् ॥ ६० ॥ निहत्य
चान्धकं तत्र ननर्तं भगवाञ्छिवः ॥ गणानां नायकास्सर्वे नानावाद्यान्वादयन् ॥ ६१ ॥ तत्र नृत्यति देवेशः सर्वानृत्य
न्ति देवताः ॥ तेन दारुवनं ख्यातं लिङ्गपापप्रणाशनम् ॥ ६२ ॥ अर्चनात्तस्य देवस्य गाणपत्यमवाप्नुयात् ॥ विमले

लोकमें गाया जाता है ॥ ५७ ॥ चन्द्र और सूर्य के ग्रहण बिषे जो कुरुक्षेत्र में पुण्य होता है वही नर्मदा और चरुकाके सङ्गममें शिवजी करके कहा गया है ॥ ५८ ॥ वहां की पृथिवीमें दारुवन विख्यात है जो कि त्रेताबिषे तपमें स्थित हो रहे कन्द, मूल और फलोंके आहार करनेवाले अग्निहोत्रमें परायण सब साठिहजार मुनियों करके सेवन किया गया है इस तीर्थ के प्रभाव करके वे ब्रह्माजीकी पुरीको जाते हुये ॥ ५९ ॥ ६० ॥ वहां अन्धकासुरको मारकर भगवान् शिवजी नाचते हुये और सब गणों के नायक

वे राजा वहां बैठेहुये मुनि का अभिवादन व नमस्कार करके बैठेतेहुये भारद्वाजभी उनके वास्ते श्रेष्ठ आसन देकर वचन बोले ॥ १० ॥ कि हे महाराज ! आपका आगमन बहुत अच्छा हुआ आपकी स्त्री करके सहित कुशल है हे धर्मज्ञ ! बहुतकाल में आप देखपड़े हो व आप एकाकी (इक्के) कैसे हो ॥ ११ ॥ तब राजा बोले कि हे ब्रह्मन् ! आज आपके चरणकमलों के दर्शनसे मेरी कुशलहै हे महर्षे ! यह मेरे पितरों के श्राद्धका समय वर्तमानहै ॥ १२ ॥ सो जिस प्रकार हम ब्राह्मण को भोजन करावें सो आप करने के लिये योग्य हो उन राजा के इस वचन को सुनकर भारद्वाजजी वचन बोले ॥ १३ ॥ कि सन्तोष को प्राप्त होरहे अखण्ड

तस्मैदत्त्वासनंमहत ॥ १० ॥ स्वागतन्तेमहाराज कुशलंसहमार्यया ॥ चिरं दृष्टोसिधर्मज्ञ एकाकीत्वंकथंचन ॥ ११ ॥
राजोवाच ॥ अद्यमेकुशलं ब्रह्मंस्त्वत्पादाम्बुजदर्शनात् ॥ महर्षेश्राद्धकालोयं पितॄणांममवर्तते ॥ १२ ॥ भोजयेहंय
थाविप्रं तथात्वंकर्तुमर्हसि ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वा भारद्वाजोब्रवीद्वचः ॥ १३ ॥ महर्षीणांसहस्राणि तुष्टानामूर्ध्वरेतसा
म् ॥ हंसलोमशमुख्यानां यदिभोजयितुंचमः ॥ १४ ॥ पश्चात्प्रवर्ततेश्राद्धं सत्यमेतद्ब्रवीम्यहम् ॥ दद्याहेममयंपी
ठं दद्याधान्यंतथावसु ॥ १५ ॥ मधुधेनुंतथादिव्यां पयोधेनुंतथैवच ॥ अग्निशौचस्यकौपीनं वस्त्रस्यतुविशाम्पते ॥
१६ ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वा भारद्वाजस्यभूपतिः ॥ एवमस्त्विदितंचोक्त्वा सर्वपत्न्यैर्न्यवेदयत् ॥ १७ ॥ महोजंकल्पयि
त्वातु पितृकार्येनिवर्तये ॥ श्रौतस्मातादिकंकर्म आमिषंपितृतर्पणम् ॥ १८ ॥ इत्यादिस्मृतिवाक्यानि पर्यालोच्य

ब्रह्मचारी हंस लोमश आदि हजारों महर्षियोंको भोजन कराने के लिये जो तुम समर्थ होवो ॥ १४ ॥ तो पीछे श्राद्ध प्रवृत्त होगा यह हम सत्य कहते हैं और सुवर्णका आसन देवोगे व अन्न, द्रव्य तथा दिव्य मधुधेनु, पयोधेनु और अग्निमें पवित्र किये गये सुनहले वस्त्रका कौपीन हे विशाम्पते ! जो देवोगे तो श्राद्ध होगा ॥ १५ ॥ राजा उन भारद्वाज के इस वचनको सुनकर ऐसाही होगा यह भारद्वाज सं कहकर फिर सब वृत्तान्त अपनी रानीसे कहतेहुये ॥ १७ ॥ बड़े बैलको मारकर हम पितृकार्य को करें श्रौत और स्मार्त आदि जो कर्म है उसमें मांसही पितरोंका वृत्त करनेवालाहै ॥ १८ ॥ इत्यादि स्मृतियों के वाक्यों को बार बार विचार करके

युधिष्ठिरजी बोले कि हे महाभाग ! विघ्न करनेवालों के समागममें सब पापों का नाश करनेवाला जो व्याघ्रेश्वर नामक लिङ्ग आप करके कहा गया है ॥ १ ॥ हे मुने ! उसके प्रभाव को जानने की हम फिर इच्छा करते हैं तब मार्कण्डेयजी बोले कि हे राजन् ! सब पापोंको नाश करनेवाली दिव्य कथाको सुनो ॥ २ ॥ सत्य धर्म में तत्पर पुण्ड्रवर्धन के रहनेवाले परमधार्मिक पूर्वकाल में बभ्रुनाम के राजा होतेहुये ॥ ३ ॥ पिताका दयाह प्राप्त होनेपर श्राद्ध के समयमें संयम को प्राप्त हो रहे वे राजा नित्य और नैमित्तिककर्म पिताके वास्ते करतेहुये ॥ ४ ॥ यज्ञका समय निवृत्त होनेपर हे भारत ! यह राजा बुद्धिको प्राप्त होकर चिन्ता करतेहुये और यह

युधिष्ठिरउवाच ॥ लिङ्गव्याघ्रेश्वरन्नाम विघ्नकर्तृसमागमे ॥ कथितं यन्महाभाग सर्वपापविमोक्षणम् ॥ १ ॥ प्र भावैवेदितं तस्य पुनरिच्छाम्यहमुने ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ शृणुराजन्कथां दिव्यां सर्वपापप्रणशिनीम् ॥ २ ॥ बभ्रुर्नामपुराचासीद्राजा परमधार्मिकः ॥ पुण्ड्रवर्धनवासी च सत्यधर्मपरायणः ॥ ३ ॥ पितुः क्षयाहेसम्प्राप्ते श्राद्धकालेषु संयतः ॥ नित्यं नैमित्तिकं कर्म पित्रर्थं सचकार ह ॥ ४ ॥ यज्ञकाले निवृत्तेथ बुद्धिप्राप्य तु भारत ॥ चिन्तयामास राजा सौ किङ्करोमीति चाब्रवीत् ॥ ५ ॥ ऋषयो निरपेक्षाः कन्दमूलफलाशिनः ॥ विप्रातिथिनपश्यामि कम्भोजयितुमुत्सहे ॥ ६ ॥ संचिन्त्य विप्रभोज्यार्थं पाकमप्सु व्यनक्ति पत् ॥ ऋग्वेदश्च ततो वाक्यं कोपात्प्राहतस्तदा ॥ ७ ॥ इदानीं द्वापर स्यान्ते वर्तते पापसम्भवः ॥ वैवस्वतेन्तरे प्राप्ते ब्राह्मणालुब्धकामुकाः ॥ ८ ॥ ते भुञ्जन्कामुकाः सर्वे राजद्रव्यं सकलिवष म् ॥ देशैकदाचित्पुण्याहे भारद्वाजाश्रमंगतः ॥ ९ ॥ सोभिवाद्यनमस्कृत्य मुनिं तत्र व्यवस्थितः ॥ भारद्वाजो ब्रवीद्वाक्यं कहते हुये कि अब हम क्या करें ॥ ५ ॥ कन्द, मूल और फलों के खानेवाले ऋषि तो आशाओं से निरपेक्ष हो रहे हैं हम ब्राह्मण अतिथि को नहीं देखते किसको भोजन कराने का उरसाह करें ॥ ६ ॥ ब्राह्मण को भोजन कराने के वास्ते विचारकरके पाक को जलमें डाल दिया तब कोपसे उस समय में ऋग्वेद वचन बोला कि ॥ ७ ॥ इस समय द्वापरके अन्त में पापका सम्भव वर्तमान हो रहा है इस वैवस्वतके अन्तरको प्राप्त होनेपर ब्राह्मण लोग लोभकी इच्छा करनेवाले हो रहे हैं ॥ ८ ॥ वे सब कामना करनेवाले ब्राह्मण पापसे युक्त राजाओं की द्रव्यका भोग करते हैं तदनन्तर किसी और पुण्यवाले दिन राजा भारद्वाजके आश्रमको जाते हुये ॥ ९ ॥

तदनन्तर श्रेष्ठ बैलको मारकर उन पितरों को तृप्त करतेहुये ॥ १६ ॥ तदनन्तर बैलको पशु जानकर भारद्वाज आदिक मुनिलोग उस कर्म करके कोप को प्राप्त हुये कोपके भारसे जलतेहुये उक्त मुनिलोग राजा और रानीकी निन्दा करते हुये बोले कि मधुक और मांस आदिकों का मद्य वनाकर व गोमांसका भक्षण करके ॥ २० ॥ २१ ॥ ब्राह्मण तप्तकृच्छ्रको कैरे तत्पश्चात् यज्ञोपवीत करके शुद्ध होताहै अमन्यका भक्षणकरके ब्राह्मण सूखेगोबर की अग्निमें प्रवेश करै तब शुद्ध होता है ॥ २२ ॥ इस से तुम्ह करके आठहजार तपस्वी मारडाले गये ऐसे पुरुषका हव्य देवता नहीं ग्रहण करते हैं फिर पितर कैसे ग्रहण करसके हैं ॥ २३ ॥ तुम्ह करके

कुपिताः क पुनः पुनः ॥ महोक्षञ्चततोहत्वा तर्पयामासतान्पितॄन् ॥ १६ ॥ अनङ्गाहंपशुंज्ञात्वा भारद्वाजादयस्ततः ॥

पुनः पुनः ॥ महोक्षञ्चततोहत्वा तर्पयामासतान्पितॄन् ॥ १६ ॥ अनङ्गाहंपशुंज्ञात्वा भारद्वाजादयस्ततः ॥ सुरामांसादिमाध्वीकं कृत्वागोमांसम मणतेन राज्ञीराजानमेवच ॥ २० ॥ कोपसम्भारसन्तप्ता गर्हयन्तोब्रुवंस्तदा ॥ सुरामांसादिमाध्वीकं कृत्वागोमांसम क्षणम् ॥ २१ ॥ तप्तकृच्छ्रचरेद्विप्रो मौञ्जीबन्धेनशुद्ध्यति ॥ अभक्ष्यमज्जणं कृत्वा करीषाग्नौविशेद्विजः ॥ २२ ॥ घा तितानित्वयाचाष्टौ सहस्राणितपस्विनाम् ॥ हव्यन्देवानगृह्णन्ति कथञ्चपितरः पुनः ॥ २३ ॥ त्वयावैक्रतवश्चेष्टास्तेग तार्वाश्वयोनिषु ॥ व्यर्थमासतपस्तेद्य मूलनाशस्त्वयाकृतः ॥ २४ ॥ बभ्रुस्त्वाच ॥ वेदोक्तंयः परित्यज्य धर्ममन्यं समा चरेत् ॥ दशवर्षसहस्राणि श्वयोनौजायतेध्रुवम् ॥ २५ ॥ वेदार्थनिन्दकायेवै ब्राह्मणज्ञानदुर्बलाः ॥ इहजन्मनिशूद्रा स्ते मृताः श्वानोभवन्ति ॥ २६ ॥ गोमेधोहयमेधश्च नरमेधस्तथापरः ॥ क्षत्रियास्त्वथजीवन्ति पूज्यन्तेदेवमानु षेः ॥ २७ ॥ राज्ञस्तद्वचनं श्रुत्वा भारद्वाजोऽपन्नृपम् ॥ यस्मान्महोक्षमासेन तर्पिता ब्राह्मणास्त्वया ॥ २८ ॥ भवत्त

जितने यज्ञ किये गये वे सब कुत्तों को प्राप्त हुये आज तेरा तप व्यर्थ होगया तुम्ह करके मूल नाश करदिया गया ॥ २४ ॥ तब बभ्रुराजा बोले कि जो वेदोक्त धर्मको छोड़कर और धर्मको करताहै वह निश्चयकरके दशहजार वर्ष तक कुत्तेकी योनिमें उत्पन्न होताहै ॥ २५ ॥ ज्ञानसे दुर्बल जो ब्राह्मण वेदके अर्थकी निन्दाकरने वाले होते हैं वे इस जन्ममें शूद्रहैं और मेरेपर कुत्तेहोतेहैं ॥ २६ ॥ गोमेध व अश्वमेध और नरमेध करतेहुये क्षत्रिय जीते हैं और वे देवता व मनुष्योंकरके पूजित होते हैं ॥ २७ ॥ राजाके इस वचनको सुनकर भारद्वाज राजाको शापदेतेहुये कि जिससे बैलके मांससे तुम्हकरके ब्राह्मण तृप्तकियेगये ॥ २८ ॥ इससे इसपापकरके तू व्याघ्र

हो और तेरी स्त्री व्याघ्री होवे देवताओंके हजार वर्षतक पृथिवीमें घूमाकरोगे ॥ २९ ॥ वड़े तेजवालो उन मुनि के इस वचनको सुनकर यशवाली रानी सुधर्मा वचन बोली ॥ ३० ॥ कि जिससे वेदोंक कर्मका करनेवाला मेरा पति शाप दियागया और वैसेही निर्दोष धर्मिष्ठ, पतिव्रता मैं शाप दीगई ॥ ३१ ॥ इससे इसी पापकरके दुःखित हो रहे दशहजार वर्षतक आप लोग महाघोर ब्रह्मराक्षस होवोगे ॥ ३२ ॥ कण्टकों से युक्त निर्जल मारवाड़देशमें जुधा और तुपासे कष्टित पीछे लगेहुये कौवा और गीधोंकरके युक्तरहोगे ॥ ३३ ॥ वहां भारद्वाज और रानी परस्पर ऐसे शाप देतेहुये तदनन्तर हे नृप ! भारद्वाज उन ब्राह्मणों करके सहित पुण्यकर्म को करके ॥ ३४ ॥

नेनपापेन व्याघ्रोव्याघ्रीतवप्रिया ॥ दिव्यवर्षसहस्रं तु वसुधां विचरिष्यथः ॥ २९ ॥ तस्य तद्वचनं श्रुत्वा मुनेरभितेजसः ॥ सुधर्माचाब्रवीद्वाक्यं राजपत्नी यशस्विनी ॥ ३० ॥ वेदोक्तकर्मकर्ता तु यतः शप्तः पतिर्मम ॥ पतिव्रताच निर्दोषा धर्मिष्ठा हन्तैव च ॥ ३१ ॥ दशवर्षसहस्राणि तेन पापेन दुःखिताः ॥ भविष्यथ महाघोरा यूयं वै ब्रह्मराक्षसाः ॥ ३२ ॥ निर्जले मरुदेशे च अपरे कण्टकावृते ॥ क्षुधार्ताश्च तृषार्ताश्च काकगृध्रैरनुदुताः ॥ ३३ ॥ भारद्वाजश्च राज्ञी च शप्त्वा तत्र परस्परम् ॥ भारद्वाजश्च सार्द्धन्तैः कृत्वा पुण्यं ततो नृप ॥ ३४ ॥ ब्रह्मलोकं जगामाथ ब्राह्मणैस्सह भारत ॥ सोमिवाद्यथ शान्त्या यं ब्रह्माणं सुरसत्तमम् ॥ ३५ ॥ सर्वे न्यवेदयत्तत्रामध्यभोज्यञ्च यत्कृतम् ॥ ब्रह्मोवाच ॥ लोकापचरितं कर्म न कार्यं देववर्जितम् ॥ ३६ ॥ उक्तानि च निषिद्धानि धर्मधर्म्मविचारणे ॥ लोकोक्तं विहितं कर्म त्रयीमार्गं विचारितम् ॥ ३७ ॥ कर्तव्यं नु प्रयत्नेन स्वर्गमोक्षप्रदायकम् ॥ बोधिता ब्राह्मणास्तेन ब्रह्मणानृपतिस्तदा ॥ ३८ ॥ शापान्तः कथितं ब्रह्मलोकको जाते हुये तदनन्तर हे भारत ! ब्राह्मणोंकरके सहित वे भारद्वाज जी देवताओं में श्रेष्ठ ब्रह्माजी को यथायोग्य अभिवादन करके ॥ ३५ ॥ जो कुछ वहां अभक्ष्य भक्षण किया था वह सब ब्रह्माजी से कह दिया तब ब्रह्माजी बोले कि लोक में जो निषिद्ध कर्म है वह देवताओं को छोड़कर और को नहीं करना चाहिये ॥ ३६ ॥ धर्म और अधर्म के विचार करने में यह निश्चित होता है कि कहेहुये भी निषिद्ध हैं और निषिद्ध भी कहेहुये हैं इससे लोकमें जो कर्म कहा गया है और विचारेहुये वेदमार्ग में भी कहाहुआ होवे ॥ ३७ ॥ वह कर्म यत्नकरके करना चाहिये क्योंकि वही कर्म स्वर्ग और मोक्षका देनेवाला होता है इसप्रकार उस समयमें उन

ब्रह्माजी करके ब्राह्मण और राजा बोध करादिये गये ॥ ३८ ॥ और उन्हीं ब्रह्माजी करके उन लोगोंके शापका अन्त भी कह दिया गया ब्रह्माजी ने कहा कि पापकर्म के करनेवाले आप लोगों के शापका अन्त मुझकरके देखा गया है ॥ ३९ ॥ युगान्तर में पुण्यके क्षय होने पर तुम लोग शापको प्राप्त हुये हो इससे जो महासुनि मार्कण्डेयजी नर्मदातीरपर रहते हैं ॥ ४० ॥ वे आप लोगों को उपदेश देंगे जिससे तुम लोग मोक्षको प्राप्त हो जाओ तदनन्तर बहुत कालकरके देवयोगसे नर्मदातीर के रहनेवाले मार्कण्डेय मुनिको वे सब लोग प्राप्त होते हुये रीतिपूर्वक उन ऋषिका अभिवादन व प्रणाम करके ॥ ४१ ॥ आपसमें अपने कर्मको कह रहे वही स्थित होते

स्तेषां तेनैव परमोष्ठिता ॥ शापस्यान्तो मया दृष्टो भवतां पापकर्मिणाम् ॥ ३९ ॥ पुण्यक्षये च क्षमास्तु सम्प्राप्ते तो युगा
न्तरे ॥ नर्मदातीरवासीयो मार्कण्डेयो महासुनिः ॥ ४० ॥ सदास्यत्युपदेशो येन मोक्षमवाप्स्यथ ॥ ततः कालेन मह
ता मार्कण्डेयं मुनिं ज्ञताः ॥ ४१ ॥ देवयोगेनेते सर्वे कल्पगातीरवासिनम् ॥ अभिवाद्यथान्यायं तमृषिं प्रणिपत्य च ॥
४२ ॥ स्थिताः स्वकर्म तत्रैव व्याहरन्तः परस्परम् ॥ दृष्ट्वा तान् श्रित्तया मास मार्कण्डेयो महासुनिः ॥ ४३ ॥ मिथुनं व्या
घ्ररूपेण व्याहरन्मानुषीं द्विरम् ॥ केन कर्मविपाकेन ब्राह्मणा ब्रह्मराक्षसाः ॥ ४४ ॥ एवं संचिन्त्य मार्कण्डो भारद्वाज
मथाब्रवीत् ॥ दम्पती व्याघ्ररूपेण ब्राह्मणा ब्रह्मराक्षसाः ॥ ४५ ॥ यूयं च विहृता काराः कथय ध्वंकथञ्च तत् ॥ भारद्वा
ज उवाच ॥ शृणु ब्रह्मन्समासेन कथ्यमानं वचो मम ॥ ४६ ॥ भविष्यभूत तत्त्वज्ञ त्रिकालज्ञ त्रिवेदवित् ॥ बभ्रुर्नामा चक्र

हुये तब महासुनि मार्कण्डेयजी उनको देखकर चिन्ता करते हुये ॥ ४३ ॥ कि व्याघ्रके रूपसे मनुष्यवाणीको बोल रहा स्त्री पुरुषका जोड़ा और ये ब्राह्मण लोग ब्रह्मराक्षस
किस कर्म के फलसे हुये ॥ ४४ ॥ इस प्रकार विचारकरके मार्कण्डेयजी भारद्वाज जीसे बोले कि व्याघ्रके रूपकरके ये स्त्री पुरुष और भयानक आकारवाले ब्रह्मराक्षस
हो रहे तुम ब्राह्मण लोग कहो कि तुम सबोंका यह हाल कैसे हुआ तब भारद्वाजजी बोले कि हे ब्रह्मन् ! संक्षेपसे कह जा रहे हमारे वचनको आप सुनो ॥ ४५ ॥
४६ ॥ हे होनेवाले और होगये के तत्त्वके जाननेवाले ! व हे तीनों कालों के जाननेवाले ! और हे तीनों वेदों के जाननेवाले ! पुण्ड्रवर्द्धन का रहनेवाला यह बभ्रु

नामका चक्रवर्त्ती राजा है ॥ ४७ ॥ और इसीकी यह पतिव्रता सुधर्मानामकी धर्मपत्नी है एक समय श्राद्धकालमें इस राजाने ब्राह्मण अतिथिको नहीं पाया ॥ ४८ ॥ तब मुझको विचारकरके मेरे आश्रमको प्राप्तहुआ और मेरेपांव अपने शिरकरके ग्रहण करताहुआ तदनन्तर मुझसे वचन बोला ॥ ४९ ॥ कि मेरे पितरों के श्राद्धका समय है सो मुझपर आप प्रसन्नता करिये तब मुझकरके यह उपदेश दियागया कि इस समय मुनियों को तुम भोजन करावो ॥ ५० ॥ तब श्रेष्ठ बैलको मारकर इस करके वे तपस्वी मुनिलोग भोजन करादियेगये तब मुझकरके इसको शाप दियागया कि तू शीघ्रही व्याघ्रयोनि को प्राप्तहोगा ॥ ५१ ॥ तब इसकी स्त्री मुझको उपटकर

वर्ती पुण्ड्रवर्धनसंस्थितः ॥ ४७ ॥ सुधर्मानामतस्यैव धर्मपत्नीपतिव्रता ॥ एकदाश्राद्धकालेतु नातिथिप्राप्तवान्द्विजम् ॥ ४८ ॥ सञ्चिन्त्याथतदात्मानमागतोह्याश्रमंमम ॥ पादौजग्राहशिरसा ततोवचनमब्रवीत् ॥ ४९ ॥ पितृणांश्राद्धकालोमे प्रसादःक्रियतांमयि ॥ ततोमयोपदिष्टोसौ सुनीस्त्वंभोजयाधुना ॥ ५० ॥ महोच्चंशतयित्वातु भोजितास्ते तपोधनाः ॥ शशोमयाचशीघ्रत्वं व्याघ्रयोनिङ्गमिष्यसि ॥ ५१ ॥ निर्भर्त्स्यमाञ्चतत्पत्नी शशापब्रह्मराजसाः ॥ यूयंमवततेसर्वे मरुदेशेक्षुधाहिताः ॥ ५२ ॥ ब्रह्माणंचततःप्राप्ता विवादेनपरस्परम् ॥ ब्रह्मणप्रेषितास्तेभीत्वत्सकाशमिहागताः ॥ ५३ ॥ एतत्तेकथितंसर्वं कारणंविकृतेमहत् ॥ नान्यत्स्थानंप्रपश्यामो यत्रास्माकंस्थितिर्भवेत् ॥ ५४ ॥ नदिवानैवरात्रिश्च नसूर्योनचचन्द्रमाः ॥ नग्रहानैवऋक्षाणि ऋषयोयत्रमण्डलम् ॥ ५५ ॥ सरितःसागराःशैला भूतग्रामंचतुर्विधम् ॥ आसीदिदंतमोभूतमादिमध्यान्तवर्जितम् ॥ ५६ ॥ सुधावायंनजानीमो नचाज्ञायतकिञ्चन ॥ न्यग्रोधं

शाप देतीहुई कि तुम सब जुधासे विक्ल मारवाड देशमें ब्रह्मराजस होजावो ॥ ५२ ॥ तदनन्तर इस आपस के विवादसे हम सब ब्रह्माजी को प्राप्तहुये ब्रह्माजी करके भेजेगये हम सब यहां आपके समीप आये हैं ॥ ५३ ॥ यह सब अपने लोगोंके बिगाडमें जो बड़ा कारणथा वह आपसे कहागया हमलोग और स्थानको नहीं देखते जहां हमलोगोंकी स्थितिहोवे ॥ ५४ ॥ न दिन, न रात्रिही, न सूर्य, न चन्द्र, न ग्रह व नक्षत्र, ऋषिलोग, नदियां, समुद्र, पर्वत और चारो प्रकारका भूतग्राम कुछ भी नहीं रहा आदि, मध्य और अन्त करके रहित यह सब जगत अन्धकाररूप होगया ॥ ५५ ॥ मोह को प्राप्तहोकर हमलोग कुछ नहीं जानते कुछ

भी नहीं जानाजाता है मेघोंके तुल्य, कालरूपवाले बारगद को नर्मदा के मध्य में देखते हैं और सब ब्राह्मणों में श्रेष्ठ आपको देखते हैं और कुछ भी नहीं देखते हैं इससे साक्षात् आपही हमारे पिता, गुरु, विष्णु, ब्रह्मा और शिव हैं ॥ ५८ ॥ विना इच्छा के पाप कियागया किन्तु आपही से उपस्थित होगया सो हे मुनिश्रेष्ठ ! इस घोर पाप से आपके प्रसाद से हम छूट जायेंगे ॥ ५९ ॥ सौ करोड़ कल्पों करके भी विना भोग कियाहुआ कर्म नहीं जीण होता है कियाहुआ शुभाशुभ कर्म अवश्य ही भोग करना पड़ेगा ॥ ६० ॥ तब मार्कण्डेयजी बोले कि वैदूर्य से परिचमभागमें ब्रह्मर्षियों के गणों करके सेवित पुण्यवाला शाकल्यका आश्रम है जहां महादेव

नर्मदामध्ये मेघामङ्कालरूपिणम् ॥ ५७ ॥ त्वैवैसर्वद्विजश्रेष्ठनान्यपश्यामि किञ्चन ॥ त्वंपितानो गुरुश्चैव हरिर्धाता स्वयं शिवः ॥ ५८ ॥ अकामतः कृतं पापं स्वयमेतदुपार्जितम् ॥ त्वत्प्रसादान्मुनिश्रेष्ठ मुञ्चामो घोरकिल्बिषात् ॥ ५९ ॥ ना मुक्तं बीयते कर्म कल्पकोटिशतैरपि ॥ अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम् ॥ ६० ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ शाकल्यस्याश्रमं पुरयं ब्रह्मर्षिगणसेवितम् ॥ वैदूर्यात्पश्चिमेभागे यत्र देवो महेश्वरः ॥ ६१ ॥ तत्र गत्वा च यूयं वै तपश्चोग्रं करिष्यथ ॥ जपध्यानपरानित्यं कन्दमूलफलाशिनः ॥ ६२ ॥ एवं द्वादश वर्षाणि सन्तिष्ठध्वं द्विजोत्तमाः ॥ यावद्वैवेदमानेन पुनः सृष्टिः प्रवर्तते ॥ ६३ ॥ तमो भूतमिदं सर्वं न प्राज्ञायत किञ्चन ॥ सर्वचकार भगवान् महाकालवधुर्धरः ॥ ६४ ॥ प्राणिनां कर्मणा ह्येतज्जगत्कालवशङ्कतम् ॥ वायुरग्निर्जलं पृथ्वी भूतग्राहश्चतुर्विधः ॥ ६५ ॥ कालस्य भोजनं सर्वं भस्मपुञ्जमिवाभवत् ॥ नाश्चर्यमत्र कर्तव्यं पुनस्सृष्टिर्भविष्यति ॥ ६६ ॥ तस्य तद्वचनं श्रुत्वा सर्वे ते पापयोनयः ॥ नमस्कृ

जी विद्यमान हैं ॥ ६१ ॥ वहां जाकरके आपलोग उग्र तपको करो नित्यही जप व ध्यान में तत्पर होवो कन्द, मूल और फलों के भोजन करनेवाले होवो ॥ ६२ ॥ हे द्विजोत्तमो ! इस प्रकार बारह वर्ष तक स्थित रहो जब तक वेद के प्रमाण से फिरसे सृष्टि प्रवृत्त होवे ॥ ६३ ॥ यह सब जगत् अन्धकाररूप हो रहा है इसमें कुछ नहीं जानपडता है, महाकालरूप को धारण कियेहुये भगवान् ने इस सब काम को किया है ॥ ६४ ॥ प्राणियों के कर्म करके यह सब जगत् काल के वशको प्राप्त हो रहा है वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी और चार प्रकार का भूतग्राम ॥ ६५ ॥ यह सब कालका भोजन है सो भस्म कासा ढेर होगया है इसमें कोई आश्चर्य नहीं करना

चाहिये क्योंकि सृष्टि फिर होवेगी ॥ ६६ ॥ उनके इस वचन को सुनकर वे सब पापयोनि मुनिवो में श्रेष्ठ कल्पजीवी, मार्कण्डेयजी को नमस्कार करके ॥ ६७ ॥ राजा व रानी और ऋषिलोग विमलेश्वर को जातेहुये फिर बहुतकाल करके सृष्टिभी प्रवृत्त हुई ॥ ६८ ॥ प्रजाओं के पति ब्रह्माजी आपही अनेक प्रकार की प्रजाओं को रचतेहुये कला, काष्ठा और सुहूर्त तथा स्थावर जङ्गम जगत् ॥ ६९ ॥ नदियां, समुद्र, वृक्ष, पर्वत, लता, जल, अग्नि तथा वायु और चारोंप्रकारके भूतग्राम को रचा ॥ ७० ॥ दाहिने नेत्रमें सूर्यको तथा और भी प्राणियों को उन ब्रह्माजी ने रचा और वैसेही उन्होंने बायें नेत्रमें चन्द्रमा को कल्पित किया ॥ ७१ ॥ इन श्रेष्ठ नक्षत्रों करके त्यमुनिश्रेष्ठं मार्कण्डेकल्पवासिनम् ॥ ६७ ॥ राजाचराजपत्नीच ऋषयोविमलेश्वरम् ॥ जग्मुःकालेनमहता पुनस्सृष्टिःप्रवर्तिता ॥ ६८ ॥ स्वयंप्रजापतिर्ब्रह्मा ससर्जविविधाःप्रजाः ॥ कलाःकाष्ठासुहूर्ताश्च जगत्स्थावरजङ्गमम् ॥ ६९ ॥ सरितस्सागरान्गुल्मान्पर्वतांश्चलतास्तथा ॥ आपोर्गिनैवैतथावायुं भूतग्रामंचतुर्विधम् ॥ ७० ॥ सूर्यञ्चदक्षिणेनेत्रे सोऽसृजत्प्राणिनस्तथा ॥ वामनेत्रेहिमांशुञ्च सतथापथ्यंकल्पयत् ॥ ७१ ॥ एतदृक्षत्वरैस्सार्द्धम्पवित्रं ध्रुवमण्डलम् ॥ ६९ ॥ स्वतःप्रभांचैव सर्वलोकप्रकाशिनीम् ॥ ७२ ॥ सृष्टाचान्द्रमसीज्योत्स्ना दिवारात्रीतथैवच ॥ अपरेशुचक्षीपेषु नसूर्यो नैवचन्द्रमाः ॥ ७३ ॥ रौद्रीप्रभास्ति तत्रैवं पुनस्सृष्टिःप्रवर्तिता ॥ पूर्णेतुद्वादशेवर्षे शापान्तेसमुपस्थिते ॥ ७४ ॥ अर्चयित्वा महेशानं रेवाव्याघ्रसमागमे ॥ भारद्वाजादयस्सर्वे ब्रह्मलोकमवाप्नुयुः ॥ ७५ ॥ कामिकंयानमारुह्य राजासु निर्युतस्तदा ॥ तीर्थस्यास्यप्रभावेण उमामाहेश्वरेपुरे ॥ ७६ ॥ व्याघ्रेश्वरोऽव्याघ्रकर्तुं सङ्गमेन्निदशार्चितः ॥ अन्यसहित पवित्र ध्रुवमण्डल व सब लोकों की प्रकाश करनेवाली सूर्यकी प्रभा ॥ ७२ ॥ व चन्द्रमा की उजरी रचीगई तथा दिन व रात्री रचीगई अन्य द्वीपों में न सूर्य और न चन्द्रमाही है किन्तु वहां रुद्रहीका प्रकाश है इस प्रकार फिर सृष्टि प्रवृत्त कीगई बारहवां वर्ष पूर्ण होनेपर और शापान्त को उपस्थित होनेपर ॥ ७३ ॥ ७४ ॥ नर्मदा और व्याघ्र के समागम में महादेवजीका पूजन करके भारद्वाज आदि सबब्राह्मण ब्रह्मलोकको प्राप्तहोतेहुये ॥ ७५ ॥ और उसीसमय अभीष्ट सवारी पर सवार होकर मुनियों करके युक्त राजा भी इस तीर्थके प्रभाव से उमामाहेश्वरपुरको जातेहुये ॥ ७६ ॥ व्याघ्रकर्ताके सङ्गम में देवताओं करके पूजित व्याघ्रेश्वर महा-

देव हैं परन्तु विमलेश्वरके बराबर और दिव्य लिङ्गको हम नहीं देखते हैं ॥ ७७ ॥ उस लिङ्गके पूजन व दर्शन तथा स्पर्शन से ब्रह्महत्या भी नष्टहोजाती है और पापों की क्या कथा है ॥ ७८ ॥ तीर्थों में श्राद्धके करने से पितरों की अन्त्य गति होती है हजारों करोड़ कल्प तथा सैकड़ों करोड़ कल्प भर तक ॥ ७९ ॥ इस तीर्थके प्रभावसे वैष्णवलोक में क्रीड़ा करते हैं यह श्रवण देखे व सुनेके अनुकूल आपसे सब कहागया ॥ ८० ॥ इसके सुनने व कहनेसे श्रद्धामेघ का फल होताहै ॥ ८१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणैवाखण्डेप्राकृतभाषास्तुत्रादेविमलेश्वरवर्णनोनामैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥ ॥ ॥ ॥

ह्रिङ्गन्नपश्यामि दिव्यं वै विमलेश्वरात् ॥ ७७ ॥ अर्चनान्तस्य लिङ्गस्य दर्शनान्स्पर्शनात्तथा ॥ ब्रह्महत्याप्रणश्येत पापेष्वन्येषु का कथा ॥ ७८ ॥ तीर्थेषु श्राद्धकरणात् पितॄणामन्त्यागतिः ॥ कल्पकोटिसहस्राणि कल्पकोटिशतानि च ॥ ७९ ॥ तीर्थस्यास्य प्रभावेण लोकैः क्रीडन्ति वैष्णवे ॥ एतत्ते कथितं सर्वं यथा दृष्टं यथा श्रुतम् ॥ ८० ॥ श्रवणात्कीर्तनादस्य श्रद्धामेघफलं लभेत ॥ ८१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणैवाखण्डे विमलेश्वरवर्णनोनामैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥

युधिष्ठिर उवाच ॥ मनसा चिन्तितं यच्च तदेव समुपस्थितम् ॥ लक्षणं सूत्रयागस्य पर्वतस्य तु वेष्टनम् ॥ १ ॥ कस्मिन्काले प्रकर्तव्यं विधानं विधिपूर्वकम् ॥ त्वमेव वेत्सि सर्वं विदितं कुरु साम्प्रतम् ॥ २ ॥ येन देवास्स गन्धर्वो मानुषाः पापयोनयः ॥ तत्र यागप्रभावेण दिवि देवत्वमागताः ॥ ३ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ श्रूयतां राजशार्दूल सूत्रयागस्य लक्षणम् ॥ चन्द्रसूर्योपरागे तु षडशीतिमुखेतथा ॥ ४ ॥ युगादौ विषुवच्चैव व्यतीपाते च संक्रमे ॥ कार्तिक्याञ्च तथा माध्यां वै

युधिष्ठिरजी बोले कि मनसे जो विचार कियागया वही उपस्थित हुआ इससे सूत्रयागका लक्षण और पर्वतका लपेटना ॥ १ ॥ विधिपूर्वक किस काल में करना चाहिये और उसका विधान भी क्या है सो सब आपही जानते हो इससे इससमय हमको भी विदित करो ॥ २ ॥ जिससे वहां याग के प्रभाव करके गन्धर्वों करके सहित देवता और पापयोनियों मनुष्य स्वर्गमें देवभावको प्राप्तहुये ॥ ३ ॥ तब मार्कण्डेयजी बोले कि हे राजशार्दूल ! सूत्रयागका लक्षण आप करके सुनाजोवे कि

चन्द्र व सूर्य के ग्रहणमें षडशीतिमुख संक्राति में ॥ ४ ॥ व युगादि, विषुव, व्यतीपात, संक्राति, कार्तिकी तथा माघी, वैशाखी में हे भारत ! ॥ ५ ॥ तथा सूर्यग्रहणके तुल्य कपिलापथी में ॥ ६ ॥ और वैशाखमासके शुक्लपक्षमें जो तीजहै व कार्तिकशुक्लपक्षमें जो नवमीहै व माघमासकी अमावास्या और भादो कृष्णपक्षकी त्रयोदशी ये युगादि तिथी हैं ॥ ७ ॥ हे कौन्तेय ! इन पर्वोंमें सूत्रयागकोकरै पूर्वकालमें यह याग अनन्त फलसे भराहुआ महादेव करके कहागयाहै ॥ ८ ॥ महादेवके तुल्य पर्वतको जो सूत्रसे लपेटताहै व पार्वती और गणेशकरके सहित महादेवको लपेटताहै ॥ ९ ॥ उतने हजारयुगभर स्वर्गलोकमें पूजित होताहै पुत्रवाली अपने पति करके संयुक्त

शाख्यांचिवभारत ॥ ५ ॥ सूर्योपरागतुल्यायां षष्ठ्यांहिकपिलस्यतु ॥ ६ ॥ वैशाखमासस्यतुयातृतीया नवम्यथोऽर्ज
स्यचशुक्लपक्षे ॥ माघेत्वमाचैवनभस्यकृष्णात्रयोदशीचितियुगादयस्तथा ॥ ७ ॥ पर्वस्वेतेषुकौन्तेय सूत्रयागन्तुका
रयेत् ॥ अनन्तफलसंयुक्तं शिवेनकथितम्पुरा ॥ ८ ॥ सूत्रेणवेष्टयेद्यस्तु पर्वतंशिवसन्निभम् ॥ उभयासहितन्देवं गणेशे
नतथैवच ॥ ९ ॥ तावद्युगसहस्राणि स्वर्गलोकेमहीयते ॥ पुत्रिणीभर्तुसंयुक्ता नारीतद्दोष्टिनीभवेत् ॥ १० ॥ कौशेयंपहु
सूत्रञ्च कार्पासञ्चमहीपते ॥ नवतन्तुञ्चयः कुर्याद्दशद्वादशतन्तुकम् ॥ ११ ॥ अष्टादशमहाराज चतुर्विंशतिवाक्रमा
त् ॥ जालयेत्कोटितीर्थे तु गन्धधूपेनवासयेत् ॥ १२ ॥ बध्नीयात्पुष्पमालाञ्च दीपमालांचबोधयेत् ॥ रात्रौजागर
णंकृत्वा अङ्कारेविधिपूर्वकम् ॥ १३ ॥ शिवध्यानपरोभूत्वानिराहारोनिशान्नयेत् ॥ प्रभातेचोत्सवंकुर्याद्दोङ्काराभ्यर्च
नन्तथा ॥ १४ ॥ न्यग्रोधेबन्धयेत्सूत्रं समाधिस्थो नरेश्वर ॥ कोटितीर्थततो गच्छेत्सर्वतीर्थभयंशुभम् ॥ १५ ॥ ऋण

स्त्री उसको लपेटनेवाली होवे ॥ १० ॥ हे महीपते ! कौशेय व रेशमी व कपासके सूत्रको जो मनुष्य नवतागका करे अथवा दश व बारह धागेका ॥ ११ ॥ व हे महाराज ! अठारह व चौबीस धागेका क्रमसे बनाने व उसको कोटितीर्थ में धोने व चन्दन और धूपसे बसावे ॥ १२ ॥ फूलोंकी मालाको बांधे और दियालियों को जलावे व अङ्कार में विधिपूर्वक रात्रिमें जागरण करके ॥ १३ ॥ महादेवजी के ध्यान में तत्पर होकर निराहार रात्रिको व्यतीतकरे प्रातःकाल उत्सव व अङ्कारजी का पूजनकरे ॥ १४ ॥ हे नरेश्वर ! सावधान होकर अत्यवट में सूत्रको बांधे तदनन्तर सब तीर्थों के स्वरूप, पवित्र कोटितीर्थ को जाने ॥ १५ ॥ फिर ऋणमोचन,

है तदनन्तर राव तीर्थमें अत्युत्तम जालेश्वरको जावे ॥ २५ ॥ वहां स्नानमात्रको कियेहुये मनुष्य संसार में फिर नहीं होता है तिलोदकके देने से पितरों की अ-
ज्ञयगति होती है ॥ २६ ॥ भैरवरूप को धारण करके बाणासुरके तीनपुर नर्मदाके जलके बीचमें महादेव करके प्रकाश करतेहुये पाशुपत अस्त्र करके गिरादियेगये
तदनन्तर वहीं उस अस्त्र के संयोग से पाताल से जालेश्वरनामका लिङ्ग शीघ्र उठताहुआ जोकि ब्रह्महत्या को नाश करता है तदनन्तर फिर कोटितीर्थ को आवे और
विधिपूर्वक स्नान करके ॥ २७ ॥ २८ ॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ ४० ॥ और यह कहे

रस्तत्र समवेनपुनर्भवेत् ॥ तिलोदकप्रदानेन पितृणामक्षयागतिः ॥ २६ ॥ भैरवरूपमास्थाय बाणस्यचपुत्रयम् ॥ पा

तितंजलमधेतु नर्मदायाहरेणैव ॥ २७ ॥ ज्वलत्पाशुपतस्त्रिण तत्रैवतदनन्तरम् ॥ तदस्त्रसङ्गमाच्छीघ्रं पाताला

चोत्थितन्ततः ॥ २८ ॥ लिङ्गजालेश्वरन्नाम ब्रह्महत्यांव्यपोहति ॥ कोटितीर्थततो गच्छेत्स्नात्वा च विधिपूर्वकम् ॥

२९ ॥ बलजंबवन्धयेत्सूत्रमोङ्कारस्य तु भारत ॥ अङ्कारं च समभ्यर्च्य दीपमालाञ्च बोधयेत् ॥ ३० ॥ सफलस्सूत्रयाग

स्तु त्वत्प्रसादान्महेश्वर ॥ यतींश्च भोजयेत्तत्र दद्याच्छक्त्या च दक्षिणाम् ॥ ३१ ॥ सार्द्धं च बन्धुभृत्यैश्च पारणं क्रिय

तेनृप ॥ यश्शरीरेण कष्टेन पर्यटोच्छिवपर्वतम् ॥ ३२ ॥ पदे पदे यज्ञफलं तस्य स्याच्छुक्लशरीरवती ॥ पुरा देवगणैस्सर्वै

स्मिद्धगन्धर्वकिन्नरैः ॥ ३३ ॥ विद्याधरैस्तथा यजैर्सुरैर्देवदानवैः ॥ चन्द्रादित्यग्रहैश्चैव नक्षत्रध्रुवमण्डलैः ॥ ३४ ॥

विश्वदेवैश्च साध्यैश्च मरुद्भिर्वसुभिस्तथा ॥ देवराजेन चन्द्राण्या सावित्र्या चैव भारत ॥ ३५ ॥ अरुन्धत्या सरस्वत्या

कि हे महेश्वर ! आप के प्रसाद से सूत्रयाग सफल होवे तदनन्तर वहा यतियोंको भोजन करावे और शक्तिके अनुसार दक्षिणा को देवे ॥ ३१ ॥ हे नृप ! फिर
भाई और सेवकों करके सहित पारण करे जो अपने शरीर के क्लेश से शिवजी के पर्वत का पर्यटन करता है ॥ ३२ ॥ उसको पग २ पर यज्ञका फल होता है यह
महादेवजी ने कहा है पूर्वकाल में सब देवगणों करके तथा सिद्ध, गन्धर्व, किन्नर ॥ ३३ ॥ विद्याधर तथा यज्ञ, असुर, दैत्य, दानव, चन्द्र, सूर्य आदि ग्रह, नक्षत्र,
ध्रुवमण्डल ॥ ३४ ॥ विश्वदेव, साध्य, मरुत, वसु, इन्द्र, इन्द्राणी, सावित्री, अरुन्धती, सरस्वती और गायत्री करके हे भारत ! वह पर्वत भक्तिकरके सूत्रसे लपेटा

पापनाशन व उत्तम नरकेश्वर व अत्यन्त शोभन गन्धर्वेश्वर लिङ्गको जावे ॥ १६ ॥ जोकि सब प्राणियोंको अदृश्यहै और नागकन्याओं करके पूजन किया जाता है हे राजन् ! वह मनुष्य उसमें स्नान करके गान्धर्व लोकको प्राप्त होता है ॥ १७ ॥ हे नृपश्रेष्ठ ! तदनन्तर उत्तम अङ्गारेश्वरको जावे उस लिङ्गके दर्शनसे गणोंकी राज्यको प्राप्त होता है ॥ १८ ॥ अङ्गार करके देवताओं के सौ वर्ष पर्यन्त तप किया गया वह अङ्गार इस तीर्थ के प्रभाव से ग्रह होगया ॥ १९ ॥ तदनन्तर सब तीर्थ जिसमें विद्यमान हैं ऐसे शुभरूप ब्रह्मावर्त को जावे हे राजन् ! वहां स्नानकरके मनुष्य शिवलोक को प्राप्त होता है ॥ २० ॥ व तिलोदक के देने से पितरों की परमगति होती

मोक्षपापनाशं नरकेश्वरसुत्तमम् ॥ गन्धर्वेश्वरलिङ्गन्तु गच्छेत्परमशोभनम् ॥ १६ ॥ अदृश्यं सर्वभूतानां नागकन्या
भिरर्च्यते ॥ तत्र स्नात्वा नरो राजगन्धर्वलोकमाप्नुयात् ॥ १७ ॥ ततो गच्छेन्नृपश्रेष्ठ अङ्गारेश्वरसुत्तमम् ॥ दर्शना
त्तस्य लिङ्गस्य गाणपत्यमवाप्यते ॥ १८ ॥ अङ्गारेण तपस्तप्तं दिव्यं वर्षशतं तथा ॥ ग्रहत्वमगमत्सोऽपि तीर्थस्यास्य प्र
भावतः ॥ १९ ॥ ब्रह्मावर्तततो गच्छेत् सर्वतीर्थमयं शुभम् ॥ तत्र स्नात्वा नरो राजञ्जिवलोकमवाप्नुयात् ॥ २० ॥
तिलोदकप्रदानेन पितॄणां परमागतिः ॥ दिव्यं वर्षसहस्रन्तु तपस्तेपेऽसुदुष्करम् ॥ २१ ॥ ब्रह्माचैव पुराकल्पे लोकालुग्रह
कारकः ॥ लिङ्गं मध्येऽश्वरन्नाम जलमध्ये व्यवस्थितम् ॥ २२ ॥ पूज्यते नागकन्याभिर्न तत्पश्यन्ति मानवाः ॥ दारुकेऽश्व
रलिङ्गन्तु सर्वपापप्रणाशनम् ॥ २३ ॥ अर्चनात्तस्य देवस्य नरो विद्याधरो भवेत् ॥ भृगुलिङ्गततो गच्छेद्भैरवो यत्र संस्थि
तः ॥ २४ ॥ भृगुगन्तवानरश्रेष्ठ मुच्यते ब्रह्महत्यया ॥ जालेश्वरं ततो गच्छेत्सर्वतीर्थोत्तमोत्तमम् ॥ २५ ॥ स्नानमानो न

है पूर्वकल्पमें लोकों के ऊपर अनुग्रह के करनेवाले ब्रह्माजी देवताओंके हजार वर्षतक अतिदुष्कर तप करतेहुये तब जलके मध्यमें मध्येऽश्वरनामका लिङ्ग उपस्थित हुआ ॥ २१ ॥ २२ ॥ वह नागकन्याओं करके पूजन किया जाता है उसको मनुष्य नहीं देख पाते हैं और भी सब पापोंका नाश करनेवाला दारुकेश्वरलिङ्ग है ॥ २३ ॥ उस देवके पूजनसे मनुष्य विद्याधर होता है तदनन्तर भृगुलिङ्गको जावे जहां भैरवजी विद्यमान हैं ॥ २४ ॥ हे नरश्रेष्ठ ! भृगुको जाकर मनुष्य ब्रह्महत्यारो छूट जाता

गया व महादेवका कहाहुआ फल भी उनको प्राप्तहुआ ॥ ३५॥ ३६ ॥ अहल्या, मेनका, रम्भा, घृताची वैसेही उर्वशी तथा अन्य तिलोत्तमा व नदियां और समुद्र ॥ ३७ ॥ इस पर्वतको सूत्र से लपेटने से दिशाओं के देवभावको प्राप्त होतेहुये जबतक चन्द्र व सूर्य व जबतक पृथिवी रहे ॥ ३८ ॥ तबतक सूत्रयागके प्रभाव से शिवजी के पुरमें वास करताहै हे राजन् ! यह जो सूत्रयागका फल आप से कहा गया ॥ ३९ ॥ इसके सुनने व कहने से महादेवजीका अनुचर होता है ॥ ४० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणैरेवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनुवादसूत्रयागवर्णनोनामचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥

गायत्र्यासचपर्वतः ॥ सूत्रेणवेष्टितोभक्त्या फलंप्राप्तंशिवोदितम् ॥ ३६ ॥ अहल्यामेनकारम्भा घृताचीचोर्वशीतथा ॥ तिलोत्तमा तथा चान्या सरितस्सागराश्च वै ॥ ३७ ॥ वेष्टनात्पर्वतस्यास्य दिग्देवत्वमवाप्तवान् ॥ यावच्चन्द्रश्चसूर्यश्च यावत्तिष्ठतिमेदिनी ॥ ३८ ॥ सूत्रयागप्रभावेण तावच्छिवपुरेवसेत् ॥ एतत्तेकथितंराजन् सूत्रयागस्ययत्फलम् ॥ ३९ ॥ श्रवणात्कीर्तनादस्य रुद्रस्यानुचरोभवेत् ॥ ४० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणैरेवाखण्डे सूत्रयागवर्णनोनामचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥

युधिष्ठिरउवाच ॥ कीर्तनंक्रोटितीर्थस्य मानसंख्याप्रमाणतः ॥ तीर्थानिचोत्तरयास्ये प्राकारेसंस्थितानिच ॥ १ ॥ कथयस्वप्रसादेन तानिमेमुनिसत्तम ॥ तेषान्तुदर्शनादेव पापंढुक्कृतकर्मिणाम् ॥ २ ॥ प्रणश्येत्तत्क्षणादेव तमस्सूर्योदयेयथा ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ उत्तरैयानितीर्थानि यानितीर्थानिर्दक्षिणे ॥ ३ ॥ लीयन्तेकोटितीर्थे तु साक्षाच्छिवपदेनृप ॥ पृथिव्यांयानितीर्थानि आसमुद्रान्तगोचरे ॥ ४ ॥ तानिसाक्षात्कोटितीर्थे लीयन्तेपरमेपदे ॥ कपिला युधिष्ठिरजी बोले कि हे मुनिसत्तम ! आपने कोटितीर्थ का कीर्तन किया अब उस तीर्थ के उत्तर व दक्षिण व चारोंतरफ जितने तीर्थ हैं उनको संख्या व प्रमाण से अपने प्रसाद करके मुझ से कहिये उनके दर्शनमात्र से पापकर्मवाले जीवोंका पाप ॥ १ ॥ २ ॥ उसी क्षण नष्ट होताहै जैसे सूर्यके उदय में अन्धकार नष्ट होताहै तब मार्कण्डेयजी बोले कि उत्तर में जो तीर्थ व दक्षिणमें जो तीर्थ हैं ॥ ३ ॥ वे सब साक्षात् शिवजी के पद कोटितीर्थ में लीन होते हैं हे नृप ! और समुद्र पर्यन्त पृथिवी

कुरुक्षेत्र, पुष्कर और अमरकण्टक में बराबर फल को पाता है जहां प्राची सरस्वती व महादेव व पश्चिम सरस्वतीका जल विद्यमान है ॥ १५ ॥ १६ ॥ वहां साढ़े बारह लाख वर्ष तक दान का फल रहता है इसी के बराबर यह सब कोटितीर्थ में भी होता है इसमें कोई संशय नहीं है ॥ १७ ॥ राहुसे ग्रसे हुये सूर्यमें नीति से पैदा किये हुये धनके दानका अनेक प्रकारका पुण्य होता है यह सिद्धान्त कहा गया है ॥ १८ ॥ यह प्रमाण ब्रह्म, विष्णु और शिवजी करके कहा गया है और सबका भी यही सम्मत है हे राजन् ! वे मनुष्य थोड़े सारवाले व माया से मोहित हैं जो समयपर अकार व नर्मदा को नहीं देखते हैं हे महाराज ! गौ और बकरीका जैसा अन्तर

॥ प्राचीसरस्वतीयत्र स्थाणुस्सारस्वतंजलम् ॥

पुष्करैरमरकण्टके ॥ १५ ॥ तुल्यंफलमवाप्नोति राहुग्रस्तोदिवाकरे ॥

पुष्करैरमरकण्टके ॥ १५ ॥ तुल्यंफलमवाप्नोति राहुग्रस्तोदिवाकरे ॥ १७ ॥ न्यायोपाजितवित्तस्य

१६ ॥ साह्रद्वादशलक्षन्तु दत्तं तत्र प्रवर्तते ॥ तत्तुल्यन्तु भवेत्सर्वं कोटितीर्थे न संशयः ॥ १७ ॥ न्यायोपाजितवित्तस्य

राहुग्रस्तोदिवाकरे ॥ नानाविधन्तु पुण्यञ्च मतवैपरि कीर्तितम् ॥ १८ ॥ ब्रह्मविष्णुशिवोक्तञ्च प्रमाणं सर्वसम्मतम् ॥

अल्पसत्त्वनाराजन् काले मायाविमोहिताः ॥ १९ ॥ अङ्कारं येन पश्यन्ति तथैवैसकल्पगाम् ॥ गोव्यागयोर्महारा

ज हेमरूपेयदन्तरम् ॥ २० ॥ शूद्रब्राह्मणयोर्ब्रह्मण्यथावद्विधितक्रयोः ॥ अमरेश्वरतीर्थं हि ज्ञेयं तीर्थान्तरे स्मरह ॥ २१ ॥

दीयते कोटितीर्थे यद्गुण्जामात्रं हिरण्यकम् ॥ तस्य संख्या न विद्येत यावदाहुतसम्पुष्टम् ॥ २२ ॥ चतुर्हस्तप्रमाणन्तु

कोटितीर्थे न संशयः ॥ हस्तमात्रं तथा चान्ये वितस्तिञ्च तथापरे ॥ २३ ॥ चतुरङ्गुलमयं केपि केचिदङ्गुलमानतः ॥ अ

र्द्धाङ्गुलं यवानं ब्रह्मसूत्रप्रमाणतः ॥ २४ ॥ चतुर्विंशे द्वादशाब्दे कुरुक्षेत्रात्सरस्वती ॥ कोटितीर्थे तथा स्नातुं राहुग्र

है और सोने व रूपेका जैसा अन्तर है ॥ १६ । २० ॥ व शूद्र और ब्राह्मणका जैसा अन्तर है और दही व मट्ठे का जैसा अन्तर है ऐसेही और तीर्थों से अमरेश्वर तीर्थ

का अन्तर जानना चाहिये ॥ २१ ॥ कोटितीर्थ में जो रत्नभर सोना दिया जाता है उसकी संख्या महाप्रलयतक नहीं होसकी है ॥ २२ ॥ अब प्रमाण को कहते हैं कि

चार हाथका प्रमाणवाला कोटितीर्थ है इसमें कुछ संशय नहीं है कोई हाथभर और कोई बालिशत भरका प्रमाण कहते हैं ॥ २३ ॥ कोई चार अंगुलका, कोई अंगुलभरका, कोई आधे अंगुलका, कोई जौ भर का और कोई ब्रह्मसूत्र भर का प्रमाण कहते हैं ॥ २४ ॥ सूर्य को राहुसे ग्रसे हुयेपर चौबीस व बारहवें वर्षमें कोटि-

तीर्थ बिषे स्नान करने के वारते कुरुक्षेत्र से सरस्वती जी अपनी पुण्य के क्षीण होनेसे हथिनी के रूपको धारण करके आती हैं और स्नान करके फिर कुरुक्षेत्र को जाती हैं इसमें कुछ संशय नहीं है ॥ २५ ॥ २६ ॥ कावेरी के सङ्गम से लेकर समुद्र के सङ्गम पर्यन्त हे महाराज ! इस अन्तर में दशकरोड़ तीर्थ कहेगये हैं ॥ २७ ॥ और कोटितीर्थ से लगाकर नीलगङ्गा पर्यन्त ब्रह्मसूत्रके प्रमाणसे आठलाख तीर्थ हैं ॥ २८ ॥ कावेरी नदी के पूर्वभाग में जहांतक पर्य्यंक पर्वत है इतने बीचमें तीर्थोंकी संख्या दशलाख तुमसे कहींगई है ॥ २९ ॥ नर्मदा में प्राप्तहोकर जमदग्नि के श्रेष्ठ आश्रम तक जो बीच है उसमें श्रीकण्ठ व पापोंका नाशकरनेवाला नीलकण्ठ लिङ्ग स्तोदित्वाकरे ॥ २५ ॥ करिणीरूपमास्थाययायात्स्वपुण्यकक्षयात् ॥ स्नानं कृत्वा पुनर्याति कुरुक्षेत्रं न संशयः ॥ २६ ॥

कावेरीसङ्गमयावदारभ्योदधिसङ्गमम् ॥ अत्रान्तरे महाराज तीर्थकोट्यो दशस्मृताः ॥ २७ ॥ कोटितीर्थसमारभ्य नीलगङ्गावसानतः ॥ अष्टलक्षाणि तीर्थानां ब्रह्मसूत्रप्रमाणतः ॥ २८ ॥ कावेर्याः पूर्वभागे च यावत्पर्यङ्कपर्वतः ॥ दशलक्षाणि तीर्थानां संख्या च कथिता तव ॥ २९ ॥ नर्मदायां समासाद्य जमदग्नेर्महाश्रमम् ॥ श्रीकण्ठं नीलकण्ठं च लिङ्गं पापप्रणाशनम् ॥ ३० ॥ कन्यातीर्थं महापुण्यं कपिलेश्वरसुत्तमम् ॥ कपिलावतं संज्ञन्तु तीर्थपापहरं परम् ॥ ३१ ॥ तत्र पूषा च सूर्यस्तु शिवध्यानपरायणः ॥ दिव्यवर्षसहस्रन्तु तपस्तेपे सुदुष्करम् ॥ ३२ ॥ ततस्तुष्टः सुरेशानस्तमुवाच तदानुप ॥ वरं वृणीष्व भद्रन्ते यत्ते मनसि वर्तते ॥ ३३ ॥ पूषोवाच ॥ यदि तुष्टोसि देवेश वरं दातुं त्वमिच्छसि ॥ सूर्यपि ब्रह्मसंज्ञन्तु लिङ्गं परमसिद्धिदम् ॥ ३४ ॥ आकाशे प्रतपद्मि ससहस्रांशुसमप्रभम् ॥ मासे मासेऽन्यमित्रस्तु संक्रम

है ॥ ३० ॥ और महापवित्र कन्यातीर्थ है व उत्तम कपिलेश्वरलिङ्ग है और पापोंका नाशकरनेवाला कपिलावत नाम का श्रेष्ठ तीर्थ भी है ॥ ३१ ॥ वहां पूषा नामके सूर्य शिवजी के ध्यान में तत्पर देवताओं के हजार वर्षतक अतिदुष्कर तप करतेहुये ॥ ३२ ॥ तदनन्तर हे नृप ! महादेवजी प्रसन्नहुये और उन पूषासे उससमय बोले कि तुम्हारा कल्याणही जो तुम्हारे मनमें वर्तता हो उस वर को तुम मांगो ॥ ३३ ॥ तब पूषा बोले कि हे देवेश ! जो तुम प्रसन्न हो और वर देनेकी इच्छा करते हो तो परमसिद्धिका देनेवाला सूर्यपिङ्गल नामका लिङ्ग ॥ ३४ ॥ आकाशमें तपतेहुये सूर्य की किरणों के समान प्रभावाला प्रकटहोवे और महीने २ में दूसरे सूर्य हुआकरे

व अन्यराशियों में संक्रान्ति भी हुआ करें ॥ ३५ ॥ हम इसी वरको मांगते हैं जो कि जगत्का प्रकाश करनेवाला है तब महादेवजी बोले कि हमारे प्रसादसे तुम्हारे सब सम्पत्तियों की समृद्धि होगी ॥ ३६ ॥ हे महाराज ! सत्ययुग में यह मुक्त करके देखागया था कि चतुर्दशी व अष्टमी में पिंगलेश्वरके पूजन से ॥ ३७ ॥ करोड़ यज्ञों के फलको प्राप्तहोकर शिवलोकमें पूजित होता है नर्मदा के तट में आपहीसे प्रकटहुये कोसभरतक जितने देवताहैं ॥ ३८ ॥ वे सग सिद्धियों के व अभीष्ट फल भोगके देनेवाले जाननेयोग्यहैं उनमें कोई कुम्भड़ा के बराबर और कोई फूल के बराबर प्रमाणवाले हैं ॥ ३९ ॥ और कोई रेडीके, कोई हीरा और कोई मोती के बराबर

श्रान्यराशिषु ॥ ३५ ॥ इमं वरमहं मन्ये जगद्द्योतनकारकम् ॥ ईश्वर उवाच ॥ सर्वसम्पत्समृद्धिस्ते मत्प्रसादाद्भविष्यति ॥ ३६ ॥ कृते युगे महाराज मयैतद्दृष्टमेव च ॥ चतुर्दश्यां तथा षट्म्यां पिङ्गलेश्वरपूजनात् ॥ ३७ ॥ कीटियज्ञफलंप्राप्य शिवलोकमेहीयते ॥ रेवातीरेषु ये देवाः क्रोशमात्रं स्वयं भुवः ॥ ३८ ॥ सर्वे ते सिद्धिदाज्ञेयाः कामभोगफलप्रदाः ॥ केचित्कृष्णमारुदमात्रा वै केचित्पुष्पमात्रकाः ॥ ३९ ॥ एरण्डफलमात्राश्च वज्रमौक्तिकमानतः ॥ कृते माणिमयाः प्रोक्तास्त्रेतायान्तु हिरण्मयाः ॥ ४० ॥ द्वापरैरौप्यताम्राश्च कलौ चाश्ममयाः स्मृताः ॥ ब्राह्मणंकृतयुगं प्राहुस्त्रेता वै ज्ञत्रियं तथा ॥ ४१ ॥ द्वापरवैश्यमित्येवं कलिशूद्रं तथैव च ॥ नापुण्यलिङ्गमासाद्य भ्रियतेऽमरकण्टके ॥ ४२ ॥ कोनमुच्येत कौन्तेय सप्तजन्मजकिल्बिषात् ॥ यादृशो यंगिरिः पुण्यः सर्वतो मरकण्टकः ॥ ४३ ॥ तादृशं नानुपश्यामि त्रिषु लोकेषु भारत ॥ पर्वतस्य समन्तात्तु तीर्थकोटिर्व्यवस्थिता ॥ ४४ ॥ स्वर्गसोपानमासाद्य प्रत्यक्षं शिवदर्शनम् ॥ सुपुण्यं कोटिती

प्रमाणवाले हैं सत्ययुग में वे लिङ्ग मणियों के व त्रेतामें सुवर्ण के कहेगयेहैं ॥ ४० ॥ और द्वापर में रूपे व तन्नि के और कलियुग में पत्थर के कहेगये हैं सत्ययुग को ब्राह्मण व त्रेताको क्षत्रिय कहते हैं ॥ ४१ ॥ द्वापरको वैश्य और वैसेही कलियुगको शूद्र कहते हैं हे कौन्तेय ! अमरकण्टक में पवित्र लिङ्गको प्राप्तहोकर जो मनुष्य मरते हैं उनमें कौन सातजन्मों में पैदाहुये पापसे नहीं छूटजाता है अर्थात् सब छूटजाते हैं क्योंकि जैसा यह अमरकण्टक पर्वत सब कहीं पवित्र है ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ हे भारत ! ऐसे दूसरे पर्वत को तीनों लोकमें हम नहीं देखते हैं इस पर्वतके चारों तरफ करोड़ तीर्थ विद्यमान हैं ॥ ४४ ॥ स्वर्गकी नसेनीरूप अमरकण्टकको प्राप्त

होकर महादेव का दर्शन प्रत्यक्षही है कोटितीर्थ और अमरकण्टक ये दोनों निरचयसे अतिपवित्र हैं ॥ ४५ ॥ अमरकण्टक को स्वर्ग, मोक्ष और सब सिद्धियों का देनेवाला जानो वैदूर्यवर्षत पर सत्ययुग में सिद्धहुये मान्धाता राजा ॥ ४६ ॥ हे नृपशार्दूल ! आपसे कहेगये उसीप्रकार अब और तीर्थको आपसे कहतेहैं पुण्यवाला कावेरी का सङ्गन तीनोंलोकों में विदितहै ॥ ४७ ॥ वहां कावेरी में स्नानकरने से स्वर्गको जातेहैं और जो मरे हैं वे फिर नहीं होंगे व चतुर्विंशी मङ्गलको जब व्यतीपात होवे ॥ ४८ ॥ तब उस कावेरी के सङ्गममें हजार गुना पुण्य होताहै जो शरुसे मारेगये हैं वे तिल मिले जलके दान से और एकोद्विष्ट श्राद्ध से स्वर्गलोक

र्थवै तथाचामरकण्टकम् ॥ ४५ ॥ स्वर्गदंमोक्षदंविद्धि सर्वसिद्धिप्रदायकम् ॥ वैदूर्यपर्वतोसिद्धो मान्धाताचक्रतेयुगे ॥ ४६ ॥ कथितो नृपशार्दूल तथान्यत्कथयामिते ॥ कावेरीसङ्गमः पुण्यः सर्वलोकेषु विश्रुतः ॥ ४७ ॥ तत्र स्नानाद्विंवयान्ति ये मृतानपुनर्भवाः ॥ कावेर्यां भूतजाभौमे व्यतीपातो यदा भवेत् ॥ ४८ ॥ सहस्रगुणितं पुण्यं भवेत्तस्यास्तु सङ्गमे ॥ शस्त्रेण निहता ये वै तिलमिश्राम्बुदानतः ॥ ४९ ॥ ते चैकोद्विष्टश्राद्धेन स्वर्गलोकमवाप्नुयुः ॥ चाण्डालादुगृहकात्सर्पाद्विद्युतो ब्राह्मणादपि ॥ ५० ॥ दंष्ट्रिभ्यश्च पशुभ्यश्च मरणं पापकर्मिणाम् ॥ सर्वे ते नृपशार्दूल कावेरीसङ्गमेशु मे ॥ ५१ ॥ आरुह्य कर्णान् तस्य तृप्तायान्ति पराङ्गतिम् ॥ कुर्वरेण तपस्तप्तं दिव्यं वर्षसहस्रकम् ॥ ५२ ॥ आराधितः पूजितश्च लोकनाथ उमापतिः ॥ शिवप्रसादसम्पन्नो लोकपालन्वभासवान् ॥ ५३ ॥ तत्र यस्त्यजति प्राणांस्तस्य पुण्यफलं शृणु ॥ षष्ठिर्वर्षसहस्राणि देवराज्यमवाप्नुयात् ॥ ५४ ॥ अवशः स्ववशो वापि प्राणत्यागं करोति यः ॥ दशवर्षसहस्राणि राजा

को पाते हैं चाण्डाल, भील, सर्प, विजली, ब्राह्मण ॥ ४६ ॥ ५० ॥ और दाढ़वाले पशुओं से पापकर्मियों का मरण होता है वे सब जीव हे नृपशार्दूल ! पवित्र कावेरी के सङ्गम में ॥ ५१ ॥ श्राद्ध करने से तप्तहोकर सत्यही परमगति को प्राप्त होते हैं कुर्वर करके देवताओं के हजार वर्षतक तप कियागया ॥ ५२ ॥ व लोकों के नाथ, पार्वतीपति शिवजी आराधन व पूजन कियेगये तब महादेव के प्रसादसे युक्त कुर्वर लोकपालपनेको प्राप्त होतेहुये ॥ ५३ ॥ वहा जो प्राणोंको त्यागता है उस के पुण्यफलको सुनो कि साठहजार वर्षतक वह देवताओं की राज्यको पाता है ॥ ५४ ॥ परवश व अपने वशहोकर जो प्राणत्याग करता है वह दश हजार वर्षतक

विद्याधरोंके पुर में राजा होता है ॥ ५५ ॥ नर्मदा और कावेरीके जलोंसे और वनके तिलोंसे तृप्त कियेहुये पितर तृप्त होकर परमगतिको प्राप्तहोते हैं ॥ ५६ ॥ अनेक हजार धाराओं से कावेरी पृथिवी में प्रसिद्ध है जैसे वायु श्रथवा सूर्यकी किरणोंकरके चराचर व्याप्त है ॥ ५७ ॥ इसीतरह कावेरी के जलसे पृथिवीतल व्याप्तहै व नर्मदाके दक्षिणतट में वाराह व विन्ध्याचल में ॥ ५८ ॥ सब देवताओं को प्रत्यक्ष दीखती है जहां से पयोष्णी नदी निकली है जोकि चन्द्रमा की कन्या है और चन्द्रमा के भीतर विद्यमान ठण्डापन के बराबर ठण्डी है ॥ ५९ ॥ पार्वती की मूर्ति पयस्विनी नदी पूर्वकाल में महादेव करके आराधन कीगई ॥ ६० ॥ लोकों के

वैद्याधरेपुरे ॥ ५५ ॥ रेवाकावेरीकैस्तोयैस्तिरैरारयकैस्तथा ॥ पितरस्तर्पितास्तत्र तृप्तायान्तिपराङ्गतिम् ॥ ५६ ॥
नानामुखसहस्रैस्तु कावेरीप्रार्थिताभुवि ॥ चराचरं यथाव्याप्तं वायुनासूर्यरश्मिभिः ॥ ५७ ॥ तथातोयेनकावेर्या व्याप्तं
चवमुधातलम् ॥ नर्मदादक्षिणेकूले वाराहेविन्ध्यपर्वते ॥ ५८ ॥ प्रत्यक्षासर्वदेवानां पयोष्णीनिर्गतायतः ॥ सोमस्यदु
हिताचासीद्धिमगर्भेन्दुशतिला ॥ ५९ ॥ हरेणाराधितापूर्वमुमामूर्तिः पयस्विनी ॥ ६० ॥ लोकानां तारणाथाय सोमग
ङ्गेतिगीयते ॥ ६१ ॥ विनिष्क्रान्ताशरीराच्च वाराहस्य यशस्विनः ॥ तत्रस्नात्वा नरोराजन् भवैवैनपुनर्भवेत् ॥ ६२ ॥
तिलोदकप्रदानेन पितरस्तस्यभारत ॥ दशायुतसहस्राणि लोकेक्रीडन्तिशङ्करे ॥ ६३ ॥ कर्त्तव्यां यत्फलंतस्य वा
राहेविन्ध्यपर्वते ॥ संख्यानशक्यतेस्नानादत्रवर्षशतैरपि ॥ ६४ ॥ शिवेन कथितं पूर्वं पुराणेस्कन्दकीर्तिते ॥ तत्रयद्दी
यतेदानं तस्यसंख्यानविद्यते ॥ ६५ ॥ ये चार्चयन्ति वाराहं न ते प्राकृतमानुषाः ॥ प्राणत्यागेकृतेतत्र शिवलोकमवाप्नु

तारने के वास्ते जो सोमगंगा नाम से कहीजाती है ॥ ६१ ॥ जोकि यशस्वी वाराहपर्वत के शरीर से निकली है हे राजन् ! उसमें स्नानकरके मनुष्य निश्चय से फिर संसार में नहीं होता है ॥ ६२ ॥ हे भारत ! तिलोदकके देने से उस देनेवाले के पितर लाख वर्षतक शिवलोक में विहार करते हैं ॥ ६३ ॥ वाराह व विन्ध्याचल पर कार्सिकीमें यहां पयोष्णी विषे स्नान करनेसे जो फल होताहै उसकी गिनती सैकड़ों वर्षसे भी नहीं होसक्ती है ॥ ६४ ॥ स्वामिकार्त्तिक करके कहेगये पुराण में पूर्व कालमें यह महादेवजीने कहाहै और वहा जो दान दियाजाताहै उसकी भी संख्या नहीं है ॥ ६५ ॥ वाराहका जो पूजन करते हैं वे साधारण मनुष्य नहींहैं वहां प्राण

त्याग किये पर शिवलोक को प्राप्त होते हैं ॥ ६६ ॥ चन्द्रग्रहण के समय वाराह व विन्ध्याचल में कुरुक्षेत्र के वरावर पुण्यको पूर्वकाल में महादेवजीने कहा है ॥ ६७ ॥
हे नृपश्रेष्ठ ! वाराह पर्वतसे लेकर पयोष्णीके सङ्गमतक जो बीच है उसमें एक करोड़ तीर्थ कहे गये हैं ॥ ६८ ॥ वहां पयोष्णीके संगममें जो भैरव है वह सोभावर्त कहा जाता है वह जगह सब तरफ पवित्र है यह आपसे सत्य कहा गया है ॥ ६९ ॥ पापों के हरनेवाले पयोष्णी के संगम में लिंग के दर्शन व वहां स्नान, दानकी जो पुण्य है उसकी संख्या करने से नहीं होसक्ती है ॥ ७० ॥ हे नृप ! चन्द्र व सूर्यके ग्रहण में तापी और पयोष्णी का संगम कुरुक्षेत्रसे सौगुना पुण्यवाला महादेवकरके कहा

युः ॥ ६६ ॥ राहुक्षोमसमायोगे वाराहेविन्ध्यपर्वते ॥ कुरुक्षेत्रसमंपुण्यं पुरावैशङ्करोब्रवीत् ॥ ६७ ॥ गिरारभ्यवाराहा
तपयोष्ण्याःसङ्गमावधि ॥ अत्रान्तरेनृपश्रेष्ठ तीर्थकोटिरुदाहृता ॥ ६८ ॥ पयोष्णीसङ्गमेतन्न सोभावर्तःसुउच्यते ॥ स
देशःसर्वतःपुण्यः सत्यमेतत्तवोदितम् ॥ ६९ ॥ पयोष्णीसङ्गमेपापहरेलिङ्गस्यदर्शनात् ॥ तन्नस्नानस्यदानस्य सं
ख्यांकर्तुंनशक्यते ॥ ७० ॥ तापीपयोष्णीसंमेलश्चन्द्रसूर्यग्रहेनृप ॥ कुरुक्षेत्राच्छतगुणः शिवेनपरिकीर्तितः ॥ ७१ ॥
चतुर्ध्रुजोहरिर्यत्र श्रीपतिःपुरुषोत्तमः ॥ विष्णुक्षेत्रेनृविज्ञेयं क्रोशमानन्तुतन्मृप ॥ ७२ ॥ आश्विनस्यतुलासस्य कुरु
ष्णपक्षेचतुर्दशी ॥ अमावास्यासिनीवाली पर्वाण्येतान्यनुक्रमात् ॥ ७३ ॥ चतुर्दश्याञ्चतुर्थी पौषपक्षवहेतेनृप ॥ पित
रस्तृप्तिमायान्ति दिनेतस्मिन्नसंशयः ॥ ७४ ॥ सूर्यग्रहेकुरुक्षेत्रे यत्फलंपरिकीर्तितम् ॥ तापीपयोष्णीसम्पर्के तत्फलं
परिकीर्तितम् ॥ ७५ ॥ दीपोत्सर्गेतुकोमुद्यां फलसंख्यानविद्यते ॥ पुरुषश्चक्रवर्तीस्याद्दीपंतत्रचकारयः ॥ ७६ ॥ कर्त्त

गया है ॥ ७१ ॥ जहां लक्ष्मीके पति, पुरुषोत्तम, चार मुजावाले, हरिभगवान् विद्यमान हैं हे नृप ! वह एककोसभर का विष्णुक्षेत्र जानने के योग्य है ॥ ७२ ॥ कुंजार
के कृष्णपक्ष की चतुर्दशी अथवा सिनीवाली अमावस्ये क्रमसे पूर्व हैं इनमें हे नृप ! चतुर्दशी को वह चार तीर्थोंका संगम अमृत को वहाता है उस दिन निस्संदेह
पितर तृप्तिको प्राप्त होते हैं ॥ ७३ ॥ ७४ ॥ सूर्यग्रहण के होनेपर कुरुक्षेत्र में जो पुण्य कहा गया है वही तापी और पयोष्णी के संगम में कहा गया है ॥ ७५ ॥ पूर्णमासी

को दीपदान करने में जो फल होता उसकी संख्या नहीं है जिसने दीपदान किया है वह पुरुष चक्रवर्ती होता है ॥ ७६ ॥ कार्तिकी को अथवा कुंवार के महीनेके दोनों पाखोंमें एक मासतक जो भोजन नहीं करता उसके पुण्यफल को सुनो ॥ ७७ ॥ हे भारत ! जबतक चन्द्र, सूर्य, हिमालय और समुद्र रहते हैं तबतक स्वर्ग व विष्णुलोक में वास करता है ॥ ७८ ॥ नर्मदा के दक्षिण में पृथिवी फाड़कर पाताल से एक कुण्ड निकला है वह तीनों लोकों में कावेरीकुण्ड इस नामसे प्रसिद्ध है ॥ ७९ ॥ वहाँ केवल नहायाहीहुआ मनुष्य गणोंका राजा होता है वहाँ देवता और सिद्धोंसे सेवित कुण्डेश्वर सिद्धलिंग है ॥ ८० ॥ उस पवित्रलिंग का विनाजाने भी

क्यामाश्विनेमासि पक्षयोरुभयोरपि ॥ मासमेकं न भुञ्जीत तस्य पुण्यफलं शृणु ॥ ७९ ॥ यावच्चन्द्रश्च सूर्यश्च हिमवांश्च महोदधिः ॥ तावत्कालं वसेत्स्वर्गे विष्णुलोकैश्च भारत ॥ ८० ॥ नर्मदादक्षिणे भित्त्वा पातालानुसमुत्थितम् ॥ कावेरीकुण्डमित्येवं त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् ॥ ८१ ॥ स्नातमात्रो नरस्तत्र गाणपत्यमवाप्नुयात् ॥ कुण्डेश्वरं सिद्धलिङ्गं सुरसिद्ध निषेवितम् ॥ ८२ ॥ प्रमादात्कुसुतेयस्तु पूतलिङ्गस्य पूजनम् ॥ न तत्पुण्यस्य संख्यास्ति यावच्चन्द्राकर्तारकम् ॥ ८३ ॥ ति लोदकप्रदानेन पिण्डपातेन भारत ॥ असंख्यकालिकावृत्तिः पितॄणां नास्ति संशयः ॥ ८४ ॥ कावेर्यास्तु प्रभावेण नर्मदासङ्गमात्पुनः ॥ यज्ञावर्तो भवद्देशः सत्यमेतच्चिबोदितम् ॥ ८५ ॥ स्वयम्भुवानिलिङ्गानि, स्वर्गमोक्षप्रदानितु यत्र तत्र नरः स्नात्वा कावेर्या नृपसत्तम ॥ ८६ ॥ अश्वमेधफलं प्राप्य विष्णुलोकैर्महीयते ॥ त्यक्त्वा प्राणांस्तु कौवेर्या कौबेरं लोकमाप्नुयात् ॥ ८७ ॥ कौबेरेश्वरलिङ्गं तु सर्वसिद्धिप्रदायकम् ॥ कावेरीनर्मदामध्ये न तत्पश्यन्ति मानवाः ॥ ८८ ॥

जो पूजन करता है उसके पुण्यकी संख्या चन्द्र, सूर्य और नक्षत्रों के रहनेतक भी नहीं होतकी है ॥ ८१ ॥ हे भारत ! तिलोदक व पिण्डदानसे अर्पित कालतक पितरों की निरसन्देह वृत्ति रहती है ॥ ८२ ॥ कावेरी के प्रभावसे और नर्मदा के संगम से वह जगह यज्ञ करनेके योग्य है यह महादेव का कहाहुआ सत्य है ॥ ८३ ॥ स्वर्ग और मोक्षके देनेवाले आपसे प्रकट हुये वहाँ अनेक लिंग हैं हे नृपसत्तम ! कावेरीमें मनुष्य जहाँ कहीं स्नानकर ॥ ८४ ॥ अश्वमेधके फलको पाकर विष्णुलोक में पूजाजाता है और कावेरी में प्राणोंको छोड़कर कुबेर के लोकको पाता है ॥ ८५ ॥ कावेरी और नर्मदा के बीचमें सब सिद्धियों का देनेवाला कौबेरेश्वर लिंग है उसको

मनुष्य नहीं देखते हैं ॥ ८६ ॥ वह देवता, दैत्य और नागकन्याओं करके पूजा जाता है उस देवके पूजन से बारहों सूर्योके समान तेजवाला ॥ ८७ ॥ सब पापोंसे छुटा हुआ शिवजी के लोक में पूजा जाता है कावेरी और नर्मदा के संगम में बाणलिंग स्थापित है ॥ ८८ ॥ संगमेश्वर नामसे प्रसिद्ध जो पूर्वकाल में कुबेरवरके देखा गया है उस देवके पूजन से लोकपालोंके पुरमें वास करता है ॥ ८९ ॥ चतुर्दशी मंगलको व्यतीपात व संक्रान्ति के होनेपर गंगा व यमुना के संगम में जो फल कहा गया है ॥ ९० ॥ वही चन्द्रग्रहण में आठगुना कहा गया है और गंगा यमुना के संगम में जो अस्सीगुना है ॥ ९१ ॥ वही कावेरी और नर्मदा के योग

पूज्यते सुरदैत्यैस्तु नागकन्याभिरर्च्यते ॥ अर्चनात्तस्य देवस्य द्वादशादित्यसन्निभः ॥ ८७ ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तः शिवलोके महीयते ॥ कावेरीनर्मदाभेदे बाणलिङ्गं प्रतिष्ठितम् ॥ ८८ ॥ कुबेरैण पुरा दृष्टं सङ्गमेश्वरनामतः ॥ अर्चनात्तस्य देवस्य लोकपालपुरे वसेत् ॥ ८९ ॥ गङ्गायमुनसंभेदे यत्फलं परिकीर्तितम् ॥ भौमे तु भूतजायोगे व्यतीपाते च संक्रदायोगे बाणाग्रगुणैः स्मृतम् ॥ अशीतिश्च गणाः प्रोक्ता गङ्गायमुनसङ्गमे ॥ ९० ॥ कावेरीनर्मदायोगे बाणाग्रगुणैः स्मृताः ॥ गङ्गाषष्टिसहस्रैस्तु क्षेत्रपालैः प्रपूज्यते ॥ ९१ ॥ तदङ्कुरन्यतीर्थानि रक्ष्यन्ते नात्र संशयः ॥ अमरेश्वरयाम्येतु लिङ्गं चैव जलेश्वरम् ॥ ९२ ॥ दर्शनात्तस्य लिङ्गस्य गाणपत्यमवाप्नुयात् ॥ लक्ष्मेश्वरक्षिता देवैर्नर्मदासप्तकल्पा ॥ ९३ ॥ धन्विभिः षष्टिपुत्रैः सहस्रैश्च युधिष्ठिर ॥ अंकारं शतसाहस्रया पर्वतो लिङ्गमेव च ॥ ९४ ॥ अन्यदेशे कृतं पापं पुण्यं क्षेत्रे विनश्यति ॥ पुण्यं क्षेत्रे कृतं पापं वज्रलेपो भविष्यति ॥ ९५ ॥ क्षणमात्रेण दुःखेन

में अस्सीसे आठगुना है साठ हजार क्षेत्रपालों से गङ्गाजी पूजी जाती है ॥ ९२ ॥ उनके आधे और तीर्थोंकी रक्षा करते हैं इसमें कुछ संशय नहीं है अमरेश्वर के दक्षिण में जलेश्वर लिंग है ॥ ९३ ॥ उस लिंगके दर्शन से गणोंका स्वामी होता है सात कल्प तक रहनेवाली नर्मदा की एक लाख देवता रक्षा करते हैं ॥ ९४ ॥ और भी भयुषको घरेहुये साठ हजार पुरुष दे युधिष्ठिर ! नर्मदाको रखाते हैं एक लाख देवगण अंकारनाथ लिंग व अमरकण्टक पर्वत की रक्षा करते हैं ॥ ९५ ॥ और

जगह कियागया पाप पुण्यस्थान में नष्ट होताहै और पुण्यक्षेत्र में कियागया पाप वज्रलेप होजाता है ॥ ६६ ॥ थोड़ीदूर के दुःखसे बड़े सुखको पाताहै ॥ ६७ ॥ इति श्रीकन्दपुराणरेवाखण्डेप्राकृतभाषास्तुवादेकावेरीमाहात्म्यंनैमिकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ६८ ॥

मार्कण्डेयजी बोले कि हे नरव्याघ्र ! नर्मदा को फाड़कर प्रचण्ड वेगवाली महाभागा नदी निकलीहै मनुष्य उसमें स्नानकर ब्रह्महत्याको छोड़ताहै ॥ १ ॥ उस तीर्थमें तिलोदक व खीर करके पिण्डदानसे घोरनरकसे पितरोंको उद्धार करताहै इसमें संशय नहीं है ॥ २ ॥ घोरकर्मोंके करनेवाले जो मनुष्य पापकी मौतसे मरे हैं

अत्यन्तसुखमश्नुते ॥ ६७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणरेवाखण्डेकावेरीमाहात्म्यंनैमिकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥

मार्कण्डेयउवाच ॥ रेवांभित्त्वाचण्डवेगा महाभागविनिःसृता ॥ तत्रस्नात्वा नरव्याघ्र ब्रह्महत्यांव्यपोहति ॥ १ ॥ तिलोदकंतत्रतीर्थे हविषापिण्डदानतः ॥ पितृन्समुद्धरेद्धोरान्नरकान्नात्रसंशयः ॥ २ ॥ पापमृत्युमृतायेतु चण्डकर्मकृतोनराः ॥ मुच्यन्तेतेनपापेन चण्डवेगासमागमे ॥ ३ ॥ चण्डेश्वरंतत्रलिङ्गं सर्वदेवमयंशुभम् ॥ दर्शनात्पूजनादस्यपुष्पगन्धादिदानतः ॥ ४ ॥ ब्रह्महत्यासहस्रैर्हि तत्क्षणादेवमुच्यते ॥ चन्द्रसेनःपुराचासीद्दुरात्मापापकर्मकृत् ॥ ५ ॥ परदाररतश्चौरौ ब्रह्मघ्नोऽगुरुतल्पगः ॥ सोमवंशीचपापात्माऋषिपत्नीञ्चब्राह्मणीम् ॥ ६ ॥ अन्याश्रयावैशुभगाः पतिहत्वासमाहरत् ॥ नैमिषारण्यवासीच शाण्डिल्योब्रह्मवित्तमः ॥ ७ ॥ सौदामिनीतस्यभार्या धर्मपत्नीयशस्विनी ॥

वे चण्डवेगाके समागममें उस पापसे छूटजाते हैं ॥ ३ ॥ वहाँ सब देवताओंका स्वरूप पवित्र चण्डेश्वरलिङ्गहै उसके दर्शन व चन्दन, पुष्पआदि दानकरके पूजनसे ॥ ४ ॥ उसीक्षणमें हजारों ब्रह्महत्याओं से छूटजाताहै पूर्वकालमें पापकर्मों का करनेवाला बड़ा दुष्ट एक चन्द्रसेन राजा हुआ ॥ ५ ॥ औरोंकी स्त्रियोंमें रति करनेवाला, चोर, ब्राह्मणों का मारनेवाला, गुरुकी स्त्रीमें गमन करनेवाला ऐसा पापी वह चंद्रवंशी राजा ऋषियोंकी स्त्रियोंको तथा अन्य ब्राह्मणोंकी स्त्रियोंको ॥ ६ ॥ और भी जो सुन्दरी स्त्रियाँ थीं उनके पतियोंको मारकर लाताहुआ और नैमिषारण्यके रहनेवाले वेदके ज्ञाताओं में श्रेष्ठ एक शाण्डिल्य नाम के ब्राह्मणथे ॥ ७ ॥ उनकी बड़ी यशवाली

सौदामिनी नामकी धर्मपत्नी स्त्री होती हुई, रूप और जवान्नी से संयुक्त चन्द्रमा के समान शोभावाली ॥ ८ ॥ प्रेम करनेके योग्य, भोजपत्रों को पहनेहुये, भारी और ऊंचेहैं कुच जिसके ऐसी उस स्त्री और उस चन्द्रसेन राजाके पुराने इतिहासको हम कहते हैं ॥ ९ ॥ कि घोड़ेपर सवार, जङ्गलमें सुगोंको खोजतेहुये वे राजा चन्द्रसेन नैमिषारण्यके वासी शाण्डिल्यजीके आश्रमको प्राप्तहुये ॥ १० ॥ उन राजा ने उस समयमें शाण्डिल्यजीकी प्यारी स्त्री सौदामिनीको देखा और उससे वचनबोले कि तू मेरी रानीहो ॥ ११ ॥ और भोजपत्रोंका धारण करनेवाला कुश और काशकी पवित्रियों का पहिरनेवाला कन्द, मूल और फलोंका ब्राह्मण तेरा पति

रूपयौवनसम्पन्ना चन्द्रकान्तिसमप्रभा ॥ ८ ॥ कामिनीवलकलधरापीनोन्नतपयोधरा ॥ आख्यानंकथयिष्यामितस्या
स्तस्यपुरातनम् ॥ ९ ॥ हयारूढश्चन्द्रसेनो नैमिषारण्यवासिनः ॥ शाण्डिल्यस्याश्रमप्राप्तो वनेसमृगयन्सृगान् ॥
१० ॥ दृष्टासौदामिनीतेन शाण्डिल्यस्यप्रियातदा ॥ उवाचवचनं तवै त्वं मेराज्ञीभवेदिति ॥ ११ ॥ बलकलाजिनधारी
च कुशकाशपवित्रकः ॥ कन्दमूलफलारीच ब्राह्मणश्चपतिसत्तेन ममभोगांश्चपुष्कलान् ॥
सर्वदामप्रसादेनखुङ्क्ष्यत्वंवरवर्णिनि ॥ १२ ॥ तस्यतद्वचनं श्रुत्वा नृपतेः पापकर्मणः ॥ आहसौदामिनीवाक्यं चन्द्रसेनं नृपा
धमम् ॥ १३ ॥ याचस्वमेपतिराजंस्तस्याहंवशवर्तिनी ॥ शाण्डिल्यमब्रवीद्राजा ततोऽभूवरयाभिते ॥ १४ ॥ कन्या
मिमाञ्चपत्नीतेचदद्यत्वंदस्वमेमौल्येददामितेद्रव्यमस्याः शतसहस्रशः ॥ १५ ॥ शाण्डिल्यउवाच ॥ सर्वस्त्रियः केत
ववद्धमूलास्तासांप्रियोनास्तिमनुष्यलोके ॥ यथेष्टचेष्टोभवभूमिपालकिंमन्दिजंपृच्छसिदुर्बलश्च ॥ १६ ॥ कामान्धस्तुत

है ॥ १२ ॥ सो उससे तू क्या करेगी हे वरवर्णिनि ! मेरी खुशीसे मेरे परिपूर्ण भोगोंको तू हमेशा भोगकरा ॥ १३ ॥ उस पापकर्मवाले राजाके इस वचनको सुनकर राजाओं में अधम (नीच) चन्द्रसेन राजासे सौदामिनी वचन बोली ॥ १४ ॥ कि हे राजान् ! मेरे पतिसे आप सुभे मांगो क्योंकि मैं उन्हींके वशमें हूँ तब राजा शाण्डिल्यसे बोले कि मैं तुमसे इसको मांगता हूँ ॥ १५ ॥ थोड़ी अनस्थावाली इस अपनी स्त्रीको जो तुम सुभे देदेवो तो इसके मूल्यमें मैं तुम्हें हजारों का द्रव्य देऊंगा ॥ १६ ॥ तब शाण्डिल्यजी बोले कि हे भूमिपाल ! सब स्त्रियां बलका मूल होती हैं और मनुष्यलोकमें उनका प्यारा कोई नहीं है इससे आप जो चाहो वह करो सुभ दुर्बल

ब्राह्मणसे क्यों पूछते हो ॥ १७ ॥ तदनन्तर कामसे अन्धा होरहा वह राजा उस समयमें उस स्त्रीका हाथ पकड़लिया तब वह स्त्री उस पापीको देखकर बड़े क्रोधसे मुल मुलाती हुई उससे बोली कि मैं रजस्वला हूं मुझको छूकर तू चाण्डाल होजायगा ॥ १८ ॥ तब प्राण जिसको प्यारे हैं और भयसे घबड़ातीहुई रजस्वला और नंगी उस स्त्रीको देखकर सब प्राणियोंको भय करनेवाला वह राजा उसी क्षणमें चाण्डाल होगया ॥ १९ ॥ तदनन्तर सब देवता व मनुष्य बड़ाहाकार करतेहुये व वह राजा बोड़े पर सवार होकर अयोध्यापुरी में प्रवेश करताहुआ ॥ २० ॥ तब पुरवासी ब्राह्मण व राजपुत्र व रनिवास चाण्डालरूप उस राजा को देखकर राजा की निन्दा

तोर राजा करेजग्राहतान्तदा ॥ सानिरीक्ष्याहतंपापं उवलन्तीतीव्रकोपतः ॥ रजस्वलाहंमांस्पृश्य चाण्डालस्त्वं भ
विष्यसि ॥ १८ ॥ तान्हृष्टातादृशनगनां भयात्तप्राणवह्निभाम् ॥ चाण्डालस्तत्तज्जणाज्जातः सर्वभूतभयावहः ॥
१९ ॥ हाहाकारंततश्चक्रुः सर्वदेवाः समानुपाः ॥ अश्वमारुह्य राजासावयोध्यामाविशत्पुरीम् ॥ २० ॥ दृष्ट्वाचाण्डाल
रूपंतं ब्राह्मणाः पुरवासिनः ॥ राजपुत्रामहीपाल स्वान्तःपुरनिवासिनः ॥ २१ ॥ बभूवुर्भयभीताश्च गर्हयन्तोमहीपति
म् ॥ वशिष्ठं शरणं प्राप्तः शोचित्वाचात्मनस्तनुम् ॥ २२ ॥ राजाविषस्रवदन उवाचस्वपुरोहितम् ॥ जगामाहसमुद्देशं नै
मिषारण्यवासिनम् ॥ २३ ॥ शाण्डिल्यश्च नमस्कृत्य साष्टाङ्गं प्रणिपत्य च ॥ अब्रनन्देहिभार्यस्वां वित्तेन बहुलेन मे ॥
२४ ॥ शाण्डिल्यस्य तृपत्यवैतया शप्तोहमन्तिके ॥ श्रुत्वा तस्य चरित्रं च पापस्य भोनराधिप ॥ २५ ॥ वशिष्ठोऽप्यब्रवीद्वा
क्यं चन्द्रसेनराधिपम् ॥ शाण्डिल्यं गच्छ राजेन्द्र तापसं क्रतुगामिनम् ॥ २६ ॥ सौदामिनीसृपेभार्या उवलन्तीमि

करतेहुये डरगये राजा भी अपने शरीर का शोचकर वशिष्ठ की शरण को प्राप्तहुआ ॥ २१ ॥ २२ ॥ उत्तरे मुंहवाला राजा अपने पुरोहित से बोला कि मैं नैमिषारण्यवासी
शाण्डिल्यमुनि के समीपगया और गिरकर साष्टांग नमस्कारकर उनसे कहा कि तुम बहुतसी द्रव्यलेकर मुझे अपनी स्त्रीको देवो ॥ २३ ॥ २४ ॥ तब शाण्डिल्यके समीप
मेंही मुझे उनकी उसस्त्रीने शापदेदिया तब हे नराधिप ! उस पापी के चरित्रको सुनकर ॥ २५ ॥ वशिष्ठजी चन्द्रसेन राजासे वचन बोले कि हे राजेन्द्र ! क्रतुसमय
में अगनी स्त्रीमें गमन करनेवाले तपस्वी शाण्डिल्यही के पास तुम जावो ॥ २६ ॥ और तेजसे प्रकाश करतीहुई शाण्डिल्यकृषिकी स्त्री सौदामिनी के पास भी जावो

तब राजा उन अपने पुरोहित के नमस्कारकर कहा कि ऐसाही हो यह कहकर ॥ २७ ॥ वह उस स्थानको गया और नैमिषारण्यवासी शाण्डिल्यजी को बार २ साष्टाङ्ग नमस्कार कर ॥ २८ ॥ भयसे डराहुआ राजा उन श्रेष्ठमुनिसे बोला कि हे मुनिश्रेष्ठ ! आपकी स्त्री को चाहनेवाले मुझपर क्षमाकरो ॥ २९ ॥ अब तुम्हीं मेरे माता पिता हो रघुवंश को उद्धारकरो मैंने जो आज आपका अपकार किया था उसका फल मुझको मिला ॥ ३० ॥ तब उसकी पतिव्रता स्त्री सौदामिनी व ब्राह्मण प्रसन्न होकर बोले कि हे राजन् ! मार्कण्डेय मेरे पिताहैं और उन्हीं महात्माका मैं शिष्यहूँ ॥ ३१ ॥ यहां नैमिषारण्यवासी मेरी स्त्री के वास्ते तुम प्राप्तहुये इससे हे नृप-

वतेजसा ॥ एवमस्त्वितिचोक्तातं नमस्कृत्यपुरोधसम् ॥ २७ ॥ सजगामतमुद्देशं नैमिषारण्यवासिनम् ॥ शाण्डिल्य
न्तुनमस्कृत्य साष्टाङ्गचपुनःपुनः ॥ २८ ॥ अब्रवीत्तमुनिश्रेष्ठं भयत्रस्तोनराधिपः ॥ क्षमस्वमेमुनिश्रेष्ठ त्वद्भार्याप्रति
काभिनः ॥ २९ ॥ त्वंमातामेपिताचासि रघुवंशंसमुद्धर ॥ मयात्वपट्टतंतेद्य तस्यप्राप्तंफलंहिर्वै ॥ ३० ॥ उवाचब्राह्मणः
प्रीतो भार्याचैवपतिव्रता ॥ मार्कण्डेयःपिताराजिच्छिष्योहंतस्यधीमतः ॥ ३१ ॥ भार्यार्थमिहसंप्राप्तो नैमिषारण्यवा
सिनः ॥ त्वंतुगच्छन्नृपश्रेष्ठ चण्डवेगासमागमम् ॥ ३२ ॥ चण्डेश्वरंतमभ्यर्च्य तत्रस्नात्वानृपोत्तम ॥ अवाप्स्यसिपरं
स्थानं सुक्तश्चास्माच्चकिल्बिषात् ॥ ३३ ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वा शाण्डिल्यस्यमहात्मनः ॥ शाण्डिल्यंचनमस्कृत्य त
थासौदामिनीनृपः ॥ ३४ ॥ स्वस्तिवोस्तुगमिष्यामि चण्डवेगासमागमम् ॥ एवमुक्त्वागतस्तत्र समागत्यक्षमापतिः ॥
३५ ॥ चण्डेश्वरंसमभ्यर्च्य तत्रस्नात्वाविधानतः ॥ दिव्ययानसमारूढः स्तूयमानोप्सरोगणैः ॥ ३६ ॥ सर्वपापविनिर्मु

श्रेष्ठ ! तुम चण्डवेगा के समागम को जावो ॥ ३२ ॥ वहां स्नानकर हे नृपोत्तम ! उन चण्डेश्वर का पूजनकर इस पापसे छुटेहुये उत्तम स्थानको प्राप्तहोवो-
गे ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ उन शाण्डिल्य महात्मा के इस वचनको सुनकर राजा शाण्डिल्य व सौदामिनी के नमस्कारकर कहा कि आपका कल्याणहो हम चण्डवेगा के
समागम को जाते हैं यह कहकर चलागया और वहां जाकर राजा ॥ ३५ ॥ वहां समागम में स्नानकर और चण्डेश्वर का विधान से पूजनकर अप्सराओं के गणों

करके स्तुति किया जाता। दिव्यसवारी पर चढ़ाहुआ ॥ ३६ ॥ इस तीर्थके प्रभावसे सब पापोंसे छुटाहुआ चन्द्रसेन राजा क्षणमात्र में शिवको पुरको चलागया ॥ ३७ ॥ स्वरोचिष मन्वन्तर के पहले सत्ययुगके प्राप्त होने पर हजारों राजा इस स्थान में सिद्धिको प्राप्तहुये ॥ ३८ ॥ हे राजन् ! यह चण्डवेगा का समागम तुमसे कहागया इसके सुनने व कहने से गर्भहत्या नष्ट होजाती है ॥ ३९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनुवादेचण्डवेगामाहात्म्यवर्णनोनामद्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥ वहां मार्कण्डेयजी बोले कि हे युधिष्ठिर ! तदनन्तर एरण्डी और नर्मदा के योगकोजात्रे जो तीसरी चण्डवेगा है स्वर्ग जानेके वास्ते नसेनीरूप सङ्क है ॥ १ ॥ वहां तत्सार्थस्यास्यप्रभावतः ॥ क्षणान्निवधपुंरंप्राप्तश्चन्द्रसेनोमहीपतिः ॥ ३७ ॥ स्वरोचिषेन्तरेप्राप्ते आदिकल्पेकृतेयुगे ॥ भूतानांचसहस्राणि संसिद्धितत्रचान्वयुः ॥ ३८ ॥ एतत्तेकथितंराजंश्चण्डवेगसमागमम् ॥ श्रवणात्कीर्तनाद्वापिभ्रूण हत्याप्रणश्यति ॥ ३९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेचण्डवेगामाहात्म्यवर्णनोनाम द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ एरण्डीनर्मदायोगं ततो गच्छेद्युधिष्ठिर ! तृतीयाचण्डवेगाच्च स्वर्गसोपानपद्धतिः ॥ १ ॥ तत्रस्नात्वा दिवंयान्ति येमृतानपुनर्भवाः ॥ तिलोदकप्रदानेन पिण्डपातेनभारत ॥ २ ॥ अनेककालिकृतृप्तिः पितृणामुपजायते ॥ अमासोमसमायोगे राहुग्रस्तेदिवाकरे ॥ ३ ॥ एरण्डीसङ्गमस्थाने पुण्यसंख्यानविद्यते ॥ एरण्डीश्वरलिङ्गन्तु सर्वपापप्रणाशनम् ॥ ४ ॥ कुङ्कुमेनसमालिप्य गन्धधूपैःप्रपूजयेत् ॥ दिव्यवर्षसहस्रन्तु मोदतेशिवसन्निधौ ॥ ५ ॥ दर्शनात्तस्यलिङ्गस्य गाणपत्यमवाप्नुयात् ॥ भद्ररुद्रेश्वरं नामलिङ्गं परमसिद्धिदम् ॥ ६ ॥ भद्ररुद्रौ पुराकल्पे गन्धर्वौ भ्रातृस्नानकर स्वर्गको जाते हैं और जो मरे हैं वे फिर नहीं होते हैं हे भारत ! तिलोदक व पिण्ड देने से ॥ २ ॥ अनेक कालतक पितरों को तृप्ति रहती है अमावस और चन्द्रके योगमें तथा सूर्यग्रहण के होनेपर ॥ ३ ॥ एरण्डी के सङ्गम स्थानमें जो पुण्य होती है उसकी संख्या नहीं है और एरण्डीश्वर लिंग सब पापों का नाश करने वाला है ॥ ४ ॥ उसको केसर से लेपनकर चन्दन व धूपसे जो पूजनकरे तो देवताओं की हजार वर्षतक शिवके समीप आनन्द करता है ॥ ५ ॥ उस लिंगके दर्शनसे गणोंकी राज्यको प्राप्तहोता है और परमसिद्धि का देनेवाला एक भद्ररुद्रेश्वरनामका लिंग है ॥ ६ ॥ पहले कल्पमें भद्र व रुद्र नाम के गन्धर्व दोनों भाई होतेहुये वे

विधान से इस लिंगका पूजनकर विद्याधरों के पुरको जातेहुये ॥ ७ ॥ पिता और पितामह इस गाथाको गाते हैं कि हे भारत ! तिलोदक व पिण्डदानसे चौदह मन्वन्तरभर रुद्रलोक में वास करता है जो मनुष्य अरुसे मारेगये अथवा अपने प्रारब्धसे पापकी मौत से मरेहैं ॥ ८६ ॥ हे भारत ! वे चतुर्दशी में श्राद्ध करने से व वृषोत्सर्ग से वीरलोक को प्राप्तहोकर वहां विहार करते हैं ॥ १० ॥ वहां अपने वश व परवश होकर जो प्राणोंको त्यागताहै वह इस तीर्थ के प्रभावसे फिर इस संसार में नहीं होता है ॥ ११ ॥ और चारहजार युगभर विद्याधरोंके पुरमें राजा होताहै हे अनघ ! अब और आख्यानको कहेंगे जैसा पूर्वकालमें देखाहै ॥ १२ ॥ हे विशांपते ! पहले

रौतथा ॥ तमभ्यर्च्यविधानेन गतौविद्याधरंपुरम् ॥ ७ ॥ गायन्तिपितरोगाथां तथैवचपितामहाः ॥ तिलोदकप्रदानेन पिण्डपतेनभारत ॥ ८ ॥ वसेन्मन्वन्तराणीह रुद्रलोकैचतुर्दश ॥ अस्त्रेणतुहतायेवै देवात्पापमृतानराः ॥ ९ ॥ चतुर्दशान्नुश्राद्धेन वृषोत्सर्गेणभारत ॥ वीरलोकमवाप्स्यैव तत्रक्रीडन्तिमानवाः ॥ १० ॥ तत्रयस्त्यजतिप्राणानवशःस्वमिशोपिवा ॥ तीर्थस्यास्यप्रभवेण सभवेनपुनर्भवेत् ॥ ११ ॥ चतुर्युगसहस्राणि राजवैद्याधरपुरे ॥ आख्यानंकथयिष्यामि यथादृष्टुपुरानघ ॥ १२ ॥ चाक्षुषेचान्तरेप्राप्ते आदिकल्पेकृतेयुगे ॥ निमिर्नामपुराराजा चक्रवर्तीविशाम्पते ॥ १३ ॥ पत्नियोनौचसंप्राप्तःकोपाद्वैनाहाणस्यच ॥ अस्यतीर्थस्यमाहात्म्याद्दर्शयोमसमागमे ॥ १४ ॥ स्नात्वासन्त्यज्य तांयानि राज्यंकृत्वादिवंगतः ॥ युधिष्ठिरउवाच ॥ कथंसराजासंप्राप्तो मानुषीञ्चतनुंपुनः ॥ १५ ॥ एतदाश्रयभृतमे कथयस्वमहामते ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ सुकन्यानामकन्यावै ययाचेच्यवनोदृपम् ॥ १६ ॥ राज्ञीचिन्द्रवतीनाम निमि

कल्पके चाक्षुष मन्वन्तर में सत्ययुगके प्राप्त होने पर पूर्वकालमें निमिनाम के चक्रवर्ती राजा होतेहुये ॥ १३ ॥ वे ब्राह्मण के कोपसे पत्नीयोंनि में प्राप्तहुये सो अयावस और चन्द्रकेयोगमें स्नानकर इसतीर्थके माहात्म्यसे उस योनिको छोड़कर और राज्यकर स्वर्गको जातेहुये तब युधिष्ठिरजी बोले कि वे राजा फिर मनुष्यशरीरको कैसे प्राप्त हुये ॥ १४ ॥ १५ ॥ हे महामते ! इस आश्चर्यरूप वार्त्ताको सुन से कहिये तब मार्कण्डेयजी बोले कि एक समय में व्यवनमुनिने राजा निमि से उनकी सुकन्यानाम

की कन्याको मांगा ॥ १६ ॥ निमिराजाकी चन्द्रवती नामकी रानी पतिव्रता अपने प्राणोंसे भी प्यारी एक कन्या पैदा करती हुई ॥ १७ ॥ एक समय में सुखसे बैठे हुये राजा अकस्मात् आये हुये च्यवनमुनि को देख अर्ध और पाद्य से पूजन करते हुये ॥ १८ ॥ और कहा कि आज आपके चारुक्कमलोंके दर्शन से मेरा जन्म सफल हुआ मैं आपके इस आगमन को बड़ा अतुल्य समझता हूँ इससे अब आप भोजन करनेको योग्य होते हो ॥ १९ ॥ उन राजाके इस वचन को सुनकर च्यवनमुनि बोले कि धर्ममें तत्पर अपनी कन्याको जो मुझे लीके वास्ते देवोगे ॥ २० ॥ तो हे महीपति ! इस भोजन करेगे और जो न देवोगे तो तुम पापको पावोगे तब राजा

रासीत्पतिव्रता ॥ सातुत्रीजनयामास प्राणेभ्योपि गरीयसीम् ॥ १७ ॥ एकदापि नृपश्रेष्ठः सुखासीनो यदृच्छया ॥ आगतं च्यवनं दृष्ट्वा अर्घ्यपाद्यैरपूजयत् ॥ १८ ॥ अद्य मे सफलं जन्म त्वत्पादाम्बुजदर्शनात् ॥ अतुल्यं ह भिन्नमन्ये भोजनं कर्तुमर्हसि ॥ १९ ॥ तस्य तद्वचनं श्रुत्वा प्रोवाच च्यवनो मुनिः ॥ कन्यां ददासि चेन्मह्यं भार्या र्थं धर्ममर्तपराम् ॥ २० ॥ तदा भोक्ष्ये महीपाल नो चेत्पापमवाप्स्यसि ॥ राजोवाच ॥ एकामेदुहिता ब्रह्मन् राज्ञीया च स्वर्वाणिनीम् ॥ २१ ॥ कन्यादा नेन शक्तो हं सत्यमेतत्तवोदितम् ॥ ततः श्रुत्वा वचो राज्ञी मुनिर्वचनमब्रवीत् ॥ २२ ॥ कन्यां देहि च मे राज्ञि गृहिणः पुत्रकारणात् ॥ प्रहस्य चाब्रवीद्राज्ञी न ते योग्या द्विजोत्तमा ॥ २३ ॥ अन्यदा च क्षवब्रह्मर्षे तद्ददामि न संशयः ॥ ततः कोपाच्छ शपेनां पत्नियो निन्तु गच्छसि ॥ २४ ॥ शपं श्रुत्वा ततो राज्ञी शशापाथ महा मुनिम् ॥ यदि मे विद्यते सत्यं भर्तुं भक्तिश्च निश्चला ॥ २५ ॥

बोले कि हे ब्रह्मन् ! मेरे, एकही कन्या है इससे आप श्रेष्ठ रानीसे मांगो ॥ २१ ॥ कन्याके देनेमें मैं नहीं समर्थ हो सका हूँ यह आपसे सत्य कहता हूँ इस वचनको सुन कर फिर च्यवनमुनि रानीसे वचन बोले ॥ २२ ॥ कि हे राज्ञि ! सुभ्र गृहस्थ को पुत्रके वास्ते तुम अपनी कन्याको देवो तब हँसकर रानीने कहा कि हे द्विजोत्तम ! कन्या आपके योग्य नहीं है ॥ २३ ॥ इससे हे ब्रह्मर्षे ! और कुछ मांगो सो हम तुमको देंगी इसमें संशय नहीं है तदनन्तर च्यवन ने उस रानीको शाप दिया कि तू पक्षीकी योनिको प्राप्त हो ॥ २४ ॥ रानी शापको सुनकर आप भी महा मुनि को आप देती हुई बोली कि जो मुझमें सत्य व निश्चल पतिकी भक्ति हो ॥ २५ ॥

और निरपराध मुक्तको शाप दिया हो तो तुम नेत्रों से हीन अर्थात् अन्ध हो जाओगे आपसमें शापको प्राप्त हुये दोनों नर्मदाके तट में आये ॥ २६ ॥ एरण्डी के संगम में देवताओं की हजार वर्षतक च्यवन मुनि उग्रतपको करते हुये और बांबी से ढकजाते हुये ॥ २७ ॥ और अमरकण्टक पर्वतके पूर्व में मध्यारण्य नाम का वन कहा गया है उसी वनमें कदम्ब वृक्ष के नीचे वे दोनों स्त्री पुरुष राजा रानी ॥ २८ ॥ फूले फले जंगल में पक्षीरूप होगये और भी वहां हजारों पक्षी रहते ॥ २९ ॥ वे सब जातिस्मर अर्थात् पूर्वजन्मकी सुध रखनेवाले उत्तम मनुष्यकी वाणी बोल रहे ऐसे वे सारंग अर्थात् पपीहा नामके पक्षी हमेशा प्रसन्नचित्त रहते हुये ॥ ३० ॥ तब

शप्तानिरपराधाहं नेत्रहीनो भविष्यसि ॥ परस्परंचतौ शप्तौ नर्मदातीरमागतौ ॥ २६ ॥ चचारच्यवनश्चोग्रमेर
एडीसङ्गमेतपः ॥ दिव्यं वर्षसहस्रन्तु बल्मीकेन तृषरितः ॥ २७ ॥ गिरिवैपुर्वभागे तु मध्यारण्यमिति स्मृतम् ॥ कदम्ब
वृक्षमासाद्य वने तस्मिन् श्रद्धाम्पती ॥ २८ ॥ पुष्पिते फलितेरम्ये संजातौ पक्षिरूपिणौ ॥ अन्येऽपि पक्षिणस्तत्र समुद्भूताः
सहस्रशः ॥ २९ ॥ जातिस्मरान्याहरन्तो मानुषीं गिरमुत्तमाम् ॥ सारङ्गाः पक्षिणस्ते तु सर्वदा हृष्टमानसाः ॥ ३० ॥ ज्येष्ठे
मासे तु संप्राप्ते दावाग्निरदहद्वनम् ॥ प्रणष्टाश्चाण्डजाः सर्वे ज्वाला मालाकुलीकृताः ॥ ३१ ॥ कोटरैस्तु समालम्ब्य पुत्रैः
सहयथा सुखम् ॥ एकदा गर्भिणी जाता पक्षिणी तत्र भारत ॥ ३२ ॥ भर्तारं पक्षिणी प्राह किन्त्वन्तिष्ठसि निर्भयम् ॥ गता
अपक्षिणः सर्वे किन्त्वं संहारयिष्यसि ॥ ३३ ॥ तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा खेचरो वाक्यमब्रवीत् ॥ भार्या न्त्यक्त्वा सुतां श्रैव या
म्येकांकी कथं प्रिये ॥ ३४ ॥ इति लोकेन वेदे च दृष्टं केनापि कुत्रचित् ॥ पाणिग्रहेण या भार्या सुशीला धर्मचारिणी ॥ ३५ ॥

तक जेठके महीने को प्राप्त हुये पर दावानलने सारे जंगलको जला दिया उसीमें अग्नि की लपटोंसे व्याकुल वे सब पक्षी भी भस्म होगये ॥ ३१ ॥ परन्तु वह राजा की रानी जो पक्षिणी अर्थात् चिड़िया होगई थी सो अपने घाँसलेमें पुत्रोंके सहित बैठी हुई हे भारत ! ॥ ३२ ॥ अपने पतिसे कहा कि तुम कैसे निर्भय बैठे हुये हो और सब पक्षी चले गये तुम क्या संहार करोगे-? ॥ ३३ ॥ उसके इस वचनको सुनकर पक्षी वचन बोला कि हे प्रिये ! मैं स्त्री और पुत्रोंको छोड़कर इकछे कैसे चला जाऊँ ॥ ३४ ॥ ऐसा

काम कहीं लोक व वेद में नहीं देखा गया है कि विवाह की रीति से जो धर्म की करनेवाली उत्तम स्वभावकी स्त्री होती है ॥ ३५ ॥ उसको छोड़कर जो मोहसे चला जाता है वह भ्रूणघ्न अर्थात् गर्भका गिरानेवाला कहा जाता है तब उसकी स्त्री बोली कि हे जीवेश ! कुलके मूलरूप अपनेको आप बचावो ॥ ३६ ॥ फिर भी आपकी श्री सैकड़ों व हजारों स्त्रियां होजावेंगी अपने पतिके जीतेहुये जो स्त्री और पतिको चाहती है ॥ ३७ ॥ वह दुराचार पापिनी स्त्री विष्टामें कीड़ा होती है पतिसे हीन विधवा स्त्री जो अपने पतिके साथ सती नहीं होती है ॥ ३८ ॥ वह सौवर्ष भी जीवे परन्तु पापिष्ठाही कही जाती है और पति के जीतेहुये जो पति के आगे मरजाती है ॥ ३९ ॥ वह

त्यक्त्वागच्छति तामोहाद् भ्रूणघ्नः सतुकीर्तिः ॥ पत्नियुवाच ॥ आत्मानं रक्ष जीवेश मूलभूतं कुलस्य तु ॥ ३६ ॥
भूयोन्यास्ते भविष्यन्ति भार्याः शतसहस्रशः ॥ जीवमाने तु यापत्यावन्यं कामयते वरम् ॥ ३७ ॥ सा पापिष्ठा दुराचा
राविष्ठायां जायते कृमिः ॥ विधवा भर्तृहीना या नुगतानस्वकं पतिम् ॥ ३८ ॥ जीवेद्वर्षशतं यावत् सा पापिष्ठा प्रकीर्तिता ॥
पत्यौ जीवति या नारी म्रियते भर्तुरग्रतः ॥ ३९ ॥ भर्तृदत्तो दकश्राद्धः सा याति परमाद्भुतिम् ॥ प्रसादाद्यस्य लभ्येत पुत्रालङ्का
रकीर्तयः ॥ ४० ॥ कोन्यः प्रियतरस्तस्मादिह लोके परत्र च ॥ स्वयं प्राप्तस्तु दावाग्निः शीघ्रं गच्छ कथं मुतान् ॥ ४१ ॥ त्य
क्त्वा गच्छामि जीवेश संहारो वर्तते धुना ॥ हस्तौ पादौ न विद्येते पावको नैव शाम्यति ॥ ४२ ॥ अशक्ता नीयमाने तु पत्नि
एवाश्वाण्डजीविनः ॥ सुतांस्त्यक्त्वा तु यामाता भयार्ता याति गर्हिता ॥ ४३ ॥ सा सप्तजन्मपर्यन्तं सर्पिणी जायते ध्रुवम् ॥

पति के दिये हुये जल व श्राद्धों से परमगति को प्राप्त होती है जिस पति के प्रसादसे लड़के, गहने और कीर्ति मिलती है ॥ ४० ॥ उससे अधिक इस लोक व पर-
लोक में और दूसरा प्यारा कौन होसक्ता है इससे दावानल आपही प्राप्त होगया है सो तुम बहुत शीघ्र चले जावो और मैं लड़कोंको छोड़कर हे जीवेश ! कैसे जाऊँ
अब इस समयमें संहार होरहा है लड़कोंके हाथ पाँव अभी ठीक नहीं हुये हैं और अग्नि लुप्तती नहीं है ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ अण्डोंसे जीतेहुये बच्चे लेचलने में अशक्त हैं
लड़कोंको छोड़कर भयसे पीड़ित जो नालायक माता चलीजाती है ॥ ४३ ॥ वह सात जन्मोंतक निश्चय करके सांपिनि होती है यह कहकर फिर वहाँ वे दोनों स्त्री

पुरुष आपस में लड़कों की जोड़ी २ को बड़ेयल से लेकर एरण्डी के समागम में बिठाकर पति स्त्रीसे बोला ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ कि हे प्रिये ! अभी मैं और पुत्रों को लाने के वारते जाता हूँ तबतक तुम खाऊज्जीवों से मेरे बच्चों को बड़ेयलसे बचाये रहना ॥ ४६ ॥ ऐसे कहकर वह पत्नी कदम्बमें वर्तमान अपने घोंसलेको जाताहुआ तब वहाँ उसने अपने मकानको अग्निसे जलताहुआ देखा ॥ ४७ ॥ पुत्रों के वारते स्नेह से जलतेहुये मकानमें पैठगया उसीसमयमें अग्निने वृक्ष व लड़कोंके सहित उसको जलादिया ॥ ४८ ॥ उस अग्निसे जलाहुआ वह पत्नी अग्निरूपही होगया उस जंगलके जलजानेपर वर्षाकाल प्राप्त हुआ ॥ ४९ ॥ हे नृप ! वह सब वहाँ एरण्डी

एवमुक्त्वातुतत्रैव पुत्राणाञ्चपरस्परम् ॥ ४४ ॥ सासंगृह्यप्रयत्नेन युग्मंयुग्मंचदम्पती ॥ संश्रयाप्यैररिडकायोगे भर्ता
भार्यामुवाचह ॥ ४५ ॥ दांष्ट्रिभ्यश्चप्रयत्नेन रत्नणीयाःसुतामम ॥ गच्छामिचसुतानन्यानानेतुंसाम्प्रतंप्रिये ॥ ४६ ॥ ए
वमुक्त्वागतःपत्नी कदम्बाश्रितमन्दिरम् ॥ सोपश्यद्वैतदातव मन्दिरंवल्लिसंकुलम् ॥ ४७ ॥ स्नेहात्प्रविष्टःपुत्रार्थी ज्वा
लामालावृतंगृहम् ॥ तंददाहतदावल्किः समुतंसमहीरुहम् ॥ ४८ ॥ दग्धस्तुवल्लिनानेन वल्लिपुञ्जह्वाभवत् ॥ भस्मीभूते
वनेतस्मिन् प्रावदकालःसमागतः ॥ ४९ ॥ एरण्ड्यन्तर्जलेतत्र सर्वतत्प्लावितंचप ॥ अमासोमसमायोगे पक्षिणस्तस्य
चास्थिवै ॥ ५० ॥ एरण्ड्याःसङ्गमेप्राप्तं देवाद्वैनृपसत्तम ॥ तत्तत्तणाद्विव्यदेहस्तु दिव्ययानंसमाश्रितः ॥ ५१ ॥ ध्रियमा
णातपत्रस्तु वीज्यसानोप्सरोगणैः ॥ दिव्यवस्त्रपरीधानोदिव्यालङ्कारभूषितः ॥ ५२ ॥ उपरिव्याहरन्भार्या सजगामा
त्मनःपुरीम् ॥ आगच्छसुभुमेशीघ्रं भार्यात्वंमेमविष्यसि ॥ ५३ ॥ सिद्धविद्याधरैर्यज्ञैः साधुवादेनपूजितः ॥ पुष्पवृष्टिः

के जलमें डूबगया हे नृप ! अमावस और सोमके योगमें उस पत्नीकी हड्डी ॥ ५० ॥ दैवयोगसे एरण्डी के संगम में प्राप्तहुई हे नृपसत्तम ! वह पत्नी उसीक्षण में दिव्य देहवाला दिव्यसवारी पर सवार ॥ ५१ ॥ छाताको लगायेहुये, आभूषणों से हवा कियाजाता हुआ, दिव्यकपड़े पहनेहुये और दिव्य गहनोसे भूषित ॥ ५२ ॥ ऊपर से अपनी स्त्री से कहताहुआ वह अपनी पुरीको चलागया कहता है कि हे सुभगे ! तुम शीघ्रही आओ मेरी स्त्री होवोगी ॥ ५३ ॥ सिद्धविद्याधर और यज्ञोक्तरके प्रशंसा

कियागया और उसपर इन्द्रकरके वरमाई हुई फूलोंकी वर्षा होतीहुई ॥ ५४ ॥ हे राजन् ! इसी अन्तर में फिर भी वह अपनी स्त्री से बोला कि कन्याके वारते च्यवन महात्माने तुझको शापदियाह्रा ॥ ५५ ॥ सो तू धर्मात्माओं के मन्दिर को प्राप्तहोकर अपने शरीर को छोड़दे इस प्रकार आकाशवाणी से राजाकरके सुध कराईगई उस पुरको प्राप्तहुई ॥ ५६ ॥ और अपने पुत्रोंको लेकर आके पतिसे यह बोली कि जो गति मेरे पतिकी हो वही मेरी भी नित्य होवे ॥ ५७ ॥ तब उसका पति वचन बोला कि इस सोमवती अमावास्या को एरण्डीतीर्थ के सङ्गम् में भट्टसे अग्निमें प्रवेशकर ॥ ५८ ॥ वहां जो तेरी हड्डी गिरेगी वही तुझको पापसे

पपातोच्चैर्देवराजोपकल्पिता ॥ ५४ ॥ एतस्मिन्नन्तरेराजन् पत्नीं भूयोपिचाब्रवीत् ॥ कन्यार्थत्वंमुशसासि च्यवनेनम
हात्मना ॥ ५५ ॥ मुञ्चात्मानमवाप्यत्वं भवनंधर्ममचारिणाम् ॥ स्मारिताकाशचचसा नृपेणैवपुरङ्गता ॥ ५६ ॥ सुतान्प्र
गृह्यचागत्य भर्तारमिदमब्रवीत् ॥ यागतिर्ममभर्तुः स्यात्सामेनित्यममविष्यति ॥ ५७ ॥ उवाचवचनंभर्ता शीघ्रंविश
हुताशनम् ॥ अमासोमसमायोगे एरण्डीतीर्थसङ्गमे ॥ ५८ ॥ तत्रयत्पतितंचाग्निं पापात्त्वान्तरायिष्यति ॥ एवमस्त्व
तितंचोक्त्वा पक्षिणीसत्वरंतदा ॥ ५९ ॥ आहृत्यतृणकाष्ठानि सम्प्रदीप्यहुताशनम् ॥ ततोयानंसमारूढा भर्तुःसाच
सुतैःसह ॥ ६० ॥ उमामहेश्वरंयद्वच्छ्रीपतिश्चयथारमा ॥ तद्वचावापभर्तारं तीर्थस्यास्यप्रभावतः ॥ ६१ ॥ एवंयानंस
मारुह्य समार्यस्तुतदानृपः ॥ चन्द्रसेनोदेवसेनो यज्ञसेनस्तथापरः ॥ ६२ ॥ त्रिभिःपुत्रैःपरिवृतो धर्ममवृत्तिपरायणः ॥
विवेशनगरींरम्यामयोध्यान्देवनिर्मिताम् ॥ ६३ ॥ मुदापरमयायुक्तः सान्तःपुरपरिच्छिदः ॥ राज्यंकृत्वावर्षलज्जं ततः

छुड़ादेगी तब वह चिड़िया उस अपने पतिसे ऐसाही हो यह कहकर बहुत जल्द ॥ ५६ ॥ काठ व तृणोंको एकत्रितकर अग्निको जलाके जलगाई तदनन्तर वह अपने पुत्रोंके सहित पतिकी सवारी पर सवारहुई ॥ ६० ॥ जैसे पार्वतीजी महादेव को पावें और जैसे लक्ष्मीजी विष्णुको पावें इसीतरह इस तीर्थके प्रभावसे वह अपने पतिको प्राप्तहुई ॥ ६१ ॥ उस समय इसतरह राजा अपनी रानीके सहित सवारी पर सवार होकर चन्द्रसेन, देवसेन वैसेही और यज्ञसेन ॥ ६२ ॥ इन तीनों अपने पुत्रोंसे युक्त, धर्मके करनेवाले, देवताओंकी वनाईहुई, रमणीक, अयोध्यानगरी में प्रवेश करतेहुये ॥ ६३ ॥ बड़े आनन्दसे युक्त अपने परिवार सहित लाख वर्षतक

राज्यकरके फिर शिवजी के लोकको जातेहुये ॥ ६४ ॥ हे नृप ! एरण्डीके समागम में एरण्डीश्वर का पूजन करके पचासी हजार महात्मा क्षत्रिय राजा ॥ ६५ ॥ हे राजेन्द्र ! वहां सत्यही शिवजी के पुरको जातेहुये हे राजन् ! यह पुराना आख्यान तुमसे कहागया ॥ ६६ ॥ इसके सुनने व कहने से एक हजार गोदानका फल पाताहै ॥ ६७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणैरेवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनुवर्णनोनामत्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ६८ ॥

युधिष्ठिरजी बोले कि हे महामुने ! सुकन्या के वारते जिनको चन्द्रवती ने शाप दियाथा वे कामसे मोहित व्यवन मुनि बांजी से किस तरह छूटे ॥ १ ॥ और

प्राप्तःशिवाल्लयम् ॥ ६४ ॥ एरण्डीश्वरमभ्यर्च्य एरण्ड्याःसङ्गमेनृप ॥ पञ्चाशीतिसहस्रापि क्षत्रियाणांमहात्मनाम् ॥ ६५ ॥ गतानितत्रराजेन्द्र सत्यवैशाम्भवम्पुरम् ॥ एतत्तेकथितंराजन्नाख्यानैवपुरातनम् ॥ ६६ ॥ श्रवणात्कीर्तिनाद्वापिगो सहस्रफलंलभेत् ॥ ६७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणैरेवाखण्डेएरण्डीसङ्गममहिमानुवर्णनोनामत्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ६८ ॥

युधिष्ठिरउवाच ॥ सुकन्यार्थमुनिःशप्तश्चन्द्रवत्यामहामुने ॥ वल्मीकाचकथंमुक्तश्च्यवनःकाममोहितः ॥ १ ॥ पर लोककथंप्राप्तो ब्राह्मणोब्रह्मवित्तमः ॥ कथयस्वमहाबाहो परंकौतूहलंहिमे ॥ २ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ शृणुत्वंराजशार्दूल कथ्यमानंनिबोधमे ॥ निमिःपुत्रंचराज्यैव सूर्यसेनंनिवेदयच ॥ ३ ॥ आदिदेशाथमतिमाज्ज्येष्ठावैभगिनीतथा ॥ च्य वनायप्रदातव्या ब्राह्मणायनसंशयः ॥ ४ ॥ एरण्ड्याःसङ्गमेचेद्वाहयमेधंमखोत्तमम् ॥ सर्वयज्ञकृतंपुण्यंब्राह्मणायप्रदास्य सि ॥ ५ ॥ उक्तैर्वंसूर्यसेनन्तु सगतःशिवमन्दिरे ॥ एवमस्त्विदंतीक्ष्णत्वा सूर्यसेनःप्रतापवान् ॥ ६ ॥ एवंसञ्चिन्त्यमनसा ब्रह्मके जाननेवालों में श्रेष्ठ वे ब्राह्मण परलोक को कैसे प्राप्त हुये सो हे महाबाहो ! आप सुमसे कहिये मुझे बड़ा आश्चर्य होता है ॥ २ ॥ तब मार्कण्डेयजी बोले कि हे राजशार्दूल ! तुम सुनो और मेरे कहने को समझो राजा निमि सूर्यसेन अपने पुत्रको राज्य में बिठाके ॥ ३ ॥ उसको आज्ञादी कि अपनी जेठी बहिनको च्यवन ब्राह्मण को देना इसमें कुछ संशय न हो ॥ ४ ॥ और एरण्डी के संगम में अश्वमेधयज्ञ को करके सब यज्ञकी पुण्य ब्राह्मणको देदेना ॥ ५ ॥ इसतरह सूर्यसेन से कहकर वह शिवजी के मकान को चलागया प्रतापवाला सूर्यसेन भी अपने पितासे ऐसाही हो यह कहकर ॥ ६ ॥ और मनसे विचारकर स

सहित कन्याको लेकर देवताओं करके सहित राजा जाता हुआ ॥ ७ ॥ और अपने पिता की आज्ञा को सुध करता हुआ पांच योजन तक फैलाववाले मण्डप व यज्ञ के खम्भे बनवाये ॥ ८ ॥ समाप्ति में उत्तम दक्षिणा जिसमें दीर्गई ऐसे यज्ञका उस राजाने प्रारम्भ किया राजा की बहिन सुकन्या कन्याओं के साथ खेलती हुई ॥ ९ ॥ बाँबी में शब्द को सुनकर खेलने के वास्ते वहाँ चली गई वहाँ उसने एक मनुष्य को देखा कि वह अन्धा है और अपना मुँह नीचे को किये हुये है ॥ १० ॥ वह देख कर उसको काँटे से छेद दिया और आप अपने घर को चली गई हे भारत ! उस समय में बड़ा हाहाकार हुआ कि यह क्या होगया ॥ ११ ॥ राजा सूर्यसेन बड़ा उदास

सर्वसम्भार संवृतः ॥ सजगामसुरैः सार्द्धं कन्यामादायभूपतिः ॥ ७ ॥ मण्डपांश्चैवयूपांश्च पञ्चयोजनविस्तरान् ॥ सच कारततोरजा पितुराज्ञामनुस्मरन् ॥ ८ ॥ यज्ञस्तेनसमारब्धः समाप्तवरदक्षिणः ॥ रममाणामुकन्याच कन्याभिर्दृष्ट तस्वसा ॥ ९ ॥ श्रुत्वाशब्दंचवल्मीके कर्तुं क्रीडांसमाययौ ॥ तत्रापश्यन्मानुषं सा चक्षुर्हीनमधोमुखम् ॥ १० ॥ दृष्ट्वा सा कण्टकैर्नैव विव्याधचण्डहङ्गता ॥ हाहाकारो महानासीत् किमेतदिति भारत ॥ ११ ॥ दुर्मनाः सूर्यसेनस्तु ब्राह्मणैः सहसत्वरम् ॥ आलुहावततो देवावदिवनौपाकशासनम् ॥ १२ ॥ यज्ञं निवर्तयामास यथावद्विधिपूर्वकम् ॥ निवर्त्य च ततो यज्ञं राजा परमधार्मिकः ॥ १३ ॥ देवानभ्यर्चयामास च्यवनाय महात्मने ॥ दिव्यं चक्षुर्ददध्वं हि वपुः कान्तं न वंचयः ॥ १४ ॥ एवमभ्यर्थितैर्देवैर्दत्तं चक्षुर्धुधिष्ठिर ॥ रूपयौवनसम्पन्नं कामदेवसंभवपुः ॥ १५ ॥ ततः प्रसादयित्वा सौ च्यवनं वाक्यमब्रवीत् ॥ तत्त्वमस्वमहाभाग यत्कृतन्ते सुकन्यया ॥ १६ ॥ गृहाण पाणिमस्यास्त्वं मुनेकोपपरित्यज ॥ एवमभ्यर्थितो

होगया तदनन्तर बड़ी जल्दी से ब्राह्मणों के सहित देवता अश्विनीकुमार व इन्द्र को बुलाया ॥ १२ ॥ व विधिपूर्वक यज्ञ को यथावत् समाप्त किया तदनन्तर परमधर्म का करनेवाला राजा यज्ञ को समाप्त कर ॥ १३ ॥ देवताओं का पूजन किया और कहा कि च्यवन महात्मा के लिये दिव्यनेत्र और बहुत सुन्दर देह व नई उमर आपलोग देवें ॥ १४ ॥ हे धुधिष्ठिर ! इस प्रकार याचना किये गये देवताओं ने त्र व रूप और जवानी से भरी हुई कामदेव के बराबर सुन्दर देह को दे दिया ॥ १५ ॥ तदनन्तर च्यवनमुनि को प्रसन्न कर ये राजा वचन बोले कि हे महाभाग ! उस अपराध को आप क्षमा करो जो कि आप के लिये सुकन्या ने किया था ॥ १६ ॥

हे मुने ! इसका हाथ आप पकड़ो यानी इसके साथ आप विवाहकरो और क्रोधको छोड़दो इसप्रकार राजाके कहनेपर मुनिने कहा कि अच्छा ऐसाही करेगे ॥ १७ ॥ तदनन्तर यज्ञान्तस्नान के समाप्त होनेपर चण्डवेगा के समागम में राजा विधिपूर्वक अपनी वहिन और मुनिकी जोड़ी को बिठाकर उन मुनिको यज्ञका फल देकर ॥ १८ ॥ सुकन्याका मनोहर विवाह करतेहुये वे दोनों स्त्री पुरुष लक्ष्मीनारायणके समान दिव्यरूपको धरेहुये ॥ १९ ॥ खुशी से बड़े २ नेत्र जिनके होरहे ऐसे वे दोनों स्त्री पुरुष वहां होगये राजा सूर्यसेन वहां कन्याको मुनिको देकर अपने शहरको जातेहुये ॥ २० ॥ इन्द्रके तुल्य पराक्रमवाले राजा सूर्यसेन अनेक भोगोंको

राज्ञा मुनिरोमित्युवाचह ॥ १७ ॥ ततश्चावमृथेयुगं चण्डवेगासमागमे ॥ संस्थाप्यविधिवद्राजा तस्मैदत्त्वाक्रतोःफलम् ॥ १८ ॥ चकारपाणिग्रहणं सुकन्यायामनोहरम् ॥ दिव्यरूपधरोतीतु लक्ष्मीनारायणाविव ॥ १९ ॥ संजातौदम्पतीतत्र हर्षेणोत्फुल्लोचनौ ॥ दत्त्वाकन्यामुनेस्तत्र सूर्यसेनःपुरंययौ ॥ २० ॥ बुभुजेविविधान्भोगाञ्छक्रतुल्यपराक्रमः ॥ सूर्यसेनंसुकन्याञ्च चयवनंशक्रमद्विनौ ॥ २१ ॥ भोजनान्तेस्मरेद्यस्तु चक्षुस्तस्यनहीयते ॥ एतत्तेकथितंराजंश्चण्डैरण्डकसङ्गमम् ॥ २२ ॥ तत्रस्नातोदिवंयातिनपुनर्गर्भमाविशेत् ॥ यजेतवाइवमेधेन नीलंबावृषमुत्सृजेत् ॥ २३ ॥ आख्यानंकथयिष्यामि यथादृष्टंयथाश्रुतम् ॥ बभ्रामसर्वतीर्थानि दुर्वासाश्चोश्रतापसः ॥ २४ ॥ पितृतीर्थं समागम्य पितृणांहितकाम्यया ॥ तत्रस्नात्वाचर्यित्वाच शूलपाणिपितामहम् ॥ २५ ॥ जलाञ्जलीं कुशतिलां पितृपिण्डमवाप्नुजत् ॥

भोगतेहुये, सूर्यसेन, सुकन्या, चयवन, इन्द्र और अश्विनकुमारको ॥ २१ ॥ जो भोजनके अन्तमें स्मरण करताहै उसके नेत्र नहीं जातेहैं हे राजन् ! यह चण्डा और एरण्ड का समागम तुमसे कहा ॥ २२ ॥ वहां स्नान करनेवाला स्वर्गको जाता है फिर गर्भ में नहीं आता जो अश्वमेधयज्ञ करता व नीलंबेल को छोड़ता वह भी उक्तफल को पाताहै ॥ २३ ॥ अब और दूसरे आख्यान को देखे व मुनेके अनुसार कहते है किसीसमय में उग्रतपके करनेवाले दुर्वासाजी सब तीर्थों में घूमतेहुये ॥ २४ ॥ पितरों के हितकी कामनाकरके पितृतीर्थ (गया) को जाकर और वहां स्नानकर महादेव व ब्रह्माका पूजनकर ॥ २५ ॥ जलाञ्जली, कुश, तिल और पितरों

को पिण्डदेतेहुये पिण्डको देकर बड़े आश्चर्य में हो रहे दुर्वासाजी मुनियों से बोले ॥ २६ ॥ कि हे मुनियो ! मैंने सुनाथा कि पितरलांग यहां पिण्डोंको हाथमें लेलेतेहैं सो हम आज नहीं देखते इससे हमारी तीर्थयात्रा व्यर्थ है ॥ २७ ॥ उन दुर्वासाको उग्रतापस जानकर वहां वे मुनिलोग बोले कि अमावस में दियेहुये पिण्डको पितरलोग हाथमें लेतेहैं ॥ २८ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! यह बात सत्यहै वेदका कहना भूत नहीं होसक्ता सो तबतक आप और तीर्थोंके देखने की इच्छा से अमावस को परखो ॥ २९ ॥ तब दुर्वासा ब्रह्मर्षि कोप करतेहुये वचन बोले कि अब हम यहांन पिण्डदेवेंगे और न स्नान व दान करेंगे ॥ ३० ॥ तदनन्तर मुनियोंमें उत्तम एरण्डजी

दत्त्वापिण्डमुनीन्प्राह परंविस्मयमागतः ॥ २६ ॥ करेगृह्णन्तिपितरः पिण्डानीहमयाश्रुतम् ॥ तदद्यभोनप
श्यामि तीर्थयात्रानिरर्थिका ॥ २७ ॥ तमुग्रतापसंज्ञात्वा प्रोचुस्तेमुनयस्तदा ॥ करेगृह्णन्तिपितरः पिण्डदशंप्रकल्पि
तम् ॥ २८ ॥ सत्यमेतन्मुनिश्रेष्ठ नान्यथवेदभाषितम् ॥ तद्दर्शञ्चप्रतीक्षत्वं तीर्थान्तरदिदृक्षया ॥ २९ ॥ चुकोपैवतदा
विप्रऋषिश्चैवाऽब्रवीद्वचः ॥ अत्रनोपातयेपिण्डं स्नानंदानं करोमिन ॥ ३० ॥ दुर्वासास्तुततःप्राह एरण्डमुनिपुङ्गवम् ॥
करेकमण्डलंकृत्वा जलपूर्णंमहामुनिम् ॥ ३१ ॥ शरीरंक्लिश्यसेकस्मात्तवात्रनिष्फलंतपः ॥ अंकारंकल्पगंगच्छ गृ
हीत्वैकंकमण्डलम् ॥ ३२ ॥ एकःपितामहःपूज्यो गयायांप्रभुरव्ययः ॥ उक्तैवमृषिभिःसार्द्धं गिरिन्त्वमरकण्टक
॥ ३३ ॥ आजगाममहातेजागत्वातत्रचभारत ॥ अंकारस्यार्चनंकृत्वा स्तोत्रमेतदुदाहरत् ॥ ३४ ॥ नमःकालाय

ाय त्रिदेवायत्रिमूर्तये ॥ अव्यक्ताव्यक्तरूपाय अनन्तानन्तगामिने ॥ ३५ ॥ ऋग्यजुःसामरूपाय सर्वज्ञायनमोस्तु

॥ मुनि दुर्वासाजी जलका भरहुआ कमण्डलु हाथमें लेकर बोले ॥ ३१ ॥ कि तुम अपने शरीरको क्यों क्लेश देतेहो तुम्हारा यहां तप करना निष्फलहै इससे केवल लेकर अंकारनाथ व नर्मदा को जावो ॥ ३२ ॥ इस गया में एक अविनाशी, प्रभु, ब्रह्माही पूजन करने योग्य हैं इस प्रकार कहकर ऋषियों के सहित

जी अमरकण्टक को ॥ ३३ ॥ आतेहुये हे भारत ! बड़े तेजवाले दुर्वासा जी वहां आकर अंकारनाथका पूजनकर इस स्तोत्रको पढ़तेहुये ॥ ३४ ॥ कि काल देवताओंका स्वरूप, तीन मूर्तिवाले, देवके लिये नमस्कारहै देखाजाता और नहीं भी देखाजाताहै रूप जिनका व अन्त जिनका नहीं है और बहुत दूरतक

जानेवाले ॥ ३५ ॥ ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद जिनका रूप है और सबके जाननेवाले हैं ऐसे आपके लिये नमस्कार है व हे संसारके पैदा करनेवाले, जगत् के स्वामी, पर्वती के पति ! आपके लिये नमस्कार है ॥ ३६ ॥ असुरोंके मारनेवाले, त्रिपुरासुरके मारनेवाले देव आपके लिये नमस्कार है सद्योजात और अघोर जिनके नाम हैं ऐसे जीवोंके मालिक आपके लिये नमस्कार है ॥ ३७ ॥ महाप्रलयके अग्निरूप जो रुद्र आपहो तिनका जयहो और महाप्रलयके मेघरूप जो आप हो तिनके लिये नमस्कार है नमस्कार है इन्द्रियोंके मालिक जो रुद्र हैं और जीवात्माओंके मालिक जो आप हैं तिनके लिये नमस्कार है ॥ ३८ ॥ कल्याणके पैदा करनेवाले व सुखके पैदा करनेवाले आपके लिये नमस्कार है व शङ्कररूप आपके लिये नमस्कार है हे ब्रह्मा, विष्णु और इन्द्रको वर देनेवाले ! तीन नेत्रवाले आपके लिये नमस्कार है ॥ ३९ ॥

ते ॥ भवोद्भवजगन्नाथ उमाकान्तनमोस्तुते ॥ ३६ ॥ असुरधनाय देवाय त्रिपुरधनाय ते नमः ॥ सद्योजातस्तथाघोरः पुरुषेशाय ते नमः ॥ ३७ ॥ जयकालाग्निरुद्राय संवर्ताय नमो नमः ॥ हृषीकेश्वर रुद्राय पुरुषेशाय ते नमः ॥ ३८ ॥ नमः शम्भवाय मयोभवाय शङ्कराय नमोस्तुते ॥ ब्रह्मविष्णुवन्द्यवरद त्रिनेत्राय नमोस्तुते ॥ ३९ ॥ श्रीकण्ठनीलकण्ठाय नमः सोमार्द्धधारिणे ॥ कपालमालिने तुभ्यं नमः खट्वाङ्गधारिणे ॥ ४० ॥ नमः विशूलहस्ताय नागाभरणभूषिणे ॥ नमः पिनाकिने तुभ्यं महानाथ नमोस्तुते ॥ ४१ ॥ शर्वाय सर्वरूपाय चराचरनमोस्तुते ॥ जिह्वाचापत्यभवेन खेदितोसि भयाप्रभो ॥ ४२ ॥ त्वमस्वमे सुरेशान इह लोके परत्र च ॥ त्वत्समो नास्ति देवेश कश्चिदन्य उमापते ॥ ४३ ॥

शोभावाला व काला है कण्ठ जिनका ऐसे आधे चन्द्रमाके धारनेवाले शिवजी के लिये नमस्कार है व सुएडोंकी मालाके पहिनेवाले व मूड़के सहित मनुष्यकी रीरके धारण करनेवाले तुम्हारे लिये नमस्कार है ॥ ४० ॥ त्रिशूलको हाथमें लिये व सापोंके गहनेको पहने हुये तुम्हारे लिये नमस्कार है हे महानाथ ! पिनाक धनुषके धारने वाले जो आपहो तिनके लिये नमस्कार है ॥ ४१ ॥ हे चराचरस्वरूप ! जगत्के नाश करनेवाले, सबका रूप तुम्हारे लिये नमस्कार है हे प्रभो ! अपनी जीभकी चञ्चलतासे आपको मैंने कथित किया है ॥ ४२ ॥ सो हे सुरेशान ! इसलोक व परलोकमें मेरे अपराधको आप क्षमाकरो हे देवेश, उमापते ! आपके बराबर और कोई नहीं है ॥ ४३ ॥

अंकाररूप के धरनेवाले शिवजी इस दिव्यस्तोत्र को सुनकर इस वचन को कहा कि हे महाभाग ! तुम वरको मागो ॥ ४४ ॥ तब दुर्वासाजी बोले कि हे देवेश ! जो आप मुझपर प्रसन्नहो और जो आपको मुझे वर देनेवाले तो गयाजी के बराबर यह तीर्थ होजावे यही मुझको आप देवें ॥ ४५ ॥ तब अंकारजी बोले कि हे तपोधन ! मेरे प्रसाद से यह सब आजही होजावे इन चराचर तीनों लोकोंमें अनहोनी भी तुम्हारे वास्ते होसकी है ॥ ४६ ॥ इस प्रकार उग्रतपस्वी दुर्वासा के कोप-ब्रह्मण वरको पाकर अमरकण्टकपर्वतके पूर्वतरफ मुनियोंके सहित बसेतुहये ॥ ४७ ॥ हे नृपश्रेष्ठ ! इसी अन्तरमें ब्रह्माजी से नारदजीने कहा कि उस दुर्वासा के कोप-श्रुत्वास्तोत्रमिदं दिव्यं शिवअंकाररूपधृक् ॥ वरं वृणु महाभाग इति वाक्यमुवाच ॥ ४४ ॥ दुर्वासा उवाच ॥ यदि तुष्टो सिदेवेश यदि देयो वरो मम ॥ पितृतीर्थं समं तीर्थमेतदस्ति तदिदं हि मे ॥ ४५ ॥ अंकार उवाच ॥ एतत् सर्वं भवत्वद्य मत्प्रसादात्तपोधन ॥ असाध्यमपि साध्यन्ते त्रैलोक्ये सचराचरे ॥ ४६ ॥ एवं लब्ध्वा वरं विप्रो गिरैवै पूर्वभागतः ॥ उवासमुनिभिः साद्वदुर्वासा उग्रतापसः ॥ ४७ ॥ अत्रान्तरे नृपश्रेष्ठ ब्रह्माणं प्राह नारदः ॥ पितृतीर्थं गयानष्टा दुर्वासः कोपतस्ततः ॥ ४८ ॥ अस्ते स नर्मदातीरे अंकारे मरकण्टके ॥ नारदस्य वचः श्रुत्वा ब्रह्मालोकात्कुम्पया ॥ ४९ ॥ हंसयानं समारूढो देवैः सह नृपोत्तम ॥ आजगामाश्रमं तत्र दुर्वासा यत्र संस्थितः ॥ ५० ॥ दृष्ट्वा पितामहं देवमेरुण्डो मुनिपुङ्गवः ॥ कमण्डलुं समादाय पादमूले तु ब्रह्मणः ॥ ५१ ॥ विनिक्षिप्य यथान्यायमर्घ्यं दत्त्वा च तस्थिवान् ॥ कमण्डलुजलोद्भूतः प्रवाहो नर्मदांगतः ॥ ५२ ॥ ततः सम्पूज्य विधिवद् दुर्वासास्तं पितामहम् ॥ ब्रह्मोवाच ॥ उद्भवैद्यदिते तीर्थममा सोमसमागमे ॥ ५३ ॥ इदानीं मे पितरों को तारनेवाली गया नष्ट होगई ॥ ४८ ॥ वह दुर्वासा नर्मदाके तटमें उल्लास व अमरकण्टकमें रहते हैं नारद के वचनको सुनकर लोकोंपर दयाके कारण से ब्रह्माजी ॥ ४९ ॥ हंसपर सवार हुये देवताओंके सहित हे नृपोत्तम ! जहां दुर्वासाजी थे उस आश्रम को आते हुये ॥ ५० ॥ मुनियों में श्रेष्ठ एरण्डजी देव ब्रह्माजी को देखकर कमण्डलु लेकर ब्रह्माके चरणों में ॥ ५१ ॥ जल छोड़कर व यथारीति अर्घ्य देकर खड़े होते हुये कमण्डलु के जलसे पैदा हुई धारा नर्मदा को चली गई ॥ ५२ ॥ तदनन्तर दुर्वासा भी उन ब्रह्माजीका विधिपूर्वक पूजनकर बैठते हुये तब ब्रह्माजी बोले कि जो तुम्हारा तीर्थ सोमवती अमावास्याको प्रभाववाला हो तो अच्छा है ॥ ५३ ॥

परन्तु इस समयमें पितरोंका तीर्थ (गया) तो लोकों करके देखाही नहीं जाता है और आपका शाप हटाने के योग्य नहीं होसक्ता है इससे हमारे अभिप्राय को इस समय पूर्णकरो ॥ ५४ ॥ तब दुर्वासाजी बोले कि हे पितामह ! आपके वचन से मैंने अपने शापको निवृत्त करदिया वहां गयामें पितरों का दर्शन होगा गया पितरोंके विसर्जन करनेवाली होगी ॥ ५५ ॥ हे पितामह ! आपके प्रसादसे उस तीर्थमें यह सब काम होगा हे नृप ! ब्रह्माजी उन दुर्वासाजी से ऐसाही हो यह कहकर स्वर्गको चलेगये ॥ ५६ ॥ देवता और दैत्योंकरके नमस्कार कियेगये महादेवजीके नमस्कारकर बड़े आनन्दसे युक्त उत्तम ब्राह्मणोंसे पूजन कियेगये ॥ ५७ ॥ मुनियों

पितृतीर्थन्तु जनैर्नैहोपदृश्यते ॥ अनिवर्त्यस्तुशापस्ते तत्पूर्णं कुरुसाम्प्रतम् ॥ ५४ ॥ दुर्वासाउवाच ॥ मयानिवर्तितः शापो वचनात्तेपितामह ॥ पितृणां दर्शनं तत्र गयापितृविसर्जिनी ॥ ५५ ॥ भविष्यति प्रसादात्ते तस्मिंस्तीर्थे पितामह ॥ एवमस्त्वितितं चोक्त्वा दिवं ब्रह्माय यौ नृप ॥ ५६ ॥ नमस्कृत्य मे हंशानं सुरासुरनमस्कृतम् ॥ हर्षेण महता विष्टः पूज्यमानो द्विजोत्तमैः ॥ ५७ ॥ दुर्वासास्तु मुनिश्रेष्ठस्तत्रैवान्तरधीयत ॥ तेन पुण्यतमं लोकं तत्रैरण्डीसमागता ॥ ५८ ॥ एरण्डीश्वरलिङ्गन्तु सुरासुरनमस्कृतम् ॥ पुण्यकर्मानुपदृश्येद्वा अमासोमसमागमे ॥ ५९ ॥ दृष्ट्वा तत्परमं लिङ्गं यमलोकं न पश्यति ॥ एतत्तु कथितं राजन् मया त्वां प्रतिभारत ॥ ६० ॥ श्रवणात्कीर्तनादस्य गच्छेन्महाेश्वरं पुरम् ॥ ६१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणैरेवाखण्डे दुर्वासश्चरित्रे एरण्डीतीर्थवर्णनो नाम चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥ *

में श्रेष्ठ दुर्वासाजी वहीं अन्तर्द्धान होगये तिससे बड़ा पवित्र यह तीर्थ है यहां एरण्डी आई है ॥ ५८ ॥ देवता व दैत्योंकरके नमस्कार कियेगये एरण्डीश्वर लिंगको सोमवती अमावस में बड़े पुण्यकर्मवाला मनुष्य देखता है ॥ ५९ ॥ इस उत्तम लिंगके दर्शनकर फिर मनुष्य यमलोक को नहीं देखता है हे राजन्, भारत ! यह तुमसे मैंने कहा ॥ ६० ॥ इसके सुनने व कहने से महादेवजी के पुरको जाता है ॥ ६१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणैरेवाखण्डे प्राकृतभाषाऽनुवादे दुर्वासश्चरित्रे एरण्डीतीर्थवर्णनो नाम चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥

मार्कण्डेयजी बोले कि हे महाभाग ! तदनन्तर नर्मदा में विद्यमान शल्या और विशल्या तीर्थोंको जावे वहां स्नानकर स्वर्गको जाना है यह यज्ञेश्वर की आज्ञासि फल कहागया है ॥ १ ॥ वहा अत्युत्तम यज्ञेश्वर व धूपेश्वरलिंग है उनको सिद्धि व मोक्षके देनेवाले जानो उन्हें मनुष्य नहीं देखते हैं ॥ २ ॥ तिलोदक व अन्नके देने से हे भारत ! पितर तृप्तहोते हैं जबतक चन्द्र, सूर्य और नक्षत्र रहते हैं ॥ ३ ॥ पूर्णमासी, सोमवार, व्यतीपात और संक्रान्ति में वहां जो दान कियाजाता उसके पुण्यफल को सुनो ॥ ४ ॥ भरतने पूर्वकालमें वहां अश्वमेधयज्ञ को जिस प्रकार किया सो हम तुमसे इससमय कहेंगे हे कौन्तेय ! तुम सुनो ॥ ५ ॥ हे विशा-

मार्कण्डेयउवाच ॥ ततो गच्छेन्महाभाग स्वाशल्या विशल्यायोः ॥ तत्र स्नात्वा दिव्याति फलं यज्ञेश्वराज्ञया ॥ १ ॥ तत्र यज्ञेश्वरं लिङ्गं धूपेश्वरमनुत्तमम् ॥ सिद्धिदं मोक्षदं विद्धि न ते पश्यन्ति मानवाः ॥ २ ॥ तिलोदकप्रदानेन चान्नदानेन भारत ॥ पितरस्तृप्तिमायान्ति यावच्चन्द्रार्कतारकम् ॥ ३ ॥ पूर्णमास्यान्तु सोमैवै व्यतीपाते च संक्रमे ॥ दानं यत्किं यतेतत्र तस्य पुण्यफलं शृणु ॥ ४ ॥ भरतेन कृतस्तत्र हयमेधः पुरायथा ॥ तत्ते हं कथयिष्यामि शृणु कौन्तेय साम्प्रतम् ॥ ५ ॥ भरतो नाम राजासीत् सूर्यवंशे विशाम्पते ॥ प्रशशास महाराज कृत्स्नैवै समहीतलम् ॥ ६ ॥ यावत्तृणं विजानीया यावत्कीर्तिश्च भास्करः ॥ तावद्वै भरतक्षेत्रं सशैलवनकाननम् ॥ ७ ॥ एकदा स नृपश्रेष्ठो यज्ञकर्मपरायणः ॥ भृगोदक्षिणभागे तु कुण्डमण्डपमण्डिताम् ॥ ८ ॥ दशयोजनविस्तीर्णा यज्ञभूमिश्च कारह ॥ गवां हि दशलक्षानि सवत्सा नांपयो मुचाम् ॥ ९ ॥ लक्षमेकं हयानां च दन्तिनामयुतं तथा ॥ मणिमाणिक्यरत्नानि वासांसि विविधानि च ॥ १० ॥

मने । सूर्यवंशमें भरत राजा हुये सो हे महाराज ! वे सब पृथिवीतल की राश्य करते हुये ॥ ६ ॥ जहांतक तिनका व जहांतक यश व सूर्य हैं तहांतक पर्वत, जलों व जंगलों के सहित भरतही का क्षेत्र जानो ॥ ७ ॥ एक समय में वेही भरत राजा यज्ञकर्म करनेमें तत्पर हो भृगुपर्वतके दक्षिणतरफ कुण्ड और मण्डपोंसे शोभित ॥ ८ ॥ दश योजनकी लम्बी चौड़ी यज्ञके वारते भूमि बनाते हुये और बछड़ों सहित दूध देनेवाली दशलक्ष गौत्रें ॥ ९ ॥ एकलाख घोड़े वैसेही दश हजार हाथी, मणि,

माणिक रत्न और अनेकतरहके कपड़े ॥ १० ॥ यह सब यज्ञका सामान लेकर सब सामान के सहित वेदकी ध्वनिने स्वर्ग और पृथ्वीको छूतेहुये गये ॥ ११ ॥ होमसे सातोलोकों के रहनेवाले देवताओं को उत्स किया इस प्रकार बड़े तेजवाले राजा के यज्ञको वर्तमान होनेपर ॥ १२ ॥ यज्ञके विगाड़नेके वारते बड़े डरावने रूपवाले रक्षस माल्यवान्, सुकेशी, सुकाली, सुकेशी, शङ्ख और दूषण ॥ १३ ॥ हजारों राजसों को लेकर शीघ्र आतेहुये तीनों लोकमें दारुण उन राजनों ने सब यज्ञकी चीजों को तोड़फोड़ दिया ॥ १४ ॥ व सब देवताओं और यज्ञ करानेवाले ब्राह्मणोंको नाश करदिया हे अनघ ! इस प्रकार राजसों ने जब यज्ञको विगाड़ दिया तब ॥ १५ ॥

यज्ञोपरकरमादाय सर्वमम्भारसंवृतः ॥ वेदध्वनिनिनादेन दिवंभूमिञ्चसंपृशन् ॥ ११ ॥ होमनेदेवतास्तृप्ताः सप्तलोकनिवासिनः ॥ एवंप्रवर्तितेयज्ञे राज्ञश्चाभिततेजसः ॥ १२ ॥ यज्ञविध्वंसनार्थन्तु राजसारौद्ररूपिणः ॥ माल्यवांश्चसुमालीच सुकेशीशङ्खदूषणौ ॥ १३ ॥ राजसानांसहस्राणि समायातास्तुसन्त्वरम् ॥ भग्नानियज्ञवस्तूनि त्रिषुलोकेषुदारुणैः ॥ १४ ॥ प्रणष्टादेवताः सर्वा ऋत्विजश्चानिपातिताः ॥ एवंविनाशितेयज्ञे रक्षोभिश्चततो नघ ॥ १५ ॥ कोपाज्जज्ज्वालराजापि हुताशनइवाहुतः ॥ जवानराक्षसान्सर्वान् गिरीन्वज्रधरोयथा ॥ १६ ॥ प्रणष्टान्भयभीतांश्च पतितान्धरणीतले ॥ राजसैर्निहतान्दृष्ट्वा ब्राह्मणान्ऋत्विजस्तथा ॥ १७ ॥ शोकाविष्टस्तः प्राह भरतो देवमन्त्रिणम् ॥ गुरुस्त्वं सर्वदेवानां त्रिकालज्ञस्त्रिवेदवित् ॥ १८ ॥ ब्रह्महत्यादिकंपापं ममार्थे देवकण्टकैः ॥ प्रायश्चित्तं मया कार्यं किन्त्वं ब्रूहि बृहस्पते ॥ १९ ॥ बृहस्पतिरुवाच ॥ विद्यासंजीवनीतेहं ददामि नृपसत्तम ॥ जीविता ब्राह्मणदेवाः शशंसुर्देवमन्त्रिणम् ॥ २० ॥

बड़े कोपसे होमीहुई आगकी तरह राजा जलनेलगे और सन राजसों को मारा जैसे पहाड़ोंको इन्द्र ने मारा है ॥ १६ ॥ जैसेही मरे और भयसे डरेहुये पृथ्वीपर गिरे व राक्षसों से मारेहुये यज्ञके करानेवाले ब्राह्मणों को देखकर ॥ १७ ॥ शोकसे भरेहुये भरत राजा बृहस्पति से बोले कि तुम सब देवताओं के गुरुहो और तीनों काल व तीनों वेदों के जाननेवालेहो ॥ १८ ॥ यह हमारे पीछे देवताओं के कण्टकरूप राजसोंसे ब्रह्महत्या आदि पाप होगयाहै सो हे बृहस्पते ! इसका क्या प्रायश्चित्त हमको करना चाहिये सो आप कहे ॥ १९ ॥ तब बृहस्पतिजी बोले कि हे नृपसत्तम ! हम तुमको संजीविनी विद्या देतेहैं उसी विद्यासे राजाने सबको जिला दिया

जियेहुये ब्राह्मण व देवता बृहस्पति की प्रशंसा (तारीक) करनेलगे ॥ २० ॥ तदनन्तर सब अच्छी दक्षिणावाली यज्ञ समाप्तहुई वही यज्ञके खम्भा की जड़से शल्या और विशल्या ये दो नदी उत्पन्न हुई ॥ २१ ॥ सो हे महाराज ! लोकोकी पवित्र करनेवाली नर्मदा में प्रवेशकिया तदनन्तर देवतालोग अपनी २ सवारीपर सवार होकर स्वर्गको चलेगये ॥ २२ ॥ भरतभी ब्राह्मणों के सहित अपनीपुरी में प्रवेश किया इसीसे शल्या विशल्या तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध हुई ॥ २३ ॥ ब्रह्मयोनि में भरतेश्वर लिंग विद्यमान है हे राजन् ! यह तुमसे देखे व सुनेके अनुसार कहा गया ॥ २४ ॥ इसके सुनने व कहनेसे योनि के सङ्कटमें नहीं आताहै ॥ २५ ॥ इति

ततोनिवर्तितोयज्ञः समग्रवरदक्षिणः ॥ यूपमूलसमुद्धृता शल्याचैवविशल्यका ॥ २१ ॥ प्रविवेशमहाराज नर्ममदालो कपावनीम् ॥ ततोदेवाःसमारुह्य स्वंस्वंथानंदिवंययुः ॥ २२ ॥ भरतोपिद्विजैःसार्द्धं प्रविवेशपुरीततः ॥ तेनशल्याविशल्याच विख्यातामुवनत्रये ॥ २३ ॥ भरतेश्वरलिङ्गञ्च ब्रह्मयोन्यांसमास्थितम् ॥ एतत्तेकथितंराजन् यथादृष्टंयथाश्रुतम् ॥ २४ ॥ श्रवणात्कीर्तनादस्य नविशेद्योनिःसङ्कटे ॥ २५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणैरेवाखण्डे शल्याविशल्यामाहात्म्यानुवर्णनोनामपञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

युधिष्ठिरउवाच ॥ भृगुपतन्तियेशूराः काङ्क्षन्तिप्राप्नुवन्ति ॥ श्रोतुमिच्छाम्यहन्त्वेतत् कथयस्वमहामुने ॥ १ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ अनाशकेनभोजन् भृगुगोग्रहसङ्गैः ॥ प्राणांस्त्यजन्तियेशूरा गतितेषांनिबोधमे ॥ २ ॥ पृथक् पृथङ्निवासांश्च तेषांकम्माणिभारत ॥ चतुर्विंशतिकोऽद्यस्तु सप्तविंशतिरेवच ॥ ३ ॥ उभयातुपुराज्ञप्ता मध्यमोत्तम

श्रीस्कन्दपुराणैरेवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनुवादशल्याविशल्यामाहात्म्याऽनुवर्णनोनामपञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥

राजा युधिष्ठिरजी बोले कि हे महामुने ! भृगुके ऊपर चढ़कर जो शूर गिरते हैं वे किस गतिको प्राप्त होतेहैं सो हम सुना चाहते हैं आप कहें ॥ १ ॥ तब मार्कण्डेयजी बोले कि हे राजन् ! अनशन, भृगुपात, गौत्राके पीछे और-संग्राम से जो शूर प्राणोंको छोड़ते हैं उनकी गतिको सुझसे जानो ॥ २ ॥ उनके रहने के वारते जुदे २ स्थान और हे भारत ! उनके कामोंको कहते हैं चौबीस करोड़ और सचाईस ॥ ३ ॥ अब्वल और दोयम दर्जेवाली कन्याओंको पार्वतीजीने आगे आज्ञादीयी

कि इस तरहसे जो मनुष्य अपने प्राणोंको छोड़ें ॥ ४ ॥ मेरी दीहुई तुम सन उनके साथ अपनी खुशीसे भोगकरो अमरेश्वरमें जो मरें हैं अथवा अपने शरीर नाश करने के वास्ते जो गिरते हैं वे लोग ॥ ५ ॥ भृगुको देखकर ब्रह्महत्यासे छूटजाते हैं हे नृपश्रेष्ठ ! चौगसी भृगु जम्बूद्वीप में कहेगये हैं ॥ ६ ॥ उमी प्रकार और भी सात भृगु कहेगये हैं वे सब स्वर्गकी उत्तम नसेनीहँ भैरवनामका उत्तम भृगु अमरकण्टकमें जानेयोग्य है ॥ ७ ॥ उस भृगुमें शूद्र, क्षत्रिय, वैश्य, चाण्डाल और नीचलोग येही प्राणोंको छोड़ते हैं हे नृप ! वहां ब्राह्मणको मना है ॥ ८ ॥ जो वहां ब्राह्मण गिरता है तो ब्रह्महत्या और अपनी हत्याका पाप उसे होता है ॥ ९ ॥ व हे राजन् ! चन्द्रग्रहण

कन्यकाः ॥ अनेनविधिनायेतु प्राणांस्त्यक्षयन्तिमानवाः ॥ ४ ॥ तांश्चमुद्बन्धमयादत्ता गुह्माकंसुप्रसादतः ॥ अमरेश प्रमीताश्च भ्रंशितुंयेपतन्ति ते ॥ ५ ॥ भृगुन्दृष्ट्वानृपश्रेष्ठ मुच्यन्तेब्रह्महत्यया ॥ चतुरशीतिभृगवो जम्बूद्वीपेप्रकीर्ति ताः ॥ ६ ॥ तथान्येसप्तनिर्दिष्टाः स्वर्गसोपानमुत्तमम् ॥ भैरवस्तुभृगुश्रेष्ठो ज्ञेयस्त्वमरकण्टके ॥ ७ ॥ शूद्राश्चक्षत्रियवि श्या अन्त्यजाश्चाधमास्तथा ॥ एतेत्यजन्तिप्राणान्वै वर्जयित्वा द्विजन्तप ॥ ८ ॥ पतितो ब्राह्मणस्तत्र ब्रह्महाचात्महाभवे त् ॥ ९ ॥ द्वाविंशतिसहस्राणि राहुसोमसमागमे ॥ वर्षाणां जायेते राजन् राजा विद्याधरेशुरे ॥ १० ॥ अस्तेतुराहुणासूर्ये द्विगुणं फलमश्नुते ॥ अवशः स्ववशोवापि जलधूरा नलाहतः ॥ ११ ॥ अत्रियतेयो भृगुप्राप्य सविद्याधराद्भवैत् ॥ भृगु भैरवरूपेण विन्ध्यकैलाससन्निभः ॥ १२ ॥ गहयन्ति भृगुं ये तु तेलिङ्गब्रह्मभेदिनः ॥ भैरवः क्षमते तेषां नेतिस्कन्देनकी र्ति तम् ॥ १३ ॥ संन्यासाच्चव्युतो विप्रो मातृहापितृहा तथा ॥ स्वसृगः स्वस्तुषागश्च तथास्वज्ञातिगस्तथा ॥ १४ ॥ एते

में भृगुके ऊपरसे गिरने में बाईस हजार वर्षतक विद्याधरके पुरमें राजा होता है ॥ १० ॥ और सूर्यग्रहण में इससे दूने फलको पाता है और के वश व अपने वश दो कर जो जल व अग्निसे मारा गया ॥ ११ ॥ वह भृगुको पाकर जो मरता है तो विद्याधरों का राजा होता है भैरवके रूपसे विन्ध्याचल और कैलास के समान भृगुगर्भ है ॥ १२ ॥ उस भृगुकी जो निन्दा करते हैं वे लिंगब्रह्मके तोड़नेवाले होते हैं उनका अपराध भैरवजी नहीं क्षमाकरते हैं यह स्वामिकार्त्तिकयजीने कहा है ॥ १३ ॥ जिस ब्राह्मणने संन्यासको छोड़ दिया है व माता पिताका मारनेवाला है, बहिन, बहू तथा अपने बरानेकी कन्याओंमें जो गमन करता है ॥ १४ ॥ इन लोगोंका भृगुके ऊपर

से गिरना अथवा अग्निमें जलना अच्छा है इसके करने से उस पापसे छूट जाता है और वह शिवलोक को जाता है ॥ १५ ॥ हरिश्चन्द्रपुर, चन्द्र, श्रीशैल, त्रिपुरा-
न्तिक, पापों को धोनेवाले त्रैयम्बक, वाराहपर्वत, विन्ध्यपर्वत ॥ १६ ॥ और इसीतरह कावेरीनदी का कुण्ड इनमें गिरने से स्वर्गको पाता है भृगुके दक्षिण तरफ चप-
लेश्वर लिङ्ग है ॥ १७ ॥ यहाँ तैन्नकी रत्नाके वास्ते पापोंका नाश करनेवाला प्रसिद्ध साठिधनुष तक चपलेश्वर का क्षेत्र जाननेयोग्य है ॥ १८ ॥ जो मनुष्य बिना उन
चपलेश्वरजी के दर्शन किये पहाडपर चढ़ता है उसके सब पुण्यफल को वे चपलेश्वरजी लेलेते हैं इसमें कुछ सन्देह नहीं है ॥ १९ ॥ कपड़े में सूर्य की तसवीर

षांपतनंशस्तं करीषाग्नौप्रसाधनम् ॥ मुच्यतेतेनपापेन शिवलोकंमगच्छति ॥ १५ ॥ हरिश्चन्द्रपुरेचन्द्रे श्रीशैलेत्रि
पुरान्तिके ॥ त्रैयम्बकेधौतपापे वाराहेविन्ध्यपर्वते ॥ १६ ॥ कावेर्यास्तुतथाकुण्डे पतनात्स्वर्गमाप्नुयात् ॥ भृगोदक्षि
णभागेतु लिङ्गवैचपलेश्वरम् ॥ १७ ॥ क्षेत्रसंरक्षणायेह विख्यातंपापनाशनम् ॥ धनुःषष्ठ्यांततःक्षेत्रं विज्ञेयंचापले
श्वरम् ॥ १८ ॥ आरोहतिगिरियस्तु तमदृष्ट्वातुमानवः ॥ तस्यपुण्यफलंसर्वं सगृह्णातिनसंशयः ॥ १९ ॥ आलेख्यच
पटेसूर्यं पताकादण्डमण्डितम् ॥ वलयंचकरैकृत्वा वीज्यमानस्तुचामरैः ॥ २० ॥ वीरस्तुपतितुङ्गच्छेदारोहेद्भृगुप
र्वतम् ॥ पदेपदेयज्ञफलं तस्यस्याच्छङ्करोब्रवीत् ॥ २१ ॥ प्रतीक्षन्तेसर्वकालेऽप्सरसःकाममोहिताः ॥ दिव्ययानंसमा
रूढा दिव्याभरणभूषिताः ॥ २२ ॥ वीरस्तुपतितस्तत्र स्वंचत्यक्त्वाकलेवरम् ॥ तत्क्षणादिव्यदेहस्तु शक्रतुल्यपरा
क्रमः ॥ २३ ॥ कामदंयानमारुह्य विवादेनपरस्परम् ॥ गच्छेच्छिवपुरंसाद्धमप्सरोग्भिःसमन्वितः ॥ २४ ॥ क्लीबस्य

लिखकर उस पताका को सुन्दर छर्डीमें पोहकर उसको और एक चूड़ाको हाथमें लेकर चामरों की हवा खाताहुआ ॥ २० ॥ जो वीर गिरने के वास्ते भृगुपर्वत पर
चढ़ता है उसको एक २ पगपर यज्ञका फल होता है यह शङ्करजीने कहा है ॥ २१ ॥ दिव्य सवारियों पर सवार और दिव्य गहने से जोभायमान, काममें मोहित अप्स-
रायें सदा उसकी राह देखाकरती हैं ॥ २२ ॥ वहाँ जो वीर भृगुपर्वत से गिरा है वह अपने देहको छोडकर उसीसमयमें दिव्यदेहवाला होकर इन्द्रके बराबर पराक्रम
वाला ॥ २३ ॥ मनमाने फल देनेवाली सवारीपर सवार होकर आपस में भगड़ा करती हुई अप्सराओंके साथ शिवजीके पुरको जाता है ॥ २४ ॥ जो मनका कच्चा है

और मनका पक्का नहीं है व भृगुपर्वत पर चढ़कर फिर उतर आता है उसको पग २ पर ब्रह्महत्या होनी है इसमें कुछ सन्देह नहीं है ॥ २५ ॥ कोई मनुष्य अमर नहीं होसक्ता फिर किसकारण से गिरने में डरता है अपने कालआनेपर मौतके वशमें होरहे मनुष्य को कोई नहीं बचासक्ता है ॥ २६ ॥ जो संन्यास आदि उच्चमदर्जों पर चढ़कर गिरपड़ता है वह मनुष्य बड़ापापी व बुरी चालवाला व चाण्डाल व संसारमें निन्दित होता है ॥ २७ ॥ संन्यास को जिराने छांडदिया है ऐसे ब्राह्मणको देखकर सब यत्नपूर्वक स्नानकर सूर्यका दर्शनकरै तब पवित्र होता है और जो उस को छूता है उसके वास्ते चान्द्रायणव्रत करना कहा है ॥ २८ ॥ उसके साथ झूठ

सत्त्वहीनस्य उत्तीर्णस्य भृगोः पुनः ॥ पदे पदे ब्रह्महत्या भवेत्तत्स्य न संशयः ॥ २५ ॥ न चि शायुर्भवेन्मर्त्यः कस्मान्मृत्यो विभेत्सौ ॥ न कोपिरक्षितुं शक्तः कालमृत्युवशाद्गतम् ॥ २६ ॥ स पापिष्ठो दुराचारश्चण्डालो लोकगर्हितः ॥ संन्यासादिकमारुह्य च्यवते यस्तुमानवः ॥ २७ ॥ संन्यासात्प्रच्युतं विप्रं दृष्ट्वा स्नानार्कवीक्षणम् ॥ कुर्यात्सर्वप्रयत्नेन स्पर्शा चान्द्रायणं स्मृतम् ॥ २८ ॥ ऋतानृतं न वक्तव्यं तेन सार्द्धं कदाचन ॥ स्थातव्यं चैव मौनेन नो चेत्पापमवाप्नुयात् ॥ २९ ॥ निश्चिते मरणे प्राप्ते कथं मृत्युरपेक्ष्यते ॥ जरामृत्युश्च रोगाश्च संसारोदधिसम्प्लवे ॥ ३० ॥ एवं ज्ञात्वा नृपश्चेष्ट ह्यारोहेद्भृगुपर्वतम् ॥ एतत्ते कथितं राजन् भृगोर्माहात्म्यमुत्तमम् ॥ ३१ ॥ न ब्रूयाद्दुष्टदुर्द्धीनां कलौ पाखण्डकर्मणाम् ॥ दिगम्बरश्चेतपटबौद्धादीनां विशेषतः ॥ ३२ ॥ असम्माष्यादुराचाराः पुराणस्मृतिनिन्दकाः ॥ न तैः सह प्रकर्तव्यः संवादो

सांच कुछभी कभी न बोलना चाहिये किन्तु चुपचाप रहना ठीक है नहीं तो पाप को पाता है ॥ २६ ॥ मरना तो निश्चयसे होगा ही तो फिर मौतके छोड़ने की क्यों इच्छा करता है बुढ़ापा, मौत और रोग तो इस संसारसमुद्रमें भरे ही पड़े हैं ॥ ३० ॥ हे नृपश्चेष्ट ! ऐसा जानकर भृगुपर्वत पर जरूर चढ़ना चाहिये हे राजन् ! यह भृगुपर्वतका उत्तम माहात्म्य मैंने तुमसे कहा है ॥ ३१ ॥ इसको कलियुगमें पाखण्डवाले कार्मों के करनेवाले दुष्टदुर्द्धियों से नहीं कहै क्योंकि उनके विश्वास नहीं होसक्ता और जो नङ्गे रहते हैं व सफेद कपड़े पहिनते हैं व बौद्धमजहब के मनुष्य हैं उनसे तो कभी नहीं कहै ॥ ३२ ॥ ऐसे दुराचारी मनुष्य पुराण और स्मृतियों की

निन्दा करनेवाले जो हैं वे सम्भाषण करनेयोग्य नहीं हैं इससे उनके साथ कभी बातभी न करना चाहिये ॥ ३३ ॥ हरएक देवताओंसे महादेवजीने आपही कहा है कि जो मूढ़ मेरे कहेहुये तीर्थराज को नहीं मानते व जो भृगुपर्वत से उत्तर आतेहैं वे घोरनरकको जातेहैं ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेप्राकृतभाषानुवादे भृगुपर्वतमहिमाऽनुवर्णनोपपन्नचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥ * * * * *

युधिष्ठिरजी बोले कि हे विप्र ! अंकारनाथ का वर्णन, दान, यज्ञ, तप, पांचमुहंकी उत्पत्ति वैसेही लिंगोंकी उत्पत्ति ॥ १ ॥ युगोंका प्रमाण, शिवजी की कला

हिकदाचन ॥ ३३ ॥ प्रत्येकसर्वदेवानां स्वयमाहवृषध्वजः ॥ नमन्यन्तेतुयेमूढास्तीर्थराजंमयोदितम् ॥ ३४ ॥ प्रयान्ति नरकंघोरं भृगोर्येवतरन्ति ॥ ३५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डे भृगुपर्वतमहिमाऽनुवर्णनोनाम पट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥ * * * * *

युधिष्ठिरउवाच ॥ अंकारकीर्तनंविप्रदानंयज्ञस्तपस्तथा ॥ सम्भवंपञ्चवक्राणां लिङ्गानांसम्भवंतथा ॥ १ ॥ युगसंख्यां कलांचैव चरितंचमहामुने ॥ कथयस्वप्रसादेन यथोद्दिष्टन्तुशम्भुना ॥ २ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ श्रूयतांराजराजेन्द्र पु राणंस्कन्दकीर्तितम् ॥ द्वात्रिंशतिसहस्राणि लक्षाण्यष्टादशैवच ॥ ३ ॥ एपाकृतयुगेसंख्या सन्ध्यासन्ध्यांशमानतः ॥ लक्ष्याण्यष्टौतथाचाष्टौ सहस्राणियुधिष्ठिर ॥ ४ ॥ द्वापरेमानमिच्छन्ति सन्ध्यासन्ध्यांशमानतः ॥ सहस्राणिचचत्वारितथालक्षचतुष्टयम् ॥ ५ ॥ मानंकलियुगस्यैतत् सन्ध्यासन्ध्यांशमानतः ॥ अल्पजीरप्रदागावो ह्यल्पसस्याचमे

और चरित्रों को हे महामुने ! अपनी प्रसन्नता से कहिये जैसा कुछ महादेवजी ने कहाहो ॥ २ ॥ तब मार्कण्डेयजी बोले कि हे राजराजेन्द्र ! स्कन्दजीके कहेहुये पुराण को सुनो अठारहलाख बत्तीस हजार ॥ ३ ॥ यह सत्ययुग का प्रमाण है और उस की सन्ध्या और सन्ध्यांश का भी प्रमाण इतनेही सौ वर्षका होताहै और हे युधिष्ठिर ! आठलाख आठहजार वर्षका ॥ ४ ॥ प्रमाण द्वापरमें इच्छा करते हैं इतनेही सौवर्ष की उसकी सन्ध्या और सन्ध्यांशहै चारलाख चारहजार वर्षका ॥ ५ ॥ कलियुग

का प्रमाण है इसीतरह सन्ध्या और सन्ध्यांश का मान है कलियुगमें थोड़े दूधकी देनेवाली गौवें होंगी और थोड़े अन्नकी पैदा करनेवाली पृथिवी होगी ॥ ६ ॥ वैसेही थोड़े पानीके भेव और थोड़ी विद्यावाले ब्राह्मण होंगे सोलहवीं वर्षके पूरे होनेपर मनुष्योंकी ज्ञानी जाती रहेगी ॥ ७ ॥ दशवें व बारहवें वर्ष में स्त्री गर्भको धारण करेगी कलिकालमें नंगेहोकर शूद्रलोग धर्ममें तत्परहोंगे ॥ ८ ॥ सब प्रजा एकही वर्णवाली होजावेगी और म्लेच्छ राजा होंगा कलियुग के प्राप्तहोनेपर उसीरूप में नारायण भी होजायेंगे ॥ ९ ॥ तब न अग्निहोत्र, न वेद, न धर्म, न यज्ञकरना, न सत्य, न तप, न दान, न सत्गुण और न देवता कहीं रहेंगे ॥ १० ॥ ब्राह्मणलोग वेदोंके दिनी ॥ ६ ॥ अल्पोदकास्तथामेघाः स्वल्पविद्यास्तथाद्विजाः ॥ पूर्णेतुषोडशेवर्षे नराःपलितयौवनाः ॥ ७ ॥ दशमे द्वादशेवर्षे नारीगर्भधराभवेत् ॥ शूद्राधर्मपरानित्यं कलौकालेदिगम्बराः ॥ ८ ॥ एकवर्णाःप्रजाःसर्वा राजाम्लेच्छो भविष्यति ॥ कलौयुगेतथाप्राप्ते कलिरूपेचमाधवे ॥ ९ ॥ नाग्निहोत्रंनवेदाश्च नधर्मोनचयज्ञानम् ॥ नसत्यंनतपो दानं नसत्त्वंनचदेवताः ॥ १० ॥ वेदविक्रयिणोविप्रा अन्यजानांशुहेगृहे ॥ वेदादेशंकरिष्यन्ति वेदविप्लवकारकाः ॥ ११ ॥ कन्याविक्रयिणःपापास्तथाकन्योपजीविनः ॥ सहस्रांशोनधर्मस्य कलाचैकाप्रवर्तिता ॥ १२ ॥ यत्रसिद्धस्त त्रतीर्थं जलेस्नास्यन्तिमानवाः ॥ शूद्रापत्नीद्विजानान्तु भविष्यतिगृहेगृहे ॥ १३ ॥ अधरोत्तरभावेन भविष्यन्तिकलौ नराः ॥ बौद्धाःक्षपणकाःपापानग्ननामलिनकश्मलाः ॥ १४ ॥ विदुर्भवयन्तिवालानां मोहिताःपापकर्मणाम् ॥ नगुरुंमन्य तोशिष्यः पुत्रश्चपितरंतथा ॥ १५ ॥ स्ववंशद्रव्यहर्तारःप्रव्रज्यावेपधारिणः ॥ लिङ्गोपजीविनःपापास्तथाभस्मोपजी बेचनेवालेहोंगे, शूद्रोंके घर २ में वेदोंको सुनावेंगे, वेदोंके नाश करनेवाले होंगे ॥ ११ ॥ पापीलोग लडकियों को बेचेंगे और उन्हींसे अपनी जीविका करेगे धर्मका हजारहवां शंशभी न रहेगा एक कला रहजायगी ॥ १२ ॥ जहां कोई फकीर रहेगा वहीं तीर्थहोगा उसी जलमें सब मनुष्य स्नानकरेंगे ब्राह्मणोंके घर २ में शूद्रोंकी स्त्रियां व लडकियां स्त्री होंगी ॥ १३ ॥ कलियुग में छोटे बड़ेमनुष्य बनेंगे बौद्ध, क्षपणक, नागा और अधोरी येही पापी पन्थवाले मनुष्य होंगे ॥ १४ ॥ ये लोग पापकर्मों मुख मनुष्योंको छलेंगे और आपसी मोहको प्राप्त बने रहेंगे चेला गुरुको नहीं मानेगा और पुत्र पिताको नहीं मानेगा ॥ १५ ॥ अपनेही वंशके धनको हरेगे और

संन्यासियों के रूपको बनावेगे अनेक वेपोंको बनाकर जीवोंगे इसीतरह भस्मको लगाकर जीविका करेंगे ॥ १६ ॥ वैवस्वत मन्वन्तर के कलियुग में यह सब होगा हे राजन् ! यह आपसे कहागया जो २ कलियुग में होगा ॥ १७ ॥ हे अनघ ! अब उल्कारकी उत्पत्ति व रचना विधिपूर्वक आपसे थोड़ेमें कहते हैं जो आपने पूछा था ॥ १८ ॥ इन देवके कहने से संसारबन्धन से छूटजाताहै उम् यह एक अक्षर ब्रह्मका नामहै इसको कहतेहुये और सुध करतेहुये ॥ १९ ॥ देहको छोड़ताहुआ जो जाताहै वह परमगति को प्राप्तहोताहै वेदोंकी माता गायत्री उल्कारही से पैदाहुई है ॥ २० ॥ उल्कार जो एक अक्षरका तत्त्वहै उसीमें ब्रह्मा, विष्णु और महादेव जी है

विनः ॥ १६ ॥ वैवस्वतेन्तरेप्राप्ते कलौसर्वम्भविष्यति ॥ १७ ॥ अंकारस्यैवोत्पत्तिं विधानंविधिपूर्वकम् ॥ कथयामिसमासेन यत्पृष्टोहन्त्वयानव ॥ १८ ॥ कीर्तनादस्यदेवस्य मुच्यतेभववन्धनात् ॥ अमित्येकाक्षरंराजन् व्याहरन्समनुस्मरन् ॥ १९ ॥ यः प्रयातित्यजन्देहं सयातिपरमाद्भुतिम् ॥ वेदमाता चगायत्री अंकारप्रभवातथा ॥ २० ॥ अमित्येकाक्षरेतत्त्वे ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥ अंकारोवेदमूलन्तु श्रुतिशास्त्राःप्रतिष्ठितः ॥ २१ ॥ फलंचैवतुषुषञ्च पर्णानिस्मृतिरागमः ॥ यथादौसर्वविद्यानामोकारःपरिपठ्यते ॥ २२ ॥ तथादौसर्वदेवानामादिदेवोमहेश्वरः ॥ सन्ध्यात्रयंत्रिकालादि अंकारेपरिकीर्तितम् ॥ २३ ॥ अग्नित्रयंत्रयोर्लोकास्त्रिवर्गश्चप्रतिष्ठितः ॥ अष्टपष्टिञ्चतार्यानां ब्रह्मणेशिवकीर्तितम् ॥ २४ ॥ एकेनचशतंपूर्णं रुद्राणाम्परिकीर्तितम् ॥ केदारेशतमे कन्तुअंकारैकोत्तरंशतम् ॥ २५ ॥ पञ्चब्रह्मपञ्चवक्त्रमोकारंलिङ्गमुत्तमम् ॥ पृथिव्यांयानिलिङ्गानि आससुद्रान्तर्गो

उल्कारही वेदकी जडहै वेद उसकी शाखायें हैं ॥ २१ ॥ स्मृति और शास्त्र ये सब फल, फूल और पत्तें हैं जैसे सब विद्याओंकी आदिमें उल्कार पढ़ाजाताहै ॥ २२ ॥ इसी तरह सब देवताओंके आदिदेवता महादेवजी है तीनों सन्ध्या और तीनों कालआदि उल्कारही में कहेगये हैं ॥ २३ ॥ तीनों अग्नि और तीनों लोक तथा त्रिवर्ग (धर्म, अर्थ, काम) ये उल्कारही में रहते हैं अरसठ तीर्थ ब्रह्मासे शिवजीने कहेहैं ॥ २४ ॥ और एकसौएक रुद्र कहेहैं केदारनाथमे सौरुद्र और उल्कारनाथमे एकसौएक रुद्र

हैं ॥ २५ ॥ पांच वेद जिनसे निकले हैं ऐसे पांच मुखवाला उत्तम अङ्कार लिंग है चारोंसमुद्रतक पृथिवीमें जितने लिंग हैं ॥ २६ ॥ उनमें अङ्कारनाथ को छोड़कर पांचमुख किसी लिंगके नहीं हैं हे युधिष्ठिर ! स्वायम्भुव मन्वन्तर के प्राप्तहोनेपर आदिकल्पके सत्ययुगमें ॥ २७ ॥ नर्मदाके तीरमें रहनेवाले देवताओं को दानवोंने जीतलिया, कंकाल, कालिकेय और कालक नाम के दैत्योंने देवताओंको भगादिया ॥ २८ ॥ ब्रह्मा सहित वे सब देवता ईश्वरकी शरण जातेहुये हे भारत ! तदनन्तर बृहस्पति ब्रह्मासे बोले ॥ २९ ॥ कि आप दानवों के नाश करनेवाली यज्ञको करो जो बड़ी भयानक हो तब उन बृहस्पतिजी से ब्रह्माजी वचन बोले ॥ ३० ॥ कि दानवों के

चरे ॥ २६ ॥ नतेषांपञ्चवक्राणि त्यक्त्वोकारं युधिष्ठिर ॥ स्वायम्भुवेन्तरप्राप्ते आदिकल्पे कृत्युगे ॥ २७ ॥ दानवैर्निजिता देवानर्मदातीरमाश्रिताः ॥ अवदुताः कङ्कोलैस्तु कालिकेयैश्च कालकैः ॥ २८ ॥ ते देवा ब्रह्मसहिता ईश्वरं शरणं कृताः ॥ बृहस्पतिस्ततः प्राह ब्रह्माणम्प्रति भारत ॥ २९ ॥ इष्टिकुरु महारौद्री दानवानां क्षयं करीम् ॥ उवाच वचनं ब्रह्मा तदा तं देवमन्त्रिणम् ॥ ३० ॥ ममैव विस्मृतामन्त्रा दानवानां भयेन च ॥ एतस्मिन्नन्तरं भित्त्वा पातालानि च सप्त च ॥ ३१ ॥ अङ्कार पूर्वकं राजन् भूर्भुवस्स्वश्च कीर्तयन् ॥ पर्वतादुत्थितं लिङ्गं ज्वलत्कालानलप्रभम् ॥ ३२ ॥ सूर्य्यकोटिसमप्रख्यं ज्वालामालासमाश्रितम् ॥ आदिमध्यान्तहीनञ्च नदृष्टं परमं क्वचित् ॥ ३३ ॥ चतुर्वर्गैश्चतुर्वेदैर्देवाङ्गनिर्गमैः स्वयम् ॥ उवाच वचनं शम्भुर्ब्रह्माणं लोकभावनम् ॥ ३४ ॥ सौम्यांचैव तु भो ब्रह्मलोकानां शान्तिकारिणीम् ॥ मया समर्पिता वेदा इष्टि

भयसे हमको आपही मन्त्र भूलगये हैं इसी अन्तर में सातो पातालों को फाड़कर ॥ ३१ ॥ हे राजन् ! अङ्कारपूर्वक भूर्भुवःस्वः इन तीनों व्याहृतियों को कहता हुआ जलतेहुये महाप्रलयके अग्निके समान पर्वत से एक लिंग उठताहुआ ॥ ३२ ॥ करोड़ सूर्यके बराबर तेजवाला हजारों लपटोंसे व्याप्त ऊपर, बीच और नीचा जिसका नहीं जानपडता है और ऐसा श्रेष्ठलिंग कभी देखा नहीं गयाथा ॥ ३३ ॥ सो वेही लिंगरूप शिवजी धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष, चारोंवेद, वेदांग और शास्त्रों के सहित संसारके बनानेवाले ब्रह्माजी से वचन बोले ॥ ३४ ॥ कि हे ब्रह्मन् ! लोकोंकी शांति करनेवाली व सौम्य यज्ञको तुम स्वेच्छापूर्वक करो मैंने तुमको वेदोंको

दिया है ॥ ३५ ॥ तदनन्तर ब्रह्माने प्रथम तो दैत्यों के नाश करनेवाले भयानक यज्ञको किया फिर लोकोंकी शान्ति करनेवाली रौम्ययज्ञ को किया ॥ ३६ ॥ तब हे महाराज ! वे सब दैत्यलोग भयङ्कर यज्ञ को देखकर ब्रह्माके शापके भयसे डरे हुये दशो दिशाओं को भागगये ॥ ३७ ॥ अङ्कार के प्रभाव से सब देवता निर्भय होगये फिर महादेवजी का पूजनकर वे सब देवता स्वर्गको चलेगये ॥ ३८ ॥ हे पार्थिव ! कल्पके अन्ततक रहनेवाले देवता और दैत्यों करके नमस्कार कियेगये इस महालिंग अङ्कार को काम और मोक्षका देनेवाला जानो ॥ ३९ ॥ कल्पके अन्तमें उस लिङ्गमें सब देवता लीन होजाते हैं इसीसे इस लिङ्गको अमर, ब्रह्म,

कुरुयथेप्सया ॥ ३५ ॥ ततो ब्रह्माचकारेष्टिं रौद्रदैत्यजयङ्करीम् ॥ इष्टिचैव ततः सौम्यां लोकानां शान्तिकारिणीम् ॥

३६ ॥ ततोऽसुरामहाराज दृष्ट्वा चेष्टिभयङ्करीम् ॥ ब्रह्मशापभयोद्विग्ना गतास्ते तु दिशो दश ॥ ३७ ॥ अंकारस्य प्रभा

वेण सर्वे देवास्तु निर्भयाः ॥ ततो भ्यचर्य सुरेशानं देवास्ते त्रिदिवं ययुः ॥ ३८ ॥ कल्पान्तं गमहालिङ्गं सुरासुरनमस्कृत

म् ॥ कामदं मोक्षदं चैव अंकारं विद्धि पार्थिव ॥ ३९ ॥ तस्मिन् लिङ्गे तु लीयन्ते कल्पान्ते सर्वे देवताः ॥ अमरं ब्रह्म वेत्याहुर्ह

रिं सिद्धेश्वरं तथा ॥ ४० ॥ पिङ्गलेश्वरमादित्यं सोमं पित्रीश्वरं तथा ॥ यत्र सिद्धास्त्रयो वेदाः स षडङ्गपदक्रमाः ॥ ४१ ॥ ते

न सिद्धेश्वरं विद्धि सर्वसिद्धिप्रदायकम् ॥ कथितं पर्वतस्य ग्रे लिङ्गकोटिं समन्वितम् ॥ ४२ ॥ अर्चनात्तस्य लिङ्गस्य वि

ष्णुलोके महीयते ॥ कल्पे कल्पे महाराज जीयन्ते सर्वे देवताः ॥ ४३ ॥ मुक्ता तु पञ्च लिङ्गानि मार्कण्डेना मर्मदंष्ट्रप ॥

अविमुक्तं च केदारमोङ्कारममरेश्वरम् ॥ ४४ ॥ तथैव च महाकालमेवं लिङ्गन्तु भारत ॥ पुरयानि पञ्च लिङ्गानि प्रातरुत्था

हारि और सिद्धेश्वर कहते हैं ॥ ४० ॥ पिङ्गलेश्वर नामके सूर्य और पित्रीश्वर चन्द्रमा, बृहोअङ्ग, पद और क्रमकरके सहित तीनों वेद जहाँ सिद्ध हुये हैं ॥ ४१ ॥ इस

से सब सिद्धियों के देनेवाले इस लिंगको सिद्धेश्वर जानो पर्वत के ऊपर करोड़ों लिङ्गोंसे युक्त यह लिङ्ग कहा गया है ॥ ४२ ॥ इस लिङ्गके पूजन करनेसे विष्णुलोक

में पूजित होता है हे महाराज ! कल्प २ में सब देवता नहीं रहते हैं ॥ ४३ ॥ हे नृप ! इन पाँचों लिंगोंको छोड़कर अर्थात् इनका नाश नहीं होता है नर्मदा के तटमें

विद्यमान मार्कण्डेयलिंग, अविमुक्त (विश्वनाथ), केदारनाथ, अमरेश्वर अङ्कारनाथ ॥ ४४ ॥ इसीतरह महाकाललिंग हे भारत ! इस प्रकार इन पवित्र पाँचों लिंगोंको प्रातः-

काल उठकर जो पढ़ता है ॥ ४५ ॥ वह सब तीर्थों के फलको पाकर शिवलोकमें पूजित होता है महाकालमें एक कालीशक्ति हमेशा व्यापकरूप से रहती है ॥ ४६ ॥ और हे नृप ! सवाकरोड़ तीर्थ महाकाल में रहते हैं और हे नृप ! कावेरीनदी शिवलोक में नहीं है किन्तु यहा शिवक्षेत्रमें स्थित है ॥ ४७ ॥ चारकोस के भीतर ब्रह्महत्या नहीं आती है उस कावेरीनदी के किनारे पर आग्नेयनाम का सिद्धालिंग विद्यमान है ॥ ४८ ॥ और हे कुरुनन्दन ! शिवख्यात नाम से अस्मिन् तीर्थ है उसमें स्नानमात्र करनेवाला मनुष्य फिर संसार में नहीं होता है ॥ ४९ ॥ जो मनुष्य कीडा, चिड़िया, पतंगवा आदि तिर्यग्योनियों में प्राप्त होगये है वे भी वहा पाप

ययः पठेत् ॥ ४५ ॥ सर्वतीर्थफलंप्राप्य शिवलोकैर्महीयते ॥ एकाकालीमहाकाले वसेद्वैव्यापिनीसदा ॥ ४६ ॥ सपाद कोटिस्तीर्थानां महाकालेवसेन्नृप ॥ शिवलोकैकनकावेरी शिवक्षेत्रेस्थितानृप ॥ ४७ ॥ चतुःक्रोशाभ्यन्तरतो ब्रह्महत्यानसर्पति ॥ आग्नेयंसिद्धलिङ्गं च तस्यास्तीरेसमाश्रितम् ॥ ४८ ॥ शिवख्यातमितख्यातं तीर्थेतु कुरुनन्दन ॥ स्नातमात्रोनरस्तत्र सभवेन पुनर्भवेत् ॥ ४९ ॥ कीटपक्षिपतङ्गादितिर्यग्योनिगतानराः ॥ सुच्यन्ते तत्र पापेन शिवस्य वचनं यथा ॥ ५० ॥ तत्रयः कुरुते श्राद्धं पितृणां च तिलोदकम् ॥ युगकोटिसहस्रन्तु पितरस्ते न तर्पिताः ॥ ५१ ॥ सर्वेषामेव लिङ्गानां दिव्यं वात्र प्रकीर्तितम् ॥ तत्र स्नातो दिवं याति न विशेद्योनि सङ्कटे ॥ ५२ ॥ कोटियज्ञफलं प्राप्य शिवलोकैर्महीयते ॥ अष्टकोटिस्तु तीर्थानां केदारे कथितानृप ॥ ५३ ॥ दर्शनादर्चनात्तस्य स्पर्शान्मोक्षफलं नृणाम् ॥ केदारस्योदके पीते पुनर्जन्म न विद्यते ॥ ५४ ॥ अहोरात्रोषितो भूत्वा पयःपानं करोति यः ॥ तस्योदरे भवेच्छिङ्गं परमासाद्ब्रह्मचारिणः ॥ ५५ ॥

से छूटजाते हैं ऐसा शिवजी का वचन है ॥ ५० ॥ वहाँ जो कोई श्राद्ध व पितरों के वास्ते तिलोदक देता है उसने मानो करोड़ो हजारयुग तक पितरोंको तृप्त कर दिया ॥ ५१ ॥ सब लिंगों में जो दिव्यलिंग है वह यहाँ-कहागया है इससे इस तीर्थ में स्नान-करनेवाला स्वर्गको जाता है व योनिके संकट में नहीं आता है ॥ ५२ ॥ और करोड़यज्ञों के फलको पाकर शिवलोकमें पूजित होता है हे नृप ! आठ करोड़ तीर्थ केदारनाथमें कहे गये हैं ॥ ५३ ॥ उन केदारनाथके दर्शन व पूजन व स्पर्शनेसे मनुष्योंको मोक्षफल होता है व केदारनाथ के चरणोदक पीने से फिर जन्म नहीं होता है ॥ ५४ ॥ दिन रात ब्रत करनेवाला होकर जो केवल दूध पीता है उस ब्रह्मचारी

के पेटमें छह महीना में एक लिङ्ग उत्पन्न होजाता है ॥ ५५ ॥ केदारजी के दर्शनही से शिवलोक में पूजित होता है काशी तीनों लोकोंमें महापुण्यवाली प्रसिद्ध है ॥ ५६ ॥ वह पुरी आकाश में है और मनुष्यलोक के बाहर है उसके पांचकोसतक चारो तरफ ब्रह्महत्या नहीं आती है ॥ ५७ ॥ हे भारत ! वहां अट्टाईस करोडलिङ्ग है गङ्गा और वरुणाके बीचमें यथोचित स्नान करके ॥ ५८ ॥ सब पापों से छुटाहुआ देवताओं की तरह स्वर्ग में आनन्द करता है वहां जो शिवजी का ध्यानकर प्राणों को छोडताहै ॥ ५९ ॥ वह अपने हजारकुलों को उच्चारकर शिवलोक को जाताहै वहा जो दान दियाजाता है उसकी संख्या नहीं है ॥ ६० ॥ तिलोदक के देनेसे पितरों

केदारदर्शनादेव शिवलोकमेंहीयते ॥ वाराणसीमहापुण्या त्रिषुलोकेषुविश्रुता ॥ ५६ ॥ अन्तरिक्षेपुरीसातु मृत्युलोक स्यबाह्यतः ॥ पञ्चक्रोशान्तरेयावद्ब्रह्महत्यानसर्पति ॥ ५७ ॥ अष्टाविंशतिकोट्यस्तु लिङ्गानांतत्रभारत ॥ गङ्गावरुणयोर्मध्येस्नानंकृत्वायथोदितम् ॥ ५८ ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तो देवन्मोदतेदिवि ॥ तत्रयस्त्यजतिप्राणाञ्छिवं ध्यात्वात्मानवानः ॥ ५९ ॥ सहस्रकुलमुद्धृत्य शिवलोकंसगच्छति ॥ तत्रयद्दीयतेदानं तस्यसंख्यानविद्यते ॥ ६० ॥ तिलोदकप्रदानेन पितृणांप्रीतिरक्षया ॥ तत्रयस्त्यजतिप्राणानवशःस्ववशोपिवा ॥ ६१ ॥ त्रिनेत्रःशूलपाणिस्तु शिवस्यानुचरोभवेत् ॥ अविमुक्तस्यलिङ्गस्य स्पर्शनान्मुक्तिराप्यते ॥ ६२ ॥ कलात्रयन्तुतत्रास्ते काशीपुर्यानसंशयः ॥ गङ्गासागरसंभेदे चतसस्तुकलाःस्मृताः ॥ ६३ ॥ गङ्गासहस्रवक्त्रेण प्रविष्टायत्रसागरम् ॥ स्नानावगाहनात्पानात् पिएडदानाच्चतर्पणात् ॥ ६४ ॥ गच्छेच्छिवपुरंतत्र पितृभिस्सहमानवः ॥ अपरंकालरुद्रन्तु सप्तपातालवासिनम् ॥ ६५ ॥ हाटकंविद्धितं

की अक्षय प्रीतिहोती है वहां जो कोई परत्रश व अपने वशहो प्राणों को छोडताहै ॥ ६१ ॥ वह त्रिशूलको हाथमें लियेहुये तीन नेत्रवाला शिवका सेवक होताहै अविमुक्तलिङ्ग (त्रिश्वनाथ) के स्पर्शसे मुक्ति होती है ॥ ६२ ॥ वहां काशीपुरीमें तीन कला हैं इसमें कुछ संशय नहीं है और गङ्गासागर के संगम में चार कला कहींगई हैं ॥ ६३ ॥ जहां हजारों मुखसे गंगाजीने समुद्रमें प्रवेश कियाहै वहा स्नान, तैरना, जलपीना, पिएडदान और तर्पण से पितरों के सहित मनुष्य शिवपुरको जाताहै

सात पातालतक रहनेवाले एक कालरुदलिंग को ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ हाटकेश्वर जानो उन देवको मनुष्य नहीं देखते हैं देवता और सिद्धोंकरके सेवाकिये जाते वे देव, देवता और दैत्योंकरके पूजन किये जाते हैं ॥ ६६ ॥ दूसरे गंगेश्वर और तीसरे सागरेश्वर और चौथे शूलपाणि येही चारों कला हैं ॥ ६७ ॥ और मनमाने रूपके धारनेवाले अंकारनाथ महादेव को छोड़कर और समुद्रपर्यन्त पांच कलावाला कोई रुद्र नहीं है ॥ ६८ ॥ पांचों वेद पांचों जिनके मुख हैं और नवशक्तियोंसे युक्त नर्मदा के तीर में विद्यमान अंकारही को महादेवजी ने पूर्वकाल में कहा है ॥ ६९ ॥ इसीसे इस पुण्यवाले लोकमें तीनलोकों से पूजेगये अंकारही हैं उनका पश्चिमवाला मुख

देवं नतुपश्यन्तिमानवाः ॥ पूज्यतेसुरदैतयैश्च सुरसिद्धानिषेवितम् ॥ ६६ ॥ गङ्गेश्वरं द्वितीयन्तु तृतीयं सागरेश्वरम् ॥ चतुर्थं शूलपाणिन्तु चतस्रश्च कलाहति ॥ ६७ ॥ कलापञ्चात्मकरुद्रमासमुद्रान्तगोचरे ॥ वर्जयित्वा महेशानमौंकारं कालमरूपिणम् ॥ ६८ ॥ पञ्चब्रह्मपञ्चवक्त्रं नवशक्तिसमन्वितम् ॥ अंकारं कल्पणातीरे शिवेन कथितम्पुनः ॥ ६९ ॥ तेन पुनर्यात्मकेलोकैर्लोकत्रितयपूजितम् ॥ शङ्खकुन्देन्दुसंकाशं सद्यो वक्रन्तु पश्चिमम् ॥ ७० ॥ ऋग्वेदो निर्गतो यस्माद्ब्रह्मातत्राधिदेवता ॥ उत्तरं वामदेवन्तु पीताभं सुमनोहरम् ॥ ७१ ॥ यजुर्वेदोद्भवं विद्धि विष्णुस्तत्राधिदेवता ॥ अथोत्तरं मेघवर्णं याम्याञ्च दिशि चास्थितम् ॥ ७२ ॥ सामवेदोद्भवं विद्धि सूर्यकालाग्निदैवतम् ॥ पूर्वतत्पुरुषं ज्ञेयं कुङ्कुमाररूपसन्निभम् ॥ ७३ ॥ अथर्वनिर्गतन्तुर्यमापस्तत्राधिदेवताः ॥ ईशानस्तव वक्रन्तु पञ्चवर्णं महातनुम् ॥ ७४ ॥ श्रुतिसिद्धा

सद्योजातं नाम का है जोकि शंख, कुन्द और चन्द्रमा के समान सफेद है ॥ ७० ॥ जिससे ऋग्वेद निकला है उसके देवता ब्रह्माजी हैं और उत्तरवाला मनका हरनेवाला परिलिंगका वामदेव नामका मुख है ॥ ७१ ॥ उससे यजुर्वेद की उत्पत्ति जानो उस के देवता विष्णुजी है मेघोंके समान रंगवाला दक्षिण दिशा में विद्यमान अघोरनाम का मुख है ॥ ७२ ॥ उसे सामवेद का उत्पन्न करनेवाला जानो उसके सूर्य व काल और अग्नि देवता हैं व पूर्वमें केसरके समान लालव पीला तत्पुरुषनाम का मुख जानना चाहिये ॥ ७३ ॥ उससे चौथा अथर्ववेद निकला है उसका जल देवता है व पाचरंग का बडाभारी ईशाननाम का मुख है ॥ ७४ ॥ वेदोंके सिद्धान्त उस मुखसे

गायेगये हैं उसके देवता सोमहैं छठा सदाशिव नाम का मुखहै जिसके हिरसा नहीं होसके दोपासे रहितहै ॥ ७५ ॥ उसमें कोई चिह्न नहींहैं और वह किसीसे लखा नहीं जाताहै उसको जानकर मुक्त होसकतहै इसमें कुछ संशय नहींहै हे राजन् ! यह अंकारका वर्णन तुमसे मैंने कहा ॥ ७६ ॥ हजार मुहंवालेकी नही ताकतहै एक मुहंवालेकी क्या बातहै जलसे स्नानकरके बिल्वपत्रसे जो पूजा करताहै ॥ ७७ ॥ वह चारहजार वर्षतक रुद्रलोकमें रहताहै दक्षिणामूर्ति जो अंकारजी है उनके पास जो अपने प्राणोंको छोडता है ॥ ७८ ॥ वह करोडहजार वर्षतक महादेवजीके पुरमें रहता है जो कोई चूना और ईटसे जुड़ाहुआ महल व मठ ॥ ७९ ॥ पताका और

न्तसङ्गीतसोमंत्राधिदेवता ॥ षष्ठसदाशिवनाम निर्भागचनिरामयम् ॥ ७५ ॥ निर्लंचलचहीनन्तु ज्ञात्वा मोक्षेन्न संशयः ॥ एतत्ते कथितं राजन्नोङ्कारस्य तु वर्णनम् ॥ ७६ ॥ सहस्रास्यस्य नो शक्तिरेकवक्त्रस्य का कथा ॥ स्नापयित्वा देकेन व बिल्वपत्रेण पूजयेत् ॥ ७७ ॥ चतुर्वर्षसहस्राणि रुद्रलोकं महीयते ॥ अंकारदक्षिणामूर्तौ प्राणत्यागं करोति यः ॥ ७८ ॥ व बिल्वपत्रेण पूजयेत् ॥ ७९ ॥ चित्रमालेख्यमूले च पताका वर्षकोटिसहस्राणि वसेन्माहेस्वरे पुरे ॥ प्रासादञ्च मठंचापि सुधयेष्टकं संयुतम् ॥ ७९ ॥ चित्रमालेख्यमूले च पताका ध्वजशोभितम् ॥ वितानं किङ्किणीयुक्तं नेत्रं वंशोद्भवशुभम् ॥ ८० ॥ पञ्चवर्णकशोभाढ्यमोकारस्य तु कारयेत् ॥ पञ्चामृतैस्स्नापयित्वा चन्दनागुरुकुङ्कुमैः ॥ ८१ ॥ समावेष्ट्य परीधानैर्नाना वस्त्रैः सुशोभनैः ॥ हेममौक्तिकरत्नैश्च सघृतगुणुं दहेत् ॥ ८२ ॥ घण्टांच दीपकंचैव विधूमारातिं कचयेत् ॥ मृदङ्गान्पटहांश्चैव वेणुवीणाञ्च गीतकम् ॥ ८३ ॥ काहली शङ्खवाद्यानि कांस्यतालाद्यमेव च ॥ व्यजनं गेडुकं छत्रं चामरं ध्वजदण्डकम् ॥ ८४ ॥ हेमचान्नधरादीनि गृहांश्च ग्रामध्वजाश्च मे शोभित दीवार में चित्रसारी खिचवाकर बनवाताहै अथवा लुद्रघण्टिकाओं की झालरें जिसमें टकीहुई उम्दा कपडा व उत्तम बांस जिसमें लगेहुये ऐसे चंदोषा को लगाता है ॥ ८० ॥ जोकि पांचों रंगोंकी शोभासे युक्तहै अथवा पञ्चामृतसे स्नान कराके चन्दन, अगर और केसरसे लेपन करताहै ॥ ८१ ॥ अनेकतरह के उत्तमकपड़ों से मूर्तिको लपेटकर सोना, मोती और रत्नोंसे पूजनकर घीसहित गुगुलुको जलाताहै ॥ ८२ ॥ घण्टा, दिया और धुआंरहित आरती करता है मृदङ्ग, पटह, बेन, सितारको बजाता और गाताहै ॥ ८३ ॥ काहली, शङ्ख, झाम्फ, मंजीरा और तारीआदि वाजाओं को जो बजाता है वेना, गडुवा, छाता, चैयर, ध्वजा,

लाठी ॥ ८४ ॥ सोना, अन्न, पृथिवी, मकान, गांव और शहरआदि पदार्थोंका जो अर्पण करता है जैसे तैसे किसी तरह ॥ ८५ ॥ उसके दानके फलकी संख्या नहीं कीजासक्ती है चन्द्र व सूर्य के ग्रहणमें सिद्धेश्वर व अंकारको ॥ ८६ ॥ ध्वजाओंसे चारोंतरफ घेरे तो उसकी पुण्यके फलको सुनो कि कपड़ेमें जितनी सूतकी संख्या है और वे सूत वायुसे हिलतेहैं ॥ ८७ ॥ हे नृप ! उतने हजार युगतक शिवलोकमें रहताहै करोड़ों हजारयुग और करोड़ों सौ युग तक ॥ ८८ ॥ सब कामोंसे भराहुआ ब्रह्मा, विष्णु और शिवजीके स्थानमें रहताहै हे राजन् ! यह तुमसे अंकारकी उत्पत्ति व लक्षण कहा ॥ ८९ ॥ अब ब्रह्माके कियेहुये अंकारके स्तोत्रको तुमसुनो ॥ ९० ॥

पत्तनम् ॥ यद्वातद्वातपश्रेष्ठ अङ्कारायनिवेदयेत् ॥ ८५ ॥ तस्यदानफलस्येह संख्याकर्तुंनशक्यते ॥ सिद्धेश्वरोङ्कार
योस्तु चन्द्रसूर्यग्रहग्रहे ॥ ८६ ॥ ध्वजमालाकुलंकुर्ध्यात्तस्यपुण्यफलंशृणु ॥ यावतीतन्तुसंख्यास्ति वायुनोद्धृत्यते
पुनः ॥ ८७ ॥ तावद्युगसहस्राणि शिवलोकैवसेनृप ॥ युगकोटिसहस्राणियुगकोटिशतानिच ॥ ८८ ॥ सर्वकामसमृ
द्धात्मा ब्रह्मविष्णुशिवालये ॥ एतत्तेकथितंराजन्नोङ्कारोत्पत्तिलक्षणम् ॥ ८९ ॥ ब्रह्मणातु कृतंतस्य स्तोत्रन्तंशृणुसा
म्प्रतम् ॥ ९० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणैरेवाखण्डे अङ्कारमहिमानुवर्णनोनामसप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४७ ॥ *

मार्कण्डेयउवाच ॥ ब्रह्मणेकथितोमन्त्र अङ्कारेणततो नघ ॥ ब्रह्मापितद्वचःश्रुत्वा स्तोत्रमेतदुदाहरत् ॥ १ ॥ अं
व्योमसंख्यायितेव्योमहरायसर्वव्यापिने ॥ अनन्तायअनाथाय अमृतायध्रुवायच ॥ २ ॥ शम्भवायशाश्वताय यो

इति श्रीस्कन्दपुराणैरेवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनुवादे अङ्कारमहिमाऽनुवर्णनोनामसप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४७ ॥

मार्कण्डेयजी बोले कि हे अनघ ! तदनन्तर ब्रह्माजीसे अंकारजीने मन्त्रकोकहा व ब्रह्माभी उनके वचनको सुनकर इस स्तोत्रको पढ़तेहुये ॥ १ ॥ कि आकाश
के बनानेवाले अंकारही हैं क्योंकि वेदमें पहले नादही की उत्पत्ति कहीगई है उससे आकाश हुआ इसी से आकाशका शब्द गुण है तो आकाशकी नाई सबमें
व्याप्त जो अंकाररूप शिवजीहैं उनके लिये नमस्कार है अन्त जिनका नहीं है और कोई जिनका मालिक नहीं है, मोक्षरूप, हमेशा अटल रहेनेवाले ॥ २ ॥ सुलके

पैदा करनेवाले, हमेशा रहनेवाले, योगासनसे बैठनेवाले, हमेशा योगाभ्यास करने से योगीरूप हो रहे, आकाश की नाईं सब वस्तुको अपनेही में हरलेंनेवाले ॥ ३ ॥
 अंकाररूप शिवजीकेलिये नमस्कारहै सबकी उत्पत्तिके स्थान, सबके मालिक, कल्याणस्वरूप, शिवजीकेलिये नमस्कारहै "फिर उन्हीं शब्दोंका उच्चारणकरना आदर के लिये है" ॥ ४ ॥ तत्पुरुषनाम मुख जिनका शिरकी जगहपरहै, अघोरनामकी कला विष्णुरूप जिनके हृदयकी जगहपरहै, सद्योजात नामकी कला जिनके गुप्तस्थान की जगहपर है ऐसे अंकारमूर्ति शिवजी के लिये नमस्कारहै नमस्कारहै ॥ ५ ॥ घटाबद्धीसे रहित, नाशरहित, जाननेवाले, वज्रके बराबर पोढ़ी देहवाले, सब जगत के संहार करनेवाले ॥ ६ ॥ सब इन्द्रियों के मालिक, संसारके बनानेवाले व सिखानेवाले, देवताओंके मालिक, महाप्रलय के अग्निरूप,

गपीठसंस्थिताय नित्ययोगयोगिने न्योमहराय ॥ ३ ॥ अंनमः शिवाय सर्वप्रभवाय शिवाय सर्वप्रभवाय
 य शिवाय ईशानाय ॥ ४ ॥ मूर्द्धाय तत्पुरुषाय वक्राय अघोराय हृदयाय सुदेवाय गुहाय सद्योजाताय मूर्तये अंकाराय
 नमो नमः ॥ ५ ॥ कलातीतो न्यो बुद्धो वज्रदेहोपमर्दनः ॥ ६ ॥ अद्यक्षश्च विधुः शास्ता पिनाकी त्रिदशार्थि
 पः ॥ अग्नीरुद्रो हुताशश्च पिङ्गलः पावनो हरः ॥ ७ ॥ उवलनो दहनो वस्तुभस्मान्तश्च जमान्तकः ॥ अपमृत्युहरो धाता
 विधाता कर्तृसंज्ञकः ॥ ८ ॥ कालो धर्मपतिः शास्ता वियोक्तानवमः प्रियः ॥ निमित्तो वारुणो हन्ता क्रूरदृष्टिर्भयावहः ॥
 ९ ॥ ऊर्ध्वदृष्टिर्विरूपाक्षो दंष्ट्रावान्धूम्रलोचनः ॥ बालो ह्यतिबलश्चैव पाशहस्तो महाबलः ॥ १० ॥ इवेतो विरूपो रुद्रश्च दी

उत्पन्न होनेपर रोनेवाले, होमहुये पदार्थ के भोजन करनेवाले, भस्मके योगसे कपिसैलैरूपके धारण करनेवाले, सबके पवित्र करनेवाले व हरनेवाले ॥ ७ ॥ प्रकाश करनेवाले व जलानेवाले इस जगत् में जो सत्यहै वह आपही है, अन्तमें सबको भस्म करनेवाले, क्रोधरूप, अकालमृत्युके हरनेवाले, धाता और विधाता इन दोनों प्रजापतियोंके रूपके धारण करनेवाले और सबके कर्त्ता ॥ ८ ॥ सत्र चीजको पुरानी करनेवाले, कालरूप, धर्मके मालिक, जगत के सिखानेवाले अर्थात् ईश्वररूप, सबके वियोग के करानेवाले, कुछभी कम नहीं होनेवाले, आत्मारूप होनेसे सबके प्यारे, सबके कारणरूप, जलमूर्त्तिके धारण करनेवाले, सबके नाश करनेवाले, डरावनी नजरवाले, भय करानेवाले ॥ ९ ॥ ऊपर यानी माथेपर आँखवाले, बिगड़ेरूपकी आँखोंवाले, बड़ी २ दाढ़ीवाले, धुमैले नेत्रवाले, बालरूपसे रहनेवाले व बड़े

बलवाले, फँसरी को हाथमें पकड़नेवाले और महाबलवाले ॥ १० ॥ सफेद जिनका रूपहै और विकरालरूपवाले भी हैं, सबके रूलांनेवाले, बड़े २ हाथोंवाले, जड़ोंके नाश करनेवाले, बड़ेजल्द, बहुत हलके, वायुके बराबर वेगवाले, बड़े डरावने, वड़वामुख अग्नि जिनका रूपहै ॥ ११ ॥ पांच शिरवाले, जटाजूट के धारण करनेवाले, बहुत सूक्ष्म और बड़ेपैने, अज्ञानरूप रात्रिके नाश करनेवाले, खजानेके मालिक, रौद्ररसवाले, धनुषके धरनेवाले, दुष्टोंके नाश करनेवाले ॥ १२ ॥ शेष-नारायणकी पालना करनेवाले, सबके धारण करनेवाले, पातालके मालिक, बैल की ध्वजावाले, धुमैलरंग से युक्त, सर्वदा रहनेवाले, संहार करनेवाले, सब कहीं कपिसैले रंगवाले, करालरूपवाले ॥ १३ ॥ सबमें व्याप्त रहनेवाले, सुखरूप, मौतसे रहित, कल्याणरूपसे रहनेवाले, सब कहीं व्याप्त

धवाहुर्जडान्तकः ॥ शीघ्रोत्पुर्वायुवेगो भीमश्चवडवामुखः ॥ ११ ॥ पञ्चशीर्षाकपर्दीच सूक्ष्मस्तीक्ष्णः क्षपान्तकः ॥
निधीशोरौद्रवान्धन्वी सौम्यदेहः प्रमर्दनः ॥ १२ ॥ अनन्तपालकोधारः पातालेशोवृषध्वजः ॥ सधूअः शाश्वतश्शर्वः
सर्वपिङ्गः करालवान् ॥ १३ ॥ विष्णुरीशोमहात्मा च सुखोमृत्युविवर्जितः ॥ शम्भुर्विभुर्गुणाध्यक्षस्त्र्यक्षश्चैव दिवस्प
तिः ॥ १४ ॥ संवादश्च विवादश्च प्रभविष्णुर्विवर्धनः ॥ शतमेकोत्तरं यावद्दुद्राणां संख्यया स्मृतम् ॥ १५ ॥ शतमेकोत्त
रं सर्वमोङ्कारे च प्रतिष्ठितम् ॥ स्तोत्रं कृत्वा तथा ब्रह्मा देवदेवं महेश्वरम् ॥ १६ ॥ भूमौ प्रणम्य साष्टाङ्गं कृत्वा चैव प्रदक्षिण
म् ॥ मनसा संस्मरन्देवं तस्यैलोकपितामहः ॥ १७ ॥ स्तोत्रं श्रुत्वा भगवतो ब्रह्मणोलोमहर्षणम् ॥ देवदेवो ब्रवीद्वाक्यं
ब्रह्माणं प्रतिभारत ॥ १८ ॥ स्तोत्रेणानेन दिव्येन तुष्टोहन्ते वरं वरुण ॥ ददामि तेन सन्देहो दुष्प्राप्यन्निदशैरपि ॥ १९ ॥

रहनेवाले, गणों के मालिक, तीन नेत्रवाले, स्वर्ग के मालिक ॥ १४ ॥ सलाह व भगड़ा जिनका रूपहै सबके ऊपर प्रभाव करनेवाले व बढ़ानेवाले हैं एक सौ एक रुद्र जो संख्या से कहे गये हैं ॥ १५ ॥ वे सब एकसौ एक रुद्र उंकारही में स्थित हैं तथा ब्रह्माजी देवताओं के देवता महादेवजी के स्तोत्रको कर ॥ १६ ॥ पृथिवी में साष्टाङ्ग प्रणामकर और प्रदक्षिणाकर मनसे महादेवजी की सुघ करते हुये लोकों के पितामह ब्रह्माजी खड़े हो रहे ॥ १७ ॥ तब भगवान् ब्रह्माजीके इस रोये खड़े करने वाले स्तोत्रको सुनकर हे भारत ! महादेवजी ब्रह्माजीसे वचन बोले ॥ १८ ॥ कि इस तुम्हारे दिव्यस्तोत्र से हम बहुत प्रसन्न हैं, इससे तुम वरको मांगो देवताओं को भी

जो नहीं मिलसक्ता वह हम तुमको देवोंगे इसमें कुछ सन्देह नहीं है ॥ १९ ॥ तब ब्रह्माजीबोले कि हे देवेश ! जो आप मुझसे प्रसन्नहो और मुझे आपको वरदेना योग्य ही है तो संसार विषे आपके पावोंमुखों में मेरे नामसे पूजन हुआकरे ॥ २० ॥ तब महादेवजी बोले कि हे ब्रह्मन् ! ऐसाहो यह तुम्हारा कहना सचहो हे भारत ! तबसे ब्रह्माजीकी धर्मपूजा होनेलगी ॥ २१ ॥ फिर ब्रह्माजी बोले कि इस रुद्रके स्तोत्रको अङ्कार जो आपहो तिनके आगे सदा आपहीं मनको लगायेहुये ब्राह्मण, क्षत्रिय और बर्नियें जो पढ़ेंगे ॥ २२ ॥ तो इस लोक व परलोकमें सब कामोंको पावेंगे व इसका पढ़नेवाला मनुष्य जिस २ कामना को करेगा उस २ को पावेगा ॥ २३ ॥ व

ब्रह्मोवाच ॥ यदितुष्टोसिदेवेश यदिदेयोवरोमम ॥ पञ्चवक्त्रेषुयजनं ब्रह्मनामभवत्विह ॥ २० ॥ हरउवाच ॥ एवम्भ वतुवैब्रह्मन्सत्यमेतत्तवोदितम् ॥ ब्रह्मणोधर्मपूजावै तदाप्रभृतिभारत ॥ २१ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ पठिष्यन्तिस्तवंरौद्रमोङ्कारस्यतवाग्रतः ॥ ब्राह्मणाः क्षत्रियावैश्याः सदातद्गतमानसाः ॥ २२ ॥ सर्वकाममवाप्स्यन्ति चेहलोकैपरत्रच ॥ ययं कामयतेकामं तंतंप्राप्नोतिमानवः ॥ २३ ॥ शतमेकोत्तरंनित्यं पठित्वाचदिवं व्रजेत् ॥ एवमुक्त्वातदाब्रह्मा नमस्कृत्यम हेश्वरम् ॥ २४ ॥ दिव्ययानसमारूढो ब्रह्मलोकमुदाययौ ॥ चतुर्युगसहस्रेण ब्रह्मणोहः प्रकीर्तितम् ॥ २५ ॥ अनेनेवतु मानेन शतंब्रह्माहिजीवति ॥ पितामहशतंयावद्विष्णोर्मार्मानंविधीयते ॥ २६ ॥ अङ्कारनिमिषाद्धनं सहस्राणिचतुर्दश ॥ विनश्यन्तिपरंविष्णोरसंख्याताःपितामहाः ॥ २७ ॥ एवंब्रह्मगतिज्ञात्वा शिवमन्तःसदाचयेत् ॥ शिवाज्ञावर्ततेलिङ्गे तस्माल्लिङ्गंसदाचयेत् ॥ २८ ॥ द्वेष्टिलिङ्गन्तुयोमोहात्सर्वदेवनमस्कृतम् ॥ सयातिनरकंघोरं शिवस्यवचनंयथा ॥ २९ ॥

नित्य एकसौ एकबार पढ़कर स्वर्गको जावेगा उस समय ब्रह्माजी इस प्रकार कहकर और महादेव के नमस्कारकर ॥ २४ ॥ दिव्य सवारीपर सवार खुशीसे ब्रह्मलोक को जातेहुये चारोंयुगों के हजारबार बीतने से ब्रह्माका एक दिन होताहै ॥ २५ ॥ इसी हिसाबसे सौ वर्षतक ब्रह्माजीते है व ब्रह्माके सौवर्ष का विष्णुका एक दिन होताहै ॥ २६ ॥ परन्तु अङ्कारके आधेपलमें चौदहहजार विष्णु और अनगिन्ती ब्रह्मा नष्ट होजातेहैं ॥ २७ ॥ इसतरह ब्रह्माका हाल जानकर शिवका पूजन अन्तःकरण से हमेशा कियाकरे लिंगमें शिवजीकी आज्ञाहै इससे लिङ्गका पूजन हमेशा करे ॥ २८ ॥ सब देवताओं रो नमस्कार कियेहुये लिंगमें जो मूढ़तासे वैर करताहै

वह घोरनरकको जाताहै ऐसा शिवजीका वचन है ॥ २९ ॥ भूततत्त्व के माननेवाले बौद्ध, क्षपणक और पाखण्डी जो अलग करदियेगये हैं व शिवके पूजन से रहित होगये उनको नष्ट समझो ॥ ३० ॥ अनेकजन्मों के अभ्याससे वे रसातल कोजाते हैं पुराणों में शिवके कहेहुये धर्मको जानकर करै ॥ ३१ ॥ वह दुष्ट और बड़ापाप-बुद्धिहै जो और धर्मको करताहै हे राजन् ! इसस्कन्दके कहेहुये पुराणको मैंने तुमसेकहा ॥ ३२ ॥ इसके सुनने व कहनेसे शिवलोकमें पूजाजाताहै ॥ ३३ ॥ इति श्री स्कन्दपुराणैरेवाखण्डेपञ्चब्रह्मात्मकस्तवोनामाष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४८ ॥

बौद्धक्षपणपाखण्डा मिथ्यातत्त्वविचक्षणाः ॥ नष्टास्तुनाशितायैव शिवाराधनवर्जिताः ॥ ३० ॥ जन्मजन्मान्तराभ्यासात्तेप्रयान्तिरसातलम् ॥ पुराणेषुतथाबुद्ध्या शिवोक्तं धर्ममाचरेत् ॥ ३१ ॥ सदुष्टः पापबुद्धिस्तु योन्यन्धमर्म समाचरेत् ॥ एतत्तेकथितं राजन् पुराणं स्कन्दकीर्तितम् ॥ ३२ ॥ श्रवणात्कीर्तनादस्य शिवलोकं महीयते ॥ ३३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणैरेवाखण्डेपञ्चब्रह्मात्मकस्तवोनामाष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४८ ॥

मार्कण्डेय उवाच ॥ ततो गच्छेन्महाभाग रेवाकपिलसङ्गमम् ॥ तत्र स्नाता दिवं यान्ति ये स्मृतान पुनर्भवाः ॥ १ ॥ तिलोदकप्रदानेन पितृणां परमागतिः ॥ दिनानि न वसाद्धानिराहुग्रस्तो निशाकरे ॥ २ ॥ दृष्ट्व्यातिमहाराज पुण्यवृद्ध्या न संशयः ॥ ग्रस्ते तुराहणासूर्ये दिनानि च दर्शयतु ॥ ३ ॥ वर्द्धते कपिला भेदस्तद्देवविशाम्पते ॥ रेवायाः कपिलायोगे वाराणस्याः समागमे ॥ ४ ॥ समानं फलमुद्दिष्टं तिलोदेनापि विद्यते ॥ वाराणसीसमारेवा कपिलायाश्च सङ्गमे ॥ ५ ॥

मार्कण्डेयजी बोले कि हे महाभाग ! तदनन्तर नर्मदा और कपिला के संगम को जावे वहां स्नान करनेवाले स्वर्गको जाते हैं और जो वहां मरे हैं वे फिर नहीं उत्पन्न होते हैं ॥ १ ॥ तिलोदक देनेसे पितरों की परमगति होती है चन्द्रग्रहण में साढ़े नव दिन तक ॥ २ ॥ हे महाराज ! पुण्यकी बाढ़िसे वह संगम बढता है इस में कुछ संशय नहीं है और सूर्यग्रहण में दशदिन तक ॥ ३ ॥ कपिलाका संगम हे विशाम्पते ! उसीतरह बढता है नर्मदा व कपिला के संगममें और काशीमें ॥ ४ ॥ वरावरही फल कहागया है जो तिलोदकके देनेसे ही होता है क्योंकि कपिलाके संगम में काशीके वरावर नर्मदा है ॥ ५ ॥ व स्वायम्भुव मन्वन्तरके प्राप्त होनेपर ब्रह्माके

वरसे जिनकी उरगति है ऐसे ब्रह्मावर्त, रुद्रावर्त और सूर्यावर्त हैं ॥ ६ ॥ कपिला और नर्मदाके योगमें ये तीनों जाननेयोग्य हैं जहां कि चार हाथके प्रमाणसे नर्मदाका सङ्गम है ॥ ७ ॥ हे राजन् ! उसी नर्मदा और कपिलाके संगममें दो आवर्त कहे गये हैं वहां सात पातालकी रहनेवाली पिप्पला नदी है ॥ ८ ॥ वहाँ कपिलावर्त और पिप्पलावर्त है अपनी तृप्तिके देनेवाले इस तीर्थकी पितर इच्छा किया करते हैं ॥ ९ ॥ इससे लड़का बड़े उपाय से पितरों के वारसे तिलोंसे मिली हुई जलाञ्जली व पिण्ड विधिपूर्वक यज्ञसे देवे ॥ १० ॥ नर्मदा और कपिलाके संगममें स्नानकर पवित्र होकर मनुष्य पितरोंको श्राद्ध करके घोरनरकसे उद्धार करे ॥ ११ ॥ जो कोई वहां

स्वायम्भुवेन्तरेप्राप्ते ब्रह्मलब्धवरोद्भवाः ॥ रुद्रावर्तब्रह्मावर्तं सूर्यावर्तं तथा परम् ॥ ६ ॥ कपिलानर्ममदायोगे ज्ञेयमेतत्र यंपुनः ॥ नर्मदाभेदनं यत्र चतुर्हस्तप्रमाणतः ॥ ७ ॥ रेवाकपिलयोराजंस्तत्रावर्तद्वयं स्मृतम् ॥ पिप्पलावाहिनीतत्र सप्तपातालवासिनी ॥ ८ ॥ तत्रैव कपिलावर्तं पिप्पलावर्तमेव च ॥ कामयन्ति हि तीर्थं च पितरस्तृप्तिदायकम् ॥ ९ ॥ तस्मात्पुनः प्रयत्नेन पितृभ्यश्च यथाविधि ॥ जलाञ्जलितिलैर्मिश्रं दद्यात्पिण्डं च यत्नतः ॥ १० ॥ पितॄन्समुद्धरेद्दुर्घोराच्छ्राद्धं कृत्वा तु मानवः ॥ रेवाकपिलयोर्योगेशुचिः स्नात्वा तु मानवः ॥ ११ ॥ यः पश्येदमरं तत्र फलं तस्याश्च मोधिकम् ॥ चन्द्रसूर्योपरागे तु पर्वकाले विशेषतः ॥ १२ ॥ गन्धधूपंच नैवेद्यं दीपमालाञ्च कारयेत् ॥ तिलतण्डुलमिश्रैर्यः कुर्यात्तिलज्जस्य चार्चनम् ॥ १३ ॥ कुङ्कुमेन समालिप्य रक्तवस्त्रैः प्रवेष्टयेत् ॥ पुष्पमालाचर्चनं कृत्वा हेमरत्नादिभिस्तथा ॥ १४ ॥ यावच्चन्द्रश्च सूर्यश्च हिमवांश्च महोदधिः ॥ तावद्युगसहस्राणि रुद्रलोकं महीयते ॥ १५ ॥ कौशेयं पट्टसूत्रञ्च कार्पासं

अमरनाथको देखता है उसको अश्वमेधयज्ञ का फल होता है उसमें भी चन्द्र व सूर्य के ग्रहणमें व पूर्वमें विशेषकर फल होता है ॥ १२ ॥ चन्दन, धूप और नैवेद्य तथा दियालियोंको जलावे और तिलचौरीसे जो लिंगका पूजन करता है ॥ १३ ॥ केसरसे लिंगका लेपनकर लाल कपड़ों से लपेटे, फूलोंकी माला तथा सोना व रत्नों से पूजन कर ॥ १४ ॥ जबतक चन्द्रमा, सूर्य, हिमाचल और समुद्र रहते हैं उतने हजार युगभर रुद्रलोकमें पूजित होता है ॥ १५ ॥ कुसेहरी कीडेका सूत, रेशम का सूत,

कपासका सूत लालसूत, वैजयन्तीमाला और चंदोवा इन सब चीजोंको मन्दिरके कलशके ऊपर बांधे ॥ १६ ॥ और उसको पञ्चरत्न व छुदघण्टिकाओंसे युक्त करे उन सूतोंकी जितनी गिनती हो हे भारत ! उतने सुहृत् काल तक स्वर्ग व पार्वती और महादेवजी के पुरमें रहताहै और एक ईशान लिंगहै जिसको हम पहले साधारण रीतिसे कहचुके हैं ॥ १७ ॥ १८ ॥ वह कपिला के पूर्वतरफ थोड़ीही दूरपर वर्तमान है उस लिङ्ग के पूजन से गणोंका स्वामी होताहै कातिक के उजियाले पालकी अष्टमीको इससे सौगुना फल होताहै संक्रान्ति और व्यतीपात में तो उसकी कुछ संख्याही नहीं है ॥ १९ ॥ २० ॥ वहां धन आदिके बांटनेसे व कपिलेश्वर के पूजन

कृतान्तवम् ॥ वैजयन्तीवितानञ्च कलशोपरिवर्द्धयेत् ॥ १६ ॥ पञ्चरत्नसमायुक्तं किङ्किणीरवसंयुतम् ॥ तत्तन्तुसंख्य
यायावन्मुहूर्तमिहभारत ॥ १७ ॥ तावत्कालं वसेत्स्वर्ग उमामाहेश्वरेपुरे ॥ ईशानमपरंचैव सामान्यात्कथितम्पुरा ॥
१८ ॥ कपिलापूर्वभागे तु नातिदूरेव्यवस्थितम् ॥ अर्चनात्तस्य लिङ्गस्य गाणपत्यमवाप्नुयात् ॥ १९ ॥ शुक्लाष्टम्यां का
त्तिके तु फलं शतगुणोत्तरम् ॥ संक्रमेचव्यतीपाते तस्य संख्यानं विद्यते ॥ २० ॥ उपहारप्रदानेन कपिलेश्वरपूजना
त् ॥ वर्षाणामयुतं सार्द्धं लोके क्रीडति भास्करे ॥ २१ ॥ मृतवत्सातथाबन्ध्या गर्भसावाचया भवेत् ॥ रक्तवस्त्रैः पञ्चरत्नैः
स्नानं साचसमाचरेत् ॥ २२ ॥ चतुर्दश्यां तथाष्टम्यां कपिलायां युधिष्ठिर ॥ सुभगा जीवपुत्रा च सत्यमेतच्छिवोदितम् ॥
२३ ॥ उमयाचवरोदत्तो नारीभ्यश्च प्रसादतः ॥ कपिलानिर्गताय स्मार्त्तमर्मादायां प्रसर्पति ॥ २४ ॥ तीर्थानामष्टसाह
स्रं कामभोगफलप्रदम् ॥ आस्तेतत्र महाराज शिवेन कथितम्पुरा ॥ २५ ॥ कपिलाचततोदया सर्वाभरणभूषिता ॥ ब्रा

से पन्द्रह हजार वर्ष तक सूर्यलोकमें विहार करताहै ॥ २१ ॥ जिस स्त्रीका लड़का मरजाताहै व जो बांझहै व गर्भ जिसका गिरजाताहै वह लालकपड़ा व पञ्चरत्नके सहित चतुर्दशी व अष्टमी को कपिला में स्नान करे तो हे युधिष्ठिर ! वह सौभाग्यवती और जीनेवाले पुत्रवाली होवे यह शिवका कहाहुआ सत्य है ॥ २२ ॥ २३ ॥ पार्वतीजी ने अपनी खुशीसे स्त्रियोंके वास्ते वरदान को दियाहै कपिलानदी जहां से निकली और नर्मदा में मिलीहै ॥ २४ ॥ वहां आठ हजार तीर्थहैं वे मनमाने भोग व फलोंके देनेवाले हैं हे महाराज ! यह शिवजीने पूर्वकाल में कहा है ॥ २५ ॥ वहां सब आभूषणों से युक्त कपिला गौ दान करनेयोग्य है और अपनी शक्तिके

अनुसार वहां ब्राह्मणों को भोजन करावे ॥ २६ ॥ आप व्रतकरे और देवता व पितरों को तृप्तकरे वही सिद्धिका देनेवाला हेमजालेश्वर नामका लिंगहै ॥ २७ ॥ उस देवके पूजन से यमलोक को नहीं देखताहै पुरानेसमय में धुन्धुवैत्य के मारनेवाले वसुदान चक्रवर्त्ती राजा हुये ॥ २८ ॥ वे इस तीर्थके माहात्म्यसे स्वर्गमें देवता होते हुये अनेकहजार क्षत्रिय हे नृपश्रेष्ठ ! इस कोटितीर्थके प्रभावसे बड़ी सिद्धिको पातेहुये व उल्लूनामके पक्षियोंने कौबोके सैकड़ों व हजारों शिरकाटके यहां कोटितीर्थ के पानीमें डाल दिये वे कौवा उसीक्षण दिव्यदेहहोकर विमानपर सवार ॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ विद्याधरोंके राजाहुये हे अनघ ! मैंने उनको पूर्वकालमें देखाहै और सियारों

ह्मणान्भोजयेत्तत्र यथाविभवविस्तरैः ॥ २६ ॥ उपवासपरोनित्यं तर्पिताःपितृदेवताः ॥ हेमजालेश्वरं नाम लिङ्गन्तत्रै
वसिद्धिदम् ॥ २७ ॥ अर्चनान्तत्तस्य देवस्य यमलोकं न पश्यति ॥ वसुदानो धुन्धुमारश्चक्रवर्त्ती पुराभवत् ॥ २८ ॥ अस्य
तीर्थस्य माहात्म्याद्विविदेवत्वमाप्तवान् ॥ अनेकानि सहस्राणि संसिद्धिपरमाङ्गताः ॥ २९ ॥ क्षत्रियाणां नृपश्रेष्ठ कोटि
तीर्थप्रभावतः ॥ उल्लूकैः पातितान्यत्र कोटितीर्थेशिरांस्यथ ॥ ३० ॥ काकानां जलमध्ये तु शतशो थसहस्रशः ॥ त
त्क्षणाद्विव्यदेहास्तु ते काकायानमाश्रिताः ॥ ३१ ॥ विद्याधराणां राजानो मया दृष्टाः पुरानघ ॥ वृन्दाश्च जम्बुकानान्तु
व्याघ्राणांच भयेन वै ॥ ३२ ॥ तथा मेघावृते काले नर्मदाजलमाविशन् ॥ यत्नलोकन्तु ते प्राप्ताः सर्वकामफलोदयम् ॥
३३ ॥ जम्बुकेश्वरमित्येवं तिर्यग्योनि विमोक्षणम् ॥ पृथिव्या नैमिषं तीर्थमन्तरिक्षे च पुष्करम् ॥ ३४ ॥ वाराणसी प्रया
गंच त्रैलोक्ये त्वमरेश्वरम् ॥ त्रयस्त्रिंशत्कोटिभिस्तु सुरासुरनमस्कृतम् ॥ ३५ ॥ तत्र स्नानात् शराजेन्द्र हयमेधफलं लभे

के भ्रूण्ड बावोंके भयसे ॥ ३२ ॥ चौमासे में नर्मदा के जलमें पैठगये वे सब यक्षोंके लोकको प्राप्तहुये जहां सब मनमाने फल मिलते हैं ॥ ३३ ॥ वहां जम्बुकेश्वर
इम नामका लिङ्ग तिर्यग्योनि से छुड़ानेवालाहै पृथिवी में नैमिषतीर्थ है और अन्तरिक्षमें पुष्करतीर्थहै ॥ ३४ ॥ काशी और प्रयाग है व अमरेश्वर तीर्थ तीनोंलोकमेंहै
जो तैत्तीस करोड़ देवता और दैत्यों से नमस्कार कियागयाहै ॥ ३५ ॥ हे राजेन्द्र ! वहां स्नान करनेवाला अश्वमेधयज्ञके फलको पाताहै व इसी तीर्थके प्रभावसे वहां

सरस्वती सिद्धहुई है ॥ ३६ ॥ पितरों की प्रीतिके बढ़ानेवाले श्राद्धको जो कोई करता है वह मनुष्य पितरोंके सहित परमस्थान को जाता है ॥ ३७ ॥ सारस्वत नानका लिङ्ग ब्रह्महत्या का नाश करनेवाला है अब पुराने इतिहास य आख्यान अर्थात् कथाको कहते हैं ॥ ३८ ॥ स्वायम्भुव मन्वन्तरमें पहले कल्पके सत्ययुगमें बड़े लक्ष्मी वाले इन्द्रके बराबर पराक्रम (ताकत) वाले सत्यवचन के बोलनेवाले, इन्द्रियों के जीतनेवाले, यज्ञोंके करनेवाले, दानके देनेवाले, देवता और अतिथि के सत्कार करनेवाले धुन्धुमार इस नामसे प्रसिद्ध अयोध्या के राजा होतेहुये ॥ ३९ ॥ ४० ॥ उन राजाकी प्रजा दोष व भय और दरिद्रसे रहित होतीहुई और हे भारत ! वे सब त ॥ सिद्धासरस्वतीतत्र तीर्थस्यास्यप्रभावतः ॥ ३६ ॥ यः कश्चित्कुरुते श्राद्धं पितॄणां प्रीतिवर्द्धनम् ॥ स्यात्तिपरमं स्थानं पितृभिः सहमानवः ॥ ३७ ॥ लिङ्गसारस्वतं नाम ब्रह्महत्याव्यपह्ननम् ॥ आख्यानं कथयिष्यामि इतिहासम्पुरातनम् ॥ ३८ ॥ स्वायम्भुवेन तरे प्राप्ते आदिकल्पे कृत्युगे ॥ अयोध्याधिपतिः श्रीमाञ्छक्रतुल्यपराक्रमः ॥ ३९ ॥ धुन्धुमार इति ख्यातः सत्यवादी जितेन्द्रियः ॥ यज्ञयाजी दानशीलो देवतातिथिपूजकः ॥ ४० ॥ निरवद्याः प्रजास्तस्य भयदा रिद्रथवर्जिताः ॥ सपादलक्षवर्षाणि प्रजाजीवन्ति भारत ॥ ४१ ॥ यज्ञोत्सवविवाहैश्च वेदमङ्गलानि रस्वनेः ॥ स्वयंकाम दुधाधेनुः पृथिवीसम्यशालिनी ॥ ४२ ॥ चतुर्वर्षसहस्राणि प्राकृता इतरे जनाः ॥ कौशेयपट्टचक्षुषु बद्धं सर्वत्र भारत ॥ ४३ ॥ यज्ञहोमसहस्रैस्तु सदा दोहमयी नृप ॥ एवं शशास पृथिवी यथाशक्रस्त्रिविष्टपम् ॥ ४४ ॥ एकस्मिन्समये राजा प्रतीहारमुवाच ॥ आदेशय नृपान् सर्वान्नादेशसमुद्भवान् ॥ ४५ ॥ प्रतीहारसमादिष्टाः समायातास्ततो नृपाः ॥ मृग प्रजा सवालालव वर्ष जीतीरही ॥ ४१ ॥ यज्ञ, उत्सव (जल्सा), विवाह, वेदपाठ और मङ्गलशब्दोंसे सब प्रजा युक्तरही गौ आपही मनमाने समयपर दूधकी देनेवाली व पृथिवी अन्नसे भरी होतीहुई ॥ ४२ ॥ चारहजार वर्षतक नीचलोग जीते रहे और हे भारत ! रक्षामी कपड़े सर्वत्र वृत्तोंमें बँधेरहते थे ॥ ४३ ॥ हे नृप ! यज्ञ और हजारों होमों के कारण से हमेशा कामधेनु के बराबर होरही पृथिवीकी राजा इस प्रकार रक्षाकरतेहुये जैसे इन्द्र स्वर्गकी रक्षाकरे ॥ ४४ ॥ एक समयमें राजा अपने चौबदार से बोले कि अनेकदेशों के सब राजाओं को बुलावो ॥ ४५ ॥ तदनन्तर चौबदारोंसे आज्ञा पायेहुये राजालोग आतेहुये उन सब राजाओं के सहित शिकार

करनेके वास्ते विन्ध्याचलको वे राजा जातेहुये ॥ ४६ ॥ जहां अग्निहोत्री ब्राह्मणों के वेदोंकी ध्वनियों के शब्दोंसे नादित हुई तीनोंलोकोंमें अमिद्ध नर्मदा विद्यमान है ॥ ४७ ॥ वहां बड़ा शोभायमान, रमणीक, विचित्र, सवन जंगल था हे भारत ! उसीमें क्षत्रियोंके सहित उन राजाने हजारों जीवोंको मारकर ॥ ४८ ॥ तदनन्तर बड़े दारुण मव वनमें प्रवेश किया तो वहा डरावने रूपवाले, बड़ेघोर, दुःखसे देखने योग्य, अतिदुस्सह ॥ ४९ ॥ मेघोंकी आवाजसे गर्जि रहे, अत्यन्त रोग्ये खडेकरने वाले, सफेद रंगवाले, अपनी दोनों दाइसे डरावने हो रहे एक सुवरको देखा ॥ ५० ॥ वहां श्रेष्ठ राजाने उस वैसे सुवरको देखकर और सब क्षत्रियोंसे कहा कि गेये खड़े

यान्तुसतैःसर्वैः कर्तुंविन्ध्यंजगामह ॥ ४६ ॥ वेदध्वनितनिर्घोषैर्हिजानामग्निहोत्रिणाम् ॥ नादितात्रिषुलोकेषु विख्यातासप्तकल्पगा ॥ ४७ ॥ तत्रोपशोभितरम्यं विचित्रवनमण्डलम् ॥ हत्वाजीवसहस्राणि क्षत्रियैःसहभारत ॥ ४८ ॥ विवेशचवनंसर्वं ततःपरमदारुणम् ॥ भीमरूपंमहाघोरं दुष्प्रेक्ष्यंचसुदुस्सहम् ॥ ४९ ॥ मेघनादेनगर्जनन्तं सुतरांलोमहर्षणम् ॥ वाराहंश्चेतवर्णञ्च दंष्ट्रायुगलभीषणम् ॥ ५० ॥ तं दृष्ट्वा तादृशं तत्र वाराहं नृपसत्तमः ॥ उवाच क्षत्रियान्सर्वान्न दृष्टं न मया श्रुतम् ॥ ५१ ॥ एतादृशं वराहस्य रूपं वै लोमहर्षणम् ॥ इत्युक्त्वा पाशमादाय यावद्धन्तुं समुद्यतः ॥ ५२ ॥ ता वद्यायुवपुर्भूत्वा निर्यातः प्राणपीडितः ॥ विवेश जलमध्ये च कोटितीर्थे नराधिप ॥ ५३ ॥ पृष्ठतो नु जगामाथ सराजाहय वाहनः ॥ प्रविष्टमात्रः पयसि वराहस्तु विशाम्पते ॥ ५४ ॥ तत्क्षणाद्विव्यदेहस्तु कामिकं यानमास्थितः ॥ किमिदं प्राहतं राजा वाराहं देवरूपिणम् ॥ ५५ ॥ हृदि विस्मयमापन्नो सत्यभेतच्च ब्रूहि मे ॥ तस्य तद्वचनं श्रुत्वा वाराहो देवरूपं पृच्छ ॥ ५६ ॥

करनेवाले सुवरके ऐसे रूपको मैंने कभी देखा व सुना नहीं था यह कहकर फँसरीको लेकर उसके मारनेको जबतक राजा तैयारहो ॥ ५१ ॥ तबतक वह अपने प्राणों के डरसे हवाकी तरहहो उड़ा हे नराधिप ! कोटितीर्थके जलके बीचमें पैठगया ॥ ५३ ॥ वह राजा घोड़ेपर सवार उसके पीछे चला हे विशाम्पते ! वह सुवर पानी में पैठतेही ॥ ५४ ॥ उसीक्षण दिव्यदेह होकर मनमानी सवारीपर सवार होगया उस देवरूप होगये सुवर से राजा बोले कि यह क्या हुआ ॥ ५५ ॥ मेरे हृदयमें बड़ा

विस्मय होरहा है इससे मुझसे यह सत्य कह तो देवता के रूपको धरेहुये वह सुवर उन राजाके इस वचनको सुनकर ॥ ५६ ॥ हँसताहुआ राजा से वाक्य बोला कि हे महामते, राजन् ! तुम सुनो कि मुझको अंगद नाम का महादेवजी का गण समझो ॥ ५७ ॥ किसी समयमें अपने गण व देवता व पार्वती के सहित महादेव जी विहार करते रहे हे नृपसत्तम ! उनके आगे ॥ ५८ ॥ मैंने दण्डक नामका बहुत अच्छा गानागया परन्तु वहां उर्वशी और रम्भाको देखकर मैं कामसे मोहित होगया ॥ ५९ ॥ और सुवरकी वाणीको बोलताहुआ मैं बिगड़ी आवाजवाला व बिगड़े मुहँवाला होगया और वहां बेहोशहुये मैंने अप्सराओंके साथ विहारको किया ॥ ६० ॥

प्रहसनब्रवीद्वाक्यं शृणुराजन्महामते ॥ अङ्गदं नामतु गणं विद्धि मां शङ्करस्य तु ॥ ५७ ॥ गणैश्च देवमुख्यैश्च उमयाचमहे श्वरः ॥ क्रीडन्नाऽऽस्ते कदाचित्तु तस्याग्रे नृपसत्तम ॥ ५८ ॥ तत्र गीतं मया गीतं रम्यं दण्डकलक्षणम् ॥ दृष्ट्वेव शीतथारम्भामभूवं काममोहितः ॥ ५९ ॥ व्याहरञ्छुर्करीवाणीं विस्वरो विकृताननः ॥ विह्वलेन मया तत्र ह्यप्सरोभिस्तु क्रीडितम् ॥ ६० ॥ तादृशं मानुषद्वयैव कामक्रीडावशङ्गतम् ॥ शशाप नन्दीकोपात्मा शूकरो मेध्यभुग्भव ॥ ६१ ॥ दशवर्षसहस्राणि भ्रमिष्यसि महीतले ॥ ब्रह्मापि नैव शक्नोति शिवस्य तु प्रकीर्तितम् ॥ ६२ ॥ त्वं तु गामटमानोऽपि किङ्करस्यापि किङ्करः ॥ कुपितं नन्दिनं ज्ञात्वा भयभीतान्तरात्मना ॥ ६३ ॥ प्रसादितो मयानन्दी शापान्तं वरमादिशत ॥ दर्शनाद्बुधुमारस्य कोटितीर्थप्रभावतः ॥ ६४ ॥ त्यक्त्वा तु शूकरं योनिं पुनः प्रत्यागमिष्यसि ॥ एतत्तैकथितं राजन् वाराहो योनिमाश्रितः ॥ ६५ ॥ यथा हि किल्विषान्मुक्तस्तीर्थस्यास्य प्रभावतः ॥ अङ्कारदर्शनाद्वाजन् रेवा तोयपरिष्कृतः ॥ ६६ ॥

कामके विहारमें आसक्त होरहे वैसे मुझको देखकर बड़े क्रोधवाले नन्दीश्वरजी ने शाप देदिया कि तू मैला खानेवाला सुवरहो ॥ ६१ ॥ दशहजार वर्षतक पृथिवी में घूमाकरेगा महादेवके कहेहुयेको ब्रह्माभी नहीं हटासकेहैं ॥ ६२ ॥ गुलामका गुलाम तू पृथिवी में घूमता रहेगा तब नन्दीश्वरजीको क्रोधयुक्त जानकर भयसे डरेहुये ॥ ६३ ॥ मैंने नन्दीश्वरजीको प्रसन्नकिया तब उन्होंने शाप समाप्त होजानेका मुझे वरदिया कि बुन्धुमार राजाके दर्शनसे व कोटितीर्थके प्रभावेसे ॥ ६४ ॥ सुवर की योनि को छोड़कर फिर तू यहाँ आवेगा हे राजन् ! यह आपसे कहा कि सुवरकी योनिमें पड़ाहुआ ॥ ६५ ॥ जैसे इस तीर्थके प्रभावकरके पापसे छुटगया है राजन् !

अंकारके दर्शनसे व नर्मदाके जलसे शुद्ध हुआ ॥ ६६ ॥ व आपके दर्शनसे हे सुव्रत ! मैं गन्धर्वयोनि को प्राप्त हुआ इससे हे राजेन्द्र ! आप शोचको छोड़ो कर्मों की गति बड़ी कठिन है ॥ ६७ ॥ धर्ममें अपनी बुद्धि को लगाकर सब जीवोंके हितके करनेवाले होवो क्योंकि हे राजन् ! पैदाहोने से मरना होता है और मरनेसे पैदाहोना होता है ॥ ६८ ॥ इससे पाप व पुण्यवाले कामोंको जानकर तुम अपनेको उच्चारकरो अपनाही कमाया कर्म आपही भोगता है ॥ ६९ ॥ भले बुरे कर्मों का करनेवाला व भोगनेवाला आपही है अब आपका भलाहो मैं जाता हूँ यह कहकर चला गया ॥ ७० ॥ छाताको लगायेहुये अप्सराओंसे चेंबर दुरायाजारहा ऐसा आप शिवके ध्यानमें

प्राप्तोगन्धर्वयोनिन्तु दर्शनात्तवमुव्रत ॥ विषादन्त्यजराजेन्द्र गहनाकर्ममर्णाङ्गतिः ॥ ६७ ॥ धर्मैर्बुद्धिसमाधाय सर्वभूतहितोभव ॥ जन्मतोमरणंराजन्मरणजन्मसम्भवः ॥ ६८ ॥ ज्ञात्वाशुभाशुभकर्ममत्त्वमात्मानं समुद्धर ॥ स्वयमेवाजितं कर्मस्वयमेवोपभुज्यते ॥ ६९ ॥ स्वयंकर्ताचमोक्ताच शुभस्याप्यशुभस्य च ॥ स्वस्तिवोस्तिगमिष्यामि एवमुक्त्वाजगामह ॥ ७० ॥ ध्रियमाणातपत्रस्तु वीज्यमानोऽप्सरोगणैः ॥ शिवध्यानपरोभूत्वा कैलासेन्यवसस्तुल्यम् ॥ ७१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणैरेवास्येण्डेवाराहस्वर्गारोहणं नामैकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ४९ ॥ *

मार्कण्डेय उवाच ॥ सतस्मिन्नृपतिश्रेष्ठस्तुषितः श्रान्तवाहनः ॥ हयंमुमोचराजावै सर्वोपस्करमेव च ॥ १ ॥ स्मरन् नृङ्गगतिन्तावदुपविष्टः शिलातले ॥ रेणुध्वस्तस्ततोऽवोवैप्रविष्टः सप्तकल्पगाम् ॥ २ ॥ पानस्तनानादिकंकृत्वा ह्यन्तरिक्षस्थितो हयः ॥ ब्रह्मतेजःस्थितो भूत्वा ब्रह्मयानं समाश्रयत् ॥ ३ ॥ अत्यद्भुतं तु तदृष्ट्वा परं विस्मयमागतः ॥ उवाच वचनं रा

परायण होकर कैलास में सुखसे रहता हुआ ॥ ७१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे रेवास्येण्डेवाराहस्वर्गारोहणं नामैकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ४९ ॥ फिर मार्कण्डेयजी बोले कि राजाओं में श्रेष्ठ वे धुन्धुमार राजा थीकी सवारीवाले और प्यासे उसी स्थानमें घोंडेको छोड़ दिया और उसका साजभी सब उतार लिया ॥ १ ॥ राजा परलोक की गतिको सुध करता हुआ चट्टान पर बैठ गया तदनन्तर धूलिसे भरा हुआ घोड़ा नर्मदा में पैठ गया ॥ २ ॥ पानी पीके व स्नानकरके घोड़ा आकाश में स्थित हुआ और ब्रह्मतेज में स्थित होकर ब्राह्मणोंकी सवारीपर सवार हुआ ॥ ३ ॥ राजा उसका बड़ा अजब हाल देखकर बड़े अचम्भेमें होगये व ब्राह्मण

होगये उस अपने घोड़ेसे राजा वचन बोले ॥ ४ ॥ किहे ब्रह्मन् ! यह क्या कारण है सो मुझसे आज ठीक २ कहो तब यह सुनकर ब्राह्मण होरहा वह घोड़ा वचन बोला ॥ ५ ॥ कि पूर्वकाल में कुरुक्षेत्र विषे रहनेवाला मैं गालवनाम का ब्रह्मर्षिहूँ सो घोड़े के दान लेने से मैं जलगया व घोड़ेकी योनि में आपड़ा ॥ ६ ॥ दावानल से जो जलाहुआ है वह पानी से फिर जमआता है और दुष्टदान के लेनेसे जो जलगयाहै वह कभी नहीं जमता है ॥ ७ ॥ पहिले जमाने में अयोध्या के मालिक, बड़े धर्मात्मा, बड़े बलवाले, चक्रवर्ती दुमसेन राजा होतेहुये ये राजा सूर्यग्रहण में ब्राह्मणों के वास्ते देने को हाथी, घोड़े, सोना, गौबें, माणिक, हरिरा, पन्ना और

जा तुरङ्गंतद्विजर्षभम् ॥ ४ ॥ किमेतत्कारणं ब्रह्मच्छंसमेद्यथोचितम् ॥ उवाचतद्वचःश्रुत्वा हयरूपोद्विजोत्तमः ॥ ५ ॥
ब्रह्मर्षिर्गालवश्चाहं कुरुक्षेत्रेपुरास्थितः ॥ अश्वप्रतिग्रहाद्गधस्त्वश्वयोनिंसमाश्रितः ॥ ६ ॥ दावाग्निनाचयद्गधमुदका

तत्प्ररोहति ॥ दुष्टप्रतिग्रहाद्गधो नप्ररोहेत्कदाचन ॥ ७ ॥ दुमसेनःपुराचासीद्राजापरमधार्मिकः ॥ अयोध्याधिप

तिश्चासौ चक्रवर्तीमहाबलः ॥ ८ ॥ राहुसूर्यसमायोगे कुरुक्षेत्रंजगामह ॥ गजानश्वान्समादाय हिरण्यङ्गान्स्तथैवच ॥

९ ॥ माणिक्यवज्रवैदूर्यवासांसिविविधानिच ॥ ब्राह्मणार्थेनृपश्रेष्ठ मुदापरमयायुतः ॥ १० ॥ गृहाणिसास्रभौमानि

राजोत्तमकुलंविप्रमुञ्चवृत्तिंसमाश्रितम् ॥ ११ ॥ दत्त्वासयाचयामास सक्तुप्रस्थव्रतैस्थितम् ॥

दर्शनंदोरं मेधामथनमक्षमम् ॥ १२ ॥ दृष्ट्वाचैवमहीपालमादित्यंचावलोकयेत् ॥ द्विजात्परतरोनास्ति प्रतिग्रहपरा

अनेक तरह के कपड़े लेकर बड़ी खुरीसे युक्त हे नृपश्रेष्ठ ! कुरुक्षेत्र को जातेहुये ॥ ८ ॥ १० ॥ और वहां सात २ चौकवाले सोने के कामवाले, सब चीजों से भरेहुये मकान ब्राह्मणों को विधिसे ॥ ११ ॥ देकर फिर सेरभर सक्तू के उपर दान नहीं लेना इस व्रतमें स्थित होरहे शीला बोनकर खानेवाले, उत्तमकुलवाले, एक ब्राह्मण से उन राजाने प्रार्थना की ॥ १२ ॥ कि मेरे पितरों के श्राद्धका समयहै सो आप भोजन करें तब वह ऋषि बोला कि राजाका दर्शन बड़ाघोर होताहै बुद्धि को नाश कर देताहै ठीक नहींहै ॥ १३ ॥ क्योंकि राजाको देखकर सूर्यका दर्शनकरे तब शुद्ध होता है और दानके नहीं लेनेवाले ब्राह्मण से कोई श्रेष्ठ नहीं

होता है ॥ १४ ॥ दुष्टदान के लेने से जरूर नरक को जाता है इससे स्त्री के दान का लेनेवाला तू और किसी ब्राह्मण से प्रार्थन न कर ॥ १५ ॥ ऋषिके वचन को सुनकर राजा ने अपने चोबदार से कहा कि कुरुक्षेत्र के रहनेवाले ब्राह्मणों के वास्ते तू शीघ्र पुकारकर दे ॥ १६ ॥ कि जिस किसी को दान लेना हो वह यहां शीघ्र आवे हे नृप ! पुकार करने पर भी कोई दान का लेनेवाला नहीं हुआ ॥ १७ ॥ तदनन्तर राजा बड़ा नाराज हुआ और उस स्थान की निन्दा की कि यह स्थान ब्राह्मणों का नहीं है और न यहां वेद है न यज्ञ का कराना है ॥ १८ ॥ ऐसे उन सब की निन्दा कर फिर चुप हो रहा उस के इस वचन को सुनकर राजा से मैंने यह कहा ॥ १९ ॥ कि चारों वेदों का पढ़ने

ब्रूयात् ॥ १४ ॥ असत्प्रतिग्रहं गृह्णरं कंयाति वैधुवम् ॥ भार्या प्रतिग्रहग्राही याचस्वान्यं द्विजोत्तमम् ॥ १५ ॥ ऋषे राजा वचः श्रुत्वा प्रतीहारं तथा ब्रवीत् ॥ घोषणा क्रियतांशीघ्रं स्थाने श्वरनिवासिनाम् ॥ १६ ॥ प्रतिग्रहाय यः कश्चित् स चायाति वहसस्वरम् ॥ कृते तु घोषणे कश्चिन्नासीन् नृप प्रतिग्रही ॥ १७ ॥ ततस्तु कुपितो राजा स्थानन्तश्च निनिन्द च ॥ अब्रह्मण्यमिदं स्थानं न वेदो न च या जनम् ॥ १८ ॥ जुगुप्सित्वा तु तान्सर्वान् तूष्णीं चैव बभूव ह ॥ तस्य वाक्यन्तु तच्छ्रुत्वा राजानं चेदमब्रवीत् ॥ १९ ॥ गालवो हं द्विजश्रेष्ठश्चतुर्वेदी महातपाः ॥ यज्ञयाजी तपस्वी च सर्वभूतहितैरतः ॥ २० ॥ अतुग्रहमिमं विद्धि उद्धरिष्ये भवार्णवात् ॥ राजो वाच ॥ ददामि तेन सन्देहस्त्वमेको मुनि सत्तमः ॥ २१ ॥ मुद्गलाद्यैर्द्विजैः सर्ववार्थ्यमाणोऽपि चानघ ॥ गृहीतोऽश्वरथस्तत्र मया भरणभूषितः ॥ २२ ॥ ततः समानमस्कृत्य द्रुमसेनो ययौ नृप ॥ मयापि चाग्निहोत्रादिकर्मण्यक्त्वा यथा सुखम् ॥ २३ ॥ नानाविधानि दिव्यानि स्त्रीभिः सार्द्धं सुखानितु ॥ क्रीडतोऽपि

वाला, बड़े तप का करनेवाला, यज्ञों का करनेवाला, सब जीवों के हित का करनेवाला, तपस्वी, ब्राह्मणों में श्रेष्ठ मैं गालव नाम का ब्राह्मण हूँ ॥ २० ॥ इसको तू मेरी दया समझ ॥ तुझे संसार समुद्र से उद्धार करूंगा तब राजा बोला कि मैं आप को दान देऊंगा इसमें कुछ संदेह नहीं है आप ही एक मुनियों में श्रेष्ठ हो ॥ २१ ॥ हे अनघ ! तदनुत्तर वह द्रुमसेन राजा मुझको नमस्कार चला गया मैंने भी अग्निहोत्र आदि कर्मों को छोड़कर सुख से ॥ २३ ॥ अनेक तरह के दिव्य सुखों को स्त्रियों के साथ भोगे व मुझको विहार करते हुये वह सब

द्रव्य नाश (खर्च) होगई ॥ २४ ॥ ऐसे कहकर वह ब्राह्मण सनातन ब्रह्मलोकको चलागया तदनन्तर हे भारत ! अकेला वह राजा सोचने लगा ॥ २५ ॥ कि अब जो मैं अकेला व घोड़ा न होनेसे पैदलही चलाजाऊं तो राजालोग आपसमें यह कहकर कि डाकुओंने इनके घोड़को मारडाला ऐसी २ अपनी बातोंसे मुझे होंगे घोंड़के साजको अपने शिरपर लेकर मुझको कैसे ॥ २६ ॥ २७ ॥ शहरमें पैठना योग्यहै यह बात मुझको बड़ी शर्मकी है और आजतक मैंने ब्राह्मणके ऊपर सवारीकी ॥ २८ ॥ इससे अब इस पापके छूटने के वास्ते मैं आगीमें प्रवेश करूंगा इसतरह राजाने वहां विचार किया और बड़ीजल्दी से ॥ २९ ॥ दक्षिण दिशामें टिककर सूखी लकड़ी

दर्थवै यावन्मेचक्षयङ्गतम् ॥ २४ ॥ एवमुक्त्वाययौविप्रो ब्रह्मलोकंसनातनम् ॥ एकाकीचततोराजा चिन्तयामासभा
रत ॥ २५ ॥ एकाकीयदियास्यामि गताश्वश्चरणेनतु ॥ राजानोमांहासिष्यन्ति वचनैःस्वैःपरस्परम् ॥ २६ ॥ दस्युभि
र्निहतश्चास्य हयइत्येवमादिभिः ॥ अश्वोपस्करमादायशिरसाचकथंमया ॥ २७ ॥ प्रवेष्टव्यंपुरैचैतन्महालज्जा
करंमम ॥ अद्यावन्मयातावद्ब्राह्मणारोहणंकृतम् ॥ २८ ॥ पापस्यास्यविशुद्ध्यर्थं प्रवेक्ष्यामिहुताशनम् ॥ एवंविचिन्त
यामास राजातत्रैवसत्वरम् ॥ २९ ॥ दक्षिणाग्निदशमाश्रित्यशुष्ककाष्ठानिचाहरत् ॥ ततःप्रज्वाल्यकाष्ठानि कृत्वाच
त्रिःप्रदक्षिणम् ॥ ३० ॥ नमस्कृत्यहुताशञ्च विवेशस्वगृहंयथा ॥ निर्जित्यतेजसातेजः पावकस्यतदानृपः ॥ ३१ ॥
चतुर्भुजानिनेत्रातु मुक्ताभरणभूषिता ॥ तंगृहीत्वाकरेणैव इदंवचनमब्रवीत् ॥ ३२ ॥ अप्राप्तंमरणंराजन्रकालोविहित
स्तव ॥ अकस्मात्साहसन्देव युक्तंनप्रतिभातिमे ॥ ३३ ॥ कालप्राप्तंषुमांसन्तु नरचेदीश्वरःस्वयम् ॥ राजोवाच ॥

को जमा किया तदनन्तर लकड़ी को जलाकर तीनबार प्रदक्षिणाकर ॥ ३० ॥ और आगीको नमस्कारकर अपने मकानकी तरह आगीमें पैठगया उससमयमें अपने तेजसे आगीके तेजको जीतकर राजा स्थितहुआ ॥ ३१ ॥ तबतक चार भुजावाली, तीन नेत्रवाली, सब गहनेसे सजीहुई एक स्त्री उन राजाको हाथसे पकड़कर इस वचन को बोली ॥ ३२ ॥ कि हे राजन् ! अभी आपकी मौत नहीं है और अभी आप का समय नहीं है हे देव ! यह एकाएकी जबरदस्ती करना आपका मुझको ठीक

नहीं समझ पड़ता है ॥ ३३ ॥ जिसका समय आ गया उस पुरुषको साक्षात् ईश्वरभी नहीं बचासक्ता है तब राजा बोला कि हे वरारोहे ! तुम कौनहो पावेंतो व गङ्गा व लक्ष्मीहो ॥ ३४ ॥ हे महाभाग ! सो कहो मुझको तुम बड़ीभक्तिकी देनेवाली हो तब वह स्त्री बोली कि हे नृप ! न मैं गङ्गाहूँ और न सरस्वतीहूँ इस मुझको आप महादेव से निकलीहुई, नर्मदा के भीतर बहनेवाली कपिला नदी जानो व वसुदान राजा की यज्ञ में नर्मदा और कपिलाका संगम हुआ ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ उसी यज्ञ में उमा, कात्यायनी, गंगा, यमुना, गौतमी, सरस्वती, शिप्रा, शुभनदी वरणा ॥ ३७ ॥ शतद्रु, चन्द्रभागा, सिन्धु, निर्मलनर्मदा, वितस्ता और देवीचर्मएवती

कासित्वंचवरा रोहे ह्युमागङ्गाथवारमा ॥ ३४ ॥ कथयस्वमहाभागे समत्वंभक्तिदायिनी ॥ स्न्युवाच ॥ नाहंगङ्गानवाणी वाकपिलांविद्धिमानंनृप ॥ ३५ ॥ एनांरुद्राद्विनिष्क्रान्तां नर्ममदातलवाहिनीम् ॥ वसुदानस्ययज्ञेतु रेवाकपिलसङ्गमः ॥ ३६ ॥ उमाकात्यायनीगङ्गा यमुनागौतमीतथा वरणाचशुभापगा ॥ ३७ ॥ शतद्रुश्चन्द्रभागा च सिन्धुरेवामलातथा ॥ वितस्ताचर्मणदेवी सोमावभृथमध्यतः ॥ ३८ ॥ ब्रह्मविष्णुमहेशानां स्नानार्थंहतवारीभिः ॥ तिलोदकैर्मुनीनान्तु प्रणीतःकलशोदकैः ॥ ३९ ॥ तथासोमरसैश्चैव घृतखण्डादिभिश्चितैः ॥ बभूवातिप्रवाहो वै इज्याजन्योमहान्पुरा ॥ ४० ॥ एतद्रूतंमहत्पुण्यमुदयाचलमाश्रितम् ॥ रुद्रावर्तपदंचात्र विद्यतेनृपसत्तम ॥ ४१ ॥ एवमुक्तोययौराजा देवीचान्तरधीयत ॥ हृष्टस्तुष्टश्चक्रवर्तीमार्कण्डेयाश्रमंययौ ॥ ४२ ॥ गत्वाप्रणम्यतमृषिमुपविष्टस्तथाग्रतः ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ कुशलंतेनृपश्रेष्ठ धर्माचारविदांवर ॥ ४३ ॥ सन्त्यज्यचक्रथैसन्यमेकाकीत्वे ये सब नदियां सोमयज्ञ के यज्ञान्तरानामें ॥ ३८ ॥ ब्रह्मा व विष्णु और महादेवके स्नानके वास्ते आई सो इनके जलोंसे व तिलोंसे मिलेहुये मुनियों के कलशों के जलोंसे प्राप्त ॥ ३९ ॥ व इसीतरह घी और शक्करआदि से मिलेहुये सोमलता के रसोंसे यज्ञसे पैदाहुआ बडाभारी जलोंका प्रवाह पूर्वकाल में होताहुआ ॥ ४० ॥ हे नृपसत्तम ! यह उदयाचलके आश्रित महापुण्यतीर्थ हुआ और यहां रुद्रावर्त नामका भी तीर्थहै ॥ ४१ ॥ इस प्रकार कहागया राजा चलागया व देवीभी अन्तर्धानहो गई चड़े खुश और सन्तुष्ट चक्रवर्ती राजा मार्कण्डेयमुनिके आश्रमको चलेगये ॥ ४२ ॥ वहां जाकर उन ऋषिको नमस्कारकर आगे बैठगये तब मार्कण्डेयजी बोले

कि हे नृपश्रेष्ठ ! हे धर्मके आचार के जाननेवालों में श्रेष्ठ ! आपकी कुशल है ॥ ४३ ॥ अपनी सेनाको छोड़कर अकेले तुम यहाँ कैसे आये तब राजा बोले कि आज आप के चरणकमलोंके दर्शनसे मेरा जन्म सफल होगया ॥ ४४ ॥ फिर धुन्धुमार राजाने सब पहलेवाला हाल कहा तदनन्तर मार्कण्डेयजी राजासे हालको सुनकर ॥ ४५ ॥ नर्मदा और कपिला के संगम में स्नानकर स्तुति करतेहुये इस नर्मदा और कपिलाके संगम में स्नान करनेवाले स्वर्गको जाते हैं ॥ ४६ ॥ उमा, कात्यायनी, गंगा, यमुना, गौतमी, सरस्वती, शिप्रा, शुभनदी वरणा ॥ ४७ ॥ शतद्रू, चन्द्रभागा, सिन्धु, निर्मलनर्मदा, वितस्ता, चर्मण्वती, बाहुदा, वारुणी ॥ ४८ ॥ सरयू, गण्डकी,

मिहागतः ॥ राजोवाच ॥ अद्यमेसफलं जन्म त्वत्पादाम्बुजदर्शनात् ॥ ४४ ॥ धुन्धुमारस्तथाराजा कथयामासपूर्वं कम् ॥ मार्कण्डेयस्ततः श्रुत्वा वृत्तान्तं पृथिवीपतेः ॥ ४५ ॥ रेवाकपिलयोर्यगे स्नात्वास्तोत्रंचकारह ॥ तत्रस्नातादि वयान्ति रेवाकपिलसङ्गमे ॥ ४६ ॥ उमाकात्यायनीगङ्गा यमुनागौतमीतथा ॥ सरस्वतीतथा शिप्रा वरणाचशुभाप गा ॥ ४७ ॥ शतद्रूश्चन्द्रभागाच सिन्धूरेवामलातथा ॥ वितस्ताचर्मणादेवी बाहुदावारुणीतथा ॥ ४८ ॥ सरयूर्गण्डकी चैव धर्वरावदरीतथा ॥ गोमतीवेणुकीचैव पारावेत्रवतीशुभा ॥ ४९ ॥ विपाशाचतथावाहा शङ्खिनीचपयोङ्गिका ॥ गोदावरीचकावेरी भीमाकृष्णातथाशुभा ॥ ५० ॥ सुभद्राचतथाभद्रा करतोयाथमालिनी ॥ एतास्सर्वास्त्वमेवासि सर्व गेत्वांनमाम्यहम् ॥ ५१ ॥ लोकत्रयन्त्वयाव्याप्तमपारूपेणसुव्रते ॥ प्रसीदत्वं महाभागे लोकत्रितयपावनी ॥ ५२ ॥ श्रुत्वास्तोत्रमिदं देवी मार्कण्डेयात्तपोधनात् ॥ पुष्पकंयानमास्थ्य सर्वाभरणभूषिता ॥ ५३ ॥ चतुर्भुजान्निनेत्राच चन्द्र

घाघरा तथा बदरी, गोमती, वेणुकी, पारा और शुभ वेत्रवती ॥ ४९ ॥ विपाशा वैसेही वाहा, शङ्खिनी, पयोङ्गी, गोदावरी, कावेरी, भीमा तथा शुभ कृष्णा ॥ ५० ॥ सुभद्रा तथा भद्रा, करतोया और मालिनी ये सब नदियां तुम्हींहो हे सर्वगे ! तुम्हारे हम नमस्कार करते हैं ॥ ५१ ॥ हे सुव्रते ! पार्नाके रूपसे तीनों लोक तुम्हींसे व्याप्तहैं व तीनोंलोकों को पवित्र करनेवालीहो हे महाभागे ! तुम प्रसन्न होवो ॥ ५२ ॥ तपोधन मार्कण्डेयजीसे देवीजी इस स्तोत्रको सुनकर सब गहनेसे सजी हुई

पुष्पक विमानपर सवार होकर ॥ ५३ ॥ चार भुजावाली, तीन नेत्रवाली, चन्द्रमाके विम्बके समान मुखवाली देवी महामुनि मार्कण्डेयजीसे वचन बोलीं ॥ ५४ ॥ कि इस स्तोत्रसे हम प्रसन्न हैं तुम अपने मनका वर मांगो तब मार्कण्डेयजी बोले कि हे देवेशि ! जो तुम प्रसन्न हो और वर देनेकी इच्छा करती हो तो हे हरसम्भवे ! हे कल्याणि ! लोकोंके पापको हरो जे कोई स्नानकर आपकी स्तुतिको करे वे शिव की आज्ञासे उत्तम लोकोंको प्राप्त होवें ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ और हे देवि ! अब इस समय तुम धुन्धुमार राजाको वर देवो कि राज्यको कर अपने रनिवास सहित स्वर्गको जावें ॥ ५७ ॥ और हे सुव्रते ! जिस २ कामनाको राजाकरे उस २ को पावें तब

विम्बनिमानना ॥ उवाचवचनं देवी मार्कण्डेयं महामुनिम् ॥ ५४ ॥ स्तोत्रेणानेन तुष्टाहं वरं वृणुयथेप्सितम् ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ परितुष्टासि देवेशि वरं दातुं त्वमिच्छसि ॥ ५५ ॥ कलुषं हरकल्याणि लोकानां हरसम्भवे ॥ स्नानं कृत्वा स्तुवन्तो ये लोकाना पुः शिवाज्ञया ॥ ५६ ॥ वरं ददस्व देवित्वं धुन्धुमाराय साम्प्रतम् ॥ राज्यं कृत्वा दिवं यातु सान्तः पुरपरिच्छदः ॥ ५७ ॥ यं यंचिन्तयेते कामं तं तं प्राप्नोति सुव्रते ॥ एवं भवतु विप्रेन्द्र मत्तोयद्वाञ्छितं त्वया ॥ ५८ ॥ एवमुक्त्वा ययौ देवी कपिला लोकपावनी ॥ मार्कण्डेयं मुनिं राजा मुनिभिः परिवारितम् ॥ ५९ ॥ प्राणिपत्ययथान्यायं गतश्च स्वपुरं तदा ॥ ततः कालेन महता राजा धर्ममपरायणः ॥ ६० ॥ राज्यं कृत्वा क्रतूनि षड्वा धुन्धुमारो दिवङ्गतः ॥ एतत्ते कथितं सर्वं मया दृष्टमुरानघ ॥ ६१ ॥ श्रवणात्कीर्तनादस्य मुच्यते भवबन्धनात् ॥ ६२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणैरेवा खण्डे कपिला माहात्म्ये धुन्धुमारस्वर्गरोहणं नाम पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५० ॥ * ॥ * ॥ * ॥

देवीने कहा कि हे विप्रेन्द्र ! मुझसे जो तुमने इच्छा की वह ऐसा ही हो ॥ ५८ ॥ ऐसे कहकर लोकोंको पवित्र करनेवाली कपिला देवी चली गई राजा भी मुनियोंसे घिरे हुये मार्कण्डेय मुनिको ॥ ५९ ॥ उचित रीतिसे नमस्कार कर उसी समय अपने शहरको चले गये तदनन्तर बड़े समय तक धर्मिमा धुन्धुमार राजा राज्य व यज्ञोंको कर स्वर्गको जाने हुये हे अनघ ! अगले जमाने में यह सब अपना देखा हुआ हाल आपसे कहा गया ॥ ६० ॥ ६१ ॥ इसके सुनने व कहने से संसारके बन्धन से छुट जाता है ॥ ६२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणैरेवा खण्डे कपिला माहात्म्ये धुन्धुमारस्वर्गरोहणं नाम पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५० ॥ * ॥ * ॥ * ॥

युधिष्ठिरजी बोले कि द्वीपोंकी गिन्ती व पृथिवी की नाप व समुद्रों का हाल व नीचेके लोकोंकी गिन्ती यह सब मुझको विदित करो ॥ १ ॥ नरक और स्वर्ग का प्रमाण और भी जो कुछ ऐसा हालहो मेरा पूछा व अनपूछा जो कुछ शुभ व अशुभकर्मों का वृत्तान्तहो ॥ २ ॥ यह सब संक्षेपसे मुझसे कहो जिसतरह स्वामिकर्तिकजी से पूँछेगये महादेवजी ने पुराण को कहाहो व जैसा कुछ पुराना हालहो ॥ ३ ॥ आप होनेवाले और होगये जमानेके तत्त्वके जाननेवालेहो व तीनों कालों के जाननेवाले हो और तीनों वेदोंके जाननेवाले हो आपही सब कुछ जानते हो इससे अपनी प्रसन्नता से मुझपर कहने को आप योग्य होतेहो ॥ ४ ॥ मार्कण्डेय

युधिष्ठिरउवाच ॥ द्वीपसंख्याभुवोमानं सागराणाञ्चकीर्तनम् ॥ पाताललोकसंख्यानं सर्वतोविदितंकुरु ॥ १ ॥ नरकंस्वर्गमानञ्च यत्किञ्चिदन्यदीदृशम् ॥ उक्तानुक्तानुयत्किञ्चित्कर्ममशुभावहम् ॥ २ ॥ एतत्सर्वसमासेन स्कन्दपृष्टेनशम्भुना ॥ कथितंतुपुराणैव यथावृत्तंपुरातनम् ॥ ३ ॥ भविष्यभूततत्त्वज्ञस्त्रिकालज्ञस्त्रिवेदवित् ॥ त्वमेववेत्तिसर्वं च प्रसादाद्वक्तुमर्हसि ॥ ४ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ शृणुराजन्महामाग कथ्यमानंनिबोधमे ॥ अनेकानिसहस्राणि मया दृष्टानिभारत ॥ ५ ॥ युगेयुगेक्षत्रियाणां दानयज्ञक्रियाणि च ॥ नान्यस्तुत्वादृशोराजा दृष्टस्तेषान्तुमध्यतः ॥ ६ ॥ एतत्सर्वसमासेन स्कन्दपृष्टेनशम्भुना ॥ कथितंतुपुराणैव तत्तेहंकथयाम्यहम् ॥ ७ ॥ चन्द्रद्वीपःप्रभासेतुस्ताम्रपण्डितस्तमान् ॥ नागद्वीपश्चसौम्यश्च गन्धर्वोवरुणस्तथा ॥ ८ ॥ नवमःकुमारिकाख्यस्तु इतिद्वीपाःप्रकीर्तिताः ॥ नवखण्डवतीचैषा कथितातेसमासतः ॥ ९ ॥ खण्डेष्वेतेषुसर्वेषु प्रवाहोनामर्मदस्मृतः ॥ जम्बूशककुशक्रौञ्चशाल्मल्यश्चयुजी बोले कि हे महाभाग ! हे राजन् ! मैं आपके पूँछेहुये हालको कहताहूँ उसको आप सुनो और समझो क्योंकि हे भारत ! मैंने युग २ में दान व यज्ञोंके करनेवाले अनेक हजार क्षत्रियोंको देखाहै परन्तु उनके बीचमें तुम्हारा ऐसा और राजा नहीं देखा ॥ ५ ॥ ६ ॥ यह सब संक्षेप रीतिसे स्वामिकर्तिकजीसे पूँछेगये महादेवजी करके पुराण कहागया था उसीको मैं आपसे कहताहूँ ॥ ७ ॥ चन्द्रद्वीप, प्रभासेतु, ताम्रपण्डित, गभस्तिमान्, नागद्वीप, सौम्य, गन्धर्व, वरुण ॥ ८ ॥ और नवनां कुमारिका नामहै ये तो द्वीप कहेगये हैं नवखण्डवाली यह पृथिवी आपसे साधारण रीति से कहीगई ॥ ९ ॥ इन सब खण्डोंमें नर्मदाजी का प्रवाह वर्त्तमान है हे युधिष्ठिर !

जम्बू, शाक, कुश, कौञ्च, शालमली ॥ १० ॥ सक्ष और पुष्कर ये सातद्वीप कहे गये हैं क्षार, क्षीर, दधि, घृत वैसेही इत्युत्तर ॥ ११ ॥ सुरोद और मधुरोद ये सात समुद्र कहे गये हैं भूलोक, भुवलोक, स्वलोक, महलोक ॥ १२ ॥ जनलोक, तपोलोक और सत्यलोक ये सातलोक ऊपरके हैं और हे युधिष्ठिर ! भूलोक और सूर्यका जो बीच है उसका प्रमाण चारलाख योजन व इतनेही प्रमाणवाला पातालभी जानो हे भारत ! यहां रुद्र और आठ वसुनामके देवता रहते हैं ॥ १३ ॥ १४ ॥ इन लोकोंको मैंने कहा अब पातालको मुझसे जानो अतल, वितल शर्कर, गभस्तिक ॥ १५ ॥ महातल, सुतल, रसातल इमकेबाद सब कामनाओंसे भराहुआ आठवां सौवर्ण जानो ॥ १६ ॥

धिष्ठिर ॥ १० ॥ पुच्छश्चपुष्करश्चैव सप्तद्वीपाः प्रकीर्तिताः ॥ क्षारंक्षीरं दधिसर्पिस्तथैवैश्वरसोपिच ॥ ११ ॥ सुरोदोमधुरोदश्च समुद्रास्सप्तकीर्तिताः ॥ भूलोकश्चभुवलोकस्स्वलोकश्चमहस्तथा ॥ १२ ॥ जनलोकस्तपोलोकस्सत्यलोकस्तथापरः ॥ भूलोकादित्ययोर्विद्धि त्वन्तरालं युधिष्ठिर ॥ १३ ॥ योजनानां चतुर्लक्षं पातालं यत्प्रमाणतः ॥ रुद्राश्च वसवश्चाष्टौ निवसन्त्यत्र भारत ॥ १४ ॥ कथिताश्च मया लोकाः पातालानि निबोध मे ॥ अतलं वितलं चैव शर्करं च गभस्तिकम् ॥ १५ ॥ महातलं च सुतलं रसातलमतः परम् ॥ सौवर्णमष्टमं विद्धि सर्वकामसमन्वितम् ॥ १६ ॥ वह्नेर्दाहो ह्यपां शैत्यं मरुतां वहनं तथा ॥ काठिन्यं च तथा धात्र्या गगने शुषिरं तथा ॥ १७ ॥ स्वभाव एव भूतानां स्वस्वभावानुसारतः ॥ प्रकृतिं या न्ति भूतानि नात्र कार्यो विचारणा ॥ १८ ॥ लक्ष्मणिचतुरशीतिर्योनीनां पापकर्मणाम् ॥ नरकेषु च घोरेषु दारुणाय मया तनाः ॥ १९ ॥ निरुद्धाः प्राणिनः सर्वे नीतास्तु यमकिङ्करैः ॥ यातना विविधा रौद्रास्तत्र स्थैरनुभूयते ॥ २० ॥ स्वक

आगमें जलाना, पानी में ठण्डापन, हवा में चलना, जमीन में कड़ापन और आसमान में पोल ॥ १७ ॥ यह अपनी २ तारीर के अनुसार महाभूतों का स्वभावही है सब जीव अपने कारणोंमें मिलजाते हैं इसमें कुछ विचार नहीं करना चाहिये ॥ १८ ॥ पानीजीवों की चौरासीलाख योनि हैं घोरनरकों में यमयातना बड़ी कठिन है ॥ १९ ॥ यमराज के दूतोंसे लाये गये सब प्राणी कैद किये जाते हैं वहां ठहरनेवाले प्राणियों करके अनेक तरह की भयानक यातनायें (यमलोककी तकलीफें)

भोगी जाती हैं ॥ २० ॥ अपने कर्मोंके फलोंके कारणसे भलेबुरे फलोंको पाते हैं इसीके वास्ते तप, होम, दान और पवित्र करनेवाला ध्यान ॥ २१ ॥ व सब प्राणियों पर दया व नर्मदाके तटमें वास व नर्मदाकी स्तुति व सूर्यकी पूजा करना चाहिये जिससे कल्याण होवे ॥ २२ ॥ अब हम कथाको कहेंगे जैसा कुछ हाल अगिले जमाने में हुआ है हे भारत ! दानवों के राजा मुचुकुन्द का संवाद है ॥ २३ ॥ हे राजन् ! प्रसिद्ध है कि चालुप मन्वन्तर के सत्ययुग में कुवलयारव नामके बड़े वनवाले चक्रवर्ती राजर्षि हुये ॥ २४ ॥ २५ ॥ उन बड़े तेजवाले राजाकी राज्य इन्द्रसे आठगुनी होती हुई उन राजाने अनेकतरहके अनेकहजार अत्युत्तम दानोको राव तीर्थमें

र्मफलयोगेन प्राप्नुवन्ति शुभाशुभम् ॥ एतदर्थं तपो होमं दानं ध्यानं च पावनम् ॥ २१ ॥ कारुण्यं सर्वभूतेषु नर्मदां श्रयणं तथा ॥ रेवायारस्तवनं पूजा सूर्यस्य प्रभवो यथा ॥ २२ ॥ आख्यानं कथयिष्यामि यथा वृत्तं पुरातनम् ॥ मुचुकुन्दस्य संवादो दानवेन्द्रस्य भारत ॥ २३ ॥ कुवलयारवो थराजर्षिश्च क्रवर्तो महायशः ॥ आसीत्कृतयुगे राजन्नन्तरं चाक्षुषे किं ल ॥ २४ ॥ शक्रादष्टगुणं राज्यं राज्ञश्चाभिततेजसः ॥ अनेकानि सहस्राणि दानानि विविधानि च ॥ २५ ॥ दत्तानि ते न राज्ञा वै सर्वतीर्थेष्वनुत्तमम् ॥ इष्टाश्च क्रतवश्चापि वर्जयित्वा तु कल्पगाम् ॥ २६ ॥ दानवो मुचुकुन्दश्च सर्वधर्मपरायणः ॥ ब्रह्मण्यदिशवभक्तश्च विष्णुभक्तो जितेन्द्रियः ॥ २७ ॥ राहुसोमसमायोगे वैदूर्यसिद्धपर्वते ॥ अंकारनाथसहिता यत्रास्ते कल्पगासरित् ॥ २८ ॥ अन्यानि यानि लिङ्गानि लोकैश्चैव चराचरे ॥ कल्पान्ते तानि लीयन्त अंकारे न संशयः ॥ २९ ॥ शिवेन कथितं ह्येतद्विष्णोश्चैव शतक्रतोः ॥ पार्वत्याः षण्मुखस्यापि पुराणैस्कन्दकीर्तिते ॥ ३० ॥ आगतो कल्पगान्दे

दिया और अनेक यज्ञोंको भी किया परन्तु नर्मदाको छोड़कर अर्थात् नर्मदा में कुछ न किया ॥ २६ ॥ सब धर्मोंका करनेवाला ब्राह्मण, शिव और विष्णुका भक्त इन्द्रियोंका जीतनेवाला मुचुकुन्द दानव भी ॥ २७ ॥ चन्द्रग्रहणमें सिद्धवैदूर्य पर्वत पर जहाँ अंकारनाथ के सहित नर्मदा नदी विद्यमान है ॥ २८ ॥ क्योंकि और जितने इस स्थावरजङ्गमरूप संसार में लिङ्ग हैं वे सब महाप्रलयमें अंकार में मिल जाते हैं इसमें कुछ संदेह नहीं है ॥ २९ ॥ इस बातको स्कन्दपुराण में महादेवजी ने विष्णु,

इन्द्र, पार्वती और स्वामिकार्त्तिकेयजी से कहहै ॥ ३० ॥ सो वह राजा नर्मदादेवी के पास कोटितीर्थमें आया नर्मदा और कपिला के राङ्गममें राव सामान के सहित ॥ ३१ ॥ हे नृप ! एक लाख दुधारी गौर्बे, दशहजार घोड़े, एक हजार हाथियों को लेकर ॥ ३२ ॥ व सोनेके कामवाले मनके प्यारे एक हजार रथ, धन, अन्न, कपड़े आर अनेक तरहके रत्नोंको लेकर ॥ ३३ ॥ और स्नानकर उसीसमय यथायोग्य ब्राह्मणों को देताहुआ और हे नराधिप ! उल्लासकी मूर्तिमें दक्षिणाको भी चढाता हुआ ॥ ३४ ॥ जिनने जिस कामनाको किया उसके लिये वह राजा वहीं देताहुआ और धर्म कर्मका करनेवाला राजा कुवलयाश्रवभी ॥ ३५ ॥ सूर्यग्रहण में अपने

वीं कोटितीर्थनराधिपः ॥ नर्मदाकपिलायोगे सर्वसम्भारसंवृतः ॥ ३१ ॥ लक्षभेकन्तुदोऽध्रीणां समादायगवांष्टप ॥ अयुतंचहयानाञ्च सहस्रंदन्तिनान्तथा ॥ ३२ ॥ कामिकानान्तुयानानां सहस्रंहेममालिनाम् ॥ धनंधान्यञ्चवासांसि रत्नानिविविधानिच ॥ ३३ ॥ स्नानंकृत्वायथान्यायं ब्राह्मणेभ्योददौतदा ॥ भूतैर्तुदक्षिणाञ्चापि अंकारस्यनराधिप ॥ ३४ ॥ योयंकामयतेकामं तंतस्मैसप्रयच्छति ॥ राजाकुवलयाश्रवस्तु धर्मकर्मपरायणः ॥ ३५ ॥ शतसूयसमायोगे कुरुक्षेत्रंययौकिल ॥ सान्तःपुरपरीवारो ह्ययोध्याधिपतिस्स्वयम् ॥ ३६ ॥ राजपुत्रसहस्रैस्तु वृतःस्नानेऽपसयाकिल ॥ लक्षमेकंहयानाञ्च दन्तिनामयुतंतथा ॥ ३७ ॥ हेममाणिक्यरत्नानि वासांसिविविधानिच ॥ श्रद्धयापरयायुक्तो ब्राह्मणेभ्योददौष्टप ॥ ३८ ॥ शेषंनिर्वापितक्षेत्रे स्थानेवायनपूर्वकम् ॥ कालान्तरेततःप्राप्ते कुरुक्षेत्रप्रभावतः ॥ ३९ ॥ नानायानसहस्रैस्तु सान्तःपुरपरिग्रहः ॥ ध्रियमाणतपत्रस्तु वीज्यमानोऽपसरोर्गणैः ॥ ४० ॥ शङ्खवादित्रघोषेण नानाम

रनिवास व परिवारके सहित साक्षात् अयोध्याका मालिक हजारों राजपुत्रों से युक्त स्नान करनेकी इच्छा से कुरुक्षेत्र को जाताहुआ वह राजा एकलाख घोड़े दशहजारहाथी ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ सोना, माणिक, रत्न और अनेकतरह के कपड़े बड़ीश्रद्धासे युक्त हे नृप ! ब्राह्मणों को देताहुआ ॥ ३८ ॥ जो धन देनेसे बाकी रहा वह उसी क्षेत्रस्थान में बैनेकी तरह बांट दियागया तदनन्तर कुछ समय व्यतीत होनेपर कुरुक्षेत्र के प्रभाव से ॥ ३९ ॥ अपने रनिवास व अमलाके सहित अनेक प्रकारकी

हजारों सवारियों से युक्त छाताको लगायेहुये व अप्सरा लोग जिनके ऊपर चँवर को दुराही है ॥ ४० ॥ अनेक गहनों से सजेहुये शङ्खआदि वाजाओं की आवाज से युक्त दूसरे विद्याधरकी तरह वहां स्थितहो विचरतेहुये ॥ ४१ ॥ और दैत्योंके राजा मुचुकुन्द भी सव कामनाओं से युक्त सोने और रत्नोंके गहनों को पहनेहुये मनमानी सवारियों पर सवार सोहेतेहुये ॥ ४२ ॥ हे विशास्पते ! हजारों बाजोंको सुनकर धर्मराज बड़े आश्चर्यको प्राप्तहुये और कहा कि यह क्याहै ॥ ४३ ॥ तदनन्तर कुवलाश्व राजाभी उसी दिन उस शहर में प्राप्तहुये दोनोंको दूतोंने बुद्धिमान् धर्मराजसे प्रसिद्ध किया ॥ ४४ ॥ कि राजपि कुवलाश्व और बड़ेबली मुचुराणभूषितः ॥ विचचारचतत्रस्थो विद्याधरइवापरः ॥ ४१ ॥ मुचुकुन्दोपिदैत्येन्द्रः सर्वकामसमन्वितः ॥ कामिकैश्चमहायानैर्हर्मरत्नविभूषणैः ॥ ४२ ॥ श्रुत्वावाद्यसहस्राणि धर्मराजोविशाम्पते ॥ जगामविस्मयंघोरं किमेतदितिचाब्रवीत् ॥ ४३ ॥ ततःकुवलाश्वोपितस्मिन्नहनितत्पुरम् ॥ उभौनिवेदितौदूतैर्धर्मराजस्यधीमतः ॥ ४४ ॥ कुवलाश्वोय राजर्षिमुचुकुन्दोमहाबलः ॥ लोकान्तरमुभावेतौविमानस्थौसमागतौ ॥ ४५ ॥ तावदुत्पतितंयानंमुचुकुन्दस्यचोपरि ॥ योजनानांसहस्रेणह्युपर्युपरिसंस्थितम् ॥ ४६ ॥ अयोध्याधिपतेर्यानमधोभागंव्यवस्थितम् ॥ पप्रच्छधर्मराजोपिचिन्नगुप्तोब्रवीद्वाक्यं तथासप्तर्षयोब्रुवन् ॥ ४७ ॥ कितुयानंसमासाद्यअर्धपाद्येनपूजये ॥ सप्तर्षीन्पिपिमुख्यांश्चधर्माधर्मविचारकान् ॥ ४८ ॥ चित्रगुप्तोब्रवीद्वाक्यं तथासप्तर्षयोब्रुवन् ॥ मुचुकुन्दंसमासाद्यत्वर्धपाद्येनपूजय ॥ ४९ ॥ दानेनकापिलेनेज्योदानवेन्द्रो नचापरः ॥ अधःकुवलाश्वश्चमुचुकुन्दस्तथोपरि ॥ ५० ॥ एवमुक्तोधर्मराजोदानवेन्द्रमुपाश्रयत् ॥ इवेतवस्त्रपरीधा कुन्द ये दोनों विमानपर सवार अपने लोकसे दूसरे लोकको प्राप्तहुये है ॥ ४५ ॥ तवतक मुचुकुन्द की सवारी ऊपरको उड़ी व हजारों योजनके ऊपर २ स्थित होती हुई ॥ ४६ ॥ अयोध्याके राजा कुवलाश्वका विमान नीचे रहगया तब धर्मराज ने अपने लेखक (मुमही) चित्रगुप्त से पूछा ॥ ४७ ॥ कि हम किस विमानके पास जाकर अर्घ्य और पाद्यसे पूजन करें और धर्म व अधर्म के विचारनेवाले ऋषियों में बड़े सप्तर्षियों से भी पूछा ॥ ४८ ॥ कि हम किस विमानके पास कि मुचुकुन्द के पास जाकर तुम अर्घ्य और पाद्यसे पूजनकरो ॥ ४९ ॥ कपिला नदीके तीर दान देनेसे दैत्योंका राजा मुचुकुन्दही पूजाके योग्यहै दूसरा नहीं क्योंकि

कुवलययाश्व नीचे पड़ा है और मुचुकुन्द ऊपर है ॥ ५० ॥ ऐसे कहे गये, सफेद कपड़ों को पहने हुये दगदगाते हैं कुण्डल और गहने जिनके ऐसे धर्मराजजी दान-वेन्द्र मुचुकुन्द के पास जाते हुये ॥ ५१ ॥ तदनन्तर दोनों हाथ जोड़कर मुचुकुन्दकी सवारी के आगे खड़े हुये और बोले कि हे सब धर्मधारियों ! हे दैत्येन्द्र ! आज आपकी कुशल है ॥ ५२ ॥ हे सुव्रत ! आपने इस दानसे तीनों लोकों को जीत लिया है क्योंकि कपिलाके सङ्गममें दक्षिणामूर्ति जो उलङ्कारनाथ है उनके पास ॥ ५३ ॥ नर्मदाके तीरमें दानकी गिन्ती नहीं है तब मुचुकुन्द बोले कि धर्म अधर्मके मामिलेमें मुखिया आपही हो जिससे कि आपही स्वर्गके फाटकके बेलन

नो ज्वलत्कुण्डलभूषणः ॥ ५१ ॥ अञ्जलिञ्चततोवद्वा यानस्याग्रेव्यवस्थितः ॥ कुशलन्तेद्यदैत्येन्द्र सर्वधर्मभूतांवर ॥ ५२ ॥ निर्जितास्तेत्रयो लोका दानेनानेन सुव्रत ॥ अंकारदक्षिणस्यान्ते मूर्तौ कापिलसङ्गमे ॥ ५३ ॥ सप्तकल्पवहातीरे दानसंख्यानविद्यते ॥ मुचुकुन्द उवाच ॥ धर्मार्धमेतन्मेवाद्यः स्वर्गद्वारार्गलोयतः ॥ ५४ ॥ एवमुक्तो यमस्तत्र दैत्येन्द्रेण महात्मना ॥ पन्थानन्दश्यामास दैत्येन्द्रस्य युधिष्ठिर ॥ ५५ ॥ ततस्तु प्रेषितस्तेन मुचुकुन्दो जगाम ह ॥ मुदा परमया युक्त उमामाहेश्वरं पुरम् ॥ ५६ ॥ संस्मारयित्वा विधिवद् दैत्येन्द्रं धर्ममरादततः ॥ आसाद्य कुवलयाम् श्वन्धर्ममराजो ब्रवीदिदम् ॥ ५७ ॥ स्वागतन्ते महाराज कुशलन्तव सर्वदा ॥ कुवलयाम् श्व उवाच ॥ परस्परविरोधत्वं देवदानवयोः सदा ॥ ५८ ॥ मान्त्यक्त्वा दानवेन्द्रस्तु पादार्घ्येण त्वया चितः ॥ विपरीतञ्च तत्सर्वं धर्ममराजकृतं कथम् ॥ ५९ ॥ यम

हो ॥ ५४ ॥ ऐसे जब दैत्येन्द्र महात्मा मुचुकुन्द ने यमराजसे कहा तब हे युधिष्ठिर ! यमराज ने मुचुकुन्द को राह दिखा दी ॥ ५५ ॥ तदनन्तर उन यमराज ने मुचुकुन्दको बिदा किया मुचुकुन्द बड़े आनन्द से युक्त पार्वती व महादेव जीके पुरको चले गये ॥ ५६ ॥ तदनन्तर विधिवे धर्मराज दैत्येन्द्र मुचुकुन्द को सब याद दिला के फिर धर्मराज उन कुवलयाम् श्व के पास जाकर यह बोले ॥ ५७ ॥ कि हे महाराज ! आपका आना बहुत ही अच्छा हुआ आपकी हमेशा कुशल है तब कुवलयाम् श्व बोले कि देवता और दैत्योंका आपममें विरोध तो सदा चला आया है ॥ ५८ ॥ फिर हमको छोड़कर आपने पाद्य अर्घ्यसे दानवेन्द्र मुचुकुन्द का पूजन किया हे धर्म-

राज ! यह सब आपने उलटा क्यों किया ॥ ५६ ॥ तब यमराज बोले कि हे राजेन्द्र ! आप शोचमत करो क्योंकि कर्मोंकी गति बड़ी कठिन है हम भलेबुरे फलके न देनेवाले हैं और न लेनेवाले हैं ॥ ६० ॥ हे नृप ! हम तो केवल देवता, दैत्य और मनुष्य सबके कर्मोंके साखीमात्र हैं हे अनघ ! कुक्षेत्र में सरस्वतीनदी के किनारे आपने दानको दिया ॥ ६१ ॥ परन्तु द्वापरयुगके अन्तमें नर्मदा के तटमें जो दानहै उसके बराबर और कहींका दान नहीं हो सका है यह महादेवजीने ब्रह्मा, विष्णु और मरुत् देवताओंसे कहा है कोई तीर्थ नर्मदाकी एक कला को भी नहीं पासके हैं मैंने भूँठ नहीं कहा है क्योंकि पुराण वेदसे भिला हुआ है ॥ ६२ ॥ ६३ ॥ हे राजन् !

उवाच ॥ विषादन्त्यजराजेन्द्र गहनाकर्मणाङ्गतिः ॥ नाहंदाताचहर्ताच शुभाशुभफलस्यैव ॥ ६० ॥ कर्मसाक्षीचसर्वेषा
न्देवासुरनृणानृप ॥ सरस्वत्यांकुरुक्षेत्रे दानं दत्तन्त्वयानघ ॥ ६१ ॥ द्वापरान्ते तु दानैरेवादानं समनहि ॥ शिवेन कथितं
मम तम् ॥ ६२ ॥ एतस्मिन्नन्तरे राजन् द्वयोः संवदतोस्तयोः ॥ उक्तः कुवलययाश्च वस्तु तदा काशगिरास्वयम् ॥ ६४ ॥ धर्म
श्रेयं महाराज माकृथास्तत्कथञ्चन ॥ कल्पगातो यसंस्पृष्टो दैत्यः शिवमवाप्तवान् ॥ ६५ ॥ सराजा विस्मयापन्नः पुन
र्यावृत्य चागतः ॥ नर्मदां स्नातुकामोपि कपिलासङ्गममप्रति ॥ ६६ ॥ तत्र प्लुतस्ततो राजा शिवलोकं जगाम ॥ ६७ ॥
इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डे मुचुकुन्दकुवलययाश्च स्वर्गरोहणं नामैकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५१ ॥ * ॥

इसी अन्तर में उन दोनों के बतलाते ही हुये आकाशवाणी ने राजा कुवलययाश्च से आपही कहा ॥ ६४ ॥ किहे महाराज ! धर्म ऐसा ही है तुम किसीतरहकी तर्क मत
करो नर्मदा के जलसे छुवागया दैत्य शिवजी को प्राप्त हुआ ॥ ६५ ॥ आश्चर्य को प्राप्त हुआ वह राजा फिर लौटकर नर्मदामें स्नान करनेकी इच्छा करता हुआ कपिला
के संगम को आया ॥ ६६ ॥ तदनन्तर वहां स्नानकर राजा शिवजी के लोकको जाता हुआ ॥ ६७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डे प्राकृतभाषाऽनुवादे मुचुकुन्दकुव
लयाश्च स्वर्गरोहणं नामैकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५१ ॥ ॥

युधिष्ठिरजी बोले कि हे विप्र ! यमराजके पास कौन जातेहैं और वे नरक कैसेहैं यह सब आप सुझसे कहो और देवलोकको कौन जातेहैं ॥ १ ॥ तब मार्कण्डेयजी बोले कि जो पुंखराजके देनेवाले है वे पुष्पकविमानसे जातेहैं व जो देवताओंके मकान बनवानेवालेहैं वे शिवलोकको जातेहैं ॥ २ ॥ जो अनार्यके मकानोंको बनवा देते हैं वे उत्तम मकानोंमें विहार करतेहैं व जो देवता, अग्नि, गुरु, ब्राह्मण, माता और पिताके पूजेजातेहैं ॥ ३ ॥ वे मनुष्य औरोंसे पूजेजातेहुये मनमानी सवारियोंसे सुखसे जातेहैं व दियाके देनेसे दशों दिशाओं को प्रकाशित करतेहुये जातेहैं ॥ ४ ॥ सभाके देनेसे सुखसे यमलोकको जातेहैं व पानीका देनेवाला सब कामनाओंसे युक्त

युधिष्ठिरउवाच ॥ केव्रजन्तियमंविप्र कीदृशानरकास्तुते ॥ एतन्मेसर्वमाख्याहि देवलोकं व्रजन्तिके ॥ १ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ यान्तिपुष्पकयानेन पुष्परागप्रदायिनः ॥ देवायतनकर्तारः शिवलोकं व्रजन्तिके ॥ २ ॥ अनाथमण्डपानान्तु ते क्रीडन्ति गृहोत्तमैः ॥ देवाग्निगुरुविप्राणां मातापित्रोश्च पूजकाः ॥ ३ ॥ पूज्यमानानरायान्ति कामिकैश्च यथा सुखम् ॥ द्योतयन्तो दिशः सर्वा यान्ति दीपप्रदानतः ॥ ४ ॥ प्रतिश्रयप्रदानेन सुखं यान्ति यमालयम् ॥ सर्वकामसमृद्धे न तथा गच्छन्ति तोयदः ॥ ५ ॥ अन्नपानं प्रयच्छन्ति सुखं यान्ति निराकुलाः ॥ दीपमालां हि यच्छन्ति गुरुशुश्रूषणे रताः ॥ ६ ॥ पादाभ्यङ्गश्च यः कुर्यात्सोऽश्वपृष्ठेन गच्छति ॥ हेमरत्नप्रदानेन यान्ति रत्नविभूषिताः ॥ ७ ॥ सर्वकामसमृद्धात्मा भूमिदानेन गच्छति ॥ अन्नपानप्रदानेन पिबन्त्वा दंश्च गच्छति ॥ ८ ॥ इत्येवमादिभिर्दानैः सुखं यान्ति शिवालयम् ॥ स्वर्गे च विपुलान् भोगान् प्राप्नोत्यन्नप्रदानतः ॥ ९ ॥ सर्वेषामेव दानानामन्नदानं परं विदुः ॥ सर्वप्रीतिकरं पुण्यं बलपुष्टिं चिव

सवारी से जाताहै ॥ ५ ॥ अन्न व पानीको जो देतेहैं वे व्याकुलतारहित हो सुखसे जाते हैं व जो दियालियों को देतेहैं और गुरुकी सेवामें प्रेम करते हैं ॥ ६ ॥ और गुरुके पैरोंको दाबतेहैं वे घोड़ेकी पीठपर सवार होकर जातेहैं सोने व रत्नोंके देनेसे रत्नों से सजेहुये जातेहैं ॥ ७ ॥ पृथ्वीके देनेसे सब कामनाओंसे भराहुआ जाताहै अन्न व जलके देनेसे खाता पीताहुआ जाताहै ॥ ८ ॥ ऐसे २ दानोंसे सुखसे शिवलोक को जातेहैं और अन्नके देनेसे स्वर्गमें अनेक भोगोंको पाताहै ॥ ९ ॥ सब दानोंमें

है कहीं देदे वैचे गइढासे व ताते डेले और ईंटोंसे युक्त है व कहीं २ अतिताती वालू पैनीमेजें और अनेक टूटीहुई डालोसे व्याप्त है ॥ ३० ॥ काई बडे औधियारेसे यमलोकको जातेहैं कहीं राहमें पड़ेहुये अङ्गारों से तपे व दासानलसे गैसेहुयेजातेहैं ॥ ३२ ॥ कहीं ताती पत्थरकी चट्टानोंसे कहीं करिहांवतक कीचमे, कहीं गन्दे पानीसे और कहीं गन्देगोबर की आगसे व्याप्त है ॥ ३३ ॥ कहीं गीघ, वगुला, याघ, अतिदाकण दुष्टकीडोंसे व कहीं बडे २ विच्छुवोंसे व कहीं अजगरोंसे ॥ ३४ ॥ व कहीं भयानक मच्छड़, जहरीले साप, चारोतरफसे मारनेवाले बड़े बलवाले पैने दांतोंसे राहको खोद रहे मतवाले हाथियोंके फुण्ड, सिंह, बड़े सोंगवाले भैंसे और मतवाले, तप्तवालुकाभिश्च तथातीक्ष्णैश्चशङ्कुभिः ॥ अनेकभग्नशाखाभिरावृतेनक्वचित्क्वचित् ॥ ३१ ॥ कष्टेनतमसाकेचिद्गच्छन्तिहियमालयम् ॥ मार्गस्थाङ्गारकैस्तमैर्ग्रस्तादावाग्निभिस्तथा ॥ ३२ ॥ क्वचित्तप्तशिलाभिश्च पङ्केनकटिमानतः ॥ क्वचिद्दुष्टाम्बुनाव्याप्तंदुष्करीषाग्निरनाकचित् ॥ ३३ ॥ क्वचिद्गुध्रैर्वैकव्याभ्रैर्दुष्टैः कीटैस्सुदारुणैः ॥ क्वचिन्महाकुलीराद्यैः क्वचित्त्वज्रैः पुनः ॥ ३४ ॥ मत्तिकाभिश्चरौद्राभिः क्वचित्सर्पैर्विषोत्त्वणैः ॥ मत्तमातङ्गयूथैश्च समन्ताच्चप्रमाथिभिः ॥ ३५ ॥ पन्थानमुखिखड्गिश्च तीक्ष्णशृङ्गैर्महाबलैः ॥ सिंहैर्विषाणमहिषैरौद्रैर्मत्तैश्चइवापदैः ॥ ३६ ॥ डाकिनीभिश्चरौद्राभिर्विकरालैश्चराक्षसैः ॥ व्याधिभिश्चमहाघोरैः पावकैश्चदुरासदैः ॥ ३७ ॥ महानलविमिश्रेण महाचण्डेन वायुना ॥ महापाषाणवर्षेण भिद्यमानानिराश्रयाः ॥ ३८ ॥ क्वचित्क्वचित्प्रतप्तसेन दीप्यमानाव्रजन्तिहि ॥ महतावाणवर्षेण भिद्यमानाः समन्ततः ॥ ३९ ॥ पतद्भिर्वज्रसङ्घातैस्त्वकापातैश्चदारुणैः ॥ प्रदीप्ताङ्गारवर्षेण हन्यमानाव्रजन्तिहि ॥ ४० ॥ महाघोररवैर्घोरैर्वित्रस्यन्तोमुहुर्मुहुः ॥ निशितायुधवर्षेण पूर्यमाणश्चसर्वशः ॥ ४१ ॥ महाचाराम्बुधाराभिः जीवोंकेखानेवाले मेंडियाआदि जीवोंमे व्याप्त है ॥ ३५ ॥ कहीं बड़ी भयानक डाकिनी, विकराल राक्षस, बडेघोररोग, प्रचण्ड आग ॥ ३७ ॥ लपटसे मिलीहुई बडी प्रचण्डवायु और बडे २ पत्थरोंकी वर्षामे मारेजातेहुये निराधार जानैहैं ॥ ३८ ॥ कहीं रतातीराह से जलनेहुये जातेहैं कहीं बडीबाणोंकी वर्षासे चारोतरफसे मारेहुये जातेहैं ॥ ३९ ॥ कहीं गिरतीहुई विजलियोंके समूह, भयानक ऊँक और प्रचण्ड अङ्गारोंकी वर्षासे मारेहुये जातेहैं ॥ ४० ॥ और कहीं बडीघोर आवाजवाले डराने जीवों

से बार २ ढरवायेजाते और पैसे हथियारोंकी वर्षसे चारोंतरफ से तोपेहुये ॥ ४१ ॥ व बहुत खारीपानी की धाराओंसे बारबार भिगोयेगये, बडेघोर जाड़ेसे और छुरोंकी धारआदिकोसे दुःखी जातेहैं ॥ ४२ ॥ और अनेकतरहके सैकड़ों हजारों दुःखोंसे व्याप्त ताती, भयानक, खाली, जंची, सहेतावटसे रहित बड़ीभारी बहुतदूरवाली, ॥ ४३ ॥ बहुत नगीच, बहुत कष्टवाली और सब दुखों से भरीहुई राहसे हे भारत ! ॥ ४४ ॥ सब पापी मूढ़ जीव यमराजकी आज्ञा करनेवाले बड़ेबोर यमदूतों से जबरदस्ती लायेजाते हैं ॥ ४५ ॥ अकेले हैं, पराये अधीनहैं, मित्र और भाइयों से रहितहैं, अपने कर्मोंको सोचते हैं, बार २ जलेजाते हैं ॥ ४६ ॥ भूत और प्रेतोंके

सिन्धमानामुहुमुहुः ॥ महाशीतेनरौद्रेण धुरधारादिभिस्तथा ॥ ४२ ॥ अन्यैर्वहविधाकारैः शतशोथसहस्रशः ॥ इत्थ
अतसरौद्रेण मार्गेणविषमेणच ॥ ४३ ॥ अविश्रान्तेनमहताह्यविद्वरेणभारत ॥ अविद्वरेणकष्टेन सर्वदुःखाश्रयेणच ॥ ४४ ॥
नीयन्तेदेहिनस्सर्वे मूढाःपापपरायणाः ॥ यमदूतैर्महाघोरैर्यमाज्ञाकारिभिर्बलात् ॥ ४५ ॥ एकाकिनःपराधीना मित्रव
न्धुविवर्जिताः ॥ शोचन्तःस्वानिकर्माणि दह्यन्तेचमुहुर्मुहुः ॥ ४६ ॥ प्रेतभूतविमिश्राश्च शुष्ककण्ठोष्ठतालुकाः ॥
कुशाङ्गाभीतभीताश्च दह्यमानाहुताग्निना ॥ ४७ ॥ बद्धाःशृङ्खलयाकेचिन्मज्जन्तःपापिनोभुशम् ॥ कृष्यन्तेदह्यमा
नास्तु यमदूतैर्वलोत्कटैः ॥ ४८ ॥ उरस्यधोमुखस्थाने तथैवखलुदुःखिताः ॥ केशपाशोविवद्धाश्च कृष्यन्तेपापिनस्त
था ॥ ४९ ॥ ललाटेचाशुगैर्विद्धा कृष्यन्तेदेहिनःकचित् ॥ उत्तानादुष्टपन्थानं नीयन्तेपापकर्मणा ॥ ५० ॥ पाश्व
बाहुविवद्धाश्च जठरेपरिपीडिताः ॥ ग्रीवापाशविकृष्याश्च केऽपियान्तिसुदुःखिताः ॥ ५१ ॥ जिह्वाशङ्कुप्रदानेन समा

साथमें हैं, गला, श्रोत और तालु जिनके सूख गये हैं, दुबली देहवाले हैं, डरेसे ज्यादा डरेहैं, होमीहुई आगसे जलेजातेहैं ॥ ४७ ॥ कोई पापी जंजीर से बंधेहैं और गन्देपानी में गोतेखाते हैं बड़े जबरदस्त यमदूतों से जलतेहुये खींचेजाते हैं ॥ ४८ ॥ उसी प्रकार कोई दुःखी पापी छातीमें बंधेहैं व कोई मुहके नीचे बंधेहैं और कोई बालोंमें बंधे खींचेजाते हैं ॥ ४९ ॥ कोई प्राणियोंके माथेमें बाण नाथ दियेगये हैं उन्हींमें बंधे कहीं खींचेजाते हैं कोई अपने पापकर्मसे उताने दुष्ट सड़क पर खींचेजाते हैं ॥ ५० ॥ कोई पसुली और हाथोंमें बंधेहैं कोई पेटमें नथेहैं व कोई गलेमें फँसरीसे खींचेजाते बड़े दुःखी जातेहैं ॥ ५१ ॥ जीभमें कीलेसे नथेहुये कोई कण्ठ

में नथेहुये अर्द्धचन्द्रसे इधर उधर भटकाखाते खींचेजाते है ॥ ५२ ॥ कोई रसीमे लिङ्ग और अण्डकोश में बँधहुये खींचेजाते हैं व कोई हाथ, पांत्र, कान, ओंठ और नाक जिनके काटिडालोगये हैं ऐसे जातेहैं लिंग, अण्डकोश और शिरआदि अङ्ग जिनके कटगये हैं आंगुसों से छेदेजाते और बिच्छुओं से काटेजातेहुये जाते हैं ॥ ५३॥५४ ॥ इधर उधर दौड़तेहैं विलाप करते हैं निरालम्ब मुगदर और लोहेके दण्डोंसे वार २ मारेजातेहुये जातेहैं ॥ ५५ ॥ अनेकतरह के घोर कोडाओं से और भिन्दिपालों से चारोंतरफ से मारेजाते वार २ रक्तको उगिलतेहुये जातेहैं ॥ ५६ ॥ पानीमें डालेजाते छाहीको मांगते हैं इस प्रकार पापके करनेवाले व दानभे रहित

नीयकृकाटिकाः ॥ अर्द्धचन्द्रेणगृह्यन्ते जिप्यमाणा इतस्ततः ॥ ५२ ॥ शिश्नेचवृषणेचैव रज्ज्वावद्धास्तथापरे ॥ विच्छिन्नहस्तपादाश्च विन्नकर्णोष्ठनासिकाः ॥ ५३ विच्छिन्नाशिश्नवृषणादिच्छिन्नशीर्षाङ्गसञ्चयाः ॥ अङ्कुशैर्भिद्यमानास्तु खाद्यमानाःसरीसृपैः ॥ ५४ ॥ इतश्चेतश्चधावन्ति क्रन्दमानानिराश्रयाः ॥ मुद्गरैर्लोहदण्डैश्च हन्यमानामुहुमुहुः ॥ ५५ ॥ कशाभिर्विविधाभिश्च घोरभिश्चसमन्ततः ॥ भिन्दिपालैश्चतुद्यन्ते वमन्तःशोणितंमुहुः ॥ ५६ ॥ पात्यमानाश्च सलिले छायावैप्रार्थयन्तिच ॥ दानहीनाःप्रयान्त्येवं प्रायश्चित्तकृतोनराः ॥ ५७ ॥ गृहीत्वाचैवपाथेयं सुखयान्तियमालयम् ॥ एवंपथानिकृष्टेन प्राप्तायमपुंनराः ॥ ५८ ॥ प्राज्ञापितैस्तथादृतैः प्रवेश्यन्तेयमाग्रतः ॥ तत्रयेशुभकर्ममाणस्तान्वैसंस्मारयेद्यमः ॥ ५९ ॥ स्वागतासनदानेन पाद्धार्येणप्रियेणच ॥ धन्यायूयंमहात्मान आत्मनोहितकारिणः ॥ ६० ॥ यैस्तुदिव्यमुखार्थं हि भवद्भिःसुकृतंकृतम् ॥ नर्मदातटमाश्रित्य पर्वतेभरकण्टके ॥ ६१ ॥ दानंदत्तंपस्तप्तं हुतं

मनुष्य जाते हैं ॥ ५७ ॥ और सप्तरखर्च को लेकर जो जातेहैं वे सुखसे यमलोक को जातेहैं इस प्रकार बुरी राहसे मनुष्य यमलोक को प्राप्तहोते हैं ॥ ५८ ॥ आज्ञा को पायेहुये दूतोंकरके यमराज के आगे पापी खड़े कियेजाते हैं वहां जो शुभकर्मों के करनेवाले हैं उनका यमराज स्वागतप्रश्न अर्थात् आपका आना बहुत अच्छा हुआ यह कहना. आसन, पाद्य और अर्घ्य व प्रियवचन से सत्कार करते हैं और कहते है कि अपने हितके करनेवाले आपलोग बड़े महात्माहो और धन्यहो ॥ ५९ ॥ जिन आपलोगों ने दिव्यसुख के वास्ते पुण्यको कियहै नर्मदातट में व अमरकण्टक में बैठकर ॥ ६१ ॥ दानको दियाहै, तपको कियहै विधान से होम

और यज्ञोंको किया है इसीतरह इन सब कामोंको काशी, कुरुक्षेत्र, प्रयाग, पुष्कर ॥ ६२ ॥ गया, नैमिषारण्य, गङ्गासागरसङ्गम, केदार, भैरव, प्रभास, शशिभूषण ॥ ६३ ॥ रमणीक महाकालवन, श्रीशैल, त्रिपुरान्तक, पापोंके धोनेवाले त्रैयम्बक वैसेही नीलकण्ठ ॥ ६४ ॥ गङ्गाद्वार, हिमद्वार और कालञ्जर पर्वत इनमें व और तीर्थों व क्षेत्रोंमें जिन्होंने यथाक्रम किया है ॥ ६५ ॥ ऐसे आपलोगों ने अपने जन्मके फल को पाया इसमें कोई सन्देह नहीं है अब आपलोग दिव्य स्त्रियोंके भोगसे युक्त इस विमानपर सवार होकर ॥ ६६ ॥ सुखके देनेवाले सब कामों से भरेहुये स्वर्गको जावो वहा अपनी पुण्यकी संख्या से अनगिन्ती बड़े भोगोंको भोगकर ॥ ६७ ॥ फिर

चेष्टविधानतः ॥ वाराणस्यांकुरुक्षेत्रे प्रयागेपुष्करतथा ॥ ६२ ॥ गयायानैमिषारण्ये गङ्गासागरसङ्गमे ॥ केदारैर्भैर
वेचापि प्रभासेशशिभूषणे ॥ ६३ ॥ महाकालवनेरम्ये श्रीशैलेत्रिपुरान्तके ॥ त्रैयम्बकेधौतपापे नीलकण्ठे तथैव च ॥ ६४ ॥
गङ्गाद्वारेहिमद्वारे तथाकालञ्जरेगिरौ ॥ एतेष्वन्येषु तीर्थेषु क्षेत्रेषु च यथाक्रमम् ॥ ६५ ॥ लब्धं जन्मफलञ्चैव भवद्भिर्ना
त्रसंशयः ॥ इदं विमानमारुह्य दिव्यस्त्रीभोगभूषितम् ॥ ६६ ॥ सङ्गच्छध्वं शिवं स्वर्गं सर्वकामसमन्वितम् ॥ तत्र भुक्त्वा म
हाभोगाननन्तान् पुण्यसंख्यया ॥ ६७ ॥ यत्किञ्चिदन्यदशुभं स्वल्पं तदपि मोक्षयथ ॥ आख्यातन्तु मया तावत्कल्प
भातीरवासिनः ॥ ६८ ॥ आरोहन्ति विमानानि सर्वेषामुपरि स्थिताः ॥ सर्वतीर्थेषु संख्यास्ति ह्युक्तं ब्रह्मादिभिः पुरा ॥ ६९ ॥
तत्र यद्दीयते दानं तेन स्वर्गं महीयते ॥ अयि ते तत्र यः कश्चिद्भूतेनानशनेन च ॥ ७० ॥ दिव्ययानं समाश्रित्य सप्रयाति
शिवालये ॥ एतत्ते कथितं राजन् कल्पगापुण्यमुत्तमम् ॥ ७१ ॥ पश्यन्ति पुण्यकर्मणो यमं मित्रमिवात्मनः ॥ येषु

जो कुछ तुम्हारा थोड़ा पाप भी होगा उसको भी भोगडालोने पहले मैंने इस बातको तो कहाही है कि नर्मदातीर के रहनेवाले ॥ ६८ ॥ विमानों पर सवार सबके
आप रहते हैं क्योंकि सब तीर्थों में पुण्यकी गिन्ती ब्रह्माआदि देवताओं करके अगिले जमानेमें कहीगई है ॥ ६९ ॥ और वहां नर्मदातीर में जो दान दिया जाता है
आप स्वर्गमें पूजा जाता है और जो कोई वहा अनशनव्रतसे मरता है ॥ ७० ॥ वह दिव्यमवागीपर सवार होकर शिवके स्थानको जाता है हे राजन् ! यह नर्मदाका उत्तम

पुण्य तुमसे कहागया ॥ ७१ ॥ पुण्यकर्माँ के करनेवाले यमराज को अपना मित्र ऐसा देखते हैं और जो पापकर्माँ के करनेवाले हैं वे यमराज को भयानक देखते हैं कि दाढ़ीसे डरावना जिनका मुँह है और टेढ़ी भौंहोंवाले जिनके नेत्र हैं खड़ेबालोंवाले, बड़ीदाढ़ीवाले, फड़फड़ाते हैं नीचे और ऊपरवाले होंठ जिनके ॥ ७२ ॥ ७३ ॥ अठारह भुजावाले, बड़े क्रूरस्वभाववाले, काले काजलके समान जिनका रूप है सब हथियारों को हाथों में लियेहुये गर्जते हैं कालदण्ड को हाथमें लिये हैं ॥ ७४ ॥ बड़े भारी भैसेपर सवार हैं व जलतीहुई आगके ऐसे नेत्रवाले हैं व लालेमाला व कपड़ों को पहनेहुये हैं व बड़े सुमेरुपर्वत की नाई ऊँचे हैं ॥ ७५ ॥ प्रलयकाल के मेंघोंकी

नः क्रूरकर्माणस्ते पश्यन्ति भयानकम् ॥ ७२ ॥ दंष्ट्राकरालवदनं भ्रुकुटीकुटिलेक्षणम् ॥ ऊर्ध्वकेशं महाश्मश्रुं स्फुरदोष्ठाधरोत्तरम् ॥ ७३ ॥ अष्टादशभुजं क्रूरं नीलाञ्जनचयोपमम् ॥ सर्वायुधोद्यतकरं गज्जन्तं दण्डपाणिनम् ॥ ७४ ॥ महामहिषमारूढं तप्तानि समलोचनम् ॥ रक्तमाल्याम्बरधरं महामैरुमिवोत्थितम् ॥ ७५ ॥ प्रलयाम्बुदनिर्घोषं पिबन्तमिव वारिधीन् ॥ असन्तमिव त्रैलोक्यमुद्गिरन्तमिवानलम् ॥ ७६ ॥ मृत्युस्तस्य समीपस्थः कालानलसमप्रभः ॥ का लश्चाञ्जनसंकाशः कृतान्तश्च भयानकः ॥ ७७ ॥ विविधा व्याधयस्तीक्ष्णा नानारूपा भयानकाः ॥ शक्तिशूलाङ्कुशधराः पाशचक्रासिपाणयः ॥ ७८ ॥ वज्रदंष्ट्राधरारौद्राः क्रूराश्चाञ्जनसन्निभाः ॥ सर्वायुधोद्यतकरा यमदृताश्च घातकाः ॥ ७९ ॥ एवं विधं यमं तत्र पश्यन्ति पापचारिणः ॥ निर्भयो याति चात्यर्थं यमो वा पापकारिणम् ॥ ८० ॥ चित्रगुप्तश्च

तरह बोलते हैं मानो समुद्रों को पियेजाते हैं तीनोंलोकों को मानो खायेजाते हैं मानो आगको उगिल रहे हैं ॥ ७६ ॥ मौत उनके तीर खड़ी है जोकि महाप्रलय के समान तेजवाली है काले काजल के समान रूपवाला बड़ा भयानक काल भी तीर वर्तमान है ॥ ७७ ॥ अनेक रूपवाले बड़े भयानक अनेक रोग विद्यमान हैं, सांग, त्रिशूल, आंगुसको धरेहुये फेंसरी, चक्र और तलवारको हाथमें लियेहुये ॥ ७८ ॥ वज्रके समान दाढ़ीवाले, बड़े डरावने, क्रूरस्वभाववाले, काजलसे काले, सब हथियारों को हाथोंमें उवायेहुये, मारनेवाले, यमदूत भी वर्तमान हैं ॥ ७९ ॥ इस तरहके यमराजको वहां पापीलोग देखते हैं यमराज भी पापीके पास बिस्कुलही निर्भय चलेजाते

हैं ॥ ८० ॥ भगवान् चित्रगुप्त भी पापियोंको धर्म सिखातेहुये तीर जातेहैं और कहते हैं कि हे पापकर्मों के करनेवाले ! हे पराई द्रव्यके हरनेवाले ! ॥ ८१ ॥ रूप और ताकत से गर्जनेवाले, पराई स्त्रियोंके अष्ट करनेवाले तुम नहीं जानतेहो कि जो कोई जिस कर्म को करताहै वह उसके फलको भोगता है ॥ ८२ ॥ सो तुम लोगों ने अपने नाश करने के वास्ते पापको क्यों कियाहै अब क्यों सन्ताप करनेहो अपने कर्मोंसे पीड़ित हो रहेहो ॥ ८३ ॥ अपनेही कर्म भोग कियेजाते हैं इसमें किसी का कुछ दोष नहीं है फिर चित्रगुप्त यमराजसे कहतेहैं कि हे महीपते ! ये राजालोग दुर्बुद्धिके बलसे गर्वको प्राप्त हो रहे हैं अपने घोरकर्मोंसे यहां प्राप्त हुयेहैं यह कह

भगवान् धर्मन्तेषांप्रबोधयन् ॥ भोभोदुष्कृतकर्माणः परद्रव्यापहारकाः ॥ ८१ ॥ गर्जितारूपवीर्येण परदारोपमर्दकाः ॥ यस्तुयत्कुरुतेकर्म तेनतद्भुज्यतेपुनः ॥ ८२ ॥ तत्किमात्मोपघातार्थं भवद्भिर्दुष्कृतंकृतम् ॥ किमर्थपरितप्यध्वं पीड्यमानाः स्वकर्मभिः ॥ ८३ ॥ भुज्यन्तेस्वानिकर्ममाणिनास्तिदोषोन्नकस्यचित् ॥ एतेचपृथिवीपालाः संप्राप्ताश्च महीपते ॥ ८४ ॥ स्वकीयैः कर्मभिर्घोरैर्दुष्प्रज्ञाबलगर्विताः ॥ भोभोनृपादुराचाराः प्रजाविध्वंसकारिणः ॥ ८५ ॥ स्वल्पकालस्यराज्यस्य किंवैतद्दुष्कृतंकृतम् ॥ भवद्भीराज्यलोभेन मोहेनान्यायवृत्तिभिः ॥ ८६ ॥ यद्गृहीतंफलन्तस्य यूयंभुङ्ग्ध्वंयथातथम् ॥ कुत्रराज्यंकलत्रंवायदर्थमशुभंकृतम् ॥ ८७ ॥ तत्सर्वस्वपरित्यज्य यूयमेकाकिनस्तथा ॥ त्वद्बान्धवानपश्यन्ति येनविध्वंसिताः प्रजाः ॥ ८८ ॥ यमद्वैतैः पात्यमाना अधुनाकीदृशम्भवेत् ॥ एवंबहुविधैर्वाक्यैरुप

कर फिर राजाओं से कहतेहैं कि हे प्रजाओंके नाश करनेवाले, बुरी चालवाले, राजालोग ! ॥ ८४ ॥ तुम लोगोंने थोड़े दिनकी राज्यके लिये ऐसा पाप क्यों किया मूर्खता के कारण अनीति से चलनेवाले आप लोगोंने राज्यके लोभसे ॥ ८५ ॥ जो पाप कियाहै अब उसके फलको ठीक २ तुम लोग भोगो कहां राज्यहै और स्त्री कहां है जिनके वास्ते तुम लोगोंने पापको कियाहै ॥ ८६ ॥ सो अब तुम लोग अपने सर्वस्वको छोड़कर अकेले यहां आयेहो अब तुम्हारे भाई लोग तुमको नहीं देखते हैं जिनके वास्ते तुम लोगोंने प्रजाओं का नाश कर दिया ॥ ८८ ॥ अब इससमय में यमदूत तुमको गिरा रहेहैं कहो अब क्या होसकताहै ऐसी २ अनेक बातोंसे यमराजसे

रिसवाये गये थे ॥ ८६ ॥ हे पार्थिव ! चुपचाप हो रहे अपने कर्मोंको शोचते है धर्मराज उनराजाओं से ऐसी बातें कहकर तदनन्तर उनके पापोंके छोड़नेके वास्ते यमराज दूतोंसे बोले कि हे चण्ड ! और हे महाचण्ड ! इन राजाओं को लेकर ॥ ८० ॥ नरकरूपी आगसे इनको पापोंसे क्रमसे शुद्धकरो तदनन्तर बड़ीजल्दी से उठकर उनराजाओंके पावोंको पकड़कर और बड़ेजोरसे घुमाकर यमराज के दूत फेंकतेहुये सब दूत बड़ेजोर से लोहेके ऐसे वृक्ष जिसमें हैं ऐसे ताते बड़ेभारी पृथिवीतल मे उनको फेंकते है तदनन्तर वे सब राजालोग मारसे शीघ्र चूर्ण करदियेगये ॥ ८१ ॥ हे युधिष्ठिर ! तब बेहोश हाथ पांव चला ने की चेष्टासे रहित मूर्च्छित होजातेहैं

लब्धायमेनते ॥ ८६ ॥ शोचन्तिस्वानिकर्माणि तूष्णींभूताश्चपार्थिव ॥ इतिवाक्यैःसमादिश्य नृपांस्तान्धर्ममरादत्त तः ॥ ९० ॥ तेषांपापविशुद्ध्यर्थं यमोदूतानथाब्रवीत् ॥ भोभोश्चण्डमहाचण्ड गृहीत्वानृपतीनिमान् ॥ ९१ ॥ विशोधयध्वंपापेभ्यः क्रमेणनरकागिनना ॥ ततश्शीघ्रंसमास्थाय नृपान्संगृह्यपादयोः ॥ ९२ ॥ आमयित्वातुवेगेन चिक्षिपुर्म किङ्कराः ॥ सर्वेवेगेनमहतासुप्रतप्तेमहीतले ॥ ९३ ॥ आस्फालयन्तिमहति चाश्मसारमयद्रुमे ॥ ततस्तेसर्वेष्वाशु प्रहारैर्जलजरीकृताः ॥ ९४ ॥ विमंज्ञाश्चतदासन्ति निश्चेष्टाश्चयुधिष्ठिर ॥ ततस्तेवायुनास्पृष्टाः शनैस्तुजीविताःपुनः ॥ ९५ ॥ तानानीयविशुद्ध्यर्थं क्षिपन्तिनरकार्णवे ॥ अष्टाविंशतिरेवाद्यास्तीव्रानरककोटयः ॥ ९६ ॥ सप्तमस्यतलस्यान्ते घोरै तमसिसंस्थिताः ॥ अतिघोराचरौद्राच तथाघोरतमास्थिता ॥ ९७ ॥ अत्यन्तदुःखजननी घोररूपाचपञ्चमी ॥ पष्ठी तरणताराख्या सप्तमीचभयानका ॥ ९८ ॥ अष्टमीकालरात्रिश्च नवमीचघटोत्कटा ॥ दशमीचैवचण्डाच महाचण्डा ततोप्यधः ॥ ९९ ॥ चण्डकोलाहलाचैव प्रचण्डाचवरगिनका ॥ जघन्याह्यवरालोमा भीषणीचैवनायिका ॥ १०० ॥ तदनन्तर फिर हवाके लगने से धीरे २ वेजीआते है ॥ ९५ ॥ फिर उनको शुद्धकरनेके वास्ते लेकर नरकसमुद्रमें डालते है पुराने अट्टाईस करोड विकराल नरक ॥ ९६ ॥ सातवे पाताल के नीचे घोर अन्धकार में भलीभांति स्थित है उन एक २ कोटि के ये नामहैं अतिघोरा १ रौद्रा २ घोरतमा ३ ॥ ९७ ॥ अत्यन्तदुःखजननी ४ पांचवीं घोररूपा ५ छठीं तरणतारा ६ सातवीं भयानका ७ ॥ ९८ ॥ आठवीं कालरात्रि ८ नवीं घटोत्कटा ९ दशवीं चण्डा १० तिसके नीचे महाचण्डा ११ ॥ ९९ ॥

चण्डकोलाहला १२ प्रचण्डा १३ वरगिनिका १४ जघन्या १५ अत्रालोमा १६ भीषणी १७ नायिका १८ कराला १९ विकराला २० वज्रविंशति २१ अस्ता २२ पञ्चकोणा २३ सुदीर्घा २४ परिवर्तुला २५ ॥ १ ॥ सप्तभौमा २६ अष्टभौमा २७ और अष्टाईसर्वो दीर्घमाया २८ ये घोर नरककोटि नामोरो कहीगईहैं ॥ २ ॥ पापीप्राणियों के वास्ते ये अष्टाईस कोटि गिन्तीसे कहीगई हैं तिनके क्रमसे पाच पाच नायक जाननेयोग्य हैं ॥ ३ ॥ हे विशम्पते ! उन हरएक कोटिके नायकोंको नामसे कहतेहैं उनमें पहला रौरवहै जहां प्राणी रोतेहैं ॥ ४ ॥ दूसरा महारौरव है जिसमें पीड़ाओंसे बड़े २ भो रोतेहैं तदनन्तर तग, शीत, उष्ण ये पांच पहली कोटि के नायक

करालाविकरालाच वज्रविंशतिराश्रिता ॥ अस्ताचपञ्चकोणाच सुदीर्घापरिवर्तुला ॥ १ ॥ सप्तभौमाष्टभौमाच दीर्घ
मायेतिहापरा ॥ इति तानामतः प्रोक्ता घोरानरककोटयः ॥ २ ॥ अष्टाविंशतिरेतास्तु भूतानां मानतः स्मृताः ॥ तासां क्र
मेण विज्ञेयाः पञ्चपञ्चैव नायकाः ॥ ३ ॥ प्रत्येकं सर्वकोटीनां नामतस्तु विशम्पते ॥ रौरवः प्रथमस्तेषां स्मरन्ति यत्र देहि
नः ॥ ४ ॥ महारौरवपीडाभिर्महान्तोपिरुदन्ति हि ॥ तमः शीतं तथा चोष्णं पञ्चैते नायकाः स्मृताः ॥ ५ ॥ अधोरः प्रथ
मस्तीक्ष्णः पद्मः संजीवनः शठः ॥ महामायो विलोमश्च कण्टकः कटकः स्मृतः ॥ ६ ॥ तीव्रो नामः करालश्च किङ्करालः
प्रक्रमपनः ॥ महाचक्रः सुपद्मश्च कालसूत्रः प्रगज्जनः ॥ ७ ॥ सूचीमुखः सुनेमिश्च खादकः सुप्रपीडितः ॥ कुम्भीपाकः सु
पाकश्च क्रकचश्च सुदारुणः ॥ ८ ॥ अङ्गारान्निःपचनः असृक्पूयभवस्तथा ॥ सुतीक्ष्णः शुण्डशकुनी महासंवर्तकः क्र
तुः ॥ ९ ॥ तप्तजन्तुः पङ्कलेपः प्रृतिमांश्च हृदस्त्रपुः ॥ उच्छ्वासश्च निरुच्छ्वासः सुदीर्घः क्रूरशाल्मली ॥ १० ॥ उद्धितस्तुम

कहेगये हैं ॥ ५ ॥ अब दूसरी आदि कोटियों के नायकों को कहते हैं तिसमें दूमरी कोटि का पहला अधोर है फिर तीक्ष्ण, पद्म, संजीवन, शठ, महामाय, विलोम, कण्टक, कटक ॥ ६ ॥ तीव्र, वाम, कराल, किङ्कराल, प्रक्रमपन, महाचक्र, सुपद्म, कालसूत्र, प्रगज्जन ॥ ७ ॥ सूचीमुख, सुनेमि, खादक, सुप्रपीडित, कुम्भीपाक, सुपाक, क्रकच, सुदारुण ॥ ८ ॥ अङ्गारान्नि, पचन, असृक्पूयभव, सुतीक्ष्ण, शुण्ड, शकुनि, महासंवर्तक, क्रतु ॥ ९ ॥ तप्तजन्तु, पङ्कलेप, प्रृतिमान, हृद, त्रपु, उच्छ्वास,

निरुच्छास, सुदीर्घ, क्रशालमली ॥ १० ॥ उष्टित, महानाद, प्रवाह, सुप्रवाहन, वृषाशय, वृषाश्च, सिंहानन, व्याघ्रानन, गजानन ॥ ११ ॥ श्वानन, शूकरानन, अ-
जानन, महिषानन, मेघानन, मृषानन, खरानन, ग्राहानन, कुम्भीरानन, नक्रानन, महाबोर, भयानक ॥ १२ ॥ सर्वभक्ष्य, स्वभक्ष्य, सर्वकर्मा, अश्व, वायस, गृध्रोत्लूक,
उत्लूक, शार्दूल, कपि, कच्छुर ॥ १३ ॥ गण्डक, पूतिवक्र, रक्तास्य, पूतिमूत्रिक, कणधूम, तुषाराग्नि, कुमिमान्, निरय ॥ १४ ॥ आतोद्य, प्रतोद्य, रुधिराद्य, भोजन,
हानादः प्रवाहः सुप्रवाहनः ॥ वृषाश्रयो वृषाश्वश्च सिंहव्याघ्रगजाननाः ॥ ११ ॥ श्वशूकराजमहिषमेघमूषखरान

नाः ॥ ग्राहकुम्भीरनकास्या महाघोराभयानकाः ॥ १२ ॥ सर्वभक्ष्याः स्वभक्ष्याश्च सर्वकर्माश्च वायसाः ॥ गृध्रोत्लूक
उत्लूकश्च शार्दूलकपिकच्छुराः ॥ १३ ॥ गण्डकः पूतिवक्रश्च रक्तास्यः पूतिमूत्रिकः ॥ कणधूमस्तुषाराग्निः कुमिमा
निरयस्तथा ॥ १४ ॥ आतोद्यश्च प्रतोद्यश्च रुधिराद्यश्च भोजनम् ॥ कालात्मगोनुभक्षश्च सर्वभक्षस्तुदारुणः ॥ १५ ॥ क
र्कटस्तु विशालश्च विकटः कटपूतनः ॥ अम्बरीषः कटाहश्च कष्टवैतरणीनदी ॥ १६ ॥ सुतप्तोलोहशङ्कुश्च एकपादोऽश्रुपू
रणः ॥ असिपत्रवन्धोरमस्थिलिङ्गप्रतिष्ठितम् ॥ १७ ॥ तिलातसीक्षुयन्त्राणि कूटपापप्रमर्दनाः ॥ महाचुल्लीविचुल्लीच
तप्तलोहमयीशिला ॥ १८ ॥ पर्वतः क्षुरधाराख्यो मयोयमलपर्वतः ॥ सूचीविष्टान्धकूपाश्च पतनः पातनस्तथा ॥ १९ ॥

मुशलीवृषलीचैवाशिवासङ्कटलातथा ॥ तालपत्रासिगहनं महामोहकएवच ॥ २० ॥ संमोहनोऽस्थिमङ्गश्च तप्ताचलम
नालभक्त, आत्मभक्ष, गोऽनुभक्त, सर्वभक्ष, सुदारुण ॥ १५ ॥ कर्कट, विशाल, विकट, कटपूतन, अम्बरीष, कटाह, कष्टवाली वैतरणी नदी ॥ १६ ॥ सुतप्त, लोहशङ्कु,
कूपाद, अश्रुपुराण, घोर असिपत्रवन, प्रतिष्ठित अस्थिलिङ्ग ॥ १७ ॥ तिलयन्त्र, अतसीयन्त्र, इलुयन्त्र, कूट, पाप, प्रमर्दन, महाचुल्ली, विचुल्ली, तातेलोहेकी चट्टान ॥ १८ ॥
क्षुरधारनामका पर्वत, मय, यमलपर्वत, सूचीकूप, विष्टाकूप, अन्धकूप, पतन, पातन ॥ १९ ॥ मुशली, वृषली, अशिवा, सङ्कटला, तालपत्रवन, असिपत्रवन, महामोहक ॥ २० ॥

संमोहन, अस्थिभङ्ग, तप्ताचलमय, अगुण, बहुदुःख, महादुःख, कश्मल, यमल ॥२१॥ हालाहल, विरूप, रविरूप, च्युतमानस, एकपाद, त्रिपाद और सबको प्रकट होरहा तीव्र भी है ॥ २२ ॥ ये क्रमसे अट्ठाईस पंचकड़ी कहींगई हैं ॥१२३॥ इति श्रीस्कन्दपुराणैरेवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनुवादेनरकवर्णननामद्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५२ ॥ मार्कण्डेयजी बोले कि कोटियों के सदृश पांचही पांच नायक भी हैं रौरव से लेकर मरीचि तक सौ नरक कहेगये हैं ॥ १ ॥ उसमें चालीस और अधिक हैं ऐसा महानरको का मण्डल है अपने कर्मों के हिसाब से मनुष्य लोग एक २ के क्रमसे नरकोंको भोगते हैं ॥२॥ दुष्ट कामनाओंसे जो कुकर्म जमा कियेगये उनसे शीघ्रही

योगुणः ॥ बहुदुःखोमहादुःखः कश्मलोयमलस्तथा ॥२१॥ हालाहलोविरूपश्च इवरूपश्च्युतमानसः ॥ एकपादस्त्रिपादश्च तीव्रश्चविदितस्ततः ॥ २२ ॥ अष्टाविंशतिरित्येते क्रमशः पञ्चकाः स्मृताः ॥ १२३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणैरेवाखण्डे नरकवर्णनन्नामद्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५२ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

मार्कण्डेयउवाच ॥ कोटीनामनुरूपाश्च पञ्चपञ्चैवनायकाः ॥ रौरवाद्यंमरीच्यन्तं नरकानां शतं स्मृतम् ॥ १ ॥ चत्वारिंशत्समधिकं महानरकमण्डलम् ॥ एकक्रमात्प्रभुज्यन्ते नरैः कर्म्मामनुरूपतः ॥ २ ॥ कामनाभिर्विरूपाभिरकर्मप्रचयाद्द्रुतम् ॥ सुगृहयाततो ध्वान्ते तप्तशृङ्खलयानराः ॥ ३ ॥ महादृक्षस्यशाखायां लम्ब्यन्ते यमकिङ्करैः ॥ ततस्तान्सर्वतश्चैव दोलयन्ति हि किङ्कराः ॥ ४ ॥ दोलिताश्चातिवेगेन निःसंज्ञां यान्ति पापिनः ॥ अन्तरिक्षे स्थितानाञ्च लोहभारशतं तदा ॥ ५ ॥ पादयोर्बध्यते तेषां यमदृतैर्वलोत्कटैः ॥ तेन भारेण महता भृशं सन्तापितानराः ॥ ६ ॥ ध्याय

बहुत पोढ़ी तपीहुई जंजीरसे बांधकर अधियारमें ॥३॥ बड़े वृक्षकी डालमें मनुष्योंको यमदृत लटकते हैं तदनन्तर फिर दूतलोग उनसबको बड़ेजोरसे झुलाते हैं बड़ेजोरसे झुलायेगये वे पापी बेहोश होजाते हैं आसमान में लटकतेहुये उन पापियोंके पात्रोंमें सौ भार लोहा जबरदस्त यमदृत बांध देते हैं तब उस बड़ेभारसे मनुष्य बड़े

१ भार चौंसठ ञ्छैया को कहते हैं ॥

सन्तापको प्राप्त होते हैं ॥ ४।५।६ ॥ अपने कर्मोंको याद करते हैं और वेतहाशे चुप रहजाते हैं तदनन्तर फिर कमरो काटिवाले आगरो ध्वंशहुये लोहेके डण्डाओ से ॥ ७ ॥ यमदूत सबसे पापियों के माथे में मारते हैं तदनन्तर विग्रसे भरेहुये कीडे जिममें पड़े हैं एभे कुयें में डालते हैं ॥ ८ ॥ चागेनगरु मे घोर यमदूत पाप करनेवालों को पकाते हैं तदनन्तर खारीपानी से आगमें विशेष औटते हैं ॥ ९ ॥ व तातेलोहे के कड़ाहमें घेंगन की तरह पकाते हैं व जलके जीवोंसे भरेहुये गन्दे कुयें में डालकर ॥ १० ॥ तदनन्तर चर्वी, रक्त और पीवसे भरीहुई बावली में डाले गये वे पापीलोग कीड़ों और पैनी लोहेकीसी चोंचवाले कौवोंसे खायेजाते

नितस्वानिक्रममाणि तूष्णीं नित्प्रान्तिनिश्चलाः ॥ ततः क्रमादग्निवर्णैर्लोहदण्डैः सकण्टकैः ॥ ७ ॥ निहन्यन्ते प्रयत्नेन
यमद्वृतैश्चमस्तके ॥ विष्ठापूर्णततः कूपे कृमीणां निलयेततः ॥ ८ ॥ समन्तात्किङ्करैर्धरैः पच्यन्ते पापकारिणः ॥ ततः
क्षारेण नीरेण वल्गावपि विशेषतः ॥ ९ ॥ वार्ताकवत्प्रपच्यन्ते तप्तलोहकटाहके ॥ अमेध्यकूपे प्रचिप्य जलजन्तुसमाकु
ले ॥ १० ॥ मेदोऽसृक्पूयपूर्णयां वाप्यां चितास्तुतेततः ॥ भक्ष्यन्ते कृमिभिस्तीक्ष्णैर्लोहतुण्डैश्च वायसैः ॥ ११ ॥ पच्य
न्ते मांसवच्चापि प्रदीप्ताङ्गाराशिषु ॥ प्रोताः शूलेषु तीक्ष्णेषु नराः पापसमन्विताः ॥ १२ ॥ पच्यन्ते पापिनस्ते वै यमद्वृतै
रनेकधा ॥ तैलपूर्णकटाहेषु सुतप्तैस्तुततः पुनः ॥ १३ ॥ तेषां चोत्पात्र्यते जिह्वा असत्या प्रियवादिनाम् ॥ सुदृढेन सुतप्तेन
प्रपीड्योरसि पादतः ॥ १४ ॥ मिथ्यागमप्रयुक्तस्य द्विजस्यागितर्धैवच ॥ यज्ञार्थं क्रोश्याविस्तीर्णं भल्लैस्तीक्ष्णैः प्रतोद्यते ॥
१५ ॥ निर्भर्त्सयन्ति ये मूढा मातरं पितरं गुरुम् ॥ तेषां वक्रं बालुकभिर्मुहुरापूर्य्यसिच्यते ॥ १६ ॥ ततः चारिणदीप्तेन पय
॥ १७ ॥ बहुत पैने त्रिशूलों में पोहेहये पापी मलप्य दण्डगण्डे को मराने ॥

॥ ११ ॥ बहुत पैने त्रिशूलों में पोहेहुये पापी मनुष्य दगदगाते हुये श्रद्धाओंके ऊपर कबाज की तरह पकायेजातेहैं ॥ १२ ॥ तदनन्तर फिर तेलसे भरेहुये ताते कड़ाहों में यमदूत अनेकप्रकारसे उन पापियोंको चुराते हैं ॥ १३ ॥ पांवसे छातीमें दबाकर बड़ी पोढ़ी ताती सेंगसी से भूठ और कडुई नातों के कहनेवाले उन पापियों की जीम निकाली जातीहैं ॥ १४ ॥ बहुत द्रव्यको यज्ञके वास्ते भूँटेशास्य से जो ग्राहण स्रर्च कराताहै उसकी भी जीम पैने भालाओंसे छेदीजाती है ॥ १५ ॥ जो मूर्ख माता,

पिता और गुरुको धमकाते हैं उनका मुहँ बालू से भरके फिर पानीसे साँचाजाता है ॥ १६ ॥ तदनन्तर खारी व गर्मपानीसे उनका मुहँ बारबार जट्दीसे भरते हैं फिर जलतेहुये तेलमे अत्यन्त भरते हैं ॥ १७ ॥ क्रीडासे भरीहुई विषापर से कुत्तोंकी तरह यमदूतों काके निकाले जाते हैं उएसे मारकर लोहेके सेसर में बांधेजातेहैं ॥ १८ ॥ फिर बड़े जबर डरावने दूत उनको पीछेसे मारतेहैं व दैतीले पोढ़े गोटिले आरासे ॥ १९ ॥ शिरसे लेकर नीचेतक अपने घोरकर्मों के कारणसे फाड़दिये जातेहैं यमदूत पापियों को उन्हींके मांसको खिलाने और उन्हींके रक्तको पीलातेहैं ॥ २० ॥ जिन मूर्तोंने अन्न व जलको नहीं दियाहै और न इसके देनेकी तारीफ दी की है वे पापी मुगदसों

सातुपुनःपुनः ॥ द्रुतंसम्पूर्यतेत्यर्थं तप्तैलेनतन्मुखम् ॥ १७ ॥ विष्ठाभिः कृमिपूर्णभिः श्वानवच्चरणैर्भटैः ॥ परिपीड्यविषाणेन प्रविष्टालोहशाल्मलीम् ॥ १८ ॥ हन्यन्तेपृष्ठदेहेषु पुनर्भीमैर्महाबलैः ॥ दन्तुरेणातिकुराटैन क्रकचेनवलीयसा ॥ १९ ॥ शिरःप्रभृतिपाठ्यन्ते घोरैःकर्मभिरात्मजैः ॥ खादयन्तिस्वमांसानि पाययन्तिस्वशोणितम् ॥ २० ॥ अन्नं पानं न दत्तं यैर्मूढैर्नाप्यनुमोदितम् ॥ इक्षुवत्तेप्रपीड्यन्ते जज्जरीकृत्यमुद्गरैः ॥ २१ ॥ असितालवनेघोरे छिद्यन्तेखण्डखण्डशः ॥ सूचीभिर्भिन्नसर्वाङ्गास्ततःशूलेप्ररोपिताः ॥ २२ ॥ चाचल्यमानाःकृष्यन्ते नञ्जियन्तेतथापिच ॥ देहादुत्पाठ्यतेमांसं तेषामस्मर्थानिमुद्गरैः ॥ २३ ॥ बहुशःकृष्यतेतूष्णं यमदूतैर्वतोत्कटैः ॥ तेनुच्छ्वासेनानुच्छ्वासास्तिष्ठन्तिनरकेचिरम् ॥ २४ ॥ उच्छ्वासेचसदोच्छ्वासा बालुकावदनालृताः ॥ रौरवेपुतुदन्तैर्वपीड्यन्तेविविधैश्चरैः ॥ २५ ॥ महारौरवे

से चूरकरके ईखकी तरह पेरेजाते हैं ॥ २१ ॥ तलवार सरीखे जिनके पचेहैं ऐसे ताडके वृक्षोंके घोर जंगलमें टुकड़े २ कर काटेजाते हैं व सूजाओंसे सन्न अंग जिनके छेदेगये ऐसे पापी पीछेसे सूलीपर चढ़ायेजाते हैं ॥ २२ ॥ हिलायेजाते और खींचेभी जाते पर मरते नहीं हैं उनका मांफ देहसे निकालाजाता है और हड्डियां मुगदसों से चूर कीजाती है ॥ २३ ॥ बड़े जबरदस्त यमदूत इसीतरह बहुतबार जल्द उनके मांसको खींचते हैं इससे वे लोग बेसक बहुत कालतक नरक में पड़े रहते हैं ॥ २४ ॥ बालूमे ठमेमुहँवाले पापी श्वास नहीं लेसक्ते हैं रौरवनरक में बड़ी तकलीफ पाते हैं और वहां अनेकप्रकार के दूतभी उनको बड़ी पीडादेते हैं ॥ २५ ॥ महारौरव

की तकलीफों से बड़े २ भी रोते हैं मुख, लिंग, गुदा, पसली, पाँव, छाती और माथे में ॥ २६ ॥ बड़े पैने तातेलोहे के सुगदरों से यमदूत उनको मारते हैं जो अपने रूप से औरोंकी निन्दा करते हैं व पराई स्त्रियोंको हँसते हैं ॥ २७ ॥ और जो स्त्रियां और पुरुषों को लपटाती हैं अपने पतियोंके पास नहीं रहतीं व जो पुरुष स्त्रियोंसे कहते हैं कि कहां बड़ी जल्दीसे जारही हो हमारी याद नहीं करती हो हमारी तुम्हारी प्रीति बहुत पुरानी है ॥ २८ ॥ ऐसी स्त्रियोंसे यमदूत कहते हैं कि तुमने अपने पतिको धोखादिया और पापों से अन्धे अन्य पुरुषको सुखसे ग्रहण किया ऐसे कहकर उनको लोहे के बटुआ में डालकर धीरे २ पकाते हैं ॥ २९ ॥ बड़ेजोर आग में उनको

रवपीडाभिर्महान्तोपिरुदन्तिहि ॥ उपस्थायेगुदेपाश्वं पादेचोरसिमस्तके ॥ २६ ॥ निहन्यन्तेभट्टैस्तीक्ष्णैः सुतमैर्लोहमुद्धरैः ॥ निन्दन्तियेस्वरूपेण परदारानहसन्तिच ॥ २७ ॥ आलिङ्गन्तिपतीनन्यान्नविन्दन्तिस्वकान्स्त्रियः ॥ किमुधावसिवेगेन नस्मरेरतिशाश्वतीम् ॥ २८ ॥ वञ्चितश्चत्वयाभर्ता पापान्धश्चयथासुखम् ॥ लोहकुम्भेविनिक्षिप्तः पाचिताश्चशनैःशनैः ॥ २९ ॥ समृद्धाग्नौप्रपाच्यन्ते प्रवेश्यन्तेशिलासुच ॥ क्षिप्यन्तेचान्धकूपेषु दश्यन्तेजगर्भशुरसिकण्ठेच जिह्वायान्देहसन्धिषु ॥ शिवभक्तंचविप्रञ्च शिवधर्मचशाश्वतम् ॥ ३० ॥ तेषा कर्मिणाम् ॥ एकैकनरकज्ञेयाः शतशोथसहस्रशः ॥ ३१ ॥ एवमादिमहाघोरा यातनाःपाप नन्ताःसर्वेषुनरकेषुच ॥ ३२ ॥ यातनागहनाराजन् सर्वेषांपापकर्मिणाम् ॥ इत्येवंयातना भुंजतेहै और ताती पत्थरों की चट्टानों पर बिठाते हैं अधवाकुर्यों में उनको डालते हैं और अजगर साँपोंसे अत्यन्त कटाते हैं ॥ ३३ ॥ जो धर्मके जाननेवाले महात्मा आचार्य्य की निन्दा करते हैं अथवा शिवजी के भक्त ब्राह्मण व पुराने शिवधर्म की निन्दा करते हैं ॥ ३४ ॥ उनके छाती, गला, जीभ, देहके जोड़ और ओठोंको यमदूत कीलोसे कीलते हैं ॥ ३५ ॥ ऐसी २ बड़ीघोर पाप करनेवाले प्राणियों को एक २ नरकमें सैकड़ों हजारों तकलीफें जाननेयोग्य हैं ॥ ३६ ॥ हे राजन्! सब पापकर्मियों को बड़ी कठिन तकलीफें हैं ऐसी २ अनन्त पीडा सब नरकों में हैं ॥ ३७ ॥ सौ वर्षसे भी उनको कहनेको कौन पुरुष समर्थ होसक्ता है ऐसे २ बड़ेघोर अनेकतरह

के अपने कर्मों से क्रमसे सब नरकों में डाले जाते और पकाये जाते हैं इसमें कुछ सन्देह नहीं है महापातक करनेवाले जो पापी हैं वे सब नरकों में ॥ ३५ ॥ जवतक चन्द्रमा और नक्षत्र रहते हैं तबतक अनेक तरह के दूतों से पीड़ा को पाते हैं इसी तरह सब पातकी भी इन्हीं नरकों में हमेशा पड़े रहते हैं और उपपातकी जो मनुष्य हैं वे इनसे आधे समयतक को जाते हैं व चारों दिशाओं के नरकों में पचा करते हैं इसमें कुछ सन्देह नहीं है ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ हे तात ! यह नहीं जान पड़ता है कि कब किसकी मौत होगी अकस्मात् मौत के आजाने पर फिर वर्ष दिन कौन मनुष्य पासता है ॥ ३९ ॥ जिससे सब बड़े कर निश्चय अकेले ही जावोगे इससे सब

क्रमात् सर्वेषु पच्यन्ते नरकेषु न संशयः ॥ ३६ ॥ आचन्द्रतारकं यावत् पीड्यन्ते विविधैश्चरैः ॥ तथा पातकिनस्सर्वे निरयेष्वेष्टु सर्वदा ॥ ३७ ॥ चतुर्दिक्षु सुपच्यन्ते नरकेषु न संशयः ॥ उपपातकिनश्चापि तददृष्ट्यान्तिमानवाः ॥ ३८ ॥ मृत्युर्न ज्ञायते तात कदा कस्य भविष्यति ॥ प्राप्ते चाकस्मिन्के मृत्यौ वर्षे विन्दतिकोनरः ॥ ३९ ॥ परित्यज्य यतः सर्वमेकार्कीयास्य सिधुवम् ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन सत्यधर्मं परो भव ॥ ४० ॥ एतत्ते सर्वमाख्यातं नरकाणाम् तुल्यं च ॥ ४१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे रेवाखण्डे नरकयातनानुवर्णनो नाम त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५३ ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ तीर्थयते केन धर्मेण संसाराब्धिः सुदुस्तरः ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ तेन निर्मिते सैतैः पापैः कथ्यमानां कथां शृणु ॥ १ ॥ रक्तो मूढश्च लोको यमकार्ये संप्रवर्तते ॥ न चात्मानं विजानाति न परं न च दैवतम् ॥ २ ॥ न शृणोति परं

यत्नो से सच्चे धर्म में तत्पर हूजिये ॥ ४० ॥ यह सब तुमसे नरकों का लक्षण कहा गया है ॥ ४१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे रेवाखण्डे प्राकृतभाषाऽनुवादे नरकयातनानुवर्णनो नाम त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५३ ॥

युधिष्ठिरजी बोले कि किस धर्म से यह दुस्तर संसार सुदुर्तरा जासक्ता है तब मार्कण्डेयजी बोले कि यमराजजी से धमकाये गये पापियों की कही हुई कथा को सुनो ॥ १ ॥ पापी कहते हैं कि यह लोक विषयों में फँसा हुआ इसीसे मूढ़ हो रहा सो कुकर्म में फँसता है आत्मा को नहीं जानता है व न परमेश्वर और न देवताही को

जानता है ॥ २ ॥ उत्तम अपने कल्याण की बात को नहीं सुनता है और आलैं भी हैं पर नहीं देखता है व बराबर सड़क पर धीरे २ भी चला जाता है परन्तु पगर पर गिरता है ॥ ३ ॥ ऐसे कहे गये धर्मराजजीने उन पापियोंसे जिस वृत्तान्त को थोड़े में कहा है उसीको इस समय सुम्नसे विस्तारसे तुम सुनो ॥ ४ ॥ पापियोंसे यमराज बोले कि हमारा छोड़ा हुआ मनुष्य पण्डितों से भी समझाया जाता परन्तु नहीं जानता इस संसार में अनेक तरह के राग और लोभों के वशसे मनुष्य बड़ा क्रेश पाता है ॥ ५ ॥ गर्भ में पड़ने से फिर कहे हुये शास्त्र को नहीं समझता है और स्वर्ग व मोक्ष के देनेवाले कर्म को मनुष्य नहीं सुनता है ॥ ६ ॥ इस लोकमें सब

श्रेयः सति चक्षुषि ने जते ॥ समेपथिशनैर्गच्छन् पुत्रतेस्मपदेपदे ॥ ३ ॥ एवमुक्तो धर्मराजः संक्षेपात्पापदेहिनाम् ॥ विस्तरेण यदा चख्यौ तेषां तच्छृणु साम्प्रतम् ॥ ४ ॥ यम उवाच ॥ मयामुक्तो न जानाति बोध्यमानो बुधैरपि ॥ संसारं क्लिश्यते नाना रागलोभवशान्नरः ॥ ५ ॥ गर्भपतेन भावेन शास्त्रमुक्तं न बुध्यते ॥ नरो न श्रूयते कर्म स्वर्गमोक्षप्रसाधकम् ॥ ६ ॥ सन्तप्यति शिवध्याने सर्वकामार्थसाधने ॥ नरकादात्मनः श्रेयो यदत्र महदद्भुतम् ॥ ७ ॥ प्रेतभूतानरास्सर्वे यमलोकं समागताः ॥ आख्यानं कथयिष्यामि यथोद्दिष्टम् पुरातनम् ॥ ८ ॥ सूर्येण कथितं तत्वासीन्नर्मदाख्या न मुत्तमम् ॥ देवतानां पितॄणाञ्च मम पित्रानुक्रमया ॥ ९ ॥ सपादलजमधिकं ब्रह्मणा कथितं रवेः ॥ तत्र श्रुतं मया कृत्स्नं ब्रह्मणा तु शिवाच्छ्रुतम् ॥ १० ॥ शिवेन कथितं पूर्वं पार्वत्याः षण्मुखस्य तु ॥ जम्बूद्वीपं समासाद्य मानुषीयैर्निमाश्रितः ॥ ११ ॥

इच्छा और सब प्रयोजनों के सिद्ध करनेवाले शिवजी के ध्यान में तकलीफ पाता है जो कि नरक से छुड़ानेवाला अपना परम अद्भुत कल्याण है ॥ ७ ॥ प्रेतरूप सब मनुष्य यमलोक को आते हैं अब हम कथा को कहते हैं जैसी अगिले जमाने में कही गई है ॥ ८ ॥ हमारे पिता सूर्यने कृपाकरके देवता और पितरोंसे नर्मदा के उत्तम आख्यान को कहा था ॥ ९ ॥ वहां ब्रह्माजीने सवालाख श्लोकका पुराण सूर्य से कहा था व हम अपने पितासे सब सुना और पिताने ब्रह्माजी से सुना व ब्रह्माजी ने शिवजी से सुना ॥ १० ॥ शिवजी ने पहिले पार्वती और स्वामिकार्त्तिकेय से कहा इस जम्बूद्वीप में आकर और मनुष्यजन्मको पाया ॥ ११ ॥

फिर भी सात कल्पतक बहनेवाली नर्मदादेवी के जो आश्रित नहीं होता है अर्थात् स्नान, तैरना, जलपीना और दानआदि कामों को नहीं करता है ॥ १२ ॥ तो इस लोकमें पापी मनुष्यों को गति देनेवाली और कौन होसक्ती है पापों की हरनेवाली महादेवी नर्मदा का जो ध्यान करते हैं ॥ १३ ॥ उनके पाप नाश होजाते हैं जैसे सूर्यके उदय में अन्धकार नष्ट होजाता है जो नर्मदा को याद करताहै अथवा जो अपनी वाणी से कहताहै ॥ १४ ॥ परलोकमें गयेहुये उस मनुष्य को यमदूत नहीं सताते हैं जो पापी नीच मनुष्य नर्मदा को कहता है ॥ १५ ॥ वह हमारे कहे हुये नरकोंको कभी नहीं जाताहै व वहां गङ्गाआदि नदियां और अनेक प्रकार के

नाशयेन्नर्मदान्देवी सप्तकल्पवहान्तुयः ॥ १२ ॥ लोकेस्मिन्गतिदा कान्या पापोपहतचेतसाम् ॥ येधयायन्तिमहादेवी नर्मदापापहारिणीम् ॥ १३ ॥ अघानितेषानश्यन्ति तमःसूर्योदयेयथा ॥ नर्मदासंस्मरेद्यस्तु कीर्तयेद्यस्तुवागिरा ॥ १४ ॥ परलोकंसमायातो यमदूतैर्नवाध्यते ॥ नर्मदाकीर्तयेद्यस्तु पापकर्मानराधमः ॥ १५ ॥ नरकान्समयोद्दिशन्नचक्रामतिकर्हिचित् ॥ गङ्गाद्यास्सरितस्तत्र तीर्थकोटिरनेकधा ॥ १६ ॥ रेवातेजःप्रतापेन शुद्धिङ्गञ्चन्ति तत्क्षणात् ॥ नरकस्थस्स्मरेद्यस्तु मेकलान्तुहरंहरिम् ॥ १७ ॥ मुच्यतेयमदूतैस्सतक्षणात्त्रात्रसंशयः ॥ यदितिष्ठतिवैद्युर्यपर्वतेमरकण्टके ॥ १८ ॥ अंकारःपरमेशानो भुक्तिमुक्तिफलप्रदः ॥ किमर्थंतिहशोचन्ति पापोपहतचेतसः ॥ १९ ॥ सिद्धेश्वरसिद्धलिङ्गं लोकानुग्रहकारकम् ॥ यज्ञेश्वरंचमध्येतु तत्रैवशशिभूषणम् ॥ २० ॥ नर्मदादिक्षिणेभागे लिङ्गञ्चैवमहेश्वरम् ॥ चतुर्थकपिलेशश्चशिवक्षेत्रंविदुर्बुधाः ॥ २१ ॥ येचर्यन्तिस

करोड़ों तीर्थ ॥ १६ ॥ नर्मदा के तेज व प्रताप से उसीक्षण शुद्धिको प्राप्त होते हैं व नरक में पडाहुआ भी जो नर्मदा अथवा हरिहर का स्मरण करता है ॥ १७ ॥ वह उसीक्षण यमदूतों से छूटजाता है इसमें कुछ सन्देह नहीं है और जो वैदूर्यपर्वत व अमरकण्टक पर भुक्ति और मुक्तिके देनेवाले सबके मालिक अङ्कारजी वर्तमान हैं तो पापीलोग यहां क्यों शोच करते हैं ॥ १८ ॥ १९ ॥ लोकोंपर दया करनेवाला सिद्धलिङ्ग सिद्धेश्वर तथा यज्ञेश्वर वहीं बीचमें शशिभूषण ॥ २० ॥ नर्मदा

के दक्षिण तरफ महेश्वर लिंग चौथे कपिलेश्वर जहां विद्यमान हैं उसको विद्वान् लोग शिवक्षेत्र जानते हैं ॥ २१ ॥ इनका जो सदा फूल, धूप, आरती और तर्पण से भक्तिपूर्वक पूजन करते हैं वे नरकसे भी शिवलोकको जाते हैं इसमें कुछ संशय नहीं है ॥ २२ ॥ हे अनघ ! यह सब आपसे कहा जो आपने पूछा था हे भारत ! इसीतरह आतिपापी अधर्मी पुरुषों से यमराज ने कहा है ॥ २३ ॥ गोदान, सोनेका दान, तिलोका दान, अन्नका दान, दूधका दान, सब सामानों का दान ॥ २४ ॥ महलों का दान और बगीचोंका दान जो बड़े मनुष्य करते हैं वे घोररूप नरक व यमलोकको नहीं जाते हैं ॥ २५ ॥ व सब पापोंसे छूटजाते हैं ऐसा शिवजीका वचन

दाभक्त्या पुष्पधूपपातितर्पणैः ॥ शिवलोकन्तुतेयान्तिनरकान्नावसंशयः ॥ २२ ॥ एतत्तेसर्वमाख्यातं यथाष्टष्टन्त्वयानघ ॥
पापिष्ठान्नृनधर्मस्थान्कथयामासभारत ॥ २३ ॥ गोदानंहेमदानञ्च तिलदानंतथैवच ॥ अन्नदानंपयोदानं सर्वोपस्करमे
वच ॥ २४ ॥ प्रासादारामदानञ्च येकुर्वन्तिनरोत्तमाः ॥ यमलोकंनतेयान्तिनरकंघोररूपिणम् ॥ २५ ॥ मुच्यन्तेसर्वपापे
भ्यः शिवस्यवचनंयथा ॥ सन्मानञ्चापमानेन वियोगेनेष्टसङ्गमम् ॥ २६ ॥ यौवनंजरयाग्रस्तंकष्टात्सौख्यमुपदुतम् ॥ व
लिभिःपलितैश्चापि जर्जरीकृतविग्रहः ॥ २७ ॥ किङ्करोतिनरःप्राज्ञो जरयाजर्जरीकृतः ॥ स्त्रीपुंसोयौवनंरूपं यदन्योन्यं
प्रियङ्करम् ॥ २८ ॥ तदेवजरयाग्रस्तमुभयोरपिनाप्रियम् ॥ अपूर्ववत्तथात्मानं शैथिल्येनसमन्वितम् ॥ २९ ॥ यःपश्य
न्नविरज्येत कोन्यस्तस्मादचेतनः ॥ जराभिभूतःपुरुषः पत्नीपुत्रादिवान्धवैः ॥ ३० ॥ अशक्तत्वाद्दुराचारैर्भृत्यैश्च

हे सन्मान के साथ अपमान लगाहुआ है और प्यारीवस्तु के संयोगमें वियोग लगा हुआ है ॥ २६ ॥ जवानी के साथ बुढ़ापा लगा है तब सुख तो बड़े कष्ट से होसक्ता है क्योंकि सुखमें उपद्रव बहुत हैं सिमिटा और बालों के सफेद होजाने से जांजर होगया है शरीर जिसका ॥ २७ ॥ ऐसा बुद्धिमान् पुरुष बुढ़ापेसे जीर्ण होरहा क्या करसक्ता है स्त्री और पुरुषका आपस में प्यार करानेवाली जवानी व रूपही होता है ॥ २८ ॥ वही जब बुढ़ापे से विगाड दियागया तब दोनोंको दोनों नहीं प्यारे लगते हैं तथा पहले से और तरह का व शिथिलतासे युक्त अपने को ॥ २९ ॥ देखताभी जो मनुष्य वैराग्य को नहीं प्राप्त होता उससे अधिक और कौन मूर्ख है

बुढ़ापेसे दबेहुये मनुष्य का स्त्री, पुत्र और माईलोग ॥ ३० ॥ व बुरेआचरणबालं सेवकलोग भी बेकाम होनेमे अनादर करते हैं बुढ़ापे से युक्त मनुष्य धर्म, अर्थ, काम और मोक्षके सिद्ध करनेको नहीं समर्थ होमक्ताहै तिसमे पहलेही धर्मको करलेवे हे युधिष्ठिर ! इस शरीरमें वात, पित्त और कफकी घटाबढ़ी हुआ करती है ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ और वायुआदि का समूह शरीरही से पैदा होताहै तिससे यह अपना शरीर सदा रोगबालाही जाननेयोग्य है ॥ ३३ ॥ जब वातकी बढ़ती अधिक होतीहै तब ज्वरसे पीड़ित होताहै ऐसे अनेक तरहसे पैदाहुये रोगोंसे बहुत अनेकतरहके दुःख होते हैं ॥ ३४ ॥ उनको आपही जानसक्ताहै और हम क्या कहे इस देहमें एकसौ एक

परिभ्रूयते ॥ धर्ममर्थञ्चकामञ्च मोक्षंनजरयायुतः ॥ ३१ ॥ शक्तःसाधयितुन्तस्मात्पुण्यधर्मसमाचरेत् ॥ वात पित्तकफादीनां वैषम्यञ्चयुधिष्ठिर ॥ ३२ ॥ वातादीनांसमूहश्च देहजःपरिकीर्तितः ॥ तस्माद्व्याधिपरंज्ञेयं शरीरमिदमात्मनः ॥ ३३ ॥ वातोत्पत्त्यतिरेकेण बाधितोवैज्वरेणच ॥ रोगैर्नानाविधिमैवैवहृदुःखान्यनेकधा ॥ ३४ ॥ तानिचस्वात्मवेद्यानि किमन्यत्कथयाम्यहम् ॥ एकोत्तरंमृत्युशतमस्मिन्देहप्रतिष्ठितम् ॥ ३५ ॥ तत्रैकंकालरूपञ्च शेषास्त्वागन्तवःस्मृताः ॥ यत्विहागन्तवःप्रोक्तास्तेप्रशाम्यन्तिभैषजैः ॥ ३६ ॥ जपहोमप्रदानैश्च कालमृत्युर्नशाम्यति ॥ अपमृत्युश्चसर्वस्य विषमद्यादिसम्भवः ॥ ३७ ॥ नचातिपुरुषस्तस्मादपमृत्योर्विभेतिवै ॥ विविधाव्याधयःकष्टाः सर्पाद्याःप्राणिनस्तथा ॥ ३८ ॥ विषाणित्वभिचाराश्च मृत्योर्द्वाराणिदेहिनाम् ॥ पीडितरोगसर्पाद्यैरपिधन्वन्तरिःस्वयम् ॥ ३९ ॥ स्वस्थंकर्तुंनशक्नोति कालप्राप्तंहिदेहिनम् ॥ नौषधंनतपोदानं नमित्राणिनवान्धवाः ॥ ४० ॥ परित्रातुंनोसमर्थाः का मौते लगी हुई हैं ॥ ३५ ॥ तिनमें एक तो कालरूपही है और बाकी आने जानेवाली कहींगई हैं यहां जो आनेजानेवाली कहींगई हैं वे दवाइयों से शान्त होजाती हैं ॥ ३६ ॥ जप, होम और दानोंसे कालरूपी मौत नहीं शान्तहोतीहै और सबकी अकालमृत्यु विष और मारणआदि प्राणियों की मौतके दस्वाजे हैं रोग और सांपआदि से पीड़ित, नहीं डरता है अनेकतरह के रोग, तकलीफें तथा सांपआदि जीव ॥ ३८ ॥ व विष और मारणआदि प्राणियों की मौतके दस्वाजे हैं रोग और सांपआदि से पीड़ित, कालको प्राप्तहोकरे, प्राणीको आराम करनेके लिये साक्षात् धन्वन्तरि भी नहीं समर्थ होसके हैं और कालसे पीड़ित मनुष्यकी रक्षाकरनेके लिये न औषध, न तपस्या, न

दान, न मित्र और न भाई लोग ही समर्थ होसके हैं इससे मौतके बराबर कोई दुःख नहीं है व मौतके बराबर कोई शत्रु नहीं है ॥ ३६ ॥ ४० ॥ ४१ ॥ और सब प्राणियों को मौतके बराबर काल नहीं है हे भारत ! सुन्दर स्त्रियाँ, पुत्र, मित्र, राज्य, ऐश्वर्य (हुकूमत) और अनेकतरहके सब सुखोंको मौत छुड़ादेती है हे राजन् ! यह तुमसे भाईबन्धुरूप दुस्तर संसार कहागया ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ यह सब नाशवाला है और कालका भोजन है ऐसा जानकर सब प्रयत्नसे नर्मदाका भलीभाँति सेवन करना चाहिये ॥ ४४ ॥ सदा सब दुःखोंकी नाश करनेवाली व सब शोकोंकी नाश करनेवाली नर्मदा देवी जो जिसर कामनाको करता है उसके लिये उसीर कामनाको देती है ॥ ४५ ॥

लेनपरिपीडितम् ॥ नास्तिमृत्युसमं दुःखं नास्तिमृत्युसमोरिपुः ॥ ४१ ॥ नास्तिमृत्युसमः कालः सर्वेषामेव देहिनाम् ॥ सद्गार्यापुत्रमित्राणि राज्यैश्चर्य सुखानि च ॥ ४२ ॥ मृत्युश्चिन्तनत्तिसर्वाणि विविधान्यपि भारत ॥ इदं ते कथितं राजञ्जाति संसारदुस्तरम् ॥ ४३ ॥ परिणाम इति ज्ञात्वा सर्वङ्कालस्य भोजनम् ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन संसेव्यासप्तकल्पगा ॥ ४४ ॥ सर्वदुःखापहानित्यं सर्वशोकविनाशिनी ॥ योगान्कामयते कामांस्तान् देवी प्रयच्छति ॥ ४५ ॥ इदं ज्ञानमिदं ध्यानं पाण्डित्यं वेदवेदनम् ॥ निवासस्सर्वभूतानां सेव्यते सप्तकल्पगा ॥ ४६ ॥ यज्ञोदानं तपस्सत्यं स्वाध्यायः पितृ तर्पणम् ॥ सफलं लभते तेषां योरेवाम्बुनिषेवते ॥ ४७ ॥ ब्रह्मकूर्चसहस्राणि सोमपानायुतं तथा ॥ नर्मदातोयपानस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥ ४८ ॥ संयुक्तोऽपि महापार्ष्णानां जन्मकृतैरपि ॥ अंकारदक्षिणे घोरं मुच्यते तत्क्षणं ज्ञपन् ॥ ४९ ॥ गोदानान्नपरंदानं त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् ॥ नर्मदापयसि स्नात्वा यो दद्याद्गान्धिवज्रमने ॥ ५० ॥ संख्यां कर्तुं यथा

यही ज्ञान, यही ध्यान व बुद्धिमान्नी और वेदोंका जानना है जो सब प्राणियों का आधार नर्मदा सेवन कीजाने ॥ ४६ ॥ यज्ञ, दान, तप, सत्य, वेदपाठ और पितरों का तर्पण इन सबोंका फल वही पाता है जो नर्मदाके जलका सेवन करता है ॥ ४७ ॥ हजारों ब्रह्मकूर्च और दशहजार सोमपान यज्ञ नर्मदा के जल पीनेकी सोलहवीं कलाको नहीं पासके हैं ॥ ४८ ॥ अनेकजन्मों के किये हुये महापार्ष्णों से संयुक्त भी मनुष्य उल्लारनाथ के दक्षिण तरफ अघोर मन्त्र का जप करता हुआ उभीक्षण में छूटजाता है ॥ ४९ ॥ गोदान से परे तीनों लोकों में नामूद और कोई दान नहीं है जो नर्मदा के जलमें स्नानकरके ब्राह्मण के लिये गौ देवे ॥ ५० ॥ तो उसके

पुराय की यथायोग्य गिन्ती देवताओं करके भी करने को अशक्य है ॥ ५१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे रेवाखण्डे प्राकृतभाषास्तुत्रादे कर्मगतियमवाक्यनाम च
तुण्यञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५४ ॥ ॥ ॥ ॥
युधिष्ठिरजी बोले कि गौ कितनी तरहकी होतीहै और किस समय में सब सामानसे संयुक्त दीजातीहै यह आपसे हम जाना चाहते हैं ॥ १ ॥ तब मार्कण्डेयजी
बोले कि हे महाबाहो, राजन् ! मुझसे कहेजाते वृत्तान्त को तुम सुनो व समझो तुमसे मैं एक आख्यानको कहताहूँ कि पहिले कल्पके सत्ययुगमें ॥ २ ॥ सब धर्म-

वच नदैवैरपिशक्यते ॥ ५१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरवाखण्डेकर्मगतियमवाक्यनामचतुष्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५४ ॥
युधिष्ठिरउवाच ॥ धेनुःकतिविधाप्रोक्ता कस्मिन्कालेपिदीयते ॥ सर्वोपस्करसंयुक्ता त्वत्तद्दृष्ट्वाभिवेदितुम् ॥ १ ॥
मार्कण्डेयउवाच ॥ शृणुराजन्महाबाहो कथ्यमानंनिबोधमे ॥ कथयामितवाख्यानमादिकल्पेकृतेयुगे ॥ २ ॥ च
क्रवर्तीशशाङ्कोभूत्सर्वधर्मभृतांवरः ॥ नचवर्णयितुंशक्यः सत्यधर्ममव्रतस्थितः ॥ ३ ॥ बुभुजेसमहीमेतामेकच्छत्रां
समाहितः ॥ नवखण्डांसप्तद्वीपां यथाशक्रोमरावतीम् ॥ ४ ॥ हरिश्चन्द्रस्यतस्यापि संवादश्चक्रवर्तिनः ॥ हरिश्चन्द्रः
कुरुक्षेत्रे गवामशुतमुत्तमम् ॥ ५ ॥ हेमभारमलङ्कारसर्वरत्नविभूषितम् ॥ ब्रह्मर्षिमुद्गलोनानाम स्वयं ब्रह्मप्रतिष्ठितः ॥ ६ ॥
मुद्गलाश्चद्विजास्सर्वे सत्यधर्मपरायणाः ॥ शतमष्टोत्तरंसाग्रं ब्राह्मणाब्रह्मवादिनः ॥ ७ ॥ हरिश्चन्द्रोददौतेभ्यो राहुसू

धारियों में श्रेष्ठ, सत्य और धर्ममें स्थित शशाङ्कनाम का एक चक्रवर्ती राजा हुआ जिसकी बड़ाई नहीं कीजासक्ती है ॥ ३ ॥ सावधान वह राजा सातद्वीप और नव
खण्डवाली इस पृथिवी को अकेला भोगताहुआ जैसे इन्द्र अमरावती को भोगें ॥ ४ ॥ उस चक्रवर्ती राजा और हरिश्चन्द्र राजाका संवाद है कि हरिश्चन्द्र राजा
कुरुक्षेत्र में सोने और रत्नोंके जेवरों से सजीहुई उत्तम दशहजार गौवों को देतेहुये वहां स्वयं ब्रह्म की पदवी पायेहुये एक मुद्गल नामके ब्रह्मर्षिये ॥ ५ ॥ जिनके वंश
वाले सत्य और धर्ममें तत्पर सब ब्राह्मण मुद्गलही कहते थे उन्होंने ब्राह्मणों में ब्रह्मके जाननेवाले कुछ अधिक एकसौ आठ ब्राह्मण थे ॥ ७ ॥ उन ब्राह्मणों को

बड़ी श्रद्धासे युक्त राजा हरिश्चन्द्रजी विधिसे पूजन कर उन्हीं के लिये सूर्यग्रहण में गौवोंको देतेहुये ॥ ८ ॥ परमसिद्धि के देनेवाले स्थानेन्द्रर महादेव का पूजन कर और बड़े आनन्द से युक्त चक्रपाणि हृषीकेश भगवान् का भी पूजन करके ॥ ९ ॥ हे नृपश्रेष्ठ ! सरस्वती के तटमें तिल और कुशोंसे संयुक्त इस दानके प्रभावसे उन हरिश्चन्द्र राजा ने सब लोकोंको जीतलिया ॥ १० ॥ सब लोकों के मनकी हरनेवाली आसमान में हरिश्चन्द्र को पुरी मिलतीहुई वह इस चराचर लोकमें हरिश्चन्द्रपुरी इस नामसे प्रसिद्ध हुई ॥ ११ ॥ सत्य, दान और सब छोड़ देना ऐसे २ उत्तम कामोंसे भूषित राजा हरिश्चन्द्रके बराबर दूसरा राजा न हुआहै और न होने

उर्यसमागमे ॥ द्विजान्सम्पूज्यविधिवच्छ्रद्धयापरयायुतः ॥ ८ ॥ अर्चयित्वामहेशानं स्थानं परमसिद्धिदम् ॥ चक्रपाणिहृषीकेशं मुदापरमयायुतः ॥ ९ ॥ सरस्वत्यां नृपश्रेष्ठ तिलदर्मान्वितस्य तु ॥ दानस्यास्य प्रभावेण लोकास्तेनाखिलाजिताः ॥ १० ॥ अन्तरिक्षे पुरीप्राप्ता सर्वलोकमनोहरा ॥ हरिश्चन्द्रपुरीख्याता सास्मिल्लोकैश्चराचरे ॥ ११ ॥ सत्यदानसर्वत्यागैरित्यादिभिरलंकृतः ॥ हरिश्चन्द्रसमो राजा नभूतो न भविष्यति ॥ १२ ॥ एवं गाथापुरागीता शक्राद्यैस्सु रसत्तमैः ॥ शशाङ्कोऽप्यकरोत्सर्वं नर्मदातीरमाश्रितः ॥ १३ ॥ दानं यज्ञं तपः सत्यं पर्वते मरकटके ॥ ददौ चार्द्धप्रसूताङ्गां ब्राह्मणाय महात्मने ॥ १४ ॥ दानस्यास्य प्रभावेण हरिश्चन्द्राधिको भवत् ॥ अनेकभावि कं पापं दग्ध्वा तु लौघवच्चिखी ॥ १५ ॥ यावद्वत्सस्य पादौ द्वौ सुखं योनौ प्रदृश्यते ॥ तावद्भौः पृथिवीज्ञेया सशैलवनकानना ॥ १६ ॥ स्वर्णशृङ्गीरौ प्यखुरी सवत्साकांस्यदोहना ॥ नर्मदास्नानयुक्ता तु सकुशातिलसंयुता ॥ १७ ॥ अंकारामरयोर्मध्ये कोटिता

वालाहै ॥ १२ ॥ ऐसी गाथाको पूर्वकाल विषे देवताओं में उत्तम इन्द्रादि देवताओंने गायाहै और शशाङ्क राजाभी नर्मदा के तटमें बैठकर दान, यज्ञ, तपस्या और सत्यवचन आदि सब काम करतेहुये व अमरकण्टक पर्वतपर आधी ब्याई गौ महात्मा ब्राह्मण को देतेहुये ॥ १३ ॥ इस दानके प्रभावसे अनेक जन्मोंके पापको रुईकी राशिको आगकी तरह जलाकर हरिश्चन्द्रसे अधिक होतेहुये ॥ १५ ॥ जबतक बछड़ाके दोनों पांव और मुहं गौकी योनिमें देखपड़े तबतक वह गौ पर्वत व जलो और जङ्गलो के सहित पृथिवी के बराबर जाननेयोग्य है ॥ १६ ॥ सोने के सींगवाली, चांदीके खुरवाली, बछड़ासे युक्त, कांसिकी दोहनीवाली, नर्मदा में

नहलाईहुई और कुश व तिलोंसे संयुक्त ॥ १७ ॥ ऐसी हजार गौवें शङ्खार और अमरकण्टक के बीचमें जो कोटितीर्थ है उसीमें ब्राह्मणों के लिये राजा देतेहुये ॥ १८ ॥ इसी बीचमें देवताओंके नक्करे आकाशमें बाजतेहुये उसीक्षणमें सवारीपर सवार, मणियों से दगदगाते हुये ॥ १९ ॥ अपने पास वर्त्तमान अनगिन्ती विमान १८ ॥ इसी बीचमें देवताओंके नक्करे आकाशमें बाजतेहुये उसीक्षणमें सवारीपर सवार, मणियों से दगदगाते हुये ॥ २० ॥ और उनके हजारयोजन नीचेस्थित के चढ़नेवाले देवताओं से स्तुति कियेजाते, सुवर्णके छातेको लगायेहुये, चामरोंमें दुराये जारहे राजा शशाङ्क सोहतेहुये ॥ २० ॥ और उनके हजारयोजन नीचेस्थित राजा हरिश्चन्द्र भी शशाङ्कराजा के ऐसे उस कर्मको देखकर ॥ २१ ॥ आश्चर्य्य से युक्त आप कुरुक्षेत्रकी निन्दा करके कहा कि सूर्यग्रहण विषे नर्मदामें इन शशाङ्क

र्थेनराधिपः ॥ एताःसहस्रसंख्याता ब्राह्मणेभ्योन्यवेदयत ॥ १८ ॥ एतस्मिन्नन्तरेनेदुदेवदुन्दुभयोदिवि ॥ तत्त्वणाद्या
नमारूढो ज्वलन्मणिगणैरिव ॥ १९ ॥ स्तूयमानःसर्पिस्पर्शसंख्यातैर्विमानिभिः ॥ धृतस्वर्णतपत्रस्तु वीज्यमान
स्तुचामरैः ॥ २० ॥ योजनानांसहस्रेण हरिश्चन्द्रोप्यधःस्थितः ॥ तद्दृष्ट्वातादृशकर्म शशाङ्कस्यविशाम्पतेः ॥
२१ ॥ सविनिन्द्यकुरुक्षेत्रं विस्मयाविष्टचेतनः ॥ महानद्यांशशाङ्केन राहुसोमसमागमे ॥ २२ ॥ दत्तदानंनसामान्यं
भवेदितिसमासतः ॥ विषस्रवदनोभूत्वा हरिश्चन्द्रोन्मत्तः ॥ २३ ॥ ब्रह्मलोकंगतःक्षिप्रं यत्रलोकैश्चरःप्रभुः ॥ अमि
वाद्ययथान्यायं पप्रच्छसपितामहम् ॥ २४ ॥ दानेननिर्जितादेवाः शशाङ्केनमहात्मना ॥ किञ्चपुण्यमिदंब्रह्मन्कुरु
क्षेत्राद्विशिष्यते ॥ २५ ॥ अमरेश्वरतीर्थन्तु नामरेवाससुद्भवम् ॥ केनापिनसमम्भूतमुपयुग्युपरिदीप्यते ॥ २६ ॥ इति
श्रुत्वावचस्तस्य हरिश्चन्द्रस्यधीमतः ॥ उवाचवचनंब्रह्मा हरिश्चन्द्रंनृपोत्तमम् ॥ २७ ॥ विषादन्त्यजराजेन्द्र गहना
ने ॥ २२ ॥ दानको दियाहै सो वह साधारण नहीं है ऐसे संक्षेपसे कहकर उदाममुहँवाले होकर राजाओंमें उत्तम राजा हरिश्चन्द्रजी ॥ २३ ॥ बहुतजल्दी ब्रह्मलोक
को जातेहुये जहां लोकों के मालिक प्रभु ब्रह्माजी विद्यमान हैं वहां वे राजा ब्रह्माजीको यथायोग्य नमस्कार कर पूछतेहुये ॥ २४ ॥ कि महत्मा शशाङ्क राजाने दान
से देवताओं को जीतलिया सो हे ब्रह्मन् ! यह पुण्य क्या कुरुक्षेत्र से भी विशेष है ॥ २५ ॥ नर्मदा से उत्पन्न हुआ अमरेश्वरनाम का तीर्थ किसी तीर्थके बराबर
नहीं है सबके ऊपरही ऊपर प्रकाश करता है ॥ २६ ॥ उन बुद्धिमान् हरिश्चन्द्रजीके इस वचन को सुनकर ब्रह्माजी राजाओं में उत्तम राजा हरिश्चन्द्रजी से वचन

बोले ॥ २७ ॥ कि हे राजेन्द्र ! विषादको छोड़ो क्योंकि कर्मोंकी गति बड़ी कठिन है शशाङ्कराजा के बराबर दूसरे राजाको मैंने न देखा है और न सुना है ॥ २८ ॥ हम और इन्द्रआदि सब देवताभी राजा इतनी पुरणवाला है ऐसा नहीं कहसक्ते क्योंकि अगिले समय में इस चक्रवर्ती राजाने अनेक हजारयज्ञों को अमरकण्टक पर्वतपर विधानसे किया है हे भारत ! सूर्यग्रहणमें लाखों तीर्थ ॥ २९ ॥ ३० ॥ सरस्वती, कुरुक्षेत्र, पुष्कर और नैमिषादि ये व और भी तीर्थ हे नराधिप, हरिश्चन्द्र ! नर्मदा के कोटितीर्थ में स्नान करने के वास्ते आते हैं तिससे हे राजेन्द्र ! नर्मदाके साथ और तीर्थोंकी बराबरी को छोड़देवो ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ अगिले जमाने में हमने

कर्ममणाङ्गतिः ॥ शशाङ्कसदृशराजा नदृष्टो न श्रुतो मया ॥ २८ ॥ एवं वक्तुं न योग्योऽहं न देवापि सवासवाः ॥ अनेकानि स हस्ताणि पुरा वै चक्रवर्तिना ॥ २९ ॥ इष्टानि च विधानेन पर्वते मरकण्टके ॥ राहुसूर्यसमायोगे तीर्थलक्षाणि भारत ॥ ३० ॥ सरस्वतीं कुरुक्षेत्रं पुष्करं नैमिषं तथा ॥ तीर्थान्येतानि चान्यानि स्नानं कर्तुं समाययुः ॥ ३१ ॥ मेकलायां हरिश्चन्द्र कीटितीर्थे नराधिप ॥ तीर्थान्येतानि चान्यानि स्नानं कर्तुं समाययुः ॥ ३२ ॥ वाराणस्यां कुरुक्षेत्रं तोलितञ्च मया पुरा ॥ तीर्थानि न समं यान्ति तीर्थस्यास्य प्रभावतः ॥ ३३ ॥ ख्यातमात्रं कुरुक्षेत्रं लोकयात्राप्रवर्तकम् ॥ पुरा जंन श्रुतं यैस्तु मिथ्याज्ञानसमन्वितैः ॥ ३४ ॥ सेव्यतां कल्पगादेवी यदीच्छेत्परमं पदम् ॥ नमस्कृत्य विधातारमयोऽध्याधिपतिस्तदा ॥ ३५ ॥ मुदा परमया युक्तो स ययाचमरेद्वरम् ॥ एतत्सर्वं समाख्यातं यथावत्तव सुव्रत ॥ ३६ ॥ यः शृणोति नरो राजन्गो सहस्रफलं लभेत् ॥ ३७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे रेवाखण्डे गोदानमहिमाऽनुवर्णनो नाम पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ५५ ॥

काशकिं साथ कुरुक्षेत्रको तौलाथा परन्तु इस तीर्थके प्रभावकी बराबरी कोई तीर्थ नहीं करसके हैं ॥ ३३ ॥ कुरुक्षेत्र तो प्रसिद्धमात्र है लोगोंकी यात्राका करानेवाला है सो भी उन्हीं लोगोंकी कि जिन मिथ्याज्ञानियोंने पुराणको नहीं सुना है ॥ ३४ ॥ इससे जो परमपदकी इच्छाकरे तो नर्मदादेवीका सेवनकरे इतना सुनकर अयोध्याके राजा वे हरिश्चन्द्रजी ब्रह्माजी के नमस्कार कर बड़े आनन्द से युक्त उसी समय अमरेश्वर को चले गये हे सुव्रत ! यह सब आपसे यथावत् कहा गया ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ हे राजन् ! इसको जो मनुष्य भक्तिसे सुनता है वह हजार गोदान के फल को पाता है ॥ ३७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे रेवाखण्डे पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५५ ॥

मार्कण्डेयजी बोले कि माहिष्मतीपुरी के परिन्धम तरफ पापोंका हरनेवाला और सब शोचों का छुड़ानेवाला अशोकवनिका नामका नीर्थ है ॥ १ ॥ वहां स्नान कर अपनी शक्तिके अनुसार विस्तार से पार्वती का पूजनकरे इसीतरह सिद्ध और गन्धर्वों से सेवित वहां मातङ्गका भी आश्रमहै ॥ २ ॥ अधियारे व उजियाले पाल की तीज विषे चन्दन, धूप, केसरआदि का लेपन, अनेक बलि और दियालियों के जलाने आदि से ॥ ३ ॥ जो स्त्री वहां भक्तिसे युक्तहो पार्वतीका पूजनकरे वह रूप और सुन्दरभाग्य से युक्त अच्छे पतिको पाती है ॥ ४ ॥ कातिक की पूर्णमासी को प्रसन्नमन व इन्द्रियों को वश कियेहुये जो स्त्री अपने प्राणों का त्याग करती है

मार्कण्डेयउवाच ॥ माहिष्मत्याःपश्चिमैव तीर्थपापहरं परम् ॥ अशोकवनिकानाम सर्वशोकविनाशनम् ॥ १ ॥ स्नात्वा तत्रार्चयेद्गौरीं यथापि भवविस्तारैः ॥ मातङ्गस्याश्रमतद्दत्तसिद्धगन्धर्वसेवितम् ॥ २ ॥ शुक्लकृष्णातृतीयायाङ्गन्धर्वपविलेपनैः ॥ उपहारैरनेकैश्च दीपमालाप्रबोधनैः ॥ ३ ॥ तत्रयापूजयेन्नारी गौरीम्भक्तिसमन्विता ॥ रूपसौभाग्यसम्पन्नं लभेत्सत्पतिन्तु सा ॥ ४ ॥ कार्तिकयान्तुगतप्राण मोदमाना तु संयता ॥ अस्य तीर्थस्य माहात्म्यात्प्राप्ता माहेश्वरं पुरम् ॥ ५ ॥ मातङ्गो नाम देवर्षिः पुरा कल्पे युधिष्ठिर ॥ नर्मदातीरमाश्रित्य तपस्तेपे सुदुष्करम् ॥ ६ ॥ पुरा जन्मनिषादः स जातिस्मरतिषूर्विकाम ॥ अघमर्षणदेशस्थः सर्वधर्मबुबोध च ॥ ७ ॥ महर्षीणां प्रसङ्गेन नर्मदादर्शनेन च ॥ पापबुद्धिपरित्यज्य धर्ममबुद्धिञ्चकार सः ॥ ८ ॥ निर्विषो हञ्च भिक्षुश्चाधुना श्वपचयोनिसु ॥ एवमुक्त्वा ततो राजन्नशोकवनि काङ्क्षतः ॥ ९ ॥ जटावल्लकलधारी च कन्दमूलफलाशनः ॥ दिव्यं वर्षसहस्रन्तु शिवां राधनतत्परः ॥ १० ॥ शिवध्या

वह इस तीर्थके माहात्म्य से महादेव के पुरको ज्ञातहोती है ॥ ५ ॥ हे युधिष्ठिर ! आगे के कल्प में मातङ्ग नामके देवर्षि नर्मदा के तीर बैठकर बड़े कड़े तपको करते हुये ॥ ६ ॥ वे पहिले जन्ममें निषाद रहे सो अपनी पहिली जातिको जानते रहे और उस अघमर्षण (पापोंके नाश करनेवाले) स्थान में बैठेहुये मातङ्ग सब धर्मों को जानते थे ॥ ७ ॥ महर्षियों की सङ्गति से और नर्मदा के दर्शनसे वे पापबुद्धिको छोड़कर धर्ममें बुद्धिको करतेहुये ॥ ८ ॥ और कहा कि इस समयमें मैं विरक्त व भिक्षुक हूं और चाण्डालयोनियों में पड़ा हूं ऐसे कहकर तदनन्तर हे राजन् ! अशोकवनिका को चलेगये ॥ ९ ॥ जटा और भोजपत्रों को धारण किये कन्द, मूल और

फलोंके खानेवाले देवताओं के हजारवर्षतक शिवजी के पूजन में लगे रहे ॥ १० ॥ वे शिवजी के ध्यानमें परायण व कड़ीतपस्या में स्थित होतेहुये इसीतरह देवताओं के हजारवर्षतक तपस्या करतेहुये उस महात्मा की ॥ ११ ॥ जटाओं के अग्रभाग से उसी क्षणमें निकलीं और आपही आप नर्मदाके जलमें गिरतीहुई अनेकप्रकार की व बेप्रमाण की, अनन्त, कालेरङ्गवाली, बड़ेतेजवाली, सब गहनोसे सजीहुई इक्यासी हजार यक्षिणी ॥ १२ ॥ १३ ॥ इसतीर्थके गभावसे बहुत जल्दी यज्ञलोकों को चलीगई अब मातङ्ग यद्यपि मन्त्रयन्त्र से खालीरहे परन्तु महादेवजी की भक्तिमें तत्परहो ॥ १४ ॥ सब मन्त्रोंमें उत्तम “ अंनमः शिवाय ” इस षडक्षरमन्त्र

नपरस्सोभूद्रेतपसिसंस्थितः ॥ दिव्यं वर्षसहस्रं हि तथा तस्य तपस्यतः ॥ ११ ॥ एकाशीतिसहस्राणि जटाग्रभ्यो वि
निस्सृताः ॥ स्वयंपतन्ति विविधा नर्मदातोयमध्यतः ॥ १२ ॥ तत्क्षणाच्चक्षिणीरूपा अनन्ताश्चाप्रमाणाः ॥ इयाम
वर्णास्सुतेजस्कास्सर्वाभरणभूषिताः ॥ १३ ॥ यक्षलोकं व्रजन्त्याशुतीर्थस्यास्य प्रभावतः ॥ मन्त्रयन्त्रविहीनोऽपि शि
वभक्तिपरायणः ॥ १४ ॥ षडक्षरमिमं मन्त्रं हृदि च क्रीदित्वानिशम् ॥ अंनमः शिवाय इति सर्वमन्त्रोत्तमोत्तमम् ॥ १५ ॥
तस्य भक्तिं परां ज्ञात्वा देवदेव उमापतिः ॥ प्रत्यक्षरूपो भगवाञ्छूलपाणिः समागतः ॥ १६ ॥ उवाच वचनन्देवो मात
ङ्गप्रतिभारत ॥ वरं वृणीष्व भद्रन्ते ध्यानेनानेन सुव्रत ॥ १७ ॥ मातङ्ग उवाच ॥ यदितुष्टोसि देवेश वरं दातुमिहेच्छ
सि ॥ मातङ्गनाम्ना विख्यातिं तीर्थमेतत्प्रयातु वै ॥ १८ ॥ चाण्डालाः श्वपचाश्चैव पापयोनिगता अपि ॥ जपादिरहि
ताश्चापि मुच्यन्ते तत्रापि किल्बिषात् ॥ १९ ॥ मातङ्गनामलिङ्गन्तु नर्मदातीरमाश्रितम् ॥ स्नात्वा यो नार्चयेत्तस्य भवे

को दिन रात अपने मनमें रखतेहुये ॥ १५ ॥ तब उनकी पराभक्ति को जानकर देवताओं के देवता, पार्वतीजी के पति, त्रिशूलको हाथमें लिये, भगवान् महादेवजी प्रत्यक्षरूप आगये ॥ १६ ॥ हे भारत ! मातङ्गसे महादेवजी वचन बोले कि हे सुव्रत ! इस ध्यानसे तुम्हारा कल्याण हो तुम वरको मांगो ॥ १७ ॥ तब मातङ्ग बोले कि हे देवेश ! जो आप प्रसन्नहो और यहां वर देनेकी इच्छा करतेहो तो यह तीर्थ मातङ्ग के नाम से प्रसिद्धिको प्राप्त होवे ॥ १८ ॥ चाण्डाल, श्वपच और भी पापयोनि जीव जप आदिकों से खाली भी हों परन्तु यहांपर पापसे छूटजावे ॥ १९ ॥ नर्मदा के तीर विद्यमान मातङ्ग नाम के लिङ्गका स्नानकर जो पूजनकरे उसका बन्धन

छूटजावे ॥ २० ॥ हे महेश्वर ! हम आपके प्रसादसे इसी वर को चाहते हैं उन मातङ्गके इस वचन को सुनकर फिर महादेवजी बोले ॥ २१ ॥ कि हमारे प्रसाद से ऐसाही हो इसमें कुछ संशय नहीं है ऐसे कहकर महादेवजी उत्तम कैलासपर्वत को चलेगये ॥ २२ ॥ मातङ्ग वरदान को पाकर सब आभूषणों से भूषित, मनमानी सवारीपर सवार बहुत कालतक स्नान के प्रभाव से भोगोंके भोगने के वारसे पार्वती व महादेवजी के पुरको जातेहुये चैत्र महीने में कृष्णपक्ष की जो अमावस है अथवा चतुर्दशी है ॥ २३ ॥ २४ ॥ उसमें जो कुछ वहा होम कियाजावे व दान दियाजावे वह अनन्तफल को देताहै तिलोदक के देनेसे पापयोनि भी जीव कृतार्थ

द्वन्धविमोक्षणम् ॥ २० ॥ इदं वरमहं मन्ये त्वत्प्रसादान्महेश्वर ॥ तस्य तद्वचनं श्रुत्वा प्रत्युवाच शिवांपतिः ॥ २१ ॥ एवमभवत्तत्सर्वं मत्प्रसादान्नसंशयः ॥ एवमुक्त्वाययौ देवः कैलासपर्वतोत्तमम् ॥ २२ ॥ वरं सम्प्राप्य मातङ्ग उमा माहेश्वरम् पुरम् ॥ कामिकं यानमारूढः सर्वाभरणभूषितः ॥ २३ ॥ जगामाशु चिरम्भोक्त्वा भोगान् स्नानप्रभावतः ॥ याचैत्रमासे मावास्या कृष्णपक्षे चतुर्दशी ॥ २४ ॥ तस्यां तत्र हुतं दत्तमनन्तफलमश्नुते ॥ तिलोदकप्रदानेन पापयोनिगता अपि ॥ २५ ॥ सक्त्वा ह्यगुडपिण्डेन पितृन् मोदयते तु यः ॥ पितरस्तस्य तृप्यन्ति यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥ २६ ॥ तिलतण्डुलमिश्रं यः कुर्याद्विहस्य पूजनम् ॥ सोऽपि वर्षसहस्राणि शिवलोकं महीयते ॥ २७ ॥ अशोकवनिकानाम मातङ्गतीर्थमुवाच ॥ रेनाया उचरे कूले कथितान्तवभारत ॥ २८ ॥ अथान्यत्कथयिष्यामि याम्यभागेऽव्यवस्थितम् ॥ तीर्थं मृगवनं नाम सर्वपापप्रणाशनम् ॥ २९ ॥ तत्र स्नात्वा च ये द्विष्णुं शङ्खचक्रगदाधरम् ॥ एकादश्यां महाराज निराहारो निशां

धोजांते ॥ २५ ॥ मातृ गौर गुरुके पिण्डोंसे जो पितरों को प्रसन्न करता है उसके पितर जबतक चौदहों इन्द्र रहते तबतक तृप्त रहते है ॥ २६ ॥ तिलचौरी से मा लिंगाका पूजन करना ॥ २७ ॥ अशोकवनिका मातङ्गनाम का तीर्थ कहाजाता है वह नर्मदा के उत्तरतट में है जो हे भारवा आपरो गढ़ागया ॥ २८ ॥ अथ श्रीर दक्षिण के तरफमें विद्यमान सब पापोंके नाश करनेवाले मृगवन नामके तीर्थको कहेंगे ॥ २९ ॥ वहा स्नान

कर शङ्ख, चक्र और गदाके धरनेवाले विष्णुका पूजनकरे और हे महाराज ! एकादशीमें निराहारहो रातको बितावे ॥ ३० ॥ मृगवन में चन्दन और फूलोंसे हरिका पूजनकरे वहाँ एक ब्राह्मण को भोजन कराने से लाख ब्राह्मण भोजन करानेका फल होता है-॥ ३१ ॥ तिलोदक के देनेसे पितरों को वैष्णवपद होताहै वहीं उत्तम वाराहतीर्थ भी है ॥ ३२ ॥ जहाँ वाराहरूपसे पृथिवी उद्धार कीगई है इसीतरह वड़ेतेजवाले विष्णुने और भी वहा विश्वरूप को धारण कियाहै ॥ ३३ ॥ पतिव्रता स्त्री अथवा सहीनेभर व्रतकी करनेवाली स्त्री वहाँ विधान से स्नानकर निश्चय विष्णु के लोकको प्राप्त होती है ॥ ३४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनुवादे

येत् ॥ ३० ॥ हरिमृगवनेतत्र गन्धपुष्पैश्चपूजयेत् ॥ एकस्मिन्भोजितेविप्रे लक्ष्मभवतुभोजितम् ॥ ३१ ॥ तिलोदक प्रदानेन पितृणांवैष्णवंपदम् ॥ तत्रैवसन्निविष्टन्तु वाराहतीर्थमुत्तमम् ॥ ३२ ॥ यत्रवाराहरूपेण धराचैवसमुद्भूता ॥ विश्वरूपंतथाचान्यद्धरिणामिततेजसा ॥ ३३ ॥ पतिव्रताचनारीवै तथामासोपवासिनी ॥ तत्रस्नात्वाविधानेन लोकंप्राप्नोतिवैष्णवम् ॥ ३४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेमातङ्गाश्रमवर्णनोनामषट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५६ ॥ *

मार्कण्डेयउवाच ॥ आख्यानंकथयिष्यामि ख्यातंमृगवनंयथा ॥ व्याधःकश्चिद्दुराचारः सर्वभूतेषुनिर्दयः ॥ १ ॥ पाशहस्तोधनुष्पाणिर्विचरन्गिरिकन्दरे ॥ आजघानमृगान्सर्वान्कुटुम्बार्थेनृपोत्तम ॥ २ ॥ ज्येष्ठेमासितुसंप्राप्ते नि दाघेज्वलनप्रभे ॥ अमतिस्मृतृषार्तश्च दृजमूलेसमाश्रितः ॥ ३ ॥ रात्रौस्वपितिनिश्चेष्टो दुःखार्तश्चक्षुधान्वितः ॥ वनसं

मातङ्गाश्रमवर्णनोनामषट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५६ ॥

मार्कण्डेयजी बोले कि अब और आख्यान को कहते हैं जैसे मृगवन प्रसिद्ध हुआ एक बहेलिया सच प्राणियोंमें दयासे खाली ॥ १ ॥ फैसरी और धनुष को हाथमें लिये पहाड़ की कन्दरा में घूमताहुआ अपने कुटुम्ब के वास्ते हे नृपोत्तम ! बहुत से मृगोंको मारताहुआ ॥ २ ॥ ज्येष्ठके महीनेको प्राप्तहुये पर और आगके बराबर घाम होनेपर प्यासके मारे विकलहोकरा वह बहेलिया घूमताहुआ व एक पेड़की जड़पर बैठगया ॥ ३ ॥ और रातमें दुःख व लुधासे विकल बेहोश सोगया तब

तक वनकी रगड़से पैदाहुई आग पर्वत की खोहसे उठी ॥ ४ ॥ उसने हरिण और बाघआदि पशुओंसे युक्त वनको जलादिया वह सब वन अच्छीतरह जलकर खाक होगया ॥ ५ ॥ वर्षाकाल विषे कन्याराशिमें सूर्यके आनेपर श्रवणनक्षत्रसे युक्त द्वादशीविषे पुण्यवाले नर्मदा के प्रवाह में जलाहुआ वह सब जंगल बहगया ॥ ६ ॥ वहां जितने सांप जले वे सब नर्मदाके जलके छूनेसे यक्ष होगये उसी क्षणमें दिव्यदेहको धारणाकिये विष्णुलोकके विमानोंपरसवार होतेहुये ॥ ७ ॥ और वह बहेलिया इस तीर्थके प्रभावसे राजा होताहुआ व दशहजार वर्षतक मनोहर भोगोंको भोगताहुआ ॥ ८ ॥ और जितने वहां मृग जले वे सभी गन्धर्व होकर वैष्णवही विमानसे विष्णुलोक

वर्षजोवह्लिसंस्थितोगिरिकन्दरात् ॥ ४ ॥ प्रदग्धंचवनंतेन मृगव्याघ्रसमावृतम् ॥ भस्मीभूतञ्चतत्सर्वं रेणुभूतञ्चकृ
त्सनशः ॥ ५ ॥ मेघागमोक्तकाले तु प्रवाहेनाम्मदेशुभे ॥ कन्याराशिगतेभानौ द्वादश्यांश्रवणेन तु ॥ ६ ॥ नर्ममदातोय
संसर्गाद्यन्नाजातास्तुपन्नगाः ॥ तत्क्षणाद्विव्यदेहास्तु वैष्णवंयानमास्थिताः ॥ ७ ॥ सव्याधश्चाभवद्राजा तीर्थस्यास्यप्रभा
वतः ॥ दशवर्षसहस्राणि भोगान्मुहुक्ते मनोहरान् ॥ ८ ॥ येषिदग्धामृगास्तत्र तेपिगन्धर्वतांगताः ॥ वैष्णवेनैवयानेन
प्राप्तास्तुवैष्णवम्पदम् ॥ ९ ॥ अवशःस्ववशोवापि यस्तुप्राणान्परित्यजेत् ॥ दिव्यवर्षसहस्रान्तु विष्णुलोकैःसमोदते ॥
१० ॥ तिलोदकप्रदानेन पितॄणांपरमागतिः ॥ मनोरथं नामतीर्थमन्यत्परमसिद्धिदम् ॥ ११ ॥ त्रिषुलोकैषुविख्यातं
रेवातीरसमुद्भवम् ॥ यंयंप्राप्यतेकामं तंतस्नात्वापिमानवः ॥ १२ ॥ सर्वचसमवाप्नोति तीर्थस्यास्यप्रभावतः ॥ अ
ङ्गारावर्तसंभेदो गोसहस्रफलप्रदः ॥ १३ ॥ अङ्गारेऽम्बरदेवश्च तत्रतिष्ठतिसङ्गमे ॥ स्नानमात्रोनरस्तत्र गाणपत्यमवा

को जातेहुये ॥ ९ ॥ परवश व अपने वश होकर जो प्राणोंको छोड़ता है वह देवताओंके हजार वर्षतक विष्णुलोक में आनन्द करता है ॥ १० ॥ तिलोदक के देने से पितरों की परमगति होती है परमसिद्धिका देनेवाला एक और मनोरथनाम का तीर्थहै जोकि तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध व नर्मदा के तटमें उत्पन्न हुआहै उस तीर्थमें मनुष्य स्नानकर जिस जिस मनोरथ को चाहता है उस उस ॥ ११ ॥ १२ ॥ सबको इस तीर्थके प्रभाव से पाताहै अंगारावर्त नामका जो संगमहै वह हजार गोदान

के फलका देनेवाला है ॥ १३ ॥ उस संगम में अंगारेद्वार देवभी विद्यमान हैं वहां स्नानमात्र करनेवाला मनुष्य गर्शोका मालिक होता है ॥ १४ ॥ हे भारत ! जब चौथि के दिन मंगलवार होवे तब सोनेकी नराकार, मूर्त्तिको बनवाकर लालेकण्डसे लेपे ॥ १५ ॥ घी और गुड़से भरेहुये तावेके पात्रको और उस मूर्त्तिआदि सबसामानको विधिपूर्वक विशेषकरके वेदके पढ़नेवाले ब्राह्मणको देवे ॥ १६ ॥ इस तीर्थपर इस दानके प्रभावसे इन्द्रके आधे आसन का भोगनेवाला होता है जिससे पाप बड़ेकड़े व बहुत दुःखोंके देनेवाले हैं ॥ १७ ॥ इससे पाप नहीं करना चाहिये क्योंकि वह अपने को बड़ी तकलीफ का देनेवाला है जिस समयमें व जिस जगहपर जैसी उमर

पुन्यात् ॥ १४ ॥ अङ्गारश्चतुर्थ्याञ्च यदाभवतिभारत ॥ हिरण्यपुरुषं कृत्वा रक्तवस्त्रेण वेष्टयेत् ॥ १५ ॥ दृतपूर्णताञ्च पात्रं गुडेनापि प्रूरितम् ॥ तत्सर्वं विधिवद्वाच्छ्रोत्रियाय विशेषतः ॥ १६ ॥ दानतीर्थप्रभावेण शक्राह्वासनभागभवेत् ॥ यस्मात्पापानि दुःखानि तीव्राण्यपि बहून्यपि ॥ १७ ॥ तस्मात्पापं न कर्तव्यमात्मपीडाकरहितम् ॥ यस्मिन्कालेच देशेच वयसायादृशेनच ॥ १८ ॥ कृतं शुभाशुभं कर्म तत्तथा तेन भुज्यते ॥ तस्मात्सदैव दातव्यमविच्छिन्नतयार्थिने ॥ १९ ॥ विच्छिद्यन्ते न्यथा भोगा ग्रीष्मे कुसरितो यथा ॥ संसेव्यते यथा देवी सप्तकल्पवहा शुभा ॥ २० ॥ संसारस्य समुच्छिर्यै ज्ञानयोगं ब्रवीमि ते ॥ शिवप्रकाशकं ज्ञानं योगस्तत्रैव चिन्तितः ॥ २१ ॥ दुर्विज्ञेय गतियोगो नर्मदाशिवसन्निधौ ॥ शिवाज्ञावर्तते तत्र स्नानपूजाविधिर्यथा ॥ २२ ॥ समिद्धान्ता विरोधेन पुस्तकैर्न विरोधयेत् ॥ धर्मज्ञानापवर्गार्थं

से ॥ १८ ॥ भला बुरा कर्म किया गया है वह वैसेही उस करके भोगा जाता है तिससे हमेशा निरन्तर सांगनेवालेके लिये अपनी शक्तिके अनुसार कुछ देना चाहिये ॥ १९ ॥ बिना दानके दिये सब भोग कटजाते हैं जैसे ग्रीष्म ऋतु में छोटी नदियां सूखजाती हैं जिससे सात कल्पतक बहनेवाली और पुण्यवाली नर्मदादेवी सेई शिवके विप्रयका जो योग है उसकी गति किसी के जाननेयोग्य नहीं है नर्मदा में स्नान और पूजाकी जैसी विधि है उसमें शिवकी आज्ञाही प्रमाण है ॥ २२ ॥ वह

सिद्धान्त और पुरतकों से जिसतरह विरोध न हो उस तरह होना चाहिये ऐसे करने से मनुष्य धर्म, अर्थ, ज्ञान और मोक्षको साथही पाताहै ॥ २३ ॥ आगे पंछे के विरोधमें कहीं भी प्रयोजन नहीं होताहै पहले से तर्कका देखकर भी वेदके साथ में न करे ॥ २४ ॥ तिससे विद्वान् पुरुष करके शास्त्र और युक्ति इन दोनों से सदा सिद्धान्तका विचार करने योग्य है अकेले अन्दाजही से सिद्धान्तका विचार नहीं करना चाहिये ॥ २५ ॥ जिसका फल छोटा बड़ा कहागया है उसका विचार अनेकतरह से कहागया है तिससे परीक्षाको करै कि कौन बड़ेफलवाला और पुण्यवाला उत्तम कर्म है ॥ २६ ॥ और बुद्धिमान् मनुष्य पाखण्डी, कुकर्मि, वैडाल-

सहितांविन्दतेनरः ॥ २३ ॥ पूर्वोत्तरविरोधेन कुत्रार्थोभिमतोभवेत् ॥ दृष्ट्वाद्यमूलतस्तर्कं श्रुत्यासहविवर्जयेत् ॥ २४ ॥ तस्मादागमयुक्तेन सदात्मार्थविचारणम् ॥ कर्तव्यंनानुमानेन केवलेनविपश्चिता ॥ २५ ॥ हीनोत्तमाद्यस्यफलं बहुधा स्वश्चतस्मृतम् ॥ तस्मात्परीक्षांकुर्वीत पुण्यंसाधुमहत्फलम् ॥ २६ ॥ पाखण्डिनोविकर्ममस्थान् वैडालव्रतिकाञ्छुः ॥ वज्रयेदूदूरतोधीमान् हेतुक्यांस्तीर्थनिन्दकान् ॥ २७ ॥ दिगम्बराञ्छ्वेतपटान् येचान्येहेतुवादिनः ॥ एतस्महनसंवादं संसर्गेनकथञ्चन ॥ २८ ॥ विपरीतकलौधर्मं नगनामुण्डामलाशिनः ॥ तस्मात्तच्चपरित्यज्य व्रताधर्मं समाचरेत् ॥ २९ ॥ प्रमाणंसर्वधर्मेषु ब्रह्मविष्णुशिवोदितम् ॥ अन्यथाकुरुतेयस्तु नरकेपततिध्रुवम् ॥ ३० ॥ सर्वेषामेवशास्त्राणामेवंशास्त्रविनिश्चयः ॥ सेव्यतांकल्पगादेवी शिवपूजार्तैस्सदा ॥ ३१ ॥ पितृणांतर्पणंकुड्यार्द्रिजांदद्याच्चभिद्धवे ॥ कारुण्यंसर्वभूतेषु नर्ममदाख्यानचिन्तनम् ॥ ३२ ॥ इदंज्ञानमशेषञ्च सर्वकर्मविशोधनम् ॥ आदिम

व्रतिक, शठ, तर्कवाले, नागा, सफेद कपड़ेवाले और तीर्थोंके निन्दकों को दूरसे छोड़देवे व और जो तर्कसे बात करतेहों उनके साथ बात और उनका संसर्ग कभी न करे ॥ २७ ॥ २८ ॥ नागा, मुण्डा और अधोरियोंने कलियुग में धर्मको उलटा करदियाहै तिससे उसको छोड़कर बाकीरहे तीन युगों का धर्मकरे ॥ २९ ॥ सब धर्मोंके बीचमें ब्रह्मा, विष्णु और शिवजीकाही कहाहुआ धर्म प्रमाणहै जो और तरहसे करताहै वह निश्चय नरक में गिरता है ॥ ३० ॥ सभी शास्त्रोंका यही निश्चय है कि महादेव के पूजन करनेवाले नर्मदा का सेवन हमेशा कियाकरे ॥ ३१ ॥ पितरोंका तर्पणकरे और भिखारी को भीख देवे, सब प्राणियोंपर दयाकरे और नर्मदा

की कथाको विचारे सब कर्मोंका अतिशुद्ध करनेवाला यही पूरा ज्ञान है आदि, मध्य और अन्तसे रहित, अपने स्वभावहीसे निर्मल, प्रभु ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ सबके जानने वाले और सबतरह से पूर्ण शिवशास्त्र में शिवजी जानने योग्य हैं उनका कहा हुआ ज्ञान निःसन्देह सब प्रयोजनोंका सिद्ध करनेवाला है ॥ ३४ ॥ जो सबका जानने वाला, सम्पूर्ण, स्वभाव से निर्मल और सब दोषोंसे रहित शिव है वह मिथ्या कैसे कह सका है ॥ ३५ ॥ और विना शिवजी की आज्ञा संसार की सृष्टि कैसे हो सकती है जो मायासे कहो तो वह जड़वस्तु है और जीवसे कहो तो वह भी अज्ञानी है ॥ ३६ ॥ परमाणु आदि जो माया है वह जड़ है वह बुद्धिवाले दूसरे सहायक के बिना

ध्यानतरहितः स्वभावविमलः प्रभुः ॥ ३३ ॥ सर्वज्ञः परिपूर्णश्च शिवो ज्ञेयः शिवागमे ॥ सर्वार्थसाधकं ज्ञानं तत्प्रणीतमसं शयम् ॥ ३४ ॥ यः सर्वज्ञः सुसम्पूर्णः स्वभावविमलः शिवः ॥ सर्वदोषविनिर्मुक्तः सब्रयात्कथमन्यथा ॥ ३५ ॥ शिवा ज्ञामन्तरेणापि जगत्सृष्टिः कथम्भवेत् ॥ अचैतन्यात्प्रधानेन अज्ञत्वात्पुरुषस्य च ॥ ३६ ॥ प्रधानं परमाण्वादि यावत्किञ्चिदचेतनम् ॥ तन्नकर्तृस्वयं द्रष्टुं बुद्धिमत्करणं विना ॥ ३७ ॥ न यथा घटमानेन सृष्टि एतदुच्यते ॥ तथा ज्ञा बुद्धिभावेन न तिष्ठेत्प्रकृतिः स्वयम् ॥ ३८ ॥ धर्मार्थमोपदेशो न धर्मार्थमविचारणम् ॥ सर्वज्ञेन विना ज्ञातुं नादिसं प्रसिद्ध्यति ॥ ३९ ॥ यथानादिप्रवृत्तौ यं घोरः संसारसागरः ॥ शिवोऽपि हितथानादिः संसारान्मोचकः स्मृतः ॥ ४० ॥ व्याधीनाभिषेज्य दत्तं प्रतिपद्यं स्वभावतः ॥ तद्वत्संसारघोराणां प्रतिपद्यः शिवः स्मृतः ॥ ४१ ॥ वैद्यं विना निराक्रन्दाः

आपही करनेवाली व देखनेवाली नहीं हो सकती है ॥ ३७ ॥ जैसे विना किसी चेष्टा करनेवाले के मट्टी का पिण्ड आपही कुछ काम नहीं कर सका इसी तरह बुद्धिवाली वस्तु के बिना जड़ माया आपही नहीं रह सकती है ॥ ३८ ॥ इससे इस अनादि संसार में धर्म और अधर्म का सिखलाना व धर्म और अधर्म का विचार सब जानने वाले के बिना कभी नहीं हो सका है ॥ ३९ ॥ जैसा यह घोर अनादि संसारसागर बना है इसी तरह इस संसारसे छुड़ानेवाले अनादि शिवभी कहे गये हैं ॥ ४० ॥ जैसे दवा रोगों का वैरी अपने स्वभावही से है इसी तरह जन्म मरणरूपवाले घोर संसार के शत्रु शिवभी कहे गये हैं ॥ ४१ ॥ वैद्यके बिना जैसे आनन्दरहित रोगी

दुःख पाते हैं इसीतरह शिवजी के बिना सब जगत् दुःख पाता है ॥ ४२ ॥ तिससे चारोंतरफ से पूर्ण, सबके जाननेवाले, सबसे श्रेष्ठ और अनादि शिवजीही हैं इन से और कोई पुरुष इस संसारसागर में रक्षा करनेवाला नहीं है ॥ ४३ ॥ अपने हृदयमें शिवको धरेहुये जो लोग शिवके कहेहुये ज्ञानका अभ्यास करते हैं तिनको जो वेदप्रमाण है तो ज्ञान जरूर होता है ॥ ४४ ॥ सब जीवोंकी रक्षा करनेवाली पृथिवी में यह नर्मदाही है जोकि पानी के रूपसे विद्यमान होरही लोकोंपर दया करनेवाली देवी है ॥ ४५ ॥ व नरकमें गिरतेहुये स्थावर और जंगम चारों प्रकारके जीवोंके समूह को यही भगवती निरुचय से उच्चार करती है ॥ ४६ ॥ हे नरश्रेष्ठ !

ह्रियन्ते रोगिणो यथा ॥ शिवेन तु विना सर्वं निराक्रन्दं जगत्तथा ॥ ४२ ॥ तस्मादनादिः सर्वज्ञः परिपूर्णः परः शिवः ॥
अस्ति नातः परित्राता पुमान्संसारसागरे ॥ ४३ ॥ येभ्य सन्ति शिवज्ञानं हृदये शिवभाविताः ॥ यदि वेदाः प्रमाणन्तु ते
षां ज्ञानं प्रजायते ॥ ४४ ॥ इयञ्च सर्वभूतानां शरणम्भुवि नर्मदा ॥ अपारं रूपतया देवी लोकानुग्रहकारिणी ॥ ४५ ॥
स्थावरं जङ्गमं चैव भूतग्रामं च तु विधम् ॥ भगवत्युद्धरत्येषा पतन्तं नरकेश्रुवम् ॥ ४६ ॥ एवं ज्ञात्वा नरश्रेष्ठ शिवमन्वीक्ष्य
कल्पगाम् ॥ उच्चैर्गृहाणि दिव्यानि धनधान्यानि च ॥ ४७ ॥ सर्वोपस्कर दिव्यानि ब्राह्मणेभ्यो निवेदयेत् ॥ अना
यायाति वृद्धाय विकलाय कुटुम्बिने ॥ ४८ ॥ काष्ठमृन्मयगेहञ्च यो द्विजाय प्रयच्छति ॥ एवं विधानं गृहान् रम्यान् सर्व
तो मरकटके ॥ ४९ ॥ कारयेच्च पुमान् दिव्यांस्तस्य पुण्यफलं शृणु ॥ कितस्य बहुभिर्दैतैर्दानं भवति भारत ॥ ५० ॥ एत
देवपरं दानं सर्वकामार्थसाधकम् ॥ यः शृणोति नरो भक्त्या सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ५१ ॥ इति सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५१ ॥

ऐसा जानकर नर्मदाको महादेवही समझकर धन और अन्नसे भरेहुये, सब दिव्य सामानसे सजेहुये बड़े ऊँचे दिव्य मकान ब्राह्मणोंको देवे अनाथ, विकल, कुटुम्ब वाले और अतिवृद्धे ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ ब्राह्मणके लिये जो काठ व मट्टीके मकानको देता है व ऐसेही रमणीक दिव्य मकानोंको जो पुरुष अमरकण्टकमें बनवाता है उस की पुण्यके फलको तुम सुनो उसको बहुत दानोंके देनेसे क्या है हे भारत ! ॥ ४९ ॥ ५० ॥ सब मनोरथ व सब प्रयोजनों का सिद्ध करनेवाला यही श्रेष्ठ दान है जो मनुष्य इसको भक्तिसे सुनता है वह सब पापोंसे छूटजाता है ॥ ५१ ॥ इति श्रीरत्नन्दपुराणैरेवाखण्डे प्राकृतभाषा अनुवादेन मर्मदाहात्म्ये सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५१ ॥

युधिष्ठिरजी बोले कि हे देव ! इस बड़े गुप्त वृत्तान्त को सुनकर अब गौर्वोकी उत्पत्ति और ब्रह्मकूर्चके माहात्म्यको हम आपसे तत्त्वपूर्वक सुना चाहते हैं ॥ १ ॥ हे भगवन् ! आप सब कहो कि गोलोक कैसा कहागया है और किस कर्म करनेसे मिलताहै और उसमें हमेशा कौन रहा करते हैं ॥ २ ॥ तब मार्कण्डेयजी बोले कि महादेवजी को नमस्कार करके सब कामोंसे भरेहुये, सब लोकोंके ऊपर २ विद्य मान उत्तम मातारूप गौर्वोके लोकको हम यथावत् कहतेहैं तुम सुनो पहले सब से नीचे सात पाताल हैं तिसमें पहला पाताल पातालही कहलाताहै ॥ ३४ ॥ चारोंतरफसे जितनी नापवाली पृथिवीहै उसके नीचे उतनेही प्रमाणवाले वे पाताल

युधिष्ठिरउवाच ॥ श्रुत्वैतत्परमंगुहं गवान्देवममुद्भवम् ॥ ब्रह्मकूर्चस्य माहात्म्यं श्रोतुमिच्छामितस्त्वतः ॥ १ ॥ आख्याहि भगवन् सर्वं गोलोकः कीदृशः स्मृतः ॥ प्राप्य ते कर्मणोऽकेन केतस्मिन्ननिशं स्थिताः ॥ २ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ श्रूयतामभिधास्यामि नमस्कृत्य महेश्वरम् ॥ गोमातृलोकं परमं सर्वकामसमन्वितम् ॥ ३ ॥ यथावत् सर्वलोकानामुपमाणं तस्याधः समुद्रास्तानि च त्वत् ॥ ४ ॥ यावत् प्रमाणं परितः परिच्छिन्नं महीतलम् ॥ तावत्प्रतः ॥ ५ ॥ सहस्रयोजनोत्सेधस्तस्याभ्यन्तरतस्तथा ॥ विवराणां समस्तानां सहस्राणि दशार्द्धानि तस्तमाहात्म्यं नाम तस्तु महीतले ॥ दिव्यदिव्योपसम्पन्नः श्रीमच्चामीकरद्युतिः ॥ ७ ॥ तेषां रुचिरनिकेतनः ॥ अनन्तो नन्तधामाच मुकुन्दो नृपशैवलः ॥ ८ ॥ ततोरसातलं नाम शिवसंतोषभूमिकम् ॥ वासुकेर्नागराज

और समुद्र है ॥ ५ ॥ उन हरएक पातालों की उंचाई की प्रमाण पांच हजार योजनकी कहींगई है और वैसेही उनके अन्दरभी हजार योजनकी उंचाईहै तदनन्तर जितने पाताल हैं वे सब नव २ हजार योजन के विस्तारवाले हैं ॥ ६ ॥ ७ ॥ उन सबकी उत्तम तारीफ़ उनके नामोंसे पृथिवी में प्रसिद्ध है वृ जो उम्दासे उम्दा शोभासे युक्त सोनहला चमकवालाहै ॥ ८ ॥ उस पहले पातालमें अपने स्थानको बनायेहुये शेषनाग हमेशा रहते हैं हे नृप ! और भी वहां अनन्त, अनन्तधाम,

मुकुन्द और दैवलश्रादि नाग रहते हैं ॥ ९ ॥ तिसके नीचे महादेवजी जिसकी जमीनमें प्रसन्न रहते हैं ऐसा दूसरा रसातल नाम का पाताल है वहां वासुकिनाम के नागराजका बहुत अच्छा पुर है ॥ १० ॥ और दानवोंके राजा सुरलोमा का भी वहां बड़ाभारी शहर है व गरुड़का पुर है औरभी सब बड़े महात्मा दैत्योंके शहर हैं ॥ ११ ॥ फिर उसके नीचे सुतलनामका पाताल है जिसकी जमीन कैकरीली है वहीं सदा स्वस्तिक आदि नागराजोंकी बस्ती है ॥ १२ ॥ और वहीं वैरोचन और हिरण्यआदि महात्मा दानवों के राजाओं का उत्तम स्थान है ॥ १३ ॥ उसके नीचे उन सब पातालों में बड़ा अतल इस नामका पाताल कहा गया है उसकी जमीन केवल

स्य तत्रचारुमहापुरम् ॥ १० ॥ पुरंचसुरलोमनस्तु दानवाधिपतेर्महत ॥ सुपर्णस्यचदैत्यानामशेषाणामहात्मना
म् ॥ ११ ॥ ततःसुतलनामास्ति शर्कराञ्चितभूमिकम् ॥ नागादीनांस्वस्तिकानां तत्रैववसतिःसदा ॥ १२ ॥ दानवा
धिपतीनाञ्च तत्रैवनिलयःपरः ॥ वैरोचनहिरण्यप्रभृतीनामहात्मनाम् ॥ १३ ॥ ततश्चातलमित्युक्तं पाताला
नान्तुतस्यैव ॥ तेषामूर्ध्वस्तुसर्वेषां मृन्मयंचतलंक्षितैः ॥ १४ ॥ असुराधिपतेस्तावत्कालेनेमेमहापुरम् ॥ चारुचामी
कराभासं वैनतेयस्यचापरम् ॥ १५ ॥ ततश्चवितलंनाम पातालंरक्तभूतलम् ॥ तस्मिन्महान्तकोनाम दानवेन्द्रकृताल
यः ॥ १६ ॥ तालकोग्निमुखस्तस्मिन्नलह्लादश्चदानवाः ॥ निवसन्तिकृतागारास्तथाप्रह्लादवर्चसः ॥ १७ ॥ पातालंवि
तलंनाम शुक्लंक्षितितलंततः ॥ कम्बलाश्वतरौनागौ सहितौतत्रतिष्ठतः ॥ १८ ॥ महाजम्भहयग्रीवप्रभृतीनामहात्म
नाम् ॥ वाराणस्यसुरेन्द्राणां निवासस्तत्रकल्पितः ॥ १९ ॥ कृष्णक्षितितलंतस्मात्पातालतलसंज्ञकम् ॥ शङ्खकर्णभ

मिष्टकी है ॥ १४ ॥ उसमें पहले दैत्योंके राजा कालनेमि का बड़ा शहर है और अच्छे सोनेके कामवाला दूसरा गरुड़का भी शहर है ॥ १५ ॥ उसके नीचे लाल जमीनवाला वितलनाम का पाताल है, उसमें महान्तक नामका दानवेन्द्र मकान की बनाये हुये ॥ १६ ॥ और वही तालक, अग्निमुख, नलह्लाद तथा प्रह्लाद वचो आदि दानवलोग मकान बनायेहुये बसते हैं ॥ १७ ॥ उसके नीचे फिर वितल नामका पाताल है उसकी जमीन सफेद है वहां कम्बल और अश्वतर ये दोनों नागराज साथही रहते हैं ॥ १८ ॥ और महाजम्भ और हयग्रीवआदि कार्षिके महात्मा दानवोंका भी वही निवास है ॥ १९ ॥ उसके नीचे पातालतल नामका पाताल

है उसकी जमीन काली है उसमें शंकुकर्ण, महानाद और नमुचिका मकान है ॥ २० ॥ और सातवें पाताल के ऊपर सातद्वीपवाली पृथिवी विद्यमान है जो कि सात समुद्र और पर्वतों से युक्त शोभित होरही है ॥ २१ ॥ उसके बीच में जम्बूद्वीप है तिसके बीचमें सप्तद्वीप है उससे परे शाल्मलीद्वीप है उसके बाहर कुशद्वीप है ॥ २२ ॥ उसकेबाद क्रौञ्चद्वीप है तिसके बाहर शाकद्वीप है उससे परे सातवां पुष्करद्वीप कहागया है ॥ २३ ॥ इन्हीं द्वीपों सात समुद्र भी हैं जैसे क्षारोद, इक्षुरसोद, सुरोद, वृतोद, दधितोय, क्षीरोद और सातवां स्वादूद समुद्र कहागया है ॥ २४ ॥ सातोंद्वीप और सातों समुद्र एक से दूसरा दून है यही उनके विस्तारका प्रमाण है

हानादनमुचीनानिकेतनम् ॥ २० ॥ पातालात्सप्तमादूर्द्ध्वं सप्तद्वीपामहीस्थिता ॥ समुद्रैस्सप्तभिर्युक्ता पर्वतैस्समलंकृता ॥ २१ ॥ जम्बूद्वीपश्चतन्मध्ये पृथ्वीपस्ततःपरः ॥ ततश्च शाल्मलीद्वीपः कुशद्वीपश्चतद्वहिः ॥ २२ ॥ क्रौञ्चद्वीपश्च परतः शाकद्वीपश्चतद्वहिः ॥ परतः पुष्करद्वीपः सप्तमः परिकीर्तितः ॥ २३ ॥ क्षारोदकश्चेक्षुरसः सुरोदश्च वृतोदधिः ॥ दधितोयः क्षीरपूर्णः स्वादूदः सप्तमः स्मृतः ॥ २४ ॥ सप्तद्वीपसमुद्राणां द्विगुणद्विगुणान्तरः ॥ प्रमाणविस्तरोज्ञेयो नियुतः प्रथमः स्मृतः ॥ २५ ॥ हिमवान्हेमकूटश्च निषधश्चेतिदक्षिणे ॥ नीलश्च श्वेतः शृङ्गश्च मेरोरुत्तरतः स्मृताः ॥ २६ ॥ मेरुरस्ति स्थितो मध्ये जम्बूद्वीपस्य भारत ॥ शाल्यवान्पूर्वतो ज्ञेयः पश्चिमे गन्धमादनः ॥ २७ ॥ एते पर्वतराजानो जम्बूद्वीपेन वः स्मृताः ॥ पृथ्वीपादिषु ज्ञेयाः सप्तमसप्तमैव पर्वताः ॥ २८ ॥ पुष्करद्वीपमध्ये तु पर्वतो वलयाकृतिः ॥ एकः स्मृतः सप्तमन्ताच्च नामतो मानसः स्मृतः ॥ २९ ॥ विन्ध्यो नाम महाभागो जम्बूद्वीपे व्यविस्थितः ॥ यत्रैषानर्ममदा देवी पुवन्ती

तिसमें पहला एक लाख योजनका है ॥ २५ ॥ सुमेरु पर्वत के दक्षिण में हिमवान् हेमकूट और निषध ये तीन पर्वत हैं और सुमेरु के उत्तर में नील, श्वेत और शृङ्गवान् ये तीन पर्वत कहे गये हैं ॥ २६ ॥ हे भारत ! सुमेरु पर्वत जम्बूद्वीपके बीचमें वर्तमान है और उसके पूर्वमें शाल्यवान् और पश्चिममें गन्धमादन जानने योग्य है ॥ २७ ॥ और जम्बूद्वीपमें ये नव पर्वत पर्वतों के राजा कहे गये हैं और सप्त आदि द्वीपों सातही सात पर्वत जानने योग्य हैं ॥ २८ ॥ पुष्करद्वीपके बीचमें एकही पर्वत कहा गया है जो कि चारों तरफ से कड़ा के आकार बना हुआ है उसका नाम मानस है ॥ २९ ॥ जम्बूद्वीप में बड़े भाग्यवाला विन्ध्यनाम का पर्वत वर्तमान है जहां लोकों के

तारनेवाली यह नर्मदादेवी बहती है ॥ ३० ॥ विन्ध्यपर्वतका छोटाभाई दक्षिण में सह्यानामका पर्वत है यह पृथिवी कछुये की पीठि ऐसी बनी हुई है जिसके चारोंतरफ से नहला मगडल है ॥ ३१ ॥ नह पृथिवी ज्ञानी के वारते परमाणुरूप कही गई है वैसेही उसका प्रमाण दशकरोड योजन का कहा गया है ॥ ३२ ॥ उसके किनारे चारोंतरफ लोकालोक इस नामसे प्रसिद्ध पर्वत है वह बड़ा भारी और सोनेका बना हुआ बड़ी शोभावाला सीधा गोलाई है ॥ ३३ ॥ अद्वा उसका हजार योजन का है इसी हिसाब से विस्तार भी है उसके अद्वा में सूर्य हैं ॥ ३४ ॥ वे इधर उजियाला करते हैं और पिछली तरफ नहीं कर सकतें हैं इसीसे यह श्रेष्ठ पर्वत लोकालोक ऐसा

लोकनारिणी ॥ ३० ॥ विन्ध्यस्य चानुजो भ्राता सहोदक्षिणतः स्मृतः ॥ उर्वीकूर्ममतलाकारा काञ्चनीपरिमण्डला ॥
३१ ॥ अणुरेव तथा सा तु निर्दिष्टातिविदः क्षितिः ॥ तस्याः प्रमाणं निर्दिष्टं दशयोजनकोटयः ॥ ३२ ॥ लोकालोक इति
ख्यातस्तस्याः प्रान्ते समन्ततः ॥ स्फीतो हेममयः श्रीमान् सरलः परिमण्डलः ॥ ३३ ॥ योजनानां सहस्राणि चार्द्धम
स्य व्यवस्थितम् ॥ तावदेव च विस्तीर्णं तदद्धेमानुराहितः ॥ ३४ ॥ प्रकाशयति सज्ज्योतिः परभागे न्यहन्यते ॥ लोका
लोक इति प्रोक्तस्ततो सावचलो महान् ॥ ३५ ॥ लोकालोक वसानो यं भूर्लोकः परिकीर्तितः ॥ गन्धर्वयक्षरक्षोभिः पिशा
चैश्च निषेवितः ॥ ३६ ॥ मानुषैः पशुभिश्चैव मृगपक्षिमरीसृपैः ॥ स्थावरैर्विविधाकारैर्भूतैरतैश्च षड्विधैः ॥ ३७ ॥ भूर्लोक
श्च भुवर्लोकौ यावदादित्यमण्डलम् ॥ वसन्ति स तं रुद्रास्स ततं वक्रभास्कराः ॥ ३८ ॥ आदित्यमण्डलादूर्ध्वं स्मृता
स्वर्लोकसंस्थितिः ॥ विमानकोटयस्तस्मिन् नष्टाविंशतिराशयः ॥ ३९ ॥ मेढाभूतो विमानानां सर्वेषामुपरि ध्रुवः ॥ नि

कहा गया है अर्थात् उसके इधर लोक है और उधर लोक नहीं है ॥ ३५ ॥ वस लोकालोक पर्वत तक यह भूर्लोक कहा गया है जो कि गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, पिशाच, मनुष्य, पशु, हरिण, पक्षी सांप इन अनेक प्रकारके आकारवाले स्थावर और छह प्रकारके जीवों से सेवित है ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ यह भूर्लोक है इसके बाद सूर्यमण्डल तक भुवर्लोक है उसमें निरन्तर सूर्य जिनके मुखमें हैं ऐसे रुद्र हमेशा रहा करते हैं ॥ ३८ ॥ सूर्यमण्डल के ऊपर स्वर्लोक की स्थिति कही गई है उसमें अष्टाईस करोड़ विमान

है ॥ ३६ ॥ सब विमानों के ऊपर कोल्हूकी जाटकी तरह ध्रुवहैं इन्हीं वायुके सात पर्त लगेहुये हैं ॥ ४० ॥ पहला पर्त पृथिवी से मेघमण्डल तक है उनका नाम आहव है जितनी चीजें इकट्ठी रहतीहैं वह उनका एकजिन करनेवालाहै ॥ ४३ ॥ दूसरा पर्त प्रवह नाम का है वह सूर्यमण्डल में वैशाहुआहै व यह तीसरा सुन्दर पर्त मेवह नाम का प्रतिष्ठितहै ॥ ४२ ॥ चौथा पर्त सोढह नाम का नक्षत्रमण्डल में वर्तमान है तदनन्तर पांचवें और छठवें इन दोनों पर्तोंका विमानों को उड़ाना यही कामहै ॥ ४३ ॥ ध्रुव से एक कोण्ड योजन ऊंचेपर महर्लोक है पखिह नाम का सातवां वायुका पर्त ध्रुव में वैशाहुआ है ॥ ४४ ॥ सब पर्तोंके ऊपरवाला यह

गुताअनिलस्कन्धास्सप्तान्तरस्थिताः ॥ ४० ॥ पृथिव्याःप्रथमःस्कन्धः स्थितश्चाभेघमण्डलम् ॥ आहवोनाम वैवातो व्यूहानांव्यूहकृत्तथा ॥ ४१ ॥ द्वितीयःप्रवहोनाम निवद्धःसूर्यमण्डले ॥ तृतीयःसंवहोनाम सुस्कन्धोसौप्रतिष्ठितः ॥ ४२ ॥ चतुर्थस्सोढहस्कन्धः स्थितोजनत्रमण्डले ॥ ततोद्वयोर्विनिदिष्टा विमानोदहनक्रिया ॥ ४३ ॥ योजनानांध्रुवःकोटिर्महर्लोकःसमुच्छ्रितः ॥ स्कन्धःपरिवहोनाम निवद्धःसप्तमोध्रुवे ॥ ४४ ॥ अन्नादीनिकरोत्येष पर्वणामुपरिस्थितः ॥ विनिर्घृत्तविकाराणामधिवासोमहात्मनाम् ॥ ४५ ॥ तत्राधिकारिदेवानामष्टाविंशतिकोटयः ॥ जनास्त्वर्लोकमागत्य नियोगात्पद्मजन्मनः ॥ ४६ ॥ स्थितामन्वन्तरंतत्र स्वव्यापारानुसृयिनः ॥ आरुह्यचमहर्लोकमागच्छन्ति ततःपुनः ॥ ४७ ॥ ब्रह्मणोदिवसैकेन देवास्स्वर्गंचतुर्दश ॥ क्रमेण कृत्वाकर्मणि महर्लोकेवसन्ति ते ॥ ४८ ॥ कोटिद्वयंमहर्लोकान्जनलोकःसमुच्छ्रितः ॥ साध्यानामनुगस्तत्र वसन्ति सुखिनःसदा ॥ ४९ ॥ योजनानांचतुष्कोट्यो

पर्त अन्नआदि को पैदा करता है विगड़नेवाली चीजों के स्थान हेःखुके अन्न आगे महात्माओं के स्थानहैं ॥ ४५ ॥ महर्लोक में हुक्मत करनेवाले अष्टादिस करोड़ देवता रहते हैं वे देवता ब्रह्माकी आज्ञासे जनलोक से स्वर्गलोक को आकर ॥ ४६ ॥ अपने कामकी समाप्तिपर्यन्त एक मन्वन्तर तक वहां रहतेहैं फिर वहांसे चढ़कर महर्लोक को चलेजाते हैं ब्रह्मा के एक दिनमें चौदह देवता स्वर्गमें आते है व क्रमसे अपने कानोंको कर फिर वे महर्लोक से वसते है ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ महर्लोक से

जनलोक दो करोड़ योजन ऊँचेपर है वहाँ साध्य नाम के देवता सदा सुखी रहते हैं ॥ ४६ ॥ जनलोक से चार करोड़ योजन ऊँचेपर तपलोक है वहाँ ब्रह्मा के पुत्र प्रजापति लोग रहते हैं ॥ ५० ॥ तपलोक से सत्त्वलोक छह करोड़ योजन ऊँचेपर है वहाँ देवता और दैत्योंसे युक्त ब्रह्मा रहते हैं ॥ ५१ ॥ ब्रह्मलोकसे विष्णुलोक दूना ऊँचा है ब्रह्मलोक के ऊपर विस्तार से युक्त वह बड़ा दिव्यलोक है ॥ ५२ ॥ उसके ऊपर विष्णुलोक के बाद वाईस करोड़ योजनका विस्तारवाला श्रीमान् शिवजीका श्रेष्ठलोक है ॥ ५३ ॥ जोकि हजारों सूर्योंके समान तेजवाला है और सब कामनाओंसे संयुक्त है अनेक जिसमें जङ्गल हैं और गङ्गाजीसे शोभायमान हो रहा है ॥ ५४ ॥

जनादप्युच्छित्तन्तपः ॥ प्रजानांपतयस्तत्र स्थितास्तुब्रह्मणःसुताः ॥ ५० ॥ सत्यलोकस्तपोलोकःकोटिषट्कंसमुच्छित्तम् ॥ आस्तेपरिवृतस्तत्र देवासुरगणैर्विराट् ॥ ५१ ॥ ब्रह्मलोकःद्विषणुलोको द्विगुणेनसमुच्छित्तः ॥ विस्तरेणतदूर्ध्वेच दिव्यलोकस्समन्वितः ॥ ५२ ॥ विषणुलोकाच्चपरतःश्रीमच्छिवपुरम्महत् ॥ द्वाविंशत्कोटिविस्तीर्णं तदूर्ध्वेसमुपस्थितम् ॥ ५३ ॥ सूर्यायुतप्रतीकाशं सर्वकामसमन्वितम् ॥ अनेकारण्यविन्यासं स्वर्गनद्युपशोभितम् ॥ ५४ ॥ सधरत्नान्वितैर्दिव्यैस्तप्तजाम्बूनदप्रभैः ॥ सहस्रखण्डभौमैश्च सर्वशोभासमन्वितैः ॥ ५५ ॥ विमानैःसर्वतोव्याप्तं चन्द्रैरिवनभस्तलम् ॥ अप्सरोगणसंकीर्णं सर्वविद्याधरान्वितम् ॥ ५६ ॥ नृत्यगीतरवोपैतैरप्रमेयगुणान्वितैः ॥ मनोजैर्वरसंख्यातैः परिवारसमन्वितैः ॥ ५७ ॥ कचिद्दोलागृहैरभ्यैःकिङ्किणीरवकान्वितैः ॥ उद्गतैरद्वचन्द्रैश्च घण्टाभरणभूषितैः ॥ ५८ ॥ मणिसुक्तावितानैश्च मणिरत्नचयैःशुभैः ॥ सर्वरत्नान्वितैर्द्रव्यैर्युक्तादामसुशोभनैः ॥ ५९ ॥ महासिंहासनैर्दि

सब रत्नोंसे युक्त, आगसे निकलेहुये सोनेके समान तेजवाले, हजारों खण्डवाले, सब शोभाओं से युक्त, दिव्य ॥ ५५ ॥ विमानों से सबओर व्याप्त है मानो चन्द्रमाओसे आसमान भराहोवे अप्सराओं के गणोंसे भराहुआ और सब विद्याधरोंसे युक्त है ॥ ५६ ॥ नाच और गानेकी आवाजोंसे युक्त, वे प्रमाण गुणोंसे भरेहुये, मनके बराबर चलने अर्थात् उड़ानेवाले, अनगिन्ती, सब सामानों से भरेहुये ॥ ५७ ॥ लुद्धघण्टिकाओं की आवाजोंसे युक्त, घण्टाआदि साजोंसे सजेहुये, मणि और मोतियोंसे सजी हुई चांदनीवाले, उत्तम मणि और रत्नों के ढेरोंसे भरेहुये, बड़े ऊँचे, आधे चन्द्रमा के आकार वनेहुये और रमणीक भूलावाले मकानों से कहीं २ शोभित हो रहा है

सच रत्न व सच द्रव्यों से शोभित, मोतियों की झालरों से सुहावने ॥ ५८ ॥ वा सच रत्नों से सजेहुये और दिव्यरूप बड़े २ सिंहासनों से युक्त हो रहा है कहीं अन-
गिन्नी गुणवाले पवित्र मकानों से व्याप्त है ॥ ६० ॥ कहीं हमेशा फूलने व फलनेवाले वृक्षों से व्याप्त है सै रुझों व हजारों बड़ी रमणीक फुलवा-
रियों से युक्त है ॥ ६१ ॥ वहाँ नदियों में श्रेष्ठ, सात कल्पतक बहनेवाली, पवित्र नर्मदा भी वर्तमान हैं उनकी एक कलाका हजारहवां हिस्सा जम्बूद्वीप में दीखता
है ॥ ६२ ॥ लोकों पर दया करने की इच्छा से पृथिवी पर उतरी हैं और गंगाआदि नदियों का यहां पूरा अवतार है ॥ ६३ ॥ और भी अमृतकी बहानेवाली नदियों से
ठण्डे: सर्वरत्नविभूषितैः ॥ कचित्पुण्यगृहैर्व्यासिमंख्येयगुणान्वितैः ॥ ६० ॥ सदापुष्पफलैर्दृजैः क्वचिद्वाप्तमनोरमैः ॥
पुष्पोद्यानैर्महारम्यैः शतशोथमहस्रशः ॥ ६१ ॥ सप्तकल्पवहापुण्या तत्रैवास्तेसरिदरा ॥ तत्कलायास्सहस्रांशो जम्बू
द्वीपेप्रदृश्यते ॥ ६२ ॥ अवतीर्णामहीपृष्ठे लोकानुग्रहकाम्यया ॥ सर्वात्मनावतारश्च गङ्गादिसरितामिह ॥ ६३ ॥ अमृत
स्यान्दिनीमिश्रनदीभिरुपशोभितम् ॥ हेमरत्नाविचिताचाप्यः सोपानैः स्फाटिकैर्युताः ॥ ६४ ॥ सितरत्नासितैः पीतैस्सरोजै
र्याः सुगन्धिभिः ॥ पञ्चवर्णैश्चगुरुभिः शोभिताः काञ्चनाकुलैः ॥ ६५ ॥ महाविकाशिसंस्निग्धैः श्रीमद्भिः पञ्चहस्तकैः ॥
दशद्वादशहस्तैश्च तथाविंशतिहस्तकैः ॥ ६६ ॥ नालैर्मरकतप्रख्यैर्मनोहरदलान्वितैः ॥ पूर्णानीलोत्पलैश्चान्यैर्दीर्घिका
श्च क्वचित्क्वचित् ॥ ६७ ॥ सिंहव्याघ्रमुखैर्द्विगजवाजिमृगाननैः ॥ गोमुखैश्छागवदनैः कपिपक्षिमुखैस्तथा ॥ ६८ ॥
एकचक्रैर्महावक्रैर्वहुवक्रैरवक्रकैः ॥ एकपादैस्त्रिपादैश्च बहुपादैरपादकैः ॥ ६९ ॥ वामनैर्जटिलैर्मुण्डैर्दीर्घग्रीवैर्महोद
शोभित हो रहा है सोने और रत्नों से सोहिरही व बिलौर की सीढ़ियों से युक्त जहां बावलियां विद्यमान हैं ॥ ६४ ॥ जोकि सफेद, लाले, काले, पीले, पंचरंगा और सो-
नहले सुगन्धिवाले उत्तम कमलों से सोहिरही हैं ॥ ६५ ॥ बड़े प्रकाशवाली, चिकनी, सुहावनी, पांच हाथ की, दश हाथ की, वैसेही बीस हाथ की ॥
६६ ॥ और पद्माकी सी चमकवाली डाड़ियों से युक्त, मनकी हरनेवाली पेंखुरियोंवाले नीले कमलों से तथा और तरह के भी कमलों से भरीहुई कहीं २ बावलिया
विद्यमान हैं ॥ ६७ ॥ सिंह, बाघ, हाथी, घोड़े, हस्ती, गौ, बकरा, वानर और पक्षियों के ऐसे हैं मुहँ जिनके ऐसे शिवजी के गण ॥ ६८ ॥ तथा एक मुहँवाले,

बड़े मुहँके, बहुत मुहँवाले, बेमुहँके, एक पाँववाले, तीनपाँववाले, बहुत पाँववाले और बेपाँवके ॥ ६९ ॥ बौना, जटावाले, मुण्डा, लम्बे गलेवाले, बड़ेपेटवाले, भारी देहवाले, बड़ी नाकवाले, बड़े २ कानवाले और बेकानके ॥ ७० ॥ अनेकतरहकेरूप और आकारोंके धारण करनेवाले अनेक प्रकारके गहने पहनेवाले, अनेकतरहके दिव्य वेषोंके धरनेवाले, मनमानेरूपके बनानेवाले, बड़ेबली ॥ ७१ ॥ अनेक प्रकारके प्रभाववाले और अनेक शास्त्रोंके जाननेवाले गणोंरियुक्तहोएहैं और भी अनेक तरहकी जातिवाले जीव इसीतरहके वहाँ रहते हैं ॥ ७२ ॥ और कुचरी, बौनी, लम्बी, अच्छी देहवाली, अच्छे मुहँवाली, मुण्डनी, डरावनी, ठमकी, छोटी, लम्बी ॥ ७३ ॥ लम्बे

रेः ॥ महाकायैर्महानासैर्महाकर्णैरकर्णैः ॥ ७० ॥ नानारूपाकृतिधरैर्नानाभरणभूषितैः ॥ नानावेषधरैर्दिव्यैः का मरूपैर्महाबलैः ॥ ७१ ॥ नानाप्रभावसंयुक्तैर्नानाशास्त्रविशारदैः ॥ असंख्याजातयश्चान्यानिवसन्ति तथा विधाः ॥ ७२ ॥ कुब्जावामनकादीर्धा वरदेहावराननाः ॥ मुण्डाश्च विकटानीचा ह्रस्वदीर्घाश्च तादृशाः ॥ ७३ ॥ लम्बोदराह्रस्व भुजा विनताह्रस्वजानुकाः ॥ मृगेन्द्रवदनाश्चान्या गजवाजिमुखास्तथा ॥ ७४ ॥ ह्रस्वकुञ्चितकेशाश्च सुन्दरप्रियदर्शनाः ॥ पञ्चाशत्कोटयस्तत्र शिवस्य परिचारिकाः ॥ ७५ ॥ मणिमाणिक्यगेहेषु रमन्ते ताबहिः क्वचित् ॥ तत्र गेहेषु यद्द्वारिसहस्रशतभूमिषु ॥ ७६ ॥ विचित्राभूमयस्तत्र वज्रवैद्युर्यभूषिताः ॥ इतिसर्वगुणोपैतैः स्त्रीसहस्रैर्वराननैः ॥ ७७ ॥ असंख्यातैः पुरं व्याप्तमीश्वरस्य समन्ततः ॥ तन्मध्ये सर्वतोभद्रं दिव्यमायतनं महत् ॥ ७८ ॥ शुद्धस्फटिकसं

पेटवाली, छोटे हाथोंवाली, लचेकरिहाँववाली, छोटी घुटनूवाली, सिंह, हाथी और घोडोंके ऐसे मुहँवाली ॥ ७४ ॥ छोटे छेददार बालोंवाली और देखनेमें सुन्दर और प्यारी पचास करोड़ शिवजीकी दासियाँ वहाँ विद्यमान हैं ॥ ७५ ॥ वे दासियाँ मणि व माणिक्यसे जड़ेहुये मकानोंमें कहीं विहार करती हैं और कहीं बाहर क्रीड़ा किया करती हैं वहाँ हजार २ और सौ २ चौकवाले मकानों के दरवाजों के ॥ ७६ ॥ सहनकी जमीनें बड़ी विचित्र हीरा और पत्थारों से जड़ी हैं इस तरह का महादेव जीका पुर सब गुणोंसे युक्त उत्तम मुहँवाली अनगिन्ती हजारों स्त्रियोंसे चारोंतरफ भराहुआ है वहाँ उस पुरके बीचमें नौकोर बड़ा दिव्य, सफेद विश्वैर के समान

काशं स्थानमाद्यमुमापतेः ॥ तत्रास्तेभगवान्सोमः पूज्यमानोगणेश्वरैः ॥ ७९ ॥ सिद्धस्त्वस्थानसंप्राप्तैर्ब्रह्मविष्णवादिभिस्तथा ॥ धर्मस्तत्रस्थितः श्रीमानीश्वरायतनेनघ ॥ ८० ॥ यत्रवीरवृषस्तत्र नित्यंगोमातरस्स्थिताः ॥ तत्रसानर्मदादेवी पूज्यमानासुरासुरैः ॥ ८१ ॥ तेनोदकेनतृप्यन्तिगोवत्साः सर्वदेवताः ॥ ब्रह्माविष्णुस्सुरेशान उभयासहितो नघ ॥ ८२ ॥ सुराश्चक्रुष्योभूताः पितरोमातरस्तथा ॥ सलोकश्शिवलोकोत्र नर्मदालोकएवच ॥ ८३ ॥ येगुणारुद्रलोकस्य गोलोकस्यतथैवच ॥ नन्दाभद्राभुमद्राच सुशीलासुरभिस्तथा ॥ ८४ ॥ इतिगोमातरः पञ्च शिवलोकविनिर्गताः ॥ षष्ठीतुनर्मदादेवी लोकानुग्रहकाम्यया ॥ ८५ ॥ एतास्सर्वाजगत्सर्वे सर्वलोकस्यमातरः ॥ तर्पयन्तिमहाराज नित्यमत्रात्मिकैर्गुणैः ॥ ८६ ॥ कारणच्चशिवस्थानादीश्वरेच्छावशानुगा ॥ अंकारात्सर्वलोकानामिमंलोकंसमाश्रिताः ॥ ८७ ॥ तृणानिखादन्तिचरन्त्यरण्ये पिवन्तितोयानिसुनिर्मलानि ॥ दुग्धंप्रयच्छन्तिपुनन्तिदेहं गावोयतो

लोकभी है ॥ ८३ ॥ जो गुण शिवलोकमें हैं वेही गोलोक में भी हैं नन्दा, भद्रा, सुभद्रा व सुशीला और सुरभि ॥ ८४ ॥ ये पांच गोमाता शिवलोकहीं निकली हैं और लोकोंपर दया करनेकी मनसा से छठवीं नर्मदादेवी भी वहाँ से निकली हैं ॥ ८५ ॥ ये सब संपूर्ण लोकोंकी माताहैं सो हे महाराज ! अपने गुणोंसे यहां सब जगतको नित्यही तृप्त किया करती हैं ॥ ८६ ॥ शिवजी की इच्छाके अनुसार चलनेवाली सब लोकोंका कारण उन्काररूप शिवजी के स्थान से इस लोकको आई हैं ॥ ८७ ॥

ये गौवें घासको खाती हैं, ऊङ्गल में चरती हैं, अतिनिर्मल पानी पीती हैं, दूधको देती हैं और देहको पवित्र करती हैं इन्हींसे सब जीवलोक जीता है ॥ ८८ ॥ जिनके मकान आपही छोटे २ बड़ड़ेवाली गौवोंसे हमेशा सोहते हैं जैसे स्त्रियोंसे सोहते हैं उनके पापकहा है ॥ ८९ ॥ जो लोग उ०ङ्कार और नर्मदाको शिवरूपसे सदास्मरण किया करते हैं इस घोरसंसारसमुद्र में उनका फिर जन्म नहीं होता है ॥ ९० ॥ और जो लोग चारा पानी देनेसे गौवोंकी बड़ी भक्ति करते हैं वे उनकी प्रसन्नतासे शिवलोकको जाते हैं ॥ ९१ ॥ ये गोमाता सदा अपनी प्रसन्नतासे सब कामचाओंकी देनेवाली हैं जो इन पवित्र गौवोंकी रक्षा करते हैं वे शिवलोकको जाते हैं ॥ ९२ ॥ और जो

जीवतिजीवलोकः ॥ ८८ ॥ कुतस्तेषां हि पापानि येषां गृहमलङ्कृतम् ॥ सततं बालवत्सामिर्गोभिस्त्रीभिरिव स्वयम् ॥

८९ ॥ ये स्मरन्ति सदांकारं नर्मदाञ्च शिवात्मना ॥ न तेषां पुनरावृत्तिर्घोरसंसारसागरे ॥ ९० ॥ ये कुर्वन्ति परां भक्तिं तु

एतोद्यप्रदानतः ॥ प्रसादात्तु गवांतासां शिवलोकं व्रजन्ति ते ॥ ९१ ॥ एतास्स दानुकूलेन मातरस्सर्वकामदाः ॥ ये रक्षन्ति

शुभागाश्च शिवलोकं व्रजन्ति ते ॥ ९२ ॥ ये च यन्ति शिवम् भक्त्या सद्विधानैस्समाहिताः ॥ ते विन्दन्ति महाभोगान्पुण्या

न्ति शिवस्य वै ॥ ९३ ॥ ये शिवाश्रयतीर्थानि श्रद्धया यान्ति मानवाः ॥ कल्पगांच विशेषेण शैलञ्चामरकण्टकम् ॥ ९४ ॥

ते क्रीडन्ति महाभोगैर्ब्रह्मविष्णुशिवालये ॥ पयोमृतं धृतं क्षीरं मधुदध्यादिकं तु यत् ॥ ९५ ॥ न पश्यति महाभाग कल्प

गायां विमोहितः ॥ एतस्ते कथितं राजनेवावतरणं शुभम् ॥ ९६ ॥ अस्याख्यानेन भगवान् प्रीयतां मे शिवः स्वयम् ॥

९७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे राखण्डे शिवलोकवर्णनो नामाष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५८ ॥ * ॥ * ॥

अन्धे विधानपूर्वक भक्तिसे सावधान होकर शिवका पूजन करते हैं वे मनुष्य बड़ेभोगोंको पाते हैं और निश्चयसे शिवजीके पुरको जाते हैं ॥ ९३ ॥ जहां शिवजी विद्यमान हैं ऐसे तीर्थोंको जो मनुष्य श्रद्धापूर्वक जाते हैं और नर्मदा व अमरकण्टकपर्वतको विशेषकरके जाते हैं ॥ ९४ ॥ वे मनुष्य बड़ेभोगोंके साथ ब्रह्मा, विष्णु और शिवके लोकमें विहार करते हैं जल, अमृत, घी, दूध, मिठाई और दहीआदि जो नर्मदामें वर्तमान हैं ॥ ९५ ॥ उनको हे महाभाग! मोहको प्राप्त होरहा यह मनुष्य नहीं देखसक्ता है हे राजन्! यह मङ्गलरूप नर्मदाका अवतार तुमसे कहा ॥ ९६ ॥ इसके कहनेसे आपही भगवान् शिवजी मुझसे प्रसन्न होवें ॥ ९७ ॥ इति स्कन्दपुराणे राखण्डे पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ५८ ॥

युधिष्ठिरजी बोले कि हे कल्पग ! हम दानधर्म के विधान को सुना चाहते है गरीब भिखुक लोग कैसे शिवजी के स्थानको जातेहैं ॥ १ ॥ किस विधिसे और किस दान से पाप छुटता है सो लोकोंके हितके वास्ते हे महामुने ! आप कहें ॥ २ ॥ तब मार्कण्डेयजी बोले कि हे राजन् ! हे निष्पाप ! हम आपसे यथार्थ कहतेहैं सो तुम सुनो कमल, बिल्वपत्र, कुश और नर्मदाका जल ॥ ३ ॥ इनको भगवान् ब्रह्माजी ने साधारण धर्मका कारण कहाहै सब धर्म विश्वासही से पवित्र होतेहैं उन के चेतानेवाले पुराण और वेदही हैं ॥ ४ ॥ उन्हीं से सिखलायेहुये धर्म से मनुष्य स्वर्गको जातेहैं जो मनुष्य रुईका धौरेके सहित लालकपड़ा व बाघकी खालका

युधिष्ठिरउवाच ॥ दानधर्मविधानञ्च श्रोतुमिच्छामि कल्पग ॥ दरिद्राभिव्रवोवापि कथंयान्ति शिवालयम् ॥ १ ॥
विधिनाकेनदानेन मुच्यतेदुष्कृतन्तथा ॥ लोकानाञ्चहितार्थाय कथयस्वमहामुने ॥ २ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ शृणु
राजन्यथान्यायं कथयामितवानघ ॥ पुष्करं विल्वपत्रञ्चकुशास्तोयंचनार्म्मदम् ॥ ३ ॥ स्वयम्भूर्भगवानाह सामा
न्यधर्मकारणम् ॥ श्रद्धापूताः सर्वधर्माः पुराणं श्रुतयस्तथा ॥ ४ ॥ तस्योपदेशधर्मेण नरायान्ति त्रिविष्टपम् ॥ य
स्तूलपूर्णविस्तीर्णैरक्तवस्त्रैस्सूत्रकम् ॥ ५ ॥ व्याघ्रचर्मकृतं वापिनववस्त्रावगुपिठतम् ॥ कृष्णाजिनोपवीतञ्चपुण्यधूपाधि
वासितम् ॥ ६ ॥ शिवध्यानभित्तुताय श्रद्धया विनिवेदयेत् ॥ तत्तूलवस्त्रतन्तूनां रोमशं ख्यास्तियावती ॥ ७ ॥ तावद्वर्ष
सहस्राणि शिवलोकेमहीयते ॥ मोदते सर्वलोकेषु भुक्त्वा भोगाननेकशः ॥ ८ ॥ पुनश्च जितिमासाद्य सिंहासनपतिर्भ
वेत् ॥ तृणवल्कलपर्णानि शय्याप्रावरणादिकम् ॥ ९ ॥ दत्त्वा तदर्थिने भूमी शिवलोकेमहीयते ॥ शिवमुद्दिश्य नैवेद्यं यो

बनाहुआ अथवा मुमचर्म व पवित्रधूप से बसायाहुआ व नवीनवस्त्रसे लपेटाहुआ यज्ञोपवीत ॥ ५ ॥ शिवजी के ध्यान करनेवाले ब्राह्मण को श्रद्धासे देताहै वह उस रुईके कपड़ेके सूतों के जितने रेशाहैं ॥ ७ ॥ उतने हजार वर्षतक शिवलोक में पूजित होताहै औरभी सब लोकोंमें अनेक भोगोंको भोगकर आनन्द करता है ॥ ८ ॥ और फिर पृथिवी में आकर राजा होताहै तिनका, भोजपत्र, पत्ते, पल्लंग और ओढ़ने के कपड़े आदिको ॥ ९ ॥ पृथिवी में उरा २ चीज की चाह करनेवाले

के लिये देकर शिवलोक में पूजित होता है महादेवजी के नामसे जो शिवभक्त को नैवेद्य देता है ॥ १० ॥ व जो शाक, जड़ और फल देता है उसके पुण्यफल को तुम सुनो कि चावलआदिकों की जो गिन्ती है अथवा फलों व दलोंकी जो गिन्ती है ॥ ११ ॥ उतने हजार वर्षोंतक शिवलोकमें पूजित होता है व मनुष्य भक्तिसे शिव के भक्तको व्यञ्जनों के सहित भिजा देकर ॥ १२ ॥ हे महाभाग ! लाखवर्षतक शिवलोक में पूजित होता है दही और भातसे अत्यन्त भराहुआ सुन्दर भिजाका पात्र ॥ १३ ॥ जो शिवभक्त को देता है उसके पुण्यफल को तुम सुनो कि करोड़ वर्षतक बड़ेभोगों से युक्त ॥ १४ ॥ दिव्य महादेवजी के पुरमें रहकर पीछे से राजा

दद्याच्छिवदर्शने ॥ १० ॥ शाकंमूलंफलंवापि तस्यपुण्यफलंशृणु ॥ यावत्स्यात्तण्डुलादीनां संख्याफलदलेषुच ॥

११ ॥ तावद्वर्षसहस्राणि शिवलोकेमहीयते ॥ भिजांसव्यञ्जनान्दत्त्वा शिवभक्तायभक्तिः ॥ १२ ॥ वर्षलक्षंमहाभा

ग शिवलोकेमहीयते ॥ दधिभक्तंसुसम्पूर्णं भिजापात्रंसुशोभनम् ॥ १३ ॥ दद्याद्यःशिवभक्ताय तस्यपुण्यफलंशृणु ॥

वर्षकोटिसमन्दिव्यं महाभोगैःसमन्वितम् ॥ १४ ॥ स्थित्वाशिवपुरेदिव्ये तस्यान्तेचमहीपतिः ॥ सुशीतलेनतोये

न शिवभक्तंसितायुजा ॥ १५ ॥ तर्पयित्वाशम्भुलोकं वर्षलक्षंचमोदते ॥ कलशंशर्करोपेतं वस्त्रपूताम्बुधुरितम् ॥

१६ ॥ दद्याद्यःशिवभक्ताय तस्यपुण्यफलंशृणु ॥ शुद्धस्फटिकसंकाशं विमानंसर्वकामिकम् ॥ १७ ॥ संप्राप्यशिव

लोकेतु वर्षकोटिसमोदते ॥ पलाशपणैःपत्रैर्वा यः कुर्यात्पुटकानितु ॥ १८ ॥ प्रदद्याच्छिवयोगिभ्यस्ताम्रपात्रप्रदो

हिसः ॥ यस्ताम्रपात्रंसुकृतं प्रदद्याच्छिवयोगिने ॥ १९ ॥ कोटिषट्कंसकल्पानां शिवलोकेमहीयते ॥ शूलंवहतियः

होता है बहुत ठण्डेपानी से कियेहुये मिश्री के शर्बत से महादेवजी के भक्तको ॥ १५ ॥ ततकर लाख वर्षतक शिवलोक में आनन्द करता है व शक्करका शर्बत कपड़े से छनाहुआ उससे भरेहुये कलशको ॥ १६ ॥ जो शिवभक्त को देता है उसके पुण्यफल को सुनो कि निर्मल बिल्वार के तगह राफेद राव भोगोंसे युक्त विमान को ॥ १७ ॥ पाकर वह करोड़ वर्षतक शिवलोकमें आनन्द फरता है व जो ढांखे व और पत्तोंसे दोने बनाता है ॥ १८ ॥ और शिवयोगियों को देता है वह तांबेके पात्रों के देनेके फलको पाता है व जो अच्छे बनेहुये तांबेके पात्रको शिवयोगी को देता है ॥ १९ ॥ वह छह करोड़ कल्पभर शिवलोक में पूजित होता है व जो हाथमें

विशुद्ध रखता है और पीठपर सागको रखता है और कमण्डलु भी रखता है ॥ २० ॥ ऐसे शैवको यत्नसे भोजन कराकर शिवलोक को प्राप्त होता है अपनी शक्तिसे जो शैवको भोजन कराता है ॥ २१ ॥ वह शिवलोकमें स्थित होकर श्रेष्ठभोगों से विहार करता है व जो बुद्धिमान् मनुष्य शैवधर्म में स्थित गृहस्थ को भोजन कराता है ॥ २२ ॥ वह बड़े २ अनेकभोगों से युक्त शिवलोकमें पूजा जाता है अथवा शैव आश्रम के जो ग्रंथ हैं उनमें स्थित मनुष्य को कन्दमूल आदिसे जो मनुष्य भोजन कराता है ॥ २३ ॥ वह महादेवजी के पुरमें स्थित होकर दिव्यभोगों को पाता है इसीतरह महादेवजीके भक्तको भोजन कराकर और प्रणामकर ॥ २४ ॥ अनेकतरह

पाणौ शक्तिपृष्ठकमण्डलुम् ॥ २० ॥ तं भोजयित्वा यत्नेन शिवलोकमवाप्नुयात् ॥ भोजयेच्च यथाशक्त्या यः शिवत्र तचारिणम् ॥ २१ ॥ भोगैः सक्रीडति श्रेष्ठैः शिवलोकैक्यवस्थितः ॥ यः शिवाश्रमधर्मम् च गृहस्थम् भोजयेद्बुधः ॥ २२ ॥ विपुलैः समहाभोगैः शिवलोकैकमहीयते ॥ शिवाश्रमव्रतस्थं यः कन्दद्वौ भोजयेन्नरः ॥ २३ ॥ स दिव्यानापनुयाद्भोगानि श्वरस्य पुरे स्थितः ॥ एवं प्राशुपतं भक्तं भोजयित्वा प्रणम्य च ॥ २४ ॥ नानाविधैर्महाभोगैः शिवलोकैकमहीयते ॥ महाव्रतधरायैव भिक्तायः प्रतिपादयेत् ॥ २५ ॥ स दिव्यैश्शोभनैर्भोगैः शिवलोकैकमहीयते ॥ अत्यन्तयमनाचारं शिवभक्तिपरं नरम् ॥ २६ ॥ भोजयित्वा यथाशक्त्या शिवलोकैकमहीयते ॥ ज्ञानयोगबहिःस्थाये लोकसामान्यधर्मिणः ॥ २७ ॥ पूजयन्ति शिवभक्त्या शिवलोकं व्रजन्ति ॥ २८ ॥ अनाशिकेनापिकरीपचक्षिनापयः प्रदानेन तपोभिरुग्रैः ॥ प्रयान्ति तयज्ञैश्च न तां गतिं नरा नीचोपियां याति हि रुद्रभक्तः ॥ २९ ॥ यथा रेवाजलस्पृशति भुजन्ते सह तिनराः ॥ न त के भोगों से शिवलोक में पूजा जाता है व महाव्रत के करनेवाले को जो भिक्षाही देता है ॥ २५ ॥ वह बहुत अच्छे दिव्यभोगों से युक्त शिवलोक में पूजा जाता है अत्यन्त यम और नियमों के करनेवाले शिवभक्त मनुष्य को ॥ २६ ॥ यथाशक्तिसे भोजन कराकर शिवलोक में पूजा जाता है जो लोग ज्ञानयोग को नहीं जानते हैं और दुनियावी साधारण धर्मों के करनेवाले हैं ॥ २७ ॥ वे भी भक्तिसे शिव का जो पूजन करते हैं तो शिवलोक को जाते हैं ॥ २८ ॥ अनशनव्रत, कण्डे की अग्निसे जलना, दूधवा दान, कड़ीतपस्या और यज्ञोत्तरके भी मनुष्य उस गति को नहीं प्राप्त होते हैं जिस गति को नीचभी शिवका भक्त प्राप्त होता है ॥ २९ ॥

हे भरतर्षभ ! मनुष्य जैसे नर्मदा के जलके स्पर्शसे उत्तमगति को पातेहैं ऐसे यज्ञ और दानआदि उपायों से उस गति को नहीं पातेहैं ॥ ३० ॥ इस प्रकार प्रसंग से यह शिवलोक, गोलोक और नर्मदाजी का लोक भलीभांति कहागया है जोकि शिवजी के भक्तोंसे युक्तहै ॥ ३१ ॥ ज्ञानयोग से शान्त होरहे जो मनुष्य परमशिव को जपतेहैं सब दुःखोंसे छुट्टेहुये वे हमेशा सुखी रहतेहैं ॥ ३२ ॥ पञ्चभूत (पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश) अद्वैत, सत्त्वगुण और आठवीं प्रकृति इन आठ परदेवाला शिवलोक जाननेयोग्य है ॥ ३३ ॥ ऐसे हजारों करोड नाग भी जाननेयोग्य हैं माया के सबही अङ्गहैं इससे इधर, उधर, नीचे और ऊपर प्रधानही

थायज्ञदानाद्यैरुपायैर्भरतर्षभ ॥ ३० ॥ इत्येषशिवलोकस्तुप्रसङ्गात्समुदाहृतः ॥ गोलोकःकल्पगालोकःशिवभक्तैस्समन्वितः ॥ ३१ ॥ ज्ञानयोगेनयेशान्ता जपन्तिपरमंशिवम् ॥ तेसर्वदुःखनिर्मुक्ता भवन्तिमुखिनःसदा ॥ ३२ ॥ शिवलोकाश्चविज्ञेयो मण्डलान्वरात्मकः ॥ पञ्चभूतान्यहंकारः सत्त्वंप्रकृतिरष्टमी ॥ ३३ ॥ ईदृशानान्तुनागानां कोट्योज्ञेयाः सहस्रशः ॥ सर्वाङ्गित्वात्प्रधानस्य तिर्यग्बुध्वमधःस्थितम् ॥ ३४ ॥ विष्णुलोकात्परंस्थानं कुमारस्यमहात्मनः ॥ स्वच्छमौक्तिकसंकाशं परमाश्रीसमन्वितम् ॥ ३५ ॥ स्कन्दलोकात्परंस्थानमुमादेव्याःप्रकीर्तितम् ॥ तप्तचामीकरप्रख्यमशेषगुणसंयुतम् ॥ ३६ ॥ उमास्थानात्परंचैव हरस्थानन्तदुत्तमम् ॥ सूर्यकोटिप्रतीकाशं सर्वकामसमन्वितम् ॥ ३७ ॥ गणैरध्युषितंसर्वैरसंख्यैर्योगतत्परैः ॥ हिरण्यगर्भकूर्मार्धैर्वसुरुद्रदिवाकरैः ॥ ३८ ॥ स्तूयतेभगवान्नित्यं तस्या

विद्यमान है ॥ ३४ ॥ विष्णुलोक से ऊपर निर्मल मोतीके समान, बड़ी शोभासे युक्त, महात्मा स्वामिकार्त्तिकजी का स्थानहै ॥ ३५ ॥ व स्वामिकार्त्तिकजी के लोक के ऊपर पार्वतीदेवी का स्थान कहागयाहै जोकि विवले सोने के समान रङ्गवाला और सब गुणोंसे युक्तहै ॥ ३६ ॥ और पार्वतीजी के स्थान से परे महादेवजी का उससे उत्तमस्थान है वह करोड सूर्योंके समान तेजवाला और सब कामनाओंसे भराहुआ है ॥ ३७ ॥ जिसमें अनगिन्ती योगाभ्यास के करनेवाले सब गण रहते हैं हिरण्यगर्भ, कूर्मआदि, वसु, रुद्र और आदित्यनाम के देवता ॥ ३८ ॥ महादेवजीके पास रहनेकी इच्छा करनेवाले भगवान् महादेवजी की नित्यही स्तुति किया

करते हैं ज्ञान और ध्यानमें लगेहुये, भिक्षासे भोजन करनेवाले, इन्द्रियों के जीतनेवाले, उन उत्तम कर्मोंके करनेवाले, पाप जिनके जलगाये हैं ऐसे शान्त ब्राह्मण लोगोंसे वह दशहजार सूर्योंके समान तेजवाला श्रेष्ठस्थान पानेयोग्य है ॥ ३६॥४० ॥ जिस सत्यस्थान में कुशसे रहित, निर्मल मनवाले, महात्मालोग रहते हैं और जो मनुष्य नर्मदा का सेवन करते हैं वे उस पदको पाते हैं ॥ ४१ ॥ हे पार्थ ! जैसा महादेवजी ने कहाथा वैसेही इस वृत्तान्त को मैंने तुमसे कहा नर्मदा के तीर जिस दानको मैंने कहा है ॥ ४२ ॥ उस दानका हजारहवां हिस्साभी और तीर्थ को जो जाते हैं उनके दानसे विशेष है और जो हमारे कहने के अनुसार दान

नितप्रतिकाङ्क्षिभिः ॥ ज्ञानध्यानपरैरशान्तैर्भिजाहारैर्जितेन्द्रियैः ॥ ३९ ॥ प्राप्यन्तैश्च परंस्थानं सूर्याद्युतसमप्रभम् ॥ तत्सत्कर्मकरेनित्यं ब्राह्मणैर्दग्धकल्मषैः ॥ ४० ॥ वसन्ति यदृतं सिद्धाशयास्तुल्यैश्च वज्रिताः ॥ नर्मदां सेव्यमानाश्च लभन्ते तत्पदं नराः ॥ ४१ ॥ एतत्ते कथितं पार्थ यथोद्दिष्टन्तु शम्भुना ॥ यन्मया कथितं दानं नर्मदातीरमाश्रितम् ॥ ४२ ॥ गच्छन्ति ये न्यतीर्थन्तु सहस्रांशो विशिष्यते ॥ सर्वज्ञास्सर्वगाः शुद्धाः परिपूर्णं भवन्ति ते ॥ ४३ ॥ शुद्धकर्मक रायेतु परमैश्वर्यसंयुताः ॥ सदेहाश्च विदेहाश्च भवन्ति स्वेच्छया पुनः ॥ ४४ ॥ इति नित्यं विशुद्धश्च स्थानमाद्यसुमाप सेः ॥ दिव्यं श्रीकण्ठनाथस्य जगद्गुरुः समं स्थितम् ॥ ४५ ॥ स्थानं नवकमित्येवं निर्गतायत्र कल्पगा ॥ परमाष्टगुणैश्च र्द्यनित्यमक्षयमव्ययम् ॥ ४६ ॥ शश्वद्गुरुप्रणितेन ध्यानयोगेन ये नराः ॥ ध्यायन्ति देवतां नित्यन्ते सिद्धायान्ति त

आदि करते हैं वे सबके जाननेवाले, सब कहीं जानेवाले, निर्मल और सब मनोरथों से भरेपूरे रहते हैं ॥ ४३ ॥ जो निर्मलकर्मों के करनेवाले हैं वे बड़े ऐश्वर्य से संयुक्त होते हैं और अपनी इच्छा से चाहे देह सहित रहें और चाहे देह रहित होजायें ॥ ४४ ॥ पार्वतीपति, जगत के मालिक, महादेवजीका यह नाशरहित निर्मल सब से पहलेका दिव्य स्थान सदा एकरस बनारहता है ॥ ४५ ॥ इसप्रकार नव स्थान हैं जहां से नर्मदाजी निकली हैं जहां आठों उत्तम सिद्धियों के ऐश्वर्य, नाशरहित सदा अक्षय बने रहते हैं ॥ ४६ ॥ जो मनुष्य गुरुके बतायेहुये ध्यानयोग से देवता का नित्यही ध्यान किया करते हैं वे सिद्धलोग उस पदको प्राप्त

होते हैं ॥ ४७ ॥ मनोरथों की तृष्णा से रहित नर्मदा के तटमें बैठकर जो लोग शिवजी के ज्ञानका अभ्यास करते हैं वे भी उस पुरको प्राप्तहोतें ॥ ४८ ॥ व जो एक दिनभर भी शिवजी के ध्यान और शिवजी के धर्ममें परायण होवे उसके धर्मका अन्त नहीं है ॥ ४९ ॥ योगधर्म सबका सारहै इसमें वह पापरूपी मुगदग रो तोड़ा नहीं जासक्ता है वज्रके चावल के समान उसको जानना चाहिये इससे उसका बड़ाफल है ॥ ५० ॥ देहके अन्ततक कमायेहुये धर्मसे सनातन महादेवजी का स्थान प्राप्त होताहै जहां बहुत से भोगोंमें दशहजार कल्पोंतक मनुष्य विहार करता हुआ रहताहै ॥ ५१ ॥ तदनन्तर दशहजार कल्पोंके बाद स्वाधिकारिकीके स्थान

तपदम् ॥ ४७ ॥ येभ्यसन्ति शिवज्ञानं नर्मदातीरमाश्रिताः ॥ कामतृष्णाविनिर्मुक्तास्तोपियान्ति च तत्पुरम् ॥ ४८ ॥ अथ ये कद्विसंयावच्छिवध्यानपरायणः ॥ शिवधर्मपरस्तस्य धर्मस्यान्तोनविद्यते ॥ ४९ ॥ योगधर्ममुसारत्वादभेद्यं पापमुद्गैः ॥ वज्रतण्डुलवज्ज्ञेयं तस्मात्तस्य फलं महत् ॥ ५० ॥ देहान्तैनैव धर्मैरेण स्थानमाद्यं शिवालयम् ॥ यत्रास्ते विपुलैर्भोगैः क्रीडन्कल्पयुतं नरः ॥ ५१ ॥ ततः कल्पायुतस्यान्ते स्थानं कौमारमाप्नुयात् ॥ तत्रार्द्धसम्मितं कालं सक्रीडन्सखुलं वसेत् ॥ ५२ ॥ तदन्ते विष्णुलोकञ्च संप्राप्य वसेत् पुनः ॥ ब्रह्मलोकं गतश्चान्ते तत्रापि वसेत् नरः ॥ ५३ ॥ ब्रह्मलोकपरिभ्रष्टो वसेच्छिवपुरे सुखम् ॥ तत्तस्माद्ब्रह्मविष्णवाद्याल्लोकान् प्राप्नोत्यनुक्रमत् ॥ ५४ ॥ इत्येवं सर्वलोकेषु भित्वा क्रमशः स्ततः ॥ मनुष्यलोकमासाद्य शिवरेवांसमाश्रयेत् ॥ ५५ ॥ मया ते कथितान्यत्र यानि दानानि भारत ॥ तानि सर्वे प्रशंसन्ति पर्वते मरकटके ॥ ५६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे रेवाखण्डे नर्मदामाहात्म्ये शिवमहिमानुवर्णनो नामैकोनपष्ठितमोऽध्यायः ५९ ॥

को पाताहै वहां उस कालके आधे कालतक विहार करताहुआ वह सुखसे रहता है ॥ ५२ ॥ उसके पीछे फिर मनुष्य विष्णुलोक को भलीभांति प्राप्तहोकर वहां रहता है और अन्तमें ब्रह्मलोकको प्राप्तहो वहाभी रहता है ॥ ५३ ॥ व ब्रह्मलोक से छुटाहुआ फिर शिवजी के पुरमें सुखमें रहता है इसीतरह उस २ लोकसे ब्रह्मा और विष्णुआदि के लोकोंको क्रमसे प्राप्तहोताहै ॥ ५४ ॥ इस प्रकार सब लोकोंमें क्रमसे विहारकर तदनन्तर मनुष्यलोकको प्राप्तहोकर फिर शिव व नर्मदा का सेवनकरे ॥ ५५ ॥ हे भारत ! यहां अमरकण्टक पर्वतमें जो दान मैंने तुमसे कहे हैं उनको सबलोग प्रशंसा करते हैं ॥ ५६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे एकोनपष्ठितमोऽध्यायः ॥ ५९ ॥

मार्कण्डेयजी बोले कि अब सुम्नसे कहेजारहे, विष्णुके दानधर्म को समझो सब दुःखोंके नाश करने के वास्ते विष्णुयोग को अभ्यासकर ॥ १ ॥ व धी स्नान और स्तोत्र पाठआदि से विधिपूर्वक विष्णुको भलीभांति पूजकर द्वादशी विपे नर्मदाके तटको प्राप्तहोकर जो विष्णुके नामसे एक दुधारी गौको देवे उसकी पुण्यके फलको तुम सुनो, कि धर्मराज से जैसे विष्णु पूजेजाते है वैसेही वह भी पूजाजाता है ॥ २ ॥ ३ ॥ चन्दन और फूलोआदि से पूजेहुये, सोनेके गहने और कपड़ों से सजेहुये दश बैलोंके सहित एक हजार गाभिन गौवों से मिलेहुये एकहजार शैव व वैष्णवों को जो भोजन कराताहै और “अंनमोभगवतेवासुदेवाय” इस मंत्रराज

मार्कण्डेयउवाच ॥ वैष्णवंदानधर्ममूच्य कथ्यमानंनिबोधमे ॥ विष्णुयोगंसमभ्यस्य सर्वकेशापनुत्तये ॥ १ ॥ विष्णुसम्पूज्यविधिना घृतस्नानादिभिःस्त्वैव ॥ द्वादश्यांविष्णुमुद्दिश्य दद्यादेकाम्पयस्विनीम् ॥ २ ॥ नर्मदातीरमासाद्य तस्यपुण्यफलंशृणु ॥ पूज्यतेधर्मराजेन यथाविष्णुस्तथैवसः ॥ ३ ॥ शैवानांविष्णवानाञ्च सहस्रभोजयेत्तुयः ॥ गर्भिणीधेनुसंमिश्रं वृषभैर्दशभिर्युतम् ॥ ४ ॥ अर्चितंगन्धपुष्पाद्यैर्हमवस्त्रैरलंकृतम् ॥ प्रदक्षिणमुपाक्रम्य मन्त्रराजं चमकितः ॥ ५ ॥ अंनमोभगवतेवासुदेवायेतिसमुच्चरन् ॥ वेदविद्भिःसमाकीर्णं विष्णोराराधनैःशुभैः ॥ ६ ॥ नर्मदातोयमासाद्य दीपमालांप्रबोधयेत् ॥ गावोममाग्रतो नित्यं गावःपृष्ठतएवच ॥ ७ ॥ गावोमेहदयेवापि गवांमध्येवसाम्यहम् ॥ इमंमन्त्रंसमुत्थाय जपेदासांपुरोगवाम् ॥ ८ ॥ गन्धतोयाच्चतैर्मिश्रैर्गृहीत्वाताम्रभाजनम् ॥ शृङ्गपुच्छजलस्नातः शुक्लवस्त्रसमन्वितः ॥ ९ ॥ नर्मदास्नानपानेन गवांपुच्छाम्भसात्था ॥ सर्वकल्मषनिर्मुक्तः सुसिद्धःसुचिरव्रतः ॥ १० ॥

को उच्चारण करताहुआ भक्तिपूर्वक प्रदक्षिणाकर वेदके जाननेवाले ब्राह्मणों से व्याप्त और पवित्र विष्णुके पूजनों से शोभित ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥ नर्मदा के जलको प्राप्त होकर दियाली जलावे और उन गौवोंके सामने भलीभांति खडाहोकर इस मन्त्रको पढ़े कि “गावोममाग्रतो नित्यं गावःपृष्ठतएवच ॥ गावोमेहदयेवापि गवांमध्ये वसाम्यहम्” इसका यह अर्थहै कि गौवें सदा मेरे आगे रहें और गौवें मेरे पीछेभी रहें और गौवें मेरे हृदयमें रहें और गौवोंके बीचमें मैं रहूं ॥ ७ ॥ ८ ॥ गौवोंके सींग और पूंछके जलसे स्नान कियेहुये और सफेद कपड़ों को पहने, मिलेहुये चन्दन, जल और अन्नतों से युक्त तावेके पात्रको लेकर ॥ ९ ॥ नर्मदाके स्नान व उसके

जल पीने से व गौवोंके पूँछके जलसे सब पापोंसे छुटाहुआ बहुत दिनके व्रतका करनेवाला अत्यन्त सिद्ध होरहा वह यजमान ॥ १० ॥ गौवोंको नहलाकर ब्राह्मणों के सहित वहाँ नर्मदा के किनारेपर जाकर पूर्णमासी बिबे चन्द्रमा के पूरे होनेपर अथवा चन्द्रग्रहण में ॥ ११ ॥ उन्हीं ब्राह्मणों के सहित विष्णुका भलीभाँति पूजन कर स्मरणकरे अपने सेवक, पुत्र, स्त्री, भाई और श्रद्धासे युक्त इस मन्त्रसे गौवोंको कृष्णके वास्ते अर्पणकरे “मन्त्रः—श्राद्धेदानींचहोमे चविवाहेमङ्गलेतथा । गोमातरःस्थितानित्यंविष्णुलोकेशिवात्मिकाः ॥ शिवयैतामयादचाविष्णवेचमहात्मने ” इसका यह अर्थहै कि श्राद्ध, दान, होम, विवाह और

स्नापयित्वागतस्तत्र सविप्रोनर्ममदातटे ॥ पौर्णमास्यांपूर्णचन्द्रे राहुसोमसमागमे ॥ ११ ॥ तैरेवसाद्धंविप्रेन्द्रैःसंप्रज्यहरिस्मरेत् ॥ भृत्यपुत्रकलत्राद्यैर्युक्तःस्वजनबान्धवैः ॥ १२ ॥ निवेदयेत्तुकृष्णाय मन्त्रेणश्रद्धयान्वितः ॥ श्राद्धेदानेचहोमेच विवाहेमङ्गलेतथा ॥ १३ ॥ गोमातरःस्थितानित्यंविष्णुलोकेशिवात्मिकाः ॥ शिवयैतामयादत्ता विष्णवेचमहात्मने ॥ १४ ॥ एवंविप्राययोदद्याद्यज्ञार्थंसमलंकृताः ॥ एवंनिवेद्यपुरुषो गौसहस्रफलंलभेत् ॥ १५ ॥ कुलानिनिशुत्तार्य नरकाद्भृत्यबान्धवान् ॥ स्थापयेद्द्वैष्णवेलोकेशिवस्यचमहात्मनः ॥ १६ ॥ सर्वज्ञःपरिपूर्णश्च विशुद्धःसर्वगःप्रभुः ॥ संसारसागरान्मुक्तो हरितुल्यःप्रजायते ॥ १७ ॥ अनेनैवविधानेन गृहस्थाःप्राप्नुयुर्दिवम् ॥ विनापिज्ञानयोगेन गौसहस्रप्रदानतः ॥ १८ ॥ ब्राह्मणःक्षत्रियोवापि शूद्रोवापिचभक्तिः ॥ नर्ममदाकपिलायोगे यथाविभववि

भी मङ्गलकार्य में गऊमाता हमेशा रहती हैं जोकि मङ्गलरूप विष्णुलोककी रहनेवाली हैं इनको मैंने शिव अथवा महात्मा विष्णुजी के वास्ते दियाहै ॥ १३ ॥ १४ ॥ इस प्रकार सर्जीहुई गौवोंको यज्ञके वास्ते जो पुरुष ब्राह्मण को देवे तो ऐसे देकर वह हजार गौवोंके दानके फलको पाताहै ॥ १५ ॥ और अपनी तीस पीढ़ियों को तथा सेवक और भाइयोंको नरकसे उद्धारकर विष्णु व महात्मा शिवजीके लोक में स्थापित करताहै ॥ १६ ॥ और आप विष्णुजी तरह सर्वज्ञ, सबसे पूर्ण, निर्मल, सब में व्याप्त, सबका मालिक और संसारसमुद्र से छुटाहुआ होजाता है ॥ १७ ॥ बस इसी विधानसे गृहस्थलोग स्वर्गको प्राप्तहोतेहैं ज्ञानयोग के न होनेपर भी केवल

एक हजार गौवों के देने ही से ॥ १८ ॥ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य व शूद्र कोई हो भक्ति से नर्मदा और कपिला के संगम में अपने विश्व के अनुसार ॥ १९ ॥ यज्ञ के करने वाले ब्रह्मतेज से शोभित दरिद्री ब्राह्मण को चन्द्र व सूर्य के ग्रहण अथवा व्यतीपात, संक्रान्ति ॥ २० ॥ षडशीतिमुख, सोमवती अमावस, कार्तिकी, युगादितिथि में व हे भारत ! और ही किसी पुण्यवाले दिन में कहे हुये दान को देवे ॥ २१ ॥ जिससे कि हे नराधिप ! पितर लोग ऐसी गाथा को गाया करते हैं कि ऐसी भी कोई हमारे कुल में बड़ा धर्मात्मा पुत्र होगा ॥ २२ ॥ जो कि नर्मदा और कपिला के योग में अथवा मुक्ति के देने वाले कोटितीर्थ में राव सामान से संयुत गौवों को देकर हम लोगों

स्तरैः ॥ १९ ॥ ब्राह्मणाय दरिद्राय दीक्षितायोपशोभिने ॥ चन्द्रसूर्योपरानेतु व्यतीपाते च संक्रमे ॥ २० ॥ षडशीति मुखे दद्यादमासो मसमागमे ॥ कार्तिकां वानुगादौ वा पुण्ये वा ह निभारत ॥ २१ ॥ यद्विगायन्ति पितरो गायामेताक्षरा धिप ॥ अपि स्यात्सकुलैस्माकं पुत्रः परम धार्मिकः ॥ २२ ॥ नर्मदा कपिला योगे कोटितीर्थे च मुक्ति दे ॥ नरकादुद्धरे दस्मान् दत्त्वा गायस्तु संयुताः ॥ २३ ॥ दशवर्ष सहस्र णिलोके क्रीडति वैष्णवे ॥ तस्मात्त्वमपि राजेन्द्र गोसहस्रप्रदो भव ॥ २४ ॥ देववद्विषमो दन्ते येन ते पितरस्सदा ॥ कथयामितवाथा हिमतिहासं पुरातनम् ॥ २५ ॥ युवनाश्वः पुराराजा च क्रवर्ती महायशः ॥ शक्राच्छतशृणुं पुण्यं प्रजापालनतत्परः ॥ २६ ॥ अयोध्यानगरी यस्य ब्रह्मलोकसमप्रभा ॥ तस्यांकृतयुगे चादौ सर्वधर्मपरायणः ॥ २७ ॥ बृहस्पतिब्रह्मसमं वशिष्ठस्वपुरोहितम् ॥ अभिवाद्यथान्यायमुवाच मु

को नरक से उद्धार करेगा ॥ २३ ॥ इस दान का देनेवाला दश हजार वर्ष तक वैष्णवलोक में विहार करता है तिससे हे राजेन्द्र ! तुम भी हजार गौवों के देने वाले ब्रह्मतेज ॥ २४ ॥ जिस से तुम्हारे पितर लोग देवताओं की तरह स्वर्ग में सदा आनन्द करें अब यहां पर तुमसे पुराने इतिहास को कहते हैं ॥ २५ ॥ आगले जमाने में बड़े यशवाले चक्रवर्त्ती युवनाश्वराजा होते हुये उनका पुण्य इन्द्र से सौ गुना था वे राजा अपनी प्रजा के पालन में तत्पर होते हुये उन राजा की अयोध्यापुरी ब्रह्मलोक के समान शोभावाली होती हुई उसी अयोध्या में आगे सत्ययुग में सब धर्मों के करनेवाले राजा युवनाश्व ॥ २६ ॥ २७ ॥ बृहस्पति व ब्रह्मा के समान अपने पुरोहित मुनि-

श्रेष्ठ वशिष्ठजीको यथारीति नमस्कार कर उनसे बोले ॥२८॥ कि किस स्थानमें व किस तीर्थ व देशमें व किस देवालयमें यज्ञ करना चाहिये तब वशिष्ठआदि सब मुनि लोग यह बोले कि ॥ २९ ॥ पृथिवीमें सब तीर्थोंका स्थान, नैमिषतीर्थ बहुत अच्छा है वहां करनेसे अश्वमेधयज्ञ करोड़से करोड़गुना अधिक फलवाला होसकता है ॥३०॥ हे राजन् ! यह तीर्थ मत्स्यपुराण में मछली के रूप को धरेहुये भगवान् विष्णुजी करके कहागया है और हे राजन् ! अपने पुत्र मनुजी से सूर्यने भी कहा है ॥ ३१ ॥ सब पुराणों में मत्स्यपुराण श्रेष्ठ कहागया है अगिले जमाने में वेद नष्ट होगये रहे सो वे मत्सरूपसे उद्धार कियेगये ॥ ३२ ॥ जब वेद नहीं रहे थे तब सब आद्वय

निसत्तमम् ॥ २८ ॥ कस्मिन्स्थानेयजेद्यज्ञं तीर्थदेशेसुरालये ॥ वशिष्ठप्रमुखास्सर्वे सुनयश्चेदमब्रुवन् ॥ २९ ॥ पृथिव्यां नैमिषतीर्थं सर्वतीर्थमयंशुभम् ॥ सफलोहयमेधस्तु कोटिकोटिगुणोत्तरः ॥ ३० ॥ पुराणेकीर्तितंराजन्मत्स्यरूपेणविष्णुना ॥ सूर्येणकीर्तितंराजन्मनुपुत्रायचात्मनः ॥ ३१ ॥ सर्वेपान्तुपुराणानां पुराणंमत्स्यकीर्तितम् ॥ वेदाश्चैवपुरा नष्टा मत्स्यरूपेणचोद्धृताः ॥ ३२ ॥ वेदहीनाश्चवर्तन्ते द्विजवैयज्ञकर्मसु ॥ एवंविधन्तुतत्तीर्थं युवनाश्वतवोदितम् ॥ ३३ ॥ एवंश्रुत्वाततोवाक्यं वशिष्ठस्यपुरोधसः ॥ आदिदेशततोमात्यान्धर्मिष्ठान्सत्यवादिनः ॥ ३४ ॥ यज्ञोपस्करमादाय समागच्छतसत्वरम् ॥ घोषणंक्रियतांराष्ट्रे दण्डहस्तैश्चकिङ्करैः ॥ ३५ ॥ आहूतास्तुततोदेवा नृपतेर्यज्ञकर्मणि ॥ ब्रह्माविष्णुःसुरेशश्च स्कन्दोवैश्रवणस्तथा ॥ ३६ ॥ शम्भुश्चैवविशेषेण सुरासुरनमस्कृतः ॥ धेनूनांदशलक्षाणि हेमरत्नान्वितानिच ॥ ३७ ॥ लक्ष्मेकंहयानाञ्च दन्तिनामयुतत्रयम् ॥ मणिमाणिक्यमुक्ताश्च हिरण्यश्चाप्यनन्तकम् ॥ ३८ ॥

वेदों से रहित होगये इससे वे लोग यज्ञकर्म को नहीं करसके थे हे युवनाश्व ! ऐसा यह नैमिष तीर्थ तुमसे कहागया ॥ ३३ ॥ तदनन्तर अपने पुरोहित वशिष्ठ जी के ऐसे वचन को सुनकर तदनन्तर धर्मात्मा व सत्यके बोलनेवाले अपने मन्त्रियों को राजाने आज्ञा दी ॥ ३४ ॥ कि यज्ञका सामान लेकर आपलोग जल्दी चलो और देशमें चोबदारों करके पुकार करदीजावे ॥ ३५ ॥ तदनन्तर राजा के यज्ञकर्म के वास्ते देवता बुलायेगये ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र, स्वामिकार्त्तिक तथा कुबेरा ॥ ३६ ॥ और देवताओं व असुरों करके नमस्कार कियेगये महादेवजीभी विशेषकरके बुलायेगये सोने और रत्नोंसे युक्त दशलख गौवं ॥ ३७ ॥ एक लाख घोड़े, तीसहजार

हाथी, मणि, मोती, बहुतसा सुवर्ण ॥ ३८ ॥ और भी अनेक तरहकी चीजें चवाने और खाने योग्य अन्न व गहना और भी जो कुछ यज्ञके लायक सामान है उस सबके सहित राजाने ॥ ३९ ॥ अनेकप्रकारके हजारों विमानों से व अनेक देशके राजाओं से युक्त हो अनेक तरहके हजारों बाजों व अनेक प्रकार के मनोहर गीतों से ॥ ४० ॥ व बड़ीभारी वेदकी ध्वनि से आकाश और पृथिवी को भरतेहुये नैमिष तीर्थ में प्रवेश किया जहां महादेवजी देवता हैं ॥ ४१ ॥ जहां प्रभु विष्णुजी को देखकर पापते शीघ्र छूटजाता है यह नैमिषतीर्थ देवलोक की तरह खुलासा स्वर्ग की सीढ़ी के समान है ॥ ४२ ॥ वहां स्नानकर और हरिहर का पूजनकर मनुष्य

नानाविधानिद्रव्याणि भक्ष्यभोज्यमलंकृतम् ॥ यज्ञद्रव्यश्चयच्चान्यत्तत्सर्वसहितोत्तुपः ॥ ३९ ॥ नानासहस्रया नैस्तु नानादेशगतैर्नृपैः ॥ नानावाद्यसहस्रैस्तु नानागीतैर्मनोहरैः ॥ ४० ॥ वेदघोषेणमहता दिवंभूमिविनादयन् ॥ विश्वेनैमिषंतीर्थं यत्रदेवोभवेदश्वरः ॥ ४१ ॥ हरिसद्यःप्रभुदृष्ट्वा मुच्यतेयत्रकिल्बिषात् ॥ स्वर्गसोपानमेतत्तु प्रत्यक्षन्देवलोकवत् ॥ ४२ ॥ तत्रस्नात्वाभ्यर्च्यहरिं हरंस्वर्गमवाप्नुयात् ॥ कीर्तनान्नौमिषस्यास्य नरोदहतितत्त्वणात् ॥ ४३ ॥ अनेकभाषिकंधोरं तूलराशिभिवानलः ॥ दीक्षिताब्राह्मणादेवाः कुतश्चित्तुसमागताः ॥ ४४ ॥ आर्तानामयुतंतेभ्यो ददौदेवायचानघ ॥ सहस्रमेकंनृपतिर्भूषणानांचभारत ॥ ४५ ॥ ॐ नमःशंकरायतिमाधवायेतिचोत्तमः ॥ जलदभौसमादाय पात्रेराजाहिरण्ये ॥ ४६ ॥ एवंसङ्कल्प्यराजेन्द्रयज्ञवाटमकारयत् ॥ दशयोजनपर्यन्तं यज्ञगृपांश्चहेमजान् ॥ ४७ ॥ ततोनिवर्तितोयज्ञो वशिष्ठप्रसुखैर्द्विजैः ॥ मुदितादेवतास्सर्वा दिव्ययानसमाश्रिताः ॥ ४८ ॥ जयशब्दं प्रचक्रुस्ता स्वर्ग को प्राप्त होता है और इस नैमिषतीर्थ के कहने से उसी क्षण अनेक जन्मों के घोर पापको जलादेता है जैसे आग रुई के समूहको जला देती है ऐसे माहात्म्यवाले नैमिष में दीक्षा को लियेहुये कहींसे ब्राह्मण और देवता भलीभांति आगये ॥ ४३ ॥ और भी दशहजार दीन मनुष्य आये राजाने उन सबको और देवताओं को हे निष्पाप, भारत ! एक हजार गहने दिये ॥ ४४ ॥ “ ॐ नमःशङ्कराय, ॐ नमो माधवाय ” ऐसे कहकर वे उत्तम राजा सोने के पात्रमें जल व कुशों को लेकर ॥ ४५ ॥ और इसी तरह सङ्कल्प कर हे राजेन्द्र ! यज्ञस्थान को बनवाते हुये व दश योजन तक सोने के यज्ञके खम्भे गड़वाये ॥ ४६ ॥ तदनन्तर वशिष्ठ आदि ब्राह्मणों

ने यज्ञको कराया उससमय दिव्य रात्रारियों पर चढ़ेहुये सब देवता लोग आनन्दित होतेहुये ॥ ४८ ॥ और उन्हीं देवताओं ने जयशब्द को किया और कहा कि आप के बराबर दूसरा राजा नहीं है व राजा भी मेरे बराबर कोई और नहीं है ऐसे अहङ्कारवाला होताहुआ ॥ ४९ ॥ जबतक अपने रनिवास व सामान के राहित सवारी पर सवार होकर नैमिषारण्य से राजा निकले तबतक एक वानरको देखा ॥ ५० ॥ इसके बाद वह वानर राजासे बोला कि हे राजन्! खंडूहो खंडूहो हमारी बातको सुनो कि तुम्हारी इस यज्ञके करने से क्या हुआ इस कर्म में केवल देवताओं को भाग दियागया है ॥ ५१ ॥ तुम अहङ्कार से मूढ़बुद्धिवाले होरहे हो अपने को मैं यज्ञका करनेवाला हूँ ऐसा मानरहे हो अगिले जमाने में सत्यधर्म राजाके अमरेश्वर में कियेहुये यज्ञमें ॥ ५२ ॥ मेरे मुँहको छोड़कर और गले के नीचे का

राजानान्योभवत्समः ॥ नान्योभमसमः किञ्चिदित्यहङ्कारवान्नुपः ॥ ४९ ॥ यावद्यानंसमारुह्य सान्तःपुरपरिच्छदः ॥ निस्सृतो नैमिषारण्यात्तावत्पश्यति वानरम् ॥ ५० ॥ तिष्ठतिष्ठेत्युवाचाथ शृणुराजन्वचोमम ॥ किन्तेयज्ञविधानेन देवतादानकर्मणि ॥ ५१ ॥ अहङ्कारविमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यसे ॥ पुरामरेद्वरेयज्ञे सत्यधर्मस्य भूपतेः ॥ ५२ ॥ वर्जयित्वा मुखमभूत्कण्ठाधो हेमवर्णकम् ॥ येगताश्शि शशवस्तेषां सर्वाङ्गाश्चाहिरमयाः ॥ ५३ ॥ कपिलानम्ममदायोगे यज्ञतोयप्रवाहतः ॥ स्नानावगाहनात्पानाल्लोडनात्कर्दमेतथा ॥ ५४ ॥ गन्धर्वलोकं सम्प्राप्तो भूतग्रामश्चतुर्विधः ॥ त्वदीये लुलितं यज्ञे नैमिषारण्यसम्भवे ॥ ५५ ॥ पङ्केन लिप्तं गात्रममे ज्वालितं चाम्बुना तथा ॥ न किञ्चिच्च फलमासीन्मे त वयज्ञो निरर्थकः ॥ ५६ ॥ गर्वां वया युतं दत्तं धनं धान्यं तथा बहु ॥ भूमुजासत्यधर्मैर्न किन्तु तान्निरर्थकम् ॥ ५७ ॥ दा

सब अङ्ग सोनहला होगया और जो हमारे वच्चे लोग वहां गये रहे उनके भी सब अङ्ग सोनहले होगये ॥ ५३ ॥ यह हाल हम लोगों का कपिला और नर्मदा के योग में जो यज्ञका जल बहकर भिला उसमें स्नान व भस्माने व पीने व कीचड़ में लोटने से होता हुआ ॥ ५४ ॥ और वहां के चारोंतरह के जीवसमूह गन्धर्वलोक को भलीभांति प्राप्त होतेहुये और तुम्हारे इस नैमिषारण्य के यज्ञ में मैंने लोट लगाई ॥ ५५ ॥ सो कीचड़से मेरा शरीर भग गया फिर उसको पानी से धोया किंतु मुझे फल कुछ भी न हुआ इससे तुम्हारा यज्ञ बेकाम हुआ ॥ ५६ ॥ इस यज्ञ में सब धर्मवाले पृथ्वीपति आपने दशहजार गौओं को दिया और बहुतसा धन व अन्न

दिया परन्तु यह सब निरर्थक है ॥ ५७ ॥ दान व तपस्यासे तुमने तीनों लोकों को कमाया है परन्तु तुम यह नहीं जानते हो कि निश्चयकरके नर्मदाही सब तीर्थों की माता कहीं गई है ॥ ५८ ॥ हे राजन् ! यह तुमसे कहा जैसा कुछ श्रमरेश्वर में हुआ अब आपका कल्याण हो मैं जाताहूँ आपभी श्रमोद्ध्या को जाइये ॥ ५९ ॥ और मैं भी सात कल्पतक रहनेवाली नर्मदा को जाऊँगा आपकी यज्ञको सुनकर नैमिषारण्य को आयाथा ॥ ६० ॥ अब मैं निराश जाताहूँ मेरा मुह सोनेका नहीं हुआ ऐसे दानर के वचनको सुनकर राजा युवनाश्व वानर से वचन बोले कि वानरके रूपसे आप कौनहो सो हमसे सत्य कहो तब वानर बोला कि मैं जात्रालि

नेनतपसावापि त्रयोल्लोकास्समर्जिताः ॥ सर्वेषामेवतीर्थानां मातावैमेकलास्मृता ॥ ५८ ॥ एतत्तेकथितंराजन्यथा
भूदमरेश्वरे ॥ स्वस्तिवोस्तुगमिष्यामि त्वंवायोध्यांप्रतिव्रज ॥ ५९ ॥ अहमेवगमिष्यामि नर्ममंदांसप्तकल्पगाम् ॥
श्रुत्वात्वदीयंयज्ञंहि नैमिषारण्यमागतः ॥ ६० ॥ निराशोहंगमिष्यामि नाभून्मेकाञ्चनस्सुखम् ॥ वानरस्यवचःश्रुत्वा
युवनाश्वोब्रवीद्वचः ॥ ६१ ॥ कस्त्वंवानररूपेण सत्यमेतद्व्रवीषिमे ॥ अहंजावालिनःपुत्रः कदम्बोना
मविश्रुतः ॥ ६२ ॥ तिर्यग्योनौप्राविष्टश्च प्राकृतैःकर्मभिःस्वकैः ॥ भ्रान्तानिसर्वतीर्थानिविषेणानेनसुव्रत ॥ ६३ ॥ प
रित्राणंपरन्नाभूत्सत्यधर्ममखोत्तमे ॥ वपुर्हिरण्मयंसर्वं सुखवर्जमभाभवत् ॥ ६४ ॥ वानरस्यवचःश्रुत्वा सन्निवृत्यन्
पोत्तमः ॥ आराध्यदेवदेवेशं नैमिषेयज्ञपूरुषम् ॥ ६५ ॥ उवाचवचनंश्लक्ष्णं प्रणिपत्यप्रसाद्यच ॥ मदीययज्ञेदानेन

का लड़का कदम्ब नाम प्रसिद्ध था ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ सो अपने स्वाभाविक कर्मों से वानरकी योनि को प्राप्त हुआ हे सुव्रत! मैं इसी वानर के रूपसे सब तीर्थोंमें घूमता रहा ॥ ६३ ॥ परन्तु मेरा भला कहीं नहीं भया केवल सत्यधर्म राजाके उत्तम यज्ञमें इतना हुआ कि मेरे मुह को छोंड़कर और सब देह सोनहली होगई ॥ ६४ ॥ वानर के वचन को सुनकर श्रेष्ठ राजा फिर लौटकर नैमिष में देवताओं के देवता भगवान् यज्ञपुरुष का आराधन कर ॥ ६५ ॥ प्रणाम और प्रसन्न करके रसीले वचन को बोले कि हे भगवन् ! यह एक जीव वानर के रूपको धरेहुये मेरे यज्ञ में कियेहुये दान व तपस्या व नियमसे अपने कल्याण को चाहताहुआ अपने हाल

को मुझे सुनाया सो जैसे इसका मुहँ सोने का होजावे वैसा आप करें ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ तब करोड़ों सूर्यों के समान तेजवाले नैमिष तीर्थ देव प्रत्यक्ष हो राजायुवनायुव से वचन बोले ॥ ६८ ॥ कि पृथिवी में नैमिष तीर्थ है और पुष्करतीर्थ आकाशमें है और अमरकण्टक पर्वत तीनों लोकों में प्रसिद्ध है ॥ ६९ ॥ हे तात ! तुमने स्वामिकार्त्तिकजी के कहेहुये पुराणको नहीं सुना है जहाँ सब नदी व तीर्थों की माता नदियों में श्रेष्ठ नर्मदाजी विद्यमान हैं ॥ ७० ॥ इनके नाममात्रके कहने से मनुष्य संसार बन्धन से छूटजाता है तिससे विषाद को छोड़ो तीर्थों में अमरकण्टक मुख्य है ॥ ७१ ॥ अब सत्यधर्म राजा फिर भी वहाँ उत्तम यज्ञको करेंगे नर्मदा और

तपसानियमेनच ॥ ६६ ॥ शमिच्छञ्छावयामास एकोवानररूपधृक् ॥ हिरमयंमुखंचास्य यथास्यात्स्वन्तथाकु
रु ॥ ६७ ॥ उवाचवचनंदेवो युवनाश्वंमहोपतिम् ॥ प्रत्यज्जनैमिषंतीर्थं सूर्यकोटिसमप्रभम् ॥ ६८ ॥ पृथिव्यानैमिषं
तीर्थमन्तरिक्षेचपुष्करम् ॥ त्रिपुलोकैषुविख्यातो गिरिश्रामरकण्टकः ॥ ६९ ॥ नचश्रुतंत्वयातात पुराणंस्कन्दकी
र्तितम् ॥ मातासायन्नसरितां तीर्थानांचसरिद्वरा ॥ ७० ॥ नामसंकीर्तनादस्या मुख्यतेभवबन्धनात् ॥ विषादंत्यज
तीर्थानां प्रधानोमरकण्टकः ॥ ७१ ॥ सत्यधर्मःपुनस्तत्रकरिष्यतिमखोत्तमम् ॥ रेवाकपिलयोयंगे मुखंतत्रहिराम
यम् ॥ ७२ ॥ भविष्यतिनसन्देहस्तववानरसत्तम ॥ नैमिषंसनमस्कृत्य आदिदेवंहरंहरिम् ॥ ७३ ॥ स्थानंस्वञ्चजगा
माथ मुदापरमयायुतः ॥ नैमिषस्यवचःश्रुत्वा अयोध्याधिपतिस्तथा ॥ ७४ ॥ विवेशनगर्गपुरंयथाशक्रोमरावतीम् ॥
वानरोपिगतस्तत्र सत्यधर्मोयतःस्वयम् ॥ ७५ ॥ प्रणम्यसत्यधर्ममुख्यमिदंवचनमब्रवीत् ॥ रेवाकपिलयोयंगे त्व

कपिला के योगमें वहीं तुम्हारा मुहँ सोनेका होजायगा हे वानरसत्तम ! इसमें कुछ सन्देह नहीं है वह वानर नैमिष व आदिदेव हरिहरके नमस्कारकर ॥ ७२ ॥ ७३ ॥
बड़े आनन्द से युक्त अपने स्थान को चलागया इसके बाद वैसेही नैमिष देवके वचन को सुनकर अयोध्याके राजा युवनाश्व भी ॥ ७४ ॥ जैसे इन्द्र अमरा-
वती में प्रवेश करें वैसेही अपनी पुण्यवाली अयोध्यापुरी में प्रवेश करते हुये व वानरभी वहाँ को चलागया जहाँ राजा सत्यधर्म विद्यमान थे ॥ ७५ ॥ और सत्य-

धर्मनाम राजाके नमस्कार कर इस वचनको बोला कि नर्मदा और कपिला के योग बिषे आपके महायज्ञ में ॥ ७६ ॥ यज्ञान्तस्नान से उत्पन्न हुये कीचड़ मे मेरे लोटने से मेरा शरीर सोनेका होगया अकेला मुहँ ही बाकी रहगया है ॥ ७७ ॥ सो अब आप फिर भी वहां यज्ञ करके मेरा मुहँ सोनेका करदीजिये जिससे फिर भी वानर की योनि से छूटाहुआ गन्धर्वों का राजा होजाऊ ॥ ७८ ॥ उसके कहनेसे जब राजाने वहां यज्ञको किया तब वह श्रेष्ठ वानर सोनहली देहवाला होगया व देवताओंके बाजोंकी आवाज के साथही अनेक आभूषणों से सजा हुआ ॥ ७९ ॥ हंस जिसमें जुतेहुये हैं ऐसे विमान से अप्सराओं के गणों करके हवा कियाजाता हुआ इस तीर्थ के प्रभावसे शङ्करजी के लोकको चलागया ॥ ८० ॥ और भी जो हिसक जीव वहां थे वे सभी स्नानकर स्वर्गको जातेहुये हे पार्थ ! यह पुराना हाल

दीयेचमहामखे ॥ ७६ ॥ अबभृथस्नानजनिते कर्दमेष्टुठनान्मम ॥ शरीरंकाञ्चनीभूतं सुखमेवावरिष्यते ॥ ७७ ॥ यज्ञमिष्ट्वापुनस्तत्र सुखंमेकाञ्चनंकुरु ॥ गन्धर्वाधिपतिर्भूयोमुक्तोवानरयोनितः ॥ ७८ ॥ हेमीभूतवपुस्तत्र यदावानरसत्तमः ॥ देवदुन्दुभिनादेन नानालङ्कारभूषितः ॥ ७९ ॥ हंसयुक्तेनयानेन वीज्यमानोप्सरोगणैः ॥ जगामशाङ्करंलोकं तीर्थस्यास्यप्रभावतः ॥ ८० ॥ तत्रयेदृवापदास्सर्वे तेपिस्नात्वादिवङ्गताः ॥ एतत्तेकथितंपार्थ यथाष्टुत्तपुरातनम् ॥ ८१ ॥ अवणात्कीर्तनाच्चास्य गौसहस्रफलंलभेत् ॥ ८२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेनर्भदासाहात्म्यैषष्ठितमोऽध्यायः ॥ ८३ ॥

युधिष्ठिरउवाच ॥ श्रुत्वानानाविधान्धर्मस्तत्प्रसादान्महामुने ॥ नाहंतृप्तिन्तुगच्छामि नर्मदख्यानकीर्तनात् ॥ १ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ गावःपवित्रमतुलं गावःसर्वार्थसाधकाः ॥ तस्माद्दिगोप्रदानेन शिवभक्त्याप्रमुच्यते ॥ २ ॥ जैसा कुछ हुआ सो आपसे कहागया ॥ ८३ ॥ इसके सुनने व कहने से हजार गोदानोंका फल पाता है ॥ ८२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेप्राकृतभाषाजुवादे नर्मदसाहात्म्यैषष्ठितमोऽध्यायः ॥ ८० ॥

युधिष्ठिरजी बोले कि हे महामुने ! आपके प्रसादसे अनेक तरह के धर्मों को सुनकर इस नर्मदाके आख्यानके कीर्तन से हम तृप्तिको नहीं प्राप्त होते हैं ॥ १ ॥ तब मार्कण्डेयजी बोले कि गौवें वड़ी पवित्र वस्तुहैं और गौवें सब अर्थोंकी सिद्धि करनेवालीहैं तिससे गौवोंके देने व महादेवकी भक्तिसे मनुष्य पापसे छूटताहै ॥ २ ॥

जिस देशमें महादेवजी की नित्य भक्तिसे युक्त मनुष्य होता है वह देशही पवित्र होजाता है फिर भाइयों के सहित वह पवित्र होता है इस बातको क्या कहना है ॥ ३ ॥ इस पुराण में छह हजार श्लोक नर्मदा माहात्म्य के कहेगये हैं ज्ञानयोग व धर्मयोगके तत्त्वके जाननेवाले ने इस बातको कहा है ॥ ४ ॥ धर्म और अधर्मों से जो गतियां होती हैं उनका हाल इस पुराण में कहागया है और तीर्थोंकी कथाके साथ उत्तम नर्मदा की कथा कहीगई है ॥ ५ ॥ उस कथाके सुनने व कहने से संसारबन्धन से छूटजाता है वसन और फूलों से युक्त पुराणविधाको सिंहासन पर स्थापित कर ॥ ६ ॥ और महादेव तथा विष्णुका पूजन कर पुराण को

यस्मिन्देशे भवेन्नित्यं शिवभक्तिसमन्वितः ॥ सोपि देशो भवेत्पूतः किम्पुनश्च स बान्धवः ॥ ३ ॥ उक्ता निपटसह
स्वाणि पुराणे मेकलातटे ॥ इत्याह ज्ञानयोगस्य धर्मयोगस्य तत्त्ववित् ॥ ४ ॥ धर्माधर्मगतीनाञ्च स्वरूपमुपवर्णि
तम् ॥ तीर्थाख्यानसमायुक्तं नर्मदाख्यानमुत्तमम् ॥ ५ ॥ कीर्तनाच्छ्रवणात्तस्य मुच्यते भवबन्धनात् ॥ विद्यासिंहा
सने दिव्ये वस्त्रपुष्पाधिवासिताम् ॥ ६ ॥ पूजयित्वा हरं विष्णुं शृणुयाद्वाचयेत्तथा ॥ श्रीमत्सिंहासनं वापि क्लृप्तं हैमशुशो
भनम् ॥ ७ ॥ हेमवस्त्रोपरिच्छन्नं नानारत्नविभूषितम् ॥ राजतन्ताम्रकंकाशं ब्रह्मचारिविनिर्मितम् ॥ ८ ॥ तत्तु तारस
मुद्धृतं शृङ्गवद्गलभूषितम् ॥ दिव्यं सिंहसंनं वापि पूजां कृत्वा प्रयत्नतः ॥ ९ ॥ गन्धाधिवासितकरः श्रीमदासनसंस्थितः ॥
शमभ्वाय तनतीर्थेषु नरेन्द्रभवनेषु च ॥ १० ॥ बोधयेत्परमं धर्मं गृहग्रामपुरेषु च ॥ नर्मदा कीर्तनाच्छ्रोता शिवलोके
महीयते ॥ ११ ॥ इदं तीर्थमिदं तीर्थं पर्यटन्नेति वैनरः ॥ नर्मदैवपरन्तीर्थमित्याह भगवाञ्छ्रवः ॥ १२ ॥ अस्मि

सुने और वक्तासे बेंचावे व सुवर्ण का बनाहुआ अतिशोभन चमकीला सिंहासन हो ॥ ७ ॥ जिसके ऊपरका भाग सोनहले वस्त्रोंसे ढका होवे और अनेक प्रकार के रत्नों से शोभितहो अथवा चांदी व तांबे व कांसेहीका होवे परन्तु ब्रह्मचारीका बनाया हुआ होवे ॥ ८ ॥ अथवा रत्नोंसे विभूषित, पीतलका शिखरवाला सिंहासन होवे उस दिव्य सिंहासनका अतियत्नसे पूजनकर ॥ ९ ॥ चन्दनसे सहकाले हाथवाला उत्तम आसनपर बैठाहुआ महादेवके स्थानोंसे युक्त तीर्थोंमें अथवा राजभवनोंमें ॥ १० ॥ व अपने घर व गांव व शहरमें पुराण में कहेहुये परमधर्मको श्रोताओंको समझावे नर्मदा की कथासे श्रोता शिवलोकमें पूजित होता है ॥ ११ ॥ यह तीर्थ है

यह तीर्थ है ऐसे ही मनुष्य भ्रमा करता है परन्तु निश्चय करके सबसे श्रेष्ठ तीर्थ नर्मदा ही है यह भगवान् महादेवजी ने कहा है ॥ १२ ॥ हे नरश्रेष्ठ ! इस तीर्थ में विधि से श्राद्ध करना चाहिये श्राद्ध में जो स्वागत किया जाता है उससे यमराज प्रसन्न होते हैं और श्राद्ध में जो आसन दिया जाता है उससे इन्द्र प्रसन्न होते हैं और पादार्घ्य से पितर प्रसन्न होते हैं और अन्न आदि के देने से प्रजापतिजी प्रसन्न होते हैं व ब्राह्मणों के चरणोदक से जब तक पृथिवी भीगी रहती है ॥ १३ ॥ १४ ॥ तब तक पितरलोग कमलदलों के पात्रों में जल पीते हैं विद्या के पढ़नेवाले को व संन्यासी को व वेदपाठी को व दण्डरहित परमहंसको और वैष्णव भिजुकको श्राद्ध का सब

स्तीर्थेन श्रेष्ठ श्राद्धं कार्यं विधानतः ॥ स्वागतेन यमः प्रीतश्चासनेन शतक्रतुः ॥ १३ ॥ पितरः पादशौचिना ब्रह्माद्येन प्रजापतिः ॥ विप्रपादोदकं छिन्नायावत्तिष्ठति मेदिनी ॥ १४ ॥ तावत्पुष्करपात्रेषु पिबन्ति पितरो जलम् ॥ विद्यावते स्नात काय भिक्षवे श्रोत्रियाय च ॥ १५ ॥ तथा परमहंसाय विष्णुव्रतधराय च ॥ सर्वोपस्करणं दत्त्वा शिवलोके महीयते ॥ १६ ॥ अनाहिताग्निनो विप्रमाहिताग्निन करोति च ॥ ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः स्ववित्तैर्नैव कारयेत् ॥ १७ ॥ अर्द्धांक्षं सफ लंतस्य यावज्जीवन्न संशयः ॥ विष्णुलोके न्तकाले च भोगान्मुञ्क्ते च पुष्कलान् ॥ १८ ॥ स्वद्रव्येण च योजनं करोति विधिवद् द्विजः ॥ नर्मदा तीरमासाद्य ब्रह्मलोके समोदते ॥ १९ ॥ धार्वाहिरण्मयीं कृत्वा ब्राह्मणाय प्रकल्पयेत् ॥ क ल्पगातीरमाश्रित्य विष्णुलोके महीयते ॥ २० ॥ तिलतण्डुलकर्पूरसुसम्भोज्य विमिश्रितैः ॥ कुङ्कुमैर्वस्त्रधान्यैश्च नि

सामान देकर शिवलोक में पूजा जाता है ॥ १५ ॥ १६ ॥ जो ब्राह्मण अग्निहोत्र नहीं करता है उसको जो ब्राह्मण व क्षत्रिय व वैश्य अपने धन से अग्निहोत्री करता या करता है ॥ १७ ॥ वह उस अग्निहोत्री ब्राह्मण के जिन्दगी भर के फल के आधे का आधा (चतुर्थांश) फल पाता है इसमें कुछ सन्देह नहीं है और अन्ततः समय में विष्णुजी के लोक में पूरे भोगों को भोगता है ॥ १८ ॥ जो ब्राह्मण नर्मदा के किनारे जाकर अपने धन से यज्ञ को विधि से करता है वह ब्रह्मलोके भोग करता है ॥ १९ ॥ सोने का आंवला बनवाकर जो नर्मदा के किनारे जाकर ब्राह्मण को देता है वह विष्णुलोक में पूजित होता है ॥ २० ॥ और जो मनुष्य वस्त्र व धान्यों से युक्त, तिल व

चावल, कपूर, सुन्दर भोज्य पदार्थों से मिलेहुये कुंकुम रो बनाये हुये आंवले को शिवजी के निकटमें व ग्रहणके समय में व अमरकण्टक पर्वत पर व नर्मदा के किनारेपर देता है वह विष्णुलोक व स्वर्गमें बसता है इसमें संशय नहीं है ॥ २१ ॥ व जो उत्तम पुरुष सोने व रत्नोंके गहनोसे सजीहुई प्रत्यक्षगौ व घृतधेनु व रुड-धेनु और शर्कराधेनुको नर्मदा और कपिला के योग में देता है वह इन गौवों को देकर सब पापों से छुटाहुआ विष्णुलोक में विहार करता है ॥ २२ ॥ २४ ॥ व-हे महाराज ! जो वहां नर्मदा व कपिलाके संगममें अपनी मांगीहुई भिक्षाका अन्न दियाजावे तो उसके पुण्यकी गिन्ती नहीं है किन्तु हे नृप ! जबतक वह संगम रहे

मिंतं शिवसधिना ॥ २१ ॥ पर्वकाले च यो दद्यात्पर्वते मे कलातटे ॥ वसेत्स विष्णुलोकेषु नरः स्वर्गे न संशयः ॥ २२ ॥ प्रत्यक्षधेनु यो दद्याद्धे मरत्नविभूषिताम् ॥ घृतधेनुं गुण्डधेनुं शर्कराधेनुमेव च ॥ २३ ॥ रेवाकपिलयोर्योगे दत्त्वेतानरसत्तमः ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तो लोके क्रीडति वैष्णवे ॥ २४ ॥ यदि तत्र महाराज भिक्षान्नञ्च निवेदितम् ॥ तस्य संख्यानं विद्धे त सयावत्संगमो नृप ॥ २५ ॥ एतत्सर्वं यथान्यायं कथितन्त वसुव्रत ॥ वैवस्वते नन्तरैथान्यच्छृणु त्वं नृप सत्तम ॥ २६ ॥ वीरणस्य तुराजर्षेर्भवे यो भूत्पुरोहितः ॥ तेन चायतनं विष्णोः कारितं नर्मदा तटे ॥ २७ ॥ पुण्याश्चैवामरावत्या दिशिया म्यां व्यवस्थितम् ॥ तदायतनमाहात्म्यान्नर्मदायाः प्रभावतः ॥ २८ ॥ मोदते वैष्णवे लोके युगस्याद्धिजोत्तमः ॥ शृणु त्वं यानि तीर्था निरेवायाः पश्चिमोत्तरे ॥ २९ ॥ वनं मेघवनन्नाम यज्ञपर्वतमाश्रितम् ॥ रन्ति देवः पुरातन चक्रवर्तीयुधिष्ठिर ॥ ३० ॥ गविनी तं कुलं येन स देवासुरमानुषम् ॥ पितरो मोचिता येन गोभिर्विनिहताः पुरा ॥ ३१ ॥ चाण्डालैश्च

तबतक वह विष्णुलोक में विहार करता है ॥ २५ ॥ हे सुव्रत ! यह सब यथार्थ आपसे कहा गया अब हे नृपसत्तम ! और वृत्तान्त तुम सुनो कि वैवस्वतमन्वन्तरमें ॥ २६ ॥ वीरणनामक राजर्षि के भैत्रेय नामके पुरोहित होतेहुये उन्होंने ने नर्मदा के तट में ठाकुरद्वारा बनवाया ॥ २७ ॥ वह अमरावती पुरीके दक्षिण दिशा में विद्यमान है उस मन्दिरके माहात्म्यसे और नर्मदाके प्रभावसे ॥ २८ ॥ वे उत्तम ब्राह्मण आधे युगभर विष्णुके लोकमें आनन्द करते रहे अब नर्मदाके पक्षोंह और उत्तर में जो तीर्थ हैं उनको तुम सुनो ॥ २९ ॥ कि मेघवन नामका वन यज्ञपर्वत पर वर्त्तमान है हे युधिष्ठिर ! अगिले जमाने में वहां चक्रवर्ती राजा रन्तिदेव होतेहुये ॥ ३० ॥

जिन्होंने देवता, दैत्य और मनुष्योंके सहित अपने कुलको गोलोकमें प्राप्तकरदिया गौवोंसे पूर्वकालमें मारोग्ये अपने पितरोंको पापसे छुटादिया ॥ ३१ ॥ जो चारडालों से मारोग्ये थे वे भी परमगतिको प्राप्तहुये चारडाल व जल व सांप व बिजली व ब्राह्मण ॥ ३२ ॥ व दांतोंवाले पशुओं से पापियों की मौत होती है वे लोग नारायणबलि से क्रिया करने से व तीर्थों में पिण्डोंके देनेसे परमगतिको प्राप्तहोतेहैं अवन्तीपुरके मालिक दधीचि नामके राजर्षि ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ सब धर्मधारियों से श्रेष्ठ इन्द्रके तुल्य पराक्रमवाले होतेहुये अगिले जमाने में देवता और दैत्यों के युद्धमें दैत्यों ने देवताओंको जीतलिया ॥ ३५ ॥ देवता और ब्राह्मणोंके मारनेवाले

हतायेच प्राप्नुवन्तिपराङ्गतिम् ॥ चारडालाहुदकात्सर्पादिद्युतोब्राह्मणादपि ॥ ३२ ॥ दन्तिभ्यश्चपशुभ्यश्च मरणंपाप शालिनाम् ॥ विष्णोर्बलिप्रदानेन क्रियाणांकरणेनच ॥ ३३ ॥ तीर्थपिण्डप्रदानेन तेयान्तिपरमाङ्गतिम् ॥ दधीचिर्नामराजर्षिरवन्त्यधिपतिस्तथा ॥ ३४ ॥ सर्वधर्ममभृतांश्रेष्ठशक्रतुल्यपराक्रमः ॥ पुरादेवासुरेयुद्धे दैत्यैर्देवाविनिर्जिताः ॥ ३५ ॥ देवानांब्राह्मणानाञ्च हन्तारोदैत्यकण्टकाः ॥ नष्टाःस्वपापदोषेण सभृत्यकुलबान्धवाः ॥ ३६ ॥ देवास्समुदितास्सर्वे लोकपालास्सवासवाः ॥ निर्विघ्नं पृथिवीकृत्वा लोकञ्चैवचराचरम् ॥ ३७ ॥ विध्यंगिरिङ्गितास्तेतु यस्मिन्वहतिकल्पगा ॥ समर्थभूपतिज्ञात्वा दधीचिंकुरुसत्तम ॥ ३८ ॥ दत्तान्यस्त्राणिरत्नार्थं तस्म्यराज्ञस्सुरोत्तमैः ॥ वज्रंशक्तिं तथापाशं दण्डं खड्गं ध्वजं गदाम् ॥ ३९ ॥ त्रिशूलं चेति देवानामायुधानि प्रचक्षते ॥ तानि दत्त्वा यथान्यायं नाकपृष्ठमुदाययुः ॥ ४० ॥ पुराणमतमाज्ञाय दधीचिस्सत्यदिक्रमः ॥ शापस्यैव भयाद्भीतो नमस्कृत्य प्रशुभ्यच ॥ ४१ ॥

काटे ऐसे वे दैत्यलोग अपनेही पापके दोषसे अपने सेवक और परिवार व भाइयोंके सहित नष्टहोगये ॥ ३६ ॥ तब सब देवता व इन्द्रसहित सब लोकपाल आनन्दित होगये फिर पृथिवी और सब चराचर लोकको वेखटके करके ॥ ३७ ॥ वे सब देवतालोग विन्ध्याचलको चलेगये जहां नर्मदाजी बहती हैं वहां हे कुरुसत्तम ! राजा दधीचिको समर्थ जानकर ॥ ३८ ॥ उनकी रक्षाके वास्ते उत्तम देवताओंने राजाको अस्त्रोंको देदिया वज्र, शक्ति, फेंकरी, दण्ड, तलवार, ध्वजा, गदा ॥ ३९ ॥ और त्रिशूल ये ही देवताओं के हथियार कहेजाते हैं इनको रीतिपूर्वक राजा को देकर प्रसन्नतासे देवता स्वर्गको चलेगये ॥ ४० ॥ पुराने मतको जानकर सच्ची

ताकृतवाले राजा दधीचि देवताओं के शापके भयसे डरेहुये देवताओं के नमस्कार कर और हथियारों को लेकर ॥ ४१ ॥ अपने प्रभावसे उन हथियारों को पानी बनाकर अपने शरीरके भीतर कर लिया तदनन्तर फिर और समय के होने पर फिर दानव लोग अपने बल से अहंकार को प्राप्त होतेहुये ॥ ४२ ॥ जम्भ, कुम्भ और ह्य-ग्रीव आदि दानव लोग फिर उठतेहुये दानवों के बलको जानकर इन्द्रसहित सब देवता डरगये ॥ ४३ ॥ समय लगे पर देवता लोग अपने अपने हथियारों की यादकर हे भारत ! नारद को दधीचि के पास भेजतेहुये ॥ ४४ ॥ उन देवताओं के ऋषि नारद जीने उज्जैनीपुरीको प्राप्त होकर मणि और सोनेकी वेदी बनीहैं जिसमें ऐसे

प्रभावात्तोयतांतीत्वा शरीरान्तन्त्यवेशयत् ॥ ४२ ॥ जम्भकुम्भहयग्रीवप्र-
मुखाः पुनरुत्थिताः ॥ दानवानां बलं ज्ञात्वा त्रस्ता देवास्सवासवाः ॥ ४३ ॥ कार्यकाले समुत्पन्ने संस्मृत्यास्त्रायुधानि
च ॥ नारदं प्रेषयामास दधीचिं प्रतिभारत ॥ ४४ ॥ अवन्तीसपुरीम्प्राप्य देवर्षिर्नारदस्तथा ॥ विवेश भवनं राज्ञो मणि
काञ्चनवेदिकम् ॥ ४५ ॥ उत्थितो नृपशार्दूलो मुनिर्नृष्ट्वा सुतेजसम् ॥ पूजयित्वा यथान्यायं हेमकासनसंस्थितम् ॥
४६ ॥ तन्तुष्ट्वा सुखासीनं राजा वचनमब्रवीत् ॥ किमर्थं मानुषे लोके देवलौकात्समागतः ॥ ४७ ॥ नारद उवाच ॥
युद्धं महत्समुत्पन्नं देवानां दानवैस्सह ॥ समर्पयन्त्वं शस्त्राणि क्षीयन्ते दानवा यथा ॥ ४८ ॥ कुरुकार्यं च देवानां सत्यं च
र्मन्व्रते स्थितः ॥ दधीचिस्त्वाच ॥ शृणु कार्यञ्च देवर्षे देवानां हितकाम्यया ॥ ४९ ॥ अचिरैरेव कालेन क्षयं यास्यन्ति

राजाके मकान में प्रवेश किया ॥ ४५ ॥ राजाओं में श्रेष्ठ दधीचि राजा सुन्दर तेजवाले मुनिको देखकर उठे और सोने के सिंहासन पर बैठेहुये मुनिका यथार्थ रीति से पूजनकर ॥ ४६ ॥ फिर सुखसे बैठेहुये उन मुनिजीको देखकर राजा वचन बोले कि आप देवलोक से मनुष्यलोकको किस वारते भलीभाति आयेहो ॥ ४७ ॥ तब नारदजी बोले कि देवताओंका दानवों के साथ बड़ा युद्ध पड़गया है सो अब आप उन हथियारों को दीजिये जिनसे दानवलोग जीण होजावे ॥ ४८ ॥ आप सच्चे धर्मके व्रतमें स्थितहो इससे देवताओं के कामको करो तब दधीचि बोले कि हे देवर्षे ! अब देवताओंके हितकी कामनासे जो काम करना है उसको तुम सुनो ॥ ४९ ॥

थोड़ेही कालमें सब दानवलोग नष्ट होजायँगे मैंने उन्हीं हथियारों की रचाके वास्ते हे महासुने ॥ ५० ॥ उनको पानी करके पीलिया है सो वे मेरी देहके भीतर वर्त्तमान हैं अब इनको देवतालोग उपाय से लेलेवें मैं इनको फिर देवताओं को देदूंगा ॥ ५१ ॥ हे नृपश्रेष्ठ ! इतना कहकर पूर्वकाल में राजा दधीचि गौवों को बुलातेहुये तब हे विशाम्पते ! गौवोंने दधीचि का मांस आदि सब चाटलिया केवल हड्डियों को छोड़दिया ॥ ५२ ॥ तब लोकपालोंने जैसे तैसे अपने हथियारों को पाया वह स्थान गोनई नाम से लोकों में प्रसिद्ध हुआ ॥ ५३ ॥ फिर देवताओं ने दैत्योंको मारा और फिर संसार भी अपने कामों में प्रवृत्त हुआ तदनन्तर वहां दानवाः ॥ मयातान्येवशस्त्राणि रक्षणार्थमहामुने ॥ ५० ॥ आपोभूतानिपीतानि शरीरेसन्तितानिवै ॥ उपायेनहिमृहन्ति दास्याम्येतानिवैपुनः ॥ ५१ ॥ इत्युक्त्वाचनृपश्रेष्ठ आजुहावचगाःपुरा ॥ मांसादिभक्षितंगोभिरस्थिवज्रैर्विशारुपैः पुनःसृष्टिःप्रवर्तिता ॥ लोकपालैर्यथातथा ॥ गोनर्दनामनगरं तत्तुलोकैषुविश्रुतम् ॥ ५३ ॥ दानवानिहतादेवलोकांकन्तेयान्ति नतेषामुदकक्रिया ॥ ५५ ॥ शोचयित्वाचिरंकालं सान्तःपुरपरिश्रमः ॥ प्रक्षाल्यनर्ममहातोये तदस्थीनिव्यसर्जयत् ॥ ५६ ॥ लिङ्गब्रह्मेश्वरंतत्र यज्ञपर्वतसन्निधौ ॥ धर्मसंशयमापन्नो रन्तिदेवोमहीपतिः ॥ ५७ ॥ पप्रच्छमुनिशार्दूलान्वशिशुप्रमुखान्दिजान् ॥ त्रिःप्रदक्षिणमावृत्य यथान्यायमिदं वचः ॥ ५८ ॥ केदेशाःपर्वताःपुराया नद्यःकाःकीर्तिताश्शुभाः ॥ नरकस्यान्पितृन्यत्र तद्वदेयुःसमुद्धरेत् ॥ ५९ ॥ अक्षयंचपितृश्राद्धं पितृणामक्षयाग राजा रन्तिदेवने विचार किया ॥ ५४ ॥ कि गौ, विजली, पशु, चाण्डाल और सर्पों से मारे हुये मनुष्य स्वर्ग को नहीं जाते हैं और न उनको जलदान होसक्ता है ॥ ५५ ॥ ऐसे बहुत काल तक अपनी रानियों के सहित राजा रन्तिदेव जी ने विचार कर फिर दधीचि की हड्डियों को धोयकर नर्मदा के जल में विसर्जन कर दिया ॥ ५६ ॥ वहां यज्ञपर्वत के तीर ब्रह्मेश्वर लिङ्ग है अब यहां धर्मकी सन्देह में पड़ेहुये राजा रन्तिदेव ने वशिष्ठ आदि उत्तम ब्रह्मर्षियों से पूछा उनकी तीन बार प्रदक्षिणाकर नीति के अनुकूल इस वचन को कहा ॥ ५७ ॥ कि कौन देश व कौन पर्वत व कौन नदियां बहुत पवित्र कहीं गई है जहां पर नरकोंमें पड़ेहुये पितरोंको

मनुष्य उद्धार करसके सो आपलोग हम से कहें ॥ ५९ ॥ जहांपर करने से पितरोंका श्राद्ध अन्नयफलवाला होवे और पितरोंकी अन्नयगति भी हो तब ऋषिलोग बोले कि हे भूपते ! हमलोगों के सहित आप मार्कण्डेयमुनि के आश्रमको चलो ॥ ६० ॥ क्योंकि नर्मदाके तट में बैठेहुये वे मार्कण्डेयजी भी सब कुछ जानते हैं मुनियों से ऐसे कहेगये रन्तिदेव भी उनके उसवचनको सुनकर ॥ ६१ ॥ मुनियोंके सहित नर्मदा तटके रहनेवाले मार्कण्डेयजीके पास जातेहुये और ब्राह्मणोंके सहित उनके नमस्कारकर पूजन करतेहुये ॥ ६२ ॥ तब कुशासन पर बैठेहुये मार्कण्डेयजी ने कहा कि नर्मदाजी किन पापी पितरोंको संसारसमुद्र

तिः ॥ ऋषय ऊचुः ॥ मार्कण्डेयाश्रमंगच्छ अस्माभिस्सहभूपते ॥ ६० ॥ सोपि सर्वविजानीयात्कल्पगतीरमाश्रितः ॥ तच्छ्रुत्वारन्तिदेवोपि मुनिभिःपरिभाषितः ॥ ६१ ॥ जगाममुनिभिस्सार्द्धकल्पगतीरवासिनम् ॥ सराजाब्राह्मणैस्सा र्द्धं प्रणिपत्यतथार्चयत् ॥ ६२ ॥ समुत्थायाब्रवीद्वाक्यमुपविष्टः कुशासने ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ कान्नमोचयते घोरा निपतृन्संसारसागरात् ॥ ६३ ॥ शृण्वन्तु मम वाक्यानि मुनयो विदितात्मनः ॥ सर्वतीर्थमयीरेवा सर्वार्थात्ममयी शुभा ॥ ६४ ॥ शिवेनैतन्निगदितं पुराणैस्कन्दकीर्तिते ॥ कुब्जारेवासमायोगे विशेषात्सुरपूजिते ॥ ६५ ॥ तत्र स्नातादिवं यान्ति ये मृतानपुनर्भवाः ॥ तत्र श्राद्धेन योगेन पितॄणां परमागतिः ॥ ६६ ॥ इदन्ते कथितं राजकुब्जारेवासमागमे ॥ अर्चयित्वा महेशानं तत्र बिल्वाम्रकाक्ष्यम् ॥ ६७ ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तो गाणपत्यमवाप्नुयात् ॥ सार्द्धकोटिस्तुकन्या

से नहीं छुटासक्ती है ॥ ६३ ॥ यहाँके बड़े बड़े आत्मज्ञानी मुनिलोग मेरी बातोंको सुने कि ये नर्मदा सब तीर्थोंका रूपहैं और सब पदार्थ इन्हींमें वर्त्तमानहैं व पवित्र है ॥ ६४ ॥ यह स्कन्दपुराणमें महादेवजी ने कहाहै तिसमें देवपूजित कुब्जा और नर्मदा के संगम में विशेष फल होताहै ॥ ६५ ॥ वहाँ जिन्होंने स्नान किया है वे स्वर्ग को-जाते हैं और जो वहाँ मरे हैं वे फिर पैदा नहीं होसक्ते वहाँ श्राद्ध के करने से पितरों की परमगति होती है ॥ ६६ ॥ हे राजन् ! यह तुम से कहा गया कुब्जा और नर्मदा के समागम में बिल्वाम्रक नाम के महादेव का पूजनकर ॥ ६७ ॥ सब पापोंसे छुटा हुआ गणों की राज्य को पाताहै वहाँ पर डेढ़ करोड़ कन्यायें

परम सिद्धि को प्राप्त हुई हैं ॥ ६८ ॥ हे भारत ! कामदेव के दोष से उन कन्याओं को पूर्वकाल के सुनियों ने शाप दिया था और भी कुवेरपुर के रहनेवाले विद्याधर, यक्ष, गन्धर्व और किन्नर भी उसी दोष से शापित हुये थे परन्तु वे सब कुब्जा और नर्मदा के समागम में सिद्धि को प्राप्त हुये ॥ ६९ ॥ सोमवती अमावस, कार्तिकी और ग्रहण आदि पर्वों में काशी, प्रयाग, पुष्कर और नैमिष ॥ ७१ ॥ ये सब कुब्जा और नर्मदा के समागम में स्नान करने को भलीभाँति आते हैं इसके सुनने व कहने से शिवलोक में पूजा जाता है ॥ ७२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणोरेवाखण्डे प्राकृतभाषास्तुवादेरन्तिदेवोपाख्यानं नैमिषस्थितमोऽध्यायः ॥ ६१ ॥

नां तत्र सिद्धिपराङ्गता ॥ ६८ ॥ शप्तास्ताः पूर्वसुनिभिः कामदोषेण भारत ॥ विद्याधराश्च यक्षाश्च गन्धर्वाः किन्नरास्तथा ॥ ६९ ॥ शप्तास्तैर्नैव दोषेण कुवेरपुरवासिनः ॥ सर्वे तैर्सिद्धिमापन्नाः कुब्जारेवासमागमे ॥ ७० ॥ अमासो मसमायोगे कार्तिक्या चैव पर्वणि ॥ वाराणसी प्रयागश्च पुष्करक्षेत्रौ मिषं तथा ॥ ७१ ॥ एते स्नातुं समाया न्ति कुब्जारेवासमागमे ॥ श्रवणात्कीर्तनादस्य शिवलोकं महीयते ॥ ७२ ॥ इति श्रीरेवाखण्डेरन्तिदेवोपाख्यानं नैमिषस्थितमोऽध्यायः ॥ ६१ ॥

रन्ति देव उवाच ॥ यथा शप्तास्तुताः कन्यास्ता सान्नामानि कल्पग ॥ श्रोतुमिच्छामि तत्त्वेन केषु स्थानेषु पूजिताः ॥ १ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ वाराणस्यां विशालाक्षी नैमिषे लिङ्गधारिणी ॥ प्रयागे ललिता देवी कामुका गन्धमादने ॥ २ ॥ मानसे कुमुदानाम विश्वयोनिस्तथा म्वरे ॥ गोमन्ते गोमती नाम मन्दरे कामचारिणी ॥ ३ ॥ मदोत्कटा चैत्ररथे तपन्ती हस्तिनापुरे ॥ कान्यकुब्जे तथा गौरी प्रभाकमलपर्वते ॥ ४ ॥ एकग्रे कीर्तिमत्याख्या विश्वाविश्वेश्वर तथा ॥ पुष्करे पुरु

राजा रन्तिदेवजी बोले कि हे कल्पग ! जैसे उन कन्याओं को शाप दिया गया हो और उनके जो जो नाम हों उनको हम तत्त्वसे सुना चाहते हैं और वे किन स्थानों में पूजी जाती हैं ॥ १ ॥ तब मार्कण्डेयजी बोले कि काशी में विशालाक्षी और नैमिष में लिङ्गधारिणी पूजी जाती हैं इसी प्रकार प्रयाग में ललिता देवी, गन्धमादन में कामुका ॥ २ ॥ मानस में कुमुदानाम उसी प्रकार अम्बर में विश्वयोनि, गोमन्त में गोमती नाम, मन्दर में कामचारिणी ॥ ३ ॥ चैत्ररथ में मन्दोत्कटा, हस्तिनापुर में

तपन्ती, कान्यकुब्ज में गौरी, कमलपर्वतपर प्रभा ॥ ४ ॥ एकाग्र में कीर्तिमती नाम, विश्वेश्वर में विश्वा, पुष्करमें पुरुहूता, केदारमें मार्गदायिनी ॥ ५ ॥ हिमालय में नन्दा, गोकर्ण में भद्रकर्णिका, स्थानेश्वर में भवानी, बिल्वकमें बिल्वपत्रिका ॥ ६ ॥ श्रीशैलमें माधवी उसीप्रकार भद्रेश्वर में भद्रा, वाराहपर्वत में जया, कमलालयमें कमला ॥ ७ ॥ रुद्रकोटिमें रुद्राणी, कालञ्जर में कोटि, महालिङ्गमें कपिला, माकोट में मुकुटेश्वरी ॥ ८ ॥ शालग्राम में महादेवी, शिवलिङ्ग में जलप्रिया, मायापुरी में कुमारी वैसेही सन्तानमें ललिता ॥ ९ ॥ उत्पलनाम स्थानमें सहस्राक्षी, हिरण्याक्षमें महोत्पला, तीर्था में मङ्गलानाम, पुरुषोत्तम में विमला ॥ १० ॥

हूतेति केदारेमार्गदायिनी ॥ ५ ॥ नन्दाहिमवतःपृष्ठे गोकर्णभद्रकर्णिका ॥ स्थानेश्वरभवानीति बिल्वकेबिल्वपत्रिका ॥ ६ ॥ श्रीशैलेमाधवीनाम भद्राभद्रेश्वरतथा ॥ जयावाराहशैलेतु कमलाकमलालये ॥ ७ ॥ रुद्रकोट्यान्तरुद्राणी कोटिःकालञ्जरतथा ॥ महालिङ्गेतुकपिला माकोटमुकुटेश्वरी ॥ ८ ॥ शालग्रामेमहादेवी शिवलिङ्गेजलप्रिया ॥ मायापुर्यीकुमारीतु सन्तानैललितातथा ॥ ९ ॥ उत्पलाख्येसहस्राक्षी हिरण्याक्षेमहोत्पला ॥ तीर्थायांमङ्गलानाम विमलापुरुषोत्तमे ॥ १० ॥ विपाशायाममोघाक्षी पाटलापुरण्डवर्द्धने ॥ नारायणीसुपाश्वैच त्रिकूटेभद्रसुन्दरी ॥ ११ ॥ विपुलेविपुलानाम कल्याणीप्रलयाचले ॥ कोटीविकोटितीर्थेतु यमुनायांमृगावती ॥ १२ ॥ करवीरेमहालक्ष्मीरुमादेवीविनायके ॥ आरोग्यवैद्यनाथेतु महाकालेमहेश्वरी ॥ १३ ॥ अभयाकृष्णतीर्थेतु अमृताविन्ध्यकन्दरे ॥ माण्डव्येमाण्डुकानाम स्वाहामाहेश्वरेपुरे ॥ १४ ॥ छागलम्बाप्रचण्डेच चण्डिकामरकण्टके ॥ सोमेश्वरेवराहति प्रभासेपुष्करावती ॥ १५ ॥ देवमातासरस्वत्यां पारापारावतेतथा ॥ महालयेमहाभागा पयोण्यांपिङ्गलेश्वरी ॥ १६ ॥ संहि विपाशा में अमोघाक्षी, पुरण्डवर्द्धनमें पाटला, सुपाश्व में नारायणी, त्रिकूट में भद्रसुन्दरी ॥ ११ ॥ विपुलमें विपुला, प्रलयाचल में कल्याणी, विकोटितीर्थ में कोटी, यमुना में मृगावती ॥ १२ ॥ करवीर में महालक्ष्मी, विनायक में उमादेवी, वैद्यनाथ में आरोग्या, महाकालमें महेश्वरी ॥ १३ ॥ कृष्णतीर्थ में अभया, विन्ध्यकन्दर में अमृता, माण्डव्यमें माण्डुकानाम, माहेश्वरपुर में स्वाहा ॥ १४ ॥ प्रचण्डमें छागलम्बा, अमरकण्टकमें चण्डिका, सोमेश्वरमें वराही, प्रभासेमें पुष्करावती ॥ १५ ॥

सरस्वती में देवमाता, वैसेही पागवत में पारा, महालय में महाभाग। पयोष्णी में पिङ्गलेश्वरी ॥ १६ ॥ कुतशौच में संहिता, कार्तिकेय में शाङ्करी, उत्पला-
वर्षमें लोला, शोणसङ्गम में सुभद्रा ॥ १७ ॥ मालासिद्धतल में लक्ष्मी, भारताश्रम में अनन्ता, जालन्धर में सिद्धमुखी, किष्किन्धापुरी के पर्वतपर तारा ॥ १८ ॥
देवदारुवन में पुष्टि, कश्मीरमण्डल में मेधा, हिमालय में भीमादेवी, वलेश्वर में तुष्टि ॥ १९ ॥ कपालमोचन में सिद्धि, कायावरोहण में माता, शङ्खोद्धारमें धृति
नाम, पिण्डारकमें ध्वनि ॥ २० ॥ चन्द्रभागा में कला, अक्षोदमें शिवधारिणी, वैजयन्ती में अमृता, वदरी में ओषधी ॥ २१ ॥ उत्तरकुरुमें भी ओषधी ही है, कुरा-

ताकृतशौचेतु कार्तिकेयेतुशाङ्करी ॥ उत्पलावर्षकेलोला सुभद्राशोणसङ्गमे ॥ १७ ॥ मालासिद्धतलेक्ष्मीरनन्ताभा
रताश्रमे ॥ जालन्धरसिद्धमुखी ताराकिष्किन्धपर्वते ॥ १८ ॥ देवदारुवनेपुष्टिर्मेधाकश्मीरमण्डले ॥ भीमादेवीहि
माद्रौतु तुष्टिर्वलेश्वरेतथा ॥ १९ ॥ कपालमोचनेसिद्धिर्माताकायावरोहणे ॥ शङ्खोद्धारधृतिर्नाम ध्वनिःपिण्डारकेत
था ॥ २० ॥ कलातुचन्द्रभागायामक्षोदेशिवधारिणी ॥ वैजयन्त्यमृतानाम्बुवदर्थ्यमोषधीतथा ॥ २१ ॥ ओषधीचोत्त
रकुरौ कुशक्षीपेकुशोदका ॥ मन्मथाहिमकूटेतु प्रमतेसत्यवादिनी ॥ २२ ॥ अश्वत्थेवन्दिनीनाम निधिवैश्रवणेत
था ॥ गायत्रीवेदवदने पार्वतीशिवसन्निधौ ॥ २३ ॥ देवलोकैतथेन्द्राणी ब्रह्मण्यस्येसरस्वती ॥ सूर्यविम्बेप्रभानाम
मातृकवैष्णवीतथा ॥ २४ ॥ अरुन्धतीसतीनांच अप्सरस्युतिलोत्तमा ॥ चित्तिर्ब्रह्मकलानाम शक्तिस्सर्वशरीरिणा
म् ॥ २५ ॥ एतदुद्देशतःप्रोक्तं नामाष्टशतमुत्तमम् ॥ अष्टोत्तरन्तुतीर्थानां शतमेकं ह्युदाहृतम् ॥ २६ ॥ यः पठेत्प्रातरु

द्दीपमें कुशोदका, हिमकूटमें मन्मथा, प्रमत्तमें सत्यवादिनी ॥ २२ ॥ अश्वत्थ में वन्दिनी, वैश्रवण में निधि, वेदों के मुखमें गायत्री, महादेव जी के समीप पार्वती ॥
२३ ॥ उसीप्रकार देवलोकमें इन्द्राणी, ब्रह्माजी के मुखमें सरस्वती, सूर्यविम्ब में प्रभा, मातृका और वैष्णवी ॥ २४ ॥ सती स्त्रियोंमें अरुन्धती, अप्सराओंमें तिलो-
त्तमा और सब देहवाले जीवों में ब्रह्मकला नामकी चिति शक्ति रहती है ॥ २५ ॥ ये संक्षेपसे उच्चम एकसौ आठ तीर्थोंकी शक्तियों

का ॥ २६ ॥ जो प्रातःकाल उठकर पाठ करते हैं वह परमगति को प्राप्त होता है इन तीर्थोंमें स्नानकर जो मनुष्य इन शक्तियोंको दर्शन करते हैं ॥ २७ ॥ सब पापों से छूटेहुये वे परमगति को प्राप्त होते हैं और जो कोई मनुष्य इन देवीजीके स्थानोंमें अपने शरीर को छोड़ता है ॥ २८ ॥ वह ब्रह्मलोक को नांधकर महादेवजी के स्थान को जाता है तीज व अष्टमी को महादेवजीके समीप जो मनुष्य इन एकसौ आठ नामों को सुनाता है वह मनुष्य बहुत पुत्रोंवाला होता है गोदानके समय में, श्राद्ध के समय में, विवाह व मङ्गलकार्य में ॥ २९ ॥ और देवताओं के पूजनविधान में इसका पढ़नेवाला ब्रह्महोता है इस बड़ी महिमावाले स्तोत्र को सुनकर

तथा यस्य प्रतिपदमांशति ॥ एषु तीर्थेषु यस्मात्त्वा एताः पश्यन्ति मानवः ॥ २७ ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तास्ते यान्ति परमा

ज्ञतिम् ॥ यः करोति तनुत्यागमुमास्थानेषु मानवः ॥ २८ ॥ स भित्त्वा ब्रह्मसदनं पदमाप्नोति शङ्करम् ॥ नामाष्टकशतं य

स्तु श्रावयेच्छिवसन्निधौ ॥ २९ ॥ तृतीयायान्तथाष्टम्यां बहुपुत्रो भवेन्नरः ॥ गोदाने श्राद्धकाले च विवाहे मङ्गलैतथा ॥

३० ॥ देवार्चनविधौ वापि पठन् ब्रह्मत्वमाप्नुयात् ॥ श्रुत्वैतत्स्तोत्रमनुलं नमस्कृत्य च पर्वतम् ॥ ३१ ॥ राजा स्वपितृभ्यो

ज्जाय यज्ञार्थं प्राह कल्पगम् ॥ कस्मिंस्तीर्थे भवेद्यज्ञः पितॄणां मोक्षदायकः ॥ ३२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे रेवाखण्डे मा

तृस्तुतिर्नाम द्विषष्ठितमोऽध्यायः ॥ ६२ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

मार्कण्डेय उवाच ॥ रेवातटे महापुरे पितॄणां मोक्षप्रति ॥ कुरुयज्ञं महाभाग मुच्यन्ते पितरो यथा ॥ १ ॥ इति

श्रुत्वामहाराज नमस्कृत्य च कल्पगाम् ॥ वशिष्ठप्रमुखैस्सार्द्धं जगाम स्वपुरं नृपः ॥ २ ॥ सवत्सानाञ्च लक्षैकमप्रभृता

और पर्वत के नमस्कारकर राजारन्तिदेव अपने पितरों के मोक्षके वास्ते यज्ञ के लिये मार्कण्डेयजी से बोले कि पितरों को मोक्ष देनेवाला यज्ञ किस तीर्थ में होना चाहिये ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे रेवाखण्डे प्राकृतभाषाऽनुवादे मातृस्तुतिर्नाम द्विषष्ठितमोऽध्यायः ॥ ६२ ॥ * ॥ * ॥

तब मार्कण्डेयजी बोले कि हे महाभाग ! अतिपवित्र नर्मदातट में पितरों को नरकसे छुटाने के लिये आप यज्ञ करो जिससे तुम्हारे पितर आपसे छूटजावें ॥ १ ॥

हे महाराज ! इतनी बात को सुनकर और नर्मदा के नमस्कार कर वशिष्ठ आदि ऋषियों के सहित राजा रन्तिदेव अपने शहर को आते हुये ॥ २ ॥ और वहां आकर

बछड़ोंवाली एकलाख गौवें और दशहजार बेबियानी गौवें, बीसहजार श्यामकर्ण घोड़े, मणि, माणिक और मोती आदि से सजेहुये उच्चैःश्रवा घोड़ें कीसी शोभा-
वाले और भी दशहजार घोड़े व घण्टाआदि आभूषणों से सोहेतेहुये दशहजार हाथी ॥ ३४ ॥ और मणि, माणिक आदि रत्नों की तो गिन्तीही नहीं करीजासक्ती
है इतना सामान लेकर अनेक देशों के राजाओं व पूरे वेदोंके पढ़नेवाले ब्राह्मणों के सहित ॥ ५ ॥ नीन, सितार और वेदों की ध्वनियों से चारों तरफ़ सब दिशाओं
को गुञ्जारते हुये व पृथ्वी और आसमान को आवाज से छूतेहुये ॥ ६ ॥ बड़े आनन्द व यज्ञ के सामान से युक्त राजारन्तिदेव नर्मदा के तीर आतेहुये ॥ ७ ॥

युतन्तथा ॥ विंशतिःश्यामकर्णानांहयानाञ्चदशायुतम् ॥ ३ ॥ मणिमाणिक्यमुक्तादिभूषितोच्चैःश्रवस्त्वषाम् ॥ अयु
तञ्चकरीन्द्राणां घण्टाभरणशोभिनाम् ॥ ४ ॥ मणिमाणिक्यरत्नानां संख्यांकर्तुन्नशक्यते ॥ नानादेशनृपैस्सार्द्धं ब्रा
ह्मणैर्वेदपारगैः ॥ ५ ॥ वेणुवीणानिनादेन ब्रह्मघोषवेणच ॥ आपूरयन्दिदशस्सर्वा दिवंभूमिञ्चसंस्पृशन् ॥ ६ ॥ हर्षेण
महतायुक्तो यज्ञसम्भारसंवृतः ॥ रन्तिदेवोमहीपालः कल्पगतीरमाश्रितः ॥ ७ ॥ अनेकमध्यभोज्यानां तत्रसंख्यान
विद्यते ॥ अष्टयोजनपर्यन्तं यज्ञयूपाश्चमण्डपाः ॥ ८ ॥ हेमरत्नमयास्तम्भा मणिमौक्तिकभूषिताः ॥ हिरण्मयानि
कुण्डानिर्वेदिकाश्चसहस्रशः ॥ ९ ॥ सुवश्चयज्ञपात्राणिसर्वस्वर्णमयन्तथा ॥ समाहूतास्ततोदेवा ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥

१० ॥ चन्द्रादित्यौग्रहैस्सार्द्धं नक्षत्रध्रुवमण्डलम् ॥ सिद्धाविद्याधरायज्ञासुरासुरमहोरगाः ॥ ११ ॥ देवराजश्चदेवाश्च
बृहस्पतिपुरोगमाः ॥ ततोयज्ञस्समारब्धो ब्राह्मणैर्वेदपारगैः ॥ १२ ॥ होमेनतर्पितादेवाः सर्वलोकनिवासिनः ॥ नि
वहां खाने व चबाने की चीजों की गिन्ती नहीं थी आठ योजन तक यज्ञों के खम्भे व मण्डप बने थे ॥ ८ ॥ मणि और मोतियों से सजेहुये रत्नों से जड़े सोने
के खम्भे बनायेगये और सोने के कुण्ड व वेदी हजारों बनाई गई ॥ ९ ॥ सुवा आदि यज्ञ के पात्र सब सोनेही के बने थे तदनन्तर ब्रह्मा, विष्णु और महादेव
आदि देवता बुलायेगये ॥ १० ॥ ग्रहों के सहित चन्द्रमा व सूर्य, नक्षत्रोंके सहित ध्रुवमण्डल, सिद्ध, विद्याधर, यक्ष, देवता, दैत्य, उत्तम नाग ॥ ११ ॥ इन्द्र, बृ-
हस्पति आदि और भी सब देवता बुलाये गये तदनन्तर वेदपाठी ब्राह्मणों ने यज्ञ का प्रारम्भ किया ॥ १२ ॥ होम से सब लोकोंके रहनेवाले देवताओं को तृप्त किया

और अपनी सातों जीभों से युक्त बिना धुंवाँके अग्नि जलते हुये ॥ १३ ॥ हे नराधिप ! यज्ञ में अग्निदेव आपही प्रत्यक्षरूप से वर्त्तमान रहे तदनन्तर दक्षिणा को पायेहुये ब्राह्मणोंने यज्ञ को समाप्त किया ॥ १४ ॥ हजारों चोबदारों ने देशमें डुगडुगी पिटवादी कि जो जिस बातकी इच्छा करता हो वह उसको यहां पावेगा इसमें सन्देह नहीं है ॥ १५ ॥ और वहां माता व पिताके कुलवाले पुरिखा बुलायेगये जो लोग अकाल मीचसे मरे व पशुओंकी योनि में पड़ेथे ॥ १६ ॥ वे सब यज्ञ के प्रभाव से उत्तम योनियोंको पातेहुये और खुलासा रूप को धरेहुये नर्मदा देवी वहां पूजीगई ॥ १७ ॥ और वहां पार्वतीजी के सहित भगवान् महादेवजी का भी

धूमश्चज्वलद्बहिस्सप्तजिह्वासमन्वितः ॥ १३ ॥ प्रत्यक्षोहव्यवाहश्च स्वयंयज्ञेनराधिप ॥ ततोनिवर्तितोयज्ञो ब्राह्मणैः ॥ १४ ॥ घोषणाभामिताराष्ट्रे प्रतीहारैस्सहस्रशः ॥ योंयकामयेतेकामं सोऽत्रतन्वेत्यसंशयः ॥ १५ ॥ आहूताःपूर्वजास्तत्रमातृकाःपैतृकास्तथा ॥ अपमृत्युवशंप्राप्तास्तिय्यग्योनिगताश्चये ॥ १६ ॥ तेसर्वेशुभयोनित्वमापन्नायज्ञयोगतः ॥ अर्चितानमर्मदादेवी प्रत्यक्षारूपधारिणी ॥ १७ ॥ अर्चितोभगवांस्तत्र पार्वत्यासहितोहरः ॥ श्रीपतिश्चाश्रियासार्द्धं शङ्खचक्रगदाधरः ॥ १८ ॥ शक्रादयस्तथादिवास्सपत्नीकाअलंकृताः ॥ गाश्चाश्वान्श्चकरीन्द्राश्च ब्राह्मणैर्भ्योन्यवेदयत् ॥ १९ ॥ यच्चान्यद्विद्यतेकिञ्चिद्धनंधान्यपयोदधि ॥ अग्निशौचानिवस्त्राणि सर्वैतेभ्योन्यवेदयत् ॥ २० ॥ युगपत्पूजितादेवा ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥ अर्चितानमर्मदादेवी शैलमूलेव्यवस्थिता ॥ २१ ॥ प्रवाहोनिर्गतोयत्र कुब्जारेवासमागमे ॥ पितरस्तर्पितादेवाः प्राप्ताश्चपरमाङ्गतिम् ॥ २२ ॥ दिव्ययानसमारूढो दधीचिश्चन्द्रणो

पूजन किया गया और लक्ष्मीजीके सहित शङ्ख, चक्र और गदा के धरनेवाले विष्णु भी पूजेगये ॥ १८ ॥ वैसेही इन्द्र आदि देवता अगनी स्त्रियों के सहित गहने व कपड़ों से शोभित कियेगये गौवें, घोड़े और हाथियों को राजा ने ब्राह्मणों को दिया ॥ १९ ॥ और भी जो कुछ वहां धन, अन्न, दूध व दही व अग्निसे साफ कियेहुये कपड़े रहगये वह सब पदार्थ उन ब्राह्मणों कोही देदिया गया ॥ २० ॥ ब्रह्मा, विष्णु और महादेव आदि सब देवता एक साथही पूजेगये और पर्वत की जड़पर विराजमान नर्मदा देवी भी पूजीगई ॥ २१ ॥ जहां कुब्जा और नर्मदा के संगम में धारा निकली थी उसमें पितर और देवताओं का तर्पण कियागया इसी से वे सब

परमगति को पातेहुये ॥ २२ ॥ और अपने आगेवाले एकसौ आठ व पछेवाले एकसौ से युक्त महाराज दधीचि दिव्य सवारी पर सवार होतेहुये ॥ २३ ॥ तदनन्तर हे नृपोत्तम ! देवताओं की सवारियों जिस रास्ते से जाती हैं उसी रास्ते में निर्धमान जो सैकड़ों ब्रह्मा आदि देवताये वे सब राजा रन्तिदेवसे बोलते हुये ॥ २४ ॥ कि हे भूमिप ! आपका कल्याण हो हम सबलोग आपके इस सच्चे कर्म से बहुत प्रसन्न हैं अब जो चाहो सो वर आप मागलो आप अपने पितरों व माताओं के सहितपरमलोक को प्राप्तहुये हो ॥ २५ ॥ तब राजा रन्तिदेव बोले कि जो आपलोग मुझको वर देनेवाले हो तो जहां सम्पूर्ण वेदके पढ़नेवाले ब्राह्मणों ने कलश को स्थापन किया है ॥ २६ ॥ जो कि चारों वेदों के धारण करनेवाले और भक्त हैं उसी स्थानमें पाँचों वेद जिसके शरीरहीमें वर्त्तमान हैं ऐसा शिवजी

समः ॥ शतमष्टोत्तरं पूर्वं पश्चिमं तदनन्तरम् ॥ २३ ॥ देवयानपथे सन्तः शतशोऽन्यपोत्तम ॥ ऊचुश्च देवास्ते सर्वे ब्रह्मा
धारन्ति देवकम् ॥ २४ ॥ वृणीष्व मद्रन्ते प्रीतास्सत्येनानेन भूमिप ॥ प्राप्तोऽसि परमं लोकं पितृभिर्मातृभिस्सह ॥ २५ ॥
रन्ति देवो ब्रवीद्वाक्यं यूयममेव रदायदि ॥ कलशः स्थापितो यत्र ब्राह्मणेर्वेदपास्यैः ॥ २६ ॥ चतुर्वेदधरैर्भक्तैः पञ्चब्रह्मत
बुधैस्सवयम् ॥ शिवलिङ्गं भवेत्तत्र ज्वालामालासमप्रभम् ॥ २७ ॥ यज्ञपर्वतमासाद्य प्रवाहो यज्ञनिर्गतः ॥ स्नाने विनिर्ग
ताकुब्जा चरुकेचरुका तथा ॥ २८ ॥ चर्मिला चाङ्घ्रिभूले तु शिल्पेशिल्पा विनिर्गता ॥ धनदो देवताश्चान्यास्तस्य शूलप्र
णिपत्य च ॥ २९ ॥ कल्पगाञ्चनमस्कृत्य कामिकं यानमाश्रिताः ॥ स्तोत्रं च केमहाभाग लिङ्गरूपस्य शूलिनः ॥ ३० ॥
लोकनाथो जगत्स्रष्टा प्रणिपत्य यथाविधि ॥ ब्रह्मोवाच ॥ नास्ति रुद्रसमो देवो नास्ति रुद्रसमो गुरुः ॥ ३१ ॥ नित्यं दासल

का लिङ्ग लपटके समान तेजवाला प्रकट होजावे ॥ २७ ॥ अगिले जमाने में जो यज्ञ पर्वतके तीर यज्ञहुआ था वहां से प्रवाह अर्थात् एक धारा निकली और जो यज्ञ के अन्त में स्नान किया गया उस से कुब्जा निकली यज्ञमें जो चरु होता है उससे चरुका निकली ॥ २८ ॥ पर्वत की जड़में चर्मिला निकली और पर्वत में जहां कुछ खोदखाद हुई वहां से शिल्पा निकली ये पाँचों धारायें नर्मदा में मिली हैं अब कुवेर व और सब देवतालोग महादेवजी का पूजन व प्रणाम कर ॥ २९ ॥ और नर्मदा के नमस्कार कर मनमानी सवारी पर सवार होतेहुये तदनन्तर हे महाभाग ! लोकों के मालिक व जगत् के नानेवाले ब्रह्माजी लिङ्गरूप महादेवजी

को विधि से प्रणामकर स्तुति करते हुये ब्रह्माजी बोले कि रुद्र के बराबर कोई देवता नहीं है और न रुद्र के बराबर कोई गुरु है ॥ ३० ॥ ३१ ॥ हमेशा निर्मल शरीर जिनका रहता है और अपनेही प्रकाश से निर्मल जिनकी मूर्ति है और मङ्गल के देनेवाली भस्मही जिनका चन्दन है ऐसे देवताओं के मालिक आप के लिये नमस्कार है ॥ ३२ ॥ काले गलेवाले, सबका रूप, अनेक मूर्तिवाले, बहुतरूपवाले, शोभावाले, सब से पुराने देव जो आपहो तिनके लिये नमस्कार है ॥ ३३ ॥ सब से बड़े परमेश्वर, सबके जाननेवाले आपके लिये नमस्कार है व सब जिनकी देह के नमस्कार करते हैं और आप किरी के नमस्कार नहीं करते ॥ ३४ ॥ और पूजा करनेलायकों को भी पूजाकरने लायक, तीननेत्रवाले और त्रिशूल के धारण करनेवाले, ब्रह्मा, इन्द्र और विष्णु करके जानने योग्य, संसार की उत्पत्ति व रक्षा के

कांयायस्वंप्रभामलेमूर्तये ॥ शिवभस्माङ्गरागाय देवेशायनमोस्तुते ॥ ३२ ॥ नीलकण्ठाय देवाय सर्वायामितमूर्तये ॥ बहुरूपाय कान्ताय शाश्वताय नमोस्तुते ॥ ३३ ॥ परायपरमेशाय सर्वज्ञाय नमोस्तुते ॥ सर्वप्रणतदेहाय स्वयम्प्रणताय च ॥ ३४ ॥ पूज्यानांमपि पूज्याय नमस्त्यक्ताय शूलिने ॥ ब्रह्मेन्द्रविष्णुवेद्याय उत्पत्तिस्थितिहेतवे ॥ ३५ ॥ देवस्तुतनमस्तेस्तु मुक्तिमुक्तिप्रदाय च ॥ वामाय वामरूपाय वामोमारोषभासिने ॥ ३६ ॥ वामकान्ताद्धेहाय ईशानाय नमोस्तुते ॥ श्रुत्वास्तोत्रमिदन्देवो ब्रह्मणस्सोमितद्युतिः ॥ ३७ ॥ वृणीष्व वाञ्छितं यज्ञे वरमित्याह शंकरः ॥ ददामिते नमस्तेहो यस्त्वया वरदोऽपि सतः ॥ ३८ ॥ उवाच वचनं ब्रह्मा शङ्करं सर्वगं प्रभुम् ॥ पञ्चवक्त्रं पञ्चलिङ्गं ब्रह्मपूज्यं प्रकीर्तितम् ॥ ३९ ॥ बिल्वानिवेदिताय स्मिन्नाम्नाश्च विनिवेदिताः ॥ बिल्वान्नामलिङ्गं संसारार्णवतारणम् ॥ ४० ॥ प्रसिद्धिपर

कारण आपके लिये नमस्कार है ॥ ३५ ॥ व हे देवस्तुत ! मुक्ति और मुक्ति के देनेवाले आपके लिये नमस्कार है उत्तमस्वभाववाले, सुन्दररूपवाले, बायें तरफ पार्वतीजी के धारण करने से प्रकाशवाले ॥ ३६ ॥ बायें तरफ स्त्रीवाली है आधी देह जिनकी, ऐसे ईश्वर जो आप हैं तिनके लिये नमस्कार है इसतरह बड़े तेजवाले महादेवजी ब्रह्माजी के इस स्तोत्र को सुनकर ॥ ३७ ॥ शङ्कर जीने यह कहा कि इस यज्ञमें जो तुम्हारे मनमें हो वह वर मागो जो वर तुम चाहते हो वह हम तुम को देंगे इसमें कुछ संदेह नहीं है ॥ ३८ ॥ तब सबमें व्यापि रहे, सबके मालिक, शङ्करजी से ब्रह्माजी वचन बोले कि पांचमुहवाला पञ्चलिङ्ग ब्रह्मा के पूजने

योग्य कहागया है ॥ ३६ ॥ और उसपर बेल व आंब चढ़ायेगये हैं इससे संसारसमुद्र का तारनेवाला वह लिङ्ग आपके प्रसाद से बिल्वाग्रक नाम से पूरा प्रासिद्ध होवे हे भगवन् ! जहां छोटी नर्मदा है और जहां यह उत्तम बिल्वाग्रक लिङ्ग है ॥ ४० ॥ ४३ ॥ हे नरव्याघ्र ! वहां स्नानकर शिवलोक को पावे संसार के भलेकरने से स्तुति कियेजाते अपने मन्दिर को चलेगये और ब्रह्मा आदि देवता भी अपने अपने स्थानों को चलेगये ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ तदनन्तर लिङ्ग के रूप को धरेहुये शङ्कर

मांयातु भगवंस्त्वत्प्रसादतः ॥ वामनामेकलायत्र यत्रेदं लिङ्गमुत्तमम् ॥ ४१ ॥ तत्र स्नात्वा नरव्याघ्र शिवलोकमवाप्य ते ॥ इदं वरमहं मन्ये लोकानुग्रहकारकम् ॥ ४२ ॥ शङ्करस्तुतयेत्येवं प्राह ब्रह्माणमव्ययम् ॥ एवमुक्त्वा महेशानो गण रन्ति देवः प्रतुष्टाव लिङ्गरूपधरं शिवम् ॥ निशम्य रन्ति देवस्य स्तोत्रं प्राह महेश्वरः ॥ ४५ ॥ वरं वृणीष्व भद्रन्ते स्तोत्रे तायेतु तिर्यग्योनिगतानराः ॥ ४७ ॥ अस्य तीर्थस्य माहात्म्यात्तेयान्तु परमाद्भुतिम् ॥ अत्र यद्दीयते दानं सर्वं भवति चाक्षयम् ॥ ४८ ॥ इदं वरमहं मन्ये यदि तुष्टोसि शङ्कर ॥ अमासो मसमायोगे कर्त्तव्या चैव पर्वणि ॥ ४९ ॥

जी की राजारन्तिदेवजी स्तुति करतेहुये रन्तिदेवजी के स्तोत्रको सुनकर महादेवजी बोले ॥ ४५ ॥ कि हे सुव्रत ! इस स्तोत्र से तुम्हारा कल्याणहो तुम वर को मांगो तब रन्तिदेवजी वचन बोले कि जो मुझको शिवही वरके देनेवाले हैं ॥ ४६ ॥ तो हे महादेवजी ! यह तीर्थ आप को सदानहीं छोड़ना चाहिये जो मनुष्य पार्श्व के समूह में डूबेहुये हैं और पशुओं की योनि में प्राप्त हो रहे हैं ॥ ४७ ॥ वे सब इस तीर्थ के माहात्म्य से परमगति को प्राप्त होवें और यहां जो कुछ दान दिया जावे वह सब श्रद्धय होजावे ॥ ४८ ॥ हे शङ्कर ! जो आप प्रसन्नहो तो हम इसी वर को चाहते हैं तब महादेवजी बोले कि सोमवती अमावास्या को अथवा

कार्तिकी व और किसी पर्व में ॥ ४६ ॥ यहां जो कुछ दान दिया जावे वह अनन्त होजावे हे राजन् ! पापों का नाश करनेवाला यह तीर्थ आप से कहा गया ॥ ५० ॥
इस तीर्थ में विश्वेदेव उत्तम सिद्धि को प्राप्त हुये अगस्त्य, शौनक, पाराशर, अथर्वण ॥ ५१ ॥ और भी अनेक मुनिलोग परमसिद्धि को प्राप्तहुये यहांपर हजारों
मुनि तपस्या से स्वर्ग को जातेहुये ॥ ५२ ॥ संक्रान्ति, व्यतीपात, चन्द्र व सूर्यग्रहण, सोमवती अमावास्या और पडशीतिमुख में ॥ ५३ ॥ कियेहुये पुण्यको दशगुना
वृद्धि युक्त समझो यह महादेवजी ने सत्य कहा है कुब्जा और नर्मदा के समागम में सत्राकरोड़ तीर्थ रहते हैं ॥ ५४ ॥ वह जगह नर्मदा के दक्षिण उत्तर एक कोस

अत्रयद्दीयतेदानं तदनन्तंसमश्नुते ॥ एतत्तेकथितंराजंस्तीर्थपापप्रणाशनम् ॥ ५० ॥ विश्वेदेवाःपरांसिद्धिमस्मि
स्तीर्थसमागताः ॥ अगस्त्यश्शौनकश्चैव पाराशरोवमर्षणः ॥ ५१ ॥ संसिद्धिपरमास्प्राप्ता नानामुनिगणास्तथा ॥
अत्रायुतंमुनीनांच तपसादिवमारुहत् ॥ ५२ ॥ संक्रमेचव्यतीपाते ग्रहणेचन्द्रसूर्ययोः ॥ अमासोमसमायोगे पडशी
तिमुखेतथा ॥ ५३ ॥ पुण्यंदशगुणंवृद्धिं सत्यमेतच्छिवोदितम् ॥ सपादकोटिस्तीर्थानां कुब्जारेवासमागमे ॥ ५४ ॥
दक्षिणोत्तरभागेतु क्रोशमानं प्रतिष्ठितम् ॥ अवशःस्ववशोवापि प्राणान्यस्तुपरित्यजेत् ॥ ५५ ॥ राजावर्षसहस्रा
णि विद्याधरपुरेभवेत् ॥ कुमिकीटपतङ्गाद्यास्तीर्थेस्मिन्प्राणमोज्ज्वले ॥ ५६ ॥ दिव्यं वर्षसहस्रन्तु राजाविद्याधरेपुरे ॥
बिल्वाग्रकंसिद्धलिङ्गं कामभोगफलप्रदम् ॥ ५७ ॥ कुब्जेश्वरं महाच्चान्यद्ब्रह्महत्यां व्यपोहति ॥ अत्रान्तरे महाराजशिव
क्षेत्रं विदुर्बुधाः ॥ ५८ ॥ रेवाकुब्जासमायोगेयवानांसप्ततिस्तथा ॥ अमासोमसमायोगेस्नानाच्छान्तिः प्रकीर्तिता ॥ ५९ ॥

तक प्रतिष्ठित है इस क्षेत्र में परवश व अपने वश होकर जो प्राणों को छोड़ता है ॥ ५५ ॥ वह हजारों वर्षतक विद्याधरों के पुर में राजा होता है कुमि, कीट, पतिगता
आदि भी इस तीर्थ में प्राणों के छोड़ने पर ॥ ५६ ॥ देवताओं की हजारवर्ष तक विद्याधरों के पुर में राजा होता है यह बिल्वाग्रक नामका सिद्धलिङ्ग मनमाने भोग
व फलों का देनेवाला है ॥ ५७ ॥ और दूसरा कुब्जेश्वर भी महालिङ्ग ब्रह्महत्याको नाश करता है हे महाराज ! इसी बिल्वाग्रक और कुब्जेश्वरके बीचमें विद्वान्लोग
शिवजी का क्षेत्र जानते हैं ॥ ५८ ॥ नर्मदा और कुब्जाके समागम में सत्तर जौभरे का प्रमाणवाला वह क्षेत्र है उसमें सोमवती को स्नान करने से शान्ति होती है ॥ ५९ ॥

काशी, कुरुक्षेत्र, प्रयाग, नैमिष, पुष्कर, गया और उत्तम केदारतीर्थ ॥ ६० ॥ इन में सोमवती अमावास्या को साधारण फल होता है और कुब्जा व नर्मदाके संगम में अक्षय फल कहा गया है ॥ ६१ ॥ तिलोदक देने से लड़का अपने माता व पिता के कुलवाले इधर उधर के सब पुरुषोंको नरकसे उद्धार करता है ॥ ६२ ॥ अब वे राजा रन्तिदेवभी अपने सब पुरिखोंको उद्धारकर अपने घरको जातेहुये हे राजन् ! यह कुब्जा और नर्मदाका समागम तुमसे कहा गया ॥ ६३ ॥ रन्तिदेव, हरिश्चन्द्र, पुरुहूत और पुरूरवा यहां अनेक यज्ञों को करके स्वर्ग में देवताओं की नाई विहार करते हैं ॥ ६४ ॥ हे नरसत्तम ! इस तीर्थ के कहने व सुननेसे सब पापोंसे निर्मल

वाराणसीकुरुक्षेत्रं प्रयागोनैमिषंतथा ॥ पुष्करंचगयाचैवकेदारंतीर्थमुत्तमम् ॥ ६० ॥ फलमेतेषुसामान्यममासो
मसमागमे ॥ अबयञ्चफलंप्रोक्तं कुब्जारेवासमागमे ॥ ६१ ॥ तिलोदकप्रदानेन मातृकंपैतृकंसुतः ॥ नरकादुद्धरे
त्सर्वान्पूर्वानपिपरांनपि ॥ ६२ ॥ सोपिराजागृहंप्राप्तः सर्वानुद्धृत्यपूर्वजान् ॥ अयन्तेकथितोराजन्कुब्जारेवासमाग
मः ॥ ६३ ॥ रन्तिदेवोहरिश्चन्द्रः पुरुहूतःपुरूरवाः ॥ अत्रेण्ढ्वाविविधैर्यज्ञैर्दिव्यन्तिदिविदेववत् ॥ ६४ ॥ श्रवणात्कर्त
नादस्यतीर्थस्यनरसत्तम ॥ सर्वपापविशुद्धात्मा शिवलोकेमहीयते ॥ ६५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणैरेवाखण्डे कुब्जामा
हात्म्येत्रिषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६३ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

मार्कण्डेयउवाच ॥ अथान्यत्कथयिष्यामि तीर्थतीर्थवंशुभम् ॥ याम्यप्रदेशैरेवाया आश्रमस्सुरपूजितः ॥ १ ॥
सुवर्णद्वीपविख्यातो देवद्रोणीसमावृतः ॥ हारीतोगौतमोविष्णुस्सावर्णिःकौशिकस्तथा ॥ २ ॥ एतेचान्येचबहवो

होगया है आत्मा जिसका ऐसा मनुष्य शिवलोक में पूजाजाता है ॥ ६५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणैरेवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनुवादेकुब्जामाहात्म्येत्रिषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६३ ॥
मार्कण्डेयजी बोले कि अब और भी सब तीर्थोंमें श्रेष्ठ व शुभ तीर्थ हैं नर्मदा के दक्षिण तरफ देवताओं से भी पूजागया ऐसा आश्रम है ॥ १ ॥ सुवर्ण-
द्वीप इस नामसे प्रसिद्ध है और देवताओं की गुफाओं से युक्त है वहां हारीत, गौतम, विष्णु, सावर्णि तथा कौशिक ॥ २ ॥ ये व और भी तारीफ़ी बातवाले मुनिलोग

रहते हैं उनमें कोई एक महीने के व्रत करनेवाले, कोई एक पाख के व्रत करनेवाले, कोई चान्द्रायण के करनेवाले, कोई कृच्छ्र के करनेवाले, कोई फल व जड़ों के खानेवाले, कोई वायु के खानेवाले ॥ ४ ॥ कोई धुवाँ के कणों को पीते हैं और कोई जलाहारी हैं व कोई एक पाँचसे खड़े हैं और कोई आधिपाँच से खड़े हैं ॥ ५ ॥ कोई दाँतों व ओखली से काटकूट के खानेवाले है कोई सूर्यही को देखते हैं ऐसे २ ब्रह्म के जाननेवाले वेद व स्मृतियों में प्रवीण ब्राह्मण वहां रहते हैं ॥ ६ ॥ इति-हास और पुराणों के जाननेवाले व मोक्ष के उपायों के विचारनेवाले और नित्य अग्निहोत्र व जप और यज्ञकर्म में तत्पर रहनेवाले ॥ ७ ॥ अपने वेदों के शब्दसे

मुनयश्शंसितव्रताः ॥ मासोपवासिनः केचिदन्येपक्षोपवासिनः ॥ ३ ॥ चान्द्रायणपराश्चान्ये तथान्येकृच्छ्रचारिणः ॥ फलमूलाशिनः केचित्तथान्येवायुभक्षकाः ॥ ४ ॥ कणधूमं पिवन्त्यन्ये जलाहारास्तथापर ॥ एकपादाः स्थिताः केचिदन्ये चार्द्धपदाः स्थिताः ॥ ५ ॥ दन्तोत्खलिनः केचिदन्ये सूय्यावलोकिनः ॥ ब्राह्मणाश्च ब्रह्मविदः श्रुतिस्मृतिविशारदाः ॥ ६ ॥ इतिहासपुराणानि मोक्षोपायविचिन्तकाः ॥ अग्निहोत्रपरानित्यं जपयज्ञक्रियापराः ॥ ७ ॥ वेदध्वनितनिर्घोषैस्तारयन्ति जगन्नयम् ॥ नतस्मिन्सञ्चरेत्पापं तमरसूय्योदयेयथा ॥ ८ ॥ मेकलादक्षिणेतीरे ब्रह्मलोक इव स्थितः ॥ आम्नजम्बूकदम्बैश्च कपित्थैर्विल्वदाडिमैः ॥ ९ ॥ कदलीबीजपूराद्यैर्जम्बीरैः पनसैस्तथा ॥ न्यग्रोधवदरैर्मूल्यावैर्हृत्क्षविभूषितम् ॥ १० ॥ पुन्नागैर्नागवकुलैरशोकैस्तिलकैस्तथा ॥ मन्दारैश्चम्पकैश्चाभ्रातैर्कैर्नीलोत्पलोत्पलैः ॥ ११ ॥ पत्रपुष्पफलोपेतैर्वृक्षैर्मसैर्वलङ्कृतम् ॥ नानापक्षिगणोपेतं सिद्धगन्धर्वसेवितम् ॥ १२ ॥ व्याहरन्त्यण्डजाम्सर्वे

तीनों लोकों को तार रहे हैं उस स्थान में पाप कभी नहीं आता है जैसे सूर्य के उदय में अँधेरा नहीं आता है ॥ ८ ॥ मानो नर्मदा के दक्षिणवाले तट में ब्रह्मलोक विद्यमान है आंब, जमुनी, कदम्ब, कैथा, बेल, अनार ॥ ९ ॥ केला, बिजौरा, जम्बीरा, कटहर, बरगद और बेरीआदि भारी अनेक वृक्षों से भूषित है ॥ १० ॥ और भी पुन्नाग, नाग, मौलसिरी, अशोक, तिलक, मदार, चम्पा, आंवला और नीले कमल व और कमल आदि ॥ ११ ॥ पत्ते व फूल और फलों से युक्त सब तरह के वृक्षों से सुहावना हो रहा है अनेक तरह के पक्षियों से युक्त और सिद्ध व गन्धर्वों से सेवित है ॥ १२ ॥ हे नृप ! जहापर सब पक्षी मनुष्यों की आवाज से बोलते हैं ऐसे

गुणोंसे युक्त सबसे उत्तम सुवर्णदीप था ॥ १३ ॥ अब हे राजन् ! पहले कल्प में स्वायम्भुव मन्वन्तर के सत्ययुगमें इसी सुवर्णदीपके रहनेवाले मनुष्य महादेवजी के पूजनसे ॥ १४ ॥ सब अज्ञानको छोड़कर शिवजीके लोकमें विहार करते हैं पितरोंको अन्न व तिलोदक देनेसे ॥ १५ ॥ पापोंको छोड़कर ब्रह्माजी के पुरमें रहते हैं हे भूप ! पुण्यवाली कार्तिकी में यह तीर्थ सब तीर्थोंके फलका देनेवाला होताहै ॥ १६ ॥ परन्तु कलियुगमें माया से मोहित होरहे मनुष्य इसको नहीं देखते है नर्मदा के दक्षिणतरफ करोड़ों तीर्थ अनेक प्रकार के ॥ १७ ॥ प्रसिद्ध हैं परन्तु वह स्थान केवल सिद्ध व मुनियों से जानाजाता है और जो नारितिक व मर्यादिके बिगाडने मानुषाणांगिरानृप ॥ एतद्गुणसमायुक्तं सुवर्णदीपमुत्तमम् ॥ १३ ॥ स्वायम्भुवेन्तरराजन्नादिकल्पकृत्युगे ॥ अर्चनार्हं वदेवस्य सुवर्णदीपवासिनः ॥ १४ ॥ अपहायतमः कृत्स्नलोकैक्रीडन्तिशाङ्करे ॥ पितृणामन्नदानेन तिलतोयप्रदानतः ॥ १५ ॥ मलापकर्षणं कृत्वा वसन्ति ब्रह्मणः पुरे ॥ पुण्यायां भूपकार्तिक्यां सर्वतीर्थफलप्रदः ॥ १६ ॥ नैतत्पश्यन्ति मनुजाः कलौ मायाविमोहिताः ॥ कल्पगायाम्यभागे तु तीर्थकोटिरनेकधा ॥ १७ ॥ प्रसिद्धं सिद्धमुनिभिर्ज्ञायते केवलं हितम् ॥ नास्तिकैर्भिन्नमर्यादैः पुराणस्मृतिनिन्दकैः ॥ १८ ॥ तैलाभ्यर्चनैर्वेदोक्तकरैरेवा तटे तथा ॥ कलिमायाविमूढैश्च स्थानं तन्न प्रदृश्यते ॥ १९ ॥ हिरण्यगर्भास्थाने तु यस्मिन् बहतिकल्पगा ॥ यज्ञगर्भेश्वरनाम शिवलिङ्गप्रकीर्तितम् ॥ २० ॥ पूज्यते सिद्धगन्धर्वैस्सुरासुरमहोरगैः ॥ यत्र वैवस्वतो राजा सूर्यपुत्रो महायशः ॥ २१ ॥ तस्य तीर्थस्य माहात्म्याच्चन्द्रविम्बाननोभवत् ॥ चैत्रस्यैव तु मासस्य शुक्लपक्षे नराधिप ॥ २२ ॥ चतुर्दश्यां पौर्णमास्यां यत्र सन्निहितं पुराणं व स्मृतियों के निन्दा करनेवाले हैं ॥ १८ ॥ अथवा तैलियापण्डा हैं व नर्मदाके किनारे वेदमें कहेहुये कर्मोंके नहीं करनेवाले व कलियुगकी मायासे मूढ़ हैं वे उस स्थानको नहीं देखते हैं ॥ १९ ॥ जिस स्थानमें सुवर्ण जिसमें भराहुआ है ऐसी नर्मदा बहती है और वहां यज्ञगर्भेश्वर नाम शिवजी का लिङ्ग कहागयाहै ॥ २० ॥ उस लिङ्गका सिद्ध, गन्धर्व, देवता, दैत्य और नाग पूजन करते हैं जहां सूर्यके पुत्र बड़े यशवाले राजा वैवस्वत ॥ २१ ॥ उसी तीर्थके माहात्म्य से चन्द्रविम्बके समान मुड़ेवाले होगये हे नराधिप ! चैत्र महीने के उजियाले पाखमें ॥ २२ ॥ चौदस व पूर्णमासी बिये जहां महादेवजी विद्यमान हैं वहा हे भारत !

तिलोदक व पिण्डदानसे भारी दक्षिणाका देनेवाला मनुष्य अपने पितरों को नरक से उद्धार करता है और आप जबनक सूर्य व चन्द्रमा देख पड़ते हैं तबतक विष्णुलोक में वास करता है ॥ २३ ॥ २४ ॥ वहा जो कुछ दान दिया जाताहै वह कुरुक्षेत्र के वरावर होताहै वहां प्राणों के छोडनेपर जीव यमलोक को नहीं देखते हैं ॥ २५ ॥ नर्मदाके उचरवाले किनारे पर पर्यङ्कनाम का पर्वत है वह शोभावान् शुभरूप पर्वत कि जिसमें सब देवतालोग रहते हैं विन्ध्याचलका पुत्र है ॥ २६ ॥ उसपर पापों के हरनेवाले विष्णुभगवान् आपही बैठे हैं जोकि मनुष्यों के पापोंके हरनेवाले हैं और नर्मदाके तटपर विद्यमान हो रहे हैं ॥ २७ ॥ हे महाराज ! वहा

तोहरः ॥ तिलोदकप्रदानेनपिण्डदानेनभारत ॥ २३ ॥ पितृन्समुद्धरेत्तत्र नरकाद्भूरिदक्षिणः ॥ निवसेद्विष्णुवेत्तलोकं या
वच्चन्द्रार्कदर्शनम् ॥ २४ ॥ तत्रयर्हयितेदानं कुरुक्षेत्रसमंहितत् ॥ प्राणत्यागेकृतेतत्र नपश्यन्तियमालयम् ॥ २५ ॥
रेवायाउत्तरेकूले पर्यङ्कोनामपर्वतः ॥ सचविन्ध्यसुतःश्रीमान्सर्वदेवमयश्शुभः ॥ २६ ॥ तत्रपापहरोविष्णुः स्वयंति
ष्ठतिकेशवः ॥ नरपापहरोयस्तु नर्मदातटमाश्रितः ॥ २७ ॥ तत्रस्नात्वामहाराज गोसहस्रफलंलभेत् ॥ तर्पिताःपि
तरस्तस्य तृप्तायान्तिहरेःपुरम् ॥ २८ ॥ एकादशीन्द्वादशींवा तत्रयःकुरुतेनरः ॥ नतस्यपुनरावृत्तिर्मर्त्यलोकैकदुरास
दे ॥ २९ ॥ क्रोशमानत्रप्रमाणश्च हरिचेत्रप्रकीर्तितम् ॥ अपमृत्युमृतायेच तेयान्तिपरमाङ्गतिम् ॥ ३० ॥ इति श्रीस्कन्द
पुराणैरेवाखण्डेविष्णुकीर्तनन्नामचतुःषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६४ ॥ * ॥ * ॥

मार्कण्डेयउवाच ॥ नर्मदायाम्यभागेतु तीर्थपापप्रणाशनम् ॥ भारुडव्यस्याश्रमंपुरायं सिद्धगन्धर्वसेवितम् ॥ १ ॥

स्नानकर एक हजार गोदान के फलको पाताहै वहांपर तर्पण जिनका कियागया ऐसे उसके पितर वसहुये विष्णुजीके पुरको जातेहैं ॥ २८ ॥ और वहां जो मनुष्य एकादशी व द्वादशीका व्रत करता है उसकी फिर इस कठिन संसारमें आवृत्ति नहीं होती है ॥ २९ ॥ एक कोस का प्रमाण जिसका है ऐसा विष्णुजी का क्षेत्र कहागयाहै वहां जो अकालमीच से मरेहुये हैं वे परमगति को पाते हैं ॥ ३० ॥ इति श्रीरेवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनुवादविष्णुकीर्तननामचतुःषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६४ ॥
फिर मार्कण्डेयजी बोले कि नर्मदा के दक्षिणतरफ में पापोंका नाश करनेवाला तीर्थहै वहां सिद्ध व गन्धर्वों से सेवित, पुरगवाला, भारुडव्यमुनि का आश्रमहै ॥ १ ॥

उसमें विभाण्डक, गार्ग्य और ऋष्यशृङ्गादि उत्तम व्रतवाले हजारों मुनिलोग रहते हैं ॥ २ ॥ ऐसे अशोकवनिका नाम के उत्तमतीर्थ को हे राजन् ! इस समय में तुम सुनो वहां पार्वतीजी के सहित महादेवजी रहते हैं ॥ ३ ॥ और उस आश्रम में शोकरहित निर्मल महादेवजी अपना आवेश रखते हैं जहां विशोकानदी के साथमें नदियों में श्रेष्ठ नर्मदाजी मिली हैं वहां स्नान करनेवाले स्वर्गको जाते हैं और जो मरे हैं वे फिर नहीं होते हैं और वहां अशोकेश्वरलिंग है जो कि प्रत्यक्ष ही सिद्धि व कल्याण करनेवाला है ॥ ४ ॥ वहां शापसे भट होगये ब्राह्मणोंको नारदजी ने छुटाया है उस तीर्थके माहात्म्य से वे देवता होकर स्वर्गमें आनन्द करते हैं ॥ ६ ॥

विभाण्डकश्चगार्ग्यश्च ऋष्यशृङ्गादयस्तथा ॥ तस्मिन्महत्संख्याता मुनयश्शंसितव्रताः ॥ २ ॥ अशोकवनि
कांराजञ्छृणुसाम्प्रतमुत्तमम् ॥ तत्रसन्निहितोदेव उमयासहितोहरः ॥ ३ ॥ आविष्टश्चाश्रमेतत्र विशोकोविमलद्रिश
वः ॥ विशोकयासरिच्छेष्टा नर्मदायत्रसङ्गता ॥ ४ ॥ तत्रस्नातादिवंयान्ति येषृतानपुनर्भवाः ॥ अशोकेश्वरलिङ्गंच
प्रत्यक्षंसिद्धिशङ्करम् ॥ ५ ॥ शापभ्रष्टाद्विजास्तत्र नारदेनविमोचिताः ॥ तस्यतीर्थस्यमाहात्म्यान्मोदन्तेदिविदेव
ताः ॥ ६ ॥ नानावृक्षफलैःपुष्पैस्सर्वकामसम्पन्वितैः ॥ नानापक्षिगणैर्बुधं नानावृक्षनिषेवितम् ॥ ७ ॥ सिद्धविद्याधरै
र्यज्ञैर्गन्धर्वैःकिन्नरैस्तथा ॥ वेणुवीणानिनादेन शङ्खवादित्रनिस्स्रवैः ॥ ८ ॥ शोभतेसर्वदारजन्नर्मदाविन्ध्यसङ्गमः ॥
अशोकादेवतायत्रब्रह्मशक्रपुरोगमाः ॥ ९ ॥ विश्वेदेवाश्रमन्तद्विस्सर्वदेवनमस्कृतम् ॥ विश्वायाश्रतथापुत्रा विश्वेदेवाः
प्रकीर्तिताः ॥ १० ॥ अशोकवनिकायाञ्चजनयामासकश्यपः ॥ वैवस्वतेन्तरेप्राप्ते त्रेतायान्नरसत्तम ॥ ११ ॥ पञ्चायु

और वह स्थान सब कामनाओं के देनेवाले अनेक वृक्षोंके फलों व फूलोंसे युक्त है और अनेक प्रकार के पक्षियों व अनेक प्रकार के वृक्षोंसे भी सेवित है ॥ ७ ॥ सिद्ध, विद्याधर, यक्ष, गन्धर्व और किन्नरों के वेन व सितारकी आवाज से व शङ्ख व और नाजाओंके शब्दसे ॥ ८ ॥ हे राजन् ! वह नर्मदा और विन्ध्याचल का सङ्गम हमेशा शोभायमान रहता है जहां ब्रह्मा और इन्द्र आदि देवता बेसोच रहते हैं ॥ ९ ॥ सत्र देवताओं से नमस्कार किया गया वह विश्वेदेवों का आश्रम है विश्वाके लड़के विश्वेदेव कहेगये हैं ॥ १० ॥ उनको अशोकवनिका में कश्यपजी ने पैदा किया है वैवस्वत मन्वन्तरके त्रेतामें यह हाल हुआ था हे नरसत्तम ! ॥ ११ ॥ वहां बहुत

अच्छे प्रचास हजारतीर्थ वास करते हैं और वहाँ सावित्री तथा देवताओंकी माताश्रदिति सिद्धहुई हैं ॥ १२ ॥ व देवयानी, इन्द्राणी, रोहिणी, सम्भरायणी, दाक्षायणी, लोकोंके नमस्कार करनेयोग्य बड़े यशवाली लोपामुद्रा ॥ १३ ॥ सूर्यकी स्त्री रत्नावली, ध्रुवा, तारा और गणेश्वरी ये भी सब वहाँ सिद्ध होती हुई और भी वहाँकी रहनेवाली सैकड़ों स्त्रियाँ उस स्थानकरके बेसोच करदी गई ॥ १४ ॥ इस तीर्थके माहात्म्य से मनुष्य पापसे छूट जाता है हे भारत ! कुआँर के महीने के उजियाले पाखकी चतुर्दशी को ॥ १५ ॥ जिसके पुत्र नहीं जीते अथवा बाँझस्त्री वं कुरूप व विधवा स्त्री स्नानको कियेहुये पञ्चरत्न व फलों से युक्त घटों से महादेवजी का

तानितीर्थानि निवसन्तिशुभानिच ॥ तत्रसिद्धाचसावित्री देवमातादितिस्तथा ॥ १२ ॥ देवयानीतथेन्द्राणी रोहिणीसम्भरायणी ॥ दाक्षायणीलोकवन्द्या लोपामुद्रामहायशा ॥ १३ ॥ रत्नावलीसूर्यमाय्या ध्रुवातारागणेश्वरी ॥ अशोकास्तेनविहितास्तत्रस्थाश्शतसंख्यकाः ॥ १४ ॥ अस्यतीर्थस्यमाहात्म्यान्मुच्यतेकिल्बषान्नरः ॥ शुक्लपद्मेचतुर्दश्यामाश्विनेमासिभारत ॥ १५ ॥ अपुत्रिणीतथाबन्ध्या दुर्भगाभर्तृवर्जिता ॥ पञ्चरत्नफलैःस्नाता दिव्यकुम्भैस्समर्चयेत् ॥ १६ ॥ सहस्रजन्मसाभूयः पुत्रिणीसुभगाभवेत् ॥ अशोकवनिकाक्षेत्रे तत्रगौर्यावरःकृतः ॥ १७ ॥ यस्मिन्वहतिसादेवी नर्मदासप्तकल्पगा ॥ तत्रेष्टधर्ममराजेन वरुणेनमहात्मना ॥ १८ ॥ नैर्ऋत्येततथान्यैश्च लोकपालैर्यथाविधि ॥ प्रत्यक्षोहव्यवाहश्च लोकपालानुपागतः ॥ १९ ॥ अत्रिमरीचिःकश्यपश्चकुस्तत्रमखोत्तमम् ॥ अन्यक्षेत्राच्छतगुणा तत्रदानादिकाक्रिया ॥ २० ॥ वाराणसीकुरुक्षेत्रं गयावैनैमिषंतथा ॥ मायापुरीपुष्करश्च प्रयागःशशिभूष

पूजनकरे ॥ १६ ॥ जो वह हजारजन्मतक लडकौवाली व सोहागिल रहती है यह फल अशोकवनिका के क्षेत्रमें होताहै क्योंकि वहाँको पार्वतीजी ने वरदान किया है ॥ १७ ॥ जिस स्थानमें सातकल्प तक रहनेवाली नर्मदादेवी बहती हैं वहाँधर्मराज, महात्मा वरुण और नैर्ऋत्य इसीतरह और भी लोकपालोंने विधि से यज्ञको कियाहै अग्नि भी लोकपालोंके पास प्रत्यक्ष होकर आये हैं ॥ १८ ॥ १९ ॥ अत्रि, मरीचि और कश्यप ने भी वहा उत्तम यज्ञको किया है और क्षेत्रमें सौगुना वहाँ

दान आदि कर्मोंका फल होता है ॥ २० ॥ काशी, कुरुक्षेत्र, गया, नैमिष, मायापुरी, पुष्कर, प्रयाग, शशिभूषण ॥ २१ ॥ और काश्यपी आदि सब तीर्थ वहीं हैं जहां नर्मदा जी बहती हैं इससे अशोकवनिका के बराबर और तीर्थको जाननेवाले नहीं जानते हैं ॥ २२ ॥ अगिले जमाने में हे राजन् ! जहां ब्रह्माजीने यज्ञों में उत्तम अश्व-मेध यज्ञको किया है और पूर्वकालमें इस तीर्थ के माहात्म्यसे पटनाके रहनेवाले ब्राह्मणोंको कुत्तेकी योनिसे छोड़ा दिया है तब राजाशुधिष्ठिरजी बोले कि हे तात ! ब्रह्मा जीने सौ यज्ञोंको कैसे किया ॥ २३ ॥ २४ ॥ और पूर्वकालमें कुत्तेकी योनि से ब्राह्मणोंको कैसे छोड़ा दिया और अगिले जमानेमें इन्द्रके बराबर कौन राजा होता हुआ ॥ २५ ॥

एम् ॥ २१ ॥ काश्यपीसर्वतीर्थानि यत्र तिष्ठति कल्पगा ॥ अशोकवनिकायास्तु नान्यतीर्थसमंविदुः ॥ २२ ॥ इष्टं यत्र पुराराजन्हयमेधं मखोत्तमम् ॥ ब्रह्मणामोचिताः पूर्वं विप्राः कौलेययोनितः ॥ २३ ॥ अस्य तीर्थस्य माहात्म्यात्पाटली पुत्रवासिनः ॥ शुधिष्ठिर उवाच ॥ हयमेधशतेनेष्टं कथं तातस्वयम्भुवा ॥ २४ ॥ कथञ्चमोचिता विप्राः पूर्वकौलेययोनि तः ॥ कोवाराजापुरा ब्रह्मन्देवराजसमोभवत् ॥ २५ ॥ एतत्सर्वयथान्यायं शंसमेमुनिसत्तम ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ श्रु एराजन् महाभाग समाख्या नं पुरातनम् ॥ २६ ॥ अशोकवनिकातीर्थं कल्पगातमाश्रितम् ॥ न जानन्ति महामूढा म नुजाः पापमोहिताः ॥ २७ ॥ गुप्तादुत्तरन्तीर्थं सर्वतीर्थोत्तमोत्तमम् ॥ विशोकेश्वरलिङ्गन्तु तस्मिन्परमसिद्धिदम् ॥ २८ ॥ पूज्यते सिद्धगन्धर्वनतत्पश्यन्ति मानुषाः ॥ दर्शनात्स्पर्शनात्तस्य ब्रह्महत्यां व्यपोहति ॥ २९ ॥ स्वायम्भुवेन्त रेप्राप्ते आदिकल्पे कृते युगे ॥ रविश्चन्द्रो महाराज चक्रवर्ति महायशः ॥ ३० ॥ सोमवंशजनिप्राप्तः काञ्चीपुरपतिस्त

हे मुनिसत्तम ! यह सब ठीक ठीक आप मुझ से कहिये तब मार्कण्डेयजी बोले कि हे महाभाग, राजन् ! अब तुम पुराने आख्यानको सुनो ॥ २६ ॥ नर्मदाके किनारेपर विद्यमान अशोकवनिका तीर्थको पापों से मोहित महामूढ मनुष्य नहीं जानते हैं ॥ २७ ॥ गुप्तसे अतिगुप्त वह तीर्थ है और सब तीर्थोंसे उत्तमोत्तम है उस में बड़ी सिद्धिका देनेवाला विशोकेश्वर लिङ्ग है ॥ २८ ॥ उसको सिद्ध व गन्धर्वलोग पूजते हैं और मनुष्य उसको नहीं देखते हैं उसके दर्शन व स्पर्श से ब्रह्महत्याको मनुष्य नाश कर देता है ॥ २९ ॥ स्वायम्भुवमन्वन्तरके प्रासहोनेपर पहले कल्पके सत्ययुग में हे महाराज ! बड़े यशवाले चक्रवर्ती रविश्चन्द्र राजा हुये ॥ ३० ॥ उन्होंने सोमवंश

में जन्मको पायाथा और काञ्चीपुर के मालिकहुये सब पृथिवी की राज्य करतेहुये जैसे इन्द्र स्वर्गकी राज्य करतेहैं ॥ ३१ ॥ सो वे राजा अनेक वृक्षोंसे व्याप्त और अनेक पक्षियोंसे युक्त व अनेक मुनियोंसे सेवित ॥ ३२ ॥ जहां अगस्त्येश्वरनाम का महादेवजीका शुभ मन्दिर था वहां को जातेहुये जिस स्थानको अगस्त्य आदि बड़े तपस्वी सब मुनिलोग सेवन करते हैं ॥ ३३ ॥ जहां सात कल्पतक बहनेवाली नर्मदा व अमरकण्टक पर्वतहै वहीं सूर्यग्रहणमें राजाओंमें उत्तम राजा रविश्रन्द्र ॥ ३४ ॥ हाथी, घोड़े, रथ, पैदल, खजाना, कौज और सवारियोंके सहित मुनियों के समूहसे घिरे व तपस्याको करतेहुये और आग ऐसे जलतेहुये महात्मा अगस्त्य नाम

था ॥ शशासपृथिवीसर्वा यथाशक्रस्त्रिविष्टपम् ॥ ३१ ॥ गतस्तुपृथिवीपालो नानावृक्षसमाकुलम् ॥ नानापक्षिगणं
जुष्टं नानामुनिनिषेवितम् ॥ ३२ ॥ यत्रागस्त्येश्वरन्नाम शम्भोरायतनं शुभम् ॥ सेव्यते मुनिभिः सर्वैरगस्त्याद्यैस्तपोधनैः ॥
३३ ॥ राहुसूर्यसमायोगे रविश्रन्द्रो नृपोत्तमः ॥ सप्तकल्पवहायत्र शैलश्चामरकण्टकः ॥ ३४ ॥ हस्त्यश्चरथपादातैः
सकौशबलवाहनैः ॥ तपस्यन्तं महात्मानं मुनि सङ्घैस्समावृतम् ॥ ३५ ॥ मैत्रावरुणिकन्नाम ज्वलन्तमिति पावकम् ॥ ते
षां मध्ये समुत्थाय शण्डिल्यश्च महातपाः ॥ ३६ ॥ उरसाष्टथिवीं गत्वा सोगस्तिपरिपृच्छति ॥ रविश्रन्द्रो महातेजा
स्समायातस्तवाश्रमम् ॥ ३७ ॥ पुरोहितो ह मस्यास्मि जानीहित्वन्तपोनिधे ॥ त्वत्पादार्चनमाकाङ्क्षी मन्यसे चेदनुग्रहः ॥
३८ ॥ अगस्त्य उवाच ॥ आगच्छ तु नृप श्रेष्ठ इशीर्षां सिंहासने स्थितः ॥ आगतस्तदनुज्ञातः पादौ जग्राहतस्य च ॥ ३९ ॥

अर्धपादैश्च सम्पूज्य पप्रच्छ कुशलं मुनिः ॥ कुशलन्ते महाभाग सान्तः पुरपरिच्छदः ॥ ४० ॥ उवाच वचनं राजा मुनी
मुनिके पास जातेहुये तब वहां बड़े तपवाले शाण्डिल्यजी उन मुनियों के बीच में उठकर ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ और छातीसे पृथ्वीको जाकर अर्धात् साष्टांग प्रणामकर उन्होंने
अगस्त्यसे पूछा कि बड़े तेजवाले राजारविश्रन्द्र आपके आश्रमको आयेहैं ॥ ३७ ॥ मैं इनका पुरोहितहूँ हे तपोनिधे ! ऐसा आप जानें यह राजा आपके चरणोंकी पूजा
को चाहताहै सो जो आपको अङ्गीकारहो तो बड़ी कृपा है ॥ ३८ ॥ तब अगस्त्यजी बोले कि राजाओंमें श्रेष्ठ रविश्रन्द्र जल्द आये और सिंहासनपर बैठें इसप्रकार
अगस्त्यकी आज्ञाको पायेहुये राजा आये और उनके पाँवोंको छूतेहुये ॥ ३९ ॥ तब अगस्त्यमुनिजी अर्ध और पाद्य से राजाका भलीभाँति पूजनकर कुशल पूछतेहुये

कहा कि हे महाभाग ! आपकी परिवार सहित कुशल है ॥ ४० ॥ तब हे भारत ! सुनीन्द्र अगस्त्यजी से राजा वचन बोले कि आज मेरा जन्म व राज्य व जीवन सफल हुआ ॥ ४१ ॥ आपके कमलसमान पांवों के इस दर्शन से मैं पासे छूट गया सब तीर्थ जिसमें हैं ऐसी शुभ नर्मदाजी तो सब कहीं पवित्र हैं ॥ ४२ ॥ परन्तु हे मुनिसत्तम ! हम किस स्थानमें यज्ञको करें सो मुक्त से कहिये जिससे यज्ञ सिद्ध होजावे और देवताओंको अन्नयवृत्ति होवे ॥ ४३ ॥ हे त्रिकालज्ञ ! यह सब ठीकठीक कहिये तब अगस्त्यजी बोले कि हे महाभाग, राजन् ! मुनिये और कहेजारे वृत्तांत को समझिये ॥ ४४ ॥ अगिले जमानेमें महादेवजीने पर्वती व स्वामिकार्त्तिक से

न्द्रप्रतिभारत ॥ अद्यमेसफलं जन्म राज्यं जीवनमेव च ॥ ४१ ॥ मुक्तश्च किल्बिषादस्मान्त्वत्पादाम्बुजदर्शनात् ॥ सर्वत्र कल्पगापुण्या सर्वतीर्थमयी शुभा ॥ ४२ ॥ कस्मिन्स्थानेयजेयज्ञं शंसमेमुनिसत्तम ॥ यथासंसिद्ध्येतेयज्ञस्सुराणां तृप्तिरक्षया ॥ ४३ ॥ एतत्सर्वं यथान्यायं त्रिकालज्ञनिवेद्य ॥ अगस्त्य उवाच ॥ शृणुराजन्महाभाग कथ्यमानं न्नवो धच ॥ ४४ ॥ शिवेन कथितं पूर्वं पर्वत्याः परमुखस्य च ॥ ब्रह्मविष्णवादिदेवानामन्येषाञ्च दिवौकसाम् ॥ ४५ ॥ मया तत्र श्रुतं राजन् मार्कण्डेन चिरायुषा ॥ तत्ते हं कथयिष्यामि मेकलातीर्थसम्भवम् ॥ ४६ ॥ शृणु ध्वं मुनयस्सर्वे यत्प्रष्टव्या वतारणम् ॥ कस्य शक्तिर्महाराज वर्जयित्वा महेश्वरम् ॥ ४७ ॥ प्रमाणं सर्वतीर्थानां संख्यां वा कर्तुमादितः ॥ उद्देशमात्रवत्काहं मार्कण्डस्य महामुनेः ॥ ४८ ॥ एतत्ते कथितं राजन्यथा वृत्तम् पुरातनम् ॥ ४९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवा खण्डेन नर्मदामाहात्म्ये पञ्चषष्ठितमोऽध्यायः ॥ ६५ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

कहा है और भी ब्रह्मा व विष्णु आदि देवताओं से कहा है ॥ ४५ ॥ हे राजन् ! वहीं हम और भारी उमरवाले मार्कण्डेयजी ने सुना है वही नर्मदा तीर्थका सम्भव हम तुम से कहेंगे ॥ ४६ ॥ हे मुनियो ! आप सबलोग पूछनेलायक बातकी भूमिका को सुनो कि हे महाराज ! वैसे महादेवजी को छोड़कर सब तीर्थोंकी आदमे गिनती व प्रमाण करनेकी किसको सामर्थ्य है महासुनि मार्कण्डेय जी के उद्देश (इशारे) मात्रका कहनेवाला मैं हूँ ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ हे राजन् ! यह तो पुराना हाल जैसा था वह तुमसे कहा गया ॥ ४९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवा खण्डेन नर्मदामाहात्म्ये पञ्चषष्ठितमोऽध्यायः ॥ ६५ ॥

मार्कण्डेयजी बोले कि पूर्वकाल में ऐसे बुद्धिमान् राजा रविश्चन्द्र ने सुना तदनन्तर मुनियों में श्रेष्ठ श्रीमान् श्रगस्यजी फिर वचन बोले कि रारस्वती, गङ्गा, यमुना, ममुद्र व और भी प्रयागआदि तीर्थ ऐसे पवित्र नहीं हैं ॥ १ ॥ २ ॥ सात कल्पतक बहनेवाली एक नर्मदाही पुण्यवाली व शुभ है एकलाख योजनतक जम्बूद्वीप कहागया है ॥ ३ ॥ उसमें जितना चराचर लोकहैं तिसमें जो तपस्या से हीनभी मनुष्य हैं वे भी नर्मदा के जल पीने से शिवजी के स्थानको जातेहैं ॥ ४ ॥ जो जिस कामना को करता है वह उस पूरी कामनाको पाता है हे महाभाग, पापरहित ! बाह २ आपने जो हमसे पूछा ॥ ५ ॥ उन नर्मदाजी को हमने कहा मनकी

मार्कण्डेयउवाच ॥ एवंश्रुतंपुराराज्ञा रविश्चन्द्रेणधीमता ॥ उवाचवचनंश्रीमानगस्त्योमुनिसत्तमः ॥ १ ॥ सरस्वतीनगङ्गाच यमुनावानसागराः ॥ नैवान्यानितीर्थानि प्रयागप्रमुखान्यपि ॥ २ ॥ एकैवनर्ममदापुण्या सप्तकल्पवहाशुभा ॥ लक्ष्योजनपर्यन्तं जम्बूद्वीपंप्रकीर्तितम् ॥ ३ ॥ नर्ममदातोयपानेन लोकालोकैचराचरे ॥ तपोहीनानराश्चैव तेषियान्तिशिवालये ॥ ४ ॥ योयंकामयेतेकामंसंतप्राप्नोतिपुष्कलम् ॥ साधुसाधुमहाभाग पृष्टोहंयत्त्वया नघ ॥ ५ ॥ नर्ममदाकथितादिव्या हृद्याकस्यनरोचते ॥ सन्तितीर्थानिन्यावन्ति दक्षिणोत्तरकूलयोः ॥ ६ ॥ त्वत्प्रीतिदानीतावन्ति कथयामि नृपोत्तम ॥ अन्यानिग्रन्थलक्षणेनचकीर्तयितुंक्षमः ॥ ७ ॥ त्रयोवेदास्त्रयोलोकस्तिस्त्रयस्स न्ध्यास्त्रयोगनयः ॥ सिद्धगन्धर्वयक्षाश्च सकिन्नरमहोरगाः ॥ ८ ॥ विद्याधराश्चाप्सरसः कल्पगातटमाश्रिताः ॥ अङ्कारादीनिलिङ्गानि वैदूर्यादिनगाःपुरा ॥ ९ ॥ द्वापरेचकलिप्राप्य पावनत्वमवाप्नुयुः ॥ ब्रह्मविष्णवादिदेवानां मर्त्या

प्यारी दिव्य नर्मदाजी किसको नहीं रुचती हैं अब नर्मदा के दक्षिण और उत्तरवाले किनारोंपर तुम्हारे प्रसन्न करनेवाले जितने तीर्थ हैं हे नृपोत्तम ! उन सबको हम कहते हैं बाकी और तीर्थोंको एकलाख ग्रन्थसे हम कहने को समर्थ नहीं हैं ॥ ६७ ॥ तीनों वेद, तीनों लोक, तीनों सन्ध्यायें, तीनों अग्नियां, सिद्ध, गन्धर्व, यक्ष, किन्नर, नाग ॥ ८ ॥ विद्याधर और अप्सरायें ये सब नर्मदा के पास रहतेहैं अङ्कारआदि लिङ्ग और वैदूर्यआदि पर्वत श्रगिले जमानेमें ॥ ९ ॥ तथा द्वापर में और कलियुग

को भी पाकर औरों के पवित्र करनेवाले होते रहे अब ब्रह्मा और विष्णु आदि देवताओं की भी मर्यादा को कहते हैं ॥ १० ॥ अपने तेजों से प्रकाश करती हुई नर्मदा के दक्षिण और उत्तर में जो जमीन है वह यज्ञभूमि कही गई है जिसको देवता व दैत्य भी नमस्कार करते हैं ॥ ११ ॥ वहां अशोकवनिका है उसमें महादेवजी हैं वहां यज्ञ निर्विघ्न सिद्ध होता है यह महादेवजी ने कहा है ॥ १२ ॥ तब मुनियों में श्रेष्ठ अगस्त्यजी से राजा वचन बोले कि हे महामुने ! आपका कल्याण हो अब हम आपके सहित वहीं चलेगे ॥ १३ ॥ ऐसे कहकर वे राजा मुनियों से युक्त अशोकवनिका को प्राप्त हुये नर्मदा के दक्षिणवाले किनारे पर उत्तम जो पुण्य-

दाकथ्यते धुना ॥ १० ॥ प्रसाभिर्द्यौतमानाया रेवायादक्षिणोत्तरे ॥ यज्ञभूमिरियं ख्याता सुरासुरनमस्कृता ॥ ११ ॥

अशोकवनिका तत्र तस्यान्देवो महेश्वरः ॥ तत्र सिद्ध्यति निर्विघ्नो यज्ञ इत्याह शङ्करः ॥ १२ ॥ उवाच वचनं राजा अग-

स्त्यं मुनिसत्तमम् ॥ स्वस्ति वोस्तु गमिष्यामि त्वया सह महामुने ॥ १३ ॥ अशोकवनिकां प्राप्तस्स राजा मुनिभिर्द्वृतः ॥

रेवायादक्षिणकूले पुण्यतीर्थे सुशोभने ॥ १४ ॥ दशयोजनपर्यन्तं यज्ञयूपाश्रम एतदपम् ॥ मणिभाणिक्यरत्नौघैस्स

र्वद्वारेषु शोभिताः ॥ १५ ॥ पताकाध्वजशोभाढ्या नानावस्त्रावगुणैरुठताः ॥ विश्वामित्रो भरद्वाजः कश्यपो भार्गवस्तथा ॥

१६ ॥ ब्रह्महृदयो लोमशश्च तथान्ये मुनिसत्तमाः ॥ बालखिल्या महाभागा मानसा ब्रह्मणस्सुताः ॥ १७ ॥ एते चान्ये च

बहवो मुनयश्शंसितव्रताः ॥ ततः प्रवर्तितो यज्ञो ब्राह्मणैराप्तदक्षिणैः ॥ १८ ॥ तृप्ताश्च देवतास्सर्वाः प्रतिजग्मुस्त्रिविष्ट

पम् ॥ जग्मुस्सर्वे च मुदिता मुनयः स्वाश्रममप्रति ॥ १९ ॥ ततो निवर्तितो यज्ञो दुर्वासाः कुपितो गतः ॥ नात्र वैवस्वतो नाहं

वाला तीर्थ है उसमें ॥ १४ ॥ दशयोजन तक यज्ञ के खम्भे गडाये व मण्डपको बनाया सब दरवाजों में मणि, मारिक और रत्नसमूहों से खम्भे शोभित किये गये ॥

१५ ॥ वे खम्भे अनेक प्रकार के कपड़ों से लपेटे हुये पताका और ध्वजाओं की शोभा से युक्त हुये अब विश्वामित्र, भरद्वाज, कश्यप तथा भार्गव ॥ १६ ॥ ब्रह्मणश्य, लोमश तथा

और भी श्रेष्ठ मुनिलोग जैसे ब्रह्माजी के मानस पुत्र बड़े भाग्यवाले बालखिल्य ॥ १७ ॥ ये सब व और भी उत्तम व्रतवाले बहुत से मुनिलोग आते हुये तदनन्तर पूरी दक्षि-

णावाले ब्राह्मणों ने यज्ञको प्रवृत्त किया ॥ १८ ॥ सब देवता तृप्त होकर स्वर्गको लौट गये और सब मुनिलोग भी आनन्दित होकर अपने-अपने श्रमोंको चले गये ॥ १९ ॥

तदनन्तर यज्ञ समाप्त हुआ तब वहाँ बड़े क्रोधी दुर्वासा आये और कहा कि न यहां हम आये और न यमराज व नारद तथा पर्वत आये ॥ २० ॥ कैसे पापकर्मी अधम मनुष्यों ने यज्ञको समाप्त कर दिया तबतक वहाँ यमराज, नारद तथा पर्वत ॥ २१ ॥ लिखनेवाले चित्रगुप्त, काल और मृत्युभी आगये और अपने यज्ञभाग के बिना इन सबों ने कोपको किया हे नृप ! ॥ २२ ॥ तब उन सबको नाराज देखकर राजा विश्वन्द्व वचन बोले कि अशोकेश्वर देव और नर्मदाजीके प्रसाद से ॥ २३ ॥ देवता और दैत्यों के बीचमें मेरे विघ्न करनेको कौन समर्थ होसक्ता है इसी तरह और जीवोंमें भी यज्ञविघ्न के वारंते कौन समर्थ होसक्ता है ॥ २४ ॥ यज्ञके

नारदः पर्वतस्तथा ॥ २० ॥ कथन्निवर्तितो यज्ञः पापकर्मिनराधमैः ॥ आगतस्तु यमस्तत्र नारदः पर्वतस्तथा ॥
२१ ॥ लेखकश्चित्रगुप्तश्च कालो मृत्युस्तथैव च ॥ एते च कुपितास्सर्वे यज्ञभागं विना नृप ॥ २२ ॥ तान्सर्वान् कुपितान् दृ
ष्ट्वा रविश्चन्द्रो ब्रवीद्वचः ॥ अशोकेश्वरदेवस्य नमर्मदायाः प्रसादतः ॥ २३ ॥ को मे समर्थो विघ्नाय सुरासुरगणेष्वपि ॥
तथैव को न्योजन्तूनां यज्ञविघ्नस्य हेतवे ॥ २४ ॥ यज्ञकाले च सम्प्राप्तो यः कश्चिदपि मानवः ॥ पूजनीयस्तथा च्छ्रियं यथा
देवश्चतुर्भुजः ॥ २५ ॥ यथा याता महाभागा ब्रह्मपुत्रामहोजसः ॥ ददामि वो न सन्देहो मनसा यदभीप्सितम् ॥ २६ ॥ दु
र्वासा उवाच ॥ परिपूज्यश्च नः पुत्रो नारदः पर्वतस्तथा ॥ एकाकी प्रार्थयेनाहं मिलित्वा प्रार्थयामहे ॥ २७ ॥ रविश्चन्द्र उ
वाच ॥ यो यं कामयेते कामं तं तस्मै प्रदाम्यहम् ॥ इति सर्वे पिते नैव प्रस्तुतास्तु निपुङ्गवाः ॥ २८ ॥ सुप्रीता विहिताराज
न् बर्धप्राद्यप्रदानतः ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ मुनयः केन कार्येण पाटलीपुत्रवासिनः ॥ २९ ॥ देव्या शप्ताः श्वयोनिं च गता

समय में जो कोई मनुष्य भी आवे तो वह हमको वैसे पूजा करने के योग्य है कि जैसे चार मुजावाले विष्णुजी पूजनीय हैं ॥ २५ ॥ जैसे बड़े तेजवाले और बड़े भाग्यवाले ब्रह्माजी के पुत्र आये उसीतरह आप लोगोंको भी जो मनसे चाहो वह हम देवोंगे इसमें कुछ सन्देह नहीं है ॥ २६ ॥ तब दुर्वासाजी बोले कि हमारे पुत्र नारद और पर्वत भी पूजने लायक हैं हम अकेले नहीं मांगते किन्तु मिलकर माँगेंगे ॥ २७ ॥ तब राजा रविचन्द्रजी बोले कि आप लोगों में जो जिस कामनाको चाहेंगा उसको वहाँ हम देवोंगे इसतरह उन्हीं राजा करके वे मुनि श्रेष्ठ लोग खुशामद किये गये ॥ २८ ॥ और अर्ध व पाद्यके देनेसे हे राजन् ! प्रसन्न किये गये मुधिष्ठिरजी

पूछते हैं कि पटना के रहनेवाले मुनियोंको किस कारणसे ॥ २६ ॥ देवीजीने शापदिया और कुत्तेकी योनिको प्राप्तहुये वे लोग फिर किसतरह उससे छूटे तब मार्कण्डेयजी बोले कि अगिले जमानेमें जटा और भोजपत्रोंको धारण किये सब तपस्वी लोग ॥ ३० ॥ नैपालमें देवताओं के देवता, कल्याणरूप, महेश्वर, पशुपति महादेवजी का बिना पार्वती के भाक्तिसे पूजन करते थे ॥ ३१ ॥ देवता और दैत्योंसे नमस्कार कियेगये महादेवजी तो अर्द्धनारीश्वर देव हैं इसीकारण से लिङ्ग के भेद करनेवाले ब्राह्मणों को पार्वतीजी ने शाप दिया ॥ ३२ ॥ पार्वतीजी ने कहा कि हे महादेवकी चढ़ीहुई द्रव्य व उनके पार्षद जो चण्डहैं उनकी द्रव्य के खानेवाले पापीलोगो !

मुक्ताश्च ते कथम् ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ पुरातपो धनास्सर्वे जटावल्कलधारिणः ॥ ३० ॥ नैपाले वै पशुपतिं देवदेवं सहेश्वरम् ॥ पूजयन्ति शिवं भक्त्या गौर्याधिरोहितं हरम् ॥ ३१ ॥ अर्द्धनारीश्वरं देवं सुरासुरनमस्कृतम् ॥ संशप्तास्ते न काय्येण पार्वत्या लिङ्गभेदिनः ॥ ३२ ॥ वर्षे सहस्रं हि मितं श्वयोनिञ्च गमिष्यथ ॥ निर्माल्यभक्तकाः पापाश्च ण्डद्रव्यस्य भजकाः ॥ ३३ ॥ तेषां कृते महाराज दुर्वासानृपमब्रवीत् ॥ श्वयोनिसमनुप्राप्तास्तत्र काले सुनीश्वराः ॥ ३४ ॥ मोचयन्तं त तोराजन्नस्मत्प्रियचिकीर्षया ॥ पार्वत्या ते भिशसाश्च नरके मज्जन्ति दारुणे ॥ ३५ ॥ उवाच च चनं राजा मुनिं दुर्वासं स ततः ॥ मोचयांमि न सन्देहो तस्मात्पापाद्विजोत्तमान् ॥ ३६ ॥ प्रेषिताः किङ्करास्तेन सीदन्तो यत्र ते वने ॥ प्राणिपत्यच ते स वै तानूचुश्च वने चरान् ॥ ३७ ॥ स्मारयन्ति पूर्वजातिमादिष्टाः प्रभुणायथा ॥ ततस्तद्वचनात्प्राप्तास्तेऽशोकवनि कान्द्रुत

एक हजार वर्षप्रमाण तक तुम कुत्तेकी योनिको पावोगे ॥ ३३ ॥ हे महाराज ! उन्हीं ब्राह्मणों के वास्ते राजासे दुर्वासने कहा कि उससमय में सुनीश्वरलोग कुत्ते की योनिको प्राप्त होगये थे ॥ ३४ ॥ सो हे राजन् ! अब हमारे प्रिय करनेकी इच्छा से तुम उनको उस शापसे छुटादो वे लोग पार्वतीसे शापको पायेहुये दारुण नरक में डूबरहे हैं ॥ ३५ ॥ तब दुर्वासा मुनि से राजा वचन बोले कि हम उन उत्तम ब्राह्मणों को उस पापसे छुटादेवगे इसमें सन्देह नहीं है ॥ ३६ ॥ यह कहकर उन राजाने उस वनमें अपने दूतोंको भेजा जहां वे ब्राह्मण दुःखित होरहे थे वे सब दूत उन जङ्गली मुनियों के नमस्कार कर बोले ॥ ३७ ॥ और उनके पूर्वजन्मकी

सुध करातेहुये जैसे मालिक ने कहाथा वैसेही कहा तब वे उनके कहनेसे अशोकवनिकको शीघ्र आये ॥ ३८ ॥ तब चक्रवर्ती राजा रविश्चन्द्र उन तपस्वियोंको देख कर बड़े आनन्द से युक्त हँसतेहुये ऐसे उनसे बोले ॥ ३९ ॥ कि अशोकेश्वरदेव व नर्मदा के प्रभाव से व महर्षियों के प्रसाद से ॥ ४० ॥ ये सब मुनिलोग कुचेकी योनिको छोड़कर निश्चय से शिवके लोकको जाँवे और इनका यह सब महाघोर पाप मुझमें बैठे ॥ ४१ ॥ उसीक्षण शापसे छुटहुये वे सब महर्षिलोग मनमानी सत्तारी पर सवार होकर सौयज्ञों के करनेवाले राजा रविश्चन्द्र से वचन बोले ॥ ४२ ॥ कि आपही हमारे माता व आपही पिता और आपही

मू ॥ ३८ ॥ रविश्चन्द्रश्चक्रवर्ती तान्विलोकयतपोधनान् ॥ मुदापरमयायुक्तः प्राहतान्प्रहसन्निव ॥ ३९ ॥ अशोकेश्वर देवस्य मेकलायाः प्रभावतः ॥ ममदानप्रभावेण महर्षीणां प्रसादतः ॥ ४० ॥ त्यक्त्वाश्वयोनिमुनयः शिवलोकं प्रया न्तुवै ॥ एतत्पापं महाघोरं मयि सर्वं निषीदतु ॥ ४१ ॥ तत्क्षणान्मुक्तशपास्तैः कामिकं यानमास्थिताः ॥ ऊचुर्महर्षयो वाक्यं रविश्चन्द्रं शतक्रतुम् ॥ ४२ ॥ त्वं माता त्वं पिताऽस्माकं त्वं गुरुर्मोक्षदायकः ॥ एवमुक्त्वा ययुस्तेतु उमामाहेश्वरं पुरम् ॥ ४३ ॥ साधुसाधुमहाभाग त्वन्तु यज्ञतपोनिधिः ॥ नान्यस्त्वया समः कश्चित्सोमवंशे महीपतिः ॥ ४४ ॥ त्वया हि निजितं सर्वं त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥ एवमुक्त्वा सुरश्रेष्ठास्साधुवादैस्तमाचरयन् ॥ ४५ ॥ देवदुन्दुभयोर्नेदुःपुष्पवृष्टिः पपा तच ॥ दुर्वासा उवाच ॥ क्षत्रियेषु त्वया तुल्यो न दृष्टो न श्रुतो मया ॥ ४६ ॥ प्राणत्यागो हि सुकरो धर्मत्यागो हि दुष्करः ॥ वरं वृणीष्व भद्रन्ते यत्ते मनसि वर्तते ॥ ४७ ॥ प्रहसन्नब्रवीद्वाक्यं राजा दुर्वाससं मुनिम् ॥ ममदानप्रभावेण नरादुष्कृतदु

गुरुहो जिन्होंने हमको छोड़ा दिया है ऐसे कहकर वे सब पार्वती व महादेवजी के पुरको जातेहुये ॥ ४३ ॥ हे महाभाग ! बाह २ आप तो यज्ञ व तपस्या के खजाने हो चन्द्रवंशमें तुम्हारे बराबर और कोई राजा नहीं हुआ ॥ ४४ ॥ तुमने सब चराचर तीनों लोकोंको जीत लिया ऐसे कहकर उच्चम देवता तारीफवाली बातोंसे उन राजाकी पूजा करतेहुये ॥ ४५ ॥ और देवताओं के नगाड़े बजे व फूलों की वर्षा हुई तब दुर्वासाजी बोले कि क्षत्रियों में तुम्हारे बराबर दूसरे क्षत्रियको न मैंने देखा है और न सुना है ॥ ४६ ॥ क्योंकि प्राणोंका भी छोड़ देना सहजमें होसکتा है परन्तु अपने कर्मायेहुये धर्मका छोड़ देना बहुतही कठिन है इससे तुम्हारा कल्याण हो अब

जो तुम्हारे मनमें हो उस वरको मांगो ॥ ४७ ॥ तब राजा हैसतेहुये दुर्वासामुनि से वचन बोले कि हमारे दानके प्रभावसे पापबुद्धिवाले भी मनुष्य ॥ ४८ ॥ परम स्थानको प्राप्तहोवें यही वर हमको प्याराहै ऐसाही हो ऐसे उन राजाके आगे कहकर मुनियों में श्रेष्ठ वे दुर्वासाजी बड़े आनन्द से युक्त वहीं अन्तर्धान होगये बड़े तेजवाले राजाके ऐसे उस कर्मको देखकर ॥ ४९ ॥ ५० ॥ बड़ी शङ्का से युक्त धर्मराज यह कहतेहुये कि यज्ञभागसे बाहर करदियेगये हम आपको वर देतेहैं आपका कल्याणहो ॥ ५१ ॥ जिन्होंने कुत्तेकी योनिको प्राप्तहोहे ब्राह्मणों को कर्मबन्धन से छोड़ादिया है नृपोत्तम ! आपकी ऐसी सामर्थ्यको हम जानते हैं ॥ ५२ ॥ पृथिवी

द्वयः ॥ ४८ ॥ प्राप्नुवन्तुपरंलोकं वरएषममप्रियः ॥ एवमस्त्वितितस्याग्रेऽभिधायमुनिपुङ्गवः ॥ ४९ ॥ समुदापरयायु रस्तत्रैवान्तरधीयत ॥ तदूट्टद्वातादृशंकर्मं राज्ञश्चामिततेजसः ॥ ५० ॥ शङ्कयापरयायुक्तो धर्ममराजोब्रवीदिद म् ॥ वरंददामिभद्रन्ते यज्ञभागबहिष्कृतः ॥ ५१ ॥ द्वयोनित्वंगताविप्रा मोचिताःकर्मबन्धनात् ॥ ईदृशंतवसाम श्र्यं जानामिचनृपोत्तम ॥ ५२ ॥ पृथिव्यांदुष्करंकर्मं यज्ञश्चैवविशेषतः ॥ योददादिमहाभाग स्वकीयंपुण्यमुत्तम म् ॥ ५३ ॥ यमलोकोजितस्तेन देवलोकोजितस्तथा ॥ वरयोग्योसिराजेन्द्र सत्यमेतन्मयोदितम् ॥ ५४ ॥ रविश्चन्द्र उवाच ॥ यदितुष्टस्मूर्यपुत्र वरंदतुंममेच्छसि ॥ समयज्ञशतैर्नैव दानेनतपसातथा ॥ ५५ ॥ पापयोनिगतायेतु येच दुष्कृतकारिणः ॥ प्रयान्तुत्वत्प्रसादेन धर्ममराजशिवालयम् ॥ ५६ ॥ इमंवरमहंमन्ये प्रसादःक्रियतांसयि ॥ यमउवा च ॥ एवंभवतुराजेन्द्र सत्यधर्मपरायण ॥ ५७ ॥ प्राप्नुहित्वंपरंलोकं सत्येनानेनसुव्रत ॥ यतस्तेमोचिताःसर्वाः कश्म

में बड़े दुष्करकर्म को आपने किया और विशेषसे यज्ञको किया हे महाभाग ! जिसने अपनी उत्तमपुण्य को देदिया ॥ ५३ ॥ उसने यमलोक को जीतलिया उसी प्रकार देवलोक को जीतलिया इससे हे राजेन्द्र ! आप वरदान के योग्यहो मैंने आपसे यह सत्य कहा है ॥ ५४ ॥ तब राजा रविश्चन्द्र बोले कि हे सूर्यपुत्र ! आप मुझ से प्रसन्नहो और मुझको वरदेनेकी इच्छा करतेहो तो हमारे सौयज्ञों से व दान और तपस्यासे ॥ ५५ ॥ पापके करनेवाले या पापयोनियों में पड़ेहुये जो जीवहों हे धर्मराज ! वे सब आपके प्रसादसे शिवजी के स्थानको जावें ॥ ५६ ॥ बस हम इसी वरको चाहते हैं आप मेरे ऊपर दयाकरें तब यमराज बोले कि हे सत्त्वधर्म में तत्पर ! हे

राजेन्द्र ! ऐसा ही हो ॥ ५७ ॥ हे सुव्रत ! अपने इस सच्चापन से तुम उत्तमलोक को प्राप्त होवो जिससे सब पापयोनियों को तुमने वष्टसे छोड़ दिया है ॥ ५८ ॥ हे राजन् ! सैकड़ों क्षत्रिय या और भी हजारों जीव जिनको आपने पापसे उद्धार किया है उनकी गिन्ती नहीं है ॥ ५९ ॥ बड़ी २ भुजावाले धर्मराज श्रेष्ठ राजासे ऐसे कहकर और देवता व दैत्यों से नमस्कार की गई अपनी सवारी पर सवार होकर ॥ ६० ॥ अपने मकान को चले गये और हे राजन् ! नारद व पर्वत भी चले गये हे नरसत्तम ! उस अशोकवनिका में विद्यमान हो रहे तीर्थोंको आपसे कहा उनके सुनने व कहने हे हजार

लात्पापयोनयः ॥ ५८ ॥ क्षत्रियाश्शतशो राजन्नन्ये चैव सहस्रशः ॥ पापात्समुद्भूता ये च तेषां सङ्ख्या न विद्यते ॥ ५९ ॥ एवमुक्त्वानृपश्रेष्ठं धर्मराजो महाभुजः ॥ कामिकं यानमारुह्य सुरासुरनमस्कृतम् ॥ ६० ॥ ययौ स्वभवनं राजन्नारदः पर्वतस्तथा ॥ तस्यामशीतिलक्षाणि तीर्थानां नरसत्तम ॥ ६१ ॥ अशोकवनिकायान्तु कीर्तिता नितवानघ ॥ श्रवणात्कीर्तनात्तेषां गोसहस्रफलं भवेत् ॥ ६२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे रेवा खण्डेऽशोकवनिकावर्णनो नाम षट्षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६६ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ अथातः कथयिष्यामि तीर्थपापप्रणाशनम् ॥ रेवाया उत्तरे कूले पुरं वागीश्वराभिधम् ॥ १ ॥ वागुर्नाम नदी तत्र रेवया सहसङ्गता ॥ तत्र स्नाता दिव्यान्ति ये मृतान पुनर्भवाः ॥ २ ॥ वागीशा तत्र चासु एडा दानवजयकारिणी ॥ मणिभद्रा वीरभद्रस्तथान्ये शतशो नृपाः ॥ ३ ॥ बभूवुर्मुक्तशोपास्ते तीर्थस्यास्य प्रभावतः ॥ तिलापिण्डप्रदा

गोदानोका फल होता है ॥ ६२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे रेवा खण्डे प्राकृतभाषाऽनुवादोऽशोकवनिकावर्णनो नाम षट्षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६६ ॥

मार्कण्डेयजी बोले कि अब इसके बाद पापों के नाश करनेवाले और तीर्थोंको हम कहेंगे नर्मदा के उत्तरवाले तट पर वागीश्वर नाम का पुर है ॥ १ ॥ वहां वागु नामकी नदी नर्मदा के साथमें मिली है उसमें स्नान करनेवाले स्वर्गको जाते हैं और जो मरे हैं वे फिर नहीं होते हैं ॥ २ ॥ वहां दानवों के नाश करनेवाली वागीशानाम की काली रहती है इस तीर्थके प्रभावसे मणिभद्र, वीरभद्र तथा और भी सैकड़ों राजा आपसे छूट गये यहां तिलोंके सहित पिण्डों के देनेसे पितरों की परम

गति होती है ॥ ३१४ ॥ सूर्यवंश में इन्द्रके बराबर ताकतवाले श्रीमान् अयोध्याके मालिक चक्रवर्ती राजा ब्रह्मदत्तजी हुये ॥ ५ ॥ जोकि धन व अन्नसे युक्त, भय और दरिद्र से रहित होतेहुये उन राजाके होनेपर सब प्रजा बड़े आनन्द से युक्त होतीहुई ॥ ६ ॥ उन्होंने नर्मदा और वागुनदीके सङ्गममें उत्तमयज्ञको किया उसयज्ञमें ब्रह्माआदि सब देवता व इन्द्र और विष्णुआदि देवता आतेहुये ॥ ७ ॥ और गणेशजीके सहित महादेवजी भी प्रत्यक्ष हुये लोकपाल, मरुत, चन्द्रमा, सूर्य तथा ध्रुव ॥ ८ ॥ नक्षत्र, योग, सिद्ध और सोमआदि सब आतेहुये मुनियों के सहित वशिष्ठ तथा जनकपुर के राजा जनक ॥ ९ ॥ इत्यादिक सब बुलायेगये भिन्न और वरुण

नेन पितृणां परमागतिः ॥ ४ ॥ ब्रह्मदत्तश्चक्रवर्ती सूर्यवंशे महीपतिः ॥ अयोध्याधिपतिः श्रीमान् ब्रह्मदत्तुल्यपराक्रमः ॥ ५ ॥ धनधान्यसमायुक्तो भयदारिद्र्यवर्जितः ॥ प्रजास्तस्मिन्मर्महीपाले सर्वा अपि सुदान्विताः ॥ ६ ॥ इष्टः क्रतुवरस्तेन नर्मदावागुसङ्गमे ॥ ब्रह्माद्यादेवतास्सर्वाः शक्रविष्णुपुरोगमाः ॥ ७ ॥ प्रत्यक्षश्च महेशानो गणेश्वरसमन्वितः ॥ लोकपालाश्च मरुतश्चन्द्रादित्यौ ध्रुवस्तथा ॥ ८ ॥ ऋक्षाणि योगसिद्धाश्च सोममुख्याश्च सर्वशः ॥ वशिष्ठो मुनिभिस्सार्द्धं शयोजनपर्यन्तं यज्ञभूमिर्महीभृतः ॥ सर्वैरिह एमयास्तत्र यज्ञयूपाश्च मण्डपाः ॥ ९ ॥ दन्विता निच ॥ हयानां श्यामकर्णानामयुतं साग्रमेव च ॥ १० ॥ दन्तिनामयुतं चैव घण्टाभरणभूषितम् ॥ मणिमाणिक्यमुक्ताश्च भक्ष्यभोज्यान्यनेकधा ॥ ११ ॥ एवं राजा ब्रह्मदत्तः सर्वभूपालसत्तमः ॥ यज्ञं प्रवर्तयामास सर्वसम्भारसंभृतः ॥ १२ ॥

भी बुलायेगये वहां सब यज्ञके खम्भे व मण्डप सोनेही के थे ॥ १० ॥ राजा ब्रह्मदत्तजी की यज्ञभूमि चालीस कोसतक होतीहुई हे राजन् ! यह वृत्तान्त पहले कल्पके स्वरोचिष मन्वन्तर के सत्ययुग में हुआथा ॥ ११ ॥ सोनेके भारसे लदीहुई एक लाख गौवें, कुछ अधिक दशहजार श्यामकर्णवाले घोड़े ॥ १२ ॥ घण्टाआदि जेवरों से सजेहुये दशहजार हाथी, मणि, माणिक, मोती और अनेकतरह के चवाने व खानेलायक अन्न ॥ १३ ॥ इस प्रकार सब राजाओं में अत्युत्तम राजा ब्रह्म-

दत्तजी सब सामानसे युक्त हो यज्ञको रचते हुये ॥ १४ ॥ वेदके शब्दोंसे व गाने व बाजाओं के शब्दोंसे युक्त, अनेक सवारियों पर सवार देवताओं के गणोंने राजा ब्रह्मदत्तजीकी खुतिको किया ॥ १५ ॥ ब्रह्मदत्तजी की यज्ञसे व वागीशके प्रसादसे व नर्मदा के प्रसाद से प्रेतलोग बड़ी तृप्तिको पाते हुये ॥ १६ ॥ तब राजा युधिष्ठिर जी बोले कि ब्रह्मदत्तजी का नर्मदा के तीर यज्ञका करना कैसे हुआ व प्रेतलोग कैसे छूटें और वे किस कर्म से प्रेत हुये थे ॥ १७ ॥ हे तपोधन ! यह सब आप हम से यथार्थ कहिये तब मार्कण्डेयजी बोले कि हे राजन् ! तुम ठीक २ पुराने इतिहासको सुनो ॥ १८ ॥ कि कार्तिकी को ज्येष्ठपुष्कर जो पुष्करतीर्थ है उसमें जलसे

वेदनिर्घोषशब्देन गीतवाद्यस्वेण च ॥ नानायानसमारूढैः स्तूयमानो मरुद्गणैः ॥ १५ ॥ ब्रह्मदत्तस्य यज्ञेन वागीशस्य प्रसादतः ॥ नर्मदायाः प्रसादेन प्रेतास्तृप्तिपराङ्मताः ॥ १६ ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ कथन्तु ब्रह्मदत्तस्य कल्पगता रिया जनम् ॥ कथं प्रेता विनिर्मुक्ताः प्रेतास्ते कै न कर्मणा ॥ १७ ॥ एतत् सर्वं यथान्यायं कथयस्व तपोधन ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ शृणु राजन्यथान्यायमितिहासम् पुरातनम् ॥ १८ ॥ कार्तिक्या सुत्सवं प्राप्य पुष्करे ज्येष्ठपुष्करे ॥ अयोगन्धः स्वयंभू इव पुण्डरीकाक्ष एव च ॥ १९ ॥ पिता महस्स्वयं तत्र सुरासुरगुरुः पिता ॥ काव्यश्च होतुः सदनैर्विदगर्भः कृतध्वनः ॥ २० ॥ स्वस्तिकश्चैव सावित्रो वामदेवो घर्मर्षणः ॥ एते चान्ये च मुनयो ब्रह्मतेजोऽशसम्भवाः ॥ २१ ॥ तथा ते हि यथाशक्ता ऋतुकालाभिर्गामिनः ॥ गार्हस्थ्ये च स्थिता भार्या भर्तृशुश्रूषणैरताः ॥ २२ ॥ चीरवल्कलधारिण्यः शाकस्यामाकभक्षि काः ॥ विषसास्तेन धर्मैः सत्यस्ताः अर्घ्यगर्हयन् ॥ २३ ॥ द्विजस्य षट्च कर्मणां यजनं याजनं तथा ॥ अध्यापनं चाध्य

को पायकर अयोगन्ध, स्वयम्भू, पुण्डरीकाक्ष ॥ १९ ॥ देवता और दैत्योंके गुरु व पिता आपही ब्रह्माजी, काव्य, होतु, सदन, वेदगर्भ, कृतध्वन ॥ २० ॥ स्वस्तिक, सावित्र, वामदेव और अघर्मर्षण ये व और भी ब्रह्मतेज व अंशों से पैदा हुये मुनिलोग आये और वहीं रहते रहे ॥ २१ ॥ वे सब लोग अपनी शक्तिके अनुसार ऋतु-समय में अपनी स्त्रियों के ग्रहण करनेवाले रहे और उनकी स्त्रियां भी गृहस्थ के धर्ममें स्थित अपने पतियों की सेवामें लगी रहती रहीं ॥ २२ ॥ चीर व भोजपत्रों की पहरेनेवाली और शाक व सांवांआदि की खानेवाली रहीं अब वे स्त्रियां उस वानप्रस्थधर्म से दुःखित हो रहीं तो यद्यपि वे पतिव्रता थीं पर उस लेशमें अपने पतियों की

निन्दा करने लगी ॥ २३ ॥ स्त्रियों ने कहा कि ब्राह्मण के छह कर्म होते हैं यज्ञ करना भयज्ञ कराना २ वेद पढ़ना ३ वेद पढ़ाना ४ दान देना ५ दान लेना ६ ॥ २४ ॥ और स्त्रियों को गहने व कपड़ों का पहिरना और अपने पतियों की सेवा करना यही कर्म है हे राजन् ! इस प्रकार स्त्रियों ने अपने पतियों की निन्दा की ॥ २५ ॥ तब उनके वे पति डर गये और सब आश्चर्य को प्राप्त हुये व उदास मुहें वाले, हो गये उसी समय में एक राजा हरिश्चन्द्र रहे जिनके समान दूसरा राजा न हुआ है और न होगा ॥ २६ ॥ जिसने अपने दान से चराचरों के सहित तीनों लोकों को जीत लिया वे राजा सूर्यग्रहण में कुरुक्षेत्र को जाते हुये ॥ २७ ॥ तब वे सब ब्राह्मण भी धन के लोभ से मोहित हो रहे सो पुष्करतीर्थ को छोड़ कर अपनी स्त्रियों व पुत्रों के सहित हजारों मुनिलोग ॥ २८ ॥ दान लेने की इच्छा से जहां राजा हरिश्चन्द्र थे वहां पहुँच गये तब

यनं दानञ्चैव प्रतिग्रहः ॥ २४ ॥ भूषणं परिधानञ्च योषितां भर्तुः सेवनम् ॥ एवं च गर्हिताराजन्योषिद्धिः पतयस्तथा ॥ २५ ॥
भीतास्ते विस्मितास्सर्वे विषण्वदनास्तथा ॥ हरिश्चन्द्रः पुराराजानभूतोनभविष्यति ॥ २६ ॥ दानेन निजितयेन त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥ राहुसूर्यसमायोगे कुरुक्षेत्रं जगामह ॥ २७ ॥ त्यक्त्वा ते पुष्करतीर्थं धनलोभेन मोहिताः ॥ सहस्रसंख्यामुनयः सभाय्यां स्मिन्मुताश्चते ॥ २८ ॥ यत्र राजा हरिश्चन्द्रः प्रतिग्रहं विलिप्सया ॥ मुनीनां हरिश्चन्द्रो मुदा परमयायुतः ॥ २९ ॥ धन्यामसफलायां कुरुक्षेत्रे रविग्रहे ॥ क्षुधात्ताडुःखिताश्चैव बालावृद्धाः कुरातुराः ॥ ३० ॥ वल्कलाजिनवस्त्राश्च यौवने प्रेतरूपिणः ॥ यन्नो यूयमभिप्राप्ताः पत्नी पुत्रैश्च संयुताः ॥ ३१ ॥ उवाच वचनं राजा साष्टाङ्गं प्रणिपत्य च ॥ आदेशो दीयतां मह्यं किं करोमि भवत्कृते ॥ ३२ ॥ एवमुक्त्वा ददौ श्रीमानेकैकस्य पृथक् पृथक् ॥ लज्जं लज्जं हि राजा हरिश्चन्द्र बड़े आनन्द से युक्त मुनियों से बोले ॥ २६ ॥ कि सूर्यग्रहण में कुरुक्षेत्र की यह मेरी यात्रा धन्य है और सफल हुई क्योंकि जिससे क्षुधा से विकल, दुःखित, बालक, वृद्ध और बीमार, भोजपत्र व मृगचर्म के जिनके कपड़े हैं और जवानी में प्रेतों के ऐसे रूपों को धारण किये स्त्री व पुत्रों के सहित आपलोग हमारे तीर प्राप्त हुये हो ॥ ३० ॥ ३१ ॥ फिर साष्टाङ्ग प्रणाम कर ब्राह्मणों से राजा वचन बोले कि आपलोग मुझको आज्ञा देवें मैं आपलोगों के वास्ते क्या करूं ॥ ३२ ॥ ऐसे कह कर श्रीमान् राजा हरिश्चन्द्र जी एक २ को जुदे २ एक २ लाख अक्षरियां तथा हजार २ गौवें, हजार २ बोड़े, सौ २ हाथी, सोने के हाता व सोने के फाटक बाले

सात २ चौकवाले रमणीक महल और भी अनेक तरहके भोगोंको देतेहुये जैसे कुबेरजी आपही देवें वे सब ब्राह्मण दानको लेकर कालान्तर में जब मरे तब बड़े भयङ्कर लम्बेओठोंवाले व लम्बे अण्डकोशोंवाले और डरावने मुहँवाले प्रेतरूप होगये दानलेने के प्रभाव से ब्राह्मण का नरकमें गिरना जरूरही होताहै ॥ ३३ । ३४ । ३५ । ३६ ॥ अब वे ब्राह्मण अपने पहले जन्मकी सुध करनेवाले अकेले बाहर अपने को शोचते हैं और कहतेहैं कि हमारी स्त्री, पुत्र, सेवक और भाई लोग कोई दानके लेनेसे नहीं जले सब पहलेहीकी तरह बनेहैं और हमलोग अकेलेही जलगये जैसे आगसे वृक्ष जलजावें ॥ ३७ । ३८ ॥ राजाओंके दानलेने से

एयस्य तथागावःसहस्रशः ॥ ३३ ॥ सहस्रंतुरगाणांच दन्तिनांशतसेवच ॥ साप्तभौमान्गृहान्म्यान्हेमप्राकारतो
रणान् ॥ ३४ ॥ नानाविधविलासांश्च यथाधनपतिःस्वयम् ॥ कल्पान्तरेमृताजाताः प्रेतरूपाभयङ्कराः ॥ ३५ ॥ लम्बो
ष्ठालम्बवृषणा विक्कताननसंयुताः ॥ प्रतिग्रहप्रभावेण द्विजस्यपतनंघ्रवम् ॥ ३६ ॥ जातिस्मराःस्वंशोचन्ति एकाकीना
स्तुतेवहिः ॥ नभार्यानचमेपुत्रा नभृत्यानचवान्धवाः ॥ ३७ ॥ नतैप्रतिग्रहैर्दग्धा यथापूर्वतथैवच ॥ वयमेकाकिनो
दग्धा वृक्षाइवहविर्भुजा ॥ ३८ ॥ राजप्रतिग्रहैर्दग्धानप्ररोहन्तिमानवाः ॥ वैश्वानरेणदग्धानां पुनर्जनमप्रजायते ॥ ३९ ॥
नमातानपितापुत्रो द्रविणंनचवान्धवाः ॥ यमदूतैर्गृहीतानांधर्ममएकःसहानुगः ॥ ४० ॥ शोचित्वासुचिरंकालं भार्या
पुत्रविवर्जिताः ॥ भ्रमित्वाचमर्हसर्वा पुष्करंतीर्थमागताः ॥ ४१ ॥ प्रेतरूपान्मुनीन्दृष्ट्वा विषादंपरमंगतः ॥ तानुवा
चमुनिश्रेष्ठः कथंप्रेतत्वमागताः ॥ ४२ ॥ प्रेताऊचुः ॥ हरिश्चन्द्रःसत्यधर्मसूर्यवंशेशमहीपतिः ॥ अयोध्याधिपतिःश्रीमा

जलेहुये मनुष्य फिर कभी नहीं जमते हैं और आगसे जलीहुई चीजोंका फिर जमना होता है ॥ ३९ ॥ यमदूतों से पकड़ेगये हमलोगों के माता, पिता, पुत्र, धन और भाई ये कोई सहायक नहीं हैं एक हमारा धर्मही सहायकहै ॥ ४० ॥ इसतरह स्त्री और पुत्रोंसे रहित वे लोग बहुत कालतक शोचकर और सब पृथिवी में घूम कर पुष्करतीर्थ को आतेहुये ॥ ४१ ॥ वहां नारदजी प्रेतरूपवाले उन मुनियोंको देखकर बड़े विषादको प्राप्तहुये तब मुनियों में श्रेष्ठ नारदजी उन मुनियों से बोले कि तुमलोग प्रेतभावको कैसे प्राप्तहुये ॥ ४२ ॥ तब प्रेत बोले कि सच्चेधर्मवाले, अयोध्याके मालिक, अयोध्यामें श्रीमान्, राजा हरि-

श्चन्द्रजोह्ये ॥ ४३ ॥ उन राजाका दान सूर्यग्रहणमें हमलोगोंने लिया इसीसे हे मुने ! हम सब ब्रह्मर्षिलोग प्रेतभावको प्राप्तहुये ॥ ४४ ॥ हे ब्रह्मन् ! यह आप से कहा अब हमलोगोंका इस योनिसे छुटकारा कियाजावे क्योंकि आप तीनोंकालके तत्त्वके जाननेवाले, ब्रह्माके पुत्र और तपस्याके खजानाहो ॥ ४५ ॥ तब श्रीमान् नारदजी उन तपोधनों से वचन बोले कि किसी पुण्यवाले दिव्यपर्व कार्तिकी के समयमें ४६ ॥ महादेवजी ने पार्वती व स्वाभिकार्त्तिक से पूर्वकाल में कहाथा वहीं स्कन्दके कहेहुये पुराण को हमने भी सुनाहै ॥ ४७ ॥ उसमें कहाहै कि हे नृप ! नर्मदाको छोड़कर और पापोंके नाश करनेको कौन समर्थ होसक्ती है हे विप्रो ! यद्यपि गङ्गा

न्देवतुल्यपराक्रमः ॥ ४३ ॥ तस्यप्रतिग्रहोऽस्माभिराप्तस्सूर्यग्रहेस्थिते ॥ तेनप्रेतत्वमापन्नास्मर्वेब्रह्मर्षयोमुने॥ ४४ ॥
एतत्तेकथितंब्रह्मन्मोक्षोस्माकंविधीयताम् ॥ भविष्यभूततत्त्वज्ञो ब्रह्मपुत्रस्तपोनिधिः ॥ ४५ ॥ उवाचवचनंश्रीमान्नार
दस्तांस्तपोधनान् ॥ कस्मिन्नवसरेपुण्ये कार्तिक्यादिव्यपर्वणि ॥ ४६ ॥ शिवेनकीर्तितंपूर्वं पार्वत्याःषण्मुखस्यच ॥ श्रु
तंभयैवतत्रैव पुराणंस्कन्दकीर्तितम् ॥ ४७ ॥ कान्यापापक्षयंकर्तुं शक्तारेवांविनानृप ॥ गङ्गाद्यास्सरितोविप्राः पुण्यती
र्थस्तथापिच ॥ ४८ ॥ वागीशंचपुरंतत्र नर्मदातटमाश्रितम् ॥ अध्वरेब्रह्मदत्तस्य मोक्षणंतुभविष्यति ॥ ४९ ॥ उद्दे
शंतुततोदत्त्वा नारदस्त्रिदिवंगतः ॥ तेपिप्रेतामहाभाग ध्यात्वाशिवमुमापतिम् ॥ ५० ॥ अभिजगमुस्तमुद्देशंवागीशपुर
मुत्तमम् ॥ तत्रस्नात्वाभ्यर्च्यशिवं हरिमास्करमेवच॥ ५१ ॥ अध्वरेब्रह्मदत्तस्य मुक्तास्मर्वेपिकित्त्वेषात् ॥ ब्रह्मयानंस
मारुह्य ब्रह्मलोकंसमागताः ॥ ५२ ॥ प्रतपन्तिथयादित्याब्रह्मतेजोवपुर्दराः ॥ तस्योपरिनरेशस्य पुष्पवृष्टिःपपात

आदि नदियां व और भी पुण्यवाले तीर्थ विद्यमान हैं तथापि वे नहीं समर्थ हैं ॥ ४८ ॥ नर्मदा के किनारे पर वागीशपुर है वहां ब्रह्मदत्त की यज्ञमें तुमलोगों का मोक्षहोगा ॥ ४९ ॥ ऐसे सूचनाको देकर तदनन्तर नारदजी स्वर्गको चलेगये हे महाभाग ! वे प्रेतभी पार्वतीजी के पति महादेवजी का ध्यानकर ॥ ५० ॥ उसी उत्तम वागीशपुर को चलेगये वहां स्नानकर और महादेव, विष्णु और सूर्यका पूजनकर ॥ ५१ ॥ ब्रह्मदत्तकी यज्ञमें वे सब पापीलोग पाप से छुटगये ब्रह्माजीकी सवारीपर

सवारहोकर ब्रह्माजीके लोकको प्राप्तहो ॥ ५२ ॥ ब्रह्मतेजके शरीरको धरेहुये सूर्यके समान तपतेहैं, उस राजाके ऊपर फूलोंकी वर्षा होतीहुई ॥ ५३ ॥ हे राजन् ! यह आपसे कहागया जैसा कुछ पूर्वकाल में होताहुआ इसके सुनने व कहने से हजार गोदानोंके फलको पाताहै ॥ ५४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डप्राकृतभाषाऽनुवादे

मार्कण्डेयजी बोले कि दानलेना यह बड़ाभारी मगर है इससे ग्रसेहुये और लोभ व मोहसे मोहित होरहे ब्राह्मण घोरनरक में डूबते हैं जहां पड़कर फिर नहीं

वै ॥ ५३ ॥ एतत्तेकथितं राजन्यथावृत्तं पुरातनम् ॥ श्रवणात्कीर्तनादस्य गोसहस्रफलं लभेत ॥ ५४ ॥ इति श्रीस्कन्द पुराणेरेवाखण्डेवागीश्वराख्यानं नाम सप्तषष्ठितमोऽध्यायः ॥ ६७ ॥

सफलावेदयज्ञाश्च तीर्थयात्राचभारत ॥ तथाल्लिश्यन्ति चात्मानं प्रतिग्रहपरानराः ॥ २ ॥ दाता च याचकश्चैव कराभ्यामेव सूचितौ ॥ अधोगच्छेद्ग्रहीता तु दाता गच्छति चोद्धृतः ॥ ३ ॥ सहस्रावर्तकं नाम तीर्थपापप्रणाशनम् ॥ तत्र स्नातस्य विधिवद्बुधोत्सर्गफलं भवेत् ॥ ४ ॥ आसप्तमं कुलञ्चैव पुनीतेनात्र संशयः ॥ रेवाया उत्तरे कूले सहस्रायुधसंख्यया ॥ ५ ॥ ततश्चान्ते महाभाग काराया वनमुत्तमम् ॥ अग्निष्टोमफले यत्र स्नात्वा स्वर्गं च गच्छति ॥ ६ ॥ रेवाया उत्तरे भागे

निकलसके हैं ॥ १ ॥ हे भारत ! यद्यपि वेदोंमें कहाहुई यज्ञ व तीर्थयात्रा ये सब फलवाली हैं तथापि दानके लेनेवाले मनुष्य अपने आत्माको लेकर देते हैं ॥ २ ॥ देने वाले और लेनेवाले दोनों हाथोंसेही काम करतेहैं परन्तु दानका लेनेवाला नीचेको जाताहै और देनेवाला ऊपरको जाताहै ॥ ३ ॥ सब पापोंका छोड़ानेवाला एक सहस्रावर्तकनाम का तीर्थ है उसमें विधिपूर्वक स्नान करनेवाले को बुधोत्सर्गका फल होताहै ॥ ४ ॥ और अपनी सातपीढ़ीतकको पवित्र करताहै इसमें कुछ संशय नहीं है यह तीर्थ नर्मदा के उत्तरवाले किनारे पर सौ धनुषका लम्बाहै ॥ ५ ॥ हे महाभाग ! उसके अन्तमें कारा का वनहै वह बड़ा उत्तम है जहां अग्निष्टोमयज्ञ का फल

होता है और स्नान कर स्वर्गको जाता है ॥ ६ ॥ नर्मदा के उत्तरतरफ परमसुहावन तीर्थ सौगन्धिक नामका वन है उसको पवित्र व्रतवाले ब्रह्मचारी, पितर, ब्रह्मा आदि देवता, श्रेष्ठ तपस्वी, ऋषि, सिद्ध, चारण, गन्धर्व, किन्नर और नागोंने सींचा है ॥ ७ ॥ उस वनमें पैठर मनुष्य सब पापों से छुट जाता है तदनन्तर नदियों में उत्तम सरस्वतीनदी है ॥ ९ ॥ हे राजन् ! वह देवताओं की कन्या है व उन्हीं के देखनेलायक है और महापवित्र कही गई है हे नृपते ! मनुष्य उसके जलमें स्नान करे ॥ १० ॥ और पितर व देवताओं का तर्पण कर अश्वमेधके फलको पाता है वहां ईशानाध्युषित नामका अतिदुर्लभ तीर्थ है ॥ ११ ॥ उसमें व्यतीपात व संक्रान्ति

तीर्थपरमशोभनम् ॥ सौगन्धिकं वनं नाम ब्रह्मचारिशुचिव्रताः ॥ ७ ॥ सिषिचुः पितरस्तत्तु ब्रह्माद्यास्तु तपोधनाः ॥ सिद्ध चारणगन्धर्वाः सकिन्नरमहोरगाः ॥ ८ ॥ प्रविश्य तद्वनं मर्त्यः सर्वपापात्प्रमुच्यते ॥ ततः सरस्वती चास्ति नदीनामुत्तमानदी ॥ ९ ॥ लक्ष्म्या देवसुताराजन्महापुण्या प्रकीर्तिता ॥ तत्र स्नानं प्रकुर्वीत मानवो नृपते जले ॥ १० ॥ तर्पयित्वा पितृन्देवानश्च मेधफलं लभेत् ॥ ईशानाध्युषितं नाम तत्र तीर्थं सुदुर्लभम् ॥ ११ ॥ तत्र स्नात्वा व्यतीपाते संक्रान्तौ ग्रहणे नरः ॥ सहस्रकपिलादाने वाजिमेधे च यत्फलम् ॥ १२ ॥ सुगन्धाञ्छातकुम्भांश्च पञ्चयज्ञांश्च भारत ॥ अभिगम्य नरश्रेष्ठ स्वर्गलोके महीयते ॥ १३ ॥ त्रिशूलाख्यन्तु तत्रैव तीर्थमासाद्य भारत ॥ तत्राभिषेकं यः कुर्यादर्चयेत्पितृदेवतम् ॥ १४ ॥ गणेशत्वं सत्त्वमेतत्पुण्यं देहं न संशयः ॥ ततो गच्छेन्महाराज ब्रह्मस्थानमनुत्तमम् ॥ १५ ॥ स्वाया उत्तरे कूले कामभोगफलप्रदम् ॥ ब्रह्मोदमितिविख्यातं प्रकाशं भुवि भारत ॥ १६ ॥ तत्र सप्तर्षयः प्राप्ताः स्नानार्थं भरतर्षभ ॥

और ग्रहण में मनुष्य स्नान कर हजार कपिलागौवों के देनेमें व अश्वमेध में जो पुण्य होता है उसको पाता है ॥ १२ ॥ और हे नरश्रेष्ठ, भारत ! सुगन्ध व शातकुम्भ और पञ्चयज्ञनाम के तीर्थोंमें जाकर स्वर्गलोक में पूजित होता है ॥ १३ ॥ हे भारत ! फिर वहाँ त्रिशूलनाम के तीर्थको पाकर उसमें जो स्नान करता है और पितर व देवताओं का पूजन करता है ॥ १४ ॥ वह मनुष्य देहको छोड़कर गणों के राज्यको पाता है इसमें कुछ सन्देह नहीं है हे महाराज ! तदनन्तर सबसे उत्तम ब्रह्मस्थान को जावे ॥ १५ ॥ नर्मदाके उत्तरतट में मनमाने भोगोंका देनेवाला ब्रह्मोदनामसे प्रसिद्ध तीर्थ है हे भारत ! वह पृथिवीमें प्रकाश करनेके लायक है ॥ १६ ॥

हे भरतर्षभ ! वहां स्नान करने के वास्ते सातों ऋषि प्राप्तहुये हे भारत ! और भी मुनियों में श्रेष्ठ कपिञ्जल, हव्यव्राह ॥ १७ ॥ भगवान् देवयान और महामुनि विश्वावसु ये सब इस तीर्थ के माहात्म्य से ब्रह्मलोक को प्राप्त होते हुये ॥ १८ ॥ और यहांपर श्राद्ध के देनेसे पितालोग ब्रह्माजिके पुरको प्राप्त हुये तदनन्तर एक गूरुर का वृद्ध है विधिसे उसका दर्शनकर ॥ १९ ॥ तपरया से पाप जिसके जलगये ऐसा मनुष्य अन्तर्द्धान को पाता है हे महाराज ! तदनन्तर लोकों के कल्याण करनेवाले शङ्करजीको प्राप्तहोवे ॥ २० ॥ अधियालेपाखकी चौदसिको महादेवजी के समीप जाकर सब कामोंको पाता है और निश्चय करके स्वर्गलोकको जाता

कपिञ्जलमुनिश्रेष्ठोहव्यवाहश्चभारत ॥ १७ ॥ भगवान्देवयानश्च विश्वावसुमहामुनिः ॥ अस्यतीर्थस्यमाहात्म्याद्ब्रह्मलोकमवानुयुः ॥ १८ ॥ पितरःश्राद्धदानेन प्रयाताब्रह्मणःपुरम् ॥ उदुम्बरस्यकृत्वातु विधिवद्दर्शनंततः ॥ १९ ॥ अन्तर्द्धानमवाप्नोति तपसादग्धकित्विषः ॥ ततो गच्छेन्महाराज शङ्करलोकशङ्करम् ॥ २० ॥ कृष्णपद्मेचतुर्दश्यामभिगम्यवृषध्वजम् ॥ लभतेसर्वकामांश्च स्वर्गलोकंहि गच्छति ॥ २१ ॥ नर्मदायाम्यभागेतु गोप्याद्गोप्यतरंमहत ॥ सिद्धलिङ्गमणिमयंनतत्पश्यन्तिमानवाः ॥ २२ ॥ नागेन्द्रमुखसिद्धेश्च नागकन्याभिरर्च्यते ॥ सपादकोटिस्तीर्थानां शङ्करेकुरुनन्दन ॥ २३ ॥ वसूनामाश्रमंपुण्यं मुनीनांब्रह्मचारिणाम् ॥ शिवभक्तिपराणञ्च कन्दमूलफलाशिनाम् ॥ २४ ॥ पितृणामक्षयातृप्तिस्तिलतोयप्रदानतः ॥ मुदापरमयायुक्तो दातायातिशिवालये ॥ २५ ॥ ध्रुवोधरश्चसोमश्च सावित्रश्चानलोनिलः ॥ प्रत्यूषश्चप्रभासश्च वसवोष्टौप्रकीर्तिताः ॥ २६ ॥ शङ्करस्यप्रसादेन दिविदेवत्वमागताः ॥ क

है ॥ २१ ॥ और नर्मदा के दक्षिणतरफ गुप्तसे अतिगुप्त, बड़ाप्रभाववाला, मणियों से बनाहुआ सिद्धलिङ्ग है उसको मनुष्य नहीं देखते हैं ॥ २२ ॥ वह नागोंके राजा, देवता, सिद्ध और नागोंकी कन्याओं से पूजाजाता है हे कुरुनन्दन ! शङ्करजी में सवाकरोड़ तीर्थ हैं ॥ २३ ॥ वहीं वसुनामके देवताओंका और कन्द, मूल व फलोंके खानेवाले शिवके भक्त ब्रह्मचारी मुनियोंका भी पुण्य आश्रम है ॥ २४ ॥ वहां तिल और जलके देनेसे पितरोंकी श्रक्षयवृत्ति होती है और तिलोदक देनेवाला पुरुष बड़ेआनन्द से युक्त शिवके स्थानको जाता है ॥ २५ ॥ ध्रुव, धर, सोम, सावित्र, अनल, प्रत्यूष और प्रभास ये आठ वसु कहेगये हैं ॥ २६ ॥ सो सब

महादेवजी के प्रसाद से स्वर्गमें देवताहुये अब नर्मदा के उत्तरतरफ में अत्युत्तम सोमतीर्थ है ॥ २७ ॥ हे राजन् ! वहां स्नानकर मनुष्य स्वर्गलोक में पूजित होता है हे नृपोत्तम ! तदनन्तर सप्तसारस्वत तीर्थको जावे ॥ २८ ॥ हे पुण्यकीर्ति ! अब ब्रह्माके क्रियेहुये स्तोत्रको सुनो ब्रह्माजी बोले कि वाणी व शब्दोंके स्वामी वासुदेव हमारी नित्यही गतिहोवें ॥ २९ ॥ सबकहीं प्राप्तहोनेवाले, देवताओं के मालिक, बोलनेवाले, जीवोंके अन्दर रहनेवाले, होमके करनेवाले, स्वर्गके बैठनेवाले, सब के ईश्वर, वासुदेव हमारी गति होवें ॥ ३० ॥ स्वाहा, स्वधा और वषट्काररूपवाले, शाकल्यके खानेवाले, ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद जिनकी मूर्तियाँ हैं ऐसे वासुदेव

ल्पगासौम्यभागेतु सोमतीर्थमनुत्तमम् ॥ २७ ॥ तत्रस्नात्वानरोराजन्स्वर्गलोकमर्हायते ॥ सप्तसारस्वततीर्थं ततो गच्छे नृपोत्तम ॥ २८ ॥ ब्रह्मणा चकृतं स्तोत्रं पुण्यकीर्तिं निशामय ॥ ब्रह्मोवाच ॥ वाक्पतिर्वचसां नित्यं वासुदेवोस्तु मे गतिः ॥ २९ ॥ हंसः सुरेशो वक्ता वावसूनामन्तरावसन् ॥ होतादिविषदीशानो वासुदेवोस्तु मे गतिः ॥ ३० ॥ स्वाहाकारः स्वधा कारो वषट्कारो हविष्यभुक् ॥ ऋङ्मूर्तिर्यजुषामूर्तिर्वासुदेवोस्तु मे गतिः ॥ ३१ ॥ क्षेत्रज्ञः परमः सूक्ष्मो जगतां तारको हरिः ॥ ईश्वरो हृदयावासो वासुदेवोस्तु मे गतिः ॥ ३२ ॥ श्रवणः श्रवणोपायः पुण्यश्लोकश्शुचिश्रवाः ॥ वरदो वासु देवो गिर्वासुदेवोस्तु मे गतिः ॥ ३३ ॥ पुरुषः पुण्डरीकान्नः पुराणो भुवनेश्वरः ॥ आदित्यान्तर्गतो वह्निर्वासुदेवोस्तु मे गतिः ॥ ३४ ॥ कंसकालियहन्ता च सुबलो बलमर्दनः ॥ शिशुपालनिहन्ता गिर्वासुदेवोस्तु मे गतिः ॥ ३५ ॥ कालनेमिनिहन्ता

हमारी गतिहोवें ॥ ३१ ॥ शरीरके जाननेवाले, बहुत सूक्ष्म, संसारके तारनेवाले व हरनेवाले, सबके मालिक, सबके हृदयमें बसनेवाले, वासुदेव हमारी गति होवें ॥ ३२ ॥ सुननेलायक और सुनने के कारण, पवित्र यशवाले व पवित्र कानोंवाले, वरके देनेवाले, जीवरूप, वासुदेव हमारी गति होवें ॥ ३३ ॥ शरीरोंमें रहनेवाले, सफेद कमल से नेत्रोंवाले, सबसे पुराने, चौदहों सुवर्णों के मालिक, सूर्यके भीतर रहनेवाले, अग्निरूपसे देवताओंके यज्ञमें बुलाये जानेवाले, वासुदेव हमारी गति होवें ॥ ३४ ॥ कंस व कालियनागके, मारनेवाले, अच्छे बलवाले, अग्निरूप, वासुदेव हमारी गति होवें ॥ ३५ ॥ कालनेमि

के नाश करनेवाले, व्यापकरूपवाले, समयपर यमराजके भी नाश करनेवाले, सैकड़ों दैत्योंके शरीरोंके नाश करनेवाले वासुदेव हमारी गतिहोवें ॥ ३६ ॥ कंकासुर और मधुकैटभके नाश करनेवाले, शङ्ख, चक्र और गदा जिनके हाथोंमें है ऐसे वासुदेव हमारी गतिहोवें ॥ ३७ ॥ सफेद रङ्गवाले, जलके सोनेवाले, सबमें रहनेवाले, पापोंका नाश करनेवाला है नाम जिनका, सबसे अधिक ऐश्वर्यवाले और अपने वचनकी सच्चीपालनाके करनेवाले, वासुदेव हमारी गतिहोवें ॥ ३८ ॥ इन्द्रियोंके स्वामी, इन्द्रके पालनेवाले, इन्द्रके छोटेभाई, गरुड़के सवार, हजारों नामोंवाले, धर्मके जाननेवाले, वासुदेव हमारी गतिहोवें ॥ ३९ ॥ शङ्खवाले, नन्दकनामकी तलवारके बाधनेवाले, चक्रवाले, शार्ङ्गधनुषवाले, गदाके धरनेवाले, धीरजवाले, अर्ध्वादिहवाले, बुद्धिवाले, वासुदेव हमारी गतिहोवें ॥ ४० ॥ सबसे भारी जगत्के खींचनेवाले

गिनर्यःकालेनियतान्तकः ॥ शतासुरशरीरघ्नो वासुदेवोस्तुमेगतिः ॥ ३६ ॥ कंकासुरनिहन्ताच मधुकैटभनाशनः ॥
शङ्खचक्रगदापाणिर्वासुदेवोस्तुमेगतिः ॥ ३७ ॥ शुक्रःसलिलशायीच विष्णुःपापक्षयाक्षयः ॥ इन्द्रोवचनसत्पालो वा
सुदेवोस्तुमेगतिः ॥ ३८ ॥ हृषीकेशश्चेन्द्रपाल उपेन्द्रोगरुडासनः ॥ सहस्रनामाधर्मज्ञो वासुदेवोस्तुमेगतिः ॥ ३९ ॥
शङ्खीचनन्दकीचक्रीशार्ङ्गधन्वागदाधरः ॥ धीरोवपुष्मान्मेधावी वासुदेवोस्तुमेगतिः ॥ ४० ॥ बृहत्सङ्कर्षणश्शम्भुःस्व
यंभूर्भूतभावनः ॥ निपुणोत्तमणश्शुद्धो वासुदेवोस्तुमेगतिः ॥ ४१ ॥ त्रैकालिकस्त्रिकालज्ञस्त्रयीकर्तात्रिलोचनः ॥ त्रि
सामादेवकीसूनुर्वासुदेवोस्तुमेगतिः ॥ ४२ ॥ अव्यक्तात्मा महात्माच अन्तरात्मा जनार्दनः ॥ प्राणश्चेन्द्रियभूतात्मा वासु
देवोस्तुमेगतिः ॥ ४३ ॥ परमात्मा परब्रह्म परमेशः परागतिः ॥ परमेष्ठी परंज्योतिर्वासुदेवोस्तुमेगतिः ॥ ४४ ॥ विश्वात्मा

कल्याणरूप, आपही से प्रकट होनेवाले, सब प्राणियों के पैदा करनेवाले, जगत् के बनाने में प्रवीण, उत्तम लक्षणोंवाले, निर्मल, वासुदेव हमारी गतिहोवें ॥ ४१ ॥
तीनों कालों में रहनेवाले, तीनों कालोंके जाननेवाले, तीनों वेदोंके रचनेवाले, तीनों नेत्रवाले, तीनों कालोंमें शान्तरूपवाले, देवकीके पुत्र वासुदेव हमारी गतिहोवें ॥
४२ ॥ अप्रकटरूपवाले, महात्मा, सबके अन्तर्यामी, भक्तोंके मनोरथों के पूरे करनेवाले, प्राणरूप, इन्द्रिय और पृथिवीआदि भूतों के आत्मा, वासुदेव हमारी गति
होवें ॥ ४३ ॥ परमात्मा, परब्रह्म, मालिकोंके मालिक, परमगति, सबसे ऊंचाईठकवाले, परमज्योतिःस्वरूप, वासुदेव हमारी गति होवें ॥ ४४ ॥ सब जगत् के आत्मा,

जगत् के बनानेवाले, जगत् के स्वामी, आत्मज्ञानी, आकाश और पृथिवी के रचनेवाले वासुदेव हमारी गति होवें ॥ ४५ ॥ हजारों शिरोवाले, सब प्रकारके ऐश्वर्यों वाले, हजारों नेत्रोंवाले व हजारों पाँवोंवाले और हजारों करोड़ों के धारण करनेवाले, वासुदेव हमारी गतिहोवें ॥ ४६ ॥ इस प्रकार उत्तम वाणीवाले पूजन किये गये वागीश्वर परमेश्वर जनार्दन विष्णुभगवान् मुझ भक्तपर प्रसन्नहोवें ॥ ४७ ॥ जन्मसे लेकर आजतक जो कुछ मैंने पुण्यको कमायाहो हे पुरुषोत्तम! वह सब मेरा फल अटल होजावे ॥ ४८ ॥ इस स्तोत्रको हमेशा पाठ करनेवाले मनुष्य से परमेश्वर पूजित होजाते हैं और उसके पापों का नाश करदेते हैं व उसके फलको

विश्वकर्ताच विश्वस्यपतिरात्मवान् ॥ द्यावापृथिव्योःकर्ताच वासुदेवोस्तुमेगतिः ॥ ४५ ॥ सहस्रशीर्षभगवान्सह
स्राजस्सहस्रपात् ॥ सहस्रकोटिधारीवावासुदेवोस्तुमेगतिः ॥ ४६ ॥ इतिवागीश्वरोवाग्मी पूजितःपरमेश्वरः ॥
भक्तस्यभगवान्विष्णुः प्रियतांमेजनार्दनः ॥ ४७ ॥ जन्मप्रभृतियत्किञ्चिन्मयासुकृतमजितम् ॥ तत्समग्रंफलंचास्तु
शाश्वतंपुरुषोत्तम ॥ ४८ ॥ इदमभ्यस्यतो नित्यं पूजितःस्यात्सकेशवः ॥ विनाशयतिपापानिप्रकाशयति तत्फलम् ॥
४९ ॥ एषनिष्कण्टकःपन्था यत्रसम्पूज्यतेहरिः ॥ कुपथंतंविजानीयाद्यत्रनाराध्यतेहरिः ॥ ५० ॥ वासुदेवपरावेदा वा
सुदेवपराक्रिया ॥ वासुदेवात्मकाविप्रा वासुदेवपराश्रयः ॥ ५१ ॥ सर्वदेवावासुदेवंयजन्ते सर्वदेवावासुदेवात्प्रसूताः ॥
सर्वेषांवासुदेवोपिदेवो नान्यत्किञ्चिद्वासुदेवातिरिक्तम् ॥ ५२ ॥ नान्यःपुण्यतरादेवो नास्तिविष्णुपरंतपः ॥ नास्ति
विष्णुपरंज्ञानं सर्वविष्णुमयंजगत् ॥ ५३ ॥ येषठन्तिनराभक्त्या विष्णुनामाङ्कितस्तवम् ॥ तेयान्तिवैष्णवंलोकं
देते ॥ ५४ ॥ यही बेकांटे की रास्ता है जिसमें हरिभगवान् पूजेजावें व उसको कुमार्ग समझे जिसमें हरिभगवान् नहीं पूजेजाते हैं ॥ ५० ॥ वेद वासुदेवही को
कहते हैं, कर्म वासुदेवहीके वास्ते हैं, ब्राह्मण वासुदेवही के रूप हैं, सब से बड़े आश्रय वासुदेवही हैं ॥ ५१ ॥ सब देवता वासुदेवहीको पूजते हैं सब देवता वासुदेव
हीसे पैदाहुये हैं सबके देवता वासुदेवही हैं वासुदेवको छोड़कर और कोई चीजही नहीं है ॥ ५२ ॥ और कोई ऐसा पवित्र देवताही नहीं है विष्णु से गरे कोई तपस्या
नहीं है व विष्णुसे परे कुछ ज्ञान नहीं है और सब जगत् विष्णुका रूप है ॥ ५३ ॥ विष्णुके नामोंसे चिह्नित इस स्तोत्रको जो मनुष्य भक्तिसे पढ़तेहैं वे सनातन परब्रह्म

रूप विष्णुके लोकको जातेहैं ॥ ५४ ॥ मार्कण्डेयजी बोले कि महात्मा ब्रह्माजी के कियेहुये इस स्तोत्रको सुनकर योगनिद्रासे सोतेहुये लक्ष्मीजी से जगभेगये वे कृष्ण देव ॥ ५५ ॥ डरभूते, अनेक रूपवाले सब देवताओं को देखकर बोले कि तुम सबको क्या भय पैदा हुआ है जो हमारे देखने के वास्ते यहां आयेहो ॥ ५६ ॥ तब हे भारत ! विष्णुजी से ब्रह्माजी वचन बोले कि हे जगन्नाथ ! आपके विना देवताओंको काटे ऐसे दैत्योंसे यहां रक्षा करनेवाला और कौनहै ॥ ५७ ॥ दानवों ने पृथ्वीको लपेट लिया है और स्वर्गको भी नाशकरदियाहै धर्म और काम आदिकों के देनेवाले यज्ञों व वेदों को नाश करदिया है ॥ ५८ ॥ दानवों के भारसे दर्बहुई

परं ब्रह्मसनातनम् ॥ ५४ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ श्रुत्वा स्तोत्रमिदं देवो ब्रह्मणः समहात्मनः ॥ श्रिया प्रबोधितः कृष्णं दश
आनोयोगनिद्रया ॥ ५५ ॥ दृष्ट्वा ब्रवीत्सुरान्सर्षान्नाना रूपान् भयानकान् ॥ किमस्ति तव समुत्पन्नमादिदृक्षुरिहागताः ॥
५६ ॥ उवाच वचनं ब्रह्मा केशवं प्रतिभारत ॥ त्वां विना त्रजगन्नाथ कक्षाता देवकण्ठकैः ॥ ५७ ॥ दानवैर्वेष्टिता धात्री स्व
गैश्चैव विनाशितः ॥ धर्मकामादिका यज्ञा वेदा विष्ठावितास्तथा ॥ ५८ ॥ दनुभारभराक्रान्ता रसातलतलंगता ॥ ज
टामुरश्च जालिदैत्यो मय सुतस्तथा ॥ ५९ ॥ दशकोत्खस्तुदैत्यानां समग्रवलशालिनाम् ॥ शिवप्रसादयुक्तानां स्व
र्गविप्लवकारिणाम् ॥ ६० ॥ तस्मात्प्रवर्तितं चक्रमुद्धरस्व बभुन्धराम् ॥ श्रुत्वा वाक्यमिदं देवो भयार्तप्राणपीडितम् ॥
६१ ॥ उवाच वचनं देवा भयन्त्यजतदैत्यजम् ॥ अचिरैषैव कालेन हनिष्यामि महासुरान् ॥ ६२ ॥ वाराहरूपमास्थाय
प्रेषितं कल्पगाजले ॥ दंष्ट्राग्रेण धृता धात्री दानवानां जयःकृतः ॥ ६३ ॥ पुनः प्रवर्तिता स्मृष्टिर्यथा पूर्वतथैव च ॥ ब्रह्माद्यामु

पृथ्वी पातालको चलीगई है जटामुर और मयदानव का लड़का जालिदैत्य ॥ ५९ ॥ व स्वर्गके तोड़नेवाले, महादेवजीके प्रसादसे युक्त सबतरहकी ताकतवाले दशकरोड़ दैत्योंका ॥ ६० ॥ चक्र इस समय में चल रहा है इससे आप पृथिवीका उच्चार करें विष्णुदेव इस वचन को सुनकर और भयसे विकल व प्राणों से पी-
डित ब्रह्माजी को देखकर ॥ ६१ ॥ वचनबोले कि हे देवताओं ! दैत्यों से पैदाहुये भयको तुम सब लोग छोड़देवो क्योंकि थोड़ेही कालमें हम दैत्योंको मारेगे ॥ ६२ ॥
यह कहकर सुवर के रूपको धारणकर नर्मदा के जलमें पैटे अपनी बरिं पर पृथ्वीको धरा व दानवों का नाश करदिया ॥ ६३ ॥ फिर भी पहलेकी तरह स्मृष्टि प्रवृत्त हुई

व आनन्दित हुये सब ब्रह्माआदि देवता स्वर्गको लौटआये ॥ ६४ ॥ हे राजर्ष ! यह तुमसे वाराहक्षेत्र जो नर्मदाके तटमें है उसको कहा इसके सुनने व कहनेसे अर्ध-
मेघके फलको पाताहै ॥ ६५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनुवर्णनोनामाष्टषष्ठितमोऽध्यायः ॥ ६८ ॥

फिर मार्कण्डेयजी बोले कि तदनन्तर सब देवताओं का रूप देवपथनाम का शुभतीर्थ है उसमें विधिसे स्नान करनेवाला सब यज्ञों के फलको पाताहै ॥ १ ॥
महीनारमें जो कुशोंकी पूँछों से सोमयज्ञको करता है वह नर्मदा के जलसे पवित्र हुयेकी सोलहवीं कलाको नहीं पाताहै ॥ २ ॥ देवता और दैत्योंसे नमस्कार किया

दितादेवाः प्रतिजग्मुस्त्रिविष्टपम् ॥ ६४ ॥ एतत्तेकाथितराजन् वाराहं कल्पगातटे ॥ श्रवणात्कीर्तनादस्य हयमेधफलं
लभेत् ॥ ६५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डे वाराहमहिमानुवर्णनोनामाष्टषष्ठितमोऽध्यायः ॥ ६८ ॥ *

मार्कण्डेय उवाच ॥ ततो देवपथं तीर्थं सर्वदेवमयं शुभम् ॥ तत्र स्नातश्च विधिवत्सर्वयज्ञफलं लभेत् ॥ १ ॥ मासेमासेकु
शात्रेण सोमयागं करोति यः ॥ सरेवाजलपूतस्य कलानाहतिषोडशीम् ॥ २ ॥ लिङ्गं देवपथं नाम सुरासुरनमस्कृतम् ॥
श्रद्धया तद्दर्शनं पितृणां परमागतिः ॥ ३ ॥ चैत्रे मासे च तुर्दश्यां पक्षयोरुभयोरपि ॥ स्नानार्थं सर्वतीर्थानि जग्मुः कर्तुं
असत्क्रियाम् ॥ ४ ॥ यद्देवलोके देवानामपि सतञ्च नृपध्वज ॥ सहस्राणि भुनीन्द्राणां तस्मिञ्छिवमुपासते ॥ ५ ॥

चान्द्रायणपराः केचिद्ब्रह्मकूर्चपरास्तथा ॥ कन्दमूलफलाहारा जलाहारा जलप्रियाः ॥ ६ ॥ अग्निहोत्रपरानित्यं तथाहु
तहुताशनाः ॥ उपासते देवपथं संसिद्धिपरमाद्भुताः ॥ ७ ॥ अथान्यत्संप्रवक्ष्यामि तीर्थपापप्रणाशनम् ॥ सहस्रयज्ञं परमं

गया देवपथनामका लिङ्गहै अर्द्धासे उसके दर्शन करने से पितरों की परम गति होती है ॥ ३ ॥ चैत्रके महीने के दोनों पाखोंकी चौदसको उसमें स्नान व उसके
मत्सर करने को सबतीर्थ आतेहैं ॥ ४ ॥ हे नृपध्वज ! जो लिंग देवलोक में देवताओंको भी प्याराहै ऐसे उस शिवलिंगकी हजारों सुनीन्द्र उस स्थानमें उपासना
किया करते हैं ॥ ५ ॥ कोई चान्द्रायण के करनेवाले हैं, कोई ब्रह्मकूर्च के पीनेवाले हैं, कोई कन्द, मूल और फलोंके खानेवाले हैं, कोई जलाहार के करनेवाले हैं,
कोई जलही जिनका प्याराहै ऐसे हैं ॥ ६ ॥ और कोई नित्य अग्निहोत्र के करनेवाले होम कियाहै अग्निमें जिन्होंने ऐसे हे ये सबलोग देवपथ लिंगकी उपासना

करते परमसिद्धि को प्राप्तहुये हैं ॥ ७ ॥ अब पापोंके नाश करनेवाले और तीर्थको कहते हैं वह सब कामफलोंका देनेवाला महस्रयज्ञ नामका परमतीर्थ है ॥ ८ ॥ उसमें अगहन के महीने में एकादशी को जनार्दनजी का पूजनकर मनुष्य अपने कियेहुये हजारयज्ञों के फलको पाताहै ॥ ९ ॥ यमलोक को नहीं देखता है और पशुआदि योनियों को नहीं पाताहै इस तीर्थके प्रभावसे मनुष्य पापराहित होजाताहै ॥ १० ॥ हे राजन् ! यह तुमसे पुण्यबाला अत्युत्तम आख्यान कहागयाहै इस के सुनने व कहनेसे विष्णुलोक में पूजाजाता है ॥ ११ ॥ तदनन्तर सब तीर्थ जिसमें है ऐसे अच्छे शुक्लतीर्थ को जावे जिसमें स्नानमात्र का करनेवाला मनुष्य दश

सर्वकामफलप्रदम् ॥ ८ ॥ एकादश्यामार्गशीर्षे पूजयित्वाजनार्दनम् ॥ सहस्रयज्ञस्येष्टस्य फलंप्राप्नोतिमानवः ॥ ९ ॥ नपश्येद्यमलोकञ्च तिर्यग्योनिनगच्छति ॥ तीर्थस्यास्यप्रभावेण नरोविगतकल्मषः ॥ १० ॥ एतत्तेकथितंराज न्पुण्याख्यानमनुत्तमम् ॥ श्रवणात्कीर्तनादस्य विष्णुलोकमहीयते ॥ ११ ॥ शुक्लतीर्थतोगच्छेत्सर्वतीर्थमञ्चुभम् ॥ यत्रस्नातोपिलभेत्तदशधेनुफलंनरः ॥ १२ ॥ शुक्लीकृतास्तेनदेवा ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥ सुपादकोटिस्तीर्थानां शुक्लतीर्थेव्यवस्थिता ॥ १३ ॥ अष्टहस्तप्रमाणञ्च शुक्लतीर्थयुधिष्ठिर ॥ तत्रकालाग्निरुद्रश्च श्रीकण्ठश्चतथापरः ॥ १४ ॥ तैस्तैस्तपोभिरुग्रैश्च तत्रसिद्धिपराङ्मताः ॥ शुक्लतीर्थप्रभावेणमोदन्तेदिविदेवताः ॥ १५ ॥ शक्रोपिचपुण्ड्रश्च देवदेवमु मापतिम् ॥ रेवातीयेनसंस्नाप्यबिल्वपत्रैःसमार्चयत् ॥ १६ ॥ पूर्णमास्यामभावस्यां सोमःसूर्यःप्रभावतीम् ॥ तन्नस्नातो

गोदानों के फलको पाताहै ॥ १२ ॥ व उसने ब्रह्मा, विष्णु और महादेवआदि देवताओं को सफेद अर्थात् निर्मल करदिया है व सवाकरोडतीर्थ शुक्लतीर्थ में रहा करते हैं ॥ १३ ॥ हे युधिष्ठिर ! शुक्लतीर्थ आठहाथ का प्रमाणवाला है वहां कालाग्निरुद्र और दूसरे श्रीकण्ठभी रहतेहैं ॥ १४ ॥ और वहां उन २ उग्रतपस्याओं से व शुक्लतीर्थ के प्रभावसे बड़ी सिद्धि को पायेहुये देवतालोग स्वर्गमें आनन्द भोगतेहैं ॥ १५ ॥ अगिले जमाने में इन्द्रभी देवताओं के देवता पार्वतीजी के पतिको नर्मदा के जलसे नहलाकर बेलपत्रों से पूजाथा ॥ १६ ॥ पूर्णमासी व अमावस को ग्रह, नक्षत्र और ध्रुवमण्डल के सहित सूर्य व चन्द्रमाने वहा शुक्लतीर्थ में स्नान

किया इसीसे ये सब प्रकाश करनेवाले हुये ॥ १७ ॥ और इसी शुक्लतीर्थ के प्रभावसे देवता प्रकाश करते हैं वहां देवता और सिद्धोंसे सेवित पुण्यवाला कश्यप जीका आश्रम है ॥ १८ ॥ हे भारत ! वहां दशहजार मुनिलोग आपही रहते हैं उनमें कोई कन्द, मूल और फलोंके आहार करनेवाले हैं तथा कोई जलाहारी है ॥ १९ ॥ कोई शाकाहारी, कोई निराहारी, कोई ब्रह्मकूर्च के पीनेवाले, कोई चान्द्रायणके करनेवाले और कोई महीनेभरतक उपास के करनेवाले हैं ॥ २० ॥ तैत्तिरीय करोड़ ऋषिलोग शुक्लेश्वर की उपासना किया करते हैं चन्द्रग्रहण व पूर्णमासी तिथिमें ॥ २१ ॥ वहां सब तीर्थ स्नान करनेको आते हैं यह शिवजी ने कहा है सूर्य-
ग्रहैः सार्द्धं नक्षत्रध्रुवमण्डलैः ॥ १७ ॥ तेन देवाश्च दीव्यन्ते शुक्लतीर्थप्रभावतः ॥ कश्यपस्याश्रमं पुण्यं सुरसिद्धानिषेवि-
तम् ॥ १८ ॥ मुनीनामयुतं तत्र स्वयं तिष्ठति भारत ॥ कन्दमूलफलाहारा जलाहारास्तथापरे ॥ १९ ॥ शाकाहारानिरा-
हारा ब्रह्मकूर्चास्तथापरे ॥ चान्द्रायणपराः केचिदन्ये मासोपवासिनः ॥ २० ॥ ऋषिकोट्यस्त्रयस्त्रिंशच्छुक्लेश्वरमुपासते ॥
राहुभ्रस्ते तथा चन्द्रे पूर्णमास्यां तिथौ तथा ॥ २१ ॥ आयान्ति सर्वतीर्थानि स्नानुमेतच्चिबोदितम् ॥ स्थानेऽनुरयत्फ-
लेऽस्याद्राहुसूर्यसमागमे ॥ २२ ॥ तत्फलं प्राप्नुयात्सर्वं शुक्लतीर्थेन संशयः ॥ हेमधेनुधरादीनि रूप्यदागजास्तथा ॥
२३ ॥ एतद्देवत्वमहाराज पुण्यसंख्यानविद्यते ॥ धनदेन कुबेरेण देवगन्धर्वदानैः ॥ २४ ॥ राहुसूर्यसमायोगे शुक्ल-
तीर्थमहेश्वरः ॥ चन्दनाशुरुकूर्पूरपुष्पमालाभिरर्चितः ॥ २५ ॥ वितानध्वजमुख्यैश्च दीपमालाप्रबोधनैः ॥ अस्य तीर्थप्रभा-
वेण यत्नराजो धनेश्वरः ॥ २६ ॥ भोगानानाविधास्तेन सम्प्राप्ता दिवि देवताः ॥ सर्वतीर्थभयं तीर्थं सर्वदेवमयञ्च यत् ॥ २७ ॥
ग्रहण में स्थानेश्वर में जो फल होता है ॥ २२ ॥ शुक्लतीर्थ में उसी सम्पूर्ण फलको पाता है इसमें संशय नहीं है सोना, गौवं, पृथ्वी, चांदी और हाथी ॥ २३ ॥ हे महा-
राज ! इन चीजोंको देकर पुण्यकी गिन्ती नहीं होसक्ती है व धन देनेवाले कुबेर, देवता, गन्धर्व और दानवोंने ॥ २४ ॥ सूर्यग्रहण बिंबे शुक्लतीर्थ में चन्दन, अगर, कपूर और फूलोंकी मालाओं से महादेवजीका पूजन किया ॥ २५ ॥ और चांदनी, ध्वजा व दियालियों के जलाने आदिसे भी पूजन किया तो इसी तीर्थ के प्रभाव से धनोके व यत्नोंके मालिक कुबेर होतेहुये ॥ २६ ॥ और उनको तरह २ के भोग मिलतेहुये इसीतरह और भी देवता स्वर्गमें रहे जिससे कि यह तीर्थ सबतीर्थ व सब

देवताओं का रूपही है ॥ २७ ॥ हजारवर्षों से भी शुक्लतीर्थ का वर्णन करनेको सब देवताओं से भी शक्य नहीं है ऐसा स्कन्दपुराण में कहा है ॥ २८ ॥ पापयोनि को जो प्राप्त है अथवा पशुआदि की योनिमें जो पडा है ब्राह्मण का मारनेवाला, दारुका पीनेवाला और महादेवजी के निर्माल्य का खानेवाला ॥ २९ ॥ इस तीर्थ के प्रभाव से उस पापसे छूटजाता है मनुष्य वहा स्नानकर और महादेवजी का पूजनकर ॥ ३० ॥ हे नरसत्तम ! सब देवता व दैत्योंके गणोंसे पूजाजाता है हे राजन् ! यह बड़े पापों का नाश करनेवाला तीर्थ तुमसे कहा गया ॥ ३१ ॥ अगिले जमानेमें जिस तीर्थविषे ब्रह्माजीने यज्ञमें यज्ञेश्वरका पूजन किया है देवताओं के देवता

आपिवर्षसहस्रेण शुक्लतीर्थस्यवर्णनम् ॥ नशक्यतेसुरैःकर्तुं पुराणैस्कन्दकीर्तिते ॥ २८ ॥ पापयोनिगतोयश्च ति
र्यग्योनिगतश्चयः ॥ ब्रह्महाचसुरापश्च शिवनिर्माल्यभक्तकः ॥ २९ ॥ मुच्यतेतेनपापेन तीर्थस्यास्यप्रभावतः ॥ तत्र
स्नानंनरःकृत्वा पूजयित्वावृषध्वजम् ॥ ३० ॥ सुरासुरगणैःसर्वैःपूज्यतेनरसत्तम ॥ एतत्तेकथितंराजन् महापातकनाश
नम् ॥ ३१ ॥ पितामहेनयत्रेष्टो यज्ञेयज्ञेश्वरःपुरा ॥ स्तोत्रंक्रत्वायथान्यायं देवदेवस्यशूलिनः ॥ ३२ ॥ पूजयित्वातु
शुक्लेशं ब्रह्मास्तोत्रमुदाहरत् ॥ नमःशिवायशान्ताय ज्ञानविज्ञानरूपिणे ॥ ३३ ॥ सूक्ष्मायसूक्ष्मरूपाय सर्वसूक्ष्मायहेतवे ॥
सूक्ष्माणामपिसूक्ष्माय नमःसूक्ष्मतमायच ॥ ३४ ॥ दिव्यायदिव्यरूपाय दिव्यदेहायसेतवे ॥ दिव्यानामपिदिव्याय
नमोदिव्यतमायच ॥ ३५ ॥ व्योमप्रभायभावाय अधोरायनमोनमः ॥ व्योमप्रमाणधामाय वामेशायनमोनमः ॥ ३६ ॥

त्रिशूलधारी महादेवजी की यथार्थ स्तुतिकरे ॥ ३२ ॥ और शुक्लेशका पूजनकर ब्रह्माजी स्तोत्रको पढ़तेहुये कि ज्ञान और विज्ञानरूपवाले शान्तरूप शिवजीके लिये नमस्कार है ॥ ३३ ॥ सूक्ष्म और सूक्ष्मरूपवाले, सब सूक्ष्मजीको के एकहीकारण, सूक्ष्मोंसे भी सूक्ष्म, बहुतही सूक्ष्म, शिवजी के लिये नमस्कार है ॥ ३४ ॥ दिव्य और दिव्यरूपवाले तथा दिव्य देहवाले, मर्यादाके सेतु, दिव्योंसे भी दिव्य, बड़ेही दिव्यके लिये नमस्कार है ॥ ३५ ॥ आकाश के तुल्य प्रकाशवाले सब जगत जिन्हेंसि होता है ऐसे अधोरूपवालेके लिये नमस्कार है आकाशके तुल्य प्रमाणवाला है स्वरूप जिनका ऐसे पर्वतीके स्वामीजीके लिये नमस्कार है नमस्कार है ॥ ३६ ॥

सबसे श्रेष्ठ, सबसे बड़े मालिक, परमार्थवाली बातों के कारण, सबसे बड़े, अखण्डमुक्त, बड़े से बड़े के लिये नमस्कार है ॥ ३७ ॥ एक जिह्वावाले, दो जिह्वावाले, बहुत जिह्वावाले आप के लिये नमस्कार है वैसे ही अनपिन्ती जिह्वावाले व तीन नेत्रवाले के लिये नमस्कार है ॥ ३८ ॥ पूजने लायक, पूजने लायकों से भी पूजने लायक और सब पूजने लायकों के कारण, नाशरहित, नाशरहित रूपवाले और जो कभी नष्ट नहीं होते उनके भी कारण के लिये नमस्कार है ॥ ३९ ॥ नित्यों में भी नित्य ऐसे बड़े ही नित्यरूप शिवजी के लिये नमस्कार है सब तरह की ताकतवाले और शक्तिही जिनका रूप है, सब प्रकार की शक्तियों के मुख्य कारण ॥ ४० ॥ शक्ति-

परायपरमेशाय परमार्थिकहेतवे ॥ परायपरमुक्ताय नमः परतराय च ॥ ३७ ॥ एकजिह्वद्विजिह्वाय बहुजिह्वायते नमः ॥ तथैवासहस्रजिह्वाय त्रिषेत्राय नमो नमः ॥ ३८ ॥ पूज्याय पूज्यपूज्याय सर्वपूज्यैकहेतवे ॥ नित्याय नित्यरूपाय नित्यनित्यैकहेतवे ॥ ३९ ॥ नित्यानामपि नित्याय नमो नित्यतमाय च ॥ शक्ताय शक्तिरूपाय सर्वशक्त्यैकहेतवे ॥ ४० ॥ शक्तानामपि शक्ताय नमः शक्ततमाय च ॥ शुद्धाय सर्वशुद्धाय सर्वशुद्धैकहेतवे ॥ ४१ ॥ कालाय कालरूपाय सर्वकालैकहेतवे ॥ कालानामपि कालाय नमः कालतमाय च ॥ ४२ ॥ सर्वमन्त्रशरीराय सर्वमन्त्रैकहेतवे ॥ मन्त्राणामपि मन्त्राय नमो मन्त्रतमाय च ॥ ४३ ॥ अप्रमेयमहेशाय ईशानाय नमो नमः ॥ योगाय योगरूपाय योगपूरुषते नमः ॥ ४४ ॥ एककण्ठद्विकण्ठाय बहुकण्ठाय नीलकण्ठाय ते नमः ॥ ४५ ॥ अनन्ता

वालों में भी शक्तिवाले ऐसे जो बड़े ही शक्तिवाले शिवजी हैं तिनके लिये नमस्कार है व शुद्धरूपवाले, सबसे शुद्ध, सबतरह की निर्मलता के मुख्य कारण के लिये नमस्कार है ॥ ४१ ॥ काल, कालरूपवाले, सबतरह के कालों के मुख्य कारण, कालों के भी काल ऐसे बड़े ही कालरूप आप के लिये नमस्कार है ॥ ४२ ॥ सब मन्त्र जिन का शरीर हैं, और सब मन्त्रों के एक ही कारण, मन्त्रों के भी मन्त्र ऐसे बड़े ही मन्त्ररूप शिवजी के लिये नमस्कार है ॥ ४३ ॥ नहीं जिनका प्रमाण है ऐसे बड़े मालिक महदेवजी के लिये बार २ नमस्कार है व हे योगपुरुष ! योग योगरूपवाले आप के लिये नमस्कार है ॥ ४४ ॥ एक कण्ठवाले, दो कण्ठवाले तथा बहुत कण्ठवाले

आपके लिये नमस्कार है अनेक कण्ठोंवाले, नीलकण्ठवाले आपके लिये नमस्कार है ॥ ४५ ॥ अन्त से रहित, बड़े ईश्वर, संसार के नाश करनेवाले तथा संसार के बनानेवाले आपके लिये नमस्कार है हे महादेव ! आपके लिये नमस्कार है ॥ ४६ ॥ हे महाशुद्ध ! आपके लिये नमस्कार है ॥ ४७ ॥ सबके आत्मा फिर भी आपके लिये बार २ नमस्कार है भस्मही जिनका चन्दन है ऐसे आपके लिये नमस्कार है खट्वाङ्गके धारण करनेवाले के लिये नमस्कार है ॥ ४८ ॥ आपके लिये आपकी बार २ नमस्कार है सवके जाननेवाले आपके लिये नमस्कार है सबलोग जिनसे मांगते हैं ऐसे आपके लिये आपके लिये नमस्कार है संसार के स्वामी शिवजी के लिये बार २ नमस्कार है सवके जाननेवाले आपके लिये नमस्कार है और हमेशा बने रहनेवाले के लिये बार २ नमस्कार है व कैलास में बार २ नमस्कार है ॥ ४९ ॥ व्यक्त (खुलासा) रूप भिनका नहीं है ऐसे आपके लिये नमस्कार है और हमेशा बने रहनेवाले के लिये बार २ नमस्कार है व कैलास में

यमहेशाय हर्त्रेकत्रैनमोस्तुते ॥ नमस्तेस्तुमहादेव नमस्तेस्तुसदाशिव ॥ ४६ ॥ नमस्तेस्तुमहाशुद्ध नमस्तुभ्यं नमो
नमः ॥ नमोभस्माङ्गरागाय नमःखट्वाङ्गधारिणे ॥ ४७ ॥ सर्वात्मनेनमस्तुभ्यं विश्वेशाय नमो नमः ॥ सर्वज्ञाय नमस्तु
भ्यं सनाथाय नमो नमः ॥ ४८ ॥ अव्यक्ताय नमस्तुभ्यं शाश्वताय नमो नमः ॥ कैलासवासिने तुभ्यं नमः पातालवासि
ने ॥ ४९ ॥ त्वया व्याप्तमिदं सर्वं लोकालोकद्वराचरम् ॥ अपि वर्षसहस्रेण कः स्तोतुं शक्तिमान् भवेत् ॥ ५० ॥ इति स्तवे
न दिव्येन यः स्तोति परमेश्वरम् ॥ विधूय सर्वपापानि रुद्रलोकैर्महायते ॥ ५१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणैरेवाखण्डे श
म्भुस्तुतिर्नामैकौनसस्तुतिर्नामोऽध्यायः ॥ ६९ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

युधिष्ठिर उवाच ॥ किमर्थं संस्तुतो देवो ब्रह्मणो तेन तत्र वै ॥ शुक्लतीर्थमिदं कस्मादास्ते यत्र महेश्वरः ॥ १ ॥ एतत्सर्वसमा
वास करनेवाले और पाताल में वास करनेवाले आपके लिये नमस्कार है ॥ ४६ ॥ आपही से यह सब चराचर लोकालोक व्याप्त हो रहा है ऐसे आपकी स्तुति करने को
हजार वर्षों से भी कौन समर्थ हो सक्त है ॥ ५० ॥ जो इस दिव्य स्तोत्र से परमेश्वर महादेवजीकी स्तुति करता है वह सब पापोंको नाश करके रुद्रलोकमें पूजा जाता है ॥ ५१ ॥
इति श्रीस्कन्दपुराणैरेवाखण्डे प्राकृतभाषास्तुतिर्नामैकौनसस्तुतिर्नामोऽध्यायः ॥ ६९ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥
युधिष्ठिर जी बोले कि वहां पर उन ब्रह्मजी ने महादेवजी की भलीभांति स्तुति किस वास्ते की और यह शुक्लतीर्थ किस कारण से हुआ जहां महादेव जी रहते

हैं ॥१॥ हे महामुने ! यह सब पूछनेवाले जो हमहैं तिनसे कहो तब मार्कण्डेयजी बोले कि हे राजन् ! स्वर्गकी देनवाली सबसे उत्तम दिव्य कथाको तुम सुनो ॥२॥ जिसको सुनकर तीर्थ में स्नान करने से मनुष्य सब पापों से छूटजाता है सब धर्म में तत्पर, धर्मात्मा, सब धर्मधारियों में श्रेष्ठ व सब राजाओं में श्रेष्ठ, चक्रवर्ती, ययाति नामके राजाहुये दूमरे इन्द्र ऐसे वे राजा बड़े २ यज्ञों से देवताओंका पूजन करते हुये ॥ ३ ॥ ४ ॥ जहां पुण्यवाली मधुमती नामकी नदी नर्मदा से मिली हुई है व जहां ऋत्विक् ब्राह्मणों के सहित राजाने यज्ञ प्रारम्भ किया ॥ ५ ॥ और जहां मध्येश्वरनाम का लिङ्ग साक्षात् महादेवही हैं वहां स्नानके करनेवाले स्वर्गको

ख्याहि पृच्छतोमिमहामुने ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ शृणुराजन्कथां दिव्यां स्वर्गाहं एयामनुत्तमाम् ॥ २ ॥ यां श्रुत्वासर्वपापेभ्यस्तीर्थस्नानेन मुच्यते ॥ ययातिर्नाम धर्मात्मा सत्यधर्मपरायणः ॥ ३ ॥ चक्रवर्ती नृपश्रेष्ठः सर्वधर्मभृतां वरः ॥ इयाजसमहायज्ञैश्शतक्रतुरिवापरः ॥ ४ ॥ नदीमधुमतीपुण्या रेवयायन्नसङ्गता ॥ यत्र यज्ञः समारब्ध ऋत्विग्भिर्ब्राह्मणैः सह ॥ ५ ॥ मध्येश्वरं यत्र लिङ्गं स्वयं देवो महेश्वरः ॥ तत्र स्नाता दिवं यान्ति ये मृतान् पुनर्भवाः ॥ ६ ॥ चक्रेण विष्णुना तत्र घातितौ मधुकैटभौ ॥ अर्चनात्तस्य देवस्य गोसहस्रफलं लभेत ॥ ७ ॥ तिलतोयप्रदानेन पिण्डदानेन भारत ॥ पितरस्तस्य तृप्यन्ति यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥ ८ ॥ तत्र यज्ञः समारब्धो हरिश्ङ्करवर्जितः ॥ जटामुरस्तत्र दैत्यश्छिद्रं दृष्ट्वा समागतः ॥ ९ ॥ ततो विध्वंसितो यज्ञो दानवैर्वलदपितैः ॥ यज्ञयूपायज्ञपात्रं दशदिक्षु निपातिताः ॥ १० ॥ भुक्तो हुतपुरोडाशः सोमपानञ्च तैः कृतम् ॥ प्रणष्टा देवताः सर्वा दानवानां भयेन च ॥ ११ ॥ अष्टोत्तरशतं देवा मृगरूपेण निर्गताः ॥ जाते हैं और जो वहां मरे हैं वे फिर जन्म नहीं लेते हैं ॥ ६ ॥ वहीं विष्णुजीने चक्रसे मधु और कैटभ को मारा है उन देवके पूजन करने से हजार गोदानोंके फलको पाता है ॥ ७ ॥ हे भारत ! तिलों के सहित जलदान व पिण्डदान से उसके पितर जब तक चौदहो इन्द्र रहते हैं तब तक तृप्त रहते हैं ॥ ८ ॥ वहां विष्णु और महादेवके बिना यज्ञ प्रारम्भ किया गया तब वहां जटामुर नामका दैत्य अपना मौका देखकर आता हुआ ॥ ९ ॥ तदनन्तर अपने बलसे अहङ्कार को प्राप्त होरहे दैत्योंने यज्ञको विध्वंस कर दिया यज्ञके स्वप्ने व यज्ञके पात्र दशो दिशाओंमें फेक दिये गये ॥ १० ॥ उन दैत्योंने होम क्रिये गये पुरोडाशको भोजन कर लिया और सोमको भी

पीगये दानवोंके भयसे सब देवतालोग भागगये ॥ ५१ ॥ एकसौ आठ देवता मृगोंके रूपसे निकलगये कुबेर यज्ञके रूपसे अपनी पुरीको भागगये ॥ १२ ॥ भैसेपर सवारहुये धर्मराज, हाथी पर चढ़ेहुये इन्द्र और भेंद्रेपर सवार अग्नि चुपचाप निकलगये ॥ १३ ॥ और वहांपर आयेहुये वरुण भी मगरपर सवारहुये भागे और अपनी पुरी को चलेगये वायु मृगपर चढ़ेहुये भागे ॥ १५ ॥ ईशान लोकपाल भी महादेव के रूप से बैलपर चढ़ेहुये भागभये दानवों के लोकपालों के हथियारोंको खीन लिया ॥ १५ ॥ तब हे भारत ! राजाओंमें श्रेष्ठ राजा ने कहा कि अकेले हम सवारी पर चढ़कर स्त्रीके सहित कैसे भागें ऐसे विचारकर धनुष को लिया ॥ १६ ॥

ताः ॥ धनदोयत्तरूपेण प्रणष्टःस्वपुरीङ्गतः ॥ १२ ॥ महिषारूढोधर्ममराजो गजारूढश्शतक्रतुः ॥ मेपारूढोहव्यवा
हो निर्गताव्रतमास्थिताः ॥ १३ ॥ वरुणश्चसमायातः प्रणष्टःस्वपुरीङ्गतः ॥ मकरासनमारूढोवायुश्च मृगमाश्रितः ॥
१४ ॥ ईशानईशरूपेण वृषारूढःपलायितः ॥ अस्त्राणिलोकपालानां हतानिदनुसम्भवैः ॥ १५ ॥ एकाकीयानमा
रुह्यकथंयामिस्त्रियामह ॥ चिन्तयित्वानृपश्रेष्ठश्चास्त्रजग्राहभारत ॥ १६ ॥ तिष्ठतिष्ठेतिचोक्तवावै दैत्यसिंहदुरासदम् ॥
नक्षत्रकुलसञ्जाता जातुदृष्ट्वापलायिताः ॥ १७ ॥ दशद्वादशवर्षाणि विमुखास्तवपूर्वजाः ॥ नचात्राह्वानितोरुद्रो रुद्र
भागोनकल्पितः ॥ १८ ॥ यज्ञोस्मिन्यज्ञपुरुषो नाहूतोभगवान्हरिः ॥ तेनदोषेणमेयज्ञो दानवैश्चविनाशितः ॥ १९ ॥ एव
मुक्त्वानृपश्रेष्ठो रुद्रंध्यात्वामहेऽवरम् ॥ रौद्ररूपंसमास्थायज्याघोषंघोषरूपिणम् ॥ २० ॥ जग्राहकोपान्निस्त्रिंशं निज

और दैत्यों में सिंह ऐसे बड़े जबरदस्त जटासुर से खड़ा हो २ ऐसे कहकर बोले क्षत्रियों के कुलमें उत्पन्नहुये शरलोग कभी शत्रुओंको देखकर नहीं भागे ॥ १७ ॥
बलिक तेरे पुरिखालोग दश व बारह वर्षोंतक हमलों से विमुख होकर भागेरहे और हमारे इस यज्ञ में महादेव का आवाहन नहीं कियागया और न रुद्रका भाग रक्खागया ॥ १८ ॥ और भगवान् यज्ञपुरुष विष्णु भी इस यज्ञ में नहीं बुलायेगये इसी दोष से यह हमारा यज्ञ दानवों से विध्वंसित करादियागया ॥ १९ ॥
राजाओं में श्रेष्ठ राजा ने ऐसे कहकर और रुद्ररूप महादेवजीका ध्यानकर कराररूप धारणकर धनुष के गेदा की आवाज करतेहुये ॥ २० ॥ और बड़े क्रोधसे

तलवारको लिया उसीसे दैत्योंको मारा तदनन्तर ब्रह्मा आदि सबदेवता बुलायेगये ॥ २१ ॥ हे भारत ! तब वे सब देवता लोग राजासे बोले कि हे राजर्षे ! इससंसारमें आपके बराबर न कोई हुआ है व न होगा ॥ २२ ॥ तब देवताओंके वचनको सुनकर राजा ययाति वचन बोले कि महोदेव और विष्णुकी दयामे फिरभी हमारा यज्ञ प्रवृत्त होगया ॥ २३ ॥ क्षत्रिय को संग्रामसे भागना उचित नहीं है ऐसे कहकर फिर उसी प्रयोजन से त्रिशूल व पिनाक के धरनेवाले महोदेवजी की स्तुति की क्रिया ॥ २४ ॥ तब वहां कालानल के तुल्य प्रभावाला पाताल से लिङ्ग प्रकट हुआ हे भारत ! उस लिङ्ग की दीप्ति से सब जगत् सफेद करदियागया ॥ २५ ॥ फिर महोदेवजी उन

घानचदानवान् ॥ आहूताश्च पुनर्देवाः सर्वे ब्रह्मपुरोगमाः ॥ २१ ॥ ऊचुस्ते वचनं देवा राजानं प्रति भारत ॥ त्वया समो वराजर्षे न भूतो न भविष्यति ॥ २२ ॥ देवानां वचनं श्रुत्वा ययातिर्वाक्यमब्रवीत् ॥ पुनः प्रवर्तितो यज्ञो हरविष्णुप्रसादतः ॥ २३ ॥ यु कं पलायनं चात्र क्षत्रियस्य न विद्यते ॥ स्तुतस्तु ते नकार्येण शूलपाणिः पिनाकधृक् ॥ २४ ॥ पातालादुत्थितं तत्र लिङ्गं कालानलप्रभम् ॥ शुक्लीकृतं जगत् सर्वं प्रभया तस्य भारत ॥ २५ ॥ वरं वृणीष्व भद्रन्ते तमुवाच वृषध्वजः ॥ ययातिरुवाच ॥ यदितुष्टोसि मे देव वरं दातुं ममैच्छसि ॥ २६ ॥ इदं स्थानं न भोक्तव्यमु मया सह शङ्कर ॥ यज्ञदानादिकं सर्वमक्षयञ्चात्र सर्वदा ॥ २७ ॥ तपोहीनानराये च दानहीनास्मकिलिषाः ॥ ते सर्वे त्वत्पुर्यान्तु शुक्लतीर्थप्रभावतः ॥ २८ ॥ तमुवाच महादेवः सत्यमेतत्तवोदितम् ॥ ययंकामयेते कामं तं तं प्राप्नोति मानवः ॥ २९ ॥ अस्य तीर्थस्य माहात्म्यां लिङ्गस्यास्य समचं नात् ॥ नरकं नैव पश्यन्ति जन्मजन्मनि भारत ॥ ३० ॥ एतत्ते कथितं राजन्यथास्कन्दशिवोदितम् ॥ तत्र ये निहता दै

राजासे बोले कि तुम्हारा कल्याण हो तुम वर को मांगो तब राजा ययाति बोले कि हे देव ! जो आप मुझ से प्रसन्न हो और मुझे वर देने की इच्छा करते हो ॥ २६ ॥ तो हे शङ्कर ! पार्वती के सहित आप इस स्थानको कभी न छोड़ें और यहां किया हुआ यज्ञ व दान आदि सब कर्म हमेशा अक्षय होवे ॥ २७ ॥ और तपस्या व दान से रहित पापी भी जो मनुष्य होवें वे सब इस शुक्लतीर्थ के प्रभाव से आप के पुर को जावे ॥ २८ ॥ तब उन राजा से महोदेवजी ने कहा कि यह सब तुम्हारा कहना सत्य होगा यहां मनुष्य जिस कामनाको करेगा उस २ को पावेगा ॥ २९ ॥ इस तीर्थके माहात्म्यसे व इस लिङ्गके पूजन करनेसे हे भारत ! जन्म २ में मनुष्य

नरक को नहीं देखते हैं ॥ ३० ॥ हे राजन् ! यह तुमसे कहा गया जैसा कुछ स्कन्द व महादेवजी का कहा हुआ है वहाँ जो दैत्य मारे गये वे भी शिवजी के स्थान को प्राप्त हुये ॥ ३१ ॥ अपनी २ सवारीपर सवार देवता लोग स्वर्ग को चले गये व वड़े आनन्द से युक्त स्तुति किये जाते राजाओं में श्रेष्ठ ॥ ३२ ॥ राजर्षि ययातिजी राज्य को करके स्वर्ग को चले गये इस इतिहासको सुनने व कहनेसे शिवलोक में पूजित होता है ॥ ३३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे रेवा खण्डे प्राकृतभाषाऽनुवादेशु कृतार्थमहिमाऽ ॥

तुवर्णेनोनामसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७० ॥

त्याः प्राप्तास्तोपिशिवालयम् ॥ ३१ ॥ स्वस्वयानं समारूढाय युद्धे वास्त्रिविष्टपम् ॥ सुदापरमया युक्तः स्तूयमानो नृपोत्तमः ॥ ३२ ॥ ययातिर्नाम राजर्षी राज्यं कृत्वा दिवङ्गतः ॥ श्रवणात्कीर्तनादस्य शिवलोकं मर्हयते ॥ ३३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे रेवास्रण्डे शुक्लतीर्थमहिमानुवर्णनोनाम सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७० ॥ *

नन्दपुराणे रेवास्रण्डे शुक्लतीर्थमहिमानुवर्णनोनाम सप्ततितमोऽध्यायः ॥ १ ॥ दर्शना मार्कण्डेय उवाच ॥ दीप्तकेश्वरदेवेशं सिद्धलिङ्गं प्रकीर्तितम् ॥ नातः परतरं किञ्चिन्निषुलोकेषु विश्रुतम् ॥ २ ॥ अर्चयेद्दिनमेकन्तु यो मुहूर्तं न्तुमानं दीप्तदेवस्य स्पर्शनादर्चनात्तथा ॥ अनेकभावा विकंधोरं क्षणमात्रेण नश्यति ॥ ३ ॥ अर्चयेद्दिनमेकन्तु यो मुहूर्तं न्तुमानं वः ॥ नतस्य पुनरावृत्तिर्धोरं संसारसागरे ॥ ४ ॥ मोक्षदानां चामुण्डा विद्धि गौरं सरस्वतीम् ॥ स्तुते सहस्रनाम्ना वै विष्णुना ब्रह्मणा स्वयम् ॥ ५ ॥ स्तुतानि तानि लिङ्गानि रेवाया उत्तरे तटे ॥ अंकारश्चाधिदेवश्च बिल्वाग्रकमहेश्वरः ॥ ५ ॥

मार्कण्डेयजी बोले कि देवताओं का ईश्वर दीप्तकेश्वर नामवाला सिद्धलिङ्ग कहा गया है इससे दूसरा और कोई लिङ्ग तीनों लोकों में प्रसिद्ध नहीं है ॥ १ ॥ दीप्तकेश्वरदेव के दर्शन व स्पर्शन व पूजन से अनेक जन्मों का घोर पाप क्षणमात्र में नष्ट हो जाता है ॥ २ ॥ जो मनुष्य एक दिन व एक मुहूर्त भर पूजन करे तो उसकी इस घोर संसारसमुद्र में फिर आवृत्ति नहीं होती है ॥ ३ ॥ वहाँ विद्यमान मोक्षदा और चामुण्डा नामकी दोनों शक्तियों को गौरी और सरस्वती जानो उन दोनों की आपही विष्णुजी और ब्रह्माजी ने हजार नामों से स्तुति की है ॥ ४ ॥ और नर्मदा के उत्तरवाले तट में विद्यमान जो लिङ्ग है उनकी भी स्तुति की है

वे लिङ्ग ये है कि अङ्कारनाथ, बिल्वाग्रकमहेश्वर ॥ ५ ॥ शुक्लेश्वर, भृगु, क्षीपेश्वर और त्रिलोचन वैवस्वतमन्वन्तर के प्राप्त होने पर पहले कल्प के सत्ययुग में ॥ ६ ॥ पहिले त्रिणु, दूसरे ब्रह्मा, तीसरे इन्द्र, चौथे सूर्य ॥ ७ ॥ पाँचवें चन्द्रमा, छठे राहु, सातवें शनि, आठवें केतु ॥ ८ ॥ नवें अग्नि, दशवें दिशाओं का स्वामी, ग्यारहवें वैक्रम (वामनजीका), बारहवें वारुण (वरुणजी का) ॥ ९ ॥ तेरहवें वायु और चौदहवें कुबेर नामक थे और देवताओं के मालिक त्रिणु, ब्रह्मा व देवता और दैत्यों करके अनेक तरह के इन पदों से पार्वतीजी के पति महोदवजी रतुति किये गये हैं कि (स्थिर) हमेशा रहनेवाले (स्थाणु) एक-रस रहनेवाले (प्रभा) प्रकाशरूप (भानु) प्रकाश करनेवाले (प्रवर) श्रेष्ठ (वरद) वर के देनेवाले (वर) इच्छारूप ॥ १० ॥ ११ ॥ (हरि) दुःखों के हरनेवाले

शुक्लेश्वरो भृगुश्चेति क्षीपेश्वरत्रिलोचनौ ॥ वैवस्वतेन्तरप्राप्ते आदिकल्पे कृत्युगे ॥ ६ ॥ श्रीपतिः परमाद्यश्च द्वितीयश्चपि तामहः ॥ तृतीयो देवराजश्च चतुर्थः सूर्य एव च ॥ ७ ॥ पञ्चमः कथितः सोमः षष्ठो राहुः प्रकीर्तितः ॥ सप्तमश्च शनिश्चैव त्वष्टमः केतुकः स्मृतः ॥ ८ ॥ वैश्वानरश्च नवमो दशमश्च दिगीश्वरः ॥ एकादशो वैक्रमश्च द्वादशो वारुणस्तथा ॥ ९ ॥ त्रयोदशश्च वायुर्धनदश्च चतुर्दशः ॥ नानापदप्रकारेण स्तुतो देव उमापतिः ॥ १० ॥ विष्णुना देवनाथेन ब्रह्मणा च सुरासुरैः ॥ स्थिरः स्थाणुः प्रभाभानुः प्रवरो वरदो वरः ॥ ११ ॥ हरिश्च हरिणा ख्यश्च सर्वभूतहरः प्रभुः ॥ प्रवृत्तिश्च निवृत्तिश्च नियमः शाश्वतो ध्रुवः ॥ १२ ॥ इमशानवासी भगवान्खेचरो गोचरस्तथा ॥ अभिवन्द्यो महाकर्ममा तपस्वीभूतभावनः ॥ १३ ॥ उन्मत्तवेषप्रच्छन्नः सर्वलोकप्रजापतिः ॥ महारूपो महाकायस्सर्वलोकप्रजापतिः ॥ १४ ॥ परात्मा सर्वभूतानां विरूपो

(हरिण) हरियाले (सर्वभूतहर) सब प्राणियों के हरनेवाले (प्रभु) प्रभाव करनेवाले (प्रवृत्ति) संसार का कारण (निवृत्ति) दुनिया से छुटाने का कारण (नियम) अपने २ कामों में सब के लगानेवाले (शाश्वत) सदा रहनेवाले (ध्रुव) अटल ॥ १२ ॥ (इमशानवासी) इमशान के रहनेवाले (भगवान्) ऐश्वर्यवाले (खेचर) आकाश में चलनेवाले (गोचर) इन्द्रियों में रहनेवाले (अभिवन्द्य) वन्दना करने योग्य (महाकर्म) बड़े कामों के करनेवाले (तपस्वी) तपस्यावाले (भूतभावन) प्राणियों के रचनेवाले ॥ १३ ॥ (उन्मत्तवेषप्रच्छन्न) मतवाले के वेष से छिपे हुये (सर्वलोकप्रजापति) सब लोकों की प्रजाओं के मालिक (महारूप)

श्रेष्ठरूपवाले (महाकाय) बड़े शरीरवाले (सर्वलोकप्रजापति) सब लोकों की प्रजाओं के पालनेवाले ॥ १४ ॥ (सर्वभूतानांपरात्मा) सब प्राणियों के सुखयथात्मा (विरूप) अद्भुतरूपवाले (वामन) छोटे रूपवाले (मनु) विचार करनेवाले (लोकपाल) लोकों के पालनेवाले (पिहितात्मा) छिपेरूपवाले (प्रसन्न) खुश (भवनाशन) संसार से छुटानेवाले ॥ १५ ॥ (प्रवृत्त) गृहस्थरूप (महाङ्ग) बड़े अङ्गोंवाले (निचय) समष्टिरूपवाले (नियताश्रय) सबके एकही आधार (सर्वकाम) सब कामों से भरेहुये (स्वयम्भू) आपही से होनेवाले (आदिनादिकर) आदि व अनादि क करनेवाले (निधि) जीवों का स्थान ॥ १६ ॥ (सहसाक्ष) हजारों नेत्रोंवाले (विरूपाक्ष) डरावने नेत्रोंवाले (सोम) सोमयज्ञका साधन (नक्षत्रसाधक) नक्षत्रों के सिद्ध करनेवाले (चन्द्र) आनन्द देनेवाले (सूर्य) प्रकाश करनेवाले (शनि) मन्द चलनेवाले (केतु) श्रेष्ठ (ग्रह) खींचनेवाले (ग्रहपति) ग्रहों के स्वामी (वर) श्रेष्ठ ॥ १७ ॥ (तपोद्रष्टा) तपस्या

वामनोमनुः ॥ लोकपालोपिहितात्मा प्रसन्नोभवनाशनः ॥ १५ ॥ प्रवृत्तश्चमहाङ्गश्चनिचयोनियताश्रयः ॥ सर्वकामःसहयंभूश्च आदिनादिकरोनिधिः ॥ १६ ॥ सहस्राक्षोविरूपाक्षस्सोमो नक्षत्रसाधकः ॥ चन्द्रसूर्यदर्शनिःकेतुर्ग्रहोग्रहपतिर्वरः ॥ १७ ॥ तपोद्रष्टाबलःस्थानुर्भृगवाणार्पणोनघः ॥ महातपादीर्घतपा आदिर्दीनानुकम्पनः ॥ १८ ॥ संवत्सरकरोमन्त्रः प्रमाणंपरमन्तपः ॥ योगीयोगमहावीर्यो महारेताहरोहरः ॥ १९ ॥ महाचेताश्चसर्वज्ञः सर्वाज्ञोपहरोहरः ॥ कमण्डलुधरोधन्वी प्राणहस्तःप्रतापवान् ॥ २० ॥ अंशोनीशस्तथाशूली खट्वाङ्गीपट्टिशीतथा ॥ शुचिश्चशु

के सान्नी (बल) व्यापक (स्थातु) खड़े रहनेवाले (मृगबाणार्पण) हरिणरूप यज्ञपर बाण के चलानेवाले (अनघ) पापरहित (महातपा) उत्तम तपवाले (दीर्घतपा) बड़े तपवाले (आदि) सब से पुराने (दीनानुकम्पन) दीनोंपर दया करनेवाले ॥ १८ ॥ (संवत्सरकर) साल के बनानेवाले (मन्त्र) गुप्तकहनेवाले (प्रमाण) सबूत (परमन्तप) बड़ी तपस्या का रूप (योगी) योगवाले (योगमहावीर्य) योगरूप ताकतवाले (महारेता) बड़ेवीर्यवाले (हर) हरनेवाले (हर) भक्तों के अङ्गीकारकरनेवाले ॥ १९ ॥ (महाचेता) बड़े चित्तवाले (सर्वज्ञ) सबके जाननेवाले (सबीज) कारणसहित (अपहर) प्रलयकरनेवाले (हर) दुष्टों के नाशनेवाले (कमण्डलुधर) कमण्डलुके रखनेवाले (धन्वी) धनुषवाले (प्राणहस्त) सबकेप्राण जिनके हाथोंमेंहै (प्रतापवान्) प्रतापवाले ॥ २० ॥

(अंश) जीवरूप (अनीश) जीव होने से परवश (शूली) त्रिशूलवाले (खट्वाङ्गी) खट्वाङ्गवाले (पट्टिशी) पट्टिगवाले (शुचि) पवित्र (शुचिरूप) पवित्ररूप (तेजः) तेजोरूप (तेजस्कर) तेज के करनेवाले (निधि) सर्व पदार्थों के स्थान ॥ २३ ॥ (उष्णीषी) पगड़ीवाले (सुवक्त्र) सुन्दर मुहँवाले (उदक्त्र) जलमें रहनेवाले (वित्तन) अतिविस्तार करनेवाले (हरि) सूर्यरूप (हरिनेत्र) सूर्य जिनके नेत्र में हैं (सुतीर्थ) अतिपवित्र (कृष्ण) खींचनेवाले ॥ २२ ॥ (शृगालरूपी) सियार के समान रूपवाले (सर्वार्थ) सर्वप्रयोजनरूप (शुण्डी) गणेशरूप (शुद्ध) निर्मल (कमण्डलु) सबका आधार (अज) उत्पत्तिरहित (गन्धमाली) खुशबूदारमालावाले (मृगरूपी) हरिणरूप (कपालभृत्) खप्पर के रखनेवाले ॥ २३ ॥ (ऊर्ध्वरेता) ब्रह्मचारी (ऊर्ध्वसाक्षी) परलोक के साक्षी (ऊर्ध्वबाहु) खड़ी भुजावाले (नभःस्थल) आकाश व पृथिवीरूप (त्रिजटी) तीन चौटीवाले (निवास) जीवोंके रहनेका स्थान (रुद्र) रुलानेवाले (सेना-

चिरूपश्च तेजस्तेजस्करोनिधिः ॥ २३ ॥ उष्णीषीचसुवक्त्रश्च उदक्त्रोवित्तनस्तथा ॥ हरिश्चहरिनेत्रश्च सुतीर्थःकृष्ण एवच ॥ २२ ॥ शृगालरूपीसर्वार्थशुण्डीशुद्धःकमण्डलुः ॥ अजश्चगन्धमालीच मृगरूपीकपालभृत् ॥ २३ ॥ ऊर्ध्व रेताऊर्ध्वसाक्षी ऊर्ध्वबाहुर्नभःस्थलः ॥ त्रिजटीचनिवासश्चरुद्रस्सेनापतिर्विशुः ॥ २४ ॥ अहश्चरोगात्रिचरस्सुवासश्चदिशाम्पतिः ॥ राजहादैत्यहाचैव धातारूपगुणात्मकः ॥ २५ ॥ सिंहशार्दूलरूपश्च आर्द्रिचर्मधरोहरः ॥ कालयोगीमहानादः सर्ववासश्चतुष्पथः ॥ २६ ॥ दुर्वारप्रेतचारीच भूतचारीमहेन्द्रवरः ॥ बहुभूतोबहुधनस्सर्वार्थोरुचिरागतिः ॥ २७ ॥

पति) सेनाके मालिक (विभु) व्यापक ॥ २४ ॥ (अहश्चर) दिनमें घूमनेवाले (रात्रिचर) रातमें घूमनेवाले (सुवास) अच्छास्थान (दिशाम्पति) दिशाओं के स्वामी (राजहा) राजाओंके मारनेवाले (दैत्यहा) दैत्योंके मारनेवाले (धाता) धारण करनेवाले (रूपगुणात्मक) रूप व गुणोंके आत्मा ॥ २५ ॥ (सिंहशार्दूल-रूप) सिंह व शार्दूल के ऐसे रूपवाले (आर्द्रिचर्मधर) गल्लेचमड़ेके धरनेवाले (हर) सबको प्राप्त (कालयोगी) समयपर योगी (महानाद) बड़ी आवाजवा-ले (सर्ववास) सबका स्थान (चतुष्पथ) चारोंतरफ रास्तावाले ॥ २६ ॥ (दुर्वारप्रेतचारी) जबरदस्त प्रेतोंमें रहनेवाले (भूतचारी) प्राणियों में रहनेवाले (महेन्द्रवर) बड़े ईश्वर (बहुभूत) बहुत से भूतोंवाले (बहुधन) बहुत धनवाले (सर्वार्थ) सब काम जिनसे होते हैं (रुचिरागति) उत्तमगति ॥ २७ ॥

(नृत्यप्रिय) नाच जिनको प्यारा है (नृत्यकर्ता) नृत्यकारी (नर्तक) नाचनेवाले (बलाहक) मेघरूप (घोर) डरावने (महातपा) उत्तमतपस्वी (वास) सबमें बसने वाले (नित्य) सदा रहनेवाले (गिरिधर) पर्वतोंके धारण करनेवाले (नेभः) आकाशरूप ॥ २८ ॥ (सहस्रभूत) हजारों भूतोंवाले (विज्ञेय) विशेषकरके जाननेलायक (व्यवसाय) सिद्धान्तरूप (निश्चय) निश्चयरूप (अमर्ष) क्रोधवाले (मर्षण) क्षमावाले (दत्त) प्रवीण (दत्तकतुविनाशन) दत्तके यज्ञको विनाश करनेवाले ॥ २९ ॥ (दत्तयज्ञापहारी) दत्तके यज्ञको नाशनेवाले (सुमह) अच्छे उत्साहवाले (मध्यम) सबमें साधारणरूप (तेजोऽपहारी) शत्रुओं के तेज के नाश करनेवाले (बलिहा) अपने भागके लेनेवाले (मुदित) प्रसन्न (अर्चित) पूजेगये (भव) सब जगत जिन्हीं से होता है ॥ ३० ॥ (गम्भीरघोष) गहरी

नृत्यप्रियो नृत्यकर्ता नर्तकश्च बलाहकः ॥ घोरं महातपावासो नित्यो गिरिधरो नभः ॥ २८ ॥ सहस्रभूतो विज्ञेयो व्यवसायश्च निश्चयः ॥ अमर्षो मर्षणो दत्तो दत्तकतुविनाशनः ॥ २९ ॥ दत्तयज्ञापहारी च सुमहो मध्यमस्तथा ॥ तेजो पहारी बलिहा मुदितश्चार्चितो भवः ॥ ३० ॥ गम्भीरघोषो गम्भीरो गभीरो हव्यवाहनः ॥ न्यग्रोधरूपो न्यग्रोधऋक्षवर्णः प्रभुर्विभुः ॥ ३१ ॥ तीक्ष्णबाणश्च हर्यन्तो महेशः कर्मकालवित् ॥ दीक्षः प्रसादितो यज्ञस्समुद्रो बडवानलः ॥ ३२ ॥ हुताशश्च हुताशस्यः प्रसन्नात्मा हुताशनः ॥ महतेजाः सुतेजाश्च विजयो जय एव च ॥ ३३ ॥ ज्योतिषामयनं सिद्धि

आवाजवाले (गम्भीर) बेथाह (गभीर) अथाह (हव्यवाहन) अग्निरूप (न्यग्रोधरूप) कैलासमें विद्यमान वरगद जिन्हींका रूप है (न्यग्रोध) सब जगत जिनकी नीचेकी शाखा ऐसा है (ऋक्षवर्ण) नक्षत्ररूप (प्रभु) प्रभाववाले (विभु) समर्थ ॥ ३१ ॥ (तीक्ष्णबाण) पैनेबाणोंवाले (हर्यन्त) सूर्य जिनके नेत्रोंमें हैं (महेश) सबके मालिक (कर्मकालवित्) कर्मकाल के जाननेवाले (दीक्ष) सिखलानेवाले (प्रसादित) प्रसन्न कियेगये (यज्ञ) यज्ञरूप (समुद्र) समुद्ररूप (बडवानल) बडवानलरूप ॥ ३२ ॥ (हुताश) होमीहुई द्रव्यके खानेवाले (हुताशस्य) अग्नि जिनका मुख है (प्रसन्नात्मा) प्रसन्नमनवाले (हुताशन) अग्निरूप (महातेजा) बड़े तेजवाले (सुतेजा) अच्छे तेजवाले (विजय) विशेषकरके जीतिको प्राप्त (जय) उँचाई को प्राप्त ॥ ३३ ॥ (ज्योतिषामयनम्) प्रकाश करनेवाली

चीजोंका स्थान (सिद्धि) सिद्धिरूप (सन्धि) सुलहरूप (विग्रह) लड़ाईरूप (शिखी) चोटीवाले (दण्डी) दण्डवाले (जटी) जटावाले (ज्वाली) लपटवाले (मूर्तोद) मोह व अभिमान के नाश करनेवाले (दुर्बल) दुबले (बहिः) सबके बाहर ॥ ३४ ॥ (वैष्णवी) बांसके दण्डवाले (पापवेताल) पापोंको वेताल ऐसे (कालाग्नि) महाप्रलय के अग्निरूप (कालदण्डक) कालही जिनका दण्ड है (नक्षत्रनिग्रह) नाशरहित शरीरवाले (वृद्धि) बढ़तीरूप (अज) जन्मरहित (गन्धर्वह) वायुरूप (अग्रज) सब से जेठे ॥ ३५ ॥ (प्रजापति) प्रजाओंके मालिक (हरि) विष्णुरूप (बाहु) सबके लेचलनेवाले (विभाग) विशेषकर सब जिनको भजते है (सर्वतोमुख) चारोतरफ मुहवाले (विमोचन) दुःखसे छोड़ानेवाले (सुरगण) देवता हैं गण जिनके (हिरण्यकवच) सोनहले बस्तरवाले (भव) सब जगत् जिन्हीं से होताहै ॥ ३६ ॥ (अरज) निर्मल (धूलिधारी) भस्मके लगानेवाले (महाचारी) बड़े आचारवाले (श्रुतश्रवा) सुनागया है यश

स्सन्धिर्विग्रहएवच ॥ शिखीदण्डीजटीज्वाली मूर्तोदोदुर्बलोबहिः ॥ ३४ ॥ वैष्णवीपापवेतालः कालाग्निःकालदण्डकः ॥ नक्षत्रविग्रहोवृद्धिरजोगन्धर्वहोग्रजः ॥ ३५ ॥ प्रजापतिर्हरिर्बाहुर्विभागस्सर्वतोमुखः ॥ विमोचनस्सुरगणो हि रण्यकवचोभवः ॥ ३६ ॥ अरजोधूलिधारीच महाचारीश्रुतश्रवाः ॥ अनादिःसर्वभूतादिस्सर्वस्याद्यःपितागुरुः ॥ ३७ ॥ व्यालरूपोमहावासी हीनमालीतरङ्गवित् ॥ त्रिपदस्त्र्यम्बकोव्यक्तस्सर्वबन्धविमोचकः ॥ ३८ ॥ साङ्ख्यप्रसादोदुर्वासास्सर्वसाधुनिषेवितः ॥ प्रस्कन्दनोविभागश्च तुल्योयज्ञविभागवित् ॥ ३९ ॥ सर्ववासीसर्वचारी दुर्वासाभैरवोयमः ॥

जिनका (अनादि) आदिरहित (सर्वभूतादि) सब प्राणियों की आदि (सर्वाद्य) सबके आदिरूप (सर्वपिता) सबके पिता (सर्वगुरु) सबके गुरु ॥ ३७ ॥ (व्यालरूप) सर्पों के ऐसे रूपवाले (महावासी) बड़े स्थानवाले (हीनमाली) मुण्डोंकी मालावाले (तरङ्गवित्) जगत्की तरंगों के जाननेवाले (त्रिपद) तीनौलोक हैं स्थान जिनका (त्र्यम्बक) तीन नेत्रवाले (अत्यक्त) प्रकट नहीं (सर्वबन्धविमोचक) सब बन्धनों के छुड़ानेवाले ॥ ३८ ॥ (सांख्यप्रसाद) ज्ञानसे प्रमत्त होनेवाले (दुर्वासा) नङ्गे (सर्वसाधुनिषेवित) सब साधुओं से सेवा क्रियेगये (प्रस्कन्दन) प्रलय में जलके सुखानेवाले (विभाग) पृथक्करूप (तुल्य) सब में एकरस (यज्ञविभागवित्) यज्ञोंके हिसाबके जाननेवाले ॥ ३९ ॥ (सर्ववासी) सबमें रहेनेवाले (सर्वचारी) सब कहीं जानेवाले (दुर्वासा) दुर्वासारूप (भैरव) भैरवरूप (यम)

यमरूप (हिम) ठण्डे (हिमकर) चन्द्ररूप (यज्ञ) यज्ञरूप (सर्वधाता) सब के धारण करनेवाले (बुधोत्तम) परिडतों में उत्तम ॥ ४० ॥ (लोहिताक्ष) लाल नेत्रोंवाले (महाक्ष) बड़ी आंखोंवाले (विजयाख्य) विजय नामवाले (विशारद) बड़े प्रवीण (संग्रह) सबके ग्रहण करनेवाले (विग्रह) लडाई रूप (कर्म) कर्मरूप (सर्पराजविभूषण) शेष जिनका गहना हैं ॥ ४१ ॥ (मुख्य) सबमे श्रेष्ठ (विमुक्तदेह) जीवन्मुक्त (देहचारी) जीवरूप से सब देहों में चलनेवाले (कर्दम) कर्दमनामके प्रजापति (सर्वाचार) सब तरहके आचारवाले (प्रसाद) प्रसन्नतारूप (खेचर) आकाश में चलनेवाले (बलरूपधृक्) बल व रूपके धारण करनेवाले ॥ ४२ ॥ (आकाशवृत्तिरूप) शब्दरूप (निपात) सब जिसमें गिरते है (उरग) सर्परूप (खल) क्रूरस्वभाववाले (रौद्ररूप) भयानक रूपवाले (सुरादित्य) देवताओं में सूर्यरूप (वसुरश्मि) सबमें वास करनेवाला है तेज जिनका (सुवर्चस) अच्छे तेजवाले ॥ ४३ ॥ (वसुवेग) वायुके

हिमोहिमकरोयज्ञस्सर्वधाताबुधोत्तमः ॥ ४० ॥ लोहिताक्षोमहाक्षश्च विजयाख्योविशारदः ॥ संग्रहोविग्रहःकर्ममं सर्प
राजविभूषणः ॥ ४१ ॥ मुख्योविमुक्तदेहश्च देहचारीचकर्दमः ॥ सर्वाचारःप्रसादश्च खेचरोबलरूपधृक् ॥ ४२ ॥ आकाश
वृत्तिरूपश्च निपातउरगःखलः ॥ रौद्ररूपस्सुरादित्योवसुरश्मिस्सुवर्चसः ॥ ४३ ॥ वसुवेगोमहावेगो मनोवेगोनिशाचरः ॥
सर्वावासःश्रियावास आपदीशकलोहरः ॥ ४४ ॥ मुनिरात्मगतिलोकस्सहस्रवदनोविभुः ॥ यक्षीचयक्षराजश्च इयेनो
दीप्तिर्विशाम्पतिः ॥ ४५ ॥ उन्मदोमदनाकारोप्यर्थानर्थकरोमहान् ॥ सिद्धयोगोपहारीच सिद्धस्सर्वार्थसाधकः ॥ ४६ ॥

समान वेगवाले (महावेग) बड़े वेगवाले (मनोवेग) मनके तुल्य वेगवाले (निशाचर) रात्रि में चलनेवाले (सर्वावास) सबका स्थान (श्रियावास) लक्ष्मीका स्थान (आपत्) व्यापक (ईशकल) ईशवरहै कला जिनकी (हर) सबको हरनेवाले ॥ ४४ ॥ (मुनि) विचारनेवाले (आत्मगति) आपही अपनी गति है (लोक) लोकरूप (सहस्रवदन) हजारमुखवाले (विभु) समर्थ (यक्षी) यक्षोंवाले (यक्षराज) यक्षोंके राजा (इयेन) वाजनामक पक्षीके तुल्य वेगवाले (दीप्ति) प्रकाशरूप (विशाम्पति) प्रजाओं के पति ॥ ४५ ॥ (उन्मद) मदवाले (मदनाकार) कामदेवके तुल्य रूपवाले (अर्थानर्थकर) प्रयोजन और अनर्थ के करने वाले (महान्) बड़े (सिद्धयोग) सिद्धहै योग जिनका (अपहारी) हरनेवाले (सिद्ध) सिद्धरूप (सर्वार्थसाधक) सबकामों के सिद्ध करनेवाले ॥ ४६ ॥

(भिन्नु) संन्यासी (भिन्नरूप) भिन्नरूपवाले (वर्णाविभुः) छह प्रकारके ऐश्वर्योंके स्वामी (मृदुत्वच) कोमल खालवाले (महासेन) बड़ी सेनावाले (विशाख) स्वामिकारिकरूप (यष्टिभाग) लाठी में बांधा जाता है भाग जिनका (गवांपति) नन्दीके पालनेवाले ॥ ४७ ॥ (वज्रहस्त) वज्रहै हाथमें जिनके (विष्टमिम्) रोंकनेवाले (विष्ट) बैठे (स्तम्भन) धारण करनेवाले (ऋक्ष) नक्षत्ररूप (रिपुकर) क्रुद्ध होनेसे शत्रुओंके बढ़ानेवाले (काल) कालरूप (मधु) वसन्तरूप (मधुकलोचन) महुआके एमनेत्रोंवाले ॥ ४८ ॥ (वाचस्पत्य) बृहस्पतिरूप (वाजसेन) अन्नही जिनकी सेनाहै (नैष्ठ) समाधि करनेवाले (आश्रमसूचक) आश्रमोंके चेतानेवाले (ब्रह्मचारी) ब्रह्मचारी (लोकचारी) लोकोंमें चलनेवाले (सर्वचारी) सब में चलनेवाले (सुरतवित्) अञ्चरलों के जाननेवाले ॥ ४९ ॥ (ईशान)

भिन्नुश्चभिन्नुरूपश्च विभुःषण्णामृदुत्वचः ॥ महासेनोविशाखश्च यष्टिभागोगवांपतिः ॥ ४७ ॥ वज्रहस्तश्चविष्टमिम्विष्टःस्तम्भनएवच ॥ ऋक्षोरिपुकरःकालो मधुर्मधुकलोचनः ॥ ४८ ॥ वाचस्पत्योवाजसेनो नैष्ठश्चाश्रमसूचकः ॥ ब्रह्मचारीलोकचारी सर्वचारीसुरतवित् ॥ ४९ ॥ ईशानईश्वरःकालो निशाचारीत्वमेकधृक् ॥ अमितश्चाप्रमेयश्च नदीनदकरोव्ययः ॥ ५० ॥ नन्दीश्वरस्सुनन्दीच नन्दनोनन्दवर्द्धनः ॥ नागहारीविहारीच कालोब्रह्मविदांबरः ॥ ५१ ॥ चतुर्मुखोमहालिङ्गश्चतुर्लिङ्गस्तथैवच ॥ लिङ्गाध्यक्षसुराध्यक्षो कालाध्यक्षोयुगावहः ॥ ५२ ॥ उ

ईशानकोणरूप (ईश्वर) ऐश्वर्यवाले (काल) कालरूप (निशाचारी) रात्रिमें चलनेवाले (त्वमेकधृक्) आपही एक सबके धारण करनेवाले हो (अमित) वेनाप (अप्रमेय) किसी प्रमाणसे नहीं जानेजाते (नदीनदकर) नदियां व नदोंके करनेवाले (अव्यय) नाशरहित ॥ ५० ॥ (नन्दीश्वर) नन्दीके मालिक (सुनन्दी) भलीभांति आनन्द देनेवाले (नन्दन) आनन्द देनेवाले (आनन्दवर्द्धन) आनन्द बढ़ानेवाले (नागहारी) नागोंकी माला धारण करनेवाले (विहारी) विहार करनेवाले (काल) समयरूप (ब्रह्मविदांबर) ब्रह्मके जाननेवालों में श्रेष्ठ ॥ ५१ ॥ (चतुर्मुख) चारमुखवाले (महालिङ्ग) पूजाजाता है लिङ्ग जिनका (चतुर्लिङ्ग) चारों वेदों में है स्वरूप जिनका (लिङ्गाध्यक्ष) लिङ्गोंमें आपही की पूजा होती है इससे लिङ्गोंके ईश्वर हो (सुराध्यक्ष) देवताओं के ईश्वर (कालाध्यक्ष) कालके ईश्वर

(युगावह) युगोंके धारण करनेवाले ॥ ५२ ॥ (उमापति) पार्वती के पति (उमाकान्त) पार्वतीजी के प्यारे (जाह्नवीधृतिमान्) गंगाके धारनेवाले (वर) श्रेष्ठ (मन्वर्थ) सब प्रयोजनरूप (सर्वभूतार्थ) सब प्राणियों के स्वार्थ (नित्य) सदा रहनेवाले (सर्वव्रत) सब व्रतोंवाले (शुचि) पवित्ररूप आपदा ॥ ५३ ॥ हे नाथ ! जो देव ब्रह्मादि देवता, महर्षियोंसे नहीं जानेजाते ऐसे श्रेष्ठोंसे श्रेष्ठ, परमात्मा आप स्तुति करने योग्य कैसे होसकेंहो ॥ ५४ ॥ हे परमेश्वर ! हमलोंगोंनी जिह्वाकी चञ्चलता को आप क्षमाकरो और हे पुष्टिबर्द्धन ! स्वर्गवासि देवताओं का कल्याण करो ॥ ५५ ॥ मार्कण्डेयजी बोले कि इम स्तोत्रको सुनकर श्रीमान् द्वीपेश्वर

मापतिरुमाकान्तो जाह्नवीधृतिमान्वरः ॥ सर्वार्थस्सर्वभूतार्थो नित्यस्सर्वव्रतश्शुचिः ॥ ५३ ॥ योनब्रह्मादिभिर्देवो ज्ञा
यतेनमहर्षिभिः ॥ स्तोतव्यःसकथन्नाथ परमात्मापरात्परः ॥ ५४ ॥ जिह्वाचापल्यमस्माकं क्षमस्वपरमेश्वर ॥
शिवंकुरुष्वदेवानां स्वर्ग्याणांपुष्टिवर्द्धनम् ॥ ५५ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ श्रुत्वास्तोत्रमिदन्देवः श्रीमान्द्वीपेश्वरः शिवः ॥
प्रहसन्नब्रवीद्देवान् प्रार्थयध्ववंसुराः ॥ ५६ ॥ देवाऊचुः ॥ यदितुष्टोमहेशानो देवानांवरदः प्रभुः ॥ तद्विनाशायैदत्या
नां त्राताभवमहेश्वर ॥ ५७ ॥ पापकर्म्मार्धमश्नैव पञ्चलिङ्गानियोजयेत् ॥ सोपिताङ्गतिमाप्नोति दुर्लभायामहाम
खैः ॥ ५८ ॥ शक्रेणामिष्टतस्तत्र देवदेवउमापतिः ॥ पुरानाम्नांसहस्रेण सुरासुरनमस्कृतः ॥ ५९ ॥ शिवप्रसादसम्प
न्नो देवराजस्ततोभवत् ॥ धनदेनस्तुतस्तत्र देवोल्लेखेश्वरः प्रभुः ॥ ६० ॥ मोक्षदानामगौरौश्च तान्देवीविद्धिभारत ॥

महादेवजी हँसतेहुये देवताओंसे बोले कि हे देवताओं ! तुमलोग वरकोमांगो ॥ ५६ ॥ तब देवताबोले कि हे महेश्वर ! देवताओंको वरके देनेवाले प्रभु महेशान आप जो प्रसन्नहो तो दैत्योंके नाश करने के वारते देवताओं की रक्षा करनेवाला अधमभी जो मनुष्य पांचों लिंगोंका पूजन करे तो वह भी उस गतिको प्राप्तहोने जोकि बड़े यज्ञोंसे भी दुर्लभ है ॥ ५८ ॥ देवता व दैत्योंसे नमस्कार कियेगये देवताओं के देवता पार्वती के पति महादेवजी की पूर्व कालमें इन्द्रने भी वहाँ हजारनामों से स्तुतिको कियाहै ॥ ५९ ॥ तब महादेवजीके प्रसादमे युक्त इन्द्र देवताओंके राजा होतेहुये और वहाँ कुबेरने भी प्रभु लक्षेश्वर

देवकी स्तुति की है ॥ ६० ॥ हैं भारत ! वहां मोक्षदानाम की जो शक्ति है उसीको देवी पार्वतीजी जानो और देवता व देव्योंसे नमस्कार कियागया मोक्षेश्वर नामका सिद्धलिंग है ॥ ६१ ॥ सिद्ध, विद्याधर, यक्ष, गन्धर्व, किन्नर और मनुष्य भी पांचों लिंगों के पूजन से देवभावको प्राप्तहुये ॥ ६२ ॥ कुबेर, वायु, वरुण, निम्नति, वैवस्वत और नरकोंके राजा यमराज भी उसी पूजनसे अपने २ अधिकारोंको पातेहुये ॥ ६३ ॥ और उस लिंगके माहात्म्य से सूर्यके पुत्र यमराज बड़े यशवाले हुये वहां पूर्वकाल में औरोंने भी द्वीपेश्वर प्रभुकी स्तुति की है ॥ ६४ ॥ व वही भक्तिपूर्वक सहस्रनाम से चन्द्रमाने बहुत पूजनेलायक महादेवजी की स्तुतिकी इससे चन्द्रमा

मोक्षेश्वरसिद्धलिङ्गं सुरासुरनमस्कृतम् ॥ ६१ ॥ सिद्धैर्विद्याधरैर्यक्षैर्गन्धर्वैः किन्नरैर्नरैः ॥ देवत्वं समनुप्राप्तं पञ्चालिङ्गसमर्चनात् ॥ ६२ ॥ कुबेरो मारुतश्चैव वरुणो निम्नतिस्तथा ॥ वैवस्वतो यमश्चैव ततश्च नरकेश्वरः ॥ ६३ ॥ तस्य लिङ्गस्य माहात्म्यात्सूर्यपुत्रो मया यशः ॥ अन्यैरभिष्टुतस्तत्र पूर्वद्वीपेश्वरः प्रभुः ॥ ६४ ॥ भक्त्या नाम सहस्रेण स्तुतः पूज्य तमश्शिवः ॥ सोमेनातो भवत्तत्र शम्भो दिशरसिभूषणम् ॥ ६५ ॥ रोहिण्याभ्यर्चिता गौरी सुभगतेन सा भवत् ॥ ऋक्षैर्यौगतेरैस्तद्वत्स्तुतो देवः पिनाकधृक् ॥ ६६ ॥ ततस्तैर्भास्करैरेव नभःस्थलमलंकृतम् ॥ व्याधयः कालमृत्युश्च चित्रगुप्तश्च लेखकः ॥ ६७ ॥ तथा शक्रस्सुरगणैरितैः परिवृतः प्रभुः ॥ पापिष्ठानां महारौद्रो धर्मिष्ठानां प्रसादवान् ॥ ६८ ॥ कोटयोऽष्टौ चोर्ध्वकेशा रौद्राश्च विकृताननाः ॥ पतिव्रता सहस्रैश्च तथा मासोपवासिभिः ॥ ६९ ॥ किल्बिलारचशब्दैश्च धर्मराजपुरोत्तमम् ॥ व्याप्तन्तु परितः श्रीमदसंख्यार्तैर्मनोरमैः ॥ ७० ॥ श्रुत्वा तेषां रवं सार्द्धं धर्मराजः समासदः ॥ इवेत

महादेवजी के शिरका भूषण होता हुआ ॥ ६५ ॥ रोहिणी ने पार्वतीजी का पूजन किया इससे वह सौभाग्यवाली हुई इसीतरह नक्षत्र व योगोंने पिनाक के धरनेवाले महादेवजीकी स्तुतिकी है ॥ ६६ ॥ इससे उन्होंने सूर्यके सहित आकाशको शोभित कर दिया है रोग, कालमृत्यु, लिखनेवाले चित्रगुप्त ॥ ६७ ॥ तथा इन देवताओं के गणोंसे युक्त इन्द्रभी स्तुति करतेहुये जो प्रभुजी पापियों को बड़े डेरावने है और धर्मियों को बड़े सीधे हैं ॥ ६८ ॥ जिनके पास खडेवालोवाले, बड़े डेरावने मुहवाले, बड़े भयानक आठ करोड़ गण रहते हैं ऐसे यमराज का उत्तम पुर सब ओर हजारों पतिव्रता स्त्रियों व महीने २ भरतक व्रतोंके करनेवाले पुरुषों व उनके

विलकिलाहट्याली आवाजों व और भी पुण्यवालों के अगणित मनके रमानेवाले विमानों से भरजाता हुआ ॥ ६९ ॥ उनके शब्दको सुनकर अपने सभासदों के सहित सफेद कपड़ों को पहनेहुये व सफेदमाला व सफेदचन्दन को लगायेहुये धर्मराजः ॥ ७१ ॥ बहुतजल्द पैदल वहां गये जहां वे लोग विमानों पर बैठेहुये वे दोनों हाथोंको जोड़कर उन पुण्यात्माओं से पूछतेहुये ॥ ७२ ॥ कि अपनी शक्तिके अनुसार योगाभ्यास से धर्मोंमें उत्तम बड़े धर्मको आपलोगों ने कमाया है सो आप लोग किस देशसे आयेहो और कैसे पुण्यको कमाया है ॥ ७३ ॥ तब विमानों के सवार बोले कि कुरुक्षेत्र में हमलोगों ने तप किया और गंगामें विशेषकर कियाहै

वस्त्रपरीधानः श्वेतमाल्यानुलेपनः ॥ ७१ ॥ पादचारीगतः क्षिप्रं यत्र तेयानसंस्थिताः ॥ कृताञ्जलिपुटोभूत्वा पप्रच्छ
शुभकर्ममणः ॥ ७२ ॥ यथाशक्तेनयोगेन धर्मधर्मोत्तरम्महत् ॥ कस्माद्देशात्समायाताः कथमुण्यमुपाज्जितम् ॥
७३ ॥ विमानारूढाः कुरुक्षेत्रे तपस्तप्तं गङ्गायाञ्च विशेषतः ॥ सर्वेषामेव लोकानां द्वारन्तद्विप्रतिष्ठितम् ॥ ७४ ॥
धर्मधर्मधर्मतव वलं कारणं चेति तत्त्वतः ॥ वाराणसीप्रयागश्च गङ्गासागरसङ्गमः ॥ ७५ ॥ पितृतीर्थं महापुण्यं पुष्कर
क्षेमिषन्तथा ॥ केदारं भैरवञ्चैव तथारुद्रमहालयम् ॥ ७६ ॥ सरस्वतीरुद्रकोटिः प्रभासं शशिभूषणम् ॥ नानातीर्थं स
हस्रेषु दानयज्ञतपःकृतम् ॥ ७७ ॥ एतत्ते कथितं सर्वं सूर्य्यपुत्रमहायशः ॥ अन्येदृष्ट्वा यथान्यायं धर्मं राजतस्तथा ॥
७८ ॥ ऊचुस्सर्वे वचः श्लक्ष्णं धर्मं राजं यथोदितम् ॥ न त्वंप्रभुः सुकृतिनां ब्रह्मा विष्णुः शिवः प्रभुः ॥ ७९ ॥ पापकर्म

क्योंकि वे गंगा तो सब लोकोंका द्वारही हैं ॥ ७४ ॥ धर्म व अधर्मही आपका बल है येही दोनों तत्त्व से सुख व दुःख के कारण हैं और भी बड़े बड़े पवित्रतीर्थ हैं जैसे काशी, प्रयाग, गंगासागरसङ्गम ॥ ७५ ॥ पितृतीर्थ (गया), बड़ी पुण्यवाला पुष्कर तथा नैमिष, केदार, भैरव, रुद्रमहालय ॥ ७६ ॥ सरस्वती, रुद्रकोटि, प्रभास और शशिभूषण इत्यादि अनेक प्रकार के हजारों तीर्थों में हमलोगों ने दान, यज्ञ और तपस्या को किया है ॥ ७७ ॥ हे बड़े यशवाले, सूर्यपुत्र ! यह अपना वृत्तान्त आपसे हमलोगोंने कहा तब उनमें से और लोग धर्मराज को न्यायपूर्वक देखकर ॥ ७८ ॥ सबलोग धर्मराज से यथोचित स्नेहवाले वचनको बोले कि आप पुण्य

वालों के मालिक नहीं हो बल्कि उनके मालिक ब्रह्मा, विष्णु व शिवजी हैं ॥ ७६ ॥ जो मनुष्य पापकर्मों के करनेवाले है उनके राजा यमराज आपही है तब यमराज बोले कि हम कैलासको जाकर जबतक लौटआवें तबतक आपलोग ठहरें ॥ ८० ॥ हे राजन् ! ऐसे कहकर वे यमराज पर्वतों में उत्तम कैलासको जातेहुये जिस कैलास में शिवआदि देवता व पार्वती और स्वामिकार्त्तिक ये सब बैठे हैं ॥ ८१ ॥ और जहां सब देवतालोग देवताओं के देवता पार्वती के पति महादेवजी की स्तुति कर रहे हैं व कोई उनके आगे नाचते हैं और कोई उछलकर फिर गिरते हैं ॥ ८२ ॥ प्रचण्ड तेजवाले, स्तुति कियेजाते, ऐसे उन महादेवजी को देखकर देवताओं के

रतायेतु तेषांशास्तायमःस्वयम् ॥ यमउवाच ॥ गत्वाकैलासमायामि यावत्तावत्प्रतीक्षताम् ॥ ८० ॥ एवमुक्त्वा य यौराजन् कैलासंसनगोत्तमम् ॥ यस्मिञ्छिवाद्यास्तेसर्वे पार्वतीषण्मुखस्तथा ॥ ८१ ॥ स्तुवन्तिदेवताःसर्वा देवदेवमु मापतिम् ॥ नृत्यन्तिचाग्रतःकेचिदुत्पत्यनिपतन्तिच ॥ ८२ ॥ तंहृद्वातादृशंशम्स्तुवन्तंदीप्ततेजसम् ॥ स्तुवन्नामसहस्रे ण देवदेवंपिनाकिनम् ॥ ८३ ॥ साष्टाब्जंचनमस्कृत्य धर्ममराजोब्रवीद्वीदिदम् ॥ येस्मत्पुरींसमायातास्तेषांकागतिरुच्यते ॥ ८४ ॥ प्रहसन्नब्रवीद्देवो धर्ममराजंयुधिष्ठिर ॥ अत्रप्रयान्तुतेसर्वे येरेवातीरवासिनः ॥ ८५ ॥ अन्यतीर्थनिवासायै भोगान्भु व्जन्तुतेदिवि ॥ शिववाक्यंततःश्रुत्वा ब्रह्माविष्णुर्यथातथम् ॥ ८६ ॥ तुष्टादेवस्यवाक्येन सर्वदेवगणेश्वरः ॥ आगतः क्षणमात्रेण धर्ममराजःपुरोत्तमम् ॥ ८७ ॥ शिवोक्ताःप्रेषितास्सर्वे शिवलोकंयुधिष्ठिर ॥ यथायथासमादिष्टास्ततोऽन्ये

देवता पिनाकधनुष के धरनेवाले महादेवजी की हजारनामों से स्तुति करतेहुये ॥ ८३ ॥ साष्टांग प्रणामकर धर्मराज यह बोले कि जो लोग हमारी पुरी में आयेहुये हैं उनकी क्यागति होना चाहिये ॥ ८४ ॥ तब हे युधिष्ठिर ! हेसतेहुये महादेवजी धर्मराज से बोले कि उनमें जो नर्मदातीर के रहनेवाले हैं वे सब यहां चलेआवें ॥ ८५ ॥ और जो और तीर्थों के रहनेवाले हैं वे स्वर्गमें भोगोंको भोगें तब महादेवजी के इस यथार्थ वचन को सुनकर ब्रह्मा व विष्णु और सब देवगणों के मालिक धर्मराज जी उस महादेवजी की बातसे बहुत प्रसन्न हुये फिर धर्मराज एक क्षणमात्र में अपने उत्तमपुर को आतेहुये ॥ ८६ ॥ व हे युधिष्ठिर ! महादेवजी के कहेहुये सब

लोगोंको शिवलोक को भेजदिया और औरोंको जैसा २ हुक्म दियाथा उसीतरह वे भी सुखसे युक्त कर दियेगये ॥ ८८ ॥ पूर्नकल्प में कार्तिकी को देवताओं के समागम में मैने इस वार्ता को देखाथा अब हे महाराज ! तदनन्तर उत्तम वैष्णवतीर्थको जावे ॥ ८९ ॥ सब पापोंका छुटानेवाला कोकिलानाम से वह तीर्थ प्रसिद्ध है उसको देवताओं के देवता जनार्दनजीने वैष्णवक्षेत्र कहाहै ॥ ९० ॥ हे भारत ! वहां सवा करोड़ तीर्थ रहते हैं जो मनुष्य वहां पवित्र एकदशी का व्रतकरके दियालियो को जलाता है ॥ ९१ ॥ उसकी इस कठिन मनुष्यलोक में फिर आवृत्ति नहीं होती है हे भारत ! बल्कि वह सब कामनाओं से भरेहुये उत्तम विमान से विचरता

पिशुभान्विताः ॥ ८८ ॥ पुराकल्पेसयादृष्टं कार्तिक्यादेवतागमे ॥ ततोगच्छेन्महाराज वैष्णवंतीर्थमुत्तमम् ॥ ८९ ॥
कोकिलानामविख्यातं सर्वपापविमोक्षणम् ॥ वैष्णवंक्षेत्रमित्याह देवदेवोजनार्दनः ॥ ९० ॥ सपादकोटिस्तीर्थानां
तत्रास्तेचैवभारत ॥ उपोष्यैकादशीं पुण्यां दीपमालांप्रबोधयेत् ॥ ९१ ॥ नतस्यपुनरावृत्तिर्मर्त्यलोकेदुरासदे ॥ सर्व
कामसमृद्धेन विमानाग्रेणभारत ॥ ९२ ॥ असङ्ख्यकालिकातृप्तिः पितॄणानात्रसंशयः ॥ विप्रेचतोषिते तत्र दानसङ्ख्यान
विद्यते ॥ ९३ ॥ अत्रान्तरेत्यजेत्प्राणानवशःस्ववशोपिवा ॥ दशवर्षसहस्राणि राजावैद्याधरेपुरे ॥ ९४ ॥ ध्रुवोऽध्रुवत्वस्व
र्गेतु तारातेजःसमुज्ज्वलन् ॥ मर्त्ययोनिरुसम्भूता भूतग्रामास्तथापरे ॥ ९५ ॥ अर्चनार्हेचदेवस्य द्विविदेवत्वमाप्नुवन् ॥
देवपुण्यक्षयेमर्त्या भक्त्यापुण्यैश्चदेवताः ॥ ९६ ॥ स्वर्गमर्त्यप्रभेदोऽयं धर्मार्थमर्मप्रभेदतः ॥ केनापितत्प्रकारेण पूजनी

॥ ९२ ॥ वहांपर श्राद्धआदि के करने से पितरों की बहुत कालतक तृप्ति होतीहै इस में कुछ संशय नहीं है वहांपर ब्राह्मण के प्रसन्न कियेपर दानकी गिन्ती नहीं रहती है ॥ ९३ ॥ इस क्षेत्रमें परवश व अप्रपन्न वशहोकर जो प्राणोंको छोड़ता है वह दश हजारवर्षों तक विद्याधरों के पुरमें राजा होताहै ॥ ९४ ॥ यहीं के पुण्यसे राजा ध्रुव स्वर्गमें नक्षत्रों के तेजसे प्रकाश करतेहुये ध्रुवत्व (अटलभाव) को प्राप्तहुये हैं और मृत्युवाली योनियों में भलीभांति उत्पन्न हुये चारों प्रकार के जीव ॥ ९५ ॥ देवों के देव विष्णु के पूजन करने से स्वर्ग में देवभावको प्राप्तहुये देवताओं की पुण्यके लयहोने पर देवता मनुष्य होते हैं और मनुष्यलोग भक्ति व पुण्यसे देवता होते

हैं ॥ ६६ ॥ स्वर्ग और मनुष्यलोक का यह भेद धर्म और अधर्म के भेदसे हुआ है इससे किसी प्रकार से महादेवजी पूजनेलायक हैं ॥ ६७ ॥ भक्तिसे युक्त बिचसे जैसेतैसे शिवके निमित्त कुछ देना चाहिये अरुन्धती साभरणी तथा सावित्री ॥ ६८ ॥ अहल्या, मेनका, मरुत्वती और रम्भा तथा और भी अप्सराओं व देवताओं और सिद्धोंके गणों से महादेवजी पूजेगये हैं ॥ ६९ ॥ परन्तु हे भारत ! नर्मदा के तटमें रहकर जिसने महादेवजी का पूजन किया है निश्चयकरके उसीने बड़ेभोगों व मोक्षको पाया है ॥ ७० ॥ महादेवजी की मायासे मोहित जो शिवजी का पूजन नहीं करता है उसको स्वर्ग और मोक्ष नहीं होते कैलास होनेकी तो बातही क्या है ॥ ७१ ॥

योमहेश्वरः ॥ ९७ ॥ यद्वातद्वाशिबेदेयं भक्तियुक्तेनचेतसा ॥ अरुन्धत्यासाभरण्या सावित्र्याचतथातथा ॥ ९८ ॥ अह
त्ययामेनकया मरुत्वत्याचरम्भया ॥ अप्सरोगणसङ्घैश्चसुरसिद्धगणैस्तथा ॥ ९९ ॥ नर्मदातटमाश्रित्य पूजितोयेन
शङ्करः ॥ तेनैवविपुलाभोगाः प्राप्तामोक्षश्चभारत ॥ १०० ॥ नपूजयेद्धरंयस्तु शिवमायाविमोहितः ॥ नतस्यस्वर्गमोक्षौ
चकैलासंप्रतिकाकथा ॥ १ ॥ नचस्वर्गस्यराज्यस्य भाजनञ्चनराधिप ॥ सर्वतीर्थमयीरेवा सर्वदेवमयोहरः ॥ २ ॥ सर्व
धर्ममयीबुद्धिः क्षमासत्यमयंतपः ॥ ब्रह्मचर्यंतपोमूलं पञ्चेन्द्रियविनिग्रहः ॥ ३ ॥ क्षमासत्यंजपोधीतं तपःसंयम
लक्षणम् ॥ एतत्तेकथितंराजिञ्छ्वेनकथितंपुरा ॥ ४ ॥ मयाचतवराजेन्द्र आतृणाञ्चविशेषतः ॥ नसामान्यतरादेवी क
थितायामयातव ॥ ५ ॥ द्वीपेश्वरःकपिलेश्वरस्तथावैनरकेश्वरः ॥ एतान्देवान्समुत्थाय यथावत्परिकीर्तयेत् ॥ ६ ॥ स

और हे नराधिप ! वह पुरुष स्वर्गकी राज्यका पात्र नहीं होता है क्योंकि नर्मदा सब तीर्थोंका रूप है महादेवजी सब देवताओं का रूप हैं ॥ २ ॥ बुद्धि सब धर्मोंका रूप है क्षमा व सत्य तपस्या का रूप है और पांचों इन्द्रियों का वश करना व ब्रह्मचर्य तपस्याकी जड़ है ॥ ३ ॥ क्षमा, सत्य, जप, पाठ और तप इन्हीं का नाम संयम है हे राजन् ! पूर्वकाल में महादेवजी का कहाहुआ यह वृत्तान्त आपसे कहागया ॥ ४ ॥ और हे राजेन्द्र ! मैंने भी आप व आपके भाइयों से विशेषकर कहा जिस देवीको मैंने आप से कहा है वह साधारण नहीं है ॥ ५ ॥ द्वीपेश्वर व कपिलेश्वर और नरकेश्वर इन देवों को प्रातःकाल उठकर जो यथावत् कहता है ॥ ६ ॥ वह

सब तीर्थों के फलों को पाकर शिवलोक में पूजा जाता है पापों के समूह के नाश होने पर नर्मदा की प्राप्ति होती है ॥ ७ ॥ जिस नर्मदा के समीप शिवजी हमेशा रहते हैं इसी से नर्मदा शिवजी का परम क्षेत्र है इसके सुनने व कहने से शिवलोक में पूजा जाता है ॥ १०८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे रेवाखण्डे प्राकृतभाषाऽस्तु वा देवीपेश्वरवर्णनो नामैकमसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७१ ॥

मार्कण्डेयजी बोले कि देवता व सिद्धों से सेवित नर्मदाका सङ्गम बड़ा पवित्र है उसमें स्नान कर और महादेवजीका पूजन कर स्वर्गको जाते हैं ॥ १ ॥ हे भस्तर्यभ ! ततः परम् ॥ श्रवणात्कीर्तनादस्य शिवलोकैर्महीयते ॥ १०८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे रेवाखण्डे देवीपेश्वरवर्णनो नामैकमसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७१ ॥

मार्कण्डेय उवाच ॥ नर्मदासङ्गमं पुण्यं सुरसिद्धनिषेवितम् ॥ तत्र स्नात्वा दिव्यान्ति पूजयित्वा महेश्वरम् ॥ १ ॥ आगच्छन्ती पुरालोकैर्नर्मदाभरतर्षभ ॥ स्तुता पूर्वमस्मत्कृत्य देवैर्ब्रह्मर्षिभिस्तथा ॥ २ ॥ त्वया पवित्रितं पुण्यं मर्त्यलोका देवी रेवा त्वं सप्तकल्पगा ॥ ४ ॥ शिवजा प्रवहा पुण्या मेकलाद्रिमुतास्तुता ॥ यज्ञयूपाचमूद्धाच्च स्वर्गमोक्षप्रदा तथा ॥ ५ ॥ तारिणी सर्वभूतानां पापघ्नी चतरङ्गिणी ॥ लक्ष्मीः स्वाहा स्वधा चैव पुरुहता यशस्विनी ॥ ६ ॥ त्वया व्याप्तं जगत्कु

पूर्वकाल विषे मनुष्यलोकमें आती हुई नर्मदाकी देवता व ब्रह्मर्षियों ने पहले नमस्कार कर स्तुति की है ॥ २ ॥ उन्होंने कहा कि आपने चराचर इस मनुष्यलोकको पवित्र व पुण्यवाला कर दिया है जलके रूपको प्राप्त हो गई नर्मदाजी महादेवजीकी पूरी कला है ॥ ३ ॥ उमा, कात्यायनी, गङ्गा, यमुना, सरस्वती, चासुण्डा और चर्चिका देवी सात कल्प तक रहनेवाली नर्मदा तुम्हीं हो ॥ ४ ॥ महादेव से तुम उत्पन्न हुई हो, प्रवाहरूप हो, पुण्यवाली हो, मेकलपर्वतकी कन्या हो, सबों से स्तुति की गई हो, यज्ञोक्त व्रतवाली हो, सब तीर्थोंके मस्तककी तरह शोभित हो, स्वर्ग व मोक्षको देनेवाली हो ॥ ५ ॥ सब प्राणियोंको तारनेवाली हो, पापोंको नाश करनेवाली व तरङ्गवाली हो,

लक्ष्मी, स्वाहा, स्वधा और यशवाली इन्द्राणी तुम्हींही ॥ ६ ॥ हे सुव्रते ! जलके रूपसे तुम्हीं जगत्की डाँकलियाँ हैं तुम्हारा सङ्गम व सिद्धलिङ्ग देवता व दैत्यों से नमस्कार किया गया है ॥ ७ ॥ यहाँ जो कुछ दान व होम किया जावे वह सब अक्षय होता है हे महाराज ! नर्मदाका स्नान व शिवका पूजन बड़ा ही अद्भुत है ॥ ८ ॥ हे युधिष्ठिर ! एक समयमें अनेकतरहके रत्नोंकी चमकसमूहों से करोड़ों सूर्योंके समान तेजवाले अनेक हजार विमान सितार आदिकी आवाजों से व वेदों के शब्दों से आकाश और पृथ्वीको भरतेहुये यमराजकी पुरीको प्राप्तहुये राजा यमराज उनको देखकर बड़े आश्चर्यको प्राप्तहुये परन्तु पूर्वकालमें महावेव, विष्णु और त्सनमपारूपेण सुव्रते ॥ सङ्गमसिद्धलिङ्गं च सुरासुरनमस्कृतम् ॥ ७ ॥ अत्र दत्तं हुतं सर्वमेतद्भवति चाक्षयम् ॥ अत्यद्भुतं महाराज नर्मदास्नानमर्चनम् ॥ ८ ॥ अनेकानि सहस्राणि विमानानि युधिष्ठिर ॥ नानारत्नप्रभाजालैः सूर्यकोटि समानि च ॥ ९ ॥ गतानि धर्मराजस्य पुरीवीणादिनिःस्वनैः ॥ नादयन्ति तदिव भूमिं वेदनिर्घोषाणादिभिः ॥ १० ॥ एकस्मिन्समये दृष्ट्वाश्चर्यैवैव स्वतोन्मृपः ॥ अत्रिश्चैव वशिष्ठश्च पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः ॥ ११ ॥ इत्याद्याः सप्तमुनयो धर्ममधिर्ममविचारकाः ॥ शिवेन स्यापिताः पूर्वं हरिणा ब्रह्मणा तथा ॥ १२ ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ अक्षीणकर्मबन्धस्तु पुरुषो मुनि सत्तम ॥ परंपदमवाप्नोति तन्मेकथय कल्पग ॥ १३ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ विष्णुना कथितं पूर्वं ब्रह्मणे च महात्मने ॥ प्रपद्ये पुण्डरीकाक्षं देवं नारायणं हरिम् ॥ १४ ॥ लोकनाथं सहस्राक्षमक्षरं परमं पदम् ॥ भगवन्तं प्रपद्ये हं भूतभव्यमवत्प्रभुम् ॥ १५ ॥ स्रष्टारं सर्वभूतानामनन्तवत्पौरुषम् ॥ पद्मनाभं हृषीकेशं प्रपद्ये सत्यमव्ययम् ॥ १६ ॥ हिरण्यगर्भं ब्रह्माजीने धर्म अधर्म के विचार करनेवाले अत्रि, वशिष्ठ, पुलस्त्य, पुलह और क्रतु आदि सात मुनियों को यहाँ स्थापित कर दिया है उन्हीं से पूछकर यमलोकका काम चलता है ॥ ६।१०।११।१२ ॥ युधिष्ठिरजी बोले कि हे मुनिसत्तम ! जिस मनुष्यके कर्मरूपी बन्धन नहीं टूटते हैं वह परमपदको किस तरह प्राप्त करे ! रो आप हमसे कहें ॥ १३ ॥ तब मार्कण्डेयजी बोले कि पूर्वकाल में इसी बातको विष्णुजीने महात्मा ब्रह्माजी से कहा है कि पुण्डरीकाक्ष, नारायण, हरि, देव की मैं शरण रहूँ ॥ १४ ॥ लोकोंके नाथ, हजारों नेत्रवाले, नाशरहित, परमपद का रूप, होगाई व होरही और होनेवाली बातके प्रभु, भगवान् की मैं शरण हूँ ॥ १५ ॥ सब प्राणियों

के रचनेवाले, बेथाह बल व पौरुषवाले, कमल जिनकी नाभिसे निकला है, इन्द्रियों के स्वामी, सत्यरूप, नाशरहित के मैं शरणहूँ ॥ १६ ॥ हिरण्यगर्भरूप, पृथिवी जिनके गर्भमें हैं, मृत्यु से रहित, चारों तरफ़ मुखवाले, नाशरहित, कोई जिनका मालिक नहीं है, सूर्यके समान प्रकाशवाले के मैं शरणहूँ ॥ १७ ॥ हजारों शिरोंवाले, वैकुण्ठके रहनेवाले, गरुडके सवार, सूक्ष्मरूपवाले, अटल, सबसे श्रेष्ठ, अभयके देनेवाले, देवके मैं शरणहूँ ॥ १८ ॥ नारायण, हरि, योगकी आत्मा, सनातन, सब लोगोंको शरणजाने योग्य, अटल, ईश्वर के मैं शरणहूँ ॥ १९ ॥ सब प्राणियों का जो स्वामी है जिससे यह सब विश्व विस्तार किया गया है, जो देव संहारका करनेवाला है वह विष्णु मुझपर प्रसन्नहोवे ॥ २० ॥ पूर्वकालमें कमल जिनकी योनिहै और प्रजाओं के मालिक ऐसे ब्रह्मा जिससे पैदा हुये हैं, ब्रह्माजीसे

भूगर्भममृतंविश्वतोमुखम् ॥ अनश्वरमनाथञ्च प्रपद्येभास्करद्युतिम् ॥ १७ ॥ सहस्रशिरसंदेवं वैकुण्ठताक्षर्यवाहनम् ॥ प्रपद्येसूक्ष्मचलं वरेण्यमभयप्रदम् ॥ १८ ॥ नारायणंहरिञ्चैव योगात्मानंसनातनम् ॥ शरण्यंसर्वलोकांनां प्रपद्येध्रुवमीश्वरम् ॥ १९ ॥ यःप्रभुःसर्वभूतानां येनसर्वमिदंततम् ॥ यःसंहारकरोदेवः समेविष्णुःप्रसीदतु ॥ २० ॥ यस्माज्जातःपुराब्रह्मा पद्मयोनिःप्रजापतिः ॥ प्रसीदतुसमेविष्णुः पितामहपरःप्रभुः ॥ २१ ॥ पुरालयेतुसंप्राप्ते नष्टलोकेचराचरे ॥ एकस्तिष्ठतियोगात्मा समेविष्णुःप्रसीदतु ॥ २२ ॥ जयेद्यःपृथिवीसत्यं कालोधर्मःक्रियाफलम् ॥ गुणाकारःसतांवाचो वासुदेवःप्रसीदतु ॥ २३ ॥ योगावासनमस्तुभ्यं सर्वावासवरप्रद ॥ यज्ञमोगिन्यव्यभोगिन्नारायणनमोस्तुते ॥ २४ ॥ चतुर्मूर्तेजगद्धाम लक्ष्मीवासनमस्तु ॥ विश्वावासनमस्तु साक्षीभूतजगत्पते ॥ २५ ॥ अजेयःपद्भिमा

श्रेष्ठ, सबका मालिक वह विष्णु मुझपर प्रसन्न होवे ॥ २१ ॥ पूर्वकालमें प्रलयके प्राप्तहोनेपर और चराचर लोकके नष्टहोने पर योग जिसकी आत्माहै ऐसा एकही जो वाकी रहजाता है वह विष्णु मुझपर प्रसन्नहोने ॥ २२ ॥ जिसने एक पगसे पृथिवी को जीतलिया है व जो सत्यरूप, कालरूप, धर्मरूप और कर्मोका फलरूप सत्त्वआदि गुणों के आकार होनेवाला, महात्माओं की वाणीरूप है वह वासुदेव मुझपर प्रसन्न होवे ॥ २३ ॥ हे योगावास ! हे सर्वावास ! हे वरप्रद ! आपके लिये नमस्कार है हे यज्ञभोगिन् ! हे पञ्चभोगिन् ! हे नारायण ! आपके लिये नमस्कार है २४ ॥ हे चतुर्मूर्ते ! हे जगद्धाम ! हे लक्ष्मीवास ! हे वरप्रद ! हे विश्वावास ! हे सा-

स्वीभूत ! हे जगत्पते ! आपके लिये नमस्कार है ॥ २५ ॥ हे ज्ञानसागर ! आप किसीके जीतेनलायक नहीं हो और छह प्रकारकी ऊर्मियोंसेहे विभाग अर्थात् अलग होना जिनका ऐसेहो और एकही आप विश्वभर की सृत्तिहो व वृषाकपि, मृगाधिप और कालरूप हो ऐसे आपके लिये नमस्कार है ॥ २६ ॥ अव्यक्त जो माया है उससे ब्रह्माण्ड उत्पन्न हुआ और माया से और आप प्रभुहो और जिससे श्रेष्ठ दूसरा नहीं है हम उसीके शरणागत हैं ॥ २७ ॥ जिस प्रभुका ब्रह्मा और महादेवआदि निरन्तर ध्यान किया करते हैं और जो अपने एक हिस्से से सब जगत् को धारणकर व्यापकहो स्थित होरहा है ॥ २८ ॥ व जो किसी से नहीं पकड़ा जासक्ता है, गुणोंसे रहित, सबका सिखलानेवाला है, हम उसी के शरणागत हैं सूर्य और चन्द्रमाके बीचमें जो द्योतिरूपसा स्थित होरहा है ॥ २९ ॥ जिसको क्षेत्रज्ञ ऐसा कहते

गौकविश्वभूर्लिवृषाकपिः ॥ मृगाधिपश्चकालश्च नमस्तैर्ज्ञानसागर ॥ २६ ॥ अव्यक्तादण्डमुत्पन्नमव्यक्तादपरःप्रभुः ॥ यस्मात्परतरं नास्ति तमस्मि शरणं गतः ॥ २७ ॥ चिन्तयन्तो हियं नित्यं ब्रह्मेशानादयः प्रभुम् ॥ एकांशेन जगत्सर्वं यो विष्टभ्यविभुः स्थितः ॥ २८ ॥ क्षेत्रज्ञ इति यं प्राहुः समहात्मा प्रसीदतु ॥ साङ्ख्ययोगेन ये चान्ये सिद्धाश्चैव महर्षयः ॥ ३० ॥ यं विदित्वा विमुच्यन्ते समहात्मा प्रसीदतु ॥ नमस्ते सर्वतोभद्र सर्वतो जिशिरोमुख ॥ ३१ ॥ निर्विकार नमस्तेस्तु आदिकल्पहृदि स्थितः ॥ अतीन्द्रिय नमस्तुभ्यं परमात्मन्नमोस्तुते ॥ ३२ ॥ ये च त्वाभिजानन्ति संसारं न वसन्ति ते ॥ रागद्वेषविनिर्मुक्ता लोभमोहविवर्जिताः ॥ ३३ ॥ अशरीरः सुगुप्तः सन् सर्वदेहेषु तन्मयः ॥ अव्यक्तबुद्ध्यहङ्कारमहाभूतेन्द्रियाणि च ॥ ३४ ॥

हैं वह महात्मा प्रसन्न होवे जो कोई सिद्ध व महर्षिलोग हैं वे सांख्ययोगसे ॥ ३० ॥ जिसको जानकर संसार से छूटजाते हैं वह महात्मा प्रसन्नहोवे हे सर्वतोभद्र ! हे चार्गेतरफ आँख, शिर, मुखवाले ! आपके लिये नमस्कार है ॥ ३१ ॥ हे निर्विकार ! हे आदिकल्प ! हे हृदयमें बैठनेवाले ! आपके लिये नमस्कार है हे अतीन्द्रिय ! आप के लिये नमस्कार है व हे परमात्मन् ! आपके लिये नमस्कार है ॥ ३२ ॥ राग और द्वेषसे छूटेहुये तथा लोभ और मोह से रहित जो लोग आपको जानते हैं वे संसार में नहीं बसते हैं ॥ ३३ ॥ शरीरसे रहित, अत्यन्त क्षिपेहुये, सब देहों में देहही के तुल्य आप रहते हैं व जो माया, बुद्धि, अहङ्कार, महाभूत और इन्द्रिया हैं ॥ ३४ ॥

वे आपही में रहती हैं आप उनमें नहीं रहतेहो आपहीके आश्रित ये सबहैं किन्तु आपहीआप नहीं होसके हैं व आप प्रत्यक्ष नहीं हो और अत्यन्त कूटस्थ भी नहीं हो क्योंकि गुणोंके ईश्वरहो और अपने वशहो ॥ ३५ ॥ संसाररूपहो और कारण से रहितहो सबके स्वामीहो, अपने स्वरूपही में स्थितहो, हे पुण्डरीकाक्ष ! आपके लिये नमस्कार है हे वासुदेव ! आपके लिये नमस्कार है ॥ ३६ ॥ हे जगन्नाथ ! आप तो ईश्वरहो इससे बहुत क्या कहाजावे आप भक्तोंको मुक्तिके देनेवालेहो और सबके गुरु व देवताओं के ईश्वरहो ॥ ३७ ॥ सब प्राणियों के मालिक वेही आप हमारे जन्म २ में स्वामी होवें क्योंकि अहङ्कार व सत्त्वआदि गुणोंसे मैं बंधा

त्वयितानिनतेपुत्वंतेचतानिनतुस्वयम् ॥ अव्यक्तोनातिकूटस्थो गुणानांप्रसुरीश्वरः ॥ ३५ ॥ आवर्तोहेतुरहितः प्रभुःस्वात्मव्यवस्थितः॥नमस्तेपुण्डरीकाक्ष वासुदेवनमोस्तुते ॥ ३६ ॥ ईश्वरोसिजगन्नाथ किमतःपरमुच्यते ॥ भक्तानामुक्तिदस्त्वञ्च गुरुश्चत्रिदशेश्वरः ॥ ३७ ॥ समेभूतपतिस्त्वंहि प्रभुर्जन्मनिजन्मनि ॥ अहङ्कारेणबद्धोवा तथासत्त्वादिभिर्गुणैः ॥ ३८ ॥ पृथिवीयातुमेघ्राणं यातुमेरसनाजलम् ॥ चक्षुर्दृताशनंयातुस्पर्शमियातुमास्तम् ॥ ३९ ॥ शब्दश्चाकाशमायातु मनोवैकारणंतथा ॥ अहङ्कारश्चमेबुद्धित्वयिबुद्धिर्ममास्त्विति ॥ ४० ॥ वियोगःसर्वकरणैर्गुणैर्भूतैस्तथास्तुमे ॥ सत्त्वंरजस्तमश्चैव प्रकृतिस्वांविशन्तुमे ॥ ४१ ॥ प्रभोःप्रभुमनवद्यं प्रपद्येहंनरःप्रभुम् ॥ सहस्राशिरसंदेवं महर्षिभूतभावनम् ॥ ४२ ॥ ब्रह्मयोनिश्चविश्वस्य समेविष्णुःप्रसीदतु ॥ ब्रह्मपत्न्यांप्रलीयन्ते नष्टेस्थायरजङ्गमे ॥ ४३ ॥ आहूतसंप्लवेचैवलीयते

हुआहू ॥ ३८ ॥ हमारी नासिका अपने कारण पृथिवी को जावे, हमारी जिह्वा जलको जावे व नेत्र अग्निको जावे, हमारी खाल वायुको प्राप्तहोवे ॥ ३९ ॥ वाणी आकाशको जावे, मन अपने कारणको प्राप्तहोवे, हमारा अहङ्कार बुद्धिको जावे और हमारी बुद्धि आपमें लीनहोवे ॥ ४० ॥ सब इन्द्रिय, गुण और पृथिवीआदि महान्भूतोंसे मेरा वियोग होजावे व हमारे सत्त्वगुण और तमोगुण अपने २ कारण में लीन होजावें ॥ ४१ ॥ मालिकों के मालिक, दोषोंसे रहित, हजारों शिरोमूर्ति, महर्षि, प्राणियों के रचनेवाले, देवोंके मैं मनुष्य शरणहूँ ॥ ४२ ॥ वेदों व जगत के कारण वह विष्णु मुझपर प्रसन्नहोवे, स्थावर जङ्गमरूप सब जगतके नष्ट

होनेपर जगत् के सब कारण मायामें लीन होते हैं ॥ ४३ ॥ प्रलय के होनेपर महत्तत्त्व प्रकृति में लीन होता है वैष्णवसूक्त के सामवेद के दो मन्त्रोंसे जिसके वास्ते होम किया जाता है वह विष्णु मुझसे प्रसन्न होवे ॥ ४४ ॥ अग्नि, चन्द्र, सूर्य, देवता, ब्रह्मा, रुद्र, इन्द्र और योगियोंके तेजोंको जो बढ़ाता है वह विष्णु मुझपर प्रसन्न होवे ॥ ४५ ॥ आप उत्पन्न नहीं होते हैं और इस दुनिया की रास्ता तुम्हींहो आपकी कोई मूर्ति अर्थात् देह नहीं है और सब देहोंके जीतनेवालेहो आप पुराने कभी नहीं होते हमेशा नये बनेरहते हो माया व महत्तत्त्वरूपहो चेतन पुरुष आलस्यरहित आपही हो ॥ ४६ ॥ जो चेतनरूप से प्रत्यक्ष विद्यमान और सबसे श्रेष्ठ है उसी के हम शरणागत हैं चन्द्रमा और सूर्यकी तरह जो आपही तेजको फैलाता है ॥ ४७ ॥ जिससे सब दिशायें प्रकट होती हैं वह महात्मा प्रसन्न होवे गुणवाला

प्रकृतौमहत् ॥ ह्यतेचपुनस्ताभ्यां समेविष्णुःप्रसीदतु ॥ ४४ ॥ अग्निसोमार्केदेवानां ब्रह्मरुद्रेन्द्रयोगिनाम् ॥ यस्ते जयतितेजांसि समेविष्णुःप्रसीदतु ॥ ४५ ॥ अजस्त्वंजगतःपन्था अमूर्तिर्विश्वमूर्तिजित् ॥ नवंप्रधानञ्चमहान् पुरुष श्वेतनोत्तमः ॥ ४६ ॥ अगोप्योयःपरतरस्तमेवशरणगतः ॥ सोमसूद्योपमस्तेजो योवतारयतिस्वयम् ॥ ४७ ॥ विजायन्तेदिशोयस्मात्समहात्माप्रसीदतु ॥ गुणवान्निर्गुणश्चैवचेतनोचेतनोस्वगः ॥ ४८ ॥ सूक्ष्मःसर्वगतोदेहः समहात्मा प्रसीदतु ॥ सूर्यमध्यस्थितस्सोमस्तस्यमध्येतुसंस्मृतः ॥ ४९ ॥ भूतत्वाद्योचलोदीप्तः समहात्माप्रसीदतु ॥ एकत्वात्सवनानात्वंयैविदुर्यान्तितेपरम् ॥ ५० ॥ समस्सर्वेषुभूतेषुप्रद्वेष्यात्मजनप्रियः ॥ संभजत्यनाकाङ्क्षी भजतेनन्यचेतसः ॥ ५१ ॥ योयंसर्वात्मनाज्ञेयः समेविष्णुःप्रसीदतु ॥ चराचरमिदंसर्वं भूतग्रामंचतुर्विधम् ॥ ५२ ॥ त्वयितंतन्तुव

और जो निर्गुणभी है चेतन है और अपने आपको न जानने से अचेतन ऐसाभी है ॥ ४८ ॥ सूक्ष्म है सबमें प्राप्त है और देहरहित है वह महात्मा प्रसन्न होवे सूर्य के बीचमें पार्वती सहित शिवहैं तिनमें चेतनरूपसे जो रहता है पृथिवीआदि महाभूतोंके तुल्य होनेसे अचल है परन्तु आप प्रकाशवाला है वह महात्मा प्रसन्न होवे पहले आपके एक होनेसे फिर पछिसे आपके अनेक होनेको जो जानते हैं वे परमात्मा को प्राप्तहोते हैं ॥ ४९ ॥ ५० ॥ सब प्राणियों में जो एकरस है शत्रु, मित्र और उदासीन को बराबर भजता है आप कुछ इच्छा नहीं करता पर अनन्यभक्तोंको भजता है ॥ ५१ ॥ जो यह सबतरह से जाननेयोग्य है वह विष्णु मुझपर प्रसन्नहोवे चराचर

यह सब चारों प्रकार के प्राणियों का समूह ॥ ५२ ॥ आपमें गुँधाहै जैसे मणियां सूतमें गुँधी होवें आपको धर्म व अधर्म नहीं होताहै और गर्भ व जन्म आपको नहीं है ॥ ५३ ॥ इससे बुढ़ापा व जन्मसे छूटने के वारते में उसी के शरणागतहूँ सब योनियोंमें इन्द्रिय, गुण, स्वास और ऊपरका स्वास होताहै ॥ ५४ ॥ देह तो केवल काठकी तरह जड़ व नाशवाली व विपत्तिरूप है और अकेला होना तो हमारा आपही से सिद्धहै परन्तु देहके जन्म से हमारी उत्पत्ति जानपड़ती है ॥ ५५ ॥ इससे आपही में जिसकी बुद्धिहै और आपही में जिसके प्राणहैं व आपहीका भक्त और आपहीमें लगाहुआ मैं मौतके आनेपर आपहीका स्मरण करूंगा ॥ ५६ ॥ पूर्वजन्म में किन्हे

त्प्रोतं सूत्रेमणिगणाइव ॥ नतेधम्मोह्यधम्मोस्ति नगर्भोजन्मवापुनः ॥ ५३ ॥ जराजन्मविमोक्षार्थं तमेवशरणंगतः ॥ इन्द्रियाणिगुणश्चैव स्वासोच्छ्वासश्चयोनिषु ॥ ५४ ॥ केवलं दाम्बुदेहं नश्यं यत्परमापदम् ॥ स्वयमेकाकिमावोमेजन्म तोत्रपुनर्भवः ॥ ५५ ॥ त्वद्बुद्धिस्त्वद्गतप्राणस्त्वद्भक्तस्त्वत्परायणः ॥ त्वामेवाहं स्मरिष्यामि मरणे पथ्युपस्थिते ॥ ५६ ॥ पूर्वदेहेकृतायेतु व्याधयः प्रविशन्तु माम् ॥ वातादयश्च दुःखानि क्रुणं तन्मुञ्चतात्प्रभो ॥ ५७ ॥ श्रेयसांच परं श्रेयस्त्वन्येपाञ्चयशस्विनाम् ॥ सर्वपापविशुद्ध्यर्थं पुण्यं यत्परमंपदम् ॥ ५८ ॥ प्रातरुत्थाय सततं मध्याह्ने च दिनचर्ये ॥ अजस्रञ्च तथा जप्यं सर्वपापोपशान्तिदम् ॥ ५९ ॥ हरिं कृष्णं हृषीकेशं वासुदेवं जनार्दनम् ॥ प्रणतोऽस्मि जगन्नाथं समेपापं व्यपोहतु ॥ ६० ॥ गोवर्द्धनधरं देवं गोब्राह्मणहितैरतम् ॥ प्रणतोऽस्मि गदापाणिं समेपापं व्यपोहतु ॥ ६१ ॥ शङ्खचक्रं च

हुये पाप रोगरूप से प्रवेशकरें और वात, पित्त, कफ आदि व दुःखभी मुझ में पैठें जिससे हे प्रभो ! यह ऋण मेरा छूटजावे ॥ ५७ ॥ और यशवाले महात्माओं को जो पुण्यवाला परमपद कल्याणों में भी कल्याणरूप है सदा प्रातःकाल उठकर व मध्याह्न में व सायंकाल में सब पापोंकी शान्तिका देनेवाला यह स्तोत्र सब पापोंकी विशुद्धिके लिये निरन्तर जप करने लायक है ॥ ५८ ॥ हरि, कृष्ण, हृषीकेश, वासुदेव, जनार्दन और जगन्नाथको मैं प्रणाम करताहूँ वह मेरे पापको नाशकरे ॥ ५९ ॥ गोवर्द्धनके धरनेवाले, गऊ और ब्राह्मणों के हितमें लगेहुये, हाथमें गदाके रखनेवाले, देवको मैं प्रणाम करताहूँ वह मेरे पापको दूरकरे ॥ ६० ॥ शङ्खचक्रं च

चक्रवाले, शार्ङ्गधनुष के धरनेवाले, मधुदैत्य के मारनेवाले, लक्ष्मीके पति विष्णु को मैं प्रणाम करताहूँ वह मेरे पापको नाशकरे ॥ ६२ ॥ संसारकी स्थितिके लिये वर्चमान, कमलके समान नेत्रवाले, अविनाशी, आनन्दयुक्त, दामोदर भगवान् को मैं प्रणाम करताहूँ वह मेरे पापको नाशकरे ॥ ६३ ॥ नारायण, नर, सौम्य (सीधे), माधव, जनार्दन, श्रीवत्सवाले, शोभा या लक्ष्मीयुक्त देहवाले, लक्ष्मी के धारण करनेवाले, लक्ष्मी के स्थान ॥ ६४ ॥ और लक्ष्मी के पतिको मैं प्रणाम करताहूँ वह मेरे पापको नाशकरे व नाशरहित, सब प्राणियों के जिस मालिकका महात्मा लोग ध्यान करते हैं ॥ ६५ ॥ किसीतिरह जो नहीं बत-

क्रिणंविष्णुं शार्ङ्गिणंमधुसूदनम् ॥ प्रणतोस्मिपतिलक्ष्म्याःसमेपापंव्यपोहतु ॥ ६२ ॥ दामोदरंमुदायुक्तं पुण्डरीकान्नमव्ययम् ॥ प्रणतोस्मिस्थितंस्थित्यै समेपापंव्यपोहतु ॥ ६३ ॥ नारायणंनरसौम्यं माधवञ्चजनार्दनम् ॥ श्रीवत्संश्रीवपुःश्रीमच्छ्रीधरंश्रीनिकेतनम् ॥ ६४ ॥ प्रणतोस्मिश्रियःकान्तं समेपापंव्यपोहतु ॥ यमीशंसर्वभूतानां ध्यायन्तिचतमच्चरम् ॥ ६५ ॥ वासुदेवमनिर्देश्यं तमस्मिशरणङ्गतः ॥ सर्वबन्धविनिर्मुक्तो यंप्रविश्यपुनर्भवम् ॥ ६६ ॥ पुरुषो नैव प्राप्नोति तमस्मिशरणङ्गतः ॥ कृत्वा ब्रह्मचरुस्सर्वं स देवा सुखमानुषम् ॥ ६७ ॥ यः करोति पुनस्तृष्टिं तमस्मिशरणङ्गतः ॥ ब्रह्मरूप धरन् देवं यो निरूपं जनार्दनम् ॥ ६८ ॥ सृष्टित्वे संस्थितन्नित्यं प्रणतोस्मि जनार्दनम् ॥ यस्मान्नान्यत्परं किञ्चिच्चस्मिन्सर्वमिदं जगत् ॥ ६९ ॥ यस्य सर्वमध्यगो नन्तस्सर्वगन्तं न माम्यहम् ॥ योस्ति भूतेषु सर्वेषु स्थावरं जङ्गमेषु च ॥ ७० ॥

लाया जासक्ता है उस वासुदेव की शरण को मैं प्राप्त हूँ व जिसको पाकर सब बन्धनों से छूटा पुरुष फिर जन्मको नहीं पाता है हम उसीके शरणागत हैं व प्रलयमें जो देवता, दैत्य और मनुष्यों के सहित सब जगत को ब्रह्मरूपकर फिर सृष्टिको करता है हम उसीके शरणागत हैं व जो देव प्रलय में ब्रह्मरूप का धरनेवाला है और सृष्टि में वही जनार्दन कारणरूप होता है उसी जनार्दनको मैं सदा प्रणाम करताहूँ जिससे परे और कुछ नहीं है और जिसमें यह सब संसार रहता है ॥ ६६ । ६७ । ६८ । ६९ ॥ जो सबके बीचमें प्राप्त है और अन्त जिसका नहीं है ऐसे घट २ वासीके हम नमस्कार करते हैं जो सब स्थावर, जङ्गम, प्राणियोंमें विद्यमान है ॥ ७० ॥

वही विष्णु हमारे सब पापोंको नाशकरै जैसे निवृत्तिरूप कियागया कर्म व विष्णुके वास्ते कियागया कर्म निवृत्त होजाताहै ॥ ७१ ॥ इसीतरह अनेक जन्मोंके कर्मोंसे उठाहुआ मेरा पाप नष्ट होजावे व रात्रि तथा प्रातःकाल, मध्याह्न और अपराह्नमें ॥ ७२ ॥ अज्ञानसे मन, वचन और शरीरसे जो कुछ पाप मैंने कियाहो वह सब क्षणमात्र में नष्ट होजावे ॥ ७३ ॥ जैसे पानी में लोन पिघलजाताहै वैसेही वह सब पाप नष्ट होजावे, औरों को पीड़ा देतेहुये व औरोंकी भिन्दा करतेहुये हमारे जन्मसे जो पाप कमायागया हो ॥ ७४ ॥ व गैरकी द्रव्य व उमके खेत या मकानआदि की इच्छासे व क्रोध से जो पापहुआहो वह सब लीनहोजावे जैसे पानी में लोन पिघलजाता

विष्णुरेवसर्वपापं ममाशेषंप्रणश्यतु ॥ नष्टतंनिवृत्तंकर्मविष्णोर्यत्कर्ममवाकृतम् ॥ ७१ ॥ अनेकजन्मकर्ममोर्त्य पापंनश्यतिमेतथा ॥ निशायाञ्चतथाप्रातर्मध्याह्नेचापराह्नयोः ॥ ७२ ॥ अज्ञानाच्चकृतंपापं कर्ममणामनसागि रा ॥ यत्कृतंचाशुभंकिञ्चित्सर्वनश्यतुक्षणात् ॥ ७३ ॥ तत्सर्वविलयंयातु तोयेषुलवणंयथा ॥ परपीडाञ्चनिन्दाञ्च कुर्वतो जन्मनाज्जितम् ॥ ७४ ॥ परद्रव्यपरचेत्रवाञ्छाक्रोधोद्भवञ्चयत् ॥ तत्सर्वविलयंयातु तोयेषुलवणंयथा ॥ ७५ ॥ विष्णवेवासुदेवाय हरयेकेशवायच ॥ जनार्दननायकृष्णाय नमोभूयोनमोनमः ॥ ७६ ॥ नाभागोनामराजर्षिर्न मर्मदातीरसङ्गमे ॥ चकारस्तोत्रमतुलं वैष्णवन्तुप्रजापतिः ॥ ७७ ॥ ब्रह्मणोद्भिरसाप्राप्तं तस्मादिन्द्रेणभारत ॥ वशिष्ठः श्रावयामास नाभागंराजसत्तमम् ॥ ७८ ॥ स्नात्वाचनमर्मदातोये दत्त्वादानान्यनेकशः ॥ कामिकंयानमारुह्य ना भागस्वपुरींययौ ॥ ७९ ॥ स्तौतिनामसहस्रेण यस्तत्वेनजनार्दनम् ॥ नतस्थपुनरावृत्तिर्घोरैरसंसारसागरे ॥ ८० ॥

इति श्रीस्कन्दपुराणैरेवाखण्डे विष्णुस्तुतिर्नामद्विसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७२ ॥ *

है ॥ ७५ ॥ विष्णु, वासुदेव, हरि, केशव, जनार्दन और कृष्णजी के लिये वार २ नमस्कार है ॥ ७६ ॥ नर्मदाके तीर सङ्गम में नामागनामके राजर्षि प्रजापति इस अतुल प्रभाववाले वैष्णवस्तोत्रको करतेहुये ॥ ७७ ॥ ब्रह्मासे इसको अङ्गिराने पाया और वशिष्ठजीने राजाओंमें श्रेष्ठ नाभागको सुनाया ॥ ७८ ॥ नर्मदा के जलमें स्नानकर और अनेक दानोंको देकर मनमानी स्वामी पर सत्वार होकर नाभाग राजा अपनी पुगीको जातेहुये ॥ ७९ ॥ हजारनामवाले इस

स्तोत्रसे जो जनार्दन देवकी स्तुति करता है उसकी फिर इस घोर संसारसागरमें आवृत्ति नहीं होती है ॥ ८० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणरेवाक्षणेप्राकृतभाषास्तुवादिधिष्णुस्तुतिर्नामद्विमसतितमोऽध्यायः ॥ ७२ ॥

॥ ७२ ॥

॥ ७३ ॥

॥ ७४ ॥

॥ ७५ ॥

॥ ७६ ॥

॥ ७७ ॥

॥ ७८ ॥

॥ ७९ ॥

॥ ८० ॥

॥ ८१ ॥

॥ ८२ ॥

॥ ८३ ॥

॥ ८४ ॥

॥ ८५ ॥

॥ ८६ ॥

॥ ८७ ॥

॥ ८८ ॥

॥ ८९ ॥

॥ ९० ॥

॥ ९१ ॥

॥ ९२ ॥

॥ ९३ ॥

॥ ९४ ॥

॥ ९५ ॥

॥ ९६ ॥

॥ ९७ ॥

॥ ९८ ॥

॥ ९९ ॥

॥ १०० ॥

मार्कण्डेय उवाच ॥ ततो गच्छेच्च राजेन्द्र मेघनादमिति स्मृतम् ॥ जलमध्ये महादेवो यत्र तिष्ठत्यदर्शितः ॥ १ ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ जलमध्ये महादेवस्तिष्ठते केन हेतुना ॥ उत्तरं दक्षिणं कूलं वज्रं यत्स्वादिजोत्तमम् ॥ २ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ एतदाख्यानमतुलं पुराणं श्रुति सुखावहम् ॥ पुराणं यच्छ्रुतं तात तत्ते वक्ष्याम्यशेषतः ॥ ३ ॥ पुरात्रेनायुगेतात पौलस्त्यो देवक एतकः ॥ त्रिलोकविजयी रौद्रसुरासुरभयङ्करः ॥ ४ ॥ देवदानवयक्षाणां गन्धर्वो रगरक्षसाम् ॥ अवधो वरदानेन यत्र पर्यटते महीम् ॥ ५ ॥ तत्र देवगिरौ रम्ये दानवो बलदर्पितः ॥ मयोनो नामेति विख्यातो महानासीन् नृपेश्वरः ॥ ६ ॥ रावणस्तन्तोगत्वा विनयावनतः स्थितः ॥ पूजितो दानसम्मानैर्भयं वचनमब्रवीत् ॥ ७ ॥ कश्यपं पद्मपत्राक्षी पूर्णचन्द्रनिभानना ॥ किन्नामधेयेयातपते तप उग्रं कथं विभो ॥ ८ ॥ मय उवाच ॥ दानवानाम्पतिः श्रेष्ठो मयो ह

में त्रेतायुग विप्रे देवताओं को कांटासा, तीनों लोकों का विजय करनेवाला, देवता और दैत्यों को भय करानेवाला, पुलस्ति के वंशवाला (रावण) राजस ॥ ५ ॥ वरदान के कारण से देवता, दानव, यक्ष, गन्धर्व, सर्प और राजसों के नहीं मारने योग्य होता हुआ जहां ग्रुथि में घूम रहा था ॥ ५ ॥ हे नृपेश्वर ! उसी रमणीय देवपर्वत पर अपने बलसे अहङ्कार को प्राप्त हो रहा मय इस नामसे प्रसिद्ध बड़ा जबरदस्त दानव भी विद्यमान था ॥ ६ ॥ तब रावण उसके पास जाकर अपनी लियाकृतसे नम्र होकर खड़ा हुआ व दान और सम्मान से पूजन किया गया मयसे वचन बोला ॥ ७ ॥ कि हे विभो ! कमलदल, सरीखे नेत्रोंवाली व पूर्णचन्द्रके बराबर

मुखवाली यह कन्या किसकी है और इसका क्या नाम है व किसलिये यह उग्र तपस्याको करती है ॥ ८ ॥ तब मय नोला कि दानवोंका श्रेष्ठपति मैं नामसे मय नाम का दानव हूँ और यह तेजव्रती नाम मेरी स्त्री है व यह सुन्दरी कन्या भी मेरी है ॥ ९ ॥ जोकि मन्दोदरी इस नामसे प्रसिद्ध है पतिके वास्ते तपस्या करती है तब मदसे श्रद्धाकरवाला रावण उसके वचन को सुनकर ॥ १० ॥ नम्रहोकर खड़ा हुआ मयसे वचन बोला कि देवता और दानवों के अहङ्कारका तोड़नेवाला मैं पौलस्त्य (रावण) नामका राजा हूँ ॥ ११ ॥ हे महाभाग ! मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि आप कन्यादेनेको योग्यहो तब ब्रह्माजीका वंश जानकर मय महात्मा भी ॥ १२ ॥ विधिसे रावण

नामनामतः ॥ भाग्यतेजवतीनाम समेयंतनयाशुभा ॥ ९ ॥ मन्दोदरीतिविख्याता तपतेपतिकारणात् ॥ श्रुत्वालुव चनंतस्य रावणोमददर्पितः ॥ १० ॥ प्रश्रितः प्रणतोभूत्वा मयं वचनमब्रवीत् ॥ पौलस्त्यो नाम राजा हं देवदानवदर्पहा ॥ ११ ॥ प्रार्थयामि महाभाग सुतान् त्वन्तद्वदतु मर्हसि ॥ ज्ञात्वापि तामहं वंशमयेनापि महात्मना ॥ १२ ॥ सुतादत्तारावणाय कृत्वा विधिविधानतः ॥ गृहीत्वा तान्तदारब्धः पूज्यमानो निशाचरैः ॥ १३ ॥ दिव्यैर्यौ नैविमानैश्च क्रीडते तु तया सह ॥ पुत्रं पुत्रवतां श्रेष्ठो जनयामास भारत ॥ १४ ॥ तेनैव जातमात्रेण रवोमुक्तो महात्मना ॥ संवर्तकस्य मेघस्य येन लोको जडीकृतः ॥ १५ ॥ श्रुत्वा तन्निनदंघोरं त्रस्तो लोकपितामहः ॥ नामचक्रे तदा तस्य मेघनादो भविष्यति ॥ १६ ॥ एतन्नामकृतं सोऽपि परमं व्रतमांस्थितः ॥ भावयामास देवेश सुमया सह शङ्करम् ॥ १७ ॥ व्रतं नियमदानैश्च होमैर्जाप्यै

को अपनी कन्या देता हुआ तब वह राजास और राजासोंसे पूजन किया जाता उस कन्याको लेकर ॥ १३ ॥ दिव्य सवारी व विमानोंसे उस अपनी स्त्रीके सहित विहार करता हुआ और हे भारत ! पुत्रवालोंमें श्रेष्ठ रावण एक पुत्र पैदा करता हुआ ॥ १४ ॥ उत्पन्न होतेही उस लड़के ने महाप्रलयके मेघकासा शब्द किया जिस शब्दसे लोक जड़ कर दिया गया ॥ १५ ॥ उस घोरशब्द को सुनकर ब्रह्माजी डरगये तब उसका नाम किया कि यह मेघनाद होवेगा ॥ १६ ॥ यह नाम जब उसका कर दिया गया तब वह भी बड़े भारी व्रतमें स्थित होता हुआ और पार्वती के सहित देवेश महादेवजी को प्रसन्न करता हुआ ॥ १७ ॥ व्रत, नियम, दान, होम, जप और

दिव्य कुच्छचान्द्रायणश्रादिकोंसे अपने शरीरको लेक देता हुआ ॥ १८ ॥ इसीतरह तप करता हुआ मेघनाद नर्मदा के तटपर उतरकर और लिंगरूपी महादेव को वहां धरकर पूजन करता हुआ व जपको कर फिर वह राजा ॥ २० ॥ बड़ीदूर लङ्कामें जानेकी इच्छा करता हुआ हे नृपसत्तम ! बायें हाथसे एक पड़ेहुये लिंगको उठाया ॥ २१ ॥ जब रावणका बेटा पहले और दूसरे लिंगको भक्ति से उठाने लगा तो महादेव जीका वह महालिंग नर्मदा के जलमें गिरपड़ा ॥ २२ ॥ फिर उम परमेष्ठी लिंगने

विधानतः ॥ कुच्छचान्द्रायणैर्दिव्यैः क्षिप्रयेतेचकलेवरम् ॥ १८ ॥ एवमन्यद्विनेतात कैलासंधरणीधरम् ॥ गत्वाल्लिङ्ग मयंगुहा प्रस्थितोदक्षिणामुखः ॥ १९ ॥ नर्ममदातटमाश्रित्य स्नातुकामोमहाबलः ॥ निक्षिप्यापूजयद्देवं कृत्वाजा प्यंजनेश्वरः ॥ २० ॥ गन्तुकामः परमार्गं लङ्कायान्द्रपसत्तम ॥ एकंसमुद्धृतं लिङ्गं पतितंसव्यपाणिना ॥ २१ ॥ प्रथमञ्च द्वितीयञ्च भक्त्यापौलस्त्यनन्दनः ॥ तदादेवमहालिङ्गं पतितन्नर्ममदाभ्रमसि ॥ २२ ॥ पाहिपाहीतितेनोक्तो लिङ्गेनपर मेष्ठिना ॥ द्वितीयं पतितं तावदुत्तरेनर्ममदातटे ॥ २३ ॥ मेघनादेति विख्यातं लिङ्गतत्र सुशोभनम् ॥ मध्यमेऽश्वरनामे तिजलमध्येव्यवस्थितम् ॥ २४ ॥ यावदुद्धर्तुकामोसौ सप्तपातालमागमत् ॥ देवयोनिश्चयं ज्ञात्वा निवृत्तोऽसौ निशाच रः ॥ २५ ॥ जगामाकाशमाविश्य पूज्यमानो निशाचरैः ॥ तदाप्रभृति तर्त्तार्थं मेघनादेति विश्रुतम् ॥ २६ ॥ मेघारवेति विख्यातमुत्तरेखेटकः शुभः ॥ पूर्वतुर्गर्जनन्नाम सर्वपापक्षयङ्करम् ॥ २७ ॥ तस्मिंस्तीर्थेतुराजेन्द्र यस्तुस्नानंसमाच

कहा कि रत्नाकरो २ तबतक दूसरा लिंग भी नर्मदा के उत्तरवाले तटपर गिरपड़ा ॥ २३ ॥ वह अतिसुन्दर लिंग वहां मेघनाद इस नामसे विदित हुआ मध्यमेश्वर यह भी उसका नाम हुआ वह जलके बीचमें स्थित हुआ ॥ २४ ॥ जबतक मेघनाद उसको उठावे तबतक वह सातों पातालोंमें व्याप्त होगया उन दोनों लिंगोंके अभि- प्रायको जानकर वह राजस लौटगया ॥ २५ ॥ और राजसों से पूजाजाता हुआ आकाश होकर चलागया तबसे लेकर वह तीर्थ मेघनाद इस नामसे प्रसिद्ध हुआ ॥ २६ ॥ और उसीका मेघारव ग्रह भी नाम विख्यात हुआ नर्मदाके उत्तरतट में खेटक नामका उत्तम तीर्थ हुआ और पूर्वमें सब पापों का नाश करनेवाला गर्जननाम

का तीर्थहुआ ॥ २७ ॥ हे राजेन्द्र ! जो मनुष्य एक दिन रात व्रत रहकर इस तीर्थमें स्नान करता है वह बहुत कालतक कल्याणको प्राप्तहोता है ॥ २८ ॥ हे नराधिप ! उस तीर्थमें जो पिण्डदान करता है तो उससे उसके पितर स्वर्गमें बारहवर्षतक तृप्त रहते हैं ॥ २९ ॥ और हे नराधिप ! उस तीर्थमें जो ब्राह्मणों को भोजन कराता है तो जो फल वहां योगियोंको मिलताहै उसी फलको वह भी पाता है इसमें संशय नहीं है ॥ ३० ॥ और जो वहां अग्निप्रवेश व जलप्रवेश व अन्नदान व्रत करताहै उसकी फिर लौटनेवाली गति नहीं होती है यह महादेवजीने कहाहै ॥ ३१ ॥ हे नरशार्दूल ! इसप्रकार यह उत्तम गर्जितेश्वरतीर्थ आपसे कहागया जो कि स्मरण-

रेत् ॥ अहोरात्रोपितोभूत्वा सलभेच्छाश्वतंशुभम् ॥ २८ ॥ पिण्डदानन्तुयःकुड्यां तस्मिंस्तीर्थेनराधिप ॥ तेनद्वाद
शवर्षाणि पितरस्तापितादिवि ॥ २९ ॥ यस्तुभोजयतेविप्रांस्तस्मिंस्तीर्थेनराधिप ॥ यत्फलंयोगिनांतत्र लभतेनात्रसं
शयः ॥ ३० ॥ अग्निवेशंजलेवापि अथवापिह्यनाशकम् ॥ अनिवर्तिकागतिस्तस्य स्यादिदंशङ्करोब्रवीत् ॥ ३१ ॥
एवन्तेनरशार्दूलगर्जितेश्वरमुत्तमम् ॥ कथितंस्मरणादेव सर्वपापक्षयङ्करम् ॥ ३२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणोरेवाखण्डे
मेघनादेश्वरमहिमानुवर्णनोनामत्रिसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७३ ॥ * ॥ * ॥

मार्कण्डेयउवाच ॥ ततो गच्छेच्च राजेन्द्र दासतीर्थं मनुत्तमम् ॥ दासकोयत्र संसिद्धिं मिन्द्रस्य दयितं सखा ॥ १ ॥ यु
धिष्ठिरउवाच ॥ दासकेण कथं तात तपश्चार्णपुरा नघ ॥ विधानं श्रोतुमिच्छामि सर्वपापक्षयङ्करम् ॥ २ ॥ मार्कण्डेयउ
वाच ॥ अहन्ते कथयिष्यामि विचित्रं यत्पुरातनम् ॥ दृत्तं समभवत्तत्र ऋषिणां भावितात्मनाम् ॥ ३ ॥ सुतो वज्रधरस्या

मात्रही से सब पापोंका क्षय करनेवाला है ॥ ३२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणोरेवाखण्डे प्राकृतभाषाऽनुवादे मेघनादेश्वरमहिमाऽनुवर्णनोनामत्रिसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७३ ॥

फिर मार्कण्डेयजी बोले कि हे राजेन्द्र ! तदनन्तर उत्तम दासतीर्थको जावे जहां इन्द्रका प्यारा मित्र दारुक सिद्ध हुआ है ॥ १ ॥ तब युधिष्ठिरजी बोले कि हे तात ! हे अन्नघ ! श्रुतिले जमाने में दारुक ने कैसा तप किया सो सब पापोंके नाश करनेवाले उसके तपके विधान को सुनने की हम इच्छा करते हैं ॥ २ ॥ तब मार्कण्डेयजी बोले कि महात्मा ऋषियों के प्रत्यक्ष जो वहां पुराना विचित्र वृत्तात हुआ है उसको हम तुमसे कहेंगे ॥ ३ ॥ कि नामसे मातलि नामका इन्द्रका साराथि

हुआ सो वह पूर्वकाल में किसी कारण के होनेपर अपने पुत्रको शाप देताहुआ ॥ ४ ॥ तब हे भारत ! शापके कारणसे कांपताहुआ दारुक कल्याणदायक, इन्द्रजी के दोनों पांवोंको पकड़कर वहीं देवेंद्रजी से कहताहुआ ॥ ५ ॥ कि हे सुरेश्वर ! अपने पितासे शापित कियेगये अनाथ मेरे घोरशापका अन्त किस कर्म से होगा ॥ ६ ॥ तब इन्द्रजी बोले कि तू नर्मदाके तटपर जाकर जबतक युगका अन्तहो तब तक रह और महादेवजी को प्रसन्न कर इससे तेरा जन्म फिर होगा ॥ ७ ॥ फिर से तू यदुकुल में नाम से दारुक नामका होकर वहीं मनुष्ययोनि में विद्यमान शङ्ख, चक्र और गदा के धरनेवाले देवेश नारायण को रथपर चढाकर उससे सिद्धि को सीन्मातलिर्नामनामतः ॥ सपुत्रंशप्तवान्पूर्वं कथञ्चित्कारणान्तरे ॥ ४ ॥ शापहेतोर्विपमान इन्द्रस्यचरणौशुभौ ॥ प्र पीड्यतत्रदेवेंद्रं विज्ञापयतिभारत ॥ ५ ॥ समताताभिःशप्तस्य अनाथस्यसुरेश्वर ॥ कर्मणाकेनशापस्य घोरस्यान्तो भविष्यति ॥ ६ ॥ शक्रउवाच ॥ नर्मदामनामतः ॥ त्रिष्टयावद्युगस्यान्तं पुनर्जननमाप्स्य सि ॥ ७ ॥ पुनर्भूत्वायदुकुले दारुकोनामनामतः ॥ आरोहयित्वादेवेशं शङ्खचक्रगदाधरम् ॥ ८ ॥ मानुषंतत्रसम्पन्नं ततःसिद्धिमवाप्स्यसि ॥ एवमुक्तस्तुदेवेन सहस्राक्षेणभारत ॥ ९ ॥ प्रणम्यशिरसाभूमिमागतोसौहतप्रभः ॥ नर्मदा तटमाश्रित्य कथितस्त्वकलेवरः ॥ १० ॥ व्रतोपवासैर्विविधैर्जपहोमपरायणः ॥ महादेवंमहात्मानं वरदंशूलपाणि नम् ॥ ११ ॥ अभजत्परयाभक्त्या यावदाहूतसम्प्लवम् ॥ अंशावतरणेविष्णोस्ततोभूत्वामहामतिः ॥ १२ ॥ तोषयित्वाजगन्नाथं ततोयातस्ससहस्रिम् ॥ एषतेसम्भवस्तातदारुतीर्थस्यसुव्रत ॥ १३ ॥ कथितस्तुमयापूर्वं यथामेशङ्क पावेगा हे भारत ! इस प्रकार इन्द्रदेव से कहा गया दारुक ॥ ८ ॥ शिर से इन्द्रके नमस्कार कर तेजरहित आप पृथिवी को आताहुआ और नर्मदा के तटपर जाकर जप व होम करनेमें लगा हुआ अनेक तरहके व्रत व उपासों से दुर्बल करदिया है अपने शरीर को जिसने ऐसा दारुक वर के देनेवाले महात्मा शूलपाणि महादेवजी को ॥ १० ॥ ११ ॥ बड़ी भक्ति से युगान्ततक भजता हुआ तदनन्तर अंशों से विष्णुके अवतारके होनेपर आपभी बड़ा बुद्धिवाला उत्पन्न होकर ॥ १२ ॥ और जगत् के स्वामी नारायणको प्रसन्नकर तदनन्तर वह उत्तम गतिको प्राप्तहुआ हे तात ! हे सुव्रत ! यह दारुक तीर्थकी उत्पत्ति आप से ॥ १३ ॥ मैंने कही पहले

जैसे शङ्करजी ने मुझसे कही थी तब आश्चर्य से युक्त बुद्धिवाले राजा युधिष्ठिर ॥ १४ ॥ बार बार रोयें जिनके खड़े होते ऐसे आप घबडाने से देखने लगे फिर मार्कण्डेयजी ने कहा कि हे नरेश्वर ! उस तीर्थ में विधिपूर्वक मनुष्य स्नान कर ॥ १५ ॥ और सन्ध्योपासन कर व वहीं पितर और देवताओं का तर्पण कर जो सावधान होता हुआ वहीं देह त्याग करता है ॥ १६ ॥ वह अश्वमेध के फलको पाकर महादेवजी के समीप रमता है और उस तीर्थ में जो भक्ति से पवित्र होकर ब्राह्मण को भोजन कराता है ॥ १७ ॥ वह हजार ब्राह्मणों के भोजन कराने के उत्तम फलको पाता है स्नान, दान, तप, होम, स्वाध्याय और पितरोंका तर्पण आदि जो कुछ शुभकर्म

रोब्रवीत् ॥ ततोयुधिष्ठिरा राजा विस्मयाविष्टचेतनः ॥ १४ ॥ आन्तोवलोकयामास स्तब्धरोमासुहुर्मुहुः ॥ तस्मिंस्तीर्थेनरस्मनात्वा विधिपूर्वनेरेश्वर ॥ १५ ॥ उपास्यसन्ध्यांतत्रैव सन्तर्प्यपितृदेवताः ॥ देहत्यागञ्चतत्रैव यः करोतिसमाहितः ॥ १६ ॥ सोऽश्वमेधफलंप्राप्य रमतेशिवसन्निधौ ॥ तस्मिंस्तीर्थेतुयोभक्त्या भोजयेद्ब्राह्मणं शुचिः ॥ १७ ॥ स तु विप्रसहस्रस्य लभते फलमुत्तमम् ॥ स्नानं दानं तपो होमस्स्वाध्यायः पितृतर्पणम् ॥ १८ ॥ यत्कृतन्तु शुभंतत्र तत्सर्वलभतेऽक्षयम् ॥ १९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे रेवाखण्डे दारुतीर्थमहिमानुवर्णनो नाम चतुस्सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७४ ॥

मार्कण्डेय उवाच ॥ ततो गच्छेच्च राजेन्द्र देवतीर्थमनुत्तमम् ॥ यत्र देवास्त्रयस्त्रिंशत्तत्त्वासिद्धिपराङ्मताः ॥ १ ॥ पुरा देवासुरे युद्धे दानैर्बैर्बलदर्पितैः ॥ इन्द्रो देवगणैस्सार्द्धं स्वराज्याच्छयावितोभुशब् ॥ २ ॥ हस्त्यश्वरथयानौ धैर्मर्दयित्वा च वाहिनीम् ॥ विशक्ताभोजिरेमार्गं प्रहारैर्जर्जरीकृताः ॥ ३ ॥ जम्भशुम्भनिशुम्भौ चैस्तु हण्डग्रहकैस्सह ॥ बलिभि

वहाँ किया गया वह सब अक्षय मिलता है ॥ १८ ॥ १९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे रेवाखण्डे दारुतीर्थमहिमानुवर्णने नाम चतुस्सप्ततितमोऽध्यायः ७४ ॥ मार्कण्डेयजी बोले कि हे राजेन्द्र ! तदनन्तर अत्युत्तम देवतीर्थ को जावे जहाँ तैत्तिरीय देवता तप करके परमसिद्धि को प्राप्त हुये ॥ १ ॥ आगे देवता और दैत्योंकी लड़ाई में बलके अभिमानी दैत्योंने देवताओं के सहित इन्द्रको उनकी राज्य से अपहरा दिया ॥ २ ॥ अपने हाथी, घोड़े, रथ और भी सवारियों के समूहों से देवताओं की सेना को मर्दन कर उनको अपने प्रहारों से जर्जर कर दिया तब अशक्त होकर देवताओं ने भागने की रास्ता ली ॥ ३ ॥ जम्भ, शुम्भ, निशुम्भ और तुहुण्डग्रह आदिके

सहित बली दैत्योंसे दबायेगये सब देवतालोग ब्रह्माजी के समीप जाते हुये ॥ ४ ॥ अपने २ शिशुसे परमेष्ठी ब्रह्मादेव के प्रणामकर इन्द्र और अग्निआदि देवता अपने स्वामी ब्रह्माजी से अपना हाल कहा ॥ ५ ॥ कि हे महाभाग ! आप हम लोगों को देखा देखो हम दानवों से विकल करादियेगये हैं वृद्धबायेगये हमलोग अपने पुत्रों व स्त्रियोंके सहित आपकी शरण आये हैं ॥ ६ ॥ हे देवेश ! हे सर्वलोकपितामह ! आप हमको बचावें-क्योंकि हे सुरेशान ! सबके ऊपर रहनेवाले आपको छोड़कर हमारी दूसरी गति नहीं है ॥ ७ ॥ तब ब्रह्माजी बोले कि हे देवताओं ! दानवों के नाशके लिये नर्मदातट में टिककर तुम सबलोग तप करो क्योंकि तपही परमबल

बोधितास्सर्वे ब्रह्माणमुपतस्थिरे ॥ ४ ॥ प्रणम्यशिरसादेवं ब्रह्माणपरमेष्ठिनम् ॥ व्यज्ञापयन्तदेवेशमिन्द्राग्निः कपुरो गमाः ॥ ५ ॥ पश्यपश्यमहाभाग दानवैराकुलीकृताः ॥ बाधिताः पुत्रदाराभ्यां त्वामेवशरणङ्गताः ॥ ६ ॥ परित्रायस्व देवेश सर्वलोकपितामह ॥ नान्यागतस्सुरेशान सुक्त्वात्वां परमेष्ठिनम् ॥ ७ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ दानवानां विधातार्थं न मर्मदातटमाश्रिताः ॥ तपः कुरुत भो देवास्तपोहि परमंबलम् ॥ ८ ॥ नान्योपायो नैव मन्त्रो न विद्या न च विक्रमः ॥ विनारे वाजलं पुण्यं सर्वपापक्षयङ्करम् ॥ ९ ॥ दारिद्र्यव्याधिमरणबन्धनव्यसनानि च ॥ एतानि चैव पापस्य फलानीति मतिर्मम ॥ १० ॥ एवं ज्ञात्वा विधानेन तपः कुरुत दुष्करम् ॥ पूज्यते शास्त्रमभं सर्वैः प्राप्नुयाताभयं ततः ॥ ११ ॥ तच्छ्रुत्वा च च नन्देवा ब्रह्मणः परमेष्ठिनः ॥ नर्मदा मागतास्सर्वे तदेन्द्राग्निपुरोगमाः ॥ १२ ॥ विचेरुस्तत्र विपुलं तपः परमदुस्सहम् ॥ सकल्पैः परमांराजंस्तत्ते सिद्धिमवाप्नुवन् ॥ १३ ॥ तदा प्रभृति तर्तार्थं देवतीर्थमिति श्रुतम् ॥ गीयते सर्वलोकेषु सर्वपाप

है ॥ ८ ॥ सब पापोंको क्षय करनेवाले व पुण्यवाले नर्मदाजल को छोड़कर और कोई मन्त्र व विद्या और पराक्रम इसका उपाय नहीं है ॥ ९ ॥ दारिद्र्य, रोग, मौत, कैद और पीड़ाये ये सब पापही के फल हैं यह हमारी मति है ॥ १० ॥ ऐसा जानकर विधान से दुष्कर तप को करो और सबलोग महादेवजी के लिङ्गका पूजन करो तिससे अभय पावोगे ॥ ११ ॥ इन्द्र व अग्नि आदि देवता परमेष्ठी ब्रह्माजीके इस वचन को सुनकर सब नर्मदा को आते हुये ॥ १२ ॥ हे राजन् ! वहां बड़े दुस्सह बहुत तप को कल्पोंतक किया तिससे उन देवताओं ने बड़ी सिद्धि को पाया ॥ १३ ॥ तबसे लेकर वह तीर्थ देवतीर्थ इस नामसे प्रसिद्ध हुआ सबलोकों में सब पापोंका नाश

करनेवाला वह गायाजाता है ॥ १४ ॥ वहां श्रद्धावाले मनसे व भक्तिसे जो विधि सहित स्नान करता है वह मुक्तिफल को पाता है ॥ १५ ॥ सब देवताओं से पूजेगये उन देवों को जो पूजता है वह श्रवमेधयज्ञ के उत्तम फल को पाता है ॥ १६ ॥ हे नराधिप ! उस तीर्थ में जो ब्राह्मणों को भोजन कराता है वह सदा तृप्त रहता है व वहां पर्वत की बढ़नेवाली रमणीक एक देवशिला है ॥ १७ ॥ उस देवतीर्थ में संन्याससे मरेहुये मनुष्यों की अक्षयगति होती है और हे युधिष्ठिर ! जो वहां अग्निमें प्रवेश करता है ॥ १८ ॥ वह तबतक रुद्रलोक में रहता है जबतक सृष्टिका प्रलयहोता है इसीतरह स्नान, जप, होम, स्वाध्याय, देवताओंका पूजन ॥ १९ ॥

क्षयङ्करम् ॥ १४ ॥ तत्र श्रद्धात्मना योपि विधिनापि समन्वितः ॥ स्नानं समाचरेद्भक्त्या सलभेन्मौक्तिकं फलम् ॥ १५ ॥
यस्तमर्चयते देवं सर्वदेवैस्त्वपूजितम् ॥ लभते चाश्वमेधस्य फलं यागस्य चोत्तमम् ॥ १६ ॥ यस्तु भोजयते विप्रांस्तस्मिन्
स्तीर्थे नराधिप ॥ तत्र देवशिलारम्या महापुरया द्विवर्द्धिनी ॥ १७ ॥ संन्यासेन मृतानान्तु नराणामक्षयगतिः ॥ अ
ग्निप्रवेशं यः कुर्याद्दिवतीर्थे युधिष्ठिर ॥ १८ ॥ रुद्रलोके वसेत्तावद्यावदाहूतसम्प्लवम् ॥ एवं स्नानं जपो होमस्स्वाध्यायो
देवतार्चनम् ॥ १९ ॥ सुकृतं दुष्कृतं वापि तत्र तीर्थेऽक्षयम् भवेत् ॥ एतावद्विधिरुद्दिष्टा उत्पत्तिश्चैव भारत ॥ २० ॥ देवती
र्थस्य चरितं सर्वतीर्थेष्वनुत्तमम् ॥ २१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे रेवाखण्डे देवतीर्थमहिमानुवर्णनो नाम पञ्चसप्ततित
मोऽध्यायः ॥ ७५ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

मार्कण्डेय उवाच ॥ ततो गच्छेच्च राजेन्द्र गुहावासीति चोत्तमम् ॥ यत्र सिद्धो महादेवो गुहावासीति शङ्करः ॥ १ ॥ गु

पुण्य और पाप जो कुछ वहां तीर्थमें किया जाता है वह सब अक्षय होता है हे भारत ! इतनी विधि व तीर्थकी उत्पत्ति कही गई है ॥ २० ॥ जिससे कि सब तीर्थोंमें देवतीर्थ का चरित अत्युत्तम है ॥ २१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे रेवाखण्डे प्राकृतभाषाऽनुवर्णनो नाम पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७५ ॥ *

फिर मार्कण्डेयजी बोले कि हे राजेन्द्र ! तदनन्तर गुहावासी इस नामके उत्तम तीर्थ को जावे जहां गुहावासी इस नामसे कल्याण करनेवाले महादेवजी सिद्ध

हुये है ॥ १ ॥ तब युधिष्ठिरजी बोले कि हे विप्रेन्द्र ! किस कार्यसे महादेवजी गुहावासी ऐसे कहाये हे अनघ ! यह सब विस्तारसे आप सुझ से कहें ॥ २ ॥ हे देव ! मैं सब सुननेकी इच्छा करता हूँ क्योंकि सुझको बड़ा आश्चर्य है तब मार्कण्डेय जी बोले कि हे महाप्राज्ञ ! हे नरेश्वर ! आपने जो बड़ा भारी प्रश्न हमसे किया है ॥ ३ ॥ पुराण में इसका बड़ा विस्तार है बुढ़ापे के कारण से सुझसे वह इस समय नहीं कहाजासکتा है क्योंकि मैं बहुत कालका हुआ हूँ ॥ ४ ॥ पहले दारुवन में देवताओं के समान ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यासी ब्राह्मण रहते थे ॥ ५ ॥ क्योंकि अपने धर्ममें रहनेवालों कोही परमपद कहागया है तबतक वसन्तसमय में किसी

धिष्ठिरउवाच ॥ केनकार्येणविप्रेन्द्र गुहावासीतिशङ्करः ॥ एतद्विस्तरतस्सर्वं कथयस्वसमानघ ॥ २ ॥ श्रोतुमिच्छाम्यहन्देव सर्वकौतूहलं हि मे ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ महाप्रश्नःकृतोमांयो महाप्राज्ञनरेश्वर ॥ ३ ॥ पुराणविस्तरशेषस्य नशक्यो हिमयाधुना ॥ वृद्धभावात्कथयितुमहञ्च बहुकालिकः ॥ ४ ॥ पूर्वदासवनेविप्रा वसन्ति च सुरैस्समाः ॥ ब्रह्मचारी गृहस्थश्च वानप्रस्थो यतिस्तथा ॥ ५ ॥ स्वधर्मनिरतानाञ्च कथितं परमस्पदम् ॥ तावद्वसन्तसमये कस्मिंश्चित्कारणान्तरे ॥ ६ ॥ विमानस्थो महादेवो गम्यमानो मया सह ॥ ददर्श च जनावामसं वेदध्वनिनिनादितम् ॥ ७ ॥ अगतागतसंवासं सर्वपापक्षयङ्करम् ॥ तद्दृष्ट्वा शुदितान्देवो हर्षगद्गदया गिरा ॥ ८ ॥ उवाच च वचनन्देवो वृद्धातापसयोषितः ॥ नान्यन्देव न्नवैधर्म्यं ध्यायन्ति हिमनन्दिनि ॥ ९ ॥ एतच्छ्रुत्वा परं वाक्यं देवदेवेन भाषितम् ॥ कौतूहलसमाविष्टा शङ्करपुनरब्रवीत् ॥ १० ॥ यत्स्वयोक्तं महादेव पतिधर्मपरास्त्रियः ॥ तासामनङ्गो भूत्वा त्वं चरित्रं ज्ञोभयप्रभो ॥ ११ ॥

कारण से ॥ ६ ॥ पार्वती के सहित महादेवजी विमानपर बैठे जाते हुये वेदों की ध्वनि से भरे हुये उरा स्थानको देखा ॥ ७ ॥ सब पापों के क्षय करनेवाले गतागत से रहित उस स्थानको देखकर प्रसन्न हुई देवी पार्वती से खुशीसे विचविचाती आवाज से ॥ ८ ॥ तापसों की स्त्रियोंको देखकर महादेवजी वचन बोले कि हे हिमनन्दिनि ! अपने पतियों को छोड़कर ये स्त्रियां और देव व और धर्मका नहीं ध्यान करती हैं ॥ ९ ॥ महादेवजी के कहे हुये इस श्रेष्ठ वचनको सुनकर आश्चर्य से युक्त

पार्वतीजी फिर महादेवजी से बोलीं ॥ १०० ॥ कि हे महादेवजी ! जो आपने कहा कि ये स्त्रियां पतिधर्म में तत्पर हैं तो हे प्रभो ! ॥ ११ ॥ आप कामदेव होकर इनकी चाल को विगाड़ो तब महादेवजी बोले कि हे देवि ! हे प्रिये ! यह तुम्हारा कहाहुआ वचन किसीको नहीं रुनता है नयोंकि ब्रह्मण बडे महात्मा होतेहैं कोई उनकी नागजी का काम न करेगा ॥ १२ ॥ क्रोधरूप अस्रवाले ब्रह्मण होते हैं और चक्र जिनका अस्र ऐसे विष्णुजी हैं चक्रसे ब्रह्मण का क्रोध पैना है इससे कोईभी ब्रह्मणको कुछ नहीं करसक्ता है ॥ १३ ॥ तीनों लोकोंमें न वे देवता, न वे लोक, न वे नाग और वे असुर देखपडते हैं कि जिनको कुछ ब्रह्मणों ने नष्ट न करदिया हो ॥ १४ ॥ बहुधा

महादेवउवाच ॥ त्वयोक्तंवचनन्देवि नचैतद्रोचतेप्रिये ॥ ब्रह्मणो हि महाभागा न तेषां विप्रियञ्चरेत् ॥ १२ ॥ मन्युप्रहरणो विप्राश्चक्रप्रहरणो हरिः ॥ चक्रात्तीक्ष्णतरामन्युस्तरमाद्विप्रन्नकोपयेत् ॥ १३ ॥ न तदेवान ते लोकास्ते नागा नासुरास्तथा ॥ दृश्यन्ते च त्रिभिर्लोकैरैतैरुष्टैर्न वञ्चिताः ॥ १४ ॥ तेषां चोभकरः प्रायः स्वर्गभोगफलच्युतः ॥ येषां तुष्टा महाभागा ब्रह्मणाः क्षितिदेवताः ॥ १५ ॥ तेषां धर्मस्तथार्थश्च कामोभो चो न संशयः ॥ एवं ज्ञात्वा महाभागे आग्रहस्त्यज्यतामयम् ॥ १६ ॥ एतल्लोकविरुद्धं हि यदीच्छसि वशं सुखम् ॥ देव्युवाच ॥ नाहन्ते दयिता देव नाहन्ते वशवर्तिनी ॥ १७ ॥ अन्यायधर्षणां चान्न सर्वासं कुरु सुव्रत ॥ लोकालोकैर्महादेव अशक्यं नास्ति ते विभो ॥ १८ ॥ क्रियतां मम देव तत्परं कौतूहलं प्रभो ॥ एवमुक्तो महादेवो देव्याः प्रियहितैरतः ॥ १९ ॥ कृत्वा कापालिकं रूपं ययौ दास्य वनं प्रति ॥ महाहिना जटा

ब्रह्मणोंका कोप करानेवाला स्वर्गके भोगरूप फलसे भ्रष्ट होजाता है और पृथिवीके देवता बड़भागी ब्रह्मण जिनपर खुश रहते हैं ॥ १५ ॥ उनका धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष निरसन्देह होता है हे महाभागे ! ऐसा जानकर इस हठको तुम छोड़देवो ॥ १६ ॥ जो सुखको अपने वश में चाहती हो तो लोकविरुद्ध इस कामको न करो तब पार्वती जी, बोलीं कि हे देव ! न हम तुम्हारी प्यारी हैं और न हम तुम्हारे वशमें रहेंगी ॥ १७ ॥ हे सुव्रत ! तिससे अनीति से इन सब स्त्रियोंका धर्म छुड़ो देवो क्यो कि हे महादेव ! हे विभो ! इस लोकालोक में आपको कुछ अशक्य नहीं है ॥ १८ ॥ हे देव ! हे प्रभो ! इस कामको आप कैरे मुझे बड़ा तमाशा होगा तब पार्वती के

प्यार व हितमें तत्पर इस प्रकार कहेगये महादेव ॥ १६ ॥ योगीके रूपको बनाकर दारुवन में गये चन्द्रमा जिनका गहनाहै ऐसे महादेव बड़े सांसे जटाजूट बांध कर ॥ २० ॥ बस्त्र व सोनेके कुण्डल पहनकर व्याघ्रचर्मको पहने, हार और बज्रालाओं से भूषित ॥ २१ ॥ पार्वके गहनोंकी आवाज से पृथिवीको कपातेहुये वीरों के घाटके समान आवाजवाली महाडमरूके शब्द से युक्त ॥ २२ ॥ प्रभातसमय के प्राप्त होनेपर दारुवनको गये तबतक वहाँ सब ब्राह्मणलोग फूल व मूल व फलों के खानेवाले ॥ २३ ॥ बहुतों के सहित पढ़तेहुये इधर उधर निकलगये हे भारत! महादेवके उस बड़े आश्चर्यवाले रूपको देखकर ॥ २४ ॥ स्त्रीलोग मतवाली व

जूटं नियम्यशशिभूषणः ॥ २० ॥ कङ्कत्राणंपरंक्रत्वा तथासौवर्णकुण्डले ॥ व्याघ्रचर्ममपरीधानो हारकेयूरभूषितः ॥ २१ ॥ नूपुरारावनिर्घोषैः कम्पयंश्चवसुन्धराम् ॥ महाडमरूघोषेण वीरघटा निनादिना ॥ २२ ॥ प्रभातसमयेप्राप्ते तत्रदा रुचनङ्गतः ॥ तावद्विप्रजनस्मर्वः पुष्पमूलफलाशनः ॥ २३ ॥ निर्गतो बहुभिस्सार्द्धं पथ्यमान इतस्ततः ॥ तद्दृष्ट्वा महदाश्चर्यरूपं देवस्य भारत ॥ २४ ॥ युवतीजनः प्रमत्तश्च कामेन कलुषीकृतः ॥ सुरूपं परमं दृष्ट्वा सर्वास्ताश्च वराननाः ॥ २५ ॥ क्लेशभावं तदा गच्छन् याश्च दारुवनोस्त्रियः ॥ विकारावहवस्तासान् देहं दृष्ट्वा मनोजवम् ॥ २६ ॥ सञ्जाता विप्रपत्नीनां ताञ्छृणुष्व नृपोत्तम ॥ परिधानन्नजानन्ति परिभ्रष्टं कशेद्यताः ॥ २७ ॥ दातुक्ता मातथ्यमैक्ष्यं चेष्टितुन्नैव शक्यते ॥ काचिद् दृष्ट्वा महदेवं रूपयौवनगर्विता ॥ २८ ॥ उत्सङ्गे संस्थितं वालं पतितं व्यस्मरत्ततः ॥ कामबाणहता चान्या वा हृभ्यां पीडितस्तनौ ॥ २९ ॥ निश्चवसन्ती तथा चान्या न किञ्चित्परिजल्पते ॥ एवमक्षोभयत्सर्वा महेशः पतिदे

कामसे मैली करदीगई श्रेष्ठमुखवाली वे सब स्त्रियां बड़े सुन्दर रूपको देखकर ॥ २५ ॥ उस समय दारुवन में जितनी स्त्रियां थीं वे सब क्लेशभाव को प्राप्त हुई कामरूप महादेवजी को देखकर उन ब्राह्मणोंकी स्त्रियोंके बहुत विकार पैदाहुये हे नृपोत्तम ! उनको तुम सुनो कि हाथ उठाये हुई स्त्रिया देहसे गिरेहुये अपने पहिरने के कपड़े को नहीं जानतीहैं ॥ २६ ॥ व कोई भिक्षा देने की इच्छा करतीहुई परन्तु हाथ पाँव चलाने को समर्थ न हुई व कोई स्त्री रूप और जवानी से गर्वको प्राप्त होरही महादेवजी को देखकर ॥ २८ ॥ गोदी में विद्यमान गिरपड़े बालकको भूलगई व कोई कामबाण से मारीगई दोनों हाथों से अपने स्तनोंको दबाती है ॥ २९ ॥ और

अन्तमें अच्छेकुलमें धनवाला पैदाहोताहै व बड़ेकुलमें वेद और वेदाङ्गोंके तत्त्व का जाननेवाला व सब शास्त्रोंमें प्रवीण ॥२६॥ राजा व राजाके वराबर पैदाहोताहै इसमें सन्देह नहींहै सब रोगों से रहित और लड़कों व पोतोंसे युक्त रहताहै ॥ २७ ॥ यह सब तुमसे कहागया जो तुमने हमसे पूछाथा हे भारत ! सब दानोंमें तीर्थका फल युक्तिसे होताहै ॥ २८ ॥ यह उत्तमतीर्थ का माहात्म्य पढ़ने व सुननेवालों को पुण्यका देनेवाला व पापोंका हरनेवाला व धनका देनेवाला व सब दुःखोंका नाश करने वालाहै ॥ २९ ॥ जो पितरों का भक्त श्राद्धमें इसको सुनाताहै उसका सब अन्नय होताहै यह शङ्करजी ने कहाहै ॥ ३० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेप्राकृतभाषास्तु

सर्वशास्त्रविशारदः ॥ २६ ॥ राजावाराजतुल्योवा जायतेनात्रसंशयः ॥ पुत्रपौत्रसमायुक्तस्सर्वव्याधिबिबिज्जितः ॥ २७ ॥ एतत्तेसर्वमाख्यातं अर्त्तं मां परिपृच्छसि ॥ तीर्थस्य तु फलं युक्त्या सर्वदानेषु भारत ॥ २८ ॥ एतत्पुण्यं पापहरं धन्यं दुःखप्रणाशनम् ॥ पठतांश्च एव तच्चैव तीर्थमाहात्म्यमुत्तमम् ॥ २९ ॥ यस्तु श्रावयते श्राद्धे स तत्पितृपरायणः ॥ अन्नं यंतस्य सर्वस्याच्छङ्करस्त्विदमब्रवीत् ॥ ३० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेकरञ्जेश्वरमहिमानुवर्णनो नाम सप्तसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७७ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

मार्कण्डेय उवाच ॥ ततो गच्छेच्च राजेन्द्र कुण्डलेश्वरमुत्तमम् ॥ अत्र सिद्धिङ्गतो देवः कुण्डधारो नृपोत्तम ॥ १ ॥ तपः कृत्वा तु विपुलं सुरासुरभयङ्करम् ॥ कुण्डधारो मन्दरस्थः क्रीडते स नृपोत्तम ॥ २ ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ कस्यान्वये स मुत्पन्नः कस्य पुत्रो महामतिः ॥ तपस्तप्त्वा सुविपुलं तोषितो येन शङ्करः ॥ ३ ॥ एतद्विस्तरतस्तत् कथयस्व ममानघ ॥ मावादेकरञ्जेश्वरमहिमास्तु वर्णनो नाम सप्तसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७७ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

मार्कण्डेयजी बोले कि हे राजेन्द्र ! तदनन्तर उत्तम कुण्डलेश्वर तीर्थ को जावे हे नृपोत्तम ! जहां कुण्डधार देव सिद्धि को प्राप्त हुआ है ॥ १ ॥ देवता और दैत्यों को भी भय करानेवाले भारी तपको कर हे नृपोत्तम ! वह कुण्डधार मन्दरपर्वत पर स्थित हो क्रीड़ा करता हुआ ॥ २ ॥ तब युधिष्ठिरजी बोले कि वह महामति किसके वंशमें उत्पन्न हुआ और किसका पुत्र था जिसने बहुत भारी तपको कर महादेवको प्रसन्न कर दिया ॥ ३ ॥ हे अनघ ! हे तात ! यह विस्तर से मुझ से कहो

तब मार्कण्डेयजी बोले कि हे राजन् ! पहले त्रेतायुग में विश्रवा नाम के पुलस्त्यके पुत्र हुये ॥ ४ ॥ हे महाभाग, नृप ! उन्होंने भरद्वाज की कन्या से अपना विवाह किया पुत्रके गुणों से युक्त उस स्त्रीमें धनंजय पुत्र हुआ ॥ ५ ॥ उत्पन्नहुये, लड़केको जानकर ऋषि व देवताओं के सहित व बड़े प्रसन्न हो लोकों के पितामह ब्रह्मा जीने उसका नाम रक्खा ॥ ६ ॥ कि जिससे विश्रवासे पैदाहुआ हमारा पोता होताहै इससे हे अनघ ! मैंने तुमको वैश्रवण नाम दियाहै ॥ ७ ॥ जो खास सब देवताओं के धनका रखनेवाला होगा और लोकपालों में चौथा नाशरहित यक्षोका राजा भी होगा ॥ ८ ॥ बस वह पुत्र श्रेष्ठ यक्षोंका राजा कुण्डधार नामका आप भी यक्ष

कण्डेयउवाच ॥ पुरात्रेतायुगे राजन्पौलस्त्योनामविश्रवाः ॥ ४ ॥ उपयेमेमहाभाग भरद्वाजसुतान्दृप ॥ पुत्रःपुत्रशुणै
युक्तस्तस्याञ्जातो धनञ्जयः ॥ ५ ॥ जातमानं सुतं ज्ञात्वा ब्रह्मलोकपितामहः ॥ चकारनामसुप्रीत ऋषिदेवसमन्वितः ॥
६ ॥ यस्माद्विश्रवसोजातो ममपौत्रत्वमागतः ॥ तस्माद्विश्रवणोनाम मया दत्तं तवानघ ॥ ७ ॥ यस्स्वयं सर्वदेवानां धन
गोप्ता भविष्यति ॥ चतुर्थोलोकपालानामक्षयोज्ञपोषिवा ॥ ८ ॥ यक्षो यक्षः श्रेष्ठः ॥ कुण्डधारो भवत्सुतः ॥ सु
स्वरूपवयः प्राप्य मातापित्रोरनुज्ञया ॥ ९ ॥ तपश्चकार विपुलं नर्मदातीरमाश्रितः ॥ यत्र व्याघ्रेऽश्वरं लिङ्गं व्याञ्जस्वे
टकमुत्तमम् ॥ १० ॥ कुण्डधारेण तत्रैव तपस्तप्तं मुदारुणम् ॥ ग्रीष्मे पञ्चाग्निमध्यस्थो वर्षास्वासारधारणः ॥ ११ ॥
शिशिरे जलमध्यस्थो वायुमक्षः शतंसमाः ॥ एवं वर्षशते पूर्णे एकाङ्गुष्ठो भवत्ततः ॥ १२ ॥ चक्रवद्भ्रमते सूर्यमभितो
भरतर्षभ ॥ चतुर्थे पञ्चमे तावत्तु तोषट्षवाहनः ॥ १३ ॥ वरं वृणीष्व हे वत्स यत्ते मनसि रोचते ॥ तद्ददामि न सन्देहो तपसा

ही हुआ अच्छे स्वरूप व अवस्था को पाकर माता व पिताकी आज्ञा से ॥ ९ ॥ नर्मदा तटमें बैठकर बड़े भारी तपको करता हुआ जहा उत्तम व्याघ्रेऽश्वर लिंग व बाघोंके
शिकार का स्थान है ॥ १० ॥ वहीं कुण्डधारेने अतिदारुण तपको किया है ग्रीष्मऋतु (ज्येष्ठ, आषाढ) विषे पञ्चाग्निके बीचमें बैठा वर्षाऋतु (सावन, भादों)
में जलधाराओं को धारण किया ॥ ११ ॥ शिशिरेऋतु (माघ, फागुन) विषे पानीके बीच में बैठा और सौ वर्ष तक वायुका भोजन किया इस प्रकार सौ वर्षों के पूरे
होनेपर एक अंगूठेसे खड़ा होताहुआ तदनन्तर ॥ १२ ॥ हे भरतर्षभ ! सूर्यके चारों तरफ चाकसा घूमतारहा तब चौथे व पांचवें महीनामें महादेवजी प्रसन्न हुये ॥ १३ ॥

और कहा कि हे वत्स ! जो तुम्हारे मनमें रुचताहो उस वरको मांगो तपस्या से प्रसन्न कियेगये हम उस वरको निरसन्देह दूँगे ॥ १४ ॥ तब कुण्डधार बोला कि हे देव ! जो आप मुझसे प्रसन्नहो और वर देनेको यहाँ आयेहो तो मेरे नाम का लिङ्ग व यह तीर्थ होजावे ॥ १५ ॥ तब ऐसाही हो यह कहकर पार्वती सहित महादेव अन्तर्द्धान होगये और आकाश में जाकर कैलासपर्वत को चलेगये ॥ १६ ॥ महादेवजी के अन्तर्द्धान होनेपर उस यक्षनेमी आनन्द से युक्तहो उत्तम कुण्डले-श्वर महादेवजी का स्थापन किया ॥ १७ ॥ एक हाथी व गऊको सजकर दानकिया और धूप, पुष्प, चन्दन, चांदनी, चैवर, छाता और लिंगपूजन से ॥ १८ ॥ महा-

तोपितोद्ग्रहम् ॥ १४ ॥ कुण्डधारउवाच ॥ यदितुष्टोसिमेदेव वरदित्सुरिहागतः ॥ ततोमन्नामकंलिङ्गं तीर्थंचैतद्भवत्वि-
ति ॥ १५ ॥ तथेत्युक्त्वामहादेवः सोमोन्तर्द्धानमागमत् ॥ जगामाकाशमाविश्य कैलासंभरणीधरम् ॥ १६ ॥ गतो
चादर्शनन्देव सोपियन्नोमुदान्वितः ॥ स्थापयामासदेवेशंकुण्डलेश्वरमुत्तमम् ॥ १७ ॥ अलंकृत्वागजंधेनुं धूपपुष्प
विलेपनैः ॥ वितानैश्चामरैश्छत्रैस्तथैवलङ्गपूजनैः ॥ १८ ॥ तर्पयित्वाद्विजान्सम्यगन्नपानादिभूषणैः ॥ प्रीणयित्वा
हादेवं ततःस्वभवनंययौ ॥ १९ ॥ तदाप्रभृतितत्तीर्थं त्रिषुलोकेषुविश्रुतम् ॥ युधिष्ठिरपरंपुराणं कुण्डलेश्वरसंज्ञकम् ॥
२० ॥ तत्रतीर्थेतुयःकश्चिदुपवासपरायणः ॥ अर्चयेद्देवमीशानं सर्वपापैःप्रमुच्यते ॥ २१ ॥ सुवर्णरजतंवापि मणिमौ-
क्तिकमेवच ॥ ब्राह्मणेभ्योददात्यत्र समुख्योमोदतोदिवि ॥ २२ ॥ तत्रतीर्थेनरःस्नात्वा ऋग्यजुःसामसुद्विजः ॥ ऋचमे-
काञ्जपित्वाच चतुर्वेदफलंलेभेत् ॥ २३ ॥ तस्मिंस्तर्थांतुगोदानमन्नदानमथापिवा ॥ यःप्रयच्छतिविभ्रभ्यस्तत्फलंशु-

देवजीको प्रसन्नकर व अन्नपानआदि व भूषणों से ब्राह्मणों को भलीभांति तृप्तकर फिर अपने मन्दिरको चलागया ॥ १९ ॥ तब से वह तीर्थ तीनोंलोकों में प्रसिद्धहूआ
हे युधिष्ठिर ! कुण्डलेश्वर नाम तीर्थ बड़ा पुण्यवाला है ॥ २० ॥ उस तीर्थमें जो कोई व्रतवाला मनुष्य महादेवजी का पूजन करता है वह सब पापोंसे छूटजाता है ॥
२१ ॥ और यहाँ सोना, चांदी, मणि व मोतियों को जो ब्राह्मणों को देताहै वह मुख्य होकर स्वर्गमें आनन्द करता है ॥ २२ ॥ उस तीर्थमें स्नानकर ब्राह्मण मनुष्य
ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद की एक ऋचाका जप करके चारोंवेदों के फलको पाताहै ॥ २३ ॥ और उस तीर्थमें जो गोदान व अन्नदान ब्राह्मणों के वास्ते देताहै हे

पाण्डव ! उसके फलको सुनो ॥ २४ ॥ कि जितने उसके व उसके बच्चों के रोये होते हैं उतने हजार वर्षों तक स्वर्गलोक में पूजित होता है ॥ २५ ॥ पुत्र व पौत्रों के सहित उसका वास स्वर्गमें होता है हे महाभाग ! उस तीर्थ के जंगल में प्यासा एक बाघ निषादों के डरसे घूमता था वह निषादों के डरसे मर गया और नर्मदा के जलमें गिर पड़ा ॥ २६ ॥ २७ ॥ तो हे महाभाग ! पानी से भीगा वह लिंगरूप होगया तब आकाशवाणी से कहा गया कि पूजने लायक यह उत्तम व्याघ्रेश्वर लिंग तीनों लोकों में निरसन्देह प्रसिद्ध होगा ॥ २८ ॥ उस तीर्थमें स्नान कर जो मनुष्य उस लिंगका पूजन करेगा ॥ २९ ॥ वह ब्रह्महत्याआदि पापों से छूट जायगा इसमें

णुपाण्डव ॥ २४ ॥ यावन्निवतस्यरोमाणि तत्प्रसूतिकुलेषु च ॥ तावद्वर्षसहस्राणि स्वर्गलोकैर्महर्षियते ॥ २५ ॥ स्वर्गवा सो भवेत्तस्य पुत्रपौत्रसमन्वितः ॥ तस्मिंस्तीर्थे महाभाग व्याघ्रश्चैव पिपासितः ॥ २६ ॥ निषादानां भयै नैव अटव्यामटति स्वयम् ॥ निषादानां भयै नष्टः पतितो नर्मदाजले ॥ २७ ॥ जलप्लुतो महाभाग लिङ्गरूपधरो भवत् ॥ उक्तश्चाकाशवाण्या वै व्याघ्रेश्वरमनुत्तमम् ॥ २८ ॥ पूज्यं वै त्रिषु लोकेषु ख्यातियास्यत्यसंशयम् ॥ तत्र तीर्थे नरस्नात्वा तस्मिन्मर्चयेत्तु यः ॥ २९ ॥ ब्रह्महत्यादिपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः ॥ एतत्ते कथितं राजन्कुण्डले श्वरमुत्तमम् ॥ ३० ॥ श्रवणात्कीर्तनादस्य गोसहस्रफलं लभेत ॥ ३१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे रेवाखण्डे कुण्डलेश्वरमहिमानुवर्णनो नामाष्टसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७८ ॥

मार्कण्डेय उवाच ॥ ततो गच्छेत्तुराजेन्द्र पिप्पलेश्वरमुत्तमम् ॥ यत्र सिद्धो महायोगी पिप्पलादो महातपाः ॥ १ ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ पिप्पलादस्य चरितं श्रोतुमिच्छाम्यहंप्रभो ॥ माहात्म्यं तस्य तीर्थस्य यत्र सिद्धो महातपाः ॥ २ ॥ संशय नहीं है हे राजन् ! यह उत्तम कुण्डलेश्वर तीर्थ तुमसे कहा गया ॥ ३० ॥ इसके सुनने व कहने से हजार गोदानों का फल पावा है ॥ ३१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे रेवाखण्डे प्राकृतभाषाऽनुशादे कुण्डलेश्वरमहिमाऽनुवर्णनो नामाष्टसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७८ ॥

मार्कण्डेयजी बोले कि हे राजेन्द्र ! तदनन्तर उत्तम पिप्पलेश्वर तीर्थ को जावे जहां बड़े तपवाले महायोगी पिप्पलादजी सिद्ध हुये हैं ॥ १ ॥ तब युधिष्ठिरजी बोले कि हे प्रभो ! हम पिप्पलाद के चरित को सुना चाहते हैं और उस तीर्थके माहात्म्य को भी सुना चाहते हैं जहां बड़े तपवाले पिप्पलादजी सिद्ध हुये हैं ॥ २ ॥

हे महाभाग ! वे किसके पुत्र थे और किसवारे तेपको किया हे अनघ ! यह सब विस्तारसे मुझसे कहो ॥ ३ ॥ तब मार्कण्डेयजी बोले कि हे महाभाग ! मिथिलाके रहनेवाले वेद व वेदागोंके पारगन्ता याज्ञवल्क्यजीने पूर्वकाल में बड़ा तप किया ॥ ४ ॥ उन बुद्धिमान् याज्ञवल्क्यजीकी एक बहिन तापसी थी वह भी वही रहती हुई व अपने भाईकी सेवा करती हुई बड़ा तप किया ॥ ५ ॥ तदनन्तर एक समयमें रजस्वला उनकी बहिन स्नानके दिनमें स्नान किया तो वहां एकान्तमें पड़ेहुये वस्त्रको देखकर उसने पहन लिया ॥ ६ ॥ याज्ञवल्क्यजी भी उसी रात्रिमें उसी कपड़ेको पहनेहुये स्वप्नको देखकर अपने वीर्यका त्यागकिया उस अशुद्धवस्त्रको छोड़िथा प्रातःकाल

कस्यपुत्रोमहाभाग किमर्थतप्तवांस्तपः ॥ एतद्विस्तरतस्सर्वकथयस्वममानघ ॥ ३ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ मिथिलास्थो महाभाग वेदवेदाङ्गपारगः ॥ याज्ञवल्क्यश्चपुरतश्चारविपुलंतपः ॥ ४ ॥ तापसीतस्यभगिनी याज्ञवल्क्यस्यधीमतः ॥ चचारसापितत्रस्था शुश्रूषन्तीमहत्तपः ॥ ५ ॥ ततस्त्वेकस्मिन्समये स्नाताहनिरजस्वला ॥ अन्तर्वासंकृतवती दृष्ट्वाकर्कटकरहः ॥ ६ ॥ याज्ञवल्क्योपितद्रात्रौ परिधानेनतेनवे ॥ स्वप्नं दृष्ट्वात्यजच्छुक्रं प्रभातेनैवैषयत्पुनः ॥ ७ ॥ ततः सा ब्राह्मणी तात किमन्वेष्यसिभारत ॥ केनकार्यं तव विभो वदस्वममतस्त्वतः ॥ ८ ॥ याज्ञवल्क्यउवाच ॥ अपवित्रोमयाभद्रे स्वप्नोदृष्टोद्यवैनिशि ॥ शुक्लं मे चात्र वस्त्रं निक्षिप्तं तन्न दृश्यते ॥ ९ ॥ तच्छ्रुत्वा ब्राह्मणीवाक्यं भीतभीता भवन्त्यप ॥ तद्वक्षन्तुमया ब्रह्मन् स्नात्वान्तर्धानं कंकृतम् ॥ १० ॥ तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा हाहेत्युक्त्वामहातपः ॥ पातसहसामूर्मौ छिन्नमूलवद्भुमः ॥ ११ ॥ किमेतदिति जल्पन्तमाकाशाद्वाग्विनिर्गता ॥ तोषयन्ती च तं विप्रं प्रोवाच

में उसको फिर दूँदा ॥ ७ ॥ तब हे भारत ! उस ब्राह्मणीने उनसे पूछा कि हे तात ! आप क्या दृढ़तेहो हे विभो ! किस चीजसे आपका काम है सो मुझसे ठीक २ कहो ॥ ८ ॥ तब याज्ञवल्क्यजी बोले हे भद्रे ! मैंने आज रातमें बड़े अष्ट स्वप्न को देखा सो अपने सफेद कपड़े को मैंने यहां छोड़ दिया था सो वह नहीं दीखता है ॥ ९ ॥ तब हे नृप ! वह ब्राह्मणी उस वचनको सुनकर डरीसे डरी होगई और बोली कि हे ब्रह्मन् ! उस कपड़ेको तो मैंने स्नानकरके पहन लिया है ॥ १० ॥ उसके इस वचनको सुनकर बड़े तपस्वी याज्ञवल्क्यजी हाहा ऐसे कहकर जड़से कटे पेड़की तरह एकवारगी पृथ्वीमें गिरपड़े ॥ ११ ॥ तब यह क्या हुआ ऐसे कहतेहुये याज्ञवल्क्य को

संतोष करातीहुई आकाश से आवाज निकली और हे नृपते ! उन ब्राह्मण से कहा ॥ १२ ॥ कि इसका दोष मैंने नहीं देखा है और हे शुभ्रव्रते ! आपका भी कुछ दोष नहीं है जिससे तुम्हारे गर्भका उदय भया है तिससे प्रारब्धही मुख्य है ॥ १३ ॥ लेकिन जबतक समय न आने तबतक इस गर्भका नाश करना नहीं ठीक है तब लज्जित व उदासमनवाली उस स्त्रीने अपमान से कहा कि अच्छा ॥ १४ ॥ फिर उस गर्भकी वह पालना करती रही जबतक पुत्र नहीं हुआ फिर उत्पन्नमात्रहुये उस गर्भको किसी से न कहकर ॥ १५ ॥ एक पीपल के पास जाकर उसने पृथ्वी में छोड़ दिया और छोड़ देनेके बाद उसने कहा कि लोकोंमें जितने स्थावर व जङ्गम जीव हैं वे सब इस

नृपतेतदा ॥ १२ ॥ नास्यदोषोभयादृष्टस्तवचैवशुभ्रव्रते ॥ तवगर्भोदयोयेन तत्रदैवंपरायणम् ॥ १३ ॥ नविनाशोऽस्य कर्तव्यो यावत्कालस्यपर्ययः ॥ तथेतिब्रीडितासाच दुर्मनेतिविमानतः ॥ १४ ॥ पालयासासंतगर्भं यावत्पुत्रोव्यजा यत ॥ जातमात्रन्तुतंगर्भं कथयित्वानकञ्चन ॥ १५ ॥ अश्वत्थबृक्षमासाद्य सोत्ससर्जमहीतले ॥ यानिसन्वानिलोकेषु स्थावराणिचराणिवै ॥ १६ ॥ तानिवैपालयन्त्वेनं बालकंत्यजतिस्मसा ॥ एवमुक्त्वाततःसाध्वी ब्राह्मणीनृपसत्तम ॥ १७ ॥ यथागतंजगामाथ सावस्थित्वामुहूर्तकम् ॥ पादौपाणीविनिक्षिप्य विमृज्यनयनेशुभे ॥ १८ ॥ आस्यञ्चविकृतं कृत्वा रुरोदौचैरनाथवत् ॥ तेनशब्देनवित्रस्ताःस्थावराजङ्गमाश्रये ॥ १९ ॥ अकम्पयन्महीन्तात सशैलवनकन्दराम् ॥ ततोज्ञात्वामहदूतं क्षुधाविष्टं द्विजर्षमम् ॥ २० ॥ नजहातिनगश्छायामार्षयच्चततःपयः ॥ आप्यायितस्ततस्तेन

बालकको पालें ऐसे कहकर तदनन्तर हे नृपसत्तम ! वह साध्वी ब्राह्मणी ॥ १६ ॥ दो बड़ी वहां ठहरकर उसके बाद जहांसे आईथी वहांको चलीगई तब वह बालक अपने पाँव व हाथोंको चलाकर और अपने अच्छे नेत्रोंको मीडकर ॥ १८ ॥ अपने मुखको दीन ऐसा बनाकर बड़ीजोर से अनाथ की तरह रोताहुआ उसके रोने के शब्द से जो स्थावर व जङ्गम जीव थे वे सब डरगये ॥ १९ ॥ और हे तात ! पहाड़ व जंगल और कन्दराओं के सहित सब पृथ्वी को उस शब्दने कंपादिया तदनन्तर उस श्रेष्ठब्राह्मण को उत्तमप्राणी व भूखा जानकर ॥ २० ॥ पीपलके वृक्षने अपनी छायाको नहीं हटाया और उसको अपना दूधभी अर्पण किया तब हे भारत ! उस

अमृतसरीखे दूधसे बढ़ायागया वह बालक चिन्तासे युक्त होकर ग्रहोंका विचार किया ॥ २१ ॥ फिर उसने अपनी क्रूरदृष्टि से क्रूरचालवाले शनैश्चर को देखा तब धीरेसे चलनेवाले शनैश्चर एकबारगी पृथ्वीमें गिरे ॥ २२ ॥ बालकभी शनैश्चरको पाँव से छुवा तब बालक से पीड़ितहुये वे शनैश्चर वचन बोले ॥ २३ ॥ कि हे महा-मुने, विप्र, पिप्पलाद ! मैंने क्या अपकार किया है जो आकाशमें जाताहुआ मैं पृथ्वीपर गिरादियागया ॥ २४ ॥ शनैश्चर ने जब ऐसे महामुनि पिप्पलादसे कहा तब हे नराधिप ! क्रोधरूप होरहे पिप्पलाद वचन बोले उसको तुम सुने ॥ २५ ॥ पिप्पलादने कहा कि हे दुर्मते, सौरे (शनैश्चर) ! पिता व मातासे रहित बालक जो

अमृतनैवमारुत ॥ ततस्मच्चिन्तयाविष्टो निर्ममेग्रहगोचरम् ॥ २१ ॥ तेनक्रूरसमाचारः क्रूरदृष्ट्यानिरीक्षितः ॥ पपातसह
साभूमौ शनैश्चारीशनैश्चरः ॥ २२ ॥ शनैश्चरं बालकोपि पादेनैव परामृशत् ॥ पीडितः सोपि बालेन उवाच वचनं तदा ॥
२३ ॥ किं मया पकृतं विप्र पिप्पलाद महा मुने ॥ निष्काम नृगने चैव पातितो धरणीतले ॥ २४ ॥ सौरिणाप्येव मुक्तस्तु
पिप्पलादो महा मुनिः ॥ क्रोधरूपो ब्रवीद्वाक्यं तच्छृणुष्व नराधिप ॥ २५ ॥ पितृमातृविहीनस्य बालभावस्य दुर्मते ॥
पीडाङ्करोषिकस्मान्त्वं सौरैस्त्वमवशेषितः ॥ २६ ॥ शनैश्चर उवाच ॥ क्रूरस्वभावसंजाता मम दृष्टिर्द्विजोत्तम ॥ मुञ्च त्वं
माञ्च कर्ताहं यद्ब्रवीषि न संशयः ॥ २७ ॥ पिप्पलाद उवाच ॥ अद्य प्रभृति बालानां जन्मतः षोडशीः समाः ॥ पीडात्त्वया
न कर्तव्या एष ते समयः परः ॥ २८ ॥ एवमस्ति त्वं चोक्त्वा प्रजगाम यथागतः ॥ देवमार्गं शनैश्चारी प्रणम्य ऋषिसत्
तमम् ॥ २९ ॥ ततश्चादर्शनं तत्र गतवान्समहाग्रहः ॥ विचिन्तयानश्चैकाकी क्रोधेन कलुषीकृतः ॥ ३० ॥ आग्नेयौ हि दि

हम हैं तिनको तू क्यों पीडा देता है अब तू बच गया ॥ २६ ॥ तब शनैश्चर बोले कि हे द्विजोत्तम ! मेरी दृष्टि ही क्रूरस्वभाववाली है इससे अब आप मुझे छोड़ देवा जो आप कहते हो उसमें कुछ संशय नहीं है मैं जरूर पीडाका करनेवाला हूँ ॥ २७ ॥ तब पिप्पलाद बोले कि अच्छा अब आजसे जन्मसे सोलह वर्ष तक बालकों को पीडा तुमको नहीं करना चाहिये यही तुम्हारा समय होगा ॥ २८ ॥ ऐसा ही हो यह कहकर और उन ऋषिश्रेष्ठ पिप्पलादजी को प्रणाम कर शनैश्चर जैसे आयेथ उसी तरह देवताओं की रातेको चले गया ॥ २९ ॥ तदनन्तर त्रे महाग्रह शनैश्चर अन्तर्द्धान हो गये फिर वहाँ क्रोधसे भरे हुये पिप्पलाद अकेले आप विचार करते हुये ॥ ३० ॥

आग्नेयादिशाको ध्यानकर अग्निनिको पैदा किया और अपने मांसको काटकर कर्म के तत्त्वसे अग्निमें हवन करतेहुये ॥ ३१ ॥ तबतक लपटों से व्याप्त कृत्या उत्पन्नहुई अग्निनिके तुल्य आकारवाली उस कृत्याने कहा कि मैं क्या करूं ॥ ३२ ॥ क्या समुद्रों को सुखादेऊं क्या पहाड़ों को चूर्ण करडालूं क्या जमीन को लपेटलेऊं और क्या यहा आकाश को गिरादेऊं ॥ ३३ ॥ मैं किसके शिरपर गिरूं और किसको मारडालूं मुझको शीघ्रही कामको बतलादेवो जिसमें समय न टले ॥ ३४ ॥ उस कृत्याके इस वचन को सुनकर क्रोधसे लालनेत्रोंवाले व बड़े तपवाले पिप्पलाद इस वचन को बोले ॥ ३५ ॥ कि हे शुभे ! बड़ेक्रोध के वेगसे मैंने तुम्हारा ध्यान

शंभ्यात्वा जनयामासपावकम् ॥ कृत्वा मांसं जुहावाग्नौ क्रियासम्भवतत्त्वतः ॥ ३१ ॥ तावच्चजनिताकृत्या ज्वाला मालाविभूषिता ॥ हुतमुखसदृशाकारा किङ्करोमीतिचाब्रवीत् ॥ ३२ ॥ शोषयामिसमुद्रं किं चूर्णयामिचपर्वतम् ॥ भूमिं च वेष्टयामीह पातयित्वानभस्तलम् ॥ ३३ ॥ कस्यमूर्द्धिपतिष्यामि घातयामिचकंद्विज ॥ शीघ्रमादिशमेकार्यं न कालातिक्रमोभवेत् ॥ ३४ ॥ तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा पिप्पलादोमहातपाः ॥ क्रोधरक्तान्तनयन इदं वचनमब्रवीत् ॥ ३५ ॥ महताक्रोधवेगेन मया त्वंचिन्तिता शुभे ॥ पितामेयाज्ञवल्क्यस्तु तन्वंघातयमाचिरम् ॥ ३६ ॥ एवमुक्ता तु साशीघ्रं स्फुटन्ती विनभस्तलम् ॥ मिथिलास्थो महाप्राज्ञो यत्र तेपेमहातपाः ॥ ३७ ॥ यावत्पश्यति दिङ्मार्गं ज्वलनार्कसमप्रभम् ॥ याज्ञवल्क्यो महातेजास्तद्रूपं तस्युपस्थितम् ॥ ३८ ॥ तान्दृष्ट्वासहसायान्तो भीतभीतो महामुनिः ॥ भूतेनाक्रमि तोविप्रो जनकं नृपतिं ययौ ॥ ३९ ॥ शरणार्थमनुप्राप्तं विद्धि मानृपसत्तम ॥ महाभूताच्चमार्त्तयदिशकोषिमानद ॥ ४० ॥

किया है सो हमारे पिता याज्ञवल्क्य हैं उनको तुम मारो देर मत करो ॥ ३६ ॥ ऐसे कहींगई वह कृत्या शीघ्र आकाश को फाड़तीसी जहां मिथिला में बैठेहुये बड़े बुद्धिमान व बडेतपस्वी याज्ञवल्क्यजी तपको करतेथे वहां पहुँची ॥ ३७ ॥ महातेजस्वी याज्ञवल्क्यजी जबतक उस दिशाकी तरफ देखें तबतक अग्नि व सूर्य के समान तेजवाला वह मृत भलीभाँति उपस्थित होगया ॥ ३८ ॥ सहसा आतीहुई उस कृत्या को देखकर डरेसे भी डरे महामुनि ब्राह्मण याज्ञवल्क्यजी उस भूतसे दबेहुये राजा जनक के समीप जातेहुये ॥ ३९ ॥ और बोले कि हे नृपसत्तम ! अपनी रत्नाके धारते आयेहुये मुझको जानो इससे दे मानद ! जो आप समर्थहो तो

मुझे इस महाभूत से बचावो ॥ ४० ॥ तब राजा बोले कि हे महामते ! ब्रह्मतेजसे यह पैदाहुआ भूत घड़ाजबर व निवारण करनेलायक नहीं है इससे आज मैं नहीं समर्थ होसकतूँ आप दूसरे के पास जावें ॥ ४१ ॥ तदनन्तर रक्षा चाहतेहुये महातपस्वी याज्ञवल्क्यजी और श्रेष्ठराजा के समीपगये उससे भी कहेहुये निराश हो इन्द्रकी शरण जातेहुये ॥ ४२ ॥ और कहा कि हे देवराज ! आपके नमस्कारहैं इस महाभूत से मुझे बचावो उनके इस वर्चन को सुनकर तब इन्द्र वचन बोले ॥ ४३ ॥ कि हम रक्षा करने को समर्थ नहीं होसकते हैं क्योंकि ब्रह्मतेज बड़ादुःसह होताहै तदनन्तर वेदके जाननेवालोंमें श्रेष्ठ ब्राह्मण याज्ञवल्क्यजी ब्रह्मलोकको ॥ ४४ ॥

राजोवाच ॥ ब्रह्मतेजोभवम्भूतमनिवार्यन्दुरासदम् ॥ प्रभुर्नैवाद्यशक्नोमि अन्यंगच्छमहामते ॥ ४१ ॥ ततश्चान्यं नृपश्रेष्ठं शरणार्थीमहातपाः ॥ जगाम तेन चैवोक्त इन्द्रस्य शरणं ययौ ॥ ४२ ॥ देवराजनमस्तेस्तु महाभूताच्च जमाम् ॥ तस्य तद्वचनं श्रुत्वा ब्रवीदिन्द्रस्तदावचः ॥ ४३ ॥ न च शक्तः परित्रातुं ब्रह्मतेजोहिदुःसहम् ॥ ततश्च ब्रह्मभवनं ब्राह्मणो ब्रह्मवित्तमः ॥ ४४ ॥ जगाम विष्णुभवनं शक्तोऽपि त्यक्तवान्भयात् ॥ ततः स परमो द्विर्गो निराशो जीविते नृप ॥ ४५ ॥ अनुगम्यमानो भूतेन अगच्छच्च महेश्वरम् ॥ तस्य योगबलोपेतो महादेवस्य पाण्डव ॥ ४६ ॥ नखमांसान्तरैरुप्तो यथा देवो न पश्यति ॥ अदृष्टमगमद्भूतं ज्वलनार्कसमप्रभम् ॥ ४७ ॥ मुञ्च मुञ्चेति पुरुषं मुञ्चेद्वरमुवाच ह ॥ एवमुक्तो महादेवस्तेन भूतेन भारत ॥ ४८ ॥ योगीन्द्रं दर्शयामास नखमांसान्तरैरस्थितम् ॥ संस्थाप्य कृत्याम्भूतेशो ज्वलत्कालान्

गये और विष्णुलोक को भी गये वे समर्थ भी रहे परन्तु भयसे नहीं ग्रहण किया तदनन्तर हे नृप ! अपने जनिमें निराश होरहे और बहुत घबड़ातेहुये वे याज्ञवल्क्यजी ॥ ४५ ॥ पीछे लगहुये उस भूतसे भगाये जातेहुये महादेवजी के समीप जातेहुये व हे पाण्डव ! अपने योगबलसे युक्त मुनि उन महादेवजी के ॥ ४६ ॥ नाखून के नीचेवाले मांसके भीतर छिपरहे उनको महादेवजी ने भी नहीं देखा तबतक अग्नि व सूर्य के समान तेजवाला नहीं दीखताहुआ वह भूतभी आगया ॥ ४७ ॥ और महादेवजीसे बारबार स्पष्ट बोला कि उस पुरुषको आप छोड़ो तब उस भूत से ऐसे कहेगये महादेवजी हे भारत ! ॥ ४८ ॥ अपने नाखूनके मांसके भीतर वर्तमान याज्ञवल्क्य

योगीन्द्रको दिखला दिया और जलतेहुये महाप्रलय के अग्निके समान तेजवाली उस कृत्याको रोककर भूतोंके स्वामी महादेवजी ने ॥ ४६ ॥ कहा कि हे विप्र ! हे महाभूत ! तुम मत डरों और कहीं मत जावो तदनन्तर सूक्ष्मदेहमें बैठेहुये उस भूतसे महादेवजी यह बोले ॥ ५० ॥ कि हे महाभूत ! इस ब्राह्मण का तुम क्या करोगे मो अपने कार्यको हमसे कहो तब कृत्या बोली कि हे देवेश ! क्रोधसे जलतेहुये पिप्पलाद ने मेरा ध्यान किया है ॥ ५१ ॥ सो मैं इसकी देहपर गिरूंगी हे प्रभो ! मैं नाश करनेलायक नहीं हूँ ऐसा समझो तब उस भूत के मुख से निकले हुये इस वचन को सुनकर महादेवजी ॥ ५२ ॥ याज्ञवल्क्य के मारनेवाले उस

लप्रभाम् ॥ ४९ ॥ उवाचमभिस्त्वंविप्रमागच्छस्वमहामुने ॥ ततस्तंसूक्ष्मदेहस्थं महादेवोब्रवीदिदम् ॥ ५० ॥ किमस्यत्वंमहाभूत कर्ताकृत्यंवदस्वमे ॥ कृत्योवाच ॥ क्रोधदीप्तेनदेवेश पिप्पलादेनचिन्तिता ॥ ५१ ॥ अस्यदेहेपतिष्यामि अहिंस्यांविद्धिमाम्प्रभो ॥ एतच्छ्रुत्वामहादेवो भूतस्यवदनाच्च्युतम् ॥ ५२ ॥ वरिष्ठबन्धयामास याज्ञवल्क्यस्य वातकम् ॥ योगीश्वरंतंविप्रन्द्रं दत्त्वाभीतियुधिष्ठिर ॥ ५३ ॥ विसर्जयित्वादेवस्तं तत्रैवान्तरधीयत ॥ प्रेषयित्वातुलम्भूतं पिप्पलादोपिदुर्मनाः ॥ ५४ ॥ मातापितृविहीनस्तु नर्मदातटमाश्रितः ॥ एकनिष्ठोनिराहारो वर्षाणिषोडशैवतु ॥ ५५ ॥ तोषयामासदेवेशमुमयासहशङ्करम् ॥ हरउवाच ॥ परितुष्टोस्मिमेतेविप्र तपसानेनसुव्रत ॥ ५६ ॥ वरंवृणीष्वतेदद्यां मनसाभीप्सितंशुभम् ॥ पिप्पलादउवाच ॥ अदिमेभगवांस्तुष्टो यदिदेयोवरोमम् ॥ ५७ ॥ अत्रसन्निहितोदेव ममनाम्ना

भूतको पोढ़े बांधलिया और हे युधिष्ठिर ! ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ उक्त योगीन्द्र को अभय देकर ॥ ५३ ॥ वः उनको विदाकरके महादेवजी वहीं अन्तर्धान होगये अब यहां पिप्पलाद भी उस भूतको भेजकर उदास होगये ॥ ५४ ॥ और माता व पिता से रहित आप नर्मदातट के आश्रित होकर सोलह वर्षतक निराहार व एक महादेव का ध्यान करते हुये ॥ ५५ ॥ पार्वती सहित, कल्याण करनेवाले, देवेश महादेवजी को प्रसन्न किया तब महादेवजी बोले कि हे सुव्रत, विप्र ! तुम्हारे इस तपसे हम प्रसन्न है ॥ ५६ ॥ इससे अपने मनमाने उत्तम वरको तुम मांगो हम तुमको देंगे तब पिप्पलाद बोले कि जो आप भगवान् मुझपर प्रसन्नहो और जो मुझे आपको वर देने

योग्य है ॥ ५७ ॥ तो हे शङ्कर, देव ! यहाँ मेरे नामसे आप विद्यमान वनेरहो ऐसे कहेगये महादेवजी पिप्पलाद महामुनिसे ऐसाही हो यह कहकर अपने भूतोंसे सेवा क्रिये जाते अन्तर्द्धान होगये महादेव के जानेपर वहाँ उत्तम जलमे स्नानकर पिप्पलादमुनि ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ महादेवजीका स्थापनकर उत्तरपर्वत को चलेगये हे नृप ! उस तीर्थमें मन्त्रोंके सहित भक्तिसे मनुष्य स्नानकर ॥ ६० ॥ व पितरों और देवताओं का तर्पणकर और महादेवजीका पूजनकर अत्युत्तम अश्वमेधयज्ञ के फलको पाता है ॥ ६१ ॥ और पिप्पलेश्वर के समीप जो मराहै वह महादेवजी के पुरको जाताहै अथवा अपने पितरों के नामसे भक्तिसहित ब्राह्मणों को जो भोजन करावे ॥ ६२ ॥

चशङ्कर ॥ एवमुक्तस्तथेत्युक्त्वा पिप्पलादं महामुनिम् ॥ ५८ ॥ जगामादर्शनं देवो भूतसङ्घैर्निषेवितः ॥ पिप्पलादो गते देवे स्नात्वा तत्र महामभिमसि ॥ ५९ ॥ स्थापयित्वा महादेवं जगामोत्तरपर्वतम् ॥ तत्र तीर्थे नरो भक्त्या स्नात्वा मन्त्रयुतो नृप ॥ ६० ॥ तर्पयित्वा पितॄन् देवान् पूजयित्वा महेश्वरम् ॥ अश्वमेधस्य यज्ञस्य फलं प्राप्नोत्यनुत्तमम् ॥ ६१ ॥ मृतोरुद्रपुरं याति पिप्पलेश्वरसन्निधौ ॥ अथवा भोजयेद्विप्रांन् पितॄन् दुहिश्य भक्तिः ॥ ६२ ॥ द्वादशाब्दसहस्राणि तृप्ता गच्छन्ति तस्य दत्तम् ॥ संन्यासे न तु यः कश्चित् तत्र तीर्थे तनुन्त्यजेत् ॥ ६३ ॥ अनिवर्तिका गतिस्तस्य यथामेशङ्करो ब्रवीति ॥ एतत्सर्वं समाख्यातं यत्त्वं मां परिपृष्टवान् ॥ ६४ ॥ माहात्म्यं पिप्पलादस्य पिप्पलेश्वरमुत्तमम् ॥ एतत्पुराय पापहरं धन्यं दुःखप्रणाशनम् ॥ ६५ ॥ पठतांश्च एव तांश्चैव सर्वपापप्रमोचनम् ॥ ६६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे रेवाखण्डे पिप्पलेश्वरमहिमानुवर्णनो नामैकोनाशीतितमोऽध्यायः ॥ ७६ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

तो बारह हजार वर्ष तक अधानेहुये पितर उत्तमगति को पाते हैं और जो कोई संन्याससे उस तीर्थमें अपने शरीर को छोड़ता है ॥ ६३ ॥ उसकी फिर लौटनेवाली गति नहीं होती है ऐसा महादेवजी ने मुझसे कहागया जो तुम ने मुझसे पूछा ॥ ६४ ॥ पिप्पलाद का माहात्म्य और उत्तम पिप्पलेश्वर का यह आख्यान पुण्यवाला, पापोंका हरनेवाला, धन देनेवाला और दुःखोंका नाश करनेवाला है ॥ ६५ ॥ और पढ़ने व सुननेवालों के सब पापों का छुड़ानेवाला है ॥ ६६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे रेवाखण्डे प्राकृतभाषास्तुवादे पिप्पलेश्वरमहिमास्तुवर्णनो नामैकोनाशीतितमोऽध्यायः ॥ ७६ ॥

मार्कण्डेयजी बोले कि हे राजेन्द्र ! तदनन्तर उत्तम विमलेश्वर को जावे वहां महादेवजी की मूर्ताईहुई एक रमणीक देवशिला है ॥ १ ॥ जहां गर्जन व खेटकनाम का क्षेत्र है वहीं उत्तम देवशिलाभी है वहां स्नानकर भक्तिसे जो पितर व देवताओं का तर्पण करता है ॥ २ ॥ उसके वे बारह वर्षतक अतितप्त हुये स्वर्ग में आनन्द भोगते हैं और हे नृप ! उस तीर्थमें जो भक्तिपूर्वक थोड़े दानसे भी ब्राह्मणोंका पूजन करता है उसके फलका अन्त नहीं है तब युधिष्ठिरजी बोले कि हे विप्रेन्द्र ! पृथिवी में कौन दान बहुत अच्छे हैं ॥ ३ ॥ ५ ॥ जिनको देकर मनुष्य सब पापों से छूटजाता है तब मार्कण्डेयजी बोले कि सोना, चांदी, तांबा, मणि, मोती ॥ ५ ॥ पृथिवी

मार्कण्डेयउवाच ॥ ततो गच्छेत्तुराजेन्द्र विमलेश्वरमुत्तमम् ॥ तत्र देवशिलारम्या महादेवेन भाषिता ॥ १ ॥ गर्जनं खेटकं नाम तत्र देवशिला शुभा ॥ तत्र स्नात्वा तु यो भक्त्या तर्पयेत्पितृदेवताः ॥ २ ॥ तस्य ते द्वादशाब्दानि सुतृप्तादि विमोदिताः ॥ तस्मिन्स्तीर्थे तु यो भक्त्या ब्राह्मणान् पूजयेन्नृप ॥ ३ ॥ स्वल्पेनापि हि दानेन तस्य चान्तो न विद्यते ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ कानि दानानि विप्रेन्द्र शस्तानि धरणीतले ॥ ४ ॥ यानि दत्त्वा नरो भक्त्या मुच्यते सर्वकिल्बिषैः ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ सुवर्णं रजतं ताम्रं मणिं मौक्तिकं मेव च ॥ ५ ॥ भूमिदानं तथा गावो मोचयन्त्यशुभा न्नरम् ॥ तत्र तीर्थे तु यः कश्चित्कुरुते प्राणसंक्षयम् ॥ ६ ॥ रुद्रलोकैव सेत्ता वद्यावदाहृतं संप्लवम् ॥ ततः पुष्करिणीं गच्छेत्कुरुक्षेत्रं समान्तरम् ॥ ७ ॥ पूर्वपुष्करिणीनाम कुरुक्षेत्रं कलौ स्मृतम् ॥ तत्र स्नात्वा यजेद्देवं तेजो राशिं न्दिवाकरम् ॥ ८ ॥ ऋचमेकां जपेत्साम्यः सामवेदफलं लभेत् ॥ यजुर्वेदस्य जपनं ऋग्वेदस्य तथैव च ॥ ९ ॥ इत्यक्षरं वा जपेन्मन्त्रं ध्यायमानो दिवाकरम् ॥ आदि

और गौवें मनुष्य को पापसे छुटाती है उस तीर्थ में जो कोई मनुष्य अपने प्राणों का नाश करता है ॥ ६ ॥ वह तबतक रुद्रलोक में रहता है कि जबतक महाप्रलय होता है हे नृप ! तदनन्तर कुरुक्षेत्र के समान पुष्करिणी तीर्थ को जावे ॥ ७ ॥ अगिले जमाने में पुष्करिणी ही नाम रहा कलियुग में कुरुक्षेत्र कहा गया है वहा स्नानकर तेज की राशि ऐसे सूर्यदेवता का पूजन करे ॥ ८ ॥ और एक ऋचा को जपकरे तो वह सज्जन सामवेद के फलको पावे इसी तरह यजुर्वेद व ऋग्वेद का भी जप है ॥ ९ ॥

अथवा सूर्यका ध्यान करता हुआ व्यक्त कर मन्त्रका जपकर और आदित्यहृदयको तो जपकर सब पापोंसे छूटजाता है ॥ १० ॥ उस तीर्थमें स्नानकर जो विधिसे ब्राह्मणों का पूजन करता है उसका दान करोड़गुना होता है इसमें संशय नहीं है ॥ ११ ॥ विशेषकर कार्तिकी तथा माघी, वैशाखी, अमावास्या, व्यतीपात, संक्रान्ति, वैधृति और रविवार को ॥ १२ ॥ कुरुक्षेत्र में स्नानकर मनुष्य महादेवजी का गण होता है अनशन, जल, अग्नि व पञ्चाग्नि से ॥ १३ ॥ जो उस तीर्थमें मरा है वह परमगति को पाता है हे नृपसत्तम ! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य अथवा शूद्र ॥ १४ ॥ जो वेदोक्त कर्मको करता है वह महात्माओं की गतिको पाता है तब युधिष्ठिरजी बोले कि हे

त्यहृदयं जप्त्वा मुच्यते सर्वकिल्बिषैः ॥ १० ॥ तत्र तीर्थेतुयः स्नात्वा विधिना पूजयेद्विजान् ॥ तस्य कौटिल्युपदानं जायते नान्नसंशयः ॥ ११ ॥ कार्तिक्यां च तथा माघ्यां वैशाख्यां च व्यतीपाते संक्रमे वैधृतौ रवौ ॥ १२ ॥ कुरुक्षेत्रे नरः स्नात्वा रुद्रस्यानुचरो भवेत् ॥ अनाशके जले ह्यग्नौ पञ्चाग्नौ वा तथापि वा ॥ १३ ॥ तस्मिंस्तीर्थे मृतो यस्तु स याति परमाङ्गतिम् ॥ ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रो वा नृपसत्तम ॥ १४ ॥ विहितं कर्म कुर्वाणः स गच्छति सताङ्गतिम् ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ किं जपन् मुच्यते व्याधेर्ज्ञात्वा वैष्णोर्द्विजोत्तम ॥ १५ ॥ किं कुर्वन् मुच्यते प्राणी याति लोकमनामयम् ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ शृणु राजन् न वहित इति हासं पुरातनम् ॥ १६ ॥ गुह्यतीर्थं समासाद्य ब्राह्मणो मुक्तवान्यथा ॥ पुराद्विजवरश्चासीद्गोविन्दो नामनामतः ॥ १७ ॥ तस्य भार्या सुसम्पन्ना ब्राह्मणी च पतिव्रता ॥ तस्यां संजनयामास पुत्रमेकं च सुन्दरम् ॥ १८ ॥ स बाल एव भवने क्रीडते शिशुलीलया ॥ कदाचिद्ब्राह्मणश्रेष्ठः काष्ठमानयितुं हतः ॥ १९ ॥ वनान्नी

द्विजोत्तम ! अपने वर्णको जानकर क्या जपता हुआ मनुष्य रोगसे छूटजाता है ॥ १५ ॥ और क्या करता हुआ प्राणी पापों से छूटता व निर्दोषलोक को जाता है तब मार्कण्डेय जी बोले कि हे राजन् ! सावधान होकर तुम पुराने इतिहास को सुनो ॥ १६ ॥ किं गुह्यतीर्थ में प्राप्त होकर जैसे ब्राह्मण छूट गया है अगिले जमाने में नामसे गोविन्द नाम का एक उत्तम ब्राह्मण होता हुआ ॥ १७ ॥ उसकी स्त्री ब्राह्मणी बड़ी पतिव्रता होती हुई उसमें बड़े सुन्दर एक पुत्रको उसने उत्पन्न किया ॥ १८ ॥ वह बालक अपने

घरही में लडकों के खेलोंसे खेलताहुआ किसी समयमें वह उत्तम ब्राह्मण लंकड़ी लेनेको जाताहुआ ॥१६॥ जंगलसे लंकड़ी के बोझको लाकर पिछवाड़ेसे घरमें फेंकदिया वहां खेलताहुआ लडका लकड़ी के बोझसे चोटहिला होगया ॥२०॥ लडका वहां मरगया परन्तु उससमयमें ब्राह्मणने नहीं जाना और उससमय में ब्राह्मणीभी डरके मारे गोविन्द से नहीं कहा ॥२१॥ वह गोविन्द ब्राह्मण फिरभी जम्बूवनको चलागया तब हे नृप ! अकेली वह ब्राह्मणी विलाप करतीहुई ॥२२॥ ब्राह्मणी बोली कि ब्रह्माका पोता रावण जिसको तीनोंलोक डरतेथे वह पुत्र, मन्त्री और भाइयोंके सहित रामसे मारागया ॥२३॥ ऐसेही पुत्रके विना मनुष्यलोक व स्वर्गलोक

त्वाकाष्ठभारं गृहेपश्चाच्चक्षितवान् ॥ क्रीडन्नास्तेऽशिशुस्तत्र काष्ठभारेणपीडितः ॥२०॥ ममारबालकस्तत्र द्विजोनन्ना तवांस्तदा ॥ ब्राह्मण्यपितदातस्मै नशशंसभयात्तथा ॥२१॥ पुनर्द्विजस्सगोविन्दो विपिनंसंजगामह ॥ यदासाब्राह्मणीशून्या विललापतदानृप ॥२२॥ ब्राह्मण्युवाच ॥ रावणोब्रह्मणःपौत्रस्त्रैलोक्यंयस्यशङ्कते ॥ सहतोरामचन्द्रेण स पुत्रामात्यबान्धवः ॥२३॥ एवंपुत्रंविनासौख्यं मर्त्येनाकेनविद्यते ॥ यशश्चाख्यायितंयस्य स्वर्गार्थंयस्यभारती ॥२४॥ भिक्षान्नंब्राह्मणस्यार्थं स्वर्गवासोपिविद्यते ॥ पुत्रोत्पत्तिविनाशाभ्यां नापरंमुखदुःखयोः ॥२५॥ ब्रह्महत्याश्वमेधाभ्यां नापरंपापपुण्ययोः ॥ किंब्रवीमीतिहेवत्स नानुसौख्यंमुतंविना ॥२६॥ एवंबहुविधंदुःखं प्रलपित्वापुनःपुनः ॥ बालं गृहगतेविप्रे सङ्गोप्यब्राह्मणीतथा ॥२७॥ एवंतस्यां विलम्पन्त्याङ्गतारान्रियुधिष्ठिर ॥ भूम्यांप्रसुप्तं गोविन्दं पुत्रशोकं नपीडिता ॥२८॥ यावन्निरीक्षतेभार्या भर्तारंदुःखपीडितम् ॥ कृमिराशिमयन्तावद्गोविन्दं नृपसत्तम ॥२९॥ दुःखा

में, सुख नहीं है जिसका यश फैलाहुआ है, और जिसकी वाणी स्वर्गकी देनेवाली है ॥२४॥ और जिसका मीठा अन्न ब्राह्मणों के वास्तेहै उसीको स्वर्गवास भी है पुत्र पैदाहोने के बराबर सुख नहीं है और उसके मरने के बराबर कोई दुःख नहीं है ॥२५॥ ब्रह्महत्या के बराबर कोई पाप नहीं है और अश्वमेध के बराबर कोई पुण्य नहीं है हे वत्स ! मैं क्या कहूँ पुत्रके विना सुख नहीं है ॥२६॥ ऐसे अनेकप्रकार के दुःखको बार बार कहकर और ब्राह्मण को घरमें आनेपर बालक को छिपाकर ब्राह्मणी रह गई ॥२७॥ हे युधिष्ठिर ! इसतरह उसके विलाप करतेहुये रात्रि बीत गई पुत्रशोकसे पीडित, उनकी स्त्री जमीन में सोरहे गोविन्द अपने मालिकको जबतक

दुःख से पीडित देखे तबतक कीड़ोंके डेररूप गोविन्द को देखा हेतुपसत्तम ! ॥ २८ ॥ २९ ॥ पापसे युक्त उन गोविन्द को देखकर अत्यन्त दुःखमें ब्राह्मणों डूबगई तब इस प्रकार दुःखमें डूबीहुई उस ब्राह्मणी की रात बीती ॥ ३० ॥ प्रातःकाल कुशों के वास्ते फिर गोविन्द वनको गये ऐसे लकड़ी से मरेहुये अपने लड़के को गोविन्द ब्राह्मणने नहीं जाना ॥ ३१ ॥ जिस वार्त्ताको ब्राह्मणी ने छिपाया था उसको पाँचदिन होगये पाचवें दिन एक पशुओंका चरानेवाला उत्तम भैसियों और गौवोंको चराता हुआ ॥ ३२ ॥ वनमें भैसियों व गौवों को छोड़कर आप खानेके वास्ते घरको गया और गोविन्द ब्राह्मण से उस पशुपालने कहदिया ॥ ३३ ॥ किहे स्वामिन् ! मैं जबतक भो-

दुःखतरेमग्ना दृष्ट्वातंपातकान्वितम् ॥ एवंदुःखनिमग्नायाः शर्वरीविगतातदा ॥ ३० ॥ पुनःप्रातस्तुगोविन्दो दर्माय चवनंगतः ॥ एवंज्ञातवान्विप्रः काष्ठेनचहतंसुतम् ॥ ३१ ॥ गताश्चदिवसाःपञ्च ब्राह्मण्यागोपितञ्चयत् ॥ पशुपालःपञ्चमेहि महिषीरुत्तमाश्चगाः ॥ ३२ ॥ अरण्येमहिषीमुक्त्वा गाश्चभोक्तुंगृहंगतः ॥ विज्ञप्तःपशुपालेन गोविन्दोब्राह्मणोत्तमः ॥ ३३ ॥ यावद्भक्षाम्यहंस्वामिन्महिषीर्गाश्चरक्ष्य ॥ ततःसत्वरितोगाश्च ब्राह्मणोमहिषीःप्रति ॥ ३४ ॥ जगाममहिषीर्गाश्च विप्रस्यतस्यरक्षतः ॥ धावमानस्यगावश्च महिष्यःसङ्गमंगताः ॥ ३५ ॥ तत्रप्रविष्टास्तुजले नद्यारेवासुसङ्गमे ॥ तज्जलंपीतमानन्तु त्वरयातेनवारिताः ॥ ३६ ॥ अकामात्सलिलंपीत्वा प्रक्षाल्यनयनेशुभे ॥ आजगामततःपश्चाद्भवन्दिनसंक्षये ॥ ३७ ॥ मुक्त्वादुःखान्वितोरात्रौ गोविन्ददृश्यनययौ ॥ निद्राभिभूतोदुःखेन श्रमेणैवतुखेदितः ॥ ३८ ॥ पुनस्तञ्चार्द्धरात्रेण तस्यभार्यानिरीक्षते ॥ कृमिभिर्वेष्टितं गात्रं क्वचित्पश्यत्यवेष्टितम् ॥ ३९ ॥ पुनःसाविस्मया

जनकरआऊं तबतक आप इन भैसियों व गौवोंको बचाये रहना तदनन्तर वह ब्राह्मण जलहो भैसियों व गौवों के पास ॥ ३४ ॥ चलागया और भैसियों व गौवों को चराते व दौडतेहुये उस ब्राह्मण के भैंसे व गौवें संगम को चलीगई ॥ ३५ ॥ और उस नदी व नर्मदा के संगम के जलमें पैठगई उस पानीके पीतेही उस ब्राह्मणने उनको जल्दी से हांकदिया ॥ ३६ ॥ आपभी बेप्यास पानीको पीकर और नेत्रोंको धोकर उसके बाद सन्ध्याको घरआया ॥ ३७ ॥ थकाहुआ भोजनकर रातमें गोविन्द सोगया दुःख व थकावट से कष्टित निद्रासे बेहोश होगया ॥ ३८ ॥ आधीरात को फिर उसकी स्त्री उसको देखनेलगी तो उसकी देह कही कीड़ोंसे युक्त और कहीं

खाली देखती हुई ॥ ३६ ॥ फिर गुणवाली वह उसकी स्त्री विस्मय से भरी हुई व डरती हुई उसका पाप उससे कहती हुई ॥ ३७ ॥ स्त्री बोली कि बीते हुये आज से पांचवे दिन में पिछवाड़े से लकड़ीको फेंकते हुये आपसे बैजाना, धरमें वर्तमान, आपका लड़का मार डाला गया ॥ ३८ ॥ आपके किये हुये इस घोर पाप को मैंने प्रकट नहीं किया पर छिपाये हुये उस पापसे मैं दिन रात जलती हूँ ॥ ३९ ॥ और आपके व अपने शरीर के सुख को नहीं देखती हूँ हे नाथ ! मेरी नींद व तुम्हारे साथका भोग नष्ट होगया है ॥ ४० ॥ मनुस्मृति में महर्षियों का कहा हुआ श्लोक सुना जाता है उसको याद कर २ रात में मेरा सन्ताप शान्त नहीं होता है ॥ ४१ ॥ उस श्लोक का

विष्ठा तस्य भाय्या गुणान्विता ॥ उवाच दुष्कृतं तस्य साधवसा विष्टचेतना ॥ ४० ॥ भाय्यो वाच ॥ अतीति पञ्चमे चाह्नि इन्धनं क्षिपतातुते ॥ गृहे पश्चात्स्थितो बालस्त्वज्ञातो घातितस्त्वया ॥ ४१ ॥ मया तत्पातकं द्यौरं त्वत्कृतं न प्रकाशितम् ॥ तेन प्रच्छन्नपापेन दह्यमाना दिवानिशम् ॥ ४२ ॥ न सुखं तव गात्रस्य न च पश्यामि चात्मनः ॥ निद्रा प्रणष्टा मे नाथ रतिश्चैव त्वया सह ॥ ४३ ॥ श्रूयते मानवेषां स्त्री श्लोको गीतो महर्षिभिः ॥ स्मृत्वा स्मृत्वा च तं रात्रौ परितापो न शस्यति ॥ ४४ ॥ कीर्तनान्नश्यतेऽधर्मो बद्धतेऽसौ च गूहनात् ॥ इह लोके परैश्चैव पापस्यान्तो न विद्यते ॥ ४५ ॥ एवं सञ्चिन्त्य मानाहं स्थितारारौ भयातुरा ॥ कृमिराशिमयं त्वान्तु पश्यामि कथयामि किम् ॥ ४६ ॥ पुनश्च कान्तस्त्वदेहं भ्रूणहत्या कृमिप्लुतम् ॥ क्वचित्तु दन्ति ते चैव क्वचिन्नष्टाः समन्ततः ॥ ४७ ॥ एतत्संस्मृत्य संस्मृत्य विमृशन्ती पुनः पुनः ॥ न जाने कारणं किञ्चित्पृच्छामि कथयस्व मे ॥ ४८ ॥ तडागं वापि सरितं तीर्थं वा देवतालयम् ॥ यंगतो सिप्रभा वोयं तस्य नान्यस्य मे मतिः ॥ ४९ ॥

यह मतलब है कि अधर्म (पाप) कहने से घटता है और छिपाने से बढ़ता है इस लोक व परलोक में पापका अन्त नहीं है ॥ ४५ ॥ ऐसे विचारती हुई व डरती हुई मैं रात में रहती हूँ और आपको कीड़ोंका ढेर रूप देखती हूँ तिसको क्या कहूँ ॥ ४६ ॥ फिर हे प्यारे ! सब ओर बालहत्या के कीड़ोंसे घिरी हुई आपकी देहको कहीं वे कीड़े काटते हैं और कहीं के नष्ट भी होगये हैं ॥ ४७ ॥ इस बातको बार २ याद कर व बार २ विचारती हुई मैं किसी कारणको नहीं जानती सो आपसे पूछती हूँ आप मुझसे कहो ॥ ४८ ॥

जिम तटाग व नदी व तीर्थ न देवता के स्थानको आप गयेरहो उसीका यह प्रभाव है और का नहीं यह मेरी समझ है ॥ ४६ ॥ हे भारत ! ऐगे कक्षागया वह ब्राह्मण स्त्री से रमता हुआ हे नृपोत्तम ! पहलेवाले हालको कहा ॥ ५० ॥ कि मे गौवों व भैमियों के रोकने के वास्ते नर्मदाके सगम को गयाथा सो नाभितक जलमे पैठकर मैने येथेष्ट जलको पिया है ॥ ५१ ॥ और तीर्थको मै नही जानताहं नर्मदाजी सब नदियों में श्रेष्ठ है इस प्रकार उस सब वृत्तान्त को सुनकर उस उत्तमवर्णवाली स्त्रीने उसी क्षणमें व्रत किया और उस मंगममें पतिके सहित जातीहुई और देवताओंसे पूजित उस सङ्गम में विधिसे स्नानकर ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ पार्वती के सहित बल्याणकारक

एवमुक्तस्त्वसौविप्रः कथयामासभारत ॥ ५० ॥ गोलुलायीनिवृत्त्यर्थं नर्मम दासङ्गमंगतः ॥ नाभिमानेजलेमग्नस्तोयंपीतंयथेष्टतः ॥ ५१ ॥ नान्यतीर्थंविजानामि नर्ममदाचमरिद्वरा ॥ एवंश्रु त्वाचतत्सर्वमुपवासःकृतःक्षणात् ॥ ५२ ॥ भव्रांसहगतातत्र सङ्गमेवरवर्णिनी ॥ स्नात्वाविधिप्रयुक्तेन सङ्गमेसुरपूजि ते ॥ ५३ ॥ तर्पयामासदेवेशं शङ्करंचसहोमया ॥ पञ्चामृतैःस्नापयित्वा ब्राह्मण्यासहितोद्विजः ॥ ५४ ॥ गन्धमा ल्यादिधूपैश्च नैवेद्यैश्चमुशोभनैः ॥ अपूजयत्तत्रलिङ्गं देवीकात्यायनंशुभाम् ॥ ५५ ॥ रात्रौजागरणंकृत्वा भव्रतेनस ह्वेवसा ॥ ततःप्रभातेविमले द्विजंमपूजययत्नतः ॥ ५६ ॥ गोदानेनहिरण्येन वस्त्रेणान्नेनभारत ॥ गोविन्दपूजयामा स स्वशक्त्याब्राह्मणंशुभम् ॥ ५७ ॥ उक्तश्चाकाशवाण्यातु तीर्थंगुह्यावतीत्वदम् ॥ गुह्येश्वरंतत्रलिङ्गं पातालादुत्थि तंतदा ॥ ५८ ॥ गुह्यावतीनर्मदयोः सङ्गमोऽगुणवानभूत् ॥ मुक्तपापोऽगृहंयातः स्वभार्य्यासहितोद्विजः ॥ ५९ ॥ एतत्ती

महादेवजी को तुम किया ब्राह्मणी के सहित उस ब्राह्मण ने पञ्चामृत से स्नान करवाके ॥ ५४ ॥ चन्दन, फूल, धूप और अत्युत्तम नैवेद्यआदि से वहां लिंग व उत्तम कात्यायनी देवीका पूजन किया ॥ ५५ ॥ उस अपने पतिके सहित वह स्त्री रात्रि में जागरणकर और फिर निर्मल प्रातःकाल में यलसे ब्राह्मणका भी पूजनकर स्वरथ होगई ॥ ५६ ॥ व हे भारत ! गोविन्द भी अपनी शक्तिसे गऊ, सोना, कपडा और अन्नसे उत्तम ब्राह्मण का पूजन किया ॥ ५७ ॥ और आकाशवाणीसे कहाभी गया कि यह गुह्यावती नामका तीर्थ है उसीसमय में पाताल से वहां गुह्येश्वरलिंग भी प्रकटहुआ ॥ ५८ ॥ गुह्यावती और नर्मदा का सङ्गम गुणत्राला होताहुआ छूटे

पापवाला वह ब्राह्मण अपनी स्त्री सहित घरको गया ॥ ५६ ॥ यह तीर्थ पापों का हरनेवाला व बालहत्या का नाश करनेवाला है उसमें स्नान, जप, दान व ब्राह्मण भोजन करवाके ॥ ६० ॥ और व्रत करके व श्राद्धकरने और तिलोदक देने में महाप्रलयतक शिवलोक में बसता है ॥ ६१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेप्राकृतभाषा

मार्कण्डेयजी बोले कि हे राजेन्द्र ! तदनन्तर नर्मदा के उत्तरवाले तटपर जावे जहाँ मेघनाद के समीप नदियों में श्रेष्ठ विश्वरूपा नदी ॥ १ ॥ जगत् के उपकार

र्थपापहरं बालहत्याप्रणाशनम् ॥ तत्रस्नात्वाचजप्त्वाच दत्त्वाब्राह्मणभोजनम् ॥ ६० ॥ उपास्यश्राद्धकरणात्तिलो
दकप्रदानतः ॥ निवसेच्छिवलोकेहि यावदाहृतसंपुवम् ॥ ६१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेगुह्यावतीतीर्थमहिमा
नुवर्णनोनामार्शितितमोऽध्यायः ॥ ८० ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

मार्कण्डेयउवाच ॥ ततो गच्छेत्तुराजेन्द्र उत्तरेनर्मदातटे ॥ मेघनादसमीपे तु विश्वरूपासरिद्वरा ॥ १ ॥ निर्गता वि
श्वरूपस्य शरीरादुपकुर्वतः ॥ पुरादास्त्वनेदेवो लिङ्गहीनः कृतोद्विजैः ॥ २ ॥ नर्मदातटमाश्रित्य तपः कुर्वन्स्तदानुप ॥
विश्वरूपो भवेद्देवो निर्गतासरितांवरा ॥ ३ ॥ गतासानन्मर्मदातोयं सङ्गमो गुणवानभूत् ॥ तस्मिंस्तीर्थे नरः स्नात्वा सम
वेन पुनर्भवेत् ॥ ४ ॥ तत्र यत्क्रियते कर्म सर्वतदक्षयं भवेत् ॥ सारिकासिद्धिमायाता पतितातीर्थसङ्गमे ॥ ५ ॥ पूर्वमप्सरसां
श्रेष्ठा शक्रशापादकामतः ॥ चित्राङ्गदेनरमिता काचित्कष्टमवापह ॥ ६ ॥ सारिका भवकल्याणि वर्षाणां साग्रविंशतिम् ॥

करनेवाले विश्वरूप महादेव के शरीर से निकली है पूर्वकाल में दारुवनमें ब्राह्मणोंने महादेवजीको लिंगहीन कर दिया था ॥ २ ॥ तब उस समय में हे नृप ! नर्मदाके तटपर बैठ कर तपस्याको करते हुये महादेवजी विश्वरूप होगये उन्होंने जो श्रेष्ठ नदी निकली है ॥ ३ ॥ वही नर्मदाको गई है वह संगम गुणवाला होगया उस तीर्थमें स्नान कर वह मनुष्य फिर संसारमें नहीं होता है ॥ ४ ॥ वहाँ जो कर्म किया जाता है वह सब अक्षय होता है तीर्थके संगममें गिरी हुई सारिका (मैना) ने भिक्षुको पाया है ॥ ५ ॥ प्रमेद है कि पूर्वकाल में अप्सराओं में श्रेष्ठ कोई एक अप्सरा बेमन चित्राङ्गद के साथ रमी सो इन्द्रके शापसे कष्टको प्राप्त हुई ॥ ६ ॥ इन्द्रने कहा कि हे कल्याणि !

तू कुछ अधिक बीस वर्षतक सारिका हो फिर सरकर तू विश्वरूपा के संगममें नर्मदाके जलमें प्रवेशकर उस योनिसे छूटजायगी ॥ ७ ॥ तब हे नृप ! उत्तमदेहवाली वह बड़ी विचित्र मैनाहुई अपनी जातिकी याद रखनेवाली देवी नर्मदातट में रहतीरही ॥ ८ ॥ तदनन्तर उत्तम आचरणवाली वह मैना समय के आनेपर उत्तम आगको जलाकर विश्वरूपा के सङ्गस में नहाकर आगमें पैठगई ॥ ९ ॥ तब हे राजन् ! दिव्यदेह को धरेहुये इन्द्र के मन्दिर को प्राप्तहुई तबसे वह सारिकार्तीय कहाजाता है ॥ १० ॥ वहां जो काम कियाजाता है श्राद्ध, यज्ञ व शिवपूजन वह सब करोड़गुना मेघनादके दर्शनसे होताहै ॥ ११ ॥ परवश व अपने वश होकर जो

मृत्वात्वनर्ममर्मातोये विश्वरूपासुसङ्गमे ॥ ७ ॥ विचित्राबहुचार्वङ्गी सञ्जातासारिकानृप ॥ जातिस्मरासुराभावा
नर्ममर्मातटमाश्रिता ॥ ८ ॥ ततःकालेचसंप्राप्ते प्रज्वाल्यपावकंशुभम् ॥ प्रविष्टासाशुभाचारा विश्वरूपासुसङ्गमे ॥ ९ ॥
दिव्यदेहधरीराजन्प्राप्ताशक्रम्यमन्दिरम् ॥ एतदन्तरमासाद्य सारिकार्तीयमुच्यते ॥ १० ॥ तत्रयत्क्रियतेकर्म श्राद्धं
यज्ञःशिवाचनम् ॥ सर्वकोटिगुणविद्यान्मेघनादस्यदर्शनात् ॥ ११ ॥ अवशःस्ववशोवापि यस्तुप्राणान्परित्यजेत् ॥
नतस्यपुनरावृत्तिर्घोरिसंसारसागरे ॥ १२ ॥ ख्यातानिपञ्चलिङ्गानि यानिदृष्ट्वाशिवं व्रजेत् ॥ मानवोमनुजश्चेष्ट शृणु
तानियुधिष्ठिर ॥ १३ ॥ मेघनादंचगोष्ठेशं वागीशंकाकडेश्वरम् ॥ लब्धेश्वरंपञ्चलिङ्गान्येकाहेयस्तुपूजयेत् ॥ १४ ॥
अनेनैवशरीरेण सनरोहिशिवं व्रजेत् ॥ कोटियज्ञफलंप्राप्यपश्चान्मोक्षमवाप्नुयात् ॥ १५ ॥ आख्यानंकथयिष्यामि
पुरावृत्तंवानघ ॥ धर्ममेतःपुराराजा अयोध्याधिपतिर्वली ॥ १६ ॥ धर्मैरणराज्यंकृतवान्यज्ञांश्चबहुदक्षिणान् ॥

प्राणोंको छोड़ताहै उसकी फिर इस घोरसंसारसागरमें आवृत्ति नहीं होतीहै ॥ १२ ॥ वहां पांच लिंग प्रसिद्ध हैं जिनका दर्शनकर मनुष्य शिवको पाताहै हेमनुजश्चेष्ट, युधिष्ठिर ! उनको तुम सुनो ॥ १३ ॥ मेघनाद, गोष्ठेश, वागीश, काकडेश्वर और लब्धेश्वर इन पांचों लिंगोंको जो एक दिनमें पूजता है ॥ १४ ॥ वह मनुष्य इसी शरीर से महादेवजी को पाताहै करोड़ों यज्ञोंके फलको पाकर पीछे मोक्षको पाताहै ॥ १५ ॥ हे अनघ ! पूर्वकाल में हुये आख्यानको हम तुमसे कहेंगे अगिले जमाने में अयोध्याके मालिक, बलबाले, राजा धर्मसेनजी हुये ॥ १६ ॥ उन्होंने धर्मसे राज्य व बहुत दक्षिणावाली यज्ञोंको किया व धर्मशास्त्र सुनरहे वे राजा नर्मदाके चरितको

सुनकर नर्मदाके उत्तरवाले तटको चलेगये नर्मदाके जलमें स्नानकर और मेघनादका पूजनकर ॥ १७ । १८ ॥ सूर्यके उदय होतेहुये घोड़ेपर सवार राजा उत्तरदिशा की तरफ होकर गोष्ठेश्वर महादेवजीको चलेगये ॥ १९ ॥ उनका विधिसे पूजनकर फिर वागीश्वर को गये राजा वहा विधिपूर्वक स्नानकर और चन्दन, अगर, कपूर, धूप और दीपआदि विधानों से शिवका पूजनकर घोड़ेपर सवार राजाधिराज काकडेश्वरको आये ॥ २० । २१ ॥ व उनको पूजकर तदनन्तर राजा नर्मदाके जलमें विद्यमान लक्ष्मेश्वरको जाकर व उनका विधिपूर्वक पूजनकर ॥ २२ ॥ फिर मेघनादको गये वहां सूर्यभी अस्त होगये आपही कालरूप महादेवजीका ध्यानकर राजा जब

शृण्वन्सधर्मशास्त्राणि नर्मदाचरितं तथा ॥ १७ ॥ श्रुत्वा विनिर्गतो राजा रेवाया उत्तरे तटे ॥ मेघनादं समभ्यर्च्य स्नात्वा वै नर्मदाजले ॥ १८ ॥ उद्धृच्छति दिनकरे अश्वारूढो नरेश्वरः ॥ उत्तराग्निं शमाश्रित्य गतो गोष्ठेश्वरं शिवम् ॥ १९ ॥ यथा विधानं सम्पूज्य वागीश्वरगतस्ततः ॥ तत्र स्नात्वा विधानेन पूजयित्वा शिवं नृपः ॥ २० ॥ चन्दनागुरुकपूरैर्धूपैर्दपैर्विधानकैः ॥ अश्वारूढो नृपश्रेष्ठः काकडेश्वरमागतः ॥ २१ ॥ तं प्रपूज्य ततो राजा गत्वा वै नार्मदे जले ॥ लक्ष्मेश्वरं पूजयित्वा स्थितैव विधिपूर्वकम् ॥ २२ ॥ मेघनादं ततो गत्वा सूर्यश्चास्तमुपगमत् ॥ ध्यात्वा स्वयं कालरूपं यावत्तिष्ठति वै नृपः ॥ २३ ॥ तावद्द्वारोऽपि तुरगो ह्यन्तरिक्षं चरस्तदा ॥ दिव्यदेहधरस्सोवाप्यप्सरोभिः समावृतः ॥ २४ ॥ विमाने देवराजस्य यया विन्द्रपुरीं स्थितः ॥ शुनीपृष्ठे तु याराज्ञस्तीर्थयात्रां प्रकुर्वती ॥ २५ ॥ दिव्यदेहधरा सापि विमानेन गता दिवि ॥ धर्मसेनोऽपि तान्दृष्ट्वा विस्मया विष्टुचेतनः ॥ २६ ॥ अश्वरूपं जगादाथ किमेतदिति भारत ॥ उवाचा काशगोवाचं कथन्त्वं सिद्धसे नृप ॥ २७ ॥ शरीरजेन कष्टेन तपः साधया विभूतयः ॥ पादचारी हि गच्छत्वं परपादैर्गतो ह्यसि ॥ २८ ॥ भूतक ठहरे ॥ २९ ॥ तव तत्क वह पापी बांडा भी आकाश में चलता हुआ व दिव्य देहको धरेहुये व अप्सराओं से घिरा हुआ ॥ २४ ॥ इन्द्रके विमान में बैठा हुआ इन्द्रपुरीको चला गया और राजाके पीछे तीर्थयात्राको कर रही जो कुतिया थी ॥ २५ ॥ वह भी दिव्यदेह को धरेहुये विमान से स्वर्गको जाती हुई धर्मसेन भी उसको देख कर विस्मययुक्त होतेहुये ॥ २६ ॥ और हे भारत ! उस घोड़ेसे कहा कि यह क्या है तब आकाशमें विद्यमान घोड़ा बचन बोला कि हे नृप ! तुम क्यों दीन होतेहो ॥ २७ ॥

अपने शरीर के कष्टसे जो तप होता है उसीसे सब ऐश्वर्य होते हैं इससे अपने पांवों से चलतेहुये आप जावें अभी तो और के पांवों से आयेथे ॥ २८ ॥ अब जो फिर आप यात्रा करेंगे तो सिद्धि को पावेंगे तब राजा उसके इस वचन को सुनकर ॥ २९ ॥ फिर दूसरे दिन लिंगप्रजनके लिये गये और पाँचों लिंगोंका भली भाँति पूजनकर नर्मदा को आये ॥ ३० ॥ जब मेघनाद को देखा तो दरवाजेपर प्रत्यक्ष महादेवजीको देखतेहुये पाँच मुहंवाले, दश मुजावाले, तीन नेत्रवाले, त्रिशूल हाथमें लिये ॥ ३१ ॥ बैलपर सवार, जगत् जिनके पेटमें है, चन्द्रमा का मुकुट बनायेहुये और इन्द्रादि सब देवताओंके स्वामी परमेश्वर उन महादेवजी को देख

योयात्रांप्रकुरुषे तदासिद्धिमवाप्स्यसि ॥ ततोराजाचितस्याथ श्रुत्वातद्वचनंतदा ॥ २९ ॥ पुनर्द्वितीयदिवसे प्रस्थितोलिङ्गपूजनम् ॥ पञ्चलिङ्गान्समभ्यर्च्य समायातस्तुनर्ममदाम् ॥ ३० ॥ मेघनादंयदापश्यद्भारदेवंचदृष्टवान् ॥ पञ्चवक्त्रं दशभुजं त्रिनेत्रंशूलपाणिनम् ॥ ३१ ॥ वृषारूढंजगद्गर्भं शशाङ्ककृतशेखरम् ॥ दृष्ट्वातन्देवदेवेशं तुष्टावपरमेश्वरम् ॥ ३२ ॥ जयदेवमहादेव महापातकनाशन ॥ संसारसागरेमग्नं मांसमुद्धरसाम्प्रतम् ॥ ३३ ॥ हरउवाच ॥ वरंष्टुणु महाभाग यत्तेमनमिधर्तते ॥ तद्ददामिनसन्देहद्विशवभक्तोहिपुत्रक ॥ ३४ ॥ यदितुष्टोसिमेदेव तन्मांसहचरंकुरु ॥ एकाहेपञ्चलिङ्गानि पूजयिष्यतियोनरः ॥ ३५ ॥ सतवानुचरोदेव भवत्वेषवरोमम ॥ धर्मसेनवचःश्रुत्वा भवत्वेवंहरोब्रवीत् ॥ ३६ ॥ तंगृहीत्वातुराजानं कैलासंसजगामह ॥ स्वदेहस्थंचकारासौ धर्मसेनंनृपंष्टप ॥ ३७ ॥ एतत्तेकथितंराज

कर रक्षति करतेहुये ॥ ३२ ॥ हे देव ! हे महादेव ! हे बड़े पापोंके नाशकरनेवाले ! आपकी जय हो अब संसारसमुद्रमें डूबेहुये मुझको उद्धारकरो ॥ ३३ ॥ तब महादेवजी बोले कि हे महाभाग ! जो तुम्हारे मनमें वर्तताहो उस वरको तुम मागलेवो हेपुत्रक ! उसको मैं तुम्हे देऊंगा इसमें कुछ सन्देह नहीं क्योंकि तुम शिवकेभक्तहो ॥ ३४ ॥ तुम्हारा भोले कि हे देव ! जो आप मुझपर प्रसन्नहोवो तो मुझे आप अपना अनुचरकरो और जो मनुष्य एक दिनमें पाँचों लिंगोंका पूजनकरे ॥ ३५ ॥ हे देव ! वह हमारा वर है धर्मसेन के वचनको सुनकर ऐसाही हो इस प्रकार महादेवजीने कहा ॥ ३६ ॥ और उन राजाको लेकर महादेवजी कैलास

को चले गये और हे नृप ! राजा धर्मसे नजीको अपने शरीरमें मिलालिया ॥ ३७ ॥ हे राजन् ! यह पुराना इतिहास आपसे कहा गया इसके सुनने व कहनेसे अश्वमेध के फलको पाता है ॥ ३८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डे प्राकृतभाषाऽनुवर्णनो नामैकाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८१ ॥

मार्कण्डेयजी बोले कि अब और पापों के नाश करनेवाले तीर्थको कहेंगे वह मयूरकुम्कुट नाम का तीर्थ ब्रह्महत्याका नाश करनेवाला है ॥ १ ॥ नर्मदा के दक्षिण तटमें पुण्यवाला मृकण्डका आश्रम है हे भूपाल ! उसमें बड़े धर्मात्मा मृकण्डनामक ऋषि ॥ २ ॥ हे महाभाग ! देवताओं की हजारों वर्षों तक तप करते हुये रमणीक

नितिहासं पुरातनम् ॥ श्रवणात्कीर्तनादस्य अश्वमेधफलं लभेत् ॥ ३८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डे पञ्चलिङ्गमहि
मानुवर्णनो नामैकाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८१ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

मार्कण्डेय उवाच ॥ अथान्यत्कथयिष्यामि तीर्थपापप्रणाशनम् ॥ मयूरकुम्कुटनाम ब्रह्महत्याव्यपोहनम् ॥ १ ॥
मृकण्डस्य श्रमं पुण्यं नर्मदादक्षिणे तटे ॥ मृकण्डो नाम भूपाल ऋषिः परमधार्मिकः ॥ २ ॥ तपस्तेपे महाभाग दि
व्यैर्वर्षसहस्रकैः ॥ तस्याश्रमपदरम्ये मुनयः शंसितव्रताः ॥ ३ ॥ वसन्ति स्म जलाहाराः शुष्कपत्रकृता शनाः ॥ केचित्त
त्र निराहारा मोक्षोपायविचिन्तकाः ॥ ४ ॥ एतस्मिन्नन्तरं राजगन्धर्वौ शक्रगायनौ ॥ हेति प्रहेति नामानौ गतो शक्र
सभान् ॥ ५ ॥ वधूरप्सरसां श्रेष्ठा दृष्टाताभ्यां युधिष्ठिर ॥ दृष्टमात्रौ तु गन्धर्वौ कामबाणप्रपीडितौ ॥ ६ ॥ हेतिः कुक्कुट
शब्देन प्रहेतिर्बहिर्णस्तथा ॥ घोष्यमाणौ सुमधुरं सादयामास तु श्रुताम् ॥ ७ ॥ वृत्रहातदभिप्रायं ज्ञात्वा शापं ददौ त

उनके आश्रममें उत्तमव्रतवाले जल व सूखे पत्तों के खानेवाले मुनिलोग बसते हुये मोक्षके उपायोंके विचारनेवाले वहां कोई निराहार भी रहते थे ॥ ३ ॥ ४ ॥ हे राजन् !
इसी अन्तर में हेति और प्रहेति नामके इन्द्रके यहां के गानेवाले गन्धर्व हे नृप ! इन्द्रकी सभाको गये ॥ ५ ॥ हे युधिष्ठिर ! उन दोनोंने अप्सराओं में श्रेष्ठ एक
नवीन अप्सराको देखा देखते ही दोनों गन्धर्व कामबाणसे अतिपीडित हुये ॥ ६ ॥ तब हेति सुर्गाकी आवाज से और प्रहेति मोरकी बोलीसे अतिमधुर बोलते हुये उस

अप्सराको शिक्षाया ॥ ७ ॥ तब उनका अभिप्राय जानकर इन्द्रने शापकोदिया कहा कि तुम दोनों सुर्गों और मोर होजाओगे इसमें संशय नहीं है ॥ ८ ॥ फिर देवताओं की सौचपोंके पूरे होनेपर यहां आओगे तब हे युधिष्ठिर ! वे दोनों गन्धर्व पक्षियोंकी योनिको प्राप्तहोगये ॥ ९ ॥ पहले जन्मकी याद रखनेवाले व कुकर्म करनेवाले व देखनेमें प्यारे दोनों पत्नी सब तीर्थोंपर उतरतेहुये नारदजी को देखा ॥ १० ॥ तब दोनों गन्धर्व बोले कि हे शुभाचार ! हे ब्रह्मपुत्र ! हे तपोधन ! किस कर्मसे ये हम दोनों छूटेंगे सो आप कहें ॥ ११ ॥ तब नारदजी बोले कि नर्मदाके दक्षिणके तटमें मृकण्डका पुरणवाला आश्रम है अक्सर वह तीर्थ तिर्यक्योनि से छोडानेवाला

दा ॥ युवांकुक्कुटमयूरीच भविष्येथेनसंशयः ॥ ८ ॥ पूर्णेदिव्यशतेवर्षे पश्चादत्रागमिष्यथः ॥ तिर्यग्योनौतुसंप्राप्तौ गन्धर्वौहियुधिष्ठिर ॥ ९ ॥ जातिस्मरौदुराचारौ पक्षिणौप्रियदर्शिनौ ॥ सर्वतीर्थान्युत्तरन्तौ नारदंचददर्शतुः ॥ १० ॥ गन्धर्वावूचतुः ॥ भविष्यावःशुभाचार ब्रह्मपुत्रतपोधन ॥ कर्मणाकेनचावांहि मुक्तावेतौवदस्वतत् ॥ ११ ॥ नारदउवाच ॥ नर्मदादक्षिणेतीरे मृकण्डस्याश्रमंशुभम् ॥ तिर्यग्योनिविमोक्षञ्च तीर्थैर्हिपरमंमतम् ॥ १२ ॥ जलाप्लुतौनर्मदायाः सर्वतत्रभविष्यति ॥ ततोहेतिःप्रहेतिश्च मुस्नातौदिव्यरूपिणौ ॥ १३ ॥ एकेनस्नानमात्रेण पक्षिणौदिव्यतांगतौ ॥ स्नात्वातुविधिनानेन ध्यात्वादेवंसदाशिवम् ॥ १४ ॥ उच्चार्यार्घ्यधोरमन्त्रन्तौ सदाध्यानस्थितौष्टुप ॥ एतस्मिन्नन्तरेराजन्पातालादुत्थितंशुभम् ॥ १५ ॥ शतसूर्यप्रकाशंहि लिङ्गतत्रयुधिष्ठिर ॥ कुक्कुटेश्वरमेकन्तु मयूरेश्वरमेवच ॥ १६ ॥ गन्धर्वौतुविमानस्थौ गतौशक्रस्यमन्दिरम् ॥ तस्मिंस्तीर्थेनरःस्नात्वा भवेनैवपुनर्भवेत् ॥ १७ ॥ स्नात्वातिलोमानगयौहै ॥ १८ ॥ तुम दोनों नर्मदाके जलमें स्नानकरो वहां सब होजायगा तदनन्तर हेति और प्रहेति दोनोंने स्नान किया और दिव्यरूप होगये ॥ १३ ॥ एक स्नानमात्रसे दोनोंपत्नी दिव्यरूप होगये फिर विधिसे स्नानकर व सदाशिवदेवका ध्यानकर ॥ १४ ॥ व अर्घ्यधोरमन्त्रका उच्चारणकरवे दोनों सदा ध्यानमें स्थित होतेहुये इसी अन्तर में हे राजन्, युधिष्ठिर ! वहां सैकड़ों सूर्योंके समान तेजवाले, उत्तम, दो लिंग पातालसे निकले एक कुक्कुटेश्वर और दूसरा मयूरेश्वर ॥ १५ ॥ १६ ॥ फिर विमान पर बैठेहुये दोनों गन्धर्व इन्द्रके मन्दिर को चलेगये उस तीर्थ में मनुष्य स्नानकर फिर संसार में नहीं होताहै ॥ १७ ॥ स्नानकर और तिलोदक

देकर पितरों की परमगति होती है और परवश व अपने नशहोकर जो प्राणोंको छोड़ता है ॥ १८ ॥ उसकी फिर घोर संसारसागर में आवृत्ति नहीं होती है वहां के मरे हुये कीड़े, पतंगे, पक्षी, सांप, मेंढक और पापीवृत्त भी शिवके स्थानको जाते हैं ॥ १९ । २० ॥ इति श्रीरक्तन्दपुराणैरेवाखण्डे प्राकृतभाषाऽनुवादमुकण्डाश्रमकीर्तनो नामद्वयशीतितमोऽध्यायः ॥ ८२ ॥

मार्कण्डेयजी बोले कि तदनन्तर चन्द्रमती के संगम में और उत्तमतीर्थ है वहां चन्द्रेश्वर, सिद्धेश्वर, घण्टेश्वर और महिषेश्वर ये सिद्धलिंग हैं तदनन्तर दकंदत्वा पितृणां परमागतिः ॥ अवशः स्ववशोवापि यस्तुप्राणान्परित्यजेत् ॥ १८ ॥ नतस्य पुनरावृत्तिर्धौरे संसारसागरे ॥ तत्रकीटाः पतङ्गाश्च पक्षिणो यमरीसृपाः ॥ १९ ॥ मण्डकाः पापवृक्षाश्च मृतायान्ति शिवंपदम् ॥ २० ॥ इति श्री स्कन्दपुराणैरेवाखण्डे मृकण्डाश्रमकीर्तनो नाम द्वयशीतितमोऽध्यायः ॥ ८२ ॥ *

मार्कण्डेयउवाच ॥ ततो न्यत्परमं तीर्थं चन्द्रमत्यास्तुसङ्गमे ॥ चन्द्रेश्वरं सिद्धलिङ्गं तथा सिद्धेश्वरं पुनः ॥ १ ॥ घण्टेश्वरं महिषेश्वरं च तीर्थमतः परम् ॥ वृषसेनं हयग्रीवं शुक्रतीर्थमतः परम् ॥ २ ॥ रमेश्वरं ततो गच्छेत्तीर्थपापप्रणाशनम् ॥ मेकलायास्तटे राजन्महापातकनाशनम् ॥ ३ ॥ यदादारुवेन पूर्वं महादेवेन मोहिताः ॥ ब्राह्मणानां स्त्रियस्तत्र रमणाः समागताः ॥ ४ ॥ चिन्तयन्त्यश्च तामोक्षं मेकलातीरमाश्रिताः ॥ तामिश्चरममाणाभिरावृतं शिवपूजनम् ॥ ५ ॥ नीलोत्पलदलैर्विल्वैर्मल्लिकार्जुनैः ॥ शून्यं प्रपूजितं यावत्तावद्विङ्गसमुत्थितम् ॥ ६ ॥ पातालादागतं लिङ्गं

अश्वतीर्थं, वृषसेन, हयग्रीव और शुक्रतीर्थ है ॥ १ । २ ॥ तदनन्तर पापोंके नाशकरनेवाले रमेश्वरतीर्थ को जावे हे राजन् ! वह महापातकों का नाश करनेवाला नर्मदाके तटमें है ॥ ३ ॥ जब पहले दारुवन में महादेवजीरो मोहित की गई ब्राह्मणोंकी स्त्रिया रमती हुई वहां आई व वे मोक्षको विचार करती हुई नर्मदाके तटपर बैठी फिर विहार करती हुई उन स्त्रियोंने महादेवजी के पूजनका प्रारम्भ किया ॥ ४ ॥ कालेकमलके दलों से व विल्वपत्र, नैवेली, जाही और कुन्दके फूलोंसे जबतक मन्दं देव से खालीस्थान को पूजे तबतक लिंग प्रवट्टुआ ॥ ६ ॥ जलती हुई कालागिनि के रामान तेजवाला लिङ्ग पाताल से आगया और रमेश्वर नाम से प्रसिद्ध उसी

विहारस्थान से प्रकट होगया ॥७॥ फिर महादेवजीने बियाँसे कहा कि तुम्हारे शापका मोक्ष होजावे अब तुम सब पापसे रहित अपने घरको जावो ॥ ८ ॥ इतना कह कर महादेवजी वही अन्तर्धान होगये इससे उस तीर्थमें मनुष्य स्नानकर वह फिर संसारमें नहीं होताहै ॥ ९ ॥ तथा अनशनसे व अग्नि में जो मरेहैं वे फिर उत्पन्न न होवेंगे और पितरों के लिये वहां विधिपूर्वक तिलोदक व पिण्डदान अच्छा है ॥ १० ॥ क्योंकि वहां श्राद्धके करने व दानसे पितरों की परमगति होती है पूर्व कालमें इन्द्र, ब्रह्मा, विष्णु और कुबेर ॥ ११ ॥ व हे नृप ! राजस रावण और मेघनादने जपको तपा और अनेक प्रकारकी यज्ञोंको ॥ १२ ॥ किया इससे

उवलत्कालानलप्रभम् ॥ रमेश्वरेतिविख्यातं रममाणत्समुत्थितम् ॥ ७ ॥ स्त्रीणामुवाचदेवेशः शापमोक्षोभवन्ति
ति ॥ गच्छन्नुसर्वास्वगृहं साम्प्रतंगतकल्मषाः ॥ ८ ॥ इत्युक्त्वादेवदेवेशस्तत्रैवान्तरधीयत ॥ तस्मिंस्तथैतैरःस्ना
त्वा समवेनपुनर्भवेत् ॥ ९ ॥ अनाशकेनचाग्नौहि येमृतानपुनर्भवाः ॥ तिलोदकंपितृणान्तु पिण्डदानंयथाविधि ॥
१० ॥ श्राद्धेनैवचदानेन पितृणांपरमागतिः ॥ इन्द्रेणब्रह्मणापूर्वं विष्णुनाधनदेनच ॥ ११ ॥ रक्षसारावणेनाथ तथाचे
न्द्रजितानृप ॥ जपोजसस्तपस्तप्तं यज्ञानिविविधानिच ॥ १२ ॥ कृतानिष्टपशार्दूल गताहिपरमाङ्गतिम् ॥ अन्यच्चक
थयिष्यामि हारिणंतीर्थमुत्तमम् ॥ १३ ॥ हरिणेशंसिद्धलिङ्गं तथावैधनुरीश्वरम् ॥ बाणेश्वरंपरंविद्धि तथावैलुब्धकेश्व
रम् ॥ १४ ॥ एतानिलिङ्गरूपाणि पूजयित्वाशिवं व्रजेत् ॥ आख्यानंकथयिष्यामि पुरावृत्तंयुधिष्ठिर ॥ १५ ॥ अर्जुनो
लुब्धकोनाम मन्दजातिसमुद्भवः ॥ पर्येतन्मृगयांराजन्नर्मदातीरमागतः ॥ १६ ॥ दृष्ट्वायूथंमृगाणान्तु धावमानः
पुनःपुनः ॥ पलायमानाःसर्वेते एकःपश्चात्स्थितोमृगः ॥ १७ ॥ हतोमध्यदिनेसोद्य कुरङ्गोनर्मदातटे ॥ पतितोसौ
हेनृपशार्दूल ॥ वे परमगतिको प्राप्तहुये अब और उत्तम हारिणतीर्थको कहेंगे ॥ १३ ॥ सिद्धलिङ्ग हरिणेश तथा धनुरीश्वर, बाणेश्वर और चौथे लुब्धकेश्वरको जानो ॥
१४ ॥ इन लिंगोंका पूजनकर शिवको पाताहै हे युधिष्ठिर ! अब पूर्वकाल में हुये आख्यान को हम कहेंगे ॥ १५ ॥ नीचजाति में पैदाहुआ अर्जुननाम का बहेलिया
शिकारको घूमताहुआ हे राजन् ! नर्मदाके तीरआया ॥ १६ ॥ और मृगोंके सुगण्डको देखकर बार २ दौड़रहा तबतक वे सब मृग भागगये पछिसे एक मृग रहगया ॥ १७ ॥

वह मृग मध्याह्न में नर्मदाके तटपर मारागया वह मुदाहोकर गिरपड़ा फिर दिव्यदेहको धरेहुये ॥ १८ ॥ हंसोंसे जुते विमानपर चढ़कर ब्रह्मलोक को चलागया उस मृगके चलेजाने पर वह बहेलिया चिन्ता से युक्त हुआ ॥ १९ ॥ कि अनेक महापापों को मैंने कियाहै सो किस गति को मैं जाऊंगा इससे अब मेरा मरजाना अच्छा है ॥ २० ॥ तदनन्तर हे राजन् ! इस प्रकार चिन्ताकर वह नर्मदाके जलमें गिरपड़ा उसीक्षण में दिव्य देहवाला वह गन्धर्वपुर को चलागया ॥ २१ ॥ उसके देवलोक में जानेपर धनुष और बाण जलमें पड़ेरहे तब ये चारलिंग तीनों भुवनोंमें प्रसिद्ध हुये ॥ २२ ॥ हरिणेश्वर, वाणेश, लुब्धेश, धनुरीश्वर और पांचवां रमेश्वर

गतप्राणो दिव्यदेहधरः पुनः ॥ १८ ॥ विमानेहंसयुक्ते वै ब्रह्मलोकं जगाम ह ॥ गते तु हरिणेशोऽथ लुब्धकश्चिन्तयान्वितः ॥
जन्पतितो नर्मदाजले ॥ तत्क्षणादिव्यदेहोसौ गन्धर्वपुरमाययौ ॥ २० ॥ चिन्तयित्वा ततो रा
चत्वाऽर्थे तानि लिङ्गानि ख्यातानि भुवनत्रये ॥ २१ ॥ गते तस्मिन्देवलोकं धनुर्वीणौ जले स्थितौ ॥
ब्रह्महत्यादिपापानि विलयं यान्ति पार्थिव ॥ २२ ॥ हरिणेश्वरं च वाणेशं लुब्धेशं धनुरीश्वरम् ॥ रमेश्वरं पञ्चमन्तु ष
रेवाखण्डे रमेश्वरहरिणेश्वरलुब्धकेश्वरधनुरीश्वरवाणेश्वरकथनो नाम त्र्यशीतितमोऽध्यायः ॥ २४ ॥
इन पांचों लिङ्गोंको जो कहे ॥ २३ ॥ उसका फिर घोरसंसारसागर में आना नहीं होताहै हे राजन् ! उस तीर्थमें स्नानकर मनुष्य शिवपुर को जाताहै ॥ २४ ॥ और
हे पार्थिव ! ब्रह्महत्याआदि पाप नाश को प्राप्तहोते हैं और अनशन व अधजल से मरा शिवको पाता है ॥ २५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे रेवाखण्डे प्राकृतभाषाऽनुवा
दे रमेश्वरहरिणेश्वरलुब्धकेश्वरधनुरीश्वरवाणेश्वरकथनो नाम त्र्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८३ ॥ * ॥

मार्कण्डेयजी बोले कि यत्नसे ब्रतको कियेहुये भक्तिसे जो उसमें स्नानकर रात्रिमें जागरणकरे व दान देवे ॥ १ ॥ व पञ्चामृतसे महादेवजी को स्नान करावे व यथाशक्ति दानकरे और विधानसे पूजनकर ॥ २ ॥ अपने कल्याण की इच्छा करताहुआ सुपात्र को छुड़कर दानकरे तो उसके पितर बारहवर्षतक तृप्त रहते हैं इसमें संशय नहीं है ॥ ३ ॥ और देनेवाला वहां जाता है जहां निरजन देव हैं व जो इनके नामको अपने मकानमें बैठाहुआ अपनी शक्तिके अनुसार अपता है ॥ ४ ॥ वह नील पर्वतमें जो पुण्य होती है उस सबको पाता है और शूलभेदविषे जो पर्व २ में श्राद्ध करता है ॥ ५ ॥ और मासान्तमें विशेष से करता है वृष ॥ उसके पुण्यफल को तुम

मार्कण्डेय उवाच ॥ तत्र स्नानात्वा तु भक्त्या उपवासपरायणः ॥ क्षपाजागरणं कुर्याद्दद्याद्दानं च यत्नतः ॥ १ ॥ दस्यस्नपनं कुर्यादमृतैः पञ्चभिस्तथा ॥ समालभेद्यथाशक्त्या पूजां कृत्वा विधानतः ॥ २ ॥ पात्रं परीक्ष्य दातव्यमात्मनः श्रेय इच्छता ॥ पितरस्तस्य तृप्यन्ति द्वादशाब्दनं संशयः ॥ ३ ॥ दाता च गच्छते तत्र यत्र देवो निरञ्जनः ॥ गृहमध्ये प्रविष्टस्तु स्मरन्नामास्य शक्तिः ॥ ४ ॥ नीलाद्रौ तु च यत्पुण्यं तत्समस्तं लभेत सः ॥ शूलभेदे च यः कुर्याच्छ्राद्धं पर्वणि पर्वणि ॥ ५ ॥ विशेषाच्चैव मासान्ते तस्य पुण्यफलं शृणु ॥ केदारे चैव यत्पुण्यं कुब्जायाञ्च तथानृप ॥ ६ ॥ कनखले चैव यत्पुण्यं गङ्गासागरसङ्गमे ॥ सितासिते तु यत्पुण्यमन्यतीर्थे विशेषतः ॥ ७ ॥ अबुदे चैव यत्पुण्यं पुरयं चामरपर्वते ॥ गङ्गाद्यैः सर्वतीर्थैश्च फलं प्राप्नोति मानवः ॥ ८ ॥ अस्मिन्तीर्थे तथा पुण्यं लभते नान्न संशयः ॥ विधिमन्त्रसमायुक्तं तर्पयेत्पितृदेवताः ॥ ९ ॥ कुलानितारयत्येव दशपूर्वापराणि सः ॥ दक्षिणाञ्चैव मर्त्यश्च शुचिर्भूत्वासमाहितः ॥ १० ॥ न्यासं कृत्वा तु पूर्वोक्तं प्रदद्यादष्टपुष्पकम् ॥ शास्त्रोक्तैरष्टभिर्मन्त्रैर्मानसैः शृणुतांस्तथा ॥ ११ ॥ वारिजं सौम्यमा

सुनो कि केदारमें जो पुण्य है तथा कुब्जमें जो पुण्य होता है ॥ ६ ॥ और कनखल व गङ्गासागरसङ्गममें जो पुण्य है और सितासित व और तीर्थमें विशेषसे जो पुण्य है ॥ ७ ॥ व अबुद व अमरपर्वतमें जो पुण्य होता है व गङ्गाआदि सब तीर्थसे मनुष्य जो फल पाता है ॥ ८ ॥ इस तीर्थमें उसी प्रकार पुण्यको पाता है इसमें कुछ संशय नहीं है व जो विधि और मन्त्रों से युक्त पितर व देवताओं का तर्पण करता है ॥ ९ ॥ वह आगे व पीछेवाले दशकुलों को तारता है और पवित्र व सावधान होकर मनुष्य

दक्षिणा को भी देवे ॥ १० ॥ पहिले कहेहुये न्यासको कर फिर आत्ममें कहेहुये आठ मानसमन्त्रों से आठ फूलोंको देवे उन आठोंफूलोंको तुम सुनो ॥ ११ ॥ वारिज, सौम्य, आग्नेय, वायव्य, पार्थिव, वानस्पत्य व सातवां प्राजापत्य पुष्पहै ॥ १२ ॥ और आठवां शिवपुष्प है अब इनका निर्णय सुनो वारिज जलको जाने, मिठाई से युक्त दूध सौम्यहै ॥ १३ ॥ धूप व दीप आग्नेय है, चन्दनआदि वायव्य है, कन्द मूलआदि पार्थिवहै, फल वानस्पत्यहै ॥ १४ ॥ अन्नआदि प्राजापत्यहै और उपासना करने को शिवपुष्प कहते हैं अब और फूलोंको कहते हैं कि जीवोंका नहीं मारना पहिला फूलहै, इन्द्रियों का वश करना दूसरा ॥ १५ ॥ और तीसरा फूल दयाहै

रुनेयं वायव्यं पार्थिवं पुनः ॥ वानस्पत्यं भवेत्पुष्पं प्राजापत्यन्तु सप्तमम् ॥ १२ ॥ अष्टमं शिवपुष्पं च शृण्वेतेषां विनिर्णयम् ॥ वारिजं सलिलं ज्ञेयं सौम्यं मधुयुतं पयः ॥ १३ ॥ आग्नेयं धूपदीपं च वायव्यं चन्दनादिकम् ॥ पार्थिवं कन्दमूलाद्यं वानस्पत्यं फलात्मकम् ॥ १४ ॥ प्राजापत्यमन्नाद्यञ्च शिवपुष्पमुपासनम् ॥ अहिंसाप्रथमं पुष्पं पुष्पमिन्द्रियनिग्रहः ॥ १५ ॥ तृतीयं च दयापुष्पमेभिस्तुष्यन्ति देवताः ॥ तपसा चार्चयेद्भक्त्या अत्र तीर्थेन राधिप ॥ १६ ॥ छत्रञ्च चामरं नन्द्याच्छ्रय्यां चोपानहौ तथा ॥ तेन पूजनमात्रेण पूजिताः पुरुषास्त्रयः ॥ १७ ॥ स्वर्गलोकं वसेत्तावद्यावदाहूतं संस्रवम् ॥ शूलपाणेस्तु यो भक्त्या स्नपनञ्चैव कारयेत् ॥ १८ ॥ पञ्चामृतेन यश्चैव यत्न कर्हमकुङ्कुमैः ॥ समालभेच्च देवेशं श्रीखण्डैरगरादिभिः ॥ १९ ॥ नानाविधैश्च पुष्पैश्च अर्चां कुर्वन्ति ये द्विजाः ॥ रुद्रं पुरुषसूक्तञ्च लोकैः स्वस्वसूत्रकम् ॥ २० ॥ इषेत्वादिकमन्त्रादि ज्योतिर्ब्राह्मणमेव च ॥ गायत्री च मधुश्चैव मण्डलब्राह्मणमेव च ॥ २१ ॥ एतज्जपन्तु ये भक्त्या इन्हीं फूलोंसे देवता प्रसन्न होते हैं तपस्या व भक्तिसे हे नराधिप ! इस तीर्थमें पूजनकरे ॥ १६ ॥ और छाता, चैवर, पलंग और जूताका जोडा देवे इस पूजनमात्र से तीन पुरुष पूजेहोजाते हैं ॥ १७ ॥ और तबतक स्वर्गलोकमें रहता है कि जब तक प्रलय होता है और जो भक्तिसे महादेवजी को पञ्चामृत से स्नान कराता है और यत्न कर्हम, केसर, चन्दन और अगरआदि से जो महादेवजी को लेपित करता है ॥ १८ ॥ व जो ब्राह्मण अनेकतरह के फूलों से पूजन करते हैं व संसार में जो रुद्रसूक्त व पुरुषसूक्त जपता है और अपने २ सूत्र ॥ २० ॥ इषेत्वाआदि मन्त्र, ज्योतिर्ब्राह्मण, गायत्री, मधुब्राह्मण, मण्डलब्राह्मण और देवव्रत नामका दैव्यसूक्त इन

यजुर्वेदीय रूतोंको जो भक्तियों जपते हैं वे पुरुष शिवके लोकको जातेहैं ॥ २१ ॥ २२ ॥ हे महाराज ! अगिले जमाने में बड़ा दुर्जय एक अन्धक नागका दैत्यहुआ वह बहुत कालतक बैठकर महादेवजी को प्रसन्न करताहुआ ॥ २३ ॥ तब प्रसन्नहुये भगवान् महादेवजीने अन्धक से कहा कि हे सुव्रत ! वर मागो तब वरको पाकर वह अन्धक दैत्य खुशीसे शीघ्रचला ॥ २४ ॥ उसके पुरमे सबलोग रत्नों से भरहुये पात्रों को लिये और अन्तों से युक्त पात्रोंको लिये सैकड़ों व हजारों स्त्रियां देखपड़ी ॥ २५ ॥ ब्राह्मणलोग मङ्गलशब्दों के सहित मन्त्रोंको पढ़ते हैं और मन्त्री व सेवक, राज्य, घोड़े, रथ और हाथियों के सहित राजाको ॥ २६ ॥ बढ़ाते हैं और जितने

यजुर्वेदसमुद्भवम् ॥ देवव्रतंनामदैव्यं पुरुषास्तत्पुरुंययुः ॥ २२ ॥ आसीत्पुरामहाराज अन्धकोनामदुर्जयः ॥ आराधयामासशिवं चिरकालमुपस्थितः ॥ २३ ॥ प्रसन्नोभगवान्देवो वरंयाचस्वसुव्रत ॥ वरंलब्ध्वातदादैन्योधावत्सहर्षतोऽन्धकः ॥ २४ ॥ पुरेजनाश्चदृश्यन्ते भाजनैरत्नपूरितैः ॥ साक्षतैर्भाजनैस्तस्य शतसाहस्रयोपितः ॥ २५ ॥ मन्वानपठन्तिविप्राश्च माङ्गल्यनिस्वनेनच ॥ भूषणामात्यभृत्यैश्च राज्याश्चरथदन्तिभिः ॥ २६ ॥ वर्द्धापयन्ति ते सर्वे येकेचित्पुत्रास्मिनः ॥ हृष्टःपुष्टोवसंस्तत्र ससुरैर्नोभिभूयते ॥ २७ ॥ वरलब्धन्तुज्ञात्वा गीर्वाणाःशङ्कितास्तदा ॥ एकीभूताश्च ते सर्वे शक्रस्यशरणंययौ ॥ २८ ॥ समागतान्सुरान्दृष्ट्वा शक्रोवचनमब्रवीत् ॥ कथं समागतास्सर्वे यूयञ्चित्रिदिवौकसः ॥ २९ ॥ कथञ्चमयमुत्पन्नं कथयध्वंमहासुराः ॥ ३० ॥ देवाऊचुः ॥ मृत्युलोकैर्भवत्पापस्त्वन्धकोनामदुर्मदः ॥ ३१ ॥ तस्माच्चमयमापन्ना भवच्चरणमागताः ॥ एतस्मिन्नन्तरेरौद्रो दानवोवलदर्पितः ॥ ३२ ॥ एकाकीस्यन्दनाकुब्जपुरवासी है वे भी सब इसी कामको करते हैं इस प्रकार वह असुर हृष्टपुष्ट वहां रहता देवताओं से कभी नहीं हारता हुआ ॥ २७ ॥ वरको पायेहुये उस दैत्यको जानकर देवतालोग शङ्कितहुये तब वे सब एकत्रित होकर इन्द्रकी शरण जातेहुये ॥ २८ ॥ तब आयेहुये देवताओं को देखकर इन्द्र वचन बोले कि हे देवताओं ! तुम सबलोग क्यों आयेहो ॥ २९ ॥ हे उत्तम देवताओं ! तुमको कैसे भय पैदाहुआ सो कहो ॥ ३० ॥ तब देवतालोग बोले कि मनुष्यलोकमें एक बड़ापापी व बड़ा अहङ्कारी अन्धकनाम का असुर उत्पन्न हुआ है ॥ ३१ ॥ उससे डरेहुये हम सब आपकी शरण आयेहैं तबतक इसी अरसेमें बलसे गर्वित हो रहा भयानक दानव ॥ ३२ ॥ अकेला

रथपर सवार, अनेक अस्त्रोंसे युक्त अन्धकासुर हे राजशार्दूल ! इन्द्रकी पुरीको जाताहुआ ॥ ३३ ॥ जोकि सोनेके शहरपनाह से युक्त व अनेक मन्दिरों से शोभित और हे पार्थिवसत्तम ! शत्रुओं के जाने को सदा बड़ी काठिन है ॥ ३४ ॥ सो ऐसी उस पुरीमें लीलापूर्वक अपने घरकी नाई वह असुर प्रवेश करताहुआ तदनन्तर उठकर इन्द्रने उसे अपना आसन दिया ॥ ३५ ॥ तब अन्धक उस इन्द्रके शुभ आसनपर बैठताहुआ तब इन्द्र बोले कि यहां आपका आगमन क्यों हुआ और आप का क्या कार्य है सो मुझसे कहो ॥ ३६ ॥ हे दानव ! जो मेरे धन है वह मैं तुम्हें देऊंगा तब अन्धक बोला कि मैं धन, हाथी व घोड़ों को नहीं चाहताहूं ॥ ३७ ॥

रूढ आयुधैर्विविधैर्युतः ॥ अन्धकोराजशार्दूल ययौशक्रपुरीन्ततः ॥ ३३ ॥ स्वर्णप्राकारसंयुक्तां शोभितांविविधैर्गृहैः ॥ दुर्गमांशत्रुवर्गस्य सदापार्थिवसत्तम ॥ ३४ ॥ प्रविवेशासुरस्तत्र लीलयास्वगृहंयथा ॥ समुत्थायततश्शक्रस्वकीयञ्चासनन्ददौ ॥ ३५ ॥ उपविष्टोन्धकस्तत्र शक्रस्यैवासनेशुभे ॥ शक्रउवाच ॥ किंवोह्यागमनंचात्र किंकार्यंकथयस्वमे ॥ ३६ ॥ यदस्मदीयंवित्तञ्च तत्तेदास्यामिदानव ॥ अन्धकउवाच ॥ नचाहं कामयेवित्तं नगजान्नतुरङ्गमान् ॥ ३७ ॥ स्वकीयन्दर्शयस्वाद्य स्वर्गशृङ्गारभूमिकम् ॥ ऐरावतंमहानागं सैन्धवोच्चैःश्रवोहयम् ॥ ३८ ॥ उर्वश्यादीनिसर्वाणि वा दिवत्रितयानिच ॥ अन्यास्स्वीयाविभूतीश्च दर्शयस्वशर्चापते ॥ ३९ ॥ तस्यैतद्वचनंश्रुत्वा शक्रोपिभयविह्वलः ॥ सर्वाणिचपदार्थानि दर्शयामासचान्धकम् ॥ ४० ॥ तदागत्यसुरैःसार्द्धं यत्नगन्धर्वकिन्नरैः ॥ नृत्यनृत्यप्सरसस्तत्र वादित्रैर्विविधैर्नृप ॥ ४१ ॥ तत्तस्यविभ्रमच्चित्तन्हृष्ट्वाप्यप्सरसस्तदा ॥ तेनदेवगणास्सर्वे तस्ताःपार्थिवसत्तम ॥ ४२ ॥ संग्रा

मुझको आज अपने स्वर्ग के शृङ्गाररूप पदार्थोंको दिखावो बड़ा हाथी ऐरावत व समुद्रते प्राप्त उच्चैःश्रवा घोड़ा ॥ ३८ ॥ व उर्वशीआदि सब अप्सरायें तीनों प्रकारका त इन्द्रा और हे शर्चापते ! और भी अपनी विभूतियों को दिखावो ॥ ३९ ॥ उसके इस वचन को सुनकर इन्द्रभी भयसे घबड़ागये और सब पदार्थों को अन्धक को दिखाया ॥ ४० ॥ तब देवता, यक्ष, गन्धर्व और किन्नरों के सहित आकर हे नृप ! अनेक बाजाओं के साथ वहा अप्सरायें नाचनेलगी ॥ ४१ ॥ तदनन्तर अप्सराओंको

देखकर उसका चिच मोहित होगया तब हे पार्थिवसत्तम ! इसकारण से सर्व देवता उरगये॥४२॥ फिर वहां चक्र और वज्रसे शत्रुओंको डरावनी आनेक तरहकी लड़ाइयों से सब देवता विकल व बहुत से नष्ट करदियेगये ॥ ४३ ॥ आदित्य और मरुत् आदि देवता संग्राममण्डल में हारगये जैसे सिंहके पक्षसे मारेहुये जङ्गलीजीव वन में भागें ॥ ४४ ॥ इसीतरह उस एक दैत्यसे वे सब देवता भगा दियेगये फिर अपने बलसे देशों व गांवोंमें प्रजाओं को निरन्तर पीड़ित करताहुआ ॥ ४५ ॥ जबरदस्तीसे दूध, शक वैसेही वस्त्रोंको छीनलिया प्रजाओं के लेशमें लगाहुआ वह असुर उनके सम्मान की बातभी नहीं कहता ॥ ४६ ॥ फिर वह दानव इन्द्रकी स्त्री

मैर्विविधैस्तत्र चक्रवज्राग्निमीषणैः ॥ सन्तापितास्सुरास्सर्वेक्षयनीताह्यनेकशः ॥ ४३ ॥ आदित्यमरुताद्याश्च भग्ना
संग्राममण्डले ॥ यथासिंहकराक्रान्ताः श्वापदाव्यचरन्वने ॥ ४४ ॥ तद्वदेकेनतेदेवाः कृतास्सर्वेपराङ्मुखाः ॥ बला
देशेषुग्रामेषु प्रजाःपीडयतेऽनिशम् ॥ ४५ ॥ आकम्प्यगृह्यतेक्षीरं शकंवासस्तथैवच ॥ नसम्मानेवचस्तेषां प्रजास
न्तापनेरतः ॥ ४६ ॥ गृहीत्वाशक्रमार्याञ्च दानवोपिगृहङ्गतः ॥ ततःसुराश्चशक्रश्च ब्रह्माणंशरणंययुः॥४७॥गजैश्च
पर्वताकारैरश्वैश्चैवगजोपमैः ॥ स्यन्दनैर्गगनाकारैस्सिंहशार्दूलयोजितैः ॥ ४८ ॥ कच्छपैर्मकरैश्चापि मृगमैषैस्तथो
रगैः ॥ ब्रह्मलोकमनुप्राप्ता देवाश्चेन्द्रपुरोगमाः ॥ ४९ ॥ दृष्ट्वापद्मोद्भवन्देवं प्रणम्येशंप्रतुष्टुवुः ॥ जयदेवजगन्नाथज
यसम्भूतिकारक ॥ ५० ॥ पद्मयोनेसुरश्रेष्ठत्वामेवशरणङ्गताः ॥ सोढुंगंभाषितंश्रुत्वा देवानांभावितात्मनाम् ॥ ५१ ॥ मेघग
म्भीरयावाचा ब्रह्माप्रोवाचवासवम् ॥ किंवाह्यागमनन्देवास्सर्वेषांवैविवर्णता ॥ ५२ ॥ केनावमानितास्सर्वे तत्सर्वमेनिवे
को लेकर अपने घरको चलागया तब देवता और इन्द्रब्रह्माजीकी शरणगये॥४७॥पर्वत ऐसे हाथी, हाथी ऐसे घोड़े, सिंह और शार्दूलोसे जुतेहुये आसमान ऐसे रथ ॥
४८ ॥ कछुये, मगर, हड्ढा, मेढ्रा और सर्पोंसे इन्द्रआदि देवता ब्रह्मलोक को प्राप्त हुये ॥ ४९ ॥ और देवता व ऐश्वर्यवान् ब्रह्माजी को देख व नमस्कारकर स्तुतिकरते
हुये कि हे जगन्नाथ ! हे सम्भूतिकारक ! हे देव ! आपकी जयहो २ ॥ ५० ॥ हे पद्मयोने ! हे सुरश्रेष्ठ ! हमलोग आपही के शरण आयेहैं आत्मा के जाननेवाले
देवताओं के घचडाहट सहित वचन को सुनकर ॥ ५१ ॥ मेघोंकीर्ती गहगही आवाजसे ब्रह्माजी इन्द्र से बोले कि हे देवताओ ! तुम सबोंका आगमन क्यों हुआ और

तुम सब तेजरहित क्यों होगयेहो ॥५२॥ किसने तुम सबका अपमान किया है सो सब सुभ्रमे कहो तब देवता बोले कि बलसे अभिमान को प्रातहोरहा नामसे अधिक ऐसे नामका एक दानव हुआ है ॥५३॥ उसीने सब देवताओं को धन व रत्नों से खाली कर दिया है हे नाथ ! फरसा, चक्र, तलवार और तोमरों से देवताओं को मारकर ॥ ५४ ॥ इन्द्रकी स्त्रीको जबरदस्ती लेकर वह दानव चला गया तदनन्तर लोकों के पितामह भगवान् ब्रह्माजी उनके वचनको सुनकर उस राजसकी मृत्युका विचार करने लगे कि यह पापी दानव सब देवता व दैत्यो से मारा नहीं जासकता है ॥ ५५ ॥ फिर इन्द्रआदि सब देवता विष्णुजीकी स्तुति करतेहुये कि हे देवदेवेश ! आप

द्यताम् ॥ देवाउचुः ॥ अन्धकोनामनाम्नेति दानवोवलदपितः ॥ ५३ ॥ तेन देवगणस्सर्वे धनरत्नैर्विवर्जिताः ॥ हत्वा देवगणान्नाथ पशुचक्रासितोमरैः ॥ ५४ ॥ गृहीत्वाशक्रमायुर्वै दानवोविभतोवलात् ॥ ततःश्रुत्वावचस्तेषां ब्रह्मालो कपितामहः ॥ ५५ ॥ चिन्तयामासभगवान्वधन्तस्यतुरक्षसः ॥ अवध्योदानवःपापस्सर्वैरपिसुरासुरैः ॥ ५६ ॥ ततःप्रतुष्टुवुस्सर्वे देवाश्शक्रपुरोगमाः ॥ जयत्वंदेवदेवेश लक्ष्म्याचार्यशरीरवान् ॥ ५७ ॥ आशुरक्षयदेवेश तस्मात्तेशरणं ताः ॥ जनार्दनउवाच ॥ स्वागतं वो महाभागा ब्रुवताञ्चैवस्वागतम् ॥ ५८ ॥ किङ्कार्यप्रोच्यतां सर्वं कारण्यन्मयेप्सितम् ॥ पराभवःकृतोयेन सगच्छतु यमालयम् ॥ ५९ ॥ एवमुक्तास्सुरास्सर्वे कथयन्तिस्मत्तत्त्वतः ॥ प्रदर्शयन्ति चान्नानि वेपमानास्त्वधोमुखाः ॥ ६० ॥ हतराज्याःकृतानाथ अन्धकेन पराजिताः ॥ ६१ ॥ पितेव पुत्रान्परिरचन् देव जहीह शत्रुं

लक्ष्मी से आधे शरीरवाले हो तुम्हारा जयहो ॥ ५७ ॥ हे देवेश ! बहुत जल्दी आप रक्षाकरो इसी से हम आपके शरण आये है तब विष्णुजी बोले कि हे बडभागियो ! तुम्हारा आना बहुत अच्छाहुआ अपने आनेका प्रयोजन कहो ॥ ५८ ॥ क्या कार्य है जिसकी हमसे इच्छा करतेहो सो सब कारण कहो जिसने तुम्हारा पराजय किया है वह यमलोक को जावे ॥ ५९ ॥ ऐसे कहेगये सब देवता ठीक २ सब वृत्तान्त को कहतेहुये औ नीचेको मुहें कियेहुये व कांपतेहुये अपने अङ्गोंको दिखातेहैं ॥ ६० ॥ और कहते हैं कि हे नाथ ! अन्धक ने हमारी राज्यको हरलिया और हमको पराजित किया है ॥ ६१ ॥ इससे हे देव ! इस लोकमें पुत्रोंकी पिताकी

नाई हमारी रक्षाकरो और हमारे शत्रुको पुत्रों व गोत्रियोंके सहित मारो तब देवता व दैत्योसे नमस्कार कियेगये हैं चरण जिनके ऐसे भगवान् ऐसाही होगा यह ब्रह्मा ॥

ॐ

जीसे कहकर मौनहोगये ॥ ६२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणरेवाखण्डेऽनुवादेऽन्धकोपाख्यनेचतुरशीतितमोऽध्यायः ॥ ८४ ॥ और भगवान् बोले कि हे मार्कण्डेयजी बोले कि शङ्ख, चक्र, गदा और पाशको लेकर देवताओं को जयके देनेवाले परमेश्वर शय्यासे जलद उठतेहुये ॥ १ ॥ इससे सन्तोष में अपने मनको देवताओं ! पाताल व स्वर्ग व मनुष्यलोक में जहा कहींहो उस अन्धको हम मारेंगे जिसने देवताओ को सन्तापित कियाहै ॥ २ ॥

सहपुत्रगोत्रैः ॥ तथेतिचोक्त्वाकमलासनंप्रभुः सुरासुरैर्वन्दितपादपीठः ॥ ६२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणरेवाखण्डेऽन्धको

॥ * ॥

पाख्यानचतुरशीतितमोऽध्यायः ॥ ८४ ॥ * ॥

मार्कण्डेयउवाच ॥ शङ्खचक्रंगदाम्पाशं संगृह्यपरमेश्वरः ॥ उत्थितश्शयनात्तूर्णं देवानांचजयप्रदः ॥ १ ॥ केशव

उवाच ॥ पातालेयदिवास्वर्गे मर्त्येनायदिवासुराः ॥ अन्धकन्तंवधिष्यामि येनसन्तापितास्सुराः ॥ २ ॥ शब्दन्तुस्व

गृहन्देवास्सन्तोषिभावितात्मनः ॥ विष्णोरुतुवचनंश्रुत्वा ब्रह्माद्यास्तुसवासवाः ॥ ३ ॥ स्वस्वयानंसमारुह्य हृदितुष्टा

दिवंगयुः ॥ ततोदेवोमाधवस्तु यत्रतिष्ठतिचान्धकः ॥ ४ ॥ तत्रगत्वाहृषीकेश आग्नेयास्त्रमुमोचह ॥ दृष्ट्वाज्वलन्तंचा

ग्नेयं केशवेनविसृजितम् ॥ ५ ॥ विसृज्ययामासतदावारुणञ्चास्त्रमुत्तमम् ॥ वारुणास्त्रेणवाणेन आग्नेयंशोषितं

तदा ॥ ६ ॥ अन्धकीश्चिन्तयामास केनबाणोविसृजितः ॥ कश्यपंयौपैरुषीशक्तिः कोयास्यतियमालयम् ॥ ७ ॥ ततो

लगायेहुये देवता अपने घरको जावें तब विष्णुके वचन को सुनकर इन्द्रसहित ब्रह्माआदि देवता ॥ ३ ॥ अपनी २ सवारी पर सवार होकर हृदय में सन्तुष्ट होरहे स्वर्गको चलेगये तदनन्तर माधव देव जहां अन्धकथा ॥ ४ ॥ वहां जाकर भगवान् आग्नेय अस्त्रको छोडतेहुये जलतेहुये, भगवान् के छोडिहुये, आग्नेय अस्त्रको देखकर ॥ ५ ॥ अन्धक ने उसीसमय उत्तम वारुण अस्त्रको छोडा उस वारुण बाणसे आग्नेयबाण बुझादियागया ॥ ६ ॥ फिर अन्धकने विचार किया कि किसने इस

बाणको छोड़ा है यह किस पुरुषकी शक्ति है कौन यमलोकको जायगा ॥७॥ तदनन्तर क्रोधसे भरा हुआ अन्धक चले हुये बाणकी राहसे आरहा युद्धके मार्गमें खड़े हुये त्रिण्डदेवको देखकर उनसे अन्धक बोला कि ॥८॥ हे हरे ! अब यहां हमारी दृष्टिसे देखे गये तुम कल्याणको नहीं प्राप्त होवोगे जैसे शार्दूलसे लीलगाव नहीं जीतसक्ता है वैसेही तुम समर्थ नहीं होसकेहो ॥९॥ और जैसे बिलारका भोजन चूहा आयाहो इसीतरह मेरे सामने तुम खड़ेभीहो पर कुछ सामर्थ्य नहीं करसकेहो ॥१०॥ तदनन्तर इन्द्रयुद्धके देनेवाले, शङ्ख, चक्र और गदाके धरनेवाले, चारभुजाओं से शोभित हो रहे देवदेवेश ॥११॥ गदाधर देवको देखकर पृथिवीमें साष्टाङ्ग प्रणाम करता हुआ

न्धकः कोपयुक्तो बाणमार्गस्यसंचरन् ॥ दृष्ट्वा युद्धपथे प्राप्ते देवं तच्चान्धको ब्रवीत् ॥ ८ ॥ न शर्ममप्राप्नुषे चात्र मम दृष्ट्या निरीक्षितः ॥ तथानशक्नुषे त्वन्तु शार्दूलाद्भवयो हरे ॥ ९ ॥ आगतं च यथाभक्ष्यं मार्जारस्य च भूषकम् ॥ तथानशक्नुषे त्वन्तु संस्थितोऽपि ममाग्रतः ॥ १० ॥ ततस्तु देवदेवेशं शङ्खचक्रगदाधरम् ॥ चतुर्भुजावदात्तञ्च इन्द्रयुद्धप्रदायिनम् ॥ ११ ॥ दृष्ट्वा गदाधरं देवं साष्टाङ्गं प्रणतोऽसुवि ॥ अन्धक उवाच ॥ जयकृष्ण परस्त्वं हि विष्णो जिष्णो नमोनमः ॥ १२ ॥ हृषीकेशाय के शाय जगद्धात्रे च्युताय च ॥ नमः पङ्कजनाभाय नमः पङ्कजमालिने ॥ १३ ॥ जनार्दनाय देवाय पीताम्बर धराय च ॥ गोविन्दाय नमो नित्यं नमश्चोदधि शायिने ॥ १४ ॥ नमः करालवक्राय नृसिंहाय निनादिने ॥ शार्ङ्गिणे स्मितवक्राय शङ्खचक्रगदाभुते ॥ १५ ॥ नमो वामनरूपाय क्रान्तलोकत्रयाय च ॥ नमो वराहरूपाय यज्ञरूपाय तेन

अन्धक बोला कि हे कृष्ण ! आपकी जयहो आपही परमात्माहो इससे हे विष्णो ! हे जिष्णो ! आपके लिये बार २ नमस्कार है ॥१२॥ इन्द्रियोंके स्वामी, ब्रह्मा व शिव का रूप, जगत के पालनेवाले, नाशरहित, कमलनाभ व कमलों की मालावाले के लिये बार २ नमस्कार है ॥ १३ ॥ पीले वस्त्र धारण करनेवाले, जनार्दन, गोविन्ददेव के लिये नित्यही नमस्कार है और समुद्रमें सोनेवाले के लिये नमस्कार है ॥ १४ ॥ डरावने मुखवाले के लिये नमस्कार है गर्जनेवाले नृसिंह व सुसज्जित मुखवाले व शार्ङ्गधनुषवाले व शङ्ख, चक्र और गदाके धरनेवाले के लिये नमस्कार है ॥ १५ ॥ तीनों लोकोंके नापनेवाले वामनरूप के लिये नमस्कार है वराहरूप व

यज्ञरूप आपके लिये नमस्कार है ॥ १६ ॥ हे वासुदेव ! आपके लिये नमस्कार है कैटभदैत्यके नाश करनेवाले के लिये नमस्कार है हे सुरनायक ! हे ईश ! वसुदेवजी के पुत्र जो आपहो तिनके लिये नमस्कार है ॥ १७ ॥ हे विष्णु ! हे देवाधिदेवेश ! हे जगत के पालनेवाले ! हे प्रजापते ! जो लोग आपको प्रणाम करते हैं उनके लिये भी नमस्कार है ॥ १८ ॥ सब जीवोंके देवता, वसुदेव के पुत्र, बुद्धिवाले, यज्ञवराहरूप, बड़े तेजवाले, विष्णु आपके लिये नमस्कार है ॥ १९ ॥ वं गुणोंके लिये भी नमस्कार है ॥ २० ॥ हम आपसे प्रसन्न हैं इससे अपने मनमाने वरको तुम मागो ॥ २० ॥ मागतेहुये रचनेवाले आपके लिये बार २ नमस्कार है तब भगवान् बोले कि हे दानवेन्द्र ! हम आपसे प्रसन्न हैं इससे अपने मनमाने वरको तुम मागो ॥ २० ॥ मागतेहुये

मः ॥ १६ ॥ वासुदेवनमस्तुभ्यं नमः कैटभनाशिने ॥ वसुदेवसुतश्चेश नमस्तेसुरनायक ॥ १७ ॥ विष्णोर्देवाधिदेवेश जगद्धातः प्रजापते ॥ प्रणामंयेपिकुर्वन्ति तेभ्यश्चापिनमोनमः ॥ १८ ॥ समस्तभूतदेवाय वासुदेवायधीमते ॥ तस्मै य ज्ञवराहाय विष्णवेऽमिततेजसे ॥ १९ ॥ गुणानां हि विधानाय नमस्तेस्तु पुनः पुनः ॥ देव उवाच ॥ तुष्टो ह्यहं दानवेन्द्र वरं वृणुयथेप्सितम् ॥ २० ॥ ददामि ते वरं चाद्य याचमानस्य साम्प्रतम् ॥ अन्धक उवाच ॥ यदि तुष्टोऽसि मे देव वरं दातुमिहैच्छसि ॥ २१ ॥ तदा ददस्व मे देव युद्धं परमशोभनम् ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ कथं ददामि ते युद्धं तोषितो हन्त्वया पुनः ॥ २२ ॥ न त्वाम् प्रतिभवेत्कोपः कथं युध्येह मन्धक ॥ यदि ते वते बुद्धियुद्धम् प्रतिन संशयः ॥ २३ ॥ तर्हि त्वंगच्छशीघ्रं वै देवम् प्रति महेश्वरम् ॥ अन्धक उवाच ॥ प्रसादात्तस्य देवस्य विजयी भुवनत्रये ॥ २४ ॥ कथं युद्धं चरेतेन शङ्करेण वदस्व नः ॥ एतच्छ्रुत्वा दानवस्य भगवानब्रवीदिदम् ॥ २५ ॥ अहं ते कथयिष्यामि येन युद्धन्त्वया सह ॥ कैलासशिखरं गृह्य ध्रुत्वं च पु

तुमको आज अभी हम वरदेते हैं तब अन्धक बोला कि हे देव ! जो आप मुझसे प्रसन्न हो और यहां वर देने की इच्छा करते हो ॥ २१ ॥ तो हे देव ! बहुत अच्छा युद्ध मुझे देवों तब श्रीभगवान् बोले कि तुमने हमको प्रसन्न किया है इससे हम तुमको युद्ध कैसे देंगे ॥ २२ ॥ हे अन्धक ! तुम्हारे ऊपर हमको क्रोध नहीं होता है हम कैसे तुमसे लड़ें परन्तु जो तुम्हारी बुद्धि निरस देह युद्ध ही को चाहती है ॥ २३ ॥ तो तुम महादेवजीके पास शीघ्र जावो तब अन्धक बोला कि उन्हीं महादेवजीके प्रसादमे तो हम तीनों लोकों में जीतनेवाले हैं ॥ २४ ॥ इससे उन्हीं महादेवजी के साथ हम युद्ध कैसे करेंगे तो आप हमसे कहो दानव के इस वचन को सुनकर भगवान् बोले

कि ॥ २५ ॥ हम उस युक्तिको तुमसे कहेंगे जिससे तुम्हारे साथ युद्धहोवे कि तुम कैलास के शिखरको पकड़कर उसे बार २ हिलाओ ॥ २६ ॥ उस पर्वत के हिलने पर तीनोंलोक हिलनेलगे और टूटीहुई अनगिन्ती पर्वतकी चोटिया गिरनेलगी ॥ २७ ॥ और हे राजन् ! चारोंसमुद्र सब तरफसे एक होगये और विहार करतेहुये पार्वती सहित महादेवजी ॥ २८ ॥ कापतेहुये व पार्वती सहित शङ्करजी गिरे तब बड़ी जोरसे महादेवजीको लिपटकर पार्वतीजी वचन बोली ॥ २९ ॥ कि पर्वत क्यों कांपताहै और पृथिवी क्यों कापतीहै व सातों पाताल व सातों स्वर्ग क्यों कापते हैं ॥ ३० ॥ हे देव ! क्या प्रलय आगया सो आप हमसे कहनेको योग्यहो तब महादेवजी बोले कि

नःपुनः ॥ २६ ॥ धुनितेपर्वतेतस्मिन्कम्पितम्भुवनत्रयम् ॥ पतन्तिशिखराणि शीर्यमाणान्यनेकशः ॥ २७ ॥ चत्वारस्सागरराजन्नेकीभूताः समन्ततः ॥ उभयासहितोरुद्रो विषयासक्तचेतनः ॥ २८ ॥ कम्पमानश्चपतितः पार्वत्या सहशङ्करः ॥ गढमालिङ्गयदेवेशमुमावचनमब्रवीत् ॥ २९ ॥ किमर्थं कम्पते शैलः कथं वै कम्पते धरा ॥ पातालानितुसमै व कम्पते स्वर्गसप्तकम् ॥ ३० ॥ किंवायुगक्षयोदेव तन्ममाख्यातुमर्हसि ॥ महेश्वर उवाच ॥ कस्यैपाहुर्मतिर्जाता अपि पार्श्वचरस्यनुः ॥ ३१ ॥ ललाटे चेदयं भग्नः प्रयास्यतियमालयम् ॥ कैलासे संस्थितो ध्याने सुप्तो हम्प्रतिबोधितः ॥ ३२ ॥ वधिष्ये तं न सन्देहो षण्मुखो वा भवेद्यदि ॥ ततः सचिन्तयामास जानातीत्यन्धकोप्ययम् ॥ ३३ ॥ उपायं सूचयामास स्थिताश्च के केचित्तु एण्डाग्रसंस्थिताः ॥ ३४ ॥ रथं देवमयं कृत्वा सर्वलक्षणसंयुतम् ॥ केचिद्देवाः हमारे समीप रहनेवाले किस मनुष्यकी यह दुर्बुद्धि होगई है ॥ ३५ ॥ जो यह माथेपर साराजावे तो यमलोकको जावेगा कैलासमें ध्यानमें स्थित सोतेहुये हम जगादिये गये ॥ ३६ ॥ इसमें उसको हम मारेगे चाहे स्वामिकात्तिकेय क्यों न हो इसमें कुछ सन्देह नहीं है तदनन्तर उन महादेवजीने विचारा और जाना कि यह अन्धकहे ॥ ३७ ॥ फिर महादेवजी ने उरा उपायको सोचा कि जिसने यह क्षणमात्र में मरजावे तदनन्तर इन्द्र व ब्रह्मा आदि देवता आतेहुये ॥ ३८ ॥ और सब लक्षणों से युक्त देवताओं सही रथको बनाया कोई देवता चको म स्थितहुये कोई रथकें अगिले हिस्सेमें स्थित हुये ॥ ३९ ॥ हे राजन् ! कोई धुरामें, कोई रथके जुवाकी डेरियोंमें, कोई दण्डाओं

में, कोई ध्वजामें और कोई अन्यत्रभी लगे ॥ ३६ ॥ इस प्रकार देवमय-स्थको बनाकर जगत् के मालिक महादेवजी उसपर चढ़े और बड़े क्रोधसे जहां वह दानव था वहांको गये ॥ ३७ ॥ और दानवों को मारा जैसे आकाश में सूर्य तपें उस काल में वहां सूर्य व चन्द्रमा व दिशाये नहीं दीखतीहुई ॥ ३८ ॥ तदनन्तर दानव राजाने आग्नेयश्रद्धा को जोड़ा उससे निकलेहुये बाणोंसे सब देवमण्डल जलनेलगा ॥ ३९ ॥ इस प्रकार बाणों से जलतेहुये देवता महादेवजी की शरण आये तदनन्तर महादेवजी ने वारुण श्रद्धा को छोड़ा ॥ ४० ॥ उसी वारुणश्रद्धा से आग्नेयश्रद्धा बुझगया हे नृपोत्तम ! तदनन्तर दानव ने वायव्यश्रद्धा को छोड़ा ॥ ४१ ॥ तब क्रोधसे

न्यत्रसंस्थिताः ॥ ३६ ॥ एवं देवमयंकृत्वा समारूढोजगत्प्रभुः ॥ निर्ययौ दानवो यत्र क्रोधेनापि महेश्वरः ॥ ३७ ॥ दानवानर्हयामास आकाशञ्चांशुमानिव ॥ नतत्र दृश्यते सूर्यो न काष्ठानच चन्द्रमाः ॥ ३८ ॥ ततो दानवराजेन आग्नेयश्रद्धां योजितम् ॥ दह्यमानं शरैस्तत्र सर्वगीर्वाणमण्डलम् ॥ ३९ ॥ दह्यमानां शरैश्चैवं देवं शरणमाययुः ॥ ततो देवाधिदेवेन वारुणास्त्रं विसर्जितम् ॥ ४० ॥ वारुणास्त्रेण तेनैव आग्नेयास्त्रमप्रशामितम् ॥ दानवेन ततो मुक्तं वायव्यास्त्रं नृपोत्तम ॥ ४१ ॥ पन्नगास्त्रं च देवोपि कोपाविष्टः प्रमुक्तवान् ॥ मारुतो भक्षितस्सर्पैः क्रोधाविष्टैर्न संशयः ॥ ४२ ॥ दानवेन तदा मुक्तं गरुडास्त्रं बलीयसा ॥ तेन तच्छतधानीतं पन्नगास्त्रं न दृश्यते ॥ ४३ ॥ ततो देवाधिदेवेन नारसिंहं विसर्जितम् ॥ अस्त्रैरस्त्राणिसंवार्य युध्येते च परस्परम् ॥ ४४ ॥ समं युद्धमभूत्तात सुरासुरभयङ्करम् ॥ चक्रेणालीकनारचैस्तोमैः खड्गमुद्गरैः ॥ ४५ ॥ वत्सदन्तैस्तथा भल्लैः कर्णिकारैश्च शोभनैः ॥ एवं नशक्यते हन्तुं दानवैर्विविधायुधैः ॥ ४६ ॥ ततो दंष्ट्रा

भरेहुये महादेवजीने भी नागबाणको छोड़ा तब छूटतेही क्रोधसे भरेहुये सर्प हवाको पीगये इसमें सन्देह नहीं है ॥ ४२ ॥ तब जबरदस्त दानवने गरुड़श्रद्धा को चलाया उसने उस नागबाण के सैकड़ों टुकड़े करदिये कि वह अस्त्रहीन देखपड़ा ॥ ४३ ॥ तदनन्तर देवाधिदेव (महादेवजी) ने नारसिंहश्रद्धाको छोड़ा ऐसे अस्त्रोंसे श्रद्धाको काटकर आपस में लड़ते रहे ॥ ४४ ॥ हे तात ! देवता और दैत्योंको भय करानेवाला वह युद्ध बराबर हुआ इस प्रकार चक्र, श्रालीकबाण, तोमर, खड्ग, मोगदर, वत्सदन्त,

भाला और सुहावने कर्णिकार अस्त्रोंसे जब अनेक तरह के अस्त्रवाले दानवों के कारण वह न मारा जा सका ॥ ४५ ॥ तब डाढ़ ऐसे डरावने खड्ग व बाण व तोमरों से युद्ध हुआ अपनी सासुको देखकर शरमाती हुई नीचेको मुँह किये हुये जैसे गौड़वधू जावे और किसीको न छुवे इसी तरह सब अस्त्र दोनों वीरोंके अङ्गोंको नहीं छूते हैं तब सब अस्त्रोंको छोड़कर दोनों बाहुयुद्ध करते हुये ॥ ४७ ॥ हाथोंसे हाथोंको पकड़कर मूठियों से मारते हुये हाथोंसेही आपसमें युद्ध करते हैं ॥ ४९ ॥ दानव भी उन महादेवजीको काखमें मारा तब महादेवजी चेष्टारहित होकर मूर्च्छित हो गये ॥ ५० ॥ महादेवजीको मूर्च्छित जानकर दामव अन्धकासुर चिन्ता करता

करालेन खड्गनाराचतोमरैः ॥ इवशूनृष्ट्वायथायाति लज्जमानाह्वयोमुखी ॥ ४७ ॥ नसंस्पृशन्तिगात्राणि शस्तागौ
 डवधूर्यथा ॥ आयुधानिततस्त्यक्त्वा बाहुयुद्धमुपस्थितौ ॥ ४८ ॥ करैः करांस्तुसंगृह्य प्रहरन्तौ हिमुष्टिभिः ॥ बन्धैः करप्र
 हाराद्यैर्बुध्नेतेस्मपरस्परम् ॥ ४९ ॥ दानवोपिचतन्देवं कृत्वा न्तरमपीडयत् ॥ निश्चेष्टश्चतदादेवो मूर्च्छितस्तुमहेद्व
 रः ॥ ५० ॥ मूर्च्छ्यगन्तन्तुतंज्ञात्वा चिन्तयामास दानवः ॥ हाहाकष्टं कृतं वाद्य पापेन च दुरात्मना ॥ ५१ ॥ किन्तुकार्यं
 मयाचात्र कथं वापित्रजाम्यहम् ॥ तंगृहीत्वाथ देवेशं गतः कैलासपर्वतम् ॥ ५२ ॥ सुक्त्वाशयानमुच्चैतमन्धकोपिय
 यौक्षणात् ॥ ततस्सचेतनोभूत्वा देवदेवोमहेद्वरः ॥ ५३ ॥ यावत्पश्यतिचात्मानं स्वकीयेभवनेस्थितम् ॥ तावत्सचिन्त
 यामास पराभूतोदुरात्मना ॥ ५४ ॥ क्रोधवेगसमाविष्टो निर्ययौ दानवम्प्रति ॥ आयसंलगुण्डगृह्य प्रभुर्मारसहस्रकम् ॥
 ५५ ॥ दानवंदृष्टवान्देवो प्राक्षिपत्तस्यमूर्धनि ॥ खड्गेन ताडयामास दानवः प्रहसन्नग्रे ॥ ५६ ॥ गृहीत्वा देवदेवेशः कौवे

हुआ और कहा कि हाथ २ मैं दुरात्मा पापीने आज बड़ा कष्टवाला काम किया ॥ ५१ ॥ अब यहाँ सुझको क्या करना चाहिये और मैं कैसे जाऊं फिर उन महादेवजी को लेकर कैलास पर्वत को गया ॥ ५२ ॥ सोते हुये बेहोश महादेवजीको छोड़ अन्धक उसीक्षणमें चला गया तदनन्तर देवोंके देव महादेवजी भी होशमें होकर ॥ ५३ ॥ जब तक अपने को देखे तब तक अपने मन्दिर में अपने को पड़ा देखा तब आपने विचारा कि हम उस दुरात्मासे पराजित हो गये ॥ ५४ ॥ फिर क्रोधके वेगसे भरे हुये प्रभु महादेवजी दानव के समीप जाते हुये हजार भारवाले लोहे के दण्डको लेकर दानवभी हँसता हुआ संग्राम में खड्गसे

महादेवजीको मारा ॥ ५५ ॥ तब महादेवजी उत्तम कौबेरबाणको लेकर उमीक्षण उसके हृदय में जलतेहुये बाणसे मारा ॥ ५७ ॥ तदनन्तर वहा रक्तको उगलरहा वह दानव औंधे मुँहवाला हाकर त्रिशूलसे फाड़ दियागया तदनन्तर ॥ ५८ ॥ त्रिशूल की नोकसे घाग्रल पापी अन्धक चाककी तरह चक्कर खानेलागा तब उसकी देहसे जो रक्तकेवूँद जमीनमेंगिरे ॥ ५९ ॥ उन रक्तके वूँदोंसे शस्त्रोंको हाथोंमें लियेहुये पापी दानव उत्पन्न होगये तदनन्तर दानवों से महादेवजी बार २ व्याकुल होतेहुये ॥ ६० ॥ तब महादेवजी ने भयानक कालीदेवी का स्मरण किया स्मरण करतेही दशहजार हथियारों से युक्त कालीदेवीजी आगई ॥ ६१ ॥ औरबड़ी डाढ़ोवाजी, भारी रंवाणमुत्तमम् ॥ हृदयेताडयामासं ज्वलितेनचतत्तत्तणात् ॥ ५७ ॥ ततस्सदानवस्तत्र रुधिरोग्दारमुद्गिरन् ॥ अधोमु खस्ततोभूत्वा शूलेनविदलीकृतः ॥ ५८ ॥ शूलाग्रविचतःपापश्चक्रवद्भ्रमततदा ॥ येतुभूमौपतन्तिस्म देहतोरक्त विन्दवः ॥ ५९ ॥ तेभ्यउदभवन्पापा दानवाःशस्त्रपाणयः ॥ व्याकुलश्चततोदेवो दानवैश्चपुनःपुनः ॥ ६० ॥ देवेनसंस्मृ तादुर्गां चामुण्डाभीषणातदा ॥ आगताभीषणादेवी आयुधायुतसंयुता ॥ ६१ ॥ महादंष्ट्रामहाकाया पिङ्गाक्षीलम्बक णिका ॥ उवाचदेवीदेवेशं समादिशमहेश्वर ॥ ६२ ॥ देवउवाच ॥ पिवत्वंरुधिरंभद्रे यथेष्टदानवस्यच ॥ पतितंचपृथि व्यान्तु दुर्गेयत्नादृगृहाणतत् ॥ ६३ ॥ दानवस्यवधेचाद्य सहायंकर्तुमहंसि ॥ ततोहताश्चतेसर्वे खड्गेनापिसहस्रशः ॥ ६४ ॥ अन्धकोपिचतान्दृढा दानवान्निधनङ्गतान् ॥ ततोवाग्भिस्सुपुष्टाभिस्स्तुवन्देवंमहेश्वरम् ॥ ६५ ॥ तिष्ठतिष्ठेति देवेशं चण्डीम्प्रतिमहाबलः ॥ शूलविचतरन्ध्रेण रक्तैस्त्रैर्वीर्यपूरयामास चतुस्सागरमेखलाम् ॥ देहवाली, लालनेत्रवाली, लम्बेकानोवाली काली-महादेवजीसे कहा कि हे महेश्वर ! आज्ञाकरो ॥ ६२ ॥ तब महादेवजीबोले कि हे दुर्गे ! हेभद्रे ! पृथिवी में गिरेहुये दानव के रक्तको तुम यथेष्ट पीवो और उसको यत्नमें ग्रहण करो ॥ ६३ ॥ आज दानवके मारनेमें सहायकरनेको तुम योग्य होतीहो तदनन्तर उन सब हजारों दानवोंको देवीजीने तलवार से मारडाला ॥ ६४ ॥ अन्धकभी मृत्युको प्राप्तहुये उन दानवोंको देखकर सुन्दरवाणियों से महादेवजी की स्तुति करताहुआ ॥ ६५ ॥ और त्रिशूलके घात्रसे बहुत रक्तको बहाताहुआ, बड़े बलवाला, अन्धक महादेव और देवीसे खड़ेरहो २ कहताहुआ ॥ ६६ ॥ चारों समुद्रतक पृथिवी को रक्त से भरदिया महादेव के त्रिशूल

में बिदाहुआ इसी से आकाश में लटकरहा ॥ ६७ ॥ महादेवकरके अपने कन्धेपर धर लियागया रक्तके समूह को बरसरहा अन्धकासुरने अपने रक्तमें पर्वत व जलों और जङ्गलों के सहित सब पृथिवी को भरदिया ॥ ६८ ॥ महादेवजी रक्त से करिहोवतक डूबगये फिर वह रक्त महादेवजी की छातीतक आगया ॥ ६९ ॥ तब सब देवता व्याकुल हो दिशाओं में भागगये तब महादेवजी ने अपने शरीर के आठ अङ्गोंको घिसा ॥ ७० ॥ तब महादेवजी से आठ भैरव पैदाहुये भयानक डाढ़ोवाले, हाहाकार करते ॥ ७१ ॥ खप्पर, तलवार और कतरनीवाले, उन सब भैरवों से महादेवजी ने कहा कि तुम सब इस सम्पूर्ण रक्तको पीवो ॥ ७२ ॥ उन भैरवों ने अन्तरिक्षस्थितेनापि शूलान्त्रेसंस्थितेनच ॥ ६७ ॥ स्कन्धेधृतेनदेवेन रुधिरौघप्रवर्षिणा ॥ पृथिवीधूरितितेन सशैल वनकानना ॥ ६८ ॥ रुधिरैणकटियावंहारितोपिमहेश्वरः ॥ ततोहृदयपर्यन्तं देवस्यचसमागमत् ॥ ६९ ॥ व्याकुलाश्चततोदेवाः प्रणष्टाश्चदिशंगताः ॥ सतुस्वस्यशरीरस्य अङ्गान्यष्टौव्यमर्दयत् ॥ ७० ॥ अष्टौभैरवरूपाश्च समुत्पन्नामहेश्वरात् ॥ दंष्ट्राकरालिनस्सर्वे हाहाकारम्प्रकुर्वन्तः ॥ ७१ ॥ खर्परग्रायकरास्सर्वे खल्लिनः कर्तिनस्तथा ॥ पिवन्तुरुधिरं सर्वमित्याहपरमेश्वरः ॥ ७२ ॥ पीतन्तुतैश्चरुधिरं क्षीणं रक्तं स्थितं स्थलम् ॥ शरीरं शोषितं स्थ अस्थिचर्ममवशेषितम् ॥ ७३ ॥ दानवश्चान्धकः प्राह अन्तरिक्षचरस्तथा ॥ अन्धक उवाच ॥ जयदेवजगन्नाथ उमाङ्गाद्विशरीरभृत् ॥ ७४ ॥ वृषभासनमारूढ शशाङ्ककृतशेखर ॥ जयखट्वाङ्गहस्ताय गङ्गांशिरसिधारिणे ॥ ७५ ॥ स्मरप्रमथनायेह ईश्वराय नमोस्तुते ॥ पूष्णोदन्तविनाशाय गणनाथनमोनमः ॥ ७६ ॥ जयसुरूपदेहाय अरूपाय नमोनमः ॥ ब्रह्मोत्तमा रक्तको पीलिया तब रक्तक्षीण होगया जमीन निकलआई हठी और चमड़ा जिस में रहगया ऐसा उसका शरीर सुखा दियागया ॥ ७३ ॥ तब आकाश में विद्यमान अन्धकासुर बोला कि हे जगन्नाथ ! हे देव ! हे आधे शरीरमें पार्वती के धारण करने वाले ! आपकी जयहो ॥ ७४ ॥ हे वैलके सवार ! हे चन्द्रमाको मुकुटमें रखनेवाले ! तुम्हारी जयहो गङ्गाको शीशमें धारनेवाले और खट्वाङ्गको हाथमें रखनेवाले ॥ ७५ ॥ कामदेव के नाश करनेवाले ईश्वर आपके लिये नमस्कार है हे गणनाथ ! पूषके दांतों के तोड़नेवाले तुम्हारे लिये नमस्कार है ॥ ७६ ॥ सुन्दररूप देहवाले की जयहो रूपसे रहित जो आपहो तिनके लिये नमस्कार है नमस्कार है

हे सदा रहनेवाले ! हे विश्वभर के मालिक ! ब्रह्माके शिर काटनेवाले ॥ ७७ ॥ नित्य श्मशान के रहनेवाले और हमेशा भैरवरूपवाले के लिये नमस्कार हे तुम्हीं सबमें विद्यमान हो व तुम्हीं सबके कर्ता हो और तुम्हीं सबके नाश करनेवाले हो और कोई नहीं है ॥ ७८ ॥ पृथिवी, दिशा, तेज, प्रकाश, वायु और सब प्राणियों के जी-वरूप महेश्वर तुम्हीं हो ॥ ७९ ॥ हे देवेश ! चन्द्रमा, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि और मङ्गल तुम्हीं हो ॥ ८० ॥ हे महेश्वर ! आकाशमें जितने नक्षत्र व सूर्य व चन्द्र जो देख पड़ते हैं ये सब आपही के प्रसादमे हैं ॥ ८१ ॥ ऐसे वह दानव देवोंकेदेव उन महादेवजी की अनेक प्रकार से स्तुतिकर और दोनों हाथोंको जोड़हुये प्रणाम

ज्ञनाशाय विश्वेश्वरसनातन ॥ ७७ ॥ श्मशानवासिनेनित्यं नित्यं भैरवरूपिणे ॥ त्वंसर्वगश्चकर्तात्वं त्वंहतानान्यए
वच ॥ ७८ ॥ त्वंभूमिस्त्वन्दिशश्चैव ज्योतिस्त्वंतेजसस्तथा ॥ त्वंवायुस्सर्वभूतानां जन्तुरूपोमहेश्वरः ॥ ७९ ॥ त्वंमोम
स्त्वंबुधश्चैव त्वंगुरुर्भागवस्तथा ॥ सौरिस्त्वन्देवदेवेश भूमिषुत्रस्तथैवच ॥ ८० ॥ ऋक्षाणि यानि दृश्यन्ते गगनेशशि
भास्करो ॥ एतान्येवचसर्वाणि त्वत्प्रसादान्महेश्वर ॥ ८१ ॥ एवंबहुविधंस्तुत्वा देवदेवंसदानवः ॥ संहताभ्याञ्चहस्ता
भ्यान्तम्प्रणम्यमहेश्वरम् ॥ ८२ ॥ शङ्करउवाच ॥ साधुसाधुमहासत्त्व वरंयाचस्वदानव ॥ दाताहंयाचकस्त्वन्तु द
दामीतियथेप्सितम् ॥ ८३ ॥ अन्धकउवाच ॥ यदिदुष्टोसिदेवेश यदिदेयोवरोमम ॥ तदात्मनस्समीपेहं स्थापितव्यो
हिनान्यथा ॥ ८४ ॥ भस्मीजटीविशूलीच त्रिनेत्रीचचतुर्भुजः ॥ व्याघ्रचर्मोत्तरीयश्च नागयज्ञोपवीतकः ॥ ८५ ॥
एतदिच्छाम्यहंसर्वं यदिदास्यसिशङ्कर ॥ शूलाग्रस्थोवदद्यावत्तावत्तुष्टोमहेश्वरः ॥ ८६ ॥ ईश्वरउवाच ॥ ददामितेव

का चुपहोगया ॥ ८२ ॥ तब महादेवजी बोले कि हे बड़ेबलवाले, दानव ! वाह २ तू वरमांग हम देनेवाले और तू मांगनेवाला है इससे हम तेरे मनका वर देवेंगे ॥ ८३ ॥ तब अन्धक बोला कि हे देवेश ! जो आप प्रसन्न हो और तुम्हें मुझको वर देना है तो मुझे आप अपने समीप ही बनाये रख लो और कुछ नहीं ॥ ८४ ॥ भस्मवाला, जटावाला, त्रिशूलवाला, तीन नेत्रवाला, चार भुजावाला, व्याघ्रचर्म का ओढ़ने वाला और नागोंके यज्ञोपवीतवाला मैं होजाऊँ ॥ ८५ ॥ बस यही सब मैं चाहता हूँ हे शङ्कर ! जो

आप देवोंगे त्रिशूलकी नोकमें छिदाहुआ जबतक ऐसे कहे तबतक महादेवजी प्रसन्न होगये ॥ ८६ ॥ और बोले कि आज हम तुझको वह वरदेते हैं जिसको तूने कहा है मैंने तुझसे पहले कहाथा कि तू भृङ्गिरीटिनामका गणहोगा ॥ ८७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणैरेवाखण्डेप्राकृतभाषानुवादेऽन्धकप्रदानोनामपञ्चाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८५ ॥

मार्कण्डेयजी बोले कि अन्धक को वरदेके उसके व पार्वती के सहित महादेव जी कैलास पर्यंत को चलेगये ॥ १ ॥ तदनन्तर हृष्टपुत्र होरहे इन्द्रसहित ब्रह्मा आदि देवता वहां आये और वे सब उन महादेवजी को प्रणाम करतेहुये ॥ २ ॥ तब महादेवजी बोले कि हेबड़भागियो ! जो लोग यहां आयेहो उनका बहुत अच्छाहुआ रंचाद्य यस्त्वयापरिमाषितः ॥ मयात्वमुदितःपूर्वं भृङ्गिरीटिर्भविष्यति ॥ ८७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणैरेवाखण्डेऽन्धक वरप्रदानोनामपञ्चाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८५ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

मार्कण्डेय उवाच ॥ अन्धकस्यवरन्दत्वा तेनैवमहशङ्करः ॥ उमयासहितश्चापि कैलासं पर्वतंगतः ॥ १ ॥ ततस्स मागता देवा ब्रह्माद्यास्सहवामवाः ॥ हृष्टपुष्टाश्च ते सर्वे महेशंतम्रणेमिरे ॥ २ ॥ देव उवाच ॥ स्वागतं वो महाभागा येकेचित्त्विह चागताः ॥ निहतोदानवस्तत्र भवदर्थेन संशयः ॥ ३ ॥ रक्तेन तस्य मेशूलं निर्म्मलञ्च न दृश्यते ॥ कर्तव्यं किं मया चाद्य कथयतां हि पितामह ॥ ४ ॥ सुतस्तु भवतो ब्रह्मन्यश्चासौ निहतो मया ॥ कर्तुमिच्छाम्यहं सम्यक्तीर्थयात्रां न संशयः ॥ ५ ॥ उत्तिष्ठ गम्यतां सर्वे येकेचित्त्विह चागताः ॥ ततस्सर्वे मुखैस्सार्द्धं प्रभासं प्रतिनिर्ययौ ॥ ६ ॥ प्रभासाद्यानितीर्थानि गङ्गासागरसङ्गमे ॥ अवगाह्य तु सर्वाणि निर्म्मलत्वं न विद्यते ॥ ७ ॥ नीलीभूतं यथा वस्त्रं सितत्वं नैव गच्छति ॥ तथा कृष्ण

तुम लोगोंके वास्ते मैंने यहा दानव को मारा इसमे सन्देह नहीं है ॥ ३ ॥ उस के रक्त से मेरा त्रिशूल मैला होगया है इससे हे पितामह ! अब मुझको क्या करना चाहिये सो कहो ॥ ४ ॥ हे ब्रह्मन् ! मैंने जिसको मारा है वह तुम्हारा पुत्रथा इससे अब हम अच्छे प्रकार तीर्थयात्रा किया चाहते हैं इसमें कुछ संशय नहीं है ॥ ५ ॥ तब ब्रह्माने कहा कि आप उठें जो लोग यहा आये हैं उन सबको जाना चाहिये तदनन्तर सब देवताओं के सहित महादेवजी प्रभास को गये ॥ ६ ॥ प्रभास से लेकर गङ्गासागरसंगम तक जितने तीर्थ रहे उन सब में स्नान करके भी त्रिशूलकी निर्मलता नहीं हुई ॥ ७ ॥ काला होगया कपड़ा जैसे सफेदी को नहीं पाता है इसी

तरह काले त्रिशूलकी निर्मलता नहीं होती है ॥ ८ ॥ तदनन्तर देवताओं के सहित महादेवजी नर्मदा को जाकर और उत्तर व दक्षिणतट में प्रयत्नसे नहाकर ॥ ९ ॥ फिर हे धरापते ! दक्षिणतटमें विद्यमान भृगुपर्वतपर जाकर और वहां देवताओं के सहित बैठकर ॥ १० ॥ सब देवताओं के मनके हरनेवाले उस स्थानको विशेषार्थ जानकर वहां महादेवजी ठहरे ॥ ११ ॥ और पर्वत को त्रिशूल से फाड़दिया तिस से फिर रसातल फटगया उससे त्रिशूल निर्मल होगया फिर उसमें लेप कहीं नहीं देखपडा ॥ १२ ॥ पाताल से भोगवर्ती नामकी गङ्गा निकली वहां शूलभेद नाम से प्रसिद्ध तीर्थ उत्पन्नहुआ ॥ १३ ॥ सूर्यग्रहण में वहां अतिपुण्यवाली सरस्वती

त्रिशूलस्य निर्मलत्वं न जायते ॥ ८ ॥ नर्मदान्तु ततो गत्वा देवो देवैस्समन्वितः ॥ उत्तरं दक्षिणं कूलमवगाह्य प्रयत्नतः ॥ ९ ॥ गत्वा तु दक्षिणे कूले पर्वते भृगुसंज्ञिते ॥ तत्र स्थित्वा महादेवो देवैस्सह धरापते ॥ १० ॥ मनोहरन्तु तत्स्थानं सर्वेषां हि दिवौकसाम् ॥ ज्ञात्वा तीर्थं विशेषन्तु स्थितो देवो मेहेश्वरः ॥ ११ ॥ गिरिं बिभेद शूलेन तेन भिन्नं रसातलम् ॥ निर्मलञ्चाभवच्छूलं न लेपो दृश्यते क्वचित् ॥ १२ ॥ पातालान्निःसृता गङ्गा नाम्ना भोगवर्ती तिसा ॥ तत्र तीर्थं समुत्पन्नं शूलभेदेति विश्रुतम् ॥ १३ ॥ सूर्ये राहुगते तत्र महापुण्या सरस्वती ॥ द्वितीयं सङ्गमं तत्र यथा वेणीसितासितम् ॥ १४ ॥ तत्र ब्रह्मास्वयंदेवो ब्रह्मेशं लिङ्गमुत्तमम् ॥ यस्य याम्यदिशा भागे स्वयंदेवो जनार्दनः ॥ १५ ॥ विद्यते च स्वयंतत्र विष्णुः पीठेषु संस्थितः ॥ शूलेन च कृतारं स्वा तत्र तोयवहान् ॥ १६ ॥ ततो यंच गतं तत्र यत्रैवानदी जलम् ॥ तत्र लिङ्गं महापुण्यं चक्रतीर्थं त्रिविश्रुतम् ॥ १७ ॥ शूलभेदं च देवेशः स्नानं कृत्वा यथाविधि ॥ आत्मानं मन्यते शुद्धं न किञ्चित्कलुषं तनौ ॥ १८ ॥ तस्य चैवोत्त

श्राती हुई वहां सितासितवेणी की तरह दूसरा सङ्गम होगया ॥ १४ ॥ वहां साक्षात् ब्रह्मा देवता और उत्तम ब्रह्मेशलिंग भी है जिसके दक्षिण दिशाकी तरफ जनार्दन देव आपही विद्यमान हैं ॥ १५ ॥ व वहां परिवार देवताओं के पीठमें विष्णुजी आपही स्थित हैं हे दृष्ट ! वहां पानीकी वहानेवाली लीक त्रिशूलरो की गई है ॥ १६ ॥ वह जल जहां नर्मदानदी का जल है वहांको चलागया है वहां चक्रतीर्थ नामसे प्रसिद्ध बड़ा पुण्यवाला लिंग है ॥ १७ ॥ महादेवजी शूलभेद में विधिसे स्नान कर

अपनेको शुद्धमाना शरीर में कुछ भी उनके पाप नहीं रहा ॥ १८ ॥ उसके उत्तरवाले भागों में जगत् के गुरु व देवताओं के देवता शूलपाणि को पाकर तदनन्तर यलमे पूजन किया ॥ १९ ॥ मव तीर्थोंका रूप, सचतीर्थों से अधिक श्रेष्ठ सब पुण्यवालों से अधिक पुण्यवाले, सब दुःखोंके नाश करनेवाले, उत्तमतीर्थ को देवताओं के देवता जगत् के गुरु महादेवजी वहां स्थापनकर तदनन्तर और रत्नों को छोड़ वहा गणेशका स्थापनकर ॥ २० ॥ आठ सौ क्षेत्रपालोंका स्थापन किया जोकि यलसे तीर्थ की रक्षा करते हैं और जो वहा रहनेकी इच्छा करता है उस के विमोको करते हैं ॥ २१ ॥ कोई अपने कुटुम्ब की चिन्ता करते हैं और कोई खेतीकी, कोई नौकरी करते हैं रेभागे देवदेवजगद्गुरुम् ॥ शूलपाणिन्ततःप्राप्य पूजयामासयत्नतः ॥ १९ ॥ सर्वतीर्थमयन्तीर्थं सर्वतीर्थोधिकंपरम् ॥ सर्वपुण्याधिकंपुण्यं सर्वदुःखघनमुत्तमम् ॥ २० ॥ तत्रतीर्थप्रतिष्ठाप्य देवदेवोजगद्गुरुः ॥ रत्नकांस्तुततोमुक्त्वा तत्रस्थाप्यविनायकम् ॥ २१ ॥ क्षेत्रपालशतञ्चाष्टौ तीर्थरक्षन्तियत्नतः ॥ विदनानितस्यकुर्वन्ति यस्तत्रस्थातुमिच्छति ॥ २२ ॥ केचित्कुटुम्बचिन्तान्तु केचिच्चिन्तांकृपीषुच ॥ सेवांचकुर्वन्तेकेचिद्द्वयार्जनपरायणाः ॥ २३ ॥ परोक्षवादंकुर्वन्ति अन्येहिंसारताजनाः ॥ परदारान्प्रसर्पन्ति अन्येचवित्तचिन्तकाः ॥ २४ ॥ अन्येपिचिदन्त्येवंकथन्तीर्थेषुगम्यते ॥ धुधयापीड्यतेमाय्यां ह्यपत्यानितर्थेवच ॥ २५ ॥ मोहजालेनिपतिताः पापाचाराश्चयेनराः ॥ तेभ्योरश्रुन्तितत्तीर्थं देवस्यचगणाश्शुभम् ॥ २६ ॥ पुण्याजनांस्थिरायेच स्नानंतेपांचजायते ॥ पयोष्ययान्देवनद्याञ्च भोगवत्यांविशेषतः ॥ २७ ॥ एतच्चसङ्गमंपुण्यं यथावेण्यांभितासितं ॥ दृष्ट्वातीर्थन्तुनेसर्वे जीर्वाणाहृष्टमानसाः ॥ २८ ॥ दे कोई द्रव्य कमाने में लगे हैं ॥ २३ ॥ कोई तीर्थफल के प्रत्यक्ष न होने की बातें करते हैं और कोई लोग हिंसा में लगे हैं कोई पराई स्त्रियों में गमन करते हैं व कोई द्रव्यकी चिन्ता करनेवाले हैं ॥ २४ ॥ व कोई ऐसा कहते हैं कि स्त्री पुत्र भूतों मर जायेंगे इससे तीर्थको कैसे जायाजाने ॥ २५ ॥ ऐसे मोहरूपी जाल में पड़ेहुये जो पाप करनेवाले मनुष्य हैं उनसे महादेवजी के गण उस शुभतीर्थ की रक्षा किया करते हैं ॥ २६ ॥ देवनदी पयोष्णी और भोगवती में विशेषकर स्नान उन्हीका होता है जोकि पुण्यवाले और धैर्यवाले जीव हैं ॥ २७ ॥ यह सङ्गम पुण्यवाला है जैसे सितासितवेणी में सगम पुण्यवाला है अब उस तीर्थको देखकर प्रसन्न मन-

वाले वे रात्र देवता ॥ २८ ॥ महादेव के समीप होकर आपस में तीर्थका वर्णन करते हैं कि हे देवेश ! इस तीर्थको गयातीर्थ के समान जानते हैं ॥ २९ ॥ गुप्तसे गुप्तयहतीर्थ है ऐसा तीर्थ न हुआ है और न होगा ऐसे कह और महादेवजीका पूजनकर ब्रह्माआदि देवता और देवताओं के सहित ॥ ३० ॥ जो गण देवता हैं तथा गन्धर्व, यमराज, वरुण और इन्द्रआदि सब सुरासुर नाचने व गाने व स्तोत्रोंसे शिवजीको प्रसन्न किया ॥ ३१ ॥ अब हे नृपोत्तम ! हे नराधिप ! महादेवजीने त्रिशूल की नोकसे जहाँ पर्वत को फाड़ाथा वहाँ जलसे भरेहुये तीन कुण्ड होगये ॥ ३२ ॥ हे नरश्रेष्ठ ! सुन्दर भँवरवाले, त्रिशूलके चिन्हों से युक्त वे कुण्ड सब पापों व सब वस्यसन्निधौभूत्वा वर्णयन्ति परस्परम् ॥ इदं तीर्थञ्च देवेश गयातीर्थसमं विदुः ॥ २९ ॥ गुह्याद्गुह्यतरन्तीर्थं नभूतं नम विष्यति ॥ शूलपाणिसमभ्यर्च्य ब्रह्माद्याश्च सुरैस्सह ॥ ३० ॥ ये गणाश्चैव गन्धर्वा यमो वरुणवासवौ ॥ नृत्यगीतैस्तथास्तोत्रैस्सर्वैश्चैव सुरासुराः ॥ ३१ ॥ देवेन भेदितो यत्र शूलग्रेण नृपोत्तम ॥ त्रयो गतास्तु संजातास्तो यपूर्णनराधिप ॥ ३२ ॥ आर्यावर्तानरश्रेष्ठ महाकुलेशलाञ्छिताः ॥ सर्वपापक्षयकरास्सर्वदुःखापहारकाः ॥ ३३ ॥ तस्मिंस्तीर्थे नरस्सनात्वा उपवासपरायणः ॥ दीक्षामन्त्रविहीनोऽपि मुच्यते भवबन्धनात् ॥ ३४ ॥ यः पुनर्विधिवत्सनात्वा मन्त्रैः पञ्चभिरेव च वेदोक्तैः पञ्चभिर्मन्त्रैः सहिरण्यैर्घटैस्तथा ॥ ३५ ॥ अक्षरैर्देशभिश्चैव पञ्चाक्षरैस्त्रिभिस्तथा ॥ पृथग्भूतैर्द्विजातीनां तीर्थशस्त्रं नराधिप ॥ ३६ ॥ ब्रह्मक्षत्रविज्ञां वापि शुद्धस्यार्थस्त्रियास्तथा ॥ ध्यात्वा दिव्यत्रयं राजन् स्नानं चैव यथाविधि ॥ ३७ ॥ दशाक्षरेण मन्त्रेण तोयं पिबितो नरः ॥ केदारैश्च यथापीतं तथा कुण्डेन संशयः ॥ ३८ ॥ पञ्चरेफममायुक्तं जकारांक्ष दुःखैर्हरेनेवाले होते हुये ॥ ३९ ॥ दीक्षा और मन्त्रमे रहित भी मनुष्य व्रतको कियेहुये उस तीर्थमें स्नान कर उससे बन्धन से छूटजाता है ॥ ४० ॥ व जो मनुष्य पांच मन्त्रों से विधिपूर्वक स्नानकर सुवर्णसहित पांच घटों से व वेदोक्त पांच मन्त्रों से पूजन करता है ॥ ४१ ॥ अथवा अलग २ दशाक्षर व पञ्चाक्षर व त्र्यक्षर मन्त्रों से करता है तो उसको अक्षयफल होता है हे नराधिप ! यह तीर्थ द्विजातियों को बहुतही अच्छा है ॥ ४२ ॥ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य व शूद्र और स्त्रियोंको भी अच्छा है हे राजन् ! तीनों देवताओं का ध्यानकर विधिसे स्नानकर ॥ ४३ ॥ जो मनुष्य दशाक्षर मन्त्रसे तीर्थका जल पीता है वह केदारकुण्ड के जलपीने के बराबर

इस कुण्ड के जलर्पण से फलकी पाता है इसमें कुछ संशय नहीं है ॥ ३८ ॥ पांचरेफों से युक्त व लकार तथा दो अकारों से युक्त मन्त्रको कहता हुआ ॥ ३९ ॥ इन्द्रियोंको जीतेहुये, विधि से युक्त जो मनुष्य वहां स्नान करता है और तिलोंसे मिलेहुये जलसे पितर व देवताओं का तर्पण करता है ॥ ४० ॥ वह दश आगेवाले और दश पीछेवाले एमे बीस पुरुषों को तारता है और जो गङ्गा अथवा पञ्चतीर्थ में श्राद्ध करता है ॥ ४१ ॥ वह वहां शूलभेदमें श्राद्ध करने से उसी फलको पावता है इसमें संशय नहीं है और जो वहां विधिसे युक्त दानको देता है ॥ ४२ ॥ तो उसको वहां कियेहुये उस पुण्यका अक्षयफल होता है जैसे गयाक्षेत्र में सब कामों के करने में

रभूषितम् ॥ अंकारद्वयसंयुक्त मेतदत्रानुकीर्तनम् ॥ ३९ ॥ यस्तत्र कुरुते स्नानं विधियुक्तोजितेन्द्रियः ॥ तिलमिश्रेण तोयेन तर्पयेत्पितृदेवताः ॥ ४० ॥ कुलं तारयते विशद्वशपूर्वान्दशापरान् ॥ गङ्गायां पञ्चतीर्थे च श्राद्धं वै कुरुते तु यः ॥ ४१ ॥ स तत्र फलमाप्नोति शूलभेदेन संशयः ॥ यस्तत्र विधिनानुक्तो दानं दद्याच्च भक्तिः ॥ ४२ ॥ तदक्षयं फलं तत्र कृतस्य सुकृतो यथा ॥ गयाक्षेत्रे यथा पुण्यं सर्वकार्येषु चैव हि ॥ ४३ ॥ शूलभेदे तथा पुण्यं स्नानदानादितर्पणैः ॥ भक्त्या च यो ददात्यत्र काञ्चनं गंगामहीं जलम् ॥ ४४ ॥ अन्नं कृषीभवं शय्यां वासांसि भूषणानि च ॥ अन्नादिभिर्धनैश्चैव गृहं पूर्णञ्च सर्वतः ॥ ४५ ॥ युग्ययुगलाङ्गलं मुख्यं नवचैव धुरन्धरौ ॥ दानान्येतानि यो दद्याद्ब्राह्मणे वेदपारगे ॥ ४६ ॥ श्रोत्रियञ्च कुलीनञ्च शुचिं च विजितेन्द्रियम् ॥ ज्ञात्वा दानञ्च यो दद्यात्तस्मान्तो नैव विद्यते ॥ ४७ ॥ त्रयोदशदिने ष्वेकं त्रयोदशशुणम् भवेत् ॥ ४८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे रेवाखण्डे शूलभेदोत्पत्तिर्नाम षडशीतितमोऽध्यायः ॥ ८६ ॥ *

पुण्य होता है ॥ ४३ ॥ वैसेही शूलभेद में स्नान, दान और तर्पण करने से पुण्य होता है और जो वहां भक्तिसे सोना, गौ, शुधिवी, जलू ॥ ४४ ॥ खेतीसे उत्पन्नहुये अन्न, शय्या, कपडा, गहना, अन्न आदि व धन सब ओर से भरा हुआ मकान ॥ ४५ ॥ बैलोंसे युक्त नया हल और बैल इन दानोंको वेदपठनेवाले ब्राह्मणको जो देता है ॥ ४६ ॥ वेदके पढ़नेवाले, कुलीन इन्द्रियों के जीतनेवाले, पवित्र ब्राह्मणको जानकर जो दान देता है उसकी पुण्यका अन्त नहीं है ॥ ४७ ॥ तेरह दिनके बीच में एक दिन में दिया हुआ तेरह गुना होता है ॥ ४८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे रेवाखण्डे प्राकृतभाषाऽनुवादशूलभेदोत्पत्तिर्नाम षडशीतितमोऽध्यायः ॥ ८६ ॥ ❀

मार्कण्डेयनी बोले कि हे राजेन्द्र ! उत्तानपाद राजा महादेवजी से पूछतेहुये कि हे महादेव ! सिद्धब्राह्मण कैसे होतेहैं और अपूर्व्य (नहीं पूजनेलायक) ब्राह्मण कैसे होते हैं ॥ १ ॥ हे देव ! श्राद्ध, पञ्चयज्ञ और दानके विषयमें विशेष से किस को दान नही देना चाहिये यह आप मुझसे कहिये ॥ २ ॥ तब महादेवजी बोले कि जैसे काठका हाथी और जैसे चमड़ेका हत्ता ऐसेही बेपढ़ा ब्राह्मण ये तीनोंनाम मात्रको रखते हैं ॥ ३ ॥ रोगी, हीनाङ्ग, अधिकाङ्ग, काना, उदरा, व्रतका त्याग करनेवाला, कुण्ड (पिताके जीवते दूमेरे से पैदाहुआ) और गोलक (पिताके मरजाने के बाद दूसरे से उत्पन्न हुआ) ऐसे ब्राह्मण श्राद्ध व दानमें पवित्र नहीं

मार्कण्डेयउवाच ॥ उत्तानपादोराजेन्द्र पृच्छतिस्ममहेश्वरम् ॥ सिद्धाश्चकीदृशादेव अपूज्याश्चैवकीदृशाः ॥ १ ॥
श्राद्धेचैवाह्निकेयज्ञे दानेचैवविशेषतः ॥ एतदाख्याहिमेदेव कस्यदानंनदीयते ॥ २ ॥ ईश्वरउवाच ॥ यथाकाष्ठमयोह
स्ती यथाचर्ममयोमृगः ॥ ब्राह्मणश्चानर्धोयानस्त्रयस्तेनामधारकाः ॥ ३ ॥ रोगीहीनातिरिक्ताङ्गः काणःपौनर्भवस्त
था ॥ अथकीर्णःकुण्डगोलौ श्राद्धेदानेनशुद्ध्यति ॥ ४ ॥ माहिष्योवृषलःस्तेनो वार्धक्योथविशेषतः ॥ एतेविप्रास्सदा
त्याज्याः पश्चान्मानं प्रशंसति ॥ ५ ॥ प्रतिग्रहन्तुगृह्णाति कालज्ञानंविनाद्विजः ॥ तस्यदानंनदातव्यं वृथाभवतिनिष्फल
म् ॥ ६ ॥ दरिद्रान्देहिराजंस्त्वं मासमृद्धान्कदाचन ॥ व्याधितस्यौषधं पथ्यं नीरुजस्यकिमौषधम् ॥ ७ ॥ उत्तानपाद
उवाच ॥ विधिश्चकीदृशीदेव कथंश्राद्धस्यचक्रिया ॥ दानञ्चदीयतेयेन तन्ममाख्यातुमर्हसि ॥ ८ ॥ देवउवाच ॥ श्रा

होतेहैं ॥ ४ ॥ माहिष्य (ब्राह्मणी में क्षत्रिय से पैदाहुआ) वृषल (शूद्राका रखने वाला) चोर और बदई के कामका करनेवाला ये ब्राह्मण विशेषकरके हमेशा त्याग करनेलायक हैं और जो अपनी तारीफ करता है ॥ ५ ॥ जो ब्राह्मण समय के विनाजाने दानलेता है उसको दान नहीं देना चाहिये वह दान निष्फल और वृथा होता है ॥ ६ ॥ हे राजन् ! तुम गरीबों को ही दानदेवो धनियों को कभी नहीं क्योंकि दवा रोगीही को पथ्यहोती है आराम को क्या औषध ॥ ७ ॥ फिर उत्तानपाद बोले कि हे देव ! श्राद्धकी विधि कैसीहै और क्रिया किस प्रकार की है व दान जिसको करना चाहिये सो आप मुझसे कहने के योग्य हो ॥ ८ ॥ तब महादेवजी बो

कि भक्तिसे घरमें श्राद्धकर स्नान कियेहुये इन्द्रियों को जतिहुये मौनहोकर पिताके क्रमसे संख्याको नहीं उल्लङ्घन करताहुआ तर्पणकरे ॥ ९ ॥ तदनन्तर शूलभेद को जाकर विधिसे स्नानकर पांच स्थानोंमें हव्यकव्य आदिसे जो श्राद्ध करताहै ॥ १० ॥ और उस तीर्थमें मिठाई और घीमे मिलीहुई खीरसे जो पिण्डदान करता है उसके फलको वह पाताहै इसमें संशय नहीं है ॥ ११ ॥ और जो विशेष से ब्राह्मणों को उपानह देताहै वह देवताओं से घिराहुआ व विमानपर चढ़ाहुआ जाताहै ॥ १२ ॥ सतनजा से भरेहुये अच्छे मकान को जो देनाहै वह स्वर्गमें सोनेके उत्तम मन्दिर में रहता है ॥ १३ ॥ और बछड़ा के सहित तिलधेनु को जो विधिपूर्वक देताहै वह

छंङ्कत्वागृहेभक्त्या सुस्नातोविजितेन्द्रियः ॥ वाद्यतस्तर्पयेत्तावद्यावत्सङ्ख्यामलङ्घयन् ॥ ९ ॥ शूलभेदन्ततो गत्वा स्नानं कृत्वा यथाविधि ॥ पञ्चस्थानेषु यः श्राद्धं हव्यकव्यादिभिश्चरेत् ॥ १० ॥ पिण्डदानं च यः कुर्यात्पायैर्मधुसर्पिषा ॥ तस्य तत्फलमाप्नोति तस्मिन्स्तीर्थेन संशयः ॥ ११ ॥ उपानहौ च यो दद्याद्ब्राह्मणेभ्यो विशेषतः ॥ गच्छेद्विमानमा रूढस्त्वमरैः परिवारितः ॥ १२ ॥ उत्तमं च गृहं हृन्द्यात्सप्तधान्यैश्च पूरितम् ॥ सस्वर्गलोके वसति काञ्चने भवनोत्तमे ॥ १३ ॥ तिलधेनुञ्च यो दद्यात्सवत्सां विधिपूर्वकम् ॥ नाकपृष्ठे वसेत्तावद्यावदाहूतं संप्लुवम् ॥ १४ ॥ गृहे वा यदि वारण्ये तीर्थे वा कुप्यथेषु च ॥ तोयमन्नञ्च यो दद्याद्यमलोकं न पश्यति ॥ १५ ॥ अक्षयं चान्नदानञ्च तोयभूमिस्तथैव च ॥ अन्नदानात्परंदानं न भूतो न भविष्यति ॥ १६ ॥ उत्तानपाद उवाच ॥ कन्यादानं कथं न देव कर्तव्यं कथं यस्वततः ॥ प्रतिग्रहन्तथा तोष्यं कन्यो द्याह मुपस्करम् ॥ १७ ॥ दातव्यं कस्यैव दानं दत्तं भवति चाक्षयम् ॥ उत्तमं मध्यमं वापि कनीयां संकथञ्चन ॥ १८ ॥

महाप्रलयतक स्वर्गमें रहता है ॥ १४ ॥ घरमें व वनमें व तीर्थमें व कठिन रास्ते में जल व अन्नको जो देनाहै वह यमलोक को नहीं देखताहै ॥ १५ ॥ अन्नदान अक्षय होनाहै ऐसेही जल व जमीन का दानहै अन्नदान से परे दूमरा दान न हुआ है और न हुआ ॥ १६ ॥ उत्तानपाद बोले कि हे देव ! कन्यादान कैसे करना चाहिये सो कहिये और कन्या व दहेज आदि सामान किस प्रकार होना चाहिये ॥ १७ ॥ दान किसको देना चाहिये दियाहुआ दान अन्नय कैसे होताहै उत्तम, मध्यम और अधम

दान कैसा होता है ॥ १८ ॥ अथवा राजस व तामस व सात्त्विकदान कैसा होता है तब महादेवजी बोले कि सब दानोंमें कन्यादान श्रेष्ठ है ॥ १९ ॥ जो मनुष्य विशेष करके सुन्दररूपवाले व गुणी व कुलीन वरके समीप जाकर बड़ी भक्ति वा यत्नसे कन्याको देता है ॥ २० ॥ आन्ध्रीलम्बन व अच्छे सुहृत्त में गहना पहनाकर कन्याको देता है और भक्तिसे घोड़े, हाथी और वस्त्रोंको जो देता है ॥ २१ ॥ उसका वास वहां होता है जहां निर्दोषस्थान है अपने प्राणोंसे भी प्यारी कन्याको जिसने दिया है ॥ २२ ॥ उसने इस सब चराचर त्रैलोक्य को मानो दे दिया कन्या के वास्ते जो धन दिया गया उसको जो दुर्बुद्धि प्रसन्न नहीं करता है ॥ २३ ॥ वह उस कर्मसे चाण्डाल

राजसन्तानसंवापि निश्रेयसमथापिवा ॥ ईश्वर उवाच ॥ सर्वेषामेवदानानां कन्यादानं विशिष्यते ॥ १९ ॥ यो दद्यात्पर
याभक्त्या अभिगम्यचयत्नतः ॥ कुलीनस्यस्वरूपस्य गुणज्ञस्यविशेषतः ॥ २० ॥ सुलग्नेचमुहूर्तेचदद्यात्कन्यामल
ङ्कृताम् ॥ अश्वान्नागांश्चवासांसि यो दद्याच्चैवभक्तिः ॥ २१ ॥ तस्यवासोभवेत्तत्र पदं यत्र निरामयम् ॥ येनसादुहि
तिः ॥ २२ ॥ तेनसर्वमिदं दत्तं त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥ धनं कन्यार्थं तः कल्पं यो नरोचयति दुर्म
भवते मर्त्यस्सर्ववस्तुषु व्रजितः ॥ २३ ॥ स भवेत्कर्मचाण्डालः कोशकारो भवेन्मृतः ॥ कन्यार्थं याचेत यस्तु स धनो निर्धनोऽपिवा ॥ २४ ॥ अभोज्यो
च्छ्रेयमथापिवा ॥ राजा वाच ॥ गृहे तस्य च योऽर्नीयाज्जिह्वालम्पटकोत्प ॥ २५ ॥ चान्द्रायणेन शुद्धिस्स्यात्तप्तं क
देव उवाच ॥ स्ववित्तेनानु कर्तव्यं कन्योद्वाहनमेव च ॥ २६ ॥ कथं चोद्वाहनं कुर्यादितदा चक्ष्वमे प्रभो ॥

होता है और मरनेपर कुसेहरनाम का कीड़ा होता है धनी व गरीब जो मनुष्य कन्याके लिये कुछ मांगता है ॥ २४ ॥ वह मनुष्य किसी कार्य में भोजन करानेके शो
प नहीं होता है सर्वत्र वर्जित है और है नृप ! जो जिह्वाका चञ्चल मनुष्य उस के घरमें भोजन करता है ॥ २५ ॥ वह चान्द्रायण व तप्तकुच्छुन्नत से शुद्ध होता है
व गन्ना योने कि कन्या के विवाह के समय में जिसके पास धन नहीं है ॥ २६ ॥ तो वह विवाह कैसे करे हे प्रभो ! यह मुझसे कहा तब महादेवजी बोले कि अपने

ही धनसे कन्याका विवाह करना चाहिये ॥ २७ ॥ अथवा वरको छोड़ और से कन्याका नामलेकर जो धन मांगता है उसको दोष नहीं होता है ॥ २८ ॥ जायकर दानदेना उत्तमदान है और बुलाके देना मध्यम है कहेपर देना अधम है काम कराके देना निष्फल है तथा असमर्थ वरको कन्यादान नहीं करना चाहिये ॥ २९ ॥ और पढ़ाहुआ समर्थ वर देनेवाले को तार देता है जैसे जलमें चलादिये हुये काठ को जल तारदेता है जैसे नावपार उतारने में समर्थ है ऐसेही विद्वान् तारसकता है ॥ ३० ॥ जो अग्निहोत्री होकर शूद्रका दान लेता है वह इस जन्ममें शूद्र और मरेपर कुत्ता होता है ॥ ३१ ॥ उस अग्निहोत्री ब्राह्मण को वृथा क्लेश होते हैं

मंदानमाहृतंचैवमध्यमम् ॥ २८ ॥ अधमंप्रोच्यमानन्तु सेवादानंचनिष्फलम् ॥ असमर्थेनदातव्यं कन्यादानंतथैवच ॥ २९ ॥ समर्थस्तारयेद्विद्वान्काष्ठंक्षिप्तंयथाजले ॥ यथानौकातथाविद्वांस्तारयेत्परमंतटम् ॥ ३० ॥ आहिताग्निस्तुयोभूत्वा गृहच्छूद्रप्रतिग्रहम् ॥ इहजन्मनिशूद्रत्वं मृतःश्वाचोपजायते ॥ ३१ ॥ वृथाक्लेशाश्चजायन्ते ब्राह्मणस्याग्निहोत्रिणः ॥ असत्प्रतिग्रहंशूद्रन्नापदंचविनाद्विजः ॥ ३२ ॥ तत्सर्वनाशयेत्तस्य भिन्नानौकायथाम्भसि ॥ अतिक्लेशवशाज्जितं विनाशयतितत्क्षणात् ॥ ३३ ॥ एवंदुःखाज्जितंपुण्यं शूद्रेगच्छतिनान्यथा ॥ लब्धदानंक्षिण्यलाभाय प्रदानंचापराधकम् ॥ ३४ ॥ कीर्तिपात्रेषुयुद्धतं वृथामवतिपार्थिव ॥ ३५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणैरेवाखण्डेदानमहिमानुवर्णनन्नामसप्ताशीतितमोऽध्यायः ॥ ८७ ॥

जो ब्राह्मण विना विपत्तिके दुष्टका दान लेता है ॥ ३२ ॥ वह दान उसका सब कुछ नाश करदेता है जैसे दृष्टनौका जलमें डूबजाय जैसे बड़े क्लेशसे कमाया धन क्षण मात्र में नष्टहोजाये ॥ ३३ ॥ इसीप्रकार बड़े दुःखसे कमायाहुआ पुण्य शूद्रके पास चलाजाता है यह झूठ नहीं है व अपने फायदे के वास्ते जो दान है वह अपराधही है ॥ ३४ ॥ जिससे यशहोवे ऐसे पात्रमें जो दान दियागया है हे पार्थिव ! वह दान वृथा होता है ॥ ३५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणैरेवाखण्डेप्राकृतभाषानुवादेदानमहिमानुवर्णनोनामसप्ताशीतितमोऽध्यायः ॥ ८७ ॥

उत्तानपाद बोले कि हे शङ्कर ! श्राद्ध, दान, तीर्थयात्रा और अतिथिसत्कार किससमय में किया जाता है सो आप हम लोगों से कहो ॥ १ ॥ तब महादेवजी बोले कि पिताके वास्ते जो पुण्य है वह सबकाल में अच्छा है और स्नान, दान-व तर्पण के वास्ते यह तीर्थ भी ऐसा ही पवित्र है ॥ २ ॥ चारोंयुगों की जो आदि तिथियां हैं उनमें विशेषकर महात्मा लोग श्राद्ध करते हैं अब हे वरस ! चौदहों मन्वादि तिथियों को तुम सुनो ॥ ३ ॥ कि कुवार में सुदी नवमी, कार्तिक की द्वादशी, चैत-मासमें तीज, तथा भादों की तीज ॥ ४ ॥ आषाढ़ की दशमी, माघकी सप्तमी श्रावणकृष्ण की अष्टमी, फिर आषाढ़ की पूर्णमासी ॥ ५ ॥ फागुन की अमावस प्रसकी

उत्तानपाद उवाच ॥ कस्मिन्नकालेचक्रियते श्राद्धदानंचशङ्कर ॥ तीर्थयात्राकथंकार्यं आतिथ्यंकथयस्वनः ॥ १ ॥
शङ्करउवाच ॥ पितुरर्थंयथापुण्यं सार्वकालिकमुत्तमम् ॥ इदंतीर्थंतथापुण्यं स्नानदानादितर्पणैः ॥ २ ॥ विशेषेणचकुर्वन्ति श्राद्धंचतुर्युगादिषु ॥ मन्वन्तरादयोवत्स श्रूयतांचचतुर्दश ॥ ३ ॥ आश्विनेशुक्लनवमी द्वादशीकार्तिकस्यच ॥ तृतीयचैत्रमासेतु तथाभाद्रपदस्यच ॥ ४ ॥ आषाढस्यचदशमी माघस्यैवचसप्तमी ॥ श्रावणस्याष्टमीकृष्णा तथाषाढीतुपूर्णमा ॥ ५ ॥ फाल्गुनस्यअमावास्या पौषस्यैकादशीशुभा ॥ कार्तिकीफाल्गुनीचैत्री ज्यैष्ठीपञ्चदशीसिता ॥ ६ ॥ मन्वन्तरादयश्चैव ह्यनन्तफलदास्मृताः ॥ अयनेतूत्तरेचैव दक्षिणेचतथैवहि ॥ ७ ॥ कार्तिक्यांचतथामाघ्यां वैशाख्यांचतृतीयया ॥ चैत्र्यांचैवतथाषष्ठ्यां प्रोष्ठपद्यान्तथैवच ॥ ८ ॥ श्राद्धकालाश्चतेसर्वे दत्तम्भवतिचाक्षयम् ॥ मधुमासेसितेपक्ष एकादश्यामुपोषितः ॥ ९ ॥ क्षपाजागरणंकुर्याद्विष्णोःपदसमीपतः ॥ दद्याद्दानंतथाशक्त्या हिरण्यं

एकादशी और कार्तिक, फागुन, चैत और जेठकी उजियाली पूर्णमासी ॥ ६ ॥ ये मन्वन्तरादि तिथियां अनन्तफल की देनेवाली कही गई हैं और उत्तरायण, व दक्षिणायन की संक्रान्ति ॥ ७ ॥ तथा कार्तिक, माघ और वैशाख की पूर्णमासी, आषा तीज, चैतकी छठि और भादोंकी पूर्णमासी ॥ ८ ॥ ये सब श्राद्धके काल हैं इनमें दियाहुआ अक्षयहोता है चैत्रमास के उजियारे पाखकी एकादशी को उपासा रह कर ॥ ९ ॥ विष्णु के चरणों के समीप रात्रिको जागरण करे और यथाशक्ति सोना,

गौर्व और कपर्दों का दानकरे ॥ १० ॥ धूप, दीप, नैवेद्य, माला, फूल और चन्दनआदि से जो विष्णुको पूजन करता व पुराणकी कथाको कहता है ॥ ११ ॥ ऋक्, यजुः, साम और अथर्ववेद के सूक्तोंको जपता है वह ब्राह्मण सब पापोंसे छूटाहुआ विष्णुलोक को जाता है ॥ १२ ॥ जो प्रातःकाल श्राद्ध करता है और यज्ञसे ब्राह्मणोंको भोजन कराके यथाशक्ति उनको सोना, गौर्व और वस्त्रोंको देता है ॥ १३ ॥ उसके पितर महाप्रलय तक तृप्त रहतेहैं और श्राद्धका देनेवाला भी वहां रहता है कि जहां विष्णुजी रहते हैं ॥ १४ ॥ फिर त्रयोदशी को वहां जावे जहां गुहावासी महादेव हैं वहां मार्कण्डेयेश्वर को देखकर सब पापोंसे छूटजाता है ॥ १५ ॥ उत्तानपाद बोले

गोम्बराणिच ॥ १० ॥ धूपदीपंचनैवेद्यं स्रक्पुष्पचन्दनानिच ॥ अर्चाङ्करोतियोविष्णोः कथाम्पौराणकीर्तनम् ॥ ११ ॥ ऋग्यजुस्सामार्थाणां सूक्तन्तज्जपतिद्विजः ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोकंसगच्छति ॥ १२ ॥ प्रभातेकुरुतेश्राद्धं द्विजान्भोज्यप्रयत्नतः ॥ ददेद्दानंयथाशक्त्या हिरण्यगोम्बराणिच ॥ १३ ॥ पितरस्तस्यतृप्यन्ति यावदाहृतसंस्तुवम् ॥ श्राद्धदश्चवसेत्तत्र यत्रदेवोजनार्दनः ॥ १४ ॥ त्रयोदश्यांतोगच्छेद्गुहावासोतिष्ठति ॥ दृष्ट्वा मार्कण्डमीशानं सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ १५ ॥ उत्तानपाद उवाच ॥ गुहामध्येयथादेव लिङ्गपरमशोभनम् ॥ प्रतिष्ठायै न देवस्य तन्ममाख्यातुमर्हसि ॥ १६ ॥ ईश्वर उवाच ॥ त्रिभुलोकैषु विख्यातं मार्कण्डेश्वरसंज्ञिकम् ॥ बृहद्रथन्तरं यच्च सामवेदं द्विजोत्तमः ॥ १७ ॥ अथर्वार्थवर्षाणि तथाहचक्षुषाकपिम् ॥ शिवसङ्कल्पितं जप्त्वा मुच्यते सर्वपातकैः ॥ १८ ॥ सयाति परमं स्थानं यत्र देवो महेश्वरः ॥ पादशौचं तथा तस्य कुर्वते ये च भक्तितः ॥ १९ ॥ गोदानेनैव यत्पुण्यं लभन्ते नानाभयः ॥

कि हे देव ! गुहा के बीचमें जैसा अतिसुन्दर लिंग है और जैसे उन देवकी प्रतिष्ठा हुई हो सों आप मुझमें कहने को योग्य होतेहो ॥ १६ ॥ तब महादेवजी बोले कि तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध मार्कण्डेश्वरनाम का लिंग वहां बृहद्रथन्तर नामका साम वेदका जो सूक्त है उसको तथा अथर्वशीर्ष, वृषाकपि नामका अथर्वहृदय और शिवसङ्कल्पनाम का सूक्त जपकर ब्राह्मण सब पापोंसे छूटजाता है ॥ १७ ॥ और वह उत्तम स्थानको जाता है जहां महादेवजी रहते हैं और जो लोग वहां महादेवके

चरणों को भक्तिसे धोते हैं वे गोदान से जो पुण्य होता है उसको पाते हैं इसमें सन्देह नहीं है वहाँ धी शंकर मिली हुई खीरसे ब्राह्मणों को भोजन करावे ॥ १६ ॥ २० ॥
एक ब्राह्मण के भोजन कराने से हजार ब्राह्मणों के भोजन कराने का फल होता है सोना, चाँदी और कर्पण्डे ब्राह्मणों को भक्तिसे दें ॥ २१ ॥ उससे देवता, मनुष्य और पितर तृप्त होते हैं और चन्द्र व सूर्य के ग्रहण में जो मनुष्य वहाँ भक्तिसे स्नान करते हैं ॥ २२ ॥ और जो महादेव का पूजन करता है व विशेषसे जप व होम करता है और वेदपाठी ब्राह्मण को यथाशक्ति दान देता है ॥ २३ ॥ व अच्छा घोड़ा, उत्तम हाथी, तुलापुरुष, सतनजा से भरा हुआ छकड़ा जो वहाँ देता है ॥ २४ ॥ व

ब्राह्मणान्भोजयेत्तत्र पायसैर्मधुसर्पिषा ॥ २० ॥ एकेनभोजितेनापि सहस्रान्तेनभोजितम् ॥ सुवर्णैरजतवस्त्रं दद्याद्भ
क्त्याद्विजातिषु ॥ २१ ॥ तेनतृप्यन्ति ते देवा मनुष्याः पितरस्तथा ॥ चन्द्रसूर्यग्रहेभक्त्या स्नानं कुर्वन्ति येनराः ॥
२२ ॥ देवार्चनं च यः कुर्याज्जपं होमं विशेषतः ॥ दद्याद्दानं यथाशक्त्या ब्राह्मणे वेदपारगे ॥ २३ ॥ अश्वरत्नं गज रत्नं तु
ला पुरुषमेव च ॥ शकं टयो देवतत्र सप्तधान्यप्रभूरिति ॥ २४ ॥ युक्तं च लाङ्गलं दद्याद्युवानौ तु धुरन्धरौ ॥ गोभूतिलाहि
रण्यञ्च पात्रे दातव्यमीप्सितम् ॥ २५ ॥ अपात्रैर्विदुषा किञ्चिन्न देयं श्रेय इच्छता ॥ सर्वभूतानि चात्मैव यतो धारयते म
ही ॥ २६ ॥ ततो विप्राय सा देया सर्वसम्यानुशालिनी ॥ अन्यच्च शृणुराजेन्द्र गोदानस्य च यत्फलम् ॥ २७ ॥ यावद्वत्सम्य
पादौ हौ मुखं योन्याञ्च दृश्यते ॥ तावद्गौः पृथिवीज्ञेया यावद्गर्भं न मुञ्चति ॥ २८ ॥ येन केनाप्युपायेन ब्राह्मणाय समर्पये
त् ॥ पृथ्वीदत्ता भवेत्तेन स शैलवनकानना ॥ २९ ॥ तारयन्ती च सा दत्ता कुलानां मेकं विशतिम् ॥ रौप्यं खुरीकां स्यदो

अच्छा हल, जवान धुरन्धर बैल, गौवं, पृथिवी, तिल, और सोना ये सुपात्र ब्राह्मण को उसकी इच्छानुसार देना चाहिये ॥ २५ ॥ अपने कल्याण की इच्छा करनेवाले विद्वान् को अपात्र में कुछ भी न देना चाहिये सब प्राणियों को जिससे पृथिवी ही धारण करती है ॥ २६ ॥ इससे सब अन्नों से युक्त पृथिवी ब्राह्मण को देना चाहिये हे राजेन्द्र ! और भी जो गोदान का फल है उसे तुम सुनो ॥ २७ ॥ जब तक बछड़ा के दोनों पांव और मुँह दोनों में देखपड़ें तब तक वह गौ पृथिवी के तुल्य है जब तक गर्भ को नहीं छोड़ती है ॥ २८ ॥ इससे ऐसी गजको जिस किसी उपाय से ब्राह्मण को देवे मानो उसने पर्वत व जलो और जंगलों के सहित सम्पूर्ण पृथिवी को दे दिया ॥ २९ ॥

दीहुई वह गऊ इक्कीस कुलोंको तारती है रूपे के खुरौवाली, कांसेकी दोहनीवाली, वखड़ाके सहित दूधवाली गऊको ॥ ३० ॥ बड़े पुरणवाले मनुष्य चन्द्रग्रहण में देते हैं हे न राधिप ! और सब दानोंके पुरणकी गिन्ती है ॥ ३१ ॥ पर चन्द्र व सूर्य ग्रहणमें दान के पुरणकी गिन्ती नहीं है जहां गौवें देख पड़ती हैं वही सब तीर्थ हैं ॥ ३२ ॥ और वहीं विष्णुको जानना चाहिये इसमें कुछ विचारना नहीं है जो मनुष्य इस तीर्थका स्मरण करके भी यात्रा करता है ॥ ३३ ॥ अथवा तीर्थका सा-हाय्यही सुनता है वह महादेवजी का गणहोता है ॥ ३४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणोरेवाखण्डे प्राकृतभाषाऽनुनादेशूलभेदमाहिमानुकथनज्ञामाष्टाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८८ ॥

हां सवत्सांचपयस्विनीम् ॥ ३० ॥ प्रयच्छन्तिजनाः पुण्या राहुग्रस्तेनिशाकरे ॥ सर्वस्यैवतुदानस्य संख्याचास्तिनरा धियः ॥ ३१ ॥ चन्द्रसूर्योपरागेच दानसंख्यानविद्यते ॥ यत्रगावःप्रदृश्यन्ते सर्वतीर्थानितत्रवै ॥ ३२ ॥ तत्रयज्ञंविजा नीयान्नात्रकार्यविचारणा ॥ पुनःस्मृत्वातुततीर्थं गमनंकुरुतेनरः ॥ ३३ ॥ अथवाश्रूयतेयस्तु रुद्रस्यानुचरोभवे तः ॥ ३४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणोरेवाखण्डेऽनुनादेशूलभेदमाहिमानुकथनं नामाष्टाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८८ ॥ *

ईश्वरउवाच ॥ अन्यच्चाख्यानकंक्ष्ये पुरावृत्तंनराधिप ॥ सकुटुम्बगतःस्वर्गमृषिदीर्घतपामहान् ॥ १ ॥ शङ्करउवाच ॥ काशिराजेतिविख्यातश्चित्रसेनोमहाबलः ॥ तस्यपुत्र्योसवसते सर्वकामसमन्वितः ॥ २ ॥ सापुरीजनसम्पूर्णा नानारत्नोपशोभिता ॥ वाराणसीतिविख्याता गङ्गातीरेसमाश्रिता ॥ ३ ॥ इन्द्रप्रस्थसमप्रख्या गौरीगोकुलसंयुता ॥ बह्विजसमाकीर्णा वेदध्वनितनिःस्वना ॥ ४ ॥ वणिगजनैर्वहुविधैः क्रयविक्रयसंयुतैः ॥ अट्टाट्टालैःप्रतोलीभिस्तसवाद्यैः महादेवजी बोले कि हे नराधिप ! अब और अगिले जमाने में हुये आख्यान को कहेंगे जिसमें श्रेष्ठ दीर्घतपा ऋषि कुटुम्ब सहित स्वर्गको गयाहै ॥ १ ॥ महादेवजी कहते हैं कि चित्रसेन नामसे विख्यात बड़े बलवाले काशी के राजाहुये उन्हीं की पुरी में सब कामनाओं से युक्त वे ब्राह्मण रहते थे ॥ २ ॥ वह पुरी मनुष्यों से भरी और अनेक रत्नों से शोभित, गङ्गा के तीर घसती हुई वाराणसी इस नाम से प्रसिद्ध होतीहुई ॥ ३ ॥ जोकि इन्द्र प्रस्थ के बराबर शोभावाली कन्या और गोवों से युक्त थी और बहुत से ब्राह्मणों से व्याप्त, वेदों की आज्ञाओं से शब्द करतीहुई ॥ ४ ॥ खरीद और विक्री करनेवाले अनेक प्रकार के बानियों से युक्त

अण्डा, शहरपनाह, सड़के और अनेक जलसाओं से सुहावनी ॥ ५ ॥ देवताओं के दिव्य मन्दिर व बगीचों से शोभित, रमणीक अनेक पुष्प व फलों से युक्त, बेलों, ओं की बेटों से शोभित थी ॥ ६ ॥ उसके उत्तर दिशा के तरफ तीनों लोकों में प्रसिद्ध मन्दारवन नाम का अति सुन्दर बगीचा था ॥ ७ ॥ जो कि अनेक वृक्ष व लताओं से व्याप्त व अनेक प्रकारके फूलों से सुहावना था बहुतसे मन्दार के वृक्षों से युक्त होनेसे मन्दारवन नाम से प्रसिद्ध था ॥ ८ ॥ दीर्घतपा नामका ब्राह्मण वहाँ सदा रहता था वह अत्यन्त तप करता था इससे दीर्घतपा कहा जाता था ॥ ९ ॥ वह अपनी स्त्री व पुत्रों से युक्त रहता था उसके समीप रहेनेवाले राब पांचों लडके उस

स्तुमण्डिता ॥ ५ ॥ देवतायतनैर्दिव्यैरारामैरुपशोभिता ॥ नानापुष्पफलैरभ्यैः कदलीषण्डमण्डिता ॥ ६ ॥ तस्या उत्तरदिग्भागे आरामश्चोत्तमश्शुभः ॥ समन्दारवनं नाम त्रिषुलोकेषु विश्रुतम् ॥ ७ ॥ नानाद्रुमलताकीर्णं नानापुष्पोपशोभितम् ॥ बहुमन्दारसंयुक्तं तेनमन्दारकंवनम् ॥ ८ ॥ विप्रो दीर्घतपानाम सर्वदा तत्र तिष्ठति ॥ तपस्तपतिसौत्यर्थं तेन दीर्घतपाः स्मृतः ॥ ९ ॥ सतिष्ठते सपत्नीकस्तिष्ठते पुत्रसंयुतः ॥ शुश्रूषयन्ति तं सर्वे सुताः पञ्चसमीपगाः ॥ १० ॥ तस्य पुत्रः कर्नीयांस्तु ऋषयश्चृङ्गो महातपाः ॥ वेदाध्ययनसंयुक्तो ब्रह्मचारी गुणान्वितः ॥ ११ ॥ योगाभ्यासरतोनित्यं कन्दमूलफलाशनः ॥ तिष्ठते मृगरूपेण मृगमध्ये वसन् सदा ॥ १२ ॥ दिनारम्भे दिनान्ते च मातापित्रग्रतः स्थितः ॥ अभिवादयते नित्यं भक्तिमान् नृषिपुत्रकः ॥ १३ ॥ पुनर्जगाम तत्रैव कानने गिरिगङ्गरे ॥ क्रीडन् बालमृगैस्साद्धं राजबाणमृतस्तु सः ॥ १४ ॥ राजोवाच ॥ आश्रमे वसस्तत्र सुदीर्घतपस्तदा ॥ सुनुस्तस्य कर्नीयांस्तु कथं मृत्युवशङ्कतः ॥ १५ ॥ श्रीभगवा

की सेवा करते थे ॥ १० ॥ उसका छोटा लडका वेदके पढ़ने में युक्त व गुणों से युक्त ब्रह्मचारी बड़ा तप करनेवाला ऋष्यशृङ्गनाम का होता हुआ ॥ ११ ॥ वह हमेशा योगाभ्यास में लगा हुआ कन्द, मूल और फलोंका खानेवाला हलके रूप से बना रहता व हस्त्राओं के बीचमें सदा बास करता रहा ॥ १२ ॥ प्रातःकाल न सायंकाल में पिता व माताके आगे खड़ा होकर वह ऋषिका पुत्र भक्ति से युक्त उनको नित्य ही प्रणाम करता था ॥ १३ ॥ और फिर वहाँ पहाड़ी जङ्गल में चला जाता था एक दिन हस्त्राओं के बच्चों के साथ खेलता हुआ वह राजाके बाण से मारा गया ॥ १४ ॥ तब राजा बोले कि उस आश्रम में रहेते हुये दीर्घतपा का छोटा

लडका कैसे मर गया ॥ १५ ॥ तब महादेवजी बोले कि हे महीपते ! तुम एकाग्रमन होकर इस विचित्र कथा को सुनो इसके सुननेही से मनुष्य सब पापोंसे छूट जाता है ॥ १६ ॥ बड़े बल व पराक्रमवाले काशीके माहाराजा चित्रसेन इस नाम से प्रसिद्ध जोकि काशीमें रहते हैं ॥ १७ ॥ इस प्रकार वहां राज्य में रहतेहुये मन्त्रियों से वचन बोले कि हम शिकार को जावेगे तुम लोग तब तक राज्यमें बने रहो ॥ १८ ॥ तब मन्त्रियों ने कहा कि आप जाइये ऐसे कहेगये राजा घोड़े पर सवारहोकर चलेगये तदनन्तर उन राजाके पीछे सेवक लोग भी गये ॥ १९ ॥ वनको जातेहुये राजाके ऊपर छातोंपर छाते देखपड़ते हैं वहां हाथी व घोड़ों के पावों

नुवाच ॥ शृणुष्वैकमनाभूत्वा कथांचित्रांमहीपते ॥ श्रवणादेवतस्याहि सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ १६ ॥ काशिराजो महाराजा महाबलपराक्रमः ॥ चित्रसेन इति ख्यातो वाराणस्यां वसत्यसौ ॥ १७ ॥ एवं वसंस्तत्र राज्ये मन्त्रिणो वाक्यमब्रवीत् ॥ मृगयांच गमिष्यामि यूयं राज्ये प्रतिष्ठिताः ॥ १८ ॥ गम्यतां मन्त्रिभिः प्रोक्तो गतो सौ वसुधाधिपः ॥ अश्वारूढोऽथ न्वगच्छन् राजानमनुगास्ततः ॥ १९ ॥ छत्रैश्च त्राणि दृश्यन्ते गच्छन्तं काननं प्रति ॥ रजस्तत्रोत्थितं शूरि गजवाजिष दाहतम् ॥ २० ॥ तेनैवाच्छादितं सर्वं सादित्यं भूमि मण्डलम् ॥ नतत्र दृश्यते सूर्यो न काष्ठानच चन्द्रमाः ॥ २१ ॥ पादपाश्चन दृश्यन्ते गिरिसानूनि सर्वशः ॥ तत्रापि च महाराज मृगयूथमदृश्यत ॥ २२ ॥ अधावन् पुरुषास्सर्वे सराजाराजपुत्रकाः ॥ दृन्दलोपो भवत्तेषां शीघ्रं जगमुर्दिशो दश ॥ २३ ॥ एकमार्गं गतो राजा चित्रसेनो महीपतिः ॥ एकाकी सगतस्तत्र यत्र यत्र च ते मृगाः ॥ २४ ॥ प्रविष्टस्तु ततो दुर्गं काननेन पक्षिर्वर्जिते ॥ बल्मीगुल्मलताकीर्णं प्रविष्टो नैव दृश्यते ॥ २५ ॥

से बड़ी गर्द उड़ी ॥ २० ॥ उससे सूर्य सहित सब भूमण्डल भँप गया तब वहां सूर्य व दिशाये व चन्द्रमा नहीं देखपड़ते हैं ॥ २१ ॥ और वृक्ष व पर्वतोंकी चोटियां भी नहीं देखपड़ती हैं तबतक हे महाराज ! वहां हवाओं का भुण्ड देखपड़ा ॥ २२ ॥ तब सब मनुष्य और वे राजा व राजपुत्र दौड़े तब उनका भुण्ड फूट गया और बहुत जल्दी दशों दिशाओं में भाग गये ॥ २३ ॥ और राजा चित्र सेन भी एक रास्तेको चले गये वे राजा अकेले वही २ गये जहां २ वे हवा गये ॥ २४ ॥ तदनन्तर

पक्षियों से भी खाली कठिन वनमें राजा पैठ गय बांवी छोटे २ वृक्ष व लताओं से घने वन में बैठे हुये राजा नहीं देखपडते ॥ २५ ॥ राजा ने अकेले आपको देखा और घोडा व पैदलों को नहीं देखा तब राजा ने कहा कि यहां कोई नहीं जानता और न हम दशोदिशाओं को जानते हैं ॥ २६ ॥ राजा चित्रसेन ऐसे कष्टको प्राप्त हुये तब वहां छाया में बैठ गये और बार २ विश्राम कर ॥ २७ ॥ भूख और प्यास से विकले पर्वतों से कठिन घने वन में घूम रहे कमलों से शोभित एक दिव्य तालाब को देखा ॥ २८ ॥ हंस, पनडुनी और चकवाओं के शब्दों से गूंज रहे उस तालाबको देखकर राजा प्रसन्न होगये ॥ २९ ॥ और कमलों को लेकर उसमें स्नान किया

एकाव्यपश्यदात्मानं नचाश्वनपदातिकान् ॥ नकोपिचात्रजानाति नाहंवद्विदिशोदश ॥ २६ ॥ एवंकष्टंगतोराराजा
चित्रसेनो नराधिपः ॥ छायांसमाश्रितस्तत्र विश्रम्यचपुनःपुनः ॥ २७ ॥ धुतृषातौ भ्रमन्दुर्गे काननेगेरिगह्वरे ॥ ततोप
श्यत्सरो दिव्यं पद्मिनीषण्डमण्डितम् ॥ २८ ॥ हंसकारणदुवाकीर्णं चक्रवाकोपकूजितम् ॥ सरोट्टद्वातुराजेन्द्रः संप्रह
ष्टतनूरुहः ॥ २९ ॥ कुमुदानिगृहीत्वा तु तत्र स्नानं समाचरत् ॥ तर्पयित्वा पितृदेवान्मनुष्यांश्च यथाविधि ॥ ३० ॥ यथा
पानीयसमलं यथावत्समभीप्सितम् ॥ उत्तीर्य सजलात्तीरे दृष्ट्वा वृक्षं समीपतः ॥ ३१ ॥ चिन्तयानुपविष्टोसौ किंतुक
र्ममकरोम्यहम् ॥ ततश्छायाश्रितान्पश्यन्वनोद्देशे मृगान्वहन ॥ ३२ ॥ केचित्पूर्वमुखास्तत्र अपरेदक्षिणामुखाः ॥ वा
रुण्यभिमुखाः केचित्केचित्कौबेरमाश्रिताः ॥ ३३ ॥ केचिन्निद्रां प्रकुर्वन्ति ऊर्ध्वकर्णाः स्थिताः परे ॥ मृगमध्ये स्थितो योगी
ऋण्यशृङ्गे महातपाः ॥ ३४ ॥ मृगान्दृष्ट्वा ततो राजा प्रहारार्थमचिन्तयत् ॥ वधित्वा च मृगं चैकं भक्षयामि यदृच्छया ॥ ३५ ॥

फिर पितर, देवता, और मनुष्यों का विधिपूर्वक तर्पण कर ॥ ३० ॥ मनमाने निर्मल जलको पिया फिर जलसे निकल किनारे पर समीप ही एक वृक्षको देखकर बैठ गये और चिन्तासे कहने लगे कि अब हम किस कामको करें तदनन्तर वन में छाया में बैठे हुये बहुत से हजाओं को देखा ॥ ३१ ॥ वहां कोई पूर्वकी तरफ मुहें किये हुये और कोई दक्षिण, कोई पश्चिम और कोई उत्तर मुहें बैठे हैं ॥ ३३ ॥ कोई सोते और कोई ऊपरको कान किये बैठे हैं हजाओं के बीचमें बड़े तपवाले योगी ऋण्यशृङ्ग बैठे थे ॥ ३४ ॥ तदनन्तर राजा हजाओं को देख उनके मारने का विचार करते हुये अपने मनमें कहा कि एक हजा को मारकर हम इच्छा पूर्वक खायेंगे ॥ ३५ ॥

हन्ना के मांस के खाने से पुष्ट होंगे तदनन्तर हम रातों को द्रुतेहुये काशी को चले जायेंगे ॥ ३६ ॥ पेडकी जड़पर बैठे हुये सामर्थ्यवान् राजा ऐसे विचार कर हाथसे धनुष लेकर उसबाण को छोड़ दिया ॥ ३७ ॥ उसबाण के छोड़तेही सब हन्ना भागगये उनके बीचमें वही एक ऋष्यशृङ्ग बड़े तपवाले ॥ ३८ ॥ बाणसे विधेहुये गिरे और कृष्ण २ कहते हुये उन्होंने ने कहा हाय ! २ मुझको इस समय किसने गिरा दिया ॥ ३९ ॥ यह दुर्बुद्धि किसके पैदा होगई जिससे हमारे मारने की बुद्धि होगई क्योंकि हन्नों के बीच में बैठे हुये हमने किसी का अपराध नहीं किया ॥ ४० ॥ इस मनुष्य की आत्राज को सुनकर वह राजा विस्मय से युक्त होगया तदनन्तर

स्वस्थावस्थोभविष्यामि मृगमांसस्यभक्षणात् ॥ काशीप्रतिगमिष्यामि मार्गमन्वेषयंस्ततः ॥ ३६ ॥ विचिन्त्ये वंततोराजा वृक्षमूलंसमाश्रितः ॥ चापंगृह्यकराग्रेण प्राक्षिपत्तच्छरंविभुः ॥ ३७ ॥ क्षिप्तमात्रेशरैरतस्मिन्सर्वेनष्टामृगास्ततः ॥ तेषांमध्येसर्वैक ऋष्यशृङ्गोमहातपाः ॥ ३८ ॥ शरेणविद्धःपतितः कृष्णकृष्णेतिचाब्रवीत् ॥ हाहाशब्दं कृतंतेन केनाहंपातितोधुना ॥ ३९ ॥ कस्यैषादुर्मतिर्जाता ययबुद्धिर्ममोपरि ॥ मृगमध्येस्थितश्चाहं नकिञ्चिदपराधवान् ॥ ४० ॥ वाचांतामानुषीश्रुत्वा सराजाविस्मयान्वितः ॥ शीघ्रंगत्वाततोपश्यद् ब्राह्मणंब्रह्मवर्चसम् ॥ ४१ ॥ हाहाकष्टं कृतमेव येनासौघातितोमया ॥ ब्राह्मण उवाच ॥ नतेशिद्धिर्भवेत्किञ्चिन्मयिपञ्चत्वमागते ॥ ४२ ॥ तवैवविहिताहत्या मयिपञ्चत्वमागते ॥ जननीमपितावृद्धौ आतरोहितपस्विनः ॥ ४३ ॥ भ्रातृजायामरिष्यन्ति मयिपञ्चत्वमागते ॥ एताहत्याभविष्यन्ति तवशुद्धिःकथंभवेत् ॥ ४४ ॥ एताहत्याभविष्यन्ति कथंशुद्धिर्भवेत्तव ॥ उपायंकथयिष्यामि कर्तुं त्वंयदिमन्यसे ॥ ४५ ॥ राजोवाच ॥ उपायःकथ्यतांमेव यस्तेमनसिर्वर्तते ॥ करिष्येतदहंसर्वं प्रयत्नेनमहामुने ॥ ४६ ॥

जल्दी वहां जायकर ब्रह्मतेज वाले ब्राह्मण को देखा ॥ ४१ ॥ राजा ने कहा कि हाय ! २ आज मैंने बड़ा पाप किया जो मैंने इसको मारा तब वह ब्राह्मण बोला कि मेरे मरने पर तेरी कुछ भी सिद्धि नहीं होगी ॥ ४२ ॥ मेरे मरनेपर तुझही को हत्या होगी मेरी माता व पिता वृद्ध हैं और मेरे भाई तपस्वी हैं ॥ ४३ ॥ मेरे मरने पर मेरी भावजें मर जायेंगी इतनी हत्यायें तुझको होयेंगी तेरी शुद्धि कैसे होसकती है ॥ ४४ ॥ इस से हम उपाय को कहें जो तू करने को अङ्गीकार करे ॥ ४५ ॥ तब

राजा बोला कि जो उपाय आपके मनमें हो उसे अब मुझसे कहो हे महासुने ! वह सब बड़ी यत्न से करेंगे ॥ ४६ ॥ तब शृङ्गी बोले कि हम तुझ से पूछते हैं कि तू कहां से आया है और कौन है यहां कैसे आगया तू ब्राह्मण व क्षत्रिय व वैश्यों के बीच में कोई है अथवा शूद्र व चारण्डाल है ॥ ४७ ॥ तब राजा बोला कि मैं ब्राह्मण व वैश्य व शूद्र नहीं हूं मैं क्षत्रिय हूं तब शृङ्गी बोला कि जहां भरे माता व पिता हैं उस पवित्र आश्रम में मुझे लेकर ॥ ४८ ॥ अपने को प्रसिद्ध कर कि आप के पुत्र का मारने वाला मैं पापी आया हूँ वे दोनों मुझको देखकर तुझपर दया करेंगे ॥ ४९ ॥ और उपाय भी करेंगे जिससे शान्ति होगी राजा चित्रसेन उसके द्वारा

शृङ्गयुवाच ॥ पृच्छामित्वांकुतःकोवा कथंत्वमिहचागतः ॥ ब्रह्मक्षत्रविशामध्येन्यजशूद्रोऽथवापुनः ॥ ४७ ॥ राजोवाच ॥ नाहंविप्रो न वैश्यो न शूद्रः क्षत्रियोऽहम् ॥ शृङ्गयुवाच ॥ मां गृहीत्वा श्रमं पुण्यं यत्र तौ पितरौ मम ॥ ४८ ॥ आवेदयस्मन्चात्मानं पुत्रपापिनमागतम् ॥ तौ दृष्ट्वा मां करिष्येते कारुण्यं च तवोपरि ॥ ४९ ॥ उपायं वा करिष्येते येन शान्तिर्भविष्यति ॥ तस्य तद्वचनं श्रुत्वा चित्रसेनो नृपोत्तमः ॥ ५० ॥ स्कन्धे कृत्वा च तं विप्रं जगामाश्रमकंप्रति ॥ न शक्नोति च तं वोढुं विश्रम्य च पुनः पुनः ॥ ५१ ॥ तावत्पश्यति तं विप्रं मूर्च्छितं विकलं निद्रयम् ॥ सुमोचो चित्रसेनस्तु ह्यायान्यग्रोधकस्य च ५२ ॥ विश्रामं च ततः कृत्वा वाचं कुर्वन्मुहुर्मुहुः ॥ पश्यतस्तस्य राजेन्द्र ऋष्यशृङ्गो महातपाः ॥ ५३ ॥ पञ्चत्वमगमच्छीघ्रं ध्यानयोगेन योगवित् ॥ दाहयामास तं विप्रं विधिदृष्टेन कर्मणा ॥ ५४ ॥ स्नानं कृत्वा तु शोकार्तो सरोदचमुमोह च ॥ ततश्चानन्तरं राजा उद्वेगं परमंगतः ॥ ५५ ॥ कथं यास्ये गृहानद्य वाराणस्यां हतो ह्ययम् ॥ ब्रह्महत्या समाविष्टो

वचन को सुनकर ॥ ५० ॥ अपने कन्धे पर ब्राह्मण को लेकर उस आश्रम को गया उसको ले चलने की सामर्थ्य नहीं है इससे बार-बार विश्राम करके चलता है ॥ ५१ ॥ तबतक विकल जिसकी इन्द्रियां हैं ऐसे उस ब्राह्मण को मूर्च्छित देखा तब चित्रसेन उसको वरगद की छाया में छोड़ दिया ॥ ५२ ॥ फिर वहां विश्राम कर बार-बार उसको पुकारता हुआ परन्तु हे राजेन्द्र ! उसके देखते ही बड़ा तपस्वाला वह ऋष्यशृङ्ग ॥ ५३ ॥ योगका जानने वाला ध्यानयोग से शीघ्र ही मर गया तब राजा ने वेदकी रीति से उस ब्राह्मण को जला दिया ॥ ५४ ॥ फिर शोकसे विकल आप स्नान कर रोता व मोह को प्राप्त हुआ तदनन्तर राजा बड़े घबड़ाहट को प्राप्त हुआ ॥ ५५ ॥

और कहने लगा कि हाय ! आज मरा हुआ मैं काशी में अपने घरको कैसे जाऊंगा ब्रह्महत्या से युक्त मैं अपना शरीर आग में जलादेऊँ ॥ ५६ ॥ अथवा इस ऋषिके वचन से उस आश्रमही को जाऊँ और वहाँ जाकर इस महा ऋषिका हाल जैसाकुछ हुआ है वैसा कहूँ ॥ ५७ ॥ ऐसे विचारकर वह राजा आश्रमके समीप जाताहुआ ऋष्यशृङ्ग की हड्डियों को लेकर वह राजा ॥ ५८ ॥ उन ब्रह्मर्षि के सामने खड़ाहुआ तब दीर्घतपा बोले कि तुम्हारा आगमन बहुत अच्छा हुआ आत्रो आसनपर बैठो ॥ ५९ ॥ हम दीर्घ तपानास के ऋषि हैं यह विष्टर सहित मधुपर्क तुम्हारे वारते है तब राजा बोला कि आप महर्षि के अर्घ योग्य मैं नहीं हूँ ॥ ६० ॥ क्योंकि हे

जुहोम्यग्नौकलेवरम् ॥ ५६ ॥ अथवाऋषिवाक्येन गच्छाम्येवाश्रमंप्रति ॥ कथयामि यथावृत्तं गत्वा तस्य महाऋषेः ॥ ५७ ॥ एवंविचिन्त्य राजासौ जगामाश्रमसन्निधौ ॥ ऋष्यशृङ्गस्य चास्थीनि गृहीत्वासन्तुपोत्तमः ॥ ५८ ॥ दृष्टिमागे स्थितस्तस्य ब्रह्मर्षेर्भावितात्मनः ॥ दीर्घतपा उवाच ॥ आगच्छस्वागतन्तेद्य आसने उपविश्यताम् ॥ ५९ ॥ दीर्घतपा स्मयन्तेद्य मधुपर्कस्सविष्टरः ॥ राजोवाच ॥ अर्घस्यैव न योग्योहं महर्षेर्भावितात्मनः ॥ ६० ॥ मृगमध्ये स्थितो विप्र तव पुत्रो मया हतः ॥ पुत्रघ्नं शाधि मां विप्र तीव्रदण्डेन दण्डय ॥ ६१ ॥ मृगभ्रान्त्या हतो विप्र ऋष्यशृङ्गो महातपाः ॥ इति ज्ञात्वा च मां विप्र कुरुष्व च यथोचितम् ॥ ६२ ॥ माता तस्य वचः श्रुत्वा गृहान्निर्गत्य चिह्नला ॥ हाहतास्मीत्युवाचाथ पति ता च महीतले ॥ ६३ ॥ विललापमुदुःखार्ता पुनश्चोकेन पीडिता ॥ हापुत्रपुत्रेति वदन्करुणं कुररीयथा ॥ ६४ ॥ श्रुत्यध्ययनसंपूर्णो जपेहोमपरायणः ॥ आगतं त्वांगृहद्वारे कदापृच्छामि पुनरक ॥ ६५ ॥ त्रिलोक्यामपि श्रूयेत चन्दनं किल शी

विप्र ! हन्नों के बीच में बैठा हुआ तुम्हारा पुत्र सुक्त से मारा गया है इससे हे विप्र ! अपने पुत्र के मारनेवाले सुक्त पापी को घोर दण्डसे दण्डित करो ॥ ६१ ॥ हे विप्र ! हन्ना के धोखेमे बड़े तपवाले ऋष्यशृङ्ग सुक्तसे मारे गये हे विप्र ! ऐसा सुक्त जानकर जैसा उचित हो वैसा करो ॥ ६२ ॥ तब उन ऋष्यशृङ्ग की माता उसके वचनको सुन और घर से निकल कर बिहल होगई और कहा कि हाय ! मैं मर गई तदनन्तर पृथिवीमें गिरपड़ी ॥ ६३ ॥ पुत्र के शोक से निकल व दुःख से कष्टित हो रही विलाप करती हुई हा पुत्र ! २ ऐसे कहरही कुररी चिडियाकी तरह चिचिहा रही है ॥ ६४ ॥ और कहती है कि हे पुत्र ! वेद के पढ़ने में जप होम के करने वाले जो तुमहो तिन

को दरवाजे पर आया जान मैं तुम से अब कैसे कुछ पूछूँगी ॥ ६५ ॥ संसार भरमें सुनाजाता है कि चन्दन बड़ा ठण्डा होता है पर पुत्र के शरीर का लपटाना चन्दन से भी ठण्डा है ॥ ६६ ॥ इससे हे पुत्र ! मैं अति प्यारे तुम्हें लपटाया चाहती हूँ अब तुम्हारे बिना दुखिया मैं भी मरजाऊँगी ॥ ६७ ॥ ऐसे विलाप करती हुई व पुत्र के शोक से पीड़ित होरही जमीन में दुःखी व विह्वल व मूर्च्छित हो गिरपड़ी ॥ ६८ ॥ स्त्री को गिरी देखकर तब पुत्र के शोकसे पीड़ित उन मुनिश्रेष्ठ ने राजा चित्रसेन पर बड़ा कोप किया ॥ ६९ ॥ दीर्घतपा बोले कि रे महापाप ! तू चलाजा २ मुझको अपना मुझे मत दिखेला क्या तूने वेमतलब मेरे पुत्र ब्राह्मण को मार डाला ॥ ७० ॥

तलम ॥ पुत्रगातपरिष्वङ्गश्चन्दनादपिशीतलः ॥ ६६ ॥ परिष्वजितुमिच्छामि त्वामहंपुत्रमुपिप्रियम् ॥ पञ्चत्वञ्चगभिष्यामि त्वद्विहीनामुदुःखिता ॥ ६७ ॥ एवंविलपतीर्दाना पुत्रशोकेनपीडिता ॥ मूर्च्छिताविकलादीना निपपातमहीतले ॥ ६८ ॥ भार्याचपतितादृष्ट्वा पुत्रशोकेनपीडितः ॥ चुकोपमुनिश्रेष्ठश्चित्रसेनंनृपंतदा ॥ ६९ ॥ दीर्घतपा उवाच ॥ याहियाहि महापाप मामुखंदर्शयस्वमे ॥ किन्त्वयाघातितोविप्र ह्यकामाच्चसुतोमम ॥ ७० ॥ ब्रह्महत्याभविष्यन्ति बहवस्तेनरा धिप ॥ सकुटुम्बस्यमेत्वंहि मृत्युरेवमुपागतः ॥ ७१ ॥ एवमुक्त्वाततोविप्रो विचिन्त्यचपुनःपुनः ॥ क्रोधंपरित्यज्यत तो मुनिमार्गेजगामह ॥ ७२ ॥ ऋषिरुवाच ॥ उद्वेगत्यजभोराजन्दुरुक्तंगदितंमया ॥ पुत्रशोकाभिभूतेन दुःखमाप्तेन मानद ॥ ७३ ॥ किंरोतिनरःप्राज्ञः प्रेर्यमाणस्त्वकर्मभिः ॥ प्रायेणहिमनुष्याणां बुद्धिःकर्मोनुसारिणी ॥ ७४ ॥ अनेनैवप्रकारेण यत्त्वयालिखितंमम ॥ परंतवमविष्यन्ति विप्रहत्यानसंशयः ॥ ७५ ॥ ब्रह्मक्षत्रविशामध्ये शुद्रोवाचा

हे नराधिप ! तुम्हें बहुत सी अपाठ्यायें दींगी क्योंकि कुटुम्ब के सहित तुम्हें तू मौतही आगया है ॥ ७१ ॥ ऐसा कह फिर वह ब्राह्मण बार २ विचार कर कोध छोड़ तदनन्तर मुनियों की काल पर आगया ॥ ७२ ॥ और बोला कि हे राजन् ! अबतुम घबड़ाहट को छोड़ दो क्योंकि हे मानद ! पुत्र के शोक व दुःखसे विकल मैंने तुम से कहुई बातें कही ॥ ७३ ॥ अपने कर्मों ने प्रेरणा कियाजारहा बुद्धिमान् भी मनुष्य क्या करसक्ता है बहुधा मनुष्यों की बुद्धि कर्मों के अनुसारही होती है ॥ ७४ ॥ इसी रीति से जो हमारे प्रारब्ध में लिखा था वही तुमने किया लेकिन ब्रह्महत्या तो तुमको होगी इसमें संशय नहीं है ॥ ७५ ॥ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शुद्र,

और चाण्डालो के बीच में तू कैन है सो मुझ से सत्य कह और किस वास्ते हमारे पुत्रको तूने मारा ॥ ७६ ॥ तब चित्रसेन बोला कि हे विप्रर्षे ! मैं आपसे कहता हूँ आप मेरे ऊपर क्षमा करो मैं ब्राह्मण नहीं हूँ और हे तात ! वैश्य व शूद्र भी नहीं हूँ ॥ ७७ ॥ और चाण्डाल भी नहीं हूँ हे द्विजोत्तम ! मैं काशी का राजा क्षत्रिय हूँ सो हबों के मारने के वास्ते उत्तम बनको आयाथा ॥ ७८ ॥ सो उस वन में घूमतेहुये मुझसे हज्जाके रूपका धरनेवाला आपका पुत्र मुनि मारडालागया हे विप्र ! अब मुझको क्या करना चाहिये सो उस उपायको आप मुझसे कहें ॥ ७९ ॥ तब दीर्घतपा बोले कि हे विभो ! अकेले एक तुम ब्रह्महत्या को नहीं तरसके हो इससे

नृत्यजादिषु ॥ कस्त्वं कथय सत्यं मे कस्माच्च निहतः सुतः ॥ ७६ ॥ चित्रसेन उवाच ॥ विज्ञापयामि विप्रर्षे च न्तव्यं च ममोपरि ॥ नाहं विप्रो भवेत्तात न शूद्रो नैव वैश्यजः ॥ ७७ ॥ न चापि चान्त्यजातीयः क्षत्रियो हं द्विजोत्तम ॥ काशिराजो मृगान्हन्तु मागतो वनमुत्तमम् ॥ ७८ ॥ भ्रमतापातितस्तत्र मृगरूपधरो मुनिः ॥ किं कर्तव्यं मया विप्र उपायं कथय स्वमे ॥ ७९ ॥ दीर्घतपा उवाच ॥ ब्रह्महत्या न शक्येत एकेन तारितुं विभो ॥ देशे काले यथाशक्त्या तच्छृणु ब्रह्मनराधिप ॥ ८० ॥ चत्वारो मे सुताराज न सभाय्या मातृपूर्वकाः ॥ मया सह न जीवन्ति ऋष्यशृङ्गस्य कारणे ॥ ८१ ॥ उपायं शोभनं तात कथयामि शृणु ष्वभोः ॥ शक्यते यदि चेत्कर्तुं सुखोपायं नरेश्वर ॥ ८२ ॥ सकुटुम्बसमस्तान्नो दाहय स्वानले नृप ॥ अस्थानि नर्मदातोये शूलभेदे विनिक्षिपे ॥ ८३ ॥ नर्मदादक्षिणैकूले शूलभेदेति विश्रुतम् ॥ सर्पपापहरं तीर्थं सर्वतीर्थोत्तमोत्तमम् ॥ ८४ ॥ शुचिर्भूत्वा ममास्थानि क्षिपत्वं शूलभेदके ॥ मुच्यते सर्वपापेभ्यो मम वाक्यान्न संशयः ॥ ८५ ॥ राजोवाच ॥ आ

जिसदेश व जिस काल में अपनी शक्तिके अनुसार उसके पार होसके हो हे नराधिप ! सो सुनो ॥ ८० ॥ हे राजन् ! एक ऋष्यशृङ्गके पीछे अपनी स्त्रियोंके व माता के व हमारे सहित हमारे चारों लडके नहीं जीसके हैं ॥ ८१ ॥ इससे हे तात ! बहुत अच्छे उपाय को हम तुमसे कहते हैं सो तुम सुनो परन्तु हे नरेश ! जो उस सुखवाले उपाय को तुम करसके हो ॥ ८२ ॥ तो हे नृप ! कुटुम्ब सहित हम सब को अग्नि में जला देवो और हम सबकी हड्डियों को शूल भेद में नर्मदाके जलमें डाल देवो ॥ ८३ ॥ नर्मदाके दक्षिणवाले किनारेपर सब पापों का हरनेवाला सब तीर्थों में अत्युत्तम शूलभेद नामका तीर्थ प्रसिद्ध है ॥ ८४ ॥ उसी शूलभेद में तुम पवित्र

होकर हमारे हाड़ोंको डाल देवो इससे तुम भी हमारे कहने से सब पापों से छूटजावोगे इससे संशय नहीं है ॥ ८५ ॥ तब राजा बोला कि हे तात ! आप आज्ञा देवो हम करेंगे इसमें संशय नहीं है राज्य, खजाना, स्त्रियां, और पुत्र आदि जो कुछ हमारे हैं सो सभी ॥ ८६ ॥ आपको दान कर देवोंगे हे विप्र ! आप मुझपर प्रसन्न हूजिये हे नृप ! उससमय ऐसे मुनि और राजाके आपसमें बतलातेही ॥ ८७ ॥ छाती फटकर शीघ्र मुनिकी स्त्री मरगई पुत्र के शोकसे दर्बाहुई जीव रहित होकर जमीन में गिरपड़ी ॥ ८८ ॥ लडके भी सब माताके शोकसे मरगये पुत्रों की स्त्रियां भी अपने पतियों के सहित सब मरगई ॥ ८९ ॥ मुनिके सहित उन सबको मरादे-

देशोदीयतांतान करिष्यामिनसंशयः ॥ सर्वस्वमपियत्किञ्चिद्राज्यंकोशस्त्रियस्सुताः ॥ ८६ ॥ तवदानंप्रयच्छामि विप्रमांतंप्रसीदच ॥ परस्परंविवादतोमुनिराज्ञोस्तदानृप ॥ ८७ ॥ स्फुटित्वाहृदयंशीघ्रं मुनेर्भार्य्यामृतातदा ॥ पुत्रशोक समाक्रांता निज्जीवापतिताक्षितौ ॥ ८८ ॥ पुत्राश्चमातृशोकेन सर्वेष्वन्वत्त्वमागताः ॥ स्नुषाश्चैवतुतास्सर्वा मृताश्चसह भर्तृभिः ॥ ८९ ॥ पञ्चत्वंतुगतान्सर्वान्मुनिमुख्यान्निरीक्ष्यतान् ॥ विप्राश्चाल्लानितास्तेन तेतत्राश्रमवासिनः ॥ ९० ॥ तेभ्योनिवेदयामास यथावृत्तंनरोत्तमः ॥ संहृत्स्तरनुज्ञातःकथञ्चिद्ब्रह्मयज्ञतः ॥ ९१ ॥ देहंस्वंपावनंकृत्वागृह्यास्थीनि प्रयत्नतः ॥ याम्यांहिप्रस्थितोराजा पादचारीमहीपतिः ॥ ९२ ॥ नशक्कोतिचदागन्तुं क्षायामाश्रित्यतिष्ठति ॥ विश्रम्य चपुनर्गच्छन्विश्रम्यचपुनःपुनः ॥ ९३ ॥ सचैलंकुरुतेस्नानमस्थीन्बोढापदेपदे ॥ विनाजलंनिराहारःसोगच्छद्ब्रह्मक्षिणामु खः ॥ ९४ ॥ अचिरैणैवकालेन सगतोनर्मदातटे ॥ आश्रमस्थान्द्विजान्सर्वान् पप्रच्छराजसत्तमः ॥ ९५ ॥ किथयतांमे

खकर राजा ने उस आश्रम के रहनेवाले ब्राह्मणों को बुलाया ॥ ९० ॥ और उत्तम राजा ने उनसे जैसा कुछ हाल हुआ सो सब कहा फिर एकत्रित हुये ब्राह्मणों की आज्ञामें किसी तरह यत्न से उन सबको जलाकर ॥ ९१ ॥ और अपनी देहको पवित्र कर और प्रयत्नसे उनके हाड़ों को लेकर पृथ्वी का स्वामी राजा दक्षिण दिशा को पैदल चलता हुआ ॥ ९२ ॥ जब चलने को नहीं समर्थ होता तब क्षाया पायकर बैठ जाता है सहेताय कर फिर चलता है फिर २ विश्राम करताहै ॥ ९३ ॥ हाड़ों को लियेहुये पग २ पर कपड़ों सहित स्नान करता, विना जलकं निराहार दक्षिण मुखको जाताहुवा ॥ ९४ ॥ थोड़ेही काल में वह श्रेष्ठ राजा नर्मदा तटमें पहुँचगया

और उस आश्रमके रहनेवाले सब ब्राह्मणोंसे पूछा ॥ ६५ ॥ कि हे द्विजश्रेष्ठ ! आप लोग शूलभेदकी रास्ता मुझे बतलावें ॥ ६६ ॥ तब ब्राह्मण बोले कि नर्मदाके दक्षिण वाले किनारे पर जायकर देखो यह अन्यथा नहीं है ॥ ६७ ॥ इसके बाद उन ऋषियों के कहने के अनुसार वह मनुष्यों का मालिक राजा गया तदनन्तर बहुत ब्राह्मणों से व्याप्त उस तीर्थको देखा ॥ ६८ ॥ जोकि बहुत से वृक्ष व लताओं से व्याप्त बहुत से फूलोंसे सुहावना बहुतसे मूल व फूलोंसे युक्त, और बहुतसे जीवों से शोभित ॥ ६९ ॥ अनेक व्रतों के करनेवाले अनेक उत्तम ऋषियों से युक्त है वहां कोई एक पांन से खड़े हैं, कोई सूर्य के समान तेजवाले हैं ॥ ७० ॥ कोई एकही तरफ द्विजश्रेष्ठाऽशूलभेदस्य मार्गकः ॥ ९६ ॥ विप्रा ऊचुः ॥ नर्मदादक्षिणे कूले गतो द्रक्ष्यसि नान्यथा ॥ ९७ ॥ ऋषिवाक्येन वै राजागतो यो हिनरेश्वरः ॥ सददर्शतस्तर्त्तार्थं बहु द्विजसमाकुलम् ॥ ९८ ॥ बहु दुर्मलतार्काणं बहु पुष्पोपशोभितम् ॥ बहू दुर्मलफलोपेतं बहु शपदशोभितम् ॥ ९९ ॥ ऋषि संघैः समाकर्णं नाना व्रतधरैश्शुभैः ॥ एकपादस्थिताः केचिदपरैः सूर्यवर्चसः ॥ १०० ॥ एकदृष्टिस्थिताः केचिदूर्ध्वबाहुस्थिताः परे ॥ चान्द्रायणपरा केचित्पक्षोपवासिनः ॥ १ ॥ मासोपवासिनः केचित्केचिद्दुर्मुषिताः ॥ शीणपर्णाशिनः केचित्केचिन्मांसभोजनाः ॥ २ ॥ योगाभ्यासरताः केचिद्व्यायन्तः परमंपदम् ॥ गार्हस्थ्यमास्थिताः केचित्केचिच्चैवाग्निहोत्रिणः ॥ ३ ॥ एवं विधान् द्विजान् दृष्ट्वा जानुभ्यामवनीङ्ग फलमेवं ददेदिति ॥ ५ ॥ ऋषिरुवाच ॥ धन्वन्तरशतंगच्छ भृगुर्ज्ञस्य मूर्धनि ॥ कुरुदं द्रक्ष्यसि विस्तीर्णं तोयपूर्णं सु देखते हुये खड़े हैं, कोई ऊपरको बाहे किये हुये खड़े हैं, कोई चान्द्रायणको करते हैं, कोई एक पाख भर नहीं खाते हैं, कोई दो महीने नहीं खाते, कोई गिरे पत्तों को खाते हैं, कोई वायु का भोजन करते हैं ॥ २ ॥ कोई योगाभ्यास में लगे हुये परमपदको ध्यावते हैं, कोई गृहस्थी में स्थित और कोई अग्निहोत्रके करनेवाले हैं ॥ ३ ॥ ऐसे ब्राह्मणों को देख राजा घुटुघुटुओं से जमीन में गिरा और शिर से प्रणाम कर हे राजन् ! वचन बोला ॥ ४ ॥ कि हे द्विजोत्तमा ! वह तीर्थ वहां है सो आपलोग कहें जोकि सबकी मनोवाञ्छित सिद्धि व फलको देता है ॥ ५ ॥ तब एक ऋषि बोला कि तुम भृगुतुङ्ग के ऊपर सौ धनुष

चलो तदनन्तर जल से भरेहुये भारी लुन्डर कुण्डको देखोगे ॥ ६ ॥ उनके इस वचन को सुन राजा कुण्डके ऊपर गया पर उस तीर्थको देख राजाको अमहुया ॥ ७ ॥ बडभागी कुण्ड व गङ्गा देव और विशेष करके प्राची सरस्वती को देख राजाको आन्ति हुई ॥ ८ ॥ तदनन्तर विस्मयको प्राप्त हुवा व चार २ चिन्ताकरता हुवा राजा मांस के सहित एक कुरगनामकी चिडिया को आकाश में देखा ॥ ९ ॥ कुरर उस मांसको लिये हुये इधर उधर चक्कर खाया रहा और जिनके पास मांस नहीं है उनसे माराजाता है और वे मव मांस के खानेवाले पक्षी आपरा में लडते है ॥ १० ॥ फिर कुरर उन चिडियोंकी चोंचों से मारागया पानी में जागिरा आगिले

शोभनम् ॥ ६ ॥ तेषातद्वचनं श्रुत्वा गतः कुण्डस्य मूर्द्धनि ॥ दृष्ट्वा हि चैव तत्तीर्थं आन्तिर्जातानृपस्य हि ॥ ७ ॥ वीक्ष्य कुण्डं महाभागं गङ्गाञ्चैव विशेषतः ॥ प्राचीं सरस्वतीं नृदृष्ट्वा आन्तिर्जातानृपस्य हि ॥ ८ ॥ ततो विस्मयमापन्नश्चिन्तयानो मुहुर्मुहुः ॥ आकाशसंस्थितं दृष्ट्वा सामिषं कुररन्तथा ॥ ९ ॥ अममाणं गृहीत्वा तं वध्यमानं निरामिषैः ॥ परस्परं हि युध्यन्ते सर्वे चामिषभक्षकाः ॥ १० ॥ हतश्चञ्चुप्रहारस्तु कुररः पतितो भूमि ॥ शूलैर्न शूलिना यत्र भूभागं भेदितम्पुरा ॥ ११ ॥ तत्तीर्थस्य प्रभावेण समद्यः पुरुषो भवत् ॥ विमानस्थन्तु नृदृष्ट्वा क्रौंचैर्वै दिव्यरूपिणम् ॥ १२ ॥ अप्सरोभिर्गीयमानं नृपस्तत्तीर्थमागतः ॥ अस्थीनि भूमौ निक्षिप्य स्नानं कृत्वा यथाविधि ॥ १३ ॥ तिलमिश्रेण तोयेन तर्पयित्वैष्ट देवताः ॥ गृह्यास्थीनि ततो राजा निक्षिप्यान्तर्जले तथा ॥ १४ ॥ क्षणमेकं ततो वीक्ष्य राजा ऊर्द्धमुखः स्थितः ॥ तान् ददर्श तत्तस्मान् देववर्मूर्तिधराञ्छुभान् ॥ १५ ॥ दिव्यवस्त्रैश्च सर्वान् दिव्याभरणभूषितान् ॥ विमानैः काञ्चनैर्दिव्यैरप्सरो गणैः विवृतैः ॥ १६ ॥

जमाने में जहां महादेवने त्रिशूलसे पर्वतको फोडा था ॥ ११ ॥ उस तीर्थ के प्रभावसे वह कुरर उसी समय में पुरुष होगया दिव्यरूपको धरे व विमान पर बैठेहुये उस कौंच पक्षीको देख ॥ १२ ॥ अप्सराओं से गायेजारहे उस तीर्थको राजा आया और हाड़ोको जर्मीन में रख व विधि से स्नान कर ॥ १३ ॥ तिल मिले जल से इष्ट देवताओं का तर्पण कर और हाड़ों को लेकर व जल में उन्हें विसर्जन कर ॥ १४ ॥ तदनन्तर एक क्षण भर देखकर राजा ऊपरको मुंह कियेहुये खडा रहा तदनन्तर देवताओं की उत्तम मूर्तियोंको धरेहुये उन सबको देखा ॥ १५ ॥ कि दिव्य वस्त्रोंको पहनेहुये व दिव्य गहनोंसे सजे अप्सराओंसे युक्त सोनेके दिव्य विमानों से ॥ १६ ॥

अलग २ विमानों पर बैठेहुये उन सबको ऊपरको जातेहुये देख वह राजा बड़ा प्रसन्न हुआ ॥ १७ ॥ तदनन्तर विमान पर बैठे हुये दीर्घतपा ऋषि राजा चित्रसेनसे बोले कि हे महामते, महाराज चित्रसेन ! बाहर ॥ १८ ॥ हे नृपश्रेष्ठ ! आपके प्रसाद से आज हमारी दिव्य गति हुई है यह जो कुछ तुमने बड़े कड़े काम को किया है ॥ १९ ॥ ऐसा काम अपना पुत्रभी अपने पितरों का नहीं करसक्ता है हे राजन् ! अब तुम हमारे वचन से निष्पाप होजाओगे ॥ २० ॥ हे राजन् ! जिस से तुम अपने मन माने मनोरथ को देखोगे तदनन्तर बुद्धिमान चित्रसेन को आशीर्वाद देकर ॥ २१ ॥ अपने पुत्रोंके सहित दीर्घतपासुनि स्वर्गको जातेहुये ॥ १२२ ॥

पृथग्भूतांश्चतान्सर्वान्विचमानेषुऽयवस्थितान् ॥ उत्पततस्समालोक्य सराजाहर्षितोभवत् ॥ १७ ॥ ऋषिर्विमानमारूढश्चित्रसेनमथाव्रवीत् ॥ भोभोः साधुमहाराज चित्रसेनमहामते ॥ १८ ॥ त्वत्प्रसादान्नुपश्रेष्ठ गतिर्दिव्यासमाद्यैव ॥ इदंचयत्त्वं याकिञ्चित्कृतंपरमदुष्करम् ॥ १९ ॥ स्वसुतोपिनशक्नोति पितृणांकर्तुमीदृशम् ॥ मदीयवचनाद्राजन्निष्पापस्त्वंभविष्यसि ॥ २० ॥ यत्तदंक्ष्यसिराजेन्द्र कामिकंमनसेप्सितम् ॥ आशीर्वादंततोदत्त्वा चित्रसेनायधीमते ॥ २१ ॥ स्वर्गजगामस्व सुतैस्ततोदीर्घतपामुनिः ॥ १२२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेदीर्घतपआख्यानोनामैकोनवतितमोऽध्यायः ॥ ८९ ॥

उत्तानपादउवाच ॥ दृष्ट्वातत्तीर्थमाहात्म्यं चित्रसेनोनरेश्वरः ॥ विपुलतीक्ष्णधारञ्च कण्ठेचासिन्दुपोत्तम ॥ १ ॥ देवान्सर्वान्रहदिध्यायन्नब्रह्मविष्णुमहेश्वरान् ॥ विनिक्षिपन्नयात्मानौ प्रत्यक्षौविष्णुशङ्करौ ॥ २ ॥ कण्ठेह्यतुराजानं रूद्रोवचनमब्रवीत् ॥ हरउवाच ॥ प्राणत्यागंमहाराज अकालेमाकुरुष्वह ॥ ३ ॥ अद्यापितुयुवासित्वं नयुक्तंमरणंतव ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेप्राकृतभाषानुवादेदीर्घतपआख्यानोनामैकोनवतितमोऽध्यायः ॥ ८९ ॥

उत्तानपाद बोले कि हे नृपोत्तम ! राजा चित्रसेन उसतीर्थ के माहात्म्य को देखभारी पैनी धार वाली तलवार को ब्रह्मा, विष्णु, और महादेव आदि सन देवताओंका ध्यान करने हुये अपने गले पर चलावे तबतक अपने अपने प्रत्यक्ष विष्णु और महा देवजी को देखा ॥ १ ॥ २ ॥ तब राजा का हाथ पकड़ महादेव बोले, महादेवजी कहते हैं, कि हे महाराज ! अकाल में अपने प्राणों का त्याग तुम मतकरो ॥ ३ ॥ अभी तुम जवानहो इस से तुम्हारा मरना योग्य नहीं है तिससे तुम अपने स्थान को

जावो और मन माने भोगों को भोगो ॥ ४ ॥ दूसरे इन्द्रकी तरह निष्कण्टक राज्यको भोगो तब चित्रसेन बोले कि हे देव ! मैं राज्य व पुत्र, व भाइयोंको नहीं चाहता हूँ ॥ ५ ॥ और स्त्री, खजाना, गौवें और घोड़ों को भी नहीं चाहता हूँ इस से हे महादेव ! मुझे छोड़ देवो मेरा विघ्न मत करो ॥ ६ ॥ हे महेश्वर ! आप के प्रसाद से आजही मुझको स्वर्गकी प्राप्ति होती है तब महादेवजी बोले कि जिसके आगे ब्रह्मा व विष्णु व महादेव खड़े हों ॥ ७ ॥ उसे स्वर्ग से क्या काम है और वहां जाकर भी क्या करेगा इससे हम तीनों देवता आपपर प्रसन्न हैं उच्चम वरको तुम मांगलो ॥ ८ ॥ हे महाराज ! अपने मनका वरमांगो यह सत्य है इसमें संशय नहीं है तब चित्रसे-

स्वस्थानंगच्छवैशीघ्रं भोगान्मुंक्ष्वयथेप्सितान् ॥ ४ ॥ मुंक्ष्वनिष्कण्टकराज्यं नाकंशक्रइवापरः ॥ चित्रसेनउवाच ॥ नराज्यं कामयेदेव नपुत्रान्नचवान्धवान् ॥ ५ ॥ नभार्योनचकोशञ्च नगवानंतुरङ्गमान् ॥ मुञ्चस्वमामहादेव अविघ्नंक्रियतांमम ॥ ६ ॥ स्वर्गप्राप्तिर्ममाद्यैव त्वत्प्रसादान्महेश्वर ॥ देवउवाच ॥ यस्याग्रतोभवेद्विष्णुब्रह्मारुद्रस्तथैव च ॥ ७ ॥ स्वर्गेणतस्यकिंकार्यं गतोसौकिंकरिष्यति ॥ तुष्टावत्वांत्रयोदेवा वृणीष्ववरमुत्तमम् ॥ ८ ॥ यथेप्सितंमहाराज सत्यमेतन्नसंशयः ॥ चित्रसेनउवाच ॥ यदितुष्टास्त्रयोदेवा ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥ ९ ॥ अद्यप्रभृतियुष्माभिः स्थातव्यमिहसर्वदा ॥ गयाशिरंयथापुण्यं कृतंयुष्माभिरेवच ॥ १० ॥ तथैवेदन्तुकर्तव्यं शूलभेदञ्चपावनम् ॥ यत्रयत्र स्थितायूयं तत्रतत्रवसाम्यहम् ॥ ११ ॥ गणानामिहसर्वेषामवध्योहंसुरेश्वर ॥ ईश्वरउवाच ॥ अद्यप्रभृतितिष्ठाम शूलभेदेनरेश्वर ॥ १२ ॥ कलांशेनत्रयोदेवास्त्रिकालंनिवसामहे ॥ नन्दिसंज्ञोणञ्चत्वं भविष्यसिनसंशयः ॥ १३ ॥

न बोले कि जो ब्रह्मा, विष्णु और महादेव तीनों देवता प्रसन्न हों ॥ ६ ॥ तो आजसे आप लोगोंको यहां सदा रहना चाहिये जैसे आप लोगोंने गया शिरको पुण्यवाला बनाया है ॥ १० ॥ इसीतरह इस शूलभेदको भी पावनकरो और जहां २ आपलोग रहो वहीं २ मैं भी बसाकरू ॥ ११ ॥ और हे सुरेश्वर ! आपके सब गणों में मैं अन्ध होऊँ तब महादेवजी बोले कि हे नरेश्वर ! आजसे हम लोग शूलभेद में रहेगे ॥ १२ ॥ अपने कलांश से हम तीनों देवता तीनों कालों में यहां बसेंगे और तुम

नन्दीनामके गण होवोगे इसमें संशय नहीं होगा ॥ १३ ॥ और हे नृप ! हमारे समीप पहले तुम्हारी पूजा सदा होगी जैसे अपने हाड़ों को जलमें डलवाके कुटुम्ब सहित विमानपर बैठेहुये दीर्घतपा चलेगये और स्वर्ग में विराजमानहैं वैसाही तुम भी करो हे पार्थिव ! इसप्रकार चित्रसेनको वर देकर तीनो देवता ॥ १४ ॥ १५ ॥ कुण्ड के ऊपर जावोगे यह विचारकर तब तीनो देवता बैठतेहुये और आपस में ऐसे कहते हैं कि यह तीर्थ ऐसा शुभहै ॥ १६ ॥ कि जैसे सब महीनों में गयाशिर पुरणवाला कहाजाताहै इसीतरह नर्मदेके किनारेपर शूलभेद पुरणवालाहै इसमें संशय नहीं है ॥ १७ ॥ ब्रह्माजी बोले कि हे महाराज ! यह तीर्थ ऐसा पवित्रहै जैसा गयाशिरहै

भाविष्यत्ग्रन्थपूजाते मत्समीपेसदानृप ॥ प्रक्षिप्यचनिजास्थीनि यथादीर्घतपाययौ ॥ १४ ॥ सकुटुम्बोविमानस्थ
स्वर्गोतिष्ठतितत्कुरु ॥ एवंदेवावरन्दत्वा चित्रसेनायपार्थिव ॥ १५ ॥ कुण्डमूर्धन्यास्यामस्त्रयोदेवास्तदास्थिताः ॥
परस्परंवदन्त्येवमिदंतीर्थतथाशुभम् ॥ १६ ॥ यथागयाशिरंपुरणं सर्वमासिचपठ्यते ॥ तथारेवातटेपुरणं शूलभेदन्न
संशयः ॥ १७ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इदंतीर्थमहाराज यथापुरणं गयाशिरः ॥ स्नात्वाचैवोदकेतस्मिन्नरोनिर्मलतां व्रजेत् ॥ १८ ॥
एकंगयाशिरंसुक्त्वा सर्वतीर्थानि शङ्कर ॥ शूलभेदस्य तीर्थस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥ १९ ॥ कुण्डस्य दक्षिणे भागे
दशहस्तप्रमाणतः ॥ ऐन्द्रचारुणवायव्यां प्रमाणन्त्वेकविंशतिः ॥ २० ॥ एतत्प्रमाणं तीर्थस्य पिण्डदानादिकर्ममस्तु ॥
नराः पुण्याश्च ते सर्वे अन्नदानं कृतंचर्यैः ॥ २१ ॥ विष्णुस्त्रिनेत्ररूपेण ब्रह्मरूपी पितामहः ॥ तस्मिंस्ततीर्थे स्थितानित्यं पूजां
गृह्णन्ति भक्तिः ॥ २२ ॥ जातं जातं निरीक्ष्यन्ते स्वपुत्रं हि पितामहाः ॥ कदायास्यति पुत्रोसौ कदादाता भविष्यति ॥ २३ ॥

इस जलमें स्नानकर मनुष्य निर्मल होजाताहै ॥ १८ ॥ हे शङ्कर ! एक गयाशिरको छोड़ और सब तीर्थ शूलभेद तीर्थकी सोलहवीं कलाको नहीं पासकें हैं ॥ १९ ॥
कुण्डके दक्षिण तरफ दश हाथ और पूर्व, पश्चिम, वायव्य में इक्कीस हाथ ॥ २० ॥ पिण्डदान आदि कामों में इस तीर्थका इतना प्रमाणहै वे सब मनुष्य बड़े पुण्यात्मा
हैं जिन्होंने यहां दानको कियाहै ॥ २१ ॥ उस तीर्थ में विष्णुजी महादेवके रूपसे और ब्रह्मा अपनेही रूपसे सदा बैठेहुये भक्तिसे करीबुई पूजाको लेते हैं ॥ २२ ॥ पुरि-

खालोग अपने धर्म में पैदाहुये हरएक पुत्रको देला करते हैं कि यह शूलभेदको कब जावेगा और कब हमारे पिण्डोंका देनेवाला होगा ॥ २३ ॥ पांच स्थानोंमें जो भक्ति-वाला मनुष्य श्राद्धको करताहै वह प्रेतरूप होरहे अपने सब कुलोंको तारदेता है ॥ २४ ॥ पिताकी इच्छास और माताकी इच्छास और स्त्री की ग्याह इनसब पीढ़ियोंको तारदेताहै ॥ २५ ॥ और देवता व ब्राह्मणों और पितरोंकी दयासे श्राद्धका करनेवाला महादेवके समीप रहताहै ॥ २६ ॥ जो लोग आत्महत्याके करनेवाले हैं व गोहत्या के करनेवाले हैं व स्त्री, जल, पशु और बिजुली से मारगये हैं ॥ २७ ॥ उनका अग्निदाह व शुद्धि व जलदान नही होसकताहै लेकिन उस तीर्थमें जो कोई अपनी भक्तिसे

पञ्चस्थानेषुयःश्राद्धं कुरुतेभक्तिमान्नरः ॥ स्वकुलानितुसर्वाणि प्रेतभूतानितारयेत् ॥ २४ ॥ एकविंशत्पितृपद्वे मातृपद्वैकविंशतिम् ॥ भार्यायाएकादशैवेति सर्वाण्येतानितारयेत् ॥ २५ ॥ द्विजदेवप्रसादेन पितृणाञ्चतथैवहि ॥ श्राद्धदोषसतेतत्र यत्रदेवोमहेश्वरः ॥ २६ ॥ आत्मनोघातकायेच गोघ्नाःस्त्रिणहताश्रये ॥ दंष्ट्रिभिर्जलपातेन विद्युत्पाते नयेहताः ॥ २७ ॥ नतेषामग्निमंस्कारो नशौचन्नोदकक्रिया ॥ तत्रतीर्थेतुयःश्राद्धं तेषांकुर्यात्स्वभक्तिः ॥ २८ ॥ मोक्षप्राप्तिर्भवेत्तेषां त्रिस्थानेषुनसंशयः ॥ तृप्तिस्तुजायतेतेषां वर्षमेकन्नसंशयः ॥ २९ ॥ अजानताकृतं पापं बालभा वेषुयत्कृतम् ॥ तत्सर्वन्नश्यतिचिप्रं सकृत्स्नानेनभूयते ॥ ३० ॥ रजकेनयथाधौत वस्त्रंनिर्मलतां व्रजेत् ॥ पापोपलिप्त स्तीर्थेस्मिन् स्नातोनिर्मलतां व्रजेत् ॥ ३१ ॥ संन्यामङ्कुरतेयस्तु तस्मिंस्तीर्थेनराधिप ॥ ध्यायमानोमहादेवं सगच्छेत्परमंपदम् ॥ ३२ ॥ क्रीडित्वाचयथाकामं स्वेच्छयाशिवमन्दिरे ॥ वेदवेदाङ्गतत्त्वज्ञो जायतेविपुलेकुले ॥ ३३ ॥ रू

उनका श्राद्धकरे ॥ २८ ॥ तो उनका मोक्ष जरूरही होवे इसमें कुछ संशय नहीं है और एक सालभर वे लोग श्राद्धसे तृप्त रहसकते हैं इसमें संशय नहीं है ॥ २९ ॥ और हे भूपते ! जो पाप बिना जाने व लड़कपनमें कियागयहै वह सब एक बार स्नान करने से तुरन्त नाश होजाताहै ॥ ३० ॥ धोबीका धोयाहुआ कपड़ा जैसे निर्मल होजाताहै इसीतरह पापसे भराहुआ मनुष्य इस तीर्थमें स्नान करतेही निर्मल होजाताहै ॥ ३१ ॥ और हे नराधिप ! उस तीर्थमें जो महादेवका ध्यान करताहुआ संन्यास लेताहै वह परमपदको जाताहै ॥ ३२ ॥ अपनी इच्छाभर महादेवके मन्दिरमें विहारकर फिर बड़े कुलमें वेद व वेदाङ्गोंके तत्त्वोंका जाननेवाला पैदा होताहै ॥ ३३ ॥

और रूपवाला, भाग्यवाला, सब रोगों से रहित, सब धर्मों से युक्त और सब आचारों से युक्त होता है ॥ ३४ ॥ हे राजन् ! यह उत्तम तीर्थका फल तुमसे कहा गया इसको सदा सुनकर मनुष्य सब पापों से छूट जाता है ॥ ३५ ॥ जो कोई इस आख्यानको हरएक पर्वमें आरुद्रमें व देवताके मन्दिरमें ब्राह्मणों के समीप बैठकर भक्तिसे सुनाता है ॥ ३६ ॥ उसपर देवता व मनुष्य पितरों के सहित प्रसन्न होते हैं पढ़ने व सुननेवालों के पापोंका समूह नाश होजाता है ॥ ३७ ॥ और जो इस तीर्थके माहात्म्यको लिखकर ब्राह्मणोंको देता है वह अपने पिछिले जन्मों की याद रखनेवाला होता है और अपने मनमाने फलको पाता है ॥ ३८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवा

पवान्मुभगश्चैव सर्वव्याधिविवर्जितः ॥ सर्वधर्मसमोपेतस्सर्वाचारसमन्वितः ॥ ३४ ॥ एतत्तेकथितंराजंस्तार्थस्य फलमुत्तमम् ॥ तच्छ्रुत्वा मानवो नित्यं मुच्यते सर्वपातकैः ॥ ३५ ॥ यश्चैनं श्रावयेद्भक्त्या आख्यानं द्विजसन्निधौ ॥ श्राद्धे देवगृहे चैव पठेत्पर्वणि पर्वणि ॥ ३६ ॥ गीर्वाणास्तस्य तुष्यन्ति मनुष्याः पितृभिस्सह ॥ पठतां शृण्वताञ्चैव नश्येद्द्वैपापसञ्चयः ॥ ३७ ॥ लिखित्वा तीर्थमाहात्म्यं ब्राह्मणेभ्यो ददाति यः ॥ जातिस्मरं सलभते प्राप्नोत्यभिमतं फलम् ॥ ३८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवा खण्डे चित्रसेनकथावर्णनो नाम नववित्तमोऽध्यायः ॥ ९० ॥ * ॥

राजोवाच ॥ अन्यच्च श्रोतुमिच्छामि केन गङ्गावतारिता ॥ रुद्रशीर्षिस्थिता पुण्या देवी कथमिहागता ॥ १ ॥ पुण्यादेव शिलानाम तस्यामाहात्म्यमुत्तमम् ॥ एतदाख्याहिमे सर्वं प्रसादात्पुरुषोत्तमम् ॥ २ ॥ रुद्रउवाच ॥ शृणुष्वैकमना भूत्वा यथा गङ्गावतारिता ॥ पुरा देवी महाभाग ब्रह्माद्यैस्सकलैस्सुरैः ॥ ३ ॥ अभ्यर्थयञ्जगन्नाथं देवदेवं जगद्गुरुम् ॥ घटमखण्डे प्राकृतभाषाऽनुवाचं चित्रसेनकथावर्णनो नाम नववित्तमोऽध्यायः ॥ ९० ॥ * ॥

राजा बोले कि और भी हम सुना चाहते हैं कि गङ्गाको किसने उतारा है महादेवके शीशपर बैठी हुई पवित्र गङ्गादेवी यहां कैसे आई ॥ १ ॥ और पुण्यावाली देव-शिला नाम जो है उसका भी माहात्म्य उत्तम है हे पुरुषोत्तम ! सो यह सब अपनी दयासे मुझसे कहो ॥ २ ॥ तब महादेवजी बोले कि जैसे गङ्गा उतरी है तिसको तुम एक मन होकर सुनो अगिले जमाने में हे महाभाग ! ब्रह्मा आदि सब देवताओंने ॥ ३ ॥ गङ्गाके वास्ते जगद्गुरु भगवान्से प्रार्थनाकी तब घड़े में बैठी हुई गङ्गा

पृथिवीपर छोड़ दीगई ॥ ४ ॥ फिर महादेव भी आपने शिरसे सरस्वतीको पृथ्वी में छोड़ा उस तीर्थके किनारेपर जो मनुष्य भक्तिसे स्नान करते है ॥ ५ ॥ और हमेशा जलको पीते हैं वे यमलोकको नहीं जाते है शूलभेद कुण्ड में जहांपर हे नराधिप ! वे गङ्गागिरी हैं ॥ ६ ॥ उन्हीं गङ्गाके पश्चिम में प्राची सरस्वती है और दक्षिण में शूलभेद नामक अत्युत्तम तीर्थ है ॥ ७ ॥ वहां खास महादेवजीकी बनाई हुई बड़ी रमणीक देवशिला है हे नृप ! वहां स्नानकर जो भक्तिसे ब्राह्मणों को भोजन कराता है ॥ ८ ॥ उसके थोड़ेही दानका अन्त नहीं होता है तब उत्तानपाद बोले कि हे देवेश ! पृथिवी में अच्छे दान कौन हैं ॥ ९ ॥ मनुष्य जिनको भक्तिसे देकर सब पापोंमें छूट

ध्येस्थितागङ्गा मोचिताचसुभूतले ॥ ४ ॥ भारतीचततोमुक्ता रुद्रेणशिरसोभुवि ॥ नरास्तीर्थतटेतस्याः स्नानं कुर्वन्ति भक्तिः ॥ ५ ॥ पिबन्तिचजलं नित्यं न तेयान्ति यमालयम् ॥ यत्र सापतिताकुण्डे शूलभेदेनराधिप ॥ ६ ॥ देवनद्याः प्रतीच्याञ्च यत्र प्राची सरस्वती ॥ याम्याञ्च शूलभेदाख्यमस्ति तीर्थमनुत्तमम् ॥ ७ ॥ तत्र देवशिलारम्या स्वयन्देवे न निर्मिता ॥ तत्र स्नात्वा तु यो भक्त्या ब्राह्मणं भोजयेन्नृप ॥ ८ ॥ अल्पस्यैव तु दानस्य तस्य चान्तो न विद्यते ॥ उत्तान पाद उवाच ॥ कानि दानानि शस्तानि देवेश धरणीतले ॥ ९ ॥ यानि दत्त्वा नरो भक्त्या मुच्यते सर्वकिल्बिषैः ॥ देवशि लायामाहात्म्यं स्नानदानाद्धितफलम् ॥ १० ॥ व्रतोपवासनियमैर्यत्प्राप्य तद्वदस्वमे ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ आसीत्पु रामहावीर्यं श्रेदिनाथो महाबलः ॥ ११ ॥ वीरसेन इति ख्यातो मण्डलाधिपतीश्वरः ॥ तस्य राज्ञेयैरिषु नास्ति नव्याधि र्न च तस्करः ॥ १२ ॥ न चाऽधर्मोऽभवत्तत्र धर्म एव हि सर्वदा ॥ सदा मुदान्वितो राजा सभाय्यो बहुपुत्रकः ॥ १३ ॥ एकाच

जाता है और देवशिलाका माहात्म्य व वहां स्नान व दानसे जो फलहो ॥ १० ॥ अथवा वहां व्रत, उपास और नियमों से जो फलहो वह आप मुझसे कहो तब श्रीभगवान् बोले कि पूर्वकालमें बड़ा बलवाला एक चंदेलीका राजा होता हुआ ॥ ११ ॥ वीरसेन नामसे प्रसिद्ध देशपति राजाओंका भी स्वामी था उसकी राज्यमें बैरी, रोग और चोर नहीं थे ॥ १२ ॥ और वहां अधर्म नहीं था बल्कि सदा धर्मही हुआ करता था आपनी स्त्री व बहुत पुत्रोंके सहित राजा सदा आनन्दसे रहता था ॥ १३ ॥ पार्वती

जोके समान सुन्दर रूपवाली उसकी एक कन्याथी उसको उसकी माता व पिता व भाई लोगोंने देखा ॥ १४ ॥ तो हे महेश्वर ! समयके होनेपर राजाने उसका विधानसे बागहूँ वर्षमें विवाह करदिया ॥ १५ ॥ तदनन्तर उस कन्याका जो भर्ता था वह सरगया अपनी उस कन्याको विधवा देख राजा शोकसे युक्त होताहुआ ॥ १६ ॥ दुःखसे विकल राजा अपनी रानीसे वचन बोला कि हे भद्रे ! यह जिन्दगीभर का दुःसह दुःख पैदा होगया ॥ १७ ॥ क्योंकि रूप और जवानी से भरीहुई यह कन्या कैसे रक्षित होसक्ती है इसमे हे भाग्य ! भानुमतीकी रत्नामे कोई उपाय नहीं है ॥ १८ ॥ आपसमें इसभांति बतलातेहुये दोनोंकी बातचीत सुनकर अपने माता

दुहितातस्य सुरूपागिरिजाइव ॥ दृष्टासापितुमातृभ्यांबन्धुवर्गजनैस्सह ॥ १४ ॥ कृत्वैवैवाहिकंकार्यं कालेप्राप्ते
यथाविधि ॥ अनन्तरंचेदिपतिर्द्वादशाब्देमहेश्वरः ॥ १५ ॥ ततस्तस्यास्तुयोभर्ता समृत्युवशमागतः ॥ विधवांतांमुतां
दृष्ट्वा राजाशोकममन्वितः ॥ १६ ॥ उवाचवचनंनराजा स्वभार्यादुःखपीडितः ॥ भद्रेदुःखमिदंजातं यावज्जीवंसुदु
स्सहम् ॥ १७ ॥ नैषारक्षयितुंशक्या रूपयौवनदर्पिता ॥ नोपायोविद्यतेभार्ये भानुमत्याश्चरक्षणे ॥ १८ ॥ परस्परंवि
वदतोस्तच्छ्रुत्वाकन्यकाब्रवीत् ॥ भानुमत्युवाच ॥ नवीडाभितवाग्रेहं ज्वलंतीदाहकेनच ॥ १९ ॥ सत्यंनोत्पद्यतेदोषो
मदर्थंचनराधिप ॥ अद्यप्रभृत्यहंतात नवैषंधारयेक्कचित् ॥ २० ॥ स्थूठवस्त्रैर्निजाङ्गानि परिधास्यामिसंयुता ॥ चरि
ष्यामिब्रतान्सर्वान्पुराणविहितानपि ॥ २१ ॥ आत्मानंशोषयिष्यामि तोषयन्तीजनार्दनम् ॥ ममैषावर्ततेबुद्धिर्यदि
त्वंतातमन्यसे ॥ २२ ॥ भानुमत्यावचःश्रुत्वा राजास्नेहाहितोभवत् ॥ तीर्थयात्रांसमुद्दिश्य कोशंदत्त्वाचषुकलम् ॥ २३ ॥

व पितासे भानुमती बोली, भानुमती कहती है--कि मे आपके गामने विरहाग्नि से जलती हुई कुछ भी नहीं शरमाती हूं ॥ १९ ॥ हे नराधिप ! मेरे पीछे आपको कुछ भी दोष नहीं होगा यह सत्यही है क्योंकि हे तात ! आज से मे कभी श्रृंगार को नहीं धारण करूंगी ॥ २० ॥ संयमको कियेहुये मोटे कपडाओं से अपने अंगों को ढाके रहूंगी और पुराणों में कहेहुये सभी व्रतों को मैं करूंगी ॥ २१ ॥ परमेश्वरको प्रसन्नकरती हुई मैं अपने को सुखाडालूंगी हे तात ! जो आपको अंगीकारहो तो मेरो बुद्धि इस तरह की होरही है ॥ २२ ॥ भानुमती के वचन को सुन राजा स्नेह से बड़ा कष्टित होगया और तीर्थयात्रा के वास्ते बड़ा खजाना देकर ॥ २३ ॥

वः उसकी रक्षा के वास्ते वृद्धाको साथ में भेजकर कन्याको विदा करता हुआ और भी हथियारबन्द एक सिपाही व ब्राह्मण पुरोहित को साथ में कर दिया ॥ २४ ॥ हे नराधिप ! अब वह कन्या गगाके किनारे पर ध्यान करने के वास्ते गंगा में नहाय चन्दन और माला आदि से ब्राह्मणों का नित्य पूजन करती हुई ॥ २५ ॥ फिर दास व दासी आदि जो उप कन्याभी रक्षामें- समर्थ थे वे सब कन्याके पिता राजाकी सलाहमें गङ्गाके तीरपर रहतेहुये ॥ २६ ॥ वह कन्या गङ्गाके तीरपर बारह वर्षतक रही फिर किसी समय गङ्गा में छोड़ वह राजपुत्री दक्षिणदिशाको अपने मन्त्रियों के सहित जहा नर्मदा नदी थी वहां पहुँची वहां अङ्कार व अमरकण्टकमें छह महीना

विमृज्यराजास्वसुतां वृद्धान्कृत्वातुरन्तणे ॥ पुरुषंसायुधंचान्यं ब्राह्मणंचपुरोहितम् ॥ २४ ॥ अवगाह्यतटेध्यातुं गङ्गायांसानराधिप ॥ नित्यमापूजयद्विप्रान्गन्धमाल्यादिभूषणैः ॥ २५ ॥ दासीदामप्रभृतयस्तस्यायेरन्तणेक्षमाः ॥ ततःपितुर्मतेनैव गङ्गातीरेसमास्थिताः ॥ २६ ॥ द्वादशाब्दानिसातीरे गङ्गायास्समवस्थिता ॥ त्यक्त्वागङ्गांकिंचिद्राजपुत्रीकाष्ठान्तुदक्षिणाम् ॥ २७ ॥ प्राप्तासासचिवैस्सार्द्धं यत्रैवामहानदी ॥ परमासञ्चस्थितातत्र अङ्कारेऽमरकण्टके ॥ २८ ॥ नानाविधेषुतीर्थेषु तीर्थातीर्थजगामह ॥ स्नात्वास्नात्वाद्विजान्पूज्य भक्तियुक्ताह्यधिष्ठिता ॥ २९ ॥ वारुणींचदिशंगत्वा देवनद्याश्रमसङ्गमे ॥ ददर्शचाश्रमंपुण्यमृषिसङ्घैर्निषेवितम् ॥ ३० ॥ दृष्ट्वाऋषिसमूहंसा प्राणिपत्ये दमब्रवीत् ॥ माहात्म्यंचास्यतीर्थस्य नामचैवास्यकीर्तय ॥ ३१ ॥ ऋषिरुवाच ॥ चक्रतीर्थन्तुविख्यातं चक्रदत्तपुरा हरेः ॥ महेश्वरेणतुष्टेन देवदेवेनशूलिना ॥ ३२ ॥ अत्रतीर्थेतुयःस्नात्वा तर्पयेत्पितृदेवताः ॥ अनिचर्तिकगतिस्र

रही ॥ २७ ॥ २८ ॥ ऐसे अनेकप्रकारके तीर्थों में एक तीर्थ से दूसरे तीर्थको जातीहुई और उनमें नहाय २ कर भक्तिमें युक्त ब्राह्मणोंका पूजनकर घास करतीहुई ॥ २९ ॥ फिर पश्चिमदिशामें जाकर गङ्गाके सङ्गममें ऋषियों से सेवित पुण्यवाले आश्रमको-देखा ॥ ३० ॥ उसमें ऋषियों के झुण्डको देख उसको प्रणामकर वह बोली कि इस तीर्थ के माहात्म्य व नामको आप कहें ॥ ३१ ॥ तब ऋषि-बोले कि यह चक्रतीर्थ प्रसिद्ध है यहां-आगिले जमाने में प्रसन्न होकर देवताओंके देवता त्रिशूलधारी

महादेवजीने विष्णुको चक्र दिया है ॥ ३२ ॥ इस तीर्थ में स्नानकर जो पितर व देवताओंका तर्पण करता है उसकी फिर यहां लौटनेवाली गति नहीं होती है इसमें संशय नहीं है ॥ ३३ ॥ हे तपस्विनि ! दूसरे दिन यहांसे शूलभेदको जावे वहां रातमें जागरणकर पुराणकी कथा बांचे ॥ ३४ ॥ फूल, दीप और नैवेद्य से विष्णुका पूजन करे फिर भोरभयेपर ब्राह्मणोंको भोजन करावे और उनको अपनी भक्तिसे दानदेवे ॥ ३५ ॥ फिर चौथे दिन जहां प्राची सरस्वती है वहां जावे हे नराधिप ! जेकि पवित्र करने के वास्ते ब्रह्माजीसे निकली है ॥ ३६ ॥ वहा जाय व नहायकर पितर व देवताओंका तर्पणकरे और वहा श्राद्धका करनेवाला जहा ब्रह्मादेव रहते हैं वहां रहता

स्य भवितानात्रसंशयः ॥ ३३ ॥ द्वितीयेहितोगच्छेच्छूलभेदतपस्विनि ॥ रात्रौजागरणंकृत्वा पठेत्पौराणिकीकथा
म ॥ ३४ ॥ विष्णुपूजांप्रकुर्वीत पुष्पदीपनिवेदनैः ॥ प्रभातेभोजयेद्विप्रान्दानंदद्यात्स्वभक्तिः ॥ ३५ ॥ चतुर्थेहितथा
गच्छेद्यत्रप्राचीसरस्वती ॥ ब्रह्मदेवाद्दिनिष्क्रान्ता पावनार्थनराधिप ॥ ३६ ॥ तत्रस्नात्वानरोगत्वा तर्पयेत्पितृदेव
ताः ॥ श्राद्धदस्तुवसेत्तत्र यत्रदेवःपितामहः ॥ ३७ ॥ पञ्चमेहितोगच्छेच्छिङ्गमार्कण्डसंज्ञितम् ॥ तत्रस्नात्वातुयोभ
क्त्याअर्चयेत्पितृदेवताः ॥ ३८ ॥ श्राद्धंकृत्वायथान्यायमनिन्द्यान्पूजयेद्द्विजान् ॥ पितरस्तस्यतृप्यन्ति द्वादशाब्द
न्नसंशयः ॥ ३९ ॥ सर्वदेवमयंस्थानं सर्वतीर्थमनुत्तमम् ॥ कोटितीर्थसमंस्थानं कोटिलिङ्गोत्तमोत्तमम् ॥ ४० ॥ त्रिरा
त्रंकुस्तेयस्तु शुचिस्नानंजितेन्द्रियः ॥ पक्षमामञ्चषण्मासमब्दमेकंकदाचन ॥ ४१ ॥ नतस्यवसतिर्मर्त्ये नाकेवा
सस्सदाक्षयः ॥ नियमस्थस्तुमुच्येत त्रिजन्मजनितादघात् ॥ ४२ ॥ विनापुमांसंयानारी द्वादशाब्दन्तुमुव्रता ॥ ति
हे ॥ ३७ ॥ फिर पांचवें दिन मार्कण्डेयनामक लिङ्गको जावे और वहां स्नानकर जो भक्तिसे पितर व देवताओंका पूजन करता है ॥ ३८ ॥ और रीतिपूर्वक श्राद्धकर उत्तम ब्राह्मणोंका पूजन करता है उसके पितर बारह वर्षतक तृप्त रहते हैं इसमें संशय नहीं है ॥ ३९ ॥ सब देवताओं व सब तीर्थोंका रूप अत्युत्तम यह स्थान है करोड़ों तीर्थोंके बराबर व करोड़ों लिङ्गोंके बराबर उत्तमसे उत्तम यह स्थान है ॥ ४० ॥ कदाचित् इन्द्रियों को जीतेहुये व पवित्र होकर तीन रात व एक पाख व एक मास व छह मास व एक सालभर जो स्नान करता है ॥ ४१ ॥ उसका वास मनुष्यलोकमें नहीं किन्तु स्वर्ग में अक्षय वास होता है और नियममें रहकर जो यहां रहता है वह तीन

जन्मों के पापों से छुट जाता है ॥ ४२ ॥ और विधवा स्त्री जो बारह वर्ष व्रत के साथ यहां रहती है वह अक्षय काल तक महादेव के लोक में पूजित होती है ॥ ४३ ॥ मुनिके वचनको सुन कन्या बड़े आनन्दको प्राप्त हुई तबसे आलस्य छोड़ दिन रात तीर्थ में स्नान करने लगी ॥ ४४ ॥ तीर्थ के प्रभावको देख रानी वचन बोली कि हे पुरोहित व ब्राह्मण लोगो ! आज मेरी बातको सुनो ॥ ४५ ॥ कि मैं अब ऐसे स्थानको जब तक जीऊंगी तब तक दिन रात कभी नहीं छोड़ूंगी इससे आप सज्जन लोगों को मेरी माता व पिता व भाई इन सबों से यह बात कहना चाहिये ॥ ४६ ॥ कि नियम व व्रतोंकी करनेवाली वह आपकी कन्या शूलभेद में रहती है एक दिनके अन्तर से

छुते साक्ष्य कालं रुद्रलोकं महीयते ॥ ४३ ॥ मुनेश्च वचनं श्रुत्वा मुदां परमिकां ययौ ॥ ततो वगाहते तीर्थं महर्निशमतान्द्रि-
तम् ॥ ४४ ॥ दृष्ट्वा तीर्थं प्रभावन्तु राज्ञी वचनमब्रवीत् ॥ श्रूयतां वचनं मेघ ब्राह्मणास्स पुरोहिताः ॥ ४५ ॥ न तथ जामी
दृशं स्थानं यावज्जीवाम्यहर्निशम् ॥ मात्रे पित्रे तथा भ्रात्रे मद्भिर्वाच्यमिदं वचः ॥ ४६ ॥ वर्तते शूलभेदे सा नियता व्रत
चारिणी ॥ एकान्तरोपवासेन शनैर्मार्गमुपोषिता ॥ ४७ ॥ देवशिलास्थिता नित्यं ध्यायमाना तु केशवम् ॥ अहर्निशं
स्थिता भूमौ दृष्ट्वा राज्ञी शुभानना ॥ ४८ ॥ व्रतस्थानियता हारा नाम्ना भानुमती शुभा ॥ गतेषु द्विजमुख्येष्वययौ श-
बरगुणमकम् ॥ ४९ ॥ उवाच वचनं तत्र तान् दृष्ट्वा शबराङ्गना ॥ नैवास्याः सदृशी काचिन्निषु लोकेषु विश्रुता ॥ ५० ॥ सा
ज्जादसौ देवकन्या ह्यवतीर्णा महीतले ॥ भार्यया वचनं श्रुत्वा शबरस्तामुवाच ह ॥ ५१ ॥ कमलानियथा लाभं दत्त्वा

धीरे २ महर्निशर उपास करती हुई ॥ ४७ ॥ व भगवान् का ध्यान करती हुई सदा देवशिला पर रहती है तब सबोंने देखा कि सुन्दर मुखवाली वह रानी दिन रात जमीन में बैठी रहती है ॥ ४८ ॥ और व्रतों में लगी हुई व एक और थोड़े भोजन की करनेवाली नामसे सुन्दर भानुमती है इस प्रकार कहते हुये ब्राह्मणों के चले गये के बाट एक जोड़ा बहेलिया स्त्री पुरुष वहा आये ॥ ४९ ॥ वहां उस रानीको देख बहेलिया की स्त्री वचन बोली कि इस रानीके बराबर तीनों लोकों में कोई स्त्री प्रसिद्ध नहीं है ॥ ५० ॥ मानो यह साक्षात् देवताओं की कन्या ही जमीन पर अवतार लिया है स्त्रीके वचनको सुन शबर उससे बोला ॥ ५१ ॥ कि जो कुछ कमल मिले हो उन्हे मुझे देकर

तू भोजनकर मेरा मन पूजन करने में है इससे मैं आज नहीं खाऊंगा ॥ ५२ ॥ क्योंकि हे भद्रे ! मैंने कुछ वर्जित नहीं किया किन्तु पापकी झाड़ि में अशुभ कर्मको ही किया है तब शबरी बोली कि हे स्वामिन् ! मैंने तो आपसे पहले कभी नहीं खाया है ॥ ५३ ॥ जहां तक मैं याद करती हूं तहां तक मैंने आपकी के भोजन में बचे हुये का भोजन किया है तब स्त्री का निश्चय जान वह स्नान करनेको गया ॥ ५४ ॥ और आधी घोड़ी से भक्तिने नहाय व मन्त्र देवताओं के नमस्कारकर देवशिलापर गया ॥ ५५ ॥ वहां भगवान् का ध्यान करता हुआ खटके के साथ खड़ा हुआ तब तक शबरीने दासी के हाथ में दो फूल कमल के दिये ॥ ५६ ॥ रानी उन फूलों को दे व दासीने बोली कि ये

त्वं भुङ्क्ष्वस्त्वरम् ॥ मम चैवाचने बुद्धिर्न भोक्तव्यं मया द्यौर्वै ॥ ५२ ॥ नमयावज्जितं भद्रे पापवृद्ध्याऽशुभं कृतम् ॥ शबर्युवाच ॥ न पूर्वन्तु मया स्वाभिन्मुक्तं कस्मिन्स्तु वासरे ॥ ५३ ॥ मुक्तशेषं मया भुक्तं यावत्कालं स्मराम्यहम् ॥ भाट्यार्यानि श्रयं ज्ञात्वा स्नानं कर्तुं जगाम ह ॥ ५४ ॥ अर्द्धोत्तरीयवस्त्रेण स्नानं कृत्वा तु भक्तिः ॥ सर्वदेवं नमस्कृत्य गतो देवशिलां प्रति ॥ ५५ ॥ तस्यैव सशङ्कमानोऽपि ध्यायमानो जनार्दनम् ॥ कुमुदद्वयं शबर्या तु दासी हस्ते निवेदितम् ॥ ५६ ॥ दृष्ट्वा राज्ञी तथा पुष्पे दासीञ्चैव तदा ब्रवीत् ॥ केदं पुष्पद्वयं लब्धं कथ्यतां तच्च साम्प्रतम् ॥ ५७ ॥ शीघ्रं गच्छावगच्छत्वं पुष्पञ्चैवानया परम् ॥ अनेन वसुना चैव कमलानि समानय ॥ ५८ ॥ भानुमत्यावचः श्रुत्वा गता सा शबरम् प्रति ॥ श्रीफलानि च पुष्पाणि बहून्यन्यानि देहि मे ॥ ५९ ॥ शबर्युवाच ॥ श्रीफलानि च दास्यामि पुष्पाणि च विशेषतः ॥ मूल्येन मे स्पृहानां स्ति गत्वा राज्ञी निवेदय ॥ ६० ॥ गता दासी निवेद्याथ राज्ञी च स्वयमागता ॥ उवाच शबरं राज्ञी पुष्पं मूल्येन देहि मे ॥ ६१ ॥

दो फूल तूने कहां पाये सो जल्दी बतावो ॥ ५७ ॥ और बहुत जल्दी जावो २ और भी फूल लेआवो इस द्रव्य से कमलों को लावो ॥ ५८ ॥ भानुमती के वचन को सुन वह दासी शबर के तीर गई और बोली कि बेल व फूल और भी बहुत से हमको देवो ॥ ५९ ॥ तब शबरी बोली कि बेल व फूलों को मैं विशेषकर देऊंगी लेकिन दाम लेने की मेरी इच्छा नहीं है सो तुम जाकर रानी से कहो ॥ ६० ॥ तब दासी गई और रानी से कहा रानी आपही झाड़ें और शबर से कहा कि दामों से तुम मुझे

फूलों को देवो ॥ ६१ ॥ तब शबर बोला कि हे देवि ! मैं फलों व फूलों के मोलको नहीं चाहता हूँ इससे बेल व फूल आप जितने चाहो उतने मुझमें लवा ॥ ६२ ॥
 श्री विधान से जगतके गुरु भगवान् की पूजाकरो तब गनी बोलों कि विना मोल हम तुम्हारे कमलके फूलोंका नहीं लेवगी ॥ ६३ ॥ इससे अन्नकी इस एक ठेरी को तुम लेलेवो ॥ ६४ ॥ तब शबर बोला कि हे वरानने ! आज मैं भगवान् को छोड़ भोजनकी सुध नहीं करता हूँ ॥ ६५ ॥ हे भद्रे ! देवताओं के कामके विना और किमी बातमें मेरी बुद्धि नहीं लगती है तब गनी बोली कि तुमको अन्न नहीं छोड़ने योग्य है क्योंकि अन्नमें सभी कुछ रहता है ॥ ६६ ॥ तिससे सब तरह से मेरे अन्नको लेनो

शबरउवाच ॥ नमूल्यंकामयेदेवि फलपुष्पसमुद्भवम् ॥ श्रीफलानिचपुष्पाणि यथेष्टममगृह्यताम् ॥ ६२ ॥ अर्चाकुरु
 यथान्यायं वासुदेवंजगत्पतिम् ॥ राश्युवाच ॥ विनामूल्यन्नगृह्णामि कमलानितवाधुना ॥ ६३ ॥ धान्यस्यखण्डिका
 मेकामेतामप्रतिनिगृह्यताम् ॥ ६४ ॥ शबरउवाच ॥ नाहारञ्चिन्तयाम्यद्य मुक्त्वा देवंवरानने ॥ ६५ ॥ देवकाय्यं वि
 नामद्रे नान्याबुद्धिः प्रवर्तते ॥ राश्युवाच ॥ नत्वयान्नपरित्याज्यं सर्वमन्नेप्रतिष्ठितम् ॥ ६६ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन भमा
 न्नं प्रतिगृह्यताम् ॥ तपस्विनो महाभागा ये चारण्यनिवासिनः ॥ ६७ ॥ ते मद्वारं स्थितास्मैवं याचन्ते तेन्न काङ्क्षिणः ॥
 शबरउवाच ॥ निषेधो धिक्कृतः पूर्वं मया सत्यन्नसंशयः ॥ ६८ ॥ सत्यमूलं जगत्सर्वं सत्यैव प्रतिष्ठितम् ॥ सत्येन तपते
 सूर्यस्सत्येन द्योततेशशी ॥ ६९ ॥ सत्येन वायवो वान्ति धरा सत्येप्रतिष्ठिता ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन सत्यं सत्यन्नलोपयेत् ॥
 ७० ॥ राश्युवाच ॥ आरामोपहृतं पुष्पमारण्यं पुष्पमेव च ॥ क्रीतं प्रहिग्रहाल्लब्धं पुष्पमेव च तुर्विधम् ॥ ७१ ॥ उत्तमं

देखो बड़े भाग्यवाले वनके वासी तपस्वी लोग जो हैं ॥ ६७ ॥ वे सब अन्न की इच्छा करनेवाले मेरे दरवाजेपर खड़े अन्न मांगते हैं तब फिर शबर बोला कि
 पहलें मैंने, सब्जी नहीं कीरही इसमें संशय नहीं है ॥ ६८ ॥ सब जगतकी जड़ सत्यही है और सब जगत् सत्यही में रहता है सत्य से सूर्य तपते हैं और सत्य
 से चन्द्रमा प्रकाश करता है ॥ ६९ ॥ हवा सत्यही से चलती है जमीन सत्यही में सधी रहती है तिससे सब यलों से सत्यको सत्यही न छोड़े ॥ ७० ॥

तब रानी बोली कि बगीचेसे लायागया, वन से लायागया, खरीदागया और देनेसे मिला ऐसे चार तरहका फूल होताहै ॥ ७१ ॥ तिनमें उत्तमफलवाला वहहै जो वन से अपने हाथ लाया गयाहो और बगीचे का मध्यम है व खरीड किया अग्रमहै ॥ ७२ ॥ और देने से जो मिलाहै उसको पण्डितलोग निष्फल जानते हैं तब पुरोहित बोला कि हे राज्ञि ! फूलों को लेवो और नारायण का पूजन करो ॥ ७३ ॥ तब उपकार को करती हुई भानुमती ने विधि से पूजन किया और रातमें जागरण कर पुराणकी कथा सुनी ॥ ७४ ॥ तदनन्तर शवर अपनी स्त्री से बोला कि हे सुन्दरि ! दिया के वास्ते जो कुछ तेल मिले उसे लावो ॥ ७५ ॥ फिर धूप व दीपको देकर

फलमारण्यं गृहीत्वास्वयमेतद्दिह ॥ मध्यमंफलमाराम्यमधमंकीर्तयेवच ॥ ७२ ॥ प्रतिग्रहेणयल्लब्धं निष्फलं तद्विदुर्बुधाः ॥ पुरोहितउवाच ॥ गृहाणराज्ञिपुष्पाणि पूजांकुरुजनाहने ॥ ७३ ॥ उपकारंप्रकुर्वन्ती पूजांचक्रेयथाविधि ॥ रात्रौजागरणंकृत्वा कथापौराणिकीश्रुता ॥ ७४ ॥ शबरस्तुततोभाट्यार्यामिदंवचनमब्रवीत् ॥ दीपार्थं गृह्यतांस्नेहो यथालाभेनसुन्दरि ॥ ७५ ॥ दत्त्वादीपिततःकृत्वा धूपंपूजांजनाहने ॥ कृत्वाजागरणंरात्रौ ध्यायमानस्तुकेशवम् ॥ ७६ ॥ ततः प्रभातसमये दृष्ट्वास्नानोत्सुकञ्जनम् ॥ केचिच्चशूलभेदतु देवनद्यांतथैवच ॥ ७७ ॥ सरस्वत्यांतथाकेचिन्मार्कण्डेये तथाहृदे ॥ चक्रतीर्थेतथाकेचित्स्नानंकुर्वन्तिभक्तिः ॥ ७८ ॥ शुचिभूतास्तुतेसर्वे जनादेवशिलोपरि ॥ श्राद्धंकुर्वन्तिर्वैतन प्रयत्नेनद्विजर्षभाः ॥ ७९ ॥ तान्दृष्ट्वाशबरोविल्वैः पिण्डंनिर्वर्तयेत्ततः ॥ भानुमत्यातथासक्तुपिण्डनिर्वपणंकृतम् ॥ ८० ॥ अनिन्यम्भोजयेद्दिप्रं दम्भदोषविवर्जितम् ॥ हविष्येणतथदधना शर्करामधुसर्पिषा ॥ ८१ ॥ पायसेनच

और भगवान् का पूजन कर नारायण का ध्यान करता हुआ रातमें जागरण करताहुआ ॥ ७६ ॥ तदनन्तर प्रातःकाल में स्नान के वास्ते तैयार होरहे लोगों को देखा कि कोई शूलभेदमें, कोई गङ्गामें ॥ ७७ ॥ कोई सरस्वती में, कोई मार्कण्डेयकुण्ड में और कोई चक्रतीर्थ में भक्तिसे नहायरहे हैं ॥ ७८ ॥ फिर पवित्र होकर वे सब श्रेष्ठ ब्राह्मणलोग वहां दन्वशिला क ऊपर यज्ञ में श्राद्ध को करते हैं ॥ ७९ ॥ उन सबको देख शबरने भी बेलों से पिण्डोंको बनाया और भानुमतीने भी सतुओ के पिण्डों का दानकिया ॥ ८० ॥ और पाखण्डदोष में रहित व निन्दारहित ब्राह्मणको खीर, दही, शक्कर, मिठाई, घी, गजका दूध और खिचडीसे भोजन कराया व भोजन

करवाकर फिर रानीने उसको विधान से दान दिया ॥ ८१।८२ ॥ खड़ाऊं, जुता, छाता, पल्लंग, गऊ, बैल और भी सोने व रत्नोंके अनेक दान दिये ॥ ८३ ॥ क्योंकि हे महाराज ! उस तीर्थ में जो कपिला गऊ देताहै मानो उत्तने पर्वत व जलों और जङ्गलों के सहित सब पृथिवीका दान किया ॥ ८४ ॥ उत्तानपाद बोले कि तिलोंका देनेवाला अपने प्यारे पुत्रोंको पाता है, दियाका देनेवाला उत्तम नेत्रोंको, पृथिवीका देनेवाला स्वर्गको, सोनेका देनेवाला बड़ी उमरको ॥ ८५ ॥ सकानका देनेवाला श्रा-
रोग्यको, रूपका देनेवाला उत्तम रूपको, कपड़ेका देनेवाला चन्द्रलोकको, घोड़ेका देनेवाला सूर्यलोकको ॥ ८६ ॥ बैलका देनेवाला उत्तम धनको और गोदानसे स्वर्ग

गव्येन कृशरेणविशेषतः ॥ भोजयित्वातथाराज्ञी दानंदत्त्वायथाविधि ॥ ८२ ॥ पादुकोपानहौछत्रं शय्यागोचुपभवे
च ॥ विविधानिचदानानि हेमरत्नमयानिच ॥ ८३ ॥ तत्रतीर्थमहाराज कपिलांयःप्रयच्छति ॥ तेनदत्तामहीराजनसशै
लवनकानना ॥ ८४ ॥ उत्तानपादउवाच ॥ तिलप्रदःप्रजाइष्टादीपदश्चक्षुरुत्तमम् ॥ भूमिदःस्वर्गमाप्नोति दीर्घायुश्चहि
रण्यदः ॥ ८५ ॥ गृहदोरोगरहितो रौप्यदोरूपमुत्तमम् ॥ वासोदश्चन्द्रलोकंतु अश्वदस्सूर्यलोकभाक् ॥ ८६ ॥ वृष
दस्तुश्रियंपुर्यां गोदानान्तुत्रिविष्टपम् ॥ शय्यादानञ्चयोदद्यात्स्वर्गमभयप्रदः ॥ ८७ ॥ धान्यदःशाश्वतंसौख्यं ब्रह्म
दोब्रह्मशाश्वतम् ॥ सर्वेषामेवदानानां ब्रह्मदानंविशिष्यते ॥ ८८ ॥ भार्याभश्चमहोवासास्तिलकाञ्चनसर्पिषम् ॥ ये
नयेनहिभावेन दानंविप्राययच्छति ॥ ८९ ॥ तेनतेनहिभावेन प्राप्नोतिपदपूजितम् ॥ दृष्ट्वादानानिसर्वाणि राइयाद
त्तानियानिच ॥ ९० ॥ उवाचशबरोभार्या यच्छृणुष्वनराधिप ॥ शबरउवाच ॥ पुराणपठितंभद्रे ब्राह्मणैर्वेदपार

को पाता है शय्या और अभयको जो देता है वह स्वर्गको पाता है ॥ ८७ ॥ अन्नका देनेवाला सदा रहनेवाले सुखको पाता है वेदका देनेवाला नाशरहित ब्रह्मको पा-
ताहै सब दानों में वेदका दान बड़ा श्रेष्ठहै ॥ ८८ ॥ स्त्री, घोड़ा, जमीन, कपड़ा, तिल, सोना और घी इन चीजोंको जिस २ भावसे ब्राह्मणको देताहै ॥ ८६ ॥ उस २ भाव
से उत्तमपदको पाताहै अब भानुमती रानीके दियेहुये दानोंको देख ॥ ९० ॥ शबर अपनी स्त्रीसे जा बोला हे नराधिप ! उसको तुम सुनो शबर बोला कि हे भद्रे ! वेदपाठो

ब्राह्मणों के बीचहुये पुराणको ॥ ६१ ॥ मैंने सुना और सब शुभ दानधर्म भी सुना और अपने स्नान व दान व व्रतों से पूर्वजन्म में जमा कियाहुआ जो मेरा पाप था हे प्रिये ! वह सब क्षीण होगया क्योंकि यहाँ कियाहुआ दान, होम और तप सगी अक्षय होताहै ॥ ६२ ॥ १३ ॥ अब भानुमतीके सहित वे सब ब्राह्मणलोग शूल-भेदको गये और शबरको देखा कि स्त्रीके सहित कुण्डमें खड़ाहै ॥ ६३ ॥ फिर ईशानमें जाकर भृगुपर्वतके ऊपर मरनेकी इच्छा करताहुआ स्त्रीके सहित चढगया हे पार्थिव ! ॥ ६४ ॥ तब राजपुत्री बोली कि हे महासत्त्व ! खड़े रहो २ मेरे वचन को सुनो कि अभी आप जवानहो प्राणोंको क्यों छोड़तेहो ॥ ६५ ॥ क्या आपके सन्तान

भौः ॥ ११ ॥ श्रुतञ्चतन्मयासर्वं दानधर्मपरंशुभम् ॥ पूर्वजन्माजितंपापं स्नानदानव्रतेनच ॥ ६२ ॥ तत्सर्वंचक्षयंजा तं मदीयेनप्रियेशृणु ॥ अत्रदत्तंहृतंतप्तं सर्वंभवतिचाक्षयम् ॥ १३ ॥ तेद्विजाभानुमत्याच शूलभेदंगतास्ततः ॥ ददृशुःशबरंकुण्डे शबर्यासहसंस्थितम् ॥ ६४ ॥ ईशान्याञ्चततो गत्वा भृगुपर्वतमूर्धनि ॥ मर्तुकामस्तथारूढो भार्ययासहपार्थिव ॥ ६५ ॥ राजपुत्र्युवाच ॥ तिष्ठतिष्ठमहासत्त्वशृणुष्ववचनंमम ॥ किमर्थेत्यजसिप्राणानद्यापिचयुवामवान् ॥ ६६ ॥ किंसन्तापःसमुद्देगः किंदुःखंव्याधिरेवच ॥ शिशुश्चदृश्यंतेऽद्यापि कारणंकथयस्वमे ॥ १७ ॥ शबरउवाच ॥ कारणंनस्तिमेकिञ्चिन्नदुःखंकिञ्चिदेवहि ॥ संसारसारभूतत्वे नान्याबुद्धिःप्रवर्तते ॥ १८ ॥ दुःखेनलभतेयस्मान्मनुष्यत्वंवरानने ॥ मानुष्यंजन्मचासाद्य योनधर्मसमाचरेत् ॥ १९ ॥ सगच्छेन्नरकंद्यौरमल्पदोषेणसुन्दरि ॥ तस्मात्पतितुमिच्छामि अस्मिन्स्तीर्थेतपस्विनि ॥ १०० ॥ राजपुत्र्युवाच ॥ अद्यापिवर्ततेकालःस्वधर्मोद्विविधाःक्रियाः ॥

व घबडाहट व दुःख व रोगहै आपके पुत्र भी देखपड़ताहै तिसमे मुझे कारण तो बतलावो ॥ १७ ॥ तब शबर बोला कि कारण कुछ नहीं है और दुःख भी मुझको कुछ नहीं है लेकिन संसारके सार होने में मेरी दूसरी बुद्धि नहीं होतीहै ॥ १८ ॥ और हे वरानने ! जिससे मनुष्य होना बड़े दुःखमे मिलताहै इससे मनुष्यका जन्म पाकर जो धर्म नहीं करताहै ॥ १९ ॥ हे सुन्दरि ! वह थोड़ेही दोषसे घोर नरक को जाताहै तिससे हे तपस्विनि ! अब इस तीर्थ मे मैं गिरा चाहताहूँ ॥ १०० ॥ तब

फिर राजपुत्री बोली कि अभी तो तुमको बड़ा समय बाकी है जिसमें तुम अपने धर्मसे अनेक कर्मोंको कर सकते हो इससे उचित धर्मोंको कर दानसे शुद्ध हो जावोगे ॥ १ ॥
 और हम तुमने अन्न, वस्त्र और धन देवेंगी तुम भगवान्‌का ध्यान करतेहुये सदा धर्मोंको करो ॥ २ ॥ तब शबर बोला कि हे देवि ! मैं अन्न व वस्त्रों को नहीं चाहता हूँ
 क्योंकि लिखा है कि जो मनुष्य दूसरेका अन्न खाता है वह पापही खाता है ॥ ३ ॥ तब राजपुत्री बोली कि कन्द व मूल व फलोंका आहार करतेहुये व उत्तम भिक्षाका
 अन्न खाकर और तीर्थों में स्नानकर सब पापों से छूट जावोगे ॥ ४ ॥ इस कामसे कोई पुरुषहो गर्वों से छुटाहुआ पवित्र होजाता है उसी कर्म से तुम भी अच्छी गति

कृत्वा प्रकृतधर्माणि तत्रदानेन शुद्ध्यति ॥ १ ॥ अहंदास्यामिते धान्यं वासांसि द्रविणा निच ॥ नित्यं त्वमाचरे धर्ममध्या
 यमानो जनार्दनम् ॥ २ ॥ शबर उवाच ॥ नचाहं कामये देवि धान्यं वस्त्राणि चैव हि ॥ यः परस्यान्नमश्नाति स नरोऽनाति
 किल्बिषम् ॥ ३ ॥ राजपुत्र्युवाच ॥ कन्दमूलफलाहारो मुक्त्वा वै भक्ष्यमुत्तमम् ॥ अवगाह्य च तीर्थानि सर्वपापैः प्रमुच्य
 से ॥ ४ ॥ ततो विमुक्तपापस्तु यः कश्चित्पुरुषश्शुचिः ॥ कर्मणा तेन चैव त्वं गतिसम्प्राप्स्यसे शुभाम् ॥ ५ ॥ शबर उवाच ॥
 अन्नमधये मया त्यक्ताः प्राणा दृष्ट्वा हितं च यत ॥ सत्यन्नलोपये देवि इति मे निश्चिता मतिः ॥ ६ ॥ प्रसादः क्रियता न्देवि क्ष
 मस्व त्वं जनैस्सह ॥ बद्धोत्तरीयवस्त्रेण आत्मानञ्च प्रयत्नतः ॥ ७ ॥ भार्यया सहितस्तत्र हरिन्द्यात्वा पपातह ॥ न गार्द्ध्य
 तितो यावद्गतजीवो नराधिप ॥ ८ ॥ तूष्णीं भूतं तु तदृष्ट्वा कुण्डस्योपरि भूमिप ॥ त्रिमूर्तिं गते तत्काले शबरो भार्य

को पावोगे ॥ ५ ॥ तब शबर बोला कि अपने हितको देख मैंने यहां प्राणोंको छोड़ा है इससे हे देवि ! मैं सत्यको नहीं नाश कर सका हूँ यह मेरी बुद्धिका निश्चय है ॥ ६ ॥
 इससे हे देवि ! अब आप प्रमन्न हूजिये और सब लोगोंके माहित क्षमा कीजिये इतना कहकर और ऊपरवाले कपड़ेसे अपनेको यन्त्रसे बांधकर ॥ ७ ॥ स्त्रीके सहित भग-
 वान्‌का ध्यानकर वहां गिरताहुआ हे नराधिप ! आधे पर्वततक जबतक आया तबतक उसका जीव जातारहा ॥ ८ ॥ फिर हे भूमिप ! कुण्डके ऊपर चुप हो गये उसको

देख उसी समयमें तीनों देवताओंके उस कुण्डमें शबर अपनी स्त्रीके सहित ॥ ६ ॥ दिव्य विमानपर चढ़ा हुआ उत्तम गतिको प्राप्त हुआ ॥ ११० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे
रेवाखण्डे प्राकृतभाषास्तुत्रादेशवरस्वर्गारोहणश्चैकनवतितमोऽध्यायः ॥ ६१ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥
राजां बोले कि हे देवेश ! फिर उस मानुसतीने क्या किया इस हमारी संशयको अपनी दयासे कहो ॥ १ ॥ तब महादेव बोले कि वह रानी विचारकर कुण्डके समीप
गई तीर्थके माहात्म्यको देख रानी आनन्दसे भर गई ॥ २ ॥ उसी क्षणमें बहुत से ब्राह्मणों को बुलाय पूजन किया और हे नराधिप ! ब्राह्मणोंको अनेक दानदिये ॥ ३ ॥

यासह ॥ ९ ॥ दिव्यविमानमारूढो गतश्च गतिमुत्तमाम् ॥ ११० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणरेवाखण्डेशवरस्वर्गारोहणश्चा
मैकनवतितमोऽध्यायः ॥ ९१ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

राजोवाच ॥ ततस्तयापि देवेश भानुमत्याहिकिं कृतम् ॥ एतन्मैसंशयन्देव कथयस्व प्रसादतः ॥ १ ॥ हरउवाच ॥
चिन्तयित्वा तु साराज्ञी गता कुण्डस्य सन्निधौ ॥ दृष्ट्वा तीर्थस्य माहात्म्यं राज्ञी हर्षेण पूरिता ॥ २ ॥ विप्रा न्वहन्समाहूय
पूजयामास तत्क्षणात् ॥ ददौ च विविधन्दानं ब्राह्मणेभ्यो नराधिप ॥ ३ ॥ दत्त्वा च दक्षिणामेवं मधुमासे च भूमिप ॥ अ
मायाञ्च ततो राज्ञी गता पर्वतमूर्धनि ॥ ४ ॥ नगशृङ्गं समारुह्य कृत्वा तु करसम्पुटम् ॥ विज्ञाप्य ब्राह्मणान्सर्वानिदं वचन
मब्रवीत् ॥ ५ ॥ मम माता पिता भ्राता तथान्ये चैव बान्धवाः ॥ सर्वे क्षमन्तु मे सर्वैरिदं वाच्यं तदा वचः ॥ ६ ॥ इत्युक्त्वा शूल
भेदे तु तपःकृत्वा सुदारुणम् ॥ विमृज्य चैव मात्मानं तस्मिन्स्तीर्थे दिवङ्गता ॥ ७ ॥ ब्राह्मणा ऊचुः ॥ सन्देशं कथयिष्या
हे भूमिप ! इस प्रकार दक्षिणा देकर चैतकी अमावसको रानी पर्वतके ऊपर गई ॥ ४ ॥ पर्वतकी चोटीपर चढ़ और दोनो हाथोंको जोड़ ब्राह्मणों से जाहिर कर फिर सब
से इस वचनको बोली ॥ ५ ॥ कि हमारे माता, पिता, भाई और बान्धव लोग सब क्षमा करें तुम सबको यह कहना चाहिये ॥ ६ ॥ कि मानुसती शूलभेदमे दारुण तप-
स्याको कर और उसी तार्थमें अपनी देहको छोड़ स्वर्गको चली गई ॥ ७ ॥ तब ब्राह्मण बोले कि हे शोभनव्रते ! तुम्हारी माता व पिता से तुम्हारे कहे हुये संदेशको हम

जरूर कहेंगे हे सुश्रोणि । इसमें तुमको सन्देह मत होवे ॥ ८ ॥ तदनन्तर रानी सबको विदाकर पर्वतपर खड़ीहुई और आधे कपड़े से अपने शरीरको खूब पोढ़ा बांध कर ॥ ९ ॥ हे नराधिप । एकही में चित्तको लगायेहुये पर्वत से देहको छोड़ जबतक आधे पर्वतक देवता और देवियोंने देखा ॥ १० ॥ कि दिव्य विमानपर चढ़ वह कैलासको चलीगई तदनन्तर वह सब लोगोके देखतेही स्वर्गको चलीगई ॥ ११ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणैरेवाखण्डेआकृतभापाऽनुवादेभानुमतीस्वर्गारोहणश्चाम द्विनवतितमोऽध्यायः ॥ ६२ ॥

मस्त्वयोक्तंशोभनव्रते ॥ मातापित्रोश्चमुश्रोणि मातेभूदन्नसंशयः ॥ ८ ॥ ततोविमृज्यलोकन्तु स्थितापर्वतसन्निधौ ॥
अर्द्धोत्तरीयवस्त्रन्तु गाढकृत्वापुनः पुनः ॥ ९ ॥ ततोविमृज्यचात्मानमेकचित्तानराधिप ॥ नगार्द्धपतितायावत्ताव
दृष्टासुरासुरैः ॥ १० ॥ दिव्यंविमानमारुह्य कैलाससाजगामह ॥ ततस्सापश्यतान्तेपांजनानांविदिवह्नता ॥ ११ ॥

इति श्रीस्कन्दपुराणैरेवाखण्डे भानुमतीस्वर्गारोहणश्चामद्विनवतितमोऽध्यायः ॥ ६२ ॥ * ॥ * ॥
देवउवाच ॥ ततःपुष्करिणीं गच्छेत्सर्वपापप्रणाशिनीम् ॥ श्रुत्वातस्याः प्रभावन्तु सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ १ ॥ रेवाया उत्त
रेकूले तीर्थं परमशोभनम् ॥ यत्रास्ते सर्वदा देवो दिव्यमूर्तिर्दिवाकरः ॥ २ ॥ कुरुक्षेत्रं यथापुण्यं सर्वकामिकमुत्तमम् ॥
इदं तीर्थं तथापुण्यं सर्वकामफलप्रदम् ॥ ३ ॥ कुरुक्षेत्रे यथा वृद्धिर्दानस्य जगतीपते ॥ पुष्करिण्यां तथा वृद्धिर्दानस्यापि
न संशयः ॥ ४ ॥ यवमेकन्तु यो दद्यात्सौ वर्णं चात्र वै नृप ॥ पुष्करिण्यां तथा स्नानं सर्वस्थाने श्वरे स्मृतम् ॥ ५ ॥ सूर्यग्रहे

फिर महादेवजी बोले कि तदनन्तर सब पापोंकी नाश करनेवाली पुष्करिणी तीर्थको जावे उसके प्रभावको सुन मनुष्य सब पापोंसे छूटजाता है ॥ १ ॥ नर्मदाके उत्तरवाले किनारेपर बड़ा सुन्दर तीर्थ है जिसमें दिव्यमूर्तिको धारणकिये सूर्यदेव सदा रहते हैं ॥ २ ॥ जैसे सब कामनाओंका देनेवाला कुरुक्षेत्र पुण्यवाला है वैसेही यह तीर्थ भी पुण्यवाला व सब कामफलों का देनेवाला है ॥ ३ ॥ हे जगतीपते ! जैसे कुरुक्षेत्रमें दानकी बढ़ती होती है ऐसे पुष्करिणी में भी दानकी बढ़ती होती है इगमें संशय नहीं है ॥ ४ ॥ हे नृप ! इस पुष्करिणीमें जो एक सोनेका जो देता व स्नान करता है उसका सब फल स्थानेश्वरके बराबर कहा गया है ॥ ५ ॥ सूर्यग्रहण में अपनी

शक्तिके अनुसार विधिसे हार्थी, घोड़े, रथ, रत्न, मकान, गौर्वै, बैल इनका दानदेवर ॥ ६ ॥ सोना और चाँदीको भी जो ब्राह्मणोंको देता है उसका दियाहुआ तेरह दिन में तेरहगुना होजाताहै ॥ ७ ॥ तिल मिले जलमे पितर व देवताओंका इस तीर्थमें तर्पणकरे तो हे महीपते ! पितरोंकी बारह वर्षतक तृप्ति रहती है ॥ ८ ॥ और जो कोई बहा खीर, घी और मिठाई से श्राद्ध करताहै अथवा मघा आदि नक्षत्रोंमें श्राद्ध करताहै उसके पितरोंको बह दियाहुआ अन्नय होताहै ॥ ९ ॥ अक्षत, बेर, बेल इंगुआ और तिलोंसे उस तीर्थमें श्राद्ध करनेवाला अक्षय फलको पाता है इसमें संशय नहीं है ॥ १० ॥ वहाँ स्नानकर जो सूर्यदेवका पूजन करताहै वह देवताओं

यथाशक्त्या दत्त्वादानंयथाविधि ॥ हस्त्यश्वरथरत्नानि गृहं गाश्च धुरन्धरान् ॥ ६ ॥ सुवर्णरजतंवापि ब्राह्मणेभ्यो ददाति यः ॥ त्रयोदशदिनं यावत्त्रयोदशगुणं भवेत् ॥ ७ ॥ तिलमिश्रेण तोयेन तर्पयेत्पितृदेवताः ॥ द्वादशाब्दं भवेत्तृप्तिस्तत्रतीर्थं महीपते ॥ ८ ॥ यस्तेन कुस्ते श्राद्धं पायसैर्मधुसर्पिषा ॥ श्राद्धं मघादि ऋक्षेषु पितृणां दत्तमक्षयम् ॥ ९ ॥ अक्षतैर्वदरैर्विल्वैरिङ्गैर्वैतिलैः सह ॥ अक्षयं फलमाप्नोति तस्मिंस्तीर्थेन संशयः ॥ १० ॥ तत्र स्नात्वा तु यो देवं पूजयेच्च दिवाकरम् ॥ सगच्छेत्परमं लोकं त्रिदशैरपि चन्दितः ॥ ११ ॥ ऋक्षमेकां पठेद्यस्तु यजुषः सामान एव च ॥ समग्रस्य सर्वदस्य फलमाप्नोति वैद्विजः ॥ १२ ॥ त्रिपुष्करं जपेन्मन्त्रं ध्यायमानो दिवाकरम् ॥ सगच्छेत्परमं लोकं त्रिदशैरपि चन्दितम् ॥ १३ ॥ यस्तत्र विधिवत्प्राणांस्त्यजते नृपसत्तम ॥ सगच्छेत्परमं स्थानं यत्र देवो दिवाकरः ॥ १४ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ भूयोऽप्यन्यत्प्रवक्ष्यामि आदित्येश्वरमुत्तमम् ॥ सर्वदुःखहरं पार्थ सर्वविघ्नविनाशनम् ॥ १५ ॥ अस्य

से भी नमस्कार किया गया परमलोकको जाताहै ॥ ११ ॥ और जो ब्राह्मण वहाँ ऋग्वेद व नामवेदकी एक ऋचाको पढ़ताहै वह सम्पूर्ण वेदके फलको पाता है ॥ १२ ॥ सूर्यका ध्यान करताहुआ जो त्रिपुष्कर मन्त्रको अपता है वह देवताओं से भी नमस्कार कियाहुआ परमलोकको जाताहै ॥ १३ ॥ और हे नृपसत्तम ! जो वहाँ विधिसे प्राणोंको छोडताहै वह उस उत्तम स्थानको जाताहै कि जहाँ सूर्यदेव रहते हैं ॥ १४ ॥ मार्कण्डेयजी बोले कि हे पार्थ ! अब और आदित्येश्वरनामके उत्तम

तीर्थको कहते हैं जोकि सब विष्णो व सब पाणोंका हरनेवाला है ॥ १५ ॥ हे कुरुनन्दन ! स्वर्ग, मनुष्य और पाताललोकके और तीर्थ इस तीर्थ की शोभाको नहीं पासके हैं ॥ १६ ॥ हे नृपनन्दन ! कुरुक्षेत्र, गया, गंगा, प्रयाग, नैमिष, पुष्कर, काशी और केदार ॥ १७ ॥ ये सब तीर्थ सूर्यतीर्थ की सोलहवीं कलाको नहीं पासके हैं सूर्य-तीर्थमें जो दियागया है उसको हे कुरुनन्दन ! तुम सुनो ॥ १८ ॥ तुम्हारे स्नेह से कहता हूँ क्योंकि बुढ़ापे में मैं बड़ा परिणत भी नहीं हूँ तपस्याके करनेवाले सब महा-त्मा ऋषिलोग सुनै ॥ १९ ॥ स्कन्दजी व और भी रुद्रके गणोंके सहित मैंने महादेवजी के समीपमें सुनाई पार्वती से प्रार्थना कियेगये महादेवजीने सूर्यतीर्थ के फलको

तीर्थस्यचान्यानि तीर्थानिकुरुनन्दन ॥ नलभन्ते श्रियंताके मर्त्येपातालगोचरे ॥ १६ ॥ कुरुक्षेत्रं यथा गङ्गा नैमिषं पु-
ष्करं तथा ॥ वाराणसी च केदारं प्रयागो नृपनन्दन ॥ १७ ॥ रवितीर्थस्य सर्वाणि कलानाहन्ति षोडशीम् ॥ रवितीर्थे च य-
द्वत्तं शृणुष्व कुरुनन्दन ॥ १८ ॥ स्नेहार्थे कथयिष्यामि वार्द्धक्येनातिपरिणतः ॥ शृण्वन्तु ऋषयस्सर्वे तपोनिष्ठाम-
हात्मनः ॥ १९ ॥ श्रुतं मे रुद्रमात्रिध्ये स्कन्द रुद्रगणैस्सह ॥ पार्वत्या प्रार्थितः शम्भूरवितीर्थस्य यत्फलम् ॥ २० ॥ श-
म्भुना पितृदाख्यातं गिरिजायाः पुरस्तदा ॥ तत्सर्वमेकचित्तेन रुद्रोद्गीतं श्रुतं मया ॥ २१ ॥ दुर्भिक्षोपहता विप्रा नम्र-
दातृमाश्रिताः ॥ उद्दालको वशिष्ठश्च भारण्डव्यो गौतमस्तथा ॥ २२ ॥ याज्ञवल्क्योऽथ शाण्डिल्य इच्छवन् नोभार्गवस्त-
था ॥ नाशकेतुर्विभारण्डश्च बालाखिल्यादयस्तथा ॥ २३ ॥ शातातपोपिशङ्गश्च जैमिनिर्गोभिलस्तथा ॥ जैगीषव्यः श-
तानीकऋषिसङ्घास्समागताः ॥ २४ ॥ तीर्थयात्राकृतास्तैस्तु नम्रमर्मायांसमन्ततः ॥ आदित्येशं समायाताः प्रसङ्गादृषि-

कहा है ॥ २० ॥ महादेवजीने भी पार्वतीजी के सामनेही कहा है वह सब महादेवजीका कहा हुआ मैंने एकचित्त होकर सुना है ॥ २१ ॥ दुर्भिक्षके मारे हुये ब्राह्मण लोग नर्मदातटको आये उद्दालक, वशिष्ठ, भारण्डव्य, शाण्डिल्य, व्यवन, भार्गव, नाशकेतु, विभारण्डक, बालाखिल्य ॥ २२ ॥ शातातप, याज्ञ, जैमिनि, गोभिल, जैगीषव्य और शतानीक आदि ऋषियों के गण आते हुये ॥ २३ ॥ उन ऋषियोंने नर्मदाके चारों तरफके तीर्थोंकी यात्राको किया प्रसङ्ग से आदित्येश्वर

तीर्थको आये ॥ २५ ॥ कैसा वह तीर्थ है कि वृत्तों से सब ढका हुआ है धाई, तेंदुआ, पंढरिया, जंभीरी, अर्जुन, कुन्द, जटाकेसर, छिपला ॥ २६ ॥ विजौरा, नारियल और खैर आदि कल्पवृक्षों से व्याप्त है और अनेक जङ्गली जीवों से भरा है हिरनों की मालाओं से घिरा है ॥ २७ ॥ रीछ और हाथियों से युक्त व चीताओं से शोभित हो रहा है फूल व फलों से भरे हुये उस वन में ऋषिलोग पैठते हुये ॥ २८ ॥ वन के बीच में एक गोरे रङ्ग की स्त्री को देखा जो कि लालेकपड़े पहने हुये और लाले फूलों की माला को पहने अच्छी शोभा से युक्त लालचन्दन को लगाये हुये ॥ २९ ॥ लाले जेवरों से सजी, चन्द्रमा को हाथ में लिये, भय को करने वाली जो है उसके समीप एक पुरुष भी देख पड़ा वह भी काले मेघ के

सत्तमाः ॥ २५ ॥ वृक्षैस्सञ्छादितं सर्वं धवैस्तिन्दुकपाटलैः ॥ जम्बीरैरर्जुनैः कुन्दैर्जटाकेसरकिंशुकैः ॥ २६ ॥ पुष्पा गनारिकैरस्तु खदिरैः कल्पपाटपैः ॥ अनेक श्वापदा कीर्णं मृगमालासमाकुलम् ॥ २७ ॥ ऋधहस्ति समायुक्तं चित्रकैश्च मुशोभितम् ॥ प्रविश्य ऋषयस्सर्वे वनेषु फलाकुले ॥ २८ ॥ वनान्ते च स्त्रियं शुभ्रां दृष्ट्वा रक्ताम्बरान्विताम् ॥ रक्तमाल्यां सुशोभाढ्यां रक्तचन्दनचर्चिताम् ॥ २९ ॥ रक्ताभरणसंयुक्तां शशिहस्तां भयावहाम् ॥ तस्याः समीपगो दृष्टः कृष्णजीमूतसन्निभः ॥ ३० ॥ महाकायो भीमवक्त्रः पाशहस्तो भयावहः ॥ अनाधृष्यो वयोवृद्ध आतुरः पिङ्गलोचनः ॥ ३१ ॥ दीर्घजिह्वः करालास्यस्तीक्ष्णदंष्ट्रो दुरासदः ॥ दृष्ट्वा स्त्रियं कुरुश्रेष्ठ ते पश्यन् विप्रपुङ्गवाः ॥ ३२ ॥ ततस्समीपगा वृद्धा सच वृद्धश्च भारत ॥ स्वाध्यायानिरतौ विप्रस्तौ पृष्टौ पापकर्मिणौ ॥ ३३ ॥ वृद्धा वृचतुः ॥ युष्माकं यमिनस्सर्वे तिष्ठध्वं तीर्थमध्यतः ॥ शीघ्रं प्रविश्य तां सर्वे नर्मदां चैव सेव्यताम् ॥ ३४ ॥ तयोः श्रुत्वा तु वचनं ब्राह्मणाः शंसितव्रताः ॥ जग्मुस्तेन नर्मदा

समान काला ॥ ३० ॥ बड़ी देहवाला व बड़े मुखवाला फँसरी को हाथ में लिये किसी के वचन लायक नहीं उमर का बूढ़ा रोगी पाले नेत्रों वाला ॥ ३१ ॥ लम्बी जीभ का डरावने मुखवाला पैनी डाढ़ों वाला है हे कुरुश्रेष्ठ ! जब ब्राह्मणों ने उस वृद्ध स्त्री को देखा ॥ ३२ ॥ तब हे भारत ! वह बुढ़ी स्त्री और बुढ़ा ब्राह्मणों के समीप आये तब वेद के पढ़ने वाले ब्राह्मणों ने उन दोनों पापियों से पूछा ॥ ३३ ॥ तब बुढ़े बोले कि आप सब महात्मालोग इस वन में पैठो और नर्मदा का सेवन

करो ॥ ३४ ॥ उन दोनोंके वचनको सुनकर वे ब्राह्मणलोग नर्मदाके तटको गये और नर्मदाको देखा ॥ ३५ ॥ कोई नमस्कार करने लगे और कोई स्तुति करते हैं व कहते हैं कि हे देवि ! तुम्हारी जय हो आपके नमस्कार हैं ॥ ३६ ॥ ऋषिलोग बोले कि सिद्धगणों से सेवा की जाती जो तुम हो तिनके नमस्कार हैं और सब तरह से पवित्र व मङ्गलरूप जो तुम हो तिनके नमस्कार हैं हजारों ब्राह्मणों से पूजा जाती जो तुम हो तिनके नमस्कार हैं और महादेवसे पैदा हुई सबसे श्रेष्ठ जो तुम हो तिनके नमस्कार हैं ॥ ३७ ॥ सब पवित्रों को भी पवित्र करने वाली जो तुम हो तिनके नमस्कार हैं और हे देवि ! सबमें श्रेष्ठ जो तुम हो तिनके नमस्कार हैं आप हम लोगों से प्रसन्न हुईये हे ठण्डे जलवाली व सुखकी देनेवाली, नदियोंमें श्रेष्ठ, पापोंकी हरनेवाली, दयावाली, ॥ ३८ ॥ अनेक जीवोंकी देहों से सुहावने प्रवाहवाली, गन्धर्व, यक्ष और सर्पोंकी देहों को पवित्र करने-

कच्छं दृष्ट्वारेवां द्विजोत्तमाः ॥ ३५ ॥ नताः क्वचित्स्तुवन्त्यन्ये जयदेवि नमोस्तुते ॥ ३६ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ नमोस्तुते सिद्धगणैर्निषेविते नमोस्तुते सर्वपवित्रमङ्गले ॥ नमोस्तुते विप्रसहस्रपूजिते नमोस्तुते रुद्रसमुद्रवेपरे ॥ ३७ ॥ नमोस्तुते सर्वपवित्रपावने नमोस्तुते देवि वरे प्रसीदनः ॥ नमोस्तुते शीतजले सुखप्रदे सरिद्वरे पापहरे दयान्विते ॥ ३८ ॥ अनेक भूता ब्रह्मशोभिताङ्गे गन्धर्वयक्षोरगपाविताङ्गे ॥ महागजौघामहिषावराहाः क्रीडन्ति तो ये सुमहोर्मिमालैः ॥ ३९ ॥ नमामसर्व वरदे सुखप्रदे विमोचयास्मान्पशुपाशबद्धान् ॥ पापैरनेकैः पशुपाशबद्धा भ्रमन्ति तावन्नरकेषु नित्यम् ॥ ४० ॥ यावत्तावाम्भोनहिसंस्पृशन्ति स्पृष्टं करैश्चन्द्रमसोरिवेश्च ॥ अनेक संसारभयादितानां पापैरनेकैः परिविष्टितानाम् ॥ ४१ ॥ गतिस्त्वमम्भोजसमानवक्त्रे हृन्दैरनेकैरभिसंवृतानाम् ॥ नद्यस्तु पृथुया विमला भवन्ति त्वान्देवि चासाद्य न संशयोत्र ॥ ४२ ॥

वाली ! आपके नमस्कार हैं बड़े २ हाथी व भैंसे व वनके सुवर बड़ी २ तरङ्गों से आपके जलमें जलविहार करते हैं ॥ ३६ ॥ हे वरों के देनेवाली व सुखोंकी देनेवाली ! हम सब आपको नमस्कार करते हैं पशुओंकीसी फैसरीमें बँधे हुये हम लोगोंको आप छोंढावें अनेक पापोंसे पशुओंकीसी फैसरीमें बँधे हुये जीव नरकोंमें तभी तक सदा भ्रमते हैं ॥ ४० ॥ कि जब तक तुम्हारे जलको नहीं छूते हैं जोकि चन्द्रमा और सूर्यकी किरणों से छुवा गया है संसारके अनेक डरों से डरे हुये और अनेक पापोंसे लपेटे हुये ॥ ४१ ॥ और सुख दुःख आदिकी जोड़ियों से घिरे हुये जीवोंकी गति है कमल सरीखे सुखवाली ! आप ही हो और हे देवि ! आपको पाकर और नदियां निर्मल व पूजने लायक

होजाती हैं इसमें संशय नहीं है ॥ ४२ ॥ अनेक देवताओं से पूजी जा रही जो तुमहो सो दुःखी जीवोंको अभय देतीहो विष्ठा और मूत्रके समुद्ररूप इस देहमें डूबहुये जीव तभीतक नरकोंमें रहते हैं ॥ ४३ ॥ कि जन्तक भारी हवाके जोरसे उठती हैं तरङ्गें जिसमें ऐसे तुम्हारे जलको नहीं छूते हैं म्लेच्छ, कछर और राजस तुम्हारे पवित्र जलको जो पीते हैं ॥ ४४ ॥ वे भी बड़े भारी डरसे छूटजाते हैं पापके डरसे डरेहुये ब्राह्मणों के छूटजानेकी क्या बातहै इस पापी घोर कलियुग में निर्मल जलसे पूरी तुम्हीं प्रकाश करतीहो ॥ ४५ ॥ और हे देवि ! आपही के प्रसाद से आकाश में आकाशगङ्गा विद्यमान हो रही हैं ऐसे समय में आप हमारी ठीक २ रक्षाकरो जिससे

दुःखानुराणामभयं ददासि देवैरनेकैरभिपूजितासि ॥ विण्मूत्रदेहाणवमग्नदेहा भवन्ति तावन्नरकेषु मर्त्याः ॥ ४३ ॥
महानिलोद्धूततरङ्गभङ्गं जलन्नयावत्तवसंस्पृशन्ति ॥ म्लेच्छाः पुलिन्दास्त्वथयातुधानाः पिवन्ति चाश्मस्तव देवि पु
ण्यम् ॥ ४४ ॥ तेषि प्रमुञ्चन्ति भयात्तु घोरत किमत्र विप्राभयपापभीताः ॥ घोरैर्युगेस्मिन्कलिनान्यपुण्ये त्वं आजसेका
लजलौघपूर्णं ॥ ४५ ॥ देव्यन्ननक्षत्रपथेपि गङ्गा तव प्रसादाद्दिवि देव्यतिष्ठत् ॥ कालेयथेष्टपरिपालयत्वं यास्यामलौ
कं तव मुप्रसादात् ॥ ४६ ॥ वयं तथा त्वं कुरुनः प्रसादं त्वामाश्रितास्त्वांशरणज्ञतावै ॥ गतिस्त्वमेवात्र पितेव पुत्रं त्वमादि
देव प्रभवे विचित्रे ॥ ४७ ॥ कालेप्यनावृष्टिर्भवन्त्यञ्च रक्षस्व सर्वजगतः स्वरूपम् ॥ ४८ ॥ एवंस्तुता महादेवी नर्मदास
रितांवरा ॥ प्रत्यक्षा सा पराभूता ब्राह्मणानां युधिष्ठिर ॥ ४९ ॥ नर्ममदेवाच ॥ तुष्टाहं वरदा विप्रा दास्ये वो वाञ्छितं फलम् ॥
ततो वर्षन्महामेघा धान्यञ्च प्रचुरन्तथा ॥ ५० ॥ कन्दमूलफलं शाकं सुखं सर्वत्र संश्रितम् ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ पठन्ति

आपके प्रसादसे हमलोग आपके लोकको जावें ॥ ४६ ॥ आप हमलोगोंपर प्रसन्न होवें हम आपहीके आश्रित और शरणागत हैं आपही हमारी गतिहो जैगे पुत्रकी गति पिता होताहै आप आदिदेव (महादेवजी) से पैदाहुईहो और विचित्रहो ॥ ४७ ॥ अब इस समय में वर्षा के न होनेके कारणसे होरहे प्रजा के क्षयस जगतके रूपकी रक्षाकरो ॥ ४८ ॥ हे युधिष्ठिर ! इसप्रकार स्तुति कीगई नदियों में श्रेष्ठ नर्मदा देवी ब्राह्मणोंके प्रत्यक्ष होतीहुई ॥ ४९ ॥ नर्मदा बोलीं कि हे विप्रो ! हम प्रसन्न हैं और तुम्हारे मनमाने वरको देवेंगी तदनन्तर मेवोंने जलकी वर्षा की उससे बहुत अन्न ॥ ५० ॥ कन्द, मूल, फल और शाक पैदाहुआ सब कही सुख होगया मार्क-

एडेयजी कहते हैं कि हे नरेन्द्र ! जो मनुष्य इस स्तोत्रको पढ़ते व भक्तिसे युक्त सुनते हैं ॥ ५१ ॥ अन्तके समय में नदियों में उत्तम यह नर्मदा उनको उत्तम गति देती है प्रातःकाल उठकर मानके सहित महादेव, पार्वती और नर्मदाको जो कहता है ॥ ५२ ॥ उसके सब पाप नष्ट होजाते हैं और बड़े सुख आते हैं और पापों से छुटे हुये वे मनुष्य स्वर्ग में आनन्द करते हैं क्योंकि महादेवकी वाणी मिथ्या नहीं होसक्ती है ॥ ५३ ॥ हे भारत ! इस स्तोत्रसे प्रसन्नहुई नर्मदादेवी दक्षिणदिशामें बहनेवाली अपने जलसे ब्राह्मणों को पुष्ट करती हुई ॥ ५४ ॥ मार्कण्डेयजी बोले कि स्नान व देवताओं के पूजन से युक्त, बड़े बलवाले पांचही पुरुष नर्मदाके किनारेपर देख पड़े

ये स्तोत्रमिदं नरेन्द्र शृण्वन्ति भक्त्या परयाप्रपन्नाः ॥ ५१ ॥ तेभ्यो न्तकाले सरितुत्तमं गतिं विशुद्धान्नितरां ददाति ॥ प्रा
तस्समुत्थाय समान एव संकीर्तयेद्बुद्धमुमाञ्च देवीम् ॥ ५२ ॥ पापानि सर्वाणि लयं प्रयान्ति समाश्रयन्ते च महानुभावाः ॥
पापैस्तु मुक्ता दिवि मोदयन्ते शम्भो गिरा चैव तु नान्यथा च ॥ ५३ ॥ प्रसन्नान् नर्मदादेवी स्तोत्रेणानेन भारत ॥ जलेनाप्या
यितान् विप्रान् दक्षिणापथवाहिनी ॥ ५४ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ दृष्ट्वा स्ते पुरुषानान्या नर्मदा तटमाश्रिताः ॥ स्ना
न देवार्चनैर्युक्ताः पञ्चैव तु महाबलाः ॥ ५५ ॥ ते दृष्ट्वा ब्राह्मणैस्सर्वैर्वेदेव दाज्ञपारगैः ॥ विप्रा ऊचुः ॥ दिनान्ते च स्त्रियोर्यु
ग्मं दृष्ट्वै रैन्द्रं मया बहम् ॥ ५६ ॥ त्रयोवृद्धाश्च पुरुषाः पाशहस्ताभयावहाः ॥ दुर्द्धरा दुर्नि संकाशा इतश्चेतश्च चञ्चलाः ॥
५७ ॥ व्याहरन्ति भियावाचा आकाङ्क्षादर्शनस्य च ॥ अपरस्परिणस्सर्वे निरीक्षन्ते परस्परम् ॥ ५८ ॥ तेषु सङ्क्षेपु यत्प्रो
क्तं तत्सर्वं कथयामि ते ॥ पुरुषा ऊचुः ॥ तीर्थो वगाहनं सर्वैः पूर्वपश्चिमदक्षिणे ॥ ५९ ॥ उत्तरे च दृक्तं भक्त्या न पापं तद्व्यपोहि

और कोई नहीं ॥ ५५ ॥ वेद व वेदाङ्गके पढ़नेवाले सब ब्राह्मणोंने उन्हें देखा तब ब्राह्मण बोले कि सन्ध्याको बड़े भयानक एक स्त्री पुरुषके जोड़े को हमने देखा था ॥ ५६ ॥ अब तीन वृद्ध पुरुष और हैं फैसरीको हाथों में लिये बड़े डरावने पकड़े नहीं जासक्ते, करातरूप, इधर उधर दौड़ रहे ॥ ५७ ॥ डरावनी आवाज से बोलते हुये, देखने की इच्छा कर रहे आपस में एकत्रित नहीं होते और आपस में सब देखते हैं ॥ ५८ ॥ उनके झुण्डमें जो बातें हुई हैं उनको हम तुमसे कहते हैं वे पुरुष ब्राह्मणों

से बोले कि हम सबोंने पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और उत्तरवाले सब तीर्थोंमें भक्तिसे स्नानकिया लेकिन हमारा वह पाप नष्ट नहीं हुआ परन्तु इस तीर्थके प्रभाव से यहां हम सब निष्पाप होगये ॥ ५६ ॥ ६० ॥ हे आगकी ज्वालाके समान तेजवाले सब ब्राह्मणलोगो ! हम लोगोंके वृत्तान्तको सुनो कि जिन पापोंको और लोग स्मरण नहीं करते हैं ऐसे २ घोर पापोंको हमलोगोंने किया है ॥ ६१ ॥ इस पापोंने अपने गुरुकी स्त्री को भ्रष्ट कियाहै और दूसरेने मित्रका सोना हरलियाहै ॥ ६२ ॥ तीसरेने बड़ी भयानक ब्रह्महत्याको किया व और भी पातकको कियाहै और दूसरेकी इच्छा से इसने मद्य भी पियाहै ॥ ६३ ॥ और इस एकही पापी ने गोहत्याका भी पाप कियाहै हे

तम् ॥ निष्पापाश्चात्रसञ्जातास्तीर्थस्यास्यप्रभावतः ॥ ६० ॥ शृण्वन्तुऋषयस्सर्वे अग्निज्वालोलोपमाद्विजाः ॥ पातकानि चघोराणि यान्यचिन्त्यानिदेहिनाम् ॥ ६१ ॥ पापिष्ठेनतुचानेन गुरोर्दाराविद्वषिताः ॥ हृतंचान्येनमित्रस्य सुवर्णंचनश्च चवै ॥ ६२ ॥ ब्रह्महत्याकृतारौद्रा कृतञ्चान्येनपातकम् ॥ सुरापानन्तुचाप्यस्य संजातंचान्यकामतः ॥ ६३ ॥ गोवधंपाप मेतेन कृतमेकेनपापिना ॥ अकामतोपि सर्वेषां पातकानिनराधिप ॥ ६४ ॥ ब्राह्मणास्तांस्तुतेदृष्ट्वा पापिष्ठागतकल्मषाः ॥ तीर्थस्यास्यप्रभावेण नर्मदायाः प्रभावतः ॥ ६५ ॥ न क्वचित्पातकानांतु प्रवेशश्चात्रजायते ॥ एवं सञ्चिन्त्य ते सर्वे पापिष्ठाश्च परस्परम् ॥ ६६ ॥ क्षिप्रमेव समुद्धृत्य विचिन्त्य हृदये हरिम् ॥ स्नात्वा रेवाजलेषु एये तर्पित्वा पितृदेवताः ॥ ६७ ॥ नत्वा तु भास्करं देवं हृदि ध्यात्वा जनार्दनम् ॥ कृत्वा प्रदक्षिणं भक्त्या ज्वलिते जातवेदसि ॥ ६८ ॥ पतिताः पाण्डवश्चेष्टपापोद्दिग्नाश्च पापिनः ॥ सात्त्विकी कामनां कृत्वा त्यक्त्वा प्राणान् दिवङ्गताः ॥ ६९ ॥ निष्पापास्ते महाभागैर्न भंदा नराधिप ! पाप नो अपनी कामनाके बिना भी सबको होते हैं ॥ ६४ ॥ उन ब्राह्मणोंने उन पापियों को देखा कि इस तीर्थ व नर्मदाके प्रभावसे ये सब अतिपापी लोग पाप से रहित होगये हैं ॥ ६५ ॥ यहां पापोंका प्रवेश कभी नहीं होसकताहै सब पापी लोग आपस में ऐसे विचारकर ॥ ६६ ॥ और शीघ्रही उठकर व अपने हृदयमें भगवान् की सुधकर व नर्मदाके पवित्र जलमें नहाय पितर व देवताओंका तर्पणकर ॥ ६७ ॥ सूर्यके नमस्कार व भगवान्का ध्यान व उनकी भक्तिसे प्रदक्षिणाकर जलती हुई आग में ॥ ६८ ॥ हे पाण्डवश्चेष्ट ! पापों से डरेहुये वे पापी कूदपड़े सत्त्वगुणकी कामना को कर और प्राणोंको छोड़ स्वर्गको चलेगये ॥ ६९ ॥ उस समय में नर्मदाके उत्तर

और ग्रहणमें जो जितेन्द्रिय मनुष्य भक्तिसे सूर्यतर्पि को जाते हैं ॥ ७ ॥ और हे पार्थ ! काम, क्रोध, राग और द्वेषसे छूटेहुये विष्णुकी कथाको सुनते व वेदका पाठ करते हैं ॥ ८ ॥ अथवा ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेदकी एक ऋचाका भी जप कर के सम्पूर्ण वेदके फलको पाते हैं ॥ ९ ॥ और गायत्री से मनुष्य चारों वेदों के फलको पाता है प्रातःकालमें अन्नके दान व सोनेके दानसे भगवाद्का पूजनकरे ॥ १० ॥ वहां स्नानकर योग्य ब्राह्मणको जो कपिला गज देता है उसने मानो पर्वत व जलो और जंगलके सहित सम्पूर्ण पृथिवीका दानकिया ॥ ११ ॥ और जिसने गोदानको किया उसने भूलोक, सुवलोक, महलोक, जनलोक, तपलोक, सत्यलोक

तेचवैधृतौ ॥ संक्रमेग्रहणेवापि येव्रजन्तिजितेन्द्रियाः ॥ ७ ॥ कामक्रोधविनिमुक्ता रागद्वेषस्तथैवच ॥ कथाञ्चवै
ष्णवीपार्थ वेदाध्ययनमेवच ॥ ८ ॥ ऋग्वेदंवायजुर्वेदं सामवेदमथर्वणम् ॥ ऋचमेकान्तुजप्तैव समस्तफलमा
प्नुयुः ॥ ९ ॥ गायत्र्याचचतुर्वेदफलमाप्नोतिमानवः ॥ प्रभातेपूजयेद्देवमन्नदानहिरण्मयैः ॥ १० ॥ तत्रस्नात्वाद्दि
जयोग्ये कपिलांयःप्रयच्छति ॥ पृथिवीतेनवैदत्ता सशैलवनकानना ॥ ११ ॥ भूलोकश्चभुवर्लोकौ महर्लोकौजनस्त
था ॥ तपःसत्यन्तथालोकं पातालान्येकविंशतिः ॥ १२ ॥ तेनदत्तंभवेत्सर्वं गोदानंयेनवैद्वतम् ॥ तेषामब्दद्वत्तंपापंन
श्येद्वैनान्नसंशयः ॥ १३ ॥ युधिष्ठिरउवाच ॥ पुण्यागतिःकथन्तात एतत्कथयतत्त्वतः ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ पुराकृत
युगस्यादौ ब्रह्मालोकपितामहः ॥ १४ ॥ उत्पादयित्वासकलं भूतग्रामंचतुर्विधम् ॥ आकुलापृथिवीतेनसंजातापाण्डु
नन्दन ॥ १५ ॥ ततःपश्चाद्विचिन्त्येदं कथंलोकौभविष्यति ॥ कथंस्वर्गंप्रयास्यन्ति मानवाभक्तिंसंयुताः ॥ १६ ॥ भानु

और इच्छीस पाताल इन सबका दान करदिया उनके वर्षोंका कियाहुआ पाप नष्ट होजाताहै इसमें संशय नहीं है ॥ १२ ॥ १३ ॥ युधिष्ठिरजी बोले कि हे तात ! पुण्य-
वाली गति किसतरहसे होतीहै सो यह ठीक २ कहो तब मार्कण्डेयजी बोले कि आगे सत्ययुगकी आदिमें लोकोंके पितामह ब्रह्माने ॥ १४ ॥ सब चारोंप्रकारके जीवोंके
समूहको उत्पन्नकिया हे पाण्डुनन्दन ! उससे पृथिवी भरगई ॥ १५ ॥ तब पछिसे विचारकिया कि यह लोक कैसे होगा और भक्तिवाले मनुष्य स्वर्गको कैसे जावेंगे ॥ १६ ॥

लोकों पर सूर्यनारायण कैसे अतिप्रसन्न होंगे ऐसे ब्रह्मा के विचार करते हुये अग्नि के कुण्ड से तेजसे भरी हुई व प्रकाश कर रही वण्टा के डोलने से शब्दको करती हुई एक गऊ निकली कुण्ड के बीच में विद्यमान उस बड़ी भाग्यवाली कपिला को देख ॥ १७ ॥ व उस क प्रणाम कर लोकों के गुरु ब्रह्मा उससे यह बोले कि हे मन्त्र लोकों में पुण्यवाली, अत्युत्तम, कपिले ! तुम्हारे लिये नमस्कार है ॥ १८ ॥ और हे देवि ! हे वरानने ! हे तीनों लोकों में वन्दना की गई, मङ्गलरूप ! लक्ष्मी, धृति और निर्मल बुद्धि तुम्हीं हो ॥ २० ॥ हे महाभाग ! पार्वती व इन्द्राणी तुम्हीं हो इसमें संशय नहीं है वैष्णवी और महादेवी ब्रह्माणी (सरस्वती) तुम्हीं हो हे वरानने ! ॥ २१ ॥ कुमारी

श्रैवकथं प्रीतो लोकानां जायते भृशम् ॥ विरिञ्चे श्रिन्त्यमानस्य अग्नि कुण्डात्समुत्थिता ॥ १७ ॥ उचलन्ती तेजसा पू
र्णा वण्टालुलितनिःस्वना ॥ दृष्ट्वा तान् तु महाभागं कपिलां कुण्डं मध्यगाम् ॥ १८ ॥ ब्रह्मालोकगुरुस्तान् तु प्रणम्येदमु
वाच ह ॥ नमस्ते कपिले पुण्ये सर्वलोकैष्वनुत्तमे ॥ १९ ॥ माङ्गल्ये मङ्गले देवि त्रिषु लोकैषु वन्दिते ॥ त्वं लक्ष्मीस्त्वं
धृतिर्मैधापवित्रा तु वरानने ॥ २० ॥ उमादेवीति विख्याता त्वं शचीना त्रसंशयः ॥ वैष्णवी त्वं महादेवी ब्रह्माणी त्वं
वरानने ॥ २१ ॥ कुमारी त्वं महाभागे भक्तिः श्रद्धा तथैव च ॥ कालरात्री तु भूतानां कुमारी परमेश्वरी ॥ २२ ॥ त्वं श्रुति
स्त्वं घटी चैव सुहृत्क्षणे भवे च ॥ संवत्सरं तवो मासास्त्वं कालः पुरुषस्सदा ॥ २३ ॥ नास्ति किञ्चित् त्वया हीनं त्रैलोक्ये
सचराचरे ॥ एवं स्तुता तु सा तेन कपिला परमेश्वरी ॥ २४ ॥ तमुवाच महाभागा प्रहृष्टा परमेश्वरी ॥ प्रसन्ना तव वाक्ये
न देवदेव जगद्गुरो ॥ २५ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ जगद्धिताय जनिता मया त्वं परमेश्वरी ॥ स्वर्गान् मर्त्यमिति याहि लोकानां हित

तुम्हीं हो और हे महाभाग ! भक्ति व श्रद्धा तुम्हीं हो सब जीवों की कालरात्रि कुमारी परमेश्वरी तुम्हीं हो ॥ २२ ॥ श्रुति कुछ पलों का नाम है सो और घड़ी व मुहूर्त व क्षण तुम्हीं हो वर्ष, ऋतु और महीना तुम्हीं हो काल व जीव भी तुम्हीं हो ॥ २३ ॥ चर व अचररूप तीनों लोकों में तुममें खाली कोई चीज नहीं है इस प्रकार जब उन ब्रह्मा जीने उस कपिला की स्तुति की ॥ २४ ॥ तब प्रसन्न हुई वङ्ग भागिनी कपिला ब्रह्माजीसे बोली कि हे देवदेव ! हे जगत्के गुरु ! तुम्हारे वचन से हम प्रसन्न हैं ॥ २५ ॥

तव द्रष्टा बोलें कि हे परमेश्वरि ! मैंने तुमको जगत्के हितके वास्ते पैदा किया है लोकोंके हितकी इच्छा से तुम इस स्वर्ग से मनुष्यलोकको जानो ॥ २६ ॥ और सब देवता व सब लोकोंका रूप जो तुमहो तिनको विधानसे जो देवोंगे उनका वास स्वर्ग में होगा ॥ २७ ॥ इमप्रकार ब्रह्मामे कहींगई पुरायवाली वह कपिला देवताओं रो भी नमस्कार कीजारही पृथिवीपर आतीहुई ॥ २८ ॥ उसके आने से हे पाण्डुनन्दन ! पृथिवी पवित्र होगई उसके अङ्गो में जो देवताहैं उनको हम कहते हैं सो तुम सुनो ॥ २९ ॥ अग्निदेव उसके मुखमें रहते हैं और दांतों में सांपहैं ओठों में धाता और विधाता हैं कानों में अश्विनीकुमार हैं ॥ ३० ॥ सीगों में इन्द्र बैठे हैं सीगोंके काभ्यया ॥ ३१ ॥ सर्वदेवमर्यात्त्वान्तु सर्वलोकमर्यात्तथा ॥ विधिनार्येप्रदास्यन्ति तेषांवासस्त्रिविष्टपे ॥ ३२ ॥ एवमुक्त्वा ततःपुरया कपिलापरमेष्ठिना ॥ आजगामधुवःपृष्ठे वन्द्यमानासुरोत्तमैः ॥ ३३ ॥ पवित्रानसुधातेन सञ्जातापाण्डु नन्दन ॥ तस्याअङ्गेषुदेवास्तान्मेनिगदतःशृणु ॥ ३४ ॥ मुखेह्यग्निःस्थितोदेवो दन्तेषुचधुजङ्गमाः ॥ धाताविधाता चोष्ठौचअश्विनौकर्णसंस्थितौ ॥ ३५ ॥ वज्रपाणिःस्थितःशृङ्गेशृङ्गमध्येपितामहः ॥ कालोमध्यगतस्तात पाशभृद रूपस्तथा ॥ ३६ ॥ यमश्चभगवान्देव आस्यस्योपरिसंस्थितः ॥ नाभिमध्येस्थितकण्डो देवाजह्वासुभारत ॥ ३७ ॥ वसुन्धरास्थितानाभ्यां पर्वतास्सन्धिषुस्थिताः ॥ दृक्षाणुत्मानिवल्लयश्च सन्धिमार्गेव्यवस्थिताः ॥ ३८ ॥ ऋषयोरोम कूपेषु संस्थिताःपाण्डुनन्दन ॥ स्नायुस्थाःपितरस्सर्वे प्रसवंसर्वतीर्थजम् ॥ ३९ ॥ सर्वेषांगोमयंश्रेष्ठं पवित्रंपापनाश नम् ॥ खुरेषुपद्मगास्सर्वे पुच्छाग्रेसूर्यरश्मयः ॥ ४० ॥ एवंभूतातुकपिला सर्वदेवमर्याकिला ॥ येध्यायन्तिशृहेभवत्या वीचमें ब्रह्माहै और हे तात ! बीचमें काल और फँसरी के धारण करनेवाले वरुण हैं ॥ ४१ ॥ यमराज भगवान् मुहँके ऊपरवाले भागमें बैठे हैं और हे भारत ! तोड़ीमें छन्दहैं और फीलियों में देवताहैं ॥ ४२ ॥ और पृथिवी भी नाभी में है जोड़ों में पर्वत ठहरे हैं बडे वृक्ष व छोटे वृक्ष व लतायें जोड़ोंकी रास्ते में बिद्यमानहैं ॥ ४३ ॥ और हे पाण्डुनन्दन ! रोवोंके छेदों में ऋषिलोग बैठे हैं नसों में सब पितर व दूधमें सब तीर्थ रहते हैं ॥ ४४ ॥ गोबर सबहीका स्थानहै वह बडा श्रेष्ठ व पवित्र व पापका नाश करनेवालाहै खुरों में सब सांप व पूछके अगिले भागमें सूर्यकी किरणें हैं ॥ ४५ ॥ सब देवताओंका रूप कपिला इसप्रकारकी है अपने घरमें भक्तिसे उसका जो ध्यान

करते हैं वे मुक्तही हैं इसमें संशय नहीं है ॥ ३६ ॥ प्रातःकाल नित्य उठकर भक्तिसे जो कपिलाकी प्रदक्षिणा करता है उसने मानो सातोद्दीपनाली पृथिवी की प्रदक्षिणा करली है ॥ ३७ ॥ कपिला के पञ्चगव्य में जो महादेव व जगत् के आधार विष्णु व सूर्य व और किसी देवताको स्नान कराता है ॥ ३८ ॥ और हे पाण्डव ! पञ्चासृत व पञ्चगव्य ते भक्तिपूर्वक स्नान करवाकर जो सालभर तक वेदपाठी ब्राह्मणको रोज २ कपिलाका दान करता है ॥ ३९ ॥ हे युधिष्ठिर ! उन दोनोंके फलको शङ्करजीने बराबर कहा है और जो कोई मनको वशकियेहुये सूर्यतीर्थमें कपिलाको ब्राह्मणके लिये देवेगा ॥ ४० ॥ और दूधवाली, जवान, निर्मल, बछड़ा व कण्डोसे सम्युक्त,

ते सुक्तानात्रसंशयः ॥ ३६ ॥ प्रातरुत्थाय यो भक्त्या नित्यं कुर्यात्प्रदक्षिणम् ॥ प्रदक्षिणीकृततेन सप्तदीपावसुन्धरा ॥ ३७ ॥ कपिलापञ्चगव्येन यः स्नापयति शङ्करम् ॥ विष्णुं वाजगदाधारं सूर्यं वा त्वन्यथैव तम् ॥ ३८ ॥ पञ्चासृतेन भक्त्या पञ्चगव्येन पाण्डव ॥ अब्दं वा श्रोत्रिये नित्यं कपिलायः प्रयच्छति ॥ ३९ ॥ तुल्यमेतत्फलं प्रोक्तं शङ्करेण युधिष्ठिर ॥ यः प्रदास्यति विप्राय रवितीर्थं समुच्चितः ॥ ४० ॥ कपिलां वाथ कृष्णं वा श्वेतां रक्षाञ्च पाटलात् ॥ क्षीरिणीन्तरुणीं शुभ्रां सवत्सां वस्त्रसंयुताम् ॥ ४१ ॥ स्वर्णशृङ्गारौ प्यश्वरौ विष्णुरूपं द्विजं समरन् ॥ आत्मानं विष्णुरूपञ्च धेनुमादित्यरूपिणीम् ॥ ४२ ॥ यो ददाति महाबाहो तस्य वासस्त्रिविष्टपे ॥ ब्रह्महत्याविनिशुक्तः पुरा पानञ्च दारुणम् ॥ ४३ ॥ शुर्वङ्गनागमः स्तेयः स्नाभिद्रोहो गन्धर्वधः ॥ मित्रविश्वासघातञ्च गुरुनिन्दा समुद्भवम् ॥ ४४ ॥ स्थितिर्नष्टे च वशे च निर्माल्यस्यावलङ्घनम् ॥ कन्यागमगमश्चैव अभक्ष्यस्य तु भक्षणम् ॥ ४५ ॥ दृषत्प्राणमनरोद्रं कुरूपगमनोद्भवम् ॥ अ

सोनेके सींगवाली, रूपके खुरोवाली, कपिला व कृष्णा व सफेद व लाली व लाल और सफेद रङ्गवाली गऊको ब्राह्मणको व अपनेको विष्णुके रूपसे ध्यान करता हुआ और गऊको सूर्यरूपसे जानता हुआ देता है हे महाबाहो ! उसका वास स्वर्गमें होता है और ब्रह्महत्यासे छूटजाता है दारुका पीना ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ गुरुकी स्त्री में गमन करना, चोरी करना, मालिक से चैर करना, गोहत्या करना, मित्रके साथ में विश्वासघात करना, गुरुकी निन्दा करना ॥ ४४ ॥ नष्ट वशमें रहना, महादेव के निर्माल्य का नांघना, कन्या का भोग करना, नहीं खाने लायक चीजका खाना ॥ ४५ ॥ शूद्रकी स्त्री का भोग करना, कुरूप स्त्री का ग्रहण करना, आग लगा देना

विष देना और गवाही में झूठ बोलना ॥ ४६ ॥ हे पाण्डव ! इन सब पापोंको गऊ अपने दानसे नष्ट करदेती है और पवित्र गौवों के सङ्गम व पापों के नाश करनेवाले उनके गोड़े में ॥ ४७ ॥ हे कुन्तिनन्दन ! जो भक्तिसे प्रेतका श्राद्ध करता है उसपर सूर्य और महादेवजी प्रसन्न होते हैं ॥ ४८ ॥ उस सूर्यतीर्थ में सूर्य के नाम से जो भक्तिसे दान दिया जाता है उसका देनेवाला नर्मदा के प्रसाद से सूर्यलोक में सुख से जाता है ॥ ४९ ॥ दधिच्छन्द, मधुच्छन्द, देवयान और सुखदायी भीमेश्वर में हे कुरुश्रेष्ठ ! बराबरही पुण्य कहा जाता है ॥ ५० ॥ समुद्रपर्यन्त पृथिवी में येही पाँचों तीर्थ प्रसिद्ध हैं पृथिवी के रहनेवाले जो इन पाँचोंको नहीं जानते हैं वे मरे

ग्निदं गरदञ्चैव कूटसाक्ष्यसमुद्भवम् ॥ ४६ ॥ तत्सर्वनाशयेत्पापं धेनुदानेन पाण्डव ॥ सुरभीसंगमपुण्ये निष्ठुते पापनाशने ॥ ४७ ॥ श्राद्धं प्रेतस्य यो भक्त्या दापयेत्कुन्तिनन्दन ॥ तस्य प्रीतो भवेत्सूर्यः सुप्रीतो भव एव च ॥ ४८ ॥ दानं यद्दीयते तत्र सूर्यं बुद्धिं च भक्तिः ॥ भिन्नलोके सुखं याति नर्मदायाः प्रसादतः ॥ ४९ ॥ दधिच्छन्दे मधुच्छन्दे देवयाने सुखं प्रद ॥ भीमेश्वरे कुरुश्रेष्ठ समं पुण्यं प्रशस्यते ॥ ५० ॥ पृथिव्यां सागरान्तायां प्रख्यातं तीर्थं पञ्चकब्जम् ॥ येन जानन्ति भूमिस्था ते मृतानां न संशयः ॥ ५१ ॥ स्नानं देवा च न जाप्यं होमं ब्राह्मणपूजनम् ॥ भूमिदानेन वस्त्रेण अन्नदानेन भक्तिः ॥ ५२ ॥ उपान च्छत्र शय्यानां गृहदानेन पाण्डव ॥ ग्रामकन्याप्रदानेन गजदानं हयेन च ॥ ५३ ॥ विद्याशकटदानेन सर्वेषामभयप्रदः ॥ सयाति सर्वतीर्थानि रवितीर्थं युधिष्ठिर ॥ ५४ ॥ तीर्थयात्राप्रभावेण व्याधयो यान्ति संक्षयम् ॥ शत्रवो भिन्नतां यान्ति विषं बाह्यमृतायते ॥ ५५ ॥ ग्रहास्सर्वे भवन्प्रीताः प्रीतस्तस्य दिवाकरः ॥ तीर्थस्यास्य पयः पीत्वा यत्पुण्यं

हो है इरामे संशय नहीं है ॥ ५१ ॥ सूर्यतीर्थ में भक्ति से स्नान देवताओं का पूजन, जप, होम, ब्राह्मणों का पूजन, पृथिवी, कपड़े, अन्न ॥ ५२ ॥ व हे पाण्डव ! जूना, छाता, पलंग, मकान, गाँव, कन्या, हाथी, घोड़े ॥ ५३ ॥ विद्या और छकडाओं के दान से सबका अभय देनेवाला पुरुष मानो सब तीर्थों व सूर्यतीर्थ को जाता है हे युधिष्ठिर ! ॥ ५४ ॥ तीर्थयात्राके प्रभावसे रोग नष्ट होजाते हैं शत्रु भिन्न होजाते और विष अमृत होजाता है ॥ ५५ ॥ सब ग्रह उससे प्रसन्न होते हैं और सूर्य भी प्रसन्न

होते हैं इस तीर्थके जलको पीकर मनुष्योंको जो पुण्य होता है ॥ ५६ ॥ और सालभर पीपलकी सेवा व कपिलाके दानसे जो पुण्य है उसके फलको हे महीपते ! तुम से भक्तिपूर्वक हम कहेंगे ॥ ५७ ॥ सब पाप नष्ट होजाते हैं फूटे वासनका पानी जैसे बहजाताहै तीर्थ के सामने जानेवालों का यह हाल होताहै इसमें संशय नहीं है ॥ ५८ ॥ हे पार्थिव ! यहां भीतर और बाहरका तीर्थ आपसे कहागया जो पार्षा और कृतज्ञ हैं अथवा अपने मालिक व मित्रके विरोधी हैं ॥ ५९ ॥ उनसे तीर्थोंकी बात कहना नहीं अच्छा किन्तु पण्डितोंको उनसे हमेशा बिपाना चाहिये ॥ ६० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे रेखाखण्डे आदित्येश्वरतीर्थकीर्तनो नाम चतुर्विंशतितमोऽध्यायः ॥ ६१ ॥

जायते नृणाम् ॥ ५६ ॥ अब्दमश्वत्थसेवायां कपिलायास्तु दानतः ॥ तत्फलं कथयिष्यामि भक्त्या तव महीपते ॥

५७ ॥ पापास्सर्वविलीयन्ते भिन्नपात्रे जलं यथा ॥ तीर्थस्याभिमुखं वृत्तं गच्छतां नात्र संशयः ॥ ५८ ॥ इह बह्यान्तरन्तीर्थं कथितं तव पार्थिव ॥ पापिष्ठानां कृतघ्नानां स्वामि मित्रविरोधिनाम् ॥ ५९ ॥ तीर्थाख्यानं शुभन्तेषां गोपितव्यं सदा बुधैः ॥ ६० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे रेखाखण्डे आदित्येश्वरतीर्थकीर्तनो नाम चतुर्विंशतितमोऽध्यायः ॥ ६१ ॥

मार्कण्डेय उवाच ॥ ततो गच्छेत्तुराजेन्द्र करञ्जेश्वरमुत्तमम् ॥ यत्र ते निहतास्तात दानवास्तत्पदानुगैः ॥ १ ॥ इन्द्राद्यैश्च संहृष्टैः स्तुतौ यज्ञस्सुबुद्धिभिः ॥ तेषां ये पुत्रपौत्राश्च पूर्वैरमनुस्मरन् ॥ २ ॥ तत्र स्थास्तु सुरास्सर्वे स्थापयित्वा ह्युमापतिम् ॥ इन्द्रचन्द्रयमास्सूर्यः स्थापयित्वेष्टसिद्धये ॥ ३ ॥ हृष्टपुष्टास्सुरास्सर्वे जग्मुराकाशसंस्थिताः ॥ दानवानां महाभाग करोत्यः पतितायतः ॥ ४ ॥ तदा प्रभृति तत्तीर्थं करोटीति महीपते ॥ विख्यातं भारते लोके भूपृष्ठे पाण्डुनन्द

मार्कण्डेयजी बोले कि हे राजेन्द्र ! तदनन्तर उत्तम करञ्जेश्वर तीर्थको जावे हे तात ! जहां देवताओंसे वे दानवलोग मारोगये हैं ॥ १ ॥ सुन्दर बुद्धिवाले व प्रसन्न इन्द्र आदि देवताओंने गज्ञकी स्तुति की है उन दानवोंके जो लडके व पोते रहे उनको भी पछिले वैरकी सुध करतेहुये मारा ॥ २ ॥ वहांपर विद्यमान होरहे सब देवता लोग महादेवको स्थापनकर अर्थात् अपने मनकी सिद्धिके वास्ते इन्द्र, चन्द्रमा और यमराज महादेवको थापकर ॥ ३ ॥ प्रसन्न व पुष्ट होरहे सब देवता आकाशमें ठहरे द्यौं अपने लोकको चलेगये हे महाभाग ! जहां दानवोंकी शेर गिरी थीं ॥ ४ ॥ हे महीपते ! यहां तबसे वह तीर्थ करोटी नामसे प्रसिद्ध होताहुआ हे पाण्डुनन्दन !

वह तीर्थ भारतखण्डकी पृथिवीपर होताहुआ ॥ ५ ॥ उजियाले पाखकी अष्टमी व चौदसको भक्तिसे उपासकर रातमें महादेवके आगे जागरणकरे ॥ ६ ॥ महादेवकी कथा व वेदोंका उच्चारणकरे निर्मल प्रभातके होनेपर यत्नसे महादेवका पूजनकरे ॥ ७ ॥ पञ्चासुतसे नहनाय चन्दन से पूजे और कमलके फूलों से यत्नके साथ पूजन करे ॥ ८ ॥ फिर दक्षिणा देकर बहुरूप मन्त्रको जपे तो उसी फलको पाताहै जोकि नर्मदाके आदित्येश्वर तीर्थमें कहागयाहै ॥ ९ ॥ और हे नराधिप ! सुनेहुये तीर्थके प्रभावको जो पढ़े हे महीपते ! वह सब हम तुम्हारी भक्तिसे कहेंगे ॥ १० ॥ कहेहुये विधान से नाभितक जलमें खड़ा होकर वहीं इन्द्रियोंको जीतेहुये प्रेतका श्राद्ध

न ॥ ५ ॥ अष्टम्याञ्चतुर्दश्यांशुभेपक्षेपुभक्तिः ॥ उपोष्यशूलिनश्चाथे रात्रौकुर्वीतजागरम् ॥ ६ ॥ तत्कथालापसंयुक्तं वे दोद्गीतन्तथैवच ॥ प्रभातेविमलेप्राप्ते स्थाणुसम्पूज्ययत्नतः ॥ ७ ॥ पञ्चासुतेनसंस्नाप्य श्रीखण्डेनैवचार्ययेत् ॥ शत पल्लवपुष्पैश्च पूजयेच्चप्रयत्नतः ॥ ८ ॥ बहुरूपं जपेन्मन्त्रं दक्षिणान्तुप्रदायच ॥ तत्फलंसमवाप्नोति आदित्येश्वरनाम्नदे ॥ ९ ॥ श्रुततीर्थप्रभातैव यः पठेच्चनराधिप ॥ तत्सर्वकथयिष्यामि भक्त्यातवमहीपते ॥ १० ॥ यथोक्तंनविधानेन नाभि मात्रेजलेस्थितः ॥ आहृतत्रैवप्रेताय कारयेत्तजितेन्द्रियः ॥ ११ ॥ विविधैरग्रपाठैश्च वेदाध्ययनतत्परैः ॥ गोहिरण्येन सम्पूज्य वस्त्रताम्बूलभोजनैः ॥ १२ ॥ भूषणैः पट्टदानैश्च ब्राह्मणपाण्डुनन्दन ॥ तस्मिंस्तीर्थेतुसम्पूज्यकामिकंभोज नंददेत् ॥ १३ ॥ भवेत्कोटिगुणंतस्य नात्रकार्याविचारणा ॥ तत्रतीर्थेयथाभक्त्या त्यजेद्देहञ्चमानद ॥ १४ ॥ तस्य तीर्थेभवेत्पुण्यं तच्छृणुष्वनराधिप ॥ यावदस्मिन्पुण्यस्यतिष्ठतेन्मर्मदाभूमि ॥ १५ ॥ तावद्वसतिधर्मात्मा शिव

करे ॥ ११ ॥ बहुत अच्छे अनेक तरहके पाठों व वेदोंके पाठोंसे अथवा गऊ, सोना, कपड़े, ताम्बूल, भोजन ॥ १२ ॥ जेवर और रेशमी कपड़ोंके दानोंसे हे पाण्डुनन्दन ! उस तीर्थ में ब्राह्मणका पूजनकर उसको इच्छाभोजन देवे ॥ १३ ॥ तो उसको करोड गुना फल होताहै इसमें कुछ विचार नहीं करना चाहिये और हे मानद ! उस तीर्थ में जो भक्तिसे अपनी देहको छोड़े ॥ १४ ॥ तो हे नराधिप ! उसको जो पुण्य होताहै तिसको तुम सुना कि मनुष्यकी हड्डी जबतक नर्मदाके जलमें रहती है ॥ १५ ॥

तत्रतक वह धर्मात्मा अतिदुर्लभ शिवलोकमें रहता है तदनन्तर समय आनेपर वहासे गिरकर देवतासे फिर मनुष्य होता है ॥ १६ ॥ कोटिध्वजोंका मालिक, लक्ष्मीनाला, सब धर्मों से युक्त, बुद्धिवाला, जीवित पुत्रवाला होता है इसमें संशय नहीं है ॥ १७ ॥ और ग्रुथिवीपर प्रसिद्ध भारी उमरवाला मनुष्य होता है इन्द्र, चन्द्रमा, यमराज, रुद्र, आदित्य, वसु ॥ १८ ॥ और सब विश्वेदेवोंने लोकों के हितकी इच्छा से नर्मदाके उत्तर किनारेपर महादेवका स्थापन किया है ॥ १९ ॥ जो मनुष्य मरे के नामसे बहा मकान बनेवाँता है तो मनुष्यों में श्रेष्ठ वह मनुष्य उत्तमगतिको पाता है ॥ २० ॥ और नीतिसे कमायेहुये धनसे जो वहां श्राद्ध करता है वह ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, स्त्री

लोके सुदुर्लभे ॥ ततः कालात्प्रच्युतश्च देवो मानुष्यताङ्गतः ॥ १६ ॥ कोटिध्वजपतिः श्रीमाञ्जायतेनात्र संशयः ॥ सर्व धर्मसमायुक्तो मेधावी जीवपुत्रकः ॥ १७ ॥ विख्यातश्च धरापृष्ठे दीर्घायुर्मानवो भवेत् ॥ इन्द्रचन्द्रमरुद्देवादित्यैव सु भिरुत्तथा ॥ १८ ॥ विश्वेदेवैस्तथा सर्वैः स्थापितस्त्रिदशेश्वरः ॥ नर्मदोत्तरकूले तु लोकानां हितकाम्यया ॥ १९ ॥ मानवः प्रेतमुद्दिश्य प्रासादं कारयेत्तु यः ॥ तस्मिन्नवरश्रेष्ठः समद्गतिमवाप्नुयात् ॥ २० ॥ न्यायोपाजितद्रव्येण यः श्राद्धं कुरु तेन वै ॥ ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः स्त्रियः शूद्राश्च सत्कृताः ॥ २१ ॥ तेपियान्ति परेलोके शङ्करे सुरपूजिते ॥ यः शृणोति नरो भक्त्या माहात्म्यं तीर्थजं नृप ॥ २२ ॥ तस्य पापं प्रणश्ये तपसा मेनतु यत्कृतम् ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र कुमारेश्वरमुत्तमम् ॥ २३ ॥ प्रसिद्धं सर्वतीर्थानामगस्त्येश्वरमुत्तमम् ॥ परमुखेन तपस्तप्तं सर्वपातकनाशनम् ॥ २४ ॥ स्नानं च परया भक्त्या सिद्धिः प्राप्तानराधिप ॥ देवसैन्याधिपो राजन्सर्वशत्रुविमर्दनः ॥ २५ ॥ उग्रतेजाम

और शूद्र कोईहो सत्कारयुक्त ॥ २१ ॥ वे भी देवताओं से पूजेहुये महादेवके श्रेष्ठलोकको जाते हैं और हे नृप ! जो मनुष्य तीर्थके माहात्म्यको भक्तिसे सुनता है ॥ २२ ॥ उसका छह महीने का कियाहुआ पाप नष्ट होजाता है मार्कण्डेयजी बोले कि हे राजेन्द्र ! तदनन्तर उत्तम कुमारेश्वरको जावे ॥ २३ ॥ जोकि सब तीर्थों में प्रसिद्ध अगस्त्येश्वर कहाजाता है वहा सब पापों के नाश करनेवाले तपको स्वामिकार्तिकने किया है ॥ २४ ॥ और बड़ी भक्तिसे स्नान भी किया है इससे हे नराधिप ! सिद्धिको पाते

हुये हे राजन् ! जिससे सब देवताओं की सेना के मालिक व सब शत्रुओं के मारने वाले ॥ २५ ॥ तीर्थकी सेवासे बड़े तेजवाले महात्मा होतेहुये तबसे लेकर नर्मदाके तटमें वह तीर्थ प्रसिद्ध होताहुआ ॥ २६ ॥ इन्द्रियोंको जीतेहुये अपने मनको एकाग्र कियेहुये उस तीर्थमें जो भक्तिसे विशेषकर कातिककी अष्टमी व चौदसको ॥ २७ ॥ दही व दूध और घी से महादेवको स्नान करावे व गावे और विधिसे पिण्डदान करे ॥ २८ ॥ ब्रह्म कर्मोंकरनेवाले, वेदपाठी ब्राह्मणों से जो कुछ वहां दियाजाता है हे पाण्डु-नन्दन ! हे पार्थ ! वह श्रक्षय होता है ॥ २९ ॥ हे नृप ! यह तीर्थ सब तीर्थोंसे बड़ा है इसको चन्द्रमाने बनाया है यह सब कुमारेश्वर तीर्थका फल तुमसे कहागया ॥ ३० ॥

हात्माच संजातस्तीर्थेसर्वनात् ॥ तदाप्रभृतितत्तीर्थं विख्यातं नर्मदातटे ॥ २६ ॥ तस्मिंस्तीर्थेतु यो भक्त्या एकचित्तो जितेन्द्रियः ॥ अष्टम्यांचचतुर्दश्यां कार्तिकस्य विशेषतः ॥ २७ ॥ स्नापयेद्भिरिजानाथं दधिदुग्धेन सर्पिषा ॥ गीतं तत्र प्रकर्तव्यं पिण्डदानं यथाविधि ॥ २८ ॥ ब्राह्मणैः श्रोत्रियैः पार्थ षट्कर्म निरतैः सदा ॥ यत्किञ्चिद्दीयते तत्र अन्नं यं पाण्डु-नन्दन ॥ २९ ॥ सर्वतीर्थात्परं तीर्थं निर्मितं शशिनानृप ॥ एतत्ते सर्वमाख्यातं कुमारेश्वरजं फलम् ॥ ३० ॥ कुमारदर्शनात्पुण्यं प्राप्य ते पाण्डुनन्दन ॥ मृतः स्वर्गमवाप्नोति सत्यमीश्वरभाषितम् ॥ ३१ ॥ ततो गच्छेत्तुराजेन्द्र ॥ अगस्त्येऽव-रमुत्तमम् ॥ तत्र सिद्धो महाभाग मित्रावरुणमम्भवः ॥ ३२ ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ कथं सिद्धो महाभाग अगस्त्यो मुनिपु-ङ्गवः ॥ कुम्भोद्भवो महाभाग मित्रावरुणमम्भवः ॥ ३३ ॥ नर्मदातटमाश्रित्य तत्सर्वं कथयस्व मे ॥ मार्कण्डेय उवा-च ॥ महाप्रज्ञो महाराज यस्त्वया परिप्रच्छितः ॥ ३४ ॥ तत्ते हं सम्प्रवक्ष्यामि शृणुष्वैकमनाः सदा ॥ पुराकृतयुगे तात

हे पाण्डुनन्दन ! कुमारके दर्शनसे पुण्य होता है और वहां मराहुआ स्वर्गको पाता है यह महादेवका कहाहुआ सत्य है ॥ ३१ ॥ हे राजेन्द्र ! तदनन्तर उत्तम अगस्त्येश्वर को जावे वहां हे महाभाग ! मुनियों में श्रेष्ठ अगस्त्यजी सिद्धहुये हैं ॥ ३२ ॥ तब युधिष्ठिर बोले कि हे महाभाग ! मुनियों में श्रेष्ठ अगस्त्य वहां कैसे सिद्धहुये जो कि हे महा-भाग ! मित्र और वरुणके वीर्यसे कलश से पैदाहुये हैं ॥ ३३ ॥ वे नर्मदातटमें बैठकर कैसे सिद्ध हुये सो सब आप मुझसे कहें तब मार्कण्डेय बोले कि हे महाराज ! जो

तुमने पूछा है वह बड़ा भारी प्रश्न है ॥ ३४ ॥ सो उसको हम आपसे कहेंगे आप एकाग्रमन होकर सुनो हे तात ! आगे रात्ययुग में भारसे दबी हुई पृथिवी ॥ ३५ ॥ इन्द्र से अपना हाल कहने के वास्ते स्वर्गको गई और हे नृप ! इन्द्र से दैत्यों के भारसे देवहुये जगत्को बताया ॥ ३६ ॥ तब इन्द्र बोले कि हे सुन्दरि ! हमारे व तुम्हारे व जगत् के बनानेवाले ब्रह्मा हैं इससे अपने मन्त्री देवताओं के सहित हम ब्रह्मलोकको जावेंगे ॥ ३७ ॥ तदनन्तर सबलोग जहां ब्रह्मा थे वहांको गये तहां बृहस्पति बोले कि हे ब्रह्मन् ! दैत्यो के भारसे दबी हुई पृथिवी निरालम्ब हो रही है ॥ ३८ ॥ उस भारको नहीं सहसक्ती यह देवीरसातलको जाती है इससे हे जगतीपते ! पृथिवी के भारका उपाय करो ॥ ३९ ॥

भारतां जगती स्थिता ॥ ३५ ॥ विज्ञप्नुकामा देवेशं नाकपृष्ठं गतानृप ॥ इन्द्राय कथयामास दैत्यभाराद्धितं जगत् ॥ ३६ ॥
 इन्द्र उवाच ॥ ब्रह्मा च जगतः कर्ता तवैव मम सुन्दरि ॥ ब्रह्मलोकं गमिष्यामि मन्त्रिभिर्देवैः सह ॥ ३७ ॥ ततस्सर्वे गतास्तत्र यत्रासौ किमलासनः ॥ बृहस्पतिरुवाच ॥ ब्रह्मन्निर्लम्बना जाता दैत्यभारादसुन्धरा ॥ ३८ ॥ असहन्ती तु तं भारं याति देवीरसातलम् ॥ प्रतीकारं पृथिव्याश्च कुरुष्व जगतीपते ॥ ३९ ॥ सर्वसत्त्वोपकाराय सृष्टिस्त्वयि जगत्पते ॥ पितामह उवाच ॥ कर्तास्मि सर्वजगतामयोनिकलशोद्भवः ॥ ४० ॥ अगस्त्यस्तपसां राशिः शक्तो दैत्यनिवारणे ॥ एकतः सर्वदेवानां वलं तेजश्च जायते नाना संशयः ॥ ब्रह्मणो वचनं श्रुत्वा सर्वदेवाः सवासवाः ॥ ४१ ॥ एकतोऽत्र ह्यपि मुख्यस्य जायते नाना संशयः ॥ ब्रह्मणो वचनं श्रुत्वा सर्वदेवाः सवासवाः ॥ ४२ ॥ तथैव कारणं चान्यत्कथयन्ति स्म भारत ॥ विज्ञातं देवदेवेश विश्वामित्रचिकीर्षितम् ॥ ४३ ॥ त्रिशङ्कर्थे च यज्ञोऽयं विश्वामित्रेण साधितः ॥ स्पृष्ट्या च वशिष्ठस्य यज्ञाङ्गानि समासृजत् ॥ ४४ ॥ स्पृष्ट्या सृजता काशं भूमि चान्यां समासृजत्पते ! सब जीवों के उपकार के वास्ते तुम्हारी रचना है तब ब्रह्मा बोले कि सब जगत् के बनानेवाले हम हैं परन्तु बिना योनिके कलश से पैदा हुये ॥ ४० ॥ और तपस्याका ढेर ऐसे अगस्त्यमुनि दैत्यो के हटाने में समर्थ है क्योंकि एक तरफ देवताओं का बल और तेज हो ॥ ४१ ॥ उसी प्रकार अन्य कारणको हे भारत ! कहते हुये देवताओं ने कहा कि हे देव-आधिक होगा इसमें संशय नहीं है ब्रह्माजी के वचनको सुन इन्द्र सहित सब देवता ॥ ४२ ॥ उसी प्रकार अन्य कारणको हे भारत ! कहते हुये देवताओं ने कहा कि हे देव-देवेश ! विश्वामित्रको जो करना है उसको हम जानते हैं ॥ ४३ ॥ कि त्रिशंकु राजा के वास्ते विश्वामित्र ने इस यज्ञको सिद्ध किया है वशिष्ठको हरण देने के वास्ते यज्ञ के

अङ्गोंको रचतेहुये ॥ ४४ ॥ उसी ईर्ष्याने आकाश व दूसरी जमीनको रचतेहुये जैसे हिमालय पर्वत पूर्व और पश्चिमके समुद्रको ॥ ४५ ॥ व्यासकर देवताओं के कामोंको करने के वास्ते पृथिवीमें स्थित होरहाहै इसीतरह यह विन्ध्याचल भी विश्वामित्रकी इच्छा से हिमालय से ईर्ष्या करताहुआ बढ़ाहै ॥ ४६ ॥ हे सुरेश्वर ! विश्वामित्रने देवताओंके कामोंको रोकहै इससे हे जगद्गुरो ! दोनों बातोंका उपाय आप सोचें ॥ ४७ ॥ तब ब्रह्माजी बोले कि इसचालके चलनेवाले विश्वामित्रके गुरु मुनियों मे श्रेष्ठ ब्राह्मण एक अगस्त्यही है जोकि बड़े तेजवाले हैं ॥ ४८ ॥ इससे देवताओं की रास्तेके खोलनेवाले अगस्त्य होवेंगे इममें संशय नहीं है क्योंकि सब बुद्धिमान्

सृजत ॥ यथातुहिमवच्छैलः पूर्वापरमहोदधिम् ॥ ४५ ॥ व्याप्यैवसंस्थितोभूम्यां देवकार्यार्थसाधकः ॥ तथासौस्प
र्द्धतेविन्ध्यः स्पर्द्धयाकौशिकस्यच ॥ ४६ ॥ तिष्ठन्तिदेवकार्याणि कौशिकेनसुरेश्वर ॥ कार्यमर्ह्यप्रतीकारं चिन्तय
स्वजगद्गुरो ॥ ४७ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ एकस्त्वस्यगुरुर्विप्रोह्यगस्त्योमुनिपुङ्गवः ॥ उत्पथेवर्तमानस्य कौशिकस्यदुरासदः ॥
४८ ॥ अगस्त्योमार्गभेत्तावै भविष्यतिनसंशयः ॥ गुरुरात्मवतांशास्ता सर्वेषाँवैनसंशयः ॥ ४९ ॥ वर्द्धनंपर्वतस्या
स्य देवमार्गप्रवर्तनम् ॥ शासःकौशिकविप्रस्य वसुधायांसमन्ततः ॥ ५० ॥ क्षमःसमस्तकार्याणां मित्रावरुणनन्द
नः ॥ एवंतुनिश्चयंकृत्वा देवाःसेन्द्रपितामहाः ॥ ५१ ॥ ययुर्वसुन्धरासाद्धं हिमवन्तनगेश्वरम् ॥ ददशुस्तेस्थितं
विप्रंधयायमानञ्चयोगिनम् ॥ ५२ ॥ सुदृढंनिश्चलध्यानं मोक्षमार्गंनियामकम् ॥ तंदृष्ट्वास्तोतुमारब्धाः सेन्द्रच
न्द्रास्सवारुणाः ॥ ५३ ॥ देवाऽजुहुः ॥ जयमिच्छस्वदेवानां भगवन्कलशोद्भव ॥ प्रसादसुमुखोभूत्वा देवानांभय
मनुष्यांका सिखानेवाला गुरुही होताहै इसमें संशय नहीं है ॥ ४९ ॥ इससे इस पर्वतको बढ़ने से रोकना और देवताओंकी रास्तेका खोलना और सब ओर इस पृथिवी
पर विश्वामित्रका सिखाना ॥ ५० ॥ इन सब कामों के करने में अगस्त्यही समर्थ हैं ऐसे निश्चयको कर इन्द्र और ब्रह्माके सहित सब देवता ॥ ५१ ॥ पृथिवीके सहित
पर्वतों के ईश्वर हिमालयको जातेहुये और उन सबोंने वहा ध्यान करते हुये योगी ब्राह्मण अगस्त्यको वर्तमान देखा ॥ ५२ ॥ बहुत पुष्ट निश्चल ध्यानके करने-
वाले व मोक्षके वास्ते नियमके करनेवाले उन अगस्त्यको देख इन्द्र, चन्द्रमा और वरुणके सहित सब देवता खुति करनेका प्रारम्भ करतेहुये ॥ ५३ ॥ देवता बोले कि

हे कलशोद्भव, भगवन् ! आप अपनी दयासे प्रसन्नमुखवाले होकर देवताओं के जयकी इच्छाकरो क्योंकि देवताओं को भय आगया है ॥ ५४ ॥ तय अगस्त्य बोले कि हे देवताओं ! क्या काम पैदा होगया है जिससे इतनी दूर सदा एकान्तके रहनेवाले जो हमहैं तिस मेरे पास आप सबलोग आयेहो ॥ ५५ ॥ इससे कहो जो हम को करना होवे वह सब हमकरें तदनन्तर थोड़ी हवासे डोलतेहुये कमलोंकी तरह शोभावाले ॥ ५६ ॥ एक हजार नेत्रों से इन्द्रने बृहस्पतिको इशारा किया तब बृहस्पति बोले कि हे महाभाग ! आगे देवताओं के कार्य्योंकी सिद्धिके वारते आपने ॥ ५७ ॥ सब समुद्रोंको सोखलिया था जैसे ईश्वर जगतको सुखादेवे अब इस समयमें अपने

मागतम् ॥ ५४ ॥ अगस्त्यउवाच ॥ किंकार्यन्तुसमुत्पन्नं येनदूरं समागताः ॥ एकान्तवासिनं नित्यं तस्मांयूयंसुरा
इचभोः ॥ ५५ ॥ उच्यतांयन्मयाकार्यं तत्सर्वकरवाण्यहम् ॥ ततोमन्दानिलोद्धूतकमलाकरशोभिना ॥ ५६ ॥
गुरुं नेत्रसहस्रेण प्रेरयामासवृत्रहा ॥ त्वयापूर्वमहाभाग देवकार्यार्थसिद्धये ॥ ५७ ॥ समुद्राः क
र्षितास्सर्वे ईश्वरेण यथाजगत ॥ विध्वस्तास्त्रिदशास्सर्वे दानैर्वैलदपिपैतैः ॥ ५८ ॥ जितादेवास्तुते सर्वे दानवैभ्यः
पराञ्जुखाः ॥ तेषां वरापहाराय समुद्राश्शोषिताः पुरा ॥ ५९ ॥ साम्प्रतंदुःखिताधानी पश्येमांभूतधारिणीम् ॥
दैत्यभारेण दुःखार्ता भूमिर्जातारसातलम् ॥ ६० ॥ गन्तव्यं दक्षिणामाशां तपोराशे द्विजोत्तम ॥ नर्ममदोदधिभर्या
दां कुरुपुण्यां महाद्विज ॥ ६१ ॥ वृद्धिर्विन्ध्यनगस्यापि देवकार्यं समुद्धर ॥ कौशिको थकनीयांस्ते यउन्मार्गं प्र

बलसे शहङ्कारको प्राप्तहोरहे सब दानवोंने देवताओं को हराय दिया है ॥ ५८ ॥ हारेहुये उन सब देवतालोगोंने दानवोंसे अपने मुखोंको फेरलिया है उन दानवों के वरको नाश करने के लिये आगे आपने समुद्रोंको सोखलिया था ॥ ५९ ॥ सो अब इस समयमें पृथिवी दुःखित होरही है इस प्राणियोंके धारण करनेवाली पृथिवीका आप देखो दैत्यों के भार व दुःख से विकल पृथिवी रसातल को चलीजायेगी ॥ ६० ॥ इस से हे तपोराशे ! हे द्विजोत्तम ! अब आप को दक्षिण दिशा चलना चाहिये हे महाद्विज ! नर्मदा और समुद्रकी मर्यादा को साफ करदेवों ॥ ६१ ॥ देवताओं के कार्य के वारते विन्ध्यपर्वत का बढ़नाभी रोकदेवों जो उसके बढ़ानेवाले विश्वामित्र

हैं वे आपसे छोटे हैं ॥ ६२ ॥ तब अगस्त्य बोले कि हे वसुन्धरे ! हम देवताओं के कार्य को करेंगे तुम सुखसे बैठो हम दक्षिण दिशा को जावेंगे और अपने शिष्य के रोंकने में हम समर्थ हैं ॥ ६३ ॥ इस पर्वत की बाढ़िको हम रोंकेंगे इस में संशय नहीं है तब देवता बोले कि दक्षिण को जाकर देवताओं के सहित इसको जरूर देखो ॥ ६४ ॥ हे विप्र ! सिंह के सूर्य होनेपर जो लोग भक्ति से नहीं जावेंगे उन का धन व धान्य और सुख जरूर नष्ट होगा ॥ ६५ ॥ देवताओं के अधिकार के वारते गयेहुये अगस्त्यजी जरूरही देखपड़ेंगे देवतालोग इस प्रतिज्ञा को कर पृथिवी के सहित जातेहुये ॥ ६६ ॥ तपस्याकी राशि जो अगस्त्य है उनके पीछे चारो तरफ

वर्तकः ॥ ६२ ॥ अगस्त्यउवाच ॥ देवकार्यैकरिष्यामि सुखंतिष्ठवसुन्धरे ॥ गच्छामिदक्षिणामाशां शक्तःशिष्यस्यवारणे ॥ ६३ ॥ वर्द्धनपर्वतस्यास्य वारयामिनसंशयः ॥ देवाऊचुः ॥ याम्यांगत्वासुरैस्सार्द्धं द्रष्टव्योयन्नसंशयः ॥ ६४ ॥ सिंहस्थेभास्करेविप्र येनयास्यन्तिभक्तिः ॥ नश्यतेचधनंधान्यं तेषांसौख्यन्नसंशयः ॥ ६५ ॥ अधिकारायेदेवानां सचदृष्टोभविष्यति ॥ तत्प्रतिज्ञायर्गीर्वाणःसमंयसुधयागताः ॥ ६६ ॥ अगस्त्यंतपसाराशिं निर्गच्छन्तस्समन्ततः ॥ अगस्त्यपदविज्ञेपाच्चलितचवसुन्धरा ॥ ६७ ॥ मनोवेगेनसम्प्राप्तः कौशिकोयत्रतापसः ॥ कौशिकोपिगुरुदृष्ट्वा साष्टाङ्गंप्रणिपत्यच ॥ ६८ ॥ धन्योहंसुनिशार्द्धल प्रीतोहंतवदर्शनत् ॥ अर्घपात्रंसमादाय दध्यक्षतसमन्वितम् ॥ ६९ ॥ दूर्वाचचन्दनंपूज्य भक्त्यापात्रेसमाहितम् ॥ गुरुपादपरिक्षिप्त उवाचमधुरन्तदा ॥ ७० ॥ आदेशो दीयतांतात तवप्रेष्योद्विजोत्तम ॥ अगस्त्यउवाच ॥ देवकार्यंविघातञ्च कौशिकत्वंविसर्जय ॥ ७१ ॥ देवकार्यंवि

से सब चले अगस्त्य के पांवों के धरने से पृथिवी डगमगाती हुई ॥ ६७ ॥ मन के वेगसे वहां पहुँचे जहां तपस्वी विश्वामित्र थे विश्वामित्र भी गुरुको देख साष्टाङ्गप्रणामकर बोले ॥ ६८ ॥ कि हे सुनिशार्द्धल ! मैं धन्यहूँ और आपके दर्शनसे बड़ा प्रसन्न हुआ ऐसे कह दही और अक्षतों से युक्त अर्घपात्र को लेकर ॥ ६९ ॥ पात्रमें रखले हुये दूब व चन्दनसे भक्तिपूर्वक उनका पूजनकर गुरुके चरणोंपर गिरे और तब मीठे वचन बोले ॥ ७० ॥ कि हे तात ! मुझको आज्ञादीजावे हे द्विजोत्तम ! मैं आपका दासहूँ तब अगस्त्य बोले कि हे कौशिक ! देवताओं के कामों का रोंकना तुम छोड़देना ॥ ७१ ॥ हे विश्वामित्र ! जो तुम्हारी निश्चल भक्ति हमारे ऊपर होवे तो देव-

पडनेवाले ! हे गणों के मालिक ! आप के लिये नमस्कार है ॥ ८१ ॥ नन्दी व रकन्द आदि गण व देवता मोह को प्राप्त हो रहे वृथा क्लेश को प्राप्त होते हैं क्योंकि जो सनत्कुमार आदि उत्तम व्रतवाले बड़े २ ऋषिलोग हैं ॥ ८२ ॥ वे भी आपके रूप को नहीं जानते हैं इससे हे शम्भो ! हे नाथ ! आप के लिये नमस्कार है ब्रह्मा आदि मय देवता आपको दिन रात ध्यावते हैं ॥ ८३ ॥ फिर भी ये लोग आप के रूपको नहीं देखते हैं इससे हे धातः, देव ! आपके लिये नमस्कार है तब महादेवजी बोले कि ऊपर रहता है वीर्य जिनका और योनि से नहीं पैदा होनेवाले हे विप्रेन्द्र ! आपसे हम प्रसन्न हैं ॥ ८४ ॥ पार्वती के सहित आपकी भक्ति से बँधे हुये हम फिर भी स्तुते ॥ ८१ ॥ नन्दिस्कन्दगणादेवा वृथाक्लिश्यन्तिमोहिताः ॥ सनत्कुमारमुख्याश्च ऋषयः शंसितव्रताः ॥ ८२ ॥

त्वद्रूपन्तेन जानन्ति शम्भो नाथ नमोस्तुते ॥ ब्रह्माद्या देवतास्सर्वे ध्यायन्ति त्वामहर्निशम् ॥ ८३ ॥ नैते पश्यन्ति त्वद्रूपं धातर्देवनमोस्तुते ॥ ईश्वर उवाच ॥ प्रसन्नस्तव विप्रेन्द्र ऊर्ध्वरेतस्त्वयोनिज ॥ ८४ ॥ तव भक्तिगृहीतो हं प्रसन्न उभया सह ॥ अगस्त्य उवाच ॥ यदि तुष्टोसि देवेश यदि देवो वरो मम ॥ ८५ ॥ प्रत्यक्षो भवतीर्थे स्मिन्यदिसत्यं वरप्रदः ॥ अन्तर्जले सदा कालं धर्म्मोऽध्यक्षो महेश्वर ॥ ८६ ॥ शिलायां भवन्ति त्वञ्च नर्मदा योत्तरे तटे ॥ देवकार्यस्य कर्ता हं त्वत्प्रसादाज्जगत्पते ॥ ८७ ॥ तथेति चोक्त्वा वृषवाहनोऽपि जगाम कैलासनगन्नगेशः ॥ अयोनौ जोगवलेन युक्तः प्रविद्यया लिङ्गबलाच्छिवस्य ॥ ८८ ॥ जगाम दक्षिणामाशां सुरसङ्घैरभिष्टुतः ॥ तपो वनं यथापुण्यं देवदानवसेवितम् ॥ ८९ ॥

प्रविष्टो मुनिशार्दूलः पवित्रं देवकम्बलम् ॥ निश्चला सुसमादेवी संस्थिता धरणी तथा ॥ ९० ॥ पुष्पाणि वष्टुर्देवा जयश प्रसन्न है तब अगस्त्यजी बोले कि हे देवेश ! जो आप प्रसन्न हो और जो आपको मुझे वर देने योग्य है ॥ ८५ ॥ तो जो सत्यही वरके देनेवाले हो तो इस तीर्थ में प्रत्यक्ष होत्रो हे धर्मके मालिक, महेश्वर ! जल के भीतर हमेशा आप रहो ॥ ८६ ॥ और नर्मदा के उत्तरवाले किनारे पर पत्थरकी शिला में भी हमेशा वामकरो और हे जगत्पते ! आपके प्रसाद से देवताओं के कामके करनेवाले हम होवें ॥ ८७ ॥ कैलास पर्वत के मालिक महादेवजी ऐसा ही हो, यह कहकर कैलास पर्वत को चले गये और योगबल व महादेव के बल उत्तम विद्या से युक्त अगस्त्य भी ॥ ८८ ॥ देवताओं से रूति किये गये मुनि श्रेष्ठ दक्षिण दिशाको चले गये देवता व दैत्याँसे सेवित

पुण्यत्राले व पवित्र देवकम्बल नाम तपोवन में पैठतेहुये और पृथिवीदेवी निश्चल व अत्यन्त बराबर होकर स्थित होतीहुई ॥ ८६ ॥ देवतालोग फूलोंकी वर्षा
 व जय जयकार को बार २ करतेहुये युधिष्ठिर बोले कि हे मुनिसुव्रत ! उस तीर्थ की जो पुण्यहो उसको कहो ॥ ८७ ॥ क्योंकि हम ब्राह्मण व भाइयों के सहित हम
 का पूरा हाल सुना चाहते हैं जिससे यह तीर्थ पितर व सब तीर्थों व सब जीवोंका उपकार करनेवाला है ॥ ८८ ॥ मार्कण्डेयजी बोले कि हे जनाधिप ! यह तीर्थ सर्व
 कालमें पितरों को मोक्षका देनेवाला कहागया है कातिक मास के अंधेरेपाखकी शिनचतुर्दशीको ॥ ८९ ॥ काम और क्रोधको छोड़ जो मनुष्य भक्तिमें उपासकर व शर्मा
 ठंदपुनःपुनः ॥ युधिष्ठिरउवाच ॥ तस्यतीर्थस्ययत्पुण्यं कथ्यतांमुनिसुव्रत ॥ ९० ॥ आदिमध्यावसानेच ब्राह्मणैरस्य
 हवान्धैः ॥ पितृणांसर्वतीर्थानां सर्वसत्त्वोपकारकम् ॥ ९१ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ पितृणांमोक्षदंप्रोक्तं सर्वकालेजनाधि
 प ॥ शिवाख्यांकार्तिकेमासि कृष्णपक्षेचतुर्दशीम् ॥ ९२ ॥ उपोष्ययोनरोभक्त्या कामक्रोधविवर्जितः ॥ शर्मातरुम
 मास्थाय रात्रौकुर्वीतजागरम् ॥ ९३ ॥ तत्कथालापसंयुक्तोधर्माख्यानैर्द्विजैस्सह ॥ गवांघृतेनदेवेशं रात्रौचस्नापये
 त्पुनः ॥ ९४ ॥ घटेनैवघटाद्धेन तदद्धेनस्वशक्तिः ॥ घृतेनवोषयेद्दीपं घृतंविप्रायदापयेत् ॥ ९५ ॥ पञ्चामृतेनगव्ये
 न स्नापयेत्परमेश्वरम् ॥ प्रभातेपूजयेद्द्विप्रान्स्वदारनिरतान्सदा ॥ ९६ ॥ वेदाभ्यसनशीलांश्च परदारविवर्जितान् ॥
 शुद्रसेवारतानित्यं धूर्तकर्ममरताजनाः ॥ ९७ ॥ पतिताःकूटसाक्ष्येण प्रतिग्रहरताःसदा ॥ वेदद्वेषणशीलाश्च कुब्जाश्च
 विकलाःसदा ॥ ९८ ॥ हीनातिरिक्तगान्वाये द्विजाःश्राद्धेविवर्जिताः ॥ वेदोक्तेनविशुद्धाङ्गाः पूज्यानित्यंयुधिष्ठिर ॥ ९९ ॥
 वृद्धके नीचे बैठकर रातको जागरण करे ॥ ९० ॥ और महादेवकी कथाको कहे फिर धर्म के कहनेवाले ब्राह्मणों के सहित गौत्रों के घी से रातमें महादेव को स्नान
 करावे ॥ ९१ ॥ एक घड़ा व आधे व उसके आधे घीसे अपनी शक्ति के अनुसार दियाको जलावे बाकी बचे घीको ब्राह्मण को दवे ॥ ९२ ॥ फिर गऊके पञ्चामृत से
 महादेवको स्नानकरावे प्रातःकाल अपनीही स्त्रीके ग्रहण करनेवाले व वेदके अभ्यास करनेवाले व पराई स्त्रीसे विमुख ब्राह्मणोंका सदा पूजनकरे व हमेशा शर्दोंकी सेवामें
 व छलवाले कामों में लगेहुये ॥ ९३ ॥ धर्म से अट व भूँठी साखी देनेवाले व दान के लेनेवाले व बंदों के साथ वैर करनेवाले व कुबरे व विकल ॥ ९४ ॥

व घाट बाढ़ अड़ोवाले जो ब्राह्मण हैं वे श्राद्धमें मना होते हैं और वेदोक्त कामोंके करने से जिनके शरीर शुद्ध हैं वे युधिष्ठिर ! ऐसे ब्राह्मण हमेशा पूजने लायक होते हैं ॥ १०० ॥ पृथिवी, कपड़े और विशेषकर कन्याओं के दानों से ऐसे ब्राह्मण लोग श्राद्धादि योगों में भक्ति में तत्पर पुरुषों करके पोषण करने योग्य हैं ॥ १ ॥ और अपने कल्याण के वास्ते वहा गोदान करना चाहिये दूधवाली बछड़ाके सहित मोटी ताजी, सीधी गऊको देवे ॥ २ ॥ व बडीभक्तिसे दम्बल, खडाऊं, जुता, सोनहली सुजनी, पान व भोजन भी उसके साथमें देवे ॥ ३ ॥ गऊभी घण्टा व जेवरोंसे सजी झूल आदि दो कपड़ोंसे युक्त, सोने के सींगों व रूपेके खुरोंवाली व कानोंकी डोहनी

भूमिदानेन वस्त्रेण कन्यादानैर्विशेषतः ॥ श्राद्धकालेषु योगेषु भर्तव्याभक्तितत्परैः ॥ १ ॥ गोदानं तत्र कर्तव्यं श्रेयो
धर्मात्स नस्तथा ॥ सवत्संक्षीरिणीं शुभ्रां पुष्टां वैशीलसंयुताम् ॥ २ ॥ कम्बलं परयाभक्त्या पादुकोपानहै तथा ॥ हिर
ण्यरुक्मिणीं कन्यां ताम्बूलं भोजनन्तथा ॥ ३ ॥ घण्टाभरणशोभाढ्यां वस्त्रयुगमावगुण्णिठताम् ॥ स्वर्णशृङ्गैरौघ्यसु
रीं कांस्यदोहनसंयुताम् ॥ ४ ॥ उच्चार्य परयाभक्त्या यावदाहूतसंपुवम् ॥ सर्वकोटिगुणंपार्थ शुभं वायदिवानुमम् ॥
५ ॥ तीर्थास्थानञ्च योभक्त्या पठते शृणुतेथवा ॥ मुच्यते सर्वपापेभ्यः शिवलोके वसत्यपि ॥ १०६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे
रेवाखण्डेऽगस्त्यतीर्थवर्णनो नाम पञ्चनवतितमोऽध्यायः ॥ ९५ ॥ * ॥

मार्कण्डेय उवाच ॥ अथानन्देश्वरं गच्छेत्सर्वदेवनमस्कृतम् ॥ रुद्रस्य परमानन्दो यत्र जातो युधिष्ठिर ॥ १ ॥ तर्तीर्थं
कथयिष्यामि सर्वपापक्षयंकरम् ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ आनन्देश्वरं चैव सज्जातो रुद्रस्य द्विजसत्तम ॥ २ ॥ कथयस्व महा
से संयुक्त होवे ऐसी गऊको ॥ ४ ॥ संकटप उच्चारणकर बडीभक्तिसे देवे तो हे पार्थ ! उस तीर्थपर किया गया भला दुरा सब काम प्रलयतक करोडगुना होनाड़े ॥ ५ ॥
इस तीर्थ की कथाको जो भक्तिसे कहता, सुनता है वह सब पापों से छूटजाता है व शिवजी के लोक में रहता है ॥ १०६ ॥ इति पञ्चनवतितमोऽध्यायः ॥ ९५ ॥
मार्कण्डेयजी बोले कि हे युधिष्ठिर ! अब इसके बाद सब देवताओं से नमस्कार किये हुये आनन्देश्वर को जावे जहा महादेवजी को बडा आनन्द हुआ है ॥ १ ॥
सब पापोंके नाश करनेवाले उस तीर्थको हम तुममे कहेंगे तब युधिष्ठिर बोले कि हे द्विजसत्तम ! जहा महादेवको आनन्द हुआ है ॥ २ ॥ हे मुनिरात्तम ! उस तीर्थ

को संक्षेप से कहो तब मार्कण्डेयजी बोले कि हे नृपश्रेष्ठ ! उत्तम आनन्देश्वर तीर्थको हम कहते हैं ॥ ३ ॥ दानवों को मारकर देवताओं के देवता महादेवजी देवता, किन्नर, यक्ष और सांप आदि सबोंसे पूजेगये ॥ ४ ॥ बड़े आनन्द को पाकर व भैरवरूप को धरकर पार्वती को आधे अङ्गमें धरेहुये महादेवजी नाचतेहुये ॥ ५ ॥ हे पाण्डुनन्दन ! मृत, वेताल, कङ्काल और भैरवों से युक्त नर्मदा के उत्तर व दक्षिणवाले किनारे पर नाचे ॥ ६ ॥ प्रसन्न होरहे देवताओं ने वहा कमल के आसन पर महादेव को स्थापित किया तब से महादेव आनन्देश्वर कहेजाते हैं ॥ ७ ॥ हे नराधिप ! श्रष्टमी व चौदस व पूर्णमासी को विधि से स्नानकर महादेव का पूजन

भागसंक्षेपान्मुनिसत्तम ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ कथयामि नृपश्रेष्ठ आनन्देश्वरमुत्तमम् ॥ ३ ॥ दानवानां वधं कृत्वा देव देवश्च शङ्करः ॥ पूजितो देवतैस्सर्वैः किन्नरैर्यक्षपन्नगैः ॥ ४ ॥ आनन्दं परमं प्राप्य ननर्तव्यं वाहनः ॥ भैरवं रूपमासाद्य गौरीचान्दोद्धारिता ॥ ५ ॥ मृतवेतालकङ्कालैर्भैरवैर्भैरवो वृतः ॥ नर्मदायोत्तरतीरे दक्षिणे पाण्डुनन्दन ॥ ६ ॥ तुष्टैर्म रुद्रैः स्तत्र स्थापितः कमलासनः ॥ तदा प्रभृतिवैदेव आनन्देश्वर उच्यते ॥ ७ ॥ अष्टभ्याञ्च तदर्श्यां पूर्णमास्याङ्गरा धिप ॥ विधिस्नान्वाचयेद्देवं सुगन्धेन विलोपयेत् ॥ ८ ॥ ब्राह्मणान् पूजयेत्तत्र यथाशक्त्या युधिष्ठिर ॥ गोदानं तत्र कर्तव्यं वस्त्रदानं तथैव च ॥ ९ ॥ वसन्तस्य त्रयोदश्यां श्राद्धं तत्रैव कारयेत् ॥ इङ्गुदेवदेवैर्विलैरक्षतेन जलेन वा ॥ १० ॥ प्रेतानां कारयेच्छ्राद्धमागन्देश्वरतीर्थके ॥ प्रेता आनन्दिताः स्युस्ते यावदाहृतसंस्पृशम् ॥ ११ ॥ सन्ततिष्ठन् सौख्यं च समज न्मनिजायते ॥ आनन्दश्च भवेत्तेषां जन्मजन्मयुधिष्ठिर ॥ १२ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ ततो गच्छेत्तुराजेन्द्र मातृतीर्थे

करे और सुगन्ध से उनको लेपनकरे ॥ ८ ॥ और हे युधिष्ठिर ! वहां यथाशक्ति ब्राह्मणों का पूजनकरे फिर वहां गोदान वैसेही वस्त्रोका भी दान करना चाहिये ॥ ९ ॥ वसन्तकी तेरस को इंगुश्रा, बेर, बेल, अक्षत और जलसे भी वहीं श्राद्ध करे ॥ १० ॥ व आनन्देश्वरतीर्थ में प्रेतोंके श्राद्धको करे तो वे प्रेत महाप्रलय तक आनन्दवान् रहते हैं ॥ ११ ॥ सन्तान और धनका सुख सात जन्मोंतक रहता है और हे युधिष्ठिर ! उनको जन्म २ प्रति आनन्द होता है ॥ १२ ॥ मार्कण्डेयजी बोले कि हे

राजेन्द्र ! तदनन्तर अत्युत्तम मातृतीर्थको जात्रे जोकि नर्मदाके दक्षिणवाले किनारेपर सङ्गम के समीपमें है ॥ १३ ॥ हे राजेन्द्र ! नर्मदा के तटमें मातृका रहती थी मो किसी समय पार्वतीने महादेवसे याचना की ॥ १४ ॥ तब महादेवने उन योगिनियोंसे कहा कि कष्ट २ अच्छा नहीं है परन्तु बोले कि योगियों के वर देनेवाले हम तुम को भी वर देवेंगे ॥ १५ ॥ तब योगिनियां बोलीं कि हे महेश्वर ! आपके प्रसाद से हमलोग सब देवताओं के जीतनेलायक न होंगे और तीर्थोंके साथ प्रथिवी में हम भी प्रसिद्ध होंगे ॥ १६ ॥ तब महादेव ने कहा कि हे योगिनियो ! ऐमाही हो यह कहकर वहीं अन्तर्धान होगये ॥ १७ ॥ मार्कण्डेयजी बोले कि उस तीर्थमें नवमी को

मनुत्तमम् ॥ सङ्गमस्यसमीपस्थं नर्मदादक्षिणे तटे ॥ १३ ॥ मातरस्तत्र राजेन्द्र संजातान् नर्मदा तटे ॥ उमयायाचि तस्तत्र व्यालयज्ञोपवीतकः ॥ १४ ॥ उवाच योगिनी वृन्दं कष्टं कष्टं शोभनम् ॥ उवाच वरदश्चास्मि योगि वृन्दवरप्रदः ॥ १५ ॥ योगिन्युरुचुः ॥ अजेयास्सर्वदेवानां त्वत्प्रसादान्महेश्वर ॥ तीर्थानामभिसंख्यानं प्रख्यातावसुधातले ॥ १६ ॥ एवं भवतु योगिन्यस्तत्रैवान्तरधीयत ॥ १७ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ तस्मिंस्तीर्थे तु यो मर्त्यो न वन्द्यां विजितेन्द्रियः ॥ उपोष्य परयाभक्त्या पूजयेन्मातृमण्डलम् ॥ १८ ॥ तस्य तामातरः प्रीताः प्रीतो गृह्यपवाहनः ॥ बन्धयायाभृतवत्साया अ पुत्राया युधिष्ठिर ॥ १९ ॥ स्नपनं चारभेत्तत्र मन्त्रज्ञैर्ब्राह्मिणोत्तमैः ॥ सहिरण्येन कुम्भेन पञ्चरत्नफलान्वितम् ॥ २० ॥ स्नापयेत्पुत्रकामाच कांस्यपात्रेण मन्त्रतः ॥ पुत्रान्सालभते नारी वीर्ययुक्ता नृणां न्वितान् ॥ २१ ॥ गन्धकाममभि ध्यायेत्तं सालभते नृप ॥ मातृतीर्थात्परन्तीर्थं नास्त्यन्यत्पाण्डुनन्दन ॥ २२ ॥ तस्यैवानन्तरं तात जलमध्येश्वर

बड़ी भक्ति से इन्द्रियोंको जीतेहुये जो मनुष्य उपासा रहकर मातृकाओं का पूजन करता है ॥ १८ ॥ उसपर वे मातृकायें व ये महादेवजी प्रसन्न होते हैं और हे युधिष्ठिर ! बांभ व जिसके लडके मरजाते हैं व जिसके पुत्र नहीं है ऐसी स्त्री ॥ १९ ॥ वहा वेदके जाननेवाले उत्तम ब्राह्मणों से महादेवजी का सोना व घड़ा व पञ्चरत्न व फलोंसे युक्त स्नान कराना आरम्भ करे ॥ २० ॥ व जो पुत्रकी इच्छावाली स्त्री मंत्रों द्वारा कांसे के पात्रमे महादेव को स्नान करावे तो वह ताकतवाले व गुणोंसे युक्त लड़कों को पावेगी ॥ २१ ॥ हे नृप ! और भी जिस २ कामनाको करे उस २ को वह पाती है और हे पाण्डुनन्दन ! इस मातृतीर्थ से परे और तीर्थ नहीं है ॥ २२ ॥

हे तात ! अब उसी तीर्थ के बाद पानीमें शिवजी का उत्तम लिंग है देवता और दैत्योंसे नमस्कार किया गया लिङ्गेश्वर इस नामसे प्रसिद्ध है ॥ २३ ॥ तब युधिष्ठिर जी बोले कि जिस नर्मदा को महादेवजी ने कभी नहीं छोड़ा उसको कैमे छोड़ा और जिनके हाथमें त्रिशूल है व जो पिनाक धारण करनेवाले हैं ऐसे महादेव जी पानीके बीचमें कैसे रहते हैं ॥ २४ ॥ हे द्विजोत्तम ! सो हम आपकी वाणीसे सुना चाहते हैं तब मार्कण्डेयजी बोले कि हे पाण्डुनन्दन ! इस लोकमें यह आश्चर्य रूप महादेवजी की प्रतिष्ठा है ॥ २५ ॥ हम पाण्डित हैं बुढ़ापे के कारण आप से कहते हैं हे नृपोत्तम ! आगे सत्ययुगमें हे तात ! अपने बलसे अहङ्कार को प्राप्त एक

म्परम् ॥ लिङ्गेश्वरमितिख्यातं सुरासुरनमस्कृतम् ॥ २३ ॥ युधिष्ठिरउवाच ॥ अत्यक्तासातुरेवाया कथं त्यक्ताचशम्भुना ॥ जलमध्ये हितिष्ठेत् शूलपाणिः पिनाकधृक् ॥ २४ ॥ तदहं श्रोतुमिच्छामि तव वाक्याद्विजोत्तम ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ आश्चर्य्यभूतालोकैस्मिन्प्रतिष्ठापाण्डुनन्दन ॥ २५ ॥ पाण्डितो बृद्धभावेन कथयामि नृपोत्तम ॥ आदौ कृतयुगे तात दानवो बलदर्पितः ॥ २६ ॥ कालबाष्प इति प्रोक्तो दुर्जयो देवदानवैः ॥ तपश्चचारविपुलं नर्मदायाजले शुभे ॥ २७ ॥ आराधयन् महादेवमुग्रेण तपसाभुशम् ॥ ततस्ततोषभगवान्सपत्नीकोमहेश्वरः ॥ २८ ॥ ईश्वर उवाच ॥ भो भो वत्सवरं ब्रूहि तुष्टो हंतव्यमस्मिन् ॥ देवस्य वचनं श्रुत्वा कालबाष्पोऽब्रवीद्वचः ॥ २९ ॥ देवाश्चैव मया भग्नाः प्रसादात्तव शूलिनः ॥ संश्रामे च विषण्णे हं तस्मादाराधनं कृतम् ॥ ३० ॥ हस्तं शिरसि यस्यैव दास्यामि च महेश्वर ॥ न स जीवेत्पुनर्माँल्लोके वरमेतं ददस्व मे ॥ ३१ ॥ ईश्वर उवाच ॥ यत्ते मिलाषितं दैत्य तत्तथैव भविष्यति ॥ इति श्रुत्वा बभौ दैत्यः

दानव होता हुआ ॥ २६ ॥ कालबाष्प इस नामसे कहा जाता देवता और दैत्यों से नहीं जीता जासका, नर्मदा के उत्तमजल में बड़ी तपस्या को करता हुआ ॥ २७ ॥ और उस अतिकठिन तपस्या से महादेवको प्रसन्न करता हुआ तदनन्तर पार्वती सहित महादेवजी उसपर प्रसन्न हुये ॥ २८ ॥ और महादेवजी बोले कि हे वत्स ! तुम वरको माँगो हम तुम्हारी भक्तिसे प्रसन्न हैं तब महादेवके वचनको सुनकर कालबाष्प वचन बोला ॥ २९ ॥ कि त्रिशूलवाले आपके प्रसाद से मैंने सब देवताओं को जीत लिया है अब लड़ाई से मैं विरक्त हूँ इससे आपकी सेवा की है ॥ ३० ॥ इससे हे महेश्वर ! मैं जिसके शिरपर अपना हाथ रख देऊँ वह पुरुष लोकमें न

जीवे बस इस वरको आप मुझे दें ॥ ३३ ॥ तब महादेवजी बोले कि हे दैत्य ! जो तेरे मनमें है वह वैसाही होगा यह वचन सुनकर वह दैत्य महादेवजी के सामने दौड़ा ॥ ३२ ॥ और कहा कि तुम्हारे शिरपर हम हाथ धरेंगे क्योंकि तुम्हारा वचन सच्चा नहीं है तब उसने भागेहुये महादेवजी विष्णुजी की शरण गये ॥ ३३ ॥ विष्णु से सब हाल कहकर फिर उन्हीं में आप लीन होगये विष्णु बोले कि हे महादेव ! दैत्योके मालिक उस दुष्टको हम मारते हैं ॥ ३४ ॥ हे महेश्वर ! हम उसीके शिरपर उसका हाथ रखवाय देंगे तबनन्तर बड़े वेगसे युक्त नर्मदातटमें प्रवेश किया ॥ ३५ ॥ स्त्री के रूपको धरेहुये भगवान् दैत्य के रानने आतेहुये वत्तीस लक्ष्मणों से

शम्भुमेवाभिदुहुवे ॥ ३२ ॥ हस्तंतेभूद्विदास्यामि नतत्सत्यंवचस्तव ॥ रुद्रःपलायितस्तेन केशवंशरणङ्गतः ॥ ३३ ॥
निर्वद्यकेशवंसर्वं तस्मिन्नेवन्यलीयत ॥ केशवउवाच ॥ हन्म्यहन्तंमहादेव दुष्टदैत्यजनेश्वरम् ॥ ३४ ॥ हस्तंशिरसि
तस्यैवदापयामिमहेश्वर ॥ ततस्त्वरितमापन्नःप्रविष्टोनर्मदातटे ॥ ३५ ॥ कृष्णःस्त्रीविपधारीच दैत्यसम्मुखमागतः ॥
हान्निशछत्तणोपेता नियुक्ताकामसायकैः ॥ ३६ ॥ मधुमाधवकेशम्भुं ध्यात्वासर्वत्रकैशवी ॥ वनंवभ्रामसर्वत्रसुशीलाव
टपादपम् ॥ ३७ ॥ क्षोभयन्तीचित्तानि सारमेधर्मनन्दन ॥ रिङ्गमाणश्चदैत्योसौ कालबाष्पस्सुहुर्जनः ॥ ३८ ॥ प्रविष्टस्स
वनेरम्ये यत्रसाक्षुभलोचना ॥ अहंभवामितेभर्तादुर्जयोदेवदानवैः ॥ ३९ ॥ त्रैलोक्यस्वामिनीत्वंच प्रसीदममसुन्दरि ॥
श्रीकृष्णउवाच ॥ यदिमामन्यसेभार्य्या प्रत्ययश्चभवेन्मम ॥ ४० ॥ दानवउवाच ॥ स्वयंभवामितन्वज्जि शपथंममसा

युक्त कामदेवके बाणों से भरीहुई ॥ ३६ ॥ वसन्तऋतुमें महादेवजी का सर्वत्र ध्यानकर उत्तम शीलवाली भगवती वह स्त्री सब कहीं जिसमें एक बड़ा वरगदका वृक्ष था ऐसे वनमें घूमतीहुई ॥ ३७ ॥ हे धर्मनन्दन ! सबोंके चित्तोंको खलभलाती हुई वह रमण करती थी तत्रतक वह दुर्जन कालबाष्प दानव भी घूमताहुआ ॥ ३८ ॥ जहां वह सुन्दर नेत्रवाली स्त्री थी उस रमणीक वनमें पैठताहुआ और उस स्त्रीसे बोला कि हम तेरे पति होवेंगे जोकि देवता और दानवोंसे नहीं जीते जासकें हैं ॥ ३९ ॥ तू तीनों लोकोंकी मालाकिनी होवेगी इससे हे सुन्दरि ! मुझपर प्रसन्नहो तब भगवान् बोले कि जो आप मुझको अपनी स्त्री मानते हो और मेरा तुम्हें विश्वासहै

तो हमाग कहना करो ॥ ४० ॥ तव दानव बोला कि हे तन्वङ्गि ! मैं खुद आपका दास हूँ इसमें मेरी कसमको प्रमाण समझो हम वही करेंगे जो तुम कहोगी यह हमारा कहना सत्य है ॥ ४१ ॥ तब वह स्त्री बोली कि हमारे कहनेको करो हे महाभाग ! अपना हाथ अपने शिरपर धरो मार्कण्डेयजी बोले कि हे राजेन्द्र ! उस कामान्धने माथेपर हाथको रखना ॥ ४२ ॥ तो उसी क्षणमे भस्म होगया जैसे खरही भस्म होजावे उस समय में भगवान् के ऊपर फूलोंकी वर्षा हुई ॥ ४३ ॥ जलन जिनकी जातीरही ऐसे सब देवतालोन अपने स्थान स्वर्गको चलेगये कालबाष्पके मरनेपर विष्णुभी क्षीरसमुद्रको चलेगये ॥ ४४ ॥ जो दानवके इस चरित्रको भक्तिसे सुनताहै और काम क्रोध

धनम् ॥ तदहञ्चरिष्यामि इति मे सत्यमापितम् ॥ ४१ ॥ स्त्र्युवाच ॥ कुरुष्व त्वं महाभाग शिरोहस्ते प्रदीयताम् ॥ मा कर्ण्डेय उवाच ॥ कामान्धेनैव शजेन्द्र निक्षिप्तो मस्तके करः ॥ ४२ ॥ तत्क्षणादभवद्भस्म दग्धस्तृणचयो यथा ॥ केश वस्योपरितदा पुष्पवृष्टिः पपात ह ॥ ४३ ॥ गतास्सर्वे दिवन्देवास्स्वस्थानं विगतज्वराः ॥ क्षीराब्धि मगमद्विष्णुः काल बाष्पे निपातिते ॥ ४४ ॥ यद्दंष्ट्रं शृणुयाद्भक्त्या चरितं दानवस्य च ॥ श्राद्धं तत्रैव यः कुर्यात्कामक्रोधविवर्जितः ॥ ४५ ॥ उद्धृतास्तेन भवैवै नरकाच्च पितामहाः ॥ क्षेत्रे तस्मिन्स्तु यो दद्याद्ब्राह्मणे देवपारमे ॥ ४६ ॥ तस्य दानफलं सर्वं कुरुक्षेत्रा द्विशिष्यते ॥ स्पर्शं ते यद्ददं लिङ्गं शङ्करेण च निर्मितम् ॥ ४७ ॥ स्पर्शमात्रो मनुष्यस्तु रुद्रवायोऽभिजायते ॥ एतस्मात्कारणाद्राजलै लोकपालाश्च देवताः ॥ ४८ ॥ दुर्गादेवी तथा चैव मधुहन्ता चतुर्भुजः ॥ दानवाद्याश्च सर्वेऽपि रक्षणे चेश्वरस्य च ॥ ४९ ॥ रक्षन्ते च सदा कालं गृहव्यापाररूपतः ॥ पुत्रभ्रातृसमाभूत्वा स्वामिसम्बन्धरूपिणः ॥ ५० ॥ लिङ्गेऽश्नन्तु

से रहित होकर जो वहां श्राद्ध करता है ॥ ४५ ॥ उसने मानो नरक से अपने सब पितरों को उद्धार कर लिया और उस क्षेत्रमें जो वेदपाठी ब्राह्मण को दान देता है ॥ ४६ ॥ उसके दानका सब फल कुरुक्षेत्र से विशेष होता है और महादेव के बनाये हुये इस लिङ्गको जो छूता है ॥ ४७ ॥ वह मनुष्य छूनेही से रुद्रलोकमें वास करता है हे राजन् ! इसी कारणसे लोकपाल देवता ॥ ४८ ॥ दुर्गादेवी, चार भुजावाले विष्णु, दानवआदि सभी महादेवजी की रक्षामें रहते हैं ॥ ४९ ॥ लड़के, भाई और स्वामी

आदि नातेकी तरह होकर घरके कामोंकी नाई हमेशा रक्षा किया करतेहैं ॥ ५० ॥ हे राजेन्द्र ! लिङ्गेश्वर आजभी देवताओंसे रक्षा कियाजाता है ॥ ५१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणरेवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनुवादेभस्मासुरवधोनामषष्ठ्यनतितमोऽध्यायः ॥ ६६ ॥

मार्कण्डेयजी बोले कि हे राजेन्द्र ! तदनन्तर सब पापों के क्षय करनेवाले नर्मदा के दक्षिणवाले किनारेपर विद्यमान उत्तम धनद नाम के तीर्थको जावे ॥ १ ॥ वहां सब तीर्थों का फल प्राप्त होताहै इस में संशय नहीं है चैतमास के उजियाले पाखकी तेरसको इन्द्रियों को जीतेहुये मनुष्य ॥ २ ॥ उपासकर बड़ी भक्ति से रात

राजेन्द्र देवैरद्यापिरक्ष्यते ॥ ५१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणरेवाखण्डेभस्मासुरवधोनामषष्ठ्यनतितमोऽध्यायः ॥ ९६ ॥

मार्कण्डेयउवाच ॥ ततो गच्छेच्च राजेन्द्र धनदन्तीर्थमुत्तमम् ॥ नर्मदादक्षिणकूले सर्वपापक्षयङ्करम् ॥ १ ॥ सर्व तीर्थफलं तत्र प्राप्य तेनात्र संशयः ॥ चैत्रमासे त्रयोदश्यां शुक्लपक्षे जितेन्द्रियः ॥ २ ॥ उपोष्य परयाभक्त्या रात्रौ कुर्वीत जागरम् ॥ पञ्चामृतं नराजेन्द्र स्नापयेद्हरदं विभुम् ॥ ३ ॥ पूजयेद्भक्तियुक्तेन गीतवाद्यं प्रदापयेत् ॥ प्रभाते पूजयेद्विप्रा नारमनः श्रेयश्च ॥ ४ ॥ प्रतिग्रहं विभुक्ताश्च विद्यासिद्धान्तवादिनः ॥ भर्तव्याहिप्रियैर्भक्त्या परिवादविवर्जिताः ॥ ५ ॥ पूजयेद्गौहिरण्येन वस्त्रालङ्करणेन च ॥ हस्त्यश्वरथदानेन सर्वपापक्षयो भवेत् ॥ ६ ॥ त्रिजन्मजनितं पापं धनदस्य प्रभावतः ॥ स्वर्गदण्डदुर्विनीतानां विनीतानां च मुक्तिदम् ॥ ७ ॥ धनवान्सुनरायाश्च भवेज्जन्मनि जन्मनि ॥ कुलीनत्वं

को जागरण करे और हे राजेन्द्र ! वर के देनेवाले महादेवको पञ्चामृत से नहवावे ॥ ३ ॥ भक्तिसे पूजनकरे और गावे बजावे अपने कल्याणकी इच्छा करता हुआ प्रातःकाल ब्राह्मणों का पूजन करे ॥ ४ ॥ जो ब्राह्मण दान नहीं लेते हैं और विद्याके सिद्धान्तों को जानते हैं किसी की निन्दा नहीं करते ऐसे ब्राह्मणों का भक्ति और प्यार से भरण पोषण करे ॥ ५ ॥ गौर्वे, सोना, कपड़े, जेवर, हाथी, घोड़े और रथों के दानसे उनका पूजन करे तो सब पापोंका नाश होजावे ॥ ६ ॥ धनदतीर्थ के प्रभाव से तीन जन्मोंका पाप नष्ट होजाताहै यह नीर्थ पापियों को स्वर्गका देनेवाला और सज्जनो को मुक्तिका देनेवाला है ॥ ७ ॥ हे नरव्याघ्र ! वह जन्म २ में धनी

होता है कुलीन और सुन्दर रूपवाला होता है दुःख उसको कभी नहीं होता है ॥ ८ ॥ और धनद तीर्थकी सेवासे सेवकों को रोगका डर नहीं होता बल्कि वह आनन्द रहता है धनदके तीर्थ में जो विद्या को देता है ॥ ९ ॥ वह सब दुःखों से छूटा हुआ सूर्य के लोक को जाता है मार्कण्डेयजी बोले कि हम तुम से पुराने इतिहास को कहेंगे ॥ १० ॥ सब लोकों में उत्तम कश्यपमुनि की दो स्त्रियां होती हुई विनता के पुत्र गरुड और कद्रूके सर्प होते हुये ॥ ११ ॥ हे नात ! वे दोनों कश्यप के घरमें सन्तोष से रहती थीं उनमें कद्रूकी बहन विनता पतिको प्यारी थी ॥ १२ ॥ कश्यप प्रजापति विनता के साथ विहार किया करते थे तदनन्तर हे पार्थ ! एक दिन

स्वरूपत्वं दुःखं नास्ति निरन्तरम् ॥ ८ ॥ व्याधेस्तु नभयं तेषां नन्देद्धनदसेवनात् ॥ धनदस्य च यस्तर्था विद्यावैप्रददा
ति हि ॥ ९ ॥ सयाति भास्करं लोकं सर्वदुःखविवर्जितः ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ अहं ते कथयिष्यामि चेति हासम् पुरातनम् ॥
१० ॥ हे भार्ये कश्यपस्यास्तां सर्वलोकेष्वनुत्तमैः ॥ गरुत्मान् विनतापुत्रः कद्रुपुत्रो रगाः स्मृताः ॥ ११ ॥ सन्तोषेण द्वयं ता
त तिष्ठतः काश्यपे गृहे ॥ कद्रास्तु भगिनी तत्र इष्टा च विनता तथा ॥ १२ ॥ क्रीडेद्विनताया सार्द्धं कश्यपोऽपि प्रजापतिः ॥ त
तस्त्वेकदिने पार्थ आश्रमस्थः सुशोभना ॥ १३ ॥ उच्चैः श्रवो हयं दृष्ट्वा अतिवेगं नभः स्थितम् ॥ पश्य पश्य च तन्वद्भिः अ
श्वं सर्वत्र पण्डुरम् ॥ १४ ॥ धावमानमविश्रान्तं जवेन मानसोपमम् ॥ कथमेतत्तु तन्वद्भिः कृष्णं जल्पसि पा
ण्डुरम् ॥ १५ ॥ असत्यं भाषितं भद्रे यमलोकं गमिष्यसि ॥ विनतो वाच ॥ सत्यान्ते तु वचने पणोयं मे स्तुतेऽधुना ॥ १६ ॥
सहस्रं चैव वर्षाणामज्ञात्वा दास्यतां ब्रजेत् ॥ असत्यायदि मेवाणी कृष्ण उच्चैः श्रवाहयः ॥ १७ ॥ तदा हन्तव्यं दृष्टे ह दासी स

आश्रममें बैठी हुई अतिशोभावाली विनता ॥ १३ ॥ आकाशमें टिके हुये बड़े तेज वाले उच्चैः श्रवा घोड़ेको देखकर बोली कि हे तन्वद्भिः ! सब सफेद घोड़ेको देखो ॥ १४ ॥
विश्राम नहीं लेता दौड़ रहा तेजी में मन्त्रके बराबर है तब कद्रू बोली कि हे तन्वद्भिः ! कालेको तुम सफेद कैसे कहती हो ॥ १५ ॥ हे भद्रे ! तुम्हारा कहना झूठ है तुम
यमलोक को जावोगी तब विनता बोली कि अभी हमारी तुम्हारी झूठी सांजी बात में शर्त होजावे ॥ १६ ॥ कि जिसकी बात झूठ हो वह सब्जी बातवाली की एक

हजार वर्षतक लौंडी रहे जो हमारी बात झूठहोवे कि उच्चैःश्रवा घोड़ा कालाहो ॥ १७ ॥ तो हम तुम्हारे घरमें हमेशा दासी रहेगी और जो उच्चैःश्रवा सफेद होवे तो तुम हमारे घरमें दासी होवो ॥ १८ ॥ इस प्रकार दोनों आपसमें दासी बननेको कहरही थीं तबतक कद्रू अपने घरको गई और रातमें बड़ी चिन्ता करती रही ॥ १९ ॥ और हे पार्थ ! अपने पुत्रोंसे कहा कि उस सफेद घोड़ेको मैंने काला कहदिया और शर्तभी की है ॥ २० ॥ सर्पोंने इस बात व माता की शर्तको भी सुना तब सर्पोंने कहा कि अब तो तुम दासी होगईहो सन्देह नहीं है क्योंकि सूर्यका घोड़ा तो सफेदहीहै ॥ २१ ॥ तब कद्रू बोली कि जिस तरह हम दासी न होवें ऐसा काम सोचाजावे उच्चैःश्रवा

वैदेवमवामिहि ॥ यदितूच्चैःश्रवाःइवेतो दासीत्वंसद्गृहेषुनः ॥ १८ ॥ एवंपरस्परंद्वाभ्यां दासीयमब्रवीदिति ॥ स्वाश्रमं हि गताकद्रूरात्रौचिन्तातुरास्थिता ॥ १९ ॥ इवेतवर्णन्तुकथितं ह्यामन्तमद्वकन्तदा ॥ पुत्राणांकथितंपार्थ पणश्चैवकृतो मया ॥ २० ॥ श्रुतंसर्वैस्तथावाक्यं सर्पैर्मातृपणस्तदा ॥ जातादासीनसन्देहः इवेतोभास्करवाहनः ॥ २१ ॥ कद्रूरुवाच ॥ यथाहन्नभवेदासी तत्कार्यञ्चविचिन्त्यताम् ॥ उच्चैःश्रवोरामकूपे विशध्वंयूयमेवच ॥ २२ ॥ एकमुहूर्तंतिष्ठध्वं यावत्कृष्णःप्रहृश्यते ॥ ज्ञेयैकैकभवतां दासीसाभवतेमम ॥ २३ ॥ दासीत्वेयातुतन्वल्ली विनतासत्यगर्विता ॥ ततःस्वस्थानगारसर्वे भवन्तुखिनस्सदा ॥ २४ ॥ सपर्पाऊचुः ॥ यथात्वंजननीचैव सर्वेषांभुविपन्नगी ॥ तथासापिविशेषेण वञ्चितव्यानमातृपत् ॥ २५ ॥ ततस्सतेनवाक्येन क्रुद्धाकालानलोपमा ॥ समवाक्यमकुर्वाणा येकेचिद्विपन्नगाः ॥ २६ ॥

घोड़ेके रोवोंके छेदोंमें तुम सब पैठजावो ॥ २२ ॥ जबतक दो घड़ीहों तबतक स्थित बनेरहो वह काला देखपड़ेगा तुमलोगों के इस तरहक्षणमात्र रहने से वह हमारी दासी होजावेगी ॥ २३ ॥ सत्य के अहङ्कार को प्राप्तहोरही सूक्ष्माङ्गी विनता दासीपनेको प्राप्त होजावेगी तदनन्तर फिर तुम सब अपने स्थानों को जाकर सुखी होवो ॥ २४ ॥ तब सर्प बोले कि जैसे पृथ्वीमें तुम सब साँपोंकी माता पन्नगीहो ऐसेही वह भी हमारी विशेषसे माताके तुल्य है इससे छल करनेलायक नहीं है ॥ २५ ॥ तदनन्तर वह उनके उस वचन से प्रलय के अग्नि के समान नाराज होतीहुई और बोली कि हमारे वचन को नहीं करनेवाले पृथिवी में जितने साँप हैं ॥ २६ ॥

वे सब बेविचारवाले आगी के मुहमें जावेंगे इस बातसे डरेहुये सांप घोड़े के रोवों में लपटगये ॥ २७ ॥ और कोई कट्टके शापके डरसे युक्त दिव्य दिशाओं को भाग गये कोई गङ्गाके जलमें छिपे और कोई सरस्वती में छिपे ॥ २८ ॥ कोई समुद्रको चलेगये कोई विन्ध्यपर्वत की खोहों में छिपरहे और हे नृप ! उत्तम मणिनाग नर्मदाके जलके आश्रित होकर ॥ २९ ॥ नर्मदा के उत्तरवाले किनारे पर भक्तिसे बड़े तपको करताहुआ माताके शापको धरंहुये नर्मदा के जलमें पैठगया ॥ ३० ॥ तब और महादेव से प्रार्थना करताहुआ कि हे नाथ ! आपके प्रसादसे हम माताके शापको तरजावें हे जगत्पते ! जिससे हम आगके मुखमें न जावें सो करो ॥ ३१ ॥ तब

हव्यवाहमुखं सर्वं यास्यन्तीत्यविचारिणः ॥ तेनवाक्येनभीतास्ते हयरोमसुवेष्टिताः ॥ २७ ॥ नष्टाः केचिद्दिशा दिव्याः कट्टशापभयान्विताः ॥ केचिद्गङ्गाजलेनष्टाः केचिन्महोदधिनीताः प्रविष्टावि न्ध्यकन्दरे ॥ आश्रित्यनर्मदातोयं मणिनागोत्तमो नृप ॥ २८ ॥ चचारविपुलं भक्त्या उत्तरेनर्मदातटे ॥ मातृशा पधरोनागः प्रविष्टो नर्मदाजले ॥ ३० ॥ त्वत्प्रसादेनभोनाथ मातृशापंतराम्यहम् ॥ हव्यवाहमुखं यस्मात्प्रयामिनज गत्पते ॥ ३१ ॥ ईश्वरउवाच ॥ हव्यवाहमुखं वत्स नयास्यसिममाज्ञया ॥ समलोकनिवासोपि तवपुत्रमविष्यति ॥ ३२ ॥ मणिनागउवाच ॥ अस्मिन्स्थाने महादेव स्थीयंतामंशभागतः ॥ सहस्रांशेनभागेन स्थीयतां नर्मदाजले ॥ ३३ ॥ उप कारायलोकानां ममनाम्नाचशङ्कर ॥ ईश्वरउवाच ॥ स्थापयस्वपरं लिङ्गमाज्ञायामपपन्नग ॥ ३४ ॥ इत्युक्त्वान्तर्दधेद वस्तुदैवशिवयासह ॥ तत्रतीर्थेतुयेभक्त्या शुचयो घृतमानसाः ॥ ३५ ॥ पञ्चम्याञ्चचतुर्दश्यामष्टम्यांशुक्लपक्षके ॥ अ

महादेव बोले कि हे वत्स ! हमारी आज्ञा से आगके मुखमें तुम नहीं जावोगे और हे पुत्र ! तुम्हारा निवास हमारे लोकमें होगा ॥ ३२ ॥ तब मणिनाग बोला कि हे महादेव ! अपने अंशसे इस स्थान में आप टिकें हजारवे अंशसे नर्मदाके जलमें आप ठहरें ॥ ३३ ॥ लोकोंके उपकार के वास्ते हे शङ्कर ! मेरे नामसे प्रसिद्ध हूँ जिये महादेव ! तब महादेव बोले कि हे पन्नग ! हमारी आज्ञासे तुम श्रेष्ठलिङ्गको स्थापितकरो ॥ ३४ ॥ यह कहकर पार्वतीसहित महादेवजी उसी समय अन्तर्धान होगये उस तीर्थमें मन

को वरा कियेहुये व पवित्र जो मनुष्य भक्तिसे ॥ ३५ ॥ उलियाले पाखकी पंचमी व चौदस व अष्टमी को हे पार्थ ! सदा पूजन करते हैं वे यमराजके पास नहीं जाते हैं ॥ ३६ ॥ दही, शहद, घी और दूध से जो मनुष्य पार्वतीको आधेअङ्ग में धरेहुये महादेवको नहवाते हैं ॥ ३७ ॥ कामदेव के जलानेवाले व बड़े २ दैत्योंके मारनेवाले शङ्करजी को भक्तिसे जो लोग स्नान कराते हैं वे परमपदको देखते हैं ॥ ३८ ॥ और हे तात ! जो शूद्रोंकी सेवाको नहीं करते और अपने छहों कमोंके करनेवाले ब्राह्मण हैं वे भी सब पापोंसे रहित होकर श्रेष्ठलोक को जाते हैं ॥ ३९ ॥ संस्कारहीन, क्षत्रियके कामों के करनेवाले, नपुंसक, सूदके खानेवाले, किसान और नारितक

चैयन्ति सदापार्थ नोपसर्पन्ति ते यमम् ॥ ३६ ॥ दधनाचमधुना चैव घृतेन क्षीरतोजनाः ॥ स्नापयन्ति विरूपाक्षमुमा
देहाब्धधारिणम् ॥ ३७ ॥ कामाङ्गदहनन्देवं महासुरनिषूदनम् ॥ संस्नापयन्ति ये भक्त्या पश्यन्ति परमं पदम् ॥ ३८ ॥
षट्कर्मनिरतास्तात शुद्रप्रणयवर्जिताः ॥ तेष्यान्ति परं लोकं सर्वपापविवर्जिताः ॥ ३९ ॥ ब्राह्म्यांश्च दुर्द्धरान् पण्डा
न्वाहुक्यांश्च कृषीवलान् ॥ भिन्नदृष्टिकरान् विप्रान् कश्चिन्नैव च पूजयेत् ॥ ४० ॥ वृषलीमन्दिरेयस्य महिषं यस्तुवाहये
त् ॥ तेषि प्रादूरतस्त्याज्या व्रते श्राद्धे नृपेश्वर ॥ ४१ ॥ काणाः कुण्डाश्च गोलाश्च वैद्याश्चैव विवर्जिताः ॥ नैते पूज्या हि
जाः पार्थ मणिनागे श्वरे शुभे ॥ ४२ ॥ यदीच्छेद्वैध्वगमनं पितृणामात्मनस्तथा ॥ सर्वाङ्गरुचिराङ्गाश्च सदा पूज्या हि
जास्तु वै ॥ ४३ ॥ सयाति परमं लोकं यावदाहूतसम्भुवम् ॥ ततः स्वर्गाच्च्युतस्सोऽपि जायते विपुले कुले ॥ ४४ ॥ मणि

ब्राह्मणों को इस तीर्थमें कोई भी न पूजे ॥ ४० ॥ जिसके घरमें सूदिनि बैठी होवे और जो भैंसा लादताहो हे नृपेश्वर ! ऐसे ब्राह्मणों को व्रत और श्राद्ध में दूरही से छोड़देवे ॥ ४१ ॥ काने, कुण्ड (जतिहुये बापके दूसरे से पैदाहुआ) गोलक (बापके मरजाने पर दूसरे से पैदाहुआ) और वैद्य ये विशेष करके वर्जित हैं किन्तु हे पार्थ ! ये ब्राह्मण शुभ मणिनागेश्वरमें पूजनेयोग्य नहीं हैं ॥ ४२ ॥ जो अपना व पितरों का ऊपर जाना चाहे तो उससे निश्चय करके सब अङ्गोंसे दूरत ब्राह्मण सदा पूजन करनेयोग्य हैं ॥ ४३ ॥ वह उत्तम लोकको जाताहै और प्रलयतक वहां रहता है फिर स्वर्गसे उतर वह बड़ेकुल में पैदा होता है ॥ ४४ ॥ जो मणिनागे

श्वरदेव के दर्शन करता है और हे नराधिप ! वहां गऊ, पलंग, छाता, कन्या और दासियों को भक्तिसे ॥ ४५ ॥ हे राजेन्द्र ! उत्तम ब्राह्मणों को देवे जो अपने कल्याण की इच्छाकरे सुगन्धवाले फूल, चन्दन और कपड़ों को देवे ॥ ४६ ॥ दिया, अन्न और सब सामानसे भरेहुये सुन्दर मकान को जो मनुष्य भक्तिसे देतेहैं वे स्वर्गको जातहैं ॥ ४७ ॥ हे नृप ! मणिनाग में जो सोने के सांपका दान करते हैं उस दान के प्रभावसे उनका वास स्वर्गमें होताहै ॥ ४८ ॥ और उसके पाप नष्ट होजातेहैं जैसे कच्चेबड़े का पानी जातारहता है नर्मदा के पानीमें पकायाहुआ भोजन जो ब्राह्मण को देतेहैं ॥ ४९ ॥ पापोंसे छूटेहुये वे भी देवताओं के साथ विहार करते हैं दानके

नागेश्वरन्देवं यःपश्यतिनराधिप ॥ धेनुंशय्यांतथावन्नं कन्यांदासींमुभक्तिः ॥ ४५ ॥ पात्रेदद्यात्तुराजेन्द्र यदीच्छे
च्छेयआत्मनः ॥ सुरभीणिचपुष्पाणि गन्धवस्त्राणिदापयेत् ॥ ४६ ॥ दीपंधान्यंगुहंशुभ्रं सर्वोपस्करसंयुतम् ॥ ददते
येनराभक्त्या तेव्रजन्तित्रिविष्टपम् ॥ ४७ ॥ मणिनागेनृपस्वर्णपन्नगोयैःप्रदीयते ॥ तेषांदानप्रभावेण स्वर्गवासोभवे
दध्रुवम् ॥ ४८ ॥ पातकानिप्रलीयन्त आमपात्रेजलंयथा ॥ नर्मदातोयसंसिद्धं भोज्यंविप्रायदीयते ॥ ४९ ॥ तेपिपा
पैर्विनिमुक्ताः क्रीडन्तेदैवतैस्सह ॥ त्यागिनोभोगसंयुक्ता धर्माख्यानरतास्सदा ॥ ५० ॥ देवद्विजगुरोर्भक्तास्तीर्थसेवा
परायणाः ॥ मातापितृस्वामिभक्ताः क्रोधद्रोहविवर्जिताः ॥ ५१ ॥ एतैस्सर्वैर्गुणैर्युक्ता येनराःपाण्डुनन्दन ॥ जायन्ते
स्वर्गकामाश्च स्वर्गवासोभविष्यति ॥ ५२ ॥ सर्वतीर्थवरन्तीर्थं मणिनागंनृपोत्तम ॥ तीर्थाख्यानमिदंण्यं यःपठेच्छृ
णुयादपि ॥ ५३ ॥ सोपिपापविनिमुक्तः शिवलोकेमहीयते ॥ नविषंक्रमतेतेषां विचरन्तियथेच्छया ॥ ५४ ॥ भाद्रपद्या

करनेवाले, सब भागों से संयुक्त, सदा धर्मशास्त्र में प्रीति के करनेवाले ॥ ५० ॥ देवता, ब्राह्मण और गुरुके भक्त, तीर्थोंकी सेवाके करनेवाले, माता, पिता और स्वामी के भक्त क्रोध और किसी से वैर करने से रहित ॥ ५१ ॥ इन सब गुणों से युक्त हे पाण्डुनन्दन ! जो मनुष्य है वेही स्वर्गकी चाह करनेवाले होते हैं और उन्हींका स्वर्गमें वास भी होताहै ॥ ५२ ॥ हे नृपोत्तम ! मणिनागतीर्थ सब तीर्थोंमें उत्तम है इस तीर्थकी पुण्यकथा को जो कहता न सुनता है ॥ ५३ ॥ पापोंसे छूटाहुआ वह

भी शिवलोक में प्रजित होता है उनके ऊपर विपका असर नहीं पड़ता है अपनी इच्छा से वे विचरते हैं ॥ ५४ ॥ भादों की पूर्णमासी व छठि व अमावसको जो इस तीर्थ में स्नान करता है उसको पुण्यफल होता है इसीतरह तीर्थ की कथा से भी होता है ॥ ५५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणरेवाखण्डे प्राकृतभाषास्तुवादेमणिनागतीर्थवर्णनो नाम सप्तनवतितमोऽध्यायः ॥ ६७ ॥

मार्कण्डेयजी बोले कि नर्मदाके दक्षिणवाले किनारे पर बड़ा सुन्दर, सबपापोंका हरनेवाला, पवित्र, उत्तम, गोपालेश्वर तीर्थ है ॥ १ ॥ हे नृप ! गजकी देहसे अयःपण्यां भाद्रेस्नायाच्चदर्शके ॥ तस्य पुण्यफलवाप्तिराख्यानकथनेन तु ॥ ५५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणरेवाखण्डे मणिनागतीर्थवर्णनो नाम सप्तनवतितमोऽध्यायः ॥ ९७ ॥

मार्कण्डेय उवाच ॥ दक्षिणेन नर्मदातीरे तीर्थपरमशोभनम् ॥ सर्वपापहरं पुण्यं गोपालेश्वरमुत्तमम् ॥ १ ॥ गोदेहाग्निः स्रुतं लिङ्गं पुण्यं भूमितले नृप ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ गोदेहाद्विस्मृतं कस्माद्विद्मं पापक्षयङ्करम् ॥ २ ॥ दक्षिणेन नर्मदातीरे मणिनागसमीपतः ॥ संज्ञे पातकशयतां विप्र गोपालेश्वरमुत्तमम् ॥ ३ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ कामधेनुस्तपस्तत्र पुत्रार्थं च चकार ह ॥ ध्यायतीत्यस्याभक्त्या देवदेवं महेश्वरम् ॥ ४ ॥ तुष्टस्तस्याजगन्नाथः कपिलायामहेश्वरः ॥ निस्स्रुतो देहमध्यातु अजयः परमेश्वरः ॥ ५ ॥ महेश्वर उवाच ॥ तुष्टो देवि जगन्मातः कपिले परमेश्वरि ॥ आराधनं कृतं कस्मादददे विवरानने ॥ ६ ॥ सुरभिरुवाच ॥ लोकानामुपकाराय सृष्टाहं परमेष्ठिना ॥ लोकेकादर्थं हि सर्वं वै मत्प्रसादात् प्रपृथिवी में पुण्यवाला लिङ्ग निकला है तब युधिष्ठिर जी बोले कि पापोंका नाश करनेवाला लिङ्ग गजकी देहसे क्यों निकला है ॥ २ ॥ दक्षिणवाले नर्मदाके किनारे पर मणिनाग के समीप जो उत्तम गोपालेश्वर लिङ्ग है उसको हे विप्र ! संक्षेप से आप कहो ॥ ३ ॥ तब मार्कण्डेय जी बोले कि वहां पुत्रके वास्ते कामधेनु तपस्या करती हुई बड़ीभक्ति से देवताओं के देवता महादेवजीको ध्यावती हुई ॥ ४ ॥ उस कपिला से जगत के नाथ महादेवजी प्रगल्भ हुये तब नाशरहित महादेवजी उमकी देहके बीचसे निकले ॥ ५ ॥ और महादेव कामधेनुसे बोले कि हे जगत की माता, परमेश्वरी, कपिला ! हमारी सेवा तुमने किसवास्ते की है सो हे वरानने, देवि !

कहो ॥ ६ ॥ तब कामधेनु बोली कि लोको के उपकारके वास्ते मुझे ब्रह्माजीने रचा है लोक में सब काम हमारी दयासे होवेंगे ॥ ७ ॥ आपके प्रसाद से सब लोग यहां आपको देखेंगे इससे है शम्भो ! लोको के हितकी इच्छासे इम तीर्थ में आप होवे ॥ ८ ॥ मार्कण्डेयजी बोले कि तब से यह तीर्थ पृथिवी में प्रसिद्ध होना हुआ एक बार स्नान करने से है राजेन्द्र ! सब पापोंको नाश करदेता है ॥ ९ ॥ गोपालेश्वरमें भक्तिसे जो गोदान देता है परन्तु योग्य उत्तम ब्राह्मणको सोने के सहित योग्य गऊ देना चाहिये ॥ १० ॥ वह दूधवाली, जवान, साफ, बैल व कपडों से युक्त होवे हे युधिष्ठिर ! सब महीनों के अधियारे पाख की चौदस व अष्टमी को बड़ी भक्ति से वेदपाठी

सिधयति ॥ ७ ॥ लोकास्मर्वेप्रपश्यन्ति तत्प्रसादात् त्रिशूलिनम् ॥ तीर्थे त्वं भवभोः शम्भो लोकानां हितकाम्यया ॥ ८ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ तदा प्रभृति तत्तीर्थं विख्यातं वसुधातले ॥ स्नानेनैके न राजेन्द्र सर्वपापं न्यपोहति ॥ ९ ॥ गोपालेश तु गोदानं यस्तु भक्त्या प्रदापयेत् ॥ योग्ये द्विजोत्तमे देया योग्या धेनुः सकाञ्चनी ॥ १० ॥ सवस्त्रातरुणी शुभ्राक्षरिणी वृषसंयुता ॥ कृष्णपक्षे चतुर्दश्यामष्टम्यां वा युधिष्ठिर ॥ ११ ॥ सर्वेषु चैव मासेषु कार्तिके च विशेषतः ॥ दापयेत्परम्याम कत्या द्विजेस्वाध्यायतत्परे ॥ १२ ॥ विधिना च प्रदास्यन्ति विधिनान्ति प्रगतिम् ॥ उभयोः पुण्यकर्मणि प्रेक्षकाः पुण्य भाजनाः ॥ १३ ॥ पिण्डदानं प्रकर्तव्यं प्रेतानां भावसंयुतैः ॥ पिण्डेनैके न राजेन्द्र प्रेतान्ति परगतिम् ॥ १४ ॥ भ कत्या प्रणामं रुद्रस्य ये कुर्वन्ति दिने दिने ॥ तेषां पापं प्रलीयेत भिन्नपात्रे जलं यथा ॥ १५ ॥ तस्मिंस्तीर्थे तु यो राजन् वृषचैव समुत्सृजेत् ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ वृषोत्सर्गे कृते तात यत्फलं भवते नृणाम् ॥ १६ ॥ तत्सर्वकथं स्वार्थं प्रयत्नेन द्विजोत्तम ॥

ब्राह्मणको देवे और कातिकमें विशेष करदेवे ॥ ११ ॥ १२ ॥ जो विधिसे देते और जो विधिसे लेते हैं दोनोंके काम पुण्यवाले है देखनेवाले भी पुण्यके भागी होते हैं ॥ १३ ॥ प्रेतोंको भक्तिसे पिण्डदान भी करना चाहिये हे राजेन्द्र ! एकही पिण्ड से प्रेत परमगति को जाते हैं ॥ १४ ॥ भक्तिसे महादेवका जो रोज २ प्रणाम करते हैं उनका पाप फूटे घड़ेका सा पानी जाता रहता है ॥ १५ ॥ और हे राजन् ! जो उस तीर्थ में बैलको छोड़ता है तब युधिष्ठिरजी बोले कि हे तात ! वृषोत्सर्ग के किन्ने पर मनुष्यो

को जो फल होता है ॥ १६ ॥ हे द्विजोच्चम ! आज उस सब फलको यत्नसे आप कहो तब मार्कण्डेयजी बोले कि सब लक्षणोंसे युक्त वैलमें जो फल होता है ॥ १७ ॥ हे धर्मनन्दन ! उसको हम तुमसे कहेंगे तुम सुनो हे नराधिप ! कतिक व वैशाखकी पूर्णमासी को ॥ १८ ॥ नहाय व पवित्र और त्रितेन्द्रिय होकर महादेवके समीप में हे राजन् ! ईश्वर की प्रसन्नता के वास्ते धृपोत्सर्गकरे ॥ १९ ॥ पवित्र जगह में बैठकर सबलक्षणों से संयुक्त अच्छी चार बछिया वैलके वास्ते छोड़े ॥ २० ॥ और कहें कि इस उत्सर्ग से महादेव, ब्रह्मा और विष्णु जी वैसे ही और भी प्रमत्त हों वैलके सब अङ्गों में रोवों की जितनी संख्या है हे नराधिप ! ॥ २१ ॥ उतने वर्षों

मार्कण्डेयउवाच ॥ सर्वलक्षणसम्पन्नो बृषेचैवतुयत्फलम् ॥ १७ ॥ तदहंसप्रवक्ष्यामि शृणुत्वंधर्मनन्दन ॥ का
त्तिकेचैववैशाखे पौर्णमास्यान्नराधिप ॥ १८ ॥ रुद्रस्यसन्निधौभूत्वा शुचिःस्नात्वाजितेन्द्रियः ॥ वृषोत्सर्गंतथाराज
न्कारयेद्धरप्रीतये ॥ १९ ॥ स्थानेस्थित्वापवित्रे तु चतस्रोवतिसकाःशुभाः ॥ वृषभायचमुञ्चेत सर्वलक्षणसंयुताः ॥ २० ॥
प्रीयताञ्चमहादेवो ब्रह्माविष्णुस्तथापरे ॥ वृषभरोमसंख्यातु सर्वाङ्गिष्ठुनराधिप ॥ २१ ॥ तावद्वर्षप्रमाणन्तु शिव
लोकेमहीयते ॥ शिवलोकेवसित्वा तु पश्चान्मर्त्येचजायते ॥ २२ ॥ कुलेमहतिसम्भूतो धनधान्यसमाकुले ॥ सुरूपे रूप
वांश्चैव विद्याल्येसत्यवादिनाम् ॥ २३ ॥ गोपालेश्वरकंपुण्यंमयाख्यातंयुधिष्ठिर ॥ गोदेहान्निसृष्टंलिङ्गं नर्मदादक्षिणे
तटे ॥ २४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणैरवाखण्डेगोपालेश्वरमहिमानुवर्णनोनामाष्टनवतितमोऽध्यायः ॥ ६८ ॥ *

तक शिवजी के लोक में पूजित होता है शिवलोक में रहकर फिर मनुष्यलोकमें पैदा होता है ॥ २२ ॥ सत्य बोलनेवालों के धन व अन्न से भरेहुये व विद्या से युक्त व अच्छेरूपवाले बड़े कुलमें सुन्दररूपवाला पैदा होता है ॥ २३ ॥ हे युधिष्ठिर ! पुण्यवाले गोपालेश्वर लिंग को मैंने कहा जो नर्मदाके दक्षिणवाले किनारे पर गऊ की देहमें निकला है ॥ २४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणैरवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनुवादेगोपालेश्वरमहिमाऽनुवर्णनोनामाष्टनवतितमोऽध्यायः ॥ ६८ ॥

मार्कण्डेयजी बोले कि नर्मदाके उत्तरवाले किनारे पर सब पापोंका हरनेवाला व पुण्यवाला गौतमेश्वर नामका बड़ा सुन्दर तीर्थ है ॥१॥ लोकों के हितकी कामना से गौतम ने स्थापित किया है हे युधिष्ठिर ! मनुष्यों को वह तीर्थ स्वर्गकी नसेनी है ॥ २ ॥ हे नृप ! पापों के नाश करने के वास्ते व स्वर्गवास मिलने के वास्ते बड़ी भक्तिसे तुम वहा जावो जहा जगत् के गुरु महादेवजी हैं ॥ ३ ॥ सुखका वढ़ानेवाला व जयका देनेवाला व दुःखोंका नाश करनेवाला तीर्थ है एक पिएड के देने से तीन कुलों को उद्धार करता है ॥ ४ ॥ जो कुछ वहा थोड़ा या बहुत भक्ति से दियाजाता है वह सत्र गौतमकी आज्ञा से सौ व हजारगुना होता है ॥ ५ ॥ सब तीर्थों

मार्कण्डेयउवाच ॥ नर्मदायोत्तरेकूले तीर्थपरमशोभनम् ॥ सर्वपापहरंपुरायं ब्रह्मवैगौतमेश्वरम् ॥ १ ॥ स्थापितं गौतमैव लोकानां हितकार्यया ॥ स्वर्गसोपानरूपेण तीर्थं पुसां युधिष्ठिर ॥ २ ॥ गच्छत्वं परश्रया भक्त्या यत्र देवोजगद्गुरुः ॥ पातकानां विनाशाय स्वर्गवासस्येष्टप ॥ ३ ॥ सौख्यस्य वर्द्धनं लिङ्गं जयदं दुःखनाशनम् ॥ पिएडदानेन चैकेन कुलानामुद्धरेत्त्रयम् ॥ ४ ॥ यत्किञ्चिद्दीयते भक्त्या स्वल्पं वा यदिवानु ॥ तत्सर्वशतसाहस्रमाज्ञया गौतमस्य च ॥ ५ ॥ तीर्थानां परमन्तीर्थं स्वयं रुद्रैश्चाभाषितम् ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ दक्षिणेन नर्मदाकूले तीर्थपरमशोभनम् ॥ ६ ॥ शङ्खचूडे श्वरन्तत्र प्रसिद्धं भूमिमण्डले ॥ शङ्खचूडे श्वरस्तत्र संस्थितः पाण्डुनन्दन ॥ ७ ॥ वैनतेयभयात्पार्थ संस्थितो नर्मदातटे ॥ तत्र तीर्थतुयो भक्त्या शुचिर्भूत्वासमाहितः ॥ ८ ॥ स्नापयेच्छङ्खचूडन्तु चौद्रेण दधिसर्पिषा ॥ रात्रौ जागरणं कृत्वा देवस्याग्रे नराधिप ॥ ९ ॥ दधिभक्तेन समपूज्य ब्राह्मणाञ्छं सितव्रतान् ॥ गोदानञ्च तथा देयं सर्वपापक्षय

में बड़ा तीर्थ है खास महादेवने कहा है मार्कण्डेयजी बोले कि नर्मदाके दक्षिणवाले किनारे पर बड़ा सुन्दर तीर्थ है ॥ ६ ॥ वहां शंखचूडे श्वर पृथिवीमण्डल में प्रसिद्ध है हे पाण्डुनन्दन ! शंखचूडे श्वर महादेव वहां विद्यमान हैं ॥ ७ ॥ हे पार्थ ! गरुड के भय से नर्मदा तट में रहते हैं पवित्र व सावधान होकर उस तीर्थ में भक्ति से ॥ ८ ॥ शहद व दही और घी से शंखचूडे श्वरको नहवावे और हे नराधिप ! रातमें महादेवके आगे जागरण करे ॥ ९ ॥ दही और भात से उत्तमव्रतवाले ब्राह्मणों

का सत्कार कर सब पापोंका नाशकरनेवाला गोदान देनेयोग्य है ॥ १० ॥ हे पार्थ ! उस तीर्थ में जो सांपका हैसाहुआ भी मरे तो वह भी शंखचूड़की आज्ञासे उत्तम लोकको जाता है ॥ १५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणैरेवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनुवादशङ्खचूड़तीर्थमहिमाऽनुवर्णनोनामनवनवतितमोऽध्यायः ॥ ६६ ॥ ॐ ॥ मार्कण्डेयजी बोले कि हे राजेन्द्र ! तदनन्तर उत्तम पराशरवर तीर्थ को जावे उत्तम नर्मदा के तट में महात्मा पराशरने ॥ १॥ पुत्र के वास्ते हे पाण्डुनन्दन ! बड़े तप को किया लक्ष्मी व नारायण के सहित हिमाचल की कन्या गौरीजी को ॥ २ ॥ बड़ी भक्तिसे पराशरऋषिने उत्तरवाले नर्मदाके तटपर प्रसन्न किया तब प्रसन्न हुई

ङ्करम् ॥ १० ॥ तस्मिंस्तूर्थेतुयःपार्थ सर्पदष्टोपनिश्यति ॥ सोपियातिपरंलोकं शङ्खचूडस्यचान्नया ॥ ११ ॥ इति श्री स्कन्दपुराणे रेवाखण्डेशङ्खचूड़तीर्थमहिमानुवर्णनोनामनवनवतितमोऽध्यायः ॥ ९९ ॥ * ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ततो गच्छेत्तुराजेन्द्र पराशरवरोत्तमम् ॥ पराशरो महात्मा च नर्मसदायास्तटेशुभे ॥ १ ॥ तपश्चार्चयितुं पुनार्थपाण्डुनन्दन ॥ हिमाचलसुतागौरी लक्ष्मीनारायणान्विता ॥ २ ॥ तोषिता परयाभक्त्या नर्मदा योत्तरेतटे ॥ पराशरेण ऋषिणा तस्य तुष्टावरन्ददौ ॥ ३ ॥ देव्युवाच ॥ भो भो ऋषिवर श्रेष्ठ तुष्टाहन्तव्यमक्तिः ॥ वरं याचस्व विप्रेन्द्र पराशरमहामते ॥ ४ ॥ पराशर उवाच ॥ यदि तुष्टासि मे देवि यदि देयो वरो मम ॥ पुत्रो मे दीयतां शीघ्रं सर्वशास्त्रविशारदः ॥ ५ ॥ तीर्थचान्नमवेद्वि मन्निधानं वरेण तु ॥ लोकोपकारहेतवर्थं स्थीयतां गिरिनन्दिनि ॥ ६ ॥ पराशराभिधानेन नर्मदादक्षिणेतटे ॥ पराशरवचः श्रुत्वा देवी हिमवतस्सुता ॥ ७ ॥ एवं भवतु ते विप्र इत्युक्त्वान्तरधीयत ॥

पार्वती उनको वर देती हुई ॥ ३ ॥ देवी बोली कि हे ऋषिवर श्रेष्ठ ! तुम्हारी भक्तिसे हम प्रसन्न हैं हे विप्रेन्द्र, महामते, पराशर ! वर मांगो ॥ ४ ॥ तब पराशरजी बोले कि हे देवि ! जो मुझपर आप प्रसन्नहो और जो मुझे वर देना है तो सब शालों का जाननेवाला पुत्र मुझे जल्दी दिया जावे ॥ ५ ॥ और हे देवि ! यहां वरके समीप तीर्थ भी हो जावे हे गिरिनन्दिनि ! लोकोंके उपकार के वास्ते आप भी यहां स्थित होवें ॥ ६ ॥ पराशर के नाम से नर्मदाके दक्षिणतट में तीर्थ होवे पराशर के वचनको

सुन हिमाचलकी कन्या पार्वती देवी ने कहा ॥ ७ ॥ कि हे विप्र ! तुम्हारा ऐसाही हो यह कहकर अन्तर्द्वानि होगई महात्मा पराशर भी पार्वती को आपत्तेहुये ॥ ८ ॥
देवता और दैत्यों से नमस्कार कियेगये महादेवका भी रथापन करतेहुये जो कि देवताओं से पूजेगये और दानवों को डरावने हैं ॥ ९ ॥ पराशर महात्मा भी सन्ताप से रहित व कृतार्थ होगये उम तीर्थ में निर्मलमन व पवित्र होकर भक्तिसे जो ॥ १० ॥ हे नृपनन्दन ! चैत, सावन और अगहन महीने के उजियाले पाखमें सदा ॥
११ ॥ हे पाण्डवश्रेष्ठ ! महादेव व पार्वती का पूजन करे व अष्टमी, चौदस और सूर्यग्रहण में हमेशा ॥ १२ ॥ काम क्रोध से रहित होकर स्त्री व पुरुष वहां नर्मदा

पराशरोमहात्माच स्थापयामास पार्वतीम् ॥ ८ ॥ शङ्करंस्थापयामास सुरासुरनमस्कृतम् ॥ अर्चितं सर्वदेवानां दा
नवानान्दुरासदम् ॥ ९ ॥ पराशरोमहात्माच कृतार्थो विगतज्वरः ॥ तस्मिंस्तीर्थेतुयोभक्त्या शुचिः प्रयतमानसः ॥
१० ॥ मासे चैत्रे च विख्याते श्रावणे नृपनन्दन ॥ मासिमार्गशिरै चैव शुक्लपक्षे तु सर्वदा ॥ ११ ॥ शङ्करं पाण्डवश्रेष्ठ नि
रिजं पूजयेत्तथा ॥ अष्टम्यां च चतुर्दश्यां सूर्यपर्वणि सर्वदा ॥ १२ ॥ स्त्रियो वा पुरुषा वापि कामक्रोधविवर्जिताः ॥ तत्र
गत्वा शुचौ स्थाने नर्मदादक्षिणेतटे ॥ १३ ॥ उपोष्य परयाभक्त्या व्रतं कुर्येर्महासुने ॥ रात्रौ जागरणं कृत्वा दीपदानं
स्वशक्तिः ॥ १४ ॥ सपत्नीकानुत्तमांश्च शीलश्रद्धासमन्वितान् ॥ पूजयेद्ब्राह्मणान्पार्थ अन्नदानं हिरण्यैः ॥ १५ ॥
वस्त्रेष्वन्नदानेन शययताम्बूलभोजनैः ॥ श्राद्धं कार्यं नृपश्रेष्ठ आमश्राद्धं प्रशस्यते ॥ १६ ॥ आमं चतुर्गुणं प्रोक्तं ब्राह्म
णानां शुधिष्ठिर ॥ वेदोक्तेन विधानेन द्विजाः पूज्याः प्रयत्नतः ॥ १७ ॥ हस्तमानत्रकुशैश्च तिलैश्च वाञ्छितैर्नृप ॥ विप्रैश्च

के दक्षिणवाले किनारे पर अच्छी जगह में जाकर ॥ १३ ॥ उपासकर बड़ी भक्तिसे व्रत करे व हे महासुने ! रात में जागरण कर अपनी शक्तिके अनुसार दीपदान करे ॥ १४ ॥ और शील व श्रद्धा से युक्त उत्तम सपत्नीक ब्राह्मणों का हे पार्थ ! अन्न व सोने के दान से पूजन करे ॥ १५ ॥ कपडा, छाता, पलंग, पान और भोजनों से हे नृपश्रेष्ठ ! श्राद्ध करना चाहिये यहां कच्चे श्राद्धकी तारीफ है ॥ १६ ॥ हे युधिष्ठिर ! ब्राह्मणों को कच्चा अन्न उनके खाने से चांगुना कहा गया है वेद में कहेहुये

विधान से व बड़े थल से ब्राह्मणोंका पूजन करना चाहिये ॥ १७ ॥ और हे नृप ! हाथ २ भरके कुश व साफ तिलों से श्राद्ध करे ब्राह्मण को उत्तर और अपने को दक्षिण मुहँ बिठावे ॥ १८ ॥ अन्नको कुशों पर रखकर ब्राह्मणों के आगे ऐसे कहे कि इस तीर्थ के प्रभाव से प्रेत उत्तम लोक को जावें ॥ १९ ॥ और हमारा पाप नष्ट होजावे सदा कल्याण की वृद्धिहोवे और हे द्विजोत्तम ! वंश व भाईलोग वृद्धिको प्राप्तहोवें ॥ २० ॥ ब्राह्मणसे इस प्रकार कह पराशर के आश्रममें दान देवे हे पाण्डवश्रेष्ठ ! पराशरके श्रेष्ठआश्रममें गऊ, गृथिवी, बैल, सोना, अन्न और वस्त्रोंको अपनी शक्तिसे देवे जो मनुष्य भक्तिसे इस कथाको सुनता है वह भी पापों से छूटजाता

दञ्चुखंचैव आत्मानंदं विण्णमुखम् ॥ १८ ॥ आसन्दर्भेषु निःक्षिप्य इत्युच्चार्य द्विजाग्रतः ॥ प्रेतायान्नुपरं लोकं तीर्थं स्यात्स्य प्रभावतः ॥ १९ ॥ पापं संप्रशमं यातु यातु वृद्धिस्तदा शुभम् ॥ वृद्धिया तु सदा वंशो ज्ञातिवर्गो द्विजोत्तम ॥ २० ॥ एवमुच्चार्य विप्रन्द्रं देयं पाराशराश्रमे ॥ गोभूनीलिहिरया नि अन्नं वस्त्रं च शक्तिः ॥ २१ ॥ दातव्यं पाण्डवश्रेष्ठ पराशरवराश्रमे ॥ यः शृणोति नरो भक्त्या सोपि पापैः प्रमुच्यते ॥ २२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे रेवाखण्डे पराशरतीर्थमहिमानुवर्णने नाम शततमोऽध्यायः ॥ १०० ॥ * ॥ * ॥ * ॥

मार्कण्डेय उवाच ॥ भीमेश्वरं ततो गच्छेत्सर्वपापक्षयङ्करम् ॥ सेव्यतेऽह्नि सदैव भीमव्रतधरैरपि ॥ १ ॥ तत्र तीर्थं तु यः स्नात्वा सोपवाग्नौ जितेन्द्रियः ॥ जपं श्रद्धां धारं मन्त्रमूर्ध्ववाहुर्द्विवाकरम् ॥ २ ॥ तस्य जन्माजितं पापं तत्क्षणदेव नश्यति ॥ सप्तजन्माजितं पापं गायत्र्यानश्यते ध्रुवम् ॥ ३ ॥ दशभिर्जन्मजनितं शतेन च पुराकृतम् ॥ त्रिजन्मना सह

हे ॥ २१ ॥ २२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे रेवाखण्डे प्राकृतभाषाऽनुवर्णेनाम शततमोऽध्यायः ॥ १०० ॥ * ॥ * ॥

मार्कण्डेयजी बोले कि तदनन्तर मग पापों के नाश करनेवाले भीमेश्वर को जावे जोकि बड़े भयानक व्रतके करनेवाले भी श्रृपियोंके गणोंसे सेवा जाता है ॥ १ ॥ उस तीर्थ में नहायकर उपास किये हुये व इन्द्रिया को जीते हुये जो मनुष्य ऊपरको हाथ किये हुये सूर्य के सामने एक अक्षर के मन्त्र को जपता है ॥ २ ॥ उसके पूर्व जन्म में जमा किया हुआ पाप उसी क्षणमें नष्ट हाता है और सात जन्मों का जमा किया हुआ पाप गायत्री से निश्चय करके नष्ट होजाता है ॥ ३ ॥ एक जन्मका पाप

दश गायत्री से और अगिले का सौ से और हजार से तीन जन्मों के पापों को गायत्री नाश करती है ॥ ४ ॥ हे जनेश्वर ! वेद व पुराण के मन्त्र का उप जपा गया उसी क्षण में पाप को जलाता है जैसे आग फूम को जलावे ॥ ५ ॥ और जो इसी बलसे कभी अज्ञान से भी पाप करे तो उसको वह फल जल्दी कभी नहीं होता है ॥ ६ ॥ उस तीर्थ में शक्ति के अनुसार गोदान देवे तो हे पाण्डुनन्दन ! उसका सम्पूर्ण फल अक्षय होता है ॥ ७ ॥ मार्कण्डेयजी बोले कि हे राजेन्द्र ! तदनन्तर उत्तम नारदेश्वर तीर्थ को जावे सब तीर्थों में बड़े जिस तीर्थ को नारद ने बनाया है ॥ ८ ॥ तब युधिष्ठिरजी बोले कि हे मुनिश्रेष्ठ ! नारद ने किस तीर्थ को बनाया

स्नेह गायत्रीहन्ति किल्बिषम् ॥ ४ ॥ वैदिकं लौकिकं चापि जाप्यं जप्तं जनेश्वर ॥ तत्क्षणाद्दहते पापं तृणं च ज्वलनो यथा ॥ ५ ॥ तदेव बलमाश्रित्य कदाचित्पापमाचरेत् ॥ अज्ञानात्तस्य तत्क्षिप्रं न फलं हि कदाचन ॥ ६ ॥ तत्र तीर्थं तु गोदानं शक्तिमात्रेण दापयेत् ॥ तदक्षयं फलं सर्वं जायते पाण्डुनन्दन ॥ ७ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ ततो गच्छेत्तुराजेन्द्र नारदेश्वरमुत्तमम् ॥ तीर्थानां परमन्तीर्थं निर्मितं नारदेन तु ॥ ८ ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ नारदेन मुनिश्रेष्ठ कस्य तीर्थं विनिर्मितम् ॥ एतद्वाख्याहि मे सर्वं प्रसन्नो यदि सत्तम ॥ ९ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ परमेश्चिमुतश्चापि नारदो भगवानृषिः ॥ नम्रं दायोत्तरेकूले तपस्तेपे पुराकृते ॥ १० ॥ नवनाडी निरोधेन काष्ठावस्थाङ्गतेन च ॥ तोषितः श्रीमहादेवो नारदेन युधिष्ठिर ॥ ११ ॥ ईश्वर उवाच ॥ तुष्टो हंतव विप्रेन्द्र योगीश्वर अयोनिरज ॥ वरं प्रार्थय हे देव यत्ते मनमिवर्तते ॥ १२ ॥ नारद उवाच ॥ त्वत्प्रसादेन मोदेव योगश्चैव प्रसिद्ध्यतु ॥ ईश्वर उवाच ॥ योगो भवतु भक्तिस्ते सर्वकालं मे भवतु ॥ १३ ॥ स्वेच्छाचारो

हे हे सत्तम ! जो आप प्रमत्त हो तो यह सब मुझ से कहो ॥ ९ ॥ तब मार्कण्डेयजी बोले कि आगे सतयुग में ब्रह्मा के पुत्र भगवान् नारद अपि नर्मदा के उत्तर वाले तट पर तपस्या करते हुये ॥ १० ॥ हे युधिष्ठिर ! नवो इन्द्रियों के रोकने से काठकीसी हालत को प्राप्त हो रहे नारद ने श्रीमहादेव को प्रमत्त किया ॥ ११ ॥ तब महादेवजी बोले कि हे अयोनिरज ! हे योगीश्वर ! हे विप्रेन्द्र ! हम तुम से प्रसन्न हैं इस से हे देव ! जो तुम्हारे मनमें हो उस वरको मांगो ॥ १२ ॥ तब नारद बोले कि हे

देव ! आपके प्रसादमे हमारा योग सिद्ध होवे तब महादेवजी बोले कि तुम्हारे योग होवे और हमेशा हमारी भक्ति रहे ॥ १३ ॥ और इस संसारमे स्वर्ग व पातालमे अपनी इच्छा से घूमो और है योगिन् ! मनुष्यलोक में भी विचरो किमी से नहीं रोकें जासकेहो ॥ १४ ॥ सातस्वर, तीनग्राम और इच्छीम मूर्च्छना व हमको खुश करनेवाला दिव्य नाचना व गाना तुम्हें योगीको सदा याद रहेगा ॥ १५ ॥ देवता, दानव और किन्नरों की लड़ाई को सदा देखोगे और हमारे प्रसादसे तुम्हारा तीर्थ पृथिवी में बड़ा पुण्यवाला होगा ॥ १६ ॥ इतना कह महादेवजी अन्तर्धान होगये तब हे राजेन्द्र ! सब जीवोंके उपकार करनेवाले महादेव का नारदजी ने स्थापन किया ॥ १७ ॥

भवेगच्छ स्वर्गपातालगोचरे ॥ मर्त्येचभ्रमसेयोगिन्नकेनापिनिवार्यसे ॥ १४ ॥ सप्तस्वरास्त्रयोग्रामा मूर्च्छेनास्त्वेकत्रि
शतिः ॥ ममप्रियकरंदिव्यं नृत्यङ्गीतश्चयोगिना ॥ १५ ॥ कलिञ्चपश्यसेनित्यं देवदानवकिन्नरैः ॥ त्वर्त्तार्थभूतलेपु
एयं मत्प्रसादाद्भविष्यति ॥ १६ ॥ इत्युक्तवान्तर्दधेदेवो नारदस्तत्रालिङ्गिनम् ॥ स्थापयामासराजेन्द्र सर्वसत्त्वोपकार
कम् ॥ १७ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ पृथिव्यासुत्तमंतीर्थं निर्मितंनारदेनतु ॥ तस्मिंस्तीर्थेनरश्रेष्ठ नागच्छेद्विजितेन्द्र
यः ॥ १८ ॥ मासिमाद्रपदेरम्ये कृष्णपक्षेचतुर्दशीम् ॥ उपोष्यपर्याभक्त्या रात्रौकुर्वीतजागरम् ॥ १९ ॥ छत्रंतत्र
प्रदातव्यं ब्राह्मणेशुभलक्षणम् ॥ शस्त्रेणनिहतायेतु तेषांश्राद्धंप्रदापयेत् ॥ २० ॥ यान्तितेपरमंलोकं पिण्डदानप्र
भावतः ॥ कर्पिलाचैवदातव्या तत्रदेशेनराधिप ॥ २१ ॥ अस्यश्राद्धप्रभावेण ब्राह्मणानंनराधिप ॥ नर्मदातोयपा
नस्य न्यायार्जितधनस्यच ॥ २२ ॥ एतेषाञ्चप्रभावेण प्रेतायान्तुपराङ्गतिम् ॥ इत्युच्चार्यद्विजेदेया दक्षिणाचम्वशक्ति

फिर मार्कण्डेयजी बोले कि पृथिवी में नारद का बनायाहुआ तीर्थ उत्तम है हे नरश्रेष्ठ ! इन्द्रियों को जीतेहुये मनुष्य उस तीर्थको जावे ॥ १८ ॥ भादोंके अधिपार
पाखकी चौदस को उपामकर बड़ी भक्तिसे रातमें जागरण करे ॥ १९ ॥ अर्च्य ब्राह्मणको वहा छतेंका दानकर और जो हथियारों से मारेगये हैं उनका श्राद्ध करे ॥
२० ॥ पिण्डदानके प्रभावसे वे प्रेत उत्तमलोक को जाते हैं और हे नराधिप ! वहां कपिलागङ्गा देना चाहिये ॥ २१ ॥ और हे नराधिप ! श्राद्धके समय में यह कहना
चाहिये कि इस श्राद्धके प्रभावसे व नर्मदा के जलके पीने व ब्राह्मणों व नीति से कमायेहुये धन ॥ २२ ॥ इनके प्रभावसे प्रेतलोग परमगतिको पावे ऐसे कहकर अपनी

शक्तिके अनुसार ब्राह्मण को दक्षिणा देनी चाहिये ॥ २३ ॥ और हे विशालाक्ष ! ब्राह्मणों को हविष्यान्न देवे एक विद्याके दानमे अक्षयगति होती है ॥ २४ ॥ और हे राजेन्द्र ! उस तीर्थमें जो ब्राह्मण के लिये तिलोके सहित सोना देवे वह स्वर्गको जाता है ॥ २५ ॥ फिर मार्कण्डेयजी बोले कि हे राजेन्द्र ! तदनन्तर अत्युत्तम जो दो तीर्थ हैं उन में जावे सब पापोंका नाश करनेवाला एक दधिच्छन्द और दूसरा मधुच्छन्द है ॥ २६ ॥ दधिच्छन्द में जो मनुष्य स्नानकर ब्राह्मणको दही देता है भारत ! उसको मात जन्मोत्तक दही खानेको मिलता है ॥ २७ ॥ उसको रोग, बुढ़ापा, शोच और ईर्ष्या कभी नहीं आते हैं और वह हजारजन्मतक बड़ेही कुलमें पैदा होता है ॥ २८ ॥

तः ॥ २३ ॥ हविष्यान्नं विशालाक्ष द्विजानाञ्चैव दापयेत् ॥ विद्यादानेन चैकेन अक्षयागतिराप्यते ॥ २४ ॥ तस्मिंस्तो
र्थे तुराजेन्द्र यो दद्यादग्रजन्मने ॥ काञ्चनं स तिलैश्चैव सगच्छेच्च त्रिविष्टपम् ॥ २५ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ ततो गच्छे
त्तुराजेन्द्र तीर्थद्वयमनुत्तमम् ॥ दधिच्छन्दं मधुच्छन्दं सर्वपापक्षयङ्करम् ॥ २६ ॥ दधिच्छन्देन रः स्नात्वा यो दद्याच्च द्वि
जेदधि ॥ उपतिष्ठति तस्यैतत्सप्तजन्मसु भारत ॥ २७ ॥ नव्याधिर्न जरा तस्य न शोको न च मत्सरः ॥ दशचन्द्रशतं या
वज्जायेते विपुले कुले ॥ २८ ॥ मधुच्छन्दे तु मधुना मिश्रितञ्च तिलोदकम् ॥ न च वैवस्वतन्देवं पश्यते सप्तजन्मसु ॥ २९ ॥
मधुना सह मिश्रन्तु तिलं यस्तु प्रयच्छति ॥ तस्य पुत्रस्य पौत्रस्य दारिद्र्यं नैव जायते ॥ ३० ॥ मधुना सह संमिश्रं तिलं य
स्तु प्रयच्छति ॥ मधुना सह संमिश्रं यस्तु पिण्डं प्रदापयेत् ॥ ३१ ॥ तस्मिंस्तोर्थे तु यः स्नात्वा विधिवद्दक्षिणामुखः ॥ पि
तापितामहश्चैव तथैव प्रपितामहः ॥ ३२ ॥ षोडशाब्दानि तुष्यन्ति नात्र कार्या विचारणा ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ ततो ग

और मधुच्छन्द तीर्थ में मिठाई से मिले हुये तिलोंको जो देता है वह सात जन्मोत्तक यमराज को नहीं देखता है ॥ २९ ॥ मिठाई से मिले हुये तिलोंको जो देता है उस उसके लडके व पोतोंको भी दारिद्र्य नहीं होता है ॥ ३० ॥ फिर भी मिठाई से मिले तिलोंको जो देता है अथवा मिठाई से मिले हुये तिलोंके लड्डूको जो देता है उस को भी पहले कहा हुआ फल होता है ॥ ३१ ॥ उस तीर्थमें जो विधिसे स्नानकर व दक्षिण मुहँ बैठकर बाप, दादे और परदादेको पिण्ड देता है ॥ ३२ ॥ उसके वे पितर

सोलह वर्षतक सन्तुष्ट रहते हैं इसमें कुछ विचार नहीं करना चाहिये मार्कण्डेयजी बोले कि हे राजेन्द्र ! तदनन्तर अत्युत्तम नन्दितीर्थ को जावे ॥ ३३ ॥ जहां निश्चय से नन्दी सिद्धहुये वह सब हम कहते हैं आगे नर्मदा को अपने सामनेकर नन्दी ने महादेव के वास्ते ॥ ३४ ॥ तप किया और मन्त्रको जपतेहुये एक तीर्थसे दूसरे तीर्थ को जातेहुये दधिच्छन्द और मधुच्छन्द को छोड़ जबतक जावें ॥ ३५ ॥ तबतक प्रसन्न होगये महादेवजी उस नन्दी से बोले महादेवजी ने कहा कि हे नन्दीश ! हम प्रसन्न हैं तुम अपने मनमाने वरको मांगो ॥ ३६ ॥ क्योंकि तुम्हारे उस तपस्या व तीर्थयात्रा के करने से हम सन्तुष्ट हैं तब नन्दी बोले कि धन, कुल च्छेचुराजेन्द्र नन्दितीर्थमनुत्तमम् ॥ ३३ ॥ यत्र सिद्धश्चैव नन्दी तत्सर्वकथयाम्यहम् ॥ नर्मदापुरतः कृत्वा पुरानन्दी महेन्द्रम् ॥ ३४ ॥ तपस्तप्तं जपंश्चैव तीर्थात्तीर्थजगामह ॥ दधिच्छन्दं मधुच्छन्दं यावत्पुण्यार्थेप्सितम् ॥ ३५ ॥ त तस्तुष्टो महादेवो नन्दिनन्तमुवाचह ॥ महेश्वर उवाच ॥ भो भोः प्रसन्नो नन्दीश वरं वृणुयर्थेप्सितम् ॥ ३६ ॥ तपसा तेन तुष्टोहं तीर्थयात्राकृतेन च ॥ नन्द्युवाच ॥ न चाहं कामये वित्तवन्न चाहं कुलसन्ततिम् ॥ ३७ ॥ मुक्तिं न कामये चान्यद्देवेश चरणाम्बुजम् ॥ कृमिकीटपतङ्गेषु तिर्यग्योनि गतेषु च ॥ ३८ ॥ जन्मजन्मनियास्यामि त्वद्भक्तिरचला च मे ॥ तथेति चोक्तो देवेन परमेशेन नन्दिकः ॥ ३९ ॥ गृहीत्वा तं करेशीघ्रं जगाम निलयं हरः ॥ तस्मिंस्तीर्थेतु यः स्नात्वा भक्त्या त्र्यम्बं प्रपूजयेत् ॥ ४० ॥ अग्निष्टोमं च यत्पुण्यं फलं प्राप्नोति मानवः ॥ तत्र तीर्थे महापुण्ये प्राणत्यागं करोति यः ॥ ४१ ॥ शिवस्यानुचरो भूत्वा मोदते कल्पमक्षयम् ॥ ततः कालेन महता जायते विपुले कुले ॥ ४२ ॥ वेदवेदाङ्गतत्त्वज्ञे जी और सन्तान को हम नहीं चाहते और न मुक्ति व न औरही कुछ चाहते हैं हे देवेश ! आपके चरणकमलों को हम चाहते हैं कृमि, कीट और पतंगों की योनिमें अथवा पशु व पक्षियों की योनिमें ॥ ३७ ॥ हम जन्म २ में जावें परन्तु आपकी अचल भक्ति हमको होवे तब महादेवने नन्दी से कहा कि ऐसा ही हो ॥ ३८ ॥ और हाथ पकड़कर नन्दी के सहित महादेव अपने स्थानको जल्दी जातेहुये जो मनुष्य उस तीर्थ में स्नानकर भक्तिसे महादेवका पूजन करता है ॥ ४० ॥ वह अग्निष्टोमयज्ञ में जो पुण्य होता है उस फलको पाता है और बड़े पुण्यवाले उस तीर्थ में जो प्राणोंको छोड़ता है ॥ ४१ ॥ वह महादेव का सेवक होकर अक्षय कल्पभर

आनन्द करता है तदनन्तर बहुत कालके बाद वेद व वेदांगों के तत्त्वों के जाननेवाले बड़े कुलमें पैदा होकर सौत्र्य जीत है हे पार्थ ! सब सन्तोषों के देनेवाले इस आख्यान को हमने तुमसे कहा ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ यह बड़ा दुर्लभ है और सबके सब पापोंका नाश करनेवाला है ॥ ४४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे रेवाखण्डे प्राकृतभाषाऽनुवादेन न्दितीर्थवर्णनो नामैकाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०१ ॥ ॥ ॥ ॥

मार्कण्डेयजी बोले कि हे राजेन्द्र ! तदनन्तर उत्तम वरुणेश्वर को जावे हे नृपसत्तम ! पहले जहां वरुणदेव सिद्धहुये हैं ॥ १ ॥ मनुष्यलोग पीना, शाक, प्रस्ता

वेच शरांशतम् ॥ एतत्ते कथितं पार्थ सर्वतुष्टिप्रदं शुभम् ॥ ४३ ॥ दुर्लभं सत्यसंज्ञस्य सर्वपापक्षयङ्करम् ॥ ४४ ॥ इति

श्रीस्कन्दपुराणे रेवाखण्डेन न्दितीर्थवर्णनो नामैकाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०१ ॥ * ॥ * ॥

मार्कण्डेय उवाच ॥ ततो गच्छेत्तुराजेन्द्र वरुणेश्वरमुत्तमम् ॥ यत्र सिद्धो पुरा देवो वरुणो नृपसत्तम ॥ १ ॥ पियाक शक्रपणैश्च कृच्छ्रचान्द्रायणादिभिः ॥ आराध्य गिरिजानाथं ततस्सिद्धिं ज्ञातवान् ॥ २ ॥ तत्र तीर्थे नरः स्नात्वा सन्तर्प्य पितृदेवताः ॥ पूजयेच्च कृच्छ्रं भक्त्या सगच्छेत्परमं पदम् ॥ ३ ॥ कुरिडं कां वद्धन्वापि महद्वाजलभाजनम् ॥ अनेन सहितं पार्थ तस्य पुण्यफलं शृणु ॥ ४ ॥ यत्फलं लभेत्तस्य स्मृत्वा दशवर्षिकं ॥ तत्फलं समवाप्नोति नात्र कार्या विचारणा ॥ ५ ॥ सर्वेषामेव दानानामन्नदानमनुत्तमम् ॥ यद्यत्प्रीतिकरञ्चैव तोयञ्च नृपसत्तम ॥ ६ ॥ तत्र तीर्थे मृता

और कृच्छ्र व चान्द्रायण आदि व्रतोंसे महादेव का सेवन कर तदनन्तर सिद्धि को प्राप्त हुये ॥ २ ॥ जो मनुष्य उस तीर्थमें स्नान कर और पितर व देवताओं का तर्पण कर भक्तिसे महादेवका पूजन करता है वह परमपद को जाता है ॥ ३ ॥ और हे पार्थ ! कुंडी व बढनी और कोई बड़ा पानीका पात्र अन्नके सहित जो दिया जाता है उसके पुण्य फल को तुम सुनो ॥ ४ ॥ बारह वर्ष तक जिममें बैठ कर रहती है ऐसे सत्र (यज्ञ) में जिस फल को मनुष्य पाता है उसी फल को पाता है इसमें कुछ विचार नहीं करना चाहिये ॥ ५ ॥ सब दानोंमें अन्नदान बड़ा उत्तम है व हे नृपसत्तम ! और भी जो जो सबका प्रसन्न करनेवाला पदार्थ जैसे कि जल है उनको देवे ॥ ६ ॥ उस तीर्थमें मरे हुये

महात्मा मनुष्यों का वरुणलोक में प्रलयतक वास होता है ॥ ७ ॥ वहाँ बहुत काल तक भोगोंको भोगकर फिर मनुष्यलोकमें पैदाहोता है अन्नदान का देनेवाला पैदा होकर सौवर्ष बराबर जीता है ॥ ८ ॥ मार्कण्डेयजी बोले कि फिर हे राजेन्द्र ! श्रत्युत्तम अग्नितीर्थ को जावे जहां तपस्याको कर बड़े तेजवाले अग्निभगवान् मिच्छुह्ये है ॥ ९ ॥ आगे जिसको मुनिने दण्डकवन में सर्वभर्त्री करदिया था वही अग्नि नर्मदा के तटपर बैठकर पवित्र होगये ॥ १० ॥ मनुष्य उस तीर्थ में नहाकर और पार्वती के सहित महादेवका पूजनकर सब पापों से छूटजाता है ॥ ११ ॥ जो मनुष्य उस तीर्थ में नहाकर हे नृप ! ब्राह्मणों को जल देकर सोना देता है वह श्रवणगुने फलको

नाञ्च नराणां भवितात्मनाम् ॥ वारुणे च पुरेवासो यावदाहुतसम्प्लवम् ॥ ७ ॥ भुक्त्वा तत्र बहूंकालं मर्त्यलोकैः भिजायते ॥ अन्नदानप्रदो नित्यं जीवेच्च शरांशतम् ॥ ८ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ ततो गच्छेच्च राजेन्द्र अग्नितीर्थमनुत्तमम् ॥ यत्र सिद्धो महातेजास्तपःकृत्वा हुताशनः ॥ ९ ॥ सर्वभक्षी कृतो यश्च दण्डके मुनिना पुरा ॥ नर्मदा तटमाश्रित्य पूतो जातो हुताशनः ॥ १० ॥ तत्र तीर्थे नरस्सनात्वा समभ्यर्च्य जगद्गुरुम् ॥ उभया सहितं भक्त्या सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ११ ॥ तत्र तीर्थे नरस्सनात्वा दत्तैर्वैकाञ्चनं नृप ॥ ब्राह्मणेभ्यो जलं दत्त्वा लभते वाबुदं फलम् ॥ १२ ॥ दधिच्छन्दे मधुच्छन्दे नन्दीशे वारुणे तथा ॥ आग्नेये तत्फलं तात स्नात्वा मुच्येत किं त्विषैः ॥ १३ ॥ ते वन्द्यामानुषेलोकैः धन्याश्चाप्तमनोरथाः ॥ ये हि दृष्टं महापुण्यं नर्मदा तीर्थं पञ्चकम् ॥ १४ ॥ स्वर्गलोकमवाप्नुस्ते यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥ ततः स्वर्गं च्युताश्चापि राजानस्सन्ति धार्मिकाः ॥ १५ ॥ सर्वपापविनिर्मुक्ता भुञ्जते तेऽचलां महीम् ॥ आखण्डलप्रतापो यं नर्मदा तटसेवने ॥ १६ ॥

पाता है ॥ १२ ॥ हे तात ! दधिच्छन्द, मधुच्छन्द, नन्दीश्वर, वारुण और आग्नेय में वह फल होता है कि स्नान करके सब पापोंसे छूटजाता है ॥ १३ ॥ मनुष्यलोकमें वे मनुष्य वन्दना करने के योग्य व धन्य हैं और उन्हींको सब मनोरथ मानो मिलगये कि जिन्होंने बड़े पुण्यवाले नर्मदा के पाँचों तीर्थोंको देखा है ॥ १४ ॥ वे जबतक चौदहो इन्द्र रहते हैं तबतक स्वर्गलाग में प्राप्त बने रहते हैं तदनन्तर स्वर्गसे उतरेहुये व सब पापोंसे छूटेहुये धर्मात्मा राजा होते हैं और पृथिवी का आचल

भोग करते हैं नर्मदातट के सेवन से इन्द्र के समान प्रतापवाला होता है ॥ १५ ॥ १६ ॥ कनखल में गङ्गा पुण्यवाली है और सरस्वती कुरुक्षेत्र में और गांव व वन में कहीं भी हों नर्मदा सब कहीं पवित्र हैं ॥ १७ ॥ नर्मदा के किनारे रहता हुआ जो हमेशा उनका जल पीता है वह मानो सब तीर्थों में स्नान कर चुका और उसको रोज रोज सोमलता के पीनेका फल होता है ॥ १८ ॥ गङ्गाआदि सब नदियां व समुद्र व तालाब कल्पके अन्त में नष्ट होजाते हैं परन्तु नर्मदा कभी नहीं नष्ट होती है ॥ १९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणरेवाखण्डे प्राकृतभाषाऽनुवादतीर्थपञ्चकवर्णनो नाम द्वादशतमोऽध्यायः ॥ १०२ ॥

गङ्गाकनखले पुण्याकुरुक्षेत्रे सरस्वती ॥ ग्रामे वा यदि वारण्ये पुण्या सर्वत्र नर्मदा ॥ १७ ॥ रेवती रं वसन् नित्यं तोयं यस्तु स दापिवेत् ॥ स्नातोऽसौ सर्वतीर्थेषु सोमपानं दिने दिने ॥ १८ ॥ गङ्गाद्यास्सरितस्सर्वास्समुद्राश्च सरांसि च ॥ कल्पान्ते संक्षयं यान्ति न मृतैकाच न मर्मदा ॥ १९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणरेवाखण्डे तीर्थपञ्चकवर्णनो नाम द्वादशतमोऽध्यायः ॥ १०२ ॥

युधिष्ठिर उवाच ॥ हनूमदीश्वरन्नाम कथं जातं महामते ॥ ब्रह्महत्या हरं तीर्थं रेवायादन्निषेदं ॥ १ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ साधुपृष्ठं महाबाहो सोमवंशविभूषण ॥ गुह्याद्गुह्यतरन्तीर्थं नाख्यातं कस्यचिन्मया ॥ २ ॥ तव स्नेहात्प्रवक्ष्यामि पीडितो वाद्वेकेन तु ॥ जातं पूर्वं महायुद्धं रामरावणयोरपि ॥ ३ ॥ पुलस्त्यो ब्रह्मणः पुत्रस्तस्य वै विश्रवास्तुतः ॥ रावणस्तस्य सज्जातो दशग्रीवोऽपिराजसः ॥ ४ ॥ त्रैलोक्यविजयी जातः प्रसादाच्छलिनस्तथा ॥ गीर्वाणानि जितास्सर्वे रामस्य गृहिणीहता ॥ ५ ॥ यदुभ्राताकुम्भकर्णो वै सीतासावनम्राश्रिता ॥ विभीषणेन पापोऽयं मन्दस्त्यक्तो विचार्य युधिष्ठिरजी बोले कि हे महामते ! नर्मदा के दक्षिणाले तट में ब्रह्महत्या का हरनेवाला हनूमदीश्वर नामका तीर्थ कैसे हुआ ॥ १ ॥ तब मार्कण्डेयजी बोले कि हे सोमवंशविभूषण ! हे महाबाहो ! आपने बहुत अच्छा पूछा गुप्त से अतिगुप्त इस तीर्थको मैंने किसी से नहीं कहा है ॥ २ ॥ यद्यपि बुढ़ापे से पीड़ित हूँ तथापि तुम्हारे स्नेह से कहुंगा अगिले जमाने में राम और रावण का बड़ा युद्ध हुआ ॥ ३ ॥ ब्रह्मा के लड़के पुलस्त्य हुये, उनके पुत्र विश्रवा हुये, विश्रवा के दशकण्ठवाला राक्षस रावण हुआ ॥ ४ ॥ वह महादेव के प्रमाद से तीनों लोकोंका जीतनेवाला हुआ उसने सब देवताओंको जीतलिया और रामकी रानी सीताको हरले गया ॥ ५ ॥ जिसका भाई

कुम्भकर्ण था, सीता अशोकवन में रहती थीं, विभीषण ने विचार करके इस पापी नाचको छोड़ दिया ॥ ६ ॥ वह सहस्रबाहु से जीतागया था और सहस्रबाहु को परशुराम ने जीताथा वह रावण रामचन्द्र से मारागया और उसकी राज्यभी हर लीगई ॥ ७ ॥ तदनन्तर रामने उस बड़े बलवाले राज्ञसको संग्राम में जीता और हनूमान् ने लङ्कामें जाकर वनको तोड़ा और राज्ञसों को मारा ॥ ८ ॥ रावण का लड़का अक्षकुमार भी हनूमान् से संग्राममें मारागया इस प्रकार रामायणके होनेपर और सीताके छूटनेपर ॥ ९ ॥ और रामको अयोध्या जानेपर हे पार्थ ! बड़े बलवाले हनूमान् महादेव के प्रणाम करने के वास्ते कैलासको गये ॥ १० ॥ तब नन्दीने

च ॥ ६ ॥ सजितः कर्त्तव्यीर्येण सजितोजामदग्निना ॥ सहतोरामचन्द्रेण तस्यराज्यं हतन्तथा ॥ ७ ॥ ततोरामेण रज्जोपि जितस्संख्येमहाबलः ॥ वनं भग्नं हतोरज्जो गत्वावायुसुतेनैव ॥ ८ ॥ रावणस्य सुतस्संख्ये हतश्चाक्षकुमारकः ॥ एवं रा मायणे जाते सीतामोक्षकृतेततः ॥ ९ ॥ अयोध्यायांगतेरामे हनूमांश्च महाबलः ॥ कैलासहिगतः पार्थ प्रणामार्थमहे श्वरे ॥ १० ॥ तिष्ठतिष्ठेति चोक्तो वै नन्दिना वानरोत्तमः ॥ ब्रह्महत्यायुतस्त्वं हि राज्ञसानां वधेन हि ॥ ११ ॥ भैरवस्यास नंपुण्यं नगन्तास्मि महाबल ॥ हनूमानुवाच ॥ नन्दिस्तु त्वं हि वरं यच्छ पातकस्योपशान्तये ॥ १२ ॥ भूत्वानिष्पातको ह वै प्रणमामि महेश्वरम् ॥ नन्द्युवाच ॥ रुद्रदेहोद्भवा पुण्या नर्मदासरितांवरा ॥ १३ ॥ श्रवणाञ्जन्मचरितं कीर्तनाद्भिगुणं ब्रजेत् ॥ ससजन्मार्जितं पापं नश्येद्देवावगाहनात् ॥ १४ ॥ तस्मात्तीरे वसस्वश्च रेवासङ्गमदक्षिणे ॥ ध्यायमानो विरूपा क्षं विशूलकरसंस्थितम् ॥ १५ ॥ जटामुकुटसंकाशं व्यालयज्ञोपवीतकम् ॥ उमाद्वर्द्धधरन्देवं गोराराजासनसंस्थि

हनूमान्से कहा कि खड़े रहो २ तुम राज्ञसों के मारने से ब्रह्महत्यासे युक्त हो रहे हो ॥ ११ ॥ इससे हे महाबल ! पवित्र भैरवके आसनको तुम मत जाओ तब हनूमान् बोले कि हे नन्दिन् ! तुम हमारे पातक शान्त होने के वास्ते वर देवो ॥ १२ ॥ तो हम पापसे रहित होकर महादेवको नमस्कार करें तब नन्दी बोले कि नदियोंमें श्रेष्ठ व पुण्यवाली नर्मदा महादेव की देहमें पैदा हुई है ॥ १३ ॥ जिसके सुनने से एक जन्मका पाप नष्ट होता है और कहने से उससे दुना और नर्मदा के नहाने से सात जन्मोंका पाप नष्ट होजाता है ॥ १४ ॥ तिससे तीन नेत्रवाले व विशूल को हाथ में लिये हुये जटामुकुट को धरे हुये सप्तोक्त जनेऊ को पहने हुये व पार्वती को आधे अङ्ग

में धरेहुये व श्रेष्ठबैल के आसनपर बैठेहुये महादेव को ध्यावतेहुये तुम नर्मदा के दक्षिणवाले किनारे पर बसो ॥ १५ ॥ तब हनुमान् ने वही किया वहां बहुत में धरेहुये ध्यान करतेहुये उन हनुमान् से प्रसन्न हुये पार्वती के सहित महादेवजी वहां आये ॥ १७ ॥ और मेघों कीसी आवाज से भीठीवाणी को बोले कि हे वत्स ! वौतक ध्यान करतेहुये तुमको रहना पडा ॥ १८ ॥ तब पार्वती को आधेअङ्ग में धरेहुये वर्तमान महादेवजी को देख हनुमान् ने सब अङ्गोंसे नम्र होकर कहा कि हे तपस्या में बड़ेकष्ट से तुमको रहना पडा ॥ १९ ॥ अन्धके मारनेवाले व बाणासुर के मर्दन करनेवाले के लिये जयहो, भूतों के मालिकके लिये जयहो हे भैरवभूषण ! देव ! जयहो आपके लिये नमस्कार है ॥ २० ॥

तम् ॥ १६ ॥ वत्सरान्मुबह्न्यावच्छायतस्तस्यतत्र वै ॥ तत्रतुष्टोमहादेव आगतःसहभाय्यया ॥ १७ ॥ उवाचमधुरांवा
णीं मेघगम्भीरयागिरा ॥ साधुवत्सत्त्वाचात्र कष्टतपसिसंस्थितम् ॥ १८ ॥ हनुमांश्चहरन्दृष्ट्वा उमाद्वर्द्धधरंस्थितम् ॥
साष्टाङ्गप्रणतोभूत्वा जयदेवनमोस्तुते ॥ १९ ॥ जयचान्धकघाताय बाणासुरविमर्दिने ॥ जयभूतपनाथाय जयभै
रवभूषण ॥ २० ॥ जयकामविनाशाय गङ्गाशिरसिधारिणे ॥ एवंस्तुतोमहादेवो वरदोवानरस्यच ॥ २१ ॥ ईश्वरउवाच ॥
वरंप्रार्थयत्वंवत्स प्रार्थितंरभसंवद ॥ हनुमानुवाच ॥ ब्रह्मरक्षोवधाज्जाता ब्रह्महत्यामहेश्वर ॥ २२ ॥ निष्पापोहंभवेयं
वै गुणमत्सम्भाषणेनच ॥ ईश्वरउवाच ॥ नर्मदातीर्थमाहात्म्यध्यानयोगप्रभावतः ॥ २३ ॥ मन्मूर्तिदर्शनात्सद्यो नि
ष्पापोनान्नसंशयः ॥ इत्युक्तवान्तर्दधेदेव उमासाद्विब्रिलोचनः ॥ २४ ॥ हनुमदीश्वरंतत्र स्थापयामासभक्तिः ॥ आ

आपकी जयहो ॥ २० ॥ कामदेव के नाश करनेवाले व गङ्गाको शिरपर धरनेवाले के लिये जयहो इस प्रकार हनुमान् को वर देनेवाले महादेवजी स्तुति कियेगये ॥
२१ ॥ नव महादेव बोले कि हे वत्स ! तुम वरको माँगो जो चाहते हो उसको जल्दी कहो तब हनुमान् बोले कि हे महेश्वर ! ब्रह्मराक्षसों के मारनेसे मुझको ब्रह्म
हत्या हुई है ॥ २२ ॥ इससे अब आपके सम्भाषण से हम पापसे रहित होजावें तब महादेव बोले कि नर्मदातीर्थ के माहात्म्य व ध्यानयोगके प्रभाव ॥ २३ ॥ व हमारी
मूर्तिके दर्शनसे तुम शीघ्र पापों से छुटगये इसमें संशय नहीं है इतना कहकर पार्वती के सहित तीन आखोत्राले महादेवजी अन्तर्धान होगये ॥ २४ ॥ तब वहा

हनूमान् ने हनूमदीश्वर को भक्तिसे स्थापित किया अपने योगबलसे व ब्रह्मचर्य के प्रभाव से ॥ २५ ॥ व महादेवके प्रभावसे कामनाओं के देनेवाले व जन्म मरणसे रहित व नहीं तर्क करने के योग्य व काटने के अयोग्य शिवको स्थापन किया ॥ २६ ॥ मार्कण्डेयजी बोले कि वहां हनूमदीश्वर में पहिले जो परिचयहुआ व द्वापर की आदिमें व त्रेताके अन्तमें हे नरेश्वर ! जो हालहुआ सो सुनो ॥ २७ ॥ इस पृथिवीमें एक सुपर्णनाम के राजर्षि होतेहुये उनकी राज्य में सदा बड़ी उमरवाले मनुष्य होतेहुये और उनको हमेशा सुख होता हुआ ॥ २८ ॥ उनका पुत्र बड़ा पराक्रमी व सौ हार्योवाला होताहुआ हे नरेश्वर ! वह जप व ध्यान में हमेशा लगा रहता

तमयोगबलेनैव ब्रह्मचर्यप्रभावतः ॥ २५ ॥ ईश्वरस्यप्रभावेण कामदंस्थापितंशिवम् ॥ अच्छेद्यमप्रतर्कयञ्च विनाशो
त्पत्तिर्वाञ्जितम् ॥ २६ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ हनूमदीश्वरेतत्र प्रत्ययंयत्पुराभवत् ॥ यहृतंद्वापरस्यादौ त्रेतान्तेचनरे
श्वर ॥ २७ ॥ सुपर्णोनामराजर्षिर्बभूववसुधातले ॥ तस्यराज्येसदासौख्यं दीर्घायुर्मानवस्सदा ॥ २८ ॥ शतबाहुर्बभू
वास्य पुत्रोभीमपराक्रमः ॥ आसक्तस्सदाकालं जपध्यानेनरेश्वर ॥ २९ ॥ क्रीडतेपृथिवींसर्वी पर्वतांश्वनानिच ॥ व
धार्थमृगयूथानामागतोविन्ध्यपर्वते ॥ ३० ॥ मृगजातिसमाकीर्णे हस्तिजातिसमाश्रिते ॥ हस्तिचित्रकशोभाढ्ये मृग
वाराहमंकुले ॥ ३१ ॥ क्रीडित्वाचततोराजा चासनेसंस्थितस्सच ॥ वनमध्येतदादृष्ट्वा भ्रमन्तंपिङ्गलं द्विजम् ॥ ३२ ॥
राजोवाच ॥ एकोवनेवनेकस्माद्भ्रमसेपुस्तिकाकरः ॥ इतश्चेतोनिरीक्षस्त्वं कथयस्वद्विजोत्तम ॥ ३३ ॥ ब्राह्मणउवा
च ॥ कान्यकुब्जात्समायातः प्रेषितोराजकन्यया ॥ राजोवाच ॥ कथयस्वप्रसादेन कस्मात्कार्यार्थद्विदप्रभो ॥ ३४ ॥

था ॥ २६ ॥ और सब पृथिवी व पर्वत व जङ्गलोंमें विहार करता था किसी समय हिरनोके मारनेके वास्ते विन्ध्यपर्वतपर आया ॥ ३० ॥ जोकि हिरनों व हाथियोंकी जाति से भराहुआ हाथियों के पकड़ने के वास्ते बनेहुये हाथियों के चित्रों की शोभामे युक्त हिरनों व सुवर्णों से भराहै ॥ ३१ ॥ वह राजा वहां विहारकर आसनपर बैठ। तदनन्तर वनके बीचमें घूमतेहुये एक पिङ्गलव्राहाण को देखा ॥ ३२ ॥ उससे राजा बोला कि हे द्विजोत्तम ! इधर उधर क्या देखतेहुये पुस्तक हाथमें लियेहुये अकेले वन वनमें तुम क्यों घूमतेहो सो कहो ॥ ३३ ॥ तब ब्राह्मण बोला कि हम कान्यकुब्ज से राजकन्या के भेजेहुये आये हैं तब राजा बोला कि हे प्रभो ! किस कामके वास्ते

आये हो सो अपनी दयासे कहो ॥ ३४ ॥ तब ब्राह्मण बोला कि राजा शिखण्डी कान्यकुब्ज देशको भोगता है वह राजा पुत्रों से खाली है बड़े मनोरथों से उसके एक कन्या हुई ॥ ३५ ॥ वह कन्या नर्मदाके प्रभाव से पूर्वजन्म की सुध रखनेवाली व उत्तम चालवाली है उसके पिताने उसको विवाहके लायक समझा और उससे कहा भी है ॥ ३६ ॥ पिताने कहा कि इस असारसंसारमें हम कन्यादान करेंगे तब कन्या बोली कि जिससमय मैं इच्छाकरूं उससमय मैं दीजाऊं ॥ ३७ ॥ तब कन्या के वचन से राजा विस्मय से युक्त मनवाला होगया और राजा शिखण्डी बोला कि हे महाभागे ! बतावो तो तुमने क्या कहा ॥ ३८ ॥ पिताने वचनसे वह बाला शिरसे

ब्राह्मण उवाच ॥ शिखण्डीचैव राजावै कान्यकुब्जम्बुमुच्यते ॥ अपुत्रस्समर्हीपालः कन्याजातामनोरथैः ॥ ३५ ॥ जातिस्मरशुभाचारा नर्मदायाः प्रभावतः ॥ पित्रोक्तासाचकन्यावै विवाहाय प्रकल्पिता ॥ ३६ ॥ असारैचाद्यसंसारै कन्यादानं दाम्यहम् ॥ कन्योवाच ॥ यस्मिन्काले ह्यलिप्से तस्मिन्काले प्रदीयताम् ॥ ३७ ॥ पुत्रीवाक्येन राजासौ विस्मया विष्टचेतनः ॥ शिखण्डयुवाच ॥ कथ्यतां मे महाभागे भाषितं हित्वा कथम् ॥ ३८ ॥ पितृवाक्येन सा बाला शिरसा वतसुवि ॥ कथयामास यद्दत्तं हनूमदीश्वरे नृप ॥ ३९ ॥ कलापिन्यस्म्यहन्ता तस्थिता भर्तुं सहा नृगा ॥ उरङ्गमेशसा न्निध्ये रेवाया उत्तरे तटे ॥ ४० ॥ हनूमतो वने पुण्ये क्रीडति स्म यद्दृच्छया ॥ भर्तुं युक्ता तत्र गृह्ये वञ्जुले सरले ह्रुमे ॥ ४१ ॥ आगता लुब्धकास्तत्र क्षुधातार्त्ता वनमुत्तमम् ॥ भर्तुं कोपयुतैः पार्पैर्हता हं पतिना सह ॥ ४२ ॥ ग्रीवां निमो टयामासुर्भक्षणात्पाटनं कृतम् ॥ हुताशनमुखे ते तु हसन्तश्चाशु लुब्धकाः ॥ ४३ ॥ भर्जेयित्वा ततो मांसं भर्जयित्वा यथेच्छया ॥ सुप्ताः

भुँकी हुई है नृप ! हनूमदीश्वरमें हुये हालको कहती हुई ॥ ३९ ॥ कन्या कहती है कि हे तात ! इससे पहलेवाले जन्ममें मैं मोरकी स्त्री अर्थात् मयूरी अपने पतिके सहित नर्मदा के उत्तरवाले किनारे पर नागेश्वर के समीप रहती थी ॥ ४० ॥ उस गुप्तपुण्यवाले, हनूमदीश्वर के वनमें मोरसिरी और सरलके दूरस्थ के ऊपर अपने पतिके सहित इच्छापूर्वक विहार करती थी ॥ ४१ ॥ तबतक उस उत्तम वनमें भूँखे बहेलिया लोग आगये भरे पतिके ऊपर क्रोधसे भरे हुये उन पापियों ने मुझे पतिके सहित मार डाला ॥ ४२ ॥ मेरे गलेको मरोड़ दिया और खाने के वास्ते उसे तोड़ डाला तदनन्तर हँसते हुये वे लोग जल्दी आगमें ॥ ४३ ॥ भूनकर तदनन्तर इच्छासे

मांसको खाकर सब इन्द्रिया जिनकी ठीकहोगई ऐसे वे लोग रातमें सोये रात व्यतीत होगई ॥ ४४ ॥ उस मांसका जो कुछ हिस्सा बाकी रहगया वह गीदड़, गीध और कैवों में खाडालागया मांस और नसोंमें भरीहुई मेरी देहकी हड्डीको एक चिड़िया लेकर आसमान को उड़गई मांसके सहित उस पक्षी को देख और भी आगये ॥ ४५ ॥ चिड़ियों के झुण्डको आयाहुआ देख उसने हड्डी के टुकड़े को छोड़दिया दौड़ते व देखतेहुये उन सब चिड़ियोंके ॥ ४७ ॥ वह हड्डी हनूमदीश्वर के समीप नर्मदाके पानीमें गिरपड़ी मेरी हड्डीका टुकडा नर्मदाके जलमें गिरा ॥ ४८ ॥ उस तीर्थके प्रभावसे मैं क्षत्रियके कुलमें पैदाहुई किन्तु चन्द्रमा के समान सुखवाली स्वस्थेन्द्रियारत्नी विगताशर्वरीचयम् ॥ ४४ ॥ तन्मांसशेषजुष्टवै जम्बूकैर्गुधवायसैः ॥ मच्छरीरोद्भवंचास्थि स्नायुमांसेनसंयुतम् ॥ ४५ ॥ पत्रिणाण्डहचैकेन आकाशात्पततातदा ॥ सामिषपक्षिणंहृष्ट्वा पक्षिणोन्येसमागताः ॥ ४६ ॥

टुट्वा पक्षिसमूहन्तु अस्थिखण्डव्यसज्जंगत् ॥ विहगानांसमस्तानां धावताञ्चापिपश्यताम् ॥ ४७ ॥ पतितनर्मदा तोये हनूमदीश्वरेनृप ॥ मदीयमस्थिखण्डञ्च पतितनर्मदाजले ॥ ४८ ॥ तस्यतीर्थप्रभावेण जाताहं क्षात्रियेकुले ॥ भूप कन्याप्यहं जाता सम्पूर्णशशिवन्मुखी ॥ ४९ ॥ जातिस्मरानरेन्द्रास्मि जाताहं क्षात्रियेकुले ॥ एतत्ते सर्वमाख्यातं कारणं नृपसत्तम ॥ ५० ॥ मदर्थं विषमस्थानेशकुन्तमृगजातिषु ॥ यदिप्रेषयसेतात कमपिनर्मदाजले ॥ ५१ ॥ तस्याहंकथयिष्यामि स्थानचिह्नं समग्रकम् ॥ कन्यायावचनं श्रुत्वा शिखण्डीह्याहमां नृप ॥ ५२ ॥ ग्रामविशञ्चदास्यामि गच्छत्वं नर्मदातटे ॥ प्रेक्षणं प्रतिज्ञातमलक्ष्यापीडितेनतु ॥ ५३ ॥ गच्छत्वं नर्मदास्पृश्यां सर्वपापक्षयं करीम् ॥ अग्रजांसोमना

मैं राजाकी कन्याहुईहूँ ॥ ४६ ॥ हे नरेन्द्र ! मुझको अपने अगिले जन्मकी यादहै क्षत्रियके कुलमें पैदाहुईहूँ हे नृपसत्तम ! यह सब कारण आपसे कहागया ॥ ५० ॥ हे तात ! चिड़िया व हिरन जहा रहते है ऐसे कठिन स्थानको जो मेरे वास्ते नर्मदा जल के समीप किसीको भेजोगे ॥ ५१ ॥ तो उस से मैं अपने स्थानका सब चिह्न कहूंगी अपनी कन्या के वचन को सुनकर हे नृप ! शिखण्डी राजाने मुझसे कहा ॥ ५२ ॥ कि हम तुमको बीसगांव देवेंगे तुम नर्मदा के तटको जावो हमने जिस बात की प्रतिज्ञा की है उसको तुम बेतकलीफ देखो ॥ ५३ ॥ उत्तम हनूमदीश्वर स्थानमें सोमनाथ की बड़ी बहन सब पापोंकी नाश करनेवाली व पुण्यवाली नर्मदा को

तुम जावो ॥ ५४ ॥ नर्मदा से अधिकोत्तक विस्तारवाले वरगद व कदम्ब के वृक्षों से घिरेहुये स्थानमें ॥ ५५ ॥ वरगदके समीप हड्डियोंका ढेर देखपड़ेगा उसमेंसे मिट्टी व हड्डीको लेकर हे द्विजोत्तम ! तुम नर्मदा को जाना ॥ ५६ ॥ कुँवार के उलियाले पाखकी चौदस को महोदेव को भक्तिसे स्नान कराने और रातमें जागरण करने ॥ ५७ ॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! प्रातःकाल नाभितक जलमें ठहर उस हड्डी व मिट्टीको पानीमें डालदेना यह कहकर कि जिसकी यह चीजहै उसकी सुगति होवे ॥ ५८ ॥ हड्डीको डालकर फिर पापोंके नाश करनेवाले स्नान को करना चाहिये इसतरह कन्याने जो कुछ कहा वह सब मैंने पुस्तकमें करलिया ॥ ५९ ॥ और हे नृपश्रेष्ठ ! महा-

शस्य हनूमदीश्वरेशुभे ॥ ५४ ॥ अर्द्धकोशेतुरेवाया विस्तीर्णैवटपादपैः ॥ कदम्बकवनेश्चैव संप्रधानेवनस्यच ॥ ५५ ॥
न्यग्रोधवटसान्निध्ये अस्थिलक्ष्यं प्रहृश्यते ॥ मृत्तिकामस्थिसंगृह्य गच्छरेवान्द्विजोत्तम ॥ ५६ ॥ आश्विनस्यसितेपक्षे
त्रिपुरारितीयौस्थिते ॥ स्नापयशूलिनम्मक्त्या रात्रौकुरुचजागरम् ॥ ५७ ॥ प्रभातेक्षिप्यतांशीघ्रं नाभिमात्रेजले
स्थितः ॥ इत्युच्चार्यद्विजश्रेष्ठ सुगतिस्तस्य जायते ॥ ५८ ॥ अस्थिक्षिप्त्वा पुनस्स्नानं कर्तव्यमघनाशनम् ॥ कथितं क
न्यायाय च तत्सर्वपुस्तकेकृतम् ॥ ५९ ॥ आगतो हं नृपश्रेष्ठ तस्मिंस्तीर्थमहालये ॥ साभिज्ञानं ततो दृष्ट्वा अस्थिगृह्य
नृपोत्तम ॥ ६० ॥ पूर्वोक्तेन विधानेन निचिप्तं नर्मदाजले ॥ पुष्पदृष्टिः पपाताथ साधुसाधिविति ब्राह्मण ॥ ६१ ॥ विमान
न्तु ततो दिव्यं दृष्ट्व हनुमदीश्वरे ॥ ततो ब्राह्मणराजानौ गृहीत्वाऽनशनं स्थितौ ॥ ६२ ॥ आत्मानं शोषयित्वा च ईश्वराराध
ने रतौ ॥ एवं सन्ध्यायतो देवं शतबाहुर्द्विजोत्तमः ॥ ६३ ॥ मासाद्धान्तु मृत्तोराजा शतबाहुर्महामतिः ॥ किङ्किणीजाल

लय (पितृपक्ष) में मैं उस तीर्थको आया और हे नृपोत्तम ! कहेहुये चिह्नको देख व हड्डीको लेकर ॥ ६० ॥ पहले कहेहुये विधान से नर्मदाके जलमें डालदी तदनन्तर ब्राह्मणपर फूलोंकी वर्षाहुई और कहागया कि हे ब्राह्मण ! वाह वाह ॥ ६१ ॥ तदनन्तर हनूमदीश्वर में एक दिव्य विमान देखपड़ा तदनन्तर ब्राह्मण और राजा दोनों अनशनव्रतको करतेहुये ॥ ६२ ॥ अपनेको सुखाकर ईश्वरके भजनमें तत्पर होतेहुये इस प्रकार भगवान्को ध्यावतेहुये शतबाहु राजा और ब्राह्मण दोनोंमें से ॥ ६३ ॥

पन्द्रह दिनके बाद बड़ी बुद्धिवाला राजा शतबाहु मरगया तब तुद्रघरिदकाओं के जालकी शोभायुक्त एक विमान वहां आगया ॥ ६४ ॥ और उससे आवाज आई कि हे नृपश्रेष्ठ ! बाह २ आप विमानपर सवार हूजिये तब राजा बोला कि जवत्तक यह ब्राह्मण न चढ़ेगा तवत्तक हम ऊपरी रास्तेको नहीं जावेंगे ॥ ६५ ॥ क्योंकि यह द्विजोत्तम हमको उपदेश देनेवाला गुरुके बराबर है तब देवता बोले कि हे राजन ! हनूमदीश्वर में जो मनुष्य मरते हैं ॥ ६६ ॥ वे सब पापों के क्षय करनेवाले शिवलोक को जाते हैं इससे हे नरेश्वर ! अभी इस ब्राह्मण के पापों का क्षय नहीं हुआ है ॥ ६७ ॥ अभी इस ब्राह्मण का मन मकान व स्त्री व धन में

शोभाढ्यं विमानंतत्रचागतम् ॥ ६४ ॥ साधुसाधुनृपश्रेष्ठ विमानरोहणंकुरु ॥ राजोवाच ॥ ऊर्द्धमार्गन्नगच्छामि विप्रोयावन्नसंस्थितः ॥ ६५ ॥ उपदेशप्रदोमह्यं गुरुरूपोद्विजोत्तमः ॥ देवाउचुः ॥ हनूमदीश्वरेराजन्ये मृतास्सन्ति मानवाः ॥ ६६ ॥ तेयान्तिशिवलोकैव सर्वपापक्षयश्चरम् ॥ नैवपापक्षयश्चास्य ब्राह्मणस्यनरेश्वर ॥ ६७ ॥ गृहञ्चगृहिणीवित्तं ब्राह्मणस्यप्रवर्तते ॥ शतबाहुस्ततोविप्रं भाषयामासभक्तिः ॥ ६८ ॥ त्यजमूलमधर्मस्य लोभमेकंद्विजोत्तम ॥ इत्युक्त्वाप्रययौराजा स्वर्गस्वर्गिजनैस्सह ॥ ६९ ॥ दिनैःकैश्चिद्भूतोविप्रः स्वर्गसुहृत्तिभिस्सह ॥ बाहिन्याःकाशिराजस्य पुत्र्यास्त्यर्थप्रभावतः ॥ ७० ॥ आत्मनःकन्ययादत्ते पूर्वजन्माजितंतपः ॥ अष्टम्याञ्चचतुर्दश्यां सर्वका लंसुनीश्वर ॥ ७१ ॥ विशेषादाश्विनेमासे कृष्णपक्षेचतुर्दशी ॥ स्नापयेदीश्वरंभक्त्या चौद्रक्षीरेणसर्पिषा ॥ ७२ ॥ दध्नाचखण्डयुक्तेन तिलतोयेनवापुनः ॥ श्रीखण्डेनसुगन्धेन चार्चयेत्तमहेश्वरम् ॥ ७३ ॥ ततःसुगन्धपुष्पैश्च वि लगाहै तब शतबाहु राजाने ब्राह्मणसे कहा ॥ ६८ ॥ कि हे द्विजोत्तम ! अधर्मकी जड़ एक लोभ है तिसको तुम छोड़ो इतना कह देवताओं के सहित राजा स्वर्गको चलागया ॥ ६९ ॥ फिर थोड़ेही दिनोंमें और धर्मात्माओंके साथ काशिराज की कन्या नर्मदानदी तीर्थके प्रभावसे व अपनी कन्या के दियेहुये उसके पूर्वजन्मके कर्माये हुये तपसे वह ब्राह्मण भी स्वर्गको चलागया इससे हे सुनीश्वर ! अष्टमी व चौदस को हमेशा ॥ ७० ॥ परन्तु कुँवारके कालेपाखमें जो चौदसहै उसमें विशेषकरके गृहदूध और घी से भक्तिपूर्वक महादेवको नहवावे ॥ ७१ ॥ और शङ्कर मिले दही व तिलोंके जलसे नहवावे फिर खुशबूदार चन्दन से उन महादेव का पूजनकरे ॥ ७२ ॥

तदनन्तर सुगन्धवाले फूलों व बेलपत्रों से पूजन करे और जो वेदपाठी व सब लक्षणों से युक्त व कुलीन व अपने कुटुम्ब की पालना करनेवाले ब्राह्मणों से वहाँ श्राद्धको कराता है और अन्न व वस्त्र व सुवर्ण से भक्तिपूर्वक ब्राह्मण को वृत्त करता है ॥ ७४ ॥ ७५ ॥ यह कहकर कि हे ब्राह्मणो ! नरक में पड़ेहुये मेरे पितर स्वर्गको जावें और स्वर्गवाले और भी उत्तमलोकको जावें ऐसे कह ब्राह्मणों के नमस्कारकरे ॥ ७६ ॥ और पतित ब्राह्मणों का छोड़देवे जिसके घरमें वृषली होवे उस का पूजन न करे अपने वृष (पति) को छोड़ और वृषों (पुरुषों) से जो मैथुनकी इच्छाकरे ॥ ७७ ॥ देवता उसीको वृषली जानते है शूद्रा वृषली नहीं होती है इसप्रकार त्वपन्नैश्चपूजनम् ॥ श्राद्धयःकार्येत्तत्र ब्राह्मणैर्वेदपारगैः ॥ ७४ ॥ सर्वलक्षणसम्पूर्णैः कुलीनैर्गृहपालकैः ॥ तर्पयेद्ब्राह्मणंभक्त्या अन्नवस्त्रहिरण्यकैः ॥ ७५ ॥ नरकस्थान्दिव्यान्ति इत्युच्चार्यद्विजातयः ॥ स्वर्गस्थाःपरमंलोकमि त्युक्त्वाप्रणमेद्द्विजान् ॥ ७६ ॥ पतितान्वर्जयेद्विप्रान्वृषलीयस्यमन्दिरे ॥ स्ववृषन्तुपरित्यज्य वृषैरन्यैर्वृषायते ॥ ७७ ॥ वृषलीन्तांविदुर्देवा नशूद्रावृषलीभवेत् ॥ ब्रह्महत्यासुरापानं गुरुदारनिषेवणम् ॥ ७८ ॥ सुवर्णहरणंतस्यमित्र द्रोहभवन्तथा ॥ नश्यन्तिपातकास्सर्वे इत्येवंशङ्करोब्रवीत् ॥ ७९ ॥ वाक्प्रलापेनकिंवत्स बहुनोक्तेनकिन्तुवा ॥ सर्व पापसमोपेतो दद्याद्दानंद्विजोत्तमे ॥ ८० ॥ सर्वदेवमयीधेनुस्सर्वदेवात्मिकास्थिता ॥ शृङ्गाग्रेषुमहीपाल शक्रोवसति नित्यशः ॥ ८१ ॥ हरिःस्कन्धेशिरोब्रह्मा ललाटेवृषवाहनः ॥ चन्द्राकौलोचनेज्ञेयौ जिह्वायान्तुसरस्वती ॥ ८२ ॥ मरु द्रणास्सदासाध्यास्तस्याङ्गानिनरेश्वर ॥ अङ्कारश्चतुरैवेदास्सषडङ्गपदक्रमाः ॥ ८३ ॥ ऋषयोरोमकूपेषु अस्थिरूपा श्राद्ध करनेवाले के ब्रह्महत्या व शराव पीना व गुरुकी स्त्रीका भोगकरना ॥ ७८ ॥ सुवर्ण चुराना व मित्रसे द्रोह करना ऐसे २ सब पाप नष्ट होजाते हैं ऐसा शङ्करजी ने कहाहै ॥ ७९ ॥ हे वत्स ! बहुत बकबाद व बहुत कहने से क्या है सभी पापोंसे युक्त भी पुरुष ब्राह्मण को दानदेवे तो उसको ऊपर कहा फल होवेगा ॥ ८० ॥ गऊमें सब देवता होते हैं और गऊ मच देवताओं के रूपही से स्थित रहती है हे महीपाल ! उसके सींगोंकी नोकमें इन्द्र हमेशा रहतेहैं ॥ ८१ ॥ विष्णुभगवान् कर्ध्वमें रहते हैं शिरमें ब्रह्मा और मस्तकमें महादेव रहते हैं चन्द्रमा और सूर्य नेत्रों में, सरस्वती जिह्वा में रहती है ॥ ८२ ॥ और हे नरेश्वर ! मरुत और साध्य सदा

उसके अङ्ग हैं व छहों अङ्ग व पद व क्रमों के सहित चारो वेद व उंकार ॥ ८३ ॥ व ऋषिलोग गौवों के छेदों में रहते हैं और हड्डियों में उत्तम पर्वत हैं कालदण्ड जिनके हाथ में हैं ऐसे भारी देहवाले, काले व भैंसे के सवार ॥ ८४ ॥ यमराज पीठ में हमेशा रहते हैं जो कि श्रौरो के पाप व पुण्य के देखनेवाले हैं पुण्यवाले चारो समुद्र दूधकी धारा हो थनों में हैं ॥ ८५ ॥ विष्णुकी देहसे पैदा हुई गङ्गा दर्शनही से पापोंकी हरनेवाली हैं और जो ऐसे विद्यमान हो रही गङ्गा कि जिसकी देहमें सभी देवता हैं वह पण्डितों से क्यों न मानने लायक होवे ॥ ८६ ॥ पवित्र व मङ्गलरूप लक्ष्मी जिसके गोबर में है हे पाण्डुनन्दन ! इसीसे गोबरसे सदा लोपना चाहिये ॥ ८७ ॥ गन्धर्व,

तामहानगाः ॥ दण्डहस्तो महाकायः कृष्णो महिपवाहनः ॥ ८४ ॥ पृष्ठभागस्थितो नित्यं शुभाशुभनिरीक्षकः ॥ च त्वारस्सागराः पुण्याः क्षीरधाराः स्तनेषु च ॥ ८५ ॥ विष्णुदेहोद्भवा गङ्गा दर्शनात्पापहारिणी ॥ एवं यामं स्थिता यस्मात् ॥ स्मादिषासदा बुधैः ॥ ८६ ॥ लक्ष्मीश्रगोमयेयस्याः पवित्रा सर्वमङ्गला ॥ गोमया तले पतन्तस्मात्कर्तव्यं पाण्डुनन्दन ॥ ८७ ॥ गन्धर्वाप्सरसो गङ्गा गोखुरेषु च संस्थिताः ॥ अश्विनौ कर्णयोर्नित्यं वत्तेरविपुत्रकौ ॥ ८८ ॥ पृथिव्यां सागरान्ता यां यानि तीर्थानि पाण्डव ॥ तानि सर्वाणि प्राप्तानि गवां पादेषु नित्यशः ॥ ८९ ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ सर्वतीर्थसमागवो गीर्वाणैस्समलंकृताः ॥ एतत्कथय मे तात कस्माद्गोषु समाश्रिताः ॥ ९० ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ सर्वदेवमयो विष्णुर्गौवो विष्णुशरीरजाः ॥ देयास्तस्मात्सदा वन्द्याः कल्पिता विबुधैर्जनैः ॥ ९१ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ सर्वदेवमयो विष्णु नन्दन ॥ सर्वासां जीरिणीर्गवः श्वेतवस्त्रावगुण्णिताः ॥ ९२ ॥ कांस्यदोहनि कदेयास्स्वर्णशृङ्गीर्विभूषिताः ॥ हनूमदी

अप्सरा और गङ्गा गौवों के खुरों में रहती हैं और कानों में सूर्य व अश्विनीकुमार सदा वसते हैं ॥ ८८ ॥ और हे पाण्डव ! समुद्रपर्यन्त पृथिवी में जितने तीर्थ हैं वे सब गौवों के पावों में सदा रहते हैं ॥ ८९ ॥ युधिष्ठिरजी बोले कि देवताओं ने सब तीर्थों के समान गौवों को अपने रहने से शोभित किया है हे तात ! गौवों के आश्रित देवता क्यों हुये सो मुझसे कहो ॥ ९० ॥ तब मार्कण्डेयजी बोले कि सब देवताओं का रूप विष्णुजी है और विष्णुकी देहमें गौवें पैदा हुई हैं इसमें पण्डित लोगों ने उन को देने व हमेशा वन्दना करने लायक माना है ॥ ९१ ॥ सफेद हो व कपिला हो परन्तु हे पाण्डुनन्दन ! दूधवाली होवे सब गौवों में दूधकी देनेवाली व सफेद भूल से

सजीहुई ॥ ९२ ॥ काँसकी दोहनीवाली व मोने से मढ़े सींगोंवाली व अन्य भूषणों से भूषित गऊको हनूमदीश्वर के आगे भक्तिसे ब्राह्मणों को देवे ॥ ९३ ॥ सावधान हो अपने कल्याण की इच्छा करतेहुये पुरुषको ऐसी गऊ देना चाहिये उनको दण्ड देनेके लिये यमराज समर्थ नहीं हैं विन्तु वे विष्णुलोक को जातेहैं ॥ ९४ ॥ विष्णुलोकसे उतरकर ब्राह्मणों के मकान को जातेहैं वहाँ धन व विद्यासे युक्त पैदा होते हैं ॥ ९५ ॥ सब पापोंका हरेनेवाला कल्याणरूप हनूमदीश्वरतीर्थ है उसको जो सुनता है वह वर्णसङ्कर पापसे छूटजाता है ॥ ९६ ॥ जो अमावस को इसकी याद करता है वह भी पापोंसे छूटजाता है ॥ ९७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेप्राकृत

श्वरस्याग्रे भक्त्याविप्रेषुदापयेत् ॥ ९३ ॥ निसर्गस्थेनसादेया स्वर्गमात्मनइच्छता ॥ असमर्थोयमस्तेपां विष्णुलोकं प्रयान्तिते ॥ ९४ ॥ विष्णुलोकच्युतस्सोपि प्रयातिद्विजमन्दिरम् ॥ तत्रैवजायतेपुत्रो विद्वान्धनसमन्वितः ॥ ९५ ॥ सर्वपापहरंतीर्थं हनूमदीश्वरंशुभम् ॥ शृणोतिमुच्यतेपापाद्वर्णसङ्करसम्भवात् ॥ ९६ ॥ दर्शेसञ्चिन्तयेद्यस्तु मुच्यतेनात्रसंशयः ॥ ९७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेहनूमदीश्वरवर्णनोनामत्रयधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०३ ॥ *

मार्कण्डेयउवाच ॥ आश्चर्यं कथितं तात यदभून्नर्मदातटे ॥ सोमनाथस्यतीर्थं हि वाराणस्यासमन्तप ॥ १ ॥ युधिष्ठिरउवाच ॥ निमग्नो दुःखसंसारं हतराज्योद्विजोत्तम ॥ युष्मद्वाणीजलैस्सनातो निर्दुःखोहंसवान्धवः ॥ २ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ साधुसाधुमहाबाहो सोमवंशविभूषण ॥ पृष्टेतेदुर्लभंतीर्थं गुह्याद्गुह्यतरं यथा ॥ ३ ॥ आदौपितामहस्तात समस्तस्यजनस्यच ॥ मनसातस्यसञ्जाता ऋषयोदशपुङ्गवाः ॥ ४ ॥ मरीचिर्त्रयङ्गिरसौ पुलस्त्यःपुलहःक्र

भाषाऽनुवादेहनूमदीश्वरवर्णनोनामत्रयधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०३ ॥

मार्कण्डेयजी बोलें कि हे तात ! जो नर्मदा के तटमें आश्चर्य्य हुआ उसको मैंने कहा है नृप ! सोमनाथका तीर्थ काशीके बराबरहै ॥ १ ॥ तब युधिष्ठिरजी बोले कि हे द्विजोत्तम ! राज्य जिसकी छीनलगाई इसी से दुःखरूपी संसार समुद्र में डूबाहुआ भाइयों के सहित मैं आपकी वाणीरूप पानी से नहायाहुआ इससमय मैं दुःख से रहित होगयाहूँ ॥ २ ॥ तब मार्कण्डेयजी बोलें कि हे सोमवंशविभूषण, महाबाहो ! बाह २ गुप्तसे अतिगुप्त बड़ेदुर्लभतीर्थ को आपने पूछा ॥ ३ ॥ हे तात !

पहले सबके पितामह जो ब्रह्मा हैं उनके मनसे दश उत्तम ऋषि पैदाहुये ॥ ४ ॥ मरीचि, अत्रि, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, प्रचेता, वशिष्ठ, भृगु और नारद ये दश पुत्र हुये प्रचेताके बड़े तेजवाले दक्षप्रजापतिहुये और दक्षके पचास कन्याहुई ॥ ५ । ६ ॥ दक्षने दश कन्याओं को धर्मराज को दिया और तेरह कश्यपको और हे महाभाग ! इसीतरह सत्तार्दस चन्द्रमाको दी ॥ ७ ॥ उन सत्तार्दस कन्याओं में रोहिणी चन्द्रमा को अधिक प्यारीहुई उन्हीं के कारण से चन्द्रमा को दक्षने शाप दिया ॥ ८ ॥ चन्द्रमा प्रजापति के वचनसे क्षयरोगवाले होगये दक्षके शापके प्रभावसे चन्द्रमा तेजसे रहित होगये ॥ ९ ॥ तब चन्द्रमा कांपतेहुये ब्रह्माके तीरगये और

तुः ॥ प्रचेताश्च वशिष्ठश्च भृगुर्नारद एव च ॥ ५ ॥ जज्ञे प्रचेतसो दक्षो महातेजाः प्रजापतिः ॥ दक्षस्यापि पुता जाताः पञ्चाशत्कन्यकाः किल ॥ ६ ॥ ददौ स दश भर्माय कश्यपाय त्रयोदश ॥ तथैव च महाभाग सप्तविंशतिमिन्दवे ॥ ७ ॥ तासां हिरोहिणी चन्द्रस्याभीष्टा सा भवत्तदा ॥ तस्याश्च कारणं कृत्वा शशोदक्षेण चन्द्रमाः ॥ ८ ॥ क्षयरोग्य भवच्चन्द्रो विवक्षयाः प्रजापतेः ॥ दक्षशापप्रभावेण निस्तेजाः शर्वरीपतिः ॥ ९ ॥ गतः पितामहं सोमो वेपमानः प्रणम्य च ॥ ब्रह्मयोने नमस्तुभ्यं वेदगर्भेन मोस्तुते ॥ १० ॥ ब्रह्मोवाच ॥ सर्वत्र दुर्लभं रेवा त्रिषु स्थानेषु भारत ॥ अङ्कुरे च भृगुक्षेत्रे नर्मदा तुरगे श्वरे ॥ ११ ॥ काष्ठवत्संस्थितस्सोमो ध्यायते परमेश्वरम् ॥ यावद्वर्षशतं पूर्णं तावत्तुष्टोमहे श्वरः ॥ १२ ॥ प्रत्यक्षस्सोमनाथस्य वृषासन उमाद्वजः ॥ साष्टाङ्गं प्रणतो भूत्वा जयेद्वनमोस्तुते ॥ १३ ॥ जयशङ्करपापकृतान्तनमो जय

प्रणामकर ब्रह्मासे बोले कि हे ब्रह्मयोने, वेदगर्भ ! आपके लिये चारंवार नमस्कार है ॥ १० ॥ तब हे भारत ! ब्रह्माजी बोले कि नर्मदा तो सभी कहीं दुर्लभ है परन्तु तीन जगह बहुत कठिन है उन्कार, भृगुक्षेत्र और नागेश्वर मे ॥ ११ ॥ यह सुन चन्द्रमा नर्मदाको गये और काठकी तरह स्थित होकर परमेश्वर का ध्यान करतेहुये जबतक सौवर्ष पूरेहुये तबतक ध्यान किया तब महादेवजी प्रसन्नहुये ॥ १२ ॥ और पार्वती को आधेअङ्ग में लिये व बेलपर सवार चन्द्रमा के प्रत्यक्ष हुये तब चन्द्रमा साष्टाङ्ग प्रणामकर बोला कि हे देव ! जयहो आपके लिये नमस्कार है ॥ १३ ॥ हे पापोंको यमराज के समान, शङ्कर ! जयहो आपके लिये नमस्कार है हे ईश्वर !

हे नाथ ! जयहो आपके लिये बार २ नमस्कार है हे वासुकिनाग के गहनावाले ! हे भूतपते ! तुम्हारी जयहो, त्रिशूल और स्वर्ण के धारण करनेवाले के लिये नमस्कार है ॥ १४ ॥ हे अन्धकासुर के नाश करनेवाले ! जयहो तुम्हारे लिये नमस्कार है दानवोंकी देहके नाश करनेवाले के लिये नमस्कार है घटने से रहित व सब कला-श्री से संयुक्तकी जयहो व नमस्कार है कालके कर्तव्य के दमन करनेवालेकी जय हो व नमस्कार है ॥ १५ ॥ हे उमापते ! हे नीलकण्ठ ! आपकी जयहो हे सूक्ष्मरूप वाले व माया से रहित शब्दरूप ! आपके लिये नमस्कार है हे सबकी आदि व अपने आदि और अन्त से रहित ! आपके लिये नमस्कार है हे पिनाक धनुष व त्रिशूल

ईश्वरनाथनमोस्तुनमः ॥ जयवासुकिभूषणभूतपते जयशूलकपालधरायनमः ॥ १४ ॥ जयअन्धकदेहविनाशनमो जयदानवदेहवधायनमः ॥ जयनिष्कलसकलकलायनमोजयकालकलादमनायनमः ॥ १५ ॥ जयनीलकण्ठउमापते जयसूक्ष्मनिरञ्जनशब्दनमः ॥ जयआद्यअनाद्यअनन्तनमो जयपाणिपिनाकत्रिशूलनमः ॥ १६ ॥ एवंस्तुतो महादेवस्मोमनाथेनपाण्डव ॥ तुष्टस्तस्यनृपश्रेष्ठ उमयासहशङ्करः ॥ १७ ॥ ईश्वरउवाच ॥ वरंवरयभद्रन्ते यत्तेमन सिवर्तते ॥ सोमउवाच ॥ दक्षशापिनदग्धोहं क्षीणदेहोमहेश्वर ॥ १८ ॥ पापप्रशमनन्देव कुरुसर्वममैवतु ॥ महेश्वर उवाच ॥ भवद्भक्तिगृहीतोहं तुष्टश्चैवोमयासह ॥ १९ ॥ निष्पापस्मोमनाथस्य सञ्जातस्तीर्थसेवनात् ॥ इत्युक्त्वान्तर्दधेदेवस्मोमोध्यात्वात्वाज्ञणंनृप ॥ २० ॥ स्थापयामासलिङ्गन्तुसिद्धिदंप्राणिनांभुवि ॥ सर्वदुःखहरन्देवं ब्रह्महत्याविनाश

हार्यों में रखनेवाले ! जयहो व नमस्कार है ॥ १६ ॥ हे पाण्डव ! हे नृपश्रेष्ठ ! इसप्रकार चन्द्रमा से स्तुति किये गये 'पार्वती' सहित महादेवजी उनसे प्रमन्न हुये ॥ १७ ॥ महादेवजी बोले कि तुम्हारा कल्याण हो जो तुम्हारे मनमें वर्तताहो उस वरको तुम मांगलेजो तब चन्द्रमा बोले कि हे महेश्वर ! दत्तके शाप से मैं जलाहुआ व तुम्हारी देहवाला होगयाहूँ ॥ १८ ॥ इस से हे देव ! मेरे सब पापकी क्षान्ति को आप करें तब महादेव बोले कि आपकी भक्ति से पकड़लिया गया मैं पार्वती के सहित प्रसन्नहूँ ॥ १९ ॥ तुम सोमनाथ के तीर्थकी सेवा से पापरहित होगये हो यह कहकर महादेव अन्तर्द्वान होगये हे नृप ! चन्द्रमा भी थोड़ीदेर ध्यानकर ॥ २० ॥

पृथिवी में सब प्राणियों को सिद्धिके देनेवाले व सब दुःखों के व ब्रह्महत्या के हरनेवाले लिङ्गरूप महादेव का स्थापन किया ॥ २१ ॥ मार्कण्डेयजी बोले कि सोमनाथ के प्रभावको तुम से संक्षेप से कहते हैं एक शम्बर नामका राजाहुआ उसका त्रिलोचन नामका पुत्रहुआ ॥ २२ ॥ त्रिलोचन का पुत्र बहुत नीच, बड़ा पापी, कण्ठ नामका हुआ वनमें घूमते हुये उस कण्ठको हिरनों का भ्रूण देखपड़ा ॥ २३ ॥ तब त्रिलोचन के लड़के कण्ठने उस पूरे भ्रूणको मारा उस भ्रूण के बीचमें निर्जन वन में विचरता हुआ एक उत्तम ब्रह्मर्षि भी कण्ठ के हथियार से मारागया तब ब्रह्महत्यासे युक्त व तेज से रहित कण्ठ पृथिवी में घूमता हुआ ॥ २४ ॥ २५ ॥

नम् ॥ २१ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ सोमनाथप्रभावंच संक्षेपात्कथयामिते ॥ शम्बरोनामराजाभूत्तस्यपुत्रस्त्रिलोचनः ॥
२२ ॥ त्रिलोचनमुतःकण्ठः पापनिष्ठोमहाऽधमः ॥ वनेविभ्रमतस्तस्य मृगयूथन्त्वदृश्यत ॥ २३ ॥ मृगयूथंहतंसर्वं त्रि
लोचनमुतेनच ॥ मृगरूपीद्विजोमध्ये विचरन्निर्जनेवने ॥ २४ ॥ तदाहतस्तुशस्त्रेण कण्ठेनऋषिसत्तमः ॥ ब्रह्महत्यायु
तःकण्ठो निस्तेजाव्यचरन्महीम् ॥ २५ ॥ विचरन्नापिसंप्राप्तो नर्मदानागसङ्गमे ॥ कदम्बपाटलाकीर्णे बिल्वनारङ्गशो
भिते ॥ २६ ॥ चिञ्चिनीचम्पकोपेते अगस्तितरुशोभिते ॥ उन्मत्तभृङ्गसंयुक्ते तथासर्वत्रशोभिते ॥ २७ ॥ चित्रकैर्मृगमा
जैरःसिंहैस्सर्वत्रशूकरैः ॥ शशकैर्गवैर्युक्ते शिखण्डिरवनादिते ॥ २८ ॥ प्रविष्टस्तद्वनेकण्ठस्तृषार्तःश्रमकर्षितः ॥ स्ना
तोरैवाजलेषुण्ये सङ्गमेपापनाशने ॥ २९ ॥ पत्राणिचविचित्राणि भक्षयन्सहकिङ्करैः ॥ सुप्तःपादपछायायांश्रान्तोमृगव

विचरते हुये नर्मदा और नागेश्वर के सङ्गम में प्राप्तहुआ फिर कदम्ब और पंडरिया के वृक्षों से घने व बेल और नारङ्गी के वृक्षों से शोभित ॥ २६ ॥ अंबिली और चम्पाश्रों से युक्त, अगस्त्यके वृक्षों से सुहावने, मतवाले भौरों से युक्त इस प्रकार सबकहीं शोभावाला ॥ २७ ॥ व चीता, हिरन, बिलार, सिंह, सुवर, खरगोश और लीलगायों से युक्त और मोरोंकी आवाजों से भरेहुये ॥ २८ ॥ ऐसे वनमें प्यास के मारे विकल व थकावट से कष्टित कण्ठ पैठताहुआ पापों के नाश करनेवाले सङ्गम में पवित्र नर्मदा के जलमें स्नान करताहुआ ॥ २९ ॥ और अपने सिपाहियों के सहित रङ्ग २ के पत्तों को खाता हुआ व हिरनों के शिकार से थकाहुआ वृक्षकी छाया

में सोताहुआ ॥ ३० ॥ फिर हे युधिष्ठिर ! बड़ी भक्ति से सोमनाथ का पूजन करता हुआ फिर सब पापों के क्षय करनेवाले जलको अच्छी तरह पीताहुआ ॥ ३१ ॥ तब तक उसी श्रेष्ठ तीर्थ में सङ्गम नहाने के वास्ते तीर्थ में मनको लगाये हुये रास्तेमें एक ब्राह्मण आता था ॥ ३२ ॥ रास्तेमें एक वृक्षपर चढ़ीहुई एक बड़ी डरावनी स्त्री थी वह उस ब्राह्मण से बोली कि हे द्विजोत्तम ! खंडेरहो खंडेरहो ॥ ३३ ॥ हे नरेश्वर ! डराहुआ वह ब्राह्मण जबतक सब दिशाओं में देखे तबतक वृक्षपर चढ़ी हुई, लाले कपड़ों को पहने, लालेफूलों की मालाको पहने व छोटी उमरवाली व लालचन्दनसे शोभित व लाले जेवरोंकी शोभा से युक्त, फँसरी की हाथमें लिये धेनच ॥ ३४ ॥ आनर्चपरयाभक्त्या सोमनाथंयुधिष्ठिर ॥ पीत्वातोयंकण्ठमात्रं सर्वपापक्षयंकरम् ॥ ३५ ॥ तावत्तीर्थं वरेविप्रस्नानार्थसङ्गममप्रति ॥ मार्गगोब्राह्मणोभूयस्ततस्तद्गतमानसः ॥ ३६ ॥ मार्गेष्टक्षेसमारूढा स्त्रीचैकाचमयङ्करी ॥ उवाचब्राह्मणंसाहि तिष्ठतिष्ठद्विजोत्तम ॥ ३७ ॥ त्रस्तोनिरीक्षतेयावद्विशस्सर्वानरेश्वर ॥ तावद्वृक्षसमारूढां स्त्रियंरक्ताम्बरवृताम् ॥ ३८ ॥ रक्तपुष्पधरांवालां रक्तचन्दनचर्चिताम् ॥ रक्ताभरणशोभाढ्यां पाशहस्तान्ददर्शह ॥ ३९ ॥ सन्त्युवाच ॥ सन्देशंशृणुमेविप्र यदिगच्छसिसङ्गमम् ॥ मद्भर्तातिष्ठतेतत्र शीघ्रमेवविसर्जय ॥ ४० ॥ एकानि नीचतेभ्यार्या तिष्ठतेवनमध्यगा ॥ इत्याकर्ण्यगतोविप्रस्ङ्गमंसुरदुर्लभम् ॥ ४१ ॥ वृक्षच्छायास्थितंकण्ठं ब्राह्मणो हिददर्शह ॥ ब्राह्मणउवाच ॥ वनान्तेचमयादृष्टा बालाकमललोचना ॥ ४२ ॥ रक्ताम्बरधरातन्वी रक्तचन्दनचर्चिता ॥ रक्तमात्स्यासुरशोभाढ्या पाशहस्तामृगेक्षणा ॥ ४३ ॥ वृक्षारूढावद्वैक्यं भर्तारंप्रेषयस्वमाम् ॥ कण्ठउवाच ॥ कस्मिं हुये एकस्त्री को देखताहुआ ॥ ४४ ॥ ३५ ॥ वह स्त्री बोली कि हे विप्र ! जो तुम सङ्गम को जाते हो तो हमारे सन्देशको सुनो कि हमारा भर्ता वहाँ है सो उसको बहुत जल्द भेजो ॥ ४५ ॥ उससे कहना कि वनके बीचमें तुम्हारी स्त्री अकेली बैठी है यह सुनकर ब्राह्मण देवताओं के दुर्लभ संगम को गया ॥ ४६ ॥ वहा वृक्षकी छाया में बैठेहुये कण्ठको ब्राह्मण ने देखा तब ब्राह्मण बोला कि वनमें एक स्त्री को मैंने देखा जो कि छोटी उमरवाली व कमल से जिसके नेत्र हैं ॥ ४७ ॥ और लाले कपड़ों को पहने, सुक्ष्मांगी, लालचन्दन को लगाये, लालेफूलों की मालावाली, अतिशोभा से युक्त, हाथ में फँसरीवाली, हिरनकेसे नेत्रवाली ॥ ४८ ॥ और वृक्ष

पर बैठी हुई मुझसे कहा कि हमारे पतिको हमारे पाम भेज देना तब कण्ठ बोला कि हे विप्रेन्द्र ! वह मृगनयनी स्त्री किम जगह बैठी है ॥ ४० ॥ और किसकी स्त्री है व किस कार्य के वास्ते बुलाया है यह सब मुझसे कहो तब ब्राह्मण बोला कि हे विभो ! संगम से आधेकोस पर सुहावने वनमें ॥ ४१ ॥ तुमको चाहती हुई वह स्त्री बैठी है तब हे युधिष्ठिर ! उस कण्ठ राजाने अपने सेवक से कहा कि ॥ ४२ ॥ तुम जाओ और उससे पूछो कि तू कौन है और कहा से आई है और कहां को जावेगी तब वह बहुत जल्दगया कि जहां वह स्त्री बैठी थी ॥ ४३ ॥ हे नृपसत्तम ! वृक्षपर बैठी हुई स्त्री को देखा और उससे बोला कि हे बाले ! राजा तुमको पूछता नर्यानेतुविप्रेन्द्र तिष्ठते मृगलोचना ॥ ४० ॥ कस्यसायेनकार्येण एतत्सर्ववदस्वमे ॥ ब्राह्मण उवाच ॥ सङ्गमादद्भक्रो शेच उद्यानान्तेप्रशोभिते ॥ ४१ ॥ तत्र तिष्ठतिसानारी सोत्करिठतमनाविभो ॥ ततोभृत्यमुवाचेदं कण्ठो राजायुधिष्ठिर ॥ ४२ ॥ पृच्छत्वं गच्छकाचासि आगता कगमिष्यसि ॥ ततः क्षिप्रगतस्तत्र यत्र नारी स्थिता भवत ॥ ४३ ॥ वृक्षस्थाददृशे बाला मुवाच नृपसत्तम ॥ त्वाराजा पृच्छते बाले कासित्वं कगमिष्यसि ॥ ४४ ॥ मन्त्र्युवाच ॥ गुरुरात्मवतांशास्ता राजाशास्ता दुरात्मनाम् ॥ इह प्रच्छन्नपापानां शास्ता वैवस्वतोयमः ॥ ४५ ॥ ब्रह्महत्यास्य संजाता मृगरूपद्विजोद्धधात् ॥ मया युक्तोऽपि राजासौ मुक्तस्तीर्थप्रभावतः ॥ ४६ ॥ अत्राद्भक्रो शमात्रैव ब्रह्महत्यानसंविशेत् ॥ सोमनाथप्रभावाच्च तीर्थवाराणसीसमम् ॥ ४७ ॥ गच्छत्वं प्रेषयेः कण्ठं शीघ्रमेवनसंशयः ॥ समस्तं कथयामास तद्वृत्तान्तं नृपम्प्रति ॥ ४८ ॥ तस्य वादयेन राजासौ पपात धरणीतले ॥ भृत्य उवाच ॥ कस्मात्त्वं शोचसे नाथ पूर्वजातं शुभाशुभम् ॥ ४९ ॥ इत्याह किं तू कौन है और कहां को जावेगी ॥ ४४ ॥ तब वह स्त्री बोली कि बुद्धिवालों का सिखानेवाला गुरु होता है और दुष्टों का सिखानेवाला राजा होता है और यहां छिपे पापेवाले पापियों को सिखानेवाले यमराज हैं ॥ ४५ ॥ हिरनके रूपको धरे हुये ब्राह्मण के मारने मे इमको ब्रह्महत्या हुई है सो मुझ ब्रह्महत्या से युक्त भी यह राजा इरा तीर्थ के प्रभावसे छूट गया है ॥ ४६ ॥ यहां आधकोस से ब्रह्महत्या नहीं पैठ सकती है यह तीर्थ सोमनाथके प्रभावसे काशी के समान है ॥ ४७ ॥ इससे तुम जाओ और कण्ठ को निरसन्देह बहुत जल्द भेजो तब वह सेवक गया और राजासे उस सब हालको कहता हुआ ॥ ४८ ॥ उसकी बातसे यह राजा पृथिवी पर गिर

पडा तब सेवक बोला कि हे नाथ । पहलेहुये पाप पुण्य को आप क्यों सोचते हो ॥ ४६ ॥ उसके इस वचन को सुन वह राजा बोला कि यहां सोमनाथ के ममीप में अपने प्राणों का त्याग करूंगा ॥ ५० ॥ आग व बहुत ईधनको जलद लावो अपने वशमें होरहे सेवकों ने सब सामान भट से ला दिया ॥ ५१ ॥ तब पापों के नाश करनेवाले सङ्गम के अच्छे जलमें स्नानकर और हे नरेश्वर ! बड़ी भक्ति से सोमनाथ का पूजन ॥ ५२ ॥ व तीनवार प्रदक्षिणाको कर बरतीहुई आगमें राजा कण्ठ पैठगया और पीताम्बर व महामुकुट के धारण करनेवाले स्वामी जनार्दन भगवान् को अपने हृदय में करके कहा कि विष्णु के ध्यान से मेरी यही सुगति होजावे ॥

करण्यवचस्नस्य सराजातिविदमब्रवीत् ॥ ५० ॥ शीघ्रमानीयतां वहिरिन्ध
नानिब्रह्मन्यपि ॥ आनीतंतत्क्षणात्सर्वं भृत्यैः स्वैर्वशवर्तिभिः ॥ ५१ ॥ स्नानं कृत्वा शुभे तोये सङ्गमे पापनाशने ॥ अ
चित्वा परयाभक्त्या सोमनाथं नरेश्वरः ॥ ५२ ॥ त्रिःप्रदक्षिणं कृत्वा ज्वलिते जातवेदसि ॥ प्रविष्टः कण्ठराजस्तु हृदि
कृत्वा जनार्दनम् ॥ ५३ ॥ पीताम्बरधरे देवं महामुकुटधारिणम् ॥ विष्णोर्ध्यानं न चान्नैव सुगतिर्मे भवत्विति ॥
५४ ॥ पपातपुष्पवृष्टिश्च साधुसाधु नृपात्मज ॥ आश्चर्यमनुलंघ्य द्वा निरीक्ष्य च परम्परम् ॥ ५५ ॥ हुतं तैः पावकैः भृत्यै
हृदि ध्यात्वा गदाधरम् ॥ विमानस्था दिवं सर्वे सङ्गताः पाण्डुनन्दन ॥ ५६ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ सोमनाथप्रभावोयं श्रु
तुष्वेकमनानृतप ॥ अष्टम्याञ्च चतुर्दश्यां सर्वकालेषु भेदिने ॥ ५७ ॥ विशेषाच्छुक्लपक्षे च सूर्यवारेण सप्तमी ॥ उपो
ष्य यो नरो भक्त्या रात्रौ कुर्वीत जागरम् ॥ ५८ ॥ पञ्चामृतेन गव्येन स्नापयेत्परमेश्वरम् ॥ श्रीखण्डलेपनं कुर्यात्पुष्प

५३ । ५४ ॥ तब उसके ऊपर फूलोंकी वर्षा हुई और देवताओं ने कहा कि हे नृपात्मज ! वाह वाह फिर इस अतुल आश्चर्य को देख व आपसमें देख ॥ ५५ ॥ उन सेवकोंने भी गदाधर भगवान् को अपने मनमें ध्यानकर आग में अपने शरीर को होम दिया तब हे पाण्डुनन्दन ! वे सब विमानोंपर चढ़ेहुये स्वर्गको गये और कण्ठ से सब मिलते हुये ॥ ५६ ॥ मार्कण्डेयजी बोले कि हे नृप ! यह सोमनाथ का प्रभाव है इस को एकाग्र मन होकर सुनो हमेशा अष्टमी, चौदस व अच्छे दिन मे ॥ ५७ ॥ व उजियाले पाखमें इतवार सप्तमी को विशेषसे उपासकर जो मनुष्य भक्ति से रातमें जागरण करे ॥ ५८ ॥ और गरु के पञ्चामृत से महादेव को नहवावे तद-

नन्तर चन्दन से लेपन तथा फूल, धूप आदि करे ॥ ५९ ॥ घीसे दिया जलावे और गाना व नाच करावे फिर दूसरे दिन अर्थात् अष्टमी सोमवार को प्रातःकाल में ब्राह्मण का पूजन करे ॥ ६० ॥ वह ब्राह्मण कैसा होवे कि बुद्धिमान हो, क्रोधको जीते हो, किसी की निन्दा न करता हो, सब अङ्गों से सुन्दर हो, शान्त हो, अपनी स्त्री का पालनेवाला हो ॥ ६१ ॥ गायत्री को जपता हो और सदा कुकर्मों से रहित होवे और जिसके घरमें उड़गी व बृषली और सूदिनि रहती हो ऐसे को ॥ ६२ ॥ और घाट बाढ़ अङ्गोवाले व जिनके आगे पीछे का पता नहीं है ऐसे ब्राह्मणों को व्रत, श्राद्ध व दानमें पण्डित लोग सदा छोंडेरहे ॥ ६३ ॥ दूसरे पुरुषके पास रहनेवाली जवान

धूपादिकं तथा ॥ ५९ ॥ घृतेन बोधयेद्दीपं गीतं नृत्यं च कारयेत् ॥ सोमवारेण चाष्टम्यां प्रभाते पूजयेद्विजम् ॥ ६० ॥ आत्मवन्तं जितक्रोधं द्विजनिन्दाविवर्जितम् ॥ सर्वाङ्गरुचिरं शान्तं स्वदारपरिपालकम् ॥ ६१ ॥ गायत्री पठमानञ्च विकर्मरहितं सदा ॥ पुनर्भूर्बृषलीशूद्रो वर्तयेत्यस्य मन्दिरं ॥ ६२ ॥ हीनाङ्गास्त्वतिरिक्ताङ्गा येषां पूर्वापरं न हि ॥ व्रते श्राद्धे तथा दाने द्विजावर्ज्याः सदा बुधैः ॥ ६३ ॥ पुंश्चलीतरुणीभार्या द्विजः स्वाध्यायवर्जितः ॥ आत्मना सह दत्तारमघो न यतिपाण्डव ॥ ६४ ॥ शाल्मलीनौ कया तुल्याः स्वधर्मं निरता द्विजाः ॥ दत्तारं चैव मात्मानं तारयन्ति तरे न्ति च ॥ ६५ ॥ श्राद्धं सोमं च वरे पार्थ यः कुर्यादुत्तमानवः ॥ पितरस्तस्य तृप्यन्ति यावदाभूतसम्प्लवम् ॥ ६६ ॥ अन्नं वस्त्रं हिरण्यञ्च यो दद्यादथ जन्मने ॥ स याति शाङ्करं लोकमिति मे सत्यमाषितम् ॥ ६७ ॥ हयं यो वै ददात्यत्र सम्पूर्णाभरणान्वितम् ॥ रक्तं वापीतवर्णं वा सर्वलक्षणलक्षितम् ॥ ६८ ॥ कुङ्कुमेन विलिप्ताङ्गमप्रजञ्चददेदिति ॥ स्वरदामभूषितं कण्ठे सितव

स्त्री और वेद पढ़ने से खाली ब्राह्मण हे पाण्डव ! ये दोनों अपने के सहित देनेवाले को नरक में भेजते हैं ॥ ६४ ॥ और अपने धर्म में लगे हुये ब्राह्मण से मरकी नाव के समान होते हैं वे देनेवाले को तारते हैं और आप भी तरते हैं ॥ ६५ ॥ और हे पार्थ ! मोमे इत्र में जो मनुष्य श्राद्ध करता है प्रलय तक उसके पितर तृप्त रहते हैं ॥ ६६ ॥ अन्न, वस्त्र और सोना जो ब्राह्मण को देता है वह महादेव के लोकको जाता है यह हमारा कहना सत्य है ॥ ६७ ॥ और सब जेवरों से सजे हुये घोड़े को जो यहा देता है वह घोड़ा लाल हो व पीला हो सब लक्षणों से युक्त हो ॥ ६८ ॥ उसकी देह केसर से रंगी हो और नकन्द हो ऐसे को देवे को देवे और कण्ठाको कण्ठ में पहने हो और सफेद कपड़े

की भूल ओढ़े होवे ॥ ६६ ॥ ऐसे घोड़े पर चढ़ने के वास्ते ब्राह्मण से कहे कि अपने पांवकी हमारे कन्धे पर रखो और हमारे घोड़े पर चढ़ो जब ब्राह्मण घोड़े पर सवार होजावे तब यह कहे कि सूर्यनारायण प्रसन्न होवें ॥ ७० ॥ वह घोड़े का देनेवाला सब पापों से छुटा हुआ शङ्करजी के लोकको जाता है और उस लोक से उतर फिर धार्मिक राजा होता है ॥ ७१ ॥ उसके वंश में हमेशा राज्य बनी रहती है कभी नष्ट नहीं होती है और उसका लड़का पूरी उमरवाला होता है उसकी स्त्री उसके वंशमें रहती है ॥ ७२ ॥ और सब दुःखों से रहित आपसी कुछ अधिक सौ वर्ष जीता है इन्द्रियों को जतिहुये चन्द्रग्रहण में जो वहांको जाता है ॥ ७३ ॥ और व्रतको किये

स्त्रावणुण्ठितम् ॥ ६९ ॥ अङ्घ्रिग्राधीयतांस्कन्धे मदीयंहयमारुह ॥ आरुढेब्राह्मणेभूयो भास्करःप्रीयतामिति ॥ ७० ॥
सयातिशङ्करंलोकं सर्वपापविवर्जितः ॥ तस्माच्छोकान्च्युतश्चापि राजाभवतिधार्मिकः ॥ ७१ ॥ तस्यवंशेसदारालज्यं
ननइयतिकदाचन ॥ दीर्घायुजायतेपुत्रो भाय्याचवशशवर्तिनी ॥ ७२ ॥ जीवेद्वर्षशतंसाग्रं सर्वदुःखविवर्जितः ॥ सोमं
स्यचोपरागेतु योगच्छेद्विजितेन्द्रियः ॥ ७३ ॥ सोपवासोजितक्रोधो गान्तुदद्याद्विजन्मने ॥ सवत्सांचीरसंयुक्तांश्वेत
वर्णचिदान्विताम् ॥ ७४ ॥ शवर्लोपीतवर्णावाधूआंवानीलकन्धराम् ॥ कपिलांवासवस्त्रांवा घण्टाभरणभूषिताम् ॥
७५ ॥ रौप्यखुरांकांस्यदोहां स्वर्णशृङ्गीनरेश्वर ॥ इवेतयावद्धर्तैर्वंशो रक्तासौभाग्यवर्द्धिनी ॥ ७६ ॥ शबलीताम्रवर्णा
च दःखमाचप्रकीर्तिता ॥ कपिलातुहरेरपापं त्रिजन्मभिरुपाजितम् ॥ ७७ ॥ तस्यलोकमवाप्नोति मान्धातुश्चजनेश्वर ॥

अनिष्टों के आभास को गऊ देता है गऊ कैसी खोवे कि बछड़ा के सहित हो, दूधवाली हो, सफेद हो, ताकतवाली हो ॥ ७४ ॥ चितली व पीली व धुमेली व

संक्रान्ति ॥ ७८ ॥ घटादिन, गजच्छाया और सूर्यग्रहण में व देवताओं को दुर्लभ, रोहिणी नक्षत्र में निर्मल देहवाले जो वहां जाते हैं ॥ ७९ ॥ तो माताका मारने वाला, गुरुका मारनेवाला और आत्मघात करनेवाला जो दुपदादि मन्त्रको नित्य जपे व हे नृप ! प्राणायाम को करे ॥ ८० ॥ अथवा इच्छानुसारही वैष्णवी व सौरी व शैवी गायत्री को जपे तो वहभी पापों से छूटजाताहै ऐसा शङ्करजी ने कहाहै ॥ ८१ ॥ और जो कर्म करनेवाला वहां सोमनाथकी प्रदक्षिणा करताहै तो हे नरेन्द्र ! उसने मानो सम्पूर्ण जम्बूद्वीप की प्रदक्षिणा करली ॥ ८२ ॥ ब्रह्महत्या का करनेवाला, दारुपीनेवाला, गुरुकी स्त्री का भोग करनेवाला और गर्भ गिरानेवाला भी पक्षान्तेचव्यतीपाते वैधृतोरविसंक्रमे ॥ ८३ ॥ दिनक्षयेगजच्छाया ग्रहणेभास्करस्यच ॥ येव्रजन्तिविशुद्धाङ्गा वरि उच्येसुरदुर्लभे ॥ ८४ ॥ मातृहागुरुहायोहि आत्महातुविशेषतः ॥ दुपदाद्यंजपेन्नित्यंप्राणायामंतथानृप ॥ ८५ ॥ गायत्रीवैष्णवीचैव सौराशैवीयट्टच्छया ॥ सोपिपापैःप्रमुच्येत इत्येवंशङ्करोब्रवीत् ॥ ८६ ॥ यःकुर्यात्सोमनाथस्य तत्र कर्ताप्रदक्षिणम् ॥ प्रदक्षिणीकृतान्तेन जम्बूद्वीपक्षरेऽवर ॥ ८७ ॥ ब्रह्महत्यासुरापानं गुरुदारनिषेवणम् ॥ भ्रूणहाशुद्ध्य तेतत्र एवमेव न संशयः ॥ ८८ ॥ तीर्थाख्यानिमिदंपुण्यं यःशृणोतिजितेन्द्रियः ॥ व्याधितोराजरेणैव अतुलांश्रियमाप्नुयात् ॥ ८९ ॥ पुत्रार्थैलभतेपुत्रं निष्कामःस्वर्गमाप्नुयात् ॥ मुच्यतेसर्वपापेभ्यस्तीर्थैश्चत्वावरन्नृप ॥ ९० ॥ एतत्तेसर्वमाख्यातं सोमनाथस्ययत्फलम् ॥ ९१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणरेवाखण्डे सोमनाथतीर्थमहिमानुवर्णनो नाम चतुरधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०४ ॥

वहां शुद्ध होजाताहै ऐसाहीहै इसमें संशय नहीं है ॥ ८३ ॥ इन्द्रियों को जीतेहुये जो इस तीर्थकी पवित्र कथा को सुनता है वह राजरोगी भी हो परन्तु आराम हो कर बड़ी लक्ष्मी को पाताहै ॥ ८४ ॥ और पुत्रका चाहनेवाला पुत्रको पाताहै और जिसकी कोई कामना नहींहै वह स्वर्गको पाताहै इस उत्तम तीर्थ को सुन हे नृप ! सब पापों से छूटजाताहै यह सोमनाथ का जो फलहै वह सब तुम से कहागया ॥ ८५ ॥ ८६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणरेवाखण्डे प्राकृतभाषाऽनुवादे सोमनाथतीर्थमहिमाऽनुवर्णनो नाम चतुरधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०४ ॥

मार्कण्डेयजी बोले कि हे राजेन्द्र ! हे नृप ! तदनन्तर पिङ्गलावर्तक तीर्थको जावे वह नर्मदा के उत्तरवाले किनारे पर सङ्गम के समीप में है ॥ १ ॥ हे राजेन्द्र ! वहा अग्निने पिङ्गलेश्वर का स्थापन किया है तब युधिष्ठिरजी बोले कि हे विप्रेन्द्र ! अग्निने ईश्वर का स्थापन कैसे किया है ॥ २ ॥ तब मार्कण्डेयजी बोले कि जब महादेवके वीर्य से अग्नि तुम किये गये फिर सीधे स्वभाववाले रुद्र से अपनी देह को पाकर वे अग्नि चलेगये ॥ ३ ॥ अग्नि के मुखमें जब अतुलितेजस्वी महादेव जीने वीर्य को डालादिथा तब रुद्रके तेज से जलेहुये अग्नि तीर्थयात्रा करतेहुये ॥ ४ ॥ वायु का भोजन करतेहुये अग्नि कुछ अधिक सौ वर्षतक बड़ी भक्ति से उग्र

मार्कण्डेयउवाच ॥ ततो गच्छेत्तुराजेन्द्र पिङ्गलावर्तकं नृप ॥ सङ्गमस्य समीपस्थं रेवाया उत्तरे तटे ॥ १ ॥ हव्यवाहे नराजेन्द्र स्थापितः पिङ्गलेश्वरः ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ हव्यवाहेन विप्रेन्द्र स्थापितश्चेश्वरः कथम् ॥ २ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ रेतसायदिरुद्रेण तपितो हव्यवाहनः ॥ प्राप्तो रुद्रेण सौम्येन देहप्राप्य जगाम सः ॥ ३ ॥ हव्यवाहमुखे जिते रुद्रेणामित तेजसा ॥ रुद्रस्य तेजसा दग्धो तीर्थयात्रां करोति सः ॥ ४ ॥ चचार परयाभक्त्या ध्यानमुग्रं हुताशनः ॥ वायुमच्च शशं साग्रं यावदासीद् हुताशनः ॥ ५ ॥ तावत्तुष्टो महादेवो हुताशनमुवाच ह ॥ हव्यवाहवरं ब्रूहि यत्ते मनसि वर्तते ॥ ६ ॥ हुताशन उवाच ॥ नमस्ते सर्वलोकेश उग्ररूप नमोऽस्तुते ॥ युष्मद्रेतेन सम्प्लुष्टः कुब्जो जातो महेश्वर ॥ ७ ॥ शरीरातो ह्यहंकृष्णस्मंस्थितो नर्मदा तटे ॥ इत्युक्तवान्तर्दधे देवो नीरुजस्त्वं भविष्यसि ॥ ८ ॥ हव्यवाहे नराजेन्द्र स्थापितः पिङ्गलेश्वरः ॥ जितक्रोधोऽपि यस्तत्र उपवासं समाचरेत् ॥ ९ ॥ अतिरात्रफलं तत्र अन्ते रुद्रमवाप्नुयात् ॥ गुणान्विताय दीनाय कपि

ध्यान को करतेहुये जबतक ध्यान करें ॥ ५ ॥ तबतक महादेवजी प्रसन्नहुये और अग्निसे बोले कि हे हव्यवाह ! जो तुम्हारे मनमें हो उस वरको तुम मांगो ॥ ६ ॥ तब अग्नि बोले कि हे सब लोकों के मालिक ! आप के लिये नमस्कार है हे उग्ररूप ! आप के लिये नमस्कार है आपके वीर्यसे जला हुआ मैं कुबरा होगया हूं हे महेश्वर ! ॥ ७ ॥ शरीर से दुःखी काला होगया मैं नर्मदा के नटमें रहता हूं तब महादेवने कहा कि तुम रोग से रहित होजावोगे यह कहकर अन्तर्धान होगये ॥ ८ ॥ तब हे राजेन्द्र ! वहा अग्निने पिङ्गलेश्वर को स्थापन किया क्रोधको जीतेहुये जो वहां उपास करता है ॥ ९ ॥ उसको वहां अतिरात्र यज्ञका फल होता है और अन्त में रुद्र को

पाता है और हे भारत ! जो वहाँ बछड़ा व रूप से संयुक्त व कपड़ों से युक्त व जेवर से सजकर कपिलागङ्गा को गुणों से युक्त गरीब ब्राह्मण के लिये देता है वह परमपद को जाता है ॥ १० । ११ ॥ हे राजेन्द्र ! तदनन्तर ब्रह्मा के वंशमें पैदाहुय ब्रह्मर्षियों के थापेहुये अतिउत्तम तीर्थ को जावे ॥ १२ ॥ जो कि नर्मदा के तटमें विद्यमान ऋणमोचन नाम से प्रसिद्ध है जो मनुष्य वहाँ भक्ति से ब्रह्म महीने तक पितरों का तर्पण करता है ॥ १३ ॥ तो वह नर्मदा के जलमें नहाकर अपने किये हुये देवता, पितर और मनुष्यों के ऋण से उसी क्षण छूटजाता है ॥ १४ ॥ वहाँ रूपवाला होकर पाप प्रत्यक्ष देखपड़ता है इस से हे राजन् ! इन्द्रियों को जीतेहुये व एकाग्र

लांतात्रभारत ॥ १० ॥ अलंकृत्वा सवस्त्रांच सवत्सारां रूपसंयुताम् ॥ यः प्रयच्छति विप्राय सगच्छेत्परमं पदम् ॥ ११ ॥
ततो गच्छेत्तुराजेन्द्र तीर्थं परमशोभनम् ॥ स्थापितं ह्यृषिसङ्घैश्च ब्रह्मवंशोद्भवैर्द्विजैः ॥ १२ ॥ ऋणमोचनविख्यातं रेवा
तटसमाश्रितम् ॥ परमांसमनुजो भक्त्या तत्र यस्तर्पयेत्पितॄन् ॥ १३ ॥ दिव्यैः पित्र्यैर्मनुष्यैश्च ऋणैरात्मकृतैस्सह ॥
मुच्यते तत्तज्जणात्सोऽथ स्नात्वा त्वावैनर्मदाजले ॥ १४ ॥ प्रत्यक्षं पातकं तत्र दृश्यते चैव रूपि च ॥ तत्र तीर्थे तु यो राजन्ने कचिन्नो जि
तेन्द्रियः ॥ १५ ॥ स्नानं दानं नरो धीमान् कारयेद्भक्तितत्परः ॥ ऋणत्रयविमुक्तस्तु नाके मोदति वीर्यवान् ॥ १६ ॥
मार्कण्डेय उवाच ॥ तस्यैवानन्तरं पार्थ कपिलातीर्थमुत्तमम् ॥ स्थापितं कपिलेनैव सर्वपापप्रणाशनम् ॥ १७ ॥ अष्ट
म्याञ्च सिते पक्षे चतुर्दश्यां नरेश्वर ॥ स्नापयेत्परया भक्त्या कपिलाक्षीं सरपिषा ॥ १८ ॥ मधुना खण्डयुक्तेन दध्यक्षत
फलेन च ॥ कपिलेशं नृपश्रेष्ठ निशीथे तं जगत्प्रभुम् ॥ १९ ॥ श्रीखण्डेन सुगन्धेन गुणैश्च मेहेश्वरम् ॥ ततस्सुगन्ध

मनवाला जो बुद्धिमान् मनुष्य भक्ति में तत्पर हो उस तीर्थ में स्नान व दान को करता है तो वह बलवान् होकर तीनों ऋणों से छूटा हुआ स्वर्ग में आनन्द भोगता है ॥
१५ । १६ ॥ मार्कण्डेयजी बोले कि हे पार्थ ! उसके बाद उत्तम कपिला तीर्थ को जावे सब पापों के हरनेवाले उस तीर्थको कपिल ने स्थापन किया है ॥ १७ ॥ हे
नरेश्वर ! हे नृपश्रेष्ठ ! उजियाले पाख में अष्टमी व चौदस को शहद, शक्कर व दही, अक्षत और फलों से युक्त कपिलागङ्गा के दूध और घी से बड़ी भक्तिसे अर्द्धरात्र में
उन जगत्प्रभु, कपिलेश्वर महादेव को नहवावे ॥ १८ ॥ १९ ॥ और सुगन्धित चन्दन से महादेवका लेपन करे हे नृपनन्दन ! तदनन्तर क्रोधको जीतेहुये जो मनुष्य

सुगन्धित सफेद फूलों से महादेवको पूजते हैं वे यमलोक को नहीं जाते हैं हे पार्थ ! कपिलेश्वर के अच्छी तरह पूजन किये पर घोर असिपत्रवन व दारुण यमवल्ली को वे सुख से निकल जाते हैं व हे भारत ! पुण्यवाले नर्मदाके जलमें नहाकर गऊ, वस्त्र, अन्न, छाता और शय्याके दानसे अच्छे ब्राह्मणका पूजनकरे तो वह पृथिवीमें राजा होता है ॥ २० ॥ २१ ॥ २२ ॥ २३ ॥ २४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनुवादेकपिलेश्वरमहिमाऽनुवर्णनोनामपञ्चाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०५ ॥ ॥

पुष्पैश्च इवैतैश्च नृपनन्दन ॥ २० ॥ अर्चयन्ति जितक्रोधा न तेयान्ति यमालयम् ॥ असिपत्रवनंधोरं यमवल्लीसुदारुणा
म् ॥ २१ ॥ तेन जन्ति सुखं पार्थ कपिलेशसुपूजिते ॥ स्नात्वा रेवाजले पुण्ये पूजयेद्ब्राह्मणं शुभम् ॥ २२ ॥ गोप्रदानेन च
स्त्रेण अन्नैर्न किल भारत ॥ छत्रशय्याप्रदानेन भूमौ राजा भवेत्तु सः ॥ २३ ॥ नीरोगस्तीव्रतेजाश्च जीवत्पुत्रः प्रियंवदः ॥
शत्रवो भिन्नतां यान्ति जायते नात्र संशयः ॥ २४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डे कपिलेश्वरमहिमाऽनुवर्णनोनामप
ञ्चाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०५ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

मार्कण्डेय उवाच ॥ ततो गच्छेत्तुराजेन्द्र पूतकेश्वरमुत्तमम् ॥ नर्मदादक्षिणकूले सर्वपापक्षयङ्करम् ॥ १ ॥ सुस्था
पितः शिवस्तत्र लोकानां हितकाम्यया ॥ यस्तत्र मनुजः शम्भुं पूजयेत्पाण्डुनन्दन ॥ २ ॥ सर्वान्कामानवाप्नोति न स या
तियमालयम् ॥ कृष्णाष्टम्यां चतुर्दश्यां सर्वकामानराधिप ॥ ३ ॥ ये च यन्ति महाकालं न तेयान्ति यमालयम् ॥ नर्म

मार्कण्डेयजी बोले कि हे राजेन्द्र ! तदन्तर नर्मदा के दक्षिणवाले किनारे पर विद्यमान सब पापों के हरनेवाले उत्तम पूतकेश्वर को जावे ॥ १ ॥ लोकों के हित की कामना से वहा महादेवजी थापे गये हैं हे पाण्डुनन्दन ! वहां जो मनुष्य महादेवका पूजन करता है ॥ २ ॥ वह सब कामों को प्राप्त होता है और यमलोक को नहीं जाता है कृष्णपक्षकी अष्टमी व चौदस को हे नराधिप ! हर एक कामनाओं के करनेवाले ॥ ३ ॥ जो मनुष्य महाकालजी का पूजन करते हैं वे यमलोक को नहीं

जाते हैं नर्मदा के उत्तरवाले किनारे पर उत्तम वैष्णव तीर्थ है जो कि जलशायी इम नाम से पृथिवी में प्रसिद्ध है वहां दानवों को मारकर जनार्दन भगवान् सोये हैं ॥ ४१५ ॥ वहां देवताओं के देवता विष्णुजी ने अपने चक्रको धोया है नर्मदा के जल के प्रभाव से सुदर्शनचक्र पापों से रहित होगया है ॥ ६ ॥ तब युधिष्ठिरजी बोले कि ऋषियों के समूह से सेये जाते चक्रतीर्थ को कहो और विष्णु का अतुल्य प्रभाव व नर्मदाका जो फल है उसको कहो ॥ ७ ॥ मार्कण्डेयजी बोले कि हे महाभाग, युधिष्ठिर ! बाह २ कि गुप्त से गुप्त इस तीर्थ को चक्रधारी विष्णुजी ने आपही बनाया है ॥ ८ ॥ सो हम तुमने उस पापों के नाश करनेवाली कथाको कहेंगे अगिले

ढायोत्तरेकूले वैष्णवंतीर्थमुत्तमम् ॥ ४ ॥ जलशायीति नाम्नैव विख्यातं वसुधातले ॥ दानवानां वधं कृत्वा सुप्तस्तत्र जनादैनः ॥ ५ ॥ चक्रं चत्वालितं तत्र देवदेवन शौरिणा ॥ सुदर्शनं च निष्पापं रेवातोयप्रभावतः ॥ ६ ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ चक्रतीर्थं समाचक्ष्व ऋषिसङ्घे निषेवितम् ॥ विष्णोः प्रभावमतुलं रेवायाश्चैव यत्फलम् ॥ ७ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ साधुसाधु महाभाग विष्णुना च युधिष्ठिर ॥ गुहादूगुहातरन्तीर्थं निर्मितं च क्रियास्वयम् ॥ ८ ॥ तत्ते हं स्पष्टं वक्ष्यामि कथां पापप्रणाशिनीम् ॥ आसीत् पुरा महादैत्यो नलमेघ इति श्रुतः ॥ ९ ॥ तेन देवाजितास्सर्वे हतराज्या नराधिप ॥ नलमेघभयात्पार्थ विष्णुरुद्रास्सवासवाः ॥ १० ॥ यमस्कन्दजलेशाग्निवायवौ वैधनेश्वरः ॥ वसुधाकपतिसिद्धाश्च प्रचेताश्च पितामहः ॥ ११ ॥ गता देवाः परं लोकं विष्णुरुद्रनमस्कृतम् ॥ स्तुवन्ति विविधैः स्तोत्रैर्वागीशप्रसुखास्सुराः ॥ १२ ॥ नमः शिवमूर्तये तुभ्यं प्राकृष्टैः केवलात्मने ॥ गुणत्रयविभागाय पश्चाद्भेदमुपेयुषे ॥ १३ ॥ इन्द्रादिप्रसुखान् देवान् निवर्णान्

जमाने से एक नलमेघ इस नाम से प्रसिद्ध बड़ा भारी दैत्य होता हुआ ॥ ६ ॥ हे नराधिप ! राज्य जिनकी हरली गई ऐसे सब देवता उस दैत्य से जीतलिये गये हे पार्थ ! नलमेघ के भय से इन्द्र सहित विष्णु, रुद्र, ॥ १० ॥ यम, स्कन्द, वरुण, अग्नि, वायु, कुबेर, वसु, बृहस्पति, सिद्ध, प्रचेता और ब्रह्मा आदि ॥ ११ ॥ सब देवता, विष्णु और रुद्र से भी नमस्कार किये गये सर्वोत्तम लोक को जाते हुये और बृहस्पति आदि सब देवता अनेक प्रकार के स्तोत्रों से स्तुति करते हैं ॥ १२ ॥ कि सृष्टि के पहले एकही रूपवाले कल्याण की मूर्ति जो आपहो तिनके लिये नमस्कार है तीनों गुणों के विभाग करनेवाले फिर पीछे से भेद को प्राप्त होनेवाले के

लिये नमस्कार है ॥ १३ ॥ तबतक हे अग्रणीपते ! इन्द्र आदि सब देवताओं को शोभासहित देख प्रसन्नमुखवाले ब्रह्मा देवताओं से बोले ॥ १४ ॥ कि हे देवता लोगो ! तुम्हारा आना बहुत अच्छा है परन्तु तुम्हारी पहली शोभा क्यों जाती रही है जैसे पालासे ठँका हुआ है प्रकाश जिनका ऐसे नक्त्र देखपड़े ॥ १५ ॥ आप से आप चिनगारियों को नहीं उगलता हुआ यह इन्द्रका वज्र गोटिलसा देख पड़ता है ॥ १६ ॥ और वैरियों के रोंकने से नहीं रुकनेवाली व वरुणके हाथमें रहनेवाली यह फांसी मन्त्रों से ताकत जिसकी हरलीगई ऐसे सापकी तरह क्यों दीन होरही है ॥ १७ ॥ टूटे बज्रवाली यह कुबेरकी मुजा, टूटगईहे शाखा जिसकी ऐसे पेड़की

वनीपते ॥ प्रसादाभिमुखोदेवः प्रत्युवाचदिवौकसः ॥ १४ ॥ स्वागतं सुरसङ्घाश्च कान्तिर्नष्टापुरातनी ॥ हिमप्लुप्रभा
णीव ज्योतिषाञ्चमुखानिवै ॥ १५ ॥ प्रसमादर्चिषामेतदनुद्गीर्णसुरायुधम् ॥ वृत्रस्य हन्तुः कुलिशं कुरिष्ठत श्रीवलक्ष्य
ते ॥ १६ ॥ किञ्चायमरिदुर्वारः पाणौपाशः प्रचेतसः ॥ मन्त्रोपहृतवीर्यस्य फणिनोदन्यमागतः ॥ १७ ॥ कुबेरस्य
मनश्शल्यं शंसतीव पराभवम् ॥ अपविद्धाङ्गदोबाहुर्भग्नशाख इव दुमः ॥ १८ ॥ यमोपिव्यलिखद्भूमिं दण्डेनापिहतत्वि
षा ॥ कुरुतस्मै नमो देहनिर्विण्णोयाति लाघवम् ॥ १९ ॥ अमीचद्वादशादित्याः प्रतापक्षयशीतलाः ॥ चित्रन्यस्ता इव
गताः प्रकामालोकनीयताम् ॥ २० ॥ मयि सृष्टिश्च लोकानां रक्षा गुष्मास्वस्थिता ॥ ततो मन्दानिलोद्भूतकमलाकर
शोभिना ॥ २१ ॥ गुरुन्नेत्रसहस्रेण प्रेरयामास वृत्रहा ॥ सद्भिनेत्रो हरस्त्र्यक्षः सहस्रनयनाधिकौ ॥ २२ ॥ वाचस्पतिरु

तरह कुबेर के मनकी फांस व उनकी हारको बतलातीसी है ॥ १८ ॥ चमक जिसकी जाती रही ऐसे कालदण्ड से यमराज भी जमीनको खोद रहे हैं इससे उसके नम-
स्कार करो क्योंकि जिसको देहसे वैराग्य होता है वह हलकापन को प्राप्त होता है ॥ १९ ॥ और ये वारहों सूर्य अपने तेज के क्षीण होजाने से ठण्डे हो रहे चित्रसारी में
लिखे सूर्योंकी तरह सबको खुशी से देखने लायक हो रहे हैं ॥ २० ॥ लोकों की रचना हमारे अधीन है और उनकी रक्षा तुम लोगों के अधीन है तदनन्तर थोड़ी हवा के
चलने से डोल रहे कमलोंकी तरह शोभावाले ॥ २१ ॥ हजारनेत्रों से इन्द्रने वृहस्पति को इशारा किया क्योंकि दो नेत्रवाले वृहस्पति और तीन नेत्रवाले महादेव ये दोनों

इन्द्र से अधिक है ॥ २२ ॥ इस से हाथ जोड़कर बृहस्पति ब्रह्मा से यह बोले कि हे तात ! बड़ा बलवाला नलमेघ नाम का दानव आय के वंशमे पैदा हुआ है ॥ २३ ॥ उस दानवने सब देवताओंको हरा दिया है तब ब्रह्मा ने कहा कि मेरे चलने से देवताओं के मारने लायक नलमेघ नहीं होगा ॥ २४ ॥ विना विष्णु भगवान् के उसका मारना और किसीको साध्य नहीं है तब सब देवताओंने विष्णु की स्तुति की कि हे शङ्ख, पद्म और गदाको हाथोंमें रखनेवाले व चक्रके धारनेवाले हे प्रभो ! आयकीजयहे ॥ २५ ॥ इस देवताओं की स्तुतिको सुन भगवान् जागतेहुये और मेघोंकी तरह गहरीआवाज से भीठीवाणीको बोलतेहुये ॥ २६ ॥ कि हे ब्रह्मन् ! सब देवता व दैत्योसे हम क्यों जगये वाचेन्द्र प्राञ्जलिर्हसवाहनम् ॥ गुष्मदंशोद्भवस्तात नलमेघो महाबलः ॥ २३ ॥ तेनेदेवगणास्मर्वे निरस्तादानवेनच ॥

नलमेघोनवध्योतश्चलितेनमयामुरः ॥ २४ ॥ विनामाधवदेवेन साध्योभवतिनैवहि ॥ शङ्खपद्मगदापाणेजयचक्रधर प्रभो ॥ २५ ॥ इतिदेवस्तुतिश्चत्वा प्रबुद्धोजलशायिकः ॥ उवाचमधुरावाणो मेघगम्भीरयागिरा ॥ २६ ॥ किमर्थवो धितोब्रह्मन्समस्तैश्चसुरामुरैः ॥ ब्रह्मोवाच ॥ नलमेघभयेनेहसम्प्राप्तास्तवमन्दिरम् ॥ २७ ॥ नवध्यःकस्यचित्पापो नलमेघोजनार्दन ॥ तवहस्तेनदुष्टात्मा मृत्युप्राप्स्यतिनान्यथा ॥ २८ ॥ जनार्दनउवाच ॥ स्वस्थानंयान्तुर्गीर्वाणा वधिष्यामिमहाबलम् ॥ स्थानंशंसन्तुमेदेवा वसतेयत्रदुर्मतिः ॥ २९ ॥ देवाउचुः ॥ हिमाचलगुहांकृष्ण वसतेदानवेऽश्वरः ॥ चतुर्विंशत्सहस्रस्तु कन्याभिस्तुसमावृतः ॥ ३० ॥ तुरङ्गैःस्यन्दनैश्चैव संख्यातेषान्नविद्यते ॥ भवनानिविचित्राणि अमंख्यानिबहून्यपि ॥ ३१ ॥ हिरदाःपर्वताकारा हयाश्चहिरदोपमाः ॥ महाबलोऽवसत्तत्र गीर्वाणभयदायकः ॥ ३२ ॥ अगये है तब ब्रह्मा बोले कि हे जनार्दन ! नलमेघके भयसे हम लोग यहाँ आपके मन्दिर में आसहुये हैं नलमेघ पापी किसी के मारने लायक नहीं है आपही के हाथसे वह दुष्टात्मा मृत्युको पावेगा और तब नहीं मरसक्ता है ॥ २७ ॥ २८ ॥ तब भगवान् बोले कि देवतालोग अपने स्थानों को जाँवें हम उस महाबलवान् दैत्य को मारेंगे जहाँ वह दुर्बुद्धि रहताहो उस स्थान को देवतालोग हमको वतलावें ॥ २९ ॥ तब देवतालोग बोले कि हे कृष्ण ! चौबीस हजार कन्याओं से युक्त वह दानवों का मालिक हिमाचलकी गुफामें रहताहै ॥ ३० ॥ घोड़े और रथोंकी कोई गिन्ती नहीं है और अनगिन्ती बहुत से चित्रविचित्र मकान बने है ॥ ३१ ॥ हाथी पर्वतों

केसे भारी और घोड़े हाथियोंकेसे हैं देवताओं को भयका देनेवाला वह बलवान् दैत्य वहां रहता है ॥ ३२ ॥ विकलशुद्धिवाले उन देवताओं के वचन को सुनकर भगवान् शत्रुओं के नाश करनेवाले गरुड़की याद करतेहुये ॥ ३३ ॥ तदनन्तर जनार्दन भगवान् हाथ से चक्रको लेकर व गदा, शङ्ख, शार्ङ्गधनुष व मूसर और हलकी हाथों से लेकर ॥ ३४ ॥ दानवके मारने के वास्ते गरुड़ पर सवार होतेहुये तब हे पार्थ ! उस दानव के घरमें बड़े डरावने उत्पात होने लगे ॥ ३५ ॥ गीदड़ और घुघू उसके घरमें पैठ आये और हवाके बिना उसकी ध्वजाका दण्ड गिरपड़ा ॥ ३६ ॥ मृग और सापकी व हाथी और शेरकी लड़ाई होती हुई भवर जिनमें उठते हैं ऐसी

त्वादेवोवचस्तेषां देवानामातुरात्मनाम् ॥ गरुडं चिन्तयामास शत्रुसङ्घविदारणम् ॥ ३३ ॥ चक्रं करेण सगृह्य गदां शङ्खं ततः प्रभुः ॥ शार्ङ्गं च मुशलं मीरं करं गृह्य जनार्दनः ॥ ३४ ॥ आरूढः पक्षिराजं तु वधार्थं दानवस्य च ॥ दानवस्य गृहे पार्थ उत्पातो घोरदर्शनाः ॥ ३५ ॥ गोमायुर्गृहमध्ये तु कपोतो गृहमाविशत् ॥ विनावीतेन तस्यैव ध्वजदण्डं पपात ह ॥ ३६ ॥ सर्पमूषकयोर्युद्धं तथा कैशरिना गयोः ॥ उन्मार्गाः सरितस्तत्र वहन्ते च क्रमाश्रिताः ॥ ३७ ॥ अकालेतरुषु पाणि दृश्यन्ते तत्र पर्वते ॥ ततः प्राप्सो जगन्नाथो हिमवन्तं न गेहवरम् ॥ ३८ ॥ पाञ्चजन्यं च कृष्णेन पूरितं पुरसन्निधौ ॥ पाञ्चजन्यस्य शब्देन आरूढो दानवेहवरः ॥ ३९ ॥ नलमेघ उवाच ॥ कोयं मृत्युवशं प्रापस्त्वज्ञानेन समावृतः ॥ धुन्धुमार ब्रजशीघ्रं स्वैरन्यपरिवारितः ॥ ४० ॥ बलादानयतं बद्धाममाग्रे बलशालिनम् ॥ धुन्धुमार उवाच ॥ आनयांमिनसन्देहस्मुरपक्षांश्च सामप्रतम् ॥ ४१ ॥ स्यन्दनैश्च समायुक्तो गजवाजिभटैस्सह ॥ दृष्टस्ततो जगद्योनिस्सुपर्णस्थो महाबलः ॥ ४२ ॥

नदियां रास्ते को छोड़ बहनेलगीं ॥ ३७ ॥ और उस पर्वतपर बेममथ के फूल देखपड़ने लगे तदनन्तर जगत् के स्वामी भगवान् पर्वतों में श्रेष्ठ हिमालय पर्वतपर पहुँचगये ॥ ३८ ॥ और श्रीकृष्णजी ने शहर के समीप में अपने पाञ्चजन्य शङ्ख को बजादिया तब पाञ्चजन्यकी आवाजसे दानवोंका मालिक सजग हुआ ॥ ३९ ॥ नलमेघ बोला कि अज्ञान से युक्त यह कौन पुरुष मौत के वश में पड़गया है हे धुन्धुमार ! अपनी सेना से युक्त तुम जल्द जावो ॥ ४० ॥ जबरदस्ती उस बलवान् को बांधकर हमारे सामने लावो तब धुन्धुमार बोला कि मैं देवताओं के सहायकों को अभी लाताहूँ इसमें सन्देह नहीं है ॥ ४१ ॥ फिर रथ, हाथी, घोड़े और म्पिपा-

हियों के सहित उसने गरुड़पर बैठेहुये महाबली भगवान् को देखा ॥ ४२ ॥ इसको पकड़ो २ जब सिपाहीलोग ऐसे कहेगये तब भगवान् के चारों तरफ सिपाही लोग घिरगये ॥ ४३ ॥ गरुड़ अग्निबाण से टींड़ीकी तरह मारेजाते हैं धुन्धुमार भी कृष्ण से बाणों की मार से मारागया ॥ ४४ ॥ छाती में मारागया वह रथके ऊपर गिरपड़ा तब लड़ने को तैयार सब दानव हाहाकार को करतेहुये ॥ ४५ ॥ तब रिससे भराहुआ व रथपर सवार होकर नलमेघ निकला और हे पार्थ ! शङ्ख, चक्र और गदाके धरनेवाले भगवान् को देखा ॥ ४६ ॥ तब नलमेघ बोला कि हे दानवो ! इस विष्णुको मारो जिसने धुन्धुमारको मारहे मेरे सेनापति को मारकर अब कहाँ

गृह्यतां गृह्यतामेष इत्युक्तास्तेचकिङ्कराः ॥ चतुर्दिभुचवर्तन्ते किङ्कराः केशवस्यच ॥ ४३ ॥ सुपर्णेनाग्निवाणेन ह न्यन्तेशलभाइव ॥ धुन्धुमारोपिकृष्णेन शरघातेनताडितः ॥ ४४ ॥ हतोवक्षस्थलोपान्ते पतितस्स्यन्दनोपरि ॥ हा हाकारंततस्सर्वे दानवाश्चक्रुद्यताः ॥ ४५ ॥ नलमेघस्ततःक्रुद्धो रथारूढोविनिर्गतः ॥ ददर्शकेशवंपार्थ शङ्खचक्रगदा धरम् ॥ ४६ ॥ नलमेघउवाच ॥ हन्यतांदानवाःकृष्णो निहतोयेनदानवः ॥ हत्वाचमेचमूमुख्यमधुनाचक्रयास्यति ॥ ४७ ॥ इत्युक्त्वादानवःपार्थ धर्षयामासमायकैः ॥ दानवस्यशरांस्तत्रच्छेदयामासकेशवः ॥ ४८ ॥ गरुत्मान्भक्षया मास तत्सैन्यमतिभीषणम् ॥ कृष्णेनद्विगुणास्तत्र प्रेषिताहिशिलीमुखाः ॥ ४९ ॥ द्विगुणाद्विगुणीकृत्य प्रेषयामासदा नवः ॥ तेषिचाष्टगुणाःकृष्णं व्यादयामासुरोजसा ॥ ५० ॥ ततःक्रुद्धेनदैत्येन आग्नेयंप्रेषितन्तदा ॥ वारुणंप्रतिवायव्यं नलमेघोव्यसर्जयत् ॥ ५१ ॥ नारसिंहंनृसिंहोयं प्रेषयामासपाण्डव ॥ नारसिंहंतोदृष्ट्वा नलमेघोमहाबलः ॥ ५२ ॥

जाकेगे ॥ ४७ ॥ हे पार्थ ! इतना कहकर वह दानव बाणोंसे मारने लगा वहां दानव के बाणोंको भगवान् काट देतेहुये ॥ ४८ ॥ और गरुडभी उसकी बड़ी डरावनी सेना को खाते हुये और वहां भगवान् ने भी उस दानव के बाणों से दूने बाणों को चलाया ॥ ४९ ॥ तब दानव भी दूने से दूने कर बाणों को चलाता हुआ वे अठगुने बाण अपने अपने तेजसे कृष्ण को ढांक लेतेहुये ॥ ५० ॥ तदनन्तर रिस से भरेहुये दैत्य ने अग्निबाण को चलाया और वरुण व वायव्य बाण को भी नल-

मेघ छोड़ता हुआ ॥ ५१ ॥ हे पाण्डव ! तब भगवान् ने नारसिंह बाण को चलाया बलवान् नलमेघ नारसिंह बाण को देख ॥ ५२ ॥ भट रथसे उतरा और वडाबली दानव हाथसे तलवार लेकर भगवान् के मारने के वास्ते चलाता हुआ ॥ ५३ ॥ तब रिसका भरा हुआ वह दानव हे पार्थ ! कृष्ण के समीप आता हुआ और तलवार से गदा को हाथमें लिपेहुये जो भगवान् हैं तिनको मारता हुआ ॥ ५४ ॥ तदनन्तर प्रसन्नमनवाले भगवान् मण्डलके अगिले भाग को प्रहणकर बलवान् नलमेघ दैत्य की छाती में मारा ॥ ५५ ॥ तब वह दैत्य भगवान् को बाण से मारता हुआ तदनन्तर नलमेघपर चड़े क्रुद्ध होकर भगवान् ने हे नृप ! संग्राम में ॥ ५६ ॥ खाली न जावे

उत्तीर्णः स्यन्दनाच्छीघ्रं खड्गगृह्यकरेणतु ॥ प्रेषयामासकृष्णाय तंहन्तुंवलवत्तरः ॥ ५३ ॥ क्रुद्धोथदानवःपार्थ आग
तःकेशवंप्रति ॥ खड्गेनघातयामास गदापाणिंजनार्दनम् ॥ ५४ ॥ मण्डलाग्रंतोगृह्य केशवोहृष्टमानसः ॥ हतोवज्र
स्थलेदैत्यो नलमेवोमहाबलः ॥ ५५ ॥ जनार्दनंतदादैत्यो नाराचेनजघानह ॥ जनार्दनस्ततःक्रुद्धो नलमेघंमृधेनृप ॥
५६ ॥ अमोघंचक्रमादाय शिरस्तस्यन्यपातयत् ॥ पतताशिरसातस्य वसुधाचक्रप्रकम्पिता ॥ ५७ ॥ समुद्राःक्षुभिताः
पार्थ मयादन्मार्गगामिनः ॥ पुष्पवृष्टिततोदेवा वष्टुःकेशवोपरि ॥ ५८ ॥ अवध्यस्सुरसङ्घानां सहतःकेशवेनतु ॥ स्व
स्थानश्चगतोदेवो नलमेघेनिपातिते ॥ ५९ ॥ जनार्दनोपिकौन्तेय नर्मदातटमाश्रितः ॥ लक्ष्मीसमन्वितःकृष्णो वि
लीनो नर्मदातटे ॥ ६० ॥ चक्रंविमोचितंपापक्षालनायमलान्वितम् ॥ पतितंनर्मदातोये जलशायिसमन्वितम् ॥
६१ ॥ निर्धृतकल्मषंजातं नर्मदायाःपण्डितः ॥ नलमेघवभोग्गुणं गुणपुंमनजाधिप ॥ ६२ ॥ तत्सर्वंक्षालितंशीघ्रं

पुण्यं चक्र को लेकर उसका शिर गिरा दिया गिरते हुये उसके शिरसे पृथिवी कांपने लगी ॥ ५७ ॥ और हे पार्थ ! खलभलाते हुये समुद्र भयसे उछलने लगें तदनन्तर
‘माराग्या नलमेघ के मरनेपर भगवान् अपने स्थान
‘अर्जुन’ ॥ ५८ ॥ जो सब देवताओं को अवध्यथा वह भगवान् से मारा गया नलमेघ के तट में लीन होगये ॥ ६० ॥ और
‘अर्जुन’ ॥ ५९ ॥ हे कीर्तये ! जनार्दन भगवान्भी नर्मदा के किनारेपर बैठते हुये लक्ष्मी के सहित विष्णुभगवान् नर्मदा के तट में लीन होगये ॥ ६० ॥ और
‘अर्जुन’ ॥ ६१ ॥ नर्मदा के प्रभाव से चक्र पापों से रहित होगया हे मनुजा-
‘अर्जुन’ ॥ ६२ ॥ नर्मदा के सहित नर्मदा में गिरा ॥ ६३ ॥

धिप ! नलमेघके मारने से जो पाप हुआथा ॥ ६२ ॥ वह सब नर्मदा के जल में शीघ्र धोडाला गया हे भारत ! तब से इस लोक व पृथिवी में वह तीर्थ जलशायी कहलाता है ॥ ६३ ॥ अनेक पापों के समूह के नाशकरनेवाले उस तीर्थको कोई चक्रतीर्थ कहते हैं हे महीपते ! इस भारतखण्ड विषे नर्मदा में वह तीर्थ प्रसिद्ध है ॥ ६४ ॥ हे नृप ! उस तीर्थ के प्रभावको एकाग्रचित्त होकर तुम सुनो जैसे नागों में शयनरायण हैं व देवताओं में जैसे विष्णु हैं ॥ ६५ ॥ और महीनों में जैसे अगहन है ऐसेही नदियों में पुण्यवाली नर्मदा है अगहन के उजियाले पाखकी एकादशीको या और अर्धे दिन में ॥ ६६ ॥ काम और क्रोधसे रहित जो मनुष्य वहाँ जाकर शहद रेवायाम्भसिभारत ॥ तदाप्रभृतिलोकेस्मिञ्जलशायीमहीतले ॥ ६३ ॥ चक्रतीर्थवदन्त्यन्ये अनेकाघौघनाशनम् ॥ विख्यातंभारतेवर्षे नर्मदायांमहीपते ॥ ६४ ॥ तत्तीर्थस्यप्रभावंवै शृणुष्वैकमनानृप ॥ नागानांचयथानन्तो गीर्वाणानांजनार्दनः ॥ ६५ ॥ मासानांमार्गशीर्षोपि नदीपुण्याहिनर्मदा ॥ मासिमार्गेमितेपक्षे एकादश्यांशुभेदिने ॥ ६६ ॥ गत्वायेमनुजास्तत्र कामक्रोधविवर्जिताः ॥ स्नापयन्तिश्रियःकान्तं नागपर्यङ्कशायिनम् ॥ ६७ ॥ राजेन्द्रपूर्याभक्त्या चौद्रसागरसर्पिषा ॥ गुडेनतोनयमिश्रेण जगद्योनिजनार्दनम् ॥ ६८ ॥ स्नाप्यमानञ्चपश्यन्ति येलोकागतपातकाः ॥ तेषान्तिपरमंलोकं सुरासुरनमस्कृतम् ॥ ६९ ॥ धृतेनबोधयेद्दीपमथवातैलमिश्रितम् ॥ रात्रौजागरणंकृत्वा देवःस्यान्नात्रसंशयः ॥ ७० ॥ कथाञ्चैषणवीभक्त्या येशृण्वन्तिनरोत्तमाः ॥ ब्रह्महत्यादिपापेभ्यो मुच्यन्तेनान्त्रसंशयः ॥ ७१ ॥ प्रदक्षिणंयेकुर्वन्ति जलशायिजगद्गुरुम् ॥ प्रदक्षिणीकृतन्तेन जम्बूद्वीपंनरेश्वर ॥ ७२ ॥ ततःप्रभृतिदृष्ट्य और घंसे व गुडमिले जलसे हे राजेन्द्र ! बड़ी भक्तिसे लक्ष्मी के पति व नाग की शय्याके सोनेवाले व जगतकी योनि जो भगवान् हैं तिनको नहंवाते है ॥ ६७ ॥ व पापों से रहित जो लोग नहंवाये जाते हुये भगवान् को देखते है वे सब लोग देवता व दैत्योसे नमस्कार कियेगये उत्तम लोकको जातेहैं ॥ ६८ ॥ घंसे दिया को जलावे अथवा तेल मिले घीको जलावे और रातमें जागरण करके देवता होजावे इसमें संशय नहीं है ॥ ७० ॥ और जो उत्तम लोग बड़ा भक्तिने विष्णु की कथा को सुनते हैं वे ब्रह्महत्या आदि पापों से छूटजाते हैं इसमें संशय नहीं है ॥ ७१ ॥ जगत् के गुरु जलशायी भगवान्की जो प्रदक्षिणा करते है हे नरेश्वर ! वे मानो

जम्बूद्वीपकी प्रदक्षिणा करणुके ॥ ७२ ॥ तदनन्तर विर्मले प्रातःकाल में यक्ष से पितरों का तर्पण कर फिर हे पाण्डवसत्तम ! पूजने लायक ब्राह्मणों से श्राद्ध करावे ॥ ७३ ॥ वे ब्राह्मण कैसे होवें कि अपनी स्त्री में रतहोवें और शान्तहों, पराई स्त्री से विमुखहों, वेदमें अभ्यास करनेवालेहों, अपने कर्मों के करनेवालेहों, अर्घ्ये हों ॥ ७४ ॥ हमेशा सज्जनों केसे स्वभाववाले हों, तीनों कालोंकी सन्ध्या के करनेवाले हों ऐसे ब्राह्मणों से श्राद्ध करावे जो अपने भलेको चाहते हों ॥ ७५ ॥ यहां मनुष्य लोक में वे मनुष्य धन्य व पुण्यवाले हैं कि जो सदा ब्रह्मके स्थान कुण्ड में वास करते हैं ॥ ७६ ॥ और देवताओं के मालिक जलशायी भगवान् को प्रत्यक्ष देखते

विमले पितृन्सन्तर्पयन्ततः ॥ श्राद्धवैब्राह्मणैस्तत्र पूज्यैः पाण्डवसत्तम ॥ ७३ ॥ स्वदारनिरतैः शान्तैः परदारविवर्जितैः ॥ वेदाभ्यसनशीलैश्च स्वकर्मनिरतैश्शुभैः ॥ ७४ ॥ नित्यं सज्जनशैलैश्च त्रिसन्ध्यापरिपालकैः ॥ तादृशैः कारयेच्छ्राद्धमिच्छेयुः श्रेयश्चात्मानम् ॥ ७५ ॥ ते धन्यामानुषेलोके पुण्याश्चैवात्र मानुषाः ॥ ये वसन्ति सदा कालं पदे ब्रह्माश्रये हरे ॥ ७६ ॥ जलशायिनश्च पश्यन्ति प्रत्यक्षं सुरनायकम् ॥ पक्षोपवासयेकोचिद्रुद्रं तंचान्द्रायणं शुभम् ॥ ७७ ॥ मासोपवासमुग्रं च तथान्यत्परमं व्रतम् ॥ तत्र तीर्थतुयः पार्थ कुर्यात्स्वर्गमवाप्नुयात् ॥ ७८ ॥ अतः परं प्रवक्ष्यामि तिलधेनोस्तु यत्फलम् ॥ तथायस्मिन्मन्त्रादेशं दानंतस्य श्रुतं फलम् ॥ ७९ ॥ एतत्कथान्तरे पुण्ये मुनीन्द्रैः पापनाशनम् ॥ श्रुतं हि नैमिषारण्ये नारदाद्यैरनेकधा ॥ ८० ॥ इदमाख्यानमायुष्यं पुण्यं कीर्तिविवर्द्धनम् ॥ विप्राणां श्रावयेद्यस्तु सर्वं तत्फलमाप्नुयात् ॥ ८१ ॥ बहूनां प्रदेयानि गौर्गृहं शयनं किल ॥ विभक्तं दक्षिणां हि षोषा दातारं नोपतिष्ठति ॥ ८२ ॥ ए

हैं और जो लोग एक पात्र का व्रत करते व चान्द्रायण करते हैं ॥ ७७ ॥ व बड़ा कड़ा महीने भरका व्रत व और व्रतको उस तीर्थ में जो करता है हे पार्थ ! वह स्वर्ग को प्राप्त होता है ॥ ७८ ॥ अब इसके बाद तिलधेनुका जो फल है उसको हम कहेंगे वह दान जिसको दिया जावे व जो कुछ उसका फल सुना गया है उसको हम कहेंगे ॥ ७९ ॥ पापों के नाश करनेवाले इस दानको नैमिषारण्य में नारद आदि मुनीन्द्रोंने अनेक तरह से पवित्र कथा के बीच में सुना है ॥ ८० ॥ इस पुण्यवाले व श्रायुर्दाय और यशके बढ़ानेवाले श्राख्यानको जो ब्राह्मणोंको सुनाता है वह इस सम्पूर्ण फलको पाता है ॥ ८१ ॥ गऊ, मकान और शय्या बहुतों को नहीं देना

चाहिये अगर इनकी दक्षिणा बँटजावे तो देनेवाले को फल नहीं होता है ॥ ८२ ॥ हे युधिष्ठिर ! वह एकही को देनेलायक है बहुतों को नहीं अगर वह गऊ बैची जावे तो सात पीढ़ी तकको भरम करदेती है ॥ ८३ ॥ तिल सफेद, काले और भूँभी होते हैं गऊ और बछड़े के मोलभर तिलों के प्रमाणको करे ॥ ८४ ॥ बछड़ा के सहित तिलधेनु देना चाहिये सोभी बहुतों को नहीं विचारसे गऊके जिस स्थान में तिलोंका जितना प्रमाण हो ॥ ८५ ॥ उसी प्रमाणसे अन्नय फलका चाहनेवाला गऊ को बनावे और हे विभो ! चन्दन, फूल और अन्नतों से उसका यत्नसे पूजन करे ॥ ८६ ॥ गऊकी नाक में सब सुगन्धित चीजें रखे और उसकी जीभकी जगह षट् कर्मसाप्रदातव्या बहूनांनयुधिष्ठिर ॥ साचविक्रयमापन्नादेहासप्तसंकुलम् ॥ ८७ ॥ तिलाः श्वेतास्तथा कृष्णास्ति लाः प्रोक्ताश्च वर्णतः ॥ तिलानाञ्च प्रमाणानि धेनोर्वत्सस्य कारयेत् ॥ ८८ ॥ दातव्या वत्सकेनाथ बहूनां कामिनां न तु ॥ यस्मिन्देशे च यन्मानं तिलानाञ्च विचारतः ॥ ८९ ॥ तेन मानेन साकार्या अक्षयं फलमिच्छता ॥ अर्चनीया प्रयत्नेन गन्धपुष्पाक्षतैर्विभो ॥ ९० ॥ नासायां सर्वगन्धाश्च जिह्वायां षड्रसाधृताः ॥ मुक्ताफलानि वा दन्तजङ्घापुच्छेषु योजयेत् ॥ ९१ ॥ कुक्षौ कार्पासकन्देयं नाभ्यां पद्मां सकाञ्चनम् ॥ ओष्ठे मधुघृतं दद्यात्कुर्यात्सर्पिषश्च रोमके ॥ ९२ ॥ कम्बले तथा ॥ यक्ष्मे पायसं दद्याद्घृतचौद्रसमन्वितम् ॥ ९३ ॥ गुडं चैव गुदे दद्याच्छोण्यां मधुघृते कांस्यपात्रमुदोहना ॥ ९४ ॥ यत्तु बालकृतं पापं यद्वा कृतं कर्मकृतं मनसा यच्च चिन्तितम् ॥ ९५ ॥ रसों को घरे दांत, फीली और पूँछ में मोती लगावे ॥ ९६ ॥ कोखियों में कपास और तोड़ी में सोने के सहित कमल को देवे औंठों में घी और शहद देवे रोवों में घी लगावे ॥ ९७ ॥ गऊके गलेकी खालकी जगह कम्बल देवे मरतक में ताँबे के पत्रको लगावे कन्धे में उसी के तुक्ड़े व रीर में लोहे के दण्डको लगावे ॥ ९८ ॥ गुदा में गुड और पीछेवाले पुटों में घी और शहद देवे घासकी जगह खीर, घी और शहद के सहित देवे ॥ ९९ ॥ सोने से मढ़े सींगोंवाली व रूपेसे मढ़े खुरोंवाली व मोतियों से गुंधी पूँछवाली गऊ को देवे उसके साथ कपड़े, अन्न और कसिकी दोहनी को देवे ॥ १०० ॥ तो लडकपन में कियाहुआ व बेसमझ से कियागया व

बाणी, कर्म और मन से किया गया पाप ॥ ६२ ॥ व जलमें शृङ्गने में व मूसर के चाँघने में व वृषली से मैथुन में व गुरुस्त्री के भोग में ॥ ६३ ॥ व कन्या के साथ भोग करने में व सोनेकी चोरी में व दारू के पीने में जो पाप होता है उसको तिलधेनु पवित्र कर देती है ॥ ६४ ॥ जो दिन रातके उपाससे मेरे कहनेके अनुसार विधिपूर्वक गऊ दीजावे तो यमराज के पुरमें जो वैतरणी नदी कही जाती है ॥ ६५ ॥ व बालूकी जगह जहाँ पापी पचता है व अवीचिनरक जहाँ जोरिहाँ दो पहाड़ हैं ॥ ६६ ॥ व जहाँ लोहे के मुँहवाले कौवा हैं व जहाँ डरावनी जगह है व जहाँ ताती बालू है ॥ ६७ ॥ इन सब स्थानों को सुख से नाघकर धर्म-जलमात्रेष्ठीवनेच मुशलेवाविलिङ्घिते ॥ ६८ ॥ कन्यायांगमनेचैव सुवर्णस्तेयएव च ॥ मुरापानञ्चयच्चापि तिलधेनुः पुनाति हि ॥ ६९ ॥ अहोरात्रोपवासेन विधिवत्सामयोदिता ॥ यासौयमपुरेचैव नदी वैतरणी स्मृता ॥ ७० ॥ बालुकायास्थलेचैव पच्यते यत्र दुष्कृती ॥ अवीचिनरकोपेतौ यौवैयुगलपर्वतौ ॥ ७१ ॥ यत्र लोहमुखाः काका यत्र स्थानं भयानकम् ॥ असिपत्रवनं यत्र यत्र तप्तं च बालुकम् ॥ ७२ ॥ तत्सुखेन व्यतिक्रम्य धर्ममरा जाश्रमं व्रजेत् ॥ धर्ममरा जस्तु तं दृष्ट्वा सुनृतं वाङ्मयमब्रवीत् ॥ ७३ ॥ वितानं विततं योग्यं मणिरत्नविभूषितम् ॥ अत्रागच्छन् पश्रेष्ठ गच्छस्व परमाङ्गतिम् ॥ ७४ ॥ माचपापरतेदानं नतदानं परंहितम् ॥ माविकाले विरूपे च न व्यङ्गे च तथैव च ॥ ७५ ॥ अवेदविदुषे चैव ब्राह्मणे मदविक्रवे ॥ मित्रघ्ने च कृतघ्ने च व्रतहर्ने तथैव च ॥ ७६ ॥ वेदान्तगायदातव्या तस्य तत्त्वं विजानते ॥ वेदान्तगेतुसादेया श्रोत्रियेऽभूतबालका ॥ ७७ ॥ सर्वाङ्गरुचिरे देया पवित्रे च प्रियंवदे ॥ पौर्णमास्याममावा

राज के स्थान को जाता है धर्मराज भी उसको देख मीठी व सच्ची बात कहते हैं ॥ ६८ ॥ कि मणि व रत्नोंसे सजाहुआ बड़ा योग्य सामियाना खड़ा है हे नृपश्रेष्ठ ! आप यहाँ आवें और फिर परमगति को जावें ॥ ६९ ॥ पापी को दान मत देवे क्योंकि वह दान अपना हित नहीं होता है और बेसमयमें कुरूप व बिगड़ी देहवाले को मत देवे ॥ ७० ॥ जो ब्राह्मण नशा खाता है और वेद नहीं पढ़ा है मित्रों का द्रोही व कृतघ्न व व्रतहीन है ऐसेको दान न देवे ॥ ७१ ॥ वेदान्त के पढ़नेवाले को व उसके तत्त्व के जाननेवाले को गऊ देना चाहिये वेदान्त के पढ़नेवाले व वेदपाठी ब्राह्मण को बेवछड़ा की नई गऊ देना चाहिये ॥ ७२ ॥ सब अङ्गोंसे सुन्दर व पवित्र

व प्यारी बातों के कहनेवाले को गऊ देना चाहिये पूर्णमासी, अमावस, कार्तिकी ॥ ३ ॥ वैशाखी, अगहन, चन्द्र व सूर्यका ग्रहण, उत्तरायण व दक्षिणायनका दिन विपुत्र (जिस समय में दिन और रात बराबर होते हैं) व्यतीपात, ॥ ४ ॥ षडशीतिमुख नामकी संक्रान्ति और गजच्छाया ये सब दानके समय हैं हे अनघ ! यह मैंने तुम से तिलधेनुके बल्पको कहा है ॥ ५ ॥ इस दान के करनेवाले सूर्यलोकको भेद कर विष्णुलोकको जाते हैं हे नृप ! चक्रतीर्थ के इस सम्पूर्ण फल को मैंने आपसे कहा ॥ ६ ॥ इसके सुनने व कहने से हजार गोदानके फलको पाता है ॥ १०७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणोरेवाखण्डेचक्रतीर्थमाहात्म्यवर्णनोनामषडधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०६ ॥

स्यां कार्तिक्यांचापिभारत ॥ ३ ॥ वैशाख्यांमार्गशीर्षेचग्रहणेचन्द्रसूर्ययोः ॥ अयनेविषुवंचैव व्यतीपातेचसर्वथा ॥ ४ ॥ षडशीतिमुखेचैव गजच्छायासुसर्वदा ॥ एषतेकथितःकल्पस्तिथिलेधेनोर्मयानघ ॥ ५ ॥ भित्वाचभास्करंलोकं हरि लोकंव्रजन्तिते ॥ एतत्तेसर्वमाख्यातं चक्रतीर्थफलन्नृप ॥ ६ ॥ श्रवणात्कीर्तनाद्वापि गोसहस्रफलंलभेत् ॥ १०७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणोरेवाखण्डेचक्रतीर्थमाहात्म्यवर्णनोनामषडधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०६ ॥ * ॥ * ॥

मार्कण्डेयउवाच ॥ ततो गच्छेत्तुराजेन्द्र तीर्थपरमशोभनम् ॥ चन्द्रादित्यंनृपश्रेष्ठ स्थापितंचण्डमुण्डयोः ॥ १ ॥ आसीत्पुरामहाभागौ चण्डमुण्डौतुदानवौ ॥ तपश्चचेरुस्तत्रनर्मदायांयुधिष्ठिर ॥ २ ॥ ध्यायतोभास्करन्देवं तमो नाशंजगद्गुरुम् ॥ ताभ्याञ्चतोषितस्सोपि सहस्रांशुरुवाचह ॥ ३ ॥ साधुसाधिवितितौपार्थ नर्मदायास्तटे शुभे ॥ चण्डमुण्डौवरंभूतंविशिष्टंमनसेप्सितम् ॥ ४ ॥ चण्डमुण्डावुचतुः ॥ अजेयौचैवदेवेश सर्वेषां देवतानृणाम् ॥ रोगैश्चैव

मार्कण्डेयजी बोले कि हे राजेन्द्र ! हे नृपश्रेष्ठ ! तदनन्तर चण्ड मुण्ड के आपेहुये अतिउत्तम चन्द्रादित्य नाम के तीर्थ को जावे ॥ १ ॥ हे युधिष्ठिर ! अगिले जमाने में बड़े भाग्यवाले चण्ड और मुण्ड नामके दो दानव वहां नर्मदा में तपस्या करतेहुये ॥ २ ॥ अन्धकारके नाश करनेवाले व जगत् के गुरु जो सूर्य हैं तिनका ध्यान करतेहुये उन दोनों से प्रसन्न कियेगये सूर्य बोलते हुये ॥ ३ ॥ उत्तम नर्मदा के तट में हे पार्थ ! सूर्यने कहा कि हे चण्ड, मुण्ड ! वाह वाह तुम दोनों अपने मनके प्यारे वरको मागो ॥ ४ ॥ तब चण्ड मुण्ड बोले कि हे देवेश ! सब देवता व मनुष्यों के जीतने लायक हम न होंगे और हे दिनके करनेवाले ! रोगों से रहित

सदा सुखसे रहें ॥ ५ ॥ तब सूर्यने उन दोनोंसे अच्छे वाक्यको कहा कि ऐसाही होगा तदनन्तर सूर्य अन्तर्द्वान होगये फिर उन दोनों दानवों ने सूर्यका ॥ ६ ॥ स्थापन किया उनका जो कोई इन्द्रियों को जीतेहुये बड़ी भक्ति से पूजन करताहै वह मनुष्य वही देवभाव को प्राप्त होजाताहै ॥ ७ ॥ और सूर्य व ब्रह्मलोक में देवताओं के समीप रहताहै व हे नरेश्वर ! जो प्रत्येक छठिमें घी से दीपक जलाताहै ॥ ८ ॥ वह सब पापों से छूटजाताहै और मरकर सूर्यके पुरको जाता है हे नरोत्तम ! चन्द्रादित्य नामका यह तीर्थ वहां प्रसिद्ध है ॥ ९ ॥ जो लोग चन्द्रादित्य को जाते हैं वे सदा विजयको प्राप्त होते हैं ॥ १० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे रेवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनुवादेच-

परित्यक्तौ सविकाशोदिवाकर ॥ ५ ॥ तत्तथेतिशुभंवाक्यंभास्करस्ताववीवदत् ॥ ततश्चान्तर्दधेभानुर्दानवाभ्यांचभास्कर
रम् ॥ ६ ॥ स्थापितं परयाभक्त्या पूजयेद्योजितेन्द्रियः ॥ गीर्वाणतामनुष्यस्य प्राप्तातत्रैववर्तते ॥ ७ ॥ वसतेभास्करे
लोकै वैरिञ्चदेवसन्निधौ ॥ द्यूतेनबोधयेद्दीपं षष्ठ्याषष्ठ्यांनरेश्वर ॥ ८ ॥ मुच्यतेसर्वपापेभ्यो मृतोयातिपुरंरवेः ॥ च
न्द्रादित्यमितिख्यातं तत्रतीर्थंनरोत्तम ॥ ९ ॥ विजयन्तेसदाकालं चन्द्रादित्यं ब्रजन्तिनये ॥ १० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे
रेवाखण्डे चन्द्रादित्येश्वरमहिमानुवर्णनोनामसप्ताधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०७ ॥ * ॥

मार्कण्डेयउवाच ॥ ततो गच्छेत्तुराजेन्द्र यमहासमनुत्तमम् ॥ सर्वपापहरंपार्थ रेवायास्तटमाश्रितम् ॥ १ ॥ युधिष्ठि
रउवाच ॥ यमहासंकथंजातं पृथिव्यामुनिपुङ्गव ॥ एतत्सर्वसमाख्याहि ममकौतूहलंपरम् ॥ २ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥
साधुसाधुमहाभाग पृष्टन्तेधर्ममन्दन ॥ स्नानार्थंनर्ममदायान्तु आगतस्तेपितापुरा ॥ ३ ॥ रजकेनयथाधौतं निम्नं

न्द्रादित्येश्वरमहिमाऽनुवर्णनोनामसप्ताधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०७ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

मार्कण्डेयजी बोले कि हे राजेन्द्र ! हे पार्थ ! तदनन्तर सब पापों के हरनेवाले व नर्मदा के तट में विद्यमान अत्युत्तम यमहास तीर्थ को जावे ॥ १ ॥ तब युधिष्ठिर
जी बोले कि हे मुनिपुङ्गव ! पृथिवी में यमहास कैसे हुआ सो सब आप कहो मुझको बड़ा आश्चर्य है ॥ २ ॥ तब मार्कण्डेयजी बोले कि हे महाभाग ! हे धर्म-

नन्दन ! बहुत अच्छा आपने पूछा आगे नर्मदा में स्नान करने को आपके पिताभी आयेथे ॥ ३ ॥ हे राजन् ! धोबी का धोया हुआ कपडा जैसा निर्मल होजावे ऐसाही साफ नर्मदा के अत्युत्तम जलको देखतेहुये ॥ ४ ॥ यमराज ने हैसदिया था तब वहां एक उत्तम लिङ्ग उठता हुआ तदनन्तर हेराजेन्द्र ! वहां आकाशवाणी हुई ॥ ५ ॥ कि यह तीर्थ यमहास नाम से सदा प्रसिद्ध रहेगा यमराज वहां महादेवको स्थापन कर स्वर्गको जातेहुये ॥ ६ ॥ हे राजेन्द्र ! क्रोध और इन्द्रियों को जीतेहुये यमहास तीर्थ में कुंवारके अधियार पाखकी चौदस को ॥ ७ ॥ बड़ी भक्ति से उपास कर सब पापों से छुटजाता है रात में जागरण कर बीसे महादेव का दिया जलेंवसनंभवेत् ॥ तथैवपश्यताराजन् रेवाजलमनुत्तमम् ॥ ४ ॥ हास्यं कृतं यमेनाथ उत्थितं लिङ्गमुत्तमम् ॥ ततस्तदाहि

राजेन्द्र वागुवाचाशरीरिणी ॥ ५ ॥ यमहासमिदं तीर्थं ख्यातियास्यतिसर्वदा ॥ स्यापयित्वा शिवं तत्र यमः स्वर्गजगाम ह ॥ ६ ॥ यमहासेतुराजेन्द्र जितक्रोधो जितेन्द्रियः ॥ विशेषादाश्विनेमासि कृष्णपक्षे चतुर्दशीम् ॥ ७ ॥ उपोष्य परयाभक्त्या सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ रात्रौ जागरणं कृत्वा दीपं देवस्य बोधयेत् ॥ ८ ॥ दृतेन चैव राजेन्द्र शृणु तस्यैव यत्फलम् ॥ मुच्यते सर्वपापैस्तु अगम्यागमनोद्भवैः ॥ ९ ॥ अभक्ष्यमक्षणेः पापैः पापैर्वपियसम्भवैः ॥ अवाह्यवाहने यच्च अद्रोहद्रोहणे तथा ॥ १० ॥ स्नानमात्रेण तच्चैव नश्येत्पापमनेकधा ॥ यमलोकं नश्येच्च नत्यजेत्पाण्डुनन्दन ॥ ११ ॥ बहूनां परमं गुप्तं तीर्थं भूम्यां नृपात्मज ॥ तदक्षयफलं तेषां यमहासे प्रदायिनाम् ॥ १२ ॥ अमावास्यां जितक्रोधो यस्तु पूजयते हि जान् ॥ भूमिदानेन यो भक्त्या तिलदानेन भारत ॥ १३ ॥ कृष्णाजिनप्रदानेन तिलधेनुप्रदानतः ॥ वसुभे लावे तो हे राजेन्द्र ! उसके फलको सुनो कि जिस स्त्रीका संग्रह नहीं उचित है उसके संग्रह से पैदाहुये सब पापों से छुटजाता है ॥ ८ ॥ ९ ॥ नहीं खानेलायक चीज के खाने से व नहीं पीने लायक के पीनेसे व नहीं जोतने लायक के जोतने से व नहीं वैर करने लायक के साथमें वैर करने से जो अनेक प्रकार का पाप होता है वह स्नानमात्र से नष्ट होजाता है और हे पाण्डुनन्दन ! नहानेवाला यमलोकको नहीं देखता है चाहे पापको न भी छोड़े ॥ १० ॥ ११ ॥ हे नृपात्मज ! यह तीर्थ पृथिवी में बहुतोंको छिपाहुआ है यमहास में दान करनेवालों को अक्षय फल होता है ॥ १२ ॥ हे भारत ! अमावस को क्रोधको जीतेहुये जो मनुष्य भक्तिसे पृथिवी, तिल,

सृगचर्म और तिलधेनु के दान से ब्राह्मणों का पूजन करता है अथवा धनिष्ठा नक्षत्र व वृद्धियोगमें जो लोग भक्तिसे देवों ॥ १४ ॥ व भात, जल, बैल, बड़े बलवाला घोड़ा, कन्या, कपड़ा, बोकरी, गऊ, भैस और घोड़ी को हे नृपश्रेष्ठ ! देते हैं वे यम के पास नहीं जाते हैं और हे युधिष्ठिर ! उनसे जन्ममें यमराजभी प्रसन्न रहते हैं ॥ १५ ॥ १६ ॥ और हे भारत, नृप ! यमकी सवारी भैसा, भैस और स्त्री के दानसे यमराज निरन्तर प्रसन्न रहते हैं ॥ १७ ॥ वह पापोंसे भी युक्त हो परन्तु यमलोकमें नहीं जाता है हे पार्थ ! इसी कारणसे भैसका दान बहुत उत्तम है ॥ १८ ॥ ऊनके दो कपड़े बनावे और उनको लोहमें लपेटकर यमराजके वास्ते ब्राह्मणको देवे व कहे कि हे

वृद्धियोगे च ये प्रदास्यन्ति भक्तिः ॥ १४ ॥ ओदनं वारिधूर्वाहं हयश्चापिमहाबलम् ॥ कन्यां वस्त्रमजंगवै महिषीम
थवाश्विनीम् ॥ १५ ॥ ये यच्छन्ति नृपश्रेष्ठ नोपसर्पन्ति ते यमम् ॥ यमोऽपि भवति प्रीतो जन्मजन्मयुधिष्ठिर ॥ १६ ॥ यम
स्य बाहनं स्त्री च महिषी तत्र भारत ॥ तस्य दानेन सततं यमः प्रीतो भवेन्नृप ॥ १७ ॥ न स याति यमलोकं यदि पापैस्समाश्रितः ॥
एतस्मात्कारणात् पार्थ महिषीदानमुत्तमम् ॥ १८ ॥ और्णवस्त्रद्वयं कार्यं लोहवर्णं च वेष्टितम् ॥ दापयेद्धर्मराजाय प्री
यतां मे द्विजोत्तम ॥ १९ ॥ अनेनैव तु दानेन यमः प्रीतोऽस्तु मे सदा ॥ इत्युच्चार्य द्विजस्य ग्रे यमलोकं भयावहम् ॥ २० ॥
असिपत्रवने घोरं यमवल्लीसुदारुणा ॥ रौद्रावैतरणी चिति कुम्भीपाकस्सुदारुणः ॥ २१ ॥ कालसूत्रं महाभीमं तथा यमल
पर्वतौ ॥ क्रकचनैल यन्त्रञ्च स्थाने गृध्रास्सुदारुणाः ॥ २२ ॥ अनिश्वासो महारौद्रो भीषणो रौरवस्तथा ॥ एते घोराश्च
नरकाः श्रूयन्तो द्विजसत्तम ॥ २३ ॥ तत्प्रसादेन ते सोम्यास्तीर्थस्यास्य प्रभावतः ॥ दानस्यास्य प्रभावेण यमहास्यप्रभाव

द्विजोत्तम ! सुश्रु प्रसन्न होवो ॥ १६ ॥ और ब्राह्मणके आगे यह भी कहे कि इस दानसे सुश्रु पर यमराज सदा प्रसन्न रहे क्योंकि यमलोक बड़ा डरावना है ॥ २० ॥ उसमें बड़ा घोर असिपत्रवन व बड़ी दारुण यमवल्ली व बड़ी भयानक वैतरणी नदी व अतिदारुण कुम्भीपाक ॥ २१ ॥ व बड़ा भयानक कालसूत्र व जोरिहों दो पहाड़ व आरा और कोल्हू व उसी स्थान में बड़े दारुण गीध ॥ २२ ॥ व महारौद्र अनिश्वास व बड़ा डरावना रौरव है हे द्विजसत्तम ! ये जो घोर नरक सुने जाते हैं ॥ २३ ॥

वे सब यमराज के प्रसाद व इस तीर्थके प्रभाव से सुख के देनेवाले होजाते है इस दानके प्रभावसे व यमहास तीर्थके प्रभाव से ॥ २४ ॥ यमलोक को नहीं जाता है और नरक को नहीं देखता है ॥ २५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणैरेवाखण्डे प्राकृतभाषाऽनुवादेयमहासमहिमाऽनुवर्णनोनामाष्टाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०८ ॥

मार्कण्डेयजी बोले कि हे राजेन्द्र ! तदनन्तर अत्युत्तम कोटीश्वर तीर्थ को जावे हे कुरुनन्दन ! वहाँ एक करोड़ ऋषिलोग आयेथे ॥ १ ॥ वहाँ सम्पूर्ण वेद के पढ़नेवाले ब्राह्मणों से मुनिश्रेष्ठ व्यासजी मोक्षके वास्ते विचारकर ॥ २ ॥ श्रद्धा व भक्ति से युक्तहो तिल मिले गऊ के पञ्चासुत से पितरो के तर्पण को कर विधान

तः ॥ २४ ॥ यमलोकन्नवैयाति नरकैवपश्यति ॥ २५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणैरेवाखण्डे यमहासमहिमानुवर्णनोना
माष्टाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०८ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

मार्कण्डेयउवाच ॥ ततो गच्छेत्तुराजेन्द्र कोटीश्वरमनुत्तमम् ॥ ऋषिकोटिस्समायाता तत्र वैकुरुनन्दन ॥ १ ॥ कृ
ष्णद्वैपायनस्तत्र मोक्षार्थमुनिपुङ्गवः ॥ मन्त्रयित्वा द्विजैस्सर्वेदमण्डलपारगैः ॥ २ ॥ पञ्चामृतेन गव्येन तिलमिश्रेण
तत्परः ॥ पितॄणां तर्पणं कृत्वा पिण्डदानं यथाविधि ॥ ३ ॥ श्रावणस्य तु मासस्य पूर्णिमायां विशेषतः ॥ प्राप्य ते चाक्षयात्
सिर्यावदाहूतसम्प्लवम् ॥ ४ ॥ पितॄणां परमं गुह्यं रेवाजलमुपाश्रितम् ॥ मोक्षदं सर्वभूतानां निर्मितं मुनिपुङ्गवैः ॥ ५ ॥ मा
र्कण्डेयउवाच ॥ ततो गच्छेत्तुराजेन्द्र व्यासतीर्थमनुत्तमम् ॥ दुर्लभं मनुजैः पार्थ अन्तरिक्षे व्यवस्थितम् ॥ ६ ॥ युधि
ष्ठिरउवाच ॥ कस्माद्वै व्यासतीर्थं नु अन्तरिक्षे व्यवस्थितम् ॥ एतदाचक्ष्वसं ज्ञेयान्न च ग्रन्थस्य विस्तरः ॥ ७ ॥ मार्कण्डे

से पिण्डदान करतेहुये ॥ ३ ॥ सावनकी पूर्णमासी को विशेषसे इस कामको करे क्योंकि इस से पितरों को प्रलय तक अन्नच तृप्ति होती है ॥ ४ ॥ पितरों को बड़ा गुप्त नर्मदा का जल है सब प्राणियों के मोक्षका देनेवाला नर्मदाका जल मुनियों से बनाया गया है ॥ ५ ॥ फिर मार्कण्डेयजी बोले कि हे राजेन्द्र ! हे पार्थ ! तदनन्तर आकाश में विद्यमान व मनुष्यों को दुर्लभ व अत्युत्तम व्यासतीर्थ को जावे ॥ ६ ॥ तब युधिष्ठिर जी बोले कि व्यासका तीर्थ आकाशमे क्यों

स्थित हुआ संक्षेप से इसको आप कहें जिस में ग्रन्थका विस्तार न होवे ॥ ७ ॥ तब मार्कण्डेयजी बोले कि हे महाबाहो ! बाह २ आप बड़े धर्मात्मा व गुरु के प्यारे अपने धर्मके प्रेमी व तीर्थयात्रा के आदर करनेवालेहो हे पार्थ ! ॥ ८ ॥ हे नरेश्वर ! सब प्राणियोंको व्यास का तीर्थ बड़ा दुर्लभ है हम बुढ़ापे व विकलतासे हे नराधिप ! दबेहुये ॥ ९ ॥ व बेहोश होरहे हैं तब भी कहते हैं हे पाण्डुनन्दन ! गुप्त में अतिगुप्त इस तीर्थ को हमने किसी से नहीं कहा है ॥ १० ॥ हे राजेन्द्र ! इन्द्रकी आज्ञा से वहा काल नहीं रहसक्ता है जिस से यह नर्मदा का चरित्र आकाश में होरहा है ॥ ११ ॥ ब्रह्माभी नर्मदा के गुणों को नहीं कहसक्ते हैं और व्यासतीर्थ को

यउवाच ॥ साधुसाधुमहाबाहो धर्मवान्गुरुवत्सलः ॥ स्वधर्मनिरतःपार्थ तीर्थयात्राकृतादरः ॥ ८ ॥ दुर्लभं सर्वजन्तूनां व्यासतीर्थं नरेश्वर ॥ धर्षितो दृढभावेन वैकल्येन नराधिप ॥ ९ ॥ गतचेतास्तु सज्जातस्तथाभोः पाण्डुनन्दन ॥ गुह्याद्गुह्यतरन्तीर्थं नाख्यातं कस्यचिन्मया ॥ १० ॥ कालस्तत्रैव राजेन्द्र नवसेद्वासवाज्ञया ॥ अन्तरिक्षे च सज्जातं रेवायाश्चैष्टितं यतः ॥ ११ ॥ विरञ्चिर्नैव शक्नोति रेवाया गुणकीर्तनम् ॥ व्यासतीर्थं विशेषेण श्रुतमात्रं वदाम्यहम् ॥ १२ ॥ प्रत्यक्षः प्रत्ययो यत्र दृश्यते हि कलौ युगे ॥ विहङ्गो गच्छते नैव भित्वा शूलं सुदारुणम् ॥ १३ ॥ तस्योत्पत्तिं समासेन कथयामि नृपात्मज ॥ आसीत् पूर्वं महाराज ऋषिश्चैव पराशरः ॥ १४ ॥ तेन चोग्रं तपस्तपं गङ्गाभमसितुभारत ॥ प्राणायामेन चातिष्ठत्प्रविष्टो जाह्नवीजले ॥ १५ ॥ पूर्णे च द्वादशे वर्षे निष्क्रान्तो जलमध्यतः ॥ भिक्षार्थे चागतो ग्रामं नावितत्रैव तिष्ठती ॥ १६ ॥ तत्र दृष्टा परोत्सृष्टा बाला तेन मनोरमा ॥ ताञ्च दृष्ट्वा सकामार्तं उवाच मधुराक्षरम् ॥ १७ ॥ मां रमस्वाद्यत्वं

तो विशेषही नहीं कहसक्ते हैं मैं सुनेमात्र को कहता हूँ ॥ १२ ॥ जहा कलियुग में भी प्रत्यक्ष विश्वास देख पड़ता है जिस तीर्थ के अतिदारुण त्रिशूल को नाघकर पक्षी भी नहीं उड़सक्ता है ॥ १३ ॥ हे नृपात्मज ! उम तीर्थकी उत्पत्तिको हम साधारण रीति से कहते हैं हे महाराज ! आगे पराशर नाम के ऋषि होतेहुये ॥ १४ ॥ हे भारत ! उन्होंने गङ्गाके जल में उग्र तपस्या को किया गङ्गा के जलमें प्राणायाम करतेहुये स्थित रहे ॥ १५ ॥ बारहवीं वर्षके पूरे होनेपर पानी के भीतर से निकले और भिक्षाके वास्ते गांवको गये वहां नौकापर बैठी ॥ १६ ॥ व किसी औरसे छोड़ी हुई मनकी रमानेवाली एक स्त्री उन पराशरको देखपड़ी उसको देख कामसे विकल

वे पराशर उससे मीठे अक्षरों से बोले ॥ १७ ॥ हे मृगलोचने ! तुम कौन हो मुझ कामी से आज रसो हे नावारूढे ! नदी के किनारे पर मेरे चित्त को मथ रही हो ॥ १८ ॥ उन महात्मासे ऐसे कहीं गई वह स्त्री ऋषिको नमस्कार कर बोली कि हे विप्र ! मैं नावर्कौ रक्षा करनी हूँ और अपने स्वामीको नहीं जानती हूँ ॥ १९ ॥ और मेरी यह उमर है बाकी रहे हाल को आप जानो उस स्त्रीसे ऐसे कहे गये वे पराशरभी थोड़ी दूर ध्यान कर बोलते हुये ॥ २० ॥ कि हे भद्रे ! हम ज्ञानके बलसे तुम्हारी उरपत्ति को जानते हैं आप केवटकी कन्या नहीं हो बल्कि सुन्दररूपवाली तुम राजाकी कन्या हो ॥ २१ ॥ तब कन्या बोली कि हे ब्रह्मन् ! हमारा पिता कौन है उसको आप

कासि कामुकं मृगलोचने ॥ नावारूढेन दीतीरे ममचित्तप्रमाथिनी ॥ १८ ॥ एवमुक्ता तु सा तेन प्रणम्य ऋषिपुत्रसमम् ॥ नावंरक्षाभ्यहं विप्र जानामि स्वाभि नन्नतु ॥ १९ ॥ ममेदञ्च वयो ब्रह्मच्छेपं त्वं ज्ञातुमर्हसि ॥ एवमुक्तस्तया सोऽपि क्षणं ध्यात्वा ब्रवीदिदम् ॥ २० ॥ अहं ज्ञानबलाद्भद्रे जानामि तव सम्भवम् ॥ कैवर्तं पुत्रिकानत्वं राजपुत्रीहि मुन्दरी ॥ २१ ॥ कन्यो वाच ॥ कः पिता कथं यत्तां ब्रह्मन् कस्याहमुदरोद्भवा ॥ कस्मिन्वंशे प्रजाताहं कैवर्ततनया कथम् ॥ २२ ॥ पराशर उवाच ॥ संत्रासनस्तथा ॥ शतानि सप्तमाय्याणां पुत्राणान्तुदशैव हि ॥ २३ ॥ जम्बूद्वीपाधिपो भद्रे शत्रुच्छास्तस्य विरोधेन शाकद्वीपनिवासिनः ॥ २४ ॥ धर्मैरेणपालिता लोकाः शिवपूजार्तस्सदा ॥ म्लेक्षेभ्यो महति स्थितः ॥ २५ ॥ तेषाञ्च साधनार्थाय गतो ह्यहं यमहोदधिम् ॥ संयुक्तः पुत्रभृत्यैश्च पौत्रैश्च ॥ २६ ॥ संग्रामस्तेऽस्मसारब्धश्चार्वाङ्गिव सुनासह ॥ जिता म्लेच्छास्समस्ताश्च वसुना ह्यवनीभृता ॥ २७ ॥

कहे और हम किसके पेटसे पैदा हुई हैं व किस वंश में हम पैदा हुई हैं और केवटकी कन्या हम कैसे हुई हैं ॥ २२ ॥ तब पराशर बोले कि हम तुम्हारे पिताको कहते हैं जिसको तुम हम से पूछती हो सोमवंश में बड़े प्रतापवाले वसुनाम के राजा होते हुये ॥ २३ ॥ हे भद्रे ! वे शत्रुओं को डरावनेवाले जम्बूद्वीपके मालि न हुये उनके सातसौ रानी व दश लड़के होते हुये ॥ २४ ॥ धर्म से लोकों की पालनाकी और शिवकी पूजा सदा करते थे तब तक शाकद्वीप के रहनेवाले म्लेच्छ उनके विरोधी होते हुये ॥ २५ ॥ उनके जीतने के लिये समुद्र नावकर वहाँ गये लड़के व सिपाहियों के सहित बड़े पराक्रम में स्थित होते हुये ॥ २६ ॥ हे चार्वाङ्गि ! उन म्लेच्छों

व तुम्हारे पिता वसु से लड़ाई होतीहुई राजा वसुने सब श्लेष्मोंको जीत लिया ॥ २७ ॥ राजाने सेनक व सेना और सवारियों के समेत उन सबको कर देनेवाला कर लिया राजाकी बडीरानी मृगों केसे नेत्रोंवाली तुम्हारी माता ॥ २८ ॥ राजाके परदेश मे होनेपर राजस्वला होतीहुई स्त्रियों को तो सदा कामदेव अधिक रहताहै ॥ २९ ॥ परन्तु ऋतुसमय में काम के बाणोंसे बहुत पीड़ित होती है काम से जजती हुई वह उत्तम नेत्रोंवाली रानी विचार करती हुई ॥ ३० ॥ कि आज हम अपने राजा के समीप दूत को भेजें ऐसे विचार कर बड़े जल्द दूतको बुलाया और कहा कि तुम राजा के तीर जाओ ॥ ३१ ॥ तब दूत ने कहा कि हे देवि ! शत्रुओं के नाश करने

करदास्तेकृतास्तेन सभृत्यबलवाहनाः ॥ प्रधानातस्यमहिषी तवमातामृगेक्षणा ॥ २८ ॥ प्रवासस्थेचभूपालेसं
जाताचरजस्वला ॥ नारीणान्तुसदाकालेमन्मथोह्लाधिकोभवेत् ॥ २९ ॥ विशेषेणऋतौकालेभिद्यतेकामसायकैः ॥ मन्म
थेनतुसन्तप्ताचिन्तयत्साशुभेक्षणा ॥ ३० ॥ दूतंसम्प्रेषयाम्यद्यवसुराजसमीपतः ॥ व्याहृतस्तत्त्वरोद्धूतोगच्छत्वंनृपस
न्निधौ ॥ ३१ ॥ दूतउवाच ॥ परराज्येवमुदेविगतोराजाद्विडन्तकृत् ॥ तत्रगन्तुन्नशक्येत जलयन्त्रैर्विनाशुभे ॥ ३२ ॥ जल
यानानिसर्वाणि नेयानिचपरेतटे ॥ तस्यवाक्येनसानारी विषण्णामदपीडिता ॥ ३३ ॥ राज्ञीदृष्ट्वासखीब्रूते कस्मा
त्त्वंपरिस्त्रिंघसे ॥ लेखोयंप्रेष्यतान्देवि शुक्रहस्तेयथातथा ॥ ३४ ॥ समुद्रंलङ्घयित्वातु शकुन्तोयातिसुन्दरि ॥ व्या
हृतोलेखकस्तत्रलिखलेखंममाज्ञया ॥ ३५ ॥ त्वांविनापट्टराज्ञीसा वसुराजनजीवति ॥ ऋतुकालश्चसम्प्राप्तस्समस्तं
चावधार्यताम् ॥ ३६ ॥ लिखितोभूर्जपत्रेच वृत्तस्सलेखकेनतु ॥ शुक्रःपञ्चमध्यस्थ आनीतस्तत्रसन्निधौ ॥ ३७ ॥ उ

वाले राजावसु औरकी राज्यमें गये हैं इससे हे शुभे ! विना पानीवाली सवारी के वहां नहीं जाया जासकताहै ॥ ३२ ॥ इससे जलकी सब सवारी किनारेपर लगाई जायें-तब उसके वचन से वह रानी मदसे पीड़ित होरही उदास होतीहुई ॥ ३३ ॥ तब रानी को देख सखी कहती है कि तुम क्यों उदास होती हो हे देवि ! यह लेख अपने तोते के हाथ भेजो ॥ ३४ ॥ क्योंकि हे सुन्दरि ! पत्नी समुद्र को नांघ जाता है तब रानी ने लेखक को बुलवाया और कहा कि हमारी आज्ञासे हालको लिखो ॥ ३५ ॥ कि हे वसुराजन् ! तुम्हारेविना वह तुम्हारी पटरानी नहीं जीसकती है उसके ऋतुका समय प्राप्तहुआ है आप सब जानलें ॥ ३६ ॥ लेखकने भोजपत्र पर वह सब

हाल लिखकर रानीको दे दिया तब पिंजरा में बैठा हुआ तोता वहाँ रानी के समीप लाया गया ॥ ३७ ॥ तब रानीने तोते से कहा कि हे शुक ! हमारे लेखको लेकर तुम जावो तब वह पक्षी बहुत जल्द वसुराजा के समीप गया ॥ ३८ ॥ सत्यभामा रानी के भेजे हुये पत्रको तोते ने राजा के तीर फेंक दिया तब उसके वास्ते राजाने विचार किया फिर अपने वीर्य को लेकर ॥ ३९ ॥ पोढ़ी देनियाँ बनाकर नामी राजाने तोते को दे दी और कहा कि तुम रानी के पास जावो ॥ ४० ॥ तब वह तोता वसुराजाको प्रणामकर और वीर्य को लेकर उड़ा अपनी इच्छासे जाता हुआ सुआ समुद्र के ऊपर प्राप्त हुआ ॥ ४१ ॥ मांसके सहित तोते को जान उसके पीछे बाज दौड़ा

वाचराज्ञीतंतत्र गृह्यलेखंशुकव्रज ॥ गतःपक्षीततःशीघ्रं वसुराजसमीपतः ॥ ३८ ॥ जितोलेखःशुकैर्नैव सत्यभामावि
सर्जितः ॥ लेखार्थंचिन्तयामास वीर्यगृह्यनरेश्वरः ॥ ३९ ॥ अमोघपुटिकां कृत्वा प्रतिलोकेनविश्रुतः ॥ शुकस्यचाप्यप्या
मास गच्छराज्ञीसमीपतः ॥ ४० ॥ वसुराजंप्रणम्याथ वीजंगृह्यपपातह ॥ समुद्रोपरिसम्प्राप्तः शुकोयातियथेच्छया ॥
४१ ॥ सांमिषञ्चशुकं ज्ञात्वा श्येनस्तत्रापिधावितः ॥ हतश्चञ्चुप्रहारेण शुकःश्येनेनभारत ॥ ४२ ॥ मूर्च्छार्पणस्यत
द्वीर्यं पतितंजलमध्यतः ॥ मत्स्येनगिलितंतत्र तद्वीर्यंपार्थिवस्यच ॥ ४३ ॥ दाशैर्मत्स्योगृहृतश्च आनीतस्स्वगृहंप्र
ति ॥ यावत्तंपाटयामासुर्यमलंददृशेतदा ॥ ४४ ॥ शशिमण्डलसङ्काशं सूर्यतैजसमप्रभम् ॥ दृष्ट्वातेधापितास्सर्वे
कैवर्ताजाल्हीतटे ॥ ४५ ॥ हर्षितास्तेगतास्सर्वे प्रधानस्यचमन्दिरम् ॥ पुत्रराज्ञेप्रदायैव पुत्रींचप्रत्यपालयत् ॥ ४६ ॥
तत्त्वंदेविवरारोहे कैवर्तंकन्यकानहि ॥ ततस्साचिन्तयामास पराशरवचस्तदा ॥ ४७ ॥ एवमुक्तातुसातेन दत्त्वात्मानं

और हे भारत ! बाजने चोचसे तोनेको मारा ॥ ४२ ॥ मारने से मूर्च्छाको प्राप्त हो गये तोतेके मुँहसे छूट गयी वीर्य पानी में गिर पड़ा तब वहा उस राजा के वीर्यको मछली ने खालिया ॥ ४३ ॥ केवट लोग उस मछलीको पकड़ अपने घरमें लाये जब उसको फाड़ा तो उसके पेटमें एक जोड़ा देख पड़ा ॥ ४४ ॥ चन्द्रमाके मण्डल के समान निर्मल व सूर्य के समान तेजवाले लडके को देख सब धीवरलोग गङ्गाके किनारे चकचौंध गये ॥ ४५ ॥ फिर प्रसन्न होकर वे सब राजा के महल को गये पुत्र को राजाको देकर और कन्याको आप पालते हुये ॥ ४६ ॥ इससे हे वरारोहे ! हे देवि ! तुम केवटकी कन्या नहीं हो तब वह कन्या पराशरके वचनको विचारती हुई ॥ ४७ ॥

पराशर से ऐसे कहींगई वह सीधे स्वभाववाली कन्या हे नरेश्वर ! अपने को पराशर को देकर बोली कि हे ब्रह्मन् ! मेरे शरीरसे मखली का गन्ध जातारहे ॥ ४८ ॥ तदनन्तर अपने योगके बलसे उस कन्या को दिव्यगन्धसे बसादिया आगको जलाकर ॥ ४९ ॥ व उसकी प्रदक्षिणाकर कन्याको आगसे निकाललिया और आग के जलतेहुयेही उस स्त्रीके कामके स्थानोंको पराशर छूतेहुये ॥ ५० ॥ हे नृपनन्दन ! तब वह कन्या पराशरको कामसे अपने चाहनेवाले जानकर डरगई और उनसे एकवारगी कहा कि एकतो दिनहै और दूसरे और लोगोंकी समीपताभी है ॥ ५१ ॥ तदनन्तर थोड़ीदेर पराशरने ध्यान किया तब हे तात ! दिशा और आकाशको डांकती

नरेश्वर ॥ उवाचसाध्वीभोब्रह्मन्मत्स्यगन्धोनिवर्त्यताम् ॥ ४८ ॥ ततस्तेनतुसावाला दिव्यगन्धभिवासिता ॥ कृता योगबलेनैव उवालयित्वाविभावमुम् ॥ ४९ ॥ कृत्वाप्रदक्षिणंवल्लरुहृततेनसातदा ॥ उवलमानस्यमध्येतु कामस्था नानिमोऽस्पृशत् ॥ ५० ॥ ज्ञात्वाकामोत्सुकंविप्रं भीतासानृपनन्दन ॥ उवाचसहसावाला दिवाचलोकसन्निधौ ॥ ५१ ॥ ततस्तेनक्षणंध्याता पूरयन्तीदिग्म्बरम् ॥ आगतातामसीतात ययाव्याप्तंमन्ततः ॥ ५२ ॥ ततस्सविस्मयन्तेन र होवालाभृगेक्षणा ॥ कामेनैवहितसेन स्त्रीसौख्यंकीडतातदा ॥ ५३ ॥ ततस्तेनमुहूर्तेनापत्यभारेणपीडिता ॥ बालकं तत्रजटिलं सुभगंदण्डधारकम् ॥ ५४ ॥ कमण्डलुधरंशान्तं मेखलाकटिभूषणम् ॥ धृतोपवीतकंस्कन्धे विष्णुमा याविर्वाजितम् ॥ ५५ ॥ माताहिशङ्कितातत्र दृष्ट्वापुत्रस्यचापलम् ॥ वेपमानाततोवाला गतासाशरणंमुनेः ॥ ५६ ॥ रत्नरत्नमुनिश्रेष्ठ पराशरमहामुने ॥ जातमत्यद्भुतंविप्रं कौपीनाम्बरमेखलम् ॥ ५७ ॥ दण्डहस्तंजटायुक्तमुत्तरीय

हुई अधेरी आगई जिससे सब व्याप्त होगया ॥ ५२ ॥ तदनन्तर पराशर ने एकान्तमें कामसे जलरहे आप उस हिरन कीसी नेत्रवाली स्त्री का भोग किया ॥ ५३ ॥ तब वह उसी समय में पुत्र के भारसे पीडित होतीहुई फिर वहां जटावाले व सुन्दररूपवाले व दण्डके धारण करनेवाले व कमण्डलुके धरनेवाले व शान्त व मेखलाको करिहोत्र में पहने हुये व कन्धे में जनेऊ पहनेहुये व विष्णुकी मायासे रहित बालक को ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ व उसकी चपलताको देख माता बड़ी शङ्कितहुई और कांपती हुई वह स्त्री मुनिकी शरणको प्राप्तहुई ॥ ५६ ॥ औरबोली कि हे मुनिश्रेष्ठ, महामुने, पराशर ! कौपीन व मेखला को पहने हुये व दण्डको हाथमें लिये व जटाओंसे युक्त

व अँचला से भूषित उत्पन्नहुये अतिअद्भुत इस ब्राह्मणकी रक्षाकरो ? तब पराशर बोले कि तुम डरो मत यह तुम्हारा पुत्र हुआ है तुम कन्याही बनी रहोगी ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ सत्यवती तुम्हारा नाम होगा और दूसरा गन्धयोजनाभी होगी और शन्तनु नाम का राजा तुम्हारा पति होगा ॥ ५९ ॥ तुम उसकी जेठीरानी चन्द्रवंश का भूषण होगी इससे हे भद्रे ! अपने पहलेवाले रूप से युक्त तुम अपने आश्रमको जावो ॥ ६० ॥ तुम इस विकलताको मत प्राप्त होवो मैंने सब देख लिया है मुझको ज्ञानका बल है यह कहकर पराशर चलेगये वह स्त्री जलके बाहर आतीहुई ॥ ६१ ॥ नम्रता व बड़ी भक्तिसे अपने पुत्रको साष्टाङ्ग प्रणामकर फिर जातेहुये

विभूषितम् ॥ पराशरउवाच ॥ माभैर्पीस्त्वंमुतोजातः कन्यैवत्वंमविष्यसि ॥ ५८ ॥ नाम्नासत्यवतीचेति द्वितीयागन्धयो जना ॥ शन्तनुर्नाभराजावै सतेभर्तामविष्यति ॥ ५९ ॥ प्रथमासहिषीतस्य सोमवंशविभूषणा ॥ शच्छत्वंस्वाश्रमंभद्रे पूर्वरूपेणसंस्थिता ॥ ६० ॥ मावैकलयंकुरुष्वेदं दृष्टज्ञानस्यमेबलम् ॥ इत्युक्त्वाप्रययौविप्रः साबालास्थलमाश्रिता ॥ ६१ ॥ नत्वापुत्रंपराभक्त्या माष्टाङ्गंप्रणयेनच ॥ तदप्रयान्तमथालोक्य सत्यवत्यब्रवीत्सुतम् ॥ ६२ ॥ कामोदेयस्त्वया भीष्टस्स्नेहवैयदिसातरि ॥ किमप्युपादिशत्वंमां येनसिद्धिमवाप्नुयाम् ॥ ६३ ॥ व्यासउवाच ॥ ईश्वराराधनेयत्वं कुरुष्वत्वंसदाग्निवर्कं ॥ ततस्सापुत्रवाक्येन विपसापाण्डुनन्दन ॥ ६४ ॥ योजनगन्धोवाच ॥ त्वद्वियोगादहंपुत्र पञ्चत्वंया मिनान्यथा ॥ नास्तिपुत्रसमःस्नेहो नास्तिभ्रातृसमंबलम् ॥ ६५ ॥ पुत्रउवाच ॥ माचिषादंकुरुत्वंहि सत्यवैपितृभाषि तम् ॥ आपत्कालेत्वयाहवैस्मर्तव्यः कार्यसिद्धये ॥ ६६ ॥ आपदस्तारयिष्यामि क्षम्यतांमातरात्मजे ॥ इत्युक्त्वातु

अपने पुत्रको देख सत्यवती पुत्र से बोली ॥ ६२ ॥ कि जो तुम्हारा अपनी माता में स्नेहहो तो मेरे मनका मनोरथ देनेयोग्य है कुछ मुझको बतावो जिससे मैं सिद्धि को पाऊ ॥ ६३ ॥ तब व्यासजी बोले कि हे अग्निवर्क ! ईश्वर के आराधन में तुम हमेशा यत्नकरो हे पाण्डुनन्दन ! तब वह पुत्रके वचनसे बड़ी उदास होगई ॥ ६४ ॥ और फिर योजनगन्धा बोली कि हे पुत्र ! तुम्हारे वियोगसे मैं मरजाजंगी यह भूँठ नहीं है क्योंकि पुत्र के बराबर किसी में स्नेह नहीं होता है और भाई के बराबर कोई बल नहीं है ॥ ६५ ॥ तब पुत्र बोला कि तुम विषाद को मतकरो पिताजी का कहना सब सत्य होवेगा और विपत्ति के समय मैं अपने कार्यकी सिद्धिके लिये

तुम मेरा स्मरण करना ॥ ६६ ॥ मैं विपत्ति से तुमको पार करदेऊंगा हे मातः ! मुझ अपने पुत्र पर क्षमा करना इतना कहकर व्यास चलेगये और वह कन्याभी अपने पिता के घरको चलीगई ॥ ६७ ॥ पराशर के पुत्र व्यासजी वन में बैठते हुये तब त्रेताकी समाप्ति और द्वापर की आदि मे हे नरेश्वर ! ॥ ६८ ॥ नारदने ब्रह्मा से कहा कि पराशर के पुत्र बड़े प्रभाववाले व्यासऋषि पैदाहुये ॥ ६९ ॥ केवटकी कन्या से गङ्गाके किनारे पर उत्पन्न हुये है यह आप जानें तब नारदके कहने से देवता लोग आतेहुये ॥ ७० ॥ सूर्य, ब्रह्मा और इन्द्र ऋषियों के सहित आशीर्वाद को देकर बाह २ ऐसे कहतेहुये ॥ ७१ ॥ फिर बालकरूप जो व्यास है उनके ब्रह्मा ने गर्भा-

ययौव्यासः कन्यासापिपितुर्गृहम् ॥ ६७ ॥ पराशरमुतस्तत्र निष्षोषेवनममध्यतः ॥ त्रेतायुगावसानेन तु द्वापरादौ नरेश्वर ॥ ६८ ॥ व्यासो विरञ्चये जात आख्यातो नारदेन च ॥ ऋषिर्महानुभावस्तु पुत्रः पाराशरस्य च ॥ ६९ ॥ केवर्त कन्यकाजातो जानीहि जाल्बवीतटे ॥ वाक्योक्त्यानारदस्यैव आगतास्तुरसत्तमाः ॥ ७० ॥ भानुः पिता महः शक्र ऋषिसङ्घैस्समावृतः ॥ आशीर्वादं पृथग्दत्त्वा साधुसाध्विवृतिमाषितः ॥ ७१ ॥ पितामहे नवालोसौ गर्भाधानादिसंस्कृतः ॥ द्वैपायनोक्षीपजन्मा पाराशर्यः पराशरात् ॥ ७२ ॥ कृष्णगात्रात्कृष्णनामा हव्यादातुर्विशिष्यति ॥ विरिञ्चिनाभिषिक्तोसौ ऋषिसङ्घैः पुनः पुनः ॥ ७३ ॥ व्यासस्त्वं सर्वलोकानामित्युक्त्वा प्रययुः पुनः ॥ तीर्थयात्रासमारब्धा कृष्णद्वैपायनेन तु ॥ ७४ ॥ गङ्गावगाहितातेन केदारं पुष्करन्तथा ॥ गयाचनौ भिषर्तार्थं कुरुक्षेत्रे सरस्वती ॥ ७५ ॥ उज्जयिन्यां महाकालं सोमनाथं ययौ ततः ॥ पृथिव्यां सागरान्तायां स्नातो व्यासो महासुनिः ॥ ७६ ॥ अटन्वैनर्ममदां प्राप्नो

धान आदि संस्कार किये गेती में पैदा होने से द्वैपायन व पराशर से पैदा होने से पाराशर्य ॥ ७२ ॥ व काली देहवाले होने से कृष्ण नामवाले व्यास हुये और अग्निसे भी विशेष तेजवाले हुये ब्रह्मा और ऋषियों के समूहमे वाररइनका अभिषेक किया गया ॥ ७३ ॥ और तुम सब लोगोंके व्यास हो ऐसे कहकर सबलोग चले गये तब व्यासजी ने फिर तीर्थयात्राका प्रारम्भ किया ॥ ७४ ॥ व्यासच प्रथम गङ्गा स्नान किया फिर केदार, पुष्कर, गया, नैमिष, कुरुक्षेत्र में सरस्वती ॥ ७५ ॥ और उज्जैन में महाकाल होकर फिर सोमनाथ को गये समुद्रपथ्यन्त पृथिवी के तीर्थों में महासुनि व्यास नहाते हुये ॥ ७६ ॥ फिर घूमते हुये महादेव की देहसे पैदाहुई

नर्मदा नदी को प्राप्त होते हुये हे पार्थिव ! नर्मदा को देख आनन्द से अपने चित्त को विश्राम देकर ॥ ७७ ॥ व नर्मदा के तटपर बैठकर बड़े तपको करते हुये श्रीम मे पञ्चाग्नि के बीच में और वर्षा में बाहर चौतरेपर बैठते हुये ॥ ७८ ॥ भोगे वस्त्रों को पहनेहुये हेमन्तऋतु में संसारकी रचना व संहारके करनेवाले व नाशरहित सदाशिव का ध्यान कर रहे ॥ ७९ ॥ हे पाण्डुनन्दन ! हमेशा सिद्धेश्वर लिङ्ग का पूजन करते हुये तब सिद्धलिङ्ग के पूजन व ध्यानयोगके प्रभाव से ॥ ८० ॥ व्यास के प्रत्यक्ष महादेवजी होतेहुये और कहा कि हे विप्र ! तुम ने हमको प्रसन्न किया है इस से अच्छे वरको मांग लेवो ॥ ८१ ॥ तब व्यास बोले कि हे देव ! जो मुझसे रुद्रदेहोद्भवांनदीम् ॥ साह्यादंनर्ममदां दृष्ट्वा चित्तं विश्राम्य पार्थिव ॥ ७७ ॥ तपश्चचारविपुलं नर्ममदातटमाश्रितः ॥

ग्रीष्मे पञ्चाग्निमध्यस्थो वर्षासुस्थ एतलेशयः ॥ ७८ ॥ सार्द्रवासास्तु हेमन्ते ध्यायमानो महेश्वरम् ॥ सृष्टिसंहारक तारमच्छेद्यं च सदाशिवम् ॥ ७९ ॥ नित्यं सिद्धेश्वरं लिङ्गं पूजयन् पाण्डुनन्दन ॥ अर्चनात्सिद्धलिङ्गस्य ध्यानयोगप्रभा वतः ॥ ८० ॥ प्रत्यक्ष ईश्वरो जातः कृष्णद्वैपायनस्य तु ॥ तोषितो हं त्वया विप्र वरं प्रार्थय शोभनम् ॥ ८१ ॥ व्यास उवाच ॥ यदितुष्टोसि मे देव यदि देवो वरो मम ॥ प्रत्यक्षो नर्ममदातीरे स्वयं मे दधम विष्यति ॥ ८२ ॥ अतीतानागतज्ञानं त्वत्प्रसादा न्महेश्वर ॥ ईश्वर उवाच ॥ एवं भवतु ते विप्र मत्प्रसादान्न संशयः ॥ ८३ ॥ त्वया भक्तिगृहीतो हं प्रत्यक्षो नर्ममदा तटे ॥ इत्युक्त्वा प्रययौ देवः कैलासं न गमुत्तमम् ॥ ८४ ॥ पत्नीसंग्रहं जातं पुत्रो जातो यदास्य च ॥ देवैरध्यासितस्सर्वैस्सेन्द्रं ह्यपुरोगमैः ॥ ८५ ॥ पुत्रजन्मतो ज्ञात्वा आगता ऋषिभक्तमाः ॥ तीर्थयात्राप्रसङ्गेन पराशरपुरोगमाः ॥ ८६ ॥ मन्वन्त्रि आप्रमन्नहो और जो मुझे आपको वरदेन है और जो आज नर्मदा के तीरे आप खुद मेरे प्रत्यक्ष हुये हो ॥ ८२ ॥ तो हे महेश्वर ! आप के प्रसाद से मुझको भूत और भविष्यका ज्ञान हो जावे तब महादेव बोले कि हे विप्र ! मेरे प्रसाद से तुम्हारे सब ऐसा ही होगा इसमें सन्देह नहीं है ॥ ८३ ॥ तुम्हारी भक्तिमे पकड़े हुये हम नर्मदा के तटमें प्रत्यक्ष हुये इतना कह महादेव उत्तम कैलास पर्वत को चले गये ॥ ८४ ॥ फिर जब व्यास के स्त्री का संग्रह व पुत्र भी हुआ तब इन्द्र और ब्रह्मा आदि सब देवताओं से फिर भी युक्त हुये ॥ ८५ ॥ तदनन्तर व्यास के पुत्र के जन्मको जान तीर्थयात्रा के प्रसङ्ग से पराशर आदि ऋषिप्रियेष्ठ आते हुये ॥ ८६ ॥ मनु, अत्रि

विष्णु, हारीत, याज्ञवल्क्य, उशाना, अङ्गिरा, यम, आपरतम्ब, संवर्त, कात्यायन और बृहस्पति ॥ ८७ ॥ आदि सब हजारों लाखों करोड़ों ब्राह्मण पुण्यवाले व्यासके सुन्दर आश्रममें प्राप्तहुये ॥ ८८ ॥ व्यासजी उन ब्राह्मणोंको देख चठे और पितापूर्वक सबको प्रणाम कर फिर उनसे बात करतेहुये ॥ ८९ ॥ हाथ जोड़ इस वचनको बोले कि आप से बोल चाल व दर्शन से मेरा आनन्द उमड़ आया ॥ ९० ॥ अब जङ्गली शाक व फलों को मैं पितापूर्वक आप सब लोगों को देता हूँ ॥ ९१ ॥ इतना कह नियमों से युक्त उन सब हर एक ब्राह्मणोंको प्रणाम करतेहुये तदनन्तर वहां प्रणाम कर चुके व्यास ब्राह्मणको देख ॥ ९२ ॥ जय और आशीर्वादसे बढ़ाकर फिर आपस

विष्णुहारीतयाज्ञवल्क्योशनोङ्गिराः ॥ यमापस्तम्बसंवर्ताः कात्यायनबृहस्पती ॥ ८७ ॥ एवमादिसहस्राणि लक्षकोटिरनेकधा ॥ व्यासाश्रमेशुभेषुण्ये प्राप्तास्सर्वेद्विजोत्तमाः ॥ ८८ ॥ दृष्ट्वाव्यासस्तुविप्रेन्द्रानभ्युत्थायकृतोद्यमः ॥ पितृपूर्वप्रणम्यादौ तेषां वार्ताप्रदापयन् ॥ ८९ ॥ कृताञ्जलिपुटोभूत्वा इदं वाक्यमुवाचह ॥ उद्धृतन्तुममानन्दं युष्मत्सम्भाषदर्शनात् ॥ ९० ॥ आरण्यानिचशाकानि फलान्यारण्यकानिच ॥ तानि दास्यामि सर्वेषां युष्माकं पितृपूर्वकम् ॥ ९१ ॥ नियमैस्संयुतान्सर्वान्प्रत्येकं प्रणनामच ॥ ततस्तं प्रणतं दृष्ट्वा तत्र ह्यैवायनं द्विजम् ॥ ९२ ॥ वर्द्धयित्वा जयाशामिस्ततो वीक्ष्य परस्परम् ॥ पराशरस्समस्तैश्च वीक्षितो मुनिपुङ्गवैः ॥ ९३ ॥ उत्तरन्दीयतां तात कृष्णद्वैपायनस्य च ॥ एवमुक्तस्तु तैस्सर्वैर्भगवांश्च पराशरः ॥ ९४ ॥ उवाच स्वात्मजं व्यासमृषिभिर्यच्चि कीर्षितम् ॥ नेच्छन्ति दक्षिणे कूले व्रतं भङ्गमयात्सुत ॥ ९५ ॥ परं वै भोक्तुकामाश्च तव श्रद्धाविशेषतः ॥ करोमि भवतां युक्तमत्रैव स्थीयतां

में देख सब मुनिश्रेष्ठों ने पराशर को देखा ॥ ९३ ॥ और कहा कि हे तात ! आप व्यासको उत्तर देवें उन सबों से ऐसे कहे गये भगवान् पराशर ॥ ९४ ॥ अपने पुत्र व्यास से ऋषियों के मनकी वार्ता को कहा कि हे सुत ! अपने व्रतभङ्ग होजाने के कारण ये लोग दक्षिण दिशावाले तटपर तुम्हारे सत्कार की इच्छा नहीं करते हैं ॥ ९५ ॥ परन्तु तुम्हारी विशेष श्रद्धा के कारणसे खानेकी इच्छा इनको जरूर है तब व्यास बोले कि आपलोग थोड़ी देर यहीं ठहरें हम आपके उचित कामको करते

हैं ॥ ९६ ॥ नदी के समीप जाकर जब तक हम विधिपूर्वक सब काम को ठीककरें ऐसे कह व पवित्र होकर नर्मदा के तटपर बैठे ॥ ९७ ॥ और सहसा स्तोत्र को पढ़ते हुये हे जनेश्वर ! आप उसको सुनो ॥ ९८ ॥ व्यास बोले कि हे वर व कल्याण की देनेवाली, हे देवि ! तुम्हारी जय हो हे त्रिशूल को हाथ में लिये, पापों की नाश करने स्वामिकांतिकेय के पिता महादेव की कन्या, हे वर की देनेवाली ! तुम्हारी जय हो हे देवताओं के शरीरों का समूहरूपवाली ! तुम्हारी जय हो और हे समुद्र में जाने-
क्षणम् ॥ ९६ ॥ यावदासाद्यसरितं करोमिविधिपूर्वकम् ॥ एवमुक्त्वा शुचिभूत्वा नर्मदा तटमाश्रितः ॥ ९७ ॥ स्तोत्रं जगाद सहसा तन्निबोधजनेश्वर ॥ ९८ ॥ व्यास उवाच ॥ जयदेवि नमो वरदेशिवदे जयपापविमर्दिनि शूलकरे ॥ जयभैरवदेहविलीनकरे जयदेवि पितामहसन्नमिते ॥ ९९ ॥ जयभास्करशक्रप्रदानमिते जयपण्मुखता तमुत्तरे ॥ जयदेवशरीरसमूहमये जयसागरगामिनि भूमिसुते ॥ १०० ॥ जयलोकसमस्तकृताभरणे जयदुःखदरिद्रविनाशकरे ॥ जयपुनकलत्रविघ्नहिकरे जयदेवि सुदर्शनपापहरे ॥ १०१ ॥ एतद्व्यासकृतं स्तोत्रं यः पठेच्छिवसन्निधौ ॥ गृहे वा शुद्धभावेन कामक्रोधविवर्जितः ॥ व्यासस्तस्य भवेत्प्रीतः प्रीतो यं वृषवाहनः ॥ २ ॥ स्तुता च नर्मदादेवी ततो वचनमब्रवीत् ॥ नर्मदोवाच ॥ स्तुतिवादेन तुष्टास्मि भो भो व्यास महा मुने ॥ ३ ॥ यमिच्छसि वरं स्य कुरु तन्ते सर्वं ददाम्यहम् ॥ व्यास उवाच ॥ यदि तुष्टासि मे देवि यदि देयो वरो मम ॥ ४ ॥ आतिथ्यमुत्तरं कूले मम दातुं त्वमर्हसि ॥ नर्मदोवाच ॥ अयुक्तं चिन्ति वाली ! हे भूमिसुते ! तुम्हारी जय हो ॥ १०० ॥ हे सब लोकों की शोभा करनेवाली व दुःख और दरिद्र को विनाश करनेवाली ! तुम्हारी जय हो हे स्त्री और पुत्रों की बढ़ाने वाली व शुभ दर्शन से पापों की हरनेवाली, हे देवि ! तुम्हारी जय हो ॥ १०१ ॥ व्यास के किये हुये इस स्तोत्र को जो महादेव के समीप पढ़ता है व अपने घर में काम क्रोध से रहित होकर सच्चे भाव से पढ़ता है उससे व्यास व महादेव दोनों प्रसन्न होते हैं ॥ २ ॥ तदनन्तर स्तुति की गई नर्मदा देवी वचन बोली नर्मदा ने कहा कि हे महा-
मुने ! हे व्यास ! आप के स्तुति करने से हम प्रसन्न हैं ॥ ३ ॥ जिस शब्दे वर को तुम चाहते हो वह सब हम तुम्हें दे देंगी तब व्यास बोले कि हे देवि ! जो मुझसे

प्रसन्नहो और जो मुझे तुमको वर देना है ॥ ४ ॥ तो अपने उत्तरवाले किनारे पर मेरा अस्तिथि सत्कार करो तब नर्मदा बोली कि हे व्यास! तुमने अनुचित कामको विचार है और उलटे मार्ग में तुम प्रवृत्त होते हो ॥ ५ ॥ क्योंकि इन्द्र, चन्द्र और यमराज भी उलटे रास्ते से व्रतने को समर्थ नहीं हो सके हैं इस से हे व्रतम (प्यारे) ! और जो कुछ इस पृथिवी में दुर्लभ हो उसे मांगो ॥ ६ ॥ तब देवी के ऐसे वचन को सुनकर व्यास मूर्च्छा को प्राप्त होगये क्योंकि उनको वृथा क्लेश हुआ इससे पृथिवी पर गिरपड़े ॥ ७ ॥ तब पर्वत व जलों और जङ्गलों के सहित सब पृथिवी कांपती हुई और मूर्च्छा को प्राप्त हुये पराशर के पुत्र व्यास को जान सब देवता ॥ ८ ॥

तंव्यास अमार्गेत्वं प्रवर्तसे ॥ ५ ॥ इन्द्रचन्द्रयमाः शक्ता उन्मार्गेण नवाहितुम् ॥ अन्यया च स्वहेव तस्य यत्किञ्चिद्भुवि दुर्लभम् ॥ ६ ॥ एवं श्रुत्वा वचो देव्या व्यासो मूर्च्छाङ्गस्तदा ॥ वृथा क्लेशश्च सज्जातः पतितो धरणीतले ॥ ७ ॥ धरणीकम्पिता सर्वा स शैले वनकानना ॥ मूर्च्छा पन्नततो व्यासं ज्ञात्वा देवाः पराशरम् ॥ ८ ॥ आयाता देवताः सर्वे हाहाकारं प्रकुर्वतः ॥ उत्थापयन्तस्ते व्यासमूचुश्च सरितां वराम् ॥ ९ ॥ ब्राह्मणार्थं नु संक्लिष्टा नामहेतोः सरिद्धरे ॥ गवार्थं ब्राह्मणार्थं च सद्यः प्राणान्परित्यजेत् ॥ १० ॥ एवं सानर्ममदा प्रोक्ता ब्रह्माद्यैश्च सुरैर्दुतम् ॥ विकृता वै प्रददौ समन्ताद्देवाभिषिक्तस्सजले नपूतः ॥ ११ ॥ सचेतनस्सत्यवती सुतोयं ननाम देवैस्सहनर्ममदान्तैः ॥ तीर्थसमस्तं त्वयि देवतानां फलं प्रदिष्टमममन्दभाग्यम् ॥ १२ ॥ नर्ममदो वाच ॥ यतो यतो व्यासमहानुभावमुमेरुनाम्ना धरणीधरस्य ॥ विन्ध्यस्य

आते हुये हाहाकार को करते व व्यासको लटारहे वे सब देवता नदियों में श्रेष्ठ नर्मदा से बोले ॥ ९ ॥ कि हे सरिद्धरे ! नाम के वास्ते ब्राह्मण के लिये बहुतों ने क्लेश को उठाया है क्योंकि कहा भी है कि गऊ और ब्राह्मण के वास्ते तुरन्त प्राणों को छोड़ देवे ॥ १० ॥ ब्रह्मा आदि देवताओं से ऐसे कहीं गई नर्मदा शीघ्र ही सब तरफ किनारों से रहित अर्थात् बराबर होगई तब नर्मदा से अभिषेक को प्राप्त व जल से पवित्र ॥ ११ ॥ व होश के सहित व्यास उन सब देवताओं के सहित नर्मदा को नमस्कार करते हुये और व्यास बोले कि सब तीर्थ आप ही में हैं देवताओं को आपने फल दिया मेरा भाग्य बड़ा मन्द है ॥ १२ ॥ तब नर्मदा बोली कि हे महाऽनुभाव ! हे

व्यास ! धर्म के धारण करनेवाले आपकी सुमेरु व विन्ध्याचल व अन्य पर्वत के समीप हो जिधर से रास्ता हो हम उसी रास्ते से जायेंगी और इसी में हम धन्य होवेंगी ॥ १३ ॥ ऐसे कहेगये बड़े तेजवाले सत्यवती के पुत्र व्यास अपने आश्रम से दक्षिण की तरफ मुनिश्रेष्ठों को चलाते हुये ॥ १४ ॥ हे नृपनन्दन ! दण्ड को हाथ में लिये बड़े तेजवाले व्यास हुङ्कारों से नर्मदाको चलाया व्यासकी हुङ्कार से डीहुई नर्मदा चलती हुई ॥ १५ ॥ व्यासजी दण्ड से रास्ते को दिखाते हैं नर्मदा उसी रास्ते से चली जाती है व्यासकी रास्ते में प्राप्त होगई नर्मदाको देख इन्द्र आदि सब देवता ॥ १६ ॥ व्यासके ऊपर फूलोंकी वर्षा करते हुये और किन्नर लोग

चान्यस्यचतोहि मार्गयास्यामिवैधर्मधरस्यधन्या ॥ १३ ॥ एवमुक्तोमहातेजा व्यासस्त्यवतीसुतः ॥ दक्षिणेचालया
मास स्वाश्रमान्मुनिपुङ्गवान् ॥ १४ ॥ दण्डहस्तोमहातेजाहुङ्कारैर्नृपनन्दन ॥ व्यासहुङ्कारभीताश्च चलितारुद्रनन्दि
नी ॥ १५ ॥ दण्डेनदर्शयन्मार्गं देवीतत्रप्रवर्तिता ॥ व्यासमार्गगतान्देवीं दृष्ट्वाचेन्द्रपुरोगमाः ॥ १६ ॥ पुष्पवृष्टिददु
व्यासे स्तुतिं कुर्वन्तिकिन्नराः ॥ प्रफुल्लनयनाजानाः पराशरसुखाद्विजाः ॥ १७ ॥ किंकुर्ममोत्रमहिम्नाते कर्ममृणातवर
ज्जिताः ॥ व्यासउवाच ॥ तपःकृत्वासुविपुलं दानं दत्त्वा महत्फलम् ॥ १८ ॥ एतदेव नरैः कार्यं साधूनां परितोषणम् ॥
सुविभक्तामहाभागा अनुग्राह्यस्य संप्रति ॥ १९ ॥ तस्मान्मम आश्रमे पुण्ये स्थीयतां नाना संशयः ॥ आतिथ्यं शाकप
णैश्च उदकेन विमिश्रितैः ॥ २० ॥ प्रतिपन्नं स मस्तैश्च पराशरसुखैर्द्विजैः ॥ श्रयध्वमाश्रमं पुण्यं नर्मदा योत्तरे तटे ॥ २१ ॥

स्तुति करते हैं पराशर आदि ब्राह्मण प्रसन्न नेत्रोंवाले होगये ॥ १७ ॥ ब्राह्मणोंने कहा कि यहां तुम्हारी महिमा व तुम्हारे कर्म से राजीहूये हमलोग तुम्हारा क्या काम करें तब व्यास बोले कि बड़े तपको कर व बड़े फलवाले दान को देकर ॥ १८ ॥ मनुष्यों को यही करना चाहिये कि जिससे साधुओं का परितोष होवे इस से इस समय बड़े भाग्यवाले आप लोग अलग २ अनुग्रह करने योग्य जो हम हैं ऐसे मेरे पुण्यवाले आश्रम में निरसन्देह स्थित होवो हम जल सहित शाक व पत्तियों में आपका अतिथि सत्कार करेंगे ॥ १९ ॥ २० ॥ इस से पराशर आदि सब ब्राह्मणों को उचित है कि नर्मदा के उत्तरवाले तट पर पुण्यवाले हमारे आश्रम के आश्रित

होवें ॥ २१ ॥ तब मार्कण्डेयजी बोले कि तब ब्राह्मणों ने स्नान और तर्पण आदि कर्मों को किया तदनन्तर व्यासकुण्ड में जाकर अच्छे प्रकार से होम करतेहुये ॥ २२ ॥ ध्यानसे युक्त बेल और बेलपर्शों से हवन करतहुये गौतम, भृगु, माण्डव्य, नारद, लोमश, ॥ २३ ॥ पराशर, शङ्ख, कौशिक, च्यवनमुनि, पिप्पलाद, वशिष्ठ, बड़े तपस्वी नाशिकेतु, ॥ २४ ॥ विश्वामित्र, अगस्त्य, उद्दालक, यम, शाण्डिल्य, जैमिनि, काव्य, याज्ञवल्क्य, उशना, अङ्गिरा, ॥ २५ ॥ अत्रि, शातातप, भरत, मुद्गल, बड़े तेजस्वी वात्स्यायन, संवर्त, शक्ति ॥ २६ ॥ जातूकर्ण, भरद्वाज और बालखिल्य आदि ब्राह्मण एकाग्रमन होकर हे राजन् ! मन्त्र और तन्त्र को करते

मार्कण्डेयउवाच ॥ स्नानतर्पणकृत्यानि कृतानिचिद्विजोत्तमैः ॥ व्यासकुण्डंततो गत्वा होमंसम्यगकारयन् ॥ २२ ॥ श्रीफलैर्विल्वपत्रैश्च ध्यानयुक्ताश्चजुह्वति ॥ गौतमोभृगुमाण्डव्यौ नारदेलोमशस्तथा ॥ २३ ॥ पराशरस्तथाशङ्खः कौशिकश्च्यवनोमुनिः ॥ पिप्पलादोवशिष्टश्च नाशिकेतुर्महातपाः ॥ २४ ॥ विश्वामित्रोह्यगस्त्यश्च उद्दालकयमौ तथा ॥ शाण्डिल्योजैमिनिः काव्यो याज्ञवल्क्योशनार्ङ्गिराः ॥ २५ ॥ अत्रिः शातातपश्चैव भरतोमुद्गलस्तथा ॥ वात्स्यायनोमहातेजास्संवर्तः शक्तिरेवच ॥ २६ ॥ जातूकर्णोभरद्वाजो बालखिल्यादयस्तथा ॥ एकचित्ताद्विजाराजन्मन्त्रतन्त्रप्रकुर्वतः ॥ २७ ॥ ततःसमुत्थितंलिङ्गं ज्वलत्कालानलप्रभम् ॥ साष्टाङ्गं प्रणतोव्यासो देवंदृष्ट्वात्रिलोचनम् ॥ २८ ॥ आशीर्वादपुनर्विप्रा दत्त्वाव्यासंतदाययुः ॥ ततःप्रभृतितत्त्वज्ञतीर्थख्यातन्तुपाण्डव ॥ २९ ॥ स्नानदानविधानञ्च यस्मिन्कालेप्रतिष्ठितम् ॥ कथयामिसमस्तन्तेभ्रातृणाञ्चैवपाण्डव ॥ ३० ॥ कार्तिकस्यासितेपक्षे चतुर्दश्यां नृपोत्तम ॥ उपोष्ययोनरोभक्त्यारात्रो कुर्वीतजागरम् ॥ ३१ ॥ स्नापयेद्दीङ्ग्वरंभक्त्या क्षौद्रेणक्षीरसर्पिषा ॥ ३२ ॥ दधनाच हुये ॥ २७ ॥ तदनन्तर जलतेहुये प्रलय के अग्निके समान लिङ्ग उठता हुआ त्रिनेत्र महादेवजी को देख व्यासजी साष्टाङ्ग प्रणाम करते हुये ॥ २८ ॥ फिर ब्राह्मणलोग व्यासको आशीर्वाद देकर चलेगये हे तत्त्वज्ञ, पाण्डव ! तब से यह व्यासतीर्थ प्रसिद्ध होता हुआ ॥ २९ ॥ अब हे पाण्डव ! जिस समय में स्नान व दानका विधान प्रतिष्ठित है वह सब हम आप व आप के भाइयों से कहते हैं ॥ ३० ॥ हे नृपोत्तम ! कार्तिकके अधिपारे पाखकी चौदस को उपासा रहकर जो मनुष्य भक्ति से

रातेमें जागरण करे ॥ ३१ ॥ और भक्ति से शहद, दूध, घी, दही, शक्कर और कुशों के जल से महादेवको नहवावे और सुगन्धित चन्दन से महादेव का पूजन करे ॥ ३२ ॥ तदनन्तर सुगन्धित फूल व बेलपत्रों से पूजे कोका, कुन्द, कुश, फूल, अक्षत आदि ॥ ३३ ॥ धनुरे के फूल, रस और अत्युत्तम जङ्गली फूलों व बड़ी-भक्ति से अत्युत्तम द्वीपेश्वर का पूजन करे ॥ ३४ ॥ और मदार आदि के फूलों से परमेश्वर को पूजे गुड और मौड़ के देने से दिन भरका कमाया हुआ पाप ॥ ३५ ॥ उससे सौ गुने दानसे महीने भरका, हजारगुने से छह महीने का, दो हजार गुने से साल भरका पाप नाश होता है ॥ ३६ ॥ दशहजार गुने से जन्म भरका पाप नष्ट होजाता है हे

खण्डयुक्तेन कुशतोयेनवापुनः ॥ श्रीखण्डेनसुगन्धेन पूजयेतमहेश्वरम् ॥ ३३ ॥ ततःसुगन्धपुष्पैश्च विल्वपत्रैश्चपूजयेत् ॥ कुसुदेनचकुन्देन कुशपुष्पाक्षतैर्दिभिः ॥ ३४ ॥ उन्मत्तपुष्पैश्चरसैस्सौम्यैश्चैवाप्यनुत्तमैः ॥ अर्चयेत्परमाभक्त्या स्मार्जितंचनश्चेत गुडमण्डपदानेन पातकंदिवसाजितम् ॥ ३५ ॥ मन्दारादिकपुष्पैश्चपूजयेत्परमेश्वरम् ॥ गुडमण्डप्रदानेन पातकंदिवसाजितम् ॥ ३६ ॥ माश्रयति ॥ पौर्णमास्यांनृपश्च स्नानंकुर्वीतभक्तिः ॥ ३७ ॥ मन्त्रोक्तेनविधानेन कृत्वापापक्षयङ्करम् ॥ वारुणंचतथाज्ञेयं सर्वपापक्षयंकरम् ॥ ३८ ॥ देवान्पितॄन्मनुष्यांश्च विधिवत्तर्पयेन्नृप ॥ ऋचमेकांजपेत्स्नातः सामवेदफलंलभेत् ॥ ३९ ॥ यजुर्वेदमथर्वाणं गायत्र्यासर्वमाप्नुयात् ॥ जपेदष्टाक्षरंमन्त्रंसारंवाशैवमेवच ॥ ४० ॥ अथवावैष्णवंमन्त्रंद्वादशाक्षरमेव च ॥ पूजयेद्ब्राह्मणान्भक्त्या सर्वलक्षणलक्षितान् ॥ ४१ ॥ स्वधर्मनिरतान्विप्रान्दस्मभलोभविजितान् ॥ हीनाङ्गा नृपश्च ॥ पूर्णमासी को भक्तिसे स्नानकरे ॥ ४२ ॥ वेदमें कहेहुये विधान से किया गया स्नान पापों का क्षय करनेवाला होता है इसी प्रकार सब पापोंका क्षय करने वाला वारुण स्नान भी जानना चाहिये ॥ ४३ ॥ हे नृप ! देवता, पितर और मनुष्यों का विधि से तर्पण करे और नहाकर एक मन्त्रको जपे तो सामवेद के फल को पाता है ॥ ४० ॥ और गायत्री से यजुर्वेद और अथर्ववेद के सम्पूर्ण फलको पाता है अष्टाक्षर व सौर व शैव ॥ ४१ ॥ व वैष्णव द्वादशाक्षर मन्त्रको जपे और सब लक्षणों से युक्त ब्राह्मणों का भक्ति से पूजन करे ॥ ४२ ॥ ब्राह्मण कैसे होवें कि अपने धर्ममें रतहों, दम्भ व लोभसे रहितहों, अङ्गहीन व अधिक अङ्गवाले न हों और जो

पतितहों व शूद्रों के सेवकहों ॥ ४३ ॥ व शूद्रोंके अन्न से युक्तहों व जिसके मकानमें वृषली (शूद्री) रहती हो व उदरसे पैदाहों व दुष्टहों व गुरुकी निन्दाके करने वाले हों ॥ ४४ ॥ व वेदके पढ़ने से रहितहो व तर्क के करनेवाले हों व कौवों कीसी वृत्तिवाले हों ऐसे ब्राह्मणों को श्राद्धदान और व्रतमें वर्जित रखे ॥ ४५ ॥ गायत्रीमात्र के पढ़ने से पढ़ा हुआ ब्राह्मण श्रेष्ठहै और जो सर्वभक्षी व सब चीजों का बचनेवाला हो तो चारोंवेदों का पढ़नेवाला भी हो परन्तु वह नहीं श्रेष्ठ है ॥ ४६ ॥ ऐसे ब्राह्मणों को श्राद्ध, व्रत और सोने के दानमें छोड़िरेहै व जूता, कपड़ा, पल्लेग, छाता और आसन को ॥ ४७ ॥ जो भक्ति से ब्राह्मणको दत्ताहै वहभी स्वर्ग में पूजित होता

नधिकाङ्गाश्चपतिताञ्छद्रसेवितान् ॥ ४३ ॥ शूद्रान्नेनचसंयुक्ता वृषलीयस्यमन्दिरे ॥ पौनर्भावास्तथादुष्टा गुरुनिन्दा
परायणाः ॥ ४४ ॥ वेदाध्ययनहीनाश्च हेतुकाःकाकवृत्तयः ॥ ईदृशान्वर्जयेच्छ्राद्धे दानैश्चैवव्रतेतथा ॥ ४५ ॥ गायत्री
पाठमात्रेण वरंविप्रसमुपारिडतः ॥ नायंभृतचतुर्विधः सर्वाशीसर्वविक्रयी ॥ ४६ ॥ ईदृशान्वर्जयेच्छ्राद्धे व्रतेदानेहिर
ण्मये ॥ उपानहौचवस्त्रंच शय्यांवाछत्रमासनम् ॥ ४७ ॥ योदद्याद्ब्राह्मणेभक्त्या सोपिस्वर्गमेहीयते ॥ प्रत्यक्षासुर
भीतत्र तिलधेनुस्तथामता ॥ ४८ ॥ तिलधेनुप्रदातारः स्वस्वदातारएवच ॥ कृष्णजिनप्रदातारो दातारःकुञ्जरस्य
च ॥ ४९ ॥ कन्याविद्याप्रदातारोऽन्नयंलोकमवाप्नुयुः ॥ धूर्वहौदक्षिणायुक्तौ धान्योपस्करसंयुतौ ॥ ५० ॥ दापयेत्सर्व
कामाय इतिमेसत्यभाषितम् ॥ सूत्रेणवेष्टयेदशमथवाजगतीरुहम् ॥ ५१ ॥ मन्दिरंपरयाभक्त्या अथवापरमेश्वर
म् ॥ अथप्रदक्षिणाकाय्यां विनाशूद्रेणमानवैः ॥ ५२ ॥ जम्बूपृक्षाह्वयोदीपौ शालमलिश्रभवेन्नुप ॥ कुशःक्रौञ्चस्त

है वहां प्रत्यक्ष गऊ व तिलधेनु देनेको उचितहै ॥ ४८ ॥ तिलधेनु के देनेवाले, अपने धनके देनेवाले, मृगचर्म के देनेवाले, हाथी के देनेवाले, ॥ ४९ ॥ कन्या और विद्याके देनेवाले अन्नयलोकको प्राप्त होते हैं अन्न व और सामान व दक्षिणासे युक्त वैलों को ॥ ५० ॥ सब कामनाओंके वास्ते देवे यह हमारा कहना सत्य है सूतेसे महादेव व वृक्ष ॥ ५१ ॥ व मन्दिर व परमेश्वर को बड़ी भक्तिसे लपेटे तदनन्तर शूद्र को छोड़ और मनुष्यों को प्रदक्षिणा करना चाहिये ॥ ५२ ॥ जो ऐसा काम करता

है उसने मानो जम्बू, लङ्घ, शाल्मली, कुशा, क्रौंच, शाक और सातवां पुष्करद्वीप व सातो समुद्रपर्यन्त पृथिवी को लपेटलिया है भारत ! हे राजेन्द्र ! द्वीपेश्वर मे जितेन्द्रिय मनुष्यों को वृषोत्सर्ग करना चाहिये ॥ ५३ ॥ क्योंकि बैल के छोंडेनेही से ईश्वरके लोकको पाताहै जिसका मुख, माथा, पांव सफेदहो ॥ ५४ ॥ व पूंछ और थूथुन सफेद होंवें वह बैल स्वर्गका दिखानेवाला होताहै ऐमाही बैल नील कहा गयाहै उसको शुभस्वरूप द्वीपेश्वर मे देवे ॥ ५६ ॥ हे पार्थिव ! इसके देनेवाले अनगिन्ती भी नीच लोग स्वर्ग को जाते हैं अथवा सूर्य व चण्डेश्वर व विष्णुके लोक को जाते है ॥ ५७ ॥ व्यासतीर्थ के प्रभावसे वह अपनी इच्छासे इन लोको

थाशाकः पुष्करश्चेतिसप्तमः ॥ ५३ ॥ सप्तसागरपर्यन्ता वेष्टितातेनभारत ॥ द्वीपेश्वरेतुराजेन्द्र दृषोत्सर्गोजितेन्द्रियैः ॥ ५४ ॥ दृषस्यमोज्ञेनैव ऐश्वरंलोकमाप्नुयात् ॥ यस्तुवैपाण्डुरोवक्त्रे ललाटेचरणेतथा ॥ ५५ ॥ लाङ्गलेचमुखे शुभ्रस्सवैनाकस्यदर्शनः ॥ नीलोयमीदृशःप्रोक्तो दद्याद्द्वीपेश्वरेशुभे ॥ ५६ ॥ पामरास्तेध्यसंख्याता नार्केगच्छन्ति पार्थिव ॥ सौरचण्डेश्वरेलोके पुरैवैचक्रपाणिनः ॥ ५७ ॥ समुद्वेक्तेष्वेच्छयालोकं व्यासतीर्थप्रभावतः ॥ सपत्नीकांस्ततोविप्रान्पूजयेत्तत्रभक्तिः ॥ ५८ ॥ सितरत्नानिवस्त्राणि प्रदद्यादग्रजन्मने ॥ कृत्वाप्रदक्षिणायुगमं प्रीयतांमेजगद्गुरुः ॥ ५९ ॥ नास्तिविप्रसमोबन्धुरिहलोकपरत्रच ॥ यमलोकैमहाघोरे पतितंयोभिरक्षति ॥ ६० ॥ पुरुषाःपरयामक्त्या वेदशास्त्रार्थचिन्तकाः ॥ द्वीपेश्वरंमहादेवं संस्मरन्तिगृहेस्थिताः ॥ ६१ ॥ तेषांनजायतेशोको नहानिर्नचदुष्कृतम् ॥ प्रथमंपूजयेत्तत्र लिङ्गसिद्धेश्वरन्नृप ॥ ६२ ॥ यत्रासिद्धोमहाभागस्सत्यवत्याश्चनन्दनः ॥ अस्मैवार्चनतस्मिद्धो

को भोगताहै तदनन्तर वहा भक्तिसे सपत्नीक ब्राह्मणों का पूजनकरे ॥ ५८ ॥ सफेद रत्न व वस्त्रो को ब्राह्मण को देवे और दो प्रदक्षिणा करके कहे कि मुझ से जगत के गुरु प्रसन्न होंवें ॥ ५९ ॥ ब्राह्मण के बगवर इस लोक व परलोक में कोई हितकारी नहीं है जो महाघोर यमलोक में पड़ेहुये पापोंकी रक्षा करताहै ॥ ६० ॥ वेद और शास्त्र के अर्थ जाननेवाले जे पुरुष अपने घरमे बैठेहुये बड़ी भक्ति से द्वीपेश्वर महादेव को स्मरण करते है ॥ ६१ ॥ उनको शोक हानि और पाप नहीं होता है

हे नृप ! वहा पहले सिद्धेश्वर लिङ्गका पूजनकरे ॥ ६२ ॥ जहां बड़े भाग्यवाले सत्यवतीके पुत्र व्यास सिद्ध हुये हैं इसी लिङ्गके पूजनसे व्यासमुनि सिद्धहुये हैं ॥ ६३ ॥ हे राजन् ! उस तीर्थमें जे अपने प्राणोंका त्याग करतेहैं वे परमलोकको जातेहैं इसमें विचार नहीं करना चाहिये ॥ ६४ ॥ व जो जलमें प्रवेश कर मराहै वह हजार वर्ष तक स्वर्ग में रहताहै और भृगुपातमें सोलह हजार व युद्धमें साठहजार और गौवों के पीछे मरने से अरसीहजार और हे भारत ! अनशनमें अक्षय काल तक स्वर्ग में गति रहती है ॥ ६५ ॥ और योग सेभी अक्षय गति होती है सूर्यलोकको जाकर फिर वे शिवलोक को जाते हैं ॥ ६६ ॥ पिता, दादा और परदादा आते हुये अपने अपने गोत्र

पाराशर्योमुनिस्ततः ॥ ६३ ॥ तस्मिन्सतीर्थेनुराजन्प्राणत्यागं प्रकुर्वते ॥ तेयान्तिपरमं लोकं नात्र काय्या विचारणा ॥ ६४ ॥ समासहस्राणि मृतो जले वै यो वै निमग्नः पतने च षोडश ॥ महाहवेषष्टिरशीतिगोष्ठे त्वनाशके भारत चाक्षया गतिः ॥ ६५ ॥ अथ योगेनेतेनैव प्राप्यते चाक्षया गतिः ॥ सूर्यलोकं ततो गत्वा शिवलोकं ब्रजन्ति ते ॥ ६६ ॥ पितापितामहश्चैव तथैव प्रपितामहः ॥ अनुभूतानिरीक्षन्ते आगच्छन्तं स्वगोत्रजम् ॥ ६७ ॥ तिष्ठते चैव गोत्रेषु यो दद्याच्च तिलोदकम् ॥ कार्त्तिकयाञ्च तथा माध्यां वैशाख्याञ्च विशेषतः ॥ ६८ ॥ स्वर्गं च ते प्रयान्त्यन्ते स्वस्वपुत्रप्रभावतः ॥ एतत्ते कथितं सर्वं द्वीपेश्वरफलं शुभम् ॥ ६९ ॥ यः पठेत्प्रातरुत्थाय यः शृणोति नरोत्तम ॥ सोऽपि पापैर्विनिर्मुक्तो मोदते शिवमन्दिरे ॥ ७० ॥ ईश्वरं सर्वतीर्थानां निर्ममन्तं ऋषिपुङ्गवैः ॥ कामदं सर्वजन्तूनां रेवायाञ्च नृपोत्तम ॥ ७१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे रेवास्य एडेहीपेश्वरव्यासतीर्थवर्णनो नाम नवाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०९ ॥ * ॥

वालेको देखते हैं ॥ ६७ ॥ और कहते हैं कि है कोई हमारे गोत्र में जो विशेष करके कार्त्तिकी व माघी व वैशाखी को यहां तिलोदक देवे ॥ ६८ ॥ वे लोग अपने २ पुत्रों के प्रभाव से अन्त में स्वर्गको जाते हैं यह सब उत्तम द्वीपेश्वर का फल तुम से कहा गया ॥ ६९ ॥ प्रातःकाल उठकर जो मनुष्य पढ़ता व सुनताहै पापों से छूटा हुआ वह निश्चय करके शिवके मन्दिर में आनन्द करता है ॥ ७० ॥ हे नृपोत्तम ! सब जीवोंकी कामनाओं का देनेवाला व सब तीर्थोंका राजा ऋषियोंका रचा हुआ नर्मदा पर व्यासतीर्थ है ॥ ७१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे रेवास्य एडेहीपेश्वरव्यासतीर्थवर्णनो नाम नवाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०९ ॥ • ॥

मार्कण्डेयजी बोले कि हे राजेन्द्र ! तदनन्तर तीनों लोकों में प्रसिद्ध व उत्तम स्वर्गकी निसेनी के समान, उत्तम प्रभासेश्वर तीर्थको जावे ॥ १ ॥ तब युधिष्ठिजी बोले कि बड़े फलवाला प्रभास नाम तीर्थ जैसे हुआ हो व जैसे स्वर्ग मार्गकी निसेनी के बराबरहो वैसे संक्षेप से आप मुझ से कहिये ॥ २ ॥ तब मार्कण्डेयजी सालभर वायुका भोजन करतीहुई बनीरही हे पाण्डुनन्दन ! तब प्रसन्न हुये महादेव उस प्रभा से ॥ ४ ॥ बोले कि हे बाले ! तू क्यों तकलीफ उठाती है अपने मन

मार्कण्डेयउवाच ॥ ततो गच्छेत्तुराजेन्द्र प्रभासेश्वरमुत्तमम् ॥ विख्यातं त्रिषु लोकेषु स्वर्गसोपानमुत्तमम् ॥ १ ॥ युधिष्ठिरउवाच ॥ प्रभाससन्नामतीर्थं तु यथाजातं महाफलम् ॥ स्वर्गसोपानमर्गञ्च संक्षेपात्कथयस्व मे ॥ २ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ दुर्भगारविपत्नीच प्रभानामेति विश्रुता ॥ तया चाराधितः शम्भुरुन्नेत पसाधुरा ॥ ३ ॥ वायुभजास्थिता वर्षं शिवध्यानपरायणा ॥ ततस्तुष्टो महादेवः प्रभां तां पाण्डुनन्दन ॥ ४ ॥ उवाच क्लिश्यते कस्माद्बाले त्वं ब्रूहि चेष्टितम् ॥ अहञ्च भास्करोपेतश्चा न्तरं नैव विद्यते ॥ ५ ॥ प्रभोवाच ॥ नान्यो देवस्तथा शम्भो भर्ता पुष्यति न कचित् ॥ सगुणो वापि चाख्यातो निर्गुणो द्रव्यख्यामर्तुश्च तेन क्लिश्ये महेश्वर ॥ देवउवाच ॥ दुर्भगात्वेन दग्धाहं लोकमध्ये महेश्वर ॥ ७ ॥ अलब्धसौ तव वाक्येन भास्करे न भविष्यति ॥ वृथा क्लेशो भवेद्देव प्रभायास्तत्र का कथा ॥ ९ ॥ देवी वाक्येन रुद्रेण ध्यातस्तिमिर की बातको कह क्योंकि हम सूर्य से युक्त सदा रहते हैं हमारा और सूर्यका अन्तर नहीं है ॥ ५ ॥ तब प्रभा बोली कि हे शम्भो ! चाहे भर्ता अपनी स्त्रीका पोषण कभी न करे परन्तु स्त्रीका और देवता नहीं है चाहे वह सगुणहो व चाहे निर्गुण हो व द्रव्यसे रहितहो ॥ ६ ॥ चाहे प्रियहो और चाहे अग्रिय हो परन्तु स्त्रियोंका पतिही देवताहै हे महेश्वर ! मैं तो कुरूप होने के कारण से संसार में जल रही हूँ ॥ ७ ॥ हे महेश्वर ! पति से सुखको नहीं पाती हूँ इससे तपस्यासे कष्टित हो रही हूँ तब महादेव बोले कि हमारे प्रभाव से तुम सूर्यकी प्यारी होवोगी ॥ ८ ॥ तब पार्वती ने कहा कि हे देव ! यह तुम्हारे कहने से सूर्यकी प्यारी न होगी आपको वृथा क्लेश होगा वहां

प्रभाकी वार्ताभी नहीं है ॥ ९ ॥ पार्वती के कहने से महादेवने सूर्यका ध्यान किया तब नर्मदा के उषरवाले किनारेपर आकाश से सूर्य आते हुये ॥ १० ॥ और सूर्य बोले कि हे अन्धकासुरनाशन, देव ! आपने मुझको क्यों बुलाया है तब महादेव बोले कि हे भानो ! बड़े सन्तोष से प्रभाको पालो ॥ ११ ॥ हे हिमनाशन ! प्रभा के मकान में हमेशा रहा करो ऐसे महादेव से वरको प्राप्तहुई प्रभा महादेव को थापकर बोली ॥ १२ ॥ कि हे अनघ ! अपने अंश से यहां ठहरो और तीर्थ का प्रकाश करो मार्कण्डेयजी बोले कि हे पाण्डुनन्दन ! सब देवताओं का रूप जो लिंगहै सो स्थापन किया गया ॥ १३ ॥ प्रभासेश्वर नाम का यह लिंग सब लोकों में दुर्लभहै और

नाशनः ॥ आगतोगगनाद्भानुर्नर्मदायोत्तरतटे ॥ १० ॥ भानुरुवाच ॥ कस्मादाह्वानितोदेव अन्धकासुरनाशन ॥
देवउवाच ॥ प्रभांपालयहेभानो संतोषेणपरेणच ॥ ११ ॥ प्रभायामन्दिरनित्यं स्थीयतां हिमनाशन ॥ एवंलब्धवरा
देवात्प्रभास्थाप्याहशङ्करम् ॥ १२ ॥ स्वांशेनस्थीयतामत्रतीर्थमुन्मीलयानघ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ सर्वदेवमयलिङ्गं
स्थापितंपाण्डुनन्दन ॥ १३ ॥ प्रभासेश्वरनामेदं सर्वलोकैश्चदुर्लभम् ॥ अन्यानियानितीर्थानि कालेतेपिफलान्तिवै ॥
१४ ॥ प्रभासञ्चापिराजेन्द्र सद्यःपुण्यफलप्रदम् ॥ माघमासेचसप्तम्यां विशेषफलदंभवेत् ॥ १५ ॥ अश्वयोदापयेत्त
त्र यथोक्तंब्राह्मणेनृप ॥ इन्द्रस्यप्राप्यतेलोकमथवाभास्करं व्रजेत् ॥ १६ ॥ दौर्भाग्यनश्येततत्र स्नानमात्रेणपाण्डव ॥
तत्रतीर्थेतुयोभक्त्या कन्यादानंप्रयच्छति ॥ १७ ॥ ब्राह्मणायविवाहार्थं दापयेत्पाण्डुनन्दन ॥ समानवयमेविप्रे कुलीने
धनिनेतथा ॥ १८ ॥ योददातिमहाराज महापातकंसंयुतः ॥ तस्यपापंचनश्येत उदकेलवणंयथा ॥ १९ ॥ स्वामिद्रोहो

जो तीर्थ हैं वे समय पर फल देते हैं ॥ १४ ॥ और हे राजेन्द्र ! प्रभास तो तत्कालमें पुण्य फलका देनेवाला है और माघ के महीने में सप्तमी को विशेष फलका देने वाला है ॥ १५ ॥ हे नृप ! जैसा कहाहै वैसे घोंडे को जो ब्राह्मण को देताहै वह इन्द्र व सूर्यके लोकको जाता है ॥ १६ ॥ हे पाण्डव ! वहां स्नानमात्र से कुरूपता नष्ट होजाती है उस तीर्थ में भक्तिसे जो कन्यादान को देता है ॥ १७ ॥ हे पाण्डुनन्दन ! बराबर उमरवाले कुलीन व धनी ब्राह्मण को विवाह के वास्ते ॥ १८ ॥ हे महाराज ! जो कन्याको देता व दिलाता है वह महापातक से युक्तभी हो परन्तु उसका पाप नष्ट होजाताहै जैसे पानी में लोण पिघल जाताहै ॥ १९ ॥ स्वामी के साथ द्रोह

करने से जो पाप होता है व चोरी से जो होता है व झूठी गवाही से व चाण्डालों की सी चाल चलनेवालों को जो पाप होता है ॥ २० ॥ व पाखण्ड से व वृद्धों के काटने से व अगम्य स्त्री में गमन करने से व गांव भरके साथ छल करने से व विष के देने से व पाप के छिपाने से ॥ २१ ॥ व विद्या के बेचने में व प्रापियों का साथ करने से व स्त्री और सब से वैर करने से हे नृप ! ॥ २२ ॥ व ब्रह्महत्या से व जमीन छीननेवाले को व गोहत्या में व गुरु, अग्नि और ब्राह्मण के साथ अपराध करने से जो पाप होता है ॥ २३ ॥ व हे नृप ! जम्बू, लङ्का, शाल्मलि, कुश, क्रौंच, शाक और सातवें पुष्करद्वीप में जो पाप होता है ॥ २४ ॥ हे पाण्डव ! वह पाप कन्यादान से नष्ट

द्रवंपापं यत्पापं स्तेयसम्भवम् ॥ कूटसाक्ष्यप्रदंपांचाण्डालव्रतचारिणाम् ॥ २० ॥ दाम्भिकं च कच्छेदमगम्या
गमनोद्भवम् ॥ ग्रामकूटोद्भवं च गरदंवाप्रवारकम् ॥ २१ ॥ विद्याविक्रयणे च संसर्गोद्भवपातकम् ॥ पत्नीद्रोहो
द्भवं घोरं सर्वद्रोहोद्भवं नृप ॥ २२ ॥ ब्रह्महत्या च यत्पापं भूमिहारिणः ॥ गोवधै चैव यत्पापं गुर्वग्निब्राह्मणेषु च ॥
२३ ॥ जम्बू, लङ्का, शाल्मलि, कुश, क्रौंच, शाक और सातवें पुष्करद्वीप में जो पाप होता है ॥ २४ ॥ तत्पापं विलयं या
ति कन्यादानेन पाण्डव ॥ भित्वाथ भास्करं लोकं शिवलोकं शुभं व्रजेत् ॥ २५ ॥ क्रीडते रुद्रलोकस्थो यावदिन्द्राश्चतु
र्दश ॥ सर्वपापक्षये जाते शिवो भवति भावतः ॥ २६ ॥ तावद्भ्रमति तत्तीर्थं प्रभासं पाण्डुनन्दन ॥ सोऽवमेधफलं प्राप्य
सत्यमीश्वरभाषितम् ॥ २७ ॥ गोदानं च महत्पुण्यं सर्वपापक्षयङ्करम् ॥ प्रत्यक्षं सुरभी तत्र जलधेनुं तथा दृतः ॥ २८ ॥
तिलधेनुप्रदाता च अश्वदाता तथैव च ॥ कन्याविद्याप्रदाता च अक्षयं लोकमाप्नुयात् ॥ २९ ॥ भूरिवस्त्रांचीरशुक्लां

होजाता है कन्यादान का करनेवाला सूर्यलोक को भेदकर शुभरूप शिवलोक को जाता है ॥ २५ ॥ जब तक चौदहो इन्द्र रहते हैं तब तक रुद्रलोक में टिकाहुआ विहार करता है फिर सब पापों के क्षय होजाने पर भावना से शिवही होजाता है ॥ २६ ॥ हे पाण्डुनन्दन ! तब तक मनुष्य अमता है जब तक प्रभासतीर्थ को नहीं पाता है उसको पाकर अश्वमेधके फलको पाता है ईश्वर का कहना सत्य है ॥ २७ ॥ गोदान सब पापोंका क्षय करनेवाला और बड़ी पुण्यवाला होता है वहां प्रत्यक्ष गऊ व

तब सर्पसे कहा कि तू अजगर होजा ॥ ५ ॥ तब वासुकि बोला कि हे हरसम्भृते ! मैं पापी आपसे दया करने के योग्य हूँ हे शुभलक्षणे ! तुम तो तीनों लोकों की पवित्र करनेवाली पुण्य नदी हो ॥ ६ ॥ और संसार के काटनेवाली व कष्टों के कष्टकी हरेनेवाली हो स्वर्ग के फाटक पर ठहरी हुई हे देवि ! मेरे ऊपर दया करो ॥ ७ ॥ तब गंगा बोली कि हे नाग ! तुम महादेव के वास्ते बड़ी तपस्या करो तब वह ईश्वर का जिसमें परम आराधन है ऐसे तपको करता हुआ ॥ ८ ॥ तदनन्तर महादेव का ध्यान करता हुआ दम से युक्त होता हुआ तदनन्तर सौ वर्ष पूरे होनेपर महादेवजी प्रसन्न हुये ॥ ९ ॥ आकर उसके समीप खड़े होकर स्नेहकी आवाज से बोले कि हे

परिभारत ॥ आजगरत्वमाप्नोषि उरगञ्चाब्रवीत्तदा ॥ ५ ॥ वासुकिरुवाच ॥ अनुग्राहोऽस्म्यहंपापो भवत्याहरसम्भृते ॥ त्रैलोक्यपावनीपुरया सरित्त्वंशुभलक्षणे ॥ ६ ॥ संसारच्छेदनकरी आर्तानामार्तिनाशिनी ॥ स्वर्गद्वारस्थितेदेवि दयां कुरुममोपरि ॥ ७ ॥ गङ्गोवाच ॥ चरत्त्वंविपुलज्ञाग तपोवैशङ्करप्रति ॥ ततस्तपश्चचारामासीद्वराराधनं परम् ॥ ८ ॥ ततश्चध्यायतो देवं दमयुक्तो भवत्सच ॥ ततो वर्षशतेषूँ उपरुद्धोजगद्गुरुः ॥ ९ ॥ आगत्य तत्समीपस्थः झलक्ष्णांवा णीमुदाहरत् ॥ वरं वरयतु श्रेष्ठं पन्नगत्वं महाबल ॥ १० ॥ पन्नग उवाच ॥ यदितुष्टोसि मे देव वरं दातुं निशूलभृत् ॥ तदा मे दीयतां स्थानं स्वकीयं वृषवाहन ॥ ११ ॥ ईश्वर उवाच ॥ प्रसन्नोऽहं महाबाहो रेवांगच्छ शुभां त्वरम् ॥ याम्ये चैव तटेषु एये स्नानं कृत्वा विधानतः ॥ १२ ॥ इत्युक्त्वान्तर्दधे देवो वासुकिस्त्वरिति न्वितः ॥ रूपेणाजगरेणाथ विवेश नर्मदाजले ॥ १३ ॥ मार्गेण तस्य तज्जातं जाह्नव्याः स्रोत उत्तमम् ॥ निर्धूतकल्मषस्पर्पसजातो नर्मदाजले ॥ १४ ॥ स्थापि

पन्नग ! हे महाबल ! तुम श्रेष्ठ वरको मागो ॥ १० ॥ तब नाग बोला कि हे त्रिशूल के धारण करनेवाले, देव ! जो आप वर देनेको मुझ से प्रसन्न हो तो हे वृषवाहन ! मुझे अपने स्थान को देवो ॥ ११ ॥ तब महादेवजी बोले कि हे महाबाहो ! हम प्रसन्न हैं तुम कल्याणवाली नर्मदाको जल्द जावो और दक्षिणवाले किनारे पर विधान से स्नान करो ॥ १२ ॥ इतना कह महादेव अन्तर्धान हो गये और बड़ी जल्दी से युक्त वासुकि अजगर के रूप से नर्मदा के जल में पैठे ॥ १३ ॥ उसकी रास्ते में गंगा

का उत्तम सोता निकल आया नर्मदा के जलमें पाप जिसके धो गये ऐसा वह नाग होगया ॥ १४ ॥ हे युधिष्ठिर ! उसने वहां नर्मदामें महादेव का स्थापन किया इसी से पृथिवी में नागेश्वर सब पापों के नाश करनेवाले हैं ॥ १५ ॥ अष्टमी व चौदस को शहद से महादेव को स्नान करावे तो जैसे आग होती है ऐसे सब पापोंसे छूटा हुआ होजाता है ॥ १६ ॥ और हे पार्थ ! पुत्रसे रहित जो मनुष्य संगममें स्नान करते हैं वे कर्त्तव्य के समान उत्तम पुत्रोंको पाते हैं ॥ १७ ॥ और हे नृप-
नन्दन ! उपास किये हुये जो मनुष्य भक्ति से श्राद्ध को करते हैं वे अपने पितरों को नरक से तार देते हैं ॥ १८ ॥ विशेष कर आप के स्नेह से ऐसा मैंने कहा है

तश्चेश्वरस्तत्र नर्मदायां युधिष्ठिर ॥ तेन नागेश्वरो भूम्यां सर्वपापविनाशनः ॥ १५ ॥ अष्टम्यां च चतुर्दश्यां मधुना
स्नापयेच्छिवम् ॥ विमुक्तस्सर्वपापेभ्यो जायते ह्यनलो यथा ॥ १६ ॥ अपुत्रायेनराः पार्थ स्नानं कुर्वन्ति सङ्गमे ॥ तेलम
न्ते शुभान् पुत्रान् कर्त्तव्यीय्योपमानपि ॥ १७ ॥ श्राद्धं तत्रैव भक्त्या उपवासपरायणाः ॥ कुर्वन्ति तारयन्ति स्वान्नरका
न् नृपनन्दन ॥ १८ ॥ एवमाख्यातवानस्मि तव स्नेहाद्विशेषतः ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ ततो गच्छेच्च राजेन्द्र मार्कण्डे
श्वरमुत्तमम् ॥ १९ ॥ नर्मदादक्षिणकूले गीर्वाणैर्विन्दितं शुभम् ॥ गुह्याद्गुह्यतरन्तीर्थं नाख्यातं कस्यचिन्मया ॥
२० ॥ स्थापितञ्च मया पुण्यं स्वर्गभोगञ्च मुक्तिदम् ॥ ज्ञानं तत्रैव मे जातं प्रसादाच्छङ्करस्य च ॥ २१ ॥ अन्यसूक्तंच यो
ध्यायेद्दुष्टदुष्टजले जपेत् ॥ सोऽपि घोरादघौघाच्च मुच्यते पाण्डुनन्दन ॥ २२ ॥ वाचिकैर्मानसैश्चापि कर्मजैरपि पा
ण्डव ॥ पञ्चेन्द्रियाण्यवष्टभ्य याम्यामाशाञ्च संस्थितः ॥ २३ ॥ योजयेत्सलिले भक्त्या इत्येवं शङ्करो ब्रवीत् ॥ श्राद्धं त

फिर मार्कण्डेयजी बोले कि हे राजेन्द्र ! तदनन्तर उत्तम मार्कण्डेश्वर को जावे ॥ १९ ॥ जो कि नर्मदा के दक्षिणवाले तट पर देवताओं से भलीभांति नमस्कार किया गया गुप्त से गुप्त तीर्थ है जिसको मैंने किसी से नहीं कहा है ॥ २० ॥ स्वर्ग का भोग और श्रौर मुक्ति का देनेवाला व पुण्यवाला वह लिंग मेरा थापा हुआ है महादेव के प्रसाद से सुभक्तों वही ज्ञान पैदा हुआ है ॥ २१ ॥ अन्य सूक्त को जो ध्यात्रता है व दुष्टद मन्त्रको जलमें जपता है हे पाण्डुनन्दन ! वह भी घोर पापों के समूह से छूटजाता है ॥ २२ ॥ और हे पाण्डव ! पाचो इन्द्रियों को रोक दक्षिण दिशामें बैठा हुआ ॥ २३ ॥ भक्ति से पानी में जो कहे हुये जपको करता है वह वाणी, मन और

शरीरसे किये हुये पापोंसे छूटजाता है ऐसा शङ्करजीने कहा है और है नृपनन्दन ! भक्ति से जो वहां आछ करताहै ॥ २४ ॥ उसके पितर प्रलयतक तृप्त रहतेहैं और, बेर, बेल, अजत और जलसे ॥ २५ ॥ जो प्रेतोंका तर्पण करता है उसके प्रेत शुभगतिको प्राप्त होते हैं ॥ २६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणरेखाखण्डे प्राकृतभाषाऽनुवादसार्ङ्गण्डे-
श्वरमहिमाऽनुवर्णनेनामैकादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११३ ॥ * * * * * ॥ * * * * * ॥
मार्कण्डेयजी बोले कि हे राजेन्द्र ! तदनन्तर नर्मदा के उत्तरवाले तटपर यज्ञवाटके बीच में विद्यमान बड़े सुन्दर तीर्थ को जावे ॥ १ ॥ पापों का नाश करनेवाला

त्रैवयोभक्त्याकुरुते नृपनन्दन ॥ २४ ॥ पितरस्तस्यैवैतृप्तायावदाहूतसम्प्लवम् ॥ आमर्लेर्वदरैर्विल्वैरक्षतैर्वाजलेनवा ॥
२५ ॥ तर्पयेत्तत्रयः प्रेतान्प्रेतायान्तिशुभाङ्गतिम् ॥ २६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणरेखाखण्डे मार्कण्डेयश्चरमहिमानुवर्णनो
नामैकादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११३ ॥ * * * * * ॥ * * * * * ॥

मार्कण्डेयउवाच ॥ ततो गच्छेत्तुराजेन्द्र तीर्थं परमशोभनम् ॥ उत्तरेनर्मदाकूले यज्ञवाटस्य मध्यतः ॥ १ ॥ सङ्क-
र्षणञ्च विख्यातं पृथिव्यां पापनाशनम् ॥ तपश्चर्याणि पुराणजन्मदायास्तटे शुभे ॥ २ ॥ बलभद्रेण राजेन्द्र प्राणिनामुप-
कारकम् ॥ गीर्वाणैश्चैव तत्रैव सन्निधौ नृपनन्दन ॥ ३ ॥ उभयासहितदशम्भुस्स्थितस्तत्रैव केरावः ॥ यस्तत्र स्नापये-
द्भक्त्या जितक्रोधो जितेन्द्रियः ॥ ४ ॥ एकादश्यां सिते पक्षे मन्त्रेण स्नापयेच्चिवम् ॥ आर्द्धं तत्र च यो भक्त्या प्रेतानां विप्र-
दापयेत् ॥ ५ ॥ स याति परमं स्थानं बलभद्रवचो यथा ॥ ततो गच्छेच्च राजेन्द्र मन्मथे श्वरमुत्तमम् ॥ ६ ॥ स्नानमात्रो

पृथिवी में वह सङ्कर्षण नाम से प्रसिद्ध है हे राजन् ! आगे नर्मदा के पवित्र तटमें प्राणियों के उपकार करनेवाले तपको बलभद्र ने किया है हे राजेन्द्र ! हे नृपनन्दन !
उसके समीप ही देवताओं के सहित व पार्वती के सहित महादेव और विष्णु दोनों विद्यमान हैं जो वहा क्रोध व इन्द्रियोंको जीतेहुये भक्तिसे नहाता है ॥ २ । ३ । ४ ॥
और उजियाले पाखकी एकादशी को मन्त्रसे शिवको स्नान कराता है व भक्ति से जो प्रेतोंको वहां आछ देता है ॥ ५ ॥ वह उत्तम स्थानको जाता है ऐसा बलभद्र का

वचन है हे राजेन्द्र ! तदनन्तर उत्तम मन्मथेश्वर को जावे ॥ ६ ॥ हे राजन् ! वहां स्नानमात्र का करनेवाला मनुष्य यमलोक को नहीं देखता है और हे पाण्डुनन्दन ! पुत्र से रहित जो स्त्री महादेव को स्नान करावे ॥ ७ ॥ तो हे पार्थ ! वह सच्चे और पौढ़े ब्रतवाले पुत्रको पाती है और हे राजन् ! मन को जीतेहुये व मौन होरहा मनुष्य वहां स्नान कर ॥ ८ ॥ व भक्ति से उपासकर गोसहस्रके फलको पाता है और भक्तिसे युक्त मनवाले जो मनुष्य वहां नाचते हैं ॥ ९ ॥ और गाने बजाने के सहित रात में जागरण करते हैं उनसे पार्वती के सहित मन्मथेश्वर महादेवजी प्रसन्न होते हैं ॥ १० ॥ उस पर नाराज होकर यमराज क्या करसके हैं उस को

नरैराजन्यमलोकन्नपश्यति ॥ अनपत्यातुयानारी स्नापयेत्पाण्डुनन्दन ॥ ७ ॥ पुत्रं सलभते पार्थ सत्यवन्तं दृढव्रतम् ॥ तत्र स्नात्वा नरो राजन्मुनिः प्रयतमानसः ॥ ८ ॥ उपोष्य परयाभक्त्या गोसहस्रफलं लभेत् ॥ तत्र नृत्यं प्रकुर्वन्ति येन राभक्तिमानसाः ॥ ९ ॥ गीतवादित्रसंयुक्तं रात्रौ जागरणं शुभम् ॥ सहाभिविको महादेवस्तुष्टौ विमन्मथेश्वरः ॥ १० ॥ भिन्नकश्चित्संरुष्टो यमस्तं न च पश्यति ॥ कामेन स्थापितस्तत्र एतस्मात्कारणान्दृष्ट ॥ ११ ॥ अन्नदानेन भोजनकी विनिर्वाणं न भूतम् ॥ सोपानं स्वर्गमार्गस्य पृथिव्यां मन्मथेश्वरः ॥ १२ ॥ विशेषात्तत्र संख्यातं श्राद्धदानेन भारत ॥ अन्नदानेन भोगाग्नन्कीर्तिं तत्फलमुत्तमम् ॥ १३ ॥ एतत्ते सर्वमाख्यातं तव भक्त्या तु भारत ॥ १४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वासवगणेशमन्मथेश्वरमहिमानुवर्णनो नाम द्वादशोऽधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११२ ॥ * ॥

माकैंगण्डेय उवाच ॥ ततो गच्छेत्तुराजेन्द्र एरण्डीसङ्गमेश्वरम् ॥ प्रख्यातं सर्वलोकेषु ब्रह्महत्याप्रणाशनम् ॥ १ ॥ युदेव भी नहीं सके हैं हे राजा ! बगी भाग्यमे कामदेव ने बहा स्थापन किया है ॥ ११ ॥ हे राजन् ! अन्नके दानरो उत्तम फल कहा गया है पृथिवी में मन्मथेश्वर स्वर्गमार्गकी निसेनी हैं ॥ १२ ॥ हे राजा ! हे गान् ! यहाँ श्राद्धदान व अन्नदानसे उत्तम फल विशेषसे कहा गया है ॥ १३ ॥ हे भारत ! तुम्हारी भक्ति से यह सब मैंने ॥ १४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वासवगणेशमन्मथेश्वरमहिमानुवर्णनो नाम द्वादशोऽधिकशततमोऽध्यायः ११२ ॥ * ॥

अन्धेयजी बोले कि तदनन्तर हे राजेन्द्र ! पृथिवीमें मन्मथेश्वर को जावे जो कि सब लोकों में ब्रह्महत्या का नाश करनेवाला कहा गया है ॥ ३ ॥ तब युधिष्ठिर

बोले कि हम कारण को नहीं जानते हैं सो सब आप मुझसे कहिये बुद्धिवाले युधिष्ठिरसे ऐसे कहेगये धर्मात्मा मार्कण्डेय ॥ २ ॥ ऋषियों के समूहसे युक्त उस सम्पूर्ण वृत्तान्तको कहते हुये मार्कण्डेयजी बोले कि जो पहले पार्वती, महादेव और ब्रह्माने कहा है ॥ ३ ॥ उसीको हम आपसे कहेगे आप भाइयोंके सहित सुनिये महादेवने कहा है कि हे देव ! ब्रह्मा के मानस पुत्र अत्रिनाम के होते हुये ॥ ४ ॥ अग्निहोत्र के करनेवाले व देवता और अतिथि के पूजनेवाले हुये इस पर्वत पर उन्हीं ब्राह्मण ने चन्द्रमा का स्थापन किया है ॥ ५ ॥ अनसूया नामकी उनकी स्त्री गुणोत्तियुक्त व पतिव्रता व पतिही जिसके प्राण है व पति के काम व हितमें लगी रहने-

धिष्ठिरउवाच ॥ कारणैवज्ञैवजानेहं तत्सर्वकथयस्वमे ॥ एवमुक्तस्तुधर्मात्मा धर्मपुत्रेणधीमता ॥ २ ॥ कथयामास तत्सर्वमृषिसङ्घैस्समावृतः ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ कथितंचामयापूर्वं शम्भुनापरमेष्ठिना ॥ ३ ॥ तत्तेहंसस्पृक्ष्यामि श्रूयतांभ्रातृभिस्सह ॥ महेश्वरउवाच ॥ अत्रिर्नामाह्वयोदेवमानसोब्रह्मणस्सुतः ॥ ४ ॥ अग्निहोत्ररतोनित्यं देवतातिथिपूजकः ॥ सोमस्संस्थापितोत्रैव कृतोविप्रेणपर्वते ॥ ५ ॥ अनसूयतिनाम्नापै तस्यभार्यागुणान्विता ॥ पतिव्रतापतिप्राणा पत्युःकार्यहितेस्ता ॥ ६ ॥ एवंजातस्सदाकालो नपुत्रोनचपुत्रिका ॥ अपराह्मेमहाबाहो सुखासीनोतुतौक्कचि त् ॥ ७ ॥ वदतःसुखदुःखानि दैवदत्तानियानिच ॥ अत्रिरुवाच ॥ सौम्येशुभेप्रियेकान्ते सुरूपेप्रियभाषिणि ॥ ८ ॥ पूर्णचन्द्रनिभाकारे प्रियकामेनिरालसे ॥ नत्वयासदृशीलोके त्रैलोक्येसचराचरे ॥ ९ ॥ पतिपुत्रप्रियानारीसुहृज्जनहि तेरता ॥ पुत्रेणलोकाञ्जयति पुत्रेणपरमागतिः ॥ १० ॥ नास्तिपुत्रसमोबन्धुः पृथिव्याञ्चैवदृश्यते ॥ असिपत्रवनेधारे

वाली होती हुई ॥ ६ ॥ इसी तरह काल व्यतीत होता रहा उनके लड़का व लड़की कुछ न हुआ किसी समय तीसरे पहर हे महाबाहो ! वे दोनों कहीं सुखने बैठे थे ॥ ७ ॥ प्रारब्धके दियेहुये सुख दुःखको कह रहेथे अत्रि ने कहा कि हे सौम्ये ! हे शुभे ! हे प्रिये ! हे कान्ते ! हे सुरूपे ! हे प्रियभाषिणि ! ॥ ८ ॥ हे पूर्णचन्द्रमा के समान रूपवाली ! हे प्रियकामे ! हे निरालसे ! इन चराचर तीनों लोकों में तुम्हारे बराबर कोई नहीं है ॥ ९ ॥ स्त्री वही है कि जिसको पति और पुत्र प्यारे होवें और जो अपने सम्बन्धियों के हित में रत होवें पुत्र से लोकों को जीतता है व पुत्रही से परमगति होती है ॥ १० ॥ पुत्र के बराबर पृथिवी में कोई बन्धु नहीं देख पड़ता

हे जोकि घोर असिपत्रवन में गिरते हुये पिताकी रक्षा करता है ॥ ११ ॥ दुर्भिक्ष व गरबी आदि व बुढ़ापे में पुत्रही रक्षा करता है हे भद्रे ! पुत्रकै विना जीते हुये धनियों से भी क्या होता है ॥ १२ ॥ रोगों से दबा हुआ व घर से विरक्त भी पुत्र लोक लज्जा व नीति से डराहुआ पवित्र करसक्ता है ॥ १३ ॥ इन गुणों से युक्त चाहे निगुणहो व सगुणहो पुत्र जरूर होवे पुत्रसे हीन होने में इस लोक व परलोक में सुख कहां से होसक्ता है ॥ १४ ॥ दिन रात इस बातकी चिन्ता कर रहे जा हम है तिनके अङ्ग सूखेजाते हैं जैसे ग्रीष्मऋतु में छोटी नदियां सूखें ॥ १५ ॥ तब अनसूया बोली कि हे विप्र ! जो आपने मुझ से कहा वह सब मैं शोचा करती हूं आप

पतन्तं यो भिरक्षति ॥ ११ ॥ दुर्भिक्षेऽपि दैन्यादौ वृद्धकालेऽपि पुत्रकः ॥ पुत्रं विना च किं भद्रे जीवितैः सधनैरपि ॥ १२ ॥
व्याधिभिः परिभूतोऽपि निर्विषोऽपि यदा सुतः ॥ लोकलज्जानयत्रस्तः पवित्रं कर्तुं महीति ॥ १३ ॥ एतद्गुणसमायुक्तो नि
गुणस्सगुणस्सुतः ॥ पुत्रहीने कुतस्सौख्यमिह लोके परत्र च ॥ १४ ॥ अहश्च मध्यरात्रे च चिन्त्यमानश्च सर्वदा ॥ शुष्य
न्ति मम गणाणि ग्रीष्मे कुसरितो यथा ॥ १५ ॥ अनसूयो वाच ॥ यत्त्वया सूचितं विप्र तत्सर्वं शोचयाम्यहम् ॥ तवाद्देग
करं कार्यं तन्मे दहतु चेत्तसि ॥ १६ ॥ ये च पुत्रा भविष्यन्ति दीर्घायुर्गुणसंयुताः ॥ तत्कार्यं च समीक्ष्येह येन तुष्टः प्रजाप
तिः ॥ १७ ॥ अत्रिरुवाच ॥ तपस्तप्तं मया भद्रे जन्म प्रभृति दुष्करम् ॥ व्रतापवासैर्नियमैश्शकाकारेण सुन्दरि ॥ १८ ॥
क्षीणन्देहन्तु पश्यामि अशक्तोऽहं शुभमानने ॥ स्थातुं शोचामि चात्मानं रहस्यं कथितं मया ॥ १९ ॥ अनसूयो वाच ॥ भर्तः
पतिव्रतानारी पतिपुत्रविवर्द्धिनी ॥ त्रिवर्गसाधनासाच सेव्या सा विपुले जने ॥ २० ॥ जपस्तपस्तीर्थयात्रा पुत्रेज्याम

को घबड़ा देनेवाला काम मेरे चित्तको जलाता है ॥ १६ ॥ जिससे बड़ी उमरवाले व गुणों से संयुक्त पुत्र होंगे उस काम को हम करेंगी जिससे प्रजापति प्रसन्न होवेंगे ॥ १७ ॥ तब अत्रि बोले कि हे भद्रे ! हे सुन्दरि ! व्रत, उपास, नियम और शाक के भोजनसे मैंने जन्म से दुष्कर तप किया है ॥ १८ ॥ अब अपनी देहको मैं क्षीण देखता हूं इससे हे शुभमानने ! मैं असक्त हूं अब अपने को खड़े होने में मुझको शोच विचार है क्योंकि मैंने गुप्त बात तुमसे कह दी है ॥ १९ ॥ तब अनसूया बोली कि हे भर्तः ! पतिव्रता जो स्त्री है वह पति और पुत्रोंकी बढ़ानेवाली होती है और धर्म, अर्थ और कामकी सिद्धिकी करनेवाली है इससे वह सबको पालन करने

लायक है ॥ २० ॥ जप, तप, तीर्थयात्रा और पुत्रेष्टि को गुरुलोग पुत्रका साधन कहते हैं वड़े लोगोंका कहना ठीक है ॥ २१ ॥ ऐसे दुःखमें मैं आप से आज्ञा पाऊं तो टुंकर तप को मैं करूंगी पुत्रकी चाहनेवाली बहुत दिनों के वास्ते अभी मैं त्रिणुकी शरण जाती हूँ ॥ २२ ॥ तब आत्रि बोले कि हे महाप्राज्ञे ! मेरे भन्ताप की करनेवाली बाह २ हे भद्रे ! मेरी आज्ञाको पायेहुये तुम पुत्रके वास्ते तप करो ॥ २३ ॥ देवता, मनुष्य और पितरों से मुझको उन्नतण करो क्योंकि स्त्री के बराबर तीनों लोकों में हितकारी नहीं है ॥ २४ ॥ स्त्री के बिना सुखकी देवता तारीफ नहीं करते हैं क्योंकि पति के सम्मुख होने पर आपभी सम्मुख है और उसके विमुख

न्वसाधनम् ॥ वदन्तिगुरवस्सर्वे यथोक्तगुरुभाषितम् ॥ २१ ॥ अनुज्ञाताचदुःखेहं तपस्तप्स्यामिदुष्करम् ॥ पुत्रार्थी नीवहुदिनान्यहंयामिसुरोत्तमम् ॥ २२ ॥ अत्रिरुवाच ॥ साधुसाधुमहाप्राज्ञे ममसन्तोषकारिणि ॥ अनुज्ञातामयाभद्रे पुत्रार्थतपश्चाचर ॥ २३ ॥ देवानांचमनुष्याणां पितृणामनुणं कुरु ॥ नभार्यासदृशोवन्धुस्त्रिबुलोकेषुविद्यते ॥ २४ ॥ न हिदेवाःप्रशंसन्ति भार्ययारहितसुखम् ॥ सम्मुखेसम्मुखायाति विलोमेचपरब्धुखी ॥ २५ ॥ तेनभार्याप्रशंसन्ति स देवासुरमानुषाः ॥ महाव्रतेमहाप्राज्ञे सत्यरूपेशुभेक्षणे ॥ २६ ॥ तपश्चरस्वश्रद्धित्वं पुत्रार्थंचममाज्ञया ॥ एतद्वाक्या वसानेसा साष्टाङ्गप्रणताब्रवीत् ॥ २७ ॥ त्वत्प्रसादेनविप्रेन्द्रसर्वमेतदवाप्नुयाम् ॥ हंसलीलागतिर्यान्ती लोलाजीवरच णिनी ॥ २८ ॥ विषमस्थानसूयातु प्राप्तमौनम्मर्मदानदीम् ॥ सोमनाथेनतत्तुल्यं नात्रकार्याविचारणा ॥ २९ ॥ येस्म रन्तिदिवारात्रौ योजनानांशतैरपि ॥ मुच्यन्तेसर्वपापेभ्योरुद्रलोकैवसन्तिते ॥ ३० ॥ नर्ममदायास्ससमीपेतु द्वेतदेवचयो होने में आपभी विमुख है ॥ २५ ॥ इसीसे देवता, असुर और मनुष्य सब स्त्री की बड़ाई करते हैं इससे हे महाप्राज्ञे ! हे रात्यरूपे ! हे शुभेक्षणे ॥ २६ ॥ मेरी आज्ञासे पुत्र के वास्ते तुम जल्दी तप करो इतनी बात के समाप्त होने पर साष्टांग प्रणामकर अनसूया बोली ॥ २७ ॥ कि हे विप्रेन्द्र ! तुम्हारे प्रसादसे यह सब मैं पाऊंगी इतना कह हंसकीसी चालवाली व चपलनेत्रोंवाली व उत्तम वर्णवाली ॥ २८ ॥ सङ्कटमें पड़ी हुई अनसूया नर्मदा नदी को प्राप्तहुई वह स्थान सोमनाथ के बराबर है इसमें कुछ विचार नहीं करना चाहिये ॥ २९ ॥ दिन व रात में सौ योजन से भी जो इस स्थानका स्मरण करते हैं वे सब पापोंसे छूटजाते हैं व रुद्र-

लोक में रहते हैं ॥ ३० ॥ नर्मदा के समीप में दो योजनकी दो तरहँटी हैं वहाँ तप करने को नर्मदा में अनसूया ने प्रवेश किया ॥ ३१ ॥ जिसके दर्शनही से पापोका समूह नष्ट होजाताहै तदनन्तर नर्मदा के उत्तरवाले तट पर पत्तों के भोजन करनेवाली पवित्र ॥ ३२ ॥ व शाकके आहारसे नियमों में लगी हुई बड़ नेत्रोंवाली सुन्दरी अनसूया उत्तम स्तोत्रों से देवताओं की स्तुति करती हुई ॥ ३३ ॥ महादेवी अनसूयाने ग्रीष्ममें पञ्चाग्नि का सेवन किया और वर्षा में भीगे कपड़े पहने हुये चान्द्रायण व्रत को करती हुई ॥ ३४ ॥ फिर हेमन्त के आने पर जलमें बास करती हुई प्रातःकाल व सायंकाल में स्नान व देवता आदिकों का तर्पण करती हुई ॥ ३५ ॥

जने ॥ प्रविशन्तीतपस्तत्र रेवायांवरवीणिनी ॥ ३१ ॥ यस्यादर्शनमात्रेण नश्यतेपापसंचयम् ॥ ततस्तस्योत्तरेतीरे परेप
र्णाशनाशुभा ॥ ३२ ॥ नियमस्थाविशालाक्षी शाकाहारेणसुन्दरी ॥ स्तुवन्तीतुततोदेवाञ्छुमस्तोत्रैश्चसंयता ॥
३३ ॥ ग्रीष्मेषुचमहादेवी पञ्चाग्निंसाधयेत्ततः ॥ वर्षाकालेसार्द्रवासाचरचान्द्रायणंव्रतम् ॥ ३४ ॥ हेमन्तेचततःप्रा
से तोयवासाभवत्ततः ॥ प्रातस्स्नानंततस्सान्ध्यं कुर्याद्दिव्यादितर्पणम् ॥ ३५ ॥ देवानामर्चनंकृत्वा होमंकृत्वायथा
विधि ॥ एवंवर्षशतेप्राप्ते विष्णुरुद्रपितामहाः ॥ ३६ ॥ सम्प्राप्ताद्विजल्पेण एरण्ड्यास्सङ्गममप्रति ॥ संस्थिताअग्रत
स्तस्या वेदमभ्युच्चरन्ति ॥ ३७ ॥ अनसूयाजपंत्यक्त्वा निरीचन्तीमुहुर्मुहुः ॥ उत्थितामाविशालाक्षी अर्धदत्त्वाय
थाविधि ॥ ३८ ॥ अद्यमेसफलंजन्म अद्यमेसफलंतपः ॥ दर्शनेनतुविप्राणां सर्वपापैःप्रमुच्यते ॥ ३९ ॥ प्रदक्षिणंत
तःकृत्वा साष्टाङ्गंप्रणताब्रवीत् ॥ कन्दमूलफलैर्दिव्यैरद्याहंतर्पयामिवः ॥ ४० ॥ विप्राउचुः ॥ तपसातुविचित्रेण तव

देवताओं का पूजन व विधान से होम करती हुई इस प्रकार सौ वर्ष होजानेपर विष्णु, महादेव और ब्रह्मा ॥ ३६ ॥ ब्राह्मणके रूप से एरण्डी के सङ्गम में प्राप्त होते हुये और अनसूया के आगे खड़े होकर वे सब वेदका उच्चारण करने लगे ॥ ३७ ॥ जपको छोड बार २ देखती हुई बड़े नेत्रोंवाली अनसूया विधि में अर्घ दे कर उठीं और बोली ॥ ३८ ॥ कि आज मेरा जन्म सफल होगया और आज मेरा तप सफल होगया क्योंकि ब्राह्मणों के दर्शन से सब पापोंमें छूटजाता है ॥ ३९ ॥ फिर प्रदक्षिणा व साष्टाङ्ग प्रणामकर बोलीं कि आज हम दिव्य कन्द, मूल और फलों से आप लोगों को तृप्त करेगी ॥ ४० ॥ तब ब्राह्मण बोले कि हे सुवने !

तुम्हारे विचित्र तप से व तुम्हारे रात्य से हम लोग सब मनोरथों से तृप्त हैं और तपस्विनी जो आपहो तिनके दर्शन से अधिक तृप्त है ॥ ४१ ॥ हम लोगों को आश्चर्य हुआ है कि तुम किसवारते तप कारती हो क्या स्वर्ग और मोक्षकी रक्षाके वास्ते तुम्हारे तप करती हो ॥ ४२ ॥ तब अनसूया बोली कि हे ब्राह्मणो ! तपस्या से स्वर्ग सिद्ध होता है व तपस्याही से परमगति है और तपस्यासे सभी कामों को प्राप्त होता है ॥ ४३ ॥ तब ब्राह्मण बोले कि दुबली देहवाली व थोड़ी उमरवाली व बड़े नेत्रोंवाली व चिकने अङ्गोंवाली व रूपसे भरी हुई बहसकीसी चालवाली तुम क्यों अपनेको सुखा रही हो ॥ ४४ ॥ तब अनसूया बोली कि जवानी ही से तप करना चाहिये सत्येनसुव्रते ॥ तृप्तवैसर्वकामैस्तु तपस्विन्याश्च दर्शनात् ॥ ४५ ॥ अस्माकं कर्तुं तु कंजातं किमर्थं तप्यते त्वया ॥ स्वर्गं मोक्षं च त्वत्तपस्यै तपस्तप्यसि दुष्करम् ॥ ४६ ॥ अनसूयोवाच ॥ तपसा सिद्ध्यते स्वर्गस्तपसा परमगतिः ॥ तपसा चैव भो विप्रा रसर्वकाममवाप्नुयात् ॥ ४७ ॥ ब्राह्मणा ऊचुः ॥ तन्वीक्ष्यामविशालाचीं स्निग्धाङ्गीं रूपमंयुता ॥ हंसलीलागतिस्त्वं हि किञ्चात्मानं विशोषसि ॥ ४८ ॥ अनसूयोवाच ॥ युवत्वे च तपःकार्यं युवत्वे परमगतिः ॥ युवत्वे च मृतोत्पत्तिर्वृद्ध त्वे सर्वमाप्रियम् ॥ ४९ ॥ विप्रा ऊचुः ॥ साधुसाधु महाप्राज्ञे वरं प्रार्थय सुव्रते ॥ यत्त्वया चाभिलषितं तत्सर्वं प्रददास्यहम् ॥ ५० ॥ अहं विष्णुरहं रुद्रो ह्यहं साचात्पितामहः ॥ गूढरूपधरा लोके स्वचिह्नैरुपलब्धिताः ॥ ५१ ॥ तस्यावाक्यवत्तानेतु स्वरूपं दर्शयन्ति ते ॥ स्वैस्वरूपैस्स्थिता देवाः सूर्यकोटिसमप्रभाः ॥ ५२ ॥ चतुर्भुजो वासुदेवः शङ्खचक्रगदाधरः ॥ अतसीषु षण्णवस्तु पीतवासा जनार्दनः ॥ ५३ ॥ गरुत्मान्वाहनं यस्य श्रिया च सहितो हरिः ॥ प्रसन्नवदनः श्रीमान्निष्ठव व जवानी ही में परमगति होती है और जवानी ही में पुत्रोंकी उत्पत्ति होती है बुढ़ापे में सबही अप्रिय होजाता है ॥ ५४ ॥ तब ब्राह्मण बोले कि हे महाप्राज्ञे ! बाहर २ हे सुव्रते ! वरमागो जो तुमने अपने मनमें अभिलाष कियाहो वह सब हम देवेंगे ॥ ५५ ॥ हम तीनों ब्रह्मा, विष्णु और महादेव हैं अपने २ चिह्नों से युक्त लोक में गुप्तरूपको धरे हैं ॥ ५६ ॥ अनसूया की बातके समाप्त होने पर उन्होंने अपने २ रूपोंको दिखाया करोड़ों सूर्यों के समान तेजवाले तीनों देवता अपने २ रूपों से खड़े होगये ॥ ५७ ॥ चारभुजावाले व शंख, चक्र और गदा को धरेहुये, अलसीके फूल के समान रङ्गवाले व पीले वस्त्रवाले जनार्दन, वासुदेव ॥ ५८ ॥ गरुड़ जिन

का वाहन है और लक्ष्मी के सहित, प्रसन्नमुखवाले व शोभावाले कल्याणरूप विष्णु जी वर्त्तमान देखपड़े ॥ ५० ॥ और हे अनघ ! सफेद कपड़ेवाले व बड़े भाग्य वाले, चारमुखोंसे युक्त, हंसपर सवार, अक्षमालाको हाथमें लियेहुये ॥ ५१ ॥ लोकों के पितामह ब्रह्मा नर्मदाके तीर आतेहुये और बैलपर सवार दश भुजाओंसे सम्युक्त ॥ ५२ ॥ भस्म से धुरियाली देहवाले व पाच मुख और तीन नेत्रोंवाले व जटाओं के मुकुट से युक्त आधे चन्द्रमा को शिर पर धरे हुये ॥ ५३ ॥ ऐसे रूपको धरे हुये सर्वव्यापी महादेव देखपड़े देवताओं के दर्शन के बाद वहीं एकान्त में कांपती व बार २ उनको देखरहीं अनसूया देवी हम ब्रह्मा, हम विष्णु और हम रुद्र हैं ऐसे

रूपोव्यवस्थितः ॥ ५० ॥ सितवासामहाभागश्चतुर्वदनसंयुतः ॥ हंसोपरिसमारूढो ह्यक्षमालाकरोऽनघ ॥ ५१ ॥
आगतोनर्मदातीरे ब्रह्मलोकपितामहः ॥ दृषमन्तुसमारूढो दशबाहुसमन्वितः ॥ ५२ ॥ भस्मोद्धूलितगात्रस्तु प
ञ्चवक्रस्त्रिलोचनः ॥ जटामुकुटसंयुक्तश्चन्द्रार्द्धकृतशेखरः ॥ ५३ ॥ एतद्रूपधरोदेवस्सर्वव्यापीमहेश्वरः ॥ अनसूयातुत
त्रैव देवानां दर्शनात्परम् ॥ ५४ ॥ वेपमानारहस्येतु तान्पश्यन्तीमुहुर्मुहुः ॥ अहंब्रह्माह्वं विष्णुरहं रुद्रः प्रकीर्तितः ॥
५५ ॥ आनन्दितातुसादेवी दृष्ट्वैवैतान्महाव्रत ॥ अनसूयोवाच ॥ किंव्यापाराश्च केयूरं विष्णुरुद्रपितामहाः ॥ ५६ ॥
तदहं श्रोतुमिच्छामि मंत्रं प्रश्नं कथयन्तुते ॥ ब्रह्मोवाच ॥ प्रावृट्कालो ह्यहं प्रोक्त आपश्चैव प्रकीर्तितः ॥ ५७ ॥ मेघरूपो ह्यहं
प्रोक्तो वर्षाभिर्वसुधातले ॥ अहं सर्वाणि भूतानि प्राक्सन्ध्याह्नुदितैरवौ ॥ ५८ ॥ एतस्मात्कारणाद्भारहस्यं कथितं म
या ॥ विष्णुरुवाच ॥ हेमन्तत्वाच्च विहितं विष्णुरूपं चराचरम् ॥ ५९ ॥ पालनीयं जगत्सर्वं विष्णोर्माहात्म्यमुत्तमम् ॥ रु

कहरहे उन देवताओंको देख आनन्दित होगई हे महाव्रत ! फिर अनसूया बोलीं विष्णु, रुद्र और ब्रह्मा जो आप लोग हैं तो तुम्हारा क्या व्यापार है और तुम कौन हो ॥
५४ । ५५ । ५६ ॥ सो हम सुनाचाहती हैं इस हमारे प्रश्न को आप कहें तब ब्रह्मा बोले कि हम वर्षाकाल कहेगये हैं और जल हमी कहेगये हैं ॥ ५७ ॥ और
मेघरूप हमी कहेगये हैं पृथिवी पर जल हमी बरसते हैं सब प्राणी हमी हैं और सूर्य के उदय होने पर प्रातःकालकी सन्ध्या हमी हैं ॥ ५८ ॥ इसी कारण से हमने
अपने होने का गुप्त वृत्तान्त कहदिया तब विष्णु बोले कि हेमन्तऋतु होने से सब चराचर जगत् विष्णुरूपही है ॥ ५९ ॥ सब जगत् पालना करने के योग्य है यही

विष्णु का उत्तम माहात्म्य है तब महादेव बोले कि सब प्राणियों के क्षयकरनेवाले ग्रीष्मऋतु हभी कहेंगे हैं ॥ ६० ॥ हे तपस्विनि ! रुद्ररूप हम सब जगत् को सुखाते हैं इस प्रकार ब्रह्मा, विष्णु और रुद्रही हे महीपते ॥ ६१ ॥ तीनों सन्ध्या, तीनों देवता, तीनों काल और तीनों अग्निवाहिए फिर एक रूपको प्राप्तहो रहे ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र बोले ॥ ६२ ॥ कि हे भद्रे ! जो तुम्हारे मन में हो उस वरको हम तुम्हें देवों तब अनसूया बोली कि दुनिया में लोग मुझे बाँझ कहते हैं ॥ ६३ ॥ सो जो ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र अपनी प्रसन्नता से सुसुख हैं अर्थात् बड़े तेजवाले भी तीनों देवता मुझपर प्रसन्न हैं ॥ ६४ ॥ और इस तीर्थ में मेरे समीप आवे है तो इस समय में मुझ द्रउवाच ॥ ग्रीष्मकालोत्थं प्रोक्तं सर्वभूतक्षयङ्करः ॥ ६० ॥ शोषयाभिजगत्सर्वं रुद्ररूपस्तपस्विनि ॥ एवं ब्रह्मा च विष्णुश्च रुद्रश्चैव महीपते ॥ ६१ ॥ तिस्रः सन्ध्यास्त्रयो देवास्त्रयः कालास्त्रयोऽग्नयः ॥ तथा ब्रह्मा च विष्णुश्च रुद्रश्चैकत्वमागताः ॥ ६२ ॥ वरंददामि ते भद्रे यत्ते मनसि वर्तते ॥ अनसूयो वाच ॥ वन्द्या लोके रंहले के ख्याप्यमाना च सर्वदा ॥ ६३ ॥ ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च प्रसादात्सुमुखायतः ॥ परितुष्टास्त्रयो देवा दुर्द्धर्षाऽपि ममोपरि ॥ ६४ ॥ अस्मिंस्तीर्थे तु सान्निध्यं वरंददतु मेऽधुना ॥ देवा ऊचुः ॥ एवं भवतु ते वाक्यं यत्त्वया प्रार्थितं शुभे ॥ ६५ ॥ प्रत्यक्षा वैष्णवी माया एरण्डी चैव नामतः ॥ अ नसूयो वाच ॥ यदि तुष्टास्त्रयो देवा मम भक्तिप्रबोधिताः ॥ ६६ ॥ मम पुत्रा भवन्त्वत्र हरिरुद्रापितामहाः ॥ विष्णुस्त्वा च ॥ अथ दाः पुत्रतां यान्ति न कदाचिच्छ्रुतं मया ॥ ६७ ॥ भद्रं ददामि तान् पुत्रान् देवतुल्य पराक्रमान् ॥ पितृतुल्यगुणोपेतान् सो मया जिवद्भुतान् ॥ ६८ ॥ अनसूयो वाच ॥ इप्सितं तु प्रदातव्यं यन्मया प्रार्थितं हरि ॥ नान्यथा तच्च कर्तव्यं निवसन्तु को वरदेवें तब देवता बोले कि हे शुभे ! ऐसा ही तुम्हारा वचन सत्य होवे जो तुमने प्रार्थना की है वह सब होगी ॥ ६५ ॥ एरण्डी जिसका नाम है ऐसी यह विष्णुकी माया प्रत्यक्ष है तब अनसूया बोली कि हमारी भक्ति में जगेहुये जो तीनों देवता मुझपर प्रसन्न होवें ॥ ६६ ॥ तो विष्णु, रुद्र और ब्रह्मा मेरे पुत्र होवें तब विष्णु बोले कि वरके देनेवाले पुत्र होते हैं ऐसा हमने कभी नहीं सुना है ॥ ६७ ॥ हे भद्रे ! हम ऐसे पुत्र तुमको देवों के जो देवताओं के तुल्य पराक्रमवाले व पिता के तुल्य गुणोंवाले व सोमयज्ञ के करनेवाले व बहुश्रुत होवें ॥ ६८ ॥ तब अनसूया बोली कि हे हरि ! जो मेरे मनमें है व जो मैंने मांगा है वह देना चाहिये उससे उलटा नहीं

करना चाहिये आप लोग मेरे उदर में वास करें ॥ ६६ ॥ तब भगवान् बोले कि हे शोभने ! आगे भृगुके संवाद में मुझको गर्भवासके बारते कहागया था उसका पार हम नहीं देखते है ॥ ७० ॥ बलिक आगे के वृत्तान्त को सुधकरहे हम बार २ चिन्ता किया करते है ऐसेही विचार करहे ब्रह्मा और महादेव ने भी कहा ॥ ७१ ॥ कि हे सुशोभने ! बिना योनि से पैदाहुये हम तुम्हारे पुत्र होवेगे क्योंकि हे वरानने ! देवतालोग योनिवास को नहीं प्राप्त होते है ॥ ७२ ॥ इतना कह अनसूया के सहित प्रत्यक्ष हुये वे तीनों देवता चलेगये हे पार्थ ! नर्मदाके उत्तरवाले तटपर यह वृत्तान्त हुआ ॥ ७३ ॥ वरको पाये हुई अनसूया अपने पति के तीर माहेन्द्र पर्वत पर

ममोदरे ॥ ६९ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ पूर्वन्तुभृगुसंवादे गर्भवासउपार्जितः ॥ तस्याहंचैवपारन्तु नचपश्यामिशोभने ॥ ७० ॥ स्मरमाणःपुरावृत्तं चिन्तयामिपुनःपुनः ॥ एवंसञ्चिन्त्यमानौहि पितामहमेहश्वरौ ॥ ७१ ॥ अयोनिजाभविष्यामस्तवपुत्रास्सुशोभने ॥ योनिवासञ्चवैदेवा नैवयान्तिवरानने ॥ ७२ ॥ इत्युक्त्वाचतयासार्द्धं प्रत्यक्षास्तेभवन्स्तदा ॥ त्रयोदेवागताःपार्थ नर्मदायोत्तरेतटे ॥ ७३ ॥ प्राप्तावरन्तुसादेवी प्रियमाहेन्द्रपर्वते ॥ क्षीणदेहाचसानारी शुष्कदेहासुदासणा ॥ ७४ ॥ कृतयज्ञोपवीतासा तपोनिष्ठाशुभेक्षणा ॥ शिलातलेनिषण्णासापश्यत्कान्तंमहाव्रतम् ॥ ७५ ॥ हृष्टातुष्टामहादेवी तिष्ठकान्तोतिचाब्रवीत् ॥ तान्दृष्ट्वासमुनिर्द्धामान्पुनःकान्तामुवाचह ॥ ७६ ॥ अत्रिरुवाच ॥ साधुसाधुमहाप्राज्ञे अनसूयेमहाव्रते ॥ असाध्यंसर्वनारीणां वरंप्राप्तांसिदुर्लभम् ॥ ७७ ॥ अनसूयोवाच ॥ त्वत्प्रसादान्महर्षेहं वरंप्राप्ताचदुर्लभम् ॥ तेनाहंतेप्रयच्छामि पुत्रानृषितपोधनान् ॥ ७८ ॥ एवमुक्त्वाततोदेवी हर्षेणमहतायुता ॥ आ

चलीगई दुबली, सूखी व खरखरी देहवाली व यज्ञोपवीत को पहने हुये तपकरनेवाली व अच्छे नेत्रोंवाली वे अनसूया शिलापर बैठी हुई बड़े व्रतवाले अपने पति को देखती हुई ॥ ७४ ॥ और बड़ी प्रसन्न व सन्तुष्ट अनसूया देवी हे कान्त ! खड़ेहो ऐसे कहती हुई उनको देख बड़े बुद्धिमान् अत्रिमुनि अपनी स्त्री से बोले ॥ ७६ ॥ अत्रि बोले कि हे महाप्राज्ञे ! हे महाव्रते ! हे अनसूये ! वाह २ सब स्त्रियों को असाध्य व दुर्लभ वरको तुमने पाया है ॥ ७७ ॥ तब अनसूया बोली कि हे महर्षे ! आपके प्रसादसे दुर्लभ वरको मैंने पाया है उससे ऋषि व तपस्याके करनेवाले पुत्रोंको हम तुमको देवेंगी ॥ ७८ ॥ ऐसे कह बड़े आनन्दसे युक्त व मङ्गलरूप अनसूयाने तब

अपने पतिको देखा ॥ ७६ ॥ देखतेही अत्रि के माथे पर एक शुभ मण्डल पैदा होगया जोकि नव हजार योजन तक प्रकाश करनेवाली किरणों के जालसे युक्त ॥ ८० ॥ व कदम्ब के गोलार्धके समान आकारवाला है उससे तिगुना उसका परिमण्डल होता हुआ उसके बीच में दिव्यरूपको धरेहुये देवताओं का स्वामी व सोने का सा रंगवाला व करोड़ों सूर्यों के समान प्रकाशवाला पुरुष देखपडा वे साक्षात् ब्रह्माही अनसूया के पहले पुत्र होतेहुये ॥ ८१ ॥ ८२ ॥ हे नृपात्मज ! चन्द्रमा व सोम नाम से प्रसिद्ध सोलह कलाओं से युक्त व सबसे श्रेष्ठ प्यारा पुत्र होताहुआ ॥ ८३ ॥ परेवा, दुइज, तीज, चौथि, पञ्चमी, छठ, सप्तमी तथा अष्टमी ॥ ८४ ॥ नवमी, लोकयत्तदाकान्तं तेनापिशुभदर्शना ॥ ७९ ॥ दर्शनादेवसञ्जातं ललाटेमण्डलं शुभम् ॥ नवयोजनसाहस्ररश्मि जालसमावृतम् ॥ ८० ॥ कदम्बगोलकाकारं त्रिगुणपरिमण्डलम् ॥ तस्यमध्येतुदेवेशः पुरुषोदिव्यरूपधृक् ॥ ८१ ॥ हेमवर्णस्सवैदेवस्सूर्यकोटिसमप्रभः ॥ पूर्वपुत्रोऽनसूयायास्साक्षाद्देवः पितामहः ॥ ८२ ॥ चन्द्रमाहतिविख्यातः सोमः पुत्रो नृपात्मज ॥ इष्टः पुत्रो वरीयांस्तु कलाषोडशसंयुतः ॥ ८३ ॥ प्रतिपच्चद्वितीयाच तृतीयाचतथानृप ॥ चतुर्थोपञ्चमीषष्ठी सप्तमीचाष्टमीतथा ॥ ८४ ॥ नवमीदशमिचैव तथाचैकादशीपरा ॥ द्वादशीचत्रयोदशी चतुर्दशीततः परम् ॥ ८५ ॥ ततः पञ्चदशीदेवी पूर्णमासीप्रकीर्तिता ॥ अमावास्यातुविख्याता अथसाषोडशीकला ॥ ८६ ॥ चतुर्विधस्यलोकस्य सूक्ष्मोभूत्वावरानने ॥ आप्यायतेजगत्सर्वं सोमोऽयंसर्वाचरम् ॥ ८७ ॥ सुरासुराश्चगन्धर्वा राक्षसाः पन्नगस्तथा ॥ पिशाचाश्चतथादित्याः पितरश्चपितामहाः ॥ ८८ ॥ सर्वे तमुपजीवन्ति हतद्रव्यं तु तस्मिन्स्थिता ॥ वनस्पतिगते सोमे यदिच्छन्त्याच्च वनस्पतिम् ॥ ८९ ॥ बुद्धकेतुः खंचैवमूढो दहत्यब्दं कृतं शुभम् ॥ वनस्पतिगतो यो भवेद्दन्तदशमी, एकादशी, द्वादशी, तेरस, चौदस ॥ ८५ ॥ तदनन्तर पदहवीं पूर्णमासी कहीगई है और सोलहवीं कला अमावस है ॥ ८६ ॥ हे वरानने ! यह चन्द्रमा सूक्ष्म होकर चार प्रकार के जीवोंवाले सम्पूर्ण चराचर जगत् को बढाता है ॥ ८७ ॥ देवता, दैत्य, गन्धर्व, राक्षस, सर्प, पिशाच, आदित्य, पितर और पितामह ॥ ८८ ॥ ये सब इसी से जीते हैं और होमीहुई चीज चन्द्रमाही में रहती है चन्द्रमा को वनस्पति में प्राप्तहुये पर जो वनस्पति को काटता है ॥ ८९ ॥ वह मूढ़ अपने सालभर के किये

हुये पुण्यको जलाता है और दुःख भोगता है व चन्द्रमाको वनरपति में प्राप्तहुये पर जो दत्तन करता है ॥ ६० ॥ उसने मानो चन्द्रमाको खाडाला और अपने पितरों के वंशको नाश करदिया और हे राजेन्द्र ! अमावस के दिन जो विधि से स्नान करता है ॥ ६१ ॥ तो हे विशालाक्षि ! उसके पितरोंकी सालभर तक परमगति रहती है सोना, चादी और कपड़ेको जो ब्राह्मणोंको देता है ॥ ६२ ॥ तो हे राजन् ! वह सब लाख गुनेको पाता है इसमें संशय नहीं है ऐसे गुणोंसे युक्त चन्द्रमारूप ब्रह्मा होते हुये ॥ ६३ ॥ अनसूया का आनन्द देनेवाला प्रथम पुत्र यह हुआ अब हे महाभाग ! दूसरा दुर्वासा नामका पुत्र ॥ ६४ ॥ सृष्टिके संहार करनेवाले स्वयं साक्षात् महा-

धावनम् ॥ ९० ॥ चन्द्रमाभक्षितस्तेन पितृवंशस्तुघातितः ॥ अमावास्यान्तुराजेन्द्र स्नानंकुर्याद्यथाविधि ॥ ९१ ॥

अवदमेकं विशालाक्षि पितृणां परमागतिः ॥ हिरण्यं रजतं वस्त्रं यो ददाति द्विजातिषु ॥ ९२ ॥ सर्वलक्ष्णं राजल्लभते नात्र संशयः ॥ एतद्गुणविशिष्टोऽसौ सोमरूपः प्रजापतिः ॥ ९३ ॥ सञ्जातः प्रथमः पुत्रोऽनसूयायास्तु नन्दनः ॥ द्वितीयस्तु महाभाग दुर्वासानामनामतः ॥ ९४ ॥ सृष्टिसंहारकर्ता च स्वयं साक्षान्महेश्वरः ॥ इन्द्रोऽपि शोऽपि तस्तेन द्वितीये नवरानने ॥ ९५ ॥ द्वितीयस्य तु पुत्रस्य सम्भवः कथितो मया ॥ दत्तान्नैयस्तु नाम्ना चैव तृतीयो मधुसूदनः ॥ ९६ ॥ जगद्व्यापी जगन्नाथस्स्वयन्देवो जनार्दनः ॥ अवतीर्णो महाभाग ब्रह्मशम्भुसमन्वितः ॥ ९७ ॥ पुत्रप्राप्तिपदं तीर्थं नर्मदायां तरे तटे ॥ अनसूयाकृतं पार्थ सर्वपापक्षयकरम् ॥ ९८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे रेवाखण्डे एरण्डीतीर्थमहिमानुवर्णनो नाम त्रयोदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११३ ॥

देवजी आपही होतेहुये उन द्वितीय पुत्र दुर्वासाजी ने इन्द्रको भी शाप दिया है ॥ ९५ ॥ दूसरे पुत्रकी उत्पत्ति मैंने कही तीसरे पुत्र दत्तात्रेय नाम से विष्णु होतेहुये ॥ ९६ ॥ जगत् के व्यापी व जगत् के नाथ स्वयं साक्षात् विष्णु भगवान् ब्रह्मा और महादेव समेत अवतार लेतेहुये हे महाभाग ! ॥ ९७ ॥ नर्मदा के उत्तरवाले तटपर पुत्रप्राप्तिपद नामका तीर्थ है हे पार्थ ! अनसूया का बनाया हुआ वह सब पापोंका क्षय करनेवाला है ॥ ९८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे रेवाखण्डे त्रयोदशोऽध्यायः ॥ ११३ ॥

मार्कण्डेयजी बोले कि हे पार्थ ! इसके बाद तीनों लोकों में प्रसिद्ध व सब पापोंका क्षय करनेवाला उत्तम सौवर्ण तीर्थ है ॥ १ ॥ उस सङ्गमेक समीप नर्मदा मे स्नान दुर्लभ है और हे नराधिप ! उस पुण्यक्षेत्र में वह स्थान हाथ भर का है ॥ २ ॥ उस सुवर्णशिलक में स्नानकर बड़ी अच्छी शान्ति को प्राप्त होताहै सूर्य की मूर्तिको बनाकर ॥ ३ ॥ वी मिलेबेला व बहुत बेलपत्रों से अग्निमें हवनकरे और यह कहे कि जगतके नाथ इससे प्रसन्न होवे और मेरा रोग हमेशाको जाता रहे ॥ ४ ॥ अगर ब्राह्मणों से उसका जवाब देदिया जावे तो यज्ञके फलको पावे और वहां के दानसे मरकर प्रसन्नचित्त स्वर्ग को पाता है ॥ ५ ॥ और हे नृदेव ! उपास

मार्कण्डेयउवाच ॥ एतस्यानन्तरपार्थ सौवर्णतीर्थमुत्तमम् ॥ विख्यातं त्रिपुल्लोकेषु सर्वपापक्षयङ्करम् ॥ १ ॥ रेवा यां दुर्लभं स्नानं सङ्गमस्य समीपतः ॥ विभक्तं हस्तमात्रञ्च पुण्यक्षेत्रे नराधिप ॥ २ ॥ सुवर्णशिलके स्नात्वा शान्तियान्ति परांगुभाम् ॥ निर्मिताभास्करन्देवं होतव्यन्तु हुताशने ॥ ३ ॥ विल्वेन घृतमिश्रेण विल्वपत्रेण भूरिणा ॥ प्रीयतां हि जगन्नाथो व्याधिर्नश्यतु मे सदा ॥ ४ ॥ द्विजैश्च श्रेष्ठप्रयुक्तं स्याद्यागस्य फलमाप्नुयात् ॥ तत्र दानेन प्रीतात्मा मृतः स्वर्गमवाप्नुयात् ॥ ५ ॥ शुक्लपक्षे तथाष्टम्यां सोपवासो जितेन्द्रियः ॥ यस्तत्र कुरुते श्राद्धं नृदेव भक्तितो नरः ॥ ६ ॥ समुद्धरेत्कुले तत्र दशपूर्वान्दशापरान् ॥ काञ्चनवापियो दद्याद्धनुंच वसुशोभनाम् ॥ ७ ॥ सयाति परमं स्थानं यत्र देवो महेश्वरः ॥ पूजयित्वा शिवं तत्र शत्रूणां विजयो भवेत् ॥ ८ ॥ पुत्रवान्गुणवांश्चैव सर्वव्याधिविवर्जितः ॥ इत्येवं कथितं राजन्सौवर्णतीर्थमुत्तमम् ॥ ९ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ एतस्मिन्नन्तरे तीर्थं करण्डेश्वरमुत्तमम् ॥ प्रख्यातं सर्वलोकेषु नर्मदाया

क्रिये व इन्द्रियो को जीतेहुये जो मनुष्य उजियाले पाखकी अष्टमी को वहां भक्ति से श्राद्ध करता है ॥ ६ ॥ वह वहीं अपने कुलके आगे पीछेवाले दश २ पुरुषों को उद्धार करता है और जो सोना व अच्छी गऊको देता है ॥ ७ ॥ वह अति उत्तम स्थानको जाता है जहां महादेवजी हैं वहां महादेवका पूजन करके शत्रुओं का विजय होता है ॥ ८ ॥ और सब रोगों से रहित, पुत्र व गुणोंवाला होता है हे राजन् ! यह उत्तम सौवर्ण तीर्थ कहागया है ॥ ९ ॥ मार्कण्डेय जी बोले कि इसी बीच मे सब

लोकों में प्रसिद्ध नर्मदाके उत्तरवाले तटपर उत्तम करण्डेश्वर तीर्थ है ॥ १० ॥ जोकि सब पापों व सब दुःखोंका हरनेवाला व श्रेष्ठ कहागयाहै हे राजेन्द्र ! तदनन्तर मनूयों के पापोंके नाश करनेवाले अतिउत्तम दिव्य सौभाग्यकरण नाम के तीर्थ को जावे हे नृपनन्दन ! वहा जो अभागी स्त्री व पुरुष ॥ ११ ॥ १२ ॥ स्नानकर महादेव और पार्वती का पूजन करता है उसका सौभाग्य होजाता है इन्द्रियों को जीतेहुये व तीजको दिनरातका उपास कियेहुये ॥ १३ ॥ वहां अच्छे रूपवाले सपत्नीक ब्राह्मण को निमन्त्रण करे और सुगन्धित मालाओं से उसे भूषित व फूल और धूप से अधिवासित कर ॥ १४ ॥ खीर व खिचड़ी को भक्ति से खिलावे योग्यता के

चरेतटे ॥ १० ॥ सर्वपापहरंप्रोक्तं सर्वदुःखघ्नमुत्तमम् ॥ ततो गच्छेच्च राजेन्द्र तीर्थपरमशोभनम् ॥ ११ ॥ सौभाग्यकरणं दिव्यं नराणां पापनाशनम् ॥ तत्र यादुर्भगानारी नरो वानृपनन्दन ॥ १२ ॥ स्नात्वा च येदुर्मारुद्रं सौभाग्यं तस्य जायते ॥ तृतीयायामहोरात्रं सोपवासो जितेन्द्रियः ॥ १३ ॥ निमन्त्रयेद्विजंतत्र सपत्नीकं मुरूपिणम् ॥ गन्धमात्यै रत्नं कृत्य पुष्पधूपपाधिवासितम् ॥ १४ ॥ भोजयेत्पायसान्नेन कृशरेणार्थभक्तितः ॥ भोजयित्वा यथान्यायं प्रदक्षिणमथाचरेत् ॥ १५ ॥ त्वन्तु देवो महादेव सपत्नीको वृषध्वज ॥ यथा ते देवदेवेश न वियोगः कदाचन ॥ १६ ॥ सोमनाथाख्यकार्पण्या संध्यायामीह चिन्तयन् ॥ ज्येष्ठे शुक्ले तृतीयायां सौभाग्येन मर्मदाजले ॥ १७ ॥ स्नात्वा दत्त्वा च सुभगा न प्रियेण वियुज्यते ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ न दौर्भाग्यं न दारिद्र्यं न शोको न च दुर्गतिः ॥ १८ ॥ एतत्सर्वं भवेद्येन तत्सर्वं कथयस्व मे ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ दौर्भाग्यं दुर्गतिञ्चैव दारिद्र्यं शोकवर्द्धनम् ॥ १९ ॥ वैधव्यं सप्तजन्मानि जायते न युधिष्ठिर ॥ कर्ममणायै

साथ भोजन करवाके फिर उनकी प्रदक्षिणा करे ॥ १५ ॥ और कहे कि हे वृषध्वज, महादेव ! आप तो सपत्नीक देवहो हे देवदेवेश ! जैसे आपका कभी वियोग नहीं होता है वैसेही मेरा भी वियोग मतहोवे ॥ १६ ॥ क्योंकि हे सोमनाथाख्य ! मैं दीनता से आपही की चिन्ता व ध्यान करता हूँ जेठ सुदी तीजको सौभाग्य तीर्थविषे नर्मदाके जलमें ॥ १७ ॥ स्नान व दान कर अपने पतिसे कभी वियोगको नहीं प्राप्त होती है तब युधिष्ठिरजी बोले कि कुरूपता, दरिद्र, शोक और दुर्गति ये सब जिससे नहीं होते है वह सब मुझ से कहो तब मार्कण्डेयजी बोले कि कुरूपता, दुर्गति, दरिद्र, शोक ॥ १८ ॥ और विधवापन सातजन्मतक नहीं होता है हे युधिष्ठिर ! जिस कर्म से

पार्ष्णीका ज्ञाय होता है उसको हम तुमसे कहते हैं ॥ २० ॥ विशेष करके जेठ मासके उजियाले पाखकी तीजको वहां जो भक्ति से स्नानकर पञ्चाग्नि तापता है ॥ २१ ॥ वह भी सब पापों से छूटजाता है इसमें संशय नहीं है और महादेव व पार्वती के समीप जो गूगुल जलाता है ॥ २२ ॥ उस कामके करने पर ब्राह्मण को केहेहुये फल होते हैं और मरने पर स्वर्गको प्राप्त होता है ऐसा शङ्कर जी ने कहा है ॥ २३ ॥ सफेद, लाल और पीले अनेक अच्छे कपड़ों से ब्राह्मणी व ब्राह्मणों को पहिनाय व अनेक प्रकारके अत्युत्तम फूल, चन्दन, धागा और धूप से यथाविधि पूजन कर व गले में सूत्र (धजोपवीत) पहिनाय उनके केंसर लगावे ॥ २४ ॥ २५ ॥

नपापानां क्षयस्तच्चवदामिते ॥ २० ॥ ज्येष्ठे मासे सिते पक्षे तृतीयायां विशेषतः ॥ तत्र स्नात्वा तु यो भक्त्या पञ्चाग्निं सा धयेत्तपः ॥ २१ ॥ सोऽपि पापैरशेषैस्तु मुच्यते नात्र संशयः ॥ गुग्गुलुं दाहयेद्यस्तु गौरीशिवसमीपतः ॥ २२ ॥ तस्मिन्कर्मणि विप्रस्य उक्तानि भवते ततः ॥ देहपाते कृते स्वर्गमित्येवं शङ्करोऽब्रवीत् ॥ २३ ॥ इवेतैरकैस्तथापि तैर्वस्त्रैश्च विविधैः शुभैः ॥ ब्राह्मणी ब्राह्मणांश्चैव पूजयित्वा यथाविधि ॥ २४ ॥ पुष्पैर्नानाविधैश्चैव गन्धधूपैः सुशोभनैः ॥ कण्ठे सूत्रं समाधाय कुङ्कुमं ॥ कर्णवेष्टुं नृत्वं दत्त्वा कल्पयित्वा स्त्रियं गौरीं ॥ ब्राह्मणं शिवरूपिणम् ॥ ताम्ब्यां दद्यात्समादृत्य दानमुत्सृज्य वारिणा ॥ २६ ॥ कर्णवेष्टुं नृत्वं दत्त्वा कल्पयित्वा स्त्रियं गौरीं ॥ ब्राह्मणं शिवरूपिणम् ॥ ताम्ब्यां दद्यात्समादृत्य दानमुत्सृज्य वारिणा ॥ २७ ॥ अन्यानि चैव दानानि तस्मिन् स्तीर्थे नरोत्तम ॥ सर्वदानैश्च तत्पुण्यं त्रिगुणं भवेत् ॥ २८ ॥ तत्र साहस्रगुणितं नात्र कार्या विचारणा ॥ शङ्करेण समन्तत्र भुङ्क्ते भोगाननुत्तमान् ॥ २९ ॥ सौभाग्यं तस्य विपुलं जायते नात्र संशयः ॥ अपुत्रो लभते पुत्रं निर्धनो धनं

स्त्री को पार्वती और ब्राह्मण को महादेव मानकर व भलीभाति आदर करके उनके लिये जल सहित दानको त्यागकर देवे ॥ २६ ॥ फिर हे नृपसत्तम ! कुण्डल, बज्रह्मा, सोनेकी अंगूठी, सतनजा और भोजन देवे ॥ २७ ॥ हे नरोत्तम ! उस तीर्थमें और दानों को भी देवे सब दानों से जो पुण्य होता है उससे तिगुना पुण्य तीर्थ में ॥ २८ ॥ और इस तीर्थ में हजार गुना होता है इसमें कुछ विचार नहीं करना चाहिये और वह महादेवके समान वहां अत्युत्तम भोगों को भोगता है ॥ २९ ॥ और

उसका बड़ा सौभाग्य होता है इसमें संशय नहीं है पुत्र से रहित मनुष्य पुत्रको और निर्धन धन को पाता है ॥ ३० ॥ कामनाओं का देनेवाला यह तीर्थराज नर्भदा पर वर्त्तमान है ॥ ३१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेश्वरपञ्चमस्कृतमापाऽनुवादेसौभाग्यतीर्थमहिमाऽनुवर्णनोनामचतुर्दशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११४ ॥

मार्कण्डेयजी बोले कि हे राजेन्द्र ! तदनन्तर दारिद्र के नाशकरनेवाले व इक्कीस पीढ़ियों के तारनेवाले उत्तम भाण्डारतीर्थको जावे ॥ १ ॥ वहाँ कुबेर ने तप किया उनसे ब्रह्माजी खुदा हुये वही कुबेर ने अपने धनके दान से अक्षय धनको पाया ॥ २ ॥ वहाँ जाकर व स्नानकर जो धनका दान करताहै उसके धनका नाश

माप्नुयात् ॥ ३० ॥ कामदंतीर्थराजन्तु नमर्मदायां न्यवस्थितम् ॥ ३१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेश्वरपञ्चमस्कृतमापाऽनुवादेसौभाग्यतीर्थमहिमानुवर्णनोनामचतुर्दशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११४ ॥ * ॥ * ॥

मार्कण्डेयउवाच ॥ ततो गच्छेत्तुराजेन्द्र भाण्डारं तीर्थसुत्तमम् ॥ दारिद्र्यभेदकरणं पुरुषांश्चेकविंशतिम् ॥ १ ॥ धनदेनतपरतप्तं प्रसन्नः पद्मसम्भवः ॥ तत्रैव स्वस्वदानेन प्राप्तं वित्तमनन्तकम् ॥ २ ॥ तत्र गत्वा तु यो भक्त्या स्नानं वा वित्तं प्रयच्छति ॥ तस्य वित्तपरिच्छेदो न भवेच्च कदाचन ॥ ३ ॥ तस्यैवानन्तरं राजन्नाहिणी तीर्थसुत्तमम् ॥ विख्यातं विष्णुलोकेषु सर्वपापहरं परम् ॥ ४ ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ रोहिणी तीर्थमाहात्म्यं सर्वपापप्रणाशनम् ॥ श्रोतुं भिच्छामि तत्त्वेन तन्मेत्वं वक्तुमर्हसि ॥ ५ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ तस्मिन्नेका णवैवोरे नष्टेऽभ्यावरजङ्गमे ॥ तस्यादरेऽश्वानस्य द्वे द्वे वरस्य पाण्डव ॥ ६ ॥ नाभ्यामभ्युन्नमहतपद्मं रविमण्डलसन्निभम् ॥ कर्णिकाकेसरयुतं पत्रैश्च समलंकृतम् ॥ ७ ॥ तत्र ब्रह्मासमुत्पन्न

कभी नहीं होता है ॥ ३ ॥ हे राजन् ! उसीके बाद फिर सब पापोंका हरनेवाला व तीनों लोकों में प्रसिद्ध उत्तम रोहिणी तीर्थ है ॥ ४ ॥ तब युधिष्ठिर बोले कि सब पापों के नाश करनेवाले रोहिणी तीर्थ के माहात्म्यको हम तत्त्व से सुना चाहते हैं उसको तुम सुझसे कहने के योग्य होतेहो ॥ ५ ॥ तब मार्कण्डेयजी बोले कि घोर एकान्ठ व स्थावर और जङ्गम जीवों के नाश होने पर हे पाण्डव ! उस जलमें तोतेहुये भगवान् की ॥ ६ ॥ नाभि में डब्बो और केतरो से युक्त व पत्रों से सुहावना

सूर्यमण्डलके समान उत्तम कमल पैदाहुआ ॥ ७ ॥ उसमें कमल के समान चार मुखवाले ब्रह्मा पैदाहुये और चिन्ता करतेहुये भगवान्से कहा कि मैं क्या करू तब तक ब्रह्माकी देहसे ॥ ८ ॥ हे भरताधिप ! वहीं मरीचि भगवान् होतेहुये फिर मरीचि से सब सृष्टिके वनानेवाले कश्यप हुये ॥ ९ ॥ उसी समयमें दक्षके पचास कन्या होतीहुई दक्ष ने उनमें से दश धर्मको और तेरह कश्यप को देदी ॥ १० ॥ और सत्ताईस कन्या चन्द्रमा की दी उनके बीच में चन्द्रमा कीसी मुखवाली जो रोहिणी नामकी कन्या थी ॥ ११ ॥ वह सब स्त्रियों को प्यारी और अपने पतिको विशेष प्यारी थी हे नराधिप ! फिर रोहिणी तपस्या के अर्थ निश्चय किये हुये ॥ १२ ॥ श्वतुर्वदनपङ्कजः ॥ किङ्करोमीतिदेवेशं चिन्त्यमानःस्वदेहतः ॥ ८ ॥ भगवानभवत्तत्र मरीचिर्भरताधिप ॥ मरीचिःकश्यपोजातस्सर्वसृष्टिकरमततः ॥ ९ ॥ दक्षस्यापितदाजाताः पञ्चाशत्कन्यकारुवै ॥ ददौसदशधर्म्मार्थ कश्यपाय त्रयोदश ॥ १० ॥ तथैवचपराःकन्याः सप्तविंशतिभिन्दवे ॥ रोहिणीनामयातासां मध्येताराधिपानना ॥ ११ ॥ अभीष्टासर्वनारीणां भर्तुश्चापिविशेषतः ॥ ततस्सानिश्चर्यभूता तपसेमोनराधिप ॥ १२ ॥ ततस्मानन्मर्मदातीरेचचारविपुलं तपः ॥ एकराजंहरात्रञ्च षड्दवादशतथापरैः ॥ १३ ॥ पक्षमासोपवासैश्च कर्षयन्तीकलेवरम् ॥ आराधयन्तीसततं महिषासुरमर्दिनीम् ॥ १४ ॥ स्नात्वास्नात्वाजलेनित्यं नर्ममदायाःशुचिस्मिता ॥ ततरुष्टामहाभागा देवीनारायणीनृप ॥ १५ ॥ प्रसन्नातेमहाभागे ब्रतेननियमेनच ॥ ददामितेनसन्देहो वरंष्टुण्यथोप्सितम् ॥ १६ ॥ एवंश्रुत्वाबुवचनं रोहिणी शशिनःप्रिया ॥ वरं व्रजेततोदेवीसिद्धं वचनभद्रवीत् ॥ १७ ॥ सर्वासांचसपत्नीनामधिकाशशिनःप्रिया ॥ यथाभवानिह्य नर्मदा के तटमें बड़े तपका करती हुई एक रात, दो रात, छह दिन, बारह दिन, एक पाख और महीनों के उपासों से अपने शरीर को दुबला कर रही व निरन्तर दुर्गाजीका आराधन कर रही ॥ १३ ॥ १४ ॥ उस पवित्र सुसकयानवाली ने नर्मदाके जलमें नित्य नहाय २ कर नियमों को किया हे नृप ! तब बड़े भारयवाली देवी भगवती प्रसन्न हुई ॥ १५ ॥ और बोलीं कि हे महाभागे ! तुम्हारे ब्रत व नियमोंसे प्रसन्न हो रही हूँ तुमको वर देवेंगी इससे तुम अपने मनके वरको निरसं देह मांगो ॥ १६ ॥ ऐसे वचनको सुन चन्द्रमा की प्यारी रोहिणी ने वरमांगा तदनन्तर देवी से इस वचन को बोली ॥ १७ ॥ कि जैसे सब सौतियों के बीचमें 'आधिक व चन्द्रमा

की प्यारी आपके प्रसादसे हम जल्द होजावें वैसा करौ ॥ १८ ॥ तब पार्वतीसे वे रोहिणी कहीगई कि ऐसाही हो और भक्तिसे परायण देवताओंसे स्तुति कीगई वहीं अन्तर्धान होगई ॥ १९ ॥ हे नृपसत्तम ! तब से रोहिणी देवी चन्द्रमा की प्यारी व सब लोकों की प्यारी होगई ॥ २० ॥ उस तीर्थमें जो स्त्री व पुरुष भक्ति से स्नान करता है तो वह स्त्री अपने पतिको रोहिणी की तरह प्यारी होती है ॥ २१ ॥ और उस तीर्थमें जो कोई प्राणी को त्यागकरता है उसका सातजन्मों तक वियोग नहीं होताहै ॥ २२ ॥ मार्कण्डेयजी बोले कि हे राजेन्द्र ! तदनन्तर सब पापोंके क्षयकरनेवाले व सेनापुर नाम से प्रसिद्ध अत्युत्तम चक्रतीर्थको जावे ॥ २३ ॥ वहां सेना-

चिरात्त्वत्प्रसादात्तथाकुरु ॥ १८ ॥ एवमस्ति तसि प्राप्ता भवान्याभक्ति तत्परैः ॥ स्तूयमानाधुरगणैस्तत्रैवान्तरधीय
त ॥ १९ ॥ तद्वाप्रभृति सा देवी रोहिणी शशिनः प्रिया ॥ संजाता सर्वलोकस्य बल्लभानृपसत्तम ॥ २० ॥ तत्र तीर्थं तु या
नारी नरोच्चारनातिभक्तितः ॥ बल्लभाभवते सा तु भर्तुर्वरोहिणी यथा ॥ २१ ॥ तत्र तीर्थेषु यः कश्चित्प्राणत्यागं करोति च ॥
स स जन्मनितर्यैव वियोगो नैव जायते ॥ २२ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ ततो गच्छेत्तुराजेन्द्र चक्रतीर्थं मनुजमम् ॥ सेनापुरे
ति विख्यातं सर्वपापक्षयं करम् ॥ २३ ॥ सेनापत्येभिषिक्तेन देवदेवेन चक्रिणा ॥ अभिषिक्तो महासेनः स देवेन्द्रपुरे गमैः ॥
२४ ॥ दानवस्य वधार्थाय विजयायादिवौकसाम् ॥ भूमिदानेन विप्रेन्द्रांस्तर्पयित्वा यथाविधि ॥ २५ ॥ शङ्खभेरीनिना
देन पटहनाच्च निःस्वनैः ॥ वीणाभिश्च मृदङ्गैश्च भल्लरीकांस्त्यतालकैः ॥ २६ ॥ तच्छ्रुत्वा निनदंघोरं दानवो बलदार्पितः ॥
सुराणामाविधातार्थमभिषेकस्य चाग्रतः ॥ २७ ॥ हस्त्यश्वरथपत्याद्यैः परिपूर्णैरवाकुलैः ॥ २८ ॥ ततस्तु तारिद्रवरस्य

पति होने के वारते अभिषेक को प्राप्त हुये देवताओं के देवता विष्णुजी ने इन्द्र आदि देवताओं के सहित स्वामिकांक्षिकेय का अभिषेक किया है ॥ २४ ॥ तारकासुर
दानव के मारने के वारते व देवताओं के विजयके वारते पृथिवी के दानसे ब्राह्मणों को विधिपूर्वक तृप्तकर ॥ २५ ॥ शङ्ख, भेरी, पटह, वीणा, मृदङ्ग, भल्लरी, आत्म,
और तालियों को बजाया ॥ २६ ॥ अपने बलसे अभिमान को प्राप्त दानव उस घोर बाजोंके मन्दको सुनकर देवों के नारा करनेके वारते अभिषेकके आगे ॥ २७ ॥

राजदोसे भरेहुये हार्थ, घोड़े, रथ और पैदल आदि से संयुक्त आताहुआ ॥ २८ ॥ तदनन्तर उस भयानक सेनाको महारमा विष्णुर्जा ने शार्ङ्गधनुष से छूटेहुये अति
पैने बाणों से हार्थ, घोड़े और रथोको विध्वंसकर चक्रको छोड़ा ॥ २९ ॥ स्वामिकात्तिकेय जी चारों तरफ व्याप्त भयानक चक्रको देख वहा का रहना छोड़ बड़े
तपको करतेहुये ॥ ३० ॥ लोकोके धारण करनेवाले विष्णु ने दैत्योके नाशके वास्ते चक्रको छोड़ा उसने विह्वल सेनाको जलाया और आप निर्मल जलमें गिरपड़ा ॥
३१ ॥ नर्मदा के प्रभाव से वह चक्र पापरहित होगया वर्षाञ्जल के उजियाले पाखकी द्वादशी को हे भारत ! ॥ ३२ ॥ क्रोधको जोतेहुये विष्णुजी के प्यारे चक्रतीर्थ
वाहिनी शारसमुशान्नाङ्गिभक्तकैसुतीक्ष्णैः ॥ विध्वंस्यहरस्य दवरथान्महारमा चक्रंविमुक्तंमधुघातिनाच ॥ २९ ॥ दृष्ट्वा
तुभीषणंचक्रमभिन्नासंषट्पाननः ॥ त्यक्त्वातत्राप्यवस्थानंचकारविपुलंतपः ॥ ३० ॥ चक्रंमुक्तंविनाशाय हरिणालोक
धारिणा ॥ विह्वलादाहयामास पपातिवमलेजले ॥ ३१ ॥ निष्पापंतत्त्वसंजातं नर्मदायाःप्रभावतः ॥ प्रावृट्कालेऽशुभे
पर्वे द्वादश्यांचैवभारत ॥ ३२ ॥ यश्चयातिजितक्रोधश्चक्रतीर्थहरिप्रियम् ॥ सोऽपिपापैःप्रमुच्येत यमंघोरंनपश्यति ॥
३३ ॥ राज्ञोजागरणंहुत्वा दीपदेवस्यदापयेत् ॥ कथाञ्चवैष्णवीतत्र देवदेवंसमाहितः ॥ ३४ ॥ भीमव्रतंचपाराकं कृ
च्छ्रंचान्द्रायणंतथा ॥ व्रतंसान्तपनंदेवत्रिरात्रव्रतकंभृशम् ॥ ३५ ॥ तरेहैतरणीमन्तेभीमंचक्रमहर्निशम् ॥ कूटशा
लमालिहृत्तांश्चक्रदांचिन्नैवपश्यति ॥ ३६ ॥ एतत्तेकथितंसर्वंचक्रतीर्थस्ययत्फलम् ॥ ३७ ॥ इति श्रीमकन्दपुराणरेवाख
ण्डे चक्रतीर्थमहिमावुवर्णनोनामपञ्चदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११५ ॥

को जो जाताहै वह भी पापोंसे छूटजाता और घोर यमराजको नहीं देखताहै ॥ ३३ ॥ रातको जागरण कर विष्णु को दीपदान करे और सावधान होकर वही विष्णु को
स्मरण करताहुआ विष्णु की कथा को सुने ॥ ३४ ॥ और भयानक व्रत पाराक, कृच्छ्र, चान्द्रायण, सान्तपन और देवत्रिरात्रव्रत को अत्यन्त करे ॥ ३५ ॥ तो अन्त
में वैतरणी को तरजाता है और दिन रात घूम रहे भयानक चक्र, कूट और यमलोकके शालमली वृक्ष को कर्मा नहीं देखता है ॥ ३६ ॥ यह जो चक्रतीर्थका फल है
सो सश्रु तुम से कहगया ॥ ३७ ॥ इति श्रीमकन्दपुराणरेवाखण्डपाकृतभाषाऽनुवादचक्रतीर्थमहिमाऽनुवर्णनोनामपञ्चदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११५ ॥

मार्कण्डेयजी बोले कि तदनन्तर पूर्वकाल में विष्णु के वनायेहुये चक्रतीर्थ के समीप में महापार्षो के नाश करनेवाले धूमपात नाम के तीर्थ को जावे ॥ १ ॥ किसी समय में तीनों लोकों को पवित्र करनेवाली इस श्रेष्ठ देवी नर्मदा को अपने रनिवास के सहित जलके राजा वरुण ॥ २ ॥ हाथों के जेवरों से युक्त व निर्मल छविवाले व पुण्यवाले, सज्जन और प्यारे, अर्धपात्रसे संयुक्त अपने भाइयों के सहित आते हुये ॥ ३ ॥ चन्द्रमण्डल के समान व मोतियों से युक्त व मृंगाश्रोंकी लताओं से युक्त व इन्द्रनीलसखियों से युक्त ॥ ४ ॥ अर्धको नर्मदाके वारते नदियों के रज्ज्वा वरुण देतेहुये तब गङ्गा आदि सब नदिया और तारपी, पयोष्णी, ॥ ५ ॥ नन्दिनी

मार्कण्डेयउवाच ॥ धूमपातततो जच्छेन्महापातकनाशनम् ॥ समीपे चक्रतीर्थस्य विष्णुनानिर्मितम्पुरा ॥ १ ॥ मेकलापरमानन्दवीसिमां नैलोक्यपावनीम् ॥ कदाचित्पयसां राजा सान्तःपुरपरिच्छदः ॥ २ ॥ शिष्टैरिष्टैर्वन्धुभिश्च अर्धपात्रेण संयुतैः ॥ हस्ताभरणसंयुक्तैः पुण्यैरमलकान्तिभिः ॥ ३ ॥ चन्द्रमण्डलमानैश्च युक्तैर्मुक्ताफलैस्तथा ॥ प्रवाललतिकामिश्च इन्द्रनीलसमन्वितैः ॥ ४ ॥ अर्धददौ तदा तस्यै वरुणस्मरितां पतिः ॥ गङ्गाद्यास्मरितस्सर्वास्तापी चापि पयोषिका ॥ ५ ॥ नन्दिनी नलिनी पुण्या सर्वमर्धददुस्तदा ॥ नर्मदोवाच ॥ मदीये सङ्गमे दिव्ये स्नात्वा सन्तर्पयन्ति ये ॥ ६ ॥ तस्य सप्तकुलोत्पन्नास्तारयामिनसंशयः ॥ जलाञ्जलिततोदत्त्वा समुद्रो वाक्यमब्रवीत् ॥ ७ ॥ धन्यो हं कृतकृत्यो हं त्वया देविवरानने ॥ समायातासि मद्रन्ते सांचात्र पावनं कुरु ॥ ८ ॥ नर्मदोवाच ॥ पवित्रोसि महाभाग एकाकी त्वं महोदधे ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ एवं भगवती राजन्मर्मदा मेकला शुभा ॥ ९ ॥ पूजिता सागरेणापि शुभेसिंहासने स्थिता ॥ पाणिग्रहं

और पुण्यावाली नलिनी आदि सब नदिया अर्ध देतीहुई तब नर्मदा बोली कि हमारे दिव्य सङ्गममें स्नान कर जो तर्पण करते हैं ॥ ६ ॥ उनके सातकुलों में उत्पन्न हुये पुरषों को हम तार देती है इम में संशय नहीं है तदनन्तर जलाञ्जलि देकर समुद्र वचन बोला कि ॥ ७ ॥ हे वरानने, देवि ! आपसे मैं धन्य और कृतकृत्य हूँ आप आई हो आपका कल्याण हो यहां मुझको पवित्र करो ॥ ८ ॥ तब नर्मदा बोली कि हे महाभाग, महोदधे ! तुम आपही पवित्र हो मार्कण्डेयजी बोले कि हे राजन् !

॥ १३ ॥ कल्याण देवताली, भगवती नर्मदा ॥ ६ ॥ उत्तम शिक्षासन पर वैठी हुई सभ्र से भी पूजीगई और हे भारत ! पुरुकुत्स राजासे वे व्याहीगई ॥
 कीहुई पुराणकी वर्षा होतीहुई और नर्मदाका वहां स्वयंवरभी हुआ ॥ १२ ॥ वहा जो आढ पितरोंका तर्पण करताहै और स्थान बनवाताहै वह लाख यज्ञों के फलको
 पाकर सुक्तहोजाताहै इसमें संशय नहीं है ॥ १३ ॥ इसप्रकार तीनोंलोकोंकी पवित्र करनेवाली नर्मदा तीनोंलोकसे पूजनेयोग्यहै हे महाभुज ! उसका अतुल माहात्म्य
 हीतासा पुरुकुत्सेनभारत ॥ १० ॥ पुरुकुत्सस्यभार्यासाग्रहभर्षणसंयुता ॥ सदाधैवततेराजंस्तत्रैवसङ्गमेष्टुमे ॥ ११ ॥
 पुष्पहृष्टिस्तदाह्यासीजिदशानामहोत्सवे ॥ तत्रस्वयंवरश्चासीत्सहितःपृथिवीपते ॥ १२ ॥ तत्रयःकुरुतेशाढं स्थानं
 चपितृतर्पणम् ॥ लज्जयज्ञफलंप्राप्य समुक्तोनात्रसंशयः ॥ १३ ॥ एवंत्रैलोक्यपूज्याते नर्मदालोकपावनी ॥ तस्यासा
 हात्म्यमतुलं कीर्तितंहिमहाभुज ॥ १४ ॥ भक्त्याश्रुत्वामहामाग रुद्रलोकेमहियते ॥ आदिमध्यावसानेषु रेवामाहा
 त्म्यसुतमम् ॥ १५ ॥ यःकश्चिच्छृणुयाद्भक्त्या तस्यस्याद्वाञ्छितंफलम् ॥ श्रुत्वामाहात्म्यमतुलं योन्नरोहिजितेन्द्रि
 यः ॥ १६ ॥ दानंकुर्यात्तदातस्य सर्वकामार्थसिद्धयः ॥ पुस्तकंपूजयित्वातु धूपदीपकचन्दनैः ॥ १७ ॥ दानंतत्रप्रक
 र्त्तव्यं ब्राह्मणांपिपूजयेत् ॥ श्रवणेनतुदानेन सुप्रीताननर्मदाभवेत् ॥ १८ ॥ तीर्थतीर्थेचकथितं तत्पूर्वंपाण्डुनन्दन ॥
 पुण्यंश्रुत्वातुमाहात्म्यं तद्दानेनैवपाण्डव ॥ १९ ॥ एतस्मात्कारणादानं श्रुत्वादानंहिकारणम् ॥ तच्छ्रुत्वारोजशार्द
 आपस कहागया ॥ १४ ॥ हे महाभाग ! इस को भक्तिसे सुनकर रुद्रलोकमें सत्कार पाताहै इस खण्डमें आदि, मध्य और अन्तमें नर्मदाहीका उत्तम माहात्म्यहै ॥
 १५ ॥ उसको जो कोई भक्तिसे सुनताहै उसको वाञ्छित फल होताहै इन्द्रियोंको जीते हुये जो मनुष्य नर्मदाके अतुलमाहात्म्यको सुनकर ॥ १६ ॥ दान करताहै तब
 उसकी सब काम और अर्थकी सिद्धियां होती हैं व धूप, दीप और चन्दन आदि से पुस्तक का पूजन कर ॥ १७ ॥ वहां दान करना चाहिये और ब्राह्मणों का भी पूजन
 करे सुनने और दानमें नर्मदा अतिप्रसन्न होती है ॥ १८ ॥ हे पाण्डुनन्दन ! तीर्थ तीर्थ में कहेहुये पुण्य व माहात्म्यको सुनकर हे पाण्डव ! उसको दानही से पूरा

करे ॥ १६ ॥ इसी कारणसे दानको सुन दान अवश्य करे क्योंकि पुण्यका कारण दानही है इस मार्कण्डेय के कहने को सुन राजाओं में उत्तम युधिष्ठिरजी ॥ २० ॥
 रीति से अर्घको देकर व ऋषियों का पूजनकर घोंडे, हाथी, रत्न और माहरों के सहित धर्मराज ॥ २१ ॥ राजा युधिष्ठिर नर्मदा में तीर्थयात्रा शीघ्रही करत हुये उत्तर
 लो मार्कण्डेयस्वभाषितम् ॥ २० ॥ अर्धदत्तवायथान्यायंपूजयित्वा ऋषीन्सदा ॥ अर्धवर्गैस्तथारत्नैर्भार्तुभिस्सह
 र्मराद् ॥ २१ ॥ तीर्थयात्रांचकाराशु नर्मदायांयुधिष्ठिर ॥ उत्तरेदक्षिणेतीरे स्नानपानावगाहनम् ॥ २२ ॥ इति श्री
 स्कन्दपुराणैवाखण्डे युधिष्ठिरमार्कण्डेयसंवादे नर्मदाचारित्रवर्णनो नाम षोडशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११६ ॥
 इति स्कन्दपुराणस्य रेवाखण्डः ॥

और दक्षिणाले तटपर स्नान, जलपान और अन्नगाहन करतेहुये ॥ २२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणैरेवाखण्डे प्राकृतभाषाऽनुवादे युधिष्ठिरमार्कण्डेयसंवादे नर्मदाचारितवर्णनो
 नाम षोडशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११६ ॥

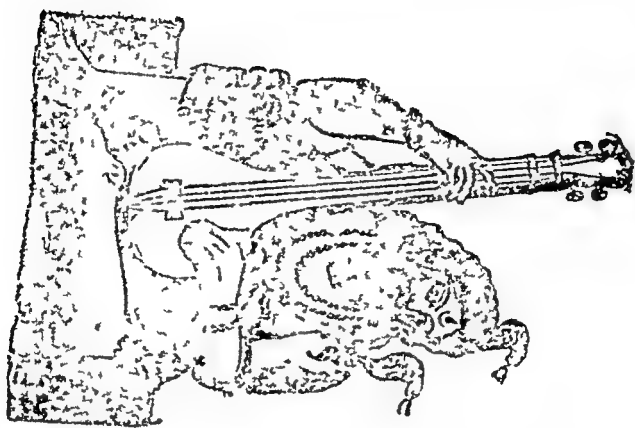
शुभसप्तमभूमितेऽब्दवृन्दे शुभ इषगारयसिते दले कतिध्याम् ॥ गुरुचरणकृतिर्हि मांशुवारेऽवसिति मगाज्जननी गिरा गरिष्ठा ॥ १ ॥
 मातृभाषानुवादोऽयं शोधितश्च सुहृद्दुः ॥ विद्वद्व्याप्रसादेन सर्वेषां मोदहेतवे ॥ १ ॥ शुभमस्तु ॥

प्रथमवार



नमोस्तु

सुपरिटेंडेंट बाबू मनोहरलाल भार्गव के प्रबन्ध से
 हुंशी नवलकिशोर (सी, आई, ई) के छापेखाने में छपा
 सन् १९०८ ई०।





इति स्कन्दपुराणविरचसप्तमः ॥

आथ स्कन्दपुराणअवन्तीखण्डः प्रारम्भः ॥

स्कन्दपुराणरेखाखण्डान्तर्गताऽवन्तीखण्डस्य सूचीपत्रं व्याख्यायते ॥

विषयाः	अ०	पृ०	विषयाः	अ०	पृ०
मुनिनायक समरकुमार को व्यासजी से महाकाल का प्रभाव कहना	१	५	चारो समुद्र का माहात्म्य व सातो द्वीपों की सम्बाँध व चौड़ाई का उपाख्यान	१५	७७
ब्रह्माजी के पाँचवें शीश को शिवजीका छेदन करना	२	१३	शङ्करादित्य के अद्भुत प्रभाव का निरूपण करना	१६	८१
ब्रह्माजी से विष्णुजी को प्रायश्चित्त का विधान कहना	३	२०	पितरों की सन्तुष्ट करनेहारी नीलगंगा व गन्धवतीनामक नदी का माहात्म्य कहना	१७	८३
मुनीश समरकुमारको ब्रह्मासे अग्निकी उत्पत्ति कहना	४	३१	दशरथमेघ तीर्थ का परम प्रभाव व महिमा का निरूपण करना	१८	८४
कुरास्थली के वनके बीचमें सदाशिवको कपाल का त्यागना	५	३८	त्रैलोक्यविख्यात एकान्तया भगवती का माहात्म्य कहना	१९	८८
ब्रह्मा के कपाल को शिवका छोड़ना व देवताओं को भयभीतहोना	६	५१	सिद्धिदायक हरसिद्धिनामक देवी का प्रभाव कहना	२०	९०
महाकाल वनवासी जनोंको फलका निरूपण करना	७	६०	महासिद्धिदायक वटयक्षिणनामक देवी का निरूपण करना	२१	९०
कलिमलनाशक विख्यात तीर्थ का माहात्म्य कहना	८	६३	चतुर्दशी में पिशाचतीर्थ के स्नान करनेका प्रभाव कहना	२२	९२
अमरसराकुण्ड के अमित प्रभाव का निरूपण करना	९	६६	हनुमान् को हनुमत्केशवर लिङ्गका स्थापन करना	२३	९५
मोहय कुण्ड व रुद्रसरतीर्थ का माहात्म्य कहना	१०	७१	निवर्त्तकदायक यमेश्वर लिङ्गका माहात्म्य कहना	२४	९६
कुटुम्बेश्वर तीर्थ को अणार महिमा का निरूपण करना	११	७२	रुद्रसरनामक तीर्थका परम प्रभाव कहना	२५	९७
गन्धर्व नामक तीर्थ की अतिमहिमा का निरूपण करना	१२	७४	पुण्यलोकदायक महाकालकी यात्रा का विधान कहना	२६	१०१
कामदायक विख्यात मर्कटेश्वर तीर्थ का प्रभाव कहना	१३	७५	बाल्मीकिपूजित बाल्मीकेश्वर देवका प्रभाव कहना	२७	१०६
स्वर्गद्वार नामक तीर्थ का माहात्म्य निरूपण करना	१४	७५	शुक्रेश्वर, गर्गेश्वर, कामेश्वर और चण्डेश्वर का माहात्म्य कहना	२८	१०७

विषया	अ०	पृ०	विषया	अ०	पृ०
विधिसमेत पञ्चशती यात्राका माहात्म्य कहना	२६	११०	अगस्त्येश्वर लिङ्गको अपार महिमा का कीर्तन करना	४६	१६६
सप्तदेवियों की अपार महिमाका निरूपण करना	३०	१११	अन्धकासुर के नाश होनेपर दिवाकर को नरदीप रूप से प्रकट होना	४७	१०५
अक्रेश्वर का दर्शनकर काञ्चनदल का फल कहना	३१	१११	आनन्ददायक अक्रेश्वर की महिमाका वर्णन करना ...	४८	२१०
ब्रह्माकी यज्ञमें याज्ञिक ब्रह्मणों के लिये शिवको शाप व वरदान देना व मन्दकिन्ती का माहात्म्य कहना	३२	१२०	शरणमें प्राप्त अन्धकासुरके लिये शिवजी को वरदान देना	४६	२१६
श्रीकृष्णचन्द्र व बलराम को मुक्त गुरुपुत्र को प्राप्त करना व अङ्गपदनामकतीर्थ का माहात्म्य कहना	३३	१२३	महाकालनामक शिवदेव का अतिमाहात्म्य कहना ...	५०	२१७
चन्द्रादित्य तीर्थकी अनन्त व अपार महिमाका निरूपण करना	३४	१२४	अवन्तीपुरी को कनकशृङ्ग नाम से विख्यात होना	५१	२२०
कल्याणदायक करभेश्वर जीके दर्शन का फल कहना	३५	१२५	अवन्तीपुरी को कुशस्थली नामसे विख्यात होना	५२	२२४
लङ्काकाहारी विघ्नविदारी गणनायक धिनायक का माहात्म्य कहना	३६	१२६	उज्जयिनीपुरी कोही अवन्ती नामसे विख्यात होना	५३	२२६
कुसुमेश्वर व जयेश्वरादि लिङ्गोंका प्रभाव कहना	३७	१२६	अवन्तीपुरी कोही उज्जयिनी नामसे प्रख्यात होना	५४	२२६
सोमवतीनामक तीर्थ व सोमेश्वर लिङ्गका माहात्म्य कहना	३८	१४५	अवन्तीपुरी कोही अमरावती नाम से विख्यात होना	५५	२४०
नरकेश्वर का माहात्म्य व पापियों के लिये नरकों का निरूपण करना	३९	१४६	अवन्तीपुरी कोही विशाला नाम से विख्यात होना	५६	२४३
शिवाजी से शिवजीको दीपदान का फल कहना	४०	१६१	अवन्तीपुरी कोही प्रतिकल्पा नाम से प्रख्यात होना ...	५७	२४६
केदारेश्वर व रामेश्वर तीर्थ की महिमाका निरूपण करना	४१	१६६	शिमानदी में वैष्णव तथा माहेश्वर को शान्त होना	५८	२४९
सुखदायक सौभाग्येश्वर तीर्थकी अनन्त महिमा को कहना	४२	१७०	शिमानदी के प्रभाव से दमनक राजा की मुक्तिहोना	६०	२६१
महावीर रणधीर अर्जुन को नरादित्य का स्थापन करना	४३	१८२	शिमानदीको अमृतोद्गवा नाम से विख्यात होना	६१	२६७
कल्याणदायक केशवादित्यका अनन्त माहात्म्य कहना	४४	१८४	पृथ्वी को उच्चार करने के लिये विष्णुको वाराह रूप धरना	६२	२७२
शक्तिभेद तीर्थ व स्कन्दजी के अष्टाभद्र का निरूपण करना	४५	१६४	पिशाचमोचन व सुन्दरकुण्ड का प्रभाव कहना	६३	२८०
		६४	२८६

विषयः	अ०	पृ०	विषयः	अ०	पृ०
नीलगंगा को ब्रह्माजी से निजदाल का कहना	६५	२६०	शैरवनामक तीर्थ व शैरवाष्टक का निरूपण करना	७५	३५६
उज्जयिनी पुरी में विष्णुवासिनी देवीजी का आना	६६	२६४	अमितमाहात्म्य युक्त नाम तीर्थ का प्रभाव कहना	७६	३६२
साता सगम का विचित्र माहात्म्य कहना	६७	३०१	अतुल्य माहात्म्ययुक्त त्रिसहस्रीय का प्रभाव कहना	७७	३६६
अमितसुखदायक गयातीर्थ का माहात्म्य कहना	६८	३०५	कुटुम्बदा तीर्थ में अमित फल का निरूपण करना	७८	३६८
पितरों के कथाप्रसंग में गयाश्राद्ध का विधान कहना	६९	३११	खण्डेश्वरदेवकी अपार महिमा का कीर्तन करना	७९	३७२
गयातीर्थ के समस्त तीर्थों का निरूपण करना	७०	३१५	कर्कराज तीर्थ की अमित व अनन्य महिमा का निरूपण करना	८०	३७८
मलमास में श्रृंगुख्योत्सम देवका पूजन विधान कहना	७१	३२२	देवतीर्थ की यात्रा करने से अनुपम फल का होना	८१	३८८
पुरुषोत्तम सरकी अमित अपार महिमा को निरूपण करना	७२	३२३	अवन्ती तीर्थ की यात्रा करने से अतिसुखदायक फलका होना	८२	३९१
गोमतीकुण्ड की अनन्त महिमाको कहना	७३	३२७	अवन्ती तीर्थ में जिस तीर्थ का जो फल होनाहै उसका निरूपण करना	८३	४३०
वामनकुण्डकी महिमा व विष्णुजी के सहस्रनामों का कीर्तन करना	७४	३५५			

इति श्रीमदक्षिणवर्णितशतशक्तिधरसंक्षिप्तसप्तमीलगादस्यवृषिर्नरसामिभगनादितिष्ठिम् ॥

स्कन्दपुराणरेवाखण्डान्तर्गत

अवन्तीखण्ड सटीक

देहा ॥ सिद्धिसदन गजवदनके, चरण कमल शिरनाय । यहि श्रवन्ति माहात्म्य कर, तिलक करहु सुखदाय ॥ १ ॥ पूछ्यो व्यास मुनीश सन, महाकाल परभाव । सनतकुमार सोई कह्यो, प्रथम माहि प्रताव ॥ २ ॥ प्रजाओं के रचनेवाले भी देवता प्रबल संसार के भय से जिनको प्रणाम करते हैं और सावधान मनवाले व ध्यान संयुत चित्तवालों के चित्तमें जो भलीभाति पड़े हुये हैं और वे लोकों के आदिदेव श्रीमहाकाल नामक शिवजी उत्कर्ष को प्राप्तहोवैं जोकि

स्रष्टारोपिप्रजानां प्रबलभवभयाद्यंनमस्यन्तिदेवा यश्चित्सम्प्रविष्टोप्यवहितमनसां ध्यानयुक्तात्मनांच ॥ लो कानामादिदेवः सजयतुभगवञ्छ्रीमहाकालनामां विश्राणःसोमलेखामहिवलययुतंव्यक्तलिङ्गकपालम् ॥ १ ॥ उमोवाच ॥ पृथिव्यांयानितीर्थानि पुण्याश्चसरितस्तथा ॥ कथ्यतांतानियत्नेन श्राद्धयेषुप्रदीयते ॥ २ ॥ ईश्वरउवाच ॥ अस्तिलोकैषुविख्याता गङ्गात्रिपथगानदी ॥ सेवितादेवगन्धर्वैर्मुनिभिश्चनिषेविता ॥ ३ ॥ तपनस्यसुतादेवी यमुनालोकपावनी ॥ पितृणांचल्लभादेवि महापातकनाशिनी ॥ ४ ॥ चन्द्रभागावितस्ताच नर्मदाऽमरकण्टकम् ॥ चन्द्रमाकी कला व सर्पके कंकण संयुत व प्रकट चिह्नवाले कपाल को धारण कियेहैं ॥ १ ॥ श्रीपार्वतीजी बोलीं कि पृथ्वीमें जो तीर्थ व पवित्र नदियांहैं उनको यलसे कहिये कि जिनमें श्राद्ध दीजाती है ॥ २ ॥ महादेव जी बोले कि तीन मार्गोंसे चलनेवाली गंगा नदी सब लोकोंमें प्रसिद्ध हैं जोकि देवताओं व गंधर्वां से सेवित तथा मुनियों से रोषित है ॥ ३ ॥ व हे देवि ! लोकों को पवित्र करनेवाली तथा बड़ेभारी पापों को नाशनेवाली सूर्यकी कन्या यमुना देवीजी पितरों को प्यारी हैं ॥ ४ ॥

और हे देवि ! चन्द्रभागा, वितस्ता, नर्मदा, अमरकण्टक, कुरुक्षेत्र, गया, प्रभास व नैमिष ॥ ५ ॥ हे देवि ! केदार, पुष्कर व काथावरोहण तथा उत्तम महाकालवन अत्यन्त पवित्र है ॥ ६ ॥ जहां पर पापरूपी ईधन को जलाने के लिये अग्नि श्रीमहाकालीजी है वह चार कोस तक क्षेत्र ब्रह्महत्यादि पातकोका विनाशक है ॥ ७ ॥ और वह क्षेत्र सुखदायक व मुक्तिदायक तथा कलियुग के पातकों का विनाशक है व हे देवि ! प्रलय में अविनाशी तथा देवताओं को भी दुर्लभ है ॥ ८ ॥ पार्वती जी बोलीं कि हे महेश्वर देवजी ! इस क्षेत्रके माहात्म्य को कहिये क्योंकि वहां पर जो तीर्थ हैं और जो लिंग हैं ॥ ९ ॥ उनको मैं सुनना चाहता हूं क्योंकि मुझको बहुत

कुरुक्षेत्रगंगादेवि प्रभासंनैमिषन्तथा ॥ ५ ॥ केदारपुष्करश्चैव तथाकायावरोहणम् ॥ तथापुण्यतममन्देविमहाकाल वनंशुभम् ॥ ६ ॥ यत्रास्तेश्रीमहाकालः पापेन्धनहुताशनः ॥ क्षेत्रयोजनपर्यन्तं ब्रह्महत्यादिनाशनम् ॥ ७ ॥ मुक्तिदंमुक्तिदंक्षेत्रं कलिकल्मषनाशनम् ॥ प्रलयेप्यक्षयंदेवि दुष्प्रापंनिदशैरपि ॥ ८ ॥ उमोवाच ॥ प्रभावःकथ्यता न्देव क्षेत्रस्यास्यमहेश्वर ॥ यानितीर्थानिविद्यन्ते यानिलिङ्गानिसन्तिवै ॥ ९ ॥ तान्यहंश्रोतुमिच्छामि परंकौतूहलंहि मे ॥ १० ॥ महादेवउवाच ॥ शृणुदेविप्रयत्नेन प्रभावंपापनाशनम् ॥ क्षेत्रमाद्यंमहादेवि सर्वपापप्रणाशनम् ॥ ११ ॥ श्रीमेरोस्सन्निधाने यच्छिखरंरत्नचित्रितम् ॥ वैराजभवनन्नाम ब्रह्मणःपरमात्मनः ॥ १२ ॥ तत्रदिव्याङ्गनागी तमधुरस्वरनादिता ॥ पारिजाततरुच्छन्नमञ्जरीदामशोभिता ॥ १३ ॥ बहुवाद्यसमुत्पन्नसुमहास्वननादिता ॥ लय तालयुतानेकगीतवादित्रनादिता ॥ विन्यस्ताकोटिभिःस्तम्भैर्निर्मलादर्शशोभिता ॥ १४ ॥ अप्सरोनृत्यविन्यासवि

आश्चर्य्य है ॥ १० ॥ महादेवजी बोले कि हे देवि ! पापनाशक प्रभावको बड़े यत्नसे सुनिये हे महादेवि ! सशस्त पातकों का नाशक वह आदि क्षेत्र है ॥ ११ ॥ श्री सुमेरुगिरि के समीप जो गह्वों से बनाहुआ शिखर परमात्मा ब्रह्माजी का वैराजनामक मन्दिर है ॥ १२ ॥ वहा पर देवांगनाओं के गान से मधुर ध्वनि करके शब्दित व पारिजात वृक्षोंसे आच्छादित तथा मञ्जरी की मालाओं से शोभित ॥ १३ ॥ और बहुत से वाजाओं से उत्पन्न बड़े भारी शब्दों से ध्वनित तथा लय व ताल से संयुत अनेक गीतों व बाजनों से शब्दित व करोड़ों स्तम्भोंसे शोभित तथा निर्मल शीशोंसे शोभित ॥ १४ ॥ और अप्सराओं के नृत्य करने के विलास (लीला)

तथा हर्षसे शोभित कांतिमती नामक सभा देवों को आनन्द देनेवाली है ॥ १५ ॥ उस सभामें बैठे हुये व ब्रह्मा तथा शिवजी के आराधन में परायण ब्रह्मा के मानसी पुत्र ब्रह्मर्षि मनत्कुमार जीको ॥ १६ ॥ मुनियों के मध्य से उठकर पराशरजीके पुत्र कृष्णद्वैपायन (व्यास) मुनिने विधिपूर्वक प्रणामकर ॥ १७ ॥ व जुड़ेहुये हाथोंवाले होकर शिवजी की भक्ति में शुद्ध चित्तवाले और प्रसन्न रोम व मुखवाले उन्होंने ने बड़ी प्रसन्नतासे प्राणियों के मोहको नाशनेवाले महाकालजी के माहात्म्य को पूँछा व्यासजी बोले कि हे भगवन् ! महाकालजी के क्षेत्र के माहात्म्य को कहिये ॥ १८ ॥ १९ ॥ कि सब से उत्तम महाकालवन किस लिये कहा जाता है और ऊपरसमेत

लासोल्लासशोभिता ॥ सभाकान्तिमतीनाम्नी देवानां हर्षदायिका ॥ १५ ॥ तस्यां निविष्टं वागीश शङ्कराश्रमनेरतम् ॥
सन्तकुमारं ब्रह्मर्षिं ब्रह्मणो मानसं सुतम् ॥ १६ ॥ मुनिमध्यात्समुत्थाय कृष्णद्वैपायनो मुनिः ॥ पराशरसुतो व्यासः
प्राणिपत्य यथाविधि ॥ १७ ॥ कृताञ्जलिपुटो भूत्वा भवमकृत्यानुभाविताः ॥ पप्रच्छ परयातुष्व्या हृषितांगरुडाननः ॥
१८ ॥ महाकालस्य माहात्म्यं प्राणिनां मोहनाशनम् ॥ व्यास उवाच ॥ भगवन् क्षेत्रमाहात्म्यं महाकालस्य कथयताम् ॥
१९ ॥ महाकालवनं कस्मात् प्रोच्यते सर्वतो वरम् ॥ कथं गुह्यवनं प्रोक्तं पीठं स ऊपरन्तथा ॥ २० ॥ फलयथास्य क्षेत्रस्य
मृतानाञ्च गतिर्यथा ॥ स्नानेन यद्भवेत्पुण्यं दानेनापि च यत्फलम् ॥ २१ ॥ कथमेतच्छानञ्च क्षेत्रं प्रोक्तं यथा तथा ॥
पृष्टो मे शङ्करे भक्तिं ब्रूहि त्वं शास्त्रकोविद ॥ २२ ॥ सन्तकुमार उवाच ॥ क्षीयते पातकं यस्मात् तेनेदं क्षेत्रमुच्यते ॥ यस्मा
तस्थानञ्च मातृणां पीठन्तेनैव कथ्यते ॥ २३ ॥ मृताः पुनर्न जायन्ते तेनेदमूर्परं स्मृतम् ॥ गुह्यमेतत्प्रियन्नित्यं क्षेत्रं श

पीठ व गुह्यवन किस कारण कहा गया है ॥ २० ॥ और जिस प्रकार इस क्षेत्र का फल होवै और मेरे प्राणियोंकी जिस भाति गति होती है व स्नान से जो पुण्य होती है और दान से भी जो फल होता है उसको कहिये ॥ २१ ॥ और कैसे यह स्नान क्षेत्र कहा गया है हे शास्त्रकोविद ! जिस प्रकार तुम पूँछोगये हो उसी भाति सदाशिवजी में भक्ति को कहिये ॥ २२ ॥ सन्तकुमारजी बोले कि जिस लिये पातक नष्ट होता है उसी कारण यह क्षेत्र कहा जाता है और जिसलिये मातृगणों का स्थान है उस कारण पीठ कहा जाता है ॥ २३ ॥ व जिस लिये यहां मरहुये पुरुष फिर उत्पन्न नहीं होते हैं उससे यह ऊपर कहा गया है और महात्मा सदाशिव जी

समेत आकाश हुआ ॥ ७ ॥ उस समय बीचमें पांच मुखोंवाले व चारभुजाओंवाले ब्रह्मा हुये इसके अनन्तर महादेवजीने अनुमानकर इनको सृष्टिमें युक्त किया ॥ ८ ॥ कि हे महाबाहो ! मेरी दयासे विचित्र सृष्टि कीजिये यह कहकर कहीं भी अन्तर्द्धान होगये और ब्रह्मा ने नहीं जाना ॥ ९ ॥ प्रेरणा कियेहुये भी ब्रह्मा जी सृष्टि करने के लिये समर्थ न हुये और उन्होंने शिवदेव जीको चिन्तन किया व ब्रह्मा मे ध्यान किये जातेहुये भगवान् शिवजीने ज्ञानके लिये ॥ १० ॥ ब्रह्माकी तपस्यासे प्रसन्न होकर छह अङ्गोंवाले वेद को दिया व वेदके मिलनेपर भी वे ब्रह्माजी बहुत दिनों तक सृष्टि करने क लिये न समर्थ हुये ॥ ११ ॥ फिर ब्रह्माजी ने शिवजी को

अतुष्टुजः ॥ महेश्वरोनुमान्यैतमयोजयदनन्तरम् ॥ ८ ॥ कुरुसृष्टिमहाबाहो विचित्रांमदनुग्रहात् ॥ इत्युक्तवान्तर्हि
तःकापि देवोब्रह्मानज्ञातवान् ॥ ९ ॥ प्रयंमाणोपिवैस्रष्टु नाभूद्देवमचिन्तयत् ॥ ब्रह्मणाध्यायमानश्च ज्ञानार्थंभगवा
न्भवः ॥ १० ॥ ब्रह्मणस्तपसातुष्टः प्रादाद्देदंषडङ्गकम् ॥ लब्ध्वेदेपिनचिरात् सृष्टिकर्तुंशशाकसः ॥ ११ ॥ तपसाराध
यदभूयः समाराधयितुंभवम् ॥ नापश्यत्सयदादेवं तदातुष्टावभावतः ॥ १२ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ नमःशिवायामलसत्त्वचे
तसे गुणत्रयातीतविसारितेजसे ॥ षडङ्गवेदस्यममापिवेधसः परस्यरूपानुभवायचक्षुषे ॥ १३ ॥ नमोस्तुतेसृष्टिविधौ
रजोजुषे जगत्स्थितौसत्त्वमधिष्ठितायते ॥ विनाशहेतौतमसोपयोगिने शिवायनिर्वाणसुखप्रदायिने ॥ १४ ॥ अशेष
भूतप्रकृतेःपरायैव परात्मरूपायनमःशिवायैव ॥ ननुब्धहङ्कारमनोविधाय धान्नेचषड्विंशकरूपकाय ॥ १५ ॥ भूवायु

आराधनके लिये तपस्या से आराधन किया और उन्होंने जब शिवदेवजीको नहीं देखा तब भक्तिसे स्तुति किया ॥ १२ ॥ ब्रह्माजी बोले कि निर्मल व सत् चित्त गाने तथा तीनों गुणों से परे व फैले हुये तेजवाले शिवजी के लिये प्रणाम है और रूपके अनुभव (ज्ञान) के लिये षडङ्गवेद व सुक्त परमात्मा ब्रह्मा के नेत्ररूप शिवजी के लिये प्रणाम है ॥ १३ ॥ और सृष्टि करने मे रजोगुणसेवी तुम्हारे लिये प्रणाम है व संसार के पालन में सत्त्वगुण मे स्थित आप के लिये प्रणाम है और विनाश के लिये तमोगुण से युक्त तथा मोक्षसुखके देनेवाले शिवजी के लिये प्रणाम है ॥ १४ ॥ समस्त प्राणियों की प्रकृति से परे व परमात्मारूप शिवजी के लिये प्रणाम है

और मनुष्यों की बुद्धि अहङ्कार व मनको विधान करनेवाले विधाता के लिये तथा लक्ष्मीस तस्वात्मकरूपवाले शिवजी के लिये प्रणाम है ॥ १५ ॥ व पृथ्वी, पवन, अग्नि, आकाश, जल, चन्द्रमा व सूर्य तथा यजमानात्मकरूपी जिनके शरीरों से यह भूत, भविष्य, वर्तमान संसार व्याप्त है उन शिवजी के लिये प्रणाम है ॥ १६ ॥ इस संसार में जो तेज व लोक है तथा जो भूत, भविष्य कारण हैं वे सृष्टि में होते हैं और प्रलय में जिनके शरीर में नाशको प्राप्त होते हैं उनको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ १७ ॥ सनत्कुमार जी बोले कि हे व्यासजी ! इस प्रकार रक्षति करतेहुये ब्रह्माजी से अन्तर्द्वान में प्राप्त भगवान् शिवजी यह बोले कि हे ब्रह्मन् ! वरदान को मांगिये ॥ १८ ॥

वक्ष्यन्वराचरिचन्द्रसूर्यात्मरूपाभिरिदंतनुभिः ॥ व्यासं जगद्यस्य नमोस्तु तस्मै भूतं भविष्यं त्वथ वर्तमानम् ॥ १६ ॥ या नीह ते जांसि जगन्तिया नि भूतानि भव्यान्यथ कारणानि ॥ भवन्ति सृष्टौ विलयं विनाशो ब्रजन्ति यस्यात्मनि तं न मामि ॥ १७ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ एवं संस्तुवतो व्यास ब्रह्मणो भगवान्परः ॥ अन्तर्हित उवाचिदं ब्रह्मन् संवाच्य तां वरः ॥ १८ ॥ सर्वत्रे मनसा पुत्रं भवं गौरवकारणात् ॥ विज्ञायान्तर्गतं तस्य परमेश उवाच तम् ॥ १९ ॥ यस्मान्मां मनसा पुत्रं चतुर्मुखस मीहसे ॥ कर्हि मश्चित्कारणे तस्मादहं ह्येतस्यामितेशिरः ॥ २० ॥ अयाच्ययाचितं यस्मान्मां शोनी ललोहितः ॥ रुद्रो भविष्यति सुतः स च ते हिंस्यति प्रभाम् ॥ २१ ॥ अन्यद्यस्मात्सृष्टो भक्त्या त्वया हं पितृभावतः ॥ परब्रह्मस्वरूपेण जिज्ञासाममया कृता ॥ २२ ॥ तस्माद्ब्रह्मेति लोके त्र नामख्यातं भविष्यति ॥ पितामह त्वयैनापि ततो ह्यासि पितामहः ॥ २३ ॥

उने ब्रह्माजी ने गौरव के कारण शिवजी से मन करके पुत्रको मांगा व उनके चित्त में प्राप्त कारण को जानकर परमात्मा शिवजी ने उनसे कहा ॥ १६ ॥ कि हे चतुरानन जी ! जिसलिये मुझ से तुम मन करके पुत्रको चाहते हो इस लिये मैं किसी कारण में तुम्हारा मस्तक काटूंगा ॥ २० ॥ जिस लिये न मागने योग्य वर मांगा गया इस कारण मेरा अंश नीललोहित रुद्र पुत्र होगा और वह तुम्हारी प्रभामें नाश करेगा ॥ २१ ॥ और जिस लिये तुमने मुझको पिताके भाव से स्मरण किया व परब्रह्म के स्वरूप से जो मेरे जानने की इच्छा की गई ॥ २२ ॥ उस कारण इस संसार में ब्रह्मा ऐसा नाम प्रासिद्ध होगा और जिस लिये मुझमें पितामह

का भाव किया गया उससे पितामह हो ॥ २३ ॥ इस प्रकार शाप व वरदानको पाकर उन्होंने पुत्रोंकी सृष्टि किया और अपने तेज से पैदा हुई अग्नि में हवन करते हुये इन ब्रह्माजी के पसीना बहचला ॥ २४ ॥ और समिधा संयुत हाथसे मरुतकको पोंछतेहुये इनका मरुतक छिदगया व उससे रक्तका एक बूंद अग्नि में गिरपड़ा ॥ २५ ॥ और वह बड़ाभारी, नीललोहित हुआ व तदनन्तर शिवजी की आज्ञा से वह रुद्र पुत्र प्राप्तहोकर समीप उतरता भया ॥ २६ ॥ जोकि पांच मुखोंवाला व दश मुजाओंवाला तथा त्रिशूल, धनुष, तलवार व शक्तिको लिये और पन्द्रह नेत्रोंवाला और भयंकर व सपोंके जनेऊ को पहने था ॥ २७ ॥ और चन्द्रमा समेत

लब्धवाशापवरावेवं पुत्रसृष्टिचकारसः ॥ स्वतेजोजनितंवह्निं लुक्तःस्वेदआवहत ॥ २४ ॥ समिधुक्तेनहस्तेन
ललाटंमार्जतोभवत् ॥ छिन्नंभृष्टस्तोरक्तबिन्दुरेकोविभावसौ ॥ २५ ॥ सनीललोहितोभूयात्सचरुद्रोभवाज्ञया ॥ त
दनन्तरमासाद्य उत्तारसुतोन्तिकात् ॥ २६ ॥ पञ्चवक्त्रोदशमुखो शूलचापासिशक्तिमान् ॥ त्रिपञ्चनयनोरोद्रो व्या
लयज्ञोपवीतकः ॥ २७ ॥ सेन्दुकपट्विभ्राणः सिंहचर्मधरोवरः ॥ जातमेवंसुतंदृष्ट्वा ब्रह्मानामाकरोत्तदा ॥ २८ ॥ नी
ललोहितनामेति भवरुद्रपिनाकधृक् ॥ ततःप्रवृत्तेसृष्टिः स्रष्टुर्लोकपितामहात् ॥ २९ ॥ सप्तादौमानसाञ्जज्ञे सन
कादींस्ततोपरान् ॥ मरीचिदक्षप्रभृतीन्मन्वादींश्चततोसृजत् ॥ ३० ॥ अष्टभेदान्मुरान्कृत्वा तिर्यग्योनिञ्चपञ्चधा ॥ म
नुष्यानेकभेदांश्च सृष्टिमेवंससर्जह ॥ ३१ ॥ सृष्टिःसुरादिकाजाता कृत्वाब्रह्माणमप्यधः ॥ प्रणम्याथसिषेवुस्ते केवलं

जटाजूटको धारे और सिंहके चर्मको धारण किये व उत्तमथा उस समय पैदा हुये ऐसे पुत्रको देखकर ब्रह्माने नाम किया ॥ २८ ॥ कि हे रुद्र, पिनाकधारी! तुम नील-
लोहित ऐसे नामवाले होवो तदनन्तर लोकोंके पितामह ब्रह्माजीसे सृष्टि वर्तमान हुई ॥ २९ ॥ पहले सात मानसी पुत्रोंको पैदा कियातदनन्तर अन्य सनकादिकोंको
उत्पन्नकिया उसके उपरान्त मरीचि व दक्षादिकोंको व मनु आदिकोंको रचा व पांच प्रकारकी तिर्यक्योनि याने पशु आदिकों
को रचा और एक भेदवाले मनुष्योंको रचा इसभांति सृष्टिको उत्पन्नकिया ॥ ३१ ॥ ब्रह्मा को भी नीचेकर देवादिक सृष्टि उत्पन्न हुई और उन्होंने केवल नीललोहित

को प्रणाम कर सेवा किया ॥ ३२ ॥ तदनन्तर ब्रह्मा ने रुद्रजी मे कहा कि तुमने मुझको अपूजनीय किया जिस लिये अपने तेजसे आप पूजनीय हो उसी कारण हिमालयको जाइये ॥ ३३ ॥ नीललोहित भी उन ब्रह्माजी से यह कह कर कि आपने मुझको नहीं पूजा तदनन्तर ये शिवजी वहां गये जहां कि भगवान् शिवजी थे ॥ ३४ ॥ तदनन्तर रजोगुणसे बड़ेहुये ब्रह्माजी मूढ़ होगये और अपकारी सृष्टिको मानते हुये ब्रह्माने तेजसे संतप्त किया ॥ ३५ ॥ मेरे तुल्य देवता नहीं है कि जिसने देवता, दैत्य, गंधर्व, पशु व पक्षियों से व्याप्त सृष्टिको बढ़ाया ॥ ३६ ॥ इसप्रकार वे पांच मुखोंवाले ब्रह्माजी सृष्टि से गर्वित हुये और उन ब्रह्माजी का सुन्दर शन्दवाला

नीललोहितम् ॥ ३२ ॥ ततो ब्रह्मावदद्द्रुमपूज्यो हन्वयाकृतः ॥ स्वतेजसा भवान्पूज्यो यतो याहि हिमालयम् ॥ ३३ ॥ तन्नो ललोहितोऽप्युक्त्वा भवतानां चितो ह्यहम् ॥ ततो जगाम रुद्रोऽसौ स यत्र मगवान्भुवः ॥ ३४ ॥ ततो ब्रह्मा भवन्मूढो रजसा चोपवृंहितः ॥ ततापते जसा सृष्टिं मन्यमानो ह्यपाकृताम् ॥ ३५ ॥ मतुल्यो नास्ति वै देवो येन सृष्टिः प्रवर्द्धिता ॥ स देवासु रगन्धर्वपशुपक्षिमृगाकुला ॥ ३६ ॥ एवं मूढस्स पञ्चास्यो विरिञ्चिः सृष्टिर्दपितः ॥ प्राग्वक् क्रसुस्वरंतस्य ऋग्वेदस्य प्रवर्तकम् ॥ ३७ ॥ द्वितीयं वदनंतस्य यजुर्वेदप्रवर्तकम् ॥ ३८ ॥ तृतीयं वदनंतस्य सामवेदप्रवर्तकम् ॥ ३९ ॥ वेदानधीत्यवक्रेण पञ्चमेन ससर्ज सः ॥ तस्यासु थर्ववेदप्रवर्तकम् ॥ साक्षो पाद्मेतिहासांश्च सरहस्यान्संग्रहान् ॥ ४० ॥ वेदानधीत्यवक्रेण पञ्चमेन ससर्ज सः ॥ तस्यासु रासुरास्सर्वे वक्रस्याद्भुततेजसः ॥ ४० ॥ तेजसान प्रकाशन्ते दीपास्सूर्योदये यथा ॥ सप्तवाअपिसोद्वेगा बभूवुर्नष्टचे तसः ॥ ४१ ॥ नाभिगन्तुन्नद्रष्टुं च चिरन्ते नोपसर्पितुम् ॥ अभिभूता मिवात्मानं मन्यमाना अविद्विषः ॥ ४२ ॥ सर्वे ते

पहला मुख ऋग्वेद का प्रवर्तक हुआ है ॥ ३७ ॥ और उन ब्रह्माजी का दूसरा मुख यजुर्वेद का प्रवर्तक (उत्पन्न करनेवाला) हुआ है व उनका तीसरा मुख सामवेद का प्रवर्तक हुआ ॥ ३८ ॥ और इन ब्रह्माजीको चौथा मुख अथर्ववेदका प्रवर्तक हुआ है और रहस्यों समेत व संग्रहों सहित तथा अंगों व उपगों समेत इतिहासों को ॥ ३९ ॥ व वेदोंको पांचवें मुखसे पढ़कर उन ब्रह्माजी ने रचा है और अद्भुततेजवाले उस मुखके तेजसे समस्त देवता व दैत्य नहीं प्रकाशित होते थे जैसे कि सूर्योदय में दीपक नहीं शोभित होते हैं पुत्रों समेत भी वे देवता नष्ट ज्ञानवाले होकर उद्वेग (दुःख) समेत हुये ॥ ४० ॥ और बहुत देर तक वे सामने जाने

के लिये व देखने के लिये तथा समीप में जाने के निमित्त न समर्थ हुये और अपना को तिरस्कृतसे मानते हुये शत्रुवासे रहित ॥ ४२ ॥ उन सब देवताओं ने अपने हितकी सम्मति किया कि ब्रह्मा के तेजसे बुद्धिरहित हम लोग सदाशिवजी की शरण में प्राप्त होते हैं ॥ ४३ ॥ क्या उसके स्थान को हम नहीं जानते हैं कि जहां पर स्थित उन सदाशिवजीको इस समय हम लोग भक्ति से देखेंगे अन्य किसी उपाय से न देखेंगे ॥ ४४ ॥ इस प्रकार सम्मति कर उस समय हाथोंको जोड़कर उन देवताओं ने उत्तम स्वर की संपदा से शिवजी की स्तुति किया ॥ ४५ ॥ देवता बोले कि हे देवदेवेश ! तुम्हारे लिये नमस्कार है हे महेश्वरजी ! आपके लिये नम-

मन्त्रयामासुर्देवावैहितमात्मनः ॥ गच्छामशरणन्देवं निष्प्रज्ञाब्रह्मतेजसा ॥ ४३ ॥ कितस्यैव न जानीमः स्थानं यत्र व्यवस्थितम् ॥ तम्भीममन्नद्रक्ष्यामो भक्त्या नान्येन केनचित् ॥ ४४ ॥ एवं संमन्यते देवाः कृताञ्जलिपुटास्तदा ॥ चक्रुः स्तोत्रं महेशस्य परयास्वरसम्पदा ॥ ४५ ॥ देवा ऊचुः ॥ नमस्ते देवदेवेश महेश्वर नमो नमः ॥ न विद्मः परमं मूढा अभिधानं तवा तुलम् ॥ ४६ ॥ यद्योगेन परं ब्रह्म भूतानां त्वं सनातनः ॥ प्रतिष्ठा सर्वभूतानां हेतुस्सर्वस्य सर्जन ॥ ४७ ॥ विभर्तै चैव नेत्रस्थानसोमसूर्या विभावसून् ॥ नामसंस्कर्तुना देव मुच्यन्ते जन्तवोऽशुभात् ॥ ४८ ॥ पृथिव्यम्ब्वग्निचन्द्रार्कव्योमवायूपलक्षणाः ॥ मूर्तयस्ते महादेव व्याप्तमाभिरशेषतः ॥ ४९ ॥ रजः सत्त्वतमो भावैर्भ्राम्यमाणं त्वया जगत् ॥ नावबुध्यति सर्वेश सर्वमूर्तिधरो यतः ॥ ५० ॥ ब्रह्मादीनां सुरेशानां सम्मोहनविमोहनः ॥ त्वङ्करोषि युगावर्तं काले काले च

स्कार है नमस्कार है हम लोग मूढ़ तुम्हारे अभित तथा उत्तम नामको नहीं जानते हैं ॥ ४६ ॥ कि जिसके योग से परब्रह्म से लगाकर प्राणियों के तुम सनातन देव हो और सब प्राणियोंकी प्रतिष्ठा व सबके रचने में कारण हो ॥ ४७ ॥ और नेत्रोंमें टिके हुये चन्द्रमा सूर्य व अग्नि को धारण या पालन करते हो व आपके नाम की कीर्तन करने से प्राणी अशुभमे छूटजाते हैं ॥ ४८ ॥ हे महादेवजी ! पृथ्वी, जल, अग्नि, चन्द्रमा, सूर्य, आकाश व पवन लक्षणोंवाली तुम्हारी मूर्तियां हैं व इन से सब व्याप्त है ॥ ४९ ॥ हे सर्वेश ! तुम से रजोगुण, सत्त्वगुण व तमोगुणभावसे भ्रमाया हुआ संसार ज्ञानको नहीं प्राप्त होता है क्योंकि सब मूर्तियों के धारनेवाले

हो ॥ ५० ॥ और तुम ब्रह्मादिक देवों का संगोह व विमोह याने अज्ञान व ज्ञान करते हो और समय समय में असह्य युगावर्तको करते हो ॥ ५१ ॥ सनत्कुमारजी बोले कि देवता, ऋषि, पितर व मनुष्यों से इस प्रकार भलीभांति स्तुति किये जातेहुये ये सदाशिवजी अन्तर्द्धान होकर यह बोले कि हे देवताओ ! जैसा मनोरथ हो वैसा कहिये ॥ ५२ ॥ देवता लोग बोले कि हे शिवजी ! हमलोग सदैव तुम्हारे प्रत्यक्ष दर्शनकी प्रार्थना करते हैं और दयासे हम लोगोंको आप वरदान भी दीजिये ॥ ५३ ॥ क्योंकि हम लोगों का बड़ा प्रभाव था और हमलोगों का जो पराक्रमथा वह सब पांच मुखोंवाले ब्रह्मा के तेज से ग्रसित होगया ॥ ५४ ॥ हे महेश्वर,

दुस्सहम् ॥ ५१ ॥ सनत्कुमारउवाच ॥ एवं संस्तूयमानोसौ देवर्षिपितृमानवैः ॥ अन्तर्हित उवाचेदं देवाब्रूत यथेप्सितम् ॥ ५२ ॥ देवा ऊचुः ॥ प्रत्यक्षं दर्शनं स्थाणो प्रार्थयामस्सदा तव ॥ त्वया कारुण्यतोस्माकं वरश्चापि प्रदीयताम् ॥ ५३ ॥ यदस्माकं महद्द्वैतं यश्चास्माकं पराक्रमः ॥ तत्सर्वं ब्रह्मणोऽग्रस्तं पञ्चमास्यस्य तेजसा ॥ ५४ ॥ विनेशुस्सर्वे ते जांसि त्वत्प्रसादात्पुनर्विभो ॥ जायन्ते तेऽद्यथा पूर्वं तथा कुरु महेश्वर ॥ ५५ ॥ सनत्कुमारउवाच ॥ प्रत्यक्षं दर्शनं दत्त्वा देवानामनुकम्पया ॥ प्रसन्नवदनो भूत्वा देवैश्चापि नमस्कृतः ॥ ५६ ॥ आश्वस्य च सुरान्सर्वान् सह देवैर्महेश्वरः ॥ प्रत्यक्षमेत्यप्यश्वाच्च चर्चितः शर्व एव हि ॥ ५७ ॥ जगाम तत्र यन्नासौ रजो हङ्कारमूर्तिमान् ॥ देवाः स्तुवन्तो देवेशं परिवार्य उपाविशन् ॥ ५८ ॥ ब्रह्मा तमागतन्देवं न जज्ञेत मसावृतः ॥ सूर्यकोटि सहस्राणां तेजसारञ्जय उज्जगत् ॥ ५९ ॥ तदा दृश्यत विद्वा

विभो ! सब तेज नष्ट होगये जिस प्रकार तुम्हारी प्रसन्नता से पहलेकी नाई फिर तेज उत्पन्न होवै वैसाही कीजिये ॥ ५५ ॥ सनत्कुमारजी बोले कि देवताओं को दयासे प्रत्यक्ष दर्शन देकर प्रसन्नमुखवाले होकर देवताओं से प्रणाम कियेगये ॥ ५६ ॥ और सब देवताओं को आश्वासन कर प्रत्यक्ष में प्राप्त होकर पश्चात् देवताओं समेत महादेवजी चले ॥ ५७ ॥ और ये शिवजी वहां गये जहां कि रजोगुण से अहंकार की मूर्तिको धारण किये ब्रह्माजी थे और देवेश शिवजीकी स्तुति करते हुये देवता घेर कर समीप बैठ गये ॥ ५८ ॥ अज्ञानसे धिरेहुये ब्रह्माजीने उन आयेहुये शिवदेवजीको न जाना और उन शिवजी ने करोड़ों हजार सूर्यों के तेज से संसार

को रंगदिया ॥ ५६ ॥ उस समय विश्वभोगी व विद्वात्मा तथा विश्वभावन शिवजी देख पड़े और उन शिवजी ने बैठे हुये ब्रह्मा व सब देवमण्डल को तेज से तिरस्कार करते हुये ब्रह्माके आगे स्थित हुये और शिवजीके तेजसे तिरस्कृत ब्रह्माका मुख नहीं शोभित होताथा ॥ ६० ॥ ६१ ॥ जैसे कि रात्रिमें प्रकाशसंयुत किरणों वाला चन्द्रमा सूर्योदय में नहीं शोभित होता है इसके अनन्तर अहंकार समेत ब्रह्माजी ने सनातन शिव देव पुत्रको देखकर ॥ ६२ ॥ उनके तेज से धिरेहुये उन्होंने ने हाथही से उन शिवदेवजी को प्रणाम किया तदनन्तर भगवान् चन्द्रभालजीने श्रद्धाहास छोड़ा ॥ ६३ ॥ व सब देवताओं के देखते व सुनतेहुये भयंकर वचन कहा

त्मा विश्वसुगिविश्वभावनः ॥ सपितामहमासीनं सकलन्देवमण्डलम् ॥ ६० ॥ तेजसाभिभवन्नद्रः स्वयम्भोरग्रतःस्थितः ॥ रुद्रतैजोभिभूतञ्च ब्रह्मवक्त्रं नराजते ॥ ६१ ॥ रात्रौ प्रकाशकिरणश्चन्द्रसूर्योदयेयथा ॥ सगर्वोत्थात्मजं दृष्ट्वा रुद्रन्देवं सनातनम् ॥ ६२ ॥ अभिवन्दे करैरेव देवतत्तेजसाहृतः ॥ ततोऽदृष्ट्वा संभगवान् मुमोच शशिशेखरः ॥ ६३ ॥ पश्यतां स वेदेवानां शृण्वतां वाचमुत्कटाम् ॥ तेनादृष्ट्वा सशब्देन मोहयित्वा पितामहम् ॥ ६४ ॥ तेजोराशिः शशाङ्कामः शशाङ्काकां गिनलोचनः ॥ वामाङ्गुष्ठनखाग्रेण ब्रह्मणः पञ्चमं शिरः ॥ ६५ ॥ चकर्त कदलीगर्भे नरः कररुहैरिव ॥ द्विद्यमानं च वक्त्रं च बुबुधेन पितामहः ॥ ६६ ॥ रुद्रस्य तेजसा तस्मान्मोहितो न न तिङ्गतः ॥ विन्नतस्य शिरः पश्चाद् रुद्रहस्ते स्थितं तदा ॥ ६७ ॥ अपश्यद्देवतैः सार्द्धैर्द्रव्चातिभयाज्ज्वलत् ॥ महेश्वरकरान्तस्थं नखैर्वक्त्रं विराजते ॥ ६८ ॥ ग्रहमण्डलमध्यस्थो

व उस अदृष्टास के शब्द से ब्रह्मा को मोहकर ॥ ६४ ॥ चन्द्रमा के समान शोभावाले व तेजों की राशि तथा चन्द्रमा, सूर्य व अग्नि नेत्रोंवाले शिवजी ने बायें अंगूठे के नखके अग्रभागसे ब्रह्माके पांचवें मस्तकको काट डाला ॥ ६५ ॥ जैसे कि मनुष्य नखों से केला के अन्तर्भागको काट डालता है और काटेजाते हुये मुखको ब्रह्मा ने नहीं जाना ॥ ६६ ॥ इसलिये शिवजी के तेजसे मोहित ब्रह्माजी नतिको न प्राप्त हुये याने उन्होंने प्रणाम नहीं किया उस समय उनका कटाहुआ मस्तक शिवजी के हाथमें स्थितहुआ ॥ ६७ ॥ और देवताओं समेत उन्होंने बड़े भयसे जलतेहुये उस भयानक मस्तकको देखा कि शिवजीके हाथमें प्राप्त मुख नखोंसे शोभित है ॥ ६८ ॥

मानो ग्रहों के मण्डलके मध्य में स्थित दूमरा चन्द्रमा है कपालसे संयुत चन्द्रभालजी ने उसको ऊपर ५ नृत्य किया ॥ ६६ ॥ जैसे कि शिखर पै स्थित सूर्यसे कैलास पर्वत होवै तदनन्तर मस्तक कट जाने पर हृष्टपुष्ट देवता वृषध्वज ॥ ७० ॥ देवदेव कपालधारी शिकी अनेक भाँति कंस्तोत्रोंसे स्तुति किया देवता लोग बोले कि कपाली व शंखधारी महाकालजीके लिये नित्यही प्रणामहै ॥ ७१ ॥ ऐश्वर्य व ज्ञानसे संयुत तथा स सुखोंको देनेवाले व गर्भविनाशक तथा सर्व देवमय के लिये नमस्कारहै ॥ ७२ ॥ तुम कालके संहार करनेवाले हो उसीकारण महाकाल हो और भक्तोंके दुःखोंके करनेवाले हो उसीसे दुःखसे विकल मनुष्य रुचता

द्वितीयश्चन्द्रमाः ॥ उत्तिष्ठत्यतत्कपालेन ननर्तशशिशेखरः ॥ ६९ ॥ शिखरेनसूर्येण कैलासइवपर्वतः ॥ छिन्नेव
ऋततोदेवा हृष्टपुष्टावृषध्वजम् ॥ ७० ॥ तुष्टुबुर्विविधैःस्तोत्रैर्देवदेवंकपालिनः देवाऊचुः ॥ नमःकपालिनेनित्यं
महाकालायशङ्घिने ॥ ७१ ॥ ऐश्वर्यज्ञानयुक्ताय सर्वभोगप्रदायिने ॥ नमोदर्पभाशाय सर्वदेवमयायच ॥ ७२ ॥
कालसंहारकर्तात्वं महाकालस्ततोहासि ॥ भक्तानांदुःखशमनो दुःखार्तस्तेनरेते ॥ ७३ ॥ शङ्करोप्याशुभक्तानां
तेनत्वंशङ्करःस्मृतः ॥ छित्त्वाब्रह्मशिरोयस्मात्कपालंचविभर्तिच ॥ ७४ ॥ तेनत्वंकपालीत्वं स्तुतोह्यद्यप्रसीदनः ॥
एवंस्तुतःप्रसन्नात्मा देवानुत्थायशङ्करः ॥ ७५ ॥ वृन्दारकेशोभगवांस्तत्रैवान्तरायत ॥ ७६ ॥ शशिशकलमयू
खैर्मांसितोयत्कपर्दस्त्वमलग्नगगनगङ्गातोयवीचीविचयः ॥ विधृतसितकपालोमालयश्चकास्ति सजयतिजितवेधाऊ
र्जितःप्राज्यतेजाः ॥ ७७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे ब्रह्मशिरश्छेदोनामद्वितीप्रोद्ध्यायः ॥ २ ॥ *

है ॥ ७३ ॥ और शीघ्रही भक्तोंका कल्याण करनेवाले हो उसीसे शंकर कहेगये हो और जिस लिये ब्रह्माका मस्तक काटकर ग्वालको धारण करते हो ॥ ७४ ॥ उस कारण हे देव ! तुम कपालीहो आज स्तुति किये हुये तुम हम लोगोंके ऊपर प्रसन्न होवो इसप्रकार स्तुति किये हुये प्रसन्न मनवाले सदाशिवजी देवताओंको उठाकर ॥ ७५ ॥ भगवान् देवेश शिवजी वहाँ अन्तर्द्धान् होगये ॥ ७६ ॥ चन्द्रखण्डकी किरणों से जिनका जटाजूट प्रकाशित है व निर्मल ओकाशगंगा के जल की लहरियों में दूँदने योग्य व श्वेत कपाल को धारे व माला से शोभितहै ब्रह्मा को जीतेहुये व बड़ेभये वे बहुत तेजवाले शिवजी जयको प्राप्तहोवें ॥ ७७ ॥ इति द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

दो० । ब्रह्मासन जिमि विष्णुजी, प्रायश्चित्त विधान ! कछो तीसरे में सोई, चरित प्रमोद निधान ॥ सनत्कुमारजी बोले कि तदनन्तर मस्तक कटने पर क्रोध व मोह से धिरे ब्रह्माजी ने मस्तक में उपजेहुये पसीने को लेकर पृथ्वी में पटक दिया ॥ १ ॥ और उनके पसीने से कुण्डलों को धारण किये व धनुष समेत तथा बड़े भारी तरकस समेत और सोने की कवच समेत पुरुष पैदा हुआ और वह बोला कि मैं क्या करूं ॥ २ ॥ शिवजी को दिखलते हुये ब्रह्माजीने उससे कहा कि पराक्रम से इस दुर्बुद्धि को मारडालो कि जिस प्रकार फिर न उत्पन्न होवै ॥ ३ ॥ ब्रह्माके वचन को सुनकर बड़े क्रोध को धारण किये व बाण को हाथ में लिये वह वीर

सनत्कुमारउवाच ॥ अग्निवक्त्रेततोब्रह्मा क्रोधेनतमसावृतः ॥ ललाटेस्वेदमुत्पन्नं हीत्वाताडयद्भुवि ॥ १ ॥ तत्स्वेदात्कुण्डलीजज्ञे सधनुस्समहेषुधिः ॥ सस्वर्णकवचोवीरः किङ्करोमीत्युवाचह ॥ २ ॥ तमुवाचविराञ्चिस्तु दर्शयन्नद्रमोजसा ॥ वध्यतामेषदुर्बुद्धिर्जायतेनयथापुनः ॥ ३ ॥ ब्रह्मणोवचनंश्रुत्वा धनुरुद्यम्यष्टतः ॥ सप्रतस्थेमहेशस्य बाणहस्तोतिरोषभृत् ॥ ४ ॥ सदृष्ट्वापुरुषंचोग्रममवद्विस्मितोभवः ॥ दिव्यबाणधनुर्हरवेगविक्रान्तगामिनम् ॥ ५ ॥ मयानवध्योतिबलो सखाविष्णोर्भविष्यति ॥ अनुग्राह्योह्यहन्तेन सख्यर्थतपसिस्थिः ॥ ६ ॥ चिन्तयन्नित्थमीशोपि विष्णोराश्रममभ्यगात् ॥ हुङ्कारध्वनिनाब्रह्मन् मोहयित्वाततो नरम् ॥ ७ ॥ प्रयावतदाहृष्टः क्रीडांकुर्वज्जगत्स्थितौ ॥ यन्नारायणः श्रीमांस्तपस्तेपेप्रतापवान् ॥ ८ ॥ अदृश्यस्सर्वभूतानां विःस्माविश्वसृग्विभुः ॥ तत्रप्राप्तोवि

धनुष को चढ़ाकर शिवजीके पीछे चला ॥ ४ ॥ और दिव्य बाण व धनुष को हाथमें धारे तथा वेगसे बहुत चलते भयंकर पुरुषको देखकर सदाशिवजी विस्मित हुये ॥ ५ ॥ और उन्होंने यह विचार किया यह बड़ा बलवान् मुक्त से मारने योग्य नहीं है और यह विष्णुमेव होगा व उन विष्णुजी से मित्रता के लिये तपस्या में स्थित मैं दया करने के योग्य हूं ॥ ६ ॥ इस प्रकार चिन्तन करते हुये शिव भी विष्णुजी के आश्रयगये तदनन्तर हे ब्रह्मन् ! हुंकारके शब्दसे नरको मोहित कर ॥ ७ ॥ संसार के पालन में क्रीड़ा करते हुये प्रसन्न शिवजी उस समय चलेही जाते थे जहां कि श्रव प्रतापवान् नारायणजी ने तप किया है ॥ ८ ॥

जोकि समस्त प्राणियों के अदृश्य व विश्वात्मा तथा संसारको रचनेवाले व समर्थथे वहाँ पर प्राप्तहोकर साजी ने विष्णुजीको देखा ॥ ९ ॥ जोकि पृथ्वी में एक अंगूठे से स्थित व तपस्या में परायण तथा व्याधिरहित थे और युगान्त में हजारसूर्यों के तेज से घिरे व अरूप थे ॥ १० ॥ पवित्र आधार (आसन) से संयुत पुराणपुरूपोत्तम नारायणजी को देखकर सदाशिव देवजी ने कपाल को आगे दिखलाकर यह कहा कि को दीजिये विष्णुजी ने जलती हुई अग्निके समान स्थित व कपाल को हाथमें लिये रुद्रजी को देखकर चिन्तन किया ॥ ११ ॥ १२ ॥ कि इस समय भिक्षा दानव्य अन्य कौन भिक्षुक है यह योग्य है ऐसा सङ्कल्प

रूपाक्षो ददर्शमधुसूदनम् ॥ ९ ॥ एकाङ्गुष्ठस्थितम्भूमौ तपोरतमनातुरम् । आन्तार्कसहस्रस्य तेजसावृतमदृशु तम् ॥ १० ॥ पुरयाधारसमायुक्तं पुराणपुरुषोत्तमम् ॥ दृष्ट्वानारायणंदेवो भिन्देहीत्युवाचह ॥ ११ ॥ कपालंद्रु शयित्वाग्रं ज्वलज्ज्वलनवात्स्थितम् ॥ कपालपाणिंसमप्रक्ष्य रुद्रं विष्णुरचिन्त ॥ १२ ॥ कोन्ययोग्यो भवेद्ब्रिह्म भिक्षादानस्य साम्प्रतम् ॥ योग्योयमितिसङ्कल्प्य दक्षिणं भुजमपयत् ॥ १३ ॥ भेदान्तर्गतज्ञस्तं शूलेन शशिशेखरः ॥ ततो प्रवाहउत्पन्नश्शोणितस्य विमोर्भुजात् ॥ १४ ॥ जाम्बूनदरसाकारो वज्रवालेवनिर्मलः ॥ निष्पपातकपालान्तः शम्भुना संप्रतीच्छता ॥ १५ ॥ ऋज्वीगवतीक्षिप्रा दीधितिवाम्बरेखेः । पञ्चाशद्योजनादीर्घा विस्तारेदश योजना ॥ १६ ॥ दिव्यवर्षसहस्रं सा समुवाहहरेर्भुजात् ॥ कियन्तं कालमीशो हि भिन्नां जग्राह भावितः ॥ १७ ॥ दत्ता नारायणेनाथ सत्पत्रे पात्र उत्तमे ॥ ततो नारायणः प्राह हरं परमिदं वचः ॥ १८ ॥ सम्पूर्णं तव पात्रं हि ततो वै परमेश्वरः ॥

कर दाहिनी मुजाको दिया ॥ १३ ॥ व चित्तके भीतर के जाननेवाले चन्द्रमालजीने त्रिशूल से उस भुजाको छेदन किया तदनन्तर व्यापक विष्णुजी की मुजा से रक्तका प्रवाह पैदा हुआ ॥ १४ ॥ और सुवर्णके समान आकारवाला व अग्निकी ज्वालाके समान निर्मल प्रवाह कपाल के भीतर गिरा और ग्रहण करते हुये उन शिव जीसे ॥ १५ ॥ वह सीधी तथा वेगवती क्षिप्रा नदी पचास योजन लम्बी व दशयोजन चौड़ी आकाश में सूर्यनारायणकी किरणकी नाई शोभित हुई ॥ १६ ॥ और देवताओं के हजार वर्ष तक वह नदी विष्णुजी की मुजा से बही और कितेक समय तक शुद्ध चित्तवाले शिवजी ने नारायण से उत्तम पात्र में दी हुई भिक्षाको ग्रहण

किया तदनन्तर विष्णुजी ने महादेवजी से इस उत्तम वचन को कहा ॥ १७ ॥ १८ ॥ कि तुम्हारा पात्र पूर्ण होगया तदनन्तर परमेश्वर सदाशिवजी जल समेत मेघके समान विष्णुजी का वचन सुनकर ॥ १९ ॥ व चन्द्रमा सूर्य तथा अग्नि नेत्रोंवाले और मस्तक में चन्द्रमा से शोभित व अंगुली से घोटते हुये शिवजी ने तीनों नेत्रों से दृष्टिको कपाल से लगाकर विष्णुजी से कहा कि कपाल बहुत पूर्ण होगया विष्णुजीने शिवजी का वचन सुनकर रक्तकी धाराको हरलिया ॥ २० ॥ २१ ॥ व सदाशिवजी ने कपाल में स्थित विष्णुजीके रक्तको देवताओं के हजार वर्षोंतक दृष्टिपातपूर्वक याने दृष्टिको लगाकर अपनी अंगुली से मथा ॥ २२ ॥ तदनन्तर रुधिर के

सतोयाम्बुदनिर्घोषं श्रुत्वावाक्यंहरहरः ॥ १९ ॥ शशिसूर्याग्निनयनः शशिशेखरशंभितः ॥ कपालेदृष्टिमावेक्ष्य त्रिभिर्नैर्वर्जनादर्नमः ॥ २० ॥ अङ्गुल्याघट्टयन्प्राह कपालं चातिपूरितम् ॥ श्रुत्वाहारिशम्भुवाक्यं रक्तधारां समाहरत् ॥ २१ ॥ कपालस्थं हररीशः स्वाङ्गुल्यारुधिरन्तथा ॥ दिव्यवर्णसहस्रं च दृष्टिपातमभयत् ॥ २२ ॥ मथ्यमानैततोरक्ते कललं बुद्बुदं क्रमात् ॥ बभूव च ततः पश्चात् किरीटी सशरासनः ॥ २३ ॥ सहस्रवर्त्तकाजो धनुर्ज्योत्संस्पृशन्मुहुः ॥ बभूव तूणीरधरो दृषस्कन्धोऽङ्गुलित्रवान् ॥ २४ ॥ पुरुषोर्जुनसङ्काशो दिव्यमूर्तिर्दिवह ॥ तन्दृष्ट्वा भगवान् विष्णुः प्राह रुद्रमिदं वचः ॥ २५ ॥ कपाले भगवन्वकोयं प्रादुर्भूतो भवन्नरः ॥ उक्तिं श्रुत्वा हररीशमुवाच हरेश्च ॥ २६ ॥ नरो नामेति पुरुषः परमास्त्रविदां नरः ॥ यस्त्वयोक्तो नर इति नरस्तस्माद्भविष्यति ॥ २७ ॥ नरनयणौ चोभौ युगे ख्यातौ भविष्यतः ॥

मथने पर कलल व बुद्बुद क्रमसे हुआ तदनन्तर पश्चात् किरीट को धारण किये व धनुष समेत पुरुष उत्पन्ना ॥ २३ ॥ व धनुषकी पनचको बार २ स्पर्श करता हुआ वह हजार मुजाओंवाला व वृष के समान कन्धेवाला और अरुण नेत्रोंवाला तथा तरकस को धारण किये था ॥ २४ ॥ अर्जुन के समान दिव्य मूर्तिवाला वह पुरुष हुआ व उसको देखकर भगवान् विष्णुजीने रुद्रजी से यह वचन कहा ॥ कि हे भगवन् ! कपालमें यह कौन पुरुष प्रकट हुआ है विष्णुजी के वचन को सुनकर उनसे बोले कि हे हरे ! छुनिये ॥ २६ ॥ कि नर नामक ऐसा पुरुष पर का जाननेवाला है जो तुमसे नर ऐसा कहा गया

उससे नर होगा ॥ २७ ॥ और नर नारायण दोनों युग में अखण्ड होवेंगे देवकायोंके होने पर समर में वत्के पालन में ॥ २८ ॥ हे नारायणजी ! यह नर तुम्हारा मित्र होगा व तुम्हारे इकल्ले महासुनि की मित्रतामें तपस्याके ॥ २९ ॥ व विज्ञान की परीक्षा के बिसार में तेज होगा अधिक तेजवाला यह ब्रह्मा का दिव्य पंचम शिर ॥ ३० ॥ ब्रह्मा के तेज से प्रकाशित है और तुम्हारी मुजाके रक्तसे व मेरी दृष्टिके पड़ने से तीन तेजहैं इस कारण ॥ ३१ ॥ उनके संयोग से उत्पन्न यह युद्धमें शत्रुओं को जीतैगा और जो तुम्हारे अवस्थ होंगे और अन्य जो इन्द्र के दुःख से जीतनेवा होंगे उन दैत्योंको यह भयंकर होगा इस प्रकार

संग्रामेदेवकार्येषु लोकानांपरिपालने ॥ २८ ॥ एषनारायणसखा नरस्तवर्भगिति ॥ तवएकाकिनःसख्ये तपसश्च
महामुनेः ॥ २९ ॥ विज्ञानस्यपरीक्षायै तेजोलोकेभविष्यति ॥ तेजोधिकमिदंयं ब्रह्मणःपञ्चमंशिरः ॥ ३० ॥ तेज
साब्रह्मणोदीप्तं भुजस्यतवशोणितात् ॥ ममदृष्टिनिपातचत्रीणितेजांसियान्यत ३१ ॥ तत्संयोगात्समुत्पन्नः शत्रून्
युद्धेजयिष्यति ॥ अबध्यायेभविष्यन्ति दुर्जयास्तवचापरे ॥ ३२ ॥ शक्रस्यचामरीणां तेषामेपभयङ्करः ॥ एवमुक्तव
तश्शम्भोर्विस्मितस्तस्यतेजसा ॥ ३३ ॥ हररपिसतत्रैव तुष्टावहरकेशवौ ॥ नमोद्धरेतुभ्यं नमःशङ्करविष्णवे ॥ ३४ ॥
नमस्तेशूलहस्ताय नमस्तेखड्गपाणये ॥ नमोनमस्तेमेध्याय हृषीकेशनमोस्तुते ३५ ॥ नमोस्तुवाचांपतये श्रीधरा
यनमोनमः ॥ एवंस्तुवन्तंतंव्यास कृताञ्जलिपुटन्नरम् ॥ ३६ ॥ तथैवाञ्जलिसंबद्धंहीत्वाधुकरद्वयम् ॥ उद्धृत्याथक
पालातु पुनर्वचनमब्रवीत् ॥ ३७ ॥ यएवपुरुषोरौद्रो ब्रह्मणःस्वेदसम्भवः ॥ सतुहुङ्कारवद्देन मोहनिद्रामुपागतः ॥ ३८ ॥

कहते हुये उन सदाशिवजी के व विष्णुजी के भी तेज से विस्मय में प्राप्त उसने वही पर महादेव व विष्णुजीकी स्तुति किया कि हे हर, हे ! तुम्हारे लिये नमस्कार है व शङ्कर तथा विष्णुजी के लिये प्रणाम है ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ त्रिशूल हाथवाले तुम्हारे लिये प्रणाम है व तलवा को हाथ में धारे हुये तुम्हारे लिये नमस्कार है पवित्ररूप आपके लिये प्रणाम है हे हृषीकेश ! तुम्हारे लिये प्रणाम है ॥ ३५ ॥ वाचस्पति आपके लिये प्रणाम है व श्रीधर आपके लिये नमस्कार है हे व्यासजी ! हाथोंको जोड़े इस प्रकार स्तुति करते हुये उस नरके ॥ ३६ ॥ वैसेही अंजली में बंधेहुये दोनों हाथों को पकड़कर व कपालसे ऊपर निकालकर फिर शिवजी वचन

बोले ॥ ३७ ॥ कि ब्रह्मा के पसीने से उपजा हुआ जो भयंकर पुरुष है वह हुंकार के शब्द से मोहिनिद्राको प्राप्त हुआ है ॥ ३८ ॥ उसको शीघ्रही जगावो ऐसा कहकर शिवजी अन्तर्द्वान् होगये और नारायणके सामने शीघ्रही बाये चरण से मारकर उसको जगाया और वह नर क्रोधसे उठा व पसीना तथा रक्तसे उपजे हुये उन दोनों का बडा भारी युद्ध हुआ ॥ ३९ । ४० ॥ कि जिस युद्धमें चढ़ाये हुये धनुषों के शब्दों से सब भूतल शब्दयमान होगया पसीना से उपजे हुये नरके एक कवच व रक्तसे उपजे हुये पुरुषके दो मुजायें क्षप रहीं ॥ ४१ ॥ इसप्रकार हे सुद्विज ! तुल्य होने के कारण पृथ्वी दिव्य युद्ध हुआ व तीन वर्ष कम दश सौ वर्षों

निबोधतंचत्वरितमित्युक्तवान्तर्दधेहरः ॥ नारायणस्यप्रत्यक्षं बोधयामासस्त्राङ्गनरम् ॥ ३९ ॥ वामपादेनतंहत्वा समुत्तस्थौनरोरुषा ॥ तयोर्युद्धंसमभवत्स्वेदरक्तजयोर्महत ॥ ४० ॥ विस्फारितधनुश्शब्दोदितारोषभूतलम् ॥ कवचंस्वेदजस्यैकं रक्तजस्यतथासुजौ ॥ ४१ ॥ एवंसमेनवैयुद्धं दिव्यंजातन्तुभूतले ॥ त्रिवर्षोनिवर्षाणां शतानिदशसुद्विज ॥ ४२ ॥ युद्धवतोस्समतीतानि स्वेदरक्तजयोर्युने ॥ रक्तजोद्विभुजोदृष्ट्वा कवचैकेनदृजम् ॥ ४३ ॥ बिभेदबाणवेगेनब्रह्मणःस्वेदजंनरम् ॥ ससंभ्रममुवाचेदं ब्रह्माणंमधुसूदनः ॥ ४४ ॥ मन्त्ररेणोच्छ्रितंस्त्वदीयोविनिपातितः ॥ श्रुत्वा तदाकुलोब्रह्मा बभाषेमधुसूदनम् ॥ ४५ ॥ हरैन्यजन्मनिनरो मदीयोयदिहीय ॥ तदासहाय्यंकर्तव्यं वचनान्मम माधव ॥ ४६ ॥ तेनतुष्टेनसम्प्रोक्तं हरिणैवमविष्यति ॥ ततस्तयोरणमपि निवार्यमुवाचह ॥ ४७ ॥ अथान्यजन्मनि

तक याने नवसै सत्तानवे वर्ष स्वेदज व रक्तज के युद्ध करते हुये बीत गये हे मुने ! रक्त से उपजे हुये दो मुजाले नर ने एक कवच से संयुत पसीना से उपजेहुये पुरुषको देखकर ॥ ४२ । ४३ ॥ बाणों के वेगसे ब्रह्माके स्वेद से उपजे हुये नर को काट डाला और मधुसूदण्जीने संभ्रम समेत ब्रह्माजीसे यह कहा ॥ ४४ ॥ कि हे ब्रह्मन् ! मेरे नर से तुम्हारा बडा हुआ मनुष्य गिरा दिया गया उस वचन को सुनकर व्याकुल ब्रह्मा विष्णुजी से कहा ॥ ४५ ॥ कि हे माधव ! यदि अन्य जन्म में मेरा नर हीन होवै तो हे माधवजी ! मेरे वचन से तुमको सहाय करना चाहिये ॥ ४६ ॥ उन् विष्णुजीने कहा कि ऐसाही होगा तदनन्तर उन

दोनो के युद्धको मनाकर उन से कहा ॥ ४७ ॥ कि इसके अनन्तर अन्य जन्ममें कलियुगमें मेरा नर होगा तब महासमर होनेपर वहां मैं उसको युक्त करूंगा ॥ ४८ ॥ इसके अनन्तर विष्णुजी ने दिनेश (सूर्य) व सुरेश (इन्द्र) जीको बुलाकर तदनन्तर आपही कहा कि पसीना से उत्पन्न व रक्त से पैदा हुये अपने अंशवाले ये भयंकर नर तुम से पृथ्वी में पालन करने योग्य है और द्वापर के अन्तमें अपने अंश से उपजे हुये पृथ्वी में तुमसे युक्त करने योग्य हैं ॥ ४९ ॥ ५० ॥ तदनन्तर उस समय सुरेश इन्द्रजी, विष्णुजी से दुःखित वचन बोले कि हे देव, हेरे ! इस मन्वन्तर में त्रेता नामक युगमें ॥ ५१ ॥ सूर्यपुत्र (सुग्रीव) के हितको चाहनेवाले

नरो मदीयौ भविता कलौ ॥ ततो महारणे जाते तत्राहं योजयामितम् ॥ ४८ ॥ विष्णुनाथ समाहूय दिनेश्वर सुरेश्वरौ ॥ उक्ता विमोनरौ रौद्रौ पालनीयौ स्वयन्ततः ॥ ४९ ॥ स्वेदजातोऽप्यसृजजातः स्वकीयांशो धरातले ॥ स्वांशभूतौ द्वापरान्ते नियोज्यौ भूतले त्वया ॥ ५० ॥ ततो ब्रवीत्तदा विष्णुं सुरेशो दुःखितं वचः ॥ अस्मिन्मन्वन्तरे देव त्रेतानाम्नि युगे हरे ॥ ५१ ॥ तद्रूपेणैव महता सूर्यपुत्रा हि तार्थिना ॥ बालीनाम महाबाहुस्सुग्रीवार्थे निपातितः ॥ ५२ ॥ तेन दुःखेन तप्तोऽहं नाहंशुहामितेनरम् ॥ अग्राह्यमाणं देवं शंकाराणां न्तरवादिनम् ॥ ५३ ॥ विष्णुः प्रोवाच भववन् सुवोभारावतारणे ॥ अवतारं करिष्यामि मर्त्यलोकेऽप्यहं विभो ॥ ५४ ॥ ततो हृष्टोऽभव च्छक्रो विष्णुर्भावेन तेन वै ॥ प्रतिगृह्य नरं हृष्टस्मृत्यमस्तु वचस्तव ॥ ५५ ॥ इत्थुक्त्वा तुरवीन्द्रौ स प्रेषयित्वा च तौ पुनः ॥ गत्वा च पुनर्दरीकाञ्चो ब्रह्माणं ब्रह्म वैश्मनि ॥ ५६ ॥ उवाच चा

बड़े भारी तुम्हारे ही रूपसे बालि नामक महाबाहु वानर सुग्रीवके लिये मारा गया है ॥ ५२ ॥ उस दुःख से मैं संतप्त हूं इस लिये तुम्हारे नर को नहीं ग्रहण करूंगा दूसरे कारण को कहते व न ग्रहण करते हुये सुरेशजी से ॥ ५३ ॥ विष्णुजीने कहा कि हे विभो, भववन् ! पृथ्वी के भार को उतारने में मैं भी मृत्युलोक में अवतार करूंगा ॥ ५४ ॥ तदनन्तर उस विष्णुभाव याने विष्णुजी के होनेसे इन्द्रजी प्रसन्न हुये और प्रसन्न होकर नरको पकडकर कहा कि तुम्हारा वचन सत्य होवै ॥ ५५ ॥ ऐसा कहकर उन सूर्यनारायण व इन्द्रजी को पठाकर फिर उन कमललोचन व धर्मज्ञ विष्णुजी ने ब्रह्माके मन्दिर में जाकर उस प्रातक की शुद्धिके लिये ब्रह्माजी

से कहा कि हे ब्रह्मन् ! रुद्रको मारनेकी इच्छा करते हुये तुमने निन्दित कर्म किया ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ हे देवदेवेश ! तुमने जिस लिये क्रोध से पुरुष से कहा इसकारण पाप की शुद्धि के लिये उत्तम प्रायश्चित्त को कीजिये ॥ ५८ ॥ हे ब्रह्मन् ! तीनि अग्नियोंको ग्रहण करते हुये तुम अग्निहोत्रके उपासक होवो एक गार्हपत्य दूसरी हवनीय ॥ ५९ ॥ न तीसरी दक्षिणाग्नि है इनको तीनि खंडों में कल्पित करो और गोल वेदी पै मुझको स्थापित करो ॥ ६० ॥ और चौकोन वेदी पै ऋग्, यजुः व साम वेदके नामों से सदाशिवजी को स्थापित करो और तपस्या से अग्नि में हवन कर उसी क्षण विष्णु से अर्पण कीजिये ॥ ६१ ॥

चंधर्मज्ञस्तस्यपापविशुद्धये ॥ कृतंजुगुप्सितकर्म ब्रह्मन्नीशं जिघांसता ॥ ५७ ॥ यत्स्वयादेवदेवेश पुमान्कोपेनभाषितः ॥ शुद्धयर्थमेवपापस्य प्रायश्चित्तंपरंकुरु ॥ ५८ ॥ गृह्णन्वह्नित्रयंब्रह्मन्नाग्निहोत्रमुपासकः ॥ एकोवैगार्हपत्यस्तु द्वितीयोहवनीयकः ॥ ५९ ॥ दक्षिणाग्निस्तृतीयस्तु त्रिखण्डेषुप्रकल्पय ॥ वर्तुलेस्थापयात्मानं मामथोधनुषाकृतौ ॥ ६० ॥ चतुष्कोणेहरंदेवं ऋग्यजुःसामनामभिः ॥ हुत्वात्वग्निञ्चतपसा हरावर्पयतक्षणात् ॥ ६१ ॥ दिव्यंवर्षसहस्रंतु हुत्वाग्निं सिद्धिमाप्स्यासि ॥ प्रायश्चित्तविशुद्धात्मा प्रतिपद्यमहेऽवरम् ॥ ६२ ॥ ततोनिष्कल्मषोभूत्वा विषादस्तेगमिष्यति ॥ ६३ ॥ इत्येवमुक्त्वाहरिरुग्रतेजा गतःस्वकीयंनिलयंमहात्मा ॥ ब्रह्मापिचित्तंपसेनिधाय समादधेऽसर्वमथाच्युतोत्तम ॥ ६४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेप्रायश्चित्तनामतृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

देवताओं के हजार वर्षोंतक अग्नि में हवनकर तुम सिद्धि को पावोगे और प्रायश्चित्त से शुद्ध चित्त वाले तुम महादेवजी को प्राप्त होकर तदनन्तर पाप रहित होकर तुम्हारा दुःखजाँवगा ॥ ६२ ॥ ६३ ॥ उग्र तेजवाले महात्मा विष्णुजी यह कहकर अपने स्थान को चले गये व ब्रह्माने भी तपस्या के लिये चित्त धरकर इस के अनन्तर विष्णुजीसे कहे हुये सब कर्म को किया ॥ ६४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायाभाषटीकायां ब्रह्मणे विष्णुनाप्रायश्चित्तनिरूपणं नामतृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

दो० । कछो अग्नि उत्पत्ति को, सनतकुमार मुनीश । सोड चौथे अध्याय में, वर्णित चरित बरीश ॥ व्यासजी बोले कि जो यह नर नामक धनुषधारी पुरुष कपाल में पैदा हुआ था क्या वह विश्वकर्मा की उत्पत्ति में इस समय ऐसा उत्पन्न हुआ है ॥ १ ॥ व स्वामी शिवजी से बुद्धिपूर्वक कैसे उत्पन्न हुआ है और भगवान् विष्णुजी से ब्रह्मा से भेद के कारण कैसे उत्पन्न हुआ है ॥ २ ॥ शिव, विष्णु व ब्रह्मा के मध्यमें किससे किससे किस लिये उत्पन्न हुआ है और जो हिरण्यगर्भ ब्रह्माजी हैं जो कि चार मुखवाले पैदा हुये थे ॥ ३ ॥ उनके भी पांचवों अद्भुत मुख कैसे प्राप्त हुआ है और किसप्रकार रुद्र में मन को धारते हुये वे भगवान् ब्रह्माजी स्थित हुये हैं ॥ ४ ॥ कि जिन मूढ़

व्यासउवाच ॥ योसौकपालउत्पन्नो नरोनामधनुर्धरः ॥ किमेवंसोधुनाजात उत्पत्तौविश्वकर्मणः ॥ १ ॥ कथंरुद्रेण जनितः प्रमुण्णबुद्धिपूर्वकम् ॥ विष्णुनावाभगवता ब्रह्मणाभावभेदतः ॥ २ ॥ केनकस्मात्समुत्पन्नः शङ्कराच्युतब्रह्मणाम् ॥ ब्रह्माहिरण्यगर्भो योजातश्चतुर्मुखः ॥ ३ ॥ अद्भुतंपञ्चमंवक्त्रं कथंतस्याप्युपस्थितम् ॥ सतस्थौभगवान्ब्रह्मा कथंरुद्रेमनोदधन् ॥ ४ ॥ मूढात्मनानरोयेन हन्तुंसप्रहितोहरम् ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ महेश्वरहरीणौद्वावेवव्यासतिष्ठतः ॥ तयोरविदितनास्ति सिद्धासिद्धमहात्मनोः ॥ ५ ॥ ब्रह्मणःपञ्चमंवक्त्रं यत्तदासीन्महात्मनः ॥ तस्यैवमानसः सोग्निः शिरसातेनैवधृतः ॥ ६ ॥ योनरोब्रह्मणाप्रोक्तः सोप्यग्निस्तस्यमानसः ॥ दधारतंमहादेवः कृताङ्गुल्यन्तरान्तरे ॥ ७ ॥ पूर्वेष्टृद्व्यासमुत्पत्तिमेवंतस्यमहात्मनः ॥ तस्मात्कपालादङ्गुल्या घट्यमानादजायत ॥ ८ ॥ सतंहत्वाशरेणा

विष्णुनाले प्रभाजीने शिवजी को मारने के लिये नर को पठाया है सनत्कुमारजी बोले कि हे व्यासजी ! महादेवजी व विष्णुजी दोनों स्थित रहते हैं और उन महात्माओं को सिद्ध व अग्निः अविदित (अप्रकट) नहीं होता है ॥ ५ ॥ उस समय महात्मा ब्रह्माजी का जो पंचम मुख था उसी की वह मानसी अग्नि मस्तक से धारण की गई है ॥ ६ ॥ और जो नर ब्रह्माजी से कहा गया है वह भी उनकी मानसी अग्नि है अंगुली के मध्य में किये हुये उसी पुरुष को महादेवजी ने धारण किया है ॥ ७ ॥ पुरातन समय उन महात्मा की उत्पत्ति को इसप्रकार देखकर अंगुली से चलाये हुये उस कपाल से नर उत्पन्न हुआ ॥ ८ ॥ उसने समर में उसको मारकर

ब्रह्माके रजोगुण धारण किया और रजोगुणसे सत्त्वगुण मोहित हुआ क्योंकि प्रभु स्वच्छन्दतासे कार्य करनेवाले हैं ॥ ९ ॥ व्यासजी बोले कि हे मुनियोसे प्रणाम किये हुये भगवन् सनत्कुमारजी ! अग्नि कैसे उत्पन्न हुई है जिसको शिवजी ने धारण किया इसको विस्तारसे कहिये ॥ १० ॥ सनत्कुमारजी बोले कि पहले अव्यक्तादि-
कों को रचा और वह अण्ड होगया और सुवर्ण के समान शोभावाले लोकों के पितामह ब्रह्माजी पैदा हुये हैं ॥ ११ ॥ वे ब्रह्माजी देवताओं के हजार वर्षों तक बड़ी तपस्या कर भली भांति स्थित हुये इसके अनन्तर उन्होंने भूसुतः स्वः इस श्रुतिको कहा ॥ १२ ॥ पश्चात् श्रुति के योग से मनसे अग्नि उत्पन्न हुई जब पृथ्वी

जो ब्रह्मणोनिहितंरजः ॥ सुमोहरजसासत्त्वं यदृच्छाकृत्प्रभुर्यतः ॥ ९ ॥ व्यासउवाच ॥ कथमग्निःसमुत्पन्नो योनिःश
र्वेणधारितः ॥ विस्तरणसमाचक्ष्व भगवन्नुनिवन्द्ित ॥ १० ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ अव्यक्तादीन्ससर्जादावण्डहितदजा
यत ॥ जज्ञेसौवर्णवर्णाभो ब्रह्मालोकपितामहः ॥ ११ ॥ स्वयम्भूःसतपस्तप्त्वा दिव्यवर्षशतंमहत् ॥ संतस्थोव्याजहा
राथभूभुवःस्वरितिश्रुतिः ॥ १२ ॥ श्रुतियोगात्तुमनसः पश्चादग्निरजायत ॥ अधोमुखःपपाताग्निः पृथिवीनिर्दहन्त्य
दा ॥ १३ ॥ पाणिभ्यांब्रह्मणासोऽग्निर्भूमेरूधर्वनिवेशितः ॥ ततोदक्षिणहस्तेन वेद्यामग्निःप्रणीयते ॥ १४ ॥ पुरापतन्नधो
ज्वाल ऊर्ध्वज्वालोयतोधृतः ॥ उत्तानश्चकृतोयस्माद्ब्रह्मणानिर्मितस्त्रिधा ॥ १५ ॥ ज्वालाभिःप्रज्वलन्नुर्ध्वं सर्वश
ब्दःस्फुलिङ्गवान् ॥ हिरण्यवर्णब्रह्माणं सउवाचाग्निरुत्कटम् ॥ १६ ॥ किमर्थंतुमयादेव भूमिमक्ष्यंनिवारितम् ॥ बुभु
क्ष्याहमाविष्ट आहारोमेप्रदीयताम् ॥ १७ ॥ एवमुक्तोऽग्नयेब्रह्मा स्वरोमाणिजुहावसः ॥ कृशश्चखादन्नग्निस्तु सर्वरो

को जलाती हुई अग्नि नीचे मुखकर गिरी ॥ १३ ॥ तब उस अग्निको ब्रह्माने हाथोंसे भूमि के ऊपर धारण किया उसीकारण वेदी के ऊपर दाहिने हाथसे अग्नि
लाई जाती है ॥ १४ ॥ पहले गिरती हुई नीचे ज्वालावाली अग्नि जिसलिये ऊपर ज्वालावाली धारण कीगई व जिस लिये उत्तान कीगई उसीकारण ब्रह्मा से तीन
प्रकार की अग्नि निर्माण कीगई ॥ १५ ॥ ज्वालाओं से ऊपर जलती हुई चिनगारियोंवाली व सब शब्दोंवाली अग्नि ने सुवर्ण के समान रंगवाले उन ब्रह्मा
से उग्रतापूर्वक कहा ॥ १६ ॥ कि हे देव ! मुझ से भूमि में भक्षण करने योग्य वस्तु किसलिये मना कीगई मैं तुम्हा से संयुतहूँ इस लिये मुझको भोजन

दिया जावे ॥ १७ ॥ इसप्रकार कहे हुये उन ब्रह्माजीने अग्निके लिये अपने रोसो को हवन किया और ब्रह्माके सब रोमोको खाते हुये दुबले अग्नि देवजी ॥ १८ ॥ बोले कि मेरी न तृप्ति हुई और न मेरे शरीर को आनन्द हुआ तब ब्रह्मा ने त्वचाको हवन किया व अग्नि ने उसको खालिया ॥ १९ ॥ तदनन्तर अग्नि ने उन ब्रह्माजी से कहा कि मेरी तृप्ति न हुई तब ब्रह्माजी ने त्वचा से काटकर अपने मांसों को हवन किया ॥ २० ॥ अग्नि जी बोले कि मेरी तृप्ति न हुई और न मेरे शरीर को आनन्द हुआ तब ब्रह्माजी ने अस्थियों को हवन किया व उन अस्थियोंको खाते हुये अग्निजी बुधित रहे ॥ २१ ॥ तदनन्तर शरीरधारी ब्रह्माजी अग्नि

माणिब्रह्मणः ॥ १८ ॥ अब्रवीच्चनमेतृप्तिर्नचमेदेहनिर्धृतिः ॥ त्वचं जुहाव ब्रह्मास चखादाग्निस्तमेव च ॥ १९ ॥ अब्रवीत्तं ततो वह्निस्तृप्तिर्नास्ति ममैव हि ॥ जुहावस्वानि मां सानि त्वचोत्कृत्य प्रजापतिः ॥ २० ॥ अब्रवीच्चनमेतृप्तिर्नचमेदेहनिर्धृतिः ॥ ततो वह्निस्तृप्तिर्नचमेदेहनिर्धृतिः ॥ ततो ब्रह्मा हुताशेन कृतो देही विधातुकः ॥ तमदेहमथो वह्निं ब्रह्माणमवदक्षसः ॥ २२ ॥ अहो ब्रह्मन्नमेतृप्तिर्नचमेदेहनिर्धृतिः ॥ कुट्टेन ब्रह्मणा सोग्निर्हृकोरेण द्विधाकृतः ॥ २३ ॥ आह तूरुदतावग्नी आहारार्थं प्रजापतिम् ॥ हुंकारेण पुनर्ब्रह्मा द्विधैकैकं चकार वै ॥ २४ ॥ त्रयस्तेषां रुदन्ति तस्म रूद्रमेको हि संश्रितः ॥ क्रुद्धेन ब्रह्मणा व्यास हुंकारेणैव ताडितः ॥ २५ ॥ रोरूयमाणे चाग्नौ तु पुनर्ब्रह्मा कृपान्वितः ॥ आह कामाभिभूतानां भुङ्क्ष्व त्वं देहातवः ॥ २६ ॥ तैकाले त्वव्यकामस्य साद्यतिः संप्रकल्पिता ॥ अकाराग्निं सन्निविष्टं दृष्ट्वा मनसिमान

से धातुओं रहित किये गये इसके अनन्तर उन अग्निजी ने शरीरहित ब्रह्माजी से कहा ॥ २२ ॥ कि अहो ब्रह्मन् ! मेरी तृप्ति न हुई और न मेरे शरीरको आनन्द हुआ क्रोधित ब्रह्माजी ने हुंकार मे उस अग्नि को दो खण्ड किये ॥ २३ ॥ और रोते हुए उन अग्निओंने भोजन के लिये ब्रह्माजी से कहा फिर ब्रह्माजी ने हुंकार से ताड़ित किया ॥ एक एक के दो दो खण्ड किये ॥ २४ ॥ उनके मध्यमें से तीन रोने लगे व एक शिवजी के आश्रित हुआ वे व्यासजी ! क्रोधित ब्रह्माजीने हुंकार से ताड़ित किया ॥ २५ ॥ व अग्नि के बहुत रौनेपर फिर ब्रह्मा जी दयासंयुक्त होकर कहा कि काम से तिरस्कृत पुरुषों की धातुओं को तुम भोजन करो ॥ २६ ॥ समय में पाई हुई

कामनावाले तुम्हारी वह जीविका कल्पित की गई मन में भलीभांति बैठे हुये मानस अकाराग्नि को देखकर ॥ २७ ॥ उकाराग्नि जल उठी और यह क्या है ऐसा कहा ब्रह्माजीने उससे कहा कि तुम भी इच्छा के अनुकूल जीविका के आश्रित होवो ॥ २८ ॥ उन ब्रह्माजीसे ऐसा कहे हुये उसने देवताओं के मध्यमें या बाहर व मुनियों के आश्रयों में इस वृत्ति (जीविका) की रुचि किया ॥ २९ ॥ तब ब्रह्माजी ने बार २ कहा कि मैं ऐसेही दूंगा जिस लिये कि हुंकार से यह दूसरी अग्नि हुई है ॥ ३० ॥ इसलिये अपमान व अभिमान समेत हुंकार जहां कहा जावै मेरी आज्ञा के शान्त होने के लिये वह जीविका होवै ॥ ३१ ॥

सम ॥ २७ ॥ अकाराग्निः प्रज्ज्वाल किमेतदिति चाब्रवीत् ॥ ब्रह्मातमाह त्वमपि यथेष्टां वृत्तिमाश्रय ॥ २८ ॥ देवमध्यै बहिर्वापि मुनीनामाश्रयेषु च ॥ इत्येवमुक्तस्तेनाशु वृत्तिमेतामरोचयत् ॥ २९ ॥ अहमेवंप्रदास्यामि पुनः पुनरुवाचह ॥ यस्मादेष द्वितीयो ग्निर्हुंकारात्समजायत ॥ ३० ॥ साभिमानोऽपमानो वा हुंकारो यत्र कथ्यते ॥ सा च वृत्तिर्ममादेशाद्बुभुक्षान्तयेतव ॥ ३१ ॥ इकाराग्निः समाहूय ब्रह्मावचनमब्रवीत् ॥ भवतोऽग्नेरियं वृत्तिरब्रमुक्तं देहरिति ॥ ३२ ॥ उकाराग्निः समाहूय ब्रह्मावचनमब्रवीत् ॥ यत्पृथिव्यां मरुस्थानं भगवंस्तत्त्वमाश्रय ॥ ३३ ॥ अहंतवविधास्यामि स्थानमाहारमेव च ॥ इत्युक्तः स तु तेनाग्निर्यः पृथिव्यां शिलाचयः ॥ ३४ ॥ यतो ग्निर्व्यासते नोक्तो गिरौ दुर्गे महा मुने ॥ उकाराग्निः स चाप्येष समुद्रे वडवामुखः ॥ ३५ ॥ सोऽपि भिन्नः समाहूतो ब्रह्मणा स्थानलिप्सया ॥ त्वञ्चक्षुः सर्वलोकस्य

इकाराग्नि को बुलाकर ब्रह्माजीने वचन कहा कि आप अग्नि की यह वृत्ति है कि भोजन किये हुये अग्नि को भस्म कीजिये ॥ ३२ ॥ व उकाराग्नि को बुलाकर ब्रह्मा ने वचन कहा कि हे भगवन् ! पृथ्वी में जो मरु (निर्जल) स्थान हो उसमें तुम आश्रित होवो ॥ ३३ ॥ मैं तुमको स्थान व आहार विधान करूंगा उन ब्रह्माजी से ऐसा कहेहुये वे अग्निदेव जी जो पृथ्वी में शिला समूह या उसमें आश्रित हुये ॥ ३४ ॥ हे महा मुने, व्यासजी ! जिस लिये कठिन पर्वत में उन व्यासजी से वह अग्नि कही गई उसी कारण वह उकाराग्नि समुद्र में वडवामुख है ॥ ३५ ॥ स्थान पाने की इच्छा से ब्रह्माने उसको भी भिन्न बुलाया और ब्रह्माजी वचन बोले कि

तुम समस्त मनुष्यों के नेत्रों को ॥ ३६ ॥ इस लिये तुम ब्राह्मणों की संस्कृतवाणी को प्रकाशित करो क्योंकि संस्कार कीहुई वाणी देवी आने देवताओंवाली व पुण्य-
दायिनी होती है और असंस्कृतवाणी आयुर्वल को नाश करती है ॥ ३७ ॥ इस लिये ब्राह्मण की प्रकाशित वाणी पुण्यदायिनी ज्ञाननेयोग्य है और वाणी ब्राह्मणों
की माता है वह मुखमें भलीभांति स्थित है ॥ ३८ ॥ भूँटे अक्षरों के बोलने से असंस्कृतवाणी वक्ताको नाश करती है इस लिये अग्नि सदैव सं-
स्कृतवचनवाला ब्राह्मण है ॥ ३९ ॥ फिर नेत्ररहित अकाराग्नि को बुलाकर यही कहा और उसने भी नेत्रोंको मँदकर उस देववाणी को कहा ॥ ४० ॥ और अग्निने

ब्रह्मावचनमब्रवीत् ॥ ३६ ॥ तस्मात्त्वं संस्कृतां वाणीं द्विजातीनां प्रकाशय ॥ देवीपुण्यासंस्कृता च आयुष्यं हन्त्यसंस्कृ-
ता ॥ ३७ ॥ तस्माद् द्विजाते विज्ञेया वाणी पुण्या प्रकाशिता वाक् च माता द्विजातीनां मुखे सा संप्रतिष्ठिता ॥ ३८ ॥ अन्तता-
त्तरविन्यासादमङ्गल्याह्यसंस्कृता ॥ वक्ता रंहन्त्यतो ह्यग्निः सदा संस्कृतवाग्निजः ॥ ३९ ॥ आहूय भूयो काराग्नि प्रजा-
पतिरचक्षुषम् ॥ तादेव वाणीमवदत्सोपि संमीलितेक्षणः ॥ ४० ॥ ब्रह्माणमाहवह्निस्तु वाचो हमुखमास्महे ॥ स्थानं मम
प्रयच्छस्व सर्वतेजो वरं परम् ॥ ४१ ॥ ब्रह्मा तमाहयस्मात्त्वं तेजः स्थानं समीहसे ॥ तस्मात्तेजोमयं यत्ते रविस्थानं भविष्य-
ति ॥ ४२ ॥ यस्मात्प्रपद्यते तेजश्च भवति दुर्बलम् ॥ तस्मात्त्वं तेजसा युक्तं पश्येदनिमिषञ्चकः ॥ ४३ ॥ इकारमथ संभि-
न्नमग्निमाह पितामहः ॥ सौम्यदृष्ट्या तु ब्रह्माणं समुद्धीक्ष्य ह्युपागतः ॥ ४४ ॥ यस्माच्छ्रीघ्रं महासत्त्वं सौम्यदृष्टिरिहा ग-
तः ॥ तस्माद्वास्याम्यहं स्थानं सर्वभूतमनोरमम् ॥ ४५ ॥ त्वंसितात्मा इवेतर इमश्चन्द्रमास्त्वं भविष्यसि ॥ सर्वतेजो

ब्रह्माजी से कहा कि मैं वाणीके मुखमें स्थित हूँ व समस्ततेजों में श्रेष्ठ उत्तमतेजको मुझे दीजिये ॥ ४१ ॥ ब्रह्माजी ने उससे कहा कि जिसलिये तुम तेजके स्थान को
चाहेते हो उसी लिये जो तेजोमय सूर्यनारायणजी का स्थान है वह तुम्हारा स्थान होगा ॥ ४२ ॥ व जिस कारण तुम्हारे तेजको प्राप्त होकर नेत्र दुर्बल होता है उस
लिये तेजसे संयुत तुमको बिन पलकभांजे कौन देखता है ॥ ४३ ॥ इसके अनन्तर पितामहजी ने भिन्न अग्नि इकार से कहा और वह सौम्यदृष्टि से ब्रह्माको देखकर
समीप आया ॥ ४४ ॥ इससे ब्रह्माजी ने उससे कहा कि हे महाबलवान् ! जिसलिये सौम्यदृष्टिवाले तुम शीघ्रही यहां आये हो इस कारण समस्त प्राणियों के मनोहर

स्थान को मैं दूंगा ॥ ४५ ॥ और तुम श्वेतात्मक सूर्य व चन्द्रमा होगे जोकि समस्त तेजों से अधिक, दिव्य, सौम्य व बहुतही प्रकाशितहै ॥ ४६ ॥ और उसमें स्थित होकर तुम तेजसे सबतेजोंको तिरस्कार करोगे ऐमा कहकर उसके विदाकर उसको बुलाया ॥ ४७ ॥ व यहां आइये आइये इस प्रकार हलकर मस्तक में बिठाया और वहा स्थित होकर यह पांचवां मुख ऊपर हुआ ॥ ४८ ॥ इसप्रकारके रूपवाली अग्नि यह उकाराग्नि प्रतिष्ठित हुई इसलिये इन अग्नि व सूर्यको सूर्य निर्देश करै ॥ ४९ ॥ शिव व अग्निरूपी उत्तमदेव ने ब्रह्मासे यह कहा कि मुझको भी यथायोग्य सुन्दरस्थान को दीजिये ॥ ५० ॥ ब्रह्माने उससे कहा कि पृथ्वीतलमें

धिकोदिव्यः सौम्यः परमभासुरः ॥ ४६ ॥ तत्रस्थः सर्वतेजांसि तेजसाभिभविष्यति ॥ इत्युक्त्वा तं विसर्ज्याथ उकाराग्निं मथाह्वयत् ॥ ४७ ॥ इहैहोहीति शिरसि समादाय न्यवेशयत् ॥ तत्रस्थः पञ्चमं वक्रमूर्ध्वमेतदजायत ॥ ४८ ॥ एष एवं रूपव ह्निरुकाराग्निः प्रतिष्ठितः ॥ तस्मादग्निश्च सूर्यश्च रुद्रावेतौ विनिर्दिशेत् ॥ ४९ ॥ भवाग्निरूपः परमो ब्रह्माणमिदमब्रवीत् ॥ ममापि सचिरं स्थानं प्रयच्छस्व यथा तथम् ॥ ५० ॥ ब्रह्मा तमाह कतमत् स्थानं तेरोचते तले ॥ अग्निस्तु प्रत्युवाचे दं स्थानं कथय मे परम् ॥ ५१ ॥ स्थानं नैवास्ति नो भव्यं ततो ह्येवं भविष्यति ॥ अत्र त्वास्थानुमिच्छामि यदि संरोचते तव ॥ ५२ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ लोके नित्यसमाचार लोकसंस्थिते हेतुक ॥ सम्भवार्थमिहा सत्त्वं निजसत्त्वं पराक्रमः ॥ ५३ ॥ यदि हत्वं महाज्ज्वालस्ताभिः कलितशोभनः ॥ प्राप्स्यसे सर्वजन्तूनां भासुरन्त्वं समुत्तमम् ॥ ५४ ॥ तर्ह्येष धर्मश्चैवाद्यो मायामोहित काम्यया ॥ इत्युक्तो ब्रह्मणा सोऽपि प्रज्ज्वालसहस्रशः ॥ ५५ ॥ ततो ह्यनन्तज्ज्वालाभिर्नानावर्णादिभिः श्रितः ॥ अकारेका

तुमको कौन स्थान रुचताहै तब अग्निने यह कहा कि मुझसे उत्तम स्थानको कहिये ॥ ५१ ॥ मेरे कल्याणदायक स्थान नहींहै उसलिये ऐसा होगा कि मैं यहां टिकने की इच्छा करता हूं यदि तुमको रुचता हो ॥ ५२ ॥ ब्रह्माजी बोले कि हे लोकमें नित्य आचारवाले, संसारकी मर्यादाके कारण ! अपने सत्त्व व बलवाले तुम उत्पत्ति के लिये यहाँ स्थित होवो ॥ ५३ ॥ यदि बड़ी ज्वालाओंवाले तुम उन ज्वालाओं से शोभित छविवाले होगे और समस्त प्राणियों के मध्य में तुम प्रकाशित उत्तम स्थान को पावोगे ॥ ५४ ॥ तो मायासे मोहित कामनाके कारण यह आदिवाला धर्महै ब्रह्मासे इस प्रकार कहेहुये वे अग्निदेवभी हजारों भांतिसे जलतेभये ॥ ५५ ॥ तदनन्तर

अनेक रङ्गादिकोंवाली अभित उवालाओं से आश्रित हुये इसके अनन्तर ब्रह्माने अकार, इकार व उकारसे उस अग्निको शान्त किया ॥ ५६ ॥ परन्तु यह अग्नि शान्तता को न प्राप्त हुई किन्तु फिर भी बड़ी और रुद्राग्निसे तिरछा ऊपर व नीचे सब व्याप्त होगया ॥ ५७ ॥ सब और ज्वालाओं से अपना को ऊपर फेंके हुये देखकर तदनन्तर चिन्तनकर ब्रह्माजी विशेषतासे डरगये ॥ ५८ ॥ और तेजनिधान व सर्वोके स्वामी रुद्राग्निजी को जानने की इच्छा करते हुये ब्रह्माजी ने मस्तक पे अञ्जलीको धरकर प्रणामकर ऋग्, यजुः व सामवेदमें कहे हुये वेदोक्त स्तोत्रोंसे स्तुति किया ॥ ५९ ॥ ब्रह्माजी बोले कि हे सत्यतेजवाले ! परस्पर महात्मा आपके लिये प्रणाम है और अद्भुत

रोकारैश्च ब्रह्मातमथ शान्तवान् ॥ ५६ ॥ नैवासौ शान्ततां याति वह्निर्भूयोप्यवर्द्धत ॥ व्याप्तं भवाग्निना सर्वं तिर्यग्धूर्ध्वमथ स्तथा ॥ ५७ ॥ ज्वालाभिरुपरि क्षिप्तं दृष्ट्वात्मानं समन्ततः ॥ चिन्तयित्वा ततो ब्रह्मा भीतश्चैव विशेषतः ॥ ५८ ॥ शिरस्यञ्जलिमाधाय तुष्टावाथ प्रणम्य तम् ॥ तेजो निधिञ्च सर्वं शं ज्ञातुमिच्छन् प्रजापतिः ॥ निगमोक्तरहस्यैश्च ऋग् यजुः सामभाषितैः ॥ ५९ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ सत्यतेजो नमस्तेस्तु परस्परमहात्मने ॥ अद्भुतानां प्रतिश्रोत्रे तेजसां निधिरव्ययः ॥ ६० ॥ बीजं यो विश्वभावानां संमोहनविमोहनम् ॥ अन्धकारो युगावर्तं कालेकाले च दुःसहम् ॥ ६१ ॥ ऊर्ध्ववक्त्रनमस्तेस्तु सत्त्वात्मकधरात्मक ॥ ज्वलज्वालोत्पन्नजल जलजेश जलेश्वर ॥ ६२ ॥ जलजोत्फुल्लपत्राच्च ज्वलदेव बहुताश न ॥ कृष्णकान्तःकृष्णमार्गः स्वर्गमार्गप्रदायकः ॥ ६३ ॥ यज्ञाहुतिसमाचार यज्ञरूपनमोनमः ॥ स्वर्णगर्भशर्मागर्भजयदेव सनातन ॥ ६४ ॥ नमोहारमहाहार स्वाहाप्रियतमो हर ॥ प्रदीप्तरोचिषे देव चित्रमानो नमोस्तुते ॥ ६५ ॥ वैश्वा

जनोंके प्रतिश्रोता के लिये नमस्कार है तुम तेजनिधान व अविनाशी हो ॥ ६० ॥ जो विश्वभावों का संमोहन व विमोहन बीजहो और अन्धकार व समय समय में दुःसह युगावर्त हो ॥ ६१ ॥ हे सत्त्वात्मक, धरात्मक, ऊर्ध्वानन ! तुम्हारे लिये प्रणाम है हे ज्वाला से उत्पन्न जलवाले, जलजेश, जलेश्वर ! प्रज्वलित होवो ॥ ६२ ॥ हे फूले हुये कमलपत्रके समान नेत्रवाले, अग्निदेवजी ! प्रज्वलित होवो आप श्याम शोभावाले श्याममार्गवाले तथा स्वर्गमार्ग को देनेवाले हो ॥ ६३ ॥ हे यज्ञाहुति-समाचार, यज्ञरूप ! आपके लिये नमस्कार है हे स्वर्णगर्भ, शर्मागर्भ, सनातन, देवजी ! आपकी जयहो ॥ ६४ ॥ हे हार, महाहार, स्वाहाप्रिय, अन्धकार !

आपके लिये प्रणाम है हे चित्रभानो, देव ! प्रकाशित ज्वालाओंवाले आपके लिये प्रणाम है ॥ ६५ ॥ हे दैत्यानर, अनल, विभो, ऊर्ध्वपावक, सर्वव्यापिन्, विभावसो, महाभाग, कृष्णवर्त्म ! आपके लिये प्रणाम है प्रणाम है ॥ ६६ ॥ सनत्कुमारजी बोले कि उससमय इसभाति स्तुति कियेहुये वे अग्निदेवजी ब्रह्मसे वचन बोले कि 'हे ब्रह्मन् ! मैं आपसे प्रसन्न हूं तुम्हारे प्रयोजन का कर्म सिद्धहोवै ॥ ६७ ॥ उससमय ऐसा कहेहुये ब्रह्माजीने वार २ प्रणामकर कहा कि हे देव ! ऐश्वर्यवान्, तुम कौनहो यह मैं जानना चाहता हूं ॥ ६८ ॥ इसके अनन्तर उसने ब्रह्माजी से कहा कि तुम प्रजापति पुरुषहो जो उत्तमरूप जाननेयोग्य है उस योगसे मुझको देखिये ॥ ६९ ॥

नरानलविभो ऊर्ध्वपावकसर्वग ॥ विभावसोमहाभाग कृष्णवर्त्मनमोनमः ॥ ६६ ॥ सनत्कुमारउवाच ॥ एवंस्तुतस्तदा
सोग्निर्विरश्चिमब्रवीद्वचः ॥ तुष्टोहंभवताब्रह्मन् भवत्कर्मप्रसिद्धतु ॥ ६७ ॥ एवमुक्तस्तदाब्रह्मा नमस्कृत्वापुनःपुनः ॥
ज्ञातुमिच्छाम्यहं देव कोसित्वं भगवानिति ॥ ६८ ॥ अब्रवीत्सोथब्रह्माणं पुरुषस्त्वं प्रजापतिः ॥ यज्ञेयं परमं रूपं तेन यो
गेन पश्य मे ॥ ६९ ॥ अथापश्यत्सदिव्येन भगवन्तं सनातनम् ॥ सर्वज्ञं विधिकर्तारमीश्वरं सदसत्परम् ॥ ७० ॥ ज्वलनं
गगनम्भूमिर्दृश्यादृश्यम्परम्पदम् ॥ भूतम्भव्यं भविष्यञ्च जगत्स्थावरजङ्गमम् ॥ ७१ ॥ सदेवः कुरुते विश्वं मुहूर्त्ते सर्वं य
तः प्रभुः ॥ ततः सम्भूतिं भव्येन स्तोत्रेणापि प्रजापतिः ॥ ७२ ॥ तुष्टावदेवः प्रणतः पुराणमजमव्ययम् ॥ ततो निरुक्तवर्णञ्च
दृष्ट्वा देवः प्रजापतिः ॥ ७३ ॥ विश्वतोबाहुचरणं विश्वतोऽग्निशिरोमुखम् ॥ व्यक्ताव्यक्तप्रणेतारं प्रणम्य शिरसास्व
यम् ॥ ७४ ॥ तुष्टावचनमस्तेस्तु तुभ्यं विश्वभवात्मने ॥ पृथिवीवायुराकाशं यच्चान्यद्भुवनत्रयम् ॥ ७५ ॥ लोकालोके
इसके अनन्तर उन ब्रह्माजी ने सर्वज्ञ व विधि (ब्रह्मा) को रचनेवाले तथा कार्यकारण से परे ईश्वर व सनातन अग्निभगवान् को दिव्यदृष्टि से देखा और आकाश,
भूमि, दृश्यादृश्य, परम्पद, भूत, भव्य, भविष्य और स्थावर, जङ्गम समेत संसार को देखा ॥ ७०-७१ ॥ जिस लिये वे प्रभुदेवजी सब संसार को रचते व भोगते हैं
उसी कारण उत्पत्ति से कल्याणदायक स्तोत्रकरके ब्रह्मादेवजी ने प्रणामकर अज व अविनाशी पुराणपुरुष की स्तुति किया तदनन्तर निरुक्तवर्णवाले तथा सब ओर बाहु
व चरणवाले व सब ओर अग्नि, शिर व मुखवाले और प्रकट व अप्रकट के प्रणेतार ईश्वरदेवजी को देखकरके आपही मस्तक से प्रणामकर ॥ ७२-७३-७४ ॥

कि संसारोत्पत्त्यामक तुम्हारे लिये प्रणाम है पृथ्वी, पवन, आकाश और जो त्रिलोक है ॥ ७५ ॥ व लोकालोकेश्वर, रथावर, जह्नुम संसार, तत्त्वसृष्टि व भूतसृष्टि व भाव-सृष्टि ॥ ७६ ॥ और आपही से नेत्रके द्वारा ब्रह्मतेजोमयात्मक को भलीभाति देखतेहुये जो कुछ वस्तु उत्पन्न है वह सब चर व अचर आपही का रूप है ॥ ७७ ॥ उस समय इस प्रकार स्तुति क्रियेहुये वे ईश अनादि भगवान् प्रभुजी ब्रह्मा से बोले कि तुमने यथायोग्य देखा ॥ ७८ ॥ नम्रतासे संयुत सो तुम इस समय सब प्रजाओं को रचो लोकोंकी स्थिति के कारण मैं कर्त्ता हूँ और तुम अनुकार करनेवाले हो ॥ ७९ ॥ पहलेही मुझ से रचाहुआ वह संसार वैसाही होनेयोग्य है उसको कीजिये ऐसा

इवरंचैव जगत्स्थावरजह्नुमम् ॥ तत्त्वसर्गभूतसर्ग भावसर्गतथैव च ॥ ७६ ॥ ब्रह्मतेजोमयात्मानं सम्पश्यंश्चक्षुषास्वतः ॥
यत्किञ्चिद्ब्रह्मस्तुजातंहि तत्सर्वमचरंचरम् ॥ ७७ ॥ एवंस्तुतः सतुतदा अनादिभगवान्प्रभुः ॥ अथेशः प्राह ब्रह्माणं त्वया दृश्यथातथम् ॥ ७८ ॥ सृजेदानीं प्रजाः सर्वाः सचत्वं विनयान्वितः ॥ कर्ता हि मनुकर्ता त्वं लोकानां स्थितिकारणम् ॥ ७९ ॥
कुरुष्व तत्तथा भाव्यं मया पूर्वं विनिर्मितम् ॥ इत्युक्तो देवदेवेशो ब्रह्मा वचनमब्रवीत् ॥ ८० ॥ नमस्तुभ्यं महादेव भवशर्वं नमोस्तुते ॥ त्वत्प्रसादात्प्रजासर्गं कुर्वतो मे महेश्वर ॥ ८१ ॥ सखायं प्राप्नुमिच्छामि त्वया दत्तं जगत्पते ॥ महेश्वर उवाच ॥ तुष्टस्तेऽध्यायतः पुत्रकामस्य भगवन्नहम् ॥ ८२ ॥ विधातः कल्पितां देव ममोत्पत्तिं यदीच्छसि ॥ पुत्रत्वं प्राप्य हीरास्ते द्वेत्स्यामि पञ्चमं शिरः ॥ ८३ ॥ तत्र चोत्पादयिष्यामि नरनारायणानुभौ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ कथं नारायणो देवस्तपसा नन्यचेतनः ॥ ८४ ॥ कीर्तयस्व सखाधन्यः समेष्टुज्यो भविष्यति ॥ अथापश्यत्ततो ब्रह्मा तेजसा हरि मच्युतम् ॥ ८५ ॥

कहे हुये देवदेवेश ब्रह्माजी वचन बोले ॥ ८० ॥ कि हे महादेवजी ! तुम्हारे लिये प्रणाम है हे भव, शर्व ! तुम्हारे लिये प्रणाम है महादेवजी तुम्हारी प्रशंसा से मेरे ऊपर प्रसन्न होवें ॥ ८१ ॥ हे जगत्पते ! तुमसे दियेहुये मित्रको मैं पाने के लिये चाहता हूँ महादेवजी बोले कि जिसलिये पुत्रकी कामनावाले व सृष्टिको चाहनेवाले तथा ध्यान करतेहुये तुम्हारे ऊपर मैं प्रसन्न हूँ ॥ ८२ ॥ हे विधाता, देव ! यदि कल्पित कीहुई मेरी उत्पत्तिको चाहतेहो तो पुत्रता को प्राप्त होकर ईश्वर मैं पांचवे मस्तकको काटूंगा ॥ ८३ ॥ व उसमें दोनों नरनारायणको उत्पन्न करूंगा ब्रह्माजी बोले कि तपस्यासे सावधान बुद्धिवाले नारायणदेवजी ॥ ८४ ॥ जोकि पूजनीय व प्रशंसनीय हैं वे

किस प्रकार मेरे मित्र होंगे यह कहिये इसके अनन्तर तेजसे उन अच्युत विष्णुजीको जोकि सर्वव्यापी व जानेयोग्य तथा शिवनारायणात्मक हैं देखा तदनन्तर नारायणप्रभुजी ने महेश्वरजी के सत्त्वतेज को किया तदनन्तर वहापर श्रीयुक्त व शक्तिसे सम्मित उन देवजी ने अंगुली से स्पर्श करते ब्रह्मासे वचन कहा ॥ ८५ ॥ ८६ ॥ कि तुम्हारा उत्तम ब्रह्मा नाम होगा व नारायण का अनुगामी ऋषि मनुष्यों के देखने के लिये होगा जोकि सब धनुषधारियों में श्रेष्ठ है ॥ ८८ ॥ हे महाबल, नारायणजी ! यह मेरी शक्ति है ऐसा कहकर भगवान् देवजीने उस अग्नि को हाथ से पकड़ लिया ॥ ८९ ॥ व दाहिने हाथकी अंगुली के नखके मध्यमें स्थित किया तं सर्वगामिनं गम्यं शिवनारायणात्मकम् ॥ महेश्वरस्य ते जोहि सत्त्वं नारायणः प्रभुः ॥ ८६ ॥ चकार सततस्तत्र श्रीयुक्तः शक्तिसम्मितः ॥ अङ्गुल्या संस्पृशन् देवो ब्रह्माणमब्रवीद्वचः ॥ ८७ ॥ ब्रह्माते परमं नाम ऋषिर्नारायणानुगः ॥ भविता लोकवीक्षार्थं श्रेष्ठः सर्वधनुष्मताम् ॥ ८८ ॥ नारायणमहावीर्यं शक्तिरेषामदीयका ॥ इत्युक्त्वा भगवान् देवस्तमर्गिनपाणिनाग्रहीत ॥ ८९ ॥ दक्षहस्ताङ्गुलिनखमध्यस्थं समचीकरत् ॥ इति संस्कृत्य सततं नरञ्चैव महेश्वरम् ॥ ९० ॥ ब्रह्मणो दर्शयित्वाथ तत्रैवान्तरधीयत् ॥ अथाब्रवीत्ततो ब्रह्मा अग्निं तच्च युगक्षये ॥ ९१ ॥ स्पृशन् दक्षिणवामाभ्यां शान्तयन्निवर्तंगिरा ॥ पुत्रौ च भृगुवङ्गिरसौ भवितारौ न संशयः ॥ ९२ ॥ वंशविख्यातकर्माणौ वैवभववतां तव ॥ द्विधा सम्भज्यते नाग्निं स्पृष्ट्वै ज्ञो भविष्यति ॥ ९३ ॥ भवन्तौ तिष्ठतस्तत्र पृथिव्यां दानमाश्रितौ ॥ ९४ ॥ तस्मादेवं विधातव्यौ निर्मथ्यविधिपूर्वकम् ॥ अतोऽवत्थेशमीगर्भे संयोगस्तत्र पठ्यते ॥ ९५ ॥ मार्गवोऽङ्गिरसश्चैव द्विविधो देव उच्यते ॥ तस्मात्सुरहितः

इस प्रकार संस्कार कर सदैव नर व महेश्वरजी को ॥ ९० ॥ ब्रह्माको दिखलाकर वहीपर अन्तर्द्वान होगये तदनन्तर युगके प्रलयमें दाहिने व बायें हाथसे स्पर्श करते हुये ब्रह्माजीने वाणीसे शान्त करते हुये से उस अग्निसे बोले कि भृगु व अङ्गिरा पुत्र होंगेंगे इसमें सन्देह नहीं है ॥ ९१ ॥ और यहीपर वे तुम्हारे वंशके विख्यातकर्म वाले होंगेंगे इस लिये अग्निके दो विभागकर सृष्टिकी यज्ञहोणी ॥ ९३ ॥ और उस पृथ्वी में दानमें आश्रित होकर आपलोग स्थित होवो ॥ ९४ ॥ इन लिये विधिपूर्वक मथकर इस प्रकार उन दोनोंको करना चाहिये इसीकारण उस विषय में पीपल व शमीके गर्भमें संयोग पड़ा जाता है ॥ ९५ ॥ और मार्गव व अङ्गिरस दो प्रकार

का देव कहा जाता है उसी कारण देवताओं का हित चौथा श्रेष्ठ ऐसा कहा जाता है ॥ ६६ ॥ हे व्यासजी ! इस प्रकार पूर्वजन्म में यह नर उत्पन्न हुआ है व इस प्रकार ब्रह्मा के पाचवां मुख प्राप्त हुआ है ॥ ६७ ॥ इस प्रकार जो मनुष्य अति उत्तम तेज की सृष्टि को जानता है वह शान्त, दान्त व जितेन्द्रिय ब्रह्मा की सालोक्य नामक मुक्तिको प्राप्त होता है ॥ ६८ ॥ हे व्यासजी ! चित्त में उत्तम बुद्धिवाला जो पुरुष पशुपति महादेवजी के माहात्म्य को सूचित करनेवाली इस अग्नि की उत्पत्ति को सुनता है और जो श्रद्धा से शुद्धचित्तवाला होता है व जो ब्राह्मणों तथा देवताओं को भक्ति से सुनाता है वह शिवजी से शुद्धचित्तवाला पुरुष शिवलोक में देवताओं से भलीभांति पूजा

श्रेष्ठ श्रुतार्थ इति कथ्यते ॥ ९६ ॥ एवं व्याससमुत्पन्नो नरोऽसौ पूर्वजन्मनि ॥ एवं तु ब्रह्मणो वक्रं पञ्चमं समपद्यत ॥ ९७ ॥ एवं विबुध्यते यो वै तेजःसर्गमनुत्तमम् ॥ ब्रह्मणो याति सालोक्यं शान्तो दान्तो जितेन्द्रियः ॥ ९८ ॥ एतद्योगिनसमुद्भवंपशुपतेर्माहात्म्यसंमुखं चित्ते साधुमतिः शृणोति स तं यः श्रद्धया भावितः ॥ यो व्यासद्विजदेवताप्रमुखतः संश्रावयेद्भक्तिः सोऽत्यर्थं भवभावितः शिवपुरे समपूज्यते देवतैः ॥ ९९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेऽग्नेरुत्पत्तिर्नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥
व्यास उवाच ॥ बुद्धे निवारिते तत्र रक्तस्वेदजयोः पुरा ॥ किं कृतं ब्रह्मणा तत्र प्रायश्चित्तं ह्यकर्मणा ॥ १ ॥ जनार्दनेन किं कर्म शङ्करेण च यन्मुने ॥ एतत्सर्वं समाख्याहि प्रसीद वदतावर ॥ २ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ ब्रह्माकरोदग्निहोत्रं वनोषधिफलच्छदैः ॥ शस्तैः कुशसमिद्धिश्च यथोक्तं हरिणा पुरा ॥ ३ ॥ बदर्याश्रममासाद्य नरनारायणादृषी ॥ तेषु तस्तौ त

जाता है ॥ ९६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां मरुनेरुत्पत्तिवर्णनं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥
दो० । कुशस्थली वन मध्य महें, छोडवो ईश कपाल । सोइ पंचम अध्याय में वर्णित चरित रसाल ॥ व्यासजी बोले कि पुरातन समय वहां पर रक्त व पसीने से उपजे हुये नरोका मुद्द मना करने पर कर्म रहित ब्रह्माने वहां क्या प्रायश्चित्त किया है ॥ १ ॥ विष्णुजीने क्या कर्म किया है व हे मुने ! शिवजीने जो कर्म किया हो इस सबको कहिये हे वदतावर ! प्रसन्न होवो ॥ २ ॥ सनत्कुमारजी बोले कि पुरातन समय जिस प्रकार विष्णुजीने कहा था उसीभांति वन की ओपधि, फल व पत्तों में तथा उत्तम

कुशों व समिधाओं से ब्रह्माने अग्निहोत्र किया ॥ ३ ॥ और बदरिकाश्रममें प्राप्त होकर उन नरनारायण ऋषियोंने समस्त प्राणियोंके हितके लिये भयंकर तप किया ॥ ४ ॥ और इस पृथ्वीमें घूमतेहुये देवेश सदाशिवजी कपालको हाथमें लिये कुशस्थलीमें प्राप्त होकर उसके उत्तम वनमें पैठते भये ॥ ५ ॥ जो कि अनेक भांतिके वृक्षों व लताओंसे व्याप्त तथा अनेकप्रकारके पुष्पोंसे शोभित व अनेक भांतिके पक्षियोंसे व्याप्त और अनेकप्रकारके मृगोंसे संयुतथा ॥ ६ ॥ और जोकि पवनसे वृक्षोंमें पुष्प भारके आमोद (बहुत सुगन्ध) से वासित था और बुद्धिपूर्वक मानो धरेहुये फलों व फल्ले, कच्चे फलोंसे उपजेहुये अनेकप्रकारकी सुगन्ध

पश्वोग्रं हितार्थसर्वदेहिनाम् ॥ ४ ॥ कपालपाणिर्देवेशः पर्यटन्वसुधामिमाम् ॥ कुशस्थलीसमासाद्य प्रविष्टस्तद्वनोत्तमम् ॥ ५ ॥ नानाद्रुमलताकीर्णं नानापुष्पोपशोभितम् ॥ नानापक्षिसमाकीर्णं नानामृगसमाकुलम् ॥ ६ ॥ द्रुमपुष्पभरामोदवासितंयत्सुवायुना ॥ बुद्धिपूर्वमिवन्यस्तफलपुष्पैस्सुपूजितम् ॥ ७ ॥ नानागन्धरसाद्यैश्च पक्वापक्कफलोद्भवैः ॥ फलैस्सुवर्णरूपाढ्यैरासमन्तान्मनोरमैः ॥ ८ ॥ जीर्णपत्रवृणादीनिशुष्ककाष्ठफलानिच ॥ बहिःक्षिपतिजातानि मारुतानुग्रहादिव ॥ ९ ॥ नानापुष्पसमूहानां गन्धमादायमारुतः ॥ शीतलोवातितंभूमिदेशंयत्रविवासयन् ॥ १० ॥ हरितस्निग्धनिच्छिद्रद्रुमाणान्त्रकोटरैः ॥ वृक्षैरनेकसङ्ख्यैश्च भूषितंशिखरान्वितैः ॥ ११ ॥ अरोगिदर्शनयैश्चसुवृत्तैःक्वचिदुद्भूतैः ॥ कुटुम्बमिवविप्राणां सिद्धिर्वैभातिसर्वतः ॥ १२ ॥ शोभनैर्वायुसङ्कीर्णैर्ङ्कुरैश्चावृताहुमाः ॥ कुलीनैरिवनिच्छिद्रैः स्वगुणैः प्रावृतानराः ॥ १३ ॥ पवनोद्धूतशिखरैःस्पर्शयन्तिपरस्परम् ॥ आरात्पतन्तिचान्योन्यंपुष्पाःशा

व रसादिकों से तथा सुवर्णस्वरूपसे संयुत फलों से सब ओर घिराथा ॥ ८ ॥ और पुराने पत्तों व तृणादिकों को तथा सूखे काष्ठों व फलोंको पवन मानो दयासे बाहर फकता था ॥ ९ ॥ और जहाँपर अनेक भांतिके पुष्पसमूहोंकी सुगन्धको लेकर उस भूमिस्थान को वासित करताहुआ शीतल पवन चलता था ॥ १० ॥ और हरित व चिकने छिद्ररहित वृक्षोंके खोडोंसे और शिखरसे संयुत अनेक संख्यक वृक्षोंसे शोभित था ॥ ११ ॥ और कहीं उत्पन्न हुये रोगरहित मनोहर व गोल वृक्षोंसे ब्राह्मणोंके कुटुम्बकी नाई सब ओर सिद्धि शोभित थी ॥ १२ ॥ व पवनसे व्याप्त सुन्दर अंकुरोंसे वृक्ष विरेथे जैसे कि छिद्ररहित कुलीन अपने गुणोंसे संयुत मनुष्य होवें ॥ १३ ॥

और पवनसे कंपयेहुये शिखरों से वृक्ष आपस में स्पर्श करते थे व शाखाओंके अवतंस (सुमके) रूपी पुष्प आपसमें लगकर सर्मापही गिरतेथे ॥ १४ ॥ और कहीं अमरों से संयुत केसरोवाले पुष्पोंसे नागोंके वृक्ष श्यामतारकावाले श्वेत नयनोंकी नाई शोभित थे ॥ १५ ॥ व कहीं पुष्पोंसे संयुत शिखरोंवाले कर्णिकारके वृक्ष वैसेही शोभितथे जैसे कि विवाह में स्त्री पुरुष मलीभांति शोभित होते हैं ॥ १६ ॥ उत्तमपुष्पों के आच्छादनो से मेउड़ी की पंक्तियां शोभित हैं जैसे कि मूर्तिमान् वनदेवता पूजित होकर शोभित होते हैं ॥ १७ ॥ कहीं २ उत्तम पुष्परूपी गहनो से श्वेत कुन्दकी लतायें शोभित हैं जैसे कि प्रत्येक दिशाओं में उदय हुये बाल चन्द्रमा शोभित

स्वावतंसकाः ॥ १४ ॥ नागवृक्षाः क्वचित्पुष्पैर्भ्रमरालीनकेशरैः ॥ नयनैरिवशोभन्ते धवलैः कृष्णतारकैः ॥ १५ ॥ पुष्पसम्पन्नशिखराः कर्णिकारद्रुमाः क्वचित् ॥ यथैवहि विवाहे च शोभते साधुदम्पती ॥ १६ ॥ सुपुष्पविभवाटोपैः सिन्धुवा रम्यपङ्क्तयः ॥ मूर्तिमन्त्यइवामान्ति पूजितावनदेवताः ॥ १७ ॥ क्वचित्क्वचित्कुन्दलताः सुपुष्पाभरणोज्ज्वलाः ॥ दिक्षुदिक्षुचशोभन्ते बालचन्द्रा इवोदिताः ॥ १८ ॥ अतीवदुर्गमार्गेषु कान्तारादुत्थितालताः ॥ पुष्पिताः पुष्पविटपैर्वीजयन्ति इवोत्थिताः ॥ १९ ॥ शालार्जुनाः क्वचिद्भ्रान्ति वनोद्देशेषु पुष्पिताः ॥ धौतकौशेयवासोभिः प्रावृताः पुरुषोत्तमाः ॥ २० ॥ अभियुक्ताः सुवल्लीभिः पुष्पितास्तुद्रुमास्तथा ॥ उपगूढाविराजन्ते नारीभिरिवसुप्रियाः ॥ २१ ॥ चूताश्च तिलकाश्चैव मञ्जरीभिः करैरिव ॥ वायुनुन्नाभिरन्योन्यं दौकन्तीव हि सज्जनाः ॥ २२ ॥ परस्परञ्च संयुक्तैस्ति लकाशोकपल्लवैः ॥ हस्तैर्हस्तान् स्पृशन्तीव सुहृदश्चित्तसङ्गताः ॥ २३ ॥ फलपुष्पनतावृक्षाः पैशल्येनैव सज्जनाः ॥ अन्योन्यमर्पयन्तीव होते हैं ॥ १८ ॥ अत्यन्त कठिन मार्गोंमें दुर्गम मार्गसे उठीहुई फूली लतायें पुष्पवाले वृक्षोंसे पवन डुलातीहुई सी उठी हैं ॥ १९ ॥ व कहींपर वनके स्थानोंमें फूले हुये सांखू व अर्जुनके वृक्ष शोभितहैं जैसे कि धोयेहुये ऊनी वस्त्रोंसे धिरेहुये उत्तम पुरुष होंवें ॥ २० ॥ और उत्तम लताओंसे संयुत फूलेहुये वृक्ष शोभित हैं जैसे कि स्त्रियोंसे आलिङ्गित उत्तम प्रिय सोहतेहैं ॥ २१ ॥ और आम्र व तिलकके वृक्ष पवनसे प्रेरित मञ्जरियोंके द्वारा आपसमें चलते हैं जैसे कि हाथोंके द्वारा सज्जन चलते हैं ॥ २२ ॥ आपसमें मिलेहुये तिलक व अशोकके पत्तोंसे मानो चित्तमें प्राप्त मित्र हाथों से हाथोंको स्पर्श करतेहैं ॥ २३ ॥ फलों व फूलोंसे झुंकेहुये वृक्ष मानो चतुरता

से सज्जन लोग आपसमें उत्तम फूलों व फलोंको अर्पण करते हैं ॥ २४ ॥ और पवनके भिलापसे छोड़ेहुये ठण्डेजलों से वृक्ष मानो संसारमें भलीभांति आयेहुये सत् पुरुषोको प्रीतिके देनेके लिये स्थित है ॥ २५ ॥ और पुष्पोंके भारसे मानो अपनी शोभाके लिये प्राप्त होतेहैं जैसे कि समान प्रभाववाले पुरुषको प्राप्त होकर पुरुष ईर्ष्यासे चलते हैं ॥ २६ ॥ और उत्तम मत्तकों से संयुत मतवाले पत्नी पुष्पादिकों के शोभारूपी गहनोंवाले कंभसंयुक्त शिखरों से नाचते हैं ॥ २७ ॥ और अमृतवल्ली याने गुर्च की लता के आश्रित अमर पवन से चलायेहुये होकर वल्ली समेत नाचते हैं मानो प्यारी समेत मनुष्य हैं ॥ २८ ॥ कहींपर पुष्ट कुन्दलताओं से घिरेहुये वृक्ष वैसेही शोभित

मुपुष्पाणिफलानिच ॥ २४ ॥ मारुताङ्गिलिष्टिनिर्मुक्तैः पादपाःशीतवारिभिः ॥ आर्यान्समागताल्लोकैः प्रीतिंदातुमि
वस्थिताः ॥ २५ ॥ पुष्पाणामिवभारेण स्वशोभार्थैर्व्रजन्तिवै ॥ समप्रभावमासाद्य पुरुषाःस्पृह्येवहि ॥ २६ ॥ पुष्पादि
शोभाभरणैः शिखरैःकम्पसंयुतैः ॥ नृत्यन्तिपक्षिणोमत्तायुक्ताःशोभनशेखरैः ॥ २७ ॥ भृङ्गाःपवनविक्षिप्तामृतवल्ली
लताश्रिताः ॥ सवल्लीकाःप्रनृत्यन्ति मानवाइवसंप्रियाः ॥ २८ ॥ पुष्पाभिःकुन्दवल्लीभिः पादपाःक्वचिदावृताः ॥ भान्ति
तारागणैश्चित्रैः शरदीवनभस्तलम् ॥ २९ ॥ इमाणामप्यथाग्रेषु पुष्पितामाधवीलताः ॥ शिखराइवशोभन्ते रचिता
बुद्धिपूर्वकम् ॥ ३० ॥ हरिताःकाञ्चनच्छायाः फलिताःपुष्पिताद्भुमाः ॥ सौहार्ददर्शयन्तीवनराःसाधुसमागमे ॥ ३१ ॥
पुष्पकिञ्जल्कबहुलाःकिञ्जल्कबहुलोदराः ॥ किञ्जल्कमत्तभ्रमरा विशदाइवसारिकाः ॥ ३२ ॥ शिरीषपुष्पसङ्काशाः
शुकामिथुनतःक्वचित् ॥ कीर्तयन्तिगिरिश्चित्राः पूजिताब्राह्मणायथा ॥ ३३ ॥ संयुक्ताःसहचारिण्या मयूराश्चित्रबहि

हैं जैसे कि शरद्वृक्ष में विचित्र नक्षत्रगणों से आकाश शोभित होता है ॥ २९ ॥ और वृक्षा के ऊपर भागों में फूलीहुई नेवारीकी लतायें बुद्धिपूर्वक रचेहुये शिखरों की नाई शोभित हैं ॥ ३० ॥ हरित व सुवर्णके समान छायावाले तथा फले व फूले हुये वृक्ष मानो सज्जनके रंगयोग में पुरुष भिन्नता को दिखलाते हैं ॥ ३१ ॥ पुष्पों में बहुत केसरवाले व मध्य में बहुत केसरवाले तथा केसर से मत्त भ्रमरोंवाले वृक्ष उत्तम सारिकाओं की नाई शोभित हैं ॥ ३२ ॥ कहीं पर मिथुन याने खी के संयोग से सिरसा के फूल की नाई सुवा विचित्र वचनों को कहते हैं जैसे कि पूजेहुए ब्राह्मण होवें ॥ ३३ ॥ और विचित्र पंखोंवाले मयूर सहचारिणी याने साथ

चलनेवाली स्त्री समेत वन के मध्य में घूमते हैं मानो लोकों के अन्त में स्थित हैं ॥ ३४ ॥ और अनेक भाँति के अद्भुत शब्दोंवाले पक्षियों के समूह बोलते हैं मानो मनोहर उत्तम वनको रमण करने योग्य करते हैं ॥ ३५ ॥ अनेक प्रकार के मृगों से व्याप्त व सदैव प्रसन्न पक्षियोंवाला वह वन नन्दनवन के समान मनको व दृष्टिको बढ़ानेवाला है ॥ ३६ ॥ वैसे रूपवाले तथा नन्दनवन के समान उत्तमवनको कपाल हाथवाले भगवान् शिवजीने सौम्यदृष्टिसे देखा ॥ ३७ ॥ व भलीभाँति आयेहुये शिवजीको देखकर उन सब वृक्षकी पंक्तियों ने शिवजी के लिये भक्तिसे पुष्पों की संपदाको निवेदन कर छोड़ा है ॥ ३८ ॥ वृक्षों के पुष्पों को ग्रहण कर उन

- एणः ॥ वनान्तरे संचरन्ति लोकान्त इव संस्थिताः ॥ ३४ ॥ कृजन्ति पत्रि सङ्घाता नानाद्रुता विरविणः ॥ कुर्वन्ति रमणीयं हि रमणीयं वनं शुभम् ॥ ३५ ॥ नाना मृग समाकीर्णं नित्यं समुदिताण्डजम् ॥ तद्वनं नन्दनसमं मनोदृष्टि विवर्द्धनम् ॥ ३६ ॥ कपालपाणिर्भगवांस्तथारूपं वनोत्तमम् ॥ ददर्श शङ्करो दृष्ट्वा सौम्ययानन्दनोपमम् ॥ ३७ ॥ तावत्पङ्क्तयस्सर्वा दृष्ट्वा रुद्रं समागतम् ॥ निवेद्य शम्भवे भक्त्या मुमुक्षुः पुष्पसम्पदाम् ॥ ३८ ॥ पुष्पप्रतिग्रहं कृत्वा पादपानां महेश्वरः ॥ वरं वृणीध्वं भद्रं वः पादपानित्युवाच सः ॥ ३९ ॥ एवमुक्ते भगवता तस्मै निरवग्रहाः ॥ उचुः प्राञ्जलयस्सर्वे नमस्कृतवा महेश्वरम् ॥ ४० ॥ वरं ददासि देवेश प्रपन्नजनवत्सल ॥ इहैव विपिने नित्यं भगवन्सन्निहितो भव ॥ ४१ ॥ एतन्परमः कामो देवदेवनमोस्तुते ॥ त्वंचेह ससिर्देवेश वनेऽस्मिन् विश्वावना ॥ ४२ ॥ सर्वात्मना प्रसन्नास्त्वां याचामो ह्युत्तमं वरम् ॥ इत्युक्तः पादपैस्सर्वैश्शरणागतवत्सलः ॥ ४३ ॥ वरन्ददौ पादपैर्भ्यः प्रोच्यमानं मया शृणु ॥ महेश्वर उवाच ॥ वाढम्मे मनसा वा

महादेवजी ने वृक्षों से यह कहा कि तुम लोगों का कल्याण होवै वरदानको मांगिये ॥ ३९ ॥ शिवजी से ऐसा कहनेपर हठरहित सब वृक्ष हाथों को जोड़ महादेवजी को प्रणाम कर बोले ॥ ४० ॥ कि हे शरणागतजनप्रिय देवेशजी ! यदि वर देतेहो तो हे भगवन् ! इसी वनमें सदैव स्थित होवो ॥ ४१ ॥ हे देवदेव ! हम लोगों की यही उत्तम कामना है हे विश्वभावन्, देवेशजी ! यदि तुम इस वनमें बसोगे ॥ ४२ ॥ तो सर्वात्मा से प्रसन्न होतेहुए हमलोग उत्तम वरदान को मांगेंगे सब वृक्षोंसे इस प्रकार कहेहुये उन शरणागतप्रिय शिवजीने ॥ ४३ ॥ वृक्षों के लिये वरदान दिया कि मुझसे कहेहुये वचनको सुनिये महादेवजी बोले कि बहुत अच्छा

इस उत्तम वनमें मेरा सदैव मनसे निवास होगा ॥ ४४ ॥ और फिर तुमलोगोंको मैं वरदान देताहूँ क्योंकि मेरा दर्शन वृथा नहीं होताहै न अग्नि, न पवन, न जल, न सूर्यनारायणकी किरणोंका घाम ॥ ४५ ॥ और न विजली न वज्रपात न शीत तुमलोगोंके रोग उत्पन्न करेगा और इच्छाके अनुकूल जानिवाले व इच्छाके अनुसार रूपवाले तथा इच्छाके अनुकूल फल देनेवाले ॥ ४६ ॥ व तपस्या और संध्यासे उज्ज्वलित लोचनवाले पुरुषों को इच्छाके अनुकूल दर्शनवाले तथा मेरी प्रसन्नतासे उत्तम शोभासे संयुक्त होंगे ॥ ४७ ॥ इसप्रकार उन वरदायक सदाशिवजीने वृक्षोंके ऊपर दयाकिया और हजारवर्ष टिककर कपालको भूमिमें फेंकादिया ॥ ४८ ॥

सो नित्यमत्रवनोत्तमे ॥ ४४ ॥ वरन्ददामिभूयोवो नवृथादर्शनम्मम ॥ नागिनर्नवायुर्नजलं नसूर्यकिरणतपः ॥ ४५ ॥ नविद्युदशनिश्शीतं रुजंवोजनयिष्यति ॥ कामगाःकामरूपपाश्च कामरूपफलप्रदाः ॥ ४६ ॥ कामसन्दर्शनाः पुंसां तपःसन्ध्याज्वलद्दृशाम् ॥ श्रियापरमयायुक्ता मत्प्रसादाद्भविष्यथ ॥ ४७ ॥ एवंसवरदःशम्भुरनुजग्राहपादपान् ॥ स्थित्वावर्षसहस्रन्तु कपालंचाक्षिपद्भुवि ॥ ४८ ॥ क्षितिन्निपततातेन चकम्पेचरसातलम् ॥ विवशास्तत्यजुर्वेलांसागराःक्षुभितोर्मयः ॥ ४९ ॥ शक्राशनिहतानीव व्याघ्रव्यालान्वितानिच ॥ शिखराणिव्यशीर्यन्तपर्वतानांसहस्रशः ॥ ५० ॥ देवसिद्धविमानानि गन्धर्वनगराणिच ॥ प्रस्फुरन्तिविनिषेपेवुर्विनेशुश्चधरातले ॥ ५१ ॥ कल्पान्तमेघाश्चात्यन्तं जगतसङ्घातदर्शनाः ॥ ज्योतिर्ग्रहाञ्छादयन्तो बभूवुस्तीर्णभास्कराः ॥ ५२ ॥ महतातस्यशब्देन जडान्धवधिरंकृतम् ॥ बभूवव्याकुलंसर्वत्रैलोक्यंसंचाचरम् ॥ ५३ ॥ सुरासुराणांसर्वेषां शरीराणिमनांसिच ॥ अवसेदुश्चकम्पुश्च

और पृथ्वीमें गिरतेहुये उससे रसातल कांपउठा व चलायमान लहरियाँवाले समुद्रोंने विवशा होकर मर्यादाको छोड़ दिया ॥ ४९ ॥ और व्याघ्रों व सर्पोंसे समुत पर्वतोंके हजारों शिखर इन्द्रके वज्रसे मारेहुयेसे टूटगये और देवताओं व सिद्धोंके विमान तथा चमकते हुये गंधर्वाँके नगर पृथ्वीमें गिरपड़े व नाश होगये ॥ ५० ॥ और अत्यन्त संसारके नाश में दर्शनवाले कल्यान्त के मेघ ज्योतिर्ग्रहों को आच्छादन करतेहुये सूर्यको उल्लंघन करनेवाले हुये ॥ ५१ ॥ और उसके वडेभारी शब्दसे जड अन्ध व बधिर किया हुआ स्थावर जंगम समेत सब संसार व्याकुल होगया ॥ ५२ ॥ और सब देवताओं तथा दैत्योंके शरीर व मन दुःखित हुये व कांपउठे और

यह क्याहै ऐसा उन्होंने कहा ॥ ५४ ॥ और इन्द्र आदिक सब भी देवता धीरे की अवलम्बनकर भलीभांति आकर व ब्रह्मलोक में प्राप्तहोकर अन्धासे यह बोले ॥ ५५ ॥ कि हे भगवन् ! यह कारणसे उत्पातका दर्शन क्या है इसको कहिये कि जिससे काल य कर्म से संयुत समस्त त्रिलोक केंपायागया ॥ ५६ ॥ और समुद्रोंकी भिन्नमर्यादोंवाला कल्पान्त होगया किन्तु न चलनेवाले चारों भी दिग्गज चलायमान होगये ॥ ५७ ॥ और किस कारण सातों समुद्रों के जलसे पृथ्वी धिरगई व हे भगवन् ! बिन प्रयोजन सबकी उत्पत्ति नहीं है ॥ ५८ ॥ जैसा यह शब्द सुनगयाहै वैसा न हुआहै कि जिस बड़ेभारी भयंकर शब्दसे त्रिलोक विकल

किमेतदितिवाचिरे ॥ ५४ ॥ धैर्यमालम्ब्यसर्वेपि समागम्येन्द्रपूर्वकाः ॥ ब्रह्मलोकंसमासाद्य ब्रह्माणमिदमूचिरे ॥ ५५ ॥
किमेतद्भगवन्ब्रूहि निमित्तोत्पातदर्शनम् ॥ त्रैलोक्यं कम्पितं येन संयुक्तं कालकर्मणा ॥ ५६ ॥ जातं कल्पावसानञ्च भि
न्नमर्यादसागरम् ॥ चत्वारो दिग्गजाः किन्तु बभूवुरचलाश्चलाः ॥ ५७ ॥ धरासमावृता कस्मात्सप्तसागरवारिणा ॥ उ
त्पत्तिर्नास्ति सर्वस्य भगवन्निष्प्रयोजनम् ॥ ५८ ॥ यादृशोयं श्रुतः शब्दो न भूतो नापि विश्रुतः ॥ त्रैलोक्यमाकुलं येन कृ
तं रौद्रेण भूयसा ॥ ५९ ॥ एवमुक्तो ब्रवीदब्रह्मा परमेशानुभावितः ॥ ६० ॥ मत्पृष्ठममराः सर्वे शृणुध्वंतत्र कारणम् ॥ नि
श्चयेनात्र विज्ञेयं श्रद्धधानैर्यथाविधि ॥ ६१ ॥ सुखं छित्त्वा न स्वाग्र्येण मद्देहात्पञ्चमं शिरः ॥ कपालपाणिभगवान् विष्णो
राश्रममभ्यगात् ॥ ६२ ॥ ययांचेपात्रमादाय भिजानारायणमप्रति ॥ उत्पपातमुनिस्तत्र नरो नामधनुर्धरः ॥ ६३ ॥ त
तः कुशस्थलीमेत्य भगवांस्तद्वनोत्तमम् ॥ विवेश तरुमार्गेण पुष्पामोदाभिनिन्दितम् ॥ ६४ ॥ अनुग्राह्याथ भगवान् व
होगया ॥ ५९ ॥ इसप्रकार कहेहुये व परमेश सदाशिवजी से बुद्धिका निश्चय कियेहुये ब्रह्माजी बोले ॥ ६० ॥ कि हे देवताओ ! उस विषयमें मुझसे पूछेहुये का
रणको सब लोग सुनो और विधिपूर्वक निश्चय से इस विषयमें श्रद्धावानोंको जानना चाहिये ॥ ६१ ॥ कि भगवान् शिवजी नख के अग्रभागमें मेरे शरीर से पांचवें
मस्तकको सुखपूर्वक काटकर कपालको हाथमें लिये वे विष्णुजीके आश्रमको गये ॥ ६२ ॥ और उन्होंने पात्रको लेकर नारायणसे भिक्षा मांगा व उस कपालमें धनुष-
धारी नर नामक मुनि उत्पन्नहुआ ॥ ६३ ॥ तदनन्तर भगवान् शिवजीने द्वारकापुरी में आकर पुष्पोकी अत्यन्त मनोहर सुगन्धसे प्रशंसित उस उत्तम वन में वृजो के

मार्गसे प्रवेश किया ॥६५॥ और सर्वत्र प्राप्त पक्षियोंवाले उस वनके ऊपर दयाकर संसारके ऊपर कृपा करनेके लिये भगवान् शिवजीने वहाँके निवासकी रीति किया ॥ ६५ ॥ और हाथमें स्थित जो कपालथा उसको भगवान् शिवजीने पृथ्वी में धर दिया उसीसे यह भूमि कर्पाई गई व त्रिलोक विकल होगया ॥ ६६ ॥ उसकी रक्षाके लिये तुमलोग मेरे साथ शिवजीके समीप प्राप्त होवो और आराधन कियेहुये वे भगवान् शिवजी तुम लोगों को वरदान देवेंगे ॥ ६७ ॥ ऐसा कहकर भगवान् ब्रह्मा जी उन देवता, दैत्यों समेत उस वनस्थानको गये जहाँ कि वृषध्वज शिवजी थे ॥ ६८ ॥ और शिवजीको चाहनेवाले तथा प्रसन्न मनवाले उन सर्वोंने पुण्यासे संयुत

नंतत्सर्वगण्डजम् ॥ जगतोत्तुग्रहार्थाय तत्रवासमरोचयत् ॥ ६५ ॥ तत्कपालंकरस्थंयन्यस्तंभगवताक्षितौ ॥ तेनै
षाकम्पिताभूमिः कृतवैलोक्यमाकुलम् ॥ ६६ ॥ तद्रक्षार्थं विरूपाक्षं प्रापद्यतमयासह ॥ आराध्यमानो भगवान् प्रदा
स्यति वरं हि वः ॥ ६७ ॥ इत्युक्त्वा भगवान् ब्रह्मा सह तैर्देवदानैर्वै ॥ जगाम तद्वनोद्देशं यत्रास्ते वृषभध्वजः ॥ ६८ ॥ प्रहृष्ट
मनसस्सर्वे कोकिलालापलापितम् ॥ पुष्पान्वितं वनं तद्वै विविशुश्शङ्करेण सवः ॥ ६९ ॥ सम्प्राप्तं सर्वदेवैस्तद्वनं नन्दनसं
मितम् ॥ सुवल्लीगृहशोभाढ्यं सुदृढं शुशुभेतदा ॥ ७० ॥ दृष्ट्वा तद्वनमुत्तमंतनुभृतां प्रोह्वासकंचेतसां नानासु फलपुष्प
पादपवनैरासेवितं सर्वतः ॥ ब्रह्मन्बर्हिणं हंससारसरैर्वर्मण्डकमत्स्यान्वितं द्रक्ष्यामो हरमत्र चेतसिसुराः प्राप्सुर्दंते तदा ॥
७१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे देवागमो नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

उस वनमें प्रवेश किया ॥ ६५ ॥ नन्दनवनके समान देवताओं से प्राप्तहुआ वह उत्तम लतागृहों की शोभासे संयुत वन उससमय बहुत दृढतापूर्वक शोभित हुआ ॥ ७० ॥ हे ब्रह्मन् ! देहधारियों के चित्तोंको आनन्ददायक व अनेक भांतिके उत्तम फल फूलवाले वृक्षों के वनोसे सब ओर सेवित तथा मयूर, हंस व सारसोंके शब्दों से तथा मेढकों व मछलियोंसे संयुत उस उत्तम वनको देखकर उससमय उन देवताओंने चित्तमें आनन्द पाया कि हमलोग यहाँ सदाशिवजीको देखेंगे ॥ ७१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे देवीदयालुमिश्रधिरचितायां भाषाटीकायां पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

दो० १। छोड़ो ब्रह्म कपाल शिव, डरे सकल सुर वृन्द । सोइ छठे अध्याय मे, कथा ग्रहे सुखकन्द ॥ सनत्कुमारजी बोले कि इसके अनन्तर समस्त पुष्पांसे शोभित वनमें पैठकर देखनेकी इच्छावाले वे देवता यहां शिव देवजी हैं यहा शिव देवजी हैं यह कहकर पैठतेभये ॥ १ ॥ व महादेवजीको द्वंद्वतेहुये उन देवताओंने अद्भुत वन के अन्तको नहीं देखा और देवताओंने बहुत वनको देखा ॥ २ ॥ उनसे शिवजी बोले कि तुम लोगोंका कल्याण होवै और विना तपस्या के तुम लोग नहीं देखोगे महादेवजी को द्वंद्वतेहुये भी तुम शंकरजीको नहीं देखोगे ॥ ३ ॥ तदनन्तर उत्तम योग्य वचनको हृदयमें स्मरणकर ब्रह्माजी देवताओं से बोले कि सदैव उन शिव

सनत्कुमारउवाच ॥ प्रविश्याथवनन्देवाः सर्वपुष्पोपशोभितम् ॥ इहदेवोन्नदेवोत्र विविशुस्तोदिदृक्षवः ॥ १ ॥ अद्भुतस्यवनस्यान्तं नतेददृशिरेशुराः ॥ विचिन्वन्तोमहादेवं देवैर्बहुविलोकितम् ॥ २ ॥ तानुवाचमुमद्रवो नद्रक्ष्यथतपोविना ॥ विचिन्वन्तोविरूपाक्षं नैवापश्यतशङ्करम् ॥ ३ ॥ मुमुक्षुर्हृदयेस्मृत्वा ब्रह्मादेवांस्ततोब्रवीत् ॥ त्रिविधोदर्शनोपायस्तस्यदेवस्यसर्वदा ॥ ४ ॥ श्रद्धाज्ञानेनतपसा योगेनैवनिगद्यते ॥ सकलंनिष्कलंवापि देवंपश्यन्तियोगिनः ॥ ५ ॥ तपस्विनस्तुसकलं ज्ञानिनोनिष्कलंपरम् ॥ समुत्पन्नेपिविज्ञानेमन्दश्रद्धोनपश्यति ॥ ६ ॥ भक्त्यापरमयोपेतः परंपश्यन्तियोगिनः ॥ द्रष्टव्योनिर्विकारोसौ प्रधानपुरुषेश्वरः ॥ ७ ॥ नादीक्षितैरतोदेवाः शैवदीक्षांप्रपद्यथ ॥ कर्मणामनसावाचा नित्ययुक्तमहेश्वरे ॥ ८ ॥ तपश्चरथभद्रवो रुद्राराधनतत्पराः ॥ शिवदीक्षांप्रपन्नानां भक्तानांचतपस्विनाम् ॥ ९ ॥

देवजीके दर्शनका उपाय तीनभांतिका है ॥ १ ॥ याने श्रद्धापूर्वक ज्ञान, तपस्या व योगसे कहा जाता है कला समेत या कलारहित शिव देवजी को योगीलोग देखते हैं ॥ ५ ॥ व तपस्वी लोग कला समेत शिवजीको देखते हैं और ज्ञानोलोग कलारहित शिवजीको देखते हैं और ज्ञान उत्पन्न होने पर भी न्यून श्रद्धावाला पुरुष नहीं देखता है ॥ ६ ॥ और उत्तम भाँतिसे संयुक्त योगी लोग परम पुरुषको देखते हैं विकाररहित ये प्रधान पुरुषेश्वर दीक्षारहित जनों से नहीं देखने योग्य है इसलिये देवताओं ! शिवजीकी दीक्षामें प्राप्त होना और कर्म, मन व वचनसे शिवजीमें नित्ययुक्त होकर ॥ ७ ॥ शिवजी के आराधनमें तत्पर तुम लोग तपस्या

करो तुम लोगों का कल्याण होवै शिवदीक्षा में प्राप्त भक्तों व तपस्वियों को ॥ ९ ॥ सब समय में मुझे दर्शन देना चाहिये ब्रह्मा के हित वचन को सुनकर शिवजी के देखने में पड़े हुये मनवाले उन्होंने ब्रह्मा से यह कहा कि हे सुरोत्तम, ब्रह्मन् ! सर्वों को मार्ग व विधि से शिवदीक्षा को दीजिये क्योंकि हम लोगों के उस विषय में आप कारण हो शिवदीक्षा से दीक्षा देने की इच्छावाले ब्रह्माने सुनकर इसके अनन्तर विचारे हुये वचन को शीघ्र ही देवताओं से कहा कि हे देवताओ ! शिवयज्ञ के लिये बहुत ही सामग्रियों को लाइये ॥ १० ॥ १३ ॥ व यहां वेदी बनाइये और अष्टमूर्तिवाले शिवजी पूजने योग्य हैं इसके अनन्तर देवताओं ने ब्रह्मा के वचन को सुनकर सब किया ॥ १४ ॥ नम्रवे शौचाले देवता

सर्वकालं विशेषेण दातव्यं दर्शनम् मया ॥ ब्रह्मणो वचनं श्रुत्वा हितमेव तदाचते ॥ १० ॥ शिवेक्षा विष्टमतयो ब्रह्माणमिदं मब्रुवन् ॥ मार्गेण विधिना चैव शिवदीक्षां सुरोत्तम ॥ ११ ॥ प्रयच्छ ब्रह्मन् सर्वेषां तत्र नः कारणं भवान् ॥ श्रुत्वाथ वचनं ब्रह्मा प्रत्युवाच विचारितम् ॥ १२ ॥ सन्दिदीक्षयिषुः क्षिप्रममराञ्छिवदीक्षया ॥ शिवयज्ञार्थं सम्भारानानयध्वमलंसु राः ॥ १३ ॥ वेदीप्रकल्प्यतामत्र यष्टव्योऽष्टतनुश्शिवः ॥ पद्मयोनिवचः श्रुत्वा चक्रुस्सर्वमतस्मुराः ॥ १४ ॥ विनीतवै शाः प्रणता अनेनोक्तं समन्वयः ॥ शिवप्रसादसम्प्राप्त्यै पुष्कलज्ञानमरितम् ॥ १५ ॥ यज्ञं चकार विधिना दीक्षां चन्द्रार्धधारिणः ॥ पद्मयोनिं पुरस्कृत्य तदा दीक्षां प्रयोगतः ॥ १६ ॥ अनुजग्राह देवांस्तान् परेच्छां प्रेरितः क्वचित् ॥ ततो ब्रतानां प्रवरं व्रतं दिव्यं महाप्रभुः ॥ १७ ॥ तेभ्यो ददौ देवताभ्यो सतदप्यविरोधवित् ॥ पृथ्वेः शिवशाखायां महापाशुपतं व्रतम् ॥ १८ ॥ शैवं यथादितं यच्च आगमाचारचेष्टितम् ॥ शिवाराधनमुख्यानां मुनीनां तीव्रतेजसाम् ॥ १९ ॥ सदानु

प्रणाम कर इनसे कहे हुये वचन के अनुगामी हुये व शिवजी की प्रमदता के लिये बहुत ज्ञान कहा गया ॥ १५ ॥ विधि से चन्द्रार्धधारी शिवजी की यज्ञकिया व दीक्षा को ग्रहण किया ब्रह्मा को अगाड़ी कर उस समय दीक्षा के प्रयोग से ॥ १६ ॥ कभी उत्तम इच्छा से प्रेरणा किये हुये शिवजी ने उन देवताओं के ऊपर दयाकिया तदनन्तर वैर को न जाननेवाले उन महाप्रभु शिवजी ने व्रतों के मध्य में उस उत्तम व्रत को उनके लिये दिया शिवशाखा में महापाशुपत व्रत पढ़ा जाता है ॥ १७ ॥ १८ ॥ जो

कि शास्त्रों के आचारमें चेष्टित यथोदित शैवव्रत है और तीव्र तेजवाले व शिवजीके आराधनमें मुख्य मुनियोंके ऊपर ॥ १९ ॥ शिवजी सदैव दया करनेवाले हैं इस लिये साथही बुद्धिसे वह रौद्र शिवव्रत प्रार्थना किया गया ॥ २० ॥ और विस्मयको छोड़कर सुवर्ण के अण्डसे उपजेहुये ब्रह्माने उनके लिये भस्म नामक उस कामिक व्रतको दिया जो कि कहाहुआ सदैव शुभ होता है ॥ २१ ॥ व पापोंका नाशक दुःखविनाशक तथा पुष्टि, लक्ष्मी व बलको बढ़ानेवाला है और सिद्धिदायक, यशकारक व सुन्दर तथा कलियुग के पापों को छुड़ानेवाला है ॥ २२ ॥ इसलिये सब यत्नसे भस्मस्नान करतेहुये सावधान मनुष्य इन्द्रियों को दमन करनेवाले व

ग्राहकः शम्भुः सर्वदेवैः प्रकल्पितम् ॥ तदेवंप्रार्थितंबुद्ध्या व्रतरौद्रशिवंसमम् ॥ २० ॥ नतेभ्यो विस्मयंत्यक्त्वा प्रायच्छ्य त्कनकाण्डजः ॥ कामिकं भस्मनामानं सर्वदा कीर्तितं शुभम् ॥ २१ ॥ पापघ्नं दुःखशमनं पुष्टिमावलवर्द्धनम् ॥ सिद्धिदं कीर्तिकृतकान्तं कलिकल्मषमोक्षकम् ॥ २२ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन भस्मस्नानं समाहिताः ॥ कुर्वन्तो मानवादान्ताः शान्ताश्च सुजितेन्द्रियाः ॥ २३ ॥ सर्वैकमण्डलुधरास्सर्वैरुद्राक्षधारिणः ॥ अनिष्टदर्शनालापसङ्गत्यागविवर्जिताः ॥ २४ ॥ एवं व्रतधरास्सर्वे वनेतस्मिन्महेश्वरम् ॥ आराधयंस्तमीशानं व्रतैर्नैव उमाधवम् ॥ २५ ॥ भक्त्या परमया युक्ता विधिना परमेण च ॥ कालेन महता ध्यानाद्देवं ज्ञात्वा मनोगतम् ॥ २६ ॥ सद्रथानाग्निनिर्दग्धकल्मषाश्च श्रियान्विताः ॥ तदा गत्वा सुराञ्छम्भुः प्रत्यक्षो भगवानभूत् ॥ २७ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ ब्रह्मदत्तवरा देवास्सर्वे शर्वाभुभाविताः ॥ समचीकरं

शान्त और इन्द्रियोंको जीनेवाले होते हैं ॥ २३ ॥ सब देवता कमंडलुको धारे व सब रुद्राक्षको धारण किये और अशुभ के दर्शन, वार्तालाप, संग व दानसे रहित हुये ॥ २४ ॥ इस प्रकार उस वनमें व्रतोंको धारण कियेहुये सर्वों ने पार्वतीके पति शिवजी को व्रतहीसे आराधन किया ॥ २५ ॥ और परमभक्ति से संयुत वे उत्तम विधिसे व बहुत समय के कारण ध्यानसे सदाशिव देवजीको मनमें प्राप्त जानकर ॥ २६ ॥ शिवजीके ध्यान की अग्निसे जलेहुये पापोंवाले व लक्ष्मीसे संयुत हुये तब देवताओं के समीप जाकर भगवान् शिवजी प्रत्यक्ष हुये ॥ २७ ॥ सनत्कुमारजी बोले कि ब्रह्मासे दियेहुये वरदानवाले सब देवताओं ने शिवजी से शुद्ध चित्तवाले

होकर वहांपर तपकिया व ईशान (सदाशिव) जी से भावित याने शुद्धचित्तवाले ब्रह्माने भी तपस्या किया ॥ २८ ॥ और देवताओं के हजारवर्ष बीतनेपर उत्पन्न दया वाले वे देवेश्वरेश्वर शिवजी अनेक भाति के भूषणों से भूषित व अनेक भाति केगणों समेत प्रज्वलित होकर देवताओं के दर्शन को प्राप्तहुये जो गण कि अपने बलसे गर्वको नाश करनेवाले व भयंकर तथा भयानक जंतुओंको नाश करनेवाले थे ॥ २९ ॥ ३० ॥ व इच्छा के अनुकूल रूपवाले व कामनारहित तथा सब काम-नाओंसे संयुत थे व हाथियों के समान शरीरवाले थे ॥ ३१ ॥ और अणिमादिक दिव्यगुणोंवाले और योगैश्वर्य नामवाले व चलतेहुये केश, जिह्वा व दाढ़ों के कट-

स्तपस्तत्र ब्रह्मापीशानभावितः ॥ २८ ॥ गतेवर्षसहस्रेस दिव्येदेवेश्वरेश्वरः ॥ जातानुकम्पपोदेवानां दीप्तोदर्शनमेयिवा
न ॥ २९ ॥ गणैर्नानाविधैस्सार्द्धं नानाभूषणभूषितैः ॥ स्वबलेन च दक्षैर्घोरैर्घोरविधातिभिः ॥ ३० ॥ कामरूपैरकामैश्च सर्व
कामसमन्वितैः ॥ करीन्द्रवरटाटोपपाटनैः सिंहदेहिभिः ॥ ३१ ॥ अणिमादिगुणैर्दिव्यैर्गोमयैर्दिव्यादिनामभिः ॥ व्यालो
लकेशरसनादंष्ट्राकटकटोभ्रकैः ॥ ३२ ॥ व्याघ्रव्यालानलैर्द्विः काककङ्कमुखैस्तथा ॥ अरूपैः समरूपैश्च सुरूपैर्वेदुरूप
कैः ॥ ३३ ॥ एकद्वित्रिशिरोभिश्च बहुशीर्षैश्च बहुशीर्षैश्चैव नानारूपविराजितैः ॥ ३४ ॥ बहुनेत्रैरनेत्रैश्च
एकद्वित्रिविलोचनैः ॥ एककर्णैर्द्विकर्णैश्च बहुकर्णैरकर्णकैः ॥ ३५ ॥ एकद्वित्रिपुनसैश्च बहुनासैरनासकैः ॥ एकजङ्घैर्द्विजङ्घै
श्च बहुजङ्घैरजङ्घकैः ॥ ३६ ॥ एकपादद्विपादैश्च बहुपादैरपादकैः ॥ गौरश्यामैः श्यामगौरैः सितैः कर्बुरकैस्तथा ॥ ३७ ॥

कटाने से भयंकर थे ॥ ३२ ॥ और व्याघ्रों व सर्पोंके समान मुखवाले तथा भयंकर व कौवा और कंक पक्षी के समान मुखवाले थे और रूपरहित व समान रूपवाले तथा सुन्दर रूपवाले व बहुत रूपोंवाले थे ॥ ३३ ॥ और एक, दो, तीन, मस्तकोंवाले व बहुत शिरोवाले तथा शिररहित व एक, दो, तीन शिखाओंवाले व अनेकभाति के रूपों से शोभित थे ॥ ३४ ॥ और बहुत नेत्रोंवाले व नेत्ररहित तथा एक, दो, तीन लोचनोंवाले और एक कानवाले व दो कानोंवाले और बहुत कानोंवाले व कानों से हीन थे ॥ ३५ ॥ और एक, दो, तीन नासिकाओंवाले व बहुत नासिकाओंवाले और नासिकारहित थे व एक जङ्घावाले तथा दो जङ्घावाले व बहुत जङ्घों

वाले और जङ्गल से हीन थे ॥ ३६ ॥ व एक पांववाले, दो पैरोंवाले व बहुत पांववाले और चरणहीन थे व गौर व श्याम रंगवाले तथा श्याम गौर रङ्गवाले व श्वेत तथा विचित्र रङ्गवाले थे ॥ ३७ ॥ और सर्पों के हार व कङ्कणोंवाले व सर्पों के जनेऊवाले और त्रिशूल, तलवार व पट्टिया अस्त्रों को धारे तथा मुशुएडी (बन्दूक) व परिध (दहमर्दा) अस्त्रोंवाले थे ॥ ३८ ॥ और चक्र, आरा, धनुष, कालदण्ड अस्त्रों को हाथ में लिये व गदा, मुद्गर, पत्थर व सुसल को हाथ में लिये थे ॥ ३९ ॥ और वज्र, शक्ति, अशनि, प्रासवाले थे ॥ ४० ॥ व मृदङ्ग, मर्दल, ढोल, डमरू, डिडिम व माला शस्त्रों को धारण करनेवाले और भस्मा व नगरों को बजाते हुये तथा बीणा, पणव व गोमुख बाजों को बजाते थे ॥ ४० ॥ व मृदङ्ग, मर्दल, ढोल, डमरू, डिडिम

भुजङ्गहार व लयैर्नाग यज्ञोपवीतकैः ॥ शूलासिपट्टिशधरैर्मुशुरिडपरिघायुधैः ॥ ३८ ॥ चक्रकचकोदण्डकालदण्डास्त्रपाणिभिः ॥ गदामुद्गरपाषाणमुसलायुधहस्तकैः ॥ ३९ ॥ वज्रशक्त्यशनिप्रासकुन्तशस्त्रविधारिभिः ॥ भस्माभेरीर्वादयद्भिर्वाणापणवगोमुखान् ॥ ४० ॥ मृदङ्गमर्दलावटक्कामड्डुरिडमर्भरान् ॥ हङ्गुकान्पणवाद्यांश्च वाद्यान्वादिद्भिरचकैः ॥ ४१ ॥ एवं नानाविधैरौद्रैर्भीमैर्मपराक्रमैः ॥ गणेशवरैः सुदुर्द्वर्षैर्वृतः सूर्याग्रहैस्त्रिव ॥ ४२ ॥ आविर्भवमगवान् सगणैः परिवारितः ॥ संपश्यन्तां तदा व्यासब्रह्मादीनां दिवौकसाम् ॥ ४३ ॥ अथ ब्रह्मादयो देवा दृष्ट्वा ग्रेण नानायकम् ॥ तेजसाध्यासितास्तस्य बभूवुर्भ्रान्ततेजसः ॥ ४४ ॥ ततो बलम्ब्यते धैर्यं दृष्ट्वा देवं यथा विधि ॥ षडङ्गवेदयो गेन हृष्टचित्तवपुर्धराः ॥ ४५ ॥ शिरो गतैरञ्जलिभिः पादेभ्यश्च मर्हद्भक्तैः ॥ तुष्टुबुःसृष्टिसंहारस्थितिकर्तारभीश्वरम् ॥ ४६ ॥ देवा ऊचुः ॥ नमः शिवाय शान्ताय सगणाय सनन्दिने ॥ वृषासनाय साम्याय शक्तिशूलधराय च ॥ ४७ ॥

भांभ, हुडुक व पणवादिक बाजों को बजाते हुये पूजन करनेवाले थे ॥ ४१ ॥ इस प्रकार अनेक प्रकार के भयङ्कर व भयानक बलवाले दुर्धर्ष शैव गणनायकों से शिव जी धिरे थे जैसे कि ग्रहों से धिरे हुये सूर्यनारायण होवे ॥ ४२ ॥ हे व्यासजी ! उस समय देखते हुये ब्रह्मादिक देवताओं के मध्य में गणों से धिरे हुये वे भगवान् सदा शिव जी प्रकट हुये ॥ ४३ ॥ इसके अनन्तर ब्रह्मादिक देवता गणनायक को आगे देखकर उनके तेज से, स्थित होते हुये अभिततेजवाले हुये ॥ ४४ ॥ तदनन्तर धैर्य को अवलम्बन कर सदा शिवजी को देखकर मस्तक पै प्राप्त अञ्जलियाँ से व पृथ्वी में प्राप्त चरणों से, उपलक्षित व प्रसन्नचित्त तथा शरीर को धारे हुये उन देवताओं ने सृष्टि

संहार व पालन करनेवाले महादेवजी की स्तुति किया ॥ ४५ ॥ देवता बोले कि गणोंसमेत व नन्दीसमेत शान्त शिवजी के लिये नमस्कार है व धूप पै आसन वाले, सौम्य व शक्ति तथा त्रिशूल को धारनेवाले शिवजी के लिये प्रणाम है ॥ ४७ ॥ और दिशायें तथा चर्मवस्त्रवाले व उत्तमचित्त तथा तीव्रतेजवाले के लिये प्रणाम है और ब्रह्म व ब्रह्मशरीरवाले तथा ब्रह्मसे योजित शिवजी के लिये प्रणाम है ॥ ४८ ॥ अन्धकविनाशक के लिये व सुरेशजी के लिये नमस्कार है और पंचमुखवाले तथा समस्त रोगों के हरनेवाले रुद्रजी के लिये प्रणाम है ॥ ४९ ॥ व गिरिश, सुरेश तथा ईशानजी के लिये नमस्कार है व भीम, उग्रस्वरूप व विजय के लिये नमस्कार है नमस्कार है ॥ ५० ॥ देवताओं व दैत्यों के स्वामी व संन्यासियों के स्वामी के लिये प्रणाम है और शुण्ड व प्रचण्डदण्डवाले तथा उत्तम

नमोदिक्चर्मवस्त्राय मुचेतस्तीव्रतेजसे ॥ ब्रह्मणेब्रह्मदेहायब्रह्मणायोजितायच ॥ ४८ ॥ नमोऽन्धकविनाशाय सुरेशायनमोनमः ॥ रुद्रायपञ्चवक्त्राय सर्वरोगापहारिणे ॥ ४९ ॥ गिरिशायसुरेशाय ईशानायनमोनमः ॥ भीमायोग्रस्वरूपाय विजयायनमोनमः ॥ ५० ॥ सुरासुराधिपतये यतीनांपतयेनमः ॥ शुण्डायचण्डदण्डाय वरखट्वाङ्गधारिणे ॥ ५१ ॥ विरूपाक्षशुभाख्याय विश्वरूपायैवैनमः ॥ शान्तायचनमोज्ञाय त्रिनेत्रायनमोनमः ॥ ५२ ॥ वेधसेविश्वरूपाय विश्वसंहारिणेनमः ॥ भक्तानुकम्पिनेत्यर्थं रुद्रज्ञानपरायच ॥ ५३ ॥ विरूपायसुरूपाय रूपानांशतधारिणे ॥ पञ्चास्यायशुभास्याय चन्द्रास्यायनमोनमः ॥ ५४ ॥ वरदायवरार्हाय सुकर्मयनमोनमः ॥ त्रिनेत्रत्राणमस्माकं त्रिपुरघ्नविधीयताम् ॥ ५५ ॥ वाञ्छनःकायभावैस्त्वां प्रपन्नानांमहेश्वर ॥ सनत्कुमारउवाच ॥ एवंस्तुतस्तदादेवैर्विरञ्ज्याद्यैस्तथा

स्वदाङ्ग को धारनेवाले शिवजी के लिये नमस्कार है ॥ ५१ ॥ व विरूपाक्ष तथा शुभाख्य के लिये व विश्वरूप के लिये नमस्कार है व शान्त तथा विद्वान् के लिये प्रणाम है व त्रिलोचनजी के लिये नमस्कार है नमस्कार है ॥ ५२ ॥ और विश्वरूप ब्रह्म के लिये व संसार के संहार करनेवाले के लिये प्रणाम है और अत्यन्त ही भक्त के ऊपर दया करनेवाले व रुद्रज्ञान में परायण के लिये प्रणाम है ॥ ५३ ॥ व विरूप तथा सुरुप और सैकड़ों रूपों के धारनेवाले के लिये प्रणाम है और पञ्चमुख, शुभानन तथा चन्द्राननजी के लिये प्रणाम है ॥ ५४ ॥ और वरदायक, वरकेयोग्य व उत्तम कर्मवाले के लिये प्रणाम है प्रणाम है हे त्रिपुरविनाशक, त्रिलोचन, महेश्वरजी !

वचन, मन व शरीर की चेष्टाओं से तुम्हारी शरणमें प्राप्त हमलोगोंकी रक्षाकीलिये सनत्कुमारजी बोले कि उस समय ब्रह्मादिक देवताओंसे स्तुति कियेहुये सदाशिव ॥ ५५॥ ५६ ॥ सुरेश्वरजी ईश्वरने ब्रह्मादिक देवताओंके दुबले शरीरों को देखकर और दिव्य प्रतापको धारण कियेहुये तीनप्रकार के अन्तःकरण से आराधन को देखकर कहा कि हे महाभागो ! बहुत अच्छा बहुत अच्छा तुम लोगोंने सदैव व्रतकी उपासना कियैहै ॥ ५७॥ ५८ ॥ और मेरे दर्शनकी इच्छा से आपलोगोंने बहुतही श्रद्धासे इस वैशिविधि से मेरा अत्यन्त आराधन कियैहै ॥ ५९॥ व्रतमें टिकेहुये मनुष्य व देवता भी मुझको देखते हैं यदि मैं तुमलोगों को किसी उत्तम वरदानों को दूँ ॥ ६०॥

इस वैशिविधि से मेरा अत्यन्त आराधन कियैहै ॥ ५९॥ व्रतमें टिकेहुये मनुष्य व देवता भी मुझको देखते हैं यदि मैं तुमलोगों को किसी उत्तम वरदानों को दूँ ॥ ६०॥
ह्रः ॥ ५६ ॥ शरीराणिविलोक्येशः कृशान्यथदिवौकसाम् ॥ दिव्यप्रतापधारेण त्रिविधेनान्तरात्मनाम् ॥ ५७ ॥ आ
राधनंसमीक्ष्याह ब्रह्मादीनांसुरेश्वरः ॥ साधुसाधुमहाभागाः शश्वद्ब्रतमुपासितम् ॥ ५८ ॥ देवेनानेनविधिना अशमा
राधितोह्यहम् ॥ भवद्भिः श्रद्धयात्यर्थं ममदर्शनकाङ्क्षया ॥ ५९ ॥ व्रतस्थामाहिपश्यन्ति मानुषादेवता अपि ॥ यद्यहंच
प्रयच्छामि कांश्चिद्वोहिवराञ्छुमान् ॥ ६० ॥ एकैकशोद्वित्रिशोवा समस्तेभ्यस्समेनतत् ॥ सर्वकामप्रसिद्ध्यर्थं दास्या
मिहोषदेवताः ॥ ६१ ॥ हितायभवतान्देवा आगत्योऽजयिनीम्प्रति ॥ त्रिसंकपालंचमया किम्पुनर्भद्रमस्तुवः ॥ ६२ ॥
देवाऽजुः ॥ किंकृतं हितमस्माकं कपालं क्षिपतात्वया ॥ किमर्थं कम्पिताभूमिर्लोकैर्व्यकुलीकृतम् ॥ ६३ ॥ नैतं निरर्थं
कन्देव कथ्यतामत्र कारणम् ॥ ईश्वर उवाच ॥ युष्मद्वितार्थमेतद् भयं विनिहितं कृतम् ॥ ६४ ॥ देवानामनुरक्षार्थं श्रूय
तामत्र कारणम् ॥ असुरेन्द्रो ह्योनो नाम बलवान् योगमायिकः ॥ ६५ ॥ अविस्थितो न्ववष्टभ्य रसातलतलाश्रयम् ॥ तस्य दे
तो एक एक या दो तीनको दूंगा इस लिये हे देवताओ ! तुल्यता से सबके लिये समस्त कामनाओं की सिद्धिके लिये यह मैं दूंगा ॥ ६१ ॥ हे देवताओ ! आपलोगों के
हितके लिये उज्जयिनीपुरी में आकर मैंने कपालको फेंकदिया तुमलोगोंका कल्याण होवै और फिर क्या चाहतेहो ॥ ६२ ॥ देवता बोले कि कपाल को फेंकतेहुये
तुमने हमलोगोंका क्या हित किया और किसलिये पृथ्वी के पाईगई व लोक विकल कियागया ॥ ६३ ॥ हे देव ! यह विन प्रयोजन नहींहै इस विषयमें कारण कहिये महा-
देवजी बोले कि तुमलोगोंके हितके लिये यह भय नाश कीगई है ॥ ६४ ॥ इस विषयमें देवताओं की रत्नाके लिये कारण को सुनिये कि बलवान् व योगमायावाला

हयनामक दैत्येन्द्र ॥ ६५ ॥ गर्वित होकर रसातल के नीचे आश्रित होकर स्थित था उस दैत्यके बलवान् व शत्रुपुत्रों को जीतनेवाले वे बहुत से दैत्य तुमलोगोंको तपस्यामें स्थित जानकर आये व इन्द्रसमेत देवताओंको मारनेके लिये इच्छा करतेहुये मायासे छिपेहुये शरीरोंवाले ॥ ६६॥ ७ ॥ व अस्त्रोंको उवायेहुये वे दैत्य उद्यतहो कर देवताओंको मारनेके लिये सुवर्णके शृंगोंसे संयुत, मुख्य कुशस्थलीपुरीको आये ॥ ६८ ॥ व कपाल गिरनेके कारण बड़े भयङ्कर शब्दसे तथा पृथ्वीके कापनेसे उनके शरीर से प्राण निकल गये ॥ ६९ ॥ संसार की स्थिति के नाशने के लिये उनका उद्यम हुआथा उसी से राज्य के ऐश्वर्य से गर्वित, उन दैत्यों को मैंने माराहै ॥ ७० ॥

त्यस्यबलिनो दैत्याः परपुरञ्जयाः ॥ ६६ ॥ युष्माञ्ज्ञात्वा तपःस्थान्वै आययुर्वहवोहिते ॥ सेन्द्रान्निहन्तुमिच्छन्तो माया प्रच्छन्नविग्रहाः ॥ ६७ ॥ पुरीकनकशृङ्गाढ्यामेकामधिकुशस्थलीम् ॥ समुद्ययुस्सुरान्हन्तुमुद्यताउद्यतायुधाः ॥ ६८ ॥ शब्देनचातिघोरेण भूमिनिष्कम्पेनच ॥ तेषांकपालपातेन देहात्प्राणविनिर्ययुः ॥ ६९ ॥ लोकस्थितिविनाशार्थं ते षामासीत्समुद्यमः ॥ राज्यैश्वर्येणदपिष्ठास्तेनतेनिहतामया ॥ ७० ॥ देवाऊचुः ॥ विश्वस्तानां त्वयाचैव नोवाचानुग्रहः कृतः ॥ देवानुग्रहकर्त्ता त्वं गुणस्मृतिनिषेवितः ॥ ७१ ॥ दिव्यदृष्टिभिरत्यर्थं यशोर्थभीमपूजितः ॥ इत्युक्त्वा प्रणतान् देवानुत्थायोचेषुनर्भवः ॥ ७२ ॥ शिवउवाच ॥ परिचर्याभिसंयुक्तं नित्यमुग्रनिषेविणम् ॥ ध्यानसाधननिष्पन्नं यदन्येषान्नाविद्यते ॥ ७३ ॥ मनोवाक्कायभावेन दुष्करंदुश्चरन्तपः ॥ अनेनतपसादेवाः कष्टेनदुस्सहेनच ॥ ७४ ॥ समन्तादभिवर्धन्तां युष्मत्तेजस्तथाधिकम् ॥ सनत्कुमारउवाच ॥ इत्युक्तादेवदेवेन देवाब्रह्मपुरोगमाः ॥ ७५ ॥ ऊचुरुन्नम्यवक्रा

देवता बोले कि विश्वासमें प्राप्त हम लोगोंके ऊपर तुमने वचनसे दिया किया क्योंकि गुणों के स्मरण से सेवित तुम वेवताओं के ऊपर दया करनेवालेहो ॥ ७१ ॥ हे भीम ! दिव्यदृष्टिवाले जनोसे अपयशके लिये बहुतही पूजित होते हो यह कहकर प्रणाम कियेहुये देवताओंको उठाकर फिर शिवजी बोले ॥ ७२ ॥ महादेवजीने कहा कि सेवा से संयुत व ध्यान के साधन से सिद्ध नित्य शिवजी की सेवा जिसलिये अन्यजनों के नहीं विद्यमान है ॥ ७३ ॥ उसी कारण मन, वचन व शरीर के भाव से दुःख से करनेयोग्य तप कठिन है हे देवताओं ! इस तप से व असंख्य कष्ट से ॥ ७४ ॥ तुमलोगों का तेज सबओर से बढ़े व अधिक होवै सनत्कुमारजी बोले कि

देवदेव शिवजी से इसप्रकार कहेहुये ब्रह्मादिक देवता ॥ ७५ ॥ छुटुछुटुओं से स्थित होकर व मुखोंको ऊपर उठाकर बहुतसमय में इकट्ठा कीहुई वड़ी तपस्या से प्रसन्न शिवजीसे बोले देवता बोले कि हे देव ! तुम तपस्यासे प्राणदायक व कारण देखेजातेहो इसलिये तुम्हारे ध्यानमें परायण हमलोगोंको वरदायक होवो ॥ ७६ ॥ हे भक्तों को अभयकरनेवाले देवेश ! रत्नाकीजिये महादेवजी बोले कि उपाय व विधिसे तुम लोगोंको प्रकट दर्शन दियागया ॥ ७७ ॥ हे सुरोत्तमो ! कहिये हम तुमलोगों को बहुत वरदानों को देवोंगे भगवान् शिवजीसे ऐसा कहने पर देवताओंके आगे खड़े होकर ब्रह्माजी ने शास्त्रके शब्दसे उपजेहुये वचन को सदाशिवजी

णि स्थिताजानुभिरीश्वरम् ॥ महातातपसानुष्टं बहुकालार्जितेनच ॥ ७६ ॥ देवाऊचुः ॥ प्राणदस्त्वंकारणस्त्वं तपसादेव दृश्यसे ॥ तदस्माकंप्रवृत्तानां तवध्यानेवरप्रदः ॥ ७७ ॥ रत्नांकुरुष्वदेवेश भक्तानामभयङ्कर ॥ ईश्वरउवाच ॥ यत्नेन विधिनादत्तं सुव्यक्तं दर्शनं हि वः ॥ ७८ ॥ त्रियताम्भोः सुरश्रेष्ठा दास्यामो वो वरान्वहन् ॥ एवमुक्ते भगवता ब्रह्मावचनम ब्रवीत् ॥ ७९ ॥ देवानामग्रतः स्थित्वा श्रुतशब्दोद्भवं भवम् ॥ प्राप्तोयंचाद्य भगवन् सुपर्याप्तो महावरः ॥ ८० ॥ दीयता न्नस्समैश्वर्यं तेषां स्थानमथाक्षयम् ॥ शिवउवाच ॥ लोकेस्मिन्ममयेभक्ता मया विनिहताश्च ये ॥ ८१ ॥ नैव ते दुर्गतिं या न्ति लभन्ते सुगतिं पराम् ॥ सार्द्धं तत्र जटाजूटैः शिरोभिश्च शूलपाणयः ॥ ८२ ॥ भान्ति मद्दामपाश्वर्यं इमे ते द्रोहिणाङ्ग णाः ॥ एषां विनिग्रहार्थाय युष्मत्सम्बोधनाय च ॥ ८३ ॥ सविकारं मया क्षिप्तं कपालं धरणीतले ॥ कृतो मे नुग्रहस्तेषां भ क्तानां भक्तिमिच्छताम् ॥ ८४ ॥ वनेस्मिन्नित्यवा सोमे वृक्षैरभ्यर्थितेन च ॥ महाकालवने देवा आगतस्य ममानघाः ॥ ८५ ॥

से कहा कि हे भगवन् ! आज भलीभांति परिपूर्ण यह महावरदान पायागया ॥ ७६ ॥ और हमलोगों को ऐश्वर्य्य व उनको अधिनाशी स्थान दिया जावे शिवजी बोले कि इस संसारमें जो मेरे भक्त हैं व जो मुझसे मारगये हैं ॥ ८१ ॥ वे दुर्गति को नहीं प्राप्त होते हैं किन्तु वहाँपर उत्तम सुगति को पाते हैं व जटाजूटों समेत मस्तकोंसे उपलब्धित व त्रिशूल द्वाथमें लिये ॥ ८२ ॥ मेरे बायें और समीपमें स्थित ये वे वैरियों के गण शोभित हैं इनके दण्डके लिये व तुमलोगों के ज्ञानके निमित्त ॥ ८३ ॥ विकार समेत कपालको मैंने पृथ्वीमें फेंक दिया और भक्ति को चाहते हुये उन भक्तोंके ऊपर मैंने दिया किया ॥ ८४ ॥ और वृक्षोंसे याचित मुझसे इस महाकालवनमें

सदैव निवास किया जायगा हे पापरहित देवताओ ! महाकालवनमें आयेहुये मेरे ॥ ८५ ॥ व तपस्या करतेहुये आपलोगोंके उसी कारण दो नामोंसे संयुत गुप्त महाकाल वन संसारमें प्रसिद्ध होगा ॥ ८६ ॥ गुह्यवन व इमशान क्षेत्रोंके मध्यमें बड़ा श्रेष्ठ है और मैंने इस कपालव्रतचर्याको कहा है ॥ ८७ ॥ कपालरूपी पात्रमें भोजन करता हुआ व कपालव्रत के भूषणवाला और कपालको हाथमें लिये व भिक्षाव्रतसे संयुत पुरुष सन्तुष्ट होता है ॥ ८८ ॥ व इमशान में स्थानवाला, रौद्र तथा व्रत से उन्मत्त व मूढ़बुद्धिवाला नर सदैव समस्त प्राणियों में प्रिय व अप्रिय में समान होकर प्रसन्न होता है ॥ ८९ ॥ और भस्म से भूषित सब अङ्गोंवाला व विशेषकर ज्ञानी, जिते-

तपस्यताश्च भवतां महाकालवनन्ततः ॥ नामद्वययुतं गुह्यं लोके ख्यातं भविष्यति ॥ ८६ ॥ गुह्यं वनं इमशानञ्च वै
त्राणां प्रवरं महत् ॥ कपालव्रतचर्या च मया ह्येषा प्रकीर्तिता ॥ ८७ ॥ कपालपात्रे भुञ्जानः कपालव्रतभूषणः ॥ कपाल
पाणिस्सन्तुष्टो भिक्षाव्रतसमन्वितः ॥ ८८ ॥ इमशाननिलयोरौद्रो व्रतोन्मत्तविमूढधीः ॥ नन्दितस्सर्वभूतेषु प्रियाप्रियस
मस्सदा ॥ ८९ ॥ भस्मभूषितसर्वाङ्गो ज्ञानी चैव विशेषतः ॥ जितेन्द्रियस्सर्वसङ्गी मृद्भस्मोदकसंग्रही ॥ ९० ॥ नित्ययु
क्तस्सदा जापी जपार्जितवरासनः ॥ पुण्यतीर्थाश्रमोपेतश्शनैर्देवैस्समाहितः ॥ ९१ ॥ लोकातीतं परं ज्ञानं महापाशुपतं त्र
तम् ॥ कपालव्रतमास्थाय पुराचीर्णमया स्वयम् ॥ ९२ ॥ कपालं परमं गुह्यं पवित्रं पापनाशनम् ॥ कपालव्रतमेतद्धि दु
र्द्धरं परमाद्भुतम् ॥ ९३ ॥ अत्यन्तमुत्कटं रौद्रमघोरं रोमहर्षणम् ॥ महाव्रतं द्विषन्मोहात्पापैर्नैव स्थितो नरः ॥ ९४ ॥ न
मुच्यते स पापेन जन्मकोटिशतैरपि ॥ महापाशुपतं तस्मान्न हन्यान्न च दूषयेत् ॥ ९५ ॥ एकस्मिन्निहते यस्मात्कोटिर्भ

न्द्रिय, सबका सङ्ग करनेवाला व मिट्टी, भस्म और जलका संग्रह करनेवाला ॥ ९० ॥ तथा सदैव योगमें प्राप्त व सदा जप करनेवाला और जपसे उत्तम आसनोको इक
ट्ठा किये व पवित्र तीर्थों तथा आश्रमों से संयुत पुरुष धीरे से देवमें सावधान होता है ॥ ९१ ॥ पुरातन समय कपालव्रत में स्थित होकर मैंने आपही लोकोंसे परे ज्ञान
व महापाशुपत व्रतको किया है ॥ ९२ ॥ कपालव्रत बहुतही गुप्त, पवित्र व पापनाशक है और यह कपालव्रत दुर्द्धर व बड़ा आश्चर्यमय है ॥ ९३ ॥ और अत्यन्त
उग्र, भयंकर, अघोर व लोगोंको प्रसन्न करनेवाले महाव्रत को मोह से छेप कर ताड़ुआ मनुष्य पापही से स्थित होता है ॥ ९४ ॥ और वह करोड़ों से वर्षोंसे भी पातक

से नहीं छूटता है इसलिये महाशैवको न मारै और न दूषित करै ॥ ६५ ॥ क्योंकि एक के मारने पर करोड़ मारे हुये होते हैं व शब्दासंयुत जो पुरुष एक महाव्रतीको भोजन करता है ॥ ६६ ॥ उससे वेददर्शी करोड़ ब्राह्मण भोजन कराये हुये होते हैं जो मनुष्य यतियोंको कपाल पूर्ण करनेवाली भिक्षा देता है ॥ ६७ ॥ समस्त पातकोमे छूटा हुआ यह दुर्गति को नहीं प्राप्त होता है कपालमें भोजन श्रेष्ठ है और ब्रह्मसे उपजा हुआ यह मार्ग है ॥ ६८ ॥ लोकों व वेदोंमें प्रणाम किये हुये व देवताओं तथा दानवों से पूजित और प्राणियों के मोह करानेवाले कपाल को जो ब्राह्मण धारण करेंगे ॥ ६९ ॥ हे ब्रह्मन् ! मेरे तुल्य वे भूतल में भ्रमण करैगे महाव्रत में परायण व कपाल से किये

वतिघातिता ॥ एकं महाव्रतं यस्तु भोजयेच्छुद्धयान्वितः ॥ ९६ ॥ तेन भुक्ता भवेत्कोटिर्विप्राणां वेददर्शिनाम् ॥ कपाल पूरणं भिक्षां यतीनां यः प्रयच्छति ॥ ९७ ॥ विमुक्तस्सर्वपापेभ्यो नासौ दुर्गतिमाप्नुयात् ॥ कपालभोजनं श्रेष्ठं मार्गो यं ब्रह्मसम्भवः ॥ ९८ ॥ वन्दितं लोकवेषु पूजितं देवदानवैः ॥ धारयिष्यन्ति ये विप्राः कपालं भूतमोहनम् ॥ ९९ ॥ मम तुल्या स्तुते ब्रह्मन् विचरन्ति महीतले ॥ महाव्रते रता धीराः कपालकृतभूषणाः ॥ १०० ॥ महापाशुपताल्लोके रुद्रास्संसारतारकाः ॥ धर्माधर्मविमुक्ताश्च कृत्याकृत्यविवर्जिताः ॥ १ ॥ दीक्षयानेन योगेन प्राणिनस्तारयन्ति ते ॥ यानि तीर्थानि लोके स्मिन् यज्ञकोटिशतानि च ॥ २ ॥ विशुद्धस्य हि ज्ञानस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥ यथाहं सर्वदेवानां सम्पूज्योस्मि अपि तामह ॥ ३ ॥ तथैव सर्वयोगेभ्यः सम्पूज्योऽयं महाव्रतः ॥ संसारबन्धमोक्षार्थं शिवगुह्यमिदं व्रतम् ॥ ४ ॥ यदेतत्सर्वधर्मेण अपुनर्भवकारणम् ॥ कपालव्रतमादाय यस्त्यजेदजितेन्द्रियः ॥ ५ ॥ रौरवं संप्रयात्याशु प्रणीतो यमकिङ्करैः ॥

हुये भूषणवाले विद्वान् ॥ १०० ॥ महाशैव लोग संसार में रुद्ररूप होकर संसार को तारनेवाले हैं धर्म व अधर्म से छूटे हुये तथा कार्य व अकार्यमें रहित ॥ १ ॥ वे लोग दीक्षासे इस योग करके प्राणियोंको तारते हैं इस संसारमें जो तीर्थ हैं वे और करोड़ों से यज्ञ ॥ २ ॥ पवित्र ज्ञानकी सोलहवीं भावा के योग्य नहीं होते हैं हे पितामह ! सब देवताओं के मध्यमें जैसे मैं भलीभांति पूजने योग्य हूँ ॥ ३ ॥ वैसेही सब योगों से यह महाव्रत पूजने योग्य है संसार के बन्धन व मोक्षके लिये यह शिव गुप्तव्रत है ॥ ४ ॥ क्योंकि सब धर्म से यह फिर न जन्म होनेका कारण है कपालव्रतको लेकर जो अजितेन्द्रियनर त्यागता है ॥ ५ ॥ यमदूतोंसे लेगा हुआ वह पुरुष

शीघ्रही रौरवनरक को प्राप्त होता है जो स्वभाव से आलाप करता है और कर्म नहीं करता है ॥ ६ ॥ वह स्नेहसे शृङ्गारचित्तवाला है धर्मका प्रियकारक नहीं है और एकत्र भोजन करनेवाला व मिष्टभोजी तथा जो निष्कपट प्रिय नहीं है ॥ ७ ॥ और कुगाव व कुनगरमें वसनेवाला तथा कृपी व वाणिज्य का सेवक इत्यादिक उस दुष्ट दोषके सम्भाषण से भी ॥ ८ ॥ मनुष्य नरकगामी होता है क्योंकि वह मेरे व्रतका दूषक होता है अथवा दुष्टको देखकर महाव्रत को धारनेवाला पुरुष ॥ ९ ॥ अङ्गसे अङ्गको न छुवै और छूकर जलसे स्नानकरै इस प्रकार तुम लोगों से कपालका छोड़ना कहा गया ॥ १० ॥ जिस प्रकार कि मैंने यहांपर कपालको छोड़ा व आपही दैत्य

आलापयतिभावेन नतुकर्मकरोति यः ॥ ६ ॥ सरगचित्तशृङ्गारी नचधर्मप्रियङ्करः ॥ एकत्रभोजीमिष्टाशी नैकैतववचःप्रियः ॥ ७ ॥ कुग्रामेनगरेवासी कृषिवाणिज्यसेवकः ॥ इत्यादिदुष्टदोषस्य तस्यसम्भाषणादपि ॥ ८ ॥ नरोनरकगामीस्याद्यतोमद्गतदूषकः ॥ दृष्ट्वातुदुष्टमथवा महाव्रतधरोनरः ॥ ९ ॥ नस्पृशेदङ्गमङ्गेन स्पृष्ट्वास्नायातुचाम्बुभिः ॥ एवंवस्सर्वमाख्यातं कपालस्यचमोक्षणम् ॥ १० ॥ यथामयात्रनिक्षिप्तं चासुरानिहताःस्वयम् ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ एवमुक्त्वासभगवान् ब्रह्माद्यैरमरैस्सह ॥ ११ ॥ क्षेत्रनिर्वासयामास यथावत्कथयामिते ॥ आद्यमेतच्छशा नञ्च पठ्यतेमुनिसत्तमैः ॥ १२ ॥ महाकालवनंव्यासयत्रसन्निहितोहरः ॥ अनुग्रहस्यभुवनं भूमिभागेनशम्भुना ॥ १३ ॥ अनुग्रहार्थभूतानां क्षेत्रतन्मृत्युधर्मिणाम् ॥ सुवर्णवज्ररचिता वेदिकाचमहीकृता ॥ १४ ॥ विचित्रकुसुमारतैः कारितासर्वशोभना ॥ स्वर्णवज्राङ्किततरा श्रेष्ठाहरितशादृता ॥ १५ ॥ त्रिशच्चत्वारिसम्पूर्णाः कलशाःशोभनाःस्थिताः ॥

मारोग्ये सनत्कुमारजी बोले कि इस प्रकार कहकर उन भगवान् सदाशिवजी ने ब्रह्मादिक देवताओं समेत ॥ ११ ॥ क्षेत्रको बसाया उसको मैं तुमसे यथायोग्य कहता हूँ यह पहला इमशान मुनिश्रेष्ठों से पढ़ा जाता है ॥ १२ ॥ और जहांपर सदाशिवजी टिके हैं वह महाकालवन है और शिवजी से भूमिभाग करके वह दयाभुवन किया गया है ॥ १३ ॥ और मृत्युधर्मी याने मरनेवाले प्राणियों के ऊपर दयाके लिये वह क्षेत्र किया गया है व सुवर्ण तथा हीरोसे रची हुई वेदी व पृथ्वी की गई है ॥ १४ ॥ जोकि रत्नोंसे विचित्र पुष्पोवाली सबसे उत्तम है और सोने व हीरोसे अत्यन्तही चिह्नित तथा श्रेष्ठ व हरित बालतृणोंवाली थी ॥ १५ ॥ और सुन्दर चौतीस

कलश सम्पूर्ण स्थित है और उसमें चार अन्नमोल द्वार तपते हैं ॥ १६ ॥ व उसमें स्थित कलश उदयहुये सूर्यनारायणकी नाई शोभितहै वहापर वनोके मध्यमें उत्तम-
वनमें भगवान् शिवजी कीडा करते हैं ॥ १७ ॥ त्रेतायुगमें धर्ममें तत्पर ब्रह्मचारी तपस्वीलोग रहते हैं और नन्दीसमेत व कालदण्डासे संयुत देवगणनायक (स्वामि-
कार्तिकेय) जी हैं ॥ १८ ॥ यह सब सत्ययुगमें प्रत्यक्ष देखपड़ता है और द्वापर में धर्मशील तथा वेद व विज्ञान से शोभित पुरुष ब्रह्मा देख पड़ते हैं ॥ १९ ॥ और
कलियुगमें शुद्ध विज्ञानसे शोभित अधिक तपवाले पुरुष कल्याणकारक व भक्तदुःखहारक देवदेव सदाशिवजी को देखते हैं ॥ २० ॥ जोकि महाकालवन में नित्य

द्वाराणितत्रचत्वारि प्रवर्ग्याणितपन्तिच ॥ १६ ॥ कुम्भाःशोभन्तितत्रस्था उदिताभास्करादिव ॥ रमतेतत्रभगवान्
वनानामुत्तमेवने ॥ १७ ॥ त्रेतायांधर्मनिरतास्तापसाब्रह्मचारिणः ॥ सनन्दीदेवगणपः संयुतःकालदण्डिना ॥ १८ ॥ ए
तत्कृतयुगेसर्वं प्रत्यक्षंदृश्यतेवने ॥ द्वापरेधर्मशीलाश्च श्रुतिविज्ञानशालिनः ॥ १९ ॥ कर्णोत्तुशुद्धविज्ञानशालिनःशङ्क
रंहरम् ॥ तपोधिकाःप्रपश्यन्तिदेवदेवंमहेश्वरम् ॥ २० ॥ महाकालवनेनित्यं शूलपट्टिशधारिणम् ॥ एतत्तेतथ्यमा
ख्यातं लोकानुग्रहकारकम् ॥ २१ ॥ संहितानुक्रमेणात्र मन्त्रैश्चविधिपूर्वकम् ॥ समर्चयन्तियेविप्रा भक्त्याशम्भुमघा
पहम् ॥ २२ ॥ वसन्तीहसमीपन्ते महाकालानुभावतः ॥ २३ ॥ पठतिग्रहलोके तस्यसंस्थानमेतत् प्रथितगुणगणौघे
रर्चितदोषहन्तु ॥ शुभमतिरभिषिक्तः सोमैरैर्यमानो ब्रजतिहरपुरुषं यःशृणोत्येकचित्तः ॥ १२४ ॥ इति श्रीस्कन्द
पुराणेऽवन्तीखण्डे कपालमोक्षप्रणामषष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ * * *

ही शूल व पट्टिशको धारण कियेहैं तुमसे यह संसारके ऊपर दयाकारक सत्यवृत्तान्तकहागया ॥ २१ ॥ यहापर संहिता के क्रमसे विधिपूर्वक मन्त्रोंके द्वारा जो ब्राह्मण
भक्तिसे पापविनाशक सदाशिवजीको भलीभांति पूजते हैं ॥ २२ ॥ वे महाकालजीके प्रभावसे यहां मेरे समीप वसते हैं ॥ २३ ॥ इस संभारमें प्रसिद्ध गुणगणोंसे पूजित
व दोषोंको नाश करनेवाले उन महादेवजीके इस चरित्रको जो पढ़ताहै देवताओंसे अभिषेक कियाहुआ वह उत्तम बुद्धिवाला पुरुष पूजित होताहै और वह शिवलोक
को जाताहै जोकि सावधान चित्त होकर सुनताहै ॥ १२४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायाकपालमोक्षणनामषष्ठोऽध्यायः॥६॥

सृष्टिके लिये प्रधान त्रिगुणात्मक है साधर्म्य व ऐश्वर्य व आत्म्य व ऐश्वर्य व प्रपाध व विधिमि याने अन्य धर्मवाला ॥ २० ॥ और यह रुद्रका कारण है व यह काम्यता कही जाती है सब कही कर्तृत्व है और रुद्रपुरुष में भी श्रवर्तृत्व है ॥ २१ ॥ और प्रधानपुरुष में अचैतन्य है और वह यह तत्त्व कहा गया है और अन्य तत्त्वसे कार्य व कारण छूटजाते हैं ॥ २२ ॥ और तत्त्व की संख्यासे प्रयोजक में विधर्मता को देखकर संख्या है यह रुद्र के तत्त्वार्थचिन्तकों से कहा जाता है ॥ २३ ॥ इस प्रकार उनका तत्त्वभाव है और तत्त्वसे तत्त्वों की संख्या है व विद्वानों ने रुद्रतत्त्व से भी अधिक ज्ञानतत्त्व को कहा है ॥ २४ ॥ उसी कारण सांख्ययोग में यह भक्ति विद्वानों से आध्यात्मिकी मानी

चा ॥ २० ॥ कारण तच्च रुद्रस्य काम्यत्वमिदमुच्यते ॥ सर्वत्र कर्तृता रुद्रे पुरुषे चाप्यकर्तृता ॥ २१ ॥ अचैतन्य प्रधाने च तच्च तत्त्व मिदं स्मृतम् ॥ तत्त्वान्तरेण मुच्यते कार्यकारणमेव च ॥ २२ ॥ प्रयोजके च वैजात्यं ज्ञात्वा तत्त्वस्य संख्यया ॥ संख्या स्तीत्युच्यते प्राज्ञे रुद्र तत्त्वार्थचिन्तकैः ॥ २३ ॥ इति तस्य तत्त्वभावं तत्त्वसंख्या च तत्त्वतः ॥ रुद्र तत्त्वाधिकं चापि ज्ञान तत्त्वं विदुर्बुधाः ॥ २४ ॥ सांख्ये ततो भक्तिरेषा सद्गिराध्यात्मिकी मता ॥ यौगिकी मपि मे भक्त्या शृणु भक्तिं महासुराः ॥ २५ ॥ प्राणायामपरो नित्यं ध्यायेत नित्येन्द्रियः ॥ धारणां हृदये घृत्वा ध्यायेत यो महेश्वरम् ॥ २६ ॥ हृत्कञ्जकर्णिकासीनं पञ्चवक्त्रं त्रिखो स रुद्र भक्तिः परा स्मृता ॥ २८ ॥ य एवं भक्तिमान् रुद्रे रुद्रभक्तः स उच्यते ॥ विधिनृशृणु मे व्यास यः स्मृतः क्षेत्रवासिनाम् ॥ २९ ॥ स्वयं रुद्रेण विहितो ब्रह्मादीनां समागमे ॥ कथितो विस्तरात्पूर्वं पूर्वेषां तत्र सन्निधौ ॥ ३० ॥ निर्ममानि रहङ्गा

गई है और हे महासुरो ! योगवाली भक्तिको भी मुझ से भक्तिसे सुनिये ॥ २५ ॥ कि प्राणायाम में परायण होकर इन्द्रियों को जीतेहुये पुरुष नित्यही ध्यान करे हृदय में धारणा धरकर हृदयके कमलपै बैठे पंचमुख त्रिनेत्र और दशमुखाओंवाले व चन्द्रमा से प्रकाशित जटावाले तथा सर्पों से आच्छादित कटितटवाले और गौरवर्ण व वरदायक तथा अभय हाथोंवाले कल्याणरूप सदाशिवजीको जो ध्यान करता है हे व्यासजी ! उसके योगमें उपजी हुई उत्तम शिवभक्ति कही गई है ॥ २६ ॥ २७ ॥ २८ ॥ जो इस प्रकार शिवमें भक्तिमान है वह शिवभक्त कहा जाता है व हे व्यासजी ! क्षेत्रवासियोंको जो निधि कही है उसको मुझसे सुनिये ॥ २९ ॥ जो कि ब्रह्मादिकों

के संयोग में आपही शिवजी से कहीगई है व पुरातन समय वहापर पहलेवाले जनो के समीप बिस्तार से कहीगई है ॥ ३० ॥ ममतारहित, गर्वहीन, सङ्गरहित तथा स्त्रीआदिकों से रहित और बन्धुवर्गमें स्नेहरहित तथा डेला, पत्थर व सुवर्ण में समभाववाले ॥ ३१ ॥ और नित्य तीनभांति के कर्मोंसे प्राणियों को अभय देनेवाले व सांख्ययोग की विधिको जाननेवाले, धर्मज्ञ तथा सरायरहित ॥ ३२ ॥ जो क्षेत्रवासी ब्राह्मण अनेक भांति के यज्ञोंसे महाकालवन में शिवजी को पूजते हैं मरेहुये उनलोगों को जो फल होता है उसको सुनिये ॥ ३३ ॥ कि वे पुरुष बहुतही दुर्लभ व अक्षय ब्रह्मसायुध्य मुक्तिको प्राप्तही होतेहैं और अक्षयमोक्ष को प्राप्तहोकर फिर

रा निस्सङ्गानिष्पारिग्रहाः ॥ बन्धुवर्गंचनिःस्नेहाः समलोष्टाश्मकाश्चनाः ॥ ३१ ॥ भूतानांकर्मभिर्नित्यं त्रिविधैरभयप्रदाः ॥ साङ्ख्ययोगविधिज्ञाश्च धर्मज्ञाश्छिन्नसंशयाः ॥ ३२ ॥ यजन्तोविविधैर्यज्ञैर्विप्राःक्षेत्रवासिनः ॥ महाकालवनेतेषां मृतानांयत्फलंशृणु ॥ ३३ ॥ ब्रजन्त्येवमुदुष्टप्रापं ब्रह्मसायुज्यमक्षयम् ॥ सम्प्राप्यनपुनर्जन्म लभन्तेमोक्षमक्षयम् ॥ ३४ ॥ पुनरावर्तनंहित्वा विधिमाहेश्चरंस्थिताः ॥ पुनरावृत्तिरन्येषां प्रपञ्चाश्रमवासिनाम् ॥ ३५ ॥ गार्हस्थ्यविधिमामासाद्य पटकर्मनिरतास्सदा ॥ वेदोक्तविधिनासम्यग्मन्त्रस्तोत्रनियन्त्रिताः ॥ ३६ ॥ अधिकफलमाप्नोति सर्वदुःखविवर्जितः ॥ सर्वलोकेषुचान्यत्र गतिस्तस्यनहन्यते ॥ ३७ ॥ दिव्येनैश्वर्ययोगेन सुरुटःसुपरिग्रहः ॥ बहुसूर्यप्रकाशेन विमानेनसुवर्चसा ॥ ३८ ॥ वृतःस्त्रीणांसहस्रैश्च स्वच्छन्दगमनालयः ॥ विचरत्यविचारेण सर्वलोकान्दिवौकसाम् ॥ ३९ ॥

जन्मको नहीं प्राप्तहोते हैं ॥ ३४ ॥ और वे फिर पुनरागमन को छोड़कर शिवजी की विधिमें स्थित होतेहैं और प्रपञ्चाश्रम में बसेनेवाले अन्य नरों का पुनरागमन होताहै ॥ ३५ ॥ और गृहस्थी की विधिमें स्थित होकर वेदोक्तविधि से सदैव षट् (छह) कर्मोंमें परायण और भलीभांति मन्त्रोंवस्तात्रोंसे बंधाहुआ ॥ ३६ ॥ ब्राह्मण समस्त दुःखां से रहित होकर अधिक फलको प्राप्त होता है और सब लोकोंमें व अन्यत्र उसकी गति नहीं नष्ट होती है ॥ ३७ ॥ और दिव्य ऐश्वर्य के योगसे पुष्ट व उत्तम-परिवारवाला तथा इच्छाके अनुसार स्थानोंमें गमनवाला वह पुरुष हजारों स्त्रियोंसे घिरकर बहुत सूर्यों के समान प्रकाशवाले तथा उत्तम तेजवाले विमान के द्वारा

देवताओं के सब लोकोंमें विचाररहित अमण करता है ॥ ३८३६ ॥ और पुरुषों के मध्यमें बहुतही चाहनेयोग्य और सब जातियों से उत्तम व धनी होताहै और स्वर्ग से अष्टहुआ पुरुष बडेभारी कुलमें उत्पन्न होकर रूपवान् होताहै ॥ ४० ॥ और धर्म का जाननेवाला व शिवभक्त तथा समस्त विद्याओं के अर्थका पारगामी होताहै और ब्रह्मचर्य्य व गुरुकी सेवासे ॥ ४१ ॥ और वैसेही वेदपाठ से संयुत तथा भिक्षासे जीविका करनेवाला और इन्द्रियजित होताहै और नित्यसत्यरूपी व्रत में संयुत और अपने धर्ममें हर्षवान् होताहै ॥ ४२ ॥ और मराहुआ वह पुरुष कामनाओं से बडेहुये व समस्तसुखों को अवलम्बन करनेवाले दूसरे सूर्यकी नाई विमान से शोभित होता

स्पृहणीयतमःपुंसां सर्ववर्णोत्तमोधनी ॥ स्वर्गाच्छ्रुतःप्रजायेत कुलेमहतिरूपवान् ॥ ४० ॥ धर्मज्ञोरुद्रभक्तश्च सर्वविद्या
र्थपारगः ॥ तथैवब्रह्मचर्येण गुरुशुश्रूषणेनच ॥ ४१ ॥ वेदाध्ययनसंयुक्तो भिन्नवृत्तिर्जितेन्द्रियः ॥ नित्यंसत्यव्रतेयु
क्तः स्वधर्मेचप्रमोदवान् ॥ ४२ ॥ मृतःकामसमृद्धेन सर्वभोगावलम्बिना ॥ सूर्येणैवद्वितीयेन विमानेनविराजितः ॥ ४३ ॥
गुह्यकानामरुद्रस्य गणाःपरमसम्मताः ॥ अप्रमेयबलैश्वर्या देवदानवपूजिताः ॥ ४४ ॥ तेषांचसमतांयाति तुल्यैश्व
र्यसमन्वितः ॥ देवदानवमर्त्येषु सचपूज्यतमोभवेत् ॥ ४५ ॥ वर्षकोटिसहस्राणि वर्षकोटिशतानिच ॥ एवमैश्वर्यंसंयु
क्तोरुद्रलोकैमर्हयते ॥ ४६ ॥ उषित्वासौविभूत्यावै यदावैच्यवतेनरः ॥ रुद्रलोकोच्छ्रुतोभूमौ वसतेनात्रसंशयः ॥ ४७ ॥
महाकालवनेक्षेत्रे ब्रह्मचर्याश्रमेस्थितः ॥ महेश्वरपरोनित्यंवसेद्वाग्निप्रयतेषां ॥ ४८ ॥ मृतोसौयातिदिव्यैव विमानेसू

॥ ४३ ॥ और बहुतही मानेहुये तथा अमित बल व ऐश्वर्य्यवाले और देवताओं तथा दानवों से पूजित जो गुह्यकानामक शिवजीके गणहैं ॥ ४४ ॥ उनके तुल्य ऐश्वर्य्यो
से संयुत पुरुष उनकी समता को प्राप्तहोता है और देवता, दानव व मनुष्यों के बीचमें वह अत्यन्त पूजनीय होताहै ॥ ४५ ॥ व करोड़ों हजारों वर्षोंतक और करोड़ों
से वर्षोंतक इसीभांति ऐश्वर्य्य से संयुक्त पुरुष शिवलोक में पूजित होताहै ॥ ४६ ॥ और वहां बसकर यह पुरुष जब ऐश्वर्य्य से च्युत (पृथक्) होताहै तब शिवलोक
से गिराहुआ वह भूमिमें बसता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ४७ ॥ और ब्रह्मचर्य्य के आश्रम में स्थित शिवमें तत्पर वह पुरुष महाकालवन नामक क्षेत्रमें बसताहै या मरता

है ॥ ४८ ॥ और मराहुआ यह पुरुष सूर्यके समान तेजवाले दिव्य विमान पै प्राप्त होता है और वह पूर्णचन्द्रमाके समान प्रकाश से चन्द्रमा की नाई प्रियदर्शनीवाला होता है ॥ ४९ ॥ और शिवलोक में प्राप्त होकर वह गुह्यकों के साथ आनन्द करता है और सब संसारका स्वामी वह बड़े ऐश्वर्यको भोग करता है ॥ ५० ॥ और हजारों युगों तक भोगकर शिवलोक में पूजित होता है और फिर क्रमसे उस शिवलोक से अष्टहुआ पुरुष ॥ ५१ ॥ नित्यही प्रसन्न होता हुआ वहां व्याधिरहित लोकको भोग कर ब्राह्मणों के बड़े भारी उत्तमवंशमें पैदा होता है ॥ ५२ ॥ और सब मनुष्यों के बीचमें रूपवान् होकर बसता है और स्त्रियोंके अत्यन्तही चाहनेयोग्य व महासुखों

यंत्रचर्चासि ॥ पूर्णचन्द्रप्रकाशेन शशिविप्रियदर्शनः ॥ ४९ ॥ रुद्रलोकंसमासाद्य गुह्यकैस्सहमोदते ॥ ऐश्वर्यचमहद्भुक्ते सर्वस्य जगतः प्रभुः ॥ ५० ॥ भुक्त्वायुगसहस्राणि रुद्रलोकैर्महीयते ॥ प्रच्युतस्तपुनस्तस्माद् रुद्रलोकात्क्रमेण तु ॥ ५१ ॥ नित्यं प्रसुदितस्तत्र भुक्त्वालोकमनामयम् ॥ द्विजानामुत्तमैर्चैव कुले महति जायते ॥ ५२ ॥ मानुषेषु च सर्वेषु वसेद्भू त्वासुररूपवान् ॥ स्पृहणीयवपुः स्त्रीणां महाभोगपतिर्भवेत् ॥ ५३ ॥ दानप्रस्थसमाचारो वनौषधिनिषेवकः ॥ शीर्षपत्र समाहारः फलपुष्पाम्बुभोजनः ॥ ५४ ॥ कणाशेनाश्मकुट्टेन दन्तील्लखलकेन च ॥ येन केनाप्युपायेन जीर्णवल्कल वस्त्रतः ॥ ५५ ॥ जटीत्रिषण्णस्नायी मुक्तकेशश्च दण्डवान् ॥ जलशायी पञ्चतपा वर्षास्वभ्रशयी तथा ॥ ५६ ॥ कीट कण्टकपाषाणभूम्यान्तुशयनं तथा ॥ स्थानवीरासनरतः संविभार्गीदृढव्रतः ॥ ५७ ॥ अरयौषधिभोक्ता च सर्वभूता

का स्वामी होता है ॥ ५३ ॥ और वानप्रस्थ आश्रम के आचरणवाला पुरुष वनकी ओषधियों को सेवन करनेवाला व गिरेंहुये पत्तोंका आहार करनेवाला तथा फल, फूल व जलको भोजन करता है ॥ ५४ ॥ और कणभोजन व पत्थर में कुटने से और दन्तरूपी ओखली से व जिस किसी उपाय से भी प्राचीन बकलों के बदनसे युक्त होकर ॥ ५५ ॥ जटावान् व त्रिकाल स्नान करनेवाला तथा बालोंको छोड़ेहुये और दण्ड धारण किये जलमें शयन करनेवाला व पञ्चाग्नि तापनेवाला और वर्षा ऋतुमें आकाश में शयन करनेवाला होवै ॥ ५६ ॥ और कीट, कंटक, पत्थर व भूमिमें शयन करै और स्थानमें वीरासनमें तत्पर होवै और भलीभांति विभाग करने

वाला व दृढ़ नियमोंवाला होत्रै ॥५७॥ और वनकी ओषधियों को भोजन करनेवाला व समस्त प्राणियोंको अभय देनेवाला व नित्यही धर्ममें तत्पर, मौनी, क्रोधको जीते हुये व इन्द्रियजित् ॥ ५८ ॥ शिवभक्त महाकालवन में बसनेवाला मुनिहोवै युवा सूर्यनारायण के समान प्रकाशवान् व वेदिकाओं के स्तम्भों से शोभित ॥ ५९ ॥ और इच्छा के अनुकूल चलनेवाले विमान के द्वारा शिवभक्त जाता है और वह आकाशमें दूसरे चन्द्रमाकी नाई शोभित होता है ॥ ६० ॥ और गाने बजाने के शब्द समेत अप्सरासमूहों से घिराहुआ पुरुष कुछ अधिक करोड़ सौ वर्षोंतक शिवलोक में पूजाजाता है ॥ ६१ ॥ और रुद्रलोक से अष्टमी यह पुरुष विष्णुलोक में पूजा

भयप्रदः ॥ नित्यन्धर्मपरोमौनी जितक्रोधोजितेन्द्रियः ॥ ५८ ॥ रुद्रभक्तः क्षेत्रवासी महाकालवनेमुनिः ॥ तरुणार्कप्रकाशेन वेदिकास्तम्भशोभिना ॥ ५९ ॥ रुद्रभक्तो विमानेन यातिकामप्रचारिणा ॥ विराजमानो नभसि द्वितीयइव चन्द्रमाः ॥ ६० ॥ गीतवादित्रशब्देन संवृतोप्सरसाङ्गणैः ॥ वर्षकोटिशतं साग्रं रुद्रलोकैर्महीयते ॥ ६१ ॥ रुद्रलोकोऽच्युतश्चापि विष्णुलोकैर्महीयते ॥ विष्णुलोकोऽपि ब्रह्मलोकं सगच्छति ॥ ६२ ॥ तस्मादपि च्युतः स्थानाद्भीषेषु साहि जायते ॥ स्वर्गे पुचतथान्येषु भोगान्मुङ्क्ते यथेच्छया ॥ ६३ ॥ सुक्त्वैश्वर्यं नरस्तेषु मर्त्यो मर्त्येषु जायते ॥ राजा वाराज तु ल्योवा जायते धनवान् सुखी ॥ ६४ ॥ सूरूपः सुभगः कान्तः कीर्तिमान् रुद्रभाविनः ॥ ब्राह्मणः क्षत्रियवैश्याः शूद्रावा जे त्रवासिनः ॥ ६५ ॥ स्वधर्मनिरता व्यास स्ववृत्त्याचारजीविनः ॥ सर्वात्मनारुद्रभक्ता भूतानुग्रहकारिणः ॥ ६६ ॥ महा

जाता है व विष्णुलोकसे च्युत होकर वह पुरुष ब्रह्मलोकको जाता है ॥ ६२ ॥ और उस स्थान से भी अष्टहुआ वह पुरुष द्वीपोंमें उत्पन्न होता है व स्वर्गमें तथा अन्य स्थानों में इच्छा के अनुकूल सुखोंको भोगता है ॥ ६३ ॥ और पुरुष उनमें ऐश्वर्यको भोगकर मनुष्यलोकों में मनुष्य होता है व राजा या राजाके समान धनवान् व सुखी होता है ॥ ६४ ॥ और सुन्दर रूपवान् व उत्तम ऐश्वर्यवान्, मनोहर, यशस्वी तथा शिवजी से शुद्धचित्तवाला होता है क्षेत्रमें बसनेवाले ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य व शूद्र ॥ ६५ ॥ हे व्यासजी! अपने धर्ममें परायण व अपनी जीविका व आचार से जीनेवाले तथा सर्वात्मासे शिवभक्त व प्राणियों के ऊपर दया करनेवाले ॥ ६६ ॥ जो मुक्तिकी इच्छावाले महाकालवन

नामक क्षेत्रमें बसते हैं मरेहुये वे पुरुष अप्सरासमूहों से संयुत तथा इच्छा के अनुकूल जानेवाले व इच्छा के अनुसार रूपवाले उत्तम विमाना क द्वारा शिवभवन को प्राप्त होते हैं अथवा पायेहुये ज्ञानरूपी अग्निमें जो शरीरको हवन करता है ॥ ६७ ॥ रुद्राध्याय पढ़नेवाला व महाबलवान् वह शिवभवनमें बसता है और रुद्र-लोकसे उनका नाश होनेपर शुद्धको समेत पिशाच ॥ ६६ ॥ सब लोकोंसे उत्तम व मनोहर लोक में प्रिय प्राप्तिका साधन करनेवाला होता है और महाकालवन में जो मनुष्य अनशनव्रत में प्राणोंको छोड़ते हैं ॥ ७० ॥ हे व्यासजी ! उन महात्माओंको भी अविनाशी शिवलोक होता है और वे सांख्ययोगवाले पुरुष सब दुःखोंसे

कालवनमें क्षेत्रं येवसन्तिमुमुक्षुः ॥ मृतास्तेरुद्रभवन् विमानैर्यान्तिशोभनेः ॥ ६७ ॥ अप्सरोगणसंयुक्तैः कामगैः कामरूपिभिः ॥ अथवाप्तसंविदग्नौ शरीरं विजुहोति यः ॥ ६८ ॥ रुद्राध्यायी महासत्त्वः सरुद्रभवन्नेवसेत् ॥ रुद्रलोकं तत्त्वयेत् ॥ पां पिशाचो गुह्यकैस्सह ॥ ६९ ॥ सर्वलोकोत्तमेरम्ये भवतीष्टासि साधकः ॥ येत्यजन्ति महाकाले प्राणाननशननराः ॥ ७० ॥ तेषामप्यक्षयो व्यास रुद्रलोको महात्मनाम् ॥ साङ्ख्यास्तिष्ठन्ति ते रुद्र सर्वदुःखविवर्जिताः ॥ ७१ ॥ सर्वाभरयु तन्देवं नन्दीदेवगणैर्युतम् ॥ अनाशकमृताः शुद्रा महाकालवने नराः ॥ ७२ ॥ सिंहयुक्तैस्तु ते यान्ति विमानैरर्कसन्निभैः ॥ नानावर्णसुवर्णैश्च पुष्पगन्धादिवासितैः ॥ ७३ ॥ अर्नोपम्यगुणैरम्यैरप्सरोगीतवाद्यकैः ॥ रुद्रलोकं नरानार्यः सर्वेऽप्यनशनमृताः ॥ ७४ ॥ तत्रोषित्वा चिरङ्कालं भोगान्भुक्त्वा यथेप्सितान् ॥ धनीविप्रकुलेभोगी जायते मर्त्यमागतः ॥ ७५ ॥ करीषं साधयेद्यस्तु महाकालवने नरः ॥ सर्वरोगविनिर्मुक्तो रुद्रलोकं स गच्छति ॥ ७६ ॥ रुद्रलोकं वसेत्तावद्या

रहित होकर शिवजी के समीप टिकते हैं ॥ ७१ ॥ जो शिवदेव कि समस्त देवताओं से संयुत व नन्दी तथा देवगणों से युक्त हैं व महाकाल वन में विन भोजन किये मरेहुये शुद्र मनुष्य ॥ ७२ ॥ वे सिंहसंयुत तथा सूर्यनारायणके समान व अनेक रंगके उत्तम रंगोंसे व पुष्पकी सुगन्धादिकोंसे सुगन्धित विमानोंके द्वारा जाते हैं ॥ ७३ ॥ और अनशनव्रत में मरेहुये सबभी स्त्री पुरुष अनूपगुणवाले और मनोहर अप्सराओं के गीत व बाजाओं समेत शिवलोकमें बसते हैं ॥ ७४ ॥ और वहां बहुत समय तक बसकर व चाहेहुये सुखोंको भोगकर मृत्युलोक में आयाहुआ पुरुष विप्रवंशमें धनी व सुखी उत्पन्न होता है ॥ ७५ ॥ और जो मनुष्य महाकालवनमें करीष

(सखे गोमय) को साधन करता है समस्त रोगों से छुटा हुआ वह शिवलोक को जाता है ॥ ७६ ॥ और तदन्तक शिवलोकमें बसता है जबतक कल्पका अन्त न होता है और वहां महासुखोंको भोगकर यहां उत्पन्न होकर मनुष्य सब पृथ्वीका राजा होता है व रूपवान् और उत्तम ऐश्वर्यवान् होता है ॥ ७७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्ती खण्डे देवीदयालुमिश्रविरचितायाभाषटीकायां महाकालवननिवासविधिवर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

दो० । कलनाशन तीरथ यथा भयो अति हि विख्यात । सो अष्टम अध्याय में वर्णित चरित सुहात ॥ व्यासजी बोले कि आचार मुख्यधर्म है और अपने धर्ममें वत्कल्पज्यो भवेत् ॥ तत्र भुक्त्वा महाभोगानि हजातो महीपतिः ॥ ७७ ॥ पृथिव्यास्स कलायाश्च रूपवान् भुभुगो नरः ॥

७८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे महाकालवननिवासविधिवर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ * ॥

व्यास उवाच ॥ आचारः प्रथमो धर्मस्सर्वधर्मपरायणः ॥ स्वधर्मे निरतश्चैव जितक्रोधो जितेन्द्रियः ॥ १ ॥ रुद्रलोके ब्र जेदेव नात्र चिन्ता मतेर्मम ॥ असंशयश्च गच्छन्ति लोकानन्याञ्छशिप्रभैः ॥ २ ॥ विनापि जेन वासेन तथैव नियमेन च ॥ स्त्रियो म्लेच्छाश्च शूद्राश्च पशवः पक्षिणो मृगाः ॥ ३ ॥ मूका जडान्धवधिरास्तपो नियमवर्जिताः ॥ एतेषां कागतिर्वि प्र महाकालवने मृताः ॥ ४ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ स्त्रियो म्लेच्छाश्च शूद्राश्च पशवः पक्षिणो मृगाः ॥ कालेनैव मृता व्यास रुद्रलोकं ब्रजन्ति ते ॥ ५ ॥ शरीरैर्दिव्यरूपैश्च सर्वभोगसमन्विताः ॥ ६ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ अस्मिन् महाकालवने तत्पर तथा क्रोधको जीते व इन्द्रियों को जीते हुये ॥ १ ॥ पुरुष शिवलोक को जाता ही है इस विषय में मेरी बुद्धि को चिन्ता नहीं है क्योंकि क्षेत्रवास के बिना वैसे ही नियम से निरसन्देह पुरुष चन्द्रमा के समान विमानों के द्वारा अन्यलोकों को जाते हैं और स्त्रियां, म्लेच्छ, शूद्र, पशु, पक्षी व मृग ॥ २ ॥ और गूंगे, जड, अन्ध व बधिर जो कि तपस्या व नियम से रहित होकर महाकालवन में मरे हैं वे विप्रजी ! इनकी क्या दशा होती है ॥ ३ ॥ सनत्कुमारजी बोले कि हे व्यासजी ! स्त्रियां, म्लेच्छ, शूद्र, पशु, पक्षी, मृग कालही से मरे हुये वे सब सुखों से संयुत होकर दिव्यरूपवाले शरीरों से शिवलोकको प्राप्त होते हैं ॥ ५ ॥ सनत्कुमारजी बोले कि हे व्यासजी !

इस महाकालवन में शिवजी सदैव बसते हैं एक दिन लीला करने के लिये उन पार्वती व प्रेतों से संवृत रम्यान में बसते हुये उन शिवजी ने पार्वती से हे कालि ! जहां आहूये इत्यादिक वचनों को कहा ॥७॥ इसप्रकार जब शिवजी ने पार्वतीको काली ऐसा कहा तब क्रोधित होती हुई उन पार्वतीने शिवजी से कटुवचन कहा ॥ ६ ॥ इस प्रकार जहांपर शिव व पार्वती का कलह हुआ वहांपर कलकलेश्वरनामक शिवजी उत्पन्न हुये हैं ॥१०॥ और उस समय कलहनाशन नामक कुण्ड आगे किया गया है हे व्यासजी ! उसमें स्नान करनेपर कलहकारिणी स्त्री नहीं होती है ॥११॥ उस तीर्थमें नष्टकर व महादेवजीको पूजकर तथा एकरात्रि उपासकर मनुष्य सौ पुत्रियोंको तारता

शिवोवसतिसर्वदा ॥ एकस्मिन्दिवसेदेवो लीलाङ्गवृंशिवाप्रति ॥ ७ ॥ ऊंचेकालिसमागच्छेत्यादीनिवचनानिसः ॥
तयासहवसन्व्यास इमशानेप्रेतसंकुले ॥ ८ ॥ इत्थमुक्तातुशर्वेण कालीतिपार्वतीयदा ॥ तदासाकुपितादेवी कट्ट्वेश
ङ्करमप्रति ॥ ९ ॥ एवन्तुकलहोजातः शिवगौर्योर्द्वियत्रतु ॥ देवस्तत्रसमुद्भूतो नाम्नाकलकलेश्वरः ॥ १० ॥ कृतमप्रेत
दाकुण्डं नाम्नाकलहनाशनम् ॥ स्नानेतत्रकृतेव्यास नस्यात्कलहिनीप्रिया ॥ ११ ॥ तस्मिंस्तीर्थेनरःस्नात्वा पूज
यित्वा महेश्वरम् ॥ उपोष्यरजनीमिकां कुलानांतरयेच्छतम् ॥ १२ ॥ तत्रयच्छतियोदानं त्रुटिमात्रञ्चचन्दनम् ॥
आत्मनत्तारितास्तेन दशपूर्वेदशापरे ॥ १३ ॥ भूमिदानंचयस्तत्र प्रदास्यतिनरोमुने ॥ अपिगोचर्ममात्रेण सर्वभूम्य
धिपोभवेत् ॥ १४ ॥ गामेकारक्तकामेवभूमेरप्येकमङ्गुलम् ॥ यःप्रदास्यतिभक्त्याहि सवैराज्यमविष्यति ॥ १५ ॥ धे
नुमश्वांस्तिलान्वस्त्रं भाजनंताम्रदोहनम् ॥ उपानहश्चवस्त्रञ्च तथाचैषेष्टपादुके ॥ १६ ॥ येप्रदास्यन्तिविप्रेभ्यस्तेपांलो

है ॥१२॥ व जो पुरुष वहांपर लवमात्र चन्दन दान देता है उससे अपना समेत दश पहलेवाले व दश पीछेवाले पितर तार दिये जाते हैं ॥१३॥ हे मुने ! जो पुरुष वहांपर भूमि दान देवैगा गऊ के चर्ममात्र भूमिसे भी वह समस्त पृथ्वीका स्वामी होता है ॥ १४॥ और एक अरुणगऊ व भूमिके एक अंगुल को भी जो भक्तिसे देवैगा वह निरवयकर राजा होगा ॥१५॥ और गऊ घोड़े, तिल, वसन व तांबे का दोहनपात्र, पनहीं, छत्र व प्रिय खड़ाउर्वोको ॥१६॥ जो ब्राह्मणों के लिये देवैगे उनके लोक सदैव

अविनाशी होंगे और उस कुण्डके दाहिने बगल में पृष्ठमाता देवता हैं ॥ १७ ॥ और वे देवी सब लोकों के पातकों को नाश करनेवाली हैं और वहां मणिक-
णिकनामक उत्तम तीर्थ जाननेयोग्य है ॥ १८ ॥ उस में नहाकर जो पुरुष, पृष्ठमाता ऐसे नामवाली भगवती का दर्शन करता है वह समस्त पातकों से छूटकर चाही
हुई सिद्धिको पाता है ॥ १९ ॥ और उसका दर्शनकर मार्गमें यात्राकरै तो उसको चोरोंसे डर नहीं होता है और राजसों व भूतोंका डर नहीं होता है ॥ २० ॥ और अपने देशमें
व परदेश में तथा पर्वतों व जङ्गलों में और समुद्रमें उसको डर नहीं होता है और न दुष्टभावना होती है ॥ २१ ॥ और सब ग्रहपीड़ाओं में व राजभयादिकों में जो ब्राह्मण

काःसदाक्षयाः ॥ तस्यदक्षिणपार्श्वेच पृष्ठमाताचदेवता ॥ १७ ॥ साचैवसर्वलोकानां देवीदुरितहारिणी ॥ तत्रतीर्थन्तु
विज्ञेयं मणिकणिकमुत्तमम् ॥ १८ ॥ तस्मिन्स्नात्वातुयःपश्येत्पृष्ठमातेतिसंज्ञिताम् ॥ समुक्तस्सर्वपापेभ्यः सिद्धिमाप्नो-
तिवाञ्छिताम् ॥ १९ ॥ तस्यास्तुदर्शनं कृत्वा मार्गेगमनमाचरेत् ॥ नमयंतस्यचोरैभ्यो रक्षोभूतमयंतथा ॥ २० ॥ स्वदेश-
परदेशेवा पर्वतेष्वटवीषुच ॥ नममुद्रेभयंतस्य तथावैदुष्टभावनाम् ॥ २१ ॥ ग्रहपीडासुसर्वासु तथाराजभयादिषु ॥ वस्तं
वायदिवाभेषं महिषंवापिघातयेत् ॥ २२ ॥ देवीमुद्दिश्ययोविप्रः सोभीष्टंफलमश्नुते ॥ आश्विनस्यसिताष्टम्यां पूजनं
चार्द्धरात्रिके ॥ २३ ॥ यःस्नातिपुरतोदेव्याः ससिद्धिलभतेपराम् ॥ मृतपुत्रातुयानारी कुण्डेस्नात्वासमर्तुका ॥ २४ ॥
स्नातिवैयदिकुम्भेन अग्रेदेव्याविधानतः ॥ स्नात्वानान्यमुखंपश्येत् कुम्भस्नानंविनामुने ॥ २५ ॥ तस्यास्सञ्जाय
तेपुत्रो यथादेवःषडाननः ॥ पृष्ठमातुःपुरापुरयं तीर्थमप्सरसांशुभम् ॥ २६ ॥ रूपसौभाग्यसम्पन्नस्तत्रस्नातोभवेन्नरः ॥

देवीको उद्देशकर छाग या मेप (भैंसा) अथवा भैंसेका बलिप्रदान करता है वह चाहेहुये फलको भोग करता है और कुँवारके शुक्लपक्षकी अष्टमी तिथिमें जो मनुष्य
आधीरात को उन भगवती का पूजन करता है ॥ २२ ॥ और जो देवीजी के आगे स्नान करता है वह उत्तम सिद्धिको प्राप्तहोता है और जिसके पुत्र मरजाते हैं
पतिसमेत वह कुण्ड में नहाकर ॥ २४ ॥ देवीके आगे यदि कुम्भसे विधिपूर्वक स्नान करती है और हे मुने ! कुम्भस्नान के बिना अन्यके मुखको नहीं देखती है ॥
२५ ॥ तो जैसे वह मुखोंवाले स्वामिकात्तिकेयजी हैं वैसाही पुत्र उसके पैदाहोता है और पृष्ठमाता के आगे अप्सराओं का उत्तमतीर्थ है ॥ २६ ॥ उसमें नहायाहुआ

पुरुष रूप व सौभाग्यसे संयुत होता है हे न्यासजी ! पुरातन समय इस तीर्थ के प्रभाव से उर्वशी ने ॥ २७ ॥ पुरूरवाको पति पाया है जो ये कि संसार में राजा थे ॥ २८ ॥
इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां तीर्थमाहात्म्ये कलहनाशनादितोर्थमहिमवर्णनं नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥
दो० । भयो अप्सराकुण्ड कर यथा अभित परभाव । सोइ नवम अध्यायमें चरित आहे सुखचाव ॥ व्यासजी बोले कि हे महामुने ! वहापर अप्सराओं का तीर्थ कैसे उरपन्न हुआ है जिस प्रकार जिस कारणसे व जिस समयमें प्रतिष्ठित हुआ हो ॥ १ ॥ उसको वैसेही विस्तार समेत व रहस्य समेत वर्णन करिये और जो ये पुरूरवा थे उन्होंने

उर्वश्यावै पुराव्यास तीर्थस्यास्य प्रभावतः ॥ २७ ॥ भर्ता पुरूरवा लब्धो लोकयोसौ महीपतिः ॥ २८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे
ऽवन्तीखण्डे तीर्थमाहात्म्ये कलहनाशनादितोर्थमहिमवर्णनं नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ * ॥

व्यास उवाच ॥ कथमप्सरसां तीर्थं तत्र जातं महामुने ॥ कारणेन यथा येन यस्मिन् काले प्रतिष्ठितम् ॥ १ ॥ तथा तन्मे
सविस्तारं सरहस्यं प्रकीर्तय ॥ कथं पुरूरवाश्चासौ भाय्यते न वराप्सराः ॥ २ ॥ उर्वशी नाम कासातु केन जाता वराहना ॥
सर्वमेतद्यथा वृत्तं ब्रूहि कौतूहलाहिमे ॥ ३ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ नरनारायणोऽपूर्वं यत्र वैते पतुस्तपः ॥ वदरिकाश्रमस्थौ
तौ तेनेन्द्रो भयमागतः ॥ ४ ॥ सर्वा अप्सरसो हृद्या रूपयौवनदर्पिताः ॥ आदिष्टा यामघवता विघ्नार्थं च समागताः ॥ ५ ॥
तौ दृष्ट्वा पसरसस्तत्र रमन्त्यो मदविह्वलाः ॥ विघ्नार्थं ह आयातास्तदा देवौ प्रजल्पतुः ॥ ६ ॥ अस्माकन्न स्त्रियः सन्ति तेन वै
विघ्नकारणम् ॥ एवं संजल्प्य च नरो नारायणमुवाच ह ॥ ७ ॥ करिष्याम्यहमेकान्तामासां वै रूपतोधिकाम् ॥ मञ्जयांस

कैसे उत्तम अप्सराको स्वीपाया है ॥ २ ॥ और वह उर्वशी नामक उत्तम स्त्री कौन है और किससे पैदा हुई है इस यथार्थ वृत्तान्तको कहिये मेरे आश्चर्य है ॥ ३ ॥ सनत्कु-
मारजी बोले कि पुरातन समय जहांपर वदरिकाश्रममें स्थित उन नरनारायण ने तप किया है उस से इन्द्रजी भयको प्राप्त हुये ॥ ४ ॥ इन्द्रने जिनको आज्ञा दिया वे रूप
व यौवन से गर्वित सब अप्सरायें विघ्नके लिये वहां आई ॥ ५ ॥ मदसे विह्वल तथा क्रीडा करती हुई व विघ्नके लिये वहां एकान्त में आई अप्सराओं को देखकर उस
समय उन्होंने कहा ॥ ६ ॥ कि हम लोगों के स्त्रियां नहीं है उससे विघ्नका कारण है इस प्रकार कहकर नरनारायणजीसे बोले ॥ ७ ॥ कि इनके मध्यमें रूपमें अधिक

उस स्त्रीको करूंगा यह कहकर जङ्घों से सहकार (अतिसुगन्धित आम) की मछरीसमेत स्त्रीको उत्पन्न किया ॥ ८ ॥ संसार में रूपसे असमान याने सबसे उत्तम रूपवाली व सब गहनों से शोभित और अग्निके समान प्रकाशवती तथा बड़ीहुई उस स्त्रीको देखकर उत्तम स्त्रियोंने ॥ ९ ॥ जाकर इन्द्रजी से कहा कि हमलोग उनको लुभाने के लिये न समर्थ हुई उनका वचन सुनकर मस्तक पै अञ्जलीको धरेहुये इन्द्रजी प्रणामसे मुँकेहुये होकर जाकर नरनारायण देवताओं से बोले कि मैं इस स्त्रीका याचक हूँ यह प्रसन्नता कीजावै ॥ १० ॥ तदनन्तर परमेश्वरदेवजीने उस उर्वशीको इन्द्रकेलिये दिया व कहा कि हमारे वचनकी सामर्थ्यसे तुम इस उर्वशी

हकारस्य स्त्रीमूरुभ्यांचकारह ॥ ८ ॥ रूपेणाप्रतिमांलोकं सर्वाभरणभूषिताम् ॥ उच्छ्रितांप्रमदांष्टृष्ट्वा ज्वलनाभांवराङ्गनाम् ॥ ९ ॥ गत्वाशशंसुस्ताःशक्रं नतौलोभयितुंक्षमाः ॥ शक्रस्तासांवचःश्रुत्वा गत्वादेवाबुवाचह ॥ १० ॥ प्रणामावनतोभूत्वा शिरस्यञ्जलिमादधन् ॥ अहमर्थीस्त्रियश्चास्याःप्रसादःक्रियतामिति ॥ ११ ॥ ततस्तान्ददतुदेवाविन्द्रायपरमेश्वरी ॥ अस्मद्वचनसामर्थ्याद् गृहाणेमांत्वमुर्वशीम् ॥ १२ ॥ ऊरुभ्यांजनितायस्मान्नरेण्यं वराङ्गना ॥ मञ्जर्यासहकारस्य तेनेयमुर्वशीमता ॥ १३ ॥ पुरन्दरोगृहीत्वातामुर्वशींपरमाङ्गनाम् ॥ शिञ्जाञ्चक्रियतांचित्रपथानृत्येविचक्षणा ॥ १४ ॥ क्रियतामचिरादेषा यत्नमास्थायशोभनम् ॥ एवमुक्तेतुचित्रेण कृतातेनविचक्षणा ॥ १५ ॥ बहुप्रवीणासाजाता नृत्येगीतेचकोविदा ॥ एवंसान्यवसत्तत्र पुरासद्धानिसुन्दरी ॥ १६ ॥ गतेबहुतिथेकाले तत्रागात्सनरेश्वरः ॥ इलस्यपुत्रोधर्मात्मान्माचैवपुरूरवाः ॥ १७ ॥ इन्द्रस्यार्द्धासनगतो नृत्यं पश्यतितत्रह ॥ नृत्यन्तीवासवस्याग्रे उर्वशी

को ग्रहणकरो ॥ १२ ॥ जिसलिये नरसे यह उत्तमस्त्री सहकारकी मछरीसमेत ऊरुओं से पैदाहुई है उससे यह उर्वशी जानीगई ॥ १३ ॥ इन्द्रने उस उत्तमस्त्री उर्वशीको लेकर चित्रगन्धर्वसे कहा कि उस प्रकार शिञ्जा कीजावै कि जिसमांति नृत्यमें चतुर होवै ॥ १४ ॥ उत्तम यत्नमें स्थित होकर यह शीघ्रही वैसी कीजावै ऐसा कहनेपर उस चित्रसे चतुर कीगई ॥ १५ ॥ और नृत्य व गानमें चतुर यह बहुतही प्रवीण हुई इसप्रकार पुरातन समय वह सुन्दरी वहां मन्दिरमें बसती भई ॥ १६ ॥ और बहुत दिनों वाले समयके बीतनेपर वहापर इनके पुत्र पुरूरवा नामक धर्मात्मा वे राजा आये ॥ १७ ॥ और इन्द्रके आधे आसनपर बैठेहुये वे नृत्यको देखतेथे व इन्द्रके आगे नाचती

हुई उर्वशीको देखकर कार्मी ॥ १८ ॥ राजाने उससे हरेहुये चित्तवाले होकर किसी वस्तुको न प्राप्तहुये अर्थात् चित्तके हरजाने से उन्होंने कुछ न जाना और चित्तमें धैर्य धरकर कुछ देरतक बैठे रहे ॥ १९ ॥ और उस समय उनके दर्शन से हरेहुये चित्तवाली उर्वशी उस स्थानसे निकलकर कामसे विकल होतीहुई अत्यन्त विह्वल हुई ॥ २० ॥ और उन्नत सभामण्डल से वह भूमिमें गिरपड़ी इसके अनन्तर अपना को जानकर वह पृथ्वीमण्डलसे उठी ॥ २१ ॥ और अनाथकी नाई बहुतही पीड़ित श्रेष्ठ राजाने उसको देखा व उसीको मनसे स्मरण करतेहुये पुरुरवा पृथ्वीपे गये ॥ २२ ॥ व श्रेष्ठ राजा पुरुरवाको स्मरण करतीहुई वहभी घरको चलीगई और चित्रांगद के

वीक्ष्यकामुकः ॥ १८ ॥ हतचित्तस्तयाराजा नर्किचित्प्रत्यपद्यत ॥ धैर्यचित्तेसमावेद्य मुहूर्तपर्यवस्थितः ॥ १९ ॥ उर्वशीचित्तदातस्य दर्शनाहतचेतसा ॥ तत्प्रदेशाद्विनिष्क्रम्यकामार्ताचातिविह्वला ॥ २० ॥ भूमौसापतिताबाला उच्छिन्ना तद्रङ्गमण्डलात् ॥ अथात्मानञ्च संवेद्य उत्थिताभूमिमण्डलात् ॥ २१ ॥ दृष्टासाराजसिंहेन मन्मथेन प्रपीडिता ॥ गतः पुरुरवाभूमिं तामेव मनसा स्मरन् ॥ २२ ॥ स्मरन्तीराजशार्दूलं गतासाप्युर्वशीगृहम् ॥ चित्राङ्गदगृहे गत्वा दूतं साथ चकार ह ॥ २३ ॥ चित्राङ्गदेन सानीता रात्रौ यत्र पुरुरवाः ॥ उर्वश्या रहितः स्वर्गः शून्योऽप्यासीद्विवौकसाम् ॥ २४ ॥ रात्रावेव च सा तेन आनीता त्रिदिवं पुनः ॥ तया विरहितस्सोऽपि शून्यचित्तः परिभ्रमन् ॥ २५ ॥ उन्मत्ततांगतो व्यास षष्टि वर्षाणि पार्थिवः ॥ परिभ्रमन्सतीर्थानि महाकालवनङ्गतः ॥ २६ ॥ गन्धर्वेणोर्वशीस्वर्गे नीता सा परमाप्सराः ॥ नापि शेतेन चाश्नाति हेराजन्निति जल्पति ॥ २७ ॥ तावदप्सरसस्सर्वास्ताः प्राप्ता यत्र चोर्वशी ॥ रम्भा च मेनका चैव प्रम्लोचा

घरमें जाकर इसके अनन्तर उसने उसको दूत किया ॥ २३ ॥ और चित्रांगद उसको बहां ले गया जहां कि पुरुरवा थे व उर्वशीसे रहित देवताओंका स्वर्गभी शून्य हो गया ॥ २४ ॥ और रात्रिही में फिर वह चित्रांगद उसको स्वर्गको ले आया व उससे रहित घूमतेहुये शून्यचित्तवाले वे पुरुरवा भी ॥ २५ ॥ हे व्यासजी ! उन्मत्तताको प्राप्तहुये और साठ हजार वर्षतक तीर्थों में घूमतेहुये वे महाकालवनको गये ॥ २६ ॥ और गन्धर्व से स्वर्ग में लाईहुई वह उत्तम अप्सरा उर्वशी भी न सोतीथी और न

भोजन करती थी किन्तु हे राजन् ! ऐसा बकती थी ॥ २७ ॥ तब तक वे सब अप्सरायें वहां प्राप्त हुई जहां कि उर्वशी थी रंभा, मेनका, प्रमलोचा व पुंजिकस्थली ॥ २८ ॥
व जलपूर्णा, अंशुकपूर्णा, वसन्ता व चन्द्रिका, सूर्यदत्ता, विशालाक्षी, चन्द्रा व चन्द्रप्रभा ॥ २९ ॥ साथ ही आकर उन्होंने उर्वशी से वचन कहा कि हे वरारोहे, सु-
लोचने ! मनुष्य के लिये क्यों रोती हो ॥ ३० ॥ उनके उस वचन को सुनकर उर्वशी वचन बोली कि स्त्री पुरुषों के सङ्गसे जो सुख होता है उसको नपुंसक नहीं
जानता है ॥ ३१ ॥ इस उपमासे उसके लिये कियेहुये निश्चयवाली मैं जानने योग्य हूँ उसके इस वचन को सुनकर सावधान होती हुई वे सम्मतिकर ॥ ३२ ॥ और

पुंजिकस्थली ॥ २८ ॥ जलपूर्णाशुकापूर्णा विमन्ता चन्द्रिका तथा ॥ सूर्यदत्ता विशालाक्षी चन्द्रा चन्द्रप्रभा तथा ॥ २९ ॥
आगत्य तास्तुसाहिता उर्वशी वाक्यमब्रुवन् ॥ किरोदिषिवरारोहे मर्त्यहेतोः सुलोचने ॥ ३० ॥ तद्वाक्यमुर्वशी तासां श्रु-
त्वा वचनमब्रवीत् ॥ सौख्यं षण्डेन जानाति संज्ञां स्त्रीपुंसयोर्हितम् ॥ ३१ ॥ अनयोपमया ज्ञेया तस्यार्थे कृतनिश्चया ॥
श्रुत्वा चेति वचस्तस्यास्तास्संमन्य समाहिताः ॥ ३२ ॥ अज्ञातास्ताश्च देवानां महाकालवने गताः ॥ नृपञ्चददृशुस्तत्र
वृक्षच्छाया निषेवितम् ॥ ३३ ॥ दृष्ट्वा गत्य नृपसर्वा भृशं जातास्सुविक्लाः ॥ दृष्ट्वा तथा विधास्सर्वाः कामार्तास्सुर-
योषिताः ॥ ३४ ॥ मूढचित्ताः प्रहस्यैव मुर्वशी वाक्यमब्रवीत् ॥ उर्वशुवाच ॥ अयं स पुरुषव्याघ्रो विनायेनाहर्मादृशी ॥ ३५ ॥
एतः पुरुरवानाम विख्यातो जगतीपतिः ॥ एवं ब्रुवन्त्या वै तस्या मुर्वश्या मप्सरो गणः ॥ ३६ ॥ मौनीभूताश्चिरं तस्मै

लज्जयानतकन्धरः ॥ एतस्मिन्नन्तरे प्रायाद्भगवांस्तत्र नारदः ॥ ३७ ॥ दृष्ट्वा तथा गतास्सर्वा उर्वश्या सहितं नृपम् ॥
देवताओंसे न जानी हुई वे महाकालवनमें गई और वहांपर उन्होंने ने वृक्षोंकी छाया से सेवित राजाको देखा ॥ ३३ ॥ और सब आकर राजाको देखकर बहुत ही विह्वल
होगई वैसी कामसे विक्ल तथा मूढ़चित्तवाली व कामसे विक्ल सब देवस्त्रियोंको देखकर उर्वशी हँसकर ऐसा वचन बोली कि यह वही श्रेष्ठ पुरुष है कि
जिसके बिना मैं ऐसी हूँ ॥ ३४ ॥ यह इलाका पुत्र पुरुरवा नामक राजा प्रसिद्ध है उस उर्वशीके इस प्रकार कहनेपर अप्सराओं के गण ॥ ३६ ॥ लज्जासे नीचे
झुँकेहुये कन्धोवाले व चुप होकर बहुत देर तक खड़े रहे इसी अवसर में वहांपर भगवान् नारदजी आये ॥ ३७ ॥ व वैसीही आई हुई सब अप्सराओं को देखकर व

उर्वशी समेत राजा को देखकर तदनन्तर उन्होंने कहा कि वैसे मनोहर तथा उत्तम इन्द्र के स्थान को छोड़कर मौन होती हुई तुम सब यहां किस लिये आई हो और शीघ्र ही वरदान को मांगिये वियोग न होवेगा ॥ ३८ ॥ और नारदजीने इस तीर्थका माहात्म्य कहा कि इस तीर्थ में जो दुर्भगा स्त्री या पुरुष भी स्नान करता है ॥ ४० ॥ वह भलीभांति सौभाग्य को प्राप्त होता है वैसेही सब उत्तम सुखों को पाता है और जो यहांपर तिलो से व लोने से अपने शरीर को तैलता है ॥ ४१ ॥ और पार्वतीदेवी को उद्देश्यकर चित्तशाठ्य से रहित पुरुष बहुत शर्करा से और गुड़ व शहद से अपने शरीर को तैलवै ॥ ४२ ॥ लोने से स्वरूप से संयुत स्त्री होती है और तिलों से

सम्प्रेक्ष्य च ततः प्राह किं यूयमिह निःस्वनाः ॥ ३८ ॥ त्यक्त्वा तथा विधं रम्यमिन्द्रस्यालयमुत्तमम् ॥ वरञ्च ब्रियतां शीघ्रं वियोगो न भविष्यति ॥ ३९ ॥ माहात्म्यञ्चास्य तीर्थस्य कथयामास नारदः ॥ अस्मिन् यादुर्भगार्थे स्नायात्स्त्री पुरुषोऽपि वा ॥ ४० ॥ सौभाग्यं लभते सम्यक् सर्वभोगांस्तथोत्तमान् ॥ आत्मानन्तोलयेद्यस्तु तिलैर्वालवणेन वा ॥ ४१ ॥ शर्कराभिश्च बह्वीभिर्वित्तशाल्याव्यविवर्जितः ॥ गुडेन मधुना वापि देवीमुद्दिश्य पार्वतीम् ॥ ४२ ॥ लवणेन स्वरूपाढ्या तिलैस्सुवर्द्धशोभना ॥ द्रव्यवृद्धिः शर्करया गुडेनां द्वेषपूर्णता ॥ ४३ ॥ मधुना चैव सौभाग्यं तीर्थस्यास्य प्रभावतः ॥ द्वादशैव तु युग्मानि देव्या देवस्य भोजयेत् ॥ ४४ ॥ कार्त्तुं मुखरिणि दद्यात् ताटङ्गमुकुराञ्जनम् ॥ जौमजांकञ्चुकीञ्चैव वस्त्रेको सुम्भके तथा ॥ ४५ ॥ श्वेता नुलेपनं पुंसां स्त्रीणां दद्याच्च कुङ्कुमम् ॥ आषाढे श्रावणे वापि मासि भाद्रपदे तथा ॥ ४६ ॥ शुक्लां शिवनतृतीयायां मुत्तमं व्रतं माचरेत् ॥ उत्तमां जायते नारी यथा देवी तथैव च ॥ ४७ ॥ उमामाहे श्वरौ कार्त्तौ सौवर्णौ सब अङ्गों में सुन्दरी होती है और शर्करा से द्रव्य की बढ़ती होती है व गुड से अङ्गों में पूर्णता होती है ॥ ४३ ॥ और इस तीर्थ के प्रभाव से शहद से सौभाग्य होता है और देवी पार्वतीजी व शिवदेवजी की प्रीतिके लिये बारह युग्म याने चौबीस स्त्री पुरुषों को भोजन करावै ॥ ४४ ॥ और बजती हुई जुद्ध वारिष्ठा का व भूमकों को व दर्पण, अञ्जन तथा रेशमी वस्त्र से उपजी हुई कञ्चुकी और कुसुम से रंगे हुये वस्त्रों को देवै ॥ ४५ ॥ और पुरुषों को श्वेत चन्दन व स्त्रियों को कुङ्कुम देवै और आषाढ, श्रावण में व भाद्रपद में ॥ ४६ ॥ और कुँवार में शुक्ल पक्षवाली तीज में उत्तम व्रत करे तो जैसी पार्वतीदेवीजी हैं वैसी ही उत्तम स्त्री होती है ॥ ४७ ॥ और अपनी शक्तिसं सोने के पार्वती महादेव बनवा ॥

चाहिये और स्त्री से उन देवोंको तुलाके शिकहर पै विधिसे धरे ॥ ४८ ॥ और अनेकभांति के शाकों व फलोंको देना चाहिये और वहां दियाहुआ दान व हवन और जप सब कोटिगुना होताहै ॥ ४९ ॥ उस तीर्थ में इस प्रकार सावधान होतीहुई जो स्त्री करती है वह मरकर गन्धर्वों व अप्सराओं के लोकको जाती है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ५० ॥ और इस तीर्थमें देवताओं व दानवों से पूजित दो लिंगहैं उनको देखकर स्त्री पुरुष उत्तम सिद्धिको प्राप्तहोते हैं ॥ ५१ ॥ और वहां कार्तिकी में जागरणकर व चन्दन तथा पुष्पों से भलीभांति पूजकर मनुष्य विशेषकर शिवलोक को प्राप्तहोताहै ॥ ५२ ॥ जैसे देवीके स्वरूप से कभी वियोग नहीं देखाजाता है वैसेही

चस्वशक्तिः ॥ धार्योनार्याहितौदेवौ तुलाशिकयेविधानतः ॥ ४८ ॥ फलानिचैवदेयानि शाकानिविविधानिच ॥ तत्रदत्तंहुतंजप्तं सर्वकोटिगुणंभवेत् ॥ ४९ ॥ एवंयाकुरुतेतत्रतीर्थेनारीसमाहिता ॥ गन्धर्वाप्सरसांलोकं मृतायातिनसंशयः ॥ ५० ॥ अत्रतीर्थेचद्वेलिङ्गे पूजितेदेवदानवैः ॥ दृष्ट्वातेपरमांसिद्धिं प्राप्नुतोदम्पतीतथा ॥ ५१ ॥ कार्तिकयान्तु विशेषेण कृत्वातत्रप्रजागरम् ॥ सम्पूज्यगन्धपुष्पैश्च रुद्रलोकमवाप्नुयात् ॥ ५२ ॥ यथादेव्याःस्वरूपेण वियोगो नैवदृश्यते ॥ तथातयोर्वियोगश्च दृश्यतेनकदाचन ॥ ५३ ॥ एवंकृत्वापिताविप्र सर्वाश्चात्रिविङ्गताः ॥ उक्तमप्सरसां तीर्थं तीर्थान्तरमथोच्यते ॥ ५४ ॥ दक्षिणेपृष्ठेदेव्यावै माहिषंकुण्डमुच्यते ॥ माहिषोदानवःपूर्वं निहतोगणनायकैः ॥ ५५ ॥ तत्रतीर्थेनरःस्नात्वा मातृसम्पूज्ययत्नतः ॥ प्रतरक्षःपिशाचानां पीडयासविमुच्यते ॥ ५६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेऽप्सरःकुण्डमहिमवर्णनन्नामनवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

उन स्त्री पुरुषों का वियोग कभी नहीं देखपड़ताहै ॥ ५३ ॥ हे विप्रजी ! ऐसाकर वे सभी अप्सरायें स्वर्गको चलीगई यह अप्सराओंका तीर्थ कहागया इसके अनन्तर अन्यतीर्थ कहाजाता है ॥ ५४ ॥ पृष्ठदेवीके दक्षिण ओर माहिषकुण्ड कहाजाता है पुरातन समय जहां गणनायकों ने माहिषासुरको माराहै ॥ ५५ ॥ उस तीर्थमें नहाकर वह मनुष्य यत्न से मातृगणों को भलीभांति पूजकर प्रेत, राजस व पिशाचोंकी पीड़ासे छूटजाता है ॥ ५६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदेवीदयालुमिश्रविचितायां भाषाटीकायामप्सरःकुण्डमहिमवर्णनन्नामनवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

दो० । महिषकुण्ड अरु रुद्रसर तीर्थ भये जिमि दोह । यहि दशवें अध्यायमें चरित अहै सबसोइ ॥ व्यासजी बोले कि वह महिषकुण्ड किसप्रकार हुआहै और मातृगणों का आवरण कैसे हुआहै व क्षेत्रमें शिवजी ने कैसे महिषासुर को माराहै ॥ १ ॥ सनत्कुमारजी बोले कि क्रीडा करतेहुये जगदीश महादेवजी ने अतिप्रकाशमान व कान्तिसे जलतेहुये से ब्रह्मतेजोमय कपालके दिव्यखण्डको लेकर देवताओं को मोहित किया और योगात्मा शिवजी ने पलभर में योगलीलासे इस लोक में ॥ २ ॥ ३ ॥ प्राप्तहोकर जहां अत्यन्त पवित्र क्षेत्र स्थित था वहां वहां देवताओं के स्वामी महाप्रभु शिवजी ने जलतीहुई प्रभावाले बड़े दिव्यकपाल को गणों के

व्यासउवाच ॥ कथंतन्महिषं कुण्डं मातृणामावृतिः कथम् ॥ रुद्रेण तु कथं क्षेत्रे महिषोदानवोहतः ॥ १ ॥ सनत्कुमारउवाच ॥ कापालं खण्डमादाय महादेवोऽप्यतिप्रभम् ॥ ब्रह्मतेजोमयं दिव्यं ज्वलन्तमिव च त्विषा ॥ २ ॥ क्रीडमानोजगन्नाथो मोहयामास वै सुरान् ॥ निमेषात्सहस्रं लोकं योगात्मा योगलीलया ॥ ३ ॥ प्राप्य पुण्यतमं क्षेत्रं यत्रातिष्ठ नमहाप्रभुः ॥ तत्र तत्र महादिव्यं कपालं देवताधिपः ॥ ४ ॥ स्थापयामास दीप्ताचिंगणानामग्रतः प्रभुः ॥ तत्स्थापितमथो दृष्ट्वा गताः सर्वे महौजसः ॥ ५ ॥ विनदन्तो महानादं नादयन्तो दिशो दश ॥ ध्रुवार्णवाशनिप्रख्यं नभोयेन विदीर्यते ॥ ६ ॥ तेन शब्देन घोरं दानवो देवकण्टकः ॥ हालाहल इति ख्यातो देशंतमभिधावितः ॥ ७ ॥ असृश्यमानः क्रोधातो दुरात्मदुर्जयस्मुरैः ॥ ब्रह्मदत्तवरश्चैव महिषं पुरा स्थितः ॥ ८ ॥ दैत्यैः परिवृतो घोरैः कीटिभिः प्रोद्यतायुधैः ॥ तमाया न्तन्तु स क्रोधं महिषं देवकण्टकम् ॥ ९ ॥ समावेक्ष्या ह वै देवो गणान्सर्वान् पिनाकधृक् ॥ मायावीगणपौ दैत्यैश्चैल्लोक्य

आगे स्थापित किया इसके अनन्तर थापेहुये उस कपाल को देखकर बड़ा शब्द करते व दशों दिशाओं को शब्दायमान करतेहुये बड़े पराक्रमवाले सब गण चले गये क्रोभित समुद्र व वज्रके समान वह शब्द कि जिससे आकाश फटताथा ॥ ४ ॥ ५ ॥ उस भयङ्कर शब्दसे देवताओं को कण्टकरूप हालाहल ऐसा प्रसिद्ध दानव उस देशके सामने दौड़ा ॥ ७ ॥ और क्रोध से विकल व दुष्टचित्तवाला तथा देवताओं से दुःखकरके जीतनेयोग्य व ब्रह्मासे दियेहुये वरदानवाला बिन विचारे हुये वह दैत्य भैसे के स्वरूपमें स्थित हुआ ॥ ८ ॥ जोकि उवायेहुये अस्त्रोंवाले करोड़ों भयङ्कर दैत्यों से घिराथा क्रोधसमेत व देवताओं के कण्टकरूप आतेहुये उस

महिषासुर को ॥ ६ ॥ देखकर पिनाकधारी सदाशिवदेवजी मंत्र गणोंसे बोले कि त्रिलोक का भी कण्टकरूप यह मायात्री गणनाथकद्वैत्य ॥ १० ॥ शीघ्रतासंयुत चला आताहै इसलिये कपालकी गति में आश्रित तुम सब गणनाथक इसको मारो ॥ ११ ॥ तदनन्तर बड़े शब्दसे गर्जते और महाप्रकाशवान् तथा अमते व उस आतेहुये महादैत्यको डरेहुये देवगणोंने ॥ १२ ॥ त्रिशूलसमूहा से व तलवारों तथा मुसलों से विदारण किया और बाणोंके समूहसे मोहितकर तदनन्तर उन्होंने पृथ्वीमें गिरा दिया ॥ १३ ॥ उसके मरनेपर उससमय महादेवजी देवताओंसे बोले कि अतिमूर्ख के अहंकारको आश्चर्यहै और गर्व से वह नाशको प्राप्तहुआ ॥ १४ ॥ इसी अवसर

स्यापिकण्टकः ॥ १० ॥ आयातित्वरितोयुयं तस्मादेनंविनिघ्नथ ॥ कपालस्यगर्तिसर्वे आश्रितागणनायकाः ॥ ११ ॥ ततोदेवगणाभीतास्तमायान्तंमहासुरम् ॥ गर्जमानंमहानादं भ्रममाणंमहाप्रभम् ॥ १२ ॥ विभिदुश्शूलसङ्घातै रसिभिर्मुसलैस्तथा ॥ सम्मोह्यशरजालेन ततोभूमौन्यपातयन् ॥ १३ ॥ हतेतस्मिन्महादेवो देवान्प्रोवाचवैतदा ॥ अ होदपौतिमूढस्य दर्पेणनिधनङ्गतः ॥ १४ ॥ एतस्मिन्नन्तरेव्यास तत्कपालात्सुभरवाः ॥ दीप्तास्यामातरस्सर्वाः प्रचण्डास्त्रामहावलाः ॥ १५ ॥ अभ्यधावंस्तमुद्देशं महादेवंन्यवेदयन् ॥ दैत्यन्ताभजयन्तिस्मभित्त्वाभित्त्वामहावलम् ॥ १६ ॥ कपालमातरस्तस्मात् ख्याताःक्षेत्रेमहावलाः ॥ महाकपालस्तस्माद्वै सदृशःपरिकीर्तितः ॥ १७ ॥ स्थापितस्यकपालस्य भित्त्वातदभवत्पुरा ॥ ख्यातंशिवतडागञ्च सर्वपापप्रणाशनम् ॥ १८ ॥ तदद्यापिमहादिव्यं सरस्तत्रप्रकाश्यते ॥ त्रिषुलोकेषुविख्यातं गन्धर्वगणसेवितम् ॥ १९ ॥ पात्रस्थमुद्धृतंवापि शीतोष्णंकथितंजलम् ॥ पुनातिरौद्रमें हे व्यासजी ! उस कपालसे जलतेहुये आननवाली व प्रचण्ड अस्त्रवाली तथा बड़ी बलवती व भयंकर सब मातृकायें ॥ १५ ॥ उस स्थान को दौड़ों व महादेवजी से निवेदन किया और काटकाटकर उन बड़ी बलवती स्त्रियोंने भक्षण किया ॥ १६ ॥ इसलिये क्षेत्र में महाबलवती कपालमातायें प्रसिद्धहैं और उसीकारण महाकपाल सदृश कहा गया है ॥ १७ ॥ पुरातन समय थापहुये कपाल को फोडकर समस्त पातकोंको नाशक शिवतडाग प्रसिद्धहुआहै ॥ १८ ॥ वहांपर गन्धर्वगणोंसे सेवित आज भी वह बड़ा दिव्य तडाग प्रकाशितहै जो कि तीनोंलोकोंमें प्रसिद्धहै ॥ १९ ॥ और पात्रमें स्थित व ऊपरलाया हुआ तथा ठंडा व गरम और काथ किया हुआ रुद्र-

तडागका जल पवित्र करता है जैसे कि अश्वमेधयज्ञका अवभृथ (यज्ञान्तरान्न) पवित्र करता है ॥ २० ॥ सैकड़ों देवताओं से विरेह्ये प्रज्ञा भी उस स्थान को आयें हैं और आपही ब्रह्माजीने उसको स्वर्गकी सीढ़ी कहा है ॥ २१ ॥ जो मनुष्य यहां प्राणों को छोड़ते हैं वे शिवलोकको जाते हैं हे व्यासजी ! महाकालवन में टिंकेहुये मनुष्य मृत्युलोक में धन्य हैं ॥ २२ ॥ और रुद्रतडाग में जो स्नान करते हैं व जो जलको भी पीते हैं अपने धर्म व आचारमें स्थित वे पुरुष ईश्वर महादेवजी को देखते हैं ॥ २३ ॥ इस कारण स्वर्गमें प्राप्त देवता नित्यही यह अभिलाष करते हैं ॥ २४ ॥ यह सदैव देवताओं से पूजित तथा उत्तम व दिव्य और महापातकोंका नाशक महाकपाल

सरसोऽश्वमेधावभृथोयथा ॥ २० ॥ प्रागाद्ब्रह्मापितदेशं देवतानां शतैर्वृतः ॥ स्वर्गलोकस्य निश्रेणी कीर्तिता ब्रह्मणा
स्वयम् ॥ २१ ॥ अत्रत्यजन्ति ये प्राणान् रुद्रलोकं ब्रजन्ति ते ॥ धन्या व्यासनरामर्त्ये महाकालवने स्थिताः ॥ २२ ॥ रौ
द्रसरसि ये स्नान्ति जलं वापि पिवन्ति ये ॥ स्वधर्माचारनिरताः पश्यन्ती शानमीश्वरम् ॥ २३ ॥ इति स्वर्गगता देवाः सृष्ट
हांकुर्वन्ति नित्यशः ॥ २४ ॥ इदं शुभं दिव्यमधर्मनाशनं महाकपालं सुरपूजितं सदा ॥ महाप्रभं पापहरं सनातनं सुरेश
लोकं दिषु दुर्लभं सदा ॥ २५ ॥ तपो रतैस्सिद्धगणैरभिष्टुतं यथानभःस्थं दिननाथमण्डलम् ॥ एकाग्रचित्तैः शृणुयात्प्र
सादतस्त्रिविष्टपंगच्छति सोऽभिनिन्दतः ॥ २६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे माहिषकुण्डरुद्रसरोमाहात्म्य
न्नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ * * * * *

सनत्कुमार उवाच ॥ अथातस्सम्प्रवक्ष्यामि तीर्थत्रैलोक्यविश्रुतम् ॥ स्वयंभूतं महेशस्य कुटुम्बेश्वरनामकम् ॥ १ ॥
बड़ा प्रभावान् व पापहारक तथा सनातन व सुरेशलोकदिकों में सदैव दुर्लभ है ॥ २५ ॥ जैसे कि तपस्यामें परायण सिद्धगणों से स्तुति किया हुआ आकाशमें सूर्यम-
ण्डल है इस चरित्रको सावधान चित्तवाला जो पुरुष सुनता है वह प्रशंसित नर स्वर्ग को प्राप्त होता है ॥ २६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे देवीदशालुभिश्चरित्रचिता-
यां भाषाटीकायां माहिषकुण्डरुद्रसरोमहिमवर्णनं नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ * * * * *

दो० । कुटुम्बेश्वरकतीर्थ की महिमा अभित अपार । गेरहवें अध्याय में चरित सोइ सुखकार ॥ सनत्कुमारजी बोले कि इसके अनन्तर आपही से उपजेहुये कुटुम्बे-

स्वरनामक त्रिलोक में प्रसिद्ध शिवजी के तीर्थको कहूंगा ॥ १ ॥ श्रद्धासंयुत जो मनुष्य उस तीर्थमें स्नान करता है वह सातजन्मों में भी कियेहुये पातकों से छूट जाता है ॥ २ ॥ व पवित्र होकर जो पुरुष विधिपूर्वक श्राद्धकर शिवदेवजी को देखताहै वह सब लोकोंको नांधकर शिवलोक को जाताहै ॥ ३ ॥ और इस तीर्थ के किनारे जो पुरुष सब शार्कोंको और अनेक भांति के कर्दोंको देताहै वह उत्तम गतिको प्राप्तहोता है ॥ ४ ॥ पौषमें शुक्लपक्ष की परेवा या अष्टमी तिथिमें सावधान चित्तवाला पुरुष एकही उपाससे अश्वमेधयज्ञ के फलको प्राप्तहोताहै ॥ ५ ॥ और कुंवारकी पौर्णमासी में जो पवित्र मनुष्य शिवजी के पट्टबन्धको देखता है वह पाप

तस्मिंस्तीर्थेनरःस्नानं करोतिश्रद्धयान्वितः ॥ मुच्यतेसर्वपापेभ्यः सप्तजन्मकृत्तरपि ॥ २ ॥ शुचिःपश्यतियोदेवं
कृत्वाश्राद्धंयथाविधि ॥ सर्वल्लोकानतिक्रम्य शिवलोकंसगच्छति ॥ ३ ॥ यस्तुसर्वाणिशाकानि कन्दानिविविधानि
च ॥ तीरेचास्यप्रयच्छेत्तु संप्राप्नोतिपराङ्गतिम् ॥ ४ ॥ पौषेसितप्रतिपदे अष्टम्यांवासमाहितः ॥ एकैर्नवोपवासेन अश्व
मेधफलंलभेत् ॥ ५ ॥ आश्विन्यांपौर्णमास्याञ्च शुचिःपश्यतिमानवः ॥ पट्टबन्धंमहेशस्य सविपाप्मादिवंब्रजेत् ॥
६ ॥ चैत्रमासिसितेपक्षे पञ्चम्यांसमुपोषितः ॥ कर्पूरकुङ्कुमञ्चैव मृगनाभिसचन्दनम् ॥ ७ ॥ निवेदयतिदेवाय नैवेद्यं
घृतपायसम् ॥ सुरूपञ्चैवविप्रेन्द्रं समार्यभोजयेद्विजम् ॥ ८ ॥ रुद्रलोकमवाप्नोति यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥ अतःपरंप्रव
क्ष्यामि तीर्थविद्याधरस्यतु ॥ ९ ॥ तत्रस्नात्वाशुचिर्भूत्वा विद्याधरपतिर्भवेत् ॥ १० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीख
ण्डेकुटुम्बेश्वरतीर्थमाहात्म्यनामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

रहित पुरुष स्वर्गको प्राप्तहोता है ॥ ६ ॥ और चैत महीने में शुक्लपक्ष में पञ्चमी तिथिमें उपास कियेहुये जो पुरुष कर्पूर, कुङ्कुम व चन्दन समेत करतूरी को ॥ ७ ॥ और घृतसंयुत खीरकी नैवेद्य को शिवदेवजी के लिये निवेदन करता है व स्त्रीसमेत सुन्दर रूपवाले द्विजेन्द्र ब्राह्मण को भोजन कराताहै ॥ ८ ॥ वह तत्रतक शिव-लोकको प्राप्तहोता है कि जबतक चौदह इन्द्र रहते हैं इसके उपरान्त मैं विद्याधरके तीर्थको कहताहूँ ॥ ९ ॥ उसमें नहाकर व पवित्र होकर पुरुष विद्याधरों का स्वामी होता है ॥ १० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदेवीदयालुमिश्रत्रिचितायाभापाटीकायाकुटुम्बेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णननामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

हों। अतिमहिमा संयुत वंछो तीर्थ गन्धर्व नाम। बारहवें अध्याय में मोई चरित ललाम ॥ व्यासजी बोले कि हे ब्रह्मन्, महाभुने ! इस क्षेत्रमें यह तीर्थ कैसे उत्पन्न हुआ है इस समय इसको सुभसे प्रसन्नतासे कहिये मैं सुना चाहता हूँ ॥ १ ॥ सनत्कुमारजी बोले कि पुरातन समय कोई स्वरूपवान् विद्याधरों का स्वामी हुआ है उसने पारिजातकी सुन्दरीमालाको रचा ॥ २ ॥ और वह उस मालाको लेकर इन्द्रके मन्दिरमें गया व इन्द्रके आगे नाचती हुई मेनकाको उसने देखा ॥ ३ ॥ और उस समय नाचकी सभामें उसने उस मेनकाके लिये उस मालाको दे दिया और वह मेनका उस स्थानमें मालासे मोहित होगई ॥ ४ ॥ तब क्रोधसे संयुत इन्द्र

व्यासउवाच ॥ कथंतीर्थमिदं क्षेत्रं जातमत्रमहाभुने ॥ प्रसादाद्ब्रूहिमेब्रह्मच्छ्रेतुमिच्छामिसाम्प्रतम् ॥ १ ॥ सनत्कुमारउवाच ॥ विद्याधरपतिः कश्चिदासीद्गुह्यधरः पुरा ॥ ग्रथितापारिजातस्य मालातेन मनोरमा ॥ २ ॥ गृहीत्वास च तां मालां गतो वासव इह मनि ॥ नृत्यन्ती वासवस्य ग्रेष्ठे दृष्टेन च मेनका ॥ ३ ॥ दत्ता तस्यैतदतेन सामाला नृत्य संसदि ॥ सामेनका तु तस्थाने मालया मोहिता सती ॥ ४ ॥ कोपाविष्टेन शक्रेण शप्तो विद्याधरो ब्रवीत् ॥ पृथिव्यांगच्छपापिष्ठ नृत्य मङ्गस्त्वया कृतः ॥ ५ ॥ विद्याधरपदं त्यक्त्वा मम शापाच्च साम्प्रतम् ॥ एवमुक्तस्तु शक्रेण वाक्यं विद्याधरो ब्रवीत् ॥ ६ ॥ अजानता मयानाथ अपराधः कृतो धुना ॥ अनुग्रहमता देव कुरु मे त्वं प्रसादतः ॥ ७ ॥ एवमुक्तस्तु शक्रेण विद्यते तीर्थमुत्तमम् ॥ ख्यातं तत्रिषु लोके चह ॥ गच्छावन्ती त्वमद्यैव यत्रास्ते गङ्गाद्वीपगुहा ॥ ८ ॥ तस्याश्चोत्तरभागे तु विद्यते तीर्थमुत्तमम् ॥ अतस्त्वमापितत्रैव कुरु स्नानं प्रयत्नं पु नान्ना विद्याधरं शुभम् ॥ ९ ॥ भक्त्या तत्र कृतो स्नाने विद्याधरपतिर्भवेत् ॥ अतस्त्वमापितत्रैव कुरु स्नानं प्रयत्नं

ने विद्याधरों को शाप दिया कि हे पापिष्ठ ! तूम इस समय विद्याधरके स्थान को छोड़कर मेरे शापसे पृथ्वीको जावो क्योंकि तूमने नृत्यको भग कर दिया इन्द्रसे इस प्रकार कहे हुये विद्याधर ने वचन कहा ॥ ५ ॥ ६ ॥ कि हे नाथ ! इस समय न जानते हुये मैंने अपराध किया है इसलिये हे देव ! तूम प्रसन्नतासे मेरे ऊपर दया करो ॥ ७ ॥ इस प्रकार कहे हुये वे इन्द्रजी विद्याधरसे बोले कि तूम आज ही अवन्ती (उज्जयिनी) पुरीको जावो जहापर किं गांगटी गुह है ॥ उसके उत्तरभागमें उत्तम तीर्थ विद्यमान

है वह तीनोंलोकोंमें विद्याधर नामक उत्तम तीर्थ प्रसिद्ध है ॥ ६ ॥ भक्ति से उसमें स्नान करनेपर विद्याधरोंका स्वामी होताहै इसीकारण तुम भी यत्नसे उसीमें स्नान करो ॥ १० ॥ इसप्रकार इन्द्रजीसे कहाहुआ वह अवन्तीके मण्डलमें आया व उसने उस सुन्दर तीर्थ में स्नान किया ॥ ११ ॥ और उस तीर्थ के प्रभाव से वह विद्याधरोंका स्वामीहुआ हे व्यासजी ! इसप्रकार उत्तम विद्याधरतीर्थ प्रसिद्ध हुआ है ॥ १२ ॥ वहाँपर पुण्यों को व चन्दनलेपन को जो पुरुष देता है वह इस लोकमें व परलोक में सब सुखोंको प्राप्त होता है ॥ १३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदेवीव्यालुमिश्रचितायांभाषाटीकायांविद्याधरतीर्थमहिमवर्णनमद्वादशोऽध्यायः १२

तः॥१०॥ एवमुक्तःसशक्रेण आगतोवन्तिमण्डले ॥ स्नानंकृतञ्चतेनैव तीर्थेतस्मिन्मनोरमे ॥ ११ ॥ प्रभावात्तस्यतीर्थस्य सविद्याधरपोऽभवत् ॥ एवंव्याससमाख्यातं तीर्थंविद्याधरंशुभम् ॥ १२ ॥ तत्रपुष्पाणियोदद्याच्चन्दनञ्चविलेपनम् ॥ लभेत्समस्तभोगान्सहलोकैकेपरत्रच ॥ १३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेविद्याधरतीर्थमाहात्म्यनाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

सनत्कुमारउवाच ॥ अतःपरंप्रवक्ष्यामि मर्कटेश्वरमुत्तमम् ॥ तत्रतीर्थंचविख्यातं सर्वकामप्रदायकम् ॥ १ ॥ तस्मिन्तीर्थेनरःस्नात्वा गोशतस्यफलंलभेत् ॥ विस्फोटानांप्रशान्त्यर्थं बालानाञ्चैवकारणे ॥ २ ॥ माषेणमिश्रिता नृत्वा मसूरांस्तत्रकुट्टयेत् ॥ शीतलायाःप्रभावेण बालाःसन्तुनिरामयाः ॥ ३ ॥ येष्यन्तिनरामक्त्या शीतलान्दु

दो० । मर्कटेश्वरक तीर्थकर, अहै जौन परभाव । तेरहवें अध्याय में, सोई चरित सुहाव ॥ सनत्कुमारजी बोले कि इसके उपरान्त वहाँपर मर्कटेश्वर ऐसे प्रसिद्ध समस्त कामनाओंको देनेवाले उत्तम तीर्थ को कहूंगा ॥ १ ॥ उस तीर्थ में नहाकर मनुष्य गोशतके फल को प्राप्त होताहै और बालकों के कारण विस्फोटकों की शांति के लिये ॥ २ ॥ उड़दसे मिश्रितकर मसूराको वहाँ कुट्टावै तो शीतलाके प्रभाव से बालक निरोग होवेंगे ॥ ३ ॥ हे द्विजोत्तम ! जो मनुष्य पापमाशिनो शीतलाजी को

भक्तिसे देखते हैं उनको कुछ पातक नहीं होता है और न दरिद्रता होती है ॥ ४ ॥ और न उनको रोगका डर होता है न ग्रहोंकी पीड़ा होती है ॥ ५ ॥ इति श्रीस्कन्द पुराणेऽवन्तीखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां शीतलामाहात्म्यं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ ॐ ॥

दो० । अहै अमित माहात्म्ययुत, तीरथ स्वर्गद्वार । चौदहवें अध्यायमें, ताकर चरित उदार ॥ सनत्कुमारजी बोले कि जो मनुष्य स्वर्गद्वारमें नहाकर व भैरवदेवको देखकर और पितरोंको उद्देशकर वहाँपर भक्तिसे श्राद्धकरे ॥ १ ॥ हे व्यासजी ! वह अपना समेत पितरोंको तारता है और स्वर्गद्वारसे वह शिवजीके परमपदको प्राप्त होता

रितापहाम् ॥ नतेषांदुष्कृतं किञ्चिन्नदारिद्र्यं द्विजोत्तम ॥ ४ ॥ नचरोगमयन्तेषां ग्रहपीडातथैवच ॥ ५ ॥ इति श्रीस्कन्द पुराणेऽवन्तीखण्डेऽशीतलामाहात्म्यं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

सनत्कुमार उवाच ॥ स्वर्गद्वारे नरः स्नात्वा दृष्ट्वा देवञ्च भैरवम् ॥ श्राद्धं तत्रैव कुर्वीत पितृनुद्दिश्य भक्तिः ॥ १ ॥ पितृंश्च नरो व्यास तारयेदात्मना सह ॥ स्वर्गद्वारेण सोभ्येति रुद्रस्य परमं पदम् ॥ २ ॥ भैरवस्याग्रतो देवी पूर्वतिष्ठति चाम्बिका ॥ तान्तु दृष्ट्वानरः स्त्री वा मुच्यते सर्वपातकैः ॥ ३ ॥ महानवम्यां पुरुषः कृत्वा वस्तमयं बलिम् ॥ महिषं वा सुरां मांसं मा ताम्बिवत्त्वमर्यां शुभाम् ॥ ४ ॥ भक्त्या निवेदयेद्देव्यै सर्वसिद्धिमवाप्नुयात् ॥ तत्र स्नात्वा नरो भक्त्या पूजां कृत्वा शिवस्य च ॥ ५ ॥ स्वर्गद्वारेण सोभ्येति रुद्रस्य भवं न द्विज ॥ ६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे स्वर्गद्वारमाहात्म्यं नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

है ॥ २ ॥ भैरवजीके आगे पूर्वदिशामें अम्बिकादेवी स्थित हैं उनको देखकर स्त्री या पुरुष सब पातकों से छूटजाता है ॥ ३ ॥ और महानवमी में जो पुरुष छागमय व भैरवकी बालिकके मदिरा, मांस व बिल्वमयी उत्तम मालाको ॥ ४ ॥ भक्तिसे देवीजीके लिये निवेदन करता है वह सब सिद्धिको प्राप्त होता है उसमें नहाकर मनुष्य भक्तिसे शिवजी का पूजनकर ॥ ५ ॥ हे द्विज ! स्वर्गद्वार के द्वारा वह पुरुष शिवजीके मन्दिर को प्राप्त होता है ॥ ६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां स्वर्गद्वारमाहात्म्यं नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ ॐ ॥

दों । तीर्थ चतुःसमुद्रकर चरित सहित विस्तार । पन्द्रहवें अध्याय में कहो पुरयदातार ॥ सनत्कुमारजी बोले कि चतुःसमुद्र नामक तीर्थ में महाकर मनुष्य राजस्थल शिवको देखे कि जिसके दर्शनही से मनुष्य पुत्रवान् होता है ॥ १ ॥ जार, दुग्ध, दधि व इतु ये जो चार समुद्र हैं वे उन शिवजी के समीप सुद्युम्नसे थापे गये हैं ॥ २ ॥ व्यासजी बोले कि लाख योजनतक उत्तम जम्बूद्वीप है उसकी मर्यादा में यह चारनामक समुद्र स्थापित है ॥ ३ ॥ और दोलजयोजन शाकद्वीपमें वह क्षीरसागर प्रतिष्ठित है और चार लाख कुशद्वीपमें दधिसमुद्र स्थित है ॥ ४ ॥ और शालमलिद्वीप में आठ लाख इक्षुरसका समुद्र प्रतिष्ठित है और वे चार समुद्र पृथ्वीमण्डलमें

सनत्कुमारउवाच ॥ स्नात्वा चतुःसमुद्रे तु पश्येद्राजस्थलं शिवम् ॥ यस्य दर्शनमात्रेण पुत्रवाञ्छा येतेनरः ॥ १ ॥ समुद्रा स्मन्ति च त्वारः चारक्षीरदधीक्ष्वः ॥ समीपे तस्य देवस्य सुद्युम्नेन प्रतिष्ठिताः ॥ २ ॥ व्यासउवाच ॥ लक्षयोजनपर्यन्तं जम्बूद्वीपमुशोभनम् ॥ मर्यादायां स्थापितो यं समुद्रः चारसंज्ञितः ॥ ३ ॥ शाकद्वीपे हिलक्षेत्रे चौराब्धिसं प्रतिष्ठितः ॥ दध्यब्धिश्च कुशद्वीपे चतुर्लक्षे प्रतिष्ठितः ॥ ४ ॥ शाल्मल्ये त्विक्षुजलधिर्ह्यष्टलक्षे प्रतिष्ठितः ॥ चत्वारस्ते समाख्याताः समुद्रा भूमिमण्डले ॥ ५ ॥ राजस्थलसमीपे तु कथमेकत्र ताङ्गताः ॥ सनत्कुमारउवाच ॥ सुद्युम्नो नाम राजासीत् पुराकल्पेषु धार्मिकः ॥ ६ ॥ तस्य पत्नी वरारोहा नाम्ना ख्याता सुदर्शना ॥ सा दालम्भ्यं मुनिदृष्ट्वा पप्रच्छ सुतकाम्यया ॥ ७ ॥ भगवन्कनदानेन स्नानेन विधिनाथवा ॥ सर्वलक्षणसम्पूर्णः पुत्रो लभ्यो मया कथम् ॥ ८ ॥ दालम्भ्यउवाच ॥ विहितस्ते पुराणुनि सर्वपुत्रेषु उत्तमः ॥ स्वयम्भूतेन देवेन ब्रह्मणालोककारिणा ॥ ९ ॥ तेभ्यो शङ्करन्देवमाराध्यत तत्प्रसा

कहे गये हैं ॥ ५ ॥ और राजस्थल के समीप वे कैसे एकत्रता को प्राप्त हुये हैं सनत्कुमार जी बोले कि पुरातन समय कल्पों में सुद्युम्न नामक धर्मवान् राजा हुआ है ॥ ६ ॥ उसकी उत्तम कटिवाली सुदर्शना नामक स्त्री थी उसने दालम्भ्य मुनिको देखकर पुत्रकी कामना से पूछा ॥ ७ ॥ कि हे भगवन् ! किस दानसे व स्नान या विधि से समस्त लक्षणोंसे सम्पूर्ण पुत्र मुझको कैसे प्राप्त होने योग्य है ॥ ८ ॥ दालम्भ्यजी बोले कि हे पुत्रि ! लोकों के रचनेवाले व आपही से उपजे हुये ब्रह्माजी ने पहलेही सब पुत्रोंमें उत्तम तुम्हारे पुत्रको किया है ॥ ९ ॥ यदि तुम्हारा पति सदाशिव देवजी को आराधक उनकी प्रसन्नतासे चारों समुद्रों को स्वरूप से अवन्तीपुरी में

लोधिगा ॥ १० ॥ तो उनमें राजाके स्नान करनेपर तुम्हारे पुत्र होगा इसलिये हे पुत्रि ! शिवजी के आराधन में पतिकी प्रेरणा कीजिये ॥ ११ ॥ दालभ्यके वचन से व विचित्र आख्यान से उसने शंकरजीके आराधन करनेमें पतिको पठाया ॥ १२ ॥ और उसने गंधमादन पर्वत पर जाकर शिवजीको प्रसन्न कराया व असन्न होतेहुये चन्द्रमा, सूर्य व अग्नि लोचनवाले शिवजी बोले ॥ १३ ॥ किं हे राजेन्द्र ! उज्जैनीपुरीको जाइये उत्तम पुत्रको पावोगे और मेरी आज्ञासे समुद्र कुशस्थली (अवन्ती) पुरीको जावोगे ॥ १४ ॥ हे नर श्रेष्ठ, राजन् ! मरुरूप याने निर्जल स्थल में शंकरजी के समीप तुम भलीभाति प्राप्तहुये समुद्रोंको देखोगे ॥ १५ ॥ और तुमसे याचना

दतः ॥ आनायिष्यत्यवन्त्यांचेच्चतुरोवधीन्स्वरूपतः ॥ १० ॥ तेषुराज्ञाकृतस्नाने तवपुत्रोभविष्यति ॥ शङ्कराराधनेषु त्रितस्मात्प्रेरयवल्लभम् ॥ ११ ॥ दालभ्यस्यैववाक्येन विचित्राख्यानकेनच ॥ प्रस्थापयामासपतिं शङ्कराराधनेषुच ॥ १२ ॥ सगत्वातोषयामास शङ्करगन्धमादने ॥ सन्तुष्टः शङ्करः प्राह शशिसूर्याग्निलोचनः ॥ १३ ॥ अवन्तीगच्छराजेन्द्र पुनंप्राप्स्यसिशोभनम् ॥ मन्त्रासनाज्जलधरा गमिष्यन्तिकुशस्थलीम् ॥ १४ ॥ मरुरूपेस्थले राजन् समीपे शङ्करस्यच ॥ द्रक्ष्यसित्वं नरश्रेष्ठ जलधीस्तत्रसङ्गतान् ॥ १५ ॥ अभ्यर्थितास्त्वयातत्र स्थास्यन्तिकलसासदा ॥ एवमुक्त्वा महादेवो जगामादर्शनं विभुः ॥ १६ ॥ मुद्युम्नोभार्ययासाद्धमाजगामकुशस्थलीम् ॥ आगतांस्तुकुशस्थल्या समुद्रांश्चददर्शह ॥ १७ ॥ तांस्तुष्टुद्वानमश्चक्रे राजस्थलसमीपतः ॥ तवैष्टुष्ट्वाच्चमुद्युम्न प्रणतं भक्तवत्सलाः ॥ १८ ॥ प्रोचुर्वारिधयस्सर्वे वरं वरयसुव्रत ॥ सर्वव्रेमनसापुत्रं सर्वलक्षणसंयुतम् ॥ १९ ॥ उवाच च पुनाराजा यावत्तिष्ठति मेदिनी ॥

कियेहुये वे वहां सदैव कला से टिकेंगे ऐसा कहकर महादेव स्वामी अन्तर्द्धान होगये ॥ १६ ॥ और मुद्युम्न स्त्री समेत कुशस्थली को आये और कुशस्थली में आये हुये समुद्रोंको उसने देखा ॥ १७ ॥ और राजस्थलके समीप उनको देखकर उसने प्रणाम किया व प्रणाम किये उन मुद्युम्नको देखकर भक्तप्रिय ॥ १८ ॥ सर्व समुद्र बोले कि हे सुव्रत ! वरदान मांगिये उसने मनके द्वारा सबसत लक्षणों से संयुत पुत्रको मांगा ॥ १९ ॥ और फिर राजा बोले कि जबतक पृथ्वी स्थितरहै तबतक

राजस्थलके समीप तुम सबों को यहींपर टिकना चाहिये ॥ २० ॥ समुद्र बोले कि जबतक कल्पान्त होगा तबतक हम सब यहीं टिकेंगे और इसमें तुम्हारे स्नानमात्र से तुम्हारे समस्त लक्षणोंसे संयुत पुत्रहोगा इसलिये स्नान करिये और हे राजन् ! इस उत्तम स्थलमें कला समेत हम सब टिकेंगे ॥ २१ ॥ २२ ॥ हे व्यासजी ! इस प्रकार सुशुभ्रसे समुद्र उत्पन्न किये गये उनमें जो यात्रा करता है उसके पुण्यके फलको सुनिये ॥ २३ ॥ कि महापुण्यदायक क्षारसमुद्र में स्नानकर तदनन्तर हे व्यासजी ! पितरों की भक्ति में तत्पर पुरुष श्राद्ध करे ॥ २४ ॥ और स्थल में टिके हुये पार्वती जीके पति महादेवजी को पूजै तदनन्तर वेदके पारगामी ब्राह्मण के

स्थातव्यं तावदत्रैव राजस्थलसमीपतः ॥ २० ॥ समुद्राञ्जुः ॥ तावत्स्थायामेवात्र यावत्कल्पावसानकम् ॥ भविष्यति च तेषु त्रिः सर्वलक्षणसंयुतः ॥ २१ ॥ अत्र ते स्नानमात्रेण तस्मात्स्नानं समाचर ॥ स्थले चात्र शुभे राजन् स्थास्यामः कलया सह ॥ २२ ॥ एवं व्यास समुद्राश्च सुशुभ्रमेनावतारिताः ॥ कुरुते तेषु यो यात्रां तस्य पुण्यफलं शृणु ॥ २३ ॥ स्नानं कृत्वा महापुण्ये समुद्रे चारसंज्ञके ॥ कुर्याच्छ्राद्धं ततो व्यास पितृणां भक्ति तत्परः ॥ २४ ॥ पूजयेच्च महादेवं स्थलस्थं पार्वतीपतिम् ॥ मण्डनानि ततो दद्याद्ब्राह्मणे वेदपारगे ॥ २५ ॥ पात्रं ताम्रमयं कार्यं लवणेन प्रपूरितम् ॥ सहिरण्यञ्च दातव्यं ब्राह्मणे वेदपारगे ॥ २६ ॥ सप्तधान्यसमायुक्तं वेणुजं वस्त्रं वेष्टितम् ॥ सदा क्षिणं फलैर्युक्तमर्घ्यं दद्यात्प्रयत्नतः ॥ २७ ॥ क्षीराब्धिं च ततो गत्वा स्नानं कुर्याच्च पूर्ववत् ॥ क्षीरं तत्र प्रदातव्यं ताम्रपात्रे प्रपूरितम् ॥ २८ ॥ दध्यब्धौ च तथा कृत्वा दद्याद्दध्योदनं शुभम् ॥ इक्षुवब्धौ च तथा कृत्वा दद्याद्विप्रेणुदं शुभम् ॥ २९ ॥ यात्रां कृत्वा तु वै व्यास गाञ्च निमित्त आभूषणो को देवैः ॥ २५ ॥ और ताम्रमयपात्र करना चाहिये व लोहसे पूरित तथा सुवर्ण समेत उस पात्रको वेदोंके पारगामी ब्राह्मणके निमित्त देना चाहिये ॥ २६ ॥ और सप्तधान्य से संयुत व वसन से लपेटे हुये दक्षिणा समेत व फलों से संयुत बांससे उपजे हुये पात्रका अर्घ्य बड़े यत्नसे देना चाहिये ॥ २७ ॥ तदनन्तर क्षीरसमुद्र को जाकर व पहले की नाई स्नानकर वहां तबिके पात्र में भगे हुये दूधको देना चाहिये ॥ २८ ॥ वैसेही दधिसमुद्र में करके उत्तम दही भातको देना चाहिये और ऊँबके रसके समुद्र में वैसेही करके ब्राह्मण के निमित्त उत्तम गुड़को देना चाहिये ॥ २९ ॥ व हे व्यासजी ! यात्रा करके दूधवाली गऊको देवै इस प्रकार जो

मनुष्य राजस्थल के समीप यात्रा करता है ॥ ३० ॥ वह कह्याणमयी लक्ष्मी व सुन्दर पुत्रों को पाता है और मरकर स्वर्गको प्राप्त होता है जबतक कि चौदह इन्द्र रहते हैं ॥ ३१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदेवीव्यालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांराजस्थलेश्वरसमीपेचतुःसमुद्रमाहात्म्यवर्णनंनमपञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥
दो० । कह्यो शङ्करादित्यकर अति श्रद्धुत परभाव । सोलहवें अध्याय में सोई चरित सुहाव ॥ सनत्कुमारजी बोले कि हे व्यासजी ! शंकरवापिका नामक महा-
तीर्थ को सुनिये कि क्रीड़ा करतेहुये शिवदेवजी ने उत्तम तीर्थका निर्माण कियाहै ॥ १ ॥ देवदेव शिवजी ने कपाल को धोनेवाले जलको फेंक दिया और जिस लिये

दद्यात्पयस्विनीम् ॥ एवंयःकुरुतेयात्रां राजस्थलसमीपतः ॥ ३० ॥ भव्यांहिलभतेलक्ष्मीं पुत्रांश्चापिमनोरमान् ॥ मृ-
तःस्वर्गमवाप्नोति यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥ ३१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे राजस्थलेश्वरसमीपेचतुस्समुद्रमा-
हात्म्यन्नामपञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥ * * * * *

सनत्कुमारउवाच ॥ शृणुव्यासमहातीर्थं नाम्नाशङ्करवापिका ॥ क्रीडमानेनदेवेन निर्मितंतीर्थमुत्तमम् ॥ १ ॥ प्र-
क्षिप्तंदेवदेवेन कपालक्षालनंजलम् ॥ वापीगतंकृतंयस्मादतःशङ्करवापिका ॥ २ ॥ अर्काष्टम्यांनरःस्नात्वा दिशासु
विदिशासुच ॥ पूर्वादिक्रमतोयाच्च वापीमध्येतथैवच ॥ ३ ॥ हविष्यान्नयुतान्व्यास दद्याच्चकरकान्नवान् ॥ शाकमूलां
श्वप्रेभ्यस्तस्यपुण्यफलंशृणु ॥ ४ ॥ परत्रचेहयेलोकाः सर्वभोगसमन्विताः ॥ तत्रतत्रसमायान्ति भुक्त्वैश्वर्यमनुत्त-
मम् ॥ ५ ॥ येनराःकीर्त्तयिष्यन्ति माहात्म्यमतिभावुकाः ॥ रुद्रलोकेपितेपूज्यास्तेभ्योस्तुसततन्नमः ॥ ६ ॥ सनत्कुमा-

वह बावली में प्राप्त कियागया इसीसे शंकरवापिका हुई ॥ २ ॥ अर्काष्टमीमें बावलीके मध्यमें पूर्वादिक क्रमपूर्वक जल से दिशाओं व विदिशाओं में नहाकर ॥ ३ ॥ हे व्यासजी ! हविष्यानन से संयुत नवीन कमण्डलुवोंको देवै व ब्राह्मणों के लिये शाकों व मूलोंको देवै उसके पुण्यके फलको सुनिये ॥ ४ ॥ कि परलोकमें व इस लोक में समस्त सुखोंसे संयुत जो लोक हैं वहां वहां अति उत्तम ऐश्वर्य को भोगकर वे मनुष्य भली भांति प्राप्त होते हैं ॥ ५ ॥ अत्यन्त कुशल जो मनुष्य इस माहात्म्य

को कहेंगे वे भी शिवलोक में पूजनीय होंगे और उन के लिये सदैव प्रणाम होवें ॥ ६ ॥ सनत्कुमारजी बोले कि तदनन्तर-पिनाक नामक धनुषको धारण करनेवाले वृषध्वज देवदेवेश जीने पवित्र होकर देवदेव सूर्यनारायणजी की स्तुति किया ॥ ७ ॥ और सूर्यनारायणजी आये व प्रसन्न होते हुये वे सदाशिवजी से बोले सूर्य-नारायणजी बोले कि हे भूतेशजी ! वरदानको मांगिये मैं वरदायक हूँ तुम्हें वरदानको दूंगा ॥ ८ ॥ उनसे शिवजी बोले कि यदि तुम वरदायक हो तो मुझ से याचना की हुई वस्तुको कीजिये कि समस्त शरीरधारियों के हितके लिये यहां अंशसे स्थित होवों ॥ ९ ॥ महादेवजी का वचन सुनकर वहापर सूर्यनारायणजी

रउवाच ॥ ततोवैदेवदेवेशः पिनाकीदृषमध्वजः ॥ तुष्टावप्रयतोभूत्वा देवदेवंदिवाकरम् ॥ ७ ॥ आजगामदिवानाथः
सन्तुष्टःप्राहशङ्करम् ॥ सूर्य्यउवाच ॥ वरंरयभूतेश वरदोस्मिददामिते ॥ ८ ॥ तमाहवरदश्चेत्वं यान्यमानंकुरुष्व
मे ॥ अंशेनस्थीयतामत्र हितार्थं सर्वदेहिनाम् ॥ ९ ॥ अवतीर्णैरविस्तत्र श्रुत्वामाहेऽवरंचः ॥ ततोदेवाधिदेवेशो य
यौख्यातिमहामतिः ॥ १० ॥ शङ्करादित्यनामेति लोकानांशान्तिकारकः ॥ देवादित्याश्चगन्धर्वा विस्मितास्सह
किन्नरैः ॥ ११ ॥ अहोधन्यमिदंस्थानं यत्रास्तेत्रिपुरान्तकः ॥ भास्करोपिचतत्रस्थस्तीर्थमाहात्म्यवर्णने ॥ १२ ॥ तत
स्तुष्टाश्चतेसर्वे ब्रह्माद्यास्सुरसत्तमाः ॥ देवेशंपूजयामुर्देवमादित्यशङ्करम् ॥ १३ ॥ मूर्तिमन्तश्चतेदेवा अवतीर्य्यच
शोभनम् ॥ स्थापयित्वाब्रुवन्वाक्यं येत्वांस्तोष्यन्तिमानवाः ॥ १४ ॥ नतुःखंजायतेतेषां जरामरणदुःखजम् ॥ सर्व

ने अवतार लियां उसीकारण देवाधिदेवेश व महाबुद्धिमान् तथा लोकों के शान्तिकारक सूर्यनारायणजी शंकरादित्य ऐसे नाम से प्रसिद्धिको प्राप्त हुये और देवता, दैत्य व किन्नरों समेत गन्धर्व विस्मयको प्राप्तहुये ॥ १० ॥ ११ ॥ कि अहो यह स्थान धन्य है कि जहांपर त्रिपुरके विनाशक सदाशिवजी हैं और वहां टिकेहुये सूर्यनारायण भी तीर्थ के माहात्म्यके वर्णन में हैं ॥ १२ ॥ तदनन्तर प्रसन्न होते हुये उन ब्रह्मादिक सुरश्रेष्ठो ने देवेश आदित्य शंकरजी का पूजन किया ॥ १३ ॥ और मूर्तिमान् वे देवता अवतार लेकर व उनको स्थापितकर उत्तम वचन बोले कि जो मनुष्य तुम्हारी स्तुति करेंगे ॥ १४ ॥ उनको बुद्धता व मरणसे उपजाहुआ

यज्ञेषु यत्पुण्यं सर्वदानेषु यत्फलम् ॥ १५ ॥ तस्माच्चैवाधिकं ह्यत्र शङ्करादित्यदर्शनात् ॥ व्याधयो नाधयश्चैव दारिद्र्य
न्नकदाचन ॥ १६ ॥ ऐश्वर्यञ्चातुल्यतेषां जायते सुविस्वदा ॥ नरोगो न च दारिद्र्यं वियोगो न च वन्धुभिः ॥ १७ ॥ जायते सु
निशार्दूल शङ्करादित्यदर्शनात् ॥ इत्येव देवदेवेन पुरा वैशूलपाणिना ॥ १८ ॥ स्थापितं परमं तर्थां स्वनाम्ना मुनि सत् * ॥

म ॥ १९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्ताखण्डे शङ्करादित्यमाहात्म्यनामोऽष्टोत्तरशतिकाः ॥ १॥ प्र

सनत्कुमारउवाच ॥ एकास्मन्समयव्यास कपालक्षालनाय ॥ १ ॥ ब्रह्मणोरुधिरणापि परिपू
ज्वाल्यचाक्षिपद्भूमौ तत्रतीर्थमनुत्तमम् ॥ नाम्नागन्धवतीपुण्या नदीत्रैलोक्यविश्रुता ॥ २ ॥ वायुभू
र्णोभवत्क्षणात् ॥ तस्यांस्नानंसदाशस्तं स्वयन्देवेनभाषितम् ॥ ३ ॥ श्राद्धकृततर्पणञ्च तत्सर्वेचाक्षयंभवेत् ॥ वायुभू
तास्तुपितरस्तस्यास्तीरेतुदक्षिणे ॥ ४ ॥ तिष्ठन्तिमुनिशार्दूल चिन्तयन्तिस्वगोत्रजम् ॥ आगमिष्यतिपुत्रो नो नष्टा
दो ॥ पितर तृप्तिदायक चरित गन्धवती कर जौन । सत्रहर्वे अर्ध्यायमे वरणात हैं सब तौन ॥ सनत्कुमारजी बोले कि हे व्यासजी ! एकसमय महोदवजीने कपाल
को धोने के लिये शुद्ध जलको लेकर व उसको प्रक्षालन कर भूमि में फेंक दिया वहांपर अतिउत्तम तीर्थ होगया नामसे गन्धवती नामक पुण्यदायिनी नदी त्रिलोक
में प्रसिद्ध हुई ॥ १ । २ ॥ वहीं ब्रह्माके रक्तसे क्षणभरमें पूर्ण होगई उसमें आपही सदाशिवदेवजीने सदैव स्नानको उत्तम कहा है ॥ ३ ॥ और किया हुआ श्राद्ध व
तर्पण वह सब अक्षय होवै है और उसके दक्षिण किनारे पै पवनभूत पितर ॥ ४ ॥ ठिके है व हे मुनिश्रेष्ठ ! वे अपने गोत्रसे उपजेहुये पुरुषको चिन्तन करते हैं कि

हम लोगोंकी संतानमें पुत्र या नाती यहां आवैगा ॥ ५ ॥ और वह शुद्धिया या खीर भी व सांवां और उत्तम तिन्नी फसही को और सत्, गृहद व तिलोसे संयुक्त पिंड को कब देवैगा ॥ ६ ॥ उन पिंड के देने से अविनाशिनी तृप्ति होती है और चन्द्रग्रहण में स्नान कर जो मनुष्य वहा पिंड को देता है ॥ ७ ॥ उसके पितर बारह वर्ष तक तृप्ति को प्राप्त होते हैं हे द्विज ! यहापर जो उत्तम विद्वान् मनुष्य आकर ॥ ८ ॥ पितरों को तृप्त करेगी उनको सदैव अक्षयस्वर्ग होगा वहा जो लवमात्र सुवर्णदान दिया जाताहै ॥ ९ ॥ उसका वह आपही उपजेहुये ब्रह्माजीसे अक्षय कहानया है और हरिद्वार, प्रयाग, कुरुक्षेत्र व पुष्कर में ॥ १० ॥ और काशी व गया में

वासन्तताविह ॥ ५ ॥ संयावंपायसंवापि श्यामाकंसन्निवारकम् ॥ सप्ततुर्जौद्रतिलैर्युक्तं पिण्डं दास्यति वै कदा ॥ ६ ॥ ते न पिण्डप्रदानेन तृप्तिर्भवति चाक्षया ॥ यस्तु स्नात्वा च वै पिण्डं दद्याद्वै चन्द्रपर्वणि ॥ ७ ॥ पितरो द्वादशाब्दानि तृप्तिं यास्यन्ति तस्य वै ॥ ये त्रागत्य सुविद्वांसो मानवा वै तथा द्विज ॥ ८ ॥ पितृन् सन्तर्पयिष्यन्ति स्वर्गस्तेषां सदाक्षयः ॥ तत्र यद्दीयते दानं त्रुटिमात्रं तु काञ्चनम् ॥ ९ ॥ अक्षयं तस्य तत्प्रोक्तं ब्रह्मण वै स्वयम्भुवा ॥ गङ्गाद्वारे प्रयागे च कुरुक्षेत्रे च पुष्करे ॥ १० ॥ वाराणस्यां गंगायाञ्च मासात् तृप्तिर्भविष्यति ॥ तुष्टाश्च पितरो नृणां दास्यन्ति काङ्क्षितान्वरान् ॥ ११ ॥ यो यमुद्विश्य वै काममिह श्राद्धं करिष्यति ॥ तस्य तज्जायते सर्वमृतस्य परमा गतिः ॥ १२ ॥ अष्टमी नवमी चैवामावस्यावा न्धर्वान् यत्नांश्च मनुजान् पशून् ॥ १३ ॥ ब्रह्मेन्द्र रुद्र देवांश्च सूर्याग्निब्रह्मदेवताः ॥ विश्वे देवान्सग जो तृप्ति होती है वह तृप्ति होगी और प्रसन्न होते हुये पितर मनुष्यों को चाहे हुये वरदानों को देंगे ॥ ११ ॥ जो मनुष्य जिस मनोरथ को उद्देश कर यहां श्राद्ध करेगा उसका वह सब होगा और मरे हुये पुरुष की उत्तम गति होगी ॥ १२ ॥ हे व्याम जी ! अष्टमी, नवमी व अमावस और पूर्णिमा इन सब तिथियों में व सूर्य की संक्रान्ति में ॥ १३ ॥ ब्रह्मा, इन्द्र व रुद्र देवताओं को तथा सूर्य, अग्नि व ब्रह्मदेवताओं को और गंधर्वों समेत विश्वदेवों तथा यत्नों व मनुष्यों और पशुओं

को ॥ १६ ॥ और सपों, पितृगणों को व अन्य जो भूमि में स्थित है उसको श्राद्ध करता हुआ पुरुष सब भंसार को तृप्त करता है ॥ १५ ॥ इति श्रौतम् !
प्रत्येक महीने में शुक्लपक्ष में पौर्णमासी में और चन्द्रक्षय (अमावस) में जब अनुराधा, विशाखा व रोहिणी होवै ॥ १६ ॥ तब श्राद्ध में पूजेहुये पितरसमूह तृप्ति को प्राप्त होते हैं और धनिष्ठा व पूर्वाभाद्रपद नक्षत्र में तृप्ति को चाहते हुये पितरोंकी ॥ १७ ॥ भक्तिसे श्राद्ध करै उससे पितर तृप्त होते हैं व यह कहते हैं कि कुल में उपजे हुये भी वे धन्य हैं हमलोगों की तृप्ति के कारण ॥ १८ ॥ कि जो श्राद्धकरते हैं व पिंडों को देते हैं उस पिंडदान से हमलोगों की अन्नय तृप्ति होती

त्यखिलंजगत् ॥ १५ ॥ मासिमासिसितेपक्षे पञ्चदश्याद्विजोत्तम ॥ इन्दुर्जयेयदामैत्रं विशाखाचैवरोहिणी ॥ १६ ॥ आ
द्धेपितृगणास्तृप्तिं प्रयान्तिचतथार्चिताः ॥ वासवाजैकपादर्जे पितृणांतृप्तिमिच्छताम् ॥ १७ ॥ भक्त्याश्राद्धंप्रकुर्वीत
पितरस्तेनतर्पिताः ॥ अपिधन्याःकुलेजाता अस्माकंतृप्तिहेतवे ॥ १८ ॥ येकुर्वन्तिचवैश्राद्धं पिण्डान्येनिर्वपन्तिच ॥
तेनपिण्डप्रदानेन तृप्तिर्नोभविताक्षया ॥ १९ ॥ इहेत्यवैपुण्यजलेषुसम्यक्स्नात्वानरःस्वानुलभेतकामान् ॥ यान्
प्राप्यचप्रेतगणैःसमेतः समोदतेदेववृत्तार्थसिद्धः ॥ २० ॥ चित्तञ्चचित्तञ्चयशोविशुद्धं देशस्तुकालःकथितोविधिश्च ॥
पात्रंयथोक्तंपरमाञ्चभक्तिं नृणांप्रयच्छन्तिहिवाञ्छितानि ॥ २१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेनीलगङ्गागन्धवती
प्रभाववर्णनंनमस्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ * ॥ * ॥

सनत्कुमारउवाच ॥ दशाश्वमोधिकेस्नात्वाष्टद्वाद्वंद्वंमहेश्वरम् ॥ दशानामश्वमेधानां फलंप्राप्तनोतिमानवः ॥ १ ॥
है ॥ १६ ॥ यहां आकर व पवित्र जलों में भली भांति नहाकर मनुष्य अपने मनोरथों को प्राप्त होता है कि जिनको पाकर देवताओं से धिरा हुआ वह सिद्ध प्रयोजन
वाला मनुष्य प्रेतगणों समेत प्रसन्न होता है ॥ २० ॥ शुद्धचित्त, धन, यश, देश, काल व कहीं हुई विधि और यथोक्त पात्र ये सब मनुष्यों को उत्तम भक्ति व चाहे
हुये मनोरथों को देते हैं ॥ २१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभापाटीकायानीलगङ्गागन्धवतीप्रभाववर्णनंनमस्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

दो० अति उत्तम माहात्म्ययुत तीर्थ दशाश्वकमेध । अतारहे अध्यायमें बरण्यों सोइ सुमेध ॥ सनत्कुमारजी बोले कि दशाश्वमेध तीर्थमें नहाकर व शिवदेवजी को

देखकर मनुष्य दश अश्वमेधों के फलको प्राप्त होता है ॥ १ ॥ मनुजैन्द्र मनु व राजा गयाति, रघु, उशना और लौमश महर्षि ने ॥ २ ॥ व अत्रि भृगु तथा बुद्धिमान् दत्तात्रेयजी व पुराणरूप पुरुरवा, नहुप और नल ने ॥ ३ ॥ इस तीर्थ में स्नान से दश अश्वमेध यज्ञों के फलको पाया है वैसेही द्वापर का अन्त प्राप्त होने पर बाष्कलि राजाने ॥ ४ ॥ हे द्विजोत्तम ! दश अश्वमेध यज्ञों के फल को पाया है वैसेही कृष्णवर्ण लिंग भक्ति से सदैव पूजित है ॥ ५ ॥ मनुष्य उन देवको दे-खकर व स्पर्श कर पहले कहे हुये फलको प्राप्त होता है चैत महर्षि ने शुक्रपक्षकी अष्टमी में भक्ति से उन देव को भलीभांति पूजकर ॥ ६ ॥ सुन्दर रूपवाले व

मनुनामानवेन्द्रेण राज्ञाचैवययातिना ॥ रघुणोशनसाचैवल्लोमशेनमहर्षिणा ॥ २ ॥ अत्रिणाभृगुणाचैव दत्तात्रेयेण धीमता ॥ पुरुरवसापुण्येन नहुषेणनलेनच ॥ ३ ॥ अत्रस्नानेनसंप्राप्तं दशाश्वमेधिकंफलम् ॥ संप्राप्तेद्वापरस्यान्ते राज्ञाबाष्कलिनातथा ॥ ४ ॥ दशानामश्वमेधानां फलंप्राप्तं द्विजोत्तम ॥ कृष्णवर्णैतथालिङ्गं पूजितंभक्तिःसदा ॥ ५ ॥ दृष्ट्वाभृष्टद्वाचतंदेवं प्रागुक्तंलभतेफलम् ॥ चैत्रेमासिसिताष्टम्यां देवंसंपूज्यभक्तिः ॥ ६ ॥ अश्वंदद्याच्चविप्राय सुरूपंच गुणान्वितम् ॥ याचन्तितस्यरोमाणि गणयन्तेसंख्ययाद्विज ॥ तावद्वर्षसहस्राणिशिवलोकेमहीयते ॥ शिवलोकात्परिभ्रष्टःसर्वभौमोभवेद्भुवि ॥ ८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदशाश्वमेधमाहात्म्यनामाष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

सनत्कुमारउवाच ॥ एकानंशानमस्कृत्य देवत्रैलोक्यविश्रुताम् ॥ पूजांकृत्वाविधानेन सर्वसिद्धिफलंलभेत् ॥ १ ॥ आपिमादिगुणान्सर्वान् गुटिकांसिद्धमञ्जनम् ॥ खड्गंचपादुकेचैवविलवांसंरसायनम् ॥ २ ॥ सर्वतुष्टाप्रयच्छेत्तु नात्रका गुणों से संयुक्त घोडे को ब्राह्मण के लिये दैत्रे हे द्विज ! उस अश्वके जितने रोम गिने जाते है ॥ ७ ॥ उतने हजार वर्षों तक वह शिवलोक में पूजित होता है और शिवलोक से भ्रष्ट हुआ वह पुरुष पृथ्वी में चक्रवर्ती राजा होता है ॥ ८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदशाश्वमेधमाहात्म्यनामाष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥ दो० । एकानंशा भगवती का उत्तम आख्यान । उनीरावें अध्याय में कीन्हो चरित बखान ॥ सनत्कुमार जी बोले कि त्रिलोक में प्रसिद्ध एकानंशा देवीजी को प्रणामकर व विधि से पूजनकर मनुष्य सब सिद्धियों के फलको प्राप्त होता है ॥ १ ॥ और अणिमादिक सब गुणों को व गोली तथा मिह्रअञ्जन व तलवार

पादुका तथा शिला में वास और रसायन ॥ २ ॥ इस सब वस्तुको प्रसन्न होती हुई वे भगवतीजी देती हैं इस विषय में विचार न करना चाहिये मदिरा व मांस के उपहारों से तथा भक्ष्य व भोजनों से पूजी हुई ॥ ३ ॥ प्रसन्न देवी जी मनुष्योंको सदैव सब कामनाओं को देती हैं और महानवमी में जो पुरुष भैसे के द्वारा देवी को पूजता है ॥ ४ ॥ व त्याग के अनुकूल भेष (भेड़े) से याने भेड़े के बलिप्रदान से जो उन देवी जी को पूजता है वह समस्त मनोरथों को प्राप्त होता है व्यासजी बोले कि एकानंश ऐसी प्रसिद्ध देवी कैसे उत्पन्न हुई हैं ॥ ५ ॥ समस्त पातकों के विनाशक उस वृत्तान्त को मैं सुना चाहता हूँ सनत्कुमारजी बोले कि पुरातन समय

याँविचारणा ॥ सुरामांसोपहारैश्चभक्ष्यमोज्यैश्चपूजिता ॥ ३ ॥ सर्वान्कामान्मृणादेवी तुष्टादद्याच्चसर्वदा ॥ महानवम्यांयोदेवीं महिषेणप्रपूजयेत् ॥ ४ ॥ भेषेणचयथालाभं सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥ व्यासउवाच ॥ कथंदेवीसमुत्पन्ना एकानंशेतिविश्रुता ॥ ५ ॥ तत्सर्वंश्रोतुमिच्छामि सर्वपापप्रणाशनम् ॥ सनत्कुमारउवाच ॥ पुराकृतयुगस्यादौ ब्रह्मालोकपितामहः ॥ ६ ॥ निशांसंस्मारभगवान् स्वांतनुपूर्वसम्भवाम् ॥ ततोभगवतारान्त्रिरुपतस्थेपितामहम् ॥ ७ ॥ तांविचि केसमालोक्य ब्रह्मोवाचविभावराम् ॥ विभावरिमहाकायै व्यवधानेष्टुपस्थिते ॥ ८ ॥ यत्कर्तव्यंत्वयादेवि शृणुचार्यस्यनिश्चयम् ॥ तारकोनामदैत्येन्द्रः सुरशत्रुरनिर्जितः ॥ ९ ॥ तस्माद्भयेनवैदेवास्मस्तास्सर्वदैवैकसः ॥ तस्माद्भद्रे महेशोवै जनयिष्यतिचेहरम् ॥ १० ॥ सुतंसभवितातस्य तारकस्यान्तकःकिल ॥ शङ्करस्याभवत्पत्नी सतीदत्तमुता

सतयुगके आदिमें लोकों के पितामह भगवान् ब्रह्मार्जनि पहले उपजी हुई अपनी देहरूपिणी रात्रि को स्मरण किया तदनन्तर भगवान् ब्रह्माजी से स्मरण कीहुई रात्रि ब्रह्माजी के समीप प्राप्त हुई ॥ ६७ ॥ उस रात्रिको एकान्त में देखकर ब्रह्मा जी बोले कि हे महाशरीरे, विभावरि ! व्यवधान (अंतर्धान) प्राप्तहोने पर ॥ ८ ॥ हे देवि ! जो तुमको करना चाहिये उस प्रयोजनके निश्चय को सुनिये कि दैत्येन्द्र तारकनामक देवताओं का शत्रु नहीं जीतागयाहै ॥ ९ ॥ इसकारण स्वर्ग में रहनेवाले सब देवता भय से डरेहुये हैं इसलिये हे भद्रे ! यदि सदाशिवजी उत्तम पुत्र को पैदाकरेंगे तो वह प्रसिद्ध में उस तारक का मारक होगा दत्तजीकी कन्या सती जी जो

शंकरजी की स्त्री हुई हैं ॥ १० । ११ ॥ हे भद्रे ! वे किसी कारण के मध्य मे पिता से क्रोधित हुई थीं और लोकों को पवित्र करनेवाली वे ही हिमाचल की कन्या होवेंगी ॥ १२ ॥ व उनके वियोग से सदाशिवजीने त्रिलोक को शून्य मानकर सिद्धों से सेवित हिमाचल की कन्दरा में तप किया है ॥ १३ ॥ और उसका जन्म परखते हुये वे शिवजी वहा कुछ समय तक बसैगे भलीभांति तपस्या किये हुये उन शिवजी से जो महाप्रभु होवेंगे ॥ १४ ॥ वे तारक दैत्य के निवारक याने मना करनेवाले होवेंगे पैदा होते ही अल्पसज्ञावाली वे सुन्दरी देवीजी ॥ १५ ॥ वियोग से उत्कंठित होकर शिवजी के संयोग की लालसावाली होवेंगी और भलीभांति तुया ॥ ११ ॥ सापितुःकुपितामद्रे कस्मिंश्चित्कारणान्तरे ॥ भवित्रीहिमशैलस्य दुहितालोकपावनी ॥ १२ ॥ विरेहेण हरस्तस्या मत्वाशून्यं जगत्त्रयम् ॥ अतपद्धिमशैलस्य कन्दरे सिद्धसेविते ॥ १३ ॥ प्रतीक्षमाणस्तज्जन्म किञ्चित्कालं वसिष्यति ॥ तस्मात्सुतस्तपसो भविता यो महाप्रभुः ॥ १४ ॥ समविष्यति दैत्यस्य तारकस्य निवारकः ॥ जातमात्रा तु सा देवी स्वल्पसंज्ञैव मामिनी ॥ १५ ॥ विरहोत्कण्ठिता बाहुं हरसङ्गमलालसा ॥ तयोस्सुतस्तपसोऽस्संयोगः स्यात्सुगुप्तयोः ॥ १६ ॥ पार्वती हरयोस्तस्मात्सुराणां शक्तिकारिणम् ॥ विघ्नं त्वया विधातव्यं यथाताभ्यां तथा शृणु ॥ १७ ॥ गर्भस्थिते यतान्देवी स्वनरूपेण रञ्जय ॥ ततो रहसि शर्वस्तां विभिन्नानन्दपूर्वकम् ॥ १८ ॥ भर्त्सयिष्यति कालीति ततस्मात्कुपितासती ॥ प्रयास्यति तपः कर्तुं ततस्सातपसा युता ॥ १९ ॥ जनयिष्यति यं शर्वादिन्दुवज्ज्योतिमण्डलम् ॥ समविष्यति हन्ता वै सुरारीणान्नसंशयम् ॥ २० ॥ त्वया पिदानवादे वि हन्तव्या लोको दुर्जयाः ॥ यावच्च न सती देहे सं तपस्या किये व गुप्त पार्वती महादेवजी का संयोग होवेगा इस लिये उन दोनों के लिये तुमको जिस प्रकार देवताओं के शक्तिकारक विघ्न को करना चाहिये वैसेही सुनिये ॥ १६ । १७ ॥ कि गर्भ के स्थित होनेपर इसके अनन्तर तुम उन देवीजी को अपने रूपसे रंग देवो उसी कारण एकान्त में सदाशिवजी उनको बिन आनन्दपूर्वक ॥ १८ ॥ काली है इस कारण से निन्दा करेंगे तदनन्तर क्रोधित होती हुई वे तपस्या करने के लिये जावेंगी उसके उपरान्त तपस्यासे संयुत वे पार्वतीजी ॥ १९ ॥ शिवजी के सकाश से चन्द्रमा की नाई जिस प्रकार मंडलवाले पुत्र को पैदा करेंगी वह निस्संदेह देववैरियों का नाशक होगा ॥ २० ॥ व हे देवि !

जाहिये और जवतक सती जी के शरीर में धिरे हुये गुणगणोंवाला पुत्र उन शिवजी के संगम से न होगा तबतक पार्वतीजी तब पार्वतीजी तुमको ॥ २४ ॥ हे वरदायिनि !

[illegible][illegible]

कीर्तिमंतांकीर्तिस्त्वभूतस्सर्वदाहो ॥ त्वंभ्रातस्त्वल्पबोधानां त्वंकीर्तिःकर्मया ॥ जनाम् ॥ २३ ॥
शान्तिःशान्तिकर्मणाम् ॥ त्वंभ्रातस्त्वल्पबोधानां त्वंकीर्तिःकर्मया ॥ जनाम् ॥ २३ ॥
चारिणी गात्रनी तुम्हींहो और युद्ध से शोभित राजाओं के घिरिहुये सुन्दर आकारवाली तुम्हीं हो ॥ २६ ॥ व हे देवि । वैश्योंकी तुम लक्ष्मीहो और शूद्रोंकी आपहो
माताहो व ज्ञानियों के जानने योग्य रूपवाली तुम्हींहो और मन्व शरीरधारियों की तुम गतिहो ॥ २७ ॥ और यशवाले जनोकी तुम कीर्तिहो व समस्त शरीरधारियों
की तुम लक्ष्मीहो और शत्रुरागी चित्तवालों की प्रीतिदायिनी तुम्हींहो और स्नेहसे वर्तमान होनेवाले मनुष्योंकी प्रीति तुम्हींहो ॥ २८ ॥ और कियेहुये भूषणवाले जनो
की तुम शोभाहो व शान्तिकर्मवाले जनोकी तुम शान्तिहो और थोड़े ज्ञानवाले जनोकी तुम आंतिहो व क्रमपूर्वक यज्ञ करनेवालोंकी तुम कीर्तिहो ॥ २९ ॥ व

समुद्रोंकी तुम महाबलहो और विलासी जनोका तुम विलासहो व पदार्थोंकी तुम उत्पत्तिहो और लोकों से शोभित जनोकी तुम स्थितिहो ॥ ३० ॥ हे वरदायिनि, सन्देह नहीं है इस प्रकार प्रकाश के रूपोंसे तुम लोकों में पूजितहो और जो तुमको देखते हैं व जो पूजन करेंगे ॥ ३१ ॥ वे निश्चयकर सब मनोरथो को पावेंगे इसमें इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायामेकानंशाहात्म्यवर्णनमैकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

लासिनाम् ॥ सम्भूतिस्त्वंपदार्थानां स्थितिस्त्वंलोकशालिनाम् ॥ ३० ॥ इत्यनेकविधैर्देवि रूपैर्लोकैषुचार्चिता ॥ येत्वां पश्यन्तिवरदे पूजयिष्यन्तिवापिये ॥ ३१ ॥ तेसर्वकामानाप्स्यन्ति नियतन्नात्रसंशयः ॥ इत्येवंसासमुत्पन्ना ब्रह्मणामं स्तुतासती ॥ ३२ ॥ एकानंशमहादेवी ध्यातव्यासापिभक्तिः ॥ ३३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेएकानंशा माहात्म्यन्नामैकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

सनत्कुमारउवाच ॥ अथातस्मप्रवक्ष्यामि हरसिद्धिसुसिद्धिदाम् ॥ पार्वत्याहरणेयत्र सिद्धिःप्राप्ताहरेणच ॥ १ ॥ बलिनीदानवौजातौ नाम्नाचण्डप्रचण्डकौ ॥ उत्साद्यन्निदिवंसर्वं गिरिकेलासमागतौ ॥ २ ॥ दृष्ट्वातत्रगिरीशन्तु उद्यतोच्चैकहस्तकम् ॥ पिनाकंवरखट्वाङ्गं गृहीत्वादचिणेकरे ॥ ३ ॥ देविदेवीतिजल्पन्तं दासस्तेस्मीतिवादिनम् ॥ या वदेकन्तुफलकं तावदूद्यन्तंप्रवर्तताम् ॥ ४ ॥ ऋणीभूतेतदादेवैतौप्राप्तौदेवकण्टकौ ॥ उत्सादिताःशिवगणानन्दिनाप्रति दो० । अहं सुमग माहात्म्य युत देवी जिमि हरसिद्धि । सोइ बीस अध्यायमें वर्णित चरित प्रसिद्धि ॥ सनत्कुमार जी बोले कि इसके उपरान्त उत्तम सिद्धिदायिनी हरसिद्धि देवीजी को कहूंगा जहा पर कि सदाशिव देवजी ने पार्वती के हरने में सिद्धि को पाया है ॥ १ ॥ अण्ड, प्रचण्ड नामक बली दानव हुये हैं वे सब स्वर्गको उजाड़ कर कैलास पर्वत पर आये ॥ २ ॥ वहां पर दाहिने हाथ में पिनाक धनुष व उत्तम खट्वांग को लेकर एक हाथमें उठाये हुये पांसा को लिये सदाशिवजी को देखकर ॥ ३ ॥ जो शिव कि हे देवि ! हे देवि ! ऐसा कहते हुये और जब तक एक पांसा है तबतक द्यूत (जुत्ता) वर्तमान होत्रै मैं तुम्हारा दास हूं ऐसा कहते थे ॥ ४ ॥

उस समय सदाशिव देवजी के 'ऋणी' होने पर देवताओं के कण्ठकरूप वे दैत्य प्राप्त हुये और उन्होंने शिवगणों को ह्नेशित किया और नन्दी ने उनको मना किया ॥ ५ ॥ तदनन्तर उस समय उन्होंने ने शूलों से नन्दीको विदीर्ण किया और दाहिने व बायें अंगसे साथही बहुत रक्त बहूचला ॥ ६ ॥ उस समय सत्क्रिय के पुत्र नन्दी जीको लण्डित देखकर शिवजी से ध्यान की हुई वे देवी प्रणामकर आगे स्थित हुई ॥ ७ ॥ और वे बड़े भारी दैत्य मारे जावें शिवजी के ऐसा कहने पर वे देवी वचन बोली कि मैं मारती हूँ जब उन देवीजी से पराक्रम से गर्वित वे दैत्य मारे हुये देखे गये ॥ ८ ॥ तब शिवजी ने उससे कहा कि हे चण्डि ! तुमने दुष्ट

पेधितौ ॥ ५ ॥ ततस्ताभ्यांतदानन्दीशुलाभ्यांप्रविदारितः ॥ समंसव्यदक्षिणाभ्यां सुस्नाचरुधिरंबहु ॥ ६ ॥ नन्दिनंता
डितंतृष्ट्वा तदासत्क्रियनन्दनम् ॥ ध्याताहरेणसादेवी प्रणताप्राक्ततःस्थिता ॥ ७ ॥ वध्यतान्तौमहादैत्यौ वधामीति
वचोब्रवीत् ॥ यदातयाहतौदृष्टौ दानवौबलगर्वितौ ॥ ८ ॥ हरस्तामाहचण्डि संहतौदुष्टदानवौ ॥ हरसिद्धिरतोलोकै
नाम्नाख्यातिगमिष्यसि ॥ ९ ॥ ततःप्रभृतिसादेवीहरसिद्धिप्रदायिनी ॥ हरसिद्धिरितिख्याता महाकालेबभूवह ॥ १० ॥
यःपश्येत्परयाभक्त्या हरसिद्धिन्नरोत्तमः ॥ सोक्षयाल्लभतेकामान् मृतःशिवपुरं व्रजेत् ॥ ११ ॥ आदिसिद्धिमहा
देवी नित्यंव्योमस्वरूपिणीम् ॥ हरसिद्धिप्रपश्येद्यस्सोभीष्टलभतेफलम् ॥ १२ ॥ यःस्मरेद्धरसिद्धीति मन्त्रञ्चचतुरश
रम् ॥ ॥ नवैरिणोभयंतस्य दारिद्र्यन्नैवजायते ॥ १३ ॥ नरोमहानवम्यांयोहरसिद्धिप्रपूजयेत् ॥ महिषञ्चबलिदद्यात्सम

दानवों का संहार किया इसलिये नाम से हरसिद्धि तुम प्रसिद्धि को प्राप्त होगी ॥ ६ ॥ तब से लगाकर हरसिद्धि को देनेवाली वे देवी महाकालवन में हरसिद्धि ऐसी प्रसिद्ध हुई हैं ॥ १० ॥ जो उत्तम मनुष्य हरसिद्धि देवीजी को परम भक्ति से देखता है वह अक्षय मनोरथों को प्राप्त होता है और मर कर शिवपुर को जाता है ॥ ११ ॥ आदिसिद्धि व आकाशरूपिणी हरसिद्धि महादेवीजी को जो मनुष्य नित्य देखता है वह प्रिय मनोरथ को प्राप्त होता है ॥ १२ ॥ व जो मनुष्य हरसिद्धि ऐसे चार अक्षरांचाले मंत्र को स्मरण करता है उसके शत्रु का भय नहीं होता है न दरिद्रता होती है ॥ १३ ॥ व महानवमी को जो मनुष्य हरसिद्धि को पूजता है और

भैसे को बलि देता है वह पृथ्वी में राजा होता है ॥ १४ ॥ हे व्यास जी ! नवमी में पूजी हुई हरप्रिया हरसिद्धि देवीजी प्रसन्न होकर मनुष्यों को सदैव सम्पूर्ण फलको देती हैं ॥ १५ ॥ वे पुण्यरूपिणी हैं और वे पवित्र हैं तथा वे समस्त सुखों को देनेवाली हैं व स्मरण पूजन तथा दर्शन कीहुई वे देवी धन, पुत्र व सुखों को देनेवाली हैं ॥ १६ ॥ हे व्यासजी ! महानवमी में जो महिषादिक मारे जाते हैं व सब स्वर्ग की गति को प्राप्त होते हैं और मारनेवालों को पातक नहीं होता है ॥ १७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायाभाषटीकायांहरसिद्धिमाहात्म्यं नामविंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

वेद्मूपतिर्भुवि ॥ १४ ॥ नवम्यांपूजितादेवी हरसिद्धिहरप्रिया ॥ तुष्टानृणांसदाव्यास ददात्यनवमंफलम् ॥ १५ ॥ सापु
ण्यासापवित्राच सासर्वसुखदायिनी ॥ स्मृतासम्पूजितादृष्टा धनपुत्रसुखप्रदा ॥ १६ ॥ महानवम्यांयेव्यास हन्यन्ते
महिषादयः ॥ सर्वेतेस्वर्गतिंयान्ति भ्रतांपापपद्मविद्यते ॥ १७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे हरसिद्धिमाहात्म्यन्ना
मविंशोऽध्यायः ॥ २० ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

सनत्कुमारउवाच ॥ मासमेकन्नरोभक्त्या पश्येद्योवटयक्षिणीम् ॥ पूजयेत्स्वर्णपुष्पैश्च तस्यसिद्धिर्महीयते ॥ १ ॥
इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेवटयक्षिणीमाहात्म्यन्नामैकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥
सनत्कुमारउवाच ॥ पिशाचकेनरःसनात्वा चतुर्दश्यांविशेषतः ॥ तिलान्ददातियोभक्त्या नपिशाचःप्रजायते ॥ ३ ॥

दो० । वटयक्षिणि इमि भगवती कर माहात्म्य रसाल । इकीसवें अध्याय में सोइ चरित्र विशाल ॥ सनत्कुमार जी बोले कि जो मनुष्य भक्ति से एक महीने तक वटयक्षिणी भगवतीको देखताहै व धतूर के पुष्पों से पूजता है उसकी सिद्धि नहीं न्यून होती है ॥ १ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषटीकायांवटयक्षिणीमाहात्म्यं नामैकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥
दो० । अहै चतुर्दश यात्रा कर जिमि परम प्रभाव । वाइसवें अध्याय में सोइ चरित सुखपाव ॥ सनत्कुमारजी बोले कि चौदसि तिथि में पिशाचक तीर्थ में विशेष

ताओं के भी ईर्ष्या करने योग्य होता है ॥ १० ॥ और कुछ अधिक सौ कल्पों तक सुखों से युक्त होकर आनन्द करता है और जो सिद्धेश्वर वीरभद्र व चण्डिकाजी को देखता है ॥ ११ ॥ वह मनुष्य यहीं पर सिद्धि को प्राप्त होता है व सब कहीं जीत को प्राप्त होता है और त्रिविष्टपतीर्थ में नहाकर स्वर्णजालेश्वरजी को देखकर ॥ १२ ॥ धतुर से शिवदेवजी को पूजता है वह सब पापों से छूटजाता है और स्नान कर जो मनुष्य भक्ति से कर्कटेश्वर शिवजी को देखता है ॥ १३ ॥ उस को सर्व से डर नहीं होता है और न दरिद्रता होती है और जो मनुष्य उत्तम भक्तिसे सनातनी माया को देखता है ॥ १४ ॥ विष्णुजी की माया से छूटकर वह परम

स स्पर्द्धनीयस्सदाभवेत् ॥ १० ॥ कल्पकोटिशतसाग्रं भोगयुक्तस्तुमोदते ॥ पश्येत्सिद्धेश्वरं यस्तु वीरभद्रञ्च चण्डिकां काम् ॥ ११ ॥ सौत्रैवल्लभते सिद्धिं जयं सर्वत्र ज्ञानवः ॥ स्वर्णजालेश्वरं दृष्ट्वा स्नात्वा तीर्थैः त्रिविष्टपे ॥ १२ ॥ स्वर्णेन पूजयेद्देवं सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ स्नात्वा पश्येन्नरो भक्त्या यः शिवं कर्कटेश्वरम् ॥ १३ ॥ सर्पतो न भयं तस्य दारिद्र्यं नैव जायते ॥ यः पश्येत्परया भक्त्या महामायां सनातनीम् ॥ १४ ॥ विष्णुमायां विनिर्मुक्तस्स याति परमं पदम् ॥ अर्चयेत्परया भक्त्या यः कपालेश्वरन्नरः ॥ १५ ॥ समुच्यते महापापैर्यद्यपि ब्रह्महा भवेत् ॥ स्वर्गद्वारे नरस्स्नात्वा दृष्ट्वा देवञ्च भैरवम् ॥ १६ ॥ दर्शनात्तस्य देवस्य शतयज्ञफलं लभेत् ॥ १७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे चतुर्दशयात्रानामद्वाविंशति तमोऽध्यायः ॥ २२ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

सनत्कुमार उवाच ॥ अथान्यत्सम्प्रवक्ष्यामि देवं त्रिदशपूजितम् ॥ हनुमत्केश्वरन्नाम भुक्तिमुक्तिफलप्रदम् ॥ १॥ पद को प्राप्त होता है और जो मनुष्य उत्तम भक्ति से कपालेश्वर देवजी को देखता है ॥ १५ ॥ वह यद्यपि ब्रह्मघाती भी होवै तथापि महापातकों से छूट जाता है और स्वर्गद्वार में नहाकर मनुष्य भैरवदेवजी को देखकर ॥ १६ ॥ उन देव के दर्शन से सौ यज्ञों के फलको प्राप्त होता है ॥ १७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे देवीदयालुमिश्रविचितायां भाषाटीकायां चतुर्दशयात्रानामद्वाविंशतितमोऽध्यायः ॥ २२ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

दो० । हनुमत्केश्वरलिंगको ध्यायो जिमि हनुमान ॥ तेइसवै अध्यायमें सोई कानि बखान ॥ सनत्कुमारजी बोले कि इस के अनन्तर देवताओं से पूजित व भुक्ति

मुक्ति को देनेवाले अन्य हनुमत्केशवर नामक देवजी को कहूंगा ॥ १ ॥ जो मनुष्य शिवजी के तडाग में नहाकर हनुमत्केशवरजी को देखता है वह करोड़ों हजार वर्षों तक पवनलोक में प्रसन्न रहता है ॥ २ ॥ व्यासजी बोले कि हे अनघ ! पुरातन समय तुम ने जिन हनुमत्केशवरजी को कहा है इनकी पुरातन समय वर्तमान होनेवाली सनातनी कथा को कहिये ॥ ३ ॥ सनत्कुमारजी बोले कि पुरातन समय त्रिलोक का कण्टकरूप रावण नामक राक्षस श्रीरामचन्द्ररूपी विष्णुजी से लंकापुरी में मारा गया है ॥ ४ ॥ उस दुष्ट को मारकर श्रीरामजी श्रीजानकीजी को लेकर ऋत्यों व वानरों समेत अपनी पुरी को आये हैं ॥ ५ ॥ वहां राज्य को

शैवेश्वरसियःस्नात्वा पश्येद्धनुमत्केश्वरम् ॥ कल्पकोटिसहस्राणिवायुलोकैःसमोदते ॥ २ ॥ व्यासउवाच ॥ हनुमत्के
श्वरोयस्तु ह्युक्तःपूर्वस्त्वयानघ ॥ कथांकथयह्येतस्य व्रतपूर्वासनातनीम् ॥ ३ ॥ सनत्कुमारउवाच ॥ त्रैलोक्यकण्ट
कःपूर्वो रावणोनामराक्षसः ॥ विष्णुनारामरूपेण लङ्कायांविनिपातितः ॥ ४ ॥ घातयित्वातुतन्दुष्टं सीतामादायजान
कीम् ॥ वानरैस्सहऋक्षैश्च नगरींस्वामुपागतः ॥ ५ ॥ तत्रराज्यमनुप्राप्य ऋषिभिःपरिवारितः ॥ कथावसाने रामेण
ह्यगस्त्योमुनिसत्तमः ॥ ६ ॥ पृष्टोधिकोद्वयोर्वापि शम्भुवातजयोस्तुकः ॥ तदादाशरथिप्राह अगस्त्योमुनिसत्तमः ॥
७ ॥ अनौपम्योयथादेवो युद्धेशौयैमहेश्वरः ॥ ज्ञेयोवायुसुतस्तद्वत्सत्यमेतदब्रवीमि ते ॥ ८ ॥ एवंश्रुत्वाथहनुमान्य
चिक्वेनोपमामम ॥ कृतामुनिवरेणैह प्रत्यक्षंराघवस्यहि ॥ ९ ॥ गमिष्येनगरींलङ्कां लिङ्गमेकंप्रयाचितुम् ॥ राक्षसेन्द्र

प्राप्त होकर उन श्रीरामचन्द्रजी को ऋषियों ने घेर लिया और कथाओं के अन्त में श्रीरामचन्द्रजीने मुनिश्रेष्ठ अगस्त्य जी से ॥ ६ ॥ पूछा कि शिव व पवनसुत हनुमान्जी इन दोनों के मध्य में कौन अधिक है उस समय मुनिश्रेष्ठ अगस्त्यजीने दशरथ के पुत्र श्रीरामचन्द्रजी से कहा ॥ ७ ॥ कि जैसे युद्ध व शूरता में महा-
देवजी उपमारहित हैं वैसेही पवनपुत्र हनुमान् जी जानने योग्य हैं मैं तुम से यह सत्य कहता हूं ॥ ८ ॥ इस प्रकार सुनकर इसके उपरान्त हनुमान् जी बोले कि जिस लिये यहां मुनिश्रेष्ठ अगस्त्यजी ने श्रीरामचन्द्रजी के सामने मेरी उपमा शिवजीसे किया ॥ ९ ॥ इस लिये महाभाग्यवान् व पापरहित तथा राक्षसोंके राजा

विभीषण जी से एक लिंग को मांगने के लिये मैं लंकापुरी को जाऊंगा ॥ १० ॥ तदनन्तर लंका को गये हुये वे हनुमान्जी विभीषण से बोले कि हे महाभाग ! मुझको तुम एक उत्तम लिंग को देवो ॥ ११ ॥ राक्षसेन्द्र विभीषण ने कहा कि रुचि के अनुरार इस को ग्रहण कीजिये ये छह लिंग रावण के थोपे हुये हैं ॥ १२ ॥ मेरे भाई महात्मा रावण ने त्रिलोक को जीतने के पहले इनको थापा है हे सुव्रत ! इन में तुमको जो प्रिय हो उस लिंग को कहिये ॥ १३ ॥ हे वानर ! उस को मैं तुमको आज्ञाही दूंगा यह सत्य है तदनन्तर हनुमान्जीने मोती के समान लिंगको ग्रहण किया ॥ १४ ॥ व कहा कि हे अनघ, वीर ! जो यह लिंग देख पडता

महाभागं विभीषणमकल्मषम् ॥ १० ॥ ततो गतस्सलङ्कायां विभीषणमुवाच ॥ देहिमेतं महाभाग लिङ्गमेकञ्च शोभ-
नम् ॥ ११ ॥ उक्तञ्च राजसेन्द्रेण गृहाणैतद्यथारुचि ॥ एतानिषड्वैलिङ्गानि रावणस्थापितानि वै ॥ १२ ॥ त्रैलोक्यवि-
जयात्पूर्वं मम भ्रात्रा महात्मना ॥ एतेषु यदभीष्टन्ते लिङ्गं कथय सुव्रत ॥ १३ ॥ तत्प्रयच्छामि ते दैव सत्यमेतत्पुनश्च ॥
ततो जग्राह हनुमालिङ्गं भौतिकसन्निभम् ॥ १४ ॥ यदेतद्दृश्यते वीर तत्प्रयच्छ ममानघ ॥ श्रुत्वा हनुमतो वाक्यम-
थोवाच विभीषणः ॥ १५ ॥ दत्तमेतन्महावीर लिङ्गं यत्कृतवानसि ॥ श्रूयते हि पुरा वृत्तं लिङ्गमेतद्धनेश्वरः ॥ १६ ॥ रुद्रम-
क्त्या समा युक्तस्त्रिकालमप्यपूजयत् ॥ रावणेन यदा बद्धस्तदानीं हि धनेश्वरः ॥ १७ ॥ लिङ्गस्यास्य प्रभावेण विमुक्तस्स-
मपद्यत ॥ प्रसादात्तस्य लिङ्गस्य धनेशोधनरत्नकः ॥ १८ ॥ गृहीत्वा तन्महालिङ्गं स्वस्थो जातो वानरः ॥ सनत्कुमार उ-
वाच ॥ गृहीत्वा तु तालिङ्गं प्रस्थितो विमलेम्बरे ॥ १९ ॥ सप्तमे दिवसे चैव सम्प्राप्तो विनितकां पुरीम् ॥ संस्थाप्य रुद्रसरस-

है उसको मुझे दीजिये हनुमान् जी का वचन सुनकर इसके अनन्तर विभीषणजी बोले ॥ १५ ॥ कि हे महावीर ! जिस लिंग को तुमने मागा है यह दिया गया पुरातन का वृत्तान्त सुना जाता है कि शिवजी की भक्ति से संयुक्त धनेश कुबेरजी ने इस लिंग को त्रिकाल में भी पूजा है जब रावण ने कुबेर को बांधा है ॥ १६ ॥ तब इस लिंगके प्रभाव से छूटे हुये प्राप्त होगये और उस लिंगके प्रभावसे धनेश कुबेरजी धनके रत्नक हुये हैं ॥ १७ ॥ इस के अनन्तर उस महालिंग को लेकर वानर हनुमान्जी स्वस्थ हुये सनत्कुमारजी बोले कि तदनन्तर उस लिंग को लेकर हनुमान्जी निर्मल आकाश में चले ॥ १८ ॥ और सातवें दिन अवन्तीपुरी

में प्राप्त हुये और रुद्रतडाग के किनारे उसको भलीभाति धरकर उन्हां ने स्नान किया ॥ २० ॥ और महाकालजी के पूजन के लिये गमन को चिन्तन किया और उस लिंग को उठाने की इच्छावाले वे उठाने के लिये न समर्थ हुये ॥ २१ ॥ तदनन्तर विशेषता से टिके हुये शिवदेवजी उन पवनपुत्र हनुमानजी से बोले कि हे हनुमानजी ! इस क्षेत्र में तुम अपने नाम से थापकर पूजन करो ॥ २२ ॥ और संसार में यह हनुमत्केश्वर लिंग प्रसिद्ध होगा पवनपुत्र हनुमानजी ने पर्वत की नाई ऊँचे लिंग को स्थापित किया ॥ २३ ॥ जो मनुष्य शनिवार को हनुमत्केश्वर शिवजी को देखता है उसके शत्रुका भय नहीं होता है और समर में वह जीतको

स्तीरेस्नानमथाकरोत् ॥ २० ॥ महाकालस्यपूजार्थगमनंप्रत्यचिन्तयत् ॥ उद्धर्तुकामस्तल्लिङ्गमुद्धर्तुन्नशशकः ॥ २१ ॥ ततोव्यवस्थितोदेवः प्राहतंवायुनन्दनम् ॥ अस्मिन्नेवनेहन्मंस्त्वं स्वनाम्नास्थाप्यपूजय ॥ २२ ॥ हनुमत्केश्वरञ्चाथ लोकेख्यातंभविष्यति ॥ शैलवचोन्नतंलिङ्गं स्थापितंवायुसुनुना ॥ २३ ॥ शनौपश्येन्नरोयस्तु हनुमत्केश्वरंशिवम् ॥ तस्यशत्रुभयन्नास्ति संग्रामेजयमाप्नुयात् ॥ २४ ॥ नचचौरभयंतस्य नदारिद्र्यन्नदुर्गतिः ॥ तैलभिषेकंयःकुर्याद्धनुमत्केश्वरंशिवम् ॥ २५ ॥ तस्यरोगाःप्रलीयन्ते ग्रहपीडानजायते ॥ येष्यन्तिनराभक्त्या तेषामोचोभविष्यति ॥ २६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेहनुमत्केश्वरमाहात्म्यनामत्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥ *

सनत्कुमारउवाच ॥ यमेश्वरन्तुयःपश्येत्सनापयित्वातिलाभमसा ॥ कुङ्कुमेनसमालिप्य पूजयेदुत्पलैस्ततः ॥ १ ॥

प्राप्त होता है ॥ २३ ॥ और उसके चौरों का भय नहीं होता है व न दरिद्रता होती है और न दुर्गति होती है जो मनुष्य हनुमत्केश्वर शिवजी के तैल का अभिषेक करता है ॥ २५ ॥ उसके रोग नाश होजाते हैं व ग्रहों की पीडा नहीं होती है व जो मनुष्य भक्ति से देखते हैं उनका मोक्ष होगा ॥ २६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांहनुमत्केश्वरमाहात्म्यवर्णनंनामत्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥ * ॥

दो० । अहै यथा माहात्म्य युत सुभग यमेश्वर देव । चौबिसवें अध्याय में सोइ चरित सुखदेव । सनत्कुमारजी बोले कि तिल मिले हुये जलसे म्मान कराकर जो

मनुष्य यमेश्वरजी को देखता है और कुंकुम से भलीभांति लेपन कर तदनन्तर कमलोंसे पूजन करता है ॥ १ ॥ व कालागुरु को जलाता है और तिलों व चावलों को देता है व जो मनुष्य त्रिशूल हाथवाले सदाशिव देवजीको इस प्रकार पूजता है ॥ २ ॥ जहां कहीं मेरे हुये भी उस पुरुष के यमराज पिता के समान होते हैं ॥ ३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांयमेश्वरमाहात्म्यवर्णनं नामचतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥ * ॥ २ ॥ दो० । अति उत्तम माहात्म्य युत तीर्थं रुद्रसर नाम । पर्वीसर्वे अध्याय मे कबो चरित अभिराम ॥ सनत्कुमार जी बोले कि हे व्यासजी ! मैं तीर्थों में उत्तम श्रेष्ठ

देहेत्कृष्णगुरुंभूपं दापयेत्तिलतण्डुलान् ॥ यएवमर्चयेद्देवमीश्वरंशूलहस्तकम् ॥ २ ॥ यत्रकुत्रमृतस्यापि यमःपितृ समोभवेत् ॥ ३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे यमेश्वरमाहात्म्यन्नामचतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥ *

सनत्कुमारउवाच ॥ कथयामिपरंव्यास तीर्थतीर्थेषुचोत्तमम् ॥ नाभ्यारुद्रसरःप्रोक्तं त्रिषुलोकैषुविश्रुतम् ॥ १ ॥ तत्रस्नात्वाशुचिर्भूत्वा पश्येत्कोटिवरंशिवम् ॥ मुच्यतेसर्वपापेभ्यो रुद्रलोकंसगच्छति ॥ २ ॥ श्राद्धं तत्रैवकृत्वा तु शृणु यत्फलमाप्नुयात् ॥ दशानामश्वमेधानां वाजपेयशतस्य च ॥ ३ ॥ फलंकोटिगुणंव्यास लभतेनात्रसंशयः ॥ पितृनु द्विश्ययत्किञ्चित्कोटितीर्थेप्रदीयते ॥ ४ ॥ तत्सर्वकोटिगुणितं जायतेनात्रसंशयः ॥ कोटितीर्थेनरस्नात्वा ध्यायेद्यः परमाक्षरम् ॥ ५ ॥ मुच्यतेसर्वपापेभ्यो निर्मोकेनयथोरगः ॥ प्रातरुत्थाययोविप्र तत्रस्नानं करोति वै ॥ ६ ॥ दृष्ट्वा देवं

तीर्थ को कहता हू जो कि नाम से रुद्रसर ऐसा कहा हुआ तीनों लोकों में प्रसिद्ध है ॥ १ ॥ उस तीर्थ में नहाकर व पवित्र होकर जो मनुष्य कोटिवर शिवजी को देखता है वह सब पापों से छूटता है और शिवलोक को जाता है ॥ २ ॥ और वहीं श्राद्ध कर जिस फल को प्राप्त होता है उसको सुनिये कि हे व्यासजी ! वह दश अश्वमेधों के व सौ वाजपेय यज्ञों के कोटिगुने फल को प्राप्त होता है इस में सन्देह नहीं है पितरोंको उद्देश कर जो कुछ कोटितीर्थ में दिया जाता है ॥ ३॥ ४॥ वह सब कोटिगुना है इस में सन्देह नहीं है कोटितीर्थ में नहाकर जो मनुष्य परमाक्षर को ध्यान करता है ॥ ५ ॥ वह सब पापों से छूट जाता है जैसे कि केंचुलिसे सोंप

छूटजाता है हे विप्र जी ! प्रातःकाल उठकर जो मनुष्य उसमें स्नान करता है ॥ ६ ॥ वह महाकाल शिव देवजी को देखकर हजार मोदान के फल को प्राप्त होता है और कोटितीर्थ में नहाकर सात रात्रियों तक उपास किये पवित्र ॥ ७ ॥ पुरुष हजार चान्द्रायण व्रत के फलको प्राप्त होता है और जो पुरुष वहां जागरण करता है वह अनन्त फल को भोगता है ॥ ८ ॥ और उपवास समेत जितेन्द्रिय जो पुरुष महा स्नानपूर्वक चन्दन व पुष्पों से पूजन कर इस प्रकार रात्रि को व्यतीत करता है ॥ ९ ॥ वह समस्त मनोरथ को प्राप्त होता है जो कि देवताओं को भी दुर्लभ है वहां कार्तिकी व वैशाखी में शिवदेवजी को समय में उपजे हुये गंध पुष्पों से व

महाकालं गोसहस्रफलं लभेत् ॥ कोटितीर्थे नरः स्नात्वा सप्तरात्रोषित इशुचिः ॥ ७ ॥ चान्द्रायणसहस्रस्य फलं प्राप्नोति मानवः ॥ जागरंतत्र कुर्याद्यो ह्यनन्तं फलमश्नुते ॥ ८ ॥ गन्धपुष्पांचनं कृत्वा महास्नपनपूर्वकम् ॥ य एवं नयते रात्रिं सोपवासो जितेन्द्रियः ॥ ९ ॥ लभते सर्वकामित्वं यत्सुरैरपि दुर्लभम् ॥ कार्तिक्यामथ वैशाख्यां देवं तत्र प्रपूजयेत् ॥ १० ॥ गन्धपुष्पैश्च कालीनैस्तथा वस्त्रैस्सुशोभनैः ॥ कर्पूरं कुसुमं चैव श्रीखण्डमगुरुं तथा ॥ ११ ॥ समभागानि कृत्वा तु शिलां पृष्ठे च पेयेत् ॥ अनुलिप्य महाकालं रुद्रस्यानुचरो भवेत् ॥ १२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे रुद्रसरमाहात्म्ये नाम पञ्चविंशतितमोऽध्यायः ॥ २५ ॥ * * * * *

सनत्कुमार उवाच ॥ अथ यात्रां प्रवक्ष्यामि महाकालस्य यत्नतः ॥ शिवश्रेयस्करां पुण्यां पुण्यलोकप्रदायिनीम् ॥ १ ॥ स्नात्वा सरसिरुद्रस्य दृष्ट्वा कोटीं श्वरं शिवम् ॥ नमस्कृत्य ततो गच्छेन्महाकालं सनातनम् ॥ २ ॥ गन्धैः पुष्पैर्नमस्कारैः

सुन्दर बसनों से पूजन करे और कपूर, कुसुम, चन्दन व अगुरु ॥ १० ॥ इनको बराबर भागवाले कर पत्थरके पृष्ठ पर पैसे और महाकाल जी के अनुलेपन कर शिवजी का दास होवै ॥ १२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां रुद्रसरमाहात्म्यवर्णननाम पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥ * * * * *
दो० । महाकाल शिवदेवकी यात्रा कर सुविधान । छबिसवें अध्याय में कीन्हों चरित वखान ॥ सनत्कुमार जी बोले कि इस के अनन्तर यत्न से महाकालजी की यात्रा को कहता हूँ जो कि कल्याण व पुण्यकारिणी तथा पवित्र व पवित्रलोकों को देनेवाली है ॥ १ ॥ रुद्रसर में नहाकर व कोटीश्वर शिवजी को देखकर

व प्रणाम कर तदनन्तर सनातन महाकालजी के समीप जावै ॥ २ ॥ और चन्दन व पुष्पों से तथा नमस्कारों से त्रिदेशेश्वर जी को भलीभांति पूजकर व प्रणामकर तदनन्तर कपालमोचन देवजी के समीप जावै ॥ ३ ॥ वहाँ पर देवदेवेश शिवजीने पृथ्वी में कपाल को धरा है कपाल धरने पर उसी क्षण समस्त पातकों का नाशक कपालमोचन नामक उत्तम लिंग हुआ है और वहापर सौ पल धी से स्नान करावै ॥ ४५ ॥ या वित्तशास्त्रसे रहित पुरुष उसके आधेसे आधे भागकरके व चौथाई भाग से स्नानकरावै तो हे द्विजेन्द्र ! वह पुरुष पूर्ण समयमें शिवलोकमें पूजित होता है ॥ ६ ॥ तदनन्तर प्रणामकर उत्तम कपिलेश्वरको जावै उन देवजी के दर्शनसे ब्रह्मवाती

स्सम्पूज्य त्रिदेशेश्वरम् ॥ प्राणिपत्यतोगच्छेद्देवं कपालमोचनम् ॥ ३ ॥ तत्र वैदेवदेशः कपालं न्यस्तवान् चित्तौ ॥ कपाले तत्क्षणान्न्यस्ते तत्राभ्युल्लिङ्गमुत्तमम् ॥ ४ ॥ कपालमोचननाम सर्वपापप्रणाशनम् ॥ तत्र वैस्नपनं कुर्यादाज्यं पलशतन्तुवै ॥ ५ ॥ तदर्धार्धेन पादेन वित्तशास्त्रविवर्जितः ॥ काले पूर्णैः सविप्रेन्द्र शिवलोकं महीयते ॥ ६ ॥ नमस्कृत्य तोगच्छेत्कपिलेश्वरमुत्तमम् ॥ दर्शनात्तस्य देवस्य मुच्यते ब्रह्मघातकः ॥ ७ ॥ हनुमत्केश्वरन्देवं ततोगच्छेत्समाहितः ॥ ऐश्वर्यमतुलं व्यास दर्शनादस्य जायते ॥ ८ ॥ ततोगच्छेन्महादेवं पिप्पलादं सनातनम् ॥ यस्य दर्शनमात्रेण सुक्तिः स्याद्विजसत्तम ॥ ९ ॥ स्वप्नेश्वरं ततोगच्छेद्भक्तिश्रद्धासमन्वितः ॥ दर्शनादस्य देवस्य दुःस्वप्नञ्च विनश्यति ॥ १० ॥ ततोगच्छेन्महादेवमीशानं विश्वतोमुखम् ॥ यस्य दर्शनमात्रेण विश्वस्यैव पतिर्भवेत् ॥ ११ ॥ सोमेश्वरन्ततोगच्छेज्जितक्रोधो जितोन्द्रियः ॥ कुष्ठरोगादिदोषेभ्यो दर्शनादस्य मुच्यते ॥ १२ ॥ वैश्वानरेश्वरं व्यास ततोगच्छेत्समाहितः ॥ मुक्त हो जाता है ॥ ७ ॥ तदनन्तर सावधान चित्तवाला पुरुष हनुमत्केश्वरको जावै हे व्यास जी ! इन के दर्शन से अतुल ऐश्वर्य होता है ॥ ८ ॥ तदनन्तर हे द्विजोत्तम ! सनातन पिप्पलाद महादेव जी के समीप जावै जिनके दर्शनही से मुक्ति होती है ॥ ९ ॥ तदनन्तर भक्ति व श्रद्धा से संयुत पुरुष स्वप्नेश्वर को जावै इस देवता के दर्शन से दुःस्वप्न नष्ट हो जाता है ॥ १० ॥ तदनन्तर विश्वतोमुख ईशान महादेव जी को जावै कि जिनके दर्शन ही से संसार भर का स्वामी होता है ॥ ११ ॥ तदनन्तर क्रोध को जीते हुये जितेन्द्रिय पुरुष सोमेश्वर जी के समीप जावै इनके दर्शन से मनुष्य कुष्ठ रोगादिकों के दोषों से छूट जाता है ॥ १२ ॥ तदनन्तर

हे व्यासजी ! सावधान होता हुआ पुरुष वैद्वान्नेश जीके समीप जावै उनके दर्शन से उस मनुष्य की सदैव बढ़ती होती है ॥ १३ ॥ तदनन्तर बीजपूरक (बिजौरा निम्बू) हाथ वाले लकुलीश्वर जी के समीप जावै उनके दर्शन से रुद्रत्व होता है इस में संदेह नहीं है ॥ १४ ॥ तदनन्तर उत्तम गणपेश्वरजी के समीप जावै जिन के दर्शनही से समस्त सिद्धियां होती हैं ॥ १५ ॥ सिद्धियों के कारण याचना कियेहुये सदैव देवताओं से पूजित हुये हैं उस कारण ये अभ्यर्थित पूरक विघ्ननायक प्रसिद्ध हैं ॥ १६ ॥ तदनन्तर वयोवृद्ध सनातन महाकालजी के समीप जावै उनके दर्शन से न रोग होता है न वृद्धता होती है और न व्याधि होती है इसमें संदेह प्रसिद्ध है ॥ १६ ॥

तस्यवृद्धिस्सदालोकं जायतेतस्यदर्शनात् ॥ १३ ॥ बीजपूरकहस्तन्तु लकुलीशंततोव्रजेत् ॥ रुद्रत्वंदर्शनानात्तस्य जायतेनाबसंशयः ॥ १४ ॥ ततो गच्छेन्महादेवं गणपेश्वरमुत्तमम् ॥ यस्यदर्शनमात्रेण जायन्तेसर्वसिद्धयः ॥ १५ ॥ अभ्यर्थितस्सदादेवैः पूजितस्सिद्धिकारणात् ॥ तेनाभ्यर्थितपूरोयं विख्यातोविघ्ननायकः ॥ १६ ॥ वयोवृद्धंततो गच्छेन्महाकालंसनातनम् ॥ नरोगो नजरव्याधिर्दर्शनान्नात्र संशयः ॥ १७ ॥ विघ्ननाशंततो गच्छेत्प्राणीशन्देवमुत्तमम् ॥ स्नानं शतघटैस्तस्य कुर्याद्भक्त्या समाहितः ॥ १८ ॥ तस्यैव कृते स्नाने लभ्यन्ते सर्वसिद्धयः ॥ स्वर्गश्चापि सदा व्यासदर्शनादस्य जायते ॥ १९ ॥ मार्गे गतमनुवृद्धय दण्डपाणिततो व्रजेत् ॥ यस्य दर्शनमात्रेण यमलोकोन दृश्यते ॥ २० ॥ पुष्पपद्मैर्न नो गच्छेद्भक्तिश्रद्धासमन्वितः ॥ यस्य दर्शनमात्रेण मुच्यते सर्वपातकैः ॥ २१ ॥ गुह्यं चैव महाकालं ततो गच्छेत्समाहितः ॥ यस्य दर्शनमात्रेण गुह्यपापैः प्रमुच्यते ॥ २२ ॥ ततो गच्छेत्समाधिस्थो दुर्वासिश्चरमुत्तमम् ॥ यस्य

नहीं है ॥ १६ ॥ तदनन्तर उत्तम प्राणीश विघ्ननाशक देवजी के समीप जावै व सावधान होता हुआ पुरुष सौ षडों से उनका स्नान करावै ॥ १८ ॥ क्योंकि उनके स्नान करावे पर भाग्यन भक्तियां मिलती हैं व हे व्यासजी ! इनके दर्शन से स्वर्गभी होता है ॥ १९ ॥ तदनन्तर मार्ग में प्राप्त दण्डपाणि जी को उलंघन कर उनके समीप जावै कि जिनके दर्शनमात्र से यमलोक नहीं देखा जाता है ॥ २० ॥ तदनन्तर भक्ति व श्रद्धासंयुक्त पुरुष पुष्पदन्तजी के समीप जावै जिनके दर्शन ही से मनुष्य सब पातकों से छुट आता है ॥ २१ ॥ तदनन्तर सावधान होता हुआ पुरुष गुह्य महाकाल जी के समीप जावै जिनके दर्शनमात्र से पुरुष गुप्त पातकों से

छूट जाता है ॥ २२ ॥ तदनन्तर समाधि में स्थित मनुष्य उत्तम दुर्वासेश्वरजी के समीप जावै जिनके दर्शनमात्र से मनुष्य कृतकृत्य होजाता है ॥ २३ ॥ और दुर्वासेश्वर जीके समीप श्वास को रोककर और महादुर्गा गौरीजी के समीप जाकर इसके अनन्तर श्वास को छोड़ै ॥ २४ ॥ वहां ऊर्ध्व श्वासको छोड़ना चाहिये और सावधान होता हुआ मनुष्य उन भगवती को पूजै तदनन्तर देवदेव कालेश्वर महादेवजी के समीप जावै ॥ २५ ॥ जिनके दर्शनमात्र से मनुष्य यमलोकको नहीं देखता है तदनन्तर देवदेव बधिरेश्वर महादेवजी के समीप जावै ॥ २६ ॥ जिनके दर्शनही से बधिरता नहीं होती है तदनन्तर यात्रा के पूर्ण फल को देनेवाले यात्रे-

दर्शनमात्रेण कृतकृत्योनरोभवेत् ॥ २३ ॥ श्वासावरोधनंकृत्वा दुर्वासस्यसमीपतः ॥ गौरीङ्गत्वामहादुर्गां त्यजेच्छ्वा
समनन्तरम् ॥ २४ ॥ तत्रोच्छ्वासोविमोक्तव्यस्तामर्चत्सुसमाहितः ॥ कालेश्वरन्ततोगच्छेद्देवदेवमहेश्वरम् ॥ २५ ॥
यस्यदर्शनमात्रेण यमलोकन्नपश्यति ॥ बधिरेशंतोगच्छेद्देवदेवमहेश्वरम् ॥ २६ ॥ यस्यदर्शनमात्रेण बधिरत्वन्नजा
यते ॥ यात्रेश्वरन्ततोगच्छेद्यात्रापूर्णफलप्रदम् ॥ २७ ॥ कीर्त्तयेदात्मनोनाम स्थानंगोत्रञ्चतत्रवै ॥ नकीर्त्तयेद्यदानाम
सायात्राविफलीभवेत् ॥ २८ ॥ देवस्याग्नेततोव्यास उपविश्यसमाहितः ॥ भक्तियुक्तः स्तुतिं ब्रूयान्नमस्कृत्वा पुनः पुनः ॥
२९ ॥ मयासमर्पितायात्रा त्वत्प्रसादान्महेश्वर ॥ संसारसागराद्घोरान्मासुद्धरजगत्पते ॥ ३० ॥ अनेनविधिनायस्तु
महाकालंप्रदक्षयेत् ॥ प्रदक्षिणीकृतातेन सप्तद्वीपावसुन्धरा ॥ ३१ ॥ गोलक्षं द्विजवर्याय दत्त्वायल्लभतेफलम् ॥ त
त्फलं देवदेवस्य सकृत्कृत्वा प्रदक्षिणम् ॥ ३२ ॥ भक्त्या परमया युक्तो महाकालंप्रदक्षयेत् ॥ पदेपदे यज्ञफलमिति मेश
श्वरजी के समीप जावै ॥ २७ ॥ और वहां पर अपने नाम व स्थान व गोत्र को कहै यदि नाम न कहै तो वह यात्रा निष्फल होती है ॥ २८ ॥ तदनन्तर हे व्यास
जी ! सावधान होता हुआ भक्तिसंयुक्त पुरुष उन देव के आगे बैठकर व बार २ प्रणाम कर स्तुति कहै ॥ २९ ॥ कि हे महेश्वरजी ! तुम्हारी प्रसन्नता से मैंने यात्रा
को समर्पण किया है जगदीश्वरजी ! भयकर संसारसागर से मुझको उधारिये ॥ ३० ॥ इस विधि से जो मनुष्य महाकाल जी की प्रदक्षिणा करता है उस से सातों
द्वीपोंवाली पृथ्वी प्रदक्षिणा कीगई ॥ ३१ ॥ द्विजोत्तम के लिये लाख गौवों को देकर मनुष्य जिस फलको प्राप्त होता है उस फलको देवदेव महाकालजी की एक

बार प्रदक्षिणा करके पाता है ॥ ३२ ॥ बड़ी भक्ति से संयुक्त जो पुरुष महाकालजीकी प्रदक्षिणा करता है उसको पगर पै यज्ञ का फल होता है यह मुझसे सदाशिव जी ने कहा है ॥ ३३ ॥ यहा पर यात्रेश्वर जी के पूजन से साठ करोड़ हजार व साठ करोड़ सौ लिंग पूजित होते हैं ॥ ३४ ॥ शिवजी के ध्यान में तत्पर जो पुरुष इस प्रकार यात्रा को करता है और वस्त्रों समेत दक्षिणा को देता है उसके पुण्य के फलको सुनिये ॥ ३५ ॥ कि वह सात जन्मों में कियेहुये पातक से छूट जाता है इस में सन्देह नहीं है इस प्रकार यात्रा को समाप्त कर इसके अनन्तर मनुष्य अपने घरको जाकर ॥ ३६ ॥ यात्रा के देवताओं की संख्याबाले शिवभक्त तथा शिवजी

झरोब्रवीत् ॥ ३३ ॥ षष्टिकोटिसहस्राणि षष्टिकोटिशतानिच ॥ पूजितानिभवन्त्यत्र यात्रेश्वरसमर्चनात् ॥ ३४ ॥ यए वंकुरुतेयात्रां शिवध्यानपरायणः ॥ सवस्त्रान्दक्षिणांदद्यात्तस्यपुण्यफलंशृणु ॥ ३५ ॥ सप्तजन्मकृतात्पापान्मुच्यते नात्रसंशयः ॥ एवंयात्रांसमाप्याथ गत्वाचस्वगृह्नरः ॥ ३६ ॥ यात्रादेवतसंख्यानै षड्विंशतिद्विजोत्तमान् ॥ भोजये च्छिवभक्तांश्च शिवध्यानपरायणान् ॥ ३७ ॥ सवस्त्रांदक्षिणांदत्त्वा प्राप्यानुज्ञांविसर्जयेत् ॥ यात्राक्रमेणैकैकं तीर्थान्तरमनुव्रजेत् ॥ ३८ ॥ धर्मोपदेशकैपश्चात् सर्वोपस्करसंयुताम् ॥ धेनुपयस्विर्नोदद्याद्वित्तशाठ्यविवर्जितः ॥ ३९ ॥ भुञ्जीताथस्वयंव्यास सर्वभृत्यसमन्वितः ॥ दीनानाथदरिद्रान्धविकलांश्चापिभोजयेत् ॥ ४० ॥ यदत्रफलमुद्दिष्टं तद्दामशृणुष्वमे ॥ कुलानांशतमुद्धृत्य मातापित्रोस्समाहितः ॥ ४१ ॥ कल्पकोटिसहस्राणि शिवलोकेसमोदते ॥ ४२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेमहाकालयात्रामाहात्म्यनामषड्विंशतितमोऽध्यायः ॥ २६ ॥ *

के ध्यान में परायण बम्बीस द्विजोत्तमों को भोजन करावै ॥ ३७ ॥ और वस्त्रों समेत दक्षिणा को देकर व आज्ञापाकर बिदाकरै व यात्रा के क्रम से एक एक तीर्थ के अनन्तर से पदचात् जावै ॥ ३८ ॥ और पदचात् वित्तशाठ्य से वर्जित नर धर्मोपदेशक तीर्थ में सब उपस्करों से संयुत दूधवाली गऊ को देवै ॥ ३९ ॥ इसके अनन्तर हे व्यासजी ! समस्त सेवकों समेत आप भी भोजन करै और दीन, अनाथ, निर्धनी, अन्ध व विकल मनुष्यों को भी भोजन करावै ॥ ४० ॥ यहांपर जो फल

कहा गया है उसको कहता हूं तुम मुझसे सुनो कि वह सावधान चित्तवाला पुरुष माता व पिता के सौकुलों को उच्चारकर कराड़ों हजार कल्पों तक शिवलोक में प्रसन्न रहता है ॥ ४३ । ४२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेऽद्विद्व्यालुमिश्रविरचितांभाषाटीकायां महाकालयात्रामाहास्यवर्णनं नाम षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥ ७ ॥

दो० । बाल्मीकि पूज्यो यथा बाल्मीकिश्वर देव । सत्ताइस अध्याय में सोई चरित सुभेव ॥ सनत्कुमारजी बोले कि हे व्यासजी ! मौन व ध्यान में तत्पर होकर जो पुरुष भक्ति से बाल्मीकिश्वर देवजी को पूजै वह उत्तम कवित्व को प्राप्त होता है ॥ १ ॥ व्यासजी बोले कि यहां वे कैसे उत्पन्न हुये हैं और बाल्मीकिश्वर स्वामी कौन हैं कि जिनके दर्शनही से कवित्व होता है ॥ २ ॥ सनत्कुमारजी बोले कि हे व्यासजी ! पुरातन समय भृगुवंश में उपजे हुये सुमति नामक ब्राह्मण हुये हैं और रूप व

सनत्कुमार उवाच ॥ बाल्मीकिरीश्वरं व्यास भक्त्या देवं प्रपूजयेत् ॥ मौनी ध्यानपरो भूत्वा सुकवित्वमवाप्नुयात् ॥

१ ॥ व्यास उवाच ॥ कथमत्र समुत्पन्नो कोवाल्मीकिश्वरः प्रभुः ॥ यस्य दर्शनमात्रेण कवित्वमुपजायते ॥ २ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ आसीद्व्यासपुराविप्रः सुमतिर्भृगुवंशजः ॥ रूपयौवनसम्पन्ना तस्य भार्याथ कौशिकी ॥ ३ ॥ तस्य पुत्रः

समुत्पन्नस्त्वग्निशर्मतिनामतः ॥ सपित्रा प्रोच्यमानोऽपि वेदाभ्यासं न मन्यते ॥ ४ ॥ ततो वहतिथे काले अनावृष्टिरजाय

त ॥ तदापि बहवश्चासौ दक्षिणामाश्रितो दिशम् ॥ ५ ॥ ततोऽसौ सुमतिर्विप्रः सभार्यः समुत्तथा ॥ विदिशं काननं प्रा

प्तः कृत्वा चाश्रममाश्रितः ॥ ६ ॥ आभारैर्दस्युभिः सार्द्धं सङ्गो भूदग्निशर्मणः ॥ आगच्छति यथा तेन यस्तंहन्ति स पाप

कृत् ॥ ७ ॥ स्मृतिर्नष्टा गता वेदा गंतो गता श्रुतिः ॥ कस्मिंश्चिदथ काले तु तीर्थयात्रा प्रसङ्गतः ॥ ८ ॥ समर्पयः पथा

यौवन से सम्पन्न कौशिकी नामक उनकी स्त्री हुई है ॥ ३ ॥ उनके अग्निशर्मा नामक पुत्र उत्पन्न हुआ है पिता से कहा जाता हुआ भी वह वेदाभ्यास को नहीं मानता था ॥ ४ ॥ तदनन्तर बहुत दिनोंवाले समय में अनावृष्टि हुई उस समय भी बहुत से मनुष्य व यह दक्षिण दिशा में आश्रित हुआ ॥ ५ ॥ तदनन्तर स्त्रियों समेत व

पुत्रों सहित यह सुमति ब्राह्मण विदिशा में वनको प्राप्त होकर आश्रम बनाकर स्थित हुआ ॥ ६ ॥ और अहीरों व चोरों के साथ अग्निशर्मा का संग हुआ उम गरता से जो आताथा उसको वह पापकारी अग्निशर्मा मारता था ॥ ७ ॥ स्मरण नष्ट हो गया व वेद जातिरेह और गोत्र जातिरेह इसके अनन्तर किसी समय में तीर्थ-

यात्रा के प्रसंग से ॥ ८ ॥ उत्तम व्रतोंवाले ससर्पिलोग ससी मार्ग से उपस्थित हुये इसके अनन्तर मारने की इच्छावाला अग्निशर्मा उनको देखकर यह बोला ॥ ९ ॥ कि इन वस्त्रों को व छतुरी तथा पनहियों को छोड़देवो क्योंकि यमस्थानको जानेवाले तुम लोग मुझसे मारने योग्यहो ॥ १० ॥ उसके उस वचनको सुनकर अग्निजी वचन बोले कि हमारी पीड़ासे उपजा हुआ पाप तुम्हारे हृदयमें कैसे वर्तमान है ॥ ११ ॥ हम लोग तपस्वी होकर तीर्थयात्रा में उद्यम किये हैं अग्निशर्मा बोले कि मेरे माता व पिता तथा पुत्र व प्यारी स्त्री है ॥ १२ ॥ उनको मैं सदैव पोषण करता हूँ यह मेरे हृदयमें स्थित है अग्नि जी बोले कि अपने इकट्ठा किये हुये कर्म के

तेन सुव्रताः समुपस्थिताः ॥ अग्निशर्मार्थतान् दृष्ट्वा हन्तुकामो ब्रवीदीदम् ॥ ९ ॥ वस्त्राणि मानि मुञ्चध्वं छत्रकोपान्
हौ तथा ॥ हन्तव्या हि मया यूयं गन्तारो यमसादने ॥ १० ॥ तस्य तद्वचनं श्रुत्वा अत्रिर्वचनमब्रवीत् ॥ अस्मत्पीडनं जं पा
पं कथं ते हृदि वर्तते ॥ ११ ॥ वयं तपस्विनो भूत्वा तीर्थयात्राकृतोद्यमाः ॥ अग्निशर्मो वाच ॥ ममास्ति माता यः पिता सुतो
भार्या गरीयसी ॥ १२ ॥ पोषयामि सदा तांस्तु एतन्मे हृदि संस्थितम् ॥ अत्रिरुवाच ॥ पित्रा दीननुपृच्छत्वं स्वकर्मपा
जितं प्रति ॥ १३ ॥ यद्युष्मदर्थं क्रियते पापं तत्कस्य कथयताम् ॥ चेन्न ते कथयन्ति तस्म मा मृषा प्राणिनो वधीः ॥ १४ ॥ अग्नि
शर्मो वाच ॥ न कदाचिन्मया ते तु संपृष्टा ईदृशं वचः ॥ गुण्माकं वचसा मेघ प्रतिबोधः प्रवर्तते ॥ १५ ॥ गत्वा पृच्छामि ता
न्सर्वान् कस्य भावश्च कीदृशः ॥ यूयमत्रैव तिष्ठध्वं यावदागमनं मम ॥ १६ ॥ इत्युक्त्वा ताज्जगामाशु पितरं स्वमुवाच ह ॥
धर्मस्य प्रतिघातेन प्राणिनां पीडनेन च ॥ १७ ॥ सुमहदृदश्यते पापं कस्यैतत्कथयतां मम ॥ पिता प्राहाय तन्माता नापु
त्रिष्य मे तुम पितादिकोंसे पूछो ॥ १३ ॥ कि तुम लोगों के लिये जो पातक किया जाता है वह किसको होता है यह कहिये यदि तुमसे उन्होंने न कहा हो तो क्या प्राणि-
यों को मत मारिये ॥ १४ ॥ अग्निशर्मा बोले कि मैंने उनसे कभी ऐसे वचन को नहीं पूछा है आज तुम लोगों के वचन से मेरे ज्ञान वर्तमान है ॥ १५ ॥ जाकर मैं
उन सबोंसे पूछूंगा कि किसका कैसा अभिप्राय है तबतक तुम लोग यहीं टिको कि जबतक मेरा आगमन होवे ॥ १६ ॥ उनसे ऐसा कहकर शीघ्र ही गया व अपने
पिता से बोला कि धर्म के नाश से व प्राणियों को दुःख देने से ॥ १७ ॥ बड़ा भारी पाप देख पड़ता है यह किसको होता है उसको मुझ से कहिये इसके अनन्तर

पिता व उसकी माता ने कहा कि हम दोनों को इसमें पाप नहीं है ॥ १८ ॥ जिसको करते हो उसको तुम जानो और किया हुआ कर्म तुमसे भोगने योग्य होगा उन के उस वचन को सुनकर स्त्री से वचन बोला ॥ १९ ॥ व उसने भी कहा कि मुझको पाप नहीं होगा किन्तु यह पातक तुम्हीं को होगा और उस वचन को पुत्र से कहा व उसने कहा कि मैं बालक हूँ ॥ २० ॥ उनके वचन व व्यवहारको यथार्थसे जानकर मैं नष्ट होगया और तपस्वीलोग मेरी शरण (रक्षक) हैं यह मानता हुआ वह अग्निशर्मा ॥ २१ ॥ उस दण्डको पृथ्वी में फेंककर जिससे कि प्राणी मारेगये थे हे कृष्ण (व्यास) जी ! बालोंको फैलाकर शीघ्रता संयुत होकर ऋषियों के

एयमावयोरिह ॥ १८ ॥ त्वंजानासिकुरुषे यत्कृतंभोग्यंपुनस्त्वया ॥ तयोस्तद्वचनंश्रुत्वा भार्यावचनमब्रवीत् ॥ १९ ॥
तयाप्युक्तंनमेपापं पापमेतत्तवैवतु ॥ तद्वाक्यमब्रवीत्पुत्रं बालोहमिति सोब्रवीत् ॥ २० ॥ तज्ज्ञात्वाभाषितन्तेषां चेष्टित
अवतत्त्वतः ॥ नष्टोहमितिमन्वानः शरणंमेतपस्विनः ॥ २१ ॥ क्षिप्त्वाथलकुटं कृष्ण येनवैजन्तवोद्वताः ॥ प्रकीर्यकेशां
स्त्वरितो ऋषीणामग्रतःस्थितः ॥ २२ ॥ प्रणम्यदण्डपतेन ततोवचनमब्रवीत् ॥ नमेमातानचपिता नभार्यानचमेसु
तः ॥ २३ ॥ सर्वैस्तैःपरित्यक्तोहं भवतांशरणङ्गतः ॥ सुष्टूपदेशदानान्मां नरकात्रातुमर्हथ ॥ २४ ॥ एवंतवादिनंद
पद्मा ऋषयोत्रिमथानुवन् ॥ भवतोवचनादस्य प्रतिबोधस्समागतः ॥ २५ ॥ भवतायमनुग्राह्यः शिष्योभवतुतेमुने ॥ त
थेत्युक्त्वाथतम्प्राह इमन्ध्यानयोगेन पापपुञ्जंप्रणाशय ॥ संस्थितोवृत्तमूलत्वं परांसि

आगे स्थित हुआ ॥ २२ ॥ और दण्डवत् गिरकर प्रणामकर तदनन्तर उसने वचन कहा कि न मेरे माताहै न पिता है और न स्त्री है न पुत्र है ॥ २३ ॥ उन सबों से छोड़ा हुआ मैं आप लोगों की शरण में प्राप्त हूँ तुमलोग उत्तम उपदेश के दानसे मेरी नरकसे रक्षा करने के योग्यहो ॥ २४ ॥ इसप्रकार कहतेहुये उसको देखकर इसके अनन्तर ऋषियों ने अविज्जी से कहा कि आपके वचन से इसके ज्ञान आगया ॥ २५ ॥ हे मुने ! आपसे यह दया करने योग्यहै और तुम्हारा यह शिष्य होवै वैसाही होगा यह कहकर अविज्जी उस अग्निशर्मासे बोले कि तुम इस ध्यानको करो ॥ २६ ॥ और वृत्तकी जड़में भलीभांति बैठेहुये तुम इस ध्यान के योगसे

पापकी राशि को नाश करो और परमसिद्धि को प्राप्त होवोगे ॥२७॥ यह कहकर वे सब चले गये और कामना समेत वह योगी भी वहां तेरह वर्ष तक उस ध्यान में स्थित हुआ ॥ २८ ॥ और उस मार्ग से लौटहुये उन मुनियों ने बैबौरि में उससे कहे हुये शब्द को सुना व विस्मय से संयुत हुये ॥ २९ ॥ तदनन्तर उस बैबौरि को देखकर मुनियों ने दारुभूतकीलों के द्वारा उस नीतिसंयुत अग्निशर्मा को देखकर उठायो ॥ ३० ॥ इसके अनन्तर उस अग्निशर्मा को प्रणाम किया व प्रणत होकर तपस्या से प्रकाशित तेजबाले उन मुनियों से कहा ॥ ३१ ॥ कि आप लोगों की प्रसन्नता से आज मैंने उत्तम ज्ञान को पाया और पातक के

द्विगमिष्यसि ॥ २७ ॥ इत्युक्त्वा ते ययुस्सर्वे सकामः सोऽपि तत्र वै ॥ तद्व्यानस्थो भवद्योगी वत्सराणि त्रयोदश ॥ २८ ॥ निवृत्तास्तु यथा तेन मुनयस्तत्प्रशुश्रुवुः ॥ उदीरितं ध्वनिन्तेन बल्मीके विस्मयान्विताः ॥ २९ ॥ ततस्तु दृष्ट्वा बल्मीकं काष्ठीभूतोरुशङ्कुभिः ॥ तन्दृष्ट्वा तथाप्यामासुर्मुनयोनयसंयुतम् ॥ ३० ॥ नमश्चक्रे यतान्सर्वान् समुनिर्मुनिपुङ्गवान् ॥ तान् प्राह प्रणतो भूत्वा तपसा दीप्तेजसः ॥ ३१ ॥ प्रसादाद्भवतामद्य ज्ञानं लब्धं मया शुभम् ॥ दीनो हमुद्धृतस्सर्वमर्गो ह पापकर्दमे ॥ ३२ ॥ श्रुत्वा तस्यैतत्तद्वाक्यमूचुः परमधार्मिकाः ॥ बल्मीके स्मिन् स्थितः पुत्र यतस्त्वमेकचित्ततः ॥ ३३ ॥ बाल्मीकिरिति तेनामं भुवि ख्यातं भविष्यति ॥ इत्युक्त्वा मुनयोजग्मुः स्वान्दिशं तपसान्विताः ॥ ३४ ॥ गतेषु मुनिषु ख्येषु बाल्मीकिस्तपतांवरः ॥ कुशस्थल्यामथागम्य समाराध्य महेश्वरम् ॥ ३५ ॥ तस्मात्कवित्वमासाद्य चक्रे काव्यमनोरमम् ॥ रामायणञ्च यत्प्राहुः कथासु प्रथमं स्थितम् ॥ ३६ ॥ ततः प्रभृति देवेशो बाल्मीकेश्वरसंज्ञकः ॥ ख्यातो व

कीचक में हुआ हुआ मैं दीन आप सबों से उधारा गया हूँ ॥ ३२ ॥ उसके उस वचन को सुनकर परमधर्मवान् उन ऋषियों ने कहा कि हे पुत्र ! जिसलिये तुम एक विससे इस बैबौरि में स्थित हुये हो ॥ ३३ ॥ इसलिये बाल्मीकि ऐसा तुम्हारा नाम पृथ्वी में प्रसिद्ध होगा यह कहकर तपस्या से संयुत मुनिलोग अपनी दिशा को चले गये ॥ ३४ ॥ मुख्य मुनियों के जाने पर इसके अनन्तर तपस्वियों में श्रेष्ठ बाल्मीकि जीने कुशस्थली में आकर व महादेवजी को आराधक ॥ ३५ ॥ उनसे कविता को पाकर मनोहर काव्य किया कि जिसको रामायण कहते हैं व जो कथाओं में प्रथम स्थित है ॥ ३६ ॥ हे व्यासजी ! तब से लगाकर बाल्मीकेश्वर नामक

प्रणाम कर मनुष्य वियोगि को नहीं प्राप्त होता है और धर्मबुद्धिवाला होता है ॥ ७ ॥ व कृष्णपक्ष की अष्टमी में उपास कियेहुये वह मनुष्य चण्डेश्वरजी को पूजकर नि-
र्मल्यके नौघनेसे उपजे हुये पातकसे नहीं लिप्त होता है ॥ ८ ॥ महादेवजी के इत्यादिक सब पवित्र तीर्थोंको जाकर पृथ्वीमें शुद्ध आत्मा व विशुद्ध चित्तवाला मनुष्य
सदाशिवजी के मनोहर मन्दिर को प्राप्त होता है ॥ ९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायाभापाटीकार्यातीर्थमाहात्म्यं नामाष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥
दो० ॥ पंचेशानीयात्राकर विधि सहित प्रभाव । उन्तिमवें अध्याय में सोई चरित सुहाव ॥ व्यासजी बोले कि हे मुने ! तुमने गुह्यस्थान में पवित्र तीर्थोंको कहा आज
म्यामुपोषितः ॥ निर्माल्योल्लङ्घनोत्थेन सशोकेन नलिप्यते ॥ ८ ॥ इत्यादितीर्थानि महेश्वरस्य पुण्यानि सर्वाणि नरोभि-
गम्या ॥ विशुद्धचित्तो मुविभावित आत्मा प्रयाति शम्भो भवं न सुरम्यम् ॥ ९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे तीर्थमाहात्म्य
॥ * ॥ * ॥ * ॥

ज्ञानमाष्टाविंशतितमोऽध्यायः ॥ २८ ॥ * ॥ * ॥ * ॥
व्यास उवाच ॥ गुह्यस्थाने पवित्राणि कीर्तितानि त्वयामुने ॥ प्रमाणं कथय स्वाद्य महाकालवनस्य मे ॥ १ ॥ सनत्कु-
मार उवाच ॥ यथा श्रुतं मया पूर्वं गदतो ब्रह्मणस्स्वयम् ॥ तत्ते हं संप्रवक्ष्यामि शृणु त्वंगदतो मम ॥ २ ॥ योजनस्यैव प-
र्यन्तं चतुर्दिक्षु पशोभितम् ॥ सौवर्णेस्तोरणैश्चैव मुक्तादामविलम्बिभिः ॥ ३ ॥ द्वाराणितत्रशोभन्ते काञ्चनैः कलशैः स्थि-
तैः ॥ सितपद्ममुखैर्द्वारैर्नैर्मणिमण्डितैः ॥ ४ ॥ महेश्वरप्रशुक्ताश्च दाराध्यक्षा महाबलाः ॥ द्वारेषु तेषु शोभन्ते लोका-
नुग्रहकारकाः ॥ ५ ॥ पिङ्गलेशः स्थितः पूर्वं बालरूपो विभावसुः ॥ तीर्थस्याभिमुखे गौरो गुरुर्गणरथानुगः ॥ ६ ॥ दक्षि-
मुख से महाकालवन का प्रमाण कहिये ॥ १ ॥ सनत्कुमारजी बोले कि मैंने पुरातन समय जिस प्रकार आपही कहते हुये ब्रह्माजी से सुना है उसको मैं तुमसे कहूंगा तुम
कहते हुये मुझ से सुनो ॥ २ ॥ कि मोती की झालर जिन में लटकती हैं उन सुवर्ण के बाहरी द्वारों से योजन भरतक चारों दिशाओं में शोभित है ॥ ३ ॥ और
उस में धरे हुये सुवर्ण के कलशों से द्वार शोभित है और अनेक मणियों से शोभित श्वेतकमलमुखद्वारों से शोभित है ॥ ४ ॥ व उन द्वारों में महादेवजीसे नियोजित
बड़े बलवान् द्वारपाल हैं जोकि लोकों के ऊपर दयाकरनेवाले हैं ॥ ५ ॥ तीर्थ के सामने बालरूपी विभावसु पिङ्गलेशजी स्थित हैं जो कि गौरवर्ण व गुरु तथा गणों

के रथों के अनुगामी हैं ॥ ६॥ व दक्षिण दिशा में भी कायावरोहणनामक महायोगी स्थित हैं और क्षेत्र के सामने स्थित बिल्वेशजी पश्चिम द्वार पै हैं ॥ ७ ॥ जो कि महादेवजी से नियुक्त कियेहुये पश्चिम दिशा में स्थित हैं और उत्तर दिशा में आश्रित होकर उत्तरेश्वर जी स्थित हैं ॥ ८ ॥ शिवजीसे आज्ञा दियेहुये वे समस्त कार्यो के साधन करनेवाले हैं इस क्षेत्र के मध्यमें उत्तम धर्मवान् जो मनुष्य बसते हैं ॥ ९ ॥ वे मरकर सब कामनाओंवाले विमानों के द्वारा शिवपुर को जाते हैं कृष्णपत्त की चौदसि व सूर्यनारायण तथा चन्द्रमा के संयोग याने अमावस में ॥ १० ॥ पञ्चेशानीजी को प्रणामकर और महादेवजी को ध्यान करताहुआ एकदिनसे विलोम व

एपिमहायोगी नाम्नाकायावरोहणः ॥ बिल्वेशः पश्चिमेद्वारे क्षेत्रस्याभिमुखं स्थितः ॥ ७ ॥ नियुक्तो वै महेशेन वारुणी
 न्दिशमास्थितः ॥ उत्तरान्दिशमाश्रित्य स्थितश्चैवोत्तरेश्वरः ॥ ८ ॥ साधकस्सर्वकार्याणामादिष्टशङ्करेणसः ॥ मा
 नवायेव सन्त्यत्र क्षेत्रमध्ये सुधार्मिकाः ॥ ९ ॥ मृत्तारुद्रपुरं यान्ति विमानैस्सर्वकामिकैः ॥ कृष्णपक्षे च तुर्दश्यामथवा
 कन्दुसङ्गमे ॥ १० ॥ पञ्चेशानीं नमस्कृत्य प्रतिलोमानुलोमतः ॥ उपोषितो दिनैकेन ध्यायमानो महेश्वरम् ॥
 ११ ॥ मुच्यते सर्वपापैस्तु बहुजनमकृतेरपि ॥ एवं च विप्रयोगात्रां पञ्चेशानीं समारभेत् ॥ १२ ॥ अनेनैव स्वदेहेन रुद्रलो
 कं सगच्छति ॥ पञ्चेशानीमथान्यान्ते सुखेन क्रियते यथा ॥ १३ ॥ तथा शृणु प्रवक्ष्यामि सर्वपापप्रणाशिनीम् ॥ प्रातः
 स्नात्वा रुद्रसरस्येकादश्यां समाहितः ॥ १४ ॥ श्राद्धं कृत्वा महाकालं नत्वा ईशानमीश्वरम् ॥ पिङ्गले शन्ततः प्राप्य
 स्नात्वा श्राद्धं समाचरेत् ॥ १५ ॥ उपगम्य ततो देवं गणेशं पिङ्गलेश्वरम् ॥ गन्धैः पुष्पैश्च धूपैश्च तमभ्यर्च्य निवर्तयेत् ॥ १६ ॥

अनुलोम याने तीनदिन उपासकर मनुष्य ॥ ११ ॥ बहुतजन्मों में कियेहुये भी सब पातकों से छूटजाता है इसप्रकार है विप्रजी ! जो पञ्चेशानी यात्रा को प्रारम्भ करता है ॥ १२ ॥ वह इसी देह से शिवलोक को जाता है इस के अनन्तर समस्त पातकों को नाशनेवाली अन्य पञ्चेशानी यात्राको तुम से कहता हूँ जिसप्रकार वह यात्रा सुख से कीजाती है वैसेही सुनिये कि सावधान होताहुआ पुरुष एकादशीतिथि में प्रातःकाल रुद्रसर में नहाकर ॥ १३ ॥ १४ ॥ श्राद्धकर व महाकालेश्वर ईशानजी को प्रणामकर तदनन्तर पिङ्गलेश्वरजी को प्राप्तहोकर नहाकर श्राद्धकरै ॥ १५ ॥ तदनन्तर पिङ्गलेश्वर गणनायकजी के समीप जाकर और गन्ध, पुष्प व

धूपोंसे उनको पूजकर निवृत्त होवै ॥ १६ ॥ १७ ॥ महाकालेश्वरजीको प्राप्तहोकर फिर स्नान कियेहुये जितेन्द्रिय पुरुष आपही से उपजेहुये सनातन देवदेवेशजी को पूजे ॥ १७ ॥ और ईशान में रात्रिको व्यतीत करै व रात्रि में भोजन कर महेशजी को ध्यान करताहुआ पुरुष भूमि में शरीर को धरकर ॥ १८ ॥ द्वादशी में सब पहले की नाई करके प्रातःकाल नहाकर मनुष्य गमन करै और कायावरोहण तीर्थ मे जाकर पिङ्गलेश्वर की नाई पूजे ॥ १९ ॥ इसके अनन्तर तेरसि में भी इस प्रकार पञ्चिचममें बिल्वेशजी का पूजन करै वैसेही चौधसि तिथि में उत्तर दिशामें उत्तेश्वरजी को पूजे ॥ २० ॥ और अमावस तिथि में नहाकर पवित्र होताहुआ पुरुष महा-

महाकालेश्वरप्राप्य भूयस्सनातो जितेन्द्रियः ॥ अर्चयेद्देवदेवेशं स्वयंभृतंसनातनम् ॥ १७ ॥ ईशानेगमयेद्रात्रिं कृत्वैवैनक्तभोजनम् ॥ ध्यायमानो महेशानं भूमौ विन्यस्य विग्रहम् ॥ १८ ॥ द्वादश्यां पूर्ववत्सर्वं प्रातस्सनात्वा व्रजेन्नरः ॥ कायावरोहणे गत्वा पिङ्गलेश्वरवद्यजेत् ॥ १९ ॥ त्रयोदश्यामथाप्येवं बिल्वेशं पश्चिमे चयेत् ॥ चतुर्दश्यां तथा सौम्ये पूजयेत्तुत्तरेऽश्वरम् ॥ २० ॥ अमायान्तु शुचिस्सनातो महाकालेश्वरं व्रजेत् ॥ गन्धैः पुष्पैश्च धूपैश्च नैवेद्यं विविधं स्तथा ॥ २१ ॥ गीतं नृत्यादिकं कृत्वा प्राणिपत्यक्षमापयेत् ॥ यात्रां कृत्वा तु पूर्वोक्तां ततो निजगृहं व्रजेत् ॥ २२ ॥ ब्राह्मणान् भोजयेत्तपश्च शिवभक्तिपरायणान् ॥ प्रणम्य देवरूपांश्च महाकालेऽपि तान् द्विजान् ॥ २३ ॥ पूजयित्वा हिरण्येन सूक्ष्मवस्त्रैस्तथानवैः ॥ रथं पिङ्गलके दद्याद्भुजं कायावरोहणे ॥ २४ ॥ दत्त्वा बिल्वेश्वरे चाश्वं वृषं दत्त्वाथ चोत्तरे ॥ धेनुं दद्यान्महाकाले सर्वोपस्कारसंयुताम् ॥ २५ ॥ य एवं कुरुते न्यास तस्य पुण्यफलं शृणु ॥ पितृकर्मार्तकैस्सार्द्धं कुलैस्समादिविमो

कालेश्वरजी को जावै और गन्ध, धूप, पुष्प, धूप और अनेक भाति के नैवेद्यों से पूजन करै ॥ २१ ॥ और गीत नृत्यादिक कर प्रणाम कर क्षमापन करावै व पूर्वोक्त यात्रा करके तदनन्तर अपने घरको जावै ॥ २२ ॥ और शिवजी की भक्तिसे तत्पर पांच ब्राह्मणों को भोजन करावै व महाकालमें भी उन देवरूपी ब्राह्मणों को प्रणाम कर ॥ २३ ॥ और सुवर्ण से व नवीन रेशमी वस्त्रोंसे पूजकर पिङ्गलकमें रथ देवै व कायावरोहण तीर्थ मे हाथी देवै ॥ २४ ॥ व बिल्वेश्वरमें अश्वको देकर और उत्तर में वृषको देकर महाकालमें सब उपस्कारों समेत गऊको देवै ॥ २५ ॥ हे व्यासजी ! जो मनुष्य इसप्रकार करता है उसके पुण्यका फल सुनिये कि अप्सराओं के गीत

व नृत्य से संयुत सब कामनाओंवाले विमानों से पिता व मातावाले कुलों समेत वह स्वर्ग में आनन्द करता है ॥ २६ । २७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदेवी
दयालुमिश्रचितायांभाषाटीकायांपञ्चेशानीयाग्रामाहात्म्यंनमैकोनत्रिंशोऽध्यायः॥ २६ ॥ * ॥ * ॥
दो० । कहीं सात देवीनकी महिमा अतिहि अमान । सोइ तीस अध्याय में कीन्हों चरित बखान ॥ सनत्कुमारजी बोले कि नियम से जो कुशस्थली (उज्जैनी)
की प्रदक्षिणा करता है उससे सातहोपैवाली पृथ्वी प्रदक्षिणा कीगई ॥ १ ॥ जो मनुष्य पद्मावतीजी के दर्शन करता है व कमलों से पूजता है तथा नैवेद्य समेत

दत्ते ॥ २६ ॥ अप्सरोगीतनृत्याढ्यौर्विमानैस्सार्वाकामिकैः ॥ २७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे पञ्चेशानीयात्रामा
हात्म्यन्नामैकोनत्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ २९ ॥ * ॥ * ॥

सनत्कुमारउवाच ॥ यस्तुप्रदक्षिणांकुर्यान्नियमेनकुशस्थलीम् ॥ प्रदक्षिणीकृतातेन सप्तद्वीपावसुन्धरा ॥ १ ॥ य
स्तुपद्मावतीपश्येदर्चयेत्पङ्कजैर्नरः ॥ दद्याद्धूपंसनैवेद्यं मृतोब्रह्मपुरं ब्रजेत् ॥ २ ॥ स्वर्णशृङ्गाटिकांव्यास कुसुमैस्स्वर्णस
न्निभैः ॥ समभ्यर्च्यमहाभक्त्या सयातिशिवमन्दिरम् ॥ ३ ॥ अवन्तिकान्त्युयःपश्येद्देवीत्रैलोक्यविश्रुताम् ॥ कामगे
नविमानेनयातिपौरन्दरंपदम् ॥ ४ ॥ अर्चयेत्पङ्कजैर्भक्त्यायोदेवीममरावतीम् ॥ अमरैस्सहसंहृष्टो मोदतेदिविसर्वदा ॥
५ ॥ देवीमुज्जयिनींभक्त्या यःपश्यतिसमाहितः ॥ सर्वैश्वर्यसमायुक्तो रुद्रलोकेमहीयते ॥ ६ ॥ विशालाचिवयःपश्ये

घुपकों देताहै वह मरकर ब्रह्मलोकको जाता है ॥ २ ॥ व हे व्यासजी ! सोने के समान पुष्पों से स्वर्णशृङ्गाटिका देवीजी को षडी भक्ति से भलीभांति पूजकर वह
मनुष्य शिवमन्दिर को जाता है ॥ ३ ॥ और त्रिलोक में प्रसिद्ध अवन्तिका देवीजी को जो देखता है वह इच्छा के अनुकूल जानेवाले विमान के द्वारा इन्द्रपुर
को जाता है ॥ ४ ॥ और जो मनुष्य भक्ति से अमरावती देवीजी को कमलों से पूजता है वह देवताओं समेत प्रसन्न होकर सदैव स्वर्ग में आनन्द करताहै ॥ ५ ॥
और सावधान होताहुआ जो पुरुष उज्जयिनी देवीजीको देखाहै सब ऐश्वर्यो से संयुत वह शिवलोक में पूजा जाता है ॥ ६ ॥ व जो सावधान मनुष्य शिवभक्ति से

विशाला देवीजी को देखता है वह तीनों प्रकार के पातकों से छूटजाता है इसमें विचार न करना चाहिये ॥ ७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदेवीदयालुमिश्र
विरचिताभाषाटीकायासप्तदेवीनामहिमवर्णननामत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

दो० । अक्रूरेश्वरदेव को अहै जौन परभाव । इकतिसवें अध्याय में सोई चरित सुहाव ॥ सनत्कुमारजी बोले कि हे व्यासजी ! अक्रूरेश्वर ऐसे नामवाले पवित्र
महातीर्थ को सुनिये जोकि ब्रह्मा से पूजाग्या है और जहां पर ब्रह्माजी सिद्धहुये हैं ॥ १ ॥ कृष्णपत्नकी अष्टमी में उपास कियेहुये इन्द्रियों को जीते व पवित्र तथा

दुद्रभक्त्यासमाहितः ॥ मुच्यतेत्रिविधैःपापैर्नान्त्रकार्याविचारणा ॥ ७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे सप्तदे
वीनामहिमवर्णनन्नामत्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३० ॥

सनत्कुमारउवाच ॥ शृणुव्यासमहातीर्थं पुरयंयदब्रह्मणार्चितम् ॥ अक्रूरेश्वरमित्याख्यं यत्रसिद्धःपितामहः ॥
१ ॥ तत्रदेवार्चनंकृत्वा कृष्णाष्टम्यासुपोषितः ॥ जितेन्द्रियश्शुचिर्दान्तो रुद्रलोकमवाप्नुयात् ॥ २ ॥ नवदेत्केनचि
त्साईं नरःप्रातस्समुत्थितः ॥ दृष्ट्वाक्रूरेश्वरन्देवं हेमदानफलंलभेत् ॥ ३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेऽक्रूरेश्व
रमहिमवर्णनन्नामैकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

सनत्कुमारउवाच ॥ यस्तुपश्यतिब्रह्माणं शुचिस्मनातोजितेन्द्रियः ॥ मुच्यतेपातकाद्घोराद् ब्रह्मलोकमतोव्रजेत् ॥
१ ॥ पद्मासनस्थितोब्रह्मा ध्यायमानःपरम्पदम् ॥ वशिष्ठार्घ्यमुनिवरैर्विज्ञप्तःकर्मसम्भवात् ॥ २ ॥ ऋषयऊचुः ॥ आ

शान्त पुरुष वहां देवपूजन कर शिवलोक को प्राप्तहोता है ॥ २ ॥ किसी के साथ वार्तालाप न करै और प्रातःकाल उठकर मनुष्य अक्रूरेश्वर देवको देखकर सुवर्ण
दान के फलको प्राप्तहोता है ॥ ३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायामक्रूरेश्वरमहिमवर्णननामैकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

दो० । शिवयाज्ञिक ब्राह्मणन कहैं दीन्हों वर अरु शाप । वात्तिसवें अध्याय में सोई चरित संलाप ॥ सनत्कुमारजी बोले कि नहाया हुआ पवित्र व जितेन्द्रिय जो
पुरुष ब्रह्मादेवजी को देखता है वह भयंकर पातकसे छूटजाताहै व इसकें उपरान्त ब्रह्मलोक को जाता है ॥ १ ॥ पद्मासन से बैठे व परमपद को ध्यान करतेहुये ब्रह्मा

जी से वशिष्ठादिक मुनिश्रेष्ठों ने कर्मके संभव से विनय किया ॥ २ ॥ ऋषिलोग बोले कि आदित्य, मरुत, साध्य, वसु व दोनों आश्विनीकुमार तथा जो लोकोंके पितर पृथ्वीमें मनुष्योंसे पूजे जातेहैं ॥३॥ और ग्रह, सूर्यनारायण, तारा, यक्ष, दिग्गज, अग्नि व पवन ये देवता और हम सब तुम्हारे अंशसे पहेजातेहैं ॥ ४ ॥ हे देवेश ! तुम किस को ध्यान करते हो यह सब हमलोगों से कहिये ब्रह्माजी बोले कि तत्त्वरूपिणी जो परा व अपरा दो विद्या है ॥ ५ ॥ वे सदैव मूर्त्ति व मूर्तात्मिका मेरे स्वरूपसे जानने योग्य हैं ऋषिलोग बोले कि हे पितामह जी ! आपको परमप्रभु हमलोग कैसे जानैं ॥ ६ ॥ कि जिससे तुम्हारे दर्शन से हम लोगों की उत्तम सिद्धि होवै ॥ ७ ॥

दित्यामरुतस्साध्या वसवश्चाश्विनावुभौ ॥ पितरोयेचलोकानां पूज्यन्तेभुविमानवैः ॥ ३ ॥ ग्रहाकार्कास्तारकाग्रजा दिग्ग
जाश्चानलानिलाः ॥ अग्नीदेवावयंसर्वे प्रपठ्यन्तेत्वदंशतः ॥ ४ ॥ कवैध्यायसिदेवेश एतत्सर्ववर्वाहिनः ॥ ब्रह्मोवाच ॥ हे
विद्येतत्त्वरूपे पराचैवापरा तथा ॥ ५ ॥ ज्ञेयेममस्वरूपेण मूर्त्तैर्मूर्त्तात्मिकेसदा ॥ ऋषय ऊचुः ॥ पितामह कथं विष्णो भ
वतः परमं विभुम् ॥ ६ ॥ येनास्माकंपरासिद्धिर्जायते तव दर्शनात् ॥ ७ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ माहेश्वरं परं क्षेत्रं कुशस्थलीति श
ब्दितम् ॥ यज्ञार्थिनामया देवः श्रीकण्ठः पार्वतीपतिः ॥ ८ ॥ याचितस्तेन देवेन उक्ते हंतव्यश्मभुना ॥ समन्ताद्योजनं सा
ग्रं क्षेत्रमेतत्पितामह ॥ ९ ॥ मया दत्तं तव विभो महाकालवनादृते ॥ वारितोपि मया तत्र वने गुप्तो हिरोषतः ॥ १० ॥ आ
रब्धो वै ततो यज्ञो नारायणपरिग्रहात् ॥ ज्ञातस्तथापि मे यज्ञो देवदेवनश्मभुना ॥ ११ ॥ यज्ञवाटकपर्दां शस्ततो भिक्षा
र्थमागतः ॥ यान्निकैस्सोथतत्रोक्तो मात्रतिष्ठजुगुप्सितः ॥ १२ ॥ कर्पदिना च ते तत्र उक्तायास्याम तत्पुनः ॥ एवमुक्त्वा क

ब्रह्माजी बोले कि कुशस्थली ऐसा कहाहुआ माहेश्वर उत्तम क्षेत्र है यज्ञके प्रयोजनवाले मैंने पार्वती के पति सदाशिवजी से याचना किया उन शिवदेवजी ने वहां मुझ से कहा कि हे पितामहजी ! सब और कुछ अधिक योजन भर यह क्षेत्र ॥ ८ ॥ हे विभो ! महाकालवन को छोड़कर मैंने तुमको दिया और उस वनमें मुझ से मना किये हुये भी वे क्रोधसे गुप्त होगये ॥ १० ॥ तदनन्तर नारायणके परिग्रह से मैंने यज्ञको प्रारंभ किया तो भी देवदेव शिवजीने मेरी यज्ञको जाना ॥ ११ ॥ तदनन्तर भिक्षा के लिये शिवजी यज्ञवाट को आये इसके अनन्तर वहां यज्ञ करानेवालों ने उनसे कहा कि हे निन्दित ! यहां मत स्थित होवो ॥ १२ ॥ फिर वहां

शिवजी ने उनसे कहा कि तो हम जाते हैं ऐसा कहकर वहां भूमि में कपाल को धरकर ॥ १३ ॥ जटाधारी परमेश्वरजी नहाने के लिये शिप्रानदी को गये और जटाधारी शिवजी जब शिप्रानदी को गये तब ब्राह्मणों ने कहा ॥ १४ ॥ कि सभा में कपाल के स्थित होने पर कैसे होम किया जाता है क्योंकि पुरातन समय विद्वानों ने कपालरहित अग्नियों को पवित्र कहा है ॥ १५ ॥ उस कपाल को आपही सामाजिक ने फेंक दिया व उसके फेंकने पर अन्य हुआ व बार २ फेंकने पर फिर हुआ ॥ १६ ॥ इसप्रकार मुनिश्रेष्ठों को कपाल का अन्त नहीं मिलता था वे जटाधारी शिवजी को प्रणाम कर शरण में प्राप्त हुये ॥ १७ ॥ तदनन्तर भक्तिसे प्रसन्न

पालन्तु भूमौ संस्थाप्य तत्र हि ॥ १३ ॥ स्नातुन्नदीययौ शिप्रां कपर्दी परमेश्वरः ॥ उक्तं तस्मिन् गतेशिप्रां कपर्दिनि द्विजातिभिः ॥ १४ ॥ कथं हि क्रियते होमः कपाले सदसि स्थिते ॥ अकपालानि शौचानि पुरा प्रोक्तानि सूरिभिः ॥ १५ ॥ तत्कपालं सदस्येन उत्तुबि संपाणिना स्वयम् ॥ तस्मिन् क्षिप्तेऽभवच्चान्यत्क्षिप्तेऽभवत्पुनः ॥ १६ ॥ एवन्नान्तः कपालानां प्राप्य ते मुनि सत्तमैः ॥ रुद्रं कपर्दिनं नत्वा शरणन्ते समागताः ॥ १७ ॥ ततस्स दर्शनं प्रादाद्भक्त्या तुष्टो महेश्वरः ॥ कपालपाणिर्भगवान् मासुवाच पुनः प्रभुः ॥ १८ ॥ वरं वरय भो ब्रह्मन् यत्ते मनसि वर्तते ॥ नास्त्यदेयं मया तुभ्यं सर्वदा स्यामि तत्त्वतः ॥ १९ ॥ ब्रह्मोत्तरमिदं स्थानं मया दत्तं चतुर्मुख ॥ कारय स्वयथाकामं तथा वर्णं च तुष्टयम् ॥ २० ॥ एवं वदन्तं वरदमीशानं परमेश्वरम् ॥ तथेति चोक्त्वा सदसि नममान्यो वरोदृतः ॥ २१ ॥ उज्जयिनीति वनाम कुशस्थल्या निवेशितम् ॥ कुण्डं मन्दाकिनी तत्र मया कृतमनन्तरम् ॥ २२ ॥ तत्र विप्रकृते स्नाने सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ तस्यां संस्था महादेवजी ने दर्शन दिया और कपाल हाथवाले भगवान् सदाशिव प्रभुजी फिर मुख से बोले ॥ १८ ॥ कि हे ब्रह्मन् ! जो तुम्हारे मन में वर्तमान हो उस वरदान को मांगिये मुझ से तुम्हारे लिये कुछ न देने योग्य नहीं है मैं सबको तत्त्व से दूंगा ॥ १९ ॥ हे चतुराननजी ! मैंने इस ब्रह्मोत्तर स्थान को दिया जैसी इच्छा होवै वैसे ही चारों वणों को कीजिये ॥ २० ॥ इसप्रकार कहते हुये उन वरदायक परमेश्वर महादेवजी से वैसाही होगा यह कहकर मैंने सभा में अन्य वरदान को नहीं मांगा ॥ २१ ॥ और मैंने कुशस्थली समेत उज्जयिनी ऐसा नाम धरा इसके अनन्तर मैंने वहा मन्दाकिनी कुण्ड निर्माण किया ॥ २२ ॥ हे विप्रजी ! उसमें स्नान

करने पर मनुष्य सब पातकोंसे छूटजाता है और उस पुरीमें दिशाओं में चार उत्तम घटों को स्थापित करे ॥ २३ ॥ और तिलों समेत व वसनों सहित व फलों समेत तथा आभूषणों समेत उन घटों को कार्तिकी व माघी में चारों वेदों के जाननेवालों के लिये देवे ॥ २४ ॥ पूर्वका घट ऋग्वेद के लिये व दक्षिण घटको यजुर्वेद के लिये और पश्चिम घट सामवेदके लिये व उत्तर का घट अथर्वण वेदके लिये देवे ॥ २५ ॥ वेदोंको इसप्रकार उद्देशकर कि मेरे ऊपर पितामह देवजी प्रसन्न होवें इस प्रकार करने पर जो पुण्य होताहै उसको सावधान होतेहुये सुनिये ॥ २६ ॥ कि सब तीर्थों में जो पुण्य मिलताहै वैसेही मन्दाकिनी में होताहै और स्नान हजार

पयेदिष्टु चतुरोथघटाञ्छुमान् ॥ २३ ॥ सतिलांस्तान्सवस्त्रांश्च सफलान्मण्डनैस्सह ॥ कार्तिक्यामथमाध्याञ्च च सुर्विदूभ्यःप्रदापयेत् ॥ २४ ॥ प्रथमंचऋग्वेदाय यजुर्वेदायदक्षिणम् ॥ पश्चिमंसामवेदाय अथर्वणेत्तथोत्तरम् ॥ २५ ॥ वेदानुद्दिश्यचाप्येवं प्रीयतांमेपितामहः ॥ कृतेचैवंहियत्पुण्यं तच्छृणुध्वंसमाहिताः ॥ २६ ॥ सर्वतीर्थेषुयत्पुण्यं मन्दाकिन्यां तथाभवेत् ॥ सहस्रगुणितंस्नानं जाप्यंलक्षगुणंभवेत् ॥ २७ ॥ दानंकोटिगुणंज्ञेयं मन्दाकिन्यान्नसंशयः ॥ कार्तिकेमासिसम्प्राप्ते गोदानंतत्रकारयेत् ॥ २८ ॥ द्रुतधेनुञ्चकार्तिक्यां माध्यांतिलमयीतथा ॥ जलधेनुन्तुवैशाखां दत्त्वा मुच्येतपातकात् ॥ २९ ॥ वाचिकंमानसंपापं कर्मजंयच्चदुष्कृतम् ॥ विनश्येत्किल्बिषंसर्वं मन्दाकिन्यास्तुदर्शनात् ॥ ३० ॥ मन्दाकिनीसमन्तीर्थं पृथिव्यान्नैवदृश्यते ॥ यस्यदर्शनमात्रेण ब्रह्मलोकैसमोदते ॥ ३१ ॥ मन्दाकिन्या न्तुयस्स्नानं कृत्वाश्राद्धंप्रदास्यति ॥ दर्शंचर्षूणिमायांवा पितृलोकैसमोदते ॥ ३२ ॥ पितामहन्तुयोभक्त्या नित्यं गुना व जप लाख गुना होवै है ॥ २७ ॥ और मन्दाकिनी में दान कोटिगुना जाननेयोग्यहै इसमें सन्देह नहीं है कातिक महीना प्राप्तहोने पर वहां गोदान करावै ॥ २८ ॥ कार्तिकी में घी की गऊ व माघी में तिलमयी गऊ और वैशाखी में जल की गऊको देकर मनुष्य पातक से छूटजाता है ॥ २९ ॥ व वाचिक और मानस पाप तथा कर्म से उपजाहुआ जो पातकहै वह सब पातक मन्दाकिनी जाके दर्शन से नाश होजाता है ॥ ३० ॥ मन्दाकिनी के समान तीर्थ पृथ्वी में नहीं देखपडता है जिसके दर्शनही से वह मनुष्य ब्रह्मलोकमें आनन्द करता है ॥ ३१ ॥ और जो मनुष्य मन्दाकिनी में स्नान कर अभावस व पौर्णिमासी में श्राद्ध देताहै वह पितृ-

लोकमें प्रसन्न होता है ॥ ३२ ॥ जो मनुष्य भक्तिसे नित्य ब्रह्माजी को देखता है वह हजार अश्वमेध और सौ राजसूययज्ञ से ॥ ३३ ॥ युक्त होता है इसमें सन्देह नहीं है हे तपोधनो ! यह सत्य है तदनन्तर मन्वन्तर बीतने पर जब फिर वैवस्वत मनु प्राप्त हुआ तब फिर ॥ ३४ ॥ उसी उन्मत्त वेष से ऊर्ध्वजटाओंवाले महादेवजी ब्रह्मा की यज्ञ में बैठे और उन द्विजोत्तमों ने देखा ॥ ३५ ॥ ब्राह्मणलोग उनको शाप देते थे व कोई निन्दा करते थे व अन्य ब्राह्मण धूलियों से उनके लिंग को मारते थे और कोई ब्राह्मण शाप देते थे ॥ ३६ ॥ और बल से गर्विष्ठ कोई मनुष्य उनको देलों व दण्डों से मारते थे और अन्य कोई ब्राह्मण जटाओं के

पश्यतिमानवः ॥ अश्वमेधसहस्रेण राजसूयशतेन च ॥ ३३ ॥ युज्यते नात्र सन्देहः सत्यमेतत्तपोधनाः ॥ ततो मन्वन्तरे ती
ते प्राप्तैव स्वर्ते पुनः ॥ ३४ ॥ तेनैवोन्मत्तवेषेण ऊर्ध्वशोफो महेश्वरः ॥ प्रविष्टो ब्राह्मसन्नेतु दृष्टस्तैर्द्विजसत्तमैः ॥ ३५ ॥
तं ब्राह्मणाः शपन्ति स्म निन्दां कुर्वन्ति चापरे ॥ अपरे पांशुभिः शिश्नं घ्नन्ति तस्यांशपन् द्विजाः ॥ ३६ ॥ लोष्टैर्लंगुलकै
श्चान्ये घ्नन्ति तं बलगर्विताः ॥ जटा मुकुटकैश्चिह्नुत्वा कर्षन्ति चापरे ॥ ३७ ॥ पृच्छन्ति व्रतचर्यां वै व्रतकेन प्रदर्शित
म् ॥ अत्र चैव स्त्रियस्सन्ति कथमेवं त्वया कृतम् ॥ ३८ ॥ ब्रह्मणा चेदृशी चर्या विष्णुना वा कृतांस्वयम् ॥ गिरिशो नापि
देवेन केनेदं दुष्कृतं कृतम् ॥ ३९ ॥ मा विडम्बय देवेशं बद्धो ह्यसि त्वमद्य नः ॥ एवन्तैर्हन्यमानस्तु ब्राह्मणैस्तत्र शङ्करः ॥
४० ॥ स्मितं कृत्वा ब्रवीत्सर्वान् ब्राह्मणान् परमेश्वरः ॥ समाभिघ्नन्ति किं यूयमुन्मत्तं नष्टचेतसम् ॥ ४१ ॥ यूयं कारु
णिकास्सर्वे मित्रभावेन व्यवस्थिताः ॥ तमेवं वादिनन्देवं जालमरूपधरं हरम् ॥ ४२ ॥ मा यया तस्य देवस्य मोहितास्ते हि

मुकुटको पकड़कर खींचते थे ॥ ३७ ॥ और कोई व्रतचर्याको पूछते थे कि किससे यह व्रत दिखलाया गया है और यहां स्त्रियां हैं तुमने कैसे ऐसा किया ॥ ३८ ॥
ब्रह्मा ने व आपही विष्णु या गिरिश शिवजी ने ऐसी चर्या (कर्तव्यता) किया किसने इस पापको किया है ॥ ३९ ॥ देवेश शिवजीकी मत विडम्बना कीजिये आज
हम लोगों से तुम बेधगये इस प्रकार बड़ा पर उन ब्राह्मणों से मारे जाते हुये सदा शिव ॥ ४० ॥ परमेश्वरजी मुसकराकर सब ब्राह्मणों से बोले कि नष्टचित्तवाले मुझ
उन्मत्तको तुम लोग क्यों मारते हो ॥ ४१ ॥ तुम लोग सब दयावान् व मित्रता में स्थित हो इस प्रकार कहते हुये उन जालम (नीच) रूपधारी शिवदेवजी को

देखकर ॥ ४२ ॥ वे ब्राह्मणलोग उन शिवदेवजी की मायासे मोहित हुये और उन ब्राह्मणों ने फिर जटाधारी शिवजी को हाथ व पांवसे मारा ॥ ४३ ॥ उन ब्राह्मणों से मारेजाते हुये शिवजी बड़े क्रोधको प्राप्तहुये तदनन्तर शिवदेवजी ने उनको शाप दिया कि तुमलोग वेदसे रहित होवो ॥ ४४ ॥ और ऊपर जटाजूटवाले व दण्ड समेत तथा पराई स्त्री से जीविकावाले और जुया व वेश्या में परायण होवो और पिता, मातासे रहित होवो ॥ ४५ ॥ और पुत्र में पिताका धन व विद्याभी न होगी जिनन्होंने मेरी जटा को नाश कियाहै वे सब इन्द्रियोंसे रहित होवें ॥ ४६ ॥ व भिक्षाको मांगतेहुये वे भयंकर पुरुष पराई पीड़ा से जीविकावाले होवें व धन धान्य

जातयः ॥ पुनः कपर्दिनं जघ्नुः पाणिपादेन वै द्विजाः ॥ ४३ ॥ ताड्यमानस्तु तैर्विप्रैः परं कोपमुपागमत् ॥ ततो देवेन तेशां
युयं वेदविवर्जिताः ॥ ४४ ॥ ऊर्ध्वजूटास्सलगुडाः परदारोपजीविनः ॥ रताद्यतेच वेश्यायां पितृमातृविवर्जिताः ॥
४५ ॥ न पुत्रे पितृवित्तं च विद्यावापि भविष्यति ॥ शोफो मम हतो यैश्च ते सर्वेन्द्रियवर्जिताः ॥ ४६ ॥ रौद्राभिक्षान्तु
भिक्षन्तः परपीडोपजीविनः ॥ आत्मानं वर्णयिष्यन्ति धनधान्यविवर्जिताः ॥ ४७ ॥ यैश्च तत्र कृता विप्रैर्हन्यमाने कृपा
मयि ॥ तेषां धनञ्च पुत्राश्च दासीदासादयश्च वै ॥ ४८ ॥ कुलोत्पन्नाश्च वै नार्यो भविष्यन्ति वरान्मम ॥ एवं शापं वरन्द
त्वा गतो नन्तर्हानिमीश्वरः ॥ ४९ ॥ ततो द्विजागते देवे मत्वा तं शङ्करं विभुम् ॥ अन्वेषयन्तो यत्नेन महाकालवनङ्गताः ॥
५० ॥ स्नात्वा सरसि रुद्रस्य जपन्तः शतरुद्रियम् ॥ जाप्यावसाने तान् देवोऽशरीरिण्यगिरा ब्रवीत् ॥ ५१ ॥ अन्ततन्मया
प्रोक्तं क्लेशेष्वपि कुतस्सुखे ॥ भूयोऽप्यनुग्रहं विप्रा गुह्यमाकंकरवाण्यहम् ॥ ५२ ॥ शान्तादान्ताश्च ये विप्रा भक्तिमन्तो म
से रहित वे लोग अपना को वर्णन करेंगे ॥ ५३ ॥ और वहाँपर मारेजाते हुये मेरे ऊपर जिन ब्राह्मणों ने दया किया उनके धन, पुत्र, दासी व दासादिक ॥ ५४ ॥
और कुलमें सपजी हुई स्त्रियां मेरे वरदान से होवेंगी इस प्रकार शाप व वरदानको देकर सदाशिवजी अन्तर्हानि होगये ॥ ५५ ॥ तदनन्तर शंकरदेवजीके चले जानेपर
उन प्रभुको शिव जानकर यत्न से ढूँढते हुये ब्राह्मण महाकालवनको गये ॥ ५६ ॥ और रुद्रसर में नहाकर शतरुद्रियको जपते हुये उनसे सदाशिवदेवजी जप के
अन्तमें आकाशवाणी से बोले ॥ ५७ ॥ कि मैंने क्लेशों में भी भूँट नहीं कहाहै फिर सुखमें क्या कहना है हे ब्राह्मणों ! मैं फिर भी तुमलोगों के ऊपर दया करता

हैं ॥ ५२ ॥ कि जो इन्द्रियों को दमन किये व शान्त ब्राह्मण मुझ में भक्तिमान् स्थित हैं उनका वंश नहीं नाश होता है और न धन न सन्तान नाश होती है ॥ ५३ ॥ और अग्निहोत्र में परायण जो विष्णुजी में भक्तिमान् हैं व ब्रह्मा तथा तेजराशि दिननायकजी को पूजते हैं ॥ ५४ ॥ उनके अशुभ नहीं विद्यमान होता है कि जिनकी बुद्धि समता में स्थित है इतना कहकर जगत् के स्वामी देवेश शिवजी चुपहोगये ॥ ५५ ॥ इसप्रकार देवदेव महादेवजी से शाप व वरदान को पाकर सब साथी वहाँ आये जहाँ कि ब्रह्मादेवजी थे ॥ ५६ ॥ इसके अनन्तर ज्यों से ब्रह्मा को प्रसन्न करते हुये वे आगे स्थित हुये और प्रसन्न होते हुये ब्रह्माजीने उनसे कहा कि मुझसे

यिस्थिताः ॥ न तेषां छिद्यते वंशो न धनं न च सन्ततिः ॥ ५३ ॥ अग्निहोत्रराये च भक्तिमन्तो जनार्दन ॥ पूजयन्ति च ब्रह्माणं तेजो राशिन् दिवाकरम् ॥ ५४ ॥ नाशुर्भविष्यते तेषां येषां साम्ये स्थिता मतिः ॥ एतावदुक्त्वा देवेशो तूष्णीमासी ज्जगत्प्रभुः ॥ ५५ ॥ एवं शापं वरं लब्ध्वा देवदेवान् महेश्वरात् ॥ आजगमुस्सहितास्सर्वे यत्र देवः पितामहः ॥ ५६ ॥ विरश्चिमथ ते जाप्यैस्तोषयन्तः पुरःस्थिताः ॥ बृष्टस्तान् ब्रवीद् ब्रह्मा मत्तोऽपि त्रियतां वरः ॥ ५७ ॥ ब्रह्मणस्तेन वाक्येन तुष्टाः सर्वे द्विजोत्तमाः ॥ को वरो याच्यतां विप्राः परितुष्टेऽपितामहे ॥ ५८ ॥ एके तन्नाबुवन् विप्रा वेदान् वै बृहण्वामहे ॥ ततो न्यैश्च धनं धान्यं वृतमेवाविशङ्कितैः ॥ ५९ ॥ अन्ये प्राहुः किमस्माकं धनैस्तुष्टेऽपितामहे ॥ अग्निहोत्रादिवेदाश्च शास्त्राणि विविधानि च ॥ ६० ॥ शान्ता आढ्याश्च ये लोका वरदानाद्भवन्तु नः ॥ एवं प्रजल्पतां तत्र विप्राणां कोप आब्रिशत् ॥ ६१ ॥ परस्परं वरार्थं युद्धं कर्तुं समुद्यताः ॥ युध्यन्ते सायुधाः केचित् केचित् तत्रोपसर्पकाः ॥ ६२ ॥ उदासीनाश्च ये विप्रास्ते

भी वरदान मांगिये ॥ ५७ ॥ ब्रह्मा के उस वचन से प्रसन्न होते हुये सब द्विजोत्तम आपसमें बोले कि हे ब्राह्मणों ! ब्रह्मा के प्रसन्न होने पर कौन वरदान मांगा जावे ॥ ५८ ॥ वहाँ पर कितने ब्राह्मण लोग बोले कि हम लोग वेदों को मांगते हैं तदनन्तर अन्य ब्राह्मणों ने धन धान्यको मांगा ॥ ५९ ॥ और अन्य बोले कि ब्रह्मा के प्रसन्न होने पर हम लोगों का धनो से क्या प्रयोजन है और अग्निहोत्रादिक व वेद तथा अनेक प्रकार के शास्त्र ॥ ६० ॥ और शान्त व धनवान् जो लोक हैं वे वरदान से हम लोगों के होवें वहाँ इसप्रकार कहने लगे ब्राह्मणों के क्रोध ने प्रवेश किया ॥ ६१ ॥ इसके अनन्तर वर के लिये आपस में युद्ध करने के लिये तैयार हुये अस्त्रों

समेत कोई शुद्ध करते थे और कोई वहां भगगये ॥ ६२ ॥ और जो ब्राह्मण उदासीन थे वे मौन से स्थित हुये इसप्रकार शुद्ध करतेहुये ब्राह्मणोंको देखकर भगवान् ब्रह्माजी बोले ॥ ६३ ॥ कि जिसलिये शाला में बाहर टिकेहुये ब्राह्मण भगगये उसीकारण हे ब्राह्मणो ! वह गुल्म युद्धमें मूलसे लगाकर याने पहलेही से भागनेवाला होवे ॥ ६४ ॥ और जो उदासीन गुल्म (सेनाभेद) वृत्ति (जीविका) हीन होगा उसके वेद होवेंगे जोकि मौन स्थित हुआहे ॥ ६५ ॥ और अस्त्रों समेत व युद्ध करने की इच्छावाला जो तीसरा गुल्म है हे ब्राह्मणो ! जीविकाहीन वह चारप्रकार का होगा ॥ ६६ ॥ कि पराई स्त्रियोंमें, वेदयास्त्रोंमें, जुबानें व चोरीमें सदैव परायणहोगा

चमौनेनसंस्थिताः ॥ दृष्ट्वैवभगवान्प्राह विप्रानयुद्धंप्रकुर्वतः ॥ ६३ ॥ यस्मादुपद्रुतंविप्रैः शालायांबाह्यसंस्थितैः ॥ तस्मा दामूलतोविप्रा गुल्मोगुद्धेविसर्पकः ॥ ६४ ॥ उदासीनस्त्रुयोगुल्मो वृत्तिहीनोभविष्यति ॥ वेदास्तस्यभवेयुर्वै यस्त्वा सीन्मौनसंस्थितः ॥ ६५ ॥ तृतीयस्सायुधोगुल्मो योद्धुकामस्तुयःस्थितः ॥ चातुर्विधस्सवैविप्रा वृत्तिहीनोभविष्यति ॥ ६६ ॥ परदारामुवेदयायां द्यूतेचौर्यैसदारतः ॥ नज्ञानंनचमोक्षःस्यात्तेषांवैदुष्टचेतसाम् ॥ ६७ ॥ एवमुक्त्वाययौब्रह्मा वैराजंभवनोत्तमम् ॥ एवंमेपरमंक्षेत्रं मुनयोवन्तिमण्डले ॥ ६८ ॥ आन्देवनगरंलोकं प्रवदन्तीहमानवाः ॥ तस्यान्तु येद्विजाशान्ता वसन्तिक्षेत्रवासिनः ॥ ६९ ॥ नतेषांदुर्लभंकिञ्चिन्ममलोकंभविष्यति ॥ कोकामुखेकुरुक्षेत्रे नैमिषेपु ष्करेषुच ॥ ७० ॥ वाराणस्यांप्रयागेच तथावदरिकाश्रमे ॥ गङ्गादारेप्रभासेच गङ्गासागरसङ्गमे ॥ ७१ ॥ रुद्रकोट्यांविरू पाक्षे मित्रस्यापितथावने ॥ तीर्थेष्वेतेषुक्षेत्रेषु यासिद्धिर्द्वादशाब्दिदका ॥ ७२ ॥ प्राप्यतेमानवैलोकं यामासेनैवलभ्य और उन दुष्टचित्तवाले द्विजों के न ज्ञान होगा न मोक्ष होगा ॥ ६७ ॥ यह कहकर ब्रह्माजी उत्तम वैराज मन्दिरको गये इसप्रकार हे मुनियो ! अचरन्ती के मण्डल में मेरा उत्तम क्षेत्र है ॥ ६८ ॥ इस लोकमें जिसको मनुष्य देवनगरी कहते हैं उसमें जो क्षेत्रवासी शान्त ब्राह्मण बसते हैं ॥ ६९ ॥ उनको मेरे लोकमें कुछ दुर्लभ न होगा कोकामुख, कुरुक्षेत्र, नैमिष, व पुष्कर में ॥ ७० ॥ और काशी, प्रयाग व बदरिकाश्रममें तथा हरिद्वार, प्रभास व गंगासागर के संगम में ॥ ७१ ॥ और रुद्र-कोटि में व विरूपाक्षमें तथा मित्रके भी वन में इन क्षेत्रों में जो बारह वर्षवाली याने बारह वर्ष में सिद्धि होती है ॥ ७२ ॥ वह सिद्धि संसार में मनुष्यों को उज्ज-

यिनी में एकही महीने में मिलती है यदि ब्रह्मचर्यमें मन होता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ७३ ॥ तीर्थोंके मध्य में यह उत्तम तीर्थ है व क्षेत्रोंके बीचमें भी उत्तम है और हे मुनिश्रेष्ठो ! यह तीर्थ मुझको सदैव मनोहर है ॥ ७४ ॥ हे द्विजोत्तमो ! मन्दाकिनी का माहात्म्य व क्षेत्रकी उत्तम उत्पत्ति कही गई फिर आपलोग अन्य क्या सुनना चाहते हो ॥ ७५ ॥ सनत्कुमारजी बोले कि हे व्यासजी ! ब्रह्मा के इस वैसे वचन को सुनकर वे वशिष्ठादिक मुनिलोग उत्तम ध्यानको प्राप्त हुये ॥ ७६ ॥ और बहुत समयतक ध्यानकर उन्होंने ने वहा निवास में मनको धारण किया और अग्निहोत्र समेत व स्त्रियों समेत वे अवन्ती के मण्डल में गये ॥ ७७ ॥ और महाकाल-

ते ॥ उज्जयिन्यान्नसन्देहो ब्रह्मचर्यमनोयदि ॥ ७३ ॥ तीर्थानांप्रवरन्तीर्थं क्षेत्राणामपि चोत्तमम् ॥ सदाभिरुचिरं म
ह्यमेतद्वै मुनिसत्तमाः ॥ ७४ ॥ मन्दाकिन्यास्तु माहात्म्यं क्षेत्रस्योत्पत्तिरुत्तमा ॥ भूयः किमन्यदिच्छन्ति श्रोतुं वै द्विज
सत्तमाः ॥ ७५ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ एतत्ते ब्रह्मणो वाक्यं श्रुत्वा व्यास ततथा विधम् ॥ वशिष्ठाद्याश्च मुनयः परन्ध्यानम
थोगताः ॥ ७६ ॥ ध्यात्वा तु मुचिरं कालं तत्र वासे मनोदधुः ॥ साग्निहोत्रास्स पत्नीका गताश्चावन्ति मण्डले ॥ ७७ ॥ म
हाकालं वनं दृष्ट्वा शिप्राञ्चैव महानदीम् ॥ इमशानमूखरञ्चैव नदीं गन्धवतीं तथा ॥ ७८ ॥ कोटितीर्थमुपस्पृश्य चक्रुर्वा
सञ्च तत्र वै ॥ स्मृत्वा तद्ब्रह्मणो वाक्यं रुचिस्तेषां तदा भवत् ॥ ७९ ॥ अरुन्धत्या वशिष्ठश्च गमनं प्रति मोदितः ॥ उवाच
तां महात्मासौ स्वांभार्या मुनि सत्तमः ॥ ८० ॥ महाकालः सरिन्धि प्रागतिश्चैव मुनिर्मला ॥ उज्जयिन्यां विशालाक्षी
सः कस्य नरोचते ॥ ८१ ॥ स्नानं कृत्वा नरो यस्तु महानद्यां हि दुर्लभम् ॥ महाकालं नमस्कृता नैव मृत्युं सशोचयेत् ॥ ८२ ॥

व शिप्रा महानदी तथा इमशान, ऊखर व गन्धवती नदीको देखकर ॥ ७८ ॥ कोटितीर्थ को स्पर्श कर उन्होंने वहां निवास किया व ब्रह्मा के उस वचन उस समय उनकी रुचि हुई ॥ ७९ ॥ और अरुन्धती ने वशिष्ठजीको जाने के लिये प्रेरणा किया व इन महात्मा मुनिश्रेष्ठजीने उस अपनी स्त्री से कहा ॥

हाकाल व शिप्रानदी तथा अतिनिर्मलगति व विशालाक्षीदेवी जहां है उस उज्जयिनी में किसको निवास नहीं रुचता है ॥ ८० ॥ जो मृत्यु महानदी

में दुर्लभ स्नानकर महाकालजी को प्रणाम करता है वह मृत्युको नहीं शोचता है ॥ ८२ ॥ और कीट या पतंग मरकर शिवजीका सेवक होता है जहां पर यह मुक्ति सुनी जाती है वह मुक्त से कैसे छोड़ जावे ॥ ८३ ॥ इस प्रकार कहकर इसके अनन्तर मुनियों में मुख्य वशिष्ठजी ने अचानक ही वहीं निवास किया और वनकी संपदा को कहते हुये वे मुख्य मुनियों समेत इसी उज्जयिनी में स्थित हुये ॥ ८४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचितायाभाषाटकायामन्दाकिनीमाहात्म्यवर्णनोर्महोत्रिशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥

मृतः कीटः पतङ्गो वा रुद्रस्यानुचरो भवेत् ॥ यत्रैषाश्नयते मुक्तिः कथं सा त्यज्यते मया ॥ ८३ ॥ एवं प्रजल्प्याथ मुनिप्रधानस्तत्रैव वासं सहसा चकार ॥ वनस्य व्युष्टिपरि कीर्तयंस्तु स्थितस्सहवात्र मुनिप्रधानैः ॥ ८४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे मन्दाकिनीमाहात्म्यवर्णनोऽध्यायः ॥ ३२ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

सनत्कुमार उवाच ॥ अवन्त्यामङ्गपादाख्ये पश्येद्रामजनार्दनौ ॥ ययोर्दर्शनमात्रेण यमलोकत्रपश्यति ॥ १ ॥ व्यास उवाच ॥ कथं तावङ्गपादाख्ये यातावत्र महामुने ॥ न पश्येद्यमलोकं स यद्यपि ब्रह्महा भवेत् ॥ २ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ भारावतारणार्थाय देवैरामजनार्दनौ ॥ अत्र तीर्णोऽयदोर्वेशो दिव्यरूपो महाद्युती ॥ ३ ॥ कंसं हत्वा यचाणूरमुग्रसेनं नराधिपम् ॥ अभिषिच्य स्वयं राज्ये यदुर्मिह उवाच तम् ॥ ४ ॥ किं कार्यते मया ब्रूहि कर्तव्यन्ते सुते हते ॥ एवमुक्तस्स

दो० । आन्यो मृत गुरुपुत्र को यथा कृष्ण धरुवेव । तैतिसर्वे अध्यायमें सोइ चरित सुखदेव ॥ सनत्कुमारजी बोले कि अवन्ती में अंकपाद नामक क्षेत्र में मनुष्य बलराम व जनार्दन (श्रीकृष्ण) जी को देखै कि जिनके दर्शनही से पुरुष यमलोकको नहीं देखता है ॥ १ ॥ व्यासजी बोले कि हे महामुने ! यहां अङ्गपाद नामक क्षेत्रमें वे किस प्रकार प्राप्त हुये हैं कि जिनके देखनेसे मनुष्य यमलोकको नहीं देखता है यद्यपि वह ब्रह्मघाती होवे ॥ २ ॥ सनत्कुमारजी बोले कि भारको उतारने के लिये दिव्यरूपवाले व महाव्यवहारे बलभद्र व श्रीकृष्णजी ने यदु के वंशमें अवतार लिया है ॥ ३ ॥ इसके अनन्तर कंस व चाणूर को मारकर तथा उग्रसेन राजा

को राज्यके अभिषेककर आपही शत्रुवंशमें सिंहरूप श्रीकृष्णजी उनसे बोले ॥ ४ ॥ कि मुझसे तुम्हारे पुत्रके भारने पर मुझको तुम्हारा क्या कार्य करना चाहिये यह कहिये इस प्रकार कहेहुये उस राजा उग्रसेनने यह कहा ॥ ५ ॥ कि हे श्रीकृष्णजी ! आपको सब वस्तु प्राप्त है कुछ दुर्लभ नहीं है और तुम दोनों भी विशेष कर जाने हुये समस्त विज्ञानवाले होवोगे ॥ ६ ॥ तुम दोनों उवजयिनी पुरीको जाओ और विद्यावान् होवोगे तदनन्तर बलराम व श्रीकृष्णजी सांदीपनि ब्राह्मण के समीप गये ॥ ७ ॥ और वेदोंको कण्ठस्थ किया व उन्होंने समस्त आचार व रहस्य समेत तथा संहार समेत धनुर्बद्ध को पढ़ा ॥ ८ ॥ हे द्विज ! चौसठ दिनरातों से वह अद्भुत

राजावै उग्रसेनोब्रवीदिदम् ॥ ५ ॥ सर्वसम्पत्स्यतेकृष्ण भवतोहिनदुर्लभम् ॥ विज्ञाताखिलविज्ञानो भविताराबुभाव
पि ॥ ६ ॥ गच्छेतामुज्जयिन्यावै कृतविद्यौभविष्यथः ॥ ततस्सान्दीपनिविप्रं जग्मतुरामकेशवौ ॥ ७ ॥ कण्ठस्थंश्च
ऋतुर्वेदानाचारमखिलञ्चतौ ॥ सरहस्यंधनुर्वेदं संसंहारंतथैवच ॥ ८ ॥ अहोरात्रैश्चतुःषष्ट्या तदद्भुतमभ्युद्विज ॥ सा
न्दीपनिरसम्भाव्यं तयोःकर्मातिमानुषम् ॥ ९ ॥ विचिन्त्यतौतदामेने प्राप्तौचन्द्रद्रिवाकरौ ॥ ततःकिञ्चित्सनोवाचस्ना
तुंतीर्थमथोययौ ॥ १० ॥ शिष्यैस्तुसहितोविप्रो महाकालमथाविशत् ॥ शिष्यैस्सहप्रविष्टौ तदातौरामकेशवौ ॥ ११ ॥
वन्द्यमानोमहाकालस्तदाकेशवमब्रवीत् ॥ त्वयानाथेनदेवानां मनुष्यत्वेहितिष्ठता ॥ १२ ॥ सुखमासीच्चसाधूनामज्ञा
नानाञ्चसर्वदा ॥ जनपीडाकरायेतु सदावावलदपिताः ॥ १३ ॥ युवाभ्यांतेहतास्सर्वे कंसप्रमुखतोन्मृताः ॥ मुनिसिद्धसुरा

होगया और सांदीपनि ने मनुष्यों के न करने योग्य व संभावना के अयोग्य उनदोनोके कर्मको देखकर ॥ ९ ॥ व चिन्तन कर उससमय उनको प्राप्तहुये चन्द्रमा व सूर्य माना तदनन्तर वे कुछ न बोले इसके अनन्तर नहाने के लिये चले गये ॥ १० ॥ इसके अनन्तर शिष्यों समेत वे विप्रजी ! महाकालवन में बैठे और उस समय शिष्यों समेत वे बलभद्र व श्रीकृष्णजी दोनों ने प्रवेश किया ॥ ११ ॥ व प्रणाम कियेजाते हुये महाकालजी उस समय कृष्णजीसे बोले कि मनुजता में टिके हुये तथा देवताओं के स्वामी तुम से ॥ १२ ॥ साधुओं को व अज्ञानियों को सदैव सुखहुआ है और जो मनुष्यों के पीड़ाकारक व सदैव बल से गर्वित थे ॥ १३ ॥

वे कंसादिक सब राजा तुम दोनोंसे मारेगये हे अनघ ! तुमको मुनि व सिद्ध तथा देवतादिकों की स्थिति (पालन) करना चाहिये ॥ १४ ॥ करुंगा उनसे यह कह कर प्रणाम करने योग्य वे चलेगये सांदीपनि को देखकर प्रतिदिन शिष्यलोग ऐसा कहते थे ॥ १५ ॥ परन्तु कोई भी नहीं श्रद्धा करता था क्योंकि उनके वचन बहुत ही श्रद्धालु थे तदनन्तर शिष्यों से कहेहुये आश्चर्यको देखने के लिये आपही गये ॥ १६ ॥ तदनन्तर वैसाही शब्द उठा व उन दोनों को मिलाप हुआ और वहां घर में आये हुये उन दोनोंसे गुरुजी वचन बोले ॥ १७ ॥ कि यदि यदुवंश में उपजे हुये तुम दोनों वीर हो तो मुझसे नहीं जानेगये तदनन्तर श्रीकृष्णजी

दीनां स्थितिः कार्यात्त्वयानघ ॥ १४ ॥ करिष्यामि तमित्युक्त्वास नमस्यस्ततो ययौ ॥ दृष्ट्वा सान्दीपनिं शिष्या ऊचुरेवंदि
नेदिने ॥ १५ ॥ कोपि नाश्रद्धधत्तेषां वचस्त्वत्यङ्गुतं यतः ॥ स्वयं ययौ ततो द्रष्टुमाश्रयं शिष्यभाषितम् ॥ १६ ॥ ततस्त
थोत्थितः शब्दः संश्लेषश्च तथा तयोः ॥ तावागतौ गृहंतत्र गुरुर्वचनमब्रवीत् ॥ १७ ॥ नवैज्ञातौ मया वीरौ यदि दृष्टिं कु
लोद्भवौ ॥ ततस्सान्दीपनिं कृष्णः कृतकृत्यो ब्रवीद्वचः ॥ १८ ॥ गुर्वर्थं किन्ददामीति सहस्रमेणहर्षितः ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं
हृद्यं गुरुः प्रोवाच हर्षितः ॥ १९ ॥ पुत्रमिच्छाम्यहं त्वत्तो यो मृतो लवणाम्भसि ॥ पुत्र एको हि मे जातस्स चापि तिमिनाह
तः ॥ २० ॥ प्रभासे तीर्थयात्रायां त्वमेव तमिहानय ॥ तथेति चाब्रवीत्कृष्णो रामस्यानुमते गतः ॥ २१ ॥ तंसमुद्र उवा
चेदं दैत्यः पञ्चजनो महान् ॥ तिमिरूपेण तं बालं अस्तवान्मयि संस्थितः ॥ २२ ॥ ततः पञ्चजनं हत्वा ग्राहरूपं महाबल

सांदीपनि से वचन बोले ॥ १८ ॥ कि बलमद्र, समेत प्रसन्न मैं गुरुके लिये क्या देऊं उस मनोहर वचन को सुनकर प्रसन्न होते हुये गुरुजी बोले ॥ १९ ॥ कि जो चारसमुद्र में मरगया है उस पुत्रको मैं तुमसे चाहता हूं मेरे एक पुत्र पैदा हुआ था उसको भी तीर्थयात्रा में तिमिनामक मत्स्यने प्रभासेक्षेत्र में मार डाला उसको तुम्हीं यहां ले आओ बलभद्रजीके मत में प्राप्त श्रीकृष्णजी ने यह कहा कि वैसाही होगा ॥ २० ॥ २१ ॥ उनसे समुद्र ने यह कहा कि पंचजन नामक बड़े भारी दैत्य ने तिमिमत्स्य के रूपसे उस बालक को ग्रस लिया है जोकि मुझ में टिका है ॥ २२ ॥ तदनन्तर ग्राहरूपी बड़े बलवान् पंचजन दैत्यको मारकर उसके

बीचमें स्थित शंखको ग्रहण किया जोकि पहले जल के बीचमें स्थित ग्राहसे बड़ीलीला से ग्रसित हुआ था जब उसके पेटमें श्रीकृष्णजी ने बालक को न देखा ॥ २३ ॥ २४ ॥ तब यममन्दिर में प्राप्त यममन्दिर से कहा कि हे जलजन्तुओं के स्वामी, भगवन् ! मुझको बड़ा भारी रथ दीजिये ॥ २५ ॥ कि जिससे समर में उनको मारकर प्रेतों के पति यमराज को देखूँ पुरातन समय मैंने जिस रथ से संग्राम में बलसे गर्वित दैत्यों व दानवों को मारा है आज मुझको उसी रथ को दीजिये हे जल के स्वामी ! जब समर समाप्त होगया था तब मैंने न्यासभूत याने धरोहर की नाई जिस रथको तुम्हारे समीप धरा है उसको दीजिये यह सुनकर

म ॥ तन्मध्यस्थं च जग्राह शङ्खं प्रस्ताहियः पुरा ॥ २३ ॥ जलमध्यस्थितेनैव ग्राहेणातीवलीलाया ॥ तस्योदरे यदा बालं न ददर्श जनार्दनः ॥ २४ ॥ यमालय गतं मत्वा तदा वरुणमब्रवीत् ॥ भगवन् यादसामि शरथो मे दीयताम् महान् ॥ २५ ॥ येनाहो वेहिताञ्जित्वा पश्येयं प्रेतपंथमम् ॥ पुराजिरेह तादृत्या दानवा बलदर्पिताः ॥ २६ ॥ मया येन रथेनाद्य समह्यं दीयतां रथः ॥ न्यासभूतो रथो यस्ते विधृतो परतेरणे ॥ २७ ॥ मया धर्मपुरस्कृत्य दीयतां सहायाम्पते ॥ एतच्छ्रुत्वा प्रहृष्टात्मा ज्ञात्वा कार्यार्थिनं हरिम् ॥ २८ ॥ ददौ तुरथमजोभ्यं रथे तस्मै सुरासुरैः ॥ ततो हरिस्समालोक्य रथं रत्नपरिष्कृतम् ॥ २९ ॥ द्वापि चर्मपरीधानं त्रैयाघ्रपरिवारितम् ॥ नानाचित्रविचित्राङ्गं गरुडध्वजराजितम् ॥ ३० ॥ संयुक्तं शैब्यसुग्रीवमेघपुष्पवलाहकैः ॥ अजेयन्देवदेवैन्द्रदानवासुराक्षसैः ॥ ३१ ॥ अनेकायुधसम्पूर्णं मणिविद्रुमभूषितम् ॥ सहस्रसूर्यप्रतिमं चारुवक्रंचतुर्युगम् ॥ ३२ ॥ किङ्किणीशतशोभाढ्यं घण्टाचामरचन्द्रिकम् ॥ संवत्तकारविषमं खण्डप्रसन्नचित्तचालवरुणजी ने कार्यार्थी श्रीकृष्णजी को जानकर ॥ २६ ॥ २७ ॥ २८ ॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ जोकि चीते के चर्म से नीचे बिछौनेवाला व व्याघ्रचर्म से घिरा था व अनेक प्रकार के चित्र विचित्र अगौवाला तथा गरुड के ध्वजा से शोभित ॥ ३० ॥ व शैब्य, सुग्रीव, मेघपुष्प व बलाहक नामक घोड़ोंसे संयुत था और देवता, देवेन्द्र, दानव, असुर व राक्षसों से न जीतने योग्य था ॥ ३१ ॥ व अनेक अस्त्रों से सम्पूर्ण तथा मणियों व भूगों से भूषित था और हजार सूर्यों के समान प्रकाशमान तथा सुन्दर धुरी व चार

जुआँवावाला था ॥ ३२ ॥ व सैकड़ों घंटियों से शोभासंयुत व घंटा और चामरकी चन्द्रिकावाला था व प्रलय के समान आकार से विषम और उत्तम गरुड़ के ध्वजावाला था ॥ ३३ ॥ उस रथको देखकर बलभद्र समेत श्रीकृष्णजी विस्मयरहित होकर प्रसन्न हुये और प्रदक्षिणापूर्वक जाकर व देवताओं के लिये प्रणाम कर ॥ ३४ ॥ जन्मरहित श्रीकृष्णजी बड़े भाई समेत विमान के समान रथ पै चढ़े ॥ ३५ ॥ तदनन्तर संसार के निवासभूत श्रीकृष्णजी शीघ्रतासंयुत होकर यम-लोकके आश्रित दिशाको गये और उन अच्युत श्रीकृष्णजी ने हजारों किरणों से घिरीहुई पुरीको देखा और शंखको लेकर ॥ ३६ ॥ तलवार व धनुषको धारण किये

न्द्रवरकेतनम् ॥ ३३ ॥ दृष्ट्वाकृष्णस्सरामस्तु मुमुदेर्वीतविस्मयः ॥ प्रदक्षिणमुपागत्य देवताभ्यःप्रणम्यच ॥ ३४ ॥
आरुरोहरथंविष्णुर्विमानंसाग्रजोऽजनः ॥ ३५ ॥ ततो जगामत्वरितोजनार्दनो जगन्निवासोयमलोकमाश्रिताम् ॥ दिशं
सहस्रैःकिरणैर्द्वैताम्पुरीं ददर्शशङ्खंपरिगृह्यचाच्युतः ॥ ३६ ॥ तत्रप्रधमापयामास शङ्खंखड्गधनुर्धरः ॥ तेनशब्देनविब्र
स्ताः कृतान्तालयवासिनः ॥ ३७ ॥ नरकान्तर्गतामर्त्याः पापाचारपरायणाः ॥ सुखमापुःप्रशान्ताश्च बह्वयःकृष्णद
र्शनात् ॥ ३८ ॥ शस्त्राणिकुण्डलापुष्पान्यापि विविधानि च ॥ विदीर्णानितदाचाशु देवदेवस्यदर्शनात् ॥ ३९ ॥
असिपत्रवनन्नाम शीर्णपणमजायत ॥ रौरवन्नामनरकमभैरवमभूत्तदा ॥ ४० ॥ अभैरवंभैरवाख्यं कुम्भीपाकमपाचि
कम् ॥ शृङ्गाटंशृङ्गसदृशं लोहसूच्यप्यसूचिका ॥ ४१ ॥ दुस्तरासुतराजाता नदीवैतरणीनृणाम् ॥ नरकान्तेतदाजाते

श्रीकृष्णजी ने शंख को बजाया उस शब्दसे यमलोकनिवासी डरगये ॥ ३७ ॥ और पापके आचरण में परायण नरकमध्यगामी पुरुषों ने श्रीकृष्णजी के दर्शन से सुख पाया व अग्नियों शान्त होगई ॥ ३८ ॥ और उस समय देवदेव श्रीकृष्णजीके दर्शन से शीघ्रही शंख कुण्डलाको प्राप्तहुये और अनेक भांतिकेयन्त्र फटगये ॥ ३९ ॥ व असिपत्र नामक वन गिरेहुये पत्तोंवाला याने पत्तों से हीन होगया और उस समय रौरव नामक नरक अभयानक होगया ॥ ४० ॥ व भैरव नामक नरक अभैरव हुआ और कुम्भीपाक बिन पचानेवाला हुआ तथा शृगाट नरक सूचीरहित हुआ ॥ ४१ ॥ और दुःख से उतरे योग्य वैतरणी नदी

मनुष्योंको सुखसे उतरनेवाली हुई उस समय जब व्यापक जगदीशजी वहां गये तब नरकों का अन्त होनेपर ॥ ४२ ॥ तदनन्तर पापोंके क्षय होने के कारण वे सब मनुष्य नरक से छूटगये अविनाशी स्थान पै प्राप्तहोकर अज्ञाननाशक श्रीकृष्णजी को देखकर ॥ ४३ ॥ वे पुरुष सब और हजारों विमानों पै चढ़े और कमललोचन श्रीकृष्णजी को देखकर वे सब पाप से छूट गये ॥ ४४ ॥ तदनन्तर हे मुने ! उन विश्वरूपी श्रीकृष्णदेवजी के दर्शन से सब नरकमण्डल शून्य होगया ॥ ४५ ॥ तदनन्तर विकलतारहित यमराज के दूतों ने नरकों में पैठते हुये युद्धकारक श्रीकृष्णजी को मना किया ॥ ४६ ॥ दूत बोले कि हे वीर ! इस मार्ग से रथ

गतेविश्वेश्वरेविमौ ॥ ४२ ॥ पापक्षयात्ततस्सर्वे तेमुक्तानरकान्नराः ॥ पदमव्ययमासाद्य दृष्ट्वाविष्णुं तमोपहम् ॥ ४३ ॥ विमानेषु सहस्रेषु ह्यारूढास्ते समन्ततः ॥ समीक्ष्य पुण्डरीकाब्जं मुक्तास्ते सर्वपातकात् ॥ ४४ ॥ ततश्शून्यं मुने जातं सर्वानिरयमण्डलम् ॥ दर्शनात्तस्य देवस्य विष्णोर्विश्वस्वरूपिणः ॥ ४५ ॥ ततो दूताः कृतान्तस्य कृष्णञ्च युद्धकारिणम् ॥ वारयामासुरव्यग्रा विशन्तं नरकान्प्रति ॥ ४६ ॥ किङ्करा ऊचुः ॥ मार्वीरनेन मार्गेण रथमानयमानवाः ॥ प्रयान्त्यधोगतिं पापात्परस्त्रीस्वापहारकाः ॥ ४७ ॥ यमादिष्टानराः पापाद्ये मोच्या वर्षकोटिभिः ॥ दृष्ट्वा तएव सद्यस्त्वां गतास्स्वर्गमावाहताः ॥ ४८ ॥ एतच्छ्रुत्वा वचस्तेषां कृपया पीडितो भृशम् ॥ पुनः प्रोवाच मधुहा मोक्षायाह मुपागतः ॥ ४९ ॥ सर्वेषां स्वर्गदाता हं यमलोकनिवारकः ॥ अञ्जसाय मराड्दृता यमायाख्यातमेव च ॥ ५० ॥ एतच्छ्रुत्वा वचो दूतास्मत्स्वराय ममागताः ॥ सर्वमाचजिरेवृत्तं यथानारकिमोज्ज्वलम् ॥ ५१ ॥ ततो यमो रुषा विष्टः प्राह तान्यमकिङ्करान् ॥ यः कश्चिदागतो म

को मत लाइये क्योंकि पराई स्त्री व धन को हरनेवाले मनुष्य पाप से अधोगति को प्राप्त होते हैं ॥ ४७ ॥ यमराज से आज्ञा दिये हुये जो मनुष्य पाप से करोड़ों वर्षों में छोड़ने योग्य थे पापों से घिरे हुये वेही तुमको देखकर उसी क्षण स्वर्ग को प्राप्त हुये ॥ ४८ ॥ उनके इस वचन को सुनकर दया से बहुतही पीडित मधुदैत्य नाशक श्रीकृष्णजी फिर बोले कि मैं मोक्ष के लिये आया हूँ ॥ ४९ ॥ और मैं यमलोक का निवारक व सबों को स्वर्गदायक हूँ हे यमराज के दूतों ! तुमलोग शीघ्रही मेरे वचन को यमराज से कहिये ॥ ५० ॥ इस वचनको सुनकर शीघ्रता समेत दूत यमराजके समीप आये व उन्होंने नारकी जनोके मौजूबाले सब वृत्तान्त

को कहा ॥ ५१ ॥ तदनन्तर क्रोध से संयुत यमराजजी उन यमदूतों से बोले कि जो कोई मर्यादा का भेदकारक मृत्युलोकवाला मनुष्य आया हो ॥ ५२ ॥
 उसको जाकर मना करिये और पकड़ कर यहा ले आइये और दूतों समेत यह नरांतक नामक दूत जावै ॥ ५३ ॥ यमराज से इसप्रकार कहे हुये उस नरांतक दूत
 ने जाकर उग्र बचनों से उन श्रीकृष्णजी को मना किया ॥ ५४ ॥ जब मना किये हुये श्रीकृष्णजी न स्थित हुये तब नरान्तक क्रोधित हुआ और उसने बहुतही उग्र
 बाणों से श्रीकृष्णजी को मारा ॥ ५५ ॥ और समर में बलभद्र भी अनेक मांतिके बाणों से ताड़ित हुये व भयंकर यमराजके दूतों से सब ओर वे दोनों ताड़ित
 त्यों मर्यादाभेदकृन्नरः ॥ ५२ ॥ तंगत्वावारयध्ववै गृहीत्वानीयतामिह ॥ अयन्नरान्तकोयातु किङ्करस्सहकिङ्करैः ॥
 ५३ ॥ एवमुक्तोयमेनाथ किङ्करस्सनरान्तकः ॥ गत्वांतवारयामास वाग्भिरुग्राभिरच्युतम् ॥ ५४ ॥ यदानवारितस्त
 स्थौ तदाक्रुद्धोनरान्तकः ॥ तदाशरैरतविग्रेस्ताडितस्तेनकेशवः ॥ ५५ ॥ बलदेवोपिसमरे ताडितोविविधैश्शरैः ॥
 तावुभौताडितौघोरैः समन्ताद्यमकिङ्करैः ॥ ५६ ॥ आदायधनुर्षीदिव्ये जन्नतुर्यमकिङ्करान् ॥ बाणैरनेकसाहस्रैः क्रुद्धौरा
 मजनार्दनौ ॥ ५७ ॥ नरान्तकोपिसमरे बलेनबलिनार्दितः ॥ पपातगदयामिन्नो मूर्ध्निननिर्गतलोचनः ॥ ५८ ॥ ततो न
 रान्तकेवीरे पतितयमकिङ्करे ॥ किङ्कराणामभूत्सैन्यमार्तरणपराङ्मुखम् ॥ ५९ ॥ तेदूतारामकृष्णाभ्यां हन्यमानाभ
 यातुराः ॥ यमायकथयामामुनरान्तकनिपातनम् ॥ ६० ॥ ततोयमोययोक्रुद्धः समन्तात्किङ्करैर्वृतः ॥ ततःप्राहयमःक्रु
 द्धोनोजितोहंपुरापरैः ॥ ६१ ॥ ततोवादित्रयोपैस्तु सुरजानकगोमुखैः ॥ नानाडुमरुकौघैश्चचित्रगुप्तैश्चगच्छति ॥ ६२ ॥
 हुये ॥ ५६ ॥ और दिव्य धनुर्षोंको लेकर उन क्रोधित बलभद्र व श्रीकृष्णजी ने अनेक हजार बाणों से यमदूतों को मारा ॥ ५७ ॥ और बलिष्ठ बलभद्रजी से युद्ध में
 नरांतक भी विकल हुआ व गदा से भिन्नमस्तकवाला व निकले हुये लोचनवाला वह गिरपडा ॥ ५८ ॥ तदनन्तर यमदूत नरांतक वीर के गिरनेपर दूतों की विक-
 ल सेना युद्ध से विमुख हुई ॥ ५९ ॥ बलभद्र व श्रीकृष्णजी से मारे हुये भय से विकल उन दूतों ने यमराज से नरांतक का नाश कहा ॥ ६० ॥ तदनन्तर सब
 ओर दूतों से घिरे हुये क्रोधित यमराजजी गये उसके उपरान्त क्रोधित यमराज ने कहा कि पुरातन समय शत्रुओं ने मुझको नहीं जीता है ॥ ६१ ॥ उसके उपरान्त

सुरज, डोल व गोमुख और अनेक भांति के डमरू आदिक बाजाओं के शब्दों से चित्रगुप्त के जाने पर ॥ ६२ ॥ देवता, विद्याधर व सिद्ध यमराज के समर में क्षोभ-
रहित व कामपालक जगदीश व बड़े बलवान् श्रीकृष्णजी को देखने के लिये प्राप्त हुये ॥ ६३ ॥ तदनन्तर चित्रगुप्त से प्रेरणा किये हुये दूतोंने शरसमूहों से सब ओर
रथको घेरकर समर में बलभद्र व श्रीकृष्णजी को पीड़ित किया और चित्रगुप्त के देखते हुये समर में अनेक भांति के बाणों से उन दोनों ने भी मारा ॥ ६४ ॥ ६५ ॥
और सब ओर से हजारों दूतों को विदारण कर यमराजकी सेनाके बीच में समर में दुर्धर्ष व काम से पालित श्रीकृष्णजी यमराजकी नाई घूमने लगे ॥ ६६ ॥ ६७ ॥

देवाविद्याधराः सिद्धाद्रष्टुं प्राप्तामहाबलम् ॥ कृतान्तस्यरणेऽन्जोभ्यं कामपालं जगत्पतिम् ॥ ६३ ॥ ततस्ते किङ्कराः सर्वे
चित्रगुप्तेन नोदिताः ॥ रथमावृत्य बाणैर्धैः प्रबबाधुस्समन्ततः ॥ ६४ ॥ बलञ्च केशवं संख्ये जघनतुस्तावुभावपि ॥ रणे
च विविधैर्बाणैश्चित्रगुप्तस्य पश्यतः ॥ ६५ ॥ विदार्य च सहस्राणि किङ्कराणां समन्ततः ॥ कृन्तातानी किनीमध्ये कृतान्त
इव केशवः ॥ ६६ ॥ चचारणदुर्धर्षः कामपालेन पालितः ॥ ६७ ॥ ततश्चित्रगुप्तो रणे किङ्करौघं विदीर्णं निरीक्ष्यार्त
नादं चकार ॥ शरैः पञ्चभिः कृष्णमायान्तमाजौ जघानाष्टभिर्वक्रदेशे समिञ्चः ॥ ६८ ॥ शरार्तैरथोपस्थ आसीत्तदानीं
तमालोक्य भिन्नं रणे नष्टं सञ्ज्ञम् ॥ रथं स्वं समादाय यातः कृतान्तस्ततश्चित्रगुप्ते शरार्तं प्रसुप्ते ॥ ६९ ॥ रणे कीर्त्तिलुप्ते भयञ्चो
भयुक्ताः स्वसैन्यैश्च युक्ता भयार्तानिषण्णाः ॥ प्रधानाश्च भगनाविचित्राश्च भगनास्ततश्चित्रगुप्तं निशम्याथ भग्नम् ॥ ७० ॥

तदनन्तर युद्ध में दूतगणों को विदीर्ण देखकर चित्रगुप्त ने दुःखित शब्दको किया और समर में आते हुये श्रीकृष्णजी को पांच बाणों से मारा और वे चित्रगुप्त आठ
बाणों से मुख में भेदित हुये ॥ ६८ ॥ और बाणों से विकल चित्रगुप्त रथ पै स्थित हुये उस समय समर में नष्टचेतनावाले व विदीर्ण उन चित्रगुप्त को देखकर अ-
पने रथको लेकर यमराजजी प्राप्त हुये तदनन्तर समर में लुप्त यशवाले व बाण से विकल चित्रगुप्त के मूर्च्छित होने पर भय व क्षोभ से संयुत व अपनी सेनाओं से
युक्त मुख्य यमदूत भग्न व भय से विकल होकर स्थित होगये व विचित्र गण विदीर्ण हुये तदनन्तर चित्रगुप्त को विदीर्ण देखकर इसके अनन्तर ॥ ६९ ॥ ७० ॥

उन यमराजजी ने दूरही से आते हुये देवारिशत्रु श्रीकृष्णजी को देखकर उत्तमसेना को लेकर युद्ध किया जैसे कि प्रलय में प्रजाओं के नाश के लिये ज्वालाओंसे बड़ाहुआ वडवानल वर्तमान होवै ॥ ७१ ॥ आतेहुये उन करालकाल को देखकर श्रीकृष्णजी ने कालके समान बाणों से यमराजको आच्छादित किया और उन यमराजजी ने भयंकर दण्डको लेकर सब देवताओं के देखते हुये श्रीकृष्णजी के ऊपर छोड़ा ॥ ७२ ॥ तदनन्तर प्रजाओं का नाशकारक वह कालदण्ड श्रीकृष्ण जीके सर्पीप प्राप्तहुआ तदनन्तर देवता, गन्धर्व, यक्ष व मुनीन्द्रोंने बलभद्रजी को देखकर बड़े विस्मयको प्राप्तहुये ॥ ७३ ॥ और शेषमूर्तिवाले उन बलभद्रजीने जलते

सकालस्तमायान्तमालोक्यद्वाराहरं सैन्यमादाय देवारिशत्रुम् ॥ विनाशाययुध्यद्युगान्तेप्रजानां यथावाडवा
ज्वालवृद्धः प्रवृत्तः ॥ ७१ ॥ तमायान्तमालोक्यकालंकरालं शरैरावृणोदन्तंकंकालकल्पैः ॥ सकालः करालंसमा
दायदण्डं मुमोच।च्युतेपश्यतान्देवतानाम् ॥ ७२ ॥ ततः कालदण्डः प्रजानां विनाशो हरस्सन्निकाशं समभ्याजगाम ॥
ततोदेवगन्धर्वयक्षामुनीन्द्राः परं विस्मयं प्रापुर्न्वीक्ष्यरामम् ॥ ७३ ॥ ज्वलन्तञ्चजग्राहकालस्यदण्डं सरामोवरंली
लयानन्तमूर्तिः ॥ कालदण्डे गृहीते वलेनाहवे मोक्तुकामे पुनः कालनाशाय वै ॥ ७४ ॥ तूर्णमध्येत्यतत्रान्तरेपद्मजस्तं
रणेवारयामासकृष्णं तदा ॥ ७५ ॥ मां मुञ्चेत्यब्रवीद्देवाः कालं कालायुधं बल ॥ त्वया बलवता वीर चराचरधराधर ॥ धा
र्यते शिरसा देव संसारेनास्ति ते समः ॥ ७६ ॥ त्वया विश्वपतिर्विष्णुस्तस्मै न स दोह्यते ॥ कोन्योस्ति त्वत्समो राम यो
जगद्ग्रहे न क्षमः ॥ ७७ ॥ जगत्स्रष्टा जगद्गोप्ता जगद्धर्ता जगत्पतिः ॥ पाल्यते यस्त्वया सोऽपि विष्णुर्विभूवैकनायकः ॥ ७८ ॥

हुये उस कालके उत्तम दण्डको खेलही से पकड़ लिया जब समर में बलभद्र ने कालदण्डको ग्रहण किया व फिर यमराजके लिये छोड़ने की इच्छा किया ॥ ७४ ॥
तब उसी मध्य में शीघ्रही ब्रह्माजी ने आकर उस समय समर में उन श्रीकृष्णजीको मना किया ॥ ७५ ॥ कि हे बलभद्रजी ! कालके समान ब्रह्मको यमराज के
ऊपर मत छोड़िये ऐसा ब्रह्माजी ने कहा हे चराचर समेत पृथ्वी को धारनेवाले, वीर, देव ! तुम बलवान् से शिरके द्वारा सब पृथ्वी धारण कीजाती है संसारमें तुम्हारे समान
कोई नहीं है ॥ ७६ ॥ तुम सदैव गोक्षीसे जगदीश विष्णुजी को धारण करते हो हे राम ! अन्य कौन है जोकि संसार के धारण करने में समर्थ है ॥ ७७ ॥ तुम संसार

को रचनेवाले व संसार की रक्षा करनेवाले तथा संसार को हरनेवाले और संसारके स्वामी हो जो तुम से पालन किये जाते हैं वे विष्णु भी संसार के एकही स्वामी हैं॥ ७८॥ यहा तुम्हारी स्तुति करनेवाला कौन है और कौन गुणोंको जानने के लिये योग्य है और उसी कारण विष्णुजी की नाभि से उपजे हुये कनल स्थानवाले हम लोग तुम्हारी गोदी में स्थित हैं ॥ ७९॥ ऐसा बलभद्रजीसे कहकर फिर देवताओं से घिरे हुये चतुराननजी स्तुतिपूर्वक श्रीकृष्णजी से वचन बोले ॥ ८०॥ कि हे भयानक मुखवाले कृष्ण ! हे श्रीकृष्णजी ! इस काल के ऊपर दया कीजिये क्योंकि हे जगदीशजी ! आते हुये आपको यह संसारके एकही स्वामी व नरकसमुद्र से

कस्ते स्तुतिकरोऽस्तीह को गुणान्वेत्तुमर्हति ॥ ततो वयं त्वदङ्गस्था विष्णुना भिभवायनाः ॥ ७९ ॥ इत्युक्त्वा वलदेव
अ वासुदेवं पुनर्वचः ॥ उवाच चतुरास्यस्तु स्तुतिपूर्ववृत्तस्मरैः ॥ ८० ॥ कृष्णकृष्णकरालास्य कालस्यास्य कृपां कु
रु ॥ यतो भवन्तमायान्तं विष्णुं विद्वैकनायकम् ॥ ८१ ॥ वेत्ति नायं जगन्नाथ नरकार्णवतारकम् ॥ त्वया वै भगवन्पूर्वं
यमः संस्थापितः पदे ॥ ८२ ॥ नृणां दुष्कृतकर्तृणां नरकाय यमः प्रभो ॥ तस्मादस्य जगन्नाथ ज्ञम्यतां पुरुषोत्तम ॥ ८३ ॥
विभो कृतापराधस्य ब्रूहि यत्ते विवर्जितम् ॥ एतच्छ्रुत्वा ब्रवीत्कृष्णो धातः शृणु गुरोर्मम ॥ ८४ ॥ सान्दीपनेन समानीत
स्मृतस्तेनागता विह ॥ समर्प्यतां गुरु श्रेष्ठ श्रेष्ठाय गुरुदक्षिणा ॥ ८५ ॥ आवाभ्यां या प्रतिज्ञाता तस्मात्सा पात्यतां वि
भो ॥ एतत्पितामहः श्रुत्वा यमं समरनिर्जितम् ॥ ८६ ॥ समाहूया ब्रवीद्विष्णुर्ग्रन्थं धीतिकुरुष्वतत ॥ तच्छ्रुत्वा धर्म

तारनेवाले विष्णु नहीं जानता है हे भगवन् ! पहले तुम ने यमराजको स्थान पै भलीभांति स्थापित किया है ॥ ८१ ॥ ८२ ॥ हे प्रभो ! जो यमराजजी पाप करनेवाले मनुष्यों के नरकके लिये हैं इसलिये हे पुरुषोत्तम, जगदीशजी ! इनका अपराध क्षमाकीजिये ॥ ८३ ॥ हे विभो ! किये हुये अपराधवाले यमराज से जो तुम्हारे कहने की इच्छा होवे उसको कडिये इस वचन को सुनकर श्रीकृष्णजी बोले कि हे विधाता ! सुनिये मेरे गुरु ॥ ८४ ॥ सादीपनि का पुत्र लाया गया है उसी से हम दोनों यहा आये हैं श्रेष्ठ गुरुओं के मध्य में उत्तम सांदीपनि के लिये गुरुदक्षिणा दीजावे ॥ ८५ ॥ हे विभो ! हम दोनों से जो प्रतिज्ञा की गई वह उसी कारण पालन की जावे

इस वचन को सुनकर ब्रह्माजी ने युद्धमें जीतेहुये यमराजको बुलाकर कहा कि जो श्रीकृष्णजी कहते हैं उसको कीजिये उस वचनको सुनकर धर्मराजने ब्रह्मासे यह कहा ॥ ८६ ॥ ८७ ॥ कि हे विश्वकृत, भगवन् ! यह मार्ग तुमसे नहीं कियागया है कि यमलोक को प्राप्त शरीररहित प्राणी ॥ ८८ ॥ शरीर समेत जाँवै यह यहां नहीं प्राप्तहोताहै उसकोसुनकर फिर इस संसारके स्वामी आपही ब्रह्माजी बोले ॥ ८९ ॥ कि जिस लिये ये संसार को रचनेवाले व संसारको हरनेवालेहैं उसकारण जो चाहते है उसको कैरौ और तुम सादीपनि मुनि के पुत्रको अर्पण कीजिये ॥ ९० ॥ व हे महामते ! फिर मनुष्य शरीर करके उनको ले आइये उस वचन को सुनकर धर्मराज राजस्तुविरश्चिमिदमब्रवीत् ॥ ८७ ॥ भगवन्विश्वकृल्लोकैनेपमार्गस्त्वयाकृतः ॥ यमलोकमनुप्राप्तः कायहीनःशरीरवान् ॥ ८८ ॥ शरीरसहितोयाति नैतदत्रप्रपद्यते ॥ तच्छ्रुत्वाहिपुनर्ब्रह्मा विश्वस्यास्यविभुःस्वयम् ॥ ८९ ॥ विश्वकृद्विश्वहृद्यस्माद्यदिच्छतिकरोतुतत् ॥ तस्मादर्पयन्नुत्तं मुनेस्सान्दीपनेश्चवै ॥ ९० ॥ नरकायंपुनःकृत्वा तच्चानयमहामते ॥ तच्छ्रुत्वाधर्मराजस्तु पुत्रंसान्दीपनेस्तथा ॥ ९१ ॥ ससर्जबालरूपञ्च तदात्मानंतदुद्भवम् ॥ अर्पयामासकृष्णाय बालंरूपसमन्वितम् ॥ ९२ ॥ समक्षन्देवतानाञ्च तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ततःप्राप्यगुरोःपुत्रं प्रभुःप्रीतःप्रजापतिम् ॥ ९३ ॥ प्राहप्राप्तोमयाब्रह्मन् स्वरूपोद्विजदारकः ॥ श्रीकृष्णउवाच ॥ अद्यप्रभृतिलोकेश देशेमच्चरणाङ्किते ॥ ९४ ॥ अ वन्त्यामङ्कपादारूपे मृतानेक्षन्ति तेयमम् ॥ महाकालोत्तरेदेवमाद्यैवपुरुषोत्तमम् ॥ ९५ ॥ विश्वरूपञ्चगोविन्दं शङ्खोद्धारंचकेशवम् ॥ येपश्यन्तिकुशस्थत्यामेतेषामूर्तिपञ्चकम् ॥ ९६ ॥ तेनरानगमिष्यन्ति विरञ्चेनिरयंकचित् ॥ तथैने सादीपनि के पुत्र ॥ ९७ ॥ जोकि तदात्मक वं उन से उपजा हुआ था उस बालकरूपी पुत्रको विदा किया व रूपसे संयुत बालक को श्रीकृष्णजी के लिये अर्पण किया ॥ ९८ ॥ देवताओं के सामने वह अद्भुतसा होगया तदनन्तर गुरुजी के पुत्रको पाकर प्रसन्न होतेहुये प्रभु श्रीकृष्णजी ब्रह्माजी से ॥ ९९ ॥ बोले कि हे ब्रह्मन् ! मैंने स्वरूपवाले द्विज बालक को पायाहै श्रीकृष्णजी बोले कि हे लोकेश ! आजसे लगाकर उज्जयिनी में मेरे चरणों से चिह्नित अंकपाद नामक देश (स्थान) में जो मरै वे पुरुष यमराज को न देखें और महाकालजी के उत्तर में पुरुषोत्तम आदिदेवको ॥ ९९ ॥ व विश्वरूप, गोविन्द तथा शङ्खोद्धार व केशव

मूर्तियों को जो पुरुष कुशस्थली याने उज्जयिनी में देखते हैं ॥ ६६ ॥ हे ब्रह्मन् ! वे पुरुष कभी नरक को न जायेंगे वैसेही मेरे व बलभद्रजी के यहां आने से नरक वाले जो लोग हैं ॥ ६७ ॥ वे सब तुमसे भयंकर नरक से छूटकर स्वर्गको प्राप्त होवें ऐसा वचन कहने पर प्रसन्न ब्रह्माजी श्रीकृष्णजी से बोले ॥ ६८ ॥ कि हे श्रीकृष्णजी ! तुमने जो कहा है वह सब सदैव होवै और जो आदिपुरुष व श्रेष्ठ तुम पुरुषोत्तमजी को ॥ ६९ ॥ प्रणामकर और जो रुद्रसर में नहाकर देवैगे व जो अधोज्वल महाकालजी को देखता है वह अश्वमेधके फलको प्राप्त होता है ॥ ७० ॥ इसप्रकार कहेहुये श्रीकृष्णजी पुत्र को लेकर बलभद्र समेत ॥ १ ॥ श्रीब्रह्मादेवनी

वागमनादत्र ममरामस्यनारकाः ॥ ९७ ॥ विमुक्तास्तेत्वयाघोरात् प्राप्नुवन्त्यखिलादिवम् ॥ इत्युक्तेवचनैर्वेधाः प्रोवाच प्रीतिमान्हारिम् ॥ ९८ ॥ यत्त्वयोक्तं चः कृष्ण तदस्तु सकलंसदा ॥ ये च त्वामादिपुरुषं प्रथमं पुरुषोत्तमम् ॥ ९९ ॥ प्रणम्य ये च द्रक्ष्यन्ति स्नात्वा शिवसरस्यपि ॥ अधोज्वलं महाकालं सोऽवमेधफलं भवेत् ॥ १०० ॥ एवमुक्तो हरिः पुत्रमादाय बलेन सह ॥ १ ॥ आपृच्छ यवेधसन्देवमारुरोहरथं ततः ॥ शङ्खमाधूरयामास कृतकार्यो जनार्दनः ॥ २ ॥ मोक्षाय निरयस्थानं नृणां विपापकर्मणाम् ॥ ततस्ते शङ्खशब्देन स्मरणेनाच्युतस्य च ॥ ३ ॥ दिव्यान्विमानानां रुह दिवमेवाखिलागताः ॥ शून्यं तन्मण्डलं जातं नारायणसमागमे ॥ ४ ॥ कालोऽपि दण्डमासाद्य बलदेवात्पुनः पुनः ॥ प्रविशततोधाता तत्रैवान्तरधीयत ॥ ५ ॥ कृष्णोऽपि बलवान्धीरः प्राप्त उज्जयिनीपुरीम् ॥ बलदेवसहायस्तु सरथेनाशुगामिना ॥ ६ ॥ ततस्सान्दीपनेः पुत्रमर्पयामास केशिहा ॥ गुरवे यत्प्रतिज्ञातं स तस्मादनुगोभवत् ॥ ७ ॥ एवं सान्दीपनेः

से पूँछकर तदनन्तर रथ पै सवार हुये और कार्य किये हुये श्रीकृष्णजी ने नरक में टिकेहुये पापकर्मी जनों के मोक्षके लिये शङ्खको बजाया तदनन्तर शङ्ख के शब्द से व श्रीकृष्णजी के स्मरणसे वे पुरुष ॥ २ । ३ ॥ उत्तम विमानों पै चढ़कर सब स्वर्गही को चलेगये और नारायण के समागम में उस नरकका मण्डल शून्य हो गया ॥ ४ ॥ और यमराज ने भी दण्डको लेकर बलभद्र से पहले नगर में प्रवेश किया तदनन्तर ब्रह्माजी वहीं अन्तर्द्वान् होगये ॥ ५ ॥ और बलभद्रकी सहायवाले बलवान् वीर वे श्रीकृष्णजी शीघ्रगामी रथ के द्वारा उज्जयिनी पुरीको प्राप्तहुये ॥ ६ ॥ तदनन्तर केशवजी ने सान्दीपनि के पुत्र को अर्पण किया और गुरु से जो

प्रतिज्ञा किया था उससे वे श्रीकृष्णजी उन्मुख हुये ॥ ७ ॥ इसप्रकार फिर आये हुये सांदिपनि के पुत्रको देखकर वहां नगरवासी व राजा बड़े विस्मय को प्राप्तहुये ॥ ८ ॥ और उन्होंने देवोत्तमों में उत्तम मानकर उन वीरों का पूजन किया और सांदिपनिने उन बलभद्र व श्रीकृष्णजी से यह कहा ॥ ९ ॥ कि कल्पपर्यन्त यहांपर तुम्हारा यश स्थित रहैगा और हे यदुपुत्रो ! हमलोग इस स्थान में टिकेंगे ॥ १० ॥ मैंने यदुवंश में उपजे देवकार्य के लिये आयेहुये तुम दोनों नर नारायण देव वीरों को नहीं जाना ॥ ११ ॥ और यदि यहां जो पुरुष नहाता है तो उसकी अल्पमृत्यु नहीं होती है और न रोग होताहै न दुर्दशा होती है तथा स्वर्ग में प्राप्त होताहै और स्वर्ग-

पुत्रं दृष्ट्वाचपुनरागतम् ॥ नागरास्तत्रराजाच विस्मयं परमं ययुः ॥ ८ ॥ तौ वीरावर्चयामासुर्मत्वा देवोत्तमोत्तमौ ॥ सा न्दीपनिरुवाचेदं तौ च रामजनार्दनौ ॥ ९ ॥ इह स्थास्यति वः कीर्तिर्या विदाभूतसम्पुवम् ॥ स्थाने तु वयमेतस्मिन् स्थाने मोयदुनन्दनौ ॥ १० ॥ न विज्ञातौ मया वीरौ यदुष्टृष्णि कुलोद्भवौ ॥ नरनारायणौ देवौ देवकार्यार्थमागतौ ॥ ११ ॥ ना त्पमृत्युर्भवेत्तस्य न व्याधिर्न च दुर्गतिः ॥ प्राप्नोत्यत्र च स्नातश्चेत् स्वर्गलोके महीयते ॥ १२ ॥ शङ्खिर्न विश्वरूपञ्च माधवञ्चाक्रिणेतथा ॥ चत्वारि विष्णु क्षेत्राणि शृङ्गपादस्तु पञ्चमः ॥ १३ ॥ एषां यानां प्रवक्ष्यामि यथाकार्यामनीषिभिः ॥ मन्दाकिन्यां कृतस्नानो दृष्ट्वा रामजनार्दनौ ॥ १४ ॥ शङ्खोद्धारेत्तस्मन्नात्वा प्रपश्येद्बलकेशवौ ॥ स्नानं कृत्वा ततः कुण्डे गोविन्दश्च समर्चयेत् ॥ १५ ॥ चक्रिणञ्च ततो दृष्ट्वा विश्वरूपं ततो व्रजेत् ॥ तस्याग्रतः करी कुण्डे स्नानं कृत्वा यथाविधि ॥ १६ ॥ पुनस्तेन प्रकारेण प्रपश्येद्बलकेशवौ ॥ स्नानं कृत्वा ततः कुण्डे गोविन्दञ्च समर्चयेत् ॥ १७ ॥

लोकमें पूजाजाता है ॥ १२ ॥ और शङ्खी, विश्वरूप, माधव व चक्री चार विष्णुजी के क्षेत्र हैं व अंकपाद पांचवा क्षेत्र है ॥ १३ ॥ इनकी यात्रा को कहताहूँ कि जिस प्रकार वह विद्वानो को करना चाहिये कि मन्दाकिनी में स्नानकर राम व जनार्दन जी को देखकर ॥ १४ ॥ तदनन्तर शङ्खोद्धार में नहाकर बलराम व केशवजी को देखै उमके उपरान्त कुण्ड में नहाकर गोविन्दजी को भलीभांति पूजै ॥ १५ ॥ तदनन्तर चक्रीजी को देखकर उसके उपरान्त विश्वरूपजी के समीप जावै उनके आगे करी कुण्ड में विधिपूर्वक नहाकर ॥ १६ ॥ फिर उसी विधि से बलभद्र और केशवजी को देखै उसके उपरान्त कुण्ड में नहाकर गोविन्दजी को पूजै ॥ १७ ॥

नैवेद्योंसे जो पुरुष पूजता है ॥ २ ॥ वह सब कामनाओंवाले तथा सूर्य के समान विमानों के द्वारा चन्द्रमा व सूर्यादिकों की सलोकताको तबतक प्राप्त होता है जबतक कि चन्द्रमा व सूर्य रहते हैं ॥ ३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायां पाटीकायां चन्द्रादित्यमाहात्म्यनाम चतुर्विंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३४ ॥ ॐ ॥
 दो० । करभेश्वर नामक यथा भये सदाशिवदेव । पैतिसर्वे अध्यायमें सोई है सब भेव ॥ सनत्कुमारजी बोले कि तदनन्तर देवदेव करभेश्वरजी के समीप जावै कि जिनके दर्शनही से मनुष्य दुष्टयोनि में नहीं उत्पन्न होता है ॥ १ ॥ व्यासजी बोले कि हे देव ! मैं यथार्थ से करभेश्वरजी की कथा को सुना चाहता हूँ कि कर-
 प्रयाति सार्वकामिकैः ॥ विमानैस्सूर्यसङ्काशैर्यावच्चैन्दुदिवाकरौ ॥ ३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे चन्द्रादित्यमाहात्म्यनाम चतुर्विंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३४ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

सनत्कुमार उवाच ॥ करभेशं ततो गच्छेद्देवदेवं महेश्वरम् ॥ यस्य दर्शनमात्रेण कुर्यान्नौ नैव जायते ॥ १ ॥ व्यास उवाच ॥ करभेशकथान्देव श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ॥ कथन्देवस्समुत्पन्नः करभेशो तिसंज्ञितः ॥ २ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ पुरा देवगणैस्सार्द्धं देवदेवो महेश्वरः ॥ वनेस्मिन् क्रीडयामास परमाह्लादसंयुतः ॥ ३ ॥ क्रीडन्बहुतिथे काले शङ्करः करभो भवत ॥ न ज्ञायते सर्वदेवैः शङ्करः करभाकृतिः ॥ ४ ॥ अन्वेषयन्ति तन् देवास्ततो विस्मयसंयुताः ॥ न पश्यन्ति यदा तत्र तन् देवं शूलपाणिनम् ॥ ५ ॥ देवैः पृष्टस्ततो ब्रह्मा कास्ति देवो महेश्वरः ॥ ध्यातोऽपि ब्रह्मणा दृष्टो गुप्तयोगप्रसुहरः ॥ ६ ॥ देवैस्सार्द्धं ततो ब्रह्मा पप्रच्छ गणनायकम् ॥ न दृष्ट इशङ्करोऽस्माभिर्गतः कुत्र विनायक ॥ ७ ॥ कथयस्व नमस्तुभ्यं भेश एषे संज्ञक देव कैसे उत्पन्न हुये हैं ॥ २ ॥ सनत्कुमारजी बोले कि पुरा तन समय देवगणों समेत बड़े आनन्द से संयुत देवदेव महेश्वरजी ने इस वनमें क्रीड़ा किया है ॥ ३ ॥ और बहुत दिनोंवाले समयके बीतने पर खेलते हुये शङ्करजी करभ याने ऊंट के बच्चे के समान हुये और करभआकारवाले शिवजी को समस्त देवताओं ने नहीं जाना ॥ ४ ॥ तदनन्तर विस्मयसे संयुत देवता उनको ढूँढ़ने लगे और जब वहाँ पर विशूल हाथवाले उन शिवदेवजी को नहीं देखा ॥ ५ ॥ तब देवताओं ने ब्रह्मा से पूछा कि महेश्वरदेवजी कहाँ हैं ब्रह्मासे ध्यान किये हुये भी गुप्तवोगवाले महादेव स्वामीजी न देखे गये ॥ ६ ॥ तदनन्तर देवताओं समेत ब्रह्माजी ने गणेश

जीमे पूछा कि हे विनायकजी ! हमलोगों ने शिवजी को नहीं देखा वे कहा गये ॥ ७ ॥ हे विभो ! यह कहिये तुम्हारे लिये नमस्कार है हमलोग तुम्हें लड़्डुवों को देंगे उस समय ऐसा कहेहुये गणेशजी प्रसन्न होकर बोले ॥ ८ ॥ कि हे देवोत्तमो ! इन करभरूपी महादेवजी को देखिये ऐसे वचन को सुनकर प्रसन्न होतेहुये देवता ऊंटके बच्चे के समीपगये ॥ ९ ॥ और हमलोगों ने आपही महादेवजी को जानलिया यह कहते हुये वे सब जाकर तदनन्तर आपही चारों दिशाओं में स्थित हुये ॥ १० ॥ मैं कैसे जानागया यह चिन्तन कर शिवजी विस्मयको प्राप्तहुये इस के अनन्तर ऊंटके बच्चे के रूपको छोड़कर देवदेव महेश्वरजी ने ॥ ११ ॥ जो कर-

दास्यामोलङ्घकान्विमो ॥ एवमुक्तस्तदाहृष्टः प्रोवाचगणनायकः ॥ ८ ॥ करभोगंमहादेवो दृश्यतांविबुधोत्तमाः ॥ श्रु
त्वाचैवंचोदेवाः प्रहृष्टाःकरभंययुः ॥ ९ ॥ ज्ञातोस्माभिर्महादेवो जल्पन्तइतितेस्वयम् ॥ गत्वाचैवततःसर्वे चतुर्दिक्षु
स्थितास्स्वयम् ॥ १० ॥ विचिन्त्येतिकथंज्ञातः शङ्करोविस्मयङ्गतः ॥ त्यक्त्वाथकारभंरूपं देवदेवोमहेश्वरः ॥ ११ ॥
लिङ्गमुत्पादयामास देवंयत्करभेश्वरम् ॥ तन्दृष्ट्वाथसुरास्सर्वे साष्टाङ्गप्रणतिंस्थिताः ॥ १२ ॥ ततःप्रभृतिविख्यात
इशङ्करःकरभेश्वरः ॥ स्नात्वाचैवशुचिर्भूत्वा यस्तमर्चयतेशिवम् ॥ १३ ॥ गन्धपुष्पैश्चनैवेद्यैः शृणुतेषाञ्चयत्फलम् ॥
सर्वमेधेषुयत्पुण्यं सर्वदानेषुयत्फलम् ॥ १४ ॥ ततोधिकंसलभते नात्रकार्याविचारणा ॥ १५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽ
वन्तीखण्डे करभेश्वरमाहात्म्यनामपञ्चविंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३५ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

भेश्वर देव हैं उस लिंगको उत्पन्न किया उसको देखकर इसके अनन्तर सब देवता साष्टांग प्रणाम में स्थित हुये ॥ १२ ॥ तब से लगाकर करभेश्वर शिवजी प्रसिद्ध हुये हैं नहाकर वा पवित्र होकर जो पुरुष उन शिवजीको गन्ध, पुष्प व नैवेद्यों से पूजताहै उनको जो फल होताहै उसको सुनिये कि सबयज्ञोंमें जो पुण्य होताहै और समस्त दानों में जो फल होताहै ॥ १३ ॥ १४ ॥ उससे अधिक फलको वह पाताहै इसमें विचार न करना चाहिये ॥ १५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेऽवन्तीदयालु मिश्रविचिताभापाटीकार्याकरभेश्वरमाहात्म्यवर्णनं नाम पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥

दो० । अति उत्तम माहात्म्य युत अहैं यथा गणनाथ । छत्तिसवें अध्यायमें सोई वरणत गाथ ॥ सनत्कुमारजी बोले कि तदनन्तर देवताओंने लड्डुवोंसे गणेशजी को भलीभांति पूजा है तब से लगाकर लड्डुकप्रिय विघ्नेश जी प्रसिद्ध हुये हैं ॥ १ ॥ जो पुरुष उनको भक्तिसे पूजता है उसके विघ्न नहीं होता है व प्रसन्न होतेहुये गणेशजी उसके लिये समस्त अभिलाषों को देते हैं ॥ २ ॥ और चौथि तिथि में रात्रिको भोजन करनेवाला मनुष्य शिप्रा नदी में विशेष कर नहाकर और श्रृणवसनधारी होकर मन्त्रों के द्वारा लाल चन्दन से मिलेहुये जल से स्नानपूर्वक उन गणेशजीके लाल चन्दन से विलेपन कर लाल फूलों से पूजन करे ॥ ३४ ॥ व

सनत्कुमार उवाच ॥ लड्डुकैश्च ततो देवैर्विघ्ननाथस्समर्चितः ॥ तदा प्रभृति विख्यातो विघ्नेशो लड्डुकप्रियः ॥ १ ॥
यस्ममर्चयते भक्त्या तस्य विघ्नन्न जायते ॥ तस्मै ददाति सन्तुष्टस्सर्वकामान् विनायकः ॥ २ ॥ नक्ताहारश्चतुर्थ्या च स्नात्वा शिप्रां विशेषतः ॥ रक्ताम्बरधरो भूत्वा रक्तपुष्पैर्विनायकम् ॥ ३ ॥ रक्तचन्दनतोयेन मन्त्रैस्सन्पनपूर्वकम् ॥ चन्दनेनापिरक्तेन तं विलेप्य प्रपूजयेत् ॥ ४ ॥ धूपं दद्यात्तथा दिव्यं सुगन्धलड्डुकप्रियम् ॥ नैवेद्ये लड्डुकादेया आज्यखण्डपरिप्लुताः ॥ ५ ॥ नतस्य जायते व्यास भयं विघ्नं कदाचन ॥ लभते च तथा भीष्टं मृतांश्चिवपुत्रं व्रजेत् ॥ ६ ॥ अवतीर्णः पुनर्लोकं जायते वसुधाधिपः ॥ मतिमान् पुत्रवाब्धुरो नात्र कार्या विचारणा ॥ ७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे गणेशमाहात्म्य नाम षट्त्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३६ ॥

सनत्कुमार उवाच ॥ कुसुमेशं सुरद्वारे सुरासुरनमस्कृतम् ॥ श्रद्धया पूजयेद्यस्तु शिवलोकं समोदते ॥ १ ॥ जयेद्यलड्डुकप्रिय गणेशजी को उत्तम गन्धवाली दिव्य धूप देवे और नैवेद्य में वी व शक्करसे संयुत लड्डुवों को देना चाहिये ॥ २ ॥ हे व्यासजी ! उसके कभी विघ्न नहीं होता है और वैसेही मनोरथको प्राप्त होता है व मरकर शिवपुरको जाता है ॥ ३ ॥ और फिर जगत्में अवतार लेकर वह पुरुष भक्ति होता है व बुद्धिमान्, पुत्रवान् और शूर होता है इसमें विचार न करना चाहिये ॥ ४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे देवीदयालुमिश्रविचिनयाभापाटीकायांगणेशमाहात्म्यवर्णनं नाम षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥

दो० । सोमेश्वर आदिकन कर अहैं यथा परभाव । सैतिसवें अध्याय में सोई चरित सुहाव ॥ सनत्कुमारजी बोले कि सुरद्वार में देवताओं व देवियों से प्रणाम किये

हुये कुसुमेशजी को जो मनुष्य श्रद्धा से पूजता है वह शिवलोक में आनन्द करता है ॥ १ ॥ जो मनुष्य देवदेव जयेश्वर महेश्वरजी को देखता है वह समस्त कार्यों में जयवान् होता है और शिवलोकको प्राप्त होता है ॥ २ ॥ और यदि शिवद्वारमें मनुष्य शिवलिङ्गको पूजता है तो विमानके द्वारा स्वर्ग को प्राप्त होता है और गणाध्यक्षताको प्राप्त होता है ॥ ३ ॥ इसके अनन्तर अन्य उत्तम मार्कण्डेश्वरजी को कहता हूँ जहापर कि मार्कण्डेयजी ने बहुत तप किया है ॥ ४ ॥ उन शङ्करदेवजी को देखकर मनुष्य वाजपेय यज्ञ के फलको प्राप्त होता है और सब पापोंसे शुद्धचित्तवाला पुरुष बहुत आयुर्वलवान् होता है ॥ ५ ॥ हे व्यासजी ! इस पुरी में उत्तम महास्थानको सुनिये रन्तुयः पश्येद्देवदेवमहेश्वरम् ॥ जयीस्यात्सर्वकार्येषु शिवलोकंसगच्छति ॥ २ ॥ शिवद्वारे शिवलिङ्गमर्चयेन्मानवो यदि ॥ त्रिदिव्यातियानेन गाणपत्यञ्च विन्दति ॥ ३ ॥ अथान्यसम्प्रक्ष्यामि मार्कण्डेश्वरमुत्तमम् ॥ मार्कण्डेयो मुनिर्यत्र तप्तवान्मुमहत्तपः ॥ ४ ॥ दृष्ट्वा तं शङ्करन्देवं वाजपेयफलं लभेत् ॥ सर्वपापविशुद्धात्मा चिरायुर्जायते नरः ॥ ५ ॥ शृणु व्यास महास्थानमस्यां पुर्यां समुत्तमम् ॥ यत्र तिष्ठतिसादेवी ब्रह्माणंहं सवाहिनी ॥ ६ ॥ भक्तानां पूरयेदारां पुत्रवत्परिपालयेत् ॥ यथामाता तथा देवी दृष्ट्वा शान्तिपरैरपि ॥ ७ ॥ अर्चिता ब्रह्मणा सा तु स्तुता देवी सुरोत्तमैः ॥ अर्चयेद्गन्धपुष्पैश्च नैवेद्यैः सर्वसिद्धिदाम् ॥ ८ ॥ अपिया ब्रह्मणः पूर्वमभूद्देवी सुसिद्धिदा ॥ यस्नात्वा ब्रह्मसरसि पश्येद्ब्रह्मेश्वरं शिवम् ॥ ९ ॥ भवबन्धविनिर्मुक्तो ब्रह्मलोकं समोदते ॥ अथान्यत्सम्प्रक्ष्यामि यज्ञवापीमनुत्तमाम् ॥ १० ॥ यत्र वै ब्रह्मणा पूर्वमिष्टो यज्ञस्स दक्षिणः ॥ यज्ञार्थं यत्कृतं कुण्डं यज्ञवापी च सा स्मृता ॥ ११ ॥ पशुश्रृपातितो यस्मात्तस्मात्प जहां पर कि हंसवाहिनी ब्रह्माणीजी स्थित हैं ॥ ६ ॥ शान्ति में तत्पर पुरुषों से देखाहुई वे देवी माता की नाई भक्तोंकी आज्ञाको पूर्ण करती हैं और पुत्रकी नाई पालन करती हैं ॥ ७ ॥ उन देवीजी को ब्रह्माने पूजा है व सुरोत्तमोंने स्तुति किया है उन सब सिद्धिदायिनी को गन्ध, पुष्पों से व नैवेद्योंसे पूजन करे ॥ ८ ॥ पहले जो कि ब्रह्माको भी उत्तम सिद्धिदायिनी हुई है ब्रह्मसर में नहाकर जो पुरुष ब्रह्मेश्वर शिवजी को देखता है ॥ ९ ॥ वह संसारके बन्धन से छुटकर ब्रह्मलोक में प्रसन्न होता है इसके अनन्तर अति उत्तम अन्य यज्ञवापीको मैं कहता हूँ ॥ १० ॥ जहां पर कि पुरातन समय दक्षिणा समेत यज्ञ किया है यज्ञके लिये जो कुण्ड किया गया था

वह देववाणी कही गई है ॥ ११ ॥ और जिसलिये पशु पातित किया गया है उसी कारण वे पशुपति कहें गये हैं उसमें नहाकर पवित्र होकर जो पुरुष पशुपतिजी को देखता है ॥ १२ ॥ वह पशुयोनिमें प्राप्त भी पितरोंको उच्चारता है और सुवर्ण, मणि व मृगाओं से संयुत व सब कामना प्राप्तवाले विमानों के द्वारा ॥ १३ ॥ दिव्य शिवपुर को जाता है जहां कि महेश्वर देवजी हैं वैसेही मनुष्य रूपकुंड में नहाकर सुरुपवान् होता है ॥ १४ ॥ और स्वर्ग में सदैव गंधर्वों से चाहने योग्य शरीरवाला होता है और अंगकुंड में नहाकर व पवित्र होकर जो सावधान मनुष्य ॥ १५ ॥ पहले कामदेव से पूजेहुये देवदेवेश शिवजी को देखता है वह चाहेहुये मनोरथ को प्राप्त

शुपतिः स्मृतः ॥ तस्यां स्नात्वा शुचिर्भूत्वा पश्येत्पशुपतिं न्युयः ॥ १२ ॥ उद्धरेत्सपितृन्व्यास पशुयोनिगतानपि ॥ सुवर्णमपि मुक्ताढ्यैर्विमानैस्सर्वकामैः ॥ १३ ॥ याति रुद्रपुरं दिव्यं यत्र देवो महेश्वरः ॥ रूपकुण्डे नरस्स्नात्वा सुरू पो जायेते तथा ॥ १४ ॥ स्वर्गं सदैव गन्धर्वैस्सृष्टहृणायव पुर्भवेत् ॥ कुण्डे स्नात्वा प्यनङ्गे यश्शुचिर्भूत्वा समाहितः ॥ १५ ॥ पश्येच्च देवदेवेश मनङ्गेनाचिंत्य भूरा ॥ कामं सलभते भीष्टं मृतो याति शिवालये ॥ १६ ॥ आघाते लुप्तिताष्टम्यां जागरं यस्तु कारयेत् ॥ केदारयत्फलं प्राक्तं तत्समानमवाप्नुयात् ॥ १७ ॥ करीकुण्डे नरस्स्नात्वा विश्वरूपं न्युयोजयेत् ॥ मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं सगच्छति ॥ १८ ॥ अजागन्धे नरः स्नात्वा दृष्ट्वा ब्रह्मेश्वरं शिवम् ॥ ब्रह्महत्यासंमपा पं तत्क्षणात्संव्यपोहति ॥ १९ ॥ चक्रतीर्थं नरस्स्नात्वा चक्रस्वामिनमर्चयेत् ॥ जायेते स नरो व्यास चक्रवर्ती सदाशु वि ॥ २० ॥ सिद्धेश्वरश्च यः पश्येत् स्नात्वा सुविधिपूर्वकम् ॥ कामिकेन विमानेन रुद्रलोकं सगच्छति ॥ २१ ॥ सोमव

होता है और मरकर शिवजी के स्थान को जाता है ॥ १६ ॥ और वहापर आषाढ़ महीने में शुक्लपक्षकी अष्टमी में जो जागरण करता है वह केदारक्षेत्र में जो फल कहा गया है उसके समान फल को पाता है ॥ १७ ॥ व जो पुरुष करीकुण्ड में नहाकर विश्वरूप शिवजी को पूजता है वह सब पापों से छुट जाता है और विष्णु जी के लोकको प्राप्त होता है ॥ १८ ॥ व अजागन्ध नामक तीर्थ में नहाकर व ब्रह्मेश्वर शिवजी को देखकर वह ब्रह्महत्या के समान पातक को उसीक्षण नाश करता है ॥ १९ ॥ और जो पुरुष चक्रतीर्थ में नहाकर चक्रस्वामी शिवजी को पूजता है वह हे व्यास जी ! सदैव चक्रवर्ती के समान पृथ्वी में होता है ॥ २० ॥ और जो

मनुष्य भलीभाँति विधिपूर्वक नहाकर सिद्धेश्वरजी को देखता है वह कामनासंयुत विमान के द्वारा शिवलोक को जाता है ॥ २१ ॥ और सोमवतीतीर्थ में नहा कर इसके अनन्तर जो पुरुष सोमेश्वर जी को देखता है वह चन्द्रमा के समान निर्मल होकर चन्द्रलोक में प्रसन्न होता है ॥ २२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदेवीदयाभिरुचिचितायांभापाटीकायासोमेश्वरादिवर्णननामसप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥

॥ • ॥

दो० । सोमवती नामक यथा भयो तीर्थ विख्यात । अतिसर्वे अध्याय में सोइ चरित आख्यात ॥ व्यास जी बोले कि सोमवती नामक तीर्थ व सोमेश्वर नामक

त्यान्नरस्नात्वा सोमेश्वरमथार्चयेत् ॥ सोमवन्निर्मलोभूत्वा सोमलोकैसमोदते ॥ २२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे सोमेश्वरादिवर्णननामसप्तत्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३७ ॥ * ॥ * ॥

व्यासउवाच ॥ तीर्थसोमवतीनाम लिङ्गसोमेश्वरन्तथा ॥ अभूदेतत्कथन्नाम श्रोतुमिच्छामितत्त्वतः ॥ १ ॥ सनत्कुमारउवाच ॥ शृणुव्यासयथोत्पन्नं सोमतीर्थमुशोभनम् ॥ सोमेश्वरन्तथालिङ्गमेतत्सत्यंवदामिते ॥ २ ॥ योदेवो भगवान्सोमो लोकस्याप्यायनं परम् ॥ आसीत्तस्यपुराव्यास पिताविप्रोमहातपाः ॥ ३ ॥ अवन्त्याञ्चमहाभागो यो त्रिनामातपोनिधिः ॥ वर्षाणां त्रीणि दिव्यानि सहस्राणितपोमहत ॥ ४ ॥ ऊर्ध्वबाहुस्सर्वैतेपे ब्रह्मध्यानपरायणः ॥ ऊर्ध्वगंतंततोव्यास ब्रह्मतेजोमहात्मनः ॥ ५ ॥ नेत्राभ्यांतस्यसुखाव काशयंश्चादिशोदश ॥ तेजस्तत्सहसादृष्ट्वा त

लिंग यह कैसे नाम हुआ है इसको मैं यथार्थ सुना चाहता हूँ ॥ १ ॥ सनत्कुमार जी बोले कि हे व्यासजी ! सुनिये कि जिस प्रकार अति उत्तम सोमतीर्थ उत्पन्न हुआ है व जिस भाँति सोमेश्वर लिंग हुआ है यह तुमसे सत्य कहता हूँ ॥ २ ॥ हे व्यास जी ! जो भगवान् सोमदेवजी लोक के परमवृत्तिकारक हैं पुरातन समय उनके पिता विप्र बड़े तपस्वी हुये हैं ॥ ३ ॥ जो तपस्या के निधान महाभाग अत्रि नामक उज्जैनी पुरीमें हुये हैं ब्रह्मध्यान में तत्पर उन ऊर्ध्वबाहु मुनिने देवताओं की तीन हजार वर्षोंतक बड़ी तपस्या किया है तदनन्तर हे व्यास जी ! उन महात्मा का ब्रह्मतेज ऊपर गया ॥ ४ ॥ और दशों दिशाओं को शोभित करता हुआ

वह तेज उनके नेत्रों से बह चला तदनन्तर आपही से देशों में उपजे हुये उस तेज को देखकर अचानकही ॥ ६ ॥ जब उस सबको धारण करने के लिये दिशाये न समर्थ हुई तब हे व्यास जी ! वह असह्य तेज दिशाओं से बह चला ॥ ७ ॥ और सब लोकों को प्रकाशित करता हुआ वह पृथ्वी में गिर पड़ा तदनन्तर उससे शीतल किरणोंवाला तथा मनुष्यों को प्यारा चन्द्रमा पैदा हुआ ॥ ८ ॥ व हे व्यास जी ! उसी तेजसे सोमानदी उत्पन्न हुई और अमृत से बहुतही पूरित वह नदी शिप्रा नदी में पैठ गई ॥ ९ ॥ उसी कारण बहुत पुण्यदायिनी सोमवती शिप्रा प्रसिद्ध है सोम से युक्त शिप्रा नदी को देखकर मनुष्य पातक को नाश करता

तो देशोद्भवंस्वतः ॥ ६ ॥ दिशश्चतयदाव्यास सर्वान्धर्तुमशक्नुवन् ॥ सुखावचतदादिग्भ्यस्तद्धितेजोतिदुस्सहम् ॥
७ ॥ लोकांश्चमासयन्सर्वान् धरण्यावैपपातह ॥ सोमोजातस्ततस्तेन शीतांशुश्चजनप्रियः ॥ ८ ॥ सरिस्सोमासमुत्प
न्ना व्यासतेनैवतेजसा ॥ प्रविष्टासानदीशिप्रा ममृतेनातिपूरिता ॥ ९ ॥ ततस्सोमवतीशिप्रा विख्याताह्यतिपुण्यदा ॥
सोमयुक्तानदीशिप्रां दृष्ट्वापापंव्यपोहति ॥ १० ॥ ख्याताचत्रिषुलोकेषु पापिनांपुण्यदायिनी ॥ ब्रह्महावासुरापोवा
स्तेयोवागुरुतल्पगः ॥ ११ ॥ चत्वारोप्यत्रपापेन मुच्यन्तेदर्शनाद्भुवम् ॥ अमासोमौयदायुक्तौ सोमवत्यांतदसुने ॥
१२ ॥ स्नानंदानंचयोधीमाञ्जपहोमंसमाचरेत् ॥ अक्षयंतस्यतत्सर्वं यावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥ १३ ॥ तिलोदकप्रदानेन
पिण्डदानेनकालिज ॥ अकालेकालिकीर्तुसि पितृणाञ्चयथोदिता ॥ १४ ॥ सर्वत्रदुर्लभाशिप्रा सोमस्सोमग्रहस्तथा ॥

॥ १० ॥ और पापियों को पुण्यदायिनी वह नदी तीनों लोकों में प्रसिद्ध है ब्रह्मघाती या मदिरा पीनेवाला व चोर अथवा गुरुकी शर्या पर बैठनेवाला या गुरु की स्त्री से व्यभिचार करनेवाला मनुष्य ॥ ११ ॥ चारों भी यहाँ दर्शन से निश्चय कर पातक से छूट जाते हैं हे मुने ! अमावस व सोमवार जब युक्त हों तब सोमवती में ॥ १२ ॥ जो बुद्धिमान् मनुष्य स्नान व दान, जप तथा होम करता है उसका वह सब तबतक अक्षय होता है जबतक कि चन्द्रमा व सूर्य रहते हैं ॥ १३ ॥ हे कालिज ! यद्वापर असमय में तिल व जल के दान से तथा पिण्डदान से पितरों की समयवाली यथोक्त तृप्ति होती है ॥ १४ ॥ सब कहीं शिप्रा नदी दुर्लभ है

और सोम व सोमग्रह तथो सोमेश्वर व सोमवार पांच सकार दुर्लभ है ॥ १५ ॥ हे व्यासजी ! शिप्रानदी व सोमतीर्थ का जल कोटितीर्थों के फलको देनेवाला है और अमावस व सोमवार के संयोगमें पितृतीर्थ के समान कहा गया है ॥ १६ ॥ यदि अमावस तिथिमें सोमवार व व्यतीपात होवै तो गयासे सौगुना फल सोमवती में कहा गया है ॥ १७ ॥ इस प्रकार हे महामुने ! यहां पर सोमवतीतीर्थ उत्पन्न हुआ है इसके अनन्तर पृथ्वी में गिरेहुये सोम को देखकर हे व्यासजी ! उन जगद्गुरु व वेदमय तथा धर्मज्ञ और सत्यसंग्रह ब्रह्माजी ने लोकों के हितकी कामना से उनको रथपै स्थापित किया ॥ १८ ॥ १९ ॥ उस समय हजार घोड़ों से संयुत रथ ब्रह्माजी

सोमेश्वरसोमवारससकाराः पञ्चदुर्लभाः ॥ १५ ॥ शिप्रामोमजलंव्यास कोटितीर्थफलप्रदम् ॥ अमामोमसमायोगे पितृतीर्थसमंस्मृतम् ॥ १६ ॥ अमायांसोमवारश्चेद् व्यतीपातोयदाभवेत् ॥ शतगुणंगयायास्तु सोमवत्यांप्रकीर्तितः ॥ १७ ॥ एवं सोमवतीतीर्थं जातमत्रमहामुने ॥ सोमं दृष्ट्वा तथपतितं त्रितौ ब्रह्मा जगद्गुरुः ॥ १८ ॥ रथे तं स्थापयामास लोकानां हितकाम्यया ॥ स तु वेदमयो व्यास धर्मज्ञ सत्यसंग्रहः ॥ १९ ॥ युक्तो वाजिसहस्रेण ब्रह्मणा प्रेरितस्तदा ॥ दृष्ट्वा सोमं ततो देवा रथे तं ब्रह्मणा युतम् ॥ २० ॥ तुष्टुबुधस्सर्वभावेन हृष्टाः सर्वे समाहिताः ॥ तस्य संस्तूयमानस्य तेजस्सोमस्य भास्वरम् ॥ २१ ॥ आप्यायमानं त्रील्लोकान् पपात धरणीतले ॥ ब्रह्मा तेन रथेनाथ सागरान्तां वसुन्धराम् ॥ २२ ॥ त्रिसप्तकृत्वोतिशयाच्चकार सप्रदक्षिणम् ॥ तस्य यत्पतितं तेजो व्याससोमस्य शीतलम् ॥ २३ ॥ तदेवौपधयो दिव्या जाता सुविमुनिर्मलाः ॥ याभिर्धियाँ ह्ययं लोकः प्रजाश्चैव चतुर्विधाः ॥ २४ ॥ तुष्टोथ भगवान्सोमो जगतस्सर्वदोमुने ॥ से प्रेरित हुआ तदनन्तर रथपै ब्रह्मा से संयुत चन्द्रमा को देखकर सावधान होतेहुये सब देवताओंने समस्तभाव से प्रसन्न होकर स्तुति किया स्तुति किये जातेहुये उन चन्द्रमा का प्रकाशवान् तेज ॥ २० ॥ २१ ॥ जो कि तीनो लोकों को तृप्तिकारक था वह पृथ्वी में गिरपड़ा इसके अनन्तर उस रथ से समुद्र अन्तवाली पृथ्वीकी ॥ २२ ॥ अतिशय से इक्कीसवार उन्होंने ने प्रदक्षिणा किया हे व्यासजी ! उन चन्द्रमा का गिरा हुआ जो शीतल तेज था ॥ २३ ॥ वही पृथ्वी में बहुत निर्मल व दिव्य ओषधिया हुई जिनसे कि यह संसार व चार प्रकार के प्रजा धारण किये जाते हैं ॥ २४ ॥ इसके अनन्तर हे मुने ! ससार को सब कुछ देनेवाले भगवान्

चन्द्रमाजी ने प्रसन्न होकर दश हज़ार वर्षों तक बड़ा असह्य तप किया ॥ २५ ॥ तदनन्तर लोकों के पितामह (ब्रह्मा) जी ने उन चन्द्रमाके लिये स्वामिताको दिया और बीजों व श्रोषधियों का चन्द्रमा राजा हुआ ॥ २६ ॥ और प्रचेता के पुत्र दत्त जीने चन्द्रमा के लिये नक्षत्रसंज्ञक महाव्रतवाली सचाईम दाक्षायणी स्त्रियों को दिया ॥ २७ ॥ उस समय उस बड़ी भारी राज्यको पाकर स्त्रियों से संयुत चन्द्रमा ने हजारों व सैकड़ों दक्षिणावाले राजसूय यज्ञका प्रारम्भ किया ॥ २८ ॥ उस में भगवान् आत्रिजी होता व भगवान् भृगुजी अध्वर्यु (यजुर्वेदी) और हिरण्यगर्भ ब्रह्माजी उद्गाता (सामवेदी) व ब्रह्मा ब्रह्मता को प्राप्तहुये ॥ २९ ॥ और सनका-
दशवर्षसहस्राणि तेषेतदुस्सहंतपः ॥ २५ ॥ ततस्तस्मैददौस्वाम्यं ब्रह्मलोकपितामहः ॥ वीजौषधीनांविप्राणां सोमोराजावभूवह ॥ २६ ॥ सप्तविंशतिसोमाय दाक्षायण्योमहाव्रताः ॥ पत्न्यःप्राचेतसोदत्तो ददौनक्षत्रसंज्ञकाः ॥ २७ ॥ सतत्प्राप्यमहद्राज्यं सोमोभार्यायुतस्तदा ॥ समारेभेराजसूयं सहस्रशतदक्षिणम् ॥ २८ ॥ होताचभगवानत्रिरध्वर्युर्भगवान्भृगुः ॥ हिरण्यगर्भश्चोद्गाता ब्रह्माब्रह्मत्वमेयिवान् ॥ २९ ॥ सदस्योभगवान्विष्णुस्सनकादिमुखैर्वृक्षमीस्तं देव्योदिव्यास्मिषेवरे ॥ ३० ॥ सिनीवालीकुहूश्चैव द्युतिःपुष्टिःप्रभावसुः ॥ कीर्तिर्धृतिश्चलन्दिशः ॥ ३१ ॥ तस्यतत्प्राप्यदुष्प्राप्यमैश्वर्यमृषिसंस्कृतम् ॥ विवभ्राममतिर्व्यास तदामृतमयस्यच ॥ ३२ ॥ बृहस्पतेस्तदाभार्यो तारानाम्नोयशस्विनीम् ॥ जहारतमसासाध्वीमवमान्याङ्गिरस्सुतम् ॥ ३३ ॥ वाच्यमानस्तदासोमो
दिकों से संयुत भगवान् विष्णुजी सदस्य हुये उन चन्द्रमा ने सावधान होकर तीन लोक दक्षिणा दिया ॥ ३० ॥ और सिनीवाली, कुहू, द्युति, पुष्टि, प्रभाव, वसु, कीर्ति, धृति व लक्ष्मी इन दिव्य देवियों ने उन चन्द्रमा की सेवा किया ॥ ३१ ॥ और सब देवियों से पूजित तथा विकलतारहित चन्द्रमा ने अवभृथ याने यज्ञान्त स्नानको पाकर दशों दिशाओंको प्रकाशित करताहुआ शोभित भया ॥ ३२ ॥ हे व्यास जी! ऋषियों से संस्कार कियेहुये उस दुर्लभ ऐश्वर्यको प्राप्त होकर उससमय उन अमृतमय चन्द्रमा की बुद्धि अभित होगई ॥ ३३ ॥ तब आङ्गिराके पुत्र बृहस्पतिजी को अपमान कर उन बृहस्पति की तारा नामक यशस्विनी तथा उत्तम आचरण

वाली स्त्रीको अज्ञान से हरलिया ॥ ३४ ॥ उस समय देवताओं तथा देवर्षियों से निन्दा किये जातेहुये चन्द्रमा ने उन अङ्गिरा के पुत्र बृहस्पति जी के लिये तारा को नहीं विदा किया ॥ ३५ ॥ उमके उपरान्त इन्द्र ने क्रोधसे बृहस्पति का पक्ष लिया क्योंकि वे बड़े तेजस्वी इन्द्रजी पितापूर्वक बृहस्पतिजी के शिष्य थे ॥ ३६ ॥ तदनन्तर हे व्यासजी ! वहाँ पर इन्द्र व बृहस्पति का तथा देवताओं व दैत्यों का भयानक तथा भयङ्करक बड़ा भारी युद्धहुआ ॥ ३७ ॥ तदनन्तर डरहेये मन्त्र देवता ब्रह्मा के शरणमें गये और उन्होंने ब्रह्माके आगे चन्द्रमा व इन्द्र के युद्धको कहा ॥ ३८ ॥ देवताओं के वचन को सुनकर देवताओं समेत ब्रह्माजी ने युद्धके समय में

देवैर्देवर्षिभिस्तथा ॥ नैवव्यसर्जयत्तारां तस्माद्वाङ्गिरसायच ॥ ३५ ॥ बृहस्पतेस्ततः पक्षं शक्रोजग्राहकोपतः ॥ सहि शिष्योमहातेजाः पितुः पूर्वबृहस्पतेः ॥ ३६ ॥ ततोयुद्धमभूत्तत्र सुधोरंशक्रसोमयोः ॥ देवानां दानवानाञ्च व्यासत्रासं कुरंमहत ॥ ३७ ॥ सर्वेभीतास्ततो देवा ब्रह्माणं शरणङ्गताः ॥ अग्रतो ब्रह्मणो युद्धं कथितं सोमशक्रयोः ॥ ३८ ॥ देवानां वचनं श्रुत्वा मादुर्दैवैः पितामहः ॥ आगत्य युद्धसमये वारयद्देवदानवान् ॥ ३९ ॥ वारितास्ते स्थितास्तत्र युद्धं त्यक्त्वा सु रासुराः ॥ तारामादाय सतदा ददावाङ्गिरसे द्विज ॥ ४० ॥ ताञ्च सप्रसवां दृष्ट्वा आहभार्यां बृहस्पतिः ॥ अन्यदीयोनतेयोन्यां गर्भो धार्यः कथञ्चन ॥ ४१ ॥ उत्ससर्जतस्तारा कुमारन्देवरूपिणम् ॥ ऐषिकास्त्रं समादाय ज्वलन्तमिव पावकम् ॥ ४२ ॥ स तेजो जातमात्रोपि देवानामाक्षिपद्यशः ॥ ततस्संशयमापन्ना ऊचुस्तारा न्दिवौ कसः ॥ ४३ ॥ कस्यायं ब्रूहि सु

आकर देवताओं तथा दानवों को मना किया ॥ ३९ ॥ वहाँ पर मना कियेहुये वे देवता व दैत्य युद्धको छोडकर स्थित हुये और हे द्विज ! उस समय उन चन्द्रमा ने तारा को लेकर बृहस्पति के लिये दिया ॥ ४० ॥ और प्रसव समेत याने गर्भिणी उस स्त्री को देखकर बृहस्पति जी बोले कि अन्य पुरुष का गर्भ तुमको योनि में किसी प्रकार न धारण करना चाहिये ॥ ४१ ॥ तदनन्तर देवरूपी कुमार को ताराने त्याग दिया जैसे कि ऐषिक अस्त्रको लेकर जलतेहुये अग्निजी होवै ॥ ४२ ॥ पैदा होतेही उस बालक ने देवताओं के तेज व यशको आक्षेप किया तदनन्तर संशय को प्राप्त होतेहुये देवताओं ने तारासे कहा ॥ ४३ ॥ कि हे सुभगे ! यह पुत्र किसका है

चन्द्रमाका या बृहस्पति कहै ताराने देवताओं से न कहा फिर ब्रह्माने उससे पूछा ॥ ४४ ॥ कि हे तारे ! इस विषयमे जो सत्य हो उसको कहिये कि यह किसका पुत्र है हाथों को जोड़े हुई वह तारा वरदायक व व्यापक ब्रह्मा जी से यह बोली ॥ ४५ ॥ कि देवताओंके समान यह महासौम्य कुमार चन्द्रमा का है ब्रह्मा जीने चन्द्रमा के उस पुत्र को जानकर लिपटाकर ॥ ४६ ॥ उससमय उस पुत्र का बुध ऐसा नाम किया पराई स्त्रीके हरने से जो शरीर को असह्य पाप था ॥ ४७ ॥ उससे चन्द्रमा जी उससमय क्षयरोगसे संयुत होकर कुष्ठी हुये तदनन्तर विधिपूर्वक राज्यपै अपने पुत्रको स्थापितकर ॥ ४८ ॥ जितेन्द्रिय सोमजी सोमवारके दिन अमावसके संयोग

भगे सोमस्याथबृहस्पतेः ॥ नाचचक्षेदेवतानां वेधाःप्रच्छताम्पुनः ॥ ४४ ॥ यदन्नसत्यंतद्ब्रूहि तारेकस्यसुतोह्यम् ॥ साप्राञ्जलिरुवाचेदं ब्रह्माणंवरदंविभुम् ॥ ४५ ॥ सोमस्येतिमहासौम्यः कुमारोदेवसन्निभः ॥ सोमस्यतंसुतंज्ञात्वा परिष्वज्यपितामहः ॥ ४६ ॥ बुधइत्यकरोन्नाम तस्यपुत्रस्यवैतदा ॥ परदारापहाराच्च यत्पापंतनुदुस्सहम् ॥ ४७ ॥ तेन सोमोभवत्कुष्ठीक्षयरोगयुतस्तदा ॥ ततोराज्येस्वकंपुत्रंस्थापयित्वायथाविधि ॥ ४८ ॥ अवन्तीमाजगामाशु सोमोदेव दिदृक्षया ॥ सोमाहेसोमवत्याञ्च अमायोगेजितेन्द्रियः ॥ ४९ ॥ स्नात्वासस्पृजयामास सोमस्सोमेइवरततः ॥ तस्यंभक्त्याचसन्तुष्टः प्राहसोमंमहेइवरः ॥ ५० ॥ मत्प्रसादाद्वपुःकान्तं तवसोमभविष्यति ॥ सोमेइवरमितिख्यातं भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ॥ ५१ ॥ एवन्तुव्यासतत्तीर्थं लिङ्गंचैवातिदुर्लभम् ॥ कथितंतथ्यभावेन मयातुष्टेनसाम्प्रतम् ॥ ५२ ॥ श्रावणंप्राप्ययोमासं सोमनाथंजितेन्द्रियः ॥ नित्यंपश्येन्नरोव्यास तस्यपुण्यफलंशृणु ॥ ५३ ॥ सौराष्ट्रेसोमना

में सोमवती में शिवदेवजी के दर्शनकी इच्छासे अवन्ती (उज्जैनी) पुरीमें शीघ्रही गये ॥ ४९ ॥ तदनन्तर सोमवती तीर्थ में नहाकर चन्द्रमाने सोमेश्वरजीको पूजन किया उनकी भक्तिसे प्रसन्न होतेहुये महेइवर देवजी चन्द्रमा से बोले ॥ ५० ॥ कि हे सोमजी ! मेरी प्रसन्नतासे तुम्हारा सुन्दर शरीर होगा भुक्ति व मुक्ति का देनेवाला सोमेश्वर ऐसा लिङ्ग प्रसिद्ध है ॥ ५१ ॥ इसप्रकार हे व्यासजी ! उस तीर्थ व अतिदुर्लभ लिङ्गको प्रसन्न होतेहुये मैंने इस समय सत्यता से कहा है ॥ ५२ ॥ हे व्यास जी ! श्रावणमास को प्राप्त होकर जो जितेन्द्रिय पुरुष नित्य सोमनाथजीको देखताहै उसके पुण्य का फल सुनिये ॥ ५३ ॥ कि सौराष्ट्रदेश में सोमनाथ के प्रतिदिन

पूजन के फलको वह मनुष्य पाता है हे व्यासजी ! इस विषय में विचार न करना चाहिये ॥ ५४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचितायाभाषा ॥

टीकायासोमवतीतीर्थमाहात्म्यनामाष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥

दो० । प्रापिजन जेहि नरक में जो दुख पावत जाय । उन्तालिसवें में कछो सोइ चरित सुखदाय ॥ सनत्कुमार जी बोले कि इस समय इस नरकतीर्थ के माहात्म्य को सुनिये कि नरकतीर्थ में नहाकर व महेश्वर देव जी को देखकर ॥ १ ॥ मनुष्य कभी नरक को नहीं देखता है यद्यपि ब्रह्मवाती भी होवै व्यास जी बोले कि

थस्य पूजायाः प्रत्यहं फलम् ॥ लभते स नरोऽन्यास नात्र कार्या विचारणा ॥ ५४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे सो

मवतीतीर्थमाहात्म्यन्नामाष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥

सनत्कुमार उवाच ॥ तीर्थस्य नरकस्यास्य माहात्म्यं शृणु साम्प्रतम् ॥ तीर्थे च नरके स्नात्वा दृष्ट्वा देवं महेश्वरम् ॥ १ ॥ न पश्येन्नरकं कापि यद्यपि ब्रह्महा भवेत् ॥ व्यास उवाच ॥ कियन्तो नरकास्तात कस्मिन् स्थाने प्रतिष्ठिताः ॥ २ ॥ तन्ति केन पापेन पापिनस्तेषु दुःखिताः ॥ तत्कथं प्राणिनस्तत्र गच्छन्ति पापकारिणः ॥ ३ ॥ एतत् सर्वं समाख्याहि यदि तुष्टोसि मे प्रभो ॥ ४ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ शृणुष्व नरकान्यास यावन्तो यत्र संस्थिताः ॥ न लभ्यन्ते यथा ते तु सत्यमेतद् दामि ते ॥ ५ ॥ पातालानि लयास्सर्वे विख्याता दुःखदास्सदा ॥ पुण्यप्लावेन ते सर्वे तिर्यग्यान्ति स्वकर्मभिः ॥ ६ ॥

गौरवशूकरो रौद्रस्तालो विनशकस्तथा ॥ तप्तकुम्भस्तु तप्तायो महाज्वालस्तथैव च ॥ ७ ॥ कुम्भीपाकः क्रकचनस्तथा हे तात ! कितने नरक हैं व किस स्थान में प्रतिष्ठित है ॥ २ ॥ और किस पाप से दुःखित पापी लोग उन में गिरते हैं और वह कैसा है कि पापकारी प्राणी वहां को जाते हैं ॥ ३ ॥ हे प्रभो ! यदि मेरे ऊपर प्रसन्न हो तो इस सब वृत्तान्त को कहिये ॥ ४ ॥ सनत्कुमार जी बोले कि हे व्यासजी ! जहां पर जितने स्थित हैं उन नरकों को सुनिये कि जिस प्रकार वे नहीं मिलते हैं यह मैं तुमसे सत्य कहता हूं ॥ ५ ॥ कि पाताल में स्थानवाले वे सब सदैव दुःखदायक प्रसिद्ध हैं और पुण्य के नाश से वे सब अपने कर्मों से तिर्यग्योनि में प्राप्त होते हैं ॥ ६ ॥ रौद्र, शूकर, रौद्र, ताल, विनशक, तप्तकुम्भ, तप्ताय और महाज्वाल ॥ ७ ॥ व. कुम्भीपाक, क्रकचन और

अतिदारुण, कुमिसुक्ति, रत्नाख्य, लालामन्त्रक व गंडक ॥ ८ ॥ अधोमुख, आस्थिभंग, यंत्रपीडनक, संदेश, रुधिरांग, असिपत्र व कुभोजन ॥ ९ ॥ इत्यादिक सब नरक बहुतही भयङ्कर है जो कि यमराज के स्थान में भयदायक प्रसिद्ध हैं ॥ १० ॥ उन में वे पुरुष गिरते हैं जो कि पापकर्मों में परायण होते हैं और गिरहुये वे पुरुष कर्मों के अनुसार पचते हैं ॥ ११ ॥ व विचित्र पीडाओं से बहुतही भयङ्कर कर्मका नाश होता है तर्चीहुई शृङ्खला (जंजीर) से हाथों को दृढ़तापूर्वक बाँधकर मनुष्य ॥ १२ ॥ बड़े भारी वृक्ष के शिखरों में यमदूतों से लटकाये जाते हैं और अपने कर्मों को शोचते हुये वे पुरुष निश्चल होकर चुप-चैवातिदारुणः ॥ कुमिसुक्तिश्चरत्ताख्यो लालामन्त्रश्चगण्डकः ॥ ८ ॥ अधोमुखश्चास्थिभङ्गो यन्त्रपीडनकस्तथा ॥ सन्दंशोरुधिराङ्गश्च असिपत्रकुभोजनौ ॥ ९ ॥ इत्येवमादयस्सर्वे नरकाभ्युदाहरणाः ॥ यमस्य विषये सन्ति श्रुता हि भयदायिनः ॥ १० ॥ पतन्ति पुरुषास्तेषु पापकर्मरताश्च ये ॥ पतिताश्च प्रपच्यन्ते नराः कर्मानुरूपतः ॥ ११ ॥ यातनाभिर्विचित्रा भीरौद्रकर्मक्षयोभृशम् ॥ सुगाढं हस्तयोर्वद्धा तप्तशृङ्खलया नराः ॥ १२ ॥ महावृक्षस्य शृङ्गेषु लम्ब्यन्ते यमकिङ्करैः ॥ शोचन्तः स्वानिकर्माणि तूष्णीं तिष्ठन्ति निश्चलाः ॥ १३ ॥ अग्निवर्णैः शङ्कुभिश्च लोहदण्डैस्सकण्टकैः ॥ हन्यन्ते किङ्करैर्धौरैस्समन्तात्पापकारिणः ॥ १४ ॥ ततः क्षणात्प्रतप्यन्ते वह्निना च विशेषतः ॥ समन्ततः प्रक्षिप्यन्ते कृत्ताश्च जर्जरीकृताः ॥ १५ ॥ कूटसाक्ष्यं तथा सम्यक्पक्षपातेन यो वदेत् ॥ यश्चान्यदन्तं ब्रूयात्स नरो याति रौरवम् ॥ १६ ॥ सुरापो ब्रह्माहर्ता सुवर्णस्य च शूकरम् ॥ प्रयान्ति नरकश्चैव तैस्संसर्गमुपैति यः ॥ १७ ॥ अणूहा गुरुहन्ता च गोघ्नश्च मुनिसत्तम ॥ चापस्थितो हते है ॥ १३ ॥ और पापकारी पुरुष अग्नि के समान कीलों से व कौटों समेत दण्डों के द्वारा भयानक यमदूतों से सब ओर मारे जाते हैं ॥ १४ ॥ तदनन्तर क्षण भरमें विशेषकर अग्निसे तचाये जाते हैं व काटे तथा जर्जर किये हुये वे नर सब ओर फेंके जाते हैं ॥ १५ ॥ वैसेही जो पुरुष पक्षपात से भूठी गवाही कहता है और जो अन्य भूँठ कहता है वह पुरुष रौरव नरक को प्राप्त होता है ॥ १६ ॥ और मदिरा पीनेवाला व ब्रह्मघाती तथा सुवर्ण को चुरानेवाला और जो पुरुष उनसे संसर्ग (मेल) को प्राप्त होता है वे नर शूकर नामक नरकको जाते हैं ॥ १७ ॥ व हे मुनिश्रेष्ठ ! गर्भघाती, गुरुघाती व गोघाती ये पुरुष रौद्रनामक नरकको जाते

हैं और जो विद्वामघाती हैं वे भी गैडनरकको प्राप्त होते हैं ॥ १८ ॥ और स्वर्णको चुरानेवाला नर वैतालनामक नरक में जाता है और जो निन्दितकर्म करता है व जो गौवों को मना करता है ॥ १९ ॥ वह पुरुष अतिभयानक विनशक नामक नरक में जाता है और जो स्वामी से द्रोह करनेवाला भयंकर पुरुष है वह तप्तकुम्भ नरक में गिराया जाता है ॥ २० ॥ और जो भक्तको छोड़ता है वह तप्तलोह नरक में पचता है व जो पतोहू तथा कन्या से संग करता है वह महाज्वाल नामक नरक में गिराया जाता है ॥ २१ ॥ और देवताओंके दूषक व वेदों के बेचनेवाले पुरुष ऊपर पांवों से उपलब्धित होकर नीचे सुखकरके कुम्भीपाक

यान्त्येतेनरकरोद्रं येचविश्वामघातकाः ॥ १८ ॥ स्वर्णस्तेयीचवेताले तथेवशुस्तल्पगः ॥ करोतिकर्मैवेनिन्द्यं यश्चगाः प्रति
पेधयेत् ॥ १९ ॥ नरोविनशकेयाति नरकेभृशदारुणे ॥ स्वामिद्रोहीचयोरौद्रस्तप्तकुम्भेसपात्यते ॥ २० ॥ तप्तलोहेषुप
च्येत यस्तुभक्तं परित्यजेत् ॥ स्नुषां सुताञ्च योगच्छेन्महाज्वाले सपात्यते ॥ २१ ॥ कुम्भीपाके प्रयात्येव पादैरुद्ध्वैर
धोमुखः ॥ देवदूषयितारश्च वेदविक्रयकास्तथा ॥ २२ ॥ परस्त्रीगामिनो ये च यान्तिककचनेतुते ॥ चौरौ तिदारुणे याति
मर्यादाभेदकस्तथा ॥ २३ ॥ देवद्विजपितृहेष्टा रत्नदूषयिता च यः ॥ स याति कृमिभक्षे रक्ताख्ये च पतन्ति वै ॥ २४ ॥ पि
तृदेवगुरूणाञ्च सपर्योनकरोति यः ॥ लालाभक्षे स यात्युग्रकूटकर्मकरोति यः ॥ २५ ॥ अन्त्यजेभ्योऽग्रहीता च नरके या
त्यधोमुखे ॥ अस्थिमङ्गप्रयात्येव एको मिष्टान्नमुद्गरः ॥ २६ ॥ कृतघ्नः पिशुनः क्रूरः कूटमानी विडम्बकः ॥ यन्त्रपी

नरक में जाता है ॥ २२ ॥ और जो पराई स्त्री के निकट जानेवाले हैं वे ककचन नामक नरक को जाते हैं और मर्यादा को तोड़नेवाला व चोर अतिदारुण नरक में प्राप्त होता है ॥ २३ ॥ और देवता, ब्राह्मण व पितरों से वैर करनेवाला और जो स्त्रियों को दूषण देनेवाला होता है वह कृमिभक्ष नरक में और रक्तनामक नरक में प्राप्त होता है ॥ २४ ॥ और पितर, देवता व गुरुवर्गों को सेवा नहीं करता है व जो कूट याने कपटके कर्मको करता है वह लालाभक्ष नामक उग्र नरक में जाता है ॥ २५ ॥ और चाण्डालों से धन ग्रहण करनेवाला पुरुष अधोमुख नामक नरक में जाता है और एकही मिष्टान्न भोजन करनेवाला पुरुष अस्थिभग नामक नरक में जाता है ॥ २६ ॥

और कृतघ्न, दुगुल, क्रूर व कपटसे मान करनेवाला, विडम्बना करनेवाला और अन्यकी द्विपीहुई वस्तुको प्रकाश करनेवाला पुरुष यन्त्रपीडन नामक नरक में प्राप्त होता है ॥ २७ ॥ और लाज, मास व रसोंको बेचनेवाला और तिलोंका व रसका बेचनेवाला ब्राह्मण सेंदश नरकमें जाता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ २८ ॥ और मधुहा शाने शहद की मक्खियों को मारनेवाला व ग्रामनाशक पुरुष वैतरणी नदी में प्राप्त होता है और जो नर कर्म, मन व वचन से वर्ण व आश्रम के विरुद्ध कर्मको करते है वे महानदी में प्राप्त होते है और गुरुओं को अपमान करनेवाला व जो शालोंका दूषण देनेवाला है ॥ २९ ॥ ३० ॥ वैसेही पर्वोंका उल्लंघन करनेवाला पुरुष असिप-

डनकेयाति परगुह्यप्रकाशकः ॥ २७ ॥ लान्नामांसरसानाञ्च तिलानाञ्चरसस्यच ॥ विक्रयीब्राह्मणोयाति सन्दंशे
नान्नसंशयः ॥ २८ ॥ मधुहाग्रामहन्ताच यातिवैतरणीनदीम् ॥ वर्णाश्रमविरुद्धं कर्मकुर्वन्ति येनराः ॥ २९ ॥ कर्म-
णामनसावाचा महानद्यांप्रयान्ति ते ॥ गुरुणामवमन्ताचशाल्मदूषयिताचयः ॥ ३० ॥ असिपत्रेप्रयात्येवतथापर्ववि-
लङ्घकः ॥ धनयौवनमत्ताये मर्यादाभेदिनोनराः ॥ ३१ ॥ तेयान्तिनरकेधोरे असिपत्रेतिदारुणे ॥ असंस्कृतश्चर्यो
विप्रो दृषलीसेवतेतुवै ॥ ३२ ॥ दृषलीमिथुनाच्चैव पततस्ताबुभावपि ॥ उच्छिष्टायेस्पृशन्तीह गामग्निजननीद्वि-
जान् ॥ ३३ ॥ तेपच्यन्तेकुभोज्येहि मित्रद्वेषीविशेषतः ॥ पङ्क्तिभेदंदिवास्वप्नं येनराब्रह्मचारिणः ॥ ३४ ॥ पुत्रैर-
ध्यापितायेवै तेपतन्ति कुभोजने ॥ एतेचान्येचनरकाः शतशोथसहस्रशः ॥ ३५ ॥ तत्रदुष्कृतकर्माणः पच्यन्तेया

त्रवननामक नरक में प्राप्त होता है और धन व यौवननो मत्त व मर्यादाको तोड़नेवाले जो पुरुष होते हैं ॥ ३१ ॥ वे असिपत्र नामक बड़े भयंकर व घोर नरक में प्राप्त होते हैं और संस्काररहित जो ब्राह्मण शूद्रा स्त्री को सेवता है ॥ ३२ ॥ शूद्राके मैथुनसे वे दोनों भी नरक में पतित होते है और इस ससारमें जो जुंटे पुरुष गऊ, अग्नि, माता व ब्राह्मणों का स्पर्श करते हैं ॥ ३३ ॥ वे कुभोज्य नामक नरक में पचते हैं और मित्रसे द्वेष करनेवाला नर विशेषकर उस नरक में पचता है और जो ब्रह्मचारी पुरुष पंक्तिभेद व दिनसे शयन करते हैं ॥ ३४ ॥ और जो पुत्रों से पढ़ाये जाते हैं वे कुभोजन नामक नरकमें पतित होते है ये और अन्य सैकड़ों व हजारों नरक

१४३
कं०पु०

दो० । अहं दीपकं दानकरं जौनं सुभगं माहात्म्यम् । चालिसवें अध्यायमें सोइ चरित' सवात्स्य ॥ व्यासजी बोले कि हे तात ! इस प्रकार मैं जब और जिस विधि से वह दिया जाता है उस सब उत्तम चरित्र व दीपक की उत्पत्तिको मुझ से कहिये ॥ १ ॥ सनत्कुमारजी बोले कि पुरातन समय सतयुग में जब शिवजी पार्वतीजी से याचना करने के लिये गये तब उन पार्वतीने भी उन सदाशिवजी से याचना किया ॥ २ ॥ पार्वतीजी बोलीं कि हे शम्भो ! मेरे शरीर में रूप

को हरनेवाली श्यामता है इसलिये हे दिव्यनयन, शङ्करजी ! मैं बहुतही याचना करतीहूँ कि प्रसन्न हूँजिये ॥ ३ ॥ शिवजी ने उनसे कहा कि तुम मुझको बहुतही उत्तम लगती हो जैसे कि पद्म याने पलकों की पंक्तिसे सदैव लोचन बहुतही शोभित होते हैं ॥ ४ ॥ व जैसे श्वेत कमल पै भलीभांति बैठाहुआ अमर उसको शोभित करता है उन पार्वतीजी वृषासन धूर्जटि इन शिवजी से वैसेही याचना किया ॥ ५ ॥ कि विरूप व रूपके करनेवाले तुम जब मेरे वचन को न सुनोगे तब मैं उत्तम वैराग्यसे कठिन तप करूंगी ॥ ६ ॥ उन पार्वतीजी से कहेहुये शिवजीने भी उसके हाथको पकड़लिया और कभी शिवदेवजी ने उन प्यारी पार्वतीजी से रति

अतीवशोभनामम ॥ लोचनेपक्षमपङ्क्त्यैव शोभतेतितरांसदा ॥ ४ ॥ सिताब्जसंस्थितोभृङ्गो यथाशोभयतेचतम् ॥
तयातथायाचितोसौ धूर्जटिर्दृष्टभासनः ॥ ५ ॥ विरूपरूपकर्तात्वं नशृणोषिवचोयदा ॥ तदात्वहंसुवैराग्याच्चरयंदु
ष्करन्तपः ॥ ६ ॥ भवस्तयापिचोक्तस्तु तस्यावैपाणिमग्रहीत् ॥ कदाचिच्चङ्करोदेवो रतियाचितवान्प्रियाम् ॥ ७ ॥ रतिद
त्तवतीसातु जहांसनामर्कतयन् ॥ सुदुःखिताभवत्सातु तंविहायपराङ्मुखी ॥ ८ ॥ उवाचरोषसंयुक्ता स्मरन्तीदेवभाषि
तम् ॥ तपोवनं व्रजाम्यद्य सुगौरत्त्वोपलब्धये ॥ ९ ॥ सुवर्णरूपरूपिणी यदापुनर्भवामिचेत्तदातवानुरागिणी भवामिचै
वनान्यथा ॥ १० ॥ इतीदमेवजल्पती जगामविन्ध्यपर्वतं हरश्शुशोचतान्ततो गताक्कसाविहायमाम् ॥ ११ ॥ स्मरत्त
देवचेष्टितं यदेवपूर्वभाषितं तदैवमेवमथामतिर्मुदायदानमानिता ॥ १२ ॥ यतोमयाहिमाद्रिजा समस्तलोकमुन्दरी

मांगा ॥ ७ ॥ और उन पार्वतीजीने रति दिया व नाम कहेतेहुये शिवजी हसे और बहुत दुःखित होतीहुई वे पार्वतीजी उनको छोडकर विमुख हुई ॥ ८ ॥ और शिव देवजी के वचन को स्मरण करती हुई क्रोधसंयुत पार्वतीजी बोली कि आजही मैं उत्तम गौराको पानेके लिये तपोवनको जातीहूँ ॥ ९ ॥ यदि मैं सोनेके समान रूपवती फिर जब होऊंगी तब तुम्हारी प्रेमवती होऊंगी अथवा न होऊंगी ॥ १० ॥ इसप्रकार इसी वचनको कहतीहुई पार्वतीजी विन्ध्याचल पर्वत पै गई तदनन्तर शिवजीने उन का शोचकिया कि वे पार्वतीजी मुझको छोडकर कहाँ गई ॥ ११ ॥ शिवजीने उसी कर्मका स्मरणकिया जोकि पहले कहा था तभी मेरी बुद्धि वृथा होगई थी जब कि

भैंने हर्षसे उनको नहीं मानाथा ॥ १२ ॥ जिसलिये मैंने सब लोकों में सुन्दरी हिमालयकी कन्याकी पहलेही प्रशंसा नहीं किया इसीकारण मुझको छोड़कर वे चलीगई ॥ १३ ॥ उन शिवजी ने यही कहा तदनन्तर अन्तर्द्धान होगये कि मैं प्यारी पार्वतीजी के ऐसे भारी वियोग को सहने के लिये नहीं उत्साह करताहूँ ॥ १४ ॥ तदनन्तर उससमय संसार बड़े भय से सयुत हुआ और देवता, दैत्य वं महर्षिलोग बड़े विपादको प्राप्तहुये ॥ १५ ॥ और घरोंको छोड़कर वे बड़े दुःखको प्राप्त हुये तथा उन्होंने विष्णुजी की अद्भुत उपमावाली उत्तम स्तुति किया ॥ १६ ॥ सनत्कुमारजी बोले कि जब बालचन्द्रमा भालवाले शिवदेवजी न देखपड़े तब

पूरैवनाभिनन्दिता गताविहायमामिति ॥ १३ ॥ इतीदमेवसोवदद्गतस्त्वदर्शनंततः ॥ प्रियावियोगमीदृशं गुरुन्नसोढुमुत्सहे ॥ १४ ॥ ततो जगत्तदाभवन्महाभयेन संयुतम् ॥ सुरासुरामहर्षयः परं विषादमभ्यगुः ॥ १५ ॥ विहायमन्दिराणिते परं विषादमागताः ॥ हरेस्स्तुतिं परावृत्ते प्रचक्रुर्द्धृतोपमाम् ॥ १६ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ न दृश्यते यदारुद्रो देवो बालेन्दुशेखरः ॥ नष्टालोकं जगत्सर्वं कान्तारमभवत्तदा ॥ १७ ॥ त्रीणि नेत्राणि रुद्रस्य यतस्सूर्येन्दुबह्वयः ॥ गते रुद्रे न ते भान्ति जगत्पस्मिन् शराचरे ॥ १८ ॥ ततस्त्वमसिदुस्तारे सम्भूते लोमहर्षणे ॥ अन्योन्यं हिनपश्यन्ति सुरा दैत्यास्तमो वृताः ॥ १९ ॥ एषा बुद्धिस्ततस्तेषामुत्पन्ना कार्यसिद्धये ॥ यथा बुद्ध्या जगन्नाथो ज्ञायते पार्वतीपतिः ॥ २० ॥ न ह्यालोको विना ते न शशिसूर्याग्निचक्षुषा ॥ परं परं ब्रुवन्ति स्म दुःखितास्ते विसंज्ञया ॥ २१ ॥ हे देव हे सुने सिद्ध हे ऋषे हे निशा

नष्ट प्रकाशवाला समस्त संसार वन होगया ॥ १७ ॥ जिसलिये कि सूर्य, चन्द्रमा व अग्नि ये तीन शिवजी के नेत्र हैं उसीकारण शिवजीके अन्तर्द्धान होनेपर इस चराचर संसार में वे नहीं प्रकाश करते थे ॥ १८ ॥ तदनन्तर रामहर्षण व दुःखसे पार होनेवाले अन्धकार के उत्पन्न होनेपर अन्धकार से घिरेहुये देवता, दैत्य आपस में नहीं देखते थे ॥ १९ ॥ तदनन्तर कार्यकी सिद्धिके लिये उनके वह बुद्धि उत्पन्न हुई कि जिस बुद्धि से जगदीश व पार्वतीजी के पति शिवजी जाने जाते हैं ॥ २० ॥ चन्द्रमा, सूर्य व अग्नि नेत्रवाले उन शिवजी के बिना प्रकाश नहीं है इसप्रकार अचैतन्यतासे दुःखित होतेहुये उन्होंने ने आपस में ऐसा कहा ॥ २१ ॥

कि हे देव, हे मुने, हे सिद्ध, हे ऋषे, हे निशाचर, हे दैत्य, हे दनुश्रेष्ठ, हे मनुष्यनिदेशक ! ॥ २२ ॥ हे तात ! तुम किस दिशाको चलेगये हे विभो ! तुम ने किस को पाया और तुम्हारे विश्राम का स्थान कहीं है व तुम्हारा क्या अवलम्ब है ॥ २३ ॥ और तुम्हारे कुछ मार्गव्यय है और कहां तुम स्थानवाले हो और प्रकाश, बाहन, छत्र, भोजन, शयन व घर ॥ २४ ॥ व निवास कहां है और तुम्हारे चित्तको आनन्द किसप्रकार होता है व हे तात ! बन्धु या पुत्र है और उत्तम व शीतल वृक्षों की छाया है ॥ २५ ॥ इसप्रकार आपस में करुणापूर्वक वचन भलीभांति कहकर फिर इन्द्र आदिक सब देवता चिन्तामें तत्परहुये ॥ २६ ॥ पृथ्वी के बिलमें आश्रित चर ॥ हे दैत्यहे दनुश्रेष्ठ हे मनुष्यनिदेशक ॥ २२ ॥ गतौसिकान्दिशंतात कोबालवधस्तवयाविभो ॥ कचविश्रामभू मिस्ते किंस्विदालम्बनन्तव ॥ २३ ॥ पार्थेयमस्ति किञ्चित्तेदैशिकोवाथकुत्रचित् ॥ प्रकाशंवाहनंछत्रमशनंशयनंगृह म् ॥ २४ ॥ कचवासःकथन्तेचाप्यथवाचित्तनिवृत्तिः ॥ बन्धुःपुत्रोस्तिवातात वृक्षच्छायासुशीतला ॥ २५ ॥ एवंप्र कारंकरुणं समाभाष्यपरस्परम् ॥ भूयश्चिन्तापरास्सर्वे देवाश्चेन्द्रपुरोगमाः ॥ २६ ॥ भूमेर्विवरमाश्रित्य प्राणिनोयेव सन्त्यपि ॥ रसातलेचदैत्यास्संस्थिताःपद्मगाश्चये ॥ २७ ॥ नतेषांविद्यतेसूयो नेन्दुर्नान्येमहाग्रहाः ॥ नाग्निर्देवमुखं विद्युन्नैवतारककोटयः ॥ २८ ॥ केनालोकैकपश्यन्ति समानिविषमाणिच ॥ नरकस्थानरालोकं केनपश्यन्त्यलोकना त् ॥ २९ ॥ विचरंस्तुसनःकोवा मनोरथशतप्रदः ॥ तृष्णाम्भुधितान्नञ्च श्रान्तानामथवाहनम् ॥ ३० ॥ श्रमेशय्या जलेनौश्च रागेस्तत्परिचारकः ॥ श्रेष्ठौषधिरसद्रोगे सम्पदोव्याधिसङ्कटे ॥ ३१ ॥ सुहृदिदेशेऽव्यायोषणे निर्धूमिश्शशि होकर जो प्राणी बसते हैं व रसातल में जो दैत्य व नाग भलीभांति टिके थे ॥ २७ ॥ उनके सूर्य, चन्द्रमा व बडेभारी ग्रह नहीं विद्यमान हैं व देवताओं का मुख अग्नि प्रकाशित नहीं है और न बिजली प्रकाशित है और न करोड़ों नक्षत्र प्रकाशित हैं ॥ २८ ॥ तो वे सम व विषम वस्तुओंको किससे देखते हैं और न देखपडने के कारण नरकमें टिकेहुये पुरुष किससे लोकको देखते हैं ॥ २९ ॥ व अमण करताहुआ वह कौन सैकड़ों मनोरथों को देनेवाला है और तृषाका जले व छुधितका अन्न व थकेहुये पुरुषोंका जो वाहन है ॥ ३० ॥ और परिश्रमसे शय्या व जल में नौका व स्नेहमें उत्तम सेवक तथा दुष्ट रोगमें उत्तम ओषधि व व्याधि के संकट में संपदा ॥ ३१ ॥

व विदेश में मित्र तथा धूप में छाया व शिशिर ऋतु में धूसरहित अग्नि व बड़े डर में रक्षा और महारात्रि में प्रकाश ॥ ३२ ॥ और सदैव हम सबों को सैकड़ों मनोरथों को देनेवाला जो एकही है उसको हम लोग नहीं जानते है ॥ ३३ ॥ हे व्यासजी ! इसप्रकार कहतेहुये उन्होंने आकाश के मध्य से अतुलकर्मवाले विष्णु जी की पहले सुनीहुई मीठी वाणी को सुना ॥ ३४ ॥ और वे यह नहीं जानते थे कि व्यापक विष्णुजी कहां स्थित होकर कहते हैं इस वचन को उन्होंने सुना कि सावधान होतेहुये तुम सब लोग सुनो ॥ ३५ ॥ कि सदैव चिन्तामणि के समान एक दान भलीभाति कहागया है कि सबही दानों के मध्यमें दीपदान उत्तमहै ॥ ३६ ॥

रेशिखी ॥ महाभयेपरित्राणं प्रकाशश्चमहानिशि ॥ ३२ ॥ सर्वदाचैवसर्वेषां मनोरथशतप्रदः ॥ एकएवभवेद्योनस्तन जानीमहेवयम् ॥ ३३ ॥ ब्रुवन्तस्तदतिव्यास शुश्रुबुर्मधुराङ्गिरम् ॥ श्रुतपूर्वानभोमध्याद्विष्णोरतुलकर्मणः ॥ ३४ ॥ नजानन्तिस्थितःकुत्र भाषतेकेशवोविभुः ॥ शृणुध्वमितिमेवाक्यं सर्वैचैवसमाहिताः ॥ ३५ ॥ दानमेकंसदासम्यक् चिन्तामणिसमंस्मृतम् ॥ सर्वेषामेवदानानां दीपदानं प्रशस्यते ॥ ३६ ॥ तच्चदेयमतस्सर्वे शृणुध्वन्तत्त्वतोभृशम् ॥ मयारसातलेपूर्वं नागानामनुकम्पया ॥ ३७ ॥ उत्पादितोदीपवरो येनध्वस्त्वमिदन्तमः ॥ एवंभूतस्तुवायूनामप्रध्वष्योमहाप्रभः ॥ ३८ ॥ निष्कम्पोनिर्मलोहृद्यः सुन्दरोभास्करप्रभः ॥ नात्युष्णोनातिशीतश्च दिव्ययोगसमुद्भवः ॥ ३९ ॥ तेनदीपप्रकाशेन गोकर्णानिर्द्वितिययुः ॥ नागादेशोपादयस्सर्वे नोद्यमानाश्चसङ्क्षयः ॥ ४० ॥ तदादीपसहस्राणि ददुस्तेवैशिवाग्रतः ॥ पर्वतेषुसमुद्रेषु वनेषूपवनेषुच ॥ ४१ ॥ नदीतीरेषुसर्वत्र दीपान्प्रज्ज्वाल्यरेमिरे ॥ भुञ्जानाःफलमू इसलिये उसको देना चाहिये और सबलोग यथार्थता से सुनिये कि पुरातन समय मैंने रसातलमें नागों के ऊपर बहुतही दयासे ॥ ३७ ॥ उत्तम दीपको उत्पन्न किया कि जिससे यह अन्धकार नाश होगया जो दीप ऐसाथा कि पवनोसे धर्पणा न करने योग्य व महाप्रकाशवात् ॥ ३८ ॥ तथा कम्परहित व निर्मल, मनोहर, सुन्दर व सूर्य के समान प्रभावात् और न अति उष्ण व न बहुत शीत और दिव्य योगसे उपजा हुआथा ॥ ३९ ॥ उस दीपके प्रकाश से गोकर्णे (सर्पविशेष) आनन्द को प्राप्त हुये और प्रेरणा कियेहुये शेषादिक उन सर्पसमूहों ने ॥ ४० ॥ उससमय शिवजी के आगे हजारों दीपोंको दिया पर्वतों में व समुद्रोंमें तथा वनो व उपवनो में ॥ ४१ ॥

और नदी के किनारों में सब कहीं दीपों को जलाकर निव्य फलों व मूलों को तथा ऊँखके रसको भोजन करनेहुये उन्होंने क्रीडा किया ॥ ४२ ॥ और परमाज्ञायाने खीर पूरी व मास मकरन्द (पुष्पमधु) तथा घी भात व चन्द्रमाके समान शाली (जड़हनधान) से उपजेहुये भात व सात प्रकार को प्रात तावूल ॥ ४३ ॥ और स्त्री से पीकर बचीहुई आठ प्रकारकी मदिरा को पीकर आपस में उद्वेष्टन करते हुये उन सब साँपोंने बड़ी मोलवाली शय्याओं पै व मनोहर वनकी पंक्तियों मे तथा वनकी छाया से समीप शोभित वृक्षाकी जड़ों में रमण किया ॥ ४४ ॥ व कामतन्त्रमे कहेहुये चुरन्वनादिक व्यवहारों से क्रीडा किया और वे सूर्यनारायण के

लानि दिव्यानीधुरसन्तथा ॥ ४३ ॥ परमाज्ञासांसानि मकरन्दघृतोदनम् ॥ चन्द्रशालिभवंभक्तं ताम्बूलसंमध्यागतम् ॥ ४३ ॥ मद्यमष्टप्रकारन्तु भार्यापीतावशेषकम् ॥ शयनेषुमहार्हेषु हृद्यासुवनराजिषु ॥ ४४ ॥ वृक्षमूलेषुसर्वेषु वनच्छायोपशोभिषु ॥ रमन्तेस्मचतेसर्वे उद्वेष्टन्तःपरस्परम् ॥ ४५ ॥ कामतन्त्रोपदिष्टैस्तु चेष्टितैश्चुम्बनादिसिः ॥ सूर्यतापभयान्मुक्ताश्चन्द्रशिमभयाच्चते ॥ ४६ ॥ विमुक्ताश्चभयाद्घोरात् पिपीलिकोद्भवात्तथा ॥ सूर्यतापेनदाहस्स्याच्छी तंचन्द्रमरीचिभिः ॥ ४७ ॥ मथूरनकुलाद्यैश्च पिपीलीसरणाद्भयम् ॥ सौवर्णान्दीपकान्कृत्वा द्विजेभ्यस्तेददुःपुनः ॥ ४८ ॥ तेनपातालमाश्रित्य कृत्वाभोगवतीम्पुरीम् ॥ वसन्तिसुखिनस्तत्र स्वर्गादष्टगुणान्सदा ॥ ४९ ॥ एवमन्धत मोदेवाः पातालादीपतोगतम् ॥ एतद्गुह्यंमयाख्यातं भवतांचानुकम्पया ॥ ५० ॥ दीपदानमतोसूयं कुरुध्वंसुसमाहि

तापसे व चन्द्रमा की किरणों के भयसे छूटेहुयेथे ॥ ४६ ॥ और पिपीलिकासे उपजेहुये भयंकर भयसे मुक्त थे सूर्यनारायण के तापसे दाह (जलन) होतीहै व चन्द्रमा की किरणों से शीत होता है ॥ ४७ ॥ और मथूर व नेडलाआदिक तथा पिपीलिकाके गमन से भय होताहै फिर उन नागों ने सुवर्ण क दीपोंको बनाकर ब्राह्मणों के लिये दिया ॥ ४८ ॥ उमी रो पाताल में आश्रित होकर स्वर्ग से अठगुने सुखेवाली भोगवती नामक पुरी को बनाकर उसमें सदैव सुखी नाग बसते हैं ॥ ४९ ॥ इसप्रकार हे देवताओ ! दीपके कारण पाताल रो बहुत अन्धकार जातारहा मैंने आपलोगोंके ऊपर दयाके कारण इस गुप्त चरित्रको कहाहै ॥ ५० ॥ इसलिये साव-

धान होतेहुये तुमलोग दीपदान करो क्योंकि दीपरूपी अग्नि के बिना अन्धकाररूपी अग्नि नहीं जलती है ॥ ५१ ॥ इसके अनन्तर नारायण में परायण देयतालोग सुनकर प्रसन्न व सावधान होतेहुये फिर उन सबोंने व्यापक विष्णुजीसे पूछा ॥ ५२ ॥ कि हे जगदीश ! हमलोगों से अग्नि को कहिये कि जिससे वह दीप उत्पन्न होता है भयंकर अन्धकार में डूबेहुये हमलोग अग्नि को नहीं जानते हैं ॥ ५३ ॥ इसके अनन्तर श्रीकृष्णजीने देवताओंसे मानसी अग्नि को कहा व उससे दीपक को जला कर शिवजीमें परायण उनदेवताओं ने समस्त मनोरथों के फल को देनेवाले सदाशिवजीको उद्देश कर दिया तदनन्तर दीप देनेपर अदृश्य शिवजी प्रसन्न हुये ॥ ५४ ॥ ५५ ॥

ताः ॥ दीपाग्निनाविनानैव तमोदारुप्रदह्यते ॥ ५१ ॥ नारायणपरादेवा निशम्याथसमाहिताः ॥ पप्रच्छुस्तेपुनरुसर्वे ह
ष्टादामोदरविभुम् ॥ ५२ ॥ ब्रूहि नोऽग्निजगन्नाथ सदीपोयेनजायते ॥ द्योरेतमसिधेमज्जनाग्निजानीमहेवयम् ॥ ५३ ॥
देवानां मानसो वह्निरथ कृष्णेन कीर्तितः ॥ तेन दीपं च प्रज्वाल्य देवाः शिवपरायणाः ॥ ५४ ॥ ददुस्ते शिवमुद्दिश्य सर्वा
भीष्टफलप्रदम् ॥ दत्ते दीपे ततो देवैर्नष्टो हृष्टो महेश्वरः ॥ ५५ ॥ तिमिरं तद्गतं चापि जगद्येन जडीकृतम् ॥ ततो देवास्तु
खंप्रापुस्त्वर्गैर्सेन्द्रपुरोगमाः ॥ ५६ ॥ दीपदानफलं ज्ञात्वा दैतेयाश्चापि विस्मिताः ॥ राज्यं भोगान्वितमप्राप्य सार्द्धं स्त्री
भिश्चरेमिरे ॥ ५७ ॥ तथैव तत्फलं ज्ञात्वा व्यासयज्ञाश्च विस्मिताः ॥ पूजयित्वा महादेवं पुष्पैश्च निर्मलैर्जलैः ॥ ५८ ॥
ददुर्दीपसहस्राणि सर्वेशिवपरायणाः ॥ स्वस्थानेष्वामवन्सर्वे दीपदानाच्च शोभनात् ॥ ५९ ॥ स्वेच्छया भुञ्जते भोगान्
बन्धुभृत्यादिसंयुताः ॥ निराहारास्ततो व्यास पिशाचा वै निराश्रयाः ॥ ६० ॥ दीपदानफलं ज्ञात्वा सर्वे ते परि विस्मिताः ॥

और वह अन्धकार भी जातारहा कि जिससे संसार जड कर दिया गया था तदनन्तर इन्द्र समेत देवताओंने स्वर्ग में सुख पाया ॥ ५६ ॥ और दीपदान के फल को जानकर दैत्य भी विस्मित हुये और सुखों से संयुत राज्य को पाकर उन्होंने ने स्त्रियों समेत रमण किया ॥ ५७ ॥ हे व्यासजी ! वैसेही उस फल को जानकर यज्ञ लोग विस्मित हुये और पुष्पा तथा निर्मल जलों से महादेवजी को पूजकर ॥ ५८ ॥ शिवजी में परायण उन सर्वों ने हजारों दीपों को दिया और उत्तम दीप के दान से सब अपने स्थान में हुये ॥ ५९ ॥ और बंधुओं व सेवकों से संयुत वे अपनी इच्छा से सुखों को भोगते हैं उसके उपरान्त हे व्यासजी ! आश्रयरहित व निराहार

पिशाच ॥ ६० ॥ दीपदानके फलको जानकर वे सब विरहितहुये और चाण्डाल से अग्निको भाँगाकर शिवजी में तत्पर उन्होंने दीपको दिया ॥ ६१ ॥ और दीपदान के फलसे वे पुत्रों व स्त्रियों से संयुतहुये व निरस भोजन किये जातेहुये अन्नको व दुर्गन्धिसंयुत तथा पर्युषित ॥ ६२ ॥ व उच्छिष्ट तथा सूतिका याने सँवरिवाली स्त्री से छुयेहुये व अशुद्ध तथा नोधिहुये अन्नको भोजन करतेहुये वे प्रसन्न राजस सदैव दुष्ट भूमियों में रमण करते हैं ॥ ६३ ॥ और शिवजी में मनको लगायेहुये विद्याधर, मनुष्य व सिद्धोंने दीपदान के फल को जानकर शिवजीके आगे दीपको दिया ॥ ६४ ॥ तदनन्तर दीपदान से सब समस्त सुखों से संयुत होकर सुखी व चाण्डालादग्निमानीय ददुर्दोषीशिवेरताः ॥ ६१ ॥ दीपदानफलान्नैव पुत्रदारसमन्विताः ॥ लिह्यमानंगतरसं घृति पर्युषितं तथा ॥ ६२ ॥ उच्छिष्टं सूतिकास्पृष्टममेध्यञ्चातिलङ्घितम् ॥ भुञ्जानास्ते सदा हृष्टा रमन्ते दुष्टभूमिषु ॥ ६३ ॥ विद्याधरास्तथामर्त्याः सिद्धाश्च शिवमानसाः ॥ दीपदानफलं ज्ञात्वा ददुर्दोषीं शिवाग्रतः ॥ ६४ ॥ दीपदानात्ततस्त्वे सर्वभोगसमन्विताः ॥ स्थानेषु मुदितास्त्वेषु रमन्ते सुखिनस्सदा ॥ ६५ ॥ तिमिरं तद्गतैश्च व्यासलोकैषु दीपतः ॥ त तोषोरं स्थितं सम्यक् प्रेतलोकैषु सर्वदा ॥ ६६ ॥ प्रेतलोकन्तदा हृष्टा घोरैण तमसा वृतम् ॥ दामोदरं जगन्नाथमूचुस्त्वे सुरोत्तमाः ॥ ६७ ॥ घोरं चैव तमो हत्वा प्रसन्नास्ते सदा विभो ॥ गन्धर्वाश्च तथा यक्षाः सिद्धा विद्याधरो रगाः ॥ ६८ ॥ वयञ्चै वतथामर्त्यास्सर्वे भोगैश्च संयुताः ॥ स्थानेषु च सदा स्वेषु रमन्ते सुखिनो भूयम् ॥ ६९ ॥ प्रेतलोकैः नराग्रैश्च घोरैः तमसा वृताः ॥ वसन्ति च जगन्नाथ वर्तन्ते चातिदुःखिताः ॥ ७० ॥ नतैः कृतं शुभं कर्म कृष्णालं पापमोहितैः ॥ न तेषां विद्यते किञ्चि प्रसन्न होते हुये सदैव अपने स्थानोंमें रमण करते हैं ॥ ६५ ॥ हे व्यासजी ! लोकों में दीपसे वह अन्धकार जातारहा तदनन्तर वह घोर अन्धकार सदैव प्रेतलोकों में भलीभाँति स्थितहुआ ॥ ६६ ॥ उससमय भयंकर अन्धकार में धिरेहुये प्रेतलोकको देखकर सब सुरोत्तमों ने संसारके स्वामी विष्णुजीसे कहा ॥ ६७ ॥ कि हे विभो ! भयंकर अन्धकार को नाशकर वे गन्धर्व, यक्ष, सिद्ध व विद्याधर सदैव प्रमन्न रहते हैं ॥ ६८ ॥ और सुखों से संयुत हमलोग व मनुष्य बहुतही सुखी होकर मदैव अपने स्थानोंमें रमण करते हैं ॥ ६९ ॥ हे जगदीश ! प्रेतलोकमें जो मनुष्य वसते हैं भयंकर अन्धकारसे धिरेहुये वे बहुतही दुःखी वर्तमान हैं ॥ ७० ॥ हे श्रीकृष्णजी !

बहुतही पापसे मोहित उन्हींने शुभ कर्म नहीं किया है और उसके कुछ नहीं वर्तमान है जोकि प्रकाश करै ॥ ७१ ॥ वे घोर अन्धकार में मग्न हैं क्योंकि वहाँ सूर्य, चन्द्रमा व अग्नि नहीं हैं और न सहाय है न यह स्त्री है और न आलम्ब है न देशाला है ॥ ७२ ॥ और न वाहन है न शय्याहै केवल बड़ा अन्धकार है और वहाँ पर अट्टाईस नरकभूमिया प्रसिद्ध है ॥ ७३ ॥ और वे सब अन्धकारमय तथा पापियों को सदैव भयदायक हैं हे श्रीकृष्णजी ! वहाँ पर दुःखित मनुष्य किस प्रकार सुखको पाते हैं ॥ ७४ ॥ जोकि दरिद्रता, दुःख, रोग, माया व मोहसे सदैव संयुत होते हैं ॥ ७५ ॥ सनत्कुमारजी बोले कि इसप्रकार देवताओं की प्रार्थना को

द्यत्प्रकाशं करोति च ॥ ७१ ॥ घोरतमसितेमगनास्तत्र नार्कन्दुवह्नयः ॥ नसहायोनजायेयं नालम्बोनचदैशिकः ॥ ७२ ॥ नवाहनन्नशय्याच केवलन्तुमहत्तमः ॥ तत्राष्टाविंशतिः ख्याता घोरानरकभूमयः ॥ ७३ ॥ तमोमयाश्चतास्सर्वाः पापिनां भयदास्सदा ॥ सुखं तत्र कथं कृष्ण लभन्ते दुःखितानराः ॥ ७४ ॥ दारिद्र्यदुःखरोगैश्च मायामोहैश्च सर्वदा ॥ ७५ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ इति श्रुत्वा तु देवानां प्रार्थनां गरुडध्वजः ॥ उवाच वचनं हृद्यं मनोरथफलप्रदम् ॥ ७६ ॥ शृणु ध्वं त्रिदशास्सर्वे यत्प्रबक्ष्यामि वो वचः ॥ अवन्त्यां वर्तेते तीर्थं सद्यः पापहरं परम् ॥ ७७ ॥ अनर्काख्यं महापुण्यं सर्वतीर्थोत्तमोत्तमम् ॥ कार्तिकस्यासितेपक्षे चतुर्दश्यां समाहितः ॥ ७८ ॥ तत्र स्नात्वा नरो यस्तु यमध्यानपरायणः ॥ संगृह्यैव तिलान् कृष्णान् पितृभक्तोजितेन्द्रियः ॥ ७९ ॥ दक्षिणाभिमुखो भूत्वा मध्याह्ने सुरसत्तमाः ॥ अपसव्यन्तथा भूत्वा मनत्रैस्सन्तर्पयेद्यमम् ॥ ८० ॥ यमाय धर्मराजाय मृत्यवे चान्तकाय च वैवस्वताय कालाय दत्त्वा यमनवे तथा ॥ ८१ ॥

मुनकर विष्णुजी मनोरथ के फलको देनेवाले व मनोहर वचनको बोले ॥ ७६ ॥ कि हे समस्त देवताओ ! मैं जिस वचन को तुम लोगों से कहता हूँ उसको सुनिये कि अवन्ती पुरी में शीघ्रही पापहारक उत्तम तीर्थ वर्तमान है ॥ ७७ ॥ जोकि अनर्क नामक व महापवित्र तथा समस्त तीर्थोत्तमोंमें उत्तम है कार्तिकके कृष्णपक्ष में चौद-सितिथि में सावधान होता हुआ ॥ ७८ ॥ यमराजके ध्यान में तत्पर व पितरों का भक्त तथा जितेन्द्रिय जा मनुष्य उस तीर्थ में नहाकर काले तिलों को लेकर ॥ ७९ ॥ हे सुरोत्तमो ! दुपहरके समय में दक्षिण मुख होकर व अपसव्य होकर मन्त्रों से यमराजको भलीभांति तर्पण करै ॥ ८० ॥ यम, धर्मराज, मृत्यु, अन्तक, वैवस्वतः

काल, दक्ष व मनुके लिये ॥ ८३ ॥ और कृष्ण व प्रेतलोक में परायण कृष्णगुप्त हरि व यमुनाजी के सहोदर भाई सूर्यपुत्र के लिये ॥ ८२ ॥ वैसेही श्राद्धदेव व पितरों के पति के लिये इन नमः अन्तर्वाले व ॐकार आदिवाले उत्तम मन्त्रोंके द्वारा ॥ ८३ ॥ तिलोंसे संयुत व कुश समेत जलकी अञ्जली को देवै और यमदेव को भलीभांति तर्पण करै और सावधान होताहुआ विद्वान् पुरुष विच्छाद्य से रहित होकर तिलके पात्रको ब्राह्मणके लिये देवै इस विधि से जो पुरुष यमराज स्वामी को तर्पण करताहै ॥ ८४ ॥ ८५ ॥ उसके वे पितर मुक्त होजाते हैं कि जो नरक में भी होते हैं इसके अनन्तर वहा यश संयुत मनुष्य रात्रि को भलीभांति पाकर ॥ ८६ ॥

कृष्णाय कृष्णगुप्ताय प्रेतलोकपराय च ॥ हरये रविपुत्राय कालिन्दीसोदराय च ॥ ८२ ॥ तथा वै श्राद्धदेवाय पितृणां पितये तथा ॥ मन्त्रैरेभिर्नमः प्रान्तैरोङ्काराद्यैस्सुशोभनैः ॥ ८३ ॥ जलाञ्जलिसदभावै दद्यात्तु तिलसंयुताम् ॥ सन्तर्पयेद्यमन्देवं तिलपात्रं समाहितः ॥ ८४ ॥ प्राज्ञो विप्राय वेदद्याद्वित्तशाल्यविवर्जितः ॥ अनेन विधिन आयस्तु तर्पयेच्च यमं विभुम् ॥ ८५ ॥ पितरस्तस्य मुच्यन्ते निरये ये गता अपि ॥ रात्रिं तत्राथ सम्प्राप्य मानवः कीर्तिसंयुतः ॥ ८६ ॥ नमः पितृभ्यः प्रेतैर्भ्यो नमो धर्माय विष्णवे ॥ नमस्सूर्याय रुद्राय कान्तारपतये नमः ॥ ८७ ॥ एभिर्मन्त्रैर्यमन्दीपं यो दद्याद्दधृत पूरितम् ॥ कार्तिकन्तु समग्रन्तु वर्द्धन्ते तस्य सम्पदः ॥ ८८ ॥ सम्पूर्णैर्कार्तिकै च वेदीपोद्यापनमारभेत् ॥ ८९ ॥ दिवा कराहेस्तमिते च सूर्ये दीपस्य वृत्तिपुरुषप्रमाणम् ॥ यूपार्कतियज्ञियदारुणा च करोति धीमान् यमभक्तिचित्तः ॥ ९० ॥ निक्षिप्य भूमावथ हस्तमात्रं मूर्ध्नि द्विहस्ताष्टदलान्विताश्च ॥ धार्याश्च तस्मिन् शुभपट्टिकाश्च छिद्रे प्रयुक्ताश्च तुरङ्गुलेन ॥ ९१ ॥ त

पितरों के लिये प्रणाम है व धर्म के लिये तथा विष्णुजी के लिये नमस्कार है और सूर्य व रुद्र के लिये प्रणाम है और कान्तारपति के लिये नमस्कार है ॥ ८७ ॥ इन मन्त्रों से जो पुरुष समस्त कार्तिक मास भर घृत से भरेहुये दीपको यमराज को देताहै उसकी समस्त संपदायें बढ़ती हैं ॥ ८८ ॥ और सब कार्तिक भर दीपोद्यापन का प्रारम्भ करै ॥ ८९ ॥ रविवारके दिन सूर्यनारायण अस्तहोनेपर दीपको वर्तमान करै और यमराज की भक्तिमें चित्तवाला बुद्धिमान् मनुष्य यज्ञवाले काष्ठ से पुरुषके प्रमाण भर याने तीन हाथ यूपकार याने खम्भा का आकार बनावे ॥ ९० ॥ इसके अनन्तर भूमि में हाथ भर गाड़कर दो हाथ ऊपर रखे और आठदलोंसे संयुत

चार उत्तम पट्टिकाओं को चार शृंगुल छिद्रमें युक्त करै ॥ ९१ ॥ और उसकी कर्णिका (गुजरी) में महाप्रकाशवान् दीपको परमभक्ति से देना चाहिये और उस के दलों में घीसे भरेहुये आठ उत्तम दीप दिशाओं के सामने धरना चाहिये ॥ ९२ ॥ और अंगवल्ली से चिह्नित वसनका खण्ड नवीन व अरुण अथवा श्वेत वस्त्र बाती के लिये देना चाहिये उसके उपरान्त चिकनी व समस्त तथा समान व उत्तम दो वर्तिकाओं को देवै ॥ ९३ ॥ और उमदीपको जड़हन चात्रलों के पिसानके ऊपर वैसेही धरकर कि जिसप्रकार न निकलै और न कोपै और सब से तिगुने प्रमाणभर दीपराजको मध्य में स्थित करना चाहिये ॥ ९४ ॥ और दलोंमें बहुतही शोभा

त्कर्णिकायान्तुमहाप्रकाशो देयोहिदीपः पर्याचमकृत्या ॥ दिगुन्मुखादीपवरास्तथाष्टौ दलेषु तस्याधृतपूर्यमाणः ॥ ९२ ॥ अनङ्गवत्त्यङ्कितवस्त्रखण्डं नवसुरकंहयवासुशुक्लम् ॥ वर्यैप्रदेयञ्चततोहिदद्यात्स्निग्धेत्वखण्डे सुसमेप्रश स्ते ॥ ९३ ॥ तच्छालिपिष्टोपरिसन्निधाय यथाननिर्यातिनकम्पतेच ॥ कृत्स्नात्प्रकार्यस्त्रिगुणप्रमाणो मध्यस्थितः स्यादथ दीपराजः ॥ ९४ ॥ दलेषु शोभार्थमतीव कुर्यान्मनोरथप्रत्युपलब्धयेच ॥ घण्टाष्टकं लम्बितपुष्पदामसवस्त्रशोभा निबन्धनमवकाशयेत् ॥ ९५ ॥ संलिप्यभूमित्वथ गोमयेन पुनः सुगन्धेन जलेन लिप्त्वा ॥ कुर्याद्विचित्रं त्वथ मण्डलञ्च दला प्रकृत्यैकमन्त्रमभ्यस्य ॥ ९६ ॥ ततो जलं शीतलमानयित्वा आपूर्य चाष्टौ कलशं स्तुरभ्यान् ॥ निधाय मूर्ध्नि नक्रमशो हि दद्यादथ शङ्कराय दामोदराय आप्यभवेधसेच ॥ ९७ ॥ मध्वाज्ययुक्तादधिदुग्धपूपा नैर्ऋत्यकोणादथ दक्षिणान्तम् ॥ धर्माय कर्णिके व मन्त्राय क आपाद्वान् कर्णिके कोणोका को और इसमें लटकाये हुये फूलोंकी सालावाले तथा वस्त्र समेत व शोभासे संयुत आठ घण्टोंको करना चाहिये ॥ ९८ ॥ इसके उपरान्त जल में लीपकर इसके उपरान्त आठ दलवाला मण्डल व सुन्दर कमल को बनावै ॥ ९९ ॥ उसके समान दो हीनज्जालोंको दो कोणों पर आठ घण्टों को भरकर बुद्धिमान् मरतक पै धरकर क्रमसे फल, मूल व ऊँख ॥ १०० ॥ तथा शहद व घीसे संयुक्त वस्त्र, पुष्प व गुलाब के फूलोंको दो कोणों पर आठ घण्टों को भरकर बुद्धिमान् मरतक पै धरकर क्रमसे फल, मूल व ऊँख ॥ १०१ ॥ तथा शहद व घीसे संयुक्त वस्त्र, पुष्प व गुलाब के फूलोंको दो कोणों पर आठ घण्टों को भरकर बुद्धिमान् मरतक पै धरकर क्रमसे फल, मूल व ऊँख ॥ १०२ ॥ और भक्तिके

क्रमपूर्वक प्रजापतियों के लिये व प्रेतों के निमित्त तथा इन्द्र व पितरों के लिये देवै और दक्षिणा समेत तिलोंसे भरेहुये सुवर्णादि के पात्रको ब्राह्मणों को देवै ॥ ६६ ॥ गौवै, सुवर्ण, चादी, वस्त्र, फल, मूल, यव, धान्य, गृह, रथ हाथी, घोड़ा और ऐसे ही हृदय में जो श्रान्य सुन्दर वस्तु होवै ॥ १०० ॥ उसको अधिक विद्यावाले द्वि-जोत्तमों के लिये व पुराण वाचनेवाले ब्राह्मणों के लिये देवै और यहां पर दलों में स्थित दीपों से यमादिकों के मध्यमें एक एक को तर्पण करै ॥ १ ॥ इसके अनन्तर अपने गुरुके सकाशसे आज्ञाको पाकर धर्मराजके लिये मध्यवाला दीप देना चाहिये और नृत्य व उत्तम गान तथा उत्तम वाजन से संयुत उत्साहको करावै ॥ २ ॥

मादिपात्रंतिलपूर्णमेव दद्याद्विजानांचसदक्षिणञ्च ॥ ६६ ॥ गावोहिरण्यंरजतंचवस्त्रं फलानिमूलानिनयनाश्चधान्यम् ॥
गृहंरथंकुञ्जरमश्वमेव मनोज्ञमन्यंहृदयेहियच्च ॥ १०० ॥ विद्याधिकेभ्योद्विजसत्तमेभ्यः पौराणिकेभ्यश्चतथाद्विजेभ्यः ॥
एकैकसंप्रीणनमत्रकुर्वाद्दोषैर्दलस्थैश्चयमादिकानाम् ॥ १ ॥ धर्मायदेयस्त्वथमध्यदीप आज्ञांचलब्धवास्वगुरोःसका-
शात् ॥ नृत्येनगीतेनसुरोभनेन युक्तंसुवाद्येनचकारयेच्च ॥ २ ॥ एतत्समग्रंविधिवच्चकुर्यात्स्वशक्तिमादौस्वधनंसमी-
क्ष्य ॥ आहूयविप्राञ्छुभभावयुक्तान् वदेच्चधीमान्परयाचभक्त्या ॥ दीपान्समग्रानपिवर्जयित्वा सर्वनयेयुःस्थितम-
त्रविप्राः ॥ ३ ॥ प्रदक्षिणीकृत्यविमृज्यविप्रांस्ततोभवेद्वैसचनक्तमोजी ॥ एवंकृतेनागलोकाद्विशिष्टं सुखंभवेत्प्रेतलो-
केस्थितानाम् ॥ ४ ॥ एवमेवनरोव्यास दीपदानं करोति यः ॥ तस्यैवयत्फलंप्रोक्तं तदिहैकमनाःशृणु ॥ ५ ॥ विमानैःका-

पहले अपनी शक्ति व अपने धनको देखकर विधिपूर्वक इस सब वस्तु को करै और सुन्दर भावसे संयुत ब्राह्मणोंको बुलाकर बुद्धिमान् मनुष्य उत्तम भक्तिसे कहै और समस्त दीपोंको वर्जितकर सब स्थित वस्तुको यहां ब्राह्मणलोग लावै ॥ ३ ॥ और प्रदक्षिणाकर ब्राह्मणों को विदा करके तदनन्तर वह रात्रिभोजी होवै ऐसा करने पर प्रेतलोकमें स्थित मनुष्यों को नागलोकसे विशेष सुख होताहै ॥ ४ ॥ इसीप्रकार हे व्यासजी ! जो मनुष्य दीपदान करताहै उसको जो फल कहागयाहै उसको यहां

एकमनवाले होकर सुनिये ॥ ५ ॥ कि अपराधों के गणों से सेवित व कामनाओंवाले दिव्य विमानों पे चढ़ा हुआ पुरुष तबतक स्वर्गमें प्राप्त होता है जबतक कि चन्द्रमा व सूर्य रहते हैं ॥ १०६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे देवीदयालुभिश्चरितचितायाभाषाटीकायादीपदानमाहात्म्यं नाम चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥

दो० । जिमि रामेश्वर तीर्थ कर अहै सुभग परभाव । इकतालिसवे में कह्यो सोइ चरित सुखपात्र ॥ सनत्कुमारजी बोले कि इसके अनन्तर मैं अन्य उत्तम केदारेश्वरजी को कहूंगा जोकि समस्त तीर्थोंमें उत्तम व तीनोंलोकों में प्रसिद्ध है ॥ १ ॥ उस तीर्थ में नहाकर व पवित्र होकर जो मनुष्य महादेवजीको देखता है वह उस

मिकै दिव्यैरप्सरोगणसेवितैः ॥ उह्यमानो दिवं यातियाव चन्द्रदिवा करौ ॥ १०६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे दीपदानमाहात्म्यं नाम चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

सनत्कुमार उवाच ॥ अथान्यं सम्प्रवक्ष्यामि केदारेश्वरमुत्तमम् ॥ प्रवरं सर्वतीर्थानां सर्वलोकेषु विश्रुतम् ॥ १ ॥ तत्र स्नात्वा शुचिर्भूत्वा यः पश्यति मेहेश्वरम् ॥ केदारैर्यत्फलं प्राप्य तदत्रापि लभेन्नरः ॥ २ ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तः स्वकीयकुलसंयुतः ॥ विमानेनार्कवर्णेन शिवलोके समोदते ॥ ३ ॥ जटाशृङ्गेनरः स्नात्वा शुचिर्भूत्वा जितेन्द्रियः ॥ दृष्ट्वा जटेश्वरं देवं ततः पापाद्भिमुच्यते ॥ ४ ॥ महास्नपनमादौ च कृत्वा गच्छेच्छिवमप्रति ॥ मातृकं पैतृकं चैव कुलानां तारयेच्छतम् ॥ ५ ॥ इन्द्रतीर्थेनरः स्नात्वा दृष्ट्वा चैन्द्रेऽश्वरं शिवम् ॥ विमुक्तः सर्वपापेभ्यः शक्रलोके महीयते ॥ ६ ॥ कुण्डेश्वरं तु यः पश्येच्छिवध्यानपरायणः ॥ लभते स नरो व्यास शिवदीक्षाफलं शुभम् ॥ ७ ॥ गोपतीर्थेनरः स्नात्वा दृष्ट्वा गोपेश्वरं

फलको यहां भी पाता है जोकि केदारक्षेत्रमें कहा गया है ॥ २ ॥ और सब पापों से छूटा हुआ वह मनुष्य अपने वंशसे संयुत होकर सूर्य वर्ण (रंग) वाले विमान समेत शिवलोकमें प्रसन्न होता है ॥ ३ ॥ व जटाशृङ्गतीर्थ में नहाकर जितेन्द्रिय मनुष्य पवित्र होकर जटेश्वर देवजी को देखकर तदनन्तर पातक से छूट जाता है ॥ ४ ॥ जो मनुष्य पहले महास्नान कर शिवजी के समीप जाता है वह माता व पिता के सौ कुलोंको तारता है ॥ ५ ॥ व इन्द्रतीर्थ में नहाकर व इन्द्रेश्वर शिवजीको देख कर मनुष्य समस्त पापों से छूटकर इन्द्रलोकमें पूजा जाता है ॥ ६ ॥ और हे व्यासजी ! शिवजी के ध्यान में तत्पर जो पुरुष कुण्डेश्वरजी को देखता है वह शिवजी

की दीक्षाके उत्तम फलको प्राप्तहोताहै ॥ ७ ॥ व गोपतीर्थ में नहाकर गोपेश्वर शिवजी को देखकर वह पुरुष शिवलोकको जाता है जैसे कि अमृत से देवता स्वर्ग को प्राप्तहोताहै ॥ ८ ॥ और हे मुनिश्रेष्ठ ! चिपिटातीर्थ में नहाकर व शिवदेवजी को प्रणामकर पुरुष तिर्यग्योनि में नहीं जाताहै ॥ ९ ॥ व विजय नामक तीर्थ में नहाकर आनन्देश्वरजी के पूजनसे समस्त पापों से छूटाहुआ पुरुष स्वर्गलोक में विजयवान् होताहै ॥ १० ॥ इसके अनन्तर हे व्यामजी ! कुशस्थली याने उज्जयिनी पुरी में निर्मित व मुक्ति, मुक्तिको देनेवाले अन्य रामेश्वर देवजी को मैं कहताहूँ ॥ ११ ॥ कि पुरातन समय जानकी व लक्ष्मणजी समेत श्रीरामजी ने चित्रकूट से

रंशिवम् ॥ शिवलोकं सर्वव्याति ह्यमृतादमरोयथा ॥ ८ ॥ स्नात्वा तु चिपिटातीर्थे शिवदेवंप्रणम्य च ॥ तिर्यग्योनिनरो नैव प्रयाति मुनिपुङ्गव ॥ ९ ॥ विजयेचनरः स्नात्वा आनन्देश्वरपूजनात् ॥ विसुक्तः सर्वपापेभ्यः स्वर्लोके विजयी भवेत् ॥ १० ॥ अथान्यंसम्प्रक्ष्यामि कुशस्थल्यां विनिर्मितम् ॥ देवं रामेश्वरं व्यास भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ॥ ११ ॥ चित्रकूटात् पुरारामो मैथिल्या लक्ष्मणेन च ॥ अत्र रामं समागत्य पप्रच्छ मुनि सत्तमम् ॥ १२ ॥ रामोवाच ॥ कानि तीर्थानि पुराया नि किंवा चेन्न महासुने ॥ यत्र गत्वानचाप्नोति वियोगः सहजान्धवैः ॥ १३ ॥ अनेन वनवासेन मरणेन पितुः प्रभो ॥ भरतस्य वियोगेन प्रतप्येह त्रिभिर्मुने ॥ १४ ॥ तद्वाक्यं राघवेणोक्तं श्रुत्वा विप्रर्षभ दरात् ॥ १५ ॥ दयात्वा तु सुचिरं कालमिदं वचनमब्रवीत् ॥ १५ ॥ साधुपुष्टन्त्वया वीर रघूणां वंशवर्धन ॥ मम पित्रा हृतं क्षेत्रं प्रयाच्य शिवमदरात् ॥ १६ ॥ अवन्तीविषये राम पुरा तस्मिन् कुशस्थली ॥ उज्जयिनी तिवैनाम्ना ख्यातिलोकैर्गता विभो ॥ १७ ॥ तस्यांगत्वाद्दशरथं पितृदधानेन यहाँ आकर मुनिश्रेष्ठ पशुरामजी से पूछा ॥ १२ ॥ श्रीरामजी बोले कि हे महासुने ! कौन क्षेत्र व कौन तीर्थ पुरयदायक है कि जहाँ जाकर मनुष्य वन्धुवोके साथ वियोगको नहीं प्राप्तहोताहै ॥ १३ ॥ हे प्रभो, सुने ! इम वनवास व पिताका मरण तथा भरत का वियोग इन तीनों से मैं रातसहूँ ॥ १४ ॥ श्रीरामजी से कहहुये उस वचन को सुनकर उस समय द्विजश्रेष्ठ ने बहुत समय तक ध्यानकर इस वचन को कहा ॥ १५ ॥ कि हे रघुवोके वंशको बढ़ानेवाले, वीर ! तुमने बहुत अच्छा पूछा मेरे पिताने शिवजीसे आदर समेत याचना कर क्षेत्रको रचाहै ॥ १६ ॥ हे निभो ! श्रीरामजी ! पुरातन समय उस अवन्ती देशमें कुशस्थली उज्जयिनी ऐसे नाम से

संसारमें प्रसिद्धि को प्राप्त हुई है ॥ १७ ॥ उस पुरी में जाकर दशरथजी को पिण्डदान से सुसकरो वहाँ पर देवताओं व दैत्योंके गुरु महाकालजी ठिके हैं ॥ १८ ॥ जो सदाशिवदेवजी चाहेहुये फलको देनेवाले हैं उन जगदीशजी के देखनेपर वियोग नहीं होता है ॥ १९ ॥ वहाँ जो ब्राह्मण व बड़े बलवान् राजा लोग जातेहैं वे उत्तम स्थान को पाते हैं जहाँ कि सदाशिवदेवजी हैं ॥ २० ॥ हे विष्णो ! अवन्ती के मण्डल में वह तीर्थोंके मध्य में भी तीर्थ है तदनन्तर श्रीरामजी अवन्ती पुरीको गये जहाँ कि वह पुण्यदायिनी शिप्रानदी है ॥ २१ ॥ उसमें नहाकर तदनन्तर श्रीरामजीने पहले उपजेहुये पितरोंको तर्पण किया जब श्रीरामजी ने महाकालजी को

तर्पय ॥ मुरासुरगुरुस्तत्र महाकालोऽव्यवस्थितः ॥ १८ ॥ देवः सदाशिवो राजन् वाञ्छितार्थफलप्रदः ॥ दृष्टे तस्मिञ्जगन्नाथे वियोगो नैव जायते ॥ १९ ॥ तत्र गच्छन्ति ये विप्रा राजानो वै महाबलाः ॥ लभन्ते ते परं स्थानं यत्र देवो महेश्वरः ॥ २० ॥ तीर्थानामपि तत्तीर्थं भो विष्णो वन्ति मण्डले ॥ आजगाम ततो वन्ती सा शिप्रा यत्र पुण्यदा ॥ २१ ॥ तस्यां स्नात्वा तंतो रामस्तर्पयामास पूर्वजान् ॥ महाकालं यदा द्रष्टुं प्रतस्थे रघुनन्दनः ॥ २२ ॥ वाण्यां ततो शरीरिण्या देवदेवं नमार्पितम् ॥ भो भो राघव भद्रन्ते स्वनाम्ना स्थापय स्वमाम् ॥ २३ ॥ अत्र स्थानं मया दत्तं मा विचारय राघव ॥ ततो हृष्टमनो रामो लक्ष्मणं वाक्यमब्रवीत् ॥ २४ ॥ अनुगृहीतः सौमित्रे देवदेवेन शम्भुना ॥ तस्मात्स्थापयतीथिं स्मिल्लैङ्गरामे श्वरं शुभम् ॥ २५ ॥ वाक्यं तल्लक्ष्मणः श्रुत्वा स्थापयामास शङ्करम् ॥ दृष्ट्वा देवं पुरो रामो लक्ष्मणं वाक्यमब्रवीत् ॥ २६ ॥ एहिलक्ष्मणशीघ्रन्तं शिप्राया जलमानय ॥ करिष्यामि यतोऽत्रात देवस्य स्नपनं शुभम् ॥ २७ ॥ लक्ष्मणस्त्वब्रवीद्वा

देखने के लिये प्रयाण किया ॥ २२ ॥ तब देवदेव शिवजीने आकाशवाणीसे कहा अहो राघवजी ! तुम्हारा कल्याण होवै अपने नामसे मुझको स्थापन करियो ॥ २३ ॥ मैंने यहाँ पर स्थानको दिया हे राघवजी ! मत विचारिये तदनन्तर प्रसन्न मनवाले श्रीरामजी लक्ष्मणजी से वचन बोले ॥ २४ ॥ कि हे सौमित्रे ! देवदेव शिवजी ने मेरे ऊपर दया किया है इसलिये इस तीर्थ में रामेश्वर देवजी को स्थापित कीजिये ॥ २५ ॥ उस वचनको सुनकर लक्ष्मणजीने शिवजीको स्थापित किया आगे शिव देवजी को देखकर श्रीरामजी लक्ष्मणजी से बोले ॥ २६ ॥ कि हे लक्ष्मण जी ! शीघ्र ही आइये और तुम शिप्रानदी के जलको लावो क्योंकि हे भाई ! मैं शिवदेव

जीको उत्तम स्नान कराजंगा ॥ २७ ॥ लक्ष्मणजी बोले कि सीता से तुम क्या करोगे हे श्रीरामजी ! मैं सदैव तुम्हारी सेवकाई नहीं करूंगा ॥ २८ ॥ यह सीता पुष्ट व दृढ़ तथा मुझसे भी मोटी है इसलिये हे राघवजी ! सत्यतासे कहिये कि तुम इससे क्या करोगे ॥ २९ ॥ पहले लक्ष्मणजी से कहेहुये उस वचन को सुनकर उदासीन राघवजी व उत्तम मुखवाली सीताजी स्थितहुई ॥ ३० ॥ इसके अनन्तर जो लक्ष्मणजीने कहा उसको जानकीजी ने किया और नहाकर व भोजनकर वे दीर महाकालजी के समीप आये ॥ ३१ ॥ और वहा रात्रिको व्यतीतकर जाने के लिये मन धारण किया व कहा कि हे वरत, सौमित्रे ! उठिये हम दक्षिण दिशाको जाते

कयं सीतया किं करिष्यसि ॥ रामनाहं सर्वकालं दासभावं करोमि ते ॥ २८ ॥ इयंच पुष्टा सुदृढा पीवराचममाप्यतः ॥ वदराघ वसत्येन अनया किं करिष्यसि ॥ २९ ॥ श्रुत्वा पूर्वहितद्वाक्यं लक्ष्मणेन प्रभाषितम् ॥ विमनाराधवस्तस्थौ सीताचापिवरा नना ॥ ३० ॥ यदुक्तं लक्ष्मणेनाथ तच्च सीताचकार ह ॥ स्नात्वा भुक्त्वा च तौ वीरौ महाकालमुपागतौ ॥ ३१ ॥ नीत्वा वि भावरोतत्र गमनाय मनोदधे ॥ उत्तिष्ठ वत्स सौमित्रे ब्रजामोदजिणिं दिशम् ॥ ३२ ॥ सौमित्रिरब्रवीद्वाक्यं नाहंगन्ताक यञ्चन ॥ ब्रजत्वमनया सार्द्धं भार्यया कमलेक्ष्ण ॥ ३३ ॥ नाहमग्रे वनं यामि नवायोध्यां कथञ्चन ॥ एवं ब्रुवाणं सौमि त्रिमुवाच रघुनन्दनः ॥ ३४ ॥ कथं पूर्वमयोध्याया निर्गतो सिमया सह ॥ वने वसाम्यहं राम नववर्षाणि पञ्च च ॥ ३५ ॥ प्रसादः क्रियतां मह्यं नयमामपि राघव ॥ इदानीं त्वमर्द्धपथे कथं स्थितासि शत्रुहन् ॥ ३६ ॥ लक्ष्मणस्त्वब्रवीद्वाक्यं नाहं गन्ता वनं पुनः ॥ लक्ष्मणं विदुः शत्रुहन् ॥ ३७ ॥ मामनुब्रज सौमित्रे एकोयास्यामि काननम् ॥ द्विती

है ॥ ३२ ॥ लक्ष्मणजी वचन बोले कि मैं किसी प्रकार नहीं जाऊंगा हे कमललोचन ! तुम इस स्त्री समेत जावो ॥ ३३ ॥ मैं आगे न वनको जाऊंगा और न किसी प्रकार अयोध्याको जाऊंगा ऐसा कहेतेहुये लक्ष्मणजी से श्रीरामजी बोले ॥ ३४ ॥ कि पहले मेरे साथ अयोध्या से क्यों निकले थे हे रामजी ! मैं नव व पांच वर्ष तक वन में बसूंगा ॥ ३५ ॥ हे श्रीरघुनाथजी ! मेरे ऊपर प्रसन्नता कीजाय मुझ को भी ले चालिये हे शत्रुहन् ! इस समय तुम आधे मार्ग में कैसे टिकोगे ॥ ३६ ॥ लक्ष्मणजी वचन बोले कि मैं फिर वनको न जाऊंगा विकार में प्रात लक्ष्मणजी वचन बोले ॥ ३७ ॥ कि हे सौमित्र ! मेरे पीछे चालिये मैं

अकेले वनको जाऊंगा और दूसरी यह जानकीजी हैं इसप्रकार श्रीरामजी ने लक्ष्मणजी से कहा ॥ ३८ ॥ और उस समय धनुषको लेकर उदासीन लक्ष्मणजी उठे व शत्रुओं के सन्तापक वे दोनों क्षेत्रकी सीमाको प्राप्तहुये ॥ ३९ ॥ और श्रीरामजी बोले कि हे सौमित्रे ! मुझको धनुष देवो तुम लौटजावो श्रीरामजी के वचन को सुनकर लक्ष्मणजी सीतासे बोले ॥ ४० ॥ कि मैं किसलिये छोडागया और मैंने क्या अपराध किया है श्रीरामजीसे छोडाहुआ मैं निरसन्देह प्राणोंको त्यागूंगा ॥ ४१ ॥ तदनन्तर जानकीजी श्रीरामजीसे बोलीं कि हे देव ! सुमित्राजीके आनन्दको बढ़ानेवाले लक्ष्मणजी को तुम किसलिये छोड़तेहो ॥ ४२ ॥ श्रीरामजी ने सीताजी से

याचत्वियंसीता उक्तोरामेणलक्ष्मणः ॥ ३८ ॥ धनुःसंगृह्यविमना उत्तस्थौलक्ष्मणस्तदा ॥ प्राप्तौप्राकारमर्यादां क्षेत्रसी
मांपरंतपौ ॥ ३९ ॥ त्वंनिवर्तस्वसौमित्रे समर्पयचमेधनुः ॥ रामवाक्यमुपश्रुत्य सीतावैलक्ष्मणोब्रवीत् ॥ ४० ॥ किमर्थं
हिपरित्यक्तः कोपराधःकृतोमया ॥ रामेणचपरित्यक्तः प्राणस्त्यक्ष्याम्यसंशयम् ॥ ४१ ॥ रामंततोब्रवीत्सीता किम
र्थंलक्ष्मणस्त्वया ॥ देवसन्त्यज्यतेवीरः सुमित्रानन्दवर्धनः ॥ ४२ ॥ राघवस्त्वब्रवीत्सीतां नाहंत्यक्ष्यामिलक्ष्मण
म् ॥ नकदाचिदपिस्वप्ने लक्ष्मणस्येदृगप्रियम् ॥ ४३ ॥ श्रुतपूर्वन्तुसुश्रोणि क्षेत्रस्यास्यविचेष्टितम् ॥ अस्मिन्क्षेत्रे
न सौभ्रात्रं सर्वोहिस्वार्थतत्परः ॥ ४४ ॥ परस्परंनमन्यन्ते स्वार्थनिष्ठैकहेतवः ॥ नशृण्वन्तिपितुःपुत्राः पुत्राणाञ्चतथा
पिता ॥ ४५ ॥ नचशिष्योऽगुरोर्वाक्यं गुरुर्वाशिष्यकर्मच ॥ अर्थानुबन्धिनीप्रीतिर्नकश्चित्कस्यचित्प्रियः ॥ ४६ ॥ एव
मुक्त्वाययौरामो लक्ष्मणोजानकीतथा ॥ लिङ्गंतत्रप्रतिष्ठाप्य स्वनाम्नारघुनन्दनः ॥ ४७ ॥ रामतीर्थेनरःस्नात्वा दृ

कहा कि मैं लक्ष्मणजी को नहीं छोड़ूंगा हे सुन्दर कटिवाली, जानकीजी ! मैंने कभी स्वप्नमें भी लक्ष्मणजीके ऐसे अप्रिय वचनको नहीं सुनाथा इस क्षेत्रके व्यवहार को मैंने पहले सुना था कि इस क्षेत्रमें सुबन्धुता नहीं है क्योंकि सब मनुष्य स्वार्थमें तत्पर होताहै ॥ ४३ ॥ और स्वार्थ में केवल सिद्धिरूप कारणवाले मनुष्य आपस में नहीं मानते हैं पिताके वचन को पुत्र नहीं मानते हैं और न पुत्रोंके वचन को पिता सुनते हैं ॥ ४५ ॥ और शिष्य गुरु के वचन को नहीं सुनता है न गुरु शिष्य के कर्मको सुनताहै प्रयोजनके सम्बन्धवाली प्रीति होती है कोई किसी का प्यारा नहीं है ॥ ४६ ॥ ऐसा कहकर वहांपर अपने नामसे लिङ्गको स्थापितकर श्री-

राम, लक्ष्मण व जानकीजी ने यात्रा किया ॥ ४७ ॥ रामतीर्थ में मनुष्य स्नानकर व रामेश्वर शिवजी को देखकर सब पातकोंसे छूटहुआ वह विष्णुलोकको जाता है ॥ ४८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेऽवन्तीदयालुमिश्रविचितायां भाषाटीकायां रामेश्वरतीर्थमाहात्म्ये नामैकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥
दो० । जिसि सौभाग्यक तीर्थ कर अहै अतुल परभाव । बयालीसवें में कह्यो सोइ चरित्र सुहाव ॥ सनत्कुमारजी बोले कि सौभाग्यतीर्थ में नहाकर व सौभाग्येश्वरजीको देखकर सब पापोंसे छूटाहुआ पुरुष उत्तम सौभाग्यको पाताहै ॥ १ ॥ व घृततीर्थमें नहाकर मनुष्य घृतसे शिवजीको नहवावै इसके अनन्तर घृतको अग्नि पद्वारामेश्वरंशिवम् ॥ विमुक्तः सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकंसगच्छति ॥ ४८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे रामेश्वर तीर्थमाहात्म्यं नामैकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥

सनत्कुमार उवाच ॥ तीर्थे सौभाग्यके स्नात्वा दृष्ट्वा सौभाग्यके श्वरम् ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तः सौभाग्यं परमं लभेत् ॥
१ ॥ घृततीर्थे नरः स्नात्वा घृतेन स्नापयेच्छिवम् ॥ घृतमग्नावथो हुत्वा रुद्रलोकं महीयते ॥ २ ॥ देवीयोगेश्वरं प्राच्यं सुरासुरनमस्कृताम् ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तः परं योगमवाप्नुयात् ॥ ३ ॥ शङ्खावर्तेन रः स्नात्वा सर्वपापविर्वर्जितः ॥ धनधान्यसमायुक्तो जायते निर्मलकुले ॥ ४ ॥ शुद्धोदके चतुर्दश्यां मुक्त्यर्थं स्नानवान्नरः ॥ शिवं सुरेश्वरं दृष्ट्वा ततो मोक्षं गतिर्भवेत् ॥ ५ ॥ तथान्यत्संप्रक्ष्यामि तीर्थैर्वैलोक्य विश्रुतम् ॥ किंपुनरिति विख्यातं ब्रह्महत्याविमोचनम् ॥ ६ ॥ पूर्ववैतायुगे व्यास मुनेनोनाम वैद्विजः ॥ तस्य पुत्रः समुत्पन्नो विश्वावसुरिति स्मृतः ॥ ७ ॥ यवक्रीतस्य शपेन सपिता ते

में हवनकर शिवलोक में पूजित होताहै ॥ २ ॥ देवताओं व दैत्यों से प्रणाम कीहुई योगेश्वरी देवीजी को पूजकर समस्त पातकोंसे छूटकर उत्तम योगको प्राप्त होताहै ॥ ३ ॥ और शंखावर्त तीर्थ में नहाकर सब पापोंसे छूटाहुआ पुरुष धन धान्य से संयुत होकर निर्मल कुलमें पैदा होताहै ॥ ४ ॥ और शुद्धोदक तीर्थ में चौदसि तिथि में नहानेवाला पुरुष सुरेश्वर शिवजीको देखकर तदनन्तर मोक्षकी गतिवाला होताहै ॥ ५ ॥ वैसेही त्रिलोकमें प्रसिद्ध अन्यतीर्थ को कहताहुँ जोकि ब्रह्महत्याको छुड़ानेवाला किंपुनः ऐसा प्रसिद्ध है ॥ ६ ॥ पुरातन समय हे व्यासजी ! सुनेत्रनामक ब्राह्मण हुआहै उनका पुत्र विश्वावसु ऐसा कहा हुआ उत्पन्न भयाहै ॥ ७ ॥

यवकीत के शाप से वह पिता उनसे मारा गया और हे व्यासजी ! तीर्थ से तीर्थमें घूमेतेहुये ब्रह्महत्यासे संयुत ॥ ८ ॥ वे ब्राह्मण किंपुनक तीर्थ में नहाकर धारातीर्थ में गये तदनन्तर कपिलधारा से आपही चित्तसे चिन्तनकर ॥ ९ ॥ कि भेरा ब्रह्महत्याका पाप कैसे शान्तिताको प्राप्तहोगा इसप्रकार चिन्तन करताहुआ वह ब्राह्मण फिर अवन्ती पुरी में आया ॥ १० ॥ और जबतक इस तीर्थ में स्नान करे तबतक उसने इस बाणी को सुना कि हे ब्रह्मन् ! जिसलिये कि तुमने स्नान किया है इसकारण फिर क्या ध्यान करते हो ॥ ११ ॥ तुम्हारे ब्रह्महत्या नहीं है क्योंकि वह तीर्थस्नानसे नाश कीगई हे विप्रजी ! पापहीन तुम सुखपूर्वक घरको जावो ॥ १२ ॥

नघातितः ॥ ब्रह्महत्यां निवतो व्यास तीर्थातीर्थपरिभ्रमन् ॥ ८ ॥ तीर्थे किंपुनके स्नात्वा धारातीर्थगतो द्विजः ॥ ततः कपिल धारायां चिन्तयित्वा तस्मात्स्वयम् ॥ ९ ॥ कथं मे ब्रह्महत्याया यायात्पापं प्रशान्तिताम् ॥ एवं हि चिन्तयन् सोऽथ पुनरा यादवन्तिकाम् ॥ १० ॥ अत्र तीर्थे पुनः स्नाति यावद्वाणीं ततोऽश्रुणोत् ॥ किंपुनर्ध्यायसे ब्रह्मन् येन स्नातो द्विजोत्तमः ॥ ११ ॥ न ते स्ति ब्रह्महत्या वै तीर्थस्नानेन नाशिता ॥ गच्छशीघ्रं गृहं विप्र पापहीनो यथा सुखम् ॥ १२ ॥ पुनरन्यप्रवक्ष्यामि पत्तनेश्वरमुत्तमम् ॥ तत्र स्थित्वामहेशेन पुनः पत्तनमीजितम् ॥ १३ ॥ पत्तनेश्वर इत्याख्यो देवदेवो मेहेश्वरः ॥ यस्तु गन्धैश्च पुष्पैश्च धूपैर्दीपैर्मनोरमैः ॥ १४ ॥ भावयुक्तो नरो व्यास पूजयेद्विधिवत्सदा ॥ यथावत्तिष्ठते लिङ्गं वंशच्छेदो न जायते ॥ १५ ॥ हंसयुक्तेन यानेन शिवलोकं संगच्छति ॥ तथान्यत्संप्रवक्ष्यामि तीर्थत्रैलोक्यविश्रुतम् ॥ १६ ॥ दुर्धर्षमिति विख्यातं ब्रह्महत्याविमोचनम् ॥ पुरा दिवाकरो व्यास चक्रदुर्धर्षनामतः ॥ १७ ॥ तीर्थमस्मिन्नदीतीरे विख्यातं सूर्यसं

फिर मैं अन्य उत्तम पत्तनेश्वरजी को कहता हूँ वहां पर टिककर सदा शिवजी ने फिर नगरको देखा है ॥ १३ ॥ पत्तनेश्वर ऐसे नामक देवदेव महेशजी हैं हे व्यासजी ! भक्ति संयुत जो मनुष्य सदैव उस लिंगको विधिपूर्वक सुन्दर चन्दन, पुष्प, धूप व दीपोंसे पूजता है वह यथायोग्य स्थित रहता है और उसके वंशका नाश नहीं होता है ॥ १४ । १५ ॥ व हंसोंसे संयुत विमान के द्वारा वह शिवलोकको जाता है वैसेही त्रिलोकमें प्रसिद्ध अन्य तीर्थको मैं कहता हूँ ॥ १६ ॥ जोकि ब्रह्महत्याको छुड़ाने वाला दुर्धर्ष ऐसा प्रसिद्ध है पुरातन समय हे व्यासजी ! सूर्यनारायण से संस्कार किया हुआ जोकि इस

नदीके किनारे प्रसिद्ध है गन्धर्वगणों से पूजित वह तेजराशि लिंग हुआ है ॥ १८ ॥ सप्तमी, अष्टमी, संक्रान्ति व रविवारको उस तीर्थ में नहाकर व पवित्र होकर तीन रातों तक उपास कियेहुये पुरुष ॥ १९ ॥ वहां शिप्रानदी के किनारे स्थित महादेवजी को देखकर व भक्तिभाव से पूजनकर जिस फलको प्राप्तहोताहै उसको मुझ से सुनिये ॥ २० ॥ किं समस्त पिता व माताके वंशको भलीभांति उधारकर शिवजी के समीप प्राप्तहोताहै वहापर जो विशेषकर गऊ व सुवर्णादिक दान को देताहै ॥ २१ ॥ उसका वह तबतक अक्षय होताहै जबतक कि चन्द्रमा व सूर्य रहते हैं वैसेही अन्य उत्तम गोपीन्द्रतीर्थ को कहताहूं ॥ २२ ॥ जहां पर गौतमजी ने शाप से स्मृतम् ॥ तेजःपुञ्जोभवल्लिङ्गं गणगन्धर्वपूजितम् ॥ १८ ॥ सप्तम्यामथवाष्टम्यां संक्रान्तौ रविवासरे ॥ तत्र स्नात्वा शुचि भूत्वा सुत्रिरात्रमुपोषितः ॥ १९ ॥ दृष्ट्वा मेहेश्वरं तत्र शिप्राकूले व्यवस्थितम् ॥ पूजयित्वा तु भावेन यत्फलं तच्छृणुष्व मे ॥ २० ॥ पितृमातृकुलं सर्वं समुद्धृत्य शिवं व्रजेत् ॥ तत्र यच्छ्रित्योदानं गोहेमादिविशेषतः ॥ २१ ॥ तावत्तदन्त्यं लोकं यावच्चन्द्रदिवा करौ ॥ तथान्यत्संप्रवक्ष्यामि गोपीन्द्रतीर्थमुत्तमम् ॥ २२ ॥ गौतमेन पुरायत्र इन्द्रः शापाद्भगीकृतः ॥ भगव्रीडा युतः शक्रः प्रविश्य वनमुत्तमम् ॥ २३ ॥ अतोषयत्तदग्रेण तपसा शङ्करम्पुरा ॥ तुष्टेन शम्भुना विप्र ये भगास्तच्छरीरगाः ॥ २४ ॥ गोसहस्रीकृतास्तेन गोपीन्द्रमिति कथ्यते ॥ तत्र स्नात्वा दिव्यातिशक्तुल्यपराक्रमः ॥ २५ ॥ ये मृतास्ते पुनर्जन्म नाप्नुवन्ति महीतले ॥ गङ्गातीर्थे नरः स्नात्वा पुण्यं प्राप्नोति पुष्कलम् ॥ २६ ॥ ज्येष्ठशुक्ल शम्यान्तु गङ्गायाः फलमादिशेत् ॥ गङ्गातीर्थे नरः स्नात्वा दृष्ट्वा पुष्कररण्डकम् ॥ २७ ॥ पुष्पकेण विमानेन प्रयाति इन्द्र के भग्न कियाहै और भगकी लज्जा से संयुत इन्द्रजी ने उत्तम वन में पैठकर ॥ २३ ॥ पुरातन समय तत्र उग्र तपसे शङ्करजीको प्रसन्न कियाहै हे विप्रजी ! उन इन्द्र के शरीर में जो भग प्राप्त थे वे उन प्रसन्न शिवजी से हजार नेत्र किये गये इससे वह गोपीन्द्र ऐसा तीर्थ कहाजाता है उस तीर्थ में नहाकर इन्द्र के तुल्य बलवाला मनुष्य स्वर्गको प्राप्तहोताहै ॥ २४ ॥ और जो वहा मरजाते हैं वे फिर पृथ्वीतल में जन्म नहीं पाते हैं और गङ्गा नामक तीर्थ में नहाकर मनुष्य बड़े पुण्य को प्राप्तहोताहै ॥ २६ ॥ और ज्येष्ठ शुक्ल दशमी तिथि में गङ्गाजी के फलको आदेश करै है और गङ्गातीर्थ में नहाकर व पुष्कररण्डक तीर्थको देखकर मनुष्य ॥ २७ ॥

पुण्यक विमान के द्वारा प्रयाण करता है व स्वर्ग में प्रसन्न होता है और उत्तरेश्वर तीर्थ में नहाकर मनुष्य शीघ्रही पितरों को नरक से उधारता है ॥ २८ ॥ और प्रियसुखों से संयुत वह मनुष्य निस्सन्देह स्वर्ग को जाता है और भूतेश्वर तीर्थ में नहाकर इस के अनन्तर भूतेश्वर जी को चन्दन पुष्पादिक व नैवेद्यों से पूजे तो मरकर सुरपुर को जाता है और शिवा नदी में नहाकर जो मनुष्य कैलास को प्रणाम करता है ॥ २९ ॥ ३० ॥ उसका पाप वैसेही नाश होजाता है जैसे कि सूर्यनारायणसे नष्ट किया हुआ अन्धकार होवे और जो पुरुष समाधि के नियम से अंबालिका देवी जी को देखता है ॥ ३१ ॥ वह सब पापों से वैसेही छूट

दिविमोदते ॥ नरकादुद्धरत्याशु नरःस्नात्वोत्तरेश्वरे ॥ २८ ॥ इष्टभोगसमापन्नो यातिस्वर्गनसंशयः ॥ भूतेश्वरेनरःस्नात्वा भूतेश्वरमथार्चयेत् ॥ २९ ॥ गन्धपुष्पादिनैवेद्यैर्मृतःसुरपुरं व्रजेत् ॥ शिवायान्तुनरःस्नात्वा कैलासन्तुनमस्य ति ॥ ३० ॥ सूर्याहतंतमोयद्वत्तद्वत्पापंप्रणश्यति ॥ अम्बालिकांचयःपश्येत् समाधिनियमेनच ॥ ३१ ॥ समुक्तःसर्व पापेभ्यः कञ्चुकेनफणीयथा ॥ घण्टेश्वरंप्रवक्ष्यामि यत्सुरैरपिपूजितम् ॥ ३२ ॥ यत्रकूपोदकम्पीत्वा सौभाग्यमतुलं लभेत् ॥ अर्चयेद्यस्तुदेवेशं गन्धपुष्पैरनुक्रमात् ॥ ३३ ॥ शिवलोकैवसेत्तावद्याविन्द्राश्चतुर्दश ॥ पुण्येश्वरन्तुयः पश्येच्छुचिःस्नातो जितेन्द्रियः ॥ ३४ ॥ सगणपत्यमाप्नोति यत्सुरैरपिदुर्लभम् ॥ लुम्पेश्वरेनरःस्नात्वा समभ्यर्च्य महेश्वरम् ॥ ३५ ॥ नयातिनरकमर्त्यः स्वर्गलोकैमहीयते ॥ तथान्यत्संप्रवक्ष्यामि यत्सुरैरपिदुर्लभम् ॥ ३६ ॥ पूजितं ब्र

जाता है जैसे कि केंचुलि से सांप छूटता है व घण्टेश्वर जी को मैं कहता हूँ जोकि देवताओं से भी पूजित है ॥ ३२ ॥ और जहां कूपका जल पीकर अतुल सौभाग्य को प्राप्त होता है और जो मनुष्य कमसे चन्दन तथा पुष्पों से देवेश जी को पूजता है ॥ ३३ ॥ वह तबतक शिवलोक में बसता है कि जब तक चौदह इन्द्र रहते हैं और इन्द्रियों को जीतेहुये नहाकर जो पवित्र पुरुष पुण्येश्वरजी को देखता है ॥ ३४ ॥ वह गणपतित्व को प्राप्तहोता है जोकि देवताओंको भी दुर्लभ है और लुम्पेश्वर तीर्थ में नहाकर मनुष्य महादेवजी को भलीभांति पूजकर ॥ ३५ ॥ नरकको नहीं जाता है और वह मनुष्य स्वर्गलोकमें पूजाजाता है वैसेही अन्य तीर्थको कहता

हं जोकि देवताओं को भी दुर्लभ है ॥ ३६ ॥ पुरातन समय ब्रह्माने रथविर नामक गणेशजीको पूजाहै उस तीर्थमें नहाकर व पवित्र होकर जो मनुष्य विनायकजी को गन्ध, धूप, पुष्प, भक्ष्य व भोज्योंसे पूजताहै उसके फलको सुनिये कि चाही हुई सिद्धि होती है और मरकर शिवपुरको जाता है ॥ ३७ ॥ जो विद्वान् मनुष्य नवनदी के समीप पार्वतीजी को गन्ध, पुष्प व धूपों से पूजै वह अतुल सौभाग्यको पावे ॥ ३८ ॥ और कामोदक तीर्थ में नहाकर रतिके प्यारे कामदेवजी को देखकर मनुष्य स्वर्ग में देवता व गन्धर्वों के वाहने योग्य शरीरवाला होताहै ॥ ४० ॥ और प्रयागतीर्थ में नहाकर जो मनुष्य प्रयागेशजीको देखताहै वह सब लोकोंको नाघ

ह्यणापूर्वं स्थविराख्यं विनायकम् ॥ तत्र स्नात्वा शुचिर्भूत्वा पूजयेद्यो विनायकम् ॥ ३७ ॥ गन्धधूपैश्च पुष्पैश्च मध्यैर्भोज्यैः फलं शृणु ॥ समीहिता भवेत्सिद्धिर्भूतः शिवपुरं व्रजेत् ॥ ३८ ॥ नवनद्याः समीपे तु पार्वतीं पूजयेद्बुधः ॥ गन्धपुष्पैश्च धूपैश्च सौभाग्यमतुलं लभेत् ॥ ३९ ॥ कामोदके नरः स्नात्वा दृष्ट्वा कामं रतिप्रियम् ॥ स्वर्गं च देवगन्धर्वस्पृहणीयवपुर्भवेत् ॥ ४० ॥ प्रयागे तु नरः स्नात्वा प्रयागेशं नुपश्यति ॥ सर्वलोकानतिक्रम्य शिवलोकं महीयते ॥ ४१ ॥ इति श्री स्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे सौभाग्यतीर्थमाहात्म्यं नाम द्विचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ४२ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

सनत्कुमार उवाच ॥ अथान्यं संप्रवक्ष्यामि नरादित्यं दिवाकरम् ॥ यस्य दर्शनमात्रेण सर्वरोगैर्विमुच्यते ॥ १ ॥ स्थापनान्ते प्रवक्ष्यामि नरादित्यस्य यादृशी ॥ युद्धे निवारिते तस्मिन् रक्तस्वेदजयोः पुरा ॥ २ ॥ नरनारायणौ देवाववतीर्णौ धरातले ॥ कुन्त्यान्देव्यां सुदेवक्यां मथुरायां समागतौ ॥ ३ ॥ एव तौ भवतो लोके कान्तौ दृष्टिम्पराङ्गतौ ॥ अन्यस्मा

कर शिवलोकमें पूजा जाताहै ॥ ४१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां सौभाग्यतीर्थमाहात्म्यं नाम द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४२ ॥ दो० । नरादित्यको थप्यो जिमि स्तुति करि अर्जुनवीर । तैत्तलिसर्व में सोई कह्यो चरित मतिधीर ॥ सनत्कुमारजी बोले कि इसके अनन्तर अन्य नरादित्य नामक सूर्यनारायणको कहताहूं कि जिनके दर्शनही से मनुष्य सब रोगों से छूटजाताहै ॥ १ ॥ नरादित्यजी की जैसी स्थापना है वैसी मैं तुमसे कहूंगा पुरातन समय रक्त व पर्साने से उपजंहुये पुरुषों का युद्ध निवारण करने पर ॥ २ ॥ नरनारायणदेवजीने पृथ्वी में अवतार लियाहै जोकि कुन्तीदेवी में व मथुरामें देवकीजीमें भलीभांति

प्राप्तहुये हैं ॥ ३ ॥ इसप्रकार परमवृद्धि को प्राप्त वे लोकमें मनोहर हुये श्रीकृष्णजी अन्य हेतुसे उत्पन्नहुये और अर्जुनजी अन्य कारणसे पैदाहुये ॥ ४ ॥ उन श्री-
कृष्णजी ने युद्धमें कंसादिक सब दानवों को माराहै तदनन्तर पृथाके पुत्र अर्जुन जी इन्द्र से अल्लोकी सिद्धिके लिये स्वर्ग में प्राप्तहुये हैं ॥ ५ ॥ और अल्लोको सीखे
हुये अर्जुन वीरने सुरराजसे दक्षिणाको कहा और देवताओंके राजा इन्द्रने उस दक्षिणाको मांगा ॥ ६ ॥ कि हे अर्जुनजी । हिरण्यपुरमें बसनेवाले उग्र निवातकवच
नामक दैत्यों को शीघ्रही मारिये यह मेरी गुरुदक्षिणा है ॥ ७ ॥ अर्जुन ने उन दुष्टात्मा दैत्यों के मारनेकी प्रतिज्ञा किया और भयंकर रथ पै चढ़कर व बाण समेत

त्कारणात्कृष्णोन्यस्माज्जातो धनञ्जयः ॥ ४ ॥ कंसादीन् दानवान् सर्वान् निजघानरणे हि सः ॥ स्वर्गगतस्ततः पार्थो
वासवादस्त्रसिद्धये ॥ ५ ॥ कृतास्त्रेण तु वीरेण देवराजस्तु दक्षिणाम् ॥ संस्तुतो देवराजेन दक्षिणा सा तु याचिता ॥ ६ ॥ निवा
तकवचाह्यग्रा हिरण्यपुरवासिनः ॥ वध्यतामर्जुनक्षिप्रमेघमगुरुदक्षिणा ॥ ७ ॥ अर्जुनेन प्रतिज्ञातो वधस्तेषां दुरात्म
नाम् ॥ रौद्रं सरथमास्थाय गृहीत्वा सशरंधनुः ॥ ८ ॥ निहत्य तांस्ततः पार्थः कृत्वा कर्मसुदुष्करम् ॥ प्रीतिमुत्पादयामा
स सर्वेषां च दिवौकसाम् ॥ ९ ॥ कृतकार्यं तदा शक्रस्तुर्वर्जुनं वाक्यमब्रवीत् ॥ यत्ते भिरुचिरं वीर मर्त्यलोके सुदुर्लभम् ॥ १० ॥
मनसा काङ्क्षितं पार्थ वरन्तं वरयोत्तमम् ॥ सवत्रे प्रतिमेद्वेतुये च्छिते ब्रह्मणा स्वयम् ॥ ११ ॥ ब्रह्मणा प्रीतियुक्तेन दत्ताय प्र
तिपादिते ॥ दक्षेणापियुगं साग्रं पूजितेति मिरापहे ॥ १२ ॥ सुराणामसुराणाञ्च विग्रहे समुपस्थिते ॥ दानवैर्निर्जितः श

धनुषको लेकर उन ॥ ८ ॥ अर्जुनजीने उन दैत्योंको मारकर न कठिन कर्म करके तदनन्तर सब देवताओं के प्रीति उत्पन्न किया ॥ ९ ॥ उस समय कार्यको कियेहुये
अर्जुनजी से इन्द्र ने वचन कहा कि हे वीर, अर्जुनजी ! मृत्युलोकमें दुर्लभ व मनोहर जो तुम्हारे ॥ १० ॥ मनसे चाहा गया हो उस उत्तम वरदान को मांगिये उन्हें
ने दो प्रतिमाओंको मांगा कि जिनको आपही ब्रह्माजीने पूजा था ॥ ११ ॥ व प्रीतिसंयुत ब्रह्माजीने दक्षजिके लिये उन मूर्तियोंका प्रतिपादन किया और दक्षजीने भी
कुछ अधिक युग भरतक अन्धकारनाशक (दिननायक) की मूर्तियों का पूजन किया ॥ १२ ॥ जब देवताओं व दैत्योंका वैर उपस्थित हुआ तब दानवोंसे जीते व

हरीहुई राउयवाले इन्द्रजी वनको चलेगये ॥ १३ ॥ व इन्द्रजीने एक चरणसे स्थितहोकर देवताओं के हजार वर्षोंतक असह्य तप किया और बृहस्पतिजीने उनको देखा ॥ १४ ॥ व उन इन्द्रको देखकर बृहस्पतिजी बोले कि हे इन्द्रजी ! स्वर्ग को छोडकर तुम क्यों इस वन में आयेहो ॥ १५ ॥ अकेले वन में टिकेहुये तुमसे शत्रु साधन योग्य नहीं हैं ऐसा जानकर हे सुरराज ! तुम शीघ्रही दक्षजी के आश्रमको जावो ॥ १६ ॥ पूजन के लिये पारिजात से उपजीहुई जिन मूर्तियों को ब्रह्माने दिया है व जिनको विश्वकर्माने रचा है उनको प्रजापति (दक्ष) जी से मांगिये ॥ १७ ॥ उन मूर्तियोंके पूजन व प्रसाद से शत्रुओंका विनाशहोगा बृहस्पतिजी के उस वचन

क्रोहतराज्योवनंगतः ॥ १३ ॥ तपश्चचारदुर्धर्षमेकपादः शतक्रतुः ॥ दिव्यवर्षसहस्रन्तु धिषणस्तंददर्शह ॥ १४ ॥
दृष्ट्वा तन्देवराजन्तु बृहस्पतिरुवाचह ॥ हित्वा त्रिदिवमायातः कथं शक्रत्विदं वनम् ॥ १५ ॥ एकाकिनावनस्थेन नसा
ध्याः शत्रवस्त्वया ॥ ज्ञात्वैवन्देवराजत्वं शीघ्रिन्दत्वाश्रमं व्रज ॥ १६ ॥ पूजार्थं ब्रह्मणा दत्ते पारिजातसमुद्भवे ॥ चकार
विश्वकर्मा ये ते याचस्व प्रजापतिम् ॥ १७ ॥ शत्रूणां च क्षयो भावी प्रसादादर्चनानात्तयोः ॥ गुरोस्तु ते नवाक्येन हृष्टो देवइश
तक्रतुः ॥ १८ ॥ जगाम स त्वरस्तत्र यत्र दत्तः प्रजापतिः ॥ विनया वनतो भूत्वा ययाचि प्रतिमेभ्युमे ॥ १९ ॥ ददौ तस्मै त
तो दक्षः शक्राय प्रतिमेभ्युमे ॥ पूजिते प्रतिमे व्यास शक्रेण शरदांशतम् ॥ २० ॥ तयोस्तु ते जसा सर्वे विनाशं दानवा ग
ताः ॥ प्रतिमेचोचतुः शक्रं वरयस्व वरोत्तमम् ॥ २१ ॥ भक्त्या नया परन्तुष्टा आवां जानीहि वासव ॥ वरं वेत्रे तदाश
कः प्रसन्नात्मा द्विजोत्तम ॥ २२ ॥ अस्माकं प्रतिपक्षायै दानवाः पापचेतसः ॥ सर्वे तेनाशमायान्तु वर एष मतो मम ॥ २३ ॥

से इन्द्रदेवजी प्रसन्नहुये ॥ १८ ॥ और जहाँ पर दत्तप्रजापति थे वहाँ शीघ्रही गये व धिनयसे भूँकेहुये होकर उन्होंने दोनों प्रतिमाओंको मांगा ॥ १९ ॥ तदनन्तर दक्षजी ने उन इन्द्र के लिये उत्तम प्रतिमाओं को दिया व हे व्यासजी ! सौ वर्ष तक उन प्रतिमाओं को इन्द्र ने पूजा ॥ २० ॥ और उनके तेजसे सब दानव नाश को प्राप्तहुये व प्रतिमाओंने इन्द्रजीसे कहा कि उत्तम वरदानको मांगिये ॥ २१ ॥ हे वासवजी ! इस भक्तिसे हम दोनोंको बहुत प्रमत्त जानो तदनन्तर हे व्यासजी ! उस समय प्रसन्न चित्तवाले इन्द्रजीने वरदानको मांगा ॥ २२ ॥ कि पाप चित्तवाले जो दानव हम लोगों के शत्रु हैं वे सब नाशको प्राप्तहोवें यह वरदान मेरा सम्मत है ॥ २३ ॥

और जबतक मैं इन्द्र होऊं तबतक मैं तुम दोनों को पूजना चाहता हूँ बहुत अच्छा ऐसा कहकर वे प्रतिमार्थें स्वर्गको चली गई ॥ २४ ॥ वरके लिये उन दोनों प्रतिमाओं को मांगना चाहिये इन्द्रजी बोले कि हे अर्जुनजी ! बहुत अच्छा बहुत अच्छा बयोंकि तुम ऐसा कहते हो ॥ २५ ॥ व हे अर्जुनजी ! इन प्रतिमाओं को महात्मा सदाशिवजीने अरुण कमलोंसे ब्रह्माके दिन पर्यन्त पूजा है ॥ २६ ॥ व पुरातन समय श्रीविष्णुजी ने त्रिलोककी रक्षाके लिये कमलों व सुगन्धों से हज़ारों वर्ष तक इन दो मूर्तियों को पूजा है ॥ २७ ॥ तदनन्तर सावधान होतैहुये सृष्टि करने की इच्छावाले ब्रह्माजी ने उत्तम लाल कमलोंसे प्रतिमाओं का पूजन किया है ॥ २८ ॥

युवांपूजितुमिच्छामि यावदिन्द्रोभवाभ्यहम् ॥ तथेतिचोक्त्वाप्रतिमे तेनाकंप्रतिजग्मतुः ॥ २४ ॥ तत्तुयाच्यमव
इयार्थे वरार्थेप्रतिमाद्वयम् ॥ इन्द्रउवाच ॥ साधुपार्थपुनस्साधु यतश्चेत्थंत्वयोच्यते ॥ २५ ॥ इमेचप्रतिमेपार्थ
शङ्करेणमहात्मना ॥ सुरक्तैःशतपत्रैश्च पूजितेब्रह्मणोदिनम् ॥ २६ ॥ त्रैलोक्यपालनार्थं च पूजितेविष्णुनापुरा ॥ नीलो
त्पलैस्सुगन्धैश्च सहस्रपरिवत्सरान् ॥ २७ ॥ ततःप्रजापतिस्सृष्टिं कर्तुकामस्समाहितः ॥ पूजयामासप्रतिमे पद्मरक्तो
त्पलैश्शुभैः ॥ २८ ॥ त्वमेवहि कथंपार्थ मृत्युलोकन्नायिष्यसि ॥ एताभ्यांरहितस्स्वर्गस्तुणुल्योभविष्यति ॥ २९ ॥
आदातुकामंदेवेन्द्रं प्रणिपत्यतमज्जुनः ॥ उवाचवाहमर्थस्मि वरेणानेनवैप्रभो ॥ ३० ॥ ततःशक्रःपुनःपार्थमुवा
चमुनिपुङ्गव ॥ गृहीत्वात्वमिमेवीर कुशस्थल्यानिवेशय ॥ ३१ ॥ शिप्रायाउत्तरेतीरे केशवार्कन्तुकेशवः ॥ स्थापयि
ष्यतिवैतत्र सर्वपापप्रणाशनम् ॥ ३२ ॥ भविष्यतिसदायात्रा आषाढीचाथकार्तिकी ॥ आगमिष्याम्यहंतत्र सहितो

हे पार्थ ! तुम्हीं कैसे मृत्युलोकको ले जाओगे इन दो मूर्तियोंसे रहित स्वर्गलोक तितुका के समान होगा ॥ २९ ॥ लेनकी इच्छावाले सुरेन्द्र को प्रणामकर अर्जुनजी बोले कि हे प्रभो ! मैं इसी वरदान से अर्थी (प्रयोजनवान्) हूँ ॥ ३० ॥ तदनन्तर हे मुनिश्रेष्ठ ! इन्द्रजीने फिर अर्जुनजी से कहा कि हे वीर ! तुम इन मूर्तियोंको ले कर उज्जयिनी पुरीमें स्थापितकरो ॥ ३१ ॥ वहां शिप्रा नदी के उचर किनारे पै विष्णुजी समस्त पापोंके विनाशक केशवार्कजीको थापेंगे ॥ ३२ ॥ और सदैव आषाढी व

कार्तिकी यात्रा होगी और वहां पर अप्सराओंके गणों समेत मैं आऊंगा ॥ ३३ ॥ और विजलियों समेत मेघ व पवन आवैंगे व मेघोंके समूह में उत्पन्न मेरे वहां बरसने पर ॥ ३४ ॥ मनुष्य कहेंगे कि इन्द्रदेवजी प्राप्तहुये ब्रह्मादिक देवताओं से पूजित व्यापक सूर्यनारायणजी को प्रणामकर ॥ ३५ ॥ हे अर्जुनजी ! फिर भी जिस प्रकार आया था उसीभांति लौटजाऊंगा इसप्रकार विष्णुकी दोनों प्रतिमाओंको अर्जुनजीके लिये देकर ॥ ३६ ॥ हे पाण्डवजी ! पुत्र समेत पृथ्वीलोकको पठाया और श्रीकृष्ण जीके बुलाने के कारण द्वारकापुरी में नारदजी ने ॥ ३७ ॥ सुरराज के चरित्र समेत उस वचन को श्रीकृष्णजी को सुनाया व हे द्विजेन्द्र ! यह कहा कि हे कृष्णजी !

पसरसाङ्गणैः ॥ ३३ ॥ मरुतश्चागमिष्यन्ति मेघाश्चैवसविद्युतः ॥ मेघखण्डेसमुद्भूते मयितत्रप्रवर्षति ॥ ३४ ॥ प्रवदिष्यन्तिवैलोकाः प्राप्तोदेवः पुरन्दरः ॥ भास्करन्तुनमस्कृत्यब्रह्माद्यैः पूजितंविभुम् ॥ ३५ ॥ प्रतियामितुर्वाभत्सो पुनरेव यथागतम् ॥ एवंमूर्तिद्वयंशौरिर्दत्त्वापार्थायवासवः ॥ ३६ ॥ भूलोकंप्रेषयामास सुतेनसहपाण्डव ॥ नारदोद्वारकाया न्तु कृष्णस्याह्वानकारणात् ॥ ३७ ॥ देवराजस्यतद्वाक्यं सरहस्यञ्चकेशवम् ॥ श्रावयामासविप्रेन्द्र एहिकृष्णकुशस्थलीम् ॥ ३८ ॥ अर्चस्वपारिजातस्य विश्वकर्मसुकारिते ॥ इन्द्रेणाथप्रदत्तैर्वै तत्तुभ्यंपाण्डवायच ॥ ३९ ॥ श्रुत्वाशौरिस्तुतद्वाक्यं प्रतस्थेवन्तिकाम्पुरीम् ॥ अवातरच्चहाकाशात्तमालिङ्ग्यचपाण्डवम् ॥ ४० ॥ प्रीतः प्रोवाचवचनं परिष्वज्यचफाल्गुनम् ॥ जन्ममेसफलंजातं प्रीतिर्मेह्यतुलाञ्जुन ॥ ४१ ॥ यतोमेप्रीतिरतुला क्रियातांकार्यमुत्तमम् ॥ इत्युक्त्वातौतदाव्यास समायातौकुशस्थलीम् ॥ ४२ ॥ पार्थप्राहतदाकृष्णस्सुसम्पूर्णमनोरथः ॥ गत्वाञ्जुनदिशंप्राचीं मूर्ति

अवन्तीपुरीको आइये ॥ ३८ ॥ व विश्वकर्मासे रचीहुई पारिजातकी प्रतिमाओंको पूजिये क्योंकि इन्द्रने उन मूर्तियोंको तुम्हारे व पाण्डवजीके लिये दियाहै ॥ ३९ ॥ श्रीकृष्णजी उस वचनको सुनकर उज्जयिनी पुरीको चले व आकाशमे नीचे उतरे और उन पाण्डव (अर्जुन) जी को लिपटाकर ॥ ४० ॥ प्रसन्नहुये व अर्जुनजी को लिपटाकर यह वचन बोले कि हे अर्जुनजी ! मेरा जन्म सफल होगया और मेरे बहुत प्रीति हुई ॥ ४१ ॥ जिस लिये मेरे बहुत प्रीति है उसीकारण उत्तम कार्य को कीजिये ऐसा कहकर उस समय हे व्यासजी ! वे दोनों अवन्ती पुरीको भलीभांति आये ॥ ४२ ॥ उस समय सम्पूर्ण मनोरथवाले श्रीकृष्णजी अर्जुनजी से बोले

कि हे अर्जुनजी ! पूर्वदिशाको जाकर एक मूर्तिको स्थापित कीजिये ॥ ४३ ॥ हे मुने ! दुपहरके इसपार उत्तम मनोहर लग्न होगी मैं भी स्थापनाके लिये उत्तरदिशाको नदीके समीप जाऊंगा ॥ ४४ ॥ और तुम मेरे शंखके शब्दसे सूर्यनारायणको स्थापितकरो तदनन्तर पूर्वदिशाको जाकर अर्जुनजीने उत्तम स्थानको देखा ॥ ४५ ॥ व हे व्यासजी ! सुदिग्ध अर्जुनजीने दिननायककी उस मूर्तिको स्थापित किया जबतक पाण्डव अर्जुनजी ने यह ध्यान किया कि देवको कहां स्थापितकरूं ॥ ४६ ॥ तबतक उस मूर्तिने कारणसे उत्तम देवस्थानको कहा व अर्जुनजीके लिये अपने तेजसे असह्य स्थानको दिखलाया ॥ ४७ ॥ तदनन्तर बोलतीहुई उस मूर्तिको देख तबतक उस मूर्तिने कारणसे उत्तम देवस्थानको कहा ॥ ४८ ॥ म

मेकान्निवेशय ॥ ४३ ॥ पूर्वाह्ने हि शुभं लग्नं भविष्यति मनोरमम् ॥ अहमप्युत्तरांयास्ये स्थापनार्थेन दीमुने ॥ ४४ ॥ म
मशङ्कस्य नादेन प्रतिष्ठापय भास्करम् ॥ पूर्वज्ञत्वा ततः पार्थः शुभं स्थानं व्यलोकयत् ॥ ४५ ॥ व्यासतां स्थापयामास
दिननाथस्य सुस्थिरः ॥ कदेवं स्थापयामीति यावद्दृष्ट्यौ च पाण्डवः ॥ ४६ ॥ तावत्साह्यब्रवीद्वैवस्थानं कारणशोभनम् ॥
दर्शयामास पार्थाय तेजसां स्वेन दुस्सहम् ॥ ४७ ॥ सर्वसाचीततो भीतो दृष्ट्वा च्छान्तां प्रजल्पतो म् ॥ तेजस्त्वसहमानो
वै देवं वचनमब्रवीत् ॥ ४८ ॥ कदेवत्वां प्रमुञ्चामि किं स्थानं तव रोचते ॥ सौम्यरूपस्सुदर्शश्च प्रजाभ्यो भवगोपते ॥
४९ ॥ दिवि संस्थाश्रये देवा नागाः पातालसंश्रयाः ॥ भुवि स्थामानवाः पूता भवन्तु तव दर्शनात् ॥ ५० ॥ सोऽर्जुन मब्रवी
द्देवो मामैस्त्वं मम दर्शनात् ॥ दक्षिणेन करेणाय ह्यभयेनाभयप्रदः ॥ ५१ ॥ समाश्वास्यार्थाथ तं शान्तस्सौम्यमूर्तिर्वभू
वंह ॥ प्रभाकरेण देवेन निजन्तेजः प्रदर्शितम् ॥ ५२ ॥ ततस्सूर्यो ब्रवीत्स्थानमेतदेवाचलं मम ॥ प्राप्ते लग्ने च हरिणा श
कर तेजको न सहते हुये उरे हुये अर्जुनजी सूर्यदेवजीसे वचन बोले ॥ ४८ ॥ कि हे देव ! मैं तुमको कहाँ स्थापित करूँ तुमको कौन स्थान रुचता है हे गोपते ! सौम्य
रूपवाले और सुन्दर दर्शनवाले होवो ॥ ४९ ॥ स्वर्ग में स्थित जो देवता हैं और पाताल में टिके हुये जो नाग हैं वे और पृथ्वी में टिके हुये मनुष्य तुम्हारे दर्शन से
पवित्र होंगे ॥ ५० ॥ उन सूर्यदेवजी ने अर्जुनजी से कहा कि मेरे दर्शन से तुम मत डरो इसके अनन्तर दाहिने अभय हाथ से अभय देनेवाले ॥ ५१ ॥ सूर्यनारा-
यणजी उनको भलीभाँति आशवासन कर शान्त व सौम्य मूर्तिवाले हुये सूर्यदेवजीने अपने तेजको दिखलाया ॥ ५२ ॥ तदनन्तर सूर्यनारायणजीने कहा कि मेरा यह

अचल स्थान है और लगन प्राप्त होने पर विष्णुजीने बड़े भारी शङ्ख को बजाया ॥ ५३ ॥ और नर (अर्जुन) जी ने देवताओं से प्रशंसा किये हुये सूर्यनारायण को स्थापित किया ॥ ५४ ॥ अर्जुनजी बोले कि प्रकाशमान सूर्यनारायणजी जयको प्राप्त होवें जो कि सात घोड़ोंवाले व सब लोकों में तेजवाले तथा पूर्वदिशा के अन्त में अट्टहासवाले हैं और जिनके कीर्तन से बहुत दोषों से ग्रसे हुये मनुष्योंका अंग पापरहित होता है ॥ ५५ ॥ ब्रह्मादिक मुनियों से स्तुति किये हुये सूर्यनारायणजीका पूरण स्तुति करने के लिये कौन पुरुष चाहता है तौ भी उच्चम ज्ञानवाला मैं विस्तारसे स्तुति करता हूँ क्या चन्द्रमाके उदय होने पर दीप जलता है ॥ ५६ ॥ शास्त्रोंके अर्थ

ह्वश्चापूरितो महान् ॥ ५३ ॥ नरेण च सर्वसूर्यस्थपितो मरुस्तुतः ॥ ५४ ॥ अर्जुन उवाच ॥ नयति किरणमाली भासुरसप्तसप्तिसकलभुवनधामा प्राग्दिगन्तादृहासः ॥ भवति विगतपापं कीर्तनादेव यस्य प्रचुरकलुषदोषैर्ग्रस्तमङ्गनराणाम् ॥ ५५ ॥ ब्रह्माद्यैर्मुनिभिरभिष्टुतं पतङ्गं कस्तो तुं कविरभिवाञ्छति प्रकामम् ॥ स्तोष्ये हंतदपि सुविस्तरात्सुबुद्धः किं दीपो ज्वलति हि प्रोदिता शङ्का ॥ ५६ ॥ शास्त्रार्थकामनिपुणैर्मुनिभिः स्तुतस्य किं वस्तु यन्नरचितं विविधैः प्रयोगैः ॥ हे पायन प्रभृतिभिर्मुनिभिः पुराणैरापीतसारा मिह मातिजगत्समस्तम् ॥ ५७ ॥ कामं तथाप्यहमतीव विचार्य बुद्ध्या भानो नि लोकगुरु पूजितपादयुग्मम् ॥ वृत्तैस्स्फुटार्थमधुराक्षरसन्धियुक्तैस्त्वाविविचित्रगतिभिः परिकीर्तयिष्ये ॥ ५८ ॥ तावज्जगद्भ्रवति निश्चलमेव सर्वं तावत्क्रियाश्च विविधानचर्या न्तिसिद्धिम् ॥ यावच्च नाथ कमलामण्डलस्त्वं नोत्तिष्ठसे व्यपनयनिकरणैस्तमांसि ॥ ५९ ॥ यावन्न भान्ति शिखराणि महीरुहाणां शुच्छान्य फुल्लतनुर्मलितलोचनानि ॥ मुष्टानि बोधयसि मे चतुर मुनयो से स्तुति किये हुये सूर्यनारायणजी की वह कौन वस्तु है जो कि अनेक भौतिके प्रयोगों से नहीं रचित है और व्यासादिक मुनियों से पिये हुये सारांश वाला सब संसार यहाँ शोभित है ॥ ५७ ॥ तौ भी हे सूर्यनारायणजी ! त्रिलोक मे गुरुओं से पूजित शुगल चरणोंवाले तुमको बहुत ही बुद्धि से विचारकर प्रकट अर्थ व मीठे अक्षरों से संधिसंयुत व विचित्र गतियोंवाले श्लोकों से तुम्हारा कीर्तन करता हूँ ॥ ५८ ॥ तबतक सब संसार अचल ही होता है और तबतक अनेक भौतिके कर्म सिद्धि को नहीं प्राप्त होते हैं जबतक कि हे नाथ ! किरणों से अन्धकारोंको दूर करते हुये कमलके समान निर्मल मण्डलवाले तुम नहीं उदय होते हो ॥ ५९ ॥ जब

तक कि वृत्तों के शिखर नहीं शोभित होते हैं व जबतक बिनफूले हुये शरीररूप मूँदे हुये नेत्रोंवाले व अमरों से व्याप्त व सोते हुये गुच्छोंको अति उत्तम प्रकाशों से नहीं जगते तब तक यह संसार नहीं शोभित होता है ॥ ६० ॥ आकाशमें उदयको प्राप्त तुमको देवताओं व सिद्धों के समूह व ब्रह्मा समेत दैत्य, मुनि, किन्नर, नाग और यक्ष तथा देवता प्रणाम किये हुये मस्तकों से व शोभित किरीट की मणिओं को अति उत्तम प्रकाशों से पूजते हैं ॥ ६१ ॥ तुम्हारे अस्त होजानेपर संसार सुप्त होजाता है और फिर तुम्हारे तपने पर बोधको प्राप्त होता है इस प्रकार हे भगवन्, वरदायक ! सदैव लोकोंके हितके लिये एक तुम्हीं अन्धकार के नाशक हो ॥ ६२ ॥ उत्साह, शक्ति,

पद्चरणकुलानि आवन्नभाभिरनुत्तमाभिः ॥ ६० ॥ उद्यन्तमम्बरतले सुरसिद्धसङ्घास्स ब्रह्मदैत्यमुनिकिन्नरनाग
यक्षाः ॥ त्वामर्चयन्ति विबुधाः प्रणतैः शिरोभिश्च चत्किरीटमणिभिरनुत्तमाभिः ॥ ६१ ॥ अस्तंगते त्वयि जगद्भवति प्र
सुप्तं भूयस्त्वयि प्रतपति प्रतिबोधमेति ॥ एवं सदा वरलोकहितार्थे हेतोरैकस्त्वमेव भगवंस्ति भिरस्यहन्ता ॥ ६२ ॥ उ
त्साहशक्तिनयशौर्यसमन्वितानां सेवाप्रयोगरचनाविधितत्पराणाम् ॥ कार्याणि यन्न फलदानि भवन्ति पुंसां हेतुस्त्वम
क्तिरिह नाथ तवेति नूनम् ॥ ६३ ॥ यत्संयुगेषु रथकुञ्जरकुन्तशक्तिनाराचक्रशरतोमरभीमखड्गैः ॥ जिप्रनरास्समुप
यान्ति विजित्य शत्रून्सर्वसदा प्रणतवत्सत्तु चेष्टितन्ते ॥ ६४ ॥ कान्तारदुर्गविषमेष्वपि वर्तमाना ऋक्षेभ्यो सिंहबहुकराटक
तस्करेषु ॥ कष्टान्विताश्च बहुशोकविमूढाश्चित्तास्त्वत्कर्तृना द्विगतमृत्युभया भवन्ति ॥ ६५ ॥ तेजोराशे त्वमिह शरणं स

नीति व शूरता से संयुत तथा सेवाप्रयोगकी रचनाकी विधि में तत्पर मनुष्यों के जो कार्य फलदायक नहीं होते हैं इस विषय में हे नाथ ! निश्चय कर तुम्हारी अभक्ति कारण है ॥ ६३ ॥ और युद्धों में जो रथ, हार्थी, भाला, शक्ति, नाराच, चक्र, बाण, तोमर व अयंकर तलवारों से मनुष्य शीघ्र ही शत्रुवोंको जीतकर सब वस्तु को प्राप्त होते हैं हे प्रणतप्रिय ! वह तुम्हारी चेष्टा है ॥ ६४ ॥ ऋक्ष, हार्थी, सिंह व बहुत कांटों तथा चोरों से संयुत दुर्गम पन्थ व किला और विषम स्थानों में वर्तमान तथा कष्ट से संयुत व बहुत शोकसे मूढ़चित्तवाले पुरुष तुम्हारे कर्तृनसे मृत्युक भयसे रहित होजाते हैं ॥ ६५ ॥ हे तेजराशि ! इस संसारमें सब ओरसे दुःखितजनोके

तुम रत्नकहो और सब संसार में तुम्हारे समान अन्य कोई दयालु नहीं है और खोजी जातीहुई सब भक्ति तुम्हीं एक में होतीहै और तुमको प्राप्तहोकर मनुष्यों को रोगोंका दुःख कहाँ से होताहै याने कहाँ से भी नहीं होताहै ॥ ६६ ॥ कौन कुष्ठ से पीड़ित मनुष्य व शत्रुर्वो से भी तथा रोगादिकों से पीड़ित कौन नर और लेंगडे, अन्ध व जड़ तथा नष्ट चरणोंवाले कौन व कौन निर्धन तथा कौन क्रियारहित पुरुष इसीप्रकार देखकर हे देव ! दयाके कारण दोषसे रक्षा करतेहो जैसी तुम्हारी पराये उपकार से परायण यह चेष्टाहै वैसी अन्य कौनकी है ॥ ६७ ॥ सेवा कियाहुआ यह धर्म प्रसिद्धि में परलोकमें टिकताहै व देवता अन्य समय से वरदायक होते हैं

वर्तोटोदुःखितानां त्वत्तुल्योन्योजगतिस्त्रयकलेनास्तिकश्चिद्दयालुः ॥ त्वय्येकस्मिन्भवतिसकला भक्तिरन्विष्यमाणा त्वा मासाद्यप्रभवतिकुतोव्याधिदुःखद्वाराणाम् ॥ ६६ ॥ कःकुष्ठाभिहतोनरोरिभिरपि व्याध्यादिभिःपीडितःकपङ्गवन्धज डाश्चशीर्णचरणाःकोवाधनःकोक्रियः ॥ इत्येवंप्रसमीक्ष्यदेवकृपयादोषात्परित्रायसे कस्यान्यस्यपरोपकारनिरता चेष्टायथैषातव ॥ ६७ ॥ धर्मःपरत्रकिलतिष्ठतिसेवितोसौ कालान्तरेणविबुधावरदाभवन्ति ॥ त्वंसेवितःप्रणतवत्सल भूतिकामैस्सद्यःप्रयच्छसिफलंयदमीप्सितन्तैः ॥ ६८ ॥ विभ्रान्तकान्तहरिणीसदृशेक्षणाभिरङ्गपुहारमणिकुरण्डलमेखलाभिः ॥ तेषांभवन्तिभवनानिविलासिनीभिर्येषांनृणांत्वमसिवैवरदःप्रसन्नः ॥ ६९ ॥ यैस्त्वन्नरैस्ससकृदपिप्रणतःकथंचिद्भ्यातोऽथवाभुवननाथतथान्तकाले ॥ निष्कलमषाजगतिदुष्कृतिनोभवन्ति तेनिर्मलास्सुकृतिनोगतिमाप्नुवन्ति ॥ ७० ॥ येत्वांकुतर्कमतिभिर्ननमन्तिभक्त्या रोमाञ्चकञ्चुकशताकुलितैश्शरीरैः ॥ तेनिर्धनाःपरगृहेष्वभवभूतम

व हे प्रणतप्रिय ! ऐश्वर्यकी इच्छावाले पुरुषों से सेवित तुम शीघ्रही उम फलको देतेहो जोकि उनसे चाहाजाता है ॥ ६८ ॥ जिन मनुष्यों के ऊपर वरदायक तुम प्रसन्न होतेहो उनके मन्दिर अमित व सुन्दरी मृगी के समान नेत्रोंवाली तथा अंगों में हार, मणि, कुरण्डल व क्षुद्रघण्टिकाओंवाली स्त्रियों से संयुत होते हैं ॥ ६९ ॥ हे सुवननाथ ! जिन मनुष्यों ने किसीप्रकार एकबार भी तुम्हारा प्रणाम किया है व अन्तकालमें ध्यान किया है वे पापी पातकोंसे रहित होतेहैं व निर्भल होकर पुण्यवान् की गतिको प्राप्तहोते हैं ॥ ७० ॥ जो मनुष्य भक्तिसे कुतर्कवाली बुद्धियों के द्वारा रोमांचरूपी सँकड़ों कवचों से आकुल शरीरों से तुमको नहीं प्रणाम करते हैं

बुधा से दुबले कण्ठवाले वे निर्धनी पुरुष पराये घरों में अपमान कियेहुये अन्न की याचना करते हैं ॥ ७१ ॥ व समुद्र के जलकी लहरियों के लोभकी नाई चञ्चल युगल नेत्रोंवाले और सैकड़ों उत्तम मणियों की किरणों से रोभित व जिह्वाओंको लपलपतेहुये प्रणाम किये शिरोवाले मुख्य नागों में तुम अनुपम व बड़ीभारी खुशियों से सदैव स्तुति कियेजातेहो ॥ ७२ ॥ हे सुरोत्तम, सूर्यनारायणजी ! जब तुम उदयको प्राप्तहोतेहो तब सुगन्दी गंगाजी के कमलोंसे उत्पन्न व पवनो के द्वारा सोने के समान कमलों की धूरिसे रंगेहुये अमरोंके समूह उडते हैं ॥ ७३ ॥ हे भगवन् ! तत्त्व का ध्यान करने के लिये समुद्र के मध्य में स्थितहोकर जीविका में क्षुत्क्षामकण्ठवदनाः परितङ्कयन्ति ॥ ७४ ॥ उदधिजलतरङ्गचोभलोलाचियुग्मैस्सुमणिशतमयूखोद्भासितैर्ललिह
मिः ॥ प्रणिपतितिशिरोभिर्नागमुखैरजस्रं श्रुतिभिरनुपमाभिस्तूयसेषुष्कलाभिः ॥ ७५ ॥ तवसुरवरगच्छतोऽप्युदेतुंविद
मोक्षं किं कुरुते ॥ कनककमलरेणुरज्जितानिभ्रमरकुलानिपतङ्गउत्पतन्ति ॥ ७६ ॥ तत्त्वध्यानं कर्तुं जलनिधि
मयः ॥ आजीवार्ये प्रतपसि भगवन्कस्ते तुल्यस्त्रिभुवनमध्ये ॥ ७७ ॥ उदयाद्रि नितम्बसंस्थित
किरणस्तपनीयसम्प्रभास्ते विलसन्तस्तडितो विडम्बयन्ति ॥ ७८ ॥ यथायथात्र
चक्रवाककलहंसमेखलाम् ॥ कामिनीमिवरतिश्रमालसान्तां विबोधयसिपद्मिनीङ्करैः ॥
भृङ्गतुङ्गचरणाकुलीकृतम् ॥ त्वत्प्रभाभिरनुरगरज्जितं पद्मारागमिवशोभतेभृश
॥ ७९ ॥ उदयोर्मे उदयाचल के पृष्ठभाग में स्थित व अस्तमयो में विरेहुये तुम्हारी सोने के
॥ ८० ॥ घने अन्धकार के समूहकी राशियों को विदारण करताहुआ तुम्हारा रथ उद्यो
॥ ८१ ॥ घने अन्धकार के समूहकी राशियों को विदारण करताहुआ तुम्हारा रथ उद्यो
॥ ८२ ॥ घने अन्धकार के समूहकी राशियों को विदारण करताहुआ तुम्हारा रथ उद्यो

होवो

णजीके लिये न

इस स्तोत्र से प्रसन्न हूँ व जो तुम्हारे मन में वर्तमान है उस
योग्य नहीं है ॥ ८३ ॥ अर्जुनजी बोले कि वरों के मध्य में उत्तम

हुआ तथा नील व चञ्चल और अतिसुन्दर और तुम्हारी प्रभाओं से अनुराग समेत रंगाहुआ कमल पद्मरागकी नाई बहुत शोभित होता है ॥ ७८ ॥ शोभायमान चन्द्रमा के समान हारकी नाई निर्मल व तुम्हारी किरणों से पूर्ण आकाश बहुतही शोभित होता है जोकि वडाभारी व खूब तथा अरुणवर्ण है ॥ ७९ ॥ इस संसारमे तबतक तुम उदय होकर मनुष्यों के सन्ताप को हरतेहो जबतक कि तुम्हारी किरणों से यह संसार पूर्ण होता है हे वरदायक ! सदैव वेदके मार्ग में तत्पर उदार बुद्धिवाले ऋषि मुनियों से तुम्हारे गुणोंकी स्तुति नहीं आश्रय कीजासक्ती है ॥ ८० ॥ तुम विष्णुहो तुम चन्द्रमाहो और दैत्यों के मथनेवाले स्वामिकारिकेयहो और तुम

म ॥ ७८ ॥ स्फुरच्छशाङ्कहारनिर्मलं त्वदंशुपूरितम् ॥ विमात्यतीवकान्तमम्बरं दृहच्चपाटलम् ॥ ७९ ॥ हरसित्वमेव ताप मिहतावदुदेत्यनृणां भवति च यावेदवकिरणैस्तव पूर्णमिदम् ॥ ऋषिमुनिभिरुदारधीभिरनिशंश्रुतिमार्गपरैर्वरदनशक्य ते तव गुणस्तुतिराश्रयितुम् ॥ ८० ॥ त्वं विष्णुस्त्वं शशाङ्कस्त्वमसुरमथनः परमसुखस्त्वं धनेशस्त्वं कालस्त्वञ्च धाता चि ति धरमृदपा माश्रयस्त्वं हुताशः ॥ अङ्कारस्त्वं द्विजानां त्वमिह जलनिधिस्त्वं यमस्त्वं चरुद्रस्त्वं शक्रस्त्वं पयोदो व्रतयम नियमास्त्वं जगत्सर्वमेव ॥ ८१ ॥ त्वमनिन्द्यगोपते त्रिपुरमथनमन्मथदाहकस्त्वमसुरभीमदर्पहा ॥ त्रिदशाधिपकम लवराननस्त्वमिह देवगुरुर्भगवंस्त्रिभुवनमण्डलेऽस्ति कतमस्तव तुल्यगुणः ॥ ८२ ॥ आदित्यभास्करदिवाकरसप्तमसे मार्तण्डसूर्यहरिदश्वपतङ्गभानो ॥ अश्रान्तवाहनस्वरूपगमस्ति मालिंस्त्वां लोकनाथशरणं प्रणिपद्यते सौ ॥ ८३ ॥

कुबेरहो व तुम कालहो और तुम विधाता, पर्वत, मिट्टी व जलोंके आश्रयहो और तुम अग्निहो व तुम ब्राह्मणोंके मध्यमे उंकारहो और इस संसार मे तुम मसुद्रहो, तुम यमहो, तुम रुद्रहो और तुम इन्द्रहो व मेवहो और तुम व्रत, यम व नियमहो और तुम सब संसारहो ॥ ८१ ॥ और हे त्रिपुरमथन, गोपते, अनिन्दनीय ! तुम कामदेवके सन्तापकारकहो और तुम भयंकर दैत्योंके गर्वविनाशकहो हे सुराधीश, भगवन् ! कमल के समान उत्तम मुखवाले तुम यहां देवताओंके गुरुहो त्रिलोक के मध्यमें तुम्हारे समान गुणवाला कौन पुरुष है ॥ ८२ ॥ हे आदित्य, भास्कर, दिवाकर, सप्ताश्व, मार्तण्ड, सूर्य, हरिदश्व, पतंग, भानो. अश्रान्तवाहनस्वरूप,

किरणमालिन, लोकनाथ ! यह संसार तुम्हारी शरणमें प्राप्त है ॥ ८३ ॥ हे पूर्वदिशा रूपी स्त्री के तिलकरूप ! व हे प्रकाशमान कर्णपूर ! हे मन्दकिर्णप्रिय, नाथ, संसार-दीपक, कनकाचलतापन, आकाश के हारके रत्न ! हे सन्धारूपी स्त्रीके वदनराग ! तुम्हारे लिये नमस्कार है नमस्कार है ॥ ८४ ॥ हे ब्रह्मण्य, सत्य, शुभ, मंगल, जगदीश, आकाश व कमलेश ! हे मुनियों से स्तुति कियेहुये, विद्वन्मूर्ते ! हे दुःखित जनके शोकहारक, सेवकपालक ! हे भगवन् ! शरण में आयेहुये मेरे ऊपर प्रसन्न होवो ॥ ८५ ॥ हे देव, प्रभो ! जिसलिये कमलकलीरूपी हाथों से मरतक पै अंजली करके तुम भलीभाति भाँकि से यहां आज स्तुति कियेगये उसी कारण मेरे ऊपर

प्राणिदग्धतिलकभासुरकर्णपूरमन्दकिर्णप्रियतनाथजगत्प्रदीप ॥ हेमाद्रितापननभस्तलहाररत्नसन्ध्याह्ननावदन
रागनमोनमस्ते ॥ ८४ ॥ ब्रह्मण्यसत्यशुभमङ्गललोकनाथ व्योमाम्बुजेशमुनिसंस्तुतविद्वन्मूर्ते ॥ आर्तस्यशोकह
रकिङ्करपालकश्च त्वम्प्रसीदभगवञ्चरणगतस्य ॥ ८५ ॥ कृत्वाञ्जलिशिरसिपङ्कजकुङ्कुमलाभ्यां यत्संस्तुतस्त्वमि
हदेवमयाद्यभक्त्या ॥ तेनप्रभोभवममोपरिसौम्यमूर्त्तिर्धर्ममतिकुरुसदाश्रियमूर्जिताम् ॥ ८६ ॥ नमस्सवित्रेजगदेकच
क्षुषेजगत्प्रसूतिस्थितिनाशहेतवे ॥ त्रयीमयायत्रिगुणात्मधारिणे विरञ्चिनारायणशङ्करात्मने ॥ ८७ ॥ सूर्यउवाच ॥
तुष्टोहमधुनापार्थ स्तोत्रेणानेनसुव्रत ॥ वरंदास्यामियत्नेनयत्तेमनसिवर्त्तते ॥ ८८ ॥ महर्शनंहिविफलं नकदाचित्प्र
जायते ॥ शूराणाञ्चविशेषेण हृदयंनस्ति यत्नतः ॥ ८९ ॥ अर्जुनउवाच ॥ एषोऽथवरोमह्यं वराणामुत्तमोत्तमः ॥ अत्र
सान्निहितोदेव सर्वकालंभवप्रभो ॥ ९० ॥ येचत्वांमानवाभक्त्या स्तोष्यन्तेप्रणतास्सदा ॥ तेषान्धनञ्चधान्यञ्च पुत्रदा

सौम्यमूर्ति होवो व धर्म में बुद्धि करो और सदैव बर्द्धिहुई लक्ष्मी कीलिये ॥ ८६ ॥ संसार के एक नेत्ररूपी व संसार की उत्पत्ति, पालन और नाश के कारणरूप सूर्य-
नारायणजीके लिये नमस्कारहै व वेदत्रयीमय, त्रिगुणात्मधारी, ब्रह्मा, विष्णु, शिवात्मके लिये प्रणामहै ॥ ८७ ॥ सूर्यनारायणजी बोले कि हे सुव्रत, पार्थ ! इस समय
में इस स्तोत्र से प्रसन्नहूँ व जो तुम्हारे मन में वर्तमान है उस वरदान को यत्न से दूंगा ॥ ८८ ॥ कभी मेरा दर्शन व्यर्थ नहीं होता है और शूरोंको विशेषकर यत्न से
न देने योग्य नहीं है ॥ ८९ ॥ अर्जुनजी बोले कि वरों के मध्य में उत्तमोत्तम यही मेरा वरदानहै कि हे देव, प्रभो ! सब समयमें तुम यहां स्थित होवो ॥ ९० ॥ और

जो मनुष्य सदैव भक्तिसे प्रणामकर सदा तुम्हारी स्तुति करें उनको धन, धान्य व पुत्र, स्त्री आदिक धन ॥ ६१ ॥ और मनका सम्पूर्ण अभिलाष देना चाहिये, यह मेरा वरदान है इसके उपरान्त सूर्यनारायणजी नर (अर्जुन) जी से उत्तम वचन बोले ॥ ६२ ॥ कि दे अर्जुन ! बड़ी भक्तिसे मुझको पूजकर जो मनुष्य इस स्तोत्र से मेरी स्तुति करेगा, उनको लक्ष्मीजी से वियोग न होगा यह मेरा वरदान है ॥ ६३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचिताया भाषाटीकायां नारादित्यमाहात्म्यनामत्रित्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥

रादिकंवसु ॥ ६१ ॥ मनसश्चेप्सितं सर्वं दातव्यं हिवरोमम ॥ अथादित्योनरन्देव उवाच वचनं शुभम् ॥ ९२ ॥ ये मांस्तु वन्त्यनेनाङ्ग पूजयित्वातिभक्तिः ॥ श्रियानविच्युतिस्तेषां भवेदेषवरोमम ॥ ९३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे नरादित्यमाहात्म्यनामत्रित्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ४३ ॥

सनत्कुमार उवाच ॥ नारायणोऽपि संस्थाप्य शङ्खं प्रथमाय यत्नतः ॥ तुष्टावप्रयतो भूत्वा स्तोत्रेणानेन भास्करम् ॥ १ ॥ आदित्यं भास्करं भानुं रविं सूर्यं दिवाकरम् ॥ प्रभाकरं नन्दिवानाथं तपनं तपतांवरम् ॥ २ ॥ वरेण्यं वरदं विष्णुमनघं वासवानुजम् ॥ बलवीर्यं सहस्रांशुं सहस्रकिरणद्युतिम् ॥ ३ ॥ मयूखमालिनं विश्वं मार्तण्डं चण्डरोचिषम् ॥ सदागतिं सुभास्वन्तं सप्तसप्तिसुखोदयम् ॥ ४ ॥ देवदेवमहिर्बुध्न्यं धाम्नाग्निधिमनुत्तमम् ॥ तपोब्रह्ममया लोकं लोकपालमपास्पतिम् ॥ ५ ॥ जगत्प्रबोधकन्देवं जगद्दीपं जगत्प्रभुम् ॥ अर्कन्निःश्रेयसपरं कारणं श्रेयसाम्परम् ॥ ६ ॥ इदं प्रभाविनं

दो ॥ यथा केशवादित्यकर ग्रहे सुभग माहात्म्य । चवालिते अध्याय में सोइ चरित याथात्म्य ॥ सनत्कुमारजी बोले कि विष्णुजी ने भी यल से शङ्खको बजाकर व भलीभांति स्थापन कर पवित्र होकर इस स्तोत्र से सूर्यनारायणकी स्तुति किया ॥ १ ॥ कि आदित्य, भास्कर, भानु, रवि, सूर्य, दिवाकर, प्रभाकर, दिवानाथ, तपन, तपतांवर ॥ २ ॥ व. वरेण्य, वरद, विष्णु, अनघ, वासवानुज, बल, वीर्य, सहस्रांशु, सहस्रकिरणद्युति ॥ ३ ॥ मयूखमाली, विश्व, मार्तण्ड, चण्डरोचि, सदागति, सुभास्वान्, सप्तसप्ति, सुखोदय ॥ ४ ॥ देवदेव, महिर्बुध्न्य, धामनिधि, अनुत्तम, तप, ब्रह्ममया लोक, लोकपाल व अपांपति ॥ ५ ॥ जगत्प्रबोधक, देव, जगद्दीप, जगत्प्रभु,

अर्क, निःश्रेयसपर, कारण, श्रेयसां पर ॥ ६ ॥ इतः, प्रभावी, पुरयः, पतंगः, पतंगेश्वर व चाहं ह्ये आर्थिके दायक और देले व न देखे ह्ये, फलों के दायक ॥ ७ ॥ ग्रह, प्रहकर, हंस, हरिदश्च, हुताशनः, मंगल्यः, मंगल, मध्यः, ध्रुवः, धर्मप्रबोधन ॥ ८ ॥ भवसंभावित, भावः, भूतभव्यः, भवात्मक, दुर्गेतः, दुर्गतिहारक, हरनेत्र, त्रयीमय ॥ ९ ॥ श्रेयोऽर्थयत्निक, तीर्थः, तरणिः, सर्वतोमुखः, तेजराशिः, सुनिर्वाणः, विश्वेशः, शाश्वतः, धाम ॥ १० ॥ कल्पः, कल्पानलः, कालः, कालचक्र, क्रतुप्रियः, भूषणः, मरुतः, सूर्यः, मयिरत्नः, सुतोचन ॥ ११ ॥ त्वष्टा, विष्टरः, विश्वः, सदसत्कर्मसाक्षी, सविता, सहस्रलोचनः, प्रजापालः, अष्टादशजः ॥ १२ ॥ ब्रह्मा, वासरारम्भः, रक्तवर्णः, महाद्युतिः, वः मध्यः

पुरयं पतङ्गपतंगेश्वरम् ॥ दातारं वाञ्छितार्थानां दृष्टादृष्टफलप्रदम् ॥ ७ ॥ ग्रहं ग्रहकरं हंसं हरिदश्च हुताशनम् ॥ भूषणं मङ्गलं मध्यं ध्रुवं धर्मप्रबोधनम् ॥ ८ ॥ भवसम्भावितं भावं भूतभव्यं भवात्मकम् ॥ दुर्गं दुर्गतिहारं हरनेत्रं त्रयीमयम् ॥ ९ ॥ श्रेयोऽर्थयत्निकं तीर्थं तरणिं सर्वतोमुखम् ॥ तेजराशिं सुनिर्वाणं विश्वेशं शाश्वतम् ॥ १० ॥ कल्पं कल्पानलं कालचक्रं क्रतुप्रियम् ॥ भूषणं मरुतं सूर्यं मयिरत्नं सुलोचनम् ॥ ११ ॥ त्वष्टारं विष्टरं विश्वं सदसत्कर्मसाश्रिणम् ॥ सवितारं सहस्रालं प्रजापालं मधोक्षजम् ॥ १२ ॥ ब्रह्माणं वासरारम्भं रक्तवर्णं महाद्युतिम् ॥ सूक्तं मध्यं दिने रुद्रं दयामं विष्णुं दिनक्षये ॥ १३ ॥ नाम्ना सष्टशतं दिव्यं विष्णुना समुदाहृतम् ॥ यद्दं प्रयतो भूत्वा पठेद्भक्त्या समाहितः ॥ १४ ॥ नतस्य विपदः कापि सर्वत्रापि शुभागतिः ॥ धनधान्यमुखावाप्तिः पुत्रलाभश्च जायते ॥ १५ ॥ तेजः प्रज्ञा परं ज्ञानं बुद्धिश्च परमागतिः ॥ एवं श्रुत्वा जगन्नाथो जगामादर्शनन्ततः ॥ १६ ॥ केशवार्कमुखं दृष्ट्वा पद्मरागसमप्रभम् ॥

॥ १३ ॥ इन एकसौ आठ दिव्य नामों को श्रीविष्णुजी ने कहा है पवित्र होकर सावधान होता हुआ जो मनुष्य भक्ति से इस कर्म को पढ़ेगा ॥ १४ ॥ उसको पढ़ी पा भी विपत्तिया नदी होती है और सब कहीं उत्तम गति होती है व धन, अन्न और सुखों की प्राप्ति व पुत्रलाभ होता है ॥ १५ ॥ ॥ १६ ॥ पद्मराग के समान प्रभावान् केशवार्कजी के

मुखको देखकर सब पापोंसे छूटा हुआ पुरुष सूर्यलोकमें पूजा जाता है ॥ १७ ॥ और दशाश्वमेधतीर्थ के मध्य में रेणुतीर्थ कहा जाता है उसको देखकर मनुष्य सब पापोंसे छूट जाता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ १८ ॥ केशवार्कजी के समीप रेणुतीर्थ कहा गया है ॥ १९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचितायां भादो० । शक्तिभेद अस तीर्थ जिमि भयो भूमि विख्यात । पैतालिस अध्याय में सोइ चरित है ख्यात ॥ सनत्कुमारजी बोले कि शक्तिभेद ऐसे कहेहुये अन्य तीर्थ

विमुक्तस्सर्वपापेभ्यस्सूर्यलोकेमर्हीयते ॥ १७ ॥ दशाश्वमेधमध्येतु रेणुतीर्थप्रचक्ष्यते ॥ तद्दृष्ट्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः ॥ १८ ॥ केशवार्कसमीपे तु रेणुतीर्थप्रकीर्तितम् ॥ १९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे केशवादि सनत्कुमार उवाच ॥ तीर्थमन्यत्तथावक्ष्ये शक्तिभेदमितस्मृतम् ॥ स्कन्दस्य च जटाभद्रं च क्रेथात्र पुरा शिवः ॥ १ ॥

तारकञ्च तथा दैत्यं हत्वा तत्र मुराद्विषम् ॥ शक्तिस्कन्दस्स्वयंकुद्धो निचिन्नेपमर्हीतले ॥ २ ॥ व्यास उवाच ॥ भगवन् ब्रूहि के निर्जितादानवैस्सुराः ॥ दिवं त्यक्त्वा दिशोजाताः शक्राद्याभयविकलाः ॥ ३ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ पुरा देवासुरेभ्यु आराधितो महादेव स्यम्बकस्त्रिपुरान्तकः ॥ ४ ॥ ततस्तुष्टो महादेवः शक्रस्याभिमुखः स्थितः ॥ उवाच वचनं श्लक्ष्णं व को मैं कहूंगा यहांपर । सदाशिवजी ने स्वामिकार्त्तिकेयजी का जटाभद्र (चौर) किया है ॥ १ ॥ और वहां पर देवताओं के वैरी तारकासुर को मारकर क्रोधित होते हुये आपही स्वामिकार्त्तिकेयजी ने शक्तिको भूतल में फेंक दिया ॥ २ ॥ व्यास जी बोले कि हे भगवन्, महासुने ! यत्से कहिये मेरे सन्देह है और मैं यह जाननेकी इच्छा करता हूं कि स्वामिकार्त्तिकेयजी कैसे उत्पन्न हुये हैं ॥ ३ ॥ सनत्कुमारजी बोले कि पुरातन समय देवासुरसंग्राम में दानवों ने देवताओं को जीता भय से विकल इन्द्रादिक देवता स्वर्गको छोड़कर दिशाओंको चले गये ॥ ४ ॥ तदनन्तर हे कालिज ! मुरराज इन्द्रजी ने उग्र तपस्या से त्रिपुरविनाशक त्रिलोचन महादेवजी की

आराधना किया है ॥ ५ ॥ तदनन्तर प्रसन्न होतेहुये महादेवजी इन्द्रके सामने स्थितहोकर कोमल वचन बोले कि मैं तुमको प्यारे वरदान को दूंगा ॥६॥ इन्द्रजी बोले कि हे भगवन्, शङ्करजी ! दयासे यदि मेरे ऊपर तुम प्रसन्न हो तो हे परमेश्वर, देव ! महासेनापतिको दीजिये ॥ ७ ॥ महादेवजी बोले कि हे देवेन्द्र ! सब अर्थ से बड़ेहुये पुत्रको उत्पन्न करो जोकि महासेन नामक देवताओं के भयहारक हैं ॥ ८ ॥ सनत्कुमारजी बोले कि ऐसा कहकर समस्त प्राणियों के स्वामी शिवदेवजी अन्तर्धान होगये और पुत्रकी चिन्ता में परायण सदाशिवदेवजी हिमाचलको चलेगये ॥ ९ ॥ व देवदारु के वन में टिकतेभये और ज्ञान व ध्यान में तत्परहुये हे मुने !

रमिष्टददामिते ॥ ६ ॥ शक्रउवाच ॥ यदितुष्टोसिभगवन्कारुण्यान्ममशङ्कर ॥ महासेनापतिन्देव प्रयच्छपरमेश्वर ॥
७ ॥ हरउवाच ॥ उत्पादयामिदेवेन्द्रं सर्वार्थाद्विजितं सुतम् ॥ नामतोयोमहासेनस्मुराणं भयहारकः ॥ ८ ॥ सनत्कुमारउवाच ॥ इत्युक्त्वान्तर्दधे देवस्सर्वभूतपतिर्हरः ॥ सुतचिन्तापरो देवो जगाम च हिमालयम् ॥ ९ ॥ देवदारुवने तस्थौ ज्ञानध्यानपरो भवत् ॥ ब्रह्मादयोऽपि यन्देवं योगिनोऽध्यानचिन्तकाः ॥ १० ॥ ध्यायन्ति नित्यतात्मानः प्राणायामपरा मुने ॥ लिङ्गमूर्तिश्च यो नित्यं पूज्यते सर्वजन्तुभिः ॥ ११ ॥ सध्यायति किमर्थन्तं न विद्वान् परमार्थतः ॥ एवं ध्यानपरे देवे देवी हिमवतो गृहे ॥ १२ ॥ मध्ये वयसि वर्तन्ती यासीद्वाचा यणी सती ॥ पितुर्गृहे निजो देहो यया योगाद्वि सजितः ॥ १३ ॥ निमन्त्रितो न मे भर्ता इतिकोपं चकार या ॥ तान् देवी हिमवाञ्छुत्वा पूर्वन्देवर्षि नारदात् ॥ १४ ॥ भवभार्या भवित्रीति

प्राणायाम में परायण पवित्र चित्तवाले व ध्यान के चिन्तन करनेवाले ब्रह्मादिक योगी भी जिनको ध्यान करते हैं और लिङ्गमूर्तिवाले जो नित्य समस्त प्राणियों से पूजे जाते हैं ॥ १०। ११ ॥ वे किसलिये उनको ध्यान करते हैं हम परमार्थ से, उसको नहीं जानते हैं इसप्रकार जब सदाशिवदेवजी ने ध्यान किया तब देवी पार्वती जी हिमाचलके घरमें ॥ १२ ॥ मध्य (युवा) अवस्था में वर्तमान थीं जोकि दक्षजी की कन्या सती जी हुई हैं और जिन्होंने पिताके घरमें योग से अपने शरीर को त्याग दिया था ॥ १३ ॥ मेरे पतिको निमन्त्रण नहीं किया गया इसकारण जिन्होंने क्रोध किया था उन पार्वती देवीजीको पहले देवर्षि नारदजीसे यह सुनकर कि शिव

जी की स्त्री होवैगी उन्होंने अन्य वरदानको नहीं चिन्तन किया जोकि शिवजी के लिये तप करती थीं वे सखियों से संयुक्त थीं ॥ १४१ ॥ १५ ॥ किसप्रकार शङ्कर देवजी मेरे पति होवेंगे जबतक इसप्रकार हिमयान्की कन्या पार्वतीदेवी शिवदेवजीके समीप गई ॥ १६ ॥ तबतक बलसूदन (इन्द्र) जी को आगेकर देवता भली भांति प्राप्तहुये और अत्रिनाशी ब्रह्माजी को देखने के लिये पवित्र ब्रह्मसभाको गये ॥ १७ ॥ और उन देवताओंने खुतिकर इस वचनको कहा कि यानवोंसे जीते हुये देवताओंके रक्तक होवो ॥ १८ ॥ तदनन्तर ब्रह्माजी देवताओंसे बोले कि मैंने समस्त कार्यको जाना परन्तु इन शंभुजीके वीर्यके विना कार्यकी सिद्धि न होगी ॥ १९ ॥

नान्यं वरमचिन्तयत ॥ यातपस्यति रुद्राय सा सखिभ्यां समन्विता ॥ १५ ॥ कथं हि शङ्करो देवो मम भर्ता भविष्यति ॥
यावदेवं गता देवं देवी हिमवतस्सुता ॥ १६ ॥ ततस्समागता देवाः कृत्वा ब्रह्मसूदनम् ॥ जगमुब्रह्मसदः पुण्यं द्रष्टुं ब्रह्मा
णमद्वयम् ॥ १७ ॥ तेसुराश्च स्तुतिं कृत्वा वाक्यमेतत्समब्रुवन् ॥ शरणं भवदेवानां दानं वैर्विजितात्मनाम् ॥ १८ ॥ त
तो वोचत्सुरान् ब्रह्मा ज्ञातं कार्यमया खिलम् ॥ नैतच्छम्भो विना रीत्या त्कार्ये सिद्धिर्भविष्यति ॥ १९ ॥ तथापतध्वन्द्वेशो
यथावाञ्छति पार्वतीम् ॥ इत्युक्त्वान्तर्दधे ब्रह्मा स्वप्ने लब्धं नयथा ॥ २० ॥ ततो मेरुसमागत्य पुनर्मत्तं प्रचक्रिरे ॥ तेषां
माहेदृशं शक्रस्तुष्टोशम्भुः पुरामम ॥ २१ ॥ प्रतिज्ञातञ्च देवेन स्वाह्वात्सेनापतिम्प्रति ॥ तस्मादेव हते कार्ये कारणं म
करध्वजम् ॥ २२ ॥ इति सञ्चिन्त्य देवेशो काममाहूय सत्वरम् ॥ उवाच वचनं हृद्यं देवानामनुकम्पया ॥ २३ ॥ यथा देवो

तुमलोग उस प्रकार यत्न करो कि जिस भांति देवेश सदा शिवजी पार्वतीजी की इच्छा करें ऐसा कहकर ब्रह्माजी अन्तर्द्धान होगये जैसे कि स्वप्न में पाया हुआ ध्वन अन्तर्द्धान होजाता है ॥ २० ॥ तदनन्तर सुमेरु गिरिपै भलीभांति आकर उन देवताओं ने सम्मति किया और इन्द्रजी ने उन देवताओं से ऐसा वचन कहा कि पुरातन समय मेरे ऊपर शिवजी प्रसन्न हुये ॥ २१ ॥ और शिवदेवजी ने अपने अंग से सेनापति के विषयमें प्रतिज्ञा किया है इसलिये इसप्रकार कार्य के प्रतर्होने पर मकरध्वज (कामदेव) कारण है ॥ २२ ॥ ऐसा भलीभांति चिन्तनकर देवताओं के ऊपर दया की कामनासे सुरेश (इन्द्र) जीने शीघ्रही कामदेवको बुलाकर

मनोहर वचन कहा ॥ २३ ॥ कि हे कामदेव ! जिसप्रकार सदाशिवदेवजी देवी पार्वती जीको भर्ज वैसाही कीजिये क्योंकि देवताओं का यह बडा भारी कारण प्राप्त हुआ है ॥ २४ ॥ इन्द्रका वचन सुनकर कामदेव ने हँसकर कहा कि मैं सब ऐसा करूंगा यदि वसंत मेरा मित्र होवे ॥ २५ ॥ इसके अनन्तर उस क्षणमें कामदेवजी के वचन के उपरान्त इन्द्र ने वसंत को आज्ञादिया कि शीघ्रही कामदेवके सेवक होवो ॥ २६ ॥ कामदेव वसन्तको मित्र पाकर स्त्री समेत चला और पुष्पोंके धनुष को बढाकर व बाणको हाथ में लेकर सावधान हुआ ॥ २७ ॥ जिस देवदारुवन में देवाधिदेवेश शिवजी स्थित थे वहापर ध्यान किये नन्दीश्वर द्वारपालजी टिके

भजेहैंवीं तथाकामंविधीयताम् ॥ कारणंमहदेतद्वै देवानांसमुपस्थितम् ॥ २४ ॥ कामोवाक्यंहरेश्रुत्वा प्रहस्यैवमुवाच
ह ॥ करिष्येसर्वमेवंहि सखाचेन्मोभवेन्मधुः ॥ २५ ॥ तस्मिन्क्षणेथशक्रेण कामवाक्यादनन्तरम् ॥ समादिष्टोमधुःजि
प्रं कामस्यानुचरोभव ॥ २६ ॥ लब्ध्वाकामोमधुमित्रं प्रतस्थेभार्ययासह ॥ कृत्वासंजंजधनुर्वाणं पौष्पपाणोसमाहि
तः ॥ २७ ॥ यत्रदेवाधिदेशो देवदारुवनेस्थितः ॥ नन्दीश्वरःप्रतीहारः कृतध्यानोवतिष्ठते ॥ २८ ॥ चूतवृक्षाश्रितः
कामो यावद्बाणंसमोहनम् ॥ सन्दधत्यन्तरेचास्मिन् देवीप्रापभवाश्रमम् ॥ २९ ॥ त्यक्तध्यानव्रतोदेवो हृष्टश्चाह्ला
दचेतनः ॥ ततोविलोकयामास दिशस्सर्वाःप्रयत्नतः ॥ ३० ॥ चूतवृक्षाश्रितंकाममपश्यत्संरुषान्वितः ॥ भस्मीकृतस्तृ
तीयाक्षणा वह्निज्वालाकुलेनसः ॥ ३१ ॥ देवोप्यन्तर्दधेतस्मात् स्थानादाशुगणैस्सह ॥ पार्वतीविस्मितासाध्वी लज्जि
तादुःखिताभवत् ॥ ३२ ॥ हिमवांस्तांसमुत्थाप्य निनायाशुनिजंघ्रहम् ॥ गतेदेवेचदेव्याञ्च कामपत्नीसुदुःखिता ॥ ३३ ॥

थे ॥ २८ ॥ आमके वृक्षके आश्रित कामदेव जबतक मोहनबाणको संधानकरै उसी समय में देवी पार्वतीजी शिवजी के आश्रम में प्राप्तहुई ॥ २९ ॥ तदनन्तर ध्यान व्रतोंको छोड़ेहुये आनन्द बुद्धिवाले प्रगल्भ शिवजी ने बड़े यत्न से सब दिशाओंको देखा ॥ ३० ॥ और क्रोधसंयुत उन्होंने आम्नवृत्तके आश्रित कामदेवजीको देखा और अग्निकी ज्वालामे आकुल तीसरे नेत्रसे उसको भस्म करदिया ॥ ३१ ॥ और गर्णोंसमेत सदाशिवदेवजी भी उस स्थान से अन्तर्द्वान होगये और पतिव्रता पार्वती जी विस्मित होकर लज्जित व दुःखितहुई ॥ ३२ ॥ हिमाचलजी उन पार्वतीजीको उठाकर शीघ्रही अपने घरको लेआये सदाशिवजीके जानेपर जब पार्वतीजी

चली गई तब कामदेवकी स्त्री रति दुःखित हुई ॥ ३३ ॥ और भस्म कियेहुये पति को देखकर बहुत दुःखित होती हुई रति ने विलाप किया व दुःख से विकल रति को देखकर आकाशवाणी ने कृपासे दुःखित सखी की नाई समझाती हुई सी कहा कि हे उत्तमापाणि ! तुम मत रोवो तुम्हारा पति बिन अंगवाला भी होकर भिन्नके कार्यकी विधि से सब कार्योंको करेगा और जब ये महादेवजी पार्वतीजी का व्याह करैगे ॥ ३४३५३६ ॥ तब शिवजी के ध्यान से उठेगा इसमें सन्देह नहीं है और द्वापरके अन्तमें जब श्रीकृष्णजी द्वारकामें बसैगे ॥ ३७ ॥ तब हे देवि ! उनका पुत्र प्रद्युम्न नामक तुम्हारा पति होगा इसप्रकार कही हुई उस रतिने आकाशसे पैदा हुई

भस्मीकृतपतिनृष्ट्वा विललापसुदुःखिता ॥ दृष्ट्वारतिसुदुःखार्तां वागुवाचाशरीरिणी ॥ ३४ ॥ आश्वासयन्ती कृपया सखीभिवसुदुःखिताम् ॥ मार्गदीस्त्वंशुभापाङ्गितवभर्ताकरिष्यति ॥ ३५ ॥ सर्वकार्यारण्यनङ्गोपि भिन्नकार्यविधानतः ॥ यदाचापमहादेवः परिणेष्यति पार्वतीम् ॥ ३६ ॥ तदाशम्भोरनुध्यानादुत्थास्यति न संशयः ॥ द्वारकायां यदाकृष्णो द्वापरान्ते निवत्स्यति ॥ ३७ ॥ तत्पुत्रो भविता देवि प्रद्युम्नो नाम ते पतिः ॥ इत्युक्त्वा सा जहाच्छोकमाकाशाज्जातयागिरा ॥ ३८ ॥ अचिन्तयत्तदा देवी उमापि हिमवद्गृहे ॥ कामस्य दहनं तेजश्शम्भोर्यत्तदनुत्तमम् ॥ ३९ ॥ कथं भर्ता भवेदीशः कामस्योत्थापनं कथम् ॥ नैतत्तपोविना कार्यं कचित्कस्यापि सिद्ध्ये ॥ ४० ॥ एवं सञ्चिन्तयित्वाथ स खीभिस्सहिताततः ॥ तपश्चकार सुमहत पित्रा देशाच्छुभव्रता ॥ ४१ ॥ वर्षास्वभावकाशस्था हेमन्ते जलशायिनी ॥ ग्रीष्मे पञ्चाग्नि तप्ताङ्गी तपस्युग्रे समास्थिता ॥ ४२ ॥ तान् दृष्ट्वा तपसोपेतां ब्रह्मचारिणुहं ॥ आजगामाश्रमन्देव्याः कृता

वाणी से शोकको त्याग दिया ॥ ३८ ॥ और उस समय हिमवान् के घरमें पार्वती देवी ने भी चिन्तन किया कि शिवजी का जो तेज कि कामदेवको जलानेवाला है वह बहुत उत्तम है ॥ ३९ ॥ और ईश्वर शिवजी कैसे पति होवेंगे व कामदेवका उत्थापन (उठाना) किस भांति होगा कहीं पर यह कार्य बिना तपके किसी की भी सिद्धिके लिये नहीं हुआ है ॥ ४० ॥ इसप्रकार चिन्तन कर तदनन्तर सखियों समेत उत्तम व्रतवाली पार्वती जीने पिताकी आज्ञासे बड़ी भारी तपस्या किया ॥ ४१ ॥ कि वर्षा ऋतु में आकाशस्थ व हेमन्तमें जलशायिनी तथा ग्रीष्म ऋतुमें पञ्चाग्नि से तच्चेहुये अंगोवाली पार्वती जी उग्र तपस्यामें स्थित हुई ॥ ४२ ॥ तपस्या से संयुत

उन पार्वती जी को देखकर ब्रह्मचारी शरीरवाले महादेवी पार्वतीजीके आश्रम को आये व किये आतिथ्य (पहुनई) बोले शिवजी यह बोले ॥ ४३ ॥ कि हे सेहमकटिवाली, कुशापाणि, नवयौवने, कल्याणि ! तुम किसके लिये व क्यों तप करतीहो कारण को कहिये ॥ ४४ ॥ उन पार्वतीजी ने सत्य व मीठे उत्तर को कहे कहा कि हे ब्रह्मचारी जी ! मुझ से तपस्या का प्रारम्भ शिवजी की प्राप्ति के लिये कियाजाता है ॥ ४५ ॥ यह सुनकर व विचारकर अपने कर्मकी निन्दा करते हुये शिवजी ने विचार किया कि पर्वतकी कन्या पार्वतीजी भक्तिकी परीक्षा के प्रयोजन को नहीं सहेगी ॥ ४६ ॥ उस स्थान से जानेकी इच्छावाली पार्वतीजी के समीप

तिथ्योब्रवीदिदम् ॥ ४३ ॥ कृशमध्येकृशापाङ्गि किमर्थन्नवयौवने ॥ तपःकरोषिकल्याणि कस्यार्थेकारणंवद ॥ ४४ ॥
उवाचचोत्तरंसावि सत्यञ्चमधुरन्तथा ॥ वटोतपस्समारम्भःक्रियतेशङ्कराप्तये ॥ ४५ ॥ विचार्यचहरःश्रुत्वा निन्दयन्
कार्यमात्मनः ॥ उमाभक्तिपरीक्षार्थन्नसहेतगिरिस्मृता ॥ ४६ ॥ गन्तुकामामुमांमत्वा तस्मात्स्थानान्महेश्वरः ॥ स्वं
पुद्गेश्यामास त्रिनेत्रंशूलपाणिनम् ॥ ४७ ॥ लज्जिताभूद्भवानीशं दृष्ट्वातस्थवधोमुखी ॥ विवाहायार्थयागेन्द्रं यथा
मेत्वांसयच्छति ॥ ४८ ॥ इत्युक्त्वान्तर्दधेदेवो देव्यगाच्चपितुर्गृहम् ॥ देवीलाभायसप्तर्षीन् सस्मारस्मरशासनः ॥ ४९ ॥
प्रणमुस्तेतथागम्य संस्मृताःपरमेश्वरम् ॥ ऊचुश्चप्राञ्जलिपुटाः कुर्मःकिंशाधिनोद्रुतम् ॥ ५० ॥ ततोब्रवीन्मुनीनीश
स्समस्तांश्चगिरैर्गृहम् ॥ गत्वातथाकुरुध्वम्मे पार्वतीस्याद्यथाप्रिया ॥ ५१ ॥ तथेतिचप्रतिज्ञाय सङ्केतंशम्भुनास्वयम् ॥

जाकर तीन नेत्रवाले व त्रिशूल हाथवाले अपने शरीर को दिखलाया ॥ ४७ ॥ व शिवजी को देखकर लजितहुई और नीचे मुखकरके खड़ी होगई विवाह के लिये हिमाचलजीसे प्रार्थना करिये कि जिसप्रकार मुझे तुमको देवें ॥ ४८ ॥ ऐसा कहकर शिवदेवजी अन्तर्द्वान होगये और पार्वती देवीजी पिताके घरको गई व कामदेव-विनाशक शिवजीने पार्वतीदेवीजी के मिलने के लिये सप्तर्षियों को स्मरण किया ॥ ४९ ॥ वैसेही स्मरण कियेहुये वे सप्तर्षिलोग आकर शिवजी को प्रणाम करते भये व हाथों को जोडकर बोले कि हमलोग क्या करें शीघ्रही हमलोगों को आशा दीजिये ॥ ५० ॥ तदनन्तर शिवजी सब मुनियोंसे बोले कि हिमाचलके घर

जाकर तुम लोग वैसाही कीजिये कि जिस प्रकार पार्वतीजी मेरी प्यारी होवें ॥ ५१ ॥ वैसाही होगा यह प्रतिज्ञाकर व आपही शिवजीसे सकेत कर स्त्रियोसमेत वे सप्तर्षि हिमाचलके स्थानको गये ॥ ५२ ॥ व हिमाचलसे दिये अर्घवाले तथा आसनों को ग्रहण कियेहुये वे सप्तर्षि हिमालयसे बोले कि याचना करते हुये शिवजी के लिये प्यारी पार्वतीजी को दीजिये ॥ ५३ ॥ दीगई ऐसा हिमाचलसे कहेहुये सप्तर्षिलोग विवाह के दिनको निरूपणकर व आज्ञाको पाकर बहा आये जहा कि महादेवजी थे ॥ ५४ ॥ और उन्होंने शिवदेवजीसे कहा कि हिमवान् ने पार्वतीजी को देदिया और कियेहुये कार्यवाले वे सब जिसभाति आये थे वैसेही चलेगये ॥ ५५ ॥ और

कृत्वा जगमुष्मपत्नीका गिरीन्द्रस्य निवेशनम् ॥ ५२ ॥ दत्तार्घ्याभूधरेन्द्रेण कृतासनपरिग्रहाः ॥ ऊचुरद्विमुमांयच्छ शं
ङ्करायार्थिने प्रियाम् ॥ ५३ ॥ दत्तेत्युक्ता गिरीन्द्रेण निरूप्योदाहवासरम् ॥ लब्धवानुज्ञां समायाता यत्रास्ते समहेद्वरः ॥
५४ ॥ ऊचुस्ते शङ्करं सर्वे दत्ता हिमवता शिवा ॥ कृतकार्याश्च सर्वेपि वज्रजुस्ते यथागताः ॥ ५५ ॥ चक्रुर्विवाहसामग्रीं ब्रह्म
वस्विन्द्रनारदाः ॥ वृषासनं जगामाशु नन्दीशप्रमुखैर्गणैः ॥ ५६ ॥ मातु दुन्दुभिनादैश्च ब्रह्माद्यैरमरैस्सह ॥ प्राप्यागे
न्द्रालयं शम्भुः कृतकौतुकमङ्गलः ॥ ५७ ॥ विवाहानां विधानेन जगाम स्वालयम्पुनः ॥ तत्रैकान्तरतिर्देवो यावत्तिष्ठति
कामवान् ॥ ५८ ॥ तावन्नस्ते स्मुरैरग्निः प्रेषितो गान्महेद्वरम् ॥ अग्नौ तत्र गते देवो रतित्यक्त्वामहेद्वरः ॥ ५९ ॥ नि
चिन्नेपमुखे वह्नेः स्वरेतो ब्रीडितो भूशम् ॥ रेतसा तेन तप्तो ग्निर्गङ्गातो येन चिच्छिपत् ॥ ६० ॥ हरैरतो गिनोर्द्वीर्णं गङ्गाम

ब्रह्मा, वसु, इन्द्र व नारद ने विवाहकी सामग्री को किया व नन्दीश आदिक गणों समेत शिवजी वृष के आसन पै शीघ्रही गये ॥ ५६ ॥ व माताओं की दुन्दुभियों के शब्दोंसे ब्रह्मादिक देवताओं समेत कियेहुये कौतुकपूर्वक मंगलवाले शिवजी हिमाचल के स्थान को प्राप्त होकर ॥ ५७ ॥ विधिसे इन पार्वतीजी को व्याहकर फिर अपने स्थान को चलेगये वहां पर एकान्त में रतिवाले कामी शिवदेवजी जबतक स्थित हुये ॥ ५८ ॥ तबतक डरेहुये देवताओं से पठाये हुये अग्निजी महादेवजी के समीप गये वहां अग्नि के जानेपर रतिको छोड़कर महादेवजी ने ॥ ५९ ॥ बहुतही लज्जित होकर अपने वीर्यको अग्नि के मुखमें फेंक दिया और उस वीर्य से तबेहुये

अग्निजी ने गंगाजी के जल में फेंक दिया ॥ ६० ॥ व अग्निजी से उगिला हुआ शिवजी का वीर्य गंगाजी के बीच में गिरा और उसके तेज से जली हुई उन गंगाजी ने उसको अपने किनारे पै धर दिया ॥ ६१ ॥ और सप्तर्षियों की छह खियां नहाने के लिये गंगाजी के समीप गई व स्नान किये हुई शीत से विकल वे किनारे पै जलते हुये तेजको देखकर ॥ ६२ ॥ अग्नि मानकर तापने की इच्छावाली वे सब भलीभांति प्राप्त हुई व उन खियों के तापने पर हे मुने ! वह वीर्य छह मुखवाला होगया और कटिके द्वार से शीघ्र ही चढ़ गया और अग्नि के आगे स्थित वे खिया जब आपस में ऊपर फेंकने के लिये न समर्थ हुई ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ तब उस भय से मुनियों के

ध्येयपातह ॥ तथा तु स्वतटेन्यस्तं दग्धया तस्य तेजसा ॥ ६१ ॥ सप्तर्षीणां च षट्पत्न्यः स्नानार्थं जाह्नवीययुः ॥ शीतात्वा स्ताः कृतस्नाना दृष्ट्वा ते जस्तटे ज्वलत् ॥ ६२ ॥ मत्वाग्निमिति तास्वस्तपुक्ता मास्समाययुः ॥ तपन्तीनाञ्च वैता सां तद्वीर्यमभवन्मुने ॥ ६३ ॥ पडाननं समारूढं श्रोणिद्वारेण सत्वरम् ॥ यदान्योन्यमुत्पतितुं शक्तानाग्नेः पुरःस्थिताः ॥ ६४ ॥ चिन्तामणुस्तदा सर्वा मुनित्रासात्ततोभयात् ॥ ततश्च तपसो वीर्याद्विकृष्यस्वोदरात्ततः ॥ ६५ ॥ षड्विंशत्समापन्नं श्वेतपर्वतमस्तके ॥ मध्ये शराणां विवृत्तं निक्षिप्तं वीर्यमुत्तमम् ॥ ६६ ॥ शुक्लायां प्रतिपद्यासीद्वितीयायां समीकृतः ॥ तृतीयायां वसाकारस्सर्वलक्षणलक्षितः ॥ ६७ ॥ चतुर्थ्यां परिपूर्णः षण्मुखोद्वादेशे क्षणः ॥ अलंकृतस्तुपञ्चम्यां षष्ठ्यां च सप्तमुत्थितः ॥ ६८ ॥ तेजसास्वेन तीव्रेण ततापसजगत्त्रयम् ॥ जातमित्थं समाकर्ण्य सर्वशक्रं मुखाः सुराः ॥ ६९ ॥ समा

उरके कारण वे सब चिन्ताको प्राप्त हुई तदनन्तर तपस्या के बल से अपने पेट से खींचकर उसके उपरान्त ॥ ६५ ॥ श्वेतपर्वत (कैलास) के बीच में वृहों ने एकता में प्राप्त किया और रामसरों के बीच में समस्त उत्तम वीर्य को शुक्लपक्षवाली परेवा में फेंक दिया और दुइज में सम किया गया व तीज में समस्त लक्ष्णों से लक्षित वह वसा के आकारवाला होगया ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ और चौथि में छह मुख व बारह नेत्रोंवाला वह पूर्ण अंगोंवाला होगया व पञ्चमी में अलंकार किया हुआ वह छठि में उठता भया ॥ ६८ ॥ और उसने अपने तीव्र तेज से त्रिलोकको सन्तप्त किया इस प्रकार पैदा हुये उनको मुनकर इन्द्रादिक सब देवताओं ने ॥ ६९ ॥ आकर ब्रह्मा ने

इनका विधिपूर्वक संस्कार किया और प्रसन्न पार्वतीश शिवजी ने उत्तम व दृढ़ शक्ति दिया ॥ ७० ॥ तदनन्तर पार्वतीजी ने मयूर को वाहन में कल्पित किया व अग्निने छाग दिया व समुद्र ने कुक्कुट (मुर्गी) को दिया ॥ ७१ ॥ तदनन्तर पुत्र की कामना से कृत्तिकाओं ने उसको बढ़ाया उसके उपरान्त संस्कारको प्राप्त व ब्रह्मादिक देवताओं से प्रणाम कियेहुये ॥ ७२ ॥ शक्ति हाथवाले व सुरसेनासे घिरे हुये उनका अभिषेक हुआ और विष्णाधिप, महासेन, पावक, षण्मुख व अंशज ॥ ७३ ॥ गांगेय, कार्तिकेय, गुह, स्कन्द, उमासुत, देवसेनापति, स्वामी, सेनानी व शिखिध्वज ॥ ७४ ॥ कुमार और शक्तिधारी उनके सोलह नामोंको जो मनुष्य भक्तिसे

गत्यास्यसंस्कारं ब्रह्माचक्रेयथाविधि ॥ तुष्टेनपार्वतीशेनशक्तिर्दत्तादृढाशुभा ॥ ७० ॥ ततोर्गौर्यामयूरश्च वाहनेपरिकल्पितः ॥ छागश्चैवाग्निनादत्तः कुक्कुटं सरिताम्पतिः ॥ ७१ ॥ ततस्सकृत्तिकाभिश्च वर्द्धितः पुत्रकाम्यया ॥ ततस्तुप्राप्तसंस्कारो ब्रह्माद्यैरभिवन्दितः ॥ ७२ ॥ शक्तिहस्तोभिषिक्तस्तु देवसेनासमावृतः ॥ वित्ताधिपोमहासेनः पावकः षण्मुखोऽंशजः ॥ ७३ ॥ गाङ्गेयः कार्तिकेयश्च गुहस्कन्द उमासुतः ॥ देवसेनापतिः स्वामी सेनानी च शिखिध्वजः ॥ ७४ ॥ कुमारः शक्तिधारी च तस्य नामानि षोडश ॥ यः पठेन्मानवो भक्त्या बाधातस्य न जायते ॥ ७५ ॥ एवं जातो महासेनो दानवानां क्षयङ्करः ॥ कुशस्थल्यां समानीतः शम्भुना स्थानकारणात् ॥ ७६ ॥ अभिषिक्तः स तेनासौ भद्रितस्सजटः पुरा ॥ तेन भद्रजटो नाम देवतीर्थं च कथ्यते ॥ ७७ ॥ कृताभिषेकं लब्ध्वा ब्रह्मासेनं महेश्वरः ॥ तमुवाच समधुरं सर्वदेवसमागमे ॥ ७८ ॥ रक्षाकार्या त्वया पुत्र सामरस्यशतक्रतोः ॥ देवानां बाधकास्सर्वे निहन्तव्याः सुरद्विषः ॥ ७९ ॥ इत्थं

पढ़ता है उसके बाधा नहीं होती है ॥ ७५ ॥ इसप्रकार दानवों के क्षयकारक महासेनजी पैदा हुये हैं और स्थान के कारण शिवजी से कुशस्थली उज्जैनी में लाये गये हैं ॥ ७६ ॥ और पुरातन समय उन शिवजी से ये महासेनजी अभिषेक किये गये और जटाओं समेत भद्रित (मुखिलत) हुये उस कारण भद्रजट नाम हुआ और देवतीर्थ कहा जाता है ॥ ७७ ॥ अभिषेक किये व अस्त्रों को पाये हुये उन स्वामिकार्तिकेयजीसे महादेवजी ने सर्व देवताओं के संयोग में मधुरतापूर्वक कहा ॥ ७८ ॥

कि हे पुत्र ! तुमको देवताओं समेत इन्द्रकी रक्षा करना चाहिये और देवताओं को बाधा करनेवाले सब दैत्योंको मारना चाहिये ॥ ७६ ॥ इसप्रकार उस प्रथमसागर में बड़ा उत्सव होने पर पातालतल में टिकीहुई सब मातार्ये आई ॥ ८० ॥ और सदाशिवजी ने उनके भोजनों की संज्ञासे जिन नामों को किया है हे मुनिश्रेष्ठ ! उनको तुम सुनो ॥ ८१ ॥ कि बरगदको भोजनकी इच्छावाली जो मातार्ये वे वटमाताहुई और जिन्होंने चिर्भटी (ककड़ी) को खाया वे चिर्भटमातृका हुई ॥ ८२ ॥ व शिवजी के साथ क्रीडा के लिये जो मांस भोजन में प्राप्तहुई वे सब छानवे मातार्ये पलमाता हुई ॥ ८३ ॥ हे मुने ! उन सर्वोंका पुण्यदर्शन गृह के भूतों का

महोत्सवेजाते तत्रप्रथमसागरे ॥ मातरोन्वागतास्सर्वाः पातालतलसंस्थिताः ॥ ८० ॥ तासामाहारसंज्ञाभिश्चक्रे नामा निशङ्करः ॥ यानितानिप्रवक्ष्यामि शृणुत्वमुनिपुङ्गव ॥ ८१ ॥ वटभोजनकामाया ज्ञयास्तावटमातरः ॥ भुक्तातुचिर्भ टीयाभिस्तावैचिर्भटमातरः ॥ ८२ ॥ क्रीडार्थंशम्भुनाचाथप्राप्तायाःपलभोजनैः ॥ पण्णवतिर्मातरश्चासन् सर्वास्ताःप लमातरः ॥ ८३ ॥ सर्वासान्दर्शनंपुण्यं गृहभूतविनाशकम् ॥ तायत्नतस्सदादैव्यो द्रष्टव्यामानवैमुने ॥ ८४ ॥ लब्ध्वा शक्तिमहासेनो देवसेनासमावृतः ॥ जघानदानवेन्द्रन्तं तारकं तारसातदा ॥ ८५ ॥ दत्त्वा राज्यं तथेन्द्राय स्फीतं निहतकण्टकम् ॥ कुशस्थलीं समागम्य तत्रवासं समाचरेत् ॥ ८६ ॥ एवं निहत्य दैत्येन्द्रं सगाङ्गो महो महाबलः ॥ शक्तिं शि प्राजलेमुच्चत्पातालं च विभेदसा ॥ ८७ ॥ ततो भोगवती व्यास शक्तिभेदेन निर्गता ॥ वन्दिता सर्वदैवैश्च मुनिभिश्च तपो धनैः ॥ ८८ ॥ पृथिव्यां यानि तीर्थानि समुद्रादिगतानि च ॥ शक्तिभेदे तु न्यस्तानि शतकोटिसहस्रशः ॥ ८९ ॥ अतो

विनाशक है सदैव यल से उन देवियोंको मनुष्यों को देखना चाहिये ॥ ८४ ॥ देवताओं की सेनासे बिरुद्धे स्वामिकार्तिकेयजी ने शक्तिको पाकर उस समय वेग से असुरेन्द्र तारक को मारा है ॥ ८५ ॥ व नष्टकण्टकोवाली तथा समुद्रराज्यको इन्द्र के लिये देकर उज्जैनी में आकर उन स्वामिकार्तिकेयजी ने वहां निवास किया ॥ ८६ ॥ इसप्रकार असुरेन्द्र तारकको मारकर उन महाबलवान् स्वामिकार्तिकेयजी ने शक्तिको शिप्रानदी के जलमें फेंक दिया और उसने पातालको विदारण किया ॥ ८७ ॥ तदनन्तर हे व्यासजी ! शक्तिके भेदसे भोगवती (सर्पपुरी) निकली जोकि सब देवताओं व तपस्वरूपी धनवाले मुनियों से प्रणाम कीहुई थी ॥ ८८ ॥

समुद्रादिको में प्राप्त जो तीर्थ पृथ्वी में हैं वे सैकड़ों करोड़ हजार तीर्थ शक्तिभेद तीर्थ में न्यास किये गये हैं ॥ ८९ ॥ इसलिये त्रिलोकमें कोटितीर्थ अतिपवित्र कहा गया है और ब्रह्माने वहां कोटितीर्थेश्वर सदाशिवजी को थापा है ॥ ९० ॥ कोटि तीर्थ में नहाकर मनुष्य कोटीश्वर शिवजी को देखकर सब पातकोसे छूटजाता है जैसे कि केंचुलि-से सांप छूटजाता है ॥ ९१ ॥ हे मुने ! पितरों का भक्त जो मनुष्य वहा श्राद्ध करता है वह दश अश्वमेधों के समस्त फलको प्राप्तहोता है ॥ ९२ ॥ व पितरों को उद्देश कर जो कुछ कोटितीर्थ में दियाजाता है वह सब कोटिगुना होताहै इसमें सन्देह नहीं है ॥ ९३ ॥ उस तीर्थ में जो मनुष्य दूधवाली गऊको

तिपुरण्यत्रैलोक्ये कोटितीर्थमुदाहृतम् ॥ ब्रह्मणाम्यापितस्तत्र कोटितीर्थेश्वरः शिवः ॥ ९० ॥ कोटितीर्थेनरस्सनात्वा दृष्ट्वा कोटीश्वरं शिवम् ॥ मुच्यते सर्वपापेभ्यो निर्मोकादिवपन्नगः ॥ ९१ ॥ श्राद्धं करोति यस्तत्र पितृभक्तो नरो मुने ॥ दशानामश्वमेधानां प्राप्नोति सकलं फलम् ॥ ९२ ॥ पितृनुद्दिश्य यत्किञ्चित् कोटितीर्थे प्रदीयते ॥ तत्सर्वं कोटिगुणितं जायते नात्र संशयः ॥ ९३ ॥ तत्र तीर्थेनरो यस्तु गान्ददाति पयस्विनीम् ॥ सर्वलोकानतिक्रम्य सगच्छेत्परमाङ्गतिम् ॥ ९४ ॥ यावन्त्यङ्गेपि रोमाणि तत्प्रसूति कुलेषु च ॥ तावद्युगसहस्राणि ब्रह्मलोकं महीयते ॥ ९५ ॥ पौर्णमास्यां समावस्यां पश्येच्छक्तिधरन्तु यः ॥ नापुत्रीनाधनो रोगी सप्तजन्मनि जायते ॥ ९६ ॥ जलप्रवेशं यः कुर्यात्तत्र तीर्थेनरोत्तमः ॥ सोक्षयं लभते लोके यावच्चन्द्रार्कयोस्सुखम् ॥ ९७ ॥ दृषोत्सर्गन्तु यः कुर्यात् पितृभक्तो नरो मुने ॥ सोक्षयं लभते स्थानं यत्सुरैरपि दुर्लभम् ॥ ९८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे शक्तिभेदमाहात्म्ये नाम पञ्चचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ४५ ॥ *

देता है वह सब लोकों को नोंधकर उत्तम गतिको प्राप्तहोता है ॥ ९६ ॥ व उसकी सन्तानके वंशोंमें जितने रोम होते हैं उतने हजार युगों तक वह ब्रह्मलोकमें पूजा जाताहै ॥ ९५ ॥ पौर्णमासी व अमावसमें जो मनुष्य शक्तिधर (महासेन) जीको देखताहै वह सातजन्मोंतक पुत्ररहित व निर्धनी नहीं होताहै ॥ ९६ ॥ व उसतीर्थ में जो उत्तम मनुष्य जलमें प्रवेश करताहै वह संसारमें तबतक श्रविनाशी सुखको प्राप्तहोताहै जबतक कि चन्द्रमा व सूर्य रहतेहैं ॥ ९७ ॥ हे मुने ! जो पितरोंका भक्त मनुष्य वहा दृषोत्सर्ग करताहै याने बैलको छोड़ताहै वह अक्षय स्थानको प्राप्तहोताहै जोकि देवताओं को भी दुर्लभहै ॥ ९८ ॥ इति पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥

अगस्त्येश शिव देवकर अति अद्भुत परभाव । छियालिसें अध्याय में कह्यो सुनीश सचाव ॥ सनत्कुमार जी बोले कि स्वर्णलुर तीर्थमें नहाकर व महेश्वर देवजी को देखकर सौ कपिलादान से भी अधिक फल होता है ॥ १ ॥ और जो जितेन्द्रिय पुरुष ब्रह्माकी बावली में स्नान करता है वह हंसों से संयुत विमान के द्वारा ब्रह्मलोक को जाना है ॥ २ ॥ व रात्रि में तैल नामक मातृगणों को जो बलि देता है उसकी शीघ्रही सिद्धि होती है व मरकर वह शिवलोक को जाता है ॥ ३ ॥ और चैत व फागुन में विष्णुवापी में नहाकर उपवास समेत जो जितेन्द्रिय पुरुष जागरण करता है ॥ ४ ॥ वह सब पापों से छूटजाता है व विष्णुलोक को प्राप्त होता है ॥

सनत्कुमार उवाच ॥ स्वर्णधुरे नरस्मनात्वा दृष्ट्वा देवं महेश्वरम् ॥ कपिलाशतदानस्य फलमप्यधिकं भवेत् ॥ १ ॥
वाप्यापितामहस्यापि यस्मनायाद्विजितेन्द्रियः ॥ हंसयुक्तेनयनेन ब्रह्मलोकं सगच्छति ॥ २ ॥ तैलाभिधानमातृणां रात्रौ यो यच्छते बलिम् ॥ तस्य सिद्धिर्भवेत्सद्यो मृतः शिवपुरं व्रजेत् ॥ ३ ॥ विष्णुवाप्यान्नरस्मनात्वा चैत्रे वा फाल्गुने तथा ॥ जागरं यस्तु कुर्वीत सोपवासो जितेन्द्रियः ॥ ४ ॥ मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं सगच्छति ॥ अभयेश्वरदेवस्य भक्त्या नियतमानसः ॥ ५ ॥ पट्टबन्धमथो दृष्ट्वा रुद्रलोकं सगच्छति ॥ लोकैस्तु जायेते दाता सार्वभौमो महीपतिः ॥ ६ ॥ यस्त्वगस्त्येश्वरं गच्छेदेकचित्तो नरो मुने ॥ दृष्ट्वा गस्त्येश्वरन्देवं सोपवासो जितेन्द्रियः ॥ ७ ॥ अगस्त्योदयवेलायां मुच्यते सर्वपातकैः ॥ कृत्वा गस्त्यञ्च सौवर्णैरौप्यं वाथ स्वशक्तिः ॥ ८ ॥ पञ्चरत्नसमायुक्तं वस्त्रेण च समन्वितम् ॥ तत्कालीनैः फलैः पुष्पैः पूजनीयो विधानतः ॥ ९ ॥ विधानंतस्य वक्ष्यामि चातुर्वर्ग्यं द्विजोत्तम ॥ सप्तधान्यानि मुख्यानि तांश्चैव चक्रवर्ती और मनको गेके हुये पुरुष भक्तिसे अभयेश्वर देवजी के ॥ ५ ॥ पट्टबन्धको देखकर इसके उपरान्त वह शिवलोक को जाता है और लोक में वह दाता व चक्रवर्ती राजा होता है ॥ ६ ॥ व हे मुने ! सावधान चित्तवाला जो मनुष्य अगस्त्येश्वरजी के समीप जाता है वह उपवास समेत जितेन्द्रिय पुरुष अगस्त्यजी के उदयकी वेला में अगस्त्येश्वर देवजी को देखकर समस्त पातकों से छूटजाता है व अपनी शक्ति के अनुसार सुवर्ण व चांदी के अगस्त्यजी को निर्माणकर ॥ ७ ॥ ८ ॥ व पंचरत्न से संयुत व वस्त्रसे संयुत कर उस समय वाले फलों व फूलों से विधिपूर्वक पूजन करना चाहिये ॥ ९ ॥ हे द्विजोत्तम ! उन अगस्त्यजी की चारों वर्णवाली विधि

को कहता हूँ कि सात धान्य व उतनेही फल मुख्य हैं ॥ १० ॥ हे मुने ! पहले एक धान्य व एक फल त्यागने योग्य होता है इसी प्रकार सात वर्षोतक ऐसाही व्रत करै ॥ ११ ॥ व हे काशपुष्पके समान, अग्नि व पवनसे उत्पन्न, मित्रावरुण के पुत्र, कुम्भयोने ! तुम्हारे लिये नमस्कार है ॥ १२ ॥ इस मन्त्र से अर्घ देने पर हे व्यासजी ! जो फल होता है उसको सावधानचित्तवाले होकर सुनिये कि वह पुत्रवान् व धनवान् होता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ १३ ॥ और मरकर वह स्वर्ग को जाता है व फिर मृत्युलोकमें प्राप्त होकर सम्पन्न (धनवान्) कुल में पैदा होता है और महायोगीश्वर होता है ॥ १४ ॥ सावधान होता हुआ जो मनुष्य इस

वन्त्येवफलानिच ॥ १० ॥ एकंधान्यंफलंचैकमग्रेत्याज्यंभवेन्मुने ॥ यावद्वैसप्तवर्षाणि व्रतमेवंसमाचरेत् ॥ ११ ॥

काशपुष्पप्रतीकाशवह्निमारुतसम्भव ॥ मित्रावरुणयोःपुत्र कुम्भयोनेनमोस्तुते ॥ १२ ॥ दत्तेर्घ्यत्फलंव्यास तद्वह्ने
कमनाःशृणु ॥ पुत्रवान्धनवांश्चैव जायतेनावसंशयः ॥ १३ ॥ मृतस्स्वर्गमवाप्नोति सम्पन्नेजायतेकुले ॥ मर्त्यलोके
पुनःप्राप्य महायोगीश्वरोभवेत् ॥ १४ ॥ यश्चैतच्छृणुयान्नित्यं पठेद्वासुसमाहितः ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तो मुनिलोकेस
मोदते ॥ १५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेऽगस्त्येश्वरमाहात्म्यनामषट्चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ४६ ॥

व्यासउवाच ॥ महाकालंकिमर्थन्तु किवाशिवपदंस्मृतम् ॥ कोटीश्वरंकिमर्थन्तु पावकंततकिमुच्यते ॥ १ ॥ नर
दीपःकिमर्थन्तु द्वितीयावदमातरः ॥ अभयेश्वरंकिमर्थन्तुशङ्खोद्धारणमेवच ॥ २ ॥ शुलेश्वरंकिमर्थन्तु किमोद्धार

चरित्र को नित्य सुनता व पढ़ता है समस्त पापों से छूटा हुआ वह पुरुष मुनि (आगरत्य) जीके लोक में प्रसन्न होता है ॥ १५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्ती
खण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायामगस्त्येश्वरमाहात्म्यंनामषट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥

दो० । नरदीपक नामक यथा भे दिननायक देव । सैतालिसर्वे में कह्यो सोइ चरित सुखसेव ॥ व्यासजी बोले कि महाकाल किस लिये हैं और कौन शिवस्थान
कहागया है व कोटीश्वर किस लिये हैं और वह पावक क्या कहाजाता है ॥ १ ॥ व नरदीप किस लिये हैं और दूसरी वटमातृका किस लिये हैं और अभयेश्वर

किस लिये हैं व शखोद्धारण किस लिये हैं ॥ २ ॥ व शूलेश्वर किस-लिये हैं और उंकार क्यों कहा जाता है व धूतपाप किस लिये है वैसेही अंगारेश्वर किस-निमित्त हैं ॥ ३ ॥ और दिव्य उज्जयिनी पुरी किस लिये सात कल्पोंवाली कही गई है हे मुनिश्रेष्ठ ! उसके जो नाम है उनको कहिये ॥ ४ ॥ सनत्कुमार जी बोले कि हे व्यासजी ! सुनिये कि जिस प्रकार दिव्य पुरी उत्तम पुण्यदायिनी है पहले में स्वर्णशृङ्गा व दूसरे कल्प में कुशस्थली ॥ ५ ॥ तीसरे में अवन्तिका कही गई है व चौथे कल्प में अमरावती और पांचवें में चूड़ामणि ऐसी पुरी प्रसिद्ध हुई है ॥ ६ ॥ व छठे में पद्मावती जानने योग्य है व सातवें कल्प में उज्जयिनी पुरी कही गई है और

स्तु कथयते ॥ धूतपापं किमर्थं न्तु किमङ्गारेऽश्वरन्तथा ॥ ३ ॥ पुरीचोऽजयिनी दिव्या सप्तकल्पाकथं स्मृता ॥ कथयस्व मुनिश्रेष्ठ तस्यानामानि यानि च ॥ ४ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ शृणु व्यासयथाख्याता पुरी दिव्या मुपुण्यदा ॥ स्वर्णशृङ्गा तु प्रथमे द्वितीये तु कुशस्थली ॥ ५ ॥ तृतीये वन्तिका प्रोक्ता चतुर्थे त्वमरावती ॥ विख्याता पञ्चमे कल्पे पुरी चूडामणीति च ॥ ६ ॥ षष्ठे पद्मावती ज्ञेया उज्जयिनी सप्तमे पुरी ॥ पुनरन्ते तु कल्पस्य स्वर्णशृङ्गादिका स्मृता ॥ ७ ॥ एतानि सप्तनामानि प्रातरुत्थाय यः पठेत् ॥ सप्तजन्मकृतात्पापान्मुच्यते नात्र संशयः ॥ ८ ॥ उज्जयिन्यां पुरो राजा वभूव किल चान्धकः ॥ तस्य पुत्रो महावीर्यो नाम्ना कनकदानवः ॥ ९ ॥ युद्धार्थे समहावीर्यः शक्रं युद्धे समाह्वयत् ॥ क्रोधादिन्द्रेण संग्रामं युज्यमानो निपातितः ॥ १० ॥ निहत्य दानवं शक्रो भयादन्धामुरस्यतु ॥ जगाम शङ्करान्वेषी कैलासं शङ्करालयम् ॥ ११ ॥ दृष्ट्वा प्राणम्य देवेशं चन्द्रार्द्धकृतशेखरम् ॥ भीतो विज्ञापयामास सहस्राकुललोचनः ॥ १२ ॥ अभयन्देहि मे देव

फिर कल्प के श्रान्त में स्वर्णशृङ्गादिका कही गई है ॥ ७ ॥ प्रातःकाल उठकर जो मनुष्य इन सात नामों को पढ़ता है वह सात जन्मों में किये हुये पातक से छूट जाता है इस में संन्देह नहीं है ॥ ८ ॥ पुरातन समय उज्जयिनी में अन्धक राजा हुआ है उसका बड़ा बलवान् पुत्र कनकदानव नामक हुआ है ॥ ९ ॥ उस महाबलवान् ने युद्ध के लिये समर में इन्द्र को बुलाया और संग्राम में युद्ध करते हुये उसको इन्द्र ने क्रोधसे गिरा दिया ॥ १० ॥ व दानव को मारकर अन्धक के डर ने शिवजी को दृढ़ करनेवाले इन्द्रजी कैलास नामक शिवजी के स्थान को गये ॥ ११ ॥ व अर्द्धचन्द्रमा को मस्तक में किये देवेश शिवजी को देखकर तदनन्तर

हजार विकल लोचनों वाले इन्द्र ने विनय किया ॥ १२ ॥ कि हे देव ! अन्धक दानव से मुझको अभय दीजिये इस प्रकार इन्द्र के वचन को सुनकर शरणागत-
प्रिय इन शिवजी ने ॥ १३ ॥ अभय दिया कि तुम अन्धक से मत डरो और महादेवजीने विश्वरूप व भयङ्कर रूप कर ॥ १४ ॥ जो कि भयङ्कर शब्द करते हुये व
पातालकी नाई उदररूपवाले तथा विप से उग्र व पैनी दाढ़ीवाले व अतिभयंकर और जिह्वाओं को लपलपाते हुये सपोंसे उपलब्धित था ॥ १५ ॥ व बहुत शर्त्तों को
धारेहुये अनेक हजार मुजाओं से संयुत था और सिंहचर्मको पहने व व्याघ्रचर्म को कोंधासूती दुपट्टा डाले ॥ १६ ॥ व हार्थिकं चर्मको आच्छादन किये तथा चन्द्रमा

दानवादन्धकाच्चैव ॥ शक्रस्येतथैवचःश्रुत्वा शरणागतवत्सलः ॥ १३ ॥ ददावभयमेवासौ माभैस्त्वमन्धकाद्विवै ॥ कृ
त्वारूपंमहादेवो विश्वरूपंमुभैरवम् ॥ १४ ॥ संपूर्णहस्त्रैस्तुग्रैस्तीक्ष्णदंष्ट्रैर्विषोल्बणैः ॥ पातालोदररूपैश्च भैरवाराव
नादिभिः ॥ १५ ॥ भुजैरनेकसाहस्रैर्वहुशस्त्रधृतैस्तथा ॥ सिंहचर्मपरीधानं व्याघ्रत्वगुत्तरायकम् ॥ १६ ॥ गजाजिन
कृताटोपं चन्द्राग्निरविलोचनम् ॥ महामहीध्रतुल्याभिर्जङ्घाभिर्भूषितंसदा ॥ १७ ॥ चोभयंश्चालयन्सर्वान् पाताल
स्यतलावधि ॥ ईदृशपंविधायेशो दनुदैत्यभयावहम् ॥ १८ ॥ अवातरन्महर्षीभिः पादेनैकेनशङ्करः ॥ तत्रैवहिहदोजा
तः सर्वदैवतवन्दितः ॥ १९ ॥ ख्यातंशिवपदं तद्विद्यत्पदाक्रान्तवान्विभुः ॥ यस्मादत्रपुराकोटिः पादाङ्गुष्ठस्यधारिता ॥
२० ॥ कोटितीर्थमतःख्यातं सर्वपापप्रणाशनम् ॥ अगस्त्येनतथाकोटिस्तार्थानामत्रधारिता ॥ २१ ॥ अतोपीदृक्शुभं

लोकं कोटितीर्थसदास्मृतम् ॥ दृष्ट्वातुन्निदशास्सर्वे स्नातावैहितकाम्यया ॥ २२ ॥ महाकालंकृतरूपं महाकालस्ततः
अग्निं व सूर्यं लोचनोवाले और सदैव महापर्वतोंके समान जंघाओं से भूषित ॥ १७ ॥ और पाताल के नीचे तक सब जन्तुओं को क्षोभित करते व केंपाते थे दानवों व
दैत्यों के भय हारक ऐसे रूपको बनाकर ईश्वर ॥ १८ ॥ सदाशिवजी एक चरणसे पृथ्वीमें उतरे वहीं पर सब देवताओं से प्रणाम कियाहुआ कुण्ड हुआ ॥ १९ ॥ वह
शिवपद कहागया जिसको कि व्यापक शिवजी ने चरण से आक्रमण किया जिसलिये पहले चरण के अंगूठेकी कोटि धारण कीगई ॥ २० ॥ इसी कारण सब पापों
का विनाशक कोटितीर्थ कहागया है वैसेही यहांपर अगस्त्य जीने कोटितीर्थों को धारण किया है ॥ २१ ॥ इसीकारण संसार में सदैव ऐसा उत्तम कौटितीर्थ

कहा गया है उसको देखकर सब देवता हितकी कामना से नहाते भये ॥ २२ ॥ जिस लिये महाकालरूप किया गया उसी कारण महाकाल कह गये हैं अन्धकासुर दैत्य ने भी युद्धमें मरेहुये पुत्रको सुनकर ॥ २३ ॥ बड़े क्रोध से संयुत होकर समर में तुरहियों को बजाया और सेना समेत निकलकर वहां प्राप्त हुआ जहां कि रथों व हाथियोंसे संयुत बड़ी सेना समेत वे देवता स्थित थे उसी समय महायुद्धमें किये हुये उद्यमवाले दानवों को देखकर ॥ २४ ॥ २५ ॥ काभतेहुये वे सैयार देवता शिवजी की शरण में गये व त्रिलोचन महाकालजी ने देवताओं से कहा कि मत डरो ॥ २६ ॥ क्रोध के कारण दाढ़ों से ओष्ठों को काटतेहुये शिवजी त्रिशूल को लेकर

स्मृतः ॥ अन्धामुरोपिदनुजः पुत्रं श्रुत्वा हतं युधि ॥ २३ ॥ क्रोधेन महता विष्टो रणतूर्याण्यवा दयत ॥ समैन्यो निगंतः प्राप्ता यत्र ते विदशाः स्थिताः ॥ २४ ॥ महत्यासेनया सार्द्धं रथवारणयुक्तया ॥ तदैव दानवान् वीक्ष्य महाहवकृतोद्यमान् ॥ २५ ॥ वेपन्तस्ते सुसन्नद्धाः शम्भुशरणमाययुः ॥ मा भैषत महाकालो देवानूचो त्रिलोचनः ॥ २६ ॥ गृहीत्वा शूलमातिष्ठ दंष्ट्रादष्टाधरोरुषा ॥ कोपयुक्ते विरूपाक्षे ज्वालाभिः पूरितन्नमः ॥ २७ ॥ अन्धकेनाथरुष्टेन शरकोटिस्तुदुस्सहा ॥ मुक्ता जगाम देवानां नाशाय शूलभाकृतिः ॥ २८ ॥ विम्बुलिङ्गाच्चिषं वह्निं मुञ्चमानः पिनाकधृक् ॥ शतशः शकलीचक्रे त आवाणैरताडयत् ॥ २९ ॥ अन्धकोपि हि युद्धस्थो शिथिलः शिथिलयुधः ॥ निरुद्धशम्भुना बाणैरलिभिः पङ्कजं यथा ॥ ३० ॥ तस्यै न्यञ्च बहुधा स्वर्गणैर्युद्धयोधिभिः ॥ यो धृवरैर्हतं दिव्यैः स्थाणुसाम्निध्यमाश्रितैः ॥ ३१ ॥ ततो न्धकेन स

स्थित हुये जब शिवजी क्रोध से संयुक्त हुये तब ज्वालाओंसे आकाश पूर्ण होगया ॥ २७ ॥ इसके अनन्तर क्रोधित अन्धक से छोड़ेहुये असंख्य करोड बाण जोकि पांखी के समान आकारवाले थे देवताओं के नाशके लिये गये ॥ २८ ॥ त्विनगरी व ज्वालाओंवाली अग्नि को छोड़तेहुये पिनाकधारी शिवजीने सैकड़ों खण्ड किये और उस अन्धक को बाणोंसे ताड़ित किया ॥ २९ ॥ और शिथिल अस्त्रोंवाला व युद्धमें टिकाहुआ अन्धक भी शिथिल हुआ और शिवजीसे बाणोंके द्वारा आच्छादित किया गया जैसे कि अमरों से कमल आच्छादित होता है ॥ ३० ॥ और निज गण व शिवजी की समीपता में आश्रित तथा युद्धमें लड़नेवाले दिव्य उत्तम

योधाओं से उस अन्धक की सेना बहुत खण्ड की गई ॥ ३१ ॥ तदनन्तर अन्धक ने देवताओं से कटीहुई अपनी सेना को देखकर व शिवजी से करोड़ों बाणों करके अपना को वेधित देखकर सैकड़ों मायावों में चलुर व विकल कीहुई देहवाले इसने भय में प्राप्त होकर वेगसे तामसी (अन्धकारवाली) माया किया ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ व उस माया से अन्तर्द्वान शरीरवाला यह दैत्य उत्तर दिशा को चला गया व शिवजी के भयहारक रूपको धारण करता हुआ भिन्नहृदयवाला यह दैत्य पृथ्वी में अमता भया ॥ ३४ ॥ जिस मार्ग से दैत्य (अन्धक) गया था उसीसे बार २ यह कदवेने किन रेन्नी ने

न्यस्वं भिन्नदृष्टातथासुरैः ॥ आत्मानञ्चमहेशेन विद्वच्चवाणकोटिभिः ॥ ३२ ॥ विकलीकृतदेहोसौ भयमाश्रित्यवे
गतः ॥ चकारतापसीमायां मायाशतविशारदः ॥ ३३ ॥ तयान्तर्हितदेहोसौ जगामदिशमुत्तराम् ॥ शम्भोभीतिहरं
विभ्रद्भ्रामसुविभिन्नहृत् ॥ ३४ ॥ येनाध्वनागतोदैत्यस्तेनदेवोजगामह ॥ वदन्नदृश्यतेकासौ गतोदुष्टः पुनः पुनः ॥
३५ ॥ उवाचचान्धकश्शब्दं तथोवाचमहेश्वरः ॥ तत्रतीर्थमथोत्पन्नं वागन्धकमिति श्रुतम् ॥ ३६ ॥ तत्रस्नात्वाशुचिर्भू-
त्वा योवैदद्यात्सशर्करम् ॥ नवम्यांमार्गशीर्षस्य शुक्लायांश्रद्धयान्वितः ॥ ३७ ॥ अक्षयंतद्भवेत्सर्वं दाताशिवपुरं ब्रज-
त ॥ पितृनुद्दिश्ययत्किञ्चिद्दीयतेभक्तिदिशवे ॥ ३८ ॥ तुष्ठास्तिष्ठन्ति तेतावद्यावदाभूतसम्प्लवम् ॥ तमसाह्वादितादे-
वाम्संबभूवुस्समाकुलाः ॥ ३९ ॥ सम्भ्रान्तमनसस्सर्वे नकिञ्चिदपिमेनिरे ॥ एतस्मिन्नन्तरेव्यास नरादित्यस्स्वते
जसा ॥ ४० ॥ उत्तस्थौनरूपेण कुर्वन्वितिमिरादिशः ॥ नष्टेमामसिदैत्येणि प्रकाशेप्रकटेसति ॥ ४१ ॥ देवामुदमवा-

अन्धक बोला वैसेही महादेवजी ने शब्दको कहा वहापर वागन्धक ऐसा प्रसिद्ध तीर्थ उत्पन्न हुआ ॥ ३६॥ उसमें नहाकर व पवित्र होकर श्रद्धासंयुत जो पुरुष अगहनकी शुद्धपत्नवाली नवमी में शर्करा समेत दान देताहै ॥ ३७॥ वह सब अक्षयहोताहै और दाता शिवपुरको जाता है शिवजी में भक्ति से पितरो को उद्देशकर जो कुछ दिया जाताहै ॥ ३८ ॥ तो वे पितर तुसहोकर तबतक स्थित होते हैं जबतक कि प्रलय होती है व अज्ञानसे आच्छादित देवता विकलहुये ॥ ३९ ॥ और अमितमनवाले सबों ने कुछ भी नहीं जाना इसी अवसर में हे व्यासजी ! अपने तेज से दिशाओंको अन्धकार रहित करते हुये नरादित्यजी मनुष्य के रूपसे उठे अन्धकार व दैत्य

के भी नाश होनेपर व प्रकाश प्रकट होनेपर ॥ ४० ॥ नेत्रों से अनन्तजीको देखकर अनेक भांति के स्तोत्रों से मनुष्यरूपी सूर्यनारायणजी की स्तुति करते हुये उन देवताओं ने आनन्द पाया ॥ ४२ ॥ जिसलिये प्रकाशित सूर्यनारायणजी नररूप से उठे उसी कारण उन समर्थ देवताओं ने इनका नरदीप ऐसा नाम किया ॥ ४३ ॥ जो मनुष्य भक्तिसे नरदीप सूर्यनारायणजी को देखता है वह यद्यपि ब्रह्मघाती भी होवै तथापि समस्त पापोंसे छूटजाता है ॥ ४४ ॥ हे विप्रजी ! रविवार में छठि व सप्तमी तिथि में उपवास करनेवाला पुरुष दिनक्षय में संक्रान्ति में व ग्रहण तथा विषुवत (दिन रात बराबरवाले समय) में ॥ ४५ ॥ कुराड में नहाकर

पुस्ते दृष्ट्वानन्तन्तुलोचनैः ॥ स्तुवन्तोविविधैस्तोत्रैर्नररूपं दिवाकरम् ॥ ४२ ॥ उत्तम्यौनररूपेण दीप्तोयस्माद्विवाकरः ॥ तेनास्यनामतेचकुर्नरदीप इतीश्वराः ॥ ४३ ॥ यः पश्यति नरो भक्त्या नरदीपं दिवाकरम् ॥ मुच्यते सर्वपापेभ्यो यद्यपि ब्रह्महाभवेत् ॥ ४४ ॥ षष्ठ्यामर्कदिने विप्र सप्तम्यामुपवासकृत् ॥ दिनक्षयेथसंक्रान्तौ ग्रहणे विषुवत्यथ ॥ ४५ ॥ कुराडे स्नात्वा शुचिर्भूत्वा जपन्नियतमानसः ॥ नरदीपं नरः पश्येत्स्तोत्रवादित्रमङ्गलैः ॥ ४६ ॥ गन्धैर्धूपैस्तथा दीपैर्नैवैर्द्यैर्विविधैस्तथा ॥ गीतवाद्यं पुराकृत्वा प्रणम्याष्टाङ्गमेव च ॥ ४७ ॥ प्रातर्मध्ये पराङ्गिवा कृत्वा कंस्यप्रदक्षिणाम् ॥ समुक्तस्सर्वपापैस्तु सप्तजन्मकृतैरपि ॥ ४८ ॥ सूर्यकोटिप्रतीकां शीर्विमानैस्सर्वकामिकैः ॥ सूर्यलोकं प्रयात्याशु यत्सुरैरपि दुर्लभम् ॥ ४९ ॥ शक्रात्प्राप्य पुरायस्माद्भानुरवप्रतिष्ठितः ॥ नरैव प्रसादेन नरदीपस्ततो ह्ययम् ॥ ५० ॥ तदैवास्य पुरा व्यास या

व पवित्र होकर नियम में प्राप्त मनवाला पुरुष जपताहुआ मनुष्य स्तोत्र व वाद्यादिक मंगलों से नरदीपजी को देखै ॥ ४६ ॥ और गंध, धूप, दीप व अनेक भांति के नैवेद्यों से पूजकर व आगे गीतवाद्यकर व अष्टांग प्रणामकर ॥ ४७ ॥ प्रातःकाल मध्याह्न व दुपहरके उसपर सूर्यनारायणजी की प्रदक्षिणाकर वह सातजन्मों में भी कियेहुये सब पातकों से छूटजाता है ॥ ४८ ॥ और करोड़ों सूर्योंके समान सब कामनाओंवाले विमानों के द्वारा शीघ्रही सूर्यलोकको जाता है जोकि देवताओंकी भी दुर्लभ है ॥ ४९ ॥ पुरातन समय जिसलिये इन्द्र से पाकर नरजी ने वहाँपर प्रसन्नतासे सूर्यनारायण को थापाहै उसकारण ये नरदीपजी है ॥ ५० ॥ हे व्यासजी !

पुरातन समय तभी इन्द्र ने यात्रा किया है और यह कहा कि हे पार्थ ! ज्येष्ठ बीतने पर सदैव सावधान होताहुआ मैं देवताओं समेत आर्जुना और संसार में देवकी चृष्टि से बहा आयाहुआ मैं जानने योग्य हूँ ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ उसके उपरान्त देवालय में जो देवता प्राप्त थे वे आकर प्रकाशकारक वैसे नरदीप देवजी को पूजकर ॥ ५३ ॥ और यात्राकर तदनन्तर देवयात्रा के अन्त में वे जाते थे जो मनुष्य रथ पै स्थित नरदीपदेवजी को देखता है ॥ ५४ ॥ सब पापोंसे छूटाहुआ वह सूर्यलोक में पूजाजाता है इसके उपरान्त फिर जो नरदीपजी की रथयात्रा है उसको कहताहूँ ॥ ५५ ॥ कि उसको करके उस पुण्यको मनुष्य प्राप्तहोता है जोकि मुनियों से

त्राशक्रेणनिर्मिता ॥ आगमिष्याम्यहंपार्थ सार्द्धन्दैवैस्समाहितः ॥ ५१ ॥ ज्येष्ठेतीतेद्वितीयायां नरदीपेत्तुसर्वदा ॥ तत्राहमागतोज्ञेयो लोकैर्देवस्यवर्षणात् ॥ ५२ ॥ ततोऽनन्तरमागम्य देवायेत्रिदशालये ॥ इष्ट्वादेवंतथारूढं नरदीपं सुदीपनम् ॥ ५३ ॥ कृत्वायात्राञ्चतेयान्ति देवयात्रात्ययेततः ॥ यःपश्येन्मानवोभक्त्या नरदीपंरथस्थितम् ॥ ५४ ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तस्सूर्यलोकमर्हायते ॥ रथयात्रामथोवक्ष्ये नरदीपस्ययापुनः ॥ ५५ ॥ तां कृत्वाचैवयत्पुण्यं मुनिभिः परिकीर्तितम् ॥ ज्येष्ठेतीतेद्वितीयायां रथस्थोहिदिवाकरः ॥ ५६ ॥ कुशस्थल्याद्विजश्रेष्ठैर्बाहुचैपैःप्रणीयते ॥ उत्तरा न्दिशमायान्तं यःपश्यतिदिवस्पतिम् ॥ ५७ ॥ अग्निष्टोमस्ययज्ञस्य लभतेसोखिलंफलम् ॥ निवृत्तंकेशवाकांक्षो रथंपश्यतिमानवः ॥ ५८ ॥ मुण्डीरस्वामिनोयात्रा कृतातेननसंशयः ॥ रथमाकर्षतेयस्तु रज्ज्वाकर्षेणवैमुने ॥ ५९ ॥ कुलमुद्धरतेसोपि पूर्वान्निपतृपितामहान् ॥ दक्षिणाभिमुखंयान्तं नरदीपंद्विजोत्तम ॥ ६० ॥ येसंयताःप्रपश्यन्ति तेया

कहागयाहै ज्येष्ठ बीतने पर द्वितीया तिथिमें रथपै स्थित सूर्यनारायणजी ॥ ५६ ॥ उज्जैनीपुरी में द्विजोत्तमों से मुजाक्षेपके द्वारा प्राप्तकियेजाते हैं उत्तर दिशामें आते हुये सूर्यनारायणजी को जो देखताहै ॥ ५७ ॥ वह अग्निष्टोम यज्ञके समस्त फलको प्राप्तहोताहै व केशवाकर्जसि लौटेहुये रथको जो मनुष्य देखताहै ॥ ५८ ॥ उसने मुण्डीर स्वामीकी यात्राकिया इसमें सन्देह नहीं है व हे मुने ! जो मनुष्य रसिके आकर्षणसे रथको खींचता है ॥ ५९ ॥ वह भी वंशको उद्धारता है व पहलेवाले पिता

पितामहादिकों को उच्चारता है हे द्विजोत्तम ! दक्षिण दिशा के सामने जातेहुये नरदीपजी को ॥ ६० ॥ संयम में प्राप्त जो पुरुष देखते हैं वे स्वर्गको प्राप्त होते हैं व जो मनुष्य सूत्र से क्षेत्र, रथ व देव (नरदीप) जी को घेरता है ॥ ६१ ॥ वह सब मनोरथों को प्राप्त होता है व कीहुई पुण्यबाला होता है और जो मनुष्य भक्तिसे सूर्यनारायणजी की प्रदक्षिणा करते हैं ॥ ६२ ॥ उनसे सात हीपात्राली पृथ्वी प्रदक्षिणा कीगई व प्रातःकाल उठकर मौनहो जो मनुष्य सूर्यनारायणजी के समीप जाता है ॥ ६३ ॥ व हे द्विजोत्तम ! पूर्वद्वारासे देखकर और प्रणामकर और दक्षिणही द्वार से प्रवेश कर रथचक्रको पूजे ॥ ६४ ॥ तदनन्तर उम द्वारसे निकल कर गमन

न्तिचत्रिविष्टपम् ॥ सूत्रेणवेष्टेक्षेत्रं रथन्देवमथापिवा ॥ ६१ ॥ सर्वकामानवाप्नोति कृतपुण्यस्सजायते ॥ प्रदक्षिणा
न्तुसूर्यस्य भक्त्याकुर्वन्ति येनराः ॥ ६२ ॥ प्रदक्षिणीकृतास्तु सप्तदीपवसुन्धरा ॥ प्रातरुत्थाययोभक्त्या मौनीया
तिदिवाकरम् ॥ ६३ ॥ दृष्ट्वातुपूर्वद्वारेण नमस्कृत्यद्विजोत्तम ॥ प्रविश्यदक्षिणेनैव रथचक्रंप्रपूजयेत् ॥ ६४ ॥ तेनद्वारे
णनिष्क्रम्य प्राणिपत्यब्रजेत्ततः ॥ पश्चिमंद्वारमाश्रित्य रथस्थंसूर्यमर्चयेत् ॥ ६५ ॥ चामरेचवितानञ्च घण्टांवापिनि
वेदयेत् ॥ पूर्वद्वारेतुगौर्देया तथाश्चश्चैवदक्षिणे ॥ ६६ ॥ पश्चिमेचगजःप्रोक्त उत्तरेरथएवच ॥ कुर्यादिवन्तुयोयात्रां
रथदीपस्यमानवः ॥ ६७ ॥ गोसूर्यशिवशक्राणां स्वालोक्ष्यंलभतेसुखम् ॥ प्रदक्षिणामहामेरोः कृतातेनभवेन्मुने ॥
६८ ॥ दद्याद्गवासहस्रंयो व्यतीपातशतेनच ॥ अश्वानाञ्चसहस्रेण यात्रायांतत्फलंलभेत् ॥ ६९ ॥ नरदीपेरथारूढे व

करै व पश्चिम द्वार में प्राप्तहोकर रथ पै स्थित सूर्यनारायण का पूजन करै ॥ ६५ ॥ चौर दो चक्र, वितान (चंदोबा) व घण्टाको भी निवेदन करै और पूर्वद्वार में गऊ देनाचाहिये वैसेही दक्षिणद्वार में अश्वदेनाचाहिये ॥ ६६ ॥ व पश्चिम में हाथी कहांगया है और उत्तर में रथही देना चाहिये जो मनुष्य इसप्रकार नरदीप जी की रथयात्रा करता है ॥ ६७ ॥ वह गोलोक तथा सूर्य, शिव व इन्द्रकी सलोक्ततावाले सुखको पाताहै व हे मुने ! इससे महामेरुकी प्रदक्षिणा कीहुई होतीहै ॥ ६८ ॥ और जो मनुष्य सौ व्यतीपात योगों में गोसहस्र देताहै और हजार घोड़ों के दान से जो फल होताहै उस फलको मनुष्य यात्रासे पाताहै ॥ ६९ ॥ व नरदीप

जीके रथ पै चढ़ने पर जो मनुष्य जौर कराता है उसका लक्ष्मीजी से बिछोह नहीं होता है और वह सूर्यलोक में पूजा जाता है ॥ ७० ॥ और जो मनुष्य सूर्यनारायण जी के आगे बावली में महीनाभरतक नित्यस्नान कर उन नरदेवजी को देखता है उसका दुःस्वप्न नाश होजाता है ॥ ७१ ॥ हे व्यासजी ! भक्तिसे प्रतिदिन जो मनुष्य नरदीपजी को देखता है वह उत्तम स्थानको प्राप्त होकर पुत्रों व पौत्रों से संयुक्त होता है ॥ ७२ ॥ और भाइयों समेत क्रीड़ा कर मरकर वह मनुष्य सूर्यलोक को जाता है हे विप्रजी ! अन्धकार नाश होने पर व सब कहीं उत्तम प्रकाश होने पर ॥ ७३ ॥ व तीन शिखावाले शूल याने त्रिशूल से अन्धकासुर को महादेवजी

पनंकारयेत्तुयः ॥ श्रियानविच्युतिस्तस्य सूर्यलोकमहीयते ॥ ७० ॥ सूर्यस्य पुरतोवाप्यां मासत्रित्यं विगाह्य च ॥ यस्तमालोके ते मर्त्यो दुस्स्वप्नं तस्य नश्यति ॥ ७१ ॥ भवया यो नुदिनं व्यास नरदीपं प्रपश्यति ॥ उत्तमं स्थानमासाद्य पुत्रपौत्रसमन्वितः ॥ ७२ ॥ प्रक्रीड्य बन्धुभिस्साद्धं मृतस्सूर्यपुरं व्रजेत् ॥ प्रणष्टेति मिरे विप्र जाते सर्वत्र सुप्रभे ॥ ७३ ॥ हतेन्धके महेशेन शूलेन त्रिशिवेनैव ॥ प्रहृष्टाश्च सुरास्सर्वे ब्रह्मेन्द्रप्रमुखास्तदा ॥ ७४ ॥ शङ्खं दध्मौ तदा विष्णुस्सुराणां हितकाम्यया ॥ तत्र तीर्थमथोत्पन्नं शङ्खोद्धारणसंज्ञकम् ॥ ७५ ॥ तत्र सन्निहितो विष्णुर्लिङ्गं चैव चतुर्मुखम् ॥ अनाद्यञ्चैव विप्रेन्द्रलिङ्गस्य च समीपतः ॥ ७६ ॥ देवस्य दक्षिणे भागे शूलेनालक्षितः स्थितः ॥ चतुर्दृश्यान्तथाष्टम्यां येष श्यन्ति जितेन्द्रियाः ॥ ७७ ॥ ते क्षीणाशेषपापौघाः प्राप्स्यन्ति परमाङ्गतिम् ॥ योगिनीनां वलियस्तु यथावत्संप्रदास्यति ॥ ७८ ॥ भूतप्रेतपिशाचाद्यैर्नासैर्केनापि बाध्यते ॥ द्वादशैः समुपोष्यैव स्नात्वा देवं जनार्दनम् ॥ ७९ ॥ यः पश्येच्छङ्खि नन्देवं सो

के मारने पर उस समय ब्रह्मा व इन्द्रादिक सब देवता प्रसन्न हुये ॥ ७४ ॥ तब देवताओंके हितकी कामना से विष्णुजी ने शंख को बजाया इसके अनन्तर वहांपर शंखोद्धारण नामक तीर्थ उत्पन्न हुआ ॥ ७५ ॥ हे द्विजेन्द्र ! वहांपर विष्णुजी भलीभांति स्थित हैं व अनादि चतुर्मुख लिंग है और लिंगके समीप ॥ ७६ ॥ देवजी के दक्षिण भाग में त्रिशूल से लक्षित शिवजी स्थित हैं जो जितेन्द्रिय पुरुष चौदसि व अष्टमीमें उनको देखते हैं ॥ ७७ ॥ वे नष्ट समस्त पातकोंवाले पुरुष उत्तमगति को प्राप्त होते हैं और जो मनुष्य योगिनियों को यथायोग्य बलि देता है ॥ ७८ ॥ यह भूत, प्रेत, पिशाचादिकों से व किसी से भी नहीं घृणित होता है और द्वादशी

कहेहुये वचन को सुनकर परमेश्वर शिवजीके देखनेकी इच्छा से ॥ ६ ॥ वे हाटकेश्वरजी वेग से त्रिशूल मार्ग के द्वारा निकले बहुत सुखों से संयुत व उत्तम प्रभावान् तथा मनोहर ॥ ७ ॥ उन शूलेश हाटकेश्वरजी को फूले कमलकी नाई देखकर सब देवता प्रसन्न रोंमोंवाले होगये ॥ ८ ॥ श्रीर ब्रह्मा व विष्णु आदिक देवताओं ने अनेक भांति के स्तोत्रोंसे स्तुति किया जो हाटकेश्वर नामक पातालमें टिकेथे ॥ ९ ॥ वे शूल के मार्ग से निकले उसीकारण शूलेश्वर कहेगये हैं और देवदेव जी के उत्तर में धूतपाप नामक तीर्थ है ॥ १० ॥ वहां पर वह पराक्रमी व पापी दैत्येन्द्र शूल से मारागया है उसकारण हे व्यासजी ! यह धूतपाप तीर्थ कहाजाता

गामजवेनसः ॥ बहुवक्रसमाकीर्णं सुप्रभंसुमनोरमम् ॥ ७ ॥ तन्दृष्ट्वा त्रिदशास्सर्वे शूलेशं हाटकेश्वरम् ॥ प्रणम्य हृष्टरोमाणो यथा प्रोत्फुल्लपङ्कजम् ॥ ८ ॥ तुष्टुर्विविधैः स्तोत्रैर्ब्रह्मविष्णुपुरोगमाः ॥ हाटकेश्वरनामासीत् पाताले यो व्यवस्थितः ॥ ९ ॥ निर्गतश्शूलमार्गेण तेन शूलेश्वरस्मृतः ॥ धूतपापञ्चतीर्थञ्च देवदेवस्य चोत्तरे ॥ १० ॥ तत्र पापस्स दैत्येन्द्रो धूतश्शूलेन वीर्यवान् ॥ तेन तीर्थमिदं व्यास धूतपापं प्रचक्ष्यते ॥ ११ ॥ अष्टम्यां वा पौर्णमास्यां चतुर्दश्यां शनौ तथा ॥ उपोष्य रजनीमैकां शिवभक्तो जितेन्द्रियः ॥ १२ ॥ धूतपापन्तु यः पश्येद्देवदेवं महेश्वरम् ॥ विमुक्तस्सर्वपापेभ्यः सप्तजन्मकृत्तैरपि ॥ १३ ॥ कुलानां शतमुद्धृत्य शिवलोकं स गच्छति ॥ कृत्वा भिषिकं यः पश्येत् पौषमासि स वै नरः ॥ १४ ॥ शूलेश्वरप्रभावेण मुच्यते ब्रह्महत्यया ॥ विमानानां सहस्रेण मृतो याति परम्पदम् ॥ १५ ॥ इति चान्धकशूलोऽयं यावद्भोगवतीङ्गतः ॥ तावत्समुत्थिता घोरा असुरा रुधिरोद्भवाः ॥ १६ ॥ खड्गहस्ता महावीर्या अनेकशतसंख्यया ॥ च

है ॥ ११ ॥ अष्टमी, पौर्णमासी, चौदसि व शनैश्चर दिन में एकत्रि उपवास कर शिवभक्त व जितेन्द्रिय ॥ १२ ॥ जो पुरुष धूतपाप नामक देवदेव महेश्वरजी को देखता है वह सातजन्मों में कियेहुये पातकों से छूटजाता है ॥ १३ ॥ और सौ कुलों को उद्धारकर वह शिवलोकको जाता है और स्नानकर जो मनुष्य पौष महौने में उन शिवजी को देखता है वह पुरुष ॥ १४ ॥ शूलेश्वरजी के प्रभाव से ब्रह्महत्याकरके छूटजाता है और मरकर वह हजार विमानों के द्वारा परमपदको प्राप्त होता है ॥ १५ ॥ इसप्रकार अन्धकासुरका यह शूल जबतक भोगवती को गया तबतक रक्तोंसे उपजेहुये भयकर दैत्य उठे ॥ १६ ॥ जोकि बड़े बलवान् व तलवार हाथी-

वाले अनेक सौ संख्यकथे चारों दिशाओं में स्थित भयंकर दानवों से मारेजातेहुये व उन दुष्टात्माओं से पीडित महादेवजी ने सिंहनाद छोड़ा याने गरजे और सिंहनाद से मूर्च्छित होकर वे पापी पृथ्वी में गिरपड़े ॥ १७ ॥ १८ ॥ और फिर उठकर वे देवदेव महेश्वरजीके समीपगये तदनन्तर उरेहुये ब्रह्मा व विष्णु आदिक हितैषी देवता उनको असाध्य मानकर सम्मतिकर तदनन्तर विचार कर स्त्रीको रचै यह आपही ॥ १९ ॥ २० ॥ कहकर ब्रह्मा ने हंस पै बैठीहुई व चारमुखोवाली तथा चार हाथोवाली और ब्रह्मणी के रूपको धारनेहारी उत्तम स्त्रीको पैदा किया ॥ २१ ॥ और स्वामिकार्त्तिकेयजीने उत्तम मयूरवाहनवाली कौमारी स्त्री को उत्पन्न किया जो

तुद्धिभुस्थितैर्वैरैर्हन्यमानोमहेश्वरः ॥ १७ ॥ सिंहनादमुमोचाथपीडितस्तैर्दुरात्माभिः ॥ सिंहनादेनतेतेपापामूर्च्छिताः पतिताभुवि ॥ १८ ॥ पुनस्समुत्थिताजमुदेवदेवंमहेश्वरम् ॥ विव्रस्ताश्चततोदेवा ब्रह्मविष्णुपुरोगमाः ॥ १९ ॥ असाध्यांस्तांस्तथामत्वा मन्त्रं कृत्वा हितैषिणः ॥ ततोदेवाविचार्याथ स्त्रीसृजामइतिस्वयम् ॥ २० ॥ इत्युक्त्वोत्पादयामास ब्रह्माहंसासनांशुभाम् ॥ चतुर्वक्त्रांचतुर्हस्तां ब्रह्मणीरूपधारिणीम् ॥ २१ ॥ कुमारश्चैव कौमारी मयूरवरवाहनाम् ॥ २२ ॥ पुनः कुमारः कौमारीं पचीन्द्रवरवाहनाम् ॥ कृष्णांकरालदशनां धर्माजस्तथासृजत ॥ २३ ॥ दैत्यदेहप्रमथिर्नादएडमुद्गरधारिणीम् ॥ ललाटलोचनां नीलां कपालकरभूषिताम् ॥ २४ ॥ सिंहाननधरां कृष्णां सर्वभूषणभूषिताम् ॥ कर्तृहस्तांसखद्वाङ्गां खड्गखेटकधारिणीम् ॥ २५ ॥ चर्मास्थिकेशवपुषं चा मुण्डामसृजत्प्रभुः ॥ वटस्यनिकटेपूर्वं निर्मितालोकमातरः ॥ २६ ॥ ततो लोकैषु विख्याताः प्रत्यक्षावटमातरः ॥ त

कि अरुणमालाओं व वसनो को धार तथा शक्ति व तलवारको धारण किये थीं ॥ २२ ॥ और फिर स्वामिकार्त्तिकेयजी ने काली व कराल दातोवाली तथा उत्तम ग-रुड़ वाहनवाली कौमारी शक्तिको रचा और वैसेही धर्मराज ने रचा ॥ २३ ॥ और दैत्योके देहको मथनेवाली तथा देण्ड व मुद्गरको धारनेहारी व मस्तकमें नेत्रवाली और नीलवर्ण व कपाल से शोभित हाथवाली ॥ २४ ॥ व सिंहमुखधारिणी, काली तथा सब भूषणोंसे भूषित व कतरनी हाथवाली और खट्वाग समेत व तलवार और खेटक अस्रको धारनेहारी ॥ २५ ॥ और चर्म, अस्थि व केश संयुत शरीरवाली चामुण्डाजी का प्रभु (शिव) जीने रचा पहले बरगदके समीप लोकमातृकाओं को

चाहिये ॥ ४७ ॥ और ताम्र पात्रसे संयुक्त पांच कर्मंडलु बनवाना चाहिये और उनको गुडपिंडमय व लालवस्त्रों से संयुक्त करना चाहिये ॥ ४८ ॥ और उनको लाल चन्दन से संयुक्त व लाल फूलों से पूजितकरै व उनमें एक कर्मंडलुको तिलों व चावलों से पूर्णकरै ॥ ४९ ॥ और दूसरेको लड्डुवों से पूर्णकरै व तीसरे को दुग्ध से और चौथे को तीर्थों के जलों से व पांचवेंको मूलों से पूर्णकरै ॥ ५० ॥ इसप्रकार करके विधिपूर्वक इस मंत्रसे अर्घ्य निवेदनकरै कि कुजके लिये व लोहितांग तथा ग्रहों के मध्य में स्थित के लिये ॥ ५१ ॥ और कार्तिकेयानुरूप व सूरूपवान् के लिये वार २ नमस्कार है हे शिवजी के ललाट से उपजेहुये, पृथ्वी के गर्भ से उत्पन्न ! ॥ ५२ ॥

पञ्चवैकरकाः कार्यास्ताम्रपात्रेण संयुताः ॥ गुडपिण्डमयाः कार्या रक्तवस्त्रसमन्विताः ॥ ४८ ॥ रक्तचन्दनसंयुक्ता रक्तपुष्पैश्च पूजिताः ॥ तिलतण्डुलसम्पूर्णमेकंतत्रैव कारयेत् ॥ ४९ ॥ द्वितीयं लड्डुकैश्चैव तृतीयं पयसा तथा ॥ तीर्थाम्बुभिश्च तृथञ्च पञ्चमं मूलकैस्तथा ॥ ५० ॥ कृत्वा ह्येवं विधानेन मन्त्रेणार्घ्यं निवेदयेत् ॥ कुजाय लोहिताङ्गाय ग्रहमध्यास्थिताय च ॥ ५१ ॥ कार्तिकेयानुरूपाय सूरूपाय नमो नमः ॥ शिवलालाटसम्भूत धरणीगर्भसम्भव ॥ ५२ ॥ रूपार्थन्त्वांप्रपन्नोस्मि गृहाणार्घ्यं नमोस्तुते ॥ ज्वलिताङ्गारवर्णमस्मि गन्धविद्रुमभासुर ॥ ५३ ॥ पुत्रार्थन्त्वांप्रपन्नोस्मि गृहाणार्घ्यं धरात्मज ॥ आवन्त्यमण्डलजातो धरण्याञ्च शिवे न वै ॥ ५४ ॥ धनन्दे हियशोदेहि रूपन्देहि नमोस्तुते ॥ एवं सम्पूजिते भौमे चतुर्थ्यां द्विजसत्तम ॥ ५५ ॥ भुक्त्वा भोगांस्तथा पुत्रान् प्राप्य वै क्षितिमण्डले ॥ मृतस्त्वर्गमवाप्नोति यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥ ५६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वन्तीखण्डे द्वारेश्वरमाहात्म्यनामाष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४८ ॥

मैं रूपके लिये तुम्हारी शरण में प्राप्त हूँ अर्घ्यको ग्रहण कीजिये हे जलतेहुये अंगारके समान वर्णवाले, चिक्कण मूगों के समान प्रकाशवान् ! ॥ ५३ ॥ हे पृथ्वी-पुत्र ! मैं पुत्रके लिये तुम्हारी शरण में प्राप्त हूँ अर्घ्यको ग्रहण कीजिये अवन्ती के मडल में शिवजीसे पृथ्वी मे पैदाहुयेहो ॥ ५४ ॥ धनको दीजिये, यशको दीजिये व रूपको दीजिये तुम्हारे लिये नमस्कार है हे द्विजोत्तम ! मंगलचतुर्थी में इसप्रकार पूजेनपर ॥ ५५ ॥ पृथ्वीमंडल मे भोगों को भोगकर व पुत्रोंको प्राप्तहोकर मरकर तबतक स्वर्गको प्राप्तहोताहै जबतक कि चौदह इन्द्र रहते हैं ॥ ५६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वन्तीखण्डे भाषाटीकायामङ्गारेश्वरमाहात्म्ये नामाष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४८ ॥

दो० । दियो अन्धकासुरहिं जिमि श्री शिवजी वरवान । उंचसर्वे अध्याय में सोई कियोबखान ॥ सनत्कुमारजी बोलै कि राक्षसों का पियाजाताहुआ रक्त जब शेषनरहा तब चामुण्डाका अरुणमुख प्रकाशितहुआ ॥ १ ॥ ओं कि कृष्णवर्ण व प्राणियो का अन्तकारक कराल दातों व ओंठोवाला और जलतीहुई अग्निके समान केशान्तवाला तथा प्रज्वलित अग्निके समान लोचनोवाला था ॥ २ ॥ और भयंकरवर्धुर शब्द से बड़ेहुये फेत्कार से विस्तरथा व गरुड़पक्षका मुकुट किये तथा पैनी दादों के अंकुरों से उज्ज्वल था ॥ ३ ॥ उस मुखमें कपाल के अग्रभाग को धरकर क्रोधित मुखवाली व प्रचण्ड भुजदण्डों से शोभित चाण्डिका ने रक्त पिया ॥ ४ ॥

सनत्कुमारउवाच ॥ नास्तिशेषंयदारक्तं पीयमानञ्चरत्नसाम् ॥ चामुण्डायास्ततो रक्त मभूदास्यञ्चभास्वरम् ॥

१ ॥ कृष्णंभूतान्तकल्पान्तकरालदशनाधरम् ॥ प्रज्वलद्वह्निकेशान्तं ज्वलज्ज्वलनलोचनम् ॥ २ ॥ घोरवर्धुरनिर्घोषस्फीतफेत्कारविस्वरम् ॥ ताक्ष्यपक्षकृतापीडं तीक्ष्णदंष्ट्राङ्कुरोज्ज्वलम् ॥ ३ ॥ तस्मिन्मुखेकपालाग्रं निधायरुषिता नना ॥ अपिबहुधिरञ्चण्डी चण्डदोर्हण्डमण्डिता ॥ ४ ॥ तथापिवन्त्यादैत्येन्द्रशरीरेकशताङ्गतः ॥ सर्वासंहृत्यमायाया बलक्षीणमथाकरोत् ॥ ५ ॥ तीव्रभयंसमासाद्य प्राणत्राणपरायणः ॥ दृष्ट्वानान्याङ्गतिंलोकैर्दैत्यस्तुष्टावशङ्करम् ॥ ६ ॥ कृताञ्जलिपुटोभूत्वा रोमाञ्चितशरीरकः ॥ सात्त्विकंभावमापन्नस्त्यक्त्वाचैवरजस्तमः ॥ ७ ॥ लोकानांकारणान्देवं विबुधाधिपतिविभुम् ॥ शश्वदुबुध्यान्वितोभक्त्या निर्मलेनान्तरात्मना ॥ इलाध्यंशिवंचचतुष्टाय देवंचन्द्रार्द्धशेखरम् ॥ ८ ॥ कुत्स्नस्यशोऽस्यजगतःसचराचरस्य कर्ताकृतस्यचतयासुखदुःखदाता ॥ संसारहेतुरपियःपुनरन्तकाल

पीती हुई उन चाण्डिका से दैत्येन्द्र अन्धक शरीर में दुर्बलताको प्राप्तहुआ इसके अनन्तर जो मायार्थी उन सर्वको संहारकर बलको क्षीणकिया ॥ ५ ॥ व तीक्ष्ण भयको प्राप्तहोकर प्राणों की रक्षा में तत्पर दैत्य ने अन्यगति को न देखकर शिवजी की स्तुति किया ॥ ६ ॥ हाथोंको जोड़कर रोमांचित देहवाला वह दैत्य रजोगुण व तमोगुणको छोड़कर सात्त्विक भावको प्राप्तहुआ ॥ ७ ॥ व निरन्तर बुद्धि से संयुत उस दैत्य ने निर्मल चित्तसे लोकों के कारण, देवपति, प्रशंसनीय व व्यापक तथा अर्द्धचन्द्रमाल शिवदेवजी की स्तुति किया ॥ ८ ॥ कि समस्त चराचर इस संसार का जो कर्ता है व किये कर्म का जो सुख दुःखदायक है व संसारका कारण भी हो-

कर जो अन्तकाल है उन शरणदायक शंकरजी की शरण में मैं प्राप्तहोताहूँ ॥ ९ ॥ सावधान मनवाले व निवृत्त कामनाओंवाले और मोह, तम व रजसे रहित समस्त बुद्धिवाले योगी लोग जिन अमित व दिव्य मूर्तिवाले शिवजी का ध्यान करते हैं उन शरणदायक शंकरजी की शरण में मैं प्राप्तहोताहूँ ॥ १० ॥ और शोभित किशोरोवाले निर्मल चन्द्रखण्डको बांधकर जो सदैव मस्तक से गंगाजीको धारण करते हैं और जिन्होंने वाये अंग में गिराजकुमारी को धारण किया है उन शरणदायक शंकरजी की शरण में मैं प्राप्तहोताहूँ ॥ ११ ॥ और सिद्धों व चारणों से सेवित चरणकमलवाले जिन्हो ने बड़ी लहरियोंसे विपम व आकाशसे गिरती तथा त्रि-

स्तंशङ्करं शरणदंशरणं ब्रजामि ॥ ९ ॥ ययोगिनो विगतमोहतमोरजस्का भक्त्यैकतानमनसो विनिवृत्तकामाः ॥ ध्यायन्ति चाखिलधियो मितदिव्यमूर्तिं तं शङ्करं शरणदंशरणं ब्रजामि ॥ १० ॥ यश्चन्द्रखण्डममलं विलसन्मयूखं वद्धा सदासुरधुनीं शिरसा विभर्ति ॥ वामाङ्गके विधृतवान् गिराजपुत्रीं तं शङ्करं शरणदंशरणं ब्रजामि ॥ ११ ॥ यस्मिन् चारणनिषेवितपादपद्मो गङ्गामहोर्मि विषमाङ्गनात्पतन्तीम् ॥ मूर्ध्ना दधेऽस्त्रजमिव त्रिजगत्पुनन्तीं तं शङ्करं शरणदंशरणं ब्रजामि ॥ १२ ॥ कैलासगोत्रशिखरे परिकम्पमाने कैलासशृङ्गसदृशेन दशाननेन ॥ यः पादपद्मपरिपीडनसेव्यमानस्तं शङ्करं शरणदंशरणं ब्रजामि ॥ १३ ॥ दक्षाध्वरे तु नयने च तथा भगस्य पूष्णस्तथा दशनपङ्क्तिमशातयद्यः ॥ व्यस्तम्भयत्कुलिशहस्तमथेन्द्रमर्मांशं तं शङ्करं शरणदंशरणं ब्रजामि ॥ १४ ॥ येनासकृद्विदितुताश्चदनोऽस्मृताश्च विद्याधरो रगगणाश्च व

लोकको पवित्र करतीहुई गंगाजी को मस्तक से मालाकी नाई धारण किया है उन शरणदायक शंकरजी की शरण में मैं प्राप्तहोताहूँ ॥ १२ ॥ और सब ओर से कोपते हुये कैलासपर्वत के शिखर पे कैलास शिखर के समान दशमस्तकोंवाले रावण से जो चरणकमल के पीडन से सेवा किये जाते हैं उन शरणदायक शंकरजी की शरण में मैं प्राप्तहोताहूँ ॥ १३ ॥ व जिन्होंने दक्ष के यज्ञमें भगवत्पता के नेत्रों को व पूपाके दातों की पंक्तिको गिरा दिया है व वज्रहाथवाले ईश्वर इन्द्रजी को स्तभित किया है उन शरणदायक शंकरजी की शरण में मैं प्राप्त होना हूँ ॥ १४ ॥ व जिन्होंने दिति के पुत्र (दैत्य) व वसु के पुत्र (दानव) तथा विद्याधर व नाग-

गण सब उत्तम वरदानों से युक्त कियेगये व फल मूल खानेवाले मुनिशिववरों से संयुक्त कियेगये हैं उन शरणदायक शंकरजी की शरणमें मैं प्राप्त होता हूँ ॥ १५ ॥
व ऐसा करने पर भी विषयोंमें लगेहुए भाववाले पुरुष जिनसे ज्ञान व शास्त्रों के गुणों से भी युक्त होकर जिनके भलीभांति आश्रित मनुष्य सुखके भोगी होते हैं उन शरणदायक शंकरजी की शरणमें मैं प्राप्त होता हूँ ॥ १६ ॥ और स्वामिकार्तिकेय समेत ब्रह्मा, इन्द्र, विष्णु व मरुत देवताओं को जिन भगवान् महेशजी ने बहुत वरदानोंको दिया है व जिन्होंने सूतको मृत्युके सुखसे फिर उद्धारा है उन शरणदायक शंकरजी की शरणमें मैं प्राप्त होता हूँ ॥ १७ ॥ और हिमाचल के कुक्षमें

रैरसमग्राः ॥ संयोजितामुनिवराः फलमूलभक्षास्तंशङ्करं शरणदंशरणं ब्रजामि ॥ १५ ॥ एवं कृतोपविषयेष्वपि सक्तभावा
ज्ञानेन च श्रुतगुणैरपियेन युक्ताः ॥ यंसंश्रितास्सुखभुजः पुरुषाः भवन्ति तंशङ्करं शरणदंशरणं ब्रजामि ॥ १६ ॥ ब्रह्मेन्द्रवि
ष्णुमस्तांच सप्तमुखानां योदाहरान्मुबहुशो भगवान्महेशः ॥ सूतञ्च मृत्युवदनात्पुनरुज्जहार तंशङ्करं शरणदंशरणं ब्रजामि ॥ १७ ॥ आराधितस्तु तपसा हिमवन्निकुञ्जे धूम्राद्यैर्मेव भगवान्भुवनानि सप्त नानानदीविहगपादपमण्डितानि ॥ स
त्मा तंशङ्करं शरणदंशरणं ब्रजामि ॥ १८ ॥ क्रीडार्थमेव भगवान्भुवनानि सप्त नानानदीविहगपादपमण्डितानि ॥ स
त्मा तंशङ्करं शरणदंशरणं ब्रजामि ॥ १९ ॥ यस्सव्यपाणिकमलाग्रनखेन देवस्तत्पञ्चमं प्रस
ब्रह्मकानि ससृजुः कृताभिधानि तंशङ्करं शरणदंशरणं ब्रजामि ॥ २० ॥ यत्वांसुरोत्तमगुरुं पुरु
भमेव करालरन्ध्रम् ॥ ब्राह्मर्याशिरस्तरणिपद्मानि भञ्चकतं तंशङ्करं शरणदंशरणं ब्रजामि ॥ २० ॥ यत्वांसुरोत्तमगुरुं पुरु

तपस्या से आराधना कियेहुये व धूम्र से घिरे से तप से भी अन्यजनों से अग्रगण्य जिन महात्मा ने भृगुजी के लिये संजीविनी विद्याको दिया है उन शरणदायक शंकरजी की शरण में मैं प्राप्त होता हूँ ॥ १८ ॥ व जिन भगवान् शिवजी ने अनेक प्रकारकी नदी, पक्षी व वृक्षों से शोभित तथा पुण्यनामवाले ब्रह्मलोक समेत सात लोकोंको क्रीड़ाही के लिये रचा है उन शरणदायक शंकरजी की शरण में मैं प्राप्त होता हूँ ॥ १९ ॥ व जिनदेवजी ने बांये हस्तकमल के अग्रनख से सूर्य व कमलके रामान तथा भयंकर छिद्रवाले उस ब्रह्माके पांचवे शिरको हठही से काटडाला है उन शरणदायक शंकरजी की शरणमें मैं प्राप्त होता हूँ ॥ २० ॥ हे सुरोत्तम ! जो मृद

पुरुष चराचर समेत इस संसार के गुरु तुमको नहीं जानते हैं हे महेशजी ! ऐश्वर्य व मान के विनाशके कारण वे पदचात पीडाको भोगते हैं जैसे कि मैं हूँ ॥ २१ ॥ पवित्र कर्मवाला जो शिवभक्त पुरुष सदैव इस स्तोत्रको पढ़ता है ब्राह्मणों की समा में सदैव शुभ कर्मवाला वह अक्षण्ड शिवलोक को प्राप्त होता है ॥ २२ ॥ सनत्कुमारजी बोले कि इसप्रकार स्तुति करतेहुये उनके पूर्ण सौ वर्षके अन्तमें शूल हाथ वाले वृषध्वज शिवदेवजी प्रसन्न होकर बोले ॥ २३ ॥ कि हे पुत्र ! मैं प्रसन्न हूँ तुम्हारा कल्याणहोवै इस समय तुम निर्मल हुयेहो तुमको मैं दिव्यनेत्रको देताहूँ ज्वरहित तुम मुझको देखो ॥ २४ ॥ हे दानवोत्तम ! तुम्हारे मन से भी जो कुछ

षाविमूढा जानन्ति नास्य जगत्स चराचरस्य ॥ ऐश्वर्यमानविगमेन महेशपश्चात्तेयातनामनुभवन्ति यथाहमेव ॥ २१ ॥ यः पठेत्स्तवमिदं शुचिकर्मा यः शृणोति स तं शिवभक्तः ॥ विप्रसंसदि सदा शुभकर्मा स प्रयाति शिवलोकमखण्डम् ॥ २२ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ तस्यैवं स्तुवतो देवः शूलपाणिर्वृषध्वजः ॥ पूर्णवर्षशतस्यान्ते प्रीतः प्रोवाच शङ्करः ॥ २३ ॥ पुत्रतुष्टोस्मि भद्रन्ते जातस्त्वं निर्मलोऽधुना ॥ दिव्यं ददामि ते चक्षुः पश्य मामविगतज्वरः ॥ २४ ॥ यच्च ते मनसा वापि किञ्चिच्चाकाङ्क्षितं फलम् ॥ तत्ते सर्वं प्रदाम्यामि ब्रूहि दानवसत्तम ॥ २५ ॥ अन्धक उवाच ॥ ब्राह्मण्यैषण्वमेन्द्र वापद्माह्वत्ति लक्षणम् ॥ विदितं मम तत्सर्वं मनागपि न काङ्क्षये ॥ २६ ॥ यदि तुष्टोसि देवेश गाणपत्यं ददस्व मे ॥ सविशेषं विशुद्धञ्च तदचरञ्च सर्वदा ॥ २७ ॥ शिव उवाच ॥ अमरो जरायात्यक्तस्सर्वदुःखविवर्जितः ॥ भविष्यसि गणाध्यक्षस्सर्वलोकनमस्कृतः ॥ २८ ॥ कामरूपी महायोगी महासत्त्वो महाबलः ॥ अपि मादिगुणैर्युक्तः प्रियश्च मम सर्वदा ॥ २९ ॥ सनत्कुमा

चाहाहुआ फल होवै उस सब को तुम्हें दूंगा कहिये ॥ २५ ॥ अन्धक बोला कि ब्रह्मा, विष्णु, व इन्द्रका जो आवृत्तिलक्षणवाला स्थान है उस सबको मैं जानता हूँ इससे कुछभी नहीं चाहताहूँ ॥ २६ ॥ हे देवेश ! यदि प्रसन्नहो तो मुझको गणाध्यक्षाता को दीजिये जोकि विशेषता समेत तथा पवित्र और सदैव अक्षयहो ॥ २७ ॥ शिवजी बोले कि अमर व बुद्धतासे छोड़ेहुये तथा सब दुःखों से रहित और सब मनुष्यों से नमस्कार कियेहुये गणाध्यक्ष होवो ॥ २८ ॥ व कामरूपी महा-

उत्तम ऐश्वर्यवान्, सुखी व सब शास्त्रों में चतुर होता है ॥ ३८ ॥ और वह पुरुष हंससंयुत विमान के द्वारा जाकर पितृलोकमें पूजा जाता है प्रति कल्पमें क्रमसे तुम सब इस पुरी की रक्षा करो ॥ ३९ ॥ ऐसा कहकर दैत्यों व देवताओं के गणेश्वरों तथा रुद्रगणों से स्तुति किये जाते हुये देवेश शिवजी कैलासपर्वत को चले गये ॥ ४० ॥ जो पुरुष कहनेयोग्य इस कीर्ति को श्रद्धा से कहता व सुनता है वह दैत्यों व देवगणों का नायक होता है और देवगणों व दनुजनाथों से पूजित तथा समस्त सुखोंके निधान अनन्त शिवलोक को जाता है ॥ ४१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायां भापाटीकायामन्धकवृत्तान्तं नामैकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ४६ ॥

कल्पेकमेणतु ॥ ३९ ॥ एवमुक्त्वा च देवेशो गतः कैलासपर्वतम् ॥ स्तूयमानो गणैरौद्रदेत्यामरगणेश्वरैः ॥ ४० ॥ असुर
सुरगणानां नायकस्यानुकीर्त्तिं कथयतिकथनीयां श्रद्धयायः शृणोति ॥ सकलसुखनिधानं रुद्रलोकं सकान्तं सुरगणद
नुनाथैरर्चितं यात्यनन्तम् ॥ ४१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे अन्धकवृत्तान्तं नामैकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ४६ ॥
व्यास उवाच ॥ भगवन् ज्ञेयमाहात्म्यं कथितञ्च यथा तथम् ॥ तीर्थानां सुत्तमन्तीर्थं पुरायानां पुण्यवर्द्धनम् ॥ १ ॥
कतिसन्त्यत्र तीर्थानि लिङ्गानि च तथा कति ॥ कथयस्व प्रसादेन पृच्छतो मम सांप्रतम् ॥ २ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ ष
ष्टिकोटिसहस्राणि षष्टिकोटिशतानि च ॥ महाकालवने व्यास लिङ्गसंख्यानविद्यते ॥ ३ ॥ अकामो वासकामो वा जाय
ते यो व्रतमानवः ॥ महाकालवने रम्ये शिवलोकं महीयते ॥ ४ ॥ कर्कराजादि तीर्थानि प्रासादाय तनानि च ॥ तेषु रूना

दो० । महाकाल शिव देवकर अति अद्भुत माहात्म्य । पचासवें अध्यायमें सोइ चरितयाथात्म्य ॥ व्यासजी बोले कि हे भगवन् । आपने क्षेत्र के माहात्म्य को यथा
योग्य कहा जो कि पवित्र तीर्थों के मध्यमें उत्तम तीर्थ है व पुराय को बढानेवाला है ॥ १ ॥ यहां पर कितने तीर्थ व कितने लिङ्ग हैं इस समय पूछेंते हुये मुझसे इस
को प्रसन्नतासे कहिये ॥ २ ॥ सनत्कुमारजी बोले कि हे व्यासजी । साठकरोड़ हजार व माठकरोड़ सौ महाकाल वन में तीर्थ है और लिङ्गों की संख्या नहीं विद्यमान
हे ॥ ३ ॥ जो कामना रहित व कामना समेत मनुष्य इस सुन्दर महाकाल वन में उत्पन्न होता है वह शिवलोकमें पूजा जाता है ॥ ४ ॥ जो कर्कराजादिक तीर्थ व देव

मन्दिर हैं उनमें नहाकर य पवित्रहोकर 'मनुष्य' शिवलोक में पूजा जाता है ॥ ५॥ जो पवित्र सब तीर्थ हैं व सम्पूर्णता से सिद्धचेत्र हैं उनमें इसको बहुत मुख्यक्षेत्र व उत्तम तीर्थ जानिये ॥ ६ ॥ जो बड़ी भक्तिसे इस चरित्रको सुनता है वह उत्तमगतिको प्राप्तहोताहै ॥ ७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचिते ॥

तायाभापाटीकायांमहाकालमाहात्म्यं नाम पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५० ॥
दो० । भयो अवन्ती पुरी कर कनक शृंग जिमि नाम । इक्यावनर्व में कछो सोई चरित ललाम ॥ व्यासजी बोले कि हे भगवन् ! संसारके भयको नाशनेवाले त्वाशुचिर्भूत्वा शिवलोकमें महीयते ॥ ५ ॥ पुण्यानिसर्वतीर्थानि सिद्धचेत्राणिसर्वतः ॥ तेषामुख्यतमं विद्धि चेव्रती ॥
र्थतथोत्तमम् ॥ ६ ॥ यः शृणोति महाभक्त्या स याति परमाह्वतिम् ॥ ७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे महाकाले ॥

माहात्म्यं नाम पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५० ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥
व्यास उवाच ॥ भगवन्भवतासर्वं भवभीतिविनाशकम् ॥ १ ॥ ईश्वरस्थानमाख्यातं समंतात्साग्रयोजनम् ॥ यत्र नैत्रे मृता मर्त्यास्सदाचारास्तथेतर ॥ २ ॥ विमानस्थापुरे नूने मेश्वरे ते वसन्ति च ॥ यत्र कीटपतङ्गाद्या मृता यान्ति पराङ्गतिम् ॥ ३ ॥ कितीर्थपुण्यमन्यच्च महाकालवनादृते ॥ तस्माद्ब्रूहि ममैकन्तु प्रश्रुतं श्येनसाम्प्रतम् ॥ ४ ॥ कथं कनकशृङ्गेति ख्याता ह्येषा पुरामुने ॥ कुशस्थली कथन्नाम तथाऽवन्ती कथं साधो ॥ ५ ॥ पद्मावती कथं साधो कथमुज्जयिनी तथा ॥ नाम्नाहेतुमथाप्येषां ब्रूहि त्वं मुनिसत्तम ॥ ६ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ शृणु न्यासप्रवक्ष्यामि यथापूर्वविरञ्चिनी तथा ॥

सब शिवस्थानको कहा जोकि सब श्रोतसे कुछ अधिक योजन भर है उत्तम आचारवाले व अन्य मनुष्य जिस क्षेत्रमें मरकर ॥ १ ॥ विमानों पे स्थित होकर निश्चयकर शिवलोक में वसते हैं व कीट पतंगादिक जहां मरकर उत्तम गतिको प्राप्तहोते हैं ॥ २ ॥ महाकाल वन के सिवाय अन्य कौन पवित्र तीर्थ है इसलिये इस समय मुझ से एक प्रश्नको सत्यता से कहिये ॥ ४ ॥ हे मुने ! पुरातन समय यह कनकशृंगा ऐसी कैसे प्रसिद्ध हुई व कैसे कुशस्थली नाम हुआ और किस कारण अवन्ती कहागई है ॥ ५ ॥ हे साधो ! कैसे पद्मावती और कैसे उज्जयिनी कहीगई है हे मुनिश्रेष्ठ ! इन नामोंका तुम कारण कहो ॥ ६ ॥ सनत्कुमारजी बोले कि हे व्या-

सजी ! सुनिये मैं कहता हूँ कि जिसप्रकार पहले ब्रह्मा ने पुरातन गौरकल्पमें वामदेवजी के लिये कहा है ॥ ७ ॥ और भगवान् महादेवजी ने व ब्रह्माजी ने इन हेतुओं में कहा है व्यासजी बोले कि पृथ्वी में स्वर्ग से गिरे व निवसतेहुये मनुष्यों को किस कारण सुखहोता है ॥ ८ ॥ और अपनी इच्छाके अनुकूल आचार व विहारवाले पुरुषों को किस प्रकार स्वर्ग की प्राप्तिहोती है और बहुत पुण्यवान् और पापहारी कौन श्रेष्ठ देश है ॥ ९ ॥ व हे भगवन् ! कहा बसते हुये मनुष्यों को किस कारण सुख होता है व हे लोकेश ! कहा बसतेहुये मनुष्यों को इस लोक व परलोकवाला आनन्द होता है ॥ १० ॥ हे भगवन् ! सब देहधारियोंके हितके लिये मुझसे यह कहिये

ना ॥ कथितं वामदेवाय गौरकल्पे पुरातने ॥ ७ ॥ महेश्वरश्च भगवान् विधाता चात्र हेतुषु ॥ व्यास उवाच ॥ जगत्यांस्व
श्च्युतानाञ्च कुतो निवसतां सुखम् ॥ ८ ॥ स्वर्गप्राप्तिश्च भवति स्वेच्छाचारविहारिणाम् ॥ कोतिपुण्यतमः श्रेष्ठः प्रदे
शः पापहारकः ॥ ९ ॥ कुतो निर्धृतिर्भगवन् जायते वसतां कचित् ॥ वसतामपि लोकेश ऐहिकी पारलौकिकी ॥ १० ॥
एतन्मम भगवन् ब्रूहि हितार्थं सर्वदेहिनाम् ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ एवमादौ पुराकल्पे प्रोक्तः पृष्टस्स शम्भुना ॥ ११ ॥ प्रो
वाच पार्वती कान्तं प्रभुः प्रीतः पितामहः ॥ भगवन् सर्वकर्ता त्वं सर्वदर्शी सदाशिवः ॥ १२ ॥ अजानं निवत्सवं सर्वं मां पृच्छसि
सनातन ॥ यत्र कल्पान्तको वल्लि रधोऽज्वालः प्रतिष्ठितः ॥ १३ ॥ सत्त्वमेव महाकाल सर्वं च ज्ञायते त्वया ॥ नाथये मानवास्तत्र
सदाचारास्तथा परे ॥ १४ ॥ निवसन्ति न ते मर्त्या सुरास्ते न च मानुषाः ॥ लभन्ते च पुनः स्वर्गं मृता वै कालपर्यये ॥ १५ ॥

सनत्कुमारजी बोले कि पुरातन समय इसीप्रकार पहले कल्प में शिवजी से पूछे हुये जब उन ब्रह्मा ने कहा है ॥ ११ ॥ प्रसन्न होतेहुये ब्रह्मा स्वाधी ने पार्वती के पति शिवजी से कहा कि हे भगवन् ! आप सदाशिवजी सब करनेवाले व सब को देखनेवाले हो ॥ १२ ॥ हे सनातन ! न जानतेहुये से तुम मुझ से सब पूछतेहो नीचे ज्वालावाली कल्पान्तक अग्नि जिसमें प्रतिष्ठित है ॥ १३ ॥ हे महाकालजी ! वह तुम्हींहो और तुम से सब जाना जाता है हे नाथ ! उत्तम आचारवाले तथा अन्य जो मनुष्य वहां ॥ १४ ॥ बसते हैं वे मनुष्य नहीं हैं किन्तु वे देवता हैं मनुज नहीं हैं और कालके उल्लंघन में मरकर वे फिर स्वर्गको पाते हैं ॥ १५ ॥

और वहां पर सुन्दर मन्दिरोंवाली उत्तम पुरी वर्तमान है उसमें अनेक भांति के विचित्र मन्दिर शोभित हैं ॥ १६ ॥ और सोने के शिखरवाले मन्दिरों को विश्वकर्मा ने रचा है व जहां पर कि देवता तथा अनेक भांति के तीर्थ सदैव विद्यमान रहते हैं ॥ १७ ॥ मैं पहले कल्प में वहा स्थित था जहां-कि तुम व केशवजी थे और उसी अवन्ती पुरी को देखनेके लिये सब लोग ॥ १८ ॥ व देवर्षि, सिद्ध, यक्ष, किन्नर, व दानव कमलयोनि ब्रह्मा व शिवजी समेत आये ॥ १९ ॥ वैसेही देवताओं की प्यारी सुन्दरीभी हजारों स्त्रियां अति अद्भुत पुरीको देखनेके लिये आई ॥ २० ॥ उससमय देवताओं समेत महेशदेवजीने सुन्दरी नगरीको देखने के लिये आकर

वर्ततेचपुरीतत्र रम्यहर्म्यमुशोभना ॥ तस्यांभान्तिविचित्राणि हर्म्याणिविविधानिच ॥ १६ ॥ स्वर्णशृङ्गाश्चप्रासा
दाः विहिताविश्वकर्मणा ॥ देवास्सन्तिसदायत्र तीर्थानिविविधानिच ॥ १७ ॥ पूर्वकल्पेस्थितोहञ्च यत्रत्वंकेशवस्त
था ॥ तामेवचपुरीद्रष्टुं सर्वलोकाह्वयन्तिकाम् ॥ १८ ॥ तथादेवर्षयःसिद्धा यत्तकिन्नरदानवाः ॥ आजगमुस्स्थाणुना
सार्द्धं वेधसापद्मयोनिना ॥ १९ ॥ तथैवचवरानार्यो देवानामपिवल्लभाः ॥ समापेतुस्सहस्राणि द्रष्टुमत्यद्भुताम्पुरी
म् ॥ २० ॥ आगत्यचतदादेवस्सहदैवमहेश्वरः ॥ वीजितुंनगरीरम्या मपश्यदावृतान्तथा ॥ २१ ॥ प्रासादैस्स्वर्ण
शृङ्गाढ्यैर्मणिरत्नविभूषितैः ॥ विश्वरूपोहिमगवान् राजाविश्वैकनायकः ॥ २२ ॥ तत्रास्तेशोभनेदिव्ये प्रासादेमणि
भूषिते ॥ सेव्यमानस्सुरैस्सिद्धैर्मुनिविद्याधरैरगैः ॥ २३ ॥ ततोमहेशश्चपितामहश्च समेत्यतंविश्वपतिवन्ददतुः ॥ स
मचितौतौविधिनासमादरात् सहानुगावागमनंत्वपृच्छत् ॥ २४ ॥ किमागतौवैत्रिदिवान्महीतलं सहानुगावीशकजेश

वैसेही सोने के शृंगों से संयुत व मणियों तथा रत्नों से मन्दिरों से घिरी हुई देखा और संसार के एकही स्वामी भगवान् विश्वरूप राजा ॥ २१ ॥ २२ ॥ वहा मणियों से भूषित दिव्य उत्तम मन्दिर में स्थित हैं जोकि देवता, सिद्ध, मुनि, विद्याधर व नागों से सेवा कियेजाते थे ॥ २३ ॥ तदनन्तर महादेव व ब्रह्माजी ने भलीभांति आकर उन जगदीशजी को प्रणाम किया और सेवकों समेत विधि से आदरपूर्वक पूजेहुये उनसे आगमन पूछा ॥ २४ ॥ कि हे ईश ! हे जलजेश ! अनुगामियों समेत

तुम दोनों आकाश से पृथ्वी में किसलिये आये हो यह कहिये तदनन्तर वे कमल से उपजेहुये ब्रह्मा व ईश्वर बोले कि जहाँ एकान्त में आपहो वहाँ हम दोनों को स्नेह है ॥ २५ ॥ और तुम्हारे विना देवालय (स्वर्ग) व पृथ्वी तथा रसातलमें सुख नहीं है और तुमने स्वर्ण शिखरवाली तथा मन्दिरवाली विचित्र घुरीको कब स्थापित किया है ॥ २६ ॥ हे ईश ! मैंने तुम्हारे ही लिये समस्त गुणोंकी खानि व विशेष कर शोभित पुरीको रचा है तुम यहांपर हम दोनोंको स्थान दीजिये तदनन्तर प्रसन्न मनवाले शिवजी शीघ्रही बोले ॥ २७ ॥ कि तुम दोनों को मैं यहांपर प्रियस्थानको दूंगा कि ब्रह्माके उत्तर ओर तुम्हारी स्थिति होगी हे महेश्वरजी ! तुम दक्षिणस्थान

कथ्यताम् ॥ ततस्तुताबुचतुरब्जजेश्वरौ भवान्नहोयत्रचतत्रनौरतिः ॥ २५ ॥ त्वयाविनैनैवसुरालयेसुखं महीतलेवापि रसातलोस्ति ॥ कदात्वयाकाञ्चनशेखरापुरी निवेशितावेश्मवतीविचित्रा ॥ २६ ॥ त्वदर्थमेवेशविशेषशालिनी सृष्टाहिवैसर्वगुणाकरामया ॥ प्रयच्छस्थानंत्वमिहावयोरिह ततो जगदाशुप्रसन्नमानसः ॥ २७ ॥ ददाम्यभीष्टंयुवयो रिहालयं प्रजापतेरुत्तरतस्तवस्थितिः ॥ महेश्वरत्वंब्रजदक्षिणालयं स्थानंसुदत्तंयुवयोस्सुशोभनम् ॥ २८ ॥ महाका लोह्यधोज्ज्वाल अगादात्मप्रभुस्सदा ॥ गणैरेनेकसाहस्रैरावृतः परमेश्वरः ॥ २९ ॥ क्रीडितानगरीसृष्टा सर्वभूतहितैषि णा ॥ मयायद्युवयोर्दत्ता विवाहालयमात्मनः ॥ ३० ॥ भवद्भ्यांहिमशृङ्गेति यस्माच्चसमुदीरिता ॥ पुरीकनकशृङ्गेति लोकेख्याताभविष्यति ॥ ३१ ॥ एवंकनकशृङ्गेति प्रथमन्नामकथ्यते ॥ जपन्तश्चस्थितायत्र ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥ ३२ ॥ नित्यंरमन्तिभक्तानां सर्वाभीष्टफलप्रदाः ॥ ३३ ॥ इति श्रीकनकशृङ्गाभिधानन्नामैकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५१ ॥

को जावो मैंने तुम दोनों को उत्तम स्थानदिया ॥ २८ ॥ और अनेकों हजार गणों से घिरेहुये व सदैव नीचे ज्वालाओंवाले तथा आत्मस्वामी सदाशिव परमेश्वरजी आये ॥ २९ ॥ और समस्त प्राणियों के हितैषी तथा क्रीड़ा करतेहुये मैंने नगरी को रचा है और मैंने जिसलिये अपने विवाह स्थानको तुम दोनों को दिया ॥ ३० ॥ और आप दोनोंसे जिसलिये हेमशृंगा कहींगई उस कारण संसारमें कनकशृंगा ऐसी पुरी प्रसिद्ध होगी ॥ ३१ ॥ इस प्रकार कनकशृंगा ऐसा पहला नाम कहाजा-

ताहै और जपतेहुये ब्रह्मा, विष्णु व महादेवजी जहां पर स्थित हैं ॥ ३२ ॥ और भक्तोंको समस्त मनोरथोंके देनेवाले ये नित्यही रमण (क्रीड़ा) करते हैं ॥ ३३ ॥
इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डदेवीदयालुमिश्रचरित्रतायाभापाटीकायाकनकशृङ्गाभिधानंनौमैकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५१ ॥

दो० । भयो अवन्ती पुरी कर कुशस्थली जिमि नाम । वावनवै ग्रन्थार्थ में सोइ चरित सुलधाम ॥ सनत्कुमारजी बोले कि हे व्यासजी ! जिसप्रकार यह कुशस्थली कहीजाती है उसको सुनिये ॥ १ ॥ कि ब्रह्मा ने दैत्यों व दानवों तथा राक्षसोंवाले संसारको रचा है जोकि आपस में अहंकार से मत्त व परस्पर में सदैव द्वेषका-रक है ॥ २ ॥ देवता, दानव व राजस नित्यही ईर्ष्या संयुत हुये व मनुष्यों के साथ तथा सिद्ध विद्याधरों के साथ ईर्ष्या संयुक्त हुये ॥ ३ ॥ व चारण किन्नरों के साथ

सनत्कुमारउवाच ॥ शृणुव्यासयथेयन्तु प्रोच्यतेहिकुशस्थली ॥ १ ॥ वेधसामृजितंविश्वं दैत्यदानवराजसम् ॥
अन्योन्यमदसंमत्त मन्योन्यद्वेषिणंसदा ॥ २ ॥ देवाश्चदानवारजो नित्यंस्पृह्यासमन्विताः ॥ मनुष्यामनुजैस्साद्धं
सिद्धाविद्याधरैस्सह ॥ ३ ॥ चारणाःकिन्नरैस्साद्धं मेवन्तेद्वेषतत्पराः ॥ युद्धंकुर्वन्तिसततं संविस्पृष्टार्थयागिरा ॥ ४ ॥
सर्वैचैवन्तुवलिनो दुर्बलैर्मनुजैस्सह ॥ पशवःपशुभिस्साद्धंपक्षिणस्सहपक्षिभिः ॥ ५ ॥ एवमन्योन्यमन्यैश्च निर्मर्या
दमिदंजगत् ॥ तस्माद्विश्वस्यकर्तारं विष्णुंविश्वेश्वरंपरम् ॥ ६ ॥ ब्रजामिशरणन्देवं शरणात्तिहरंहरिम् ॥ एवमन
सिसन्धाय दध्यौध्यानेनमाधवम् ॥ ७ ॥ ततोध्यातोमहायोगी विश्वरूपधरोहरिः ॥ लोहदण्डधरःश्रीमानिदमाह
पितामहम् ॥ ८ ॥ ब्रह्मन्ध्यातस्त्वयासम्यक् ध्यानयोगेनपश्यमाम् ॥ समायांतयथाध्यातं जनतांपातुमुद्यतम् ॥ ९ ॥

स्पृह्या संयुक्त हुये इसप्रकार शत्रुता में तत्पर वे सदैव प्रकटवाणी से युद्ध करतेथे ॥ ४ ॥ इसी प्रकार सब बलवान् दुर्बल मनुष्यों के साथ व पशुवों से पशु तथा प-
क्षियों से पक्षी युद्ध करते थे ॥ ५ ॥ इस प्रकार आपस में अन्य प्राणियों से भी यह संसार मर्याद रहित होगया इसलिये ब्रह्माने चिन्तवन किया कि मैं संसार के रचने-
वाले परम विश्वेश्वर विष्णुजी की ॥ ६ ॥ शरण में प्राप्तहोऊ जो विष्णुदेवजी कि शरणागत दुःखहारक हैं इसप्रकार मन में विचारकर उन्होंने ध्यान से विष्णुजीका
ध्यान किया ॥ ७ ॥ तदनन्तर ध्यान कियेहुये विश्वरूपधारी श्रीमान् विष्णु महायोगीने लोहके दण्डको धारण कर ब्रह्माजी से यह कहा ॥ ८ ॥ कि हेब्रह्मन् ! तुम

ने मुझको ध्यान योगसे भलीभांति ध्यान किया इस लिये भलीभांति आये व ध्यान किये हुये तथा प्राणिगणों की रक्षा करने के लिये उद्यत मुझको देखिये ॥ ९ ॥ तदनन्तर ब्रह्मा ने इस वचन को सुनकर व ध्यानको छोड़ देखकर सावधान मन से आगे पूजन करते हुये उठकर प्रणाम किया ॥ १० ॥ पाद्य आचमनीय व मधुपर्क से अभ्युत विष्णुजी को पूजकर फिर कमल से उपजेहुये ब्रह्माजी ने कहा ॥ ११ ॥ कि हे देवदेव, जगदीशजी ! मुझ से रचाहुआ यह संसार हे विष्णो, हरे ! स्थित होने के लिये नहीं योग्य है ॥ १२ ॥ इस पवित्र संसारके तुम्ही पालकहो अन्य नहीं है तुमसे यह समस्त संसार है इसलिये तुम पालन करो ॥ १३ ॥ यक्षः

ततोधातानिशम्यैतत्पक्त्वाध्यानमवेक्ष्य च ॥ समुत्थायैकमनसा नमश्चक्रेऽर्चयन्पुरः ॥ १० ॥ पाद्येनाचमनीयेन मधुपर्केणकेशवम् ॥ पूजयित्वापुनर्वाक्य मुवाचान्युतमब्जजः ॥ ११ ॥ देवदेवजगन्नाथ जगत्सृष्टिमिदंमया ॥ ऋतेत्वयाहरेविष्णो नैवावस्थ्यातुमर्हति ॥ १२ ॥ शास्तात्वमस्यविश्वस्य विशुद्धस्यचनापरः ॥ त्वत्तोस्तीदंजगत्सर्वं तस्मात्त्वमनुशासय ॥ १३ ॥ देवदानवगन्धर्वाः सद्यत्तौगराक्षसाः ॥ परस्परंविनिघ्नन्ति तांश्चत्वंरक्षितुंक्षमः ॥ त्वामृते पुरन्दरीकाक्ष व्यापिताशेषविग्रहम् ॥ १४ ॥ त्वमस्यविश्वस्यचराचरस्य स्थितस्सदाप्राणभृदात्मरूपी ॥ त्वयाधृतं सर्वमिदंजगद्वै यतस्ततोसित्वमुपेन्द्रसञ्ज्ञः ॥ १५ ॥ प्रवेशनव्याप्तिविधायकोसि त्वमुच्यसेविष्णुरतोमुनीन्द्रैः ॥ निवासितंविश्वमिदंत्वयायद्वसेश्चधातोरितिवासुदेवः ॥ १६ ॥ तवानुगंविश्वमिदंविभुस्त्व मशेषविश्वस्यविभासिराजा ॥ सेनानुरूपंजगदेवयस्सादतस्समृतस्त्वंकिलविश्वसेनः ॥ १७ ॥ विलेखनादस्यचराचरस्य कृषेद्वचधातोस्त्वमतोसिकृष्णः ॥ नाग व राजसौ समेत देवता, दानव व गन्धर्व आपस में युद्ध करते हैं उनको तुमरक्षा करने के लिये योग्यहो हे कमललोचन ! व्यापित समस्त शरीरवाले तुम्हारे बिना इस संसार का कोई रक्षक नहीं है ॥ १४ ॥ इस चराचर संसारके प्राणधारी व आत्मरूपी तुम स्थितहो और जिसलिये इस संसारको तुमने धारणकियाहै उसी कारण तुम उपेन्द्र संज्ञकहो ॥ १५ ॥ और तुम प्रवेश व व्याप्ति करनेवाले हो इसी कारण मुनीन्द्रोसे विष्णु कहेजातेहो ॥ और जिसलिये तुमसे यह संसार निवासित है उसी कारण वसि धातु से वासुदेवहो ॥ १६ ॥ यह संसार तुम्हारा अनुगामी है और तुम व्यापकहो व समस्त संसारके राजा प्रकाशित हो जिस लिये संसार सेना

के अनुरूप है इसीसे तुम विश्वसेन कहे गयेहो ॥ १७ ॥ इस चराचर संसारके विलेखन (आकर्षण या विदारण) के कारण कृपि धातुसे तुम कृष्ण हो व हे देव ! जिस लिये तुमने त्रिलोकको जीता है उसी कारण जिधातु से तुम जिण्णुहो ॥ १८ ॥ इसलिये ग्रहों व लोकपालों वाला तथा सब समय में नाशवाला यह सब संसार तुम्हारा है व इस सब संसार के तुम आदि राजा होवो और तुम्हारा अद्वितीय सिंहासन होवै ॥ १९ ॥ दक्षिणावर्तवाला शंख तुम्हारे हाथ में स्थित है इसलिये तुम पुरुषोत्तमहो और सुदर्शन नामक तुम्हारा चक्र है इसलिये तुम चक्रीहो अन्य अचक्री (चक्र रहित) है ॥ २० ॥ और विष्णुदेवजी का

जितन्त्वया देवजगत्रयं जये श्रधातोस्त्वमतोसि जिण्णुः ॥ १८ ॥ तस्मात्समस्तं ग्रहलोकपालं जगत्तैव तल्लय सर्व कालम् ॥ त्वमस्य सर्वस्य भवादिराजा तवास्तु भद्रासनमद्वितीयम् ॥ १९ ॥ प्रदक्षिणावर्त्तनं अस्ति शङ्खः करस्थितोऽपुरुषोत्तमोसि ॥ सुदर्शनन्नामतवास्ति चक्रं चक्रीह्यस्तत्त्वं ह्यपरस्त्वचक्री ॥ २० ॥ ध्वजोस्ति देवस्य सुपर्णसेवितस्तथा सुवर्णच्छदनोस्ति वाहनः ॥ तुरङ्गमास्सन्ति तवारिसंहरास्तथा हृषीकेश सुमत्तदन्तिनः ॥ २१ ॥ किरीटनिष्काङ्गदकर्णपूरं केयूरहारोत्तमहेमसूत्रैः ॥ विचित्रवस्त्रोत्तररक्तमाल्यैर्विभूषितस्त्वं भवभीमसेन ॥ २२ ॥ श्रियाकदाचिच्च न मुच्यते भवान् भवन्ति ते नित्यमन्तसम्पदः ॥ तवानुगाभक्तिरिहास्त्वैसतां मुकुन्दभक्तेस्त्वमतः प्रसीद ॥ २३ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ स एव मुक्तस्तु पुरा दिवौ कसां विभुः प्रसन्नस्ति त्वदमब्रवीद्धरिः ॥ विरिञ्चमेदर्शय शुद्धमण्डलं त्वया विमुक्तं

ध्वजा गरुड से सेवित है व सुवर्णके समान पंखोंवाले गरुड़वाहन हैं और हे हृषीकेश ! तुम्हारे शत्रु विनाशक अश्व हैं व मतवाले हाथी हैं ॥ २१ ॥ हे भवभीमसेन ! किरीट, अशर्फी, बज्रुल्ला, कर्णपूर, केयूर व उत्तमहार स्वर्ण सूत्रोंसे और विचित्र उत्तरीय वस्त्र और लाल मालाओंसे तुम भूषितहो ॥ २२ ॥ आप कभी लक्ष्मीसे विमुक्त नहीं होतेहो और तुम्हारे सदैव अमित संपदार्थे होती हैं इस संसार में सज्जनों के तुम्हारी अनुगामिनी भक्ति होवै इसलिये हे मुकुन्द ! भक्त के ऊपर तुम प्रसन्न होवो ॥ २३ ॥ सनत्कुमारजी बोले कि पुरातन समय इसप्रकार कहेहुये व्यापक विष्णुजी प्रसन्न होकर देवताओं के मध्यमे यह बोले कि हे त्रिभो, ब्रह्मन् !

दो० । जिमि उज्जयिनी पुरी कर भयो श्रवन्ती नाम् । तिरपनेवें अध्यायमें सोइचरित श्रभिराम ॥ सनत्कुमारजी बोले कि पुगतन समय ईशानकल्पमें जिसप्रकार अवन्ती पुरी कहीगई है वैसेही सुनिये कि दैत्योंकीसेनासे पसलित सब देवता ॥ १ ॥ वन के कुञ्ज व गुहाओं से घिरेहुये सुमेरु गिरि के शिखर पै प्राप्तहुये और वहां जाकर हे द्विजोत्तम ! उद्यत होतेहुये उन्होंने सम्मति किया ॥ २ ॥ व आपस में प्राप्तहोकर और परस्पर भलीभांति पूजकर सब देवगण वहां गये जहां कि ब्रह्मा देवजी थे ॥ ३ ॥ और वहां आने के सब कारण को उन्होंने कहा उन देवताओं के उस वचन को सुनकर वे ब्रह्माजी ॥ ४ ॥ देवताओं समेत देवदेव शिवजीके समीप

सनत्कुमारउवाच ॥ पुराचेशानकल्पेतु स्मृतावन्तीयथापुरी ॥ तथाशृणुस्मरैस्सर्वैर्देत्यसैन्यपराजितैः ॥ १ ॥ आश्रितम्मेरुशिखरं वनकुञ्जगुहावृतम् ॥ तत्रगत्वाद्विजश्रेष्ठ मन्त्रंचक्रुस्समुद्यताः ॥ २ ॥ अन्योन्यञ्चसमासाद्य समभ्यर्च्यपरस्परम् ॥ जगुस्सर्वेसुरगणा यत्रब्रह्माप्रजापतिः ॥ ३ ॥ वेद्याञ्चकिरेसर्वं तत्रागमनकारणम् ॥ तेषांतद्वचनं श्रुत्वा देवानांसप्रजेऽश्वरः ॥ ४ ॥ जगामन्निदशैस्साकं देवदेवंमेहेश्वरम् ॥ सचापिह्यगमत्तत्र वैकुण्ठेधामयत्रवै ॥ ५ ॥ ऋद्धिसिद्धिप्रदन्नित्यं मुनिचारणसेवितम् ॥ किन्नरैर्गीयमानञ्च ह्यप्सरोगणसेवितम् ॥ ६ ॥ ऋषिभिर्भागवाद्यैश्च देवर्षिनारदादिभिः ॥ सिद्धगन्धर्वमुख्यैश्च कुमारैस्सनकादिभिः ॥ ७ ॥ प्रजापतिगणार्काणं मानवैश्चचतुर्दशैः ॥ वसुभिर्विश्वदेवैश्च पितृणामुत्तमैर्गणैः ॥ ८ ॥ सदासेव्यंसदाचारैः पुण्यवद्भिर्जनैस्तथा ॥ दिव्यं दिव्याद्यभिप्रायैर्दिव्यपादप्रशोभितम् ॥ ९ ॥ माणिभीरुत्सोपानैस्सरोर्दिव्यसुशोभितम् ॥ हंसकारणदुवाकीर्णं यत्रतिष्ठतिभास्वरम् ॥ १० ॥ षड्भूमि

गये और वे भी वहा गये जहां कि वैकुण्ठ में मन्दिर था ॥ ५ ॥ जोकि ऋद्धियों व सिद्धियों का दायक तथा नित्यही मुनियों व चारणों से सेवित और किन्नरों से गाया जाता हुआ व अप्सरा समूहों से सेवित था ॥ ६ ॥ व भर्गवादिक ऋषियों तथा नारदादिक देवर्षियों और मुख्य सिद्धों व गन्धर्वों से तथा सनकादिक कुमरों से संयुत था ॥ ७ ॥ व प्रजापति गणों से व्याप्त तथा चौदह मनुष्यों से संयुत व वसु विश्वेदेवता तथा पितरों के उत्तमगणों से संयुक्त था ॥ ८ ॥ और उत्तम आचारवाले व पुण्यवान् जनोसे सदैव सेवनीय था व दिव्यादिक अभिप्राथोंसे दिव्य तथा दिव्य रत्नों के सोपानों से दिव्य

व सुशोभित व हंसों तथा कारंड व पक्षियों व्याप्त तथा प्रकाशवान् तड़ाग जहां स्थित था ॥ १० ॥ व छाजर्मियों से रहित तथा वैर विहीन पशु पक्षियोंवाला स्थान था वहा विष्णुजी के देखने की इच्छा से सब देवताओं ने जाकर ॥ ११ ॥ देवदेव जगदीशजी की स्तुति करने के लिये प्रारम्भ किया देवता बोले कि वृहत व अ-
नंतजी के नमस्कार है तथा कूर्मजी (कच्छपर्जा) के लिये नमस्कार है नमस्कार है ॥ १२ ॥ व उग्र नृसिंहरूपके लिये प्रणाम है और वाराहरूपधारीके लिये नमस्कार है व राघव श्रीरामचन्द्रजी के लिये तथा अनंतशक्तिवाले ब्रह्माके लिये प्रणाम है ॥ १३ ॥ व शान्त वासुदेवजीके लिये तथा पशुपतिके लिये प्रणाम है व शुद्ध बुद्धजी

रहितस्थानं निर्वरपशुपतिकम् ॥ तत्रगत्वासुरास्सर्वे वासुदेवदिदृक्षुः ॥ ११ ॥ स्तुतिभारेभिरैकलुं देवदेवजगत्पतेः ॥
देवाऊचुः ॥ नमोनन्तायवृहते कूर्मायैव नमोनमः ॥ १२ ॥ नृसिंहरूपायो ग्राय नमो वाराहरूपिणे ॥ राघवाय च रामाय
ब्रह्मणे नन्तशक्तये ॥ १३ ॥ वासुदेवाय शान्ताय पशूनाम्पतये नमः ॥ नमो बुद्धाय शुद्धाय कल्कि म्लेच्छान्तकारिणे ॥
१४ ॥ इति स्तवाभियुक्तानां वागुवाचा शरीरिणी ॥ श्रूयताम्भोसुरास्सर्वे सम्भूयैकाग्रमानसाः ॥ १५ ॥ महाकालवनं
रम्यं ब्रह्मर्षिगणसेवितम् ॥ तत्र पुण्यापुरी ह्येका सर्वकामफलप्रदा ॥ १६ ॥ नाम्ना कुशस्थलीरम्या सिद्धगन्धर्वसेविता ॥
कल्पादौ कल्पमध्ये वा यत्र सन्निहितो हरः ॥ १७ ॥ कल्पक्षये क्षययान्ति स्थावराणि चराणि च ॥ तीर्थानि चैव सर्वाणि पु
ण्यान्यायतनानि च ॥ १८ ॥ सरितस्सागरास्सर्वे सरांस्युपवनानि च ॥ औषधिवृक्षवल्थश्च यन्त्रमन्त्रशुभाशुभम् ॥ १९ ॥

के लिये प्रणाम है और म्लेच्छों के अन्तकारक कल्कीजीके लिये प्रणाम है ॥ १४ ॥ इस प्रकार स्तुति से संयुत देवताओं से आकाशावाणी बोली कि हे सब देवताओं !
एकाग्रमनवाले होकर तुम लोग सुनो ॥ १५ ॥ कि ब्रह्मर्षियों के गणों से सेवित सुन्दर महाकाल वन है वहां समस्त कामनाओं के फलों को देनेवाली एक पवित्रपुरी
है ॥ १६ ॥ जो सुन्दरी व नाम से कुशस्थली ऐसी प्रसिद्ध और सिद्धों व गन्धर्वों से सेवित है और जहां पर कि कल्पके आदि व मध्यमें महादेवजी टिकेरहते हैं ॥ १७ ॥
कल्पान्त में स्थावर व जंगम प्राणी क्षयको प्राप्त होते हैं और सब तीर्थ व पवित्र देव मन्दिर नाश हो जाते हैं ॥ १८ ॥ नदियां व सब समुद्र तथा तड़ाग, उपवन, औषधी,

वृत्त, लता, यन्त्र, मन्त्र, शुभाशुभ वरु ॥ १६ ॥ प्रकाश, चन्द्रमा, सूर्य सब संसार विष्णुमय है व उन सबों का बीज, पुण्य व जीवि तथा कर्मका आशय ॥ २० ॥ सबको लेकर भगवान् शिवजी वहा स्थित रहते हैं गंगा समस्त तीर्थ मयी हैं और विष्णुजी समस्त देवमय है ॥ २१ ॥ व नेद सर्वयज्ञमय है व दया समस्त धर्ममयी है और पृथ्वी में नदियों में श्रेष्ठ नर्मदा नदी अधिक पुण्यमयी है ॥ २२ ॥ हे सुरोत्तमो ! उससे हितकारक कुरुवों का क्षेत्र है उससे दशगुना उत्तम प्रयाग तीर्थको मैं मानता हूँ ॥ २३ ॥ व उससे दशगुनी काशी और काशीसे दशगुनी अति पुण्यदायिनी कुशस्थली कही गई है ॥ २४ ॥ हजार ग्रहण

ज्योतीषिचन्द्रसूयौ च सर्वविष्णुमयं जगत् ॥ तेषां बीजं च पुण्यञ्च जीविकर्माशयन्तथा ॥ २० ॥ सर्वमादाय भगवा
ज्ज्वंकरस्तत्र तिष्ठति ॥ सर्वतीर्थमयी गङ्गा सर्वदेवमयो हरिः ॥ २१ ॥ सर्वयज्ञमयो वैदस्सर्वधर्ममयी दया ॥ रेवा च
सरितां श्रेष्ठा सुविपुण्यमया धिका ॥ २२ ॥ तस्माद्वितकरं क्षेत्रं कुरूणैव सुरोत्तमाः ॥ तस्माद्दशगुणं मन्ये प्रयागं ती
र्थमुत्तमम् ॥ २३ ॥ तस्माद्दशगुणा काशी काश्या दशगुणा प्रोक्ता कुशस्थल्यतिपुण्यदा ॥ २४ ॥
उपरागसहस्राणि व्यतीपातायुतानि च ॥ अमालं च कुशस्थल्याः कलानार्हन्ति षोडशीम् ॥ २५ ॥ लक्षमिन्दुक्षये
दानं सहस्रं चायनद्वये ॥ व्यतीपाते च कोटिस्स्याद्राकायाश्च ह्यनन्तकम् ॥ २६ ॥ तस्माद्वितकरी देवाः पुरीहिषा कुशस्थ
ली ॥ अनन्तानन्तसङ्ख्यातं दानं किञ्चित्कृतन्नरैः ॥ २७ ॥ श्रूयतां भो सुरश्रेष्ठास्सर्वतच्चाक्षयं भवेत् ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्ने
न यूयं यातहि मा चिरम् ॥ २८ ॥ क्षीणपुण्या भवन्तो विबाधन्ते तेन वीसुराः ॥ महाकालवने रम्ये पुरीहिषा कुशस्थली ॥ २९ ॥

व दश हजार व्यतीपात और लक्ष अमावस तिथियां कुशस्थली की सोलहवीं कला के योग्य नहीं होती हैं ॥ २५ ॥ क्योंकि वहां अमावस में लक्ष दान और दोनों अ-
यनों में हजार तथा व्यतीपात में करोड़ और पौर्णमासी में अनन्त दान होता है ॥ २६ ॥ इसलिये हे देवताओं ! यह कुशस्थली पुरी हितकारिणी है क्योंकि यहां मनुष्यों
से कुछ भी किया हुआ दान अनन्तानन्त संख्यक होता है ॥ २७ ॥ व हे सुरोत्तमो ! सुनिये कि वह सब दान अक्षय होता है इसलिये तुम लोग सब यत्न से वहां जावो
देर मत करो ॥ २८ ॥ आप लोग क्षीण पुण्यवाले हो। इसलिये दैत्य तुम लोगों को पीड़ित करते हैं सुन्दर महाकाल वन में यह कुशस्थली पुरी है ॥ २९ ॥

पृथ्वी में वहां जाकर आप लोग उत्तम विधि से स्नान दानादिकको कीजिये तब पुण्य सेस्वर्गको पावोगे ॥ ३० ॥ उस आकाशवाणी के इस वचन को सुनकर ब्रह्मा व शिव अग्रगामीवाले सब देवता उस वाणी के लिये मस्तक से प्रणामकर फिर वहांगये जहां कि महादेवजी का वन था और हे द्विजोत्तमो ! समस्त कामनाओं के फलों को देनेवाली पुरी को गये ॥ ३१ ॥ जोकि चारों वणोंसे व्याप्त व ऋषियों तथा गन्धर्वों से सेवित व पुण्यवान् जनो से पूर्ण तथा सिद्धों व चारणों से सेवित थी ॥ ३३ ॥ और कहीं निर्धनी, अन्ध, जड़, मूर्ख नहीं देख पड़ता था और न रोगी न ईर्ष्यावान् न मानसी पीड़ा समेत और न अपकारी देख पड़ता था ॥ ३४ ॥

तत्र गत्वा भवन्तो वै स्नान दानादिकम्भुवि ॥ आचरध्वंसुविधिना पुण्यात्स्वर्गमवाप्स्यथ ॥ ३० ॥ एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्याः वारयाश्चाकाशगाहिते ॥ प्रणम्य शिरसा तस्यै ब्रह्मा भवपुरोगमाः ॥ ३१ ॥ पुनर्जग्मुस्सुरास्सर्वे यत्र माहेन्द्रवरेणम् ॥ पुरीञ्चैव द्विजश्रेष्ठ सर्वकामफलप्रदाम् ॥ ३२ ॥ चतुर्वर्णसमाकीर्णं सृषिगन्धर्वसेविताम् ॥ पुण्यवद्भिर्जनैः पूर्णं सिद्धचारणसेविताम् ॥ ३३ ॥ दरिद्रोन्धजडो मूर्खो नरोगी न च मत्सरी ॥ न साधिनां पकारी च जनः क्वचित्प्रदृश्यते ॥ ३४ ॥ दान्ताश्शान्तास्सुशीलाश्च जरारोगविवर्जिताः ॥ स्वधर्मनिरतानित्यं सदाचारातिथिप्रियाः ॥ ३५ ॥ निवसन्ति नरा यत्र नार्यश्चैव पतिव्रताः ॥ महोत्सवसुगीतानि हव्यकव्यं गृहे गृहे ॥ ३६ ॥ ईदृशीञ्च पुरीन्दृष्ट्वा देवाहर्षपरङ्गताः ॥ तत्र तीर्थसमाख्यातं नाम्नापैशाचमोचनम् ॥ ३७ ॥ पुण्यवद्भिस्सदासेव्यं सर्वतीर्थनिषेवितम् ॥ तस्मिन्स्नान्त्वा च जप्त्वा च हुत्वा दत्त्वा च देवताः ॥ ३८ ॥ पुण्यं चाप्यक्षयं लब्ध्वा पुनर्यातासुरालयम् ॥ जित्वासुरान्महादुष्टान् स्थानं प्राप्तास्स्व

और इन्द्रियों को दमन किये व शान्त, सुशील और वृद्धता व रोगसे रहित तथा नित्य श्रमने धर्मसे तत्पर व उत्तम आचार व अतिथि प्रिय लोग जहां बसते थे ॥ ३५ ॥ व पतिव्रता स्त्रिया जहां बसती थी और बड़े उत्साह के उत्तम गीत और हव्य कव्य घर घर में होते थे ॥ ३६ ॥ ऐसी पुरी को देखकर देवता बड़े हर्षको प्राप्त हुये वहां पर पिशाच मोचन नामक कहाहुआ तीर्थ है ॥ ३७ ॥ जोकि पुण्यवानोंसे सदैव सेवनीय व समस्त तीर्थों से सेवित है उसमें नहाकर जपकर और हवन व दानकर

देवता ॥ ३८ ॥ अक्षय पुण्यको पाँकर फिर सुरालय (स्वर्ग) को चलेगये और बड़े दुष्ट दानवों को जीतकर अपने २ स्थान को प्राप्तहुये ॥ ३९ ॥ जो महाभाग्यवान् पुरुष अवन्ती पुरी में स्नान, दान व पूजन, हवन और तर्पण करते हैं उनका वह सब अनन्त होताहै ॥ ४० ॥ इसलिये सब यज्ञसे विद्वानों को यह सदैवकरना चाहिये जिसलिये कि देवता, तीर्थ, औषधि, बीज व प्राणियों का पालन ॥ ४१ ॥ कल्प कल्प में जिसमें होताहै उससे वह अवन्ती पुरी कीगई है आज से लगाकर यह कुशस्थली पुरी अवन्ती नामक होवै ॥ ४२ ॥ यह कहकर उस समय देवता अपने उत्तम स्थानको चलेगये तब से लगाकर हे द्विजोत्तम ! पृथ्वी में अवन्ती

कंस्वकम् ॥ ३९ ॥ येवन्त्यान्तुमहाभागास्नानंदानंतथार्चनम् ॥ हवनंतर्पणंचैव तत्सर्वस्यादनन्तकम् ॥ ४० ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन एतत्कार्यंसदाबुधैः ॥ देवतीर्थैषधीबीजं भूतानाञ्चैवपालनम् ॥ ४१ ॥ कल्पेकल्पेचयस्यावै तेनावन्ती पुरीस्मृता ॥ अद्यारभ्यपुरीह्येषा नाम्नावन्तीकुशस्थली ॥ ४२ ॥ इत्युक्त्ववैतदादेवास्स्वधामपरमज्ञताः ॥ तदारभ्य द्विजश्रेष्ठ हवन्तीभुविविश्रुता ॥ ४३ ॥ यएताञ्चकथां दिव्यां पुर्यावैपापहारिणीम् ॥ शृणुयाच्छ्रावयेद्यौवै सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ४४ ॥ अपुत्रोत्तमतेपुत्रमधनमाप्नुयात् ॥ वाजपेयसहस्राणां राजसूयशताधिकम् ॥ ४५ ॥ पुण्यं लब्धवानरो नित्यं शिवलोकं महीयते ॥ ४६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेऽवन्त्यभिधानकथननामत्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५३ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

सनत्कुमारउवाच ॥ एतस्मिन्नन्तरेव्यास यथासोज्जयिनीस्मृता ॥ तथाहंसप्रवक्ष्यामि श्रूयतांतत्समाहितः ॥ १ ॥ प्रसिद्ध हुई है ॥ ४३ ॥ जो पुरुष इस पापहारिणी तथा पुण्यदायिनी दिव्य कथाको सुनता है और जो सुनता है वह सब पापोंसे छूटजाता है ॥ ४४ ॥ और विन पुत्रवाला पुरुष पुत्रको पाताहै व निर्धनी धनको प्राप्तहोता है व हजार वाजपेय और सौ राजसूय यज्ञों से अधिक ॥ ४५ ॥ पुण्यको पाकर मनुष्य नित्य शिवलोकमें पूजाजाताहै ॥ ४६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेऽवन्त्यभिधानकथननामत्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५३ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

दो० । यथा अवन्ती पुरी कर भो उज्जयिनी नाम । चौवनवे अध्यायमें सोइ चरित सुखधाम ॥ सनत्कुमारजी बोले कि हे व्यासजी ! इसी अवसरमें जिस

उज्जयिनी कहींगई है वैसेही मैं भलीभांति कहूंगा सावधान होकर सुनिये ॥ १ ॥ कि सब दैत्य जनोके स्वामी त्रिपुरनामक महादैत्यने ब्रह्माजी की प्रसन्नताके लिये बड़ा कठिनतप किया है ॥ २ ॥ कि आतप (धूप) मैं वह अग्निसेवी हुआ और वर्षा में आकाश में टिका याने मन्दिरादिको के बाहर रहा और शीतकाल में उस समय चित्तको दमनकर जलाशय में रहा ॥ ३ ॥ गिरेहुये पत्तों को व जलको भोजन करनेवाला वह पवनभक्ती होकर आश्रय रहित हुआ और गायत्री के व्रत में टिककर सब परिवार को उसने छोड़ दिया ॥ ४ ॥ इसप्रकार हजार वर्षतक उसने कठिन तप किया और हजार वर्ष पूर्ण होने पर प्रसन्न मनवाले ब्रह्माजी बोले ॥ ५ ॥

त्रिपुराख्योमहादैत्यो सर्वदैत्यजनेश्वरः ॥ तपस्तेपेसुदुर्द्धर्षं ब्रह्मणस्तुष्टिकारणात् ॥ २ ॥ आतपेचाग्निसेवीवै प्रा
वृष्याकाशसुस्थिरः ॥ दमयित्वातदात्मानं शीतकालेजलाशये ॥ ३ ॥ शीर्णपत्रजलाहारो वायुभक्तीनिराश्रयः ॥
गायत्रीव्रतमास्थाय त्यक्तसर्वपरिग्रहः ॥ ४ ॥ एवंवर्षसहस्रन्तु तपस्तप्तंसुदुश्चरम् ॥ पूर्णवर्षसहस्रेतु ब्रह्माप्रीतमनाब्र
वीत् ॥ ५ ॥ त्रियताम्भोसुरश्रेष्ठ वरंमत्तोभिकाङ्क्षितम् ॥ तत्सर्वसाम्प्रतंलोकै वरंतुभ्यंददामिते ॥ ६ ॥ एवमुक्तस्सवि
धिना दैत्यस्त्रिपुरसञ्ज्ञितः ॥ उवाचवचनंसद्यो ब्रह्माणंशंसितव्रतम् ॥ ७ ॥ त्रिपुरउवाच ॥ यदितुष्टमनाःब्रह्मन्वरम्मे
दातुमिच्छसि ॥ देवदानवगन्धर्वपिशाचोरगराक्षसैः ॥ ८ ॥ अवध्योहंभवेयवै वरमेतद्वृणोम्यहम् ॥ ब्रह्मोवाच ॥ ए
वंभवतुभोवत्स विचरस्वाकुतोभयम् ॥ ९ ॥ एत्युक्त्वासहस्राब्रह्मातत्रैवान्तरधीयत ॥ तदारभ्यमहादैत्यो देवानांकद
नंमहत ॥ १० ॥ चकारकोपपूर्णवै पूर्वैरमनुस्मरन् ॥ वासयित्वायत्रतत्र ग्रामाणिनगराणिच ॥ ११ ॥ तत्रयेन्यवस

कि हे सुरोत्तम ! मुझ से चाहे हुये वरदान को मांगिये उस सब वर को मैं इस समय संसार में तुमको दूंगा ॥ ६ ॥ इसप्रकार ब्रह्मा से कहाहुआ वह त्रिपुरनामक दैत्य प्रशंसितव्रतवाले ब्रह्मा से शीघ्रही वचन बोला ॥ ७ ॥ त्रिपुर बोला कि हे ब्रह्मन् ! यदि प्रसन्न मनवाले तुम मुझको वर देना चाहते हो तो देवता, दानव, गन्धर्व, पिशाच, नाग व राक्षसों से ॥ ८ ॥ मैं अवध्य होऊँ इस वरदानको मैं मांगता हूँ ब्रह्माजी बोले कि हे वत्स ! ऐसा होवै तुम सब कहीं से निडर होकर भ्रमण करो ॥ ९ ॥ ऐसा कहकर अचानकही ब्रह्माजी वहाँ पर अन्तर्द्वान होगये तब से लगाकर पहले के वैरको स्मरण करतेहुये कोपसे पूर्ण त्रिपुरमहासुरने देवताओं का

बड़ा विनाश किया और जहाँ तहाँ ग्रामों व नगरों को बसाकर ॥ १०१ ११ ॥ वहाँ जो सब वणों व आश्रमों में तत्पर मनुष्य बसते थे उनको पापबुद्धिवाले उस त्रिपुर ने अनेकों उपाय से नाशकिया ॥ १२ ॥ उस दुष्टवासी पुर में वेदके पारगामी ब्राह्मण हवन नहीं करते थे और न कभी अग्निहोत्र व सोमपान होता था ॥ १३ ॥ और भयंकर दैत्य किसी कारण से पुण्यकर्मको नहीं करते थे जोकि स्वाहाकार स्वधाकार व वषट्कारसे वर्जित थे ॥ १४ ॥ और किसीके घरमें विस्तारको प्राप्त उत्सव नहीं देखपड़ता था व जहाँ पर देव मन्दिर नहीं था और न शिवपूजन होता था ॥ १५ ॥ और न यज्ञ, न दान और न गऊ ब्राह्मण का पूजन होता था और उत्तम

न्सर्वे वर्णाश्रमपराजनाः ॥ तेषाँ वै कदनञ्चक्रे नानोपायेन पापधीः ॥ १२ ॥ तस्मिन् पुरे दुष्टवासे ब्राह्मणावेदपारगाः ॥ न जुह्वन्त्यग्निहोत्रं वै सोमपानञ्च कर्हिचित् ॥ १३ ॥ कुताश्चित्सुकृतं कर्म नैव कुर्वन्ति भैरवाः ॥ स्वाहाकारस्वधाकारवषट्कारविवर्जिताः ॥ १४ ॥ नोत्सवं दृश्यते गेहे कस्यचिद्भुवि विस्तृतम् ॥ देवतायतनन्नास्ति यत्र नो शिवपूजनम् ॥ १५ ॥ नास्ति यज्ञो न दानानि न गोब्राह्मणपूजनम् ॥ सदाचारोजनो नास्ति दयादानविवर्जितः ॥ १६ ॥ न दानी नोपकारी चतुर्ष्वपी नैव दृश्यते ॥ एवं व्यासपुरे तस्मिन् नष्टप्रायमिदं जगत् ॥ १७ ॥ प्रजानां ब्राह्मणो मूलं वेदमूलं हि ब्राह्मणाः ॥ वेदमूलपरायज्ञा यज्ञमूला हि देवताः ॥ १८ ॥ तस्माद् व्यासहृतं सर्वं कृतन्ते न दुरात्मना ॥ तेन देवगणैस्सर्वं हतप्रायाहतौजसः ॥ १९ ॥ विचरन्ति यथामर्थ्या भुवितेन पराजिताः ॥ अन्योन्यकृतसन्धाना मन्त्रं कृत्वा समाहिताः ॥ २० ॥ जगमुस्ते तत्र यत्रास्ते प्रजापतिरकल्मषः ॥ त्रिदशाः कथयामासुरात्मव्यसनकारणम् ॥ २१ ॥ तदज्ञात्वा सहस्रोत्थाय ब्रह्मलोकं पितामहः ॥

आचारवाला मनुष्य न था व दया और दान से रहित था ॥ १६ ॥ और न दानी न उपकारी और न तपस्वी देख पड़ता था हे व्यासजी ! उस नगर के ऐसा होने पर यह संसार नष्ट हो गया ॥ १७ ॥ प्रजाओं की जड़ ब्राह्मण हैं और वेदमूलवाले ब्राह्मण होते हैं व वेदमूल में तत्पर यज्ञ हैं व यज्ञमूलवाले देवता होते हैं ॥ १८ ॥ इसलिये हे व्यासजी ! उस दुष्टात्मा तारकने सब नाशकिया और उससे मारे हुये सब देवगण नष्ट बलवाले हुये ॥ १९ ॥ और उससे हारे हुये देवता पृथ्वी में मनुष्यों की नाई विचरने लगे व आपस में मेलकर सावधान होते हुये वे देवता सम्मतिकर वहाँ गये जहाँ कि पाप रहित ब्रह्माजी थे और देवताओं ने अपनी विपत्ति का

कारण कहा ॥ २० । २१ ॥ उसको जानकर व अचानकही उठकर लोकोके पितामह ब्रह्माजी देवताओं समेत उत्तम महाकाले वेनको गये ॥ २२ ॥ जहाँ कि पावती समेत मदाशिखदेवजी सदैव टिके रहते हैं व जहाँ पर समस्त तीर्थोंसे सेवित दिव्यअवन्ती पुरी है ॥ २३ ॥ वहाँ देवताओं समेत चतुर्मुख ब्रह्माजी आकर उस समय रुद्रसरमे स्नान, दान, जप व हवन कर ॥ २४ ॥ और महाकालजी को पूजकर ब्रह्माजी वचन बोले ब्रह्मा बोले कि हे भक्तों को अभय करनेवाले, देवदेव, महादेव जी ! ॥ २५ ॥ हे सुरोत्तम ! अति उत्तम देवकार्य को सुनिये कि त्रिपुरनामक दैत्येन्द्र देवताओं का बड़ा विनाश ॥ २६ ॥ सदैव करता है और वेदों व ब्राह्मणों का

जगामत्रिदशैस्साङ्गं महाकालवनोत्तमम् ॥ २२ ॥ यत्रास्तेसततन्देवो उमयासहितश्शिवः ॥ यत्रावन्तीपुरीदिव्या स
वर्तीर्थनिषेविता ॥ २३ ॥ तत्रागत्यसुरैस्साकं स्वयम्भूश्चतुराननः ॥ स्नानं दानं जपं होमं कृत्वा रुद्रसरैरुदा ॥ २४ ॥ पू
जयित्वा महाकालं ब्रह्मावचनमब्रवीत् ॥ ब्रह्मोवाच ॥ देवदेव महादेव भक्तानामभयङ्कर ॥ २५ ॥ श्रूयताम्भोसुरश्रेष्ठ
देवकार्यमनुत्तमम् ॥ त्रिपुरोनामदैत्येन्द्रो देवानां कदनं महत् ॥ २६ ॥ करोतिसततन्दैत्यो वेदब्राह्मणनिन्दकः ॥ वास
यित्वा पुरत्रीणि विस्तीर्णानि चरत्यथ ॥ २७ ॥ तत्र स्थितानि भूतानि नाशयान्ति दुरात्मना ॥ एवं कृत्वा प्रजास्सर्वां च
यंतीताश्चराचराः ॥ २८ ॥ उद्वासितानि द्वापानि ग्रामाणि नगराणि च ॥ ऋषीणामाश्रमास्सर्वे यतीनामाश्रमास्तथा ॥
२९ ॥ एवं कृत्वा सुरास्सर्वे अष्टराज्याः पराजिताः ॥ विचरन्ति यथामर्थ्यास्त्रिपुरेण दुरात्मना ॥ ३० ॥ ब्रह्मलब्धवरोनि

त्यं ब्रजत्येवाकुतोभयम् ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन वधस्तस्य विचिन्त्यताम् ॥ ३१ ॥ इति श्रुत्वा वचस्तस्य ब्रह्मणश्शंसिता
निन्दक वह दैत्य तीन विस्तारित पुरों को बसाकर इसके अनन्तर अमण करता है ॥ २७ ॥ और वहाँ टिकेहुये प्राणी दुष्टात्मा तारक से नाशको प्राप्त होते हैं और ऐसा
करके चराचर सब प्रजा नाश किये गये ॥ २८ ॥ और द्वीप ग्राम व नगर उजाड़ दिये गये व ऋषियों के सब आश्रम और संन्यासियों के आश्रम उजाड़ दिये गये ॥
२९ ॥ ऐसा कर दुष्टात्मा त्रिपुरसे हारेहुये व अष्टराज्यवाले सब देवता मनुष्यों की नाई घूमते हैं ॥ ३० ॥ और ब्रह्मा से पाये हुये वरदानवाला वह सब कहीं से
निडर होकर विचरता है इसलिये सब उपायसे उसका वध विचार किया जावे ॥ ३१ ॥ इसप्रकार उन प्रशंसित चित्तवाले ब्रह्मा का वचन सुनकर महादेवजी बहुत देर

तक ध्यानकर उन ब्रह्माने बोले ॥ ३२ ॥ महादेवजी बोले कि हे ब्रह्मन् ! व इन्द्रादिक सुरोचमो ! सुनिये इस दुष्टात्मा दैत्यको जीतने का उपाय करूंगा ॥ ३३ ॥ और अपने जयको चाहनेवाले तुम लोग तपस्या करो अत्रन्ती पुरीमें जो हवन व दियाहुआ दान होताहै वह सब अक्षय होवै है ॥ ३४ ॥ सब देवताओं से यह कहकर शिवजी वहीं अन्तर्धान होगये और भूतों व प्रेतों से सेवित श्मशानस्थान में जाकर ॥ ३५ ॥ उस दुष्टात्मा त्रिपुर दैत्यको जीतने के लिये वहां सुरोचमों ने चामुण्डा, जी की उपासना किया ॥ ३६ ॥ और भैरों व महामेर्वों (बड़े भेड़ों) से तथा पशु (बाले) पुष्प, और अनेकभांति की बालियों से व धूप, दीप और अग्निहोत्रों से ॥

त्मनः ॥ चिरन्ध्यात्वामहादेवो ब्रह्माणन्तमुवाच ॥ ३२ ॥ महादेवउवाच ॥ श्रूयताम्भोसुरश्रेष्ठा ब्रह्मइन्द्रपुरोगमाः ॥ जयोषायंकरिष्यामि दैत्यस्यास्यदुरात्मनः ॥ ३३ ॥ तपश्चरतयूयं वै आत्मनोजयकाङ्क्षिणः ॥ अवन्त्यायद्भुतदत्तं तत्सर्वं चाक्षयम्भवेत् ॥ ३४ ॥ इत्युक्त्वासर्वदेवानां तत्रैवान्तर्हितश्शिवः ॥ गत्वाश्मशाननिलये भूतप्रेतनिषेविते ॥ ३५ ॥ जयार्थं तस्य दैत्यस्य त्रिपुरस्य दुरात्मनः ॥ उपासाञ्चक्रिरेतत्र चामुण्डायास्सुरेश्वराः ॥ ३६ ॥ महिषैश्च महामैषैः पशुपुष्पार्धतर्पणैः ॥ बलिभिर्विविधैर्दानैर्धूपदीपाग्निहोत्रकैः ॥ ३७ ॥ पूजयित्वा तदा देवीं तामिदं दृष्ट्वा भवजः ॥ दुर्गाम्गवतीं भद्रां दुर्गसंसारारिणीम् ॥ ३८ ॥ त्रिपुरान्तकर्त्रीकृत्यांचण्डमुण्डवधोद्यमाम् ॥ दैत्यान्तकांमदोन्मत्तां रक्ताख्यां रक्तदन्तिकाम् ॥ ३९ ॥ रक्ताम्बरधरान्धीरारंरक्तपुष्पावतंसिनीम् ॥ महिषवाहिनीं श्यामां पद्मासनपरिग्रहाम् ॥ ४० ॥ द्वीपिचर्मपरीधानां शुष्कमांसातिभैरवाम् ॥ पूजयित्वा प्रसन्नात्मा ध्यानमादाय संस्थितः ॥ ४१ ॥ तदा भगवती भद्राय

३७ ॥ उन देवीजी को पूजकर उस समय वृषध्वज शिवजी ने स्तुति किया और कल्याणकारिणी तथा दुर्गरूपी संसार से तारनेवाली दुर्गजी को ॥ ३८ ॥ व चण्ड मुण्ड के वध में उद्यमवाली त्रिपुरान्तकारिणी कृत्या व दैत्यों को नाशनेवाली और मद से उन्मत्त व रक्तनामवाली रक्तदन्तिकजी को ॥ ३९ ॥ तथा लाल पुष्पासे कर्णभूषणवाली व श्ररुण बसनो को धारे हुई भैर पर सवार व चतुर तथा श्यामा व पद्मासन से बैठी हुई ॥ ४० ॥ व व्याघ्र चर्मको पहने और सूखे मांस से बहुतही

भयकारिणी भगवतीजी को पूजकर प्रसन्न चित्तवाले शिवजी ध्यानको ग्रहण कर भलीभांति बैठे ॥४३॥ तब जो इस संसारको धारे हैं उन प्रसन्न मुखवाली कल्याण कारिणी भगवती चण्डिकाजी ने प्रत्यक्षहोकर कहा ॥ ४२ ॥ देवीजी बोलीं कि हे सुरश्रेष्ठ ! मुझ से चाहेहुये वरदानको मांगिये मैं लोकों के उपकारक तुमसे कहेंहुये उस सब वरको दूंगी ॥ ४३ ॥ श्रीमहादेवजी बोले कि हे देवि ! यदि तुम प्रसन्नहोतो मुझको उत्तम वर दीजिये कि जिससे देवताओं के कण्टकरूपी त्रिपुर महादैत्य को मारूं ॥ ४४ ॥ श्रीदेवीजी बोली कि हे सुरश्रेष्ठ ! मुझसे दियेहुये दैत्यों के नाशकारक उत्तम पाशुपत अस्त्रको ग्रहण कीजिये इस महादैत्य को तुम जीतोगे ॥४५॥

येदंधार्यतेजगत ॥ प्रसन्नवदनाभूत्वा प्रत्यक्षंप्राहचण्डिका ॥ ४२ ॥ देव्युवाच ॥ त्रियताम्भोसुरश्रेष्ठ वरंमत्तोभिर्वाञ्छितम् ॥ ददामि सर्वं त्वयोक्तं जगतामुपकारकम् ॥ ४३ ॥ श्रीहरउवाच ॥ परितुष्टासि चेद्देवि देहि मे वरमुत्तमम् ॥ येन हन्मिमहादैत्यं त्रिपुरन्देवकण्टकम् ॥ ४४ ॥ श्रीदेव्युवाच ॥ जयस्येनं महादैत्यं गृहाण पाशुपतं परम् ॥ मया दत्तं सुरश्रेष्ठ दैत्यनाशकरम् परम् ॥ ४५ ॥ महापाशुपतं शस्त्रं करे कृत्वा च शङ्करः ॥ उज्जहार तदा शम्भुर्दैत्यनाशाय सत्वरम् ॥ ४६ ॥ महाडम्बरको भूत्वा सर्वप्राणिभयङ्करः ॥ स्तुतिं कृत्वा जयैश्वर्यशब्दैः पृष्ठतो नुययुः सुराः ॥ ४७ ॥ शरैर्षौकेनैव रूद्रो जघान तं महासुरम् ॥ मायिनन्तं त्रिधा भित्त्वा मायायुद्धेन शङ्करः ॥ ४८ ॥ पुनरगात्पुरीमितामवन्ती सुरसेविताम् ॥ जयाशिषं प्रयुजा ना ऋषयस्सिद्धचारणाः ॥ ४९ ॥ तुष्टुबुश्रतदादेवं जयशब्देन हर्षिताः ॥ अप्सराननृतुस्तत्र गन्धर्वा ललितं जगुः ॥ ५० ॥

महापाशुपत शस्त्रको हाथमें धारणकर उस समय कल्याण कारक शिवजीने दैत्य के नाशने के लिये शीघ्रही ऊपर उठाया ॥ ४६ ॥ और समस्त प्राणियों को भयकारक जुम्माऊ नगाड़ा की गर्जन होकर देवता लोग जय शब्दों से स्तुति कर पक्षिसे चले ॥ ४७ ॥ और शिवजी ने एक बाण से उस महादैत्यको मारा व मायाके युद्धसे उस मायावी के तीन खण्डकर शंकरजी ॥ ४८ ॥ फिर देवताओं से सेवित इस अवन्ती पुरी को आये व जयपूर्वक आशीर्वादको युक्त करतेहुये ऋषि, सिद्ध व चारणोंने ॥ ४९ ॥ उस समय शिवदेवजीकी स्तुति किया और जयके शब्दसे प्रसन्न होतीहुई अप्सरायें वहाँ नाचने लगीं और गन्धर्व लोगोंने सुन्दर गान किया ॥ ५० ॥

व उस समय मनुष्यों को सुखदायक अति पवित्र पवन चलने लगा और प्राणियों के घर घर में उस समय जयका शब्द हुआ ॥ ५१ ॥ और अग्नियों शान्त होगई व दिशाओंमें उत्पन्न शब्द शान्त होगये और उस समय बड़े उत्सव व दक्षिणाओंवाले यज्ञ वर्तमान हुये ॥ ५२ ॥ और देवता बिपेहुये अपने स्थानको फिर प्राप्त हुये जिसलिये कि दानव उच्चप्रकारसे जीतागया व जिससे त्रिलोक स्थापन किया गया ॥ ५३ ॥ इसलिये सब सुरोत्तमों व सनकादिक ऋषियों से भक्तोंके पापका विनाशक श्रवन्तीनामक स्थान स्थापित कियागया ॥ ५४ ॥ और पुरातन समय सबकामनाओं व वरों को देनेवाली अवन्ती पुरी कहीगई है हे व्यासजी ! तब से

ववौतदापुण्यतमो वायुसुखप्रदोन्मेषः ॥ जयशब्दस्तदाजातः प्राणिनाञ्चगृहेगृहे ॥ ५१ ॥ जज्वलुश्चाग्नय
इशान्ताइशान्तादिगजनितस्वनाः ॥ प्रवर्तन्तेतदायज्ञा महोत्सवसदन्विताः ॥ ५२ ॥ देवाप्रपेदिरेस्थानं स्वकीयं पुन
रावृतम् ॥ उज्जितोदानवोयस्मात् त्रैलोक्यंस्थापितंयतः ॥ ५३ ॥ तस्मात्सर्वैस्सुरश्रेष्ठ ऋषिभिस्सनकादिभिः ॥ स्था
पितं नामावन्त्याख्यं सान्त्वतांपापनाशनम् ॥ ५४ ॥ श्रवन्तीचपुराप्रोक्ता सर्वकामवरप्रदा ॥ तत्प्रभृतिपुरीव्यास उ
ज्जयिनीसमाश्रिता ॥ ५५ ॥ येमुष्यांस्नानदानानि भुविकुर्वन्तिमानवाः ॥ नतेषांदुष्कृतांकिञ्चिद्देहेतिष्ठतिपापजम् ॥
५६ ॥ विद्यार्थीगिरीशंधनार्थीधनेशं सुतार्थीसुरेशंदिनेशंसुखार्थी ॥ धियोर्थागणेशंप्रियार्थीचशेषं गिरापूजमानोज
नश्चोज्जयिन्याम् ॥ ५७ ॥ यएतस्यांमहाभागस्सदावसतिमानवः ॥ भुक्त्वाकामान्मनोभीष्टान्मृतादिशवपुरं व्रजे
त् ॥ ५८ ॥ तत्रैववसतेनित्यं कल्पकोटिशताधिकम् ॥ यैनेषाचकथापुण्या पठ्यतेश्रूयतेथवा ॥ ५९ ॥ मुच्यतेसर्वपा

लगाकर उज्जयिनी भलीभाति स्थितहुई है ॥ ५५ ॥ जो मनुष्य पृथ्वीपर इसमें स्नानदानादिक करते हैं उनके शरीर में पापसे उपजा हुआ कुबू दुष्कृत नहीं होताहै ॥
५६ ॥ विद्याको चाहनेवाला पुरुष महादेवजी को वा धन चाहनेवाला नर धनेश कुबेरजी व पुत्र चाहनेवाला मनुष्य सुरेश (इन्द्रजी) को और सुख चाहनेवाला
पुरुष सूर्यनारायणजी को व बुद्धि चाहनेवाला नर गणेश को तथा प्रिय चाहनेवालापुरुष शेषजी को वाणी से पूजता हुआ उज्जयिनी पुरी में बसे ॥ ५७ ॥ जो बड़ा
पुरुषवान् पुरुष इसमें सदैव बसता है वह मन से चाहीहुई कामनाओं को भोगकर मरकर शिवपुर को जाता है ॥ ५८ ॥ और वही पर वह सदैव करोड़ों सौ कल्या

से भी अधिकतक बसता है और जो मनुष्य इस पवित्र कथा को पढ़ता या सुनता है ॥ ५६ ॥ वह सब पापोंसे छूटजाता है और गौ सहस्र के फलको प्राप्त होता है ॥ ६० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेश्वरान्तोत्तरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायां भावटीकायां मुञ्जयिन्यभिधानकथननामचतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५४ ॥

दो० । भयो अवन्ती पुरी कर जिमि पद्मावति नाम । पचपनवें अध्याय में सोई चरित ललाम ॥ सनत्कुमारजी बोले कि इसके अनन्तर जिस प्रकार वह पद्मावती ऐसी हुई है उसको मैं भलीभांति कहता हूँ हे व्यासजी ! बहुत पुण्य करनेवाली कथाको आदर से सुनिये ॥ १ ॥ कि एक समय उन दुष्टात्मा दुष्ट दानवों से सब रत्नों पे भयो गौसहस्रफलंलभेत ॥ ६० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेश्वरान्तोत्तरखण्डे उज्जयिन्यभिधानकथननामचतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५४ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

सनत्कुमारउवाच ॥ अथातस्सम्प्रवक्ष्यामि यथापद्मावतीतिसा ॥ श्रूयतामादृतोव्यास बहुपुण्यकृताङ्कथाम् ॥

१ ॥ एकदासर्वरत्नानां हानिर्जातादुरात्मभिः ॥ धर्मग्लानिनिरोधश्चजातस्तर्दुष्टदानवैः ॥ २ ॥ तदासुरासुरैस्सर्वमिलित्वामथितोर्णवः ॥ मेरुर्वशोर्णवःपात्रं रज्जुर्वामुकिपन्नगः ॥ ३ ॥ कूर्मंष्ट्रेऽचलंकृत्वा रत्नानिदुहुस्तदा ॥ आदौलक्ष्मीविनिर्याता कृष्णायप्रतिपादिता ॥ ४ ॥ तेनैवचविवादोभूद्देवदानवयोस्तदा ॥ एतस्मिन्नन्तरप्राप्तो नारदोदेवदर्शनः ॥ ५ ॥ वारितःकलहस्तेन देवैर्दत्यसमुद्भवः ॥ महाकालवनेतत्र पद्मासिन्धुसमुद्भवा ॥ ६ ॥ सागरान्तेचरत्नानि तिष्ठन्ति विविधानिच ॥ तानिसर्वाणिचादाय यावत्तुभ्यंददाम्यहम् ॥ ७ ॥ मथ्यतामुदधिदृशीघ्रं नात्रकार्याविचारणा ॥ पुनस्ते

का नाशहोगया और धर्मकी हानि व बिनाश हुआ ॥ २ ॥ तब सब देवता व दैत्योंने मिलकर समुद्र को मथा और सुमेरु वंश (मथानी) हुआ व समुद्र पात्र हुआ और वासुकि सर्प रज्जु याने नेती हुआ ॥ ३ ॥ उस समय उन्होंने कच्छपके पृष्ठपै पर्वत को करके रत्नों को दुहा पहले लक्ष्मीजी निकली और वे श्रीकृष्णजी को दी गई ॥ ४ ॥ उसी कारण उस समय देवताओं व दानवों का विवाद हुआ इसी अवसर में देवदर्शन नारदजी प्राप्त हुये ॥ ५ ॥ और उन्होंने देवताओं व दैत्यों से उपजा हुआ कलह (झगड़ा) मना किया व कहा कि उस महाकाल वन में समुद्र में उपजी हुई लक्ष्मी हैं ॥ ६ ॥ और समुद्र के मध्य में अनेक भांति के रत्न हैं उन

सबों को लेकर जबतक मैं तुमको देऊँ ॥ ७ ॥ तबतक शीघ्रही समुद्र मथाजावै इस विषय में विचार न करना चाहिये फिर उन देवताओं व दैत्यों ने रत्नों के लिये उद्यम किया ॥ ८ ॥ और उनके समुद्र मथने पर कौस्तुभ मणि प्राप्तहुई पश्चात् पारिजात वृक्ष हुआ तदनन्तर मदिरा उत्पन्न हुई ॥ ९ ॥ इसके उपरान्त धन्वंतरि पैदाहुये तदनन्तर चन्द्रमा उत्पन्न हुआ उसके उपरान्त कामधेनु प्राप्तहुई तदनन्तर उत्तम हाथी हुआ ॥ १० ॥ और उत्तम घोडा उच्चैःश्रवा तदनन्तर सुधा उसके उपरान्त रंभा अप्सराहुई तदनन्तर सब अस्त्रोंकी उत्पत्तिवाला शार्ङ्ग धनुष हुआ ॥ ११ ॥ और मुरदानवके वैरी विष्णुजी के हाथमें पाचजन्य नामक शख स्थितहुआ

तूयमंचक्रुर्नार्थैवसुरासुराः ॥ ८ ॥ मथ्यमानेनिधौतेषां मणिःप्राप्तश्चकौस्तुभः ॥ पारिजाततरुःपश्चात्सुराजाताततः परम् ॥ ९ ॥ धन्वन्तरिरथोत्पन्नश्चन्द्रोजातोपिवैततः ॥ कामधेनुस्समाप्राप्ता गजरत्नंततःपरम् ॥ १० ॥ उच्चैःश्रवाहय श्रेष्ठस्सुधारम्भाततस्ततः ॥ ततःपरञ्चशार्ङ्गं धनुस्सर्वास्त्रसम्भवम् ॥ ११ ॥ पाञ्चजन्यनामाशङ्खः करेतिष्ठन्मुरद्धि षः ॥ निधिरेषमहापद्मो विषंहालाहलन्ततः ॥ १२ ॥ चतुर्हंशानिरत्नानि प्राप्तानिविविधानिच ॥ समादायगतास्तत्र यत्रमाहेश्वरंवनम् ॥ १३ ॥ गत्वातेतुसमासीना मन्त्रंचक्रुस्समुद्यताः ॥ अहंपूर्वमहंपूर्वमिति ते समयंत्रिताः ॥ १४ ॥ को लाहलोह्यथोत्पन्नः पुनर्नारदश्चभ्यगात् ॥ तेषांकलिमलं दृष्ट्वा विष्णुमाराधयत्ततः ॥ १५ ॥ मोहिनीरूपमास्थाय नारीभूत्वाभ्यगाद्धरिः ॥ अतिरूपवतीं तन्वीं तामालोक्य महासुराः ॥ १६ ॥ विह्वलाङ्गाः कृतास्सर्व्वे कामबाणवशंग ताः ॥ एतस्मिन्नन्तरेतेषां सुरान्दत्त्वासुरेश्वरः ॥ १७ ॥ हस्तलाघवयोगेन देवानाममृतन्ददौ ॥ एतस्मिन्नन्तरेव्यासरा

व यह महापद्म निधिहुई और तदनन्तर हलाहल विष पैदा हुआ ॥ १२ ॥ इसप्रकार प्राप्तहुये अनेक भांतिके चौदह रत्नों को लेकर देवता वहां गये जहां कि माहे-
श्वर वन था ॥ १३ ॥ और जाकर बैठेहुये उन्होंने उद्यत होकर सम्मति किया व मैं पहले मैं पहले इसप्रकार कहकर वे साथही यंत्रितहुये ॥ १४ ॥ इसके अनन्तर कोलाहल पैदाहुआ और फिर नारदजी आये तदनन्तर उनके कलिमल (विवाद) को देखकर उन्होंने विष्णुजी का आराधन किया ॥ १५ ॥ और मोहिनीरूपमें टिक कर स्त्री होकर विष्णुजी आये व अतिरूपवती उस स्त्रीको देखकर महादैत्य ॥ १६ ॥ विह्वलअंगवाले होकर सब कामदेवके बाण के वशमें प्राप्तहुये इसी अवसर में उन

को मदिरा देकर सुरेश्वर विष्णुजी ने ॥ १७ ॥ हस्त लाघव याने हाथोंकी शीघ्रता के संयोग से देवताओं को अमृत दिया इसी अवसर में हे व्यासजी ! उन देवताओं के रूपको धरनेवाले राहुने ॥ १८ ॥ उनके बीचमें प्राप्तहोकर उत्तम अमृतको पीलिया उसको जानकर विष्णुजी ने शीघ्रही चक्रसे मस्तक को काटडाला ॥ १९ ॥ उस समय अमृतके स्पर्श के प्रसंग से असुर राहु नहीं मरा व हे सत्तम व्यासजी ! पृथ्वी में इस क्षेत्रमें राहु व केतु ऐसा प्रसिद्धहुआ ॥ २० ॥ और राहुके शरीर से उपजाहुआ बहुत रुधिर बहा व उस क्षेत्रमें उस दोषको नाशनेवाला महातीर्थ हुआ ॥ २१ ॥ उसमें नहाकर पवित्रहोकर जो राहुके दर्शन में तत्पर होताहै उसके कभी

हस्तद्रूपधारकः ॥ १८ ॥ तेषामन्तरतोभूत्वा पपौचामृतमुत्तमम् ॥ तज्ज्ञात्वाचद्रुतंविष्णुर्दशरश्चक्रेणप्राच्छिनत् ॥
१९ ॥ सुधास्पर्शप्रसङ्गेन नममारासुरस्तदा ॥ राहुःकेतुरितिख्यातो ज्ञेस्मिन्सुविसत्तम ॥ २० ॥ राहुकायात्समुद्भूतं
बहुमुखावशोणितम् ॥ तस्मिन्क्षेत्रेमहातीर्थं जातंदोषनाशनम् ॥ २१ ॥ तत्रस्नात्वाशुचिर्भूत्वा राहोर्दर्शनतत्परः ॥
नतस्यजायतेकाचिद् राहुपीडाकदाचन ॥ २२ ॥ वाञ्छितार्थमवाप्नोति गोसहस्रफलंभवेत् ॥ ततस्तानिचरत्नानि म
हाकालवनेसुराः ॥ २३ ॥ विभज्यभागन्तेसर्वे ततोरत्नभुजोऽभवन् ॥ मणिपद्मांधनुश्शङ्खं ददौसातत्रविष्णवे ॥ २४ ॥
सूर्यायचददौचाश्वं मोहिनीसाब्धिसम्भवम् ॥ ऐरावतंगजश्रेष्ठं वासवायसमर्पयत् ॥ २५ ॥ दिविषट्पद्मांश्चपीयूषं
ददौचन्द्रं चशम्भवे ॥ पारिजातं तरुश्रेष्ठं रम्भाञ्चैव वराङ्गनाम् ॥ २६ ॥ इन्द्रः क्रीडावनेरम्ये नन्दनेचसमर्पयत् ॥ ऋषी

कोई राहुकी पीडा नहीं होती है ॥ २२ ॥ और चाहेहुये प्रयोजन की प्राप्ति होतीहै व गोसहस्र का फल होता है तदनन्तर महाकाल वन में देवता उन रत्नों को ले-
कर ॥ २३ ॥ व भागको बाटकर तदनन्तर वे सब रत्न भोगीहुये और वहां पर उनमोहनीजीने मणि, लक्ष्मी, धनुष और शंखको विष्णुजी के लिये दिया ॥ २४ ॥
और उन मोहनीजी ने समुद्र से उपजेहुये अश्वको सूर्यनारायणजी के लिये दिया और इन्द्रजी के लिये उत्तम हाथी ऐरावत को दिया ॥ २५ ॥ और देवगणों
को अमृत व शिवजी के लिये चन्द्रमाको दिया और वृद्धोंमें श्रेष्ठ पारिजात को व उत्तम स्त्री रम्भाको ॥ २६ ॥ इन्द्र ने सुन्दर क्रीडावन नन्दन में भलीभांति अर्पण

किया और यज्ञकी सिद्धिके लिये श्रुतियों को कामधेनु गऊ दिया ॥ २७ ॥ और यह महापद्मानिधि कुबेरजीके घरको गई और जो हलाहल विष कहागयाहै उसको किसीने भी आदर न किया ॥ २८ ॥ क्योंकि जहा जहा वह फैलता था वहा वहां प्राणी नाशको प्राप्तहोते थे लोकोंके हितकी कामनासे उस विषको शिवजीने धारण किया ॥ २९ ॥ तबसे लगाकर महादेवजी नीलकण्ठ ऐसे कहेगये जो मनुष्य रत्नकुण्ड में नहाकर नीलकण्ठजी को देखताहै ॥ ३० ॥ वह सब पापों से छुटकर सब रत्नों का भोगी होताहै और सौ अश्वमेध यज्ञों के पुण्यको पाकर शिवलोकको जाताहै ॥ ३१ ॥ हे व्यासजी ! उस समय हर्षसे पूर्ण मनवाले ब्रह्मा व विष्णु आदिक

पाञ्चाददाद्धेनुं कामदोग्ध्रीयज्ञसिद्धये ॥ २७ ॥ निधिरेषमहापद्मः कुबेरभवनेगतः ॥ यत्तद्बालाहलंप्रोक्तं विषंकेनापिनाटतम् ॥ २८ ॥ यतोयतःप्रसरति प्रलयंयान्तिजन्तवः ॥ दधारतद्विषंशम्भुर्जंगतांहितकाम्यया ॥ २९ ॥ तत्प्रभृतिमहादेवो नीलकण्ठइतिस्मृतः ॥ रत्नकुण्डेनरस्मन्तत्वा नीलग्रीवश्चपश्यति ॥ ३० ॥ समुक्तस्सर्वपापेभ्यो भवेच्चसर्वरत्नमुक् ॥ शताश्वमेधिकंपुण्यं लब्ध्वाशिवपुरंव्रजेत् ॥ ३१ ॥ तदादायमुरास्सर्वे ब्रह्मविष्णुपुरोगमाः ॥ स्वयं मृदुस्तदाव्यास हर्षनिर्भरमानसाः ॥ ३२ ॥ उज्जयिनीसमासाद्य जातारत्नमुज्ज्वलयम् ॥ यस्मात्सर्वेषुकालेषु पद्मावसतिनिश्चला ॥ ३३ ॥ अद्यप्रभृतिपुण्येषा पद्मावतिरितिस्मृता ॥ यएतस्यांमहाभागास्स्नानंदानंतथाचनम् ॥ ३४ ॥ तर्पणंचैवदेवानां पितृणांवाविशेषतः ॥ नतस्यदुष्कृतंकिञ्चिन्नदारिद्र्यन्नदुर्गतिः ॥ ३५ ॥ शतंकुलानिसर्वाणि तारयेन्निरयार्णवात् ॥ धनार्थीवाचपुत्रार्थी विद्यार्थीबहुकामुकः ॥ ३६ ॥ यत्रकुत्रस्थितोभूत्वा पद्मावतिरितिस्मरेत् ॥ सर्वान्

गव देवतार्थों ने उसको लेकर आपही कहा कि ॥ ३२ ॥ उज्जयिनी को भलीभांति प्राप्तहोकर हमलोग रत्नोंके भोगीहुये और जिसलिये यहां सब समयों में श्रवण लक्ष्मी यमती है ॥ ३३ ॥ इस कारण आजसे लगाकर यह पुरी पद्मावती ऐसी कहीजावे वड़े ऐश्वर्यवाले जो पुरुष इस पुरी में स्नान, दान व पूजन करते हैं ॥ ३४ ॥ और देवतार्थों व विशेषकर पितरों का तर्पण करते हैं उसके कुछ पाप व दरिद्रता और दुर्गति नहीं होतीहै ॥ ३५ ॥ और वह नरकों के समुद्र से सौ कुलों को तारता है व धन चाहेनवाना तथा पुत्रों को चाहनेवाला और विद्यार्थी व बहुत कामनाओंवाला पुरुष ॥ ३६ ॥ जहां कहीं स्थित होकर पद्मावति ऐसा स्मरण करता

है वह मनुष्य समस्त कामनाओं को पाता है व साक्षात् शिव होता है ॥ ३७ ॥ हे व्यासजी ! यह नाम का फल है और बहुत दिनों के सेवने से क्या कहना है जो पुरुष इस पवित्र कथा को सुनते हैं और जो नित्य सुनाता है ॥ ३८ ॥ उसके कुछ पातक नहीं रहता है और वह अश्वमेध यज्ञ के फल को प्राप्त होता है ॥ ३९ ॥ इति श्रीस्कन्द पुराणेऽवन्तीखण्डेऽवीन्द्रयालुमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां पद्मावतीनाम कथनं नाम पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५५ ॥

दो० । भयो अवन्ती पुरीकर कुमुदती जिमि नाम । छप्पनवें अध्याय में सोइ चरित सुखधाम ॥ सनत्कुमारजी बोले कि हे व्यासजी ! सावधान होकर पापहारिणी कामानवाप्नोति शिवस्मान्नाद्भवेन्नरः ॥ ३७ ॥ एतद्व्यासफलं नाम्नः किञ्चिरं सेवनेन वै ॥ ये शृण्वन्ति कथां पुण्यां यः श्रावयति नित्यशः ॥ ३८ ॥ न तस्य पातकं किञ्चिदश्वमेधफलं लेभेत् ॥ ३९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे पद्मावतीनाम कथनं नाम पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५५ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

सनत्कुमार उवाच ॥ शृणुष्व अवहितो व्यास कथां पापहरां पराम् ॥ एषा कुमुदती जाता यथा पद्मावती पुरा ॥ १ ॥ लोमश उवाच ॥ एकदा तीर्थयात्रायां गतो ह वै कुशस्थलीम् ॥ गुह्यादुगुह्यतमं स्थानं यत्र सन्निहितो हरः ॥ २ ॥ यस्य दर्शनमात्रेण ब्रह्महत्याव्यपोह्यते ॥ यत्र तत्र स्थिता विप्रा ब्रह्मघोषं च कुर्वते ॥ ३ ॥ यज्ञांश्चैव तथा चित्रानृत्विजो द्वारकर्मच ॥ ऋषयश्च यहाभागा प्रकुर्वन्ति समाहिताः ॥ ४ ॥ ऋषिपत्न्यस्तथा साधव्यः परिचारं प्रकुर्वते ॥ दशविष्णवश्च प्रख्याता स्तत्रैव निवसन्ति ते ॥ ५ ॥ रुद्राहोकादश प्रोक्ता द्वादशार्कास्तथैव च ॥ अष्टौ च वसवः ख्याता विश्वेदेवास्त्रयोदश ॥ ६ ॥

उत्तम कथा को सुनिये जिस प्रकार कि पुरातन समय यह पद्मावती पुरी कुमुदती हुई है ॥ १ ॥ लोमश ऋषि बोले कि एक समय मैं तीर्थ यात्रामें कुशस्थली पुरी को गया जे कि गुप्तसे भी अत्यन्त गुप्त स्थान है और जहां पर सदा शिवजी टिके हुये हैं ॥ २ ॥ जिनके दर्शनही से ब्रह्महत्या नाश होजाती है और जहां पै टिके हुये ब्राह्मण लोग वेदध्वनि करते हैं ॥ ३ ॥ और ऋत्विक् लोग विचित्र यज्ञों को व द्वारकर्मको करते हैं व बड़े ऐश्वर्यवान् ऋषि लोग सावधान होकर यज्ञोंको करते हैं ॥ ४ ॥ वैसेही पतिव्रता ऋषियोंकी स्त्रियां सेवा करती हैं और वहींपर वे प्रसिद्ध दशविष्णु बसते हैं ॥ ५ ॥ और गेरह रुद्र कहे गये हैं व बारह सूर्य तथा आठ वसु व तेरह विश्वे-

देवा प्रसिद्ध हैं ॥ ६॥ और वे आठ दिग्गज तथा चौदहमनु और वे सब पवनगण तथा इन्द्रादिक देवता वहाँ बसते हैं ॥ ७ ॥ और हे व्यासजी ! गंधर्व अप्सरा, किन्नर, नाग व राक्षस, सिद्ध व तपस्वी वहाँ पर भलीभाँति प्राप्त हैं ॥ ८ ॥ व आठ भैरव कहे गये हैं और चार पवनपुत्र तथा ये ऋषि विनायक व चौबिस देवियाँ हैं ॥ ९ ॥ ये देवताओं के गण व रुद्रगण कहे गये हैं और वेदों के जाननेवालों में श्रेष्ठ ब्रह्मा, मरीचि, और कश्यप आदिक ॥ १० ॥ और प्रजापतियों में श्रेष्ठ दक्षजी व देवताओं की माता अदिति और श्रुतियों से सम्मत गाइयाँ व स्थावर जंगम प्राणी ॥ ११ ॥ व जो सब तीर्थ हैं व नदियाँ, झरना और पृथ्वी में जो अति पवित्र सब क्षेत्र हैं ॥ १२ ॥ और सातपुरी, तीन ग्राम व

अष्टौतेदिग्गजाश्चैव मनवश्चचतुर्दश ॥ मरुद्गणाश्चैतसेर्वे तत्र चेन्द्रपुरोगमाः ॥ ७ ॥ गन्धर्वाप्सरसश्चैव किन्नरोरगरा
राक्षसाः ॥ सिद्धास्तपस्विनो व्यास तत्रैव समुपस्थिताः ॥ ८ ॥ अष्टौ च भैरवाः ख्याताश्च त्वारः पवननात्मजाः ॥ विनायकाः
षडेते च देव्यश्च चतुर्विंशतिः ॥ ९ ॥ एते देवगणाः प्रोक्ता रौद्राश्चैव तथैव च ॥ ब्रह्मा वेदविदां श्रेष्ठो मरीचिः कश्यपादयः ॥
१० ॥ दक्षः प्रजापतिः श्रेष्ठोऽदितिर्वेदेवमातृका ॥ श्रुतिभिस्संमता गावः स्थावराणि चराणि च ॥ ११ ॥ तीर्थानि यानि स
र्वाणि नद्यः प्रस्रवणानि च ॥ क्षेत्राणि चैव सर्वाणि भुवि पुण्यतमानि वै ॥ १२ ॥ समपुण्यं स्रयो ग्रामा नवाराण्यानि चैव तु ॥
चतुर्दशानि गुह्यानि मुक्तिद्वाराणि भूतले ॥ १३ ॥ समुद्राश्चैव चत्वारो रत्नानि विविधानि च ॥ राजर्षयोऽमलाश्शान्ता
ब्राह्मणा वेदपारगाः ॥ १४ ॥ वेदाः पुराणस्मृतयो गाथागीतिः प्रहेलिकाः ॥ उपासाञ्च क्रिस्तस्य तदानो चाप्युमापतेः ॥
१५ ॥ तस्य दर्शनमात्रेण जातो हं विज्वरोऽमलः ॥ दीर्घायुर्दीर्घतपसा जरारोगविवर्जितः ॥ १६ ॥ स्नातो हं सर्व तीर्थेषु
शुचिर्भूत्वा समाहितः ॥ प्रसन्नमानसो जातस्सर्वपापपराङ्मुखः ॥ १७ ॥ दृष्ट्वा पद्मावतीं शुभ्रां सर्वकामवरप्रदाम् ॥ न
नववन और चौदहगुप्त पृथ्वी में मुक्ति के द्वार हैं ॥ १३ ॥ व चार समुद्र तथा अनेक भाति रत्न व निर्मल राजर्षि और वेदों के पारंगामी शान्त ब्राह्मण ॥ १४ ॥
व वेद, पुराण, स्मृतियाँ और कथाओं का गान व प्रहेलिकाओं ने उस समय उन उमानाथ की उपासना किया ॥ १५ ॥ उनके दर्शन ही से मैं निर्मल व उन्नत रहित
होगया और बड़े तप से बहुत आयुर्वलवाला व बुद्धता तथा रोग से रहित हुआ ॥ १६ ॥ और सावधान होता हुआ प्रसन्नमनवाला मैं समस्त तीर्थों में नहाकर

व पवित्र होकर समस्त पापों से रहित हुआ ॥ १७ ॥ जहांपर समस्त कामनाओं व वरोंको देनेवाली उत्तम पद्मावतीजी को देखकर कोई मनुष्य शोक व रोगसे सं-
युक्त नहीं देख पड़ता है ॥ १८ ॥ और न दुःखी न दरिद्री न मूर्ख न अजितेन्द्रिय होता है व जहां पर आपस में वैरी और न व्रतहीन देख पड़ता है ॥ १९ ॥ और
जहां पर आपस में सब मित्र व परस्पर में उपकारी व इन्द्रियोंको दमन करनेवाले व सब विद्याके उपदेशक हैं ॥ २० ॥ और सुन्दर बर्गीचे व वन तथा उपवन और
सब सुन्दर मन्दिर पंक्तियों से बंधे हुये हैं ॥ २१ ॥ जो कि अनेक भांतिके रत्नों से संयुक्त सुन्दर स्वर्ण घंटोंसे और गीतों व बाजाओं के बड़े भारी उल्लाहों से विचित्र

यत्र दृश्यते कश्चिच्छोक रोग परोनरः ॥ १८ ॥ न दुःखी न च दरिद्री न मूर्खो न अजितेन्द्रियः ॥ परस्परं विरोधी च नाव्रती
यत्र दृश्यते ॥ १९ ॥ अन्योन्यं सर्वमित्राणि अन्योन्यैश्चोपकारिणः ॥ सर्वदान्ताश्च शान्ताश्च सर्वविद्योपदेशिनः ॥ २० ॥
उद्यानानि च रम्याणि वनान्युपवनानि च ॥ हर्म्याणि चैव शुभ्राणि श्रेणिबद्धानि सर्वशः ॥ २१ ॥ नानारत्नसमाकीर्णं हं
कुम्भैस्सुशोभनैः ॥ विराजन्ते विचित्राणि गीतवाद्यमहोत्सवैः ॥ २२ ॥ सदैव वसते यत्र उमया सह शङ्करः ॥ चन्द्रचूडा
कृतिव्यास चिताभस्माङ्गलेपनः ॥ २३ ॥ चन्द्रज्योत्स्ना कलापूर्णमरीचिस्सर्वतोर्बभौ ॥ नयनकृष्णपद्मो भूत्रामाव
स्यानैव तमः ॥ २४ ॥ सदैव पुष्पिताश्यामा बाल्यैरूपवती यथा ॥ हर्म्यं पृष्ठे गवाक्षे च द्वारजिरगृहान्तरे ॥ २५ ॥ गिरि
गङ्गाकुञ्जेषु गुहाध्वान्तान्तरेषु च ॥ आश्रमेषु च रम्येषु वनेषु पवनेषु च ॥ २६ ॥ गृहदीर्घिकासुरम्यासु शालामालासु स

शोभित है ॥ २२ ॥ और जहांपर पार्वती समेत सदाशिवजी सदैव बसते हैं जोकि हे व्यासजी ! चन्द्रचूड़ आकारवाले व चिताके भस्मसे अंग लेपवाले हैं ॥ २३ ॥
और जो कि सब ओर से चन्द्रमा की चन्द्रिका से संयुक्त कलाओं से पूर्ण किरणोंवाले शोभित थे और जहांपर न कृष्णपद्म हुआ न अमावस हुई और न अन्धकार
हुआ ॥ २४ ॥ और जो पुरी सदैव प्रफुल्लित थी जैसे कि बाल्यावस्था में रूपवती श्यामा स्त्री होत्रे और मन्दिरके पृष्ठ पैं व भरोखा में तथा द्वार अंगनाई और घरके
भीतर ॥ २५ ॥ व पर्वतोंकी गुफाओं व कुंजों तथा कन्दराओं के अन्धकारके मध्योंमें व सुन्दर आश्रमों और वनों व उपवनों में ॥ २६ ॥ व सुन्दरी घरकी बावलियों में और

सब और से शालाओं की मालाओं में चन्द्रमा की उजियाली से भलीभांति पूर्ण दिशायें देख पड़ती हैं ॥ २७ ॥ और जिन में फूलेहुये कुमुदवाले तड़ाग शोभित हैं जैसे कि शरदऋतु में नक्षत्र गणों से व्याप्त आकाशस्थल होवे ॥ २८ ॥ और नदियां व सब तड़ाग तथा छोटे तड़ाग कुमुदती (कुमुदिनी) से व्याप्त होकर पु-
 श्वी मानो चन्द्रमा से संयुत हुई ॥ २९ ॥ जिसलिये सब समयों में कुमुदिनी प्रफुल्लित हुई उसी कारण यह कुमुदिनी पुरी हुई ॥ ३० ॥ सावधान होते हुये जो मनुष्य कुमुदती पुरी में श्राद्ध करते हैं उनके पितर कभी स्वर्ग से नहीं अलग होते हैं ॥ ३१ ॥ व अन्त्य श्राद्धको प्राप्त होता है और पितरोंको दियाहुआ दान अक्षय्य
 वर्तः ॥ चन्द्रज्योत्स्नासमापूर्णा दृश्यन्ते धवली दिशः ॥ २७ ॥ कुमुदती प्रफुल्लानि तडागानि विरेजिरे ॥ ज्योतिर्गणसमा
 कीर्णं शरदीवनमः स्थलम् ॥ २८ ॥ नद्यः सरांसि सर्वाणि वापीकूपसु प्लवलाः ॥ कुमुदत्या समाकीर्णा आसीच्चन्द्रमसो
 मही ॥ २९ ॥ यस्मात्सर्वेषु कालेषु प्रफुल्लाच कुमुदती ॥ तस्मात्पद्मावती ह्येषा पुरीजाता कुमुदती ॥ ३० ॥ कुमुदत्यां
 नरा ये तु श्राद्धं कुर्युः समाहिताः ॥ न तेषां पितरः स्वर्गोच्यन्ते वै कदाचन ॥ ३१ ॥ अक्षयं लभते श्राद्धं पितॄणां दत्तमक्षय
 म् ॥ स्नानं दानं तथा होमं देवताराधनं तथा ॥ ३२ ॥ यत्किञ्चित्क्रियते कर्म तत्सर्वं चाक्षयं भवेत् ॥ एवं कुमुदतीजाता पु
 री व्याससनातना ॥ ३३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे कुमुदतीप्रभावकथनं नाम षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५६ ॥
 सनत्कुमार उवाच ॥ अमरावती यथा जाता पुरी ह्येषा कुशस्थली ॥ शृणु व्यास महाप्राज्ञ यथा ब्रह्मा ब्रवीत्सुरान् ॥ १ ॥
 तथा हंसप्रवक्ष्यामि विस्तरेण तपोधन ॥ एकदा ब्रह्मणा दिष्टो प्रजार्थं ऋषिसत्तमः ॥ २ ॥ मारीचः कश्यपस्तेपे तपःप
 र्णोऽसौ तपोधन ॥ ३ ॥ जो कुछ कर्म इस कुमुदती पुरी में किया जाता है वह सब अक्षय्य होता है हे व्यासजी ! इस प्रकार
 होता है व स्नान, दान, होम तथा देवता का आराधन ॥ ३२ ॥ जो कुछ कर्म इस कुमुदती पुरी में किया जाता है वह सब अक्षय्य होता है हे व्यासजी ! जिस प्रकार यह
 सनातन कुमुदती पुरी हुई है ॥ ३३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां कुमुदतीप्रभावकथनं नाम षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५६ ॥
 दो० । भयो अवन्ती पुरी कर जिमि अमरावति नाम । सत्तावनैवें में कछो सोइ चरित अभिराम ॥ सनत्कुमारजी बोले कि हे महाप्राज्ञ, व्यासजी ! जिस प्रकार यह
 कुशस्थली पुरी अमरावती हुई है उसको मुनिये और जिस प्रकार ब्रह्माने देवताओं से कहा है ॥ १ ॥ हे तपोधन ! उसी प्रकार मैं विस्तार से भलीभांति कहूंगा एक

समय सन्तान के लिये ब्रह्मा से आज्ञा दियेहुये ऋषिश्रेष्ठ ॥ २ ॥ मरीचि के पुत्र कश्यपजीने बड़ा कठिन तप किया है व मनोहर महाकाल वनमें देवी समेत महर्षि कश्यप जीने ॥ ३ ॥ जितेन्द्रिय व पवन भक्षी तथा गिरेहुये पत्तोंको भोजन करनेवाले होकर तपस्या किया है और हजारवर्ष पूर्णहोनेपर आकाशवाणी बोली ॥ ४ ॥ कि हे द्विजोत्तम ! मेरे अतिउत्तम वचनको सुनिये हे सुव्रत ! जिसलिये फलको उद्योग कर तुम्हारी तपस्या तीव्रहुई है ॥ ५ ॥ उसीकारण तुम्हारी सन्तान तबतक कि चन्द्रमा सूर्यरहेंगे व तुम्हारी सन्तान तबतक यश समेत व पुत्रों तथा पौत्रों समेत पृथ्वी में रहेंगी ॥ ६ ॥ और जिसलिये तुम्हारी पति-

रमदुष्करम् ॥ महाकालवनेरम्ये देव्यासहमहानृषिः ॥ ३ ॥ शीर्षपत्राशनस्तेपे वायुमर्द्धाजितेन्द्रियः ॥ पूर्णवर्षस हस्सेतु वाणुवाचाशरीरिणी ॥ ४ ॥ श्रूयतांभोद्विजश्रेष्ठ ममवाक्यमनुत्तमम् ॥ यस्मात्तेस्तितपस्तीव्रं फलमुद्यम्यमुब्र त ॥ ५ ॥ तस्मात्तेसन्ततिस्तावदू यावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥ तावत्तिष्ठतिमेदिन्यां यशसापुत्रपौत्रकैः ॥ ६ ॥ अदितिस्तेस तीभार्या त्वयासहाचरत्तपः ॥ तस्मात्सर्वेषुकालेषु छायाभूतायशस्विनी ॥ ७ ॥ भविष्यन्तिसुराःसर्वे विष्णुचन्द्रपुरोग माः ॥ अमरानिज्जर्जरदेवा दिविख्याताभवन्त्विति ॥ ८ ॥ त्वंचापीहिऋषिश्रेष्ठ प्रजापतिरकल्मषः ॥ भविष्यसिनस न्देहो ममवाक्याद्द्विजोत्तम ॥ ९ ॥ इत्युक्त्वाचपुनर्देवीतत्रैवान्तरधीयत ॥ तदारभ्यपुरीव्यास कुशस्थलीमनुत्तमा म् ॥ १० ॥ कश्यपःसहदानिगयासाग्निकःसमुपाश्रितः ॥ प्रजापिवदधेतस्मात्सदेवासुरमानुषा ॥ ११ ॥ मरीचिःकश्य

व्रता स्त्री अदितिजीने तुम्हारे साथ तप किया है उसीकारण सब समयों में वे यशस्विनी छायाभूत याने छायाकी नाई अनुगामिनी होवेंगी ॥ ७ ॥ और विष्णु व चन्द्रमादिक सब देवता अमर व वृद्धतारहित होवेंगे और देवता स्वर्ग में प्रसिद्ध होवेंगे ॥ ८ ॥ व हे ऋषिश्रेष्ठ, द्विजोत्तम ! तुम भी मेरे वचनसे पाप रहित प्रजापति होवेंगे इसमें सन्देह नहीं है ॥ ९ ॥ ऐसा कहकर फिर वहाँ पर देवी अन्तर्धान होगई तबसे लगाकर हे व्यासजी ! अतिउत्तम कुशस्थली पुरी में ॥ १० ॥ दत्त की कन्या अदिति समेत व अग्निसहित कश्यप जी आश्रित हुये हैं उसी कारण देवता दैत्य व मनुष्यों समेत प्रजा बढ़ते भये ॥ ११ ॥ मरीचि से कश्यप वैदाहुये

व उन से सब प्रतिष्ठित हुआ है व्यासजी ! जिसलिये देवताओं ने अमृत को पिया है उसी कारण अमर किये गये हैं ॥ १२ ॥ और उसी उत्तम महाकाल वन में नन्दनवन को प्राप्त होकर मनोरथ के वरदान को देनेवाली कामधेनु भलीभांति कही गई है ॥ १३ ॥ और वह भी सदैव यहापर महाकाल महेश्वर जी को सेवती है और वृक्षों में श्रेष्ठ पारिजात व प्रफुल्लित कमलोंवाला ॥ १४ ॥ बिन्दुसर कहा गया है और उत्तम मानस तड़ाग है जो कि हंसों व सारसों से व्याप्त तथा सदैव सिद्धों से सेवित है ॥ १५ ॥ व जो कि मोती व मणिगणों से संयुत तथा रत्नों के सोपानों से शोभित है और लालकमलों व कोकाबेली से उज्ज्वल यह महापद्म निधि है ॥ १६ ॥ और

पोजज्ञे ततः सर्वप्रतिष्ठितम् ॥ सुधापानकरादेवा व्यासतेनामराः कृताः ॥ १२ ॥ नन्दनंप्राप्य तत्रैव महाकालवनोत्तमे ॥ कामधेनुः समाख्याता मनोरथवरप्रदा ॥ १३ ॥ साप्यत्रैव सदा सेवेन महाकालं महेश्वरम् ॥ पारिजातं तत्तु श्रेष्ठं तथा चाम्लानपङ्कजम् ॥ १४ ॥ बिन्दुसरः समाख्यातं मानसं सरउत्तमम् ॥ हंससारसं सर्काणं सदा सिद्धनिषेवितम् ॥ १५ ॥ मुक्तामणिगणसक्तं रत्नसोपानशोभितम् ॥ निधिरेष महापद्मः कल्हारकुमुदोज्ज्वलः ॥ १६ ॥ यानिया निचिदिव्या नि सन्ति ब्रह्माण्डगोलके ॥ तानि सर्वाणि तिष्ठन्ति महाकालवने शुभे ॥ १७ ॥ तेनेतेनात्मयोगेन मानवाश्चात्र संस्थिताः ॥ तत्तद्देहास्तदाचारास्तद्रूपस्तत्पराक्रमाः ॥ १८ ॥ अन्योन्यंच समाकीर्णाः सर्वे चामरसन्निभाः ॥ विचरन्ति यथा देवाः पुरीमे तांजनाभुवि ॥ १९ ॥ सुराङ्गना समानार्थः सदैव स्थिरयौवनाः ॥ ईदृशीं च पुरो हृष्ट्वा भुवि व्याससनातनाम् ॥ २० ॥ देवदानवगन्धर्वः किन्नरो रगराक्षसम् ॥ मुक्तिमुक्तिप्रदानित्या बहुकालफलप्रदा ॥ २१ ॥ अमराणां स्थिति

ब्रह्माण्ड गोलक में जो जो दिव्य वस्तु हैं वे सब उत्तम महाकाल वन में स्थित हैं ॥ १७ ॥ और उस उस आत्मयोग से मनुष्य यहापर भलीभांति स्थित हैं जो कि उस उस देहवाले और उनके आचारवाले तथा उनके रूपवाले और उनके पराक्रमवाले हैं ॥ १८ ॥ और आपस में मिले हुये सब देवताओं के समान हैं पृथ्वी पे इस पुरी में मनुष्य वैसेही धूमते हैं जैसे कि देवता हों ॥ १९ ॥ हे व्यासजी ! पृथ्वी में ऐसी सनातन पुरी को देखकर सदैव निश्चल यौवनवाली स्त्रियां देवांगनाओं के समान हैं ॥ २० ॥ और देवता, दानव, गन्धर्व, किन्नर, नाग व राक्षसोंको यह सनातन पुरी मुक्ति, मुक्ति दायिनी व बहुत कालतक फलको देनेवाली है ॥ २१ ॥ जिस

लिये यहां अमरों (देवताओं) की स्थिति है उसी कारण अमरावती हुई प्रसंग से आया हुआ बहुत ऐश्वर्यवाला जो पुरुष इस पुरी में ॥ २२ ॥ स्नान दानादिक करके सदाशिवदेवजीको देखता है उसको पुत्र से या धनसे भी कुछ दुर्लभ नहीं होता है ॥ २३ ॥ और समस्त सुखोंको पाता है व मरकर वह पुरुष शिवलोकको जाता है और इस चरित्रके पढ़ने व सुनने से भी मनुष्य शतरुद्रीके फलको प्राप्त होता है ॥ २४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचितायां भाषाटीकायामग रावतीनाम कथननाम सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५७ ॥ ॥ ॥ ॥

ह्यत्र तस्माज्जातामरावती ॥ एतस्यां महाभागः प्रसङ्गेन समागतः ॥ २२ ॥ स्नान दानादिकं कृत्वा पश्येद्देवं महेश्वरम् ॥ नतस्य दुर्लभं किञ्चित् पुत्रतो धनतोऽपि वा ॥ २३ ॥ सर्वभोगानवाप्नोति मृतश्चि शिवपुरं व्रजेत् ॥ पठनाच्छ्रवणाद्वापि शतरुद्रीफलं लभेत् ॥ २४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेऽमरावतीनाम कथननाम सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५७ ॥

सनत्कुमार उवाच ॥ शृणु व्यास महाभाग पुरीक्षिषामरावती ॥ विशालाच समाख्याता सर्वलोकैषु गीयते ॥ १ ॥ तथाहं सम्प्रवक्ष्यामि ब्रह्मणा कथितम्पुरा ॥ गुह्याद्गुह्यतरं क्षेत्रं सर्वपापप्रणाशनम् ॥ २ ॥ उमयासहितो देव एक एवाभवद्वने ॥ ततो भूतगणास्सर्वे पश्चात्सर्वे सुरासुराः ॥ ३ ॥ विष्णुर्देशाकृतिर्यत्र देवस्यैलोक्यमातरः ॥ विनायकाश्च वैतालः कूष्माण्डाभैरवादयः ॥ ४ ॥ कल्पोज्ज्वलाश्च चतुराशीतिज्योतिषाः ॥ जेत्राणि जेत्रपालाश्च ऋद्धिस्सिद्धिस्त

दो० । यथा अवन्ती पुरीकर भयो विशाला नाम । अट्टावन अध्याय में सोइ चरित शिवधाम ॥ सनत्कुमारजी बोले कि महाभाग, व्यासजी ! सुनिये कि जिस प्रकार विशाला ऐसी कही हुई यह अमरावती पुरी सब लोकों में गानकी जाती है ॥ १ ॥ वैसेही मैं कहूंगा पुरातन समय ब्रह्माने सब पापोंको नाशनेवाले व गुप्तसे भी अधिक गुप्तक्षेत्र को कहा है ॥ २ ॥ पार्वती समेत एकही शिवदेवजी वनमें हुये हैं तदन्तर समस्त भूतगण पश्चात् सब देवता व दैत्य हुए हैं ॥ ३ ॥ और जहापर दश आकारवाले विष्णुजी व त्रिलोक की माताएं देवियां हैं व विनायक, वैताल, कूष्मांड व भैरवादिक हैं ॥ ४ ॥ व कल्पोज्ज्वल तथा चौरासी ज्योतिर्लिंग हैं और क्षेत्र, जेत्रपाल-

ऋद्धि व सिद्धि है ॥ ५ ॥ और पितर, लोकपाल, सिद्ध व जो सिद्धिदायक हैं वे और बड़े ऐश्वर्यवान् ऋषि व निर्मल आशयवाली ऋषियों की स्त्रियाँ हैं ॥ ६ ॥ और किन्नर, देवता, गंधर्व व वरांगना अप्सराएं तथा जो सब पवनगण हैं व जो साध्यों के गण हैं ॥ ७ ॥ और यज्ञ व गुह्यक संज्ञक तथा पिशाच, नाग, राक्षस, चर व अचर प्राणियों ने ध्यान व मौन में भलीभांति आश्रित होकर ॥ ८ ॥ उन देवदेव पार्वती के पति शिवजीकी उपासना किया है उस समय उनको देखकर तब वे गिरिनिन्दनी पार्वती जी ॥ ९ ॥ संसारके आश्रयरूप शिवजीसे नम्र वचनसे बोलीं पार्वती जी बोलीं कि हे संसारधारक, संसारस्वामिन्, देवदेव, जगदीशजी ! ॥ १० ॥

किं वच ॥ ५ ॥ पितरोलोकपालाश्च सिद्धास्सिद्धिप्रदाश्च ये ॥ ऋषयश्चमहाभागा ऋषिपत्न्योमलाशयाः ॥ ६ ॥ किन्नरादेवगन्धर्वा अप्सरसोवराङ्गनाः ॥ मरुद्गणाश्च ये सर्वे साध्यानांचगणाश्च ये ॥ ७ ॥ यक्षागुह्यकसंज्ञाश्च पिशाचोरगराक्षसाः ॥ स्थावराजङ्गमास्सर्वे ध्यानमौनंसमाश्रिताः ॥ ८ ॥ उपासाञ्चक्रिरेतस्य देवदेवस्योमापतेः ॥ तान्दृष्ट्वासातदा देवी पार्वतीगिरिजातदा ॥ ९ ॥ उवाचश्लक्षण्यावाचा शङ्करंजगदाश्रयम् ॥ पार्वत्युवाच ॥ देवदेवजगन्नाथजगद्धारजगत्प्रभो ॥ १० ॥ पश्यएतान्महाभागान् ध्यायमानांस्तवाश्रितान् ॥ नतुपेक्ष्यान्पितात्वञ्च तपमानांस्तपोर्दिता न् ॥ ११ ॥ कल्पयत्वंमहाभाग एतेषामात्मनोहितम् ॥ यथायोग्यंवासनार्थं स्थानं परमशोभनम् ॥ १२ ॥ पुरीं कल्पयमेताथ वासार्थं सर्वकामदाम् ॥ एषामेवासनास्वामिन् भवतांथदिरोचते ॥ १३ ॥ इति श्रुत्वा वचस्तस्याः पार्वत्याः पुरमेश्वरः ॥ कल्पयामासचपुरीं रम्यां सर्वमनोरमाम् ॥ १४ ॥ आत्मनोपमितां पुण्यां शम्भुस्सर्वात्मना तदा ॥ बहुयो

तुम पिताहो इन बहुत ऐश्वर्यवाले व ध्यान करतेहुए प्राणियों को देखिये जो कि छोड़ने योग्य नहीं हैं और तपस्या करते हुये व तपसे विकल हैं ॥ ११ ॥ हे महाभाग ! इनके व अपने बसने के लिये अति उत्तम व हितकारक यथायोग्य स्थानको कल्पित कीजिये ॥ १२ ॥ व हे नाथ ! मेरे बसने के लिये सब कामनाओं को देनेवाली पुरी को कल्पित कीजिये हे स्वामिन् ! यदि आपको रुचै तो यह मेरी इच्छा है ॥ १३ ॥ उन पार्वतीजी के ऐसे वचन को सुनकर उस समय सब यल

से परमेश्वर शिवजीने सबसे मनोहर सुन्दरी पुरीको निर्माण किया जोकि अपने समान व पुरणदायिनी तथा बहुत योजन चौड़ी व दिव्य और दिव्यजनको प्यारी ॥ १४ ॥ १५ ॥ व दिव्य अभिप्रायसे संयुत और दिव्य स्थानोंसे सुन्दरी तथा समस्त दिव्यगुणों से संयुक्त व विशाल तथा निर्मल और उत्तम है ॥ १६ ॥ व क्रय विक्रय (मोल व बेच) से संयुत व बाजार, और अटारी चौतरोवाली है और मन्दिर वगुहोंसे व्याप्त तथा राजमन्दिरों की पंक्तियों से शोभित है ॥ १७ ॥ व स्फटिक मणियों की भित्तियों से रचित तथा वैदूर्यमणि की भूभिवाले और मृंगाओंके खम्भों से श्रेष्ठ तथा स्वर्ण के भूषणों से पूर्ण है ॥ १८ ॥ व कुछ अरुण मणिको देहलीवाली

जनविस्तीर्णा दिव्या दिव्यजनप्रियाम् ॥ १५ ॥ दिव्याभिप्रायसंयुक्ता दिव्यस्थानमनोरमाम् ॥ दिव्यसर्वगुणोपेतां विशालां विराजंशुभाम् ॥ १६ ॥ क्रयविक्रयसम्पन्नां हृद्वाङ्मलकचत्वराम् ॥ बहुहर्म्यगृहाकीर्णां सौधपङ्क्तिविराजिताम् ॥ १७ ॥ स्फटिकाभित्तिरचिता वैदूर्यमणिभूमिकाम् ॥ प्रवालस्तम्भप्रवरां हेमाभरणसम्भराम् ॥ १८ ॥ आरक्तमणिदेहल्यां द्वारशाखाभिमण्डिताम् ॥ जाम्बूनदकपाटाभ्यां वज्रार्गलसुसंस्कृताम् ॥ १९ ॥ मणिरत्नसमाभूषिता जिरगृहान्तराम् ॥ घोषजालानिरम्याणि मुक्तादामविलम्बिनीम् ॥ २० ॥ हेमस्तम्भध्वजोपेतां पताकाचण्डगृहे ॥ कलशाश्च विराजन्ते मणिहेमयुतागृहे ॥ २१ ॥ वर्षीकूपतडगानि सरांसि विमलानि च ॥ पद्मकिञ्जल्कगन्धीनिराजन्ते जलजन्तुभिः ॥ २२ ॥ हंसकारण्डवाकीर्णां शिखरिण्डगणसेविताम् ॥ जलयन्त्रकृताधारां गृहवापीवनाकराम् ॥ २३ ॥

व द्वारशाखाओं से शोभित तथा सुवर्णके कणटों से व हीरेकी अर्गला (जञ्जीर) से संस्कार की हुई है ॥ १६ ॥ और मणियों व रत्नोंके समान भूमि, द्वार, अंगनाई व घरके भीतरवाली है और जहाँ सुन्दर वज्रसमूह हैं और जिसमें मोतियोंकी झालर लटकती है ॥ २० ॥ और सुवर्ण के खम्भोंसे व ध्वजाओं से संयुक्त है और घर में पताका हैं व घर में मणियों व सुवर्णसे संयुक्त कलशा शोभित हैं ॥ २१ ॥ और बावली, कूप तड़ाग व कमलके केसरसे सुगन्धवाले निर्मल तड़ाग जल जन्तुओं से शोभित हैं ॥ २२ ॥ और हंसों व कारण्डव पक्षियोंसे व्याप्त तथा मयूरगणोंसे सेवित और जलयन्त्रों (फुहारों) से कियेहुये आधारवाली तथा गृह, बावली

व वनोंकी खानिवाली है ॥ २३ ॥ कहीं मयूर नाचते हैं व कहीं कोकिलायें कूजती हैं व झमरासे भक्षित पुष्पगुच्छोंवाली वनकी पंक्तियां हैं ॥ २४ ॥ व पुरुषों तथा स्त्रियों के समूहोंसे व्याप्त व वणों और आश्रमों से सेवित है और सुन्दर मन्दिरों के भीतर प्राप्त स्त्रियां देखने में तत्पर होकर शोभितहुई ॥ २५ ॥ और चन्द्रशाला याने अटारी के ऊपर बनेहुये मन्दिरों से कीहुई पंक्ति बन्दनवारोंकी नाई शोभितहै हे व्यासजी ! इसप्रकार अपने योगसे बसाईहुई सुंदरी पुरी है ॥ २६ ॥ जहां पर कुबेरके मन्दिर से चिह्नित व सुन्दरी तथा श्वेत अलका पुरी है जोकि राक्षसों से व्याप्त व पक्षियों से शोभित है ॥ २७ ॥ और वहापर उत्तम वरुणजी का स्थान व भयंकर

कचिन्मयूरानृत्यन्ति कचिक्कूजन्तिकोकिलाः ॥ २४ ॥ नरनारीगणकी
णीं वर्णाश्रमनिषेविताम् ॥ सुहर्म्यान्तर्गतानार्यो विलोकनपरावसुः ॥ २५ ॥ चन्द्रशालाकृताश्रेणी तोरणानीवशोभ
ते ॥ एवंव्यासपुरीरम्या आत्मयोगेनवासिता ॥ २६ ॥ यत्रालकापुरीरम्या कुबेरभवनाङ्किता ॥ धवलापुण्यजनैःकीर्णा
पक्षिभीरुपशोभिता ॥ २७ ॥ तत्रभोगवतीदिव्या वरुणलयमुत्तमम् ॥ नागकन्याभीरुद्राभिर्नागस्त्रीभिश्चसंकुला ॥
२८ ॥ संयमिनीपुरीश्रेष्ठा धर्मराजेनपालिता ॥ अनाचारजनैःपूर्णा कृताभूतविगर्हितैः ॥ २९ ॥ देवतानांपुरीरम्या
वामवेनाभिपालिता ॥ पुण्यस्त्रीनृगणाकीर्णा किन्नरोद्गीतमण्डिता ॥ ३० ॥ एवंविधानिरम्याणि बहुपुण्यतराणिच ॥
कचिद्रम्भाकृतद्वारा यवाङ्कुरघटाशुभा ॥ ३१ ॥ कचिद्वायन्तिगन्धर्वाः कचिन्तृयतिनर्तकी ॥ कचिद्वालाःपठन्ति
स्म वेदाध्ययनकाद्विजाः ॥ ३२ ॥ कचित्यज्ञानयजन्तिस्म यजमानास्सऋत्विजः ॥ कचिच्चावभृथस्नाने तद्दानानिप्र

नागकन्याओं तथा नागपक्षियों से संयुत नागपुरी है ॥ २८ ॥ और धर्मराज से पालित उत्तम यमपुरी है जोकि प्राणियों से निन्दित व आचार रहित जनोसे पूर्ण है ॥ २९ ॥ इस
२९ ॥ व इन्द्र से पालित सुन्दरी देवताओं की पुरी है जोकि पवित्र स्त्रियों व मनुष्यगणों से व्याप्त तथा किन्नरों के उच्चप्रकार के गानसे शोभित है ॥ ३० ॥ इस
प्रकार के बहुत पवित्र व सुन्दर स्थान हैं और कहीं कदली से किये द्वारवाली व यवों के अंकुरों से संयुत कलशोंवाली उत्तम पुरी है ॥ ३१ ॥ कहीं गन्धर्व गाते हैं व
कहीं नर्तकी (नाचनेवाली वेश्या) नाचती हैं और कहीं वेदाध्ययनवाले बालक ब्राह्मण पढ़ते हैं ॥ ३२ ॥ और कहीं ऋत्विजों समेत यजमान यज्ञोंको करते हैं व

कहीं यज्ञान्त स्नान में उसके दानों को करते हैं ॥ ३३ ॥ कहीं यज्ञोपवीत कर्महोताहै व कहीं विवाह और अग्निका परिग्रहण होताहै व कहीं अग्नीचादिक तथा पूर्त (तड़ागादि खनन) होताहै और कहीं यात्राकानिश्चय होताहै ॥ ३४ ॥ वैसेही कहीं पर विधिपूर्वक वावली, कूप व तड़ागोंका कर्म होताहै और कहीं वाचक कथाके प्रसंगों को कहताहै ॥ ३५ ॥ व उत्तम नगर में कहीं पर कविलोग कथा कहते हैं व कहीं मल्ल विरोध करते हैं कहीं नट नाचने में तत्पर हैं ॥ ३६ ॥ और मणियोंकी सोपान पंक्तियोंवाले तड़ाग शोभित है व सोलह वर्षवाली चञ्चल चपल वाला ॥ ३७ ॥ वहां जलके हरने में तत्पर है जोकि मणियों व सुवर्णके घटोंसे शोभित है हे व्यास

कुर्वते ॥ ३३ ॥ क्वचित्पनयनं क्वचिद्दिवाहाग्निपरिग्रहम् ॥ क्वचिदारामपूतैवै क्वचिद्यात्रावधारणम् ॥ ३४ ॥ वापीकूपत
डागानां तथैवविधिपूर्वकम् ॥ क्वचित्कथाप्रसङ्गाश्च वाचकःपरिशंसति ॥ ३५ ॥ क्वचिद्वाथाः प्रकुर्वन्ति कवयः पुरउत्त
मे ॥ क्वचिन्मल्लाविसृज्यन्ति नटानाट्यपराः क्वचित् ॥ ३६ ॥ तड़ागाश्चविराजन्ते मणिमोपानपङ्क्तयः ॥ चञ्चलाचपला
बालाश्यामाषोडशवर्षिकी ॥ ३७ ॥ वारिहारपरातत्र मणिहेमघटोत्कटा ॥ एवंव्यासपुरीरम्या निर्मितायोगमायया ॥
३८ ॥ शम्भुनासर्वपापघ्नी प्रियाप्रियचिकीर्षया ॥ विशालाबहुविस्तीर्णा पुण्यापुण्यजनाश्रया ॥ ३९ ॥ तस्मात्सर्वेषु
कालेषु सर्वलोकैषुगीयते ॥ विशालेतिसमाख्याता पुरीरम्यासनातनी ॥ ४० ॥ यत्रकुत्रस्थितोवापि सर्वावस्थाङ्ग
तोपिवा ॥ विशालेतिवदन्नित्यं शिवलोकैर्महीयते ॥ ४१ ॥ ईदृशीनपुरीव्यास सुविब्रह्माण्डगोलके ॥ विशालासदृ
शीचान्या भुक्तिमुक्तिप्रदान्तराम् ॥ ४२ ॥ पितृनुद्दिश्यकुर्वन्ति श्राद्धकालेनरास्तुयत ॥ तदक्षयंभवेतेषां पितृकल्पे

जी ! इसप्रकार शिवजी ने प्रिय करने की इच्छा से योगमायाके द्वारा सब पापों को नाशनेवाली व ध्यारी सुन्दरी पुरीको निर्माण किया जोकि विशाल व बहुत चौड़ी
तथा पवित्र व पवित्रजनों से आश्रयवाली है ॥ ३८ ॥ इसलिये सब कालोंमें विशाला ऐसी कहींहुई सुन्दरी व सनातनी पुरी सब लोकोंमें गानकीजाती है ॥ ४० ॥
जहां कहां भी स्थित व सब दशामें प्राप्तभी नित्य विशाला ऐसा कहताहुआ मनुष्यशिवलोक में पूजाजाता है ॥ ४१ ॥ हे व्यासजी ! पृथ्वी पै ब्रह्माण्ड गोलक में वि-
शाला के समान मनुष्यों को भुक्ति मुक्तिदायिनी ऐसी अन्य पुरी नहीं है ॥ ४२ ॥ श्राद्धके समयमें पितरोंको उद्देश कर मनुष्य जो करते हैं उनका वह श्रद्धय होताहै

और पितृकल्प में गान किया जाता है ॥ ४३ ॥ जिन्होंने विशाला पुरी में प्रसंग से स्नान दानादिक किया है जहां कहीं भी प्राप्त वे मनुष्य मरकर शिवजी के स्थान को प्राप्त होते हैं ॥ ४४ ॥ वे धन्य व अत्यन्त पवित्र हैं कि जिनका प्रीति सदैव विशालापुरी में निश्चल रहती है और विशाला के फलको कहने के लिये सदैव शेषजी भी नहीं समर्थ हैं ॥ ४५ ॥ कथा के सुननेही से व कहे जाने से उसी क्षण महापातक से उपजा हुआ पाप छूट जाता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ४६ ॥ हे व्यासजी ! इस प्रकार कुरास्थली पुरी विशाला हुई है और प्रति कल्प में जिस प्रकार हुई है वैसे ही कहते हुये मुझसे सुनिये ॥ ४७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेऽष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५८ ॥

चर्गीयते ॥ ४३ ॥ स्नानदानादिकं यैस्तु विशालायां प्रसङ्गतः ॥ यत्र कुत्र गतास्ते वै मृता यान्ति शिवक्षयम् ॥ ४४ ॥ धन्याः पुण्यतमालोके प्रीतिर्षांसदाचलाः ॥ विशालायाः फलं शश्वच्चैषो वक्तुं शक्नुयात् ॥ ४५ ॥ कथाश्रवणमात्रेण वाच्यमानेन तत्त्वज्ञात् ॥ महापापोद्भवं पापं मुच्यते नात्र संशयः ॥ ४६ ॥ एवं व्यासपुरी जाता विशाला च कुशस्थली ॥ प्रतिकल्पं यथा जाता तथा मे शृणु माषत ॥ ४७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे विशालाभिधानकथननामाष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५८ ॥ * * * * *

सनत्कुमार उवाच ॥ शृणुष्व वावहितो व्यास कथामेकाग्रमानसः ॥ मया व्यासमुखात् प्राप्ता कल्पभेदकथा शुभा ॥ १ ॥ गुह्याद्गुह्यतरा श्रेष्ठा देया यस्य न कस्यचित् ॥ नास्तिकायकृतघ्नाय नाशिष्याय कदाचन ॥ २ ॥ एषा पुण्यतमा व्यास कथा पापहरा परा ॥ यस्याः श्रवणमात्रेण कल्पदोषो न बाधते ॥ ३ ॥ प्रमाणं कल्पपर्यन्तं ब्रह्मणः परमैष्ठिनः ॥ म

दो० । यथा अवन्ती पुरी कर प्रतिकल्पा भो नाम । उस ठीकें अध्याय में सोइ चरित अभिराम ॥ सनत्कुमारजी बोले कि हे व्यासजी ! एकाग्र मनवाले होकर व सा-
वधान होते हुये तुम कथाको सुनो मैंने व्यासजी के मुखसे कल्पके भेदकी उत्तम कथाको पाया है । १ ॥ जोकि गुप्त से भी अधिक गुप्त व श्रेष्ठ है और जिस किसी को देने योग्य नहीं है और नास्तिक, कुतन्त्र व विनाशिय के लिये कभी न देना चाहिये ॥ २ ॥ हे व्यासजी ! यह कथा अति पवित्र व उत्तम तथा पापहरिणी है

कि जिसके सुननेहीसे कल्पका दोष बाधा नहीं करता है ॥ ३ ॥ सब मन्वन्तरों में व कल्यों तथा कल्पान्तरों में परमेष्ठी ब्रह्माका कल्पपर्यन्त प्रमाण है ॥ ४ ॥ हेसत्तम ! जितनी संख्या प्रमाण की गई है उसको सुनिये कि सूर्यनारायणजी मनुष्यों व देवताओं के दिनरात्रिका विभाग करते हैं ॥ ५ ॥ हे द्विजोत्तम ! उस गणना को ग्रहण कर संख्याको सुनिये कि पन्द्रह निमेषों की काष्ठा होती है और उनतीस काष्ठाओं की कला होती है ॥ ६ ॥ व तीस कलाओं का मुहूर्त होता है और उन तीस मुहूर्तोंसे विद्वानोंने दिनरात ऐसा कहा है व चन्द्रमा सूर्यकी गति कही गई है ॥ ७ ॥ नित्य इन सर्वों में सूर्यनारायणकी गतिके भेदसे मनुष्यों का वह दिन होता है और वैसेही न्वन्तरेषु सर्वेषु कल्पकल्पान्तरेषु च ॥ ४ ॥ यावत्सङ्ख्यापरिमिता तावतीं शृणु सत्तम ॥ अहोरात्रविभजते सूर्यो मानुषदे वतम् ॥ ५ ॥ तामुपादाय गणनां शृणु सङ्ख्यां द्विजोत्तम ॥ निमिषैः पञ्चदशभिः काष्ठास्त्रिंशत्तुताः कलाः ॥ ६ ॥ त्रिंशत्क लो मुहूर्तस्तु त्रिंशद्भिस्तैर्मनीषिणः ॥ अहोरात्रमिति प्राहुश्चन्द्रादित्यगतिस्तथा ॥ ७ ॥ रवेर्गतिविशेषेण सर्वेष्वेतेषु नि त्यशः ॥ तदहस्तु मनुष्याणां रात्रिश्चैव तुतादृशी ॥ ८ ॥ पक्षमासा ऋतुरव्दमयनंच प्रकीर्तितम् ॥ पितृणाञ्चैव देवानां ब्रह्मणश्च यथा तथम् ॥ ९ ॥ यावत्सङ्ख्या समाख्याता आयुरन्तश्च तादृशः ॥ अहोरात्राः पञ्चदश पक्ष इत्यभि शब्दि तः ॥ १० ॥ पक्षौ द्वौ तौ कृतौ मासौ मासौ द्वावतुल्यव्यते ॥ अयनं तैस्त्रिभिः प्रोक्तमव्दे द्वे अयने स्मृतः ॥ ११ ॥ दक्षिणं चोत्तर औवं सङ्ख्यातत्त्वं विशारदः ॥ मानेनानेनयो मासः पक्षद्वयसमन्वितः ॥ १२ ॥ पितृणां तदहोरात्रमिति कालविदो विदुः ॥ शुक्लपक्षस्त्वहस्तेषां कृष्णपक्षस्त्वहस्तु शर्वरी ॥ १३ ॥ कृष्णपक्षे त्विह श्राद्धं पितृणां वर्तते ततः ॥ मानुषेन तु मानेन यौ वै संवत्स रात्रि होती है ॥ ८ ॥ और पितरों, देवताओं व ब्रह्माका पक्ष, मास, ऋतु, वर्ष व अयन यथायोग्य कहा गया है ॥ ९ ॥ व जितनी संख्या कही गई है वैसेही आयुर्वल का अन्त है पन्द्रह दिनरात्राका पक्ष ऐसा कहा गया है ॥ १० ॥ और उन दो पक्षोंका मास कहा गया है व दो महीनों की ऋतु कही जाती है और उन तीन ऋतुओं से अयन कहा गया है व संख्याके यथार्थ जाननेमें चतुर लोगोंने दक्षिण व उत्तर दो अयनों का वर्ष कहा है इस प्रमाणसे दो पक्षोंसे संयुक्त जो महीना है ॥ ११ ॥ १२ ॥ वह पितरों का दिन रात होता है ऐसा कालके जाननेवालोंने कहा है शुक्लपक्ष उन पितरों का दिन है व कृष्णपक्ष रात्रि है ॥ १३ ॥ उसी कारण इस संसार में

कुष्णपद्म में पितरों की श्राद्ध वर्तमान होती है मनुष्योंवाले प्रमाण से जो वर्ष कहा गया है ॥ १४ ॥ वह देवताओं का दिन रात्रि होता है और उत्तरायण दिन है व यथार्थ जाननेवाले विद्वानों से दक्षिणायन रात्रि कही गई है ॥ १५ ॥ और देवताओंवाला सौगुना वर्ष मनुका दिनरात्रि कहा गया है व दशगुना दिनरात्रि मनुका पक्ष कहा जाता है ॥ १६ ॥ पक्ष से दशगुना महीना होता है और बारहगुने महीनों से यथार्थ दर्शी विद्वानों ने मनुष्यों की ऋतु कहा है ॥ १७ ॥ और उन छा ऋतुओं से वर्ष कही गई है उसीसे संख्या बांधी जाती है व चारही हजार वर्ष सतयुग होता है ॥ १८ ॥ और उत्तनीही सन्ध्या होती है व वैसाही सन्ध्यांश होता है और

रस्मृतः ॥ १४ ॥ देवानांतदहोरात्रं दिवाचैवोत्तरायणम् ॥ दक्षिणायनं स्मृतारात्रिः प्राज्ञैस्तत्त्वार्थकोविदैः ॥ १५ ॥ दिव्यमबंशतगुणमहोरात्रं मनोस्मृतम् ॥ अहोरात्रं दशगुणं मानवः पक्ष उच्यते ॥ १६ ॥ पञ्चादशगुणो मासो मासं द्वादशभिर्गुणैः ॥ ऋतुर्मनूनां सम्प्रोक्तः प्राज्ञैस्तत्त्वार्थदर्शिभिः ॥ १७ ॥ षड्विंशैर्वर्षं आख्यातस्तेन सङ्ख्या निबध्यते ॥ चत्वार्येव सहस्राणि वर्षाणान्तु कृतं युगम् ॥ १८ ॥ तावती तु भवेत्सन्ध्या सन्ध्यांशश्च तथा विधः ॥ त्रीणिवर्षं सहस्राणि त्रेतायाः परिमाणतः ॥ १९ ॥ तस्याश्च तावती सन्ध्या सन्ध्यांशश्च तथा विधः ॥ तथैव वर्षं सहस्रे द्वे द्वापरं परि कीर्तितम् ॥ २० ॥ तस्यापि तावती सन्ध्या सन्ध्यांशश्च तथा विधः ॥ कलिर्वर्षं सहस्रन्तु संख्यातो व्रतमनीषिभिः ॥ २१ ॥ तस्य तावतिका सन्ध्या सन्ध्यांशश्च तथा विधः ॥ एषा द्वादशसाहस्री युगसंख्या प्रकीर्तिता ॥ २२ ॥ दिव्येनानेन मानेन युगसंख्या निबोधमे ॥ ससर्जसपुनस्तात जगत्सर्वमिदं तम् ॥ २३ ॥ कृतं त्रेता द्वापरञ्च कलिञ्चैव चतुर्गुणम् ॥ युगं तदेकसप्त

तीन हजार वर्ष त्रेताका प्रमाण है ॥ १९ ॥ और उसकी उत्तनीही सन्ध्या होती है व वैसाही सन्ध्यांश होता है और दो हजार वर्ष द्वापर कहा गया है ॥ २० ॥ और उसकी भी उत्तनीही सन्ध्या व वैसाही सन्ध्यांश है और इस विषय में विद्वानों ने हजार वर्ष कलियुगकी संख्या किया है ॥ २१ ॥ और उसकी उत्तनीही सन्ध्या व वैसाही सन्ध्यांश है यह बारह हजार युगकी संख्या कही गई है ॥ २२ ॥ इस दिव्य याने देवतावाले प्रमाण से सुझसे युगकी संख्या को जानिये हे तात ! फिर उन ब्रह्मा ने

इस सब विस्तारित संसारको रचा है ॥ २३ ॥ हे द्विजोत्तम ! सतयुग, त्रेता, द्वापर व कलियुग यह चारों युग हैं और इकहत्तर से गुना किया हुआ वह युग ॥ २४ ॥ गणना के प्रयोजन में चतुर मनुष्यों से मन्वन्तर ऐसा कहा गया है और वह अयन भी कहा गया है व दक्षिण, उत्तर दो अयन होते हैं ॥ २५ ॥ हे संसार के स्वामी ! इसके भलीभांति प्राप्त होने पर मनु नाश होजाते हैं तदनन्तर इतनेही समयनक अयन मनु होता है ॥ २६ ॥ और नृपेन्द्र मनु के कीर्तने पर वह संवत्सर कहा गया है और यथार्थदर्शी मनु ने उसीको अयन कहा है ॥ २७ ॥ और वही ब्रह्मा का दिन कहा गया है व कल्प ऐसा कहा जाता है और विद्वानों से हजार युगतक वह रात्रि

त्या गुणितां द्विजसत्तम ॥ २४ ॥ मन्वन्तरमिति प्रोक्तं संख्यानार्थं विशारदः ॥ अयनं चापि तत्प्रोक्तं द्वयनेदक्षिणोत्तरे ॥ २५ ॥ मनुः प्रलीयते ह्यत्र सम्प्राप्ते जगतः प्रभो ॥ ततोपरो मनुः कालमेतावन्तं भवत्युत ॥ २६ ॥ समतीते तुराजेन्द्रे प्रोक्तस्सं वत्सरस्सर्वे ॥ तदेव चायनं प्रोक्तं मुनिना तत्त्वदर्शिना ॥ २७ ॥ ब्रह्मणस्तदहः प्रोक्तः कल्पश्चोत्तिसमुच्यते ॥ सहस्रयुगपर्यन्तं सानिशा प्रोच्यते बुधैः ॥ २८ ॥ निमज्जत्यथ तत्रोर्वी सशैलवनकानना ॥ तस्मिन् युगसहस्रे तु पूर्णैर्मरुतसत्तम ॥ २९ ॥ ब्राह्मणो दिवसपर्यन्तं कल्पो निःशेष उच्यते ॥ युगानि समतीतानि साग्राणिकथितानि ते ॥ ३० ॥ कृतत्रेता नित्युक्तानि मनोरन्तरमुच्यते ॥ चतुर्दशैते मनवः कथिताः कीर्तिवर्द्धनाः ॥ ३१ ॥ वेदेषु सपुराणेषु सर्वेषु प्रभविष्णवः ॥ प्रजानाम्पतयो व्यास धन्यमेषां प्रकीर्तितम् ॥ ३२ ॥ मन्वन्तरेषु संहारास्संहारान्तेषु सम्भवाः ॥ नशक्यमन्तस्तेषां वै वक्तुं वर्षशतैरपि ॥ ३३ ॥ विसर्गाश्च प्रजानां वै संहारोऽस्य च भारत ॥ मन्वन्तरेषु संहारः श्रूयते भरतर्षभ ॥ ३४ ॥

कही जाती है ॥ २८ ॥ हे भरतोत्तम ! इसके अनन्तर उस रात्रि में पर्वत, जल व वनों समेत पृथ्वी डूब जाती है और उस हजार युग के पूर्ण होने पर ॥ २९ ॥ दिन पर्यन्त ब्रह्मा का समस्त कल्प कहा जाता है कुछ अधिक बीते हुये युग तुमसे कहे गये ॥ ३० ॥ और सतयुग व त्रेता संयुक्त युग मन्वन्तर कहा जाता है यश के बढ़ाने वाले ये चौदह मनु कहे गये ॥ ३१ ॥ हे व्यासजी ! पुराणों समेत सब वेदों में प्रजाओं के पति समर्थ हैं और इनका कीर्तन धन्य है ॥ ३२ ॥ व मन्वन्तरों में संहार और संहार के अन्तों में उत्पत्तियां होती हैं व उनका अन्त सैकड़ों वर्षों से भी नहीं कहा जा सकता है ॥ ३३ ॥ हे भारत ! प्रजाओं की सृष्टियां व उनका संहार होता है और

हे अमरतर्षभ ! मन्वन्तरो में संहार सुनाजाता है ॥ ३४ ॥ जहां कि तपस्या, ब्रह्मचर्य व शाल से संयुक्त सब देवता ससर्षियों समेत स्थित होते हैं ॥ ३५ ॥ ब्रह्मरूपी पूर्णहोने पर सब कल्प कहाजाता है उसमें समस्तप्राणी सूर्यनारायणकी किरणों से जलजाते हैं ॥ ३६ ॥ और ब्रह्माको आगे कर आदित्यगणों समेत ब्राह्मण (स-सर्षि) सुरोत्तम प्रभु नारायण विष्णुजी में प्रवेश करते हैं ॥ ३७ ॥ वे अव्यक्त तथा सनातन देवजी कल्पान्तोमें बार २ सब प्राणियों के रचनेवाले हैं और उनका यह सब संसार है ॥ ३८ ॥ हे व्यासजी ! महादेव व ब्रह्मा संयुक्त वही विष्णुजी विद्यमान रहते हैं व उस ईश्वरने मजोहर महाकाल वज्र में निवास किया है ॥ ३९ ॥ हे व्यास

यत्र तिष्ठन्ति तैव देवास्सर्वे ससर्षिभिस्सह ॥ तपसा ब्रह्मचर्येण श्रुतेन च समन्विताः ॥ ३५ ॥ पूर्णयुगमहस्त्रेतु कल्पो निश्शेष उच्यते ॥ तत्र सर्वाणि भूतानि दधान्यादित्यरश्मिभिः ॥ ३६ ॥ ब्रह्माणमग्रतः कृत्वा सहादित्यगणैर्द्विजाः ॥ प्रविशन्ति सुरश्रेष्ठं हरिन्नारायणं प्रभुम् ॥ ३७ ॥ सप्तष्टासर्वभूतानां कल्पान्तेषु पुनः पुनः ॥ अव्यक्तश्चाश्वतोदेवस्तस्य सर्वमिदं जगत् ॥ ३८ ॥ स एव विद्यते व्यास महेश विधि संयुतः ॥ महाकालवने रम्ये वासं चक्रैर्सह ईश्वरः ॥ ३९ ॥ प्रलयो न बाधते व्यास महाकालवने उत्तमे ॥ कल्पे कल्पे च वै रम्या पुरी ह्येषा कुशस्थली ॥ ४० ॥ निरामया निरातङ्का निर्विकारा युगे युगे ॥ मार्कण्डेयोपदिष्टानि कल्पानि सम्भवन्ति च ॥ ४१ ॥ अत्रैव च वने रम्ये ब्रह्मलोकपितामहः ॥ प्रजानां पतयो ये ते देवाः प्राचेतसस्तथा ॥ ४२ ॥ मरीचिः कश्यपो रुद्रो ये चान्ये भार्गवा दयः ॥ कल्पादौ भुजते लोकाश्चराचरयथा तथा ॥ ४३ ॥ एवमादौ पुरा व्यास कल्पं कल्पान्तं कंसदा ॥ वाराहो वामनो विष्णुः पितृणां वैतथैव च ॥ ४४ ॥ कल्पभेदा

जी ! महाकाल नामक उत्तम वनमें प्रलय बाधा नहीं करता है और प्रतिकल्पमें यह कुशस्थली पुरी सुन्दरी होती है ॥ ४० ॥ व युग २ में व्याधिरहित व शंकाहीन तथा विकार रहित होती है और मार्कण्डेयजी से आज्ञा दिये हुये कल्प होते हैं ॥ ४१ ॥ इसी सुन्दर वनमें लोकों के पितामह ब्रह्माजी हैं और जो प्रजाओं के पति हैं वे प्रचेताओं के पुत्र देवजी हैं ॥ ४२ ॥ व मरीचि, कश्यप, रुद्र व जो अन्य रुद्रादिक हैं वे वर्तमान हैं कल्प के आदि में वे ब्रह्माजी यथायोग्य चराचर लोकों को रचते हैं ॥ ४३ ॥ हे व्यासजी ! पुरातन समय इसी प्रकार पहले सदैव कल्प व कल्पान्त होता है वाराह, वामन व विष्णु ये पितरों के ॥ ४४ ॥ कल्प भेद उत्तम महाकाल

वनमें कहेगये हैं हे द्विजोत्तम ! चौरासी कल्प हुये हैं ॥ ४५ ॥ व हे सत्तम ! उतनेही ज्योतिर्लिङ्ग वन में स्थित हैं और मही सागर व पर्वत फिर उत्पन्न होते हैं व फिर नाश होजाते हैं ॥ ४६ ॥ और बार २ होवेंगे व यह पुरी अचल कहीगई है उसीकारण सब कालों में व सब लोकोंमें गान कीजाती है ॥ ४७ ॥ व हे व्यासजी ! पृथ्वी में प्रतिकल्पा संज्ञक ऐसी वह पुरी होवैगी कि जिसमें इन्द्रियों के दमन करनेवाले मनुष्य हैं व स्नान, दानादिक ॥ ४८ ॥ और जप व होम तथा जिन पितरों को उद्देश कर श्राद्ध दियाजाता है करोड़ों सौ कल्पोंसे भी उनकी श्रावृत्ति नहीं होतीहै ॥ ४९ ॥ वैशाख महीने में पूर्णमासी तिथिमें मनुष्य प्रतिकल्पा पुरीमें प्राप्तहोकर

स्ममाख्याता महाकालवनेशुभे ॥ चतुराशीतिकल्पानि सञ्जातानिद्विजोत्तम ॥ ४५ ॥ तावन्तिज्योतिर्लिङ्गानि व नेतिष्ठन्तिसत्तम ॥ पुनर्जातापुनर्नष्टा महीसागरपर्वताः ॥ ४६ ॥ पुनःपुनर्भविष्यन्ति पुरीहोषाचलास्मृता ॥ तस्मात्सर्वेषुकालेषु सर्वलोकेषुगीयते ॥ ४७ ॥ प्रतिकल्पेति संज्ञासा भुवि व्यासभविष्यति ॥ यस्याञ्च मानवादान्ताः स्नानदानादिकंतथा ॥ ४८ ॥ जपं होमं तथा श्राद्धं पितृनुद्दिश्य दीयते ॥ न तेषाम्पुनरावृत्तिः कोटिकल्पशतैरपि ॥ ४९ ॥ प्रतिकल्पा मनुप्राप्य दृष्ट्वा देवं महेश्वरम् ॥ वैशाखे पूर्णमास्यां वै स्नापयेद्देकवासरम् ॥ ५० ॥ प्रसङ्गतोरजः क्लान्तो क्षिप्राम्भसि च मानवः ॥ न तस्य दुष्कृतं किञ्चिद्विष्णुलोकं गच्छति ॥ ५१ ॥ मन्वन्तरसहस्रेषु काशीवासेन यत्फलम् ॥ तत्फलं प्राप्नुते जन्तुः प्रतिकल्पाक्षणादपि ॥ ५२ ॥ प्रतिकल्पे च कल्पान्ते सदैवासीति पुरीशुभा ॥ तस्मात्सर्वजनैः ख्याता प्रति कल्पाद्विजो म ॥ ५३ ॥ य एतस्यां महाभागाः प्रीतिं कुर्वन्ति मानवाः ॥ न तेषां कल्पभेदोऽयं स्वप्नवज्जायते क्षणात् ॥ ५४ ॥

न तक नहवात्रै ॥ ५० ॥ और धूलिसे ग्लानिको प्राप्त जो मनुष्य प्रसंग से शिप्रानर्दीके जलमें स्नान करता है उसके कुछ पातक नहीं जाताहै ॥ ५१ ॥ हजारों मन्वन्तरोंमें काशीवाससे जोफल मिलता है उसी फलको प्राणी प्रतिकल्पा पुरी क्षणभर से भी प्राप्तहोताहै ॥ ५२ ॥ कल्पान्त में सदैव यह उत्तम पुरी हुई है उसी कारण सब मनुष्यों से प्रतिकल्पा कही गई है ॥ ५३ ॥ बहुत ऐश्वर्यवाले जो

पुरुष इराभे प्रीति करते हैं उनके यह कल्पभेद नहीं होता है और क्षणभर में स्वप्न की नाई होता है ॥ ५४ ॥ और प्रतिकल्पा से उपजी हुई पवित्र व उत्तम कथा को जो मनुष्य सुनता है व बड़े यत्न से सुनाता है वह ब्रह्महत्या को नाश करता है ॥ ५५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणऽवन्तीखण्डेवीदयलुमिश्रविरचितायां भाषाटीका ॥
याप्रतिकल्पाभिधानकथनं नमैकोनषष्ठितमोऽध्यायः ॥ ५६ ॥ * ॥ * ॥ * ॥
दोहा । वैष्णव अरु माहेश ज्वर भे शिप्रा महं शान्त । सोइ साठि अध्याय में वर्णित चरित सुकान्त ॥ सनत्कुमारजी बोले कि हे अनघ व्यास जी ! इसप्रकार

यः शृणोति कथां पुण्यां प्रतिकल्पोद्भवां शुभाम् ॥ श्रावयेद्वा प्रयत्नेन ब्रह्महत्यां व्यपोहति ॥ ५५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ॥ * ॥ * ॥

ऽवन्तीखण्डे प्रतिकल्पाभिधानकथनन्नामैकोनषष्ठितमोऽध्यायः ॥ ५९ ॥ * ॥
सनत्कुमार उवाच ॥ एवं व्यास पुरीषम्या नाम भूतासनातनी ॥ युगेयुगे यथा जाता तथा ख्याता मयानघ ॥ १ ॥ व्यास उवाच ॥ भूयस्तु श्रोतुमिच्छामि तत्तत्वेदविदां वर ॥ शिप्रायाश्च कथां पुण्यां पवित्रां पापहारिणीम् ॥ २ ॥ सुन्दरकण्ड समाख्यातं पिशाचमोचनं तथा ॥ नीलगङ्गाहतिप्रोक्ता कर्कराजमतः परम् ॥ ३ ॥ पुष्कराणि च सर्वाणि गयातीर्थमनुत्तमम् ॥ गोमती कुण्डमाख्यातं नाम्ना धर्मसरस्तथा ॥ ४ ॥ ख्यातं सङ्गमजं तीर्थं शनेर्जन्म कथाशुभा ॥ च्यवनाश्रमं च यावार्ता तथा नागालये शुभे ॥ ५ ॥ पुरुषोत्तममहिमानं कालेकेन कथं भवेत् ॥ एतद्देदितुमिच्छामि यत्ते मनसि वर्तते ॥ ६ ॥

हूयेनामवाली व मनोहर तथा सनातनी पुरी प्रतियुग में जिसप्रकार हुई है उसी भांति सुभक्ते कहींगई ॥ १ ॥ व्यासजी बोले कि हे वेदविदां वर ! मैं पवित्र व पुण्यदायिनी तथा पापहारिणी शिप्रा की कथा को तुमसे फिर सुनना चाहता हूँ ॥ २ ॥ कि सुन्दरकण्ड व पिशाचमोचन तीर्थ कहा गया है और नीलगंगा ऐसी कही हुई व इसके उपरान्त कर्कराज तीर्थ कहा गया है ॥ ३ ॥ और सब पुष्कर व अतिउत्तम गयातीर्थ तथा गोमती कुण्ड कहा गया है व धर्मसर नामक है ॥ ४ ॥ और संगम से उपजाहुआ तीर्थ कहा गया है व शनिश्चर के जन्म की उत्तम कथा और च्यवन के आश्रम में व उत्तम नागस्थान में जो वार्ता हुई है ॥ ५ ॥ और पुरुषोत्तम

की महिमा को कहिये कि वह समय में किससे किसप्रकार होती है मैं इसको जानना चाहता हूँ जो कि तुम्हारे मनमें वर्तमान है ॥ ६ ॥ सनत्कुमारजी बोले कि हे महाभाग व्यासजी ! पापहारिणी उत्तम कथा को सुनिये कि जिसप्रकार उत्तम महाकाल वनमें शिप्रानदी हुई है ॥ ७ ॥ हे वत्स ! भूतल में शिप्राके समान नदी नहीं है कि जिसके किनारे क्षणभर में मुक्ति होजाती है बहुत दिनोंतक सेवासे क्या है ॥ ८ ॥ वैकुण्ठ में क्षिप्रानदी स्वर्ग में ज्वरन्ती नामक होती है और यमद्वार में पापघ्नी व पाताल में श्रमृत संभवा नामक है ॥ ९ ॥ और वाराहकल्प में विष्णुदेहा ऐसे नाम से कही गई है व श्रवन्तीपुरी में कामधेनु से उपजी हुई शिप्रानदी कही गई है ॥ १० ॥

सनत्कुमारउवाच ॥ शृणुव्यासमहाभाग कथांपापहरांपराम् ॥ यस्मिन्कालेयथाजाता महाकालवनेशुभे ॥ ७ ॥
नास्तिवत्समहीपृष्ठे शिप्रायाः सदृशी नदी ॥ यस्यास्तीरे क्षणान्मुक्तिः किञ्चिरात्सेवनेन वै ॥ ८ ॥ वैकुण्ठे जायते क्षिप्रा
ज्वरन्ती च सुरालये ॥ यमद्वारे च पापघ्नी पातालैर्मृतसम्भवा ॥ ९ ॥ वाराहकल्पे वै प्रोक्ता विष्णुदेहेति नामतः ॥ शिप्राव
न्त्यां समाख्याता कामधेनुसमुद्भवा ॥ १० ॥ व्यासउवाच ॥ विचित्रमिदमाख्यातं भगवन् नृषिसत्तम ॥ वक्तुमर्हसि क्षि
प्रायास्समासेन कथां शुभाम् ॥ ११ ॥ सनत्कुमारउवाच ॥ ब्रह्मकपालमादाय भिचार्यव्यचरन्महीम् ॥ महादेवो विशु
द्धात्मा सर्वलोकेषु सर्वतः ॥ १२ ॥ अप्राप्तभिन्नो भिचार्यो वैकुण्ठमगमद्विभुः ॥ गतस्त्वातिथ्यवेलायां भ्रमन्देवो यत
स्ततः ॥ १३ ॥ लोकनिन्दाप्रः क्रुद्धः क्षुधितो बहुवासरैः ॥ भिजान्देहीति भो ब्रह्मन् क्षुधितो हंसमागतः ॥ १४ ॥ कपालं
च करे कृत्वा इत्युवाच पुनः पुनः ॥ गृह्यतां हरिभिर्ज्ञान्ते ददामीति हरिस्तदा ॥ १५ ॥ इत्युक्त्वा करमुद्यम्य तर्जन्यङ्गुलिमद

व्यासजी बोले कि हे ऋषिश्रेष्ठ, भगवन् ! यह विचित्र कहा गया और तुम क्षिप्रानदी की उत्तम कथा को संक्षेप से कहने योग्य हो ॥ ११ ॥ सनत्कुमारजी बोले कि पवित्र चित्तवाले महादेवजी ब्रह्मा के कपाल को लेकर भिक्षा के लिये सब लोकों में सब ओर भ्रमते भये ॥ १२ ॥ और भिक्षा को न पाये हुये भिचार्य स्वामी शिवदेवजी जहाँ तहाँ घूमते हुये आतिथ्य समय में वैकुण्ठ को गये ॥ १३ ॥ जो कि लोक की निन्दा में तत्पर व क्रोधित तथा बहुत दिनों से क्षुधित थे उन्होने यह कहा कि हे ब्रह्मन् ! भिक्षा को दीजिये मैं क्षुधित आया हूँ ॥ १४ ॥ हाथ मे कपाल को कर के यह बार २ कहा व हे शिवजी ! ग्रहण कीजिये मैं भिक्षा तुम को देता हूँ उत्तम

समय विष्णुजी ने ॥ १५ ॥ यह कहकर व हाथ को उठाकर तर्जनी (अंगूठे के पासवाली) अंगुली को दिखलाया तब क्रोधित शिवजीने क्रोधसे त्रिशूलसे नारा ॥ १६ ॥ तब अंगुली से उपजाहुआ बहुत रक्त बहचला और उससे शिवजीके हाथ में स्थित पात्र शीघ्रही पूर्ण होगया ॥ १७ ॥ तब उबलते हुये पात्रसे सब ओर धारा उत्पन्न हुई और उस स्थानसे रक्त की धारसे उपजी हुई शिप्रानदी उत्पन्न हुई ॥ १८ ॥ और त्रिलोक को पवित्र करनेवाली नदी शीघ्रही वैकुण्ठ से उत्पन्नहुई इसप्रकार नदियों में श्रेष्ठ शिप्रानदी तीनों लोकोंमें प्रसिद्धहुई ॥ १९ ॥ व हे व्यासजी ! जिस प्रकार ज्वरघ्नी कहीं गई है मैं वैसीही कहता हूँ कि जब अनिरुद्ध से अपमान किये शयित ॥ तदारुद्रस्समाधमातस्त्रिशूलेनाहनद्रुषा ॥ १६ ॥ तदाङ्गुलिसमुद्भूतं बहुशुश्रावशोणितम् ॥ पूर्णपात्रंचतेनाशु शङ्करस्यकरेस्थितम् ॥ १७ ॥ तदोद्वेलितपात्राद्वै धाराजातासमुद्भूता बिप्रासृग्धारसम्भवा ॥ १८ ॥ वैकुण्ठाच्चाभवत्सद्यो नदीत्रैलोक्यपावनी ॥ एवंशिप्रासरिच्छेष्टा त्रिषुलोकेषुविश्रुता ॥ १९ ॥ ज्वरघ्नीचयथा प्रोक्ता तथाव्यासब्रवीम्यहम् ॥ यदाबाणासुरोदैत्यः कृष्णेनसहसंयुगे ॥ २० ॥ योधयामासदैत्येन्द्रोऽनिरुद्धकृतहेल नः ॥ सहस्रबाहुभिर्वीरो नानाप्रहरणोद्यतः ॥ २१ ॥ तस्मात्कुदोवासुदेवः चक्रमादायसत्वरः ॥ चिच्छेददोस्सहस्रन्तु क्षुरप्रेणाशुगामिना ॥ २२ ॥ सतदाभग्नसङ्कल्पद्विन्नदोश्चरणार्दितः ॥ युद्धात्पराङ्मुखोभूत्वा शङ्करंशरणंययौ ॥ २३ ॥ तदागतंमहादैत्यं समीपेभयविक्लम् ॥ विलोक्यकृपयाविष्टो गतस्सङ्ग्राममूर्द्धनि ॥ २४ ॥ त्रित्वाबाहुसहस्रं वै दैत्यराजस्यसंयुगे ॥ क्रुद्धःकृष्णोमहाबाहुः परमेनान्तकोवली ॥ २५ ॥ स्थितोयत्राचलोव्यास गतस्तत्रमहेश्वरः ॥ हुये बाणासुर दैत्यने समर में कृष्णके साथ हजार मुजाओं से युद्ध किया जो कि दैत्यो में श्रेष्ठ व वीर तथा अनेक भौतिके अस्त्रों को उवाये था ॥ २० ॥ २१ ॥ तब उसी कारण शीघ्रता समेत क्रोधित वासुदेवजी ने चक्रको लेकर शीघ्रगामी क्षुरप्र अस्त्र से हजार मुजाओं को काटडाला ॥ २२ ॥ तब नष्ट संकल्पवाला व कटी मुजाआवाला व पादपीडित तथा समर से विकल बाणासुर युद्धसे विकल होकर शंकरजी की शरण में गया ॥ २३ ॥ तब डरसे विकल ममीप आयेहुये महादैत्य को देखकर दया रोयुत महादेवजी समर शिरसे गये ॥ २४ ॥ दैत्यराज बाणासुर की हजार मुजाओंको काटकर शत्रु सेनाके नाशक व बलवान् महाभुज श्रीकृष्णजी क्रोधितहुये ॥ २५ ॥

हे व्यासजी ! जहांपर निश्चल श्रीकृष्णजी स्थित थे जहांपर महादेवजी गये और शरसमूहों को फेंकतेहुये उन्होंने ने श्रीकृष्णजी को मनाकिया ॥ २६ ॥ वे दोनों प्राप्तहोकर समस्त प्राणियों को भयंकर तथा बड़ेविकराल शस्त्रास्त्रों से आपसमें भयानक युद्धकर ॥ २७ ॥ उस समय श्रीकृष्णजी ने शिवजी को मारने की इच्छा से वैष्णव अस्त्र को संधानकिया तब श्रीकृष्णजी के प्राणोंको हरने में उत्कण्ठित शिवजीने सबको संहार करनेवाले पाशुपत नामक अस्त्रको सन्धान किया तब सब लोकों में हाहाकार उत्पन्न हुआ सुनाजाता था ॥ २८ ॥ फिर श्रीकृष्णजी ने महादेवजी के ऊपर मोहन अस्त्र को छोड़ा तब देवमाया के कारण उस अस्त्र से शिवजी

वांरयामासंकृष्णवै शरौघांश्चसमाकिरन् ॥ २६ ॥ अन्योन्यंतौसमासाद्य युद्धं कृत्वा चदारुणम् ॥ शस्त्रास्त्रैश्चमहावो रैस्सर्वप्राणिभयङ्करैः ॥ २७ ॥ वैष्णवास्त्रं तदा कृष्णस्सन्दधे हरजिघांसया ॥ पाशुपतञ्च नामास्त्रं सर्वसंहारकारकम् ॥ २८ ॥ सन्दधे वै तदा शम्भुः कृष्णप्राणहरोत्सुकः ॥ हाहाकारस्तदा जातस्सर्वलोकेषु श्रूयते ॥ २९ ॥ मोहनास्त्रं पुनः कृष्णो हरो परिसुमोच ह ॥ तेनास्त्रेण तदा शम्भुर्माहितो देवमायया ॥ ३० ॥ जृम्भमाणः स्थितस्संख्ये किञ्चित्कालं मुहुर्मुहुः ॥ लब्धसंज्ञः पुनर्जातो यदा रुद्रो महाहवे ॥ ३१ ॥ तदा क्रोधाभिभूतेन कृतो माहेश्चरो ज्वरः ॥ ललाटफलकात्सद्यो वीरभद्रो महाबलः ॥ ३२ ॥ त्रिनवस्त्रिशिरोहस्वस्त्रिपादो वर्कराकृतिः ॥ क्षुद्रोजटिलभस्मझो महाव्याधिर्दुरत्ययः ॥ ३३ ॥ कृष्णसेनां समासाद्य महादेवेन प्रेरितः ॥ प्राणिनां कदनं चक्रे सर्वेषां कृष्णसङ्गिनाम् ॥ ३४ ॥ पराङ्मुखपराभगना ज्वराभिघातपीडिता ॥ वभूव सहसा व्यास सेना कृष्णेन प्रालिता ॥ ३५ ॥ तथाभूतां समालोक्य जृम्भमाणं रुजार्दिताम् ॥ स्व

माहित हुये ॥ ३० ॥ व बार बार जमुहातेहुये शिवजी समर में कुछ समय तक स्थित रहे और जब महायुद्धमें शिवजी फिर प्राप्त चैतन्यतावाले हुये ॥ ३१ ॥ तब क्रोध से तिरस्कृत शिवजी ने माहेश्चरज्वर को निर्माण किया व मस्तक से शीघ्रही महाबलवान् वीरभद्रजी उत्पन्न हुये ॥ ३२ ॥ और त्रिलोचन, त्रिभाल, लक्ष्म, त्रिचरण व अजाकार, क्षुद्र तथा जटावान् व भस्म अंगवाले और दुःखसे उल्लंघन करने योग्य महारोग ने ॥ ३३ ॥ महादेवजी से प्रेरित होकर श्रीकृष्णजी की सेना में प्राप्त होकर समस्त श्रीकृष्णजी के सार्थी प्राणियों का विनाश किया ॥ ३४ ॥ हे व्यासजी ! श्रीकृष्णजी से पालित व ज्वरकी चोटसे पीड़ित सेना भग्न होकर अचानकही विमुख

भेत्तपरहुई ॥ ३५ ॥ रोगसे विकल व नष्ट संकल्पवाली, जमुहातीहुई तथा शिवजीके ज्वरसे पीडित वैसी सेना को देखकर ॥ ३६ ॥ बड़े क्रोधी श्रीकृष्णजीने वैष्णव ताप को रचा और विष्णुजी के उस ज्वरसे व माहेश्वर ज्वरसे ॥ ३७ ॥ श्रापस में बहुतही भयंकर युद्धहुआ व बहुत सग्रामकर माहेश्वर ज्वर विकलहुआ ॥ ३८ ॥ व समस्त लोकों में जाकर शान्ति को न प्राप्त हुआ और उससे पीडित वह सुन्दर महाकाल वनेमें प्राप्तहुआ ॥ ३९ ॥ व क्षिप्रानदी में मग्नहोगया तदनन्तर उत्तम शान्ति को प्राप्तहुआ और बड़े क्रोधी माहेश्वरज्वरको शान्तदेखकर ॥ ४० ॥ वैष्णव ज्वर ने भी प्राप्तहोकर उस नदी में स्नानकिया और उसके प्रभावसे विष्णु व शिवजी से उपजे

सेनांभग्नसङ्कल्पां माहेशज्वरपीडिताम् ॥ ३६ ॥ ससर्जवैष्णवन्तापं कृष्णः परमकोपनः ॥ तैनसहवैष्णवस्य माहेश्वरज्वरेण च ॥ ३७ ॥ अन्योन्यमभवबुद्धं घोरं घोरतरं महत् ॥ सङ्ग्रामं बहुलं कृत्वा भग्नो माहेश्वरो ज्वरः ॥ ३८ ॥ सर्वलोकेषु गत्वा वै नशान्तिप्रतिजग्मिवान् ॥ महाकालवनेरम्ये प्राप्तस्तेनाभिपीडितः ॥ ३९ ॥ निमग्नश्चैव जिप्रायां तदंशान्तिपरं ययौ ॥ दृष्ट्वा माहेश्वरं शान्तं ज्वरं परमकोपनम् ॥ ४० ॥ वैष्णवोपि समासाद्य तस्यां मज्जनमाचरत् ॥ तस्याः प्रभावसन्नेष्टौ ज्वरौ हरिहरोद्भवौ ॥ ४१ ॥ तस्मात्सर्वेषु कालेषु ज्वरघ्नी सा भवत्क्षणात् ॥ ज्वराभिभूता ह्यासाद्य जनाः परमदुःखिताः ॥ ४२ ॥ निमज्जन्ति च शिप्रायां वसन्ति च समाहिताः ॥ न तेषां वाधते पीडा ज्वरोद्भूता कदाचन ॥ ४३ ॥ सत्यमुक्तं ददा व्यास ब्रह्मन् हरिहरेण च ॥ येश्चैव न्तिकथां दिव्यां नराश्चैकाग्रमानसाः ॥ ४४ ॥ न तेषां जायते किञ्चिज्ज्वरसन्तापं भयम् ॥ ४५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे क्षिप्रामाहात्म्ये ज्वरानुग्रहोनाम षष्ठितमोऽध्यायः ॥ ६० ॥

हुये ज्वर नष्ट होगये ॥ ४१ ॥ उस कारण सब कालोंमें वह क्षणभरमें ज्वरघ्नी हुई ज्वर से विकल व बड़े दुःखित जो मनुष्य वहा प्राप्त होकर ॥ ४२ ॥ सावधान होकर क्षिप्रा नदीमें स्नानकरतहैं व बसतहैं उनको कभी ज्वर से उपजी हुई बाधापीडा नहीं करती हैं ॥ ४३ ॥ उस समय हे ब्रह्मन्, व्यासजी ! विष्णु व माहेश्वरजी ने, सत्य कहा है व सावधान मनवाले जो मनुष्य इस उत्तम कथा को सुनते हैं ॥ ४४ ॥ उनको ज्वर व सन्ताप से उपजा हुआ कुछ भय नहीं होता है ॥ ४५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे देवीद्वयानुमिश्रविचितायाभाषाटीकायां क्षिप्रामाहात्म्ये ज्वरानुग्रहोनाम षष्ठितमोऽध्यायः ॥ ६० ॥

दो० । क्षिप्रानदी प्रभाव सन भई दमन की मुक्ति । इकसठिके अध्याय में सोइ कथा की उक्ति ॥ सनत्कुमारजी बोले कि हे परंतप ! जिसप्रकार क्षिप्रानदी पाप-नाशिनी प्रसिद्ध हुई है वैसीही मैं संक्षेप से कहता हूँ ॥ १ ॥ हे व्यासजी ! पुरातन समय सतयुग में बड़ा क्रोधी दमन राजा कीकट देशों में हुआ है ॥ २ ॥ जो कि सब धर्मों का नाशनेवाला व गऊ तथा ब्राह्मणों का निन्दक व मदिरा पीनेवाला, सुवर्ण छुरानेवाला और गुरुकी शय्यापै बैठनेवाला तथा अन्य के शुभमें द्वेष करने-वाला था ॥ ३ ॥ और प्रजाओंका सर्वस्व हरनेवाला व पराई स्त्रीसे प्रसंग करनेवाला तथा धूर्त व कपटी को संग करनेवाला, तुगल व चोर के आकारवाला था ॥ ४ ॥

सनत्कुमार उवाच ॥ पापनाशिनी विख्याता यथाक्षिप्रापयस्विनी ॥ तथाहंसम्प्रक्ष्यामि समासेन परन्तप ॥ १ ॥
पुराकृतयुगेव्यास दमनो नामैव नृपः ॥ कीकटेषु समाख्यातोराराजपरमकोपनः ॥ २ ॥ उत्थायी सर्वधर्माणां गोब्राह्मणानि
निन्दकः ॥ सुरापानीहेमहारी गुस्तल्पगमत्सरी ॥ ३ ॥ प्रजासर्वस्वहर्ता च परदारभिमर्शकः ॥ धूर्तको धूर्तसङ्गी च पि
शुनस्तस्कराकृतिः ॥ ४ ॥ गोशृङ्गपुरभेदी च निन्द्यो निन्द्यजनप्रियः ॥ कुत्सितः कोपपूर्णश्च वेदशास्त्रविवर्जितः ॥ ५ ॥
साधुसङ्गपरित्यागी दुष्टोदुष्टजनप्रियः ॥ कुलाङ्गनापरित्यागी परस्त्रीवृषलीपतिः ॥ ६ ॥ धर्मनिन्दाकरो नित्यगधर्मे
मतेमतिः ॥ नहूयन्तेन पूज्यन्ते न श्रूयन्ते कथाबुधैः ॥ ७ ॥ वेदायज्ञाश्च देवानां पुरंहृत् च ताड्यते ॥ एवं दुष्टतरो राजा
नभूतो न भविष्यति ॥ ८ ॥ स एकदा वनेधारे मृगयावनगोचरः ॥ इतस्ततो भ्रममाणो व्याधैः परितुतः खलः ॥ ९ ॥ नल

और गऊ गृह व नगरों को भेदन करनेवाला तथा निन्दनीय व निन्द्यजन उसको प्रिय थे और निन्दित व क्रोध से परिपूर्ण तथा वेद शास्त्र से रहित था ॥ ५ ॥ व साधु के साथ को छोड़नेवाला, दुष्ट व दुष्टलोग उसको प्यारे थे और कुल स्त्री को त्याग करनेवाला तथा पराई स्त्री व शूद्रा का पति था ॥ ६ ॥ और धर्म की निन्दा करनेवाला व नित्यही अधर्म में उसकी बुद्धि रमती थी और हवन नहीं किन्नेजाते थे व देवता नहीं पूजे जाते थे और विद्वान् लोग कथाओं को नहीं सुनते थे ॥ ७ ॥ और वेद व यज्ञ तथा देवताओं का नगर व बाजार नाश की जाती थी ऐसा अधिक दुष्ट राजा न हुआ है और न होगा ॥ ८ ॥ इधर उधर घूमता हुआ व बहेलियों से

धिरा वह दुष्ट राजा एकसमय भयकर वनमें शिकार के लिये वनगोचर हुआ ॥ ९ ॥ कुछ शिकार न मिला और लुधार्त, दुःखित व दुष्ट तथा संगरहित वह अकेला राजा महाकालवन के समीप आया ॥ १० ॥ वहां, भयंकर प्राणियों से सेवित व भयानक रात्रि प्राप्त हुई तब लुधा से विकल व सोने की इच्छावाला राजा वृक्ष की जड़में लौटकर ॥ ११ ॥ उस वृक्षमें घोंड़ को बांधकर आप भी बैठगया उसी समय वृक्ष से उसके मस्तक पै सर्प गिरपड़ा ॥ १२ ॥ यह क्या है व कहां से आश्चर्य प्राप्त हुआ यह कहकर हाथ से मना किया व उससमय उस दुष्ट सांपने राजा के अंगुष्ठों में काट खाया ॥ १३ ॥ और काटनेहीपर दुःखित होताहुआ राजा पृथ्वी में प्राप्त हुआ

व्यंखेटकं किञ्चित् शुधातौ दुःखितः खलः ॥ एकाकी सङ्गविगतो महाकालवनान्तिके ॥ १० ॥ रात्रिस्समागता तत्र घोरं
घोरनिषेविता ॥ वृक्षमूलमुपावृत्य शयनार्थं शुधादितः ॥ ११ ॥ तत्राश्वं विटपे बध्वा स्वयमेव न्यषीदत ॥ तदैव काले
वृक्षाद्वै तस्य शीर्ष्णरूपं गोपतत ॥ १२ ॥ किमिदं कुत आश्चर्यं कृत्वा हस्तेन वारितः ॥ तेन दुष्टेन वै राजा दष्टोद्गुप्टे तदाहिना ॥
१३ ॥ दष्टमात्रे तु नृपतिर्व्यथितः क्षितिमागतः ॥ कियत्काले व्यथितो मुमोह चोष्णमङ्गलः ॥ १४ ॥ तत्क्षणात् प्रेतभू
तौ सो बोरे नरकसञ्चये ॥ यमदूतैस्ताल्पमानो विविधास्त्रैस्स्वकर्मजैः ॥ १५ ॥ हर्षिताश्च गणास्सर्वे यमराजस्य किङ्कराः ॥
दष्टो बहूतरे काले पापिष्ठो यममन्दिरं ॥ १६ ॥ एतस्मिन्नन्तरे व्यास क्रव्यादैः खादितं शवम् ॥ किञ्चिच्छेषतरं प्राप्तं वाय
सेनाभिलक्षितम् ॥ १७ ॥ तत्र गत्वानयन्मांसं तु एतेन विपतङ्गतः ॥ ततो न्यैर्वायसैर्भग्नो भ्राम्यमाण इतस्ततः ॥ १८ ॥ तत्राग

व कुछ समय तक पीड़ा संयुत व नष्ट मंगलवाला राजा मोहित हुआ ॥ १४ ॥ व उसी क्षण मरकर यह राजा भयंकर नरक में यमदूतों से अपने कर्मों से उपजे हुये
अनेक भक्ति के अस्त्रों के द्वारा ताड़ित हुआ ॥ १५ ॥ और यमराज के सेवक सब गण प्रसन्न हुये कि बहुतही समय में यह पापी यमराज के मन्दिर में देख पड़ा ॥
१६ ॥ इसी अवसर में हे व्यासजी ! मांसभक्षी प्राणियों ने मुझे को खा डाला और कुछ बचे हुये मुझे को कौवा ने देखा ॥ १७ ॥ व वहां जाकर चोंचसे मांस को ग्रहण
करता हुआ वह कौवा आकाश में प्राप्त हुआ तदनन्तर अन्य कौवों से इधर उधर भ्रमाया जाता हुआ वह कौवा ताड़ित हुआ उसके उपरान्त ॥ १८ ॥ वहां आया जहां

किं क्षिप्रानदी थी और कुल्लूकर्म के फल से उस कौवा का मांस जाता रहा ॥ १९ ॥ और उस राजा के शरीर से उपजाहुआ वह मांस उस क्षिप्रानदी में गिरपडा व उस पुण्य के प्रभाव से वह उसीक्ष्ण शिव होगया ॥ २० ॥ त्रिलोचन व जटाजूट तथा व्याघ्र चर्म से विरा और त्रिशूल हाथवाला व बैलपै चढाहुआ, चन्द्रमाल, पार्वती-पति-शिवरूप होगया ॥ २१ ॥ इस आश्चर्यमय रूप को देखकर उन शिवजी के गणों से मारे व भगेहुये तिरस्कृत दूतोंने सभा में यमराज से कहा ॥ २२ ॥ कि हे महाराज, धर्मराज ! तुम्हारे लिये नमस्कारहै दूतों का बहुत आश्चर्यमय व परम सुन्दर जो वचन है उसको सुनिये ॥ २३ ॥ कि कीकट देशो का स्वामी, मूर्ख,

तोहियत्रास्ते दिव्याक्षिप्रापयस्विनी ॥ किञ्चित्कर्मविपाकेन वायसस्यगतंपलम् ॥ १९ ॥ पतितवैजलेतस्याः क्षिप्रा
यास्तस्यकायजम् ॥ तेनपुण्यप्रभावेन तत्क्षणात्सोभवच्छिवः ॥ २० ॥ त्रिनेत्रश्चजटाजूटव्याघ्राम्बरपरीवृतः ॥
शूलहस्तोवृषारूढो भालचन्द्रोह्युमापतिः ॥ २१ ॥ इत्याश्चर्यमयंरूपं दृष्ट्वादूताश्चर्यर्षिताः ॥ तद्गुणैस्ताडिताभगना धर्म
राजायमंसदि ॥ २२ ॥ श्रूयताम्भोमहाराज धर्मराजनमोस्तुते ॥ दूतानांयद्वचोरम्यं ब्रह्माश्चर्यमयम्परम् ॥ २३ ॥
कीकटाधिपतिर्मन्दो पापिष्ठावृषलीपतिः ॥ मदनोनामराजाभूत्समस्तेक्षितिमण्डले ॥ २४ ॥ यानिकानिचपागानि
ब्रह्महत्यासमानिच ॥ तानिसर्वाणितेनापि कृतानिभुविसत्तम ॥ २५ ॥ मर्यादाभेदकोमूढो वर्णाश्रमविभेदकः ॥ कुस
ङ्गीधूर्तकोन्मादी बहुव्यूङ्गभरःखलः ॥ २६ ॥ यमदण्डपरःपापी ह्यस्माकंहर्षवर्द्धनः ॥ सकथंशिवरूपीस्यात् किमाश्चर्यं
मतःपरम् ॥ २७ ॥ यावन्तःपतिताःपूर्वं पापिनस्सर्वएवहि ॥ कृष्णेनतारितास्सर्वे ब्रह्मपुत्रार्थिनातदा ॥ २८ ॥ तदाप्र

पापी व शूद्रा का पति मदन नामक समस्त पृथ्वी में राजा हुआहै ॥ २४ ॥ हे सत्तम ! ब्रह्महत्याके समान जो कोई पातकहै उन सबको भी उसने पृथ्वीमें कियाहै ॥ २५ ॥
और जो मर्यादा को नष्ट करनेवाला, मूर्ख तथा वर्णों व आश्रमों का निन्दक, दुष्टसगी, कपटो, मतवाला व बहुत व्यंगोंको धारण करनेवाला और दुष्ट था ॥ २६ ॥
और यमराज के दण्ड से पूर्ण व पापी तथा हमलोगों के आनन्दको बढ़ानेवाला था वह कैसे शिवरूपी होवैहै इससे अन्य क्या आश्चर्य होवै ॥ २७ ॥ पहले जितने

पापी पतित हुयेथे वे सबही उस समय ब्रह्माके पुत्र सनकादिकों को चाहनेवाले श्रीकृष्णजी से तौरगये ॥ २८ ॥ बड़े खेदकी बात है कि तबसे लोगोकर नरकके सब कुंड सूखे देखपड़तेहैं जैसे कि ग्रीष्म ऋतु के अन्तमें कुण्ड होवें ॥ २९ ॥ तुम्हारे मन्दिर में दुःखित लोगों का कोई शब्द नहीं सुनपड़ता है हम लोगोका जीवन नहीं है इससे हम सबों से किमी उपाय को कहिये ॥ ३० ॥ दैवके बलसे संसार में एकही हमलोगों की जीविका को देनेवाला आया था वह भी शिवताको प्राप्त होगया तो हमलोगों का जीवन किससे ब किसप्रकार होगा ॥ ३१ ॥ उस समय धर्मराजने दूतों के उत्तम वचन को सुनकर व बहुत दैर्तक ध्यानेकर अपने गणों से देश व

भृतिसर्वाणि कुण्डानिनरकस्यैव ॥ शुष्काणिवतदृश्यन्ते ग्रीष्मान्तैर्वैहृदायथा ॥ २९ ॥ नैवार्तानां रवः कश्चिच्छ्रूयते तवमन्दिरं ॥ अस्माकं जीवन्नास्ति कमुपायं वदस्व नः ॥ ३० ॥ एकएवागतोलोके वृत्तिदोनो विधेर्वलात् ॥ सोपिशिवत्वमापन्नः कस्मान्नो जीवितं कथम् ॥ ३१ ॥ धर्मराजस्तदाश्रुत्य किङ्कराणां परंवचः ॥ चिरन्ध्यात्वास्वकान् प्रोचे देशकालोचितंवचः ॥ ३२ ॥ धर्मराजोवाच ॥ शृण्वन्तु भोगाणाम् सर्वे भूत्वचैकाग्रमानसाः ॥ येन पुण्यप्रभावेन पापिष्ठुडिशवताङ्गतः ॥ ३३ ॥ भुवि पुण्यतमदेशे महाकालवने शुभे ॥ क्षिप्रानामसरिच्छेष्टा सर्वपापहरापरा ॥ ३४ ॥ येषां क्षिप्रोदकस्पर्शो जायते भुविकिङ्कराः ॥ न तेषां पातकं किञ्चिन्मृतस्मरपुरं व्रजेत् ॥ ३५ ॥ मनसा वपुषा वाचा पापानि विविधानि च ॥ तत्क्षणान्प्रलययान्ति क्षिप्रासरिन्निषेवणात् ॥ ३६ ॥ क्षिप्रानि प्रेतियो ब्रूते यत्र कुत्रापि मानवः ॥ स एव शिवतां याति न

समय के योग्य वचन को कहा ॥ ३२ ॥ धर्मराज बोले कि हे समस्तगणो ! सावधान मनवाले होकर सुनिये कि जिस पुण्य के प्रभाव से पापी शिवत्व को प्राप्त हुआ है ॥ ३३ ॥ कि पृथ्वीपै अत्यन्त पवित्र देश में महाकाल नामक उत्तम वनमें समस्त पापों को हरनेवाली क्षिप्रानामक उत्तम श्रेष्ठ नदी है ॥ ३४ ॥ हे दूतो ! पृथ्वी में जिनको क्षिप्रानदी के जलका स्पर्श होता है उनके कुछ पातक नहीं रहता है और वह मरकर स्वर्ग को जाता है ॥ ३५ ॥ क्षिप्रानदी के सेवन से मन, देह व वचन से किये हुये अनेकभाति के पातक उसीक्षण नाशको प्राप्त होतेहैं ॥ ३६ ॥ जहा कहीं भी जो मनुष्य क्षिप्रा क्षिप्रा ऐसा कहता है वही शिवता को प्राप्त हो-

ताहै और स्नान से उपजे हुये फलको मैं नहीं जानताहूँ ॥ ३७ ॥ जहांपर कीट पतंगादिक व जो क्षिप्रानदी के जलचारी जन्तुहैं और जो महापातकी होतेहैं वे भी यहां मरकर शिवस्थान में प्राप्त होतेहैं ॥ ३८ ॥ वैशाख महीना प्राप्तहोनेपर जो उत्तम मनुष्य क्षिप्रानदीमें स्नान करतेहैं उनको कोई नरक नहीं होताहै और वे शिवरूप होकर विचरते हैं ॥ ३९ ॥ अपराध कियेहुये उस राजा के मांस को कौताने हरलिया और क्षिप्रानदी के गहरे जलमें फेंकदिया उस विषयमें क्या शोच है ॥ ४० ॥ बावली, कूप व तड़ागादिकों में जो, अधिक फल कहागया है उससे दशगुना पुण्य नदियों में होता है ॥ ४१ ॥ उससे दशगुनी तापी नदी है और उससे अधिक

जानेस्नानजंफलम् ॥ ३७ ॥ यत्रकीटपतङ्गाद्याः क्षिप्रावारिचराश्चये ॥ महापातकिनोयेते मृतायान्तिशिवालये ॥ ३८ ॥ माधवेमासिसम्प्राप्ते निमज्जन्तिनरोत्तमाः ॥ नतेषांन्निरयः कश्चिच्छिवरूपाश्चरन्ति ॥ ३९ ॥ वायसेनाहृतं मांसं तस्य राज्ञः कृतागसः ॥ क्षिप्रागाधजलेक्षिप्तं कातत्रपरिदेवना ॥ ४० ॥ वापीकूपतडागादिष्वधिकं यत्फलं स्मृतम् ॥ तस्माद्दशगुणं पुण्यं नदीषु ह्युपजायते ॥ ४१ ॥ तस्माद्दशगुणा तापी गोदापुण्याततोधिका ॥ तस्माद्दशगुणरेवा गङ्गा पुण्याततोधिका ॥ ४२ ॥ तस्माद्दशगुणा क्षिप्रा पवित्रा पापनाशिनी ॥ दमनस्य शरीरस्य मांसं क्षिप्रा समागतम् ॥ ४३ ॥ तेन पुण्यप्रभावेन शिवरूपधरो भवत् ॥ ईदृशी च नदीरम्या अवन्त्यां भुवि वर्तते ॥ ४४ ॥ वाञ्छन्ति देवतास्सर्वा दुर्लभं तस्य दर्शनम् ॥ धर्मराजवचश्चुत्वा गणा विस्मयमागताः ॥ ४५ ॥ मनसा च निरतङ्काः क्षिप्रा शरणमागताः ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ तदा प्रभृति समाख्याता क्षिप्रेयं पापनाशिनी ॥ ४६ ॥ गीयते च पुराणेषु तस्या माहात्म्यमुत्त

पुण्यदायिनी गोदावरीहै उससे दशगुनी रेवा (नर्मदा) और उससे अधिक पुण्यदायिनी गंगा नदी है ॥ ४२ ॥ व उससे दशगुनी पवित्र व पाप नाशिनी क्षिप्रानदी है दमनके शरीर का मांस क्षिप्रानदीमें प्राप्तहुआ ॥ ४३ ॥ उग पुण्यके प्रभावसे वह शिवरूपधारी हुआ पृथ्वीपर ऐसी सुन्दरी नदी अवन्ती पुरीमें वर्तमान है ॥ ४४ ॥ और सब देवता उसके दुर्लभ दर्शन की इच्छा करते हैं धर्मराज के वचन को सुनकर गण विस्मय को प्राप्तहुये ॥ ४५ ॥ और मन से निश्चिन्त होकर क्षिप्रा नदी की शरण में आये सनत्कुमारजी बोले कि तबसे लगाकर यह क्षिप्रा पापनाशिनी कहीं गई है ॥ ४६ ॥ और उसका उत्तम माहात्म्य व दमन राजा की सुक्ति पुराणोंमें

गाई जाती है और क्षिप्रा नदी के उत्तम माहात्म्यको ॥ ४७ ॥ यमदूतों के संवाद में सुनकर निरसंदेह मुक्ति होती है ॥ ४८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे देवीदयालुमि
श्रविरचितायां भाषाटीकायां क्षिप्रामाहात्म्यवर्णनमैकषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६१ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥
दो० । क्षिप्रा नदिंकर भयोजिमि अमृतोद्भवा सुनाम । बासठि के अध्याय में सोइ कथा अभिराम । सनत्कुमारजी बोले कि हे महाबुद्धे, व्यासजी ! क्षिप्रानदी के
उत्तम माहात्म्य को सुनिये कि जिसप्रकार नागों से संमत पाताल में अमृतभवा कहीं गई है ॥ १ ॥ एक समय बुधित शिवजी भिक्षा के लिये हाथ में कपालको लेकर
मम ॥ दमनस्य च निमुक्तिः क्षिप्रामाहात्म्यमुत्तमम् ॥ ४७ ॥ संवादयमदूतानां श्रुत्वा मुक्तिर्न संशयः ॥ ४८ ॥ इति श्री
स्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे क्षिप्रामाहात्म्यवर्णनमैकषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६१ ॥ * ॥

सनत्कुमार उवाच ॥ शृणु व्यास महाबुद्धे क्षिप्रामाहात्म्यमुत्तमम् ॥ यथा मृत भवाख्याता पातालैनागसम्मते ॥
१ ॥ एकदारुद्रो भिक्षार्थं नागलोकैर्बुभुक्षितः ॥ करे कपालमादाय भोगवत्यां समागतः ॥ २ ॥ भिक्षां देहि वचो दीनमि
त्युवाच गृहे गृहे ॥ भिक्षा के नापिनोदत्ता बुधितस्य च धूर्जटे ॥ ३ ॥ तदा क्रोधो धाभि रक्ताक्षः शूलपाणिः क्षुद्रादितः ॥ अ
मित्राच पुरीं सर्वा शनैर्बाहिर्विनिययौ ॥ ४ ॥ एकविंशतिकुण्डानि पीयूषस्य द्विजोत्तम ॥ यत्र तिष्ठन्ति सर्वाणि नागलो
कस्य रक्षणे ॥ ५ ॥ तत्र गत्वा स भगवाञ्छ्वम्भुस्सर्वात्मसम्भवः ॥ अपि वन्नेत्रमार्गेण तृतीयेन च शङ्करः ॥ ६ ॥ रिक्तान्य
मृतकुण्डानि कृत्वा तत्रैव सोत्थितः ॥ कम्पितञ्च तदालोकं नागानां सर्वतो मुखम् ॥ ७ ॥ कस्येदं कर्म किञ्जातं सुधाय
नागलोकं भोगवती पुरी में भलीभांति आये ॥ २ ॥ और भिक्षाको दीजिये ऐसे दीनवचन को उन्होंने घर २ में कहा व बुधित शिवजी को किसीने भी भिक्षा नहीं
दिया ॥ ३ ॥ तब क्रोध से लालनेत्रवाले व त्रिशूल हाथवाले तथा बुवा से निकल शिवजी सब पुरी में धीरे धीरे घूमकर बाहर निकले ॥ ४ ॥ हे द्विजोत्तम ! जहाँपर
नागलोक की रक्षा में अमृत के सब इक्षीस कुण्ड स्थित हैं ॥ ५ ॥ वहाँ जाकर सर्वात्मसम्भव (सर्वव्यापी) उन कल्याणकारक शिव भगवान् ने तीसरे नेत्रमार्ग से
अमृत के कुंडोंको पी लिया ॥ ६ ॥ और वहाँपर अमृत के कुंडों का लोक कंपित हुआ ॥ ७ ॥

और किस का यह कर्म है व क्या हुआ कि जिससे यहाँ से अमृत जातारहा यह कह कर तदनन्तर वासुकि आदिक सब नाग ॥ ८ ॥ बड़े अति क्रमसे शंकित होकर वे नगरसे बाहर निकले व यह बोले कि क्याकरै व कहां जावै किसने यह अपमान किया ॥ ९ ॥ कि जिस क्रोधित ने उच्चम अमृत को व हमलोगों के जीवन को नाश किया इसलिये हे नागो ! हमलोग कैसे जियेंगे ॥ १० ॥ यह कहकर स्त्री बालक व परिवार समेत सब नाग शंकित होकर मनसे विधुली की शरण में गये ॥ ११ ॥ उनके अनुग्रह के लिये आकाशवाणी बोली कि हे सब नागो ! सुनिये तुम लोगों ने देवता का अपमान किया ॥ १२ ॥ जुधा से विकल व कपाल

स्मादितोगता ॥ इत्युक्त्वाचततस्सर्वे नागावासुकिपुरोगमाः ॥ ८ ॥ महदतिक्रमाशङ्काः पुरात्तेचवहिर्ययुः ॥ किंकुर्मः कचगच्छामः केनेदंहेलनंकृतम् ॥ ९ ॥ येनास्माकंप्रकुप्तेन हतंचासृतमुत्तमम् ॥ अस्माकंजीवनंतस्मात्कथंजीवाम पन्नगाः ॥ १० ॥ इत्युक्त्वापन्नगास्सर्वे सस्त्रीबालपरिग्रहाः ॥ हरिंप्रजगमुद्गरणं मनसापरिशङ्किताः ॥ ११ ॥ तेषामनुग्रहार्था विदित्वातिथिवेलांस कपालकरभिक्षुकः ॥ १२ ॥ भिक्षार्थमागतश्शम्भुः क्षुधार्तश्चगृहेगृहे ॥ धितोधर्मविग्रहः ॥ १३ ॥ सादत्ताहिनकेनापि भोगवत्यापिनाकिनः ॥ तदावहिर्गतोनाथः क्षु तत्रैकवैसरिच्छेष्टा क्षिप्रानामेतिविश्रुता ॥ ययंप्रयातपातालान्महाकालवनोत्तमे ॥ १४ ॥ यस्यादर्शनमात्रेण स र्वपापक्षयोभवेत् ॥ तत्रगत्वाभवद्भिश्च स्नानंकार्यंयथाविधि ॥ १५ ॥ भजनन्देवदेवस्य ततःपूतामविष्यथ ॥ भजनाहे हाथवाले वे भिक्षुक शिवजी अतिथि समय को जानकर घर घर में भिक्षाके लिये आये ॥ १६ ॥ जब पिनाकधारी शिवजी को भोगवती पुरीमें किसी ने भी उस भिक्षा को नहींदिया तब क्षुधित व धर्मशरीरवाले शिवजी बाहर चलेगये ॥ १७ ॥ हे नागोत्तमो ! उसीसे कुण्डों के मध्यमें सब अमृत नाश होगया तुम लोग पाताल से देनेवालीहै ॥ १८ ॥ वहाँ क्षिप्रा ऐसे नामसे प्रसिद्ध एक श्रेष्ठनदी है और यह नदी त्रिलोकको पवित्र करनेवाली व सब कामनाओंके फल को

तदनन्तर पवित्र होवोगे देवदेव शिवजी के भजनसे व क्षिप्रा नदी के जलमें स्नान से ॥ १८ ॥ हे नागो ! उसके उपरान्त तुम लोगोंके लोकमें अमृत होगा उन नागों से ऐसा कहकर हे व्यासजी ! उस समय लोकसाक्षिणी दिव्यवाणी अचानकही वहीं अन्तर्द्धान होगई देवतासे कही हुई वाणीको सुनकर व वैमाही होगा यह कहकर श्री, बालक व वृद्धों समेत नाग महाकालवन को गये और वहाँ जाकर त्रिलोकसे प्रणाम की हुई नदी को उन्होंने ने देखा ॥ १९ । २० । २१ ॥ जो कि सब कहीं कुशों से व्याप्त व वृक्षों की छाया से परिश्रम रहित तथा हंसों व कारण्डव पक्षियों से पूर्ण व मणि, मोती और मृंगाओंवाली थी ॥ २२ ॥ और मणियों के सोपानों से

वदेवस्य शिप्रासलिलमज्जनात् ॥ १८ ॥ भविष्यतिततस्सद्यस्सुधालोकेतुवोरगाः ॥ इतिसम्भाष्यतान्नागान् तत्रैवान्तर्धायत ॥ १९ ॥ वाणीव्यासतदादिव्या सहसालोकसाक्षिणी ॥ श्रुत्वादेवैरितांवाणीं तथेत्युक्त्वाचपन्नगाः ॥ २० ॥ सस्त्रियोबालवृद्धाश्च महाकालवनंययुः ॥ तत्रगत्वाददृशुस्तेनर्दानैलोक्यवन्दिताम् ॥ २१ ॥ सर्वत्रकुशसमाकीर्णी तरुच्छायागतश्रमाम् ॥ हंसकारण्डवाकीर्णी मणिमुक्ताप्रवालकाम् ॥ २२ ॥ मणिसोपानरचितां पद्मखण्डैश्चमण्डिताम् ॥ सायंप्रातःस्थिताविप्रास्सन्ध्योपासनतत्पराः ॥ २३ ॥ ऋषयश्चमहाभागा भृगुराङ्गिरसादयः ॥ सगन्धर्वाश्चतत्रैव नारदाद्यास्सुरर्षयः ॥ २४ ॥ वसवश्चतथादित्यावश्विनौमरुतस्तथा ॥ रुद्रास्साध्याश्चदेवाश्च पितरोविमलाशयाः ॥ २५ ॥ उपासतेचक्षिप्रां वै सन्ध्याकालेसमाहिताः ॥ ऋषिपत्नीमहाभागा देवकन्याप्सरोगणाः ॥ २६ ॥ पतिव्रतामहाभागास्तत्रैवपतिनासह ॥ उपासन्तेसदाचारा वर्णाश्रमपुरोगमाः ॥ २७ ॥ राजर्षयस्समासीना निर्वोणपदवीर्जिताः ॥

रचित व कमलसमूहों से शोभित थी और वहाँ सायंकाल व प्रातःकाल में सन्ध्योपासन में परायण ब्राह्मण स्थित थे ॥ २३ ॥ व बड़े ऐश्वर्यवाले भृगु व आगिरस आदिक ऋषिलोग स्थित थे और वहीं पर गंधर्वोंसमेत नारदादिक देवर्षि थे ॥ २४ ॥ वसु, आदित्य, अश्विनीकुमार व पवन, रुद्र, साध्य, देवता और निर्मल आशयवाले पितर ॥ २५ ॥ सावधान होकर संध्या समय क्षिप्रानदी की उपासनाकरते हैं और ऋषिलियां व बड़े ऐश्वर्यवाली देवकन्या व अप्सराओं के समूह ॥ २६ ॥ और महाऐश्वर्यवती पतिव्रता स्त्रियां पतिसेमेत वहीं उपासना करती हैं व वर्णों तथा आश्रमों के अग्रगामी उत्तम आधारवाले ॥ २७ ॥ बैठेहुये राजर्षिलोग

मोक्षकी पदवी को प्राप्त होकर वहां धर्मों की व सब महादानोंको करते हैं ॥ २८ ॥ और सिद्ध व शान्त योगेश्वर तथा प्रशंसित नियमोंवाले तपस्वी व अनेक प्रकार के देशों में उपजे हुये यात्रीलोग आकर ॥ २९ ॥ पुरुषों व स्त्रियों से संयुक्त वे क्षिप्रानदी के किनारे बैठे हैं हे व्यासजी ! त्रिलोक से बन्धित ऐसी अमृतमयी सब नदी को देखकर नाग बड़े प्रसन्न हुये और स्नान, दानादिक को करके उन्होंने महादेवकी उपासना किया ॥ ३० ॥ ३१ ॥ और सब नागोत्तमों ने वेदोक्त विधि से यज्ञ-कर्म (कर्पूर अगुरु, कस्तूरी व कंकाल से रचित वस्तु) का लेपन व पंचांगपूर्वक स्नान किया ॥ ३२ ॥ और अनेक प्रकार के पुष्पों व अन्नतों समेत और बसन, माला,

कुर्वतेतत्रधर्माणि महादानानिसर्वशः ॥ २८ ॥ सिद्धायोगेश्वराश्शान्तास्तापसास्मंशितव्रताः ॥ नानादेशोद्भवालोका
यात्रिणास्समुपागताः ॥ २९ ॥ क्षिप्राकूलेसमासीना नरनारीसमन्विताः ॥ एवंविधांसमालोक्य व्यासत्रैलोक्यवंदिता
म् ॥ ३० ॥ नदींसुधामयींसर्वां नागाःपरमहर्षिताः ॥ स्नानदानादिकंकृत्वा महादेवमुपासिरे ॥ ३१ ॥ वेदोक्तविधिनास
र्वं चक्रुःपन्नगसत्तमाः ॥ पञ्चाङ्गपूर्वकंस्नानं यक्षकर्मलेपनम् ॥ ३२ ॥ अम्लानपङ्कजांमालां नानापुष्पाक्षतैस्तथा ॥
वासःस्नानुलेपाद्यैश्चन्दनैर्गन्धधूपैकैः ॥ ३३ ॥ दीपदानादिनैवेद्यैस्ताम्बूलमथदक्षिणाम् ॥ कर्पूरार्तिकरास्सर्वे महा
देवमुपागताः ॥ ३४ ॥ स्तुतिमारोभिरेकर्तुं सुधाकामास्तदोरगाः ॥ सर्पाञ्जुः ॥ नमोनन्तायबृहते सर्वदेवनमोनमः ॥
३५ ॥ चन्द्रचूडनमस्तेस्तु जटामुकुटधारिणे ॥ शेषहारनमस्तेस्तु चिताभस्माङ्गधारिणे ॥ ३६ ॥ कृत्तिवासनमस्तेस्तु
घस्मरायनमोनमः ॥ त्रिपुरघ्ननमस्तेस्तु स्मरान्तकनमोस्तुते ॥ ३७ ॥ मृगव्याधनमस्तेस्तु गिरीशायनमोनमः ॥

अनुलेपनादिकों से व चन्दन, गंध तथा धूपोंसहित प्रफुल्लित कमलोंवाली माला को लेकर ॥ ३३ ॥ और दीप दानादिक नैवेद्यों समेत तांबूल व दक्षिणा को लेकर
कर्पूर की आरतीको हाथमें लिये सब नाग महादेवजीके समीप आये ॥ ३४ ॥ व उस समय अमृत की इच्छावाले नागोंने स्तुतिकरने के लिये प्रारंभ किया सर्प
बोले कि बृहत् व अनन्तके लिये नमस्कारहै व हे सर्वदेव ! तुम्हारे लिये नमस्कारहै ॥ ३५ ॥ हे चन्द्रचूड ! जटा मुकुटको धारनेवाले तुम्हारे लिये नमस्कारहै
हे शेषहार ! चिताभस्माङ्गधारी तुम्हारे लिये नमस्कारहै ॥ ३६ ॥ हे कृत्तिवास ! तुम्हारे लिये नमस्कारहै व घस्मर के लिये नमस्कारहै ॥ ३७ ॥ हे त्रिपुर

नाशक ! तुम्हारे लिये नमस्कार है हे कामदेवविनाशक ! आपके लिये नमस्कार है हे मृगव्याध ! तुम्हारे लिये नमस्कार है व गिरिशजी के लिये नमस्कार है नमस्कार है हे सर्वकामफलप्रद, शङ्करात्मन् ! तुम्हारे लिये नमस्कार है ॥ ३८ ॥ हे सर्वबीजसमुद्भव, सर्वसाक्षिन् ! तुम्हारे लिये प्रणाम है हे विद्यवासा ! तुम्हारे लिये नमस्कार है और अमृतस्रवके लिये प्रणाम है ॥ ३९ ॥ हे काम्य काम, सर्व कामवरप्रद ! तुम्हारे लिये नमस्कार है व शान्तरूप शिवजी के लिये प्रणाम है तथा पशुपतिजी के लिये नमस्कार है ॥ ४० ॥ दान्त मृड (शिव) जी के लिये प्रणाम है व शान्तरूप के लिये प्रणाम है इसप्रकार नागों से प्रसन्न कराये हुये भगवान् शिवजी ॥ ४१ ॥ प्रत्यक्षही प्रसन्न

शङ्करात्मन्नमस्तेस्तु सर्वकामफलप्रद ॥ ३८ ॥ सर्वसाक्षिन्नमस्तेस्तु सर्वबीजसमुद्भव ॥ दिव्यहासनमस्तेस्तु नमोमृतस्रवा
यच ॥ ३९ ॥ काम्यकामनमस्तेस्तु सर्वकामवरप्रद ॥ नमश्शिवायशान्ताय पशूनांपतयेनमः ॥ ४० ॥ नमोमृडा
यदान्ताय शान्तरूपायैवैनमः ॥ एवं प्रसादितो नागैर्भगवान्पृषमध्वजः ॥ ४१ ॥ प्रसन्नवदनो भूत्वा प्रत्यक्षं प्राह पन्नगा
न् ॥ ४२ ॥ श्रीमहादेव उवाच ॥ श्रूयतामुरगास्सर्वे वचस्तथ्यं वदामिवः ॥ ४३ ॥ एकदानांगलोकैस्तु भिक्षणार्थगतो
स्म्यहम् ॥ गृहे गृहे भोगवत्यां विचरन् क्षुधितो भृशम् ॥ ४४ ॥ कपालं च करे कृत्वा धृत्वा कन्थां सुचौरकाम् ॥ अप्राप्तमि
क्षो भिक्षार्थी पुनरागात्ततो गृहम् ॥ ४५ ॥ तेन पापप्रसङ्गेन सुधानष्टातदालयात् ॥ किञ्चित्पुण्यप्रसङ्गेन महाकालवनो
त्तमे ॥ ४६ ॥ यूयं प्राप्ता महाभागा हित्वानागालयोत्तमम् ॥ बालवृद्धैः स्त्रिमिस्साकं दृष्टा शिप्रासरिद्वरा ॥ ४७ ॥ यस्या

मुखहोकर नागों से बोले ॥ ४२ ॥ श्रीमहादेवजी बोले कि हे समस्त नागो ! सुनिये मैं तुम लोगों से सत्य वचन को कहता हूँ ॥ ४३ ॥ एक समय नाग लोक में मैं भिक्षा के लिये गया व भोगवती पुरी में घर घर घूमता हुआ मैं बहुत ही क्षुधित हुआ ॥ ४४ ॥ तदनन्तर कपाल को हाथ में कर व उत्तम बसनवाली गुदड़ी को धरकर भिक्षा को न पाकर भिक्षा को चाहनेवाला मैं फिर घरको आया ॥ ४५ ॥ तब उसी पापके प्रसंग से अमृत स्थान से नष्ट होगया और कुछ पुण्यके प्रसंग से बड़े ऐश्वर्यवाले तुम लोग उत्तम नागस्थान को छोड़कर महाकाल नामक उत्तम वन में प्राप्त हुये और बालक, वृद्ध व स्त्रियों से मत तुम सभी ने क्षिप्रानामक उत्तम नदी को

देखा ॥ ४६।४७ ॥ कि पुरातन समय जिसके दर्शनहीं में मैं पाप रहित हुआ हूँ क्षिप्रा के स्नान से उपजा हुआ पुण्य किसी से नहीं कहाजासक्ता है ॥ ४८ ॥ हे नागो ! पृथ्वी में इसके दर्शन से मनुष्य उसी क्षण शिवहोजाता है उसी कारण सब नागोत्तमों ने क्षिप्रा नदी में स्नानकिया ॥ ४९ ॥ और उम पुण्यके प्रभाव से तुम लोगों के घर घरमें अमृत होवैगा। क्षिप्रा नदी के पवित्र जलको लेकर कुंडों में छिड़क दीजिये ॥ ५० ॥ उससे हे नागोत्तमो ! ये इक्कीस स्थिर कुण्ड अमृतसे पूर्ण होजावेंगे ॥ ५१ ॥ वैसाही होगा यह कहकर ये सब महोदेवजी को प्रणाम कर व हाथोंसे क्षिप्रानदी के जलको धरकर अपने लोकको चलेगये ॥ ५२ ॥ तबसे लगाकर वह

दर्शनमात्रेण निष्पापोस्मिअहंपुरा ॥ क्षिप्रायाःस्नानजंपुण्यं वक्तुंशक्यन्नकेनचित् ॥ ४८ ॥ दर्शनाज्जायतेशम्भुस्तत्त्वणाद्भुविपन्नगाः ॥ तस्मात्स्नानंकृतंसर्वैः क्षिप्रायांपन्नगोत्तमैः ॥ ४९ ॥ तेनपुण्यप्रभावेन सुधावोस्तुष्टहेगृहे ॥ नीत्वाक्षिप्रोदकंपुण्यं कुण्डेषुपरिषेचय ॥ ५० ॥ तेनैतानिहिकुण्डानि अमृतैर्नैकविंशतिः ॥ सम्पूर्णानिभविष्यन्ति स्थिराणिपन्नगोत्तमाः ॥ ५१ ॥ तथेत्युक्त्वाचतेसर्वे धृत्वाक्षिप्रोदकंकरैः ॥ गतास्तैवैस्वकंलोकं नमस्कृत्वामहेश्वरम् ॥ ५२ ॥ ततःप्रभृतिसाक्षिप्रा जातानागेमृतोद्भवा ॥ सर्वलोकैषुविख्याता व्यासक्षिप्रामृतोद्भवा ॥ ५३ ॥ यएतस्यांप्रकुर्वन्ति नराःस्नानादिकंभुवि ॥ नतेषान्दुष्कृतंकिञ्चिन्नापदोनचदुर्गतिः ॥ ५४ ॥ नवियोगोभवेत्तेषां पुत्रदारादिकैःकदा ॥ नचमित्राणिदुष्यन्ति नरोगोनदरिद्रता ॥ ५५ ॥ कथापापहरापुण्या सर्वकामवरप्रदा ॥ पठनाच्छ्रवणाद्वापि गोसहस्रफलंलभेत् ॥ ५६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेक्षिप्राया अमृतोद्भवानामकथनंनमद्विषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६२ ॥

क्षिप्रा अमृतोद्भवा हुई और हे व्यासजी ! क्षिप्रा सबलोकों में अमृतोद्भवा प्रसिद्ध हुई ॥ ५३ ॥ पृथ्वी में जो मनुष्य इसमें स्नान, दानादिक करतेहैं उनके कुछपातक नहीं रहताहै और न आपत्तियां होतीहैं न दुर्दशा होतीहै ॥ ५४ ॥ और पुत्रों व स्त्री आदिकों से उनका कमी वियोग नहीं होताहै और मित्र विकारको नहीं प्राप्तहोते हैं व रोग तथा दरिद्रता नहीं होती है ॥ ५५ ॥ यह कथा पापहरिणी व पवित्र तथा सब कामनाओं को देनेवाली है इसके पढ़ने व सुनने से मनुष्य गोसहस्र के फल को प्राप्त होताहै ॥ ५६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदेवीदयालुमिश्राविरचितायांभाषाटीकायांअमृतोद्भवानामकथनंनमद्विषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६२ ॥ ॐ ॥

दो० । विष्णु भूमि उद्धरन् हित धत्तो वराहास्वरूप । तिरसित्वे अध्याय में सोई चरित श्रुत्वा ॥ सनत्कुमारजी बोले कि हे महाभाग ! क्षिप्रार्के उत्तम माहात्म्यको फिर सुनिये कि जिसके सुननेही से अक्षरमेव यज्ञका फल होता है ॥ १ ॥ क्षिप्रा नदी सबकहीं पुण्यदायिनी व अतिपवित्र तथा पापहारिणी है और श्रवन्ती पुरीमें क्षिप्रा नदी विशेष कर पाप हारिणी है ॥ २ ॥ तथापि उसकी उत्पत्ति को विस्तार से कहतेहुये मुझसे सुनिये कि जिसप्रकार विष्णुजी की देहसे उपजी हुई कल्याणकारिणी क्षिप्रानदी बाराह की कन्या हुई है ॥ ३ ॥ हे व्यासजी ! पुराणवाली पवित्र व उत्तम कथा को सुनिये पुरातनसमय बड़ा बलवान् हिरण्यक्ष महादैत्य हुआ है ॥ ४ ॥

सनत्कुमार उवाच ॥ भूयःशृणुमहाभाग क्षिप्रामाहात्म्यसुत्तमम् ॥ यस्यश्रवणमात्रेण हयमेधफलं लभेत ॥ १ ॥ क्षिप्रार्कसर्वत्रपुण्यातिपवित्रापापहारिणी ॥ श्रवन्त्यांचविशेषेण क्षिप्रवैपापहारिणी ॥ २ ॥ तथापितत्समुत्पत्तिं विस्तारदत्तौ मम ॥ यथावाराहतनया विष्णुदेहोद्भवा शिवा ॥ ३ ॥ शृणुव्यासमहापुण्यां कथाम्पौराणिकीं शुभाम् ॥ पुरा महासुरोजातो हिरण्याक्षो महाबलः ॥ ४ ॥ स इमां सकलां पृथ्वीं वशीकृत्वा चकार ह ॥ राज्यं च सार्वभौमानां दानवैश्च दुरात्मभिः ॥ ५ ॥ जित्वा च सकलौल्लोकान् सुरानिन्द्रपुरोगमान् ॥ दिक्पालान् वसुपालांश्च तिरस्कृत्या सुराधिपः ॥ ६ ॥ सर्वैश्च सर्वकामेभ्यः स्वयमेवाधितिष्ठति ॥ स्वर्गान् निराकृताः सर्वे तेन देवगणाभुवि ॥ ७ ॥ विचरन्ति यथा मर्त्या भ्रष्टराज्याः पराजिताः ॥ अलब्धशरणाः सर्वे ब्रह्माणं शरणं ययुः ॥ ८ ॥ तत्र गत्वा नमस्कृत्वा दैत्यकृत्यं न्यवेदयन् ॥ भगवन् किमिदं कार्यं भवता परमोष्ठिना ॥ ९ ॥ येन देवगणाः सर्वे नष्टप्रायाश्च तत्क्षणात् ॥ हिरण्याक्षेण दैत्येन हतं स्वर्गमकण्ट

दुष्ट दानवों समेत उसने इस सब पृथ्वी को वश कर सार्वभौमों की राज्य किया है ॥ ५ ॥ और सबलोकों को जीत कर व इन्द्रादिक दिक्पाल देवताओं को तथा सब वसुपालों को तिरस्कार कर यह असुरेश समस्त कामनाओं समेत स्थित हुआ है उसने देवगणों को स्वर्गसे भूमि में निकाल दिया ॥ ६ ॥ और छेदेहुये राज्यवाले वे पराजित देवता मनुष्यों की नाई विचरने लगे व शरणको न पाकर सब ब्रह्माकी शरण में गये ॥ ८ ॥ वहां जाकर प्रणाम कर उन्होंने दैत्यकी कर्तव्यताको कहा कि

हे भगवन् ! आपब्रह्मा ने यह क्या कार्यकिया ॥ ९ ॥ कि जिससे सब देवगण उसी क्षण नष्ट होगये हिरण्याक्षने निष्कण्टक स्वर्ग को नष्ट करदिया ॥ १० ॥ और जो सब यज्ञभाग है उनको वह दैत्य भिन्न भिन्न भोजन करताहै हमलोग किस उपाय से लिये व कैसे पृथ्वी में स्थित होवें ॥ ११ ॥ देवताओं के ऐसे विकलता में प्राप्त वचन को सुनकर उन ब्रह्माजी ने उस समय समयके योग्य सुन्दर वचन को कहा ॥ १२ ॥ ब्रह्माजी बोले कि हे सुरोत्तम ! पुरातन समय अतुल तेजवाले विष्णुजी के मनोहर वैकुण्ठभवन में विजय से संयुत सावधान होता हुआ यह महाबाहु जय नामक श्रेष्ठ पार्षद द्वारापालक था ॥ १३ ॥ १४ ॥

कम् ॥ १० ॥ यज्ञभागाश्चयेसर्वे उपाशनातिप्रथक्प्रथक् ॥ केनोपायेनजीवाम कथंतिष्ठामभूतले ॥ ११ ॥ इतिविक्रं
वितंश्रुत्वा देवानांसपितामहः ॥ उवाचवचनंरम्यं तत्कालेसमयोचितम् ॥ १२ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ शृण्वन्तुभोसुरश्रेष्ठा यूयं
सर्वेसमाहिताः ॥ पुरायंपार्षदश्रेष्ठो द्वापरपालःसमाहितः ॥ १३ ॥ वैकुण्ठभवनैरम्ये विष्णोरतुलतेजसः ॥ जयोनानाममहाबाहु
विजयेनचसंयुतः ॥ १४ ॥ द्वावेवसचिवौदान्तौ विष्णुवेषधराभूयौ ॥ आत्तयष्टीचविक्रान्तौ तिष्ठतोद्धारिसर्वदा ॥ १५ ॥
एकदर्वैमुनिश्रेष्ठ ब्रह्मणोमानसात्मजाः ॥ स्वैरंचरन्तोलोकेषु विष्णोर्भवनमागताः ॥ १६ ॥ सनकादयोंमहाभागा वि
ष्णुदर्शनलालसाः ॥ ताभ्यांनिवारिताःसर्वे प्रपेतुर्धरणीतले ॥ १७ ॥ मुमुहश्चतदाव्यास कुमारामृशदुःखिताः ॥ त
तोगात्समहाबाहुर्भगवान्कमलेक्षणः ॥ १८ ॥ ददर्शसहस्राविष्णुः कुमारान्मुविदुःखितान् ॥ उत्थाप्यैकंसमारोप्य

इन्द्रियों को दमन किये हुये दोनोंही मंत्री व दोनों विष्णुवंपथारी थे और दण्ड को लिये हुये वे दोनों पराक्रमी सदैव द्वार पै टिके रहते थे ॥ १५ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ !
एक समय लोकों में अपनी इच्छा से घूमते हुए ब्रह्मा के मानसी पुत्र विष्णुजी के मन्दिर को आये ॥ १६ ॥ और विष्णुजी के दर्शन की लालसावाले बड़े ऐश्वर्य-
वान् सब सनकादिक उन दोनों से निवारित होकर पृथ्वी में गिरपड़ ॥ १७ ॥ वहे व्यासजी ! उस समय बहुतही दुःखित सनकादिक कुमार मोहित हुये तदनन्तर वे
कमललोचन महाबाहु विष्णु भगवान् आये ॥ १८ ॥ और पृथ्वी में दुःखित वालकों को श्रीविष्णुजी ने अचानकही देखा व एकको उठाकर मधुसूदनजी ने गोदी

में बिठाकर लिपटा लिया ॥ १६ ॥ व मस्तकमें संघर्षकर तथा मुजाओं से लिपटाकर विष्णुजी बोले कि किसकारण तुम लोगोंको यह कष्टहुआ व किससे बहुत दुःखी हो ॥ २० ॥ हे धर्मसे श्रेष्ठ बालको ! उस सब कारणको हम से कहिये कुमार बोले कि हे महाराज ! हम लोगोंके ऐसे दुःखको सुनिये ॥ २१ ॥ कि जिससे हे सुव्रत, भवान् ! हमलोग इस दशाको प्राप्त हुये हे रमानाथ ! आपके दर्शन के लिये अभिलाष समेत व दैत्यों से विकल ये चारोभाई जो कि लोकों में प्रसिद्ध हैं आये और भवान् हम द्वारपालों से अचानकही मना किये गये ॥ २२ ॥ उसी कारण आप से परिपालित यह दशा प्राप्त हुई अब से लगाकर इस स्थान में इनकी मनातनी

मममेमधुमुदनः ॥ १९ ॥ मूर्धिनचाघ्रायबाहुभ्यां परिष्वज्य उवाचह ॥ कस्मादः कश्मलमिदं केनापिदुःखिताभुश
म ॥ २० ॥ सर्वतत्कारणं बाला ब्रूत नो धर्मवित्तमाः ॥ कुमार उचुः ॥ श्रूयताम्भो महाराज अस्माकंदुःखमीदृशम् ॥
२१ ॥ येन प्राप्तवान्यं ब्रह्मन् दशामेतां सुमुव्रत ॥ आयाता भ्रातरौ ह्येते चत्वारो लोकविश्रुताः ॥ २२ ॥ दर्शनार्थं रमानाथ
नः प्रभृनिभ्यां नमिन् स्मितनिस्तचशाश्वती ॥ २३ ॥ तेन च ये दशा प्राप्ता भवतापरिपालिता ॥ अ
न्याय्य आभृग्यानि स्मृतिमा ॥ २४ ॥ एतस्मादासुरीयानि प्राप्नुतांसु समाहितौ ॥ सद्यः प्राप्तो तदा
ममाधिभिः ॥ २५ ॥ जयश्च विजयाख्यश्च दुष्टभावं समाश्रितौ ॥ जन्मान्तरसहस्रेण तपोदान
विन्यानि चर्यानाम्मादिभ्युपमक्तिः परास्मृता ॥ जन्मजन्मान्तरैर्जातौ तामसीयानि मुद्धतौ ॥ २६ ॥ हिरण्यकशिपुश्चैव

२७ ॥ उसी कारण उचम कही हुई विष्णुजी की भक्ति तुम दोनों के होगी वे दोनों गर्वित जन्म जन्मान्तरो
२८ ॥ उसी कारण उचम कही हुई विष्णुजी की भक्ति तुम दोनों के होगी वे दोनों गर्वित जन्म जन्मान्तरो
२९ ॥ उसी कारण उचम कही हुई विष्णुजी की भक्ति तुम दोनों के होगी वे दोनों गर्वित जन्म जन्मान्तरो
३० ॥ उसी कारण उचम कही हुई विष्णुजी की भक्ति तुम दोनों के होगी वे दोनों गर्वित जन्म जन्मान्तरो

में तामसी (आसुरी) योनि को प्राप्त हुए ॥ २८ ॥ हिरण्यकशिपु व महाबलवान् हिरण्याक्ष वैसेही कुंभकर्ण नामक और लोकों की रत्ननेवाला रावण ॥ २९ ॥ और दन्तवक्र व शिशुपाल इसप्रकार तीनजन्मों में कहेगये हैं व जो यह महाबलवान् दैत्य हिरण्याक्ष ऐसा कहा गयाहै ॥ ३० ॥ देवता व ब्राह्मणों की निन्दा करनेवाला व दुष्टभाव में प्राप्त वह सब देवताओं को जीतकर आपही स्थित हुआ ॥ ३१ ॥ और छूटे राज्यवाले व उससे पराजित सब देवता स्वर्ग से निकाल दिये गये और वे मनुष्यों की नाई घूमते थे ॥ ३२ ॥ व स्वधाकार, वषट्कार और स्वाहाकार नहीं देख पड़ता है और देवताओं का पूजन अर्चन नहीं होताहै व विशेषकर ब्राह्मणों

हिरण्याक्षोमहाबलः ॥ तथैवकुम्भकर्णश्च यो रावणोलोकरावणः ॥ २९ ॥ दन्तवक्रः शिशुपाल एवंजन्मत्रयेस्मृताः ॥ योसौमहाबलौदैत्यौ हिरण्याक्षइतिस्मृतः ॥ ३० ॥ दुष्टभावंसमापन्नो देवब्राह्मणनिन्दकः ॥ जित्वाचसकलान्देवान् स्वयमेवाधितिष्ठति ॥ ३१ ॥ स्वर्गान्निराकृताः सर्वे अपराज्याः पराजिताः ॥ विचरन्ति यथा मर्त्यास्तेन देवगणायुवि ॥ ३२ ॥ स्वधाकारो वषट्कारः स्वाहाकारेन दृश्यते ॥ देवपूजा चर्चनं नास्ति ब्राह्मणानां विशेषतः ॥ ३३ ॥ नैव तीर्थानि काशन्ते पुण्यान्यायतनानि च ॥ आश्रमेषु च सर्वेषु ऋषीणां च महात्मनाम् ॥ ३४ ॥ अत्यदसुतं प्रकुर्वन्ति दुष्टदैत्याः प्रहारिणः ॥ वप्रां श्रमवतां धर्माः स्त्रीणां चैव सुशीलता ॥ ३५ ॥ उच्छिन्नाहितदाजाता तस्मिन् राज्ञि दुरात्मनि ॥ दुष्टाचारादुरात्मानो मायिनो बहुमानिनः ॥ ३६ ॥ पाखण्डिनो विक्रमिणः सर्वधर्मवहिर्मुखाः ॥ पशुधर्मगताह्येते सर्वब्रह्मेति शंसिनः ॥ ३७ ॥ बहुम्लेच्छा बहुकेशा बहुबाधावनिष्कृता ॥ कोवेदः कास्मृतिः पुण्याको यज्ञः काचदक्षिणा ॥ ३८ ॥ तमोभूतं जगत्सर्वं दृश्यते

का पूजन नहीं होता था ॥ ३३ ॥ और तीर्थ व पवित्र देव मन्दिर नहीं शोभित होते थे व ऋषियों तथा महात्माओं के सब आश्रमों में ॥ ३४ ॥ प्रहार करनेवाले दुष्ट दैत्य अतिश्रद्धुत कर्मको करते थे और वर्ण व आश्रमवाले जनों के धर्म व स्त्रियों की सुशीलता ॥ ३५ ॥ तब नष्ट होगई जब कि वह दुष्टराजा हुआ और दुष्ट आचारवाले व दुरात्मा, मायावी तथा बहुत मानी ॥ ३६ ॥ पाखण्डी, पराक्रमी व सब धर्मों से विमुख तथा सब ब्रह्महै ऐसा कहनेवाले ये दैत्य पशुधर्मत्वको प्राप्त हुये ॥ ३७ ॥ और बहुत म्लेच्छ बहुत केश व बहुत पीड़ाओंवाली पृथ्वी कीगई कौन कौन और यज्ञ और कौन दक्षिणा है ॥ ३८ ॥ पृथ्वी तलमें सब संसार

अन्धकारभूत देख पड़ता था हे व्यासजी ! जब देखा सब त्रिलोक ऐसा होगया ॥ ३६ ॥ तब जब जब धर्मकी ग्लानि होती है और अधर्म की बढ़ती होती है तब हे श्रुजनी ! मैं अपना को रचता हूँ या ने अवतार को धारण करता हूँ ॥ ४० ॥ ऐसा जानकर आत्मवान् महाविष्णुजीने लीला से श्वेतद्वीप के समान दिव्य व उत्तम वाराहशरीर को धारण किया ॥ ४१ ॥ जो कि यज्ञ स्तंभरूपी दाढ़ीवाला व हव्य गन्धिवाला और बीज व औषधीरूप रोमोंवाला तथा वेदरूपी चरणोंवाला था स्मृति इन वाराहजी की नासिकाथी व जिह्वा अग्नि और तालु आहुतिथी ॥ ४२ ॥ और वे वाराहजी भीतर मुख के प्रकाश से आटोप (गर्व) वाले व यज्ञशरीर

वसुधातले ॥ एवं व्यासयदाजातं दृष्टं सर्वजगन्नयम् ॥ ३६ ॥ यदायदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ॥ अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥ ४० ॥ इति ज्ञात्वा महाविष्णुर्वाराहं पुरात्मवान् ॥ दधारलीलाया दिव्यं श्वेतद्वीपं पमं शुभम् ॥ ४१ ॥ यूगदंष्ट्रो ह विगन्धो बीजौषधितनूरुहः ॥ वेदपादः स्मृतिर्घोषा जिह्वाग्निस्तालुचाहुतिः ॥ ४२ ॥ अन्तरास्यरुचाटो पोयज्ञकायः सुदक्षिणः ॥ उद्गमो घुर्धुरो नादो विहारो ऋत्विजाकृतिः ॥ ४३ ॥ श्वेतः श्वासपरो दक्षः सदस्यावयवः स्मृतः ॥ पुच्छः कर्मासनो नित्यं यजतां बहुमानदः ॥ ४४ ॥ वेदीपल्वलसंतारो ब्रह्माध्वर्युर्वनाकरे ॥ लोककल्पो लोकसाक्षी परावरवहः शुचिः ॥ ४५ ॥ आद्यः पुरुष ईशानः पुरुहूतः पुरुषदुतः ॥ तेनासौ निहतो दैत्यो हिरण्याक्षो दुरासदः ॥ ४६ ॥ संग्रामान् सुबहून् कृत्वा बहुकष्टेन विष्णुना ॥ दैत्येन पीडिता पृथ्वी रसातलतलंगता ॥ ४७ ॥ उद्धृता च वराहे

तथा उत्तम दक्षिणावाले थे इनका घुर्धुर शब्द उच्चगान था य विहार ऋत्विज के समान आकाशवाला था ॥ ४३ ॥ व ये वाराहजी श्वेत श्वास में तत्पर व प्रवीण और सामाजिक अंगोंवाले कहे गये हैं व इनकी पुच्छ कर्म का आसन है जो कि पूजन करनेवालों को बहुत मानदायक है ॥ ४४ ॥ और वाराहजीका छोटे तड़ागों का उतरना वेदी है और वन व खानि ब्रह्मा अध्वर्यु (यजुर्वेदी) है व लोकों की कल्पना करनेवाले तथा लोकसाक्षी तथा कार्य व कारण के धारनेवाले और पवित्र हैं ॥ ४५ ॥ जो वाराहजी आदि पुरुष व ईशान तथा बहुत नामोंवाले व बहुतों से स्तुति किये हुये हैं उन विष्णुजी से बहुत संग्रामों को कर बड़े कष्ट से यह

हिरण्यान्न दुरासद दैत्य मारा गया दैत्य से पीड़ित पृथ्वी रसातल के नीचे चली गई थी ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ उसको वाराहजी चन्द्रमा की रेखा के समान दाढ़ से ऊपर लाये हैं और वे सब दानव मारे गये व शेष पाताल को प्राप्त हुये ॥ ४८ ॥ तब पवित्र पवन चलने लगे व सूर्य सुन्दर प्रकाशवाले हुये और शान्त हुई अग्नियां जल उठीं व दिशाओं में उत्पन्न शब्द शान्त होगये ॥ ४९ ॥ और नदियां मार्ग में बहने लगीं व समुद्र प्रकृति को प्राप्त हुये याने जैसे कि पहले थे वैसेही होगये हे व्यासजी ! वाराहदेवजी ! सब संसार को देखकर प्रसन्न प्रसन्न चित्त हुये ॥ ५० ॥ वाराहमूर्तिवाले भगवान् सब कामनाओं के फलों को देनेवाले हैं और आनन्द से पूर्ण वाराहदेवजी

एतदं प्रयाचन्द्रैरेखया ॥ हतास्ते दानवाः सर्वे शेषाः पातालमाययुः ॥ ४८ ॥ वबुः पुरयास्तदावाताः सुप्रभो भूहिवाकरः ॥ जज्वलुश्चाग्नयः शान्ताः शान्तादिगजनि तस्वनाः ॥ ४९ ॥ सरितो मार्गवाहिन्यः सागराः प्रकृतिगताः ॥ दृष्ट्वा देवोऽखिलं व्यासप्रसन्नात्मा बभूवुह ॥ ५० ॥ वाराहमूर्तिर्भगवान् सर्वकामफलप्रदः ॥ आनन्दनिर्भरे देवो हतदैत्यो वरप्रदः ॥ ५१ ॥ तस्यापि हृदयाज्जाता नदी हिषासनातनी ॥ आनन्दजलसम्पूर्णा सर्वानन्दवरप्रदा ॥ ५२ ॥ बहुयोजनविस्तारा बहुलाकामचारिणी ॥ पद्माकरसमाकीर्णा हंसकारण्डवाकुला ॥ ५३ ॥ सरिता तर्लाभाया यत्नगन्धर्वसेविता ॥ किन्नरीभिर्गीयमाना गीयमाना खगालिभिः ॥ ५४ ॥ नृत्यन्त्यप्सरसो नित्यं स्तूयमाना महर्षिभिः ॥ हुताग्निभिर्भुजिता नित्यं राजर्षिभिस्समाश्रिता ॥ ५५ ॥ दुहस्तनभराक्रान्तवरस्त्रीभिः समावृता ॥ कचिक्करिवरापते रम्यमाणा विराजिता ॥ ५६ ॥

दैत्यों को मारनेवाले व वरदायक हैं ॥ ५१ ॥ उनके भी हृदय से यह सनातनी नदी उत्पन्न हुई है जो कि आनन्द जल से पूर्ण व सब आनन्दों तथा वरों को देनेवाली है ॥ ५२ ॥ और बहुत बहुत योजन चौड़ी बहुत व इच्छा के अनुकूल चलनेवाली है और कमलों की खानि से व्याप्त व हंसों तथा कारुण्ड पक्षियों से संयुक्त है ॥ ५३ ॥ और रत्नों समेत व चंचला माया रहित तथा यक्षों व गंधर्वों से सेवित है और किन्नरों से गाई जाती व पक्षियों तथा अमरों से गान की जाती है ॥ ५४ ॥ जहांपर सदैव अप्सरायें नृत्य करती हैं व महर्षियों से स्तुति की जाती तथा हवन की हुई अग्नियों से नित्यही संयुत व राजर्षियों से भलीभांति आश्रित है ॥ ५५ ॥ और उन्नत

स्तनों के भारसे धिरीहुई स्त्रियोंसे भलीभांति धिरी है और कहींपर उत्तम हाथियों के बच्चोंसे कीड़ा की जातीहुई वह नदी शोभित है ॥ ५६ ॥ और प्रशंसित चित्तवाले ऋषियों व वेदज्ञ ब्राह्मणों से सदैव सेवने योग्य तथा मनुष्यों को सब समय में ऋद्धि, सिद्धि, दायिनी है ॥ ५७ ॥ मनोहर महाकाल पुरी में सुन्दरी पद्मावती पुरी है व हे व्यासजी ! उत्तम सुन्दर कुण्ड बहुत सुन्दर व प्राचीन है ॥ ५८ ॥ जिसमें नहाकर मनुष्य सनातन शिवलोक को जाते हैं हे व्यासजी ! लोकोंको पवित्र करनेवाली उत्तम क्षिप्रा नदी उसमें लीन होगई है ॥ ५९ ॥ वाराहजीने सब दुष्ट दैत्यों का विनाश किया है और उन वाराहमूर्त्तिवाले विष्णुजी ने देवताओं को ताप व शूका

वेदविद्भिर्द्विजैस्सेव्या ऋषिभिर्दशसितात्मभिः ॥ सर्वदासर्वकालेच ऋद्धिसिद्धिप्रदानृणाम् ॥ ५७ ॥ महाकालपुरे रम्यैरम्यापद्मावतीपुरी ॥ सुन्दरकुण्डपरंव्यासरम्यंप्राचीनकंशुभम् ॥ ५८ ॥ यत्रस्नात्वनारायांति शिवलोकंसनातनम् ॥ तत्रलीनापराव्यासक्षिप्रवैलोकपावनी ॥ ५९ ॥ वाराहेणकृतंसर्वदुष्टदैत्यनिवर्हणम् ॥ तेनदेवानिरांतकाः कृता वाराहमूर्त्तिना ॥ ६० ॥ भूत्वाप्राञ्जलयःसर्वे देवाइन्द्रपुरोगमाः ॥ स्तुतिं कृत्वा महाविष्णुं सन्नताः पुरतःस्थिताः ॥ ६१ ॥ देवा ऊचुः ॥ देवदेवजगन्नाथ पुण्यश्रवणकीर्तन ॥ किंदानं किंतपः पुण्यं किंतीर्थं काचदेवता ॥ ६२ ॥ येन पुण्यप्रभावेन पुनः स्वर्गो ह्यवाप्यते ॥ एवं निश्चित्य नो ब्रूहि सर्वं गुह्यतरं विभो ॥ ६३ ॥ श्रीवाराह उवाच ॥ श्रूयतां भो सुराः सर्वे युष्मा कंसिद्धिकारणम् ॥ गुह्याद्गुह्यतरं पुण्यं महाकालवने शुभम् ॥ ६४ ॥ मम देहोद्भवा चिप्रा यत्र लीनापयस्विनी ॥ नील गङ्गा सरिच्छ्रेष्ठा यत्र प्राची सरस्वती ॥ ६५ ॥ पुष्करं च गया तीर्थं पुरुषोत्तमसरः शुभम् ॥ तद्द्यूयंगच्छत चिप्रां पुनर्लोकं

रहित, किया है ॥ ६० ॥ व इन्द्रादिक सब देवता हाथों को जोड़ आगे स्थित होकर स्तुति कर मद्धानिष्णुजी को भलीभांति प्रणाम करते भये ॥ ६१ ॥ देवता बोले कि हे पवित्र श्रवण व कथनवाले देवदेव जगदीशजी ! कौन दान है कौन तप है व कौन पवित्र तीर्थ है और कौन देवता है ॥ ६२ ॥ कि जिस पुण्य के प्रभाव से फिर स्वर्ग मिले है विभो ! ऐसा निश्चय कर अत्यन्त गुप्त सब वृत्तान्त को कहिये ॥ ६३ ॥ श्रीवाराहजी बोले कि हे समस्त देवताओं ! सुनिये कि गुप्त से भी गुप्त व पवित्र तथा उत्तम तुम लोगों की सिद्धि का कारण महाकाल वनमें है ॥ ६४ ॥ मेरे शरीर से उत्पन्न क्षिप्रानदी जिसमें लीनहुई है वह नीलगंगा उत्तम नदी है जहां कि

प्राची सरस्वती है ॥ ६५ ॥ व पुष्कर, गया तीर्थ और उत्तम पुरुषोत्तम तड़ाग है इसलिये तुमलोग क्षिप्रानदी को जावो फिर लोकोको प्राप्त होवोगे ॥ ६६ ॥ वहां देव-
देव जगद्गुरु वाराहजी के इस प्रकार उत्तम वचन को सुनकर ब्रह्मा इन्द्रादिक सब देवगण ॥ ६७ ॥ जहां क्षिप्रा उत्तम नदी थी वहां सुन्दर महाकाल वनमें गये
और स्नान दानादिक कर यथा योग्य श्राद्ध कर ॥ ६८ ॥ उस पुरण्य के प्रभाव से देवता अपने लोकोको गये इस प्रकार हे व्यासजी ! क्षिप्रा लोकापवनी कही
गई है ॥ ६९ ॥ व अतुल तेजवाले वाराहविष्णुजी का तड़ाग हुआ है कि जिसके दर्शन मात्र से ब्रह्म हत्या नाश होजाती है ॥ ७० ॥ उसमें नहाकर जल पीकर व

नवाप्स्यथ ॥ ६६ ॥ इति श्रुत्वा परं वाक्यं देवदेवजगद्गुरोः ॥ तत्र देवगणाः सर्वे ब्रह्महन्द्रपुरोगमाः ॥ ६७ ॥ महाकालवनेर
म्ये यत्र क्षिप्रामरिहरा ॥ स्नानदानादिकं कृत्वा श्राद्धं कृत्वा यथोचितम् ॥ ६८ ॥ तेन पुरण्यप्रभावेन स्वकौल्लोकान् गताः
सुराः ॥ एवं व्याससमाख्याता क्षिप्रवैलोकपावनी ॥ ६९ ॥ जातंसरो वराहस्य विष्णोरतुलतेजसः ॥ यस्य दर्शनमात्रे
ण ब्रह्महत्याव्यपोह्यते ॥ ७० ॥ तत्र स्नात्वा पयः पीत्वा श्राद्धं कृत्वा यथोचितम् ॥ पयस्विनीं च गन्तवा विष्णुलोकं
हीयते ॥ ७१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे क्षिप्रामाहात्म्यं नाम त्रिषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६३ ॥
सनत्कुमार उवाच ॥ पृथिव्यां यानि तीर्थानि तानि सर्वाणि सुव्रत ॥ अवन्त्यां सुन्दरं तीर्थं तिष्ठन्ति सर्वदा मुनि ॥ १ ॥
व्यास उवाच ॥ किमिदं सुन्दरं कुण्डं कदा काले भवति त्वितौ ॥ निर्मितं केन को देवः किं वा तस्य फलं स्मृतम् ॥ २ ॥ सनत्कु

यथा योग्य श्राद्धकर और दूधवाली गऊ को देकर मनुष्य विष्णुलोक में पूजा जाता है ॥ ७१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे देवीदयालुमिश्राविरचितायां भाषाटीका
यां क्षिप्रामाहात्म्यं नाम त्रिषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६३ ॥
दो० । जिमि पिशाच मोचन तथा सुन्दर कुण्डप्रभाव । चौसठिवें अध्याय में सोई चरित सुहाव ॥ सनत्कुमारजी बोले हे सुव्रत ! पृथ्वीमें जो तीर्थ हैं वे सब पृथ्वी
पर अवन्ती पुरीमें सुन्दर कुण्ड में सदैव स्थित रहते हैं ॥ १ ॥ व्यासजी बोले कि यह कौन सुन्दर कुण्ड पृथ्वी में किस समय हुआ है और किसने निर्माण किया है व

उसका कौन फल कहा गया है ॥ २ ॥ सनत्कुमारजी बोले कि सुनिये कि जब अत्यन्त पवित्र तीर्थ में सब पापों का नाशक व चाहेहुए मनोर्थके फलदायक सुन्दर नामक कुण्ड हुआ है ॥ ३ ॥ कि जिसके सुननेही से ब्रह्महत्या नाश होजाती है व अश्व सेध से अधिक तथा सौ वाजपेय यज्ञों से अधिक पुण्य होता है ॥ ४ ॥ हे व्यासजी ! पुरातन समय जब कल्पान्त में प्रचण्ड पवन व बरसने से पृथ्वी नष्ट होगई और सुमेरु गिरि कांपडठा ॥ ५ ॥ तब इस भयंकर, गुप्त, विकार रहित व अचल महाकाल वनमें वैकुण्ठनामक वह उत्तम शिखर गिरा है ॥ ६ ॥ शिखर गिरने पर उसी क्षण रत्नों के सोपानों से निर्मल व मोतियों की बालू से पूर्ण निश्चित कुण्ड हुआ ॥ ७ ॥

मार उवाच ॥ शृणु पुण्यतमे चैत्रे सुन्दराख्यं यदाभवत् ॥ सर्वपापप्रशमनं वाञ्छितार्थफलप्रदम् ॥ ३ ॥ यस्य श्रवणमात्रेण ब्रह्महत्याव्यपोह्यते ॥ अश्वमेधाधिकं पुण्यं वाजपेयशताधिकम् ॥ ४ ॥ पुराकल्पक्षये व्यास नष्टकल्पाचमेदिनी ॥ प्रचण्डवातवर्षाभ्यां घूर्णितो मेरुपर्वतः ॥ ५ ॥ तदा त्रपतितैव कुण्ठाख्यं तच्छिखरोत्तमम् ॥ महाकालवने घोरं गुह्यं चैवाव्यये ध्रुवे ॥ ६ ॥ तत्क्षणात्पतितेशुङ्गे कुण्डं जातं मुनिश्चितम् ॥ रत्नसोपानसुस्वच्छं मुक्तासैकतपूरितम् ॥ ७ ॥ जाम्बूनदकुतारो हं हेमपद्मविराजितम् ॥ कल्पद्रुमकृतच्छायां चिन्तामणिसमुच्छितम् ॥ ८ ॥ हंसकारण्डवाकीर्णं महर्षिगणमेवितम् ॥ बीजौषधिगणार्कीर्णं सर्वतत्त्वाभिसंयुतम् ॥ ९ ॥ कल्पक्षये न जीयन्ते यानि तत्त्वानि सर्वदा ॥ तानि तत्र प्रतिष्ठन्ति मूर्त्तिमन्ति पराणि च ॥ १० ॥ वेदशास्त्रपुराणानि गाथागीत्यक्षराः स्वराः ॥ अकारश्च वषट्कारः गायत्री त्रिपदी परा ॥ ११ ॥ कलाकाष्ठानि लवण्टिपलकाघटिः ॥ अहर्निशश्च यामाश्च पक्षौ मासौ ऋतुस्तथा ॥ १२ ॥ संव

जो कि सुवर्ण मे रचित आरोहवाला व सुवर्ण के समान कमलों से शोभित तथा कल्पवृक्ष से की हुई छायावाला और चिन्तामणि से उन्नत था ॥ ८ ॥ व हंसों तथा क्कण्डव पक्षियों से व्याप्त तथा महर्षिगणोंसे मेवित और बीजों व औषधियोंसे पूर्ण तथा सब तत्त्वों से संयुत था ॥ ९ ॥ जो तत्त्व कल्पान्त में नहीं नष्ट होते हैं वे मूर्त्तिमान् उत्तम तत्त्व सदैव उसमें प्रतिष्ठित रहते हैं ॥ १० ॥ और वेद, शास्त्र, पुराण, गाथा, गान, अक्षर, स्वर, अङ्कार, वषट्कार व त्रिपदी परम गायत्री ॥ ११ ॥

और कला, काष्ठा, मुहूर्त, लव, त्रुटि, पल, घटी, दिनरात, पहर, पक्ष, महीना व ऋतु ॥ १२ ॥ और मूर्तिमान् संवत् व युग कुंड में स्थित हैं और देवता, यज्ञ, नाग, गुह्यक व किन्नर ॥ १३ ॥ कल्प के दोष के भयसे आतुर गन्धर्व, अप्सरा, यज्ञ, सिद्ध व किंपुरुषोंने उस कुण्ड की उपासना किया है ॥ १४ ॥ और ब्रह्मा, रुद्र, काल व बड़े पराक्रमी लोकपाल तथा ध्यान में परायण कोई सिद्ध व प्रशंसित नियमोंवाला तपस्वी ॥ १५ ॥ हे व्यासजी ! ये बहुत युगोंतक तब तक उसमें टिकते हैं जबतक कि कल्प समाप्त होता है और सुदर्शन चक्र के समान आकारवाला व अमृत जलों से पूर्ण ॥ १६ ॥ व दिव्य अभिप्रायों से संयुत और पारिजात के गुणोंसे

त्सरोयुगश्चैव कुण्डेतिष्ठतिमूर्तिमान् ॥ देवाय चानागाश्च गुह्यकाः किन्नरास्तथा ॥ १३ ॥ गन्धर्वाप्सरसो यज्ञाः सिद्धाः किंपुरुषास्तथा ॥ उपासाञ्चक्रिरेतस्य कल्पदोषभयातुराः ॥ १४ ॥ ब्रह्मारुद्रश्च कालश्च लोकपालामहोजसः ॥ केचिद्दधानपराः सिद्धास्तपस्वीशंसितव्रतः ॥ १५ ॥ तिष्ठन्ति बहुयुगं व्यास यावत्कल्पः समाप्यते ॥ सुदर्शनसमाकारं पूरितं चामृताम्बुभिः ॥ १६ ॥ दिव्याभिप्रायसंयुक्तं पारिजातगुणान्वितम् ॥ दिव्यस्त्रीस्नानगन्धोद्देर्वासितंतु सदैव हि ॥ १७ ॥ कचिन्मयूरानृत्यन्ति कचित्कूजन्तिकोकिलाः ॥ कचिच्चक्रेकाभिरवाः कचिद्घोषसमाकुलं ॥ १८ ॥ सुन्दरं सुन्दराकारं सुन्दरं तत्तथोच्यते ॥ बहुपुरणकरं व्यास सर्वपापहरं परम् ॥ १९ ॥ यत्र सन्निहितो विष्णुः शिवः शक्त्या युतो वशी ॥ उपासाञ्चक्रिरे शशवत् सर्वकालेषु सर्वदा ॥ २० ॥ क्षणाद्वैक्षण्यमेकं च सुन्दरकुण्डे नरो वसेत् ॥ वैकुण्ठेनियतं वासः यावत् कल्पशतं भवेत् ॥ २१ ॥ पतङ्गाः पक्षिणः कीटा मृतायान्ति शिवालये ॥ किंपुनर्मनवा लोके स्नानपूतास्तुतज्जले ॥ २२ ॥

संयुत तथा दिव्यस्त्रियों के स्नान के कारण सुगन्धित जलों से सदैव वासित है ॥ १७ ॥ कहीं मयूर नाचते हैं और कहीं कोकिलाएं कुजती हैं कहीं मयूर की वाणी हो रही है, कहीं सब्दों से संयुत है ॥ १८ ॥ सुन्दर व सुन्दर आकारवाला वह तड़ाग सुन्दर कहा जाता है हे व्यासजी ! जो कि बहुत पुरणकारक व समस्त पातकों का हारक तथा उत्तम है ॥ १९ ॥ जहापर विष्णुजी स्थित हैं व शक्तिसे संयुत कान्तिमान् शिवजी सदैव रहते हैं इन सबोंने सदैव सब समयों में उसकी उपासना किया है ॥ २० ॥ आधा क्षण व क्षणभर जो मनुष्य सुन्दर कुण्डमें बसता है उसका तबतक वैकुण्ठमें निश्चय कर निवास होता है कि जबतक सौ कल्प होते हैं ॥ २१ ॥

और पतंग, पक्षी व कीट वहाँ भरकर शिवजीके स्थान को प्राप्त होते हैं फिर संसार में उसके जल में स्नान से पवित्र मनुष्यों को क्या कहना है ॥ २२ ॥ जो मनुष्य तिल, धेनु, हारी, घोड़ा, रथ व पृथ्वी को देता है और दासी, दास, सुवर्ण व अनेक भाँति के रत्नों को देता है ॥ २३ ॥ और शय्यादान, विमान व अनेक भाँति के दानों को देता है हे व्यासजी ! मैं नहीं जानता हूँ कि उसके दान से उपजाहुआ क्या फल होता है ॥ २४ ॥ हे व्यासजी ! कहे हुये सुन्दरकुंडके उत्तम फलको फिर सुनिधे कि एक समय बहुत पाप से पापी योनियों में पतित ॥ २५ ॥ पिशाच मोक्षको प्राप्त होकर शिवरूपधारी वह चलागया पिशाचमोचन तीर्थ में नहाकर व सदा-

योददातितिलान्धेनुं गजंवाजिरथावनीम् ॥ दासीदाससुवर्णं च रत्नानिविविधानि च ॥ २३ ॥ शय्यादानविमानानि दानानिविविधानि च ॥ नतस्य दानजंवेद्वि कीदृग्व्यासफलं भवेत् ॥ २४ ॥ भूयः शृणु परं व्यास सुन्दरकुण्डफलं स्मृतम् ॥ एकदा बहुपापेन पतितः पापयोनिषु ॥ २५ ॥ पिशाचो मोक्षमापन्नः शिवरूपधरो गतः ॥ पिशाचमोचने स्नात्वा दृष्ट्वा देवं महेश्वरम् ॥ २६ ॥ मुच्यते सर्वपापेभ्यो यद्यपि ब्रह्महा भवेत् ॥ व्यास उवाच ॥ कः पिशाच इति ख्यातः किं तेन दुष्कृतं कृतम् ॥ २७ ॥ येन पापप्रसङ्गेन पिशाचत्वं समागतः ॥ कथं तीर्थप्रसङ्गोऽस्य जातौ वै द्विजसत्तम ॥ २८ ॥ एतद्वेदितुमिच्छामि त्वत्तो ब्रह्मविदांवर ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ शृणु व्यास महाख्यानं तीर्थमाहात्म्यमुत्तमम् ॥ २९ ॥ यस्य श्रवणमात्रेण सर्वपापक्षयो भवेत् ॥ ब्राह्मणो देवलोनाम दाक्षिणात्यो द्विजाधमः ॥ ३० ॥ सदा पापपरतो लोभी कूट साक्षी चलम्पटः ॥ गुरुश्रुत्वा तवोद्धृतो भ्रूणहा गुरुतल्पगः ॥ ३१ ॥ हे महारिसुरापी च ब्रह्महास्वामिद्रोहकः ॥ अभक्ष्य

शिव देवजीको देखकर ॥ २६ ॥ यद्यपि ब्रह्मघाती होत्रे तथापि वह मनुष्य सब पापों से छूट जाता है व्यासजी बोले कि पिशाच ऐसा कहा हुआ कौन है व उसने क्या पाप किया था ॥ २७ ॥ कि जिस पाप के प्रसंग से पिशाचत्व को प्राप्त हुआ है व हे द्विजोत्तम ! तीर्थ में इसका कैसे प्रसंग हुआ है ॥ २८ ॥ हे ब्रह्मविदांवर ! मैं तुमसे इसको जानना चाहता हूँ सनत्कुमारजी बोले कि हे व्यासजी ! उत्तम तीर्थमाहात्म्यरूप महाकथानक को सुनिये ॥ २९ ॥ कि जिसके सुननेही से सब पापों का नाश होता है ब्राह्मणों में नीच देवल नामक दाक्षिण में रहनेवाला ब्राह्मण हुआ है ॥ ३० ॥ जो कि सदैव पाप में पराश्रय, लोभी, भूँटी गवाही देनेवाला

लम्पट, गुरुद्वेही, कपटी, धूर्त, गर्भघाती व गुरुशय्यागामी था ॥ ३१ ॥ व सुवर्ण को चुरानेवाला, मदिरा पीनेवाला और ब्रह्मघाती व स्वामिद्रोही, अभक्ष्य को भोजन करनेवाला और वेदों व शास्त्रोंसे रहित था ॥ ३२ ॥ और बहुत जन्मोंसे इकट्ठाकिये पापवाला व सब धर्मोंसे अलग कियाहुआ, विश्वासघाती, मानी व चोरों के साथमें लगाहुआ तथा दुष्टथा ॥ ३३ ॥ चोरोंके कार्यके प्रयोजन को साधन करनेवाला वह मूर्ख अन्यदेश को चलागया और मार्गमें उस पाप आचरणवाले प्राणी से बहुत लोग सारेगये ॥ ३४ ॥ और पापकारी लोगोंके प्रसङ्गसे वह दुष्ट सगंधदेशोंमें गया वहांपर वेदों व वेदाङ्गों का जाननेवाला एक दान्त (इन्द्रियों को दमन

भक्षकश्चैव वेदशास्त्रविवर्जितः ॥ ३२ ॥ बहुजन्मार्जितपापी सर्वधर्मबहिष्कृतः ॥ विश्वासघातकोमानी चोरसङ्गतः खलः ॥ ३३ ॥ देशान्तरगतोमन्दश्चौरकार्यार्थसाधकः ॥ बहवोनिहतामार्गे पापचारेणजन्तुना ॥ ३४ ॥ मगधेषु गतो दुष्टः प्रसङ्गात्पापकारिणाम् ॥ तत्रैकोब्राह्मणोदान्तो वेदवेदाङ्गपारगः ॥ ३५ ॥ साग्निकः शुद्धसत्त्वस्थो ब्रह्मकर्मरतः सदा ॥ इवशुरगृहस्थिताभार्यातामादाययशस्विनीम् ॥ ३६ ॥ चलितोमार्गमारुह्य तेनपापेनधातितः ॥ तस्यस्त्रीचवशरोहारूपलावण्यशालिनी ॥ ३७ ॥ पतिव्रतामहाभागा पूतचित्ताशुचिस्मिता ॥ हतेभर्तारिदुःखार्तापत्युर्विरहकातरा ॥ ३८ ॥ वनेघोरेपरिश्रष्टा काष्ठमादायभामिनी ॥ आरुरोहचितादीप्ता पतिनाशुद्धमानसा ॥ ३९ ॥ सचदुष्टतरः सर्वं तस्यविप्रस्यजीवनम् ॥ गृहीत्वाचलितोमार्गे गृहीतोरजकिङ्करैः ॥ ४० ॥ निर्गडित्वातुवित्तेन वेदितोरजसन्निधौ ॥ धातितो

करनेवाला) ब्राह्मण रहताथा ॥ ३५ ॥ जोकि साग्निक व शुद्ध सत्त्वमें स्थित और सदैव ब्रह्मकर्म में परायण था वह इवशुरके घरमें स्थित उस यशस्विनी स्त्रीको लेकर ॥ ३६ ॥ चला और मार्गको रोककर उसको उस पापीने मारडाला उसकी स्त्री उत्तम कटिवाली व रूप तथा लावण्यसे शोभितथी ॥ ३७ ॥ और पतिव्रता, महाभाग्यवाली, पवित्र चित्तवाली व पवित्र मुसक्यानवाली थी पतिके मरजानेपर वह पतिके वियोगसे डरकर दुःख से विकलहुई ॥ ३८ ॥ भयङ्करवन में छुटी हुई वह शुद्ध मनवाली स्त्री ईधनको लेकर पतिसमेत जलतीहुई चिता पै चढ़ी ॥ ३९ ॥ और वह अत्यन्त दुष्ट उस ब्राह्मण के सब प्राणको लेकर चला व मार्ग में राजदूतों से पकड़

लिया गया ॥ ४० ॥ और द्रव्यके कारण जंजीरोंसे बाँधकर राजाके समीप बतलाया गया व वृक्षके खोदरमें रस्सीसे गलेमें बाँधकर मारा गया ॥ ४१ ॥ और कुत्तेको पचाने वाले चाण्डालों ने उसको इधर उधर भूमिमें धिसलाया व उस कर्मके फलसे वह रौरव नरकको गया ॥ ४२ ॥ साठहजार वर्षतक विष्टामें कीटाता को प्राप्त हुआ तदनन्तर यमराजकी आज्ञा करनेवालों से नरकमें प्राप्त होनेपर ॥ ४३ ॥ वैतरणी से पीडित व कुम्भीपाकमें प्राप्त वह रोताथा इस भाँति वह पापी बहुत प्रकार के नरकोंको दुःखसे भोगकर ॥ ४४ ॥ तदनन्तर पचहचरि युगोंतक प्रेतयोनिमें प्राप्त हुआ जोकि सूजीके समान सुखवाला तथा बड़े शरीरवाला, बड़ीध्वनिवाला व बड़े पेटवाला

वेगलेबद्धा रज्जुनावृचकोटरे ॥ ४१ ॥ चाण्डालैर्वृष्टितोभूमापितश्चेतःश्वपाकिभिः ॥ तेनकर्मविपाकेन रौरव नरकं गतः ॥ ४२ ॥ षष्टिवर्षमहसाणि विष्टायांकृमितांगतः ॥ ततो हिनरकंप्राप्ते यमशासनकारकैः ॥ ४३ ॥ कुम्भीपाकगतो गौति वैतरण्याप्रपीडितः ॥ एवं बहुविधान्नभुक्त्वा पापी सदुःखतः ॥ ४४ ॥ ततः प्रेतत्वमापन्नो युगानां पञ्चसप्त तिम्र ॥ सूचीमुखो महाकायो महारावो महोदरः ॥ ४५ ॥ धुधातृपापराक्रान्तो मरुदेशसमाश्रितः ॥ ततः कष्टतरं प्राप्य पिशाचीं तनुमाश्रितः ॥ ४६ ॥ कुटिलो दुष्टभावश्च दुष्टाचारी दिग्भ्रमरः ॥ विष्टामूत्रकृताहारो प्रृतिपर्यक्तभोजनः ॥ ४७ ॥ इमशाने विट्प्रभोजी च कृत्तिवासो विलोचनः ॥ भग्नवाप्यांतडागे च शुष्कवृक्षे च निर्जले ॥ ४८ ॥ प्राकारपरिधाकारे शून्यागारे न दीतटे ॥ निवासोरोचते तस्य सर्वदा सर्वसन्धिषु ॥ ४९ ॥ एवं बहुयुगेयाते महाकालवने गतः ॥ यत्र माहे इवरा

था ॥ ४५ ॥ और लुधा व प्यास से आक्रामित वह मरुदेशमें प्राप्त हुआ तदनन्तर बहुत कष्टको पाकर पिशाचवाले शरीर में प्राप्त हुआ ॥ ४६ ॥ जो कि कुटिल व दुष्टस्वभाव दुष्ट आचरणवाला तथा दिग्भ्रमर (बस नहीं) और विष्टा मूत्रको आहार करनेवाला व दुर्गन्धिसंयुत वस्तुको भोजन करनेवाला हुआ ॥ ४७ ॥ और इमशानमें विष्टा खाने वाला व चर्मवसनवाला, नेत्रहीन था व फूटीवावली व तड़ाग में और सूखेवृक्ष व निर्जल स्थान में ॥ ४८ ॥ और छहर दिवाली व परिघ के समान आकारवाले तथा शून्य घरमें व नदीके किनारे सदैव सब सन्धिषों (सन्ध्याओं) में उसको निवास रूचताथा ॥ ४९ ॥ इस प्रकार बहुत युग बीतनेपर वह महाकालवनमें गया जहाँ

कि शिवजी का लिंग व अद्भुत सुन्दरकुण्ड था ॥ ५० ॥ वहाँपर भी क्षणभर में सिंहेने मारडाला और उस पापीको मारकर जलको चाहेनेवाला सिंह कुण्ड में पैठ गया ॥ ५१ ॥ और दाढ़ोके बीचमें प्राप्त अस्थि (हड्डी) उसके मुख से जलमें गिरपड़ी उस पुण्यके प्रभावसे सब पाप नाशको आप्तहुआ ॥ ५२ ॥ और उस समय मरनेही पर वह लिंग नेत्रोंके मध्यमें प्राप्तहुआ व पिशाचके शरीर को छोड़कर ज्योति उस लिंगमें पैठ गई ॥ ५३ ॥ तब से लगाकर हे व्यासजी ! उत्तम पिशाचमोचन तीर्थहुआ और पिशाचमोचनेश नामक शिवजी पृथ्वीमें प्रसिद्धिको प्राप्तहुये ॥ ५४ ॥ मदसे मतवाले हाथियों की नाई पातक तबतक गरजते हैं जबतक कि मनुष्य क्षिप्रानदी

लिङ्गः सुन्दरं कुण्डमद्भुतम् ॥ ५० ॥ तत्रापि क्षणमात्रेण सिंहेन विनिपातितः ॥ घातयित्वा च तं पापं जलार्थी कुण्डमा
विशत् ॥ ५१ ॥ दंष्ट्रान्तरगतं चास्थिपतितं तन्मुखाज्जले ॥ तेन पुण्यप्रभावेण सर्वपापं च यंगतम् ॥ ५२ ॥ मृतमात्रे च
लिङ्गन्तर्नेत्रान्तरगतं तदा ॥ हित्वा पैशाचकंदं हे ज्योतिस्तल्लिङ्गमाविशत् ॥ ५३ ॥ तदारभ्य परंव्यास तीर्थपैशाचमो
चनम् ॥ पिशाचमोचनेशाख्यो भुवि विख्यातताङ्गतः ॥ ५४ ॥ तावद्गर्जन्ति पापानि मदोन्मत्ता गजा इव ॥ याव
न्नायाति क्षिप्रायां तीर्थपैशाचमोचने ॥ ५५ ॥ पिशाचमोचने स्नात्वा शुचिर्भूत्वासमाहितः ॥ पिशाचमोचने शाख्यं पू
जयित्वा यथाविधि ॥ ५६ ॥ सर्वपापविशुद्धात्मा जायेते नात्र संशयः ॥ पिशाचमोचने व्यास महादानानि कारयेत् ॥ ५७ ॥
न तस्य पुनरावृत्तिः शिवलोकात्कदाचन ॥ पिशाचमोचनकथां पवित्रां पापहारिणीम् ॥ ५८ ॥ पठनाच्छ्रवणैश्च हयमेध
फलं लभेत् ॥ ५९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे सुन्दरकुण्डपिशाचमोचनमाहात्म्यं नाम चतुषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६४ ॥

में पिशाचमोचनतीर्थ में नहीं आता है ॥ ५५ ॥ सावधान होताहुआ मनुष्य पिशाचमोचनतीर्थ में नहाकर और विधिपूर्वक पिशाचमोचनेश्वर नामक शिवजीको पूज
कर ॥ ५६ ॥ सब पापोंसे शुद्धचित्तवाला होता है इसमें सन्देह नहीं है हे व्यासजी ! जो नर पिशाचमोचनतीर्थ में महादानोको करे ॥ ५७ ॥ उसकी कभी शिवलोकासे
पुनरावृत्ति नहीं होती है याने वह शिवलोकासे फिर कभी नहीं लौटता है पवित्र व पापहारिणी पिशाचमोचन की कथा के ॥ ५८ ॥ पढ़ने व सुनने से मनुष्य अश्वमेध
यज्ञके फलको प्राप्त होता है ॥ ५९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डमापाटीकायां सुन्दरकुण्डपिशाचमोचनमाहात्म्यवर्णनं नाम चतुषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६४ ॥

दो० । कह्यो नीलगङ्गा यथा ब्रह्मा सो निजहाल । पैसठिये अध्याय में सोई चरित रसाल ॥ व्यासजी बोले कि हे वेदविदावर, ब्रह्मन् । मैं फिर तुममे यह सुना चाहताहूँ कि नीलगंगा किस समय क्षिप्रकुण्ड में भलीभाति प्राप्तहुई है ॥ १ ॥ सनत्कुमारजी बोले कि हे व्यासजी । समस्त तीर्थोंके फलको देनेवाले महातीर्थ को सुनिये कि नीलगंगा में नहाकर मनुष्य संगमेश्वरजीको पूजै ॥ २ ॥ तो उसके दुष्टसंगसे उपजेहुये दोष कभी नहीं होते हैं एक समय तीनों लोकोंको पवित्र करतीहुई त्रिपथगा (तीनमागोंसे गमन करनेवाली) श्रीगंगानदी नीलवसनवाली तथा शोचसे विकल होकर ब्रह्मलोकमें गई व बोली कि हे ब्रह्मन् ! पहले मेरा कियाहुआ यह

व्यासउवाच ॥ भूयस्तु श्रोतुमिच्छामि त्वत्तोब्रह्मविदांवर ॥ नीलगङ्गाकदाब्रह्मन् क्षिप्रकुण्डेसमागता ॥ १ ॥ सनत्कुमारउवाच ॥ शृणुव्यासमहातीर्थं सर्वतीर्थफलप्रदम् ॥ नीलगङ्गाद्वारःस्नात्वा सङ्गमेश्वरमर्चयेत् ॥ २ ॥ दुष्टसङ्गोद्भवादोषा न भवन्ति कदाचन ॥ एकदाब्रह्मलोकैवे गङ्गा त्रिपथगानदी ॥ ३ ॥ गता पुनन्ती त्रील्लोकान्नीलवासाशुचाहिता ॥ भगवन् किमिदं जातं पातकं मे कृतम्पुरा ॥ ४ ॥ दुष्टाचारपरा मे च येनैषा प्रापिता दशा ॥ सर्वलोकेषु यतकिञ्चिज्जनानां पातकम्भुवि ॥ ५ ॥ तत्सर्वं मयि तिष्ठेत्तु सर्वेषामपि देहि नाम् ॥ तेनाहं वै भराक्रान्ता नो शक्ता चालितुन्धराम् ॥ ६ ॥ नीलवासां विवर्णां च सर्वधर्मबहिर्मुखैः ॥ यत्किञ्चित्क्रियते कर्म शुभं वा यदि वा शुभम् ॥ ७ ॥ मयित्यक्त्वा पुनन्ती मे जन्तवः सर्वशोमलाः ॥ तिष्ठन्ति पुरयलोकेषु भुक्तिमुक्तिप्रदेषु च ॥ अस्माकं च महत्कष्टं जातं धातः परम्मलम् ॥ न हि शर्मनैव शान्तिर्न निद्रान च निवृत्तिः ॥ ९ ॥ न हि लोकस्थितिर्भेद्य पापिष्ठायामनातनी ॥ दुष्टसङ्गोद्भवैर्दोषैः प्लावि क्वा पाप उरपन्न हुआहै ॥ ३ । ४ ॥ जिससे आज दुष्टआचारमें तत्पर यह दशा प्राप्तकी गई पृथ्वीपर सब लोकोंमें मनुष्यों का जो कुछ पातक होता है ॥ ५ ॥ सबभी प्राणियोंका वह सब पाप सुभ्रमें स्थित होता है उस कारण भारसे धिरीहुई व नीलवसनवाली व उदासीन मैं पृथ्वीमें चलने के लिये नहीं समर्थहूँ क्योंकि सब धर्मोंसे पृथक्जनों से जो कुछ शुभ या अशुभकर्म किया जाता है ॥ ६ । ७ ॥ उसको सुभ्रमें छोड़कर ये सब निर्मल प्राणी पवित्र होते हैं व भुक्ति, मुक्तिदायक पुरयलोकों में स्थित होते हैं ॥ ८ ॥ हे विधातः ! हमको बड़ा कष्ट है क्योंकि बहुत मल होगया इससे न कल्याण है न शान्ति है न निद्रा आती है और न सुख होता है ॥ ९ ॥ हे

जगद्गुरो ! जो सनातनी स्थितिथी वह आज मेरी पापिनी स्थिति संसार में न होगी क्योंकि दुष्टसंग से उपजेहुये दोषोंसे मैं डूबीहुई हूं ॥ १० ॥ क्या करूं व कहांजाऊं कि जिमसे मेरी शान्तिहोवै मेरे लिये क्या तपहै व क्या दान, कौन तीर्थ और कौन यज्ञहै ॥ ११ ॥ कि जिससे पापसे संयुत अंगवाली मैं पहलेकी प्रकृति (दशा) को प्राप्तहोऊं ऐसा जानकर हे महायोगिन् ! जैसा योग्यहो वैसा कीजिये ॥ १२ ॥ ब्रह्मा बोले कि हे सरिदुत्तमे ! पापनाशक कारणको सुनिये कि महाकालनामक सुन्दर वन में यह अमरावती पुरी है ॥ १३ ॥ भूमिमें वहा क्षिप्रानामक पवित्रकारिणी नदी वर्त्तमान है उसके दर्शनमात्रसे समस्त पापोंका क्षयहोवै है ॥ १४ ॥ हे महाभागो ! ताहंजगद्गुरो ॥ १० ॥ किङ्करोमिक्कगच्छामि येनशान्तिर्भवेन्मम ॥ किंतपःकिञ्चदानम्मे किंतीर्थंकिंचसाधनम् ॥

११ ॥ येनाहंपपलिप्ताङ्गी पूर्वप्रकृतिमाप्नुयाम् ॥ एवंज्ञात्वामहायोगिन् यथायोग्यंतथाकुरु ॥ १२ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ श्रूयताम्भोःसरिच्छ्रेष्ठे कारणंपापनाशनम् ॥ महाकालवनेरम्ये पुरीह्येषामरावती ॥ १३ ॥ तत्रचिप्रासरिच्छ्रेष्ठा वर्तते सुविपावनी ॥ तस्यादर्शनमात्रेण सर्वपापक्षयोर्भवेत् ॥ १४ ॥ तत्रगच्छमहाभागे सद्यश्चात्मविशुद्ध्ये ॥ ब्रह्मणेदं समाख्यातं श्रुत्वागङ्गासरिद्वरा ॥ १५ ॥ तमभिज्ञायसंप्राप्ता महाकालवनंशुभम् ॥ पुष्करस्याग्रमार्गेच यत्रदेवोमस्तसुतः ॥ १६ ॥ विन्ध्यस्यचोत्तरेभागे अञ्जन्याश्रमस्तमम् ॥ सापुत्रेणतपस्तेपे पवित्राब्रह्मचारिणी ॥ १७ ॥ पतिव्रताभिःसर्वाभिः पतिभिर्व्रह्मचारिभिः ॥ देवाङ्गनाभिर्बहुभिः क्रीडाद्भिर्बालकुञ्जरैः ॥ १८ ॥ सरसीफुल्लकल्लारैर्मत्तालिकुलनादितम् ॥ निर्वैरजन्तुभिःसेव्यं ब्रह्मर्षिगणसेवितम् ॥ १९ ॥ मनश्चाल्हादकंपुण्यं पवित्रंपापनाशनम् ॥ तत्रप्रवेशमात्रेण

अपनी शुद्धिके लिये वहा शीघ्रही जावो ब्रह्मासे इस कहैहुये वचन को सुनकर श्रेष्ठनदी श्रीगंगाजी ॥ १५ ॥ उसको जानकर उत्तम महाकालवनमें आसहुई पुष्कर के आगे मार्गमें जहां पवनसुत (हनुमान्) जी हैं ॥ १६ ॥ वहां विन्ध्याचल के उत्तरभागमें उत्तम अञ्जनीका आश्रम है पुत्रसमेत ब्रह्मचारिणी व पवित्र उस अंजनी ने वहा तप कियाहै ॥ १७ ॥ जो आश्रम कि ब्रह्मचारी पतियों समेत सब पतिव्रता स्त्रियों से संयुत व खेलतेहुये बहुत बालगजों व देवांगनाओं से संयुत था ॥ १८ ॥ व तड़ाग में फूलहुये कमलों से व मतवाले अमरसमूहों से शब्दितथा और वैरहित प्राणियों से सेवनेयोग्य व ब्रह्मर्षिगणों से सेवित ॥ १९ ॥ व मनको आनन्द-

जोकि दुग्धकुंड ऐसा कहाहुआ तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध है ॥ २६ ॥ जो कि सब पापोंको हरेनेवाला व समस्त कामनाओंके धरको देनेवाला है पुरातन समय धर्म की मूर्ति पृथु ने पृथ्वी देवीको दुहा है ॥ ३० ॥ सब हव्यों को उपजानेवाले व सबों को जीवनदायक दुग्धको इस कुंडमें धरकर उन्होंने दिया है उसी कारण दुग्धतडाग कहा गया है ॥ ३१ ॥ इस कुंडमें नहाकर जलको पीकर व दूधवाली गऊको देकर मनुष्य सब पीड़ाओं से छूट जाता है सब समयों में धन, धान्य से संयुत होता है और मरकर स्वर्गलोक को जाता है तदनन्तर पुष्करतीर्थ को प्राप्त होकर स्नान बानादिक करै ॥ ३२ । ३३ ॥ तो सब पापों से शुद्ध चित्तवाला पुरुष पुष्कर के फल को प्राप्त होता

कुण्डमितिख्यातं त्रिषुलोकेषु विश्रुतम् ॥ २६ ॥ सर्वपापहरं पुण्यं सर्वकामवरप्रदम् ॥ पुरा दुग्धाधरा देवी पृथुना धर्ममूर्तिना ॥ ३० ॥ दुग्धं सर्वहविर्भाव्यं सर्वपां जीवनप्रदम् ॥ दत्तं निधाय कुण्डे सिंमस्तेन दुग्धसरः स्मृतम् ॥ ३१ ॥ कुण्डे स्नात्वा पयः पीत्वा दत्त्वा गाञ्च पयस्विनीम् ॥ सर्वबाधा विनिर्मुक्तो धनधान्यसमन्वितः ॥ ३२ ॥ जायते सर्वकालेषु मृतः स्वर्गपुरं व्रजेत् ॥ ततः पुष्करमासाद्य स्नानदानादिकं चरेत् ॥ ३३ ॥ सर्वपापविशुद्धात्मा पुष्करस्य फलं लभेत् ॥ ३४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वन्तीखण्डे नीलगङ्गामाहात्म्यं नाम पञ्चषष्ठितमोऽध्यायः ॥ ६५ ॥ * ॥ * ॥

व्यास उवाच ॥ कोसौ विन्ध्यगिरि ब्रह्मन् कदाकाले समागतः ॥ महाकालवने रम्ये केन वा प्रेषितः पुरा ॥ १ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ पुररेवा जलैर्व्यास स्यान्नितैषा वसुन्धरा ॥ तदा सर्वसुरैरेव मगस्तिमुनिसत्तमः ॥ २ ॥ आराधितो महाभाग धरणीत्राणकारणात् ॥ तदा गत्यगिरौ रम्ये विन्ध्ये समुनिसत्तमः ॥ ३ ॥ एकाग्रमानसो भूत्वा भवानीं विन्ध्यवासिनी

हे ॥ ३४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वन्तीखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां नीलगङ्गामाहात्म्यं नाम पञ्चषष्ठितमोऽध्यायः ॥ ६५ ॥ *
दो० । जिमि उज्जयिनी पुरी महे विन्ध्यवासिनी देवि । आई छछाछि में कछो सोइ चरित सुखसेवि ॥ व्यास जी बोले कि हे ब्रह्मन् ! यह विन्ध्याचल कौन है व सुन्दर महाकालवन में किस समय आया है व पहले किससे पठाय गया है ॥ १ ॥ सनत्कुमार जी बोले कि हे व्यास जी ! पुरातन समय जब नर्मदा के जलों से यह पृथ्वी डुबाई गई तब सय देवताओं ने मुनिश्रेष्ठ अगस्त्यजीको ॥ २ ॥ पृथ्वी की रक्षा के कारण आराधन किया तब है महाभाग ! सुन्दर विन्ध्याचल है

आकर उन मुनिश्रेष्ठ ने ॥ ३ ॥ एकाग्रमनबले होकर उससमय उन देवीजी से वरदान की इच्छा से विन्ध्यवासिनी भगवती का आराधन किया ॥ ४ ॥ जो कि कंस को भगानेवाली व दैत्यों को नाश करनेवाली तथा भार उतारनेवाली, पुण्यरूपिणी व उत्तम और बलदेव जीकी बहन हैं ॥ ५ ॥ व यशोदा जी के गर्भ से उत्पन्न और चाणूर के बल को मर्दन करनेवाली, बिजली के समान रूपवती, आकाश में स्थित, कृष्ण और कालिय सर्प को मर्दनेवाली हैं ॥ ६ ॥ और स्वामि-कार्तिकेय जीकी माता, कनियों की वाणी की देवता, मुख्य ब्राह्मणों की गायत्री व छंदों के मध्य में उत्तम बृहतीछन्द हैं ॥ ७ ॥ और सुरेन्द्र की सहस्रनयना व ऋषि

म ॥ आराधनंतदाचक्रै तस्यादेव्यावरेप्सया ॥ ४ ॥ कंसविद्रावणकरीमसुराणांजयंकरीम् ॥ भारावतारणींपुण्यां बलस्यभगिनींशुभाम् ॥ ५ ॥ यशोदागर्भसम्भूतां चाणूरबलमर्दिनीम् ॥ विद्युद्रूपांनभस्थान्तु कृष्णांकृष्णाहिमर्दिनीम् ॥ ६ ॥ जननीदेवसेनस्य कवीनांवाक्यदेवताम् ॥ गायत्रीद्विजमुख्यानां बृहतीछन्दसांवराम् ॥ ७ ॥ सहस्राक्षीं सुरेन्द्रस्य ऋषेश्वररुन्धतीम्पराम् ॥ गवांकामदुहांश्यामालतामधुतमाप्रियाम् ॥ ८ ॥ अदितिंसर्वमातृणां पार्वतींसर्वयोपिताम् ॥ ज्योत्स्नाञ्चान्द्रमसीबालां सर्वकामवरप्रदाम् ॥ ९ ॥ शारदांक्रतुवेलायां वृन्दावनचरींवराम् ॥ मायिनां वैष्णवीमायां सर्वदैत्यविमोहिनीम् ॥ १० ॥ महालक्ष्मींश्रीमभीष्टां यक्षिणींधनदांचिताम् ॥ महोदधींप्सितांवेलां राज्ञां कायेषुचाक्रिणीम् ॥ ११ ॥ वेदिकांयज्ञशालानां वराहस्यावनींशुभाम् ॥ दक्षिणांसर्वदीक्षाणां सर्वकामफलप्रदाम् ॥ १२ ॥

की उत्तम अरुन्धती स्त्री हैं तथा गौवों के मध्य में कामदुघा श्यामा स्त्री व अत्यन्त मधुप्रिया लता हैं ॥ ८ ॥ व सब माताओंके मध्यमें अदिति और सब स्त्रियों के मध्य में पार्वती, चन्द्रमा की चन्द्रिका, बाला व सब कामनाओं के वरको देनेवाली हैं ॥ ९ ॥ व यज्ञसमय में शारदा, वृन्दावनचारिणी, उत्तमा व सब दैत्यों को मोहने वाली मायाविद्योंकी वैष्णवी माया हैं ॥ १० ॥ व महालक्ष्मी, लक्ष्मी व कुम्भर से पूजित प्यारी यक्षिणी, समुद्रकी प्रियवेला (मर्यादा) और राजाओं के शरीरों में चक्रधारिणी हैं ॥ ११ ॥ व यज्ञमन्दिरोंकी वेदी व वराहजीकी उत्तम पृथ्वी तथा सब दीक्षाओंकी दक्षिणा व समस्त कामनाओं के फलों को देनेवाली हैं ॥ १२ ॥

उस समय इसप्रकार स्तुतिकी हुई व प्रसन्नता से सुमुखी विन्ध्यवारिनी देवी प्रत्यक्ष होकर ऋषियों के मध्यमें श्रेष्ठऋषि अगस्त्यजी से बोलीं ॥ १३ ॥ कि हे द्विजोत्तम ! जो तुमको प्रियहो उस मनोरथ को सुम्न को मांगिये क्योंकि हे वत्स ! तुमने बहुत दिनोत्तक मेरी स्तुति की है ॥ १४ ॥ अगस्तिजी बोले कि हे देवताओं का उपकार करनेवाली, मातः ! यदि वर देने योग्य है तो संसार में सबलोकों को भयदायिनी यह नर्मदा बड़ी है ॥ १५ ॥ उसने इस संसारको डुबादिया उस को निग्रह (दण्ड) कीजिये उस समय महर्षि अगस्तिजी से इसप्रकार प्रार्थना कीहुई वे ॥ १६ ॥ उत्तम आचरणवाली विन्ध्यवासिनी देवी उस समय हे व्यासजी !

एवंस्तुतातदादेवी प्रत्यक्षाविन्ध्यवासिनी ॥ प्राहप्रसादसुमुखी ऋषीणांप्रवरंऋषिम् ॥ १३ ॥ त्रियताम्भोद्विज श्रेष्ठ तदस्मत्तोभिवाञ्छितम् ॥ यदीप्सितं त्वया वत्स स्तुतिर्मेसुचिरंकृता ॥ १४ ॥ अगस्तिरुवाच ॥ यदि मातर्वरो देयो देवानामुपकारिणि ॥ रेवेयं वद्धितालोकं सर्वलोकभयप्रदा ॥ १५ ॥ तथेदं प्रवितं विश्वं तस्यानिग्रहणंकुरु ॥ इति सा प्रार्थिता तेन तदा काले महर्षिणा ॥ १६ ॥ अगात्साध्वी तदा व्यास महाकालवनं शुभम् ॥ सान्त्वपूर्ववचः पथ्यमगस्तिमिदमब्रवीत् ॥ १७ ॥ वारयिष्ये परान् देवीं वद्धमानां द्रुतं ऋषे ॥ तावत्त्वं ऋषिभिः साकं विन्ध्यस्य च महागिरिः ॥ १८ ॥ परमे त्रिकुटे द्वारे स्थास्यसि ऋषिसत्तम ॥ पुरीक्षे षामुनि श्रेष्ठ त्रिषु लोकेषु विश्रुता ॥ १९ ॥ अत्रैव सुचिरं कालं मातृभिर्निवसाम्यहम् ॥ तत्रापित्वं सदा सिद्धचेत्राधिपतिमाप्नुहि ॥ २० ॥ मत्सरो निर्मलं पुण्यं विमलोदन्तु विश्रुतम् ॥ यत्र पुण्यवतां वासो देव्यस्तिष्ठन्ति कोटिशः ॥ २१ ॥ तस्मिन् स्तीर्थे नराः स्नात्वा भूत्वा चैव समाहिताः ॥ यजन्ति चैव माम्भक्त्या धूप

उत्तम महाकालवनको गई व प्रियवचनपूर्वक अगस्तिजी रो इस पथ्य वचनको बोली ॥ १७ ॥ कि हे ऋषे ! मैं बड़ी हुई उत्तम देवीजी को शीघ्र ही मनाकरूंगी और तब तक तुम ऋषियों समेत विन्ध्य नामक महापर्वत के ॥ १८ ॥ उत्तम त्रिकुट द्वार पर स्थित होवो हे ऋषिसत्तम, मुनि श्रेष्ठ ! यह पुरी तीनों लोकों में प्रसिद्ध है ॥ १९ ॥ यहीं पर मैं बहुत समय तक मातृकाश्रमों समेत बसूंगी और वहाँ पर तुम भी सदैव सिद्धचेत्राधिपति को प्राप्त होवोगे ॥ २० ॥ और पवित्र व निर्मल विमलोद ऐसा प्रसिद्ध मेरा तड़ाग है जहाँ कि पुण्यवानों का निवास है व करोड़ों देवियाँ स्थित हैं ॥ २१ ॥ उस तीर्थ में नहाकर व सावधान होकर जो पुरुष सुम्नको भक्तिये

धूप, दीप व अग्निर्तर्पण (हवन) से पूजतेहैं ॥ २२ ॥ और दूध, शक्कर व घी के भोजनों से विधिपूर्वक ब्राह्मणों को भोजन कराते हैं उनको तीनों लोकों में कुछ दुर्लभ नहीं होताहै ॥ २३ ॥ और वह मनुष्य धन, धान्य, पृथ्वी, ऐश्वर्य व पुत्र स्त्रीआदि की संपदा और देवताओं को भी दुर्लभ अनेक भांति के सुखों को प्राप्तहोता है ॥ २४ ॥ और उनको शत्रुमे व चोरों से तथा राजा से भय नहीं होताहै और न शत्रु, अग्नि व जलराशि से कभी भय होवेगा ॥ २५ ॥ और दीर्घ आयुर्वैज्याला व बुद्धिमान् तथा सब पापों से शुद्ध चित्तवाला वह मनुष्य संसार में सैकड़ों वर्षोंतक निवासकर मरकर शिवपुर को जाताहै ॥ २६ ॥ हे व्यासजी ! इसप्रकार मनो-

दीपाग्निर्तर्पणैः ॥ २२ ॥ क्षीरस्वण्डाज्यभोज्यैश्च भोजयेद्विधिवद्विजान् ॥ न तेषां दुर्लभं किञ्चित् त्रिषु लोकेषु विद्यते ॥ २३ ॥ धनधान्यधरैश्च पुत्रदारादिसम्पदः ॥ प्राप्नोति विविधान् भोगान् देवानामपि दुर्लभान् ॥ २४ ॥ न शत्रुतोभयं तेषां न द्रुमभ्यो वानराजतः ॥ न शस्त्रानलतो योधा त्कदाचित्सम्भविष्यति ॥ २५ ॥ दीर्घायुर्बुद्धिर्मातुल्लोके उपित्वाशा इवतीः समाः ॥ सर्वपापविशुद्धात्मा मृतः शिवपुरं व्रजेत् ॥ २६ ॥ एवं व्यासपुरीम् प्राप्य रम्यां चोज्जयिनीं शुभाम् ॥ समाश्रिता तदा देवी सततं विन्ध्यवासिनी ॥ २७ ॥ तस्मिन् स्तीर्थे नरः स्नात्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ स्त्रियो वारजदोषाक्ता व न्ध्यै वैकाकबन्ध्यका ॥ २८ ॥ दुर्भगाशीलहीना च सर्वकामविवर्जिता ॥ विमलोदेषिताः स्नात्वा दृष्ट्वा वै विन्ध्यवासिनीम् ॥ २९ ॥ मुच्यते सर्वदोषैस्तु नात्र कार्या विचारणा ॥ अपुत्राः प्राप्नुयुः पुत्रान् कन्या वीरं पतिं वरा ॥ ३० ॥ प्राप्यते सर्वसौभाग्यं सर्वकामवरप्रदम् ॥ विद्यावाञ्छायते विप्रः क्षत्रियो विजयी भवेत् ॥ ३१ ॥ वैश्यश्च बहुलाभाढ्यः शूद्रस्तु

हर व उत्तम उज्जयिनी पुरी को प्राप्तहोकर उस समय विन्ध्यवासिनी देवी सदैव स्थितहुई ॥ २७ ॥ उस तीर्थ में नहाकर मनुष्य सब पापों से छूटजाताहै रज के दोष से संयुत स्त्रियां, बंध्या व काकबन्ध्या ॥ २८ ॥ दुर्भगा, शीलरहित व जो सब कामनाओं से रहितहैं वे भी विमलोद कुण्ड में नहाकर व विन्ध्यवासिनी देवी जी को देखकर ॥ २९ ॥ सब दोषों से छूटजातीहैं इस विषय में विचार न करना चाहिये व विन पुत्रवाली स्त्रियां पुत्रों को प्राप्तहोतीहैं और पतिको स्वीकार करने वाली कन्या पतिको पाती है ॥ ३० ॥ व सब कामनाओं के वरदायक समस्त सौभाग्य को पाती है व ब्राह्मण विद्यावान् होता है और क्षत्रिय विजयवान् होता

है ॥ ३१ ॥ और वैश्य बहुत लाभ से संयुत होता है व शूद्र सुखको भोगता है इस समस्त कामनाओं के वरोंको देनेवाली कथा के ॥ ३२ ॥ पढ़ने व सुनने से भी मनुष्य गोसहस्र के फल को प्राप्त होता है ॥ ३३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेभाषाटीकायांविन्ध्यवासिनीविमलोदतीर्थमाहात्म्यनामषट्षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६६ ॥
दो० । क्षानासंगम तीर्थकर जो माहात्म्य विचित्र । सरसठिर्वे अध्याय में सोइ रसाल चरित्र ॥ सनत्कुमारजी बोले कि हे व्यासजी ! ज्ञातानदी के संगम से उपजा हुआ अन्य तीर्थ है कि जिसके स्नानही से पुरुष बड़े पातकों से छूटजाताहै ॥ १ ॥ जब शनैश्चरदिन समेत अमावस तिथि आवै तब सावधान होता हुआ सुखमश्नुते ॥ कथाम्पुण्यवतीमेतां सर्वकामवरप्रदाम् ॥ ३२ ॥ पठनाच्छ्रवणाद्वापि गोसहस्रफलंलभेत् ॥ ३३ ॥
इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेविन्ध्यवासिनीविमलोदतीर्थमाहात्म्यनामषट्षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६६ ॥ *

सनत्कुमारउवाच ॥ तीर्थमन्यतरंव्यास ज्ञातासङ्गमसम्भवम् ॥ यस्यतुस्नानमात्रेण महापापैःप्रमुच्यते ॥ १ ॥
अमावेशनिवारेण यदायातिसमाहितः ॥ पितृनुद्दिश्ययःकुर्याच्छ्राद्धंचैवतिलोदकम् ॥ २ ॥ पश्येच्छन्नैश्चरंदेवं
स्थावरंलिङ्गमुत्तमम् ॥ तस्यशानिश्चरीपीडा नभवेत्तुकदाचन ॥ ३ ॥ व्यासउवाच ॥ महतीर्थसमाख्यातं महाकाल
वनेशुभे ॥ भूयस्तुश्रोतुमिच्छामि विस्तरेणतपोधन ॥ ४ ॥ सनत्कुमारउवाच ॥ श्रूयतांभोद्विजश्रेष्ठ कथांपौराणिकींशु
भाम् ॥ यस्याःश्रवणमात्रेण महापापक्षयोभवेत् ॥ ५ ॥ रेवाचर्मणवती ज्ञातातिस्रोतयःपुरानघ ॥ त्रैलोक्यपावनी
जातामुविचामरकण्टकात् ॥ ६ ॥ पुण्याःपुण्यजलारम्याःपवित्राःपापहारिणीः ॥ पुनन्त्यःसर्वलोकान्हि पापिनःपाप
जो पुरुष तिलोदक श्राद्धको करता है ॥ २ ॥ व उत्तम शनैश्चरदेव स्थावर लिंग को देखता है उसके शनैश्चर से उपजीहुई पीडा कभी नहीं होती है ॥ ३ ॥ व्यास
जी बोले कि हे तपोधन ! महातीर्थ ऐसे कहेहुये तीर्थको मैं फिर विस्तार से सुनना चाहताहूँ ॥ ४ ॥ सनत्कुमारजी बोले कि हे द्विजोत्तम ! पुराण
वाली उत्तम कथाको सुनिये कि जिसके सुननेहीसे बड़े पातकों का नाश होताहै ॥ ५ ॥ हे अनघ ! तीनों लोकों को पवित्र करनेवाली नर्मदा, चर्मणवती व क्षाता तीन
नदियां पुरातन समय अमरकण्टक से पृथ्वीपर हुई हैं ॥ ६ ॥ जोकि पुण्यदायिनी व पवित्रजलवाली तथा सनोहर, पवित्र व पापोंको हरनेवाली हैं और पापकारी व

पापी सब मनुष्यों को पवित्र करती हैं ॥ ७ ॥ एक समय मान्धाता के उत्तमनेत्र में सुन्दर उपवन में आपस में जीतने की इच्छा से प्रसन्न होती हुई वे परस्पर में
क्रीडा करती थीं ॥ ८ ॥ और कुछ दोषके प्रसङ्गसे आपस में भेदहुआ व नर्मदासंग को छोड़कर व उत्तम विन्ध्याचल को भेदनकर ॥ ९ ॥ सुन्दर महाकालवन में
भलीभांति आई जहाँ कि नदियों में उत्तम व महापुण्यदायिनी क्षिप्रानदी व यह अमरावतीपुरी है ॥ १० ॥ वहाँ सब तीर्थोंमें श्रेष्ठ व रुद्रसर ऐसा कहाहुआ उत्तमतीर्थ
है जो कि मुक्ति, सुक्ति, वायक व नित्य सिद्धि विगणों से सेवित है ॥ ११ ॥ जहाँ पुरातन समय आकर ज्ञातानदी क्षिप्रके सङ्गम से घिरि है वहाँ क्षातासङ्गम संज्ञक
कारिणः ॥ १२ ॥ एकदोपवनेरम्ये मान्धातु क्षेत्र उत्तमे ॥ मिथोरमन्तिसंहृष्टाः परस्परजिगीषया ॥ १३ ॥ किञ्चिदोषप्रस
ङ्गेन मिथोभेदाह्वजायत ॥ रेवासङ्गपरित्यज्य भित्त्वा विन्ध्यगिरिवरम् ॥ १४ ॥ महाकालवनेरम्ये समयातासरिह्वरा ॥
यत्राक्षिप्रामहापुण्या पुरीहोषामरावती ॥ १५ ॥ सर्वतीर्थवरं श्रेष्ठं नाम्नारुद्रसरः स्मृतम् ॥ मुक्तिमुक्तिप्रदं नित्यं सिद्धिर्षि
गणसेवितम् ॥ १६ ॥ यत्रागत्य पुराक्षाता क्षिप्रसङ्गसमावृता ॥ तत्रतीर्थपरं जातं ज्ञातासङ्गमसंज्ञितम् ॥ १७ ॥ यत्र
धूतरजो जातः सद्यः प्रोक्तो विभावसुः ॥ कथं सूर्यस्त्वया प्रोक्तो विरजोऽस्मिन् पुराभवत् ॥ १८ ॥ एतद्वेदि
तुमिच्छामि त्वत्तो ब्रह्मविदां वर ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ पुरा तु संज्ञां सावित्री त्वष्टा स्वतनया नन्दौ ॥ १९ ॥ पतिधर्म
रतां नित्यं सवित्रलोकचक्षुषे ॥ तस्यावैमिथुनं जज्ञे लोकसाक्षि विभावसोः ॥ २० ॥ यमौ वैवस्वतो जातो यमुनालोक
पावनी ॥ ततः संज्ञां ब्रवीच्छायां स्वकीयां सुनृतां गिरम् ॥ २१ ॥ मिथुनं मे तवोत्सङ्गे धृतं तत्परिपालय ॥ यावत्स्वहमितश्छा
उत्तमतीर्थ उत्पन्न हुआ है ॥ २२ ॥ जहाँ कि उत्तीक्ष्ण रजरहित कहेहुये सूर्यनारायणजी हुये हैं व्यासजी बोले कि तुमसे कहेहुये सूर्यनारायणजी पुरातनसमय इस
क्षेत्रमें किस प्रकार रजरहित हुये हैं ॥ २३ ॥ हे वेदविदां वर ! मैं तुमसे यह जानना चाहता हूँ सनत्कुमारजी बोले कि पुरातन समय त्वष्टा (विश्वकर्मा) जनि अपनी
कन्या सावित्री संज्ञाजी को लोकके नेत्ररूप सूर्यनारायणजी के लिये दिया जो कि नित्यही पतिके धर्ममें परायण थीं उन संज्ञा में लोकसाक्षी सूर्यनारायणजी के एक
कन्या व एक पुत्र पैदा हुआ ॥ २४ ॥ २५ ॥ याने वैवस्वत यमराज व लोकोंको पवित्र करनेवाली यमुनानदी हुई तदनन्तर संज्ञाने अपनी छायासे प्रिय व सत्य वचन

को कहा ॥ १६ ॥ कि तुम्हारी गोदीमें मेरे धरेहुये उस कन्या व पुत्रको परिपालन कीजिये हे छाये ! जबतक मैं यहां अपने पिताके घरमें बसूं ॥ १७ ॥ तबतक सूर्य-
नारायणकी भक्तिमें तत्पर होतीहुई तुम मेरे घरमें रहो और पिताके मकान में गई हुई मैं कभी सूर्यनारायण से कहनेयोग्य नहींहूं ॥ १८ ॥ इस प्रकार प्रतिज्ञाकर वे
सावित्रीजी उस समय चलीगई सूर्यनारायणके भयसे विकल वे बालासंज्ञाजी पिता के घरको चलीगई ॥ १९ ॥ और पितासे मनाकीहुई उन संज्ञाने घोड़ीके रूपको
धारणकर बहुत जलवाले व घास से हरित मनोहरयनमें अमण किया ॥ २० ॥ एक समय उन लुधित यमराजजी से याचना कीहुई उन संज्ञाने मांगतेहुये यमराज के

ये वत्स्यामिस्वपितुर्गृहे ॥ १७ ॥ रविभक्तिरतातावच्चरत्स्वममेवम् ॥ नोवाच्याहंकदाद्याये पितुर्वेदमगतारवेः ॥
१८ ॥ एवंसासमयंकृत्वा सावित्रीह्यगमत्तदा ॥ पितुर्वेदमगताबाला सवितुर्भयविह्वला ॥ १९ ॥ पित्रानिवारितासालु
बडवारूपधारिणी ॥ विचचारवनेरम्ये बहुलोदकशङ्खले ॥ २० ॥ एकदायाचितातेन सायमेनबुभुक्षुणा ॥ नौदनैवैत
यादत्तं याचमानायतक्षणात् ॥ २१ ॥ तदापदाहतातेनद्धायातंचशशापह ॥ यस्मात्पादेनमेघातं कृतवान्बलभा
वतः ॥ २२ ॥ तस्मात्त्वन्तुपदाखञ्जो भविष्यसिनसंशयः ॥ एवंशप्तोरुजाक्रान्तो विललापशुचादितः ॥ २३ ॥ एत
स्मिन्नन्तरेव्यास परिभूयवसुन्धराम् ॥ भावयन्सकलाल्लोकान् ग्रहचारीविभावसुः ॥ २४ ॥ दृष्ट्वाचतनयम्पङ्गुमि-
त्युवाचतदायमम् ॥ किमिदंवत्सतेकष्टं कुतःप्राप्तंत्वयानघ ॥ २५ ॥ इतिपृष्टोयदातेन सवित्रालोकभावनः ॥ उवाचग

लिये उसीक्षण भातको नहीं दिया ॥ २१ ॥ तब उन यमराज से पांवसे मारीहुई छाया ने उनको शापदिया कि जिसलिये बलहोने के कारण तुमने चरणसे मेरे प्रहार
किया ॥ २२ ॥ उस कारण तुम पैरसे खंज होजावोगे इसमें सन्देह नहीं है इस प्रकार शापित व रोगसे आक्रामित तथा शोचसे निकल यमराज ने विलाप किया ॥
२३ ॥ इसी अवसर में हे व्यासजी ! पृथ्वीको तिरस्कारकर सब लोकोंकी भावना करतेहुये ग्रहचारी सूर्यनारायणजी ने ॥ २४ ॥ पुत्रको पंगु देखकर उस समय यह
कहा कि हे अनघ, वत्स ! यह तुम्हारे क्या कष्ट है व तुमको कहासे प्राप्तहुआ ॥ २५ ॥ जब इस प्रकार लोकोंकी भावना करनेवाले यमराजजीसे सूर्यनारायणजी ने पूछा

तत्र सयमिनीपुरी के स्वामी व गद्गद वचनवाले यमराजजी बोले ॥ २६ ॥ कि हे नाथ ! मैंने माताके समीप प्रातःकाल भोजन के लिये मांगा और उसने शीघ्रही भोजन न दिया व मैंने शिशुता से मारा ॥ २७ ॥ और माताके शापसे तिरस्कृत भरे चरण शीघ्रही गिरपड़े उस वचन को सुनकर ध्यान में तत्पर सूर्यनारायणजी मोहको प्राप्तहुये ॥ २८ ॥ व माताके शापका कारण यह विचित्र कहागया इम प्रकार बहुत समयतक ध्यानकर किरणोंवाले सूर्यनारायणजी ने जाना ॥ २९ ॥ कि लोक को पवित्र करनेवाली यह वह सुन्दर नेत्रान्तोवाली त्वष्टाकी कन्या नहीं है यह कौनहै व कहाँसे आई है हे शुचिस्मिते ! तुम कौनहो यह कहिये ॥ ३० ॥ छाया बोली कि

द्रुदवचा यमःसंयमिनीपतिः ॥ २६ ॥ प्रातराशायमेनाथ याचितंमातुरन्तिकात् ॥ नोदत्तम्भोजनंक्षिप्रं बालभावेनता
डिता ॥ २७ ॥ पादौमेगलितौसद्यो मातुःशापतिरस्कृतौ ॥ तच्छ्रुत्वामोहमापन्नो रविर्ध्यानपरायणः ॥ २८ ॥ विचित्र
मिदमाख्यातं मातुःशापस्यकारणम् ॥ एवंध्यात्वाचिरङ्कालं ज्ञातवानुरविरंशुमान् ॥ २९ ॥ नेयंसारुचिरापाङ्गी त्वा
ष्टीलोकस्यपावनी ॥ केयंवाकुतआयाता कात्वंवदशुचिस्मिते ॥ ३० ॥ छायावाच ॥ नसांसंज्ञामहाराज छायातादात्म्यस
म्भवा ॥ गतावैसापितुर्गैहे वारिताहंतयानघ ॥ ३१ ॥ सवित्रैर्नैववक्तव्यं छायेकिञ्चित्कथञ्चन ॥ एषमेसमयोनाथ ते
नाहंमौनमास्थिता ॥ ३२ ॥ तच्छ्रुत्वामगवांस्त्वष्टुः समीपंरथमास्थितः ॥ जगामसहसामानुर्वहुरोषममन्वितः ॥ ३३ ॥
तन्ट्टद्वासहसोत्थाय त्वष्टालोकपितामहः ॥ पाद्यार्घ्याचमनीयादिमधुपर्करपूजयत् ॥ ३४ ॥ नत्वापादौपरिक्रम्य
बहुमानपुरःसरम् ॥ ऊचेमधुरयावाचा प्रियन्तेकरवामकिम् ॥ ३५ ॥ रविरुवाच ॥ कस्मातुसंज्ञासावित्री ममविप्रियका
हे महाराज ! वह संज्ञा नहीं है और उसके शरीर से उपजीहुई मैं छायाहूँ हे अन्नघ ! वह पिताके घरको गई और उसने मुझको मना कियाथा ॥ ३६ ॥ कि हे छाये !
सूर्यनारायण के लिये कुछ किसी प्रकार न कहना चाहिये हे नाथ ! यह मेरी प्रतिज्ञा है उससे मैं मौनमें स्थितहूँ ॥ ३७ ॥ उस वचन को सुनकर बहुत क्रोधने संयुत
सूर्यनारायणजी रथमें बैठकर अचानकही त्वष्टा के समीप गये ॥ ३८ ॥ उनको देखकर अचानकही उठकर लोकोंके पितामह त्वष्टाजी ने षाद्य, अर्घ, आचमनीय व
मधुपर्क से पूजन किया ॥ ३९ ॥ और बहुत मानपूर्वक परिक्रमाकर चरणों को प्रणामकर मधुर वचन से कहा कि मैं तुम्हारा क्या प्रिय करूँ ॥ ४० ॥ सूर्यनारायणजी

बोले कि हे तात ! मेरा अप्रिय ! करनेवाली व मेरे मार्गको भेदन करनेवाली वह संज्ञा कहां है जोकि तुम्हारे घर आई थी ॥ ३६ ॥ त्वष्टाजी बोले कि हे तात ! हम तुम्हारी प्यारी के गमन व आगमन को नहीं जानते हैं त्वष्टाजी से ऐसा वचन कहनेपर दुःखित मनवाले सूर्यनारायणजी ने कहा ॥ ३७ ॥ कि क्या करूं कहां जाऊं तुमको स्त्री प्रियहो तो तेजको शान्तकरो ॥ ३८ ॥ सूर्यनारायणजी बोले कि हे पितामहजी ! यदि मेरा ऐसा अपूर्व दुःसह तेज है तो जैसा तुमको भलीभांति रुचता रिणी ॥ आगताते गृहं तात मम मार्गानुभेदिनी ॥ ३९ ॥ त्वष्टोवाच ॥ नहि जानीमहे तात प्रियायास्ते गतागतम् ॥ इत्युक्ते वचने त्वष्टा रविर्दुःखितमानसः ॥ ४० ॥ किङ्करोमिक्कगच्छामि कचप्रियतरामम् ॥ इति सम्भाषमाणे तु त्वष्टा वाक्यमथा ब्रवीत् ॥ ४१ ॥ तव तेजः परिभ्रष्टा भगनाकापि गतावला ॥ यदि ते बहुभाभार्या तेजस्त्वम्परिशामय ॥ ४२ ॥ सूर्य उवाच ॥ यद्येवन्दुः सहं तेजो ममापूर्वपितामह ॥ यथा तेरोचते सम्यक् तथा मेघर्षणं कुरु ॥ ४३ ॥ इति सूर्यवचः श्रुत्वा शाण्डकृत्वा सुदर्शनम् ॥ दृषितः क्षुरधारेण लघीयान्निर्मलो भवत् ॥ ४४ ॥ तस्य घर्षितमात्रेण त्वष्टालोकविवस्वतः ॥ शाण्डमुद शनंचके सैकतामणिजातयः ॥ ४५ ॥ तदा त्वष्टा ब्रवीद्वाक्यं मधुरं सूर्यसन्निधौ ॥ महाकालवने रम्ये वडवारूपधारिणी ॥ ४६ ॥ गृह्यतां भोः सुरश्रेष्ठ शीघ्रं गच्छ तु शङ्खले ॥ यत्र क्षिप्रामरिच्छेष्टा यत्र चातासमागता ॥ ४७ ॥ उभयोः सङ्गमो यत्र तत्र मुक्तिर्न संशयः ॥ तत्र सा सुभगा पत्नी प्राप्य ते तेन संशयः ॥ ४८ ॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा सविता सर्वतापनः ॥ तत्रागच्छ होवैसाही वर्षण कीजिये ॥ ४९ ॥ इस प्रकार सूर्यके वचनको सुनकर उत्तम दर्शनवाली शानको कर लुरकी धारसे घिसा तो सूर्यनारायणजी अत्यन्त लघु व निर्मल हुये ॥ ५० ॥ लोकोंके विवस्वतः सूर्यनारायण के घिसेहुये तेजसे त्वष्टाने शान व सुदर्शनचक्र को बनाया व चालू सम्बन्धिनी मणिजातियोंको निर्माण किया ॥ ५१ ॥ उस समय त्वष्टाने सूर्यनारायणके समीप मधुरवचन कहा कि सुन्दर महाकालवनमें घोड़ीके रूपको धारण करनेवाली ॥ ५२ ॥ संज्ञाको हे सुरश्रेष्ठ ! शीघ्रही ग्रहण कीजिये और घाससे हरितस्थानमें जाइये जहां नदियोंमें श्रेष्ठ क्षिप्रानदी व जहां क्षातानदी बहती है ॥ ५३ ॥ व जहां दोनोंका सङ्गम है वहां निस्सन्देह मुक्ति है और वहांपर

वह सुमंगासंज्ञा तुमको प्राप्त होगी इसमें सन्देह नहीं है ॥ ४५ ॥ उनके इस वचनको सुनकर सबको सन्ताप करानेवाले सूर्यनारायणजी वहां आये जहां कि महाकाल जीका पवित्रकारकवन है ॥ ४६ ॥ जातोके सङ्गम से संयुत-क्षिप्रानदी जहा है वहा मुक्ति व मुक्ति और धन, धान्यका सङ्गम होता है ॥ ४७ ॥ वहांपर अश्वरूपधारी सूर्यनारायणजीने घोड़ीके रूपको धारण करनेवाली उन प्यारी, इयामासंज्ञा स्त्रीको देखा फिर ॥ ४८ ॥ नासिकाके सूँघनेहीसे जो उत्पन्नहुये देखनेयोग्य व सुकुमार अङ्गोवाले वे दोनों अश्विनीकुमार देवताओंके वैद्य हुये ॥ ४९ ॥ और हे द्विजोत्तम ! वहापर संज्ञाने एक पुत्र व कन्याको पैदा किया और उस छायानेभी सब लोकोंको

द्वन्द्वयत्र महाकालस्यपावनम् ॥ ४६ ॥ जातासङ्गमसंयुक्तायत्राक्षिप्रापयस्विनी ॥ तत्रमुक्तिश्चमुक्तिश्च धनधान्यसमागमः ॥ ४७ ॥ तत्रागत्यप्रियाम्भार्या वटवारूपधारिणीम् ॥ ददर्शताम्पुनःश्यामां हरिरूपधरोहरिः ॥ ४८ ॥ नासिकाघ्राणमात्रेण यौजातावाश्विनावुभौ ॥ दर्शनीयसुकुमाराङ्गौ भिषजौतौदिवौकसाम् ॥ ४९ ॥ संज्ञाचसुषुवेतत्र मिथुनं द्विजसत्तमम् ॥ सापिशनैश्चरैचैव सर्वलोकप्रतापनम् ॥ ५० ॥ शनियोगेयदामावै जायतेसर्वकामदा ॥ तदास्नानंतदादानं श्राद्धंचैवतुकारयेत् ॥ ५१ ॥ तस्यहस्तगतालक्ष्मीर्जायतेसर्वदामुवि ॥ यंजातासङ्गमेस्नात्वा दानंदद्याच्चशक्तिः ॥ ५२ ॥ स्थावरेश्चरमभ्यर्च्य तस्यपापक्षयोभवेत् ॥ सौरिःशनैश्चरोमन्दः कृष्णो नन्तोन्तकोयमः ॥ ५३ ॥ पिङ्गश्छायासुतोवधुः स्थावरःपिप्लायनः ॥ एतानि शनिनामानि प्रातःकालेपठन्नरः ॥ ५४ ॥ तस्यशनैश्चरीपीडा नभवेत्तु कदाचन ॥ धर्मोपि सान्नादत्रैव तपस्तेपेसुदुस्तरम् ॥ ५५ ॥ यज्ञकुण्डोत्तरेभागे यत्रतिष्ठतिमारुतिः ॥ धर्मसरइतिख्यातं

ताप करानेवाले शनैश्चर को उत्पन्न किया है ॥ ५० ॥ जब शनैश्चरके योगमें सबकामनाओंको देनेवाली अमावसहोती है तब स्नान व दान व श्राद्धको जो पुरुष करता है ॥ ५१ ॥ पृथ्वीपर सदैव उसके हाथमें लक्ष्मी प्राप्त होती है जो मनुष्य क्षातानदी के सङ्गममें नहाकर शक्तिके अनुसार दान देता है ॥ ५२ ॥ स्थावरेश्चरजीको पूजकर उसके पातकोंका नाश होता है और सौरि, शनैश्चर, मन्द, कृष्ण, अनन्त, अन्तक व यम ॥ ५३ ॥ पिङ्ग, छायासुत, वधु, स्थावर, पिप्लायन इन शनैश्चरके नामोंको जो मनुष्य प्रातःकाल उठकर पढ़ता है ॥ ५४ ॥ उसके शनैश्चरसे उपजी हुई पीड़ा कभी नहीं होती है और साक्षात् धर्मराज ने भी यहां कठिन तप

किया है ॥ ५५ ॥ जहां यज्ञकुण्ड के उत्तरभाग में पवनपुत्र हनुमान्जी स्थित हैं वहां नामसे धर्मसर ऐसा प्रसिद्ध अतिउत्तम तीर्थ है ॥ ५६ ॥ जहांपर पवनपुत्र हनुमान्जी तपस्या से उत्तम सिद्धि को प्राप्तहुये हैं उस तीर्थ में नहाकर कांस्यपात्र को देकर ॥ ५७ ॥ व मणियों तथा मोतियों समेत सुवर्ण से भूषित उत्तम वसनको आदर समेत जो पुरुष भूषित ब्राह्मणों के लिये व वेद-जाननेवाले द्विजों के लिये देता है ॥ ५८ ॥ वह मातृलोक से उत्तीर्ण होकर ब्रह्मलोक में पूजाजाता है श्रावण महीने में शुक्लपक्ष में एकादशी तिथि में उत्तम आचारशाला जो पुरुष धर्मतीर्थ में स्नान व दानादिक कर्मों को करता है उसको सदैव सनातन विष्णुलोक होता

नाम्नातीर्थमनुत्तमम् ॥ ५६ ॥ यत्रसिद्धिम्परांप्राप्तपमापवनात्मजः ॥ तस्मिंस्तीर्थेनरःस्नात्वा दत्तवैकांस्यभाजनम् ॥ ५७ ॥ सुवासोमणिमुक्ताभिः काञ्चनालंकृतंवरम् ॥ ब्राह्मणेभ्योलंकृतेभ्यो वेदविद्भ्यश्चसादरात् ॥ ५८ ॥ मातृलोकसमुत्तीर्णो ब्रह्मलोकमहीयते ॥ श्रावणेधवलेपक्षे एकादश्यान्तुयोनरः ॥ ५९ ॥ धर्मतीर्थेसदाचारी स्नानंदानादिकाःक्रियाः ॥ करोतिसततंस्य विष्णुलोकंसनातनम् ॥ ६० ॥ च्यवनाश्रमेनरःस्नात्वा च्यवनेशं विलोकयेत् ॥ यत्रसिद्धिगतौपुण्यावाश्विनौभिषजांवरी ॥ ६१ ॥ च्यवनस्यप्रसादेन देवपङ्क्तिमवापतुः ॥ च्यवनेनपुरादृष्टिः प्राप्ता वैदेवमैपजात् ॥ ६२ ॥ तस्मिंस्तीर्थेद्विजश्रेष्ठ देवदृष्टिर्भवेन्नरः ॥ अत्रैवप्राप्तवान्सूर्यः साग्निहोत्राश्रमम्परम् ॥ ६३ ॥ ततःसंज्ञामहाभागा सावित्रीलोकविश्रुता ॥ सूर्यलोकंसमासाद्य बुभुजेविपुलांश्रियम् ॥ ६४ ॥ तस्माद्वासपरंतीर्थं ज्ञाता सङ्गमसंज्ञितम् ॥ सर्वपापहरम्पुण्यं सर्वकामवरप्रदम् ॥ ६५ ॥ यत्तांसुकथाम्पुण्यां शृणोतिस्तुविभक्तिः ॥ पठेद्वा

है ॥ ५६।६० ॥ च्यवनजी के आश्रममें मनुष्य नहाकर च्यवनेशजीको देखे जहापर कि वैद्योंमें श्रेष्ठ व पुण्यरूप अश्विनीकुमार सिद्धि को प्राप्तहुये हैं ॥ ६१ ॥ व च्यवन जीकी प्रसन्नता में उन्होंने देवपङ्क्ति को पाया है और पुरातन समय वहांपर च्यवन जीने देवताओं के वैद्य अश्विनीकुमार जीसे दृष्टि को पाया है ॥ ६२ ॥ हे द्विजोत्तम ! उम तीर्थ में मनुष्य देवदृष्टि होता है यहीपर सूर्यनारायण जी ने उत्तम साग्निहोत्राश्रम को पाया है ॥ ६३ ॥ उसी कारण महाभाग्यवती व लोक में प्रसिद्ध संज्ञा सावित्री जीने सूर्यलोक को प्राप्तहोकर बड़ी लक्ष्मी को भोग किया है ॥ ६४ ॥ उसी कारण हे व्यासजी ! क्षाता सगम सन्नक उत्तम तीर्थ है जो कि सब धर्मों को

हर्नेवाला व पवित्र तथा समस्त कामनाओं के वरदान का देनेवाला है ॥ ६५ ॥ पृथ्वी में जो मनुष्य इस पवित्र उत्तम कथा को भक्ति से सुनता है व जो प्रातःकाल उठकर पढ़ता है उसके पुण्यका फल सुनिये ॥ ६६ ॥ किं हज्जार कपिला गऊ दान का जो फल पर्व में होता है उस फल को वह मनुष्य प्राप्त होता है इसमें विचार न करना चाहिये ॥ ६७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायां भापाटीकायां द्वातासङ्गमहात्म्यनाम सप्तपठितमोऽध्यायः ॥ ६७ ॥ *
दो० । गयातीर्थ महात्म्य जिमि अहै अस्मित सुखदाय । अरसठिनें अध्याय में सोइ चरित्र सुहाय ॥ सनत्कुमार जी बोले कि हे व्यास जी ! इसके उपरान्त एक

प्रातरुत्थाय तस्य पुण्य फलं शृणु ॥ ६६ ॥ कपिलागोसहस्रेण फलं भवति पर्वणि ॥ तत्फलं समवाप्नोति नात्र कार्या विचारणा ॥ ६७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे द्वातासङ्गमहात्म्यनाम सप्तपठितमोऽध्यायः ॥ ६७ ॥ *
सनत्कुमार उवाच ॥ शृणु व्यास प्रवक्ष्यामि तीर्थमेकमतः परम् ॥ १ ॥ तीर्थानामुत्तमं तीर्थं गयानामतिनामतः ॥ यत्र स्नात्वा नरो नित्यं मुच्यते चक्रं णवयात् ॥ २ ॥ देवान् पितॄन्समभ्यर्च्य विष्णुलोकं संगच्छति ॥ व्यास उवाच ॥ कीकटेषु गया पुण्या नदीषु एयां पुनः पुनः ॥ ३ ॥ तीर्थानामुत्तमं तीर्थं पुण्यो राजगिरिस्तथा ॥ सकथं विदितो देशो महा कालवने शुभे ॥ ४ ॥ एतद्देदितुमिच्छामि विस्तरणं तपोधन ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ शृणु व्यास कथां शुण्यं पवित्रां पापहारिणीम् ॥ ५ ॥ यस्याः श्रवणमात्रेण पितरो यान्ति सद्गतिम् ॥ पुराकृतं शुण्ये युगादि देवनामतः ॥ ६ ॥ राजा

तीर्थ को कहता हूँ उसको सुनिये ॥ १ ॥ जो कि तीर्थों के मध्य में नाम से गया नामक तीर्थ है कि जिसमें नित्य स्नान कर मनुष्य तीनों ऋणों से छूट जाता है ॥ २ ॥ और देवताओं व पितरों को भलीभांति पूजकर वह मनुष्य विष्णुलोक को जाता है व्यास जी बोले कि कीकट देशों में गया पुण्यदायिनी है व पुनः पुनः नदी पुण्यरूपिणी है ॥ ३ ॥ व तीर्थों के मध्य में उत्तम तीर्थ पुण्यरूप राजगिरि है वह कैसे उत्तम महाकालवन में विद्यमान हुआ है ॥ ४ ॥ हे तपोधन ! मैं इसको विस्तार से जानना चाहता हूँ सनत्कुमार जी बोले कि हे व्यास जी ! पवित्र व पापहारिणी तथा पुण्यरूपिणी कथा को सुनिये ॥ ५ ॥ कि जिसके सुननेही से पितर उत्तम

गति को प्राप्त होते हैं पुरातन समय पुण्यरूप सत्ययुगमें युगादिदेव नाम से ॥ ६ ॥ राजाहुआ है वह धर्मात्मा पवित्र श्रवण व कीर्तनवाला था और सपुत्रों की नाई भलीभाँति पालतेहुये उसके प्रजालोक ॥ ७ ॥ सब ओर से बढ़ते हुये सब वस्तुमें संपन्न हुये और उस राजा के पालन करनेपर नित्यही धर्म चारों चरणों से वर्तमान था ॥ ८ ॥ और मेघ समय में बरसते थे व ऋतुवें अपने धर्म से आचरण करती थी और बहुत अन्न व फलोंवाली पृथ्वी थी व गाइयां बहुत दुग्ध देनेवाली थी ॥ ९ ॥ और ब्राह्मण वेद के बाद में तत्पर थे व क्षत्रिय मुजाओं से शोभित थे और वैश्य नित्यही धनमें परायण थे और शूद्र सेवा में तत्पर थे ॥ १० ॥ और सब

सीत्सतुधर्मात्मा पुण्यश्रवणकीर्तनः ॥ तस्यपालयतःसम्यक् प्रजाःपुत्रानिवारसान् ॥ ७ ॥ बभूवुःसर्वसम्पन्ना वद्धमा
नाःसमन्ततः ॥ धर्मश्चतुष्पदनित्यंतस्मिन्नराज्ञिप्रशासति ॥ ८ ॥ कालेवर्षीचपञ्जन्यो ऋतवःस्वाङ्गचारिणः ॥ बहुसम्य
फलापृथ्वी गावश्चबहुदुग्धदाः ॥ ९ ॥ वेदवादरताविप्राः क्षत्रियावाहुशालिनः ॥ वैश्याधनपरानित्यं शूद्राःशुश्रूषणेर
ताः ॥ १० ॥ वर्णाश्रमरताःसर्वे सर्वधर्मोपदेशकाः ॥ श्रुतिस्मृतिपरोधर्मो हृष्टपुष्टजनाकरः ॥ ११ ॥ नाधिव्याध्यभि
सम्भूता लक्ष्यन्तेकेपिमानवाः ॥ दुःशीलादुर्भगानार्योविधवानेतथैवच ॥ १२ ॥ बहुपुत्राल्पपुत्राश्च सृतपुत्रानबन्ध्य
काः ॥ रूपशीलशुणोपेताः पतिव्रतपरायणाः ॥ १३ ॥ सुमार्गकरसंकीर्णो दस्युदोपविवर्जितः ॥ ह्ययताम्सुज्यतांशश्च
दीयताञ्चगृहेगृहे ॥ १४ ॥ जपदानतपोहोमस्तुतियज्ञक्रियापराः ॥ जनाःसर्वत्रदृश्यन्ते सर्वधर्मपरायणाः ॥ १५ ॥ च

लोग वर्यो व आश्रमों में रत्न तथा सब धर्म के उपदेश करनेवाले थे और जनों को हृष्टपुष्ट करनेवाला धर्म श्रुतियों व स्मृतियों में तत्पर था ॥ ११ ॥ और आधि व
व्याधि से तिरस्कृत कोई भी प्राणी नहीं देखपड़ते थे व दुःशीलवती और दुर्भगा स्त्रियां नहीं देखपड़ती थीं न विधवा देवी जाती थी ॥ १२ ॥ और बहुत पुत्र व
थोड़े पुत्रोंवाली तथा मरे पुत्रोंवाली व बंध्या स्त्री नहीं होती थीं और रूपशील व शुणो से संयुत तथा पतिव्रतधर्म में परायण थीं ॥ १३ ॥ और उत्तम मार्ग करने
वाले जनों से व्याप्त तथा चारों के दोष से रहित धर्म था और हवन किया जाय, भोजन कियाजाये व सदैव दियाजाय यह शब्द घर २ में सुन पड़ता था ॥ १४ ॥

और जप, दान, तपस्या, हवन, स्तुति व यज्ञकर्मों में तरफर तथा सब धर्मों में पराग्रण मनुष्य सब कहीं देख पड़ते थे ॥ १५ ॥ और धर्म चार चरण से चलता था व अधर्म एक चरण से युक्त शरीरवाला था इसप्रकार युगादिदेव संज्ञक वह राजा धर्मात्मा था ॥ १६ ॥ जिसने इस पृथ्वी को पालन किया और धर्म से प्रजाश्री को बढ़ाया व हे व्यास जी ! उसने पुरातनसमय श्रवन्तीपुरी में कोटियज्ञों को किया है ॥ १७ ॥ उससमय अतिपरकभी तुहुण्ड नामक दानव हुआ है उसने इस सब चराचर संसार को वश किया ॥ १८ ॥ और उस दुष्ट ने भयंकर व पुण्यरूप तपस्या कर ब्रह्मासे वरदानको पाया है और न देवता न यज्ञ हुये तथा वह दानव वेद-

तुष्टपदचरोधर्मो ह्यधर्मः पादविग्रहः ॥ एवं राजासधर्मात्मा युगादिदेवसंज्ञितः ॥ १६ ॥ येन यं पालिता पृथ्वी धर्मेण वर्द्धिताः प्रजाः ॥ श्रवन्त्यांच पुरा व्यास यज्ञकोटि समाचरत् ॥ १७ ॥ तस्मिन् कालेति विक्रान्तस्तुहुण्डो नाम दानवः ॥ ते न सर्ववशं नीतं चराचरमिदं जगत् ॥ १८ ॥ योरं तत्पत्वा तपःपुण्यं ब्रह्मलब्धवतः खलः ॥ नैव देवानयज्ञाश्च वेदमार्गं विवर्जितः ॥ १९ ॥ देवता पूजनं नास्ति स्वधास्वाहान दृश्यते ॥ उत्सन्नो धर्ममार्गो यं शाश्वतो वैदुरा सदः ॥ २० ॥ नष्टप्रायाः सुरास्तेन कृताः सर्वोत्तमोत्तमाः ॥ ब्रह्माणं शरणं जग्मुः पितृणां सहसा धुभिः ॥ २१ ॥ किंकुर्मः कंच गच्छामस्तुहुण्डे न पराजिताः ॥ इति श्रुत्वा वचस्तेषां ब्रह्मलोकपितामहः ॥ २२ ॥ समुत्थाय ततः सर्वे विष्णुलोकं जगामह ॥ तत्र गत्वा समाराध्य विष्णुं देवगणैः सह ॥ २३ ॥ स्तुतिं पुरुषसूक्तेन विष्णोर तुल्यतेजसः ॥ प्रचक्रुस्तु सर्व एते ह्यात्मनो भ्युदयाय च ॥ २४ ॥ तदा ते पांशा मिच्छन्ती वैष्णवी चाशरीरिणी ॥ श्रूयताम्भोः सुरश्रेष्ठा भवतां श्रेय उत्तमम् ॥ २५ ॥ यूयं यात

मार्ग से रहित था ॥ १६ ॥ न देवताओं का पूजन होता था और न भवधा, स्वाहा देख पड़ता था सनातन व कठिन यह धर्म का मार्ग त्याग किया गया ॥ २० ॥ उस से नष्ट से किये हुये सब से उत्तमोत्तम देवता पितरों व साधुओं समेत ब्रह्मा की शरण में गये ॥ २१ ॥ व यह बोले कि तुहुण्ड से पराजित हमलोग क्या करें व कहां जायें उनके इसप्रकार वचन को सुनकर लोकों के पितामह ब्रह्माजी ॥ २२ ॥ उठकर तदनन्तर सर्वों समेत विष्णुलोक को गये और वहा जाकर देवगणों समेत विष्णु जी को भलीभांति आराधन कर ॥ २३ ॥ अपने ऐश्वर्य के लिये इन सबों ने श्रुतल तेजवाले विष्णु जी की पुरुषसूक्त से स्तुति किया ॥ २४ ॥ उससमय

उनके कल्याण को चाहतीहुई विष्णु जीकी अशरीरिणी (आकाशवाणी) बोली कि हे सुरोत्तमो ! जो आपलोगों का उत्तम कल्याण है उसको सुनिये ॥ २५ ॥ कि तुमलोग शीघ्रही पृथ्वी में महाकालवन को जावो जो कि गुप्त से भी अत्यन्त गुप्त व पुण्यरूप तथा पवित्र व पापनाशक है ॥ २६ ॥ पृथ्वी में जहांपर मायाविगों की माया नहीं प्रकाशित होती है वह समस्त तीर्थमय तीर्थ कोटितीर्थों के वरको देनेवाला है ॥ २७ ॥ जहां कि सब कामनाओं के फलों को देनेवाली श्रेष्ठ क्षिप्रानदी है जो कि दैत्यों का अन्त करनेवाली, दिव्य, महाकाली व कुलेश्वरी है ॥ २८ ॥ कोटि कोटि गणों से व्याप्त वह मातृकाओं की शक्ति को बढ़ानेवाली है व जहापर महा-

क्षितौक्षिप्रं महाकालवनं प्रति ॥ गुह्यादगुह्यतरं पुण्यं पवित्रं पापनाशनम् ॥ २६ ॥ नयत्रमायिनां माया प्रकाशय
तिभूतले ॥ सर्वतीर्थमयं तीर्थं कोटितीर्थं वरप्रदम् ॥ २७ ॥ यत्र क्षिप्रसिन्धुश्चा सर्वकामफलप्रदा ॥ दैत्यान्तकारि
णी दिव्या महाकाली कुलेश्वरी ॥ २८ ॥ कोटिकोटिगणकीर्णा मातृणां शक्तिवर्द्धनी ॥ गयायत्रमहापुण्या फलशुश्रू
षामहानदी ॥ २९ ॥ पुरुषोत्तमगिरिः श्रेष्ठो यत्र बुद्धगया स्मृता ॥ तथैव च गच्छ्याता त्रिषु लोकेषु विश्रुता ॥ ३० ॥ विष्णोः
षोडशपदी तीर्थं गदाधरविनिर्मितम् ॥ सर्वपापहरा पुण्या यत्र प्राची सरस्वती ॥ ३१ ॥ महासुरनदी प्रोक्ता पञ्चतिष्ठन्ति
पुण्यदाः ॥ न्यग्रोधश्चाक्षयोनित्यः पुरा प्रोक्तो महर्षिणा ॥ ३२ ॥ तत्रैव साशिला प्रोक्ता प्रेतमोक्षकरी शुभा ॥ तत्रैव वसते
सर्वा देवताः पितृकल्पजाः ॥ ३३ ॥ सर्वाक्षरमयोङ्कारः सर्वदेवमयो हरिः ॥ सर्वतीर्थमयं देवा गयातीर्थमनुत्तमम् ॥ ३४ ॥

पुण्यदायिनी गया व फल्गू महानदी है ॥ २९ ॥ और जहांपर श्रेष्ठ पुरुषोत्तमगिरि व बुद्धगया कही गई है वैसेही तीनों लोकों में प्रसिद्ध गया कही गई है ॥ ३० ॥ और गदाधर से निर्माण कियाहुआ विष्णु जी का षोडशपदी तीर्थ है और जहांपर सब पापों को हरनेवाली व पुण्यदायिनी प्राची सरस्वती है ॥ ३१ ॥ और महासुरनदी कही गई है ये पांच पुण्यदायक स्थित हैं व पुरातन समय महर्षि जीने अक्षय व सनातन वट कहा है ॥ ३२ ॥ और वहींपर प्रेतों को मोक्ष करनेवाली वह उत्तम शिला कही गई है व वहींपर पितृकल्प में उपजेहुये समस्त देवता वसते हैं ॥ ३३ ॥ हे देवताओं ! उ०कार सब अक्षरमय है व विष्णुजी सब देवमय हैं और अतिउत्तम गया

तीर्थ समस्ततीर्थमय है ॥ ३४ ॥ वहाँपर तुमलोग शीघ्रही जाओ क्योंकि उत्तम सिद्धिको पावोगे जहाँ कि प्रवेशमात्र से जो नरकगामी पितरहै ॥ ३५ ॥ वे सब स्वर्ग को प्राप्त होते हैं और वह ब्रह्म होने के लिये समर्थ होताहै ॥ ३६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽनन्तीखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायां भापाटीकायांगयातीर्थमाहात्म्ये गयातीर्थप्रशसावर्णनंनामाष्टपष्ठितमोऽध्यायः ॥ ६८ ॥

दो० । पितरन की उत्तम कथा गया श्राद्ध सुविधान । उनहचरि अध्याय में कीन्हों सुखद वखान ॥ व्यासजी बोले कि हे भगवन् । इस विचित्र गयाजी के माहात्म्य

शीघ्रंगच्छततत्रैव परांसिद्धिमवाप्स्यथ ॥ यत्रप्रविष्टमात्रेण पितरोनिरयगामिनः ॥ ३५ ॥ ते सर्वस्वर्गमायान्ति ब्रह्मभू-
यायकल्पते ॥ ३६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽनन्तीखण्डे गयातीर्थप्रशसानामाष्टपष्ठितमोऽध्यायः ॥ ६८ ॥
व्यासउवाच ॥ विचित्रभिदमाख्यातं गयामाहात्म्यमुत्तमम् ॥ भगवन्भवतासर्वं विदितं विश्वमूर्तिना ॥ १ ॥ तत्सर्वं श्रो-
तुमिच्छामि श्राद्धस्य फलमुत्तमम् ॥ क्षेत्रस्य च द्विजश्रेष्ठ विस्तरेण तपोधन ॥ २ ॥ कियन्तः पितरो नित्यं तृप्ता यान्ति
सुरालयम् ॥ केषांके पितरः प्रोक्ताः केत आसन् पुरानव ॥ ३ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ धन्योसि कृतकृत्योसि यस्य तेनैष्टि की-
मतिः ॥ तथापि श्रूयतां वत्स श्राद्धस्य विधिमुत्तमम् ॥ ४ ॥ श्राद्धे प्रकल्पिता लोकाः श्राद्धे धर्मः प्रतिष्ठितः ॥ श्राद्धे यज्ञाहिति-
ष्ठन्ति सर्वकामफलप्रदाः ॥ ५ ॥ श्राद्धे यद्दीयते किञ्चिद्देवविप्राग्निन तर्पणम् ॥ श्राद्धं तद्विजानीयात्पुराप्रोक्तं महर्षिणा ॥ ६ ॥

को आपने कहा व आपही विश्वमूर्ति से सब जानागयाहै ॥ १ ॥ हे तपोधन, द्विजोत्तमजी ! श्राद्धके उस उत्तम फलको व क्षेत्रके फलको मैं विस्तार से सुनाचाहता हूँ ॥ २ ॥ हे अनघ ! कितने पितर नित्य तप होकर येनालय को जाते हैं और किनके कौन पितर कहे गये हैं व पहले वे कौन हुयेहैं ॥ ३ ॥ सनत्कुमार जी बोले कि तू धन्य व कृतकृत्यहो कि जिनकी तुम्हारी भिक्षुकी श्रद्धा तथापि हे वत्स ! श्राद्धकी उत्तम विधिको सुनिये ॥ ४ ॥ श्राद्ध में लोक कल्पितहै व श्राद्ध में धर्म स्थितहै व श्राद्ध में सब कामनाओं के फलको देनेवाले यज्ञ विपमर्ष ॥ ५ ॥ कि श्राद्ध में जो कुछ देवता, ब्राह्मण व अग्नि को तृप्तिकारक दियाजाता है उसको श्राद्ध जानै

यह पहिले मुहर्षि जी ने कहा है ॥ ६ ॥ मनुष्य, सब ऋषि, देवता, सिद्ध, मनुष्य, गन्धर्व, किन्नर, नाग, ब्रह्मा शिव व सुरेश ॥ ७ ॥ सावधान होकर तीन तीन पिंडों को उद्देश कर श्राद्ध देकर हे व्यामजी ! मनमें प्राप्त सब कामनाओं को प्राप्त होते हैं ॥ ८ ॥ व इमप्रकार परापर सनातन मार्ग में वर्तमान होते हैं तथापि ये पितर तपस्विनो समेत कहे गये हैं ॥ ९ ॥ उस सब को मैं कहूंगा जिस प्रकार सुना गया है वैसेही उस सब को मैं भलीभांति कहूंगा जैसे ये पितर देवता हैं वैसेही देवता भी पितर होते हैं ॥ १० ॥ ये देवता पितृगणों समेत आपस में पितर हैं हे द्विजोत्तम ! पुरातन समय मार्कण्डेयजीने इस प्रश्नको पूछा है ॥ १० ॥ हे व्यासजी ! पहलेसे लगाकर उस सब को तुमसे

मनुष्याऋषयः सर्वे सुरसिद्धाश्च मानवाः ॥ गन्धर्वाः किन्नरानागा ब्रह्मभवसुरेश्वराः ॥ ७ ॥ त्रींस्त्रीन्पिएडान्मुमुक्षुश्च श्राद्धं दत्त्वा समाहिताः ॥ प्राप्नुवन्त्यखिलान् कामान् सर्वान् व्यासमनोगतान् ॥ ८ ॥ एवं परापरमार्गं प्रवर्तन्ते सनातनम् ॥ तथापि पितरो ह्येते समाख्यातास्तपस्विभिः ॥ ९ ॥ तत्सर्वं संप्रवक्ष्यामि यथा श्रुतं तथा शृणु ॥ यथैते पितरो देवा देवाश्च पितरस्तथा ॥ १० ॥ अन्योन्यं पितरो ह्येते देवाः पितृगणैः सह ॥ मार्कण्डेन पुराष्टुष्टं प्रश्नमेतं द्विजोत्तम ॥ ११ ॥ निबोधयामि ते व्यास निखिलं सर्वमादितः ॥ यावन्तस्ते पितृगणास्तस्मिन्लोकैश्च ते गताः ॥ १२ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ सप्तैते यजतां श्रेष्ठाः सर्वे पितृगणाः स्मृताः ॥ चत्वारो ब्रूहि मन्तो वै त्रयस्तेषामममूर्तयः ॥ १३ ॥ तेषां लोकं विसर्गञ्च कीर्तयिष्यामि तच्छृणु ॥ प्रभावत्वं महत्त्वं च विस्तरणतपो धन ॥ १४ ॥ धर्ममूर्तिधरास्तेषां त्रयो येष परमागणाः ॥ तेषां नामानि लोकांश्च कीर्तयिष्यामि तच्छृणु ॥ १५ ॥ लोकाः सनातनानाम यत्र तिष्ठन्ति भास्वराः ॥ अमूर्तयः पितृगणा

बोध कराता हूं कि जितने वे पितरों के गण हैं वे उस लोक में प्राप्त हुये हैं ॥ १२ ॥ सनत्कुमारजी बोले कि यज्ञ करनेवालों में श्रेष्ठ वे सात पितरगण कहे गये हैं उन में चार मूर्तिमान हैं व तीन मूर्तिगिहत हैं ॥ १३ ॥ हे तपोधन ! उनके लोक, उत्पत्ति, प्रभावत्व व महत्त्व को मैं विस्तारसे कहता हूं उसको सुनिये ॥ १४ ॥ उनके मध्य में जो मूर्तिधारी तीन उत्तम गण हैं उनके नामों व लोकों को कहता हूं उसको सुनिये ॥ १५ ॥ कि प्रसिद्ध में वे सनातन लोक हैं जहां कि प्रकाशवान् वे पितर टिके हैं

और जो मूर्तिरहित पितरों के गण हैं वे हे द्विजोत्तम ! विराज प्रजापति के पुत्र वैराज हैं ऐसा हमलोगोंने सुना है उनको देवगण विधि से देखेहुये कर्मसे पूजते हैं ॥ १६ ॥ १७ ॥ योग से अष्ट ये सनातन लोकों को प्राप्त होकर फिर हजार युगों के अन्त में ब्रह्मवादी होते हैं ॥ १८ ॥ फिर उस स्मरणको प्राप्त होकर व अतिउत्तम सांख्ययोग को पाकर पुनरावृत्ति याने पुनर्जन्म दुर्लभवाले व सिद्धयोगकी गति को प्राप्त होते हैं ॥ १९ ॥ हे तात ! योगियों के योगको बढ़ानेवाले ये पितर हैं जो कि पहले योगबल से चन्द्रमा को तृप्त करते हैं ॥ २० ॥ हे द्विजोत्तम ! इसलिये योगियों को श्राद्ध दीजाती हैं सोमपान ऐसा प्रसिद्ध यह प्रथम कल्प है ॥ २१ ॥

स्तेवैपुत्राः प्रजापतेः ॥ १६ ॥ विराजस्यद्विजश्रेष्ठ वैराजाइतिनः श्रुतम् ॥ यजन्तेतान् देवगणा विधिदृष्टेन कर्मणा ॥ १७ ॥ एतैवैयोगविभ्रष्टा लोकान् प्राप्य सनातनान् ॥ पुनर्युगसहस्रान्ते जायन्ते ब्रह्मवादिनः ॥ १८ ॥ तेषां यतां स्मृतिं मभूयः सांख्ययोगमनुत्तमम् ॥ यान्ति योगगतिं सिद्धाः पुनरावृत्तिदुर्लभाः ॥ १९ ॥ एते स्युः पितरस्तात योगिनां योगवर्द्धनाः ॥ आप्याययन्ति ये पूर्व सोमयोगबलेन वै ॥ २० ॥ तस्माच्छ्राद्धानि दीयन्ते योगिनां द्विजसत्तम ॥ एष वै प्रथमः कल्पः सोमपानमिति श्रुतम् ॥ २१ ॥ एतेषां मानसी कन्या मेनानाम महागिरिः ॥ पत्नी हिमवतः श्रेष्ठा यस्यां मेना कउच्यते ॥ २२ ॥ मेना कस्य सुतः श्रीमान् कौञ्चो नाम महागिरिः ॥ अग्निष्वात्ताः पितृगणास्तत्र तिष्ठन्ति भास्कराः ॥ २३ ॥ याम्यां बर्हिषदा आसन् यमाद्याश्चैव पश्चिमाम् ॥ सोमपाश्चोत्तरां प्राप्ता दिशं धनदपालिताम् ॥ २४ ॥ अमूर्तिमन्तश्चाकाशो कव्यवाडुनलाक्षितौ ॥ यत्नरक्षः पिशाचाश्च यजन्ते मावितात्मनः ॥ २५ ॥ साध्या देवान् यजन्ति तस्म विद्देवान्

इनकी मेना नामक मानसी कन्या हिमवान् महाचल की श्रेष्ठ स्त्री हुई है जिसका पुत्र मेनाक कहा जाता है ॥ २२ ॥ और मेनाक का पुत्र श्रीमान् कौञ्च नामक महाचल है उसपै प्रभाकर अग्निष्वात्ता नामक पितृगण टिके हैं ॥ २३ ॥ बर्हिषद पितर दक्षिण दिशा में प्राप्त हुये हैं व यमादिक पश्चिम दिशा में तथा सोमपानामक पितरों के गण कुबेर से पालित उत्तर दिशाको प्राप्त हुये हैं ॥ २४ ॥ और विन मूर्तिवाले पितरों के गण आकाश में व कव्यवाड और नलनामक पितरगण पृथ्वी में

प्राप्त हुये हैं व शुद्ध चित्तवाले यज्ञ, राक्षस व पिशाच ॥ २५ ॥ और साध्यदेवता देवताओं को व विदेवदेवों तथा ऋषियों को पूजते हैं और मनुजों श्राद्धदेव को ऋषि सनातन ब्रह्मको पूजते हैं ॥ २६ ॥ इस प्रकार श्राद्ध सनातन धर्म परम्परा से प्राप्त है और पितृकार्य देवकार्य से उत्तम कार्य है व विशेष है ॥ २७ ॥ श्राद्ध के धर्म में तत्पर भरद्वाज जी के सात पुत्र जातिकी स्मरणता को प्राप्त होकर मोक्ष की पदवी को प्राप्त हुये हैं ॥ २८ ॥ और दूध देनेवाली गुरुकी गज को मारकर ये सातों ब्राह्मणों में नीचहुये और पितरों को उद्देशकर सब मांसको भक्षण करते हुये वे जुधासे विकल सब ॥ २९ ॥ योग से अष्ट होकर उस पुरण्यके प्रभाव से स्वर्ग

ऋषींस्तथा ॥ मनवःश्राद्धदेवश्च ऋषयोब्रह्मसनातनम् ॥ २६ ॥ एवंपरम्पराप्राप्तं श्राद्धधर्मसनातनम् ॥ देवकार्यात्परं
कार्यं पितृकार्यंविशिष्यते ॥ २७ ॥ भरद्वाजात्मजाःसप्त श्राद्धधर्मपरायणाः ॥ जातिस्मरत्वमापन्ना निर्वाणपदवीं
ताः ॥ २८ ॥ गुरोर्दोर्गन्धीन्तुगांहत्वा सप्तैवैद्विजाधमाः ॥ पितृनुद्दिश्यतेसर्वं भक्षयन्तःक्षुधादिताः ॥ २९ ॥ तेनपुरण्य
प्रभावेण योगअष्टादिवङ्गताः ॥ सप्तजातिषुसर्वेते योगयुक्तास्तथैवते ॥ ३० ॥ तस्माच्छ्राद्धंपरम्प्रोक्तं सूरिभिःपरमात्म
भिः ॥ श्राद्धम्प्रतिष्ठितालोकाः श्राद्धयोगःपरंतपः ॥ ३१ ॥ एवंतेपितरःप्रोक्ताः श्राद्धस्यचविधिंशृणु ॥ ब्रह्मचर्यंरतोदान्तो
नक्रोधीनचमत्सरी ॥ ३२ ॥ शौचाचारपरोधीरः शास्त्रदृष्टिर्जितेन्द्रियः ॥ एवंयःकुरुतेश्राद्धं तीर्थैवैवविशेषतः ॥ ३३ ॥
ततोधिकतराप्रोक्ता तृप्तिर्व्यासन्नयेहनि ॥ वृद्धिश्राद्धंतथाप्रोक्तं महालयशताधिकम् ॥ ३४ ॥ ततोदशगुणाप्रोक्ता

गे प्राप्तहुये हैं और वैसेही वे सब सात जातियों में योगसंयुत हुये हैं ॥ ३० ॥ इसलिये उत्तम चित्तवाले विद्वानों ने श्राद्ध को उत्तम कहा है व श्राद्ध में लोक प्रतिष्ठित हैं और श्राद्ध योग है व श्राद्ध उत्तम तप है ॥ ३१ ॥ इस प्रकार वे पितर कहेगये हैं और श्राद्ध की विधिको सुनिये कि ब्रह्मचर्य में परायण व इन्द्रियों को दमन करनेवाला पुरुष क्रोधी न होवै और न ईर्ष्यावान् होवै ॥ ३२ ॥ और शौच के आचार में परायण, विद्वान् व शास्त्रदृष्टिवाला तथा जितेन्द्रिय जो पुरुष तीर्थ में विशेषकर श्राद्ध करता है ॥ ३३ ॥ उससे बहुतही अधिक हे-व्यासजी ! क्षयाह में तृप्ति होती है वैसेही सौ महालय श्राद्धों से अधिक वृद्धिश्राद्ध कहागया है ॥ ३४ ॥

और तीर्थों के मध्य में जो गया कही गई है वह उससे दशगुना अधिक श्राद्ध उत्तम महाकालवनमें कहा गया है ॥ ३५ ॥ अवन्ती पुरी में सब और से गया तीर्थ सदैव पुण्यदायक है क्योंकि जन्म जन्म में जो पितर नरक में प्राप्त हुये हैं ॥ ३६ ॥ उनके उधारने के लिये यह दुर्लभ तीर्थ है यहां एक ही बार स्मरण करने से पितरों को दिया हुआ अक्षय होता है ॥ ३७ ॥ चौथे आश्रम के मध्यमें टिके हुये जो पितृक वंशसे रहित हैं और जो गर्भपात में मरे हैं और जो नाम व गोत्रसे अलग हैं ॥ ३८ ॥ और अपने गोत्र व पराये गोत्रमें व जो अन्य आत्मघातसे मरे हैं उनके उधारने के लिये यहां श्राद्ध की जावे ॥ ३९ ॥ ऊपरके बंधन से जो मरे हैं

या तीर्थेषु गया स्मृता ॥ ततो दशाधिकं व्यास महाकालवनेशु मे ॥ ३५ ॥ अवन्त्यां सर्वतः पुण्यं गया तीर्थं च सर्वदा ॥ ये वै निरयमापन्नाः पितरो जन्मजन्मनि ॥ ३६ ॥ तेषामुद्धरणार्थाय तीर्थमेतत्सुदुर्लभम् ॥ सकृत्स्मरणमात्रेण पितॄणां दत्तमनुयम् ॥ ३७ ॥ चतुर्थश्रममध्यस्थाः पितृवंशविवर्जिताः ॥ गर्भपाते मृता ये च नाम गोत्रच्युतास्तथा ॥ ३८ ॥ स्वर्गो नैपरगोत्रे वा आत्मघातमृताः परे ॥ तेषामुद्धरणार्थाय अत्र श्राद्धं विधीयताम् ॥ ३९ ॥ उद्धन्धनमृता ये च विषशस्त्रहताश्च ये ॥ दंष्ट्रिभिश्च हता ये वै ब्राह्मणैश्चादिताश्च ये ॥ ४० ॥ तेषामुद्धरणार्थाय अत्र श्राद्धं विधीयताम् ॥ अग्निदग्धाश्च ये जीवा नाग्निदग्धास्तथा परे ॥ ४१ ॥ विद्युद्घातेन ये केचिन्मुद्गरैश्च हताः परे ॥ ४२ ॥ रौरवे चान्धतामिस्रं कालसूत्रे च ये गताः ॥ अनेकयातना संस्थाः प्रेतलोकैश्च ये गताः ॥ ४३ ॥ असिपत्रवने घोरे कुम्भीपाकेषु ये गताः ॥ पशुयोनि गता ये च पक्षि कीट सरीसृपाः ॥ ४४ ॥ उदकेषु मृता ये च नार्यः सूतिमृतास्तथा ॥ अश्वशूकरैश्चैव शङ्खिभिः

व विष तथा शस्त्रों से जो मारे गये हैं और शूकरों से जो मारे गये हैं व ब्राह्मणों से जो दुःखित होते हैं ॥ ४० ॥ उनके उधारने के लिये यहां श्राद्ध की जावे और जो प्राणी अग्नि में जले हैं व अन्य जो अग्नि में नहीं जले हैं ॥ ४१ ॥ और बिजली के गिरने से जो कोई मरे हैं व अन्य जो मुद्गरों से मारे गये हैं उनके उधारने के लिये यहां श्राद्ध की जावे ॥ ४२ ॥ और रौरव, अन्धतामिस्र व कालसूत्र में जो प्राप्त हैं व अनेक पीड़ाओं में स्थित जो प्रेतलोक में प्राप्त हैं उनके उधारने के लिये यहां पर श्राद्ध की जावे ॥ ४३ ॥ भयंकर असिपत्रवन में व कुम्भीपाक में जो प्राप्त हैं और पशुयोनियों में जो प्राप्त हैं व पक्षी, कीट और जो क्षुद्र सर्प हैं उनके उधारने के लिये यहां श्राद्ध की

जावै ॥ ४४ ॥ और जो जलों में मरगयेहैं व पुत्र पैदा होनेपर जो स्त्रियां मरीहैं और घोडा, शूकर व सींगवाले प्राणियों से तथा गाड़ियों से जो मरेहैं उनके उधारने के लिये यहां श्राद्ध कीजावै ॥ ४५ ॥ और वनके दौरहा में शस्त्रादिकों से व व्याघ्र, मर्ग, हाथी, राजा और शलभों (पाखियों) से तथा बछी व शूकर तथा राक्षसों से जो मारे गयेहैं उनके उधारने के लिये यहां श्राद्ध कीजावै ॥ ४६ ॥ और अटारीपर शय्यापै जो मरेहैं और जो शौच व आचार से रहितहैं व विस्त्रविकारोग से जो मरेहैं व जो भ्रम तथा अतीसार से मरेहैं उनके उधारने के लिये यहां श्राद्ध कीजावै ॥ ४७ ॥ व जो साकिनी आदिक ग्रहों से ग्रस्त हुयेहैं और जो जलके मध्य में मरेहैं व न छूने के योग्य पुरुष के स्पर्श से जिन्होंने संसर्ग कियाहै व जो पतित व सन्तान में रहितहैं ॥ ४८ ॥ और अपने कर्म से जो हजारों जन्मोंतक भ्रमतेहैं व जिनको मनुज

शकटैहताः ॥ ते० ॥ ४५ ॥ वनदावेचशस्त्राद्यैर्व्याघ्राहिगजभूमिपैः ॥ शलभैर्वृश्चिकैर्दंष्ट्रिचैरक्रव्यादघातिताः ॥ ते० ॥ ४६ ॥ अट्टशय्यामृतायेच शौचाचारविवर्जिताः ॥ विस्त्रचिकामृतायेच भ्रमातीसारतोमृताः ॥ ते० ॥ ४७ ॥ शाकिन्यादिग्रहैर्ग्रस्ता जलमध्यैचयेमृताः ॥ अस्पृश्यस्पर्शसंसृष्टाः पतितापत्यवर्जिताः ॥ ४८ ॥ जन्मान्तरसहस्राणि भ्रमन्तिस्वेनकर्मणा ॥ मानुषंदुर्लभंयेषां तेभ्यः श्राद्धंविधीयताम् ॥ ४९ ॥ यैवान्धवान्धवाये येन्यजन्मनिवान्धवाः ॥ यानिमित्राण्यमित्राये मित्रमित्रास्तथापरे ॥ ते० ॥ ५० ॥ पितृवंशेमृतायेच मातृवंशेतथैवच ॥ गुरुश्चशुरवन्धूनां येचान्यैवान्धवाः स्मृताः ॥ ते० ॥ ५१ ॥ येमेकुलेलुप्तपिण्डाः पुत्रदारादिवर्जिताः ॥ क्रियालोपगतायेच जात्यन्धाः पद्मवस्तथा ॥ ५२ ॥ काणाः कुब्जाविरूपाश्च आमर्गर्भाश्चयेमृताः ॥ येज्ञातायेपिचाज्ञाता ज्ञाताज्ञाताः कुलेमम ॥

शरीर दुर्लभहैं उनके लिये श्राद्ध कीजावै ॥ ४९ ॥ और जो बाधव तथा अबाधवहैं व जो अन्य जन्म में बाधव हुयेहैं और जो मित्रहैं व जो अमित्रहैं तथा अन्य जो मित्रों के मित्रहैं उनके उधारने के लिये यहां श्राद्ध कीजावै ॥ ५० ॥ और जो पिता के वंश में मरेहैं व जो माता के वंश में मरे हुयेहैं और जो गुरु व श्वशुर के बंधुओं के अन्य बाधव कहेंगेयेहैं उनके उधारने के लिये यहां श्राद्ध कीजावै ॥ ५१ ॥ और पुत्र व स्त्री से रहित जो मरे वंश में लुप्तपिण्डवालेहैं व जो कर्म के लोप को प्राप्त हुयेहैं और जो जाति से अन्ध व पंगुहैं ॥ ५२ ॥ व जो बाने, कुबडे, कुंरूप और जो कच्चे गर्भवाले मरेहुयेहैं व जो जानेहुये और जो विनजाने हुयेहैं तथा जो

ते० ॥ ५३ ॥ आब्रह्मभुवनेयेचाप्यन्यैर्दुर्मरणैर्मृताः ॥ तृपार्त्ताः क्षुधिताश्चैव हापिताश्चैव ये मृताः ॥ ५४ ॥ प्रेतयोनिङ्गता
श्चैव म्लेच्छयोर्निगताश्च ये ॥ ते० ॥ ५५ ॥ एवं श्राद्धविधिव्यास यस्मिंस्तथैव समाचरेत् ॥ ऋणत्रयविनिर्मुक्तो वाञ्छि
तार्थलभेत्तुमः ॥ ५६ ॥ गयायाञ्च समासाद्य सुराहन्द्रपुरोगमाः ॥ चक्रुश्च विधिवत्सर्वे यदुक्तं देवभाषया ॥ ५७ ॥ इति श्री
स्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे गायामाहात्म्ये श्राद्धविधिर्नामैकोनसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ६६ ॥ * ॥

स नत्कुमार उवाच ॥ ततः सुरगणाः सर्वे धूतपापाः समाहिताः ॥ पुनर्योगबलं प्राप्य स्वाधिकारान्नययुः पुरा ॥ १ ॥ एवं व्यासगयातीर्थं कुमुद्वत्यामुनिश्चितम् ॥ गयायां या निति तीर्थानि पुण्यान्यायत नानि च ॥ २ ॥ अस्मिंस्तीर्थे नरः स्नात्वा तत्तत्तीर्थफलं लभेत् ॥ तथैव च गयाक्षेत्रं गयाश्राद्धफलप्रदम् ॥ ३ ॥ फल्गुश्च सरितां श्रेष्ठा तथैव फलदायिनी ॥ आ

ॐ अधिनिर्भोको नमस्तुते । ॐ अध्यायः ॥ ६५ ॥ ॐ ॥ ॐ ॥ ॐ ॥ ॐ ॥ ॐ ॥ ॐ ॥ ॐ ॥ ॐ ॥ ॐ ॥

दो० । गयातीर्थ के तीर्थ सब अरु उत्तम परभाव । सत्तरिके अध्याय में कह्यो कथा सतिभाव ॥ सनकुमारजी बोले कि तदनन्तर पाषाणित सब देवगण सावधान होकर फिर योगबलको पाकर पुरातन समय अपने अधिकारोंको प्राप्तहुये है ॥ १ ॥ हे व्यासजी ! इसप्रकार कुमुदती पुरीमें भलीभांति निश्चित गयातीर्थहै और गया में जो तीर्थ व पवित्र देवगन्दिर हैं वे हैं ॥ २ ॥ इस तीर्थ ने नदाकर मनुष्य उस उस तीर्थ के फलको प्राप्तहोताहै और वैसेही गयाक्षेत्र गया में श्राद्ध के फलको देने

वाला है ॥ ३ ॥ वैसेही नदियों में श्रेष्ठ व फलदायिनी फल्गूनदी है व आदिगया, बुद्धगया व विष्णुपदी कही गई है ॥ ४ ॥ और वैसेही कोष्ठक कहा गया है व गदाधर-
पद और सोलह वेदिका वैसेही अक्षयवट कहा गया है ॥ ५ ॥ वैसेही नित्यही प्रेतों को मुक्ति करनेवाली शिला कही गई है और अच्छोदा नदी कही गई है व पितरों का
उत्तम आश्रम कहा गया है ॥ ६ ॥ वैसेही किन्नरों समेत देवता, दानव, यक्ष व सब नागों का उत्तम आश्रम कहा गया है ॥ ७ ॥ इन सब स्थानों में स्नान दानादिक
कर्म करना चाहिये व विधिपूर्वक श्राद्ध देना चाहिये जो ऐसा करता है उसको तीर्थ का फल होता है ॥ ८ ॥ पितरों के मध्य में गयाजी में आपही विष्णुजी

दिगया बुद्धगया तथा विष्णुपदी स्मृता ॥ ४ ॥ कोष्ठकस्तु तथा प्रोक्तो गदाधरपदानि च ॥ वेदिकाः षोडश प्रोक्तास्तथैव
चाक्षयोवटः ॥ ५ ॥ प्रेतमुक्तिकरी नित्यं शिलाचोक्ता तथैव च ॥ अच्छोदानि मन्नागप्रोक्ता पितृणाञ्चाश्रमोत्तमः ॥ ६ ॥
देवानां दानवानाञ्च यक्षाणां सहकिन्नरैः ॥ पन्नगानाञ्च सर्वेषां तथैवाश्रममुत्तमम् ॥ ७ ॥ एतत्स्थानेषु सर्वेषु स्नानदा-
नादिकाः क्रियाः ॥ श्राद्धञ्च विधिवद्देयं तस्य तीर्थफलम् भवेत् ॥ ८ ॥ गयायां पितृलोकैषु स्वयमेव जनार्दनः ॥ तन्ध्या-
त्वा पुण्डरीकाक्षं मुच्यते च ऋणत्रयात् ॥ ९ ॥ एवं व्यासगया तीर्थं पुरावन्त्यां प्रतिष्ठितम् ॥ पश्चात्तु कार्कजं यत्र
सन्निहितो मुरः ॥ १० ॥ तदारभ्य द्विजश्रेष्ठ गयातत्र प्रतिष्ठिता ॥ गदाधरपदाघातं महादेव्यनिपातितः ॥ ११ ॥ तत्पदे
महिमानं च जनार्दनसमर्पितम् ॥ पञ्चक्रोशं गयाक्षेत्रं क्रोशमेकं गयाशिरः ॥ १२ ॥ यत्र यत्र स्मरिष्यामि पितृणां दत्त
मक्षयम् ॥ सर्वदा सर्वकालेषु गयाश्राद्धं विधीयते ॥ १३ ॥ संवत्सरे परं व्यास पक्षमेकं प्रतिष्ठितम् ॥ कन्यास्थे च दिवानाथे

हैं उन कमललोचनजी को ध्यान कर मनुष्य तीनों ऋणों से छूट जाता है ॥ ९ ॥ हे व्यासजी ! इस प्रकार पुरातन समय अश्वत्थी पुरी में गया तीर्थ प्रतिष्ठित हुआ है
पदचात कार्कज देश में हुआ है जहां कि असुर भलीभांति टिका है ॥ १० ॥ तब से लगाकर हे द्विजश्रेष्ठ ! वहां पर गया प्रतिष्ठित हुई है गदाधरजी के चरणप्रहारों से
जहा महादेव्य मारा गया है ॥ ११ ॥ उसी स्थान पर जनार्दनजी से समर्पित महिमा है गयाक्षेत्र पांच कोस है व एक कोस गयाशिर है ॥ १२ ॥ उसको जहा जहां में
स्मरण करूं वहा वहां पितरों का दिया हुआ अक्षय होता है सदैव सब समयों में गया श्राद्ध कीजानी है ॥ १३ ॥ परन्तु हे व्यासजी ! वर्षभर में एक दिन प्रतिष्ठित

है कि हस्तनक्षत्र से संयुक्त जब विमनाथ सूर्यनौरयिण कन्याराशि में स्थित होवें ॥ १४ ॥ तब वह महालय ऐसा कहा गया है उसमें पितरों को दिया हुआ अक्षय होता है सदैव सब समयोंमें गयाश्राद्ध की जाती है ॥ १५ ॥ परन्तु हे व्यास जी ! वर्षभर में एक पक्ष प्रतिष्ठित है इसप्रकार हे व्यासजी ! स्नान दानादिक कर्मों में अवन्तीपुरी मनोहर है ॥ १६ ॥ फिर मैं बड़े अद्भुत माहात्म्यको कहता हूँ सुभक्त कहेहुये उस पवित्र व पापनाशक माहात्म्यको सुनिये ॥ १७ ॥ कि सातर्षियों की जो सात पतिव्रता स्त्रियाँ थीं भाग्यसे अष्टहुई वे अग्नि से दूषित हुई ॥ १८ ॥ और ऋषियों से छोड़ी हुई वे वनसे वनमें अमती भई इस भाँति बहुत समय बीतने

हस्तनक्षत्रसंयुते ॥ १४ ॥ महालयेतितत्प्रोक्तं पितृणां दत्तमक्षयम् ॥ सर्वदा सर्वकालेषु गयाश्राद्धविधीयते ॥ १५ ॥ संवत्सरे परं व्यासं पक्षमेकं प्रतिष्ठितम् ॥ एवं व्यासपुरीरम्या स्नानदानादिकर्मसु ॥ १६ ॥ भूयस्तु संप्रवक्ष्यामि माहात्म्यं परमाद्भुतम् ॥ तच्छृणुष्व मया ख्यातं पवित्रम् पापनाशनम् ॥ १७ ॥ सप्तर्षीणान्तु याभार्या सप्तपत्न्यः पतिव्रताः ॥ तास्तु दैवपरिभ्रष्टा दूषिताः पावकेन च ॥ १८ ॥ ऋषिभिः परित्यक्तास्ता वभ्रमुश्च वनादहनम् ॥ एवं बहुगते काले नारदो देवदर्शनः ॥ १९ ॥ तासान्तु प्रियमन्विच्छन् समायातो वनान्तरे ॥ ताभिः ससत्कृतो नित्यं समासीनो धृतवृतः ॥ २० ॥ उवाच श्लक्ष्णयावाचा देशकालोचितं वचः ॥ किमिदं क्रियते जातो भवतीनाम् पराभवः ॥ २१ ॥ कस्मात्तु ऋषिभिस्त्यक्ता लोका कमातु पतिव्रताः ॥ ऋषिपत्न्य ऊचुः ॥ न जाने हि वयं तातयेन दोषेण तापसैः ॥ २२ ॥ विमुक्ताः साग्निकैर्विप्रैः कार्तिकेय प्रसङ्गतः ॥ लोकापवादं किञ्चिज्जातं दिष्टवशादघम् ॥ २३ ॥ किंकुर्मकचगच्छामः किंतपः कच देवता ॥ यस्याराधनपु

पर देवदर्शन नारदजी ॥ १९ ॥ उनके प्रिय को चाहतेहुये वनके मध्यमें भलीभाँति आये और उन सबों से सत्कार कियेहुये वे नित्य धारेहुये नियमवाले नारदजी बैठगये ॥ २० ॥ और देश व समय के योग्य वचनको नम्रवाणी से बोले कि यह क्या किया जाता है जो कि आप सबोंका अनादर हुआ ॥ २१ ॥ और किस कारण ऋषियों से लोकों की माता व पतिव्रता तुम सब छोड़ी गई हो ऋषियों की स्त्रिया बोलों कि हे तात ! हम सब यह नहीं जानती हैं कि जिस दोषसे हमलोग साग्निक ब्राह्मणों से छोड़ी गई हैं भाग्यके वशसे कार्तिकेय जी के प्रसंग से कुछ संसारके अपवाद (कलंक) से उपजा हुआ पातक हुआ है ॥ २२ ॥ २३ ॥ हम सब क्या करें व

कहां जावे क्या तप व कौन देवता है कि जिसके आराधन के पुण्य से फिर आश्रम को जावे ॥ २४ ॥ यह निश्चय कर हे ब्रह्मन् ! कहिये क्योंकि तुम यथार्थ जानते हो उस समय इस भांति उन ऋषिस्त्रियों से पूछे हुये नारदजी ॥ २५ ॥ बहुत देर तक ध्यान कर उनके कल्याण के लिये बोले नारदजी बोले कि हे ऋषिस्त्रियो ! आप सबोंके लिये जो श्रेष्ठतप है उसको सुनिये ॥ २६ ॥ कि मनोहर महाकालवनमें अतिउत्तम गयातीर्थ है वहींपर वृक्षों में श्रेष्ठ अक्षय नामक वट है ॥ २७ ॥ वहाँ आगमनमात्रसे पापरहित होवोगी क्योंकि वहाँ तीर्थ सब दोषोंका हरनेवाला व सब कामनाओं के वरदान को देनेवाला है ॥ २८ ॥ और सब सुखों का करनेवाला

एयेन ब्रजामः पुनराश्रमम् ॥ २४ ॥ एतन्निश्चित्य भो ब्रह्मन् ब्रूहि त्वं वेत्सि तत्त्वतः ॥ इतिष्ठष्टस्तदा ताभिर्ऋषिस्त्रीभिश्च नारदः ॥ २५ ॥ उवाच मुचिरंध्यात्वा तासां शर्मस्य हेतवे ॥ नारद उवाच ॥ श्रूयताम् भोस्तपः श्रेष्ठम्भवतीनाञ्चकारणम् ॥ २६ ॥ महाकालवने रम्ये गयातीर्थमनुत्तमम् ॥ तत्रैव चान्नयोनौ नम न्यग्रोधः शाखिनां वरः ॥ २७ ॥ तत्रागमनमात्रेण धूतदोषा भविष्यथ ॥ सर्वदोषहरं तीर्थं सर्वकामवरप्रदम् ॥ २८ ॥ सर्वसौख्यकरं पुण्यं तत्र गच्छतमाचिरम् ॥ नारदस्य वचः श्रुत्वा ऋषिपत्न्यः सुचोदिताः ॥ २९ ॥ महाकालवने व्यास इच्छन्त्यः प्रियमात्मनः ॥ जगमुस्तास्तु तदा तत्र यत्र तीर्थं गयाभिधम् ॥ ३० ॥ तत्र गत्वा शुचिभूत्वा स्नानदानादिकाः क्रियाः ॥ कृतास्ताभिश्च पुण्याभिर्नमस्य स्यासि तेतरे ॥ ३१ ॥ गयायां ऋषिपत्नीभिः पञ्चम्यां मुचिरंकृतम् ॥ उपोष्य चैकरात्रञ्च जागरं चैव योगतः ॥ ३२ ॥ कृतमात्रे ब्रूते व्यास निष्पापां ह्यभवनक्षणात् ॥ भर्तृकोपपरिभ्रष्टा सद्यः प्राप्ता गृहाश्रमम् ॥ ३३ ॥ ऋषिभिः स्वागतं दत्तं पूर्ववदृषिसत्त

व पवित्र है वहा शीघ्रही जावो नारदजी के वचन को सुनकर अपने प्रियको चाहती हुई भलीभांति प्रेरित वे ऋषियों की स्त्रियां उस समय हे व्यासजी ! उस महाकाल वनमें गईं जहाँ कि गया नामक तीर्थ है ॥ २९३० ॥ वहाँ जाकर पवित्र होकर उन पुण्यरूपिणी ऋषिस्त्रियों ने पवित्र होकर गया तीर्थमें भाद्रपदके शुक्लपक्षमें पंचमी तिथि में स्नान दानादिक कर्मों को किया और एक रात्रि उपवास कर योग से बहुत दिनों तक जागरण किया ॥ ३१३२ ॥ हे व्यासजी ! व्रत के करनेहीपर जगभर में पाप-रहित होगई और पतिके क्रोध से भ्रष्ट वे ऋषिस्त्रियां शीघ्रही गृह के आश्रम को प्राप्त हुई ॥ ३३ ॥ व हे ऋषिश्रेष्ठजी ! ऋषियों ने पहले की नाई स्वागत दिया तब

से लगाकर इस संसार में वह तिथि ऋषिपंचमी प्रसिद्ध हुई ॥ ३४ ॥ हे व्यासजी ! उस तिथिमें जो मनुष्य इस व्रत को करता है और जो सावधान होता हुआ पवित्र होकर नीवार (तिन्नीफसही) का आहार करता है ॥ ३५ ॥ उसको कुछ आपत्तिका दुःख कभी नहीं होता है व स्त्रियों की दुर्भगता नहीं होती है और न पतियों से वियोग होता है ॥ ३६ ॥ और न कभी पुत्र व 'धन से भी वियोग होवैगा हे व्यासजी ! जो तुमने उत्तम पूँछा वह इसप्रकार भलीभाँति कहागया ॥ ३७ ॥ हे सत्तम ! पृथ्वीपर अवन्तीपुरी में ऐसा तीर्थ वर्तमान है कि वैयास पुण्यदायक कोई तीर्थ ब्रह्माण्डगोलक में नहीं है ॥ ३८ ॥ इस तीर्थ में जो कोई मनुष्य महादानोंको करता है

म ॥ तदाप्रभृतिलोकेस्मिन् सातिथिर्ऋषिपञ्चमी ॥ ३४ ॥ योनरोव्यासतस्यैव व्रतमेतद्भरोति च ॥ नीवाराहारकंकुर्या
च्छुचिर्भूत्वासमाहितः ॥ ३५ ॥ नतस्य जायते किञ्चिदापद्दुःखं कदाचन ॥ दुर्भगत्वं नारीणां न वियोगश्च भर्तुभिः ॥ ३६ ॥
पुत्रतो धनतो वापि कदाचित्सम्भविष्यति ॥ एवं व्याससमाख्यातं यत्स्वयाष्टमुत्तमम् ॥ ३७ ॥ अवन्त्यामीदृशं तीर्थं
वर्त्तते सुविसत्तम ॥ तादृशं पुण्यदं किञ्चिन्नास्ति ब्रह्माण्डगोलके ॥ ३८ ॥ अस्मिंस्तीर्थे नरः कश्चिन्महादानानिका
रयेत् ॥ अक्षयंतस्य भवति विष्णुलोकमहीयते ॥ ३९ ॥ यो वै नियतवान्भूत्वा कथामेतां शृणोति वा ॥ पर्वचसततं व्या
स हयमेधफलं भवेत् ॥ ४० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे गंगार्तीर्थमाहात्म्य नाम सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७० ॥

व्यास उवाच ॥ पुरुषोत्तम कर्तार्यन्त्वया प्रोक्तं पुरानघ ॥ महिमा तस्य तीर्थस्य विस्तराद्ददमे प्रभो ॥ १ ॥ एतत्तु श्रोतु
मिच्छामि त्वत्तो ब्रह्मविदांवर ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ श्रूयताम् भो द्विज श्रेष्ठ कथां पापहराम्पराम् ॥ २ ॥ यस्याः श्रवणमा

उमका वह अक्षय होता है और वह विष्णुलोक में पूजा जाता है ॥ ३९ ॥ हे व्यासजी ! जो पुरुष नियमवान् होकर इस कथा को सुनता है वह सदैव जो पर्व में सुनता है वह अक्षयमेधयज्ञ के फलको पाता है ॥ ४० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे देवीदयालु भिः श्रविर्चितायां गंगार्तीर्थमाहात्म्यं नाम सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७० ॥
दो० ॥ पूत्रै ज्जि मि मलमास मे श्रीपुरुषोत्तम देव । इकहचरि अर्ध्याय में सोइ चरित सुखसेव ॥ व्यामजी ! बोले कि हे अनघ, प्रभो ! पुरातन समय तुमने पुरुषोत्तम तीर्थको कहा है मुझसे उस तीर्थ की महिमा को विस्तार से कहिये ॥ १ ॥ हे ब्रह्मविदांवर ! मैं तुमसे यह सुनना चाहता हूँ सनत्कुमारजी बोले कि हे द्विजोत्तम !

पापहारिणी! उत्तम कथा को सुनिये ॥ २ ॥ कि जिसके सुननेही से महापातकोंका नाश होता है हे अर्हन् ! पहले कल्पों में निर्मल व उत्तम वैकुण्ठ में पार्षद तथा उत्तम वर्णवाले सनकादिक महर्षियों व पितामह आदिक देवताओं समेत रमानाथ विष्णुजी बैठे थे ॥ ३ ॥ ४ ॥ जो कि ऋद्धि, सिद्धियों के गुणों से संयुत उन महदादिक तत्त्वों से व गण तथा गन्धर्वममूहों से सब ओर सेवित थे ॥ ५ ॥ और किन्नरों के उच्चप्रकार के गान व सम्मान से उत्तम आगन में नृत्य होनेपर और चिन्तामणि के गृहद्वार व सुन्दर अँगनाई की भूमियों में ॥ ६ ॥ कल्पवृक्ष से कीहुई छायावाले मुरशत्रु विष्णुजी के बैठनेपर ब्रह्ममार्ग में भलीभांति निश्चय किये हुये राज धर्म

त्रेण महापापक्षयोभवेत् ॥ पुराकल्पेपुर्वैब्रह्मन् वैकुण्ठेविमलेशुभे ॥ ३ ॥ समासीनोरमानाथः पार्षदैः सनकादिभिः ॥ महर्षिभिश्च सदृणैः पितामहपुरोगमैः ॥ ४ ॥ ऋद्धिसिद्धिगुणोपेतैस्तत्त्वैर्महदादिभिः ॥ गणगन्धर्वसङ्घैश्च सेव्यमानः समन्ततः ॥ ५ ॥ किन्नरोद्गानसम्मानैर्नृत्यमानेवराङ्गणे ॥ चिन्तामणिगृहद्वारललिताङ्गणभूमिषु ॥ ६ ॥ कल्पद्रुमकृतच्छायाआसीनेहिमुरद्विषि ॥ धर्मवादरताः सर्वे ब्रह्ममार्गमुनिश्चिताः ॥ ७ ॥ तेषामध्येपराभ्यां कमलातमपृच्छत ॥ पुरयकानां विधिनाथ श्रोतुमिच्छामितत्त्वतः ॥ ८ ॥ सर्वज्ञोसिमहाप्राज्ञ प्रोच्यतांयदिरोचते ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ दा नंस्नानंतपस्तप्तं सदाशस्तंहिशोभने ॥ ९ ॥ तथापिविधिनाप्राप्तं तत्सर्वं चाक्षयम्भवेत् ॥ देशेकालेचपर्वेच तीर्थेप्राप्ते चगोपदे ॥ १० ॥ दानंस्नानंतपःश्राद्धं मुनिभिः परिकीर्तितम् ॥ पूर्णिमायाममावास्यां संक्रान्तौग्रहणे तथा ॥ ११ ॥ वैधु-
तौचव्यतीपाते दानमृद्धिपरंस्मृतम् ॥ गङ्गायांभास्करक्षेत्रेष्वेवचपुष्करे ॥ १२ ॥ गोदावर्य्यागयायाञ्च तीर्थेचामरक

के वाद में पराग्रह थे ॥ ७ ॥ उनके मध्य में लक्ष्मीजी ने उन विष्णुजी से उत्तमवचन को पूछा कि हे नाथ ! मैं पुराणों की विधिको यथार्थ सुनना चाहती हूँ ॥ ८ ॥ हे महाप्राज्ञ ! तुम सर्वज्ञ हो यदि तुमको रुचता हो तो कहिये श्रीभगवान् बोले कि हे शोभने ! दान, स्नान व किया हुआ तप सदैव शुभ होता है ॥ ९ ॥ तथापि विधि से प्राप्त वह सब अक्षय होता है देश, काल व पर्व में गोपदीर्घ प्राप्त होनेपर ॥ १० ॥ दान, स्नान, तप व श्राद्ध मुनियों से कहा गया है पौर्णमासी, अमावस, संक्रान्ति व ग्रहण में ॥ ११ ॥ और वैधुति व व्यतीपातयोग में दान ऋद्धिदायक कहा गया है व गंगा, भास्करक्षेत्र, अरुणक्षेत्र व पुष्कर में ॥ १२ ॥ और गोदा-

वरी व गयतीर्थ में तथा अमरकंटक व अवन्तीपुरी में जो हवन किया व दिया हुआ होता है वह सब अक्षय होता है ॥ १३ ॥ इरालिये राव यल से पूर्वतीर्थ करे न्योंकि तीर्थ पर्व से अष्ट मनुष्य निश्चयकर कुवसना, दुर्भग, मूर्ख, जड व रंगसे संयुत होता है लक्ष्मीजी बोलीं कि कौन योग व कौन कर्म है इस सबको सम्पूर्णता से कहिये ॥ १४ ॥ १५ ॥ श्रीभगवान् बोले कि हे अनघे, भद्रे, प्रिये ! तुमने पुण्यों के मध्य में बहुत अच्छा पूछा मलमास प्राप्त होनेपर जो मनुष्य व्रतसे रहित होते है ॥ १६ ॥ हे शोभने ! उनके जन्म जन्म में दरिद्रता होती है लक्ष्मीजी बोलीं कि मलमास कैसा होता है और किस योगसे होता है ॥ १७ ॥ व किस समय

एटक ॥ अवन्त्याञ्छतंदत्तं तत्सर्वं चान्नयम्भवेत् ॥ १३ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन पर्वतीर्थसमाचरेत् ॥ कुचैलोदुर्भगोमूर्खो जडोरोगसमन्वितः ॥ १४ ॥ तीर्थपर्वपरिभ्रष्टो नरो भवति निश्चितम् ॥ श्रीरुवाच ॥ केचयोगाश्च कर्माणि ब्रूहि सर्वविशेषतः ॥ १५ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ साधुष्टन्त्वया भद्रे पुण्यकानां प्रिये नघे ॥ मलमासे समायाते येन रात्रतवर्जिताः ॥ १६ ॥ जन्मजन्मनिदारिद्र्यं तेषाम्भवति शोभने ॥ श्रीरुवाच ॥ कीदृशो हि मलो मासः केन योगेन जायते ॥ १७ ॥ कदाकाले समायाति एतन्नो वदस्व तस्मात् ॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ युक्तमुक्तं त्वया देवि प्रश्नकालो यमीदृशः ॥ १८ ॥ देवतापितृकार्याणि विधिना हिमलिङ्गेषु च ॥ नौरिमौञ्जीविवाहादि व्रतोपवासकं तथा ॥ १९ ॥ विशेषेण गृहस्थानां वज्र्यं मुनिवरोत्तमैः ॥ संवत्सरत्रयान्ते च मासो यमधिगच्छति ॥ २० ॥ असंक्रमणं रेवस्मिन् तस्मादधिकमासकः ॥ अधिमासाधिपत्यो हं सदैव पुरुषोत्तमः ॥ २१ ॥ ममाभिधानं मेतीर्थं महाकालवने शुभम् ॥ पुरुषोत्तमाख्यं मे धाम सदैवावसुतिष्ठ

प्राप्त होता है इसको मुझसे विस्तार से कहिये श्रीकृष्णजी बोले कि हे देवि ! तुमने योग्य कहा यह ऐसाही प्रश्न का समय है ॥ १८ ॥ मलमास में विधिसे देवता व पितरों के कार्य, मुण्डन, यज्ञोपवीत, विवाहादिक, व्रत व उपास ॥ १९ ॥ गृहस्थोंको विशेष कर वर्जित करना चाहिये यह मुनिश्रेष्ठों ने कहा है और तीन वर्ष के अन्त में यह मास आता है ॥ २० ॥ इम महीने में सूर्यका सक्रमण नहीं होता है इसी कारण अधिक मास होता है मैं पुरुषोत्तम सदैव अधिमासका स्वामी हूं ॥ २१ ॥

महाकालवनमें मेरे नामवाला मेरा उत्तम तीर्थ है यहाँपर सदैव पुरुषोत्तम नामक मेरा स्थान स्थित रहता है ॥ २२ ॥ इसलिये सब यलसे तुम समेत जाना चाहिये जहाँ महाकालवन है वहाँ मेरे नामवाला तीर्थ है ॥ २३ ॥ हे प्रिये, देवि ! जो मनुष्य स्नान के लिये वहाँ भलीभाँति आते हैं उनको कुछ मेरे न देने योग्य कभी न होवेगा ॥ २४ ॥ और धन, धान्य व स्त्री आदिक तथा पुत्रों का सुख सदैवही रहता है संक्रान्तिरहित मास प्राप्त होनेपर मनुष्य मुझको उद्देशकर व्रत करे ॥ २५ ॥ पुरुषोत्तम मैं सदैव अधिमास का स्वामी हूँ स्नान, दान, जप, होम, निज वेदपाठ व पितरों का तर्पण ॥ २६ ॥ व जो उत्तम मनुष्य दुपहर में देवता का पूजन करते

ति ॥ २२ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन गन्तव्यं हित्वयासह ॥ महाकालवनं यत्र तत्र तीर्थं ममाभिधम् ॥ २३ ॥ प्राणिनो ये समा यान्ति मज्जनार्थं प्रियेश्वरम् ॥ तेषां देवि ममादेयं न कदापि भविष्यति ॥ २४ ॥ धनधान्यकलत्रादिपुत्रसौख्यं सदैव हि ॥ असंक्रान्तेऽपि संप्राप्ते मामुद्दिश्य व्रतं चरेत् ॥ २५ ॥ अधिमासाधिपत्योऽहं सदा वै पुरुषोत्तमः ॥ स्नानं दानं जपो होमः स्वाध्यायः पितृ तर्पणम् ॥ २६ ॥ देवार्चनं च मध्याह्ने ये कुर्वन्ति नरोत्तमाः ॥ अक्षयं स्यात्तु तत्सर्वं तेषां वै कर्मलेभ्युचम् ॥ २७ ॥ मलमासो गतः शून्यो येषां देवि प्रमादतः ॥ दारिद्र्यञ्च सदा तेषां शोको रोगविवर्द्धनम् ॥ २८ ॥ अधिमासे नरा ये चाप्यवन्त्यां व्रतकारकाः ॥ तेषां नन्ददाम्यहं प्रीत्या त्वामेव तु न संशयः ॥ २९ ॥ स्वल्पं दानं मम लेकार्यं यत्किञ्चिद्विद्विहयत्कृतम् ॥ तत्सर्वं मत्प्रसादेन ह्यनन्तं प्रियदर्शने ॥ ३० ॥ श्रीरुवाच ॥ ईदृशो हित्वया प्रोक्तस्त्वधिमासस्य सुव्रत ॥ महिमा ह्यपिलोकानां सर्वकामवरप्रदः ॥ ३१ ॥ अधिमासव्रतम् पुण्यं कथयस्व प्रसादतः ॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ असंक्रान्तो यदा मासः

हे लक्ष्मी जी ! उनका वह सब निश्चय कर अक्षय होता है ॥ २७ ॥ हे देवि ! असावधानतासे जिनका मलमास शून्य व्यतीत होता है उनके सदैव दरिद्रता होती है और शोक व रोगों की वृद्धि होती है ॥ २८ ॥ और जो मनुष्य अवन्तीपुरी में मलमास में व्रत करनेवाले हैं उनको मैं प्रीति से तुम्हीं को देता हूँ इस में सन्देह नहीं है ॥ २९ ॥ मलमास में यहाँ जो कुछ थोड़ा भी होवै उसको दान करै क्योंकि हे प्रियदर्शने ! यहाँ जो दान किया होता है वह सब मेरी प्रसन्नता से अनन्त होता है ॥ ३० ॥ लक्ष्मी जी बोली कि हे सुव्रत ! तुमने मनुष्यों को सब कामनाओं को वरदायक ऐसी मलमास की महिमा को कहा ॥ ३१ ॥ और मलमास के पुण्यदायक

व्रतको प्रसन्नतासे कहिये श्रीकृष्णजी बोले कि हे प्रिये ! बिन संक्रान्तिवाला (मलमास) जब मनुष्यों को प्राप्त होवै ॥ ३२ ॥ तब आगमन में हित चाहनेवाले पुरुषों को बड़ा भारी उत्सव करना चाहिये हे सुरेश्वर ! कृष्णपक्ष में चौदसि व नवमी में ॥ ३३ ॥ और अष्टमी में यथालाभ उपहार से शोकविनाशक व्रत करना चाहिये व मलमासमें ॥ ३४ ॥ पुण्य दिनमें प्रातःकाल उठकर पूर्वाह्णवाले कर्मको करके न नियम ग्रहणकर पश्चात् हृदयमें विष्णुजी को स्मरण करताहुआ पुरुष ॥ ३५ ॥ हे मानिनि ! उपवास, नक्तव्रत व एकमुक्त व्रतों में से एकका निश्चयकर तदनन्तर ब्राह्मणों का निमन्त्रण करै ॥ ३६ ॥ जो कि सपत्नीक, उत्तम आचारशाले

प्राप्यतेमानैवःप्रिये ॥ ३२ ॥ महोत्सवस्तदाकार्यं आगमेहितकाङ्क्षिभिः ॥ कृष्णपक्षेचतुर्दश्यां नवम्यांवासुरेश्वरि ॥ ३३ ॥ अष्टम्याञ्चाथकर्तव्यं व्रतशोकविनाशनम् ॥ यथालाभोपहारेण मासेचापिमलिम्लुचे ॥ ३४ ॥ पुण्याहेप्रारुतथाय कृत्वापूर्वाह्निकीक्रियाम् ॥ गृहीत्वानियमपश्चाद्वासुदेवंहृदिस्मरन् ॥ ३५ ॥ उपवासश्चनक्तञ्च एकमुक्तश्चमानिनि ॥ एकमुक्त्याप्युक्तंसनातनम् ॥ ३६ ॥ सपत्नीकान्सदाचारान् कुर्वीतानञ्जातिसम्भवान् ॥ ततोमध्याह्न समये लक्ष्मीयुक्तंसनातनम् ॥ ३७ ॥ स्थापयेदव्रणेकुम्भे वेदमन्त्रौर्द्विजातिभिः ॥ पूजयेत्परयाभक्त्या गोत्रभिस्सपि तामहम् ॥ ३८ ॥ गन्धतोयेनसंस्थाप्य पञ्चामृतैस्तथैव च ॥ मिष्टान्नैर्विविधैश्च नैवेद्यैर्धूपदीपकैः ॥ ३९ ॥ आञ्छादनै श्रवस्त्रैश्च पीतकौशेयकैस्तथा ॥ घण्टामृदङ्गनिहादैर्दिव्यघोषसमन्वितैः ॥ ४० ॥ आरातिकं व्रतीकुर्यात् कर्पूरागुरु चन्दनैः ॥ अलामेतूलकैश्चापि फलस्यानन्तहेतवे ॥ ४१ ॥ ताम्रपात्रस्थितैस्तोयैश्चन्दनाञ्जतपुष्पकैः ॥ अर्धदद्यात्सप

कुलीन व ज्ञाति में उत्पन्न होवै तदनन्तर मध्याह्न समय में लक्ष्मी समेत सनातन पुरुष को ॥ ३७ ॥ ब्राह्मणों से वेदमन्त्रों के द्वारा व्रणरहित (बिनफूटे) कुम्भमें स्थापित करावै और इन्द्र व ब्रह्मा समेत बड़ी भक्ति से पूजन करै ॥ ३८ ॥ व मलीमांति स्थापित कर सुगन्धजल व पंचामृतों से तथा अनेक भाति के नैवेद्यों व धूप दीपों से ॥ ३९ ॥ और आञ्छादन व पीत रेशमी वस्त्रों से तथा दिव्य शब्द से संयुत घंटा व मृदंग के शब्दों से ॥ ४० ॥ व्रती पुरुष कर्पूर, अगुरु व चन्दन से आरती करै और इनके न मिलनेपर अनन्त फलके कारण रुई की वात्तियों से आरती करै ॥ ४१ ॥ और स्त्री समेत व्रती पुरुष प्रसन्नचित्त से चन्दन, अञ्जत व पुष्पों समेत

ताँबे के पात्र में स्थित जल से अर्घ्य देवै ॥ ४२ ॥ याने छुटनुवाँ को पृथ्वी में कर शिवभक्ति से संयुत पुरुष हाथों से उसको लेकर पंचरत्नों से संयुत जलों से अर्घ्य देवै ॥ ४३ ॥ हे देव ! तुम सब प्राणियों में दयावान् व संसार को आनन्दकारकहो अर्घ्य को ग्रहण कीजिये व सम्पूर्ण फलों के दायक हूजिये यह अर्घ्य का भंड है ॥ ४४ ॥ अभिततेजवाले आप स्वयम्भू व ब्रह्माकेलिये नमस्कार है व हे श्रियानन्द, ब्रह्मानन्द, कृपाकर ! तुम्हारे लिये प्रणाम है यह प्रार्थना का मंत्र है ॥ ४५ ॥ नहाकर व पवित्र होकर इसप्रकार गोविन्दजी की प्रार्थना कर लक्ष्मीनारायण को स्मरण करताहुआ पुरुष आपही पत्नी समेत ब्राह्मणों को पूजै ॥ ४६ ॥ विधि से पूजकर धी

बीकः प्रहृष्टेनान्तरात्मना ॥ ४२ ॥ पञ्चरत्नैः समायुक्तैर्जानुनीकृत्यभूतले ॥ समादायचपाणिभ्यां सर्वभक्तिसमन्वि-
तः ॥ ४३ ॥ कृपावान्सर्वभूतेषु जगदानन्दकारकः ॥ गृहाणाध्यमिदं देव सम्पूर्णफलदोभव ॥ इत्यध्यमन्त्रः ॥ ४४ ॥
स्वयम्भुवेनमस्तुभ्यं ब्रह्मणेमिततेजसे ॥ नमोस्तुते श्रियानन्द ब्रह्मानन्दकृपाकर ॥ इति प्रार्थनामन्त्रः ॥ ४५ ॥ एवंसे
प्रार्थ्यगोविन्दं पूजयेद्ब्राह्मणान्स्वयम् ॥ सपत्नीकाञ्छुचिः स्नात्वा लक्ष्मीनारायणौ स्मरन् ॥ ४६ ॥ पूजयित्वा विधानेन
भोजयेद्दधृतपायसैः ॥ भोजयित्वा विधानेन सपत्नीकं यथोचितम् ॥ ४७ ॥ विद्याविनयसम्पन्नं स्वयापत्न्या समन्वि-
तम् ॥ परिस्थाप्य यथाशक्त्या वस्त्रालङ्कारकुङ्कुमैः ॥ ४८ ॥ गोस्तन्यासकपित्थैश्च खज्जूरैः कदलीफलैः ॥ पनसैर्नारि-
कैलैश्च नारङ्गदण्डिमैस्तथा ॥ ४९ ॥ दधृतपकान्नगोधूमैः शुभैर्मिष्टान्नैरपि ॥ शर्कराघृतपूरैश्च फाणितैः खण्डमण्डि-
तैः ॥ ५० ॥ उर्वारुक्कट्टीशार्कैः शृङ्गवेरैः समूलकैः ॥ अन्यैश्च विविधैः शार्कैरामैः पकैः पृथक् पृथक् ॥ ५१ ॥ भक्ष्यभो-

व खीर से भोजन करवै और विद्या व विनय से संयुत अपनी स्त्री समेत सपत्नीक ब्राह्मण को विधि से यथोचित भोजन कराकर व बिठाकर यथाशक्ति से वसन, अलंकार व कुकुम से पूजन करै ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ व मुनक्का और कैथा समेत खजूर व केला के फलों से तथा कटहर, नारियल, नारंगी व अनारों से पूजन करै ॥ ४९ ॥ और धी में पकेहुये गोघूमाद्य व उत्तम मिष्ठानों से और शर्करा व घृत से पूर्ण भोजनों से और राब व खांड से शोभित जैवेद्यों से ॥ ५० ॥ और ककड़ी के शाको से व

मूत्री समेत अदरलों से तथा नैक भाँति के अन्य कच्चे व पके अलग अलग शाकों से भोजन करावै ॥ ५३ ॥ व विशेष कर भक्ष्य, भोज्य, लेह्य (चाटने योग्य पदार्थ) व पीनेयोग्य वस्तुओं को और कंद व सुवासित गोरसों को परोसकर कोमल वचन कहताहुआ पुरुष यह कहै ॥ ५२ ॥ कि हे प्रभो ! यह स्वादुरसवाला भोजन आपके लिये रचागया है जो रुचताहैवै उसको माँगिये जो कि मैंने पकाया है ॥ ५३ ॥ मैं धन्यहूँ व अनुग्रह कियागयाहूँ और मन्दिर सार्थ कियागया तदनन्तर तांबूल व दक्षिणा को देकर ब्राह्मणों को विदाकरै ॥ ५४ ॥ हे देवि ! चार वस्तुओं से मिलेहुये, प्रिय तांबूल को जो पुरुष मुझको देता है हे द्विजोत्तम ! वह मनुष्य

उत्थलेह्यपेयकन्दकानिविशेषतः ॥ सुवासितान्गोरसांश्च परिवेष्यमृदुवृषन् ॥ ५२ ॥ इदंस्वादुरसंभोज्यम्भवदर्थप्रकल्पितम् ॥ याच्यतांरोचयेद्यच्च यन्मयापाचितं प्रभो ॥ ५३ ॥ धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि कृतं सार्थञ्च मन्दिरम् ॥ विमर्जयेत्ततो विप्रान् दत्त्वा ताम्बूलदक्षिणाः ॥ ५४ ॥ चतुर्भिर्मिलितन्देवि ताम्बूलम् ममवल्लभम् ॥ यो ददाति द्विजश्रेष्ठ स भवेत्सुभगो नरः ॥ ५५ ॥ सुभगा च सदा चारा वल्लभा स्वजने सदा ॥ पुत्रसौभाग्ययुक्ता च ताम्बूलैर्जायते प्रिये ॥ ५६ ॥ पत्रैस्तु केशवः प्रीतः पूगैरीशः सहो मया ॥ चूर्णं केनरमा प्रीता खादरेण च मन्मथः ॥ ५७ ॥ चतुर्भिर्विश्वरूपोऽसौ यः पुष्पातिजगन्नयम् ॥ परितोऽप्यसपत्निकान् हस्ते देयाश्च मोदकाः ॥ ५८ ॥ आसीमान्तमनुव्रज्य भुञ्जीत सहवन्धुभिः ॥ अस्माकान्तिव्रतं नारी याकरोतीह सुप्रिये ॥ ५९ ॥ दारिद्र्यं पुत्रशोकञ्च वै धव्यं नानुयात्कचित् ॥ नरो वायदिवानारी यः

उत्तम ऐश्वर्यवान् होता है ॥ ५५ ॥ व हे प्रिये ! तांबूलों से स्त्री सुभगा व उत्तम आचारवाली तथा सदैव अपने जनों में प्रिय और पुत्र व सौभाग्य से संयुत होती है ॥ ५६ ॥ पत्नों से विष्णुजी प्रसन्न होते हैं और सुपारी से पार्वती समेत महादेवजी प्रसन्न होते हैं व चून से लक्ष्मीजी प्रसन्न होती है और खैर से कामदेव प्रसन्न होते हैं ॥ ५७ ॥ और चारों से ये विश्वरूप विष्णुजी प्रसन्न होते हैं जो कि त्रिलोक को पालन करते हैं स्त्री समेत ब्राह्मणों को प्रसन्नकर हाथ में लड्डुओं को देना चाहिये ॥ ५८ ॥ और हृदके अन्ततक उनके पीछे जाकर भाइयों समेत भोजन करे हे सुप्रिये ! इस संसार में जो स्त्री संक्रान्तिरहित (मलमास) व्रतको करती है ॥ ५९ ॥ यह

कभी दरिद्रता, पुत्रशोक व वैधव्यता को नहीं प्राप्त होती है व जो पुरुष या स्त्री मलमास में व्रत करती है वह सब मनोरथों को प्राप्त होती है ॥ ६० ॥ इस संसार में मलमास को प्राप्त होकर जिन मनुष्यों ने मुक्त नारायण को परम भक्ति से नहीं पूजा है उनके सुख व पुत्र संपत्ति और मित्र तथा स्त्री अपने गुणों से संयुत कैसे होवेंगी ॥ ६१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायाभापाटीकायापुरुषोत्तममाहात्म्यं नामैकसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७१ ॥ ॐ ॥ ६० ॥ पुरुषोत्तम सर की अहै महिमा अभित अपार । बहतरिखें अध्यायमें सोई चरित सुखार । सनत्कुमारजी बोले कि मलमास प्राप्त होनेपर जो मनुष्य महाकाल दो० । पुरुषोत्तम सर की अहै महिमा अभित अपार । बहतरिखें अध्यायमें सोई चरित सुखार । सनत्कुमारजी बोले कि मलमास प्राप्त होनेपर जो मनुष्य महाकाल

कुर्याच्चमलिम्लुचे ॥ ६० ॥ मलिम्लुचंप्राप्यनपूजितोयैनारायणोऽहंपरयेहभक्त्या ॥ कथम्भवेद्युःसुखपुत्रसम्पत्सुहृत्सु भार्याःस्वगुणैरुपेताः ॥ ६१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेपुरुषोत्तममाहात्म्यं नामैकसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७१ ॥ सनत्कुमारउवाच ॥ अधिमासेसमायाते यश्चान्यत्रस्थितिनरः ॥ करोतिसनरोमूर्खो महाकालवनादृते ॥ १ ॥ अधिमासेनरोव्यास तीर्थपुरुषोत्तमाभिधे ॥ स्नात्वादद्याच्चदानानि तस्यलोकाःसनातनाः ॥ २ ॥ पुरुषोत्तमंसमभ्यर्च्य रमालालितपादकम् ॥ तथैवचउमांदेवीं शङ्करेणचपूजयेत् ॥ ३ ॥ वाञ्छितार्थशतान्प्राप्य विष्णुलोकेमर्हायते ॥ भाद्रपदेसितेपक्ष एकादश्यांसमाहितः ॥ ४ ॥ पुरुषोत्तममरःस्नाति तस्यपुण्यफलंशृणु ॥ पुत्रदाराधनंसम्यगायुरारो ग्यसम्पदः ॥ ५ ॥ नतेषान्दुर्लभंकिञ्चित् त्रिषुलोकेषुविद्यते ॥ तस्यपूर्वतटेभागे जलेऽश्वरमहेऽश्वरौ ॥ ६ ॥ तिष्ठतस्त

वनके मित्राय अन्यत्र स्थिति करता है वह मूर्ख है ॥ १ ॥ हे व्यामजी ! मलमास में जो मनुष्य पुरुषोत्तम नामक तीर्थ में नहाकर दानों को देता है उसके सनातन लोक होते हैं ॥ २ ॥ लक्ष्मीजी से लालित चरणवाले पुरुषोत्तमजी को भलीभांति पूजकर वैसेही शिवजी समेत पार्वती देवी को पूजें ॥ ३ ॥ तो सैकड़ों चाहेहुये मनोरथों को प्राप्त होकर वह विष्णुलोक में पूजाजाता है भाद्रपदके शुक्लपक्ष में एकादशीतिथि में सावधान होताहुआ जो पुरुष ॥ ४ ॥ पुरुषोत्तम तडाग को नहाता है उसके पुण्य के फलको सुनिये कि पुत्र, स्त्री, धन व भलीभांति आयुर्बल, आरोग्य व संपदा होती हैं ॥ ५ ॥ और उनको तीनों लोकों में कुछ दुर्लभ नहीं होता है उसके पूर्व

वाले भाग में जलेश व महेशजी ॥ ६ ॥ तपती नदी के किनारे टिके हैं जहां कि पुण्यवानों में श्रेष्ठ भगीरथराजा ने तपस्या कर उत्तम पुण्य को पाया है ॥ ७ ॥ और सब लोकों के सुख के लिये वे गंगाजी को पृथ्वी में लाये हैं उनके तीर्थ में नहाकर जो मनुष्य तिलकी गऊ को देता है ॥ ८ ॥ वह नर सब यज्ञों के फल को पाकर पुत्रवान् हाता है और उसके ईशानभाग में भृगुश्रेष्ठ व धर्मात्मा परशुरामजी ने अपने कार्य की शुद्धि के लिये तप किया है और वहीं पर सब तीर्थों के वर को देनेवाली व नदियों में श्रेष्ठ कौशिकी नदी है ॥ ९ ॥ १० ॥ उनमें नहाकर मनुष्य इत्या के दोष में रहित होता है और रामेश्वरजी को भलीभांति देखकर मनुष्य पापरहित होता है ॥ ११ ॥

पतीतीरे यत्रराजाभगीरथः ॥ तपस्तप्त्वापरंलेभेपुण्यमुण्यवतांवरः ॥ ७ ॥ गङ्गाभूतलमानिन्येसर्वलोकसुखायैव ॥

तस्यतीर्थेनरःस्नात्वा तिलधेनुंप्रदापयेत् ॥ ८ ॥ सर्वयज्ञफलंप्राप्य पुत्रवाञ्छायतेनरः ॥ तस्येशानतरेभागे रामोभार्गव सत्तमः ॥ ९ ॥ तपस्तेपेचधर्मात्मा आत्मकार्यविशुद्धये ॥ कौशिकीचसरिच्छेष्टासर्वतीर्थवरप्रदा ॥ १० ॥ तत्रस्नात्वानरोजातिहत्यादोषविवर्जितः ॥ रामेश्वरंसमालोक्य धूतपाषाणोभवेन्नरः ॥ ११ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेपुरुषोत्तमेश्वरमाहात्म्यनामद्विसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७२ ॥ * ॥ * ॥

ग्यासउवाच ॥ गोमतीकुण्डमाख्यातं पुराब्रह्मसनातनम् ॥ कस्मिन्नकालेकदाजातं तन्नोवदसुविस्तरात् ॥ १ ॥ स

नत्कुमारउवाच ॥ शृणुध्वम्भोमहाप्राज्ञ कथाम्पापहराम्पराम् ॥ गोमतीकुण्डजाम्पुण्यां पुरारुद्रेणभाषिताम् ॥ २ ॥

नैमिषारण्यआसीना ऋषयःशौनकादयः ॥ कथयन्तिकथाम्पुण्यां सर्वतीर्थोद्भवांशुभाम् ॥ ३ ॥ तस्मिन्नवसरपुण्ये

इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभापाटीकायांपुरुषोत्तमेश्वरमाहात्म्यनामद्विसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७२ ॥ * ॥ * ॥

दो० । अहै गोमतीकुण्ड की महिमा यथा अनन्त । तिहतरवे अध्याय में सोई कथा भनन्त ॥ व्यासजी बोले कि पुरातन समय मनातन ब्रह्म गोमतीकुण्ड कहा गयाहै वह कब और किसममय हुआहै उसको हमसे विस्तारसे कहिये ॥ १ ॥ सनत्कुमारजी बोले कि हे महाप्राज्ञ ! पापहरिणी उत्तम कथाको सुनिये जो कि गोमतीकुण्ड से उपजी हुई व पुण्यदायिनी तथा पहले शिवजी से कही गई है ॥ २ ॥ नैमिषारण्यमें बैठहुये शौनकादिक ऋषि सब तीर्थोंसे उपजी हुई व पुण्यदायिनी उत्तम कथाको

कहते थे ॥ ३ ॥ उस पुण्यदायक समय में नारदजी ने पवित्र व पापहारक, उत्तम काशीजी के माहात्म्य को कहा ॥ ४ ॥ कि पुण्य व पापोंकी ऊपर भूमि काशीपुरी धन्य है जहाँ कि चाण्डाल व पण्डित निश्चयकर उत्तम मोक्षको पाते हैं ॥ ५ ॥ असी व वरणाके बीचमें पांच कोसका क्षेत्र बड़ा फलदायक है जहाँ कि देवता मरने की इच्छा करते हैं फिर अन्य मनुष्यों को क्या कहना है ॥ ६ ॥ ऐसा सुनकर उस समय हे व्यासजी ! सब देवताओं व ऋषियों के सुनतेहुये परंतप ब्रह्माजीने कहा ॥ ७ ॥ कि गोमती के समान नदी नहीं है और कृष्ण के समान देवता नहीं है और सब पाताल व पृथ्वी के बीचमें द्वारका के समान पुरी नहीं है ॥ ८ ॥ ऐसा निश्चय

काशीमाहात्म्यमुत्तमम् ॥ कथितवैनारदेन पवित्रं पापहारकम् ॥ ४ ॥ ऊपरः पुण्यपापानां धन्यावाराणसीपुरी ॥ ध्रुवं लभन्ते मोक्षश्च शुभं चाण्डालपण्डिताः ॥ ५ ॥ असीवरणयोर्मध्ये पञ्चक्रोशं महत्फलम् ॥ अमरामरणमिच्छन्ति काकथाइतरेजनाः ॥ ६ ॥ इति श्रुत्वा तदा व्यास स्वयम्भूः प्रत्यभापत ॥ शृण्वतां सर्वदेवानां ऋषीणाञ्च परन्तपः ॥ ७ ॥ नदीनगोमतीतुल्या कृष्णतुल्यो न देवता ॥ सर्वपातालभूमध्ये द्वारकानसमापुरी ॥ ८ ॥ इति ते निश्चयं ज्ञात्वा ऋषयः शौनकादयः ॥ यत्र तत्र स्थिताः सर्वे प्रातः सन्ध्यामुपासनम् ॥ ९ ॥ तत्रैव गोमतीतीरे चक्रुस्ते वै धृतव्रताः ॥ सान्दीपनोपि तत्रैव प्रातः सन्ध्यां समाचरत् ॥ १० ॥ एवं बहुतिथे काले चरतस्तस्यैव व्रतम् ॥ सान्दीपनस्य प्राग्व्यास अवन्तीपुरवासि नः ॥ ११ ॥ तस्यैव कामपूर्णार्थं वीरौरामजनार्दनौ ॥ आयातौ सुकुमाराङ्गौ सततं ब्रह्मचारिणौ ॥ १२ ॥ निवासं च क्रतुस्तस्य गुरोर्गोहे परंतप ॥ तस्य पाठस्य तोसम्यग्विद्यां जगद्गुरुः पराम् ॥ १३ ॥ उपस्युषसितत्रैव दृश्यते न यदा गुरुः ॥

आनकर व्रत को धारण किने जहाँ तहाँ बैठेहुये उन सब शौनकादिक ऋषियों ने प्रातःकाल सन्ध्यापासन किया और सान्दीपनने भी वहीं प्रातःकाल सन्ध्या किया ॥ १० ॥ हे व्यासजी ! इस प्रकार बहुत समयतक पहले अवन्तीपुरवासी उन सान्दीपनजी के व्रत करनेपर ॥ ११ ॥ उन्हींकी कामनाके पूर्ण होनेके लिये सुकुमार अङ्गवाजने व सदैव ब्रह्मचारी बलभद्र व श्रीकृष्णजी आये ॥ १२ ॥ व हे परंतप ! उन्हींने उन सान्दीपन गुरु के घर में निवास किया व उन अध्यापक के सकाश से बलीभांति उत्तम विद्या को ग्रहण किया ॥ १३ ॥ और जब नित्य प्रातःकाल के समय में वहाँ गुरुजी न देखपड़ते थे तब यह पूछते थे कि यह विद्या के उपदेश

का समय है हमारे श्रेष्ठ गुरुजी कहां गये ॥ १४ ॥ उनके इस प्रकार पूछने पर गुरुकी स्त्री बोली कि हे वत्स ! वे सदैव प्रातःकाल सन्ध्योपासन करते हैं ॥ १५ ॥ और वहीं पर तुम्हारे गुरु नित्य स्नान के लिये जाते हैं द्वाराका में पवित्रकारिणी श्रेष्ठ गोमती नदी है ॥ १६ ॥ ऐसा सुनकर उस समय बलभद्र समेत श्रीकृष्णजी ने विचार किया कि हमको यहां क्या अपना उत्तम हित करना चाहिये ॥ १७ ॥ मैं यहीं पर स्थित होकर गुरु का आगमन चाहता हूं इसी समय में सांकीयनिजी पर को श्रम्ये ॥ १८ ॥ तदनन्तर उठकर गुरु का प्रणाम करते पर वे वीर नम्रता से मुँक कर गुरु से वचन बोले ॥ १९ ॥ कि हे महाशक्तिगिन् ! हमारे निवास का

विद्योपदेशकालौघं कगतोनोगुरुर्वरः ॥ १४ ॥ इतिष्टुष्टेतयोरेवं गुरुपत्नी उवाचह ॥ सदैवकुरुतेवत्स प्रातःसन्ध्यामुपास
नम् ॥ १५ ॥ नित्यंगच्छतितत्रैव गुरुस्तेस्नानकारणात् ॥ गोमतीवैसरिच्छेष्टा द्वाकायांचपावनी ॥ १६ ॥ इतिश्रुत्वा
तदाकृष्णो रामेणमहसंयुतः ॥ किं कर्त्तव्यमिहास्माभिरात्मनोहितमुत्तमम् ॥ १७ ॥ गुरोरागमनंकाङ्क्षे अत्रैवस्थि
तिमाश्रितः ॥ एतस्मिन्नेवकाले तु सान्दीपनिरगाद्गृहम् ॥ १८ ॥ ततउत्थायतोषीरो गुरोरावन्दनेकृते ॥ प्रश्रया
वनतौभूत्वा ह्यब्रूतांवचनंगुरोः ॥ १९ ॥ श्रूयताम्भोमहायोगिन्नस्माकंवासकारणम् ॥ विद्यार्थमिहसंप्राप्तो युष्माकञ्च
गृहोत्तमे ॥ २० ॥ प्रातःकालेचतेब्रह्मन् समयोनस्तिवैप्रभो ॥ एतच्छ्रुत्वावचस्तस्य कृष्णस्यचचलस्यच ॥ २१ ॥
उवाचभगवन्व्यास आत्मनोव्रतकारणम् ॥ अस्माकंपरमंवत्स व्रतंतच्छाश्वतंगतम् ॥ २२ ॥ कर्त्तव्यंगोमतीस्नानं
प्रातःकालेसदाबुधैः ॥ तत्रैवोपासनंषुण्यं सन्ध्यायामितिनिश्चितम् ॥ २३ ॥ इतिविश्वस्यभगवन् यथायोग्यंतथाकुरु ॥

कारण सुनिये कि तुम्हारे उत्तम घरमें मैं विद्यार्थके लिये प्राप्त हुआ हूं ॥ २० ॥ व हे ब्रह्मन्, प्रभो ! प्रातःकालमें तुमको समय नहीं होता है उन श्रीकृष्ण व बलभद्रजी के इस वचन को सुनकर ॥ २१ ॥ हे भगवन्, व्यासजी ! उन सांदीपनिने अपने व्रतका कारण कहा कि हे वत्स ! हमारा वह उत्तम व्रत शाश्वत (सदैवचाला) माना गया है ॥ २२ ॥ सदैव प्रातःकाल में पण्डितों को गोमती स्नान करना चाहिये और वहीं पर सन्ध्यासमय में पुण्यदायिनी उपासना करणा चाहिये यह निश्चय

क्रियागया है ॥ २३ ॥ हे भगवन् ! ऐमा विदवासकर जैसा योग्यहो वैसा कीजिये ऐसा सुनकर कारण से मनुजरूपधाले भगवान् विष्णुजी ने ॥ २४ ॥ हे द्विजोत्तम ! कुशस्थली में गोमतीजी का आराधन किया जहाँ कि विश्वेश्वर देव और अतिउत्तम यज्ञकुण्ड है ॥ २५ ॥ और कुण्डेश्वर के उत्तरभाग में वे गोमतीजी भलीभाति प्राप्तहुई और पातालतल को भेदनकर सरस्वतीजी से संयोग को प्राप्तहुई ॥ २६ ॥ प्रातःकाल उठकर उन सबोंने व्यासजी के आश्रम में प्राप्त नदियोंमें श्रेष्ठ सुन्दर नेत्रान्तों वाली गोमतीजी को देखा ॥ २७ ॥ हे ब्रह्मन् ! नदियों में श्रेष्ठ गोमतीजी यहींपर प्राप्तहुई हैं व यहींपर मनुष्य स्नान, दानादिक सब करते हैं ॥ २८ ॥ और यज्ञकुण्ड

तच्छ्रुत्वा भगवान् विष्णुः कारणमानुषरूपवान् ॥ २४ ॥ गोमत्याराधनंचक्रे कुशस्थल्यां द्विजोत्तम ॥ यत्र विश्वेश्वरो देवो यज्ञकुण्डमनुत्तमम् ॥ २५ ॥ कुण्डेश्वरस्योत्तरेभागे गोमतीसासमागता ॥ पातालतलभाभेद्य सरस्वत्या तु सङ्गता ॥ २६ ॥ प्रातरुत्थायेत सर्वे गोमतीं सरितां वराम् ॥ ददर्श रुचिरा पाङ्गी व्यासस्य श्रमभागीनीम् ॥ २७ ॥ अत्रैव चागता ब्रह्मन् गोमती सरितां वरा ॥ स्नानदानादिकं सर्वमत्रैव समुपासते ॥ २८ ॥ गोमती च समालीना यज्ञकुण्डे सरस्वती ॥ तदा प्रभृतिलोकैस्मिन् गोमती कुण्डमुच्यते ॥ २९ ॥ सर्वेषामपि लोकानां मार्गैर्नैव च विद्यते ॥ तस्माद्वा समहापुण्यम् भुवि तीर्थमनुत्तमम् ॥ ३० ॥ गोमती कुण्डमाख्यातं सर्वपापप्रणाशनम् ॥ भाद्रपदेऽसिताष्टम्यां कृष्णजन्मसमुद्भवे ॥ ३१ ॥ तत्र स्नात्वा नरो नित्यं रात्रौ जागरणं चरेत् ॥ उपोष्य विधिवद् व्यासमर्चयेत् ॥ ३२ ॥ वैष्णवांश्च नरांश्चैव कृष्णजन्मोत्सुकान् वरान् ॥ नानासुगन्धपुष्पाढ्यैर्वस्त्रालङ्कारसंयुतैः ॥ ३३ ॥ गोब्राह्मणानां पूजाञ्च कुर्वते

में गोमती व सरस्वतीजी मिली हैं तब से लगाकर इस संसार में गोमती कुण्ड कहा जाता है ॥ २६ ॥ और यहींपर सब लोकों का मार्ग विद्यमान है इसलिये हे व्यासजी ! पृथ्वीमें अतिउत्तम तीर्थ महापुण्यदायक है ॥ ३० ॥ सब पापों का विनाशक गोमती कुण्ड कहा गया है भाद्रपदमें कृष्णपक्ष की अष्टमी में कृष्णजी का जन्म होनेपर ॥ ३१ ॥ हे व्यासजी ! उसमें नहाकर सबैव मनुष्य रात्रिमें जागरण करे और विधिपूर्वक उपासकर शिष्य समेत व्यासको पूजन करे ॥ ३२ ॥ और श्रीकृष्ण जन्ममें उत्कण्ठित उत्तम वैष्णव नरों को अनेक भांतिके सुगन्धवाले पुष्पोंसे संयुत व वस्त्रों तथा आभूषणों से युक्त वस्तुओं से पूजन करे ॥ ३३ ॥ और सावधान होते

हुये जो पुरुष गौ व आक्यों का पूजन करते हैं उनको सब लोकोंमें कुछ दुर्लभ नहीं होता है ॥ ३४ ॥ और गोमती के स्नान से उपजाहुआ पुण्य व वासुदेवजी का समागम तथा मनोरथकी प्राप्ति होता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ३५ ॥ और चैत्रके शुक्लपक्षमें जब एकादशी होवे उस दिन गोमतीमें विशेषकर स्नानकर मनुष्य ॥ ३६ ॥ रात्रिमें जागरण कर विष्णुजी का पूजन करे तदनन्तर आमलकी यात्राकरै तो प्रदक्षिणा के पग २ पै उनको गोमहसका फल मिलता है इसमें सन्देह नहीं है जो मनुष्य इस पवित्र व पापहारिणी कथाको सुनता है ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ वह सब पापोंसे छूटकर विष्णुलोकमें पूजाजाता है ॥ ३९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे

येसमाहिताः ॥ नतेषांदुर्लभांकिञ्चित् सर्वलोकेषुविद्यते ॥ ३४ ॥ गोमतीस्नानजम्पुण्यं वासुदेवसमागमम् ॥ मनोरथसंप्राप्तिर्जायतेनात्रसंशयः ॥ ३५ ॥ तथाचैत्रमितेपक्षेयदाचैकादशीभवेत् ॥ तद्दिनेचनरःस्नात्वा गोमत्यांचविशेषतः ॥ ३६ ॥ रात्रौजागरणंकृत्वा विष्णुपूजांतथैवच ॥ आमलकीततोयात्राप्रदक्षिणपदपदे ॥ ३७ ॥ गोमहसफलंतेषांप्राप्यतेनात्रसंशयः ॥ यःशृणोतिकथाम्पुण्यां पवित्रांपापहारिणीम् ॥ ३८ ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोकैर्महीयते ॥ ३९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेगोमतीकुण्डमाहात्म्यन्नामत्रिसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७३ ॥ * ॥

सनत्कुमारउवाच ॥ कुण्डेश्वरइतिख्यातं यत्तुतीर्थमनुत्तमम् ॥ तत्रतीर्थेनरःस्नात्वा दृष्ट्वादिवमहेश्वरम् ॥ १ ॥ मुच्यतेसर्वपापेभ्यः शुचिःप्रयतमानसः ॥ विमानशतसंयुक्तः शिवलोकैर्महीयते ॥ २ ॥ भुविधन्यतरंतीर्थं सर्वपापहरम्परम् ॥ स्वर्गङ्गासङ्गमोयत्र गङ्गेश्वरसर्मापतः ॥ ३ ॥ महापापहरम्पुण्यं महापुण्यफलप्रदम् ॥ आकाशात्पतिता य

देवीदयालुमिश्रविरचितयांभाषाटीकायांगोमतीकुण्डमाहात्म्यंनामत्रिसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७३ ॥

दो० । वामनकुण्ड कथा तथा सहस्रविष्णुक नाम । चौहत्तरि अध्यायमें वर्णित चरित ललाम ॥ सनत्कुमारजी बोले कि कुण्डेश्वर ऐसा प्रसिद्ध जो अतिउत्तम तीर्थ है उस तीर्थ में नहाकर व महेश्वरदेवजी को देखकर मनुष्य ॥ १ ॥ सब पापों से छूटजाता है व पवित्र तथा शुचिमानवाला वह पुरुष सौ विमानों से संयुत होकर शिवलोकमें पूजाजाता है ॥ २ ॥ और पृथ्वीमें वहां सब पापोंको हरनेवाला बड़ा धन्य व उत्तमतीर्थ है जहां कि गङ्गेश्वरजी के समीप आकाशगङ्गाजीका संगम है ॥ ३ ॥ वह

तीर्थ महापापहारक व पवित्र तथा महापुण्य के फलको देनेवाला है जहां कि त्रिलोक को पवित्र करनेवाली गङ्गाजी आकाश में गिरी हैं ॥ ४ ॥ उनको शम्भु महादेवजीने उसीक्षण मस्तकतो धारण किया है उस तीर्थमें नहाकर मनुष्य गंगेश्वरजीको देखे ॥ ५ ॥ तो गंगाजीके स्नानके फलको पाकर वह विष्णुलोकमें पूजा जाता है व विदेवेश्वरजीको प्राप्त होकर जो मनुष्य उस तीर्थमें निवास करे वह सब पापों से शुद्धचित्त होकर विष्णुजी के लोकको प्राप्त होता है और महर्षियों से पृथ्वीमें महापवित्र अन्यतीर्थ कहा गया है ॥ ६, ७ ॥ वामनकुण्ड ऐसा प्रसिद्ध है और जिसके दर्शनही से ब्रह्महत्या नाश हो जाती है ॥ ८ ॥ व भैरवों

ब्रगङ्गात्रैलोक्यपावनी ॥ ४ ॥ विधृताशिरसासद्यो महादेवेन शम्भुना ॥ तस्मिंस्तोत्रे नरः स्नात्वा गङ्गेशमवलोकयेत् ॥ ५ ॥ गङ्गास्नानफलं प्राप्य विष्णुलोकं महीयते ॥ विदेवेश्वरमनुप्राप्य तस्मिंस्तोत्रे नरो वसेत् ॥ ६ ॥ सर्वपापविनाशकं विष्णुलोकं मवाप्नुयात् ॥ तीर्थमन्यन्महापुण्यं सुविख्यातं महर्षिभिः ॥ ७ ॥ वामनकुण्डेति विख्यातं त्रिषु वाच ॥ कदाकाले समुत्पन्नं वामनाख्यम् पुरानघ ॥ ८ ॥ तत्सर्वं श्रोतुमिच्छामि त्वत्तो ब्रह्मविदां वर ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ श्रूयताम् भो द्विज श्रेष्ठ कथाम् पापहराम् पराम् ॥ ९ ॥ यस्याः श्रवणमात्रेण सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ दैत्येन्द्रश्च पुराप्रो १२ ॥ धैर्येण च धृतालोकाः क्षमया विधृता मही ॥ गाम्भीर्येणार्णवा दिव्याः शौर्येण शत्रुसङ्घकाः ॥ १३ ॥ प्रश्रयेण भ्या

मनोरथों को पाकर परचात वह विष्णुलोक को जाता है व्यासजी बोले कि हे अनघ ! पुरातन समय वामननामक कुण्ड किस समय उत्पन्न हुआ है ॥ ६ ॥ हे ब्रह्मविदा वर ! मैं उस सबको तुमसे सुना चाहता हूं मनत्कुमारजी बोले कि हे द्विजोत्तम ! पापहारिणी उत्तम कथाको सुनिये ॥ ७ ॥ कि जिसके सुननेही से मनुष्य सब पापों से जीतीमई ॥ ११, १२ ॥ व धैर्य से लोक धारण कियेगये हैं व क्षमामे पृथ्वी धारण कीगई है और गम्भीरतासे दिव्य समुद्र व शूरतासे शत्रुओंके मक्ष जीतेगये ॥ १३ ॥

और उन महात्माने नम्रता से अतिथियों को जीता और दक्षिणाओं से बड़ा जीतीगई व हठसे अन्तिम जीतीगई ॥ १४ ॥ और पवित्रता व आचार से वे शुद्धचित्तवाले तथा तपस्यासे बड़े अमङ्गलवाले थे और तन प्रह्लादजी से भोजन व आच्छादनादिकों से व दान, मानसे ब्राह्मण जीतीगये ॥ १५ ॥ व संस्कार से जन्म जीतागया और दमसे सनातन आत्मा जीतागया तथा प्राणायामसे पवन जीतागया व योग और ध्यान से विष्णुजी जीतीगये ॥ १६ ॥ और इन्द्रके तुल्य वे महायोगी, सत्य व धर्ममें तत्पर हुये प्रह्लादके समान ज्ञानी न हुआ है और न होगा ॥ १७ ॥ कि जिनके उत्तम आचारवाले पौत्र बलि ऐसे कहेजाते हैं भलीभांति पालन करते

गताश्च जितास्तेन महात्मना ॥ दक्षिणानिर्जितो यज्ञो हविषा हव्यवाहनः ॥ १४ ॥ शौचाचारविशुद्धात्मा तपसा च हता शुभः ॥ दानमानजिता विप्रा भोजनाच्छादनादिभिः ॥ १५ ॥ संस्कारेण जितं जन्म दमेनात्मा सनातनः ॥ प्राणायामजितो वायुर्योगध्यानजितो हरिः ॥ १६ ॥ इन्द्रतुल्यो महायोगी सत्यधर्मपरायणः ॥ प्रह्लादेन समो धीरो न भूतो न भविष्यति ॥ १७ ॥ यस्य पौत्रः सदा चार्ग बलिरित्यभिधीयते ॥ तस्य पालयतः सम्यक् प्रजानित्यं विवर्द्धिताः ॥ १८ ॥ नात्पायुर्न जडो मूर्खो न रोगी न च मत्सरी ॥ अपुत्रो धनहीनश्च कोपि नास्ति महीतले ॥ १९ ॥ महाराजो महीपालो यज्वा विषुलदक्षिणः ॥ सप्तद्वीपवती तेन पालिता वसुधा सदा ॥ २० ॥ एकदा च समासीने सभामध्ये वरानने ॥ जयशब्देव तस्मान्ने गन्धर्वाल्लितं जगुः ॥ २१ ॥ वाद्यमानेषु वाद्येषु न चतुश्चाप्सरोगणाः ॥ कथ्यमाने कथां दिव्याम्पौराणस्मृतिसंमिताम् ॥ २२ ॥ सूता वैतालिकाः सिद्धाश्चाराणाश्च बहुश्रुताः ॥ ऋषयश्च समायातास्तत्रैव द्विजसत्तम ॥ २३ ॥ सुन्दोष

हुये उनके प्रजा नित्यही बढ़ते भये ॥ १८ ॥ और पृथ्वी में कोई भी मनुष्य व योद्धा आयुवाला, ऋद्ध, मूर्ख, रोगी और न ईर्ष्यावान् था और कोई पुत्र रहित व धनसे हीन न था ॥ १९ ॥ और यज्ञकर्त्ता व बहुत दक्षिणावाले थे प्रह्लाद भूपति महाराज थे और उनसे सात द्वीपवाली पृथ्वी सदैव पालन की गई ॥ २० ॥ एक समय उत्तममुख वाले वे बलि जब सभाके बीचमें बैठे थे तब जयशब्द वर्तमान होने पर गन्धर्वलोग प्रियपूर्वक गाने लगे ॥ २१ ॥ और बाजनों के वजने पर अप्सराओं के गण नाचने लगे व पुराणों व स्थितियों में कही हुई दिव्य कथा के कहने पर ॥ २२ ॥ हे द्विजोत्तम ! सुत, ऋष्यकर, सिद्ध व चारण तथा बहुत शास्त्रवाले ऋषि लोग बड़ी पर भली

भांति आये ॥ २३ ॥ और सुंद, उपसुंद, हुंडादिक व भयङ्कर महिषासुर और शुम्भ, निशुम्भ, धूम्राक्ष व कालकेय दानव ॥ २४ ॥ व कालनेमि, विक्रान्तसौहृद, मूषक, यम, निकुम्भ, कुम्भ, विपद व महाबलवान् अन्धक ॥ २५ ॥ और शङ्ख, जलंधर, रौद्र व अधिक बलवाला वातापी, सर्वजिह्व, हंता, कामचारी, हलायुध ॥ २६ ॥ ये व दानवों के वंशको बढ़ानेवाले अन्य बहुतसे दानव उन पापरहित बलि राजाकी उपासना करतेभये ॥ २७ ॥ व सिद्ध, नाग, यक्ष, किन्नर व किंपुरुष, आकाशचारी, भूमिचारी, बाल व भयङ्कर राक्षस ॥ २८ ॥ ये व अन्य बहुतसे लोग राजा बलि की उपासना करते थे हे द्विजोत्तम ! वहांपर महादिव्य सभा शोभित हुई ॥ २९ ॥

सुन्दहुण्डाद्या महिषासुरकोल्बणः ॥ शुम्भनिशुम्भधूम्राक्षकालकेयाश्चदानवाः ॥ २४ ॥ कालनेमिश्चविक्रान्तसौहृदोमूषकोयमः ॥ निकुम्भकुम्भोविपदोह्यन्धकश्चमहाबलः ॥ २५ ॥ शङ्खोजलंधरौरौद्रौ वातापीचबलाधिकः ॥ सवैजिह्वश्चहन्ताच कामचारीहलायुधः ॥ २६ ॥ एतेचान्येचबहवोदनुवंशविवर्द्धनाः ॥ उपासाञ्चकिरंतवै बलिराजमकलमषम् ॥ २७ ॥ सिद्धानागाश्चयक्षाश्च किंपुरुषास्तुकिन्नराः ॥ खेचराभूचराबाला राक्षसाश्चैवदारुणाः ॥ २८ ॥ एतेचान्येचबहवो राजानं पयुषामते ॥ सभातत्रमहादिव्या शुशुभेचद्विजोत्तम ॥ २९ ॥ ग्रहरुज्ज्वलितैः कीर्णै शरदीवनमस्थलम् ॥ तस्यांसभायामासीनो रराजबलिराट् तथा ॥ ३० ॥ महद्भिरिवसंवीतो वासवोदिविदैवतैः ॥ एकदाचसभामध्ये नारदोदेवदर्शनः ॥ ३१ ॥ आगतस्तेषुसर्वेषु दानवेषुसभाङ्गणे ॥ दृष्ट्वा तमागतं सर्वे उत्तस्थुर्दितिनन्दनाः ॥ ३२ ॥ ववन्दुः सर्वशः पूर्वं बलिनः किन्नरोत्तमाः ॥ सतकृत्यचासनंदत्वा पप्रच्छ कुशलं नृपः ॥ ३३ ॥ कृतातिथयः समासीनो नारदः

जैसे कि शरद्व्रतमें उज्ज्वल ग्रहों से व्याप्त आकाशस्थल होवे, वैसेही उस सभामें बैठाहुआ राजा बलि शोभित भया ॥ ३० ॥ जैसे कि स्वर्ग में पवन देवताओं से घिरेहुये इन्द्रहोवै एक समय सभाके बीचमें देवदर्शन नारदजी ॥ ३१ ॥ सभा के आंगन में उन सब दानवों के मध्यमें आये व आयेहुये उन नारदजी को देख कर सब दैत्य उठे ॥ ३२ ॥ और पहलेही सब बलवान् दैत्य व किन्नरोत्तमोंने प्रणाम किया और सत्कारकर आसन देकर राजाने कुशल पूछा ॥ ३३ ॥ और कीहुई पहु-

नईवाले बैठेहुये नारदजीने सत्तम बलिजी से कहा। नारदजी बोले कि हे दितिजोत्तम ! सुमित्रे कि मैं इन्द्रके मन्दिर में गया था ॥ ३४ ॥ वहां सुन्दरी देवसमा थी और उत्तम अभिप्रायसे संयुत गन्धर्वों समेत इन्द्रादिक देवता वहां ॥ ३५ ॥ बैठे हुये आपसमें पवित्र कथाको कहतेथे तदनन्तर मुझसे कहीहुई उत्तम कथाको उन्होंने नहीं सहा ॥ ३६ ॥ कि पुरातन समय हिरण्यकशिपु प्रजापति दैत्य नेता व त्रिलोकको जीतनेवाला हुआ है कि जिसने इस पृथ्वीको जीता है ॥ ३७ ॥ और सब लोकों को बराबरके उसने पृथ्वीको भोगा है बड़ेतेज से संयुत महाबलवान् व पराक्रमी ॥ ३८ ॥ और सुन्दर व सब कहीं जानेवाला और कामी वह हिरण्यकशिपु नृसिंह

प्राहसत्तमम् ॥ नारद उवाच ॥ श्रूयतां दितिजश्रेष्ठगतो हं षष्ठमन्दिरं ॥ ३४ ॥ तत्र देवसमारम्या दिव्याभिप्रायसंयुताः ॥ तत्र देवाः सगन्धर्वाः पुरन्दरपुरोगमाः ॥ ३५ ॥ समासीनाः कथाम्पुण्यां कथयन्तः परस्परम् ॥ ततस्ते तु कथां शुभ्रां मया ख्यातान्नसेहिरे ॥ ३६ ॥ हिरण्यकशिपुर्दैत्यः पुरासीत्तु प्रजापतिः ॥ त्रैलोक्यविजयी नेता येनेयं वसुधाजिता ॥ ३७ ॥ सर्वलोकान् वशीकृत्य बुभुजे च वसुन्धराम् ॥ अतीव तेजः सम्पन्नो महाबल पराक्रमी ॥ ३८ ॥ वशीच सर्वगः कामी नृसिंहेन निपातितः ॥ बलिः कियद्बलीलोकं नारदत्वं प्रशंससि ॥ ३९ ॥ इति मान्धर्षयित्वा च विदौ जालोकं संग्रही ॥ बहुधा चाकरोद्वादान् कटुकान् दानवोत्तम ॥ ४० ॥ तस्मात्तु दानवश्चेष्ट पितृपर्यागतां महीम् ॥ विजित्वा सर्वभौमत्वं लभस्व वसुधाधिप ॥ ४१ ॥ कियद्बल्युतालुब्धा देवाश्च दनुजोत्तम ॥ पलायनपरादान्ताः सदा समरभीरवः ॥ ४२ ॥ मम वाक्यपरोभूत्वा त्रैलोक्याधिपतिर्भव ॥ नारदस्य वचः श्रुत्वा बलिर्वैरोचनस्तदा ॥ ४३ ॥ चकार कोपमतुलं त्रैलोक्यविजये

जीसे मारा गया है हे नारदजी ! बलि कितना बलवान् है कि जिसकी तुम प्रशंसा करते हो ॥ ३९ ॥ हे दानवोत्तम ! इस प्रकार मेरी धर्षणा कर लोकोंका संग्रह करने वाले इन्द्रजी ने बहुत से कटुवादानों को किया ॥ ४० ॥ इसलिये हे दानवश्चेष्ट, भूषते ! पितरोंकी परंपरासे आईहुई पृथ्वीको जीत कर चक्रवर्तित्वको प्राप्त होवो ॥ ४१ ॥ हे दानवोत्तम ! लोभी दानव कितने बलवान् हैं जोकि भागने में तत्पर व इन्द्रियोंको दमन किये तथा सदैव समर से डरते हैं ॥ ४२ ॥ मेरे वचन में तत्पर होकर त्रिलोक के स्वामी होवो उस समय नारदजी के वचन को सुनकर विरोचन के पुत्र बलिने ॥ ४३ ॥ हे द्विज ! त्रिलोक के विजय के निमित्त बड़ा कोप किया सब

दैत्योसे सम्मतिकर समस्त दैत्योके स्वामी बलिने ॥ ४४ ॥ बलवान् इन्द्रके साथ बड़ा तीव्र समर किया और इन्द्रसमेत सब देवताओंको जीतकर वशकिया ॥ ४५ ॥
 व विरोचन का पुत्र बलि सबलोकोका स्वामी हुआ और देवता छूटे राउयवाले व हारेहुये तथा हरे हुये अधिकारवाले हुये ॥ ४६ ॥ उस समय देवताओंके गण मनुष्यों की नाई पृथ्वी में विचरनेलगे और कुछ समयतक प्राप्तहोकर ब्रह्माजी की शरणमें गये ॥ ४७ ॥ व बोले कि हे परंतप, ब्रह्मन् ! हमलोग बलिसे सुरलोक से अलग किये गये क्या करें व कहां जावैं और क्या यत्न करें ॥ ४८ ॥ ब्रह्माजी बोले कि हे सुरोत्तम ! तुमलोगों का जो उत्तम यत्न है उसको सुनिये कि हे सुरोत्तमो ! तुम

द्विज ॥ मन्त्रयित्वाऽसुरान्मर्वान् सर्वदैत्यजनेश्वरः ॥ ४४ ॥ संग्राममकरोत्तीव्रवासवेनबलीयमा ॥ जित्वाचसकलान्देवान् वशीचक्रेसवासवान् ॥ ४५ ॥ सर्वलोकेश्वरोजातो बलिवैरोचनोऽसुरः ॥ हताधिकारास्त्रिदशा भष्टराज्याःपराजिताः ॥ ४६ ॥ विचरन्ति यथामर्त्यास्तदादेवगणामुवि ॥ किञ्चित्कालंसमासाद्य ब्रह्माणंशरणंययुः ॥ ४७ ॥ ब्रह्मन्ब्रह्मलिनाभ्रष्टा देवलोकान्परंतप ॥ किंकुर्मःकचगच्छामः किमुपायश्चकुर्महे ॥ ४८ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ श्रूयताम्भोःसुरश्रेष्ठा युष्माकंसोधनंपरम् ॥ पद्मावतीम्पुरींरम्यांयूयंयातामरोत्तमाः ॥ ४९ ॥ तत्रतीर्थंवरंश्रेष्ठं नाम्नाचोत्तरमानसम् ॥ यत्राष्टसिद्धिदाख्याता महासिद्धिप्रदानृणाम् ॥ ५० ॥ निधिश्चपद्मप्रभृतिस्तत्रतिष्ठतिमत्तम ॥ तस्यैवदक्षिणेभागे विष्णुतीर्थं मनुत्तमम् ॥ ५१ ॥ तत्रस्नात्वा नरःपश्येत्सिद्धेशीयःसुसिद्धिदाम् ॥ ऋद्धिसिद्धिपरोभूत्वा विष्णुलोकंमहीयते ॥ ५२ ॥ आश्विनस्यसिनेपक्षे दशम्यां दिवसेतथा ॥ अष्टसिद्धिशमीमूले गणेशमभिपूजयेत् ॥ ५३ ॥ विजयीसर्वकामेषु जाय

ल्लोग सुन्दरी पद्मावतीपुरी को जावो ॥ ४९ ॥ वहां उत्तरमानस नामक तीर्थों में श्रेष्ठ उत्तमतीर्थ है जहां कि मनुष्यों को महासिद्धियों को देनेवाली अष्टसिद्धिदा भगवती प्रसिद्ध है ॥ ५० ॥ व हे सत्तम ! वहां पद्मादिक निधि स्थित हैं और उसी के दक्षिणभाग में अतिउत्तम विष्णुतीर्थ है ॥ ५१ ॥ उसमें नहाकर जो मनुष्य सुसिद्धिदायिनी सिद्धेशीजी को देखता है वह ऋद्धि सिद्धि से संयुत होकर विष्णुलोक में पूजाजाता है ॥ ५२ ॥ कुँवार के शुक्लपक्ष में दशमी के दिन जो मनुष्य अष्टसिद्धि व शशीवृक्ष की जड़ में गणेशजी को पूजता है ॥ ५३ ॥ वह सब कामों में विजयवान् होता है इसमें सन्देह नहीं है शमीवृक्षके मूलमें स्थित

ऋद्धि, सिद्धियों के वरको देनेवाली सनातनी भगवती जी को ॥ ५४ ॥ और समस्त कामनाओं के देनेवाले गणेशजी को जो मनुष्य नित्य पूजता है वह समस्त कामनाओं के वरको पाकर पुत्रवान् व धनवान् होता है ॥ ५५ ॥ इसलिये सब यज्ञसे महाकालवन को जात्रे जहाँ कि विष्णुसर तीर्थ है वहाँ शीब्रही जाइये ॥ ५६ ॥ हे सुरोचमो ! अतुल तेजवाले विष्णुजी की उपासना कीजिये वे सुरश्रेष्ठ विष्णुजी सब दुःखोंसे रक्षक होंगे ॥ ५७ ॥ यहाँ आकर व पवित्र होकर विष्णुजी को भक्तिमें परायण सिद्ध होने स्नान दानादिक कर्मोंसे उपासना किया है ॥ ५८ ॥ उन महात्मा ब्रह्माजी के इस प्रकार वचन को सुनकर उस समय उन सुरोचमो ने उन ब्रह्मादेव

तेनात्रमंशयः ॥ शमीमूलस्थितानित्यां ऋद्धिसिद्धिवरप्रदाम् ॥ ५४ ॥ पूजयेद्देनरोनित्यं गणेशं सर्वकामदम् ॥ सर्व कामवरं लब्ध्वा पुत्रवान् धनवान् भवेत् ॥ ५५ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन महाकालवनं व्रजेत् ॥ यत्र विष्णुसरस्तीर्थं तत्र गच्छथ माचिरम् ॥ ५६ ॥ उपासनां सुरश्रेष्ठा विष्णोरतुल्यतेजसः ॥ सतुर्वै सर्वदुःखेभ्यस्त्राता भावी सुरोत्तमः ॥ ५७ ॥ अत्राण त्यशुचिर्भूत्वा स्नानदानादिकर्मभिः ॥ उपासाच्च क्रिरे सिद्धा विष्णुभक्तिपरायणाः ॥ ५८ ॥ इति श्रुत्वा वचस्तस्य ब्रह्मणः शंसितात्मनः ॥ ब्रह्माणंतं तदा देवमृदुः सर्वे सुरोत्तमाः ॥ ५९ ॥ देवा ऊचुः ॥ ब्रह्मन् केन प्रकारेण विष्णुभक्तिपरो भवेत् ॥ तत्सर्वं श्रोतुमिच्छामस्व ततो ब्रह्मविदां वर ॥ ६० ॥ ब्रह्मोवाच ॥ श्रूयताममोः सुरश्रेष्ठा विष्णुभक्तिमनुत्तमाम् ॥ शुक्लाम्बरधर देवं शशि वर्णं चतुर्भुजम् ॥ ६१ ॥ प्रसन्नवदनं ध्यायेत् सर्वविघ्नोपशान्तये ॥ लाभस्तेषां जयस्तेषां कुतस्तेषां पराजयः ॥ ६२ ॥ येषां मिन्दीवरश्यामो हृदयस्थो जनार्दनः ॥ अर्भीप्सितार्थं सिद्ध्यर्थं पूज्यते यः सुरैरपि ॥ ६३ ॥ सर्वविघ्नहर

जीसे कहा ॥ ५९ ॥ देवता बोले कि हे ब्रह्मन् ! किस विधिसे मनुष्य विष्णुजीकी भक्तिमें तत्पर होवै हे वेदविदों में उत्तम ! उस सबको मैं तुमसे सुना चाहता हूँ ॥ ६० ॥ ब्रह्मा जी बोले कि हे सुरोत्तमो ! अति उत्तम विष्णुजी की भक्तिको सुनिये कि श्वेतवसनको धारें व चन्द्रमा के समान वर्णवाले तथा चार मुजाओंवाले व प्रसन्नमुखवाले विष्णुजी को सब विघ्नोंके शान्त होनेके लिये ध्यान करें क्योंकि उनको लाभ होता है व उनकी जीत होती है और उनका पराजय कहीं से होता है ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ किं जिन के हृदयमें श्यामकमल की नाई श्याम विष्णुजी स्थित हैं चाहेहुये प्रयोजन की सिद्धिके लिये जो देवताओं से भी पूजेजाते हैं ॥ ६३ ॥ और जो सब विघ्नोंको

नाशनेवाले हैं उन गणेशजी के लिये प्रणाम है कल्प के आदिमें सृष्टिकी इच्छावाले विष्णुजी ने मेरी प्रेरणा किया ॥ ६४ ॥ और विष्णुजी के ध्यानमें लगाहुआ मैं प्रजाओं के रचने के लिये न समर्थ हुआ इसी अवसर में मार्कण्डेय महर्षिजी शीघ्रही आगये ॥ ६५ ॥ जोकि सब सिद्धोंके स्वामी, दान्त, दीर्घायु व इन्द्रियों को जीतेनेवाले थे वे प्रफुल्लित लोचनोंवाले होकर और अन्योन्य सत्कारकर ॥ ६६ ॥ और उत्तम कल्याण को पूँछतेहुये वे सुरोत्तम सुखपूर्वक बैठे तब मैंने पूँछा कि हे भगवन् ! मुझसे कीहुई प्रजा किस प्रकार होवैगी ॥ ६७ ॥ हे मुनिवन्दित, भगवन् ! वह सब मैं सुना चाहताहूँ श्रीमार्कण्डेयजी बोले कि सब दुःखोंको नाशनेवाली

स्तस्मै गण।धिपतयेनमः ॥ कल्पादौसृष्टिकामेन प्ररितोहञ्चशौरिणा ॥ ६४ ॥ नशक्तोहंप्रजाःकर्तुं विष्णुध्यानपराय णः ॥ एतस्मिन्नन्तरेसद्यो मार्कण्डेयोमहाऋषिः ॥ ६५ ॥ सर्वसिद्धेश्वरोदान्तो दीर्घायुर्विजितेन्द्रियः ॥ प्रफुल्लनयनो भूत्वा सत्कृत्यचेतरेतरम् ॥ ६६ ॥ पृच्छमानोपरम्भद्रं सुखासीनोसुरोत्तमौ ॥ भगवन्कनप्रकारेण प्रजामेविहिताभ वेत् ॥ ६७ ॥ तत्सर्वंश्रोतुमिच्छामि भगवन्मुनिवन्दित ॥ श्रीमार्कण्डेयउवाच ॥ विष्णुभक्तिःपरानित्या सर्वातिदुःख नाशिनी ॥ ६८ ॥ सर्वपापहराणुया सर्वप्रीतिप्रदायिनी ॥ एषाब्राह्मीमहाविद्या नदेयायस्यकस्यचित् ॥ ६९ ॥ कृत प्रायश्चाशिष्याय नास्तिकायानृतायच ॥ ईर्षकायचरून्नायकामुकायकदाचन ॥ ७० ॥ तद्गतंहन्ति तज्ज्ञानं यतोधर्म सनातनम् ॥ एतद्गुह्यतमंशस्त्रं सर्वपापप्रणाशनम् ॥ ७१ ॥ पवित्रञ्चपवित्राणां पावनानाञ्च पावनम् ॥ विष्णोर्नामसह सञ्च विष्णुभक्तिरंशुभम् ॥ ७२ ॥ सर्वसिद्धिकरं नृणां भुक्तिमुक्तिप्रदं शुभम् ॥ ७३ ॥ अस्य श्रीविष्णुसहस्रनामस्तोत्रस्य उत्तम विष्णुभक्तिः ॥ ६८ ॥ जोकि सद्य पापोंको हरनेवाली व पुण्यदायिनी तथा सब आनन्दों को देनेवाली है यह ब्राह्मीविद्या जिस किसीको न देना चाहिये ॥ ६९ ॥ कृतज्ञ, अशिष्य, नास्तिक व असत्य तथा ईर्षान्, अविनीत व कामीके लिये कभी न देना चाहिये ॥ ७० ॥ क्योंकि उसमें प्राप्त वह ज्ञान सनातनधर्मको नाश करता है यह शस्त्र सब पापोंको नाशनेवाला व अत्यन्त गुप्त है ॥ ७१ ॥ और पवित्रों के मध्यमें पवित्र व पवित्र करनेवालों में पवित्रकारक है और विष्णुसहस्रनाम उत्तम व विष्णुभक्तिकारक है ॥ ७२ ॥ जोकि मनुष्योंको सब सिद्धिकारक व भुक्ति, मुक्तिका, दायक तथा उत्तम है इस विष्णुसहस्रनाम स्तोत्रके ब्रह्माश्रय हैं विष्णु देवता हैं अनुष्टुप्

छन्द दे और सब कामनाओं की प्राप्तिके लिये अप से विनियोग किया जाता है ॥ अब ध्यान कहते हैं कि जलसमेत मेघके समान नीलवर्णवाले और उदारस्कमार्गको दिखलानेहारे, हाथमें पर्यंत को लिये व वेणु के बजानेमें प्रवीण तथा ब्रजवासीजनोंके पालक व कामिनी स्त्रियोंकी क्रीड़ामें बखल और नवीन तुलसीकी मालाको पहने हुये गोपालबालक श्रीकृष्णजीको भैं प्रणाम करताहूँ ॥ ७३ ॥ संसारमें व्यापक, जयशीलवाले, इन्द्रियोंके स्वाधी, सबोंकी आत्मा, सबको उत्पन्न करनेवाले, सर्वत्र व्याप्त, सर्वविनाश, प्राणीगणों के आशय के आशय ॥ ७४ ॥ आदिअन्तरहित, क्रीड़ा करनेवाले, सर्वज्ञाता, सबोंको उत्पन्न करनेवाले, सर्वव्यापी, संसारको पोषणकरने

ब्रह्मा ऋषिर्विष्णुर्देवता अतुष्टुःखन्दः सर्वकामावाप्त्यर्थजपे विनियोगः ॥ अथ ध्यानम् ॥ सजलजलदनीलं दशि
तोदारशीलं करतलधृतशीलं वेणुवाद्योरसालम् ॥ ब्रजजनकुलपालं कामिनीकेलिलोलं तरुणतुलसिमालं नौमिगोपा
लबालम् ॥ ७३ ॥ अविष्णुर्जिष्णुर्हृषीकेशः सर्वगः सर्वरीनाथो भूतग्रामाशयाशयः ॥ ७४ ॥ अ
मादिनिधनोदेवः सर्वज्ञः सर्वसम्भवः ॥ सर्वव्यापीजगद्धाता सर्वशक्तिधरोनघः ॥ ७५ ॥ जगद्बीजजगत्स्रष्टा जगदीशो
जगन्पतिः ॥ जगद्गुरुर्जगन्नाथो जगद्धाताजगन्मयः ॥ ७६ ॥ सर्वाकृतिधरः सर्वो विश्वरूपी जनार्दनः ॥ अजन्माशा
स्वतोभित्तयो विश्वाधारोविभुः प्रभुः ॥ ७७ ॥ बहुरूपैकरूपश्च सर्वरूपधरोहरः ॥ महार्णवो महामेघो जलबुद्बुदसम्भवः ॥
सर्वकामी भिक्खुसौमस्स्यो महामत्स्यस्तिभिर्जितः ॥ ७८ ॥ अनन्तोवासुकिः शेषो वाराहेधारीधरः ॥ पयःवीरविविक्षा

वाजे, सब शक्तियोंकी धारणवाले, पापहित ॥ ७५ ॥ संसार के बीज, संसारको रचनेवाले, जगदीश व जगत् के गुरु, जगन्नाथ, जगत् को धारनेवा
ला, मेसारमय ॥ ७६ ॥ सब आकृतियों के धारनेवाले, सर्व, संसाररूपी, जनोंके दुःखहारक, जन्मरहित, सनातन, नित्य, संसार के आधार, व्यापक, समर्थ ॥ ७७ ॥
बहुतरूपीवाले, एक रूपवाले, सब प्रकारको धारनेवाले, भक्तदुःखहारक, महासमुद्र, महामेघ, जलके बुल्लेसे उत्पत्तिवाले, संस्कार कियेहुये, विकार को प्राप्त, मत्स्यरूप,
महामत्स्यरूपवाले व तिमिरिक्त आये भूषीधारी मछली के स्वरूपवाले ॥ ७८ ॥ अनन्त, वासुकि, शेष, वाराहरूप, पृथ्वीको धारनेवाले व पानी और दूधके अलग

करनेमें हंसरूप और कनकाचल पै आसन करनेवाले ॥ ७६ ॥ हयग्रीव, विशाललोचन, अश्वकर्ण, अश्वकार, मथन, रत्नहारी, कूर्मरूप, अश्वधराधर ॥ ८० ॥ निद्रा-
रहित, निद्रामें प्राप्त, अनन्त, सुनन्दी, नन्दन, प्रिय ॥ ८१ ॥ और नाभिमें कमलनालवाले, आपही से उत्पन्न, चतुर्मुख, प्रजापतियों में परायण, दत्त, सृष्टिकारक,
प्रजाकारक ॥ ८२ ॥ मरीचि, कश्यप, वत्स व देवता और दैत्योंके गुरु, कवि, वामनरूप, वामभागी, कर्मके कर्मरूप और बड़े शरीरवाले ॥ ८३ ॥ और त्रिलोक
को नापनेवाले, दयावान्, बलिके यज्ञके विनाशक, यज्ञहर्ता, यज्ञकर्ता, यज्ञके स्वामी, यज्ञको भोगनेवाले, व्यापक ॥ ८४ ॥ हजार किरणोंवाले, भगदेवरूप, प्रकाश-

यां हंसौहमगिरासनः ॥ ७६ ॥ हयग्रीवोविशालाक्षो हयकर्णोहयाकृतिः ॥ मथनोरत्नहारीच कूर्मोऽश्वधराधरः ॥
८० ॥ विनिद्रोनिद्रितोनन्तः सुनन्दीनन्दनः प्रियः ॥ ८१ ॥ नाभिनालमृणालीच स्वयम्भूश्चतुराननः ॥ प्रजापतिपरो
दत्तः सृष्टिकर्ताप्रजाकरः ॥ ८२ ॥ मरीचिः कश्यपोवत्सः सुरासुरगुरुः कविः ॥ वामनोवामभागीच कर्मकर्मामृहहृपुः ॥
८३ ॥ त्रिलोक्यक्रमणोदायो बलियज्ञविनाशनः ॥ यज्ञहर्तायज्ञकर्ता यज्ञेशोयज्ञभुग्विभुः ॥ ८४ ॥ सहस्रांशुर्भगोभा
नुर्विषस्वानुरविंशुमान् ॥ तिग्मतेजाल्पतेजाश्च कर्मसाक्षीमनुर्यमः ॥ ८५ ॥ देवराजोसुरपतिर्दानवारिः शचीपतिः ॥
रविर्वायुसखोवह्निर्वरुणोयादमाम्पतिः ॥ ८६ ॥ नैऋतोनन्दनोनादी रक्षोयक्षोधनाधिपः ॥ कुबेरोवित्तवान्वेगो वसु
पालविलासकृत् ॥ ८७ ॥ अमृतः श्रावणः सोमः सोमपानकरः सुधीः ॥ सर्वौषधिकरः श्रीमान् निशाकारोदिवाकरः ॥
८८ ॥ विषहाविषहर्ताच विषकण्ठधरोगिरिः ॥ नीलकण्ठोवृषारुद्रो भालचन्द्रोह्युमापतिः ॥ ८९ ॥ शिवः शान्तोवशी

कारक, विश्वान्, सूर्यनारायण, किरणोंवाले, तीक्ष्ण तेजवान्, थोड़े तेजवाले, कर्मोंके साक्षी, मनुरूप, यमराजरूप ॥ ८५ ॥ देवताओंके राजा, दैत्योंके स्वामी, दानवों
के शत्रु, इन्द्राणीके पति, रवि, पवनमित्र, अग्नि, वरुण व जलजन्तुओंके स्वामी ॥ ८६ ॥ निर्वृत्ति, आनन्दको देनेवाले, शब्दकारक, राक्षस, यक्ष व धनके स्वामी, कुबेर,
धनवान्, वेग और वसुपालकोंसे विलास करनेवाले ॥ ८७ ॥ मोक्षरूप, श्रावण, सोम व सोमपान करनेवाले तथा भलीभांति ध्यान करनेवाले, सब औषधियोंको करनेवाले,
लक्ष्मीवान्, रात्रिकारक, दिनकारक ॥ ८८ ॥ विषनाशक, विषहारक, विषकण्ठधारी, पर्वतरूप, नीलकण्ठ, वृषवाले, रुद्र, चन्द्रभाल, पर्वतोंके पति ॥ ८९ ॥ कल्याण-

कपल, कपलरूप, सुन्दरस्वरूपवाले, बरि, ध्यान करनेवाले, मान करानेवाले, मृगहा मृगवत्सल, कृमिकीटारूप, मृगको देखनेवाले, मृगप्रिय ॥ १० ॥ वटुक, डेरक, बाल, कपलघाटी, वृण्डसंयुत शरीरवाले, रमशानमें बसनेवाले, मांससौजी, कपूर में भोजन करनेवाले व कामदेवनसक्त ॥ ११ ॥ कोमिलियों को डरानेवाले, कोणी, ध्यानमें स्थित व ध्यान वासनावाले, सेनाध्यक्ष, सेनाशासक, स्वामिकारिक, महाकालस्वरूप, गणनायक ॥ १२ ॥ आदिदेव, गणेश, विष्णुनाथ व विष्णु-विनयान, नित्य श्रद्धासिद्धिदायक, हस्ती, गजमुख ॥ १३ ॥ नृसिंह, उग्र वादवाले, नखवाले, दानकों को नास करनेवाले, प्रह्लादका पोषण करनेवाले व सर्वदेवत्वधर्मों के

वीरो ध्यानीमानीचमानदः ॥ कृमिकीटोमृगव्याधो मृगहामृगवत्सलः ॥ १० ॥ वटुकोभैरवोबालः कपलीदण्ड
विग्रहः ॥ इमशानवासिमांसाशी खर्पराशीस्मरान्तकृत् ॥ ११ ॥ योगिनीत्रासकयोगी ध्यानस्थोध्यानवासनः ॥ मे
नानीसेनहास्कन्दो महाकालोगणाधिपः ॥ १२ ॥ आदिदेवगणपतिविघ्नहाविघ्ननाशनः ॥ ऋद्धिसिद्धिप्रदानिरयं द
न्तीचैवगजाननः ॥ १३ ॥ नृसिंहउग्रदंष्ट्रश्च नखीदानवनाशकृत् ॥ प्रह्लादपोषकतोच सर्वदैत्यजनेश्वरः ॥ १४ ॥ श
खभःसागरःसाक्षी कल्पद्रुमविकल्मषी ॥ हेमदेहेमभागीच हिमकर्ताहिमाचलः ॥ १५ ॥ भूधरोभूमिदोमरुः कैला
सःशिखरोगिरिः ॥ लोकालोकान्तरालोकी विलोकीसुवनेश्वरः ॥ १६ ॥ दिक्पालोदिक्पतिर्दिव्यो दिव्यकायोजिते
न्द्रियः ॥ विरूपोरूपवान् रागी नृत्यगीतविशारदः ॥ १७ ॥ हाहाह्रह्रश्चित्रथो देवर्षिनारदःसखा ॥ विश्वदेवाःसाध्यदे
वा घृताशीचाचलश्चलः ॥ १८ ॥ कपिलोजल्पकोवादी दत्तोहेहयहंसराट् ॥ वसिष्ठःकामदेवश्च सप्तर्षिप्रवरोभृगुः ॥ १९ ॥

स्वामी ॥ १४ ॥ शंखभ, सागररूप, साक्षी, कल्पवृक्ष, पाण्डित, स्वर्णदायक, स्वर्णभाभी, पालाको करनेवाले, हिमाचलरूप ॥ १५ ॥ पृथ्वीको धरनेवाले, भूमिदायक, भुमेक, कैलास, शिखररूप, पर्वतरूप और जो लोकालोक के मध्यको देखनेवाले, लोकहित, लोकों के स्वामी ॥ १६ ॥ दिशाओं के पालक, दिशाओं के स्वामी, दिव्य व दिव्य शरीरवाले, इन्द्रियजित, रूपरहित, रूपवान्, अदुराग करनेवाले व नाचने और गानेमें वतुर ॥ १७ ॥ और हाहा, ह्रह्र व चित्ररथ गन्धर्व स्वरूप, देवर्षि, नाथरूप, संखारूप, विश्वदेवा, साध्यदेवा, घृतभोजी, अचल, चल ॥ १८ ॥ कपिलदेवरूप, व्यक्तवचन कहनेवाले, वाष् करनेवाले, वृचात्रेयस्वरूप, हेहयार्जुनरूप व हेमसखः,

वसिष्ठस्वरूप, कामदेवस्वरूप व सप्तर्षियों में श्रेष्ठ, भृगु ॥ ६९ ॥ जमदग्निरूप, महावीरस्वरूप, क्षत्रियों का विनाश करनेवाले, सत्यवादी, हिरण्यकशिपुस्वरूप, हिरण्यकशिपुस्वरूप, हरिप्रिय ॥ १०० ॥ अगस्ति, पुलह, रत्न, पौलस्ति, रावण, घट, देवताओं के शत्रु, तपस्वी, ताप करनेवाले व हरिप्रिय विभीषणस्वरूप ॥ १ ॥ तेजवाले, तेजनाशक, तेजराशि, राजाओं के स्वामी, प्रसु, दशरथ के पुत्र, राघव, श्रीरामचन्द्र, रघुवंश को बढ़ानेवाले ॥ २ ॥ जानकीनाथ, रक्षक, लक्ष्मीवान्, ब्राह्मणों को माननेवाले, भक्तप्रिय, संनद्ध, कवचधारी, तलवारको धारनेवाले, चीर वसन पहने व दिगम्बर याने नग्न ॥ ३ ॥ किरीट को धारनेवाले, कुण्डलों को धारे बाणको

जमदग्निर्महावीरः क्षत्रियान्तकरोऽऋषिः ॥ हिरण्यकशिपुश्चैव हिरण्याक्षो हरिप्रियः ॥ १०० ॥ अगस्तिः पुलहोरत्नः पौलस्तीरावणो घटः ॥ देवारिः तापसस्तापी विभीषण हरिप्रियः ॥ १ ॥ तेजस्वी तेजहातेजराशरीराजपतिः प्रभुः ॥ दाशरथीराघवो रामो रघुवंशविवर्द्धनः ॥ २ ॥ सीतापतिः पतिः श्रीमान् ब्रह्मण्यो भक्तवत्सलः ॥ संनद्धः कवचीस्रङ्गी चौरवासादिगम्बरः ॥ ३ ॥ किरीटीकुण्डलीचापि शरीचक्रो गदाधरः ॥ कौशल्यानन्दनोरामो भूमिशायी गुरुप्रियः ॥ ४ ॥ सौमित्रो भरतोवालः शत्रुघ्नो भरताग्रजः ॥ लक्ष्मणः परवीरघ्नः स्त्रीसहायः कपीश्वरः ॥ ५ ॥ हनुमान् ऋक्षराजश्च सुग्रीवो वालिनाशनः ॥ दीनप्रियो दानवारिः रङ्गदत्तांबरः ॥ ६ ॥ वनध्वंसी वनीवेगी वानरो वानरध्वजः ॥ लाङ्गुलीचनस्त्रीदिष्टी लङ्काहाहाकरो वरः ॥ ७ ॥ भवसेतुर्महासेतुर्वद्धसेतुरमेश्वरः ॥ जानकीवल्लभः कामी किरीटीकुण्डलीखगः ॥ ८ ॥

लिये, चक्रको धारण और गदाको धारण करनेवाले, कौशल्यार्जा के पुत्र, रमण करनेवाले, भूमि में सोनेवाले व गुरुओं को प्यारे ॥ ४ ॥ सुमित्रा के पुत्र लक्ष्मणरूप, भरत, बालक, शत्रुघ्न व भरत के जेठभाई, लक्ष्मण, शत्रुवीरनाशक, स्त्रीसहायवाले, वानरों के स्वामी ॥ ५ ॥ हनुमान्, ऋक्षराज (जाम्बवान्), सुग्रीवरूप व बालिको नाशनेवाले, दुःखीजनप्रिय, दानवों के शत्रु, अङ्गदरूप व कहनेवालों में श्रेष्ठ ॥ ६ ॥ वनविनाशक, वनवाले, वेगवान्, वानर व वानर के ध्वजावाले, पुच्छवाले, नखवाले, दाढ़ीवाले व लङ्का में हाहाकार करनेवाले, श्रेष्ठ ॥ ७ ॥ संसार के सेतु (पुल) रूप, महासेतु, सेतु बांधनेवाले, रमानाथ, जानकीजी के प्यारे, कामी,

किरीटधारक, कुण्डल धारनेवाले, आकाशगामी ॥ ८ ॥ कमल के नाई चौड़ेनेत्रवाले, महाभुज, मेघस्वरूप, चञ्चल, चपल, कामी, सुन्दरतावाले व वामाङ्गप्रिय ॥ ९ ॥ स्त्रीप्रिय, स्त्रीमें तत्पर, स्नेह व स्त्री के बायें अङ्ग में बसनेवाले, शत्रुओंको जीतनेवाले, क्रोधको जीतनेवाले, कामदेव को जीतनेवाले और इन्द्रियोंको जीतनेवाले ॥ १० ॥ शान्तस्वरूप, इन्द्रियों को दमन किये दयामें रमण करनेवाले, एक स्त्रीके नियमको धारनेवाले, सत्त्वगुणवाले व सत्त्वगुणमें टिकेहुये, कामदेव, क्रोधी, क्रोधी, बहुत राजसोसे बिरेव सब राक्षसोंको नाशकरनेवाले रावणकेवैरी व समरमें छुद्र दश मस्तकोंको काटनेवाले ॥ १२ ॥ राज्य करनेवाले, यज्ञ करनेवाले, दानी, भोगी व तपस्यारूपधनवाले, अयो-

धिर व सब राक्षसोंको नाशकरनेवाले रावणकेवैरी व समरमें छुद्र दश मस्तकोंको काटनेवाले ॥ १२ ॥ राज्य करनेवाले, यज्ञ करनेवाले, दानी, भोगी व तपस्यारूपधनवाले, अयो-

पुरंदरीकविशालाक्षो महाबाहुर्धनाकृतिः ॥ चञ्चलश्चपलः कामी वामीवामाङ्गवत्सलः ॥ ९ ॥ स्त्रीप्रियः स्त्रीपरः स्नेहः
स्त्रियोवामाङ्गवासकः ॥ जितवैरीजितक्रोधोजितकामोजितेन्द्रियः ॥ १० ॥ शान्तोदान्तोदयाराम एकस्त्रीव्रतधारकः ॥
सात्त्विकः सत्त्वसंस्थानो मदनः क्रोधनः खरः ॥ ११ ॥ बहुराक्षससंवीतः सर्वराक्षसनाशकृत् ॥ रावणारीरणक्षुद्रदशम
स्तकञ्चेदकः ॥ १२ ॥ राज्यकारीयज्ञकारी दाताभोक्तातपोधनः ॥ अयोध्याधिपतिः कान्तो वैकुण्ठोऽकुण्ठविग्रहः ॥
१३ ॥ सत्यव्रतोव्रतीशूरस्तपीसत्यः फलप्रदः ॥ सर्वसाक्षीसर्वसङ्गः सर्वप्राणहरोऽव्ययः ॥ १४ ॥ प्राणोपानः समानश्च
व्यानोदानः समानकः ॥ नागः कृकलकूर्मश्च देवदत्तो धनञ्जयः ॥ १५ ॥ सर्वप्राणविदव्यापी योगधारणधारकः ॥ तत्त्व
वित्तत्त्वदस्तत्त्वी सर्वतत्त्वविशारदः ॥ १६ ॥ ध्यानस्थो ध्यानशीली च मनस्वी योगवित्तमः ॥ ब्रह्मज्ञो ब्रह्मज्ञानी च ब्रह्महा
ब्रह्मसम्भवः ॥ १७ ॥ अध्यात्मविज्जगद्दीपो ज्योतीरूपो निरञ्जनः ॥ ज्ञानदो ज्ञानहज्जानी गुरुशिष्योपदेशकः ॥ १८ ॥

ध्याके स्वामी, सुन्दर, वैकुण्ठस्वरूप व कुण्ठशरीरवाले ॥ १३ ॥ सत्यव्रतवाले, नियमवान्, शूर, तपस्वी, सत्य, फलदायक, सबोंके साक्षी, सबके सङ्गवाले, सबोंके प्राण-
नाशक, विकाररहित ॥ १४ ॥ व प्राणरूप, अपानस्वरूप, समानस्वरूप, उदानरूप, नागरूप, कृकलरूप, कूर्मस्वरूप, देवदत्तरूप व धनञ्जयस्व-
रूप ॥ १५ ॥ सबोंके प्राणोंको जाननेवाले, अव्यापी, योगकी धारणा को धारनेवाले, तत्त्वज्ञ, तत्त्वदायक, तत्त्ववान्, सब तत्त्वोंके जानने में चतुर ॥ १६ ॥ ध्यानमें
स्थित, ध्यानस्वभाववाले, मनस्वी व योगके ज्ञाता, ब्रह्मको जाननेवाले, ब्रह्मज्ञानी, ब्रह्महा, ब्रह्म से उत्पत्तिवाले ॥ १७ ॥ अध्यात्म को जाननेवाले, संसार के दीपक,

अयोतिस्वरूप, निरञ्जन, ज्ञानदायक, ज्ञाननाशक, ज्ञानवान्, गुरु व शिष्यको उपदेश करनेवाले ॥ १८ ॥ उत्तम शिक्षा के योग्य, शिक्षाको प्राप्त, शोभित व सीखने योग्य शिक्षामें चतुर, मन्त्रको देनेवाले, मंत्रनाशक, मन्त्रवाले, तन्त्रवाले और तन्त्रवाले लोगोंके प्रिय ॥ १९ ॥ उत्तम मन्त्रवाले, मन्त्रके ज्ञाता, मन्त्री व यन्त्रों तथा मन्त्रों के एकही तोड़नेवाले, मारण, मोहन, मोहवाले, स्तम्भनवाले, उच्चाटन करनेवाले, खल ॥ २० ॥ बहुत मायाओंवाले, मायारहित, महामायावाले, मोहरहित, मोक्षदायक, बाधनेवाले, कारागृह व आकर्षण, विकर्षण ॥ २१ ॥ होंकार, बीजस्वरूप, होंकारवाले, कीलक के स्वामी, सौंकार, शक्तिमान्, शक्ति, सब शक्तियों को धारनेवाले, पर्वत

सुशिक्ष्यः शिबितः शाली शिक्ष्य शिचा विशारदः ॥ मन्त्रदोमन्त्रहामन्त्री तन्त्री तन्त्रजनप्रियः ॥ १९ ॥ सन्मन्त्री मन्त्रविन्मन्त्री यन्त्रमन्त्रैकभञ्जनः ॥ मारणोमोहनोमोहीस्तम्भुच्चाटकरः खलः ॥ २० ॥ बहुमायोविमायश्च महा मायीविमोहकः ॥ मोक्षदोबन्धकोवन्दी ह्याकर्षणविकर्षणः ॥ २१ ॥ होंकारोबीजरूपी च होंकारी कीलकाधिपः ॥ सौङ्कारः शक्तिमाञ्छक्तिः सर्वशक्तिधरोधरः ॥ २२ ॥ अकारोकारईकार छन्दोगायत्रिसम्भवः ॥ वेदोवेदविदोवेदी वेदाध्यायी सदाशिवः ॥ २३ ॥ ऋग्यजुः सामचाथर्वः सामगानकरः करी ॥ त्रिपदोबहुपादी च सत्पथः सर्वतोमुखः ॥ २४ ॥ प्राकृतः संस्कृतो योगी गीतग्रन्थप्रहेलिकः ॥ सगुणो विगुणो च्छन्दः निःसङ्गो विगुणो गुणी ॥ २५ ॥ निर्गुणो गुणवान्सङ्गी कर्मधर्मात्त्वकर्मदः ॥ निष्कर्मा कामकर्माच निःसङ्गः सङ्गवर्जितः ॥ २६ ॥ निर्लोभी निरहङ्कारी निष्किञ्चनजनप्रियः ॥ २७ ॥

स्वरूप ॥ २२ ॥ अकार, उकार, ईकार स्वरूप व गायत्री से उत्पन्न छन्दस्वरूप, वेदरूप, वेदज्ञ, वेदवान्, वेदाध्ययन करनेवाले, सदाशिवस्वरूप ॥ २३ ॥ ऋक्, यजुः, साम व अथर्वस्वरूप, सामगान करनेवाले, हस्तीस्वरूप, तीन चरणोंवाले, बहुत चरणोंवाले, उत्तममार्ग व सबमार्ग व सबश्रौर मुखवाले ॥ २४ ॥ और प्राकृत (बनाहुआ) संस्कृत (संस्कार कियाहुआ) योगी व गीता ग्रन्थ के चलानेवाले, गुणोंसमेत, निर्गुण, स्वच्छन्द, सङ्गरहित, गुणरहित, गुणवान् ॥ २५ ॥ निर्गुण, गुणवान्, सङ्ग करनेवाले, कर्म धर्मवाले व अकर्मदायक, कर्मरहित, कामनाओं को चाहनेवाले, सङ्गरहित व सङ्गसे वर्जित ॥ २६ ॥ लोभरहित, अभिमानहीन व अकिञ्चनजनप्रिय ॥ २७ ॥

व सर्वोसे साथ करनेवाले, -अनुरागी, सबको छोड़नेवाले, बाहर चलनेवाले, एकचरणवाले, दोचरणवाले, बहुते चरणवाले, थोड़े चरणवाले ॥ २८ ॥ द्विचरण, त्रिचरण, चरणवाले व चरणोंसे रहित, चरणोंके संग्रहवाले, आकाशगामी, भूमिगामी, ऐश्वर्यवान् व भृङ्गकीटमधुप्रिय ॥ २९ ॥ ऋतुरूप, वर्षस्वरूप, मासरूप, अयनस्वरूप, पक्षरूप, दिनरात्रिग्वरूप, ॥ ३० ॥ सत्ययुगरूप, त्रैतार्युगरूप, कलियुगरूप, द्वापरस्वरूप व चारों आकारवाले, देशकालको करनेवाले, कालस्वरूप, वंशके धर्मरूप, सदैव रहनेवाले ॥ ३१ ॥ कलारूप, काष्ठास्वरूप, पलारूप व नाडीरवरूप, प्रहररूप, पक्षस्वरूप, देवतकृष्णरूप, युगस्वरूप, युगको धारनेवाले, योग्य व युगोंके धर्मको

सर्वसङ्गकरोरागी सर्वत्यागीबहिश्चरः ॥ २८ ॥ द्विपदस्त्रिपदःपादौ विपादीपादसंग्रहः ॥ स्वेचरोभूचरोभागी भृङ्गकीटमधुप्रियः ॥ २९ ॥ ऋतुःसंवत्सरोमासोऽयनःपक्षोह्यहर्निशः ॥ ३० ॥ कृतस्त्रेताकलिश्चैव द्वापरश्चतुराकृतिः ॥ देशकालक्षरःकालःकुलधर्मःसनातनः ॥ ३१ ॥ कलाकाष्ठापलानाड्यो यामःपञ्चःसितासितः ॥ युगोयुगन्धरोयोग्यो युगधर्मप्रवर्तकः ॥ ३२ ॥ कुलाचारःकुलकरःकुलदैवकरोकुली ॥ चतुराश्रमचारीच गृहस्थोह्यतिथिप्रियः ॥ ३३ ॥ वनस्थोवनचारीच वानप्रस्थाश्रमाश्रमी ॥ वटुकोब्रह्मचारीच शिखासूत्रःकमण्डलुः ॥ ३४ ॥ त्रिजटीध्यानवान्ध्यानी वट्रिकाश्रमवासकृत् ॥ हेमाद्रिप्रभवोहेमा हेमराशिर्हिंसाकरः ॥ ३५ ॥ महाप्रस्थानकोविप्रो विरागीरागवान्गृही ॥ नरनारीर्यणोरार्गीकेदारोदारविग्रहः ॥ ३६ ॥ गङ्गाद्वारतपःपारो तपोवनतपोनि

वर्तमान करनेवाले ॥ ३२ ॥ कुलके आचारस्वरूप वंशकारक, कुलदैवकारक व कुलरहित, चारों आश्रमों में गमन करनेवाले, गृहस्थरूप व अतिथिप्रिय ॥ ३३ ॥ वनमें स्थित, वनमें चलनेवाले, वानप्रस्थाश्रम के आश्रमवाले, वटुस्वरूप, ब्रह्मचारीरूप, शिखासूत्रस्वरूप, कमण्डलुरूप ॥ ३४ ॥ तीन जटोश्रवाले, ध्यानेवाले, ध्यानी व वट्रिकाश्रम में निवास करनेवाले, कनकाचल से उत्पन्न, सुवर्णरूप, सुवर्णकी-राशि, हिंस्रानि ॥ ३५ ॥ महाप्रस्थान करनेवाले, विप्ररूप, श्रुतार, ग्रहहित, अनुरागी, गृहवाले, नर व नारायणस्वरूप, अनुरागवान्, क्षेत्रस्वरूप, स्त्रीरूपवाले ॥ ३६ ॥ व हरिद्वार में तपस्या में तपस्या व तपस्या के

विधान, यह महापद्म निधि व तडाग की लक्ष्मी के स्थान ॥ ३७ ॥ कमलनाभ, सर्वव्यापी, संन्यासीरूप, पुरुषों में उत्तम, पुराण, परमानन्दरूप, सम्राट व राजर्षियों के राजा ॥ ३८ ॥ चक्रमें स्थित, चक्रपालों में स्थित, चक्रवर्ती, नरेश, आयुर्वेद के जाननेवाले, वैद्य, चलनेवाले, धन्वन्तरिस्वरूप व ग्रहण करनेवाले ॥ ३९ ॥ और ओषधी व बीजोंको उत्पन्न करनेवाले व रोगीके रोगको नाश करनेवाले, चैतन्यरूप, अचेत, चिन्तन के योग्य, चित्तकी चिन्ता के विनाश करनेवाले ॥ ४० ॥ इन्द्रियों से परे, सुखको स्पर्श करनेवाले, चर प्राणियों में गमन करनेवाले, आकाशगामी, गरुडस्वरूप, पक्षियोंके राजा, प्रशस्त लोचनवाले, विनताके पुत्र ॥ ४१ ॥

धिः ॥ निधिरेषमहापद्मः पद्माकरश्रियालयः ॥ ३७ ॥ पद्मनाभःपरीतात्मा परित्राट्पुरुषोत्तमः ॥ पुराणःपरमानन्दः स
आदराजर्षिराजकः ॥ ३८ ॥ चक्रमथश्चक्रपालस्थश्चक्रवर्तीनराधिपः ॥ आयुर्वेदविदोवैद्यश्चरो धन्वन्तरिग्रहः ॥ ३९ ॥
ओषधीबीजसम्भूतो रोगिरोगविनाशकृत् ॥ चेतनोचेतकोचिन्त्यश्चिन्ताविनाशकृत् ॥ ४० ॥ अतीन्द्रियःसुख
स्पर्शश्चरचारीविहङ्गमः ॥ गरुडःपक्षिराजश्च चाक्षुषोविनतात्मजः ॥ ४१ ॥ विष्णुर्यानविमानस्थो मनोमयतुरङ्गमः ॥
बहुवृष्टिकरोवर्षी ऐरावणविराणौ ॥ ४२ ॥ उच्चैःश्रवाहयोगामी हरिदश्चोहरिप्रियः ॥ प्रावृषोभेममालीच गजरत्नपुर
न्दरः ॥ ४३ ॥ वसुदोवसुधारश्च निद्रालुःपद्मगाशनः ॥ शेषशायीजलेशायी व्यासःसत्यवतीसुतः ॥ ४४ ॥ वेदव्यास
करोवाग्मी बहुशास्त्राविकल्पकः ॥ स्मृतिःपुराणधर्मार्थी पारावरकविःकृतिः ॥ ४५ ॥ सहस्रशर्पासहस्राक्षः सहस्रव

व्यापक, वाहन व विमान पै स्थित, मनोमय अश्वरूप, बहुत वृष्टि करनेवाले, न बरसनेवाले, ऐरावतस्वरूप, शब्द करनेवाले ॥ ४२ ॥ उच्चैःश्रवा अश्वरूप, गमन करनेवाले, हरित अश्ववाले, इन्द्रप्रिय, वर्षाके समय में मेघोकी पक्षिवाले, गर्जोंमें रत्नरूप, इन्द्रस्वरूप ॥ ४३ ॥ धनको देनेवाले, धनको धारनेवाले, निद्रा-
वान्, सर्पभोजी, शेषजी के ऊपर शयन करनेवाले, जलमें सोनेवाले, सत्यवतीजी के पुत्र व्यासस्वरूप ॥ ४४ ॥ वेदोंका विस्तार करनेवाले व प्रशस्त वचनवाले, ब-
हुत शास्त्रों के भेदकारक, स्मृतिरूप, प्राचीन धर्मको चाहनेवाले, कार्य व कारण के विद्वान्, पुराणवान्रूप ॥ ४५ ॥ हजार-सहस्रकोवाले, हजार लोचनवाले व हजार

मुखोंसे उज्ज्वल, हज़ार मुजाओंवाले, हज़ार किरणोंवाले व हज़ार किरणोंसे उभरत ॥४६॥ बहुत मस्तकोंवाले, एक मस्तकवाले, तीन मस्तकोंवाले, शिररहित, शिखावान, जटाधारी, भस्ममें अनुराग करनेवाले, दिव्य वस्त्रों को धारे व पवित्र ॥ ४७ ॥ सूक्ष्मस्वरूप, स्थूलरूप, रूपरहित, विकसक आकारवाले, समुद्रको मथामेवाले, मथने वाले, सब रत्नोंको हरनेवाले, भक्तदुःखहारक ॥ ४८ ॥ हीरा व वैडूर्यमणिवाले व चिन्तामणिमहामणिस्वरूप, मूल्यरहित, बड़े मूल्यवाले, निर्मूल्य, सरम (मृगभेद) स्वरूप व सुखी ॥ ४९ ॥ पितारूप व मातास्वरूप, बालकरूप, विधातारूप, त्वष्टा देवतारूप, अग्निरूप, भीतरस्थित, बाहर कार्य

दनोज्ज्वलः ॥ सहस्रबाहुःसहस्रांशुःसहस्रकिरणोन्नतः ॥ ४६ ॥ बहुशीर्षैकशीर्षश्च त्रिशिराविशिराःशिखी ॥ जटि
लोभस्मरणीच दिव्याम्बरधरःशुचिः ॥ ४७ ॥ अपुरूपोबृहद्गुणो विरूपोविकराकृतिः ॥ समुद्रमाथकोमार्थी सर्वरत्नहरो
हरिः ॥ ४८ ॥ वज्रवैडूर्यकोवज्री चिन्तामणिमहामणिः ॥ अनिमूल्योमहामूल्यो निर्मूल्यःसरमःसुखी ॥ ४९ ॥ पि
तामाताशिशुर्बन्धुर्धातात्वष्टाहुताशनः ॥ अन्तःस्थोबाह्यकारीच बहिःस्थोवैबहिश्चरः ॥ ५० ॥ पावनःपावकःपाकी स
र्वभक्षीहुताशनः ॥ भगवान्भगहाभागी भगभञ्जभयङ्करः ॥ ५१ ॥ कायस्योच्चार्यकारीच कार्यतर्ककरप्रदः ॥ ए
कधर्माद्विधर्माच सुखीदूतोपजीवकः ॥ ५२ ॥ पालकोजारकस्त्राता कालमूषकभक्षकः ॥ संजीवनोजीवकर्ता सजीवो
जीवसम्भवः ॥ ५३ ॥ षड्विंशकोमहाविष्णुः सर्वव्यापीमहेश्वरः ॥ दिव्याद्भद्रोमुक्तमाली श्रीवत्सोमकरध्वजः ॥ ५४ ॥

करनेवाले, बाहर स्थित व बाहर विचरनेवाले ॥ ५० ॥ पवित्रकारक, अग्नि, पचानेवाले, सब कुछ भोजन करनेवाले, हुतभोजी, ऐश्वर्यवान, ऐश्वर्यनाशक, अंशवाले, ऐश्वर्यको भक्षण करनेवाले व भयङ्कर ॥ ५१ ॥ शरीर में स्थित व अन्न अर्थको करनेवाले, कार्यमें तर्क करनेवाले, करदायक, एक धर्मवाले, दो धर्मोंवाले, सुखी व दुःखोंको जीविका देनेवाले ॥ ५२ ॥ पालक, परस्त्री भोग करनेवाले, रत्नक व कालरूपी मूसको भक्षण करनेवाले, भलीभांति जिलानेवाले, जीव करनेवाले, जीव समेत व जीवको उत्पन्न करनेवाले ॥ ५३ ॥ व छब्बीसवें महाविष्णु, सब में व्याप्त, महेश्वररूप, उत्तम बजुल्ले को धारण किये व मोतियों की मालाको पहने

व भृगुलताको धारे व मकरध्वजावाले ॥ ५४ ॥ श्याम शरीरवाले, घन के समान श्यामरंगवाले, पीले वसनवाले, उत्तम मुखधारे, चीर वसनवाले, वसनरहित व भूतों तथा दानवों को प्यारे ॥ ५५ ॥ अमृतरूप, अमृतके अंशवाले, मोहनीरूपको धारनेवाले, दिव्यदृष्टिवाले, समानदृष्टिवाले व देवताओं तथा दानवों को छलने वाले ॥ ५६ ॥ कबंध याने शिरके विहीन शरीररूप, केतुको करनेवाले, राहुरूप, चन्द्रमा को सन्तापकारक, ग्रहोंके राजा, ग्रहण करनेवाले, ग्राहस्वरूप, सब ग्रहों को छुड़ानेवाले ॥ ५७ ॥ दान, मान, जप व होमस्वरूप, अनुकूलता समेत शुभग्रहस्वरूप, विघ्नकारक व हारक, विघ्ननाशक, विनायकस्वरूप ॥ ५८ ॥ अपकार

श्याममूर्तिर्धनश्यामः पीतवासाः शुभाननः ॥ चीरवासाविवासाश्चभूतदानववल्लभः ॥ ५५ ॥ अमृतोमृतमार्गीच मोहनीरूपधारकः ॥ दिव्यदृष्टिः समदृष्टिर्देवदानववञ्चकः ॥ ५६ ॥ कबन्धः केतुकारीच स्वर्भानुश्चन्द्रतापनः ॥ ग्रहराजो ग्रहीग्राहः सर्वग्रहविमोचकः ॥ ५७ ॥ दानमानजपोहोमः सानुकूलशुभग्रहः ॥ विघ्नकर्तापहर्ताचविघ्ननाशोविनायकः ॥ ५८ ॥ अपकारोपकारीच सर्वसिद्धिफलप्रदः ॥ सेवकः सामदानीच भेदीदण्डीचमत्सरी ॥ ५९ ॥ दयावान्दानशीलश्च दानीचैवप्रतिग्रही ॥ हविरग्निश्चरुस्थाली समिधश्चित्तोयवः ॥ ६० ॥ होतोद्गाताशुचिः कुण्डः सामगोवैकृतिः सवः ॥ द्रव्यम्पान्नाणिसाकल्यो मूसलोत्तराणिः कुशः ॥ ६१ ॥ दीक्षितोमण्डपोदेवो यजमानपशुः क्रतुः ॥ दक्षिणास्वस्तिमान्स्वस्तिराशीर्वादः शुभप्रदः ॥ ६२ ॥ आदिवृक्षोमहावृक्षोदेववृक्षोवनस्पतिः ॥ प्रयागोवैणिमान्वेणी न्यग्रोधश्चाक्षयो

रूप व अपकार करनेवाले, सब सिद्धियोंके फलों को देनेवाले, सेवकरूप, साम व दान करनेवाले, भेदकरनेवाले, दंडदेनेवाले, अन्यके शुभमें द्वेषकरनेवाले ॥ ५६ ॥ दयावान्, दानकेस्वभाववाले, दानी व दानको ग्रहण करनेवाले, हविरूप, अग्निस्वरूप, चरुस्थालीस्वरूप, समिधारूप, तिलरूप व यवस्वरूप ॥ ६० ॥ हवनकरने वाले, उद्गाता (सामवेदी), पवित्रकुंड, सामनेदको गानकरनेवाले, विकृतिरूप, यज्ञरूप, पात्ररूप, साकल्यस्वरूप, मूसलरूप, अरणिस्वरूप, कुशरूप ॥ ६१ ॥ दीक्षितरूप, मंडपस्वरूप, क्रीड़ा करनेवाले यजमानके पशुरूप, यज्ञस्वरूप, दक्षिणारूप, कल्याणवान्, कल्याणस्वरूप, आशीर्वादस्वरूप, मंगलदायक ॥ ६२ ॥

आदिवृक्ष, षडेभारी वृक्षरूप, देववृक्षरूप, वनस्पतिरूप, प्रयागरूप, वेणीवान् व वेणीस्वरूप, वरगदरूप व अक्षयवटस्वरूप ॥ ६३ ॥ उत्तम तीर्थ व तीर्थ करने वाले, तीर्थों के राजा, व्रतवान् व व्रतस्वरूप, व्रतवाले, दानस्वरूप, पृथुरूप, पात्ररूप, दुहनेवाले, गऊ व बछड़ास्वरूपवाले ॥ ६४ ॥ दुग्धरूप व दूधको बहाने वाले, दूधवाले व दूध और पानीके विभाग को जाननेवाले, राज्यके भागको जाननेवाले, ऐश्वर्यवाले व सब भागों के भेद करनेवाले ॥ ६५ ॥ प्राप्तकरनेवाले, प्राप्त करानेवाले, वेगरूप, पदको कहनेवाले, चैतन्यमें विचरनेवाले, गोचरणरूप, रक्षाकरनेवाले व गोपोंकी कन्याओं से विहार करनेवाले ॥ ६६ ॥ वसुदेव के पुत्र, विशाललोचन, कृष्णरूप, गोपीजनो को प्रिय, देवकीजीके पुत्र, समुद्रिकरनेवाले, नन्द गोपके घरमें आश्रम करनेवाले ॥ ६७ ॥ यशोदाजीके पुत्र, मालाओं

वटः ॥ ६३ ॥ सुतीर्थस्तीर्थकारीच तीर्थराजोव्रतीव्रतः ॥ व्रतीदानंष्टुःपात्रो दोग्धागौर्वत्सएवच ॥ ६४ ॥ क्षीरक्षीर क्षीरनीरविभागवित् ॥ राज्यभागविदोभागी सर्वभागविकल्पकः ॥ ६५ ॥ वहनोवाहकोवेगः पदवाचीचित् श्ररः ॥ गोपदोगोपकोगोपी गोपकन्याविहारकृत् ॥ ६६ ॥ वामुदेवोविशालाक्षः कृष्णोगोपीजनप्रियः ॥ देवकीनन्दनो नन्दी नन्दगोपगृहाश्रमी ॥ ६७ ॥ यशोदानन्दनोदामी दामोदरउल्लखली ॥ पूतनारिस्तृणावतहारीशकटभञ्जकः ॥ ६८ ॥ नवनीतप्रियोवाग्मी वत्सपालकबालकः ॥ वत्सरूपधरोवत्सी वत्सहाधेनुकान्तकृत् ॥ ६९ ॥ वकारिवनवासीच वनक्रीडाविशारदः ॥ कृष्णवर्णाकृतिकान्तो वेणुवेत्रविधारकः ॥ ७० ॥ अन्धमोक्षकरोमोक्ष्यो यमुनापुलिनेचरः ॥ मायावत्सकरोमायी ब्रह्ममायापमोहकः ॥ ७१ ॥ आत्मसारविहारश्च गोपदारकदारकः ॥ गोचरोगोपतिगोपो गोवद्ध

को पहने, दामोदर, उल्लखलवाले, पूतनाकेशनु, तृणावर्तको हरनेवाले, शकटविनाशक ॥ ६८ ॥ नवनीत (नैत्र) प्रियवाले, प्रशस्त वचनवाले, वत्सपालक के बालक, वत्सरूप को धारनेवाले, वत्सवान्, वत्सनाशक, धेनुक को नाशकरनेवाले ॥ ६९ ॥ वकासुरके शत्रु, वनमें बसनेवाले, वनकी क्रीड़ा में चतुर श्यामवर्णके आकारवाले, सुन्दर व वेणु तथा वेत को धारनेवाले ॥ ७० ॥ अन्धकासुर को मोक्ष करनेवाले, मोक्ष के योग्य, यमुनाजी के किनारे चलनेवाले, माया के बछड़ों को करनेवाले, मायावाले व ब्रह्मा की माया को मोहनेवाले ॥ ७१ ॥ व अपनेही सारांशमें विहार करनेवाले, गोपपुत्र के बालक, इन्द्रियों के सामने प्राप्त होनेवाले, गोत्रों

के स्वामी, गौवों की रक्षा करनेवाले, गोविर्धन को धारनेहारे व बलवान् ॥ ७२ ॥ इन्द्रद्युम्न के यज्ञको विध्वंस करनेवाले, वृष्टिनाशक, गोपों के रक्षक, देवताओं की रक्षा करनेवाले, द्रवों के पान करनेवाले, कलिस्वरूप ॥ ७३ ॥ कालियनाग को मर्दन करनेवाले, कालीरूप व यमुनाजी के कुण्ड में विहार करनेवाले, बलभद्ररूप, बलसे प्रशंसा करनेयोग्य, बलदेवस्वरूप, हल आस्त्रवाले ॥ ७४ ॥ हल धारण करनेवाले, मुसल धारण करनेवाले, चक्रों को धारण करनेवाले, योगियों के रमण करने योग्य, रोहिणी जी के पुत्र, यमुनाजी को खींचनेवाले व उधारनेवाले, नीलवसनवारे व हल को धारण करनेहारे ॥ ७५ ॥ रेवतीजी में रमण करनेवाले, चंचल, बहुत मान करनेवाले उत्तम व धेनुकासुर के शत्रु, महावीर व गोपकन्याओं के विदूषक ॥ ७६ ॥ कामदेव का धान करनेवाले, कामी व गोपियों के वसनों के चुरानेवाले, वेणु को बजाने नंधरोबली ॥ ७७ ॥ इन्द्रद्युम्नमखध्वंसी वृष्टिहागोपरत्नकः ॥ सुराणां त्राणकर्ता च दावपानकरः कलिः ॥ ७८ ॥ का

लीयमर्दनः काली यमुनाहदक्रीडकः ॥ सङ्कर्षणो बलश्लाघ्यो बलदेवो हलायुधः ॥ ७९ ॥ लाङ्गली मूसलीचक्री रामो रोहिणीनन्दनः ॥ यमुनाकर्षणोद्धारो नीलवासाहलीतया ॥ ८० ॥ रेवतीरमणोलो बहमानकरः परः ॥ धेनुकारिर्महावीरो गोपकन्याविदूषकः ॥ ८१ ॥ काममानकरः कामी गोपीवासोपतस्करः ॥ वेणुवादीचनादीच नृत्यगीतविशारदः ॥ ८२ ॥ गोपीमोहकरो गानी रासकोरजनीचरः ॥ दिव्यमालीविमालीच वनमालाविभूषितः ॥ ८३ ॥ कैटभारिश्चकंसारिर्मधुहामधुसूदनः ॥ चाणूरमर्दनोमहो मुष्टिमुष्टिकनाशकृत् ॥ ८४ ॥ मुरहामोदकोमोदो मानीचनरकान्तकृत् ॥ विद्याधयायीभूमिशायी सुदाम्नश्च सखासखा ॥ ८५ ॥ शकलो विकलो विद्यः कलितो विकलानिधिः ॥ विशालशा

वाले, नाद करनेवाले व नाचने तथा गाने में चतुर ॥ ७७ ॥ गोपियों को मोह करनेवाले, गान करनेवाले, रासकरनेहारे व रात्रि में चलनेवाले, दिव्य मालाओं को पहने व मालाओं से रहित तथा वनमाला से शोभित ॥ ७८ ॥ कैटभ दैत्य के शत्रु, कंस के शत्रु, मधुदैत्य को मारनेवाले व मधुसूदन, चाणूर को मर्दन करनेवाले, मल्लरूप व मुष्टिक को घूसा से नाश करनेवाले ॥ ७९ ॥ मुरदैत्य को नाश करनेवाले, आनन्द करनेवाले, आनन्दरूप, मानी व नरकासुर को नाशनेवाले, विद्या के पढ़नेवाले, पृथ्वी में सोनेवाले व सुदामा के मित्र व सखारूप ॥ ८० ॥ खण्डरूप, कलाओं से रहित, विद्यावान्, शोभित व कलाओं के निधिरूप, विशाल

से शोभित व शोभावान् तथा माता, पिताको छुडानेवाले ॥ ८१ ॥ रुक्मिणी जी में स्मरण करनेवाले, रमणीय व यमुनाजी के पति तथा शंखदैत्यको नाशने-
वाले, पांचजन्यरूप, महापद्मनिधिरूप व बहुत नायकों के स्वामी ॥ ८२ ॥ धुंधु दैत्य को मारनेवाले, निकुंभ के नाश करनेवाले, रतिप्रिय,
प्रद्युम्नरूप, अनिरुद्धस्वरूप, देवनाओं के स्वामी अर्जुनरूप ॥ ८३ ॥ फाल्गुन, गुडाकेश, सब्यसाची व धनंजयरूप, किरीटमाली, धनुष को हाथ में लिये व धनुष
विषा में चतुर ॥ ८४ ॥ शिखंडीरूप, सात्यकिस्वरूप, सेवा के योग्य, भयंकररूप व भयंकर पराक्रमवाले, पांचालरूप, भयंकर क्रोधवाले, सौमद्रूप व द्रौपदी के

लीशालीच मातृपितृविमोक्षकः ॥ ८१ ॥ रुक्मिणीरमणोरम्यः कालिन्दीपतिशङ्कहा ॥ पाञ्चजन्योमहापद्मो बहुना
यकनायकः ॥ ८२ ॥ धुन्धुमारो निकुम्भघ्नः स्मरान्तकरतिप्रियः ॥ प्रद्युम्नश्चानिरुद्धश्च सात्वताम्पतिरर्जुनः ॥ ८३ ॥
फाल्गुनश्चगुडाकेशः सब्यसाचीधनञ्जयः ॥ किरीटमालीधनुष्पाणिर्धनुर्वेदविशारदः ॥ ८४ ॥ शिखण्डीसात्यकिः
सेव्यो भीमोभीमपराक्रमः ॥ पाञ्चालोभीममन्युश्च सौमद्रोद्रौपदीपतिः ॥ ८५ ॥ युधिष्ठिरोधर्मराजः सत्यवादीशुचित्र
तः ॥ नकुलः सहदेवश्च कर्णोदुर्योधनोघृणी ॥ ८६ ॥ गाङ्गेयश्चगदापाणिर्भीष्मोभागीरथीसुतः ॥ प्रज्ञाचक्षुर्धृतराष्ट्रो भा
रद्वाजोऽथगौतमः ॥ ८७ ॥ अश्वत्थामाविकर्णश्च जङ्गयुद्धविशारदः ॥ सीमन्तकिर्गदीगाल्वो विश्वामित्रोदुरासदः ॥
८८ ॥ दुर्वासोदुर्विनीतश्च मार्कण्डेयोमहामुनिः ॥ लोमशोनिर्मलोलोमी दीर्घायुश्चचिरोचिरी ॥ ८९ ॥ पुनर्जीव्यमृतो
मावीभूतोभव्योभविष्यता ॥ त्रिकालज्ञस्त्रिलिङ्गश्च त्रिनेत्रस्त्रिपदीपतिः ॥ ९० ॥ यादवोयाज्ञवल्क्यश्च यदुवंशविचर्द्धनः ॥

पति ॥ ८५ ॥ युधिष्ठिररूप, धर्मराजस्वरूप, सत्य बोलनेवाले, पवित्र नियमवाले, सहदेवस्वरूप, कर्णरूप, दुर्योधनरूप, दयावान् ॥ ८६ ॥ गंगाजी के
पुत्र, गदा को हाथ में लिये, भीष्मरूप, भागीरथीजीके पुत्र, बुद्धिरूपी नेत्रवाले, धृतराष्ट्रस्वरूप, भारद्वाजरूप व गौतमस्वरूप ॥ ८७ ॥ अश्वत्थामास्वरूप, विकर्णरूप,
जह्नुस्वरूप व युद्धमें चतुर, सीमन्तकिरूप, गदाको धारनेवाले, गाल्वरूप, दुर्विनीत, मार्कण्डेयरूप, महामुनि, लोमशस्व-
रूप, निर्मल, लोमावाले, दीर्घआयुर्बलवाले, चिर व अचिरवाले ॥ ८८ ॥ त्रिनेत्रवाले, अमृतस्वरूप, होनेवाले, भूतरूप, कल्याणरूप व भविष्य-समेत तीनों

काल के जानेवाले, तीन लिङ्गोंवाले, तीननेत्रोंवाले, तीनचरणोंवाले व रत्ना करनेवाले ॥ ६० ॥ यदुवंश में उत्पन्न, याज्ञवल्क्यस्वरूप, यदुवंश को बढ़ाने वाले, शल्य से क्रीडा करनेवाले, क्रीडारहित, याद्यों के विनाशक, कलिस्वरूप ॥ ६१ ॥ दया समेत व दुष्टहृदयवाले के द्रोही, भागरहित व उत्तम भाग के भागी समुद्ररूप, पृथ्वीरूप, नीलवर्णवाले व पर्वत पै निवासकरनेवाले ॥ ६२ ॥ एक रंगवाले, वर्णरहित व सब वर्णों से बाहर चलनेवाले, यज्ञकी निन्दा करनेवाले, वेदनिन्दक, वेद से बाहर, बलभद्ररूप, बलिस्वरूप ॥ ६३ ॥ बौद्धरूप, बाधाकरनेवाले, बाधी, जगदीश व संसार के स्वामी, भक्तिरूप, भगवान् के सम्बन्धी, अंशवाले, विशेषकर भक्त व ऐश्वर्यवानों को प्रिय ॥ ६४ ॥ तीनग्रामरूप, नववनस्वरूप व गुप्त उपनिषदों से आसनवाले, शालिग्राम शिला से युक्त, वि-

शल्यक्रीडीविक्रीडश्च यादवान्तकरःकलिः ॥ ९१ ॥ सद्योहृदयोदग्रद्रोहदायःसुदायमाक् ॥ महोदधिर्महीपृष्ठो नीलः
पर्वतवासकृत् ॥ ९२ ॥ एकवर्णोविवर्णश्च सर्ववर्णवहिश्ररः॥यज्ञनिन्दोवेदनिन्दो वेदबाह्योबलोबलिः ॥ ९३ ॥ बौद्धश्चवा
धकोबाधी जगन्नाथोजगत्पतिः ॥ भक्तिर्भागवतोभागी विभक्तोभगवत्प्रियः ॥ ९४ ॥ त्रिग्रामश्चनवारण्यो गुह्योपनि
षदासनः ॥ शालिग्रामशिलायुक्तो विशालोगण्डकाश्रमः ॥ ९५ ॥ श्रुतदेवःश्रुतःश्रावी श्रुतबोधःश्रुतश्रवाः ॥ कलिकःका
लैकलःकल्को दुष्टम्लेच्छविनाशकृत् ॥ ९६ ॥ कुङ्कुमीधवलधीरः क्षमाकरवृषाकपिः ॥ किङ्करःकिन्नरःकारवः के
कीर्तिकेपुरुषाधिपः ॥ ९७ ॥ एकरोमाविरोमाच बहुरोमाबृहत्कविः ॥ वज्रप्राणहरोवज्री वृत्रहावासवानुजः ॥ ९८ ॥ बहु
तीर्थकरोतीर्थः सर्वतीर्थजनेश्वरः ॥ व्यतीपातःप्रयागश्च दानवृद्धिकरःशुभः ॥ ९९ ॥ असंख्येयोप्रमेयश्च संख्याकारो

शाल व गंडकी नदी में आश्रमवाले ॥ ९५ ॥ असिद्ध देवता, सुनेहुये व सुनानेवाले, शाल के बोधवाले, सुनेहुये यशवाले, कलिकस्वरूप, काल के विनाशक, कल्करूप व दुष्ट म्लेच्छों के नाश करनेवाले ॥ ९६ ॥ कुंकुम रंगवाले श्वेत, बुद्धिदायक, क्षमा करनेवाले व कामनाओं को देनेवाले तथा पातकों को नाशनेवाले, किंकर, किन्नररूप, करवसंबन्धी व मयूर वचनवाले तथा किपुरुषों के स्वामी ॥ ९७ ॥ एकरोमावाले, बहुतरंगी कवि, वज्र से प्राणों को हरनेवाले, वज्र को धारनेवाले, वृत्रासुरविनाशक, इन्द्रानुज ॥ ९८ ॥ बहुत तीर्थों का करनेवाले, तीर्थरहित व सब तीर्थों तथा मनुष्यों के स्वामी, व्यतीपातयोगस्वरूप, प्रयागतीर्थरूप,

दानकी वृद्धि करनेवाले, शुभ ॥ ६६ ॥ संख्या से रहित, अप्रमाण, संख्या करनेवाले व संख्याविहीन, मिहिर (सूर्य) स्वरूप, तारनेवाले, उर्ध्वकारस्वरूप, व-
लिरूप, चन्द्रस्वरूप, अमृतकी खानि ॥ २०० ॥ किंवर्ण, कीदृश, किंचितस्वरूप, किमाश्रय, 'लोकसे रहित, आकारहीन, बहुत आकारवाले व एकही
करनेवाले ॥ १ ॥ नाती के पुत्ररूप, पौत्रस्वरूप, नातीरूप, वंश को धारनेवाले, न धारनेवाले, नम्रभूत, दयावान्, सब सिद्धियों के देनेवाले, मणिस्वरूप ॥ २ ॥
आधारभूत, धारनेवाले, पृथ्वी के पुत्र, सुसंगलरूप, मंगलमय, मंगल आकारवाले, मंगलरूप व सर्वमंगलस्वरूप ॥ ३ ॥ अतुल, तेजवाले विष्णुजी के इस

विसंख्यकः ॥ मिहिरस्तरकस्तारो बलिश्चन्द्रः सुधाकरः ॥ २०० ॥ किंवर्णः कीदृशः किञ्चित् किंस्वभावः किमाश्रयः ॥
निर्लोकश्च निराकारी बह्वाकारैककारकः ॥ १ ॥ दौहित्रपुत्रकः पौत्रो नप्तावंशधरो धरः ॥ द्रवीभूतो दयालुश्च सर्वसिद्धि
प्रदो मणिः ॥ २ ॥ आधारभूतो धारश्च धराः सुनुः सुर्मङ्गलः ॥ मङ्गलो मङ्गलाकारो माङ्गल्यः सर्वमङ्गलः ॥ ३ ॥ नाम्नांसह
स्रकमिदं विष्णोरतुलतेजसः ॥ सर्वसिद्धिकरं काम्यं पुण्यं हरिहरैः कृतम् ॥ ४ ॥ यः पठेत् प्रातरुत्थाय शुचिभूत्वासमाहि
तः ॥ यश्चेदं शृणुयान्नित्यं नरो निश्चलमानसः ॥ ५ ॥ त्रिसन्ध्यं श्रद्धया युक्तः सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ मोदते पुत्रपौत्रैश्च दा
रभृत्यैश्च पूजितः ॥ ६ ॥ प्राप्यते विपुलां लक्ष्मीं मुच्यते सर्वसङ्कटात् ॥ सर्वान् कामानवाप्नोति लभते विपुलं यशः ॥ ७ ॥ वि
द्यावाञ्जायते विप्रः क्षत्रियो विजयर्था भवेत् ॥ वैश्यो धनसुलभाढ्यः शूद्रः सुखमवाप्नुयात् ॥ ८ ॥ रणे धौरे विवादे च व्यापा

पुण्यदायकः सहस्रनाम को हरिहरने किया है जो कि समस्त सिद्धियों को देनेवाला व मनोरथों का दायक है ॥ ४ ॥ प्रातःकाल उठकर सावधान होता हुआ जो
मनुष्य पवित्र होकर इसको धृता है व अचल मनवाला जो श्रद्धासंयुत मनुष्य इसको तीनों संध्याओं में मित्य सुनता है वह सब पापों से छूट जाता है और स्त्रियों
व संवकों से पूजित होकर पुत्रों व पौत्रों समेत आनन्द करता है ॥ ५ ॥ ६ ॥ और बहुत लक्ष्मी को प्राप्त होता है व सब दुःख से छूट जाता है व सब मनोरथों
को प्राप्त होता है और बहुत यश को पाता है ॥ ७ ॥ ब्राह्मण विद्यावान् होता है और क्षत्रिय विजयवान् होता है तथा वैश्य धनके उत्तम लोभ से संयुत होता है और

शुद्ध सुखको पाता है ॥ ८ ॥ और भयंकर समर व विवाद तथा पराये अर्धान व्यापार में विजयवान् मनुष्य सदैव सब कर्मों में जीत को प्राप्त होता है ॥ ९ ॥
और एकबार, दशबार, सौबार व हजार बार जो मनुष्य इसको नित्य पढ़ता है वह वैसेही फलको भोगता है ॥ १० ॥ पुत्रको चाहनेवाला नर पुत्रों को पाता है व धन को चाहनेवाला पुरुष अविनाशी धनको पाता है व मोक्ष को चाहनेवाला पुरुष मोक्ष को पाता है और धर्म को चाहनेवाला मनुष्य धर्मसंचय को प्राप्त होता है ॥ ११ ॥
और कन्या को चाहनेवाला पुरुष कन्या को प्राप्त होता है व ज्ञानी देवताओं को भी जो दुर्लभ है उस ज्ञान को पाता है और योगी योगों में युक्त होता है ॥ १२ ॥

रेपारतन्त्रके ॥ विजयीजयमामोति सर्वदासर्वकर्मसु ॥ ९ ॥ एकधादशधाचैव शतधाचसहस्रधा ॥ पठेच्चयोनरोनित्यं
तथैवफलमश्नुते ॥ १० ॥ पुत्रार्थीलभतेपुत्रान् धनार्थीधनमव्ययम् ॥ मोक्षार्थीलभतेमोक्षं धर्मार्थीधर्मसञ्चयम् ॥
११ ॥ कन्यार्थीलभतेकन्यां दुर्लभांयत्सुरैरपि ॥ ज्ञानं च लभते ज्ञानी योगी योगेषु युज्यते ॥ १२ ॥ महोत्पातेषु घोरैरपि दुर्भिक्षेण
जविग्रहे ॥ महामारीसमुद्भूते दारिद्र्यदुःखपीडिते ॥ १३ ॥ अरण्ये प्रान्तरे वापि दावाग्निपरिवारिते ॥ सिंहव्याघ्राभिभू-
तेपि वनहस्तिसमाकुले ॥ १४ ॥ राज्ञा कुद्धेन चाज्ञप्तो दस्युभिस्सहसङ्गमे ॥ विद्युत्पातेषु घोरैरपि स्मर्तव्यं हि सदानरैः ॥
१५ ॥ ग्रहपीडामुचोग्रासु वधवन्धगतोपि वा ॥ महार्णवे महानद्यां पोतस्थेषु च नापदः ॥ १६ ॥ रोगग्रस्ता विवर्णाश्च ग-
तर्केशनखत्वचः ॥ पठनाच्छ्रवणाद्वापि दिव्यकाया भवन्ति वै ॥ १७ ॥ तुलसीवनसंस्थाने तडागे च सुरालये ॥ बद्रिका

बड़े भयंकर उत्पातों में व दुर्भिक्ष तथा राजाओं के वैर में और महामारी उत्पन्न होनेपर व दरिद्रता तथा दुःख से पीड़ित होनेपर ॥ १३ ॥ वनमें व दूरतक
शून्य मार्ग में व दावारिन से घिरेनेपर और सिंहों व व्याघ्रों से तिरस्कृत होनेपर व वन के हाथियों से आकुल होने में ॥ १४ ॥ और क्रोधित राजा से आज्ञा देनेपर
व चोरों से समागम होनेपर और भयंकर बिजली के गिरने में मनुष्यों को सदैव स्मरण करना चाहिये ॥ १५ ॥ ग्रहों की उग्र पीड़ाओं में व वध या बंधन में प्राप्त
होनेपर और महासमुद्र व महानदी में जहाज पै स्थित होनेपर विपत्तियां नहीं होती हैं ॥ १६ ॥ रोग से जैसे व रंगहीन तथा केश, नख व त्वचा से रहित पुरुष इसके

पढ़ने व सुनने से भी उत्तम शरीरवान् होता है ॥ १७ ॥ और तुलसीजी के वनस्थान में व तड़ाग तथा देवालय में व उत्तम बद्रिकाश्रम स्थान में और हरिद्वार में तपोवन में ॥ १८ ॥ व मधुवन, प्रयाग और द्वारका व महाकालवनमें सावधान होकर सब कामनाओंवाले व जितेन्द्रिय भक्तिमान् जो पुरुष नियम में प्राप्त होकर इसको सौबार पढ़ने हैं वे सिद्ध पुरुष ससार में सिद्धिदायक होकर पृथ्वीमें घूमते हैं ॥ १९ ॥ और आपसमें भेदके भेदोंका यह उत्तम मैत्रीकरण है और मोहनोंका मोहन है व पवित्र तथा पापनाशक है ॥ २० ॥ और बालकों के ग्रहोंके नाशनेकेलिये उत्तम शान्तिकारक है व दुष्ट आचरणों तथा पापों की बुद्धिका नाशक उत्तम है ॥ २१ ॥

श्रमे शुभे देशे गङ्गाद्वारे तपोवने ॥ १८ ॥ मधुवने प्रयागे च द्वारकायां समाहिताः ॥ महाकालवने चैव नियतास्सर्वकामुकाः ॥ १९ ॥ ये पठन्ति शतावर्ते भक्तिमन्तो जितेन्द्रियाः ॥ ते सिद्धाः सिद्धिदालोके विचरन्ति महीतले ॥ २० ॥ अन्योन्यभेदभेदानां मैत्रीकरणमुत्तमम् ॥ मोहनं मोहनानाञ्च पवित्रं पापनाशनम् ॥ २१ ॥ बालग्रहविनाशाय शान्तिकरणमुत्तमम् ॥ दुर्वृत्तानाञ्च पापानां बुद्धिनाशकरं परम् ॥ २२ ॥ पतङ्गमार्चवन्ध्याच स्त्राविणिका कबन्ध्याका ॥ अनायासे न सततं पुत्रमेव प्रसूयते ॥ २३ ॥ पयःपुष्कलदागावो बहुधान्यफलाकृषिः ॥ स्वामिधर्मपराभृत्या नारी पतिव्रता भवेत् ॥ २४ ॥ अकालमृत्युनाशाय तथा दुःस्वप्नदर्शने ॥ शान्तिकर्मणि सर्वत्र स्मर्तव्यञ्च सदानरैः ॥ २५ ॥ यः पठेत्स्व न्वहं मर्त्यः शुचिमान् विष्णुसन्निधौ ॥ एकाकी च जिताहारो जितक्रोधो जितेन्द्रियः ॥ २६ ॥ गरुडारूढसम्पन्नः पीतवासाश्चतुर्भुजः ॥ वाञ्छितं प्राप्य लोके स्मिन् विष्णुलोकं स गच्छति ॥ २७ ॥ एकतस्स कलाविद्या एकतस्स कलन्तपः ॥

और पतित गर्भवाली, बन्ध्या व जिसके रक्त बहता हो व काकबन्ध्या बिन परिश्रमके सदैव पुत्रहीको पैदा करती है ॥ २३ ॥ गौवें बहुत दूध देनेवाली व खेती बहुत धान्य फलवाली और सेवक स्वामीके धर्ममें तत्पर व स्त्री पतिव्रता होती है ॥ २४ ॥ अकालमृत्युके नाश होनेके लिये व दुःस्वप्न के देखने में और शान्तिकर्म में सब कहीं मनुष्योंको इसका स्मरण करना चाहिये ॥ २५ ॥ आहारको जीते व क्रोधको जीते और जितेन्द्रिय जो पवित्र पुरुष अकेले विष्णुजी के समीप इस सहस्रनामको प्रतिदिन पढ़ता है ॥ २६ ॥ इस लोकमें मनोरथको पाकर गरुड़जी पै चढ़कर पीतवसन पहने व चार मुजाओंको धारण किये वह विष्णुजीके लोकको जाता है ॥ २७ ॥

एकश्रोर सब विद्या है व एकश्रोर सब तप है तथा एकश्रोर सब धर्म है और एकश्रोर एकओर विष्णुजी का नाम है ॥ २८ ॥ जो ब्राह्मण मुझको हजार नामों से स्तुति किया चाहै सो मैं एकही श्लोकसे स्तुति किया होता हूँ इसमें सन्देह नहीं है ॥ २९ ॥ हे सहस्रमुख ! आप हजार लोचनोवाले व हजार चरणोवाले तथा हजार मुखों से उज्ज्वल हो व अनन्त लोचनोवाले और हजार नामोवालेहो तुम्हारे लिये नमस्कार है ॥ ३० ॥ यह विष्णुसहस्रनाम प्राचीन व वेदों से संमित है सब मंगलोंका मंगलमय यह स्तोत्र भक्तिमें पढ़ना चाहिये ॥ ३१ ॥ हे द्विज ! इस स्तोत्रसे युक्त देवताओंसे वहाँ वरदायकोंको भी वरदेनेवाले भगवान् विष्णुजीने प्रत्यक्ष होकर कहा ॥ ३२ ॥

एकतस्सकलोधर्मो नामविष्णोश्चैकतः ॥ २८ ॥ योमानामसहस्रेणस्तोतुमिच्छतिवैद्विजः ॥ सोहमेकेनश्लोकेनस्तु तएव न संशयः ॥ २९ ॥ सहस्राक्षस्सहस्राङ्घ्रिस्सहस्रवदनोज्ज्वलः ॥ सहस्रनामानन्ताक्षः सहस्रभुजतेनमः ॥ ३० ॥ विष्णोर्नामसहस्रन्तु पुराणवेदसम्मितम् ॥ पठितव्यंसदाभक्त्या सर्वमङ्गलमङ्गलम् ॥ ३१ ॥ इतिस्तवाभियुक्तानां देवानां तत्र वैद्विज ॥ प्रत्यक्षं प्राह भगवान् वरदो वरदानपि ॥ ३२ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ त्रियताम्भोः सुरास्सर्वे वरं मत्तोभिवाञ्छितम् ॥ तत्सर्वं सम्प्रदास्यामि नात्र कार्यं विचारणा ॥ ३३ ॥ देवा ऊचुः ॥ वरदोसियदा विष्णो वरमेतं ददस्वनः ॥ अदितेर्गर्भं सम्भूतः शक्रस्याप्यनुजोभव ॥ ३४ ॥ इति सम्प्रार्थितो देवैर्ब्रह्मशक्रपुरोगमैः ॥ तथेत्युक्त्वा च भगवांस्तत्रैवा न्तरधीयत ॥ ३५ ॥ ततः कतिपयेकाले भगवानदिति नन्दनः ॥ विष्णुरूपधरो नन्तो वामनत्वाच्च वामनः ॥ ३६ ॥ वल्लिर्वरोचनो व्यास वाजिमेधशतेन च ॥ ईजे द्विजवरश्रेष्ठ इन्द्रराज्यजिर्होषिया ॥ ३७ ॥ ऋत्विजं कश्यपं कृत्वा होतारं

श्रीभगवान् बोले कि हे सब देवताओ ! मुझसे चाहेहुये वरदान को मांगिये मैं उस सबको दूंगा इसमें विचार न करना चाहिये ॥ ३३ ॥ देवता बोले कि हे विष्णो ! यदि वरदायकहो तो हम लोगों को यह वर दीजिये कि अदितिजी के गर्भ में उत्पन्न होकर तुम इन्द्रके भी छोटे भाई होवो ॥ ३४ ॥ ब्रह्मा व इन्द्रादिक देवताओं से इसप्रकार प्रार्थना कियेहुये भगवान् वैसाही होगा यह कहकर वहीं अन्तर्धान होगये ॥ ३५ ॥ तदनन्तर कुछ समयमें विष्णुरूपधारी अनन्त भगवान् अदितिजी के पुत्र होकर वामन (लघुरूप) होने के कारण वामन नामक हुये ॥ ३६ ॥ हे द्विजोत्तम ! विरोचनके पुत्र बलिने इन्द्र का राज्य हरने की इच्छासे सौ अश्वमेध यज्ञोंसे पूजन

किया ॥ ३७ ॥ कश्यप को ऋत्विक् व भृगुश्रेष्ठ शुकाचार्यजी को होता (ऋग्वेदी), करके उस यज्ञ में आपही पितामहजी ब्रह्मा हुये ॥ ३८ ॥ व हे मुनिश्रेष्ठ ! भगवान् अत्रिजी अध्वर्यु (यजुर्वेदी) हुये और नारदजी उद्गाता (सामवेदी) हुये व वसिष्ठजी सभासद हुये ॥ ३९ ॥ जो जिस स्थानमें क्रिये गये थे वे सब मुनीश्वर वहां वहां बैठे व हे व्यासजी ! राजाओंमें श्रेष्ठ बलिजी वहा दीक्षित हुये ॥ ४० ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! इसप्रकार यज्ञों के वर्तमान होनेपर हवन किया जाय, भोजन किया जाय, दिया जाय व धारा जाय ॥ ४१ ॥ ये उत्तम वचन बहापर सुन पडते थे व हे द्विजोत्तम ! उस विचित्र समय में पवित्र मुसक्यातवाले वामनजी आये ॥ ४२ ॥ हे रुपेन्द्र ! मुखमें

भृगुसत्तमम् ॥ ब्रह्मातत्राभवच्चैव स्वयमेव पितामहः ॥ ३८ ॥ अध्वर्युर्भगवानत्रिर्वभूवमुनिसत्तम ॥ उद्गातानारदश्च व वसिष्ठश्च सभासदः ॥ ३९ ॥ येयत्र विहितास्सर्वे तत्र तत्र मुनीश्वराः ॥ बलिस्तत्राभवद्वास दीक्षितो राजसत्तमः ॥ ४० ॥ एवं प्रवर्तमानेषु यज्ञेषु मुनिसत्तम ॥ हूयतां भुज्यताञ्चैव दीयतां धीयतान्तथा ॥ ४१ ॥ इति वाच इशुभास्तत्र श्रूयन्ते च द्विजोत्तम ॥ तस्मिन्काले मुचित्रे तु वामनो गाच्छुचिस्मितः ॥ ४२ ॥ पठमानो मुखाग्रेण चतुरो वेदपारगः ॥ द्वारेतिष्ठ तिराजेन्द्र वामनो द्विजसत्तमः ॥ ४३ ॥ प्रतीहारं तु व्यास सर्वं राज्ञे निवेदितम् ॥ उत्थाय च महाराजो बलिवैरोचनस्त दा ॥ ४४ ॥ अर्धमादाय तत्सर्वं तं जगाम सभासदः ॥ पूजयित्वा यथान्यायं वामनं लोकभावनम् ॥ ४५ ॥ आनीयित्वा सभामध्ये दत्त्वा मनपरिग्रहम् ॥ कुत आगमनं ब्रह्मन् किन्तो भीष्टं ददाम्यहम् ॥ ४६ ॥ वामन उवाच ॥ राजराजा खिला सृष्टिर्ब्रह्मणः परमेश्ठिनः ॥ ततो ह मागतो भूमन् यज्ञन्ते वै दिदृक्षया ॥ ४७ ॥ वरुणस्य च यज्ञो वै सुदृष्टो मे पुरानेन घ ॥ यक्षा

चारों वेदों को पढ़ता हुआ वेदों का पारगामी वामनरूप द्विजोत्तम द्वार पै स्थित है ॥ ४३ ॥ हे व्यासजी ! जब इसप्रकार द्वारपालने, सब वृत्तान्त को राजा से निवेदन किया तब विरोचनके पुत्र महाराज बलिजी उठकर ॥ ४४ ॥ अर्ध व उस सब वस्तुको लेकर सभासदों समेत उनके समीप गये व लोकोंको उत्पन्न करनेवाले वामनजी को यथायोग्य पूजकर ॥ ४५ ॥ सभा के बीचमें आनकर व आसन को देकर बलि बोले कि हे ब्रह्मन् ! कहाँसे तुम्हारा आगमन हुआ और तुमको क्या प्रिय वस्तु देऊं ॥ ४६ ॥ वामनजी बोले कि हे राजराज ! परमेशी ब्रह्माजीकी सब सृष्टि है उसी कारण हे भूमन् ! तुम्हारे यज्ञके देखने की इच्छासे मैं आया हूँ ॥ ४७ ॥ हे अनघ ! पुरातन

समय मैंने वरुण के यज्ञको भलीभांति देखा है और वैसेही यज्ञोंके स्वामी कुबेरजीके यज्ञको मैंने देखा है ॥ ४८ ॥ और राजर्षियों के यज्ञोंको मैंने देखा है और वे बड़े नियमवान् थे परन्तु हे महाराज ! जैसे इस तुम्हारे यज्ञको मैंने देखा है ॥ ४९ ॥ हे राजराजेन्द्र ! ऐसा यज्ञ न हुआ है न होगा इसलिये हे अनघ, राजन् ! मांगने के लिये मैं यहा आया हूँ ॥ ५० ॥ बलि बोले कि हे द्विजोत्तम ! तुम मांगो तुम्हारा क्या मनोरथ है उसको मैं देऊँ वामनजी बोले कि हे राजराजेन्द्र ! यदि तुमको रुचता हो तो हे नृपोत्तम ! बसनेके लिये आज मुझको तीन पग पृथ्वीको दीजिये बलिबोले कि हे विप्रजी ! तुमने यह थोड़ा क्या मांगा मुझको नहीं अच्छा लगा ॥ ५१ ॥ ५२ ॥

धिप्रस्यचतथा यज्ञञ्च दृष्टवानहम् ॥ ४८ ॥ राजर्षीणाञ्च मे यज्ञा दृष्टास्तेति महाव्रताः ॥ यादृशोयं महाराज यज्ञस्ते दृष्टवानहम् ॥ ४९ ॥ ईदृशो राजराजेन्द्र नभूतो न भविष्यति ॥ तस्मादिहागतो राजन् याचनार्थं त्वथानघ ॥ ५० ॥ बलिरुवाच ॥ याचस्व त्वं द्विजश्रेष्ठ किन्ते भीष्टं ददाम्यहम् ॥ वामन उवाच ॥ देहि मे राजराजेन्द्र पादानि त्रीणि मे दिनीम् ॥ ५१ ॥ वासार्थं रोचते तेन यदि पार्थिव सत्तम ॥ बलिरुवाच ॥ किमिदं याचितं विप्र स्वल्पन्ते न हि मे परम् ॥ ५२ ॥ रत्नानि विविधानित्वं गजवाजिरथान् सुवम् ॥ दासदासीर्वरारोहाः स्त्रीर्यानि निवसूनि च ॥ ५३ ॥ द्रव्याणि वाससीशुक्ले याचस्व त्वं द्विजोत्तम ॥ पात्रोसि कृतकृत्योसि वेदवेदाङ्गपारग ॥ ५४ ॥ वामन उवाच ॥ न मे किञ्चित् स्पृहाराजन् विद्यते सुविमानद ॥ देहित्वं त्रिपदाम्भूमिं यदि श्रद्धास्ति ते धुना ॥ ५५ ॥ गृहाण त्रिपदाम्भूमिं वासस्यार्थं हि मानद ॥ इत्युक्त्वा वै स राजर्षिर्षिर्ददौ भूमिं द्विजाय वै ॥ ५६ ॥ वारितोयं तदा व्यास भृगुणा देव नोदितः ॥ दत्तमात्रे जले सद्यो ब्रह्माण्डमाक्रमद्धरिः ॥ ५७ ॥

तुम अनेकों प्रकारके गन्त, हाथी, घोड़े, रथ व पृथ्वी, दास, दासी और उत्तम कटिवाली स्त्री, सवारी व धनोको मांगो ॥ ५३ ॥ हे वेदवेदांगपारग, द्विजोत्तम ! द्रव्य व श्वेत वसनोंको तुम मुझसे मांगो क्योंकि पात्रहो और कृतकृत्यहो ॥ ५४ ॥ वामनजी बोले कि हे मानद, राजन् ! पृथ्वी मैं मेरी कुछ इच्छा नहीं है यदि इस समय तुम्हारे श्रद्धा होवे तो तीन पग पृथ्वीको दीजिये ॥ ५५ ॥ हे मानद ! निवास के लिये तीनपग पृथ्वीको लीजिये यह कहकर उन राजर्षि बलिने ब्राह्मण के लिये पृथ्वीको दिया ॥ ५६ ॥ तब हे व्यासजी ! शुकाचार्यजीने देवसे प्रेरित इन बलिको मना किया और जल देनेहीपर उसीक्षण विष्णुजीने ब्रह्माण्डका आक्रमण किया ॥ ५७ ॥

को सुनिये कि उस तीर्थ में नहार्कर मनुष्य दीरलोकको प्राप्त होता है ॥ १ ॥ और सब कामनाओं का वरदायक नागों का उत्तम तीर्थ है व जो कालभैरवजी कहेगये हैं उनका उत्तमतीर्थ कहागया है ॥ २ ॥ कि जिसके दर्शनही से मनुष्य सब दुःखोंसे छूटजाता है व्यासजी बोले कि हे मुनिवर ! श्रेष्ठ कालभैरव संज्ञक तीर्थ किस समय प्रसिद्ध हुआ है इसको विस्तार से कहिये सनत्कुमारजी बोले कि पुरातन समय यह भैरव योगी योगिनियों को भयकारक था ॥ ३ ॥ ४ ॥ उस समय कालचक्र से की हुई कृत्या व जो योगिनीगण थे उनके मध्य में काली ऐसी प्रसिद्ध योगिनी अति उत्तम थी ॥ ५ ॥ उससे यह भैरव उस समय नित्य पुत्रकी नाई पा-

नागानांप्रवरन्तीर्थं सर्वकामवरप्रदम् ॥ कालभैरवआख्यातस्तस्यतीर्थपरंस्मृतम् ॥ २ ॥ यस्यदर्शनमात्रेण सर्वदुःखातिगोभवेत् ॥ व्यासउवाच ॥ कस्मिन्कालेहिविख्यातं कालभैरवसंज्ञितम् ॥ ३ ॥ तीर्थमुनिवरश्रेष्ठमेतद्विस्तरतोवद ॥ सनत्कुमारउवाच ॥ पुराणैर्भैरवयोगी योगिनीत्रासकारकः ॥ ४ ॥ कालचक्रकृताकृत्या योगिनीनांगणास्तादा ॥ तासांकालीतिविख्याता योगिनीपरमोत्तमा ॥ ५ ॥ तयायंपालितो नित्यं पुत्रवद्भैरवस्तदा ॥ तेनैतेवैविविनिर्धूतादोषोत्पाताश्चसत्तम ॥ ६ ॥ त्रिविधाभुवि विख्यातास्सर्वविघ्नकराः पराः ॥ कालकृत्याखिलातेन अंशितापरमात्मना ॥ ७ ॥ महामारीपूतनाच कृत्याशकुनिरेवच ॥ कोटरीतामसीमाया एतेमातृगणास्स्मृताः ॥ ८ ॥ दुष्टदोषवहादुष्टास्सर्वप्राणिभयङ्कराः ॥ वशीचक्रेसधर्मात्मा सर्वकामवरप्रदः ॥ ९ ॥ क्षिप्रातीरेस्थितो नित्यं कूलेचोत्तरतश्शुभे ॥ आखरस्यपरेपूर्वे सोपतिष्ठतिसर्वदा ॥ १० ॥ आषाढस्यसितेपक्षे रविवारेसमाहिताः ॥ नवमीञ्चाष्टमीप्राप्य चतुर्दश्यांविशेषतः ॥ ११ ॥

लित रहताथा हे सत्तम ! उसी से ये दोषों के उत्पात नष्ट कियेजाते थे ॥ ६ ॥ पृथ्वी में सब विघ्नों को करनेवाले श्रेष्ठ तीनप्रकार के प्रसिद्ध हैं उस परमात्मा से सबकाल कृत्या अष्ट की गई ॥ ७ ॥ महामारी, पूतना, कृत्या, शकुनि, कोटरी, तामसी, माया ये मातृगण कहेहैं ॥ ८ ॥ जो कि दुष्टदोषों को प्राप्त करनेवाले व दुष्ट तथा सब प्राणियों को भयंकर हैं सब कामनाओं के वरदायक उस धर्मात्मा ने इन सबों को वशकिया ॥ ९ ॥ और क्षिप्रातरी के उत्तर ओर उत्तम किनारे पै वे नित्य स्थित हैं और आखर स्थान के पश्चिम व पूर्व में भी वे भैरवजी सदैव दिकेरहतेहैं ॥ १० ॥ आषाढ के शुक्लपक्ष में रविवार को नवमी व अष्टमी तिथिको पाकर

सावधान होतेहुये जो कोई निरचल मनवाले मनुष्य पूजन करते हैं वे अपने मनोरथ को प्राप्त होते हैं और विवाह, पुत्र जन्म व उत्तम मंगल कार्य में ॥ ११ ॥ १२ ॥ पत्र, पुष्प, अर्घ, गंध व अनेक भाति के नैवेद्यों से तथा सुगन्ध संयुत तांबूलों से वरदरूपी भैरवजी को पूजे ॥ १३ ॥ और ब्राह्मणों के भोजनों से तथा हवनो से सदैव व्यापक भैरवजी को तृप्त करे तदनन्तर परम कल्याण व परम मंगल को प्राप्त होवै है ॥ १४ ॥ और उन देवकों प्रणामकर व स्तुतिकर सब कामनाओं की अर्थ सिद्धिके लिये होता है ॥ १५ ॥ सब पातकों के हरनेवाले व धूर्तों तथा दुष्टोंके नाशक व उत्तम आचार व चरित पै चलनेवाले तथा मुंडों की माला को धारण कर-

पूजांकुर्वन्ति ये केचिन्नरानिश्चलमानसाः ॥ विवाहेपुत्रजनने माङ्गल्येषु भेदतया ॥ १२ ॥ पत्रपुष्पाधिगन्धैश्च नैवेद्यैर्विविधैस्तथा ॥ ताम्बूलैर्वासुगन्धाढ्यैः पूजयेद्भद्ररूपिणम् ॥ १३ ॥ विप्राणां भोजनैर्हर्मैस्तर्पयेत्सततं विभुम् ॥ ततः परमकल्याणमियात्परममङ्गलम् ॥ १४ ॥ नत्वास्तुत्वाचि तन्देवं सर्वकामार्थसिद्धये ॥ १५ ॥ सकलकलुषहारी धूर्तदुष्टान्तकारी सुचरचरितचारी मुण्डमालाप्रधारी ॥ करकलितकपाली कुण्डलीदण्डपाणिस्समभवत्सुखकारी भैरवस्त्रासहारी ॥ १६ ॥ विविधरासविलासविलासितं नवधूपप्रविधूतपराक्रमम् ॥ मदविधूणितयुग्मविलोचनं भयहरंसततं भवजंस्मरे ॥ १७ ॥ अमलकमलनेत्रं चारुचन्द्रावतंसं सकलगुणवरिष्ठं कामिनीकामरूपम् ॥ परिधुतपरितापं डाकिनीनाशहेतुं भजजनशिवरूपं भैरवं भूतनाथम् ॥ १८ ॥ सकलवत्सविधातं क्षेत्रपालैकपालं विकटकाटिकरालं साह

नेवाले व जिनके हाथ में कपाल शोभित है और कुण्डलों को धारण किये व दण्डको हाथ में लिये हैं वे भयहारक भैरवजी सुखकारक होवें ॥ १६ ॥ अनेक भाति के रास व विलास से शोभित और नवीन नारियों से कंपित पराक्रमवाले तथा मदसे घूमतेहुये युगल लोचनोवाले, भयहारक, शिवपुत्र (भैरव) जी को मैं सदैव स्मरण करता हूँ ॥ १७ ॥ निर्मल कमल के नाई नेत्रवाले व सुन्दर चन्द्रमारूपी अवतंस (शिरोभूषण) को धारण किये, सबगुणों से श्रेष्ठ व कामिनियों के लिये कामदेवरूप व सब ओर से सन्ताप को नाशकरनेवाले, और डाकिनियों के नाश के कारण व सेवकों के लिये कल्याणरूप भूतनाथ भैरवजी को भजिये ॥ १८ ॥

सब बलों को नष्ट करनेवाले व क्षेत्रपाल के एकही पालक तथा विकट कटि से करालरूप, अट्टहास समेत विशालरूप व हाथ में तलवार को लिये तथा साँपों का यज्ञोपवीत पहनेहुये जनके लिये शिवरूप भूतनाथ भैरवजी को भजिये ॥ १९ ॥ संसार के भयको हरनेवाले, योगिनियों को भयकारक, सब सुराणों के स्वामी व सुन्दर चन्द्रमा, सूर्य नेत्रवाले, मस्तकपै मुकुट को रचेहुये व विशाल मोतियों की मालको पहने जनके लिये कल्याणरूप भूतनाथ भैरवजी को भजिये ॥ २० ॥ चारमुजाओं को धारे व शंख तथा गदा इत्यादिक शस्त्रों को धारण किये, पीतवसनवाले तथा सघन मेघों के समान सुन्दर, श्रीवत्स चिह्नवाले, जिनके गल में कौरुभ

ह्रासं विशालम् ॥ करगतकरवालं नागयज्ञोपवीतं भजजनशिवरूपं भैरवं भूतनाथम् ॥ १९ ॥ भवमयपरिहारं योगिनी
त्रासकारं सकलसुरगणेशं चारुचन्द्रार्कनेत्रम् ॥ मुकुटरचितमालं मुक्तमालं विशालं भजजनशिवरूपं भैरवं भूतनाथ
म् ॥ २० ॥ चतुर्भुजं शङ्खगदाधरायुधं पीताम्बरसान्द्रपयोदसौभगम् ॥ श्रीवत्सलक्ष्मणलेशोभिकौस्तुभं शिवप्रदं शङ्कर
रत्नकम्भजे ॥ २१ ॥ लोकाभिरामं वचनाभिरामं प्रियाभिरामं यशसाभिरामम् ॥ कीर्त्याभिरामं तपसाभिरामं तम्भूत
नाथं शरणं प्रपद्ये ॥ २२ ॥ आद्यं ब्रह्मसनातनं शुचिपरं सिद्धिप्रदं कामदं सेव्यं भक्तिसमन्वितं सुरवरं सेव्यं सुभक्त्या सदा ॥
योग्यं योगविचारितं युगधरं योग्याननं योगिनं वन्दे हंसकलङ्करहितं सत्सेवितम् भैरवम् ॥ २३ ॥ भैरवाष्टकमिदं पुराय
प्रातःकाले पठेन्नरः ॥ दुःस्वप्ननाशनं तस्य वाञ्छितार्थफलं भवेत् ॥ २४ ॥ राजद्वारे विवादे च सङ्ग्रामे सङ्कटे तथा ॥ राजा

शोभित है उन कल्याण दायक व शंकरजी को रत्ना करनेवाले भैरवजी की मैं भजता हूँ ॥ २१ ॥ देखने में सुन्दर व वचन से मनोहर तथा प्रियसे सुन्दर व यश
से मनोहर, कीर्ति से सुन्दर, तपस्या से मनोहर उन भूतनाथजी के शरण में मैं प्राप्त होता हूँ ॥ २२ ॥ आदिमें होनेवाले सनातन ब्रह्म, पवित्रता में तत्पर, सिद्धि
दायक, कामनाओं को देनेवाले, सेवा के योग्य व भक्ति से संयुत, सुरश्रेष्ठ तथा सदैव उत्तम भक्ति से सेवने योग्य व यथार्थ योग को विचारनेवाले, युगधारी व
योग्य मुखवाले, कलाओं समेत व कलंकरहित, उत्तम जनों से सेवित भैरवयोगी को मैं प्रणाम करता हूँ ॥ २३ ॥ इस पवित्र भैरवाष्टक को जो मनुष्य प्रातःकाल पुनः

आगे कहूंगा ॥ ३ ॥ कि जिसके सुननेही से मनुष्य शाप से छूटजाता है हे परंतप ! पुरातन समय माता के शाप से जो नागभ्रष्टहुये ॥ ४ ॥ जनमेजय से जलायेहुये वे आस्तिक से छुड़ायेगये उस समय उन्होंने ने जरत्कारके पुत्र द्विजोत्तम आस्तिकजी से पूछा ॥ ५ ॥ नाग बोले कि हे ब्रह्मन् ! सुराज के समीप जनमेजय के इस यज्ञमें हमलोग तुम्हारी प्रसन्नतासे अग्निसे छुड़ायेगये ॥ ६ ॥ हे परंतप, ब्रह्मन् ! जब जिस स्थान में अभय निवासहोत्रे हमारे निवास के लिये ऐश्वर्य को चाहते हुये तुम वहां निवास बतलावो ॥ ७ ॥ आस्तिकजी बोले कि हे मातुलोमें श्रेष्ठ ! तुम लोगोंका जो उत्तम हित है उसको सुनिये कि मनोहर महाकाल वनमें जो कुशस्थली

वेन्नरः ॥ पुरानागाः परिभ्रष्टा मातुशपापात्परन्तप ॥ ४ ॥ जनमेजयेन दग्धास्ते मोक्षिता ह्यास्तिकेन च ॥ पप्रच्छुस्ते द्विज श्रेष्ठ जरत्कार्वात्मजंतदा ॥ ५ ॥ नागा ऊचुः ॥ हे ब्रह्मन् त्वत्प्रसादेन मोक्षिता हव्यवाहनात् ॥ जनमेजयस्य यज्ञेस्मिन्देव राजस्य सन्निधौ ॥ ६ ॥ अस्माकं भूतिमन्विच्छन् वासस्यार्थे परन्तप ॥ यस्मिन् स्थाने यदा ब्रह्मन् निवासो जायते भयः ॥ ७ ॥ आस्तिक उवाच ॥ श्रूयतां मातुलश्रेष्ठा युष्माकं हितमुत्तमम् ॥ महाकाल वनरम्ये यावैकुशस्थली स्मृता ॥ ८ ॥ त स्याद्विदक्षिणे भागे पूर्वतीर्थसनातनम् ॥ नागालयः पुराप्रोक्तो यत्र सन्निहितो हरः ॥ ९ ॥ योगनिद्रां समासाद्य शीते ब्रह्म सनातनः ॥ बकदाल्भ्योऽक्रुषिस्तत्र तपस्तेषु सनातनम् ॥ १० ॥ लोमशश्च महातेजास्तत्रैव सतु तिष्ठति ॥ दीर्घायुस्त्वं समा पन्नो मार्कण्डेयो महासुनिः ॥ ११ ॥ कालचक्रप्रवर्ती च महाकालप्रतापनः ॥ कपिलः सिद्धिमापन्नो यत्र तर्थावरोत्तमे ॥ १२ ॥ हरिश्चन्द्रो विमुक्तो भूत्वा एडालालयगर्हणात् ॥ सप्तर्षिप्रवराह्यते निर्वाणपदवर्गताः ॥ १३ ॥ एतस्मात्तत्कार

पुरी कहीगई है ॥ ८ ॥ उसके दक्षिण भाग में पहले सनातन तीर्थहुआ है पुरातन समय वहा नागस्थान कहागया है जहां कि महादेवजी भलीभांति ठिके हैं ॥ ९ ॥ और वहीं पर सनातन ब्रह्म योगनिद्राको प्राप्तहोकर सोते हैं व व्रतको धारण किये बकदाल्भ्य ऋषिने वहां तपस्याकिया है ॥ १० ॥ और इसी भांति बड़े तेजस्वी वे लोमशजी वहां ठिके हैं व महासुनि मार्कण्डेयजी बड़े आयुर्वल को प्राप्तहुये हैं ॥ ११ ॥ व महाकालको सन्ताप करनेवाले व कालचक्र के प्रवर्तक कपिलदेव जो जिस उत्तमोत्तम तीर्थ में सिद्धिका प्राप्तहुये हैं ॥ १२ ॥ व जहांपर हरिश्चन्द्रजी निन्दित चाण्डाल के घरसे मुक्त हुये हैं और ये श्रेष्ठ सप्तर्षिलोग जहां मोक्ष

पृथ्वीको प्राप्तहुये हैं ॥ १३ ॥ इसीकारण हे नागो ! बर्हिपर विरामकियाजावै क्योंकि वहाँ पर माताके शाप से उपजाहुआ दोष तुम लोगों को नहीं पीड़ितकौगा ॥ १४ ॥
आस्तिक ऋषि के इस वचनको सुनकर उस समय वे नागोत्तम निवास के लिये गये ॥ १५ ॥ एलापन्न, मल, कर्कोटक, घनंजय व नागों में श्रेष्ठ वासु कि, तत्त्वक व नील ॥ १६ ॥ पद्मक और प्रसिद्ध अर्बुद बहुत दिनोंतक नियमोंवाले उनसबों ने यहाँ आकर अपने स्थानों को किया ॥ १७ ॥ हे सत्तम ! वहाँ पर उत्तम व मनोहर तीर्थहुये हैं और तीर्थभूत नवीनकुण्ड हुये हैं ॥ १८ ॥ जो कि विद्वानों से महापुण्यवायक व महापातकों के इनेवाले कहेजाते हैं और जहाँ पर सिद्ध,

णान्नागास्तत्रैवचविरम्यताम् ॥ मातुःशापोद्भवोदोषोऽप्युष्माकमैवबाधते ॥ १४ ॥ एतत्तुवचनं श्रुत्वा ऋषेरास्तिक
कस्यच ॥ आगच्छन्तुतदातेवै वासार्थं पन्नगोत्तमाः ॥ १५ ॥ एलापन्नो मलश्चैव कर्कोटकधनञ्जयौ ॥ वासुकिः पन्नगश्रेष्ठ
स्तक्षको नील एवच ॥ १६ ॥ पद्मकोर्बुदविख्यातो नागास्ते सर्व एव हि ॥ अत्रागत्य स्वस्थानानि चक्रुस्ते सुचिरव्रताः ॥
१७ ॥ तत्र रम्याणि तीर्थानि जाता निपरमाणि च ॥ नवानि च मुकुण्डानि तीर्थभूतानि सत्तम ॥ १८ ॥ महापुण्यप्रदान्या
हुर्महापापहराणि च ॥ यत्र सिद्धाश्च गन्धर्वा ऋषयः शंसितव्रताः ॥ १९ ॥ अप्सरोगणसङ्घश्च सेवितं च सदा वरैः ॥ यत्र शो
षो महानागः पुरा प्रोक्तो महर्षिभिः ॥ २० ॥ शेषशायी ह्ययं विष्णुर्भगवान् कमलेश्वरः ॥ तत्र सर्वाणि तीर्थानि तिष्ठन्ति
भुविसर्वदा ॥ २१ ॥ इवेतद्दीपेति विख्याता माणिविक्रान्तभूमिका ॥ यत्र पुण्यानिष्ठानि पुष्पितानि च सर्वशः ॥ २२ ॥
हंसकारण्डकादि पिक्रकोकिलसारसाः ॥ मयूराणां गणास्तत्र नृत्यन्ति चरमन्ति च ॥ २३ ॥ निधिभिर्व्याप्तमखिलं

गंधर्व व प्रसंसित नियमोंवाले ऋषिलोग हैं ॥ १६ ॥ व जो तीर्थ सर्वैव अप्सराओं के गणों से सेवित हैं और जहाँ पर पहले महार्षियों से महानागशेषजी कहे
गये हैं ॥ २० ॥ व ये कमललोचन शेषशायी भगवान् विष्णुजी जहाँ पर हैं वहाँ सर्वैव सब तीर्थ पृथ्वी में स्थित हैं ॥ २१ ॥ मणियों से आक्रामित भूमिवाली रवेत-
द्दीपा ऐसी पृथ्वी प्रसिद्ध है जहाँ सब ओर फूलेहुये पुण्यमय वृक्ष हैं ॥ २२ ॥ और वहाँपर हंस, कारण्डव, काकादि, पिक्र, कोकिल, सारस व मयूरों के गण नाचते व

रमण करते हैं ॥ २३ ॥ और जो सब स्थान निधियों से व्याप्त व कमलों की सुगन्ध से वासित तथा उत्तमता से किन्नरों के उच्चशब्द से संयुत है ॥ २४ ॥ व जहांपर संस्कार कियेहुई स्त्रियां मित्रगणों के साथ विहार करती हैं व सुन्दरी नागकन्याओं से जोवड़ा अद्भुतस्थान शोभित है ॥ २५ ॥ जिस तीर्थ में नहाकर मनुष्य वैकुण्ठनामक उत्तम स्थान को प्राप्त होता है व उसमें नित्य नहाकर मनुष्य श्रीमान् होता है अन्यथा नहीं होता था ॥ २६ ॥ इसप्रकार हे व्यासजी ! सब पापोंको हरनेवाला उत्तम स्थान है व यहीपर उत्तमतीर्थरूप बलिका अद्भुत आश्रम है ॥ २७ ॥ यहां स्नानादिक करना चाहिये जहां कि विष्णुजी स्थित हैं क्योंकि उसीक्षण मनुष्य सब

नीलोत्पलसुगन्धिना ॥ वासित्वागुनाद्युभ्रं किन्नरोच्चविनादितम् ॥ २४ ॥ यत्रवैसंस्कृतानार्यो विहरन्तिमुहृद्गणैः ॥
रम्याभिर्नागकन्याभिर्मण्डितम्परमाद्भुतम् ॥ २५ ॥ यत्रस्नात्वानरोयाति वैकुण्ठाख्यंचशोभनम् ॥ तत्रस्नात्वानरो
नित्यं श्रीमान्भवतिनान्यथा ॥ २६ ॥ एवंयामपरंस्थानं सर्वपापहरं परम् ॥ अत्रैवचपरंतीर्थं बलेराश्रममद्भुतम् ॥
२७ ॥ अत्रस्नानादिकंकार्यं यत्रसन्निहितोहरिः ॥ सर्वपापविशुद्धात्मानरोभवतितत्त्वणात् ॥ २८ ॥ कियत्प्रमाण
मात्राञ्च योददातिवसुन्धराम् ॥ तनुरुहाणियावन्ति तावन्तिकालसङ्ख्यया ॥ २९ ॥ असङ्ख्यालभतेवृद्धिं तस्यलो
कःसनातनः ॥ श्रावणेमासिशुक्लेच पञ्चम्यांसोमवासरे ॥ ३० ॥ नागानांपूजनंकार्यं श्राद्धंदर्शविधीयते ॥ अक्षयझायते
श्राद्धं वाञ्छितार्थोभवेत्ततः ॥ ३१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेनागतीर्थमहिमानामष्टमस्तितमोऽध्यायः ॥ ७६ ॥

पापों से शुद्ध चित्त होता है ॥ २८ ॥ और जो मनुष्य कुछ प्रमाणभर, पृथ्वीको देता है तो जितने रोम होते हैं उतनेही वर्षोंतक कालकी संख्यासे ॥ २९ ॥ वह असंख्य वृद्धि को प्राप्त होता है और उसको सनातन लोक होता है श्रावण के महीने में शुक्लपक्ष में पंचमी व सोमवार में ॥ ३० ॥ नागों का पूजन करना चाहिये और अक्षय्य में श्राद्ध किया जाता है तो अक्षय्य श्राद्ध होता है व उससे चाहानुआ प्रयोजन होता है ॥ ३१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायां भाषा टीकायां नागतीर्थमहिमावर्णननामष्टमस्तितमोऽध्यायः ॥ ७६ ॥

दो० । अहै अतुल माहात्म्य युत तीर्थ नृसिंहक नाम । सतहचरि अथायमें सोइ चरित सुख धाम ॥ सनत्कुमारजी बोले कि हे व्यासजी ! तीर्थों के मध्य में जो उत्तम तीर्थ है वह सब पापों का नाशक तीर्थ महात्मा नृसिंहजी का है ॥ १ ॥ जिस के दर्शनमात्र से मनुष्य सब पापों से छुटजाता है पुरातन समय हिरण्यक-शिपु दैत्यराज कहागया है ॥ २ ॥ उस दुष्टात्मा ने इस सब पृथ्वी को पाया है और दुष्टदैत्यसेनाओं से व्याप्त तथा भारसे आक्रामित तथा शोच से विकल ॥ ३ ॥ दुःखित पृथ्वी आंसुओं से संयुत सुखवाली गऊ होकर ब्रह्मा की शरण में गई भार से आक्रामित पृथ्वी को देखकर लोकों के पितामह ब्रह्माजी ॥ ४ ॥ उसके परिश्रम

सनत्कुमार उवाच ॥ भूयःशृणु परं व्यास तीर्थानां मुत्तमं च यत् ॥ तर्तीर्थं सर्वपापघ्नं नृसिंहस्य महात्मनः ॥ १ ॥ यस्य दर्शनमात्रेण सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ दैत्यराजः समाख्यातो हिरण्यकशिपुः पुरा ॥ २ ॥ तेन यं वसुधासर्वा संप्राप्ता च दुर्ग रात्मना ॥ दुष्टदैत्यबलैर्व्याप्ता भाराक्रान्ता शुचादिता ॥ ३ ॥ गौर्भूत्वा श्रमुर्लुखित्वा ब्रह्माणं शरणं ययौ ॥ भाराक्रान्तान् न्य रात्मना ॥ दुष्टदैत्यबलैर्व्याप्ता भाराक्रान्ता शुचादिता ॥ ४ ॥ उवाच श्लक्ष्णयावाचा तच्छ्रमं व्यपोहितुम् ॥ श्रूयतां भो वनेषु एये भवत्या उपका रकम् ॥ ५ ॥ वचोददामि ते तथ्यं देशकालोचितन्तथा ॥ पुरानेन तपश्चाणं दुष्करं सर्वदेहिनाम् ॥ ६ ॥ गायत्र्युपासनं तेन कृतञ्चावहितात्मना ॥ ब्रह्मणा च वरोदत्तः प्रीतियुक्तेन चेतसा ॥ ७ ॥ न दिवानतथारात्रौ नान्तरिक्षेन भृतले ॥ नाति शृणु क्केण चार्द्धेण न च शस्त्रास्त्रघातिकैः ॥ ८ ॥ मानवैः पक्षिसङ्घैश्च न मे मृत्युर्भवेदिति ॥ एकपाणितलाघातैः सामात्य बलवाहनम् ॥ ९ ॥ मारुतिष्यति यो वीरः समेमृत्युर्भविष्यति ॥ तथैत्युक्त्वा तिहृष्टात्मा ब्रह्मालोकपितामहः ॥ १० ॥

को नाश करने के लिये, नम्र वचन से बोले कि हे पुण्यरूपे, पृथिवी ! जो तुम्हारा उपकारक है उसको सुनिये ॥ ५ ॥ मैं देश व समय के योग्य सत्यवचन को तुम्हें देता हूँ कि पहले इस दैत्य ने सब देहधारियों के कठिन तप को किया है ॥ ६ ॥ व सावधान मनवाले इसने गायत्री की उपासना किया है और प्रीतिसंयुत चित्त से ब्रह्मा ने वरदान दिया है ॥ ७ ॥ न दिनमें न रात्रि में न आकाश में न पृथ्वी में न बहुत-सूखे से न भाँगे से और न शस्त्रास्त्रों के मारने से ॥ ८ ॥ और मनुष्यों तथा पक्षीगणों से मरी मृत्यु न होवे और एकही चपोंटे के मारने से मंत्री, सेना व सवारी समेत सुभक्तों ॥ ९ ॥ जो वीर मारे वही मरी मृत्यु होवै बहुत अच्छा ऐसा

में मनुष्य नहार्कर व उत्तम दानको देकर आठ सौभाग्यों से सम्पूर्ण व वंसन समेत वांसेके पात्रको ॥ ३१ ॥ जो कि सप्तधान्य से संयुत व पंचरत्नों से शोभित हवे और ऊनीसूत्र से संयुत मालाओं व सुगन्धि इत्यादिकों को ॥ ३२ ॥ व हे परंतप ! शक्तिके अनुसार सोने की सावित्री बनाकर जो मनुष्य वेदवेदांग के जाननेवाले ब्राह्मण के लिये देता है ॥ ३३ ॥ वह बहुत सुखों को करनेवाली बहुत उत्तम लक्ष्मीको प्राप्तहोकर और अनेक भांति के भोगों को भोगकर फिर स्वर्गको पावेगा ॥ ३४ ॥ सावित्रीजी का व्रत करनेवाली स्त्री पति को प्यारी होती है और पतिव्रता व बड़े ऐश्वर्यवाली होती है ॥ ३५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीख

त्वा दत्त्वादानञ्चसौभगम् ॥ अष्टसौभाग्यसम्पूर्णं वंशपात्रं सवस्त्रकम् ॥ ३१ ॥ सप्तधान्यसमोपेतं पञ्चरत्नपरिष्कृतम् ॥ सौगन्ध्यादीनिमाल्यानि ऊर्णसूत्रसमायुतम् ॥ ३२ ॥ सावित्रीहाटकीकृत्वा यथाशक्तिपरन्तप ॥ यो वै ददाति विप्राय वेदवेदाङ्गगज्ञानिने ॥ ३३ ॥ लभते विपुलां लक्ष्मीं बहुभोगकरीं शुभाम् ॥ मुक्तावैविविधान्भोगान् पुनः स्वर्गमवाप्स्यते ॥ ३४ ॥ सावित्रीव्रतकृन्नारी जायते पतिवल्लभा ॥ पतिव्रता महाभागा विधवानकदाचन ॥ ३५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे नृसिंहतीर्थयात्रामहिमानामसप्तसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७७ ॥

सनत्कुमार उवाच ॥ शृणु व्यास परंतीर्थं भुवि विख्यातं विख्यातः फलदो यो महेश्वरः ॥ १ ॥ तस्य तीर्थवरं तीर्थं सर्वतीर्थफलप्रदम् ॥ यस्मिंस्तीर्थे नरः स्नात्वा कुटुम्बं लभते ध्रुवम् ॥ २ ॥ कुटुम्बार्थं तपस्तेपे पुरा दत्तः प्रजापतिः ॥ नारदेन पुरा व्यास पुत्रा षष्टिर्विवासिताः ॥ ३ ॥ प्रजो कामः स धर्मात्मा सुचिरं व्रतमाचरत् ॥ सपत्नीको

एडे देवी दयालु मिश्र चित्तायां भाषाटीका यांचुं सिंह तीर्थ यात्रा महिमा वर्णन नाम सप्तसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७७ ॥
दो० ॥ कुटुंबेश तीर्थ महे मिलत आहे फल जौन । अठहत्तरि अध्याय में कथित कथा सब तौन ॥ सनत्कुमारजी बोले कि पृथ्वी में प्रसिद्ध कारक उत्तम तीर्थ को सुनिये कि कुटुंबेश्वर ऐसे प्रसिद्ध जो फलदायक महादेवजी हैं ॥ १ ॥ उनका सब तीर्थों के फलको देनेवाला; तीर्थों में उत्तम तीर्थ है कि जिस तीर्थ में नहार्कर मनुष्य निश्चयकर कुटुंब को पाता है ॥ २ ॥ पुरातन समय दक्षप्रजापतिजी ने कुटुंब के लिये तप किया है व्यासजी ! पहले नारदजी ने उनके साठ पुत्रों को

विशेष भेज दिया ॥ ३ ॥ सन्तान की इच्छावाले, बड़े तेजवान् व जितेन्द्रिय ठन धर्मात्मा वृक्षजी ने स्त्रीसमेत निराहार होकर बहुत दिनोंतक यहा व्रत किया है ॥ ४ ॥ इस तीर्थ में नहाकर पवित्र होकर उन्होंने सनातनब्रह्म को जपा और हे व्यासजी ! दशहजार वर्षतक कठिन तप किया है ॥ ५ ॥ उस तीर्थ के प्रसाद से उन दक्ष जी ने बहुत प्रजा को पाया है व प्रतापवान् दक्षजी प्रजापति ऐसे प्रसिद्ध हुये ॥ ६ ॥ और ब्रह्मा ने भी वहाँ बहुतकठिन तपस्या कर उसीक्षण निष्कलंक व निर्मल रूप को पाया है ॥ ७ ॥ और वहाँपर महादेव ने भी ब्रह्मा के स्थान को पाया है हेसत्तम ! चतुर्मुखधारी लिंग आजभी देखपड़ता है ॥ ८ ॥ हे व्यासजी ! वहाँपर सिं-

महातेजा निराहारोजितेन्द्रियः ॥ ४ ॥ अस्मिंस्तीर्थेशुचिस्नातो जयद्ब्रह्मसनातनम् ॥ वर्षाणामयुतंव्यास तपस्तेपे सुदारुणम् ॥ ५ ॥ तेन तीर्थप्रसादेन सलेभे बहुलां प्रजाम् ॥ प्रजापतिरिति ख्यातो जातो दक्षः प्रतापवान् ॥ ६ ॥ ब्रह्मापि तत्रैव तपः कृत्वा सुबहुदुष्करम् ॥ निष्कलङ्कमलं रूपं प्राप्तवानेव तत्त्वणात् ॥ ७ ॥ महादेवोपितत्रैव प्राप्तवान् ब्रह्माणः पदम् ॥ चतुर्मुखधरं लिङ्गं दृश्यते चापि सत्तम ॥ ८ ॥ भद्रपीठस्थिता देवी भद्रकालीति विश्रुता ॥ तत्रैव च सदा व्यास कीडते स्म घृतव्रता ॥ ९ ॥ द्वारेतिष्ठति तत्रैव भैरवः क्षेत्रपालकः ॥ पादेन खञ्जतां यातः पुरादैत्यवरादितः ॥ १० ॥ पुत्रवत्पालितो देव्या सदातिष्ठति च त्वरे ॥ येते देवगणाः सर्वे तस्मिंस्तीर्थे प्रतिष्ठिताः ॥ ११ ॥ ऋषयोपि महाभागाः सदा पूर्वाणि पर्वणि ॥ आयायान्ति चैव सन्ध्यार्थं बहु पुत्रप्रदेसरे ॥ १२ ॥ अस्मिंस्तीर्थे सदा चाराः स्नानं कुर्वन्ति ये नराः ॥ न ते पांडुर्लभं किञ्चिज्जायते जन्म जन्मनि ॥ १३ ॥ महाव्याधिषु घोरानुसु महामारीषु तत्रैव ॥ हवनं क्रियते नित्यं सर्वपापैर्लाजितैर्य-

हासन पै स्थित व्रतको धारण किये भद्रकाली ऐसी प्रसिद्ध देवी सदैव क्रीडा करती है ॥ ६ ॥ वहाँपर क्षेत्रपालक भैरवजी द्वारपै टिके हैं जो कि उत्तम दैत्य से दुःखित होकर पुरातन समय चरण से खंजता को प्राप्त हुये हैं ॥ १० ॥ देवीजी से पुत्रकी नाई पाले हुये वे सदैव चौतरे पै स्थित हैं और जो देवगण हैं वे सब उस तीर्थ में प्रतिष्ठित हैं ॥ ११ ॥ व महात्मा ऋषिलोग भी सदैव पर्व पर्व में बहुत पुरणदायकतङ्गा में संध्या करने के लिये आते हैं ॥ १२ ॥ इस तीर्थ में उत्तम आचारवाले जो पुरुष स्नान करते हैं उनको जन्म जन्म में कुछ दुर्लभ नहीं होता है ॥ १३ ॥ और भयंकर बड़ी व्याधियों में व महामारियों में व वहां सब पुरवासियों से इकट्ठा कि-

येहुये यत्रों से व पायस (खीर) से नित्य हवन कियाजाता है और अनेक भांतिके रोगों से उनको दोष नहीं होता है दुर्भिक्ष व राज्य के अष्ट होनेपर तथा बहुत ही कठिन युद्ध होनेपर ॥ १४। १५ ॥ व सब आपत्तियों में सावधान होताहुआ जो मनुष्य क्षेत्रपालजी को पूजता है वह सब दुःखों से छूटजाता है इसमे सन्देह नहीं है ॥ १६ ॥ कुटुंबकतीर्थ में नहाकर व महादेवजी को पूजकर तपस्वी ब्राह्मणके लिये सुवर्ण, मणि, मुक्ता व वसन समेत कूभाडको दान देंगे तो मनुष्य कुटुंबमें धन व अन्न से संयुत होता है ॥ १७। १८ ॥ हे व्यासजी ! फागुन में कृष्णपक्ष में तेरसिसंयुत जो चौदसि होती है वह शिवरात्रि कहीजाती है ॥ १९ ॥ उमदिन मनुष्य

वैः ॥ १४ ॥ पायसैर्विविधैरौस्तेपांदोषोनजायते ॥ दुर्भिक्षेराज्यभ्रंशेच सङ्ग्रामेभृशदारुणे ॥ १५ ॥ पूजयेत्क्षेत्रपालं च सर्वापदिसमाहितः ॥ सर्वदुःखविनिर्मुक्तो जायेतेनावसंशयः ॥ १६ ॥ स्नात्वाकुटुम्बकेतीर्थे पूजयित्वा महेश्वरम् ॥ दानंकूष्माण्डकंदद्याद्ब्राह्मणायतपस्विने ॥ १७ ॥ सौवर्णमणिमुक्ताभिर्वासोलङ्कारसंयुतैः ॥ धनधान्यसमायुक्तः कुटुम्बेजायतेनरः ॥ १८ ॥ फाल्गुनेचासितेपक्षे भवेद्यावैचतुर्दशी ॥ त्रयोदशीयुताव्यास शिवरात्रिस्तुप्रोच्यते ॥ १९ ॥ तद्दिनेचनरःस्नात्वा रात्रौजागरणंचरेत् ॥ विल्वोदकमुगन्धेन बहुपुष्पफलेनवा ॥ २० ॥ धूपदीपैश्चनैवेद्यैर्वासोलङ्कारकादिभिः ॥ पूजयेद्योनरेनित्यं गिरिशंसगणंपरम् ॥ २१ ॥ तस्यपापंक्षयंयाति शिवलोकेमहीयते ॥ अश्वमेधाधिकंपुण्यं लभतेभुविमानवः ॥ २२ ॥ अश्वमेधफलंतस्यजागरेचक्षणेक्षणे ॥ ततस्तुप्रातरुत्थायस्नानदानादिकाः क्रियाः ॥ २३ ॥ कृत्वातुविधिवद्ब्यास शिवपूजाचर्चनंतथा ॥ विप्रांश्चभोजयेत्तप्तं तस्यपुण्यफलंशृणु ॥ २४ ॥ कपिलायाः

उस तीर्थ में नहाकर रात्रि में जागरण करे और विल्वपत्र व सुगन्धित जलसे तथा बहुत धूप व फलसे ॥ २० ॥ और धूप, दीप, नैवेद्य, वसन व अलंकारादिकों से जो मनुष्य नित्य गणोंसमेत उच्चम शिवदेवजी को पूजता है ॥ २१ ॥ उसका पाप नाशहोजाता है और वह शिवलोक में पूजाजाता है और पृथ्वी में मनुष्य अश्वमेध से अधिक फलको प्राप्तहोता है ॥ २२ ॥ और जागरण में उसको क्षणक्षणमें अश्वमेध यज्ञका फल होताहै तदनन्तर प्रातःकाल उठकर स्नान दानादिक कार्य ॥ २३ ॥ करके हे व्यासजी ! विधिपूर्वक शिवजीका पूजनकरे और सातब्राह्मणों को भोजन करावे उसके पुण्यका फल सुनिये ॥ २४ ॥ कि बखड़ा समेत चौदह

हज़ार कपिलागौवों के दान का फल व हज़ार वाजपेय यज्ञ का फल होता है अन्यथानहीं है ॥ २५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदेवीदयालुमिश्रविचितायां भाषाटीकायांकुटुम्बेश्वरतीर्थयात्रामाहात्म्यनामाष्टसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७८ ॥ * * * * *
दो० । है खण्डेश्वर देवकी महिमा अमित अपार । उन्नासी श्रद्धायामें चरित सहित विस्तार ॥ सनत्कुमारजी बोले कि हे व्यासजी ! महापुरुषवान् व अति उत्तम तीर्थको सुनिये जो कि सब पातकों का विनाशक देवप्रयाग ऐसा कहागया है ॥ ३ ॥ हे परंतप ! जहां तीर्थ है वहां देवताओं का उत्तम स्थान है सोमतीर्थ के उत्तर भा-

सवत्सायाः सहस्राणिचतुर्दश ॥ वाजपेयसहस्रस्य फलंभवतिनान्यथा ॥ २५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेकुटुम्बेश्वरतीर्थयात्रामाहात्म्यनामाष्टसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७८ ॥ * * * * *

सनत्कुमार उवाच ॥ शृणुव्यासमहापुरुषं तीर्थपरमशोभनम् ॥ देवप्रयागमाख्यातं सर्वपापप्रणशनम् ॥ १ ॥ देवानाञ्चपरंस्थानं यत्रतीर्थपरंतप ॥ सोमतीर्थोत्तरेभागेप्रयागस्यचदक्षिणे ॥ २ ॥ क्षिप्रायाःपूर्वभागेच तत्रतीर्थप्रतिष्ठितम् ॥ तत्रतीर्थेनरःस्नात्वा दृष्ट्वाचैवसुरोत्तमम् ॥ ३ ॥ देवमाधवविख्यातो भुविसर्वफलप्रदः ॥ ददाति तस्य देवेन्द्रो वाञ्छितार्थजगत्पतिः ॥ ४ ॥ आनन्दभैरवस्तत्र सर्वदेवनमस्कृतः ॥ यस्य दर्शनमात्रेण सर्वपापक्षयो भवेत् ॥ ५ ॥ नतस्य जायते व्यास यातनाभैरवीकदा ॥ स्वर्गद्वारे सदा व्यास जायते निर्भयः पुमान् ॥ ६ ॥ जेष्ठमासे सिते पक्षे दशम्यां बुधहस्तयोः ॥ दशहरा जायते व्यास गङ्गाजन्मपरः शुचिः ॥ ७ ॥ तद्दिने च नरः स्नात्वा सर्वतीर्थफलं लेभेत् ॥ अपरञ्च परं तीर्थं

गमें व प्रयाग के दक्षिण में ॥ २ ॥ व क्षिप्रानदी के पूर्वभागमें वहां तीर्थ प्रतिष्ठित है उस तीर्थ में नहाकर व सुरोत्तमजी को देखकर ॥ ३ ॥ पृथ्वी में सब फलको देनेवाले देवमाधव ऐसे प्रसिद्ध जगदीश देवेन्द्रजी उसको चाहेहुये मनोरथ को देते है ॥ ४ ॥ वहींपर सब देवताओंसे प्रणाम कियेहुये आनन्द भैरवजी है कि जिनके दर्शनहीं सब पातकों का नाशहोता है ॥ ५ ॥ और उसको कभी भैरवजी की पीड़ा नहीं होती है व हे व्यासजी ! स्वर्गद्वारमें मनुष्य निर्भय होता है ॥ ६ ॥ हे व्यासजी ! जेठमहीने में शुक्लपक्ष में दशमी तिथि को बुधदिन व हस्तनक्षत्र का योग होनेपर दशहरा होता है उसदिन गंगा जन्म में परायण व पवित्र मनुष्य श्री गंगाजी में

नहाकर सब तीर्थोंके फल को पाताहै इसके उपरान्त हे व्यासजी ! अन्य उत्तम तीर्थ को सुनिये ॥ ७८ ॥ कि जिनके सुननेहीसे व्रतका भंग नहीं होता है हे ब्रह्मन् ! पुरातन समय ब्रह्मविदोत्तम व उत्तम आचारवाला धर्मशर्मा ऐसा प्रसिद्ध ब्राह्मण था जो कि पवित्र व बहुत व्रतों को धारण करनेवाला तथा दान्त व वेद-वेदाङ्गों का पारगामी था ॥ ६१० ॥ कुछदोष के प्रसंगसे उसका व्रत पूर्ण नहीं होताथा इसप्रकार बहुत दिनोंवाले समय में देव दर्शन नारदजी ॥ ११ ॥ महा तपस्वी पहुनई के लिये हे ब्रह्मन् ! उसके घरको आये तब शीघ्रही उठकर ब्राह्मणने बहुत मानपूर्वक ॥ १२ ॥ सत्कार कर हे भूम्न ! विधिने देखेहुये कर्म से मुनिश्रेष्ठ नारद

शृणुव्यासअतःपरम् ॥ ८ ॥ यस्यश्रवणमात्रेण व्रतभङ्गोनजायते ॥ एकएवपुराब्रह्मन् ब्राह्मणोब्रह्मवित्तमः ॥ ९ ॥ धर्म शर्मेतिविख्यातः सदाचारतःशुचिः ॥ बहुव्रतधरोदान्तो वेदवेदाङ्गपारगः ॥ १० ॥ किञ्चिदोषप्रसङ्गेन व्रतपूर्णनजाय ते ॥ एवंबहुतिथेकाले नारदोदेवदर्शनः ॥ ११ ॥ तस्यगेहागतोब्रह्मन्नातिथ्यार्थमहातपाः ॥ तदोत्थायद्विजःशीघ्रं व हुमानपुरःसरम् ॥ १२ ॥ सत्कृत्यनारदंभूम्न विधिदृष्टेनकर्मणा ॥ पूजयित्वाद्विजश्रेष्ठः पप्रच्छमुनिसत्तमम् ॥ १३ ॥ भगवन्भवतासर्वं विदितंज्ञानचक्षुषा ॥ अस्माकंचपरोदोषःकश्चिज्जातःपुरानघ ॥ १४ ॥ येनपापप्रसङ्गेन व्रतभङ्गोभव वेदध्रुवम् ॥ कारणंब्रूहिमेनाथ कोदोषोत्रतुगणयते ॥ १५ ॥ नारद उवाच ॥ श्रूयतांभोद्विजश्रेष्ठ भवद्भिश्चपुराकृतम् ॥ महाराष्ट्रेसुविख्यातो ब्राह्मणोधनसञ्चकः ॥ १६ ॥ ब्रह्मदत्तेतिनाम्नावै वेदब्राह्मणनिन्दकः ॥ धनलोभपराकान्तः सर्व धर्मबहिर्मुखः ॥ १७ ॥ नास्तिकोदेवतीर्थेषु परद्रव्यापहारकः ॥ परस्त्रीरमतेनित्यं द्यूतवादीचतस्करः ॥ १८ ॥ एवमा

जी को पूजकर द्विजोत्तमने पूछा ॥ १३ ॥ कि हे भगवन् ! आपने ज्ञानदृष्टि से सबजाना है हे अनघ ! पुरातन समय मेरा कोई बडा दोष हुआ है ॥ १४ ॥ कि जिन पाप के प्रसंग से निश्चयकर व्रतका भंग होता है हे नाथ ! इसकारण को कहिये कि इसमें मेरा दोष गिनाजाता है ॥ १५ ॥ नारदजी बोले कि हे द्विजोत्तम ! पहले जो तुमसे कियागयाहै उसको सुनिये कि महाराष्ट्र देशमें धनका संचयकरनेवाला ब्रह्मदत्त नाम से प्रसिद्ध ब्राह्मण रहताथा जो कि वेदों व ब्राह्मणों की निन्दा करनेवाला व धन के लोभ से धिरा तथा सब धर्मों से विमुख ॥ १६१७ ॥ व नास्तिक और देवतीर्थों में पराये द्रव्यको हरनेवाला था वह नित्यही पराई स्त्री से

रमित तथा धूतवादी व चोरथा ॥ १८ ॥ इसप्रकार आयुर्वल से क्षीण वह धनहीन होगया तब इधर उधर घूमताहुआ अष्ट होकर गोदा नदी के किनारे प्राप्त वह चोरके कर्म व आचारवाला द्विज यात्रिकों के साथ संयोगको प्राप्तहुआ व कुछ समय में रोग से विकल वह मोह (मृत्यु) को प्राप्तहुआ ॥ १९॥२० ॥ उमी समय हे द्विज ! वह यमदूतों से यमपुरी में प्राप्त कियागया और यमराज के पुर में प्राप्त बहुत पापकारी व पाप में परायण इस ब्राह्मण को उस समय यमराज ने देखा व देखकर अचानकही दूतों से धर्मदायक वचन को कहा ॥ २१ ॥ २२ ॥ कि हे दूतो ! सावधान मननाले होकर तुमलोग सब सुनो कि इसने सब पातक व दुष्कर्म

युःपरिचीणो धनहीनोभवत्तदा ॥ इतस्ततोऽभमन्भ्रष्टो गोदातीरेसुविह्वलः ॥ १९ ॥ गतश्चोरक्रियाचारी यान्निकैःस हसद्गतः ॥ किञ्चित्कालेषुदुःशीलो मोहंप्राप्तोरुजादितः ॥ २० ॥ नीतःसंयमिर्नोविप्र तत्कालंयमकिङ्करैः ॥ यमराज पुरंप्राप्तो बहुपापकरोद्विज ॥ २१ ॥ दृष्टोसौधर्मराजेन तदापापपरायणः ॥ निरीक्ष्यसहसोवाच किङ्करान्वयमंदवचः ॥ २२ ॥ श्रूयतांकिङ्कराःसर्वे यूयमेकाग्रमानसाः ॥ अनेनाचरितंसर्वं दुष्कर्मसर्वकिल्बिषम् ॥ २३ ॥ गोदातीरेमृतःपापी तत्रैवकारणम्महत ॥ तिस्रःकोट्योद्धकोटिश्च यानितीर्थानिभूतले ॥ २४ ॥ आयान्तिगौतमीतीरे सिंहस्थेपिचहस्प तौ ॥ तेषान्तुवायुस्पर्शेन जातोऽस्यान्तःकलेवरं ॥ २५ ॥ तस्यपुण्यप्रभावेन नोऽस्माकङ्कारणंकचित् ॥ नोग्राह्योभवता चायं मुच्यतांभोपुरस्मराः ॥ २६ ॥ एवंतैर्मोचितोविप्रःपुनर्व्रह्मगतिद्वतः ॥ तेनपापप्रसङ्गेन व्रतभङ्गीगतोऽमुचि ॥ २७ ॥

ब्राह्मण उवाच ॥ ब्रह्मन्केनप्रकारेण सर्वपापक्षयोभवेत् ॥ किंतपःकिंचदानञ्च किंतीर्थंव्रतसेवनम् ॥ २८ ॥ येनपुण्य को किया है ॥ २३ ॥ और यह पापी गोदा के किनारे मराहै उसमें बड़ा कारणहै क्योंकि तीनकोड व अर्धकोड याने सादेतीन करोड जो तीर्थ पृथ्वी में है ॥ २४ ॥ वे बृहस्पति के सिंहराशि में स्थित होनेपर गौतमी नदी के किनारे आते हैं इसके शरीर में उनके पवन के स्पर्श से यह नाशहोगया ॥ २५ ॥ उसके पुण्य के प्रभावसे हमलोगों का कहीं कारण नहीं है हे अभ्रगामियो ! आपको इसे पकडना न चाहिये छोड़ दीजिये ॥ २६ ॥ इसप्रकार उन दूतोंसे छोड़ाहुआ ब्राह्मण फिर ब्रह्मकी गति को प्राप्तहुआ उसी पाप के प्रसंग से तुम पृथ्वी में व्रतभंग करनेवाले हुये ॥ २७ ॥ ब्राह्मण बोला कि हे ब्रह्मन् ! किस भांति से सब पापों का नाश होगा क्या तपहै

क्या दान है कौन तीर्थ है व कौन व्रतसेवन है ॥ २८ ॥ कि जिस पुण्यके प्रभावसे व्रतभंग नहीं होता है नारदजी बोले कि हे द्विजवरश्रेष्ठ ! सुनिये जो महाकाल वन कहा गया है ॥ २९ ॥ जहाँपर तत्त्वदर्शी ऋषिने रुद्रसर कहा है व हे द्विजोत्तम ! यहाँपर करोड़ों तीर्थ वर्तमान हैं ॥ ३० ॥ हे द्विज ! वहाँपर कोटितीर्थ ऐसा कहा हुआ सनातन तीर्थ है और उसके उत्तर ओर सब कामनाओं को देनेवाला उत्तम तीर्थ है ॥ ३१ ॥ जोकि खण्डेश्वर के समीप में प्राप्त नामसे खंडसर कहा गया है जिसके दर्शनसात्र से मनुष्य सब तीर्थों के फलको प्राप्त होता है ॥ ३२ ॥ इसलिये हे वत्स ! तुम सब प्रकार से वहाँ शीघ्रही जावो इस भाति उनके वचन

प्रभावेन व्रतभङ्गेन जायते ॥ नारद उवाच ॥ शृणु द्विजवरश्रेष्ठ महाकालवनं स्मृतम् ॥ २९ ॥ यत्र रुद्रसरः प्रोक्तं ऋषिणा तत्त्वदर्शिनः ॥ कोटिकोटिश्च तीर्थानि वर्तन्ते तत्र द्विजसनातनम् ॥ ३० ॥ कोटितीर्थमिति ख्यातं तत्र द्विजसनातनम् ॥ तस्य चोत्तरभागे च सुतीर्थं सर्वकामदम् ॥ ३१ ॥ नाम्ना खण्डसरः ख्यातं खण्डेश्वरसमीपगम् ॥ यस्य दर्शनमात्रेण सर्वतीर्थफलं लभेत ॥ ३२ ॥ तस्मात्त्वं सर्वथा वत्स गच्छ स्वतन्त्रमाचिरम् ॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा सद्विजो गात्कुमुद्वतीम् ॥ ३३ ॥ स्नात्वा खण्डसरे व्यास दृष्ट्वा देवं महेश्वरम् ॥ सद्यः पुण्यवतां लोकान् प्राप्तः स च द्विजोत्तमः ॥ ३४ ॥ एवं व्यासमहातीर्थं खण्डेश्वरमनुत्तमम् ॥ ३५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे खण्डेश्वरमहिमावर्णनत्रायै कोनाशीतितमोऽध्यायः ॥ ७९ ॥

सनत्कुमार उवाच ॥ भूयः शृणु परं तीर्थं सर्वतीर्थफलप्रदम् ॥ कीर्तितं ब्रह्मणा पूर्वं मार्कण्डेयस्य पृच्छतः ॥ १ ॥ शृ

को सुनकर वह ब्राह्मण कुमुद्वती पुरीको गया ॥ ३३ ॥ व हे व्यासजी ! खंडसर में नहाकर व महेश्वरदेवजी को देखकर वह द्विजोत्तम ! शीघ्रही पुण्यवानों के लोकों को प्राप्त हुआ ॥ ३४ ॥ हे व्यासजी ! ऐसा महातीर्थ व अति उत्तम खंडेश्वरदेवजी है ॥ ३५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचितायां भाषा टीकायां खण्डेश्वरमहिमावर्णनत्रायै कोनाशीतितमोऽध्यायः ॥ ७९ ॥ ॐ ॥ ॐ ॥ ॐ ॥ ॐ ॥ ॐ ॥ ॐ ॥ ॐ ॥ ॐ ॥ ॐ ॥ ॐ ॥

दो० । कर्क राज इमि तीर्थ जिमि है महिमा सयुक्त । सो अरसी अध्यायमे अहै कथा सब उक्त ॥ सनत्कुमारजी बोले कि सब तीर्थों के फलको देनेवाले उत्तम

तीर्थको फिर सुनिये जिसको पहले पूछते हुये मार्कण्डेयजी से ब्रह्माने कह है ॥ १ ॥ हे वत्स ! सुनिये कि महींतल पै जो अनूपम क्षिप्रानदी है उसके किनारे पै कर्क-
राज ऐसा प्रसिद्ध तीर्थ है ॥ २ ॥ कि जिसके भलीभांति दर्शनही से महापातकोंका नाश होताहै मनके सब विकार होते हैं और चंद्रमा मनसे उत्पन्न हुआ है ॥ ३ ॥
उसके स्थान (कर्कराशि) में प्राप्त उत्तम सूर्यनारायणजी यास्यायन करते हैं वे तीन ऋतुवें धूम्र व प्रकाशरहित कहींगई हैं ॥ ४ ॥ उस दक्षिणायन में मरेहुये योगी
भी संसारमें वर्तमान होते हैं हे परंतप ! चौमासेमें विष्णुजी के सोने पर जे मनुष्य व्रत से रहित होते हैं ॥ ५ ॥ हे वत्स ! उनकी उत्तमगति नहीं होती है यह मैं

णुवत्समहीपृष्ठे क्षिप्रायासदृशीनदी ॥ तस्यास्तीरेवरंतीर्थं कर्कराजेतिविश्रुतम् ॥ २ ॥ यस्यदर्शनमात्रेण महापापञ्च
योभवेत् ॥ विकारामानसास्सर्वे चन्द्रोमानससम्भवः ॥ ३ ॥ तस्यस्थानेगतोभानुर्याभ्यायनकरःपरः ॥ ऋतुत्रयंसमा
ख्यातं धूम्रोनार्चिस्तदुच्यते ॥ ४ ॥ तत्रमृत्वाप्रवर्तन्ते योगिनोपिपरन्तप ॥ चातुर्मास्येहरौसुप्ते येनरात्रतवर्जिताः ॥
५ ॥ नतेषांसद्गतिर्वत्स सत्यमेवब्रवीमि ते ॥ चातुर्मास्येमृतायेच येमृतादक्षिणायने ॥ ६ ॥ तेषामुद्धारणार्थाय तीर्थमेत
द्विनिर्मितम् ॥ कर्कराजइतिख्यातं सर्वलोकेपुगीयते ॥ ७ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ भगवन्भवतासर्वनिर्मितंविश्वमूर्तिना ॥
चराचरमिदंविश्वं जगत्सर्वजगत्पते ॥ ८ ॥ चातुर्मास्येहरौसुप्ते धर्माचारविधिःस्मृतः ॥ तदहंश्रोतुमिच्छामि त्वत्तो
ब्रह्मविदांवर ॥ ९ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ शृणुवत्सपरंपुरणं चातुर्मास्यफलंशुभम् ॥ यच्छ्रुत्वाभारतेखण्डे नृणांमुक्तिर्नदुर्लभा ॥
१० ॥ मुक्तिप्रदोयंभगवान् संसारोत्तमकारणः ॥ यस्यस्मरणमात्रेण सर्वपापक्षयोभवेत् ॥ ११ ॥ मानुषंदुर्लभंलोके

तुम से सत्य कहताहूं जो चौमासे में मरे हैं और जो दक्षिणायन में मरे हैं ॥ ६ ॥ उनके उधारने के लिये यह तीर्थ बनाया गया है जो कि कर्कराज ऐसा प्रसिद्ध
सबलोकों में गायाजाता है ॥ ७ ॥ मार्कण्डेयजी बोले कि हे भगवन् ! विश्वमूर्ति आपने सब निर्माण कियाहै व हे जगत्पते ! चराचर ! यह सब संसार आपहीसे होता
है ॥ ८ ॥ हे ब्रह्मविदांवर ! चौमासे में विष्णुजी के सोनेपर जो धर्म व आचारकी विधि कहींगई है उसको मैं तुमसे सुना चाहताहूं ॥ ९ ॥ ब्रह्माजी बोले कि हे वत्स !
परम पुण्यवाला चौमासे का उत्तम फल सुनिये कि जिसको सुनकर भरतखण्ड में मनुष्यों को मुक्ति दुर्लभ नहीं होती है ॥ १० ॥ क्योंकि संसार के उत्तम कारण-

भूत ये भगवान् मुक्तिदायक हैं जिनके स्मरणही से सब पातकों का नाश होता है ॥ ११ ॥ संसार में मनुष्य होना दुर्लभ है व उसमें भी कुलीनता दुर्लभ है और उस कुलीनता में भी संयम होना व उसमें भी सज्जनों का उत्तम समागम दुर्लभ है ॥ १२ ॥ जहाँपर सज्जनों का समागम व विष्णुजीकी भक्तिके व्रत नहीं हैं वहाँ चौमासेमें विशेषकर विष्णुजी के व्रतको करनेवाला उत्तम होता है ॥ १३ ॥ चौमासेमें जो नियमरहित होता है उसका पुराय निरर्थक होता है सब तीर्थ, दान व पवित्र देवमन्दिर ॥ १४ ॥ चौमासा आनेपर विष्णुजीके आश्रित होकर टिकते हैं और वे विष्णुजी सदैव कर्कराजनामक उत्तमतीर्थ में टिके हैं ॥ १५ ॥ उच्चम पुष्टिवाले शरीरसे

तत्रापिचकुलीनता ॥ तत्रापिसंयमत्वञ्च तत्रसत्सङ्गमःशुभः ॥ १२ ॥ सत्सङ्गमोनयत्रास्ति विष्णुभक्तिव्रतानिच ॥ चा
तुर्मास्येविशेषेण विष्णुव्रतकरःशुभः ॥ १३ ॥ चातुर्मास्येऽव्रतीयस्तु तस्यपुण्यंनिरर्थकम् ॥ सर्वतीर्थानिदानानि पुण्या
न्यायतनानिच ॥ १४ ॥ विष्णुमाश्रित्यतिष्ठन्ति चातुर्मास्येसमागते ॥ सविष्णुराश्रितो नित्यं कर्कराजेसुतीर्थके ॥
१५ ॥ सुषुष्टिकेनदेहेन जीवितंतस्यशोभनम् ॥ चातुर्मास्येसमायाते हरियेनचित्तस्तदा ॥ १६ ॥ कृतार्थास्तस्यवि
बुधा यावज्जीवंप्रदाः ॥ सम्प्राप्यमानुषन्देहं चातुर्मास्येपराब्धुखः ॥ १७ ॥ तस्यपापशतान्याहुर्देहस्थानिनसंश
यः ॥ मानुषंदुर्लभंलोके हरिभक्तिश्चदुर्लभा ॥ १८ ॥ चातुर्मास्येविशेषेण सुप्तेदेवजनार्दने ॥ चातुर्मास्येनराःस्नात्वा
कर्कराजेद्विजोत्तम ॥ १९ ॥ सर्वक्रतुफलंप्राप्य देववद्विमोदते ॥ विशेषेणतुतस्नानं कर्कस्थेपिदिवाकरे ॥ २० ॥ हु

उसका जीवन उत्तम है कि जिसने उस चौमासे में विष्णुजीको पूजा है ॥ १६ ॥ उसके ऊपर जीवनपर्यंत प्रसन्न होतेहुये देवता नरदायक होते हैं मनुष्य के शरीरको प्राप्त होकर जो चौमासे में नियम से विमुख होता है ॥ १७ ॥ उसके शरीर में स्थित सैकड़ों पाप कहेगये हैं इसमें सन्देह नहीं है संसार में मनुष्य होना व विष्णुजी की भक्ति दुर्लभ है ॥ १८ ॥ और चौमासे में विष्णुदेवजी के सोनेपर विशेषकर दुर्लभ है हे द्विजोत्तम ! चौमासे में कर्कराजतीर्थ में नहाकर मनुष्य ॥ १९ ॥ सब यज्ञों के फलको पाकर स्वर्ग में देवताओं की नाई प्रसन्न रहता है और सूर्यनारायणजी के कर्कराशि में टिकनेपर विशेषकर उसका स्नान करना चाहिये ॥ २० ॥ देवता,

दैत्यों व मनुष्योंसमेत सब प्राणियोंको उसका स्नान दुर्लभ है क्योंकि पहले देहकी पवित्रता करके मनुष्य मुक्तिके मार्ग को पाता है ॥ २१ ॥ तथापि भ्रान्ता, क्रूर, तड़ाग व सरोवर में भी जो मनुष्य नित्य नहाता है उसके पाप का नाश होता है ॥ २२ ॥ इसलिये देवताओं व दैत्यों से बावली पुण्यदायिनी नहीं कही गई है किन्तु पुष्कर व प्रयागमें और जहाँ कहीं बहुत जलमें ॥ २३ ॥ जो पुरुष चार महीनोंमें नहाताहै उसके पुण्यकी संख्या उससे अधिक होतीहै और नर्मदामें व भास्कर-क्षेत्र में तथा प्रार्चीसरस्वती व गंगासागर के सङ्गम में ॥ २४ ॥ चौमासे में जो मनुष्य एक दिन भी स्नान करता है वह दुःखभागी नहीं होता है जगदीशदेवजी

ल्लभंसर्वजन्तूनां ससुरासुरमानुषैः ॥ देहशुद्धिविधायादौ मुक्तिमार्गमवाप्नुयात् ॥ २१ ॥ तथापिनिर्भरेकूपे तडागेवास
रस्यपि ॥ यःस्नातिर्वैरानित्यं तस्यपापक्षयोभवेत् ॥ २२ ॥ तस्मान्नदीर्घिकापुण्या समाख्यातासुरासुरैः ॥ पुष्करेचप्र
यागेच यत्रक्वापिमहाजले ॥ २३ ॥ चातुर्मास्येषुयःस्नाति पुण्यसङ्ख्याततोधिका ॥ रेवायांभास्करेक्षेत्रे प्राच्यांसागर
सङ्गमे ॥ २४ ॥ एकाहमपियस्नाति चातुर्मास्येनहुःखभाक् ॥ दिनत्रयश्चयस्नाति नर्मदायांसमाहितः ॥ २५ ॥ सुप्तदेवे
जगन्नाथे पापंयातिसहस्रधा ॥ पक्षमेकश्चयस्नाति गोदावर्य्यादिनोदये ॥ २६ ॥ समित्त्वाकर्मजदेहं यातिविष्णोःसलो
कताम् ॥ अवन्त्याङ्ककंराजेतु साक्षाद्विष्णुर्भवेन्नरः ॥ क्षणमेकंक्षणाद्ध्वा चातुर्मास्येनलङ्घयेत् ॥ २७ ॥ तिलोदकेना
मलसंयुतेन बिल्वोदकेनापिचमज्जयेद्यः ॥ नतस्यजानामिफलाधिकं वै किन्तस्यकीदृच्छुनिभिःप्रणीतम् ॥ २८ ॥
गङ्गांस्मरतियोनित्यमुदपानसमीपतः ॥ तद्गङ्गेयञ्जलंजातं तेनस्नानंसमाचरेत् ॥ २९ ॥ गङ्गापिदेवदेवस्य चरणान्छु

के सोने पर सावधान होताहुआ जो मनुष्य तीन दिनतक नर्मदा में स्नान करताहै उसका पाप सहस्रखंड होजाता है और दिनके उदय में जो मनुष्य एक पक्षभर गोदावरी में स्नान करता है ॥ २५ ॥ २६ ॥ वह कर्म से उपजेहुये शरीरको नाशकर विष्णुजी की सलोकता को प्राप्त होता है अवन्तीपुरी में कर्कराजतीर्थ में मनुष्य साक्षात् विष्णु होताहै एक क्षण व आधा क्षण चौमासे में नियम से उल्लङ्घन करना न चाहिये ॥ २७ ॥ आँवलासे संयुत तिल मिलेहुये जलसे व बिल्व से मिश्रित जलसे जो मनुष्य स्नान करताहै उसके अधिक फलको मैं नहीं जानता हूं कि मुनियों से वह कैसा कहागया है ॥ २८ ॥ जो मनुष्य नित्य कूप के समीप

ब्रह्माजी ने इस प्रकार कहा है इस लिये सब यत्न से महाकालवनको जाइये ॥ ४८ ॥ वहीं पर हमलोगों का भी अति उत्तम स्थान है चौमासे में विष्णुजी के सोनेपर जब तक बोधिनी एकादशी नहीं आती है ॥ ४९ ॥ उतने समय तक वहां मुक्ति है इस में सन्देह नहीं है व चौमासे में विष्णुजी के सोनेपर यदि वहां जो मनुष्य शरीर को छोड़ता है ॥ ५० ॥ तो यमलोक में इसका निवास नहीं होता है इस में सन्देह नहीं है इसलिये तुलसी के सर्माप व शालग्राम के सर्माप तथा देवालय में ॥ ५१ ॥ आत्माको प्रणयन कर उसी में जबतक योजित करै जब तक कि प्रबोधिनी द्वादशी होवै ॥ ५२ ॥ पश्चात् घृत व सुवर्ण से आत्माको छुड़ाकर

तत्रैव स्थानम्परमशोभनम् ॥ चातुर्मास्येहरौसुप्ते यावन्नायातिबोधिनी ॥ ४९ ॥ तावत्कालंहितव्रास्ति मुक्तिरेवनसंशयः ॥ चातुर्मास्येहरौसुप्ते जहातिचेत्कलेवरम् ॥ ५० ॥ यमलोकेनास्यवासो जायतेनावसंशयः ॥ तस्मात्तुलसीसर्मापे शालग्रामेसुरालये ॥ ५१ ॥ आत्मानंप्रणयीकृत्य तत्रैवसन्नियोजयेत् ॥ यावत्प्रबोधिनीचेति द्वादशीद्विजसत्तम ॥ ५२ ॥ पश्चाद्घृतसुवर्णेन मोचयित्वास्वकन्नयेत् ॥ चातुर्मास्योद्भवोदोषो बाधतेमुन्नमानवम् ॥ ५३ ॥ यस्यक्षिप्रोदके स्नानं कर्कराजेषुजायते ॥ एवंव्यासवरन्तीर्थं सर्वतीर्थफलप्रदम् ॥ ५४ ॥ पृथिव्यांयानितीर्थानि सरितस्सागराश्चये ॥ तेचसर्वेसमायान्ति चातुर्मास्येद्विजोत्तम ॥ ५५ ॥ तस्माच्चतद्वरन्तीर्थं कर्कराजेतियत्स्मृतम् ॥ यएतावैकथाम्पुण्यांशृएवन्तिश्रावयन्तिच ॥ ५६ ॥ नतेषांजायतेदोषश्चातुर्मास्योद्भवःकदा ॥ ५७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेकर्कराजतीर्थमहिमवर्णनब्रामाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८० ॥

ले श्रावै चातुर्मास्य से उपजाहुआ दोष इस मनुष्यको नहीं पीड़ित करता है ॥ ५३ ॥ कि जिसका स्नान क्षिप्रानदी के जलमें व कर्कराजतीर्थों में स्नान होता है हे व्यास जी ! इसप्रकार सब तीर्थोंके फलको देनेवाला उत्तम तीर्थ है ॥ ५४ ॥ पृथ्वी में जो तीर्थ व नदियां और जो समुद्र हैं हे द्विजोत्तम ! वे सब चौमासेमें इस तीर्थ में भली भांति आते हैं ॥ ५५ ॥ उमीकारण वह उत्तम तीर्थ है जो कि कर्कराज ऐसा कहागया है जो मनुष्य इस पुण्यकथाको सुनते व सुनते हैं ॥ ५६ ॥ उनको कभी चौमासेसे उपजा हुआ दोष नहीं होता है ॥ ५७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांकार्कराजतीर्थमहिमवर्णनब्रामाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८० ॥

दो० । देवतीर्थ यात्रा किये जो फल होते अनूप । इक्यासी अध्याय में कक्षोसोई मुनिभूष ॥ सनत्कुमारजी बोले कि सुमेरुगिरिके दक्षिणभाग में व दुरधकुंडक उच्चर में ऋषभनामक श्रेष्ठपर्वत देवताओं व गंधर्वों से सेवित है ॥ १ ॥ जहांपर हे द्विज ! सदैव सुन्दरी देवांगना क्रीड़ा करती हैं वहांपर सब कामनाओं को देने वाला रम्यनामक तड़ाग स्थित है ॥ २ ॥ उस तीर्थ में नहाकर मनुष्य निश्चयकर उत्तम ऐश्वर्यवान् होता है जहांपर देवता क्रीड़ा करते हैं वह उत्तमतीर्थ पृथ्वी में प्रसिद्ध है ॥ ३ ॥ भादों महीने में अनुराधा नक्षत्र से संयुत शुक्लपक्ष की अष्टमी में उसदिन यहां आकर जो मनुष्य स्नान दानादिक कर्मों को ॥ ४ ॥ सदैव करते हैं

सनत्कुमारउवाच ॥ मेरोश्रदक्षिणभागे दुग्धकुण्डोत्तरेतथा ॥ ऋषभाख्योगिरिश्रेष्ठो देवगन्धर्वसेवितः ॥ १ ॥
यत्रदेवाङ्गनारम्याः क्रीडन्तिसततंद्विज ॥ तत्ररम्यंसरोनाम तिष्ठतिसर्वकामदम् ॥ २ ॥ तत्रतीर्थेनरःस्नात्वा सुभगा
जायतेध्रुवम् ॥ यत्रदेवाश्चक्रीडन्ति भुवि विख्यातकंपरम् ॥ ३ ॥ भाद्रेमासिसिताष्टम्यां युक्तायामनुराधया ॥ तद्दिनेत्र
समागम्य स्नानदानादिकाःक्रियाः ॥ ४ ॥ कुर्वन्तिसततंव्यास तेषांलोकाःसनातनाः ॥ मेरोश्चसातुकेतीर्थे दिव्यम्प
रमशोभनम् ॥ ५ ॥ बिन्दुसारोतिविख्यातं सर्वकामवरप्रदम् ॥ गङ्गासरस्वतीपुण्या सरयूश्चतपस्विनी ॥ ६ ॥ एताःस
रिद्धराःप्राप्ता राजन्मृत्यवतीसुत ॥ येसिद्धायेचसाधर्मीश्च महात्मानस्तपस्विनः ॥ ७ ॥ उपासाञ्चक्रिरेतस्मिस्तत्रतो
र्थेहिसर्वदा ॥ तत्रतीर्थेनरःस्नात्वा सर्वार्थान्प्राप्नुतेध्रुवम् ॥ ८ ॥ भाद्रेमासिचशुक्लौ चतुर्थीयाप्रकीर्तिता ॥ सिद्धासा
सर्वदाप्राप्ता यत्रजातो गणाधिपः ॥ ९ ॥ कामेश्वरइतिख्यातः सर्वकामवरप्रदः ॥ तस्यतीरेनरःस्नात्वा दृष्ट्वादिवंगणे

दे व्यामजो ! उनको सनातन लोकेंहोते हैं और सुमेरुगिरिके शिखरपै, अति उत्तम दिव्यतीर्थ है ॥ ५ ॥ बिन्दुमार ऐसा प्रसिद्ध वह सब कामनाओं के वरों को देनेवाला है गंगा व सरस्वती तथा तपस्विनी व पुण्यदायिनी सरयूजी ॥ ६ ॥ हे सत्यवती के पुत्र, राजन् ! ये उत्तम नदियां वहां पर प्राप्त हैं जो सिद्ध, साध्य व महात्मा तपस्वी लोग हैं ॥ ७ ॥ उन्होंने सदैव वहाँ उसतीर्थ में उपासना किया है उसतीर्थ में नहाकर मनुष्य निश्चयकर सब अर्थों को प्राप्त होता है ॥ ८ ॥ भादों महीने में जो शुक्लपक्षवाली चौथि कहींगई है वह सदैव सिद्ध कही गई है जिसमें कि गणेशजी पैदा हुए हैं ॥ ९ ॥ और कामेश्वर ऐसे प्रसिद्ध सब कामनाओं के वरों

की देनेवाले हैं उनके तीर्थ में मनुष्य नहाकर व गणेशदेवजी को देखकर ॥ १० ॥ सैकड़ों मनोरथों को पाकर मनुज कामचारी होता है ॥ ११ ॥ व्यासजी बोले कि हे ऋषिश्रेष्ठ, व्यास जी ! पापहारिणी उत्तम कथा को सुनिये हे महामुने ! उज्जयिनी पुरी में जो तीर्थ हैं ॥ १२ ॥ उन सबों को साठहजार वर्षों से भी कहने के लिये चारमुखवाले ब्रह्मा भी कभी समर्थ नहीं हैं ॥ १३ ॥ मेघमालाओं के जितने जलके बूंद गिरते हैं व पृथ्वी में जितनी तृणकी संख्या है व भूमि में जितने बालू के किनके हैं ॥ १४ ॥ और आकाश के नक्षत्रों की संख्या को कहने के लिये कोई भी नहीं समर्थ है वैसेही हे तपोधन ! अवन्तीपुरी में तीर्थों की संख्या नहीं

इवरम् ॥ १० ॥ मनोरथशतम्प्राप्य कामचारीभवेन्नरः ॥ ११ ॥ व्यासउवाच ॥ शृणुव्यासऋषिश्रेष्ठ कथाम्पापहरा
म्पराम् ॥ उज्जयिन्याञ्चतीर्थानि यानिसन्तिमहामुने ॥ १२ ॥ तानिसर्वाण्यसौदेवः स्वयम्भूश्चतुराननः ॥ वर्षाणामयु
तैःषड्भिर्नचक्नुंकदाचन ॥ १३ ॥ यावन्तिमेघमालानां पतन्तिजलविन्दवः ॥ धरित्र्यांतृणसंख्यावै पृथिव्यांसिकतास्त
था ॥ १४ ॥ नभसोज्योतिषांसङ्ख्यां वक्तुंकोपिनशक्नुयात् ॥ नतीर्थानांतथासङ्ख्या संत्यवन्त्यांतपोधन ॥ १५ ॥ अन्त
रिक्षेचमदिन्यां तीर्थभूतापुरीत्वियम् ॥ वापीकूपतडागादि प्रस्नावोभरणानिच ॥ १६ ॥ नदीसरांसिखाताड्यच तीर्थभूत
हिसर्वशः ॥ तथापिदेवयात्रात्वं प्रसङ्गेननिबोधमे ॥ १७ ॥ यानिकानिचमुख्यानि तानितुभ्यंवदाम्यहम् ॥ यज्ज्ञात्वामो
क्ष्यसे नित्यंसर्वाचारैः शुभाशुभैः ॥ १८ ॥ प्रातरुत्थाययोनित्यंशुचिःप्रयतमानसः ॥ श्रुत्ववैसर्गंधादि तिलाक्षतसम
न्वितः ॥ १९ ॥ स्नात्वा रुद्रसरेतात तथैवव्रतमाचरेत् ॥ ऊर्जेचमाघमासेवै वैशाखाषाढयोस्तथा ॥ २० ॥ शिवरा

है ॥ १५ ॥ आकाश व पृथ्वीमें यह पुरी तीर्थभूतहै बावली, कूप, तडागादिकों का प्रवाह व भरना ॥ १६ ॥ और नदी, तडाग व खात ये सब वहां तीर्थभूत हैं तो भी तुम प्रसंग से तीर्थयात्रा को मुझसे सुनो ॥ १७ ॥ जो कोई मुख्य हैं उनको मैं तुमसे कहता हूँ कि जिसको जानकर नित्य शुभाशुभ सब आचारोंसे छुटोगे ॥ १८ ॥ नित्य प्रातःकाल उठकर पवित्रमनवाला जो पवित्र मनुष्य इसको सुनकर सब गंधादिक, तिल व अक्षतोंसे संयुत होकर ॥ १९ ॥ हे तात ! रुद्रसर में नहाकर वैसे

ही व्रत करता है वह सब पापों से छुटजाता है और कार्तिक व माघ महीने में तथा वैशाख व आषाढ में ॥ २० ॥ व विशेषकर शिवरात्रि में देवअन्न प्रशस्त है जिस देवता का जो तीर्थ है उस देवता के समीप ॥ २१ ॥ वहां अभिषेक व देवता का पूजन करना चाहिये जो विधिपूर्वक यात्रा करता है वह सब फलको भोगता है ॥ २२ ॥ इसलिये सब थल से मनुष्य देवयात्रा करे ॥ २३ ॥ व्यासजी बोले कि हे ब्रह्मन् ! मनुष्य किसप्रकारसे देवयात्रा करे हे तपोधन ! उस सबको मैं विस्तार से सुना चाहता हूँ ॥ २४ ॥ सनत्कुमारजी बोले कि हे व्यासजी ! जैसा सुनागया है वैसेही परम गुप्तचरित्र को मैं कहूंगा उसको सुनिये ॥ २५ ॥ पार्वती व महादेव व्याविशेषेण देवयात्राप्रशस्यते ॥ यस्य देवस्य यत्तीर्थं तस्य देवस्य सन्निधौ ॥ २१ ॥ तत्राभिषेकं कार्यं देवतायाश्च पूज जनम् ॥ विधिवदाचरेद्यस्तु सकलं फलमश्नुते ॥ २२ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन देवयात्रां समाचरेत् ॥ २३ ॥ व्यास उवाच ॥ ब्रह्मन् केन प्रकारेण देवयात्राञ्चरेन्नरः ॥ तत्सर्वं श्रोतुमिच्छामि विस्तरेण तपोधन ॥ २४ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ शृणु व्यास परं गुह्यं प्रवक्ष्यामि यथा श्रुतम् ॥ २५ ॥ उमा महेशसंवादं देवयात्रादिकर्मसु ॥ उमोवाच ॥ प्रभातः कथ्यतां देव क्षेत्रस्यास्य महेश्वर ॥ २६ ॥ यानि तीर्थानि विद्यन्ते यानि लिङ्गानि सन्ति वै ॥ तान्याहुतो देवभूमन् वदस्व वदतांवर ॥ २७ ॥ ईश्वर उवाच ॥ शृणु देवि प्रयत्नेन प्रभावं पापनाशम् ॥ क्षेत्रमाद्यं महादेवि ममातीर्षा प्रियंसदा ॥ २८ ॥ यत्र चिप्रा महापुण्या दिव्यानवनदी प्रिया ॥ नीलगङ्गा प्रियामेव तथा गन्धवती नदी ॥ २९ ॥ चत्वारो मे प्रियानद्यः कुमुदृत्या हि सुव्रते ॥ ईश्वराश्च तुराणीतिस्तथाष्टौ सन्ति भैरवा ॥ ३० ॥ एकादश तथा रुद्रा आदित्या द्वादश स्मृताः ॥ षड्वैविनाय जी का जो संवाद कि देव यात्रादिक कर्मों में हुआ है पार्वतीजी बोलीं कि हे महेश्वर, देवजी ! इस क्षेत्र के प्रभाव को कहिये ॥ २६ ॥ हे भूमन्, देव ! जो तीर्थ व जो लिङ्ग विद्यमान हैं हे वदतांवर ! उनको आदर से कहिये ॥ २७ ॥ महादेवजी बोले कि हे देवि ! बड़े यत्ने से पापनाशक प्रभाव को सुनिये हे महादेवि ! वह आदितीर्थ मुझको सदैव बड़ा प्यारा है ॥ २८ ॥ जहां कि महापुण्यदायिनी दिव्यक्षिप्रानदी व प्यारी नवनदी है नीलगंगा व गंधवती नदी मुझको प्यारी है ॥ २९ ॥ हे सुव्रते ! कुमुदती पुरी में मुझको प्यारा चार नदियां हैं व चौरासी महादेव तथा आठ भैरव हैं ॥ ३० ॥ वैसेही गेरह रुद्र व बारह आदित्य (सूर्य) कहे गये हैं और

यहां छा विनायक व चौबिस देविया हैं ॥ ३१ ॥ हे भद्र ! जिसलिये उत्तम महाकाल वनमें मैं आया उसी कारण हे शुभे ! यहींपर विष्णु व ब्रह्मादिक सब उपस्थित हुये ॥ ३२ ॥ हे देवि ! योजन भर की प्रमाण को प्राप्त यह क्षेत्र देवातओं से व्याप्त है जो दशविष्णु कहेगये हैं उनके नामों को सुझमे सुनिये ॥ ३३ ॥ कि वासुदेव, अनन्त, बलराम, जनार्दन, नारायण, हर्षकिश, वाराह, धरणीभर, ॥ ३४ ॥ व वामनरूप से विष्णुजी तथा लक्ष्मीजी के स्थान शेषशायी भगवान् ये उत्तम दश विष्णु सब पातकों के हरनेवाले कहेगये हैं ॥ ३५ ॥ पार्वतीजी बोलीं कि हे भगवन् ! मनोहर महाकाल वनमें जो देवेश बसते हैं उन देवताओं के चरित्रों को क्रमसे

काश्चात्र देव्यश्चचतुर्विंशतिः ॥ ३१ ॥ यतोहमागतोऽद्रमहाकालवनोत्तमे ॥ विष्णुब्रह्मादयःसर्वे ह्यत्रैवनिहिताःशुभे ॥ ३२ ॥ देवैर्व्याप्तमिदंक्षेत्रं देवियोजनमागतम् ॥ दशविष्णवआख्यातास्तेषानामानिमेष्टृणु ॥ ३३ ॥ वासुदेवो ह्यनन्तश्च बलरामोऽजनार्दनः ॥ नारायणोऽहर्षकिशो वाराहोऽधरणीधरः ॥ ३४ ॥ विष्णुर्वामनरूपेण शेषशायीरमालयः ॥ दशैतेविष्णवःप्रोक्ताः सर्वपापहराःपराः ॥ ३५ ॥ उमोवाच ॥ भगवञ्छ्रेतुमिच्छामि देवानामनुपूर्वशः ॥ महाकालवनेरम्ये येषसन्तिमुखेश्वराः ॥ ३६ ॥ विनायकाभैरवाश्च दैत्यायेपवनात्मजाः ॥ रुद्रादित्यास्तथाचान्ये तेषां नामानिमेप्रभो ॥ ३७ ॥ ईश्वरउवाच ॥ ऋद्धिदःसिद्धिदोनित्यं कामदैवैगणाधिपः ॥ विघ्नहाचप्रमोदीच चतुर्थव्रतकप्रियः ॥ ३८ ॥ षडैतैवसमाख्याता विघ्ननाशकराःपराः ॥ उमाचण्डीश्वरीगौरी ऋद्धिदासिद्धिदानृणाम् ॥ ३९ ॥ वटयन्त्रिणीर्वीरभद्रत्यष्टौतामातरःस्मृताः ॥ महामायासतीख्याता कपालमातृकातथा ॥ ४० ॥ अम्बिकाशीतलाचैव एका

लगाकर सुनना चाहताहूँ ॥ ३६ ॥ विनायक, भैरव, दैत्य व जो पवन कुमार हैं व रुद्र, आदित्य तथा अन्य जो कोई हैं हे प्रभो ! मुझसे उनके नामोंको कहिये ॥ ३७ ॥ महादेवजी बोले कि ऋद्धिदायक, सिद्धिदायक व नित्यही कामदायक, गणनायक, विघ्ननाशक, आनन्दी व चतुर्थी व्रतप्रिय ॥ ३८ ॥ ये छः उत्तम विघ्ननाशक कहेगये हैं और उमा, चंडी, ईश्वरी, गौरी व मनुष्यों को ऋद्धिदायिनी तथा सिद्धिदायिनी ॥ ३९ ॥ और वटयन्त्रिणी व श्रीरभद्रा ये आठ वे मातृका कहीगई हैं महा-

माया सती कही गई हैं और कपाल मातृका ॥ ४० ॥ व अंबिका शीतला तथा एका, अनन्ता, अष्टसिद्धिदायिनी, ब्रह्माणी, पार्वती व योगसे शोभित योगिनी ॥ ४१ ॥ कौमारी, भगवती व छा कृत्तिकाए ये चर्पटमातृका व वटमातृका कही गई हैं ॥ ४२ ॥ और सरस्वती कही गई हैं व प्रसिद्ध महालक्ष्मी ये योगिनी मातृका कही गई हैं और चौंसठिमातृका कही गई हैं ॥ ४३ ॥ और कालिका, महाकाली, ब्रह्मचारिणी, चामुण्डा व वैष्णवी कही गई हैं और वाराही, विन्ध्यवासिनी ॥ ४४ ॥ और अंबा अंबालिका ये उत्तम चौबीस मातृकाएं हैं व हनुमान्, ब्रह्मचारी, कुमारेण व महावली ॥ ४५ ॥ इनचार पवनपुत्रोंको मैंने तुमसे कहा और पराक्रमी दंडपाश्वि व

नन्ताष्टसिद्धिदा ॥ ब्रह्माणीपार्वतीचैव षट्कृत्तिकास्तथैव च ॥ च
पटमातृकाः ख्याता वटमातरस्तथैव च ॥ ४२ ॥ सरस्वती तथा ख्याता महालक्ष्मीश्च विश्रुता ॥ योगिनीमातृकाः ख्या
ताश्चतुः षण्मातृकाः स्मृताः ॥ ४३ ॥ कालिका च महाकाली चामुण्डा ब्रह्मचारिणी ॥ वैष्णवी च समाख्याता वाराही
विन्ध्यवासिनी ॥ ४४ ॥ अम्बा चाम्बालिका चैव चतुर्विंशतिकाः पराः ॥ हनुमान् ब्रह्मचारी च कुमारेणो महावली ॥
४५ ॥ चत्वारो वै समाख्याता मया ते पवनात्मजाः ॥ दण्डपाणिश्च विक्रान्तो महाभैरवमंजितः ॥ ४६ ॥ वटुको बाल
को नन्दी षट्पञ्चाशतकोपरः ॥ कालभैरव विख्यातो महापापहरः परः ॥ ४७ ॥ कपर्दी च कपाली च कलानाथा वृषास
नः ॥ त्र्यम्बकः शूलपाणिश्च चीरवासादिगम्बरः ॥ ४८ ॥ गिरीशः कामचारी च शर्वः सर्वाङ्गभूषणः ॥ रुद्राश्चैकादशप्रो
क्ताः सर्वशत्रुविनाशनाः ॥ ४९ ॥ अरुणः सूर्यवेदाङ्गो भानुश्चर विंशुमान् ॥ सुवर्णरेताहः कर्ता भित्रो विष्णुः सनातनः ॥
५० ॥ इत्येते द्वादशादित्याः सर्वरोगहराः पराः ॥ अगस्त्येऽश्वरमुख्यानां लिङ्गानाञ्च तुराशिनाम् ॥ ५१ ॥ हिमाचल

महाभैरव नामक ॥ ४६ ॥ वटुक, बालक, नन्दी व अन्य षट्पञ्चाशतक तथा प्रसिद्ध कालभैरव व अन्य महापापहारक हैं ॥ ४७ ॥ और कपर्दी, कपाली, कलानाथ, वृषासन, त्रिलोचन, शूलपाणि, चीरवासा, दिगम्बर ॥ ४८ ॥ गिरीश, कामचारी व शर्व, सर्वाङ्गभूषण ये सब शत्रुओं के विनाशकारक गेरुह रुद्र कहें गये हैं ॥ ४९ ॥ अरुण, सूर्य, वेदाङ्ग, भानु, रवि, अशुमान्, सुवर्णरेता, दिनकर्ता, मिश्र, विष्णु, सनातन ॥ ५० ॥ ये सब रोगों के हरनेवाले उत्तम बारह आदित्य हैं ॥ ५१ ॥ हिमालय-

कन्यके ! अगस्त्येश्वर जिनमें मुख्य हैं उन चौरासी लिंगों के नामों को कहतेहुये मुझसे सदैव सुनिये कि अगस्त्येश्वर कहेगये हैं तदनन्तर गुहेश्वर ॥ ५१॥ ५२ ॥ तदनन्तर हे भामिनि ! दुर्गेश्वर व डमरुकेश्वर कहेगये हैं और अनादिकल्पेश शिवजी हैं व अन्य स्वर्णजालेश्वर हैं ॥ ५३ ॥ और त्रिविष्टपेश्वर वैव व कपालेश्वरसंज्ञक तथा कर्कोटकेश्वर शिव तदनन्तर सिद्धेशजी ॥ ५४ ॥ व स्वर्गद्वारेश रुद्र तथा अन्य लोकपालेश्वरजी व कामेश्वर ऐसे प्रसिद्ध हैं तदनन्तर कुटुंबेश्वरजी कहेगये हैं ॥ ५५ ॥ तदनन्तर इंद्रधुमेश्वर कहेगये हैं व ईशानेशजी तथा अप्सरेश्वर विख्यात हैं व उसके उपरान्त कलकलेश्वरजी हैं ॥ ५६ ॥ व दिनके पाप को हरने-

सुतेनित्यं नामानिगदतःशृणु ॥ अगस्त्येश्वरआख्यातोर्गुहेश्वरस्ततःपरम् ॥ ५२ ॥ दुर्गेश्वरस्ततःप्रोक्तो डमरुके शशचभामिनि ॥ अनादिकल्पेशःशम्भुः स्वर्णजालेश्वरःपरः ॥ ५३ ॥ त्रिविष्टपेश्वरोदेवः कपालेश्वरसंज्ञकः ॥ कर्कोटकेश्वरःशम्भुः सिद्धेशश्चततःपरम् ॥ ५४ ॥ स्वर्गद्वारेश्वरोरुद्रो लोकपालेश्वरःपरः ॥ कामेश्वरइतिख्यातः कुटुम्बेश्वरस्ततःपरम् ॥ ५५ ॥ इन्द्रधुम्नेश्वरःख्यात ईशानेशस्ततःपरम् ॥ अप्सरेश्वरविख्यातः कलकलेशस्ततःपरम् ॥ ५६ ॥ नागचण्डेश्वरोदेवो दिवापापहरःपरः ॥ प्रतिहारेश्वरश्चैव कुक्कुटेशोह्यतःपरम् ॥ ५७ ॥ मेघनादेश्वरः पुण्यः महाकालेश्वरःपरः ॥ मुक्तेश्वरःसमाख्यातः सोमेशश्चततःपरम् ॥ ५८ ॥ खण्डेश्वरःसमाख्यातः पतनेशः परःस्मृतः ॥ आनन्देशस्ततःप्रोक्तः कुसुमेशस्ततःपरम् ॥ ५९ ॥ इन्द्रेश्वरइतिख्यातो मार्कण्डेयेश्वरःपरः ॥ शिवेश्वरइतिप्रोक्तः कुसुमेशस्ततःपरम् ॥ ६० ॥ अक्रूरेशइतिप्रोक्तः कुण्डेशश्चततःपरम् ॥ दुर्गेश्वरःसमाख्यातस्ततो

वाले अन्य नागचण्डेश्वरजी हैं व प्रतिहारेश्वर तथा इसके उपरान्त कुक्कुटेशजी हैं ॥ ५७ ॥ व पुण्यदायक मेघनादेश्वर व अन्य महाकालेश्वरजी हैं और मुक्तेश्वर कहेगये हैं व तदनन्तर सोमेशजी हैं ॥ ५८ ॥ और खण्डेश्वर कहेगये हैं व अन्य पतनेशजी कहेगये हैं तदनन्तर आनन्देश व उसके उपरान्त कुसुमेशजी कहेगये हैं ॥ ५९ ॥ व इन्द्रेश्वर ऐसे प्रसिद्ध तथा अन्य मार्कण्डेयेश्वरजी व शिवेश्वर ऐसे कहेगये हैं ॥ ६० ॥ और अक्रूरेश ऐसे कहेगये हैं

तदनन्तर कुंडेशजी व लुंपेश्वरजी कहंगये उसके उपरान्त गंगेश्वरजी हुये हैं ॥ ६१ ॥ व शूलेश्वर ऐसे प्रसिद्ध हैं तदनन्तर अंकारेशजी कहंगये हैं व कंटकेश महाहरद्व व उसके उपरान्त सिंहेशजी कहंगये हैं ॥ ६२ ॥ व घटेश्वरपूर्वक उत्तम रेवन्तेश्वर देवजी हैं व प्रयागेश्वर महादेवजी और तदनन्तर सिद्धेश्वरजी हैं ॥ ६३ ॥ व अन्य मातंगेश्वर देव तदनन्तर सौभाग्येशदेवजी कहंगये और प्रसिद्ध रूपेश्वरदेवजी व इसके उपरान्त ब्रह्मेश्वरजी कहंगये हैं ॥ ६४ ॥ और षष्ठिजलपेश्वरदेव व केदारेश्वरजी कहंगये हैं और पिशाचेश्वर शंभु तदनन्तर संगमेशजी कहंगये हैं ॥ ६५ ॥ और प्रसिद्ध दुर्ध्वेश्वर व चन्द्रादित्येश्वर कहंगये हैं तदनन्तर पुष्पदन्तेश्वर

गङ्गेश्वरोभवत् ॥ ६१ ॥ शूलेश्वरेति विख्यात अंकारेशस्ततः स्मृतः ॥ कण्टकेशोमहारुद्रः सिंहेशश्चततः परम् ॥ ६२ ॥
रेवन्तेशः परोदेवो घण्टेश्वरपुरस्सरः ॥ प्रयागेशोमहादेवः सिद्धेश्वरस्ततः परम् ॥ ६३ ॥ मातङ्गेशः परोदेवः सौभाग्येशस्ततः परः ॥ रूपेश्वरोऽपि विख्यातो ब्रह्मेश्वरोऽपि विख्यातः परम् ॥ ६४ ॥ षष्ठिजलपेश्वरोदेवः केदारेश्वरएव च ॥ पिशाचेश्वरशम्भुश्च सङ्गमेशस्ततः परः ॥ ६५ ॥ दुर्ध्वेश्वरविख्यातश्चन्द्रादित्येश्वरः स्मृतः ॥ पुष्पदन्तेश्वरोदेवश्च विमुक्तेश्वरस्ततः ॥ ६६ ॥ करभेश्वरः परः प्रोक्तो राजस्थलेश्वरः शिवः ॥ वटेश्वरस्ततः प्रोक्तो ऋद्धेश्वरस्ततः परम् ॥ ६७ ॥ नीलकण्ठइति विख्यातः स्थानेश्वरोऽपि प्रोक्तः प्रतिहारेश्वरः परः ॥ ६८ ॥ पाशुपतेश्वरः प्रोक्तो विश्वेश्वरस्ततः परः ॥ सुवर्णेशइति विख्यातः कामनेशस्ततः परः ॥ ६९ ॥ दुर्वासेशः परं लिङ्गं सौभाग्येशमतः परम् ॥ स्वर्णेशः परः शम्भुब्रह्मचारीश्वरस्ततः ॥ ७० ॥ पातालेशः समाख्यातो ह्यतो गुप्तेश्वरः स्मृतः ॥ कपिलेश्वरइ

देवजी और अत्रिमुक्तेश्वरजी कहंगये हैं ॥ ६६ ॥ अन्य करभेश्वरजी कहंगये व राजस्थलेश्वर शिवजी कहंगये हैं तदनन्तर वटेश्वरजी कहंगये उसके उपरान्त सिद्धेश्वरजी कहंगये हैं ॥ ६७ ॥ व नीलकण्ठ ऐसे कहंगये और इसके उपरान्त स्थानेश्वरजी व कामेश्वर ऐसे कहंगये तथा अन्य प्रतिहारेश्वरजी कहंगये हैं ॥ ६८ ॥ तदनन्तर पाशुपतेश्वर व अन्य विश्वेश्वरजी कहंगये उसके उपरान्त सुवर्णेश्वर ऐसे प्रसिद्ध व कामनेश्वरजी कहंगये हैं ॥ ६९ ॥ और उत्तम दुर्वासेश्वर लिङ्ग व इसके उपरान्त सौभाग्येश लिङ्ग है व अन्य स्वर्णेश्वर शिव और तदनन्तर ब्रह्मचारीश्वर कहंगये हैं ॥ ७० ॥ व इसके उपरान्त पातालेश्वर कहंगये व गुप्तेश्वरजी

कहेगये हैं व. कपिलेश्वर ऐसे प्रसिद्ध तथा इसके उपरान्त योगेश्वर कहेगये हैं ॥ ७३ ॥ व भीमेश्वर ऐसे कहेगये और धनुःसाहस्रनामक हैं व तदनन्तर अग्नीश्वर और तदनन्तर देवेशजी कहेगये हैं ॥ ७२ ॥ व द्वादशार्कजी कहेगये हैं और दशाश्वमेधिकेश्वर व गदाधरेश्वर तथा वैजनाथ ऐस शंभुराज कहेगये हैं ॥ ७३ ॥ और तदनन्तर सोमनाथेश्वर व कुसुमेशजी कहेगये हैं उसके उपरान्त भीमशंकरनामक तथा घण्टेशजी कहेगये हैं ॥ ७४ ॥ तदनन्तर औषधेश्वर शंभु व नरादित्य जी कहेगये हैं और अन्य केशवार्क व शक्तिभेदेश्वर कहेगये हैं ॥ ७५ ॥ अन्य रामेश्वरदेव व बाल्मीकेश्वर शिव कहेगये तदनन्तर जालेश्वर शिव व अभयेश्वर

तिरुयातो ह्यतोयोगेश्वरः स्मृतः ॥ ७१ ॥ भीमेश्वर इतिरुयातो धनुःसाहस्रनामकः ॥ अग्नीश्वरः परः प्रोक्तो देवेशश्च ततः परम् ॥ ७२ ॥ द्वादशार्कः समाख्यातो दशाश्वमेधिकेश्वरः ॥ गदाधरेश्वरः ख्यातो वैजनाथेति शम्भुराट् ॥ ७३ ॥ सोमनाथेश्वरः ख्यातः कुसुमेशस्ततः परम् ॥ भीमशङ्करनामा च घण्टेशश्च ततः परम् ॥ ७४ ॥ औषधेश्वरशम्भुश्च जालेश्वरः शिवः प्रोक्तोऽभयेश्वरस्ततः परम् ॥ शक्तिभेदेश्वरः परः ॥ ७५ ॥ रामेश्वरः परो देवो बाल्मीकेश्वरशङ्करः ॥ ख्यातो विश्वेशश्च ततः परम् ॥ ७६ ॥ विघ्नहर्तेश्वरः प्रोक्तश्च चलेश्वरनामकः ॥ पुरुषोत्तमेति वि परम् ॥ ७८ ॥ अविमुक्तेश्वरः प्रोक्तो हनुमत्केश्वरः परः ॥ अनन्तेश्वरविख्यातः कोटेशश्च ततः केशस्ततः प्रोक्तो बालकेश्वरसंज्ञकः ॥ विमलेश्वरेति विख्यातश्चन्द्रेशश्च ततः परम् ॥ ७९ ॥ बिन्दु जी कहेगये हैं ॥ ७६ ॥ और विघ्नहर्तेश्वर व चंचलेश्वर नामक कहेगये हैं तदनन्तर पुरुषोत्तम ऐसे प्रसिद्ध व विश्वेश्वरजी कहेगये हैं ॥ ७७ ॥ तदनन्तर कर्णेश्वर ऐसे प्रसिद्ध व पृथुकेश्वरजी कहेगये हैं उसके उपरान्त अनन्तेश्वर ऐसे प्रसिद्ध व कोटेश्वरजी कहेगये हैं ॥ ७८ ॥ और अविमुक्तेश्वर व अन्य हनुमत्केश्वरजी कहेगये तदनन्तर विमलेश्वर ऐसे प्रसिद्ध व चन्द्रेश्वरजी हैं ॥ ७९ ॥ तदनन्तर बिन्दुकेश्वर व बालकेश्वर संज्ञक कहेगये हैं व सहस्रलिंगके देव और अन्य संख्यासंख्येश्वर

जो कहेगये हैं ॥ ८० ॥ हे सत्तम ! जो कोई तीर्थ व जो लिंग हैं वे सब पूजनीय व प्रणाम करने योग्य वहां स्थित हैं ॥ ८१ ॥ और सब चार द्वारपाल महात्माओं को विदित हैं उनमें पिंगलेश्वर ऐसे प्रसिद्ध द्वारपाल पश्चिम के द्वार पै दिके हैं ॥ ८२ ॥ तदनन्तर उत्तरसंज्ञक द्वार पै उत्तरेशजी हैं ये व अन्य बहुत से सुवनेश्वर लिंग ॥ ८३ ॥ मनोहर महाकालवनमें पवित्रकारक कहेगये हैं जो कि साठकरोड़ जार व साठकरोड़ सौ हैं ॥ ८४ ॥ हे व्यासजी ! महाकालवनमें लिंगों की संख्या नहीं है तो भी मैंने यहां मुख्यता से कहा है ॥ ८५ ॥ जिस देवताका जो तीर्थ है उसका नाम कहागया है उनमें नहाकर व उस दानको देकर उसको तीर्थ का फल

निलिङ्गानिसत्तम ॥ तिष्ठन्ति तत्र पूज्यानि तानिवन्द्यानि मवंशः ॥ ८१ ॥ चत्वारो विदिताः सर्वे द्वारपाला महात्मभिः ॥
पिङ्गलेश्वर आख्यातः पश्चिमद्वारमाश्रितः ॥ ८२ ॥ उत्तरे शस्ततः प्रोक्तो द्वारे चोत्तरसंज्ञकः ॥ एते च अन्ये च बहवो लि
ङ्गानि सुवनेश्वराः ॥ ८३ ॥ महाकालवने रम्ये समाख्याता हि पावनाः ॥ षष्टिकोटिसहस्राणि षष्टिकोटिशतानि च ॥
८४ ॥ महाकालवने नद्यास लिङ्गसंख्या न विद्यते ॥ तथापि च प्राधान्येन मया त्रपरि कीर्तितम् ॥ ८५ ॥ यस्य देवस्य य
तीर्थतन्नाम परि कीर्तितम् ॥ स्नात्वा दत्त्वा च तद्दानं तस्य तीर्थफलं भवेत् ॥ ८६ ॥ तथानवग्रहाः पुण्यास्समाख्याताः पु
रानघ ॥ तेषां नामानि पुण्यानि तीर्थानि चैव मे शृणु ॥ ८७ ॥ शङ्करादित्य विख्यातः सोमेशश्च ततः परम् ॥ मङ्ग
लेश्वर आख्यातो बुधेशश्च ततः परम् ॥ ८८ ॥ बृहस्पतीश्वरः प्रोक्तस्तथा शुक्रेश्वरः शिवः ॥ शनीश्वरो महादेवः स
माख्यातो मुनीश्वरः ॥ ८९ ॥ राहुकेतुममाख्यातो तयोस्तीर्थे हि सत्तम ॥ तयोः स्खलनः स्नात्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ९० ॥

होता है ॥ ८६ ॥ वैसे ही हे अनघ ! पुगतन समय पुण्यदायक नवग्रह कहेगये हैं उनके पवित्रनामों व तीर्थों को मुझसे सुनिये ॥ ८७ ॥ कि शंकरादित्य ऐसे प्रसिद्ध हैं व तदनन्तर सोमेशजी और मंगलेश्वर व तदनन्तर बुधेशजी कहेगये हैं ॥ ८८ ॥ और बृहस्पतीश्वर व शुक्रेश्वर शिवजी कहेगये हैं व हे मुनीश्वर ! शनीश्वर महादेवजी कहेगये हैं ॥ ८९ ॥ हे सत्तम ! जो राहु, केतु कहेगये हैं उनके जो तीर्थ हैं उनमें नहाकर मनुष्य निश्चयकर सब पापों से छूटजाता है ॥ ९० ॥ ग्रह राज्यको

देते हैं व ग्रह राज्यको हरते हैं और चराचर समेत सब शिलोक ग्रहोंसे व्याप्त है ॥ ६१ ॥ ग्रहोंके तीर्थ में नहाकर जो मनुष्य ग्रहों का पूजन करता है उसको कभी ग्रहों की पीड़ा बाधा नहीं करती है ॥ ६२ ॥ हे व्यासजी ! इसप्रकार मैंने तुमसे अत्यन्तपवित्र, श्रेष्ठ, पवित्र व पापनाशिनी देवतीर्थ से उपजी हुई यात्रा को कहा ॥ ६३ ॥ उग्र ग्रहों की पीड़ाओं में तथा दरिद्रता व भयंकर संकट में उन मनुष्यों के उधारने के लिये देवयात्रा कही गई ॥ ६४ ॥ जो उत्तम मनुष्य इन तीर्थों में स्नान करते हैं उनको तीनैलोकोंमें कुछ दुर्लभ नहीं होता है ॥ ६५ ॥ पुत्ररहित मनुष्य पुत्रको पाता है और निर्धन धनको पाता है और ब्राह्मण विद्यावान् होता है व क्षत्रिय विजयवान् ॥

ग्रहाराज्यप्रयच्छन्ति ग्रहाराज्यंहरन्ति च ॥ ग्रहेस्तुव्यापितंसर्वं त्रैलोक्यंसचराचरम् ॥ ६१ ॥ ग्रहतीर्थेनरःस्नात्वा ग्रहाणामर्चनञ्चरेत् ॥ नतस्यग्रहपीडा वै बाधेतेनकदाचन ॥ ६२ ॥ एवंव्याससमाख्याता मयातेदेवतीर्थजा ॥ यात्राण्यतराश्रेष्ठा पवित्रापापनाशिनी ॥ ६३ ॥ ग्रहपीडासुचोग्रासु दारिद्र्येघोरसङ्कटे ॥ तेषामुद्धारणार्थाय देवयात्रा प्रकीर्तिता ॥ ६४ ॥ अवगाहनमेतेषु येकुर्वन्तिनरोत्तमाः ॥ नतेषांदुर्लभंकिञ्चित् त्रिषुलोकेषुविद्यते ॥ ६५ ॥ अपुत्रोलभतेपुत्रं निर्धनोधनमामुयात् ॥ विद्यावाञ्छायतेविप्रः क्षत्रियोविजयीभवेत् ॥ ६६ ॥ अक्षयासन्ततिस्तस्य शिवलोकेमहीयते ॥ ६७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेश्वरदेवतीर्थयात्रामहिमवर्णनब्राम्हैकाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८१ ॥

व्यास उवाच ॥ भगवन्भवतासर्वं कथितं देवमूर्तिना ॥ अवन्तीतीर्थमाहात्म्यं यद्विप्रवेदसम्मतम् ॥ १ ॥ भूयस्तु श्रोतुमिच्छामि त्वत्तोब्रह्मविदांवर ॥ महाकालवनेरम्ये अवन्त्यामुविसत्तम् ॥ २ ॥ तीर्थानिकतिसंख्यानि विद्यन्तेह्यत्र होता है ॥ ६६ ॥ और उसकी अविनाशिनी सन्तान होती है व शिवलोक में वह पूजा जाता है ॥ ६७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेश्वरदेवतीर्थयात्रामिभिरचितायां भाषाटीकायां देवतीर्थयात्रामहिमवर्णनं नमैकाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८१ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

दो० । तीर्थ अवन्ती यान कर है फल अति सुखदाह । ब्यासि वै अध्यायमें सौई चरित सुहाइ ॥ व्यासजी बोले कि हे भगवन् ! देवमूर्तिधारी आपने सब अवन्ती तीर्थ के माहात्म्यको कहा जोकि ब्राह्मणों व वेदोंसे संमत है ॥ १ ॥ हे ब्रह्मविदांवर, सत्तम ! मैं तुमसे फिर यह सुनना चाहता हूँ कि पृथ्वीमें अवन्तीपुरी में सुन्दर महा-

कालवन में ॥ २ ॥ हे सुव्रत ! यहां कितने भस्मक तीर्थ विद्यमान हैं सनत्कुमारजी बोले कि हे द्विजोत्तम ! पापहारिणी उत्तम कथाको सुनिये ॥ ३ ॥ हे द्विजोत्तम ! बुद्धिमान् नारदजी का व पार्वती, शिवजी का संवाद हुआ है पुरातन समय नारदजीने इस प्रश्न को पूछा है ॥ ४ ॥ नारदजी बोले कि हे भगवन् ! उत्तम महाकालवन में जो तीर्थ विद्यमान हैं उनको मुझसे विस्तार से कहिये मैं सुनना चाहता हूँ ॥ ५ ॥ हे अनघ, विप्रजी ! पहले उस समय इसप्रकार पूछेहुये पार्वती समेत सदा-शिवजी नम्रवाणी से बोले ॥ ६ ॥ श्रीमहादेवजी बोले कि हे सुव्रत, श्रविश्रेष्ठ ! सुनिये कि उत्तम महाकालवन में जो तीर्थ स्थित हैं उनको मैं कहूंगा ॥ ७ ॥ पृथ्वी

सुव्रत ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ श्रूयतां भो द्विजश्रेष्ठ कथां पापहरां पराम् ॥ ३ ॥ उमामहेशसंवादो नारदस्य चर्धामतः ॥ नारदेन पुरा श्रेष्ठे प्रश्नमेतं द्विजोत्तम ॥ ४ ॥ नारद उवाच ॥ भगवञ्छ्रोतुमिच्छामि महाकालवने शुभे ॥ तीर्थानि यानि विद्यन्ते तानि नो वद विस्तरात् ॥ ५ ॥ इति पृष्ट्वा स्तदा विप्र नारदेन पुरा नघ ॥ उवाच श्लक्ष्णया वाचा उमया सहितो हरः ॥ ६ ॥ श्रीमहादेव उवाच ॥ शृणुष्व भो ऋषिश्रेष्ठ महाकालवने शुभे ॥ तीर्थानि यानि तिष्ठन्ति तानि वक्ष्यामि सुव्रत ॥ ७ ॥ पुष्कराद्यानि तीर्थानि यानि कानि महतीं तले ॥ तानि सर्वाणि वर्तन्ते महाकालवनोत्तमे ॥ ८ ॥ असङ्ख्यात सहस्राणि कोटिकोटानि सत्तम ॥ सद्रसरेनिमज्जन्ति कोटितीर्थं तथोच्यते ॥ ९ ॥ नीहारकर्णिकां वृष्टिं रिवर्षतिकन्नरः ॥ हिमान्ते चैव दृश्यन्ते तार्थैः पश्यान्मोचने ॥ १० ॥ न हि सङ्ख्यां विजानामि तीर्थानां मुनि सत्तम ॥ कियन्ति सन्ति तीर्थानि लिङ्गानि च तथैव च ॥ ११ ॥ तथापि तु प्राधान्येन कथयिष्यामि सत्तम ॥ संवत्सरस्य यावन्ति अहानि च द्विजोत्तम ॥ १२ ॥

में पुष्करादिक जो कोई तीर्थ है वे सब उत्तम महाकालवन में वर्तमान हैं ॥ ८ ॥ हे सत्तम ! असंख्य हजार व करोड़ों कोटि तीर्थ रूद्रसर में स्नान करते हैं इससे वह कोटि तीर्थ कहा जाता है ॥ ९ ॥ और पर्वतों के किन्नर कुहर से व्याप्त वृष्टि को करते हैं और हेमन्त ऋतु के अन्त में सब तीर्थ पिशाचमोचन नामक तीर्थ में देख पड़ते हैं ॥ १० ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! मैं तीर्थों की संख्या को नहीं जानता हूँ कि कितने तीर्थ व लिङ्ग हैं ॥ ११ ॥ तथापि हे सत्तम ! प्रधानता से कहूंगा हे द्विजोत्तम ! वर्षभर

के जितने दिन होते हैं ॥ १२ ॥ हे परंतप ! उतने प्रसिद्ध तीर्थों को मनुष्य नित्य प्राप्त होता है और वर्षपूर्ण होनेपर अवन्तीपुरी की यात्रा होती है ॥ १३ ॥ उमको विधिपूर्वक जो करता है वह साक्षात् देवताओं में उत्तम होता है और हजारों मन्वन्तरों तक काशीजी के निवास में जो फल होता है ॥ १४ ॥ वह फल वैशाख महर्नि में अवन्तीपुरी में पाच दिनों से होता है इसलिये मोक्ष प्राप्ति के लिये पुरुषको बड़े यत्न से अवन्तीपुरी को जाना चाहिये ॥ १५ ॥ और वैशाख महर्नि में विशेषकर मनुष्य अवन्ती में स्नानकर हे व्यामजी ! जो मनुष्य अवन्तीपुरी में वैशाख महर्नि को प्राप्त होकर ॥ १६ ॥ विधिपूर्वक वर्षभर तक प्रत्येक तीर्थमें नहाता है वह सब दानों

तावन्ति प्राप्नुते नित्यं प्रसिद्धानि परंतप ॥ संवत्सरपणिपूणे जायेते वन्ति यात्रिका ॥ १३ ॥ विधिवत्कुरुते यस्तु सान्नात्स विबुधोत्तमः ॥ मन्वन्तरमहस्रेषु काशीवासिचयत्फलम् ॥ १४ ॥ तत्फलं जायेते वन्त्यां वैशाखेष्वभिदिनेः ॥ तस्माद वन्ती गन्तव्या प्रयत्नेन मुमुक्षता ॥ १५ ॥ माधवोपविशेषेण ह्यवन्ती स्नानमाचरेत् ॥ यैर्वैशाखमासाद्य ह्यवन्त्यां व्या समानवः ॥ १६ ॥ संवत्सरं प्रति स्नातस्तोर्त्तीर्थे यथाविधि ॥ दत्त्वा दानानि सर्वाणि सकलं फलमश्नुते ॥ १७ ॥ सु क्त्वा भोगान्मविषुनाञ्छिन्नलोके महीयते ॥ यत्र कुत्रापि यो नित्यं नरो निश्चलमानसः ॥ १८ ॥ शृणोत्येकमनाः पुर्यां पूजयित्वा च वाचकम् ॥ संकृत्य विधिवद्दत्स वामालङ्कारभूषणैः ॥ १९ ॥ अन्यैश्च विविधभोगैः प्रदानैर्वत्सरेण च ॥ नत स्य दुर्लभं किञ्चिद्विद्यते सुविमत्तम् ॥ २० ॥ एवं व्यामपुरा शम्भुनारदाय सुधीमते ॥ उवाच परमाख्यानमवन्तीव्रत मुत्तमम् ॥ २१ ॥ तेन प्रख्यापितं पुण्यं सर्वलोकेषु मत्तम् ॥ एतत्सर्वमाख्यातं मया सत्यव्रती सुत ॥ २२ ॥ अवन्तीतीर्थ

को देकर समस्त फल को भोगता है ॥ १७ ॥ और बहुत सुखों को भोगकर वह शिवलोकमें पूजा जाना है व जहां कहीं भी नित्य अचल मनवाला जो मनुष्य ॥ १८ ॥ सावधान मन होकर वांचनेवाले को पूजकर पुण्यदायिनी कथा को सुनता है वह व्रतस ! विधिपूर्वक, वसन, अलंकार व भूषणों से सत्कार कर ॥ १९ ॥ व अनेक प्रकार के अन्य भोगों के दानों से जो वाचक को पूजता है हे सत्तम ! उसने पृथ्वीमें मालभर में कुछ दुर्लभ नहीं होता है ॥ २० ॥ इस प्रकार हे व्यामजी ! पुरातन समय सदाशिवजी ने बुद्धिमान् नारदजी से अवन्ती पुरी के उत्तम व्रतरूपी परमकथानक का कहा है ॥ २१ ॥ व उन्होंने ने हे सत्तम ! सब लोकों में इस पुण्यमय

कथानकके कहलै हे छत्यबलीसुख । कैने इस सब चरित्रको तुमसे कहा ॥ २२ ॥ जोकि अवन्तीतीर्थ यात्राका सनातन आख्यान था हे द्विजोत्तम ! फिर तुम्हारे क्या सुनने की इच्छा है ॥ २३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणमाहात्म्यत्रयर्णननामद्वयशीतिलोऽध्यायः ॥ ८२ ॥
 दो०। जेहि तीरथ में जौन फल मिलत अवन्ती मध्य । तिरासिबे अभ्यायमें सोइ चरित सुख मय्य ॥ व्यासजी बोले कि हे ब्रह्मविदांवर ! अवन्ती पुरीकी बहुतपुण्य-
 वाली महिमा को मैंने तुम से सुना और तुमसे फिर सुना चाहता हूं ॥ १ ॥ हे द्विजोत्तम ! ब्रह्म के जाननेवाले तुमने ब्रह्मचारियों के इस तीर्थ के वर्षभर व्रत के पा-

यात्रायाः कथारूपांनसनातनम् ॥ भूयःकिंश्रोतुमिच्छातेवर्तेतेद्विजसत्तम ॥ २३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीख
 रण्डेऽवन्तीतीर्थयात्रामाहात्म्यं नामद्वयशीतिलोऽध्यायः ॥ ८२ ॥ * ॥ * ॥

ठयास उवाच ॥ भूयस्तुश्रोतुमिच्छामि त्वत्तोब्रह्मविदांवर ॥ अवन्त्याश्रपरंपुरंयं महिमानंश्रुतंमया ॥ १ ॥ त्वया
 ब्रह्मविदांप्रोक्तं वत्सरव्रतपारणम् ॥ तीर्थस्यास्यसुविस्तारात्सनातकानां द्विजोत्तम ॥ २ ॥ अचिरं एतु कालेन तीर्थस्य फ
 लमश्नुते ॥ सिद्धोभूत्वा नरोयाति तद्वदस्वद्विजोत्तम ॥ ३ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ गुह्याद्गुह्यतरं वत्स पृच्छासि त्वं ममान
 घ ॥ तस्मै हंसप्रक्षयामि शृणुष्व त्वं समाहितः ॥ ४ ॥ महाकालं ततो गच्छेन्नियतो नियतात्मना ॥ कोटितीर्थेन रस्मना
 त्वा पुनर्जन्म न विद्यते ॥ ५ ॥ नास्ति वत्स महीं पृष्ठे क्षिप्रायास्स दृशी नदी ॥ यस्या निरीक्षणं मुक्तिः किञ्चिरात्सेवनेन
 वै ॥ ६ ॥ माधवे मामि यो देवं पूजयेत्पुरुषोत्तमम् ॥ मोचने मुच्यते नित्यं तर्पणादेकवासरात् ॥ ७ ॥ अवन्त्यामङ्गपा

रण को विस्तारसे कहा है ॥ २ ॥ हे द्विजोत्तम ! जिससे मनुष्य थोड़ेही समयमें तीर्थ के फल को भोगता है व सिद्ध होकर शिवलोकको जाता है उसको कहिये ॥ ३ ॥
 सनत्कुमारजी बोले कि हे अनघ, वत्स ! तुम मुझसे गुप्तमें भी अधिक गुप्त चरित्रको पूछते हो उसको मैं तुमसे कहूंगा सावधान होकर सुनिये ॥ ४ ॥ कि तदनन्तर
 नियम में प्राप्त मनुष्य सावधान चित्त से महाकाल वनको जावे क्यों कि नियम में प्राप्त चित्त से कोटितीर्थ में नहाकर मनुष्य फिर जन्म को नहीं प्राप्त होता है ॥ ५ ॥
 हे वत्स ! पृथ्वी में क्षिप्रा के समान नदी नहीं है कि जिसके देखनेही से मुक्तिहोती है बहुत दिनों के सेवन में क्या है ॥ ६ ॥ वैशाख महीने में जो पुरुष पुरुषो-

त्तम (विष्णु) जी को सदैव पूजता है वह मोचनतीर्थ में एकही दिनके तर्पण करने से पातकों से छूट जाता है ॥ ७ ॥ अवन्तीपुरी में अंगपात नामक विष्णुजी को जे मनुष्य देखते हैं उनकी सैकड़ों करोड़ कल्पों से पुनरावृत्ति (फिर जन्म) नहीं होती है ॥ ८ ॥ हे व्यासजी इस वचनको वाराह, मत्स्य, कन्दादिक व लोमश महामुनि ये सब महात्मा कहते हैं ॥ ९ ॥ तथापि पुण्य के समान तीर्थ की विधि को फिर सुनिये कि जो पुरुष थोड़ेपुण्य से तीर्थ के फलको चाहता है ॥ १० ॥ हे तपोधन ! उस सबके फलको कहूँगा इसको सुनिये कि पवित्रमन व सब तीर्थों के फलको चाहनेवाला पवित्र पुरुष ॥ ११ ॥ जोकि स्नान के नियमवाला होवे वह

ताख्यं येपश्यन्तिजनार्दनम् ॥ नतेषांपुनरावृत्तिः कल्पकोटिशतैरपि ॥ ८ ॥ इतिव्यासवचस्सर्वे वदन्तिनियतात्मनः ॥ वाराहमत्स्यकन्दाद्या लोमशश्चमहामुनिः ॥ ९ ॥ विधितथापितीर्थस्य शृणुपुण्यसमम्भुनः ॥ योर्वैस्वल्पेनपुण्येन तीर्थस्यफलमिच्छति ॥ १० ॥ तस्यसर्वस्यवक्ष्यामिशृणुष्वेदंतपोधन ॥ सर्वतीर्थफलाकाङ्क्षी शुचिःप्रयतमानसः ॥ ११ ॥ अवगाहव्रतीयाति तीर्थानिचाष्टविंशतिः ॥ ऊर्जमाधेतथाषाढे वैशाखेचविशेषतः ॥ १२ ॥ यदाकदापुरीं प्राप्य कर्तव्यंतीर्थमज्जनम् ॥ सर्वतीर्थफलंप्राप्य शिवलोकमर्हायते ॥ १३ ॥ सनत्कुमारउवाच ॥ त्रिप्रातीरेहिवर्तन्ते पुराख्यातानिसूरीभिः ॥ पुण्यानितीर्थमुख्यानि तानिमेगदतःशृणु ॥ १४ ॥ पापादितद्दशुचिर्भूत्वा विष्णुविष्णुरिति स्मरन् ॥ आदायनियमंसर्वं स्नातकानांचसत्तम ॥ १५ ॥ स्नात्वारुद्रसरेनित्यं कृत्वाश्राद्धादिकंतथा ॥ यथाशक्तिपरां वत्स गान्दत्त्वाचैवकाञ्चनीम् ॥ १६ ॥ तीर्थराजनमस्तुभ्यं निजतीर्थविगाहने ॥ अनुज्ञान्देहिमेनित्यं करिष्यामि तवा

अट्टाईस तीर्थोंको जावै कार्तिक, माघ, आपाढ व विशेषकर वैशाख में ॥ १२ ॥ व जब कभी पुरीको पाकर तीर्थस्नान करना चाहिये क्योंकि इस तीर्थमें स्नान करने वाला पुरुष सब तीर्थोंके फलको पाकर शिवलोकमें पूजा जाताहै ॥ १३ ॥ सनत्कुमारजी बोले कि पहले विद्वानों से कहेहुये जो पवित्र व मुख्यतीर्थ त्रिप्रातरी के तटपै वर्तमान हैं उनको कहेतेहुये मुझसे सुनिये ॥ १४ ॥ हे सत्तम ! पापसे विकल मनुष्य पवित्र होकर विष्णु, विष्णु ऐसा स्मरण करताहुआ ब्रह्मचारियों के सब नियमको ग्रहणकर ॥ १५ ॥ यद्रतङ्गामे नित्य नहाकर तथा श्राद्धादिक करके हे वत्स ! शक्तिके अनुसार सोने की गऊ को देकर ॥ १६ ॥ हे तीर्थराज ! तुम्हारे लिये प्रणाम है अपने तीर्थ

10

सब कार्यों के प्रयोजन की सिद्धि के लिये दासी व दास को देना चाहिये ऐसा करनेवाला पुरुष संसारमें धनवान् व पुत्रवान् होकर मरकर मोक्षको प्राप्त होता है ॥ २७ ॥ तदनन्तर हे विप्रजी ! व्रतवान् पुरुष केदारनामक उत्तमतीर्थ को जावै व उसमें नहाकर ब्राह्मणों के लिये महादान को दै ॥ २८ ॥ और उत्तम गऊ के युग याने एक गऊ व एक बैल को देकर वहां विधिपूर्वक कार्य करै हे सत्तम ! वहांपर कंवल मृगचर्म व वसनो को देना चाहिये ॥ २९ ॥ ऐसा करके मनुष्य सब पापों से शुद्धचित्त होकर शिवलोक में पूजा जाता है व चक्रतीर्थ में नहाकर मनुष्य चक्रपाणिजी को भलीभाति पूजै ॥ ३० ॥ हे सत्तम ! वहापर शंख, शस्त्र व वि-

लोक मृतोमोक्षमवाप्नुयात् ॥ २७ ॥ ततो गच्छेद्ब्रती विप्रकेदारं तीर्थमुत्तमम् ॥ तत्र स्नात्वा महादानं ब्राह्मणेभ्यस्समर्पयेत् ॥ २८ ॥ शुभङ्गो मिथुनं दत्त्वा विधिवत्तत्र कारयेत् ॥ कम्बलाजिनवासांसि तत्र देयानि सत्तम ॥ २९ ॥ सर्वपापविशुद्धात्मा शिवलोकमर्हायते ॥ चक्रतीर्थे नरस्नात्वा चक्रपाणिसमर्चयेत् ॥ ३० ॥ शङ्खशस्त्रविमानानि तत्र देयानि सत्तम ॥ मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकमर्हायते ॥ ३१ ॥ सोमतीर्थे नरः स्नात्वा द्रष्ट्वा सोमेश्वरं शिवम् ॥ निर्मलाङ्गो नरो भाति कुष्ठरोगो न बाधते ॥ ३२ ॥ इक्षुधेन्वादि कंदानं तत्र देयं द्विजातये ॥ देवप्रयागं गच्छेच्च स्नानार्थं द्विजसत्तम ॥ ३३ ॥ तत्र स्नात्वा शुचिर्भूत्वा देवं माधवमर्चयेत् ॥ गुडधेनुः प्रदातव्या विधिदृष्टेन कर्मणा ॥ ३४ ॥ सर्वपापविशुद्धात्मा देवलोकमर्हायते ॥ प्रयागे परमं व्यास वेणीतीर्थमनुत्तमम् ॥ ३५ ॥ तत्र स्नानं च कर्तव्यं तिला मलकं संयुतम् ॥ प्रयागे शमथभ्यर्च्य

मानोंको देना चाहिये ऐसा करनेवाला पुरुष सब पापोंसे छूट जाता है व विष्णुलोकमें पूजा जाता है ॥ ३१ ॥ व सोमतीर्थ में नहाकर मनुष्य सोमेश्वर शिवजीको देखकर निर्मल अंगवाला मनुष्य शोभित होता है और उसको कुष्ठरोग बाधा नहीं करता है ॥ ३२ ॥ वहां ब्राह्मण के लिये ऊख व गऊ आदिक दानको देना चाहिये व हे द्विजोत्तम ! स्नान के लिये देवप्रयागजी को जावै ॥ ३३ ॥ उस तीर्थ में नहाकर पवित्र होके मनुष्य माधवदेवजीको पूजै और वहांपर विधिसे देखेहुये कर्मसे गुड़ की गऊको देना चाहिये ॥ ३४ ॥ ऐसा करनेवाला पुरुष सब पापों से शुद्ध चित्तवाला होकर देवलोक में पूजा जाता है हे व्यासजी ! प्रयाग में अति उत्तम वेणी-

तीर्थ है ॥ ३५ ॥ वहांपर तिलों व आंवलों से संयुक्त स्नान करना चाहिये इसके उपरान्त प्रयागेशजी को पूजकर मनुष्य सब फलको प्राप्त होता है ॥ ३६ ॥ और वहांपर विधिपूर्वक द्विजोत्तम के लिये तिलकी गऊ देना चाहिये जो ऐसा करता है वह सब कामनाओं के वरको पाकर विष्णुलोकमें पूजा जाता है ॥ ३७ ॥ तदनन्तर वहांपर विधिपूर्वक द्विजोत्तम को जावै व उसमें स्नानकर पवित्र होकर योगिनीश्वरजी को पूजे ॥ ३८ ॥ उसके उपरान्त जलकी गऊको देवै तो दीर्घ किं व्रतवान् पुरुष अति उत्तम योगतीर्थ को जावै व उसमें स्नान करके कपिलेश्वरजीको पूजे तो वह सब पापों आयुर्बलवाला व सुखी होता है तदनन्तर मनुष्य कपिलाश्रम नामक उत्तम तीर्थको जावै ॥ ३९ ॥ और स्नान दानादिक करके कपिलेश्वरजीको पूजे तो वह सब पापों

सकल फलमश्नुते ॥ ३६ ॥ तिलधेनुः प्रदातव्या विधिवद् द्विजपुङ्गवे ॥ सर्वकामवरं प्राप्य विष्णुलोकं समोदते ॥ ३७ ॥ ततो गच्छेद्भूयो योगतीर्थं मनुत्तमम् ॥ तत्र स्नात्वा शुचिभूत्वा योगिनीश्वरमर्चयेत् ॥ ३८ ॥ जलधेनुं ततो दद्याद्दोषा गुश्च सुखी भवेत् ॥ कपिलाश्रमं परन्तीर्थं नरोगच्छेत्ततः परम् ॥ ३९ ॥ स्नान दानादिकं कृत्वा कपिलेश्वरमर्चयेत् ॥ मुच्यते सर्वपापेभ्यस्तपोलोकं स गच्छति ॥ ४० ॥ घृतकुल्या परन्तीर्थं क्षिप्राकूले च पश्रिमे ॥ तत्र स्नात्वा नरो नित्यं घृतधारैश्च रंशिवम् ॥ ४१ ॥ पूजयेद्द्विधिवद्विप्रं घृतधेनुं समर्पयेत् ॥ प्राप्य पुण्यकृतौ लोकां सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ४२ ॥ मधुकुल्यां नरस्नात्वा पूजयित्वा महेश्वरम् ॥ मधुदानं प्रकुर्वीत इधुधेनुं ततः परम् ॥ ४३ ॥ ऊषरं परमं तीर्थं सर्वतीर्थं फलप्रदम् ॥ तत्र स्नात्वा नरः पश्येन्महेश्वरम् ॥ ४४ ॥ फलमूलादिकं देयं प्राप्य ते मोक्षोत्तमः ॥ नरादित्यः स्थि

तः ॥ ४५ ॥ क्षिप्रा नदी के पश्चिम किनारे पै घृतकुल्या नामक उत्तम तीर्थ है उसमें नित्य नहाकर मनुष्य घृतधारैश्चर से छूट जाता है और तपोलोक में जाता है ॥ ४० ॥ और क्षिप्रा नदी के पश्चिम किनारे पै घृतकुल्या नामक उत्तम तीर्थ है उसमें नित्य नहाकर मनुष्य घृतधारैश्चर से छूट जाता है ॥ ४१ ॥ विधिपूर्वक पूजे व है विप्रजी ! घृत की गऊको देवै तो वह पुण्य से कियेहुये लोकों को प्राप्त होकर सब पापों से छूट जाता है ॥ ४२ ॥ मधुकुल्या शिवजी को ॥ ४३ ॥ और सब तीर्थों के फलको देनेवाला उत्तम ऊषर तीर्थ में नहाकर व महेश्वरजी को पूजकर मनुष्य शहरका दान करे उसके उपरान्त ऊषरकी गऊकी देवै ॥ ४३ ॥ और सब तीर्थों के फलको देनेवाला उत्तम ऊषर तीर्थ है उसमें नहाकर मनुष्य ऊषरेश्वर महादेवजी को देवे ॥ ४४ ॥ और वहां फल, मूलादिक देना चाहिये ऐसा करनेपर उत्तम मोक्ष मिलती है और जहां नरा

दित्यजी स्थित हैं वहां उत्तमतीर्थ कहागया है ॥ ४५ ॥ उसमें नहाकर मनुष्य श्रेष्ठेवादित्येश्वरजीको पूजै तदनन्तर रथ दानको देकर वह नर लोकमें जाता है ॥ ४६ ॥
व अन्य केशवार्क देवजी हैं उनका उत्तमतीर्थ कहागया है उसमें स्नान व केशवार्कजी का पूजन करना चाहिये ॥ ४७ ॥ हे द्विजोत्तम ! उस तीर्थ में बहुत प्रकार का अन्न देना चाहिये उस तीर्थ में कालभैरवजी कहेगये हैं महाव्रती ॥ ४८ ॥ पुरुष उसमें नित्य नहाकर कालभैरवजी देखकर पूर्ण महादान को देवे तो वह यमलोक को नहीं जाता है ॥ ४९ ॥ और क्षिप्रानदी के दक्षिण किनारे पै द्वादशार्क ऐसा प्रसिद्धतीर्थ सब पापों को हरनेवाला व सब कामनाओंके वरको देनेवाला

तोयत्र तत्रतीर्थपरंस्मृतम् ॥ ४५ ॥ तत्रस्नात्वापरःपश्येत् जेवादित्येश्वरं परम् ॥ रथदानंततोदत्त्वा नरलोकैसगच्छ
ति ॥ ४६ ॥ केशवार्कपरोदेवस्तस्यतीर्थपरंस्मृतम् ॥ तत्रस्नानंविधेयञ्च केशवार्कसमर्चनम् ॥ ४७ ॥ अन्नं बहुविधं
देयं तत्रतीर्थेद्विजोत्तम ॥ कालभैरवाख्यातस्तत्रतीर्थमहाव्रती ॥ ४८ ॥ तत्रस्नात्वा नरो नित्यं दृष्ट्वा भैरवमन्तक
म् ॥ दद्यात्पूर्णमहादानं नगच्छेद्यमशासनम् ॥ ४९ ॥ द्वादशार्कंतिविख्यातंजिप्राकूलेचदक्षिणे ॥ तीर्थञ्चसर्वपापघ्नं स
र्वकामवरप्रदम् ॥ ५० ॥ तत्रस्नात्वा शुचिर्भूत्वा द्वादशार्कसमर्चयेत् ॥ अजादानंच देयं वै वासोलङ्कारसंयुतम् ॥ ५१ ॥
आरोग्यं सर्वदा देहे तस्य सम्पत्पदे ॥ तत्रापि ऋषयो देवाः सन्ध्योपासनतत्पराः ॥ ५२ ॥ उपासाञ्च किरितस्य प्रातः का
ले सदैव हि ॥ तत्रतीर्थनरः स्नात्वा शुचिर्भूत्वा समाहितः ॥ ५३ ॥ एकानंशेति विख्याता भवानीपापनाशिनी ॥ तामर्चयेद्
द्विजश्रेष्ठ दशाश्वमेधपशिवम् ॥ ५४ ॥ तत्र देयं महादानं श्वेताश्वं समलङ्कृतम् ॥ विप्राय वेदविदुषे विधिवद्विषि सत्तम ॥ ५५ ॥

है ॥ ५० ॥ उसमें नहाकर व पवित्र होकर द्वादशार्कजी को पूजै और वसनों व भूषणों से संयुत छागदान देना चाहिये ॥ ५१ ॥ जो मनुष्य ऐसा करता है उसके शरीरमें सदैव निरोगता होती है व पशु पक्षि संपत्ति होती है और वहापर भी सन्ध्योपासन में परायण ऋषियों व देवताओं ने ॥ ५२ ॥ सदैव प्रातःकाल में उसकी उपासना किया है उस तीर्थ में नहाकर व पवित्र होकर सावधान होता हुआ मनुष्य ॥ ५३ ॥ जो एकानंशा ऐसी प्रसिद्ध पापनाशिनी भवानी है उनको पूजै व हे द्विजोत्तम ! दशाश्वमेधेश शिवजीको पूजै ॥ ५४ ॥ व हे ऋषिश्रेष्ठ ! वहा वेदज्ञद्विजके लिये भलीभाति श्रलंकार किया हुआ श्वेतघोड़ा विधिपूर्वक देना चाहिये ॥ ५५ ॥

क्योंकि सब पापों से शुद्ध चित्तवाला यह पुरुष स्वर्गलोक में पूजा जाता है और पृथ्वीके पुत्र जो ये मंगलदेवजी प्रसिद्ध हैं ॥ ५६ ॥ हे व्यासजी ! सब तीर्थों के फल को देनेवाला उनका उचमतीर्थ है उस तीर्थ में नहाकर मनुष्य मंगलेश्वरजी को पूजै ॥ ५७ ॥ और गुह्य, अन्न व वसन समेत अलंकार किया हुआ लाल बैल अलंकृत आश्विणी के लिये जो सावधान होकर देता है ॥ ५८ ॥ उसके हाथमें लक्ष्मी प्राप्त होती है और पुत्र, दारादिक संपदाएं होती हैं गङ्गाजीके भेद से संयुत आकाश गंगा संगमतीर्थ है ॥ ५९ ॥ उस तीर्थ में नहाकर मनुष्य गंगेश्वर शिवजीको देखकर सब पापोंसे छूटजाता है और वह विष्णुलोक में पूजा जाता है ॥ ६० ॥

सर्वपापविशुद्धात्मा स्वर्गलोकमें महीयते ॥ योसावद्भारकोदेवो विख्यातोवैधरात्मजः ॥ ५६ ॥ तस्यतीर्थंपरंव्यास
सर्वतीर्थफलप्रदम् ॥ तत्रतीर्थेनरःस्नात्वा मङ्गलेश्वरमर्चयेत् ॥ ५७ ॥ गुडान्नवृषभरक्तं सवासःसमलङ्कृतम् ॥ स्व
लङ्कतेभ्योविप्रेभ्यो योददातिसमाहितः ॥ ५८ ॥ तस्यहस्तगतलक्ष्मीः पुत्रदारादिसम्पदः ॥ खगङ्गासङ्गमतीर्थं ग
ङ्गोद्भेदसमन्वितम् ॥ ५९ ॥ तत्रतीर्थेनरःस्नात्वा दृष्ट्वागङ्गेश्वरंशिवं ॥ मुच्यतेसर्वपापेभ्यो विष्णुलोकैर्महीयते ॥
६० ॥ तिलपात्रंप्रदातव्यं विधिवत्काञ्चनान्वितम् ॥ सर्वसौख्यकरंदानं सर्वपापहरंपरम् ॥ ६१ ॥ ऋणमोचनकंतीर्थं
सर्वपापहरंस्मृतम् ॥ तत्रतीर्थेनरःस्नत्वा ऋणैर्तेश्वरमर्चयेत् ॥ ६२ ॥ घृतश्राद्धंप्रकुर्वीत दत्त्वास्वर्णं चशक्तिः ॥ ऋण
त्रयविनिर्मुक्तः स्वर्गलोकैर्महीयते ॥ ६३ ॥ ततो गञ्जेत्रोनित्यं शक्तिर्भेदमकल्मषम् ॥ तीर्थानाञ्चैव सर्वेषामुत्तमंपाप
नाशनम् ॥ ६४ ॥ तत्रस्नात्वानरोव्यास शुचिः प्रयतमानसः ॥ मातृकानाञ्च सर्वेषां दर्शनं कारयेद्बुधः ॥ ६५ ॥ को

वहां सुवर्णसंयुत तिलका पात्र विधिपूर्वक देना चाहिये क्योंकि यह दान सब सुखोंको करनेवाला व सब पापोंका हरनेवाला कहागया है ॥ ६१ ॥ व मन्त्र पापों को हरनेवाला ऋणमोचन तीर्थ कहागया है उस तीर्थ में नहाकर मनुष्य ऋणेश्वरजी को पूजै ॥ ६२ ॥ और शक्तिके अनुसार सुवर्ण को देकर घृतका श्राद्ध करे तो तीनों ऋणों से छूटाहुआ यह स्वर्गलोकमें पूजा जाता है ॥ ६३ ॥ तदनन्तर मनुष्य नित्यही पापरहित शक्तिभेद तीर्थ जो जाँवें जो कि सब तीर्थोंके मध्य में उत्तम व

पापनाशक है ॥६४॥ हे व्यासजी ! उसमें नहाकर पवित्र मनवाला, पवित्र य बुद्धिमान् पुरुष सब मातृकाओं का दर्शन करे ॥६५॥ कौमारी व कार्तिकी माता, चर्पटा व वट मातृका वैसेही भगवती देवी व स्वाभिकार्तिकेयजी को पूजे ॥६६॥ हे सत्तम ! वहां विधिपूर्वक श्राद्ध देना चाहिये और शय्यादिक दान व कांस की गऊ और अन्य दान को देकर ॥६७॥ माता के ऋण को उल्लंघनकर मनुष्य सायुज्य मुक्तिको पाता है और जो वह पापमोचन नामक श्रेष्ठ व उत्तमतीर्थ है ॥६८॥ उसमें नहाकर हे सत्तम ! मनुष्यों को व्यादातन देना चाहिये ऐसा करनेवाला पुरुष सब पापों से शुद्ध वित्तवाला होता है ॥६९॥ तदनन्तर हे व्यासजी ! त्रिलोक में प्रसिद्ध

मारीकार्तिकीमाता चर्पटावटमातरः ॥ तथा भगवतीर्देवी स्कन्दचैव समर्चयेत् ॥६६॥ तत्र श्राद्धानि देयानि विधिवद् द्विजसत्तम ॥ दत्त्वा शय्यादिकं दानं कांस्यधेनुं तथैतरद् ॥६७॥ मातृर्ऋणं समुत्तीर्य सायुज्यं लभते नरः ॥ यत्तत्तीर्थं वरं श्रेष्ठं पापमोचनं संज्ञकम् ॥६८॥ तत्र स्नात्वा नरैर्देयं व्यादातनं च सत्तम ॥ सर्वपापविशुद्धात्मा जायते भुवि मानवः ॥६९॥ ततः परं परं व्यास तीर्थैत्रैलोक्यविश्रुतम् ॥ प्रेतशिलेति विख्यातं प्रेतमोक्षकरम् परम् ॥७०॥ तत्र स्नात्वा नरं रोदद्याच्छ्राद्धं द्विजसमाहितः ॥ तिलोदकप्रदानेन पितरो यान्ति सद्गतिम् ॥७१॥ घटदानं ततो देयं ह्यत्रोपानत्समन्वितम् ॥ म हिषीञ्च ततो दद्याद्वासांसि विविधानि च ॥७२॥ अन्नदानं ततो देयं रसेन लवणान्वितम् ॥ यमेश्वरं समभ्यर्च्य निरये नाधिगच्छति ॥७३॥ पितरस्तस्य सन्तुष्टा यान्ति ब्रह्मसनातनम् ॥ पितृदोषान् बाधन्ते तेषाञ्च द्विजसत्तम ॥७४॥ तीर्थानामुत्तमं तीर्थं भुवि त्रैलोक्यवन्दितम् ॥ नवनदीसङ्गमो यत्र तत्र तिष्ठति पार्वती ॥७५॥ तत्र स्नात्वा नरो नित्यं शु

प्रेतशिला नामक तीर्थ, प्रेतों को मोक्षकारक व श्रेष्ठ है ॥७०॥ उसमें नहाकर हे द्विज ! सावधान होता हुआ पुरुष श्राद्ध को देवै क्योकि तिलसमेत जलके देनेसे पितर उत्तमगतिको प्राप्त होते हैं ॥७१॥ उसके उपरान्त छत्र व पनही समेत घटदान देवै तदनन्तर भैंसे व अनेकभातिका वस्त्रों को देना चाहिये ॥७२॥ उसके उपरान्त रस व लोह से संयुत अन्नदान देना चाहिये यमेश्वरजीको पूजकर मनुष्य नरक में नहीं जाता है ॥७३॥ और प्रसन्न होते हुये उसके पितर सनातन ब्रह्मको प्राप्त होते हैं और हे द्विजोत्तम ! उनको पितरों के दोष नहीं बाधा करते हैं ॥७४॥ और पृथ्वी में त्रिलोक से प्रणाम किया हुआ तीर्थों के मध्य में उत्तम

तीर्थ है जहांपर नवनदी का संगम है वहापर पार्वतीजी स्थित हैं ॥ ७५ ॥ उसमें नहाकर तदनन्तर पवित्र होकरके सावधान होताहुआ पुरुष कल्याणकारिणी भगवती पार्वतीजी को विधिपूर्वक पूजै ॥ ७६ ॥ और महादानों को करे व हाथी की सवारी, पृथ्वी और तिलोंको व दुग्धसमेत गऊको द्विजोत्तम के लिये देवै ॥ ७७ ॥ तो सब पापों से शुद्ध चित्तवाला पुरुष साक्षात्शिव होता है उसके उपरान्त अपने कार्य की शुद्धि के लिये मन्दाकिनीजीको जावै ॥ ७८ ॥ व उसमें नहाकर व पवित्र होकर जो मनुष्य सदाशिवजी को पूजता है व गाड़ी तथा अन्नादि को देकर द्रोणप्रमाण भर तिल देवै ॥ ७९ ॥ तो सब पापों से शुद्धचित्तवाला पुरुष कुबेर के समान चिभूत्वासमाहितः ॥ पूजयेद्भगवतीं भद्रां पार्वतीं विधिवत्ततः ॥ ७६ ॥ महादानानि कुर्याच्च हस्तिपान्नधरान्ति लान् ॥ सुरभीदुग्धसहितां दद्याद्भिजवराय च ॥ ७७ ॥ सर्वपापविशुद्धात्मा साक्षाच्छम्भुर्भवेन्नरः ॥ मन्दाकिनीं ततो गच्छेदात्मकार्यविशुद्धये ॥ ७८ ॥ तत्र स्नात्वा शुचिभूत्वा पूजयेद्यः सदाशिवम् ॥ दत्त्वा शकटमन्नाद्यं तिलद्रोणं प्रदापयेत् ॥ ७९ ॥ सर्वपापविशुद्धात्मा धनाधिपसमो भवेत् ॥ ततो गच्छेद्दूर्ती विप्र तीर्थं पैतामहं परम् ॥ ८० ॥ तत्र स्नात्वा शुचिभूत्वा विधिवत् स्नानमाचरेत् ॥ दत्त्वा दानानि सर्वाणि त्रीणि तत्र विशेषतः ॥ ८१ ॥ यथाशक्ति प्रदेयाणि पृथ्वीगावस्सुवर्णकम् ॥ विप्रांश्च भोजयेन्नित्यं विधिवद्भूरिदक्षिणैः ॥ ८२ ॥ ततस्तु पुनरागम्य रुद्रसरमनुत्तमम् ॥ तस्मिन् स्नात्वा च नत्वा च दृष्ट्वा देवं महेश्वरम् ॥ ८३ ॥ पूजयित्वा यथान्यायं यात्रेश्वरमनुत्तमम् ॥ तुलसीविल्वपत्रैश्च पुष्पैर्विविधवासकैः ॥ ८४ ॥ धूपदीपादिनैवेद्यैर्मुखवासोत्तरच्छदैः ॥ पूजयित्वा महादेवं यात्रेश्वरमुमापतिम् ॥ ८५ ॥ प्रार्थयेद्देवदेवेशं व्रत होता है तदनन्तर हे विप्रजी ! व्रतवान् पुरुष पितामहजी के उत्तमतीर्थ को जावै ॥ ८० ॥ और उसमें स्नानकर व पवित्र होकर विधिपूर्वक स्नान करै व सब दानों को देकर वहां तीन दानों को विशेषकर ॥ ८१ ॥ शक्तिके अनुकूल देना चाहिये याने पृथ्वी, गऊ व सुवर्ण को देवै और विधिपूर्वक बहुत दक्षिणाओं समेत नित्य ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिये ॥ ८२ ॥ तदनन्तर फिर अति उत्तम रुद्रसर को आकर व उसमें स्नानकर व महेश्वर देवको देखकर के प्रणाम कर ॥ ८३ ॥ न्यायपूर्वक अति उत्तम यात्रेश्वर को लें, सि, बिहिवपत्र व अनेकभांति के सुगंधित पुष्पों से पूजकर ॥ ८४ ॥ और धूप दीपादिक व नैवेद्यों तथा तुल व बादर

परन्तु इस समयमें पितरोंका तीर्थ (गया) तो लोकों करके देखाही नहीं जाता है और आपका शाप हटाने के योग्य नहीं होसक्ता है इससे हमारे अभिप्राय को इस समय पूर्णकरो ॥ ५४ ॥ तब दुर्वासाजी बोले कि हे पितामह ! आपके वचन से मैंने अपने शापको निवृत्त करदिया वहां गयामें पितरों का दर्शन होगा गया पितरोंके विसर्जन करनेवाली होगी ॥ ५५ ॥ हे पितामह ! आपके प्रसादसे उस तीर्थमें यह सब काम होगा हे नृप ! ब्रह्माजी उन दुर्वासाजी से ऐसाही हो यह कहकर स्वर्गको चलेगये ॥ ५६ ॥ देवता और दैत्योंकरके नमस्कार कियेगये महादेवजीके नमस्कारकर बड़े आनन्दसे युक्त उत्तम ब्राह्मणोंसे पूजन कियेगये ॥ ५७ ॥ मुनियों

पितृतीर्थन्तु जनैर्नैहोपदृश्यते ॥ अनिवर्त्यस्तुशापस्ते तत्पूर्णं कुरुसाम्प्रतम् ॥ ५४ ॥ दुर्वासाउवाच ॥ मयानिवर्तितः शापो वचनात्तेपितामह ॥ पितृणां दर्शनं तत्र गयापितृविसर्जिनी ॥ ५५ ॥ भविष्यति प्रसादात्ते तस्मिंस्तीर्थे पितामह ॥ एवमस्त्वितितं चोक्त्वा दिवं ब्रह्माय यो नृप ॥ ५६ ॥ नमस्कृत्य मे हंशानं सुरासुरनमस्कृतम् ॥ हर्षेण महता विष्टः पूज्यमानो द्विजोत्तमैः ॥ ५७ ॥ दुर्वासास्तु मुनिश्रेष्ठस्तत्रैवान्तरधीयत ॥ तेन पुण्यतमं लोकं तत्रैरण्डीसमागता ॥ ५८ ॥ एरण्डीश्वरलिङ्गन्तु सुरासुरनमस्कृतम् ॥ पुण्यकर्मानुपदृश्येद्वा अमासोमसमागमे ॥ ५९ ॥ दृष्ट्वा तत्परमं लिङ्गं यमलोकं न पश्यति ॥ एतत्तु कथितं राजन् मया त्वां प्रतिभारत ॥ ६० ॥ श्रवणात्कीर्तनादस्य गच्छेन्महाेश्वरं पुरम् ॥ ६१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणैरेवाखण्डे दुर्वासश्चरित्रे एरण्डीतीर्थवर्णनो नाम चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥ *

में श्रेष्ठ दुर्वासाजी वहीं अन्तर्द्धान होगये तिससे बड़ा पवित्र यह तीर्थ है यहां एरण्डी आई है ॥ ५८ ॥ देवता व दैत्योंकरके नमस्कार कियेगये एरण्डीश्वर लिंगको सोमवती अमावस में बड़े पुण्यकर्मवाला मनुष्य देखता है ॥ ५९ ॥ इस उत्तम लिंगके दर्शनकर फिर मनुष्य यमलोक को नहीं देखता है हे राजन्, भारत ! यह तुमसे मैंने कहा ॥ ६० ॥ इसके सुनने व कहने से महादेवजी के पुरको जाता है ॥ ६१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणैरेवाखण्डे प्राकृतभाषाऽनुवादे दुर्वासश्चरित्रे एरण्डीतीर्थवर्णनो नाम चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥

मार्कण्डेयजी बोले कि हे महाभाग ! तदनन्तर नर्मदा में विद्यमान शल्या और विशल्या तीर्थोंको जावे वहां स्नानकर स्वर्गको जाना है यह यज्ञेश्वर की आज्ञासि फल कहागया है ॥ १ ॥ वहा अत्युत्तम यज्ञेश्वर व धूपेश्वरलिंग है उनको सिद्धि व मोक्षके देनेवाले जानो उन्हें मनुष्य नहीं देखते हैं ॥ २ ॥ तिलोदक व अन्नके देने से हे भारत ! पितर तृप्तहोते हैं जबतक चन्द्र, सूर्य और नक्षत्र रहते हैं ॥ ३ ॥ पूर्णमासी, सोमवार, व्यतीपात और संक्रान्ति में वहां जो दान कियाजाता उसके पुण्यफल को सुनो ॥ ४ ॥ भरतने पूर्वकालमें वहां अश्वमेधयज्ञ को जिस प्रकार किया सो हम तुमसे इससमय कहेंगे हे कौन्तेय ! तुम सुनो ॥ ५ ॥ हे विशा-

मार्कण्डेयउवाच ॥ ततो गच्छेन्महाभाग स्वाशल्या विशल्यायोः ॥ तत्र स्नात्वा दिव्याति फलं यज्ञेश्वराज्ञया ॥ १ ॥ तत्र यज्ञेश्वरं लिङ्गं धूपेश्वरमनुत्तमम् ॥ सिद्धिदं मोक्षदं विद्धि न ते पश्यन्ति मानवाः ॥ २ ॥ तिलोदकप्रदानेन चान्न दानेन भारत ॥ पितरस्तृप्तिमायान्ति यावच्चन्द्रार्कतारकम् ॥ ३ ॥ पूर्णमास्यान्तु सोमैवै व्यतीपाते च संक्रमे ॥ दानं यत्किं यतेतत्र तस्य पुण्यफलं शृणु ॥ ४ ॥ भरतेन कृतस्तत्र हयमेधः पुरायथा ॥ तत्ते हं कथयिष्यामि शृणु कौन्तेय समाप्रतम् ॥ ५ ॥ भरतो नाम राजासीत् सूर्यवंशे विशाम्पते ॥ प्रशशास महाराज कृत्स्नैवै समहीतलम् ॥ ६ ॥ यावत्तृणं विजानीया यावत्कीर्तिश्च भास्करः ॥ तावद्वै भरतक्षेत्रं सशैलवनकाननम् ॥ ७ ॥ एकदा स नृपश्रेष्ठो यज्ञकर्मपरायणः ॥ भृगोदक्षिणभागे तु कुण्डमण्डपमण्डिताम् ॥ ८ ॥ दशयोजनविस्तीर्णा यज्ञभूमिश्च कारह ॥ गवां हि दशलक्षानि सवत्सा नांपयोमुचाम् ॥ ९ ॥ लक्षमेकंहयानां च दन्तिनामयुतं तथा ॥ मणिमाणिक्यरत्नानि वासांसि विविधानि च ॥ १० ॥

मने । सूर्यवंशमें भरत राजा हुये सो हे महाराज ! वे सब पृथिवीतल की राश्य करते हुये ॥ ६ ॥ जहांतक तिनका व जहांतक यश व सूर्य हैं तहांतक पर्वत, जलों व जंगलों के सहित भरतही का क्षेत्र जानो ॥ ७ ॥ एक समय में वेही भरत राजा यज्ञकर्म करनेमें तत्पर हो भृगुपर्वतके दक्षिणतरफ कुण्ड और मण्डपोंसे शोभित ॥ ८ ॥ दश योजनकी लम्बी चौड़ी यज्ञके वारते भूमि बनाते हुये और बछड़ों सहित दूध देनेवाली दशलक्ष गौत्रें ॥ ९ ॥ एकलाल घोड़े वैसेही दश हजार हाथी, मणि,

यज्ञोपरकरमादाय सर्वमम्भारसंवृतः ॥ वेदध्वनिनिनादेन दिवंभूमिञ्चसंस्पृशन् ॥ ११ ॥ होमेनदेवतास्तृप्ताः सप्तलो
कनिवासिनः ॥ एवंप्रवर्तितेयज्ञे राज्ञश्चाभिततेजसः ॥ १२ ॥ यज्ञविध्वंसनार्थन्तु राज्ञसारौद्ररूपिणः ॥ माल्यवांश्चसुमा
लीच मुकेशीशङ्खदूषणौ ॥ १३ ॥ राज्ञसानांसहस्राणि समायातास्तुसत्वरम् ॥ भग्नानियज्ञवस्तूनित्रिपुलोकेषुदारुणैः ॥
१४ ॥ प्रणष्टादेवताःसर्वा ऋत्विजश्चानिपातिताः ॥ एवंविनाशितेयज्ञे रज्जोभिश्चततो नघ ॥ १५ ॥ कोपाञ्जज्जालराजा
पि हुताशनइवाहुतः ॥ जवानराज्ञसान्सर्वान् गिरीन्वज्रधरोयथा ॥ १६ ॥ प्रणष्टान्भयभीतांश्च पतितान्धरणीतले ॥
राज्जुर्मैनिहतान्दृष्ट्वा ब्राह्मणान्ऋत्विजस्तथा ॥ १७ ॥ शोकाविष्टस्ततःप्राह भरतोदेवमन्त्रिणम् ॥ गुरुस्त्वंसर्वदेवानां
त्रिकालज्ञस्त्रिवेदवित् ॥ १८ ॥ ब्रह्महत्यादिकंपापं ममार्थेदेवकण्टकैः ॥ प्रायश्चित्तंमयाकार्थं किन्त्वंब्रूहिबृहस्पते ॥
१९ ॥ बृहस्पतिरुवाच ॥ विद्यासंजीवनीतेहं ददामि नृपसत्तम ॥ जीविताब्राह्मणादेवाः शशंसुर्देवमन्त्रिणम् ॥ २० ॥

बड़े कोपसे होमीहुई आगकी तरह राजा जलनेलगे और सन राजसों को मारा जैसे पहाडोंको इन्द ने नाराहै ॥ १६ ॥ वैसेही मरे और भयसे डरेहुये पृथ्वीपर भिरे व राक्षसों से मारेहुये यज्ञके करानेवाले ब्राह्मणों को देखकर ॥ १७ ॥ शोकसे भरेहुये भरत राजा वृहस्पति से बोले कि तुम सन देवताओं के गुरुहो और तीनों काल व तीनों वेदों के जाननेवालेहो ॥ १८ ॥ यह हमारे पीछे देवताओं के कण्टकरूप राजसोंसे ब्रह्महत्या आदि पाप होगयाहै सो हे बृहस्पते ! इसका क्या प्रायश्चित्त हमको करना चाहिये सो आप कहे ॥ १९ ॥ तब वृहस्पतिजी बोले कि हे नृपसत्तम ! हम तुमको संजीविनी विद्या देतेहैं उसी विद्यासे राजाने सबको जिलादिया

जियेहुये ब्राह्मण व देवता बृहस्पति की प्रशंसा (तारीफ़) करनेलगे ॥ २० ॥ तदनन्तर सब अच्छी दक्षिणावाली यज्ञ समाप्तहुई वही यज्ञके खम्भा की जड़से शल्या और विशल्या ये दो नदी उत्पन्न हुई ॥ २१ ॥ सो हे महाराज ! लोकोंकी पवित्र करनेवाली नर्मदा में प्रवेशकिया तदनन्तर देवतालोग अपनी २ सवारीपर सवार होकर स्वर्गको चलेगये ॥ २२ ॥ भरतभी ब्राह्मणों के सहित अपनीपुरी में प्रवेश किया इसीसे शल्या विशल्या तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध हुई ॥ २३ ॥ ब्रह्मयोनि में भरतेश्वर लिंग विद्यमान है हे राजन् ! यह तुमसे देखे व सुनेके अनुसार कहा गया ॥ २४ ॥ इसके सुनने व कहनेसे योनिके सङ्कटमें नहीं आताहै ॥ २५ ॥ इति

ततोनिवर्तितोयज्ञः समग्रवरदक्षिणः ॥ यूपमूलसमुद्रूता शल्याचैवविशल्यका ॥ २१ ॥ प्रविवेशमहाराज नर्मदालो
कपावनीम् ॥ ततोदेवाःसमारुह्य स्वंस्वंयानंदिवंययुः ॥ २२ ॥ भरतोपिद्विजैःसार्द्धं प्रविवेशपुरीततः ॥ तेनशल्यविशल्यच
विख्याताभुवनत्रये ॥ २३ ॥ भरतेश्वरलिङ्गञ्च ब्रह्मयोन्यांसमास्थितम् ॥ एतत्तेकथितंराजन् यथादृष्टंयथाश्रुतम् ॥
२४ ॥ श्रवणात्कीर्तनादस्य नविशेद्योनिसङ्कटे ॥ २५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणरेवाखण्डे शल्याविशल्यामाहात्म्यानुव
र्णनोनामपञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

युधिष्ठिरउवाच ॥ भृगुपतन्तियेशूराः काङ्क्षन्तिप्राप्नुवन्तिते ॥ श्रोतुमिच्छाम्यहन्त्वेतत् कथयस्वमहामुने ॥ १ ॥
मार्केण्डेयउवाच ॥ अनाशकेनभोजन् भृगुगोग्रहसङ्गैः ॥ प्राणांस्यजन्तियेशूरा गतितेषांनिबोधमे ॥ २ ॥ पृथक्
पृथङ्निवासांश्च तेषांकम्माणिभारत ॥ चतुर्विंशतिकोऽस्यस्तु सप्तविंशतिरेवच ॥ ३ ॥ उभयातुपुराज्ञसा मध्यमोत्तम

श्रीस्कन्दपुराणरेवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनुवादशल्याविशल्यामाहात्म्याऽनुवर्णनोनामपञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥

राजा युधिष्ठिरजी बोले कि हे महामुने ! भृगुके ऊपर चढ़कर जो शूर गिरते हैं वे किस गतिको प्राप्त होतेहैं सो हम सुना चाहते हैं आप कहें ॥ १ ॥ तब मार्केण्डेयजी बोले कि हे राजन् ! अनशन, भृगुपात, गौवाँके पीछे और-संग्राम से जो शूर प्राणोंको छोड़ते है उनकी गतिको मुझसे जानो ॥ २ ॥ उनके रहने के वास्ते जुदे २ स्थान और हे भारत ! उनके कामोंको कहते हैं चौबीस करे। और सत्ताईस ॥ ३ ॥ अबवल और दोगम दर्जेवाली कन्याओंको पार्वतीजीने आगे आज्ञादीथी

कि इस तरहसे जो मनुष्य अपने प्राणोंको छोड़ें ॥ ४ ॥ मेरी दीहुई तुम सन उनके साथ अपनी खुशीसे भोगकरो अमरेश्वरमें जो मरें हैं अथवा अपने शरीर नाश करने के वास्ते जो गिरते हैं वे लोग ॥ ५ ॥ भृगुको देखकर ब्रह्महत्यासे छूटजाते हैं हे नृपश्रेष्ठ ! चौगसी भृगु जम्बूद्वीप में कहेगये हैं ॥ ६ ॥ उमी प्रकार और भी सात भृगु कहेगये हैं वे सब स्वर्गकी उत्तम नसेनीहँ भैरवनामका उत्तम भृगु अमरकण्टकमें जाननेयोग्य है ॥ ७ ॥ उस भृगुमें शूद्र, क्षत्रिय, वैश्य, चाण्डाल और नीचलोग येही प्राणोंको छोड़ते हैं हे नृप ! वहां ब्राह्मणको मना है ॥ ८ ॥ जो वहां ब्राह्मण गिरता है तो ब्रह्महत्या और अपनी हत्याका पाप उसे होता है ॥ ९ ॥ व हे राजन् ! चन्द्रग्रहण

कन्यकाः ॥ अनेनविधिनायेतु प्राणांस्त्यक्षयन्तिमानवाः ॥ ४ ॥ तांश्चमुद्बन्धमयादत्ता गुह्माकंसुप्रसादतः ॥ अमरेश प्रमीताश्च भ्रंशितुंयेपतन्ति ते ॥ ५ ॥ भृगुन्दृष्ट्वानृपश्रेष्ठ मुच्यन्तेब्रह्महत्यया ॥ चतुरशीतिभृगवो जम्बूद्वीपेप्रकीर्ति ताः ॥ ६ ॥ तथान्येसप्तनिर्दिष्टाः स्वर्गसोपानमुत्तमम् ॥ भैरवस्तुभृगुश्रेष्ठो ज्ञेयस्त्वमरकण्टके ॥ ७ ॥ शूद्राश्चक्षत्रियवि श्या अन्त्यजाश्चाधमास्तथा ॥ एतेत्यजन्तिप्राणान्वै वर्जयित्वा द्विजं नृप ॥ ८ ॥ पतितो ब्राह्मणस्तत्र ब्रह्महाचात्महा भवे त् ॥ ९ ॥ द्वाविंशतिसहस्राणि राहुसोमसमागमे ॥ वर्षाणां जायेते राजन् राजा विद्याधरेशुरे ॥ १० ॥ अस्तेतुराहुणासूर्ये द्विगुणं फलमश्नुते ॥ अवशः स्ववशोवापि जलधूरानलाहतः ॥ ११ ॥ अत्रियतेयो भृगुप्राप्य सविद्याधराद्भवैत् ॥ भृगु भैरवरूपेण विन्ध्यकैलाससन्निभः ॥ १२ ॥ गहयन्ति भृगुं ये तु तेलिङ्गब्रह्मभेदिनः ॥ भैरवः क्षमते तेषां नेतिस्कन्देनकी र्ति तम् ॥ १३ ॥ संन्यासाच्चव्युतो विप्रो मातृहापितृहा तथा ॥ स्वसृगः स्वस्तुषागश्च तथास्वज्ञातिगस्तथा ॥ १४ ॥ एते

में भृगुके ऊपरसे गिरने में बाईस हजार वर्षतक विद्याधरके पुरमें राजा होता है ॥ १० ॥ और सूर्यग्रहण में इससे दूने फलको पाता है और के वश व अपने वश दो कर जो जल व अग्निसे मारा गया ॥ ११ ॥ वह भृगुको पाकर जो मरता है तो विद्याधरों का राजा होता है भैरवके रूपसे विन्ध्याचल और कैलास के समान भृगुगमन है ॥ १२ ॥ उस भृगुकी जो निन्दा करते हैं वे लिंगब्रह्मके तोड़नेवाले होते हैं उनका अपराध भैरवजी नहीं क्षमाकरते हैं यह स्वामिकार्त्तिकयजीने कहते हैं ॥ १३ ॥ जिस ब्राह्मणने संन्यासको छोड़ दिया है व माता पिताका मारनेवाला है, बहिन, बहू तथा अपने बरानेकी कन्याओंमें जो गमन करता है ॥ १४ ॥ इन लोगोंका भृगुके ऊपर

से गिरना अथवा अग्निमें जलना अच्छा है इसके करने से उस पापसे छूट जाता है और वह शिवलोक को जाता है ॥ १५ ॥ हरिश्चन्द्रपुर, चन्द्र, श्रीशैल, त्रिपुरा-
न्तिक, पापों को धोनेवाले त्रैयम्बक, वाराहपर्वत, विन्ध्यपर्वत ॥ १६ ॥ और इसीतरह कावेरीनदी का कुण्ड इनमें गिरने से स्वर्गको पाता है भृगुके दक्षिण तरफ चप-
लेश्वर लिङ्ग है ॥ १७ ॥ यहाँ तैन्नकी रत्नाके वास्ते पापोंका नाश करनेवाला प्रसिद्ध साठिधनुष तक चपलेश्वर का क्षेत्र जाननेयोग्य है ॥ १८ ॥ जो मनुष्य बिना उन
चपलेश्वरजी के दर्शन किये पहाड़पर चढ़ता है उसके सब पुण्यफल को वे चपलेश्वरजी लेलेते हैं इसमें कुछ सन्देह नहीं है ॥ १९ ॥ कपड़े में सूर्य की तसवीर

षांपतनंशस्तं करीषाग्नौप्रसाधनम् ॥ मुच्यतेतेनपापेन शिवलोकंमगच्छति ॥ १५ ॥ हरिश्चन्द्रपुरेचन्द्रे श्रीशैलेत्रि
पुरान्तिके ॥ त्रैयम्बकेधौतपापे वाराहेविन्ध्यपर्वते ॥ १६ ॥ कावेर्यास्तुतथाकुण्डे पतनात्स्वर्गमाप्नुयात् ॥ भृगोदक्षि
णभागेतु लिङ्गवैचपलेश्वरम् ॥ १७ ॥ क्षेत्रसंरक्षणायेह विख्यातंपापनाशनम् ॥ धनुःषष्ठ्यांततःक्षेत्रं विज्ञेयंचापले
श्वरम् ॥ १८ ॥ आरोहतिगिरियस्तु तमदृष्ट्वातुमानवः ॥ तस्यपुण्यफलंसर्वं सगृह्णातिनसंशयः ॥ १९ ॥ आलेख्यच
पटेसूर्यं पताकादण्डमण्डितम् ॥ वलयंचकरैकृत्वा वीज्यमानस्तुचामरैः ॥ २० ॥ वीरस्तुपतितुङ्गच्छेदारोहद्भृशुप
र्वतम् ॥ पदेपदेयज्ञफलं तस्यस्याच्छङ्करोब्रवीत् ॥ २१ ॥ प्रतीक्षन्तेसर्वकालेऽप्सरसःकाममोहिताः ॥ दिव्ययानंसमा
रूढा दिव्याभरणभूषिताः ॥ २२ ॥ वीरस्तुपतितस्तत्र स्वंचत्यक्त्वाकलेवरम् ॥ तत्क्षणादिव्यदेहस्तु शक्रतुल्यपरा
क्रमः ॥ २३ ॥ कामदंयानमारुह्य विवादेनपरस्परम् ॥ गच्छेच्छिवपुरंसाद्धमप्सरोग्भिःसमन्वितः ॥ २४ ॥ क्लीबस्य

लिखकर उस पताका को सुन्दर छर्डीमें पोहकर उसको और एक चूड़ाको हाथमें लेकर चामरों की हवा खाताहुआ ॥ २० ॥ जो वीर गिरने के वास्ते भृगुपर्वत पर
चढ़ता है उसको एक २ पगपर यज्ञका फल होता है यह शङ्करजीने कहा है ॥ २१ ॥ दिव्य सवारियों पर सवार और दिव्य गहने से जोभायमान, काममें मोहित अप्स-
रायें सदा उसकी राह देखाकरती हैं ॥ २२ ॥ वहाँ जो वीर भृगुपर्वत से गिरा है वह अपने देहको छोड़कर उसीसमयमें दिव्यदेहवाला होकर इन्द्रके बराबर पराक्रम
वाला ॥ २३ ॥ मनमाने फल देनेवाली सवारीपर सवार होकर आपस में भगड़ा करती हुई अप्सराओंके साथ शिवजीके पुरको जाता है ॥ २४ ॥ जो मनका कच्चा है

और मनका पक्का नहीं है व भृगुपर्वत पर चढ़कर फिर उतर आता है उसको पग २ पर ब्रह्महत्या होनी है इसमें कुछ सन्देह नहीं है ॥ २५ ॥ कोई मनुष्य अमर नहीं होसक्ता फिर किसकारण से गिरने में डरता है अपने कालआनेपर मौतके वशमें होरहे मनुष्य को कोई नहीं बचासक्ता है ॥ २६ ॥ जो संन्यास आदि उच्चमदर्जों पर चढ़कर गिरपड़ता है वह मनुष्य बड़ापापी व बुरी चालवाला व चाण्डाल व संसारमें निन्दित होता है ॥ २७ ॥ संन्यास को जिराने छांडदिया है ऐसे ब्राह्मणको देखकर सब यत्नपूर्वक स्नानकर सूर्यका दर्शनकरै तब पवित्र होता है और जो उस को छूता है उसके वास्ते चान्द्रायणव्रत करना कहा है ॥ २८ ॥ उसके साथ झूठ

सत्त्वहीनस्य उत्तीर्णस्य भृगोः पुनः ॥ पदे पदे ब्रह्महत्या भवेत्तत्स्य न संशयः ॥ २५ ॥ न चिंशयुर्भवेन्मर्त्यः कस्मान्मृत्यो विभेत्सौ ॥ न कोपिरक्षितुं शक्तः कालमृत्युवशाद्गतम् ॥ २६ ॥ सपापिष्ठो दुराचारश्चण्डालो लोकगर्हितः ॥ संन्यासादिकमारुह्य च्यवते यस्तुमानवः ॥ २७ ॥ संन्यासात्प्रच्युतं विप्रं दृष्ट्वा स्नानार्कवीक्षणम् ॥ कुर्यात्सर्वप्रयत्नेन स्पर्शा चान्द्रायणं स्मृतम् ॥ २८ ॥ ऋतानृतं न वक्तव्यं तेन सार्द्धं कदाचन ॥ स्थातव्यं चैव मौनेन नो चेत्पापमवाप्नुयात् ॥ २९ ॥ निश्चिते मरणे प्राप्ते कथं मृत्युरपेक्ष्यते ॥ जरामृत्युश्च रोगश्च संसारोदधिसम्प्लवे ॥ ३० ॥ एवं ज्ञात्वा नृपश्चेष्ट ह्यारोहेद्भृगुपर्वतम् ॥ एतत्ते कथितं राजन् भृगोर्माहात्म्यमुत्तमम् ॥ ३१ ॥ न ब्रूयाद्दुष्टबुद्धीनां कलौ पाखण्डकर्मणाम् ॥ दिगम्बरश्चेतपटबौद्धादीनां विशेषतः ॥ ३२ ॥ असम्भाष्यादुराचाराः पुराणस्मृतिनिन्दकाः ॥ न तैः सह प्रकर्तव्यः संवादो

सांच कुछभी कभी न बोलना चाहिये किन्तु चुपचाप रहना ठीक है नहीं तो पाप को पाता है ॥ २६ ॥ मरना तो निश्चयसे होगा ही तो फिर मौतके छोड़ने की क्यों इच्छा करता है बुढ़ापा, मौत और रोग तो इस संसारसमुद्रमें भरे ही पड़े हैं ॥ ३० ॥ हे नृपश्चेष्ट ! ऐसा जानकर भृगुपर्वत पर जरूर चढ़ना चाहिये हे राजन् ! यह भृगुपर्वतका उत्तम माहात्म्य मैंने तुमसे कहा है ॥ ३१ ॥ इसको कलियुगमें पाखण्डवाले कार्मों के करनेवाले दुष्टबुद्धियों से नहीं कहै क्योंकि उनके विश्वास नहीं होसक्ता और जो नङ्गे रहते हैं व सफेद कपड़े पहिनते हैं व बौद्धमजहब के मनुष्य हैं उनसे तो कभी नहीं कहै ॥ ३२ ॥ ऐसे दुराचारी मनुष्य पुराण और स्मृतियों की

निन्दा करनेवाले जो हैं वे सम्भाषण करनेयोग्य नहीं हैं इससे उनके साथ कभी बातभी न करना चाहिये ॥ ३३ ॥ हरएक देवताओंसे महादेवजीने आपही कहाहै कि जो मूढ़ मेरे कहेहुये तीर्थराज को नहीं मानते व जो भृगुपर्वत से उतर आतेहैं वे घोरनरकको जातेहैं ॥ ३४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणरेवाखण्डेप्राकृतभाषानुवादे भृगुपर्वतमहिमाऽनुवर्णनोन्मासपदचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥

युधिष्ठिरजी बोले कि हे विप्र ! अंकारनाथ का वर्णन, दान, यज्ञ, तप, पांचमुहकी उत्पत्ति वैसेही लिंगोंकी उत्पत्ति ॥ १ ॥ युगोंका प्रमाण, शिवजी की कला

हिकदाचन ॥ ३३ ॥ प्रत्येकसर्वदेवानां स्वयमाहवृषध्वजः ॥ नमन्यन्तेतुयेमूढास्तीर्थराजंमयोदितम् ॥ ३४ ॥ प्रयान्ति नरकंघोरं भृगोर्देवतरन्ति ॥ ३५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणरेवाखण्डे भृगुपर्वतमहिमाऽनुवर्णनोन्मास पदचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

युधिष्ठिरउवाच ॥ अंकारकर्तितनंविप्रदानंयज्ञस्तपस्तथा ॥ सम्भवंपञ्चवक्राणां लिङ्गानांसम्भवंतथा ॥ १ ॥ युगसंख्यां कलांचैव चरितंचमहाभुने ॥ कथयस्वप्रसादेन यथोद्दिष्टन्तुशम्भुना ॥ २ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ श्रूयतांराजराजेन्द्र पु राणस्कन्दकीर्तितम् ॥ द्वात्रिंशतिसहस्राणि लक्षणयष्टादशैव च ॥ ३ ॥ एपाकृतयुगेसंख्या सन्ध्यासन्ध्यांशमानतः ॥ लक्ष्याण्यष्टौतथाचाष्टौ सहस्राणियुधिष्ठिर ॥ ४ ॥ द्वापरेमानमिच्छन्ति सन्ध्यासन्ध्यांशमानतः ॥ सहस्राणिचचत्वारितथालक्षचतुष्टयम् ॥ ५ ॥ मानंकलियुगस्यैतत् सन्ध्यासन्ध्यांशमानतः ॥ अल्पजीरप्रदागावो ह्यल्पसस्याचमे

और चरित्रों को हे महाभुने ! अपनी प्रसन्नता से कहिये जैसा कुछ महादेवजी ने कहाहो ॥ २ ॥ तब मार्कण्डेयजी बोले कि हे राजराजेन्द्र ! स्कन्दजीके कहेहुये पुराण को सुनो अठारहलाख बत्तीस हजार ॥ ३ ॥ यह सत्ययुग का प्रमाण है और उस की सन्ध्या और सन्ध्यांश का भी प्रमाण इतनेही सौ वर्षका होताहै और हे युधिष्ठिर ! आठलाख आठहजार वर्षका ॥ ४ ॥ प्रमाण द्वापरमें इच्छा करते हैं इतनेही सौवर्ष की उसकी सन्ध्या और सन्ध्यांशहै चारलाख चारहजार वर्षका ॥ ५ ॥ कलियुग

का प्रमाण है इसीतरह सन्ध्या और सन्ध्यांश का मान है कलियुगमें थोड़े दूधकी देनेवाली गौवें होंगी और थोड़े अन्नकी पैदा करनेवाली पृथिवी होगी ॥ ६ ॥ वैसेही थोड़े पानीके भेव और थोड़ी विद्यावाले ब्राह्मण होंगे सोलहवीं वर्षके पूरे होनेपर मनुष्योंकी ज्ञानी जाती रहेगी ॥ ७ ॥ दशवें व बारहवें वर्ष में स्त्री गर्भको धारण करेगी कलिकालमें नंगेहोकर शूद्रलोग धर्ममें तत्परहोंगे ॥ ८ ॥ सब प्रजा एकही वर्णवाली होजावेगी और म्लेच्छ राजा होंगा कलियुग के प्राप्तहोनेपर उसीरूप में नारायण भी होजायेंगे ॥ ९ ॥ तब न अग्निहोत्र, न वेद, न धर्म, न यज्ञकरना, न सत्य, न तप, न दान, न सत्गुण और न देवता कहीं रहेंगे ॥ १० ॥ ब्राह्मणलोग वेदोंके दिनी ॥ ६ ॥ अल्पोदकास्तथामेघाः स्वल्पविद्यास्तथाद्विजाः ॥ पूर्णेतुषोडशेवर्षे नराःपलितयौवनाः ॥ ७ ॥ दशमे द्वादशेवर्षे नारीगर्भधराभवेत् ॥ शूद्राधर्मपरानित्यं कलौकालेदिगम्बराः ॥ ८ ॥ एकवर्णाःप्रजाःसर्वा राजाम्लेच्छो भविष्यति ॥ कलौयुगेतथाप्राप्ते कलिरूपेचमाधवे ॥ ९ ॥ नाग्निहोत्रंनवेदाश्च नधर्मोनचयाजनम् ॥ नसत्यंनतपो दानं नसत्त्वंनचदेवताः ॥ १० ॥ वेदविक्रयिणोविप्रा अन्यजानांशुहेगृहे ॥ वेदादेशंकरिष्यन्ति वेदविप्लवकारकाः ॥ ११ ॥ कन्याविक्रयिणःपापास्तथाकन्योपजीविनः ॥ सहस्रांशोनधर्मस्य कलाचैकाप्रवर्तिता ॥ १२ ॥ यत्रसिद्धस्त त्रतीर्थं जलेस्नास्यन्तिमानवाः ॥ शूद्रापत्नीद्विजानान्तु भविष्यतिगृहेगृहे ॥ १३ ॥ अधरोत्तरभावेन भविष्यन्तिकलौ नराः ॥ बौद्धाःक्षपणकाःपापानग्ननामलिनकश्मलाः ॥ १४ ॥ विदुर्भवयन्तिवालानां मोहिताःपापकर्मणाम् ॥ नगुरुंमन्य तोशिष्यः पुत्रश्चपितरंतथा ॥ १५ ॥ स्ववंशद्रव्यहर्तारःप्रव्रज्यावेपधारिणः ॥ लिङ्गोपजीविनःपापास्तथाभस्मोपजी वेचनेवालेहोंगे, शूद्रोंके घर २ में वेदोंको सुनावेंगे, वेदोंके नाश करनेवाले होंगे ॥ ११ ॥ पापीलोग लडकियों को बेचेंगे और उन्हींसे अपनी जीविका करेगे धर्मका हजारहवां शंशभी न रहेगा एक कला रहजायगी ॥ १२ ॥ जहां कोई फकीर रहेगा वहीं तीर्थहोगा उसी जलमें सब मनुष्य स्नानकरेंगे ब्राह्मणोंके घर २ में शूद्रोंकी स्त्रियां व लडकियां स्त्री होंगी ॥ १३ ॥ कलियुग में छोटे बड़ेमनुष्य बनेंगे बौद्ध, क्षपणक, नागा और अधोरी येही पापी पन्थवाले मनुष्य होंगे ॥ १४ ॥ ये लोग पापकर्मों मुख मनुष्योंको छलेंगे और आपसी मोहको प्राप्त बने रहेंगे चेला गुरुको नहीं मानेगा और पुत्र पिताको नहीं मानेगा ॥ १५ ॥ अपनेही वंशके धनको हरेगे और

संन्यासियों के रूपको बनावेगे अनेक वेपोंको बनाकर जीवोंगे इसीतरह भस्मको लगाकर जीविका करेंगे ॥ १६ ॥ वैवस्वत मन्वन्तर के कलियुग में यह सब होगा हे राजन् ! यह आपसे कहागया जो २ कलियुग में होगा ॥ १७ ॥ हे अनघ ! अब उल्कारकी उत्पत्ति व रचना विधिपूर्वक आपसे थोड़ेमें कहते हैं जो आपने पूछा था ॥ १८ ॥ इन देवके कहने से संसारबन्धन से छूटजाताहै उम् यह एक अक्षर ब्रह्मका नामहै इसको कहतेहुये और सुध करतेहुये ॥ १९ ॥ देहको छोडताहुआ जो जाताहै वह परमगति को प्राप्तहोताहै वेदोंकी माता गायत्री उल्कारही से पैदाहुई है ॥ २० ॥ उल्कार जो एक अक्षरका तत्त्वहै उसीमें ब्रह्मा, विष्णु और महादेव जी है

विनः ॥ १६ ॥ वैवस्वतेन्तरेप्राप्ते कलौसर्वम्भविष्यति ॥ १७ ॥ अंकारस्यैवोत्पत्तिं विधानंविधिपूर्वकम् ॥ कथयामिसमासेन यत्पृष्टोहन्त्वयानव ॥ १८ ॥ कीर्तनादस्यदेवस्य मुच्यतेभववन्धनात् ॥ अमित्येकाक्षरंराजन् व्याहरन्समनुस्मरन् ॥ १९ ॥ यःप्रयातित्यजन्देहं सयातिपरमाद्भुतिम् ॥ वेदमाता चगायत्री अंकारप्रभवातथा ॥ २० ॥ अमित्येकाक्षरेतत्त्वे ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥ अंकारोवेदमूलन्तु श्रुतिशास्त्राःप्रतिष्ठितः ॥ २१ ॥ फलंचैवतुषुषञ्च पर्णानिस्मृतिरागमः ॥ यथादौसर्वविद्यानामोकारःपरिपठ्यते ॥ २२ ॥ तथादौसर्वदेवानामादिदेवोमहेश्वरः ॥ सन्ध्यात्रयंत्रिकालादि अंकारेपरिकीर्तितम् ॥ २३ ॥ अग्नित्रयंत्रयोर्लोकास्त्रिवर्गश्चप्रतिष्ठितः ॥ अष्टपष्टिञ्चतार्यानां ब्रह्मणेशिवकीर्तितम् ॥ २४ ॥ एकेनचशतंपूर्णं रुद्राणाम्परिकीर्तितम् ॥ केदारेशतमे कन्तुअंकारैकोत्तरंशतम् ॥ २५ ॥ पञ्चब्रह्मपञ्चवक्त्रमोकारंलिङ्गमुत्तमम् ॥ पृथिव्यांयानिलिङ्गानि आससुद्रान्तर्गो

उल्कारही वेदकी जडहै वेद उसकी शाखायें हैं ॥ २१ ॥ स्मृति और शास्त्र ये सब फल, फूल और पत्तें हैं जैसे सब विद्याओंकी आदिमें उल्कार पढ़ाजाताहै ॥ २२ ॥ इसी तरह सब देवताओंके आदिदेवता महादेवजी है तीनों सन्ध्या और तीनों कालआदि उल्कारही में कहेगये हैं ॥ २३ ॥ तीनोंअग्नि और तीनोंलोक तथा त्रिवर्ग (धर्म, अर्थ, काम) ये उल्कारही में रहते हैं अरसठ तीर्थ ब्रह्मासे शिवजीने कहेहैं ॥ २४ ॥ और एकसौएक रुद्र कहेहैं केदारनाथमे सौरुद्र और उल्कारनाथमें एकसौएक रुद्र

हैं ॥ २५ ॥ पांच वेद जिनसे निकले हैं ऐसे पांच मुखवाला उत्तम अङ्कार लिंग है चारोंसमुद्रतक पृथिवीमें जितने लिंग हैं ॥ २६ ॥ उनमें अङ्कारनाथ को छोड़कर पांचमुख किसी लिंगके नहीं हैं हे युधिष्ठिर ! स्वायम्भुव मन्वन्तर के प्राप्तहोनेपर आदिकल्पके सत्ययुगमें ॥ २७ ॥ नर्मदाके तीरमें रहनेवाले देवताओं को दानवोंने जीतलिया, कंकाल, कालिकेय और कालक नाम के दैत्योंने देवताओंको भगादिया ॥ २८ ॥ ब्रह्मा सहित वे सब देवता ईश्वरकी शरण जातेहुये हे भारत ! तदनन्तर बृहस्पति ब्रह्मासे बोले ॥ २९ ॥ कि आप दानवों के नाश करनेवाली यज्ञको करो जो बड़ी भयानक हो तब उन बृहस्पतिजी से ब्रह्माजी वचन बोले ॥ ३० ॥ कि दानवों के

चरे ॥ २६ ॥ नतेषांपञ्चवक्राणि त्यक्त्वोकारं युधिष्ठिर ॥ स्वायम्भुवेन्तरेप्राप्ते आदिकल्पे कृत्युगे ॥ २७ ॥ दानवैर्निजिता देवानर्मदातीरमाश्रिताः ॥ अवहुताः कङ्कोलेस्तु कालिकेयैश्च कालकैः ॥ २८ ॥ ते देवा ब्रह्मसहिता ईश्वरं शरणं कृताः ॥ बृहस्पतिस्ततः प्राह ब्रह्माणम्प्रति भारत ॥ २९ ॥ इष्टिकुरु महारौद्री दानवानां क्षयं करीम् ॥ उवाच वचनं ब्रह्मा तदा तं देवमन्त्रिणम् ॥ ३० ॥ ममैव विस्मृतामन्त्रा दानवानां भयेन च ॥ एतस्मिन्नन्तरे भित्त्वा पातालानि च सप्त च ॥ ३१ ॥ अङ्कार पूर्वकं राजन् भूर्भुवस्स्वश्च कीर्तयन् ॥ पर्वतादुत्थितं लिङ्गं ज्वलत्कालानलप्रभम् ॥ ३२ ॥ सूर्य्यकोटिसमप्रख्यं ज्वालाभा लासमाश्रितम् ॥ आदिमध्यान्तहीनञ्च नदृष्टं परमं क्वचित् ॥ ३३ ॥ चतुर्वर्गैश्चतुर्वेदैर्देवाङ्गनिर्गमैः स्वयम् ॥ उवाच वचनं शम्भु ब्रह्माणं लोकभावनम् ॥ ३४ ॥ सौम्यांचैव तु भो ब्रह्मलोकानां शान्तिकारिणीम् ॥ मया समर्पिता वेदा इष्टि

भयसे हमको आपही मन्त्र भूलगये हैं इसी अन्तर में सातो पातालों को फाड़कर ॥ ३१ ॥ हे राजन् ! अङ्कारपूर्वक भूर्भुवःस्वः इन तीनों व्याहृतियों को कहता हुआ जलतेहुये महाप्रलयके अग्निके समान पर्वत से एक लिंग उठताहुआ ॥ ३२ ॥ करोड़ सूर्यके बराबर तेजवाला हजारों लपटोंसे व्याप्त ऊपर, बीच और नीचा जिसका नहीं जानपडता है और ऐसा श्रेष्ठलिंग कभी देखा नहीं गयाथा ॥ ३३ ॥ सो वेही लिंगरूप शिवजी धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष, चारोंवेद, वेदांग और शास्त्रों के सहित संसारके बनानेवाले ब्रह्माजी से वचन बोले ॥ ३४ ॥ कि हे ब्रह्मन् ! लोकोंकी शांति करनेवाली व सौम्य यज्ञको तुम स्वेच्छापूर्वक करो मैंने तुमको वेदोंको

दिया है ॥ ३५ ॥ तदनन्तर ब्रह्माने प्रथम तो दैत्यों के नाश करनेवाले भयानक यज्ञको किया फिर लोकोंकी शान्ति करनेवाली रौम्ययज्ञ को किया ॥ ३६ ॥ तब हे महाराज ! वे सब दैत्यलोग भयङ्कर यज्ञ को देखकर ब्रह्माके शापके भयसे डरे हुये दशो दिशाओं को भागगये ॥ ३७ ॥ अङ्कार के प्रभाव से सब देवता निर्भय होगये फिर महादेवजी का पूजनकर वे सब देवता स्वर्गको चलेगये ॥ ३८ ॥ हे पार्थिव ! कल्पके अन्ततक रहनेवाले देवता और दैत्यों करके नमस्कार कियेगये इस महालिंग अङ्कार को काम और मोक्षका देनेवाला जानो ॥ ३९ ॥ कल्पके अन्तमें उस लिङ्गमें सब देवता लीन होजाते हैं इसीसे इस लिङ्गको अमर, ब्रह्म,

कुरुयथेप्सया ॥ ३५ ॥ ततो ब्रह्माचकारेष्टिं रौद्रादैत्यजयङ्करीम् ॥ इष्टिचैव ततः सौम्यां लोकानां शान्तिकारिणीम् ॥

३६ ॥ ततोऽसुरामहाराज दृष्ट्वा चेष्टिभयङ्करीम् ॥ ब्रह्मशापभयोद्विग्ना गतास्ते तु दिशो दश ॥ ३७ ॥ अंकारस्य प्रभा

वेण सर्वे देवास्तु निर्भयाः ॥ ततो भ्यचर्य सुरेशानं देवास्ते त्रिदिवं ययुः ॥ ३८ ॥ कल्पान्तं गमहालिङ्गं सुरासुरनमस्कृत

म् ॥ कामदं मोक्षदं चैव अंकारं विद्धि पार्थिव ॥ ३९ ॥ तस्मिन् लिङ्गे तु लीयन्ते कल्पान्ते सर्वे देवताः ॥ अमरं ब्रह्म वेत्याहुर्ह

रिं सिद्धेश्वरं तथा ॥ ४० ॥ पिङ्गलेश्वरमादित्यं सोमं पित्रीश्वरं तथा ॥ यत्र सिद्धास्त्रयो वेदाः स षडङ्गपदक्रमाः ॥ ४१ ॥ ते

न सिद्धेश्वरं विद्धि सर्वसिद्धिप्रदायकम् ॥ कथितं पर्वतस्य ग्रे लिङ्गकोटिं समन्वितम् ॥ ४२ ॥ अर्चनात्तस्य लिङ्गस्य वि

ष्णुलोके महीयते ॥ कल्पे कल्पे महाराज जीयन्ते सर्वे देवताः ॥ ४३ ॥ मुक्ता तु पञ्च लिङ्गानि मार्कण्डेना मर्मदंष्ट्रप ॥

अविमुक्तं च केदारमोङ्कारममरेश्वरम् ॥ ४४ ॥ तथैव च महाकालमेवं लिङ्गन्तु भारत ॥ पुरयानि पञ्च लिङ्गानि प्रातस्तथा

हरि और सिद्धेश्वर कहते हैं ॥ ४० ॥ पिङ्गलेश्वर नामके सूर्य और पित्रीश्वर चन्द्रमा, बृहोअङ्ग, पद और क्रमकरके सहित तीनों वेद जहाँ सिद्ध हुये हैं ॥ ४१ ॥ इस से सब सिद्धियों के देनेवाले इस लिंगको सिद्धेश्वर जानो पर्वत के ऊपर करोड़ों लिङ्गोंसे युक्त यह लिङ्ग कहा गया है ॥ ४२ ॥ इस लिङ्गके पूजन करनेसे विष्णुलोक में पूजित होता है हे महाराज ! कल्प २ में सब देवता नहीं रहते हैं ॥ ४३ ॥ हे नृप ! इन पाँचों लिंगोंको छोड़कर अर्थात् इनका नाश नहीं होता है नर्मदा के तट में विद्यमान मार्कण्डेयलिंग, अविमुक्त (विश्वनाथ), केदारनाथ, अमरेश्वर अङ्कारनाथ ॥ ४४ ॥ इसीतरह महाकाललिंग हे भारत ! इस प्रकार इन पवित्र पाँचों लिंगोंको प्रातः-

काल उठकर जो पढ़ता है ॥ ४५ ॥ वह सब तीर्थों के फलकों पाकर शिवलोकमें पूजित होता है महाकालमें एक कालीशक्ति हमेशा व्यापकरूप से रहती है ॥ ४६ ॥ और हे नृप ! सवाकरोड़ तीर्थ महाकाल में रहते हैं और हे नृप ! कावेरीनदी शिवलोक में नहीं है किन्तु यहा शिवक्षेत्रमें स्थित है ॥ ४७ ॥ चारकोस के भीतर ब्रह्महत्या नहीं आती है उस कावेरीनदी के किनारे पर आग्नेयनाम का सिद्धलिंग विद्यमान है ॥ ४८ ॥ और हे कुरुनन्दन ! शिवख्यात नाम से असिद्ध तीर्थ है उसमें स्नानमात्र करनेवाला मनुष्य फिर संसार में नहीं होता है ॥ ४९ ॥ जो मनुष्य कीडा, चिड़िया, पतंगवा आदि तिर्यग्योनियों से प्राप्त होगये है वे भी वहा पाप

ययः पठेत् ॥ ४५ ॥ सर्वतीर्थफलंप्राप्य शिवलोकैर्महीयते ॥ एकाकालीमहाकाले वसेद्वैव्यापिनीसदा ॥ ४६ ॥ सप्ताद कोटिस्तीर्थानां महाकालेवसेन्नृप ॥ शिवलोकैकनकावरी शिवक्षेत्रेस्थितानृप ॥ ४७ ॥ चतुःक्रोशाभ्यन्तरतो ब्रह्महत्यानसर्पति ॥ आग्नेयंसिद्धलिङ्गं च तस्यास्तीरेसमाश्रितम् ॥ ४८ ॥ शिवख्यातमितिख्यातं तीर्थेतुकुरुनन्दन ॥ स्नानमात्रो नरस्तत्र सभवेन पुनर्भवेत् ॥ ४९ ॥ कीटपक्षिपतङ्गादितिर्यग्योनिगतानराः ॥ सुच्यन्ते तत्रापि न शिवस्य वचनं यथा ॥ ५० ॥ तत्रयः कुरुते श्राद्धं पितृणांच तिलोदकम् ॥ युगकोटिसहस्रन्तु पितरस्तेन तर्पिताः ॥ ५१ ॥ सर्वेषामेव लिङ्गानां दिव्यं वात्र प्रकीर्तितम् ॥ तत्र स्नातो दिवं याति न विशेद्योनि सङ्कटे ॥ ५२ ॥ कोटियज्ञफलं प्राप्य शिवलोकैर्महीयते ॥ अष्टकोटिस्तु तीर्थानां केदारे कथितानृप ॥ ५३ ॥ दर्शनादर्चनात्तस्य स्पर्शान्मोक्षफलं नृणाम् ॥ केदारस्योदके पीते पुनर्जन्म न विद्यते ॥ ५४ ॥ अहोरात्रोषितो भूत्वा पयःपानं करोति यः ॥ तस्योदरे भवेच्छिङ्गं परमासाद्ब्रह्मचारिणः ॥ ५५ ॥

से छूटजाते हैं ऐसा शिवजी का वचन है ॥ ५० ॥ वहाँ जो कोई श्राद्ध व पितरों के वास्ते तिलोदक देता है उसने मानो करोड़ो हजारयुग तक पितरोंको तृप्त कर दिया ॥ ५१ ॥ सब लिंगों में जो दिव्यलिंग है वह यहाँ कहा गया है इससे इस तीर्थ में स्नान करनेवाला स्वर्गको जाता है व योनिके संकट में नहीं आता है ॥ ५२ ॥ और करोड़यज्ञों के फलको पाकर शिवलोकमें पूजित होता है हे नृप ! आठ करोड़ तीर्थ केदारनाथमें कहे गये हैं ॥ ५३ ॥ उन केदारनाथके दर्शन व पूजन व स्पर्शनेसे मनुष्योंको मोक्षफल होता है व केदारनाथ के चरणोदक पीने से फिर जन्म नहीं होता है ॥ ५४ ॥ दिन रात ब्रत करनेवाला होकर जो केवल दूध पीता है उस ब्रह्मचारी

के पेटमें छह महीना में एक लिङ्ग उत्पन्न होजाता है ॥ ५५ ॥ केदारजी के दर्शनही से शिवलोक में पूजित होता है काशी तीनों लोकोंमें महापुण्यवाली मसिद्ध है ॥ ५६ ॥ वह पुरी आकाश में है और मनुष्यलोक के बाहर है उसके पांचकोसतक चारो तरफ ब्रह्महत्या नहीं आती है ॥ ५७ ॥ हे भारत ! वहां अट्टाईस करोड लिङ्ग है गङ्गा और वरुणाके बीचमें यथोचित स्नान करके ॥ ५८ ॥ सब पापों से छुटाहुआ देवताओं की तरह स्वर्ग में आनन्द करता है वहां जो शिवजी का ध्यानकर प्राणों को छोडताहै ॥ ५९ ॥ वह अपने हजारकुलों को उद्धारकर शिवलोक को जाताहै वहा जो दान दियाजाता है उसकी संख्या नही है ॥ ६० ॥ तिलोदक के देनेसे पितरों

केदारदर्शनादेव शिवलोकमेंहीयते ॥ वाराणसीमहापुण्या त्रिषुलोकेषुविश्रुता ॥ ५६ ॥ अन्तरिक्षेपुरीसातु मृत्युलोक स्यबाह्यतः ॥ पञ्चक्रोशान्तरेयावद्ब्रह्महत्यानसर्पति ॥ ५७ ॥ अष्टाविंशतिकोट्यस्तु लिङ्गानांतत्रभारत ॥ गङ्गावरुणयोर्मध्येस्नानंकृत्वायथोदितम् ॥ ५८ ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तो देवन्मोदतेदिवि ॥ तत्रयस्त्यजतिप्राणाञ्छिवं ध्यात्वात्मानवानः ॥ ५९ ॥ सहस्रकुलमुद्धृत्य शिवलोकंसगच्छति ॥ तत्रयहीयतेदानं तस्यसंख्यानविद्यते ॥ ६० ॥ तिलोदकप्रदानेन पितृणांप्रीतिरक्षया ॥ तत्रयस्त्यजतिप्राणानवशःस्ववशोपिवा ॥ ६१ ॥ त्रिनेत्रःशूलपाणिस्तु शिवस्यानुचरोभवेत् ॥ अविमुक्तस्यलिङ्गस्य स्पर्शनान्मुक्तिराप्यते ॥ ६२ ॥ कलात्रयन्तुतत्रास्ते काशीपुर्यानसंशयः ॥ गङ्गासागरसंभेदे चतसस्तुकलाःस्मृताः ॥ ६३ ॥ गङ्गासहस्रवक्त्रेण प्रविष्टायत्रसागरम् ॥ स्नानावगाहनात्पानात् पिएडदानाच्चतर्पणात् ॥ ६४ ॥ गच्छेच्छिवपुरंतत्र पितृभिस्सहमानवः ॥ अपरंकालरुद्रन्तु सप्तपातालवासिनम् ॥ ६५ ॥ हाटकंविद्धितं

की अक्षय प्रीतिहोती है वहां जो कोई परवश व अपने वशहो प्राणों को छोडताहै ॥ ६१ ॥ वह त्रिशूलको हाथमें लियेहुये तीन नेत्रवाला शिवका सेवक होताहै अविमुक्तलिङ्ग (विश्वनाथ) के स्पर्शसे मुक्ति होती है ॥ ६२ ॥ वहां काशीपुरीमें तीन कला हैं इसमें कुछ संशय नहीं है और गङ्गासागर के संगम में चार कला कहीगई हैं ॥ ६३ ॥ जहां हजारों मुखसे गंगाजीने समुद्रमें प्रवेश कियाहै वहा स्नान, तैरना, जलपीना, पिएडदान और तर्पण से पितरों के सहित मनुष्य शिवपुरको जाताहै

सात पातालतक रहनेवाले एक कालरुद्रलिंग को ॥ ६४ ॥ हाटकेश्वर जानो उन देवको मनुष्य नहीं देखते हैं देवता और सिद्धोंकरके सेवाकिये जाते वे देव, देवता और दैत्योंकरके पूजन किये जाते हैं ॥ ६६ ॥ दूसरे गंगेश्वर और तीसरे सागरेश्वर और चौथे शूलपाणि येही चारों कला हैं ॥ ६७ ॥ और मनमाने रूपके धारनेवाले अंकारनाथ महादेव को छोड़कर और समुद्रपर्यन्त पांच कलावाला कोई रुद्र नहीं है ॥ ६८ ॥ पांचों वेद पांचों जिनके मुख हैं और नवशक्तियोंसे युक्त नर्मदा के तीर में विद्यमान अंकारही को महादेवजी ने पूर्वकाल में कहा है ॥ ६९ ॥ इसीसे इस पुण्यवाले लोकमें तीनोलोकों से पूजेगये अंकारही हैं उनका पश्चिमवाला मुख

देवं नतुपश्यन्तिमानवाः ॥ पूज्यतेसुरदैतयैश्च सुरसिद्धनिषेवितम् ॥ ६६ ॥ गङ्गेश्वरं द्वितीयन्तु तृतीयं सागरेश्वरम् ॥ चतुर्थं शूलपाणिन्तु चतस्रश्च कलाहति ॥ ६७ ॥ कलापञ्चात्मकरुद्रमासमुद्रान्तगोचरे ॥ वर्जयित्वा महेशानमौंकारं का मरूपिणम् ॥ ६८ ॥ पञ्चब्रह्मपञ्चवक्त्रं नवशक्तिसमन्वितम् ॥ अंकारं कल्पणातीरे शिवेन कथितम्पुनः ॥ ६९ ॥ तेनपुनर्यात्मकेलोकं लोकत्रितयपूजितम् ॥ शङ्खकुन्देन्दुसंकाशं सद्यो वक्रन्तु पश्चिमम् ॥ ७० ॥ ऋग्वेदो निर्गतो यस्माद्ब्रह्मातत्राधिदेवता ॥ उत्तरं वामदेवन्तु पीताम्बुमनोहरम् ॥ ७१ ॥ यजुर्वेदोद्भवं विद्धि विष्णुस्तत्राधिदेवता ॥ अघोरं मेघवर्णं याम्याञ्च दिशि चास्थितम् ॥ ७२ ॥ सामवेदोद्भवं विद्धि सूर्यकालाग्निदैवतम् ॥ पूर्वतत्पुरुषं ज्ञेयं कुङ्कुमाररूपसन्निभम् ॥ ७३ ॥ अथर्वनिर्गतन्तुर्यमापस्तत्राधिदेवताः ॥ ईशानस्तव वक्रन्तु पञ्चवर्णं महातनुम् ॥ ७४ ॥ श्रुतिसिद्धा

सद्योजातं नाम का है जोकि शंख, कुन्द और चन्द्रमा के समान सफेद है ॥ ७० ॥ जिससे ऋग्वेद निकल है उसके देवता ब्रह्माजी हैं और उत्तरवाला मनका हरनेवाला पीलेरंगका वामदेव नामका मुख है ॥ ७१ ॥ उससे यजुर्वेद की उत्पत्ति जानो उस के देवता विष्णुजी है मेघोंके समान रंगवाला दक्षिण दिशा में विद्यमान अघोरनाम का मुख है ॥ ७२ ॥ उसे सामवेद का उत्पन्न करनेवाला जानो उसके सूर्य व काल और अग्नि देवता हैं व पूर्वमें केसरके समान लालव पीला तत्पुरुषनाम का मुख जानना चाहिये ॥ ७३ ॥ उससे चौथा अथर्ववेद निकला है उसका जल देवता है व पाचरंग का बडाभारी ईशाननाम का मुख है ॥ ७४ ॥ वेदोंके सिद्धान्त उस मुखसे

गायेगये हैं उसके देवता सोमहैं छठा सदाशिव नाम का मुखहै जिसके हिरसा नहीं होसके दोपासे रहितहै ॥ ७५ ॥ उसमें कोई चिह्न नहींहैं और वह किसीसे लखा नहीं जाताहै उसको जानकर मुक्त होसकतहै इसमें कुछ संशय नहींहै हे राजन् ! यह अंकारका वर्णन तुमसे मैंने कहा ॥ ७६ ॥ हजार मुहंवालेकी नही ताकतहै एक मुहंवालेकी क्या बातहै जलसे स्नानकरके बिल्वपत्रसे जो पूजा करताहै ॥ ७७ ॥ वह चारहजार वर्षतक रुद्रलोकमें रहताहै दक्षिणामूर्ति जो अंकारजी है उनके पास जो अपने प्राणोंको छोडता है ॥ ७८ ॥ वह करोडहजार वर्षतक महादेवजीके पुरमें रहता है जो कोई चूना और ईटसे जुड़ाहुआ महल व मठ ॥ ७९ ॥ पताका और

न्तसङ्गीतसोमंत्राधिदेवता ॥ षष्ठसदाशिवनाम निर्भागचनिरामयम् ॥ ७५ ॥ निर्लंचलचहीनन्तु ज्ञात्वा मोक्षेन्न संशयः ॥ एतत्ते कथितं राजन्नोङ्कारस्य तु वर्णनम् ॥ ७६ ॥ सहस्रास्यस्य नो शक्तिरेकवक्त्रस्य का कथा ॥ स्नापयित्वा देकेन व बिल्वपत्रेण पूजयेत् ॥ ७७ ॥ चतुर्वर्षसहस्राणि रुद्रलोकं महीयते ॥ अंकारदक्षिणामूर्तौ प्राणत्यागं करोति यः ॥ ७८ ॥ व बिल्वपत्रेण पूजयेत् ॥ ७९ ॥ चित्रमालेख्यमूले च पताका वर्षकोटिसहस्राणि वसेन्माहेश्चरे पुरे ॥ प्रासादञ्च मठं चापि सुधयेष्टकं संयुतम् ॥ ७९ ॥ चित्रमालेख्यमूले च पताका ध्वजशोभितम् ॥ वितानं किङ्किणीयुक्तं नेत्रं वंशोद्भवशुभम् ॥ ८० ॥ पञ्चवर्णकशोभाढ्यमोकारस्य तु कारयेत् ॥ पञ्चामृतैस्स्नापयित्वा चन्दनागुरुकुङ्कुमैः ॥ ८१ ॥ समावेष्ट्य परीधानैर्नाना वस्त्रैः सुशोभनैः ॥ हेममौक्तिकरत्नैश्च सघृतगुणुं दहेत् ॥ ८२ ॥ घण्टांच दीपकंचैव विधूमारातिं कचयत् ॥ मृदङ्गान्पटहांश्चैव वेणुवीणाञ्च गीतकम् ॥ ८३ ॥ काहली शङ्खवाद्यानि कांस्यतालाद्यमेव च ॥ व्यजनं गेडुकं च त्र्यं चामरं ध्वजदण्डकम् ॥ ८४ ॥ हेमचान्नधरादीनि गृहांश्च ग्रामध्वजाश्च मे शोभित दीवार में चित्रसारी खिचवाकर बनवाताहै अथवा लुद्रघण्टिकाओं की झालरें जिसमें टकीहुई उमदा कपडा व उत्तम बांस जिसमें लगेहुये ऐसे चंदोषा को लगाता है ॥ ८० ॥ जोकि पांचों रंगोंकी शोभासे युक्तहै अथवा पञ्चामृतसे स्नान कराके चन्दन, अगर और केसरसे लेपन करताहै ॥ ८१ ॥ अनेकतरह के उत्तमकपड़ों से मूर्तिको लपेटकर सोना, मोती और रत्नोंसे पूजनकर घीसहित गुगुलुको जलाताहै ॥ ८२ ॥ घण्टा, दिया और धुआंरहित श्रांती करता है मृदङ्ग, पटह, बेन, सितारको बजाता और गाताहै ॥ ८३ ॥ काहली, शङ्ख, भांभ, मंजीरा और तारीश्रादि बाजाओं को जो बजाता है वेना, गडुवा, छाता, चैयर, ध्वजा,

लाठी ॥ ८४ ॥ सोना, अन्न, पृथिवी, मकान, गांव और शहरआदि पदार्थोंका जो अर्पण करता है जैसे तैसे किसी तरह ॥ ८५ ॥ उसके दानके फलकी संख्या नहीं कीजासक्ती है चन्द्र व सूर्य के ग्रहणमें सिद्धेश्वर व अंकारको ॥ ८६ ॥ ध्वजाओंसे चारोंतरफ घेरे तो उसकी पुण्यके फलको सुनो कि कपड़ेमें जितनी सूतकी संख्या है और वे सूत वायुसे हिलतेहैं ॥ ८७ ॥ हे नृप ! उतने हजार युगतक शिवलोकमें रहताहै करोड़ों हजारयुग और करोड़ों सौ युग तक ॥ ८८ ॥ सब कामोंसे भराहुआ ब्रह्मा, विष्णु और शिवजीके स्थानमें रहताहै हे राजन् ! यह तुमसे अंकारकी उत्पत्ति व लक्षण कहा ॥ ८९ ॥ अब ब्रह्माके कियेहुये अंकारके स्तोत्रको तुमसुनो ॥ ९० ॥

पत्तनम् ॥ यद्वातद्वातपश्रेष्ठ अङ्कारायनिवेदयेत् ॥ ८५ ॥ तस्यदानफलस्येह संख्याकर्तुंनशक्यते ॥ सिद्धेश्वरोङ्कार
योस्तु चन्द्रसूर्यग्रहग्रहे ॥ ८६ ॥ ध्वजमालाकुलंकुर्ध्यात्तस्यपुण्यफलंशृणु ॥ यावतीतन्तुसंख्यास्ति वायुनोद्धृत्यते
पुनः ॥ ८७ ॥ तावद्युगसहस्राणि शिवलोकैवसेनृप ॥ युगकोटिसहस्राणियुगकोटिशतानिच ॥ ८८ ॥ सर्वकामसमृ
द्धात्मा ब्रह्मविष्णुशिवालये ॥ एतत्तेकथितंराजन्नोङ्कारोत्पत्तिलक्षणम् ॥ ८९ ॥ ब्रह्मणातु कृतंतस्य स्तोत्रन्तंशृणुसा
म्प्रतम् ॥ ९० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणैरेवाखण्डे अङ्कारमहिमानुवर्णनोनामसप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४७ ॥ *

मार्कण्डेयउवाच ॥ ब्रह्मणेकथितोमन्त्र अङ्कारेणततो नघ ॥ ब्रह्मापितद्वचःश्रुत्वा स्तोत्रमेतदुदाहरत् ॥ १ ॥ अं
व्योमसंख्यायितेव्योमहरायसर्वव्यापिने ॥ अनन्तायअनाथाय अमृतायध्रुवायच ॥ २ ॥ शम्भवायशाश्वताय यो

इति श्रीस्कन्दपुराणैरेवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनुवादे अङ्कारमहिमाऽनुवर्णनोनामसप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४७ ॥

मार्कण्डेयजी बोले कि हे अनघ ! तदनन्तर ब्रह्माजीसे अंकारजीने मन्त्रकोकहा व ब्रह्माभी उनके वचनको सुनकर इस स्तोत्रको पढ़तेहुये ॥ १ ॥ कि आकाश
के बनानेवाले अंकारही हैं क्योंकि वेदमें पहले नादही की उत्पत्ति कहीगई है उससे आकाश हुआ इसी से आकाशका शब्द गुण है तो आकाशकी नाई सबमें
व्याप्त जो अंकाररूप शिवजीहैं उनके लिये नमस्कार है अन्त जिनका नहीं है और कोई जिनका मालिक नहीं है, मोक्षरूप, हमेशा अटल रहेनेवाले ॥ २ ॥ सुलके

पैदा करनेवाले, हमेशा रहनेवाले, योगासनसे बैठनेवाले, हमेशा योगाभ्यास करने से योगीरूप हो रहे, आकाश की नाईं सब वस्तुको अपनेही में हरलेनेवाले ॥ ३ ॥
 अंकाररूप शिवजीकेलिये नमस्कारहै सबकी उत्पत्तिके स्थान, सबके मालिक, कल्याणस्वरूप, शिवजीकेलिये नमस्कारहै "फिर उन्हीं शब्दोंका उच्चारणकरना आदर के लिये है" ॥ ४ ॥ तत्पुरुषनाम मुख जिनका शिरकी जगहपरहै, अघोरनामकी कला विष्णुरूप जिनके हृदयकी जगहपरहै, सद्योजात नामकी कला जिनके गुप्तस्थान की जगहपर है ऐसे अंकारमूर्ति शिवजी के लिये नमस्कारहै नमस्कारहै ॥ ५ ॥ घटाबद्धीसे रहित, नाशरहित, जाननेवाले, वज्रके बराबर पोढ़ी देहवाले, सब जगत के संहार करनेवाले ॥ ६ ॥ सब इन्द्रियों के मालिक, संसारके बनानेवाले व सिखानेवाले, देवताओंके मालिक, महाप्रलय के अग्निरूप,

गपीठसंस्थिताय नित्ययोगयोगिनेव्योमहराय ॥ ३ ॥ अंनमः शिवाय सर्वप्रभवाय शिवाय सर्वप्रभवाय
 यशिवाय ईशानाय ॥ ४ ॥ मूर्द्धाय तत्पुरुषाय वक्राय अघोराय हृदयाय सुदेवाय गुहाय सद्योजाताय मूर्तये अंकाराय
 नमो नमः ॥ ५ ॥ कलातीतोव्ययो बुद्धो वज्रदेहोपमर्दनः ॥ ६ ॥ अद्यक्षश्च विधुः शास्ता पिनाकी त्रिदशार्थि
 पः ॥ अग्नीरुद्रो हुताशश्च पिङ्गलः पावनो हरः ॥ ७ ॥ उवलनो दहनो वस्तुभस्मान्तश्च जमान्तकः ॥ अपमृत्युहरो धाता
 विधाता कर्तृसंज्ञकः ॥ ८ ॥ कालो धर्मपतिः शास्ता वियोक्तानवमः प्रियः ॥ निमित्तो वारुणो हन्ता क्रूरदृष्टिर्भयावहः ॥
 ९ ॥ ऊर्ध्वदृष्टिर्विरूपाक्षो दंष्ट्रावान्धूम्रलोचनः ॥ बालो ह्यतिबलश्चैव पाशहस्तो महाबलः ॥ १० ॥ इवेतो विरूपो रुद्रश्च दी

उत्पन्न होनेपर रोनेवाले, होमहुये पदार्थ के भोजन करनेवाले, भस्मके योगसे कपिसैलैरूपके धारण करनेवाले, सबके पवित्र करनेवाले व हरनेवाले ॥ ७ ॥ प्रकाश करनेवाले व जलानेवाले इस जगत् में जो सत्यहै वह आपही है, अन्तमें सबको भस्म करनेवाले, क्रोधरूप, अकालमृत्युके हरनेवाले, धाता और विधाता इन दोनों प्रजापतियोंके रूपके धारण करनेवाले और सबके कर्त्ता ॥ ८ ॥ सत्र चीजको पुरानी करनेवाले, कालरूप, धर्मके मालिक, जगत के सिखानेवाले अर्थात् ईश्वररूप, सबके वियोग के करानेवाले, कुछभी कम नहीं होनेवाले, आत्मारूप होनेसे सबके प्यारे, सबके कारणरूप, जलमूर्त्तिके धारण करनेवाले, सबके नाश करनेवाले, डरावनी नजरवाले, भय करानेवाले ॥ ९ ॥ ऊपर यानी माथेपर आँखवाले, बिगड़ेरूपकी आँखोंवाले, बड़ी २ दाढ़ीवाले, धुमैले नेत्रवाले, बालरूपसे रहनेवाले व बड़े

बलवाले, फंसरी को हाथमें पकड़नेवाले और महाबलवाले ॥ १० ॥ सफेद जिनका रूपहै और विकरालरूपवाले भी हैं, सबके रूखानेवाले, बड़े २ हाथोंवाले, जड़ोंके नाश करनेवाले, बड़ेजल्द, बहुत हलके, वायुके बराबर वेगवाले, बड़े डरावने, वड़वामुख अग्नि जिनका रूपहै ॥ ११ ॥ पांच शिरवाले, जटाजूट के धारण करनेवाले, बहुत सूक्ष्म और बड़ेपैने, अज्ञानरूप रात्रिके नाश करनेवाले, खजानेके मालिक, रौद्ररसवाले, धनुषके धरनेवाले, सुन्दरदेहवाले, दुष्टोंके नाश करनेवाले ॥ १२ ॥ शेष-नारायणकी पालना करनेवाले, सबके धारण करनेवाले, पातालके मालिक, बैल की ध्वजावाले, धुमैलरंग से युक्त, सर्वदा रहनेवाले, संहार करनेवाले, सब कहीं कपिसैले रंगवाले, करालरूपवाले ॥ १३ ॥ सबमें व्याप्त रहनेवाले, सुखरूप, मौतसे रहित, कल्याणरूपसे रहनेवाले, सब कहीं व्याप्त

धवाहुर्जडान्तकः ॥ शीघ्रोऽलघुर्वायुवेगो भीमश्चवडवामुखः ॥ ११ ॥ पञ्चशीर्षाकपर्दाच सूक्ष्मस्तीक्ष्णः क्षपान्तकः ॥ निधीशोरौद्रवान्धन्वी सौम्यदेहः प्रमर्दनः ॥ १२ ॥ अनन्तपालकोधारः पातालेशो वृषध्वजः ॥ सधूअः शाश्वतश्शर्वः सर्वपिङ्गः करालवान् ॥ १३ ॥ विष्णुरीशो महात्मा च सुखो मृत्युविवर्जितः ॥ शम्भुर्विभुर्गणधयक्षस्त्र्यक्षश्चैव दिवस्पतिः ॥ १४ ॥ संवादश्च विवादश्च प्रभविष्णुर्विवर्धनः ॥ शतमेकोत्तरं यावद्द्राणां संख्यया स्मृतम् ॥ १५ ॥ शतमेकोत्तरं सर्वमोङ्कारे च प्रतिष्ठितम् ॥ स्तोत्रं कृत्वा तथा ब्रह्मा देवदेवं महेश्वरम् ॥ १६ ॥ भूमौ प्राणम्य साष्टाङ्गं कृत्वा चैव प्रदक्षिणम् ॥ मनसा संस्मरन्देवं तस्यै लोकपितामहः ॥ १७ ॥ स्तोत्रं श्रुत्वा भगवतो ब्रह्मणो लोमहर्षणम् ॥ देवदेवो ब्रवीद्वाक्यं ब्रह्माणं प्रति भारत ॥ १८ ॥ स्तोत्रेणानेन दिव्येन तुष्टो हन्ते वरं वरुण ॥ ददामि तेन सन्देहो दुष्प्राप्यन्निदशैरपि ॥ १९ ॥

रहनेवाले, गणों के मालिक, तीन नेत्रवाले, स्वर्ग के मालिक ॥ १४ ॥ सलाह व भगड़ा जिनका रूपहै सबके ऊपर प्रभाव करनेवाले व बढ़ानेवाले हैं एक सौ एक रुद्र जो संख्या से कहे गये हैं ॥ १५ ॥ वे सब एकसौ एक रुद्र ॐकारही में स्थित हैं तथा ब्रह्माजी देवताओं के देवता महादेवजी के स्तोत्रको कर ॥ १६ ॥ पृथिवी में साष्टाङ्ग प्रणामकर और प्रदक्षिणाकर मनसे महादेवजी की सुध करते हुये लोकों के पितामह ब्रह्माजी खड़े हो रहे ॥ १७ ॥ तब भगवान् ब्रह्माजीके इस रोये खड़े करने वाले स्तोत्रको सुनकर हे भारत ! महादेवजी ब्रह्माजीसे वचन बोले ॥ १८ ॥ कि इस तुम्हारे दिव्यस्तोत्र से हम बहुत प्रसन्न हैं, इससे तुम वरको मांगो देवताओं को भी

जो नहीं मिलसक्ता वह हम तुमको देवोंगे इसमें कुछ सन्देह नहीं है ॥ १९ ॥ तब ब्रह्माजीबोले कि हे देवेश ! जो आप मुझसे प्रसन्नहो और मुझे आपको वरदेना योग्य ही है तो संसार विषे आपके पावोंमुखों में मेरे नामसे पूजन हुआकरे ॥ २० ॥ तब महादेवजी बोले कि हे ब्रह्मन् ! ऐसाहो यह तुम्हारा कहना सचहो हे भारत ! तबसे ब्रह्माजीकी धर्मपूजा होनेलगी ॥ २१ ॥ फिर ब्रह्माजी बोले कि इस रुद्रके स्तोत्रको अङ्कार जो आपहो तिनके आगे सदा आपहीं मनको लगायेहुये ब्राह्मण, क्षत्रिय और बर्नियें जो पढ़ेंगे ॥ २२ ॥ तो इस लोक व परलोकमें सब कामोंको पावेंगे व इसका पढ़नेवाला मनुष्य जिस २ कामना को करेगा उस २ को पावेगा ॥ २३ ॥ व

ब्रह्मोवाच ॥ यदितुष्टोसिदेवेश यदिदेयोवरोमम ॥ पञ्चवक्त्रेषुयजनं ब्रह्मनामभवत्विह ॥ २० ॥ हरउवाच ॥ एवम्भ वतुवैब्रह्मन्सत्यमेतत्तवोदितम् ॥ ब्रह्मणोधर्मपूजावै तदाप्रभृतिभारत ॥ २१ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ पठिष्यन्तिस्तवंरौद्रमोङ्कारस्यतवाग्रतः ॥ ब्राह्मणाः क्षत्रियावैश्याः सदातद्गतमानसाः ॥ २२ ॥ सर्वकाममवाप्स्यन्ति चेहलोकैपरत्रच ॥ ययं कामयतेकामं तंतंप्राप्नोतिमानवः ॥ २३ ॥ शतमेकोत्तरंनित्यं पठित्वाचदिवं व्रजेत् ॥ एवमुक्त्वातदाब्रह्मा नमस्कृत्यम हेश्वरम् ॥ २४ ॥ दिव्ययानसमारूढो ब्रह्मलोकमुदाययौ ॥ चतुर्युगसहस्रेण ब्रह्मणोहः प्रकीर्तितम् ॥ २५ ॥ अनेनेवतु मानेन शतंब्रह्माहिजीवति ॥ पितामहशतंयावद्विष्णोर्मार्मानंविधीयते ॥ २६ ॥ अङ्कारनिमिषाद्धेन सहस्राणिचतुर्दश ॥ विनश्यन्तिपरंविष्णोरसंख्याताःपितामहाः ॥ २७ ॥ एवंब्रह्मगतिज्ञात्वा शिवमन्तःसदाचयेत् ॥ शिवाज्ञावर्ततेलिङ्गे तस्माल्लिङ्गंसदाचयेत् ॥ २८ ॥ द्वेष्टिलिङ्गन्तुयोमोहात्सर्वदेवनमस्कृतम् ॥ सयातिनरकंघोरं शिवस्यवचनंयथा ॥ २९ ॥

नित्य एकसौ एकबार पढ़कर स्वर्गको जावेगा उस समय ब्रह्माजी इस प्रकार कहकर और महादेव के नमस्कारकर ॥ २४ ॥ दिव्य सवारीपर सवार खुशीसे ब्रह्मलोक को जातेहुये चारोंयुगों के हजारबार बीतने से ब्रह्माका एक दिन होताहै ॥ २५ ॥ इसी हिसाबसे सौ वर्षतक ब्रह्माजीते है व ब्रह्माके सौवर्ष का विष्णुका एक दिन होताहै ॥ २६ ॥ परन्तु अङ्कारके आधेपलमें चौदहहजार विष्णु और अनगिन्ती ब्रह्मा नष्ट होजातेहैं ॥ २७ ॥ इसतरह ब्रह्माका हाल जानकर शिवका पूजन अन्तःकरण से हमेशा कियाकरे लिंगमें शिवजीकी आज्ञाहै इससे लिङ्गका पूजन हमेशा करे ॥ २८ ॥ सब देवताओं रो नमस्कार कियेहुये लिंगमें जो मूढ़तासे वैर करताहै

वह घोरनरकको जाताहै ऐसा शिवजीका वचन है ॥ २९ ॥ भूततत्त्व के माननेवाले बौद्ध, क्षपणक और पाखण्डी जो अलग करदियेगये हैं व शिवके पूजन से रहित होगये उनको नष्ट समझो ॥ ३० ॥ अनेकजन्मों के अभ्याससे वे रसातल कोजाते हैं पुराणों में शिवके कहेहुये धर्मको जानकर करै ॥ ३१ ॥ वह दुष्ट और बड़ापाप-बुद्धिहै जो और धर्मको करताहै हे राजन् ! इसस्कन्दके कहेहुये पुराणको मैंने तुमसेकहा ॥ ३२ ॥ इसके सुनने व कहनेसे शिवलोकमें पूजाजाताहै ॥ ३३ ॥ इति श्री स्कन्दपुराणैरेवाखण्डेपञ्चब्रह्मात्मकस्तवोनामाष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४८ ॥

बौद्धक्षपणपाखण्डा मिथ्यातत्त्वविचक्षणाः ॥ नष्टास्तुनाशितायैव शिवाराधनवर्जिताः ॥ ३० ॥ जन्मजन्मान्तराभ्यासात्तेप्रयान्तिरसातलम् ॥ पुराणेषुतथाबुद्ध्या शिवोक्तं धर्ममाचरेत् ॥ ३१ ॥ सदुष्टः पापबुद्धिस्तु योन्यन्धमर्म समाचरेत् ॥ एतत्तेकथितं राजन् पुराणं स्कन्दकीर्तितम् ॥ ३२ ॥ श्रवणात्कीर्तनादस्य शिवलोकं महीयते ॥ ३३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणैरेवाखण्डेपञ्चब्रह्मात्मकस्तवोनामाष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४८ ॥

मार्कण्डेय उवाच ॥ ततो गच्छेन्महाभाग रेवाकपिलसङ्गमम् ॥ तत्र स्नाता दिवं यान्ति ये स्मृतान पुनर्भवाः ॥ १ ॥ तिलोदकप्रदानेन पितृणां परमागतिः ॥ दिनानि नवसाह्यानि राहुग्रस्तो निशाकरे ॥ २ ॥ दृष्ट्व्यातिमहाराज पुण्यवृद्ध्या न संशयः ॥ ग्रस्ते तुराहणासूर्ये दिनानि च दर्शयतु ॥ ३ ॥ वर्द्धते कपिला भेदस्तद्वदेव विशास्पते ॥ रेवायाः कपिलायोगे वाराणस्याः समागमे ॥ ४ ॥ समानं फलमुद्दिष्टं तिलोदेनापि विद्यते ॥ वाराणसीसमारेवा कपिलायाश्च सङ्गमे ॥ ५ ॥

मार्कण्डेयजी बोले कि हे महाभाग ! तदनन्तर नर्मदा और कपिला के संगम को जावे वहां स्नान करनेवाले स्वर्गको जाते हैं और जो वहां मरे हैं वे फिर नहीं उत्पन्न होते हैं ॥ १ ॥ तिलोदक देनेसे पितरों की परमगति होती है चन्द्रग्रहण में साढ़े नव दिन तक ॥ २ ॥ हे महाराज ! पुण्यकी बाढ़िसे वह संगम बढता है इस में कुछ संशय नहीं है और सूर्यग्रहण में दशदिन तक ॥ ३ ॥ कपिलाका संगम हे विशास्पते ! उसीतरह बढता है नर्मदा व कपिला के संगममें और काशीमें ॥ ४ ॥ वरावरही फल कहागया है जो तिलोदकके देनेसे ही होता है क्योंकि कपिलाके संगम में काशीके वरावर नर्मदा है ॥ ५ ॥ व स्वायम्भुव मन्वन्तरके प्राप्त होनेपर ब्रह्माके

वरसे जिनकी उरगति है ऐसे ब्रह्मावर्त, रुद्रावर्त और सूर्यावर्त हैं ॥ ६ ॥ कपिला और नर्मदाके योगमें ये तीनों जाननेयोग्य हैं जहां कि चार हाथके प्रमाणसे नर्मदाका सङ्गम है ॥ ७ ॥ हे राजन् ! उसी नर्मदा और कपिलाके संगममें दो आवर्त कहे गये हैं वहां सात पातालकी रहनेवाली पिप्पला नदी है ॥ ८ ॥ वहाँ कपिलावर्त और पिप्पलावर्त है अपनी तृप्तिके देनेवाले इस तीर्थकी पितर इच्छा किया करते हैं ॥ ९ ॥ इससे लड़का बड़े उपाय से पितरों के वारसे तिलोंसे मिली हुई जलाञ्जली व पिण्ड विधिपूर्वक यज्ञसे देवे ॥ १० ॥ नर्मदा और कपिलाके संगममें स्नानकर पवित्र होकर मनुष्य पितरोंको श्राद्ध करके घोरनरकसे उद्धार करे ॥ ११ ॥ जो कोई वहां

स्वायम्भुवेन्तरेप्राप्ते ब्रह्मलब्धवरोद्भवाः ॥ रुद्रावर्तब्रह्मावर्तं सूर्यावर्तं तथा परम् ॥ ६ ॥ कपिलानर्ममदायोगे ज्ञेयमेतत्र यंपुनः ॥ नर्मदाभेदनं यत्र चतुर्हस्तप्रमाणतः ॥ ७ ॥ रेवाकपिलयोराजंस्तत्रावर्तद्वयं स्मृतम् ॥ पिप्पलावाहिनीतत्र सप्तपातालवासिनी ॥ ८ ॥ तत्रैव कपिलावर्तं पिप्पलावर्तमेव च ॥ कामयन्ति हि तीर्थं च पितरस्तृप्तिदायकम् ॥ ९ ॥ तस्मात्पुनः प्रयत्नेन पितृभ्यश्च यथाविधि ॥ जलाञ्जलितिलैर्मिश्रं दद्यात्पिण्डं च यत्नतः ॥ १० ॥ पितॄन्समुद्धरेद्दुर्घोराच्छ्राद्धं कृत्वा तु मानवः ॥ रेवाकपिलयोर्योगेशुचिः स्नात्वा तु मानवः ॥ ११ ॥ यः पश्येदमरं तत्र फलं तस्याश्च मोधिकम् ॥ चन्द्रसूर्योपरागे तु पूर्वकाले विशेषतः ॥ १२ ॥ गन्धधूपंच नैवेद्यं दीपमालाञ्च कारयेत् ॥ तिलतण्डुलमिश्रैर्यः कुर्यात्तिलज्जस्य चार्चनम् ॥ १३ ॥ कुङ्कुमेन समालिप्य रक्तवस्त्रैः प्रवेष्टयेत् ॥ पुष्पमालाचर्चनं कृत्वा हेमरत्नादिभिस्तथा ॥ १४ ॥ यावच्चन्द्रश्च सूर्यश्च हिमवांश्च महोदधिः ॥ तावद्युगसहस्राणि रुद्रलोकं महीयते ॥ १५ ॥ कौशेयं पट्टसूत्रञ्च कार्पासं

अमरनाथको देखता है उसको अश्वमेधयज्ञ का फल होता है उसमें भी चन्द्र व सूर्य के ग्रहणमें वर्षोंमें विशेषकरके फल होता है ॥ १२ ॥ चन्दन, धूप और नैवेद्य तथा दियालियोंको जलावे और तिलचौरीसे जो लिंगका पूजन करता है ॥ १३ ॥ केसरसे लिंगका लेपनकर लाल कपड़ों से लपेटे, फूलोंकी माला तथा सोना व रत्नों से पूजन कर ॥ १४ ॥ जबतक चन्द्रमा, सूर्य, हिमाचल और समुद्र रहते हैं उतने हजार युगभर रुद्रलोकमें पूजित होता है ॥ १५ ॥ कुसेहरी कीडेका सूत, रेशम का सूत,

कपासका सूत लालसूत, वैजयन्तीमाला और चंदोवा इन सब चीजोंको मन्दिरके कलशके ऊपर बांधे ॥ १६ ॥ और उसको पञ्चरत्न व छुदघण्टिकाओंसे युक्त करे उन सूतोंकी जितनी गिनती हो हे भारत ! उतने सुहृत् काल तक स्वर्ग व पार्वती और महादेवजी के पुरमें रहताहै और एक ईशान लिंगहै जिसको हम पहले साधारण रीतिसे कहचुके हैं ॥ १७ ॥ १८ ॥ वह कपिला के पूर्वतरफ थोड़ीही दूरपर वर्तमान है उस लिङ्ग के पूजन से गणोंका स्वामी होताहै कातिक के उजियाले पालकी अष्टमीको इससे सौगुना फल होताहै संक्रान्ति और व्यतीपात में तो उसकी कुछ संख्याही नहीं है ॥ १९ ॥ २० ॥ वहां धन आदिके बांटनेसे व कपिलेश्वर के पूजन

कृतान्तवम् ॥ वैजयन्तीवितानञ्च कलशोपरिवर्द्धयेत् ॥ १६ ॥ पञ्चरत्नसमायुक्तं किङ्किणीरवसंयुतम् ॥ तत्तन्तुसंख्य
यायावन्मुहूर्तमिहभारत ॥ १७ ॥ तावत्कालं वसेत्स्वर्ग उमामाहेश्वरेपुरे ॥ ईशानमपरंचैव सामान्यात्कथितम्पुरा ॥
१८ ॥ कपिलापूर्वभागे तु नातिदूरेव्यवस्थितम् ॥ अर्चनात्तस्य लिङ्गस्य गाणपत्यमवाप्नुयात् ॥ १९ ॥ शुक्लाष्टम्यां का
त्तिके तु फलं शतगुणोत्तरम् ॥ संक्रमेचव्यतीपाते तस्य संख्यानं विद्यते ॥ २० ॥ उपहारप्रदानेन कपिलेश्वरपूजना
त् ॥ वर्षाणामयुतं सार्द्धं लोके क्रीडति भास्करे ॥ २१ ॥ मृतवत्सातथाबन्ध्या गर्भसावाचया भवेत् ॥ रक्तवस्त्रैः पञ्चरत्नैः
स्नानं साचसमाचरेत् ॥ २२ ॥ चतुर्दश्यां तथाष्टम्यां कपिलायां युधिष्ठिर ॥ सुभगा जीवपुत्रा च सत्यमेतच्छिवोदितम् ॥
२३ ॥ उमयाच वरोदत्तो नारीभ्यश्च प्रसादतः ॥ कपिलानिर्गता यस्मान्नर्मदायां प्रसर्पति ॥ २४ ॥ तीर्थानामष्टसाह
स्रं कामभोगफलप्रदम् ॥ आस्तेतत्र महाराज शिवेन कथितम्पुरा ॥ २५ ॥ कपिलाचततोदया सर्वाभरणभूषिता ॥ ब्रा

से पन्द्रह हजार वर्ष तक सूर्यलोकमें विहार करताहै ॥ २१ ॥ जिस स्त्रीका लड़का मरजाताहै व जो बांझहै व गर्भ जिसका गिरजाताहै वह लालकपड़ा व पञ्चरत्नके सहित चतुर्दशी व अष्टमी को कपिला में स्नान करे तो हे युधिष्ठिर ! वह सौभाग्यवती और जीनेवाले पुत्रवाली होवे यह शिवका कहा हुआ सत्य है ॥ २२ ॥ २३ ॥ पार्वतीजी ने अपनी खुशीसे स्त्रियोंके वास्ते वरदान को दियाहै कपिलानदी जहां से निकली और नर्मदा में मिलीहै ॥ २४ ॥ वहां आठ हजार तीर्थहैं वे मनमाने भोग व फलोंके देनेवाले हैं हे महाराज ! यह शिवजीने पूर्वकाल में कहा है ॥ २५ ॥ वहां सब आभूषणों से युक्त कपिला गौ दान करनेयोग्य है और अपनी शक्तिके

अनुसार वहां ब्राह्मणों को भोजन करावे ॥ २६ ॥ आप व्रतकरे और दैवता व पितरों को तृप्तकरे वही सिद्धिका देनेवाला हेमजालेश्वर नामका लिंग है ॥ २७ ॥ उस देवके पूजन से यमलोक को नहीं देखता है पुराने समय में धुन्धुदैत्य के मारनेवाले वसुदान चक्रवर्त्ती राजा हुये ॥ २८ ॥ वे इस तीर्थके माहात्म्यसे स्वर्गमें देवता होते हुये अनेक हजार क्षत्रिय हे नृपश्रेष्ठ ! इस कोटितीर्थके प्रभावसे बड़ी सिद्धिको पाते हुये व उल्लूनामके पक्षियोंके सैकड़ों व हजारों शिरकाटके यहां कोटितीर्थ के पानीमें डाल दिये वे कौवा उसीक्षण दिव्यदेहहोकर विमानपर सवार ॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ विद्याधरोंके राजा हुये हे अनघ ! मैंने उनको पूर्वकालमें देखा है और सियारों

ह्मणान्भोजयेत्तत्र यथाविभवविस्तरैः ॥ २६ ॥ उपवासपरो नित्यं तर्पिताः पितृदेवताः ॥ हेमजालेश्वरं नाम लिङ्गन्तत्रै वसिद्धिदम् ॥ २७ ॥ अर्चनात्तस्य देवस्य यमलोकं न पश्यति ॥ वसुदानो धुन्धुमारश्चक्रवर्त्ती पुराभवत् ॥ २८ ॥ अस्य तीर्थस्य माहात्म्याद्विविदेवत्वमाप्तवान् ॥ अनेकानि सहस्राणि संसिद्धिपरमाङ्गताः ॥ २९ ॥ क्षत्रियाणां नृपश्रेष्ठ कोटि तीर्थप्रभावतः ॥ उल्लूकैः पातितान्यत्र कोटितीर्थेशिरांस्यथ ॥ ३० ॥ काकानां जलमध्ये तु शतशो थसहस्रशः ॥ त रक्षणाद्विव्यदेहास्तु ते काकायानमाश्रिताः ॥ ३१ ॥ विद्याधराणां राजानो मया दृष्टाः पुरानघ ॥ वृन्दाश्च जम्बुकानान्तु व्याघ्राणां च भयेन वै ॥ ३२ ॥ तथा भेघावृते काले नर्मदाजलमाविशन् ॥ यत्तलोकं न तु ते प्राप्ताः सर्वकामफलोदयम् ॥ ३३ ॥ जम्बुकेश्वरमित्येवं तिर्यग्योनि विमोक्षणम् ॥ पृथिव्या नैमिषं तीर्थमन्तरिक्षे च पुष्करम् ॥ ३४ ॥ वाराणसी प्रया गंच त्रैलोक्ये त्वमरेश्वरम् ॥ त्रयस्त्रिंशत्कोटिभिस्तु सुरासुरनमस्कृतम् ॥ ३५ ॥ तत्र स्नातश्च राजेन्द्र हयमेधफलं लभे

के भुरगड बाघोंके भयसे ॥ ३२ ॥ चौमासे में नर्मदा के जलमें पैठगये वे सब यक्षोंके लोकको प्राप्त हुये जहां सब मनमाने फल मिलते हैं ॥ ३३ ॥ वहां जम्बुकेश्वर इस नामका लिङ्ग तिर्यग्योनि से छुड़ानेवाला है पृथिवी में नैमिषतीर्थ है और अन्तरिक्षमें पुष्करतीर्थ है ॥ ३४ ॥ काशी और प्रयाग है व अमरेश्वर तीर्थ तीनों लोकमें है जो तैतीस करोड़ देवता और दैत्यों से नमस्कार किया गया है ॥ ३५ ॥ हे राजेन्द्र ! वहां स्नान करनेवाला अश्वमेधयज्ञके फलको पाता है व इसी तीर्थके प्रभावसे वहां

सरस्वती सिद्धहुई है ॥ ३६ ॥ पितरों की प्रीतिके बढ़ानेवाले श्राद्धको जो कोई करता है वह मनुष्य पितरोंके सहित परमस्थान को जाता है ॥ ३७ ॥ सारस्वत नानका लिङ्ग ब्रह्महत्या का नाश करनेवाला है अब पुराने इतिहास य आख्यान अर्थात् कथाको कहते हैं ॥ ३८ ॥ स्वायम्भुव मन्वन्तरमें पहले कल्पके सत्ययुगमें बड़े लक्ष्मी वाले इन्द्रके बराबर पराक्रम (ताकत) वाले सत्यवचन के बोलनेवाले, इन्द्रियों के जीतनेवाले, यज्ञोंके करनेवाले, दानके देनेवाले, देवता और अतिथि के सत्कार करनेवाले धुन्धुमार इस नामसे प्रसिद्ध अयोध्या के राजा होतेहुये ॥ ३९ ॥ ४० ॥ उन राजाकी प्रजा दोष व भय और दरिद्रसे रहित होतीहुई और हे भारत ! वे सब त ॥ सिद्धासरस्वतीतत्र तीर्थस्यास्यप्रभावतः ॥ ३६ ॥ यः कश्चित्कुरुते श्राद्धं पितृणां प्रीतिवर्द्धनम् ॥ स्यात्तिपरमं स्थानं पितृभिः सहमानवः ॥ ३७ ॥ लिङ्गसारस्वतं नाम ब्रह्महत्याव्यपह्ननम् ॥ आख्यानं कथयिष्यामि इतिहासम्पुरातनम् ॥ ३८ ॥ स्वायम्भुवेन ते प्राप्ते आदिकल्पे कृत्युगे ॥ अयोध्याधिपतिः श्रीमाञ्छक्रतुल्यपराक्रमः ॥ ३९ ॥ धुन्धुमार इति ख्यातः सत्यवादी जितेन्द्रियः ॥ यज्ञयाजी दानशीलो देवतातिथिपूजकः ॥ ४० ॥ निरवद्याः प्रजास्तस्य भयदा रिद्रथवर्जिताः ॥ सपादलक्षवर्षाणि प्रजाजीवन्ति भारत ॥ ४१ ॥ यज्ञोत्सवविवाहैश्च वेदमङ्गलानि रस्वनेः ॥ स्वयंकाम दुधाधेनुः पृथिवीसम्यशालिनी ॥ ४२ ॥ चतुर्वर्षसहस्राणि प्राकृता इतरे जनाः ॥ कौशेयपट्टचक्षुषु बद्धं सर्वत्र भारत ॥ ४३ ॥ यज्ञहोमसहस्रैस्तु सदा दोहमयी नृप ॥ एवं शशास पृथिवी यथा शक्रस्त्रिविष्टपम् ॥ ४४ ॥ एकस्मिन्समये राजा प्रतीहारमुवाच ॥ आदेशय नृपान् सर्वान् नानादेशसमुद्भवान् ॥ ४५ ॥ प्रतीहारसमादिष्टाः समायातास्ततो नृपाः ॥ मृग प्रजा सवालालव वर्ष जीतीरही ॥ ४१ ॥ यज्ञ, उत्सव (जल्सा), विवाह, वेदपाठ और मङ्गलशब्दोंसे सब प्रजा युक्तरही गौ आपही मनमाने समयपर दूधकी देनेवाली व पृथिवी अन्नसे भरी होतीहुई ॥ ४२ ॥ चारहजार वर्षतक नीचलोग जीते रहे और हे भारत ! रक्षामी कपड़े सर्वत्र वृत्तोंमें बँधेरहते थे ॥ ४३ ॥ हे नृप ! यज्ञ और हजारों होमों के कारण से हमेशा कामधेनु के बराबर होरही पृथिवीकी राजा इस प्रकार रक्षाकरतेहुये जैसे इन्द्र स्वर्गकी रक्षाकरे ॥ ४४ ॥ एक समयमें राजा अपने चौबदार से बोले कि अनेकदेशों के सब राजाओं को बुलावो ॥ ४५ ॥ तदनन्तर चौबदारोंसे आज्ञा पायेहुये राजालोग आतेहुये उन सब राजाओं के सहित शिकार

करनेके वास्ते विन्ध्याचलको वे राजा जातेहुये ॥ ४६ ॥ जहां अग्निहोत्री ब्राह्मणों के वेदोंकी ध्वनियों के शब्दोंसे नादित हुई तीनोंलोकोंमें अमिद्ध नर्मदा विद्यमान है ॥ ४७ ॥ वहां बड़ा शोभायमान, रमणीक, विचित्र, सवन जंगल था हे भारत ! उसीमें क्षत्रियोंके सहित उन राजाने हजारों जीवोंको मारकर ॥ ४८ ॥ तदनन्तर बड़े दारुण मव वनमें प्रवेश किया तो वहा डरावने रूपवाले, बड़ेघोर, दुःखसे देखने योग्य, अतिदुस्सह ॥ ४९ ॥ मेघोंकी आवाजसे गर्जिरहे, अत्यन्त रोग्ये खडेकरने वाले, सफेद रंगवाले, अपनी दोनों दाइसे डरावने होरहे एक सुवरको देखा ॥ ५० ॥ वहां श्रेष्ठ राजाने उस वैसे सुवरको देखकर और सब क्षत्रियोंसे कहा कि गेये खड़े

यान्तुसतैःसर्वैः कर्तुंविन्ध्यंजगामह ॥ ४६ ॥ वेदध्वनितनिर्घोषैर्हिजानामग्निहोत्रिणाम् ॥ नादितात्रिषुलोकेषु विख्यातासप्तकल्पगा ॥ ४७ ॥ तत्रोपशोभितरम्यं विचित्रवनमण्डलम् ॥ हत्वाजीवसहस्राणि क्षत्रियैःसहभारत ॥ ४८ ॥ विवेशचवनंसर्वं ततःपरमदारुणम् ॥ भीमरूपंमहाघोरं दुष्प्रेक्ष्यंचसुदुस्सहम् ॥ ४९ ॥ मेघनादेनगर्जनन्तं सुतरांलोमहर्षणम् ॥ वाराहंश्चेतवर्णञ्च दंष्ट्रायुगलभीषणम् ॥ ५० ॥ तं दृष्ट्वा तादृशं तत्र वाराहं नृपसत्तमः ॥ उवाच क्षत्रियान्सर्वान्न दृष्टं न मया श्रुतम् ॥ ५१ ॥ एतादृशं वराहस्य रूपं वै लोमहर्षणम् ॥ इत्युक्त्वा पाशमादाय यावद्धन्तुं समुद्यतः ॥ ५२ ॥ ता वद्यायुवपुर्भूत्वा निर्यातः प्राणपीडितः ॥ विवेश जलमध्ये च कोटितीर्थे नराधिप ॥ ५३ ॥ पृष्ठतो नु जगामाथ सराजाहय वाहनः ॥ प्रविष्टमात्रः पयसि वराहस्तु विशाम्पते ॥ ५४ ॥ तत्क्षणाद्विव्यदेहस्तु कामिकं यानमास्थितः ॥ किमिदं प्राहतं राजा वाराहं देवरूपिणम् ॥ ५५ ॥ हृदि विस्मयमापन्नो सत्यमेतच्च ब्रूहि मे ॥ तस्य तद्वचनं श्रुत्वा वाराहो देवरूपं पृच्छ ॥ ५६ ॥

करनेवाले सुवरके ऐसे रूपको मैंने कभी देखा व सुना नहीं था यह कहकर फँसरीको लेकर उसके मारनेको जबतक राजा तैयारहो ॥ ५१ ॥ तबतक वह अपने प्राणों के डरसे हवाकी तरहहो उड़ा हे नराधिप ! कोटितीर्थके जलके बीचमें पैठगया ॥ ५३ ॥ वह राजा घोड़ेपर सवार उसके पीछे चला हे विशाम्पते ! वह सुवर पानी में पैठतेही ॥ ५४ ॥ उसीक्षण दिव्यदेह होकर मनमानी सवारीपर सवार होगया उस देवरूप होगये सुवर से राजा बोले कि यह क्या हुआ ॥ ५५ ॥ मेरे हृदयमें बड़ा

विस्मय होरहा है इससे मुझसे यह सत्य कह तो देवता के रूपको धरेहुये वह सुवर उन राजाके इस वचनको सुनकर ॥ ५६ ॥ हँसताहुआ राजा से वाक्य बोला कि हे महामते, राजन् ! तुम सुनो कि मुझको अंगद नाम का महादेवजी का गण समझो ॥ ५७ ॥ किसी समयमें अपने गण व देवता व पार्वती के सहित महादेव जी विहार करते रहे हे नृपसत्तम ! उनके आगे ॥ ५८ ॥ मैंने दण्डक नामका बहुत अच्छा गानागया परन्तु वहां उर्वशी और रम्भाको देखकर मैं कामसे मोहित होगया ॥ ५९ ॥ और सुवरकी वाणीको बोलताहुआ मैं बिगड़ी आवाजवाला व बिगड़े मुहँवाला होगया और वहां बेहोशहुये मैंने अप्सराओंके साथ विहारको किया ॥ ६० ॥

प्रहसन्नब्रवीद्वाक्यं शृणुराजन्महामते ॥ अङ्गदं नामतु गणं विद्धि मां शङ्करस्य तु ॥ ५७ ॥ गणैश्च देवमुख्यैश्च उमयाचमहे श्वरः ॥ क्रीडन्नाऽऽस्ते कदाचित्तु तस्याग्रे नृपसत्तम ॥ ५८ ॥ तत्र गीतं मया गीतं रम्यं दण्डकलक्ष्णम् ॥ दृष्ट्वेव शीतथारम्भामभूवं काममोहितः ॥ ५९ ॥ व्याहरञ्छुर्करिवाणीं विस्वरो विकृताननः ॥ विह्वलेन मया तत्र ह्यप्सरोभिस्तु क्रीडितम् ॥ ६० ॥ तादृशं मानुदृष्ट्वा वै कामक्रीडावशङ्गतम् ॥ शशाप नन्दीकोपात्मा शूकरो मेध्यभुग्भव ॥ ६१ ॥ दशवर्षसहस्राणि भ्रमिष्यसि महीतले ॥ ब्रह्मापि नैव शक्नोति शिवस्य तु प्रकीर्तितम् ॥ ६२ ॥ त्वं तु गामटमानोऽपि किङ्करस्यापि किङ्करः ॥ कुपितं नन्दिनं ज्ञात्वा भयभीतान्तरात्मना ॥ ६३ ॥ प्रसादितो मयानन्दी शशापान्तं वरमादिशत ॥ दर्शनाद्बुधुमारस्य कोटितीर्थप्रभावतः ॥ ६४ ॥ त्यक्त्वा तु शूकरीयानि पुनः प्रत्यागमिष्यसि ॥ एतत्तैकथितं राजन् वाराहो योनिमाश्रितः ॥ ६५ ॥ यथा हि किल्विषान्मुक्तस्तीर्थस्यास्य प्रभावतः ॥ अङ्कारदर्शनाद्वाजन् रेवा तोयपरिष्कृतः ॥ ६६ ॥

कामके विहारमें आसक्त होरहे वैसे मुझको देखकर बड़े क्रोधवाले नन्दीश्वरजी ने शाप देदिया कि तू मैला खानेवाला सुवरहो ॥ ६१ ॥ दशहजार वर्षतक पृथिवी में घूमाकरेगा महादेवके कहेहुयेको ब्रह्माभी नहीं हटासकेहैं ॥ ६२ ॥ गुलामका गुलाम तू पृथिवी में घूमता रहेगा तब नन्दीश्वरजीको क्रोधयुक्त जानकर भयसे डरेहुये ॥ ६३ ॥ मैंने नन्दीश्वरजीको प्रसन्नकिया तब उन्होंने शाप समाप्त होजानेका मुझे वरदिया कि बुन्धुमार राजाके दर्शनसे व कोटितीर्थके प्रभावेसे ॥ ६४ ॥ सुवर की योनि को छोड़कर फिर तू यहाँ आवेगा हे राजन् ! यह आपसे कहा कि सुवरकी योनिमें पड़ाहुआ ॥ ६५ ॥ जैसे इस तीर्थके प्रभावकरके पापसे छुटगया है राजन् !

अंकारके दर्शनसे व नर्मदाके जलसे शुद्ध हुआ ॥ ६६ ॥ व आपके दर्शनसे हे सुव्रत ! मैं गन्धर्वयोनि को प्राप्त हुआ इससे हे राजेन्द्र ! आप शोचको छोड़ो कर्मों की गति बड़ी कठिन है ॥ ६७ ॥ धर्म में अपनी बुद्धि को लगाकर सब जीवोंके हितके करनेवाले होवो क्योंकि हे राजन् ! पैदा होने से मरना होता है और मरनेसे पैदा होना होता है ॥ ६८ ॥ इससे पाप व पुण्यवाले कर्मोंको जानकर तुम अपनेको उद्धार करो अपनाही कमाया कर्म आपही भोगता है ॥ ६९ ॥ भले बुरे कर्मों का करनेवाला व भोगनेवाला आपही है अब आपका भला हो मैं जाता हूँ यह कहकर चला गया ॥ ७० ॥ छाताको लगाये हुये अप्सराओंसे चँवर दुरायाजारहा ऐसा आप शिवके ध्यानमें

प्राप्तो गन्धर्वयो निन्तु दर्शनात्तव सुव्रत ॥ विषादन्त्यजराजेन्द्र गहनाकर्ममणाङ्गतिः ॥ ६७ ॥ धर्मैर्बुद्धिसमाधाय सर्वभूताहितो भव ॥ जन्मतो मरणं राजन्मरणं जन्मसम्भवः ॥ ६८ ॥ ज्ञात्वा शुभाशुभं कर्म त्वमात्मानं समुद्धर ॥ स्वयमेवाजितं कर्म स्वयमेवोपभुज्यते ॥ ६९ ॥ स्वयं कर्ता च भोक्ता च शुभस्याप्यशुभस्य च ॥ स्वास्ति वोस्ति गमिष्यामि एवमुक्त्वा जगाम ह ॥ ७० ॥ श्रियमाणा तपत्रस्तु वीज्यमानोऽप्यसरो गणैः ॥ शिवध्यानपरो भूत्वा कैलासे न्यवसत्सुखम् ॥ ७१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे रेवाखण्डे वाराहस्वर्गारोहणं नामैकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ४९ ॥ *

मार्कण्डेय उवाच ॥ सतस्मिन्नृपति श्रेष्ठस्तुषितः श्रान्तवाहनः ॥ हयं मुमोच राजा वै सर्वोपस्करमेव च ॥ १ ॥ स्मरन् नृङ्गगतिन्तावदुपविष्टः शिलातले ॥ रेणुध्वस्तस्ततोऽवो वै प्रविष्टः सप्तकल्पगाम् ॥ २ ॥ पानस्नानादिकं कृत्वा ह्यन्तरिक्षस्थितो हयः ॥ ब्रह्मतेजःस्थितो भूत्वा ब्रह्मयानं समाश्रयत् ॥ ३ ॥ अत्यद्भुतं तु तन् दृष्ट्वा परं विस्मयमागतः ॥ उवाच वचनं रा

परायण होकर कैलास में सुखसे रहता हुआ ॥ ७१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे रेवाखण्डे प्राकृतभाषाऽनुवादे वाराहस्वर्गारोहणं नामैकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ४९ ॥ फिर मार्कण्डेयजी बोले कि राजाओं में श्रेष्ठ वे धुन्धुमार राजा थीकी सवारीवाले और प्यासे उसी स्थानमें घोंडेको छोड़ दिया और उसका साजभी सब उतार लिया ॥ १ ॥ राजा परलोक की गतिको सुध करता हुआ चट्टान पर बैठ गया तदनन्तर धूलिसे भरा हुआ घोड़ा नर्मदा में पैठ गया ॥ २ ॥ पानी पीके व स्नान करके घोड़ा आकाश में स्थित हुआ और ब्रह्मतेज में स्थित होकर ब्राह्मणोंकी सवारीपर सवार हुआ ॥ ३ ॥ राजा उसका बड़ा अजब हाल देखकर बड़े अचम्भेमें होगये व ब्राह्मण

होगये उस अपने घोड़ेसे राजा वचन बोले ॥ ४ ॥ किहे ब्रह्मन् ! यह क्या कारण है सो मुझसे आज ठीक २ कहो तब यह सुनकर ब्राह्मण होरहा वह घोड़ा वचन बोला ॥ ५ ॥ कि पूर्वकाल में कुरुक्षेत्र विषे रहनेवाला मैं गालवनाम का ब्रह्मर्षिहूँ सो घोड़े के दान लेने से मैं जलगया व घोड़ेकी योनि में आपड़ा ॥ ६ ॥ दावानल से जो जलाहुआ है वह पानी से फिर जमआता है और दुष्टदान के लेनेसे जो जलगयाहै वह कभी नहीं जमता है ॥ ७ ॥ पहिले जमाने में अयोध्या के मालिक, बड़े धर्मात्मा, बड़े बलवाले, चक्रवर्ती दुमसेन राजा होतेहुये ये राजा सूर्यग्रहण में ब्राह्मणों के वास्ते देने को हाथी, घोड़े, सोना, गौबें, माणिक, हरिरा, पन्ना और

जा तुरङ्गंतद्विजर्षभम् ॥ ४ ॥ किमेतत्कारणं ब्रह्मच्छंसमेद्यथोचितम् ॥ उवाचतद्वचःश्रुत्वा हयरूपोद्विजोत्तमः ॥ ५ ॥
ब्रह्मर्षिर्गालवश्चाहं कुरुक्षेत्रेपुरास्थितः ॥ अश्वप्रतिग्रहाद्गधस्त्वश्वयोनिंसमाश्रितः ॥ ६ ॥ दावाग्निनाचयद्गधमुदका

तत्प्ररोहति ॥ दुष्टप्रतिग्रहाद्गधो नप्ररोहेत्कदाचन ॥ ७ ॥ दुमसेनःपुराचासीद्राजापरमधार्मिकः ॥ अयोध्याधिप

तिश्चासौ चक्रवर्तीमहाबलः ॥ ८ ॥ राहुसूर्यसमायोगे कुरुक्षेत्रंजगामह ॥ गजानश्वान्समादाय हिरण्यङ्गान्स्तथैवच ॥

९ ॥ माणिक्यवज्रवैदूर्यवासांसिविविधानिच ॥ ब्राह्मणार्थेनृपश्रेष्ठ मुदापरमयायुतः ॥ १० ॥ गृहाणिसास्रभौमानि

राजोत्तमकुलंविप्रमुञ्चवृत्तिंसमाश्रितम् ॥ ११ ॥ दत्त्वासयाचयामास सक्तुप्रस्थव्रतैस्थितम् ॥

दर्शनंदोरं मेधामथनमक्षमम् ॥ १२ ॥ दृष्ट्वाचैवमहीपालमादित्यंचावलोकयेत् ॥ द्विजात्परतरोनास्ति प्रतिग्रहपरा

अनेक तरह के कपड़े लेकर बड़ी खुरीसे युक्त हे नृपश्रेष्ठ ! कुरुक्षेत्र को जातेहुये ॥ ८ ॥ १० ॥ और वहां सात २ चौकवाले सोने के कामवाले, सब चीजों से भरेहुये मकान ब्राह्मणों को विधिसे ॥ ११ ॥ देकर फिर सेरभर सक्तू के उपर दान नहीं लेना इस व्रतमें स्थित होरहे शीला बोनकर खानेवाले, उत्तमकुलवाले, एक ब्राह्मण से उन राजाने प्रार्थना की ॥ १२ ॥ कि मेरे पितरों के श्राद्धका समयहै सो आप भोजन करें तब वह ऋषि बोला कि राजाका दर्शन बड़ाघोर होताहै बुद्धि को नाश कर देताहै ठीक नहींहै ॥ १३ ॥ क्योंकि राजाको देखकर सूर्यका दर्शनकरे तब शुद्ध होता है और दानके नहीं लेनेवाले ब्राह्मण से कोई श्रेष्ठ नहीं

होता है ॥ १४ ॥ दुष्टदान के लेने से जरूर नरक को जाता है इससे स्त्री के दान का लेनेवाला तू और किसी ब्राह्मण से प्रार्थन न कर ॥ १५ ॥ ऋषिके वचन को सुनकर राजा ने अपने चोचदार से कहा कि कुरुक्षेत्र के रहनेवाले ब्राह्मणों के वास्ते तू शीघ्र पुकार कर दे ॥ १६ ॥ कि जिस किसी को दान लेना हो वह यहां शीघ्र आवे हे नृप ! पुकार करने पर भी कोई दान का लेनेवाला नहीं हुआ ॥ १७ ॥ तदनन्तर राजा बड़ा नाराज हुआ और उस स्थान की निन्दा की कि यह स्थान ब्राह्मणों का नहीं है और न यहां वेद है न यज्ञ का कराना है ॥ १८ ॥ ऐसे उन सब की निन्दा कर फिर चुप हो रहा उस के इस वचन को सुनकर राजा से मैंने यह कहा ॥ १९ ॥ कि चारों वेदों का पढ़ने

बुद्धिवात् ॥ १४ ॥ असत्प्रतिग्रहं गृह्णन् कंयाति वैधुवम् ॥ भार्या प्रतिग्रहग्राही याचस्वान्यं द्विजोत्तमम् ॥ १५ ॥ ऋषे राजा वचः श्रुत्वा प्रतीहारं तथा ब्रवीत् ॥ घोषणा क्रियतां शीघ्रं स्थाने श्वरनिवासिनाम् ॥ १६ ॥ प्रतिग्रहाय यः कश्चित् स चायाति वहसस्वरम् ॥ कृते तु घोषणे कश्चिन्नासीन् नृप प्रतिग्रही ॥ १७ ॥ ततस्तु कुपितो राजा स्थानन्तश्च निनिन्द च ॥ अब्रह्मण्यमिदं स्थानं न वेदो न च या जनम् ॥ १८ ॥ जुगुप्सित्वा तु तान् सर्वान् स्तूष्णीं चैव बभूव ह ॥ तस्य वाक्यन्तु तच्छ्रुत्वा राजानं चेदमब्रवीत् ॥ १९ ॥ गालवो हं द्विजश्रेष्ठश्चतुर्वेदी महातपाः ॥ यज्ञयाजी तपस्वी च सर्वभूतहितैरतः ॥ २० ॥ अतुग्रहमिमं विद्धि उद्धरिष्ये भवार्णवात् ॥ राजो वाच ॥ ददामि तेन सन्देहस्त्वमेको मुनिसत्तमः ॥ २१ ॥ मुद्गलाद्यैर्द्विजैः सर्ववार्थ्यमाणोऽपि चानघ ॥ गृहीतोऽश्वरथस्तत्र मया भरणभूषितः ॥ २२ ॥ ततः समानमस्कृत्य द्रुमसेनो ययौ नृप ॥ मयापि चाग्निहोत्रादिकर्मण्यक्त्वा यथा सुखम् ॥ २३ ॥ नानाविधानि दिव्यानि स्त्रीभिः सार्द्धं सुखानितु ॥ क्रीडतोऽपि

वाला, बड़े तप का करनेवाला, यज्ञों का करनेवाला, सब जीवों के हित का करनेवाला, तपस्वी, ब्राह्मणों में श्रेष्ठ मैं गालव नाम का ब्राह्मण हूँ ॥ २० ॥ इसको तू मेरी दया समझ ॥ तुझे संसार समुद्र से उद्धार करूंगा तब राजा बोला कि मैं आप को दान देऊंगा इसमें कुछ संदेह नहीं है आप ही एक मुनियों में श्रेष्ठ हो ॥ २१ ॥ हे अनघ ! तदनुसार चला गया मैंने भी अग्निहोत्र आदि कर्मों को छोड़कर सुख से ॥ २२ ॥ अनेक तरह के दिव्य सुखों को स्त्रियों के साथ भोगे व मुझ को विहार करते हुये वह सब

द्रव्य नाश (खर्च) होगई ॥ २४ ॥ ऐसे कहकर वह ब्राह्मण सनातन ब्रह्मलोकको चलागया तदनन्तर हे भारत ! अकेला वह राजा सोचने लगा ॥ २५ ॥ कि अब जो मैं अकेला व घोड़ा न होनेसे पैदलही चलाजाऊँ तो राजालोग आपसमें यह कहकर कि डाकुओंने इनके घोड़ोंको मारडाला ऐसी २ अपनी बातोंसे मुझे होंगे घोंड़ोंके साजको अपने शिरपर लेकर मुझको कैसे ॥ २६ ॥ २७ ॥ शहरमें पैठना योग्यहै यह बात मुझको बड़ी शर्मकी है और आजतक मैंने ब्राह्मणके ऊपर सवारीकी ॥ २८ ॥ इससे अब इस पापके छूटने के वास्ते मैं आगीमें प्रवेश करूंगा इसतरह राजाने वहाँ विचार किया और बड़ीजल्दी से ॥ २९ ॥ दक्षिण दिशामें टिककर सूखी लकड़ी

दर्थवै यावन्मेचक्षयङ्गतम् ॥ २४ ॥ एवमुक्त्वाययौविप्रो ब्रह्मलोकंसनातनम् ॥ एकाकीचततोराजा चिन्तयामासभारत ॥ २५ ॥ एकाकीयदियास्यामि गताश्वश्चरणेनतु ॥ राजानोमांहासिष्यन्ति वचनैःस्वैःपरस्परम् ॥ २६ ॥ दस्युभिर्निहतश्चास्य हयइत्येवमादिभिः ॥ अश्वोपस्करमादायशिरसाचकथंमया ॥ २७ ॥ प्रवेष्टव्यंपुरैचैतन्महालज्जाकरंमम ॥ अद्यावन्मयातावद्ब्राह्मणारोहणंकृतम् ॥ २८ ॥ पापस्यास्यविशुद्ध्यर्थं प्रवेक्ष्यामिहुताशनम् ॥ एवंविचिन्तयामास राजातत्रैवसत्वरम् ॥ २९ ॥ दक्षिणांदिशमाश्रित्यशुष्ककाष्ठानिचाहरत् ॥ ततःप्रज्वाल्यकाष्ठानि कृत्वाच त्रिःप्रदक्षिणम् ॥ ३० ॥ नमस्कृत्यहुताशञ्च विवेशस्वगृहंयथा ॥ निर्जित्यतेजसातेजः पावकस्यतदानृपः ॥ ३१ ॥ चतुर्भुजानिनेत्रातु मुक्ताभरणभूषिता ॥ तंगृहीत्वाकरेणैव इदंवचनमब्रवीत् ॥ ३२ ॥ अप्राप्तंमरणंराजन्रकालोविहितस्तव ॥ अकस्मात्साहसन्देव युक्तंनप्रतिभातिमे ॥ ३३ ॥ कालप्राप्तंषुमांसन्तु नरचेदीश्वरःस्वयम् ॥ राजोवाच ॥

को जमा किया तदनन्तर लकड़ी को जलाकर तीनबार प्रदक्षिणाकर ॥ ३० ॥ और आगीको नमस्कारकर अपने मकानकी तरह आगीमें पैठगया उससमयमें अपने तेजसे आगीके तेजको जीतकर राजा स्थितहुआ ॥ ३१ ॥ तबतक चार भुजावाली, तीन नेत्रवाली, सब गहनेसे सजीहुई एक स्त्री उन राजाको हाथसे पकड़कर इस वचन को बोली ॥ ३२ ॥ कि हे राजन् ! अभी आपकी मौत नहीं है और अभी आप का समय नहीं है हे देव ! यह एकाएकी जबरदस्ती करना आपका मुझको ठीक

नहीं समझ पड़ता है ॥ ३३ ॥ जिसका समय आ गया उस पुरुषको साक्षात् ईश्वरभी नहीं बचासक्ता है तब राजा बोला कि हे वरारोहे ! तुम कौनहो पावेंतो व गङ्गा व लक्ष्मीहो ॥ ३४ ॥ हे महाभाग ! सो कहो मुझको तुम बड़ीभक्तिकी देनेवाली हो तब वह स्त्री बोली कि हे नृप ! न मैं गङ्गाहूँ और न सरस्वतीहूँ इस मुझको आप महादेव से निकलीहुई, नर्मदा के भीतर बहनेवाली कपिला नदी जानो व वसुदान राजा की यज्ञ में नर्मदा और कपिलाका संगम हुआ ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ उसी यज्ञ में उमा, कात्यायनी, गंगा, यमुना, गौतमी, सरस्वती, शिप्रा, शुभनदी वरणा ॥ ३७ ॥ शतद्रु, चन्द्रभागा, सिन्धु, निर्मलनर्मदा, वितस्ता और देवीचर्मएवती

कासित्वंचवराहो हे ह्युमागङ्गाथवारमा ॥ ३४ ॥ कथयस्वमहाभागे समत्वंभक्तिदायिनी ॥ स्न्युवाच ॥ नाहंगङ्गानवाणी वाकपिलांविद्धिमानंनृप ॥ ३५ ॥ एनांरुद्राद्विनिष्क्रान्तां नर्ममदातलवाहिनीम् ॥ वसुदानस्ययज्ञेतु रेवाकपिलसङ्गमः ॥ ३६ ॥ उमाकात्यायनीगङ्गा यमुनागौतमीतथा वरणाचशुभापगा ॥ ३७ ॥ शतद्रुश्चन्द्रभागा च सिन्धूरेवामलातथा ॥ वितस्ताचर्मणदेवी सोमावभृथमध्यतः ॥ ३८ ॥ ब्रह्मविष्णुमहेशानां स्नानार्थंहतवारिभिः ॥ तिलोदकैर्मुनीनान्तु प्रणीतःकलशोदकैः ॥ ३९ ॥ तथासोमरसैश्चैव घृतखण्डादिमिश्रितैः ॥ बभूवातिप्रवाहो वै इज्याजन्योमहान्पुरा ॥ ४० ॥ एतद्रूतंमहत्पुण्यमुदयाचलमाश्रितम् ॥ रुद्रावर्तपदंचात्र विद्यतेनृपसत्तम ॥ ४१ ॥ एवमुक्तोययौराजा देवीचान्तरधीयत ॥ हृष्टस्तुष्टश्चक्रवर्तीमार्कण्डेयाश्रमंययौ ॥ ४२ ॥ गत्वाप्रणम्यतमृषिमुपविष्टस्तथाग्रतः ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ कुशलंतेनृपश्रेष्ठ धर्माचारविदांवर ॥ ४३ ॥ सन्त्यज्यचक्रथैसन्यमेकाकीत्व

ये सब नदियां सोमयज्ञ के यज्ञान्तरानामें ॥ ३८ ॥ ब्रह्मा व विष्णु और महादेवके स्नानके वास्ते आई सो इनके जलोंसे व तिलोंसे मिलेहुये मुनियों के कलशों के जलोंसे प्राप्त ॥ ३९ ॥ व इसीतरह घी और शक्करआदि से मिलेहुये सोमलता के रसोंसे यज्ञसे पैदाहुआ बडाभारी जलोंका प्रवाह पूर्वकाल में होताहुआ ॥ ४० ॥ हे नृपसत्तम ! यह उदयाचलके आश्रित महापुण्यतीर्थ हुआ और यहां रुद्रावर्त नामका भी तीर्थहै ॥ ४१ ॥ इस प्रकार कहागया राजा चलागया व देवीभी अन्तर्धानहो गई चड़े खुश और सन्तुष्ट चक्रवर्ती राजा मार्कण्डेयमुनिके आश्रमको चलेगये ॥ ४२ ॥ वहां जाकर उन ऋषिको नमस्कारकर आगे बैठगये तब मार्कण्डेयजी बोले

कि हे नृपश्रेष्ठ ! हे धर्मके आचार के जाननेवालों में श्रेष्ठ ! आपकी कुशल है ॥ ४३ ॥ अपनी सेनाको छोड़कर अकेले तुम यहां कैसे आये तब राजा बोले कि आज आप के चरणकमलोंके दर्शनसे मेरा जन्म सफल होगया ॥ ४४ ॥ फिर धुन्धुमार राजाने सब पहलेवाला हाल कहा तदनन्तर मार्कण्डेयजी राजासे हालको सुनकर ॥ ४५ ॥ नर्मदा और कपिला के संगम में स्नानकर स्तुति करतेहुये इस नर्मदा और कपिलाके संगम में स्नान करनेवाले स्वर्गको जाते हैं ॥ ४६ ॥ उमा, कात्यायनी, गंगा, यमुना, गौतमी, सरस्वती, शिप्रा, शुभनदी वरणा ॥ ४७ ॥ शतद्रू, चन्द्रभागा, सिन्धु, निर्मलनर्मदा, वितस्ता, चर्मण्वती, बाहुदा, वारुणी ॥ ४८ ॥ सरयू, गण्डकी,

मिहागतः ॥ राजोवाच ॥ अद्यमेसफलं जन्म त्वत्पादाम्बुजदर्शनात् ॥ ४४ ॥ धुन्धुमारस्तथाराजा कथयामासपूर्वं कम् ॥ मार्कण्डेयस्ततः श्रुत्वा वृत्तान्तं पृथिवीपतेः ॥ ४५ ॥ रेवाकपिलयोर्यगे स्नात्वास्तोत्रं चकार ह ॥ तत्र स्नातादि वयान्ति रेवाकपिलसङ्गमे ॥ ४६ ॥ उमाकात्यायनीगङ्गा यमुनागौतमीतथा ॥ सरस्वती तथा शिप्रा वरणा च शुभाप गा ॥ ४७ ॥ शतद्रूश्चन्द्रभागा च सिन्धूरेवामला तथा ॥ वितस्ता च चर्मणा देवी बाहुदा वारुणी तथा ॥ ४८ ॥ सरयू गण्डकी चैव धर्वरावदरी तथा ॥ गोमती वेणुकी चैव पारावेत्रवती शुभा ॥ ४९ ॥ विपाशा च तथा वाहा शङ्खिनी च पयोङ्गिका ॥ गोदावरी च कावेरी भीमा कृष्णा तथा शुभा ॥ ५० ॥ सुभद्रा च तथा भद्रा करतोयाथ मालिनी ॥ एतास्सर्वास्त्वमेवासि सर्व गेत्वा न मामग्रहम् ॥ ५१ ॥ लोकत्रयन्त्वया व्याप्तमपारूपेण सुव्रते ॥ प्रसीद त्वं महाभागे लोकत्रितयपावनी ॥ ५२ ॥ श्रुत्वास्तोत्रमिदं देवी मार्कण्डेयात्तपोधनात् ॥ पुष्पकं यानमास्थ्य सर्वाभरणभूषिता ॥ ५३ ॥ चतुर्भुजा त्रिनेत्रा च चन्द्र

घाघरा तथा बदरी, गोमती, वेणुकी, पारा और शुभ वेत्रवती ॥ ४६ ॥ विपाशा वैसेही वाहा, शङ्खिनी, पयोङ्गी, गोदावरी, कावेरी, भीमा तथा शुभ कृष्णा ॥ ५० ॥ सुभद्रा तथा भद्रा, करतोया और मालिनी ये सब नदियां तुम्हींहो हे सर्वगे ! तुम्हारे हम नमस्कार करते हैं ॥ ५१ ॥ हे सुव्रते ! पार्नाके रूपसे तीनों लोक तुम्हींसे व्याप्त हैं व तीनों लोकों को पवित्र करनेवालीहो हे महाभागे ! तुम प्रसन्न होवो ॥ ५२ ॥ तपोधन मार्कण्डेयजीसे देवीजी इस स्तोत्रको सुनकर सब गहनेसे सजी हुई

पुष्पक विमानपर सवार होकर ॥ ५३ ॥ चार भुजावाली, तीन नेत्रवाली, चन्द्रमाके विम्बके समान मुखवाली देवी महामुनि मार्कण्डेयजीमें वचन बोलीं ॥ ५४ ॥ कि इस स्तोत्रसे हम प्रसन्न हैं तुम अपने मनका वर मांगो तब मार्कण्डेयजी बोले कि हे देवेशि ! जो तुम प्रसन्न हो और वर देनेकी इच्छा करती हो तो हे हरसम्भवे ! हे कल्याणि ! लोकोंके पापको हरो जे कोई स्नानकर आपकी स्तुतिको करे वे शिव की आज्ञासे उत्तम लोकोंको प्राप्त होवें ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ और हे देवि ! अब इस समय तुम धुन्धुमार राजाको वर देवो कि राज्यको कर अपने रनिवास सहित स्वर्गको जावें ॥ ५७ ॥ और हे सुव्रते ! जिस २ कामनाको राजाकरें उस २ को पावें तब

विम्बनिमानना ॥ उवाचवचनं देवी मार्कण्डेयं महामुनिम् ॥ ५४ ॥ स्तोत्रेणानेन तुष्टाहं वरं दृणुयथेप्सितम् ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ परितुष्टासि देवेशि वरं दातुं त्वमिच्छसि ॥ ५५ ॥ कलुषं हरकल्याणि लोकानां हरसम्भवे ॥ स्नानं कृत्वा स्तुवन्तो ये लोकानां पुः शिवाज्ञया ॥ ५६ ॥ वरं ददस्व देवित्वं धुन्धुमाराय साम्प्रतम् ॥ राज्यं कृत्वा दिवं यातु सान्तः पुरपरिच्छदः ॥ ५७ ॥ यं यंचिन्तयते कामं तं तं प्राप्नोति सुव्रते ॥ एवं भवतु विप्रेन्द्र मत्तोयद्वाञ्छितं त्वया ॥ ५८ ॥ एवमुक्त्वा ययौ देवी कपिला लोकपावनी ॥ मार्कण्डेयं मुनिं राजा मुनिभिः परिवारितम् ॥ ५९ ॥ प्रणिपत्य यथान्यायं गतश्च स्वपुरं तदा ॥ ततः कालेन महता राजा धर्मपरायणः ॥ ६० ॥ राज्यं कृत्वा क्रतूनि षड्वा धुन्धुमारो दिवङ्गतः ॥ एतत्ते कथितं सर्वं मया दृष्टं पुरानघ ॥ ६१ ॥ श्रवणात्कीर्तनादस्य मुच्यते भवबन्धनात् ॥ ६२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणैरेवाखण्डे कपिला माहात्म्ये धुन्धुमारस्वर्गरोहणं नाम पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५० ॥ * ॥ * ॥ * ॥

देवीने कहा कि हे विप्रेन्द्र ! मुझसे जो तुमने इच्छा की वह ऐसा ही हो ॥ ५८ ॥ ऐसे कहकर लोकोंको पवित्र करनेवाली कपिला देवी चली गई राजा भी मुनियोंसे घिरे हुये मार्कण्डेय मुनिको ॥ ५९ ॥ उचित रीतिसे नमस्कार कर उसी समय अपने शहरको चले गये तदनन्तर बड़े समय तक धर्मत्मा धुन्धुमार राजा राज्य व यज्ञोंको कर स्वर्गको जाने हुये हे अनघ ! अगले जमाने में यह सब अपना देखा हुआ हाल आपसे कहा गया ॥ ६० ॥ ६१ ॥ इसके सुनने व कहने से संसारके बन्धन से छुट जाता है ॥ ६२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणैरेवाखण्डे कपिला माहात्म्ये धुन्धुमारस्वर्गरोहणं नाम पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५० ॥ ॥

युधिष्ठिरजी बोले कि द्वीपोंकी गिन्ती व पृथिवी की नाप व समुद्रों का हाल व नीचेके लोकोंकी गिन्ती यह सब मुझको विदित करो ॥ १ ॥ नरक और स्वर्ग का प्रमाण और भी जो कुछ ऐसा हालहो मेरा पूछा व अनपूछा जो कुछ शुभ व अशुभकर्मों का वृत्तान्तहो ॥ २ ॥ यह सब संक्षेपसे मुझसे कहो जिसतरह स्वामिकर्त्तिकजी से पूँछेगये महादेवजी ने पुराण को कहाहो व जैसा कुछ पुराना हालहो ॥ ३ ॥ आप होनिवाले और होगये जमानेके तत्त्वके जाननेवालेहो व तीनों कालों के जाननेवाले हो और तीनों वेदोंके जाननेवाले हो आपही सब कुछ जानते हो इससे अपनी प्रसन्नता से मुझपर कहने को आप योग्य होतेहो ॥ ४ ॥ मार्कण्डेय

युधिष्ठिरउवाच ॥ द्वीपसंख्याभुवोमानं सागराणाञ्चकीर्तनम् ॥ पाताललोकसंख्यानं सर्वतोविदितंकुरु ॥ १ ॥ नरकं सर्वगं मानञ्च यत्किञ्चिदन्यदीदृशम् ॥ उक्तानुक्तानुयत्किञ्चित्कर्ममशुभावहम् ॥ २ ॥ एतत्सर्वसमासेन स्कन्दपृष्टेन शम्भुना ॥ कथितंतुपुराणैव यथावृत्तंपुरातनम् ॥ ३ ॥ भविष्यभूततत्त्वज्ञस्त्रिकालज्ञस्त्रिवेदवित ॥ त्वमेव वेत्सि सर्वं च प्रसादाद्वक्तुमर्हसि ॥ ४ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ शृणुराजन्महामाग कथ्यमानं निबोधमे ॥ अनेकानि सहस्राणि मया दृष्टानि भारत ॥ ५ ॥ युगेयुगे च त्रियाणां दानयज्ञक्रियाणि च ॥ नान्यस्तु त्वादृशराजा दृष्टस्तेषां नु मध्यतः ॥ ६ ॥ एतत्सर्वसमासेन स्कन्दपृष्टेन शम्भुना ॥ कथितंतुपुराणैव तत्तेहं कथयाम्यहम् ॥ ७ ॥ चन्द्रद्वीपः प्रभासेतुस्ताम्रपण्डिर्गमस्तिमान् ॥ नागद्वीपश्चसौम्यश्च गन्धर्वो वरुणस्तथा ॥ ८ ॥ नवमः कुमारिकाख्यस्तु इति द्वीपाः प्रकीर्तिताः ॥ नवखण्डवती चैषा कथिता ते समासतः ॥ ९ ॥ खण्डेष्वेतेषु सर्वेषु प्रवाहो नामर्मदस्मृतः ॥ जम्बूशककुशकौञ्चशाल्मल्यश्चयुजी बोले कि हे महाभाग ! हे राजन् ! मैं आपके पूँछेहुये हालको कहताहूँ उसको आप सुनो और समझो क्योंकि हे भारत ! मैंने युग २ में दान व यज्ञोंके करनेवाले अनेक हजार क्षत्रियोंको देखाहै परन्तु उनके बीचमें तुम्हारा ऐसा और राजा नहीं देखा ॥ ५ ॥ ६ ॥ यह सब संक्षेप रीतिसे स्वामिकर्त्तिकजीसे पूँछेगये महादेवजी करके पुराण कहागया था उसीको मैं आपसे कहताहूँ ॥ ७ ॥ चन्द्रद्वीप, प्रभासेतु, ताम्रपण्डि, गभस्तिमान्, नागद्वीप, सौम्य, गन्धर्व, वरुण ॥ ८ ॥ और नवनां कुमारिका नामहै ये तो द्वीप कहेगये हैं नवखण्डवाली यह पृथिवी आपसे साधारण रीति से कहीगई ॥ ९ ॥ इन सब खण्डोंमें नर्मदाजी का प्रवाह वर्त्तमान है हे युधिष्ठिर !

जम्बू, शाक, कुश, कौञ्च, शालमली ॥ १० ॥ सक्ष और पुष्कर ये सातद्वीप कहे गये हैं क्षार, क्षीर, दधि, घृत वैसेही इत्युत्तर ॥ ११ ॥ सुरोद और मधुरोद ये सात समुद्र कहे गये हैं भूलोक, भुवलोक, स्वलोक, महलोक ॥ १२ ॥ जनलोक, तपोलोक और सत्यलोक ये सातलोक ऊपरके हैं और हे युधिष्ठिर ! भूलोक और सूर्यका जो बीच है उसका प्रमाण चारलाख योजन व इतनेही प्रमाणवाला पातालभी जानो हे भारत ! यहां रुद्र और आठ वसुनामके देवता रहते हैं ॥ १३ ॥ १४ ॥ इन लोकोंको मैंने कहा अब पातालको मुझसे जानो अतल, वितल शर्कर, गभस्तिक ॥ १५ ॥ महातल, सुतल, रसातल इमकेबाद सब कामनाओंसे भराहुआ आठवां सौवर्ण जानो ॥ १६ ॥

धिष्ठिर ॥ १० ॥ पुच्छश्चपुष्करश्चैव सप्तद्वीपाः प्रकीर्तिताः ॥ क्षारं क्षीरं दधिसर्पिस्तथैवैश्वरसोपि च ॥ ११ ॥ सुरोदो मधुरोदश्च समुद्रास्सप्तकीर्तिताः ॥ भूलोकश्च भुवलोकस्स्वलोकश्च महस्तथा ॥ १२ ॥ जनलोकस्तपोलोकस्सत्यलोकस्तथापरः ॥ भूलोकादित्ययोर्विद्धि त्वन्तरालं युधिष्ठिर ॥ १३ ॥ योजनानां चतुर्लक्षं पातालं यत्प्रमाणतः ॥ रुद्राश्च वसवश्चाष्टौ निवसन्त्यत्र भारत ॥ १४ ॥ कथिताश्च मया लोकाः पातालानि निबोध मे ॥ अतलं वितलं चैव शर्करं च गभस्तिकम् ॥ १५ ॥ महातलं च सुतलं रसातलमतः परम् ॥ सौवर्णमष्टमं विद्धि सर्वकामसमन्वितम् ॥ १६ ॥ वह्नेर्दाहो ह्यपां शैत्यं मरुतां वहनं तथा ॥ काठिन्यं च तथा धात्र्या गगने शुषिरं तथा ॥ १७ ॥ स्वभाव एव भूतानां स्वस्वभावानुसारतः ॥ प्रकृतिं या न्ति भूतानि नात्र कार्यो विचारणा ॥ १८ ॥ लक्ष्मणिचतुरशीतिर्योनीनां पापकर्मणाम् ॥ नरकेषु च घोरेषु दारुणाय मया तनाः ॥ १९ ॥ निरुद्धाः प्राणिनः सर्वे नीतास्तु यमकिङ्करैः ॥ यातना विविधा रौद्रास्तत्र स्थैरनुभूयते ॥ २० ॥ स्वक

आगमें जलाना, पानी में ठण्डापन, हवा में चलना, जमीन में कड़ापन और आसमान में पोल ॥ १७ ॥ यह अपनी २ तारीर के अनुसार महाभूतों का स्वभावही है सब जीव अपने कारणोंमें मिलजाते हैं इसमें कुछ विचार नहीं करना चाहिये ॥ १८ ॥ पानीजीवों की चौरासीलाख योनि हैं घोरनरकों में यमयातना बड़ी कठिन है ॥ १९ ॥ यमराज के दूतोंसे लाये गये सब प्राणी कैद किये जाते हैं वहां ठहरनेवाले प्राणियों करके अनेक तरह की भयानक यातनायें (यमलोककी तकलीफें)

भोगी जाती है ॥ २० ॥ अपने कर्मोंके फलोंके कारणसे भलेबुरे फलोंको पातेहैं इसीके वास्ते तप, होम, दान और पवित्र करनेवाला ध्यान ॥ २१ ॥ व सब प्राणियों पर दया व नर्मदाके तटमें वास व नर्मदाकी स्तुति व सूर्यकी पूजा करना चाहिये जिससे कल्याण होवे ॥ २२ ॥ अब हम कथाको कहेंगे जैसा कुछ हाल अगिले जमाने में हुआ है हे भारत ! दानवों के राजा मुत्तुकुन्द का संवाद है ॥ २३ ॥ हे राजन् ! प्रसिद्ध है कि चालुप मन्वन्तर के सत्ययुग में कुवलयाश्व नामके बड़े यश वाले चक्रवर्त्ती राजर्षि हुये ॥ २४ ॥ २५ ॥ उन बड़े तेजवाले राजाकी राज्य इन्द्रसे आठगुनी होतीहुई उन राजाने अनेकतरहके अनेकहजार अत्युत्तम दानोंको सब तीर्थोंमें

र्मफलयोगेन प्राप्नुवन्ति शुभाशुभम् ॥ एतदर्थं तपो होमं दानं ध्यानं च पावनम् ॥ २१ ॥ कारुण्यं सर्वभूतेषु नर्मदां च यणं तथा ॥ रेवायारस्तवनं पूजा सूर्यस्य प्रभवो यथा ॥ २२ ॥ आख्यानं कथयिष्यामि यथा वृत्तपुरातनम् ॥ मुत्तुकुन्दस्य संवादो दानवेन्द्रस्य भारत ॥ २३ ॥ कुवलयाश्वो थराजर्षिश्च क्रवर्त्तो महायशः ॥ आसीत्कृतयुगे राजन्नन्तरं चाक्षुषे किं ल ॥ २४ ॥ शक्रादष्टगुणं राज्यं राज्ञश्चामिततेजसः ॥ अनेकानि सहस्राणि दानानि विविधानि च ॥ २५ ॥ दत्तानि ते न राज्ञा वै सर्वतीर्थेष्वनुत्तमम् ॥ इष्टाश्च क्रतवश्चापि वर्जयित्वा तु कल्पगाम् ॥ २६ ॥ दानवो मुत्तुकुन्दश्च सर्वधर्मपरायणः ॥ ब्रह्मण्यदिशवभक्तश्च विष्णुभक्तो जितेन्द्रियः ॥ २७ ॥ राहुसोमसमायोगे वैदूर्यसिद्धपर्वते ॥ अंकारनाथसहिता यत्रास्ते कल्पगासरित् ॥ २८ ॥ अन्यानि यानि लिङ्गानि लोकैश्चैव चराचरे ॥ कल्पान्ते तानि लीयन्त अंकारे वैनसे शयः ॥ २९ ॥ शिवेन कथितं ह्येतद्विष्णोश्चैव शतक्रतोः ॥ पार्वत्याः परमुलस्यापि पुराणैस्कुन्दकीर्तिते ॥ ३० ॥ आगतो कल्पगान्दे

दिया और अनेक यज्ञोंको भी किया परन्तु नर्मदाको छोड़कर अर्थात् नर्मदा में कुछ न किया ॥ २६ ॥ सब धर्मोंका करनेवाला ब्राह्मण, शिव और विष्णुका भक्त इन्द्रियोंका जीतनेवाला मुत्तुकुन्द दानव भी ॥ २७ ॥ चन्द्रग्रहणमें सिद्धवैदूर्य पर्वत पर जहाँ अंकारनाथ के सहित नर्मदा नदी विद्यमान है ॥ २८ ॥ क्योंकि और जितने इस स्थावरजङ्गमरूप संसार में लिङ्ग हैं वे सब महाप्रलयमें अंकार में मिलजाते हैं इसमें कुछ संदेह नहीं है ॥ २९ ॥ इस बातको स्कन्दपुराण में महादेवजी ने विष्णु,

इन्द्र, पार्वती और स्वामिकार्त्तिकेयजी से कह रहै ॥ ३० ॥ सो वह राजा नर्मदादेवी के पास कोटितीर्थमें आया नर्मदा और कपिला के राङ्गममें राव सामान के सहित ॥ ३१ ॥ हे नृप ! एक लाख दुधारी गौर्वे, दशहजार घोड़े, एक हजार हाथियों को लेकर ॥ ३२ ॥ व सोनेके कामवाले मनके प्यारे एक हजार रथ, धन, ग्रन्थ, कपड़े आर अनेक तरहके रत्नोंको लेकर ॥ ३३ ॥ और स्नानकर उसीसमय यथायोग्य ब्राह्मणों को देताहुआ और हे नराधिप ! उल्लासकी मूर्तिमें दक्षिणाको भी चढ़ाता हुआ ॥ ३४ ॥ जिनने जिस कामनाको किया उसके लिये वह राजा वहीं देताहुआ और धर्म कर्मका करनेवाला राजा कुवलयाश्चभी ॥ ३५ ॥ सूर्यग्रहण में अपने

वीं कोटितीर्थेनराधिपः ॥ नर्मदाकपिलायोगे सर्वसम्भारसंवृतः ॥ ३१ ॥ लक्ष्मैकन्तुदोग्रीणां समादायगवांष्टप ॥ अयुतंचहयानाञ्च सहस्रंदन्तिनान्तथा ॥ ३२ ॥ कामिकानान्तुयानानां सहस्रंहेमसालिनाम् ॥ धनंधान्यञ्चवासांसि रत्नानिविविधानिच ॥ ३३ ॥ स्नानंकृत्वायथान्यायं ब्राह्मणेभ्योददौतदा ॥ भूतैतुदक्षिणाञ्चापि अंकारस्यनराधिप ॥ ३४ ॥ योयंकामयतेकामं तंतस्मैसप्रयच्छति ॥ राजाकुवलयाश्चस्तु धर्मकर्मपरायणः ॥ ३५ ॥ राहुसूट्यसमायोगे कुरुक्षेत्रंययौकिल ॥ सान्तःपुरपरीवारो ह्ययोध्याधिपतिस्स्वयम् ॥ ३६ ॥ राजपुत्रसहस्रैस्तु वृतःस्नानेऽपसयाकिल ॥ लक्ष्मैकंहयानाञ्च दन्तिनामयुतंतथा ॥ ३७ ॥ हेममाणिक्यरत्नानि वासांसिविविधानिच ॥ श्रद्धयापरयायुक्तो ब्राह्मणेभ्योददौष्टप ॥ ३८ ॥ शेषंनिर्वापितक्षेत्रे स्थानेवायनपूर्वकम् ॥ कालान्तरेततःप्राप्ते कुरुक्षेत्रप्रभावतः ॥ ३९ ॥ नानायानसहस्रैस्तु सान्तःपुरपरिग्रहः ॥ ध्रियमाणतपत्रस्तु वीज्यमानोऽपसरोर्गणैः ॥ ४० ॥ शङ्खवादित्रघोषेण नानाम

रनिवास व परिवारके सहित साक्षात् अयोध्याका मालिक हजारों राजपुत्रों से युक्त स्नान करनेकी इच्छा से कुरुक्षेत्र को जाताहुआ वह राजा एकलाख घोड़े दशहजार हाथी ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ सोना, माणिक, रत्न और अनेकतरह के कपड़े बड़ीश्रद्धासे युक्त हे नृप ! ब्राह्मणों को देताहुआ ॥ ३८ ॥ जो धन देनेसे बाकी रहा वह उसी क्षेत्रस्थान में बैनेकी तरह बांट दियागया तदनन्तर कुछ समय व्यतीत होनेपर कुरुक्षेत्र के प्रभाव से ॥ ३९ ॥ अपने रनिवास व अमलाके सहित अनेक प्रकारकी

हजारों सवारियों से युक्त छाताको लगायेहुये व अप्सरा लोग जिनके ऊपर चँवर को दुराही है ॥ ४० ॥ अनेक गहनों से सजेहुये शङ्खआदि वाजाओं की आवाज से युक्त दूसरे विद्याधरकी तरह वहां स्थितहो विचरतेहुये ॥ ४१ ॥ और दैत्योंके राजा मुचुकुन्द भी सव कामनाओं से युक्त सोने और रत्नोंके गहनों को पहनेहुये मनमानी सवारियों पर सवार सोहेतेहुये ॥ ४२ ॥ हे विशास्पते ! हजारों बाजोंको सुनकर धर्मराज बड़े आश्चर्यको प्राप्तहुये और कहा कि यह क्याहै ॥ ४३ ॥ तदनन्तर कुवलाश्व राजाभी उसी दिन उस शहर में प्राप्तहुये दोनोंको दूतोंने बुद्धिमान् धर्मराजसे प्रसिद्ध किया ॥ ४४ ॥ कि राजपि कुवलाश्व और बड़ेबली मुचुराणभूषितः ॥ विचचारचतत्रस्थो विद्याधरइवापरः ॥ ४१ ॥ मुचुकुन्दोपिदैत्येन्द्रः सर्वकामसमन्वितः ॥ कामिकैश्चमहायानैर्हर्मरत्नविभूषणैः ॥ ४२ ॥ श्रुत्वावाद्यसहस्राणि धर्मराजोविशाम्पते ॥ जगामविस्मयंघोरं किमेतदितिचाव्रवीत् ॥ ४३ ॥ ततःकुवलाश्वोपितस्मिन्नहनितत्पुरम् ॥ उभौनिवेदितौदूतैर्धर्मराजस्यधीमतः ॥ ४४ ॥ कुवलाश्वोययोजनानांसहस्रेणह्युपर्युपरिसंस्थितम् ॥ लोकान्तरमुभावेतौविमानस्थौसमागतौ ॥ ४५ ॥ तावदुत्पतितंयानंमुचुकुन्दस्यचोपरि ॥ त्रगुप्तंतुलेखकम् ॥ ४७ ॥ कितुयानंसमासाद्यअर्धपाद्येनपूजये ॥ सप्तर्षीन्पिमुख्यांश्चधर्माधर्मविचारकान् ॥ ४८ ॥ चित्रगुप्तोब्रवीद्वाक्यं तथासप्तर्षयोब्रुवन् ॥ मुचुकुन्दंसमासाद्यत्वर्धपाद्येनपूजय ॥ ४९ ॥ दानेनकापिलेनेज्योदानवेन्द्रो नचापरः ॥ अधःकुवलाश्वश्चमुचुकुन्दस्तथोपरि ॥ ५० ॥ एवमुक्तोधर्मराजोदानवेन्द्रमुपाश्रयत् ॥ श्वेतवस्त्रपरीधाकुन्द ये दोनों विमानपर सवार अपने लोकसे दूसरे लोकको प्राप्तहुये है ॥ ४५ ॥ तवतक मुचुकुन्द की सवारी ऊपरको उड़ी व हजारों योजनके ऊपर २ स्थित होती हुई ॥ ४६ ॥ अयोध्याके राजा कुवलाश्वका विमान नीचे रहगया तब धर्मराज ने अपने लेखक (मुमही) चित्रगुप्त से पूछा ॥ ४७ ॥ कि हम किस विमानके पास जाकर अर्घ्य और पाद्यसे पूजन करें और धर्म व अधर्म के विचारनेवाले ऋषियों में बड़े सप्तर्षियों से भी पूछा ॥ ४८ ॥ तब चित्रगुप्त और सप्तर्षियों ने जवाब दिया कि मुचुकुन्द के पास जाकर तुम अर्घ्य और पाद्यसे पूजनकरो ॥ ४९ ॥ कपिला नदीके तीर दान देनेसे दैत्योंका राजा मुचुकुन्दही पूजाके योग्यहै दूसरा नहीं क्योंकि

कुवलययाश्च नीचे पडा है और मुचुकुन्द ऊपर है ॥ ५० ॥ ऐसे कहेगये, सफेद कपड़ों को पहनेहुये दगदगाते हैं कुण्डल और गहने जिनके ऐसे धर्मराजजी दान-वेन्द्र मुचुकुन्द के पास जातेहुये ॥ ५१ ॥ तदनन्तर दोनों हाथ जोड़कर मुचुकुन्दकी सवारी के आगे खड़ेहुये और बोले कि हे सब धर्मधारियोंमें श्रेष्ठ ! हे दैत्येन्द्र ! आज आपकी कुशल है ॥ ५२ ॥ हे सुव्रत ! आपने इस दानसे तीनोंलोकों को जीतलिया है क्योंकि कपिलाके सङ्गममें दक्षिणामूर्ति जो उलङ्कारनाथ है उनके पास ॥ ५३ ॥ नर्मदके तीरमें दानकी गिन्ती नहीं है तब मुचुकुन्द बोले कि धर्म अर्घमके मामिलेमें मुखिया आपही हो जिससे कि आपही स्वर्गके फाटकके बेलन

नो ज्वलत्कुण्डलभूषणः ॥ ५१ ॥ अञ्जलिञ्चततोवद्वा यानस्याग्रेव्यवस्थितः ॥ कुशलन्तेद्यदैत्येन्द्र सर्वधर्मभूतांवर ॥ ५२ ॥ निर्जितास्तेत्रयोलोका दानेनानेनसुव्रत ॥ अंकारदक्षिणस्यान्ते मूर्तौकापिलसङ्गमे ॥ ५३ ॥ सप्तकल्पवहातीरे दानसंख्यानविद्यते ॥ मुचुकुन्दउवाच ॥ धर्मार्धमैत्वमेवाद्यः स्वर्गद्वारार्गलोयतः ॥ ५४ ॥ एवमुक्तोयमस्तत्र दैत्येन्द्रेणमहात्मना ॥ पन्थानन्दश्यामास दैत्येन्द्रस्ययुधिष्ठिर ॥ ५५ ॥ ततस्तुप्रेषितस्तेन मुचुकुन्दोजगामह ॥ मुदापरमयायुक्त उमामाहेश्वरंपुरम् ॥ ५६ ॥ संस्मारयित्वाविधिवद्दैत्येन्द्रं धर्ममरादततः ॥ आसाद्यकुवलयाम्भ्रवन्धर्मराजोब्रवीदिदम् ॥ ५७ ॥ स्वागतन्तेमहाराज कुशलन्तवसर्वदा ॥ कुवलयाम्भ्रवउवाच ॥ परस्परविरोधत्वं देवदानवयोःसदा ॥ ५८ ॥ मान्त्यक्त्वादानेवेन्द्रस्तु पादार्घ्येणत्वयाचितः ॥ विपरीतञ्चतत्सर्वं धर्ममराजकृतंकथम् ॥ ५९ ॥ यम

हो ॥ ५४ ॥ ऐसे जब दैत्येन्द्र महात्मा मुचुकुन्दने यमराजसे कहा तब हे युधिष्ठिर ! यमराज ने मुचुकुन्द को राह दिखादी ॥ ५५ ॥ तदनन्तर उन यमराजने मुचुकुन्दको विदा किया मुचुकुन्द बड़े आनन्द से युक्त पर्वती व महादेव जीके पुरको चलेगये ॥ ५६ ॥ तदनन्तर विधिसे धर्मराज दैत्येन्द्र मुचुकुन्द को सब याद दिला के फिर धर्मराज उन कुवलयाम्भ्र के पास जाकर यह बोले ॥ ५७ ॥ कि हे महाराज ! आपका आना बहुतही अच्छा हुआ आपकी हमेशा कुशल है तब कुवलयाम्भ्र बोले कि देवता और दैत्योंका आपममें विरोध तो सदा चलाआया है ॥ ५८ ॥ फिर हमको छोड़कर आपने पाद्य अर्घसे दानवेन्द्र मुचुकुन्द का पूजनकिया हे धर्म-

राज ! यह सब आपने उलटा क्यों किया ॥ ५६ ॥ तब यमराज बोले कि हे राजेन्द्र ! आप शोचमत करो क्योंकि कर्मोंकी गति बड़ी कठिन है हम भलेबुरे फलके न देनेवाले हैं और न लेनेवाले हैं ॥ ६० ॥ हे नृप ! हम तो केवल देवता, दैत्य और मनुष्य सबके कर्मोंके साखीमात्र हैं हे अनघ ! कुक्षेत्र में सरस्वतीनदी के किनारे आपने दानको दिया ॥ ६१ ॥ परन्तु द्वापरयुगके अन्तमें नर्मदा के तटमें जो दानहै उसके बराबर और कहींका दान नहीं हो सका है यह महादेवजीने ब्रह्मा, विष्णु और मरुत् देवताओंसे कहा है कोई तीर्थ नर्मदाकी एक कला को भी नहीं पासके हैं मैंने भूँठ नहीं कहा है क्योंकि पुराण वेदसे भिला हुआ है ॥ ६२ ॥ ६३ ॥ हे राजन् !

उवाच ॥ विषादन्त्यजराजेन्द्र गहनाकर्मणाङ्गतिः ॥ नाहंदाताचहर्ताच शुभाशुभफलस्यैव ॥ ६० ॥ कर्मसाक्षीचसर्वेषा
न्देवासुरनृणानृप ॥ सरस्वत्यांकुरुक्षेत्रे दानं दत्तन्त्वयानघ ॥ ६१ ॥ द्वापरान्ते तु दानैरेवादानं समनहि ॥ शिवेन कथितं
मम तम् ॥ ६२ ॥ एतस्मिन्नन्तरे राजन् द्वयोः संवदतोस्तयोः ॥ उक्तः कुवलययाश्च वस्तु तदा काशगिरास्वयम् ॥ ६४ ॥ धर्म
श्रेयं महाराज माकृथास्तत्कथञ्चन ॥ कल्पगातो यस्य संस्पृष्टो दैत्यः शिवमवाप्तवान् ॥ ६५ ॥ सराजा विस्मयापन्नः पुन
र्यावृत्य चागतः ॥ नर्मदां स्नातुकामोऽपि कपिलासङ्गममप्रति ॥ ६६ ॥ तत्र प्लुतस्ततो राजा शिवलोकं जगाम ॥ ६७ ॥
इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डे मुचुकुन्दकुवलययाश्च स्वर्गरोहणं नामैकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५१ ॥ * ॥

इसी अन्तर में उन दोनों के बतलाते ही हुये आकाशवाणी ने राजा कुवलययाश्च से आपही कहा ॥ ६४ ॥ किहे महाराज ! धर्म ऐसा ही है तुम किसीतरहकी तर्क मत
करो नर्मदा के जलसे छुवागया दैत्य शिवजी को प्राप्त हुआ ॥ ६५ ॥ आश्चर्य को प्राप्त हुआ वह राजा फिर लौटकर नर्मदामें स्नान करनेकी इच्छा करता हुआ कपिला
के संगम को आया ॥ ६६ ॥ तदनन्तर वहां स्नानकर राजा शिवजी के लोकको जाता हुआ ॥ ६७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डे प्राकृतभाषाऽनुवादे मुचुकुन्दकुव
लयाश्च स्वर्गरोहणं नामैकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५१ ॥ ॥

युधिष्ठिरजी बोले कि हे विप्र ! यमराजके पास कौन जातेहैं और वे नरक कैसेहैं यह सब आप सुझते कहो और देवलोकको कौन जातेहैं ॥ १ ॥ तब मार्कण्डेयजी बोले कि जो पुंखराजके देनेवाले है वे पुष्पकविमानसे जातेहैं व जो देवताओंके मकान बनवानेवालेहैं वे शिवलोकको जातेहैं ॥ २ ॥ जो अनार्यके मकानोंको बनवा देते हैं वे उत्तम मकानोंमें विहार करतेहैं व जो देवता, अग्नि, गुरु, ब्राह्मण, माता और पिताके पूजेवालेहैं ॥ ३ ॥ वे मनुष्य औरोंसे पूजेजातेहुये मनमानी सवारियोंसे सुखसे जातेहैं व दियाके देनेसे दशों दिशाओं को प्रकाशित करतेहुये जातेहैं ॥ ४ ॥ सभाके देनेसे सुखसे यमलोकको जातेहैं व पानीका देनेवाला सब कामनाओंसे युक्त

युधिष्ठिरउवाच ॥ केव्रजन्तियमंविप्र कीदृशानरकास्तुते ॥ एतन्मेसर्वमाख्याहि देवलोकं व्रजन्तिके ॥ १ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ यान्तिपुष्पकयानेन पुष्परागप्रदायिनः ॥ देवायतनकर्तारः शिवलोकं व्रजन्तिके ॥ २ ॥ अनाथमण्डपानान्तु ते क्रीडन्ति गृहोत्तमैः ॥ देवाग्निगुरुविप्राणां मातापित्रोश्च पूजकाः ॥ ३ ॥ पूज्यमानानरायान्ति कामिकैश्च यथा सुखम् ॥ द्योतयन्तो दिशः सर्वा यान्ति दीपप्रदानतः ॥ ४ ॥ प्रतिश्रयप्रदानेन सुखं यान्ति यमालयम् ॥ सर्वकामसमृद्धे न तथा गच्छन्ति तोयदः ॥ ५ ॥ अन्नपानं प्रयच्छन्ति सुखं यान्ति निराकुलाः ॥ दीपमालां हि यच्छन्ति गुरुशुश्रूषणैरताः ॥ ६ ॥ पादाभ्यङ्गश्च यः कुर्यात्सोऽश्वपृष्ठेन गच्छति ॥ हेमरत्नप्रदानेन यान्ति रत्नविभूषिताः ॥ ७ ॥ सर्वकामसमृद्धात्मा भूमिदानेन गच्छति ॥ अन्नपानप्रदानेन पिबन्त्वादंश्च गच्छति ॥ ८ ॥ इत्येवमादिभिर्दानैः सुखं यान्ति शिवालयम् ॥ स्वर्गेऽपि पुलान्भोगान् प्राप्नोत्यन्नप्रदानतः ॥ ९ ॥ सर्वपापमेव दानानामन्नदानं परं विदुः ॥ सर्वप्रीतिकरं पुण्यं बलपुष्टिविव

सवारी से जाताहै ॥ ५ ॥ अन्न व पानीको जो देतेहैं वे व्याकुलतारहित हो सुखसे जाते हैं व जो दियालियों को देतेहैं और गुरुकी सेवामें प्रेम करते हैं ॥ ६ ॥ और गुरुके पैरोंको दाबतेहैं वे घोड़ेकी पीठपर सवार होकर जातेहैं सोने व रत्नोंके देनेसे रत्नों से सजेहुये जातेहैं ॥ ७ ॥ पृथ्वीके देनेसे सब कामनाओंसे भराहुआ जाताहै अन्न व जलके देनेसे खाता पीताहुआ जाताहै ॥ ८ ॥ ऐसे २ दानोंसे सुखसे शिवलोक को जातेहैं और अन्नके देनेसे स्वर्गमें अनेक भोगोंको पाताहै ॥ ९ ॥ सब दानोंमें

है कहीं टेढ़े बैचे गइलें से व ताते डेले और ईंटों से युक्त है व कहीं २ अतिताती वालू पैनीमेखें और अनेक टूटीहुई डालोसे व्याप्त है ॥ ३० ॥ ३१ ॥ काँई बडे अधियारे से यमलोकको जातेहैं कहीं राहमें पड़ेहुये अङ्गारों से तपे व दाशानलसे गैसेहुये जातेहैं ॥ ३२ ॥ कहीं ताती पत्थरकी चट्टानोंसे कहीं करिहांवतक कीचमे, कहीं गन्दे पानीसे और कहीं गन्देगोबर की आगसे व्याप्त है ॥ ३३ ॥ कहीं गीध, घगुला, याघ, अतिदाकण दुष्टकीडोंसे व कहीं बडे २ विच्छुवोंसे व कहीं अजगरोसे ॥ ३४ ॥ व कहीं भयानक मच्छड़, जहरीले साप, चारोंतरफसे मारनेवाले बड़े बलवाले पैने दांतोंसे राहको खोदरे मतवाले हाथियोंके फुण्ड, सिंह, बड़े सोंगवाले भैंसे और मतवाले, तसबालुकाभिश्च तथातीक्ष्णैश्चशङ्कुभिः ॥ अनेकभगनशाखाभिरावृतेनक्वचित्क्वचित् ॥ ३५ ॥ कष्टेनतमसाकेचिद्गच्छन्तिहियमालयम् ॥ मार्गस्थाङ्गारैकस्तमैर्ग्रस्तादावाग्निमिस्तथा ॥ ३६ ॥ क्वचित्तप्तशिलाभिश्च पङ्केनकटिमानतः ॥ क्वचिद्दुष्टाम्बुनाव्याप्तं दुष्करीषाग्निनाक्वचित् ॥ ३७ ॥ क्वचिद्गुधैर्बैकैर्व्याप्तैर्दुष्टैः कीटैस्सुदारुणैः ॥ क्वचिन्महाकुलीराद्यैः क्वचिन्वज्रैः पुनः ॥ ३८ ॥ मत्तिकाभिश्चरौद्राभिः क्वचित्सर्पैर्विषोत्पणैः ॥ मत्तमातङ्गयुथैश्च समन्ताच्चप्रमाथिभिः ॥ ३९ ॥ पन्थानमुखिखड्गिश्च तीक्ष्णशृङ्गैर्महाबलैः ॥ सिंहविषाणमहिषैरौद्रैर्मत्तैश्चइवापदैः ॥ ४० ॥ डाकिनीभिश्चरौद्राभिविकरालैश्चराक्षसैः ॥ व्याधिभिश्चमहाघोरैः पावकैश्चदुरासदैः ॥ ४१ ॥ महानलविमिश्रेण महाचण्डेन वायुना ॥ महापाषाणवर्षेण भिद्यमानानिराश्रयाः ॥ ४२ ॥ क्वचित्क्वचित्प्रतप्तसेन दीप्यमानाव्रजन्तिहि ॥ महतावाणवर्षेण भिद्यमानाः समन्ततः ॥ ४३ ॥ पतद्भिर्वज्रसङ्घातैस्त्वकापतैश्चदारुणैः ॥ प्रदीप्ताङ्गारवर्षेण हन्यमानाव्रजन्तिहि ॥ ४४ ॥ महाघोरवैद्यैर्विषस्यन्तोमुखमुहुः ॥ निशितायुधवर्षेण पूर्यमाणश्चसर्वशः ॥ ४५ ॥ महाक्षाराग्बुधाराभिः जीवोंकेखानेवाले भेंडियाआदि जीवोंमे व्याप्त है ॥ ४६ ॥ कहीं बड़ी भयानक डाकिनी, विकराल राक्षस, बडेघोररोग, प्रचण्ड आग ॥ ४७ ॥ लपटसे मिलीहुई बड़ी प्रचण्डवायु और बडे २ पत्थरोंकी वर्षाभे मारेजातेहुये निराधार जानैहैं ॥ ४८ ॥ कहीं रतातीराह से जलनेहुये जातेहैं कहीं बड़ीबाणोंकी वर्षासे चारोंतरफसे मारेहुये जातेहैं ॥ ४९ ॥ कहीं गिरतीहुई विजलियोंके समूह, भयानक जेक और प्रचण्ड अङ्गारोंकी वर्षासे मारेहुये जातेहैं ॥ ५० ॥ और कहीं बड़ीघोर आवाजवाले डराने जीवों

से बार२ ढरवायेजाते और पैने हथियारोंकी वर्षसे चारोंतरफ से तोपेहुये ॥ ४१ ॥ व बहुत खारीपानी की धाराओंसे बारबार भिगोयेगये, बडेघोर जाड़ेसे और छुरोंकी धारआदिकोंसे दुःखी जातेहैं ॥ ४२ ॥ और अनेकतरहके सैकड़ों हजारों दुःखोंसे व्याप्त ताती, भयानक, खाली, जंची, सहेतावटसे रहित बड़ीभारी बहुतदूरवाली, ॥ ४३ ॥ बहुत नगीच, बहुत कष्टवाली और सब दुखों से भरीहुई राहसे हे भारत ! ॥ ४४ ॥ सब पापी मूढ़ जीव यमराजकी आज्ञा करनेवाले बड़ेबोर यमदूतों से जबरदस्ती लायेजाते हैं ॥ ४५ ॥ अकेले हैं, पराये अधीनहैं, मित्र और भाइयों से रहितहैं, अपने कर्मोंको सोचते हैं, बार २ जलेजाते हैं ॥ ४६ ॥ भूत और प्रेतोंके

सिन्धमानामुहुमुहुः ॥ महाशीतेनरौद्रेण क्षुरधारादिभिस्तथा ॥ ४२ ॥ अन्यैर्वहविधाकारैः शतशोथसहस्रशः ॥ इत्थं
अतसरौद्रेण मार्गेणविषमेणच ॥ ४३ ॥ अविश्रान्तेनमहताह्यविद्वरेणभारत ॥ अविद्वरेणकष्टेन सर्वदुःखाश्रयेणच ॥ ४४ ॥
नीयन्तेदेहिनस्सर्वे मूढाःपापपरायणाः ॥ यमदूतैर्महाघोरैर्यमाज्ञाकारिभिर्बलात् ॥ ४५ ॥ एकाकिनःपराधीना मित्रव
न्धुविवर्जिताः ॥ शोचन्तःस्वानिकर्माणि दह्यन्तेचमुहुर्मुहुः ॥ ४६ ॥ प्रेतभूतविमिश्राश्च शुष्ककण्ठोष्ठतालुकाः ॥
कुशाङ्गाभीतभीताश्च दह्यमानाहुताग्निना ॥ ४७ ॥ बद्धाःशृङ्खलायांकेचिन्मज्जन्तःपापिनोभृशम् ॥ कृष्यन्तेदह्यमा
नास्तु यमदूतैर्वलोत्कटैः ॥ ४८ ॥ उरस्यधोमुखस्थाने तथैवखलुदुःखिताः ॥ केशपाशोविवद्धाश्च कृष्यन्तेपापिनस्त
था ॥ ४९ ॥ ललाटेचाशुगैर्विद्धा कृष्यन्तेदेहिनःकचित् ॥ उत्तानादुष्टपन्थानं नीयन्तेपापकर्मणा ॥ ५० ॥ पाश्व
बाहुविवद्धाश्च जठरेपरिपीडिताः ॥ ग्रीवापाशविकृष्याश्च केऽपियान्तिसुदुःखिताः ॥ ५१ ॥ जिह्वाशङ्कुप्रदानेन समा

साथमें हैं, गला, श्रोठ और तालु जिनके सूख गये हैं, दुबली देहवाले हैं, डरेसे ज्यादा डरेहैं, होमीहुई आगसे जलेजातेहैं ॥ ४७ ॥ कोई पापी जंजीर से बंधेहैं और गन्देपानी में गोतेखाते हैं बड़े जबरदस्त यमदूतों से जलतेहुये खींचेजाते हैं ॥ ४८ ॥ उसी प्रकार कोई दुःखी पापी छातीमें बंधेहैं व कोई मुहके नीचे बंधेहैं और कोई बालोंमें बंधे खींचेजाते हैं ॥ ४९ ॥ कोई प्राणियोंके माथेमें बाण नाथ दियेगये हैं उन्हींमें बंधे कहीं खींचेजाते हैं कोई अपने पापकर्मसे उताने दुष्ट सड़क पर खींचेजाते हैं ॥ ५० ॥ कोई पसुली और हाथोंमें बंधेहैं कोई पेटमें नथेहैं व कोई गलेमें फँसरीसे खींचेजाते बड़े दुःखी जातेहैं ॥ ५१ ॥ जीभमें कीलेसे नथेहुये कोई कण्ठ

में नथेहुये अर्द्धचन्द्रसे इधर उधर भटकाखाते खींचेजाते है ॥ ५२ ॥ कोई रसीमे लिङ्ग और अण्डकोश में बँधहुये खींचेजाते हैं व कोई हाथ, पाँत्र, कान, ओंठ और नाक जिनके काटिडालोगये हैं ऐसे जातेहैं लिंग, अण्डकोश और शिरआदि अङ्ग जिनके कटगये हैं आंगुसों से छेदेजाते और बिच्छुओं से काटेजातेहुये जाते हैं ॥ ५३॥५४ ॥ इधर उधर दौड़तेहैं विलाप करते हैं निरालम्ब मुगदर और लोहेके दण्डोंसे वार २ मारेजातेहुये जातेहैं ॥ ५५ ॥ अनेकतरह के घोर कोडाओं से और भिन्दिपालों से चारोंतरफ से मारेजाते वार २ रक्तको उगिलतेहुये जातेहैं ॥ ५६ ॥ पानीमें डालेजाते छाहीको मांगते हैं इस प्रकार पापके करनेवाले व दानभे रहित

नीयकृकाटिकाः ॥ अर्द्धचन्द्रेणगृह्यन्ते जिप्यमाणा इतस्ततः ॥ ५२ ॥ शिश्नेचवृषणेचैव रज्ज्वावद्धास्तथापरे ॥ विच्छिन्नहस्तपादाश्च विन्नकर्णोष्ठनासिकाः ॥ ५३ विच्छिन्नाशिश्नवृषणादिच्छिन्नशीर्षाङ्गसञ्चयाः ॥ अङ्कुशैर्भिद्यमानास्तु खाद्यमानाःसरीसृपैः ॥ ५४ ॥ इतश्चेतश्चधावन्ति क्रन्दमानानिराश्रयाः ॥ मुद्गरैर्लोहदण्डैश्च हन्यमानामुहुमुहुः ॥ ५५ ॥ कशाभिर्विविधाभिश्च घोरभिश्चसमन्ततः ॥ भिन्दिपालैश्चतुद्यन्ते वमन्तःशोणितंमुहुः ॥ ५६ ॥ पात्यमानाश्च सलिले छायावैप्रार्थयन्तिच ॥ दानहीनाःप्रयान्त्येवं प्रायश्चित्तकृतोनराः ॥ ५७ ॥ गृहीत्वाचैवपाथेयं सुखयान्तियमालयम् ॥ एवंपथानिकृष्टेन प्राप्तायमपुंनराः ॥ ५८ ॥ प्राज्ञापितैस्तथादृतैः प्रवेश्यन्तेयमाग्रतः ॥ तत्रयेशुभकर्ममाणस्तान्वैसंस्मारयेद्यमः ॥ ५९ ॥ स्वागतासनदानेन पाद्धार्येणप्रियेणच ॥ धन्यायूयंमहात्मान आत्मनोहितकारिणः ॥ ६० ॥ यैस्तुदिव्यमुखार्थं हि भवद्भिःसुकृतंकृतम् ॥ नर्मदातटमाश्रित्य पर्वतेभरकण्टके ॥ ६१ ॥ दानंदत्तंपस्तप्तं हुतं

मनुष्य जाते हैं ॥ ५७ ॥ और सप्तरखर्च को लेकर जो जातेहैं वे सुखसे यमलोक को जातेहैं इस प्रकार बुरी राहसे मनुष्य यमलोक को प्राप्तहोते हैं ॥ ५८ ॥ आज्ञा को पायेहुये दूतोंकरके यमराज के आगे पापी खड़े कियेजाते हैं वहाँ जो शुभकर्मों के करनेवाले हैं उनका यमराज स्वागतप्रश्न अर्थात् आपका आना बहुत अच्छा हुआ यह कहना. आसन, पाद्य और अर्घ्य व प्रियवचन से सत्कार करते हैं और कहते है कि अपने हितके करनेवाले आपलोग बड़े महात्माहो और धन्यहो ॥ ५९ ॥ जिन आपलोगों ने दिव्यसुख के वास्ते पुण्यको कियहै नर्मदातट में व अमरकण्टक में बैठकर ॥ ६१ ॥ दानको दियाहै, तपको कियहै विधान से होम

और यज्ञोंको किया है इसीतरह इन सब कामोंको काशी, कुरुक्षेत्र, प्रयाग, पुष्कर ॥ ६२ ॥ गया, नैमिषारण्य, गङ्गासागरसङ्गम, केदार, भैरव, प्रभास, शशिभूषण ॥ ६३ ॥ रमणीक महाकालवन, श्रीशैल, त्रिपुरान्तक, पापोंके धोनेवाले त्रैयम्बक वैसेही नीलकण्ठ ॥ ६४ ॥ गङ्गाद्वार, हिमद्वार और कालञ्जर पर्वत इनमें व और तीर्थों व क्षेत्रोंमें जिन्होंने यथाक्रम किया है ॥ ६५ ॥ ऐसे आपलोगों ने अपने जन्मके फल को पाया इसमें कोई सन्देह नहीं है अब आपलोग दिव्य स्त्रियोंके भोगसे युक्त इस विमानपर सवार होकर ॥ ६६ ॥ सुखके देनेवाले सब कामों से भरेहुये स्वर्गको जावो वहा अपनी पुण्यकी संख्या से अनगिन्ती बड़े भोगोंको भोगकर ॥ ६७ ॥ फिर

चेष्टविधानतः ॥ वाराणस्यांकुरुक्षेत्रे प्रयागेपुष्करतथा ॥ ६२ ॥ गयायानैमिषारण्ये गङ्गासागरसङ्गमे ॥ केदारैर्भैर
वेचापि प्रभासेशशिभूषणे ॥ ६३ ॥ महाकालवनेरम्ये श्रीशैलेत्रिपुरान्तके ॥ त्रैयम्बकेधौतपापे नीलकण्ठे तथैव च ॥ ६४ ॥
गङ्गाद्वारेहिमद्वारे तथाकालञ्जरेगिरौ ॥ एतेष्वन्येषु तीर्थेषु क्षेत्रेषु च यथाक्रमम् ॥ ६५ ॥ लब्धं जन्मफलञ्चैव भवद्भिर्ना
त्रसंशयः ॥ इदं विमानमारुह्य दिव्यस्त्रीभोगभूषितम् ॥ ६६ ॥ सङ्गच्छध्वं शिवं स्वर्गं सर्वकामसमन्वितम् ॥ तत्र भुक्त्वा म
हाभोगाननन्तान् पुण्यसंख्यया ॥ ६७ ॥ यत्किञ्चिदन्यदशुभं स्वल्पं तदपि मोक्षयथ ॥ आख्यातन्तु मया तावत्कल्प
भातीरवासिनः ॥ ६८ ॥ आरोहन्ति विमानानि सर्वेषामुपरि स्थिताः ॥ सर्वतीर्थेषु संख्यास्ति ह्युक्तं ब्रह्मादिभिः पुरा ॥ ६९ ॥
तत्र यद्दीयते दानं तेन स्वर्गं महीयते ॥ अयि ते तत्र यः कश्चिद्भूतेनानशनेन च ॥ ७० ॥ दिव्ययानं समाश्रित्य सप्रयाति
शिवालये ॥ एतत्ते कथितं राजन् कल्पगापुण्यमुत्तमम् ॥ ७१ ॥ पश्यन्ति पुण्यकर्मणो यमं मित्रमिवात्मनः ॥ येषु

जो कुछ तुम्हारा थोड़ा पाप भी होगा उसको भी भोगडालोने पहले मैंने इस बातको तो कहाही है कि नर्मदातीर के रहनेवाले ॥ ६८ ॥ विमानों पर सवार सबके
आप रहते हैं क्योंकि सब तीर्थों में पुण्यकी गिन्ती ब्रह्माआदि देवताओं करके अगिले जमानेमें कहीगई है ॥ ६९ ॥ और वहां नर्मदातीर में जो दान दिया जाता है
आप स्वर्गमें पूजा जाता है और जो कोई वहा अनशनव्रतसे मरता है ॥ ७० ॥ वह दिव्यमवागीपर सवार होकर शिवके स्थानको जाता है हे राजन् ! यह नर्मदाका उत्तम

पुण्य तुमसे कहागया ॥ ७१ ॥ पुण्यकर्माँ के करनेवाले यमराज को अपना मित्र ऐसा देखते हैं और जो पापकर्माँ के करनेवाले हैं वे यमराज को भयानक देखते हैं कि दाढ़ीसे डरावना जिनका मुख है और टेढ़ी भौहोंवाले जिनके नेत्र हैं खड़ेबालोंवाले, बड़ीदाढ़ीवाले, फड़फड़ाते हैं नीचे और ऊपरवाले होंठ जिनके ॥ ७२ ॥ ७३ ॥ अठारह भुजावाले, बड़े क्रूरस्वभाववाले, काले काजलके समान जिनका रूप है सब हथियारों को हाथों में लियेहुये गर्जते हैं कालदण्ड को हाथमें लिये हैं ॥ ७४ ॥ बड़े भारी भैसेपर सवार हैं व जलतीहुई आगके ऐसे नेत्रवाले हैं व लालेमाला व कपड़ों को पहनेहुये हैं व बड़े सुमेरुपर्वत की नाई ऊँचे हैं ॥ ७५ ॥ प्रलयकाल के मेघोंकी

नः क्रूरकर्माणस्ते पश्यन्ति भयानकम् ॥ ७२ ॥ दंष्ट्राकरालवदनं भ्रुकुटीकुटिलेक्षणम् ॥ ऊर्ध्वकेशं महाश्मश्रुं स्फुरदोष्ठाधरोत्तरम् ॥ ७३ ॥ अष्टादशभुजं क्रूरं नीलाञ्जनचयोपमम् ॥ सर्वायुधोद्यतकरं गज्जन्तं दण्डपाणिनम् ॥ ७४ ॥ महामहिषमारूढं तप्तान्निसमलोचनम् ॥ रक्तमाल्याम्बरधरं महामैरुमिवोत्थितम् ॥ ७५ ॥ प्रलयाम्बुदनिर्घोषं पिबन्तमिव वारिधीन् ॥ असन्तमिव त्रैलोक्यमुद्गिरन्तमिवानलम् ॥ ७६ ॥ मृत्युस्तस्य समीपस्थः कालानलसमप्रभः ॥ का लश्चाञ्जनसंकाशः कृतान्तश्च भयानकः ॥ ७७ ॥ विविधाव्याधयस्तीक्ष्णा नानारूपा भयानकाः ॥ शक्तिशूलाङ्कुशधराः पाशचक्रासिपाणयः ॥ ७८ ॥ वज्रदंष्ट्राधरारौद्राः क्रूराश्चाञ्जनसन्निभाः ॥ सर्वायुधोद्यतकरा यमदृताश्च घातकाः ॥ ७९ ॥ एवं विधंयन्तत्र पश्यन्ति पापचारिणः ॥ निर्भयो याति चात्यर्थं यमो वा पापकारिणम् ॥ ८० ॥ चित्रगुप्तश्च

तरह बोलते हैं मानो समुद्रों को पियेजाते हैं तीनोंलोकों को मानो खायेजाते हैं मानो आगको उगिल रहे हैं ॥ ७६ ॥ मौत उनके तीर खड़ी है जोकि महाप्रलय के समान तेजवाली है काले काजल के समान रूपवाला बड़ा भयानक काल भी तीर वर्तमान है ॥ ७७ ॥ अनेक रूपवाले बड़े भयानक अनेक रोग विद्यमान हैं, सांग, त्रिशूल, आंगुसको धरेहुये फेंसरी, चक्र और तलवारको हाथमें लियेहुये ॥ ७८ ॥ वज्रके समान दाढ़ीवाले, बड़े डरावने, क्रूरस्वभाववाले, काजलसे काले, सब हथियारों को हाथोंमें उवायेहुये, मारनेवाले, यमदूत भी वर्तमान हैं ॥ ७९ ॥ इस तरहके यमराजको वहां पापीलोग देखते हैं यमराज भी पापीके पास बिल्कुलही निर्भय चलेजाते

हैं ॥ ८० ॥ भगवान् चित्रगुप्त भी पापियोंको धर्म सिखातेहुये तीर जातेहैं और कहते हैं कि हे पापकर्मों के करनेवाले ! हे पराई द्रव्यके हरनेवाले ! ॥ ८१ ॥ रूप और ताकत से गर्जनेवाले, पराई स्त्रियोंके अष्ट करनेवाले तुम नहीं जानतेहो कि जो कोई जिस कर्म को करताहै वह उसके फलको भोगता है ॥ ८२ ॥ सो तुम लोगों ने अपने नाश करने के वास्ते पापको क्यों कियाहै अब क्यों सन्ताप करनेहो अपने कर्मोंसे पीड़ित हो रहेहो ॥ ८३ ॥ अपनेही कर्म भोग कियेजाते हैं इसमें किसी का कुछ दोष नहीं है फिर चित्रगुप्त यमराजसे कहतेहैं कि हे महीपते ! ये राजालोग दुर्बुद्धिके बलसे गर्वको प्राप्त हो रहे हैं अपने घोरकर्मोंसे यहां प्राप्त हुयेहैं यह कह

भगवान् धर्मन्तेषांप्रबोधयन् ॥ भोभोदुष्कृतकर्माणः परद्रव्यापहारकाः ॥ ८१ ॥ गर्जितारूपवीर्येण परदारोपमर्दकाः ॥ यस्तुयत्कुरुतेकर्म तेनतद्भुज्यतेपुनः ॥ ८२ ॥ तत्किमात्मोपघातार्थं भवद्भिर्दुष्कृतंकृतम् ॥ किमर्थपरितप्यध्वं पीड्यमानाः स्वकर्मभिः ॥ ८३ ॥ भुज्यन्तेस्वानिकर्ममाणिनस्तिदोषोन्नकस्यचित् ॥ एतेचपृथिवीपालाः संप्राप्ताश्च महीपते ॥ ८४ ॥ स्वकीयैः कर्मभिर्घोरैर्दुष्प्रज्ञावलगर्विताः ॥ भोभोनृपादुराचाराः प्रजाविध्वंसकारिणः ॥ ८५ ॥ स्वल्पकालस्यराज्यस्य किं वैतद्दुष्कृतंकृतम् ॥ भवद्भीराज्यलोभेन मोहेनान्यायवृत्तिभिः ॥ ८६ ॥ यद्गृहीतं फलन्तस्य यूयं भुङ्ग्ध्वं यथातथम् ॥ कुत्रराज्यंकलत्रं वायदर्थं मशुभंकृतम् ॥ ८७ ॥ तत्सर्वं स्वपरित्यज्य यूयमैकाकिनस्तथा ॥ त्वद्धान्धवानपश्यन्ति येन विध्वंसिताः प्रजाः ॥ ८८ ॥ यमद्वैतः पात्यमाना अधुना कीदृशम्भवेत् ॥ एवं बहुविधैर्वाक्यैरुप

कर फिर राजाओं से कहतेहैं कि हे प्रजाओंके नाश करनेवाले, बुरी चालवाले, राजालोगो ! ॥ ८१ ॥ तुम लोगोंने थोड़े दिनकी राज्यके लिये ऐसा पाप क्यों किया मूर्खता के कारण अनीति से चलनेवाले आप लोगोंने राज्यके लोभसे ॥ ८२ ॥ जो पाप कियाहै अब उसके फलको ठीक २ तुम लोग भोगो कहां राज्यहै और स्त्री कहां है जिनके वास्ते तुम लोगोंने पापको कियाहै ॥ ८३ ॥ सो अब तुम लोग अपने सर्वस्वको छोड़कर अकेले यहां आयेहो अब तुम्हारे भाई लोग तुमको नहीं देखते हैं जिनके वास्ते तुम लोगोंने प्रजाओं का नाश कर दिया ॥ ८४ ॥ अब इससमय में यमदूत तुमको गिरा रहेहैं कहे अब क्या होसकताहै ऐसी २ अनेक बातोंसे यमराजसे

रिसवाये गये थे ॥ ८६ ॥ हे पार्थिव ! चुपचाप हो रहे अपने कर्मोंको शोचते है धर्मराज उनराजाओं से ऐसी बातें कहकर तदनन्तर उनके पापोंके छोड़नेके वास्ते यमराज दूतोंसे बोले कि हे चण्ड ! और हे महाचण्ड ! इन राजाओं को लेकर ॥ ८० ॥ नरकरूपी आगसे इनको पापोंसे क्रमसे शुद्धकरो तदनन्तर बड़ीजल्दी से उठकर उनराजाओंके पावोंको पकड़कर और बड़ेजोरसे घुमाकर यमराज के दूत फेंकतेहुये सब दूत बड़ेजोर से लोहेके ऐसे वृक्ष जिसमें हैं ऐसे ताते बड़ेभारी पृथिवीतल मे उनको फेंकते है तदनन्तर वे सब राजालोग मारसे शीघ्र चूर्ण करदियेगये ॥ ८१ ॥ हे युधिष्ठिर ! तब बेहोश हाथ पांव चला ने की चेष्टासे रहित मूर्च्छित होजातेहैं

लब्धायमेनते ॥ ८६ ॥ शोचन्तिस्वानिकर्माणि तूष्णींभूताश्चपार्थिव ॥ इतिवाक्यैःसमादिश्य नृपांस्तान्धर्ममरादत्त तः ॥ ९० ॥ तेषांपापविशुद्ध्यर्थं यमोदूतानथाब्रवीत् ॥ भोभोश्चण्डमहाचण्ड गृहीत्वानृपतीनिमान् ॥ ९१ ॥ विशोधयध्वंपापेभ्यः क्रमेणनरकागिनना ॥ ततश्शीघ्रंसमास्थाय नृपान्संगृह्यपादयोः ॥ ९२ ॥ आमयित्वातुवेगेन चिक्षिपुर्म किङ्कराः ॥ सर्वेवेगेनमहतासुप्रतप्तेमहीतले ॥ ९३ ॥ आस्फालयन्तिमहति चाश्मसारमयद्रुमे ॥ ततस्तेसर्वेष्वाशु प्रहारैर्जलजरीकृताः ॥ ९४ ॥ विमंज्ञाश्चतदासन्ति निश्चेष्टाश्चयुधिष्ठिर ॥ ततस्तेवायुनास्पृष्टाः शनैस्तुजीविताःपुनः ॥ ९५ ॥ तानानीयविशुद्ध्यर्थं क्षिपन्तिनरकार्णवे ॥ अष्टाविंशतिरेवाद्यास्तीव्रानरककोटयः ॥ ९६ ॥ सप्तमस्यतलस्यान्ते घोरै तमसिसंस्थिताः ॥ अतिघोराचरौद्राच तथाघोरतमास्थिता ॥ ९७ ॥ अत्यन्तदुःखजननी घोररूपाचपञ्चमी ॥ पष्ठी तरणताराख्या सप्तमीचभयानका ॥ ९८ ॥ अष्टमीकालरात्रिश्च नवमीचघटोत्कटा ॥ दशमीचैवचण्डाच महाचण्डा ततोप्यधः ॥ ९९ ॥ चण्डकोलाहलाचैव प्रचण्डाचवरगिनका ॥ जघन्याह्यवरालोमा भीषणीचैवनायिका ॥ १०० ॥ तदनन्तर फिर हवाके लगने से धीरे २ वेजीआते है ॥ ९५ ॥ फिर उनको शुद्धकरनेके वास्ते लेकर नरकसमुद्रमें डालते है पुराने अट्टाईस करोड विकराल नरक ॥ ९६ ॥ सातवे पाताल के नीचे घोर अन्धकार में भलीभांति स्थित है उन एक २ कोटि के ये नामहैं अतिघोरा १ रौद्रा २ घोरतमा ३ ॥ ९७ ॥ अत्यन्तदुःखजननी ४ पांचवीं घोररूपा ५ छठीं तरणतारा ६ सातवीं भयानका ७ ॥ ९८ ॥ आठवीं कालरात्रि ८ नवीं घटोत्कटा ९ दशवीं चण्डा १० तिसके नीचे महाचण्डा ११ ॥ ९९ ॥

चण्डकोलाहला १२ प्रचण्डा १३ वरारिणिका १४ जघन्या १५ अत्रालोमा १६ भीषणी १७ नायिका १८ कराला १९ विकराला २० वज्रविंशति २१ अस्ता २२ पञ्चकोणा २३ सुदीर्घा २४ परिवर्तुला २५ ॥ १ ॥ सप्तभौमा २६ अष्टभौमा २७ और अष्टाईसर्वो दीर्घमाया २८ ये घोर नरककोटि नामोरो कहीगईहैं ॥ २ ॥ पापीप्राणियों के वास्ते ये अष्टाईस कोटि गिन्तीसे कहीगई हैं तिनके क्रमसे पांच पांच नायक जाननेयोग्य हैं ॥ ३ ॥ हे विशम्पते ! उन हरएक कोटिके नायकोंको नामसे कहतेहैं उनमें पहला रौरवहै जहां प्राणी रोतेहैं ॥ ४ ॥ दूसरा महारौरव है जिसमें पीड़ाओंसे बड़े २ भी रोतेहैं तदनन्तर तग, शीत, उष्ण ये पांच पहली कोटि के नायक

करालाविकरालाच वज्रविंशतिराश्रिता ॥ अस्ताचपञ्चकोणाच सुदीर्घापरिवर्तुला ॥ १ ॥ सप्तभौमाष्टभौमाच दीर्घ
मायेतिहापरा ॥ इति तानामतः प्रोक्ता घोरानरककोटयः ॥ २ ॥ अष्टाविंशतिरेतास्तु भूतानां मानतः स्मृताः ॥ तासां क्र
मेण विज्ञेयाः पञ्चपञ्चैव नायकाः ॥ ३ ॥ प्रत्येकं सर्वकोटीनां नामतस्तु विशम्पते ॥ रौरवः प्रथमस्तेषां स्मरन्ति यत्र देहि
नः ॥ ४ ॥ महारौरवपीडाभिर्महान्तोपिरुदन्ति हि ॥ तमः शीतं तथा चोष्णं पञ्चैते नायकाः स्मृताः ॥ ५ ॥ अधोरः प्रथ
मस्तीक्ष्णः पद्मः संजीवनः शठः ॥ महामायो विलोमश्च कण्टकः कटकः स्मृतः ॥ ६ ॥ तीव्रो नामः करालश्च किङ्करालः
प्रक्रमपनः ॥ महाचक्रः सुपद्मश्च कालसूत्रः प्रगज्जनः ॥ ७ ॥ सूचीमुखः सुनेमिश्च खादकः सुप्रपीडितः ॥ कुम्भीपाकः सु
पाकश्च क्रकचश्च सुदारुणः ॥ ८ ॥ अङ्गारान्निःपचनः असृक्पूयभवस्तथा ॥ सुतीक्ष्णः शुण्डशकुनी महासंवर्तकः क्र
तुः ॥ ९ ॥ तप्तजन्तुः पङ्कलेपः प्रृतिमांश्च हृदस्त्रपुः ॥ उच्छ्वासश्च निरुच्छ्वासः सुदीर्घः क्रूरशाल्मली ॥ १० ॥ उद्धितस्तुम

कहेगये हैं ॥ ५ ॥ अब दूसरी आदि कोटियों के नायकों को कहते हैं तिसमें दूमरी कोटि का पहला अधोर है फिर तीक्ष्ण, पद्म, संजीवन, शठ, महामाय, विलोम, कण्टक, कटक ॥ ६ ॥ तीव्र, वाम, कराल, किङ्कराल, प्रक्रमपन, महाचक्र, सुपद्म, कालसूत्र, प्रगज्जन ॥ ७ ॥ सूचीमुख, सुनेमि, खादक, सुप्रपीडित, कुम्भीपाक, सुपाक, क्रकच, सुदारुण ॥ ८ ॥ अङ्गारान्नि, पचन, असृक्पूयभव, सुतीक्ष्ण, शुण्ड, शकुनि, महासंवर्तक, क्रतु ॥ ९ ॥ तप्तजन्तु, पङ्कलेप, प्रृतिमान, हृद, त्रपु, उच्छ्वास,

निरुच्छास, सुदीर्घ, क्रशालमली ॥ १० ॥ उष्टित, महानाद, प्रवाह, सुप्रवाहन, वृषाशय, वृषाश्च, सिंहानन, व्याघ्रानन, गजानन ॥ ११ ॥ श्वानन, शूकरानन, अ-
जानन, महिषानन, मेघानन, खरानन, ग्राहानन, कुम्भीरानन, नक्रानन, महाबोर, भयानक ॥ १२ ॥ सर्वभक्ष्य, स्वभक्ष्य, सर्वकर्मा, अश्व, वायस, गृध्रोत्लूक,
उत्लूक, शार्दूल, कपि, कच्छुर ॥ १३ ॥ गण्डक, रक्तस्य, पूतिमूत्रिक, कणधूम, तुषाराग्नि, कुमिमान्, निरय ॥ १४ ॥ आतोद्य, प्रतोद्य, रुधिराद्य, भोजन,

हानादः प्रवाहः सुप्रवाहनः ॥ वृषाश्रयो वृषाश्च सिंहव्याघ्रगजाननाः ॥ ११ ॥ श्वशूकराजमहिषमेघसूषखरान
नाः ॥ ग्राहकुम्भीरनक्रास्या महाघोराभयानकाः ॥ १२ ॥ सर्वभक्ष्याः स्वभक्ष्याश्च सर्वकर्माश्च वायसाः ॥ गृध्रोत्लूक
उत्लूकश्च शार्दूलकपिकच्छुराः ॥ १३ ॥ गण्डकः पूतिवक्त्रश्च रक्तस्यः पूतिमूत्रिकः ॥ कणधूमस्तुषाराग्निः कुमिमा
निरयस्तथा ॥ १४ ॥ आतोद्यश्च प्रतोद्यश्च रुधिराद्यश्च भोजनम् ॥ कालात्मगोनुभन्त्रश्च सर्वभक्षस्तुदारुणः ॥ १५ ॥ क
कंटस्तु विशालश्च विकटः कटपूतनः ॥ अम्बरीषः कटाहश्च कष्टवैतरणीनदी ॥ १६ ॥ सुतप्तोलोहशङ्कुश्च एकपादोऽश्रुपू
रणः ॥ असिपत्रवन्धोरमस्थिलिङ्गप्रतिष्ठितम् ॥ १७ ॥ तिलातसीक्षुयन्त्राणि कूटपापप्रमर्दनाः ॥ महाचुल्लीविचुल्लीच
तप्तलोहमयीशिला ॥ १८ ॥ पर्वतः क्षुरधाराख्यो मयोयमलपर्वतः ॥ सूचीविष्टान्धकूपाश्च पतनः पातनस्तथा ॥ १९ ॥

मालभक्त, आत्मभक्ष, गोऽनुभक्त, सर्वभक्ष, सुदारुण ॥ १५ ॥ कर्कट, विशाल, विकट, कटपूतन, अम्बरीष, कटाह, कष्टवाली वैतरणी नदी ॥ १६ ॥ सुतप्त, लोहशङ्कु,
कूपाद, अश्रुपुराण, घोर असिपत्रवन, प्रतिष्ठित अस्थिलिङ्ग ॥ १७ ॥ तिलयन्त्र, अतसीयन्त्र, इलुयन्त्र, कूट, पाप, प्रमर्दन, महाचुल्ली, विचुल्ली, तातेलोहेकी चट्टान ॥ १८ ॥
क्षुरधारनामका पर्वत, मय, यमलपर्वत, सूचीकूप, विष्टाकूप, अन्धकूप, पतन ॥ १९ ॥ सुशाली, वृषली, अशिवा, सङ्कटला, तालपत्रवन, असिपत्रवन, महामोहक ॥ २० ॥

संमोहन, अस्थिभङ्ग, तप्ताचलमय, अगुण, बहुदुःख, महादुःख, कश्मल, यमल ॥२१॥ हालाहल, विरूप, रविरूप, च्युतमानस, एकपाद, त्रिपाद और सबको प्रकट होरहा तीव्र भी है ॥ २२ ॥ ये क्रमसे अट्ठाईस पंचकड़ी कहींगई हैं ॥१२३॥ इति श्रीस्कन्दपुराणैरेवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनुवादेनरकवर्णननामद्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५२ ॥ मार्कण्डेयजी बोले कि कोटियों के सदृश पांचही पांच नायक भी हैं रौरव से लेकर मरीचि तक सौ नरक कहेगये हैं ॥ १ ॥ उसमें चालीस और अधिक हैं ऐसा महानरको का मण्डल है अपने कर्मों के हिसाब से मनुष्य लोग एक २ के क्रमसे नरकोंको भोगते हैं ॥२॥ दुष्ट कामनाओंसे जो कुकर्म जमा कियेगये उनसे शीघ्रही

योगुणः ॥ बहुदुःखोमहादुःखः कश्मलोयमलस्तथा ॥२१॥ हालाहलोविरूपश्च इवरूपश्च्युतमानसः ॥ एकपादस्त्रिपादश्च तीव्रश्चविदितस्ततः ॥ २२ ॥ अष्टाविंशतिरित्येते क्रमशः पञ्चकाः स्मृताः ॥ १२३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणैरेवाखण्डे

नरकवर्णनन्नामद्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५२ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ च मार्कण्डेयउवाच ॥ कोटीनामनुरूपाश्च पञ्चपञ्चैवनायकाः ॥ रौरवाद्यंमरीच्यन्तं नरकानां शतं स्मृतम् ॥ १ ॥ च त्वारिंशत्समधिकं महानरकमण्डलम् ॥ एकक्रमात्प्रभुज्यन्ते नरैः कर्म्मामनुरूपतः ॥ २ ॥ कामनाभिर्विरूपाभिरकर्मप्रचयाद्द्रुतम् ॥ सुगूढयाततो ध्वान्ते तप्तशृङ्खलयानराः ॥ ३ ॥ महादृक्स्थशाखायां लम्ब्यन्ते यमकिङ्करैः ॥ त तस्तान्सर्वतश्चैव दोलयन्ति हि किङ्कराः ॥ ४ ॥ दोलिताश्चातिवेगेन निःसंज्ञां यान्ति पापिनः ॥ अन्तरिक्षे स्थितानाञ्च लोहभारशतं तदा ॥ ५ ॥ पादयोर्बध्यते तेषां यमदूतैर्वलोत्कटैः ॥ तेन भारेण महता भृशं सन्तापितानराः ॥ ६ ॥ ध्याय

बहुत पोढ़ी तपीहुई जंजीरसे बांधकर अधियारमें ॥३॥ बड़े वृत्तकी डालमें मनुष्योंको यमदूत लटकते हैं तदनन्तर फिर दूतलोग उनसबको बड़ेजोरसे झुलाते हैं बड़ेजोर से झुलायेगये वे पापी बेहोश होजाते हैं आसमान में लटकतेहुये उन पापियोंके पात्रोंमें सौ भार लोहा जबरदस्त यमदूत बांध देते हैं तब उस बड़ेभारसे मनुष्य बड़े

सन्तापको प्राप्त होते हैं ॥ ४१ ॥ ५॥ अपने कर्मोंको याद करते हैं और नेतृत्वशेष रूप रह जाते हैं तदनन्तर फिर क्रमसे कष्टिवाले आगरे ध्वंसेहुये लोहेके डण्डाओं से ॥ ७ ॥ यमदूत सबसे पापियों के माथे में मारते हैं तदनन्तर विग्रहसे भरेहुये कीड़े जिममें पड़े हैं ऐसे कुयें में डालते हैं ॥ ८ ॥ चार्गेनरु मे घोर यमदूत पाप करनेवालों को पकाले हैं तदनन्तर खारीपानी से आगमें विशेष औटते हैं ॥ ९ ॥ व तातेलोहे के कड़ाहमें योगन की तरह पकाले हैं व जलके जीवोंसे भरेहुये गन्दे कुयें में डालकर ॥ १० ॥ तदनन्तर चर्वी, रक्त और पीवसे भरीहुई बावली में डाले गये वे पापीलोग कीड़ों और पैनी लोहेकीसी चोंचवाले कौबोंसे खायेजाते

न्तिस्वानिक्रममाणि तूष्णीन्तिष्ठन्तिनिश्चलाः ॥ ततःक्रमादिनिवर्णलोहदण्डैःसकण्टकैः ॥ ७ ॥ निहन्यन्तेप्रयत्नेन यमदूतैश्चमस्तके ॥ विष्ठापूर्णततःकूपे कृमीणांनिलयेततः ॥ ८ ॥ समन्तात्तिरुङ्करेधरैः पच्यन्तेपापकारिणः ॥ ततः क्षारेणनीरेण वल्गावपिविशेषतः ॥ ९ ॥ वार्ताकवत्प्रच्यन्तेतस्मैलोहकटाहके ॥ अमेध्यकूपेप्रचिप्य जलजन्तुसमाकुले ॥ १० ॥ भेदोसृक्पूयपूर्णयां वाप्यांविमास्तुतेततः ॥ भक्ष्यन्तेकृमिभिस्तीक्ष्णैर्लोहतुण्डैश्चवायसैः ॥ ११ ॥ पच्यन्तेमांसवच्चापि प्रदीप्ताङ्गारराशिषु ॥ प्रोताःशूलेषुतीक्ष्णेषु नराःपापसमन्विताः ॥ १२ ॥ पच्यन्तेपापिनस्तेवै यमदूतैरनेकधा ॥ तैलपूर्णकटाहेषु सुतस्मेषुततःपुनः ॥ १३ ॥ तेषांचोत्पाज्जतेजिह्वा असत्याप्रियवादिनाम् ॥ सुदृढेनसुतसेन प्रपीड्योरसिपादतः ॥ १४ ॥ मिथ्यागमप्रयुक्तस्य द्विजस्यागितथैवच ॥ यज्ञार्थेकोराविस्तीर्णं भल्लेस्तीक्ष्णैःप्रतोद्यते ॥ १५ ॥ निर्भर्त्सयन्तियेमूढा मातरंपितरंगुरुम् ॥ तेषांवक्रंवालुकाभिर्बुधुराधूर्यसिच्यते ॥ १६ ॥ ततःक्षारेणदीप्तिन पच्य

हैं ॥ ११ ॥ बहुत पैने त्रिशूलों में पोहेहुये पापी मनुष्य दगदगाते हुये अङ्गारोंके ऊपर कवाच की तरह पकायेजातेहैं ॥ १२ ॥ तदनन्तर फिर तेलसे भरेहुये ताते कडाहों में यमदूत अनेकप्रकारसे उन पापियोंको चुराते हैं ॥ १३ ॥ पांवसे छातीमें दवाकर बड़ी पोढ़ी ताती सेंगसी से झूठ और कड़ई बातों के कहनेवाले उन पापियों की जीम निकाली जातीहैं ॥ १४ ॥ बहुत द्रव्यको यज्ञके वास्ते भूँटेयास रो जो ग्राहण स्तर्च कराताहै उसकी भी जीम पैने भालाओंसे छेदीजाती है ॥ १५ ॥ जो मूर्ख माता,

पिता और गुरुको धमकाते हैं उनका मुहँ बालू से भरके फिर पानीसे साँचाजाता है ॥ १६ ॥ तदनन्तर खारी व गर्मपानीसे उनका मुहँ बारबार जल्दीसे भरते हैं फिर जलतेहुये तेलमे अत्यन्त भारते ॥ १७ ॥ क्रीडोसे भरीहुई विषापर से कुत्तोंकी तरह यमदूतों काके निकाले जाते हैं उएसे मारकर लोहेके सेसर में बांधेजातेहैं ॥ १८ ॥ फिर बड़े जबर डरावने दूत उनको पीछेसे मारतेहैं व दैतीले पोढ़े गोंडिले आरासे ॥ १९ ॥ शिरसे लेकर नीचेतक अपने घोरकर्मों के कारणसे फाड़दिये जातेहैं यमदूत पापियों को उन्हींके मांसको खिलाने और उन्हींके रक्तको पीलातेहैं ॥ २० ॥ जिन मूर्तोंने अन्न व जलको नहीं दियाहै और न इसके देनेकी तारीफ़ दी कीहै वे पापी मुगदसों

सातुपुनःपुनः ॥ द्रुतंसम्पूर्यतेत्यर्थं तप्तैलेनतन्मुखम् ॥ १७ ॥ विष्ठाभिः कृमिपूर्णभिः श्वानवच्चरणैर्भटैः ॥ परिपीड्यविषाणेन प्रविष्टालोहशाल्मलीम् ॥ १८ ॥ हन्यन्तेपृष्ठदेहेषु पुनर्भीमैर्महाबलैः ॥ दन्तुरेणातिकुराटम् क्रकचेनवलीयसा ॥ १९ ॥ शिरःप्रभृतिपाठ्यन्ते घोरैःकर्मभिरात्मजैः ॥ खादयन्तिस्वमांसानि पाययन्तिस्वशोणितम् ॥ २० ॥ अन्नपानंनदत्तंयैर्मूढैर्नाप्यनुमोदितम् ॥ इक्षुवत्तेप्रपीड्यन्ते जज्जरीकृत्यमुद्गरैः ॥ २१ ॥ असितालवनेघोरे छिद्यन्तेस्र एडस्रएडशः ॥ सूचीभिर्भिन्नसर्वाङ्गास्ततःशूलेप्ररोपिताः ॥ २२ ॥ चाचल्यमानाःकृष्यन्ते नञ्जियन्तेतथापिच ॥ देहादुत्पाठ्यतेमांसं तेषामस्मर्थानिमुद्गरैः ॥ २३ ॥ बहुशःकृष्यतेतूष्णं यमदूतैर्वलोकटैः ॥ तेनुच्छासेनानुच्छासास्तिष्ठन्तिनरकेचिरम् ॥ २४ ॥ उच्छ्वासेचसमोच्छ्वासा बालुकावदनालृताः ॥ रौरवेपुतुदन्तैर्वपीड्यन्तेविविधैश्चरैः ॥ २५ ॥ महारौरव

से चूरकरके ईखकी तरह पेरेजाते हैं ॥ २१ ॥ तलवार सरीखे जिनके पचेहैं ऐसे ताडके वृक्षोंके घोर जंगलमें टुकड़े २ कर काटेजाते हैं व सूजाओंसे सन्न अंग जिनके छेदेगये ऐसे पापी पीछेसे सूलीपर चढ़ायेजाते हैं ॥ २२ ॥ हिलायेजाते और खींचेभी जाते पर मरते नहीं हैं उनका मांस देहसे निकालाजाता है और हड्डियां मुगदसों से चूर कीजाती हैं ॥ २३ ॥ बड़े जबरदस्त यमदूत इसीतरह बहुतबार जरुद उनके मांसको खींचते हैं इससे वे लोग बेसक बहुत कालतक नरक में पड़े रहते हैं ॥ २४ ॥ बालूमे ठमेमुहँवाले पापी श्वास नहीं लेसक्ते हैं रौरवनरक में बड़ी तकलीफ़ पाते हैं और वहां अनेकप्रकार के दूतभी उनको बड़ी पीडादेते हैं ॥ २५ ॥ महारौरव

की तकलीफों से बड़े २ भी रोते हैं मुख, लिंग, गुदा, पसली, पाँव, छाती और माथे में ॥ २६ ॥ बड़े पैने तातेलोहे के सुगदरों से यमदूत उनको मारते हैं जो अपने रूप से औरोंकी निन्दा करते हैं व पराई स्त्रियोंको हँसते हैं ॥ २७ ॥ और जो स्त्रियां और पुरुषों को लपटाती हैं अपने पतियोंके पास नहीं रहतीं व जो पुरुष स्त्रियोंसे कहते हैं कि कहां बड़ी जल्दीसे जारही हो हमारी याद नहीं करती हो हमारी तुम्हारी प्रीति बहुत पुरानी है ॥ २८ ॥ ऐसी स्त्रियोंसे यमदूत कहते हैं कि तुमने अपने पतिको धोखादिया और पापों से अन्धे अन्य पुरुषको सुखसे ग्रहण किया ऐसे कहकर उनको लोहे के बटुआ में डालकर धीरे २ पकाते हैं ॥ २९ ॥ बड़ेजोर आग में उनको

रवपीडाभिर्महान्तोपिरुदन्तिहि ॥ उपस्थायेगुदेपाश्वं पादेचोरसिमस्तके ॥ २६ ॥ निहन्यन्तेभट्टैस्तीक्ष्णैः सुतमैर्लोहमुद्धरैः ॥ निन्दन्तियेस्वरूपेण परदारानहसन्तिच ॥ २७ ॥ आलिङ्गन्तिपतीनन्यान्नविन्दन्तिस्वकान्स्त्रियः ॥ किमुधावसिवेगेन नस्मरेरतिशाश्वतीम् ॥ २८ ॥ वञ्चितश्चत्वयाभर्ता पापान्धश्चयथासुखम् ॥ लोहकुम्भेविनिक्षिप्ताः पापचित्ताश्चशनैःशनैः ॥ २९ ॥ समृद्धाग्नौप्रपाच्यन्ते प्रवेश्यन्तेशिलासुच ॥ क्षिप्यन्तेचान्धकूपेषु दश्यन्तेजगर्भशुरसिकण्ठेच जिह्वायान्देहसन्धिषु ॥ कीलकैरोष्ठपुटके कील्यन्तेयमकिङ्करीः ॥ ३० ॥ शिवभक्तंचविप्रञ्च शिवधर्मचशाश्वतम् ॥ ३१ ॥ तेषा कर्मिणाम् ॥ एकैकनरकज्ञेयाः शतशोथसहस्रशः ॥ ३२ ॥ एवमादिमहाघोरा यातनाः पाप नन्ताः सर्वेषुनरकेषुच ॥ ३३ ॥ यातनागहनाराजन् सर्वेषांपापकर्मिणाम् ॥ इत्येवंयातना भुंजतेहै और ताती पत्थरों की चट्टानों पर बिठाते हैं अधवाकुर्यों में उनको डालते हैं और अजगर साँपोंसे अत्यन्त कटाते हैं ॥ ३४ ॥ जो धर्मके जाननेवाले महात्मा आचार्य्य की निन्दा करते हैं अथवा शिवजी के भक्त ब्राह्मण व पुराने शिवधर्म की निन्दा करते हैं ॥ ३५ ॥ उनके छाती, गला, जीभ, देहके जोड़ और ओठोंको यमदूत कीलोसे कीलते हैं ॥ ३६ ॥ ऐसी २ बड़ीघोर पाप करनेवाले प्राणियों को एक २ नरकमें सैकड़ों हजारों तकलीफें जाननेयोग्य हैं ॥ ३७ ॥ हे राजन्! सब पापकर्मियों को बड़ी कठिन तकलीफें हैं ऐसी २ अनन्त पीडा सब नरकों में हैं ॥ ३८ ॥ सौ वर्षसे भी उनको कहनेको कौन पुरुष समर्थ होसक्ता है ऐसे २ बड़ेघोर अनेकतरह

के अपने कर्मों से क्रमसे सब नरकों में डाले जाते और पकाये जाते हैं इसमें कुछ सन्देह नहीं है महापातक करनेवाले जो पापी हैं वे सब नरकों में ॥ ३५ ॥ जवतक चन्द्रमा और नक्षत्र रहते हैं तबतक अनेक तरह के दूतों से पीड़ा को पाते हैं इसी तरह सब पातकी भी इन्हीं नरकों में हमेशा पड़े रहते हैं और उपपातकी जो मनुष्य हैं वे इनसे आधे समयतक को जाते हैं व चारों दिशाओं के नरकों में पचा करते हैं इसमें कुछ सन्देह नहीं है ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ हे तात ! यह नहीं जान पड़ता है कि कब किसकी मौत होगी अकस्मात् मौत के आजाने पर फिर वर्ष दिन कौन मनुष्य पासता है ॥ ३९ ॥ जिससे सब बड़े कर निश्चय अकेले ही जावोगे इससे सब

क्रमात् सर्वेषु पच्यन्ते नरकेषु न संशयः ॥ ३६ ॥ आचन्द्रतारकं यावत् पीड्यन्ते विविधैश्चरैः ॥ तथा पातकिनस्सर्वे निरयेष्वेष्टु सर्वदा ॥ ३७ ॥ चतुर्दिक्षु सुपच्यन्ते नरकेषु न संशयः ॥ उपपातकिनश्चापि तददृष्ट्यान्तिमानवाः ॥ ३८ ॥ मृत्युर्न ज्ञायते तात कदा कस्य भविष्यति ॥ प्राप्ते चाकस्मिके मृत्यौ वर्षे विन्दतिकोनरः ॥ ३९ ॥ परित्यज्य यतः सर्वमेकार्कीयास्य सिधुवम् ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन सत्यधर्मं परोभव ॥ ४० ॥ एतत्ते सर्वमाख्यातं नरकाणाम् तुल्यवत् ॥ ४१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे रेवाखण्डे नरकयातनानुवर्णनो नाम त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५३ ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ तीर्थयते केन धर्मेण संसाराब्धिः सुदुस्तरः ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ तेन निर्मिते सैतैः पापैः कथ्यमानां कथां शृणु ॥ १ ॥ रक्तो मूढश्च लोको यमकार्ये संप्रवर्तते ॥ न चात्मानं विजानाति न परं न च दैवतम् ॥ २ ॥ न शृणोति परं

यत्नो से सच्चे धर्म में तत्पर हूजिये ॥ ४० ॥ यह सब तुमसे नरकों का लक्षण कहा गया है ॥ ४१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे रेवाखण्डे प्राकृतभाषाऽनुवादे नरकयातनानुवर्णनो नाम त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५३ ॥

युधिष्ठिरजी बोले कि किस धर्म से यह दुस्तर संसार सुदुर्तरा जासक्ता है तब मार्कण्डेयजी बोले कि यमराजजी से धमकाये गये पापियों की कही हुई कथा को सुनो ॥ १ ॥ पापी कहते हैं कि यह लोक विषयों में फँसा हुआ इसीसे मूढ़ हो रहा सो कुकर्म में फँसता है आत्मा को नहीं जानता है व न परमेश्वर और न देवता ही को

जानता है ॥ २ ॥ उत्तम अपने कल्याण की बात को नहीं सुनता है और आलैं भी हैं पर नहीं देखता है व बराबर सड़क पर धीरे २ भी चला जाता है परन्तु पगर पर गिरता है ॥ ३ ॥ ऐसे कहे गये धर्मराजजीने उन पापियोंसे जिस वृत्तान्त को थोड़े में कहा है उसीको इस समय सुम्नसे विस्तारसे तुम सुनो ॥ ४ ॥ पापियोंसे यमराज बोले कि हमारा छोड़ा हुआ मनुष्य पण्डितों से भी समझाया जाता परन्तु नहीं जानता इस संसार में अनेक तरह के राग और लोभों के वशसे मनुष्य बड़ा क्रेश पाता है ॥ ५ ॥ गर्भ में पड़ने से फिर कहे हुये शास्त्र को नहीं समझता है और स्वर्ग व मोक्ष के देनेवाले कर्म को मनुष्य नहीं सुनता है ॥ ६ ॥ इस लोकमें सब

श्रेयः सति चक्षुषि ने जते ॥ समेपथिशनैर्गच्छन् पुत्रतेस्मपदेपदे ॥ ३ ॥ एवमुक्तो धर्मराजः संक्षेपात्पापदेहिनाम् ॥ विस्तरेण यदा चख्यौ तेषां तच्छृणु साम्प्रतम् ॥ ४ ॥ यम उवाच ॥ मयामुक्तो न जानाति बोध्यमानो बुधैरपि ॥ संसारं क्लिश्यते नाना रागलोभवशान्नरः ॥ ५ ॥ गर्भपतेन भावेन शास्त्रमुक्तं न बुध्यते ॥ नरो न श्रूयते कर्म स्वर्गमोक्षप्रसाधकम् ॥ ६ ॥ सन्तप्यति शिवध्याने सर्वकामार्थसाधने ॥ नरकादात्मनः श्रेयो यदत्र महदद्भुतम् ॥ ७ ॥ प्रेतभूतानरास्सर्वे यमलोकं समागताः ॥ आख्यानं कथयिष्यामि यथोद्दिष्टम् पुरातनम् ॥ ८ ॥ सूर्येण कथितं तत्वासीन्नर्मदाख्या न मुत्तमम् ॥ देवतानां पितॄणाञ्च मम पित्रानुक्रमया ॥ ९ ॥ सपादलजमधिकं ब्रह्मणा कथितं रवेः ॥ तत्र श्रुतं मया कृत्स्नं ब्रह्मणा तु शिवाच्छ्रुतम् ॥ १० ॥ शिवेन कथितं पूर्वं पार्वत्याः षण्मुखस्य तु ॥ जम्बूद्वीपं समासाद्य मानुषीयैर्निमाश्रितः ॥ ११ ॥

इच्छा और सब प्रयोजनों के सिद्ध करनेवाले शिवजी के ध्यान में तकलीफ पाता है जो कि नरक से छुड़ानेवाला अपना परम अद्भुत कल्याण है ॥ ७ ॥ प्रेतरूप सब मनुष्य यमलोक को आते हैं अब हम कथा को कहते हैं जैसी अगिले जमाने में कही गई है ॥ ८ ॥ हमारे पिता सूर्यने कृपाकरके देवता और पितरोंसे नर्मदा के उत्तम आख्यान को कहा था ॥ ९ ॥ वहां ब्रह्माजीने सवालाख श्लोकका पुराण सूर्य से कहा था व हम अपने पितासे सब सुना और पिताने ब्रह्माजी से सुना व ब्रह्माजी ने शिवजी से सुना ॥ १० ॥ शिवजी ने पहिले पार्वती और स्वामिकार्त्तिकेय से कहा इस जम्बूद्वीप में आकर और मनुष्यजन्मको पाया ॥ ११ ॥

फिर भी सात कल्पतक बहनेवाली नर्मदादेवी के जो आश्रित नहीं होता है अर्थात् स्नान, तैरना, जलपीना और दानआदि कामों को नहीं करता है ॥ १२ ॥ तो इस लोकमें पापी मनुष्यों को गति देनेवाली और कौन होसक्ती है पापों की हरनेवाली महादेवी नर्मदा का जो ध्यान करते हैं ॥ १३ ॥ उनके पाप नाश होजाते हैं जैसे सूर्यके उदय में अन्धकार नष्ट होजाता है जो नर्मदा को याद करताहै अथवा जो अपनी वाणी से कहताहै ॥ १४ ॥ परलोकमें गयेहुये उस मनुष्य को यमदूत नहीं सताते हैं जो पापी नीच मनुष्य नर्मदा को कहता है ॥ १५ ॥ वह हमारे कहे हुये नरकोंको कभी नहीं जाताहै व वहां गङ्गाआदि नदियां और अनेक प्रकार के

नाश्रयेन्नर्मदान्देवीं सप्तकल्पवहान्तुयः ॥ १२ ॥ लोकेस्मिन्गतिदा कान्या पापोपहतचेतसाम् ॥ येधयायन्तिमहादेवीं नर्मदांपापहारिणीम् ॥ १३ ॥ अघानितेषानश्यन्ति तमःसूर्योदयेयथा ॥ नर्मदांसंस्मरेद्यस्तु कीर्तयेद्यस्तुवागिरा ॥ १४ ॥ परलोकंसमायातो यमदूतैर्नवाध्यते ॥ नर्मदांकीर्तयेद्यस्तु पापकर्मानराधमः ॥ १५ ॥ नरकान्समयोद्दिष्टान्नचक्रामतिकर्हिचित् ॥ गङ्गाद्यास्सरितस्तत्र तीर्थकोटिरनेकधा ॥ १६ ॥ रेवातेजःप्रतापेन शुद्धिङ्गञ्चन्ति तत्क्षणात् ॥ नरकस्थस्स्मरेद्यस्तु मेकलान्तुहरंहरिम् ॥ १७ ॥ मुच्यतेयमदूतैस्सतत्क्षणान्नान्नसंशयः ॥ यदितिष्ठतिवैदूर्यपर्वतेमरकण्टके ॥ १८ ॥ अंकारःपरमेशानो भुक्तिमुक्तिफलप्रदः ॥ किमर्थंतिहशोचन्ति पापोपहतचेतसः ॥ १९ ॥ सिद्धेश्वरंसिद्धलिङ्गं लोकानुग्रहकारकम् ॥ यज्ञेश्वरंचमध्येतु तत्रैवशशिभूषणम् ॥ २० ॥ नर्मदादक्षिणेभागे लिङ्गञ्चैवमहेश्वरम् ॥ चतुर्थकपिलेशश्चशिवक्षेत्रंविदुर्बुधाः ॥ २१ ॥ येचर्यन्तिस

करोड़ों तीर्थ ॥ १६ ॥ नर्मदा के तेज व प्रताप से उसीक्षण शुद्धिको प्राप्त होते हैं व नरक में पडाहुआ भी जो नर्मदा अथवा हरिहर का स्मरण करता है ॥ १७ ॥ वह उसीक्षण यमदूतों से छूटजाता है इसमें कुछ सन्देह नहीं है और जो वैदूर्यपर्वत व अमरकण्टक पर भुक्ति और मुक्तिके देनेवाले सबके मालिक अङ्कारजी वर्तमान हैं तो पापीलोग यहां क्यों शोच करते हैं ॥ १८ ॥ १९ ॥ लोकोंपर दया करनेवाला सिद्धलिङ्ग सिद्धेश्वर तथा यज्ञेश्वर वहीं बीचमें शशिभूषण ॥ २० ॥ नर्मदा

के दक्षिण तरफ महेश्वर लिंग चौथे कपिलेश्वर जहां विद्यमान हैं उसको विद्वान् लोग शिवक्षेत्र जानते हैं ॥ २१ ॥ इनका जो सदा फूल, धूप, आरती और तर्पण से भक्तिपूर्वक पूजन करते हैं वे नरकसे भी शिवलोकको जाते हैं इसमें कुछ संशय नहीं है ॥ २२ ॥ हे अनघ ! यह सब आपसे कहा जो आपने पूछा था हे भारत ! इसीतरह आतिपापी अधर्मी पुरुषों से यमराज ने कहा है ॥ २३ ॥ गोदान, सोनेका दान, तिलोका दान, अन्नका दान, दूधका दान, सब सामानों का दान ॥ २४ ॥ महलों का दान और बगीचोंका दान जो बड़े मनुष्य करते हैं वे घोररूप नरक व यमलोकको नहीं जाते हैं ॥ २५ ॥ व सब पापोंसे छूटजाते हैं ऐसा शिवजीका वचन

दाभक्त्या पुष्पधूपपातितर्पणैः ॥ शिवलोकन्तुतेयान्तिनरकान्नावसंशयः ॥ २२ ॥ एतत्तेसर्वमाख्यातं यथाष्टष्टन्त्वयानघ ॥
पापिष्ठान्नृनधर्मस्थान्कथयामासभारत ॥ २३ ॥ गोदानंहेमदानञ्च तिलदानंतथैवच ॥ अन्नदानंपयोदानं सर्वोपस्करमे
वच ॥ २४ ॥ प्रासादारामदानञ्च येकुर्वन्तिनरोत्तमाः ॥ यमलोकंनतेयान्तिनरकंघोररूपिणम् ॥ २५ ॥ मुच्यन्तेसर्वपापे
भ्यः शिवस्यवचनंयथा ॥ सन्मानञ्चापमानेन वियोगेनेष्टसङ्गमम् ॥ २६ ॥ यौवनंजरयाग्रस्तंकष्टात्सौख्यमुपप्लुतम् ॥ व
लिभिःपलितैश्चापि जर्जरीकृतविग्रहः ॥ २७ ॥ किङ्करोतिनरःप्राज्ञो जरयाजर्जरीकृतः ॥ स्त्रीपुंसोयौवनंरूपं यदन्योन्यं
प्रियङ्करम् ॥ २८ ॥ तदेवजरयाग्रस्तमुभयोरपिनाप्रियम् ॥ अपूर्ववत्तथात्मानं शैथिल्येनसमन्वितम् ॥ २९ ॥ यःपश्य
न्नविरज्येत कोन्यस्तस्मादचेतनः ॥ जराभिभूतःपुरुषः पत्नीपुत्रादिवान्धवैः ॥ ३० ॥ अशक्तत्वाद्दुराचारैर्भृत्यैश्च

हे सन्मान के साथ अपमान लगाहुआ है और प्यारीवस्तु के संयोगमें वियोग लगा हुआ है ॥ २६ ॥ जवानी के साथ बुढ़ापा लगा है तब सुख तो बड़े कष्ट से होसक्ता है क्योंकि सुखमें उपद्रव बहुत हैं सिमिटा और बालों के सफेद होजाने से जांजर होगया है शरीर जिसका ॥ २७ ॥ ऐसा बुद्धिमान् पुरुष बुढ़ापेसे जीर्ण होरहा क्या करसक्ता है स्त्री और पुरुषका आपस में प्यार करानेवाली जवानी व रूपही होता है ॥ २८ ॥ वही जब बुढ़ापे से विगाड दियागया तब दोनोंको दोनों नहीं प्यारे लगते हैं तथा पहले से और तरह का व शिथिलतासे युक्त अपने को ॥ २९ ॥ देखताभी जो मनुष्य वैराग्य को नहीं प्राप्त होता उससे अधिक और और कौन मूर्ख है

बुढ़ापेसे दबेहुये मनुष्य का स्त्री, पुत्र और माईलोग ॥ ३० ॥ व बुरेआचरणबालं सेवकलोग भी बेकाम होनेमे अनादर करते हैं बुढ़ापे से युक्त मनुष्य धर्म, अर्थ, काम और मोक्षके सिद्ध करनेको नहीं समर्थ होमक्ताहै तिसमे पहलेही धर्मको करलेवे हे युधिष्ठिर ! इस शरीरमें वात, पित्त और कफकी घटाबढ़ी हुआ करती है ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ और वायुआदि का समूह शरीरही से पैदा होताहै तिससे यह अपना शरीर सदा रोगबालाही जाननेयोग्य है ॥ ३३ ॥ जब वातकी बढ़ती अधिक होतीहै तब ज्वरसे पीड़ित होताहै ऐसे अनेक तरहसे पैदाहुये रोगोंसे बहुत अनेकतरहके दुःख होते हैं ॥ ३४ ॥ उनको आपही जानसक्ताहै और हम क्या कहे इस देहमें एकसौ एक

परिभ्रूयते ॥ धर्ममर्थञ्चकामञ्च मोक्षंनजरयायुतः ॥ ३१ ॥ शक्तःसाधयितुन्तस्मात्पुण्यधर्मसमाचरेत् ॥ वात पित्तकफादीनां वैषम्यञ्चयुधिष्ठिर ॥ ३२ ॥ वातादीनांसमूहश्च देहजःपरिकीर्तितः ॥ तस्माद्व्याधिपंक्षेयं शरीरमिदमात्मनः ॥ ३३ ॥ वातोत्पत्त्यतिरेकेण बाधितोवैज्वरेणच ॥ रोगैर्नानाविधिमैवैवहृदुःखान्यनेकधा ॥ ३४ ॥ तानिचस्वात्मवेद्यानि किमन्यत्कथयाम्यहम् ॥ एकोत्तरंमृत्युशतमस्मिन्देहेप्रतिष्ठितम् ॥ ३५ ॥ तत्रैकंकालरूपञ्च शेषास्त्वागन्तवःस्मृताः ॥ यत्विहागन्तवःप्रोक्तास्तेप्रशाम्यन्तिभैषजैः ॥ ३६ ॥ जपहोमप्रदानैश्च कालमृत्युर्नशाम्यति ॥ अपमृत्युश्चसर्वस्य विषमद्यादिसम्भवः ॥ ३७ ॥ नचातिपुरुषस्तस्मादपमृत्योर्विभेतिवै ॥ विविधाव्याधयःकष्टाः सर्पाद्याःप्राणिनस्तथा ॥ ३८ ॥ विषाणित्वभिचाराश्च मृत्योर्द्वाराणिदेहिनाम् ॥ पीडितरोगसर्पाद्यैरपिधन्वन्तरिःस्वयम् ॥ ३९ ॥ स्वस्थंकर्तुंनशक्नोति कालप्राप्तंहिदेहिनम् ॥ नौषधंनतपोदानं नमित्राणिनवान्धवाः ॥ ४० ॥ परित्रातुंनोसमर्थाः का मौते लगी हुई हैं ॥ ३५ ॥ तिनमें एक तो कालरूपही है और बाकी आने जानेवाली कहींगई हैं यहां जो आनेजानेवाली कहींगई हैं वे दवाइयों से शान्त होजाती हैं ॥ ३६ ॥ जप, होम और दानोंसे कालरूपी मौत नहीं शान्तहोतीहै और सबकी अकालमृत्यु विष और मारणआदि प्राणियों की मौतके दस्वाजे हैं रोग और सांपआदि से पीड़ित, नहीं डरता है अनेकतरह के रोग, तकलीफें तथा सांपआदि जीव ॥ ३८ ॥ व विष और मारणआदि प्राणियों की मौतके दस्वाजे हैं रोग और सांपआदि से पीड़ित, कालको प्राप्तहो रहे, प्राणीको आराम करनेके लिये साक्षात् धन्वन्तरि भी नहीं समर्थ होसके हैं और कालसे पीड़ित मनुष्यकी रक्षाकरनेके लिये न औषध, न तपस्या, न

दान, न मित्र और न भाई लोग ही समर्थ हो सके हैं इससे मौत के बराबर कोई दुःख नहीं है व मौत के बराबर कोई शत्रु नहीं है ॥ ३६।४०।४१ ॥ और सब प्राणियों को मौत के बराबर काल नहीं है हे भारत ! सुन्दर स्त्रियां, पुत्र, मित्र, राज्य, ऐश्वर्य (हुकूमत) और अनेक तरह के सब सुखों को मौत छुड़ा देती है हे राजन् ! यह तुमसे भाई बन्धु रूप दुस्तर संसार कहा गया ॥ ४२।४३ ॥ यह सब नाशवाला है और काल का भोजन है ऐसा जानकर सब प्रयत्न से नर्मदा का भलीभांति सेवन करना चाहिये ॥ ४४ ॥ सदा सब दुःखों की नाश करनेवाली व सब शोकों की नाश करनेवाली नर्मदा देवी जो जिसर कामना को करता है उसके लिये उसीर कामना को देती है ॥ ४५ ॥

लेनपरिपीडितम् ॥ नास्तिमृत्युसमंदुःखं नास्तिमृत्युसमोरिपुः ॥ ४१ ॥ नास्तिमृत्युसमःकालः सर्वेषामेवदेहिनाम् ॥
सद्भाय्यापुत्रमित्राणि राज्यैरुवय्यमुखानिच ॥ ४२ ॥ मृत्युर्द्विद्वनत्तिस्वर्वाणि विविधान्यपिभारत ॥ इदंतेकथितंराज
ज्ज्ञातिसंसारदुस्तरम् ॥ ४३ ॥ परिणामइतिज्ञात्वा सर्वङ्कालस्यभोजनम् ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन संसेव्याससकल्पगा ॥
४४ ॥ सर्वदुःखापहानित्यं सर्वशोकविनाशिनी ॥ योग्यान्कामयेतेकामांस्तांस्तान्देवीप्रयच्छति ॥ ४५ ॥ इदंज्ञानमि
दंध्यानं पाण्डित्यंवेदवेदनम् ॥ निवासस्सर्वभूतानां सेव्यतेससकल्पगा ॥ ४६ ॥ यज्ञोदानंतपस्सत्यं स्वाध्यायःपितृ
तर्पणम् ॥ सफलंलभतेतेषां योरेवाम्बुनिषेवते ॥ ४७ ॥ ब्रह्मकूर्चसहस्राणि सोमपानायुतंतथा ॥ नर्मदातोयपानस्य क
लांनार्हन्तिषोडशीम् ॥ ४८ ॥ संयुक्तोपिमहापापैर्नानाजन्मकृतैरपि ॥ अंकारदक्षिणेघोरं मुच्यतेतत्तन्नाण्डजपन् ॥
४९ ॥ गोदानान्नपरंदानं त्रिषुलोकेषुविश्रुतम् ॥ नर्मदापयसिस्नात्वा योदद्याद्गान्दिहजन्मने ॥ ५० ॥ संख्यांकर्तुंयथा

यही ज्ञान, यही ध्यान व बुद्धि मानी और वेदोंका जानना है जो सब प्राणियों का आधार नर्मदा सेवन की जावे ॥ ४६ ॥ यज्ञ, दान, तप, सत्य, वेदपाठ और पितरों का तर्पण इन सबोंका फल वही पाता है जो नर्मदाके जलका सेवन करता है ॥ ४७ ॥ हजारों ब्रह्मकूर्च और दशहजार सोसपान यज्ञ नर्मदा के जल पीनेकी सोलहवीं कलाकी नहीं पासके हैं ॥ ४८ ॥ अनेकजन्मों के किये हुये महापापों से संयुक्त भी मनुष्य उलङ्कारनाथ के दक्षिण तरफ अघोर मन्त्र का जप करता हुआ उभीक्षण में छूट जाता है ॥ ४९ ॥ गोदान से परे तीनों लोकों में नामूद और कोई दान नहीं है जो नर्मदा के जलमें स्नानकरके ब्राह्मण के लिये गौ देवे ॥ ५० ॥ तो उमके

बड़ी श्रद्धासे युक्त राजा हरिश्चन्द्रजी विधिसे पूजन कर उन्हीं के लिये सूर्यग्रहण में गौत्रोंको देतेहुये ॥ ८ ॥ परमसिद्धि के देनेवाले स्थानेन्द्रर महादेव का पूजन कर और बड़े आनन्द से युक्त चक्रपाणि हृषीकेश भगवान् का भी पूजन करके ॥ ९ ॥ हे नृपश्रेष्ठ ! सरस्वती के तटमें तिल और कुशोंसे संयुक्त इस दानके प्रभावसे उन हरिश्चन्द्र राजा ने सब लोकोंको जीतलिया ॥ १० ॥ सब लोकों के मनकी हरनेवाली आसमान में हरिश्चन्द्र को पुरी मिलतीहुई वह इस चराचर लोकमें हरिश्चन्द्रपुरी इस नामसे प्रसिद्ध हुई ॥ ११ ॥ सत्य, दान और सब छोड़ देना ऐसे २ उत्तम कामोंसे भूषित राजा हरिश्चन्द्रके बराबर दूसरा राजा न हुआहै और न होने

उर्यसमागमे ॥ द्विजान्सम्पूज्यविधिवच्छ्रद्धयापरयायुतः ॥ ८ ॥ अर्चयित्वामहेशानं स्थानं परमसिद्धिदम् ॥ चक्रपाणिहृषीकेशं मुदापरमयायुतः ॥ ९ ॥ सरस्वत्यां नृपश्रेष्ठ तिलदर्मान्वितस्य तु ॥ दानस्यास्य प्रभावेण लोकास्तेनाखिलाजिताः ॥ १० ॥ अन्तरिक्षे पुरीप्राप्ता सर्वलोकमनोहरा ॥ हरिश्चन्द्रपुरीख्याता सास्मिल्लोके चराचरे ॥ ११ ॥ सत्यदानसर्वत्यागैरित्यादिभिरलंकृतः ॥ हरिश्चन्द्रसमो राजा नभूतो न भविष्यति ॥ १२ ॥ एवं गाथापुरागीता शक्राद्यैस्सु रसत्तमैः ॥ शशाङ्कोऽप्यकरोत्सर्वं नर्मदातीरमाश्रितः ॥ १३ ॥ दानं यज्ञं तपः सत्यं पर्वते मरकटके ॥ ददौ चार्द्धप्रसूताङ्गां ब्राह्मणाय महात्मने ॥ १४ ॥ दानस्यास्य प्रभावेण हरिश्चन्द्राधिको भवत् ॥ अनेकभावि कं पापं दग्ध्वा तु लौघवच्चिखी ॥ १५ ॥ यावद्वत्सस्य पादौ द्वौ सुखं योनौ प्रदृश्यते ॥ तावद्भौः पृथिवीज्ञेया सशैलवनकानना ॥ १६ ॥ स्वर्णशृङ्गीरौ प्यखुरी सवत्साकांस्यदोहना ॥ नर्मदास्नानयुक्ता तु सकुशातिलसंयुता ॥ १७ ॥ अंकारामरयोर्मध्ये कोटिता

वालाहै ॥ १२ ॥ ऐसी गाथाको पूर्वकाल विषे देवताओं में उत्तम इन्द्रादि देवताओंने गायाहै और शशाङ्क राजाभी नर्मदा के तटमें बैठकर दान, यज्ञ, तपस्या और सत्यवचन आदि सब काम करतेहुये व अमरकण्टक पर्वतपर आधी ब्याई गौ महात्मा ब्राह्मण को देतेहुये ॥ १३ ॥ इस दानके प्रभावसे अनेक जन्मोंके पापको रुईकी राशिको आगकी तरह जलाकर हरिश्चन्द्रसे अधिक होतेहुये ॥ १५ ॥ जबतक बछड़ाके दोनों पांव और मुहं गौकी योनिमें देखपड़े तबतक वह गौ पर्वत व जलो और जङ्गलो के सहित पृथिवी के बराबर जाननेयोग्य है ॥ १६ ॥ सोने के सींगवाली, चांदीके खुरवाली, बछड़ासे युक्त, कांसिकी दोहनीवाली, नर्मदा में

नहलाईहुई और कुश व तिलोंसे संयुक्त ॥ १७ ॥ ऐसी हजार गौवें शङ्खार और अमरकण्टक के बीचमें जो कोटितीर्थ है उसीमें ब्राह्मणों के लिये राजा देतेहुये ॥ १८ ॥ इसी बीचमें देवताओंके नक्करे आकाशमें बाजतेहुये उसीक्षणमें सवारीपर सवार, मणियों से दगदगाते हुये ॥ १९ ॥ अपने पास वर्त्तमान अनगिन्ती विमान १८ ॥ इसी बीचमें देवताओंके नक्करे आकाशमें बाजतेहुये उसीक्षणमें सवारीपर सवार, मणियों से दगदगाते हुये ॥ २० ॥ और उनके हजारयोजन नीचेस्थित के चढ़नेवाले देवताओं से स्तुति कियेजाते, सुवर्णके छातेको लगायेहुये, चामरोंमें दुराये जारहे राजा शशाङ्क सोहतेहुये ॥ २० ॥ और उनके हजारयोजन नीचेस्थित राजा हरिश्चन्द्र भी शशाङ्कराजा के ऐसे उस कर्मको देखकर ॥ २१ ॥ आश्चर्य्य से युक्त आप कुरुक्षेत्रकी निन्दा करके कहा कि सूर्यग्रहण विषे नर्मदामें इन शशाङ्क

र्थेनराधिपः ॥ एताःसहस्रसंख्याता ब्राह्मणेभ्योन्यवेदयत ॥ १८ ॥ एतस्मिन्नन्तरेनेदुदेवदुन्दुभयोदिवि ॥ तत्त्वणाद्या
नमारूढो ज्वलन्मणिगणैरिव ॥ १९ ॥ स्तूयमानःसर्पिस्पर्शसंख्यातैर्विमानिभिः ॥ धृतस्वर्णतपत्रस्तु वीज्यमान
स्तुचामरैः ॥ २० ॥ योजनानांसहस्रेण हरिश्चन्द्रोप्यधःस्थितः ॥ तद्दृष्ट्वातादृशकर्म शशाङ्कस्यविशाम्पतेः ॥
२१ ॥ सविनिन्द्यकुरुक्षेत्रं विस्मयाविष्टचेतनः ॥ महानद्यांशशाङ्केन राहुसोमसमागमे ॥ २२ ॥ दत्तदानंनसामान्यं
भवेदितिसमासतः ॥ विषस्रवदनोभूत्वा हरिश्चन्द्रोन्मत्तः ॥ २३ ॥ ब्रह्मलोकंगतःक्षिप्रं यत्रलोकैश्चरःप्रभुः ॥ अमि
वाद्ययथान्यायं पप्रच्छसपितामहम् ॥ २४ ॥ दानेननिर्जितादेवाः शशाङ्केनमहात्मना ॥ किञ्चपुण्यमिदंब्रह्मन्कुरु
क्षेत्राद्विशिष्यते ॥ २५ ॥ अमरेश्वरतीर्थन्तु नामरेवाससुद्भवम् ॥ केनापिनसमम्भूतमुपयुग्युपरिदीप्यते ॥ २६ ॥ इति
श्रुत्वावचस्तस्य हरिश्चन्द्रस्यधीमतः ॥ उवाचवचनंब्रह्मा हरिश्चन्द्रंनृपोत्तमम् ॥ २७ ॥ विषादन्त्यजराजेन्द्र गहना
ने ॥ २२ ॥ दानको दियाहै सो वह साधारण नहीं है ऐसे संक्षेपसे कहकर उदाममुहँवाले होकर राजाओंमें उत्तम राजा हरिश्चन्द्रजी ॥ २३ ॥ बहुतजल्दी ब्रह्मलोक
को जातेहुये जहां लोकों के मालिक प्रभु ब्रह्माजी विद्यमान हैं वहां वे राजा ब्रह्माजीको यथायोग्य नमस्कार कर पूछतेहुये ॥ २४ ॥ कि महत्मा शशाङ्क राजाने दान
से देवताओं को जीतलिया सो हे ब्रह्मन् ! यह पुण्य क्या कुरुक्षेत्र से भी विशेष है ॥ २५ ॥ नर्मदा से उत्पन्न हुआ अमरेश्वरनाम का तीर्थ किसी तीर्थके बराबर
नहीं है सबके ऊपरही ऊपर प्रकाश करता है ॥ २६ ॥ उन बुद्धिमान् हरिश्चन्द्रजीके इस वचन को सुनकर ब्रह्माजी राजाओं में उत्तम राजा हरिश्चन्द्रजी से वचन

बोले ॥ २७ ॥ कि हे राजेन्द्र ! विषादको छोड़ो क्योंकि कर्मोंकी गति बड़ी कठिन है शशाङ्कराजा के बराबर दूसरे राजाको मैंने न देखा है और न सुना है ॥ २८ ॥ हम और इन्द्रआदि सब देवताभी राजा इतनी पुरणवाला है ऐसा नहीं कहसकते क्योंकि अगिले समय में इस चक्रवर्ती राजाने अनेक हजारयज्ञों को अमरकण्टक पर्वतपर विधानसे किया है हे भारत ! सूर्यग्रहणमें लाखों तीर्थ ॥ २९ ॥ ३० ॥ सरस्वती, कुरुक्षेत्र, पुष्कर और नैमिषादि ये व और भी तीर्थ हे नराधिप, हरिश्चन्द्र ! नर्मदा के कोटितीर्थ में स्नान करने के वास्ते आते हैं तिससे हे राजेन्द्र ! नर्मदाके साथ और तीर्थोंकी बराबरी को छोड़देवो ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ अगिले जमाने में हमने कर्ममणाङ्गतिः ॥ शशाङ्कसदृशराजा नदृष्टेन श्रुतो मया ॥ २८ ॥ एवं वक्तुं न योग्यो हं न देवापि सवासवाः ॥ अनेकानि स हस्त्राणि पुरा वै चक्रवर्तिना ॥ २९ ॥ इष्टानि च विधानेन पर्वते मरकण्टके ॥ राहुसूर्यसमायोगे तीर्थलक्षाणि भारत ॥ ३० ॥ सरस्वतीं कुरुक्षेत्रं पुष्करं नैमिषं तथा ॥ तीर्थान्येतानि चान्यानि स्नानं कर्तुं समाययुः ॥ ३१ ॥ मेकलायां हरिश्चन्द्र कीटितीर्थे नराधिप ॥ तीर्थान्येतानि चान्यानि स्नानं कर्तुं समाययुः ॥ ३२ ॥ वाराणस्यां कुरुक्षेत्रं तोलितञ्च मया पुरा ॥ तीर्थानि न समं यान्ति तीर्थस्यास्य प्रभावतः ॥ ३३ ॥ ख्यातमात्रं कुरुक्षेत्रं लोकयात्राप्रवर्तकम् ॥ पुरा जंन श्रुतं यैस्तु मिथ्याज्ञानसमन्वितैः ॥ ३४ ॥ सेव्यतां कल्पगादेवी यदीच्छेत्परमं पदम् ॥ नमस्कृत्य विधातारमयो ध्याधिपतिस्तदा ॥ ३५ ॥ मुदा परमया युक्तो स ययावमरेक्ष्वरम् ॥ एतत्सर्वं समाख्यातं यथावत्तव सुव्रत ॥ ३६ ॥ यः शृणोति नरो राजन्गो सहस्रफलं लभेत् ॥ ३७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे रेवाखण्डे गोदानमहिमाऽनुवर्णनो नाम पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ५५ ॥

काशकिं साथ कुरुक्षेत्रको तौलाथा परन्तु इस तीर्थके प्रभावकी बराबरी कोई तीर्थ नहीं करसके हैं ॥ ३३ ॥ कुरुक्षेत्र तो प्रसिद्धमात्र है लोगोंकी यात्राका करानेवाला है सो भी उन्हीं लोगोंकी कि जिन मिथ्याज्ञानियोंने पुराणको नहीं सुना है ॥ ३४ ॥ इससे जो परमपदकी इच्छाकरे तो नर्मदादेवीका सेवनकरे इतना सुनकर अयोध्याके राजा वे हरिश्चन्द्रजी ब्रह्माजी के नमस्कार कर बड़े आनन्द से युक्त उसी समय अमरेश्वर को चले गये हे सुव्रत ! यह सब आपसे यथावत् कहा गया ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ हे राजन् ! इसको जो मनुष्य भक्तिसे सुनता है वह हजार गोदान के फल को पाता है ॥ ३७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे रेवाखण्डे पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५५ ॥

मार्कण्डेयजी बोले कि माहिष्मतीपुरी के परिन्धम तरफ पापोंका हरनेवाला और सब शोचों का छुड़ानेवाला अशोकवनिका नामका नीर्थ है ॥ १ ॥ वहां स्नान कर अपनी शक्तिके अनुसार विस्तार से पार्वती का पूजनकरे इसीतरह सिद्ध और गन्धर्वों से सेवित वहां मातङ्गका भी आश्रमहै ॥ २ ॥ अधियारे व उजियाले पाल की तीज विषे चन्दन, धूप, केसरआदि का लेपन, अनेक बलि और दियालियों के जलाने आदि से ॥ ३ ॥ जो स्त्री वहां भक्तिसे युक्तहो पार्वतीका पूजनकरे वह रूप और सुन्दरभाग्य से युक्त अच्छे पतिको पाती है ॥ ४ ॥ कातिक की पूर्णमासी को प्रसन्नमन व इन्द्रियों को वश कियेहुये जो स्त्री अपने प्राणों का त्याग करती है

मार्कण्डेयउवाच ॥ माहिष्मत्याःपश्चिमैव तीर्थपापहरं परम् ॥ अशोकवनिकानाम सर्वशोकविनाशनम् ॥ १ ॥ स्नात्वा तत्रार्चयेद्गौरीं यथापि भवविस्तारैः ॥ मातङ्गस्याश्रमतद्दत्तसिद्धगन्धर्वसेवितम् ॥ २ ॥ शुक्लकृष्णातृतीयायाङ्गन्धर्व पविलेपनैः ॥ उपहारैरनेकैश्च दीपमालाप्रबोधनैः ॥ ३ ॥ तत्रयापूजयेन्नारी गौरीम्भक्तिसमन्विता ॥ रूपसौभाग्यसम्पन्नं लभेत्सत्पतिन्तु सा ॥ ४ ॥ कार्तिकयान्तुगतप्राण मोदमाना तु संयता ॥ अस्य तीर्थस्य माहात्म्यात्प्राप्ता माहेश्वरं पुरम् ॥ ५ ॥ मातङ्गो नाम देवर्षिः पुरा कल्पे युधिष्ठिर ॥ नर्मदातीरमाश्रित्य तपस्तेपे सुदुष्करम् ॥ ६ ॥ पुरा जन्मनिषादः स जातिस्मरतिषूर्विकाम ॥ अघमर्षणदेशस्थः सर्वधर्मबुबोध च ॥ ७ ॥ महर्षीणां प्रसङ्गेन नर्मदादर्शनेन च ॥ पापबुद्धिपरित्यज्य धर्ममबुद्धिञ्चकार सः ॥ ८ ॥ निर्विषो हञ्च भिक्षुश्चाधुना श्वपचयोनिषु ॥ एवमुक्त्वा ततो राजन्नशोकवनि काङ्क्षतः ॥ ९ ॥ जटावलकलधारी च कन्दमूलफलाशनः ॥ दिव्यं वर्षसहस्रन्तु शिवांराधनतत्परः ॥ १० ॥ शिवध्या

वह इस तीर्थके माहात्म्य से महादेव के पुरको ज्ञातहोती है ॥ ५ ॥ हे युधिष्ठिर ! आगे के कल्प में मातङ्ग नामके देवर्षि नर्मदा के तीर बैठकर बड़े कड़े तपको करते हुये ॥ ६ ॥ वे पहिले जन्ममें निषाद रहे सो अपनी पहिली जातिको जानते रहे और उस अघमर्षण (पापोंके नाश करनेवाले) स्थान में बैठेहुये मातङ्ग सब धर्मों को जानते थे ॥ ७ ॥ महर्षियों की सङ्गति से और नर्मदा के दर्शनसे वे पापबुद्धिको छोड़कर धर्ममें बुद्धिको करतेहुये ॥ ८ ॥ और कहा कि इस समयमें मैं विरक्त व भिक्षुक हूं और चाण्डालयोनियों में पड़ा हूं ऐसे कहकर तदनन्तर हे राजन् ! अशोकवनिका को चलेगये ॥ ९ ॥ जटा और भोजपत्रों को धारण किये कन्द, मूल और

फलोंके खानेवाले देवताओं के हजारवर्षतक शिवजी के पूजन में लगे रहे ॥ १० ॥ वे शिवजी के ध्यानमें परायण व कड़ीतपस्या में स्थित होतेहुये इसीतरह देवताओं के हजारवर्षतक तपस्या करतेहुये उस महात्मा की ॥ ११ ॥ जटाओं के अग्रभाग से उसी क्षणमें निकलीं और आपही आप नर्मदाके जलमें गिरतीहुई अनेकप्रकार की व बेप्रमाण की, अनन्त, कालेरङ्गवाली, बड़ेतेजवाली, सब गहनोसे सजीहुई इक्यासी हजार यक्षिणी ॥ १२ ॥ १३ ॥ इसतीर्थके गभावसे बहुत जल्दी यज्ञलोकों को चलीगई अब मातङ्ग यद्यपि मन्त्रयन्त्र से खालीरहे परन्तु महादेवजी की भक्तिमें तत्परहो ॥ १४ ॥ सब मन्त्रोंमें उत्तम “ अंनमः शिवाय ” इस षडक्षरमन्त्र

नपरस्सोभूद्रेतपसिसंस्थितः ॥ दिव्यं वर्षसहस्रं हि तथा तस्य तपस्यतः ॥ ११ ॥ एकाशीतिसहस्राणि जटाग्रभ्यो वि
निस्सृताः ॥ स्वयंपतन्ति विविधा नर्मदातोयमध्यतः ॥ १२ ॥ तत्क्षणाच्चक्षिणीरूपा अनन्ताश्चाप्रमाणाः ॥ इयाम
वर्णास्सुतेजस्कास्सर्वाभरणभूषिताः ॥ १३ ॥ यक्षलोकं व्रजन्त्याशुतीर्थस्यास्य प्रभावतः ॥ मन्त्रयन्त्रविहीनोऽपि शि
वभक्तिपरायणः ॥ १४ ॥ षडक्षरमिमं मन्त्रं हृदि च क्रीदितवानि शम्भुः ॥ अंनमः शिवाय इति सर्वमन्त्रोत्तमोत्तमम् ॥ १५ ॥
तस्य भक्तिं परां ज्ञात्वा देवदेव उमापतिः ॥ प्रत्यक्षरूपो भगवाञ्छूलपाणिः समागतः ॥ १६ ॥ उवाच वचनन्देवो मात
ङ्गप्रतिभारत ॥ वरं वृणीष्व भद्रन्ते ध्यानेनानेन सुव्रत ॥ १७ ॥ मातङ्ग उवाच ॥ यदितुष्टोसि देवेश वरं दातुमिहेच्छ
सि ॥ मातङ्गनाम्ना विख्यातिं तीर्थमेतत्प्रयातु वै ॥ १८ ॥ चाण्डालाः श्वपचाश्चैव पापयोनिगता अपि ॥ जपादिरहि
ताश्चापि मुच्यन्ते तत्रापि किल्बिषात् ॥ १९ ॥ मातङ्गनामलिङ्गन्तु नर्मदातीरमाश्रितम् ॥ स्नात्वा योत्रार्चयेत्तस्य भवे

को दिन रात अपने मनमें रखतेहुये ॥ १५ ॥ तब उनकी पराभक्ति को जानकर देवताओं के देवता, पार्वतीजी के पति, त्रिशूलको हाथमें लिये, भगवान् महादेवजी प्रत्यक्षरूप आगये ॥ १६ ॥ हे भारत ! मातङ्गसे महादेवजी वचन बोले कि हे सुव्रत ! इस ध्यानसे तुम्हारा कल्याण हो तुम वरको मांगो ॥ १७ ॥ तब मातङ्ग बोले कि हे देवेश ! जो आप प्रसन्नहो और यहां वर देनेकी इच्छा करतेहो तो यह तीर्थ मातङ्ग के नाम से प्रसिद्धिको प्राप्त होवे ॥ १८ ॥ चाण्डाल, श्वपच और भी पापयोनि जीव जप आदिकों से खाली भी हों परन्तु यहांपर पापसे छूटजावे ॥ १९ ॥ नर्मदा के तीर विद्यमान मातङ्ग नाम के लिङ्गका स्नानकर जो पूजनकरे उसका बन्धन

छूटजावे ॥ २० ॥ हे महेश्वर ! हम आपके प्रसादसे इसी वर को चाहते हैं उन मातङ्गके इस वचन को सुनकर फिर महादेवजी बोले ॥ २१ ॥ कि हमारे प्रसाद से ऐसाही हो इसमें कुछ संशय नहीं है ऐसे कहकर महादेवजी उत्तम कैलासपर्वत को चलेगये ॥ २२ ॥ मातङ्ग वरदान को पाकर सब आभूषणों से भूषित, मनमानी सवारीपर सवार बहुत कालतक स्नान के प्रभाव से भोगोंके भोगने के वारसे पार्वती व महादेवजी के पुरको जातेहुये चैत्र महीने में कृष्णपक्ष की जो अमावस है अथवा चतुर्दशी है ॥ २३ ॥ २४ ॥ उसमें जो कुछ वहा होम कियाजावे व दान दियाजावे वह अनन्तफल को देताहै तिलोदक के देनेसे पापयोनि भी जीव कृतार्थ

द्वन्धविमोक्षणम् ॥ २० ॥ इदं वरमहं मन्ये त्वत्प्रसादान्महेश्वर ॥ तस्य तद्वचनं श्रुत्वा प्रत्युवाच शिवांपतिः ॥ २१ ॥ एवमभवत्तत्सर्वं मत्प्रसादान्नसंशयः ॥ एवमुक्त्वाययौ देवः कैलासपर्वतोत्तमम् ॥ २२ ॥ वरं सम्प्राप्य मातङ्ग उमा माहेश्वरम् पुरम् ॥ कामिकं यानमारूढः सर्वाभरणभूषितः ॥ २३ ॥ जगामाशु चिरम्भोक्त्वा भोगान् स्नानप्रभावतः ॥ याचैत्रमासे मावास्या कृष्णपक्षे चतुर्दशी ॥ २४ ॥ तस्यांतत्र हुतं दत्तमनन्तफलमश्नुते ॥ तिलोदकप्रदानेन पापयोनिगता अपि ॥ २५ ॥ सक्त्वा ह्यगुडपिण्डेन पितृन्मोदयते तु यः ॥ पितरस्तस्य तृप्यन्ति यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥ २६ ॥ तिलतण्डुलमिश्रं यः कुर्याद्विहस्य पूजनम् ॥ सोऽपि वर्षसहस्राणि शिवलोकं महीयते ॥ २७ ॥ अशोकवनिकानाम मातङ्गतीर्थमुवाच ॥ रेनाया उचरे कूले कथितान्तवभारत ॥ २८ ॥ अथान्यत्कथयिष्यामि याम्यभागेऽव्यवस्थितम् ॥ तीर्थं मृगवनं नाम सर्वपापप्रणाशनम् ॥ २९ ॥ तत्र स्नात्वा च ये द्विष्णुं शङ्खचक्रगदाधरम् ॥ एकादश्यां महाराज निराहारो निशां

धोजांते ॥ २५ ॥ मातृ गौर गुरुके पिण्डोंसे जो पितरों को प्रसन्न करता है उसके पितर जबतक चौदहों इन्द्र रहते तबतक तृप्त रहते है ॥ २६ ॥ तिलचौरी से मातङ्गमा पूजन करना ॥ २७ ॥ अशोकवनिका मातङ्गनाम का तीर्थ कहाजाता है वह नर्मदा के उत्तरतट में है जो हे भारवा आपरो गढ़ागया ॥ २८ ॥ अथ और दक्षिण के तरफमें विद्यमान सब पापोंके नाश करनेवाले मृगवन नामके तीर्थको कहेंगे ॥ २९ ॥ वहा स्नान

कर शङ्ख, चक्र और गदाके धरनेवाले विष्णुका पूजनकरे और हे महाराज ! एकादशीमें निराहारहो रातको बितावे ॥ ३० ॥ मृगवन में चन्दन और फूलोंसे हरिका पूजनकरे वहाँ एक ब्राह्मण को भोजन कराने से लाख ब्राह्मण भोजन करानेका फल होता है-॥ ३१ ॥ तिलोदक के देनेसे पितरों को वैष्णवपद होताहै वहीं उत्तम वाराहतीर्थ भी है ॥ ३२ ॥ जहाँ वाराहरूपसे पृथिवी उद्धार कीगई है इसीतरह वड़ेतेजवाले विष्णुने और भी वहा विश्वरूप को धारण कियाहै ॥ ३३ ॥ पतिव्रता स्त्री अथवा सहीनेभर व्रतकी करनेवाली स्त्री वहाँ विधान से स्नानकर निश्चय विष्णु के लोकको प्राप्त होती है ॥ ३४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणरेवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनुवादे

येत् ॥ ३० ॥ हरिमृगवनेतत्र गन्धपुष्पैश्चपूजयेत् ॥ एकस्मिन्भोजितेविप्रे लक्ष्मभवतुभोजितम् ॥ ३१ ॥ तिलोदक प्रदानेन पितृणांवैष्णवंपदम् ॥ तत्रैवसन्निविष्टन्तु वाराहतीर्थमुत्तमम् ॥ ३२ ॥ यत्रवाराहरूपेण धराचैवसमुद्भूता ॥ विश्वरूपंतथाचान्यद्धरिणामिततेजसा ॥ ३३ ॥ पतिव्रताचनारीवै तथामासोपवासिनी ॥ तत्रस्नात्वाविधानेन लोकंप्राप्नोतिवैष्णवम् ॥ ३४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणरेवाखण्डेमातङ्गाश्रमवर्णनोनामषट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५६ ॥ *

मार्कण्डेयउवाच ॥ आख्यानंकथयिष्यामि ख्यातंमृगवनंयथा ॥ व्याधःकश्चिद्दुराचारः सर्वभूतेषुनिर्दयः ॥ १ ॥ पाशहस्तोधनुष्पाणिर्विचरन्गिरिकन्दरे ॥ आजघानमृगान्सर्वान्कुटुम्बार्थेनृपोत्तम ॥ २ ॥ ज्येष्ठेमासितुसंप्राप्ते नि दाघेज्वलनप्रभे ॥ अमतिस्मृतृषार्तश्च दृजमूलेसमाश्रितः ॥ ३ ॥ रात्रौस्वपितिनिश्चेष्टो दुःखार्तश्चक्षुधान्वितः ॥ वनसं

मातङ्गाश्रमवर्णनोनामषट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५६ ॥

मार्कण्डेयजी बोले कि अब और आख्यान को कहते हैं जैसे मृगवन प्रसिद्ध हुआ एक बहेलिया सच प्राणियोंमें दयासे खाली ॥ १ ॥ फँसरी और धनुष को हाथमें लिये पहाड़ की कन्दरा में घूमताहुआ अपने कुटुम्ब के वास्ते हे नृपोत्तम ! बहुत से मृगोंको मारताहुआ ॥ २ ॥ ज्येष्ठके महीनेको प्राप्तहुये पर और आगके बराबर घाम होनेपर प्यासके मारे विकलहोकरा वह बहेलिया घूमताहुआ व एक पेड़की जड़पर बैठगया ॥ ३ ॥ और रातमें दुःख व लुधासे विकल बेहोश सोगया तब

तक वनकी रगड़से पैदाहुई आग पर्वत की खोहसे उठी ॥ ४ ॥ उसने हरिण और बाघआदि पशुओंसे युक्त वनको जलादिया वह सब वन अच्छीतरह जलकर खाक होगया ॥ ५ ॥ वर्षाकाल विषे कन्याराशिमें सूर्यके आनेपर श्रवणनक्षत्रसे युक्त द्वादशीविषे पुण्यवाले नर्मदा के प्रवाह में जलाहुआ वह सब जंगल बहगया ॥ ६ ॥ वहां जितने सांप जले वे सब नर्मदाके जलके छूनेसे यक्ष होगये उसी क्षणमें दिव्यदेहको धारणाकिये विष्णुलोकके विमानोंपरसवार होतेहुये ॥ ७ ॥ और वह बहेलिया इस तीर्थके प्रभावसे राजा होताहुआ व दशहजार वर्षतक मनोहर भोगोंको भोगताहुआ ॥ ८ ॥ और जितने वहां मृग जले वे सभी गन्धर्व होकर वैष्णवही विमानसे विष्णुलोक

वर्षजोवह्लिसंस्थितोगिरिकन्दरात् ॥ ४ ॥ प्रदग्धंचवनंतेन मृगव्याघ्रसमावृतम् ॥ भस्मीभूतञ्चतत्सर्वं रेणुभूतञ्चकृ
त्सनशः ॥ ५ ॥ मेघागमोक्तकाले तु प्रवाहेनाम्मदेशुभे ॥ कन्याराशिगतेभानौ द्वादश्यांश्रवणेन तु ॥ ६ ॥ नर्ममदातोय
संसर्गाद्यन्नाजातास्तुपन्नगाः ॥ तत्क्षणाद्विव्यदेहास्तु वैष्णवंयानमास्थिताः ॥ ७ ॥ सव्याधश्चाभवद्राजा तीर्थस्यास्यप्रभा
वतः ॥ दशवर्षसहस्राणि भोगान्मुहुक्ते मनोहरान् ॥ ८ ॥ येषिदग्धामृगास्तत्र तेपिगन्धर्वतांगताः ॥ वैष्णवेनैवयानेन
प्राप्तास्तुवैष्णवम्पदम् ॥ ९ ॥ अवशःस्ववशोवापि यस्तुप्राणान्परित्यजेत् ॥ दिव्यवर्षसहस्रान्तु विष्णुलोकैःसमोदते ॥
१० ॥ तिलोदकप्रदानेन पितॄणांपरमागतिः ॥ मनोरथं नामतीर्थमन्यत्परमसिद्धिदम् ॥ ११ ॥ त्रिषुलोकैषुविख्यातं
रेवातीरसमुद्भवम् ॥ यंयंप्राप्यतेकामं तंतस्नात्वापिमानवः ॥ १२ ॥ सर्वचसमवाप्नोति तीर्थस्यास्यप्रभावतः ॥ अ
ङ्गारावर्तसंभेदो गोसहस्रफलप्रदः ॥ १३ ॥ अङ्गारेऽश्वरदेवश्च तत्रतिष्ठतिसङ्गमे ॥ स्नानमात्रोनरस्तत्र गाणपत्यमवा

को जातेहुये ॥ ९ ॥ परवश व अपने वश होकर जो प्राणोंको छोड़ता है वह देवताओंके हजार वर्षतक विष्णुलोक में आनन्द करता है ॥ १० ॥ तिलोदक के देने से पितरों की परमगति होती है परमसिद्धिका देनेवाला एक और मनोरथनाम का तीर्थहै जोकि तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध व नर्मदा के तटमें उत्पन्न हुआहै उस तीर्थमें मनुष्य स्नानकर जिस जिस मनोरथ को चाहता है उस उस ॥ ११ ॥ १२ ॥ सबको इस तीर्थके प्रभाव से पाताहै अंगारावर्त नामका जो संगमहै वह हजार गोदान

के फलका देनेवाला है ॥ १३ ॥ उस संगम में अंगारेद्वार देवभी विद्यमान हैं वहां स्नानमात्र करनेवाला मनुष्य गर्शोका मालिक होता है ॥ १४ ॥ हे भारत ! जब चौथि के दिन मंगलवार होवे तब सोनेकी नराकार, मूर्त्तिको बनवाकर लालेकण्डसे लेपे ॥ १५ ॥ घी और गुड़से भरेहुये तावेके पात्रको और उस मूर्त्तिआदि सबसामानको विधिपूर्वक विशेषकरके वेदके पढ़नेवाले ब्राह्मणको देवे ॥ १६ ॥ इस तीर्थपर इस दानके प्रभावसे इन्द्रके आधे आसन का भोगनेवाला होता है जिससे पाप बड़ेकड़े व बहुत दुःखोंके देनेवाले हैं ॥ १७ ॥ इससे पाप नहीं करना चाहिये क्योंकि वह अपने को बड़ी तकलीफ का देनेवाला है जिस समयमें व जिस जगहपर जैसी उमर

पुन्यात् ॥ १४ ॥ अङ्गारश्चतुर्थ्याञ्च यदाभवतिभारत ॥ हिरण्यपुरुषं कृत्वा रक्तवस्त्रेण वेष्टयेत् ॥ १५ ॥ दृतपूर्णताञ्च पात्रं गुडेनापि प्रूरितम् ॥ तत्सर्वं विधिवद्वाचच्छ्रोत्रियाय विशेषतः ॥ १६ ॥ दानतीर्थप्रभावेण शक्राह्वासनभागभवेत् ॥ यस्मात्पापानि दुःखानि तीव्राण्यपि बहून्यपि ॥ १७ ॥ तस्मात्पापं न कर्तव्यमात्मपीडाकरहितम् ॥ यस्मिन्कालेच देशेच वयसायादृशेनच ॥ १८ ॥ कृतं शुभाशुभं कर्म तत्तथा तेन भुज्यते ॥ तस्मात्सदैव दातव्यमविच्छिन्नतयार्थिने ॥ १९ ॥ विच्छिद्यन्ते न्यथा भोगा ग्रीष्मे कुसरितो यथा ॥ संसेव्यते यथा देवी सप्तकल्पवहाशुभा ॥ २० ॥ संसारस्य समुच्छिर्यै ज्ञानयोगं ब्रवीमि ते ॥ शिवप्रकाशकं ज्ञानं योगस्तत्रैव चिन्तितः ॥ २१ ॥ दुर्विज्ञेय गतियोगो नर्मदाशिवसन्निधौ ॥ शिवाज्ञावर्तते तत्र स्नानपूजाविधिर्यथा ॥ २२ ॥ समिद्धान्ता विरोधेन पुस्तकैर्न विरोधयेत् ॥ धर्मज्ञानापवर्गार्थ

से ॥ १८ ॥ भला बुरा कर्म किया गया है वह वैसेही उस करके भोगा जाता है तिससे हमेशा निरन्तर सांगनेवालेके लिये अपनी शक्तिके अनुसार कुछ देना चाहिये ॥ १९ ॥ बिना दानके दिये सब भोग कटजाते हैं जैसे ग्रीष्म ऋतु में छोटी नदियां सूखजाती हैं जिससे सात कल्पतक बहनेवाली और पुण्यवाली नर्मदादेवी सेई शिवके विप्रयका जो योग है उसकी गति किसी के जाननेयोग्य नहीं है नर्मदामें स्नान और पूजाकी जैसी विधि है उसमें शिवकी आज्ञाही प्रमाण है ॥ २२ ॥ वह

सिद्धान्त और पुरतकों से जिसतरह विरोध न हो उस तरह होना चाहिये ऐसे करने से मनुष्य धर्म, अर्थ, ज्ञान और मोक्षको साथही पाताहै ॥ २३ ॥ आगे पंछे के विरोधमें कहीं भी प्रयोजन नहीं होताहै पहले से तर्कका देखकर भी वेदके साथ में न करे ॥ २४ ॥ तिससे विद्वान् पुरुष करके शास्त्र और युक्ति इन दोनों से सदा सिद्धान्तका विचार करने योग्य है अकेले अन्दाजही से सिद्धान्तका विचार नहीं करना चाहिये ॥ २५ ॥ जिसका फल छोटा बड़ा कहागया है उसका विचार अनेकतरह से कहागया है तिससे परीक्षाको करै कि कौन बड़ेफलवाला और पुण्यवाला उत्तम कर्म है ॥ २६ ॥ और बुद्धिमान् मनुष्य पाखण्डी, कुकर्मि, वैडाल-

सहितांविन्दतेनरः ॥ २३ ॥ पूर्वोत्तरविरोधेन कुत्रार्थोभिमतोभवेत् ॥ दृष्ट्वाद्यमूलतस्तर्कं श्रुत्यासहविवर्जयेत् ॥ २४ ॥ तस्मादागमयुक्तेन सदात्मार्थविचारणम् ॥ कर्तव्यंनानुमानेन केवलेनविपश्चिता ॥ २५ ॥ हीनोत्तमाद्यस्यफलं बहुधा स्वश्चतस्मृतम् ॥ तस्मात्परीक्षांकुर्वीत पुण्यंसाधुमहत्फलम् ॥ २६ ॥ पाखण्डिनोविकर्ममस्थान् वैडालव्रतिकाञ्छुः ॥ वर्जयेद्दूरतोधीमान् हेतुक्यांस्तीर्थनिन्दकान् ॥ २७ ॥ दिगम्बराञ्छेतपटान् येचान्येहेतुवादिनः ॥ एतस्महनसंवादं संसर्गेनकथञ्चन ॥ २८ ॥ विपरीतकलौधर्मं नगनामुण्डामलाशिनः ॥ तस्मात्तच्चपरित्यज्य व्रताधर्मं समाचरेत् ॥ २९ ॥ प्रमाणंसर्वधर्मेषु ब्रह्मविष्णुशिवोदितम् ॥ अन्यथाकुरुतेयस्तु नरकेपततिध्रुवम् ॥ ३० ॥ सर्वेषामेवशास्त्राणामेवंशास्त्रविनिश्चयः ॥ सेव्यतांकल्पगादेवी शिवपूजार्तैस्सदा ॥ ३१ ॥ पितृणांतर्पणंकुड्यार्द्रिजांदद्याच्चभिद्धवे ॥ कारुण्यंसर्वभूतेषु नर्ममदाख्यानचिन्तनम् ॥ ३२ ॥ इदंज्ञानमशेषञ्च सर्वकर्मविशोधनम् ॥ आदिम

व्रतिक, शठ, तर्कवाले, नागा, सफेद कपड़ेवाले और तीर्थोंके निन्दकों को दूरसे छोड़देवे व और जो तर्कसे बात करतेहों उनके साथ बात और उनका संसर्ग कभी न करे ॥ २७ ॥ २८ ॥ नागा, मुण्डा और अधोरियोंने कलियुग में धर्मको उलटा करदियाहै तिससे उसको छोड़कर बाकीरहे तीन युगों का धर्मकरे ॥ २९ ॥ सब धर्मोंके बीचमें ब्रह्मा, विष्णु और शिवजीकाही कहाहुआ धर्म प्रमाणहै जो और तरहसे करताहै वह निश्चय नरक में गिरता है ॥ ३० ॥ सभी शास्त्रोंका यही निश्चय है कि महादेव के पूजन करनेवाले नर्मदा का सेवन हमेशा कियाकरे ॥ ३१ ॥ पितरोंका तर्पणकरे और भिखारी को भीख देवे, सब प्राणियोंपर दयाकरे और नर्मदा

की कथाको विचारे सब कर्मोंका अतिशुद्ध करनेवाला यही पूरा ज्ञान है आदि, मध्य और अन्तसे रहित, अपने स्वभावहीसे निर्मल, प्रभु ॥ ३२ ॥ सबके जानने वाले और सबतरह से पूर्ण शिवशास्त्र में शिवजी जानने योग्य हैं उनका कहा हुआ ज्ञान निःसन्देह सब प्रयोजनोंका सिद्ध करनेवाला है ॥ ३४ ॥ जो सबका जानने वाला, सम्पूर्ण, स्वभाव से निर्मल और सब दोषोंसे रहित शिव है वह मिथ्या कैसे कह सका है ॥ ३५ ॥ और विना शिवजी की आज्ञा संसार की सृष्टि कैसे हो सकती है जो मायासे कहो तो वह जड़वस्तु है और जीवसे कहो तो वह भी अज्ञानी है ॥ ३६ ॥ परमाणु आदि जो माया है वह जड़ है वह बुद्धिवाले दूसरे सहायक के बिना

ध्यानतरहितः स्वभावविमलः प्रभुः ॥ ३३ ॥ सर्वज्ञः परिपूर्णश्च शिवो ज्ञेयः शिवागमे ॥ सर्वार्थसाधकं ज्ञानं तत्प्रणीतमसं शयम् ॥ ३४ ॥ यः सर्वज्ञः सुसम्पूर्णः स्वभावविमलः शिवः ॥ सर्वदोषविनिर्मुक्तः सब्रयात्कथमन्यथा ॥ ३५ ॥ शिवा ज्ञामन्तरेणापि जगत्सृष्टिः कथम्भवेत् ॥ अचैतन्यात्प्रधानेन अज्ञत्वात्पुरुषस्य च ॥ ३६ ॥ प्रधानं परमाण्वादि यावत्किञ्चिदचेतनम् ॥ तन्नकर्तृस्वयं द्रष्टुं बुद्धिमत्करणं विना ॥ ३७ ॥ न यथा घटमानेन सृष्टि एतदुच्यते ॥ तथा ज्ञा बुद्धिभावेन न तिष्ठेत्प्रकृतिः स्वयम् ॥ ३८ ॥ धर्माधर्मोपदेशो न धर्माधर्मविचारणम् ॥ सर्वज्ञेन विना ज्ञातुं नादिसं प्रसिद्ध्यति ॥ ३९ ॥ यथानादिप्रवृत्तौ यं घोरः संसारसागरः ॥ शिवोऽपि हितथानादिः संसारान्मोचकः स्मृतः ॥ ४० ॥ व्याधीनाभिषंज्य दत्तं प्रतिपद्यं स्वभावतः ॥ तद्वत्संसारघोराणां प्रतिपद्यः शिवः स्मृतः ॥ ४१ ॥ वैद्यं विना निराक्रन्दाः

आपही करनेवाली व देखनेवाली नहीं हो सकती है ॥ ३७ ॥ जैसे विना किसी चेष्टा करनेवाले के मट्टी का पिण्ड आपही कुछ काम नहीं कर सका इसी तरह बुद्धिवाली वस्तु के बिना जड़ माया आपही नहीं रह सकती है ॥ ३८ ॥ इससे इस अनादि संसार में धर्म और अधर्म का सिखलाना व धर्म और अधर्म का विचार सब जानने वाले के बिना कभी नहीं हो सका है ॥ ३९ ॥ जैसा यह घोर अनादि संसारसागर बना है इसी तरह इस संसारसे छुड़ानेवाले अनादि शिवभी कहे गये हैं ॥ ४० ॥ जैसे दवा रोगों का वैरी अपने स्वभावही से है इसी तरह जन्म मरणरूपवाले घोर संसार के शत्रु शिवभी कहे गये हैं ॥ ४१ ॥ वैद्यके बिना जैसे आनन्दरहित रोगी

दुःख पाते हैं इसीतरह शिवजी के बिना सब जगत् दुःख पाता है ॥ ४२ ॥ तिससे चारोंतरफ से पूर्ण, सबके जाननेवाले, सबसे श्रेष्ठ और अनादि शिवजीही हैं इन से और कोई पुरुष इस संसारसागर में रक्षा करनेवाला नहीं है ॥ ४३ ॥ अपने हृदयमें शिवको धरेहुये जो लोग शिवके कहेहुये ज्ञानका अभ्यास करते हैं तिनको जो वेदप्रमाण है तो ज्ञान जरूर होता है ॥ ४४ ॥ सब जीवोंकी रक्षा करनेवाली पृथिवी में यह नर्मदाही है जोकि पानी के रूपसे विद्यमान होरही लोकोंपर दया करनेवाली देवी है ॥ ४५ ॥ व नरकमें गिरतेहुये स्थावर और जंगम चारों प्रकारके जीवोंके समूह को यही भगवती निरुचय से उच्चार करती है ॥ ४६ ॥ हे नरश्रेष्ठ !

ह्रियन्ते रोगिणो यथा ॥ शिवेन तु विना सर्वं निराक्रन्दं जगत्तथा ॥ ४२ ॥ तस्मादनादिः सर्वज्ञः परिपूर्णः परः शिवः ॥
अस्ति नातः परित्राता पुमान्संसारसागरे ॥ ४३ ॥ येभ्य सन्ति शिवज्ञानं हृदये शिवभाविताः ॥ यदि वेदाः प्रमाणन्तु ते
षां ज्ञानं प्रजायते ॥ ४४ ॥ इयञ्च सर्वभूतानां शरणम्भुवि नर्मदा ॥ अपारं रूपतया देवी लोकानुग्रहकारिणी ॥ ४५ ॥
स्थावरं जङ्गमं चैव भूतग्रामं च तु विधम् ॥ भगवत्युद्धरत्येषा पतन्तं नरके ध्रुवम् ॥ ४६ ॥ एवं ज्ञात्वा नरश्रेष्ठ शिवमन्वीक्ष्य
कल्पगाम् ॥ उच्चैर्गृहाणि दिव्यानि धनधान्यानि च ॥ ४७ ॥ सर्वोपस्कर दिव्यानि ब्राह्मणेभ्यो निवेदयेत् ॥ अना
यायाति वृद्धाय विकलाय कुटुम्बिने ॥ ४८ ॥ काष्ठमृन्मयगेहञ्च यो द्विजाय प्रयच्छति ॥ एवं विधानं गृहान् रम्यान् सर्व
तो मरकटके ॥ ४९ ॥ कारयेच्च पुमान् दिव्यांस्तस्य पुण्यफलं शृणु ॥ कितस्य बहुभिर्देतैर्दानैर्भवति भारत ॥ ५० ॥ एत
देवपरं दानं सर्वकामार्थसाधकम् ॥ यः शृणोति नरो भक्त्या सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ५१ ॥ इति सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५१ ॥

ऐसा जानकर नर्मदाको महादेवही समझकर धन और अन्नसे भरेहुये, सब दिव्य सामानसे सजेहुये बड़े ऊँचे दिव्य मकान ब्राह्मणोंको देवे अनाथ, विकल, कुटुम्ब वाले और अतिवृद्धे ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ ब्राह्मणके लिये जो काठ व मट्टीके मकानको देता है व ऐसेही रमणीक दिव्य मकानोंको जो पुरुष अमरकण्टकमें बनवाता है उस की पुण्यके फलको तुम सुनो उसको बहुत दानोंके देनेसे क्या है हे भारत ! ॥ ४९ ॥ ५० ॥ सब मनोरथ व सब प्रयोजनों का सिद्ध करनेवाला यही श्रेष्ठ दान है जो मनुष्य इसको भक्तिसे सुनता है वह सब पापोंसे छूटजाता है ॥ ५१ ॥ इति श्रीरत्नन्दपुराणैरेवाखण्डे प्राकृतभाषा अनुवादेन मर्मदाहात्म्ये सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५१ ॥

युधिष्ठिरजी बोले कि हे देव ! इस बड़े गुप्त वृत्तान्त को सुनकर अब गौर्वोकी उत्पत्ति और ब्रह्मकूर्चके माहात्म्यको हम आपसे तत्त्वपूर्वक सुना चाहते हैं ॥ १ ॥ हे भगवन् ! आप सब कहो कि गोलोक कैसा कहागया है और किस कर्म करनेसे मिलताहै और उसमें हमेशा कौन रहा करते हैं ॥ २ ॥ तब मार्कण्डेयजी बोले कि महादेवजी को नमस्कार करके सब कामोंसे भरेहुये, सब लोकोंके ऊपर २ विद्य मान उच्चम मातारूप गौर्वोके लोकको हम यथावत् कहतेहैं तुम सुनो पहले सब से नीचे सात पाताल हैं तिसमें पहला पाताल पातालही कहलाताहै ॥ ३४ ॥ चारोंतरफसे जितनी नापवाली पृथिवीहै उसके नीचे उतनेही प्रमाणवाले वे पाताल

युधिष्ठिरउवाच ॥ श्रुत्वैतत्परमंगुहं गवान्देवममुद्भवम् ॥ ब्रह्मकूर्चस्यमाहात्म्यं श्रोतुमिच्छामितस्त्वतः ॥ १ ॥ आख्याहिभगवन्सर्वं गोलोकःकीदृशःस्मृतः ॥ प्राप्यतेकर्मणकेन केतस्मिन्ननिशंस्थिताः ॥ २ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ श्रूयतामभिधास्यामि नमस्कृत्यमहेश्वरम् ॥ गोमातृलोकं परमं सर्वकामसमन्वितम् ॥ ३ ॥ यथावत्सर्वलोकानामुपार्णतस्याधःसमुद्रास्तानिचवतु ॥ ४ ॥ यावत्प्रमाणंपरितः परिच्छिन्नंमहीतलम् ॥ तावत्प्रतः ॥ ५ ॥ सहस्रयोजनोत्सेधस्तस्याभ्यन्तरतस्तथा ॥ विवराणांसमस्तानां सहस्राणिसहस्राणिदशार्द्धानितस्तमाहात्म्यं नामतस्तुमहीतले ॥ दिव्यदिव्योपसम्पन्नः श्रीमच्चामीकरद्युतिः ॥ ६ ॥ तेषांरुचिरनिकेतनः ॥ अनन्तोनन्तधामाच मुकुन्दोऽनृपशैवलः ॥ ७ ॥ ततोरसातलं नाम शिवसंतोषभूमिकम् ॥ वासुकेर्नागराज

और समुद्र है ॥ ५ ॥ उन हरएक पातालों की उंचाई की प्रमाण पांच हजार योजनकी कहींगई है और वैसेही उनके अन्दरभी हजार योजनकी उंचाईहै तदनन्तर जितने पाताल हैं वे सब नव २ हजार योजन के विस्तारवाले हैं ॥ ६ ॥ उन सबकी उत्तम तारीफ़ उनके नामोंसे पृथिवी में प्रसिद्ध है वृ जो उम्दासे उम्दा शोभासे युक्त सोनहला चमकवालाहै ॥ ७ ॥ उस पहले पातालमें अपने स्थानको बनायेहुये शेषनाग हमेशा रहते हैं हे नृप ! और भी वहां अनन्त, अनन्तधाम,

मुकुन्द और शैवलआदि नाग रहते हैं ॥ ६ ॥ तिसके नीचे महावैवजी जिसकी जमीनमें प्रसन्न रहते हैं ऐसा दूसरा रसातल नाम का पातालहै वहां वासुकिनाम के नागराजका बहुत अच्छा पुरहै ॥ १० ॥ और दानवोंके राजा सुरलोमाका भी वहां बड़ाभारी शहरहै व गरुडका पुरहै औरभी सब बड़े महात्मा दैत्योंके शहरहैं ॥ ११ ॥ फिर उसके नीचे सुतलनामका पातालहै जिसकी जमीन कैकरीली है वहाँ सदा स्वरितक आदि नागराजोंकी बस्ती है ॥ १२ ॥ और वहाँ वैरोचन और हिरण्यआदि महात्मा दानवों के राजाओं का उत्तम स्थान है ॥ १३ ॥ उसके नीचे उन सब पातालों में बड़ा अतल इस नामका पाताल कहागया है उसकी जमीन केवल

स्य तत्रचारुमहापुरम् ॥ १० ॥ पुरंचसुरलोमनस्तु दानवाधिपतेर्महत ॥ सुपर्णस्यचदैत्यानामशेषाणामहात्मना
म् ॥ ११ ॥ ततःसुतलनामास्ति शर्कराञ्चितभूमिकम् ॥ नागादीनांस्वस्तिकानां तत्रैववसतिःसदा ॥ १२ ॥ दानवा
धिपतीनाञ्च तत्रैवनिलयःपरः ॥ वैरोचनहिरण्यारूपप्रभृतीनामहात्मनाम् ॥ १३ ॥ ततश्चातलमित्युक्तं पाताला
नान्तुतस्यैव ॥ तेषामूर्ध्वस्तुसर्वेषां मृन्मयंचतलंक्षितैः ॥ १४ ॥ असुराधिपतेस्तावत्कालेनेमेमहापुरम् ॥ चारुचामी
कराभासं वैनतेयस्यचापरम् ॥ १५ ॥ ततश्चवितलंनाम पातालंरक्तभूतलम् ॥ तस्मिन्महान्तकोनाम दानवेन्द्रकुताल
यः ॥ १६ ॥ तालकोगिनमुखस्तस्मिन्नलह्लादश्चदानवाः ॥ निवसन्तिऋतागारास्तथाप्रह्लादवर्चसः ॥ १७ ॥ पातालंवि
तलंनाम शुक्लंक्षितितलंततः ॥ कम्बलाश्वतरौनागौ सहितौतत्रतिष्ठतः ॥ १८ ॥ महाजम्भहयग्रीवप्रभृतीनामहात्म
नाम् ॥ वाराणस्यसुरेन्द्राणां निवासस्तत्रकल्पितः ॥ १९ ॥ कृष्णंक्षितितलंतस्मात्पातालतलसंज्ञकम् ॥ शङ्खकर्णम

भिट्टीकी है ॥ १४ ॥ उसमें पहले दैत्योंके राजा कालनेभि का बड़ा शहर है और अच्छे सोनेके कामवाला दूसरा गरुडका भी शहर है ॥ १५ ॥ उसके नीचे लाल जमीनवाला वितलनाम का पाताल है, उसमें महान्तक नामका दानवेन्द्र मकान को बनाये हुये ॥ १६ ॥ और वही तालक, अग्निमुख, नलह्लाद तथा प्रह्लाद वचो आदि दानवलोग मकान बनायेहुये बसते हैं ॥ १७ ॥ उसके नीचे फिर वितल नामका पाताल है उसकी जमीन सफेद है वहां कम्बल और अश्वतर ये दोनों नागराज साथही रहतेहैं ॥ १८ ॥ और महाजम्भ और हयग्रीवआदि काशीके महात्मा दानवोंका भी वही निवासहै ॥ १९ ॥ उसके नीचे पातालतल नामका पाताल

है उसकी जमीन काली है उसमें शंकुकर्ण, महानाद और नमुचिका मकान है ॥ २० ॥ और सातवें पाताल के ऊपर सातद्वीपवाली पृथिवी विद्यमान है जो कि सात समुद्र और पर्वतों से युक्त शोभित होरही है ॥ २१ ॥ उसके बीच में जम्बूद्वीप है तिसके बीचमें सप्तद्वीप है उससे परे शाल्मलीद्वीप है उसके बाहर कुशद्वीप है ॥ २२ ॥ उसकेबाद क्रौञ्चद्वीप है तिसके बाहर शाकद्वीप है उससे परे सातवां पुष्करद्वीप कहागया है ॥ २३ ॥ इन्हीं द्वीपों सात समुद्र भी हैं जैसे क्षारोद, इक्षुरसोद, सुरोद, वृतोद, दधितोय, क्षीरोद और सातवां स्वादूद समुद्र कहागया है ॥ २४ ॥ सातोंद्वीप और सातों समुद्र एक से दूसरा दून है यही उनके विस्तारका प्रमाण है

हानादनमुचीनानिकेतनम् ॥ २० ॥ पातालात्सप्तमादूर्द्ध्वं सप्तद्वीपामहीस्थिता ॥ समुद्रैस्सप्तभिर्युक्ता पर्वतैस्समलंकृता ॥ २१ ॥ जम्बूद्वीपश्चतन्मध्ये पृथ्वीपस्ततःपरः ॥ ततश्च शाल्मलीद्वीपः कुशद्वीपश्चतद्वहिः ॥ २२ ॥ क्रौञ्चद्वीपश्च परतः शाकद्वीपश्चतद्वहिः ॥ परतः पुष्करद्वीपः सप्तमः परिकीर्तितः ॥ २३ ॥ क्षारोदकश्चेक्षुरसः सुरोदश्च वृतोदधिः ॥ दधितोयः क्षीरपूर्णः स्वादूदः सप्तमः स्मृतः ॥ २४ ॥ सप्तद्वीपसमुद्राणां द्विगुणद्विगुणान्तरः ॥ प्रमाणविस्तरोज्ञेयो नियुतः प्रथमः स्मृतः ॥ २५ ॥ हिमवान्हेमकूटश्च निषधश्चेतिदक्षिणे ॥ नीलश्च श्वेतः शृङ्गश्च मेरोरुत्तरतः स्मृताः ॥ २६ ॥ मेरुरस्ति स्थितो मध्ये जम्बूद्वीपस्य भारत ॥ शाल्यवान्पूर्वतो ज्ञेयः पश्चिमे गन्धमादनः ॥ २७ ॥ एते पर्वतराजानो जम्बूद्वीपेन वः स्मृताः ॥ पृथ्वीपादिषु ज्ञेयाः सप्तसप्तैव पर्वताः ॥ २८ ॥ पुष्करद्वीपमध्ये तु पर्वतो वलयाकृतिः ॥ एकः स्मृतः सप्तमन्ताच्च नामतो मानसः स्मृतः ॥ २९ ॥ विन्ध्यो नाम महाभागो जम्बूद्वीपे व्यविस्थितः ॥ यत्रैषानर्ममदा देवी पुवन्ती

तिसमें पहला एक लाख योजनका है ॥ २५ ॥ सुमेरु पर्वत के दक्षिण में हिमवान् हेमकूट और निषध ये तीन पर्वत हैं और सुमेरु के उत्तर में नील, श्वेत और शृङ्गवान् ये तीन पर्वत कहे गये हैं ॥ २६ ॥ हे भारत ! सुमेरु पर्वत जम्बूद्वीपके बीचमें वर्तमान है और उसके पूर्वमें शाल्यवान् और पश्चिममें गन्धमादन जानने योग्य है ॥ २७ ॥ और जम्बूद्वीपमें ये नव पर्वत पर्वतों के राजा कहे गये हैं और सप्त आदि द्वीपों सातही सात पर्वत जानने योग्य हैं ॥ २८ ॥ पुष्करद्वीपके बीचमें एकही पर्वत कहा गया है जो कि चारों तरफ से कड़ा के आकार बना हुआ है उसका नाम मानस है ॥ २९ ॥ जम्बूद्वीप में बड़े भाग्यवाला विन्ध्य नाम का पर्वत वर्तमान है जहां लोकों के

तारनेवाली यह नर्मदादेवी बहती है ॥ ३० ॥ विन्ध्यपर्वतका छोटाभाई दक्षिण में सह्यानामका पर्वत है यह पृथिवी कछुये की पीठि ऐसी बनी हुई है जिसके चारोंतरफ सोनहला मगडल है ॥ ३१ ॥ नह पृथिवी ज्ञानी के वारते परमाणुरूप कही गई है वैसेही उसका प्रमाण दशकरोड योजन का कहा गया है ॥ ३२ ॥ उसके किनारे चारोंतरफ लोकालोक इस नामसे प्रसिद्ध पर्वत है वह बड़ा भारी और सोनेका बना हुआ बड़ी शोभावाला सीधा गोले है ॥ ३३ ॥ अद्वा उसका हजार योजन का है इसी हिसाब से विस्तार भी है उसके अद्वा में सूर्य है ॥ ३४ ॥ वे इधर उजियाला करते हैं और पिछली तरफ नहीं कर सकतें हैं इसीसे यह श्रेष्ठ पर्वत लोकालोक ऐसा

लोकतारिणी ॥ ३० ॥ विन्ध्यस्य चानुजो भ्राता सहोदक्षिणतः स्मृतः ॥ उर्वीकूर्ममंतलाकारा काञ्चनीपरिमण्डला ॥
३१ ॥ अणुरेव तथा सा तु निर्दिष्टातिविदः क्षितिः ॥ तस्याः प्रमाणं निर्दिष्टं दशयोजनकोटयः ॥ ३२ ॥ लोकालोक इति
ख्यातस्तस्याः प्रान्ते समन्ततः ॥ स्फीतो हेममयः श्रीमान् सरलः परिमण्डलः ॥ ३३ ॥ योजनानां सहस्राणि चार्द्धम
स्य व्यवस्थितम् ॥ तावदेव च विस्तीर्णं तदूर्ध्वमानुराहितः ॥ ३४ ॥ प्रकाशयति सज्ज्योतिः परभागेऽप्यहन्यते ॥ लोका
लोक इति प्रोक्तस्ततो सावचलो महान् ॥ ३५ ॥ लोकालोकावसानोऽयं भूर्लोकः परिकीर्तितः ॥ गन्धर्वयक्षरक्षोभिः पिशा
चैश्च निषेवितः ॥ ३६ ॥ मानुषैः पशुभिश्चैव मृगपक्षिसरीसृपैः ॥ स्थावरैर्विविधाकारैर्भूतैरेतैश्च षड्विधैः ॥ ३७ ॥ भूर्लोक
श्च भुवर्लोकौ यावदादित्यमण्डलम् ॥ वसन्ति स तं रुद्रास्स ततं वक्रभास्कराः ॥ ३८ ॥ आदित्यमण्डलादूर्ध्वं स्मृता
स्वर्लोकसंस्थितिः ॥ विमानकोटयस्तस्मिन् नष्टा विंशतिराशयः ॥ ३९ ॥ मेढीभूतो विमानानां सर्वेषामुपरि ध्रुवः ॥ नि

कहा गया है अर्थात् उसके इधर लोक है और उधर लोक नहीं है ॥ ३५ ॥ वस लोकालोक पर्वत तक यह भूर्लोक कहा गया है जोकि गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, पिशाच, मनुष्य, पशु, हरिण, पक्षी सांप इन अनेक प्रकारके आकारवाले स्थावर और छह प्रकारके जीवों से सेवित है ॥ ३६ ॥ यह भूर्लोक है इसके बाद सूर्यमण्डल तक भुवर्लोक है उसमें निरन्तर सूर्य जिनके मुहमें हैं ऐसे रुद्र हमेशा रहा करते हैं ॥ ३८ ॥ सूर्यमण्डल के ऊपर स्वर्लोक की स्थिति कही गई है उसमें अष्टाद्वीस करोड़ विमान

है ॥ ३६ ॥ सब विमानों के ऊपर कोल्हूकी जाटकी तरह ध्रुवहैं इन्हीं वायुके सात पर्तें लगेहुये हैं ॥ ३७ ॥ पहला पर्त पृथिवी से मेघमण्डल तक है उनका नाम आहव है जितनी चीजें इकट्ठी रहतीहैं वह उनका एकजिन करनेवालाहै ॥ ३८ ॥ दूसरा पर्त प्रवह नाम का है वह सूर्यमण्डल में वैशाहुआहै व यह तीसरा सुन्दर पर्त मेवह नाम का प्रतिष्ठितहै ॥ ३९ ॥ चौथा पर्त सोढह नाम का नक्षत्रमण्डल में वर्तमान है तदनन्तर पांचवें और छठवें इन दोनों पर्तोंका विमानों को उड़ाना यही कामहै ॥ ४० ॥ ध्रुव से एक कोण जो योजन ऊंचेपर महर्लोक है पस्विह नाम का सातवां वायुका पर्त ध्रुव में वैशाहुआ है ॥ ४१ ॥ सब पर्तोंके ऊपरवाला यह

गुताअनिलस्कन्धास्सप्तान्तरस्थिताः ॥ ४२ ॥ पृथिव्याःप्रथमःस्कन्धः स्थितश्चाभेघमण्डलम् ॥ आहवोनाम वैवातो व्यूहानांव्यूहकृत्तथा ॥ ४३ ॥ द्वितीयःप्रवहोनाम निवद्धःसूर्यमण्डले ॥ तृतीयःसंवहोनाम सुस्कन्धोसौप्रतिष्ठितः ॥ ४४ ॥ चतुर्थसोढहस्कन्धः स्थितोजनत्रमण्डले ॥ ततोद्वयोर्विनिदिष्टा विमानोदहनक्रिया ॥ ४५ ॥ योजनानां ध्रुवःकोटिर्महर्लोकःसमुच्छ्रितः ॥ स्कन्धःपरिवहोनाम निवद्धःसप्तमोध्रुवे ॥ ४६ ॥ अन्नादीनिकरोत्येष पर्वणामुपरिस्थितः ॥ विनिर्घृत्तविकाराणामधिवासोमहात्मनाम् ॥ ४७ ॥ तत्राधिकारिदेवानामष्टाविंशतिकोटयः ॥ जनास्त्वर्लोकमागत्य नियोगात्पद्मजन्मनः ॥ ४८ ॥ स्थितामन्वन्तरंतत्र स्वव्यापारानुसूयिनः ॥ आरुह्यचमहर्लोकमागच्छन्ति ततःपुनः ॥ ४९ ॥ ब्रह्मणोदिवसैकेन देवास्स्वर्गंचतुर्दश ॥ क्रमेण कृत्वाकर्मणि महर्लोकेवसन्ति ते ॥ ५० ॥ कोटिद्वयंमहर्लोकोजनलोकःसमुच्छ्रितः ॥ साध्यानामनुगस्तत्र वसन्ति सुखिनःसदा ॥ ५१ ॥ योजनानांचतुष्कोट्यो

पर्त अन्नआदि को पैदा करता है विगड़नेवाली चीजों के स्थान हेतुके अन्न आगे महात्माओं के स्थानहैं ॥ ४५ ॥ महर्लोक में हुक्मत करनेवाले अष्टादिस करोड़ देवता रहते हैं वे देवता ब्रह्माकी आज्ञासे जनलोक से स्वर्गलोक को आकर ॥ ४६ ॥ अपने कामकी समाप्तिपर्यन्त एक मन्वन्तर तक वहां रहतेहैं फिर वहांसे चढ़कर महर्लोक को चलेजाते हैं ब्रह्मा के एक दिनमें चौदह देवता स्वर्गमें आते हैं व क्रमसे अपने कार्योंको कर फिर वे महर्लोक से वसते हैं ॥ ४९ ॥ ५० ॥ महर्लोक में

जनलोक दो करोड़ योजन ऊँचेपर है वहाँ साध्य नाम के देवता सदा सुखी रहते हैं ॥ ४६ ॥ जनलोक से चार करोड़ योजन ऊँचेपर तपलोक है वहाँ ब्रह्मा के पुत्र प्रजापति लोग रहते हैं ॥ ५० ॥ तपलोक से सत्त्वलोक छह करोड़ योजन ऊँचेपर है वहाँ देवता और दैत्योंसे युक्त ब्रह्मा रहते हैं ॥ ५१ ॥ ब्रह्मलोकसे विष्णुलोक दूना ऊँचा है ब्रह्मलोक के ऊपर विस्तार से युक्त वह बड़ा दिव्यलोक है ॥ ५२ ॥ उसके ऊपर विष्णुलोक के बाद वाईस करोड़ योजनका विस्तारवाला श्रीमान् शिवजीका श्रेष्ठलोक है ॥ ५३ ॥ जोकि हजारों सूर्योंके समान तेजवाला है और सब कामनाओंसे संयुक्त है अनेक जिसमें जङ्गल हैं और गङ्गाजीसे शोभायमान हो रहा है ॥ ५४ ॥

जनादप्युच्छित्तन्तपः ॥ प्रजानांपतयस्तत्र स्थितास्तुब्रह्मणःसुताः ॥ ५० ॥ सत्यलोकस्तपोलोकात्कोटिषट्कंसमुच्छित्तम् ॥ आस्तेपरिवृतस्तत्र देवासुरगणैर्विराट् ॥ ५१ ॥ ब्रह्मलोकाद्विष्णुलोको द्विगुणेनसमुच्छित्तः ॥ विस्तरेणतदूर्ध्वेच दिव्यलोकस्समन्वितः ॥ ५२ ॥ विष्णुलोकाच्चपरतःश्रीमच्छिवपुरम्महत् ॥ द्वाविंशत्कोटिविस्तीर्णं तदूर्ध्वेसमुपस्थितम् ॥ ५३ ॥ सूर्यायुतप्रतीकाशं सर्वकामसमन्वितम् ॥ अनेकारण्यविन्यासं स्वर्गनद्युपशोभितम् ॥ ५४ ॥ सधरत्नान्वितैर्दिव्यैस्तप्तजाम्बूनदप्रभैः ॥ सहस्रखण्डभौमैश्च सर्वशोभासमन्वितैः ॥ ५५ ॥ विमानैःसर्वतोव्याप्तं चन्द्रैरिवनभस्तलम् ॥ अप्सरोगणसंकीर्णं सर्वविद्याधरांन्वितम् ॥ ५६ ॥ नृत्यगीतरवोपैतैरप्रमेयगुणान्वितैः ॥ मनोजैर्वरसंख्यातैः परिवारसमन्वितैः ॥ ५७ ॥ कचिद्दोलागृहैरभ्यैःकिङ्किणीरवकान्वितैः ॥ उद्गतैरद्वचन्द्रैश्च घण्टाभरणभूषितैः ॥ ५८ ॥ मणिसुक्तावितानैश्च मणिरत्नचयैःशुभैः ॥ सर्वरत्नान्वितैर्द्रव्यैर्मुक्तादामसुशोभनैः ॥ ५९ ॥ महासिंहासनैर्दि

सब रत्नोंसे युक्त, आगसे निकलेहुये सोनेके समान तेजवाले, हजारों खण्डवाले, सब शोभाओं से युक्त, दिव्य ॥ ५५ ॥ विमानों से सबओर व्याप्त है मानो चन्द्रमाओसे आसमान भराहोवे अप्सराओं के गणोंसे भराहुआ और सब विद्याधरोंसे युक्त है ॥ ५६ ॥ नाच और गानेकी आवाजोंसे युक्त, वे प्रमाण गुणोंसे भरेहुये, मनके बराबर चलने अर्थात् लड़ानेवाले, अनगिन्ती, सब सामानों से भरेहुये ॥ ५७ ॥ छुद्रघण्टिकाओं की आवाजोंसे युक्त, घण्टाआदि साजोंसे सजेहुये, मणि और मोतियोंसे सजी हुई चांदनीवाले, उत्तम मणि और रत्नों के ढेरोंसे भरेहुये, बड़े ऊँचे, आधे चन्द्रमा के आकार वनेहुये और रमणीक भूलावाले मकानों से कहीं २ शोभित हो रहा है

सच रत्न व सच द्रव्यों से शोभित, मोतियों की झालरों से सुहावने ॥ ५८ ॥ वा सच रत्नों से सजेहुये और दिव्यरूप बड़े २ सिंहासनों से युक्त होरहा है कहीं अन-
गिन्नी गुणवाले पवित्र मकानों से व्याप्त है ॥ ६० ॥ कहीं हमेशा फूलने व फलनेवाले वृक्षों से व्याप्त है सै रुझों व हजारों बड़ी रमणीक फुलवा-
रियों से युक्त है ॥ ६१ ॥ वहाँ नदियों में श्रेष्ठ, सात कल्पतक बहनेवाली, पवित्र नर्मदा भी वर्तमान हैं उनकी एक कलाका हजारहवां हिस्सा जम्बूद्वीप में दीखता
है ॥ ६२ ॥ लोकों पर दया करने की इच्छा से पृथिवी पर उतरी हैं और गंगाआदि नदियों का यहां पूरा अवतार है ॥ ६३ ॥ और भी अमृतकी बहानेवाली नदियों से

ठयैः सर्वरत्नविभूषितैः ॥ कचित्पुण्यगृहैर्व्यासिमंख्येयगुणान्वितैः ॥ ६० ॥ सदापुष्पफलैर्दृजैः क्वचिद्वाप्तमनोरमैः ॥
पुष्पोद्यानैर्महारम्यैः शतशोथमहस्रशः ॥ ६१ ॥ सप्तकल्पवहापुण्या तत्रैवास्तेसरिद्वरा ॥ तत्कलायास्सहस्रांशो जम्बू
द्वीपेप्रदृश्यते ॥ ६२ ॥ अवतीर्णामहीपृष्ठे लोकानुग्रहकाम्यया ॥ सर्वात्मनावतारश्च गङ्गादिसरितामिह ॥ ६३ ॥ अमृत
स्यान्दिनीमिश्रनदीभिरुपशोभितम् ॥ हेमरत्नाविचिताचाप्यः सोपानैः स्फाटिकैर्युताः ॥ ६४ ॥ सितरत्नासितैः पीतैस्सरोजै
र्याः सुगन्धिभिः ॥ पञ्चवर्णैश्चगुरुभिः शोभिताः काञ्चनाकुलैः ॥ ६५ ॥ महाविकाशिसंस्निग्धैः श्रीमद्भिः पञ्चहस्तकैः ॥
दशद्वादशहस्तैश्च तथाविंशतिहस्तकैः ॥ ६६ ॥ नालैर्मरकतप्रख्यैर्मनोहरदलान्वितैः ॥ पूर्णानीलोत्पलैश्चान्यैर्दीर्घिका
श्च क्वचित्क्वचित् ॥ ६७ ॥ सिंहव्याघ्रमुखैर्द्विगजवाजिमृगाननैः ॥ गोमुखैश्छागवदनैः कपिपक्षिमुखैस्तथा ॥ ६८ ॥
एकचक्रैर्महावक्रैर्वहुवक्रैरवक्रकैः ॥ एकपादैस्त्रिपादैश्च बहुपादैरपादकैः ॥ ६९ ॥ वामनैर्जटिलैर्मुण्डैर्दीर्घग्रीवैर्महोद

शोभित होरहा है सोने और रत्नों से सोहिरही व बिलौर की सीढ़ियों से युक्त जहां बावलियां विद्यमान हैं ॥ ६४ ॥ जोकि सफेद, लाले, काले, पीले, पंचरंगा और सो-
नहले सुगन्धिवाले उत्तम कमलों से सोहिरही हैं ॥ ६५ ॥ बड़े प्रकाशवाली, चिकनी, सुहावनी, पांच हाथ की, दश हाथ की, चारह हाथ की, वैसेही बीसहाथ की ॥
६६ ॥ और पद्माकी सी चमकवाली डाड़ियों से युक्त, मनकी हरनेवाली पेंखुरियोंवाले नीले कमलों से तथा और तरह के भी कमलों से भरीहुई कहीं २ बावलिया
विद्यमान हैं ॥ ६७ ॥ सिंह, बाघ, हाथी, घोड़े, हस्ती, गौ, बकरा, वानर और पक्षियों के ऐसे हैं मुहँ जिनके ऐसे शिवजी के गण ॥ ६८ ॥ तथा एक मुहँवाले,

बड़े मुहँके, बहुत मुहँवाले, बेमुहँके, एक पाँववाले, तीनपाँववाले, बहुत पाँववाले और बेपाँवके ॥ ६९ ॥ बौना, जटावाले, मुण्डा, लम्बे गलेवाले, बड़ेपेटवाले, भारी देहवाले, बड़ी नाकवाले, बड़े २ कानवाले और बेकानके ॥ ७० ॥ अनेकतरहकेरूप और आकारोंके धारण करनेवाले अनेक प्रकारके गहने पहनेवाले, अनेकतरहके दिव्य वेपोंके भरनेवाले, मनमानेरूपके बनानेवाले, बड़ेबली ॥ ७१ ॥ अनेक प्रकारके प्रभाववाले और अनेक शास्त्रोंके जाननेवाले गणोंरियुक्तहोएहैं और भी अनेक तरहकी जातिवाले जीव इसीतरहके वहाँ रहते हैं ॥ ७२ ॥ और कुचरी, बौनी, लम्बी, अच्छी देहवाली, अच्छे मुहँवाली, मुण्डनी, डरावनी, ठमकी, छोटी, लम्बी ॥ ७३ ॥ लम्बे

रेः ॥ महाकायैर्महानासैर्महाकर्णैरकर्णैः ॥ ७० ॥ नानारूपाकृतधैरैर्नानाभरणभूषितैः ॥ नानावेषधरैर्दिव्यैः का मरूपैर्महाबलैः ॥ ७१ ॥ नानाप्रभावसंयुक्तैर्नानाशास्त्रविशारदैः ॥ असंख्याजातयश्चान्यानिवसन्ति तथा विधाः ॥ ७२ ॥ कुब्जावामनकादीर्घा वरदेहावराननाः ॥ मुण्डाश्च विकटानीचा ह्रस्वदीर्घाश्च तादृशाः ॥ ७३ ॥ लम्बोदराह्रस्व भुजा विनताह्रस्वजानुकाः ॥ मृगेन्द्रवदनाश्चान्या गजवाजिमुखास्तथा ॥ ७४ ॥ ह्रस्वकुञ्चितकेशाश्च सुन्दरप्रियदर्शनाः ॥ पञ्चाशत्कोटयस्तत्र शिवस्य परिचारिकाः ॥ ७५ ॥ मणिमाणिक्यगेहेषु रमन्ते ताबहिः क्वचित् ॥ तत्रगेहेषु यद्द्वारिसहस्रशतभूमिषु ॥ ७६ ॥ विचित्राभूमयस्तत्र वज्रवैद्युर्यभूषिताः ॥ इतिसर्वगुणोपैतैः स्त्रीसहस्रैर्वराननैः ॥ ७७ ॥ असंख्यातैः पुरं व्याप्तमीश्वरस्य समन्ततः ॥ तन्मध्ये सर्वतोभद्रं दिव्यमायतनं महत् ॥ ७८ ॥ शुद्धस्फटिकसं

पेटवाली, छोटे हाथोंवाली, लचेकरिहाँववाली, छोटी घुटनूवाली, सिंह, हाथी और घोडोंके ऐसे मुहँवाली ॥ ७४ ॥ छोटे छेददार बालोंवाली और देखनेमें सुन्दर और प्यारी पचास करोड़ शिवजीकी दासियाँ वहाँ विद्यमान हैं ॥ ७५ ॥ वे दासियाँ मणि व माणिक्यसे जड़ेहुये मकानोंमें कहीं विहार करती हैं और कहीं बाहर क्रीड़ा किया करती हैं वहाँ हजार २ और सौ २ चौकवाले मकानों के दरवाजों के ॥ ७६ ॥ सहनकी जमीनें बड़ी विचित्र हीरा और पत्थारों से जड़ी हैं इस तरह का महादेव जीका पुर सब गुणोंसे युक्त उत्तम मुहँवाली अनगिन्ती हजारों स्त्रियोंसे चारोंतरफ भराहुआ है वहाँ उस पुरके बीचमें नौकोर बड़ा दिव्य, सफेद विश्वैर के समान

काशं स्थानमाद्यमुमापतेः ॥ तत्रास्तेभगवान्सोमः पूज्यमानोगणेश्वरैः ॥ ७९ ॥ सिद्धैस्स्वस्थानसंप्राप्तैर्ब्रह्मविष्णवादिभिस्तथा ॥ धर्मस्तत्रस्थितः श्रीमानीश्वरायतनेनघ ॥ ८० ॥ यत्रवीरवृषस्तत्र नित्यंगोमातरस्स्थिताः ॥ तत्रसानर्मदादेवी पूज्यमानासुरासुरैः ॥ ८१ ॥ तेनोदकेनतृप्यन्तिगोवत्साः सर्वदेवताः ॥ ब्रह्माविष्णुस्सुरेशान उभयासहितो नघ ॥ ८२ ॥ सुराश्चक्रुष्योभूताः पितरोमातरस्तथा ॥ सलोकश्शिवलोकोत्र नर्मदालोकएवच ॥ ८३ ॥ येगुणारुद्रलोकस्य गोलोकस्यतथैवच ॥ नन्दाभद्राभुमद्राच सुशीलासुरभिस्तथा ॥ ८४ ॥ इतिगोमातरः पञ्च शिवलोकविनिर्गताः ॥ षष्ठीतुनर्मदादेवी लोकानुग्रहकाम्यया ॥ ८५ ॥ एतास्सर्वाजगत्सर्वे सर्वलोकस्यमातरः ॥ तर्पयन्तिमहाराज नित्यमत्रात्मिकैर्गुणैः ॥ ८६ ॥ कारणच्चशिवस्थानादीश्वरेच्छावशानुगा ॥ अंकारात्सर्वलोकानामिमंलोकंसमाश्रिताः ॥ ८७ ॥ तृणानिखादन्तिचरन्त्यरण्ये पिवन्तितोयानिसुनिर्मलानि ॥ दुग्धंप्रयच्छन्तिपुनन्तिदेहं गावोयतो

लोकभी है ॥ ८३ ॥ जो गुण शिवलोकमें हैं वेही गोलोक में भी हैं नन्दा, भद्रा, सुभद्रा व सुशीला और सुरभि ॥ ८४ ॥ ये पांच गोमाता शिवलोकहीसे निकली हैं और लोकोंपर दया करनेकी मनसा से छठवीं नर्मदादेवी भी वहाँ से निकली हैं ॥ ८५ ॥ ये सब संपूर्ण लोकोंकी माताहैं सो हे महाराज ! अपने गुणोंसे यहां सब जगतको नित्यही तृप्त किया करती हैं ॥ ८६ ॥ शिवजी की इच्छाके अनुसार चलनेवाली सब लोकोंका कारण उभकाररूप शिवजी के स्थान से इस लोकको आई हैं ॥ ८७ ॥

ये गौवें घासको खाती हैं, ऊङ्गल में चरती हैं, अतिनिर्मल पानी पीती हैं, दूधको देती हैं और देहको पवित्र करती हैं इन्हींसे सब जीवलोक जीता है ॥ ८८ ॥ जिनके मकान आपही छोटे २ बड़ड़ेवाली गौवोंसे हमेशा सोहते हैं जैसे स्त्रियोंसे सोहते हैं उनके पापकहा है ॥ ८९ ॥ जो लोग उ०ङ्कार और नर्मदाको शिवरूपसे सदास्मरण किया करते हैं इस घोरसंसारसमुद्र में उनका फिर जन्म नहीं होता है ॥ ९० ॥ और जो लोग चारा पानी देनेसे गौवोंकी बड़ी भक्ति करते हैं वे उनकी प्रसन्नतासे शिवलोकको जाते हैं ॥ ९१ ॥ ये गोमाता सदा अपनी प्रसन्नतासे सब कामचाओंकी देनेवाली हैं जो इन पवित्र गौवोंकी रक्षा करते हैं वे शिवलोकको जाते हैं ॥ ९२ ॥ और जो

जीवतिजीवलोकः ॥ ८८ ॥ कुतस्तेषां हि पापानि येषां गृहमलङ्कृतम् ॥ सततं बालवत्सामिर्गोभिस्त्रीभिरिव स्वयम् ॥

८९ ॥ ये स्मरन्ति सदैकारं नर्मदाञ्च शिवात्मना ॥ न तेषां पुनरावृत्तिर्घोरसंसारसागरे ॥ ९० ॥ ये कुर्वन्ति परां भक्तिं तु

एतोद्यप्रदानतः ॥ प्रसादात्तु गवांतासां शिवलोकं व्रजन्ति ते ॥ ९१ ॥ एतास्स दानुकूलेन मातरस्सर्वकामदाः ॥ ये रक्षन्ति

शुभागाश्च शिवलोकं व्रजन्ति ते ॥ ९२ ॥ ये च यन्ति शिवम् भक्त्या सद्विधानैस्समाहिताः ॥ ते विन्दन्ति महाभोगान्पुण्या

न्ति शिवस्य वै ॥ ९३ ॥ ये शिवाश्रयतीर्थानि श्रद्धया यान्ति मानवाः ॥ कल्पगान्च विशेषेण शैलञ्चामरकण्टकम् ॥ ९४ ॥

ते क्रीडन्ति महाभोगैर्ब्रह्मविष्णुशिवालये ॥ पयोमृतं धृतं क्षीरं मधुदध्यादिकं तु यत् ॥ ९५ ॥ न पश्यति महाभाग कल्प

गायां विमोहितः ॥ एतस्ते कथितं राजनेवावतरणं शुभम् ॥ ९६ ॥ अस्याख्यानेन भगवान् प्रीयतां मे शिवः स्वयम् ॥

९७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे राखण्डे शिवलोकवर्णनो नामाष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५८ ॥ * ॥ * ॥

अन्धे विधानपूर्वक भक्तिसे सावधान होकर शिवका पूजन करते हैं वे मनुष्य बड़ेभोगोंको पाते हैं और निश्चयसे शिवजीके पुरको जाते हैं ॥ ९३ ॥ जहां शिवजी विद्यमान हैं ऐसे तीर्थोंको जो मनुष्य श्रद्धापूर्वक जाते हैं और नर्मदा व अमरकण्टकपर्वतको विशेषकरके जाते हैं ॥ ९४ ॥ वे मनुष्य बड़ेभोगोंके साथ ब्रह्मा, विष्णु और शिवके लोकमें विहार करते हैं जल, अमृत, घी, दूध, मिठाई और दहीआदि जो नर्मदामें वर्तमान हैं ॥ ९५ ॥ उनको हे महाभाग! मोहको प्राप्त होरहा यह मनुष्य नहीं देखसक्ता है हे राजन्! यह मङ्गलरूप नर्मदाका अवतार तुमसे कहा ॥ ९६ ॥ इसके कहनेसे आपही भगवान् शिवजी मुझसे प्रसन्न होवें ॥ ९७ ॥ इति स्कन्दपुराणे राखण्डे पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ५८ ॥

युधिष्ठिरजी बोले कि हे कल्पग ! हम दानधर्म के विधान को सुना चाहते है गरीब भिखुक लोग कैसे शिवजी के स्थानको जातेहैं ॥ १ ॥ किस विधिसे और किस दान से पाप छुटता है सो लोकोंके हितके वास्ते हे महामुने ! आप कहें ॥ २ ॥ तब मार्कण्डेयजी बोले कि हे राजन् ! हे निष्पाप ! हम आपसे यथार्थ कहतेहैं सो तुम सुनो कमल, बिल्वपत्र, कुश और नर्मदाका जल ॥ ३ ॥ इनको भगवान् ब्रह्माजी ने साधारण धर्मका कारण कहाहै सब धर्म विश्वासही से पवित्र होतेहैं उन के चेतानेवाले पुराण और वेदही हैं ॥ ४ ॥ उन्हीं से सिखलायेहुये धर्म से मनुष्य स्वर्गको जातेहैं जो मनुष्य रुईका धौरेके सहित लालकपड़ा व बाघकी खालका

युधिष्ठिरउवाच ॥ दानधर्मविधानञ्च श्रोतुमिच्छामि कल्पग ॥ दरिद्राभिवोवापि कथंयान्ति शिवालयम् ॥ १ ॥ विधिनाकेनदानेन मुच्यतेदुष्कृतन्तथा ॥ लोकानाञ्चहितार्थाय कथयस्वमहामुने ॥ २ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ शृणु राजन्यथान्यायं कथयामितवानघ ॥ पुष्करं विल्वपत्रञ्चकुशास्तोयंचनार्म्मदम् ॥ ३ ॥ स्वयम्भूर्भगवानाह सामान्यधर्मकारणम् ॥ श्रद्धापूताः सर्वधर्माः पुराणं श्रुतयस्तथा ॥ ४ ॥ तस्योपदेशधर्मेण नरायान्ति त्रिविष्टपम् ॥ यस्तूलपूर्णविस्तीर्णैरक्तवस्त्रैस्सूत्रकम् ॥ ५ ॥ व्याघ्रचर्मकृतं वापिनववस्त्रावगुपि ठतम् ॥ कृष्णाजिनोपवीतञ्च पुण्यधूपाधिव्यासितम् ॥ ६ ॥ शिवध्यानभिर्युक्ताय श्रद्धया विनिवेदयेत् ॥ तत्तूलवस्त्रतन्तूनां रोमशं ख्यास्तियावती ॥ ७ ॥ तावद्वर्षसहस्राणि शिवलोके महीयते ॥ मोदते सर्वलोकेषु भुक्त्वा भोगाननेकशः ॥ ८ ॥ पुनश्च क्षितिमासाद्य सिंहासनपतिर्भवेत् ॥ तृणवल्कलपर्णानि शय्याप्रावरणादिकम् ॥ ९ ॥ दत्त्वा तदर्थिने भूमी शिवलोके महीयते ॥ शिवमुद्दिश्य नैवेद्यं यो

बनाहुआ अथवा मुमचर्म व पवित्रधूप से बसायाहुआ व नवीनवस्त्रसे लपेटाहुआ यज्ञोपवीत ॥ ५ ॥ शिवजी के ध्यान करनेवाले ब्राह्मण को श्रद्धासे देताहै वह उस रुईके कपड़ेके सूतों के जितने रेशाहैं ॥ ७ ॥ उतने हजार वर्षतक शिवलोक में पूजित होताहै औरभी सब लोकोंमें अनेक भोगोंको भोगकर आनन्द करता है ॥ ८ ॥ और फिर पृथिवी में आकर राजा होताहै तिनका, भोजपत्र, पत्ते, पल्लंग और ओढ़ने के कपड़े आदिको ॥ ९ ॥ पृथिवी में उरा २ चीज की चाह करनेवाले

के लिये देकर शिवलोक में पूजित होता है महादेवजी के नामसे जो शिवभक्त को नैवेद्य देता है ॥ १० ॥ व जो शाक, जड़ और फल देता है उसके पुण्यफल को तुम सुनो कि चावलआदिकों की जो गिन्ती है अथवा फलों व दलोंकी जो गिन्ती है ॥ ११ ॥ उतने हजार वर्षोंतक शिवलोकमें पूजित होता है व मनुष्य भक्तिसे शिव के भक्तको व्यञ्जनों के सहित भिजा देकर ॥ १२ ॥ हे महाभाग ! लाखवर्षतक शिवलोक में पूजित होता है दही और भातसे अत्यन्त भराहुआ सुन्दर भिजाका पात्र ॥ १३ ॥ जो शिवभक्त को देता है उसके पुण्यफल को तुम सुनो कि करोड़ वर्षतक बड़ेभोगों से युक्त ॥ १४ ॥ दिव्य महादेवजी के पुरमें रहकर पीछे से राजा

दद्याच्छिवदर्शने ॥ १० ॥ शाकंमूलंफलंवापि तस्यपुण्यफलंशृणु ॥ यावत्स्यात्तण्डुलादीनां संख्याफलदलेषुच ॥

११ ॥ तावद्वर्षसहस्राणि शिवलोकेमहीयते ॥ भिक्षांसव्यञ्जनान्दत्त्वा शिवभक्तायभक्तिः ॥ १२ ॥ वर्षलक्षंमहाभा

ग शिवलोकेमहीयते ॥ दधिभक्तंसुसम्पूर्णं भिक्षापात्रंशुशोभनम् ॥ १३ ॥ दद्याद्यःशिवभक्ताय तस्यपुण्यफलंशृणु ॥

वर्षकोटिसमन्दिव्यं महाभोगैःसमन्वितम् ॥ १४ ॥ स्थित्वाशिवपुरेदिव्ये तस्यान्तेचमहीपतिः ॥ सुशीतलेनतौये

न शिवभक्तंसितायुजा ॥ १५ ॥ तर्पयित्वाशम्भुलोकं वर्षलक्षंचमोदते ॥ कलशंशर्करोपेतं वस्त्रपूताम्बुधुरितम् ॥

१६ ॥ दद्याद्यःशिवभक्ताय तस्यपुण्यफलंशृणु ॥ शुद्धस्फटिकसंकाशं विमानंसर्वकामिकम् ॥ १७ ॥ संप्राप्यशिव

लोकेतु वर्षकोटिसमोदते ॥ पलाशपणैःपत्रैर्वा यः कुर्यात्पुटकानितु ॥ १८ ॥ प्रदद्याच्छिवयोगिभ्यस्ताम्रपात्रप्रदो

हिसः ॥ यस्ताम्रपात्रंसुकृतं प्रदद्याच्छिवयोगिने ॥ १९ ॥ कोटिषट्कंसकल्पानां शिवलोकेमहीयते ॥ शूलंवहतियः

होता है बहुत ठण्डेपानी से कियेहुये मिश्री के शर्बत से महादेवजी के भक्तको ॥ १५ ॥ ततकर लाख वर्षतक शिवलोक में आनन्द करता है व शक्करका शर्बत कपड़े से छनाहुआ उससे भरेहुये कलशको ॥ १६ ॥ जो शिवभक्त को देता है उसके पुण्यफल को सुनो कि निर्मल बिल्वार के तमह राफेद राव भोगोंसे युक्त विमान को ॥ १७ ॥ पाकर वह करोड़ वर्षतक शिवलोकमें आनन्द फरता है व जो ढांखे व और पत्तोंसे दोने बनाता है ॥ १८ ॥ और शिवयोगियों को देता है वह तांबेके पात्रों के देनेके फलको पाता है व जो अच्छे बनेहुये तांबेके पात्रको शिवयोगी को देता है ॥ १९ ॥ वह छह करोड़ कल्पभर शिवलोक में पूजित होता है व जो हाथमें

विशुद्ध रखता है और पीठपर सागको रखता है और कमण्डलु भी रखता है ॥ २० ॥ ऐसे शैवको यत्नसे भोजन कराकर शिवलोक को प्राप्त होता है अपनी शक्तिसे जो शैवको भोजन कराता है ॥ २१ ॥ वह शिवलोकमें स्थित होकर श्रेष्ठभोगों से विहार करता है व जो बुद्धिमान् मनुष्य शैवधर्म में स्थित गृहस्थ को भोजन कराता है ॥ २२ ॥ वह बड़े २ अनेकभोगों से युक्त शिवलोकमें पूजा जाता है अथवा शैव आश्रम के जो ग्रंथ हैं उनमें स्थित मनुष्य को कन्दमूल आदिसे जो मनुष्य भोजन कराता है ॥ २३ ॥ वह महादेवजी के पुरमें स्थित होकर दिव्यभोगों को पाता है इसीतरह महादेवजीके भक्तको भोजन कराकर और प्रणामकर ॥ २४ ॥ अनेकतरह

पाणौ शक्तिपृष्ठकमण्डलुम् ॥ २० ॥ तं भोजयित्वा यत्नेन शिवलोकमवाप्नुयात् ॥ भोजयेच्च यथाशक्त्या यः शिवत्र तचारिणम् ॥ २१ ॥ भोगैः सक्रीडति श्रेष्ठैः शिवलोकैक्यवस्थितः ॥ यः शिवाश्रमधर्मम् च गृहस्थस्मभोजयेद्बुधः ॥ २२ ॥ विपुलैः समहाभोगैः शिवलोकैकमहीयते ॥ शिवाश्रमव्रतस्थं यः कन्दद्वौ भोजयेन्नरः ॥ २३ ॥ सदिव्यानाप्नुयाद्भोगानीश्वरस्य पुरे स्थितः ॥ एवं प्राशुपतं भक्तं भोजयित्वा प्रणम्य च ॥ २४ ॥ नानाविधैर्महाभोगैः शिवलोकैकमहीयते ॥ महाव्रतधरायैव भिजांयः प्रतिपादयेत् ॥ २५ ॥ सदिव्यैश्शोभनैर्भोगैः शिवलोकैकमहीयते ॥ अत्यन्तयमनाचारं शिवभक्तिपरं नरम् ॥ २६ ॥ भोजयित्वा यथाशक्त्या शिवलोकैकमहीयते ॥ ज्ञानयोगबहिःस्थाये लोकसामान्यधर्मिणः ॥ २७ ॥ पूजयन्ति शिवभक्त्या शिवलोकं व्रजन्ति ते ॥ २८ ॥ अनाशिकेनापिकरीपचक्षिनापयः प्रदानेन तपोभिरुग्रैः ॥ प्रयान्ति तयज्ञैश्च न तां गतिं नरा नीचोपियां याति हि रुद्रभक्तः ॥ २९ ॥ यथा रेवाजलस्पृशति भुज्जते स ह तिनराः ॥ न त के भोगों से शिवलोक में पूजा जाता है व महाव्रत के करनेवाले को जो भिक्षाही देता है ॥ २५ ॥ वह बहुत अच्छे दिव्यभोगों से युक्त शिवलोक में पूजा जाता है अत्यन्त यम और नियमों के करनेवाले शिवभक्त मनुष्य को ॥ २६ ॥ यथाशक्तिसे भोजन कराकर शिवलोक में पूजा जाता है जो लोग ज्ञानयोग को नहीं जानते हैं और दुनियावी साधारण धर्मों के करनेवाले हैं ॥ २७ ॥ वे भी भक्तिसे शिव का जो पूजन करते हैं तो शिवलोक को जाते हैं ॥ २८ ॥ अनशनव्रत, कण्डे की अग्निसे जलना, दूधवा दान, कड़ीतपस्या और यज्ञोत्तरके भी मनुष्य उस गति को नहीं प्राप्त होते हैं जिस गति को नीचभी शिवका भक्त प्राप्त होता है ॥ २९ ॥

हे भरतर्षभ ! मनुष्य जैसे नर्मदा के जलके स्पर्शसे उत्तमगति को पातेहैं ऐसे यज्ञ और दानआदि उपायों से उस गति को नहीं पातेहैं ॥ ३० ॥ इस प्रकार प्रसंग से यह शिवलोक, गोलोक और नर्मदाजी का लोक भलीभांति कहागया है जोकि शिवजी के भक्तोंसे युक्तहै ॥ ३१ ॥ ज्ञानयोग से शान्त होरहे जो मनुष्य परमशिव को जपतेहैं सब दुःखोंसे छुट्टेहुये वे हमेशा सुखी रहतेहैं ॥ ३२ ॥ पञ्चभूत (पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश) अद्भुत, सत्त्वगुण और आठवीं प्रकृति इन आठ परदेवाला शिवलोक जाननेयोग्य है ॥ ३३ ॥ ऐसे हजारों करोड नाग भी जाननेयोग्य हैं माया के सबही अङ्गहैं इससे इधर, उधर, नीचे और ऊपर प्रधानही

थायज्ञदानाद्यैरुपायैर्भरतर्षभ ॥ ३० ॥ इत्येषशिवलोकस्तुप्रसङ्गात्समुदाहृतः ॥ गोलोकःकल्पगालोकःशिवभक्तैस्समन्वितः ॥ ३१ ॥ ज्ञानयोगेनयेशान्ता जपन्तिपरमंशिवम् ॥ तेसर्वदुःखनिर्मुक्ता भवन्तिमुखिनःसदा ॥ ३२ ॥ शिवलोकाश्चविज्ञेयो मण्डलान्वरात्मकः ॥ पञ्चभूतान्यहंकारः सत्त्वंप्रकृतिरष्टमी ॥ ३३ ॥ ईदृशानान्तुनागानां कोट्योज्ञेयाः सहस्रशः ॥ सर्वाङ्गित्वात्प्रधानस्य तिर्यग्बुध्वमधःस्थितम् ॥ ३४ ॥ विष्णुलोकात्परंस्थानं कुमारस्यमहात्मनः ॥ स्वच्छमौक्तिकसंकाशं परमाश्रीसमन्वितम् ॥ ३५ ॥ स्कन्दलोकात्परंस्थानमुमादेव्याःप्रकीर्तितम् ॥ तप्तचामीकरप्रख्यमशेषगुणसंयुतम् ॥ ३६ ॥ उमास्थानात्परंचैव हरस्थानन्तदुत्तमम् ॥ सूर्यकोटिप्रतीकाशं सर्वकामसमन्वितम् ॥ ३७ ॥ गणैरध्युषितंसर्वैरसंख्यैर्योगतत्परैः ॥ हिरण्यगर्भकूर्मार्धैर्वसुरुद्रदिवाकरैः ॥ ३८ ॥ स्तूयतेभगवान्नित्यं तस्या

विद्यमान है ॥ ३४ ॥ विष्णुलोक से ऊपर निर्मल मोतीके समान, बड़ी शोभासे युक्त, महात्मा स्वामिकार्त्तिकजी का स्थानहै ॥ ३५ ॥ व स्वामिकार्त्तिकजी के लोक के ऊपर पार्वतीदेवी का स्थान कहागयाहै जोकि विवले सोने के समान रङ्गवाला और सब गुणोंसे युक्तहै ॥ ३६ ॥ और पार्वतीजी के स्थान से परे महादेवजी का उससे उत्तमस्थान है वह करोड सूर्योंके समान तेजवाला और सब कामनाओंसे भराहुआ है ॥ ३७ ॥ जिसमें अनगिन्ती योगाभ्यास के करनेवाले सब गण रहते हैं हिरण्यगर्भ, कूर्मआदि, वसु, रुद्र और आदित्यनाम के देवता ॥ ३८ ॥ महादेवजीके पास रहनेकी इच्छा करनेवाले भगवान् महादेवजी की नित्यही स्तुति किया

करते हैं ज्ञान और ध्यानमें लगेहुये, भिक्षासे भोजन करनेवाले, इन्द्रियों के जीतनेवाले, उन उत्तम कर्मों के करनेवाले, पाप जिनके जलगाये हैं ऐसे शान्त ब्राह्मण लोगोंसे वह दशहजार सूर्योंके समान तेजवाला श्रेष्ठस्थान पानेयोग्य है ॥ ३६४० ॥ जिस सत्यस्थान में कुशसे रहित, निर्मल मनवाले, महात्मालोग रहते हैं और जो मनुष्य नर्मदा का सेवन करते हैं वे उस पदको पाते हैं ॥ ४१ ॥ हे पार्थ ! जैसा महादेवजी ने कहाथा वैसेही इस वृत्तान्त को मैंने तुमसे कहा नर्मदा के तीर जिस दानको मैंने कहा है ॥ ४२ ॥ उस दानका हजारहवां हिस्साभी और तीर्थ को जो जाते हैं उनके दानसे विशेष है और जो हमारे कहने के अनुसार दान

नितप्रतिकाङ्क्षिभिः ॥ ज्ञानध्यानपरैश्शान्तैर्भिजाहारैर्जितेन्द्रियैः ॥ ३९ ॥ प्राप्यन्तैश्च परंस्थानं सूर्याद्युतसमप्रभम् ॥ तत्सत्कर्मकरेनित्यं ब्राह्मणैर्दग्धकल्मषैः ॥ ४० ॥ वसन्ति यदृतां सिद्धाशयास्तुल्यैश्च वज्रिताः ॥ नर्मदां सेव्यमानाश्च लभन्ते तत्पदं नराः ॥ ४१ ॥ एतत्ते कथितं पार्थ यथोद्दिष्टन्तु शम्भुना ॥ यन्मया कथितं दानं नर्मदातीरमाश्रितम् ॥ ४२ ॥ गच्छन्ति ये न्यतीर्थन्तु सहस्रांशो विशिष्यते ॥ सर्वज्ञास्सर्वगाः शुद्धाः परिपूर्णं भवन्ति ते ॥ ४३ ॥ शुद्धकर्मक रायेतु परमैश्चर्यसंयुताः ॥ सदेहाश्च विदेहाश्च भवन्ति स्वेच्छया पुनः ॥ ४४ ॥ इति नित्यं विशुद्धश्च स्थानमाद्यसुमाप सेः ॥ दिव्यं श्रीकण्ठनाथस्य जगद्गुरुः समं स्थितम् ॥ ४५ ॥ स्थानं नवकमित्येवं निर्गतायत्र कल्पगा ॥ परमाष्टगुणैश्च र्यनित्यमक्षयमव्ययम् ॥ ४६ ॥ शश्वद्गुरुप्रणीतेन ध्यानयोगेन ये नराः ॥ ध्यायन्ति देवतां नित्यन्ते सिद्धायान्ति त

आदि करते हैं वे सबके जाननेवाले, सब कहीं जानेवाले, निर्मल और सब मनोरथों से भरेपूरे रहते हैं ॥ ४३ ॥ जो निर्मलकर्मों के करनेवाले हैं वे बड़े ऐश्वर्य से संयुक्त होते हैं और अपनी इच्छा से चाहे देह सहित रहें और चाहे देह रहित होजायें ॥ ४४ ॥ पार्वतीपति, जगत के मालिक, महादेवजीका यह नाशरहित निर्मल सब से पहलेका दिव्य स्थान सदा एकरस बनारहता है ॥ ४५ ॥ इसप्रकार नव स्थान हैं जहां से नर्मदाजी निकली हैं जहां आठों उत्तम सिद्धियों के ऐश्वर्य, नाशरहित सदा अक्षय बने रहते हैं ॥ ४६ ॥ जो मनुष्य गुरुके बतायेहुये ध्यानयोग से देवता का नित्यही ध्यान किया करते हैं वे सिद्धलोग उस पदको प्राप्त

होते हैं ॥ ४७ ॥ मनोरथों की तृष्णा से रहित नर्मदा के तटमें बैठकर जो लोग शिवजी के ज्ञानका अभ्यास करते हैं वे भी उस पुरको प्राप्तहोतें ॥ ४८ ॥ व जो एक दिनभर भी शिवजी के ध्यान और शिवजी के धर्ममें परायण होवे उसके धर्मका अन्त नहीं है ॥ ४९ ॥ योगधर्म सबका सारहै इसमें वह पापरूपी मुगदग रो तोड़ा नहीं जासक्ता है वज्रके चावल के समान उसको जानना चाहिये इससे उसका बड़ाफल है ॥ ५० ॥ देहके अन्ततक कमायेहुये धर्मसे सनातन महादेवजी का स्थान प्राप्त होताहै जहां बहुत से भोगोंमें दशहजार कल्पोंतक मनुष्य विहार करता हुआ रहताहै ॥ ५१ ॥ तदनन्तर दशहजार कल्पोंके बाद स्वाधिकारिकीके स्थान

तपदम् ॥ ४७ ॥ येभ्यसन्ति शिवज्ञानं नर्मदातीरमाश्रिताः ॥ कामतृष्णाविनिर्मुक्तास्तोपियान्ति च तत्पुरम् ॥ ४८ ॥ अथ ये कद्विसंयावच्छिवध्यानपरायणः ॥ शिवधर्मपरस्तस्य धर्मस्यान्तोनविद्यते ॥ ४९ ॥ योगधर्ममुसारत्वादभेद्यं पापसु दूरैः ॥ वज्रतण्डुलवज्ज्ञेयं तस्मात्तस्य फलं महत् ॥ ५० ॥ देहान्तैनैव धर्मैण स्थानमाद्यं शिवालयम् ॥ यत्रास्ते विपुलैर्भोगैः क्रीडन्कल्पयुतं नरः ॥ ५१ ॥ ततः कल्पायुतस्यान्ते स्थानं कौमारमाप्नुयात् ॥ तत्रार्द्धसम्मितं कालं सक्रीडन्सखुलं वसेत् ॥ ५२ ॥ तदन्ते विष्णुलोकञ्च संप्राप्य वसेत् पुनः ॥ ब्रह्मलोकं गतश्चान्ते तत्रापि वसेत् नरः ॥ ५३ ॥ ब्रह्मलोकपरिभ्रष्टो वसेच्छिवपुरे सुखम् ॥ तत्तस्माद्ब्रह्मविष्णवाद्याल्लोकान् प्राप्नोत्यनुक्रमात् ॥ ५४ ॥ इत्येवं सर्वलोकेषु भित्वा क्रमशः स्ततः ॥ मनुष्यलोकमासाद्य शिवरेवांसमाश्रयेत् ॥ ५५ ॥ मया ते कथितान्यत्र यानि दानानि भारत ॥ तानि सर्वे प्रशंसन्ति पर्वते मरकटके ॥ ५६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे रेवाखण्डे नर्मदा माहात्म्ये शिवमहिमानुवर्णनो नामैकोनपष्ठितमोऽध्यायः ५९ ॥

को पाताहै वहां उस कालके आधे कालतक विहार करताहुआ वह सुखसे रहता है ॥ ५२ ॥ उसके पीछे फिर मनुष्य विष्णुलोक को भलीभांति प्राप्तहोकर वहां रहता है और अन्तमें ब्रह्मलोकको प्राप्तहो वहाभी रहता है ॥ ५३ ॥ व ब्रह्मलोक से छुटाहुआ फिर शिवजी के पुरमें सुखमें रहता है इसीतरह उस २ लोकसे ब्रह्मा और विष्णुआदि के लोकोंको क्रमसे प्राप्तहोताहै ॥ ५४ ॥ इस प्रकार सब लोकोंमें क्रमसे विहारकर तदनन्तर मनुष्यलोकको प्राप्तहोकर फिर शिव व नर्मदा का सेवनकरे ॥ ५५ ॥ हे भारत ! यहां अमरकण्टक पर्वतमें जो दान मैंने तुमसे कहे हैं उनको सबलोग प्रशंसा करते हैं ॥ ५६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे एकोनपष्ठितमोऽध्यायः ॥ ५९ ॥

मार्कण्डेयजी बोले कि अब सुम्नसे कहेजारहे, विष्णुके दानधर्म को समझो सब दुःखोंके नाश करने के वास्ते विष्णुयोग को अभ्यासकर ॥ १ ॥ व धी स्नान और स्तोत्र पाठआदि से विधिपूर्वक विष्णुको भलीभांति पूजकर द्वादशी विपे नर्मदाके तटको प्राप्तहोकर जो विष्णुके नामसे एक दुधारी गौको देवे उसकी पुण्यके फलको तुम सुनो, कि धर्मराज से जैसे विष्णु पूजेजाते है वैसेही वह भी पूजाजाता है ॥ २ ॥ ३ ॥ चन्दन और फूलोआदि से पूजेहुये, सोनेके गहने और कपड़ों से सजेहुये दश बैलोंके सहित एक हजार गाभिन गौवों से मिलेहुये एकहजार शैव व वैष्णवों को जो भोजन कराताहै और “अंनमोभगवतेवासुदेवाय” इस मंत्रराज

मार्कण्डेयउवाच ॥ वैष्णवंदानधर्ममूञ्च कथ्यमानंनिबोधमे ॥ विष्णुयोगंसमभ्यस्य सर्वकेशापनुत्तये ॥ १ ॥ विष्णुसम्पूज्यविधिना घृतस्नानादिभिःस्त्वैव ॥ द्वादश्यांविष्णुमुद्दिश्य दद्यादेकाम्पयस्विनीम् ॥ २ ॥ नर्मदातीरमासाद्य तस्यपुण्यफलंशृणु ॥ पूज्यतेधर्मराजेन यथाविष्णुस्तथैवसः ॥ ३ ॥ शैवानांविष्णवानाञ्च सहस्रभोजयेत्तुयः ॥ गर्भिणीधेनुसंमिश्रं वृषभैर्दशभिर्युतम् ॥ ४ ॥ अर्चितंगन्धपुष्पाद्यैर्हमवस्त्रैरलंकृतम् ॥ प्रदक्षिणमुपाक्रम्य मन्त्रराजं चमकितः ॥ ५ ॥ अंनमोभगवतेवासुदेवायेतिसमुच्चरन् ॥ वेदविद्भिःसमाकीर्णं विष्णोराराधनैःशुभैः ॥ ६ ॥ नर्मदातोयमासाद्य दीपमालांप्रबोधयेत् ॥ गावोममाग्रतो नित्यं गावःपृष्ठतएवच ॥ ७ ॥ गावोमेहदयेवापि गवांमध्येवसाम्यहम् ॥ इमंमन्त्रंसमुत्थाय जपेदासांपुरोगवाम् ॥ ८ ॥ गन्धतोयाच्चतैर्मिश्रैर्गृहीत्वाताम्रभाजनम् ॥ शृङ्गपुच्छजलस्नातः शुक्लवस्त्रसमन्वितः ॥ ९ ॥ नर्मदास्नानपानेन गवांपुच्छाम्भसात्था ॥ सर्वकल्मषनिर्मुक्तः सुसिद्धःसुचिरव्रतः ॥ १० ॥

को उच्चारण करताहुआ भक्तिपूर्वक प्रदक्षिणाकर वेदके जाननेवाले ब्राह्मणों से व्याप्त और पवित्र विष्णुके पूजनों से शोभित ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥ नर्मदा के जलको प्राप्त होकर दियाली जलावे और उन गौवोंके सामने भलीभांति खडाहोकर इस मन्त्रको पढ़े कि “गावोममाग्रतो नित्यं गावःपृष्ठतएवच ॥ गावोमेहदयेवापि गवांमध्येवसाम्यहम्” इसका यह अर्थहै कि गौवें सदा मेरे आगे रहें और गौवें मेरे पीछेभी रहें और गौवें मेरे हृदयमें रहें और गौवोंके बीचमें मैं रहूं ॥ ७ ॥ ८ ॥ गौवोंके सींग और पूँछके जलसे स्नान कियेहुये और सफेद कपड़ों को पहने, मिलेहुये चन्दन, जल और अन्नतों से युक्त तावेके पात्रको लेकर ॥ ९ ॥ नर्मदाके स्नान व उसके

जल पीने से व गौवोंके पूँछके जलसे सब पापोंसे छुटाहुआ बहुत दिनके व्रतका करनेवाला अत्यन्त सिद्ध होरहा वह यजमान ॥ १० ॥ गौवोंको नहलाकर ब्राह्मणों के सहित वहाँ नर्मदा के किनारेपर जाकर पूर्णमासी बिबे चन्द्रमा के पूरे होनेपर अथवा चन्द्रग्रहण में ॥ ११ ॥ उन्हीं ब्राह्मणों के सहित विष्णुका भलीभाँति पूजन कर स्मरणकरे अपने सेवक, पुत्र, स्त्री, भाई और श्रद्धासे युक्त इस मन्त्रसे गौवोंको कृष्णके वास्ते अर्पणकरे “मन्त्रः—श्राद्धेदानींचहोमे चविवाहेमङ्गलेतथा । गोमातरःस्थितानित्यंविष्णुलोकेशिवात्मिकाः ॥ शिवयैतामयादचाविष्णवेचमहात्मने ” इसका यह अर्थहै कि श्राद्ध, दान, होम, विवाह और

स्नापयित्वागतस्तत्र सविप्रोनर्ममदातटे ॥ पौर्णमास्यांपूर्णचन्द्रे राहुसोमसमागमे ॥ ११ ॥ तैरेवसाद्धंविप्रेन्द्रैःसंप्रज्यहर्हिस्मरेत् ॥ भृत्यपुत्रकलत्राद्यैर्युक्तःस्वजनबान्धवैः ॥ १२ ॥ निवेदयेत्तुकृष्णाय मन्त्रेणश्रद्धयान्वितः ॥ श्राद्धेदानेचहोमेच विवाहेमङ्गलेतथा ॥ १३ ॥ गोमातरःस्थितानित्यंविष्णुलोकेशिवात्मिकाः ॥ शिवयैतामयादत्ता विष्णवेचमहात्मने ॥ १४ ॥ एवंविप्राययोदद्याद्यज्ञार्थं समलंकृताः ॥ एवंनिवेद्यपुरुषो गोसहस्रफलंलभेत् ॥ १५ ॥ कुलानिनिशुत्तार्य नरकाद्भृत्यबान्धवान् ॥ स्थापयेद्द्वैष्णवेलोकेशिवस्यचमहात्मनः ॥ १६ ॥ सर्वज्ञःपरिपूर्णश्च विशुद्धःसर्वगःप्रभुः ॥ संसारसागरान्मुक्तो हरितुल्यःप्रजायते ॥ १७ ॥ अनेनैवविधानेन गृहस्थाःप्राप्नुयुर्दिवम् ॥ विनापिज्ञानयोगेन गोसहस्रप्रदानतः ॥ १८ ॥ ब्राह्मणःक्षत्रियोवापि शूद्रोवापिचभक्तिः ॥ नर्ममदाकपिलायोगे यथाविभववि

भी मङ्गलकार्य में गऊमाता हमेशा रहती हैं जोकि मङ्गलरूप विष्णुलोककी रहनेवाली हैं इनको मैंने शिव अथवा महात्मा विष्णुजी के वास्ते दियाहै ॥ १३ ॥ १४ ॥ इस प्रकार सर्जीहुई गौवोंको यज्ञके वास्ते जो पुरुष ब्राह्मण को देवे तो ऐसे देकर वह हजार गौवोंके दानके फलको पाताहै ॥ १५ ॥ और अपनी तीस पीढ़ियों को तथा सेवक और भाइयोंको नरकसे उद्धारकर विष्णु व महात्मा शिवजीके लोक में स्थापित करताहै ॥ १६ ॥ और आप विष्णुजी तरह सर्वज्ञ, सबसे पूर्ण, निर्मल, सब में व्याप्त, सबका मालिक और संसारसमुद्र से छुटाहुआ होजाता है ॥ १७ ॥ बस इसी विधानसे गृहस्थलोग स्वर्गको प्राप्तहोतेहैं ज्ञानयोग के न होनेपर भी केवल

एक हजार गौवों के देनेही से ॥ १८ ॥ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य व शूद्र कोईहो भक्तिसे नर्मदा और कपिलाके संगममें अपने विश्व के अनुसार ॥ १९ ॥ यज्ञके करने वाले ब्रह्मतेज से शोभित दरिद्री ब्राह्मण को चन्द्र व सूर्य के ग्रहण अथवा व्यतीपात, संक्रान्ति ॥ २० ॥ षडशीतिमुख, सोमवती अमावस, कार्तिकी, युगादितिथि में व हे भारत ! औरही किसी पुण्यवाले दिनमें कहेहुये दानको देवे ॥ २१ ॥ जिससे कि हे नराधिप ! पितरलोग ऐसी गाथाको गाया करतेहैं कि ऐसीभी कोई हमारे कुलमें बड़ा धर्मात्मापुत्र होगा ॥ २२ ॥ जोकि नर्मदा और कपिलाके योगमें अथवा मुक्तिके देनेवाले कोटितार्थ मे राव सामान से संयुत गौवोंको देकर हमलोगों

स्तरैः ॥ १९ ॥ ब्राह्मणाय दरिद्राय दीक्षितायोपशोभिने ॥ चन्द्रसूर्योपरानेतु व्यतीपातेचसंक्रमे ॥ २० ॥ षडशीति मुखेदद्यादमासोमसमागमे ॥ कार्तिकांवातुगादौवा पुण्येवाहनिभारत ॥ २१ ॥ यद्विगायन्तिपितरौ गाथामेताद्वरा धिप ॥ अपिस्थ्यात्सकुलेस्माकं पुत्रः परमधार्मिकः ॥ २२ ॥ नर्मदाकपिलायोगे कोटितार्थेचमुक्तिदे ॥ नरकादुद्धरेद स्मान्दत्त्वागायस्तुसंयुताः ॥ २३ ॥ दशवर्षसहस्राणिलोकेक्रीडतिवैष्णवे ॥ तस्मात्त्वमपिराजेन्द्र गोसहस्रप्रदोभव ॥ २४ ॥ देववद्विमोदन्ते येनतेपितरस्सदा ॥ कथयामितवाथाहमितिहासपुरातनम् ॥ २५ ॥ युवनाश्वः पुराराजा च क्रवर्तीमहायशः ॥ शक्राच्छतशृणुपुण्यं प्रजापालनतत्परः ॥ २६ ॥ अयोध्यानगरीयस्य ब्रह्मलोकसमप्रभा ॥ त स्यांकृतयुगेचादौ सर्वधर्मपरायणः ॥ २७ ॥ बृहस्पतिब्रह्मसमं वशिष्ठस्वपुरोहितम् ॥ अभिवाद्यथान्यायमुवाचमु

को नरकसे उद्धार करेगा ॥ २३ ॥ इस दानका देनेवाला दशहजार वर्षतक वैष्णवलोकमें विहार करताहै तिससे हे राजेन्द्र ! तुमभी हजारगौवो के देनेवाले हूजिये ॥ २४ ॥ जिस से तुम्हारे पितरलोग देवताओं की तरह स्वर्ग में सदा आनन्द करें अब यहां पर तुमसे पुराने इतिहास को कहते हैं ॥ २५ ॥ आगिले जमाने में बड़े यशवाले चक्रवर्त्ती युवनाश्वराजा होतेहुये उनका पुण्य इन्द्रसे सौगुना था वे राजा अपनी प्रजाके पालनमें तत्पर होतेहुये उन राजाकी अयोध्यापुरी ब्रह्मलोकके समान शोभावाली होतीहुई उसी अयोध्यामें आगे सत्ययुगमें सब धर्मोंके करनेवाले राजा युवनाश्व ॥ २६ ॥ २७ ॥ बृहस्पति व ब्रह्माके समान अपने पुरोहित मुनि-

श्रेष्ठ वशिष्ठजीको यथारीति नमस्कार कर उनसे बोले ॥२८॥ कि किस स्थानमें व किस तीर्थ व देशमें व किस देवालयमें यज्ञ करना चाहिये तब वशिष्ठआदि सब मुनि लोग यह बोले कि ॥ २९ ॥ पृथिवीमें सब तीर्थोंका स्थान, नैमिषतीर्थ बहुत अच्छा है वहां करनेसे अश्वमेधयज्ञ करोड़से करोड़गुना अधिक फलत्राला होसकता है ॥ ३० ॥ हे राजन् ! यह तीर्थ मत्स्यपुराण में मछली के रूप को धरेहुये भगवान् विष्णुजी करके कहागया है और हे राजन् ! अपने पुत्र मनुजी से सूर्यने भी कहा है ॥ ३१ ॥ सब पुराणों में मत्स्यपुराण श्रेष्ठ कहागया है अगिले जमाने में वेद नष्ट होगये रहे सो वे मत्स्यरूपसे उद्धार कियेगये ॥ ३२ ॥ जब वेद नहीं रहे थे तब सब ब्राह्मण

निसत्तमम् ॥ २८ ॥ कस्मिन्स्थानेयजेद्यज्ञं तीर्थदेशेसुरालये ॥ वशिष्ठप्रमुखास्सर्वे मुनयश्चेदमब्रुवन् ॥ २९ ॥ पृथिव्यां नैमिषंतीर्थं सर्वतीर्थमयंशुभम् ॥ सफलोहयमेधस्तु कोटिकोटिगुणोत्तरः ॥ ३० ॥ पुराणेकीर्तितंराजन्मत्स्यरूपेणविष्णुना ॥ सूर्येणकीर्तितंराजन्मनुपुत्रायचात्मनः ॥ ३१ ॥ सर्वेपान्तुपुराणानां पुराणंमत्स्यकीर्तितम् ॥ वेदाश्चैवपुरा नष्टा मत्स्यरूपेणचोद्धृताः ॥ ३२ ॥ वेदहीनाश्चवर्तन्ते द्विजवैयज्ञकर्मसु ॥ एवंविधन्तुतत्तीर्थं युवनाश्वतवोदितम् ॥ ३३ ॥ एवंश्रुत्वाततोवाक्यं वशिष्ठस्यपुरोधसः ॥ आदिदेशततोमात्यान्धर्मिंमष्ठान्सत्यवादिनः ॥ ३४ ॥ यज्ञोपस्करमादाय समागच्छतसत्वरम् ॥ घोषणंक्रियतांराष्ट्रे दण्डहस्तैश्चकिङ्करैः ॥ ३५ ॥ आहूतास्तुततोदेवा नृपतेर्यज्ञकर्मणि ॥ ब्रह्माविष्णुःसुरेशश्च स्कन्दोवैश्रवणस्तथा ॥ ३६ ॥ शम्भुश्चैवविशेषेण सुरासुरनभस्कृतः ॥ धेनूनांदशलजाणि हेमरत्नान्वितानिच ॥ ३७ ॥ लक्ष्मैकंहयानाञ्च दन्तिनामयुतत्रयम् ॥ मणिमाणिक्यमुक्ताश्च हिरण्यश्चाप्यनन्तकम् ॥ ३८ ॥

वेदों से रहित होगये इससे वे लोग यज्ञकर्म को नहीं करसके थे हे युवनाश्व ! ऐसा यह नैमिष तीर्थ तुमसे कहागया ॥ ३३ ॥ तदनन्तर अपने पुरोहित वशिष्ठ जी के ऐसे वचन को सुनकर तदनन्तर धर्मात्मा व सत्यके बोलनेवाले अपने मन्त्रियों को राजाने आज्ञा दी ॥ ३४ ॥ कि यज्ञका सामान लेकर आपलोग जल्दी चलो और देशमें चोबदारों करके पुकार करदीजावे ॥ ३५ ॥ तदनन्तर राजा के यज्ञकर्म के वास्ते देवता बुलायेगये ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र, स्वामिकार्त्तिक तथा कुबेरा ॥ ३६ ॥ और देवताओं व असुरों करके नमस्कार कियेगये महादेवजीभी विशेषकरके बुलायेगये सोने और रत्नोंसे युक्त दशलख गौवं ॥ ३७ ॥ एक लाख घोड़े, तीसहजार

हाथी, मणि, मोती, बहुतसा सुवर्ण ॥ ३८ ॥ और भी अनेक तरहकी चीजें चवाने और खाने योग्य अन्न व गहना और भी जो कुछ यज्ञके लायक सामान है उस सबके सहित राजाने ॥ ३९ ॥ अनेक प्रकारके हजारों विमानों से व अनेक देशके राजाओं से युक्त हो अनेक तरहके हजारों बाजों व अनेक प्रकार के मनोहर गीतों से ॥ ४० ॥ व बड़ी भारी वेदकी ध्वनि से आकाश और पृथिवी को भरते हुये नैमिष तीर्थ में प्रवेश किया जहां महादेवजी देवता हैं ॥ ४१ ॥ जहां प्रभु विष्णुजी को देखकर पापते शीघ्र छूट जाता है यह नैमिषतीर्थ देवलोक की तरह खुलसा स्वर्ग की सीढ़ी के समान है ॥ ४२ ॥ वहां स्नानकर और हरिहर का पूजनकर मनुष्य

नानाविधानिद्रव्याणि भक्ष्यभोज्यमलंकृतम् ॥ यज्ञद्रव्यश्चयच्चान्यत्तत्सर्वसहितो नृपः ॥ ३९ ॥ नानासहस्रया नैस्तु नानादेशगतैर्नृपैः ॥ नानावाद्यसहस्रैस्तु नानागीतैर्मनोहरैः ॥ ४० ॥ वेदघोषेणमहता दिवंभूमिविनादयन् ॥ विश्वेनैमिषंतीर्थं यत्र देवो महेश्वरः ॥ ४१ ॥ हरिसद्यः प्रमुदृष्ट्वा मुच्यते यत्र किल्बिषात् ॥ स्वर्गसोपानमेतत्तु प्रत्यक्षन्देवलोकवत् ॥ ४२ ॥ तत्र स्नात्वाभ्यर्च्य हरिं हरं स्वर्गमवाप्नुयात् ॥ कीर्तनान्नौमिषस्यास्य नरोदहतितत्त्वात् ॥ ४३ ॥ अनेकभाषिकंधोरं तूलराशिभिवानलः ॥ दीक्षिता ब्राह्मणा देवाः कुतश्चिचुसमागताः ॥ ४४ ॥ आर्तानामयुतं तेभ्यो ददौ देवाय चानघ ॥ सहस्रमेकं नृपतिर्भूषणानां च भारत ॥ ४५ ॥ ॐ नमः शंकरायैति माधवायेति चोत्तमः ॥ जलदभौ समादाय पात्रे राजा हिरण्यमे ॥ ४६ ॥ एवं सङ्कल्प्य राजेन्द्र यज्ञवाटमकारयत् ॥ दशयोजनपर्यन्तं यज्ञगृपांश्च हेमजान् ॥ ४७ ॥ ततो निर्वर्तितो यज्ञो वशिष्ठप्रसुखैर्द्विजैः ॥ मुदिता देवताः सर्वा दिव्ययानसमाश्रिताः ॥ ४८ ॥ जयशब्दं प्रचक्रुस्ता स्वर्ग को प्राप्त होता है और इस नैमिषतीर्थ के कहने से उसी क्षण अनेक जन्मों के घोर पापको जला देता है जैसे आग रुई के समूहको जला देती है ऐसे माहात्म्यवाले नैमिष में दीक्षा को लिये हुये कहींसे ब्राह्मण और देवता भलीभांति आगये ॥ ४३ ॥ ॐ नमः शंकराय, ॐ नमो माधवाय ॥ ऐसे कहकर वे उत्तम राजा सोने के पात्रमें जल व कुशों को लेकर ॥ ४६ ॥ और इसी तरह सङ्कल्प कर हे राजेन्द्र ! यज्ञस्थान को बनवाते हुये व दश योजन तक सोने के यज्ञके खम्भे गड़वाये ॥ ४७ ॥ तदनन्तर वशिष्ठ आदि ब्राह्मणों

ने यज्ञको कराया उससमय दिव्य सवारियों पर चढेहुये सब देवता लोग आनन्दित होतेहुये ॥ ४८ ॥ और उन्हीं देवताओं ने जयशब्द को किया और कहा कि आप के बराबर दूसरा राजा नहीं है व राजा भी मेरे बराबर कोई और नहीं है ऐसे अहङ्कारवाला होताहुआ ॥ ४९ ॥ जबतक आपने रनिवास व सामान के राहित सवारी पर सवार होकर नैमिषारण्य से राजा निकले तबतक एक वानरको देखा ॥ ५० ॥ इसके बाद वह वानर राजासे बोला कि हे राजन्! खंडरहो खंडरहो हमारी बातको सुनो कि तुम्हारी इस यज्ञके करने से क्या हुआ इस कर्म में केवल देवताओं को भाग दियागया है ॥ ५१ ॥ तुम अहङ्कार से मूढ़बुद्धिवाले होरहे हो अपने को मैं यज्ञका करनेवाला हूँ ऐसा मानरहे हो अगिले जमाने में सत्यधर्म राजाके अमरेश्वर में कियेहुये यज्ञमें ॥ ५२ ॥ मेरे मुहको छोड़कर और गले के नीचे का

राजानान्योभवत्समः ॥ नान्योभमसमः कश्चिदित्यहङ्कारवान्नुपः ॥ ४९ ॥ यावद्यानंसमारुह्य सान्तःपुरपरिच्छदः ॥ निरस्रुतो नैमिषारण्यात्तावत्पश्यति वानरम् ॥ ५० ॥ तिष्ठतिष्ठेत्युवाचाथ शृणुराजन्वचोमम ॥ किन्तैयज्ञविधानेन देवतादानकर्मणि ॥ ५१ ॥ अहङ्कारविमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यसे ॥ पुरामरेश्वरे यज्ञे सत्यधर्मस्य भूपतेः ॥ ५२ ॥ वर्जयित्वा मुखमेभूत्कण्ठाधो हेमवर्णकम् ॥ येगताश्शिशावस्तेषां सर्वाङ्गाश्चाहिरमयाः ॥ ५३ ॥ कपिलानम्ममदायोगे यज्ञतोयप्रवाहतः ॥ स्नानानावगाहनात्पानाल्लोडनात्कर्दमेतथा ॥ ५४ ॥ गन्धर्वलोकं सम्प्राप्तो भूतग्रामश्चतुर्विधः ॥ त्वदीये लुलितं यज्ञे नैमिषारण्यसम्भवे ॥ ५५ ॥ पङ्केन लिप्तं गात्रमे त्वालितं चाम्बुना तथा ॥ न किञ्चिन्फलमासीन्मे त वयज्ञो निरर्थकः ॥ ५६ ॥ गवां त्वया युतं दत्तं धनं धान्यं तथा बहु ॥ भूभुजा सत्यधर्मैरेण किन्तु तावन्निरर्थकम् ॥ ५७ ॥ दा

सब अङ्ग सोनहला होगया और जो हमारे वचेलोग वहां गये रहे उनके भी सब अङ्ग सोनहले होगये ॥ ५३ ॥ यह हाल हमलोगों का कपिला और नर्मदा के योग में जो यज्ञका जल बहकर भिला उसमें स्नान व भस्माने व पीने व कीचड़ में लोटने से होता हुआ ॥ ५४ ॥ और वहां के चारोंतरह के जीवसमूह गन्धर्वलोक को भलीभांति प्राप्त होतेहुये और तुम्हारे इस नैमिषारण्य के यज्ञ में मैंने लोट लगाई ॥ ५५ ॥ सो कीचड़से मेरा शरीर भरगया फिर उसको पानी से धोया किंतु मुझे फल कुछ भी न हुआ इससे तुम्हारा यज्ञ बेकाम हुआ ॥ ५६ ॥ इस यज्ञ में सच्चे धर्मवाले पृथ्वीपति आपने दशहजार गौत्रों को दिया और बहुतसा धन व अन्न

दिया परन्तु यह सब निरर्थक है ॥ ५७ ॥ दान व तपस्यासे तुमने तीनों लोकों को कमाया है परन्तु तुम यह नहीं जानते हो कि निश्चयकरके नर्मदाही सब तीर्थों की माता कहीं गई है ॥ ५८ ॥ हे राजन् ! यह तुमसे कहा जैसा कुछ श्रमरेश्वर में हुआ अब आपका कल्याण हो मैं जाताहूँ आपभी श्रमोद्ध्या को जाइये ॥ ५९ ॥ और मैं भी सात कल्पतक रहनेवाली नर्मदा को जाऊँगा आपकी यज्ञको सुनकर नैमिषारण्य को आयाथा ॥ ६० ॥ अब मैं निराश जाताहूँ मेरा मुह सोनेका नहीं हुआ ऐसे दानर के वचनको सुनकर राजा युवनाश्व वानर से वचन बोले कि वानरके रूपसे आप कौनहो सो हमसे सत्य कहो तब वानर बोला कि मैं जाबालि

नेनतपसावापि त्रयोल्लोकास्समर्जिताः ॥ सर्वेषामेवतीर्थानां मातावैमेकलास्मृता ॥ ५८ ॥ एतत्तेकथितंराजन्यथा
भूदमरेश्वरे ॥ स्वस्तिवोस्तुगमिष्यामि त्वंवायोध्यांप्रतिव्रज ॥ ५९ ॥ अहमेवगमिष्यामि नर्ममंदांसप्तकल्पगाम् ॥
श्रुत्वात्वदीयंयज्ञंहि नैमिषारण्यमागतः ॥ ६० ॥ निराशोहंगमिष्यामि नाभून्मेकाञ्चनस्सुखम् ॥ वानरस्यवचःश्रुत्वा
युवनाश्वोब्रवीद्वचः ॥ ६१ ॥ कस्त्वंवानररूपेण सत्यमेतद्व्रवीषिमे ॥ अहंजाबालिनःपुत्रः कदम्बोना
मविश्रुतः ॥ ६२ ॥ तिर्यग्योनौप्राविष्टश्च प्राकृतैःकर्मभिःस्वकैः ॥ भ्रान्तानिसर्वतीर्थानिविषेणानेनसुव्रत ॥ ६३ ॥ प
रित्राणंपरन्नाभूत्सत्यधर्ममखोत्तमे ॥ वपुर्हिरण्मयंसर्वं सुखवर्जमभाभवत् ॥ ६४ ॥ वानरस्यवचःश्रुत्वा सन्निवृत्यन्
पोत्तमः ॥ आराध्यदेवदेवेशं नैमिषेयज्ञपूरुषम् ॥ ६५ ॥ उवाचवचनंश्लक्ष्णं प्रणिपत्यप्रसाद्य च ॥ मदीययज्ञेदानेन

का लड़का कदम्ब नाम प्रसिद्ध था ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ सो अपने स्वाभाविक कर्मों से वानरकी योनि को प्राप्त हुआ हे सुव्रत! मैं इसी वानर के रूपसे सब तीर्थोंमें घूमता रहा ॥ ६३ ॥ परन्तु मेरा भला कहीं नहीं भया केवल सत्यधर्म राजाके उत्तम यज्ञमें इतना हुआ कि मेरे मुह को छोंड़कर और सब देह सोनहली होगई ॥ ६४ ॥ वानर के वचन को सुनकर श्रेष्ठ राजा फिर लौटकर नैमिष में देवताओं के देवता भगवान् यज्ञपुरुष का आराधन कर ॥ ६५ ॥ प्रणाम और प्रसन्न करके रसीले वचन को बोले कि हे भगवन् ! यह एक जीव वानर के रूपको धरेहुये मेरे यज्ञ में कियेहुये दान व तपस्या व नियमसे अपने कल्याण को चाहताहुआ अपने हाल

को मुझे सुनाया सो जैसे इसका मुह सोने का होजावे वैसा आप करें ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ तब करोड़ों सूर्यों के समान तेजबाले नैमिष तीर्थ देव प्रत्यक्ष हो राजायुवनश्रव से वचन बोले ॥ ६८ ॥ कि प्रियवी में नैमिष तीर्थ है और पुष्करतीर्थ आकाशमें है और अमरकण्टक पर्वत तीनों लोकों में प्रसिद्ध है ॥ ६९ ॥ हे तात ! तुमने म्या-मिकार्त्तिकजी के कहेहुये पुराणको नहीं सुना है जहां सब नदी व तीर्थों की माता नदियों में श्रेष्ठ नर्मदाजी विद्यमान हैं ॥ ७० ॥ इनके नाममात्रके कहने से मनुष्य संसार बन्धन से छूटजाता है तिससे विपाद को छोड़ो तीर्थों में अमरकण्टक मुख्य है ॥ ७१ ॥ अत्र सत्यधर्म राजा फिर भी वहां उत्तम यज्ञको करेंगे नर्मदा और

तपसानियमेनच ॥ ६६ ॥ शमिच्छञ्छावयामास एकोवानररूपवृक ॥ हिरण्यंमुखंचास्य यथास्यात्स्वन्तथाकु
रु ॥ ६७ ॥ उवाचवचनंदेवो युवनाश्वंमहीपतिम् ॥ प्रत्यज्जनैमिषंतीर्थं सूय्यंकोटिसमप्रभम् ॥ ६८ ॥ पृथिव्यांनैमिषं
तीर्थमन्तरिक्षेचपुष्करम् ॥ त्रिपुलोकैषुविख्यातो गिरिश्रामरकण्टकः ॥ ६९ ॥ नचश्रुतंत्वयातात पुराणंस्कन्दकी
र्तितम् ॥ मातासायत्रसरितां तीर्थानांचसरिद्वरा ॥ ७० ॥ नामसंकीर्तनादस्या मुख्यतेभवबन्धनात् ॥ विषादंत्यज
तीर्थानां प्रधानोमरकण्टकः ॥ ७१ ॥ सत्यधर्मःपुनस्तत्रकरिष्यतिमखोत्तमम् ॥ रेवाकपिलयोर्योगे मुखंतत्रहिरण्य
यम् ॥ ७२ ॥ भविष्यतिनसन्देहस्तववानरसत्तम ॥ नैमिषंसनमस्कृत्य आदिदेवंहरंहरिम् ॥ ७३ ॥ स्थानंस्वञ्चजगा
माथ सुदापरमयायुतः ॥ नैमिषस्यवचःश्रुत्वा अयोध्याधिपतिस्तथा ॥ ७४ ॥ विवेशनगरींपुरयांयथाशक्रोमरावतीम् ॥
वानरोपिगतस्तत्र सत्यधर्मोयतःस्वयम् ॥ ७५ ॥ प्रणम्यसत्यधर्ममुख्यमिदंवचनमब्रवीत् ॥ रेवाकपिलयोर्योगे त्व

कपिला के योगमें वहीं तुम्हारा मुह सोनेका होजायगा हे वानरसत्तम ! इसमें कुछ सन्देह नहीं है वह वानर नैमिष व आदिदेव हरिहरके नमस्कारकर ॥ ७२ ॥ ७३ ॥
बड़े आनन्द से युक्त अपने स्थान को चलागया इसके बाद वैसेही नैमिष देवके वचन को सुनकर अयोध्याके राजा युवनाश्व भी ॥ ७४ ॥ जैसे इन्द्र अमरा-
वती में प्रवेश करें वैसेही अपनी पुरणवाली अयोध्यापुरी में प्रवेश करते हुये व वानरभी वहां को चलागया जहां राजा सत्यधर्म विद्यमान थे ॥ ७५ ॥ और सत्य-

धर्मनाम राजाके नमस्कार कर इस वचनको बोला कि नर्मदा और कपिला के योग बिषे आपके महायज्ञ में ॥ ७६ ॥ यज्ञान्तस्नान से उत्पन्न हुये कीचड़ मे मेरे लोटने से मेरा शरीर सोनेका होगया अकेला मुहँ ही बाकी रहगया है ॥ ७७ ॥ सो अब आप फिर भी वहां यज्ञ करके मेरा मुहँ सोनेका करदीजिये जिससे फिर भी वानर की योनि से छुटाहुआ गन्धर्वों का राजा होजाऊ ॥ ७८ ॥ उसके कहनेसे जब राजाने वहां यज्ञको किया तब वह श्रेष्ठ वानर सोनहली देहवाला होगया व देवताओंके बाजोंकी आवाज के साथही अनेक आभूषणों से सजा हुआ ॥ ७९ ॥ हंस जिसमें जुतेहुये हैं ऐसे विमान से अप्सराओं के गणों करके हवा कियाजाता हुआ इस तीर्थ के प्रभावसे शङ्करजी के लोकको चलागया ॥ ८० ॥ और भी जो हिसक जीव वहां थे वे सभी स्नानकर स्वर्गको जातेहुये हे पार्थ ! यह पुराना हाल

दीयेचमहामखे ॥ ७६ ॥ अबभृथस्नानजनिते कर्दमेष्टुठनान्मम ॥ शरीरंकाञ्चनीभूतं सुखमेवावरिष्यते ॥ ७७ ॥ यज्ञमिष्ट्वापुनस्तत्र सुखंमेकाञ्चनंकुरु ॥ गन्धर्वाधिपतिर्भूयोमुक्तोवानरयोनितः ॥ ७८ ॥ हेमीभूतवपुस्तत्र यदावानरसत्तमः ॥ देवदुन्दुभिनादेन नानालङ्कारभूषितः ॥ ७९ ॥ हंसयुक्तेनयानेन वीज्यमानोप्सरोगणैः ॥ जगामशाङ्करंलोकं तीर्थस्यास्यप्रभावतः ॥ ८० ॥ तत्रयेदृवापदास्सर्वे तेपिस्नात्वादिवङ्गताः ॥ एतत्तेकथितंपार्थ यथाष्टुत्तपुरातनम् ॥ ८१ ॥ अवणात्कीर्तनाच्चास्य गौसहस्रफलंलभेत् ॥ ८२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेनर्भदासाहात्म्यैषष्ठितमोऽध्यायः ॥ ८३ ॥

युधिष्ठिरउवाच ॥ श्रुत्वानानाविधान्धर्मस्तत्प्रसादान्महामुने ॥ नाहंतृप्तिन्तुगच्छामि नर्मदख्यानकीर्तनात् ॥ १ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ गावःपवित्रमतुलं गावःसर्वार्थसाधकाः ॥ तस्माद्दिगोप्रदानेन शिवभक्त्याप्रमुच्यते ॥ २ ॥ जैसा कुब्र हुआ सो आपसे कहागया ॥ ८३ ॥ इसके सुनने व कहने से हजार गोदानोंका फल पाता है ॥ ८२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेप्राकृतभाषाजुवादे नर्मदसाहात्म्यैषष्ठितमोऽध्यायः ॥ ८० ॥

युधिष्ठिरजी बोले कि हे महामुने ! आपके प्रसादसे अनेक तरह के धर्मों को सुनकर इस नर्मदाके आख्यानके कीर्तन से हम तृप्तिको नहीं प्राप्त होते हैं ॥ १ ॥ तब मार्कण्डेयजी बोले कि गौवें वड़ी पवित्र वस्तुहैं और गौवें सब अर्थोंकी सिद्धि करनेवालीहैं तिससे गौवोंके देने व महादेवकी भक्तिसे मनुष्य पापसे छुटताहै ॥ २ ॥

जिस देशमें महादेवजी की नित्य भक्तिसे युक्त मनुष्य होता है वह देशही पवित्र होजाता है फिर भाइयों के सहित वह पवित्र होता है इस बातको क्या कहना है ॥ ३ ॥ इस पुराण में छह हजार श्लोक नर्मदा माहात्म्य के कहेगये हैं ज्ञानयोग व धर्मयोगके तत्त्वके जाननेवाले ने इस बातको कहा है ॥ ४ ॥ धर्म और अधर्मों से जो गतियां होती हैं उनका हाल इस पुराण में कहागया है और तीर्थोंकी कथाके साथ उत्तम नर्मदा की कथा कहीगई है ॥ ५ ॥ उस कथाके सुनने व कहने से संसारबन्धन से छूटजाता है वसन और फूलों से युक्त पुराणविधाको सिंहासन पर स्थापित कर ॥ ६ ॥ और महादेव तथा विष्णुका पूजन कर पुराण को

यस्मिन्देशे भवेन्नित्यं शिवभक्तिसमन्वितः ॥ सोपि देशो भवेत्पूतः किम्पुनश्च स बान्धवः ॥ ३ ॥ उक्ता निपटसह
स्वाणि पुराणे मे कलातटे ॥ इत्याह ज्ञानयोगस्य धर्मयोगस्य तत्त्ववित् ॥ ४ ॥ धर्माधर्मगतीनाञ्च स्वरूपमुपवर्णितम् ॥ तीर्थाख्यानसमायुक्तं नर्मदाख्यानमुत्तमम् ॥ ५ ॥ कीर्तनाच्छ्रवणात्तस्य मुच्यते भवबन्धनात् ॥ विद्यासिंहासने दिव्ये वस्त्रपुष्पाधिवासिताम् ॥ ६ ॥ पूजयित्वा हरं विष्णुं शृणुयाद्वाचयेत्तथा ॥ श्रीमत्सिंहासनं वापि क्लृप्तं हेममुशोभनम् ॥ ७ ॥ हेमवस्त्रोपरि च्छन्नं नानारत्नविभूषितम् ॥ राजतन्ताम्रकंकाशं ब्रह्मचारिविनिर्मितम् ॥ ८ ॥ तत्तु तारसमुद्भूतं शृङ्गवद्रत्नभूषितम् ॥ दिव्यं सिंहासनं वापि पूजां कृत्वा प्रयत्नतः ॥ ९ ॥ गन्धाधिवासितकरः श्रीमदासनसंस्थितः ॥ शम्भ्वाय तनतीर्थेषु नरेन्द्रभवनेषु च ॥ १० ॥ बोधयेत्परमं धर्मं गृहग्रामपुरेषु च ॥ नर्मदा कीर्तनाच्छ्रोता शिवलोके महीयते ॥ ११ ॥ इदं तीर्थमिदं तीर्थं पर्यटन्नेति वैनरः ॥ नर्मदैवपरन्तीर्थमित्याह भगवाञ्छ्रवः ॥ १२ ॥ अस्मि

सुने और वक्तासे बेंचावे व सुवर्ण का बनाहुआ अतिशोभन चमकीला सिंहासन हो ॥ ७ ॥ जिसके ऊपरका भाग सोनहले वस्त्रोंसे ढका होवे और अनेक प्रकार के रत्नों से शोभितहो अथवा चांदी व तांबे व कांसेहीका होवे परन्तु ब्रह्मचारीका बनाया हुआ होवे ॥ ८ ॥ अथवा रत्नोंसे विभूषित, पीतलका शिखरवाला सिंहासन होवे उस दिव्य सिंहासनका अतियत्नसे पूजनकर ॥ ९ ॥ चन्दनसे सहकाले हाथवाला उत्तम आसनपर बैठाहुआ महादेवके स्थानोंसे युक्त तीर्थोंमें अथवा राजभवनोंमें ॥ १० ॥ व अपने घर व गांव व शहरमें पुराण में कहेहुये परमधर्मको श्रोताओंको समझावे नर्मदा की कथासे श्रोता शिवलोकमें पूजित होता है ॥ ११ ॥ यह तीर्थ है

यह तीर्थ है ऐसे ही मनुष्य भ्रमा करता है परन्तु निश्चय करके सबसे श्रेष्ठ तीर्थ नर्मदा ही है यह भगवान् महादेवजी ने कहा है ॥ १२ ॥ हे नरश्रेष्ठ ! इस तीर्थ में विधि से श्राद्ध करना चाहिये श्राद्ध में जो स्वागत किया जाता है उससे यमराज प्रसन्न होते हैं और श्राद्ध में जो आसन दिया जाता है उससे इन्द्र प्रसन्न होते हैं और पादार्घ्य से पितर प्रसन्न होते हैं और अन्न आदि के देने से प्रजापतिजी प्रसन्न होते हैं व ब्राह्मणों के चरणोदक से जब तक पृथिवी भीगी रहती है ॥ १३ ॥ १४ ॥ तब तक पितरलोग कमलदलों के पात्रों में जल पीते हैं विद्या के पढ़नेवाले को व संन्यासी को व वेदपाठी को व दण्डरहित परमहंसको और वैष्णव भिजुकको श्राद्ध का सब

स्तीर्थेन श्रेष्ठ श्राद्धं कार्यं विधानतः ॥ स्वागतेन यमः प्रीतश्चासनेन शतक्रतुः ॥ १३ ॥ पितरः पादशौचिना ब्रह्माद्येन प्रजापतिः ॥ विप्रपादोदकं क्लिन्नायावत्तिष्ठति मेदिनी ॥ १४ ॥ तावत्पुष्करपात्रेषु पिबन्ति पितरो जलम् ॥ विद्यावते स्नात काय भिक्षवे श्रोत्रियाय च ॥ १५ ॥ तथा परमहंसाय विष्णुव्रतधराय च ॥ सर्वोपस्करणं दत्त्वा शिवलोके महीयते ॥ १६ ॥ अनाहिताग्निनो विप्रमाहिताग्निन करोति च ॥ ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः स्ववित्तैर्नैव कारयेत् ॥ १७ ॥ अर्द्धाङ्गं सफ लंतस्य यावज्जीवन्न संशयः ॥ विष्णुलोके न्तकाले च भोगान्मुञ्क्ते च पुष्कलान् ॥ १८ ॥ स्वद्रव्येण च योजनं करोति विधिवद् द्विजः ॥ नर्मदा तीरमासाद्य ब्रह्मलोके समोदते ॥ १९ ॥ धार्वाहिरण्मयीं कृत्वा ब्राह्मणाय प्रकल्पयेत् ॥ क ल्पगातीरमाश्रित्य विष्णुलोके महीयते ॥ २० ॥ तिलतण्डुलकर्पूरसुसम्भोज्य विमिश्रितैः ॥ कुङ्कुमैर्वस्त्रधान्यैश्च नि

सामान देकर शिवलोक में पूजा जाता है ॥ १५ ॥ १६ ॥ जो ब्राह्मण अग्निहोत्र नहीं करता है उसको जो ब्राह्मण व क्षत्रिय व वैश्य अपने धन से अग्निहोत्री करता या करता है ॥ १७ ॥ वह उस अग्निहोत्री ब्राह्मण के जिन्दगी भर के फल के आधे का आधा (चतुर्थांश) फल पाता है इसमें कुछ सन्देह नहीं है और अन्ततः समय में विष्णुजी के लोक में पूरे भोगों को भोगता है ॥ १८ ॥ जो ब्राह्मण नर्मदा के किनारे जाकर अपने धन से यज्ञ को विधि से करता है वह ब्रह्मलोके महीयत है ॥ १९ ॥ सोने का आंवला बनवाकर जो नर्मदा के किनारे जाकर ब्राह्मण को देता है वह विष्णुलोक में पूजित होता है ॥ २० ॥ और जो मनुष्य वस्त्र व धान्यों से युक्त, तिल व

चावल, कपूर, सुन्दर भोज्य पदार्थों से मिलेहुये कुंकुम से बनाये हुये आवले को शिवजी के निकटमें व ग्रहणके समय में व अमरकण्टक पर्वत पर व नर्मदा के किनारेपर देताहै वह विष्णुलोक व स्वर्गमें वसताहै इसमें संशय नहींहै ॥ २१ ॥ २२ ॥ व जो उत्तम पुरुष सोने व रत्नोंके गहनोसे सजीहुई प्रत्यक्षगौ व घृतधेनु व गुडधेनु और शर्कराधेनुको नर्मदा और कपिला के योग में देता है वह इन गौवों को देकर सब पापों से छुटाहुआ विष्णुलोक में विहार करता है ॥ २३ ॥ २४ ॥ व-हे महाराज ! जो वहां नर्मदा व कपिलाके संगममें अपनी मांगीहुई भिक्षाका अन्न दियाजावे तो उसके पुण्यकी गिन्ती नहीं है किन्तु हे नृप ! जबतक वह संगम रहे

मितांशिवसधिन्नौ ॥ २१ ॥ पर्वकालेचयोदद्यात्पर्वतेभेकलातटे ॥ वसेत्सविष्णुलोकेषु नरःस्वर्गेनसंशयः ॥ २२ ॥ प्रत्यक्षधेनुयोदद्याद्धेमरत्नविभूषिताम् ॥ घृतधेनुगुडधेनुं शर्कराधेनुमेवच ॥ २३ ॥ रेवाकपिलयोर्योगे दत्तैतानरसत्तमः ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तो लोकेक्रीडतिवैष्णवे ॥ २४ ॥ यदि तत्र महाराज भिक्षान्नञ्च निवेदितम् ॥ तस्य संख्यानविद्ये त सयावत्संगमो नृप ॥ २५ ॥ एतत्सर्वेयथान्यायं कथितन्तवस्तुव्रत ॥ वैवस्वतेन्तरेथान्यच्छृणु त्वं नृप सत्तम ॥ २६ ॥ वीरणस्य तुराजर्षेर्भैत्रयोभूत्पुरोहितः ॥ तेन चायतनं विष्णोः कारितं नर्मदा तटे ॥ २७ ॥ पुण्यांश्चैवामरावत्या दिशिया म्यां व्यवस्थितम् ॥ तदायतनमाहात्म्यान्नर्मदायाः प्रभावतः ॥ २८ ॥ मोदते वैष्णवे लोके युगस्याद्धिजोत्तमः ॥ शृणु त्वं यानि तीर्था निरेवायाः पश्चिमोत्तरे ॥ २९ ॥ वनं मेघवनन्नाम यज्ञपर्वतमाश्रितम् ॥ रन्ति तदेवः पुरा तत्र चक्रवर्तीयुधिष्ठिर ॥ ३० ॥ गविनी तं कुलं येन स देवासुरमानुषम् ॥ पितरो भोचिता येन गोभिर्विनिहताः पुरा ॥ ३१ ॥ चाण्डालैश्च

तबतक वह विष्णुलोक में विहार करताहै ॥ २५ ॥ हे सुव्रत ! यह सब यथार्थ आपसे कहा गया अब हे नृपसत्तम ! और वृत्तान्त तुम सुनो कि वैवस्वतमन्वन्तरमें ॥ २६ ॥ वीरणनामक राजर्षि के भैत्रेय नामके पुरोहित होतेहुये उन्होंने ने नर्मदा के तट में ठाकुरद्वारा बनवाया ॥ २७ ॥ वह अमरावती पुरीके दक्षिण दिशा में विद्यमान है उस मन्दिरके माहात्म्यसे और नर्मदाके प्रभावसे ॥ २८ ॥ वे उत्तम ब्राह्मण आधे युगभर विष्णुके लोकमें आनन्द करते रहे अब नर्मदाके पर्वोह और उत्तर में जो तीर्थहैं उनको तुम सुनो ॥ २९ ॥ कि मेघवन नामका वन यज्ञपर्वत पर वर्त्तमान है हे युधिष्ठिर ! अगिले जमाने में वहां चक्रवर्ती राजा रन्तिदेव होतेहुये ॥ ३० ॥

जिन्होंने देवता, दैत्य और मनुष्योंके सहित अपने कुलको गोलोकमें प्राप्तकर दिया गौवोंसे पूर्वकालमें मारोग्ये अपने पितरोंको पापसे छुटा दिया ॥ ३१ ॥ जो चार डालों से मारोग्ये थे वे भी परमगतिको प्राप्तहुये चार डाल व जल व सांप व बिजली व ब्राह्मण ॥ ३२ ॥ व दांतोंवाले पशुओं से पापियों की मौत होती है वे लोग नारायणबलि से क्रिया करने से व तीर्थों में पिण्डोंके देनेसे परमगतिको प्राप्त होते हैं अवन्तीपुरके मालिक दधीचि नामके राजर्षि ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ सब धर्मधारियों से श्रेष्ठ इन्द्रके तुल्य पराक्रमवाले होतेहुये अगिले जमाने में देवता और दैत्यों के युद्धमें दैत्यों ने देवताओंको जीत लिया ॥ ३५ ॥ देवता और ब्राह्मणोंके मारनेवाले

हतायेच प्राप्नुवन्ति पराङ्गतिम् ॥ चार डाला दुदकात्सर्पादिद्युतो ब्राह्मणादिपि ॥ ३२ ॥ दन्तिभ्यश्च पशुभ्यश्च मरणं पाप शालिनाम् ॥ विष्णोर्बलिप्रदानेन क्रियाणां करणेन च ॥ ३३ ॥ तीर्थपिण्डप्रदानेन तेयान्ति परमाङ्गतिम् ॥ दधीचिर्नाम राजर्षिरवन्त्यधिपतिस्तथा ॥ ३४ ॥ सर्वधर्मभृतां श्रेष्ठशक्रतुल्य पराक्रमः ॥ पुरा देवासुरे युद्धे दैत्यैर्देवा विनिर्जिताः ॥ ३५ ॥ देवानां ब्राह्मणानाञ्च हन्तारो दैत्यकण्टकाः ॥ नष्टाः स्वपापदोषेण सभृत्यकुलबान्धवाः ॥ ३६ ॥ देवासु सुदितास्सर्वे लोकपालास्सवासवाः ॥ निर्विघ्नं पृथिवीकृत्वा लोकञ्चैव चराचरम् ॥ ३७ ॥ विध्यंगिरिङ्गतास्ते तु यस्मिन् न्वहति कल्पगा ॥ समर्थभूपतिज्ञात्वा दधीचिं कुरुसत्तम ॥ ३८ ॥ दत्तान्यस्त्राणिरत्नार्थं तस्य रान्नस्सुरोत्तमैः ॥ वज्रं शक्तिं तथा पाशं दण्डं खड्गं ध्वजं गदाम् ॥ ३९ ॥ त्रिशूलं चेति देवानामायुधानि प्रचक्षते ॥ तानि दत्त्वा यथान्यायं नाक पृष्ठमुदाययुः ॥ ४० ॥ पुराणमतमाज्ञाय दधीचिस्सत्यदिक्रमः ॥ शापस्यैव भयाद्भीतो नमस्कृत्य प्रशुभ्य च ॥ ४१ ॥

काटे ऐसे वे दैत्यलोग अपनेही पापके दोषसे अपने सेवक और परिवार व भाइयोंके सहित नष्ट होगये ॥ ३६ ॥ तब सब देवता व इन्द्रसहित सब लोकपाल आनन्दित होगये फिर पृथिवी और सब चराचर लोकको वेखटके करके ॥ ३७ ॥ वे सब देवतालोग विन्ध्याचलको चलेगये जहां नर्मदाजी बहती हैं वहां हे कुरुसत्तम ! राजा दधीचिको समर्थ जानकर ॥ ३८ ॥ उनकी रक्षाके वास्ते उत्तम देवताओंने राजाको अस्त्रोंको दे दिया वज्र, शक्ति, फेंकरी, दण्ड, तलवार, ध्वजा, गदा ॥ ३९ ॥ और त्रिशूल ये ही देवताओं के हथियार कहे जाते हैं इनको रीतिपूर्वक राजा को देकर प्रसन्नतासे देवता स्वर्गको चलेगये ॥ ४० ॥ पुराने मतको जानकर सच्ची

ताकृतवाले राजा दधीचि देवताओं के शापके भयसे डरेहुये देवताओं के नमस्कार कर और हथियारों को लेकर ॥ ४१ ॥ अपने प्रभावसे उन हथियारों को पानी बनाकर अपने शरीरके भीतर कर लिया तदनन्तर फिर और समय के होने पर फिर दानव लोग अपने बल से अहंकार को प्राप्त होतेहुये ॥ ४२ ॥ जम्भ, कुम्भ और ह्य-ग्रीव आदि दानव लोग फिर उठतेहुये दानवों के बलको जानकर इन्द्रसहित सब देवता डरगये ॥ ४३ ॥ समय लगे पर देवता लोग अपने अपने हथियारों की यादकर हे भारत ! नारद को दधीचि के पास भेजतेहुये ॥ ४४ ॥ उन देवताओं के ऋषि नारद जीने उज्जैनीपुरीको प्राप्त होकर मणि और सोनेकी वेदी बनीहैं जिसमें ऐसे

प्रभावात्तोयतांतीत्वा शरीरान्तन्त्यवेशयत् ॥ ४२ ॥ जम्भकुम्भहयग्रीवप्र-
मुखाः पुनरुत्थिताः ॥ दानवानां बलं ज्ञात्वा त्रस्ता देवास्सवासवाः ॥ ४३ ॥ कार्यकाले समुत्पन्ने संस्पृत्यास्त्रायुधानि
च ॥ नारदं प्रेषयामास दधीचिं प्रतिभारत ॥ ४४ ॥ अवन्तीसपुरीम्प्राप्य देवर्षिर्नारदस्तथा ॥ विवेश भवनं राज्ञो मणि
काञ्चनवेदिकम् ॥ ४५ ॥ उत्थितो नृपशार्दूलो मुनिर्नृष्ट्वा सुतेजसम् ॥ पूजयित्वा यथान्यायं हेमकासनं संस्थितम् ॥
४६ ॥ तन्तुष्ट्वा सुखासीनं राजा वचनमब्रवीत् ॥ किमर्थं मानुषे लोके देवलौकात्समागतः ॥ ४७ ॥ नारद उवाच ॥
युद्धं महत्समुत्पन्नं देवानां दानवैस्सह ॥ समर्पयन्त्वं शस्त्राणि क्षीयन्ते दानवा यथा ॥ ४८ ॥ कुरुकार्यं च देवानां सत्यं च
र्मन्व्रते स्थितः ॥ दधीचिस्त्वाच ॥ शृणु कार्यञ्च देवर्षे देवानां हितकाम्यया ॥ ४९ ॥ अचिरैरेव कालेन क्षयं यास्यन्ति

राजाके मकान में प्रवेश किया ॥ ४५ ॥ राजाओं में श्रेष्ठ दधीचि राजा सुन्दर तेजवाले मुनिको देखकर उठे और सोने के सिंहासन पर बैठेहुये मुनिका यथार्थ रीति से पूजनकर ॥ ४६ ॥ फिर सुखसे बैठेहुये उन मुनिजीको देखकर राजा वचन बोले कि आप देवलोक से मनुष्यलोकको किस वारते भलीभाति आयेहो ॥ ४७ ॥ तब नारदजी बोले कि देवताओंका दानवों के साथ बड़ा युद्ध पड़गया है सो अब आप उन हथियारों को दीजिये जिनसे दानव लोग क्षीण होजावें ॥ ४८ ॥ आप सच्चे धर्मके व्रतमें स्थितहो इससे देवताओं के कामको करो तब दधीचि बोले कि हे देवर्षे ! अब देवताओंके हितकी कामनासे जो काम करना है उसको तुम सुनो ॥ ४९ ॥

थोड़ेही कालमें सब दानवलोग नष्ट होजायँगे मैंने उन्हीं हथियारों की रचाके वास्ते हे महामुने ॥ ५० ॥ उनको पानी करके पीलिया है सो वे मेरी देहके भीतर वर्त्तमान हैं अब इनको देवतालोग उपाय से लेलेवें मैं इनको फिर देवताओं को देदूंगा ॥ ५१ ॥ हे नृपश्रेष्ठ ! इतना कहकर पूर्वकाल में राजा दधीचि गौवों को बुलातेहुये तब हे विशाम्पते ! गौवोंने दधीचि का मांस आदि सब चाटलिया केवल हड्डियों को छोड़दिया ॥ ५२ ॥ तब लोकपालोंने जैसे तैसे अपने हथियारों को पाया वह स्थान गोनई नाम से लोकों में प्रसिद्ध हुआ ॥ ५३ ॥ फिर देवताओं ने दैत्योंको मारा और फिर संसार भी अपने कामों में प्रवृत्त हुआ तदनन्तर वहां दानवाः ॥ मयातान्येवशस्त्राणि रक्षणार्थमहामुने ॥ ५० ॥ आपोभूतानिपीतानि शरीरेसन्तितानि ॥ उपायेनहिमृकृन्ति दास्याम्येतानिवैपुनः ॥ ५१ ॥ इत्युक्त्वाचनृपश्रेष्ठ आजुहावचगाःपुरा ॥ मांसादिभक्षितंगोभिरस्थिवज्रैर्विशारूपैः पुनःसृष्टिःप्रवर्तिता ॥ लोकपालैर्यथातथा ॥ गोनर्दनामनगरं तत्तुलोकैषुविश्रुतम् ॥ ५३ ॥ दानवानिहतादेववलोकंनतेयान्ति नतेषामुदकक्रिया ॥ ५५ ॥ गोविद्युत्पशुचाण्डालसर्पैर्विनिहतानराः ॥ दस्थीनिव्यसर्जयत् ॥ ५६ ॥ लिङ्गब्रह्मेश्वरंतत्र यज्ञपर्वतसन्निधौ ॥ धर्मसंशयमापन्नो रन्तिदेवोमहीपतिः ॥ ५७ ॥ पप्रच्छमुनिशार्दूलान्वशिशुप्रमुखान्दिजान् ॥ त्रिःप्रदक्षिणमावृत्य यथान्यायमिदं वचः ॥ ५८ ॥ केदेशाःपर्वताःपुराया नद्यःकाःकीर्तिताश्शुभाः ॥ नरकस्यान्पितृन्यत्र तद्वदेयुःसमुद्धरेत् ॥ ५९ ॥ अक्षयंचपितृश्राद्धं पितृणामक्षयाग राजा रन्तिदेवने विचार किया ॥ ५४ ॥ कि गौ, विजली, पशु, चाण्डाल और सर्पों से मारे हुये मनुष्य स्वर्ग को नहीं जाते हैं और न उनको जलदान होसक्ता है ॥ ५५ ॥ ऐसे बहुत काल तक अपनी रानियों के सहित राजा रन्तिदेव जी ने विचार कर फिर दधीचि की हड्डियों को धोयकर नर्मदा के जल में विसर्जन कर दिया ॥ ५६ ॥ वहां यज्ञपर्वत के तीर ब्रह्मेश्वर लिङ्ग है अब यहां धर्मकी सन्देह में पड़ेहुये राजा रन्तिदेव ने वशिष्ठ आदि उत्तम ब्रह्मर्षियों से पूछा उनकी तीन बार प्रदक्षिणाकर नीति के अनुकूल इस वचन को कहा ॥ ५७ ॥ कि कौन देश व कौन पर्वत व कौन नदियां बहुत पवित्र कहीं गई है जहां पर नरकोंमें पड़ेहुये पितरोंको

मनुष्य उद्धार करसके सो आपलोग हम से कहें ॥ ५९ ॥ जहांपर करने से पितरोंका श्राद्ध अक्षयफलवाला होवे और पितरोंकी अक्षयगति भी हो तब ऋषिलोग बोले कि हे भूपते ! हमलोगों के सहित आप मार्कण्डेयमुनि के आश्रमको चलो ॥ ६० ॥ क्योंकि नर्मदाके तट में बैठेहुये ये मार्कण्डेयजी भी सब कुछ जानते हैं मुनियों से ऐसे कहेगये रन्तिदेव भी उनके उसवचनको सुनकर ॥ ६१ ॥ मुनियोंके सहित नर्मदा तटके रहनेवाले मार्कण्डेयजीके पास जातेहुये और ब्राह्मणोंके सहित उनके नमस्कारकर पूजन करतेहुये ॥ ६२ ॥ तब कुशासन पर बैठेहुये मार्कण्डेयजी खड़े होकर वचनबोले मार्कण्डेयजीनेकहा कि नर्मदाजी किन पापी पितरोंको संसारसमुद्र

तिः ॥ ऋषय ऊचुः ॥ मार्कण्डेयाश्रमंगच्छ अस्माभिस्सहभूपते ॥ ६० ॥ सोपि सर्वविजानीयात्कल्पगतीरमाश्रितः ॥ तच्छ्रुत्वारन्तिदेवोपि मुनिभिःपरिभाषितः ॥ ६१ ॥ जगाममुनिभिस्सार्द्धकल्पगतीरवासिनम् ॥ सराजाब्राह्मणैस्सा र्द्धं प्रणिपत्यतथार्चयत् ॥ ६२ ॥ समुत्थायाब्रवीद्वाक्यमुपविष्टः कुशासने ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ कान्नमोचयतेघोरा निपतृन्संसारसागरात् ॥ ६३ ॥ शृण्वन्तुममवाक्यानि मुनयोविदितात्मनः ॥ सर्वतीर्थमयीरेवासर्वार्थात्ममयीशुभा ॥ ६४ ॥ शिवेनैतन्निगदितं पुराणैस्कन्दकीर्तिते ॥ कुब्जारेवासमायोगे विशेषात्सुरपूजिते ॥ ६५ ॥ तत्रस्नातादिवं यान्ति येमृतानपुनर्भवाः ॥ तत्रश्राद्धेनयोगेन पितॄणांपरमागतिः ॥ ६६ ॥ इदन्तेकथितंराजन्कुब्जारेवासमागमे ॥ अर्चयित्वामहेशानं तत्रवित्त्वाम्रकाक्लयम् ॥ ६७ ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तो गाणपत्यमवाप्नुयात् ॥ सार्द्धकोटिस्तुकन्या

से नहीं छुटासक्ती है ॥ ६३ ॥ यहाँके बड़े बड़े आत्मज्ञानी मुनिलोग मेरी बातोंको सुने कि ये नर्मदा सब तीर्थोंका रूपहैं और सब पदार्थ इन्हींमें वर्त्तमानहैं व पवित्र हैं ॥ ६४ ॥ यह स्कन्दपुराणमें महादेवजी ने कहाहै तिसमें देवपूजित कुब्जा और नर्मदा के संगम में विशेष फल होताहै ॥ ६५ ॥ वहाँ जिन्होंने स्नान किया है वे स्वर्ग को-जाते हैं और जो वहाँ मरे हैं वे फिर पैदा नहीं होसक्ते वहाँ श्राद्ध के करने से पितरों की परमगति होती है ॥ ६६ ॥ हे राजन् ! यह तुम से कहा गया कुब्जा और नर्मदा के समागम में बित्त्वाम्रक नाम के महादेव का पूजनकर ॥ ६७ ॥ सब पापोंसे छुटा हुआ गणों की राज्य को पाताहै वहाँ पर डेढ़ करोड़ कन्यायें

परम सिद्धि को प्राप्त हुई हैं ॥ ६८ ॥ हे भारत ! कामदेव के दोष से उन कन्याओं को पूर्वकाल के सुनियों ने शाप दिया था और भी कुवेरपुर के रहनेवाले विद्याधर, यक्ष, गन्धर्व और किन्नर भी उसी दोष से शापित हुये थे परन्तु वे सब कुब्जा और नर्मदा के समागम में सिद्धि को प्राप्त हुये ॥ ६९ ॥ सोमवती अमावस, कार्तिकी और ग्रहण आदि पर्वों में काशी, प्रयाग, पुष्कर और नैमिष ॥ ७१ ॥ ये सब कुब्जा और नर्मदा के समागम में स्नान करने को भलीभाँति आते हैं इसके सुनने व कहने से शिवलोक में पूजा जाता है ॥ ७२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणोरेवाखण्डे प्राकृतभाषास्तुवादेरन्तिदेवोपाख्यानं नैमिषस्थितमोऽध्यायः ॥ ६१ ॥

नां तत्र सिद्धिपराङ्गता ॥ ६८ ॥ शप्तास्ताः पूर्वसुनिभिः कामदोषेण भारत ॥ विद्याधराश्च यक्षाश्च गन्धर्वाः किन्नरास्तथा ॥ ६९ ॥ शप्तास्तैर्नैव दोषेण कुवेरपुरवासिनः ॥ सर्वे तैर्सिद्धिमापन्नाः कुब्जारेवासमागमे ॥ ७० ॥ अमासो मसमायोगे कार्तिक्या चैव पर्वणि ॥ वाराणसी प्रयागश्च पुष्करक्षेत्रौ मिषं तथा ॥ ७१ ॥ एते स्नातुं समाया न्ति कुब्जारेवासमागमे ॥ श्रवणात्कीर्तनादस्य शिवलोकं महीयते ॥ ७२ ॥ इति श्रीरेवाखण्डेरन्तिदेवोपाख्यानं नैमिषस्थितमोऽध्यायः ॥ ६१ ॥

रन्ति देव उवाच ॥ यथा शप्तास्तुताः कन्यास्ता सान्नामानि कल्पग ॥ श्रोतुमिच्छामि तत्त्वेन केषु स्थानेषु पूजिताः ॥ १ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ वाराणस्यां विशालाक्षी नैमिषे लिङ्गधारिणी ॥ प्रयागे ललिता देवी कामुका गन्धमादने ॥ २ ॥ मानसे कुमुदानाम विश्वयोनिस्तथा म्वरे ॥ गोमन्ते गोमती नाम मन्दरे कामचारिणी ॥ ३ ॥ मदोत्कटा चैत्ररथे तपन्ती हस्तिनापुरे ॥ कान्यकुब्जे तथा गौरी प्रभाकमलपर्वते ॥ ४ ॥ एकग्रे कीर्तिमत्याख्या विश्वाविश्वेश्वर तथा ॥ पुष्करे पुरु

राजा रन्तिदेवजी बोले कि हे कल्पग ! जैसे उन कन्याओं को शाप दिया गया हो और उनके जो जो नाम हों उनको हम तत्त्वसे सुना चाहते हैं और वे किन स्थानों में पूजी जाती हैं ॥ १ ॥ तब मार्कण्डेयजी बोले कि काशी में विशालाक्षी और नैमिष में लिङ्गधारिणी पूजी जाती हैं इसी प्रकार प्रयाग में ललिता देवी, गन्धमादन में कामुका ॥ २ ॥ मानस में कुमुदानाम उसी प्रकार अम्बर में विश्वयोनि, गोमन्त में गोमती नाम, मन्दर में कामचारिणी ॥ ३ ॥ चैत्ररथ में मन्दोत्कटा, हस्तिनापुर में

तपन्ती, कान्यकुब्ज में गौरी, कमलपर्वतपर प्रभा ॥ ४ ॥ एकाग्र में कीर्तिमती नाम, विश्वेश्वर में विश्वा, पुष्करमें पुरुहूता, केदारमें मार्गदायिनी ॥ ५ ॥ हिमालय में नन्दा, गोकर्ण में भद्रकर्णिका, स्थानेश्वर में भवानी, बिल्वकमें बिल्वपत्रिका ॥ ६ ॥ श्रीशैलमें माधवी उसीप्रकार भद्रेश्वर में भद्रा, वाराहपर्वत में जया, कमलालयमें कमला ॥ ७ ॥ रुद्रकोटिमें रुद्राणी, कालञ्जर में कोटि, महालिङ्गमें कपिला, माकोट में मुकुटेश्वरी ॥ ८ ॥ शालग्राम में महादेवी, शिवलिङ्ग में जलप्रिया, मायापुरी में कुमारी वैसेही सन्तानमें ललिता ॥ ९ ॥ उत्पलनाम स्थानमें सहस्राक्षी, हिरण्याक्षमें महोत्पला, तीर्था में मङ्गलानाम, पुरुषोत्तम में विमला ॥ १० ॥

हूतेति केदारेमार्गदायिनी ॥ ५ ॥ नन्दाहिमवतःपृष्ठे गोकर्णभद्रकर्णिका ॥ स्थानेश्वरभवानीति बिल्वकेबिल्वपत्रिका ॥ ६ ॥ श्रीशैलेमाधवीनाम भद्राभद्रेश्वरतथा ॥ जयावाराहशैलेतु कमलाकमलालये ॥ ७ ॥ रुद्रकोट्यान्तरुद्राणी कोटिःकालञ्जरतथा ॥ महालिङ्गेतुकपिला माकोटमुकुटेश्वरी ॥ ८ ॥ शालग्रामेमहादेवी शिवलिङ्गेजलप्रिया ॥ मायापुर्यङ्कुमारीतु सन्तानैललितातथा ॥ ९ ॥ उत्पलाख्येसहस्राक्षी हिरण्याक्षेमहोत्पला ॥ तीर्थायांमङ्गलानाम विमलापुरुषोत्तमे ॥ १० ॥ विपाशायाममोघाक्षी पाटलापुरण्डवर्द्धने ॥ नारायणीसुपाश्वैच त्रिकूटभद्रमुन्दरी ॥ ११ ॥ विपुलेविपुलानाम कल्याणीप्रलयाचले ॥ कोटीविकोटितीर्थेतु यमुनायांमृगावती ॥ १२ ॥ करवीरेमहालक्ष्मीरुमादेवीविनायके ॥ आरोग्यवैद्यनाथेतु महाकालेमहेश्वरी ॥ १३ ॥ अभयाकृष्णतीर्थेतु अमृताविन्ध्यकन्दरे ॥ माण्डव्येमाण्डुकानाम स्वाहामाहेश्वरेपुरे ॥ १४ ॥ छागलम्बाप्रचण्डेच चण्डिकामरकण्टके ॥ सोमेश्वरेवराहीतु प्रभासेपुष्करावती ॥ १५ ॥ देवमातासरस्वत्यां पारापारावतेतथा ॥ महालयेमहाभागा पयोण्यांपिङ्गलेश्वरी ॥ १६ ॥ संहि विपाशा में अमोघाक्षी, पुरण्डवर्द्धनमें पाटला, सुपार्व में नारायणी, त्रिकूट में भद्रमुन्दरी ॥ ११ ॥ विपुलमें विपुला, प्रलयाचल में कल्याणी, विकोटितीर्थ में कोटी, यमुना में मृगावती ॥ १२ ॥ करवीर में महालक्ष्मी, विनायक में उमादेवी, वैद्यनाथ में आरोग्या, महाकालमें महेश्वरी ॥ १३ ॥ कृष्णतीर्थ में अभया, विन्ध्यकन्दर में अमृता, माण्डव्यमें माण्डुकानाम, माहेश्वरपुर में स्वाहा ॥ १४ ॥ प्रचण्डमें छागलम्बा, अमरकण्टकमें चण्डिका, सोमेश्वरमें वराही, प्रभासेमें पुष्करावती ॥ १५ ॥

सरस्वती में देवमाता, वैसेही पागवत में पारा, महालय में महाभाग। पयोष्णी में पिङ्गलेश्वरी ॥ १६ ॥ कुतशौच में संहिता, कार्तिकेय में शाङ्करी, उत्पला-
वर्षमें लोला, शोणसङ्गम में सुभद्रा ॥ १७ ॥ मालासिद्धतल में लक्ष्मी, भारताश्रम में अनन्ता, जालन्धर में सिद्धमुखी, किष्किन्धापुरी के पर्वतपर तारा ॥ १८ ॥
देवदारुवन में पुष्टि, कश्मीरमण्डल में मेधा, हिमालय में भीमादेवी, वलेश्वर में तुष्टि ॥ १९ ॥ कपालमोचन में सिद्धि, कायावरोहण में माता, शङ्खोद्धारमें धृति
नाम, पिण्डारकमें ध्वनि ॥ २० ॥ चन्द्रभागा में कला, अक्षोदमें शिवधारिणी, वैजयन्ती में अमृता, वदरी में ओषधी ॥ २१ ॥ उत्तरकुरुमें भी ओषधी ही है, कुरा-

ताकृतशौचेतु कार्तिकेयेतुशाङ्करी ॥ उत्पलावर्षकेलोला सुभद्राशोणसङ्गमे ॥ १७ ॥ मालासिद्धतलेलक्ष्मीरनन्ताभा
रताश्रमे ॥ जालन्धरसिद्धमुखी ताराकिष्किन्धपर्वते ॥ १८ ॥ देवदारुवनेपुष्टिर्मेधाकश्मीरमण्डले ॥ भीमादेवीहि
माद्रौतु पुष्टिर्वलेश्वरेतथा ॥ १९ ॥ कपालमोचनेसिद्धिर्माताकायावरोहणे ॥ शङ्खोद्धारधृतिर्नाम ध्वनिःपिण्डारकेत
था ॥ २० ॥ कलातुचन्द्रभागायामक्षोदेशिवधारिणी ॥ वैजयन्त्यमृतानाम्ब वदर्यामोषधीतथा ॥ २१ ॥ ओषधीचोत्त
रकुरौ कुशक्षीपेकुशोदका ॥ मन्मथाहिमकूटेतु प्रमतेसत्यवादिनी ॥ २२ ॥ अश्वत्थेवन्दिनीनाम निधिवैश्रवणेत
था ॥ गायत्रीवेदवदने पार्वतीशिवसन्निधौ ॥ २३ ॥ देवलोकेतथेन्द्राणी ब्रह्मणस्पेसरस्वती ॥ सूर्यविम्बेप्रभानाम
मातृकवैष्णवीतथा ॥ २४ ॥ अरुन्धतीसतीनांच अप्सरस्युतिलोत्तमा ॥ चित्तिर्ब्रह्मकलानाम शक्तिस्सर्वशरीरिणा
म् ॥ २५ ॥ एतदुद्देशतःप्रोक्तं नामाष्टशतमुत्तमम् ॥ अष्टोत्तरन्तुतीर्थानां शतमेकं ह्युदाहृतम् ॥ २६ ॥ यः पठेत्प्रातरु

द्दीपमें कुशोदका, हिमकूटमें मन्मथा, प्रमत्तमें सत्यवादिनी ॥ २२ ॥ अश्वत्थ में वन्दिनी, वैश्रवण में निधि, वेदों के मुखमें गायत्री, महादेव जी के समीप पार्वती ॥
२३ ॥ उसीप्रकार देवलोकमें इन्द्राणी, ब्रह्माजी के मुखमें सरस्वती, सूर्यविम्ब में प्रभा, मातृका और वैष्णवी ॥ २४ ॥ सती स्त्रियोंमें अरुन्धती, अप्सराओंमें तिलो-
त्तमा और सब देहवाले जीवों में ब्रह्मकला नामकी चिति शक्ति रहती है ॥ २५ ॥ ये संक्षेपसे उच्चम एकसौ आठ तीर्थोंकी शक्तियों

का ॥ २६ ॥ जो प्रातःकाल उठकर पठ करता है वह परमगति को प्राप्त होता है इन् तीर्थोंमें स्नानकर जो मनुष्य इन् शक्तियोंको दर्शन करते हैं ॥ २७ ॥ सब पापों से छूटेहुये वे परमगति को प्राप्त होते हैं और जो कोई मनुष्य इन् देवीजीके स्थानोंमें अपने शरीर को छोड़ता है ॥ २८ ॥ वह ब्रह्मलोक को नांवकर महादेवजी के स्थान को जाता है तीज व अष्टमी को महादेवजीके समीप जो मनुष्य इन् एकसौ आठ नामों को सुनाता है वह मनुष्य बहुत पुत्रोंवाला होता है गोदानके समय में, आढ़ के समय में, विवाह व मङ्गलकार्य में ॥ २९ ॥ और देवताओं के पूजनविधान में इसका पढ़नेवाला ब्रह्महोता है इस बड़ी महिमावाले स्तोत्र को सुनकर

तथायसयातिपरमांज्ञतिम् ॥ एषुतीर्थेषुयस्नात्वा एताःपश्यन्तिमानवः ॥ २७ ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तास्तेयान्तिपरमा
ज्ञतिम् ॥ यःकरोतितनुत्यागमुमास्थानेषुमानवः ॥ २८ ॥ सभिन्वाब्रह्मसदनं पदमाप्नोतिशाङ्करम् ॥ नामाष्टकशतंय
स्तुश्रावयेच्छिवसन्निधौ ॥ २९ ॥ तृतीयायान्तथाष्टम्यां बहुपुत्रोभवेन्नरः ॥ गोदानेश्राद्धकालेच विवाहेमङ्गलैतथा ॥
३० ॥ देवार्चनविधौवापि पठन्ब्रह्मत्वमाप्नुयात् ॥ श्रुत्वैतत्स्तोत्रमनुलं नमस्कृत्यचपर्वतम् ॥ ३१ ॥ राजास्वपितृमो
क्षाय यज्ञार्थंप्राहकल्पगम् ॥ कस्मिंस्तीर्थेभवेद्यज्ञः पितॄणांमोक्षदायकः ॥ ३२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरैवाखण्डे मा
तृस्तुतिर्नामद्विषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६२ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

मार्कण्डेयउवाच ॥ रेवातटेमहापुरण्ये पितॄणांमोक्षणमप्रति ॥ कुरुयज्ञसहाभाग मुच्यन्तेपितरोयथा ॥ १ ॥ इति
श्रुत्वामहाराज नमस्कृत्यचकल्पगाम् ॥ वशिष्ठप्रमुखैस्साद्धं जगामस्वपुरन्दुपः ॥ २ ॥ सवत्सानाञ्चलक्षैकमप्रभृता
और पर्वत के नमस्कारकर राजारन्तिदेव अपने पितरों के मोक्षके वारते यज्ञ के लिये मार्कण्डेयजी से बोले कि पितरों को मोक्ष देनेवाला यज्ञ किस तीर्थ में होना
चाहिये ॥ ३१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरैवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनुवादमातृस्तुतिर्नामद्विषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६२ ॥ * ॥ * ॥

तब मार्कण्डेयजी बोले कि हे महाभाग ! अतिपवित्र नर्मदातट में पितरोंको नरकसे छुटाने के लिये आप यज्ञ करो जिससे तुम्हारे पितर आपसे छूटजावें ॥ १ ॥
हे महाराज ! इतनी बात को सुनकर और नर्मदा के नमस्कार कर वशिष्ठ आदि ऋषियों के सहित राजा रन्तिदेव अपने शहर को आतेहुये ॥ २ ॥ और वहा आकर

बछड़ोंवाली एकलाख गौवें और दशहजार बेबियानी गौवें, बीसहजार श्यामकर्ण घोड़े, मणि, माणिक और मोती आदि से सजेहुये उच्चैःश्रवा घोड़ें कीसी शोभा-
वाले और भी दशहजार घोड़े व घण्टाआदि आभूषणों से सोहेतेहुये दशहजार हाथी ॥ ३४ ॥ और मणि, माणिक आदि रत्नों की तो गिन्तीही नहीं करीजासक्ती
है इतना सामान लेकर अनेक देशों के राजाओं व पूरे वेदोंके पढ़नेवाले ब्राह्मणों के सहित ॥ ५ ॥ नीन, सितार और वेदों की ध्वनियों से चारों तरफ़ सब दिशाओं
को गुञ्जारते हुये व पृथ्वी और आसमान को आवाज से छूतेहुये ॥ ६ ॥ बड़े आनन्द व यज्ञ के सामान से युक्त राजारन्तिदेव नर्मदा के तीर आतेहुये ॥ ७ ॥

युतन्तथा ॥ विंशतिःश्यामकर्णानांहयानाञ्चदशायुतम् ॥ ३ ॥ मणिमाणिक्यमुक्तादिभूषितोच्चैःश्रवस्त्वषाम् ॥ अयु
तञ्चकरीन्द्राणां घण्टाभरणशोभिनाम् ॥ ४ ॥ मणिमाणिक्यरत्नानां संख्यांकर्तुन्नशक्यते ॥ नानादेशनृपैस्सार्द्धं ब्रा
ह्मणैर्वेदपारगैः ॥ ५ ॥ वेणुवीणानिनादेन ब्रह्मघोषवेणच ॥ आपूरयन्दिदशस्सर्वा दिवंभूमिञ्चसंस्पृशन् ॥ ६ ॥ हर्षेण
महतायुक्तो यज्ञसम्भारसंवृतः ॥ रन्तिदेवोमहीपालः कल्पगतीरमाश्रितः ॥ ७ ॥ अनेकमध्यभोज्यानां तत्रसंख्यान
विद्यते ॥ अष्टयोजनपर्यन्तं यज्ञयूपाश्चमण्डपाः ॥ ८ ॥ हेमरत्नमयास्तम्भा मणिमौक्तिकभूषिताः ॥ हिरण्मयानि
कुण्डानिर्वेदिकाश्चसहस्रशः ॥ ९ ॥ सुवश्चयज्ञपात्राणिसर्वस्वर्णमयन्तथा ॥ समाहूतास्ततोदेवा ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥

१० ॥ चन्द्रादित्यौग्रहैस्सार्द्धं नक्षत्रध्रुवमण्डलम् ॥ सिद्धाविद्याधरायज्ञासुरासुरमहोरगाः ॥ ११ ॥ देवराजश्चदेवाश्च
बृहस्पतिपुरोगमाः ॥ ततोयज्ञस्समारब्धो ब्राह्मणैर्वेदपारगैः ॥ १२ ॥ होमेनतर्पितादेवाः सर्वलोकनिवासिनः ॥ नि
वहां खाने व चबाने की चीजों की गिन्ती नहीं थी आठ योजन तक यज्ञों के खम्भे व मण्डप बने थे ॥ ८ ॥ मणि और मोतियों से सजेहुये रत्नों से जड़े सोने
के खम्भे बनायेगये और सोने के कुण्ड व वेदी हजारों बनाई गई ॥ ९ ॥ सुवा आदि यज्ञ के पात्र सब सोनेही के बने थे तदनन्तर ब्रह्मा, विष्णु और महादेव
आदि देवता बुलायेगये ॥ १० ॥ ग्रहों के सहित चन्द्रमा व सूर्य, नक्षत्रोंके सहित ध्रुवमण्डल, सिद्ध, विद्याधर, यक्ष, देवता, दैत्य, उत्तम नाग ॥ ११ ॥ इन्द्र, बृ-
हस्पति आदि और भी सब देवता बुलाये गये तदनन्तर वेदपाठी ब्राह्मणों ने यज्ञ का प्रारम्भ किया ॥ १२ ॥ होम से सब लोकोंके रहनेवाले देवताओं को तृप्त किया

और अपनी सातों जीभों से युक्त बिना धुआँके अग्नि जलते हुये ॥ १३ ॥ हे नराधिप ! यज्ञ में अग्निदेव आपही प्रत्यक्षरूप से वर्त्तमान रहे तदनन्तर दक्षिणा को पायेहुये ब्राह्मणोंने यज्ञ को समाप्त किया ॥ १४ ॥ हजारों चोबदारों ने देशमें डुगडुगी पिटवादी कि जो जिस बातकी इच्छा करता हो वह उसको यहां पावेगा इसमें सन्देह नहीं है ॥ १५ ॥ और वहां माता व पिताके कुलवाले पुरिखा बुलायेगये जो लोग अकाल मीचसे मरे व पशुओंकी योनि में पड़ेथे ॥ १६ ॥ वे सब यज्ञ के प्रभाव से उत्तम योनियोंको पातेहुये और खुलासा रूप को धरेहुये नर्मदा देवी वहां पूजीगई ॥ १७ ॥ और वहां पार्वतीजी के सहित भगवान् महादेवजी का भी

धूमश्चज्वलद्बहिस्सप्तजिह्वासमन्वितः ॥ १३ ॥ प्रत्यक्षोहव्यवाहश्च स्वयंयज्ञेनराधिप ॥ ततोनिवर्तितोयज्ञो ब्राह्मणैः ॥ १४ ॥ घोषणाभामिताराष्ट्रे प्रतीहारैस्सहस्रशः ॥ योंयंकामयेतेकामं सोऽत्रतन्वेत्यसंशयः ॥ १५ ॥ आहूताःपूर्वजास्तत्रमातृकाःपैतृकास्तथा ॥ अपमृत्युवशंप्राप्तास्तिय्यग्योनिगताश्चये ॥ १६ ॥ तेसर्वेशुभयोनित्वमापन्नायज्ञयोगतः ॥ अर्चितानम्मर्मदादेवी प्रत्यक्षारूपधारिणी ॥ १७ ॥ अर्चितोभगवांस्तत्र पार्वत्यासहितोहरः ॥ श्रीपतिश्चाश्रियासार्द्धं शङ्खचक्रगदाधरः ॥ १८ ॥ शक्रादयस्तथादिवास्सपत्नीकाअलंकृताः ॥ गाश्चाश्वान्श्चकरीन्द्राश्च ब्राह्मणोभ्योन्यवेदयत् ॥ १९ ॥ यच्चान्यद्विद्यतेकिञ्चिद्धनंधान्यपयोदधि ॥ अग्निशौचानिवस्त्राणि सर्वतेभ्योन्यवेदयत् ॥ २० ॥ युगपत्पूजितादेवा ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥ अर्चितानम्मर्मदादेवी शैलमूलेव्यवस्थिता ॥ २१ ॥ प्रवाहोनिर्गतोयत्र कुब्जारेवासमागमे ॥ पितरस्तर्पितादेवाः प्राप्ताश्चपरमाङ्गतिम् ॥ २२ ॥ दिव्ययानसमारूढो दधीचिश्चन्द्रणो

पूजन किया गया और लक्ष्मीजीके सहित शङ्ख, चक्र और गदा के धरनेवाले विष्णु भी पूजेगये ॥ १८ ॥ वैसेही इन्द्र आदि देवता अगनी स्त्रियों के सहित गहने व कपड़ों से शोभित कियेगये गौवें, घोड़े और हाथियों को राजा ने ब्राह्मणों को दिया ॥ १९ ॥ और भी जो कुछ वहां धन, अन्न, दूध व दही व अग्निसे साफ कियेहुये कपड़े रहगये वह सब पदार्थ उन ब्राह्मणों कोही देदिया गया ॥ २० ॥ ब्रह्मा, विष्णु और महादेव आदि सब देवता एक साथही पूजेगये और पर्वत की जड़पर विराजमान नर्मदा देवी भी पूजीगई ॥ २१ ॥ जहां कुब्जा और नर्मदा के संगम में धारा निकली थी उसमें पितर और देवताओं का तर्पण कियागया इसी से वे सब

परमगति को पातेहुये ॥ २२ ॥ और अपने आगेवाले एकसौ आठ व पछेवाले एकसौ आठ पुन्यों से युक्त महाराज दधीचि दिव्य सवारी पर सवार होनेहुये ॥ २३ ॥ तदनन्तर हे नृपोत्तम ! देवताओं की सवारियों जिस रास्ते से जाती हैं उसी रास्ते में निर्धमान जो सैकड़ों ब्रह्मा आदि देवताये वे सब राजा रन्तिदेवसे बोलते हुये ॥ २४ ॥ कि हे भूमिप ! आपका कल्याण हो हम सबलोग आपके इस सच्चे कर्म से बहुत प्रसन्न हैं अब जो चाहो सो वर आप मागलो आप अपने पितरों व माताओं के सहितपरमलोक को प्राप्तहुये हो ॥ २५ ॥ तब राजा रन्तिदेव बोले कि जो आपलोग मुझको वर देनेवाले हो तो जहां सम्पूर्ण वेदके पढ़नेवाले ब्राह्मणों ने कलश को स्थापन किया है ॥ २६ ॥ जो कि चारों वेदों के धारण करनेवाले और भक्त हैं उसी स्थानमें पाँचों वेद जिसके शरीरहीमें वर्त्तमान हैं ऐसा शिवजी

समः ॥ शतमष्टोत्तरं पूर्वं पश्चिमं तदनन्तरम् ॥ २३ ॥ देवयानपथे सन्तः शतशोऽयन्यपोत्तम ॥ ऊचुश्च देवास्ते सर्वे ब्रह्मा
धारन्ति देवकम् ॥ २४ ॥ वृणीष्व मद्रन्ते प्रीतास्सत्येनानेन भूमिप ॥ प्राप्तोऽसि परमं लोकं पितृभिर्मातृभिस्सह ॥ २५ ॥
रन्ति देवो ब्रवीद्वाक्यं यूयममेवरदायदि ॥ कलशः स्थापितो यत्र ब्राह्मणैर्वेदपासैः ॥ २६ ॥ चतुर्वेदधरैर्भक्तैः पञ्चब्रह्मत
बुधैस्सवयम् ॥ शिवलिङ्गं भवेत्तत्र ज्वालामालासमप्रभम् ॥ २७ ॥ यज्ञपर्वतमासाद्य प्रवाहो यज्ञनिर्गतः ॥ स्नाने विनिर्ग
ता कुब्जा चरुकेचरुका तथा ॥ २८ ॥ चर्मिला चाङ्घ्रिभूले तु शिल्पेशिल्पा विनिर्गता ॥ धनदो देवताश्चान्यास्तस्य शूलप्र
णिपत्य च ॥ २९ ॥ कल्पगाञ्चनमस्कृत्य कामिकं यानमाश्रिताः ॥ स्तोत्रं च केमहाभाग लिङ्गरूपस्य शूलिनः ॥ ३० ॥
लोकनाथो जगत्स्रष्टा प्रणिपत्य यथाविधि ॥ ब्रह्मोवाच ॥ नास्ति रुद्रसमो देवो नास्ति रुद्रसमो गुरुः ॥ ३१ ॥ नित्यं दासल

का लिङ्ग लपटके समान तेजवाला प्रकट होजावे ॥ २७ ॥ अगिले जमाने में जो यज्ञ पर्वतके तीर यज्ञहुआ था वहां से प्रवाह अर्थात् एक धारा निकली और जो यज्ञ के अन्त में स्नान किया गया उस से कुब्जा निकली यज्ञमें जो चरु होता है उससे चरुका निकली ॥ २८ ॥ पर्वत की जड़में चर्मिला निकली और पर्वत में जहां कुछ खोदखाद हुई वहां से शिल्पा निकली ये पाँचों धारायें नर्मदा में मिली हैं अब कुवेर व और सब देवतालोग महादेवजी का पूजन व प्रणाम कर ॥ २९ ॥ और नर्मदा के नमस्कार कर मनमानी सवारी पर सवार होतेहुये तदनन्तर हे महाभाग ! लोकों के मालिक व जगत् के नानेवाले ब्रह्माजी लिङ्गरूप महादेवजी

को विधि से प्रणामकर स्तुति करते हुये ब्रह्माजी बोले कि रुद्र के बराबर कोई देवता नहीं है और न रुद्र के बराबर कोई गुरु है ॥ ३० ॥ ३१ ॥ हमेशा निर्मल शरीर जिनका रहता है और अपनेही प्रकाश से निर्मल जिनकी मूर्ति है और मङ्गल के देनेवाली भस्मही जिनका चन्दन है ऐसे देवताओं के मालिक आप के लिये नमस्कार है ॥ ३२ ॥ काले गलेवाले, सबका रूप, अनेक मूर्तिवाले, बहुतरूपवाले, शोभावाले, सब से पुराने देव जो आपहो तिनके लिये नमस्कार है ॥ ३३ ॥ सब से बड़े परमेश्वर, सबके जाननेवाले आपके लिये नमस्कार है व सब जिनकी देह के नमस्कार करते हैं और आप किरी के नमस्कार नहीं करते ॥ ३४ ॥ और पूजा करनेलायकों को भी पूजाकरने लायक, तीननेत्रवाले और त्रिशूल के धारण करनेवाले, ब्रह्मा, इन्द्र और विष्णु करके जानने योग्य, संसार की उत्पत्ति व रक्षा के

कांयाथस्वंप्रभामलेमूर्तये ॥ शिवभस्माङ्गरागाय देवेशायनमोस्तुते ॥ ३२ ॥ नीलकण्ठाय देवाय सर्वायामितमूर्तये ॥ बहुरूपाय कान्ताय शाश्वताय नमोस्तुते ॥ ३३ ॥ परायपरमेशाय सर्वज्ञाय नमोस्तुते ॥ सर्वप्रणतदेहाय स्वयम्प्रणताय च ॥ ३४ ॥ पूज्यानामपि पूज्याय नमस्त्यक्ताय शूलिने ॥ ब्रह्मेन्द्रविष्णुवेद्याय उत्पत्तिस्थितिहेतवे ॥ ३५ ॥ देवस्तुतनमस्तेस्तु मुक्तिमुक्तिप्रदाय च ॥ वामाय वामरूपाय वामोमारोषभासिने ॥ ३६ ॥ वामकान्ताद्धेहाय ईशानाय नमोस्तुते ॥ श्रुत्वास्तोत्रमिदन्देवो ब्रह्मणस्सोमितद्युतिः ॥ ३७ ॥ वृणीष्व वाञ्छितं यज्ञे वरमित्याह शंकरः ॥ ददामिते नमन्देहो यस्त्वया वरदोऽपि सतः ॥ ३८ ॥ उवाच वचनं ब्रह्मा शङ्करं सर्वगं प्रभुम् ॥ पञ्चवक्त्रं पञ्चलिङ्गं ब्रह्मपूज्यं प्रकीर्तितम् ॥ ३९ ॥ बिल्वानिवेदिताय स्मिन्नाम्नाश्च विनिवेदिताः ॥ बिल्वान्नामलिङ्गं संसारार्णवतारणम् ॥ ४० ॥ प्रसिद्धिपर

कारण आपके लिये नमस्कार है ॥ ३५ ॥ व हे देवस्तुत ! मुक्ति और मुक्ति के देनेवाले आपके लिये नमस्कार है उत्तमस्वभाववाले, सुन्दररूपवाले, बायें तरफ पार्वतीजी के धारण करने से प्रकाशवाले ॥ ३६ ॥ बायें तरफ स्त्रीवाली है आधी देह जिनकी, ऐसे ईश्वर जो आप हैं तिनके लिये नमस्कार है इसतरह बड़े तेजवाले महादेवजी ब्रह्माजी के इस स्तोत्र को सुनकर ॥ ३७ ॥ शङ्कर जीने यह कहा कि इस यज्ञमें जो तुम्हारे मनमें हो वह वर मागो जो वर तुम चाहते हो वह हम तुम को देंगे इसमें कुछ संदेह नहीं है ॥ ३८ ॥ तब सबमें व्यापि रहे, सबके मालिक, शङ्करजी से ब्रह्माजी वचन बोले कि पांचमुहवाला पञ्चलिङ्ग ब्रह्मा के पूजने

योग्य कहागया है ॥ ३६ ॥ और उसपर बेल व आंब चढ़ायेगये हैं इससे संसारसमुद्र का तारनेवाला वह लिङ्ग आपके प्रसाद से बिल्वाग्रक नाम से पूरा प्रासिद्ध होवे हे भगवन् ! जहां छोटी नर्मदा है और जहां यह उत्तम बिल्वाग्रक लिङ्ग है ॥ ४० ॥ ४३ ॥ हे नरव्याघ्र ! वहां स्नानकर शिवलोक को पावे संसार के भलेकरने से स्तुति कियेजाते अपने मन्दिर को चलेगये और ब्रह्मा आदि देवता भी अपने अपने स्थानों को चलेगये ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ तदनन्तर लिङ्ग के रूप को धरेहुये शङ्कर

मांयातु भगवंस्त्वत्प्रसादतः ॥ वामनामेकलायत्र यत्रेदं लिङ्गमुत्तमम् ॥ ४१ ॥ तत्र स्नात्वा नरव्याघ्र शिवलोकमवाप्य ते ॥ इदं वरमहं मन्ये लोकानुग्रहकारकम् ॥ ४२ ॥ शङ्करस्तुतयेत्येवं प्राह ब्रह्माणमव्ययम् ॥ एवमुक्त्वा महेशानो गण रन्ति देवः प्रतुष्टाव लिङ्गरूपधरं शिवम् ॥ निशम्य रन्ति देवस्य स्तोत्रं प्राह महेश्वरः ॥ ४५ ॥ वरं वृणीष्व भद्रन्ते स्तोत्रे तायेतु तिर्यग्योनिगतानराः ॥ ४७ ॥ अस्य तीर्थस्य माहात्म्यात्तेयान्तु परमाद्भुतिम् ॥ अत्र यद्दीयते दानं सर्वं भवति चाक्षयम् ॥ ४८ ॥ इदं वरमहं मन्ये यदि तुष्टोसि शङ्कर ॥ अमासो मसमायोगे कर्त्तव्या चैव पर्वाणि ॥ ४९ ॥

जी की राजारन्तिदेवजी स्तुति करतेहुये रन्तिदेवजी के स्तोत्रको सुनकर महादेवजी बोले ॥ ४५ ॥ कि हे सुव्रत ! इस स्तोत्र से तुम्हारा कल्याणहो तुम वर को मांगो तब रन्तिदेवजी वचन बोले कि जो मुझको शिवही वरके देनेवाले हैं ॥ ४६ ॥ तो हे महादेवजी ! यह तीर्थ आप को सदानहीं छोड़ना चाहिये जो मनुष्य पार्श्व के समूह में डूबेहुये हैं और पशुओं की योनि में प्राप्त हो रहे हैं ॥ ४७ ॥ वे सब इस तीर्थ के माहात्म्य से परमगति को प्राप्त होवें और यहां जो कुछ दान दिया जावे वह सब श्रद्धय होजावे ॥ ४८ ॥ हे शङ्कर ! जो आप प्रसन्नहो तो हम इसी वर को चाहते हैं तब महादेवजी बोले कि सोमवती अमावास्या को अथवा

कार्तिकी व और किसी पर्व में ॥ ४६ ॥ यहां जो कुछ दान दिया जावे वह अनन्त होजावे हे राजन् ! पापों का नाश करनेवाला यह तीर्थ आप से कहा गया ॥ ५० ॥
इस तीर्थ में विश्वेदेव उत्तम सिद्धि को प्राप्त हुये अगस्त्य, शौनक, पाराशर, अवधर्मर्षण ॥ ५१ ॥ और भी अनेक मुनिलोग परमसिद्धि को प्राप्तहुये यहांपर हजारों
मुनि तपस्या से स्वर्ग को जातेहुये ॥ ५२ ॥ संक्रान्ति, व्यतीपात, चन्द्र व सूर्यग्रहण, सोमवती अमावास्या और पडशीतिमुख में ॥ ५३ ॥ कियेहुये पुण्यको दशगुना
वृद्धियुक्त समझो यह महादेवजी ने सत्य कहा है कुब्जा और नर्मदा के समागम में सत्राकरोड़ तीर्थ रहते हैं ॥ ५४ ॥ वह जगह नर्मदा के दक्षिण उत्तर एक कोस

अत्रयद्दीयतेदानं तदनन्तंसमश्नुते ॥ एतत्तेकथितंराजंस्तीर्थपापप्रणाशनम् ॥ ५० ॥ विश्वेदेवाःपरांसिद्धिमहिंम
स्तीर्थसमागताः ॥ अगस्त्यश्शौनकश्चैव पाराशरोवधर्मर्षणः ॥ ५१ ॥ संसिद्धिपरमास्प्राप्ता नानामुनिगणास्तथा ॥
अत्रायुतंमुनीनांच तपसादिवमारुहत् ॥ ५२ ॥ संक्रमेचव्यतीपाते ग्रहणेचन्द्रसूर्ययोः ॥ अमासोमसमायोगे पडशी
तिमुखेतथा ॥ ५३ ॥ पुण्यंदशगुणंवृद्धिं सत्यमेतच्छिवोदितम् ॥ सपादकोटिस्तीर्थानां कुब्जारेवासमागमे ॥ ५४ ॥
दक्षिणोत्तरभागेतु क्रोशमानं प्रतिष्ठितम् ॥ अवशःस्ववशोवापि प्राणान्यस्तुपरित्यजेत् ॥ ५५ ॥ राजावर्षसहस्रा
णि विद्याधरपुरेभवेत् ॥ कृमिकीटपतङ्गाद्यास्तीर्थेस्मिन्प्राणमोज्ज्वले ॥ ५६ ॥ दिव्यं वर्षसहस्रन्तु राजाविद्याधरेपुरे ॥
विल्वाग्रकंसिद्धलिङ्गं कामभोगफलप्रदम् ॥ ५७ ॥ कुब्जेश्वरं महाच्चान्यद्ब्रह्महत्यां व्यपोहति ॥ अत्रान्तरे महाराजशिव
क्षेत्रं विदुर्बुधाः ॥ ५८ ॥ रेवाकुब्जासमायोगेयवानांसप्ततिस्तथा ॥ अमासोमसमायोगेस्नानाच्छान्तिः प्रकीर्तिता ॥ ५९ ॥

तक प्रतिष्ठित है इस क्षेत्र में परवश व अपने वश होकर जो प्राणों को छोड़ता है ॥ ५५ ॥ वह हजारों वर्षतक विद्याधरों के पुर में राजा होता है कृमि, कीट, पतंगवा
आदि भी इस तीर्थ में प्राणों के छोड़ने पर ॥ ५६ ॥ देवताओं की हजारवर्ष तक विद्याधरों के पुर में राजा होता है यह विल्वाग्रक नामका सिद्धलिङ्ग मनमाने भोग
व फलों का देनेवाला है ॥ ५७ ॥ और दूसरा कुब्जेश्वर भी महालिङ्ग ब्रह्महत्याको नाश करता है हे महाराज ! इसी विल्वाग्रक और कुब्जेश्वरके बीचमें विद्वान्लोग
शिवजी का क्षेत्र जानते हैं ॥ ५८ ॥ नर्मदा और कुब्जाके समागम में सत्तर जौभरे का प्रमाणवाला वह क्षेत्र है उसमें सोमवती को स्नान करने से शान्ति होती है ॥ ५९ ॥

काशी, कुरुक्षेत्र, प्रयाग, नैमिष, पुष्कर, गया और उत्तम केदारतीर्थ ॥ ६० ॥ इन में सोमवती अमावास्या को साधारण फल होता है और कुब्जा व नर्मदाके संगम में अक्षय फल कहा गया है ॥ ६१ ॥ तिलोदक देने से लड़का अपने माता व पिता के कुलवाले इधर उधर के सब पुरुषोंको नरकसे उद्धार करता है ॥ ६२ ॥ अब वे राजा रन्तिदेवभी अपने सब पुरिखोंको उद्धारकर अपने घरको जातेहुये हे राजन् ! यह कुब्जा और नर्मदाका समागम तुमसे कहा गया ॥ ६३ ॥ रन्तिदेव, हरिश्चन्द्र, पुरुहूत और पुरूरवा यहां अनेक यज्ञों को करके स्वर्ग में देवताओं की नाई विहार करते हैं ॥ ६४ ॥ हे नरसत्तम ! इस तीर्थ के कहने व सुननेसे सब पापोंसे निर्मल

वाराणसीकुरुक्षेत्रं प्रयागोनैमिषंतथा ॥ पुष्करंचगयाचैवकेदारंतीर्थमुत्तमम् ॥ ६० ॥ फलमेतेषुसामान्यममासो
मसमागमे ॥ अबयञ्चफलंप्रोक्तं कुब्जारेवासमागमे ॥ ६१ ॥ तिलोदकप्रदानेन मातृकंपैतृकंसुतः ॥ नरकादुद्धरे
त्सर्वान्पूर्वानपिपरांनपि ॥ ६२ ॥ सोपिराजागृहंप्राप्तः सर्वानुद्धृत्यपूर्वजान् ॥ अयन्तेकथितोराजन्कुब्जारेवासमाग
मः ॥ ६३ ॥ रन्तिदेवोहरिश्चन्द्रः पुरुहूतःपुरूरवाः ॥ अत्रेण्द्वानिविविधैर्नैर्दिव्यन्तिदिविदेववत् ॥ ६४ ॥ श्रवणात्कर्त
नादस्यतीर्थस्यनरसत्तम ॥ सर्वपापविशुद्धात्मा शिवलोकेमहीयते ॥ ६५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणैरेवाखण्डे कुब्जामा
हात्म्येत्रिषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६३ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

मार्कण्डेयउवाच ॥ अथान्यत्कथयिष्यामि तीर्थतीर्थवंशुभम् ॥ याम्यप्रदेशैरेवाया आश्रमस्सुरपूजितः ॥ १ ॥
सुवर्णद्वीपविख्यातो देवद्रोणीसमावृतः ॥ हारीतोगौतमोविष्णुस्सावर्णिःकौशिकस्तथा ॥ २ ॥ एतेचान्येचबहवो

होगया है आत्मा जिसका ऐसा मनुष्य शिवलोक में पूजाजाता है ॥ ६५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणैरेवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनुवादेकुब्जामाहात्म्येत्रिषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६३ ॥
मार्कण्डेयजी बोले कि अब और भी सब तीर्थोंमें श्रेष्ठ व शुभ तीर्थ हैं नर्मदा के दक्षिण तरफ देवताओं से भी पूजागया ऐसा आश्रम है ॥ १ ॥ सुवर्ण-
द्वीप इस नामसे प्रसिद्ध है और देवताओं की गुफाओं से युक्त है वहां हारीत, गौतम, विष्णु, सावर्णि तथा कौशिक ॥ २ ॥ ये व और भी तारीफी बातवाले मुनिलोग

रहते हैं उनमें कोई एक महीने के व्रत करनेवाले, कोई एक पाख के व्रत करनेवाले, कोई चान्द्रायण के करनेवाले, कोई कुच्छ के करनेवाले, कोई फल व जड़ों के खानेवाले, कोई वायु के खानेवाले ॥ ४ ॥ कोई धुवके कणोंको पीतेहैं और कोई जलाहारी हैं व कोई एक पांवसे खंडेहैं और कोई अधिपांव से खंडेहैं ॥ ५ ॥ कोई दांतों व ओखली से काटकूट के खानेवाले है कोई सूर्यही को देखते हैं ऐसे २ ब्रह्मके जाननेवाले वेद व स्मृतियों में प्रवीण ब्राह्मण वहां रहते हैं ॥ ६ ॥ इति-हास और पुराणों के जाननेवाले व मोक्षके उपायों के विचारनेवाले और नित्य अग्निहोत्र व जप और यज्ञकर्म में तत्पर रहनेवाले ॥ ७ ॥ अपने वेदोंके शब्दसे

मुनयश्शंसितव्रताः ॥ मासोपवासिनःकेचिदन्येपक्षोपवासिनः ॥ ३ ॥ चान्द्रायणपराश्रान्ये तथान्येकृच्छ्रचारिणः ॥ फलमूलाशिनःकेचित्तथान्येवायुभक्षकाः ॥ ४ ॥ कणधूमंपिवन्त्यन्ये जलाहारास्तथापरे ॥ एकपादाःस्थिताःस्थिताःकेचिदन्येचार्द्धपदाःस्थिताः ॥ ५ ॥ दन्तोत्खलिनःकेचिदन्येसूर्य्यावलोकिनः ॥ ब्राह्मणाश्चब्रह्मविदः श्रुतिस्मृतिविशारदाः ॥ ६ ॥ इतिहासपुराणानि मोक्षोपायविचिन्तकाः ॥ अग्निहोत्रपरानित्यं जपयज्ञक्रियापराः ॥ ७ ॥ वेदध्वनितनिर्घोषैस्तारयन्तिजगत्रयम् ॥ नतस्मिन्सञ्चरेत्पापं तमस्सूर्य्योदयेयथा ॥ ८ ॥ मेकलादक्षिणेतीरे ब्रह्मलोकइवस्थितः ॥ आम्रजम्बूकदम्बैश्च कपित्थैर्विल्वदाडिमैः ॥ ९ ॥ कदलीबीजपूराद्यैर्जम्बीरैःपनसैस्तथा ॥ न्यग्रोधबदरैर्मुख्यैर्बहुवृक्षविभूषितम् ॥ १० ॥ पुन्नागैर्नागवकुलैरशोकैस्तिलकैस्तथा ॥ मन्दारैश्चम्पकैश्चाभ्रातर्कैर्नीलोत्पलोत्पलैः ॥ ११ ॥ पत्रपुष्पफलोपेतैर्नैर्मसैर्वलंकृतम् ॥ नानापक्षिगणोपेतं सिद्धगन्धर्वसेवितम् ॥ १२ ॥ व्याहरन्त्यण्डजाम्सर्वे

तीनों लोकोंको तार रहे हैं उस स्थान में पाप कभी नहीं आता है जैसे सूर्यके उदय में अंधरा नहीं आता है ॥ ८ ॥ मानो नर्मदा के दक्षिणवाले तटमें ब्रह्मलोक विद्यामान है आंब, जमुनी, कदम्ब, कैथा, बेल, अनार ॥ ९ ॥ केला, बिजौरा, जम्बीरा, कटहर, बरगद और बेरीआदि भारी अनेक वृक्षों से भूषित है ॥ १० ॥ और भी पुन्नाग, नाग, मौलसिरी, अशोक, तिलक, मदार, चम्पा, आंवला और नीले कमल व और कमल आदि ॥ ११ ॥ पत्ते व फूल और फलों से युक्त सब तरह के वृक्षों से सुहावना हो रहा है अनेकतरह के पक्षियों से युक्त और सिद्ध व गन्धर्वोंसे सेवित है ॥ १२ ॥ हे नृप ! जहापर सब पक्षी मनुष्यों की आवाज से बोलते हैं ऐसे

गुणोंसे युक्त सबसे उत्तम सुवर्णदीप था ॥ १३ ॥ अब हे राजन् ! पहले कल्प में स्वायम्भुव मन्वन्तर के सत्ययुगमें इसी सुवर्णदीपके रहनेवाले मनुष्य महादेवजी के पूजनसे ॥ १४ ॥ सब अज्ञानको छोड़कर शिवजीके लोकमें विहार करते हैं पितरोंको अन्न व तिलोदक देनेसे ॥ १५ ॥ पापोंको छोड़कर ब्रह्माजी के पुरमें रहते हैं हे भूप ! पुण्यवाली कार्तिकी में यह तीर्थ सब तीर्थोंके फलका देनेवाला होताहै ॥ १६ ॥ परन्तु कलियुगमें माया से मोहित होरहे मनुष्य इसको नहीं देखते है नर्मदा के दक्षिणतरफ करोड़ों तीर्थ अनेक प्रकार के ॥ १७ ॥ प्रसिद्ध हैं परन्तु वह स्थान केवल सिद्ध व मुनियों से जानाजाता है और जो नारितिक व मर्यादिके बिगाडने मानुषाणांगिरानृप ॥ एतद्गुणसमायुक्तं सुवर्णदीपमुत्तमम् ॥ १३ ॥ स्वायम्भुवेन्तरराजन्नादिकल्पकृत्युगे ॥ अर्चनार्हं वदेवस्य सुवर्णदीपवासिनः ॥ १४ ॥ अपहायतमः कृत्स्नलोकैक्रीडन्तिशाङ्करे ॥ पितृणामन्नदानेन तिलतोयप्रदानतः ॥ १५ ॥ मलापकर्षणं कृत्वा वसन्ति ब्रह्मणः पुरे ॥ पुण्यायां भूपकार्तिक्यां सर्वतीर्थफलप्रदः ॥ १६ ॥ नैतत्पश्यन्ति मनुजाः कलौ मायाविमोहिताः ॥ कल्पगायाम्यभागे तु तीर्थकोटिरनेकधा ॥ १७ ॥ प्रसिद्धं सिद्धमुनिभिर्ज्ञायते केवलं हितम् ॥ नास्तिकैर्भिन्नमर्यादैः पुराणस्मृतिनिन्दकैः ॥ १८ ॥ तैलाभ्यर्चनैर्वेदोक्तकरैरेवा तटे तथा ॥ कलिमायाविमूढैश्च स्थानं तन्न प्रदृश्यते ॥ १९ ॥ हिरण्यगर्भास्थाने तु यस्मिन् बहतिकल्पगा ॥ यज्ञगर्भेश्वरनाम शिवलिङ्गप्रकीर्तितम् ॥ २० ॥ पूज्यते सिद्धगन्धर्वैस्सुरासुरमहोरगैः ॥ यत्र वैवस्वतो राजा सूर्यपुत्रो महायशः ॥ २१ ॥ तस्य तीर्थस्य माहात्म्याच्चन्द्रविम्बाननोभवत् ॥ चैत्रस्यैव तु मासस्य शुक्लपक्षे नराधिप ॥ २२ ॥ चतुर्दश्यां पौर्णमास्यां यत्र सन्निहितं पुराणं व स्मृतियों के निन्दा करनेवाले हैं ॥ १८ ॥ अथवा तैलियापण्डा हैं व नर्मदाके किनारे वेदमें कहेहुये कर्मोंके नहीं करनेवाले व कलियुगकी मायासे मूढ़ हैं वे उस स्थानको नहीं देखते हैं ॥ १९ ॥ जिस स्थानमें सुवर्ण जिसमें भराहुआ है ऐसी नर्मदा बहती है और वहां यज्ञगर्भेश्वर नाम शिवजी का लिङ्ग कहा गया है ॥ २० ॥ उस लिङ्गका सिद्ध, गन्धर्व, देवता, दैत्य और नाग पूजन करते हैं जहां सूर्यके पुत्र बड़े यशवाले राजा वैवस्वत ॥ २१ ॥ उसी तीर्थके माहात्म्य से चन्द्रविम्बके समान मुड़ेवाले होगये हे नराधिप ! चैत्र महीने के उजियाले पाखमें ॥ २२ ॥ चौदस व पूर्णमासी बिये जहां महादेवजी विद्यमान हैं वहा हे भारत !

तिलोदक व पिण्डदानसे भारी दक्षिणाका देनेवाला मनुष्य अपने पितरों को नरक से उद्धार करता है और आप जबतक सूर्य व चन्द्रमा देख पड़ते हैं तबतक विष्णुलोक में वास करता है ॥ २३ ॥ वहा जो कुछ दान दिया जाताहै वह कुरुक्षेत्र के बराबर होताहै वहां प्राणों के छोड़नेपर जीव यमलोक को नहीं देखते हैं ॥ २५ ॥ नर्मदाके उत्तरवाले किनारे पर पर्यङ्कनाम का पर्वत है वह शोभावान् शुभरूप पर्वत कि जिसमें सब देवतालोग रहते हैं विन्ध्याचलका पुत्र है ॥ २६ ॥ उसपर पापों के हरनेवाले विष्णुभगवान् आपही बैठे हैं जोकि मनुष्यों के पापोंके हरनेवाले हैं और नर्मदाके तटपर विद्यमान हो रहे हैं ॥ २७ ॥ हे महाराज ! वहा

तोहरः ॥ तिलोदकप्रदानेनपिण्डदानेनभारत ॥ २३ ॥ पितृन्समुद्धरेत्तत्र नरकाद्भूरिदक्षिणः ॥ निवसेद्विष्णुवेलाके या वच्चन्द्रार्कदर्शनम् ॥ २४ ॥ तत्रयर्हयितेदानं कुरुक्षेत्रसमंहितत् ॥ प्राणत्यागेकृतेतत्र नपश्यन्ति यमालयम् ॥ २५ ॥ रेवायाउत्तरेकूले पर्यङ्कोनामपर्वतः ॥ सचविन्ध्यसुतःश्रीमान्सर्वदेवमयश्शुभः ॥ २६ ॥ तत्रपापहरोविष्णुः स्वयंतिष्ठतिकेशवः ॥ नरपापहरोयस्तु नर्मदातटमाश्रितः ॥ २७ ॥ तत्रस्नात्वामहाराज गोसहस्रफलंलभेत् ॥ तर्पिताःपितरस्तस्य तुप्तायान्तिहरेःपुरम् ॥ २८ ॥ एकादशीन्द्वादशींवा तत्रयःकुरुतेनरः ॥ नतस्यष्टुनरावृत्तिर्मर्त्यलोकेदुरासदे ॥ २९ ॥ क्रोशमात्रप्रमाणश्च हरिश्चेत्रप्रकीर्तितम् ॥ अपमृत्युमृतायेच तेयान्तिपरमाङ्गतिम् ॥ ३० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणरेवाखण्डेविष्णुकीर्तननामचतुःषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६४ ॥ * ॥ * ॥

मार्कण्डेयउवाच ॥ नर्मदायाम्यभागेतु तीर्थपापप्रणाशनम् ॥ भारुडव्यस्याश्रमंपुण्यं सिद्धगन्धर्वसेवितम् ॥ १ ॥

स्नानकर एक हजार गोदान के फलको पाताहै वहांपर तर्पण जिनका कियागया ऐसे उसके पितर तसहुये विष्णुजीके पुरको जातेहैं ॥ २८ ॥ और वहां जो मनुष्य एकादशी व द्वादशीका व्रत करता है उसकी फिर इस कठिन संसारमें आवृत्ति नहीं होती है ॥ २९ ॥ एक कोस का प्रमाण जिसका है ऐसा विष्णुजी का क्षेत्र कहागयाहै वहां जो अकालमीच से मरेहुये हैं वे परमगति को पाते हैं ॥ ३० ॥ इति श्रीरेवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनुवादविष्णुकीर्तननामचतुःषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६४ ॥ फिर मार्कण्डेयजी बोले कि नर्मदा के दक्षिणतरफ में पापोंका नाश करनेवाला तीर्थहै वहां सिद्ध व गन्धर्वों से सेवित, पुण्यवाला, भारुडव्यमुनि का आश्रमहै ॥ १ ॥

उसमें विभाण्डक, गार्ग्य और ऋष्यशृङ्गादि उत्तम व्रतवाले हजारों मुनिलोग रहते हैं ॥ २ ॥ ऐसे अशोकवनिका नाम के उत्तमतीर्थ को हे राजन् ! इस समय में तुम सुनो वहां पार्वतीजी के सहित महादेवजी रहते हैं ॥ ३ ॥ और उस आश्रम में शोकरहित निर्मल महादेवजी अपना आवेश रखते हैं जहां विशोकानदी के साथमें नदियों में श्रेष्ठ नर्मदाजी मिली हैं वहां स्नान करनेवाले स्वर्गको जाते हैं और जो मरे हैं वे फिर नहीं होते हैं और वहां अशोकेश्वरलिंग है जो कि प्रत्यक्ष ही सिद्धि व कल्याण करनेवाला है ॥ ४ ॥ वहां शापसे भट होगये ब्राह्मणोंको नारदजी ने छुटाया है उस तीर्थके माहात्म्य से वे देवता होकर स्वर्गमें आनन्द करते हैं ॥ ६ ॥

विभाण्डकश्चगार्ग्यश्च ऋष्यशृङ्गादयस्तथा ॥ तस्मिन्महत्संख्याता मुनयश्शंसितव्रताः ॥ २ ॥ अशोकवनि
कांराजञ्छृणुसाम्प्रतमुत्तमम् ॥ तत्रसन्निहितोदेव उमयासहितोहरः ॥ ३ ॥ आविष्टश्चाश्रमेतत्र विशोकोविमलद्रिश
वः ॥ विशोकयासरिच्छेष्टा नर्मदायत्रसङ्गता ॥ ४ ॥ तत्रस्नातादिवंयान्ति येभृतानपुनर्भवाः ॥ अशोकेश्वरलिङ्गंच
प्रत्यक्षंसिद्धिशङ्करम् ॥ ५ ॥ शापभ्रष्टाद्विजास्तत्र नारदेनविमोचिताः ॥ तस्यतीर्थस्यमाहात्म्यान्मोदन्तेदिविदेव
ताः ॥ ६ ॥ नानावृक्षफलैःपुष्पैस्सर्वकामसम्पन्वितैः ॥ नानापक्षिगणैर्बुधं नानावृक्षनिषेवितम् ॥ ७ ॥ सिद्धविद्याधरै
र्यज्ञैर्गन्धर्वैःकिन्नरैस्तथा ॥ वेणुवीणानिनादेन शङ्खवादित्रनिस्स्रवैः ॥ ८ ॥ शोभतेसर्वदारजन्नर्मदाविन्ध्यसङ्गमः ॥
अशोकादेवतायत्रब्रह्मशक्रपुरोगमाः ॥ ९ ॥ विश्वेदेवाश्रमन्तद्विस्सर्वदेवनमस्कृतम् ॥ विश्वायाश्रतथापुत्रा विश्वेदेवाः
प्रकीर्तिताः ॥ १० ॥ अशोकवनिकायाञ्चजनयामासकश्यपः ॥ वैवस्वतेन्तरेप्राप्ते त्रेतायान्नरसत्तम ॥ ११ ॥ पञ्चायु

और वह स्थान सब कामनाओं के देनेवाले अनेक वृक्षोंके फलों व फूलोंसे युक्त है और अनेक प्रकार के पक्षियों व अनेक प्रकार के वृक्षोंसे भी सेवित है ॥ ७ ॥ सिद्ध, विद्याधर, यक्ष, गन्धर्व और किन्नरों के वेन व सितारकी आवाज से व शङ्ख व और नाजाओंके शब्दसे ॥ ८ ॥ हे राजन् ! वह नर्मदा और विन्ध्याचल का सङ्गम हमेशा शोभायमान रहता है जहां ब्रह्मा और इन्द्र आदि देवता बेसोच रहते हैं ॥ ९ ॥ सत्र देवताओं से नमस्कार किया गया वह विश्वेदेवों का आश्रम है विश्वाके लड़के विश्वेदेव कहेगये हैं ॥ १० ॥ उनको अशोकवनिका में कश्यपजी ने पैदा किया है वैवस्वत मन्वन्तरके त्रेतामें यह हाल हुआ था हे नरसत्तम ! ॥ ११ ॥ वहां बहुत

अच्छे प्रचास हजारतीर्थ वास करते हैं और वहाँ सावित्री तथा देवताओंकी माताश्रदिति सिद्धहुई हैं ॥ १२ ॥ व देवयानी, इन्द्राणी, रोहिणी, सम्भरायणी, दाक्षायणी, लोकोंके नमस्कार करनेयोग्य बड़े यशवाली लोपामुद्रा ॥ १३ ॥ सूर्यकी स्त्री रत्नावली, ध्रुवा, तारा और गणेश्वरी ये भी सब वहाँ सिद्ध होती हुई और भी वहाँकी रहनेवाली सैकड़ों स्त्रियाँ उस स्थानकरके बेसोच करदी गई ॥ १४ ॥ इस तीर्थके माहात्म्य से मनुष्य पापसे छूट जाता है हे भारत ! कुआँर के महीने के उजियाले पाखकी चतुर्दशी को ॥ १५ ॥ जिसके पुत्र नहीं जीते अथवा बाँझस्त्री वं कुरूप व विधवा स्त्री स्नानको कियेहुये पञ्चरत्न व फलों से युक्त घटों से महादेवजी का

तानितीर्थानि निवसन्तिशुभानिच ॥ तत्रसिद्धाचसावित्री देवमातादितिस्तथा ॥ १२ ॥ देवयानीतथेन्द्राणी रोहिणीसम्भरायणी ॥ दाक्षायणीलोकवन्द्या लोपामुद्रामहायशा ॥ १३ ॥ रत्नावलीसूर्यमाय्या ध्रुवातारागणेश्वरी ॥ अशोकास्तेनविहितास्तत्रस्थाश्शतसंख्यकाः ॥ १४ ॥ अस्यतीर्थस्यमाहात्म्यानुच्यतेकिल्बषान्नरः ॥ शुक्लपद्मेचतुर्दश्यामाश्विनेमासिभारत ॥ १५ ॥ अपुत्रिणीतथाबन्ध्या दुर्भगाभर्तृवर्जिता ॥ पञ्चरत्नफलैःस्नाता दिव्यकुम्भैस्समर्चयेत् ॥ १६ ॥ सहस्रजनमसाभूयः पुत्रिणीसुभगाभवेत् ॥ अशोकवनिकाक्षेत्रे तत्रगौर्यावरःकृतः ॥ १७ ॥ यस्मिन्वहतिसादेवी नर्मदासप्तकल्पगा ॥ तत्रेष्टधर्ममराजेन वरुणेनमहात्मना ॥ १८ ॥ नैर्ऋत्येततथान्यैश्च लोकपालैर्यथाविधि ॥ प्रत्यक्षोहव्यवाहश्च लोकपालानुपागतः ॥ १९ ॥ अत्रिमरीचिःकश्यपश्चकुस्तत्रमखोत्तमम् ॥ अन्यक्षेत्राच्छतगुणा तत्रदानादिकाक्रिया ॥ २० ॥ वाराणसीकुरुक्षेत्रं गयावैनैमिषंतथा ॥ मायापुरीपुष्करश्च प्रयागःशशिभूष

पूजनकरे ॥ १६ ॥ जो वह हजारजनमतक लडकौवाली व सोहागिल रहती है यह फल अशोकवनिका के क्षेत्रमें होताहै क्योंकि वहाँको पार्वतीजी ने वरदान किया है ॥ १७ ॥ जिस स्थानमें सातकल्प तक रहनेवाली नर्मदादेवी बहती हैं वहाँधर्मराज, महात्मा वरुण और नैर्ऋत्य इसीतरह और भी लोकपालोंने विधि से यज्ञको कियाहै अग्नि भी लोकपालोंके पास प्रत्यक्ष होकर आये हैं ॥ १८ ॥ १९ ॥ अत्रि, मरीचि और कश्यप ने भी वहा उत्तम यज्ञको किया है और क्षेत्रमें सौगुना वहाँ

दान आदि कर्मोंका फल होता है ॥ २० ॥ काशी, कुरुक्षेत्र, गया, नैमिष, मायापुरी, पुष्कर, प्रयाग, शशिभूषण ॥ २१ ॥ और काश्यपी आदि सब तीर्थ वहीं हैं जहां नर्मदा जी बहती हैं इससे अशोकवनिका के बराबर और तीर्थको जाननेवाले नहीं जानते हैं ॥ २२ ॥ अगिले जमाने में हे राजन् ! जहां ब्रह्माजीने यज्ञों में उत्तम अश्व-मेध यज्ञको किया है और पूर्वकालमें इस तीर्थ के माहात्म्यसे पटनाके रहनेवाले ब्राह्मणोंको कुत्तेकी योनिसे छोड़ा दिया है तब राजाशुधिष्ठिरजी बोले कि हे तात ! ब्रह्मा जीने सौ यज्ञोंको कैसे किया ॥ २३ ॥ २४ ॥ और पूर्वकालमें कुत्तेकी योनि से ब्राह्मणोंको कैसे छोड़ा दिया और अगिले जमानेमें इन्द्रके बराबर कौन राजा होता हुआ ॥ २५ ॥

एम् ॥ २१ ॥ काश्यपीसर्वतीर्थानि यत्र तिष्ठति कल्पगा ॥ अशोकवनिकायास्तु नान्यतीर्थसमं विदुः ॥ २२ ॥ इष्टं यत्र पुराराजन् हयमेधं मखोत्तमम् ॥ ब्रह्मणामोचिताः पूर्वं विप्राः कौलेययोनितः ॥ २३ ॥ अस्य तीर्थस्य माहात्म्यात् पाटली पुत्रवासिनः ॥ शुधिष्ठिर उवाच ॥ हयमेधशतेनेष्टं कथं तातस्वयम्भुवा ॥ २४ ॥ कथञ्चमोचिता विप्राः पूर्वकौलेययोनि तः ॥ कोवाराजापुरा ब्रह्मन्देवराजसमोभवत् ॥ २५ ॥ एतत्सर्वयथान्यायं शंसमेमुनिसत्तम ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ शृणु राजन् महाभाग समाख्या नं पुरातनम् ॥ २६ ॥ अशोकवनिकातीर्थं कल्पगा तटमाश्रितम् ॥ न जानन्ति महामूढा मनुजाः पापमोहिताः ॥ २७ ॥ गुप्तादुत्तरन्तीर्थं सर्वतीर्थोत्तमोत्तमम् ॥ विशोकेश्वरलिङ्गन्तु तस्मिन्परमसिद्धिदम् ॥ २८ ॥ पूज्यते सिद्धगन्धर्वनतत्पश्यन्ति मानुषाः ॥ दर्शनात्स्पर्शनात्तस्य ब्रह्महत्यां व्यपोहति ॥ २९ ॥ स्वायम्भुवेन्तरे प्राप्ते आदिकल्पे कृते युगे ॥ रविश्चन्द्रो महाराज चक्रवर्ति महायशः ॥ ३० ॥ सोमवंशजनिप्राप्तः काञ्चीपुरपतिस्त

हे मुनिसत्तम ! यह सब ठीक ठीक आप मुझ से कहिये तब मार्कण्डेयजी बोले कि हे महाभाग, राजन् ! अब तुम पुराने आख्यानको सुनो ॥ २६ ॥ नर्मदाके किनारेपर विद्यमान अशोकवनिका तीर्थको पापों से मोहित महामूढ मनुष्य नहीं जानते हैं ॥ २७ ॥ गुप्तसे अतिगुप्त वह तीर्थ है और सब तीर्थोंसे उत्तमोत्तम है उसमें बड़ी सिद्धिका देनेवाला विशोकेश्वर लिङ्ग है ॥ २८ ॥ उसको सिद्ध व गन्धर्वलोग पूजते हैं और मनुष्य उसको नहीं देखते हैं उसके दर्शन व स्पर्श से ब्रह्महत्याको मनुष्य नाश कर देता है ॥ २९ ॥ स्वायम्भुवमन्वन्तरके प्रासहोनेपर पहले कल्पके सत्ययुग में हे महाराज ! बड़े यशवाले चक्रवर्ती रविश्चन्द्र राजा हुये ॥ ३० ॥ उन्होंने सोमवंश

में जन्मको पायाथा और काञ्चीपुर के मालिकहुये सब पृथिवी की राज्य करतेहुये जैसे इन्द्र स्वर्गकी राज्य करतेहैं ॥ ३३ ॥ सो वे राजा अनेक वृक्षोंसे व्याप्त और अनेक पक्षियोंसे युक्त व अनेक मुनियोंसे सेवित ॥ ३२ ॥ जहां अगस्त्येश्वरनाम का महादेवजीका शुभ मन्दिर था वहां को जातेहुये जिस स्थानको अगस्त्य आदि बड़े तपस्वी सब मुनिलोग सेवन करते हैं ॥ ३३ ॥ जहां सात कल्पतक बहनेवाली नर्मदा व अमरकण्टक पर्वतहै वहीं सूर्यग्रहणमें राजाओंमें उत्तम राजा रविश्रन्द्र ॥ ३४ ॥ हाथी, घोड़े, रथ, पैदल, खजाना, कौज और सवारियोंके सहित मुनियों के समूहसे घिरे व तपस्याको करतेहुये और आग ऐसे जलतेहुये महात्मा अगस्त्य नाम

था ॥ शशासपृथिवीसर्वा यथाशक्रस्त्रिविष्टपम् ॥ ३१ ॥ गतस्तुपृथिवीपालो नानावृक्षसमाकुलम् ॥ नानापत्तिगणो
जुष्टं नानामुनिनिषेवितम् ॥ ३२ ॥ यत्रागस्त्येश्वरन्नाम शम्भोरायतनं शुभम् ॥ सेव्यते मुनिभिः सर्वैरगस्त्याद्यैस्तपोधनैः ॥
३३ ॥ राहुसूर्यसमायोगे रविश्रन्द्रो नृपोत्तमः ॥ सप्तकल्पवहायत्र शैलश्चामरकण्टकः ॥ ३४ ॥ हस्त्यश्चरथपादातैः
सकौशबलवाहनैः ॥ तपस्यन्तं महात्मानं मुनिसङ्घैस्समावृतम् ॥ ३५ ॥ मैत्रावरुणिकन्नाम ज्वलन्तमिति पावकम् ॥ ते
षां मध्ये समुत्थाय शारिङल्यश्च महातपाः ॥ ३६ ॥ उरसाष्टयिर्वीगत्वा सोगस्तिपरिपृच्छति ॥ रविश्रन्द्रो महातेजा
स्समायातस्तवाश्रमम् ॥ ३७ ॥ पुरोहितो ह मस्यास्मि जानीहित्वन्तपोनिधे ॥ त्वत्पादार्चनमाकाङ्क्षी मन्यसे चेदनुग्रहः ॥
३८ ॥ अगस्त्य उवाच ॥ आगच्छ तु नृप श्रेष्ठ इशीर्षं सिंहासने स्थितः ॥ आगतस्तदनुज्ञातः पादौ जग्राहतस्य च ॥ ३९ ॥
अर्घपादैश्च सम्पूज्य पप्रच्छ कुशलं मुनिः ॥ कुशलन्ते महाभाग सान्तः पुरपरिच्छदः ॥ ४० ॥ उवाच वचनं राजा मुनी

मुनिके पास जातेहुये तब वहां बड़े तपवाले शारिङल्यजी उन मुनियों के बीच में उठकर ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ और छातीसे पृथ्वीको जाकर अर्थात् साष्टांग प्रणामकर उन्होंने अगस्त्यसे पूछा कि बड़े तेजवाले राजा रविश्रन्द्र आपके आश्रमको आयेहैं ॥ ३७ ॥ मैं इनका पुरोहितहूँ हे तपोनिधे ! ऐसा आप जानें यह राजा आपके चरणोंकी पूजा को चाहताहै सो जो आपको अङ्गीकारहो तो बड़ी कृपा है ॥ ३८ ॥ तब अगस्त्यजी बोले कि राजाओंमें श्रेष्ठ रविश्रन्द्र जल्द आत्रे और सिंहासनपर बैठें इस प्रकार अगस्त्यकी आज्ञाको पायेहुये राजा आये और उनके पाँवोंको छूतेहुये ॥ ३९ ॥ तब अगस्त्यमुनिजी अर्घ और पाद्य से राजाका भलीभाँति पूजनकर कुशल पूछतेहुये

कहा कि हे महाभाग ! आपकी परिवार सहित कुशल है ॥ ४० ॥ तब हे भारत ! सुनीन्द्र अगस्त्यजी से राजा वचन बोले कि आज मेरा जन्म व राज्य व जीवन सफल हुआ ॥ ४१ ॥ आपके कमलसमान पांवों के इस दर्शन से मैं पासे छूट गया सब तीर्थ जिसमें हैं ऐसी शुभ नर्मदाजी तो सब कहीं पवित्र हैं ॥ ४२ ॥ परन्तु हे मुनिसत्तम ! हम किस स्थानमें यज्ञको करें सो मुक्त से कहिये जिससे यज्ञ सिद्ध होजावे और देवताओंको अन्नयवृत्ति होवे ॥ ४३ ॥ हे त्रिकालज्ञ ! यह सब ठीकठीक कहिये तब अगस्त्यजी बोले कि हे महाभाग, राजन् ! मुनिये और कहेजारे वृत्तांत को समझिये ॥ ४४ ॥ अगिले जमानेमें महादेवजीने पर्वती व स्वामिकार्त्तिक से

न्द्रप्रतिभारत ॥ अद्यमेसफलं जन्म राज्यं जीवनमेव च ॥ ४१ ॥ मुक्तश्च किल्बिषादस्मान्त्वत्पादाम्बुजदर्शनात् ॥ सर्वत्र कल्पगापुण्या सर्वतीर्थमयी शुभा ॥ ४२ ॥ कस्मिन्स्थानेयजेयज्ञं शंसमेमुनिसत्तम ॥ यथासंसिद्ध्यते यज्ञस्सुराणां तृप्तिरक्षया ॥ ४३ ॥ एतत्सर्वं यथान्यायं त्रिकालज्ञनिवेद्य ॥ अगस्त्य उवाच ॥ शृणुराजन्महाभाग कथ्यमानं न्नवो धच ॥ ४४ ॥ शिवेन कथितं पूर्वं पर्वत्याः परमुखस्य च ॥ ब्रह्मविष्णवादिदेवानामन्येषाञ्च दिवौकसाम् ॥ ४५ ॥ मया तत्र श्रुतं राजन् मार्कण्डेन चिरायुषा ॥ तत्ते हं कथयिष्यामि मेकलातीर्थसम्भवम् ॥ ४६ ॥ शृणु ध्वं मुनयस्सर्वे यत्प्रष्टव्या वतारणम् ॥ कस्य शक्तिर्महाराज वर्जयित्वा महेश्वरम् ॥ ४७ ॥ प्रमाणं सर्वतीर्थानां संख्यां वा कर्तुमादितः ॥ उद्देशमात्रवत्काहं मार्कण्डस्य महामुनेः ॥ ४८ ॥ एतत्ते कथितं राजन्यथा वृत्तम् पुरातनम् ॥ ४९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवा खण्डेन नर्मदामाहात्म्ये पञ्चषष्ठितमोऽध्यायः ॥ ६५ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

कहा है और भी ब्रह्मा व विष्णु आदि देवताओं से कहा है ॥ ४५ ॥ हे राजन् ! वहीं हम और भारी उमरवाले मार्कण्डेयजी ने सुना है वही नर्मदा तीर्थका सम्भव हम तुम से कहेंगे ॥ ४६ ॥ हे मुनियो ! आप सबलोग पूछनेलायक बातकी भूमिका को सुनो कि हे महाराज ! वैसे महादेवजी को छोड़कर सब तीर्थोंकी आदमे गिनती व प्रमाण करनेकी किसको सामर्थ्य है महामुनि मार्कण्डेय जी के उद्देश (इशारे) मात्रका कहनेवाला मैं हूँ ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ हे राजन् ! यह तो पुराना हाल जैसा था वह तुमसे कहा गया ॥ ४९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवा खण्डेन नर्मदामाहात्म्ये पञ्चषष्ठितमोऽध्यायः ॥ ६५ ॥ ॥

मार्कण्डेयजी बोले कि पूर्वकाल में ऐसे बुद्धिमान् राजा रविश्चन्द्र ने सुना तदनन्तर मुनियों में श्रेष्ठ श्रीमान् श्रगस्यजी फिर वचन बोले कि रारस्वती, गङ्गा, यमुना, ममुद्र व और भी प्रयागआदि तीर्थ ऐसे पवित्र नहीं हैं ॥ १ ॥ २ ॥ सात कल्पतक बहनेवाली एक नर्मदाही पुण्यवाली व शुभ है एकलाख योजनतक जम्बूद्वीप कहागया है ॥ ३ ॥ उसमें जितना चराचर लोकहैं तिसमें जो तपस्या से हीनभी मनुष्य हैं वे भी नर्मदा के जल पीने से शिवजी के स्थानको जातेहैं ॥ ४ ॥ जो जिस कामना को करता है वह उस पूरी कामनाको पाता है हे महाभाग, पापरहित ! बाह २ आपने जो हमसे पूछा ॥ ५ ॥ उन नर्मदाजी को हमने कहा मनकी

मार्कण्डेयउवाच ॥ एवंश्रुतंपुराराज्ञा रविश्चन्द्रेणधीमता ॥ उवाचवचनंश्रीमानगस्त्योमुनिसत्तमः ॥ १ ॥ सरस्वतीनगङ्गाच यमुनावानसागराः ॥ नैवान्यानितीर्थानि प्रयागप्रमुखान्यपि ॥ २ ॥ एकैवनर्ममदापुण्या सप्तकल्पवहाशुभा ॥ लक्षयोजनपर्यन्तं जम्बूद्वीपं प्रकीर्तितम् ॥ ३ ॥ नर्ममदातोयपानेन लोकालोकैश्चराचरे ॥ तपोहीनानराश्चैव तेष्यान्ति शिवालये ॥ ४ ॥ योयंकामयेतेकामंसंतप्राप्नोति पुष्कलम् ॥ साधुसाधुमहाभाग पृष्टोहं यत्त्वया नघ ॥ ५ ॥ नर्ममदाकथिता दिव्या हृद्याकम्यनरोचते ॥ सन्ति तीर्थानि यावन्ति दक्षिणोत्तरकूलयोः ॥ ६ ॥ त्वत्प्रीति दानितावन्ति कथयामि नृपोत्तम ॥ अन्यानि ग्रन्थलक्षणेन च कीर्तयितुं क्षमः ॥ ७ ॥ त्रयोवेदास्त्रयो लोकास्ति सप्त सन्ध्यास्त्रयोगनयः ॥ सिद्धगन्धर्वयक्षाश्च सक्किन्नरमहोरगाः ॥ ८ ॥ विद्याधराश्चाप्सरसः कल्पगातटमाश्रिताः ॥ अङ्का रादीनिलिङ्गानि वैदूर्यादिनगाः पुरा ॥ ९ ॥ द्वापरे च कलिप्राप्य पावनत्वमवाप्नुयुः ॥ ब्रह्मविष्णवादिदेवानां मर्यादा

प्यारी दिव्य नर्मदाजी किसको नहीं रुचती हैं अब नर्मदा के दक्षिण और उत्तरवाले किनारोंपर तुम्हारे प्रसन्न करनेवाले जितने तीर्थ हैं हे नृपोत्तम ! उन सबको हम कहते हैं बाकी और तीर्थोंको एकलाख ग्रन्थसे हम कहने को समर्थ नहीं हैं ॥ ६७ ॥ तीनों वेद, तीनों लोक, तीनों सन्ध्यायें, तीनों अग्नियां, सिद्ध, गन्धर्व, यक्ष, किन्नर, नाग ॥ ८ ॥ विद्याधर और अप्सरायें ये सब नर्मदा के पास रहते हैं अङ्कारआदि लिङ्ग और वैदूर्यआदि पर्वत श्रगिले जमानेमें ॥ ९ ॥ तथा द्वापर में और कलियुग

को भी पाकर औरों के पवित्र करनेवाले होते रहे अब ब्रह्मा और विष्णु आदि देवताओं की भी मर्यादा को कहते हैं ॥ १० ॥ अपने तेजों से प्रकाश करती हुई नर्मदा के दक्षिण और उत्तर में जो जमीन है वह यज्ञभूमि कही गई है जिसको देवता व दैत्य भी नमस्कार करते हैं ॥ ११ ॥ वहां अशोकवनिका है उसमें महादेवजी हैं वहां यज्ञ निर्विघ्न सिद्ध होता है यह महादेवजी ने कहा है ॥ १२ ॥ तब मुनियों में श्रेष्ठ अगस्त्यजी से राजा वचन बोले कि हे महामुने ! आपका कल्याण हो अब हम आपके सहित वहीं चलेगे ॥ १३ ॥ ऐसे कहकर वे राजा मुनियों से युक्त अशोकवनिका को प्राप्त हुये नर्मदा के दक्षिणवाले किनारे पर उत्तम जो पुण्य-

दाकथ्यते धुना ॥ १० ॥ प्रसाभिर्द्यौतमानाया रेवायादक्षिणोत्तरे ॥ यज्ञभूमिरियं ख्याता सुराधुरनमस्कृता ॥ ११ ॥
अशोकवनिका तत्र तस्यान्देवो महेश्वरः ॥ तत्र सिद्ध्यति निर्विघ्नो यज्ञ इत्याह शङ्करः ॥ १२ ॥ उवाच वचनं राजा अगस्त्यं मुनिसत्तमम् ॥ स्वस्ति वोस्तु गमिष्यामि त्वया सह महामुने ॥ १३ ॥ अशोकवनिकां प्राप्तस्स राजा मुनिभिर्द्वृतः ॥ रेवायादक्षिणे कूले पुण्यतीर्थे सुशोभने ॥ १४ ॥ दशयोजनपर्यन्तं यज्ञयूपाश्रम एतदुपम् ॥ मणिभाणिक्यरत्नौघैस्सर्वद्वारेषु शोभिताः ॥ १५ ॥ पताकाध्वजशोभाढ्या नानावस्त्रावगुणैरुत्ताः ॥ विश्वामित्रो भरद्वाजः कश्यपो भार्गवस्तथा ॥ १६ ॥ ब्रह्महृदयो लोमशश्च तथा अन्ये मुनिसत्तमाः ॥ बालखिल्या महाभागा मानसा ब्रह्मणस्सुताः ॥ १७ ॥ एते चान्ये च बहवो मुनयश्शंसितव्रताः ॥ ततः प्रवर्तितो यज्ञो ब्राह्मणैराप्तदक्षिणैः ॥ १८ ॥ तृप्ताश्च देवतास्सर्वाः प्रतिजग्मुस्त्रिविष्टपम् ॥ जग्मुस्सर्वे च मुदिता मुनयः स्वाश्रममप्रति ॥ १९ ॥ ततो निवर्तितो यज्ञो दुर्वासाः कुपितो गतः ॥ नात्र वैवस्वतो नाहं बाला तीर्थं है उसमें ॥ १४ ॥ दशयोजन तक यज्ञ के खम्भे गडाये व मण्डपको बनाया सब दरवाजों में मणि, माणिक और रत्नसमूहों से खम्भे शोभित किये गये ॥ १५ ॥ वे खम्भे अनेक प्रकार के कपड़ों से लपेटे हुये पताका और ध्वजाओं की शोभा से युक्त हुये अब विश्वामित्र, भरद्वाज, कश्यप तथा भार्गव ॥ १६ ॥ ब्रह्महृदय, लोमश तथा और भी श्रेष्ठ मुनिलोग जैसे ब्रह्माजी के मानस पुत्र बड़े भाग्यवाले बालखिल्य ॥ १७ ॥ ये सब व और भी उत्तम व्रतवाले बहुत से मुनिलोग आते हुये तदनन्तर पूरी दक्षिणावाले ब्राह्मणों ने यज्ञको प्रवृत्त किया ॥ १८ ॥ सब देवता तृप्त होकर स्वर्गको लौट गये और सब मुनिलोग भी आनन्दित होकर अपने-अपने श्रमोंको चले गये ॥ १९ ॥

तदनन्तर यज्ञ समाप्त हुआ तब वहाँ बड़े क्रोधी दुर्वासा आये और कहा कि न यहां हम आये और न यमराज व नारद तथा पर्वत आये ॥ २० ॥ कैसे पापकर्मी अधम मनुष्यों ने यज्ञको समाप्त कर दिया तबतक वहाँ यमराज, नारद तथा पर्वत ॥ २१ ॥ लिखनेवाले चित्रगुप्त, काल और मृत्यु भी आगये और अपने यज्ञभाग के बिना इन सबों ने कोपको किया हे नृप ! ॥ २२ ॥ तब उन सबको नाराज देखकर राजा विश्वन्द्व वचन बोले कि अशोकेश्वर देव और नर्मदाजीके प्रसाद से ॥ २३ ॥ देवता और दैत्यों के बीचमें मेरे विघ्न करनेको कौन समर्थ होसक्ता है इसी तरह और जीवोंमें भी यज्ञविघ्न के वारंते कौन समर्थ होसक्ता है ॥ २४ ॥ यज्ञके

नारदः पर्वतस्तथा ॥ २० ॥ कथन्निवर्तितो यज्ञः पापकर्मिनराधमैः ॥ आगतस्तु यमस्तत्र नारदः पर्वतस्तथा ॥
२१ ॥ लेखकश्चित्रगुप्तश्च कालो मृत्युस्तथैव च ॥ एते च कुपितास्सर्वे यज्ञभागं विना नृप ॥ २२ ॥ तान्सर्वान् कुपितान् दृ
ष्ट्वा रविश्चन्द्रो ब्रवीद्विद्वचः ॥ अशोकेश्वरदेवस्य नमर्मदायाः प्रसादतः ॥ २३ ॥ को मे समर्थो विघ्नाय सुरासुरगणेष्वपि ॥
तथैव को न्योजन्तूनां यज्ञविघ्नस्य हेतवे ॥ २४ ॥ यज्ञकाले च सम्प्राप्तो यः कश्चिदपि मानवः ॥ पूजनीयस्तथा च्छ्रेयश्च यथा
देवश्च तमुजः ॥ २५ ॥ यथा याता महाभागा ब्रह्मपुत्रा महोजसः ॥ ददामि वो न सन्देहो मनसा यदभीप्सितम् ॥ २६ ॥ दु
र्वासा उवाच ॥ परिपूज्यश्च नः पुत्रो नारदः पर्वतस्तथा ॥ एकाकी प्रार्थयेनाहं मिलित्वा प्रार्थयामहे ॥ २७ ॥ रविश्चन्द्र उ
वाच ॥ यो यं कामयेते कामं तं तस्मै प्रदाम्यहम् ॥ इति सर्वे पिते नैव प्रस्तुतास्तु निपुङ्गवाः ॥ २८ ॥ सुप्रीता विहिताराज
न् बर्धप्राद्यप्रदानतः ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ मुनयः केन कार्येण पाटलीपुत्रवासिनः ॥ २९ ॥ देव्या शप्ताः श्वयोनिं च गता

समय में जो कोई मनुष्य भी आवे तो वह हमको वैसे पूजा करने के योग्य है कि जैसे चार मुजावाले विष्णुजी पूजनीय हैं ॥ २५ ॥ जैसे बड़े तेजवाले और बड़े भाग्यवाले ब्रह्माजी के पुत्र आये उसीतरह आप लोगोंको भी जो मनसे चाहो वह हम देवोंगे इसमें कुछ सन्देह नहीं है ॥ २६ ॥ तब दुर्वासाजी बोले कि हमारे पुत्र नारद और पर्वत भी पूजने लायक हैं हम अकेले नहीं मांगते किन्तु मिलकर माँगेंगे ॥ २७ ॥ तब राजा रविचन्द्रजी बोले कि आप लोगों में जो जिस कामनाको चाहेंगा उसको वहाँ हम देवोंगे इसतरह उन्हीं राजा करके वे मुनि श्रेष्ठ लोग खुशामद किये गये ॥ २८ ॥ और अर्ध व पाद्यके देनेसे हे राजन् ! प्रसन्न किये गये मुधिष्ठिरजी

पूछते हैं कि पटना के रहनेवाले मुनियोंको किस कारणसे ॥ २६ ॥ देवीजीने शापदिया और कुत्तेकी योनिको प्राप्तहुये वे लोग फिर किसतरह उससे छूटे तब मार्कण्डेयजी बोले कि अगिले जमानेमें जटा और भोजपत्रोंको धारण किये सब तपस्वी लोग ॥ ३० ॥ नैपालमें देवताओं के देवता, कल्याणरूप, महेश्वर, पशुपति महादेवजी का बिना पार्वती के भाक्तिसे पूजन करते थे ॥ ३१ ॥ देवता और दैत्योंसे नमस्कार कियेगये महादेवजी तो अर्द्धनारीश्वर देव हैं इसीकारण से लिङ्ग के भेद करनेवाले ब्राह्मणों को पार्वतीजी ने शाप दिया ॥ ३२ ॥ पार्वतीजी ने कहा कि हे महादेवकी चढ़ीहुई द्रव्य व उनके पार्षद जो चण्डहैं उनकी द्रव्य के खानेवाले पापीलोगो !

मुक्ताश्चतेकथम् ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ पुरातपोधनास्सर्वेजटावल्लधारिणः ॥ ३० ॥ नैपालेवैपशुपतिं देवदेवंसहे
श्वरम् ॥ पूजयन्तिशिवंभक्त्या गौर्याधिरोहितंहरम् ॥ ३१ ॥ अर्द्धनारीश्वरंदेवं सुरासुरनमस्कृतम् ॥ संशप्तास्तेनकार्ये
ण पार्वत्यालिङ्गभेदिनः ॥ ३२ ॥ वर्षेसहस्रं हिमिंतं श्वयोनिञ्चगमिष्यथ ॥ निर्माल्यभक्तकाः पापाश्चण्डद्रव्यस्यभक्त
काः ॥ ३३ ॥ तेषां कृतेमहाराज दुर्वासानृपमब्रवीत् ॥ श्वयोनिसमनुप्राप्तास्तत्रकालेमुनीश्वराः ॥ ३४ ॥ मोचयन्वंत
तोरान्नस्मत्प्रियचिकीर्षया ॥ पार्वत्यातेमिशसाश्च नरकेमज्जन्तिदारुणे ॥ ३५ ॥ उवाचचचनंराजा मुनिंदुर्वासंसंत
तः ॥ मोचयामिनसन्देहो तस्मात्पापाद्विजोत्तमान् ॥ ३६ ॥ प्रेषिताः किङ्करास्तेन सीदन्तोयत्रतेवने ॥ प्राणिपत्यचतेस
र्वे तानूचुश्चवनेचरान् ॥ ३७ ॥ स्मारयन्तिपूर्वजातिमादिष्टाः प्रभुणायथा ॥ ततस्तद्वचनात्प्राप्तास्तेऽशोकवनिकांद्रुत

एक हजार वर्षप्रमाण तक तुम कुत्तेकी योनिको पावोगे ॥ ३३ ॥ हेमहाराज ! उन्हीं ब्राह्मणों के वास्ते राजासे दुर्वासाने कहा कि उससमय में मुनीश्वरलोग कुत्ते की योनिको प्राप्त होगयेथे ॥ ३४ ॥ सो हे राजन् ! अब हमारे प्रिय करनेकी इच्छा से तुम उनको उस शापसे छुटादेवो वे लोग पार्वतीसे शापको पायेहुये दारुण नरक में डूबरहे हैं ॥ ३५ ॥ तब दुर्वासा मुनि से राजा वचन बोले कि हम उन उत्तम ब्राह्मणों को उस पापसे छुटादेवोगे इसमें सन्देह नहीं है ॥ ३६ ॥ यह कहकर उन राजाने उस वनमें अपने दूतोंको भेजा जहां वे ब्राह्मण दुःखित होरहे थे वे सब दूत उन जङ्गली मुनियों के नमस्कार कर बोले ॥ ३७ ॥ और उनके पूर्वजन्मकी

सुध करातेहुये जैसे मालिक ने कहाथा वैसही कहा तब वे उनके कहनेसे अशोकवनििकाको शीघ्र आये ॥ ३८ ॥ तब चक्रवर्ती राजा रविश्चन्द्र उन तपस्वियोंको देख कर बड़े आनन्द से युक्त हँसतेहुये ऐसे उनसे बोले ॥ ३९ ॥ कि अशोकेश्वरदेव व नर्मदा के प्रभाव से व महर्षियों के प्रसाद से ॥ ४० ॥ ये सब मुनिलोग कुचेकी योनिको छोड़कर निश्चय से शिवके लोकको जाँवें और इनका यह सब महाघोर पाप मुक्तमें बैठे ॥ ४१ ॥ उसीक्षण शापसे छुटहुये वे सब महर्षिलोग मनमानी सवारी पर सवार होकर सौयज्ञों के करनेवाले राजा रविश्चन्द्र से वचन बोले ॥ ४२ ॥ कि आपही हमारे माता व आपही पिता और आपही

म ॥ ३८ ॥ रविश्चन्द्रश्चक्रवर्ती तानविलोकयतपोधनान् ॥ मुदापरमयायुक्तः प्राहतान्प्रहसन्निव ॥ ३९ ॥ अशोकेश्वर देवस्य मेकलायाःप्रभावतः ॥ ममदानप्रभावेण महर्षीणाम्प्रसादतः ॥ ४० ॥ त्यक्त्वाश्वयोनिसुनयः शिवलोकंप्रया न्तुवै ॥ एतत्पापंमहाघोरं मयिसर्वनिषीदतु ॥ ४१ ॥ तत्क्षणान्मुक्तशपास्तै कामिकंयानमास्थिताः ॥ उचुर्महर्षयो वाक्यं रविश्चन्द्रंशतक्रतुम् ॥ ४२ ॥ त्वंमातात्वंपिताऽस्माकंत्वंगुरुर्मौजदायकः ॥ एवमुक्त्वाययुस्तेतु उमामाहिश्चरंपु रम् ॥ ४३ ॥ साधुसाधुमहाभाग त्वन्तुयज्ञतपोनिधिः ॥ नान्यस्त्वयासमःकश्चित्सोमवंशेमहीपतिः ॥ ४४ ॥ त्वयाहि निर्जितसर्वं त्रैलोक्यंसचराचरम् ॥ एवमुक्त्वासुरश्रेष्ठास्साधुवादैस्तमार्चयन् ॥ ४५ ॥ देवदुन्दुभयोनेदुःपुष्पवृष्टिःपपा तच ॥ दुर्वासाउवाच ॥ क्षत्रियेषुत्वयातुल्यो नदृष्टोनश्रुतोमया ॥ ४६ ॥ प्राणत्यागोहिसुकरोधर्मत्यागोहिदुष्करः ॥

वरंवृणीष्वभद्रन्ते यत्तेमनसिवर्तते ॥ ४७ ॥ प्रहसन्नब्रवीद्वाक्यं राजादुर्वाससंमुनिम् ॥ ममदानप्रभावेण नरादुष्कृततु

गुरुहो जिन्होंने हमको छोड़ादिया है ऐसे कहकर वे सब पार्वती व महादेवजी के पुरको जातेहुये ॥ ४३ ॥ हे महाभाग ! वाह २ आप तो यज्ञ व तपस्या के खजाने हो चन्द्रवंशमें तुम्हारे बराबर और कोई राजा नहीं हुआ ॥ ४४ ॥ तुमने सब चराचर तीनों लोकोंको जीतलिया ऐसे कहकर उच्चम देवता तारीफवाली बातेंसे उन राजाकी पूजा करतेहुये ॥ ४५ ॥ और देवताओं के नगाड़े बजे व फूलों की वर्षा हुई तब दुर्वासाजी बोले कि क्षत्रियों में तुम्हारे बराबर दूसरे क्षत्रियको न मैंने देखाहै और न सुना है ॥ ४६ ॥ क्योंकि प्राणोंका भी छोड़देना सहजमें होसक्ता है परन्तु अपने कर्मायेहुये धर्मका छोड़देना बहुतही कठिनहै इससे तुम्हारा कल्याण हो अब

जो तुम्हारे मनमें हो उस वरको मांगो ॥ ४७ ॥ तब राजा हैसतेहुये दुर्वासामुनि से वचन बोले कि हमारे दानके प्रभावसे पापबुद्धिवाले भी मनुष्य ॥ ४८ ॥ परम स्थानको प्राप्तहोवें यही वर हमको प्याराहै ऐसाही हो ऐसे उन राजाके आगे कहकर मुनियों में श्रेष्ठ वे दुर्वासाजी बड़े आनन्द से युक्त वहीं अन्तर्धान होगये बड़े तेजवाले राजाके ऐसे उस कर्मको देखकर ॥ ४९ ॥ ५० ॥ बड़ी शङ्का से युक्त धर्मराज यह कहतेहुये कि यज्ञभागसे बाहर करदियेगये हम आपको वर देतेहैं आपका कल्याणहो ॥ ५१ ॥ जिन्होंने कुत्तेकी योनिको प्राप्तहोरेहें ब्राह्मणों को कर्मबन्धन से छोड़ादिया है नृपोत्तम ! आपकी ऐसी सामर्थ्यको हम जानते हैं ॥ ५२ ॥ पृथिवी

द्वयः ॥ ४८ ॥ प्राप्नुवन्तुपंरलोकं वरएषममप्रियः ॥ एवमस्त्वितितस्याग्रेऽभिधायमुनिपुङ्गवः ॥ ४९ ॥ समुदापरयायु रस्तत्रैवान्तरधीयत ॥ तदृष्ट्वातादृशंकर्मं राज्ञश्चामिततेजसः ॥ ५० ॥ शङ्कयापरयायुक्तो धर्ममराजोब्रवीदिद म् ॥ वरंददामिभद्रन्ते यज्ञभागबहिष्कृतः ॥ ५१ ॥ द्वयोनित्वंगताविप्रा मोचिताःकर्मबन्धनात् ॥ ईदृशंतवसाम श्र्यं जानामिचनृपोत्तम ॥ ५२ ॥ पृथिव्यांदुष्करंकर्मं यज्ञश्चैवविशेषतः ॥ योददादिमहाभाग स्वकीयंपुण्यमुत्तम म् ॥ ५३ ॥ यमलोकोजितस्तेन देवलोकोजितस्तथा ॥ वरयोग्योसिराजेन्द्र सत्यमेतन्मयोदितम् ॥ ५४ ॥ रविश्चन्द्र उवाच ॥ यदितुष्टस्मूर्यपुत्र वरंदतुंममेच्छसि ॥ समयज्ञशतैर्नैव दानेनतपसातथा ॥ ५५ ॥ पापयोनिगतायेतु येच दुष्कृतकारिणः ॥ प्रयान्तुत्वत्प्रसादेन धर्ममराजशिवालयम् ॥ ५६ ॥ इमंवरमहमन्ये प्रसादःक्रियतांसयि ॥ यमउवा च ॥ एवंभवतुराजेन्द्र सत्यधर्मपरायण ॥ ५७ ॥ प्राप्नुहित्वंपंरलोकं सत्येनानेनसुव्रत ॥ यतस्तेमोचिताःसर्वाः कश्म

में बड़े दुष्करकर्म को आपने किया और विशेषसे यज्ञको किया हे महाभाग ! जिसने अपनी उत्तमपुण्य को देदिया ॥ ५३ ॥ उसने यमलोक को जीतलिया उसी प्रकार देवलोक को जीतलिया इससे हे राजेन्द्र ! आप वरदान के योग्यहो मैंने आपसे यह सत्य कहा है ॥ ५४ ॥ तब राजा रविश्चन्द्र बोले कि हे सूर्यपुत्र ! आप मुझ से प्रसन्नहो और मुझको वरदेनेकी इच्छा करतेहो तो हमारे सौयज्ञों से व दान और तपस्यासे ॥ ५५ ॥ पापके करनेवाले या पापयोनियों में पड़ेहुये जो जीवहों हे धर्मराज ! वे सब आपके प्रसादसे शिवजी के स्थानको जावें ॥ ५६ ॥ बस हम इसी वरको चाहते हैं आप मेरे ऊपर दयाकरें तब यमराज बोले कि हे सत्त्वधर्म में तत्पर ! हे

राजेन्द्र ! ऐसा ही हो ॥ ५७ ॥ हे सुव्रत ! अपने इस सच्चापन से तुम उत्तमलोक को प्राप्त होवो जिससे सब पापयोनियों को तुमने वष्टसे छोड़ दिया है ॥ ५८ ॥ हे राजन् ! सैकड़ों क्षत्रिय या और भी हजारों जीव जिनको आपने पापसे उद्धार किया है उनकी गिन्ती नहीं है ॥ ५९ ॥ बड़ी २ भुजावाले धर्मराज श्रेष्ठ राजासे ऐसे कहकर और देवता व दैत्यों से नमस्कार की गई अपनी सवारी पर सवार होकर ॥ ६० ॥ अपने मकान को चले गये और हे राजन् ! नारद व पर्वत भी चले गये हे नरसत्तम ! उस अशोकवनिका में विद्यमान हो रहे तीर्थोंको आपसे कहा उनके सुनने व कहने हे हजार

लात्पापयोनयः ॥ ५८ ॥ क्षत्रियाश्शतशो राजन्नन्ये चैव सहस्रशः ॥ पापात्समुद्धृता ये च तेषां सङ्ख्या न विद्यते ॥ ५९ ॥ एवमुक्त्वानृपश्रेष्ठं धर्मराजो महाभुजः ॥ कामिकं यानमारुह्य सुरासुरनमस्कृतम् ॥ ६० ॥ ययौ स्वभवनं राजन्नारदः पर्वतस्तथा ॥ तस्यामशीतिलक्ष्णाणि तीर्थानां नरसत्तम ॥ ६१ ॥ अशोकवनिकायान्तु कीर्तिता नितवानघ ॥ श्रवणात्कीर्तनात्तेषां गोसहस्रफलं भवेत् ॥ ६२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे रेवा खण्डेऽशोकवनिकावर्णनो नाम षट्षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६६ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ अथातः कथयिष्यामि तीर्थपापप्रणाशनम् ॥ रेवाया उत्तरे कूले पुरं वागीश्वराभिधम् ॥ १ ॥ वागुर्नाम नदी तत्र रेवया सहसङ्गता ॥ तत्र स्नाता दिव्यान्ति ये मृतान पुनर्भवाः ॥ २ ॥ वागीशा तत्र चामुण्डा दानवक्षयकारिणी ॥ मणिभद्रा वीरभद्रस्तथान्ये शतशो नृपाः ॥ ३ ॥ बभूवुर्मुक्तशोपास्ते तीर्थस्यास्य प्रभावतः ॥ तिलापिण्डप्रदा

गोदानोका फल होता है ॥ ६२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे रेवा खण्डे प्राकृतभाषाऽबुवादेऽशोकवनिकावर्णनो नाम षट्षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६६ ॥

मार्कण्डेयजी बोले कि अब इसके बाद पापों के नाश करनेवाले और तीर्थोंको हम कहेंगे नर्मदा के उत्तरवाले तट पर वागीश्वर नाम का पुर है ॥ १ ॥ वहां वागु नामकी नदी नर्मदा के साथमें मिली है उसमें स्नान करनेवाले स्वर्गको जाते हैं और जो मरे हैं वे फिर नहीं होते हैं ॥ २ ॥ वहां दानवों के नाश करनेवाली वागीशानाम की काली रहती है इस तीर्थके प्रभावसे मणिभद्र, वीरभद्र तथा और भी सैकड़ों राजा आपसे छूट गये यहां तिलोंके सहित पिण्डों के देनेसे पितरों की परम

गति होती है ॥ ३१४ ॥ सूर्यवंश में इन्द्रके बराबर ताकतवाले श्रीमान् अयोध्याके मालिक चक्रवर्ती राजा ब्रह्मदत्तजी हुये ॥ ५ ॥ जोकि धन व अन्नसे युक्त, भय और दरिद्र से रहित होतेहुये उन राजाके होनेपर सब प्रजा बड़े आनन्द से युक्त होतीहुई ॥ ६ ॥ उन्होंने नर्मदा और वागुनदीके सङ्गममें उत्तमयज्ञको किया उसयज्ञमें ब्रह्माआदि सब देवता व इन्द्र और विष्णुआदि देवता आतेहुये ॥ ७ ॥ और गणेशजीके सहित महादेवजी भी प्रत्यक्ष हुये लोकपाल, मरुत, चन्द्रमा, सूर्य तथा ध्रुव ॥ ८ ॥ नक्षत्र, योग, सिद्ध और सोमआदि सब आतेहुये मुनियों के सहित वशिष्ठ तथा जनकपुर के राजा जनक ॥ ९ ॥ इत्यादिक सब बुलायेगये भिन्न और वरुण

नेन पितृणां परमागतिः ॥ ४ ॥ ब्रह्मदत्तश्चक्रवर्ती सूर्यवंशे महीपतिः ॥ अयोध्याधिपतिः श्रीमान् ब्रह्मदत्तुल्यपराक्रमः ॥ ५ ॥ धनधान्यसमायुक्तो भयदारिद्र्यवर्जितः ॥ प्रजास्तस्मिन्मर्महीपाले सर्वा अपि सुदान्विताः ॥ ६ ॥ इष्टः क्रतुवरस्तेन नर्मदावागुसङ्गमे ॥ ब्रह्माद्यादेवतास्सर्वाः शक्रविष्णुपुरोगमाः ॥ ७ ॥ प्रत्यक्षश्च महेशानो गणेश्वरसमन्वितः ॥ लोकपालाश्च मरुतश्चन्द्रादित्यौ ध्रुवस्तथा ॥ ८ ॥ ऋक्षाणि योगसिद्धाश्च सोममुख्याश्च सर्वशः ॥ वशिष्ठो मुनिभिस्सार्द्धं शयोजनपर्यन्तं यज्ञभूमिर्महीभृतः ॥ सर्वैरिह एमयास्तत्र यज्ञयूपाश्च मण्डपाः ॥ ९ ॥ दन्विता निच ॥ हयानां श्यामकर्णानामयुतं साग्रमेव च ॥ १० ॥ दन्तिनामयुतं चैव घण्टाभरणभूषितम् ॥ मणिमाणिक्यमुक्ताश्च भक्ष्यभोज्यान्यनेकधा ॥ ११ ॥ एवं राजा ब्रह्मदत्तः सर्वभूपालसत्तमः ॥ यज्ञं प्रवर्तयामास सर्वसम्भारसंभृतः ॥ १२ ॥

भी बुलायेगये वहां सब यज्ञके खम्भे व मण्डप सोनेही के थे ॥ १० ॥ राजा ब्रह्मदत्तजी की यज्ञभूमि चालीस कोसतक होतीहुई हे राजन् ! यह वृत्तान्त पहले कल्पके स्वरोचिष मन्वन्तर के सत्ययुग में हुआथा ॥ ११ ॥ सोनेके भारसे लदीहुई एक लाख गौवें, कुछ अधिक दशहजार श्यामकर्णवाले घोड़े ॥ १२ ॥ घण्टाआदि जेवरों से सजेहुये दशहजार हाथी, मणि, माणिक, मोती और अनेकतरह के चवाने व खानेलायक अन्न ॥ १३ ॥ इस प्रकार सब राजाओं में अत्युत्तम राजा ब्रह्म-

दत्तजी सब सामानसे युक्त हो यज्ञको रचते हुये ॥ १४ ॥ वेदके शब्दोंसे व गाने व बाजाओं के शब्दोंसे युक्त, अनेक सवारियों पर सवार देवताओं के गणोंने राजा ब्रह्मदत्तजीकी खुतिको किया ॥ १५ ॥ ब्रह्मदत्तजी की यज्ञसे व वागीशके प्रसादसे व नर्मदा के प्रसाद से प्रेतलोग बड़ी तृप्तिको पाते हुये ॥ १६ ॥ तब राजा युधिष्ठिर जी बोले कि ब्रह्मदत्तजी का नर्मदा के तीर यज्ञका करना कैसे हुआ व प्रेतलोग कैसे छूटें और वे किस कर्म से प्रेत हुये थे ॥ १७ ॥ हे तपोधन ! यह सब आप हम से यथार्थ कहिये तब मार्कण्डेयजी बोले कि हे राजन् ! तुम ठीक २ पुराने इतिहासको सुनो ॥ १८ ॥ कि कार्तिकी को ज्येष्ठपुष्कर जो पुष्करतीर्थ है उसमें जलसे

वेदनिर्घोषशब्देन गीतवाद्यस्वेण च ॥ नानायानसमारूढैः स्तूयमानो मरुद्गणैः ॥ १५ ॥ ब्रह्मदत्तस्य ज्ञेन वागीशस्य प्रसादतः ॥ नर्मदायाः प्रसादेन प्रेतास्तृप्तिपराङ्मताः ॥ १६ ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ कथन्तु ब्रह्मदत्तस्य कल्पगता रिया जनम् ॥ कथं प्रेता विनिर्मुक्ताः प्रेतास्ते कै न कर्मणा ॥ १७ ॥ एतत् सर्वं यथान्यायं कथयस्व तपोधन ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ शृणु राजन्यथान्यायमितिहासम् पुरातनम् ॥ १८ ॥ कार्तिक्या सुत्सवं प्राप्य पुष्करे ज्येष्ठपुष्करे ॥ अयोगन्धः स्वयंभूश्च पुण्डरीकाक्ष एव च ॥ १९ ॥ पिता महस्स्वयं तत्र सुरासुरगुरुः पिता ॥ काव्यश्च होतुः सदनैर्विदगर्भः कृतध्वनः ॥ २० ॥ स्वस्तिकश्चैव सावित्रो वामदेवो घर्मर्षणः ॥ एते चान्ये च मुनयो ब्रह्मतेजोऽशसम्भवाः ॥ २१ ॥ तथा ते हि यथाशक्ता ऋतुकालाभिगमिनः ॥ गार्हस्थ्ये च स्थिता भार्य्या भर्तृशुश्रूषणैरताः ॥ २२ ॥ चीरवल्कलधारिण्यः शाकस्यामाकभक्षि काः ॥ विषसास्तेन धर्मैः सत्यस्ताः अर्घ्यगर्हयन् ॥ २३ ॥ द्विजस्य षट्च कर्मणां यजनं याजनं तथा ॥ अध्यापनं चाध्य

को पायकर अयोगन्ध, स्वयम्भू, पुण्डरीकाक्ष ॥ १९ ॥ देवता और दैत्योंके गुरु व पिता आपही ब्रह्माजी, काव्य, होतु, सदन, वेदगर्भ, कृतध्वन ॥ २० ॥ स्वस्तिक, सावित्र, वामदेव और अघर्मर्षण ये व और भी ब्रह्मतेज व अंशों से पैदा हुये मुनिलोग आये और वहीं रहते रहे ॥ २१ ॥ वे सब लोग अपनी शक्तिके अनुसार ऋतु-समय में अपनी स्त्रियों के ग्रहण करनेवाले रहे और उनकी स्त्रियां भी गृहस्थ के धर्ममें स्थित अपने पतियों की सेवामें लगी रहती रहीं ॥ २२ ॥ चीर व भोजपत्रों की पहरेनेवाली और शाक व सांवांआदि की खानेवाली रहीं अब वे स्त्रियां उस वानप्रस्थधर्म से दुःखित हो रहीं तो यद्यपि वे पतिव्रता थीं पर उस लेशमें अपने पतियों की

निन्दा करने लगी ॥ २३ ॥ स्त्रियों ने कहा कि ब्राह्मण के छह कर्म होते हैं यज्ञ करना यज्ञ कराना २ वेद पढ़ना ३ वेद पढ़ाना ४ दान देना ५ दान लेना ६ ॥ २४ ॥ और स्त्रियों को गहने व कपड़ों का पहिरना और अपने पतियों की सेवा करना यही कर्म है हे राजन् ! इस प्रकार स्त्रियों ने अपने पतियों की निन्दा की ॥ २५ ॥ तब उनके वे पति डर गये और सब आश्चर्य को प्राप्त हुये व उदास मुहें वाले, हो गये उसी समय में एक राजा हरिश्चन्द्र रहे जिनके समान दूसरा राजा न हुआ है और न होगा ॥ २६ ॥ जिसने अपने दान से चराचरों के सहित तीनों लोकों को जीत लिया वे राजा सूर्यग्रहण में कुरुक्षेत्र को जाते हुये ॥ २७ ॥ तब वे सब ब्राह्मण भी धन के लोभ से मोहित हो रहे सो पुष्करतीर्थ को छोड़ कर अपनी स्त्रियों व पुत्रों के सहित हजारों मुनिलोग ॥ २८ ॥ दान लेने की इच्छा से जहां राजा हरिश्चन्द्र थे वहां पहुँच गये तब

यनं दानञ्चैव प्रतिग्रहः ॥ २४ ॥ भूषणं परिधानञ्च योषितां भर्तुं सेवनम् ॥ एवं च गर्हिताराजन्योषिद्धिः पतयस्तथा ॥ २५ ॥
भीतास्ते विस्मितास्सर्वे विषण्वदनास्तथा ॥ हरिश्चन्द्रः पुराराजानभूतोनभविष्यति ॥ २६ ॥ दानेन निजितयेन त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥ राहुसूर्यसमायोगे कुरुक्षेत्रं जगामह ॥ २७ ॥ त्यक्त्वा ते पुष्करतीर्थं धनलोभेन मोहिताः ॥ सहस्रसंख्यामुनयः सभाय्यां स्मिन्मुताश्चते ॥ २८ ॥ यत्र राजा हरिश्चन्द्रः प्रतिग्रहं विलिप्सया ॥ मुनीनां हरिश्चन्द्रो मुदा परमयायुतः ॥ २९ ॥ धन्यामसफलायां कुरुक्षेत्रे रविग्रहे ॥ क्षुधात्ताडुःखिताश्चैव बालावृद्धाः कुरातुराः ॥ ३० ॥ वल्कलाजिनवस्त्राश्च यौवने प्रैतरूपिणः ॥ यन्नो यूयमभिप्राप्ताः पत्नी पुत्रैश्च संयुताः ॥ ३१ ॥ उवाच वचनं राजा साष्टाङ्गं प्रणिपत्य च ॥ आदेशो दीयतां मह्यं किं करोमि भवत्कृते ॥ ३२ ॥ एवमुक्त्वा ददौ श्रीमानेकैकस्य पृथक् पृथक् ॥ लज्जं लज्जं हि राजा हरिश्चन्द्र बड़े आनन्द से युक्त मुनियों से बोले ॥ २६ ॥ कि सूर्यग्रहण में कुरुक्षेत्र की यह मेरी यात्रा धन्य है और सफल हुई क्योंकि जिससे क्षुधा से विकल, दुःखित, बालक, वृद्ध और बीमार, भोजपत्र व मृगचर्म के जिनके कपड़े हैं और जवानी में प्रेतों के ऐसे रूपों को धारण किये स्त्री व पुत्रों के सहित आपलोग हमारे तीर प्राप्त हुये हो ॥ ३० ॥ ३१ ॥ फिर साष्टाङ्ग प्रणाम कर ब्राह्मणों से राजा वचन बोले कि आपलोग मुझ को आज्ञा देवें मैं आपलोगों के वास्ते क्या करूं ॥ ३२ ॥ ऐसे कह कर श्रीमान् राजा हरिश्चन्द्र जी एक २ को जुदे २ एक २ लाख अक्षरियां तथा हजार २ गौवें, हजार २ बोड़े, सौ २ हाथी, सोने के हाता व सोने के फाटक बाले

सात २ चौकवाले रमणीक महल और भी अनेक तरहके भोगोंको देतेहुये जैसे कुबेरजी आपही देवें वे सब ब्राह्मण दानको लेकर कालान्तर में जब मरे तब बड़े भयङ्कर लम्बेओठोंवाले और डरावने मुहँवाले प्रेतरूप होगये दानलेने के प्रभाव से ब्राह्मण का नरकमें गिरना जरूरही होताहै ॥ ३३ । ३४ । ३५ । ३६ ॥ अब वे ब्राह्मण अपने पहले जन्मकी सुध करनेवाले अकेले बाहर अपने को शोचते हैं और कहतेहैं कि हमारी स्त्री, पुत्र, सेवक और भाई लोग कोई दानके लेनेसे नहीं जले सब पहलेहीकी तरह बनेहैं और हमलोग अकेलेही जलगये जैसे आगसे वृक्ष जलजावें ॥ ३७ । ३८ ॥ राजाओंके दानलेने से

एयस्य तथागावःसहस्रशः ॥ ३३ ॥ सहस्रंतुरगाणांच दन्तिनांशतसेवच ॥ साप्तभौमान्गृहान्म्यान्हमप्राकारतो
रणान् ॥ ३४ ॥ नानाविधविलासांश्च यथाधनपतिःस्वयम् ॥ कल्पान्तरेमृताजाताः प्रेतरूपाभयङ्कराः ॥ ३५ ॥ लम्बो
ष्ठालम्बवृषणा विक्कताननसंयुताः ॥ प्रतिग्रहप्रभावेण द्विजस्यपतनंघ्रवम् ॥ ३६ ॥ जातिस्मराःस्वंशोचन्ति एकाकीना
स्तुतेवहिः ॥ नभार्यानचमेपुत्रा नभृत्यानचवान्धवाः ॥ ३७ ॥ नतैप्रतिग्रहैर्दग्धा यथापूर्वतथैवच ॥ वयमेकाकिनो
दग्धा वृक्षाइवहविर्भुजा ॥ ३८ ॥ राजप्रतिग्रहैर्दग्धानप्ररोहन्तिमानवाः ॥ वैश्वानरेणदग्धानां पुनर्जनमप्रजायते ॥ ३९ ॥
नमातानपितापुत्रो द्रविणंनचवान्धवाः ॥ यमदूतैर्गृहीतानांधर्ममएकःसहानुगः ॥ ४० ॥ शोचित्वासुचिरंकालं भार्या
पुत्रविवर्जिताः ॥ भ्रमित्वाचमर्हसर्वा पुष्करंतीर्थमागताः ॥ ४१ ॥ प्रेतरूपान्मुनीन्दृष्ट्वा विषादंपरमंगतः ॥ तानुवा
चमुनिश्रेष्ठः कथंप्रेतत्वमागताः ॥ ४२ ॥ प्रेताऊचुः ॥ हरिश्चन्द्रःसत्यधर्ममसूयंशेमर्हीपतिः ॥ अयोध्याधिपतिःश्रीमा

जलेहुये मनुष्य फिर कभी नहीं जमते हैं और आगसे जलीहुई चीजोंका फिर जमना होता है ॥ ३९ ॥ यमदूतों से पकड़ेगये हमलोगों के माता, पिता, पुत्र, धन और भाई ये कोई सहायक नहीं हैं एक हमारा धर्मही सहायकहै ॥ ४० ॥ इसतरह स्त्री और पुत्रोंसे रहित वे लोग बहुत कालतक शोचकर और सब पृथिवी में घूम कर पुष्करतीर्थ को आतेहुये ॥ ४१ ॥ वहां नारदजी प्रेतरूपवाले उन मुनियोंको देखकर बड़े विषादको प्राप्तहुये तब मुनियों में श्रेष्ठ नारदजी उन मुनियों से बोले कि तुमलोग प्रेतभावको कैसे प्राप्तहुये ॥ ४२ ॥ तब प्रेत बोले कि सच्चेधर्मवाले, अयोध्याके मालिक, अयोध्यामें श्रीमान्, राजा हरि-

श्चन्द्रजोह्ये ॥ ४३ ॥ उन राजाका दान सूर्यग्रहणमें हमलोगोंने लिया इसीसे हे मुने ! हम सब ब्रह्मर्षिलोग प्रेतभावको प्राप्तहुये ॥ ४४ ॥ हे ब्रह्मन् ! यह आप से कहा अब हमलोगोंका इस योनिसे छुटकारा कियाजावे क्योंकि आप तीनोंकालके तत्त्वके जाननेवाले, ब्रह्माके पुत्र और तपस्याके खजानाहो ॥ ४५ ॥ तब श्रीमान् नारदजी उन तपोधनों से वचन बोले कि किसी पुण्यवाले दिव्यपर्व कार्तिकी के समयमें ४६ ॥ महादेवजी ने पार्वती व स्वाभिकार्त्तिक से पूर्वकाल में कहाथा वहीं स्कन्दके कहेहुये पुराण को हमने भी सुनाहै ॥ ४७ ॥ उसमें कहाहै कि हे नृप ! नर्मदाको छोड़कर और पापोंके नाश करनेको कौन समर्थ होसक्ती है हे विप्रो ! यद्यपि गङ्गा

न्देवतुल्यपराक्रमः ॥ ४३ ॥ तस्यप्रतिग्रहोऽस्माभिराप्तस्सूर्यग्रहेस्थिते ॥ तेनप्रेतत्वमापन्नास्मर्वेब्रह्मर्षयोमुने॥ ४४ ॥
एतत्तेकथितंब्रह्मन्मोक्षोस्माकंविधीयताम् ॥ भविष्यभूततत्त्वज्ञो ब्रह्मपुत्रस्तपोनिधिः ॥ ४५ ॥ उवाचवचनंश्रीमान्नार
दस्तांस्तपोधनान् ॥ कस्मिन्नवसरेपुण्ये कार्तिक्यादिव्यपर्वणि ॥ ४६ ॥ शिवेनकीर्तितंपूर्वं पार्वत्याःषण्मुखस्यच ॥ श्रु
तंभयैवतत्रैव पुराणंस्कन्दकीर्तितम् ॥ ४७ ॥ कान्यापापक्षयंकर्तुं शक्तारेवांविनानृप ॥ गङ्गाद्यास्सरितोविप्राः पुण्यती
र्थस्तथापिच ॥ ४८ ॥ वागीशंचपुरंतत्र नर्मदातटमाश्रितम् ॥ अध्वरेब्रह्मदत्तस्य मोक्षणंतुभविष्यति ॥ ४९ ॥ उद्दे
शंतुततोदत्त्वा नारदस्त्रिदिवंगतः ॥ तेपिप्रेतामहाभाग ध्यात्वाशिवमुमापतिम् ॥ ५० ॥ अभिजगमुस्तमुद्देशंवागीशपुर
मुत्तमम् ॥ तत्रस्नात्वाभ्यर्च्यशिवं हरिमास्करमेवच॥ ५१ ॥ अध्वरेब्रह्मदत्तस्य मुक्तास्मर्वेपिकित्त्वेषात् ॥ ब्रह्मयानंस
मारुह्य ब्रह्मलोकंसमागताः ॥ ५२ ॥ प्रतपन्तिथयादित्याब्रह्मतेजोवपुर्दराः ॥ तस्योपरिनरेशस्य पुष्पवृष्टिःपपात

आदि नदियां व और भी पुण्यवाले तीर्थ विद्यमान हैं तथापि वे नहीं समर्थ हैं ॥ ४८ ॥ नर्मदा के किनारे पर वागीशपुर है वहां ब्रह्मदत्त की यज्ञमें तुमलोगों का मोक्षहोगा ॥ ४९ ॥ ऐसे सूचनाको देकर तदनन्तर नारदजी स्वर्गको चलेगये हे महाभाग ! वे प्रेतभी पार्वतीजी के पति महादेवजी का ध्यानकर ॥ ५० ॥ उसी उत्तम वागीशपुर को चलेगये वहां स्नानकर और महादेव, विष्णु और सूर्यका पूजनकर ॥ ५१ ॥ ब्रह्मदत्तकी यज्ञमें वे सब पापीलोग पाप से छुटगये ब्रह्माजीकी सवारीपर

सवारहोकर ब्रह्माजीके लोकको प्राप्तहो ॥ ५२ ॥ ब्रह्मतेजके शरीरको धरेहुये सूर्यके समान तपतेहैं, उस राजाके ऊपर फूलोंकी वर्षा होतीहुई ॥ ५३ ॥ हे राजन् ! यह आपसे कहागया जैसा कुछ पूर्वकाल में होताहुआ इसके सुनने व कहने से हजार गोदानोंके फलको पाताहै ॥ ५४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डप्राकृतभाषाऽनुवादे

मार्कण्डेयजी बोले कि दानलेना यह बड़ाभारी मगर है इससे ग्रसेहुये और लोभ व मोहसे मोहित होरहे ब्राह्मण घोरनरक में डूबते हैं जहां पड़कर फिर नहीं

वै ॥ ५३ ॥ एतत्तेकथितं राजन्यथावृत्तं पुरातनम् ॥ श्रवणात्कीर्तनादस्य गोसहस्रफलं लभेत ॥ ५४ ॥ इति श्रीस्कन्द पुराणेरेवाखण्डवागीश्वराख्यानं नाम सप्तषष्ठितमोऽध्यायः ॥ ६७ ॥

मार्कण्डेयउवाच ॥ प्रतिग्रहग्रहग्रस्ता लोभमोहविमोहिताः ॥ मज्जन्ति नरकेधारे यत्र गत्वाननिर्गताः ॥ १ ॥ स्नातस्य विधिवद्बुधोत्सर्गफलं भवेत् ॥ २ ॥ दाता च याचकश्चैव करा भ्यामेव सूचितौ ॥ अधोगच्छेद्ग्रहीता तु दाता गच्छति चोद्धृतः ॥ ३ ॥ सहस्रावर्तकं नाम तीर्थपापप्रणाशनम् ॥ तत्र स्नातस्य विधिवद्बुधोत्सर्गफलं भवेत् ॥ ४ ॥ आसप्तमं कुलञ्चैव पुनीतेनात्र संशयः ॥ रेवाया उत्तरे कूले सहस्रायुधसंख्यया ॥ ५ ॥ ततश्चान्ते महाभाग काराया वनमुत्तमम् ॥ अग्निष्टोमफले यत्र स्नात्वा स्वर्गं च गच्छति ॥ ६ ॥ रेवाया उत्तरे भागे

निकलसके हैं ॥ १ ॥ हे भारत ! यद्यपि वेदोंमें कहाहुई यज्ञ व तीर्थयात्रा ये सब फलवाली हैं तथापि दानके लेनेवाले मनुष्य अपने आत्माको लेकर देते हैं ॥ २ ॥ देने वाले और लेनेवाले दोनों हाथोंसेही काम करतेहैं परन्तु दानका लेनेवाला नीचेको जाताहै और देनेवाला ऊपरको जाताहै ॥ ३ ॥ सब पापोंका छोड़ानेवाला एक सहस्रावर्तकनाम का तीर्थ है उसमें विधिपूर्वक स्नान करनेवाले को बुधोत्सर्गका फल होताहै ॥ ४ ॥ और अपनी सातपीढ़ीतकको पवित्र करताहै इसमें कुछ संशय नहीं है यह तीर्थ नर्मदा के उत्तरवाले किनारे पर सौ धनुषका लम्बाहै ॥ ५ ॥ हे महाभाग ! उसके अन्तमें कारा का वनहै वह बड़ा उत्तम है जहां अग्निष्टोमयज्ञ का फल

होता है और स्नान कर स्वर्ग को जाता है ॥ ६ ॥ नर्मदा के उत्तरतरफ परमसुहावन तीर्थ सौगन्धिक नामका वन है उसको पवित्र ब्रतवाले ब्रह्मचारी, पितर, ब्रह्मा आदि देवता, श्रेष्ठ तपस्वी, ऋषि, सिद्ध, चारण, गन्धर्व, किन्नर और नागों ने सींचा है ॥ ७ ॥ उस वन में पैठकर मनुष्य सब पापों से छूट जाता है तदनन्तर नदियों में उचम सरस्वती नदी है ॥ ९ ॥ हे राजन् ! वह देवताओं की कन्या है व उन्हीं के देखने लायक है और महापवित्र कही गई है हे नृपते ! मनुष्य उसके जल में स्नान करे ॥ १० ॥ और पितर व देवताओं का तर्पण कर अश्वमेध के फल को पाता है वहां ईशानाध्युषित नामका अतिदुर्लभ तीर्थ है ॥ ११ ॥ उसमें व्यतीपात व संक्रान्ति

तीर्थ परमशोभनम् ॥ सौगन्धिकं वनं नाम ब्रह्मचारिशुचित्रताः ॥ ७ ॥ सिषिचुः पितरस्तनु ब्रह्माद्यास्तु तपोधनाः ॥ सिद्ध चारणगन्धर्वाः सकिन्नरमहोरगाः ॥ ८ ॥ प्रविश्य तद्वनं मर्त्यः सर्वपापात्प्रमुच्यते ॥ ततः सरस्वती चास्ति नदी नामुत्तमानदी ॥ ९ ॥ लक्ष्या देवसुताराजन्महापुराया प्रकीर्तिता ॥ तत्र स्नानं प्रकुर्वीत मानवो नृपते जले ॥ १० ॥ तर्पयित्वा पितृन्देवानश्च मेधफलं लभेत् ॥ ईशानाध्युषितं नाम तत्र तीर्थं सुदुर्लभम् ॥ ११ ॥ तत्र स्नात्वा व्यतीपाते संक्रान्तौ ग्रहणे नरः ॥ सहस्रकपिलादाने वाजिमेधे च यत्फलम् ॥ १२ ॥ सुगन्धाञ्छ्वातकुम्भांश्च पञ्चयज्ञांश्च भारत ॥ अभिगम्य नरश्रेष्ठ स्वर्गलोके महीयते ॥ १३ ॥ त्रिशूलाख्यन्तु तत्रैव तीर्थं मासाद्य भारत ॥ तत्राभिषेकं यः कुर्यादर्चयेत्पितृदेवतम् ॥ १४ ॥ गणेशत्वं सलभे तेत्यक्त्वा देहं न संशयः ॥ ततो गच्छेन्महाराज ब्रह्मस्थानमनुत्तमम् ॥ १५ ॥ रेवाया उत्तरे कूले कामभोगफलप्रदम् ॥ ब्रह्मोदमितिविख्यातं प्रकाश्यं भुवि भारत ॥ १६ ॥ तत्र सप्तर्षयः प्राप्ताः स्नानार्थं भरतर्षभ ॥

और ग्रहण में मनुष्य स्नान कर हजार कपिलगौवों के देने में व अश्वमेध में जो पुण्य होता है उसको पाता है ॥ १२ ॥ और हे नरश्रेष्ठ, भारत ! सुगन्ध व शातकुम्भ और पञ्चयज्ञनाम के तीर्थों में जाकर स्वर्गलोक में पूजित होता है ॥ १३ ॥ हे भारत ! फिर वहीं त्रिशूलनाम के तीर्थ को पाकर उसमें जो स्नान करता है और पितर व देवताओं का पूजन करता है ॥ १४ ॥ वह मनुष्य देह को छोड़कर गणों के राज्य को पाता है इसमें कुछ सन्देह नहीं है हे महाराज ! तदनन्तर सबसे उत्तम ब्रह्मस्थान का जावे ॥ १५ ॥ नर्मदा के उत्तरतट में मनमाने भोगों का देनेवाला ब्रह्मोदनामसे प्रसिद्ध तीर्थ है हे भारत ! वह पुथित्री में प्रकाश करने के लायक है ॥ १६ ॥

हे भरतर्षभ ! वहां स्नान करने के वास्ते सार्तो ऋषि प्राप्तहुये हे भारत ! और भी मुनियों में श्रेष्ठ कपिञ्जल, हव्यव्राह ॥ १७ ॥ भगवान् देवयान और महामुनि विदवावसु ये सब इस तीर्थ के माहात्म्य से ब्रह्मलोक को प्राप्त होते हुये ॥ १८ ॥ और यहांपर श्राद्ध के देनेसे पितालोग ब्रह्माजीके पुरको प्राप्त हुये तदनन्तर एक गूलर का वृक्षहै विधिसे उसका दर्शनकर ॥ १९ ॥ तपस्या से पाप जिसके जलगये ऐसा मनुष्य अन्तर्द्वान को पाता है हे महाराज ! तदनन्तर लोकों के कल्याण करनेवाले शङ्करजीको प्राप्तहोवे ॥ २० ॥ अधियालेपाखकी चौदसिको महादेवजी के समीप जाकर सब कामोंको पाताहै और निश्चय करके स्वर्गलोकको जाता

कपिञ्जलोमुनिश्रेष्ठोहव्यवाहश्चभारत ॥ १७ ॥ भगवान्देवयानश्च विदवावसुमहामुनिः ॥ अस्यतीर्थस्यमाहात्म्याद्ब्रह्मलोकमवाप्नुयुः ॥ १८ ॥ पितरःश्राद्धदानेन प्रयाताब्रह्मणःपुरम् ॥ उदुम्बरस्यकृत्वातु विधिवद्दर्शनंततः ॥ १९ ॥ अन्तर्द्वानमवाप्नोति तपसादग्धकिल्बिषः ॥ ततो गच्छेन्महाराज शङ्करलोकशङ्करम् ॥ २० ॥ कृष्णपद्मेचतुर्दश्यामभिगम्यतृषध्वजम् ॥ लभतेसर्वकामांश्च स्वर्गलोकंहि गच्छति ॥ २१ ॥ नर्मदायाम्यभागेतु गोप्याद्गोप्यतरंमहत् ॥ सिद्धालिङ्गमणिमयंनतपश्यन्तिमानवाः ॥ २२ ॥ नागेन्द्रमुखसिद्धेश्च नागकन्याभिरर्च्यते ॥ सपादकोटिस्तीर्थानांशङ्करेकुरुनन्दन ॥ २३ ॥ वसुनामाश्रमंपुरयं मुनीनांब्रह्मचारिणाम् ॥ शिवभक्तिपराणाञ्च कन्दमूलफलाशिनाम् ॥ २४ ॥ पितृणामक्षयातृप्तिस्तिलतौर्यप्रदानतः ॥ मुदापरमयायुक्तो दातायातिशिवालये ॥ २५ ॥ ध्रुवोधरश्चसोमश्च सावित्रश्चानलोनिलः ॥ प्रत्यूषश्चप्रभासश्च वसवोऽष्टौप्रकीर्तिताः ॥ २६ ॥ शङ्करस्यप्रसादेन दिविदेवत्वमागताः ॥ क

हे ॥ २१ ॥ और नर्मदा के दक्षिणतरफ गुप्तसे अतिगुप्त, बड़ाप्रभाववाला, मणियों से बनाहुआ सिद्धलिङ्ग है उसको मनुष्य नहीं देखते हैं ॥ २२ ॥ वह नागोंके राजा, देवता, सिद्ध और नागोंकी कन्याओं से पूजाजाता है हे कुरुनन्दन ! शङ्करजी में सवाकरोड़ तीर्थ हैं ॥ २३ ॥ वहीं वसुनामके देवताओंका और कन्द, मूल व फलोंके खानेवाले शिवके भक्त ब्रह्मचारी मुनियोंका भी पुण्य आश्रम है ॥ २४ ॥ वहां तिल और जलके देनेसे पितरोंकी अक्षयवृत्ति होतीहै और तिलोदक देनेवाला पुरुष बड़ेआनन्द से युक्त शिवके स्थानको जाता है ॥ २५ ॥ ध्रुव, धर, सोम, सावित्र, अनल, प्रत्यूष और प्रभास ये आठ वसु कहेगये हैं ॥ २६ ॥ सो सब

महादेवजी के प्रसाद से स्वर्गमें देवताहुये अब नर्मदा के उत्तरतरफ में अत्युत्तम सोमतीर्थ है ॥ २७ ॥ हे राजन् ! वहां स्नानकर मनुष्य स्वर्गलोक में पूजित होता है हे नृपोत्तम ! तदनन्तर सप्तसारस्वत तीर्थको जावे ॥ २८ ॥ हे पुण्यकीर्ति ! अब ब्रह्माके क्रियेहुये स्तोत्रको सुनो ब्रह्माजी बोले कि वाणी व शब्दोंके स्वामी वासुदेव हमारी नित्यही गतिहोवें ॥ २९ ॥ सबकहीं प्राप्तहोनेवाले, देवताओं के मालिक, बोलनेवाले, जीवोंके अन्दर रहनेवाले, होमके करनेवाले, स्वर्गके बैठनेवाले, सब के ईश्वर, वासुदेव हमारी गति होवें ॥ ३० ॥ स्वाहा, स्वधा और वषट्काररूपवाले, शाकल्यके खानेवाले, ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद जिनकी मूर्तियाँ हैं ऐसे वासुदेव

ल्पगामौम्यभागेतु सोमतीर्थमनुत्तमम् ॥ २७ ॥ तत्रस्नात्वानरोराजन्स्वर्गलोकमर्हायते ॥ सप्तसारस्वतंतीर्थं ततो गच्छे नृपोत्तम ॥ २८ ॥ ब्रह्मणाचकृतंस्तोत्रं पुण्यकीर्तिनिशामय ॥ ब्रह्मोवाच ॥ वाक्पतिर्वचसांनित्यं वासुदेवोस्तुमेगतिः ॥ २९ ॥ हंसःसुरेशोवक्तावावसूनामन्तरावसन् ॥ होतादिविषदीशानो वासुदेवोस्तुमेगतिः ॥ ३० ॥ स्वाहाकारःस्वधा कारो वषट्कारोहविष्यभुक् ॥ ऋङ्मूर्तिर्यजुषामूर्तिर्वासुदेवोस्तुमेगतिः ॥ ३१ ॥ क्षेत्रज्ञःपरमःसूक्ष्मोजगतांतारको हरिः ॥ ईश्वरोहृदयावासो वासुदेवोस्तुमेगतिः ॥ ३२ ॥ श्रवणःश्रवणोपायः पुण्यश्लोकश्शुचिश्रवाः ॥ वरदोवासु देवोऽग्निर्वासुदेवोस्तुमेगतिः ॥ ३३ ॥ पुरुषःपुण्डरीकान्नःपुराणोभुवनेश्वरः ॥ आदित्यानन्तर्गतोवह्निर्वासुदेवोस्तुमेगतिः ॥ ३४ ॥ कंसकालियहन्ताच सुबलोबलमर्दनः ॥ शिशुपालनिहन्ताग्निर्वासुदेवोस्तुमेगतिः ॥ ३५ ॥ कालनेमिनिहन्ता

हमारी गतिहोवें ॥ ३१ ॥ शरीरके जाननेवाले, बहुत सूक्ष्म, संसारके तारनेवाले व हरनेवाले, सबके मालिक, सबके हृदयमें बसनेवाले, वासुदेव हमारी गति होवें ॥ ३२ ॥ सुननेलायक और सुनने के कारण, पवित्र यशवाले व पवित्र कानोंवाले, वरके देनेवाले, जीवरूप, वासुदेव हमारी गति होवें ॥ ३३ ॥ शरीरमें रहनेवाले, सफेदकमल से नेत्रोंवाले, सबसे पुराने, चौदहों सुवर्णों के मालिक, सूर्यके भीतर रहनेवाले, अग्निरूपसे देवताओंके यज्ञमें बुलायेजानेवाले, वासुदेव हमारी गति होवें ॥ ३४ ॥ कंस व कालियनागके, मारनेवाले, अच्छे बलवाले, अग्निरूप, वासुदेव हमारी गति होवें ॥ ३५ ॥ कालनेमि

के नाश करनेवाले, व्यापकरूपवाले, समयपर यमराजके भी नाश करनेवाले, सैकड़ों दैत्योंके शरीरोंके नाश करनेवाले वासुदेव हमारी गतिहोवें ॥ ३६ ॥ कंकासुर और मधुकैटभके नाश करनेवाले, शङ्ख, चक्र और गदा जिनके हाथोंमें है ऐसे वासुदेव हमारी गतिहोवें ॥ ३७ ॥ सफेद रङ्गवाले, जलके सोनेवाले, सबमें रहनेवाले, पापोंका नाश करनेवाला है नाम जिनका, सबसे अधिक ऐश्वर्यवाले और अपने वचनकी सच्चीपालनाके करनेवाले, वासुदेव हमारी गतिहोवें ॥ ३८ ॥ इन्द्रियोंके स्वामी, इन्द्रके पालनेवाले, इन्द्रके छोटेभाई, गरुड़के सवार, हजारों नामोंवाले, धर्मके जाननेवाले, वासुदेव हमारी गतिहोवें ॥ ३९ ॥ शङ्खवाले, नन्दकनामकी तलवारके बाधनेवाले, चक्रवाले, शार्ङ्गधनुषवाले, गदाके धरनेवाले, धीरजवाले, अर्धदीहवाले, बुद्धिवाले, वासुदेव हमारी गतिहोवें ॥ ४० ॥ सबसे भारी जगत्के खींचनेवाले

गिनर्यःकालेनियतान्तकः ॥ शतासुरशरीरघ्नो वासुदेवोस्तुमेगतिः ॥ ३६ ॥ कंकासुरनिहन्ताच मधुकैटभनाशनः ॥
शङ्खचक्रगदापाणिर्वासुदेवोस्तुमेगतिः ॥ ३७ ॥ शुक्रःसलिलशायीच विष्णुःपापक्षयाक्षयः ॥ इन्द्रोवचनसत्पालो वा
सुदेवोस्तुमेगतिः ॥ ३८ ॥ हृषीकेशश्चेन्द्रपाल उपेन्द्रोगरुडासनः ॥ सहस्रनामाधर्मज्ञो वासुदेवोस्तुमेगतिः ॥ ३९ ॥
शङ्खीचनन्दकीचक्रीशार्ङ्गधन्वागदाधरः ॥ धीरोवपुष्मान्मेधावी वासुदेवोस्तुमेगतिः ॥ ४० ॥ बृहत्सङ्कर्षणश्शम्भुःस्व
यंभूर्भूतभावनः ॥ निपुणोलक्ष्मणश्शुद्धो वासुदेवोस्तुमेगतिः ॥ ४१ ॥ त्रैकालिकस्त्रिकालज्ञस्त्रयीकर्तात्रिलोचनः ॥ त्रि
सामादेवकीसूनुर्वासुदेवोस्तुमेगतिः ॥ ४२ ॥ अव्यक्तात्मा महात्माच अन्तरात्मा जनार्दनः ॥ प्राणश्चेन्द्रियभूतात्मा वासु
देवोस्तुमेगतिः ॥ ४३ ॥ परमात्मा परब्रह्म परमेशः परागतिः ॥ परमेष्ठी परंज्योतिर्वासुदेवोस्तुमेगतिः ॥ ४४ ॥ विश्वात्मा

कल्याणरूप, आपही से प्रकट होनेवाले, सब प्राणियों के पैदा करनेवाले, जगत् के बनाने में प्रवीण, उत्तम लक्षणोंवाले, निर्मल, वासुदेव हमारी गतिहोवें ॥ ४१ ॥
तीनों कालों में रहनेवाले, तीनों कालोंके जाननेवाले, तीनों वेदोंके रचनेवाले, तीनों नेत्रवाले, तीनों कालोंमें शान्तरूपवाले, देवकीके पुत्र वासुदेव हमारी गतिहोवें ॥
४२ ॥ अप्रकटरूपवाले, महात्मा, सबके अन्तर्यामी, भक्तोंके मनोरथों के पूरे करनेवाले, प्राणरूप, इन्द्रिय और पृथिवीआदि भूतों के आत्मा, वासुदेव हमारी गति
होवें ॥ ४३ ॥ परमात्मा, परब्रह्म, मालिकोंके मालिक, परमगति, सबसे ऊंचाईठकवाले, परमज्योतिःस्वरूप, वासुदेव हमारी गति होवें ॥ ४४ ॥ सब जगत् के आत्मा,

जगत् के बनानेवाले, जगत् के स्वामी, आत्मज्ञानी, आकाश और पृथिवी के रचनेवाले वासुदेव हमारी गति होंवे ॥ ४५ ॥ हजारों शिरोवाले, सब प्रकारके ऐश्वर्यों वाले, हजारों नेत्रोंवाले षे हजारों पाँवोंवाले और हजारों करोड़ों के धारण करनेवाले, वासुदेव हमारी गतिहोवे ॥ ४६ ॥ इस प्रकार उत्तम वाणीवाले पूजन किये गये वागीश्वर परमेश्वर जनार्दन विष्णुभगवान् मुझ भक्तपर प्रसन्नहोंवे ॥ ४७ ॥ जन्मसे लेकर आजतक जो कुछ मैंने पुण्यको कमायाहो हे पुरुषोत्तम! वह सब मेरा फल अटल होजावे ॥ ४८ ॥ इस स्तोत्रको हमेशा पाठ करनेवाले मनुष्य से परमेश्वर पूजित होजाते हैं और उसके पापों का नाश करदेते हैं व उसके फलको

विश्वकर्ताच विश्वस्यपतिरात्मवान् ॥ द्यावापृथिव्योःकर्ताच वासुदेवोस्तुमेगतिः ॥ ४५ ॥ सहस्रशीर्षभगवान्सह
स्राजस्सहस्रपात् ॥ सहस्रकोटिधारीवावासुदेवोस्तुमेगतिः ॥ ४६ ॥ इतिवागीश्वरोवाग्मी पूजितःपरमेश्वरः ॥
भक्तस्यभगवान्विष्णुः प्रियतांमैजनार्दनः ॥ ४७ ॥ जन्मप्रभृतियत्किञ्चिन्मयासुकृतमर्जितम् ॥ तत्समग्रंफलंचास्तु
शाश्वतंपुरुषोत्तम ॥ ४८ ॥ इदमभ्यस्यतो नित्यं पूजितः स्यात्सकेशवः ॥ विनाशयतिपापानिप्रकाशयति तत्फलम् ॥
४९ ॥ एषनिष्कण्टकः पन्था यत्रसम्पूज्यतेहरिः ॥ कुपथंतंविजानीयाद्यत्रनाराध्यतेहरिः ॥ ५० ॥ वासुदेवपरावेदा वा
सुदेवपराक्रिया ॥ वासुदेवात्मकाविप्रा वासुदेवपराश्रयः ॥ ५१ ॥ सर्वदेवावासुदेवंयजन्ते सर्वदेवावासुदेवात्प्रसूताः ॥
सर्वेषांवासुदेवोपिदेवो नान्यत्किञ्चिद्वासुदेवातिरिक्तम् ॥ ५२ ॥ नान्यः पुण्यतरादेवो नास्तिविष्णुपरंतपः ॥ नास्ति
विष्णुपरंज्ञानं सर्वविष्णुमयंजगत् ॥ ५३ ॥ येषठन्तिनराभक्त्या विष्णुनामाङ्कितस्तवम् ॥ तेयान्तिवैष्णवंलोकं
देते ॥ ४६ ॥ यही बेकांटे की रास्ता है जिसमें हरिभगवान् पूजेजायें व उसको कुमार्ग समझे जिसमें हरिभगवान् नहीं पूजेजाते हैं ॥ ५० ॥ वेद वासुदेवही को
कहते हैं, कर्म वासुदेवहीके वास्ते हैं, ब्राह्मण वासुदेवही के रूप हैं, सब से बड़े आश्रय वासुदेवही हैं ॥ ५१ ॥ सब देवता वासुदेवहीको पूजते हैं सब देवता वासुदेव
हीसे पैदाहुये हैं सबके देवता वासुदेवही हैं वासुदेवको छोड़कर और कोई चीजही नहीं है ॥ ५२ ॥ और कोई ऐसा पवित्र देवताही नहीं है विष्णु से गरे कोई तपस्या
नहीं है व विष्णुसे परे कुछ ज्ञान नहीं है और सब जगत् विष्णुका रूप है ॥ ५३ ॥ विष्णुके नामोंसे चिह्नित इस स्तोत्रको जो मनुष्य भक्तिसे पढ़तेहैं वे सनातन परब्रह्म

रूप विष्णुके लोकको जातेहैं ॥ ५४ ॥ मार्कण्डेयजी बोले कि महात्मा ब्रह्माजी के कियेहुये इस स्तोत्रको सुनकर योगनिद्रासे सोतेहुये लक्ष्मीजी से जगायेगये वे कृष्ण देव ॥ ५५ ॥ डरभूते, अनेक रूपवाले सब देवताओं को देखकर बोले कि तुम सबको क्या भय पैदा हुआ है जो हमारे देखने के वास्ते यहां आयेहो ॥ ५६ ॥ तब हे भारत ! विष्णुजी से ब्रह्माजी वचन बोले कि हे जगन्नाथ ! आपके बिना देवताओंको काटे ऐसे दैत्योंसे यहां रक्षा करनेवाला और कौनहै ॥ ५७ ॥ दानवों ने पृथ्वीको लपेट लिया है और स्वर्गको भी नाशकरदियाहै धर्म और काम आदिकों के देनेवाले यज्ञों व धेदों को नाश करदिया है ॥ ५८ ॥ दानवों के भारसे दर्बाहुई

परं ब्रह्मसनातनम् ॥ ५४ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ श्रुत्वास्तोत्रमिदं देवो ब्रह्मणः समहात्मनः ॥ श्रियाप्रबोधितः कृष्णश्च
आनोयोगनिद्रया ॥ ५५ ॥ दृष्ट्वा ब्रवीत्सुरान्सर्वाज्ञानारूपान्भयानकान् ॥ किमस्ति नः समुत्पन्नमादिदृशुरिहागताः ॥
५६ ॥ उवाच वचनं ब्रह्मा केशवं प्रतिभारत ॥ त्वां विना त्रजगन्नाथ कक्षाता देवकण्टकैः ॥ ५७ ॥ दानवैर्वेष्टिता धात्री स्व
र्गश्चैव विनाशितः ॥ धर्मकामादिका यज्ञा वेदा विष्ठावितास्तथा ॥ ५८ ॥ दनुभारभराक्रान्ता रसातलतलंगता ॥ ज
टामुरश्च जाबलिदैत्यो मय सुतस्तथा ॥ ५९ ॥ दशकोट्यस्तु दैत्यानां समग्रबलशालिनाम् ॥ शिवप्रसादशुक्तानां स्व
र्गविप्लवकारिणाम् ॥ ६० ॥ तस्मात्प्रवर्तितं च क्रमुद्धरस्व वसुन्धराम् ॥ श्रुत्वा वाक्यमिदं देवो भयार्तं प्राणपीडितम् ॥
६१ ॥ उवाच वचनं देवा भयन्त्यजत दैत्यजम् ॥ अचिरेणैव कालेन हनिष्यामि महासुरान् ॥ ६२ ॥ वाराहरूपमास्थाय
प्रेषितं कल्पगजले ॥ दंष्ट्राग्रेण धृता धात्री दानवानां जयः कृतः ॥ ६३ ॥ पुनः प्रवर्तिता मुष्टिर्यथा पूर्वतथैव च ॥ ब्रह्माद्यामु
पृथ्वी पातालको चलीगई है जटामुर और मयदानव का लड़का जाबलिदैत्य ॥ ५९ ॥ व स्वर्गके तोड़नेवाले, महादेवजीके प्रसादसे युक्त सन्नतरहकी ताकतवाले
दशकरोड़ दैत्योंका ॥ ६० ॥ चक्र इस समय में चल रहा है इससे आप पृथिवीका उच्चार करें विष्णुदेव इस वचन को सुनकर और भयसे विकल व प्राणों से पी-
डित ब्रह्माजी को देखकर ॥ ६१ ॥ वचनबोले कि हे देवताओं ! दैत्यों से पैदाहुये भयको तुम सब लोग छोड़ देवो क्योंकि थोड़ी कालमें हम दैत्योंको मारेगे ॥ ६२ ॥
यह कहकर सुवर के रूपको धारणकर नर्मदा के जलमें पैठे अपनी चौरोंपर पृथ्वीको धरा व दानवों का नाश करदिया ॥ ६३ ॥ फिर भी पहलेकी तरह सुष्टि प्रवृत्त हुई

व आनन्दित हुये सब ब्रह्माआदि देवता स्वर्गको लौटआये ॥ ६४ ॥ हे राजर्ष ! यह तुमसे वाराहक्षेत्र जो नर्मदाके तटमें है उसको कहा इसके सुनने व कहनेसे अर्ध-
मेधके फलको पाताहै ॥ ६५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणरेवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनुवर्णनोनामाष्टषष्ठितमोऽध्यायः ॥ ६८ ॥

फिर मार्कण्डेयजी बोले कि तदनन्तर सब देवताओं का रूप देवपथनाम का शुभतीर्थ है उसमें विधिसे स्नान करनेवाला सब यज्ञों के फलको पाताहै ॥ १ ॥
महीनारमें जो कुशोंकी पूँछों से सोमयज्ञको करता है वह नर्मदा के जलसे पवित्र हुयेकी सोलहवीं कलाको नहीं पाताहै ॥ २ ॥ देवता और दैत्योंसे नमस्कार किया

दितादेवाः प्रतिजग्मुस्त्रिविष्टपम् ॥ ६४ ॥ एतत्तेकाथितराजन् वाराहं कल्पगातटे ॥ श्रवणात्कीर्तनादस्य हयमेधफलं
लभेत् ॥ ६५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणरेवाखण्डे वाराहमहिमानुवर्णनोनामाष्टषष्ठितमोऽध्यायः ॥ ६८ ॥ *

मार्कण्डेय उवाच ॥ ततो देवपथं तीर्थं सर्वदेवमयं शुभम् ॥ तत्र स्नातश्च विधिवत्सर्वयज्ञफलं लभेत् ॥ १ ॥ मासेमासेकु
शात्रेण सोमयागं करोति यः ॥ सरेवाजलपूतस्य कलानाहतिषोडशीम् ॥ २ ॥ लिङ्गं देवपथं नाम सुरासुरनमस्कृतम् ॥
श्रद्धया तद्दर्शनं न पितृणां परमागतिः ॥ ३ ॥ चैत्रे मासे च तुर्दश्यां पक्षयोरुभयोरपि ॥ स्नानार्थं सर्वतीर्थानि जग्मुः कर्तुं
असत्क्रियाम् ॥ ४ ॥ यद्देवलोके देवानामपि सतञ्च नृपध्वज ॥ सहस्राणि भुनीन्द्राणां तस्मिञ्छिवमुपासते ॥ ५ ॥

चान्द्रायणपराः केचिद्ब्रह्मकूर्चपरास्तथा ॥ कन्दमूलफलाहारा जलाहारा जलप्रियाः ॥ ६ ॥ अग्निहोत्रपरानित्यं तथाहु
तहुताशनाः ॥ उपासते देवपथं संसिद्धिपरमाद्भुताः ॥ ७ ॥ अथान्यत्संप्रवक्ष्यामि तीर्थपापप्रणाशनम् ॥ सहस्रयज्ञं परमं

गया देवपथनामका लिङ्गहै श्रद्धासे उसके दर्शन करने से पितरों की परम गति होती है ॥ ३ ॥ चैत्रके महीने के दोनों पाखोंकी चौदसको उसमें स्नान व उसके
मस्तर करने को सबतीर्थ आतेहैं ॥ ४ ॥ हे नृपध्वज ! जो लिंग देवलोकमें देवताओंको भी प्याराहै ऐसे उस शिवलिंगकी हजारों सुनीन्द्र उस स्थानमें उपासना
किया करते हैं ॥ ५ ॥ कोई चान्द्रायण के करनेवाले हैं, कोई ब्रह्मकूर्च के पीनेवाले हैं, कोई कन्द, मूल और फलोंके खानेवाले हैं, कोई जलाहार के करनेवाले हैं,
कोई जलही जिनका प्याराहै ऐसे हैं ॥ ६ ॥ और कोई नित्य अग्निहोत्र के करनेवाले होम कियाहै अग्निमें जिन्होंने ऐसे हे ये सबलोग देवपथ लिंगकी उपासना

करते परमसिद्धि को प्राप्तहुये हैं ॥ ७ ॥ अब पापोंके नाश करनेवाले और तीर्थको कहते हैं वह सब कामफलोंका देनेवाला महस्रयज्ञ नामका परमतीर्थ है ॥ ८ ॥ उसमें अगहन के महीने में एकादशी को जनार्दनजी का पूजनकर मनुष्य अपने कियेहुये हजारयज्ञों के फलको पाताहै ॥ ९ ॥ यमलोक को नहीं देखता है और पशुआदि योनियों को नहीं पाताहै इस तीर्थके प्रभावसे मनुष्य पापराहित होजाताहै ॥ १० ॥ हे राजन् ! यह तुमसे पुण्यबाला अत्युत्तम आख्यान कहागयाहै इस के सुनने व कहनेसे विष्णुलोक में पूजाजाता है ॥ ११ ॥ तदनन्तर सब तीर्थ जिसमें है ऐसे अच्छे शुक्लतीर्थ को जावे जिसमें स्नानमात्र का करनेवाला मनुष्य दश

सर्वकामफलप्रदम् ॥ ८ ॥ एकादश्यामार्गशीर्षे पूजयित्वाजनार्दनम् ॥ सहस्रयज्ञस्येष्टस्य फलंप्राप्नोतिमानवः ॥ ९ ॥ नपश्येद्यमलोकञ्च तिर्यग्योनिनगच्छति ॥ तीर्थस्यास्यप्रभावेण नरोविगतकल्मषः ॥ १० ॥ एतत्तेकथितंराज न्पुण्याख्यानमनुत्तमम् ॥ श्रवणात्कीर्तनादस्य विष्णुलोकैमहीयते ॥ ११ ॥ शुक्लतीर्थतोगच्छेत्सर्वतीर्थमञ्चुभम् ॥ यत्रस्नातोपिलभेत्तदशधेनुफलंनरः ॥ १२ ॥ शुक्लीकृतास्तेनदेवा ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥ सुपादकोटिस्तीर्थानां शुक्लतीर्थेव्यवस्थिता ॥ १३ ॥ अष्टहस्तप्रमाणञ्च शुक्लतीर्थयुधिष्ठिर ॥ तत्रकालाग्निरुद्रश्च श्रीकण्ठश्चतथापरः ॥ १४ ॥ तैस्तैस्तपोभिरुग्रैश्च तत्रसिद्धिपराङ्मताः ॥ शुक्लतीर्थप्रभावेणमोदन्तेदिविदेवताः ॥ १५ ॥ शक्रोपिचपुण्ड्रश्च देवदेवमु मापतिम् ॥ रेवातोयेनसंस्नाप्यबिल्वपत्रैःसमार्चयत् ॥ १६ ॥ पूर्णमास्यामभावस्यां सोमःसूर्यःप्रभावतीम् ॥ तन्नस्नातो

गोदानों के फलको पाताहै ॥ १२ ॥ व उसने ब्रह्मा, विष्णु और महादेवआदि देवताओं को सफेद अर्थात् निर्मल करदिया है व सवाकरोडतीर्थ शुक्लतीर्थ में रहा करते हैं ॥ १३ ॥ हे युधिष्ठिर ! शुक्लतीर्थ आठहाथ का प्रमाणवाला है वहां कालाग्निरुद्र और दूसरे श्रीकण्ठभी रहतेहैं ॥ १४ ॥ और वहां उन २ उग्रतपस्याओं से व शुक्लतीर्थ के प्रभावसे बड़ी सिद्धि को पायेहुये देवतालोग स्वर्गमें आनन्द भोगतेहैं ॥ १५ ॥ अगिले जमाने में इन्द्रभी देवताओं के देवता पार्वतीजी के पतिको नर्मदा के जलसे नहलाकर बेलपत्रों से पूजाथा ॥ १६ ॥ पूर्णमासी व अमावस को ग्रह, नक्षत्र और ध्रुवमण्डल के सहित सूर्य व चन्द्रमाने वहा शुक्लतीर्थ में स्नान

किया इसीसे ये सब प्रकाश करनेवाले हुये ॥ १७ ॥ और इसी शुक्लतीर्थ के प्रभावसे देवता प्रकाश करते हैं वहां देवता और सिद्धोंसे सेवित पुण्यवाला कश्यप जीका आश्रम है ॥ १८ ॥ हे भारत ! वहां दशहजार मुनिलोग आपही रहते हैं उनमें कोई कन्द, मूल और फलोंके आहार करनेवाले हैं तथा कोई जलाहारी है ॥ १९ ॥ कोई शाकाहारी, कोई निराहारी, कोई ब्रह्मकूर्च के पीनेवाले, कोई चान्द्रायणके करनेवाले और कोई महीनेभरतक उपास के करनेवाले हैं ॥ २० ॥ तैत्तिरीय करोड़ ऋषिलोग शुक्लेश्वर की उपासना किया करते हैं चन्द्रग्रहण व पूर्णमासी तिथिमें ॥ २१ ॥ वहां सब तीर्थ स्नान करनेको आते हैं यह शिवजी ने कहा है सूर्य-
ग्रहैः सार्द्धं नक्षत्रध्रुवमण्डलैः ॥ १७ ॥ तेन देवाश्च दीव्यन्ते शुक्लतीर्थप्रभावतः ॥ कश्यपस्याश्रमं पुण्यं सुरसिद्धानिषेवि-
तम् ॥ १८ ॥ मुनीनामयुतं तत्र स्वयं तिष्ठति भारत ॥ कन्दमूलफलाहारा जलाहारास्तथापरे ॥ १९ ॥ शाकाहारानिरा-
हारा ब्रह्मकूर्चास्तथापरे ॥ चान्द्रायणपराः केचिदन्ये मासोपवासिनः ॥ २० ॥ ऋषिकोट्यस्त्रयस्त्रिंशच्छुक्लेश्वरमुपासते ॥
राहुभ्रस्ते तथा चन्द्रे पूर्णमास्यां तिथौ तथा ॥ २१ ॥ आयान्ति सर्वतीर्थानि स्नानुमेतच्चिबोदितम् ॥ स्थानेऽश्वरेयस्फ-
लेऽस्याद्राहुसूर्यसमागमे ॥ २२ ॥ तत्फलं प्राप्नुयात्सर्वं शुक्लतीर्थेन संशयः ॥ हेमधेनुधरादीनि रूप्यदागजास्तथा ॥
२३ ॥ एतद्देवत्वमहाराज पुण्यसंख्यानविद्यते ॥ धनदेन कुबेरेण देवगन्धर्वदानैः ॥ २४ ॥ राहुसूर्यसमायोगे शुक्ल-
तीर्थमहेश्वरः ॥ चन्दनाशुरुकूर्पूरपुष्पमालाभिरर्चितः ॥ २५ ॥ वितानध्वजमुख्यैश्च दीपमालाप्रबोधनैः ॥ अस्य तीर्थप्रभा-
वेण यत्नराजो धनेश्वरः ॥ २६ ॥ भोगानानाविधास्तेन सम्प्राप्ता दिवि देवताः ॥ सर्वतीर्थभयं तीर्थं सर्वदेवमयञ्च यत् ॥ २७ ॥
ग्रहण में स्थानेश्वर में जो फल होता है ॥ २२ ॥ शुक्लतीर्थ में उसी सम्पूर्ण फलको पाता है इसमें संशय नहीं है सोना, गौवं, पृथ्वी, चांदी और हाथी ॥ २३ ॥ हे महा-
राज ! इन चीजोंको देकर पुण्यकी गिन्ती नहीं होसक्ती है व धन देनेवाले कुबेर, देवता, गन्धर्व और दानवोंने ॥ २४ ॥ सूर्यग्रहण बिंबे शुक्लतीर्थ में चन्दन, अगर, कपूर और फूलोंकी मालाओं से महादेवजीका पूजन किया ॥ २५ ॥ और चांदनी, ध्वजा व दियालियों के जलाने आदिसे भी पूजन किया तो इसी तीर्थ के प्रभाव से धनोके व यत्नोंके मालिक कुबेर होतेहुये ॥ २६ ॥ और उनको तरह २ के भोग मिलतेहुये इसीतरह और भी देवता स्वर्गमें रहे जिससे कि यह तीर्थ सबतीर्थ व सब

देवताओं का रूपही है ॥ २७ ॥ हजारवर्षों से भी शुक्लतीर्थ का वर्णन करनेको सब देवताओं से भी शक्य नहीं है ऐसा स्कन्दपुराण में कहा है ॥ २८ ॥ पापयोनि को जो प्राप्त है अथवा पशुआदि की योनिमें जो पडा है ब्राह्मण का मारनेवाला, दारुका पीनेवाला और महादेवजी के निर्माल्य का खानेवाला ॥ २९ ॥ इस तीर्थ के प्रभाव से उस पापसे छूटजाता है मनुष्य वहा स्नानकर और महादेवजी का पूजनकर ॥ ३० ॥ हे नरसत्तम ! सब देवता व दैत्योंके गणोंसे पूजाजाताहै हे राजन् ! यह बड़े पापों का नाश करनेवाला तीर्थ तुमसे कहागया ॥ ३१ ॥ अगिले जमानेमें जिस तीर्थविषे ब्रह्माजीने यज्ञमें यज्ञेश्वरका पूजन कियाहै देवताओं के देवता

आपिवर्षसहस्रेण शुक्लतीर्थस्यवर्णनम् ॥ नशक्यतेसुरैःकर्तुं पुराणैस्कन्दकीर्तिते ॥ २८ ॥ पापयोनिगतोयश्च ति
र्यग्योनिगतश्चयः ॥ ब्रह्महाचसुरापश्च शिवनिर्माल्यभक्तकः ॥ २९ ॥ मुच्यतेतेनपापेन तीर्थस्यास्यप्रभावतः ॥ तत्र
स्नानंनरःकृत्वा पूजयित्वावृषध्वजम् ॥ ३० ॥ सुरासुरगणैःसर्वैःपूज्यतेनरसत्तम ॥ एतत्तेकथितंराजन् महापातकनाश
नम् ॥ ३१ ॥ पितामहेनयत्रेष्टो यज्ञेयज्ञेश्वरःपुरा ॥ स्तोत्रंक्रत्वायथान्यायं देवदेवस्यशूलिनः ॥ ३२ ॥ पूजयित्वातु
शुक्लेशं ब्रह्मास्तोत्रमुदाहरत् ॥ नमःशिवायशान्तायज्ञानविज्ञानरूपिणे ॥ ३३ ॥ सूक्ष्मायसूक्ष्मरूपाय सर्वसूक्ष्मायहेतवे ॥
सूक्ष्माणामपिसूक्ष्माय नमःसूक्ष्मतमायच ॥ ३४ ॥ दिव्यायदिव्यरूपाय दिव्यदेहायसेतवे ॥ दिव्यानामपिदिव्याय
नमोदिव्यतमायच ॥ ३५ ॥ व्योमप्रभायभावाय अधोरायनमोनमः ॥ व्योमप्रमाणधामाय वामेशायनमोनमः ॥ ३६ ॥

त्रिशूलधारी महादेवजी की यथार्थ स्तुतिकरे ॥ ३२ ॥ और शुक्लेशका पूजनकर ब्रह्माजी स्तोत्रको पढ़तेहुये कि ज्ञान और विज्ञानरूपवाले शान्तरूप शिवजीके लिये नमस्कार है ॥ ३३ ॥ सूक्ष्म और सूक्ष्मरूपवाले, सब सूक्ष्मचीजों के एकहीकारण, सूक्ष्मोंसे भी सूक्ष्म, बहुतही सूक्ष्म, शिवजी के लिये नमस्कार है ॥ ३४ ॥ दिव्य और दिव्यरूपवाले तथा दिव्य देहवाले, मर्यादाके सेतु, दिव्योंसे भी दिव्य, बड़ेही दिव्यके लिये नमस्कार है ॥ ३५ ॥ आकाश के तुल्य प्रकाशवाले सब जगत जिन्हेंसि होताहै ऐसे अधोरूपवालेके लिये नमस्कार है आकाशके तुल्य प्रमाणवालाहै स्वरूप जिनका ऐसे पर्वतीके स्वामीजीके लिये नमस्कार है नमस्कार है ॥ ३६ ॥

सबसे श्रेष्ठ, सबसे बड़े मालिक, परमार्थवाली बातों के कारण, सबसे बड़े, अखण्डमुक्त, बड़े से बड़े के लिये नमस्कार है ॥ ३७ ॥ एक जिह्वावाले, दो जिह्वावाले, बहुत जिह्वावाले आप के लिये नमस्कार है वैसे ही अनपिन्ती जिह्वावाले व तीननेत्रवाले के लिये नमस्कार है ॥ ३८ ॥ पूजने लायक, पूजने लायकों से भी पूजने लायक और सब पूजने लायकों के कारण, नाशरहित, नाशरहित रूपवाले और जो कभी नष्ट नहीं होते उनके भी कारण के लिये नमस्कार है ॥ ३९ ॥ नित्यों में भी नित्य ऐसे बड़े ही नित्यरूप शिवजी के लिये नमस्कार है सब तरह की ताकतवाले और शक्तिही जिनका रूप है, सब प्रकार की शक्तियों के मुख्य कारण ॥ ४० ॥ शक्ति-

परायपरमेशाय परमार्थिकहेतवे ॥ परायपरमुक्ताय नमः परतराय च ॥ ३७ ॥ एकजिह्वद्विजिह्वाय बहुजिह्वायते नमः ॥ तथैवासहस्रजिह्वाय त्रिषेत्राय नमो नमः ॥ ३८ ॥ पूज्याय पूज्यपूज्याय सर्वपूज्यैकहेतवे ॥ नित्याय नित्यरूपाय नित्यनित्यैकहेतवे ॥ ३९ ॥ नित्यानामपि नित्याय नमो नित्यतमाय च ॥ शक्ताय शक्तिरूपाय सर्वशक्त्यैकहेतवे ॥ ४० ॥ शक्तानामपि शक्ताय नमः शक्ततमाय च ॥ शुद्धाय सर्वशुद्धाय सर्वशुद्धैकहेतवे ॥ ४१ ॥ कालाय कालरूपाय सर्वकालैकहेतवे ॥ कालानामपि कालाय नमः कालतमाय च ॥ ४२ ॥ सर्वमन्त्रशरीराय सर्वमन्त्रैकहेतवे ॥ मन्त्राणामपि मन्त्राय नमो मन्त्रतमाय च ॥ ४३ ॥ अप्रमेयमहेशाय ईशानाय नमो नमः ॥ योगाय योगरूपाय योगपूरुषते नमः ॥ ४४ ॥ एककण्ठद्विकण्ठाय बहुकण्ठाय नीलकण्ठाय ते नमः ॥ ४५ ॥ अनन्ता

वालों में भी शक्तिवाले ऐसे जो बड़े ही शक्तिवाले शिवजी हैं तिनके लिये नमस्कार है व शुद्धरूपवाले, सबसे शुद्ध, सबतरह की निर्मलता के मुख्य कारण के लिये नमस्कार है ॥ ४१ ॥ काल, कालरूपवाले, सबतरह के कालों के मुख्य कारण, कालों के भी काल ऐसे बड़े ही कालरूप आप के लिये नमस्कार है ॥ ४२ ॥ सब मन्त्र जिन का शरीर हैं, और सब मन्त्रों के एक ही कारण, मन्त्रों के भी मन्त्र ऐसे बड़े ही मन्त्ररूप शिवजी के लिये नमस्कार है ॥ ४३ ॥ नहीं जिनका प्रमाण है ऐसे बड़े मालिक महदेवजी के लिये बार २ नमस्कार है व हे योगपुरुष ! योग योगरूपवाले आप के लिये नमस्कार है ॥ ४४ ॥ एक कण्ठवाले, दो कण्ठवाले तथा बहुत कण्ठवाले

आपके लिये नमस्कार है अनेक कण्ठोंवाले, नीलकण्ठवाले आपके लिये नमस्कार है ॥ ४५ ॥ अन्त से रहित, बड़े ईश्वर, संसार के नाश करनेवाले तथा संसार के बनानेवाले आपके लिये नमस्कार है हे महादेव ! आपके लिये नमस्कार है ॥ ४६ ॥ हे महाशुद्ध ! आपके लिये नमस्कार है ॥ ४७ ॥ सबके आत्मा फिर भी आपके लिये बार २ नमस्कार है भस्मही जिनका चन्दन है ऐसे आपके लिये नमस्कार है खट्वाङ्गके धारण करनेवाले के लिये नमस्कार है ॥ ४८ ॥ आपके लिये आपकी बार २ नमस्कार है सवके जाननेवाले आपके लिये नमस्कार है सबलोग जिनसे मांगते हैं ऐसे आपके लिये आपके लिये नमस्कार है संसार के स्वामी शिवजी के लिये बार २ नमस्कार है सवके जाननेवाले आपके लिये नमस्कार है और हमेशा बने रहनेवाले के लिये बार २ नमस्कार है व कैलास में बार २ नमस्कार है ॥ ४९ ॥ व्यक्त (खुलासा) रूप भिनका नहीं है ऐसे आपके लिये नमस्कार है और हमेशा बने रहनेवाले के लिये बार २ नमस्कार है व कैलास में

यमहेशाय हर्त्रेकत्रैनमोस्तुते ॥ नमस्तेस्तुमहादेव नमस्तेस्तुसदाशिव ॥ ४६ ॥ नमस्तेस्तुमहाशुद्ध नमस्तुभ्यंनमो
नमः ॥ नमोभस्माङ्गरागाय नमःखट्वाङ्गधारिणे ॥ ४७ ॥ सर्वात्मनेनमस्तुभ्यं विश्वेशायनमोनमः ॥ सर्वज्ञायनमस्तु
भ्यं सनाथायनमोनमः ॥ ४८ ॥ अयंतायनमस्तुभ्यं शाश्वतायनमोनमः ॥ कैलासवासिनेतुभ्यं नमःपातालवासि
ने ॥ ४९ ॥ त्वयाव्याप्तमिदं सर्वं लोकालोकद्वराचरम् ॥ अपि वर्षसहस्रेण कःस्तोतुं शक्तिमान्भवेत् ॥ ५० ॥ इतिस्तवे
नदिव्येन यःस्तौतिपरमेस्वरम् ॥ विधूय सर्वपापानि रुद्रलोकैर्महायते ॥ ५१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणैरेवाखण्डे श
म्भुस्तुतिर्नामैकौनसस्तुतिर्नामोऽध्यायः ॥ ६९ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

युधिष्ठिर उवाच ॥ किमर्थं संस्तुतो देवो ब्रह्मणो तेन तत्र वै ॥ शुक्लतीर्थमिदं कस्मादास्ते यत्र महेश्वरः ॥ १ ॥ एतत्सर्वसमा

वास करनेवाले और पाताल में वास करनेवाले आपके लिये नमस्कार है ॥ ४६ ॥ आपही से यह सब चराचर लोकालोक व्याप्त हो रहा है ऐसे आपकी स्तुति करने को हजार वर्षों से भी कौन समर्थ हो सक्त है ॥ ५० ॥ जो इस दिव्य स्तोत्र से परमेश्वर महादेवजीकी स्तुति करता है वह सब पापोंको नाश करके रुद्रलोकमें पूजा जाता है ॥ ५१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणैरेवाखण्डे ब्राह्मणस्तुतिर्नामैकौनसस्तुतिर्नामोऽध्यायः ॥ ६९ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

युधिष्ठिर जी बोले कि वहां पर उन ब्रह्मजी ने महादेवजी की भलीभांति स्तुति किस वास्ते की और यह शुक्लतीर्थ किस कारण से हुआ जहां महादेव जी रहते

हैं ॥१॥ हे महामुने ! यह सब पूछनेवाले जो हमहैं तिनसे कहो तब मार्कण्डेयजी बोले कि हे राजन् ! स्वर्गकी देनवाली सबसे उत्तम दिव्य कथाको तुम सुनो ॥२॥ जिसको सुनकर तीर्थ में स्नान करने से मनुष्य सब पापों से छूटजाता है सब धर्म में तत्पर, धर्मात्मा, सब धर्मधारियों में श्रेष्ठ व सब राजाओं में श्रेष्ठ, चक्रवर्ती, यथाति नामके राजाहुये दूमरे इन्द्र ऐसे वे राजा बड़े २ यज्ञों से देवताओंका पूजन करते हुये ॥ ३ ॥ ४ ॥ जहां पुण्यवाली मधुमती नामकी नदी नर्मदा से मिली हुई है व जहां ऋत्विक् ब्राह्मणों के सहित राजाने यज्ञ प्रारम्भ किया ॥ ५ ॥ और जहां मध्येश्वरनाम का लिङ्ग साक्षात् महादेवही हैं वहां स्नानके करनेवाले स्वर्गको

ख्याति पृच्छतोममहामुने ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ शृणुराजन्कथां दिव्यां स्वर्गाहं एयामनुत्तमाम् ॥ २ ॥ यांश्चुत्वासर्वपापेभ्यस्तृतीयस्नानेन मुच्यते ॥ ययातिर्नाम धर्मात्मा सत्यधर्मपरायणः ॥ ३ ॥ चक्रवर्ती नृपश्रेष्ठः सर्वधर्मभृतां वरः ॥ इयाजसमहायज्ञैश्शतक्रतुरिवापरः ॥ ४ ॥ नदीमधुमतीपुण्या रेवयायन्नसङ्गता ॥ यत्र यज्ञः समारब्ध ऋत्विग्भिर्ब्राह्मणैः सह ॥ ५ ॥ मध्येश्वरं यत्र लिङ्गं स्वयं देवो महेश्वरः ॥ तत्र स्नाता दिवं यान्ति ये मृतानपुनर्भवाः ॥ ६ ॥ चक्रेण विष्णुना तत्र घातितौ मधुकैटभौ ॥ अर्चनात्तस्य देवस्य गोसहस्रफलं लभेत ॥ ७ ॥ तिलतोयप्रदानेन पिण्डदानेन भारत ॥ पितरस्तस्य तृप्यन्ति यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥ ८ ॥ तत्र यज्ञः समारब्धो हरिश्ङ्करवर्जितः ॥ जटामुरस्तत्र दैत्यश्छिद्रं दृष्ट्वा समागतः ॥ ९ ॥ ततो विध्वंसितो यज्ञो दानवैर्वलदपितैः ॥ यज्ञयूपायज्ञपात्रं दशदिक्षु निपातिताः ॥ १० ॥ भुक्तो हुतपुरोडाशः सोमपानञ्च तैः कृतम् ॥ प्रणष्टा देवताः सर्वादानवानां भयेन च ॥ ११ ॥ अष्टोत्तरशतं देवा मृगरूपेण निर्गताः ॥ जाते हैं और जो वहां मरे हैं वे फिर जन्म नहीं लेते हैं ॥ ६ ॥ वहीं विष्णुजीने चक्रसे मधु और कैटभ को मारा है उन देवके पूजन करने से हजार गोदानोंके फलको पाता है ॥ ७ ॥ हे भारत ! तिलों के सहित जलदान व पिण्डदान से उसके पितर जब तक चौदहो इन्द्र रहते हैं तब तक तृप्त रहते हैं ॥ ८ ॥ वहां विष्णु और महादेवके बिना यज्ञ प्रारम्भ किया गया तब वहां जटामुर नामका दैत्य अपना मौका देखकर आता हुआ ॥ ९ ॥ तदनन्तर अपने बलसे अहङ्कार को प्राप्त होरहे दैत्योंने यज्ञको विध्वंस कर दिया यज्ञके स्वप्ने व यज्ञके पात्र दशो दिशाओंमें फेक दिये गये ॥ १० ॥ उन दैत्योंने होम क्रिये गये पुरोडाशको भोजन कर लिया और सोमको भी

पीगये दानवोंके भयसे सब देवतालोग भागगये ॥ ५१ ॥ एकसौ आठ देवता मृगोंके रूपसे निकलगये कुबेर यत्नके रूपसे अपनी पुरीको भागगये ॥ १२ ॥ भैसेपर सवारहुये धर्मराज, हाथी पर चढ़ेहुये इन्द्र और भैंसेपर सवार और धनुष पर चढ़ेहुये वायु मृगपर चढ़ेहुये भागे ॥ १३ ॥ और वहांपर आयेहुये वरुण भी मगरपर सवारहुये भागे और अपनी पुरी को चलेगये वायु मृगपर चढ़ेहुये भागे ॥ १४ ॥ ईशान लोकपाल भी महादेव के रूप से बैलपर चढ़ेहुये भागभये दानवों ने लोकपालों के हथियारोंको छीन लिया ॥ १५ ॥ तब हे भारत ! राजाओंमें श्रेष्ठ राजा ने कहा कि अकेले हम सवारी पर चढ़कर स्त्रीके सहित कैसे भागें ऐसे विचारकर धनुष को लिया ॥ १६ ॥

ताः ॥ धनदोयक्षरूपेण प्रणष्टःस्वपुरीङ्गतः ॥ १२ ॥ महिषारूढोधर्मराजो गजारूढश्शतक्रतुः ॥ मेपारूढोहव्यवा
हो निर्गताव्रतमास्थिताः ॥ १३ ॥ वरुणश्चसमायातः प्रणष्टःस्वपुरीगतः ॥ मकरासनमारूढोवायुश्च मृगमाश्रितः ॥
१४ ॥ ईशानईशरूपेण वृषारूढःपलायितः ॥ अस्त्राणिलोकपालानां हतानिदनुसम्भवैः ॥ १५ ॥ एकाकीयानमा
रुह्यकथंयामिस्त्रियामह ॥ चिन्तयित्वानृपश्रेष्ठश्चास्त्रजग्राहभारत ॥ १६ ॥ तिष्ठतिष्ठेतिचोक्तवावै दैत्यसिंहदुरासदम् ॥
नक्षत्रकुलसञ्जाता जातुदृष्ट्वापलायिताः ॥ १७ ॥ दशद्वादशवर्षाणि विमुखास्तवपूर्वजाः ॥ नचात्राह्वानितोरुद्रो रुद्र
भागोनकल्पितः ॥ १८ ॥ यज्ञेस्मिन्यज्ञपुरुषो नाहुतोभगवान्हरिः ॥ तेनदोषेणमेयज्ञो दानवैश्चविनाशितः ॥ १९ ॥ एव
मुक्त्वानृपश्रेष्ठो रुद्रंध्यात्त्वामहेद्वरम् ॥ रौद्ररूपंसमास्थायज्यघोषघोषरूपिणम् ॥ २० ॥ जग्राहकोपान्निस्त्रिशं निज

और दैत्यों में सिंह ऐसे बड़े जबरदस्त जटासुर से खड़ा हो २ ऐसे कहकर बोले क्षत्रियों के कुलमें उत्पन्नहुये शरलोग कभी शत्रुओंको देखकर नहीं भागे ॥ १७ ॥
वल्कि तेरे पुरिलालोग दश व बारह वर्षोंतक हमलोगों से विमुख होकर भागेरहे और हमारे इस यज्ञ में महादेव का आवाहन नहीं कियागया और न रुद्रका भाग
रक्खागया ॥ १८ ॥ और भगवान् यज्ञपुरुष विष्णु भी इस यज्ञ में नहीं बुलायेगये इसी दोष से यह हमारा यज्ञ दानवों से विध्वंसित करदियागया ॥ १९ ॥
राजाओं में श्रेष्ठ राजा ने ऐसे कहकर और रुद्ररूप महादेवजीका ध्यानकर करालरूप धारणकर धनुष के गदा की आवाज करतेहुये ॥ २० ॥ और बड़े क्रोधसे

तलवारको लिया उसीसे दैत्योंको मारा तदनन्तर ब्रह्माआदि सबदेवता बुलायेगये ॥ २१ ॥ हे भारत ! तब वे सब देवतालोग राजासे बोले कि हे राजर्षे ! इससंसारमें आपके बराबर न कोई हुआहे व न होगा ॥ २२ ॥ तब देवताओंके वचनको सुनकर राजा ययाति वचन बोले कि महोदेव और विष्णुकी दयामे फिरभी हमारा यज्ञ प्रवृत्त होगया ॥ २३ ॥ क्षत्रिय को संग्रामसे भागना उचित नहींहै ऐसे कहकर फिर उसी प्रयोजन से त्रिशूल व पिनाक के धरनेवाले महोदेवजी की स्तुति को किया ॥ २४ ॥ तब वहां कालानल के तुल्य प्रभावाला पाताल से लिङ्ग प्रकट हुआहे भारत ! उस लिङ्ग की दीप्ति से सब जगत् सफेद करदियागया ॥ २५ ॥ फिर महोदेवजी उन

घानचदानवान् ॥ आहूताश्च पुनर्देवाः सर्वे ब्रह्मपुरोगमाः ॥ २१ ॥ ऊचुस्ते वचनं देवा राजानं प्रतिभारत ॥ त्वया समो वराजर्षे न भूतो न भविष्यति ॥ २२ ॥ देवानां वचनं श्रुत्वा ययातिर्वाक्यमब्रवीत् ॥ पुनः प्रवर्तितो यज्ञो हरविष्णुप्रसादतः ॥ २३ ॥ यु कं पलायनं चात्र क्षत्रियस्य न विद्यते ॥ स्तुतस्तु ते नकार्येण शूलपाणिः पिनाकधृक् ॥ २४ ॥ पातालादुत्थितं तत्र लिङ्गं कालानलप्रभम् ॥ शुक्लीकृतं जगत्सर्वं प्रभया तस्य भारत ॥ २५ ॥ वरं वृणीष्व भद्रन्ते तमुवाच वृषध्वजः ॥ ययातिरुवाच ॥ यदितुष्टोसि मे देव वरं दातुं ममैच्छसि ॥ २६ ॥ इदं स्थानं न भोक्तव्यमु मया सह शङ्कर ॥ यज्ञदानादिकं सर्वमक्षयञ्चात्र सर्वदा ॥ २७ ॥ तपोहीनानराये च दानहीनास्मकिलिषाः ॥ ते सर्वे त्वत्पुरं यान्तु शुक्लतीर्थप्रभावतः ॥ २८ ॥ तमुवाच महादेवः सत्यमेतत्तवोदितम् ॥ ययंकामयेते कामं तं तं प्राप्नोति मानवः ॥ २९ ॥ अस्य तीर्थस्य माहात्म्यां लिङ्गस्यास्य समचं नात् ॥ नरकं नैव पश्यन्ति जन्मजन्मनि भारत ॥ ३० ॥ एतत्ते कथितं राजन्यथास्कन्दशिवोदितम् ॥ तत्र ये निहता दै

राजासे बोले कि तुम्हारा कल्याण हो तुम वर को मांगो तब राजा ययाति बोले कि हे देव ! जो आप मुझ से प्रसन्नहो और मुझे वर देने की इच्छा करते हो ॥ २६ ॥ तो हे शङ्कर ! पार्वती के सहित आप इस स्थानको कभी न छोड़ें और यहां किया हुआ यज्ञ व दानआदि सब कर्म हमेशा अक्षय होवे ॥ २७ ॥ और तपस्या व दान से रहित पापी भी जो मनुष्य होवें वे सब इस शुक्लतीर्थ के प्रभाव से आप के पुर को जावे ॥ २८ ॥ तब उन राजा से महोदेवजी ने कहा कि यह सब तुम्हारा कहना सत्य होगा यहां मनुष्य जिस कामनाको करेगा उस २ को पावेगा ॥ २९ ॥ इस तीर्थके माहात्म्यसे व इस लिङ्गके पूजन करनेसे हे भारत ! जन्म २ में मनुष्य

नरक को नहीं देखते हैं ॥ ३० ॥ हे राजन् ! यह तुमसे कहा गया जैसा कुछ स्कन्द व महादेवजी का कहा हुआ है वहाँ जो दैत्य मारे गये वे भी शिवजी के स्थान को प्राप्त हुये ॥ ३१ ॥ अपनी २ सवारीपर सवार देवता लोग स्वर्ग को चले गये व वड़े आनन्द से युक्त स्तुति किये जाते राजाओं में श्रेष्ठ ॥ ३२ ॥ राजर्षि ययातिजी राज्य को करके स्वर्ग को चले गये इस इतिहासको सुनने व कहनेसे शिवलोक में पूजित होता है ॥ ३३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे रेवा खण्डे प्राकृतभाषाऽनुवादेशु कृतार्थमहिमाऽ ॥

तुवर्णेनोनामसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७० ॥

त्याः प्राप्तास्तोपिशिवालयम् ॥ ३१ ॥ स्वस्वयानं समाखण्डाय युद्धं वास्त्रिविष्टपम् ॥ सुदापरमया युक्तः स्तूयमानो नृपोत्तमः ॥ ३२ ॥ ययातिर्नाम राजर्षी राज्यं कृत्वा दिवङ्गतः ॥ श्रवणात्कीर्तनादस्य शिवलोकं मर्हयते ॥ ३३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे रेवास्रण्डेशु कृतार्थमहिमानुवर्णनोनाम सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७० ॥

मार्कण्डेय उवाच ॥ दीप्तकेश्वर देवेशं सिद्धलिङ्गं प्रकीर्तितम् ॥ नातः परतरं किञ्चिन्निषुलोकेषु विश्रुतम् ॥ १ ॥ दर्शनाद्दीप्तदेवस्य स्पर्शनादर्चनात्तथा ॥ अनेकभावि कंधोरं क्षणमात्रेण नश्यति ॥ २ ॥ अर्चयेद्द्विनेमेकन्तु यो मुहूर्तं न्तुमानवः ॥ नतस्य पुनरावृत्तिर्धोरैः संसारसागरे ॥ ३ ॥ मोक्षदानां चामुण्डा विद्धि गौरैः सरस्वतीम् ॥ स्तुते स हस्त्रनाम्नावै विष्णुना ब्रह्मणा स्वयम् ॥ ४ ॥ स्तुतानि तानि लिङ्गानि रेवाया उत्तरे तटे ॥ अंकारश्चाधिदेवश्च बिल्वाम्रकमहेश्वरः ॥ ५ ॥

मार्कण्डेयजी बोले कि देवताओं का ईश्वर दीप्तकेश्वर नामवाला सिद्धलिङ्ग कहा गया है इससे दूसरा और कोई लिङ्ग तीनों लोकों में प्रसिद्ध नहीं है ॥ १ ॥ दीप्तकेश्वरदेव के दर्शन व स्पर्शन व पूजन से अनेक जन्मोंका घोर पाप क्षणमात्र में नष्ट हो जाता है ॥ २ ॥ जो मनुष्य एक दिन व एक मुहूर्त भर पूजन करे तो उसकी इस घोर संसारसमुद्र में फिर आवृत्ति नहीं होती है ॥ ३ ॥ वहाँ विद्यमान मोक्षदा और चामुण्डा नामकी दोनों शक्तियों को गौरी और सरस्वती जानो उन दोनों की आपही विष्णुजी और ब्रह्माजी ने हजार नामों से स्तुति की है ॥ ४ ॥ और नर्मदा के उत्तरवाले तट में विद्यमान जो लिङ्ग है उनकी भी स्तुति की है

वे लिङ्ग ये है कि अङ्कारनाथ, बिल्वाग्रकमहेश्वर ॥ ५ ॥ शुक्लेश्वर, भृगु, क्षीपेश्वर और त्रिलोचन वैवस्वतमन्वन्तर के प्राप्त होने पर पहले कल्प के सत्ययुग में ॥ ६ ॥ पहिले त्रिणु, दूसरे ब्रह्मा, तीसरे इन्द्र, चौथे सूर्य ॥ ७ ॥ पाँचवें चन्द्रमा, छठे राहु, सातवें शनि, आठवें केतु ॥ ८ ॥ नवें अग्नि, दशवें दिशाओं का स्वामी, ग्यारहवें वैक्रम (वामनजीका), बारहवें वारुण (वरुणजी का) ॥ ९ ॥ तेरहवें वायु और चौदहवें कुबेर नामक थे और देवताओं के मालिक त्रिणु, ब्रह्मा व देवता और दैत्यों करके अनेक तरह के इन पदों से पार्वतीजी के पति महोदवजी रतुति किये गये हैं कि (स्थिर) हमेशा रहनेवाले (स्थाणु) एक-रस रहनेवाले (प्रभा) प्रकाशरूप (भानु) प्रकाश करनेवाले (प्रवर) श्रेष्ठ (वरद) वर के देनेवाले (वर) इच्छारूप ॥ १० ॥ ११ ॥ (हरि) दुःखों के हरनेवाले

शुक्लेश्वरो भृगुश्चेति क्षीपेश्वर त्रिलोचनौ ॥ वैवस्वतेन्तरं प्राप्ते आदिकल्पे कृते युगे ॥ ६ ॥ श्रीपतिः परमाद्यश्च द्वितीयश्चपि तामहः ॥ तृतीयो देवराजश्च चतुर्थः सूर्य एव च ॥ ७ ॥ पञ्चमः कथितः सोमः षष्ठो राहुः प्रकीर्तितः ॥ सप्तमश्च शनिश्चैव त्वष्टमः केतुकः स्मृतः ॥ ८ ॥ वैश्वानरश्च नवमो दशमश्च दिगीश्वरः ॥ एकादशो वैक्रमश्च द्वादशो वारुणस्तथा ॥ ९ ॥ त्रयोदशश्च वायुर्धनदश्च चतुर्दशः ॥ नानापदप्रकारेण स्तुतो देव उमापतिः ॥ १० ॥ विष्णुना देवनाथेन ब्रह्मणा च सुरासुरैः ॥ स्थिरः स्थाणुः प्रभाभानुः प्रवरो वरदो वरः ॥ ११ ॥ हरिश्च हरिणा ख्यश्च सर्वभूतहरः प्रभुः ॥ प्रवृत्तिश्च निवृत्तिश्च नियमः शाश्वतो ध्रुवः ॥ १२ ॥ इमशानवासी भगवान्खेचरो गोचरस्तथा ॥ अभिवन्द्यो महाकर्ममा तपस्वीभूतभावनः ॥ १३ ॥ उन्मत्तवेषप्रच्छन्नः सर्वलोकप्रजापतिः ॥ महारूपो महाकायस्सर्वलोकप्रजापतिः ॥ १४ ॥ परात्मा सर्वभूतानां विरूपो

(हरिण) हरियाले (सर्वभूतहर) सब प्राणियों के हरनेवाले (प्रभु) प्रभाव करनेवाले (प्रवृत्ति) संसार का कारण (निवृत्ति) दुनिया से छुटाने का कारण (नियम) अपने २ कामों में सब के लगानेवाले (शाश्वत) सदा रहनेवाले (ध्रुव) अटल ॥ १२ ॥ (इमशानवासी) इमशान के रहनेवाले (भगवान्) ऐश्वर्यवाले (खेचर) आकाश में चलनेवाले (गोचर) इन्द्रियों में रहनेवाले (अभिवन्द्य) वन्दना करने योग्य (महाकर्म) बड़े कामों के करनेवाले (तपस्वी) तपस्यावाले (भूतभावन) प्राणियों के रचनेवाले ॥ १३ ॥ (उन्मत्तवेषप्रच्छन्न) मतवाले के वेष से छिपे हुये (सर्वलोकप्रजापति) सब लोकों की प्रजाओं के मालिक (महारूप)

श्रेष्ठरूपवाले (महाकाय) बड़े शरीरवाले (सर्वलोकप्रजापति) सब लोकों की प्रजाओं के पालनेवाले ॥ १४ ॥ (सर्वभूतानांपरात्मा) सब प्राणियों के सुखयथात्मा (विरूप) अद्भुतरूपवाले (वामन) छोटे रूपवाले (मनु) विचार करनेवाले (लोकपाल) लोकों के पालनेवाले (पिहितात्मा) छिपेरूपवाले (प्रसन्न) खुश (भवनाशन) संसार से छुटानेवाले ॥ १५ ॥ (प्रवृत्त) गृहस्थरूप (महाङ्ग) बड़े अङ्गोंवाले (निचय) समष्टिरूपवाले (नियताश्रय) सबके एकही आधार (सर्वकाम) सब कामों से भरेहुये (स्वयम्भू) आपही से होनेवाले (आदिनादिकर) आदि व अनादि क करनेवाले (निधि) जीवों का स्थान ॥ १६ ॥ (सहसाक्ष) हजारों नेत्रोंवाले (विरूपाक्ष) डरावने नेत्रोंवाले (सोम) सोमयज्ञका साधन (नक्षत्रसाधक) नक्षत्रों के सिद्ध करनेवाले (चन्द्र) आनन्द देनेवाले (सूर्य) प्रकाश करनेवाले (शनि) मन्द चलनेवाले (केतु) श्रेष्ठ (ग्रह) खींचनेवाले (ग्रहपति) ग्रहों के स्वामी (वर) श्रेष्ठ ॥ १७ ॥ (तपोद्रष्टा) तपस्या

वामनोमनुः ॥ लोकपालोपिहितात्मा प्रसन्नोभवनाशनः ॥ १५ ॥ प्रवृत्तश्चमहाङ्गश्चनिचयोनियताश्रयः ॥ सर्वकामःसहयंभूश्च आदिनादिकरोनिधिः ॥ १६ ॥ सहस्राक्षोविरूपाक्षस्सोमो नक्षत्रसाधकः ॥ चन्द्रसूर्यदर्शनिःकेतुर्ग्रहोग्रहपतिर्वरः ॥ १७ ॥ तपोद्रष्टाबलःस्थानुर्भृगवाणार्पणोनघः ॥ महातपादीर्घतपा आदिर्दीनानुकम्पनः ॥ १८ ॥ संवत्सरकरोमन्त्रः प्रमाणंपरमन्तपः ॥ योगीयोगमहावीर्यो महारेताहरोहरः ॥ १९ ॥ महाचेताश्चसर्वज्ञः सर्वाजोपहरोहरः ॥ कमण्डलुधरोधन्वी प्राणहस्तःप्रतापवान् ॥ २० ॥ अंशोनीशस्तथाशूली खट्वाङ्गीपट्टिशीतथा ॥ शुचिश्चशु

के सान्नी (बल) व्यापक (स्थातु) खड़े रहनेवाले (मृगबाणार्पण) हरिणरूप यज्ञपर बाण के चलानेवाले (अनघ) पापरहित (महातपा) उत्तम तपवाले (दीर्घतपा) बड़े तपवाले (आदि) सब से पुराने (दीनानुकम्पन) दीनोंपर दया करनेवाले ॥ १८ ॥ (संवत्सरकर) साल के बनानेवाले (मन्त्र) गुप्तकहनेवाले (प्रमाण) सबूत (परमन्तप) बड़ी तपस्या का रूप (योगी) योगवाले (योगमहावीर्य) योगरूप ताकतवाले (महारेता) बड़ेवीर्यवाले (हर) हरनेवाले (हर) भक्तों के अङ्गीकारकरनेवाले ॥ १९ ॥ (महाचेता) बड़े चित्तवाले (सर्वज्ञ) सबके जाननेवाले (सर्वाज) कारणसहित (अपहर) प्रलयकरनेवाले (हर) दुष्टों के नाशनेवाले (कमण्डलुधर) कमण्डलुके रखनेवाले (धन्वी) धनुषवाले (प्राणहस्त) सबकेप्राण जिनके हाथोंमेंहै (प्रतापवान्) प्रतापवाले ॥ २० ॥

(अंश) जीवरूप (अनीश) जीव होने से परवश (शूली) त्रिशूलवाले (खट्वाङ्गी) पट्टिगवाले (पट्टिशी) पट्टिगवाले (शुचि) पवित्र (शुचिरूप) पवित्ररूप (तेजः) तेजोरूप (तेजस्कर) तेज के करनेवाले (निधि) सर्व पदार्थों के स्थान ॥ २३ ॥ (उष्णीषी) पगड़ीवाले (सुवक्त्र) सुन्दर मुहँवाले (उदक्त्र) जलमें रहनेवाले (वितन) अतिविस्तार करनेवाले (हरि) सूर्यरूप (हरिनेत्र) सूर्य जिनके नेत्र में हैं (सुतीर्थ) अतिपवित्र (कृष्ण) खींचनेवाले ॥ २२ ॥ (शृगालरूपी) सियार के समान रूपवाले (सर्वार्थ) सर्वप्रयोजनरूप (शुण्डी) गणेशरूप (शुद्ध) निर्मल (कमण्डलु) सबका आधार (अज) उत्पत्तिरहित (गन्धमाली) खुशबूदारमालावाले (मृगरूपी) हरिणरूप (कपालभृत्) खप्पर के रखनेवाले ॥ २३ ॥ (ऊर्ध्वरेता) ब्रह्मचारी (ऊर्ध्वसाक्षी) परलोक के साक्षी (ऊर्ध्वबाहु) खड़ी भुजावाले (नभःस्थल) आकाश व पृथिवीरूप (त्रिजटी) तीन चौटीवाले (निवास) जीवोंके रहनेका स्थान (रुद्र) रुलानेवाले (सेना-

चिरूपश्च तेजस्तेजस्करो निधिः ॥ २३ ॥ उष्णीषी च सुवक्त्रश्च उदक्त्रो वितनस्तथा ॥ हरिश्च हरिनेत्रश्च सुतीर्थः कृष्ण एव च ॥ २२ ॥ शृगालरूपी सर्वार्थशुण्डी शुद्धः कमण्डलुः ॥ अजश्च गन्धमाली च मृगरूपी कपालभृत् ॥ २३ ॥ ऊर्ध्वरेता ऊर्ध्वसाक्षी ऊर्ध्वबाहुर्नभःस्थलः ॥ त्रिजटी च निवासश्च रुद्रस्तेनापतिर्विशुः ॥ २४ ॥ अहश्च रोगात्रिचरस्सुवासश्च दिशाम्पतिः ॥ राजहर्दित्यहाचैव धातारूपगुणात्मकः ॥ २५ ॥ सिंहशार्दूलरूपश्च आर्द्रचर्ममधरोहरः ॥ कालयोगीमहानादः सर्ववासश्च तुष्पथः ॥ २६ ॥ दुर्वारप्रेतचारी च भूतचारी महेश्वरः ॥ बहुभूतो बहुधनस्सर्वार्थोरुचिरागतिः ॥ २७ ॥

पति) सेनाके मालिक (विभु) व्यापक ॥ २४ ॥ (अहश्चर) दिनमें घूमनेवाले (रात्रिचर) रातमें घूमनेवाले (सुवास) अच्छास्थान (दिशाम्पति) दिशाओंके स्वामी (राजहा) राजाओंके मारनेवाले (दैत्यहा) दैत्योंके मारनेवाले (धाता) धारण करनेवाले (रूपगुणात्मक) रूप व गुणोंके आत्मा ॥ २५ ॥ (सिंहशार्दूलरूप) सिंह व शार्दूल के ऐसे रूपवाले (आर्द्रचर्मधर) गीलेचमड़ेके धरनेवाले (हर) सबको प्राप्त (कालयोगी) समयपर योगी (महानाद) बड़ी आवाजवाले (सर्ववास) सबका स्थान (चतुष्पथ) चारोंतरफ रास्तावाले ॥ २६ ॥ (दुर्वारप्रेतचारी) जबरदस्त प्रेतोंमें रहनेवाले (भूतचारी) प्राणियों में रहनेवाले (महेश्वर) बड़े ईश्वर (बहुभूत) बहुत से भूतोंवाले (बहुधन) बहुत धनवाले (सर्वार्थ) सब काम जिनसे होते हैं (रुचिरागति) उत्तमगति ॥ २७ ॥

(नृत्यप्रिय) नाच जिनको प्यारा है (नृत्यकर्ता) नृत्यकारी (नर्तक) नाचनेवाले (बलाहक) मेघरूप (घोर) डरावने (महातपा) उत्तमतपस्वी (वास) सबमें बसने वाले (नित्य) सदा रहनेवाले (गिरिधर) पर्वतोंके धारण करनेवाले (नेभः) आकाशरूप ॥ २८ ॥ (सहस्रभूत) हजारों भूतोंवाले (विज्ञेय) विशेषकरके जाननेलायक (व्यवसाय) सिद्धान्तरूप (निश्चय) निश्चयरूप (अमर्ष) क्रोधवाले (मर्षण) क्षमावाले (दत्त) प्रवीण (दत्तकतुविनाशन) दत्तके यज्ञको विनाश करनेवाले ॥ २९ ॥ (दत्तयज्ञापहारी) दत्तके यज्ञको नाशनेवाले (सुमह) अच्छे उत्साहवाले (मध्यम) सबमें साधारणरूप (तेजोऽपहारी) शत्रुओं के तेज के नाश करनेवाले (बलिहा) अपने भागके लेनेवाले (मुदित) प्रसन्न (अर्चित) पूजेगये (भव) सब जगत जिन्हीं से होता है ॥ ३० ॥ (गम्भीरघोष) गहरी

नृत्यप्रियो नृत्यकर्ता नर्तकश्च बलाहकः ॥ घोरं महातपावासो नित्यो गिरिधरो नभः ॥ २८ ॥ सहस्रभूतो विज्ञेयो व्यवसायश्च निश्चयः ॥ अमर्षो मर्षणो दत्तो दत्तकतुविनाशनः ॥ २९ ॥ दत्तयज्ञापहारी च सुमहो मध्यमस्तथा ॥ तेजो पहारी बलिहा मुदितश्चार्चितो भवः ॥ ३० ॥ गम्भीरघोषो गम्भीरो गभीरो हव्यवाहनः ॥ न्यग्रोधरूपो न्यग्रोधऋक्षवर्णः प्रभुर्विभुः ॥ ३१ ॥ तीक्ष्णबाणश्च हर्यन्तो महेशः कर्मकालवित् ॥ दीक्षः प्रसादितो यज्ञस्समुद्रो बडवानलः ॥ ३२ ॥ हुताशश्च हुताशस्यः प्रसन्नात्मा हुताशनः ॥ महते जास्सु ते जाश्च विजयो जय एव च ॥ ३३ ॥ ज्योतिषामयनं सिद्धि

आवाजवाले (गम्भीर) बेथाह (गभीर) अथाह (हव्यवाहन) अग्निरूप (न्यग्रोधरूप) कैलासमें विद्यमान वरगद जिन्हींका रूप है (न्यग्रोध) सब जगत जिनकी नीचेकी शाखा ऐसा है (ऋक्षवर्ण) नक्षत्ररूप (प्रभु) प्रभाववाले (विभु) समर्थ ॥ ३१ ॥ (तीक्ष्णबाण) पैनेबाणोंवाले (हर्यन्त) सूर्य जिनके नेत्रोंमें हैं (महेश) सबके मालिक (कर्मकालवित्) कर्मकाल के जाननेवाले (दीक्ष) सिखलानेवाले (प्रसादित) प्रसन्न कियेगये (यज्ञ) यज्ञरूप (समुद्र) समुद्ररूप (बडवानल) बडवानलरूप ॥ ३२ ॥ (हुताश) होमीहुई द्रव्यके खानेवाले (हुताशस्य) अग्नि जिनका मुख है (प्रसन्नात्मा) प्रसन्नमनवाले (हुताशन) अग्निरूप (महातेजा) बड़े तेजवाले (सुतेजा) अच्छे तेजवाले (विजय) विशेषकरके जीतिको प्राप्त (जय) उँचाई को प्राप्त ॥ ३३ ॥ (ज्योतिषामयनम्) प्रकाश करनेवाली

चीजोंका स्थान (सिद्धि) सिद्धिरूप (सन्धि) सुलहरूप (विग्रह) लड़ाईरूप (शिखी) चोटीवाले (दण्डी) दण्डवाले (जटी) जटावाले (ज्वाली) लपटवाले (मूर्तोद) मोह व अभिमान के नाश करनेवाले (दुर्बल) दुबले (बहिः) सबके बाहर ॥ ३४ ॥ (वैष्णवी) बांसके दण्डवाले (पापवेताल) पापोंको वेताल ऐसे (कालाग्नि) महाप्रलय के अग्निरूप (कालदण्डक) कालही जिनका दण्ड है (नक्षत्रनिग्रह) नाशरहित शरीरवाले (वृद्धि) बढ़तीरूप (अज) जन्मरहित (गन्धवह) वायुरूप (अग्रज) सब से जेठे ॥ ३५ ॥ (प्रजापति) प्रजाओंके मालिक (हरि) विष्णुरूप (बाहु) सबके लेचलनेवाले (विभाग) विशेषकर सब जिनको भजते है (सर्वतोमुख) चारोतरफ मुहवाले (विमोचन) दुःखसे छोड़ानेवाले (सुरगण) देवता हैं गण जिनके (हिरण्यकवच) सोनहले बस्तरवाले (भव) सब जगत् जिन्हीं से होताहै ॥ ३६ ॥ (अरज) निर्मल (धूलिधारी) भस्मके लगानेवाले (महाचारी) बड़े आचारवाले (श्रुतश्रवा) सुनागया है यश

स्सन्धिर्विग्रहएवच ॥ शिखीदण्डीजटीज्वाली मूर्तोदोदुर्बलोबहिः ॥ ३४ ॥ वैष्णवीपापवेतालः कालाग्निःकालदण्डकः ॥ नक्षत्रविग्रहोवृद्धिरजोगन्धवहोग्रजः ॥ ३५ ॥ प्रजापतिर्हरिर्बाहुर्विभागस्सर्वतोमुखः ॥ विमोचनस्सुरगणो हि रण्यकवचोभवः ॥ ३६ ॥ अरजोधूलिधारीच महाचारीश्रुतश्रवाः ॥ अनादिःसर्वभूतादिस्सर्वस्याद्यःपितागुरुः ॥ ३७ ॥ व्यालरूपोमहावासी हीनमालीतरङ्गवित् ॥ त्रिपदस्त्र्यम्बकोव्यक्तस्सर्वबन्धविमोचकः ॥ ३८ ॥ साङ्ख्यप्रसादोदुर्वासास्सर्वसाधुनिषेवितः ॥ प्रस्कन्दनोविभागश्च तुल्योयज्ञविभागवित् ॥ ३९ ॥ सर्ववासीसर्वचारी दुर्वासाभैरवोयमः ॥

जिनका (अनादि) आदिरहित (सर्वभूतादि) सब प्राणियों की आदि (सर्वाद्य) सबके आदिरूप (सर्वपिता) सबके पिता (सर्वगुरु) सबके गुरु ॥ ३७ ॥ (व्यालरूप) सर्पों के ऐसे रूपवाले (महावासी) बड़े स्थानवाले (हीनमाली) मुण्डोंकी मालावाले (तरङ्गवित्) जगत्की तरंगों के जाननेवाले (त्रिपद) तीनौलोक हैं स्थान जिनका (त्र्यम्बक) तीन नेत्रवाले (अव्यक्त) प्रकट नहीं (सर्वबन्धविमोचक) सब बन्धनों के छुड़ानेवाले ॥ ३८ ॥ (सांख्यप्रसाद) ज्ञानसे प्रमत्त होनेवाले (दुर्वासा) नङ्गे (सर्वसाधुनिषेवित) सब साधुओं से सेवा कियेगये (प्रस्कन्दन) प्रलय में जलके सुखानेवाले (विभाग) पृथक्करूप (तुल्य) सब में एकरस (यज्ञविभागवित्) यज्ञोंके हिसाबके जाननेवाले ॥ ३९ ॥ (सर्ववासी) सबमें रहेनेवाले (सर्वचारी) सब कहीं जानेवाले (दुर्वासा) दुर्वासारूप (भैरव) भैरवरूप (यम)

यमरूप (हिम) ठण्डे (हिमकर) चन्द्ररूप (यज्ञ) यज्ञरूप (सर्वधाता) सब के धारण करनेवाले (बुधोत्तम) परिडतों में उत्तम ॥ ४० ॥ (लोहिताक्ष) लाल नेत्रोंवाले (महाक्ष) बड़ी आँखोंवाले (विजयाख्य) विजय नामवाले (विशारद) बड़े प्रवीण (संग्रह) सबके ग्रहण करनेवाले (विग्रह) लडाई रूप (कर्म) कर्मरूप (सर्पराजविभूषण) शेष जिनका गहना हैं ॥ ४१ ॥ (मुख्य) सबमे श्रेष्ठ (विमुक्तदेह) जीवन्मुक्त (देहचारी) जीवरूप से सब देहों में चलनेवाले (कर्दम) कर्दमनामके प्रजापति (सर्वाचार) सब तरहके आचारवाले (प्रसाद) प्रसन्नतारूप (खेचर) आकाश में चलनेवाले (बलरूपधृक्) बल व रूपके धारण करनेवाले ॥ ४२ ॥ (आकाशवृत्तिरूप) शब्दरूप (निपात) सब जिसमें गिरते है (उरग) सर्परूप (खल) क्रूरस्वभाववाले (रौद्ररूप) भयानक रूपवाले (सुरादित्य) देवताओं में सूर्यरूप (वसुरश्मि) सबमें वास करनेवाला है तेज जिनका (सुवर्चस) अच्छे तेजवाले ॥ ४३ ॥ (वसुवेग) वायुके

हिमोहिमकरोयज्ञस्सर्वधाताबुधोत्तमः ॥ ४० ॥ लोहिताक्षोमहाक्षश्च विजयाख्योविशारदः ॥ संग्रहोविग्रहःकर्ममं सर्प
राजविभूषणः ॥ ४१ ॥ मुख्योविमुक्तदेहश्च देहचारीचकर्दमः ॥ सर्वाचारःप्रसादश्च खेचरोबलरूपधृक् ॥ ४२ ॥ आकाश
वृत्तिरूपश्च निपातउरगःखलः ॥ रौद्ररूपस्सुरादित्योवसुरश्मिस्सुवर्चसः ॥ ४३ ॥ वसुवेगोमहावेगो मनोवेगोनिशाचरः ॥
सर्वावासःश्रियावास आपदीशकलोहरः ॥ ४४ ॥ मुनिरात्मगतिलोकस्सहस्रवदनोविभुः ॥ यक्षीचयक्षराजश्च इयेनो
दीप्तिर्विशाम्पतिः ॥ ४५ ॥ उन्मदोमदनाकारोप्यर्थानर्थकरोमहान् ॥ सिद्धयोगोपहारीच सिद्धस्सर्वार्थसाधकः ॥ ४६ ॥

समान वेगवाले (महावेग) बड़े वेगवाले (मनोवेग) मनके तुल्य वेगवाले (निशाचर) रात्रि में चलनेवाले (सर्वावास) सबका स्थान (श्रियावास) लक्ष्मीका स्थान (आपत्) व्यापक (ईशकल) ईशवरहै कला जिनकी (हर) सबको हरनेवाले ॥ ४४ ॥ (मुनि) विचारनेवाले (आत्मगति) आपही अपनी गति है (लोक) लोकरूप (सहस्रवदन) हजारमुखवाले (विभु) समर्थ (यक्षी) यक्षोंवाले (यक्षराज) यक्षोंके राजा (इयेन) वाजनामक पक्षीके तुल्य वेगवाले (दीप्ति) प्रकाशरूप (विशाम्पति) प्रजाओं के पति ॥ ४५ ॥ (उन्मद) मदवाले (मदनाकार) कामदेवके तुल्य रूपवाले (अर्थानर्थकर) प्रयोजन और अनर्थ के करने वाले (महान्) बड़े (सिद्धयोग) सिद्धहै योग जिनका (अपहारी) हरनेवाले (सिद्ध) सिद्धरूप (सर्वार्थसाधक) सबकामों के सिद्ध करनेवाले ॥ ४६ ॥

(भिन्नु) संन्यासी (भिन्नरूप) भिन्नरूपवाले (वर्णाविभुः) छह प्रकारके ऐश्वर्योंके स्वामी (मृदुत्वच) कोमल खालवाले (महासेन) बड़ी सेनावाले (विशाख) स्वामिकारिकरूप (यष्टिभाग) लाठी में बांधा जाता है भाग जिनका (गवांपति) नन्दीके पालनेवाले ॥ ४७ ॥ (वज्रहस्त) वज्रहै हाथमें जिनके (विष्टम्भि) रोंकनेवाले (विष्ट) बैठे (स्तम्भन) धारण करनेवाले (ऋक्ष) नक्षत्ररूप (रिपुकर) क्रुद्ध होनेसे शत्रुओंके बढ़ानेवाले (काल) कालरूप (मधु) वसन्तरूप (मधुकलोचन) महुआके ऐमे नेत्रोंवाले ॥ ४८ ॥ (वाचस्पत्य) बृहस्पतिरूप (वाजसेन) अन्नही जिनकी सेनाहै (नैष्ठ) समाधि करनेवाले (आश्रमसूचक) आश्रमोंके चेतानेवाले (ब्रह्मचारी) ब्रह्मचारी (लोकचारी) लोकोंमें चलनेवाले (सर्वचारी) सब में चलनेवाले (सुरतवित्) अञ्चरलों के जाननेवाले ॥ ४९ ॥ (ईशान)

भिन्नुश्चभिन्नुरूपश्च विभुःषण्णामृदुत्वचः ॥ महासेनोविशाखश्च यष्टिभागोगवांपतिः ॥ ४७ ॥ वज्रहस्तश्चविष्टम्भिर्विष्टःस्तम्भनएवच ॥ ऋक्षोरिपुकरःकालो मधुर्मधुकलोचनः ॥ ४८ ॥ वाचस्पत्योवाजसेनो नैष्ठश्चाश्रमसूचकः ॥ ब्रह्मचारीलोकचारी सर्वचारीसुरतवित् ॥ ४९ ॥ ईशानईश्वरःकालो निशाचारीत्वमेकधृक् ॥ अमितश्चाप्रमेयश्च नदीनदकरोव्ययः ॥ ५० ॥ नन्दीश्वरस्सुनन्दीच नन्दनोनन्दवर्द्धनः ॥ नागहारीविहारीच कालोब्रह्मविदांवरः ॥ ५१ ॥ चतुर्मुखोमहालिङ्गश्चतुर्लिङ्गस्तथैवच ॥ लिङ्गाध्यक्षसुराध्यक्षो कालाध्यक्षोयुगावहः ॥ ५२ ॥ उ

ईशानकोणरूप (ईश्वर) ऐश्वर्यवाले (काल) कालरूप (निशाचारी) रात्रिमें चलनेवाले (त्वमेकधृक्) आपही एक सबके धारण करनेवाले हो (अमित) वेनाप (अप्रमेय) किसी प्रमाणसे नहीं जानेजाते (नदीनदकर) नदियां व नदोंके करनेवाले (अव्यय) नाशरहित ॥ ५० ॥ (नन्दीश्वर) नन्दीके मालिक (सुनन्दी) भलीभांति आनन्द देनेवाले (नन्दन) आनन्द देनेवाले (आनन्दवर्द्धन) आनन्द बढ़ानेवाले (नागहारी) नागोंकी माला धारण करनेवाले (विहारी) विहाग करनेवाले (काल) समयरूप (ब्रह्मविदांवर) ब्रह्मके जाननेवालों में श्रेष्ठ ॥ ५१ ॥ (चतुर्मुख) चारमुखवाले (महालिङ्ग) पूजाजाता है लिङ्ग जिनका (चतुर्लिङ्ग) चारों वेदों में है स्वरूप जिनका (लिङ्गाध्यक्ष) लिङ्गोंमें आपही की पूजा होती है इससे लिङ्गोंके ईश्वर हो (सुराध्यक्ष) देवताओं के ईश्वर (कालाध्यक्ष) कालके ईश्वर

(युगाव्रह्म) युगोंके धारण करनेवाले ॥ ५२ ॥ (उमापति) पार्वतीके पति (उमाकान्त) पार्वतीजीके प्यारे (जाह्नवीधृतिमान्) गंगाके धरनेवाले (वर) श्रेष्ठ (मर्वार्थ) सब प्रयोजनरूप (मर्वभूतार्थ) सब मर्वभूत (सर्वव्रत) सब व्रतोंवाले (शुचि) पवित्ररूप आपहां ॥ ५३ ॥ हे नाथ ! जो देव ब्रह्मादि देवता, महर्षियोंसे नहीं जानेजाते ऐसे श्रेष्ठोंमें श्रेष्ठ, परमात्मा आप स्तुति करने योग्य कैसे होसकेंहो ॥ ५४ ॥ हे परमेश्वर ! हमलोगोंकी जिह्वाकी चञ्चलता को आप क्षमाकरो और हे पुष्टिबर्द्धन ! स्वर्गवासि देवताओं का कल्याण करो ॥ ५५ ॥ मार्कण्डेयजी बोले कि इस स्तोत्रको सुनकर श्रीमान् द्वीपेश्वर

मापतिरुमाकान्तो जाह्नवीधृतिमान्वरः ॥ सर्वार्थस्सर्वभूतार्थो नित्यस्सर्वव्रतशुचिः ॥ ५३ ॥ योनब्रह्मादिभिर्देवो ज्ञा
यतेनमहर्षिभिः ॥ स्तोतव्यःसकथन्नाथ परमात्मापरात्परः ॥ ५४ ॥ जिह्वाचापल्यमस्माकं क्षमस्वपरमेश्वर ॥
शिवंकुरुष्वदेवानां स्वर्ग्याणांपुष्टिवर्द्धनम् ॥ ५५ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ श्रुत्वास्तोत्रमिदन्देवः श्रीमान्द्वीपेश्वरःशिवः ॥
प्रहसन्नब्रवीद्वान् प्रार्थयध्ववंसुराः ॥ ५६ ॥ देवाऊचुः ॥ यदितुष्टोमहेशानो देवानांवरदःप्रभुः ॥ तद्विनाशायैदत्या
नां त्राताभवमहेश्वर ॥ ५७ ॥ पापकर्ममाधमश्चैव पञ्चलिङ्गानियोचयेत् ॥ सोपिताङ्गतिमाप्नोति दुर्लभायामहाम
खैः ॥ ५८ ॥ शक्रेणामिषृतस्तत्र देवदेवउमापतिः ॥ पुरानाम्नांसहस्रेण सुरासुरनमस्कृतः ॥ ५९ ॥ शिवप्रसादसम्प
न्नो देवराजस्ततोभवत् ॥ धनदेनस्तुतस्तत्र देवलक्ष्मेश्वरःप्रभुः ॥ ६० ॥ मोक्षदानामगौरौश्च तान्देवीविद्धिभारत ॥

महादेवजी हंसतेहुये देवताओंसे बोले कि हे देवताओं ! तुमलोग वर्कमांगो ॥ ५६ ॥ तब देवताबोले कि हे महेश्वर ! देवताओंको धरके देनेवाले प्रभु महेशान आप जो प्रसन्नहो तो दैत्योंके नाश करने के वास्ते देवताओं की रक्षा करनेवाले होवो ॥ ५७ ॥ पापकर्म का करनेवाला अधमभी जो मनुष्य पांचों लिंगोंका पूजन करे तो वह भी उस गतिको प्राप्तहोवे जोकि बड़े यज्ञोंसे भी दुर्लभ है ॥ ५८ ॥ देवता व दैत्योंसे नमस्कार कियेगये देवताओं के देवता पार्वती के पति महादेवजी की पूर्व कालमें इन्द्रने भी वहां हजारनामों से स्तुतिको कियाहै ॥ ५९ ॥ तब महादेवजीके प्रसादमें युक्त इन्द्र देवताओंके राजा होतेहुये और वहां कुंवरने भी प्रभु लक्ष्मेश्वर

देवकी स्तुति की है ॥ ६० ॥ हैं भारत ! वहां मोक्षदानाम की जो शक्ति है उसीको देवी पार्वतीजी जानो और देवता व देव्योंसे नमस्कार कियागया मोक्षेश्वर नामका सिद्धलिंग है ॥ ६१ ॥ सिद्ध, विद्याधर, यक्ष, गन्धर्व, किन्नर और मनुष्य भी पांचों लिंगों के पूजन से देवभावको प्राप्तहुये ॥ ६२ ॥ कुबेर, वायु, वरुण, निम्नति, वैवस्वत और नरकोंके राजा यमराज भी उसी पूजनसे अपने २ अधिकारोंको पातेहुये ॥ ६३ ॥ और उस लिंगके माहात्म्य से सूर्यके पुत्र यमराज बड़े यशवाले हुये वहां पूर्वकाल में औरोंने भी द्वीपेश्वर प्रभुकी स्तुति की है ॥ ६४ ॥ व वही भक्तिपूर्वक सहस्रनाम से चन्द्रमाने बहुत पूजनेलायक महादेवजी की स्तुतिकी इससे चन्द्रमा

मोक्षेश्वरसिद्धलिङ्गं सुरासुरनमस्कृतम् ॥ ६१ ॥ सिद्धैर्विद्याधरैर्यक्षैर्गन्धर्वैः किन्नरैर्नरैः ॥ देवत्वं समनुप्राप्तं पञ्चालिङ्गसमर्चनात् ॥ ६२ ॥ कुबेरो मारुतश्चैव वरुणो निम्नतिस्तथा ॥ वैवस्वतो यमश्चैव ततश्च नरकेश्वरः ॥ ६३ ॥ तस्य लिङ्गस्य माहात्म्यात्सूर्यपुत्रो मया यशः ॥ अन्यैरभिष्टुतस्तत्र पूर्वद्वीपेश्वरः प्रभुः ॥ ६४ ॥ भक्त्या नाम सहस्रेण स्तुतः पूज्य तमश्शिवः ॥ सोमेनातो भवत्तत्र शम्भो शिशिरसिभूषणम् ॥ ६५ ॥ रोहिण्याभ्यर्चिता गौरी सुभगतेन सा भवत् ॥ ऋक्षैर्यौगतेरैस्तद्वत्स्तुतो देवः पिनाकधृक् ॥ ६६ ॥ ततस्तैर्भास्करैरेव नभःस्थलमलंकृतम् ॥ व्याधयः कालमृत्युश्च चित्रगुप्तश्च लेखकः ॥ ६७ ॥ तथा शक्रस्सुरगणैरितैः परिवृतः प्रभुः ॥ पापिष्ठानां महारौद्रो धर्मिष्ठानां प्रसादवान् ॥ ६८ ॥ कोटयोऽष्टौ चोर्ध्वकेशा रौद्राश्च विकृताननाः ॥ पतिव्रता सहस्रैश्च तथा मासोपवासिभिः ॥ ६९ ॥ किल्बिलारचशब्दैश्च धर्मराजपुरोत्तमम् ॥ व्याप्तन्तु परितः श्रीमदसंख्यातैर्मनोरमैः ॥ ७० ॥ श्रुत्वा तेषां रवंसाद्धं धर्ममराजः समासदैः ॥ इवेत

महादेवजी के शिरका भूषण होता हुआ ॥ ६५ ॥ रोहिणी ने पार्वतीजी का पूजन किया इससे वह सौभाग्यवाली हुई इसीतरह नक्षत्र व योगोंने पिनाक के धरनेवाले महादेवजीकी स्तुतिकी है ॥ ६६ ॥ इससे उन्होंने सूर्यके सहित आकाशको शोभित कर दिया है रोग, कालमृत्यु, लिखनेवाले चित्रगुप्त ॥ ६७ ॥ तथा इन देवताओं के गणोंसे युक्त इन्द्रभी स्तुति करतेहुये जो प्रभुजी पापियों को बड़े डेरावने है और धर्मियों को बड़े सीधे हैं ॥ ६८ ॥ जिनके पास खडेवालोवाले, बड़े डेरावने मुहवाले, बड़े भयानक आठ करोड़ गण रहते हैं ऐसे यमराज का उत्तम पुर सब ओर हजारों पतिव्रता स्त्रियों व महीने २ भरतक व्रतोंके करनेवाले पुरुषों व उनके

विलकिलाहटवाली आवाजों व और भी पुण्यवालों के अगणित मनके रमानेवाले विमानों से भरजाता हुआ ॥ ६६ ॥ ७० ॥ उनके शब्दको सुनकर अपने सभासदों के सहित सफेद कपड़ों को पहनेहुये व सफेदमाला व सफेदचन्दन को लगायेहुये धर्मराज ॥ ७१ ॥ बहुतजल्द पैदल वहाँ गये जहाँ वे लोग विमानों पर बैठेहुये वे दोनों हाथोंको जोड़कर उन पुण्यात्माओं से पूछतेहुये ॥ ७२ ॥ कि अपनी शक्तिके अनुसार योगाभ्यास से धर्मोंमें उत्तम बड़े धर्मको आपलोगों ने कमाया है सो आप लोग किस देशसे आयेहो और कैसे पुण्यको कमाया है ॥ ७३ ॥ तब विमानों के सवार बोले कि कुरुक्षेत्र में हमलोगों ने तपः किया और गंगामें विशेषकर किया है

वस्त्रपरीधानः श्वेतमाल्यानुलेपनः ॥ ७१ ॥ पादचारीगतः क्षिप्रं यत्र तेयानसंस्थिताः ॥ कृताञ्जलिपुटोभूत्वा पप्रच्छ शुभकर्मणः ॥ ७२ ॥ यथाशक्तेनयोगेन धर्मधर्मोत्तरम्महत् ॥ कस्माद्देशात्समायाताः कथमुपयमुपाज्जितम् ॥ ७३ ॥ विमानारूढाञ्जुः ॥ कुरुक्षेत्रे तपस्तप्तं गङ्गायाञ्च विशेषतः ॥ सर्वेपामेवलोकानां द्वारन्तद्विप्रतिष्ठितम् ॥ ७४ ॥ धर्मधर्ममत्तवलं कारणंचेतितन्वतः ॥ वाराणसीप्रयागश्च गङ्गासागरसङ्गमः ॥ ७५ ॥ पितृतीर्थमहापुण्यं पुष्करं नैमिषन्तथा ॥ केदारंभैरवञ्चैव तथारुद्रमहालयम् ॥ ७६ ॥ सरस्वतीरुद्रकोटिः प्रभासंशशिभूषणम् ॥ नानातीर्थसहस्रेषु दानयज्ञतपःकृतम् ॥ ७७ ॥ एतत्तेकथितंसर्वं सूर्यपुत्रमहायशः ॥ अन्येदृष्ट्वायथान्यायं धर्मराजंततस्तथा ॥ ७८ ॥ ऊचुस्सर्वेवचः श्लक्ष्णं धर्मराजं यथोदितम् ॥ नत्वं प्रभुः सुकृतिनां ब्रह्माविष्णुः शिवः प्रभुः ॥ ७९ ॥ पापकर्म

क्योंकि वे गंगा तो सब लोकोंका द्वारही हैं ॥ ७४ ॥ धर्म व अधर्मही आपका बल है येही दोनों तत्त्व से सुख व दुःख के कारण हैं और भी बड़े बड़े पवित्रतीर्थ हैं जैसे काशी, प्रयाग, गंगासागरसङ्गम ॥ ७५ ॥ पितृतीर्थ (गया), बड़ी पुण्यवाला पुष्कर तथा नैमिष, केदार, भैरव, रुद्रमहालय ॥ ७६ ॥ सरस्वती, रुद्रकोटि, प्रभास और शशिभूषण इत्यादि अनेक प्रकार के हजारों तीर्थों में हमलोगों ने दान, यज्ञ और तपस्या को किया है ॥ ७७ ॥ हे बड़ेयशवाले, सूर्यपुत्र ! यह अपना वृत्तान्त आपसे हमलोगोंने कहा तब उनमें से और लोग धर्मराज को न्यायपूर्वक देखकर ॥ ७८ ॥ सबलोग धर्मराज से यथोचित स्नेहवाले वचनको बोले कि आप पुण्य

वालों के मालिक नहीं हो बल्कि उनके मालिक ब्रह्मा, विष्णु व शिवजी हैं ॥ ७६ ॥ जो मनुष्य पापकर्मों के करनेवाले है उनके राजा यमराज आपही है तब यमराज बोले कि हम कैलासको जाकर जबतक लौटआवें तबतक आपलोग ठहरें ॥ ८० ॥ हे राजन् ! ऐसे कहकर वे यमराज पर्वतों में उत्तम कैलासको जातेहुये जिस कैलास में शिवआदि देवता व पार्वती और स्वामिकार्त्तिक ये सब बैठे हैं ॥ ८१ ॥ और जहां सब देवतालोग देवताओं के देवता पार्वती के पति महादेवजी की स्तुति कर रहे हैं व कोई उनके आगे नाचते हैं और कोई उछलकर फिर गिरते हैं ॥ ८२ ॥ प्रचण्ड तेजवाले, स्तुति कियेजाते, ऐसे उन महादेवजी को देखकर देवताओं के

रतायेतु तेषांशास्तायमःस्वयम् ॥ यमउवाच ॥ गत्वाकैलासमायामि यावत्तावत्प्रतीक्षताम् ॥ ८० ॥ एवमुक्त्वा य यौराजन् कैलासंसनगोत्तमम् ॥ यस्मिञ्छिवाद्यास्तेसर्वे पार्वतीषण्मुखस्तथा ॥ ८१ ॥ स्तुवन्तिदेवताःसर्वा देवदेवमु मापतिम् ॥ नृत्यन्तिचाग्रतःकेचिदुत्पत्यनिपतन्तिच ॥ ८२ ॥ तं दृष्ट्वा तादृशं शम्भुस्तुवन्तं दीप्ततेजसम् ॥ स्तुवन्नामसहस्रे ण देवदेवंपिनाकिनम् ॥ ८३ ॥ साष्टाङ्गं च नमस्कृत्य धर्मराजो ब्रवीद्वीदिदम् ॥ येस्मत्पुरींसमायातास्तेषां कागतिरुच्यते ॥ ८४ ॥ प्रहसन्नब्रवीद्देवो धर्मराजं युधिष्ठिर ॥ अत्र प्रयान्तु ते सर्वे येरेवातीरवासिनः ॥ ८५ ॥ अन्यतीर्थनिवासायै भोगान्भु व्जन्तु ते दिवि ॥ शिववाक्यं ततः श्रुत्वा ब्रह्मा विष्णु र्यथा तथम् ॥ ८६ ॥ तुष्टा देवस्य वाक्येन सर्वदेवगणेश्वरः ॥ आगतः क्षणमात्रेण धर्मराजः पुरोत्तमम् ॥ ८७ ॥ शिवोक्ताः प्रेषितास्सर्वे शिवलोकं युधिष्ठिर ॥ यथा यथा समादिष्टास्ततो न्य

देवता पिनाकधनुष के धरनेवाले महादेवजी की हजारनामों से स्तुति करतेहुये ॥ ८३ ॥ साष्टांग प्रणामकर धर्मराज यह बोले कि जो लोग हमारी पुरी में आयेहुये हैं उनकी क्या गति होना चाहिये ॥ ८४ ॥ तब हे युधिष्ठिर ! हे सतेहुये महादेवजी धर्मराज से बोले कि उनमें जो नर्मदातीर के रहनेवाले हैं वे सब यहां चलेआवें ॥ ८५ ॥ और जो और तीर्थों के रहनेवाले हैं वे स्वर्ग में भोगोंको भोगें तब महादेवजी के इस यथार्थ वचन को सुनकर ब्रह्मा व विष्णु और सब देवगणों के मालिक धर्मराज जी उस महादेवजी की बातसे बहुत प्रसन्न हुये फिर धर्मराज एक क्षणमात्र में अपने उत्तमपुर को आतेहुये ॥ ८६ ॥ व हे युधिष्ठिर ! महादेवजी के कहेहुये सब

लोगोंको शिवलोक को भेजदिया और औरोंको जैसा २ हुक्म दियाथा उसीतरह वे भी सुखसे युक्त कर दियेगये ॥ ८८ ॥ पूर्नकल्प में कार्तिकी को देवताओं के समागम में मैंने इस चार्ता को देखाथा अब हे महाराज ! तदनन्तर उत्तम वैष्णवतीर्थको जावे ॥ ८९ ॥ सब पापोंका छुटानेवाला कोकिलानाम से वह तीर्थ प्रसिद्ध है उसको देवताओं के देवता जनार्दनजीने वैष्णवक्षेत्र कहाहै ॥ ९० ॥ हे भारत ! वहां सवा करोड़ तीर्थ रहते हैं जो मनुष्य वहां पवित्र एकदशी का व्रतकरके दियालियो को जलाता है ॥ ९१ ॥ उसकी इस कठिन मनुष्यलोक में फिर आवृत्ति नहीं होती है हे भारत ! बल्कि वह सब कामनाओं से भरेहुये उत्तम विमान से विचरता

पिशुमान्विताः ॥ ८८ ॥ पुराकल्पेसयादृष्टं कार्तिक्यादेवतागमे ॥ ततोगच्छेन्महाराज वैष्णवंतीर्थमुत्तमम् ॥ ८९ ॥
कोकिलानामविख्यातं सर्वपापविमोक्षणम् ॥ वैष्णवंक्षेत्रमित्याह देवदेवोजनार्दनः ॥ ९० ॥ सपादकोटिस्तीर्थानां
तत्रास्तेचैवभारत ॥ उपोष्यैकादशीं पुण्यां दीपमालांप्रबोधयेत् ॥ ९१ ॥ नतस्यपुनरावृत्तिर्मर्त्यलोकेदुरासदे ॥ सर्व
कामसमृद्धेन विमानाग्रेणभारत ॥ ९२ ॥ असङ्ख्यकालिकातृप्तिः पितॄणां नान्नसंशयः ॥ विप्रेचतोषिते तत्र दानसङ्ख्यान
विद्यते ॥ ९३ ॥ अत्रान्तरेत्यजत्प्राणानवशः स्ववशोपिवा ॥ दशवर्षसहस्राणि राजावैद्याधरेपुरे ॥ ९४ ॥ ध्रुवो ध्रुवत्वस्व
र्गे तु तारातेजः समुज्ज्वलन् ॥ मर्त्ययोनिषु समभूता भूतग्रामास्तथापरे ॥ ९५ ॥ अर्चनाह्वेदवस्य द्विविदेवत्वमाप्नुवन् ॥
देवपुण्यक्षये मर्त्या भक्त्या पुण्यैश्च देवताः ॥ ९६ ॥ स्वर्गमर्त्यप्रभेदोऽयं धर्माधर्मप्रभेदतः ॥ केनापितत्प्रकारेण पूजनी

॥ ९२ ॥ वहांपर श्राद्धआदि के करने से पितरों की बहुत कालतक तृप्ति होतीहै इस में कुछ संशय नहीं है वहांपर ब्राह्मण के प्रसन्न कियेपर दानकी गिन्ती नहीं रहती है ॥ ९३ ॥ इस क्षेत्रमें परवश व अप्रपन्न वशहोकर जो प्राणोंको छोड़ता है वह दश हजारवर्षों तक विद्याधरों के पुरमें राजा होताहै ॥ ९४ ॥ यहीं के पुण्यसे राजा ध्रुव स्वर्गमें नक्षत्रों के तेजसे प्रकाश करतेहुये ध्रुवत्व (अटलभाव) को प्राप्तहुये हैं और मृत्युवाली योनियों में भलीभांति उत्पन्न हुये चारों प्रकार के जीव ॥ ९५ ॥ देवों के देव विष्णु के पूजन करने से स्वर्ग में देवभावको प्राप्तहुये देवताओं की पुण्यके लयहोने पर देवता मनुष्य होते हैं और मनुष्यलोग भक्ति व पुण्यसे देवता होते

हैं ॥ ६६ ॥ स्वर्ग और मनुष्यलोक का यह भेद धर्म और अधर्म के भेदसे हुआ है इससे किसी प्रकार से महादेवजी पूजनेलायक हैं ॥ ६७ ॥ भक्तिसे युक्त बिचसे जैसेतैसे शिवके निमित्त कुछ देना चाहिये अरुन्धती साभरणी तथा सावित्री ॥ ६८ ॥ अहल्या, मेनका, मरुत्वती और रम्भा तथा और भी अप्सराओं व देवताओं और सिद्धोंके गणों से महादेवजी पूजेगये हैं ॥ ६९ ॥ परन्तु हे भारत ! नर्मदा के तटमें रहकर जिसने महादेवजी का पूजन किया है निश्चयकरके उसीने बड़ेभोगों व मोक्षको पाया है ॥ ७० ॥ महादेवजी की मायासे मोहित जो शिवजी का पूजन नहीं करता है उसको स्वर्ग और मोक्ष नहीं होते कैलास होनेकी तो बातही क्या है ॥ ७१ ॥

योमहेश्वरः ॥ ९७ ॥ यद्वातद्वाशिबेदेयं भक्तियुक्तेनचेतसा ॥ अरुन्धत्यासाभरण्या सावित्र्याचतथातथा ॥ ९८ ॥ अह
त्ययामेनकया मरुत्वत्याचरम्भया ॥ अप्सरोगणसङ्घैश्चसुरसिद्धगणैस्तथा ॥ ९९ ॥ नर्मदातटमाश्रित्य पूजितोयेन
शङ्करः ॥ तेनैवविपुलाभोगाः प्राप्तामोक्षश्चभारत ॥ १०० ॥ नपूजयेद्धरंयस्तु शिवमायाविमोहितः ॥ नतस्यस्वर्गमोक्षौ
चकैलासंप्रतिकाकथा ॥ १ ॥ नचस्वर्गस्यराज्यस्य भाजनञ्चनराधिप ॥ सर्वतीर्थमयीरेवा सर्वदेवमयोहरः ॥ २ ॥ सर्व
धर्ममयीबुद्धिः क्षमासत्यमयंतपः ॥ ब्रह्मचर्यंतपोमूलं पञ्चेन्द्रियविनिग्रहः ॥ ३ ॥ क्षमासत्यंजपोधीतं तपःसंयम
लक्षणम् ॥ एतत्तेकथितंराजिब्ध्वेनकथितंपुरा ॥ ४ ॥ मयाचतवराजेन्द्र आतृणाञ्चविशेषतः ॥ नसामान्यतरादेवी क
थितायामयातव ॥ ५ ॥ द्वीपेश्वरःकपिलेश्वरस्तथावैनरकेश्वरः ॥ एतान्देवान्समुत्थाय यथावत्परिकीर्तयेत् ॥ ६ ॥ स

और हे नराधिप ! वह पुरुष स्वर्गकी राज्यका पात्र नहीं होता है क्योंकि नर्मदा सब तीर्थोंका रूप है महादेवजी सब देवताओं का रूप हैं ॥ २ ॥ बुद्धि सब धर्मोंका रूप है क्षमा व सत्य तपस्या का रूप है और पांचों इन्द्रियों का वश करना व ब्रह्मचर्य तपस्याकी जड़ है ॥ ३ ॥ क्षमा, सत्य, जप, पाठ और तप इन्हीं का नाम संयम है हे राजन् ! पूर्वकाल में महादेवजी का कहाहुआ यह वृत्तान्त आपसे कहागया ॥ ४ ॥ और हे राजेन्द्र ! मैंने भी आप व आपके भाइयों से विशेषकर कहा जिस देवीको मैंने आप से कहा है वह साधारण नहीं है ॥ ५ ॥ द्वीपेश्वर व कपिलेश्वर और नरकेश्वर इन देवों को प्रातःकाल उठकर जो यथावत् कहता है ॥ ६ ॥ वह

सब तीर्थों के फलों को पाकर शिवलोक में पूजा जाता है पापों के समूह के नाश होने पर नर्मदा की प्राप्ति होती है ॥ ७ ॥ जिस नर्मदा के समीप शिवजी हमेशा रहते हैं इसी से नर्मदा शिवजी का परम क्षेत्र है इसके सुनने व कहने से शिवलोक में पूजा जाता है ॥ १०८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे रेवाखण्डे प्राकृतभाषाऽस्तु वा देवीपेश्वरवर्णनो नामैकमस्रतितमोऽध्यायः ॥ ७१ ॥

मार्कण्डेयजी बोले कि देवता व सिद्धों से सेवित नर्मदाका सङ्गम बड़ा पवित्र है उसमें स्नान कर और महादेवजीका पूजन कर स्वर्गको जाते हैं ॥ १ ॥ हे भस्तर्यभ ! ततः परम् ॥ श्रवणात्कीर्तनादस्य शिवलोकैर्महीयते ॥ १०८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे रेवाखण्डे देवीपेश्वरवर्णनो नामैकमस्रतितमोऽध्यायः ॥ ७१ ॥

मार्कण्डेय उवाच ॥ नर्मदासङ्गमं पुण्यं सुरसिद्धनिषेवितम् ॥ तत्र स्नात्वा दिव्यान्ति पूजयित्वा महेश्वरम् ॥ १ ॥ आगच्छन्ती पुरालोकैर्नर्मदाभरतर्षभ ॥ स्तुता पूर्वमस्मत्कृत्य देवैर्ब्रह्मर्षिभिस्तथा ॥ २ ॥ त्वया पवित्रितं पुण्यं मर्त्यलोका देवी रेवा त्वं सप्तकल्पगा ॥ ४ ॥ शिवजा प्रवहा पुण्या मेकलाद्रिमुतास्तुता ॥ यज्ञयूपाचमूद्धाच्च स्वर्गमोक्षप्रदा तथा ॥ ५ ॥ तारिणी सर्वभूतानां पापघ्नी चतरङ्गिणी ॥ लक्ष्मीः स्वाहा स्वधा चैव पुरुहता यशस्विनी ॥ ६ ॥ त्वया व्याप्तं जगत्कु

पूर्वकाल विषे मनुष्यलोकमें आती हुई नर्मदाकी देवता व ब्रह्मर्षियोंने पहले नमस्कार कर स्तुति की है ॥ २ ॥ उन्होंने कहा कि आपने चराचर इस मनुष्यलोकको पवित्र व पुण्यवाला कर दिया है जलके रूपको प्राप्त हो गई नर्मदाजी महादेवजीकी पूरी कला है ॥ ३ ॥ उमा, कात्यायनी, गङ्गा, यमुना, सरस्वती, चासुण्डा और चर्चिका देवी सात कल्प तक रहनेवाली नर्मदा तुम्हीं हो ॥ ४ ॥ महादेवसे तुम उत्पन्न हुई हो, प्रवाहरूप हो, पुण्यवाली हो, मेकलपर्वतकी कन्या हो, सबों से स्तुति की गई हो, यज्ञोक्त व्रतवाली हो, सब तीर्थोंके मस्तककी तरह शोभित हो, स्वर्ग व मोक्षको देनेवाली हो ॥ ५ ॥ सब प्राणियोंको तारनेवाली हो, पापोंको नाश करनेवाली व तरङ्गवाली हो,

लक्ष्मी, स्वाहा, स्वधा और यशवाली इन्द्राणी तुम्हींहो ॥ ६ ॥ हे सुव्रते ! जलके रूपसे तुम्हीं जगत्की ढांकलियाँ हैं तुम्हारा सङ्गम व सिद्धलिङ्ग देवता व दैत्यों से नमस्कार किया गया है ॥ ७ ॥ यहाँ जो कुछ दान व होम किया जावे वह सब अक्षय होता है हे महाराज ! नर्मदाका स्नान व शिवका पूजन बड़ा ही अद्भुत है ॥ ८ ॥ हे युधिष्ठिर ! एक समयमें अनेकतरहके रत्नोंकी चमकसमूहों से करोड़ों सूर्योंके समान तेजवाले अनेक हजार विमान सितार आदिकी आवाजों से व वेदों के शब्दों से आकाश और पृथ्वीको भरते हुये यमराजकी पुरीको प्राप्त हुये राजा यमराज उनको देखकर बड़े आश्चर्यको प्राप्त हुये परन्तु पूर्वकालमें महावेव, विष्णु और त्सनमपारूपेण सुव्रते ॥ सङ्गमसिद्धलिङ्गच सुरासुरनमस्कृतम् ॥ ७ ॥ अत्र दत्तं हुतं सर्वमेतद्भवति चाक्षयम् ॥ अत्यद्भुतं महाराज नर्मदास्नानमर्चनम् ॥ ८ ॥ अनेकानि सहस्राणि विमानानि युधिष्ठिर ॥ नानारत्नप्रभाजालैः सूर्यकोटि समाविच ॥ ९ ॥ गतानि धर्ममराजस्य पुरीवीणादिनिःस्वनैः ॥ नादयन्ति दिवं भूमिं वेदनिर्घोषणादिभिः ॥ १० ॥ एकस्मिन्समये दृष्ट्वा इत्थं वैवस्वतो नृपः ॥ अत्रिश्चैव विशिष्टश्च पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः ॥ ११ ॥ इत्याद्याः सप्तमुनयो धर्ममधिर्मविचारकाः ॥ शिवेन स्थापिताः पूर्वं हरिणा ब्रह्मणा तथा ॥ १२ ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ अक्षीणकर्मबन्धस्तु पुरुषो मुनि सत्तम ॥ परंपदमवाप्नोति तन्मेकथय कल्पग ॥ १३ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ विष्णुना कथितं पूर्वं ब्रह्मणे च महात्मने ॥ प्रपद्ये पुण्डरीकाक्षं देवं नारायणं हरिम् ॥ १४ ॥ लोकनाथं सहस्राक्षमक्षरं परमं पदम् ॥ भगवन्तं प्रपद्ये हं भूतभव्यमवत्प्रभुम् ॥ १५ ॥ स्रष्टारं सर्वभूतानामनन्तवत्पौरुषम् ॥ पद्मनाभं हृषीकेशं प्रपद्ये सत्यमव्ययम् ॥ १६ ॥ हिरण्यगर्भं ब्रह्माजनिं धर्म अधर्म के विचार करनेवाले अत्रि, विशिष्ट, पुलस्त्य, पुलह और क्रतु आदि सात मुनियों को यहाँ स्थापित कर दिया है उन्हीं से पूछकर यमलोकका काम चलता है ॥ ६। १०। ११। १२ ॥ युधिष्ठिरजी बोले कि हे मुनि सत्तम ! जिस मनुष्यके कर्मरूपी बन्धन नहीं टूटते हैं वह परमपदको किस तरह प्राप्त करे ! सो आप हमसे कहें ॥ १३ ॥ तब मार्कण्डेयजी बोले कि पूर्वकाल में इसी बातको विष्णुजीने महात्मा ब्रह्माजी से कहा है कि पुण्डरीकाक्ष, नारायण, हरि, देव बी में शरण रहें ॥ १४ ॥ लोकोंके नाथ, हजारों नेत्रवाले, नाशरहित, परमपद का रूप, होगई व होरही और होनेवाली बातके प्रभु, भगवान् की में शरण हूँ ॥ १५ ॥ सब प्राणियों

के रचनेवाले, बेथाह बल व पौरुषवाले, कमल जिनकी नाभिसे निकला है, इन्द्रियों के स्वामी, सत्यरूप, नाशरहित के मैं शरणहूँ ॥ १६ ॥ हिरण्यगर्भरूप, पृथिवी जिनके गर्भमें हैं, मृत्यु से रहित, चारों तरफ़ मुखवाले, नाशरहित, कोई जिनका मालिक नहीं है, सूर्यके समान प्रकाशवाले के मैं शरणहूँ ॥ १७ ॥ हजारों शिरोंवाले, वैकुण्ठके रहनेवाले, गरुडके सवार, सूक्ष्मरूपवाले, अटल, सबसे श्रेष्ठ, अभयके देनेवाले, देवके मैं शरणहूँ ॥ १८ ॥ नारायण, हरि, योगकी आत्मा, सनातन, सब लोगोंको शरणजाने योग्य, अटल, ईश्वर के मैं शरणहूँ ॥ १९ ॥ सब प्राणियों का जो स्वामी है जिससे यह सब विश्व विस्तार किया गया है, जो देव संहारका करनेवाला है वह विष्णु मुझपर प्रसन्नहोवे ॥ २० ॥ पूर्वकालमें कमल जिनकी योनिहै और प्रजाओं के मालिक ऐसे ब्रह्मा जिससे पैदा हुये हैं, ब्रह्माजीसे

भूगर्भममृतंविश्वतोमुखम् ॥ अनश्वरमनाथञ्च प्रपद्येभास्करद्युतिम् ॥ १७ ॥ सहस्रशिरसंदेवं वैकुण्ठताक्षर्यवाहनम् ॥ प्रपद्येसूक्ष्मचलं वरेण्यमभयप्रदम् ॥ १८ ॥ नारायणंहरिञ्चैव योगात्मानंसनातनम् ॥ शरण्यंसर्वलोकांनां प्रपद्येध्रुवमीश्वरम् ॥ १९ ॥ यःप्रभुःसर्वभूतानां येनसर्वमिदंततम् ॥ यःसंहारकरोदेवः समेविष्णुःप्रसीदतु ॥ २० ॥ यस्माज्जातःपुराब्रह्मा पद्मयोनिःप्रजापतिः ॥ प्रसीदतुसमेविष्णुः पितामहपरःप्रभुः ॥ २१ ॥ पुरालयेतुसंप्राप्ते नष्टलोकेचराचरे ॥ एकस्तिष्ठतियोगात्मा समेविष्णुःप्रसीदतु ॥ २२ ॥ जयेद्यःपृथिवीसत्यं कालोधर्मःक्रियाफलम् ॥ गुणाकारःसतांवाचो वासुदेवःप्रसीदतु ॥ २३ ॥ योगावासनमस्तुभ्यं सर्वावासवरप्रद ॥ यज्ञमोगिन्यव्यभोगिन्नारायणनमोस्तुते ॥ २४ ॥ चतुर्मूर्तेजगद्धाम लक्ष्मीवासनमस्तु ॥ विश्वावासनमस्तु साक्षीभूतजगत्पते ॥ २५ ॥ अजेयःपद्भिमा

श्रेष्ठ, सबका मालिक वह विष्णु मुझपर प्रसन्न होवे ॥ २१ ॥ पूर्वकालमें प्रलयके प्राप्तहोनेपर और चराचर लोकके नष्टहो जाने पर योग जिसकी आत्माहै ऐसा एकही जो वाकी रहजाता है वह विष्णु मुझपर प्रसन्नहोने ॥ २२ ॥ जिसने एक पगसे पृथिवी को जीतलिया है व जो सत्यरूप, कालरूप, धर्मरूप और कर्मोका फलरूप सत्त्वआदि गुणों के आकार होनेवाला, महात्माओं की वाणीरूप है वह वासुदेव मुझपर प्रसन्न होवे ॥ २३ ॥ हे योगावास ! हे सर्वावास ! हे वरप्रद ! आपके लिये नमस्कार है हे यज्ञभोगिन् ! हे पञ्चभोगिन् ! हे नारायण ! आपके लिये नमस्कार है २४ ॥ हे चतुर्मूर्ते ! हे जगद्धाम ! हे लक्ष्मीवास ! हे वरप्रद ! हे विश्वावास ! हे सा-

क्षीभूत ! हे जगत्पते ! आपके लिये नमस्कार है ॥ २५ ॥ हे ज्ञानसागर ! आप किसीके जीतेनलायक नहीं हो और छह प्रकारकी ऊर्मियोंसे हे विभाग अर्थात् अलग होना जिनका ऐसेही और एकही आप विश्वभर की सृष्टिहो व वृषाकपि, मृगाधिप और कालरूप हो ऐसे आपके लिये नमस्कार है ॥ २६ ॥ अव्यक्त जो माया है उससे ब्रह्माण्ड उत्पन्न हुआ और माया से और आप प्रभुहो और जिससे श्रेष्ठ दूसरा नहीं है हम उसीके शरणगत हैं ॥ २७ ॥ जिस प्रभुका ब्रह्मा और महादेवआदि निरन्तर ध्यान किया करते हैं और जो अपने एक हिस्से से सब जगत् को धारणकर व्यापकहो स्थित हो रहा है ॥ २८ ॥ व जो किसी से नहीं पकड़ा जासکتा है, गुणोंसे रहित, सबका सिखलानेवाला है, हम उसी के शरणगत हैं सूर्य और चन्द्रमाके बीचमें जो द्योतिरूपसा स्थित हो रहा है ॥ २९ ॥ जिसको जेनज्ञ ऐसा कहते

गैकविश्वभूर्तिवृषाकपिः ॥ मृगाधिपश्चकालश्च नमस्तैर्ज्ञानसागर ॥ २६ ॥ अव्यक्तादयमुत्पन्नमव्यक्तादपरःप्रभुः ॥ यस्मात्परतरं नास्ति तमस्मि शरणगतः ॥ २७ ॥ चिन्तयन्तो हियं नित्यं ब्रह्मेशानादयः प्रभुम् ॥ एकांशेन जगत्सर्वं यो विष्टभ्यविभुः स्थितः ॥ २८ ॥ जेनज्ञ इति यं प्राहुः समहात्मा प्रसीदतु ॥ साङ्ख्ययोगेन ये चान्ये सिद्धाश्चैव महर्षयः ॥ २९ ॥ यं विदित्वा विमुच्यन्ते समहात्मा प्रसीदतु ॥ नमस्ते सर्वतोभद्र सर्वतो जिशिरोमुख ॥ ३० ॥ निर्विकार नमस्तेस्तु आदिकल्पहृदि स्थित ॥ अतीन्द्रिय नमस्तुभ्यं परमात्मनमोस्तुते ॥ ३१ ॥ ये च त्वाभजानन्ति संसारं न वसन्ति ते ॥ रागद्वेषविनिर्मुक्ता लोभमोहविर्विजताः ॥ ३२ ॥ अशरीरः सुगुप्तः सन् सर्वदेहेषु तन्मयः ॥ अव्यक्तबुद्ध्यहङ्कारमहाभूतेन्द्रियाणि च ॥ ३३ ॥

हे वह महात्मा प्रसन्न होवे जो कोई सिद्ध व महर्षिलोग है ये सांख्ययोगसे ॥ ३० ॥ जिसको जानकर संसार से छूटजाते हैं वह महात्मा प्रसन्नहोवे हे सर्वतोभद्र ! हे चार्गेतरफ आंख, शिर, मुखवाले ! आपके लिये नमस्कार है ॥ ३१ ॥ हे निर्विकार ! हे हृदयमें बैठनेवाले ! आपके लिये नमस्कार है हे अतीन्द्रिय ! आप के लिये नमस्कार है व हे परमात्मन् ! आपके लिये नमस्कार है ॥ ३२ ॥ राग और द्वेषसे छूटेहुये तथा लोभ और मोह से रहित जो लोग आपको जानते हैं वे संसार में नहीं बसते हैं ॥ ३३ ॥ शरीरसे रहित, अत्यन्त छिपेहुये, सब देहों में देहही के तुल्य आप रहते हैं व जो माया, बुद्धि, अहङ्कार, महाभूत और इन्द्रिया हैं ॥ ३४ ॥

वे आपही में रहती हैं आप उनमें नहीं रहतेहो आपहीके आश्रित ये सबहैं किन्तु आपहीआप नहीं होसक्ते हैं व आप प्रत्यक्ष नहीं हो और अत्यन्त कूटस्थ भी नहीं हो क्योंकि गुणोंके ईश्वरहो और अपने वशहो ॥ ३५ ॥ संसाररूपहो और कारण से रहितहो सबके स्वामीहो, अपने स्वरूपही में स्थितहो, हे पुण्डरीकाक्ष ! आपके लिये नमस्कार है हे वासुदेव ! आपके लिये नमस्कार है ॥ ३६ ॥ हे जगन्नाथ ! आप तो ईश्वरहो इससे बहुत क्या कहाजावे आप भक्तोंको मुक्तिके देनेवालेहो और सबके गुरु व देवताओं के ईश्वरहो ॥ ३७ ॥ सब प्राणियों के मालिक वेही आप हमारे जन्म २ में स्वामी होवें क्योंकि अहङ्कार व सत्त्वआदि गुणोंसे मैं बंधा

त्वयितानिनतेपुत्वन्तेचतानिनतुस्वयम् ॥ अव्यक्तोनातिकूटस्थो गुणानांप्रभुरीश्वरः ॥ ३५ ॥ आवर्तोहेतुरहितः प्रभुःस्वात्मव्यवस्थितः॥नमस्तेपुण्डरीकाक्ष वासुदेवनमोस्तुते ॥ ३६ ॥ ईश्वरोसिजगन्नाथ किमतःपरमुच्यते ॥ भक्तानांमुक्तिदस्तवञ्च गुरुश्चत्रिदशेश्वरः ॥ ३७ ॥ समेभूतपतिस्त्वंहि प्रसुजन्मनिजन्मनि ॥ अहङ्कारेणबद्धोवा तथासत्त्वादिभिर्गुणैः ॥ ३८ ॥ पृथिवीयातुमेघ्राणं यातुमेरसनाजलम् ॥ चक्षुर्दृताशनंयातुस्पर्शमियातुमास्तम् ॥ ३९ ॥ शब्दश्चाकाशमायातु मनोवैकारणंतथा ॥ अहङ्कारश्चमेबुद्धित्वयिबुद्धिर्ममास्त्विति ॥ ४० ॥ वियोगःसर्वकरणैर्गुणैर्भूतैस्तथास्तुमे ॥ सत्त्वंरजस्तमश्चैव प्रकृतिस्वांविशन्तुमे ॥ ४१ ॥ प्रभोःप्रभुमनवद्यं प्रपद्येहंनरःप्रभुम् ॥ सहस्रशिरसंदेवं महर्षिभूतभावनम् ॥ ४२ ॥ ब्रह्मयोनिश्रविश्वस्य समेविष्णुःप्रसीदतु ॥ ब्रह्मपत्न्यांप्रलीयन्ते नष्टेस्थावरजङ्गमे ॥ ४३ ॥ आहूतसंप्लवेचैवलीयते

हुआहूँ ॥ ३८ ॥ हमारी नासिका अपने कारण पृथिवी को जावे, हमारी जिह्वा जलको जावे व नेत्र अग्निको जावे, हमारी खाल वायुको प्राप्तहोवे ॥ ३९ ॥ वाणी आकाशको जावे, मन अपने कारणको प्राप्तहोवे, हमारा अहङ्कार बुद्धिको जावे और हमारी बुद्धि आपमें लीनहोवे ॥ ४० ॥ सब इन्द्रिय, गुण और पृथिवीआदि महानोंसे मेरा वियोग होजावे व हमारे सत्त्वगुण व रजोगुण और तमोगुण अपने २ कारण में लीन होजावें ॥ ४१ ॥ मालिको के मालिक, दोषोंसे रहित, हजारो शिरोमूर्ति, महर्षि, प्राणियों के रचनेवाले, देवोंके मैं मनुष्य शरणहूँ ॥ ४२ ॥ वेदों व जगत के कारण वह विष्णु मुझपर प्रसन्नहोवे, स्थावर जङ्गमरूप सब जगतके नष्ट

होनेपर जगत् के सब कारण मायामें लीन होते हैं ॥ ४३ ॥ प्रलय के होनेपर महत्तत्त्व प्रकृति में लीन होता है वैष्णवसूक्त के सामवेद के दो मन्त्रोंसे जिसके वास्ते होम किया जाता है वह विष्णु मुझसे प्रसन्न होवे ॥ ४४ ॥ अग्नि, चन्द्र, सूर्य, देवता, ब्रह्मा, रुद्र, इन्द्र और योगियोंके तेजोंको जो बढ़ाता है वह विष्णु मुझपर प्रसन्न होवे ॥ ४५ ॥ आप उत्पन्न नहीं होते हैं और इस दुनिया की रास्ता तुम्हींहो आपकी कोई मूर्ति अर्थात् देह नहीं है और सब देहोंके जीतनेवालेहो आप पुराने कभी नहीं होते हमेशा नये बनेरहते हो माया व महत्तत्त्वरूपहो चेतन पुरुष आलस्यरहित आपही हो ॥ ४६ ॥ जो चेतनरूप से प्रत्यक्ष विद्यमान और सबसे श्रेष्ठ है उसी के हम शरणागत हैं चन्द्रमा और सूर्यकी तरह जो आपही तेजको फैलाता है ॥ ४७ ॥ जिससे सब दिशायें प्रकट होती हैं वह महात्मा प्रसन्न होवे गुणवाला

प्रकृतौमहत् ॥ ह्यतेचपुनस्ताभ्यां समेविष्णुःप्रसीदतु ॥ ४४ ॥ अग्निसोमार्केदेवानां ब्रह्मरुद्रेन्द्रयोगिनाम् ॥ यस्ते जयतितेजांसि समेविष्णुःप्रसीदतु ॥ ४५ ॥ अजस्त्वंजगतःपन्था अमूर्तिर्विश्वमूर्तिजित् ॥ नवंप्रधानञ्चमहान् पुरुष श्वेतनोल्सः ॥ ४६ ॥ अगोप्योयःपरतरस्तमेवशरणंजतः ॥ सोमसूद्योपमस्तेजो योवतारयतिस्वयम् ॥ ४७ ॥ विजायन्तेदिशोयस्मात्समहात्माप्रसीदतु ॥ गुणवान्निर्गुणश्चैवचेतनोचेतनोस्वगः ॥ ४८ ॥ सूक्ष्मःसर्वगतोदेहः समहात्मा प्रसीदतु ॥ सूर्यमध्यस्थितस्सोमस्तस्यमध्येतुसंस्मृतः ॥ ४९ ॥ भूतत्वाद्योचलोदीप्तः समहात्माप्रसीदतु ॥ एकत्वात्सवनानात्वंयैविदुर्यान्तितेपरम् ॥ ५० ॥ समस्सर्वेषुभूतेषुप्रद्वेष्यात्मजनप्रियः ॥ संभजत्यनाकाङ्क्षी भजतेनन्यचेतसः ॥ ५१ ॥ योयंसर्वात्मनाज्ञेयः समेविष्णुःप्रसीदतु ॥ चराचरमिदंसर्वं भूतग्रामंचतुर्विधम् ॥ ५२ ॥ त्वयितंतन्तुव

और जो निर्गुणभी है चेतन है और अपने आपको न जानने से अचेतन ऐसाभी है ॥ ४८ ॥ सूक्ष्म है सबमें प्राप्त है और देहरहित है वह महात्मा प्रसन्न होवे सूर्य के बीचमें पार्वती सहित शिवहैं तिनमें चेतनरूपसे जो रहता है पृथिवीआदि महाभूतोंके तुल्य होनेसे अचल है परन्तु आप प्रकाशवाला है वह महात्मा प्रसन्न होवे पहले आपके एक होनेसे फिर पछिसे आपके अनेक होनेको जो जानते हैं वे परमात्मा को प्राप्तहोते हैं ॥ ४९ ॥ ५० ॥ सब प्राणियों में जो एकरस है शत्रु, मित्र और उदासीन को बराबर भजता है आप कुछ इच्छा नहीं करता पर अनन्यभक्तोंको भजता है ॥ ५१ ॥ जो यह सबतरह से जाननेयोग्य है वह विष्णु मुझपर प्रसन्नहोवे चराचर

यह सब चारों प्रकार के प्राणियों का समूह ॥ ५२ ॥ आपमें गुँधाहै जैसे मणियां सूतमें गुँधी होवें आपको धर्म व अधर्म नहीं होताहै और गर्भ व जन्म आपको नहीं है ॥ ५३ ॥ इससे बुढ़ापा व जन्मसे छूटने के वारते में उसी के शरणागतहूँ सब योनियोंमें इन्द्रिय, गुण, स्वास और ऊपरका स्वास होताहै ॥ ५४ ॥ देह तो केवल काठकी तरह जड़ व नाशवाली व विपत्तिरूप है और अकेला होना तो हमारा आपही से सिद्धहै परन्तु देहके जन्म से हमारी उत्पत्ति जानपड़ती है ॥ ५५ ॥ इससे आपही में जिसकी बुद्धिहै और आपही में जिसके प्राणहैं व आपहीका भक्त और आपहीमें लगाहुआ मैं मौतके आनेपर आपहीका स्मरण करूंगा ॥ ५६ ॥ पूर्वजन्म में किन्हे

त्प्रोतं सूत्रेमणिगणाइव ॥ नतेधम्मोह्यधम्मोस्ति नगर्भोजन्मवापुनः ॥ ५३ ॥ जराजन्मविमोक्षार्थं तमेवशरणंगतः ॥ इन्द्रियाणिगुणश्चैव स्वासोच्छ्वासश्चयोनिषु ॥ ५४ ॥ केवलं दाम्बुदेहं नश्यं यत्परमापदम् ॥ स्वयमेकाकिमावोमेजन्म तोत्रपुनर्भवः ॥ ५५ ॥ त्वद्बुद्धिस्त्वद्गतप्राणस्त्वद्भक्तस्त्वत्परायणः ॥ त्वामेवाहं स्मरिष्यामि मरणे पथ्युपस्थिते ॥ ५६ ॥ पूर्वदेहेकृतायेतु व्याधयः प्रविशन्तु माम् ॥ वातादयश्च दुःखानि क्रुणं तन्मुञ्चतात्प्रभो ॥ ५७ ॥ श्रेयसांच परं श्रेयस्त्वन्ये पाञ्चयशस्विनाम् ॥ सर्वपापविशुद्ध्यर्थं पुण्यं यत्परमंपदम् ॥ ५८ ॥ प्रातरुत्थाय सततं मध्याह्ने च दिनचर्ये ॥ अजस्रञ्च तथा जप्यं सर्वपापोपशान्तिदम् ॥ ५९ ॥ हरिं कृष्णं हृषीकेशं वासुदेवं जनार्दनम् ॥ प्रणतोऽस्मि जगन्नाथं समेपापं व्यपोहतु ॥ ६० ॥ गोवर्द्धनधरं देवं गोब्राह्मणहितैरतम् ॥ प्रणतोऽस्मि गदापाणिं समेपापं व्यपोहतु ॥ ६१ ॥ शङ्खचक्रं च

हुये पाप रोगरूप से प्रवेशकरें और वात, पित्त, कफ आदि व दुःखभी मुझ में पैठें जिससे हे प्रभो ! यह ऋण मेरा छूटजावे ॥ ५७ ॥ और यशवाले महात्माओं को जो पुण्यवाला परमपद कल्याणों में भी कल्याणरूप है सदा प्रातःकाल उठकर व मध्याह्न में व सायंकाल में सब पापोंकी शान्तिका देनेवाला यह स्तोत्र सब पापोंकी विशुद्धिके लिये निरन्तर जप करने लायक है ॥ ५८ ॥ हरि, कृष्ण, हृषीकेश, वासुदेव, जनार्दन और जगन्नाथको मैं प्रणाम करताहूँ वह मेरे पापको नाशकरे ॥ ५९ ॥ गोवर्द्धनके धरनेवाले, गऊ और ब्राह्मणों के हितमें लगेहुये, हाथमें गदाके रखनेवाले, देवको मैं प्रणाम करताहूँ वह मेरे पापको दूरकरे ॥ ६० ॥ शङ्खचक्रं च

चक्रवाले, शार्ङ्गधनुष के धरनेवाले, मधुदैत्य के मारनेवाले, लक्ष्मीके पति विष्णु को मैं प्रणाम करताहूँ वह मेरे पापको नाशकरे ॥ ६२ ॥ संसारकी स्थितिके लिये वर्चमान, कमलके समान नेत्रवाले, अविनाशी, आनन्दयुक्त, दामोदर भगवान् को मैं प्रणाम करताहूँ वह मेरे पापको नाशकरे ॥ ६३ ॥ नारायण, नर, सौम्य (सीधे), माधव, जनार्दन, श्रीवत्सवाले, शोभा या लक्ष्मीयुक्त देहवाले, लक्ष्मी के धारण करनेवाले, लक्ष्मी के स्थान ॥ ६४ ॥ और लक्ष्मी के पतिको मैं प्रणाम करताहूँ वह मेरे पापको नाशकरे व नाशरहित, सब प्राणियों के जिस मालिकका महात्मा लोग ध्यान करते हैं ॥ ६५ ॥ किसीतिरह जो नहीं बत-

क्रिणंविष्णुं शार्ङ्गिणंमधुसूदनम् ॥ प्रणतोस्मिपतिलक्ष्म्याःसमेपापंव्यपोहतु ॥ ६२ ॥ दामोदरंमुदायुक्तं पुण्डरीकान्नमव्ययम् ॥ प्रणतोस्मिस्थितंस्थित्यै समेपापंव्यपोहतु ॥ ६३ ॥ नारायणंनरंसौम्यं माधवञ्चजनार्दनम् ॥ श्रीवत्संश्रीवपुःश्रीमच्छ्रीधरंश्रीनिकेतनम् ॥ ६४ ॥ प्रणतोस्मिश्रियःकान्तं समेपापंव्यपोहतु ॥ यमीशंसर्वभूतानां ध्यायन्तिचतमच्चरम् ॥ ६५ ॥ वासुदेवमनिर्देश्यं तमस्मिशरणङ्गतः ॥ सर्वबन्धविनिमुक्तो यंप्रविश्यपुनर्भवम् ॥ ६६ ॥ पुरुषो नैव प्राप्नोति तमस्मिशरणङ्गतः ॥ कृत्वा ब्रह्मचरुस्सर्वं स देवा सुखमानुषम् ॥ ६७ ॥ यः करोति पुनस्तृष्टिं तमस्मिशरणङ्गतः ॥ ब्रह्मरूप धरन् देवं यो निरूपं जनार्दनम् ॥ ६८ ॥ सृष्टित्वे संस्थितन्नित्यं प्रणतोस्मि जनार्दनम् ॥ यस्मान्नान्यत्परं किञ्चिच्चस्मिन्सर्वमिदं जगत् ॥ ६९ ॥ यस्य सर्वमध्यगो नन्तस्सर्वगन्तं न माम्यहम् ॥ योस्ति भूतेषु सर्वेषु स्थावरं जङ्गमेषु च ॥ ७० ॥

लाया जासक्ता है उस वासुदेव की शरण को मैं प्राप्त हूँ व जिसको पाकर सब बन्धनों से छूटा पुरुष फिर जन्मको नहीं पाता है हम उसीके शरणागत हैं व प्रलयमें जो देवता, दैत्य और मनुष्यों के सहित सब जगत को ब्रह्मरूपकर फिर सृष्टिको करता है हम उसीके शरणागत हैं व जो देव प्रलय में ब्रह्मरूप का धरनेवाला है और सृष्टि में वही जनार्दन कारणरूप होता है उसी जनार्दनको मैं सदा प्रणाम करताहूँ जिससे परे और कुछ नहीं है और जिसमें यह सब संसार रहता है ॥ ६६ । ६७ । ६८ । ६९ ॥ जो सबके बीचमें प्राप्त है और अन्त जिसका नहीं है ऐसे घट २ वासीके हम नमस्कार करते हैं जो सब स्थावर, जङ्गम, प्राणियोंमें विद्यमान है ॥ ७० ॥

वही विष्णु हमारे सब पापोंको नाशकरै जैसे निवृत्तिरूप कियागया कर्म व विष्णुके वास्ते कियागया कर्म निवृत्त होजाताहै ॥ ७१ ॥ इसीतरह अनेक जन्मोंके कर्मोंसे उठाहुआ मेरा पाप नष्ट होजावे व रात्रि तथा प्रातःकाल, मध्याह्न और अपराह्नमें ॥ ७२ ॥ अज्ञानसे मन, वचन और शरीरसे जो कुछ पाप मैंने कियाहो वह सब क्षणमात्र में नष्ट होजावे ॥ ७३ ॥ जैसे पानी में लोन पिघलजाताहै वैसेही वह सब पाप नष्ट होजावे, औरों को पीड़ा देतेहुये व औरोंकी भिन्दा करतेहुये हमारे जन्मसे जो पाप कमायागया हो ॥ ७४ ॥ व गैरकी द्रव्य व उमके खेत या मकानआदि की इच्छासे व क्रोध से जो पापहुआहो वह सब लीनहोजावे जैसे पानी में लोन पिघलजाता

विष्णुरेवसर्वपापं ममाशेषंप्रणश्यतु ॥ नष्टतंनिवृत्तंकर्मविष्णोर्यत्कर्ममवाकृतम् ॥ ७१ ॥ अनेकजन्मकर्ममोर्त्य पापंनश्यतिमेतथा ॥ निशायाञ्चतथाप्रातर्मध्याह्नेचापराह्नयोः ॥ ७२ ॥ अज्ञानाच्चकृतंपापं कर्ममणामनसागि रा ॥ यत्कृतंचाशुभंकिञ्चित्सर्वनश्यतुक्षणात् ॥ ७३ ॥ तत्सर्वविलयंयातु तोयेषुलवणंयथा ॥ परपीडाञ्चनिन्दाञ्च कुर्वतो जन्मनाज्जितम् ॥ ७४ ॥ परद्रव्यपरचेत्रवाञ्छाक्रोधोद्भवञ्चयत् ॥ तत्सर्वविलयंयातु तोयेषुलवणंयथा ॥ ७५ ॥ विष्णवेवासुदेवाय हरयेकेशवायच ॥ जनार्दननायकृष्णाय नमोभूयोनमोनमः ॥ ७६ ॥ नाभागोनामराजर्षिर्न मर्मदातीरसङ्गमे ॥ चकारस्तोत्रमतुलं वैष्णवन्तुप्रजापतिः ॥ ७७ ॥ ब्रह्मणोद्भिरसाप्राप्तं तस्मादिन्द्रेणभारत ॥ वशिष्ठः श्रावयामास नाभागंराजसत्तमम् ॥ ७८ ॥ स्नात्वाचनमर्मदातोये दत्त्वादानान्यनेकशः ॥ कामिकंयानमारुह्य ना भागस्वपुरींययौ ॥ ७९ ॥ स्तौतिनामसहस्रेण यस्तत्वेनजनार्दनम् ॥ नतस्थपुनरावृत्तिर्घोरैरसंसारसागरे ॥ ८० ॥

इति श्रीस्कन्दपुराणैरेवाखण्डे विष्णुस्तुतिर्नामद्विसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७२ ॥ *

है ॥ ७५ ॥ विष्णु, वासुदेव, हरि, केशव, जनार्दन और कृष्णजी के लिये वार २ नमस्कार है ॥ ७६ ॥ नर्मदाके तीर सङ्गम में नामागनामके राजर्षि प्रजापति इस अतुल प्रभाववाले वैष्णवस्तोत्रको करतेहुये ॥ ७७ ॥ ब्रह्मासे इसको अङ्गिराने पाया और वशिष्ठजीने राजाओंमें श्रेष्ठ नाभागको सुनाया ॥ ७८ ॥ नर्मदा के जलमें स्नानकर और अनेक दानोंको देकर मनमानी स्वारी पर सवार होकर नाभाग राजा अपनी पुगीको जातेहुये ॥ ७९ ॥ हजारनामवाले इस

स्तोत्रसे जो जनार्दन देवकी स्तुति करता है उसकी फिर इस घोर संसारसागरमें आवृत्ति नहीं होती है ॥ ८० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणरेवाक्षणेप्राकृतभाषास्तुवादिधिष्णुस्तुतिर्नामद्विमसतितमोऽध्यायः ॥ ७२ ॥

॥ ७२ ॥

॥ ७३ ॥

॥ ७४ ॥

॥ ७५ ॥

॥ ७६ ॥

॥ ७७ ॥

॥ ७८ ॥

॥ ७९ ॥

॥ ८० ॥

॥ ८१ ॥

॥ ८२ ॥

॥ ८३ ॥

॥ ८४ ॥

॥ ८५ ॥

॥ ८६ ॥

॥ ८७ ॥

॥ ८८ ॥

॥ ८९ ॥

॥ ९० ॥

॥ ९१ ॥

॥ ९२ ॥

॥ ९३ ॥

॥ ९४ ॥

॥ ९५ ॥

॥ ९६ ॥

॥ ९७ ॥

॥ ९८ ॥

॥ ९९ ॥

॥ १०० ॥

मार्कण्डेय उवाच ॥ ततो गच्छेच्च राजेन्द्र मेघनादमिति स्मृतम् ॥ जलमध्ये महादेवो यत्र तिष्ठत्यदर्शितः ॥ १ ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ जलमध्ये महादेवस्तिष्ठते केन हेतुना ॥ उत्तरं दक्षिणं कूलं वज्रं यत्स्वादिजोत्तमम् ॥ २ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ एतदाख्यानमतुलं पुराणं श्रुति सुखावहम् ॥ पुराणं यच्छ्रुतं तात तत्ते वक्ष्याम्यशेषतः ॥ ३ ॥ पुरात्रेनायुगेतात पौलस्त्यो देवक एतकः ॥ त्रिलोकविजयी रौद्रसुरासुरभयङ्करः ॥ ४ ॥ देवदानवयक्षाणां गन्धर्वो रगरक्षसाम् ॥ अथ द्यौर्वरदानेन यत्र पर्यटते महीम् ॥ ५ ॥ तत्र देवगिरौ रम्ये दानवो बलदर्पितः ॥ मयोनो नामेति विख्यातो महानासीन् नृपेश्वरः ॥ ६ ॥ रावणस्तन्तोगत्वा विनयावनतः स्थितः ॥ पूजितो दानसम्मनैर्मयं वचनमब्रवीत् ॥ ७ ॥ कश्यपं पद्मपत्राक्षी पूर्णचन्द्रनिभानना ॥ किन्नामधेयेयातपते तप उग्रं कथं विभो ॥ ८ ॥ मय उवाच ॥ दानवानाम्पतिः श्रेष्ठो मयो ह

में त्रेतायुग विप्रे देवताओं को कांटासा, तीनों लोकों का विजय करनेवाला, देवता और दैत्यों को भय करानेवाला, पुलस्ति के वंशवाला (रावण) राजस ॥ ५ ॥ वरदान के कारण से देवता, दानव, यक्ष, गन्धर्व, सर्प और राजसों के नहीं मारने योग्य होता हुआ जहां ग्रुथि में घूम रहा था ॥ ५ ॥ हे नृपेश्वर ! उसी रमणीय देवपर्वत पर अपने बलसे अहङ्कार को प्राप्त हो रहा मय इस नामसे प्रसिद्ध बड़ा जबरदस्त दानव भी विद्यमान था ॥ ६ ॥ तब रावण उसके पास जाकर अपनी लियाकृतसे नम्र होकर खड़ा हुआ व दान और सम्मान से पूजन किया गया मयसे वचन बोला ॥ ७ ॥ कि हे विभो ! कमलदल, सरीखे नेत्रोंवाली व पूर्णचन्द्रके बराबर

मुखवाली यह कन्या किसकी है और इसका क्या नाम है व किसलिये यह उग्र तपस्याको करती है ॥ ८ ॥ तब मय नोला कि दानवोंका श्रेष्ठपति मैं नामसे मय नाम का दानव हूँ और यह तेजव्रती नाम मेरी स्त्री है व यह सुन्दरी कन्याभी मेरी है ॥ ९ ॥ जोकि मन्दोदरी इस नामसे प्रसिद्ध है पतिके वास्ते तपस्या करती है तब मदसे शहङ्कारवाला रावण उसके वचन को सुनकर ॥ १० ॥ नम्रहोकर खड़ा हुआ मयसे वचन बोला कि देवता और दानवों के अहङ्कारका तोड़नेवाला मैं पौलस्त्य (रावण) नामका राजा हूँ ॥ ११ ॥ हे महाभाग ! मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि आप कन्यादेनेको योग्यहो तब ब्रह्माजीका वंश जानकर मय महात्मा भी ॥ १२ ॥ विधिसे रावण

ब्रामनामतः ॥ भाय्यतिजवर्तीनाम समेयंतनयाशुभा ॥ ९ ॥ मन्दोदरीतिविख्याता तपतेपतिकारणात् ॥ श्रुत्वातुव चनंतस्य रावणोमददर्पितः ॥ १० ॥ प्रश्रितःप्रणतोभूत्वामथवचनमब्रवीत् ॥ पौलस्त्योनामराजाहं देवदानवदर्प हा ॥ ११ ॥ प्रार्थयामिमहाभाग सुतान्वन्दातुमर्हसि ॥ ज्ञात्वापैतामहवंशमयेनापिमहात्मना ॥ १२ ॥ सुतादत्तारान णाय कृत्वाविधिविधानतः ॥ गृहीत्वातान्तदारक्षः पूज्यमानोनिशाचरैः ॥ १३ ॥ दिव्यैर्यनैर्विमानैश्च क्रीडतेतुत यासह ॥ पुत्रंपुत्रवतांश्रेष्ठो जनयामासभारत ॥ १४ ॥ तेनैवजातमात्रेण रवोमुक्तोमहात्मना ॥ संवर्तकस्यमेघस्य येनलोकोजडीकृतः ॥ १५ ॥ श्रुत्वातन्निनदंद्वोरं व्रस्तोलोकपितामहः ॥ नामचक्रेतदातस्य मेघनादोभविष्यति ॥ १६ ॥ एतन्नामकृतंसोपि परमं व्रतमांस्थितः ॥ भावयामासदेवेशमुमयासहशङ्करम् ॥ १७ ॥ व्रतैर्नियमदानैश्च होमैर्जाप्यै

को अपनी कन्या देता हुआ तब वह राक्षस और राजासे पूजन किया जाता उस कन्याको लेकर ॥ १३ ॥ दिव्य सवारी व विमानोंसे उस अपनी स्त्रीके सहित विहार करता हुआ और हे भारत ! पुत्रवालोंमें श्रेष्ठ रावण एक पुत्र पैदा करता हुआ ॥ १४ ॥ उत्पन्न होतेही उस लड़के ने महाप्रलयके मेघकासा शब्द किया जिस शब्दसे लोक जड़ कर दिया गया ॥ १५ ॥ उस घोरशब्द को सुनकर ब्रह्माजी डरगये तब उसका नाम किया कि यह मेघनाद होवेगा ॥ १६ ॥ यह नाम जब उसका कर दिया गया तब वह भी बड़ेभारी व्रतमें स्थित होता हुआ और पार्वती के सहित देवेश महादेवजी को प्रसन्न करता हुआ ॥ १७ ॥ व्रत, नियम, दान, होम, जप और

दिव्य कुच्छचान्द्रायणश्रादिकोंसे अपने शरीरको लेक देता हुआ ॥ १८ ॥ इसीतरह तप करता हुआ मेघनाद नर्मदा के तटपर उतरकर और लिंगरूपी महादेव को वहां धरकर पूजन करता हुआ व जपको कर फिर वह राजा ॥ २० ॥ बड़ीदूर लङ्कामें जानेकी इच्छा करता हुआ हे नृपसत्तम ! बायें हाथसे एक पड़ेहुये लिंगको उठाया ॥ २१ ॥ जब रावणका बेटा पहले और दूसरे लिंगको भक्ति से उठाने लगा तो महादेव जीका वह महालिंग नर्मदा के जलमें गिरपड़ा ॥ २२ ॥ फिर उम परमेष्ठी लिंगने

विधानतः ॥ कुच्छचान्द्रायणैर्दिव्यैः क्षिप्रयेतेचकलेवरम् ॥ १८ ॥ एवमन्यद्विनेतात कैलासंधरणीधरम् ॥ गत्वाल्लिङ्ग मयंगुहा प्रस्थितोदक्षिणामुखः ॥ १९ ॥ नर्ममदातटमाश्रित्य स्नातुकामोमहाबलः ॥ निक्षिप्यापूजयद्देवं कृत्वाजा प्यंजनेश्वरः ॥ २० ॥ गन्तुकामः परमार्गं लङ्कायान्द्रपसत्तम ॥ एकंसमुद्धृतं लिङ्गं पतितंसव्यपाणिना ॥ २१ ॥ प्रथमञ्च द्वितीयञ्च भक्त्यापौलस्त्यनन्दनः ॥ तदादेवमहालिङ्गं पतितन्नर्ममदाभ्रमसि ॥ २२ ॥ पाहिपाहीतितेनोक्तो लिङ्गेनपर मेष्ठिना ॥ द्वितीयं पतितं तावदुत्तरेनर्ममदातटे ॥ २३ ॥ मेघनादेति विख्यातं लिङ्गतत्र सुशोभनम् ॥ मध्यमेऽश्वरनामे तिजलमध्येव्यवस्थितम् ॥ २४ ॥ यावदुद्धर्तुकामोसौ सप्तपातालमागमत् ॥ देवयोनिश्चयं ज्ञात्वा निवृत्तोऽसौ निशाच रः ॥ २५ ॥ जगामाकाशमाविश्य पूज्यमानो निशाचरैः ॥ तदाप्रभृति तर्त्तार्थं मेघनादेति विश्रुतम् ॥ २६ ॥ मेघारवेति विख्यातमुत्तरेखेटकः शुभः ॥ पूर्वतुर्गर्जनन्नाम सर्वपापक्षयङ्करम् ॥ २७ ॥ तस्मिंस्तीर्थेतुराजेन्द्र यस्तुस्नानंसमाच

कहा कि रत्नाकरो २ तबतक दूसरा लिंग भी नर्मदा के उत्तरवाले तटपर गिरपड़ा ॥ २३ ॥ वह अतिसुन्दर लिंग वहां मेघनाद इस नामसे विदित हुआ मध्यमेश्वर यह भी उसका नाम हुआ वह जलके बीचमें स्थित हुआ ॥ २४ ॥ जबतक मेघनाद उसको उठावे तबतक वह सातों पातालोंमें व्याप्त होगया उन दोनों लिंगोंके अभि- प्रायको जानकर वह राजस लौटगया ॥ २५ ॥ और राजसों से पूजाजाता हुआ आकाश होकर चलागया तबसे लेकर वह तीर्थ मेघनाद इस नामसे प्रसिद्ध हुआ ॥ २६ ॥ और उसीका मेघारव ग्रह भी नाम विख्यात हुआ नर्मदाके उत्तरतट में खेटक नामका उत्तम तीर्थ हुआ और पूर्वमें सब पापों का नाश करनेवाला गर्जननाम

का तीर्थहुआ ॥ २७ ॥ हे राजेन्द्र ! जो मनुष्य एक दिन रात व्रत रहकर इस तीर्थमें स्नान करता है वह बहुत कालतक कल्याणको प्राप्तहोता है ॥ २८ ॥ हे नराधिप ! उस तीर्थमें जो पिण्डदान करता है तो उससे उसके पितर स्वर्गमें बारहवर्षतक तृप्त रहते हैं ॥ २९ ॥ और हे नराधिप ! उस तीर्थमें जो ब्राह्मणों को भोजन कराता है तो जो फल वहां योगियोंको मिलताहै उसी फलको वह भी पाता है इसमें संशय नहीं है ॥ ३० ॥ और जो वहां अग्निप्रवेश व जलप्रवेश व अन्नदान व्रत करताहै उसकी फिर लौटनेवाली गति नहीं होती है यह महादेवजीने कहाहै ॥ ३१ ॥ हे नरशार्दूल ! इसप्रकार यह उत्तम गर्जितरत्नतीर्थ आपसे कहागया जो कि स्मरण-

रेत् ॥ अहोरात्रोपितोभूत्वा सलभेच्छाश्वतंशुभम् ॥ २८ ॥ पिण्डदानन्तुयःकुड्यां तस्मिंस्तीर्थेनराधिप ॥ तेनद्वाद
शवर्षाणि पितरस्तापितादिवि ॥ २९ ॥ यस्तुभोजयतेविप्रांस्तस्मिंस्तीर्थेनराधिप ॥ यत्फलंयोगिनांतत्र लभतेनात्रसं
शयः ॥ ३० ॥ अग्निवेशंजलेवापि अथवापिह्यनाशकम् ॥ अनिवर्तिकागतिस्तस्य स्यादिदंशङ्करोब्रवीत् ॥ ३१ ॥
एवन्तेनरशार्दूलगर्जितेश्वरमुत्तमम् ॥ कथितंस्मरणादेव सर्वपापक्षयङ्करम् ॥ ३२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणोरेवाखण्डे
मेघनादेश्वरमहिमानुवर्णनोनामत्रिसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७३ ॥ * ॥ * ॥

मार्कण्डेयउवाच ॥ ततो गच्छेच्च राजेन्द्र दारुतीर्थं मनुत्तमम् ॥ दारुकोयत्रसंसिद्धिर्मिन्द्रस्य दयितस्सखा ॥ १ ॥ यु
धिष्ठिरउवाच ॥ दारुकेण कथं तात तपश्चार्णपुरानघ ॥ विधानं श्रोतुमिच्छामि सर्वपापक्षयङ्करम् ॥ २ ॥ मार्कण्डेयउ
वाच ॥ अहन्ते कथयिष्यामि विचित्रं यत्पुरातनम् ॥ दृत्तं समभवत्तत्र ऋषीणां भावितात्मनाम् ॥ ३ ॥ सुतो वज्रधरस्या

मात्रही से सब पापोंका क्षय करनेवाला है ॥ ३२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणोरेवाखण्डे प्राकृतभाषाऽनुवादे मेघनादेश्वरमहिमाऽनुवर्णनोनामत्रिसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७३ ॥

फिर मार्कण्डेयजी बोले कि हे राजेन्द्र ! तदनन्तर उत्तम दारुतीर्थको जावे जहां इन्द्रका प्यारा मित्र दारुक सिद्ध हुआ है ॥ १ ॥ तब युधिष्ठिरजी बोले कि हे तात ! हे अनघ ! श्रुतिले जमाने में दारुक ने कैसा तप किया सो सब पापोंके नाश करनेवाले उसके तपके विधान को सुनने की हम इच्छा करते हैं ॥ २ ॥ तब मार्कण्डेयजी बोले कि महात्मा ऋषियों के प्रत्यक्ष जो वहां पुराना विचित्र वृत्तात हुआ है उसको हम तुमसे कहेंगे ॥ ३ ॥ कि नामसे मातलि नामका इन्द्रका साराथि

हुआ सो वह पूर्वकाल में किसी कारण के होनेपर अपने पुत्रको शाप देताहुआ ॥ ४ ॥ तब हे भारत ! शापके कारणसे कांपताहुआ दारुक कल्याणदायक, इन्द्रजी के दोनों पाँवोंको पकड़कर वहीं देवेन्द्रजी से कहताहुआ ॥ ५ ॥ कि हे सुरेश्वर ! अपने पितासे शापित कियेगये अनाथ मेरे घोरशापका अन्त किस कर्म से होगा ॥ ६ ॥ तब इन्द्रजी बोले कि तू नर्मदाके तटपर जाकर जबतक युगका अन्तहो तब तक रह और महादेवजी को प्रसन्न कर इससे तेरा जन्म फिर होगा ॥ ७ ॥ फिर से तू यदुकुल में नाम से दारुक नामका होकर वहीं मनुष्ययोनि में विद्यमान शङ्ख, चक्र और गदा के धरनेवाले देवेश नारायण को स्थिर चढाकर उससे सिद्धि को सीन्मातलिर्नामनामतः ॥ सपुत्रं शप्तवान्पूर्वं कथञ्चित्कारणान्तरे ॥ ४ ॥ शापहेतोर्विपमान इन्द्रस्य चरणौ शुभौ ॥ प्र पीड्यतत्र देवेन्द्रं विज्ञापयति भारत ॥ ५ ॥ मम ताताभिः शप्तस्य अनाथस्य सुरेश्वर ॥ कर्मणा केन शापस्य घोरस्यान्तो भविष्यति ॥ ६ ॥ शक्र उवाच ॥ नर्मदा तटमाश्रित्य तोपयत्वं महेश्वरम् ॥ तिष्ठयावद्युगस्यान्तं पुनर्जननमाप्स्य सि ॥ ७ ॥ पुनर्भूत्वा यदुकुले दारुको नामनामतः ॥ आरोहयित्वा देवेशं शङ्खचक्रगदाधरम् ॥ ८ ॥ मानुषं तत्र सम्पन्नं ततः सिद्धिमवाप्स्यसि ॥ एवमुक्तस्तु देवेन सहस्राक्षेण भारत ॥ ९ ॥ प्रणम्य शिरसाभूमिमागतो सौहतप्रभः ॥ नर्मदा तटमाश्रित्य कथितस्त्वकलेवरः ॥ १० ॥ व्रतोपवासे विविधैर्जपहोमपरायणः ॥ महादेवं महात्मानं वरदं शूलपाणि नम्र ॥ ११ ॥ अभजत्परयाभक्त्या यावदाहूतसम्प्लवम् ॥ अंशावतरणे विष्णोस्ततो भूत्वा महामतिः ॥ १२ ॥ तोषयित्वा जगन्नाथं ततो यातस्स सद्गतिम् ॥ एष ते स भवस्तातदास्तुतीर्थस्य सुव्रत ॥ १३ ॥ कथितस्तु मया पूर्वं यथामेशङ्क पावेगा हे भारत ! इस प्रकार इन्द्रदेव से कहा गया दारुक ॥ ८ ॥ शिर से इन्द्रके नमस्कार कर तेजरहित आप पृथिवी को आताहुआ और नर्मदा के तटपर जाकर जप व होम करनेमें लगा हुआ अनेक तरहके व्रत व उपासों से दुर्बल कर दिया है अपने शरीर को जिसने ऐसा दारुक वर के देनेवाले महात्मा शूलपाणि महादेवजी को ॥ १० ॥ ११ ॥ बड़ी भक्ति से युगान्त तक भजता हुआ तदनन्तर अंशों से विष्णुके अवतारके होनेपर आप भी बड़ा बुद्धिवाला उत्पन्न होकर ॥ १२ ॥ और जगत् के स्वामी नारायणको प्रसन्न कर तदनन्तर वह उत्तम गतिको प्राप्त हुआ हे तात ! हे सुव्रत ! यह दारुक तीर्थकी उत्पत्ति आप से ॥ १३ ॥ मैंने कही पहले

जैसे शङ्करजी ने मुझसे कही थी तब आश्चर्य से युक्त बुद्धिवाले राजा युधिष्ठिर ॥ १४ ॥ बार बार रोयें जिनके खड़े होते ऐसे आप घबड़ाने से देखने लगे फिर मार्कण्डेयजी ने कहा कि हे नरेश्वर ! उस तीर्थ में विधिपूर्वक मनुष्य स्नान कर ॥ १५ ॥ और सन्ध्योपासन कर व वहीं पितर और देवताओं का तर्पण कर जो सावधान होता हुआ वहीं देह त्याग करता है ॥ १६ ॥ वह अश्वमेध के फलको पाकर महादेवजी के समीप रमता है और उस तीर्थ में जो भक्ति से पवित्र होकर ब्राह्मण को भोजन कराता है ॥ १७ ॥ वह हजार ब्राह्मणों के भोजन कराने के उत्तम फलको पाता है स्नान, दान, तप, होम, स्वाध्याय और पितरोंका तर्पण आदि जो कुछ शुभकर्म

रोब्रवीत् ॥ ततोयुधिष्ठिरा राजा विस्मयाविष्टचेतनः ॥ १४ ॥ आन्तोवलोकयामास स्तब्धरोमासुहुर्मुहुः ॥ तस्मिंस्तीर्थेनरस्मनात्वा विधिपूर्वनेरेश्वर ॥ १५ ॥ उपास्यसन्ध्यांतत्रैव सन्तर्प्यपितुदेवताः ॥ देहत्यागञ्चतत्रैव यः करोतिसमाहितः ॥ १६ ॥ सोऽश्वमेधफलंप्राप्य रमतेशिवसन्निधौ ॥ तस्मिंस्तीर्थेतुयोभक्त्या भोजयेद्ब्राह्मणं शुचिः ॥ १७ ॥ सतु विप्रसहस्रस्य लभते फलमुत्तमम् ॥ स्नानंदानंतपोहोमस्स्वाध्यायः पितृतर्पणम् ॥ १८ ॥ यत्कृतन्तुशुभंतत्र तत्सर्वलभतेऽक्षयम् ॥ १९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डे दारुतीर्थमहिमानुवर्णनो नाम चतुस्सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७४ ॥

मार्कण्डेय उवाच ॥ ततो गच्छेच्च राजेन्द्र देवतीर्थमनुत्तमम् ॥ यत्र देवास्त्रयस्त्रिंशत्तत्त्वासिद्धिपराङ्मताः ॥ १ ॥ पुरा देवासुरे युद्धे दानैर्वैर्बलदर्पितैः ॥ इन्द्रो देवगणैस्सार्द्धं स्वराज्याच्छयावितोभुशब् ॥ २ ॥ हस्त्यश्वरथयानौ धैर्महद्वियत्वा च वाहिनीम् ॥ विशक्ताभोजिरेमार्गं प्रहारैर्जर्जरीकृताः ॥ ३ ॥ जम्भशुम्भनिशुम्भद्वैस्तु हण्डग्रहकैस्सह ॥ बलिभि

वहाँ किया गया वह सब अक्षय मिलता है ॥ १८ ॥ १९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डे दारुतीर्थमहिमानुवर्णने नाम चतुस्सप्ततितमोऽध्यायः ७४ ॥

मार्कण्डेयजी बोले कि हे राजेन्द्र ! तदनन्तर अत्युत्तम देवतीर्थ को जावे जहाँ तैतीस देवता तप करके परमसिद्धि को प्राप्त हुये ॥ १ ॥ आगे देवता और दैत्योंकी लड़ाई में बलके अभिमानी दैत्योंने देवताओं के सहित इन्द्रको उनकी राज्य से अपहरा दिया ॥ २ ॥ अपने हाथी, घोड़े, रथ और भी सवारियों के समूहों से देवताओं की सेना को मर्दन कर उनको अपने प्रहारों से जर्जर कर दिया तब अशक्त होकर देवताओं ने भागने की रास्ता ली ॥ ३ ॥ जम्भ, शुम्भ, निशुम्भ और तुहुण्डग्रह आदिके

सहित बली दैत्योंसे दबायेगये सब देवतालोग ब्रह्माजी के समीप जाते हुये ॥ ४ ॥ अपने २ शिशुसे परमेष्ठी ब्रह्मादेव के प्रणामकर इन्द्र और अग्निआदि देवता अपने स्वामी ब्रह्माजी से अपना हाल कहा ॥ ५ ॥ कि हे महाभाग ! आप हम लोगों को देखा देखो हम दानवों से विकल करादियेगये हैं वृद्धबायेगये हमलोग अपने पुत्रों व स्त्रियोंके सहित आपकी शरण आये हैं ॥ ६ ॥ हे देवेश ! हे सर्वलोकपितामह ! आप हमको बचावें-क्योंकि हे सुरेशान ! सबके ऊपर रहनेवाले आपको छोड़कर हमारी दूसरी गति नहीं है ॥ ७ ॥ तब ब्रह्माजी बोले कि हे देवताओं ! दानवों के नाशके लिये नर्मदातट में टिककर तुम सबलोग तप करो क्योंकि तपही परमबल

बोधितास्सर्वे ब्रह्माणमुपतस्थिरे ॥ ४ ॥ प्रणम्यशिरसादेवं ब्रह्माणपरमेष्ठिनम् ॥ व्यज्ञापयन्तदेवेशमिन्द्राग्निः कपुरो गमाः ॥ ५ ॥ पश्यपश्यमहाभाग दानवैराकुलीकृताः ॥ बाधिताः पुत्रदाराभ्यां त्वामेवशरणङ्गताः ॥ ६ ॥ परित्रायस्व देवेश सर्वलोकपितामह ॥ नान्यागतस्सुरेशान सुक्त्वात्वां परमेष्ठिनम् ॥ ७ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ दानवानां विधातार्थं न मर्मदातटमाश्रिताः ॥ तपः कुरुत भो देवास्तपोहि परमंबलम् ॥ ८ ॥ नान्योपायो नैव मन्त्रो न विद्या न च विक्रमः ॥ विनारे वाजलं पुण्यं सर्वपापक्षयङ्करम् ॥ ९ ॥ दारिद्र्यव्याधिमरणबन्धनव्यसनानि च ॥ एतानि चैव पापस्य फलानीति मतिर्मम ॥ १० ॥ एवं ज्ञात्वा विधानेन तपः कुरुत दुष्करम् ॥ पूज्यते शास्त्रमभं सर्वैः प्राप्नुयाताभयं ततः ॥ ११ ॥ तच्छ्रुत्वा च च नन्देवा ब्रह्मणः परमेष्ठिनः ॥ नर्मदा मागतास्सर्वे तदेन्द्राग्निपुरोगमाः ॥ १२ ॥ विचेरुस्तत्र विपुलं तपः परमदुस्सहम् ॥ सकल्पैः परमांराजंस्तत्ते सिद्धिमवाप्नुवन् ॥ १३ ॥ तदा प्रभृति तर्त्तार्थं देवतीर्थमिति श्रुतम् ॥ गीयते सर्वलोकेषु सर्वपाप

है ॥ ८ ॥ सब पापोंको क्षय करनेवाले व पुण्यवाले नर्मदाजल को छोड़कर और कोई मन्त्र व विद्या और पराक्रम इसका उपाय नहीं है ॥ ९ ॥ दारिद्र्य, रोग, मौत, कैद और पीड़ाये ये सब पापही के फल हैं यह हमारी मति है ॥ १० ॥ ऐसा जानकर विधान से दुष्कर तप को करो और सबलोग महादेवजी के लिङ्गका पूजन करो तिससे अभय पावोगे ॥ ११ ॥ इन्द्र व अग्नि आदि देवता परमेष्ठी ब्रह्माजीके इस वचन को सुनकर सब नर्मदा को आते हुये ॥ १२ ॥ हे राजन् ! वहां बड़े दुस्सह बहुत तप को कल्पोंतक किया तिससे उन देवताओं ने बड़ी सिद्धि को पाया ॥ १३ ॥ तबसे लेकर वह तीर्थ देवतीर्थ इस नामसे प्रसिद्ध हुआ सबलोकों में सब पापोंका नाश

करनेवाला वह गायाजाता है ॥ १४ ॥ वहां श्रद्धावाले मनसे व भक्तिसे जो विधि सहित स्नान करता है वह मुक्तिफल को पाता है ॥ १५ ॥ सब देवताओं से पूजेगये उन देवको जो पूजता है वह श्रवमेधयज्ञ के उत्तम फल को पाता है ॥ १६ ॥ हे नराधिप ! उस तीर्थ में जो ब्राह्मणों को भोजन कराता है वह सदा तृप्त रहता है व वहां पर्वत की बढ़नेवाली रमणीक एक देवशिला है ॥ १७ ॥ उस देवतीर्थ में संन्याससे मरेहुये मनुष्योंकी अक्षयगति होती है और हे युधिष्ठिर ! जो वहां अग्निमें प्रवेश करता है ॥ १८ ॥ वह तबतक रुद्रलोक में रहता है जबतक सृष्टिका प्रलयहोता है इसीतरह स्नान, जप, होम, स्वाध्याय, देवताओंका पूजन ॥ १९ ॥

क्षयङ्करम् ॥ १४ ॥ तत्र श्रद्धात्मना योपि विधिनापि समन्वितः ॥ स्नानं समाचरेद्भक्त्या सलभेन्मौक्तिकं फलम् ॥ १५ ॥
यस्तमर्चयते देवं सर्वदेवैस्तु पूजितम् ॥ लभते चाश्वमेधस्य फलं यागस्य चोत्तमम् ॥ १६ ॥ यस्तु भोजयेत्ते विप्रांस्तस्मिन्
स्तीर्थे नराधिप ॥ तत्र देवशिलारम्या महापुरायाद्रिवर्द्धिनी ॥ १७ ॥ संन्यासेन मृतानान्तु नराणामक्षयगतिः ॥ अ
ग्निप्रवेशं यः कुर्याद्देवतीर्थे युधिष्ठिर ॥ १८ ॥ रुद्रलोकं वसेत्तावद्यावदाहूतसम्प्लवम् ॥ एवं स्नानं जपो होमस्स्वाध्यायो
देवतार्चनम् ॥ १९ ॥ सुकृतं दुष्कृतं वापि तत्र तीर्थेऽक्षयम् भवेत् ॥ एतावद्विधिरुद्दिष्टा उत्पत्तिश्चैव भारत ॥ २० ॥ देवती
र्थस्य चरितं सर्वतीर्थेष्वनुत्तमम् ॥ २१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे रेवाखण्डे देवतीर्थमहिमानुवर्णनो नाम पञ्चसप्ततित
मोऽध्यायः ॥ ७५ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

मार्कण्डेय उवाच ॥ ततो गच्छेच्च राजेन्द्र गुहावासीति चोत्तमम् ॥ यत्र सिद्धो महादेवो गुहावासीति शङ्करः ॥ १ ॥ यु

पुराय और पाप जो कुछ वहां तीर्थमें किया जाता है वह सब अक्षय होता है हे भारत ! इतनी विधि व तीर्थकी उत्पत्ति कहीं गई है ॥ २० ॥ जिससे कि सब तीर्थोंमें देवतीर्थ का चरित अत्युत्तम है ॥ २१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे रेवाखण्डे प्राकृतभाषाऽनुवर्णनो नाम पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७५ ॥ *

फिर मार्कण्डेयजी बोले कि हे राजेन्द्र ! तदनन्तर गुहावासी इस नामके उत्तम तीर्थ को जावे जहां गुहावासी इस नामसे कल्याण करनेवाले महादेवजी सिद्ध

हुये है ॥ १ ॥ तब युधिष्ठिरजी बोले कि हे विप्रेन्द्र ! किस कार्यसे महादेवजी गुहावासी ऐसे कहाये हे अनघ ! यह सब विस्तारसे आप सुझ से कहें ॥ २ ॥ हे देव ! मैं सब सुननेकी इच्छा करता हूँ क्योंकि सुझको बड़ा आश्चर्य है तब मार्कण्डेय जी बोले कि हे महाप्राज्ञ ! हे नरेश्वर ! आपने जो बड़ा भारी प्रश्न हमसे किया है ॥ ३ ॥ पुराण में इसका बड़ा विस्तार है बुढ़ापे के कारण से सुझसे वह इस समय नहीं कहाजासکتा है क्योंकि मैं बहुत कालका हुआ हूँ ॥ ४ ॥ पहले दारुवन में देवताओं के समान ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यासी ब्राह्मण रहते थे ॥ ५ ॥ क्योंकि अपने धर्ममें रहनेवालों कोही परमपद कहागया है तबतक वसन्तसमय में किसी

धिष्ठिरउवाच ॥ केनकार्येणविप्रेन्द्र गुहावासीतिशङ्करः ॥ एतद्विस्तरतस्सर्वं कथयस्वसमानघ ॥ २ ॥ श्रोतुमिच्छाम्यहन्देव सर्वकौतूहलं हि मे ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ महाप्रश्नःकृतोमांयो महाप्राज्ञनरेश्वर ॥ ३ ॥ पुराणविस्तरशेषस्य नशक्यो हिमयाधुना ॥ वृद्धभावात्कथयितुमहञ्च बहुकालिकः ॥ ४ ॥ पूर्वदासवनेविप्रा वसन्ति च सुरैस्समाः ॥ ब्रह्मचारी गृहस्थश्च वानप्रस्थो यतिस्तथा ॥ ५ ॥ स्वधर्मनिरतानाञ्च कथितं परमस्पदम् ॥ तावद्वसन्तसमये कस्मिंश्चित्कारणान्तरे ॥ ६ ॥ विमानस्थो महादेवो गम्यमानो मया सह ॥ ददर्श च जनावासं वेदध्वनिनिनादितम् ॥ ७ ॥ अगतागतसंवासं सर्वपापक्षयङ्करम् ॥ तद्दृष्ट्वा शुदितान्देवो हर्षगद्गदया गिरा ॥ ८ ॥ उवाच च वचनन्देवो वृद्धातापसयोषितः ॥ नान्यन्देव न्नवैधर्म्यं ध्यायन्ति हिमनन्दिनि ॥ ९ ॥ एतच्छ्रुत्वा परं वाक्यं देवदेवेन भाषितम् ॥ कौतूहलसमाविष्टा शङ्करपुनरब्रवीत् ॥ १० ॥ यत्स्वयोक्तं महादेव पतिधर्मपरास्त्रियः ॥ तासामनङ्गो भूत्वा त्वं चरित्रं ज्ञोभयप्रभो ॥ ११ ॥

कारण से ॥ ६ ॥ पार्वती के सहित महादेवजी विमानपर बैठे जाते हुये वेदों की ध्वनि से भरे हुये उरा स्थानको देखा ॥ ७ ॥ सब पापों के क्षय करनेवाले गतागत से रहित उस स्थानको देखकर प्रसन्न हुई देवी पार्वती से खुशीसे विचविचाती आवाज से ॥ ८ ॥ तापसों की स्त्रियोंको देखकर महादेवजी वचन बोले कि हे हिमनन्दिनि ! अपने पतियों को छोड़कर ये स्त्रियाँ और देव व और धर्मका नहीं ध्यान करती हैं ॥ ९ ॥ महादेवजी के कहे हुये इस श्रेष्ठ वचनको सुनकर आश्चर्य से युक्त

पार्वतीजी फिर महादेवजी से बोलीं ॥ १०० ॥ कि हे महादेवजी ! जो आपने कहा कि ये स्त्रियां पतिधर्म में तत्पर हैं तो हे प्रभो ! ॥ ११ ॥ आप कामदेव होकर इनकी चाल को विगाड़ो तब महादेवजी बोले कि हे देवि ! हे प्रिये ! यह तुम्हारा कहाहुआ वचन किसीको नहीं रुनता है नयोंकि ब्रह्मण बडे महात्मा होतेहैं कोई उनकी नागजी का काम न करेगा ॥ १२ ॥ क्रोधरूप अस्रवाले ब्रह्मण होते हैं और चक्र जिनका अस्र ऐसे विष्णुजी हैं चक्रसे ब्रह्मण का क्रोध पैना है इससे कोईभी ब्रह्मणको कुछ नहीं करसक्ता है ॥ १३ ॥ तीनों लोकोंमें न वे देवता, न वे लोक, न वे नाग और वे असुर देखपडते हैं कि जिनको कुछ ब्रह्मणों ने नष्ट न करदिया हो ॥ १४ ॥ बहुधा

महादेवउवाच ॥ त्वयोक्तंवचनन्देवि नचैतद्रोचतेप्रिये ॥ ब्रह्मणा हि महाभागा न तेषां विप्रियञ्चरेत् ॥ १२ ॥ मन्युप्रहरणा विप्राश्चक्रप्रहरणो हरिः ॥ चक्रात्तीक्ष्णतरामन्युस्तरमाद्विप्रन्नकोपयेत् ॥ १३ ॥ न ते देवान ते लोकास्ते नागा नासुरास्तथा ॥ दृश्यन्ते च त्रिभिर्लोकैरैतैरुष्टैर्न वञ्चिताः ॥ १४ ॥ तेषां चोभकरः प्रायः स्वर्गभोगफलच्युतः ॥ येषां तुष्टा महाभागा ब्रह्मणाः क्षितिदेवताः ॥ १५ ॥ तेषां धर्मस्तथार्थश्च कामोभो चो न संशयः ॥ एवं ज्ञात्वा महाभागे आग्रहस्त्यज्यतामयम् ॥ १६ ॥ एतल्लोकविरुद्धं हि यदीच्छसि वशं सुखम् ॥ देव्युवाच ॥ नाहन्ते दयिता देव नाहन्ते वशवर्तिनी ॥ १७ ॥ अन्यायधर्षणां चान्न सर्वासां कुरु सुव्रत ॥ लोकालोकैर्महादेव अशक्यं नास्ति ते विभो ॥ १८ ॥ क्रियतां मम देव तत्परं कौतूहलं प्रभो ॥ एवमुक्तो महादेवो देव्याः प्रियहितैरतः ॥ १९ ॥ कृत्वा कापालिकं रूपं ययौ दास्य नं प्रति ॥ महाहिना जटा

ब्रह्मणोंका कोप करानेवाला स्वर्गके भोगरूप फलसे भ्रष्ट होजाता है और पृथिवीके देवता बड़भागी ब्रह्मण जिनपर खुश रहते हैं ॥ १५ ॥ उनका धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष निरसन्देह होता है हे महाभागे ! ऐसा जानकर इस हठको तुम छोड़देवो ॥ १६ ॥ जो सुखको अपने वश में चाहती हो तो लोकविरुद्ध इस कामको न करो तब पार्वती जी, बोलीं कि हे देव ! न हम तुम्हारी प्यारी हैं और न हम तुम्हारे वशमें रहेंगी ॥ १७ ॥ हे सुव्रत ! तिससे अनीति से इन सब स्त्रियोंका धर्म छुड़ो देवो क्यो कि हे महादेव ! हे विभो ! इस लोकालोक में आपको कुछ अशक्य नहीं है ॥ १८ ॥ हे देव ! हे प्रभो ! इस कामको आप कैरे मुझे बड़ा तमाशा होगा तब पार्वती के

प्यार व हितमें तदपर इस प्रकार कहेगये महादेव ॥ १९ ॥ योगीके रूपको बनाकर दारुवन में गये चन्द्रमा जिनका गहनाहै ऐसे महादेव बड़े सांपसे जटाजूट बांध कर ॥ २० ॥ बस्तर व सोनेके कुण्डल पहनकर व्याघ्रचर्मको पहने, हार और बज्रालाओ से भूषित ॥ २१ ॥ पावके गहनोंकी आवाज से पृथिवीको केपातेहुये वीरों के घाटाके समान आवाजवाली महाडमरूके शब्द से युक्त ॥ २२ ॥ प्रभातसमय के प्राप्त होनेपर दारुवनको गये तबतक वहाँ सब ब्राह्मणलोग फूल व मूल व फलों के खानेवाले ॥ २३ ॥ बहुतों के सहित पढ़तेहुये इधर उधर निकलगये हे भारत! महादेवके उस बड़े आश्चर्यवाले रूपको देखकर ॥ २४ ॥ स्त्रीलोग मतवाली व

जूटं नियम्यशशिभूषणः ॥ २० ॥ कङ्कत्राणंपरंक्रत्वा तथासौवर्णकुण्डले ॥ व्याघ्रचर्ममपरीधानो हारकेयूरभूषितः ॥ २१ ॥ नूपुरारावनिर्घोषैः कम्पयंश्चवसुन्धराम् ॥ महाडमरूघोषेण वीरघटा निनादिना ॥ २२ ॥ प्रभातसमये प्राप्ते तत्र दा रुचनङ्गतः ॥ तावद्विप्रजनस्मर्वः पुष्पमूलफलाशनः ॥ २३ ॥ निर्गतो बहुभिस्सार्द्धं पथ्यमान इतस्ततः ॥ तद्दृष्ट्वा महदा श्रय्यरूपं देवस्य भारत ॥ २४ ॥ युवतीजनः प्रमत्तश्च कामेन कलुषीकृतः ॥ सुरूपं परमं दृष्ट्वा सर्वास्ताश्च वराननाः ॥ २५ ॥ क्लेशभावं तदा गच्छन् याश्च दारुवनो स्त्रियः ॥ विकारावहवस्तासान् देवं दृष्ट्वा मनोजवम् ॥ २६ ॥ सञ्जाता विप्रपत्नी नां ताञ्छृणुष्व नृपोत्तम ॥ परिधानन्नजानन्ति परिभ्रष्टं करोद्यताः ॥ २७ ॥ दातुक्ता मातथ्यमैक्ष्यं चेष्टितुन्नैव शक्य ते ॥ काचिद्दृष्ट्वा महदेवं रूपयौवनगर्विता ॥ २८ ॥ उत्सङ्गे संस्थितं बालं पतितं व्यस्मरत्ततः ॥ कामवाणहता चान्या वा हृभ्यां पीडिता स्तनौ ॥ २९ ॥ निद्रवसन्ती तथा चान्या न किञ्चित्परिजल्पते ॥ एवमक्षोभयत्सर्वा महेशः पतिदे

कामसे मैली करदीगई श्रेष्ठमुखवाली वे सब स्त्रियां बड़े सुन्दर रूपको देखकर ॥ २५ ॥ उस समय दारुवन में जितनी स्त्रियां थीं वे सब क्लेशभाव को प्राप्त हुई कामरूप महादेवजी को देखकर उन ब्राह्मणोंकी स्त्रियोंके बहुत विकार पैदाहुये हे नृपोत्तम ! उनको तुम सुनो कि हाथ उठाये हुई स्त्रिया देहसे गिरेहुये अपने पहिरने के कपड़े को नहीं जानतीहैं ॥ २६ ॥ २७ ॥ व कोई भिक्षा देने की इच्छा करतीहुई परन्तु हाथ पाँव चलाने को समर्थ न हुई व कोई स्त्री रूप और जवानी से गर्वको प्राप्त होरही महादेवजी को देखकर ॥ २८ ॥ गोदी में विद्यमान गिरपड़े बालकको भूलगई व कोई कामवाण से मारीगई दोनों हाथों से अपने स्तनोंको दबाती है ॥ २९ ॥ और

अन्तमें अच्छेकुलमें धनवाला पैदाहोताहै व बड़ेकुलमें वेद और वेदाङ्गोंके तत्त्व का जाननेवाला व सब शास्त्रोंमें प्रवीण ॥ २६ ॥ राजा व राजाके बराबर पैदाहोताहै इसमें सन्देह नहीं है सब रोगों से रहित और लड़कों व पोतोंसे युक्त रहताहै ॥ २७ ॥ यह सब तुमसे कहागया जो तुमने हमसे पूछाथा हे भारत ! सब दानोंमें तीर्थका फल युक्तिसे होताहै ॥ २८ ॥ यह उत्तमतीर्थ का माहात्म्य पढ़ने व सुननेवालों को पुण्यका देनेवाला व पापोंका हरनेवाला व धनका देनेवाला व सब दुःखोंका नाश करने वालाहै ॥ २९ ॥ जो पितरों का भक्त श्राद्धमें इसको सुनाताहै उसका सब अन्नय होताहै यह शङ्करजी ने कहाहै ॥ ३० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेप्राकृतभाषास्तु

सर्वशास्त्रविशारदः ॥ २६ ॥ राजावाराजतुल्योवा जायतेनात्रसंशयः ॥ पुत्रपौत्रसमायुक्तस्सर्वव्याधिबिज्जितः ॥ २७ ॥ एतत्तेसर्वमाख्यातं सत्त्वमांपरिपृच्छसि ॥ तीर्थस्यतुफलंयुक्त्या सर्वदानेषुभारत ॥ २८ ॥ एतत्पुण्यपापहरं धन्यदुःखप्रणाशनम् ॥ पठतांशृण्वताञ्चैव तीर्थमाहात्म्यमुत्तमम् ॥ २९ ॥ यस्तुश्रावयतेश्राद्धे सतत्पितृपरायणः ॥ अन्नयंतस्सर्वस्याच्छङ्करस्त्विदमब्रवीत् ॥ ३० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेकरञ्जेश्वरमहिमानुवर्णनोनाम सप्तसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७७ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

मार्कण्डेयउवाच ॥ ततो गच्छेच्चराजेन्द्र कुण्डलेश्वरमुत्तमम् ॥ यत्रसिद्धिज्ञतोदेवः कुण्डधारो नृपोत्तम ॥ १ ॥ तपःकृत्वा विपुलं सुरासुरभयङ्करम् ॥ कुण्डधारो मन्दरस्थः क्रीडते स नृपोत्तम ॥ २ ॥ युधिष्ठिरउवाच ॥ कस्यान्वये स मुत्पन्नः कस्य पुत्रो महामतिः ॥ तपस्तप्त्वा सुविपुलं तोषितो येन शङ्करः ॥ ३ ॥ एतद्विस्तरतस्ततः कथयस्व ममानघ ॥ मावादेकरञ्जेश्वरमहिमास्तुवर्णनोनाम सप्तसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७७ ॥

मार्कण्डेयजी बोले कि हे राजेन्द्र ! तदनन्तर उत्तम कुण्डलेश्वर तीर्थ को जावे हे नृपोत्तम ! जहां कुण्डधार देव सिद्धि को प्राप्त हुआ है ॥ १ ॥ देवता और दैत्यों को भी भय करानेवाले भारी तपको कर हे नृपोत्तम ! वह कुण्डधार मन्दरपर्वत पर स्थित हो क्रीड़ा करता हुआ ॥ २ ॥ तब युधिष्ठिरजी बोले कि वह महामति किसके वंशमें उत्पन्न हुआ और किसका पुत्र था जिसने बहुत भारी तपको कर महादेवको प्रसन्न कर दिया ॥ ३ ॥ हे अनघ ! हे तात ! यह विस्तर से मुझ से कहो

तब मार्कण्डेयजी बोले कि हे राजन् ! पहले त्रेतायुग में विश्रवा नाम के पुलस्त्यके पुत्र हुये ॥ ४ ॥ हे महाभाग, नृप ! उन्होंने भरद्वाज की कन्या से अपना विवाह किया पुत्रके गुणों से युक्त उस स्त्रीमें धनंजय पुत्र हुआ ॥ ५ ॥ उत्पन्नहुये, लड़केको जानकर ऋषि व देवताओं के सहित व बड़े प्रसन्न हो लोकों के पितामह ब्रह्मा जीने उसका नाम रक्खा ॥ ६ ॥ कि जिससे विश्रवासे पैदाहुआ हमारा पोता होताहै इससे हे अनघ ! मैंने तुमको वैश्रवण नाम दियाहै ॥ ७ ॥ जो खास सब देवताओं के धनका रखनेवाला होगा और लोकपालों में चौथा नाशरहित यक्षोका राजा भी होगा ॥ ८ ॥ बस वह पुत्र श्रेष्ठ यक्षोंका राजा कुण्डधार नामका आप भी यक्ष

कण्डेयउवाच ॥ पुरात्रेतायुगे राजन्पौलस्त्योनामविश्रवाः ॥ ४ ॥ उपयेमेमहाभाग भरद्वाजसुतान्दृप ॥ पुत्रःपुत्रशुणै
युक्तस्तस्याञ्जातो धनञ्जयः ॥ ५ ॥ जातमानं सुतं ज्ञात्वा ब्रह्मलोकपितामहः ॥ चकारनामसुप्रीत ऋषिदेवसमन्वितः ॥
६ ॥ यस्माद्विश्रवसोजातो ममपौत्रत्वमागतः ॥ तस्माद्विश्रवणोनाम मया दत्तं तवानघ ॥ ७ ॥ यस्स्वयं सर्वदेवानां धन
गोप्ता भविष्यति ॥ चतुर्थोलोकपालानामक्षयो यक्षपोषिवा ॥ ८ ॥ यक्षो यक्षः श्रेष्ठः ॥ कुण्डधारो भवत्सुतः ॥ सु
स्वरूपवयः प्राप्य मातापित्रोरनुज्ञया ॥ ९ ॥ तपश्चकार विपुलं नर्मदातीरमाश्रितः ॥ यत्र व्याघ्रेऽश्वरं लिङ्गं व्याञ्जस्वे
टकमुत्तमम् ॥ १० ॥ कुण्डधारेण तत्रैव तपस्तप्तं मुदारुणम् ॥ ग्रीष्मे पञ्चाग्निमध्यस्थो वर्षास्वासारधारणः ॥ ११ ॥
शिशिरे जलमध्यस्थो वायुमक्षः शतंसमाः ॥ एवं वर्षशते पूर्णे एकाङ्गुष्ठो भवत्ततः ॥ १२ ॥ चक्रवद्भ्रमते सूर्यमभितो
भरतर्षभ ॥ चतुर्थे पञ्चमे तावत्तु तोषट्षवाहनः ॥ १३ ॥ वरं वृणीष्व हे वत्स यत्ते मनसि रोचते ॥ तद्ददामि न सन्देहो तपसा

ही हुआ अच्छे स्वरूप व अवस्था को पाकर माता व पिताकी आज्ञा से ॥ ९ ॥ नर्मदा तटमें बैठकर बड़े भारी तपको करता हुआ जहा उत्तम व्याघ्रेऽश्वर लिंग व बाघोंके
शिकार का स्थान है ॥ १० ॥ वहीं कुण्डधारेने अतिदारुण तपको किया है ग्रीष्मऋतु (ज्येष्ठ, आषाढ) विषे पञ्चाग्निके बीचमें बैठा वर्षाऋतु (सावन, भादों)
में जलधाराओं को धारण किया ॥ ११ ॥ शिशिरेऋतु (माघ, फागुन) विषे पानीके बीच में बैठा और सौ वर्ष तक वायुका भोजन किया इस प्रकार सौ वर्षों के पूरे
होनेपर एक अंगूठेसे खड़ा होताहुआ तदनन्तर ॥ १२ ॥ हे भरतर्षभ ! सूर्यके चारों तरफ चाकसा घूमतारहा तब चौथे व पांचवें महीनामें महादेवजी प्रसन्न हुये ॥ १३ ॥

और कहा कि हे वत्स ! जो तुम्हारे मनमें रुचताहो उस वरको मांगो तपस्या से प्रसन्न कियेगये हम उस वरको निरसन्देह दूँगे ॥ १४ ॥ तब कुण्डधार बोला कि हे देव ! जो आप मुझसे प्रसन्नहो और वर देनेको यहाँ आयेहो तो मेरे नाम का लिङ्ग व यह तीर्थ होजावे ॥ १५ ॥ तब ऐसाही हो यह कहकर पार्वती सहित महादेव अन्तर्द्धान होगये और आकाश में जाकर कैलासपर्वत को चलेगये ॥ १६ ॥ महादेवजी के अन्तर्द्धान होनेपर उस यक्षनेमी आनन्द से युक्तहो उत्तम कुण्डले-श्वर महादेवजी का स्थापन किया ॥ १७ ॥ एक हाथी व गजको सजकर दानकिया और धूप, पुष्प, चन्दन, चांदनी, चैवर, छाता और लिंगपूजन से ॥ १८ ॥ महा-

तोपितोद्ग्रहम् ॥ १४ ॥ कुण्डधारउवाच ॥ यदितुष्टोसिमेदेव वरदित्सुरिहागतः ॥ ततोमन्नामकंलिङ्गं तीर्थंचैतद्भवत्वि-
ति ॥ १५ ॥ तथेत्युक्त्वामहादेवः सोमोन्तर्द्धानमागमत् ॥ जगामाकाशमाविश्य कैलासंभरणीधरम् ॥ १६ ॥ गतो
चादर्शनन्देव सोपियन्नोमुदान्वितः ॥ स्थापयामासदेवेशंकुण्डलेश्वरमुत्तमम् ॥ १७ ॥ अलंकृत्वागजंधेनुं धूपपुष्प
विलेपनैः ॥ वितानैश्चामरैश्छत्रैस्तथैवलङ्गपूजनैः ॥ १८ ॥ तर्पयित्वाद्विजान्सम्यगन्नपानादिभूषणैः ॥ प्रीणयित्वा
हादेवं ततःस्वभवनंययौ ॥ १९ ॥ तदाप्रभृतिततीर्थं त्रिषुलोकेषुविश्रुतम् ॥ युधिष्ठिरपरंपुराणं कुण्डलेश्वरसंज्ञकम् ॥
२० ॥ तत्रतीर्थेतुयःकश्चिदुपवासपरायणः ॥ अर्चयेद्देवमीशानं सर्वपापैःप्रमुच्यते ॥ २१ ॥ सुवर्णरजतंवापि मणिमौ-
क्तिकमेवच ॥ ब्राह्मणेभ्योददात्यत्र समुख्योमोदतोदिवि ॥ २२ ॥ तत्रतीर्थेनरःस्नात्वा ऋग्यजुःसामसुद्विजः ॥ ऋचमे-
काञ्जपित्वाच चतुर्वेदफलंलेभेत् ॥ २३ ॥ तस्मिंस्तर्थाेतुगोदानमन्नदानमथापिवा ॥ यःप्रयच्छतिविभ्रभ्यस्तत्फलंशु-

देवजीको प्रसन्नकर व अन्नपानआदि व भूषणों से ब्राह्मणों को भलीभांति तृप्तकर फिर अपने मन्दिरको चलागया ॥ १९ ॥ तब से वह तीर्थ तीनोंलोकों में प्रसिद्धहूआ
हे युधिष्ठिर ! कुण्डलेश्वर नाम तीर्थ बड़ा पुण्यवाला है ॥ २० ॥ उस तीर्थमें जो कोई व्रतवाला मनुष्य महादेवजी का पूजन करता है वह सब पापोंसे छूटजाता है ॥
२१ ॥ और यहाँ सोना, चांदी, मणि व मोतियों को जो ब्राह्मणों को देताहै वह मुख्य होकर स्वर्गमें आनन्द करता है ॥ २२ ॥ उस तीर्थमें स्नानकर ब्राह्मण मनुष्य
ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद की एक ऋचाका जप करके चारोंवेदों के फलको पाताहै ॥ २३ ॥ और उस तीर्थमें जो गोदान व अन्नदान ब्राह्मणों के वास्ते देताहै हे

पाण्डव ! उसके फलको सुनो ॥ २४ ॥ कि जितने उसके व उसके वर्यों के रोये होते हैं उतने हजार वर्षों तक स्वर्गलोक में पूजित होता है ॥ २५ ॥ पुत्र व पौत्रों के सहित उसका वास स्वर्गमें होता है हे महाभाग ! उस तीर्थ के जंगल में प्यासा एक बाघ निषादों के डरसे घूमता था वह निषादों के डरसे मर गया और नर्मदा के जलमें गिर पड़ा ॥ २६ ॥ २७ ॥ तो हे महाभाग ! पानी से भीगा वह लिंगरूप होगया तब आकाशवाणी से कहा गया कि पूजने लायक यह उत्तम व्याघ्रेश्वर लिंग तीनों लोकों में निरसन्देह प्रसिद्ध होगा ॥ २८ ॥ उस तीर्थमें स्नान कर जो मनुष्य उस लिंगका पूजन करेगा ॥ २९ ॥ वह ब्रह्महत्याआदि पापों से छूट जायगा इसमें

णुपाण्डव ॥ २४ ॥ यावन्निवतस्यरोमाणि तत्प्रसूतिकुलेषु च ॥ तावद्वर्षसहस्राणि स्वर्गलोकैर्महर्षियते ॥ २५ ॥ स्वर्गवा सो भवेत्तस्य पुत्रपौत्रसमन्वितः ॥ तस्मिंस्तीर्थे महाभाग व्याघ्रश्चैव पिपासितः ॥ २६ ॥ निषादानां भयै नैव अटव्यामटति स्वयम् ॥ निषादानां भयै नष्टः पतितो नर्मदाजले ॥ २७ ॥ जलप्लुतो महाभाग लिङ्गरूपधरो भवत् ॥ उक्तश्चाकाशवाण्या वै व्याघ्रेश्वरमनुत्तमम् ॥ २८ ॥ पूज्यं वै त्रिषु लोकेषु ख्यातियास्यत्यसंशयम् ॥ तत्र तीर्थे नरस्नत्वा तस्मिन्मर्चयेत्तु यः ॥ २९ ॥ ब्रह्महत्यादिपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः ॥ एतत्ते कथितं राजन्कुण्डले श्वरमुत्तमम् ॥ ३० ॥ श्रवणात्कीर्तनादस्य गोसहस्रफलं लभेत ॥ ३१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे रेवाखण्डे कुण्डलेश्वरमहिमानुवर्णनो नामाष्टसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७८ ॥

मार्कण्डेय उवाच ॥ ततो गच्छेत्तुराजेन्द्र पिप्पलेश्वरमुत्तमम् ॥ यत्र सिद्धो महायोगी पिप्पलादो महातपाः ॥ १ ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ पिप्पलादस्य चरितं श्रोतुमिच्छाम्यहं प्रभो ॥ माहात्म्यं तस्य तीर्थस्य यत्र सिद्धो महातपाः ॥ २ ॥ संशय नहीं है हे राजन् ! यह उत्तम कुण्डलेश्वर तीर्थ तुमसे कहा गया ॥ ३० ॥ इसके सुनने व कहने से हजार गोदानों का फल पावा है ॥ ३१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे रेवाखण्डे प्राकृतभाषाऽनुशादे कुण्डलेश्वरमहिमाऽनुवर्णनो नामाष्टसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७८ ॥

मार्कण्डेयजी बोले कि हे राजेन्द्र ! तदनन्तर उत्तम पिप्पलेश्वर तीर्थ को जावे जहां बड़े तपवाले महायोगी पिप्पलादजी सिद्ध हुये हैं ॥ १ ॥ तब युधिष्ठिरजी बोले कि हे प्रभो ! हम पिप्पलाद के चरित को सुना चाहते हैं और उस तीर्थके माहात्म्य को भी सुना चाहते हैं जहां बड़े तपवाले पिप्पलादजी सिद्ध हुये हैं ॥ २ ॥

हे महाभाग ! वे किसके पुत्र थे और किसवारे तेपको किया हे अनघ ! यह सब विस्तारसे मुझसे कहो ॥ ३ ॥ तब मार्कण्डेयजी बोले कि हे महाभाग ! मिथिलाके रहनेवाले वेद व वेदागोंके पारगन्ता याज्ञवल्क्यजीने पूर्वकाल में बड़ा तप किया ॥ ४ ॥ उन बुद्धिमान् याज्ञवल्क्यजीकी एक बहिन तापसी थी वह भी वही रहती हुई व अपने भाईकी सेवा करती हुई बड़ा तप किया ॥ ५ ॥ तदनन्तर एक समयमें रजस्वला उनकी बहिन स्नानके दिनमें स्नान किया तो वहां एकान्तमें पड़ेहुये वस्त्रको देखकर उसने पहन लिया ॥ ६ ॥ याज्ञवल्क्यजी भी उसी रात्रिमें उसी कपड़ेको पहनेहुये स्वप्नको देखकर अपने वीर्यका त्यागकिया उस अशुद्धवस्त्रको छोड़िथा प्रातःकाल

कस्यपुत्रोमहाभाग किमर्थतप्तवांस्तपः ॥ एतद्विस्तरतस्सर्वकथयस्वममानघ ॥ ३ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ मिथिलास्थो महाभाग वेदवेदाङ्गपारगः ॥ याज्ञवल्क्यश्चपुरतश्चारविपुलंतपः ॥ ४ ॥ तापसीतस्यभगिनी याज्ञवल्क्यस्यधीमतः ॥ चचारसापितत्रस्था शुश्रूषन्तीमहत्तपः ॥ ५ ॥ ततस्त्वेकस्मिन्समये स्नाताहनिरजस्वला ॥ अन्तर्वासंकृतवती दृष्ट्वाकर्कटकरहः ॥ ६ ॥ याज्ञवल्क्योपितद्रात्रौ परिधानेनतेनैव ॥ स्वप्नं दृष्ट्वात्यजच्छुक्रं प्रभातेनैवैषयत्पुनः ॥ ७ ॥ ततः सा ब्राह्मणी तात किमन्वेष्यसिभारत ॥ केनकार्यं तव विभो वदस्वममतस्त्वतः ॥ ८ ॥ याज्ञवल्क्यउवाच ॥ अपवित्रोमयामद्रे स्वप्नो दृष्टो घवैनिशि ॥ शुक्लं मे चात्र वस्त्रं निक्षिप्तं तन्न दृश्यते ॥ ९ ॥ तच्छ्रुत्वा ब्राह्मणीवाक्यं भीतभीता भवन्त्यप ॥ तद्वक्षन्तु मया ब्रह्मन् स्नात्वान्तर्धानं कंकृतम् ॥ १० ॥ तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा हाहेत्युक्त्वामहातपः ॥ पातसहसामूर्मौ छिन्नमूलवद्भुमः ॥ ११ ॥ किमेतदिति जल्पन्त माकाशाद्वाग्विनिर्गता ॥ तोषयन्ती च तं विप्रं प्रोवाच

में उसको फिर दूँदा ॥ ७ ॥ तब हे भारत ! उस ब्राह्मणीने उनसे पूछा कि हे तात ! आप क्या दृढ़तेहो हे विभो ! किस चीजसे आपका काम है सो मुझसे ठीक २ कहो ॥ ८ ॥ तब याज्ञवल्क्यजी बोले हे भद्रे ! मैंने आज रातमें बड़े अष्ट स्वप्न को देखा सो अपने सफेद कपड़े को मैंने यहां छोड़ दिया था सो वह नहीं दीखता है ॥ ९ ॥ तब हे नृप ! वह ब्राह्मणी उस वचनको सुनकर डरीसे डरी होगई और बोली कि हे ब्रह्मन् ! उस कपड़ेको तो मैंने स्नानकरके पहन लिया है ॥ १० ॥ उसके इस वचनको सुनकर बड़े तपस्वी याज्ञवल्क्यजी हाहा ऐसे कहकर जड़से कटे पेड़की तरह एकवारगी पृथ्वीमें गिरपड़े ॥ ११ ॥ तब यह क्या हुआ ऐसे कहतेहुये याज्ञवल्क्य को

संतोष करातीहुई आकाश से आवाज निकली और हे नृपते ! उन ब्राह्मण से कहा ॥ १२ ॥ कि इसका दोष मैंने नहीं देखा है और हे शुभ्रव्रते ! आपका भी कुछ दोष नहीं है जिससे तुम्हारे गर्भका उदय भया है तिससे प्रारब्धही मुख्य है ॥ १३ ॥ लेकिन जबतक समय न आने तबतक इस गर्भका नाश करना नहीं ठीक है तब लज्जित व उदास मनवाली उस स्त्रीने अपमान से कहा कि अच्छा ॥ १४ ॥ फिर उस गर्भकी वह पालना करती रही जबतक पुत्र नहीं हुआ फिर उत्पन्न मात्राहुये उस गर्भको किसी से न कहकर ॥ १५ ॥ एक पीपल के पास जाकर उसने पृथ्वी में छोड़ दिया और छोड़ देनेके बाद उसने कहा कि लोकोंमें जितने स्थावर व जङ्गम जीव हैं वे सब इस

नृपतेतदा ॥ १२ ॥ नास्यदोषोभयादृष्टस्तवचैवशुभव्रते ॥ तवगर्भोदयोयेन तत्रदैवंपरायणम् ॥ १३ ॥ नविनाशोऽस्य कर्तव्यो यावत्कालस्यपर्ययः ॥ तथेतिब्रीडितासाच दुर्भनेतिविमानतः ॥ १४ ॥ पालयामासतंगर्भं यावत्पुत्रोव्यजा यत ॥ जातमात्रन्तुतंगर्भं कथयित्वानकञ्चन ॥ १५ ॥ अश्वत्थबृक्षमासाद्य सोत्ससर्जमहीतले ॥ यानिसत्त्वानिलोकेषु स्थावराणिचराणिवै ॥ १६ ॥ तानिवैपालयन्त्वेनं बालकंत्यजतिस्मसा ॥ एवमुक्त्वाततःसाध्वी ब्राह्मणीनृपसत्तम ॥ १७ ॥ यथागतंजगामाथ सावस्थित्वामुहूर्तकम् ॥ पादौपाणीविनिक्षिप्य विमृज्यनयनेशुभे ॥ १८ ॥ आस्यञ्चविकृतं कृत्वा रुरोदौचैरनाथवत् ॥ तेनशब्देनवित्रस्ताःस्थावराजङ्गमाश्रये ॥ १९ ॥ अकम्पयन्महीन्तात सशैलवनकन्दराम् ॥ ततोज्ञात्वामहदूतं क्षुधाविष्टं द्विजर्षमम् ॥ २० ॥ नजहातिनगश्छायामार्षयच्चततःपयः ॥ आप्यायितस्ततस्तेन

बालकको पालें ऐसे कहकर तदनन्तर हे नृपसत्तम ! वह साध्वी ब्राह्मणी ॥ १६ ॥ दो बड़ी वहां ठहरकर उसके बाद जहांसे आईथी वहांको चलीगई तब वह बालक अपने पाँव व हाथोंको चलाकर और अपने अच्छे नेत्रोंको मीडकर ॥ १८ ॥ अपने मुखको दीन ऐसा बनाकर बड़ीजोर से अनाथ की तरह रोताहुआ उसके रोने के शब्द से जो स्थावर व जङ्गम जीव थे वे सब डरगये ॥ १९ ॥ और हे तात ! पहाड़ व जंगल और कन्दराओं के सहित सब पृथ्वी को उस शब्दने कंपादिया तदनन्तर उस श्रेष्ठब्राह्मण को उत्तमप्राणी व भूखा जानकर ॥ २० ॥ पीपलके वृक्षने अपनी छायाको नहीं हटाया और उसको अपना दूधभी अर्पण किया तब हे भारत ! उस

अमृतसरीखे दूधसे बढ़ायागया वह बालक चिन्तासे युक्त होकर ग्रहोंका विचार किया ॥ २१ ॥ फिर उसने अपनी क्रूरदृष्टि से क्रूरचालवाले शनैश्चर को देखा तब धीरेसे चलनेवाले शनैश्चर एकबारगी पृथ्वीमें गिरे ॥ २२ ॥ बालकभी शनैश्चरको पाँव से छुवा तब बालक से पीड़ितहुये वे शनैश्चर वचन बोले ॥ २३ ॥ कि हे महा-मुने, विप्र, पिप्पलाद ! मैंने क्या अपकार किया है जो आकाशमें जाताहुआ मैं पृथ्वीपर गिरादियागया ॥ २४ ॥ शनैश्चर ने जब ऐसे महामुनि पिप्पलादसे कहा तब हे नराधिप ! क्रोधरूप होरहे पिप्पलाद वचन बोले उसको तुम सुने ॥ २५ ॥ पिप्पलादने कहा कि हे दुर्मते, सौरे (शनैश्चर) ! पिता व मातासे रहित बालक जो

अमृतनैवमारुत ॥ ततस्मच्चिन्तयाविष्टो निर्ममेग्रहगोचरम् ॥ २१ ॥ तेनक्रूरसमाचारः क्रूरदृष्ट्यानिरीक्षितः ॥ पपातसह
साभूमौ शनैश्चारीशनैश्चरः ॥ २२ ॥ शनैश्चरं बालकोपि पादेनैव परामृशत् ॥ पीडितः सोपि बालेन उवाच वचनं तदा ॥
२३ ॥ किं मया पकृतं विप्र पिप्पलाद महा मुने ॥ निष्काम नृगने चैव पातितो धरणीतले ॥ २४ ॥ सौरिणाप्येव मुक्तस्तु
पिप्पलादो महा मुनिः ॥ क्रोधरूपो ब्रवीद्वाक्यं तच्छृणुष्व नराधिप ॥ २५ ॥ पितृमातृविहीनस्य बालभावस्य दुर्मते ॥
पीडाङ्करोषिकस्मान्त्वं सौरैस्त्वमवशेषितः ॥ २६ ॥ शनैश्चर उवाच ॥ क्रूरस्वभावसंजाता मम दृष्टिर्द्विजोत्तम ॥ मुञ्च त्वं
माञ्च कर्ताहं यद्ब्रवीषि न संशयः ॥ २७ ॥ पिप्पलाद उवाच ॥ अद्य प्रभृति बालानां जन्मतः षोडशीः समाः ॥ पीडात्त्वया
न कर्तव्या एष ते समयः परः ॥ २८ ॥ एवमस्ति त्वं चोक्त्वा प्रजगाम यथागतः ॥ देवमार्गं शनैश्चारी प्रणम्य ऋषिसत्त
मम् ॥ २९ ॥ ततश्चादर्शनं तत्र गतवान्समहाग्रहः ॥ विचिन्तयानश्चैकाकी क्रोधेन कलुषीकृतः ॥ ३० ॥ आग्नेयीं हि दि

हम हैं तिनको तू क्यों पीडा देता है अब तू बच गया ॥ २६ ॥ तब शनैश्चर बोले कि हे द्विजोत्तम ! मेरी दृष्टि ही क्रूरस्वभाववाली है इससे अब आप मुझे छोड़ देवा जो आप कहते हो उसमें कुछ संशय नहीं है मैं जरूर पीडाका करनेवाला हूँ ॥ २७ ॥ तब पिप्पलाद बोले कि अच्छा अब आजसे जन्मसे सोलह वर्ष तक बालकों को पीडा तुमको नहीं करना चाहिये यही तुम्हारा समय होगा ॥ २८ ॥ ऐसा ही हो यह कहकर और उन ऋषिश्रेष्ठ पिप्पलादजी को प्रणाम कर शनैश्चर जैसे आयेथ उसी तरह देवताओं की रातेको चले गये ॥ २९ ॥ तदनन्तर त्रे महाग्रह शनैश्चर अन्तर्द्धान हो गये फिर वहाँ क्रोधसे भरे हुये पिप्पलाद अकेले आप विचार करते हुये ॥ ३० ॥

आग्नेयादिशाको ध्यानकर अग्निनको पैदा किया और अपने मांसको काटकर कर्म के तत्त्वसे अग्निमें हवन करतेहुये ॥ ३१ ॥ तबतक लपटों से व्याप्त कृत्या उत्पन्नहुई अग्निनके तुल्य आकारवाली उस कृत्याने कहा कि मैं क्या करूं ॥ ३२ ॥ क्या समुद्रों को सुखादेऊं क्या पहाड़ों को चूर्ण करडालूं क्या जमीन को लपेटलेऊं और क्या यहा आकाश को गिरादेऊं ॥ ३३ ॥ मैं किसके शिरपर गिरूं और किसको मारडालूं मुझको शीघ्रही कामको बतलादेवो जिसमें समय न टले ॥ ३४ ॥ उस कृत्याके इस वचन को सुनकर क्रोधसे लालनेत्रोंवाले व बड़े तपवाले पिप्पलाद इस वचन को बोले ॥ ३५ ॥ कि हे शुभे ! बड़ेक्रोध के वेगसे मैंने तुम्हारा ध्यान

शंभ्यात्वा जनयामासपावकम् ॥ कृत्वा मांसं जुहावाग्नौ क्रियासम्भवतत्त्वतः ॥ ३१ ॥ तावच्चजनिता कृत्या ज्वाला मालाविभूषिता ॥ हुतमुखसदृशाकारा किङ्करोमीति चाब्रवीत् ॥ ३२ ॥ शोषयामि समुद्रं किं चूर्णयामि च पर्वतम् ॥ भूमिं च वेष्टयामीह पातयित्वानभस्तलम् ॥ ३३ ॥ कस्य मूर्द्ध्नि पतिष्यामि घातयामि च कं द्विज ॥ शीघ्रमादिश मे कार्यं न कालातिक्रमो भवेत् ॥ ३४ ॥ तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा पिप्पलादो महातपाः ॥ क्रोधरक्तान्तनयन इदं वचनमब्रवीत् ॥ ३५ ॥ महता क्रोधवेगेन मया त्वंचिन्तिता शुभे ॥ पिता मे याज्ञवल्क्यस्तु तन्वं धातयमाचिरम् ॥ ३६ ॥ एवमुक्ता तु साशीघ्रं स्फुटन्ती विनभस्तलम् ॥ मिथिलास्थो महाप्राज्ञो यत्र तेपेमहातपाः ॥ ३७ ॥ यावत्पश्यति दिङ्मार्गं ज्वलनार्कसमप्रभम् ॥ याज्ञवल्क्यो महातेजास्तद्रूपं स्थितम् ॥ ३८ ॥ तान्दृष्ट्वासहसायान्तो भीतभीतो महामुनिः ॥ भूतेनाक्रमि तो विप्रो जनकं नृपतिं ययौ ॥ ३९ ॥ शरणार्थमनुप्राप्तं विद्धि मानृपसत्तम ॥ महाभूताच्च मार्गं यद्विशकोषिमानद ॥ ४० ॥

किया है सो हमारे पिता याज्ञवल्क्य हैं उनको तुम मारो देर मत करो ॥ ३६ ॥ ऐसे कहींगई वह कृत्या शीघ्र आकाश को फाड़तीसी जहां मिथिला में बैठेहुये बड़े बुद्धिमान व बडेतपस्वी याज्ञवल्क्यजी तपको करतेथे वहां पहुँची ॥ ३७ ॥ महातेजस्वी याज्ञवल्क्यजी जबतक उस दिशाकी तरफ देखें तबतक अग्नि व सूर्य के समान तेजवाला वह मृत भलीभाँति उपस्थित होगया ॥ ३८ ॥ सहसा आतीहुई उस कृत्या को देखकर डरेसे भी डरे महामुनि ब्राह्मण याज्ञवल्क्यजी उस भूतसे दवेहुये राजा जनक के समीप जातेहुये ॥ ३९ ॥ और बोले कि हे नृपसत्तम ! अपनी रक्षाके धारते आयेहुये मुझको जानो इससे दे मानद ! जो आप समर्थहो तो

मुझे इस महाभूत से बचावो ॥ ४० ॥ तब राजा बोले कि हे महामते ! ब्रह्मतेजसे यह पैदाहुआ भूत घड़ाजबर व निवारण करनेलायक नहीं है इससे आज मैं नहीं समर्थ होसकतूँ आप दूसरे के पास जावें ॥ ४१ ॥ तदनन्तर रक्षा चाहतेहुये महातपस्वी याज्ञवल्क्यजी और श्रेष्ठराजा के समीपगये उससे भी कहेहुये निराश हो इन्द्रकी शरण जातेहुये ॥ ४२ ॥ और कहा कि हे देवराज ! आपके नमस्कारहैं इस महाभूत से मुझे बचावो उनके इस वर्चन को सुनकर तब इन्द्र वचन बोले ॥ ४३ ॥ कि हम रक्षा करने को समर्थ नहीं होसकते हैं क्योंकि ब्रह्मतेज बड़ादुःसह होताहै तदनन्तर वेदके जाननेवालोंमें श्रेष्ठ ब्राह्मण याज्ञवल्क्यजी ब्रह्मलोकको ॥ ४४ ॥

राजोवाच ॥ ब्रह्मतेजोभवम्भूतमनिवार्यन्दुरासदम् ॥ प्रभुर्नैवाद्यशक्नोमि अन्यंगच्छमहामते ॥ ४१ ॥ ततश्चान्यं नृपश्रेष्ठं शरणार्थीमहातपाः ॥ जगाम तेन चैवोक्त इन्द्रस्य शरणं ययौ ॥ ४२ ॥ देवराजनमस्तेस्तु महाभूताच्च जमाम् ॥ तस्य तद्वचनं श्रुत्वा ब्रवीदिन्द्रस्तदावचः ॥ ४३ ॥ न च शक्तः परित्रातुं ब्रह्मतेजोहिदुःसहम् ॥ ततश्च ब्रह्मभवनं ब्राह्मणो ब्रह्मवित्तमः ॥ ४४ ॥ जगाम विष्णुभवनं शक्तोऽपि त्यक्तवान्भयात् ॥ ततः स परमो द्विर्गो निराशो जीविते नृप ॥ ४५ ॥ अनुगम्यमानो भूतेन अगच्छच्च महेश्वरम् ॥ तस्य योगबलोपेतो महादेवस्य पाण्डव ॥ ४६ ॥ नखमांसान्तरैरुप्तो यथा देवो न पश्यति ॥ अदृष्टमगमद्भूतं ज्वलनार्कसमप्रभम् ॥ ४७ ॥ मुञ्च मुञ्चेति पुरुषं मुञ्चेद्वरमुवाच ह ॥ एवमुक्तो महादेवस्तेन भूतेन भारत ॥ ४८ ॥ योगीन्द्रं दर्शयामास नखमांसान्तरैरस्थितम् ॥ संस्थाप्य कृत्याम्भूतेशो ज्वलत्कालान्

गये और विष्णुलोक को भी गये वे समर्थ भी रहे परन्तु भयसे नहीं ग्रहण किया तदनन्तर हे नृप ! अपने जनिमें निराश होरहे और बहुत घबड़ातेहुये वे याज्ञवल्क्यजी ॥ ४५ ॥ पीछे लगहुये उस भूतसे भगाये जातेहुये महादेवजी के समीप जातेहुये व हे पाण्डव ! अपने योगबलसे युक्त मुनि उन महादेवजी के ॥ ४६ ॥ नाखून के नीचेवाले मांसके भीतर छिपरहे उनको महादेवजी ने भी नहीं देखा तबतक अग्नि व सूर्य के समान तेजवाला नहीं दीखताहुआ वह भूतभी आगया ॥ ४७ ॥ और महादेवजीसे बारबार स्पष्ट बोला कि उस पुरुषको आप छोड़ो तब उस भूत से ऐसे कहेगये महादेवजी हे भारत ! ॥ ४८ ॥ अपने नाखूनके मांसके भीतर वर्तमान याज्ञवल्क्य

योगीन्द्रको दिखला दिया और जलतेहुये महाप्रलय के अग्निके समान तेजवाली उस कृत्याको रोककर भूतोंके स्वामी महादेवजी ने ॥ ४६ ॥ कहा कि हे विप्र ! हे महाभूत ! तुम मत डरो और कहीं मत जावो तदनन्तर सूक्ष्मदेहमें बैठेहुये उस भूतसे महादेवजी यह बोले ॥ ५० ॥ कि हे महाभूत ! इस ब्राह्मण का तुम क्या करोगे मो अपने कार्यको हमसे कहो तब कृत्या बोली कि हे देवेश ! क्रोधसे जलतेहुये पिप्पलाद ने मेरा ध्यान किया है ॥ ५१ ॥ सो मैं इसकी देहपर गिरूंगी हे प्रभो ! मैं नाश करनेलायक नहीं हूँ ऐसा समझो तब उस भूत के मुख से निकले हुये इस वचन को सुनकर महादेवजी ॥ ५२ ॥ याज्ञवल्क्य के मारनेवाले उस

लप्रभाम् ॥ ४९ ॥ उवाचमभिस्त्वंविप्रमागच्छस्वमहामुने ॥ ततस्तंसूक्ष्मदेहस्थं महादेवोब्रवीदिदम् ॥ ५० ॥ किमस्यत्वंमहाभूत कर्ताकृत्यंवदस्वमे ॥ कृत्योवाच ॥ क्रोधदीप्तेनदेवेश पिप्पलादेनचिन्तिता ॥ ५१ ॥ अस्यदेहेपतिष्यामि अहिंस्यांविद्धिमाम्प्रभो ॥ एतच्छ्रुत्वामहादेवो भूतस्यवदनाच्च्युतम् ॥ ५२ ॥ वरिष्ठबन्धयामास याज्ञवल्क्यस्य वातकम् ॥ योगीश्वरंतंविप्रन्द्रं दत्त्वाभीतियुधिष्ठिर ॥ ५३ ॥ विसर्जयित्वादेवस्तं तत्रैवान्तरधीयत ॥ प्रेषयित्वातुलम्भूतं पिप्पलादोपिदुर्मनाः ॥ ५४ ॥ मातापितृविहीनस्तु नर्मदातटमाश्रितः ॥ एकनिष्ठो निराहारो वर्षाणिषोडशैवतु ॥ ५५ ॥ तोषयामासदेवेशमुमयासहशङ्करम् ॥ परितुष्टोस्मिमेतंविप्र तपसानेनसुव्रत ॥ ५६ ॥ वरंवृणीष्वतेदद्यां मनसाभीप्सितंशुभम् ॥ पिप्पलादउवाच ॥ अदिमेभगवांस्तुष्टो यदिदेयोवरोमम् ॥ ५७ ॥ अत्रसन्निहितोदेव ममनाम्ना

भूतको पोढ़े बांधलिया और हे युधिष्ठिर ! ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ उक्त योगीन्द्र को अभय देकर ॥ ५३ ॥ वः उनको विदाकरके महादेवजी वहीं अन्तर्धान होगये अब यहां पिप्पलाद भी उस भूतको भेजकर उदास होगये ॥ ५४ ॥ और माता व पिता से रहित आप नर्मदातट के आश्रित होकर सोलह वर्षतक निराहार व एक महादेव का ध्यान करते हुये ॥ ५५ ॥ पार्वती सहित, कल्याण करनेवाले, देवेश महादेवजी को प्रसन्न किया तब महादेवजी बोले कि हे सुव्रत, विप्र ! तुम्हारे इस तपसे हम प्रसन्न है ॥ ५६ ॥ इससे अपने मनमाने उत्तम वरको तुम मांगो हम तुमको देंगे तब पिप्पलाद बोले कि जो आप भगवान् मुझपर प्रसन्नहो और जो मुझे आपको वर देने

योग्य है ॥ ५७ ॥ तो हे शङ्कर, देव ! यहाँ मेरे नामसे आप विद्यमान वनेरहो ऐसे कहेगये महादेवजी पिप्पलाद महामुनिसे ऐसाही हो यह कहकर अपने भूतोंसे सेवा क्रिये जाते अन्तर्द्धान होगये महादेव के जानेपर वहाँ उत्तम जलमे स्नानकर पिप्पलादमुनि ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ महादेवजीका स्थापनकर उत्तरपर्वत को चलेगये हे नृप ! उस तीर्थमें मन्त्रोंके सहित भक्तिसे मनुष्य स्नानकर ॥ ६० ॥ व पितरों और देवताओं का तर्पणकर और महादेवजीका पूजनकर अत्युत्तम अश्वमेधयज्ञ के फलको पाता है ॥ ६१ ॥ और पिप्पलेश्वर के समीप जो मराहै वह महादेवजी के पुरको जाताहै अथवा अपने पितरों के नामसे भक्तिसहित ब्राह्मणों को जो भोजन करावे ॥ ६२ ॥

चशङ्कर ॥ एवमुक्तस्तथेत्युक्त्वा पिप्पलादं महामुनिम् ॥ ५८ ॥ जगामादर्शनंदेवो भूतसङ्घैर्निषेवितः ॥ पिप्पलादो गते देवे स्नात्वा तत्र महामभिमसि ॥ ५९ ॥ स्थापयित्वा महादेवं जगामोत्तरपर्वतम् ॥ तत्र तीर्थे नरो भक्त्या स्नात्वा मन्त्रयुतो नृप ॥ ६० ॥ तर्पयित्वा पितॄन् देवान् पूजयित्वा महेश्वरम् ॥ अश्वमेधस्य यज्ञस्य फलं प्राप्नोत्यनुत्तमम् ॥ ६१ ॥ मृतो रुद्रपुरं याति पिप्पलेश्वरसन्निधौ ॥ अथवा भोजयेद्विप्रांन् पितॄन् दुहिश्य भक्तिः ॥ ६२ ॥ द्वादशाब्दसहस्राणि तृप्ता गच्छन्ति तस्य दत्तम् ॥ संन्यासे न तु यः कश्चित् तत्र तीर्थे तनुन्त्यजेत् ॥ ६३ ॥ अनिवर्तिका गतिस्तस्य यथामेशङ्करो ब्रवीति ॥ एतत्सर्वं समाख्यातं यत्त्वं मां परिपृष्टवान् ॥ ६४ ॥ माहात्म्यं पिप्पलादस्य पिप्पलेश्वरमुत्तमम् ॥ एतत्पुराय पापहरं धन्यं दुःखप्रणाशनम् ॥ ६५ ॥ पठतांश्च एव तांश्चैव सर्वपापप्रमोचनम् ॥ ६६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे रेवाखण्डे पिप्पलेश्वरमहिमानुवर्णनो नामैकोनाशीतितमोऽध्यायः ॥ ७६ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

तो बारह हजार वर्ष तक अधानेहुये पितर उत्तमगति को पाते हैं और जो कोई संन्याससे उस तीर्थमें अपने शरीर को छोड़ता है ॥ ६३ ॥ उसकी फिर लौटनेवाली गति नहीं होती है ऐसा महादेवजी ने मुझसे कहागया जो तुम ने मुझसे पूछा ॥ ६४ ॥ पिप्पलाद का माहात्म्य और उत्तम पिप्पलेश्वर का यह आख्यान पुण्यवाला, पापोंका हरनेवाला, धन देनेवाला और दुःखोंका नाश करनेवाला है ॥ ६५ ॥ और पढ़ने व सुननेवालों के सब पापों का छुड़ानेवाला है ॥ ६६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे रेवाखण्डे प्राकृतभाषास्तुवादे पिप्पलेश्वरमहिमास्तुवर्णनो नामैकोनाशीतितमोऽध्यायः ॥ ७६ ॥

मार्कण्डेयजी बोले कि हे राजेन्द्र ! तदनन्तर उत्तम विमलेश्वर को जावे वहां महादेवजी की मूर्ताईहुई एक रमणीक देवशिला है ॥ १ ॥ जहां गर्जन व खेटकनाम का क्षेत्र है वहीं उत्तम देवशिलाभी है वहां स्नानकर भक्तिसे जो पितर व देवताओं का तर्पण करता है ॥ २ ॥ उसके वे बारह वर्षतक अतितप्त हुये भर्ग में आनन्द भोगते हैं और हे नृप ! उस तीर्थमें जो भक्तिपूर्वक थोड़े दानसे भी ब्राह्मणोंका पूजन करता है उसके फलका अन्त नहीं है तब युधिष्ठिरजी बोले कि हे विप्रेन्द्र ! पृथिवी में कौन दान बहुत अच्छे हैं ॥ ३ ॥ ५ ॥ जिनको देकर मनुष्य सब पापों से छूटजाता है तब मार्कण्डेयजी बोले कि सोना, चांदी, तांबा, मणि, मोती ॥ ५ ॥ पृथिवी

मार्कण्डेयउवाच ॥ ततो गच्छेत्तुराजेन्द्र विमलेश्वरमुत्तमम् ॥ तत्र देवशिलारम्या महादेवेन भाषिता ॥ १ ॥ गर्जनं खेटकं नाम तत्र देवशिला शुभा ॥ तत्र स्नात्वा तु यो भक्त्या तर्पयेत्पितृदेवताः ॥ २ ॥ तस्य ते द्वादशाब्दानि सुतृप्तादि विमोदिताः ॥ तस्मिन्स्तीर्थे तु यो भक्त्या ब्राह्मणान् पूजयेन्नृप ॥ ३ ॥ स्वल्पेनापि हि दानेन तस्य चान्तो न विद्यते ॥ युधिष्ठिरउवाच ॥ कानि दानानि विप्रेन्द्र शस्तानि धरणीतले ॥ ४ ॥ यानि दत्त्वा नरो भक्त्या मुच्यते सर्वकिल्बिषैः ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ सुवर्णं रजतं ताम्रं मणिं मौक्तिकमेव च ॥ ५ ॥ भूमिदानं तथा गावो मोचयन्त्यशुभा न्नरम् ॥ तत्र तीर्थे तु यः कश्चित्कुरुते प्राणसंक्षयम् ॥ ६ ॥ रुद्रलोकैव सेत्ता वद्यावदाहृतं संप्लवम् ॥ ततः पुष्करिणीं गच्छेत्कुरुक्षेत्रं समान्तरम् ॥ ७ ॥ पूर्वपुष्करिणीनाम कुरुक्षेत्रं कलौ स्मृतम् ॥ तत्र स्नात्वा यजेद्देवं तेजो राशिं न्दिवाकरम् ॥ ८ ॥ ऋचमेकां जपेत्साम्यः सामवेदफलं लभेत् ॥ यजुर्वेदस्य जपनं ऋग्वेदस्य तथैव च ॥ ९ ॥ इत्यक्षरं वा जपेन्मन्त्रं ध्यायमानो दिवाकरम् ॥ आदि

और गौवें मनुष्य को पापसे छुटाती है उस तीर्थ में जो कोई मनुष्य अपने प्राणों का नाश करता है ॥ ६ ॥ वह तबतक रुद्रलोक में रहता है कि जबतक महाप्रलय होता है हे नृप ! तदनन्तर कुरुक्षेत्र के समान पुष्करिणी तीर्थ को जावे ॥ ७ ॥ अगिले जमाने में पुष्करिणी ही नाम रहा कलियुग में कुरुक्षेत्र कहा गया है वहा स्नानकर तेज की राशि ऐसे सूर्यदेवता का पूजन करे ॥ ८ ॥ और एक ऋचा को जपकरे तो वह सज्जन सामवेद के फलको पावे इसी तरह यजुर्वेद व ऋग्वेद का भी जप है ॥ ९ ॥

अथवा सूर्यका ध्यान करता हुआ व्यक्त कर जपकर और आदित्यहृदयको तो जपकर सब पापोंसे छूटजाता है ॥ १० ॥ उस तीर्थमें स्नानकर जो विधिसे ब्राह्मणों को पूजन करता है उसका दान करोड़गुना होता है इसमें संशय नहीं है ॥ ११ ॥ विशेषकर कार्तिकी तथा माघी, वैशाखी, अमावास्या, व्यतीपात, संक्रान्ति, वैधृति और रविवार को ॥ १२ ॥ कुरुक्षेत्र में स्नानकर मनुष्य महादेवजी का गण होता है अनशन, जल, अग्नि व पञ्चाग्नि से ॥ १३ ॥ जो उस तीर्थमें मरा है वह परमगति को पाता है हे नृपसत्तम ! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य अथवा शूद्र ॥ १४ ॥ जो वेदोक्त कर्मको करता है वह महात्माओं की गतिको पाता है तब युधिष्ठिरजी बोले कि हे

त्यहृदयं जप्त्वा मुच्यते सर्वकिल्बिषैः ॥ १० ॥ तत्र तीर्थेतुयः स्नात्वा विधिना पूजयेद्विजान् ॥ तस्य कौटिल्युपदानं जायते नात्र संशयः ॥ ११ ॥ कार्तिक्यां च तथा माघ्यां वैशाख्यां च व्यतीपाते संक्रमे वैधृतौ रवौ ॥ १२ ॥ कुरुक्षेत्रे नरः स्नात्वा रुद्रस्यानुचरो भवेत् ॥ अनाशके जले ह्यग्नौ पञ्चाग्नौ वा तथापि वा ॥ १३ ॥ तस्मिंस्तीर्थे स्मृतो यस्तु स याति परमाङ्गतिम् ॥ ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रो वा नृपसत्तम ॥ १४ ॥ विहितं कर्म कुर्वाणः स गच्छति सताङ्गतिम् ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ किं जपन् मुच्यते व्याधेर्ज्ञात्वा वैष्णोर्द्विजोत्तम ॥ १५ ॥ किं कुर्वन् मुच्यते प्राणी याति लोकमनामयम् ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ शृणु राजन् न वहित इति हासं पुरातनम् ॥ १६ ॥ गुह्यतीर्थं समासाद्य ब्राह्मणो मुक्तवान्यथा ॥ पुराद्विजवरश्चासीद्गोविन्दो नामनामतः ॥ १७ ॥ तस्य भार्या सुसम्पन्ना ब्राह्मणी च पतिव्रता ॥ तस्यां संजनयामास पुत्रमेकं च सुन्दरम् ॥ १८ ॥ स बाल एव भवने क्रीडते शिशुलीलया ॥ कदाचिद्ब्राह्मणश्रेष्ठः काष्ठमानयितुं हतः ॥ १९ ॥ वनान्नी

द्विजोत्तम ! अपने वर्णको जानकर क्या जपता हुआ मनुष्य रोगसे छूटजाता है ॥ १५ ॥ और क्या करता हुआ प्राणी पापों से छूटता व निर्दोषलोक को जाता है तब मार्कण्डेय जी बोले कि हे राजन् ! सावधान होकर तुम पुराने इतिहास को सुनो ॥ १६ ॥ किं गुह्यतीर्थ में प्राप्त होकर जैसे ब्राह्मण छूट गया है अगिले जमाने में नामसे गोविन्द नाम का एक उत्तम ब्राह्मण होता हुआ ॥ १७ ॥ उसकी स्त्री ब्राह्मणी बड़ी पतिव्रता होती हुई उसमें बड़े सुन्दर एक पुत्रको उसने उत्पन्न किया ॥ १८ ॥ वह बालक अपने

घरही में लडकों के खेलोंसे खेलताहुआ किसी समयमें वह उत्तम ब्राह्मण लंकड़ी लेनेको जाताहुआ ॥१६॥ जंगलसे लंकड़ी के बोझको लाकर पिछवाड़ेसे घरमें फेंकदिया वहां खेलताहुआ लडका लंकड़ी के बोझसे चोटहिला होगया ॥२०॥ लडका वहां मरगया परन्तु उससमयमें ब्राह्मणने नहीं जाना और उससमय में ब्राह्मणीभी डरके मारे गोविन्द से नहीं कहा ॥२१॥ वह गोविन्द ब्राह्मण फिरभी जम्बूवनको चलागया तब हे नृप ! अकेली वह ब्राह्मणी विलाप करतीहुई ॥२२॥ ब्राह्मणी बोली कि ब्रह्माका पोता रावण जिसको तीनोंलोक डरतेथे वह पुत्र, मन्त्री और भाइयोंके सहित रामसे मारागया ॥२३॥ ऐसेही पुत्रके विना मनुष्यलोक व स्वर्गलोक

त्वाकाष्ठभारं गृहेपश्चाच्चक्षितवान् ॥ क्रीडन्नास्तेऽशिशुस्तत्र काष्ठभारेणपीडितः ॥२०॥ ममारबालकस्तत्र द्विजोनन्ना तवांस्तदा ॥ ब्राह्मण्यपितदातस्मै नशशंसभयात्तथा ॥२१॥ पुनर्द्विजस्सगोविन्दो विपिनंसंजगामह ॥ यदासाब्राह्मणीशून्या विललापतदानृप ॥२२॥ ब्राह्मण्युवाच ॥ रावणोब्रह्मणःपौत्रस्त्रैलोक्यंयस्यशङ्कते ॥ सहतोरामचन्द्रेण स पुत्रामात्यबान्धवः ॥२३॥ एवंपुत्रंविनासौख्यं मर्त्येनाकेनविद्यते ॥ यशश्चाख्यायितंयस्य स्वर्गार्थंयस्यभारती ॥२४॥ भिष्टान्नब्राह्मणस्यार्थं स्वर्गवासोपिविद्यते ॥ पुत्रोत्पत्तिविनाशाभ्यां नापरंमुखदुःखयोः ॥२५॥ ब्रह्महत्याश्वमेधाभ्यां नापरंपापपुण्ययोः ॥ किंब्रवीमीतिहेवत्स नानुसौख्यंमुतंविना ॥२६॥ एवंबहुविधंदुःखं प्रलपित्वापुनःपुनः ॥ बालं गृहगतेविप्रे सङ्गोप्यब्राह्मणीतथा ॥२७॥ एवंतस्यां विलम्पन्त्याङ्गतारान्वियुधिष्ठिर ॥ भूम्यांप्रसुप्तं गोविन्दं पुत्रशोकं नपीडिता ॥२८॥ यावन्निरीक्षतेभार्या भर्तारंदुःखपीडितम् ॥ कृमिराशिमयन्तावद्गोविन्दं नृपसत्तम ॥२९॥ दुःखा

में, सुख नहीं है जिसका यश फैलाहुआ है, और जिसकी वाणी स्वर्गकी देनेवाली है ॥२४॥ और जिसका मीठा अन्न ब्राह्मणों के वास्तेहै उसीको स्वर्गवास भी है पुत्र पैदाहोने के बराबर सुख नहीं है और उसके मरने के बराबर कोई दुःख नहीं है ॥२५॥ ब्रह्महत्या के बराबर कोई पाप नहीं है और अश्वमेध के बराबर कोई पुण्य नहीं है हे वत्स ! मैं क्या कहूँ पुत्रके विना सुख नहीं है ॥२६॥ ऐसे अनेकप्रकार के दुःखको बार बार कहकर और ब्राह्मण को घरमें आनेपर बालक को छिपाकर ब्राह्मणी रह गई ॥२७॥ हे युधिष्ठिर ! इसतरह उसके विलाप करतेहुये रात्रि बीत गई पुत्रशोकसे पीडित, उनकी स्त्री जमीन में सोरहे गोविन्द अपने मालिकको जबतक

दुःख से पीडित देखे तबतक कीड़ोंके डेररूप गोविन्द को देखा हेतुपसत्तम ! ॥ २८ ॥ २९ ॥ पापसे युक्त उन गोविन्द को देखकर अत्यन्त दुःखमें ब्राह्मणों डूबगई तब इस प्रकार दुःखमें डूबीहुई उस ब्राह्मणी की रात बीती ॥ ३० ॥ प्रातःकाल कुशों के वास्ते फिर गोविन्द वनको गये ऐसे लकड़ी से मरेहुये अपने लड़के को गोविन्द ब्राह्मणने नहीं जाना ॥ ३१ ॥ जिस वार्त्ताको ब्राह्मणी ने छिपाया था उसको पाँचदिन होगये पाचवें दिन एक पशुओंका चरानेवाला उत्तम भैसियों और गौवोंको चराता हुआ ॥ ३२ ॥ वनमें भैसियों व गौवों को छोड़कर आप खानेके वास्ते घरको गया और गोविन्द ब्राह्मण से उस पशुपालने कहदिया ॥ ३३ ॥ किहे स्वामिन् ! मैं जबतक भो-

दुःखतरेमगना दृष्ट्वातंपातकान्वितम् ॥ एवंदुःखनिमगनायाः शर्वरीविगतातदा ॥ ३० ॥ पुनःप्रातस्तुगोविन्दो दर्माय चवनंगतः ॥ एवंनज्ञातवान्विप्रः काष्ठेनचहतंसुतम् ॥ ३१ ॥ गताश्चदिवसाःपञ्च ब्राह्मण्यागोपितञ्चयत् ॥ पशुपालःपञ्चमेहि महिषीरुत्तमाश्चगाः ॥ ३२ ॥ अरण्येमहिषीमुक्त्वा गाश्चभोक्तुंगृहंगतः ॥ विज्ञप्तःपशुपालेन गोविन्दोब्राह्मणोत्तमः ॥ ३३ ॥ यावद्भक्षाम्यहंस्वामिन्महिषीर्गाश्चरक्ष्य ॥ ततःसत्वरितोगाश्च ब्राह्मणोमहिषीःप्रति ॥ ३४ ॥ जगाममहिषीर्गाश्च विप्रस्यतस्यरक्षतः ॥ धावमानस्यगावश्च महिष्यःसङ्गमंगताः ॥ ३५ ॥ तत्रप्रविष्टास्तुजले नद्यारेवासुसङ्गमे ॥ तज्जलंपीतमानन्तु त्वरयातेनवारिताः ॥ ३६ ॥ अकामात्सलिलंपीत्वा प्रक्षाल्यनयनेशुभे ॥ आजगामततःपश्चाद्भवन्दिनसंक्षये ॥ ३७ ॥ मुक्त्वादुःखान्वितोरात्रौ गोविन्ददृश्यनययौ ॥ निद्राभिभूतोदुःखेन श्रमेणैवतुखेदितः ॥ ३८ ॥ पुनस्तच्चार्द्धरात्रेण तस्यभार्यानिरीक्षते ॥ कृमिभिर्विष्टितं गात्रं क्वचित्पश्यत्यवेष्टितम् ॥ ३९ ॥ पुनःसाविस्मया

जनकरआऊं तबतक आप इन भैसियों व गौवोंको बचाये रहना तदनन्तर वह ब्राह्मण जलहो भैसियों व गौवों के पास ॥ ३४ ॥ चलागया और भैसियों व गौवों को चराते व दौडतेहुये उस ब्राह्मण के भैंसे व गौवें संगम को चलीगई ॥ ३५ ॥ और उस नदी व नर्मदा के संगम के जलमें पैठगई उस पानीके पीतेही उस ब्राह्मणने उनको जल्दी से हांकदिया ॥ ३६ ॥ आपभी बेप्यास पानीको पीकर और नेत्रोंको धोकर उसके बाद सन्ध्याको घरआया ॥ ३७ ॥ थकाहुआ भोजनकर रातमें गोविन्द सोगया दुःख व थकावट से कष्टित निद्रासे बेहोश होगया ॥ ३८ ॥ आधीरात को फिर उसकी स्त्री उसको देखनेलगी तो उसकी देह कही कीड़ोंसे युक्त और कहीं

खाली देखती हुई ॥ ३६ ॥ फिर गुणवाली वह उसकी स्त्री विस्मय से भरी हुई व डरती हुई उसका पाप उससे कहती हुई ॥ ३७ ॥ स्त्री बोली कि बीते हुये आज से पांचवे दिन में पिछवाड़े से लकड़ीको फेंकते हुये आपसे बैजाना, धरमें वर्तमान, आपका लड़का मार डाला गया ॥ ३८ ॥ आपके किये हुये इस घोर पाप को मैंने प्रकट नहीं किया पर छिपाये हुये उस पापसे मैं दिन रात जलती हूँ ॥ ३९ ॥ और आपके व अपने शरीर के सुख को नहीं देखती हूँ हे नाथ ! मेरी नींद व तुम्हारे साथका भोग नष्ट होगया है ॥ ४० ॥ मनुस्मृति में महर्षियों का कहा हुआ श्लोक सुना जाता है उसको याद कर २ रात में मेरा सन्ताप शान्त नहीं होता है ॥ ४१ ॥ उस श्लोक का

विष्ठा तस्य भाय्या गुणान्विता ॥ उवाच दुष्कृतं तस्य साध्वसा विष्टचेतना ॥ ४० ॥ भाय्यो वाच ॥ अतीति पञ्चमे चाह्नि इन्धनं क्षिपतातुते ॥ गृहे पश्चात्स्थितो बालस्त्वज्ञातो घातितस्त्वया ॥ ४१ ॥ मया तत्पातकं द्यौरं त्वत्कृतं न प्रकाशितम् ॥ तेन प्रच्छन्नपापेन दह्यमाना दिवानिशम् ॥ ४२ ॥ न सुखं तव गात्रस्य न च पश्यामि चात्मनः ॥ निद्रा प्रणष्टा मे नाथ रतिश्चैव त्वया सह ॥ ४३ ॥ श्रूयते मानवेषां स्त्री श्लोको गीतो महर्षिभिः ॥ स्मृत्वा स्मृत्वा च तं रात्रौ परितापो न शस्यति ॥ ४४ ॥ कीर्तनान्नश्यतेऽधर्मो बद्धतेऽसौ च गूहनात् ॥ इह लोके परैश्चैव पापस्यान्तो न विद्यते ॥ ४५ ॥ एवं सञ्चिन्त्य मानाहं स्थितारान्नौ भयातुरा ॥ कृमिराशिमयं त्वान्तु पश्यामि कथयामि किम् ॥ ४६ ॥ पुनश्च कान्तस्त्वदेहं भ्रूणहत्या कृमिप्लुतम् ॥ क्वचित्तु दन्ति ते चैव क्वचिन्नष्टाः समन्ततः ॥ ४७ ॥ एतत्संस्मृत्य संस्मृत्य विमृशन्ती पुनः पुनः ॥ न जाने कारणं किञ्चित्पृच्छामि कथयस्व मे ॥ ४८ ॥ तडागं वापि सरितं तीर्थं वा देवतालयम् ॥ यंगतो सिप्रभा वोयं तस्य नान्यस्य मे मतिः ॥ ४९ ॥

यह मतलब है कि अधर्म (पाप) कहने से घटता है और छिपाने से बढ़ता है इस लोक व परलोक में पापका अन्त नहीं है ॥ ४५ ॥ ऐसे विचारती हुई व डरती हुई मैं रात में रहती हूँ और आपको कीड़ोंका ढेर रूप देखती हूँ तिसको क्या कहूँ ॥ ४६ ॥ फिर हे प्यारे ! सब ओर बालहत्या के कीड़ोंसे घिरी हुई आपकी देहको कहीं वे कीड़े काटते हैं और कहीं के नष्ट भी होगये हैं ॥ ४७ ॥ इस बातको बार २ याद कर व बार २ विचारती हुई मैं किसी कारणको नहीं जानती सो आपसे पूछती हूँ आप मुझसे कहो ॥ ४८ ॥

जिम तटाग व नदी व तीर्थ न देवता के स्थानको आप गयेरहो उसीका यह प्रभाव है और का नहीं यह मेरी समझ है ॥ ४६ ॥ हे भारत ! ऐगो कक्षागया वह ब्राह्मण स्त्री से रमता हुआ हे नृपोत्तम ! पहलेवाले हालको कहा ॥ ५० ॥ कि मे गौवों व भैमियों के रोकने के वास्ते नर्मदाके सगम को गयाथा सो नाभितक जलमे पैठकर मैने येथेष्ट जलको पिया है ॥ ५१ ॥ और तीर्थको मै नही जानताहं नर्मदाजी सब नदियों में श्रेष्ठ है इस प्रकार उस सब वृत्तान्त को सुनकर उस उत्तमवर्णवाली स्त्रीने उसी क्षणमें व्रत किया और उस मंगममें पतिके सहित जातीहुई और देवताओंसे पूजित उस सङ्गम में विधिसे स्नानकर ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ पार्वती के सहित बल्याणकारक

एवमुक्तस्त्वसौविप्रः कथयामासभारत ॥ ५० ॥ गोलुलायीनिवृत्त्यर्थं नर्मम दासङ्गमंगतः ॥ नाभिमानेजलेमग्नस्तोयंपीतंयथेष्टतः ॥ ५१ ॥ नान्यतीर्थंविजानामि नर्ममदाचमरिद्वरा ॥ एवंश्रु त्वाचतत्सर्वमुपवासःकृतःक्षणात् ॥ ५२ ॥ भर्त्रासहगतातत्र सङ्गमेवरवर्णिनी ॥ स्नात्वाविधिप्रयुक्तेन सङ्गमेसुरपूजि ते ॥ ५३ ॥ तर्पयामासदेवेशं शङ्करंचसहोमया ॥ पञ्चामृतैःस्नापयित्वा ब्राह्मण्यासहितोद्विजः ॥ ५४ ॥ गन्धमा ल्यादिधूपैश्च नैवेद्यैश्चमुशोभनैः ॥ अपूजयत्तत्रलिङ्गं देवीकात्यायनंशुभाम् ॥ ५५ ॥ राज्ञौजागरणंकृत्वा भर्त्रातेनस ह्वेवसा ॥ ततःप्रभातेविमले द्विजंसमपूजययत्नतः ॥ ५६ ॥ गोदानेनहिरण्येन वस्त्रेणान्नेनभारत ॥ गोविन्दपूजयामा स स्वशक्त्याब्राह्मणंशुभम् ॥ ५७ ॥ उक्तश्चाकाशवाण्यातु तीर्थंगुह्यावतीत्वदम् ॥ गुह्येश्वरंतत्रलिङ्गं पातालादुत्थि तंतदा ॥ ५८ ॥ गुह्यावतीनर्मदयोः सङ्गमोऽगुणवानभूत् ॥ मुक्तपापोऽगृहंयातः स्वभार्य्यासहितोद्विजः ॥ ५९ ॥ एतत्ती

महादेवजी को तुम किया ब्राह्मणी के सहित उस ब्राह्मण ने पञ्चामृत से स्नान करवाके ॥ ५४ ॥ चन्दन, फूल, धूप और अत्युत्तम नैवेद्यआदि से वहां लिंग व उत्तम कात्यायनी देवीका पूजन किया ॥ ५५ ॥ उस अपने पतिके सहित वह स्त्री रात्रि में जागरणकर और फिर निर्मल प्रातःकाल में यलसे ब्राह्मणका भी पूजनकर स्वरथ होगई ॥ ५६ ॥ व हे भारत ! गोविन्द भी आपनी शक्तिसे गऊ, सोना, कपडा और अन्नसे उत्तम ब्राह्मण का पूजन किया ॥ ५७ ॥ और आकाशवाणीसे कहाभी गया कि यह गुह्यावती नामका तीर्थ है उसीसमय में पाताल से वहां गुह्येश्वरलिंग भी प्रकटहुआ ॥ ५८ ॥ गुह्यावती और नर्मदा का सङ्गम गुणबाला होताहुआ छूटे

पापवाला वह ब्राह्मण अपनी स्त्री सहित घरको गया ॥ ५९ ॥ यह तीर्थ पापों का हरनेवाला व बालहत्या का नाश करनेवाला है उसमें स्नान, जप, दान व ब्राह्मण भोजन करवाके ॥ ६० ॥ और व्रत करके व श्राद्धकरने और तिलोदक देने में महाप्रलयतक शिवलोक में बसता है ॥ ६१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनुवादगुह्यावतीतीर्थमहिमाऽनुवर्णनोनामाऽशीतितमोऽध्यायः ॥ ८० ॥

मार्कण्डेयजी बोले कि हे राजेन्द्र ! तदनन्तर नर्मदा के उत्तरवाले तटपर जावे जहाँ मेघनाद के समीप नदियों में श्रेष्ठ विश्वरूपा नदी ॥ १ ॥ जगत् के उपकार

र्थपापहरं बालहत्याप्रणाशनम् ॥ तत्रस्नात्वाचजप्त्वाच दत्त्वाब्राह्मणभोजनम् ॥ ६० ॥ उपास्यश्राद्धकरणात्तिलोदकप्रदानतः ॥ निवसेच्छिवलोकेहि यावदाहूतमंपुत्रम् ॥ ६१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेगुह्यावतीतीर्थमहिमाऽनुवर्णनोनामाऽशीतितमोऽध्यायः ॥ ८० ॥

मार्कण्डेयउवाच ॥ ततो गच्छेत्तुराजेन्द्र उत्तरेनर्मदातटे ॥ मेघनादसमीपे तु विश्वरूपासरिद्वरा ॥ १ ॥ निर्गता वि

श्वरूपस्य शरीरादुपकुर्वतः ॥ पुरादास्वनेदेवो लिङ्गहीनः कृतो द्विजैः ॥ २ ॥ नर्मदातटमाश्रित्य तपः कुर्वन्स्तदानुप ॥

विश्वरूपो भवद्देवो निर्गतासरितां वरा ॥ ३ ॥ गतासानन्मर्मादातोयं सङ्गमो गुणवानभूत् ॥ तस्मिंस्तीर्थे नरः स्नात्वा सम

वेन पुनर्भवेत् ॥ ४ ॥ तत्रयत्क्रियते कर्म सर्वतदक्षयं भवेत् ॥ सारिकासिद्धिमायाता पतितातीर्थसङ्गमे ॥ ५ ॥ पूर्वमप्सरसां

श्रेष्ठा शक्रशापादकामतः ॥ चित्राङ्गदेनरमिता काचित्कष्टमवापह ॥ ६ ॥ सारिकाभवकल्याणि वर्षाणां साग्रविंशतिम् ॥

करनेवाले विश्वरूप महादेव के शरीर से निकली है पूर्वकाल में दारुवनमें ब्राह्मणोंने महादेवजीको लिंगहीन कर दिया था ॥ २ ॥ तब उस समय में हे नृप ! नर्मदाके तटपर बैठ कर तपस्याको करते हुये महादेवजी विश्वरूप होगये उन्हींसे जो श्रेष्ठ नदी निकली है ॥ ३ ॥ वही नर्मदाको गई है वह संगम गुणवाला होगया उस तीर्थमें स्नान

कर वह मनुष्य फिर संसारमें नहीं होता है ॥ ४ ॥ वहाँ जो कर्म किया जाता है वह सब अक्षय होता है तीर्थके संगममें गिरी हुई सारिका (मैना) ने भिक्षुको पाया है ॥ ५ ॥

प्रमेद है कि पूर्वकाल में अप्सराओं में श्रेष्ठ कोई एक अप्सरा वेमन चित्राङ्गद के साथ रमी सो इन्द्रके शापसे कष्टको प्राप्त हुई ॥ ६ ॥ इन्द्रने कहा कि हे कल्याणि !

वर्षाणां साग्रविंशतिम् ॥ ५ ॥ पूर्वमप्सरसां श्रेष्ठा शक्रशापादकामतः ॥ चित्राङ्गदेनरमिता काचित्कष्टमवापह ॥ ६ ॥ सारिकाभवकल्याणि वर्षाणां साग्रविंशतिम् ॥

करनेवाले विश्वरूप महादेव के शरीर से निकली है पूर्वकाल में दारुवनमें ब्राह्मणोंने महादेवजीको लिंगहीन कर दिया था ॥ २ ॥ तब उस समय में हे नृप ! नर्मदाके तटपर बैठ कर तपस्याको करते हुये महादेवजी विश्वरूप होगये उन्हींसे जो श्रेष्ठ नदी निकली है ॥ ३ ॥ वही नर्मदाको गई है वह संगम गुणवाला होगया उस तीर्थमें स्नान

कर वह मनुष्य फिर संसारमें नहीं होता है ॥ ४ ॥ वहाँ जो कर्म किया जाता है वह सब अक्षय होता है तीर्थके संगममें गिरी हुई सारिका (मैना) ने भिक्षुको पाया है ॥ ५ ॥ प्रमेद है कि पूर्वकाल में अप्सराओं में श्रेष्ठ कोई एक अप्सरा वेमन चित्राङ्गद के साथ रमी सो इन्द्रके शापसे कष्टको प्राप्त हुई ॥ ६ ॥ इन्द्रने कहा कि हे कल्याणि !

तू कुछ अधिक बीस वर्षतक सारिका हो फिर सरकर तू विश्वरूपा के संगममें नर्मदाके जलमें प्रवेशकर उस योनिसे छूटजायगी ॥ ७ ॥ तब हे नृप ! उत्तमदेहवाली वह बड़ी विचित्र मैनाहुई अपनी जातिकी याद रखनेवाली देवी नर्मदातट में रहतीरही ॥ ८ ॥ तदनन्तर उत्तम आचरणवाली वह मैना समय के आनेपर उत्तम आगको जलाकर विश्वरूपा के सङ्गस में नहाकर आगमें पैठगई ॥ ९ ॥ तब हे राजन् ! दिव्यदेह को धरेहुये इन्द्र के मन्दिर को प्राप्तहुई तबसे वह सारिकार्तीय कहाजाता है ॥ १० ॥ वहां जो काम कियाजाता है श्राद्ध, यज्ञ व शिवपूजन वह सब करोड़गुना मेघनादके दर्शनसे होताहै ॥ ११ ॥ परवश व अपने वश होकर जो

मृत्वात्वनर्ममर्मातोये विश्वरूपासुसङ्गमे ॥ ७ ॥ विचित्राबहुचार्वङ्गी सञ्जातासारिकानृप ॥ जातिस्मरासुराभावा
नर्ममर्मातटमाश्रिता ॥ ८ ॥ ततःकालेचसंप्राप्ते प्रज्वाल्यपावकंशुभम् ॥ प्रविष्टासाशुभाचारा विश्वरूपासुसङ्गमे ॥ ९ ॥
दिव्यदेहधरीराजन्प्राप्ताशक्रम्यमन्दिरम् ॥ एतदन्तरमासाद्य सारिकार्तीयमुच्यते ॥ १० ॥ तत्रयत्क्रियतेकर्म श्राद्धं
यज्ञःशिवाचनम् ॥ सर्वकोटिगुणविद्यान्मेघनादस्यदर्शनात् ॥ ११ ॥ अवशःस्ववशोवापि यस्तुप्राणान्परित्यजेत् ॥
नतस्यपुनरावृत्तिर्घोरिसंसारसागरे ॥ १२ ॥ ख्यातानिपञ्चलिङ्गानि यानिदृष्ट्वाशिवं व्रजेत् ॥ मानवोमनुजश्चेष्ट शृणु
तानियुधिष्ठिर ॥ १३ ॥ मेघनादंचगोष्ठेशं वागीशंकाकडेश्वरम् ॥ लब्धेश्वरंपञ्चलिङ्गान्येकाहेयस्तुपूजयेत् ॥ १४ ॥
अनेनैवशरीरेण सनरोहिशिवं व्रजेत् ॥ कोटियज्ञफलंप्राप्यपश्चान्मोक्षमवाप्नुयात् ॥ १५ ॥ आख्यानंकथयिष्यामि
पुरावृत्तंवानघ ॥ धर्ममेतःपुराराजा अयोध्याधिपतिर्वली ॥ १६ ॥ धर्मैरणराज्यंकृतवान्यज्ञांश्चबहुदक्षिणान् ॥

प्राणोंको छोड़ताहै उसकी फिर इस घोरसंसारसागरमें आवृत्ति नहीं होतीहै ॥ १२ ॥ वहां पांच लिंग प्रसिद्ध हैं जिनका दर्शनकर मनुष्य शिवको पाताहै हेमनुजश्चेष्ट, युधिष्ठिर ! उनको तुम सुनो ॥ १३ ॥ मेघनाद, गोष्ठेश, वागीश, काकडेश्वर और लब्धेश्वर इन पांचों लिंगोंको जो एक दिनमें पूजता है ॥ १४ ॥ वह मनुष्य इसी शरीर से महादेवजी को पाताहै करोड़ों यज्ञोंके फलको पाकर पीछे मोक्षको पाताहै ॥ १५ ॥ हे अनघ ! पूर्वकाल में हुये आख्यानको हम तुमसे कहेंगे अगिले जमाने में अयोध्याके मालिक, बलबाले, राजा धर्मसेनजी हुये ॥ १६ ॥ उन्होंने धर्मसे राज्य व बहुत दक्षिणावाली यज्ञोंको किया व धर्मशास्त्र सुनरहे थे राजा नर्मदाके चरितको

सुनकर नर्मदाके उत्तरवाले तटको चलेगये नर्मदाके जलमें स्नानकर और मेघनादका पूजनकर ॥ १७ । १८ ॥ सूर्यके उदय होतेहुये घोड़ेपर सवार राजा उत्तरदिशा की तरफ होकर गोष्ठेश्वर महादेवजीको चलेगये ॥ १९ ॥ उनका विधिसे पूजनकर फिर वागीश्वर को गये राजा वहा विधिपूर्वक स्नानकर और चन्दन, अगर, कपूर, धूप और दीपआदि विधानों से शिवका पूजनकर घोड़ेपर सवार राजाधिराज काकडेश्वरको आये ॥ २० । २१ ॥ व उनको पूजकर तदनन्तर राजा नर्मदाके जलमें विद्यमान लक्ष्मेश्वरको जाकर व उनका विधिपूर्वक पूजनकर ॥ २२ ॥ फिर मेघनादको गये वहां सूर्यभी अस्त होगये आपही कालरूप महादेवजीका ध्यानकर राजा जब

शृण्वन्सधर्मशास्त्राणि नर्मदाचरितं तथा ॥ १७ ॥ श्रुत्वा विनिर्गतो राजा रेवाया उत्तरे तटे ॥ मेघनादं समभ्यर्च्य स्नात्वा वै नर्मदाजले ॥ १८ ॥ उद्धृच्छति दिनकरे अश्वारूढो नरेश्वरः ॥ उत्तराग्निदशमाश्रित्य गतो गोष्ठेश्वरं शिवम् ॥ १९ ॥ यथा विधानं सम्पूज्य वागीश्वरगतस्ततः ॥ तत्र स्नात्वा विधानेन पूजयित्वा शिवं नृपः ॥ २० ॥ चन्दनागुरुकपर्पू र्धूपैर्दपैर्विधानकैः ॥ अश्वारूढो नृपश्रेष्ठः काकडेश्वरमागतः ॥ २१ ॥ तं प्रपूज्य ततो राजा गत्वा वै नार्मदे जले ॥ लक्ष्मेश्वरं पूजयित्वा स्थितैव विधिपूर्वकम् ॥ २२ ॥ मेघनादं ततो गत्वा सूर्यश्चास्तमुपगमत् ॥ ध्यात्वा स्वयं कालरूपं यावत्तिष्ठति वै नृपः ॥ २३ ॥ तावद्द्वारोऽपि तुरगो ह्यन्तरिक्षं चरस्तदा ॥ दिव्यदेहधरस्सोवाप्यप्सरोभिः समावृतः ॥ २४ ॥ विमाने देवराजस्य यया विन्द्रपुरीं स्थितः ॥ शुनीपृष्ठे तु याराज्ञस्तीर्थयात्रां प्रकुर्वती ॥ २५ ॥ दिव्यदेहधरा सापि विमानेन गता दिवि ॥ धर्मसेनोऽपि तान्दृष्ट्वा विस्मया विष्टुचेतनः ॥ २६ ॥ अश्वरूपं जगादाथ किमेतदिति भारत ॥ उवाचा काशगोवाचं कथन्त्वं सिद्धसे नृप ॥ २७ ॥ शरीरजेन कष्टेन तपः साधया विभूतयः ॥ पादचारी हि गच्छत्वं परपादैर्गतो ह्यसि ॥ २८ ॥ भूतक ठहरे ॥ २९ ॥ तव तत्क वह पापी बांडा भी आकाश में चलता हुआ व दिव्य देहको धरेहुये व अप्सराओं से घिरा हुआ ॥ २४ ॥ इन्द्रके विमान में बैठा हुआ इन्द्रपुरीको चला गया और राजाके पीछे तीर्थयात्राको कर रही जो कुतिया थी ॥ २५ ॥ वह भी दिव्यदेह को धरेहुये विमान से स्वर्गको जाती हुई धर्मसेन भी उसको देख कर विस्मययुक्त होतेहुये ॥ २६ ॥ और हे भारत ! उस घोड़ेसे कहा कि यह क्या है तब आकाशमें विद्यमान घोड़ा बचन बोला कि हे नृप ! तुम क्यों दीन होतेहो ॥ २७ ॥

अपने शरीर के कष्टसे जो तप होता है उसीसे सब ऐश्वर्य होते हैं इससे अपने पांवों से चलतेहुये आप जावें अभी तो और के पांवों से आयेथे ॥ २८ ॥ अब जो फिर आप यात्रा करेंगे तो सिद्धि को पावेंगे तब राजा उसके इस वचन को सुनकर ॥ २९ ॥ फिर दूसरे दिन लिंगप्रजनके लिये गये और पाचों लिंगोंका भली भांति पूजनकर नर्मदा को आये ॥ ३० ॥ जब मेघनाद को देखा तो दरवाजेपर प्रत्यक्ष महादेवजीको देखतेहुये पांच मुहंवाले, दश भुजावाले, तीन नेत्रवाले, त्रिशूल हाथमें लिये ॥ ३१ ॥ बैलपर सवार, जगत जिनके पेटमें है, चन्द्रमा का मुकुट बनायेहुये और इन्द्रादि सब देवताओंके स्वामी परमेश्वर उन महादेवजी को देख

योयात्रांप्रकुरुषे तदासिद्धिमवाप्स्यसि ॥ ततोराराजाचतस्याथ श्रुत्वातद्वचनंतदा ॥ २९ ॥ पुनर्द्वितीयदिवसे प्रस्थितोलिङ्गपूजनम् ॥ पञ्चलिङ्गान्समभ्यर्च्य समायातस्तुनर्ममदाम् ॥ ३० ॥ मेघनादंयदापश्यद्वरेदेवंचदृष्टवान् ॥ पञ्चवक्त्रं दशभुजं त्रिनेत्रंशूलपाणिनम् ॥ ३१ ॥ वृषारूढंजगद्गर्भं शशाङ्ककृतशेखरम् ॥ दृष्ट्वातन्देवदेवेशं तुष्टावपरमेश्वरम् ॥ ३२ ॥ जयदेवमहादेव महापातकनाशन ॥ संसारसागरेभग्नं मांसमुद्धरसाम्प्रतम् ॥ ३३ ॥ हरउवाच ॥ वरंष्टुणु महाभाग यत्तेमनमिबर्तते ॥ तद्वदामिनसन्देहद्विशवभक्तोहिपुत्रक ॥ ३४ ॥ यदितुष्टोसिमेदेव तन्मांसहचरंकुरु ॥ एकाहेपञ्चलिङ्गानि पूजयिष्यतियोनरः ॥ ३५ ॥ सतवानुचरोदेव भवत्वेषवरोमम ॥ धर्मसेनवचःश्रुत्वा भवत्वेवंहरोब्रवीत् ॥ ३६ ॥ तंगृहीत्वातुराजानं कैलासंसजगामह ॥ स्वदेहस्थंचकारासौ धर्मसेनंनृपंष्टप ॥ ३७ ॥ एतत्तैकथितंराज

कर रचति करतेहुये ॥ ३२ ॥ हे देव ! हे महादेव ! हे बड़े पापोंके नाशकरनेवाले ! आपकी जय हो अब संसारसमुद्रमें डूबेहुये मुझको उद्धारकरो ॥ ३३ ॥ तब महादेवजी बोले कि हे महाभाग ! जो तुम्हारे मनमें वर्तताहो उस वरको तुम मागलेवो हेपुत्रक ! उसको मैं तुम्हे देऊंगा इसमें कुछ सन्देह नहीं क्योंकि तुम शिवकेभक्तहो ॥ ३४ ॥ तुम्हारा भला बोलो कि हे देव ! जो आप मुझपर प्रसन्नहोवो तो मुझे आप अपना अनुचरकरो और जो मनुष्य एक दिनमें पांचों लिंगोंका पूजनकरे ॥ ३५ ॥ हे देव ! वह हमारा वर है धर्मसेन के वचनको सुनकर ऐसाही हो इस प्रकार महादेवजीने कहा ॥ ३६ ॥ और उन राजाको लेकर महादेवजी कैलास

को चले गये और हे नृप ! राजा धर्मसे नजीको अपने शरीरमें मिलालिया ॥ ३७ ॥ हे राजन् ! यह पुराना इतिहास आपसे कहा गया इसके सुनने व कहनेसे अश्वमेध के फलको पाता है ॥ ३८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डे प्राकृतभाषाऽनुवर्णनो नामैकाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८१ ॥

मार्कण्डेयजी बोले कि अब और पापों के नाश करनेवाले तीर्थको कहेंगे वह मयूरकुम्कुट नाम का तीर्थ ब्रह्महत्याका नाश करनेवाला है ॥ १ ॥ नर्मदा के दक्षिण तटमें पुण्यवाला मृकण्डका आश्रम है हे भूपाल ! उसमें बड़े धर्मात्मा मृकण्डनामक ऋषि ॥ २ ॥ हे महाभाग ! देवताओं की हजारों वर्षों तक तप करते हुये रमणीक

नितिहासं पुरातनम् ॥ श्रवणात्कीर्तनादस्य अश्वमेधफलं लभेत् ॥ ३८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डे पञ्चलिङ्गमहि
मानुवर्णनो नामैकाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८१ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

मार्कण्डेय उवाच ॥ अथान्यत्कथयिष्यामि तीर्थपापप्रणाशनम् ॥ मयूरकुम्कुटनाम ब्रह्महत्याव्यपोहनम् ॥ १ ॥
मृकण्डस्य श्रमं पुण्यं नर्मदादक्षिणेतटे ॥ मृकण्डो नाम भूपाल ऋषिः परमधार्मिकः ॥ २ ॥ तपस्तेपे महाभाग दि
व्यैर्वर्षसहस्रकैः ॥ तस्याश्रमपदरम्ये मुनयः शंसितव्रताः ॥ ३ ॥ वसन्ति स्म जलाहाराः शुष्कपत्रकृता शनाः ॥ केचित्त
त्रनिराहारा मोक्षोपायविचिन्तकाः ॥ ४ ॥ एतस्मिन्नन्तरं राजगन्धर्वौ शक्रगायनौ ॥ हेति प्रहेति नामानौ गतो शक्र
सभान्दप ॥ ५ ॥ वधूरप्सरसां श्रेष्ठा दृष्टाताभ्यां युधिष्ठिर ॥ दृष्टमात्रौ तु गन्धर्वौ कामबाणप्रपीडितौ ॥ ६ ॥ हेतिः कुक्कुट
शब्देन प्रहेतिर्बहिर्णस्तथा ॥ घोष्यमाणौ सुमधुरं सादयामास तु श्रुताम् ॥ ७ ॥ वृत्रहातदभिप्रायं ज्ञात्वा शापं ददौ त

उनके आश्रममें उत्तमव्रतवाले जल व सूखे पत्तों के खानेवाले मुनिलोग बसते हुये मोक्षके उपायोंके विचारनेवाले वहां कोई निराहार भी रहते थे ॥ ३ ॥ ४ ॥ हे राजन् !
इसी अन्तर में हेति और प्रहेति नामके इन्द्रके यहां के गानेवाले गन्धर्व हे नृप ! इन्द्रकी सभाको गये ॥ ५ ॥ हे युधिष्ठिर ! उन दोनोंने अप्सराओं में श्रेष्ठ एक
नवीन अप्सराको देखा देखते ही दोनों गन्धर्व कामबाणसे अतिपीडित हुये ॥ ६ ॥ तब हेति सुर्गाकी आज्ञासे और प्रहेति मोरकी बोलीसे अतिमधुर बोलते हुये उस

अप्सराको शिक्षाया ॥ ७ ॥ तब उनका अभिप्राय जानकर इन्द्रने शापकोदिया कहा कि तुम दोनों सुर्गों और मोर होजाओगे इसमें संशय नहीं है ॥ ८ ॥ फिर देवताओं की सौचपोंके पूरे होनेपर यहां आओगे तब हे युधिष्ठिर ! वे दोनों गन्धर्व पक्षियोंकी योनिको प्राप्तहोगये ॥ ९ ॥ पहले जन्मकी याद रखनेवाले व कुकर्म करनेवाले व देखनेमें ध्यारे दोनों पत्नी सब तीर्थोंपर उतरतेहुये नारदजी को देखा ॥ १० ॥ तब दोनों गन्धर्व बोले कि हे शुभाचार ! हे तपोधन ! किस कर्मसे ये हम दोनों छूटेंगे सो आप कहें ॥ ११ ॥ तब नारदजी बोले कि नर्मदाके दक्षिणके तटमें मृकण्डका पुरणवाला आश्रम है अक्सर वह तीर्थ तिर्यक्योनि से छोडानेवाला

दा ॥ युवांकुक्कुटमयूरौच भविष्येथेनसंशयः ॥ ८ ॥ पूर्णेदिव्यशतेवर्षे पश्चादत्रागमिष्यथः ॥ तिर्यग्योनौतुसंप्राप्तौ गन्धर्वौहियुधिष्ठिर ॥ ९ ॥ जातिस्मरौदुराचारौ पक्षिणौप्रियदर्शिनौ ॥ सर्वतीर्थान्युत्तरन्तौ नारदंचददर्शतुः ॥ १० ॥ गन्धर्वावूचतुः ॥ भविष्यावःशुभाचार ब्रह्मपुत्रतपोधन ॥ कर्मणाकेनचावांहि मुक्तावेतौवदस्वतत् ॥ ११ ॥ नारदउवाच ॥ नर्मदादक्षिणेतीरे मृकण्डस्याश्रमंशुभम् ॥ तिर्यग्योनिविमोक्षञ्च तीर्थंहिपरमंमतम् ॥ १२ ॥ जलाप्लुतौनर्मदायाः सर्वतत्रभविष्यति ॥ ततोहेतिःप्रहेतिश्च मुस्नातौदिव्यरूपिणौ ॥ १३ ॥ एकेनस्नानमात्रेण पक्षिणौदिव्यतांगतौ ॥ स्नात्वातुविधिनानेन ध्यात्वादेवंसदाशिवम् ॥ १४ ॥ उच्चार्यार्घ्यधोरमन्त्रन्तौ सदाध्यानस्थितौष्टुप ॥ एतस्मिन्नन्तरेराजन्पातालादुत्थितंशुभम् ॥ १५ ॥ शतसूर्यप्रकाशंहि लिङ्गतत्रयुधिष्ठिर ॥ कुक्कुटेश्वरमेकन्तु मयूरेश्वरमेवच ॥ १६ ॥ गन्धर्वौतुविमानस्थौ गतौशक्रस्यमन्दिरम् ॥ तस्मिंस्तीर्थेनरःस्नात्वा भवेनैवपुनर्भवेत् ॥ १७ ॥ स्नात्वातिलोमानगयाहै ॥ १८ ॥ तुम दोनों नर्मदाके जलमें स्नानकरो वहां सब होजायगा तदनन्तर हेति और प्रहेति दोनोंने स्नान किया और दिव्यरूप होगये ॥ १३ ॥ एक स्नानमात्रसे दोनोंपत्नी दिव्यरूप होगये फिर विधिसे स्नानकर व सदाशिवदेवका ध्यानकर ॥ १४ ॥ व अर्घ्यधोरमन्त्रका उच्चारणकरवे दोनों सदा ध्यानमें स्थित होतेहुये इसी अन्तर में हे राजन्, युधिष्ठिर ! वहां सैकड़ों सूर्योंके समान तेजवाले, उत्तम, दो लिंग पातालसे निकले एक कुक्कुटेश्वर और दूसरा मयूरेश्वर ॥ १५ ॥ १६ ॥ फिर विमान पर बैठेहुये दोनों गन्धर्व इन्द्रके मन्दिर को चलेगये उस तीर्थ में मनुष्य स्नानकर फिर संसार में नहीं होताहै ॥ १७ ॥ स्नानकर और तिलोदक

देकर पितरों की परमगति होती है और पशुश व अपने वशहोकर जो प्राणोंको छोड़ता है ॥ १८ ॥ उसकी फिर घोर संसारसागर में श्रावृत्ति नहीं होती है वहां के मरे हुये कीड़े, पतंगे, पक्षी, साँप, मेंढक और पापीवृत्त भी शिवके स्थानको जाते हैं ॥ १९ । २० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणरेवाखण्डे प्राकृतभाषाऽनुवादे मुकण्डाश्रमकीर्तनो नाम द्वायशतितमोऽध्यायः ॥ ८२ ॥

मार्कण्डेयजी बोले कि तदनन्तर चन्द्रमती के संगम में और उत्तमतीर्थ है वहां चन्द्रेश्वर, सिद्धेश्वर, घण्टेश्वर और महिषेश्वर ये सिद्धलिंग हैं तदनन्तर दकंदत्वा पितृणां परमागतिः ॥ अथशःस्ववशोवापि यस्तुप्राणान्परित्यजेत् ॥ १८ ॥ नतस्यपुनरावृत्तिर्वोरेसंसारसागरे ॥ तत्रकीटाःपतङ्गाश्च पक्षिणोथमरीसृपाः ॥ १९ ॥ मण्डकाःपापवृक्षाश्च मृतायान्तिशिवंपदम् ॥ २० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणरेवाखण्डे मुकण्डाश्रमकीर्तनो नाम द्वायशतितमोऽध्यायः ॥ ८२ ॥ * ॥

मार्कण्डेयउवाच ॥ ततोऽन्यत्परमतीर्थं चन्द्रमत्यास्तुसङ्गमे ॥ चन्द्रेश्वरं सिद्धलिङ्गं तथा सिद्धेश्वरंपुनः ॥ १ ॥ घण्टेश्वरं महिषेश्वरमश्वतीर्थमतः परम् ॥ वृषसेनंहयग्रीवं शुक्रतीर्थमतः परम् ॥ २ ॥ रमेश्वरंतोगच्छेत्तीर्थपापप्रणाशनम् ॥ मेकलायास्तटे राजन्महापातकनाशनम् ॥ ३ ॥ यदादारुवेनपूर्वं महादेवेनमोहिताः ॥ ब्राह्मणानां स्त्रियस्तत्र रमणाः समागताः ॥ ४ ॥ चिन्तयन्त्यश्चतामोक्षं मेकलातीरमाश्रिताः ॥ तामिश्चरममाणाभिरावृतं शिवपूजनम् ॥ ५ ॥ नीलोत्पलदलैर्विल्वैर्मल्लिकाजातिकुन्दकैः ॥ शून्यं प्रपूजितं यावत्तावद्विहङ्गसमुत्थितम् ॥ ६ ॥ पातालादागतं लिङ्गं

अश्वतीर्थ, वृषसेन, हयग्रीव और शुक्रतीर्थ है ॥ १ । २ ॥ तदनन्तर पापोंके नाशकरनेवाले रमेश्वरतीर्थ को जावे हे राजन् ! वह महापातकों का नाश करनेवाला नर्मदाके तटमें है ॥ ३ ॥ जब पहले दारुवन में महादेवजीरो मोहित की गई ब्राह्मणोंकी स्त्रिया रमतीहुई वहां आई व वे मोक्षको विचार करतीहुई नर्मदाके तटपर बैठी फिर विहार करतीहुई उन स्त्रियोंने महादेवजी के पूजनका आरम्भ किया ॥ ४ ॥ कालेकमलोंके दलों से व विल्वपत्र, नैवेली, जाही और कुन्दके फूलोंसे जवतक मण्डप से खालीस्थान को पूजे तबनक लिंग प्रवट्टुआ ॥ ५ ॥ जलतीहुई कालाग्नि के रामान तेजवाला लिङ्ग पाताल से आगया और रमेश्वर नाम से प्रसिद्ध उसी

विहारस्थान से प्रकट होगया ॥७॥ फिर महादेवजीने ब्रियोंसे कहा कि तुम्हारे शापका मोक्ष होजावे अब तुम सब पापसे रहित अपने घरको जावो ॥ ८ ॥ इतना कह कर महादेवजी वही अन्तर्धान होगये इससे उस तीर्थमें मनुष्य स्नानकर वह फिर संसारमें नहीं होताहै ॥ ९ ॥ तथा अनशनसे व अग्नि में जो मरेहैं वे फिर उत्पन्न न होवेंगे और पितरों के लिये वहां विधिपूर्वक तिलोदक व पिण्डदान अच्छा है ॥ १० ॥ क्योंकि वहां श्राद्धके करने व दानसे पितरों की परमगति होती है पूर्व कालमें इन्द्र, ब्रह्मा, विष्णु और कुबेर ॥ ११ ॥ व हे नृप ! राजस रावण और मेघनादने जपको तपा और अनेक प्रकारकी यज्ञोंको ॥ १२ ॥ किया इससे

उवलत्कालानलप्रभम् ॥ रमेश्वरेतिविख्यातं रममाणत्समुत्थितम् ॥ ७ ॥ स्त्रीणामुवाचदेवेशः शापमोक्षोभवन्ति
ति ॥ गच्छन्नुसर्वास्वगृहं साम्प्रतंगतकल्मषाः ॥ ८ ॥ इत्युक्त्वादेवदेवेशस्तत्रैवान्तरधीयत ॥ तस्मिंस्तथैतैरःस्ना
त्वा समवेनपुनर्भवेत् ॥ ९ ॥ अनाशकेनचाग्नौहि येमृतानपुनर्भवाः ॥ तिलोदकंपितृणान्तु पिण्डदानंयथाविधि ॥
१० ॥ श्राद्धेनैवचदानेन पितृणांपरमागतिः ॥ इन्द्रेणब्रह्मणापूर्वं विष्णुनाधनदेनच ॥ ११ ॥ रक्षसारावणेनाथ तथाचै
न्द्रजितानृप ॥ जपोजसस्तपस्तप्तं यज्ञानिविविधानिच ॥ १२ ॥ कृतानिष्टपशार्दूल गताहिपरमाङ्गतिम् ॥ अन्यच्चक
थयिष्यामि हारिणंतीर्थमुत्तमम् ॥ १३ ॥ हरिणेशंसिद्धलिङ्गं तथावैधनुरीश्वरम् ॥ बाणेश्वरंपरंविद्धि तथावैलुब्धकेश्व
रम् ॥ १४ ॥ एतानिलिङ्गरूपाणि पूजयित्वाशिवं व्रजेत् ॥ आख्यानंकथयिष्यामि पुरावृत्तंयुधिष्ठिर ॥ १५ ॥ अर्जुनो
लुब्धकोनाम मन्दजातिसमुद्भवः ॥ पर्येतन्मृगयांराजन्नर्मदातीरमागतः ॥ १६ ॥ दृष्ट्वायूथंमृगाणान्तु धावमानः
पुनःपुनः ॥ पलायमानाःसर्वेते एकःपश्चात्स्थितोमृगः ॥ १७ ॥ हतोमध्यदिनेसोद्य कुरङ्गोनर्मदातटे ॥ पतितोसौ
हेनृपशार्दूल ॥ वे परमगतिको प्राप्तहुये अब और उत्तम हारिणतीर्थको कहेंगे ॥ १३ ॥ सिद्धलिङ्ग हरिणेश तथा धनुरीश्वर, बाणेश्वर और चौथे लुब्धकेश्वरको जानो ॥
१४ ॥ इन लिंगोंका पूजनकर शिवको पाताहै हे युधिष्ठिर ! अब पूर्वकाल में हुये आख्यान को हम कहेंगे ॥ १५ ॥ नीचजाति में पैदाहुआ अर्जुननाम का बहेलिया
शिकारको घूमताहुआ हे राजन् ! नर्मदाके तीरआया ॥ १६ ॥ और मृगोंके सुगण्डको देखकर बार २ दौड़रहा तबतक वे सब मृग भागगये पछिसे एक मृग रहगया ॥ १७ ॥

वह मृग मध्याह्न में नर्मदाके तटपर मारागया वह मुदाहोकर गिरपड़ा फिर दिव्यदेहको धरेहुये ॥ १८ ॥ हंसोंसे जुते विमानपर चढ़कर ब्रह्मलोक को चलागया उस मृगके चलेजाने पर वह बहेलिया चिन्ता से युक्त हुआ ॥ १९ ॥ कि अनेक महापापों को मैंने कियाहै सो किस गति को मैं जाऊंगा इससे अब मेरा मरजाना अच्छा है ॥ २० ॥ तदनन्तर हे राजन् ! इस प्रकार चिन्ताकर वह नर्मदाके जलमें गिरपड़ा उसीक्षण में दिव्य देहवाला वह गन्धर्वपुर को चलागया ॥ २१ ॥ उसके देवलोक में जानेपर धनुष और बाण जलमें पड़ेरहे तब ये चारलिंग तीनों भुवनोंमें प्रसिद्ध हुये ॥ २२ ॥ हरिणेश्वर, वाणेश, लुब्धेश, धनुरीश्वर और पांचवां रमेश्वर

गतप्राणो दिव्यदेहधरः पुनः ॥ १८ ॥ विमानेहंसयुक्ते वै ब्रह्मलोकं जगाम ह ॥ गते तु हरिणेशोऽथ लुब्धकश्चिन्तयान्वितः ॥
जन्पतितो नर्मदाजले ॥ तत्क्षणादिव्यदेहोसौ गन्धर्वपुरमाययौ ॥ २० ॥ चिन्तयित्वा ततो रा
चत्वायैतानि लिङ्गानि ख्यातानि भुवनत्रये ॥ २१ ॥ गते तस्मिन्देवलोकं धनुर्वाणौ जले स्थितौ ॥
ब्रह्महत्यादिपापानि विलयं यान्ति पार्थिव ॥ २२ ॥ हरिणेश्वरं च वाणेशं लुब्धेशं धनुरीश्वरम् ॥ रमेश्वरं पञ्चमन्तु ष
रेवाखण्डे रमेश्वरहरिणेश्वरलुब्धकेश्वरधनुरीश्वरवाणेश्वरकथनो नाम त्र्यशीतितमोऽध्यायः ॥ २४ ॥
इन पांचों लिङ्गोंको जो कहे ॥ २३ ॥ उसका फिर घोरसंसारसागर में आना नहीं होताहै हे राजन् ! उस तीर्थमें स्नानकर मनुष्य शिवपुर को जाताहै ॥ २४ ॥ और
हे पार्थिव ! ब्रह्महत्याआदि पाप नाश को प्राप्तहोते हैं और अनशन व अधजल से मरा शिवको पाता है ॥ २५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे रेवाखण्डे प्राकृतभाषाऽनुवा
दे रमेश्वरहरिणेश्वरलुब्धकेश्वरधनुरीश्वरवाणेश्वरकथनो नाम त्र्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८३ ॥ * ॥

मार्कण्डेयजी बोले कि यत्नसे व्रतको कियेहुये भक्तिसे जो उसमें स्नानकर रात्रिमें जागरणकरे व दान देवे ॥ १ ॥ व पञ्चाशत्तसे महादेवजी को स्नान करावे व यथाशक्ति दानकरे और विधानसे पूजनकर ॥ २ ॥ अपने कल्याण की इच्छा करताहुआ सुपात्र को दूढ़कर दानकरे तो उसके पितर बारहवर्षतक तृप्त रहते हैं इसमें संशय नहीं है ॥ ३ ॥ और दुर्देनवाला वहां जाताहै जहां निरजन देवहैं व जो इनके नामको अपने मकानमें बैठाहुआ अपनी शक्तिके अनुसार जपताहै ॥ ४ ॥ वह नील पर्वतमें जो पुण्य होती है उस सबको पाताहै और शूलभेदविषे जो पर्व २ भैं आह्व करताहै ॥ ५ ॥ और मासान्तमें विशेष से करताहै हे नृप ! उसके पुण्यफल को तुम

मार्कण्डेयउवाच ॥ तत्रस्नानात्वातुमक्त्याय उपवासपरायणः ॥ क्षपाजागरणंकुर्याद्दद्याद्दानंचयत्नतः ॥ १ ॥ द वस्यस्नपनंकुर्यादमृतैः पञ्चभिस्तथा ॥ समालभेद्यथाशक्त्या पूजांकृत्वाविधानतः ॥ २ ॥ पात्रंपरीक्ष्यदातव्यमात्मनः श्रेयहच्छता ॥ पितरस्तस्यतृप्यन्ति द्वादशाब्दनंसंशयः ॥ ३ ॥ दाताचगच्छतेतत्र यत्रदेवो निरञ्जनः ॥ गृह मध्येप्रविष्टस्तु स्मरन्नामास्यशक्तिः ॥ ४ ॥ नीलाद्रौतुचयत्पुण्यं तत्समस्तंलभेतसः ॥ शूलभेदेचयः कुर्याच्छ्राद्धं पर्वणिपर्वणि ॥ ५ ॥ विशेषाच्चैवमासान्ते तस्यपुण्यफलंशृणु ॥ केदारैचैवयत्पुण्यं कुब्जायाञ्चतथानृप ॥ ६ ॥ कन खलेचैवयत्पुण्यं गङ्गासागरसङ्गमे ॥ सितासितेतुयत्पुण्यमन्यतीर्थैर्विशेषतः ॥ ७ ॥ अर्बुदेचैवयत्पुण्यं पुण्यंचामर पर्वते ॥ गङ्गाद्यैः सर्वतीर्थैश्च फलंप्राप्नोतिमानवः ॥ ८ ॥ अस्मिन्तीर्थेतथापुण्यं लभतेनान्नसंशयः ॥ विधिमन्त्रसमा युक्तं तर्पयेत्पितृदेवताः ॥ ९ ॥ कुलानितारयत्येव दशपूर्वापराणिसः ॥ दक्षिणाञ्चैवमर्त्यश्च शुचिर्भूत्वासमाहि तः ॥ १० ॥ न्यासंकृत्वातुपूर्वोक्तं प्रदद्यादष्टपुष्पकम् ॥ शास्त्रोक्तैरष्टभिर्मन्त्रैर्मन्त्रैः शृणुतांस्तथा ॥ ११ ॥ वारिजंसौम्यमा

सुनो कि केदारमें जो पुण्यहै तथा कुब्जमें जो पुण्य होताहै ॥ ६ ॥ और कनखल व गङ्गासागरसङ्गममें जो पुण्यहै और सितासित व और तीर्थमें विशेषसे जो पुण्यहै ॥ ७ ॥ व अर्बुद व अमरपर्वतमें जो पुण्यहोताहै व गङ्गाआदि सब तीर्थसे मनुष्य जो फल पाताहै ॥ ८ ॥ इस तीर्थमें उसी प्रकार पुण्यको पाताहै इसमें कुछ संशय नहीं है व जो विधि और मन्त्रों से युक्त पितर व देवताओं का तर्पण करताहै ॥ ९ ॥ वहआगे व पछिवाले दशकुलों को तारताहै और पवित्र व सावधान होकर मनुष्य

दक्षिणा को भी देवे ॥ १० ॥ पहिले कहेहुये न्यासको कर फिर आखमें कहेहुये आठ मानसमन्त्रों से आठ फूलोंको देवे उन आठोंफूलोंको तुम सुनो ॥ ११ ॥ वारिज, सौम्य, आग्नेय, वायव्य, पार्थिव, वानस्पत्य व सातवां प्राजापत्य पुष्पहै ॥ १२ ॥ और आठवां शिवपुष्प है अब इनका निर्णय सुनो वारिज जलको जाने, मिठाई से युक्त दूध सौम्यहै ॥ १३ ॥ धूप व दीप आग्नेय है, चन्दनआदि वायव्य है, कन्द मूलआदि पार्थिवहै, फल वानस्पत्यहै ॥ १४ ॥ अन्नआदि प्राजापत्यहै और उपासना करने को शिवपुष्प कहते हैं अब और फूलोंको कहते हैं कि जीवोंका नहीं मारना पहिला फूलहै, इन्द्रियों का वश करना दूसरा ॥ १५ ॥ और तीसरा फूल दयाहै

ग्नेयं वायव्यं पार्थिवं पुनः ॥ वानस्पत्यं भवेत्पुष्पं प्राजापत्यन्तु सप्तमम् ॥ १२ ॥ अष्टमं शिवपुष्पं च शृण्वेतेषां विनिर्णयम् ॥ वारिजं सलिलं ज्ञेयं सौम्यं मधुयुतं पयः ॥ १३ ॥ आग्नेयं धूपदीपं च वायव्यं चन्दनादिकम् ॥ पार्थिवं कन्दमूलाद्यं वानस्पत्यं फलात्मकम् ॥ १४ ॥ प्राजापत्यमन्नाद्यश्च शिवपुष्पमुपासनम् ॥ अहिंसाप्रथमं पुष्पं पुष्पमिन्द्रियनिग्रहः ॥ १५ ॥ तृतीयं च दयापुष्पमेभिस्तुष्यन्ति देवताः ॥ तपसाचार्येन्द्रकृत्या अत्रतीर्थेनराधिप ॥ १६ ॥ छत्रञ्च चामरन्द चाच्छय्यांचोपानहौ तथा ॥ तेन पूजनमात्रेण पूजिताः पुरुषास्त्रयः ॥ १७ ॥ स्वर्गलोकैव सेतावद्यावदाहृतसंस्तवम् ॥ शूल तपाणेस्तु यो भक्त्या स्नपनञ्चैव कारयेत् ॥ १८ ॥ पञ्चामृतेन यश्चैव यत्न कर्हमकुङ्कुमैः ॥ समालभेच्च देवं श्रीखण्डे रगरादिभिः ॥ १९ ॥ नानाविधैश्च पुष्पैश्च अर्चा कुर्वन्ति ये द्विजाः ॥ रुद्रं पुरुषसूक्तञ्च लोकैः स्वस्वसूत्रकम् ॥ २० ॥ इषेत्वादिकमन्त्रादि ज्योतिर्ब्राह्मणमेव च ॥ गायत्री च मधुश्चैव मण्डलब्राह्मणमेव च ॥ २१ ॥ एतज्जपन्तु ये भक्त्या इन्हीं फूलोंसे देवता प्रसन्न होते हैं तपस्या व भक्तिसे हे नराधिप ! इस तीर्थमें पूजनकरे ॥ १६ ॥ और छाता, चैवर, पलंग और जूताका जोडा देवे इस पूजनमात्र से तीन पुरुष पूजेहोजाते हैं ॥ १७ ॥ और तबतक स्वर्गलोकमें रहता है कि जब तक प्रलय होता है और जो भक्तिसे महादेवजी को पञ्चामृत से स्नान कराता है और यत्न कर्हम, केसर, चन्दन और अन्नआदि से जो महादेवजी को लेपित करता है ॥ १८ ॥ व जो ब्राह्मण अनेकतरह के फूलों से पूजन करते हैं व संसार में जो रुद्रसूक्त व पुरुषसूक्त जपता है और अपने २ सूत्र ॥ २० ॥ इषेत्वाआदि मन्त्र, ज्योतिर्ब्राह्मण, गायत्री, मधुब्राह्मण, मण्डलब्राह्मण और देवव्रत नामका दैव्यसूक्त इन

यजुर्वेदीय रूतोंको जो भक्तियों जपते हैं वे पुरुष शिवके लोकको जातेहैं ॥ २१ ॥ २२ ॥ हे महाराज ! अगिले जमाने में बड़ा दुर्जय एक अन्धक नागका दैत्यहुआ वह बहुत कालतक बैठकर महादेवजी को प्रसन्न करताहुआ ॥ २३ ॥ तब प्रसन्नहुये भगवान् महादेवजीने अन्धक से कहा कि हे सुव्रत ! वर मागो तब वरको पाकर वह अन्धक दैत्य खुशीसे शीघ्रचला ॥ २४ ॥ उसके पुरमे सबलोग रत्नों से भरहुये पात्रों को लिये और अन्तों से युक्त पात्रोंको लिये सैकड़ों व हजारों स्त्रियां देखपड़ी ॥ २५ ॥ ब्राह्मणलोग मङ्गलशब्दों के सहित मन्त्रोंको पढ़ते हैं और मन्त्री व सेवक, राज्य, घोड़े, रथ और हाथियों के सहित राजाको ॥ २६ ॥ बढ़ाते हैं और जितने

यजुर्वेदसमुद्भवम् ॥ देवव्रतंनामदैव्यं पुरुषास्तत्पुरुंययुः ॥ २२ ॥ आसीत्पुरामहाराज अन्धकोनामदुर्जयः ॥ आराधयामासशिवं चिरकालमुपस्थितः ॥ २३ ॥ प्रसन्नोभगवान्देवो वरंयाचस्वसुव्रत ॥ वरंलब्ध्वातदादैन्योधावत्सहर्षतोऽन्धकः ॥ २४ ॥ पुरेजनाश्चदृश्यन्ते भाजनैरत्नपूरितैः ॥ साक्षतैर्भाजनैस्तस्य शतसाहस्रयोपितः ॥ २५ ॥ मन्वानपठन्तिविप्राश्च माङ्गल्यनिस्वनेनच ॥ भूषणामात्यभृत्यैश्च राज्याश्चरथदन्तिभिः ॥ २६ ॥ वर्द्धापयन्ति ते सर्वे येकेचित्पुरुवांसिनः ॥ हृष्टःपुष्टोवसंस्तत्र ससुरैर्नोभिभूयते ॥ २७ ॥ वरलब्धन्तुज्ञात्वा गीर्वाणाःशङ्कितास्तदा ॥ एकीभूताश्च ते सर्वे शक्रस्यशरणंययौ ॥ २८ ॥ समागतान्सुरान्दृष्ट्वा शक्रोवचनमब्रवीत् ॥ कथं समागतास्सर्वे यूयञ्चित्रिदिवौकसः ॥ २९ ॥ कथञ्चमयमुत्पन्नं कथयध्वंमहासुराः ॥ ३० ॥ देवाऊचुः ॥ मृत्युलोकैर्भवत्पापस्त्वन्धकोनामदुर्मदः ॥ ३१ ॥ तस्माच्चमयमापन्ना भवच्चरणमागताः ॥ एतस्मिन्नन्तरेरौद्रो दानवोवलदर्पितः ॥ ३२ ॥ एकाकीस्यन्दना

कुब्ज 'पुरवासी' हैं वे भी सब इसी कामको करते हैं इस प्रकार वह असुर हृष्टपुष्ट वहां रहता देवताओं से कभी नहीं हारता हुआ ॥ २७ ॥ वरको पायेहुये उस दैत्यको जानकर देवतालोग शङ्कितहुये तब वे सब एकत्रित होकर इन्द्रकी शरण जातेहुये ॥ २८ ॥ तब आयेहुये देवताओं को देखकर इन्द्र वचन बोले कि हे देवताओं ! तुम सबलोग क्यों आयेहो ॥ २९ ॥ हे उत्तम देवताओं ! तुमको कैसे भय पैदाहुआ सो कहो ॥ ३० ॥ तब देवतालोग बोले कि मनुष्यलोकमें एक बड़ापापी व बड़ा अहङ्कारी अन्धकनाम का असुर उत्पन्न हुआ है ॥ ३१ ॥ उससे डरेहुये हम सब आपकी शरण आयेहैं तबतक इसी अरसेमें बलसे गर्वित हो रहा भयानक दानव ॥ ३२ ॥ अकेला

रथपर सवार, अनेक अस्त्रोंसे युक्त अन्धकासुर हे राजशार्दूल ! इन्द्रकी पुरीको जाताहुआ ॥ ३३ ॥ जोकि सोनेके शहरपनाह से युक्त व अनेक मन्दिरों से शोभित और हे पार्थिवसत्तम ! शत्रुओं के जाने को सदा बड़ी काठिन है ॥ ३४ ॥ सो ऐसी उस पुरीमें लीलापूर्वक अपने घरकी नाई वह असुर प्रवेश करताहुआ तदनन्तर उठकर इन्द्रने उसे अपना आसन दिया ॥ ३५ ॥ तब अन्धक उस इन्द्रके शुभ आसनपर बैठताहुआ तब इन्द्र बोले कि यहां आपका आगमन क्यों हुआ और आप का क्या कार्य है सो मुझसे कहो ॥ ३६ ॥ हे दानव ! जो मेरे धन है वह मैं तुम्हें देऊंगा तब अन्धक बोला कि मैं धन, हाथी व घोड़ों को नहीं चाहताहूं ॥ ३७ ॥

रूढ आयुधैर्विविधैर्युतः ॥ अन्धकोराजशार्दूल ययौशक्रपुरीन्ततः ॥ ३३ ॥ स्वर्णप्राकारसंयुक्तां शोभितांविविधैर्गृहैः ॥ दुर्गमांशत्रुवर्गस्य सदापार्थिवसत्तम ॥ ३४ ॥ प्रविवेशासुरस्तत्र लीलयास्वगृहंयथा ॥ समुत्थायततश्शक्रस्वकीयञ्चासनन्ददौ ॥ ३५ ॥ उपविष्टोन्धकस्तत्र शक्रस्यैवासनेशुभे ॥ शक्रउवाच ॥ किंवोह्यागमनंचात्र किंकार्यंकथयस्वमे ॥ ३६ ॥ यदस्मदीयंवित्तञ्च तत्तेदास्यामिदानव ॥ अन्धकउवाच ॥ नचाहं कामयेवित्तं नगजान्नतुरङ्गमान् ॥ ३७ ॥ स्वकीयन्दर्शयस्वाद्य स्वर्गशृङ्गारभूमिकम् ॥ ऐरावतंमहानागं सैन्धवोच्चैःश्रवोहयम् ॥ ३८ ॥ उर्वश्यादीनिसर्वाणि वा दिवत्रितयानिच ॥ अन्यास्स्वीयाविभूतीश्च दर्शयस्वशर्चापते ॥ ३९ ॥ तस्यैतद्वचनंश्रुत्वा शक्रोपिभयविक्षलः ॥ सर्वाणिचपदार्थानि दर्शयामासचान्धकम् ॥ ४० ॥ तदागत्यसुरैःसार्द्धं यत्नगन्धर्वकिन्नरैः ॥ नृत्यनृत्यप्सरसस्तत्र वादित्रैर्विविधैर्नृप ॥ ४१ ॥ तत्तस्यविभ्रमच्चित्तन्हृष्ट्वाप्यप्सरसस्तदा ॥ तेनदेवगणास्सर्वे त्रस्ताःपार्थिवसत्तम ॥ ४२ ॥ संग्रा

मुझको आज अपने स्वर्गके शृङ्गाररूप पदार्थोंको दिखावो बडा हाथी ऐरावत व समुद्रते प्राप्त उच्चैःश्रवा घोडा ॥ ३८ ॥ व उर्वशीआदि सब अप्सरायें तीनों प्रकारका त इन्द्रा और हे शर्चापते ! और भी अपनी विभूतियों को दिखावो ॥ ३९ ॥ उसके इस वचन को सुनकर इन्द्रभी भयसे घबडागये और सब पदार्थों को अन्धक को दिखाया ॥ ४० ॥ तब देवता, यक्ष, गन्धर्व और किन्नरों के सहित आकर हे नृप ! अनेक वाजाओं के साथ वहा अप्सरायें नाचनेलगी ॥ ४१ ॥ तदनन्तर अप्सराओंको

देखकर उसका चिच मोहित होगया तब हे पार्थिवसत्तम ! इसकारण से सर्व देवता डरगयो ॥ ४२ ॥ फिर वहां चक्र और वज्रसे शत्रुओंको डरावनी आनेक तरहकी लड़ाइयों से सब देवता विकल व बहुत से नष्ट करदियेगये ॥ ४३ ॥ आदित्य और मरुत् आदि देवता संग्राममण्डल में हारगये जैसे सिंहके पक्षसे मारेहुये जङ्गलीजीव वन में भागें ॥ ४४ ॥ इसीतरह उस एक दैत्यसे वे सब देवता भगा दियेगये फिर अपने बलसे देशों व गांवोंमें प्रजाओं को निरन्तर पीड़ित करताहुआ ॥ ४५ ॥ जबरदस्तीसे दूध, शक वैसेही वस्त्रोंको छीनलिया प्रजाओं के लेशमें लगाहुआ वह असुर उनके सम्मान की बातभी नहीं कहता ॥ ४६ ॥ फिर वह दानव इन्द्रकी स्त्री

मैर्विविधैस्तत्र चक्रवज्राग्निमीषणैः ॥ सन्तापितास्सुरास्सर्वेक्षयनीताह्यनेकशः ॥ ४३ ॥ आदित्यमरुताद्याश्च भग्ना
संग्राममण्डले ॥ यथामिहकराक्रान्ताः श्वापदाव्यचरन्वने ॥ ४४ ॥ तद्वदेकेनतेदेवाः कृतास्सर्वेपराङ्मुखाः ॥ बला
देशेषुग्रामेषु प्रजाःपीडयतेऽनिशम् ॥ ४५ ॥ आकम्प्यगृह्यतेक्षीरं शकंवासस्तथैवच ॥ नसम्मानेवचस्तेषां प्रजास
न्तापनेरतः ॥ ४६ ॥ गृहीत्वाशक्रमार्याञ्च दानवोपिगृहङ्गतः ॥ ततःसुराश्चशक्रश्च ब्रह्माणंशरणंययुः ॥ ४७ ॥ गजैश्च
पर्वताकारैरश्वैश्चैवगजोपमैः ॥ स्यन्दनैर्गगनाकारैस्सिंहशार्दूलयोजितैः ॥ ४८ ॥ कच्छपैर्मकरैश्चापि मृगमैषैस्तथो
रगैः ॥ ब्रह्मलोकमनुप्राप्ता देवाश्चेन्द्रपुरोगमाः ॥ ४९ ॥ दृष्ट्वापद्मोद्भवन्देवं प्रणम्येशंप्रतुष्टुवुः ॥ जयदेवजगन्नाथज
यसम्भूतिकारक ॥ ५० ॥ पद्मयोनेसुरश्रेष्ठत्वामेवशरणङ्गताः ॥ सोढुंगंभाषितंश्रुत्वा देवानांभावितात्मनाम् ॥ ५१ ॥ मेघग
म्भीरयावाचा ब्रह्माप्रोवाचवासवम् ॥ किंवाह्यागमनन्देवास्सर्वेषांवैविवर्णता ॥ ५२ ॥ केनावमानितास्सर्वे तत्सर्वमेनिवे
को लेकर अपने घरको चलागया तब देवता और इन्द्रब्रह्माजीकी शरणगये ॥ ४७ ॥ पर्वत ऐसे हाथी, हाथी ऐसे घोड़े, सिंह और शार्दूलोसे जुतेहुये आसमान ऐसे रथ ॥
४८ ॥ कछुये, मगर, हन्ना, मेढ़ा और सर्पोंसे इन्द्रआदि देवता ब्रह्मलोक को प्राप्त हुये ॥ ४९ ॥ और देवता व ऐश्वर्यवान् ब्रह्माजी को देख व नमस्कारकर स्तुतिकरते
हुये कि हे जगन्नाथ ! हे सम्भूतिकारक ! हे देव ! आपकी जयहो २ ॥ ५० ॥ हे पद्मयोने ! हे सुरश्रेष्ठ ! हमलोग आपही के शरण आयेहैं आत्मा के जाननेवाले
देवताओं के घचडाहट सहित वचन को सुनकर ॥ ५१ ॥ मेघोंकीर्सी गहगही आवाजसे ब्रह्माजी इन्द्र से बोले कि हे देवताओ ! तुम सबोंका आगमन क्यों हुआ और

तुम सब तेजरहित क्यों होगयेहो ॥५२॥ किसने तुम सबका अपमान किया है सो सब सुझसे कहो तब देवता बोले कि बलसे अभिमान को प्रातहोरहा नामसे अधिक ऐसे नामका एक दानव हुआ है ॥५३॥ उसीने सब देवताओं को धन व रत्नों से खाली कर दिया है हे नाथ ! फरसा, चक्र, तलवार और तोमरों से देवताओं को मारकर ॥ ५४ ॥ इन्द्रकी स्त्रीको जबरदस्ती लेकर वह दानव चला गया तदनन्तर लोकों के पितामह भगवान् ब्रह्माजी उनके वचनको सुनकर उस राजसकी मृत्युका विचार करने लगे कि यह पापी दानव सब देवता व दैत्यों से मारा नहीं जासकता है ॥ ५५ ॥ फिर इन्द्रआदि सब देवता विष्णुजीकी स्तुति करतेहुये कि हे देवदेवेश ! आप

द्यताम् ॥ देवाउचुः ॥ अन्धकोनामनाम्नेति दानवोवलदपितः ॥ ५३ ॥ तेन देवगणस्सर्वे धनरत्नैर्विवर्जिताः ॥ हत्वा देवगणान्नाथ पशुचक्रासितोमरैः ॥ ५४ ॥ गृहीत्वाशक्रमायुर्वै दानवोविजतोवलात् ॥ ततःश्रुत्वावचस्तेषां ब्रह्मालो कपितामहः ॥ ५५ ॥ चिन्तयामासभगवान्वधन्तस्यतुरक्षसः ॥ अवध्योदानवःपापस्सर्वैरपिसुरासुरैः ॥ ५६ ॥ ततःप्रतुष्टुवुस्सर्वे देवाश्शक्रपुरोगमाः ॥ जयत्वंदेवदेवेश लक्ष्म्याचार्यशरीरवान् ॥ ५७ ॥ आशुरक्षयदेवेश तस्मात्तेशरणं ताः ॥ जनार्दनउवाच ॥ स्वागतं वोमहाभागा ब्रुवताञ्चैवस्वागतम् ॥ ५८ ॥ किङ्कार्यप्रोच्यतां सर्वं कारण्यन्मयेप्सितम् ॥ पराभवःकृतोयेन सगच्छतुयमालयम् ॥ ५९ ॥ एवमुक्तास्सुरास्सर्वे कथयन्तिस्मत्तत्त्वतः ॥ प्रदर्शयन्तिचाङ्गानि वेपमानास्त्वधोमुखाः ॥ ६० ॥ हतराज्याःकृतानाथ अन्धकेनपराजिताः ॥ ६१ ॥ पितेवपुत्रान्परिरचदेव जहीहशत्रुं

लक्ष्मी से आधे शरीरवाले हो तुम्हारा जयहो ॥ ५७ ॥ हे देवेश ! बहुत जल्दी आप रक्षाकरो इसी से हम आपके शरण आये है तब विष्णुजी बोले कि हे बडभागियो ! तुम्हारा आना बहुत अच्छाहुआ अपने आनेका प्रयोजन कहो ॥ ५८ ॥ क्या कार्य है जिसकी हमसे इच्छा करतेहो सो सब कारण कहो जिसने तुम्हारा पराजय किया है वह यमलोक को जावे ॥ ५९ ॥ ऐसे कहेगये सब देवता ठीक २ सब वृत्तान्त को कहतेहुये औ नीचेको मुहं कियेहुये व कांपतेहुये अपने अङ्गोंको दिखातेहैं ॥ ६० ॥ और कहते हैं कि हे नाथ ! अन्धक ने हमारी राज्यको हरलिया और हमको पराजित किया है ॥ ६१ ॥ इससे हे देव ! इस लोकमें पुत्रोंकी पिताकी

बाणको छोड़ा है यह किस पुरुषकी शक्ति है कौन यमलोकको जायगा ॥७॥ तदनन्तर क्रोधसे भरा हुआ अन्धक चले हुये बाणकी राहसे आरहा युद्धके मार्गमें खड़े हुये त्रिणुदेवको देखकर उनसे अन्धक बोला कि ॥८॥ हे हरे ! अब यहां हमारी दृष्टिसे देखे गये तुम कल्याणको नहीं प्राप्त होवोगे जैसे शार्दूलसे लीलगाव नहीं जीतसक्ता है वैसेही तुम समर्थ नहीं होसकेहो ॥ ९ ॥ और जैसे बिलारका भोजन चूहा आयाहो इसीतरह मेरे सामने तुम खड़ेभीहो पर कुछ सामर्थ्य नहीं करसकेहो ॥१०॥ तदनन्तर इन्द्रयुद्धके देनेवाले, शङ्ख, चक्र और गदाके धरनेवाले, चारभुजाओं से शोभित हो रहे देवदेवेश ॥११॥ गदाधर देवको देखकर पृथिवीमें साष्टाङ्ग प्रणाम करता हुआ

न्धकः कोपयुक्तो बाणमार्गस्यसंचरन् ॥ दृष्ट्वा युद्धपथे प्राप्ते देवं तच्चान्धको ब्रवीत् ॥ ८ ॥ न शर्ममप्राप्नुषे चात्र मम दृष्ट्या निरीक्षितः ॥ तथानशक्नुषे त्वन्तु शार्दूलाद्भवयो हरे ॥ ९ ॥ आगतं च यथाभक्ष्यं मार्जारस्य च भूषकम् ॥ तथानशक्नुषे त्वन्तु संस्थितोऽपि ममाग्रतः ॥ १० ॥ ततस्तु देवदेवेशं शङ्खचक्रगदाधरम् ॥ चतुर्भुजावदात्तञ्च इन्द्रयुद्धप्रदायिनम् ॥ ११ ॥ दृष्ट्वा गदाधरं देवं साष्टाङ्गं प्रणतोऽसुवि ॥ अन्धक उवाच ॥ जयकृष्ण परस्त्वं हि विष्णो जिष्णो नमोनमः ॥ १२ ॥ हृषीकेशाय के शाय जगद्धात्रे च्युताय च ॥ नमः पङ्कजनाभाय नमः पङ्कजमालिने ॥ १३ ॥ जनार्दनाय देवाय पीताम्बर धराय च ॥ गोविन्दाय नमो नित्यं नमश्चोदधि शायिने ॥ १४ ॥ नमः करालवक्राय नृसिंहाय निनादिने ॥ शार्ङ्गिणे स्मितवक्राय शङ्खचक्रगदाभुते ॥ १५ ॥ नमो वामनरूपाय क्रान्तलोकत्रयाय च ॥ नमो वराहरूपाय यज्ञरूपाय तेन

अन्धक बोला कि हे कृष्ण ! आपकी जयहो आपही परमात्माहो इससे हे विष्णो ! हे जिष्णो ! आपके लिये बार २ नमस्कार है ॥१२॥ इन्द्रियोंके स्वामी, ब्रह्मा व शिव का रूप, जगत के पालनेवाले, नाशरहित, कमलनाभ व कमलों की मालावाले के लिये बार २ नमस्कार है ॥ १३ ॥ पीले वस्त्र धारण करनेवाले, जनार्दन, गोविन्ददेव के लिये नित्यही नमस्कार है और समुद्रमें सोनेवाले के लिये नमस्कार है ॥ १४ ॥ डरावने मुखवाले के लिये नमस्कार है गर्जनेवाले नृसिंह व सुसज्जित मुखवाले व शार्ङ्गधनुषवाले व शङ्ख, चक्र और गदाके धरनेवाले के लिये नमस्कार है ॥ १५ ॥ तीनों लोकोंके नापनेवाले वामनरूप के लिये नमस्कार है वराहरूप व

यज्ञरूप आपके लिये नमस्कार है ॥ १६ ॥ हे वासुदेव ! आपके लिये नमस्कार है कैटभदैत्यके नाश करनेवाले के लिये नमस्कार है हे सुरनायक ! हे ईश ! वसुदेवजी के पुत्र जो आपहो तिनके लिये नमस्कार है ॥ १७ ॥ हे विष्णु ! हे देवाधिदेवेश ! हे जगत के पालनेवाले ! हे प्रजापते ! जो लोग आपको प्रणाम करते हैं उनके लिये भी नमस्कार है ॥ १८ ॥ सब जीवोंके देवता, वसुदेव के पुत्र, बुद्धिवाले, यज्ञवराहरूप, बड़े तेजवाले, विष्णु आपके लिये नमस्कार है ॥ १९ ॥ वं गुणोंके लिये भी नमस्कार है ॥ २० ॥ हम आपसे प्रसन्न हैं इससे अपने मनमाने वरको तुम मागो ॥ २० ॥ मागतेहुये रचनेवाले आपके लिये बार २ नमस्कार है तब भगवान् बोले कि हे दानवेन्द्र ! हम आपसे प्रसन्न हैं इससे अपने मनमाने वरको तुम मागो ॥ २० ॥ मागतेहुये

मः ॥ १६ ॥ वासुदेवनमस्तुभ्यं नमः कैटभनाशिने ॥ वसुदेवसुतश्चेश नमस्तेसुरनायक ॥ १७ ॥ विष्णोर्देवाधिदेवेश जगद्धातः प्रजापते ॥ प्रणामंयेपिकुर्वन्ति तेभ्यश्चापिनमोनमः ॥ १८ ॥ समस्तभूतदेवाय वासुदेवायधीमते ॥ तस्मै य ज्ञवराहाय विष्णवेऽमिततेजसे ॥ १९ ॥ गुणानां हि विधानाय नमस्तेस्तु पुनः पुनः ॥ देव उवाच ॥ तुष्टो ह्यहं दानवेन्द्र वरं दृणुयथेप्सितम् ॥ २० ॥ ददामि ते वरं चाद्य याचमानस्य साम्प्रतम् ॥ अन्धक उवाच ॥ यदि तुष्टोऽसि मे देव वरं दातुमिह च्छसि ॥ २१ ॥ तदा ददस्व मे देव युद्धं परमशोभनम् ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ कथं ददामि ते युद्धं तोषितो हन्त्वया पुनः ॥ २२ ॥ न त्वाम् प्रतिभवेत्कोपः कथं युध्येह मन्धक ॥ यदि ते वते बुद्धियुद्धम् प्रतिन संशयः ॥ २३ ॥ तर्हि त्वंगच्छ शीघ्रं वै देवम् प्रति महेश्वरम् ॥ अन्धक उवाच ॥ प्रसादात्तस्य देवस्य विजयी भुवनत्रये ॥ २४ ॥ कथं युद्धं चरेतेन शङ्करेण वदस्व नः ॥ एतच्छ्रुत्वा दानवस्य भगवानब्रवीदिदम् ॥ २५ ॥ अहं ते कथयिष्यामि येन युद्धन्त्वया सह ॥ कैलासशिखरं गृह्य ध्रुत्वं च पु

तुमको आज अभी हम वरदेते हैं तब अन्धक बोला कि हे देव ! जो आप मुझसे प्रसन्न हो और यहां वर देने की इच्छा करते हो ॥ २१ ॥ तो हे देव ! बहुत अच्छा युद्ध मुझे देवों तब श्रीभगवान् बोले कि तुमने हमको प्रसन्न किया है इससे हम तुमको युद्ध कैसे देंगे ॥ २२ ॥ हे अन्धक ! तुम्हारे ऊपर हमको क्रोध नहीं होता है हम कैसे तुमसे लड़ें परन्तु जो तुम्हारी बुद्धि निरस देह युद्ध ही को चाहती है ॥ २३ ॥ तो तुम महादेवजीके पास शीघ्र जावो तब अन्धक बोला कि उन्हीं महादेवजीके प्रसादमे तो हम तीनों लोकों में जीतनेवाले हैं ॥ २४ ॥ इससे उन्हीं महादेवजी के साथ हम युद्ध कैसे करेंगे तो आप हमसे कहो दानव के इस वचन को सुनकर भगवान् बोले

कि ॥ २५ ॥ हम उस युक्तिको तुमसे कहेंगे जिससे तुम्हारे साथ युद्धहोवे कि तुम कैलास के शिखरको पकड़कर उसे बार २ हिलाओ ॥ २६ ॥ उस पर्वत के हिलने पर तीनोंलोक हिलनेलगे और टूटीहुई अनगिन्ती पर्वतकी चोटिया गिरनेलगी ॥ २७ ॥ और हे राजन् ! चारोंसमुद्र सब तरफसे एक होगये और विहार करतेहुये पार्वती सहित महादेवजी ॥ २८ ॥ कापतेहुये व पार्वती सहित शङ्करजी गिरे तब बड़ी जोरसे महादेवजीको लिपटकर पार्वतीजी वचन बोली ॥ २९ ॥ कि पर्वत क्यों कांपताहै और पृथिवी क्यों कापतीहै व सातों पाताल व सातों स्वर्ग क्यों कापते हैं ॥ ३० ॥ हे देव ! क्या प्रलय आगया सो आप हमसे कहनेको योग्यहो तब महादेवजी बोले कि

नःपुनः ॥ २६ ॥ धुनितेपर्वतेतस्मिन्कम्पितम्भुवनत्रयम् ॥ पतन्तिशिखराणि शीर्यमाणान्यनेकशः ॥ २७ ॥ चत्वारस्सागरराजन्नेकीभूताः समन्ततः ॥ उभयासहितोरुद्रो विषयासक्तचेतनः ॥ २८ ॥ कम्पमानश्चपतितः पार्वत्या सहशङ्करः ॥ गढमालिङ्गयदेवेशमुमावचनमब्रवीत् ॥ २९ ॥ किमर्थं कम्पते शैलः कथं वै कम्पते धरा ॥ पातालानितुसमै व कम्पते स्वर्गसप्तकम् ॥ ३० ॥ किंवायुगक्षयोदेव तन्ममाख्यातुमर्हसि ॥ महेश्वर उवाच ॥ कस्यैपाहुर्मतिर्जाता अपि पार्श्वचरस्यनुः ॥ ३१ ॥ ललाटे चेदयं भग्नः प्रयास्यतियमालयम् ॥ कैलासे संस्थितो ध्याने सुप्तो हम्प्रतिबोधितः ॥ ३२ ॥ वधिष्ये तं न सन्देहो षण्मुखो वा भवेद्यदि ॥ ततः सचिन्तयामास जानातीत्यन्धकोप्ययम् ॥ ३३ ॥ उपायं सूचयामास स्थिताश्च के केचित्तु एण्डाग्रसंस्थिताः ॥ ३४ ॥ रथं देवमगंकृत्वा सर्वलक्षणसंयुतम् ॥ केचिद्देवाः हमारे समीप रहनेवाले किस मनुष्यकी यह दुर्बुद्धि होगई है ॥ ३५ ॥ जो यह माथेपर साराजावे तो यमलोकको जावेगा कैलासमें ध्यानमें स्थित सोतेहुये हम जगादिये गये ॥ ३६ ॥ इसमें उसको हम मारेगे चाहे स्वामिकात्तिकेय क्यों न हो इसमें कुछ सन्देह नहीं है तदनन्तर उन महादेवजीने विचारा और जाना कि यह अन्धकहे ॥ ३७ ॥ फिर महादेवजी ने उरा उपायको सोचा कि जिसने यह क्षणमात्र में मरजावे तदनन्तर इन्द्र व ब्रह्मा आदि देवता आतेहुये ॥ ३८ ॥ और सब लक्षणों से युक्त देवताओं सही रथको बनाया कोई देवता चको म स्थितहुये कोई रथकें अगिले हिस्सेमें स्थित हुये ॥ ३९ ॥ हे राजन् ! कोई धुरामें, कोई रथके जुवाकी डोरियोंमें, कोई दण्डाओं

में, कोई ध्वजमें और कोई अन्यत्रभी लगे ॥ ३६ ॥ इस प्रकार देवमय रथको बनाकर जगत् के मालिक महादेवजी उसपर चढ़े और बड़े क्रोधसे जहां वह दानव था वहांको गये ॥ ३७ ॥ और दानवों को मारा जैसे आकाश में सूर्य तपे उस काल में वहां सूर्य व चन्द्रमा व दिशायें नहीं दीखतीहुई ॥ ३८ ॥ तदनन्तर दानव राजाने आग्नेयश्रद्धा को जोड़ा उससे निकलेहुये बाणोंसे सब देवमण्डल जलनेलगा ॥ ३९ ॥ इस प्रकार बाणों से जलतेहुये देवता महादेवजी की शरण आये तदनन्तर महादेवजी ने वारुण श्रद्धा को छोड़ा ॥ ४० ॥ उसी वारुणश्रद्धा से आग्नेयश्रद्धा बुझगया हे नृपोत्तम ! तदनन्तर दानव ने वायव्यश्रद्धा को छोड़ा ॥ ४१ ॥ तब क्रोधसे

न्यत्रसंस्थिताः ॥ ३६ ॥ एवं देवमयं कृत्वा समारूढो जगत्प्रभुः ॥ निर्ययौ दानवो यत्र क्रोधेनापि महेश्वरः ॥ ३७ ॥ दानवानर्हयामास आकाशञ्चांशुमानिव ॥ न तत्र दृश्यते सूर्यो न काष्ठान च चन्द्रमाः ॥ ३८ ॥ ततो दानवराजेन आग्नेयास्त्रं सुयोजितम् ॥ दह्यमानं शरैस्तत्र सर्वगीर्वाणमण्डलम् ॥ ३९ ॥ दह्यमानां शरैश्चैवं देवं शरणमाययुः ॥ ततो देवाधिदेवेन वारुणास्त्रं विसर्जितम् ॥ ४० ॥ वारुणास्त्रेण तेनैव आग्नेयास्त्रं प्रशामितम् ॥ दानवेन ततो मुक्तं वायव्यास्त्रं नृपोत्तम ॥ ४१ ॥ पन्नगास्त्रं च देवोपि कोपाविष्टः प्रमुक्तवान् ॥ मारुतो भक्षितस्सर्पैः क्रोधाविष्टैर्न संशयः ॥ ४२ ॥ दानवेन तदा मुक्तं गरुडास्त्रं वलीयसा ॥ तेन तच्छतधानीतं पन्नगास्त्रं न दृश्यते ॥ ४३ ॥ ततो देवाधिदेवेन नारसिंहं विसर्जितम् ॥ अस्त्रैरस्त्राणिसंवार्य युध्येते च परस्परम् ॥ ४४ ॥ समं युद्धमभूत्तात सुरासुरभयङ्करम् ॥ चक्रेणालीकनाराचैस्तोमैः खड्गमुद्गरैः ॥ ४५ ॥ वत्सदन्तैस्तथा भल्लैः कर्णिकरैश्च शोभनैः ॥ एवं न शक्यते हन्तुं दानवैर्विविधायुधैः ॥ ४६ ॥ ततो दंष्ट्रा

भरेहुये महादेवजीने भी नागबाणको छोड़ा तब छूटतेही क्रोधसे भरेहुये सर्प हवाको पीगये इसमें सन्देह नहीं है ॥ ४२ ॥ तब जबरदस्त दानवने गरुड़ अस्त्र को चलाया उसने उस नागबाण के सैकड़ों टुकड़े करदिये कि वह अस्त्रहीन देखपड़ा ॥ ४३ ॥ तदनन्तर देवाधिदेव (महादेवजी) ने नारसिंह अस्त्रको छोड़ा ऐसे अस्त्रोंसे शत्रुको काटकर आपस में लड़ते रहे ॥ ४४ ॥ हे तात ! देवता और दैत्योंको भय करानेवाला वह युद्ध बराबर हुआ इस प्रकार चक्र, शर्मा, शूल, मोगदर, वत्सदन्त,

भाला और सुहावने कर्णिकार अस्त्रोंसे जब अनेक तरह के अस्त्रवाले दानवों के कारण वह न मारा जा सका ॥ ४५ ॥ तब डाढ़ ऐसे डरावने खड्ग व बाण व तोमरों से युद्ध हुआ अपनी सासुको देखकर शरमाती हुई नीचे को मुँह किये हुये जैसे गौड़वधू जावे और किसीको न छुवे इसी तरह सब अस्त्र दोनों वीरोंके अङ्गोंको नहीं छूते हैं तब सब अस्त्रोंको छोड़कर दोनों बाहुयुद्ध करते हुये ॥ ४७ ॥ हाथोंसे हाथोंको पकड़कर मूर्खियों से मारते हुये हाथोंसेही आपसमें युद्ध करते हैं ॥ ४९ ॥ दानव भी उन महादेवजीको काखमें मारा तब महादेवजी चेष्टारहित होकर मूर्च्छित हो गये ॥ ५० ॥ महादेवजीको मूर्च्छित जानकर दामव अन्धकासुर चिन्ता करता

करालेन खड्गनाराचतोमरैः ॥ इव शून्टं द्वायथायाति लज्जमाना ह्यधोमुखी ॥ ४७ ॥ न संस्पृशन्ति गात्राणि शस्तागौ
 डवधूर्यथा ॥ आयुधानिततस्त्यक्त्वा बाहुयुद्धमुपस्थितौ ॥ ४८ ॥ करैः करांस्तु संगृह्य प्रहरन्तौ हि मुष्टिभिः ॥ बन्धैः करप्र
 हाराद्यैर्बुध्यते स्म परस्परम् ॥ ४९ ॥ दानवोपि च तन्देवं कृत्वा न्तरमपीडयत् ॥ निश्चेष्टश्च तदा देवो मूर्च्छितस्तु मेह इव
 रः ॥ ५० ॥ मूर्च्छार्णगतन्तुं ज्ञात्वा चिन्तयामास दानवः ॥ हाहा कष्टं कृतं वाद्य पापेन च दुरात्मना ॥ ५१ ॥ किन्तु कार्थं
 मया चात्र कथं वापि ब्रजाम्यहम् ॥ तं गृहीत्वाथ देवेशं गतः कैलासपर्वतम् ॥ ५२ ॥ सुक्त्वा शयानमुच्चैतमन्धकोपिय
 यौ क्षणात् ॥ ततस्स चेत्तनो भूत्वा देवदेवो मेह इव ॥ ५३ ॥ यावत्पश्यति चात्मानं स्वकीये भवने स्थितम् ॥ तावत्स चिन्त
 यामास पराभूतो दुरात्मना ॥ ५४ ॥ क्रोधे वेगसमाविष्टो निर्ययौ दानवम् प्रति ॥ आयसंलगुण्डं गृह्य प्रभुर्मारसहस्रकम् ॥
 ५५ ॥ दानवं दृष्टवान् देवो प्राक्षिपत्तस्य मूर्धनि ॥ खड्गेन ताडयामास दानवः प्रहसन्नग्रे ॥ ५६ ॥ गृहीत्वा देवदेवेशः कौवे

हुआ और कहा कि हाय २ मैं दुरात्मा पापीने आज बड़ा कष्टवाला काम किया ॥ ५१ ॥ अब यहाँ मुझको क्या करना चाहिये और मैं कैसे जाऊँ फिर उन महादेवजी को लेकर कैलास पर्वत को गया ॥ ५२ ॥ सोते हुये बेहोश महादेवजीको छोड़ अन्धक उसी क्षणमें चला गया तदन्तर देवोंके देव महादेवजी भी होशमें होकर ॥ ५३ ॥ जब तक अपने को देखे तब तक अपने मन्दिर में अपने को पड़ा देखा तब आपने विचारा कि हम उस दुरात्मासे पराजित हो गये ॥ ५४ ॥ फिर क्रोधके वेगसे भरे हुये प्रभु महादेवजी दानव के समीप जाते हुये हजार भारवाले लोहे के दण्डको लेकर दानवभी हँसता हुआ संग्राम में खड्गसे

महादेवजीको मारा ॥ ५५ ॥ तब महादेवजी उत्तम कौबेरबाणको लेकर उमीक्षण उसके हृदय में जलतेहुये बाणसे मारा ॥ ५७ ॥ तदनन्तर वहा रक्तको उगलरहा वह दानव औंधे मुँहवाला हाकर त्रिशूलसे फाड़ दियागया तदनन्तर ॥ ५८ ॥ त्रिशूल की नोकसे घाग्रल पापी अन्धक चाककी तरह चक्कर खानेलागा तब उसकी देहसे जो रक्तकेवूँद जमीनमेंगिरे ॥ ५९ ॥ उन रक्तके वूँदोंसे शस्त्रोंको हाथोंमें लियेहुये पापी दानव उत्पन्न होगये तदनन्तर दानवों से महादेवजी बार २ व्याकुल होतेहुये ॥ ६० ॥ तब महादेवजी ने भयानक कालीदेवी का स्मरण किया स्मरण करतेही दशहजार हथियारों से युक्त कालीदेवीजी आगई ॥ ६१ ॥ औरबड़ी डाढ़ोवाजी, भारी रंवाणमुत्तमम् ॥ हृदयेताडयामासं ज्वलितेनचतत्तत्तणात् ॥ ५७ ॥ ततस्सदानवस्तत्र रुधिरोग्दारमुद्गिरन् ॥ अधोमु खस्ततोभूत्वा शूलेनविदलीकृतः ॥ ५८ ॥ शूलाग्रविचतःपापश्चक्रवद्भ्रमततदा ॥ येतुभूमौपतन्तिस्म देहतोरक्त विन्दवः ॥ ५९ ॥ तेभ्यउदभवन्पापा दानवाःशस्त्रपाणयः ॥ व्याकुलश्चततोदेवो दानवैश्चपुनःपुनः ॥ ६० ॥ देवेनसंस्मृ तादुर्गां चामुण्डाभीषणातदा ॥ आगताभीषणादेवी आयुधायुतसंयुता ॥ ६१ ॥ महादंष्ट्रामहाकाया पिङ्गाक्षीलम्बक णिका ॥ उवाचदेवीदेवेशं समादिशमहेश्वर ॥ ६२ ॥ देवउवाच ॥ पिवत्वंरुधिरंभद्रे यथेष्टदानवस्यच ॥ पतितंचष्टथि न्यान्तु दुर्गेयत्नादृगृहाणतत् ॥ ६३ ॥ दानवस्यवधेचाद्य सहायंकर्तुमहंसि ॥ ततोहताश्चतेसर्वे खड्गेनापिसहस्रशः ॥ ६४ ॥ अन्धकोपिचतान्दृढा दानवान्निधनङ्गतान् ॥ ततोवाग्भिस्सुपुष्टाभिस्स्तुवन्देवंमहेश्वरम् ॥ ६५ ॥ तिष्ठतिष्ठेति देवेशं चण्डीम्प्रतिमहाबलः ॥ शूलविचतरन्ध्रेण रक्तैस्त्रैर्वीर्यरयान्बहु ॥ ६६ ॥ पृथिवीपूरयामास चतुस्सागरमेखलाम् ॥ देहवाली, लालनेत्रवाली, लम्बेकानोवाली काली-महादेवजीसे कहा कि हे महेश्वर ! आज्ञाकरो ॥ ६२ ॥ तब महादेवजीबोले कि हे दुर्गे ! हेभद्रे ! पृथिवी में गिरेहुये दानव के रक्तको तुम यथेष्ट पीवो और उसको यत्नमें ग्रहण करो ॥ ६३ ॥ आज दानवके मारनेमें सहायकरनेको तुम योग्य होतीहो तदनन्तर उन सब हजारों दानवोंको देवीजीने तलवार से मारडाला ॥ ६४ ॥ अन्धकभी मृत्युको प्राप्तहुये उन दानवोंको देखकर सुन्दरवाणियों से महादेवजी की स्तुति करताहुआ ॥ ६५ ॥ और त्रिशूलके घात्रसे बहुत रक्तको बहाताहुआ, बड़े बलवाला, अन्धक महादेव और देवीसे खड़ेरहो २ कहताहुआ ॥ ६६ ॥ चारों समुद्रतक पृथिवी को रक्त से भरदिया महादेव के त्रिशूल

में बिदाहुआ इसी से आकाश में लटकरहा ॥ ६७ ॥ महादेवकरके अपने कन्धेपर धर लियागया रक्तके समूह को बरसरहा अन्धकासुरने अपने रक्तमें पर्वत व जलों और जङ्गलों के सहित सब पृथिवी को भरदिया ॥ ६८ ॥ महादेवजी रक्त से करिहोवतक डूबगये फिर वह रक्त महादेवजी की छातीतक आगया ॥ ६९ ॥ तब सब देवता व्याकुल हो दिशाओं में भागगये तब महादेवजी ने अपने शरीर के आठ अङ्गोंको घिसा ॥ ७० ॥ तब महादेवजी से आठ भैरव पैदाहुये भयानक डाढ़ोवाले, हाहाकार करते ॥ ७१ ॥ खप्पर, तलवार और कतरनीवाले, उन सब भैरवों से महादेवजी ने कहा कि तुम सब इस सम्पूर्ण रक्तको पीवो ॥ ७२ ॥ उन भैरवों ने अन्तरिक्षस्थितेनापि शूलान्त्रेसंस्थितेनच ॥ ६७ ॥ स्कन्धेधृतेनदेवेन रुधिरौघप्रवर्षिणा ॥ पृथिवीधूरितितेन सशैल वनकानना ॥ ६८ ॥ रुधिरैणकटियावंहारितोपिमहेश्वरः ॥ ततोहृदयपर्यन्तं देवस्यचसमागमत ॥ ६९ ॥ व्याकुलाश्चततोदेवाः प्रणष्टाश्चदिशंगताः ॥ सतुस्वस्यशरीरस्य अङ्गान्यष्टौव्यमर्दयत् ॥ ७० ॥ अष्टौभैरवरूपाश्च समुत्पन्नामहेश्वरात् ॥ दंष्ट्राकरालिनस्सर्वे हाहाकारम्प्रकुर्वतः ॥ ७१ ॥ खर्परग्रायकरास्सर्वे खल्लिनः कर्तिनस्तथा ॥ पिवन्तुरुधिरं सर्वमित्याहपरमेश्वरः ॥ ७२ ॥ पीतन्तुतैश्चरुधिरं क्षीणं रक्तं स्थितं स्थलम् ॥ शरीरं शोषितं स्थ अस्थिचर्ममवशेषितम् ॥ ७३ ॥ दानवश्चान्धकः प्राह अन्तरिक्षचरस्तथा ॥ अन्धकउवाच ॥ जयदेवजगन्नाथ उमाङ्गाद्विशरीरभृत् ॥ ७४ ॥ वृषभासनमारूढ शशाङ्ककृतशेखर ॥ जयखट्वाङ्गहस्ताय गङ्गांशिरसिधारिणे ॥ ७५ ॥ स्मरप्रमथनायेह ईश्वराय नमोस्तुते ॥ पूष्णोदन्तविनाशाय गणनाथनमोनमः ॥ ७६ ॥ जयसुरूपदेहाय अरूपाय नमोनमः ॥ ब्रह्मोत्तमा रक्तको पीलिया तब रक्तक्षीण होगया जमीन निकलआई हठी और चमड़ा जिस में रहगया ऐसा उसका शरीर सुखा दियागया ॥ ७३ ॥ तब आकाश में विद्यमान अन्धकासुर बोला कि हे जगन्नाथ ! हे देव ! हे आधे शरीरमें पार्वती के धारण करने वाले ! आपकी जयहो ॥ ७४ ॥ हे वैलके सवार ! हे चन्द्रमाको मुकुटमें रखनेवाले ! तुम्हारी जयहो गङ्गाको शीशमें धारनेवाले और खट्वाङ्गको हाथमें रखनेवाले ॥ ७५ ॥ कामदेव के नाश करनेवाले ईश्वर आपके लिये नमस्कार है हे गणनाथ ! पूषके दांतों के तोड़नेवाले तुम्हारे लिये नमस्कार है ॥ ७६ ॥ सुन्दररूप देहवाले की जयहो रूपसे रहित जो आपहो तिनके लिये नमस्कार है नमस्कार है

हे सदा रहेनेवाले ! हे विश्वभर के मालिक ! ब्रह्माके शिर काटनेवाले ॥ ७७ ॥ नित्य श्मशान के रहेनेवाले और हमेशा भैरवरूपवाले के लिये नमस्कार हे तुम्हीं सबमें विद्यमान हो व तुम्हीं सबके कर्ता हो और तुम्हीं सबके नाश करनेवाले हो और कोई नहीं है ॥ ७८ ॥ पृथिवी, दिशा, तेज, प्रकाश, वायु और सब प्राणियों के जी-वरूप महेश्वर तुम्हीं हो ॥ ७९ ॥ हे देवेश ! चन्द्रमा, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि और मङ्गल तुम्हीं हो ॥ ८० ॥ हे महेश्वर ! आकाशमें जितने नक्षत्र व सूर्य व चन्द्र जो देख पड़ते हैं ये सब आपही के प्रसादमे हैं ॥ ८१ ॥ ऐसे वह दानव देवोंकेदेव उन महादेवजी की अनेक प्रकार से रतिकर और दोनों हाथोंको जोड़ेहुये प्रणाम

ज्ञानाशाय विश्वेश्वरसनातन ॥ ७७ ॥ श्मशानवासिनेनित्यं नित्यं भैरवरूपिणे ॥ त्वंसर्वगश्चकर्तात्वं त्वंहतानान्यए
वच ॥ ७८ ॥ त्वं भूमिस्त्वन्दिशश्चैव ज्योतिस्त्वेतेजसस्तथा ॥ त्वं वायुस्सर्वभूतानां जन्तुरूपोमहेश्वरः ॥ ७९ ॥ त्वं सोम
स्त्वं बुधश्चैव त्वं गुरुर्भागवस्तथा ॥ सौरिस्त्वं देवदेवेश भूमिषु त्रस्तथैव च ॥ ८० ॥ ऋक्षानि यानि दृश्यन्ते गगने शशि
भास्करौ ॥ एतान्येव च सर्वाणि त्वत्प्रसादान्महेश्वर ॥ ८१ ॥ एवं बहुविधंस्तुत्वा देवदेवं सदानवः ॥ संहताभ्याञ्च हस्ता
भ्यान्तमप्रणम्य महेश्वरम् ॥ ८२ ॥ शङ्कर उवाच ॥ साधुसाधु महासत्त्व वरं याचस्व दानव ॥ दाताहं याचकस्त्वन्तु द
दामीति यथेप्सितम् ॥ ८३ ॥ अन्धक उवाच ॥ यदि तुष्टोसि देवेश यदि देयो वरो मम ॥ तदा तमनस्समीपेहं स्थापितव्यो
हि नान्यथा ॥ ८४ ॥ भस्मीजटी त्रिशूली च त्रिनेत्री च चतुर्भुजः ॥ व्याघ्रचर्मोत्तरीयश्च नागयज्ञोपवीतकः ॥ ८५ ॥
एतदिच्छाम्यहं सर्वं यदि दास्यसि शङ्कर ॥ शूलाग्रस्थो वदद्यावत्तावत्तुष्टोमहेश्वरः ॥ ८६ ॥ ईश्वर उवाच ॥ ददामि तेव

का चुपहोगया ॥ ८२ ॥ तब महादेवजी बोले कि हे बड़ेबलवाले, दानव ! वाह २ तू वरमांग हम देनेवाले और तू मांगनेवाला है इससे हम तेरे मनका वर देवेंगे ॥ ८३ ॥
तब अन्धक बोला कि हे देवेश ! जो आप प्रसन्न हो और तुम्हें मुझको वर देना है तो मुझे आप अपने समीप ही बनाये रखो और कुछ नहीं ॥ ८४ ॥ भस्मवाला, जटावाला,
त्रिशूलवाला, तीन नेत्रोंवाला, चार भुजावाला, व्याघ्रचर्म का ओढ़ने वाला और नागोंके यज्ञोपवीतवाला मैं हो जाऊँ ॥ ८५ ॥ बस यही सब मैं चाहता हूँ हे शङ्कर ! जो

तरह काले त्रिशूलकी निर्मलता नहीं होती है ॥ ८ ॥ तदनन्तर देवताओं के सहित महादेवजी नर्मदा को जाकर और उत्तर व दक्षिणतट में प्रयत्नसे नहाकर ॥ ९ ॥ फिर हे धरापते ! दक्षिणतटमें विद्यमान भृगुपर्वतपर जाकर और वहां देवताओं के सहित बैठकर ॥ १० ॥ सब देवताओं के मनके हरनेवाले उस स्थानको विशेषार्थ जानकर वहां महादेवजी ठहरे ॥ ११ ॥ और पर्वत को त्रिशूल से फाड़दिया तिस से फिर रसातल फटगया उससे त्रिशूल निर्मल होगया फिर उसमें लेप कहीं नहीं देखपडा ॥ १२ ॥ पाताल से भोगवर्ती नामकी गङ्गा निकली वहां शूलभेद नाम से प्रसिद्ध तीर्थ उत्पन्नहुआ ॥ १३ ॥ सूर्यग्रहण में वहां अतिपुण्यवाली सरस्वती

त्रिशूलस्य निर्मलत्वं न जायते ॥ ८ ॥ नर्मदान्तु ततो गत्वा देवो देवैस्समन्वितः ॥ उत्तरं दक्षिणं कूलमवगाह्य प्रयत्नतः ॥ ९ ॥ गत्वा तु दक्षिणे कूले पर्वते भृगुसंज्ञिते ॥ तत्र स्थित्वा महादेवो देवैस्सह धरापते ॥ १० ॥ मनोहरन्तु तत्स्थानं सर्वेषां हि दिवौकसाम् ॥ ज्ञात्वा तीर्थं विशेषन्तु स्थितो देवो महेश्वरः ॥ ११ ॥ गिरिं बिभेद शूलेन तेन भिन्नं रसातलम् ॥ निर्मलञ्चाभवच्छूलं न लेपो दृश्यते क्वचित् ॥ १२ ॥ पातालान्निःसृता गङ्गा नाम्ना भोगवर्ती तिसा ॥ तत्र तीर्थं समुत्पन्नं शूलभेदेति विश्रुतम् ॥ १३ ॥ सूर्ये राहुगते तत्र महापुण्या सरस्वती ॥ द्वितीयं सङ्गमं तत्र यथा वेणीसितासितम् ॥ १४ ॥ तत्र ब्रह्मास्वयं देवो ब्रह्मेशं लिङ्गमुत्तमम् ॥ यस्य याम्यदिशा भागे स्वयं देवो जनार्दनः ॥ १५ ॥ विद्यते च स्वयं तत्र विष्णुः पीठेषु संस्थितः ॥ शूलेन च कृतारं स्वा तत्र तोयवहान् ॥ १६ ॥ ततो यंच गतं तत्र यत्रैवानदी जलम् ॥ तत्र लिङ्गं महापुण्यं चक्रतीर्थं त्रिविश्रुतम् ॥ १७ ॥ शूलभेदे च देवेशः स्नानं कृत्वा यथाविधि ॥ आत्मानं मन्यते शुद्धं न किञ्चित्कलुषं तनौ ॥ १८ ॥ तस्य चैवोत्त

श्राती हुई वहां सितासितवेणी की तरह दूसरा सङ्गम होगया ॥ १४ ॥ वहां साक्षात् ब्रह्मा देवता और उत्तम ब्रह्मेशलिंग भी है जिसके दक्षिण दिशाकी तरफ जनार्दन देव आपही विद्यमान हैं ॥ १५ ॥ व वहां परिवार देवताओं के पीठमें विष्णुजी आपही स्थित हैं हे दृष्ट ! वहां पानीकी वहानेवाली लीक त्रिशूलरो की गई है ॥ १६ ॥ वह जल जहां नर्मदानदी का जल है वहांको चलागया है वहां चक्रतीर्थ नामसे प्रसिद्ध बड़ा पुण्यवाला लिंग है ॥ १७ ॥ महादेवजी शूलभेद में विधिसे स्नान कर

अपनेको शुद्धमाना शरीर में कुछ भी उनके पाप नहीं रहा ॥ १८ ॥ उसके उत्तरवाले भागों में जगत् के गुरु व देवताओं के देवता शूलपाणि को पाकर तदनन्तर यलमे पूजन किया ॥ १९ ॥ मव तीर्थोंका रूप, सचतीर्थों से अधिक श्रेष्ठ सब पुण्यवालों से अधिक पुण्यवाले, सब दुःखोंके नाश करनेवाले, उत्तमतीर्थ को देवताओं के देवता जगत् के गुरु महादेवजी वहां स्थापनकर तदनन्तर और रत्नों को छोड़ वहा गणेशका स्थापनकर ॥ २० ॥ आठ सौ क्षेत्रपालोंका स्थापनकिया जोकि यलसे तीर्थ की रक्षा करते हैं और जो वहा रहनेकी इच्छा करता है उस के विनोंको करते हैं ॥ २१ ॥ कोई अपने कुटुम्ब की चिन्ता करते हैं और कोई खेतीकी, कोई नौकरी करते हैं रेभागे देवदेवजगद्गुरुम् ॥ शूलपाणिन्ततःप्राप्य पूजयामासयत्नतः ॥ १९ ॥ सर्वतीर्थमयन्तीर्थं सर्वतीर्थोधिकंपरम् ॥ सर्वपुण्याधिकंपुण्यं सर्वदुःखघनमुत्तमम् ॥ २० ॥ तत्रतीर्थप्रतिष्ठाप्य देवदेवोजगद्गुरुः ॥ रत्नकांस्तुततोमुक्त्वा तत्रस्थाप्यविनायकम् ॥ २१ ॥ क्षेत्रपालशतञ्चाष्टौ तीर्थरक्षन्तियत्नतः ॥ विदनानितस्यकुर्वन्ति यस्तत्रस्थातुमिच्छति ॥ २२ ॥ केचित्कुटुम्बचिन्तान्तु केचिच्चिन्तांकृपीषुच ॥ सेवांचकुर्वन्तेकेचिद्द्वयार्जनपरायणाः ॥ २३ ॥ परोक्षवादंकुर्वन्ति अन्येहिंसारताजनाः ॥ परदारान्प्रसर्पन्ति अन्येचवित्तचिन्तकाः ॥ २४ ॥ अन्येपिचिदन्त्येवंकथन्तीर्थेषुगम्यते ॥ धुधयापीड्यतेमाय्यां ह्यपत्यानितर्थेवच ॥ २५ ॥ मोहजालेनिपतिताः पापाचाराश्चयेनराः ॥ तेभ्योरश्रुन्तितत्तीर्थं देवस्यचगणाश्शुभम् ॥ २६ ॥ पुण्याजनांस्थिरायेच स्नानंतेपांचजायते ॥ पयोष्ययान्देवनद्याञ्च भोगवत्यांविशेषतः ॥ २७ ॥ एतच्चसङ्गमंपुण्यं यथावेण्यांभितासितं ॥ दृष्ट्वातीर्थन्तुनेसर्वे जीर्वाणाहृष्टमानसाः ॥ २८ ॥ दे कोई द्रव्य कमाने में लगे हैं ॥ २३ ॥ कोई तीर्थफल के प्रत्यक्ष न होने की बातें करते हैं और कोई लोग हिंसा में लगे हैं कोई पराई स्त्रियों में गमन करते हैं व कोई द्रव्यकी चिन्ता करनेवाले हैं ॥ २४ ॥ व कोई ऐसा कहते हैं कि स्त्री पुत्र भूतों मर जायेंगे इससे तीर्थको कैसे जायाजाने ॥ २५ ॥ ऐसे मोहरूपी जाल में पड़ेहुये जो पाप करनेवाले मनुष्य हैं उनसे महादेवजी के गण उस शुभतीर्थ की रक्षा किया करते हैं ॥ २६ ॥ देवनदी पयोष्णी और भोगवती में विशेषकर स्नान उन्हीका होता है जोकि पुण्यवाले और धैर्यवाले जीव हैं ॥ २७ ॥ यह सङ्गम पुण्यवाला है जैसे सितासितवेणी में सगम पुण्यवाला है अब उस तीर्थको देखकर प्रसन्न मन-

वाले वे रात्र देवता ॥ २८ ॥ महादेव के समीप होकर आपस में तीर्थका वर्णन करते हैं कि हे देवेश ! इस तीर्थको गयातीर्थ के समान जानते हैं ॥ २९ ॥ गुप्तसे गुप्तयहतीर्थ है ऐसा तीर्थ न हुआ है और न होगा ऐसे कह और महादेवजीका पूजनकर ब्रह्माआदि देवता और देवताओं के सहित ॥ ३० ॥ जो गण देवता हैं तथा गन्धर्व, यमराज, वरुण और इन्द्रआदि सब सुरासुर नाचने व गाने व स्तोत्रोंसे शिवजीको प्रसन्न किया ॥ ३१ ॥ अब हे नृपोत्तम ! हे नराधिप ! महादेवजीने त्रिशूल की नोकसे जहाँ पर्वत को फाड़ाथा वहाँ जलसे भरेहुये तीन कुण्ड होगये ॥ ३२ ॥ हे नरश्रेष्ठ ! सुन्दर भँवरवाले, त्रिशूलके चिन्हों से युक्त वे कुण्ड सब पापों व सब वस्यसन्निधौभूत्वा वर्णयन्तिपरस्परम् ॥ इदंतीर्थञ्चदेवेश गयातीर्थसमंविदुः ॥ २९ ॥ गुह्याद्गुह्यतरन्तीर्थं नभूतंनभ विष्यति ॥ शूलपाणिसमभ्यर्च्य ब्रह्माद्याश्चमुरैस्सह ॥ ३० ॥ येगणाश्चैवगन्धर्वा यमोवरुणवासवौ ॥ नृत्यगीतैस्तथास्तोत्रैस्सर्वैश्चैवसुरासुराः ॥ ३१ ॥ देवेनभेदितोयत्र शूलग्रेणनृपोत्तम ॥ त्रयोगर्तास्तुसंजातास्तोयपूर्णनराधिप ॥ ३२ ॥ आर्यावर्तानरश्रेष्ठ महाकुलेशलाञ्छिताः ॥ सर्वपापक्षयकरास्सर्वदुःखापहारकाः ॥ ३३ ॥ तस्मिंस्तीर्थेनरस्सनात्वा उपवासपरायणः ॥ दीक्षामन्त्रविहीनोपि मुच्यतेभवबन्धनात् ॥ ३४ ॥ यःपुनर्विधिवत्सनात्वा मन्त्रैःपञ्चभिरेवच ॥ वेदोक्तैःपञ्चभिर्मन्त्रैः सहिरण्यैर्घटैस्तथा ॥ ३५ ॥ अक्षरैर्देशभिश्चैव पञ्चाक्षरैस्त्रिभिस्तथा ॥ पृथग्भूतैर्द्विजातीनां तीर्थशस्त्रंनराधिप ॥ ३६ ॥ ब्रह्मक्षत्रविज्ञांवापि शुद्रस्याथस्त्रियास्तथा ॥ ध्यात्वादेवत्रयंराजन् स्नानंचैवयथाविधि ॥ ३७ ॥ दशाक्षरेणमन्त्रेण तोयंपिवितियोनरः ॥ केदारैश्चयथापीतं तथाकुण्डेनसंशयः ॥ ३८ ॥ पञ्चरेफममायुक्तं क्षकाराक्षरं दुःखैर्हरनेवाले होतेहुये ॥ ३९ ॥ दीक्षा और मन्त्रमे रहित भी मनुष्य व्रतको कियेहुये उस-तीर्थमें स्नानकउत्संसार के बन्धन से छूटजाता है ॥ ३४ ॥ व जो मनुष्य पांच मन्त्रों से विधिपूर्वक स्नानकर सुवर्णसहित पांच घटों से व वेदोक्त पांच मन्त्रों से पूजन करता है ॥ ३५ ॥ अथवा अलग २ दशाक्षर व पञ्चाक्षर व त्र्यक्षर मन्त्रों से करता है तो उसको अक्षयफल होताहै हे नराधिप ! यह तीर्थ द्विजातियों को बहुतही अच्छाहै ॥ ३६ ॥ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य व शूद्र और स्त्रियोंको भी अच्छाहै हे राजन् ! तीनों देवताओं का ध्यानकर विधिसे स्नानकर ॥ ३७ ॥ जो मनुष्य दशाक्षर मन्त्रसे तीर्थका जलपीता है वह केदारकुण्ड के जलपीने के बराबर

इस कुण्ड के जलपान से फलकी पाता है इसमें कुछ संशय नहीं है ॥ ३८ ॥ पांचरेफों से युक्त व लकार तथा दो अकारों से युक्त मन्त्रको कहता हुआ ॥ ३९ ॥ इन्द्रियोंको जीतेहुये, विधि से युक्त जो मनुष्य वहां स्नान करता है और तिलोंसे मिलेहुये जलसे पितर व देवताओं का तर्पण करता है ॥ ४० ॥ वह दश आगेवाले और दश पीछेवाले एमे बीस पुरुषों को तारता है और जो गङ्गा अथवा पञ्चतीर्थ में श्राद्ध करता है ॥ ४१ ॥ वह वहां शूलभेदमें श्राद्ध करने से उसी फलको पावता है इसमें संशय नहीं है और जो वहां विधिसे युक्त दानको देता है ॥ ४२ ॥ तो उसको वहां कियेहुये उस पुण्यका अक्षयफल होता है जैसे गयाक्षेत्र में सब कामों के करने में

रभूषितम् ॥ अंकारद्वयसंयुक्त मेतदत्रानुकीर्तनम् ॥ ३९ ॥ यस्तत्र कुरुते स्नानं विधियुक्तोजितेन्द्रियः ॥ तिलमिश्रेण तोयेन तर्पयेत्पितृदेवताः ॥ ४० ॥ कुलं तारयते विशद्वशपूर्वान्दशापरान् ॥ गङ्गायां पञ्चतीर्थे च श्राद्धं वै कुरुते तु यः ॥ ४१ ॥ स तत्र फलमाप्नोति शूलभेदेन संशयः ॥ यस्तत्र विधिनानुक्तो दानं दद्याच्च भक्तिः ॥ ४२ ॥ तदक्षयं फलं तत्र कृतस्य सुकृतो यथा ॥ गयाक्षेत्रे यथा पुण्यं सर्वकार्येषु चैव हि ॥ ४३ ॥ शूलभेदे तथा पुण्यं स्नानदानादितर्पणैः ॥ भक्त्या च यो ददात्यत्र काञ्चनं गंगामहीं जलम् ॥ ४४ ॥ अन्नं कृषीभवं शय्यां वासांसि भूषणानि च ॥ अन्नादिभिर्धनैश्चैव गृहं पूर्णञ्च सर्वतः ॥ ४५ ॥ युग्ययुगलाङ्गलं मुख्यं नवचैव धुरन्धरौ ॥ दानान्येतानि यो दद्याद्ब्राह्मणे वेदपारगे ॥ ४६ ॥ श्रोत्रियञ्च कुलीनञ्च शुचिं च विजितेन्द्रियम् ॥ ज्ञात्वा दानञ्च यो दद्यात्तस्मान्तो नैव विद्यते ॥ ४७ ॥ त्रयोदशदिने ष्वेकं त्रयोदशशुणम् भवेत् ॥ ४८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे रेवाखण्डे शूलभेदोत्पत्तिर्नाम षडशीतितमोऽध्यायः ॥ ८६ ॥ *

पुण्य होता है ॥ ४३ ॥ वैसेही शूलभेद में स्नान, दान और तर्पण करने से पुण्य होता है और जो वहां भक्तिसे सोना, गौ, शुधिवी, जलू ॥ ४४ ॥ खेतीसे उत्पन्नहुये अन्न, शय्या, कपडा, गहना, अन्न आदि व धन सब ओर से भरा हुआ मकान ॥ ४५ ॥ बैलोंसे युक्त नया हल और बैल इन दानोंको वेदपठनेवाले ब्राह्मणको जो देता है ॥ ४६ ॥ वेदके पढ़नेवाले, कुलीन इन्द्रियों के जीतेनेवाले, पवित्र ब्राह्मणको जानकर जो दान देता है उसकी पुण्यका अन्त नहीं है ॥ ४७ ॥ तेरह दिनके बीच में एक दिन में दिया हुआ तेरह गुना होता है ॥ ४८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे रेवाखण्डे प्राकृतभाषाऽनुवादशूलभेदोत्पत्तिर्नाम षडशीतितमोऽध्यायः ॥ ८६ ॥ ❀

मार्कण्डेयनी बोले कि हे राजेन्द्र ! उत्तानपाद राजा महादेवजी से पूछतेहुये कि हे महादेव ! सिद्धब्राह्मण कैसे होतेहैं और अपूज्य (नहीं पूजनेलायक) ब्राह्मण कैसे होते हैं ॥ १ ॥ हे देव ! श्राद्ध, पञ्चयज्ञ और दानके विषयमें विशेष से किस को दान नही देना चाहिये यह आप मुझसे कहिये ॥ २ ॥ तब महादेवजी बोले कि जैसे काठका हाथी और जैसे चमड़ेका हत्ता ऐसेही बेपढ़ा ब्राह्मण ये तीनोंनाम मात्रको रखते हैं ॥ ३ ॥ रोगी, हीनाङ्ग, अधिकाङ्ग, काना, उदरा, व्रतका त्याग करनेवाला, कुण्ड (पिताके जीवते दूमेरे से पैदाहुआ) और गोलक (पिताके मरजाने के बाद दूसरे से उत्पन्न हुआ) ऐसे ब्राह्मण श्राद्ध व दानमें पवित्र नहीं

मार्कण्डेयउवाच ॥ उत्तानपादोराजेन्द्र पृच्छतिस्ममहेइश्वरम् ॥ सिद्धाश्चकीदृशादेव अपूज्याश्चैवकीदृशाः ॥ १ ॥
श्राद्धेचैवाह्निकेयज्ञे दानेचैवविशेषतः ॥ एतदाख्याहिमेदेव कस्यदानंनदीयते ॥ २ ॥ ईश्वरउवाच ॥ यथाकाष्ठमयोह
स्ती यथाचर्ममयोमृगः ॥ ब्राह्मणश्चानर्धायानस्त्रयस्तेनामधारकाः ॥ ३ ॥ रोगीहीनातिरिक्ताङ्गः काणःपौनर्भवस्त
था ॥ अथकीर्णःकुण्डगोलौ श्राद्धेदानेनशुद्ध्यति ॥ ४ ॥ माहिष्योवृषलःस्तेनो वार्धक्योथविशेषतः ॥ एतेविप्रास्सदा
त्याज्याः पश्चान्मानं प्रशंसति ॥ ५ ॥ प्रतिग्रहन्तुगृह्णाति कालज्ञानंविनाद्विजः ॥ तस्यदानंनदातव्यं वृथाभवतिनिष्फल
म् ॥ ६ ॥ दरिद्रान्देहिराजंस्त्वं मासमृद्धान्कदाचन ॥ व्याधितस्यौषधं पथ्यं नीरुजस्यकिमौषधम् ॥ ७ ॥ उत्तानपाद
उवाच ॥ विधिश्चकीदृशीदेव कथंश्राद्धस्यचक्रिया ॥ दानञ्चदीयतेयेन तन्ममाख्यातुमर्हसि ॥ ८ ॥ देवउवाच ॥ श्रा

होतेहैं ॥ ४ ॥ माहिष्य (ब्राह्मणी में क्षत्रिय से पैदाहुआ) वृषल (शूद्राका रखने वाला) चोर और बदई के कामका करनेवाला ये ब्राह्मण विशेषकरके हमेशा त्याग करनेलायक हैं और जो अपनी तारीफ करता है ॥ ५ ॥ जो ब्राह्मण समय के विनाजाने दानलेता है उसको दान नहीं देना चाहिये वह दान निष्फल और बृथा होता है ॥ ६ ॥ हे राजन् ! तुम गरीबों को ही दानदेवो धनियों को कभी नहीं क्योंकि दत्ता रोगीही को पथ्यहोती है आराम को क्या औषध ॥ ७ ॥ फिर उत्तानपाद बोले कि हे देव ! श्राद्धकी विधि कैसीहै और क्रिया किस प्रकार की है व दान जिसको करना चाहिये सो आप मुझसे कहने के योग्य हो ॥ ८ ॥ तब महादेवजी बो

कि भक्तिसे घरमें श्राद्धकर स्नान कियेहुये इन्द्रियों को जतिहुये मौनहोकर पिताके क्रमसे संख्याको नहीं उल्लङ्घन करताहुआ तर्पणकरे ॥ ९ ॥ तदनन्तर शूलभेद को जाकर विधिसे स्नानकर पांच स्थानोंमें हव्यकव्य आदिसे जो श्राद्ध करताहै ॥ १० ॥ और उस तीर्थमें मिठाई और घीमे मिलीहुई खीरसे जो पिण्डदान करता है उसके फलको वह पाताहै इसमें संशय नहीं है ॥ ११ ॥ और जो विशेष से ब्राह्मणों को उपानह देताहै वह देवताओं से घिराहुआ व विमानपर चढ़ाहुआ जाताहै ॥ १२ ॥ सतनजा से भरेहुये अच्छे मकान को जो देनाहै वह स्वर्गमें सोनेके उत्तम मन्दिर में रहता है ॥ १३ ॥ और बछड़ा के सहित तिलधेनु को जो विधिपूर्वक देताहै वह

छंङ्कत्वागृहेभक्त्या सुस्नातोविजितेन्द्रियः ॥ वाद्यतस्तर्पयेत्तावद्यावत्सङ्ख्यामलङ्घयन् ॥ ९ ॥ शूलभेदन्ततो गत्वा स्नानं कृत्वा यथाविधि ॥ पञ्चस्थानेषु यः श्राद्धं हव्यकव्यादिभिश्चरेत् ॥ १० ॥ पिण्डदानं च यः कुर्यात्पायैर्मधुसर्पिषा ॥ तस्य तत्फलमाप्नोति तस्मिन्स्तीर्थेन संशयः ॥ ११ ॥ उपानहौ च यो दद्याद्ब्राह्मणेभ्यो विशेषतः ॥ गच्छेद्विमानमा रूढस्त्वमरैः परिवारितः ॥ १२ ॥ उत्तमं च गृहं हृन्द्यात्सप्तधान्यैश्च पूरितम् ॥ सस्वर्गलोके वसति काञ्चने भवनोत्तमे ॥ १३ ॥ तिलधेनुञ्च यो दद्यात्सवत्सां विधिपूर्वकम् ॥ नाकपृष्ठे वसेत्तावद्यावदाहूतं संप्लुवम् ॥ १४ ॥ गृहे वा यदि वारण्ये तीर्थे वा कुप्यथेषु च ॥ तोयमन्नञ्च यो दद्याद्यमलोकं न पश्यति ॥ १५ ॥ अक्षयं चान्नदानञ्च तोयभूमिस्तथैव च ॥ अन्नदानात्परंदानं न भूतो न भविष्यति ॥ १६ ॥ उत्तानपाद उवाच ॥ कन्यादानं कथं न देव कर्तव्यं कथं यस्वततः ॥ प्रतिग्रहन्तथा तोष्यं कन्यो द्याह मुपस्करम् ॥ १७ ॥ दातव्यं कस्यैव दानं दत्तं भवति चाक्षयम् ॥ उत्तमं मध्यमं वापि कनीयां संकथञ्चन ॥ १८ ॥

महाप्रलयतक स्वर्गमें रहता है ॥ १४ ॥ घरमें व वनमें व तीर्थमें व कठिन रास्ते में जल व अन्नको जो देनाहै वह यमलोक को नहीं देखताहै ॥ १५ ॥ अन्नदान अक्षय होनाहै ऐसेही जल व जमीन का दानहै अन्नदान से परे दूमरा दान न हुआ है और न हुगा ॥ १६ ॥ उत्तानपाद बोले कि हे देव ! कन्यादान कैसे करना चाहिये सो कहिये और कन्या व दहेज आदि सामान किस प्रकार होना चाहिये ॥ १७ ॥ दान किसको देना चाहिये दियाहुआ दान अन्नय कैसे होताहै उत्तम, मध्यम और अधम

दान कैसा होता है ॥ १८ ॥ अथवा राजस व तामस व सात्त्विकदान कैसा होता है तब महादेवजी बोले कि सब दानोंमें कन्यादान श्रेष्ठ है ॥ १९ ॥ जो मनुष्य विशेष करके सुन्दररूपवाले व गुणी व कुलीन वरके समीप जाकर बड़ी भक्ति वा यत्नसे कन्याको देता है ॥ २० ॥ आन्ध्रीलम्बन व अच्छे सुहृत् में गहना पहनाकर कन्याको देता है और भक्तिसे घोड़े, हाथी और वस्त्रोंको जो देता है ॥ २१ ॥ उसका वास वहां होता है जहां निर्दोषस्थान है अपने प्राणोंसे भी प्यारी कन्याको जिसने दिया है ॥ २२ ॥ उसने इस सब चराचर त्रैलोक्य को मानो दे दिया कन्या के वारते जो धन दिया गया उसको जो दुर्बुद्धि प्रसन्न नहीं करता है ॥ २३ ॥ वह उस कर्मसे चाण्डाल

राजसन्तानमंसापि निश्रेयसमथापिवा ॥ ईश्वर उवाच ॥ सर्वेषामेवदानानां कन्यादानं विशिष्यते ॥ १९ ॥ यो दद्यात्पर
याभक्त्या अभिगम्यचयत्नतः ॥ कुलीनस्यस्वरूपस्य गुणज्ञस्यविशेषतः ॥ २० ॥ सुलग्नेचमुहूर्तेचदद्यात्कन्यामल
ङ्कृताम् ॥ अश्वान्नागांश्चवासांसि यो दद्याच्चैवभक्तिः ॥ २१ ॥ तस्यवासोभवेत्तत्र पदं यत्र निरामयम् ॥ येनसादुहि
तिः ॥ २२ ॥ तेनसर्वमिदं दत्तं त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥ धनं कन्यार्थतः कल्पं नरोचयतिदुर्म
भवतेमर्त्यस्सर्ववस्तुषुवर्जितः ॥ २३ ॥ स भवेत्कर्मचाण्डालः कोशकारो भवेन्मृतः ॥ कन्यार्थयाचेत्यस्तु सधनो निर्धनोपिवा ॥ २४ ॥ अभोज्यो
च्छ्रेयमथापिवा ॥ राजावाच ॥ गृहेतस्यचयोऽर्नीयाज्जिह्वालम्पटकोत्प ॥ २५ ॥ चान्द्रायणेनशुद्धिस्स्यात्तप्तं
देव उवाच ॥ स्ववित्तेनानुकर्तव्यं कन्योद्वाहनमेवच ॥ २६ ॥ कथं चोद्वाहनं कुर्यादितदाचक्ष्वमेप्रभो ॥ २७ ॥ कन्यानामसमुच्चार्य नदोषोयाचकस्यच ॥ अभिगम्योत्त

होता है और मरनेपर कुसेहरनाम का कीड़ा होता है धनी व गरीब जो मनुष्य कन्याके लिये कुछ मांगता है ॥ २४ ॥ वह मनुष्य किसी कार्य में भोजन करानेके शो
प नहीं होता है सर्वत्र वर्जित है और है नृप ! जो जिह्वाका चञ्चल मनुष्य उस के घरमें भोजन करता है ॥ २५ ॥ वह चान्द्रायण व तप्तकुङ्कुम त से शुद्ध होता है
व गन्ना योने कि कन्या के विवाह के समय में जिसके पास धन नहीं है ॥ २६ ॥ तो वह विवाह कैसे करे हे प्रभो ! यह मुझसे कहा तब महादेवजी बोले कि अपने

ही धनसे कन्याका विवाह करना चाहिये ॥ २७ ॥ अथवा वरको छोड़ और से कन्याका नामलेकर जो धन मांगता है उसको दोष नहीं होता है ॥ २८ ॥ जायकर दानदेना उत्तमदान है और बुलाके देना मध्यम है कहेपर देना अधम है काम कराके देना निष्फल है तथा असमर्थ वरको कन्यादान नहीं करना चाहिये ॥ २९ ॥ और पढ़ाहुआ समर्थ वर देनेवाले को तार देता है जैसे जलमें चलादिये हुये काठ को जल तारदेता है जैसे नावपार उतारने में समर्थ है ऐसेही विद्वान् तारसकता है ॥ ३० ॥ जो अग्निहोत्री होकर शूद्रका दान लेता है वह इस जन्ममें शूद्र और मरेपर कुत्ता होता है ॥ ३१ ॥ उस अग्निहोत्री ब्राह्मण को वृथा क्लेश होते हैं

मंदानमाहृतंचैवमध्यमम् ॥ २८ ॥ अधमंप्रोच्यमानन्तु सेवादानंचनिष्फलम् ॥ असमर्थेनदातव्यं कन्यादानंतथैवच ॥ २९ ॥ समर्थस्तारयेद्विद्वान्काष्ठंक्षिप्तंयथाजले ॥ यथानौकातथाविद्वांस्तारयेत्परमंतटम् ॥ ३० ॥ आहिताग्निस्तुयोभूत्वा गृहच्छूद्रप्रतिग्रहम् ॥ इहजन्मनिशूद्रत्वं मृतःश्वाचोपजायते ॥ ३१ ॥ वृथाक्लेशाश्चजायन्ते ब्राह्मणस्याग्निहोत्रिणः ॥ असत्प्रतिग्रहंशूद्रन्नापदंचविनाद्विजः ॥ ३२ ॥ तत्सर्वनाशयेत्तस्य भिन्नानौकायथाम्भसि ॥ अतिक्लेशवशाज्जितं विनाशयतितत्क्षणात् ॥ ३३ ॥ एवंदुःखाज्जितंपुण्यं शूद्रेगच्छतिनान्यथा ॥ लब्धदानंक्षिण्यलाभाय प्रदानंचापराधकम् ॥ ३४ ॥ कीर्तिपात्रेषुयुद्धतं वृथामवतिपार्थिव ॥ ३५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणैरेवाखण्डेदानमहिमानुवर्णनन्नामसप्ताशीतितमोऽध्यायः ॥ ८७ ॥

जो ब्राह्मण विना विपत्तिके दुष्टका दान लेता है ॥ ३२ ॥ वह दान उसका सब कुछ नाश करदेता है जैसे दृष्टनौका जलमें डूबजाय जैसे बड़े क्लेशसे कमाया धन क्षण मात्र में नष्टहोजाये ॥ ३३ ॥ इसीप्रकार बड़े दुःखसे कमायाहुआ पुण्य शूद्रके पास चलाजाता है यह झूठ नहीं है व अपने फायदे के वास्ते जो दान है वह अपराधही है ॥ ३४ ॥ जिससे यशहोवे ऐसे पात्रमें जो दान दियागया है हे पार्थिव ! वह दान वृथा होता है ॥ ३५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणैरेवाखण्डेप्राकृतभाषानुवादेदानमहिमानुवर्णनोनामसप्ताशीतितमोऽध्यायः ॥ ८७ ॥

उत्तानपाद बोले कि हे शङ्कर ! श्राद्ध, दान, तीर्थयात्रा और अतिथिसत्कार किससमय में किया जाता है सो आप हम लोगों से कहो ॥ १ ॥ तब महादेवजी बोले कि पिताके वास्ते जो पुण्य है वह सबकाल में अच्छा है और स्नान, दान-व तर्पण के वास्ते यह तीर्थ भी ऐसा ही पवित्र है ॥ २ ॥ चारोंयुगों की जो आदि तिथियां हैं उनमें विशेषकर महात्मा लोग श्राद्ध करते हैं अब हे वरस ! चौदहों मन्वादि तिथियों को तुम सुनो ॥ ३ ॥ कि कुवार में सुदी नवमी, कार्तिक की द्वादशी, चैत-मासमें तीज, तथा भादों की तीज ॥ ४ ॥ आषाढ़ की दशमी, माघकी सप्तमी श्रावणकृष्ण की अष्टमी, फिर आषाढ़ की पूर्णमासी ॥ ५ ॥ फागुन की अमावस प्रसकी

उत्तानपाद उवाच ॥ कस्मिन्नकालेचक्रियते श्राद्धदानंचशङ्कर ॥ तीर्थयात्राकथंकार्यं आतिथ्यंकथयस्वनः ॥ १ ॥
शङ्करउवाच ॥ पितुरर्थंयथापुण्यं सार्वकालिकमुत्तमम् ॥ इदंतीर्थंतथापुण्यं स्नानदानादितर्पणैः ॥ २ ॥ विशेषेणचकुर्वन्ति श्राद्धंचतुर्युगादिषु ॥ मन्वन्तरादयोवत्स श्रूयतांचचतुर्दश ॥ ३ ॥ आश्विनेशुक्लनवमी द्वादशीकार्तिकस्यच ॥ तृतीयांचैत्रमासेतु तथाभाद्रपदस्यच ॥ ४ ॥ आषाढस्यचदशमी माघस्यैवचसप्तमी ॥ श्रावणस्याष्टमीकृष्णा तथाषाढीतुपूर्णिमा ॥ ५ ॥ फाल्गुनस्यअमावास्या पौषस्यैकादशीशुभा ॥ कार्तिकीफाल्गुनीचैत्री ज्यैष्ठीपञ्चदशीसिता ॥ ६ ॥ मन्वन्तरादयश्चैव ह्यनन्तफलदास्मृताः ॥ अयनेतूत्तरैचैव दक्षिणेचतथैवहि ॥ ७ ॥ कार्तिकयांचतथामाघ्यां वैशाख्यांचतृतीयया ॥ चैत्र्यांचैवतथाषष्ठ्यां प्रोष्ठपद्यान्तथैवच ॥ ८ ॥ श्राद्धकालाश्चतेसर्वे दत्तम्भवतिचाक्षयम् ॥ मधुमासेसितेपक्ष एकादश्यामुपोषितः ॥ ९ ॥ क्षुपाजागरणंकुर्याद्विष्णोःपदसमीपतः ॥ दद्याद्दानंतथाशक्त्या हिरण्यं

एकादशी और कार्तिक, फागुन, चैत और जेठकी उजियाली पूर्णमासी ॥ ६ ॥ ये मन्वन्तरादि तिथियां अनन्तफल की देनेवाली कही गई हैं और उत्तरायण, व दक्षिणायन की संक्रान्ति ॥ ७ ॥ तथा कार्तिक, माघ और वैशाख की पूर्णमासी, आषा तीज, चैतकी छठि और भादोंकी पूर्णमासी ॥ ८ ॥ ये सब श्राद्धके काल हैं इनमें दियाहुआ अक्षयहोता है चैत्रमास के उजियारे पाखकी एकादशी को उपासा रह कर ॥ ९ ॥ विष्णु के चरणों के समीप रात्रिको जागरण करे और यथाशक्ति सोना,

गौत्रे और कपड़ों का दानकरे ॥ १० ॥ धूप, दीप, नैवेद्य, माला, फूल और चन्दनआदि से जो विष्णुको पूजन करता व पुराणकी कथाको कहता है ॥ ११ ॥ ऋक्, यजुः, साम और अथर्ववेद के सूक्तोंको जपता है वह ब्राह्मण सब पापोंसे छूटाहुआ विष्णुलोक को जाता है ॥ १२ ॥ जो प्रातःकाल श्राद्ध करता है और यज्ञसे ब्राह्मणोंको भोजन कराके यथाशक्ति उनको सोना, गौत्रे और वस्त्रोंको देता है ॥ १३ ॥ उसके पितर महाप्रलय तक तृप्त रहतेहैं और श्राद्धका देनेवाला भी वहां रहता है कि जहां विष्णुजी रहते हैं ॥ १४ ॥ फिर त्रयोदशी को वहां जावे जहां गुहावासी महादेव हैं वहां मार्कण्डेयेश्वर को देखकर सब पापोंसे छूटजाता है ॥ १५ ॥ उत्तानपाद बोले

गोम्बराणि च ॥ १० ॥ धूपदीपंचनैवेद्यं स्रक्पुष्पचन्दनानि च ॥ अर्चाङ्करोतियोविष्णोः कथाम्पौराणकीर्तनम् ॥ ११ ॥ ऋग्यजुस्सामार्थाणां सूक्तन्तज्जपतिद्विजः ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोकंसगच्छति ॥ १२ ॥ प्रभातेकुरुते श्राद्धं द्विजान्भोज्यप्रयत्नतः ॥ ददेद्दानं यथाशक्त्या हिरण्यं गोम्बराणि च ॥ १३ ॥ पितरस्तस्य तृप्यन्ति यावदाहृतसंस्तुवम् ॥ श्राद्धदश्च वसेत्तत्र यत्र देवो जनार्दनः ॥ १४ ॥ त्रयोदश्यांतोगच्छेद्गुहावासोतिष्ठति ॥ दृष्ट्वा मार्कण्डेयमीशानं सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ १५ ॥ उत्तानपाद उवाच ॥ गुहामध्ये यथा देव लिङ्गं परमशोभनम् ॥ प्रतिष्ठायेन देवस्य तन्ममाख्यातुमर्हसि ॥ १६ ॥ ईश्वर उवाच ॥ त्रिषुलोकेषु विख्यातं मार्कण्डेयेश्वरसंज्ञिकम् ॥ बृहद्रथन्तरं यच्च सामवेदं द्विजोत्तमः ॥ १७ ॥ अथर्वाथर्वशीर्षाणि तथा ह्यहच्च वृषाकपिम् ॥ शिवसङ्कल्पितं जप्त्वा मुच्यते सर्वपातकैः ॥ १८ ॥ सयाति परमं स्थानं यत्र देवो महेश्वरः ॥ पादशौचं तथा तस्य कुर्वते ये च भक्तितः ॥ १९ ॥ गोदानेनैव यत्पुण्यं लभन्ते नाना संशयः ॥

कि हे देव ! गुहा के बीचमें जैसा अतिसुन्दर लिंग है और जैसे उन देवकी प्रतिष्ठा हुई हो सो आप मुझमें कहने को योग्य होतेहो ॥ १६ ॥ तब महादेवजी बोले कि तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध मार्कण्डेयस्वर्नाम का लिंग वहां बृहद्रथन्तर नामका साम वेदका जो सूक्त है उसको तथा अथर्वशीर्ष, वृषाकपि नामका अथर्वहृदय और शिवसङ्कल्पनाम का सूक्त जपकर ब्राह्मण सब पापोंसे छूटजाता है ॥ १७ ॥ और वह उत्तम स्थानको जाता है जहां महादेवजी रहते हैं और जो लोग वहां महादेवके

चरणों को भक्तिसे धोते हैं वे गोदान से जो पुण्य होता है उसको पाते हैं इसमें सन्देह नहीं है वहाँ धी शंकर मिली हुई खीरसे ब्राह्मणों को भोजन करावे ॥ १६ ॥ २० ॥
एक ब्राह्मण के भोजन कराने से हजार ब्राह्मणों के भोजन कराने का फल होता है सोना, चाँदी और कपड़े ब्राह्मणों को भक्तिसे दें ॥ २१ ॥ उससे देवता, मनुष्य और पितर तृप्त होते हैं और चन्द्र व सूर्य के ग्रहण में जो मनुष्य वहाँ भक्तिसे स्नान करते हैं ॥ २२ ॥ और जो महादेव का पूजन करता है व विशेषसे जप व होम करता है और वेदपाठी ब्राह्मण को यथाशक्ति दान देता है ॥ २३ ॥ व अच्छा घोड़ा, उत्तम हाथी, तुलापुरुष, सतनजा से भरा हुआ छकड़ा जो वहाँ देता है ॥ २४ ॥ व

ब्राह्मणान्भोजयेत्तत्र पायसैर्मधुसर्पिषा ॥ २० ॥ एकेनभोजितेनापि सहस्रान्तेनभोजितम् ॥ सुवर्णैरजतवस्त्रं दद्याद्भ
क्त्याद्विजातिषु ॥ २१ ॥ तेनतृप्यन्ति ते देवा मनुष्याः पितरस्तथा ॥ चन्द्रसूर्यग्रहेभक्त्या स्नानं कुर्वन्ति येनराः ॥
२२ ॥ देवार्चनं च यः कुर्याज्जपं होमं विशेषतः ॥ दद्याद्दानं यथाशक्त्या ब्राह्मणे वेदपारगे ॥ २३ ॥ अश्वरत्नं गज रत्नं तु
ला पुरुषमेव च ॥ शकं टयो देवतत्र सप्तधान्यप्रभूरिति ॥ २४ ॥ युक्तं च लाङ्गलं दद्याद्युवानौ तु धुरन्धरौ ॥ गोभूतिलाहि
रण्यञ्च पात्रे दातव्यमीप्सितम् ॥ २५ ॥ अपात्रैर्विदुषा किञ्चिन्न देयं श्रेय इच्छता ॥ सर्वभूतानि चात्मैव यतो धारयते म
ही ॥ २६ ॥ ततो विप्राय सा देया सर्वसम्यानुशालिनी ॥ अन्यच्च शृणुराजेन्द्र गोदानस्य च यत्फलम् ॥ २७ ॥ यावद्वत्सम्य
पादौ हौ मुखं योन्याञ्च दृश्यते ॥ तावद्गौः पृथिवीज्ञेया यावद्गर्भं न मुञ्चति ॥ २८ ॥ येन केनाप्युपायेन ब्राह्मणाय समर्पये
त् ॥ पृथ्वीदत्ता भवेत्तेन स शैलवनकानना ॥ २९ ॥ तारयन्ती च सा दत्ता कुलानां मेकं विशतिम् ॥ रौप्यं खुरीकां स्यदो

अच्छा हल, जवान धुरन्धर बैल, गौवं, पृथिवी, तिल, और सोना ये सुपात्र ब्राह्मण को उसकी इच्छानुसार देना चाहिये ॥ २५ ॥ अपने कल्याण की इच्छा करनेवाले विद्वान् को अपात्र में कुछ भी न देना चाहिये सब प्राणियों को जिससे पृथिवी ही धारण करती है ॥ २६ ॥ इससे सब अन्नों से युक्त पृथिवी ब्राह्मण को देना चाहिये हे राजेन्द्र ! और भी जो गोदान का फल है उसे तुम सुनो ॥ २७ ॥ जब तक बछड़ा के दोनों पांव और मुँह दोनों में देखपड़ें तब तक वह गौ पृथिवी के तुल्य है जब तक गर्भ को नहीं छोड़ती है ॥ २८ ॥ इससे ऐसी गजको जिस किसी उपाय से ब्राह्मण को देवे मानो उसने पर्वत व जलों और जंगलों के सहित सम्पूर्ण पृथिवी को दे दिया ॥ २९ ॥

दीहुई वह गऊ इक्कीस कुलोंको तारती है रूपे के खुरौवाली, कांसेकी दोहनीवाली, वखड़ाके सहित दूधवाली गऊको ॥ ३० ॥ बड़े पुण्यवाले मनुष्य चन्द्रग्रहण में देते हैं हे न राधिप ! और सब दानोंके पुण्यकी गिन्ती है ॥ ३१ ॥ पर चन्द्र व सूर्य ग्रहणमें दान के पुण्यकी गिन्ती नहीं है जहां गौवें देख पड़ती हैं वही सब तीर्थ हैं ॥ ३२ ॥ और वहीं विष्णुको जानना चाहिये इसमें कुछ विचारना नहीं है जो मनुष्य इस तीर्थका स्मरण करके भी यात्रा करता है ॥ ३३ ॥ अथवा तीर्थका सा-हाय्यही सुनता है वह महादेवजी का गणहोता है ॥ ३४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणोरेवाखण्डे प्राकृतभाषाऽनुनादेशूलभेदमाहिमानुकथनज्ञामाष्टाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८८ ॥

हां सवत्सांचपयस्विनीम् ॥ ३० ॥ प्रयच्छन्तिजनाः पुण्या राहुग्रस्तेनिशाकरे ॥ सर्वस्यैवतुदानस्य संख्याचास्तिनरा धियः ॥ ३१ ॥ चन्द्रसूर्योपरागेच दानसंख्यानविद्यते ॥ यत्रगावःप्रदृश्यन्ते सर्वतीर्थानितत्रवै ॥ ३२ ॥ तत्रयज्ञंविजा नीयान्नात्रकार्यविचारणा ॥ पुनःस्मृत्वातुततीर्थं गमनंकुरुतेनरः ॥ ३३ ॥ अथवाश्रूयतेयस्तु रुद्रस्यानुचरोभवे तः ॥ ३४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणोरेवाखण्डेऽशूलभेदमाहिमानुकथनं नामाष्टाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८८ ॥ *

ईश्वरउवाच ॥ अन्यच्चाख्यानकंक्ष्ये पुरावृत्तंनराधिप ॥ सकुटुम्बगतःस्वर्गमृषिदीर्घतपामहान् ॥ १ ॥ शङ्करउवाच ॥ काशिराजेतिविख्यातश्चित्रसेनोमहाबलः ॥ तस्यपुत्र्योसवसते सर्वकामसमन्वितः ॥ २ ॥ सापुरीजनसम्पूर्णा नानारत्नोपशोभिता ॥ वाराणसीतिविख्याता गङ्गातीरेसमाश्रिता ॥ ३ ॥ इन्द्रप्रस्थसमप्रख्या गौरीगोकुलसंयुता ॥ बह्विजसमाकीर्णा वेदध्वनितनिःस्वना ॥ ४ ॥ बणिगजनैर्वहुविधैः क्रयविक्रयसंयुतैः ॥ अट्टाट्टालैःप्रतोलीभिरुसवाद्यैः महादेवजी बोले कि हे नराधिप ! अब और अगिले जमाने में हुये आख्यान को कहेंगे जिसमें श्रेष्ठ दीर्घतपा ऋषि कुटुम्ब सहित स्वर्गको गया है ॥ १ ॥ महादेवजी कहते हैं कि चित्रसेन नामसे विख्यात बड़े बलवाले काशी के राजाहुये उन्हीं की पुरी में सब कामनाओं से युक्त वे ब्राह्मण रहते थे ॥ २ ॥ वह पुरी मनुष्यों से भरी और अनेक रत्नों से शोभित, गङ्गा के तीर बसती हुई वाराणसी इस नाम से प्रसिद्ध होतीहुई ॥ ३ ॥ जोकि इन्द्र प्रस्थ के बराबर शोभावाली कन्या और गोवों से युक्त थी और बहुत से ब्राह्मणों से व्यास, वेदों की आज्ञाओं से शब्द करतीहुई ॥ ४ ॥ खरीद और विक्री करनेवाले अनेक प्रकार के बानियों से युक्त

अण्डा, शहरपनाह, सड़के और अनेक जलसाओं से सुहावनी ॥ ५ ॥ देवताओं के दिव्य मन्दिर व बगीचों से शोभित, रमणीक अनेक पुष्प व फलों से युक्त, बेलों, ओं की बेटों से शोभित थी ॥ ६ ॥ उसके उत्तर दिशा के तरफ तीनों लोकों में प्रसिद्ध मन्दारवन नाम का अति सुन्दर बगीचा था ॥ ७ ॥ जो कि अनेक वृक्ष व लताओं से व्याप्त व अनेक प्रकारके फूलों से सुहावना था बहुतसे मन्दार के वृक्षों से युक्त होनेसे मन्दारवन नाम से प्रसिद्ध था ॥ ८ ॥ दीर्घतपा नामका ब्राह्मण वहाँ सदा रहता था वह अत्यन्त तप करता था इससे दीर्घतपा कहा जाता था ॥ ९ ॥ वह अपनी स्त्री व पुत्रों से युक्त रहता था उसके समीप रहेनेवाले राब पाँचों लडके उस

स्तुमण्डिता ॥ ५ ॥ देवतायतनैर्दिव्यैरारामैरुपशोभिता ॥ नानापुष्पफलैरभ्यैः कदलीषण्डमण्डिता ॥ ६ ॥ तस्या उत्तरदिग्भागे आरामश्चोत्तमश्शुभः ॥ समन्दारवनं नाम त्रिषुलोकेषु विश्रुतम् ॥ ७ ॥ नानाद्रुमलताकीर्णं नानापुष्पोपशोभितम् ॥ बहुमन्दारसंयुक्तं तेनमन्दारकंवनम् ॥ ८ ॥ विप्रो दीर्घतपानाम सर्वदा तत्र तिष्ठति ॥ तपस्तपतिसौत्यर्थं तेन दीर्घतपाः स्मृतः ॥ ९ ॥ सतिष्ठते सपत्नीकस्तिष्ठते पुत्रसंयुतः ॥ शुश्रूषयन्ति तं सर्वे सुताः पञ्चसमीपगाः ॥ १० ॥ तस्य पुत्रः कर्नीयांस्तु ऋषयश्च शृङ्गो महातपाः ॥ वेदाध्ययनसंयुक्तो ब्रह्मचारी गुणान्वितः ॥ ११ ॥ योगाभ्यासरतोनित्यं कन्दमूलफलाशनः ॥ तिष्ठते मृगरूपेण मृगमध्ये वसन् सदा ॥ १२ ॥ दिनारम्भे दिनान्ते च मातापित्रग्रतः स्थितः ॥ अभिवादयते नित्यं भक्तिमान् नृषिपुत्रकः ॥ १३ ॥ पुनर्जगाम तत्रैव कानने गिरिगङ्गरे ॥ क्रीडन्बालमृगैस्साद्धं राजबाणमृतस्तु सः ॥ १४ ॥ राजोवाच ॥ आश्रमे वसस्तत्र सुदीर्घतपस्तदा ॥ सुनुस्तस्य कर्नीयांस्तु कथं मृत्युवशङ्कतः ॥ १५ ॥ श्रीभगवा

की सेवा करते थे ॥ १० ॥ उसका छोटा लडका वेदके पढ़ने में युक्त व गुणों से युक्त ब्रह्मचारी बड़ा तप करनेवाला ऋष्यशृङ्गनाम का होता हुआ ॥ ११ ॥ वह हमेशा योगाभ्यास में लगा हुआ कन्द, मूल और फलोंका खानेवाला हस्ते के रूप से बना रहता व हस्ताओं के बीचमें सदा बास करता रहा ॥ १२ ॥ प्रातःकाल न सायंकाल में पिता व माताके आगे खड़ा होकर वह ऋषिका पुत्र भक्ति से युक्त उनको नित्य ही प्रणाम करता था ॥ १३ ॥ और फिर वहाँ पहाड़ी जङ्गल में चला जाता था एक दिन हस्ताओं के बच्चों के साथ खेलता हुआ वह राजाके बाण से मारा गया ॥ १४ ॥ तब राजा बोले कि उस आश्रम में रहेते हुये दीर्घतपा का छोटा

लडका कैसे मर गया ॥ १५ ॥ तब महादेवजी बोले कि हे महीपते ! तुम एकाग्रमन होकर इस विचित्र कथा को सुनो इसके सुननेही से मनुष्य सब पापोंसे छूट जाता है ॥ १६ ॥ बड़े बल व पराक्रमवाले काशीके माहाराजा चित्रसेन इस नाम से प्रसिद्ध जोकि काशीमें रहते हैं ॥ १७ ॥ इस प्रकार वहाँ राज्य में रहतेहुये मन्त्रियों से वचन बोले कि हम शिकार को जावेगे तुम लोग तब तक राज्यमें बने रहो ॥ १८ ॥ तब मन्त्रियों ने कहा कि आप जाइये ऐसे कहेगये राजा घोड़े पर सवारहोकर चलेगये तदनन्तर उन राजाके पीछे सेवक लोग भी गये ॥ १९ ॥ वनको जातेहुये राजाके ऊपर छातोंपर छाते देखपड़ते हैं वहाँ हाथी व घोड़ों के पावों

नुवाच ॥ शृणुष्वैकमनाभूत्वा कथांचित्रांमहीपते ॥ श्रवणादेवतस्याहि सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ १६ ॥ काशिराजो महाराजा महाबलपराक्रमः ॥ चित्रसेन इति ख्यातो वाराणस्यां वसत्यसौ ॥ १७ ॥ एवं वसंस्तत्र राज्ये मन्त्रिणो वाक्यमब्रवीत् ॥ मृगयांच गमिष्यामि यूयं राज्ये प्रतिष्ठिताः ॥ १८ ॥ गम्यतां मन्त्रिभिः प्रोक्तो गतो सौ वसुधाधिपः ॥ अश्वारूढोऽथ न्वगच्छन् राजानमनुगास्ततः ॥ १९ ॥ छत्रैश्च त्राणि दृश्यन्ते गच्छन्तं काननं प्रति ॥ रजस्तत्रोत्थितं शूरि गजवाजिष दाहतम् ॥ २० ॥ तेनैवाच्छादितं सर्वं सादित्यं भूमि मण्डलम् ॥ नतत्र दृश्यते सूर्यो न काष्ठानच चन्द्रमाः ॥ २१ ॥ पादपाश्चन दृश्यन्ते गिरिसानूनि सर्वशः ॥ तत्रापि च महाराज मृगयूथमदृश्यत ॥ २२ ॥ अधावन् पुरुषास्सर्वे सराजाराजपुत्रकाः ॥ दृन्दलोपो भवत्तेषां शीघ्रं जगमुर्दिशो दश ॥ २३ ॥ एकमार्गं गतो राजा चित्रसेनो महीपतिः ॥ एकाकी सगतस्तत्र यत्र यत्र च ते मृगाः ॥ २४ ॥ प्रविष्टस्तु ततो दुर्गं काननेन पक्षिर्वर्जिते ॥ बल्मीगुल्मलताकीर्णं प्रविष्टो नैव दृश्यते ॥ २५ ॥

से बड़ी गर्द उड़ी ॥ २० ॥ उससे सूर्य सहित सब भूमण्डल भँप गया तब वहाँ सूर्य व दिशाये व चन्द्रमा नहीं देखपड़ते हैं ॥ २१ ॥ और वृक्ष व पर्वतोंकी चोटियां भी नहीं देखपड़ती हैं तबतक हे महाराज ! वहाँ हत्ताओं का भुण्ड देखपड़ा ॥ २२ ॥ तब सब मनुष्य और वे राजा व राजपुत्र दौड़े तब उनका भुण्ड फूट गया और बहुत जल्दी दशों दिशाओं में भाग गये ॥ २३ ॥ और राजा चित्र सेन भी एक रास्तेको चले गये वे राजा अकेले वहाँ २ गये जहाँ २ वे हत्ता गये ॥ २४ ॥ तदनन्तर

पक्षियों से भी खाली कठिन वनमें राजा पैठ गय बांवी छोटे २ वृक्ष व लताओं से घने वन में बैठे हुये राजा नहीं देखपड़ते ॥ २५ ॥ राजा ने अकेले आपको देखा और घोड़ा व पैदलों को नहीं देखा तब राजा ने कहा कि यहां कोई नहीं जानता और न हम दशोदिशाओं को जानते हैं ॥ २६ ॥ राजा चित्रसेन ऐसे कष्टको प्राप्त हुये तब वहां छाया में बैठ गये और बार २ विश्राम कर ॥ २७ ॥ भूख और प्यास से विकले पर्वतों से कठिन घने वन में घूम रहे कमलों से शोभित एक दिव्य तालाब को देखा ॥ २८ ॥ हंस, पनडुनी और चकवाओं के शब्दों से गूंज रहे उस तालाबको देखकर राजा प्रसन्न होगये ॥ २९ ॥ और कमलों को लेकर उसमें स्नान किया

एकाव्यपश्यदात्मानं नचाश्वनपदातिकान् ॥ नकोपिचात्रजानाति नाहंवद्विदिशोदश ॥ २६ ॥ एवंकष्टंगतोराराजा
चित्रसेनो नराधिपः ॥ छायांसमाश्रितस्तत्र विश्रम्यचपुनः पुनः ॥ २७ ॥ धुतृषातो भ्रमन्दुर्गे कानने गिरिगह्वरे ॥ ततोप
श्यत्सरो दिव्यं पद्मिनीषण्डमण्डितम् ॥ २८ ॥ हंसकारणदुवाकीर्णं चक्रवाकोपकूजितम् ॥ सरोट्टद्वातुराजेन्द्रः संप्रह
ष्टतनूरुहः ॥ २९ ॥ कुमुदानिगृहीत्वा तु तत्र स्नानं समाचरत् ॥ तर्पयित्वा पितृदेवान्मनुष्यांश्च यथाविधि ॥ ३० ॥ यथा
पानीयसमलं यथावत्समभीप्सितम् ॥ उत्तीर्य सजलात्तीरे दृष्ट्वा वृक्षं समीपतः ॥ ३१ ॥ चिन्तयानुपविष्टोऽसौ किंतुक
र्ममकरोम्यहम् ॥ ततश्छायाश्रितान्पश्यन्वनोद्देशे मृगान्वहन ॥ ३२ ॥ केचित्पूर्वमुखास्तत्र अपरेदक्षिणामुखाः ॥ वा
रुण्यभिमुखाः केचित्केचित्कौबेरमाश्रिताः ॥ ३३ ॥ केचिन्निद्रां प्रकुर्वन्ति ऊर्ध्वकर्णाः स्थिताः परे ॥ मृगमध्ये स्थितो योगी
ऋण्यशृङ्गे महातपाः ॥ ३४ ॥ मृगान् दृष्ट्वा ततो राजा प्रहारार्थं मचिन्तयत् ॥ वधित्वा च मृगं चैकं भक्षयामि यदृच्छया ॥ ३५ ॥

फिर पितर, देवता, और मनुष्यों का विधिपूर्वक तर्पण कर ॥ ३० ॥ मनमाने निर्मल जलको पिया फिर जलसे निकल किनारे पर समीप ही एक वृक्षको देखकर बैठ
गये और चिन्तासे कहने लगे कि अब हम किस कामको करें तदनन्तर वन में छाया में बैठे हुये बहुत से हन्ताओं को देखा ॥ ३१ ॥ वहां कोई पूर्वकी तरफ मुहें किये
हुये और कोई दक्षिण, कोई पश्चिम और कोई उत्तर मुहें बैठे हैं ॥ ३३ ॥ कोई सोते और कोई ऊपरको कान किये बैठे हैं हन्ताओं के बीचमें बड़े तपवाले योगी ऋण्य-
शृङ्ग बैठे थे ॥ ३४ ॥ तदनन्तर राजा हन्ताओं को देख उनके मारने का विचार करते हुये अपने मनमें कहा कि एक हन्ता को मारकर हम इच्छा पूर्वक खायेंगे ॥ ३५ ॥

हन्ना के मांस के खाने से पुष्ट होंगे तदनन्तर हम रातों को द्रुतेहुये काशी को चले जायेंगे ॥ ३६ ॥ पेडकी जड़पर बैठे हुये सामर्थ्यवान् राजा ऐसे विचार कर हाथसे धनुष लेकर उसबाण को छोड़ दिया ॥ ३७ ॥ उसबाण के छोड़तेही सब हन्ना भागगये उनके बीचमें वही एक ऋष्यशृङ्ग बड़े तपवाले ॥ ३८ ॥ बाणसे विधेहुये गिरे और कृष्ण २ कहते हुये उन्होंने ने कहा हाय ! २ मुझको इस समय किसने गिरा दिया ॥ ३९ ॥ यह दुर्बुद्धि किसके पैदा होगई जिससे हमारे मारने की बुद्धि होगई क्योंकि हन्नों के बीच में बैठे हुये हमने किसी का अपराध नहीं किया ॥ ४० ॥ इस मनुष्य की आत्राज को सुनकर वह राजा विस्मय से युक्त होगया तदनन्तर

स्वस्थावस्थोभविष्यामि मृगमांसस्यभक्षणात् ॥ काशीप्रतिगमिष्यामि मार्गमन्वेषयंस्ततः ॥ ३६ ॥ विचिन्त्ये वंततोराजा वृक्षमूलंसमाश्रितः ॥ चापंगृह्यकराग्रेण प्राक्षिपत्तच्छरंविभुः ॥ ३७ ॥ क्षिप्तमात्रेशरैरतस्मिन्सर्वेनष्टामृगास्ततः ॥ तेषांमध्येसर्वैक ऋष्यशृङ्गोमहातपाः ॥ ३८ ॥ शरेणविद्धःपतितः कृष्णकृष्णेतिचाब्रवीत् ॥ हाहाशब्दं कृतंतेन केनाहंपातितोधुना ॥ ३९ ॥ कस्यैषादुर्मतिर्जाता ययबुद्धिर्ममोपरि ॥ मृगमध्येस्थितश्चाहं नकिञ्चिदपराधवान् ॥ ४० ॥ वाचांतामानुषीश्रुत्वा सराजाविस्मयान्वितः ॥ शीघ्रंगत्वाततोपश्यद् ब्राह्मणंब्रह्मवर्चसम् ॥ ४१ ॥ हाहाकष्टं कृतमेव येनासौघातितोमया ॥ ब्राह्मण उवाच ॥ नतेशिद्धिर्भवेत्किञ्चिन्मयिपञ्चत्वमागते ॥ ४२ ॥ तवैवविहिताहत्या मयिपञ्चत्वमागते ॥ जननीमपितावृद्धौ आतरोहितपस्विनः ॥ ४३ ॥ भ्रातृजायामरिष्यन्ति मयिपञ्चत्वमागते ॥ एताहत्याभविष्यन्ति तवशुद्धिःकथंभवेत् ॥ ४४ ॥ एताहत्याभविष्यन्ति कथंशुद्धिर्भवेत्तव ॥ उपायंकथयिष्यामि कर्तुं त्वंयदिमन्यसे ॥ ४५ ॥ राजोवाच ॥ उपायःकथयतांमेव यस्तेमनसिर्वर्तते ॥ करिष्येतदहंसर्वं प्रयत्नेनमहामुने ॥ ४६ ॥

जल्दी वहां जायकर ब्रह्मतेज वाले ब्राह्मण को देखा ॥ ४१ ॥ राजा ने कहा कि हाय ! २ आज मैंने बड़ा पाप किया जो मैंने इसको मारा तब वह ब्राह्मण बोला कि मेरे मरने पर तेरी कुछ भी सिद्धि नहीं होगी ॥ ४२ ॥ मेरे मरनेपर तुझही को हत्या होगी मेरी माता व पिता वृद्ध हैं और मेरे भाई तपस्वी हैं ॥ ४३ ॥ मेरे मरने पर मेरी भावजै मर जायेंगी इतनी हत्यायें तुझको होयेंगी तेरी शुद्धि कैसे होसकती है ॥ ४४ ॥ इस से हम उपाय को कहें जो तू करने को अङ्गीकार करे ॥ ४५ ॥ तब

राजा बोला कि जो उपाय आपके मनमें हो उसे अब मुझसे कहो हे महासुने ! वह सब बड़ी यत्न से करेंगे ॥ ४६ ॥ तब शृङ्गी बोले कि हम तुझ से पूछते हैं कि तू कहां से आया है और कौन है यहां कैसे आगया तू ब्राह्मण व क्षत्रिय व वैश्यों के बीच में कोई है अथवा शूद्र व चण्डाल है ॥ ४७ ॥ तब राजा बोला कि मैं ब्राह्मण व वैश्य व शूद्र नहीं हूं मैं क्षत्रिय हूं तब शृङ्गी बोला कि जहां भरे माता व पिता हैं उस पवित्र आश्रम में मुझे लेकर ॥ ४८ ॥ अपने को प्रसिद्ध कर कि आप के पुत्र का मारने वाला मैं पापी आया हूँ वे दोनों मुझको देखकर तुझपर दया करेंगे ॥ ४९ ॥ और उपाय भी करेंगे जिससे शान्ति होगी राजा चित्रसेन उसके द्वारा

शृङ्गयुवाच ॥ पृच्छामित्वांकुतःकोवा कथंत्वमिहचागतः ॥ ब्रह्मक्षत्रविशामध्येन्यजश्शूद्रोऽथवापुनः ॥ ४७ ॥ राजोवाच ॥ नाहंविप्रो न वैश्यो न शूद्रः क्षत्रियोऽहम् ॥ शृङ्गयुवाच ॥ मां गृहीत्वा श्रमं पुण्यं यत्र तौ पितरौ मम ॥ ४८ ॥ आवेदयस्मन्चात्मानं पुत्रपापिनमागतम् ॥ तौ दृष्ट्वा मां करिष्येते कारुण्यं च तवोपरि ॥ ४९ ॥ उपायं वा करिष्येते येन शान्तिर्भविष्यति ॥ तस्य तद्वचनं श्रुत्वा चित्रसेनो नृपोत्तमः ॥ ५० ॥ स्कन्धे कृत्वा च तं विप्रं जगामाश्रमकंप्रति ॥ न शक्नोति च तं वोढुं विश्रम्य च पुनः पुनः ॥ ५१ ॥ तावत्पश्यति तं विप्रं मूर्च्छितं विकलं निद्रयम् ॥ सुमोचो चित्रसेनस्तु ह्यायान्यग्रोधकस्य च ५२ ॥ विश्रामं च ततः कृत्वा वाचं कुर्वन्मुहुर्मुहुः ॥ पश्यतस्तस्य राजेन्द्र ऋष्यशृङ्गो महातपाः ॥ ५३ ॥ पञ्चत्वमगमच्छीघ्रं ध्यानयोगेन योगवित् ॥ दाहयामास तं विप्रं विधिदृष्टेन कर्मणा ॥ ५४ ॥ स्नानं कृत्वा तु शोकात्तौ सरोदचमुमोह च ॥ ततश्चानन्तरं राजा उद्वेगं परमंगतः ॥ ५५ ॥ कथं यास्ये गृहानद्य वाराणस्यां हतो ह्ययम् ॥ ब्रह्महत्या समाविष्टो

वचन को सुनकर ॥ ५० ॥ अपने कन्धे पर ब्राह्मण को लेकर उस आश्रम को गया उसको ले चलने की सामर्थ्य नहीं है इससे बार२ विश्राम करके चलता है ॥ ५१ ॥ तबतक विकल जिसकी इन्द्रियां हैं ऐसे उस ब्राह्मण को मूर्च्छित देखा तब चित्रसेन उसको वरगद की छाया में छोड़ दिया ॥ ५२ ॥ फिर वहां विश्राम कर बार२ उसको पुकारता हुआ परन्तु हे राजेन्द्र ! उसके देखते ही बड़ा तपस्वाला वह ऋष्यशृङ्ग ॥ ५३ ॥ योगका जानने वाला ध्यानयोग से शीघ्र ही मर गया तब राजा ने वेदकी रीति से उस ब्राह्मण को जला दिया ॥ ५४ ॥ फिर शोकसे विकल आप स्नान कर रोता व मोह को प्राप्त हुआ तदनन्तर राजा बड़े घबड़ाहट को प्राप्त हुआ ॥ ५५ ॥

और कहने लगा कि हाय ! आज मरा हुआ मैं काशी में अपने घरको कैसे जाऊंगा ब्रह्महत्या से युक्त मैं अपना शरीर आग में जलादेऊँ ॥ ५६ ॥ अथवा इस ऋषिके वचन से उस आश्रमही को जाऊँ और वहाँ जाकर इस महा ऋषिका हाल जैसाकुछ हुआ है वैसा कहूँ ॥ ५७ ॥ ऐसे विचारकर वह राजा आश्रमके समीप जाताहुआ ऋष्यशृङ्ग की हड्डियों को लेकर वह राजा ॥ ५८ ॥ उन ब्रह्मर्षि के सामने खड़ाहुआ तब दीर्घतपा बोले कि तुम्हारा आगमन बहुत अच्छा हुआ आबो आसनपर बैठो ॥ ५९ ॥ हम दीर्घ तपानास के ऋषि हैं यह विष्टर सहित मधुपर्क तुम्हारे वारते है तब राजा बोला कि आप महर्षि के अर्घ योग्य मैं नहीं हूँ ॥ ६० ॥ क्योंकि हे

जुहोम्यग्नौकलेवरम् ॥ ५६ ॥ अथवाऋषिवाक्येन गच्छाम्येवाश्रमंप्रति ॥ कथयामि यथावृत्तं गत्वा तस्य महाऋषेः ॥ ५७ ॥ एवंविचिन्त्य राजासौ जगामाश्रमसन्निधौ ॥ ऋष्यशृङ्गस्य चास्थीनि गृहीत्वास नृपोत्तमः ॥ ५८ ॥ दृष्टिमागे स्थितस्तस्य ब्रह्मर्षेर्भावितात्मनः ॥ दीर्घतपा उवाच ॥ आगच्छस्वागतन्तेद्य आसने उपविश्यताम् ॥ ५९ ॥ दीर्घतपा स्मयन्तेद्य मधुपर्कस्स विष्टरः ॥ राजोवाच ॥ अर्घस्यैव न योग्यो हं महर्षेर्भावितात्मनः ॥ ६० ॥ मृगमध्ये स्थितो विप्र तव पुत्रो मया हतः ॥ पुत्रघ्नं शाधि मां विप्र तीव्रदण्डेन दण्डय ॥ ६१ ॥ मृगभ्रान्त्या हतो विप्र ऋष्यशृङ्गो महातपाः ॥ इति ज्ञात्वा च मां विप्र कुरुष्व च यथोचितम् ॥ ६२ ॥ माता तस्य वचः श्रुत्वा गृहान्निर्गत्य चिह्नला ॥ हाहतास्मीत्युवाचाथ पति ताचमहीतले ॥ ६३ ॥ विललापमुदुःखार्ता पुनश्चोकेन पीडिता ॥ हापुन पुनैति वदन्करुणं कुररीयथा ॥ ६४ ॥ श्रुत्यध्ययनसंपूर्णो जपेहोमपरायणः ॥ आगतं त्वांगृहद्वारे कदापृच्छामि पुनरक ॥ ६५ ॥ त्रिलोक्यामपि श्रूयत चन्दनं किल शी

विप्र ! हन्नों के बीच में बैठा हुआ तुम्हारा पुत्र सुक्त से मारा गया है इससे हे विप्र ! अपने पुत्र के मारनेवाले सुक्त पापी को घोर दण्डसे दण्डित करो ॥ ६१ ॥ हे विप्र ! हन्ना के धोखेमे बड़े तपवाले ऋष्यशृङ्ग सुक्तसे मारे गये हे विप्र ! ऐसा सुक्त जानकर जैसा उचित हो वैसा करो ॥ ६२ ॥ तब उन ऋष्यशृङ्ग की माता उसके वचनको सुन और घर से निकल कर बिहल होगई और कहा कि हाय ! मैं मर गई तदनन्तर पृथिवीमें गिरपड़ी ॥ ६३ ॥ पुत्र के शोक से निकल व दुःख से कष्टित हो रही विलाप करती हुई हा पुत्र ! २ ऐसे कहरही कुररी चिडियाकी तरह चिचिहा रही है ॥ ६४ ॥ और कहती है कि हे पुत्र ! वेद के पढ़ने में जप होम के करने वाले जो तुमहो तिन

को दरवाजे पर आया जान मैं तुम से अब कैसे कुछ पूछूँगी ॥ ६५ ॥ संसार भरमें सुनाजाता है कि चन्दन बड़ा ठण्डा होता है पर पुत्र के शरीर का लपटाना चन्दन से भी ठण्डा है ॥ ६६ ॥ इससे हे पुत्र ! मैं अति प्यारे तुम्हें लपटाया चाहती हूँ अब तुम्हारे बिना दुखिया मैं भी मरजाऊँगी ॥ ६७ ॥ ऐसे विलाप करती हुई व पुत्र के शोक से पीड़ित होरही जमीन में दुःखी व विह्वल व मूर्च्छित हो गिरपड़ी ॥ ६८ ॥ स्त्री को गिरी देखकर तब पुत्र के शोकसे पीड़ित उन मुनिश्रेष्ठ ने राजा चित्रसेन पर बड़ा कोप किया ॥ ६९ ॥ दीर्घतपा बोले कि रे महापाप ! तू चलाजा २ मुझको अपना मुँह मत दिखेला क्या तूने वेमतलब मेरे पुत्र ब्राह्मण को मार डाला ॥ ७० ॥

तलम ॥ पुत्रगातपरिष्वङ्गश्चन्दनादपिशीतलः ॥ ६६ ॥ परिष्वजितुमिच्छामि त्वामहंपुत्रमुपप्रियम् ॥ पञ्चत्वञ्चगभिष्यामि त्वद्विहीनामुदुःखिता ॥ ६७ ॥ एवंविलपतीर्दाना पुत्रशोकैकनपीडिता ॥ मूर्च्छिताविकलादीना निपपातमहीतले ॥ ६८ ॥ भार्याचपतितादृष्ट्वा पुत्रशोकैकनपीडितः ॥ चुकोपमुनिश्रेष्ठश्चित्रसेनं नृपतदा ॥ ६९ ॥ दीर्घतपा उवाच ॥ याहियाहि महापाप मामुखं दर्शयस्व मे ॥ किन्त्वयाघातितो विप्र ह्यकामाच्च सुतोमम ॥ ७० ॥ ब्रह्महत्याभविष्यन्ति बहवस्तेनरा धिप ॥ सकुटुम्बस्य मे त्वंहि मृत्युरेवमुपागतः ॥ ७१ ॥ एवमुक्त्वा ततो विप्रो विचिन्त्य च पुनः पुनः ॥ क्रोधं परित्यज्य ततो मुनिमार्गे जगाम ह ॥ ७२ ॥ ऋषिरुवाच ॥ उद्वेगत्य जभोराजन्दुरुक्तं गदितं मया ॥ पुत्रशोकाभिभूतेन दुःखमाप्तेन मानद ॥ ७३ ॥ किं करोति नरः प्राज्ञः प्रेर्यमाणस्त्वकर्मभिः ॥ प्रायेण हि मनुष्याणां बुद्धिः कर्मांनुसारिणी ॥ ७४ ॥ अनेनैव प्रकारेण यत्त्वया लिखितं मम ॥ परंतव भविष्यन्ति विप्रहत्यानसंशयः ॥ ७५ ॥ ब्रह्मक्षत्रविशामध्ये शुद्रोवाचा

हे नराधिप ! तुम्हें बहुत सी अपराधों की याद दिलायी है ॥ ७३ ॥ ऐसा कह फिर वह ब्राह्मण बार २ विचार कर कोध छोड़ तदनन्तर मुनियों की काल पर आगया ॥ ७२ ॥ और बोला कि हे राजन् ! अबतुम घबड़ाहट को छोड़ दो क्योंकि हे मानद ! पुत्र के शोक व दुःखसे विकल मैंने तुम से कहुँई बातें कही ॥ ७३ ॥ अपने कर्मों ने प्रेरणा किया जारहा बुद्धिमान् भी मनुष्य क्या करसक्ता है बहुधा मनुष्यों की बुद्धि कर्मों के अनुसारही होती है ॥ ७४ ॥ इसी रीति से जो हमारे आरब्ध में लिखा था वही तुमने किया लेकिन ब्रह्महत्या तो तुमको होगी इसमें संशय नहीं है ॥ ७५ ॥ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शुद्र,

और चाण्डालो के बीच में तू कैन है सो मुझ से सत्य कह और किस वास्ते हमारे पुत्रको तूने मारा ॥ ७६ ॥ तब चित्रसेन बोला कि हे विप्रर्षे ! मैं आपसे कहता हूँ आप मेरे ऊपर क्षमा करो मैं ब्राह्मण नहीं हूँ और हे तात ! वैश्य व शूद्र भी नहीं हूँ ॥ ७७ ॥ और चाण्डाल भी नहीं हूँ हे द्विजोत्तम ! मैं काशी का राजा क्षत्रिय हूँ सो हबों के मारने के वास्ते उत्तम बनको आयाथा ॥ ७८ ॥ सो उस वन में घूमतेहुये मुझसे हज्जाके रूपका धरनेवाला आपका पुत्र मुनि मारडालागया हे विप्र ! अब मुझको क्या करना चाहिये सो उस उपायको आप मुझसे कहें ॥ ७९ ॥ तब दीर्घतपा बोले कि हे विभो ! अकेले एक तुम ब्रह्महत्या को नहीं तरसके हो इससे

नृत्यजादिषु ॥ कस्त्वं कथय सत्यं मे कस्माच्च निहतः सुतः ॥ ७६ ॥ चित्रसेन उवाच ॥ विज्ञापयामि विप्रर्षे च न्तव्यं च ममोपरि ॥ नाहं विप्रो भवेत्तात न शूद्रो नैव वैश्यजः ॥ ७७ ॥ न चापि चान्त्यजातीयः क्षत्रियो हं द्विजोत्तम ॥ काशिराजो मृगान्हन्तु मागतो वनमुत्तमम् ॥ ७८ ॥ भ्रमतापाति तस्तत्र मृगरूपधरो मुनिः ॥ किं कर्तव्यं मया विप्र उपायं कथय स्वमे ॥ ७९ ॥ दीर्घतपा उवाच ॥ ब्रह्महत्या न शक्येत एकेन तारितुं विभो ॥ देशे काले यथाशक्त्या तच्छृणु ब्रह्मनराधिप ॥ ८० ॥ चत्वारो मे सुताराज न सभाय्या मातृपूर्वकाः ॥ मया सह न जीवन्ति ऋष्यशृङ्गस्य कारणे ॥ ८१ ॥ उपायं शोभनं तात कथयामि शृणु ष्वभोः ॥ शक्यते यदि चेत्कर्तुं सुखोपायं नरेश्वर ॥ ८२ ॥ सकुटुम्बसमस्तान्नो दाहयस्वानले नृप ॥ अस्थानि नर्मदातोये शूलभेदे विनिक्षिपे ॥ ८३ ॥ नर्मदादक्षिणैकूले शूलभेदेति विश्रुतम् ॥ सर्पपापहरं तीर्थं सर्वतीर्थोत्तमोत्तमम् ॥ ८४ ॥ शुचिर्भूत्वा ममास्थानि क्षिपत्वं शूलभेदके ॥ मुच्यते सर्वपापेभ्यो मम वाक्यान्न संशयः ॥ ८५ ॥ राजोवाच ॥ आ

जिसदेश व जिस काल में अपनी शक्तिके अनुसार उसके पार होसके हो हे नराधिप ! सो सुनो ॥ ८० ॥ हे राजन् ! एक ऋष्यशृङ्गके पीछे अपनी स्त्रियोंके व माता के व हमारे सहित हमारे चारों लडके नहीं जीसके हैं ॥ ८१ ॥ इससे हे तात ! बहुत अच्छे उपाय को हम तुमसे कहते हैं सो तुम सुनो परन्तु हे नरेश ! जो उस सुखवाले उपाय को तुम करसके हो ॥ ८२ ॥ तो हे नृप ! कुटुम्ब सहित हम सब को अग्नि में जला देवो और हम सबकी हड्डियों को शूल भेद में नर्मदाके जलमें डाल देवो ॥ ८३ ॥ नर्मदाके दक्षिणवाले किनारेपर सब पापों का हरनेवाला सब तीर्थों में अत्युत्तम शूलभेद नामका तीर्थ प्रसिद्ध है ॥ ८४ ॥ उसी शूलभेद में तुम पवित्र

होकर हमारे हाड़ोंको डाल देवो इससे तुम भी हमारे कहने से सब पापों से छूटजावोगे इससे संशय नहीं है ॥ ८५ ॥ तब राजा बोला कि हे तात ! आप आज्ञा देवो हम करेंगे इसमें संशय नहीं है राज्य, खजाना, स्त्रियां, और पुत्र आदि जो कुछ हमारे हैं सो सभी ॥ ८६ ॥ आपको दान कर देवोंगे हे विप्र ! आप मुझपर प्रसन्न हूँजिये हे नृप ! उससमय ऐसे मुनि और राजाके आपसमें बतलातेही ॥ ८७ ॥ छाती फटकर शीघ्र मुनिकी स्त्री मरगई पुत्र के शोकसे दबीहुई जीव रहित होकर जमीन में गिरपड़ी ॥ ८८ ॥ लडके भी सब माताके शोकसे मरगये पुत्रों की स्त्रियां भी अपने पतियों के सहित सब मरगई ॥ ८९ ॥ मुनिके सहित उन सबको मरादे-

देशोदीयतांतान करिष्यामिनसंशयः ॥ सर्वस्वमपियत्किञ्चिद्राज्यंकोशस्त्रियस्सुताः ॥ ८६ ॥ तवदानंनप्रयच्छामि विप्रमांत्वंप्रसीदच ॥ परस्परंविवदतोर्मुनिराज्ञोस्तदानृप ॥ ८७ ॥ स्फुटित्वाहृदयंशीघ्रं मुनेर्भार्यामृतातदा ॥ पुत्रशोक समाक्रांता निज्जीवापतिताक्षितौ ॥ ८८ ॥ पुत्राश्चमातृशोकेन सर्वेपञ्चत्वमागताः ॥ स्नुषाश्चैवतुनास्सर्वा मृताश्चसह भर्तृभिः ॥ ८९ ॥ पञ्चत्वंतुगतान्सर्वान्मुनिमुख्यान्निरिक्ष्यतान् ॥ विप्राश्चाह्वानितास्तेन तेतत्राश्रमवासिनः ॥ ९० ॥ तेभ्योनिवेदयामास यथावृत्तंनरोत्तमः ॥ संहतैस्तैरनुज्ञातःकथञ्चिद्ब्रह्मयज्ञतः ॥ ९१ ॥ देहंस्वंपावनंकृत्वागृह्यास्थीनि प्रयत्नतः ॥ याम्यांहिप्रस्थितोराजा पादचारीमहीपतिः ॥ ९२ ॥ नशक्कोतिथदागन्तुं क्षायामाश्रित्यतिष्ठति ॥ विश्रम्य चपुनर्गच्छन्विश्रम्यचपुनःपुनः ॥ ९३ ॥ सचैलंकुरुतेस्नानमस्थीन्बोढापदेपदे ॥ विनाजलंनिराहारःसोगच्छद्ब्रह्मक्षिणामु खः ॥ ९४ ॥ अचिरैणैवकालेन सगतोनर्मदातटे ॥ आश्रमस्थान्द्विजान्सर्वान् पप्रच्छराजसत्तमः ॥ ९५ ॥ किथयतांमे

खकर राजा ने उस आश्रम के रहनेवाले ब्राह्मणों को बुलाया ॥ ९० ॥ और उत्तम राजा ने उनसे जैसा कुछ हाल हुआ सो सब कहा फिर एकत्रित हुये ब्राह्मणों की आज्ञामें किसी तरह यत्न से उन सबको जलाकर ॥ ९१ ॥ और अपनी देहको पवित्र कर और प्रयत्नसे उनके हाड़ों को लेकर पृथ्वी का स्वामी राजा दक्षिण दिशा को पैदल चलता हुआ ॥ ९२ ॥ जब चलने को नहीं समर्थ होता तब क्षाया पायकर बैठ जाता है सहेताय कर फिर चलता है फिर २ विश्राम करताहै ॥ ९३ ॥ हाड़ों को लियेहुये पग २ पर कपड़ों सहित स्नान करता, विना जलकं निराहार दक्षिण मुखको जाताहुवा ॥ ९४ ॥ थोड़ेही काल में वह श्रेष्ठ राजा नर्मदा तटमें पहुँचगया

और उस आश्रमके रहनेवाले सब ब्राह्मणोंसे पूछा ॥ ६५ ॥ कि हे द्विजश्रेष्ठ ! आप लोग शूलभेदकी रास्ता मुझे बतलावें ॥ ६६ ॥ तब ब्राह्मण बोले कि नर्मदाके दक्षिण
वाले किनारे पर जायकर देखो यह अन्यथा नहीं है ॥ ६७ ॥ इसके बाद उन ऋषियों के कहने के अनुसार वह मनुष्यों का मालिक राजा गया तदनन्तर बहुत ब्राह्मणों
से व्याप्त उस तीर्थको देखा ॥ ६८ ॥ जोकि बहुत से वृक्ष व लताओं से व्याप्त बहुत से फूलोंसे सुहावना बहुतसे मूल व फूलोंसे युक्त, और बहुतसे जीवों से शो-
भित ॥ ६९ ॥ अनेक व्रतों के करनेवाले अनेक उत्तम ऋषियों से गुरु है वहां कोई एक पांव से खड़े हैं, कोई सूर्य के समान तेजवाले हैं ॥ ७० ॥ कोई एकही तरफ
द्विजश्रेष्ठाऽशूलभेदस्य मार्गकः ॥ ६६ ॥ विप्रा ऊचुः ॥ नर्मदादक्षिणे कूले गतो द्रक्ष्यसि नान्यथा ॥ ६७ ॥ ऋषिवाक्येन वै
राजागतो यो हिनरेऽश्वरः ॥ सददर्शतस्तर्त्तार्थं बहु द्विजसमाकुलम् ॥ ६८ ॥ बहु दुर्मलतार्काणं बहुषुषोपशोभितम् ॥ ब
हुमूलफलोपेतं बहुश्वापदशोभितम् ॥ ६९ ॥ ऋषिसंघैः समाकर्णं नानाव्रतधरैश्शुभैः ॥ एकपादस्थिताः केचिदपरैस्तु
र्ध्ववर्चसः ॥ ७० ॥ एकदृष्टिस्थिताः केचिदूर्ध्वबाहुस्थिताः परे ॥ चान्द्रायणपरकेचित्केचित्पक्षोपवासिनः ॥ १ ॥ मासो
पचासिनः केचित्केचिद्वह्नुमुपोषिताः ॥ शीर्षपणोशिनः केचित्केचिन्मासतभोजनाः ॥ २ ॥ योगाभ्यासरताः केचिच्छा
यन्तः परमंपदम् ॥ गार्हस्थ्यमास्थिताः केचित्केचिच्चैवाग्निहोत्रिणः ॥ ३ ॥ एवंविधान् द्विजान् दृष्ट्वा जानुभ्यामवनीङ्ग
तः ॥ प्रणम्य शिरसाराजान्नाजावचनमब्रवीत् ॥ ४ ॥ कस्मिन्देशे तु तर्त्तार्थं कथयध्वं द्विजोत्तमाः ॥ सर्वेषां वाञ्छितां सिद्धिं
फलमेवं ददेदिति ॥ ५ ॥ ऋषिरुवाच ॥ धन्वन्तरशतंगच्छ भृगुतुङ्गस्य मूर्धनि ॥ कुरुदं द्रक्ष्यसि विस्तीर्णं तोयपूर्णं सु
देखते हुये खड़े हैं, कोई ऊपरको बाहें किये हुये खड़े हैं, कोई चान्द्रायणको करते हैं, कोई एक पाख भर नहीं खाते हैं, ॥ १ ॥ कोई महीना भर नहीं खाते, कोई दो
महीने नहीं खाते, कोई गिरे पत्तों को खाते है, कोई वायु का भोजन करते है ॥ २ ॥ कोई योगाभ्यास में लगे हुये परमपदको ध्यावते हैं, कोई गृहस्थी में स्थित
और कोई अग्निहोत्रके करनेवाले है ॥ ३ ॥ ऐसे ब्राह्मणों को देख राजा धुतुओं से जमीन में गिरा और शिर से प्रणाम कर हे राजन् ! वचन बोला ॥ ४ ॥ कि हे
द्विजोत्तमा ! वह तीर्थ वहां है सो आपलोग कहें जोकि सबकी मनोवाञ्छित सिद्धि व फलको देता है ॥ ५ ॥ तब एक ऋषि बोला कि तुम भृगुतुङ्ग के ऊपर सौ धनुष

चलो तदनन्तर जल से भरेहुये भारी छुन्दर कुण्डको देखोगे ॥ ६ ॥ उनके इस वचन को सुन राजा कुण्डके ऊपर गया पर उस तीर्थको देख गजाको अमहुवा ॥ ७ ॥ बडभागी कुण्ड व गङ्गा देख और विशेष करके प्राची सरस्वती को देख राजाको आन्ति हुई ॥ ८ ॥ तदनन्तर विस्मयको प्राप्त हुवा व बार २ चिन्ताकरता हुवा राजा मांस के सहित एक कुरगनामकी चिडिया को आकाश में देखा ॥ ९ ॥ कुरर उस मांसको लिये हुये इधर उधर चक्कर खाया रहा और जिनके पास मांस नहीं है उनसे माराजाता है और वे मव मांस के खानेवाले पक्षी आपरा में लडते है ॥ १० ॥ फिर कुरर उन चिडियोंकी चोंचों से मारागया पानी में जागिरा अगिले

शोभनम् ॥ ६ ॥ तेषातद्वचनं श्रुत्वा गतः कुण्डस्य मूर्धनि ॥ दृष्ट्वा हि चैव तत्तीर्थं आन्तिर्जातान् पश्यहि ॥ ७ ॥ वीक्ष्य कुण्डं महाभागं गङ्गाञ्चैव विशेषतः ॥ प्राचीं सरस्वतीं न दृष्ट्वा आन्तिर्जातान् पश्यहि ॥ ८ ॥ ततो विस्मयमापन्नश्चिन्तयानो मुहुर्मुहुः ॥ आकाशसंस्थितं दृष्ट्वा सामिषं कुररन्तथा ॥ ९ ॥ अममाणं गृहीत्वा तं वध्यमानं निरामिषैः ॥ परस्परं हियुध्यन्ते सर्वे चामिषमक्षकाः ॥ १० ॥ हतश्चञ्चुप्रहारस्तु कुररः पतितो भूमि ॥ शूलैर्न शूलिना यत्र भूभागं भेदितपुरा ॥ ११ ॥ तत्तीर्थस्य प्रभावेण ससद्यः पुरुषो भवत् ॥ विमानस्थन्तु तन्दृष्ट्वा क्रौंचवै दिव्यरूपिणम् ॥ १२ ॥ अप्सरोभिर्गीयमानं नृपस्तत्तीर्थमागतः ॥ अस्थीनि भूमौ निक्षिप्य स्नानं कृत्वा यथाविधि ॥ १३ ॥ तिलमिश्रेण तोयेन तर्पयित्वैष्ट देवताः ॥ शुक्लास्थीनितो राजा निक्षिप्यान्तर्जले तथा ॥ १४ ॥ क्षणमेकं ततो वीक्ष्य राजा ऊर्ध्वमुखः स्थितः ॥ तान्दर्शयित्वा तत्सर्वान् देवमूर्तिधराञ्छुमान् ॥ १५ ॥ दिव्यवस्त्रैश्च सर्वान् दिव्याभरणभूषितान् ॥ विमानैः काञ्चनैर्दिव्यैरप्सरोगणमेवितैः ॥ १६ ॥

जमाने में जहां महादेवने त्रिशूलसे पर्वतको फोडा था ॥ ११ ॥ उस तीर्थ के प्रभावसे वह कुरर उसी समय में पुरुष होगया दिव्यरूपको धरे व विमान पर बैठेहुये उस कौंच पक्षीको देख ॥ १२ ॥ अप्सराओं से गायेजारहे उस तीर्थको राजा आया और हाडोंको जमीन में रख व विधि से स्नान कर ॥ १३ ॥ तिल मिले जल से इष्ट देवताओं का तर्पण कर और हाडों को लेकर व जल में उन्हें विसर्जन कर ॥ १४ ॥ तदनन्तर एक क्षण भर देखकर राजा ऊपरको मुंह कियेहुये खडा रहा तदनन्तर देवताओं की उत्तम मूर्तियोंको धरेहुये उन सबोंको देखा ॥ १५ ॥ कि दिव्य वस्त्रोंको पहनेहुये व दिव्य गहनोंसे सजे अप्सराओंसे युक्त सोनेके दिव्य विमानों से ॥ १६ ॥

अलग २ विमानों पर बैठेहुये उन सबको ऊपरको जातेहुये देख वह राजा बड़ा प्रसन्न हुआ ॥ १७ ॥ तदनन्तर विमान पर बैठे हुये दीर्घतपा ऋषि राजा चित्रसेनसे बोले कि हे महामते, महाराज चित्रसेन ! बाहर ॥ १८ ॥ हे नृपश्रेष्ठ ! आपके प्रसाद से आज हमारी दिव्य गति हुई है यह जो कुछ तुमने बड़े कड़े काम को किया है ॥ १९ ॥ ऐसा काम अपना पुत्रभी अपने पितरों का नहीं करसक्ता है हे राजन् ! अब तुम-हमारे वचन से निष्पाप होजाओगे ॥ २० ॥ हे राजन् ! जिस से तुम अपने मन माने मनोरथ को देखोगे तदनन्तर बुद्धिमान चित्रसेन को आशीर्वाद देकर ॥ २१ ॥ अपने पुत्रोंके सहित दीर्घतपासुनि स्वर्गको जातेहुये ॥ १२२ ॥

पृथग्भूतांश्चतान्सर्वान्विमानेषुऽयवस्थितान् ॥ उत्पततस्समालोक्य सराजाहर्षितोभवत् ॥ १७ ॥ ऋषिर्विमानमारूढश्चित्रसेनमथाब्रवीत् ॥ भोभोः साधुमहाराज चित्रसेनमहामते ॥ १८ ॥ त्वत्प्रसादान्बृपश्रेष्ठ गतिर्दिव्यासमाद्यैव ॥ इदंचयत्स्वयाकिञ्चित्कृतं परमदुष्करम् ॥ १९ ॥ स्वसुतोपिनशक्नोति पितृणां कर्तुमीदृशम् ॥ मदीयवचनाद्राजन्निष्पापस्त्वं भविष्यसि ॥ २० ॥ यत्तदंक्ष्यसि राजेन्द्र कामिकं मनसि स तम् ॥ आशीर्वादं ततोदत्त्वा चित्रसेनाय धीमते ॥ २१ ॥ स्वर्गजगामस्व सुतैस्ततो दीर्घतपासुनिः ॥ १२२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे रेवाखण्डे दीर्घतपा आख्यानो नामैकोनवतितमोऽध्यायः ॥ ८९ ॥

उत्तानपाद उवाच ॥ दृष्ट्वा तत्तीर्थमाहात्म्यं चित्रसेनो नरेश्वरः ॥ विपुलं तीक्ष्णधारञ्च कण्ठे चासिन्दुरोत्तम ॥ १ ॥ देवान्सर्वान्ब्रह्मविष्णुमहेश्वरान् ॥ विनिक्षिपन्नयात्मानो प्रत्यक्षौ विष्णुशङ्करौ ॥ २ ॥ करेण ह्यतुराजानं रुद्रो वचनमब्रवीत् ॥ हर उवाच ॥ प्राणत्यागं महाराज अकालेमाङ्कुरुष्वह ॥ ३ ॥ अद्यापि तु युवासित्वं न युक्तं मरणं तव ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे रेवाखण्डे प्राकृतभाषानुवादे दीर्घतपा आख्यानो नामैकोनवतितमोऽध्यायः ॥ ८९ ॥

उत्तानपाद बोले कि हे नृपोत्तम ! राजा चित्रसेन उसतीर्थ के माहात्म्य को देखसारी पैनी धार वाली तलवार को ब्रह्मा, विष्णु, और महादेव आदि सन देवताओंका ध्यान करने हुये अपने गले पर चलावे तबतक अपने प्रत्यक्ष विष्णु और महा देवजी को देखा ॥ १ ॥ २ ॥ तब राजा का हाथ पकड़ महादेव बोले, महादेवजी कहते हैं, कि हे महाराज ! अकाल में अपने प्राणों का त्याग तुम मत करो ॥ ३ ॥ अभी तुम जवानहो इस से तुम्हारा मरना योग्य नहीं है तिससे तुम अपने स्थान को

जावो और मन माने भोगों को भोगो ॥ ४ ॥ दूसरे इन्द्रकी तरह निष्कण्टक राज्यको भोगो तब चित्रसेन बोले कि हे देव ! मैं राज्य व पुत्र, व भाइयोंको नहीं चाहता हू ॥ ५ ॥ और स्त्री, खजाना, गौवें और घोड़ों को भी नहीं चाहता हू इस से हे महादेव ! मुझे छोड़ देवो मेरा विघ्न मत करो ॥ ६ ॥ हे महेश्वर ! आप के प्रसाद से आजही मुझको स्वर्गकी प्राप्ति होती है तब महादेवजी बोले कि जिसके आगे ब्रह्मा व विष्णु व महादेव खड़े हों ॥ ७ ॥ उसे स्वर्ग से क्या काम है और वहां जाकर भी क्या करेगा इससे हम तीनों देवता आपपर प्रसन्न हैं उच्चम वरको तुम मांगलो ॥ ८ ॥ हे महाराज ! अपने मनका वरमांगो यह सत्य है इसमें संशय नहीं है तब चित्रसे-

स्वस्थानंगच्छवैशीघ्रं भोगान्मुंक्ष्वयथेप्सितान् ॥ ४ ॥ मुंक्ष्वनिष्कण्टकराज्यं नाकंशक्रइवापरः ॥ चित्रसेनउवाच ॥ नराज्यं कामयेदेव नपुत्रान्नचवान्धवान् ॥ ५ ॥ नभार्योनचकोशञ्च नगवानंतुरङ्गमान् ॥ मुञ्चस्वमामहादेव अविघ्नंक्रियतांमम ॥ ६ ॥ स्वर्गप्राप्तिर्ममाद्यैव त्वत्प्रसादान्महेश्वर ॥ देवउवाच ॥ यस्याग्रतोभवेद्विष्णुब्रह्मारुद्रस्तथैव च ॥ ७ ॥ स्वर्गेणतस्यकिंकार्यं गतोसौकिंकरिष्यति ॥ तुष्टावत्वांत्रयोदेवा वृणीष्ववरमुत्तमम् ॥ ८ ॥ यथेप्सितंमहाराज सत्यमेतन्नसंशयः ॥ चित्रसेनउवाच ॥ यदितुष्टास्त्रयोदेवा ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥ ९ ॥ अद्यप्रभृतियुष्माभिः स्थातव्यमिहसर्वदा ॥ गयाशिरंयथापुण्यं कृतंयुष्माभिरेवच ॥ १० ॥ तथैवेदन्तुकर्तव्यं शूलभेदञ्चपावनम् ॥ यत्रयत्र स्थितायूयं तत्रतत्रवसाम्यहम् ॥ ११ ॥ गणानामिहसर्वेषामवध्योहंसुरेश्वर ॥ ईश्वरउवाच ॥ अद्यप्रभृतितिष्ठाम शूलभेदेनरेश्वर ॥ १२ ॥ कलांशेनत्रयोदेवास्त्रिकालंनिवसामहे ॥ नन्दिसंज्ञोणञ्चत्वं भविष्यसिनसंशयः ॥ १३ ॥

न बोले कि जो ब्रह्मा, विष्णु और महादेव तीनों देवता प्रसन्न हो ॥ ६ ॥ तो आजसे आप लोगोंको यहां सदा रहना चाहिये जैसे आप लोगोंने गया शिरको पुण्यवाला बनाया है ॥ १० ॥ इसीतरह इस शूलभेदको भी पावनकरो और जहां २ भूमि वसाकरू ॥ ११ ॥ और हे सुरेश्वर ! आपके सब गणों में मैं अन्ध होऊं तब महादेवजी बोले कि हे नरेश्वर ! आजसे हम लोग शूलभेद में रहेगे ॥ १२ ॥ अपने कलांश से हम तीनों देवता तीनों कालों में यहां बसेंगे और तुम

नन्दीनामके गण होवोगे इसमें संशय नहीं होगा ॥ १३ ॥ और हे नृप! हमारे समीप पहले तुम्हारी पूजा सदा होगी जैसे अपने हाड़ों को जलमें डलवाके कुटुम्ब सहित विमानपर बैठेहुये दीर्घतपा चलेगये और स्वर्ग में विराजमान हैं वैसाही तुम भी करो हे पार्थिव! इसप्रकार चित्रसेनको वर देकर तीनो देवता ॥ १४ ॥ १५ ॥ कुण्ड के ऊपर जावेंगे यह विचारकर तब तीनो देवता बैठतेहुये और आपस में ऐसे कहते हैं कि यह तीर्थ ऐसा शुभ है ॥ १६ ॥ कि जैसे सब महीनों में गयाशिर पुरयवाला कहाजाता है इसीतरह नर्मदाके किनारेपर शूलभेद पुरयवाला है इसमें संशय नहीं है ॥ १७ ॥ ब्रह्माजी बोले कि हे महाराज! यह तीर्थ ऐसा पवित्र है जैसा गयाशिर है

भविष्यत्यग्रपूजाते मत्समीपेसदानृप ॥ प्रक्षिप्यचनिजास्थीनि यथादीर्घतपाययौ ॥ १४ ॥ सकुटुम्बोविमानस्थ
स्वर्गतिष्ठतितत्कुरु ॥ एवंदेवावरन्दत्वा चित्रसेनायपार्थिव ॥ १५ ॥ कुण्डमूर्द्धन्यास्यामस्त्रयोदेवास्तदास्थिताः ॥
परस्परंवदन्त्येवमिदंतीर्थतथाशुभम् ॥ १६ ॥ यथागयाशिरंपुरणं सर्वमासिचपठ्यते ॥ तथारेवातटेपुरणं शूलभेदन्न
संशयः ॥ १७ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इदंतीर्थमहाराज यथापुरणं गयाशिरः ॥ स्नात्वाचैवोदकेतस्मिन्नरोनिर्मलतां व्रजेत् ॥ १८ ॥
एकंगयाशिरंसुक्त्वा सर्वतीर्थानिशङ्कर ॥ शूलभेदस्यतीर्थस्य कलानार्हन्तिषोडशीम् ॥ १९ ॥ कुण्डस्यदक्षिणेभागे
दशहस्तप्रमाणतः ॥ ऐन्द्रचारुणवायव्या प्रमाणन्वेकविंशतिः ॥ २० ॥ एतत्प्रमाणंतीर्थस्य पिण्डदानादिकर्ममसु ॥
नराः पुण्याश्च ते सर्वे अन्नदानं कृतंचर्यः ॥ २१ ॥ विष्णुस्त्रिनेत्ररूपेण ब्रह्मरूपीपितामहः ॥ तस्मिंस्तीर्थेस्थितानित्यं पूजां
गृह्णन्तिभक्तिः ॥ २२ ॥ जातंजातंनिरीक्ष्यन्ते स्वपुत्रं हिपितामहाः ॥ कदायास्यतिपुत्रोसौ कदादाताभविष्यति ॥ २३ ॥

इस जलमें स्नानकर मनुष्य निर्मल होजाता है ॥ १८ ॥ हे शङ्कर! एक गयाशिरको छोड़ और सब तीर्थ शूलभेद तीर्थकी सोलहवीं कलाको नहीं पासके हैं ॥ १९ ॥
कुण्डके दक्षिण तरफ दश हाथ और पूर्व, पश्चिम, वायव्य में इक्कीस हाथ ॥ २० ॥ पिण्डदान आदि कर्मों में इस तीर्थका इतना प्रमाण है वे सब मनुष्य बड़े पुण्यात्मा
हैं जिन्होंने यहां दानको किया है ॥ २१ ॥ उस तीर्थ में विष्णुजी महादेवके रूपसे और ब्रह्मा अपनेही रूपसे सदा बैठेहुये भक्तिसे करीहुई पूजाको लेते हैं ॥ २२ ॥ सुरि-

खालोग अपने धरमें पैदाहुये हरएक पुत्रको देला करते हैं कि यह शूलभेदको कब जावेगा और कब हमारे पिण्डोंका देनेवाला होगा ॥ २३ ॥ पांच स्थानोंमें जो भक्ति-
वाला मनुष्य श्राद्धको करताहै वह प्रेतरूप होरहे अपने सब कुलोंको तारदेता है ॥ २४ ॥ पिताकी इच्छास और माताकी इच्छास और स्त्री की ग्याह इनसब पीढ़ियोंको
तारदेताहै ॥ २५ ॥ और देवता व ब्राह्मणों और पितरोंकी दयासे श्राद्धका करनेवाला महादेवके समीप रहताहै ॥ २६ ॥ जो लोग आत्महत्याके करनेवाले हैं व गोहत्या
के करनेवाले हैं व स्त्री, जल, पशु और बिजुली से मारगये हैं ॥ २७ ॥ उनका अग्निदाह व शुद्धि व जलदान नही होसकताहै लेकिन उस तीर्थमें जो कोई अपनी भक्तिसे

पञ्चस्थानेषुयःश्राद्धं कुरुतेभक्तिमान्नरः ॥ स्वकुलानितुसर्वाणि प्रेतभूतानितारयेत् ॥ २४ ॥ एकविंशत्पितृपद्वे
मातृपद्वैकविंशतिम् ॥ भार्यायाएकादशैवेति सर्वाण्येतानितारयेत् ॥ २५ ॥ द्विजदेवप्रसादेन पितृणाञ्चतथैवहि ॥
श्राद्धदोषसतेतत्र यत्रदेवोमहेश्वरः ॥ २६ ॥ आत्मनोघातकायेच गोघ्नाःस्त्रिणहताश्रये ॥ दंष्ट्रिभिर्जलपातेन विद्युत्पाते
नयेहताः ॥ २७ ॥ नतेषामग्निमंस्कारो नशौचघ्नोदकक्रिया ॥ तत्रतीर्थेतुयःश्राद्धं तेषांकुर्यात्स्वभक्तिः ॥ २८ ॥
मोक्षप्राप्तिर्भवेत्तेषां त्रिस्थानेषुनसंशयः ॥ तृप्तिस्तुजायतेतेषां वर्षमेकन्नसंशयः ॥ २९ ॥ अजानताकृतं पापं बालभा
वेषुयत्कृतम् ॥ तत्सर्वन्नश्यतिचिप्रं सकृत्स्नानेनभूयते ॥ ३० ॥ रजकेनयथाधौत वस्त्रंनिर्मलतां व्रजेत् ॥ पापोपलिप्त
स्तीर्थेस्मिन् स्नातोनिर्मलतां व्रजेत् ॥ ३१ ॥ संन्यामङ्कुरतेयस्तु तस्मिंस्तीर्थेनराधिप ॥ ध्यायमानोमहादेवं सगच्छे
त्परमंपदम् ॥ ३२ ॥ क्रीडित्वाचयथाकामं स्वेच्छयाशिवमन्दिरे ॥ वेदवेदाङ्गतत्त्वज्ञो जायतेविपुलेकुले ॥ ३३ ॥ रू

उनका श्राद्धकरे ॥ २८ ॥ तो उनका मोक्ष जरूरी होवे इसमें कुछ संशय नहीं है और एक सालभर वे लोग श्राद्धसे तृप्त रहसकते हैं इसमें संशय नहीं है ॥ २९ ॥
और हे भूपते ! जो पाप बिना जाने व लड़कपनमें कियागयहै वह सब एक बार स्नान करने से तुरन्त नाश होजाताहै ॥ ३० ॥ धोबीका धोयाहुआ कपड़ा जैसे नि-
र्मल होजाताहै इसीतरह पापसे भराहुआ मनुष्य इस तीर्थमें स्नान करतेही निर्मल होजाताहै ॥ ३१ ॥ और हे नराधिप ! उस तीर्थमें जो महादेवका ध्यान करताहुआ
संन्यास लेताहै वह परमपदको जाताहै ॥ ३२ ॥ अपनी इच्छाभर महादेवके मन्दिरमें विहारकर फिर बड़े कुलमें वेद व वेदाङ्गोंके तत्त्वोंका जाननेवाला पैदा होताहै ॥ ३३ ॥

और रूपवाला, भाग्यवाला, सब रोगों से रहित, सब धर्मों से युक्त और सब आचारों से युक्त होता है ॥ ३४ ॥ हे राजन् ! यह उत्तम तीर्थका फल तुमसे कहा गया इसको सदा सुनकर मनुष्य सब पापों से छूट जाता है ॥ ३५ ॥ जो कोई इस आख्यानको हरएक पर्वमें आरुद्रमें व देवताके मन्दिरमें ब्राह्मणों के समीप बैठकर भक्तिसे सुनाता है ॥ ३६ ॥ उसपर देवता व मनुष्य पितरों के सहित प्रसन्न होते हैं पढ़ने व सुननेवालों के पापोंका समूह नाश होजाता है ॥ ३७ ॥ और जो इस तीर्थके माहात्म्यको लिखकर ब्राह्मणोंको देता है वह अपने पिछिले जन्मों की याद रखनेवाला होता है और अपने मनमाने फलको पाता है ॥ ३८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवा

पवान्भुभगश्चैव सर्वव्याधिविवर्जितः ॥ सर्वधर्मसमोपेतस्सर्वाचारसमन्वितः ॥ ३४ ॥ एतत्तेकथितं राजंस्तीर्थस्थं फलमुत्तमम् ॥ तच्छ्रुत्वा मानवो नित्यं मुच्यते सर्वपातकैः ॥ ३५ ॥ यश्चैनं श्रावयेद्भक्त्या आख्यानं द्विजसन्निधौ ॥ आरुद्रे वगृहे चैव पठेत्पर्वणि पर्वणि ॥ ३६ ॥ गीर्वाणास्तस्य तुष्यन्ति मनुष्याः पितृभिस्सह ॥ पठतां शृण्वताञ्चैव नश्येद्द्वैपापसञ्चयः ॥ ३७ ॥ लिखित्वा तीर्थमाहात्म्यं ब्राह्मणेभ्यो ददाति यः ॥ जातिस्मरं सलभते प्राप्नोत्यभिमतं फलम् ॥ ३८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवा खण्डे चित्रसेनकथावर्णनो नाम नवतितमोऽध्यायः ॥ ९० ॥ * ॥

राजोवाच ॥ अन्यच्च श्रोतुमिच्छामि केन गङ्गावतारिता ॥ रुद्रशीर्षिस्थिता पुण्या देवी कथमिहागता ॥ १ ॥ पुण्यादेव शिलानाम तस्यामाहात्म्यमुत्तमम् ॥ एतदाख्याहिमे सर्वं प्रसादात्पुरुषोत्तमम् ॥ २ ॥ रुद्रउवाच ॥ शृणुष्वैकमना भूत्वा यथा गङ्गावतारिता ॥ पुरा देवी महाभाग ब्रह्माद्यैस्सकलैस्सुरैः ॥ ३ ॥ अभ्यर्थयञ्जगन्नाथं देवदेवं जगद्गुरुम् ॥ घटमखण्डे प्राकृतभाषाऽनुवाचं चित्रसेनकथावर्णनो नाम नवतितमोऽध्यायः ॥ ९० ॥ * ॥

राजा बोले कि और भी हम सुना चाहते हैं कि गङ्गाको किसने उतारा है महादेवके शीशपर बैठी हुई पवित्र गङ्गादेवी यहां कैसे आई ॥ १ ॥ और पुण्यावाली देव-शिला नाम जो है उसका भी माहात्म्य उत्तम है हे पुरुषोत्तम ! सो यह सब आपनी दयासे मुझसे कहो ॥ २ ॥ तब महादेवजी बोले कि जैसे गङ्गा उतरी है तिसको तुम एक मन होकर सुनो अगिले जमाने में हे महाभाग ! ब्रह्मा आदि सब देवताओं ने ॥ ३ ॥ गङ्गाके वास्ते जगद्गुरु भगवान्से प्रार्थना की तब घड़े में बैठी हुई गङ्गा

पृथिवीपर छोड़ दीगई ॥ ४ ॥ फिर महादेव भी अपने शिरसे सरस्वतीको पृथ्वी में छोड़ा उस तीर्थके किनारेपर जो मनुष्य भक्तिसे स्नान करते है ॥ ५ ॥ और हमेशा जलको पीते हैं वे यमलोकको नहीं जाते है शूलभेद कुण्ड में जहांपर हे नराधिप ! वे गङ्गागिरी हैं ॥ ६ ॥ उन्हीं गङ्गाके पश्चिम में प्राची सरस्वती है और दक्षिण में शूलभेद नामक अत्युत्तम तीर्थ है ॥ ७ ॥ वहां खास महादेवजीकी बनाई हुई बड़ी रमणीक देवशिलाहै हे नृप ! वहां स्नानकर जो भक्तिसे ब्राह्मणों को भोजन कराता है ॥ ८ ॥ उसके थोड़ेही दानका अन्त नहीं होताहै तब उत्तानपाद बोले कि हे देवेश ! पृथिवी में अच्छे दान कौनहैं ॥ ९ ॥ मनुष्य जिनको भक्तिसे देकर सब पापोंमें छूट

ध्येस्थितागङ्गा मोचिताचसुभूतले ॥ ४ ॥ भारतीचततोमुक्ता रुद्रेणशिरसोभुवि ॥ नरास्तीर्थेततस्याः स्नानं कुर्वन्ति भक्तिः ॥ ५ ॥ विबन्तिचजलं नित्यं न तेयान्ति यमालयम् ॥ यत्र सापतिताकुण्डे शूलभेदेनराधिप ॥ ६ ॥ देवनद्याः प्रतीच्याञ्च यत्र प्राची सरस्वती ॥ याम्याञ्च शूलभेदाख्यमस्ति तीर्थमनुत्तमम् ॥ ७ ॥ तत्र देवशिलारम्या स्वयन्देवे न निर्मिता ॥ तत्र स्नात्वा तु यो भक्त्या ब्राह्मणं भोजयेन्नृप ॥ ८ ॥ अल्पस्यैव तु दानस्य तस्य चान्तो न विद्यते ॥ उत्तान पाद उवाच ॥ कानि दानानि शस्तानि देवेश धरणीतले ॥ ९ ॥ यानि दत्त्वा नरो भक्त्या मुच्यते सर्वकिल्बिषैः ॥ देवशि लायामाहात्म्यं स्नानदानाद्धितफलम् ॥ १० ॥ व्रतोपवासनियमैर्यत्प्राप्य तद्वदस्वमे ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ आसीत्पु रामहावीर्यश्रेदिनाथो महाबलः ॥ ११ ॥ वीरसेन इति ख्यातो मण्डलाधिपतीश्वरः ॥ तस्य राज्ञेयैरिषुर्नास्ति नव्याधि र्न च तस्करः ॥ १२ ॥ न चाधर्मोऽभवत्तत्र धर्म एव हि सर्वदा ॥ सदा मुदान्वितो राजा सभाय्यो बहुपुत्रकः ॥ १३ ॥ एकाच

जाताहै और देवशिलाका माहात्म्य व वहां स्नान व दानसे जो फलहो ॥ १० ॥ अथवा वहां व्रत, उपास और नियमों से जो फलहो वह आप मुझसे कहो तब श्रीभगवान् बोले कि पूर्वकालमें बड़ा बलवाला एक चंदेलीका राजा होताहुआ ॥ ११ ॥ वीरसेन नामसे प्रसिद्ध देशपति राजाओंका भी स्वामीथा उसकी राज्यमे वैरी, रोग और चोर नहीं थे ॥ १२ ॥ और वहां अधर्म नहींथा बल्कि सदा धर्मही हुआ करता था अपनी स्त्री व बहुत पुत्रोंके सहित राजा सदा आनन्दसे रहता था ॥ १३ ॥ पार्वती

जोके समान सुन्दर रूपवाली उसकी एक कन्याथी उसको उसकी माता व पिता व भाई लोगोंने देखा ॥ १४ ॥ तो हे महेश्वर ! समयके होनेपर राजाने उसका विधानसे बागहूँ वर्षमें विवाह करदिया ॥ १५ ॥ तदनन्तर उस कन्याका जो भर्ता था वह सरगया अपनी उस कन्याको विधवा देख राजा शोकसे युक्त होताहुआ ॥ १६ ॥ दुःखसे विकल राजा अपनी रानीसे वचन बोला कि हे भद्रे ! यह जिन्दगीभर का दुःसह दुःख पैदा होगया ॥ १७ ॥ क्योंकि रूप और जवानी से भरीहुई यह कन्या कैसे रक्षित होसक्ती है इसमे हे भाग्य ! भानुमतीकी रत्नामे कोई उपाय नहीं है ॥ १८ ॥ आपसमें इसभांति बतलातेहुये दोनोंकी बातचीत सुनकर अपने माता

दुहितातस्य सुरूपागिरिजाइव ॥ दृष्टासापितुमातृभ्यांबन्धुवर्गजनैस्सह ॥ १४ ॥ कृत्वैवैवाहिकंकार्यं कालेप्राप्ते
यथाविधि ॥ अनन्तरंचेदिपतिर्द्वादशाब्देमहेश्वरः ॥ १५ ॥ ततस्तस्यास्तुयोभर्ता समृत्युवशमागतः ॥ विधवांतांमुतां
दृष्ट्वा राजाशोकममन्वितः ॥ १६ ॥ उवाचवचनंनराजा स्वभार्यादुःखपीडितः ॥ भद्रेदुःखमिदंजातं यावज्जीवंसुदु
स्सहम् ॥ १७ ॥ नैषारक्षयितुंशक्या रूपयौवनदर्पिता ॥ नोपायोविद्यतेभार्ये भानुमत्याश्चरक्षणे ॥ १८ ॥ परस्परंवि
वदतोस्तच्छ्रुत्वाकन्यकाब्रवीत् ॥ भानुमत्युवाच ॥ नवीडाभितवाग्रेहं ज्वलंतीदाहकेनच ॥ १९ ॥ सत्यंनोत्पद्यतेदोषो
मदर्थंचनराधिप ॥ अद्यप्रभृत्यहंतात नवैषंधारयेक्कचित् ॥ २० ॥ स्थूठवस्त्रैर्निजाङ्गानि परिधास्यामिसंयुता ॥ चरि
ष्यामिब्रतान्सर्वान्पुराणविहितानपि ॥ २१ ॥ आत्मानंशोषयिष्यामि तोषयन्तीजनार्दनम् ॥ ममैषावर्ततेबुद्धिर्यदि
त्वंतातमन्यसे ॥ २२ ॥ भानुमत्यावचःश्रुत्वा राजास्नेहाहितोभवत् ॥ तीर्थयात्रांसमुद्दिश्य कोशं दत्त्वाचष्टुकलम् ॥ २३ ॥

व पितासे भानुमती बोली, भानुमती कहती है--कि मे आपके गामने विरहाग्नि से जलती हुई कुछ भी नहीं शरमाती हूं ॥ १९ ॥ हे नराधिप ! मेरे पीछे आपको कुछ भी दोष नहीं होगा यह सत्यही है क्योंकि हे तात ! आज से मे कभी श्रृंगार को नहीं धारण करूंगी ॥ २० ॥ संयमको कियेहुये मोटे कपडाओं से अपने अंगों को ढाके रहूंगी और पुराणों में कहेहुये सभी व्रतों को मैं करूंगी ॥ २१ ॥ परमेश्वरको प्रसन्नकरती हुई मैं अपने को सुखाडालूंगी हे तात ! जो आपको अंगीकारहो तो मेरो बुद्धि इस तरह की होरही है ॥ २२ ॥ भानुमती के वचन को सुन राजा स्नेह से बड़ा कष्टित होगया और तीर्थयात्रा के वास्ते बड़ा खजाना देकर ॥ २३ ॥

वः उसकी रक्षा के वास्ते वृद्धाको साथ में भेजकर कन्याको विदा करता हुआ और भी हथियारबन्द एक सिपाही व ब्राह्मण पुरोहित को साथ में कर दिया ॥ २४ ॥ हे नराधिप ! अब वह कन्या गंगाके किनारे पर ध्यान करने के वास्ते गंगा में नहाय चन्दन और माला आदि से ब्राह्मणों का नित्य पूजन करती हुई ॥ २५ ॥ फिर दास व दासी आदि जो उप कन्याभी रक्षामें समर्थ थे वे सब कन्याके पिता राजाकी सलाहमें गङ्गाके तीरपर रहतेहुये ॥ २६ ॥ वह कन्या गङ्गाके तीरपर बारह वर्षतक रही फिर किसी समय गङ्गा में छोड़ वह राजपुत्री दक्षिणदिशाको अपने मन्त्रियों के सहित जहा नर्मदा नदी थी वहां पहुँची वहां अङ्कार व अमरकण्टकमें छह महीना

विमृज्यराजास्वसुतां वृद्धान्कृत्वातुरन्तणे ॥ पुरुषंसायुधंचान्यं ब्राह्मणंचपुरोहितम् ॥ २४ ॥ अवगाह्यतटेध्यातुं गङ्गायांसानराधिप ॥ नित्यमापूजयद्विप्रान्गन्धमाल्यादिभूषणैः ॥ २५ ॥ दासीदामप्रभृतयस्तस्यायेरन्तणेक्षमाः ॥ ततःपितुर्मतेनैव गङ्गातीरेसमास्थिताः ॥ २६ ॥ द्वादशाब्दानिसातीरे गङ्गायास्समवस्थिता ॥ त्यक्त्वागङ्गांकिंचिद्राजपुत्रीकाष्ठान्तुदक्षिणाम् ॥ २७ ॥ प्राप्तासासचिवैस्सार्द्धं यत्रैवामहानदी ॥ परमासञ्चस्थितातत्र अङ्कारेऽमरकण्टके ॥ २८ ॥ नानाविधेषुतीर्थेषु तीर्थातीर्थजगामह ॥ स्नात्वास्नात्वाद्विजान्पूज्य भक्तियुक्ताह्यधिष्ठिता ॥ २९ ॥ वारुणींचदिशंगत्वा देवनद्याश्रमसङ्गमे ॥ ददर्शचाश्रमंपुण्यमृषिसङ्घैर्निषेवितम् ॥ ३० ॥ दृष्ट्वाऋषिसमूहंसा प्राणिपत्ये दमब्रवीत् ॥ माहात्म्यंचास्यतीर्थस्य नामचैवास्यकीर्तय ॥ ३१ ॥ ऋषिरुवाच ॥ चक्रतीर्थन्तुविख्यातं चक्रदत्तपुरा हरेः ॥ महेश्वरेणतुष्टेन देवदेवेनशूलिना ॥ ३२ ॥ अत्रतीर्थेतुयःस्नात्वा तर्पयेत्पितृदेवताः ॥ अनिचर्तिकगतिस्र

रही ॥ २७ ॥ २८ ॥ ऐसे अनेकप्रकारके तीर्थों में एक तीर्थ से दूसरे तीर्थको जातीहुई और उनमें नहाय २ कर भक्तिमें युक्त ब्राह्मणोंका पूजनकर घास करतीहुई ॥ २९ ॥ फिर पश्चिमदिशामें जाकर गङ्गाके सङ्गममें ऋषियों से सेवित पुण्यवाले आश्रमको-देखा ॥ ३० ॥ उसमें ऋषियों के झुण्डको देख उसको प्रणामकर वह बोली कि इस तीर्थ के माहात्म्य व नामको आप कहें ॥ ३१ ॥ तब ऋषि-बोले कि यह चक्रतीर्थ प्रसिद्ध है यहां-आगिले जमाने में प्रसन्न होकर देवताओंके देवता त्रिशूलधारी

महादेवजीने विष्णुको चक्र दिया है ॥ ३२ ॥ इस तीर्थ में स्नानकर जो पितर व देवताओंका तर्पण करता है उसकी फिर यहां लौटनेवाली गति नहीं होती है इसमें संशय नहीं है ॥ ३३ ॥ हे तपस्विनि ! दूसरे दिन यहांसे शूलभेदको जावे वहां रातमें जागरणकर पुराणकी कथा बांचे ॥ ३४ ॥ फूल, दीप और नैवेद्य से विष्णुका पूजन करे फिर भोरभयेपर ब्राह्मणोंको भोजन करावे और उनको अपनी भक्तिसे दानदेवे ॥ ३५ ॥ फिर चौथे दिन जहां प्राची सरस्वती है वहां जावे हे नराधिप ! जेकि पवित्र करने के वास्ते ब्रह्माजीसे निकली है ॥ ३६ ॥ वहा जाय व नहायकर पितर व देवताओंका तर्पणकरे और वहा श्राद्धका करनेवाला जहा ब्रह्मादेव रहते हैं वहां रहता

स्य भवितानात्र संशयः ॥ ३३ ॥ द्वितीये हिततो गच्छेच्छूलभेदं तपस्विनि ॥ रात्रौ जागरणं कृत्वा पठेत्पौराणिकं कथा
म् ॥ ३४ ॥ विष्णुपूजां प्रकुर्वीत पुष्पदीपनिवेदनैः ॥ प्रभाते भोजयेद्विप्रान् दानं दद्यात्स्वभक्तिः ॥ ३५ ॥ चतुर्थे हितथा
गच्छेद्यत्र प्राची सरस्वती ॥ ब्रह्मदेवादिनिष्क्रान्ता पावनार्थं नराधिप ॥ ३६ ॥ तत्र स्नात्वा नरो गत्वा तर्पयेत्पितृदेव
ताः ॥ श्राद्धदस्तु वसेत्तत्र यत्र देवः पितामहः ॥ ३७ ॥ पञ्चमे हिततो गच्छेच्छिङ्गमार्कण्डसंज्ञितम् ॥ तत्र स्नात्वा तु यो भ
क्त्या अर्चयेत्पितृदेवताः ॥ ३८ ॥ श्राद्धं कृत्वा यथान्यायमनिन्द्यान् पूजयेद्द्विजान् ॥ पितरस्तस्म्यनृत्यन्ति द्वादशाब्द
न्न संशयः ॥ ३९ ॥ सर्वदेवमयं स्थानं सर्वतीर्थमनुत्तमम् ॥ कोटितीर्थसंस्थानं कोटिलिङ्गोत्तमोत्तमम् ॥ ४० ॥ त्रिरा
त्रं कुस्तयेस्तु शुचिस्नानं जितेन्द्रियः ॥ पक्षं मामञ्च षण्मासमब्दमेकं कदाचन ॥ ४१ ॥ न तस्य वसतिर्मर्त्ये नाके वा
सस्सदाक्षयः ॥ नियमस्थस्तु मुच्येत त्रिजन्मजनिता दद्यात् ॥ ४२ ॥ विना पुमांसं यानारी द्वादशाब्दन्तु सुव्रता ॥ ति
हे ॥ ३७ ॥ फिर पांचवें दिन मार्कण्डेयनामक लिङ्गको जावे और वहां स्नानकर जो भक्तिसे पितर व देवताओंका पूजन करता है ॥ ३८ ॥ और रीतिपूर्वक श्राद्धकर उत्तम ब्राह्मणोंका पूजन करता है उसके पितर बारह वर्ष तक तृप्त रहते हैं इसमें संशय नहीं है ॥ ३९ ॥ सब देवताओं व सब तीर्थोंका रूप अत्युत्तम यह स्थान है करोड़ों तीर्थोंके बराबर व करोड़ों लिङ्गोंके बराबर उत्तमसे उत्तम यह स्थान है ॥ ४० ॥ कदाचित् इन्द्रियों को जीते हुये व पवित्र होकर तीन रात व एक पाख व एक मास व छह मास व एक साल भर जो स्नान करता है ॥ ४१ ॥ उसका वास मनुष्यलोकमें नहीं किन्तु स्वर्ग में अक्षय वास होता है और नियममें रहकर जो यहां रहता है वह तीन

जन्मों के पापों से छुट जाता है ॥ ४२ ॥ और विधवा स्त्री जो बारह वर्ष व्रतके साथ यहां रहती है वह अक्षय कालतक महादेवके लोकमें पूजित होती है ॥ ४३ ॥ मुनिके वचनको सुन कन्या बड़े आनन्दको प्राप्त हुई तबसे आलस्य छोड़ दिन रात तीर्थमें स्नान करने लगी ॥ ४४ ॥ तीर्थके प्रभावको देख रानी वचन बोली कि हे पुरोहित व ब्राह्मण लोगो ! आज मेरी बातको सुनो ॥ ४५ ॥ कि मैं अब ऐसे स्थानको जबतक जीऊंगी तबतक दिन रात कभी नहीं छोड़ूंगी इसमें आप सज्जन लोगों को मेरी माता व पिता व भाई इन सबों से यह बात कहना चाहिये ॥ ४६ ॥ कि नियम व व्रतोंकी करनेवाली वह आपकी कन्या शूलभेद में रहती है एक दिनके अन्तर से

छुते साक्ष्यकालं रुद्रलोकं महीयते ॥ ४३ ॥ मुनेश्च वचनं श्रुत्वा मुदां परमिकां ययौ ॥ ततो वगाहते तीर्थं महर्निशमतान्द्रि-
तम् ॥ ४४ ॥ दृष्ट्वा तीर्थं प्रभावन्तु राज्ञी वचनमब्रवीत् ॥ श्रूयतां वचनं मे द्य ब्राह्मणास्स पुरोहिताः ॥ ४५ ॥ न तय जामी
दृशं स्थानं यावज्जीवाम्यहर्निशम् ॥ मात्रे पित्रे तथा भ्रात्रे सद्भिर्वाच्यमिदं वचः ॥ ४६ ॥ वर्तते शूलभेदे सा नियता व्रत
चारिणी ॥ एकान्तरोपवासेन शनैर्मासमुपोषिता ॥ ४७ ॥ देवशिलास्थिता नित्यं ध्यायमाना तु केशवम् ॥ अहर्निशं
स्थिता भूमौ दृष्ट्वा राज्ञी शुभानना ॥ ४८ ॥ व्रतस्थानियता हारा नाम्ना भानुमती शुभा ॥ गतेषु द्विजमुख्येष्वाययौ श-
बरयुग्मकम् ॥ ४९ ॥ उवाच वचनं तत्र तान् दृष्ट्वा शबराङ्गना ॥ नैवास्याः सदृशी काचिन्निषु लोकेषु विश्रुता ॥ ५० ॥ सा
ज्जादसौ देवकन्या ह्यवतीर्णा महीतले ॥ भार्यया वचनं श्रुत्वा शबरस्तामुवाच ह ॥ ५१ ॥ कमलानियथा लाभं दत्त्वा

धीरे २ महर्निश उपवास करती हुई ॥ ४७ ॥ व भगवान्का ध्यान करती हुई सदा देवशिलापर रहती है तब सबोंने देखा कि सुन्दर मुखवाली वह रानी दिन रात जमीन में बैठी रहती है ॥ ४८ ॥ और व्रतों में लगी हुई व एक और थोड़े भोजनकी करनेवाली नामसे सुन्दर भानुमती है इस प्रकार कहते हुये ब्राह्मणों के चले गये के बाद एक जोड़ा बहेलिया स्त्री पुरुष वहा आये ॥ ४९ ॥ वहां उस रानीको देख बहेलियाकी स्त्री वचन बोली कि इस रानीके बराबर तीनों लोकों में कोई स्त्री प्रसिद्ध नहीं है ॥ ५० ॥ मानो यह साक्षात् देवताओं की कन्याही जमीनपर अवतार लिया है स्त्रीके वचनको सुन शबर उससे बोला ॥ ५१ ॥ कि जो कुछ कमल मिलेहों उन्हें मुझे देकर

तू भोजनकर मेरा मन पूजन करने में है इससे मैं आज नहीं खाऊंगा ॥ ५२ ॥ क्योंकि हे भद्रे ! मैंने कुछ वर्जित नहीं किया किन्तु पापकी झाड़ि में अशुभ कर्मको ही किया है तब शबरी बोली कि हे स्वामिन् ! मैंने तो आपसे पहले कभी नहीं खाया है ॥ ५३ ॥ जहां तक मैं याद करती हूं तहां तक मैंने आपकी के भोजन में बचे हुये का भोजन किया है तब स्त्री का निश्चय जान वह स्नान करनेको गया ॥ ५४ ॥ और आधी घोड़ी से भक्तिने नहाय व मधु देवताओं के नमस्कारकर देवशिलापर गया ॥ ५५ ॥ वहां भगवान् का ध्यान करता हुआ खटके के साथ खड़ा हुआ तब तक शबरीने दासी के हाथ में दो फूल कमल के दिये ॥ ५६ ॥ रानी उन फूलों को दे व दासी ने बोली कि ये

त्वं भुङ्क्ष्वस्त्वरम् ॥ मम चैवाचने बुद्धिर्न भोक्तव्यं मया द्यौवै ॥ ५२ ॥ नमयावज्जितं भद्रे पापवृद्ध्याऽशुभं कृतम् ॥ शबर्युवाच ॥ न पूर्वन्तु मया स्वाभिन्मुक्तं कस्मिन्स्तु वासरे ॥ ५३ ॥ मुक्तशेषं मया भुक्तं यावत्कालं स्मराम्यहम् ॥ भाट्यार्यानि श्रयं ज्ञात्वा स्नानं कर्तुं जगाम ह ॥ ५४ ॥ अर्द्धोत्तरीयवस्त्रेण स्नानं कृत्वा तु भक्तिः ॥ सर्वदेवं नमस्कृत्य गतो देवशिलां प्रति ॥ ५५ ॥ तस्यैव सशङ्कमानोऽपि ध्यायमानो जनार्दनम् ॥ कुमुदद्वयं शबर्या तु दासी हस्ते निवेदितम् ॥ ५६ ॥ दृष्ट्वा राज्ञी तथा पुष्पे दासीञ्चैव तदा ब्रवीत् ॥ केदं पुष्पद्वयं लब्धं कथ्यतां तच्च साम्प्रतम् ॥ ५७ ॥ शीघ्रं गच्छावगच्छत्वं पुष्पञ्चैवानया परम् ॥ अनेन वसुना चैव कमलानि समानय ॥ ५८ ॥ भानुमत्यावचः श्रुत्वा गता सा शबरम् प्रति ॥ श्रीफलानि च पुष्पाणि बहून्यन्यानि देहि मे ॥ ५९ ॥ शबर्युवाच ॥ श्रीफलानि च दास्यामि पुष्पाणि च विशेषतः ॥ मूल्येन मे स्पृहानां स्ति गत्वा राज्ञी निवेदय ॥ ६० ॥ गता दासी निवेद्याथ राज्ञी च स्वयमागता ॥ उवाच शबरं राज्ञी पुष्पं मूल्येन देहि मे ॥ ६१ ॥

दो फूल तूने कहां पाये सो जल्दी बताओ ॥ ५७ ॥ और बहुत जल्दी जाओ २ और भी फूल ले आओ इस द्रव्य से कमलों को लाओ ॥ ५८ ॥ भानुमती के वचन को सुन वह दासी शबर के तीर गई और बोली कि बेल व फूल और भी बहुत से हमको देना ॥ ५९ ॥ तब शबरी बोली कि बेल व फूलों को मैं विशेषकर देऊंगी लेकिन दाम लेने की मेरी इच्छा नहीं है सो तुम जाकर रानी से कहो ॥ ६० ॥ तब दासी गई और रानी से कहा रानी आप ही झाड़ें और शबर से कहा कि दामों से तुम मुझे

फूलों को देवो ॥ ६१ ॥ तब शबर बोला कि हे देवि ! मैं फलों व फूलों के मोलको नहीं चाहता हूँ इससे बेल व फूल आप जितने चाहो उतने मुझमें लवा ॥ ६२ ॥
 श्री विधान से जगतके गुरु भगवान् की पूजा करोगे तब गनी बोलों कि विना मोल हम तुम्हारे कमलके फूलोंका नहीं लेवगी ॥ ६३ ॥ इससे अन्नकी इस एक ठेरी को तुम लेलेवो ॥ ६४ ॥ तब शबर बोला कि हे वरानने ! आज मैं भगवान् को छोड़ भोजनकी सुध नहीं करता हूँ ॥ ६५ ॥ हे भद्रे ! देवताओं के कामके विना और किसी बातमें मेरी बुद्धि नहीं लगती है तब रानी बोली कि तुमको अन्न नहीं छोड़ने योग्य है क्योंकि अन्नमें सभी कुछ रहता है ॥ ६६ ॥ तिससे सब तरह से मेरे अन्नको लेनो

शबरउवाच ॥ नमूल्यंकामयेदेवि फलपुष्पसमुद्भवम् ॥ श्रीफलानिचपुष्पाणि यथेष्टममगृह्यताम् ॥ ६२ ॥ अर्चांकुरु
 यथान्यायं वासुदेवंजगत्पतिम् ॥ राड्युवाच ॥ विनामूल्यन्नगृह्णामि कमलानितवाधुना ॥ ६३ ॥ धान्यस्यखण्डिका
 मेकामेतामप्रतिनिगृह्यताम् ॥ ६४ ॥ शबरउवाच ॥ नाहारञ्चिन्तयाम्यद्य मुक्त्वा देवंवरानने ॥ ६५ ॥ देवकाय्यंवि
 नाभद्रे नान्याबुद्धिः प्रवर्तते ॥ राड्युवाच ॥ नत्वयान्नपरित्याज्यं सर्वमन्नेप्रतिष्ठितम् ॥ ६६ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन ममा
 न्नंप्रतिगृह्यताम् ॥ तपस्विनो महाभागा येचारण्यनिवासिनः ॥ ६७ ॥ तेमद्वारेस्थितास्मैवं याचन्तेतेन्नकाङ्क्षिणः ॥
 शबरउवाच ॥ निषेधो धिक्कृतः पूर्वं मया सत्यन्नसंशयः ॥ ६८ ॥ सत्यमूलं जगत्सर्वं सत्यैवैव प्रतिष्ठितम् ॥ सत्येन तपते
 सूर्यस्सत्येन द्योतते शशी ॥ ६९ ॥ सत्येन वायवो वान्ति धरा सत्येप्रतिष्ठिता ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन सत्यं सत्यन्नलोपयेत् ॥
 ७० ॥ राड्युवाच ॥ आरामोपहतं पुष्पमारण्यं पुष्पमेव च ॥ क्रीतेप्रहिग्रहाल्लब्धं पुष्पमेव च तुर्विधम् ॥ ७१ ॥ उत्तमं

देखो बड़े भाग्यवाले वनके वासी तपस्वी लोग जो हैं ॥ ६७ ॥ वे सब अन्न की इच्छा करनेवाले मेरे दरवाजेपर खड़े अन्न मांगते हैं तब फिर शबर बोला कि पहलें मैंने, सच्ची नहीं कीरही इसमें संशय नहीं है ॥ ६८ ॥ सब जगतकी जड़ सत्यही है और सब जगत् सत्यही में रहता है सत्य से सूर्य तपते हैं और सत्य से चन्द्रमा प्रकाश करता है ॥ ६९ ॥ हंवा सत्यही से चलती है जमीन सत्यही में सधी रहती है तिससे सब यलों से सत्यको सत्यही न छोड़े ॥ ७० ॥

तब रानी बोली कि बगीचेसे लायागया, वन से लायागया, खरीदागया और देनेसे मिला ऐसे चार तरहका फूल होताहै ॥ ७१ ॥ तिनमें उत्तमफलवाला वहहै जो वन से अपने हाथ लाया गयाहो और बगीचे का मध्यम है व खरीड किया अग्रमहै ॥ ७२ ॥ और देने से जो मिलाहै उसको पण्डितलोग निष्फल जानते हैं तब पुरोहित बोला कि हे राज्ञि ! फूलों को लेवो और नारायण का पूजन करो ॥ ७३ ॥ तब उपकार को करती हुई भानुमती ने विधि से पूजन किया और रातमें जागरण कर पुराणकी कथा सुनी ॥ ७४ ॥ तदनन्तर शवर अपनी स्त्री से बोला कि हे सुन्दरि ! दिया के वास्ते जो कुछ तेल मिले उसे लावो ॥ ७५ ॥ फिर धूप व दीपको देकर

फलमारण्यं गृहीत्वास्वयमेतद्दि ॥ मध्यमंफलभाराम्यमधमंकीर्तयेवच ॥ ७२ ॥ प्रतिग्रहेणयल्लब्धं निष्फलं तद्विदुर्बुधाः ॥ पुरोहितउवाच ॥ गृहाणराज्ञिपुष्पाणि पूजांकुरुजनाहने ॥ ७३ ॥ उपकारंप्रकुर्वन्ती पूजांचक्रेयथाविधि ॥ रात्रौजागरणंकृत्वा कथापौराणिकीश्रुता ॥ ७४ ॥ शबरस्तुततोभाट्यमिमंदेवचनमब्रवीत् ॥ दीपार्थं गृह्यतांस्नेहो यथालाभेनसुन्दरि ॥ ७५ ॥ दत्त्वादीपिततःकृत्वा धूपंपूजांजनाहने ॥ कृत्वाजागरणंरात्रौ ध्यायमानस्तुकेशवम् ॥ ७६ ॥ ततः प्रभातसमये दृष्ट्वास्नानोत्सुकञ्जनम् ॥ केचिच्चशूलभेदतु देवनद्यांतथैवच ॥ ७७ ॥ सरस्वत्यांतथाकेचिन्मार्कण्डेये तथाहृदे ॥ चक्रतीर्थेतथाकेचित्स्नानंकुर्वन्तिभक्तिः ॥ ७८ ॥ शुचिभूतास्तुतेसर्वे जनादेवशिलोपरि ॥ श्राद्धंकुर्वन्तिर्वैतन प्रयत्नेनद्विजर्षभाः ॥ ७९ ॥ तान्दृष्ट्वाशबरोविल्वैः पिण्डंनिर्वर्तयेत्ततः ॥ भानुमत्यातथासक्तुपिण्डनिर्वपणंकृतम् ॥ ८० ॥ अनिन्यम्भोजयेद्दिप्रं दम्भदोषविवर्जितम् ॥ हविष्येणतथदधना शर्करामधुसर्पिषा ॥ ८१ ॥ पायसेनच

और भगवान् का पूजन कर नारायण का ध्यान करता हुआ रातमें जागरण करताहुआ ॥ ७६ ॥ तदनन्तर प्रातःकाल में स्नान के वास्ते तैयार होरहे लोगों को देखा कि कोई शूलभेदमें, कोई गङ्गामें ॥ ७७ ॥ कोई सरस्वती में, कोई मार्कण्डेयकुण्ड में और कोई चक्रतीर्थ में भक्तिसे नहायरहे हैं ॥ ७८ ॥ फिर पवित्र होकर वे सब श्रेष्ठ ब्राह्मणलोग वहां देवशिला क ऊपर यज्ञ में श्राद्ध को करते हैं ॥ ७९ ॥ उन सबको देख शबरने भी बेलों से पिण्डोंको बनाया और भानुमतीने भी सतुआ के पिण्डों का दानकिया ॥ ८० ॥ और पाखण्डदोष में रहित व निन्दारहित ब्राह्मणको खीर, दही, शक्कर, मिठाई, घी, गजका दूध और खिचडीसे भोजन कराया व भोजन

करवाकर फिर रानीने उसको विधान से दान दिया ॥ ८१।८२ ॥ खड़ाऊं, जुता, छाता, पल्लंग, गऊ, बैल और भी सोने व रत्नोंके अनेक दान दिये ॥ ८३ ॥ क्योंकि हे महाराज ! उस तीर्थ में जो कपिला गऊ देताहै मानो उत्तने पर्वत व जलों और जङ्गलों के सहित सब पृथिवीका दान किया ॥ ८४ ॥ उत्तानपाद बोले कि तिलोंका देनेवाला अपने प्यारे पुत्रोंको पाता है, दियाका देनेवाला उत्तम नेत्रोंको, पृथिवीका देनेवाला स्वर्गको, सोनेका देनेवाला बड़ी उमरको ॥ ८५ ॥ भकानका देनेवाला आरोग्यको, रूपका देनेवाला उत्तम रूपको, कपड़ेका देनेवाला चन्द्रलोकको, घोड़ेका देनेवाला सूर्यलोकको ॥ ८६ ॥ बैलका देनेवाला उत्तम धनको और गोदानसे स्वर्ग

गवयेन कृशरेणविशेषतः ॥ भोजयित्वातथाराज्ञी दानंदत्त्वायथाविधि ॥ ८२ ॥ पादुकोपानहौछत्रं शय्यागोचुपभवे
च ॥ विविधानिचदानानि हेमरत्नमयानिच ॥ ८३ ॥ तत्रतीर्थमहाराज कपिलांयःप्रयच्छति ॥ तेनदत्तामहीराजनसशै
लवनकानना ॥ ८४ ॥ उत्तानपादउवाच ॥ तिलप्रदःप्रजाइष्टादीपदश्चक्षुरुत्तमम् ॥ भूमिदःस्वर्गमाप्नोति दीर्घायुश्चहि
रण्यदः ॥ ८५ ॥ गृहदोरोगरहितो रौप्यदोरूपमुत्तमम् ॥ वासोदश्चन्द्रलोकंतु अश्वदस्सूर्यलोकभाक् ॥ ८६ ॥ वृष
दस्तुश्रियंपुर्यां गोदानान्तुत्रिविष्टपम् ॥ शय्यादानञ्चयोदद्यात्स्वर्गमभयप्रदः ॥ ८७ ॥ धान्यदःशाश्वतंसौख्यं ब्रह्म
दोब्रह्मशाश्वतम् ॥ सर्वेषामेवदानानां ब्रह्मदानंविशिष्यते ॥ ८८ ॥ भार्याभश्चमहोवासास्तिलकाञ्चनसर्पिषम् ॥ ये
नयेनहिभावेन दानंविप्राययच्छति ॥ ८९ ॥ तेनतेनहिभावेन प्राप्नोतिपदपूजितम् ॥ दृष्ट्वादानानिसर्वाणि राइयाद
त्तानियानिच ॥ ९० ॥ उवाचशबरोभार्या यच्छृणुष्वनराधिप ॥ शबरउवाच ॥ पुराणपठितंभद्रे ब्राह्मणैर्वेदपार

को पाता है शय्या और अभयको जो देता है वह स्वर्गको पाता है ॥ ८७ ॥ अन्नका देनेवाला सदा रहनेवाले सुखको पाता है वेदका देनेवाला नाशरहित ब्रह्मको पाता है सब दानों में वेदका दान बड़ा श्रेष्ठ है ॥ ८८ ॥ स्त्री, घोड़ा, जमीन, कपड़ा, तिल, सोना और घी इन चीजोंको जिस २ भावसे ब्राह्मणको देताहै ॥ ८६ ॥ उस २ भाव से उत्तमपदको पाताहै अब भानुमती रानीके दियेहुये दानोंको देख ॥ ९० ॥ शबर अपनी स्त्रीसे जा बोला हे नराधिप ! उसको तुम सुनो शबर बोला कि हे भद्रे ! वेदपाठो

ब्राह्मणों के बीचहुये पुराणको ॥ ६१ ॥ मैंने सुना और सब शुभ दानधर्म भी सुना और अपने स्नान व दान व व्रतों से पूर्वजन्म में जमा कियाहुआ जो मेरा पाप था हे प्रिये ! वह सब क्षीण होगया क्योंकि यहाँ कियाहुआ दान, होम और तप सगी अक्षय होताहै ॥ ६२ ॥ १३ ॥ अब भानुमतीके सहित वे सब ब्राह्मणलोग शूल-भेदको गये और शबरको देखा कि स्त्रीके सहित कुण्डमें खड़ाहै ॥ ६३ ॥ फिर ईशानमें जाकर भृगुपर्वतके ऊपर मरनेकी इच्छा करताहुआ स्त्रीके सहित चढगया हे पार्थिव ! ॥ ६४ ॥ तब राजपुत्री बोली कि हे महासत्त्व ! खड़े रहो २ मेरे वचन को सुनो कि अभी आप जवानहो प्राणोंको क्यों छोड़तेहो ॥ ६५ ॥ क्या आपके सन्तान

भौः ॥ ११ ॥ श्रुतञ्चतन्मयासर्वं दानधर्मपरंशुभम् ॥ पूर्वजन्माजितं पापं स्नानदानव्रतेन च ॥ ६२ ॥ तत्सर्वं च ज्ञयं जा-
तं मदीयेन प्रियेशृणु ॥ अत्र दत्तं हृतं तप्तं सर्वं भवति चाक्षयम् ॥ ६३ ॥ ते द्विजा भानुमत्या च शूलभेदं गतास्ततः ॥ ददृ-
शुः शबरं कुण्डे शबर्या सहसं स्थितम् ॥ ६४ ॥ ईशान्याञ्च ततो गत्वा भृगुपर्वतमूर्धनि ॥ मर्तुकामस्तथा रूढो भार्य-
या सह पार्थिव ॥ ६५ ॥ राजपुत्र्युवाच ॥ तिष्ठतिष्ठ महासत्त्वशृणुष्व वचनं मम ॥ किमर्थं त्यजसि प्राणानद्यापि च युवांम-
वान् ॥ ६६ ॥ किं सन्तापः समुद्देगः किं दुःखं व्याधिरिव च ॥ शिशुश्च दृश्यतेऽद्यापि कारणं कथयस्व मे ॥ ६७ ॥ शबर उ-
वाच ॥ कारणं नास्ति मे किञ्चिन्न दुःखं किञ्चिद्देवहि ॥ संसारसारभूतत्वे नान्या बुद्धिः प्रवर्तते ॥ ६८ ॥ दुःखेन लभते यस्मा-
न्मनुष्यत्वं वरानने ॥ मानुष्यं जन्म चासाद्य यो न धर्मं समाचरेत् ॥ ६९ ॥ स गच्छेन्नरकं घोरमल्पदोषेण सुन्दरि ॥ त-
स्मात्पतितुमिच्छामि अस्मिन् स्तीर्थे तपस्विनि ॥ ७० ॥ राजपुत्र्युवाच ॥ अद्यापि वर्तते कालः स्वधर्मो द्विविधाः क्रियाः ॥

व घबडाहट व दुःख व रोगहै आपके पुत्र भी देखपड़ताहै तिसमे मुझे कारण तो बतलावो ॥ ६७ ॥ तब शबर बोला कि कारण कुछ नहीं है और दुःख भी मुझको कुछ नहीं है लेकिन संसारके सार होने में मेरी दूसरी बुद्धि नहीं होतीहै ॥ ६८ ॥ और हे वरानने ! जिससे मनुष्य होना बड़े दुःखमे मिलताहै इससे मनुष्यका जन्म पाकर जो धर्म नहीं करताहै ॥ ६९ ॥ हे सुन्दरि ! वह थोड़ेही दोषसे घोर नरक को जाताहै तिससे हे तपस्विनि ! अब इस तीर्थ मे मैं गिरा चाहताहूँ ॥ ७० ॥ तब

फिर राजपुत्री बोली कि अभी तो तुमको बड़ा समय बाकी है जिसमें तुम अपने धर्मसे अनेक कर्मोंको कर सकते हो इससे उचित धर्मोंको कर दानसे शुद्ध हो जावोगे ॥ १ ॥
 और हम तुमने अन्न, वस्त्र और धन देवेंगी तुम भगवान्‌का ध्यान करतेहुये सदा धर्मोंको करो ॥ २ ॥ तब शबर बोला कि हे देवि ! मैं अन्न व वस्त्रों को नहीं चाहता हूँ
 क्योंकि लिखा है कि जो मनुष्य दूसरेका अन्न खाता है वह पापही खाता है ॥ ३ ॥ तब राजपुत्री बोली कि कन्द व मूल व फलोंका आहार करतेहुये व उत्तम भिक्षाका
 अन्न खाकर और तीर्थों में स्नानकर सब पापों से छूट जावोगे ॥ ४ ॥ इस कामसे कोई पुरुषहो गर्वों से छुटाहुआ पवित्र होजाता है उसी कर्म से तुम भी अच्छी गति

कृत्वा प्रकृतधर्माणि तत्रदानेन शुद्ध्यति ॥ १ ॥ अहंदास्यामिते धान्यं वासांसि द्रविणा निच ॥ नित्यं त्वमाचरे धर्ममध्या
 यमानो जनार्दनम् ॥ २ ॥ शबर उवाच ॥ न चाहं कामये देवि धान्यं वस्त्राणि चैव हि ॥ यः परस्यान्नमश्नाति स नरोऽनाति
 किल्बिषम् ॥ ३ ॥ राजपुत्र्युवाच ॥ कन्दमूलफलाहारो मुक्त्वा वैभक्ष्यमुत्तमम् ॥ अवगाह्य च तीर्थानि सर्वपापैः प्रमुच्य
 से ॥ ४ ॥ ततो विमुक्तपापस्तु यः कश्चित्पुरुषश्शुचिः ॥ कर्मणा तेन चैव त्वं गतिसम्प्राप्स्यसे शुभाम् ॥ ५ ॥ शबर उवाच ॥
 अन्नमधये मया त्यक्ताः प्राणा दृष्ट्वा हितं च यत ॥ सत्यन्नलोपये देवि इति मे निश्चिता मतिः ॥ ६ ॥ प्रसादः क्रियता न्देवि क्ष
 मस्व त्वं जनैस्सह ॥ बद्धोत्तरीयवस्त्रेण आत्मानञ्च प्रयत्नतः ॥ ७ ॥ भार्यया सहितस्तत्र हरिन्द्यात्वा पपातह ॥ न गार्द्विप
 तितो यावद्गतजीवो न राधिप ॥ ८ ॥ तूष्णीं भूतं तु तदृष्ट्वा कुण्डस्योपरि भूमिप ॥ त्रिमूर्तिं गते तत्काले शबरो भार्य

को पावोगे ॥ ५ ॥ तब शबर बोला कि अपने हितको देख मैंने यहां प्राणोंको छोड़ा है इससे हे देवि ! मैं सत्यको नहीं नाश कर सका हूँ यह मेरी बुद्धिका निश्चय है ॥ ६ ॥
 इससे हे देवि ! अब आप प्रमन्न हूजिये और सब लोगोंके माहित क्षमा कीजिये इतना कहकर और ऊपरवाले कपड़ेसे अपनेको यन्त्रसे बांधकर ॥ ७ ॥ स्त्रीके सहित भग-
 वान्‌का ध्यानकर वहां गिरताहुआ हे नराधिप ! आधे पर्वततक जबतक आया तबतक उसका जीव जातारहा ॥ ८ ॥ फिर हे भूमिप ! कुण्डके ऊपर चुप हो गये उसको

देख उसी समयमें तीनों देवताओंके उस कुण्डमें शबर अपनी स्त्रीके सहित ॥ ६ ॥ दिव्य विमानपर चढ़ा हुआ उत्तम गतिको प्राप्त हुआ ॥ ११० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे
रेवाखण्डे प्राकृतभाषास्तुत्रादेशवरस्वर्गारोहणश्चैकनवतितमोऽध्यायः ॥ ६१ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥
राजां बोले कि हे देवेश ! फिर उस मानुसतीने क्या किया इस हमारी संशयको अपनी दयासे कहो ॥ १ ॥ तब महादेव बोले कि वह रानी विचारकर कुण्डके समीप
गई तीर्थके माहात्म्यको देख रानी आनन्दसे भर गई ॥ २ ॥ उसी क्षणमें बहुत से ब्राह्मणों को बुलाय पूजन किया और हे नराधिप ! ब्राह्मणोंको अनेक दानदिये ॥ ३ ॥

यासह ॥ ९ ॥ दिव्यविमानमारूढो गतश्च गतिमुत्तमाम् ॥ ११० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणरेवाखण्डेशवरस्वर्गारोहणश्च
चैकनवतितमोऽध्यायः ॥ ९१ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

राजोवाच ॥ ततस्तथापि देवेश भानुमत्याहिकिं कृतम् ॥ एतन्मे संशयन्देव कथय स्वप्नसादतः ॥ १ ॥ हर उवाच ॥
चिन्तयित्वा तु साराज्ञी गता कुण्डस्य सन्निधौ ॥ दृष्ट्वा तीर्थस्य माहात्म्यं राज्ञी हर्षेण पूरिता ॥ २ ॥ विप्रा न्वहन्समाहूय
पूजयामास तत्क्षणात् ॥ ददौ च विविधन्दानं ब्राह्मणेभ्यो नराधिप ॥ ३ ॥ दत्त्वा च दक्षिणामेवं मधुमासे च भूमिप ॥ अ
मायाञ्च ततो राज्ञी गता पर्वतमूर्धनि ॥ ४ ॥ नगशृङ्गं समारुह्य कृत्वा तु करसम्पुटम् ॥ विज्ञाप्य ब्राह्मणान्सर्वानिदं वचन
मब्रवीत् ॥ ५ ॥ मम माता पिता भ्राता तथान्ये चैव बान्धवाः ॥ सर्वे क्षमन्तु ते सर्वैरिदं वाच्यं तदा वचः ॥ ६ ॥ इत्युक्त्वा शूल
भेदे तु तपःकृत्वा सुदारुणम् ॥ विमृज्य चैव मात्मानं तस्मिन्स्तीर्थे दिवङ्गता ॥ ७ ॥ ब्राह्मणा ऊचुः ॥ सन्देशं कथयिष्या
हे भूमिप ! इस प्रकार दक्षिणा देकर चैतकी अमावसको रानी पर्वतके ऊपर गई ॥ ४ ॥ पर्वतकी चोटीपर चढ़ और दोनो हाथोंको जोड़ ब्राह्मणों से जाहिर कर फिर सब
से इस वचनको बोली ॥ ५ ॥ कि हमारे माता, पिता, भाई और बान्धव लोग सब क्षमा करें तुम सबको यह कहना चाहिये ॥ ६ ॥ कि मानुसती शूलभेदमे दारुण तप-
स्याको कर और उसी तार्थमें अपनी देहको छोड़ स्वर्गको चली गई ॥ ७ ॥ तब ब्राह्मण बोले कि हे शोभनव्रते ! तुम्हारी माता व पिता से तुम्हारे कहे हुये संदेशको हम

जरूर कहेंगे हे सुश्रोणि । इसमें तुमको सन्देह मत होवे ॥ ८ ॥ तदनन्तर रानी सबको विदाकर पर्वतपर खड़ीहुई और आधे कपड़े से अपने शरीरको खूब पोढ़ा बांध कर ॥ ९ ॥ हे नराधिप । एकही में चित्तको लगायेहुये पर्वत से देहको छोड़ जबतक आधे पर्वतक देवता और देवियोंने देखा ॥ १० ॥ कि दिव्य विमानपर चढ़ वह कैलासको चलीगई तदनन्तर वह सब लोगोके देखतेही स्वर्गको चलीगई ॥ ११ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणैरेवाखण्डेआकृतभाषास्तुत्रादेभानुमतीस्वर्गारोहणश्चाम द्विनवतितमोऽध्यायः ॥ ६२ ॥

मस्त्वयोक्तंशोभनव्रते ॥ मातापित्रोश्चमुश्रोणि मातेभूदन्नसंशयः ॥ ८ ॥ ततोविमृज्यलोकन्तु स्थितापर्वतसन्निधौ ॥
अर्द्धोत्तरीयवस्त्रन्तु गाढकृत्वापुनः पुनः ॥ ९ ॥ ततोविमृज्यचात्मानमेकचित्तानराधिप ॥ नगार्द्धपतितायावत्ताव
दृष्टासुरासुरैः ॥ १० ॥ दिव्यंविमानमारुह्य कैलाससाजगामह ॥ ततस्सापश्यतान्तेपांजनानांविदिवद्भता ॥ ११ ॥

इति श्रीस्कन्दपुराणैरेवाखण्डे भानुमतीस्वर्गारोहणश्चामद्विनवतितमोऽध्यायः ॥ ६२ ॥ * ॥ * ॥
देवउवाच ॥ ततःपुष्करिणीं गच्छेत्सर्वपापप्रणाशिनीम् ॥ श्रुत्वातस्याः प्रभावन्तु सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ १ ॥ रेवाया उत्त
रेकूले तीर्थं परमशोभनम् ॥ यत्रास्ते सर्वदा देवो दिव्यमूर्तिर्दिवाकरः ॥ २ ॥ कुरुक्षेत्रं यथापुण्यं सर्वकामिकमुत्तमम् ॥
इदं तीर्थं तथापुण्यं सर्वकामफलप्रदम् ॥ ३ ॥ कुरुक्षेत्रे यथा वृद्धिर्दानस्य जगतीपते ॥ पुष्करिण्यां तथा वृद्धिर्दानस्यापि
न संशयः ॥ ४ ॥ यवमेकन्तु यो दद्यात्सौ वर्णं चात्र वै नृप ॥ पुष्करिण्यां तथा स्नानं सर्वस्थाने श्वरे स्मृतम् ॥ ५ ॥ सूर्यग्रहे

फिर महादेवजी बोले कि तदनन्तर सब पापोंकी नाश करनेवाली पुष्करिणी तीर्थको जावे उसके प्रभावको सुन मनुष्य सब पापोंसे छूटजाता है ॥ १ ॥ नर्मदाके उत्तरवाले किनारेपर बड़ा सुन्दर तीर्थ है जिसमें दिव्यमूर्तिको धारणकिये सूर्यदेव सदा रहते हैं ॥ २ ॥ जैसे सब कामनाओंका देनेवाला कुरुक्षेत्र पुण्यवाला है वैसेही यह तीर्थ भी पुण्यवाला व सब कामफलों का देनेवाला है ॥ ३ ॥ हे जगतीपते ! जैसे कुरुक्षेत्रमें दानकी बढ़ती होती है ऐसे पुष्करिणी में भी दानकी बढ़ती होती है इगमें संशय नहीं है ॥ ४ ॥ हे नृप ! इस पुष्करिणीमें जो एक सोनेका जो देता व स्नान करता है उसका सब फल स्थानेश्वरके बराबर कहा गया है ॥ ५ ॥ सूर्यग्रहण में अपनी

शक्तिके अनुसार विधिसे हाथी, घोड़े, रथ, रत्न, मकान, गौँ, बैल इनका दानदेवर ॥ ६ ॥ सोना और चाँदीको भी जो ब्राह्मणोंको देता है उसका दियाहुआ तेरह दिन में तेरहगुना होजाताहै ॥ ७ ॥ तिल मिले जलमे पितर व देवताओंका इस तीर्थमें तर्पणकरे तो हे महीपते ! पितरोंकी बारह वर्षतक तृप्ति रहती है ॥ ८ ॥ और जो कोई वहा खीर, घी और मिठाई से श्राद्ध करताहै अथवा मघा आदि नक्षत्रोंमें श्राद्ध करताहै उसके पितरोंको वह दियाहुआ अन्नय होताहै ॥ ९ ॥ अक्षत, बेर, बेल इंगुआ और तिलोंसे उस तीर्थमें श्राद्ध करनेवाला अन्नय फलको पाता है इसमें संशय नहीं है ॥ १० ॥ वहाँ स्नानकर जो सूर्यदेवका पूजन करताहै वह देवताओं

यथाशक्त्या दत्त्वादानंयथाविधि ॥ हस्त्यश्वरथरत्नानि गृहं गाश्च धुरन्धरान् ॥ ६ ॥ सुवर्णरजतंवापि ब्राह्मणेभ्यो ददाति यः ॥ त्रयोदशदिनं यावत्त्रयोदशगुणं भवेत् ॥ ७ ॥ तिलमिश्रेण तोयेन तर्पयेत्पितृदेवताः ॥ द्वादशाब्दं भवेत्तृप्तिस्तत्र तर्पयेत् महीपते ॥ ८ ॥ यस्तेन कुस्ते श्राद्धं पायसैर्मधुसर्पिषा ॥ श्राद्धं मघादि ऋक्षेषु पितृणां दत्तमन्नयम् ॥ ९ ॥ अन्नतैर्बदरैर्विल्वैरिङ्गैर्देवतिलैः सह ॥ अन्नयं फलमाप्नोति तस्मिंस्तीर्थेन मनशयः ॥ १० ॥ तत्र स्नात्वा तु यो देवं पूजयेच्च दिवाकरम् ॥ सगच्छेत्परमं लोकं त्रिदशैरपि विन्दतः ॥ ११ ॥ ऋक्षमेकां पठेद्यस्तु यजुषः सामान एव च ॥ समग्रस्य सर्वदस्य फलमाप्नोति वैद्विजः ॥ १२ ॥ त्रिषुष्करं जपेन्मन्त्रं ध्यायमानो दिवाकरम् ॥ सगच्छेत्परमं लोकं त्रिदशैरपि विन्दतम् ॥ १३ ॥ यस्तत्र विधिवत्प्राणांस्त्यजते नृपसत्तम ॥ सगच्छेत्परमं स्थानं यत्र देवो दिवाकरः ॥ १४ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ भूयोऽप्यन्यत्प्रवक्ष्यामि आदित्येश्वरमुत्तमम् ॥ सर्वदुःखहरं पार्थ सर्वविघ्नविनाशनम् ॥ १५ ॥ अस्य

से भी नमस्कार कियागया परमलोकको जाताहै ॥ ११ ॥ और जो ब्राह्मण वहाँ ऋग्वेद व यजुर्वेद व सामवेदकी एक ऋचाको पढ़ताहै वह सम्पूर्ण वेदके फलको पाता है ॥ १२ ॥ सूर्यका ध्यान करताहुआ जो त्रिषुष्कर मन्त्रको अपताहै वह देवताओंसे भी नमस्कार कियाहुआ परमलोकको जाताहै ॥ १३ ॥ और हे नृपसत्तम ! जो वहाँ विधिसे प्राणोंको छोडताहै वह उस उत्तम स्थानको जाताहै कि जहाँ सूर्यदेव रहते हैं ॥ १४ ॥ मार्कण्डेयजी बोले कि हे पार्थ ! अब और आदित्येश्वरनामके उत्तम

तीर्थको कहते हैं जोकि सब विमों व सब पापोंका हरनेवाला है ॥ १५ ॥ हे कुरुनन्दन ! स्वर्ग, मनुष्य और पाताललोकके और तीर्थ इस तीर्थ की शोभाको नहीं पासके हैं ॥ १६ ॥ हे नृपनन्दन ! कुरुक्षेत्र, गया, गंगा, प्रयाग, नैमिष, पुष्कर, काशी और केदार ॥ १७ ॥ ये सब तीर्थ सूर्यतीर्थ की सोलहवीं कलाको नहीं पासके हैं सूर्य-तीर्थमें जो दियागया है उसको हे कुरुनन्दन ! तुम सुनो ॥ १८ ॥ तुम्हारे स्नेह से कहता हूँ क्योंकि बुढ़ापे में मैं बड़ा परिडित भी नहीं हूँ तपस्याके करनेवाले सब महा-त्मा ऋषिलोग सुनै ॥ १९ ॥ स्कन्दजी व और भी रुद्रके गणोंके सहित मैंने महादेवजी के समीपमें सुना है पार्वती से प्रार्थना कियेगये महादेवजीने सूर्यतीर्थ के फलको

तीर्थस्यचान्यानि तीर्थानिकुरुनन्दन ॥ नलभन्ते श्रियंताके मर्त्येपातालगोचरे ॥ १६ ॥ कुरुक्षेत्रं यथा गङ्गा नैमिषेषु
ष्करंतथा ॥ वाराणसी च केदारं प्रयागो नृपनन्दन ॥ १७ ॥ रवितीर्थस्य सर्वाणि कलानाहन्ति षोडशीम् ॥ रवितीर्थे च य
द्वत्तं शृणुष्व कुरुनन्दन ॥ १८ ॥ स्नेहार्थे कथयिष्यामि वार्द्धक्येनातिपरिडितः ॥ शृण्वन्तु ऋषयस्सर्वे तपोनिष्ठाम
हात्मनः ॥ १९ ॥ श्रुतं मे रुद्रमन्त्रिष्ये स्कन्द रुद्रगणैस्सह ॥ पार्वत्या प्रार्थितः शम्भूरवितीर्थस्य यत्फलम् ॥ २० ॥ श
म्भुना पितृदाख्यातं गिरिजायाः पुरस्तदा ॥ तत्सर्वमेकचित्तेन रुद्रोद्गीतं श्रुतं मया ॥ २१ ॥ दुर्भिक्षोपहता विप्रा नम्रमे
दातृमाश्रिताः ॥ उद्दालको वशिष्ठश्च भारण्डव्यो गौतमस्तथा ॥ २२ ॥ याज्ञवल्क्यो थशाण्डिल्य इच्यवनो भार्गवस्त
था ॥ नाशकेतुर्विभारण्डश्च बालाखिल्यादयस्तथा ॥ २३ ॥ शातातपोपिशङ्गश्च जैमिनिर्गोभिलस्तथा ॥ जैगीषव्यः श
तानीकऋषिसङ्घास्समागताः ॥ २४ ॥ तीर्थयात्राकृतास्तैस्तु नम्रमर्मां समायाताः ॥ आदित्येशं समायाताः प्रसङ्गादृषि

कहा है ॥ २० ॥ महादेवजीने भी पार्वतीजी के सामनेही कहा है वह सब महादेवजीका कहा हुआ मैंने एकचित्त होकर सुना है ॥ २१ ॥ दुर्भिक्षके मारे हुये जाक्षणलोग नर्मदातटको आये उद्दालक, वशिष्ठ, भारण्डव्य, गौतम ॥ २२ ॥ याज्ञवल्क्य, शाण्डिल्य, च्यवन, भार्गव, नाशकेतु, विभारण्डक, बालाखिल्य ॥ २३ ॥ शातातप, राख, जैमिनि, गोभिल, जैगीषव्य और शतानीक आदि ऋषियों के गण आते हुये ॥ २४ ॥ उन ऋषियोंने नर्मदाके तीर्थोंकी यात्राको किया प्रसङ्ग से आदित्येश्वर

तीर्थको आये ॥ २५ ॥ कैसा वह तीर्थ है कि वृत्तों से सब ढका हुआ है धाई, तेंदुआ, पंढरिया, जंभीरी, अर्जुन, कुन्द, जटाकेसर, छिपला ॥ २६ ॥ विजौरा, नारियल और खैर आदि कल्पवृक्षों से व्याप्त है और अनेक जङ्गली जीवों से भरा है हिरनों की मालाओं से घिरा है ॥ २७ ॥ रीछ और हाथियों से युक्त व चीताओं से शोभित हो रहा है फूल व फलों से भरे हुये उस वन में ऋषिलोग पैठते हुये ॥ २८ ॥ वन के बीच में एक गोरे रङ्ग की स्त्री को देखा जो कि लालेकपड़े पहने हुये और लाले फूलों की माला को पहने अच्छी शोभा से युक्त लालचन्दन को लगाये हुये ॥ २९ ॥ लाले जेवरों से सजी, चन्द्रमा को हाथ में लिये, भय को करने वाली जो है उसके समीप एक पुरुष भी देख पड़ा वह भी काले मेघ के

सत्तमाः ॥ २५ ॥ वृक्षैस्सञ्छादितं सर्वं धवैस्तिन्दुकपाटलैः ॥ जम्बीरैरर्जुनैः कुन्दैर्जटाकेसरकिंशुकैः ॥ २६ ॥ पुष्पा
गनारिकैरस्तु खदिरैः कल्पपाटपैः ॥ अनेकश्वापदाकीर्णमृगमालासमाकुलम् ॥ २७ ॥ ऋधहस्तिस्समायुक्तं चित्रकै
श्चमुशोभितम् ॥ प्रविश्य ऋषयस्सर्वे वनेषु फलाकुले ॥ २८ ॥ वनान्ते च स्त्रियं शुभ्रां दृष्ट्वा रक्ताम्बरान्विताम् ॥ रक्त
माल्यां सुशोभाढ्यां रक्तचन्दनचर्चिताम् ॥ २९ ॥ रक्ताभरणसंयुक्तां शशिहस्तां भयावहाम् ॥ तस्याः समीपगो दृष्टः कृ
ष्णजीमूतसन्निभः ॥ ३० ॥ महाकायो भीमवक्त्रः पाशहस्तो भयावहः ॥ अनाधृष्यो वयोवृद्ध आतुरः पिङ्गलोचनः ॥ ३१ ॥
दीर्घजिह्वः करालास्यस्तीक्ष्णदंष्ट्रो दुरासदः ॥ दृष्ट्वा स्त्रियं कुरुश्रेष्ठ ते पश्यन् विप्रपुङ्गवाः ॥ ३२ ॥ ततस्समीपगा वृद्धा सच वृ
द्धश्च भारत ॥ स्वाध्यायानिरतौ विप्रस्तौ पृष्ट्वा पापकर्मिणौ ॥ ३३ ॥ वृद्धा वृचतुः ॥ युष्माकं यमिनस्सर्वे तिष्ठध्वं तीर्थमध्य
तः ॥ शीघ्रं प्रविश्य तां सर्वे नर्मदां चैव सेव्यताम् ॥ ३४ ॥ तयोः श्रुत्वा तु वचनं ब्राह्मणाः शंसितव्रताः ॥ जग्मुस्तेन नर्मदा

समान काला ॥ ३० ॥ बड़ी देहवाला व बड़े मुखवाला फँसरी को हाथ में लिये किसी के वचन लायक नहीं उमरका बूढ़ा रोगी पाले नेत्रोंवाला ॥ ३१ ॥ लम्बी जीभिका डरावने
मुखवाला पैनी ढाढ़ोंवाला है हे कुरुश्रेष्ठ ! जब ब्राह्मणों ने उस वृद्ध स्त्री को देखा ॥ ३२ ॥ तब हे भारत ! वह बुढ़ी स्त्री और बुढ़ा ब्राह्मणों के समीप आये तब वेद के पढ़ने
वाले ब्राह्मणों ने उन दोनों पापियों से पूछा ॥ ३३ ॥ तब बुढ़े बोले कि आप सब महात्मालोग इस तीर्थ पर ठहरो जल्दी इस वन में पैठो और नर्मदा का सेवन

करो ॥ ३४ ॥ उन दोनोंके वचनको सुनकर वे ब्राह्मणलोग नर्मदाके तटको गये और नर्मदाको देख्वा ॥ ३५ ॥ कोई नमस्कार करनेलगे और कोई स्तुति करते हैं व कहते हैं कि हे देवि ! तुम्हारी जयहो आपके नमस्कार हैं ॥ ३६ ॥ ऋषिलोग बोले कि सिद्धगणों से सेवा की जाती जो तुमहो तिनके नमस्कार हैं और सब तरह से पवित्र व मङ्गलरूप जो तुमहो तिनके नमस्कार हैं हजारों ब्राह्मणों से पूजी जाती जो तुमहो तिनके नमस्कार हैं और महादेवसे पैदाहुई सबसे श्रेष्ठ जो तुमहो तिनके नमस्कार हैं ॥ ३७ ॥ सब पवित्रों को भी पवित्र करनेवाली जो तुमहो तिनके नमस्कार हैं और हे देवि ! सबमें श्रेष्ठ जो तुमहो तिनके नमस्कार हैं आप हमलोगों से प्रसन्न हूजिये हे ठण्डे जलवाली व सुखकी देनेवाली, नदियोंमें श्रेष्ठ, पापोंकी हर्नेवाली, दयावाली, ॥ ३८ ॥ अनेक जीवोंकी देहों से सुहावने प्रवाहवाली, गन्धर्व, यक्ष और सर्पोंकी देहों को पवित्र करने-

कच्छं दृष्ट्वारेवां द्विजोत्तमाः ॥ ३५ ॥ नताः केचित्स्तुवन्त्यन्ये जयदेवि नमोस्तुते ॥ ३६ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ नमोस्तुते सिद्धगणैर्निषेविते नमोस्तुते सर्वपवित्रमङ्गले ॥ नमोस्तुते विप्रसहस्रपूजिते नमोस्तुते रुद्रसमुद्रवेपरे ॥ ३७ ॥ नमोस्तुते सर्वपवित्रपावने नमोस्तुते देविवरे प्रसीदनः ॥ नमोस्तुते शीतजले सुखप्रदे सरिद्धरे पापहरे दयान्विते ॥ ३८ ॥ अनेकभूता ब्रह्मशोभिताङ्गे गन्धर्वयक्षोरगपाविताङ्गे ॥ महागजौघामहिषावराहाः क्रीडन्ति तोये सुमहोर्मिमालैः ॥ ३९ ॥ नमामसर्ववरदे सुखप्रदे विमोचयास्मान्पशुपाशबद्धान् ॥ पापैरनेकैः पशुपाशबद्धा भ्रमन्ति तावन्नरकेषु नित्यम् ॥ ४० ॥ यावत्तावाम्भोन हि संस्पृशन्ति स्पृष्टं करैश्चन्द्रमसोरवेश्च ॥ अनेक संसारभयादितानां पापैरनेकैः परिवेष्टितानाम् ॥ ४१ ॥ गतिस्त्वमम्भोजसमानवक्त्रे हृद्द्वैरनेकैरभिसंवृतानाम् ॥ नद्यस्तु पूज्या विमला भवन्ति त्वान्देवि चासाद्य न संशयोत्र ॥ ४२ ॥

वाली ! आपके नमस्कार हैं बड़े २ हाथी व भैंसे व वनके सुवर बड़ी २ तरङ्गों से आपके जलमें जलविहार करते हैं ॥ ३६ ॥ हे वरों के देनेवाली व सुखोंकी देनेवाली ! हम सब आपको नमस्कार करते हैं पशुओंकीसी फँसरीमें बँधेहुये हमलोगोंको आप छोंडावे अनेकपापोंसे पशुओंकीसी फँसरीमें बँधेहुये जीव नरकोंमें तभीतक सदा भ्रमते हैं ॥ ४० ॥ कि जबतक तुम्हारे जलको नहीं छूते हैं जाकि चन्द्रमा और सूर्यकी किरणों से छुवागया है संसारके अनेक डरों से डरेहुये और अनेकपापोंसे लपेटेहुये ॥ ४१ ॥ और सुख दुःख आदिकी जोड़ियों से घिरेहुये जीवोंकी गति हे कमल सरीखे सुखवाली ! आपहीहो और हे देवि ! आपको पाकर और नदियां निर्मल व पूजने लायक

होजाती हैं इसमें संशय नहीं है ॥ ४२ ॥ अनेक देवताओं से पूजा जारही जो तुमहो सो दुःखी जीवोंको अभय देतीहो विष्ठा और मूत्रके समुद्ररूप इस देहमें डूबेहुये जीव तभीतक नरकोंमें रहते हैं ॥ ४३ ॥ कि जबतक भारी हवाके जोरसे उठती हैं तरङ्गें जिसमें ऐसे तुम्हारे जलको नहीं छूते हैं स्लेच्छ, कलर और राजस तुम्हारे पवित्र जलको जो पीते हैं ॥ ४४ ॥ वे भी बड़े भारी डरसे छूटजाते हैं पापके डरसे डरेहुये ब्राह्मणों के छूटजानेकी क्या बातहै इस पापी घोर कलियुग में निर्मल जलसे पूरी तुम्हीं प्रकाश करतीहो ॥ ४५ ॥ और हे देवि ! आपही के प्रसाद से आकाश में आकाशगङ्गा विद्यमान होरही हैं ऐसे समय में आप हमारी ठीक २ रत्नाकरो जिससे

दुःखानुराणामभयं ददासि देवैरेनैरभिपूजितासि ॥ विण्मूत्रदेहाणवमग्नदेहा भवन्ति ततावन्नरकेषु मर्त्याः ॥ ४३ ॥
महानिलोद्धूततरङ्गभङ्गं जलन्नयावत्तवसंस्पृशन्ति ॥ स्लेच्छाः पुलिन्दास्त्वथयातुधानाः पिवन्ति चास्मस्तव देविषु
रायम् ॥ ४४ ॥ तेषि प्रमुञ्चन्ति भयात्तु घोरान् किमत्र विप्राभयपापभीताः ॥ घोरयुगेऽस्मिन् कलिनान्यपुण्ये त्वं ब्राह्मणजसेका
लजलौघपूर्णं ॥ ४५ ॥ देव्यन्न नक्षत्रपथेऽपि गङ्गा तव प्रसादाद्दिवि देव्यतिष्ठत् ॥ कालेयथेष्टपरिपालयत्वं यास्यामलौ
कन्तवसुप्रसादात् ॥ ४६ ॥ वयं तथा त्वं कुरुनः प्रसादं त्वामाश्रितास्त्वांशरणज्ञतावै ॥ गतिस्त्वमेवात्रापि तेवपुत्रं त्वमादि
देवप्रभवो विचित्रे ॥ ४७ ॥ कालेऽप्यनादृष्टिर्भवन्त्यश्च रक्षस्व सर्वजगतः स्वरूपम् ॥ ४८ ॥ एवंस्तुतामहादेवी नर्मदास
रितांवरा ॥ प्रत्यक्षा सा पराभूता ब्राह्मणानां युधिष्ठिर ॥ ४९ ॥ नर्ममदोवाच ॥ तुष्टाहं वरदा विप्रा दास्ये वोवाञ्छितं फलम् ॥
ततो वर्षन्महामेघा धान्यञ्च प्रचरन्तथा ॥ ५० ॥ कन्दमूलफलं शाकं सुखं सर्वत्र संश्रितम् ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ पठन्ति

आपके प्रसादसे हमलोग आपके लोकको जावें ॥ ४६ ॥ आप हमलोगोंपर प्रसन्न होवें हम आपहीके आश्रित और शरणगत हैं आपही हमारी गतिहो जैगे पुत्रकी गति पिता होताहै आप आदिदेव (महादेवजी) से पैदाहुईहो और विचित्रहो ॥ ४७ ॥ अब इस समय में वर्षा के न होनेके कारणसे होरहे प्रजा के क्षयस जगतके रूपकी रक्षाकरो ॥ ४८ ॥ हे युधिष्ठिर ! इसप्रकार स्तुति कीगई नदियों में श्रेष्ठ नर्मदा देवी ब्राह्मणोंके प्रत्यक्ष होतीहुई ॥ ४९ ॥ नर्मदा बोली कि हे विप्रो ! हम प्रसन्न हैं और तुम्हारे मनमाने वरको देवैगी तदनन्तर मेवोंने जलकी वर्षा की इससे बहुत अन्न ॥ ५० ॥ कन्द, मूल, फल और शाक पैदाहुआ सब कही सुख होगया मार्क-

एण्डेयजी कहते हैं कि हे नरेन्द्र ! जो मनुष्य इस स्तोत्रको पढ़ते व भक्तिसे युक्त सुनते हैं ॥ ५१ ॥ अन्तके समय में नदियों में उत्तम यह नर्मदा उनको उत्तम गति देती है प्रातःकाल उठकर मानके सहित महादेव, पार्वती और नर्मदाको जो कहता है ॥ ५२ ॥ उसके सब पाप नष्ट होजाते हैं और बड़े सुख आते है और पापों से छुटे हुये वे मनुष्य स्वर्ग में आनन्द करते हैं क्योंकि महादेवकी वाणी मिथ्या नहीं होसक्ती है ॥ ५३ ॥ हे भारत ! इस स्तोत्रसे प्रसन्नहुई नर्मदादेवी दक्षिणदिशामें बहनेवाली अपने जलसे ब्राह्मणों को पुष्ट करतीहुई ॥ ५४ ॥ मार्कण्डेयजी बोले कि स्नान व देवताओं के पूजन से युक्त, बड़े बलवाले पांचही पुरुष नर्मदाके किनारेपर देख पड़े

येस्तोत्रमिदंनरेन्द्र शृण्वन्तिभक्त्यापरयाप्रपन्नाः ॥ ५१ ॥ तेभ्योन्तकालेसरिदुत्तमेयं गतिविशुद्धाश्रितरांददाति ॥ प्रा
तस्समुत्थायसमानएव संकीर्तयेद्बुद्धमुमाञ्चदेवीम् ॥ ५२ ॥ पापानिसर्वाणिलयंप्रयान्ति समाश्रयन्तेचमहानुभावाः ॥
पापैस्तुमुक्तादिविमोदयन्ते शम्भोर्गिराचैवतुनान्यथाच ॥ ५३ ॥ प्रसन्नानम्मर्मदादेवी स्तोत्रेणानेनभारत ॥ जलेनाप्या
यितान्विप्रान् दक्षिणापथवाहिनी ॥ ५४ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ दृष्ट्वास्तेपुरुषानान्या नम्मर्मदातटमाश्रिताः ॥ स्ना
नदेवार्चनैर्युक्ताः पञ्चैवतुमहाबलाः ॥ ५५ ॥ तेदृष्ट्वाब्राह्मणैस्सर्वैर्वेदेदाङ्गपारगैः ॥ विप्राऊचुः ॥ दिनान्तेचखियोर्यु
ग्मं दृष्ट्वैरौद्रंभयावहम् ॥ ५६ ॥ त्रयोवृद्धाश्चपुरुषाः पाशहस्ताभयावहाः ॥ दुर्द्धरादुर्निसंकाशा इतश्चेतश्चचञ्चलाः ॥
५७ ॥ व्याहरन्तिभियावाचा आकाङ्क्षादर्शनस्यच ॥ अपरस्परिणस्सर्वे निरीचन्तेपरस्परम् ॥ ५८ ॥ तेषुसङ्क्षुब्धयत्नो
क्तं तत्सर्वकथयामिते ॥ पुरुषाऊचुः ॥ तीर्थाविगाहनंसर्वैः पूर्वपश्चिमदक्षिणे ॥ ५९ ॥ उत्तरेचकृतंभक्त्या नपापंतद्वयोहि

और कोई नहीं ॥ ५५ ॥ वेद व वेदाङ्गके पढ़नेवाले सब ब्राह्मणोंने उन्हें देखा तब ब्राह्मण बोले कि सन्ध्याको बड़े भयानक एक स्त्री पुरुषके जोड़े को हमने देखा था ॥ ५६ ॥ अब तीन वृद्ध पुरुष औरहैं फँसरीको हाथों में लिये बड़े डरावने पकड़े नहीं जासके, करालरूप, इधर उधर दौड़रहे ॥ ५७ ॥ डरावनी आत्राज से बोलतेहुये, देखने की इच्छा कर रहे आपस में एकत्रित नहीं होते और आपस में सब देखते हैं ॥ ५८ ॥ उनके झुण्डमें जो बातें हुई हैं उनको हम तुमसे कहते हैं वे पुरुष ब्राह्मणों

से बोले कि हम सबोंने पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और उत्तरवाले सब तीर्थोंमें भक्तिसे स्नान किया लेकिन हमारा वह पाप नष्ट नहीं हुआ परन्तु इस तीर्थके प्रभाव से यहां हम सब निष्पाप होगये ॥ ५६ ॥ ६० ॥ हे आगकी ज्वालाके समान तेजवाले सब ब्राह्मण लोगो ! हम लोगोके वृत्तान्तको सुनो कि जिन पापोंको और लोग स्मरण नहीं करते हैं ऐसे २ घोर पापोंको हम लोगोंने किया है ॥ ६१ ॥ इस पापोंने अपने गुरुकी स्त्री को भ्रष्ट किया है और दूसरेने मित्रका सोना हर लिया है ॥ ६२ ॥ तीसरेने बड़ी भयानक ब्रह्महत्याको किया व और भी पातकको किया है और दूसरेकी इच्छा से इसने मद्य भी पिया है ॥ ६३ ॥ और इस एकही पापी ने गोहत्याका भी पाप किया है हे

तम् ॥ निष्पापाश्चात्र सज्जातास्तीर्थस्यास्य प्रभावतः ॥ ६० ॥ शृण्वन्तु ऋषयस्सर्वे अग्निज्वालोलोपमा द्विजाः ॥ पातकानि च घोरानि यान्यचिन्त्यानि देहिनाम् ॥ ६१ ॥ पापिष्ठेन तु चानेन गुरोर्दारा विदूषिताः ॥ हृतं चान्येन मित्रस्य सुवर्णं च तथा च वै ॥ ६२ ॥ ब्रह्महत्या कृतारौ द्राक्कृतञ्चान्येन पातकम् ॥ सुरापानन्तु चाप्यस्य संजातं चान्यकामतः ॥ ६३ ॥ गोवधं पापमेतेन कृतमेकेन पापिना ॥ अकामतोऽपि सर्वेषां पातकानि नराधिप ॥ ६४ ॥ ब्राह्मणास्तांस्तु ते दृष्ट्वा पापिष्ठा गतकल्मषाः ॥ तीर्थस्यास्य प्रभावेण नर्मदायाः प्रभावतः ॥ ६५ ॥ न क्वचित्पातकानां तु प्रवेशश्चात्र जायते ॥ एवं सञ्चिन्त्य ते सर्वे पापिष्ठाश्च परस्परम् ॥ ६६ ॥ क्षिप्रमेव समुद्धृत्य विचिन्त्य हृदये हरिम् ॥ स्नात्वा रेवाजलेषु एये तर्पित्वा पितृदेवताः ॥ ६७ ॥ नत्वा तु भास्करं देवं हृदि ध्यात्वा जनार्दनम् ॥ कृत्वा प्रदक्षिणं भक्त्या ज्वलिते जातवेदसि ॥ ६८ ॥ पतिताः पाण्डवश्चेष्ट पापो द्विगनाश्च पापिनः ॥ सात्त्विकी कामनां कृत्वा त्यक्त्वा प्राणान् दिवङ्गताः ॥ ६९ ॥ निष्पापास्ते महाभागैर्न भंदा नराधिप ! पाप नो अपनी कामनाके बिना भी सबको होते हैं ॥ ६४ ॥ उन ब्राह्मणोंने उन पापियोंको देखा कि इस तीर्थ व नर्मदाके प्रभावसे ये सब अतिपापी लोग पाप से रहित होगये हैं ॥ ६५ ॥ यहां पापोंका प्रवेश कभी नहीं हो सक्ता है सब पापी लोग आपस में ऐसे विचारकर ॥ ६६ ॥ और शीघ्रही उठकर व अपने हृदयमें भगवान् की सुधकर व नर्मदाके पवित्र जलमें नहाय पितर व देवताओंका तर्पणकर ॥ ६७ ॥ सूर्यके नमस्कार व भगवान्का ध्यान व उनकी भक्तिसे प्रदक्षिणाकर जलती हुई आग में ॥ ६८ ॥ हे पाण्डवश्चेष्ट ! पापों से डरे हुये वे पापी कूद पड़े सत्त्वगुणकी कामना को कर और प्राणोंको छोड़ स्वर्गको चले गये ॥ ६९ ॥ उस समय में नर्मदाके उत्तर

तटमें बड़भागी ब्राह्मणोंने उन पापियोंको पापसे रहित व विमानोंपर बैठे देखा हे शुधिष्ठिर ! ॥ ७० ॥ नर्मदाके तटमें ऋषियोंने बेनजीर आश्रयको देखा तबसे वे सब लोग राग और द्वेषसे रहित होगये ॥ ७१ ॥ तबसे मोक्षकी इच्छा से प्रसन्न होरहे ब्राह्मणलोग सूर्यतीर्थ की सेवा किया करते हैं ॥ ७२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽष्टावक्रप्रकरणे महादेशिकेऽर्चनीयम् ॥

प्राकृतभाषाऽनुवादः ईश्वरीयमहिमाऽनुवर्णनो नाम त्रिनवतितमोऽध्यायः ॥ ६३ ॥

माकर्ण्डेयजी बोले कि हे नराधिप ! इसतीर्थकी जो पुण्य है तिसको तुम सुनो हे नरेश्वर ! हम परिडतहैं बुढ़ापे व भक्तिसे महादेवजीसे रक्षाको पायेहुये हैं ॥ १ ॥

योत्तरेतटे ॥ विमानस्थास्तदादृष्टा ब्राह्मणैस्तयुधिष्ठिर ॥ ७० ॥ आश्चर्यमतुलं दृष्ट्वापि भिन्नममदातटे ॥ तदाप्रभृति
ते सवर्गे रागद्वेषविवर्जिताः ॥ ७१ ॥ रवितीर्थे द्विजाहृष्टाः सेवन्ते मोक्षकाङ्क्षया ॥ ७२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे रेवाखण्डे
कर्कतीयमहिमानुवर्णनो नाम त्रिनवतितमोऽध्यायः ॥ ९३ ॥ * * * ॥ * * *

मार्कण्डेय उवाच ॥ तीर्थस्याभ्यचयत्पुण्यं तच्छृणुष्वनराधिप ॥ परिहृतोद्वृष्टभावेन भक्त्यात्रातोनेरश्वर ॥ १ ॥
उद्देशं कथयिष्यामि दृष्ट्वावान्तरमेव च ॥ कुरुक्षेत्रं यथापूतं रवितीर्थं श्रुतं तथा ॥ २ ॥ ईश्वरेण पुरा ख्यातं परमुत्तमं
युधिष्ठिर ॥ श्रुतं रुद्रगणैस्सर्वैरंहतं न समीपगः ॥ ३ ॥ मार्तण्डग्रहणे प्राप्ते ये ब्रजजान्तिषडानन ॥ रवितीर्थं कुरुक्षेत्रे तुल्य
मेव फलं भवेत् ॥ ४ ॥ स्नाने दाने तथा जाप्ये होमैश्च विशेषतः ॥ कुरुक्षेत्रे तथा पुण्यं नात्र कार्या विचारणा ॥ ५ ॥
ग्रामे वा यदि वा रण्ये पुण्या सर्वत्र नर्मदा ॥ रवितीर्थं विशेषेण रविपर्वणि भूमिप ॥ ६ ॥ तत्र सूर्यदिने भवत्याव्यतीपा
अभिप्रायको देखकर साधारण वृत्तान्तको आपसे कहेंगे जैसा कुरुक्षेत्र पवित्र है वैसाही सूर्यतीर्थ भी पवित्र सुनाया है ॥ २ ॥ हे युधिष्ठिर ! पहले महादेवजी ने स्वामि-
कार्तिकेयसे कहा है वहां महादेवके सब गणोंने सुना है मैं भी वहां समीपही था ॥ ३ ॥ महादेवने कहा कि हे षडानन ! सूर्यग्रहणके प्राप्त होनेपर जो मनुष्य जाते हैं
उनको सूर्यतीर्थ और कुरुक्षेत्र में बराबरही फल होता है ॥ ४ ॥ स्नान, दान, जप और होमसे जैसा कुरुक्षेत्रमें पुण्य होता है वैसाही यहां भी होता है इसमें कुछ विचार
नहीं करना चाहिये ॥ ५ ॥ गांवही या वनही नर्मदा सब कहीं पवित्र है परन्तु हे भूमिप ! सूर्यपर्व में सूर्यतीर्थ में ज्यादा है ॥ ६ ॥ इतवार, व्यतीपात, वैधृति, संक्रान्ति,

और ग्रहणमें जो जितेन्द्रिय मनुष्य भक्तिसे सूर्यतर्पि को जाते हैं ॥ ७ ॥ और हे पार्थ ! काम, क्रोध, राग और द्वेषसे छूटेहुये विष्णुकी कथाको सुनते व वेदका पाठ करते हैं ॥ ८ ॥ अथवा ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेदकी एक ऋचाका भी जप कर के सम्पूर्ण वेदके फलको पाते हैं ॥ ९ ॥ और गायत्री से मनुष्य चारों वेदों के फलको पाता है प्रातःकालमें अन्नके दान व सोनेके दानसे भगवाद्का पूजनकरे ॥ १० ॥ वहां स्नानकर योग्य ब्राह्मणको जो कपिला गज देता है उसने मानो पर्वत व जलो और जंगलके सहित सम्पूर्ण पृथिवीका दानकिया ॥ ११ ॥ और जिसने गोदानको किया उसने भूलोक, सुवलोक, महलोक, जनलोक, तपलोक, सत्यलोक

तेचवैधृतौ ॥ संक्रमेग्रहणेवापि येव्रजन्तिजितेन्द्रियाः ॥ ७ ॥ कामक्रोधविनिमुक्ता रागद्वेषैस्तथैवच ॥ कथाञ्चवै
ष्णवीपार्थ वेदाध्ययनमेवच ॥ ८ ॥ ऋग्वेदंवायजुर्वेदं सामवेदमथर्वणम् ॥ ऋचमेकान्तुजप्तैव समस्तफलमा
प्नुयुः ॥ ९ ॥ गायत्र्याचचतुर्वेदफलमाप्नोतिमानवः ॥ प्रभातेपूजयेद्देवमन्नदानहिरण्यैः ॥ १० ॥ तत्रस्नात्वाद्दि
ज्योग्रये कपिलांयःप्रयच्छति ॥ पृथिवीतेनवैदत्ता सशैलवनकानना ॥ ११ ॥ भूलोकश्चभुवर्लोकौ महर्लोकौजनस्त
था ॥ तपःसत्यन्तथालोकं पातालान्येकविंशतिः ॥ १२ ॥ तेनदत्तंभवेत्सर्वं गोदानंयेनवैद्वतम् ॥ तेषामब्दद्वृतंपापंन
श्येद्वैनान्नसंशयः ॥ १३ ॥ युधिष्ठिरउवाच ॥ पुण्यागतिःकथन्तात एतत्कथयतत्त्वतः ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ पुराकृत
युगस्यादौ ब्रह्मालोकपितामहः ॥ १४ ॥ उत्पादयित्वासकलं भूतग्रामंचतुर्विधम् ॥ आकुलापृथिवीतेनसंजातापाण्डु
नन्दन ॥ १५ ॥ ततःपश्चाद्विचिन्त्येदं कथंलोकौभविष्यति ॥ कथंस्वर्गंप्रयास्यन्ति मानवाभक्तिंसंयुताः ॥ १६ ॥ भानु

और इच्छीस पाताल इन सबका दान करदिया उनके वर्षोंका कियाहुआ पाप नष्ट होजाताहै इसमें संशय नहीं है ॥ १२ ॥ १३ ॥ युधिष्ठिरजी बोले कि हे तात ! पुण्य-
वाली गति किसतरहसे होतीहै सो यह ठीक २ कहो तब मार्कण्डेयजी बोले कि आगे सत्ययुगकी आदिमें लोकोंके पितामह ब्रह्माने ॥ १४ ॥ सब चारोंप्रकारके जीवोंके
समूहको उत्पन्नकिया हे पाण्डुनन्दन ! उससे पृथिवी भरगई ॥ १५ ॥ तब पछिसे विचारकिया कि यह लोक कैसे होगा और भक्तिवाले मनुष्य स्वर्गको कैसे जावेंगे ॥ १६ ॥

लोकोंपर सूर्यनारायण कैसे अतिप्रसन्न होंगे ऐसे ब्रह्माके विचार करतेहुये अग्निके कुण्ड से तेजसे भरीहुई व प्रकाश कर रही वण्टाके डोलने से शब्दको कारती हुई एक गऊ निकली कुण्डके बीचमें विद्यमान उस बड़ीभाग्यवाली कपिलाको देख ॥ १७ ॥ १८ ॥ व उसके प्रणामकर लोकों के गुरु ब्रह्मा उससे यह बोले कि हे मव लोकों में पुरयवाली, अत्युत्तम, कपिले ! तुम्हारे लिये नमस्कार है ॥ १९ ॥ और हे देवि ! हे वरानने ! हे तीनोंलोकों में वन्दना कीगई, मङ्गलरूप ! लक्ष्मी, धृति और निर्मल बुद्धि तुम्हीहो ॥ २० ॥ हे महाभाग ! पार्वती व इन्द्राणी तुम्हीहो इसमें संशय नहीं है वैष्णवी और महादेवी ब्रह्माणी (सरस्वती) तुम्हीहो हे वरानने ! ॥ २१ ॥ कुमारी

श्रैवकथं प्रीतो लोकानां जायते भृशम् ॥ विरिञ्चे श्रिन्त्यमानस्य अग्नि कुण्डात्समुत्थिता ॥ १७ ॥ उवलन्ती तेजसा पू
र्णा वण्टालुलितनिःस्वना ॥ दृष्ट्वा तान् तु महाभागां कपिलां कुण्डं मध्यगाम् ॥ १८ ॥ ब्रह्मालोकगुरुस्तान् तु प्रणम्येदमु
वाच ह ॥ नमस्ते कपिले पुण्ये सर्वलोकेष्वनुत्तमे ॥ १९ ॥ माङ्गल्ये मङ्गले देवि त्रिषु लोकेषु वन्दिते ॥ त्वं लक्ष्मीस्त्वं
धृतिर्मैधापवित्रा तु वरानने ॥ २० ॥ उमादेवीति विख्याता त्वं शचीना त्रसंशयः ॥ वैष्णवी त्वं महादेवी ब्रह्माणी त्वं
वरानने ॥ २१ ॥ कुमारी त्वं महाभागे भक्तिः श्रद्धा तथैव च ॥ कालरात्री तु भूतानां कुमारी परमेश्वरी ॥ २२ ॥ त्वं श्रुति
स्त्वं घटी चैव मुहूर्तक्षणे भव च ॥ संवत्सरं तवो मासास्त्वं कालः पुरुषस्सदा ॥ २३ ॥ नास्तिकिश्चित्त्वया हीनं त्रैलोक्ये
मचराचरे ॥ एवं स्तुता तु सा तेन कपिला परमोष्ठिना ॥ २४ ॥ तमुवाच महाभागा प्रहृष्टा परमोष्ठिनम् ॥ प्रसन्ना तव वाक्ये
न देवदेव जगद्गुरो ॥ २५ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ जगद्धिताय जनिता मया त्वं परमेश्वरि ॥ स्वर्गान् मर्त्यमितो याहि लोकानां हित

तुम्हीहो और हे महाभाग ! भक्ति व श्रद्धा तुम्हीहो सब जीवोंकी कालरात्रि कुमारी परमेश्वरी तुम्हीहो ॥ २२ ॥ श्रुति कुछ पलौका नाम है सो और घड़ी व मुहूर्त व क्षण
तुम्हीहो वर्ष, ऋतु और महीना तुम्हीहो काल व जीव भी तुम्हीहो ॥ २३ ॥ चर व अचररूप तीनों लोकों में तुममें खाली कोई चीज नहीं है इस प्रकार जब उन ब्रह्मा
जीने उस कपिलाकी स्तुतिकी ॥ २४ ॥ तब प्रसन्नहुई वड़भागिनी कपिला ब्रह्माजीसे बोली कि हे देवदेव ! हे जगत्के गुरु ! तुम्हारे वचन से हम प्रसन्न है ॥ २५ ॥

तब द्रष्टा बोले कि हे परमेश्वरि ! मैंने तुमको जगत्के हितके वास्ते पैदा किया है लोकोंके हितकी इच्छा से तुम इस स्वर्ग से मनुष्यलोकको जाओ ॥ २६ ॥ और सब देवता व सब लोकोंका रूप जो तुमहो तिनको विधानसे जो देवोंगे उनका वास स्वर्ग में होगा ॥ २७ ॥ इमप्रकार ब्रह्मामे कहींगई पुरायवाली वह कपिला देवताओं रो भी नमस्कार कीजारही पृथिवीपर आतीहुई ॥ २८ ॥ उसके आने से हे पाण्डुनन्दन ! पृथिवी पवित्र होगई उसके अङ्गो में जो देवताहैं उनको हम कहते हैं सो तुम सुनो ॥ २९ ॥ अग्निदेव उसके मुखमें रहते हैं और दांतों में सांपहैं ओठों में धाता और विधाता हैं कानों में अश्विनीकुमार हैं ॥ ३० ॥ सीगों में इन्द्र बैठे हैं सीगोंके कार्भ्यया ॥ २६ ॥ सर्वदेवमर्यात्त्वान्तु सर्वलोकमर्यातथा ॥ विधिनार्येप्रदास्यन्ति तेषांवासस्त्रिविष्टपे ॥ २७ ॥ एवमुक्त्वा

ततःपुरया कपिलापरमेष्ठिना ॥ आजगामधुवःपृष्ठे वन्दमानासुरोत्तमैः ॥ २८ ॥ पवित्रानमुधातेन सञ्जातापाण्डु नन्दन ॥ तस्याअङ्गेषुदेवास्तान्मेनिगदतःशृणु ॥ २९ ॥ मुखेह्यग्निःस्थितोदेवो दन्तेषुचधुजङ्गमाः ॥ धाताविधाता चोष्ठौचअश्विनौकर्णसंस्थितौ ॥ ३० ॥ वज्रपाणिःस्थितःशृङ्गेशृङ्गमध्येपितामहः ॥ कालोमध्यगतस्तात पाशभृद रूपस्तथा ॥ ३१ ॥ यमश्चभगवान्देव आस्यस्योपरिसंस्थितः ॥ नाभिमध्येस्थितकण्वन्दो देवाजङ्घासुभारत ॥ ३२ ॥ वसुन्धरास्थितानाभ्यां पर्वतास्सन्धिषुस्थिताः ॥ वृक्षानुत्मानिवल्लयश्च सन्धिमार्गेव्यवस्थिताः ॥ ३३ ॥ ऋषयोरोम कूपेषु संस्थिताःपाण्डुनन्दन ॥ स्नायुस्थाःपितरस्सर्वे प्रसवंसर्वतीर्थजम् ॥ ३४ ॥ सर्वेषांगोमयंश्रेष्ठं पवित्रंपापनाश नम् ॥ खुरेषुपद्मगास्सर्वे पुच्छाग्रेसूर्यरश्मयः ॥ ३५ ॥ एवंभूतातुकपिला सर्वदेवमर्याकिला ॥ येध्यायन्तिगृहेभवत्या वीचमें ब्रह्माहै और हे तात ! बीचमें काल और फँसरी के धारण करनेवाले वरुण हैं ॥ ३१ ॥ यमराज भगवान् मुहँके ऊपरवाले भागमें बैठे हैं और हे भारत ! तोड़ीमें छन्दहैं और फीलियों में देवताहैं ॥ ३२ ॥ और पृथिवी भी नाभी में है जोड़ों में पर्वत ठहरे हैं बडे वृक्ष व छोटे वृक्ष व लताये जोड़ोंकी रास्ते में विद्यमानहैं ॥ ३३ ॥ और हे पाण्डुनन्दन ! रोवोंके छेदों में ऋषिलोग बैठे हैं नसों में सब पितर व दूधमें सब तीर्थ रहते हैं ॥ ३४ गोबर सबहीका स्थानहै वह बडा श्रेष्ठ व पवित्र व पापका नाश करनेवालाहै खुरों में सब सांप व पूछके अगिले भागमें सूर्यकी किरणें हैं ॥ ३५ ॥ सब देवताओंका रूप कपिला इसप्रकारकी है अपने घरमें भक्तिसे उसका जो ध्यान

करते हैं वे मुक्तही हैं इसमें संशय नहीं है ॥ ३६ ॥ प्रातःकाल नित्य उठकर भक्तिसे जो कपिलाकी प्रदक्षिणा करता है उसने मानो सातोद्दीपनाली पृथिवी की प्रदक्षिणा करली है ॥ ३७ ॥ कपिला के पञ्चगव्य में जो महादेव व जगत् के आधार विष्णु व सूर्य व और किसी देवताको स्नान कराता है ॥ ३८ ॥ और हे पाण्डव ! पञ्चासृत व पञ्चगव्य से भक्तिपूर्वक स्नान करवाकर जो सालभर तक वेदपाठी ब्राह्मणको रोज २ कपिलाका दान करता है ॥ ३९ ॥ हे युधिष्ठिर ! उन दोनोंके फलको शङ्करजीने बराबर कहा है और जो कोई मनको वशकियेहुये सूर्यतीर्थमें कपिलाको ब्राह्मणके लिये देवेगा ॥ ४० ॥ और दूधवाली, जवान, निर्मल, बछड़ा व कपड़ोंसे सयुक्त, तेसुक्तानात्रसंशयः ॥ ३६ ॥ प्रातरुत्थाययोभक्त्या नित्यंकुर्यात्प्रदक्षिणम् ॥ प्रदक्षिणीकृततेन सप्तदीपावसुन्धरा ॥ ३७ ॥ कपिलापञ्चगव्येन यः स्नापयति शङ्करम् ॥ विष्णुं वाजगदाधारं सूर्यं वा त्वन्यदेवतम् ॥ ३८ ॥ पञ्चासृतेन भस्नाप्य भक्त्या गव्येन पाण्डव ॥ अब्दं वा श्रोत्रिये नित्यं कपिलायः प्रयच्छति ॥ ३९ ॥ तुल्यमेतत्फलं प्रोक्तं शङ्करेण युधिष्ठिर ॥ यः प्रदास्यति विप्राय रवितीर्थे सुयन्त्रितः ॥ ४० ॥ कपिलां वाथ कृष्णं वा श्वेतां रक्षाञ्च पाटलात् ॥ क्षीरिणीन्तरुणीं शुभ्रां सवत्सां वस्त्रसंयुताम् ॥ ४१ ॥ स्वर्णशृङ्गैरीष्यसुरीं विष्णुरूपं द्विजं समरन् ॥ आत्मानं विष्णुरूपञ्च धेनुमादित्यरूपिणीम् ॥ ४२ ॥ यो ददाति महाबाहो तस्य वासस्त्रि विष्टपे ॥ ब्रह्महत्याविनिर्मुक्तः पुरा पानञ्च दारुणम् ॥ ४३ ॥ शुर्वङ्गनागमः स्तेयः स्नासिद्रोहो गन्धर्वधः ॥ मित्रविश्वसघातञ्च गुरुनिन्दा समुद्भवम् ॥ ४४ ॥ स्थितिर्नष्टे च वशे च निर्माल्यस्यावलङ्घनम् ॥ कन्यागमगमश्चैव अभक्ष्यस्य तु भक्षणम् ॥ ४५ ॥ दृषलीगमनं शौद्रं कुरूपगमनोद्भवम् ॥ अ

सोनेके सींगोवाली, रूपके खुरोवाली, कपिला व कृष्णा व सफेद व लाली व लाल और सफेद इज्जवाली गऊको ब्राह्मणको व अपनेको विष्णुके रूपसे ध्यान करता हुआ और गऊको सूर्यरूपसे जानता हुआ देता है हे महाबाहो ! उसका वास स्वर्गमें होता है और ब्रह्महत्यासे छूटजाता है दारुका पीना ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ गुरुकी स्त्री में गमन करना, चोरी करना, मालिक से वैर करना, गोहत्या करना, मित्रके साथ में विश्वासघात करना, गुरुकी निन्दा करना ॥ ४४ ॥ नष्ट वशमें रहना, महादेव के निर्माल्य का नांघना, कन्या का भोग करना, नहीं खानेलायक चीजका खाना ॥ ४५ ॥ शूद्रकी स्त्री का भोग करना, कुरूप स्त्री का ग्रहण करना, आग लगा देना,

विष देना और गवाही में झूठ बोलना ॥ ४६ ॥ हे पाण्डव ! इन सब पापोंको गऊ अपने दानसे नष्ट करदेती है और पवित्र गौवों के सङ्गम व पापों के नाश करनेवाले उनके गोड़े में ॥ ४७ ॥ हे कुन्तिनन्दन ! जो भक्तिसे प्रेतका श्राद्ध करता है उसपर सूर्य और महादेवजी प्रसन्न होते हैं ॥ ४८ ॥ उस सूर्यतीर्थ में सूर्य के नाम से जो भक्तिसे दान दिया जाता है उसका देनेवाला नर्मदा के प्रसाद से सूर्यलोक में सुख से जाता है ॥ ४९ ॥ दधिच्छन्द, मधुच्छन्द, देवयान और सुखदायी भीमेश्वर में हे कुरुश्रेष्ठ ! बराबरही पुण्य कहा जाता है ॥ ५० ॥ समुद्रपर्यन्त पृथिवी में येही पाँचों तीर्थ प्रसिद्ध हैं पृथिवी के रहनेवाले जो इन पाँचोंको नहीं जानते हैं वे मरे

ग्निदंगरदञ्चैव कूटसाक्ष्यसमुद्भवम् ॥ ४६ ॥ तत्सर्वनाशयेत्पापं धेनुदानेनपाण्डव ॥ सुरभीसंगमपुण्ये निष्ठुतेपापनाशने ॥ ४७ ॥ श्राद्धं प्रेतस्ययोभक्त्या दापयेत्कुन्तिनन्दन ॥ तस्यप्रीतोभवेत्सूर्यः सुप्रीतोभवएवच ॥ ४८ ॥ दानं यद्दीयतेतत्र सूर्यमुद्दिश्यभक्तितः ॥ मित्रलोकेमुखंयाति नर्मदायाःप्रसादतः ॥ ४९ ॥ दधिच्छन्दे मधुच्छन्दे देवयाने सुखप्रदे ॥ भीमेश्वरे कुरुश्रेष्ठ समं पुण्यं प्रशस्यते ॥ ५० ॥ पृथिव्यां सागरान्तायां प्रख्यातं तीर्थं पञ्चकम् ॥ येन जानन्ति भूमिस्था ते मृतानान्न संशयः ॥ ५१ ॥ स्नानं देवा च न जाप्यं होमं ब्राह्मणपूजनम् ॥ भूमिदानेन वस्त्रेण अन्नदानेन भक्तितः ॥ ५२ ॥ उपान च्छत्रशय्यानां गृहदानेन पाण्डव ॥ ग्रामकन्याप्रदानेन गजदानहयेन च ॥ ५३ ॥ विद्याशकटदानेन सर्वेषामभयप्रदः ॥ सयाति सर्वतीर्थानि रवितीर्थं युधिष्ठिर ॥ ५४ ॥ तीर्थयात्राप्रभावेण व्याधयो यान्ति संक्षयम् ॥ शत्रवो मित्रतां यान्ति विषं बाह्यमृतायते ॥ ५५ ॥ ग्रहास्सर्वे भवन्प्रीताः प्रीतस्तस्य दिवाकरः ॥ तीर्थस्यास्य पयः पीत्वा यत्पुण्यं

हो है इरामे संशय नहीं है ॥ ५१ ॥ सूर्यतीर्थ में भक्ति से स्नान देवताओं का पूजन, जप, होम, ब्राह्मणों का पूजन, पृथिवी, कपड़े, अन्न ॥ ५२ ॥ व हे पाण्डव ! जूना, छाता, पलंग, मकान, गाँव, कन्या, हाथी, घोड़े ॥ ५३ ॥ विद्या और छकडाओं के दान से सबका अभय देनेवाला पुरुष मानो सब तीर्थों व सूर्यतीर्थ को जाता है हे युधिष्ठिर ! ॥ ५४ ॥ तीर्थयात्राके प्रभावसे रोग नष्ट होजाते हैं शत्रु मित्र होजाते और विष अमृत होजाता है ॥ ५५ ॥ सब ग्रह उससे प्रसन्न होते हैं और सूर्य भी प्रसन्न

होते हैं इस तीर्थके जलको पीकर मनुष्योंको जो पुण्य होता है ॥ ५६ ॥ और सालभर पीपलकी सेवा व कपिलाके दानसे जो पुण्य है उसके फलको हे महीपते ! तुम से भक्तिपूर्वक हम कहेंगे ॥ ५७ ॥ सब पाप नष्ट होजाते हैं फूटे वासनका पानी जैसे बहजाताहै तीर्थ के सामने जानेवालों का यह हाल होताहै इसमें संशय नहीं है ॥ ५८ ॥ हे पार्थिव ! यहां भीतर और बाहरका तीर्थ आपसे कहागया जो पार्षा और कृतज्ञ हैं अथवा अपने मालिक व मित्रके विरोधी हैं ॥ ५९ ॥ उनसे तीर्थोंकी बात कहना नहीं अच्छा किन्तु पण्डितोंको उनसे हमेशा बिपाना चाहिये ॥ ६० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे रेखाखण्डे आदित्येश्वरतीर्थकीर्तनो नाम चतुर्विंशतितमोऽध्यायः ॥ ६१ ॥

जायते नृणाम् ॥ ५६ ॥ अब्दमश्वत्थसेवायां कपिलायास्तु दानतः ॥ तत्फलं कथयिष्यामि भक्त्या तव महीपते ॥

५७ ॥ पापास्सर्वे विलीयन्ते भिन्नपात्रे जलं यथा ॥ तीर्थस्याभिमुखं वृत्तं गच्छतां नात्र संशयः ॥ ५८ ॥ इह बह्यान्तरन्तीर्थे कथितं तव पार्थिव ॥ पापिष्ठानां कृतघ्नानां स्वामि मित्रविरोधिनाम् ॥ ५९ ॥ तीर्थाख्यानं शुभन्तेषां गोपितव्यं सदा बुधैः ॥ ६० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे रेखाखण्डे आदित्येश्वरतीर्थकीर्तनो नाम चतुर्विंशतितमोऽध्यायः ॥ ६१ ॥

मार्कण्डेय उवाच ॥ ततो गच्छेत्तुराजेन्द्र करञ्जेश्वरमुत्तमम् ॥ यत्र ते निहतास्तात दानवास्तत्पदानुगैः ॥ १ ॥ इन्द्राद्यैश्च संहृष्टैः स्तुतौ यज्ञस्सुबुद्धिभिः ॥ तेषां ये पुत्रपौत्राश्च पूर्वैरमनुस्मरन् ॥ २ ॥ तत्र स्थास्तु सुरास्सर्वे स्थापयित्वा ह्युमापतिम् ॥ इन्द्रचन्द्रयमास्सूर्यः स्थापयित्वेष्टसिद्धये ॥ ३ ॥ हृष्टपुष्टास्सुरास्सर्वे जगमुराकाशसंस्थिताः ॥ दानवानां महाभाग करोत्यः पतितायतः ॥ ४ ॥ तदा प्रभृति तत्तीर्थं करोटीति महीपते ॥ विख्यातं भारते लोके भूपृष्ठे पाण्डुनन्द

मार्कण्डेयजी बोले कि हे राजेन्द्र ! तदनन्तर उत्तम करञ्जेश्वर तीर्थको जावे हे तात ! जहां देवताओंसे वे दानवलोग मारोगये हैं ॥ १ ॥ सुन्दर बुद्धिवाले व प्रसन्न इन्द्र आदि देवताओंने गज्ञकी स्तुति की है उन दानवोंके जो लडके व पोते रहे उनको भी पछिले वैरकी सुध करतेहुये मारा ॥ २ ॥ वहांपर विद्यमान होरहे सब देवता लोग महादेवको स्थापनकर अर्थात् अपने मनकी सिद्धिके वास्ते इन्द्र, चन्द्रमा और यमराज महादेवको थापकर ॥ ३ ॥ प्रसन्न व पुष्ट होरहे सब देवता आकाशमें ठहरे द्यौं अपने लोकको चलेगये हे महाभाग ! जहां दानवोंकी शेर गिरी थीं ॥ ४ ॥ हे महीपते ! यहां तबसे वह तीर्थ करोटी नामसे प्रसिद्ध होताहुआ हे पाण्डुनन्दन !

वह तीर्थ भारतखण्डकी पृथिवीपर होताहुआ ॥ ५ ॥ उजियाले पाखकी अष्टमी व चौदसको भक्तिसे उपासकर रातमें महादेवके आगे जागरणकरे ॥ ६ ॥ महादेवकी कथा व वेदोंका उच्चारणकरे निर्मल प्रभातके होनेपर यत्नसे महादेवका पूजनकर ॥ ७ ॥ पञ्चासुतसे नहवाय चन्दन से पूजे और कमलके फूलों से यत्नके साथ पूजन करे ॥ ८ ॥ फिर दक्षिणा देकर बहुरूप मन्त्रको जपे तो उसी फलको पाताहै जोकि नर्मदाके आदित्येश्वर तीर्थमें कहागयाहै ॥ ९ ॥ और हे नराधिप ! सुनेहुये तीर्थके प्रभावको जो पढ़े हे महीपते ! वह सब हम तुम्हारी भक्तिसे कहेंगे ॥ १० ॥ कहेहुये विधान से नाभितक जलमें खड़ा होकर वहीं इन्द्रियोंको जीतेहुये प्रेतका श्राद्ध

न ॥ ५ ॥ अष्टम्याञ्चतुर्दश्यांशुभेपक्षेनुभक्तिः ॥ उपोष्यशूलिनश्चाथे रात्रौकुर्वीतजागरम् ॥ ६ ॥ तत्कथालापसंयुक्तं वे दोद्गीतन्तथैवच ॥ प्रभातेविमलेप्राप्ते स्थाणुसम्पूज्ययत्नतः ॥ ७ ॥ पञ्चासुतेनसंस्नाप्य श्रीखण्डेनैवचार्चयेत् ॥ शत पल्लवपुष्पैश्च पूजयेच्चप्रयत्नतः ॥ ८ ॥ बहुरूपं जपेन्मन्त्रं दक्षिणान्तुप्रदायच ॥ तत्फलं समवाप्नोति आदित्येश्वरनाम्नदे ॥ ९ ॥ श्रुततीर्थप्रभातैव यः पठेच्चनराधिप ॥ तत्सर्वकथयिष्यामि भक्त्यातवमहीपते ॥ १० ॥ यथोक्तेनविधानेन नाभि मात्रेजलेस्थितः ॥ आढ्यतत्रैवप्रेताय कारयेत्तजितेन्द्रियः ॥ ११ ॥ विविधैरग्रपाठैश्च वेदाध्ययनतत्परैः ॥ गोहिरण्येन सम्पूज्य वस्त्रताम्बूलभोजनैः ॥ १२ ॥ भूषणैः पट्टदानैश्च ब्राह्मणपाण्डुनन्दन ॥ तस्मिंस्तीर्थेतुसम्पूज्यकामिकंभोज नंददेत् ॥ १३ ॥ भवेत्कोटिगुणंतस्य नात्रकार्याविचारणा ॥ तत्रतीर्थेयथाभक्त्या त्यजेद्देहञ्चमानद ॥ १४ ॥ तस्य तीर्थेभवेत्पुण्यं तच्छृणुष्वनराधिप ॥ यावदस्मिन्पुण्यस्यतिष्ठतेन्मर्मदाम्भसि ॥ १५ ॥ तावद्दसतिधर्मात्मा शिव

करे ॥ ११ ॥ बहुत अच्छे अनेक तरहके पाठों व वेदोंके पाठोंसे अथवा गऊ, सोना, कपड़े, ताम्बूल, भोजन ॥ १२ ॥ जेवर और रेशमी कपड़ोंके दानोंसे हे पाण्डुनन्दन ! उस तीर्थ में ब्राह्मणका पूजनकर उसको इच्छाभोजन देवे ॥ १३ ॥ तो उसको करोड गुना फल होताहै इसमें कुछ विचार नहीं करना चाहिये और हे मानद ! उस तीर्थ में जो भक्तिसे अपनी देहको छोड़े ॥ १४ ॥ तो हे नराधिप ! उसको जो पुण्य होताहै तिसको तुम सुना कि मनुष्यकी हड्डी जबतक नर्मदाके जलमें रहती है ॥ १५ ॥

तबतक वह धर्मात्मा अतिदुर्लभ शिवलोकमें रहता है तदनन्तर समय आनेपर वहासे गिरकर देवतासे फिर मनुष्य होता है ॥ १६ ॥ कोटिध्वजोंका मालिक, लक्ष्मीबाला, सब धर्मों से युक्त, बुद्धिबाला, जीवित पुत्रबाला होता है इसमें संशय नहीं है ॥ १७ ॥ और पृथिवीपर प्रसिद्ध भारी उमरबाला मनुष्य होता है इन्द्र, चन्द्रमा, यमराज, रुद्र, आदित्य, वसु ॥ १८ ॥ और सब विश्वदेवोंने लोकों के हितकी इच्छा से नर्मदाके उत्तर किनारेपर महादेवका स्थापन किया है ॥ १९ ॥ जो मनुष्य मरे के नामसे बहा मकान बनेवाँता है तो मनुष्यों में श्रेष्ठ वह मनुष्य उत्तमगतिको पाता है ॥ २० ॥ और नीतिसे कमायेहुये धनसे जो वहां श्राद्ध करता है वह ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, क्षी

लोके सुदुर्लभे ॥ ततःकालात्प्रच्युतश्च देवोमानुष्यताङ्गतः ॥ १६ ॥ कोटिध्वजपतिः श्रीमाञ्जायतेनान्नसंशयः ॥ सर्व धर्मसमायुक्तो मेधावीजीवपुत्रकः ॥ १७ ॥ विख्यातश्चधरापृष्ठे दीर्घायुर्मानवोभवेत् ॥ इन्द्रचन्द्रयमैरुद्रैरादित्यैर्वसुभिस्तथा ॥ १८ ॥ विश्वेदैवैस्तथासर्वैः स्थापितस्त्रिदशेश्वरः ॥ नर्ममदोत्तरकूलेतु लोकानां हितकाम्यया ॥ १९ ॥ मानवः प्रेतमुद्दिश्य प्रासादं कारयेत्तु यः ॥ तस्मिन्नरवरश्रेष्ठः ससद्गतिमवाप्नुयात् ॥ २० ॥ न्यायोपाजितद्रव्येण यः श्राद्धं कुरुते नैव ॥ ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः स्त्रियः शूद्राश्च सत्कृताः ॥ २१ ॥ तोपियान्तिपरेलोकैः शङ्करे सुरपूजिते ॥ यः शृणोति नरो भक्त्या माहात्म्यं तीर्थजं नृप ॥ २२ ॥ तस्य पापं प्रणश्येत षणमासेन तु यत्कृतम् ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र कुमारेश्वरमुत्तमम् ॥ २३ ॥ प्रसिद्धं सर्वतीर्थानामगस्त्येश्वरमुत्तमम् ॥ षण्मुखेन तपस्तप्तं सर्वपातकनाशनम् ॥ २४ ॥ स्नानं च परयाभक्त्या सिद्धिः प्राप्ता नराधिप ॥ देवसैन्याधिपो राजन् सर्वशत्रुविमर्दनः ॥ २५ ॥ उग्रतेजोऽसौ

और शूद्र कोईहो सत्कारयुक्त ॥ २१ ॥ वे भी देवताओं से पूजेहुये महादेवके श्रेष्ठलोकको जाते हैं और वे नृप ! जो मनुष्य तीर्थके माहात्म्यको भक्तिसे सुनता है ॥ २२ ॥ उसका वह महीने का कियाहुआ पाप नष्ट होजाता है मार्कण्डेयजी बोले कि हे राजेन्द्र ! तदनन्तर उत्तम कुमारेश्वरको जावे ॥ २३ ॥ जोकि सब तीर्थों में प्रसिद्ध अगस्त्येश्वर कहाजाता है वहा सब पापों के नाश करनेवाले तपको स्वामिकार्त्तिकने किया है ॥ २४ ॥ और बड़ी भक्तिसे स्नान भी किया है इससे हे नराधिप ! सिद्धिको पाते

हुये हे राजन् ! जिससे सब देवताओं की सेना के मालिक व सब शत्रुओं के मारनेवाले ॥ २५ ॥ तीर्थकी सेवासे बड़े तेजवाले महात्मा होतेहुये तबसे लेकर नर्मदाके तटमें वह तीर्थ प्रसिद्ध होताहुआ ॥ २६ ॥ इन्द्रियोंको जीतेहुये अपने मनको एकाग्र कियेहुये उस तीर्थमें जो भक्तिसे विशेषकर कातिककी अष्टमी व चौदसको ॥ २७ ॥ दही व दूध और घी से महादेवको स्नान करावे व गावे और विधिसे पिण्डदान करे ॥ २८ ॥ ब्रह्म कर्मोंकरनेवाले, वेदपाठी ब्राह्मणों से जो कुछ वहां दियाजाता है हे पाण्डु-नन्दन ! हे पार्थ ! वह श्रक्षय होता है ॥ २९ ॥ हे नृप ! यह तीर्थ सब तीर्थोंसे बड़ा है इसको चन्द्रमाने बनाया है यह सब कुमारेश्वर तीर्थका फल तुमसे कहागया ॥ ३० ॥

हात्माच संजातस्तीर्थेसवनात् ॥ तदाप्रभृतितत्तीर्थं विख्यातं नर्मदातटे ॥ २६ ॥ तस्मिंस्तीर्थेतुयोभक्त्या एकचित्तो जितेन्द्रियः ॥ अष्टम्यांचचतुर्दश्यां कार्तिकस्यविशेषतः ॥ २७ ॥ स्नापयेद्भिरिजानाथं दधिदुग्धेन सर्पिषा ॥ गीतं तत्र प्रकर्तव्यं पिण्डदानं यथाविधि ॥ २८ ॥ ब्राह्मणैः श्रोत्रियैः पार्थ षट्कर्मनिरतैः सदा ॥ यत्किञ्चिद्दीयते तत्र अन्नं यं पाण्डु-नन्दन ॥ २९ ॥ सर्वतीर्थात्परं तीर्थं निर्मितं शशिनानृप ॥ एतत्ते सर्वमाख्यातं कुमारेश्वरजं फलम् ॥ ३० ॥ कुमारदर्शनात्पुण्यं प्राप्य ते पाण्डुनन्दन ॥ मृतः स्वर्गमवाप्नोति सत्यमीश्वरभाषितम् ॥ ३१ ॥ ततो गच्छेत्तुराजेन्द्र ॥ अगस्त्येऽव-रमुत्तमम् ॥ तत्र सिद्धो महाभाग मित्रावरुणमम्भवः ॥ ३२ ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ कथं सिद्धो महाभाग अगस्त्यो मुनिपु-ङ्गवः ॥ कुम्भोद्भवो महाभाग मित्रावरुणमम्भवः ॥ ३३ ॥ नर्मदातटमाश्रित्य तत्सर्वं कथयस्व मे ॥ मार्कण्डेय उवा-च ॥ महाप्रज्ञो महाराज यस्त्वया परिप्रच्छितः ॥ ३४ ॥ तत्ते हं सम्प्रवक्ष्यामि शृणुष्वैकमनाः सदा ॥ पुराकृतयुगे तात

हे पाण्डुनन्दन ! कुमारके दर्शनसे पुण्य होता है और वहां मराहुआ स्वर्गको पाता है यह महादेवका कहाहुआ सत्य है ॥ ३१ ॥ हे राजेन्द्र ! तदनन्तर उत्तम अगस्त्येश्वर को जावे वहां हे महाभाग ! मुनियों में श्रेष्ठ अगस्त्यजी सिद्धहुये हैं ॥ ३२ ॥ तब युधिष्ठिर बोले कि हे महाभाग ! मुनियों में श्रेष्ठ अगस्त्य वहां कैसे सिद्धहुये जो कि हे महा-भाग ! मित्र और वरुणके वीर्यसे कलश से पैदाहुये हैं ॥ ३३ ॥ वे नर्मदातटमें बैठकर कैसे सिद्ध हुये सो सब आप मुझसे कहें तब मार्कण्डेय बोले कि हे महाराज ! जो

तुमने पूछा है वह बडा भारी प्रश्न है ॥ ३४ ॥ सो उसको हम आपसे कहेंगे आप एकाग्रमन होकर सुनो हे तात ! आगे रात्ययुग में भारसे दबीहुई पृथिवी ॥ ३५ ॥ इन्द्र से अपना हाल कहने के वास्ते स्वर्गको गई और हे नृप ! इन्द्र से दैत्योके भारसे देवहुये जगत्को बताया ॥ ३६ ॥ तब इन्द्र बोले कि हे सुन्दरि ! हमारे व तुम्हारे व जगत् के बनानेवाले ब्रह्मा हैं इससे अपने मन्त्री देवताओंके सहित हम ब्रह्मलोकको जावेंगे ॥ ३७ ॥ तदनन्तर सबलोग जहां ब्रह्मा थे वहांको गये तहां बृहस्पति बोले कि हे ब्रह्मन् ! दैत्यो के भारसे दबीहुई पृथिवी निरालम्ब होरही है ॥ ३८ ॥ उस भारको नहीं सहसक्ती यह देवीरसातलको जाती है इससे हे जगतीपते ! पृथिवीके भारका उपाय करो ॥ ३९ ॥

भारतां जगती स्थिता ॥ ३५ ॥ विज्ञप्नुकामा देवेशं नाकपृष्ठं गतानृप ॥ इन्द्राय कथयामास दैत्यभाराद्धितं जगत् ॥ ३६ ॥
 इन्द्र उवाच ॥ ब्रह्मा च जगतः कर्ता तवैव मम सुन्दरि ॥ ब्रह्मलोकं गमिष्यामि मन्त्रिभिर्देवैः सह ॥ ३७ ॥ ततस्सर्वे गतास्तत्र यत्रासौ किमलासनः ॥ बृहस्पतिरुवाच ॥ ब्रह्मन्निर्लम्बना जाता दैत्यभारादसुन्धरा ॥ ३८ ॥ असहन्ती तु तं भारं याति देवीरसातलम् ॥ प्रतीकारं पृथिव्याश्च कुरुष्व जगतीपते ॥ ३९ ॥ सर्वसत्त्वोपकाराय सृष्टिस्त्वयि जगत्पते ॥ पितामह उवाच ॥ कर्तास्मि सर्वजगतामयोनिकलशोद्भवः ॥ ४० ॥ अगस्त्यस्तपसां राशिः शक्तो दैत्यनिवारणे ॥ एकतः सर्वदेवानां वलं तेजश्च जायते नाना संशयः ॥ ब्रह्मणो वचनं श्रुत्वा सर्वदेवाः सवासवाः ॥ ४१ ॥ एकतोऽत्र ह्यभिमुख्यस्य जायते नाना संशयः ॥ ब्रह्मणो वचनं श्रुत्वा सर्वदेवाः सवासवाः ॥ ४२ ॥ तथैव कारणं चान्यत्कथयन्ति स्म भारत ॥ विज्ञातं देवदेवेश विश्वामित्रचिकर्षितम् ॥ ४३ ॥ त्रिशङ्कर्थे च यज्ञोऽयं विश्वामित्रेण साधितः ॥ स्पृष्ट्या च वशिष्ठस्य यज्ञाङ्गानि समासृजत् ॥ ४४ ॥ स्पृष्ट्या सृजता काशं भूमिचान्यां समा

हे जगत्पते ! सब जीवोंके उपकारके वास्ते तुम्हारी रचना है तब ब्रह्मा बोले कि सब जगत्के बनानेवाले हमहू परन्तु बिना योनिके कलश से पैदा हुये ॥ ४० ॥
 और तपस्याका ढेर ऐसे अगस्त्यमुनि दैत्योके हटाने में समर्थ है क्योंकि एक तरफ देवताओंका बल और तेजहो ॥ ४१ ॥
 अधिक होगा इसमें संशय नहीं है ब्रह्माजीके वचनको सुन इन्द्रसहित सब देवता ॥ ४२ ॥
 उसी प्रकार अन्य कारणको हे भारत ! कहते हुये देवताओंने कहा कि हे देवदेवेश ! विश्वामित्रको जो करना है उसको हम जानते है ॥ ४३ ॥
 कि त्रिशंकु राजाके वास्ते विश्वामित्रने इस यज्ञको सिद्ध किया है वशिष्ठको हरण देनेके वास्ते यज्ञके

अङ्गोंको रचतेहुये ॥ ४४ ॥ उसी ईर्ष्याने आकाश व दूसरी जमीनको रचतेहुये जैसे हिमालय पर्वत पूर्व और पश्चिमके समुद्रको ॥ ४५ ॥ व्यासकर देवताओं के कामोंको करने के वास्ते पृथिवीमें स्थित होरहै इसीतरह यह विन्ध्याचल भी विश्वामित्रकी इच्छा से ईर्ष्या करताहुआ बढ़ाहै ॥ ४६ ॥ हे सुरेश्वर ! विश्वामित्रने देवताओंके कामोंको रोकहै इससे हे जगद्गुरो ! दोनों बातोंका उपाय आप सोचें ॥ ४७ ॥ तब ब्रह्माजी बोले कि इसचालके चलनेवाले विश्वामित्रके गुरु मुनियों मे श्रेष्ठ ब्राह्मण एक अगस्त्यही है जोकि बड़े तेजवाले हैं ॥ ४८ ॥ इससे देवताओं की रास्तेके खोलनेवाले अगस्त्य होवेंगे इममें संशय नहीं है क्योंकि सब बुद्धिमान्

सृजत् ॥ यथातुहिमवच्छैलः पूर्वापरमहोदधिम् ॥ ४५ ॥ व्याप्यैवसंस्थितोभूभ्यां देवकार्यार्थसाधकः ॥ तथासौस्प
र्द्धतेविन्ध्यः स्पर्द्धयाकौशिकस्यच ॥ ४६ ॥ तिष्ठन्तिदेवकार्याणिकौशिकेनसुरेश्वर ॥ कार्यर्धद्वयप्रतीकारं चिन्तय
स्वजगद्गुरो ॥ ४७ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ एकस्त्वस्यगुरुर्विप्रोह्यगस्त्योमुनिपुङ्गवः ॥ उत्पथेवर्तमानस्य कौशिकस्यदुरासदः ॥
४८ ॥ अगस्त्योमार्गभेत्तावै भविष्यतिनसंशयः ॥ गुरुरात्मवतांशास्ता सर्वेषाँवैनसंशयः ॥ ४९ ॥ वर्द्धनं पर्वतस्या
स्य देवमार्गप्रवर्तनम् ॥ शासःकौशिकविप्रस्य वसुधायांसमन्ततः ॥ ५० ॥ क्षमःसमस्तकार्याणां मित्रावरुणनन्द
नः ॥ एवंतुनिश्चयंकृत्वा देवाःसेन्द्रपितामहाः ॥ ५१ ॥ ययुर्वसुन्धरासार्द्धं हिमवन्तनगेश्वरम् ॥ ददृशुस्तेस्थितं
विप्रंधयायमानञ्चयोगिनम् ॥ ५२ ॥ सुदृढंनिश्चलध्यानं मोक्षमार्गंनियामकम् ॥ तं दृष्ट्वास्तौतुमारब्धाः सेन्द्रच
न्द्रास्सचारुणाः ॥ ५३ ॥ देवाजुहुः ॥ जयमिच्छस्वदेवानां भगवन्कलशोद्भव ॥ प्रसादमुमुखोभूत्वा देवानांभय
मनुष्योंका सिखानेवाला गुरुही होताहै इसमें संशय नहीं है ॥ ४९ ॥ इससे इस पर्वतको बढ़ने से रोकना और देवताओंकी रास्तेका खोलना और सब ओर इस पृथिवी
पर विश्वामित्रका सिखाना ॥ ५० ॥ इन सब कामों के करने में अगस्त्यही समर्थ हैं ऐसे निश्चयको कर इन्द्र और ब्रह्माके सहित सब देवता ॥ ५१ ॥ पृथिवीके सहित
पर्वतों के ईश्वर हिमालयको जातेहुये और उन सबोंने वहा ध्यान करते हुये योगी ब्राह्मण अगस्त्यको वर्तमान देखा ॥ ५२ ॥ बहुत पुष्ट निश्चल ध्यानके करने
वाले व मोक्षके वास्ते नियमके करनेवाले उन अगस्त्यको देख इन्द्र, चन्द्रमा और वरुणके सहित सब देवता खुति करनेका प्रारम्भ करतेहुये ॥ ५३ ॥ देवता बोले कि

हे कलशोद्भव, भगवन् ! आप अपनी दयासे प्रसन्नमुखवाले होकर देवताओं के जयकी इच्छाकरो क्योंकि देवताओं को भय आगया है ॥ ५४ ॥ तब अगस्त्य बोले कि हे देवताओं ! क्या काम पैदा होगया है जिससे इतनी दूर सदा एकान्तके रहनेवाले जो हमहैं तिस मेरे पास आप सबलोग आवेहो ॥ ५५ ॥ इससे कहो जो हम को करना होवे वह सब हमकरें तदनन्तर थोड़ी हवासे डोलतेहुये कमलोंकी तरह शोभावाले ॥ ५६ ॥ एक हजार नेत्रों से इन्द्रने बृहस्पतिको इशारा किया तब बृहस्पति बोले कि हे महाभाग ! आगे देवताओं के कार्योंकी सिद्धिके वास्ते आपने ॥ ५७ ॥ सब समुद्रोंको सोखलिया था जैसे ईश्वर जगत्को सुखादेवे अब इस समयमें अपने

मागतम् ॥ ५४ ॥ अगस्त्यउवाच ॥ किंकार्यन्तुसमुत्पन्नं येनदूरं समागताः ॥ एकान्तवासिनित्यं तस्मांयूंयसुरा
इचमोः ॥ ५५ ॥ उच्यतांयन्मयाकार्यं तत्सर्वकरवाण्यहम् ॥ ततोमन्दानिलोद्धूतकमलाकरशोभिना ॥ ५६ ॥
शुरुनेत्रसहस्रेण प्रेरयामासवृत्रहा ॥ त्वयापूर्वमहाभाग देवकार्यार्थसिद्धये ॥ ५७ ॥ समुद्राःक
र्षितास्सर्वे ईश्वरेणयथाजगत् ॥ विध्वस्तास्त्रिदशास्सर्वे दानैर्वैलदपिपतेः ॥ ५८ ॥ जितादेवास्तुतेसर्वे दानवेभ्यः
पराब्जुखाः ॥ तेषांवरापहाराय समुद्राश्शोषिताःपुरा ॥ ५९ ॥ साम्प्रतंदुःखिताधात्री पश्येमांभूतधारिणीम् ॥
दैत्यभारेणदुःखातां भूमिर्जातारसातलम् ॥ ६० ॥ गन्तव्यंदक्षिणामाशां तपोराशोद्विजोत्तम ॥ नर्मदोदधिमर्या
दां कुरुपुण्यांमहाद्विज ॥ ६१ ॥ वृद्धिविन्ध्यनगस्यापि देवकार्यं समुद्धर ॥ कौशिकोथकनीयांस्ते यउन्मार्गं प्र

बलसे श्रद्धाङ्कारको प्राप्तहोरहे सब दानवोंने देवताओं को हराय दियाहै ॥ ५८ ॥ हारेहुये उन सब देवतालोगोंने दानवोंसे अपने मुखोंको फेरलिया है उन दानवों के वरको नाश करने के लिये आगे आपने समुद्रोंको सोखलिया था ॥ ५९ ॥ सो अब इस समयमें पृथिवी दुःखित होरही है इस प्राणियोंके धारण करनेवाली पृथिवीका आप देखा दैत्यों के भार व दुःख से विकल पृथिवी रसातल को चलीजानेगी ॥ ६० ॥ इस से हे तपोराशे ! हे द्विजोत्तम ! अब आप को दक्षिण दिशा चलना चाहिये हे महाद्विज ! नर्मदा और समुद्रकी मर्यादा को साफ करदेवों ॥ ६१ ॥ देवताओं के कार्य के वास्ते विन्ध्यपर्वत का बढ़नाभी रोकदेवों जो उसके बढ़ानेवाले विश्वामित्र

हैं वे आपसे छोटे हैं ॥ ६२ ॥ तब अगस्त्य बोले कि हे वसुन्धरे ! हम देवताओं के कार्य को करेंगे तुम सुखसे बैठो हम दक्षिण दिशा को जावेंगे और अपने शिष्य के रोंकने में हम समर्थ हैं ॥ ६३ ॥ इस पर्वत की बाढ़िको हम रोंकेंगे इस में संशय नहीं है तब देवता बोले कि दक्षिण को जाकर देवताओं के सहित इसको जरूर देखो ॥ ६४ ॥ हे विप्र ! सिंह के सूर्य होनेपर जो लोग भक्ति से नहीं जावेंगे उन का धन व धान्य और सुख जरूर नष्ट होगा ॥ ६५ ॥ देवताओं के अधिकार के वारते गयेहुये अगस्त्यजी जरूरही देखपड़ेंगे देवतालोग इस प्रतिज्ञा को कर पृथिवी के सहित जातेहुये ॥ ६६ ॥ तपस्याकी राशि जो अगस्त्य है उनके पीछे चारो तरफ

वर्तकः ॥ ६२ ॥ अगस्त्यउवाच ॥ देवकार्यैकरिष्यामि सुखंतिष्ठवसुन्धरे ॥ गच्छामिदक्षिणामाशां शक्तःशिष्यस्ववारणे ॥ ६३ ॥ वर्द्धनपर्वतस्यास्य वारयामिनसंशयः ॥ देवाऊचुः ॥ याम्यांगत्वासुरैस्साद्धं द्रष्टव्योयन्नसंशयः ॥ ६४ ॥ सिंहस्थेभास्करेविप्र येनयास्यन्तिभक्तिः ॥ नश्यतेचधनंधान्यं तेषांसौख्यन्नसंशयः ॥ ६५ ॥ अधिकारायेदेवानां सचदृष्टोभविष्यति ॥ तत्प्रतिज्ञायर्गीर्वाणःसमंयसुधयागताः ॥ ६६ ॥ अगस्त्यंतपसाराशिं निर्गच्छन्तस्समन्ततः ॥ अगस्त्यपदविज्ञेपाच्चलितचवसुन्धरा ॥ ६७ ॥ मनोवेगेनसम्प्राप्तः कौशिकोयत्रतापसः ॥ कौशिकोपिगुरुदृष्ट्वा साष्टाङ्गंप्रणिपत्यच ॥ ६८ ॥ धन्योहंसुनिशार्दूल प्रीतोहंतवदर्शनत् ॥ अर्घपात्रंसमादाय दध्यक्षतसमन्वितम् ॥ ६९ ॥ दूर्वाचचन्दनंपूज्य भक्त्यापात्रेसमाहितम् ॥ गुरुपादपरिक्षिप्त उवाचमधुरन्तदा ॥ ७० ॥ आदेशो दीयतांतात तवप्रेष्योद्विजोत्तम ॥ अगस्त्यउवाच ॥ देवकार्यविघातञ्च कौशिकत्वंविसर्जय ॥ ७१ ॥ देवकार्यवि

से सब चले अगस्त्य के पांवों के धरने से पृथिवी डगमगाती हुई ॥ ६७ ॥ मन के वेगसे वहां पहुँचे जहां तपस्वी विश्वामित्र थे विश्वामित्र भी गुरुको देख साष्टाङ्गप्रणामकर बोले ॥ ६८ ॥ कि हे सुनिशार्दूल ! मैं धन्यहूँ और आपके दर्शनसे बड़ा प्रसन्न हुआ ऐसे कह दही और अक्षतों से युक्त अर्घपात्र को लेकर ॥ ६९ ॥ पात्रमें रखले हुये दूब व चन्दनसे भक्तिपूर्वक उनका पूजनकर गुरुके चरणोंपर गिरे और तब मीठे वचन बोले ॥ ७० ॥ कि हे तात ! मुझको आज्ञादीजावे हे द्विजोत्तम ! मैं आपका दासहूँ तब अगस्त्य बोले कि हे कौशिक ! देवताओं के कामों का रोंकना तुम छोड़देना ॥ ७१ ॥ हे विश्वामित्र ! जो तुम्हारी निश्चल भक्ति हमारे ऊपर होवे तो देव-

पडनेवाले ! हे गणों के मालिक ! आप के लिये नमस्कार है ॥ ८१ ॥ नन्दी व रकन्द आदि गण व देवता मोह को प्राप्त हो रहे वृथा क्लेश को प्राप्त होते हैं क्योंकि जो सनत्कुमार आदि उत्तम व्रतवाले बड़े २ ऋषिलोग हैं ॥ ८२ ॥ वे भी आपके रूप को नहीं जानते हैं इससे हे शम्भो ! हे नाथ ! आप के लिये नमस्कार है ब्रह्मा आदि मय देवता आपको दिन रात ध्यावते हैं ॥ ८३ ॥ फिर भी ये लोग आप के रूपको नहीं देखते हैं इससे हे धातः, देव ! आपके लिये नमस्कार है तब महादेवजी बोले कि ऊपर रहता है वीर्य जिनका और योनि से नहीं पैदा होनेवाले हे विप्रेन्द्र ! आपसे हम प्रसन्न हैं ॥ ८४ ॥ पार्वती के सहित आपकी भक्ति से बँधे हुये हम फिर भी स्तुते ॥ ८१ ॥ नन्दिस्कन्दगणादेवा वृथाक्लिश्यन्तिमोहिताः ॥ सनत्कुमारमुख्याश्च ऋषयः शंसितव्रताः ॥ ८२ ॥

त्वद्रूपन्तेन जानन्ति शम्भो नाथ नमोस्तुते ॥ ब्रह्माद्या देवतास्सर्वे ध्यायन्ति त्वामहर्निशम् ॥ ८३ ॥ नैते पश्यन्ति त्वद्रूपं धातर्देवनमोस्तुते ॥ ईश्वर उवाच ॥ प्रसन्नस्तव विप्रेन्द्र ऊर्ध्वरेतस्त्वयोनिज ॥ ८४ ॥ तव भक्तिगृहीतो हं प्रसन्न उभया सह ॥ अगस्त्य उवाच ॥ यदि तुष्टोसि देवेश यदि देवो वरो मम ॥ ८५ ॥ प्रत्यक्षो भवतीर्थे स्मिन्यदिसत्यं वरप्रदः ॥ अन्तर्जले सदा कालं धर्म्मोऽध्यक्षो महेश्वर ॥ ८६ ॥ शिलायां भवन्ति त्वञ्च नर्मदा योत्तरे तटे ॥ देवकार्यस्य कर्ता हं त्वत्प्रसादाज्जगत्पते ॥ ८७ ॥ तथेति चोक्त्वा वृषवाहनोऽपि जगाम कैलासनगन्नगेशः ॥ अयोनौ जोगवलेन युक्तः प्रविद्यया लिङ्गबलाच्छिवस्य ॥ ८८ ॥ जगाम दक्षिणामाशां सुरसङ्घैरभिष्टुतः ॥ तपो वनं यथापुण्यं देवदानवसेवितम् ॥ ८९ ॥

प्रविष्टो मुनिशार्दूलः पवित्रं देवकम्बलम् ॥ निश्चला सुसमादेवी संस्थिता धरणी तथा ॥ ९० ॥ पुष्पाणि वष्टुर्देवा जयश प्रसन्न है तब अगस्त्यजी बोले कि हे देवेश ! जो आप प्रसन्न हो और जो आपको मुझे वर देने योग्य है ॥ ८५ ॥ तो जो सत्यही वरके देनेवाले हो तो इस तीर्थ में प्रत्यक्ष होत्रो हे धर्मके मालिक, महेश्वर ! जल के भीतर हमेशा आप रहो ॥ ८६ ॥ और नर्मदा के उत्तरवाले किनारे पर पत्थरकी शिला में भी हमेशा वामकरो और हे जगत्पते ! आपके प्रसाद से देवताओं के कामके करनेवाले हम होवें ॥ ८७ ॥ कैलास पर्वत के मालिक महादेवजी ऐसा ही हो, यह कहकर कैलास पर्वत को चले गये और योगबल व महादेव के बल उत्तम विद्या से युक्त अगस्त्य भी ॥ ८८ ॥ देवताओं से रूति किये गये मुनि श्रेष्ठ दक्षिण दिशाको चले गये देवता व दैत्याँ से सेवित

पुण्यत्राले व पवित्र देवकम्बल नाम तपोवन में पैठतेहुये और पृथिवीदेवी निश्चल व अत्यन्त बराबर होकर स्थित होतीहुई ॥ ८६ ॥ देवतालोग फूलोंकी वर्षा
 व जय जयकार को बार २ करतेहुये युधिष्ठिर बोले कि हे मुनिसुव्रत ! उस तीर्थ की जो पुण्यहो उसको कहो ॥ ८७ ॥ क्योंकि हम ब्राह्मण व भाइयों के सहित हम
 का पूरा हाल सुना चाहते हैं जिससे यह तीर्थ पितर व सब तीर्थों व सब जीवोंका उपकार करनेवाला है ॥ ८८ ॥ मार्कण्डेयजी बोले कि हे जनाधिप ! यह तीर्थ सर्व
 कालमें पितरों को मोक्षका देनेवाला कहागया है कातिक मास के अंधेरेपाखकी शिनचतुर्दशीको ॥ ८९ ॥ काम और क्रोधको छोड़ जो मनुष्य भक्तिमें उपासकर व शमी
 वंदपुनःपुनः ॥ युधिष्ठिरउवाच ॥ तस्यतीर्थस्ययत्पुण्यं कथ्यतांमुनिसुव्रत ॥ ९० ॥ आदिमध्यावसानेच ब्राह्मणैरस
 हबान्धैवैः ॥ पितृणांसर्वतीर्थानां सर्वसत्त्वोपकारकम् ॥ ९१ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ पितृणांमोक्षदंप्रोक्तं सर्वकालेजनाधि
 प ॥ शिवाख्यांकार्तिकेमासि कृष्णपक्षेचतुर्दशीम् ॥ ९२ ॥ उपोष्ययोनरोभक्त्या कामक्रोधविवर्जितः ॥ शमीतलंम
 मास्थाय रात्रौकुर्वीतजागरम् ॥ ९३ ॥ तत्कथालापसंयुक्तोधर्माख्यानैर्द्विजैस्सह ॥ गवांघृतेनदेवेशं रात्रौचस्नापये
 त्पुनः ॥ ९४ ॥ घटेनैवघटाद्धेन तदर्द्धेनस्वशक्तिः ॥ घृतेनवोषयेद्दीपं घृतंविप्रायदापयेत् ॥ ९५ ॥ पञ्चामृतेनगव्ये
 न स्नापयेत्परमेश्वरम् ॥ प्रभातेपूजयेद्द्विप्रान्स्वदारनिरतान्सदा ॥ ९६ ॥ वेदाभ्यसनशीलांश्च परदारविवर्जितान् ॥
 शुद्रसेवारतानित्यं धूर्तकर्मरताजनाः ॥ ९७ ॥ पतिताःकूटसाक्ष्येण प्रतिग्रहरताःसदा ॥ वेदद्वेषणशीलाश्च कुब्जाश्च
 विकलाःसदा ॥ ९८ ॥ हीनातिरिक्तगान्वाये द्विजाःश्राद्धेविवर्जिताः ॥ वेदोक्तेनविशुद्धाङ्गाः पूज्यानित्ययुधिष्ठिर ॥ ९९ ॥
 वृद्धके नीचे बैठकर रातको जागरण करे ॥ ९० ॥ और महादेवकी कथाको कहे फिर धर्म के कहनेवाले ब्राह्मणों के सहित गौत्रों के घी से रातमें महादेव को स्नान
 करावे ॥ ९१ ॥ एक घड़ा व आधे व उसके आधे घीसे अपनी शक्ति के अनुसार दियाको जलावे बाकी बचे घीको ब्राह्मण को दवे ॥ ९२ ॥ फिर गऊके पञ्चामृत से
 महादेवको स्नानकरावे प्रातःकाल अपनीही स्त्रीके ग्रहण करनेवाले व वेदके अभ्यास करनेवाले व पराई स्त्रीसे विमुख ब्राह्मणोंका सदा पूजनकरे व हमेशा शर्दोंकी सेवामें
 व छलवाले कामों में लगेहुये ॥ ९३ ॥ धर्म से अष्ट व भूँठी साखी देनेवाले व दान के लेनेवाले व बंदों के साथ वैर करनेवाले व कुबरे व विकल ॥ ९४ ॥

व घाट बाढ़ अड़ोवाले जो ब्राह्मण हैं वे श्राद्धमें मना होते हैं और वेदोक्त कामोंके करने से जिनके शरीर शुद्ध हैं वे युधिष्ठिर ! ऐसे ब्राह्मण हमेशा पूजने लायक होते हैं ॥ १०० ॥ पृथिवी, कपडे और विशेषकर कन्याओं के दानों से ऐसे ब्राह्मण लोग श्राद्धादि योगों में भक्ति में तत्पर पुरुषों करके पोषण करने योग्य हैं ॥ १ ॥ और अपने कल्याण के वास्ते वहा गोदान करना चाहिये दूधवाली बछड़ाके सहित मोटी ताजी, सीधी गऊको देवे ॥ २ ॥ व बडीभक्तिसे दम्बल, खडाऊं, जुता, सोनहली सुजनी, पान व भोजन भी उसके साथमें देवे ॥ ३ ॥ गऊभी घण्टा व जेवरोंसे सजी झूल आदि दो कपड़ोंसे युक्त, सोने के सींगों व रूपेके खुरोंवाली व कानोंकी डोहनी

भूमिदानेन वस्त्रेण कन्यादानैर्विशेषतः ॥ श्राद्धकालेषु योगेषु भर्तव्याभक्तितत्परैः ॥ १ ॥ गोदानं तत्र कर्तव्यं श्रेयो
धर्मात्स नस्तथा ॥ सवत्संक्षीरिणीं शुभ्रां पुष्टां वैशीलसंयुताम् ॥ २ ॥ कम्बलं परयाभक्त्या पादुकोपानहै तथा ॥ हिर
ण्यरुक्मिणीं कन्यां ताम्बूलं भोजनन्तथा ॥ ३ ॥ घण्टाभरणशोभाढ्यां वस्त्रयुगमावगुण्णिठताम् ॥ स्वर्णशृङ्गैरौघ्यस्तु
रीं कांस्यदोहनसंयुताम् ॥ ४ ॥ उच्चार्य परयाभक्त्या यावदाहूतसंपुवम् ॥ सर्वकोटिगुणंपार्थ शुभं वायदिवानुमम् ॥
५ ॥ तीर्थास्थानञ्च योभक्त्या पठते शृणुतेथवा ॥ मुच्यते सर्वपापेभ्यः शिवलोके वसत्यपि ॥ १०६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे
रेवाखण्डेऽगस्त्यतीर्थवर्णनो नाम पञ्चनवतितमोऽध्यायः ॥ ९५ ॥ * ॥

मार्कण्डेय उवाच ॥ अथानन्देश्वरं गच्छेत्सर्वदेवनमस्कृतम् ॥ रुद्रस्य परमानन्दो यत्र जातो युधिष्ठिर ॥ १ ॥ तर्तीर्थं
कथयिष्यामि सर्वपापक्षयंकरम् ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ आनन्देश्वरं चैव सज्जातो रुद्रस्य द्विजसत्तम ॥ २ ॥ कथयस्व महा
से संयुक्त होवे ऐसी गऊको ॥ ४ ॥ संकटप उच्चारणकर बडीभक्तिसे देवे तो हे पार्थ ! उस तीर्थपर किया गया भला दुरा सब काम प्रलयतक करोडगुना होनाड़े ॥ ५ ॥
इस तीर्थ की कथाको जो भक्तिसे कहता, सुनता है वह सब पापों से छूटजाता है व शिवजी के लोक में रहता है ॥ १०६ ॥ इति पञ्चनवतितमोऽध्यायः ॥ ९५ ॥
मार्कण्डेयजी बोले कि हे युधिष्ठिर ! अब इसके बाद सब देवताओं से नमस्कार किये हुये आनन्देश्वर को जावे जहा महादेवजी को बडा आनन्द हुआ है ॥ १ ॥
सब पापोंके नाश करनेवाले उस तीर्थको हम तुममे कहेंगे तब युधिष्ठिर बोले कि हे द्विजसत्तम ! जहा महादेवको आनन्द हुआ है ॥ २ ॥ हे मुनिरात्तम ! उस तीर्थ

को संक्षेप से कहो तब मार्कण्डेयजी बोले कि हे नृपश्रेष्ठ ! उत्तम आनन्देश्वर तीर्थको हम कहते हैं ॥ ३ ॥ दानवों को मारकर देवताओं के देवता महादेवजी देवता, किन्नर, यक्ष और सांप आदि सबोंसे पूजेगये ॥ ४ ॥ बड़े आनन्द को पाकर व भैरवरूप को धरकर पार्वती को आधे अङ्गमें धरेहुये महादेवजी नाचतेहुये ॥ ५ ॥ हे पाण्डुनन्दन ! मृत, वेताल, कङ्काल और भैरवों से युक्त नर्मदा के उत्तर व दक्षिणवाले किनारे पर नाचे ॥ ६ ॥ प्रसन्न होरहे देवताओं ने वहा कमल के आसन पर महादेव को स्थापित किया तब से महादेव आनन्देश्वर कहेजाते हैं ॥ ७ ॥ हे नराधिप ! श्रष्टमी व चौदस व पूर्णमासी को विधि से स्नानकर महादेव का पूजन

भागसंक्षेपान्मुनिसत्तम ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ कथयामि नृपश्रेष्ठ आनन्देश्वरमुत्तमम् ॥ ३ ॥ दानवानां वधं कृत्वा देव देवश्च शङ्करः ॥ पूजितो देवतैस्सर्वैः किन्नरैर्यक्षपन्नगैः ॥ ४ ॥ आनन्दं परमं प्राप्य ननर्तव्यं वाहनः ॥ भैरवं रूपमासाद्य गौरीचान्दोद्धारिता ॥ ५ ॥ मृतवेतालकङ्कालैर्भैरवैर्भैरवो वृतः ॥ नर्मदायोत्तरतीरे दक्षिणे पाण्डुनन्दन ॥ ६ ॥ तुष्टैर्म रुद्रैः स्तत्र स्थापितः कमलासनः ॥ तदा प्रभृतिवैदेव आनन्देश्वर उच्यते ॥ ७ ॥ अष्टभ्याञ्च तदर्श्यां पूर्णमास्याङ्गरा धिप ॥ विधिस्नानार्चयेद्देवं सुगन्धेन विलोपयेत् ॥ ८ ॥ ब्राह्मणान् पूजयेत्तत्र यथाशक्त्या युधिष्ठिर ॥ गोदानं तत्र कर्तव्यं वस्त्रदानं तथैव च ॥ ९ ॥ वसन्तस्य त्रयोदश्यां श्राद्धं तत्रैव कारयेत् ॥ इङ्गुदेवदेवैर्विल्वैरक्षतेन जलेन वा ॥ १० ॥ प्रेतानां कारयेच्छ्राद्धमागन्देश्वरतीर्थके ॥ प्रेता आनन्दिताः स्युस्ते यावदाहृतसंस्पृशम् ॥ ११ ॥ सन्ततिष्ठन् सौख्यं च समज न्मनिजायते ॥ आनन्दश्च भवेत्तेषां जन्मजन्मयुधिष्ठिर ॥ १२ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ ततो गच्छेत्तुराजेन्द्र मातृतीर्थे

करे और सुगन्ध से उनको लेपनकरे ॥ ८ ॥ और हे युधिष्ठिर ! वहां यथाशक्ति ब्राह्मणों का पूजनकरे फिर वहां गोदान वैसेही वस्त्रोका भी दान करना चाहिये ॥ ९ ॥ वसन्तकी तेरस को इंगुश्रा, बेर, बेल, अक्षत और जलसे भी वहीं श्राद्ध करे ॥ १० ॥ व आनन्देश्वरतीर्थ में प्रेतोंके श्राद्धको करे तो वे प्रेत महाप्रलय तक आनन्दवान् रहते हैं ॥ ११ ॥ सन्तान और धनका सुख सात जन्मोंतक रहता है और हे युधिष्ठिर ! उनको जन्म २ प्रति आनन्द होता है ॥ १२ ॥ मार्कण्डेयजी बोले कि हे

राजेन्द्र ! तदनन्तर अत्युत्तम मातृतीर्थको जात्रे जोकि नर्मदाके दक्षिणवाले किनारेपर सङ्गम के समीपमें है ॥ १३ ॥ हे राजेन्द्र ! नर्मदा के तटमें मातृका रहती थी मो किसी समय पार्वतीने महादेवसे याचना की ॥ १४ ॥ तब महादेवने उन योगिनियोंसे कहा कि कष्ट २ अच्छा नहीं है परन्तु बोले कि योगियों के वर देनेवाले हम तुम को भी वर देवेंगे ॥ १५ ॥ तब योगिनियां बोलीं कि हे महेश्वर ! आपके प्रसाद से हमलोग सब देवताओं के जीतनेलायक न होंगे और तीर्थोंके साथ पृथिवी में हम भी प्रसिद्ध होंगे ॥ १६ ॥ तब महादेव ने कहा कि हे योगिनियो ! ऐमाही हो यह कहकर वहीं अन्तर्द्धान होगये ॥ १७ ॥ मार्कण्डेयजी बोले कि उस तीर्थमें नवमी को

मनुत्तमम् ॥ सङ्गमस्यसमीपस्थं नर्मदादक्षिणेतटे ॥ १३ ॥ मातरस्तत्रराजेन्द्र संजातानर्मदातटे ॥ उमयायाचि तस्तत्र व्यालयज्ञोपवीतकः ॥ १४ ॥ उवाचयोगिनीवृन्दं कष्टकष्टन्नशोभनम् ॥ उवाचवरदद्यास्मि योगिवृन्दवरप्र दः ॥ १५ ॥ योगिन्युरुचुः ॥ अजेयास्सर्वदेवानां त्वत्प्रसादान्महेश्वर ॥ तीर्थानामभिसंख्यानं प्रख्यातावभुधातले ॥ १६ ॥ एवंभवतुयोगिन्यस्तत्रैवान्तरधीयत ॥ १७ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ तस्मिंस्तीर्थेतुयोमर्त्यो नवन्यांविजितेन्द्रियः ॥ उपोष्यपरयाभक्त्या पूजयेन्मातृमण्डलम् ॥ १८ ॥ तस्यतामातरः प्रीताः प्रीतोयंबृषवाहनः ॥ बन्धयायामृतवत्साया अ पुत्रायायुधिष्ठिर ॥ १९ ॥ स्नपनंचारभैस्तत्र मन्त्रज्ञैर्ब्राह्मणोत्तमैः ॥ सहिरण्येनकुम्भेन पञ्चरत्नफलान्वितम् ॥ २० ॥ स्नापयेत्पुत्रकामाच कांस्यपात्रेणमन्त्रतः ॥ पुत्रान्सालभतेनारी वीर्ययुक्तान्गुणान्वितान् ॥ २१ ॥ ययंकाममभि ध्यायेत्तंसालभतेनृप ॥ मातृतीर्थात्परन्तीर्थं नास्त्यन्यत्पाण्डुनन्दन ॥ २२ ॥ तस्यैवानन्तरंतात जलमध्येइश्वर

बड़ी भक्ति से इन्द्रियोंको जीतेहुये जो मनुष्य उपासा रहकर मातृकाओं का पूजन करता है ॥ १८ ॥ उसपर वे मातृकायें व ये महादेवजी प्रसन्न होतेहैं और हे युधिष्ठिर ! बांभ व जिसके लडके मरजाते हैं व जिसके पुत्र नहीं है ऐसी स्त्री ॥ १९ ॥ वहा वेदके जाननेवाले उत्तम ब्राह्मणों से महादेवजी का सोना व घड़ा व पञ्चरत्न व फलोंसे युक्त स्नान कराना आरम्भ करे ॥ २० ॥ व जो पुत्रकी इच्छावाली स्त्री मंत्रों द्वारा कांसि के पात्रमें महादेव को स्नान करावे तो वह ताकतवाले व गुणोंसे युक्त लड़कों को पावेगी ॥ २१ ॥ हे नृप ! और भी जिस २ कामनाको करे उस २ को वह पातीहै और हे पाण्डुनन्दन ! इस मातृतीर्थ से परे और तीर्थ नहीं है ॥ २२ ॥

हे तात ! अब उसी तीर्थ के बाद पानीमें शिवजी का उत्तम लिंग है देवता और दैत्योंसे नमस्कार किया गया लिङ्गेश्वर इस नामसे प्रसिद्ध है ॥ २३ ॥ तब युधिष्ठिर जी बोले कि जिस नर्मदा को महादेवजी ने कभी नहीं छोड़ा उसको कैमे छोड़ा और जिनके हाथमें त्रिशूल है व जो पिनाक धारण करनेवाले हैं ऐसे महादेव जी पानीके बीचमें कैसे रहते हैं ॥ २४ ॥ हे द्विजोत्तम ! सो हम आपकी वाणीसे सुना चाहते हैं तब मार्कण्डेयजी बोले कि हे पाण्डुनन्दन ! इस लोकमें यह आश्चर्य रूप महादेवजी की प्रतिष्ठा है ॥ २५ ॥ हम पाण्डित हैं बुढ़ापे के कारण आप से कहते हैं हे नृपोत्तम ! आगे सत्ययुगमें हे तात ! अपने बलसे अहङ्कार को प्राप्त एक

म्परम् ॥ लिङ्गेश्वरमितिख्यातं सुरासुरनमस्कृतम् ॥ २३ ॥ युधिष्ठिरउवाच ॥ अत्यक्तासातुरेवाया कथं त्यक्ताचशम्भुना ॥ जलमध्ये हितिष्ठेत् शूलपाणिः पिनाकधृक् ॥ २४ ॥ तदहं श्रोतुमिच्छामि तव वाक्याद्विजोत्तम ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ आश्चर्य्यभूतालोकैस्मिन्प्रतिष्ठापाण्डुनन्दन ॥ २५ ॥ पाण्डितो बृद्धभावेन कथयामि नृपोत्तम ॥ आदौ कृतयुगे तात दानवो बलदर्पितः ॥ २६ ॥ कालबाष्प इति प्रोक्तो दुर्जयो देवदानवैः ॥ तपश्चचार विपुलं नर्मदायाजले शुभे ॥ २७ ॥ आराधयन् महादेवमुग्रेण तपसाभुशम् ॥ ततस्ततोषभगवान्सपत्नीकोमहेश्वरः ॥ २८ ॥ ईश्वर उवाच ॥ भो भो वत्स वरं ब्रूहि तुष्टो हंतव्यमस्मिन् ॥ देवस्य वचनं श्रुत्वा कालबाष्पोऽब्रवीद्वचः ॥ २९ ॥ देवाश्चैव मया भग्नाः प्रसादात्तव शूलिनः ॥ संश्रामे च विषण्णे हं तस्मादाराधनं कृतम् ॥ ३० ॥ हस्तं शिरसि यस्यैव दास्यामि च महेश्वर ॥ न स जीवेत्पुनर्माँल्लोके वरमेतं ददस्व मे ॥ ३१ ॥ ईश्वर उवाच ॥ यत्ते मिलाषितं दैत्य तत्तथैव भविष्यति ॥ इति श्रुत्वा बभौ दैत्यः

दानव होता हुआ ॥ २६ ॥ कालबाष्प इस नामसे कहा जाता देवता और दैत्यों से नहीं जीता जासका, नर्मदा के उत्तमजल में बड़ी तपस्या को करता हुआ ॥ २७ ॥ और उस अतिकठिन तपस्या से महादेवको प्रसन्न करता हुआ तदनन्तर पार्वती सहित महादेवजी उसपर प्रसन्न हुये ॥ २८ ॥ और महादेवजी बोले कि हे वत्स ! तुम वरको माँगो हम तुम्हारी भक्तिसे प्रसन्न हैं तब महादेवके वचनको सुनकर कालबाष्प वचन बोला ॥ २९ ॥ कि त्रिशूलवाले आपके प्रसाद से मैंने सब देवताओं को जीत लिया है अब लड़ाई से मैं विरक्त हूँ इससे आपकी सेवा की है ॥ ३० ॥ इससे हे महेश्वर ! मैं जिसके शिरपर अपना हाथ रख देऊँ वह पुरुष लोकमें न

जीवे बस इस वरको आप मुझे देंगे ॥ ३३ ॥ तब महादेवजी बोले कि हे दैत्य ! जो तेरे मनमें है वह वैसाही होगा यह वचन सुनकर वह दैत्य महादेवजी के सामने दौड़ा ॥ ३२ ॥ और कहा कि तुम्हारे शिरपर हम हाथ धरेंगे क्योंकि तुम्हारा वचन सच्चा नहीं है तब उसरो भागेहुये महादेवजी विष्णुजी की शरण गये ॥ ३३ ॥ विष्णु से सब हाल कहकर फिर उन्हीं में आप लीन होगये विष्णु बोले कि हे महादेव ! दैत्योंके मालिक उस दुष्टको हम मारते हैं ॥ ३४ ॥ हे महेश्वर ! हम उसीके शिरपर उसका हाथ रखवाय देंगे तबनन्तर बड़े वेगसे युक्त नर्मदातटमें प्रवेश किया ॥ ३५ ॥ स्त्री के रूपको धरेहुये भगवान् दैत्य के रानने आतेहुये वत्सी लक्ष्मणो से

शम्भुमेवाभिदुहुवे ॥ ३२ ॥ हस्तंतेभूद्विदास्यामि नतत्सत्यंवचस्तव ॥ रुद्रःपञ्चायितस्तेन केशवंशरणङ्गतः ॥ ३३ ॥
निर्वद्यकेशवंसर्वं तस्मिन्नेवन्यलीयत ॥ केशवउवाच ॥ हन्यहन्तंमहादेव दुष्टदैत्यजनेश्वरम् ॥ ३४ ॥ हस्तंशिरसि
तस्यैवदापयामिमहेश्वर ॥ ततस्त्वरितमापन्नःप्रविष्टोनर्मदातटे ॥ ३५ ॥ कृष्णःस्त्रीविपधारीच दैत्यसम्मुखमागतः ॥
हान्निशछद्मोपेता नियुक्ताकामसायकैः ॥ ३६ ॥ मधुमाधवकेशम्भुं ध्यात्वासर्वत्रकैशवी ॥ वनंवभ्रामसर्वत्रसुशीलाव
टपादपम् ॥ ३७ ॥ जोभयन्तीचित्तानि सारमेधर्मनन्दन ॥ रिङ्गमाणश्चदैत्योसौ कालबाष्पसुहुर्जनः ॥ ३८ ॥ प्रविष्टस्य
वनेरम्ये यत्रसाशुभलोचना ॥ अहंभवामितेभर्तादुर्जयोदेवदानवैः ॥ ३९ ॥ त्रैलोक्यस्वामिनीत्वंच प्रसीदममसुन्दरि ॥
श्रीकृष्णउवाच ॥ यदिमामन्यसेभार्या प्रत्ययश्चभवेन्मम ॥ ४० ॥ दानवउवाच ॥ स्वयंभवामितन्वाङ्गि शपथंममसा

युक्त कामदेवके बाणों से भरीहुई ॥ ३६ ॥ वसन्तऋतुमें महादेवजी का सर्वत्र ध्यानकर उत्तम शीलवाली भगवती वह स्त्री सब कहीं जिसमें एक बड़ा वरगदका वृक्ष था ऐसे वनमें घूमतीहुई ॥ ३७ ॥ हे धर्मनन्दन ! सबोंके चित्तोंको खलभलाती हुई वह रमण करती थी तत्रतक वह दुर्जन कालबाष्प दानव भी घूमताहुआ ॥ ३८ ॥ जहां वह सुन्दर नेत्रोंवाली स्त्री थी उस रमणीक वनमें पैठताहुआ और उस स्त्रीसे बोला कि हम तेरे पति होवेंगे जोकि देवता और दानवोंसे नहीं जीते जासके हैं ॥ ३९ ॥ तू तीनों लोकोंकी मालाकिनी होवेंगी इससे हे सुन्दरि ! मुझपर प्रसन्नहो तब भगवान् बोले कि जो आप मुझको अपनी स्त्री मानते हो और मेरा तुम्हें विश्वासहै

तो हमारा कहना करो ॥ ४० ॥ तव दानव बोला कि हे तन्वङ्गि ! मैं खुद आपका दास हूँ इसमें मेरी कसमको प्रमाण समझो। हम वही करेंगे जो तुम कहोगी यह हमारा कहना सत्य है ॥ ४१ ॥ तव वह स्त्री बोली कि हमारे कहनेको करो हे महाभाग ! अपना हाथ अपने शिरपर धरो मार्कण्डेयजी बोले कि हे राजेन्द्र ! उस कामान्धने माथेपर हाथको रम्या ॥ ४२ ॥ तो उसी क्षणमे भस्म होगया जैसे खरही भस्म होजावे उस समय में भगवान् के ऊपर फूलोंकी वर्षा हुई ॥ ४३ ॥ जलन जिनकी जातीरही ऐसे सब देवतालोग अपने स्थान स्वर्गको चलेगये कालबाष्पके मरनेपर विष्णुभी क्षीरसमुद्रको चलेगये ॥ ४४ ॥ जो दानवके इस चरित्रको भक्तिसे सुनताहै और काम क्रोध

धनम् ॥ तदहञ्चकरिष्यामि इति मे सत्यमापितम् ॥ ४१ ॥ स्तुवाच ॥ कुरुष्व त्वं महाभाग शिरोहस्ते प्रदीयताम् ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ कामान्धेनैव राजेन्द्र निक्षिप्तो मस्तके करः ॥ ४२ ॥ तत्क्षणादभवद्भस्म दग्धस्तृणचयो यथा ॥ केशवस्योपरितदा पुष्पवृष्टिः पपातह ॥ ४३ ॥ गतास्सर्वे दिवन्देवास्स्वस्थानं विगतज्वराः ॥ क्षीराब्धि मगमद्विष्णुः कालबाष्पे निपातिते ॥ ४४ ॥ यद्दंष्ट्रं शृणुयाद्भक्त्या चरितं दानवस्य च ॥ श्राद्धं तत्रैव यः कुर्यात्कामक्रोधविवर्जितः ॥ ४५ ॥ उद्धृतास्तेन भवैवै नरकाच्च पितामहाः ॥ क्षेत्रे तस्मिन्स्तु यो दद्याद्ब्राह्मणे च देयारणे ॥ ४६ ॥ तस्य दानफलं सर्वं कुरुक्षेत्राद्विशिष्यते ॥ स्पर्शते यद्दं लिङ्गं शङ्करेण च निर्मितम् ॥ ४७ ॥ स्पर्शमात्रो मनुष्यस्तु रुद्रवासोऽभिजायते ॥ एतस्मात्कारणाद्राजलै लोकपालाश्च देवताः ॥ ४८ ॥ दुर्गादेवी तथा चैव मधुहन्ता चतुर्भुजः ॥ दानवाद्याश्च सर्वेऽपि रक्षणे चेश्वरस्य च ॥ ४९ ॥ रक्षन्ते च सदा कालं गृहव्यापाररूपतः ॥ पुत्रभ्रातृसमाभूत्वा स्वामिसम्बन्धरूपिणः ॥ ५० ॥ लिङ्गेऽवयन्तु

से रहित होकर जो वहां श्राद्ध करता है ॥ ४५ ॥ उसने मानो नरक से अपने सब पितरों को उद्धार कर लिया और उस क्षेत्रमें जो वेदपाठी ब्राह्मण को दान देता है ॥ ४६ ॥ उसके दानका सब फल कुरुक्षेत्र से विशेष होता है और महादेव के बनाये हुये इस लिङ्गको जो छूता है ॥ ४७ ॥ वह मनुष्य छूनेही से रुद्रलोकमें वास करता है हे राजन् ! इसी कारणसे लोकपाल देवता ॥ ४८ ॥ दुर्गादेवी, चार भुजावाले विष्णु, दानवआदि सभी महादेवजी की रक्षामें रहते हैं ॥ ४९ ॥ लड़के, भाई और स्वामी

आदि नातेकी तरह होकर घरके कामोंकी नाई हमेशा रक्षा किया करते हैं ॥ ५० ॥ हे राजेन्द्र ! लिङ्गेश्वर आजभी देवताओंसे रक्षा किया जाता है ॥ ५१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनुवादेभस्मासुरवधोनामषष्ठ्यनतितमोऽध्यायः ॥ ६६ ॥

मार्कण्डेयजी बोले कि हे राजेन्द्र ! तदनन्तर सब पापों के क्षय करनेवाले नर्मदा के दक्षिणवाले किनारेपर विद्यमान उत्तम धनद नाम के तीर्थको जावे ॥ १ ॥ वहां सब तीर्थों का फल प्राप्त होता है इस में संशय नहीं है चैतमास के उजियाले पाखकी तेरसको इन्द्रियों को जीतेहुये मनुष्य ॥ २ ॥ उपासकर बड़ी भक्ति से रात

राजेन्द्र देवैरद्यापिरक्ष्यते ॥ ५१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेभस्मासुरवधोनामषष्ठ्यनतितमोऽध्यायः ॥ ९६ ॥

मार्कण्डेयउवाच ॥ ततो गच्छेच्च राजेन्द्र धनदन्तीर्थमुत्तमम् ॥ नर्मदादक्षिणकूले सर्वपापक्षयङ्करम् ॥ १ ॥ सर्व तीर्थफलं तत्र प्राप्य तेनात्र संशयः ॥ चैत्रमासे त्रयोदश्यां शुक्लपक्षे जितेन्द्रियः ॥ २ ॥ उपोष्य परयाभक्त्या रात्रौ कुर्वीत जागरम् ॥ पञ्चामृतनराजेन्द्र स्नापयेद्हरदं विभुम् ॥ ३ ॥ पूजयेद्भक्तियुक्तेन गीतवाद्यं प्रदापयेत् ॥ प्रभाते पूजयेद्विप्रा नारामनः श्रेयश्चक्षता ॥ ४ ॥ प्रतिग्रहं विभुक्ताश्च विद्यासिद्धान्तवादिनः ॥ भर्तव्याहिप्रियैर्भक्त्या परिवादविवर्जिताः ॥ ५ ॥ पूजयेद्गौहिरण्येन वस्त्रालङ्करणेन च ॥ हस्त्यश्वरथदानेन सर्वपापक्षयो भवेत् ॥ ६ ॥ त्रिजन्मजनितं पापं धनदस्य प्रभावतः ॥ स्वर्गदण्डदुर्विनीतानां विनीतानां च मुक्तिदम् ॥ ७ ॥ धनवान्सुनरायाश्च भवेत्तज्जन्मनि जन्मनि ॥ कुलीनत्वं

को जागरण करे और हे राजेन्द्र ! वर के देनेवाले महादेवको पञ्चामृत से नहवावे ॥ ३ ॥ भक्तिसे पूजन करे और गावे बजावे अपने कल्याणकी इच्छा करता हुआ प्रातःकाल ब्राह्मणों का पूजन करे ॥ ४ ॥ जो ब्राह्मण दान नहीं लेते हैं और विद्याके सिद्धान्तों को जानते हैं किसी की निन्दा नहीं करते ऐसे ब्राह्मणों का भक्ति और प्यार से भरण पोषण करे ॥ ५ ॥ गौर्वे, सोना, कपड़े, जेवर, हाथी, घोड़े और रथों के दानसे उनका पूजन करे तो सब पापोंका नाश होजावे ॥ ६ ॥ धनदतीर्थ के प्रभाव से तीन जन्मोंका पाप नष्ट होजाता है यह नीर्थ पापियों को स्वर्गका देनेवाला और सज्जनो को मुक्तिका देनेवाला है ॥ ७ ॥ हे नरव्याघ्र ! वह जन्म २ में धनी

होता है कुलीन और सुन्दर रूपवाला होता है दुःख उसको कभी नहीं होता है ॥ ८ ॥ और धनद तीर्थकी सेवासे सेवकों को रोगका डर नहीं होता बल्कि वह आनन्द रहता है धनदके तीर्थ में जो विद्या को देता है ॥ ९ ॥ वह सब दुःखों से छूटा हुआ सूर्य के लोक को जाता है मार्कण्डेयजी बोले कि हम तुम से पुराने इतिहास को कहेंगे ॥ १० ॥ सब लोकों में उत्तम कश्यपमुनि की दो स्त्रियां होती हुई विनता के पुत्र गरुड और कद्रूके सर्प होते हुये ॥ ११ ॥ हे नात ! वे दोनों कश्यप के घरमें सन्तोष से रहती थीं उनमें कद्रूकी बहन विनता पति को प्यारी थी ॥ १२ ॥ कश्यप प्रजापति विनता के साथ विहार किया करते थे तदनन्तर हे पार्थ ! एक दिन

स्वरूपत्वं दुःखं नास्ति निरन्तरम् ॥ ८ ॥ व्याधेस्तु न भयंतेषां नन्देद्धनदसेवनात् ॥ धनदस्य च यस्तीर्थं विद्यावैप्रददा
ति हि ॥ ९ ॥ सयाति मास्करं लोकं सर्वदुःखविवर्जितः ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ अहं ते कथयिष्यामि चेतिहासम् पुरातनम् ॥
१० ॥ द्वे भाग्यैकश्यपस्यास्तां सर्वलोकेष्वनुत्तमे ॥ गरुत्मान् विनतापुत्रः कद्रुपुत्रो रगाः स्मृताः ॥ ११ ॥ सन्तोषेण द्वयं ता
त तिष्ठतः काश्यपेण ॥ कद्रास्तु भगिनी तत्र इष्टा च विनता तथा ॥ १२ ॥ क्रीडेद्विनतया सार्द्धं कश्यपोऽपि प्रजापतिः ॥ त
तस्त्वैकदिने पार्थ आश्रमस्थः सुशोभना ॥ १३ ॥ उच्चैः श्रवो हयं दृष्ट्वा अतिवेगं नभःस्थितम् ॥ पश्य पश्य च तन्वद्भिः अ
श्वं सर्वत्र पाण्डुरम् ॥ १४ ॥ धावमानमविश्रान्तं जघेनमानसोपमम् ॥ कद्रून्वाच ॥ कथमेतत्तु तन्वद्भिः कृष्णं जल्पसि पा
ण्डुरम् ॥ १५ ॥ असत्यं भाषितं भद्रे यमलोकं गमिष्यसि ॥ विनतो वाच ॥ सत्यान्तरे तु वचने पणोयं मे स्तुतेऽधुना ॥ १६ ॥
सहस्रं चैव वर्षाणामज्ञात्वा दास्यतां ब्रजेत् ॥ असत्यायादिमेवाणी कृष्ण उच्चैः श्रवाहयः ॥ १७ ॥ तदा हं त्वदृग्दृष्टे दासी स

आश्रममें बैठी हुई अतिशोभावाली विनता ॥ १३ ॥ आकाशमें टिके हुये बड़े तेज वाले उच्चैः श्रवा घोड़ेको देखकर बोली कि हे तन्वद्भिः ! सब सफेद घोड़ेको देखो ॥ १४ ॥
विश्राम नहीं लेता दौड़ रहा तेजी में मन्दके बराबर है तब कद्रू बोली कि हे तन्वद्भिः ! कालेको तुम सफेद कैसे कहती हो ॥ १५ ॥ हे भद्रे ! तुम्हारा कहना झूठ है तुम
यमलोक को जाओगी तब विनता बोली कि अभी हमारी तुम्हारी झँझी सांची बात में शर्त होजावे ॥ १६ ॥ कि जिसकी बात झूठ हो वह सब्बी बातवाली की एक

हजार वर्षतक लौंडी रहे जो हमारी बात झूठहोवे कि उच्चैःश्रवा घोड़ा कालाहो ॥ १७ ॥ तो हम तुम्हारे घरमें हमेशा दासी रहेगी और जो उच्चैःश्रवा सफेद होवे तो तुम हमारे घरमें दासी होवो ॥ १८ ॥ इस प्रकार दोनों आपसमें दासी बननेको कहरही थीं तबतक कद्रू अपने घरको गई और रातमें बड़ी चिन्ता करती रही ॥ १९ ॥ और हे पार्थ ! अपने पुत्रोंसे कहा कि उस सफेद घोड़ेको मैंने काला कहदिया और शर्तभी की है ॥ २० ॥ सर्पोंने इस बात व माता की शर्तको भी सुना तब सर्पोंने कहा कि अब तो तुम दासी होगईहो सन्देह नहीं है क्योंकि सूर्यका घोड़ा तो सफेदहीहै ॥ २१ ॥ तब कद्रू बोली कि जिस तरह हम दासी न होवें ऐसा काम सोचाजावे उच्चैःश्रवा

वैदेवमवामिहि ॥ यदितूच्चैःश्रवाःइवेतो दासीत्वंसद्गृहेषुनः ॥ १८ ॥ एवंपरस्परंद्वाभ्यां दासीयमब्रवीदिति ॥ स्वाश्रमं हि गताकद्रूरात्रौचिन्तातुरास्थिता ॥ १९ ॥ इवेतवर्णन्तुकथितं ह्यामन्तमद्वकन्तदा ॥ पुत्राणांकथितंपार्थ पणश्चैवकृतो मया ॥ २० ॥ श्रुतंसर्वैस्तथावाक्यं सर्पैर्मातृपणस्तदा ॥ जातादासीनसन्देहः इवेतोभास्करवाहनः ॥ २१ ॥ कद्रूरुवाच ॥ यथाहन्नभवेदासी तत्कार्यञ्चविचिन्त्यताम् ॥ उच्चैःश्रवोरोमकूपे विशध्वंयूयमेवच ॥ २२ ॥ एकंसुहृर्तेतिष्ठध्वं यावत्कृष्णःप्रहृश्यते ॥ क्षणेनैकेनभवतां दासीसाभवतेमम ॥ २३ ॥ दासीत्वेयातुतन्वल्ली विनतासत्यगर्विता ॥ ततःस्वस्थानगारसर्वे भवन्तुखिनस्सदा ॥ २४ ॥ सपर्पाऊचुः ॥ यथात्वंजननीचैव सर्वेषांभुविपन्नगी ॥ तथासापिविशेषेण वञ्चितव्यानमातृपत् ॥ २५ ॥ ततस्सतेनवाक्येन क्रुद्धाकालानलोपमा ॥ समवाक्यमकुर्वाणा येकेचिद्विपन्नगाः ॥ २६ ॥

घोड़ेके रोवोंके छेदोंमें तुम सब पैठजावो ॥ २२ ॥ जबतक दो घड़ीहों तबतक स्थित बनेरहो वह काला देखपड़ेगा तुमलोगों के इस तरहक्षणमात्र रहने से वह हमारी दासी होजावेगी ॥ २३ ॥ सत्य के अहङ्कार को प्राप्तहोरही सूक्ष्माङ्गी विनता दासीपनेको प्राप्त होजावेगी तदनन्तर फिर तुम सब अपने स्थानों को जाकर सुखी होवो ॥ २४ ॥ तब सर्प बोले कि जैसे पृथ्वीमें तुम सब साँपोंकी माता पन्नगीहो ऐसेही वह भी हमारी विशेषसे माताके तुल्य है इससे बल करनेलायक नहीं है ॥ २५ ॥ तदनन्तर वह उनके उस वचन से प्रलय के अग्नि के समान नाराज होतीहुई और बोली कि हमारे वचन को नहीं करनेवाले पृथिवी में जितने साँप हैं ॥ २६ ॥

वे सब बेविचारवाले आगी के मुहमें जावेंगे इस बातसे डरेहुये सांप घोड़े के रोवों में लपटगये ॥ २७ ॥ और कोई कट्टके शापके डरसे युक्त दिव्य दिशाओं को भाग गये कोई गङ्गाके जलमें छिपे और कोई सरस्वती में छिपे ॥ २८ ॥ कोई समुद्रको चलेगये कोई विन्ध्यपर्वत की खोहों में छिपरहे और हे नृप ! उत्तम मणिनाग नर्मदाके जलके आश्रित होकर ॥ २९ ॥ नर्मदा के उत्तरवाले किनारे पर भक्तिसे बड़े तपको करताहुआ माताके शापको धरंहुये नर्मदा के जलमें पैठगया ॥ ३० ॥ तब और महादेव से प्रार्थना करताहुआ कि हे नाथ ! आपके प्रसादसे हम माताके शापको तरजावें हे जगत्पते ! जिससे हम आगके मुखमें न जावें सो करो ॥ ३१ ॥ तब

हव्यवाहमुखं सर्वं यास्यन्तीत्यविचारिणः ॥ तेनवाक्येनभीतास्ते हयरोमसुवेष्टिताः ॥ २७ ॥ नष्टाः केचिद्दिशो दिव्याः कट्टशापभयान्विताः ॥ केचिद्गङ्गाजलेनष्टाः केचिन्महोदधिनीताः प्रविष्टावि न्ध्यकन्दरे ॥ आश्रित्यनर्मदातोयं मणिनागोत्तमो नृप ॥ २८ ॥ चचारविपुलं भक्त्या उत्तरेनर्मदातटे ॥ मातृशा पधरोनागः प्रविष्टो नर्मदाजले ॥ ३० ॥ त्वत्प्रसादेनभोनाथ मातृशापंतराम्यहम् ॥ हव्यवाहमुखं यस्मात्प्रयामिनज गत्पते ॥ ३१ ॥ ईश्वर उवाच ॥ हव्यवाहमुखं वत्स नयास्यसि ममाज्ञया ॥ ममलोकनिवासोपि तवपुत्रमविष्यति ॥ ३२ ॥ मणिनाग उवाच ॥ अस्मिन्स्थाने महादेव स्थीयंतामंशभागतः ॥ सहस्रांशेनभागेन स्थीयतां नर्मदाजले ॥ ३३ ॥ उप कारायलोकानां ममनाम्नाचशङ्कर ॥ ईश्वर उवाच ॥ स्थापयस्व परं लिङ्गमाज्ञायामपन्नग ॥ ३४ ॥ इत्युक्त्वान्तर्दधेद वस्तुदैवशिवया सह ॥ तत्रतीर्थेतुयेभक्त्या शुचयो घृतमानसाः ॥ ३५ ॥ पञ्चम्याञ्च चतुर्दश्यामष्टम्यां शुक्लपक्षके ॥ अ

महादेव बोले कि हे वत्स ! हमारी आज्ञा से आगके मुखमें तुम नहीं जावोगे और हे पुत्र ! तुम्हारा निवास हमारे लोकमें होगा ॥ ३२ ॥ तब मणिनाग बोला कि हे महादेव ! अपने अंशसे इस स्थान में आप टिकें हजारवे अंशसे नर्मदाके जलमें आप ठहरें ॥ ३३ ॥ लोकोंके उपकार के वास्ते हे शङ्कर ! मेरे नामसे प्रसिद्ध हूँ जिये महादेव ! तब महादेव बोले कि हे पन्नग ! हमारी आज्ञासे तुम श्रेष्ठलिङ्गको स्थापित करो ॥ ३४ ॥ यह कहकर पार्वतीसहित महादेवजी उसी समय अन्तर्धान होगये उस तीर्थमें मन

को वरा कियेहुये व पवित्र जो मनुष्य भक्तिसे ॥ ३५ ॥ उलियाले पाखकी पंचमी व चौदस व अष्टमी को हे पार्थ ! सदा पूजन करते हैं वे यमराजके पास नहीं जाते हैं ॥ ३६ ॥ दही, शहद, घी और दूध से जो मनुष्य पार्वतीको आधेअङ्ग में धरेहुये महादेवको नहवाते हैं ॥ ३७ ॥ कामदेव के जलानेवाले व बड़े २ दैत्योंके मारनेवाले शङ्करजी को भक्तिसे जो लोग स्नान कराते हैं वे परमपदको देखते हैं ॥ ३८ ॥ और हे तात ! जो शूद्रोंकी सेवाको नहीं करते और अपने छहों कमोंके करनेवाले ब्राह्मण हैं वे भी सब पापोंसे रहित होकर श्रेष्ठलोक को जाते हैं ॥ ३९ ॥ संस्कारहीन, क्षत्रियके कामों के करनेवाले, नपुंसक, सूदके खानेवाले, किसान और नारितक

च्ययन्ति सदापार्थ नोपसर्पन्ति ते यमम् ॥ ३६ ॥ दधनाचमधुना चैव घृतेन क्षीरतोजनाः ॥ स्नापयन्ति विरूपाक्षमुमा
देहार्द्धधारिणम् ॥ ३७ ॥ कामाङ्गदहनन्देवं महासुरनिषूदनम् ॥ संस्नापयन्ति ये भक्त्या पश्यन्ति परमं पदम् ॥ ३८ ॥
षट्कर्म निरतास्तात शुद्रप्रणयवर्जिताः ॥ तेषां पितृपरलोकं सर्वपापविवर्जिताः ॥ ३९ ॥ ब्राह्म्यांश्च दुर्द्धरान् पण्डा
नार्द्धुक्व्यांश्च कृषीवलान् ॥ भिन्नदृष्टिकरान् चित्रान् कश्चिन्नैव च पूजयेत् ॥ ४० ॥ वृषलीमन्दिरेयस्य महिषं यस्तुवाहये
त् ॥ तेषां प्रादूरतस्त्याज्या व्रते श्राद्धे नृपेश्वर ॥ ४१ ॥ काणाः कुण्डाश्च गोलाश्च वैद्याश्चैव विवर्जिताः ॥ नैते पूज्या हि
जाः पार्थ मणिनागे श्वरे शुभे ॥ ४२ ॥ यदीच्छेद्वर्ध्वगमनं पितृणामात्मनस्तथा ॥ सर्वाङ्गरुचिराङ्गाश्च सदा पूज्या हि
जास्तु वै ॥ ४३ ॥ सयाति परमं लोकं यावदाहूतसम्पुवम् ॥ ततः स्वर्गाच्च्युतस्सोऽपि जायते विपुले कुले ॥ ४४ ॥ मणि

ब्राह्मणों को इस तीर्थमें कोई भी न पूजे ॥ ४० ॥ जिसके घरमें सूदिनि बैठी होवे और जो भैंसा लादताहो हे नृपेश्वर ! ऐसे ब्राह्मणों को व्रत और श्राद्ध में दूरही से छोड़देवे ॥ ४१ ॥ काने, कुण्ड (जतिहुये बापके दूसरे से पैदाहुआ) गोलक (बापके मरजाने पर दूसरे से पैदाहुआ) और वैद्य ये विशेष करके वर्जित हैं किन्तु हे पार्थ ! ये ब्राह्मण शुभ मणिनागेश्वर में पूजनेयोग्य नहीं हैं ॥ ४२ ॥ जो अपना व पितरों का ऊपर जाना चाहे तो उससे निश्चय करके सब अङ्गोंसे दूरत ब्राह्मण सदा पूजन करनेयोग्य हैं ॥ ४३ ॥ वह उत्तम लोकको जाताहै और प्रलयतक वहां रहता है फिर स्वर्गसे उतर वह बड़ेकुल में पैदा होता है ॥ ४४ ॥ जो मणिनागे

श्वरदेव के दर्शन करता है और हे नराधिप ! वहां गऊ, पलंग, छाता, कन्या और दासियों को भक्तिसे ॥ ४५ ॥ हे राजेन्द्र ! उत्तम ब्राह्मणों को देवे जो अपने कल्याण की इच्छाकरे सुगन्धवाले फूल, चन्दन और कपड़ों को देवे ॥ ४६ ॥ दिया, अन्न और सब सामानसे भरेहुये सुन्दर मकान को जो मनुष्य भक्तिसे देतेहैं वे स्वर्गको जातहैं ॥ ४७ ॥ हे नृप ! मणिनाग में जो सोने के सांपका दान करते हैं उस दान के प्रभावसे उनका वास स्वर्गमें होताहै ॥ ४८ ॥ और उसके पाप नष्ट होजातेहैं जैसे कच्चेबड़े का पानी जातारहता है नर्मदा के पानीमें पकायाहुआ भोजन जो ब्राह्मण को देतेहैं ॥ ४९ ॥ पापोंसे छूटेहुये वे भी देवताओं के साथ विहार करते हैं दानके

नागेश्वरन्देवं यःपश्यतिनराधिप ॥ धेनुंशय्यांतथावन्नं कन्यांदासींमुभक्तिः ॥ ४५ ॥ पात्रेदद्यात्तुराजेन्द्र यदीच्छे
च्छेयआत्मनः ॥ सुरभीणिचपुष्पाणि गन्धवस्त्राणिदापयेत् ॥ ४६ ॥ दीपंधान्यंगुहंशुभ्रं सर्वोपस्करसंयुतम् ॥ ददते
येनराभक्त्या तेव्रजन्तित्रिविष्टपम् ॥ ४७ ॥ मणिनागेनृपस्वर्णपन्नगोयैःप्रदीयते ॥ तेषांदानप्रभावेण स्वर्गवासोभवे
दध्रुवम् ॥ ४८ ॥ पातकानिप्रलीयन्त आमपात्रेजलंयथा ॥ नर्मदातोयसंसिद्धं भोज्यंविप्रायदीयते ॥ ४९ ॥ तेपिपा
पैर्विनिमुक्ताः क्रीडन्तेदैवतैस्सह ॥ त्यागिनोभोगसंयुक्ता धर्माख्यानरतास्सदा ॥ ५० ॥ देवद्विजगुरोर्भक्तास्तीर्थसेवा
परायणाः ॥ मातापितृस्वामिभक्ताः क्रोधद्रोहविवर्जिताः ॥ ५१ ॥ एतैस्सर्वैर्गुणैर्युक्ता येनराःपाण्डुनन्दन ॥ जायन्ते
स्वर्गकामाश्च स्वर्गवासोभविष्यति ॥ ५२ ॥ सर्वतीर्थवरन्तीर्थं मणिनागंनृपोत्तम ॥ तीर्थाख्यानमिदंण्यं यःपठेच्छृ
णुयादपि ॥ ५३ ॥ सोपिपापविनिमुक्तः शिवलोकेमहीयते ॥ नविषंक्रमतेतेषां विचरन्तियथेच्छया ॥ ५४ ॥ भाद्रपद्या

करनेवाले, सब भागों से संयुक्त, सदा धर्मशास्त्र में प्रीति के करनेवाले ॥ ५० ॥ देवता, ब्राह्मण और गुरुके भक्त, तीर्थोंकी सेवाके करनेवाले, माता, पिता और स्वामी के भक्त क्रोध और किसी से वैर करने से रहित ॥ ५१ ॥ इन सब गुणों से युक्त हे पाण्डुनन्दन ! जो मनुष्य है वेही स्वर्गकी चाह करनेवाले होते हैं और उन्हींका स्वर्गमें वास भी होताहै ॥ ५२ ॥ हे नृपोत्तम ! मणिनागतीर्थ सब तीर्थोंमें उत्तम है इस तीर्थकी पुण्यकथा को जो कहता न सुनता है ॥ ५३ ॥ पापोंसे छूटाहुआ वह

भी शिवलोक में प्रजित होता है उनके ऊपर विपका असर नहीं पड़ता है अपनी इच्छा से वे विचरते हैं ॥ ५४ ॥ भादों की पूर्णमासी व छठि व अमावसको जो इम तीर्थ में स्नान करता है उसको पुण्यफल होता है इसीतिरह तीर्थ की कथा से भी होता है ॥ ५५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणरेवाखण्डे प्राकृतभाषाऽनुवादे मणिनागतीर्थवर्णने नाम सप्तनवतितमोऽध्यायः ॥ ६७ ॥

मार्कण्डेयजी बोले कि नर्मदाके दक्षिणवाले किनारे पर बड़ा सुन्दर, सबपापोंका हरनेवाला, पवित्र, उत्तम, गोपालेश्वर तीर्थ है ॥ १ ॥ हे नृप ! गजकी देहसे अयः पण्ड्यां भाद्रेस्नायाच्चदर्शके ॥ तस्य पुण्यफलवाप्तिराख्यानकथनेन तु ॥ ५५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणरेवाखण्डे मणिनागतीर्थवर्णने नाम सप्तनवतितमोऽध्यायः ॥ ९७ ॥

मार्कण्डेय उवाच ॥ दक्षिणेन नर्मदातीरे तीर्थे परमशोभनम् ॥ सर्वपापहरं पुण्यं गोपालेश्वरमुत्तमम् ॥ १ ॥ गोदेहाग्निः स्रुतं लिङ्गं पुण्यं भूमितले नृप ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ गोदेहाग्निस्तु तं कस्माद्विद्धं पापक्षयङ्करम् ॥ २ ॥ दक्षिणेन नर्मदातीरे मणिनागसमीपतः ॥ संज्ञे पातकशयतां विप्र गोपालेश्वरमुत्तमम् ॥ ३ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ कामधेनुस्तपस्तत्र पुत्रार्थं च चकार ह ॥ ध्यायतीति परयाभक्त्या देवदेवं महेश्वरम् ॥ ४ ॥ तुष्टस्तस्याजगन्नाथः कपिलायामहेश्वरः ॥ निस्स्रुतो देहमध्यातु अजयः परमेश्वरः ॥ ५ ॥ महेश्वर उवाच ॥ तुष्टो देवि जगन्मातः कपिले परमेश्वरि ॥ आराधनं कृतं कस्मादददे विवरानने ॥ ६ ॥ सुरभिरुवाच ॥ लोकानामुपकाराय सृष्टाहं परमेष्ठिना ॥ लोके कायं हि सर्वं वै मत्प्रसादात् प्रपृथिवी में पुण्यवाला लिङ्ग निकला है तब युधिष्ठिर जी बोले कि पापोंका नाश करनेवाला लिङ्ग गजकी देहसे क्यों निकला है ॥ २ ॥ दक्षिणवाले नर्मदाके किनारे पर मणिनाग के समीप जो उत्तम गोपालेश्वर लिङ्ग है उसको हे विप्र ! संज्ञेप से आप कहो ॥ ३ ॥ तब मार्कण्डेय जी बोले कि वहां पुत्रके वास्ते कामधेनु तपस्या करती हुई बड़ीभक्ति से देवताओं के देवता महादेवजीको ध्यावती हुई ॥ ४ ॥ उस कपिला से जगत के नाथ महादेवजी प्रगल्भ हुये तब नाशरहित महादेवजी उमकी देहके बीचसे निकले ॥ ५ ॥ और महादेव कामधेनुसे बोले कि हे जगत की माता, परमेश्वरी, कपिला ! हमारी सेवा तुमने किस वास्ते की है सो हे वरानने, देवि !

कहो ॥ ६ ॥ तब कामधेनु बोली कि लोको के उपकारके वास्ते मुझे ब्रह्माजीने रचा है लोक में सब काम हमारी दयासे होवेंगे ॥ ७ ॥ आपके प्रसाद से सब लोग यहां आपको देखेंगे इससे है शम्भो ! लोको के हितकी इच्छासे इम तीर्थ में आप होवे ॥ ८ ॥ मार्कण्डेयजी बोले कि तब से यह तीर्थ पृथिवी में प्रसिद्ध होना हुआ एक बार स्नान करने से है राजेन्द्र ! सब पापोंको नाश करदेता है ॥ ९ ॥ गोपालेश्वरमें भक्तिसे जो गोदान देता है परन्तु योग्य उत्तम ब्राह्मणको सोने के सहित योग्य गऊ देना चाहिये ॥ १० ॥ वह दूधवाली, जवान, साफ, बैल व कपडों से युक्त होवे हे युधिष्ठिर ! सब महीनों के अधियारे पाख की चौदस व अष्टमी को बड़ी भक्ति से वेदपाठी

सिध्यति ॥ ७ ॥ लोकास्मर्वेप्रपश्यन्ति तत्प्रसादात् त्रिशूलिनम् ॥ तीर्थे त्वं भवभोः शम्भोलोकानां हितकाम्यया ॥ ८ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ तदा प्रभृति तत्तीर्थं विख्यातं वसुधातले ॥ स्नानेनैके न राजेन्द्र सर्वपापं व्यपोहति ॥ ९ ॥ गोपालेश तु गोदानं यस्तु भक्त्या प्रदापयेत् ॥ योग्ये द्विजोत्तमे देया योग्या धेनुः सकाञ्चनी ॥ १० ॥ सवस्त्रातरुणी शुभ्राक्षरिणी वृषसंयुता ॥ कृष्णपक्षे चतुर्दश्यामष्टम्यां वा युधिष्ठिर ॥ ११ ॥ सर्वेषु चैव मासेषु कार्तिके च विशेषतः ॥ दापयेत्परया भक्त्या द्विजेस्वाध्यायतत्परे ॥ १२ ॥ विधिना च प्रदास्यन्ति विधिनान्ति प्रगतिम् ॥ उभयोः पुण्यकर्मणि प्रेक्षकाः पुण्यभाजनाः ॥ १३ ॥ पिण्डदानं प्रकर्तव्यं प्रेतानां भावसंयुतैः ॥ पिण्डेनैके न राजेन्द्र प्रेतान्ति परंगतिम् ॥ १४ ॥ भक्त्या प्रणामं रुद्रस्य ये कुर्वन्ति दिने दिने ॥ तेषां पापं प्रलीयेत भिन्नपात्रे जलं यथा ॥ १५ ॥ तस्मिंस्तीर्थे तु यो राजन् वृषचैव समुत्सृजेत् ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ वृषोत्सर्गे कृते तात यत्फलं भवते नृणाम् ॥ १६ ॥ तत्सर्वकथं स्वार्थं प्रयत्नेन द्विजोत्तम ॥

ब्राह्मणको देवे और कातिकमें विशेष करदेवे ॥ ११ ॥ १२ ॥ जो विधिसे देते और जो विधिसे लेते हैं दोनोंके काम पुण्यवाले है देखनेवाले भी पुण्यके भागी होते हैं ॥ १३ ॥ प्रेतोंको भक्तिसे पिण्डदान भी करना चाहिये हे राजेन्द्र ! एकही पिण्ड से प्रेत परमगति को जाते हैं ॥ १४ ॥ भक्तिसे महादेवका जो रोज २ प्रणाम करते हैं उनका पाप फूटे घड़ेका सा पानी जाता रहता है ॥ १५ ॥ और हे राजन् ! जो उस तीर्थ में बैलको छोड़ता है तब युधिष्ठिरजी बोले कि हे तात ! वृषोत्सर्ग के किन्ने पर मनुष्यो

को जो फल होता है ॥ १६ ॥ हे द्विजोच्चम ! आज उस सब फलको यत्नसे आप कहो तब मार्कण्डेयजी बोले कि सब लक्षणोंसे युक्त वैलमें जो फल होता है ॥ १७ ॥ हे धर्मनन्दन ! उसको हम तुमसे कहेंगे तुम सुनो हे नराधिप ! कतिक व वैशाखकी पूर्णमासी को ॥ १८ ॥ नहाय व पवित्र और त्रितेन्द्रिय होकर महादेवके समीप में हे राजन् ! ईश्वर की प्रसन्नता के वास्ते धृपोत्सर्गकरे ॥ १९ ॥ पवित्र जगह में बैठकर सबलक्षणों से संयुक्त अच्छी चार बछिया वैलके वास्ते छोड़े ॥ २० ॥ और कहें कि इस उत्सर्ग से महादेव, ब्रह्मा और विष्णु जी वैसे ही और भी प्रमत्त हों वैलके सब अङ्गों में रोवों की जितनी संख्या है हे नराधिप ! ॥ २१ ॥ उतने वर्षों

मार्कण्डेयउवाच ॥ सर्वलक्षणसम्पन्नो बृषेचैवतुयत्फलम् ॥ १७ ॥ तदहंसप्रवक्ष्यामि शृणुत्वंधर्मनन्दन ॥ का
त्तिकेचैववैशाखे पौर्णमास्यान्नराधिप ॥ १८ ॥ रुद्रस्यसन्निधौभूत्वा शुचिःस्नात्वाजितेन्द्रियः ॥ वृषोत्सर्गंतथाराज
न्कारयेद्धरप्रीतये ॥ १९ ॥ स्थानेस्थित्वापवित्रे तु चतस्रोवतिसकाःशुभाः ॥ वृषभायचमुञ्चेत सर्वलक्षणसंयुताः ॥ २० ॥
प्रीयताञ्चमहादेवो ब्रह्माविष्णुस्तथापरे ॥ वृषभेरोमसंख्यातु सर्वाङ्गिषुनराधिप ॥ २१ ॥ तावद्वर्षप्रमाणन्तु शिव
लोकेमहीयते ॥ शिवलोकेवसित्वा तु पश्चान्मर्त्येचजायते ॥ २२ ॥ कुलेमहतिसम्भूतो धनधान्यसमाकुले ॥ सुरूपे रूप
वांश्चैव विद्याल्येसत्यवादिनाम् ॥ २३ ॥ गोपालेश्वरकंपुण्यंमयाख्यातंयुधिष्ठिर ॥ गोदेहान्निसृष्टंलिङ्गं नर्मदादक्षिणे
तटे ॥ २४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणैरवाखण्डेगोपालेश्वरमहिमानुवर्णनोनामाष्टनवतितमोऽध्यायः ॥ ६८ ॥ *

तक शिवजी के लोक में पूजित होता है शिवलोक में रहकर फिर मनुष्यलोकमें पैदा होता है ॥ २२ ॥ सत्य बोलनेवालों के धन व अन्न से भरेहुये व विद्या से युक्त व अच्छेरूपवाले बड़े कुलमें सुन्दररूपवाला पैदा होता है ॥ २३ ॥ हे युधिष्ठिर ! पुण्यवाले गोपालेश्वर लिंग को मैंने कहा जो नर्मदाके दक्षिणवाले किनारे पर गऊ की देहमें निकला है ॥ २४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणैरवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनुवादेगोपालेश्वरमहिमाऽनुवर्णनोनामाष्टनवतितमोऽध्यायः ॥ ६८ ॥

मार्कण्डेयजी बोले कि नर्मदाके उत्तरवाले किनारे पर सब पापोंका हरनेवाला व पुण्यवाला गौतमेश्वर नामका बड़ा सुन्दर तीर्थ है ॥ १ ॥ लोकों के हितकी कामना से गौतम ने स्थापित किया है हे युधिष्ठिर ! मनुष्यों को वह तीर्थ स्वर्गकी नसेनी है ॥ २ ॥ हे नृप ! पापों के नाश करने के नास्ते व स्वर्गवास मिलने के वास्ते बड़ी भक्तिसे तुम वहा जावो जहा जगत् के गुरु महादेवजी हैं ॥ ३ ॥ सुखका बढ़ानेवाला व जयका देनेवाला व दुःखोंका नाश करनेवाला तीर्थ है एक पिण्ड के देने से तीन कुलों को उद्धार करता है ॥ ४ ॥ जो कुछ वहा थोड़ा या बहुत भक्ति से दियाजाता है वह सब गौतमकी आज्ञा से सौ व हजारगुना होता है ॥ ५ ॥ सब तीर्थों

मार्कण्डेयउवाच ॥ नर्मदायोतरेकूले तीर्थपरमशोभनम् ॥ सर्वपापहरंपुण्यं नान्नावैगौतमेश्वरम् ॥ १ ॥ म्या पितंगौतमेनैव लोकानांहितकाम्यया ॥ स्वर्गसोपानरूपेणतीर्थेषुसायुधिष्ठिर ॥ २ ॥ गच्छत्वंपरयाभक्त्या यत्रदेवोज गद्गुरुः ॥ पातकानांविनाशाय स्वर्गवाससयेनृप ॥ ३ ॥ सौख्यस्यवर्द्धनंलिङ्गं जयदंहुःखनाशनम् ॥ पिण्डदानेन चैकेन कुलानामुद्धरेत्त्वयम् ॥ ४ ॥ यत्किञ्चिद्दीयतेभक्त्यास्वलंपवायदिवावहु ॥ तत्सर्वशतसाहस्रमाज्ञयागौतमस्य च ॥ ५ ॥ तीर्थानांपरमन्तीर्थं स्वयंरुद्रेणभाषितम् ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ दक्षिणेनर्मदाकूले तीर्थपरमशोभनम् ॥ ६ ॥ शङ्खचूडेश्वरन्तत्र प्रसिद्धंभूमिमण्डले ॥ शङ्खचूडेश्वरस्तत्र संस्थितःपाण्डुनन्दन ॥ ७ ॥ वैनतेयभयात्पार्थ संस्थितो नर्मदातटे ॥ तत्रतीर्थेतुयोभक्त्या शुचिर्भूत्वासमाहितः ॥ ८ ॥ स्नापयेच्छङ्खचूडन्तु क्षौद्रेणदधिसर्पिषा ॥ रात्रौजागरणं कृत्वा देवस्याग्नेनराधिप ॥ ९ ॥ दधिभक्तेनसम्पूज्य ब्राह्मणाञ्छंसितव्रतान् ॥ गोदानञ्चतथादेयं सर्वपापक्षय

में बड़ा तीर्थ है खास महादेवने कहा है मार्कण्डेयजी बोले कि नर्मदाके दक्षिणवाले किनारे पर बड़ा सुन्दर तीर्थ है ॥ ६ ॥ वहां शंखचूडेश्वर पृथिवीमण्डल में प्रसिद्ध है हे पाण्डुनन्दन ! शंखचूडेश्वर महादेव वहां विद्यमान हैं ॥ ७ ॥ हे पार्थ ! गरुड के भय से नर्मदा तट में रहते हैं पवित्र व सावधान होकर उस तीर्थ में भक्ति से ॥ ८ ॥ शहद व दही और घी से शंखचूडेश्वरको नहवावे और हे नराधिप ! रातमें महादेवके आगे जागरण करे ॥ ९ ॥ दही और भात से उत्तमव्रतवाले ब्राह्मणों

का सत्कार कर सब पापोंका नाशकरनेवाला गोदान देनेयोग्य है ॥ १० ॥ हे पार्थ ! उस तीर्थ में जो सांपका हैसाहुआ भी मरे तो वह भी शंखचूड़की आज्ञासे उत्तम लोकको जाता है ॥ १५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणरेवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनुवादशङ्खचूड़तीर्थमहिमाऽनुवर्णनोनामनवनवतितमोऽध्यायः ॥ ६६ ॥ ॐ ॥ मार्कण्डेयजी बोले कि हे राजेन्द्र ! तदनन्तर उत्तम पराशरवर तीर्थ को जावे उत्तम नर्मदा के तट में महात्मा पराशरने ॥ १॥ पुत्र के वास्ते हे पाण्डुनन्दन ! बड़े तप को किया लक्ष्मी व नारायण के सहित हिमाचल की कन्या गौरीजी को ॥ २ ॥ बड़ी भक्तिसे पराशरऋषिने उत्तरवाले नर्मदाके तटपर प्रसन्न किया तब प्रसन्न हुई

ङ्करम् ॥ १० ॥ तस्मिंस्तूर्थेतुयःपार्थ सर्पदष्टोपनिश्यति ॥ सोपियातिपरंलोकं शङ्खचूडस्यचान्नया ॥ ११ ॥ इति श्री स्कन्दपुराणे रेवाखण्डेशङ्खचूड़तीर्थमहिमानुवर्णनोनामनवनवतितमोऽध्यायः ॥ ९९ ॥ * ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ततो गच्छेत्तुराजेन्द्र पराशरवरोत्तमम् ॥ पराशरो महात्मा च नर्मसदायास्तटेशुभे ॥ १ ॥ तपश्चार्चयितुं पुनार्थपाण्डुनन्दन ॥ हिमाचलसुतागौरी लक्ष्मीनारायणान्विता ॥ २ ॥ तोषिता परयाभक्त्या नर्मदा योत्तरेतटे ॥ पराशरेण ऋषिणा तस्य तुष्टावरन्ददौ ॥ ३ ॥ देव्युवाच ॥ भो भो ऋषिवर श्रेष्ठ तुष्टाहन्तवमक्तिः ॥ वरं याचस्व विप्रेन्द्र पराशरमहामते ॥ ४ ॥ पराशर उवाच ॥ यदि तुष्टासि मे देवि यदि देयो वरो मम ॥ पुत्रो मे दीयतां शीघ्रं सर्वशास्त्रविशारदः ॥ ५ ॥ तीर्थचान्नमवेद्वि मन्निधानं वरेण तु ॥ लोकोपकारहेतवर्थं स्थीयतां गिरिनन्दिनि ॥ ६ ॥ पराशराभिधानेन नर्मदादक्षिणेतटे ॥ पराशरवचः श्रुत्वा देवी हिमवतस्सुता ॥ ७ ॥ एवं भवतु ते विप्र इत्युक्त्वान्तरधीयत ॥

पार्वती उनको वर देती हुई ॥ ३ ॥ देवी बोली कि हे ऋषिवर श्रेष्ठ ! तुम्हारी भक्तिसे हम प्रसन्न हैं हे विप्रेन्द्र, महामते, पराशर ! वर मांगो ॥ ४ ॥ तब पराशरजी बोले कि हे देवि ! जो मुझपर आप प्रसन्नहो और जो मुझे वर देना है तो सब शालों का जाननेवाला पुत्र मुझे जल्दी दिया जावे ॥ ५ ॥ और हे देवि ! यहां वरके समीप तीर्थ भी हो जावे हे गिरिनन्दिनि ! लोकोंके उपकार के वास्ते आप भी यहां स्थित होवें ॥ ६ ॥ पराशर के नाम से नर्मदाके दक्षिणतट में तीर्थ होवे पराशर के वचनको

सुन हिमाचलकी कन्या पार्वती देवी ने कहा ॥ ७ ॥ कि हे विप्र ! तुम्हारा ऐसाही हो यह कहकर अन्तर्द्वानि होगई महात्मा पराशर भी पार्वती को आपत्तेहुये ॥ ८ ॥
देवता और दैत्यों से नमस्कार कियेगये महादेवका भी रथापन करतेहुये जो कि देवताओं से पूजेगये और दानवों को डरावने हैं ॥ ९ ॥ पराशर महात्मा भी सन्ताप से रहित व कृतार्थ होगये उम तीर्थ में निर्मलमन व पवित्र होकर भक्तिसे जो ॥ १० ॥ हे नृपनन्दन ! चैत, सावन और अगहन महीने के उजियाले पाखमें सदा ॥
११ ॥ हे पाण्डवश्रेष्ठ ! महादेव व पार्वती का पूजन करे व अष्टमी, चौदस और सूर्यग्रहण में हमेशा ॥ १२ ॥ काम क्रोध से रहित होकर स्त्री व पुरुष वहां नर्मदा

पराशरोमहात्माच स्थापयामास पार्वतीम् ॥ ८ ॥ शङ्करंस्थापयामास सुरासुरनमस्कृतम् ॥ अर्चितं सर्वदेवानां दा
नवानान्दुरासदम् ॥ ९ ॥ पराशरोमहात्माच कृतार्थो विगतज्वरः ॥ तस्मिंस्तीर्थेतुयोभक्त्या शुचिः प्रयतमानसः ॥
१० ॥ मासे चैत्रे च विख्याते श्रावणे नृपनन्दन ॥ मासिमार्गशिरै चैव शुक्लपक्षे तु सर्वदा ॥ ११ ॥ शङ्करं पाण्डवश्रेष्ठ नि
रिजं पूजयेत्तथा ॥ अष्टम्यां च चतुर्दश्यां सूर्यपर्वणि सर्वदा ॥ १२ ॥ स्त्रियो वा पुरुषा वापि कामक्रोधविवर्जिताः ॥ तत्र
गत्वा शुचौ स्थाने नर्मदादक्षिणेतटे ॥ १३ ॥ उपोष्य परयाभक्त्या व्रतं कुर्येर्महासुने ॥ रात्रौ जागरणं कृत्वा दीपदानं
स्वशक्तिः ॥ १४ ॥ सपत्नीकानुत्तमांश्च शीलश्रद्धासमन्वितान् ॥ पूजयेद्ब्राह्मणान्पार्थ अन्नदानं हिरण्यैः ॥ १५ ॥
वस्त्रेष्वन्नदानेन शययताम्बूलभोजनैः ॥ श्राद्धं कार्यं नृपश्रेष्ठ आमश्राद्धं प्रशस्यते ॥ १६ ॥ आमं चतुर्गुणं प्रोक्तं ब्राह्म
णानां शुधिष्ठिर ॥ वेदोक्तेन विधानेन द्विजाः पूज्याः प्रयत्नतः ॥ १७ ॥ हस्तमानत्रकुशैश्च तिलैश्च वाञ्छितैर्नृप ॥ विप्रंचा

के दक्षिणवाले किनारे पर अच्छी जगह में जाकर ॥ १३ ॥ उपासकर बड़ी भक्तिसे व्रत करे व हे महासुने ! रात में जागरण कर अपनी शक्तिके अनुसार दीपदान करे ॥ १४ ॥ और शील व श्रद्धा से युक्त उत्तम सपत्नीक ब्राह्मणों का हे पार्थ ! अन्न व सोने के दान से पूजन करे ॥ १५ ॥ कपडा, छाता, पलंग, पान और भोजनों से हे नृपश्रेष्ठ ! श्राद्ध करना चाहिये यहां कच्चे श्राद्धकी तारीफ है ॥ १६ ॥ हे युधिष्ठिर ! ब्राह्मणों को कच्चा अन्न उनके खाने से चांगुना कहा गया है वेद में कहेहुये

विधान से व बड़े थल से ब्राह्मणोंका पूजन करना चाहिये ॥ १७ ॥ और हे नृप ! हाथ २ भरके कुश व साफ तिलों से श्राद्ध करे ब्राह्मण को उत्तर और अपने को दक्षिण मुहँ बिठावे ॥ १८ ॥ अन्नको कुशों पर रख कर ब्राह्मणों के आगे ऐसे कहे कि इस तीर्थ के प्रभाव से प्रेत उत्तम लोक को जावें ॥ १९ ॥ और हमारा पाप नष्ट होजावे सदा कल्याण की वृद्धिहोवे और हे द्विजोत्तम ! वंश व भाईलोग वृद्धिको प्राप्तहोवें ॥ २० ॥ ब्राह्मणसे इस प्रकार कह पराशर के आश्रममें दान देवे हे पाण्डवश्रेष्ठ ! पराशरके श्रेष्ठआश्रममें गऊ, गृथिवी, बैल, सोना, अन्न और वस्त्रोंको अपनी शक्तिसे देवे जो मनुष्य भक्तिसे इस कथाको सुनता है वह भी पापों से छूटजाता वश्रेष्ठ ॥ पराशरके श्रेष्ठआश्रममें गऊ, गृथिवी, बैल, सोना, अन्न और वस्त्रोंको अपनी शक्तिसे देवे जो मनुष्य भक्तिसे इस कथाको सुनता है वह भी पापों से छूटजाता

दञ्चुखंचैव आत्मानंदं विण्णमुखम् ॥ १८ ॥ आसन्दर्भेषु निःक्षिप्य इत्युच्चार्य द्विजाग्रतः ॥ प्रेतायान्नुपरं लोकं तीर्थं स्यात्स्य प्रभावतः ॥ १९ ॥ पापं संप्रशमं यातु यातु वृद्धिस्तदा शुभम् ॥ वृद्धिया तु सदा वंशो ज्ञातिवर्गो द्विजोत्तम ॥ २० ॥ एवमुच्चार्य विप्रन्द्रं देयं पाराशराश्रमे ॥ गोभूनीलिहिरया नि अन्नं वस्त्रं च शक्तिः ॥ २१ ॥ दातव्यं पाण्डवश्रेष्ठ पराशरवराश्रमे ॥ यः शृणोति नरो भक्त्या सोऽपि पापैः प्रमुच्यते ॥ २२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे रेवाखण्डे पराशरतीर्थमहिमानुवर्णने नाम शततमोऽध्यायः ॥ १०० ॥ * ॥ * ॥ * ॥

मार्कण्डेय उवाच ॥ भीमेश्वरं ततो गच्छेत्सर्वपापक्षयङ्करम् ॥ सेव्यतेऽह्नि सदैव भीमव्रतधरैरपि ॥ १ ॥ तत्र तीर्थं तु यः स्नात्वा सोऽपवाप्नोति तन्द्रयः ॥ जपं चैकाक्षरं मन्त्रं ध्वंवाहुर्द्विवाकरम् ॥ २ ॥ तस्य जन्माजितं पापं तत्क्षणादेव नश्यति ॥ सप्तजन्माजितं पापं गायत्र्या नश्यते ध्रुवम् ॥ ३ ॥ दशभिर्जन्मजनितं शतेन च पुराकृतम् ॥ त्रिजन्मना सह ॥ २१ ॥ २२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे रेवाखण्डे प्राकृतभाषाऽनुवर्णने नाम शततमोऽध्यायः ॥ १०० ॥ * ॥ * ॥ * ॥

मार्कण्डेयजी बोले कि तदनन्तर मन्त्र पापों के नाश करनेवाले भीमेश्वर को जावे जोकि बड़े भयानक व्रतके करनेवाले भी श्रुपियोंके गणोंसे सेया जाता है ॥ १ ॥ उस तीर्थ में नहायकर उपास किये हुये व इन्द्रिया को जीते हुये जो मनुष्य ऊपरको हाथ किये हुये सूर्य के सामने एक अक्षर के मन्त्र को जपता है ॥ २ ॥ उसके पूर्व जन्म में जमा किया हुआ पाप उसी क्षणमें नष्ट हाता है और सात जन्मों का जमा किया हुआ पाप गायत्री से निश्चय करके नष्ट होजाता है ॥ ३ ॥ एक जन्मका पाप

दश गायत्री से और अगिले का सौ से और हजार से तीन जन्मों के पापों को गायत्री नाश करती है ॥ ४ ॥ हे जनेश्वर ! वेद व पुराण के नन्वका उप जपागया उसी क्षण में पाप को जलाता है जैसे आग फूमको जलावे ॥ ५ ॥ और जो इसी बलसे कभी अज्ञान से भी पाप करे तो उसको वह फल जल्दी कभी नहीं होता है ॥ ६ ॥ उस तीर्थ में शक्ति के अनुमार गोदान देवे तो हे पाण्डुनन्दन ! उसका सम्पूर्ण फल अक्षय होता है ॥ ७ ॥ मार्कण्डेयजी बोले कि हे राजेन्द्र ! तदनन्तर उत्तम नारदेश्वर तीर्थ को जावे सब तीर्थों में बड़े जिस तीर्थ को नारद ने बनाया है ॥ ८ ॥ तब युधिष्ठिरजी बोले कि हे मुनिश्रेष्ठ ! नारद ने किस तीर्थ को बनाया

स्नेह गायत्रीहन्ति किल्बिषम् ॥ ४ ॥ वैदिकलौकिकं चापि जाप्यं जप्तं जनेश्वर ॥ तत्क्षणाद्दहतं पापं तृणचज्ज्वलनो यथा ॥ ५ ॥ तदेव बलमाश्रित्य कदाचित्पापमाचरेत् ॥ अज्ञानात्तस्य तत्त्वप्रं न फलं हि कदाचन ॥ ६ ॥ तत्र तीर्थे तु गोदानं शक्तिमात्रेण दापयेत् ॥ तदक्षयं फलं सर्वं जायते पाण्डुनन्दन ॥ ७ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ ततो गच्छेत्तुराजेन्द्र नारदेश्वरमुत्तमम् ॥ तीर्थानां परमन्तीर्थं निर्मितं नारदेन तु ॥ ८ ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ नारदेन मुनिश्रेष्ठ कस्य तीर्थं विनिर्मितम् ॥ एतद्वाख्याहि मे सर्वं प्रसन्नो यदि सत्तम ॥ ९ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ परमं हि सुतश्चापि नारदो भगवानृषिः ॥ नर्मदायोत्तरे कूले तपस्तेपे पुराकृते ॥ १० ॥ नवनाडी निरोधेन काष्ठावस्थाङ्गतेन च ॥ तोषितः श्रीमहादेवो नारदेन युधिष्ठिर ॥ ११ ॥ ईश्वर उवाच ॥ तुष्टो हंतव विप्रेन्द्र योगीश्वर अयोनिज ॥ वरं प्रार्थय हे देव यत्ते मनसि वर्तते ॥ १२ ॥ नारद उवाच ॥ त्वत्प्रसादेन मोदेव योगश्चैव प्रसिद्ध्यतु ॥ ईश्वर उवाच ॥ योगो भवतु भक्तिस्ते सर्वकालं मे भवतु ॥ १३ ॥ स्वेच्छाचारो

है हे सत्तम ! जो आप प्रमन्न हो तो यह सब मुझ से कहो ॥ ९ ॥ तब मार्कण्डेयजी बोले कि आगे सतयुग में ब्रह्मा के पुत्र भगवान् नारद अपि नर्मदा के उत्तर वाले तटपर तपस्या करते हुये ॥ १० ॥ हे युधिष्ठिर ! नवो इन्द्रियों के रोकने से काठकीसी हालत को प्राप्त हो रहे नारद ने श्रीमहादेव को प्रमन्न किया ॥ ११ ॥ तब महादेवजी बोले कि हे अयोनिज ! हे योगीश्वर ! हे विप्रेन्द्र ! हम तुम से प्रसन्न हैं इस से हे देव ! जो तुम्हारे मनमें हो उस वरको मांगो ॥ १२ ॥ तब नारद बोले कि हे

देव ! आपके प्रसादमे हमारा योग सिद्ध होवे तब महादेवजी बोले कि तुम्हारे योग होवे और हमेशा हमारी भक्ति रहे ॥ १३ ॥ और इस संसारमे स्वर्ग व पातालमे अपनी इच्छा से घूमो और है योगिन् ! मनुष्यलोक में भी विचरो किमी से नहीं रोकें जासकेहो ॥ १४ ॥ सातस्वर, तीनग्राम और इच्छीम मूर्च्छना व हमको खुश करनेवाला दिव्य नाचना व गाना तुम्ह योगीको सदा याद रहेगा ॥ १५ ॥ देवता, दानव और किन्नरों की लड़ाई को सदा देखोगे और हमारे प्रमादसे तुम्हारा तीर्थ पृथिवी में बड़ा पुण्यवाला होगा ॥ १६ ॥ इतना कह महादेवजी अन्तर्द्धान होगये तब हे राजेन्द्र ! सब जीवोंके उपकार करनेवाले महादेव का नारदजी ने स्थापन किया ॥ १७ ॥

भवेगच्छ स्वर्गपातालगोचरे ॥ मर्त्येचभ्रमसेयोगिन्नकेनापिनिवार्यसे ॥ १४ ॥ सप्तस्वरास्त्रयोग्यामा भूर्च्छनास्त्वेकत्रि
शतिः ॥ ममप्रियकरंदिव्यं नृत्यङ्गीतस्त्रयोगिना ॥ १५ ॥ कलिञ्चपश्यसेनित्यं देवदानवकिन्नरैः ॥ त्वर्त्तीर्थभूतलेपु
एयं मत्प्रसादाद्भविष्यति ॥ १६ ॥ इत्युक्त्वान्तर्दधेदेवो नारदस्तत्रालिङ्गिनम् ॥ स्थापयामासराजेन्द्र सर्वसत्त्वोपकार
कम् ॥ १७ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ पृथिव्यासुत्तमंतीर्थं निर्मितंनारदेनतु ॥ तस्मिंस्तीर्थेनरश्रेष्ठ नागच्छेद्विजितेन्द्र
यः ॥ १८ ॥ मासिमाद्रपदेरम्ये कृष्णपक्षेचतुर्दशीम् ॥ उपोष्यपर्याभक्त्या रात्रौकुर्वीतजागरम् ॥ १९ ॥ छत्रंतत्र
प्रदातव्यं ब्राह्मणेशुभलक्षणम् ॥ शस्त्रेणनिहतायेतु तेषांश्राद्धंप्रदापयेत् ॥ २० ॥ यान्तितेपरमंलोकं पिण्डदानप्र
भावतः ॥ कर्पिलाचैवदातव्या तत्रदेशेनराधिप ॥ २१ ॥ अस्यश्राद्धप्रभावेण ब्राह्मणानानराधिप ॥ नर्मदातोयपा
नस्य न्यायार्जितधनस्यच ॥ २२ ॥ एतेषाञ्चप्रभावेण प्रेतायान्तुपराङ्गतिम् ॥ इत्युच्चार्यद्विजेदेया दक्षिणाचम्वशक्ति

फिर मार्कण्डेयजी बोले कि पृथिवी में नारद का बनायाहुआ तीर्थ उत्तम है हे नरश्रेष्ठ ! इन्द्रियों को जीतेहुये मनुष्य उस तीर्थको जावे ॥ १८ ॥ भादोंके अधिपार
पाखकी चौदस को उपामकर बड़ी भक्तिसे रातमें जागरण करे ॥ १९ ॥ अर्च्छे ब्राह्मणको वहा छतेंका दानकर और जो हथियारों से मारेगये हैं उनका श्राद्ध करे ॥
२० ॥ पिण्डदानके प्रभावसे वे प्रेत उत्तमलोक को जाते हैं और हे नराधिप ! वहां कपिलागङ्गा देना चाहिये ॥ २१ ॥ और हे नराधिप ! श्राद्धके समय में यह कहना
चाहिये कि इस श्राद्धके प्रभावसे व नर्मदा के जलके पीने व ब्राह्मणों व नीति से कमायेहुये धन ॥ २२ ॥ इनके प्रभावसे प्रेतलोग परमगतिको पावे ऐसे कहकर अपनी

शक्तिके अनुसार ब्राह्मण को दक्षिणा देनी चाहिये ॥ २३ ॥ और हे विशालाक्ष ! ब्राह्मणों को हविष्यान्न देवे एक विद्याके दानमे अक्षयगति होती है ॥ २४ ॥ और हे राजेन्द्र ! उस तीर्थमें जो ब्राह्मण के लिये तिलोके सहित सोना देवे वह स्वर्गको जाता है ॥ २५ ॥ फिर मार्कण्डेयजी बोले कि हे राजेन्द्र ! तदनन्तर अत्युत्तम जो दो तीर्थ हैं उन में जावे सब पापोंका नाश करनेवाला एक दधिच्छन्द और दूसरा मधुच्छन्द है ॥ २६ ॥ दधिच्छन्द में जो मनुष्य स्नानकर ब्राह्मणको दही देता है भारत ! उसको मात जन्मोत्तक दही खानेको मिलता है ॥ २७ ॥ उसको रोग, बुढ़ापा, शोच और ईर्ष्या कभी नहीं आते हैं और वह हजारजन्मतक बड़ेही कुलमें पैदा होता है ॥ २८ ॥

तः ॥ २३ ॥ हविष्यान्नं विशालाक्ष द्विजानाञ्चैव दापयेत् ॥ विद्यादानेन चैकेन अक्षयागतिराप्यते ॥ २४ ॥ तस्मिंस्तो
र्थे तुराजेन्द्र यो दद्यादग्रजन्मने ॥ काञ्चनं स तिलैश्चैव सगच्छेच्च त्रिविष्टपम् ॥ २५ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ ततो गच्छे
त्तुराजेन्द्र तीर्थद्वयमनुत्तमम् ॥ दधिच्छन्दं मधुच्छन्दं सर्वपापक्षयङ्करम् ॥ २६ ॥ दधिच्छन्देन रः स्नात्वा यो दद्याच्च द्वि
जेदधि ॥ उपतिष्ठति तस्यैतत्सप्तजन्मसु भारत ॥ २७ ॥ नव्याधिर्न जरा तस्य न शोको न च मत्सरः ॥ दशचन्द्रशतं या
वज्जायेते विपुले कुले ॥ २८ ॥ मधुच्छन्दे तु मधुना मिश्रितञ्च तिलोदकम् ॥ न च वैवस्वतन्देवं पश्यते सप्तजन्मसु ॥ २९ ॥
मधुना सह मिश्रन्तु तिलं यस्तु प्रयच्छति ॥ तस्य पुत्रस्य पौत्रस्य दारिद्र्यं नैव जायते ॥ ३० ॥ मधुना सह संमिश्रं तिलं य
स्तु प्रयच्छति ॥ मधुना सह संमिश्रं यस्तु पिण्डं प्रदापयेत् ॥ ३१ ॥ तस्मिंस्तोर्थे तु यः स्नात्वा विधिवद्दक्षिणामुखः ॥ पि
तापितामहश्चैव तथैव प्रपितामहः ॥ ३२ ॥ षोडशाब्दानि तुष्यन्ति नात्र कार्या विचारणा ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ ततो ग

और मधुच्छन्द तीर्थ में मिठाई से मिले हुये तिलोंको जो देता है वह सात जन्मोत्तक यमराज को नहीं देखता है ॥ २९ ॥ मिठाई से मिले हुये तिलोंको जो देता है उस उसके लडके व पोतोंको भी दारिद्र्य नहीं होता है ॥ ३० ॥ फिर भी मिठाई से मिले तिलोंको जो देता है अथवा मिठाई से मिले हुये तिलोंके लड्डूको जो देता है उस को भी पहले कहा हुआ फल होता है ॥ ३१ ॥ उस तीर्थमें जो विधिसे स्नानकर व दक्षिण मुहँ बैठकर बाप, दादे और परदादेको पिण्ड देता है ॥ ३२ ॥ उसके वे पितर

सोलह वर्षतक सन्तुष्ट रहते हैं इसमें कुछ विचार नहीं करना चाहिये मार्कण्डेयजी बोले कि हे राजेन्द्र ! तदनन्तर अत्युत्तम नन्दितीर्थ को जावे ॥ ३३ ॥ जहां निश्चय से नन्दी सिद्धहुये वह सब हम कहते हैं आगे नर्मदा को अपने सामनेकर नन्दी ने महादेव के वास्ते ॥ ३४ ॥ तप किया और मन्त्रको जपतेहुये एक तीर्थसे दूसरे तीर्थ को जातेहुये दधिच्छन्द और मधुच्छन्द को छोड़ जबतक जावे ॥ ३५ ॥ तबतक प्रसन्न होगये महादेवजी उस नन्दी से बोले महादेवजी ने कहा कि हे नन्दीश ! हम प्रसन्न हैं तुम अपने मनमाने वरको मांगो ॥ ३६ ॥ क्योंकि तुम्हारे उस तपस्या व तीर्थयात्रा के करने से हम सन्तुष्ट हैं तब नन्दी बोले कि धन, कुल

च्छेचुराजेन्द्र नन्दितीर्थमनुत्तमम् ॥ ३३ ॥ यत्रसिद्धश्चैवनन्दी तत्सर्वकथयाम्यहम् ॥ नर्मदापुरतःकृत्वापुरानन्दी महेश्वरम् ॥ ३४ ॥ तपस्तप्तं जपंश्चैव तीर्थात्तीर्थजगामह ॥ दधिच्छन्दं मधुच्छन्दं यावत्त्यक्त्वा च गच्छति ॥ ३५ ॥ त तस्तुष्टो महादेवो नन्दिनन्तमुवाचह ॥ महेश्वर उवाच ॥ भो भोः प्रसन्नो नन्दीश वरं वृणुयथेप्सितम् ॥ ३६ ॥ तपसा तेन तुष्टोहं तीर्थयात्राकृतेन च ॥ नन्द्युवाच ॥ न चाहं कामये वित्तवन्न चाहं कुलसन्ततिम् ॥ ३७ ॥ मुक्तिन्न कामये चान्यदेवेश चरणाम्बुजम् ॥ कुमिकीटपतङ्गेषु तिर्यग्योनि गतेषु च ॥ ३८ ॥ जन्मजन्मनियास्यामि त्वद्भक्तिरचला च मे ॥ तथेति चोक्तो देवेन परमेशेन नन्दिकः ॥ ३९ ॥ गृहीत्वा तं करेशीघ्रं जगाम निलयं हरः ॥ तस्मिंस्तीर्थेतु यः स्नात्वा भक्त्या त्र्यम्बं प्रपूजयेत् ॥ ४० ॥ अग्निष्टोमं च यत्पुण्यं फलं प्राप्नोति मानवः ॥ तत्र तीर्थे महापुण्ये प्राणत्यागं करोति यः ॥ ४१ ॥ शिवस्यानुचरो भूत्वा मोदते कल्पमक्षयम् ॥ ततः कालेन महता जायते विपुले कुले ॥ ४२ ॥ वेदवेदाङ्गतत्त्वज्ञे जी

और सन्तान को हम नहीं चाहते और न मुक्ति व न औरही कुछ चाहते हैं हे देवेश ! आपके चरणकमलों को हम चाहते हैं कुमि, कीट और पतिंगों की योनिमें अथवा पशु व पक्षियों की योनिमें ॥ ३७ ॥ हम जन्म २ में जावे परन्तु आपकी अवलम्बित हमको होवे तब महादेवने नन्दी से कहा कि ऐसा ही हो ॥ ३८ ॥ और हाथ पकड़कर नन्दी के सहित महादेव अपने स्थानको जल्दी जातेहुये जो मनुष्य उस तीर्थ में स्नानकर भक्तिसे महादेवका पूजन करता है ॥ ४० ॥ वह अग्निष्टोमयज्ञ में जो पुण्य होता है उस फलको पाता है और बड़े पुण्यवाले उस तीर्थ में जो प्राणोंको छोड़ता है ॥ ४१ ॥ वह महादेव का सेवक होकर अक्षय कल्पभर

आनन्द करता है तदनन्तर बहुत कालके बाद वेद व वेदांगों के तत्त्वों के जाननेवाले बड़े कुलमें पैदा होकर सौवर्ष जीता है हे पार्थ ! सब सन्तोषों के देनेवाले इस आख्यान को हमने तुमसे कहा ॥ ४२ ॥ यह बड़ा दुर्लभ है और सबके सब पापोंका नाश करनेवाला है ॥ ४३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डे प्राकृतभाषाऽनुवादेनन्दितीर्थवर्णनोनामैकाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०१ ॥

मार्कण्डेयजी बोले कि हे राजेन्द्र ! तदनन्तर उत्तम वरुणेश्वर को जावे हे नृपसत्तम ! पहले जहां वरुणदेव सिद्धहुये हैं ॥ १ ॥ मनुष्यलोग पीना, शाक, प्रसा ॥

वेचशरांशतम् ॥ एतत्तेकथितंपार्थ सर्वतुष्टिप्रदं शुभम् ॥ ४३ ॥ दुर्लभं सत्यसंज्ञस्य सर्वपापक्षयङ्करम् ॥ ४४ ॥ इति

श्रीस्कन्दपुराणे रेवाखण्डेनन्दितीर्थवर्णनोनामैकाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०१ ॥ * ॥

मार्कण्डेय उवाच ॥ ततो गच्छेत्तुराजेन्द्र वरुणेश्वरमुत्तमम् ॥ यत्र सिद्धोपुरादेवो वरुणो नृपसत्तम ॥ १ ॥ पियाक शक्रपणैश्च कृच्छ्रचान्द्रायणादिभिः ॥ आराध्य गिरिजानाथं ततस्सिद्धिं ज्ञातुं ॥ २ ॥ तत्र तीर्थे नरः स्नात्वा स न्तर्गम्य पितृदेवताः ॥ पूजयेच्च कृच्छ्रं भक्त्या सगच्छेत्परमं पदम् ॥ ३ ॥ कुरिडकां वर्द्धनीं वापि महद्वाजलभाजनम् ॥ अत्रेन सहितं पार्थ तस्य पुण्यफलं शृणु ॥ ४ ॥ यत्फलं लभेत मर्त्यस्स त्रैलोक्ये ॥ तत्फलं समवाप्नोति नात्र कार्या विचारणा ॥ ५ ॥ सर्वेषामेव दानानामन्नदानमनुत्तमम् ॥ यद्यत्प्रीतिकरञ्चैव तोयञ्च नृपसत्तम ॥ ६ ॥ तत्र तीर्थे मृता

और कृच्छ्र व चान्द्रायण आदि ब्रतोंसे महादेव का सेवन कर तदनन्तर सिद्धि को प्राप्त हुये ॥ २ ॥ जो मनुष्य उस तीर्थमें स्नान कर और पितर व देवताओं का तर्पण कर भक्तिसे महादेवका पूजन करता है वह परमपद को जाता है ॥ ३ ॥ और हे पार्थ ! कुंडी व बड़नी और कोई बड़ा पानीका पात्र अन्नके सहित जो दिया जाता है उसके पुण्य फल को तुम सुनो ॥ ४ ॥ बारह वर्ष तक जिनमें बैठकर रहती है ऐसे सन्न (यज्ञ) में जिस फल को मनुष्य पाता है उसी फल को पाता है इसमें कुछ विचार नहीं करना चाहिये ॥ ५ ॥ सब दानोंमें अन्नदान बड़ा उत्तम है व हे नृपसत्तम ! और भी जो जो सबका प्रसन्न करनेवाला पदार्थ जैसे कि जल है उनको देवे ॥ ६ ॥ उस तीर्थमें मरे हुये

महात्मा मनुष्यों का वरुणलोक में प्रलयतक वास होता है ॥ ७ ॥ वहाँ बहुत काल तक भोगोंको भोगकर फिर मनुष्यलोकमें पैदाहोता है अन्नदान का देनेवाला पैदा होकर सौवर्ष बराबर जीता है ॥ ८ ॥ मार्कण्डेयजी बोले कि फिर हे राजेन्द्र ! अत्युत्तम अग्नितीर्थ को जावे जहां तपस्याको कर बड़े तेजवाले अग्निभगवान् मिच्छुह्ये है ॥ ९ ॥ आगे जिसको मुनिने दण्डकवन में सर्वभर्त्री करदिया था वही अग्नि नर्मदा के तटपर बैठकर पवित्र होगये ॥ १० ॥ मनुष्य उस तीर्थ में नहाकर और पार्वती के सहित महादेवका पूजनकर सब पापों से छूटजाता है ॥ ११ ॥ जो मनुष्य उस तीर्थ में नहाकर हे नृप ! ब्राह्मणों को जल देकर सोना देता है वह श्रवणगुने फलको

नाञ्च नराणां भवितात्मनाम् ॥ वारुणे च पुरेवासो यावदाहुतसम्प्लवम् ॥ ७ ॥ भुक्त्वा तत्र बहूंकालं मर्त्यलोकैः भिजायते ॥ अन्नदानप्रदो नित्यं जीवेच्च शरांशतम् ॥ ८ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ ततो गच्छेच्च राजेन्द्र अग्नितीर्थमनुत्तमम् ॥ यत्र सिद्धो महातेजास्तपःकृत्वा हुताशनः ॥ ९ ॥ सर्वभक्षी कृतो यश्च दण्डके मुनिना पुरा ॥ नर्मदा तटमाश्रित्य पूतो जातो हुताशनः ॥ १० ॥ तत्र तीर्थे नरस्सनात्वा समभ्यर्च्य जगद्गुरुम् ॥ उभया सहितं भक्त्या सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ११ ॥ तत्र तीर्थे नरस्सनात्वा दत्तैर्वैकाञ्चनं नृप ॥ ब्राह्मणेभ्यो जलं दत्त्वा लभते वाबुदं फलम् ॥ १२ ॥ दधिच्छन्दे मधुच्छन्दे नन्दीशे वारुणे तथा ॥ आग्नेये तत्फलं तात स्नात्वा मुच्येत किं त्विषैः ॥ १३ ॥ ते वन्द्यामानुषेलोकैः धन्याश्चाप्तमनोरथाः ॥ ये हि दृष्टं महापुण्यं नर्मदा तीर्थं पञ्चकम् ॥ १४ ॥ स्वर्गलोकमवाप्तुं स्तेयावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥ ततः स्वर्गं च्युताश्चापि राजानस्सन्ति धार्मिकाः ॥ १५ ॥ सर्वपापविनिर्मुक्ता भुञ्जते तेऽचलां महीम् ॥ आखण्डलप्रतापो यं नर्मदा तटसेवने ॥ १६ ॥

पाता है ॥ १२ ॥ हे तात ! दधिच्छन्द, मधुच्छन्द, नन्दीश्वर, वारुण और आग्नेय में वह फल होता है कि स्नान करके सब पापोंसे छूटजाता है ॥ १३ ॥ मनुष्यलोकमें वे मनुष्य वन्दना करने के योग्य व धन्य हैं और उन्हींको सब मनोरथ मानो मिलगये कि जिन्होंने बड़े पुण्यवाले नर्मदा के पाँचों तीर्थोंको देखा है ॥ १४ ॥ वे जबतक चौदहो इन्द्र रहते हैं तबतक स्वर्गलाग में प्राप्त बने रहते हैं तदनन्तर स्वर्गसे उतरेहुये व सब पापोंसे छूटेहुये धर्मात्मा राजा होते हैं और पृथिवी का आचल

भोग करते हैं नर्मदातट के सेवन से इन्द्र के समान प्रतापवाला होता है ॥ १५ ॥ १६ ॥ कनखल में गङ्गा पुण्यवाली है और सरस्वती कुरुक्षेत्र में और गांव व वन में कहीं भी हों नर्मदा सब कहीं पवित्र हैं ॥ १७ ॥ नर्मदा के किनारे रहता हुआ जो हमेशा उनका जल पीता है वह मानो सब तीर्थों में स्नान कर चुका और उसको रोज रोज सोमलता के पीनेका फल होता है ॥ १८ ॥ गङ्गाआदि सब नदियां व समुद्र व तालाब कल्पके अन्त में नष्ट होजाते हैं परन्तु नर्मदा कभी नहीं नष्ट होती है ॥ १९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डे प्राकृतभाषाऽनुवादे तीर्थपञ्चकवर्णनो नाम द्वादशधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०२ ॥

गङ्गाकनखले पुण्याकुरुक्षेत्रे सरस्वती ॥ ग्रामे वायुदिवारण्ये पुण्या सर्वत्र नर्मदा ॥ १७ ॥ रेवा तीरं वसन्ति तं तोयं यस्तु स दापिवेत् ॥ स्नातोऽसौ सर्वतीर्थेषु सोमपानं दिने दिने ॥ १८ ॥ गङ्गाद्यां सरितस्तस्मात्समुद्राश्च सरांसि च ॥ कल्पान्ते संक्षयं यान्ति नमृतैकाचनमर्मदा ॥ १९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डे तीर्थपञ्चकवर्णनो नाम द्वादशधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०२ ॥

युधिष्ठिर उवाच ॥ हनूमदीश्वरन्नाम कथं जातं महामते ॥ ब्रह्महत्या हरं तीर्थं रेवायादन्विषे सटे ॥ १ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ साधुपुष्टं महाबाहो सोमवंशविभूषण ॥ गुह्याद्गुह्यतरन्तीर्थं नाख्यातं कस्यचिन्मया ॥ २ ॥ तव स्नेहात्प्रवक्ष्यामि पीडितो वार्द्धकेन तु ॥ जातं पूर्वं महायुद्धं रामरावणयोरपि ॥ ३ ॥ पुलस्त्यो ब्रह्मणः पुत्रस्तस्य वै विश्रवास्तुतः ॥ रामाणस्तस्य सञ्जातो दशग्रीवोऽपिराक्षसः ॥ ४ ॥ त्रैलोक्यविजयी जातः प्रसादाच्छूलिनस्तथा ॥ गीर्वाणानि जितास्सर्वे रामस्य गृहिणीहता ॥ ५ ॥ यद्भ्राताकुम्भकर्णो वै सीतासावनम्राश्रिता ॥ विभीषणेन पापोऽयं मन्दस्त्यक्तो विचार्य

युधिष्ठिरजी बोले कि हे महामते ! नर्मदा के दक्षिणवाले तट में ब्रह्महत्या का हरेनवाला हनूमदीश्वर नामका तीर्थ कैसे हुआ ॥ १ ॥ तब मार्कण्डेयजी बोले कि हे सोमवंशविभूषण ! हे महाबाहो ! आपने बहुत अच्छा पूछा गुप्तसे अतिगुप्त इस तीर्थको मैंने किसीसे नहीं कहा है ॥ २ ॥ यद्यपि बुढ़ापे से पीड़ित हूँ तथापि तुम्हारे रनेहसे कहूँगा अगिले जमाने में राम और रावण का बड़ा युद्ध हुआ ॥ ३ ॥ ब्रह्मा के लड़के पुलस्त्य हुये, उनके पुत्र विश्रवा हुये, विश्रवा के दशकण्ठवाला राक्षस रावण हुआ ॥ ४ ॥ वह महादेव के प्रमाद से तीनों लोकोंका जीतनेवाला हुआ उसने सब देवताओंको जीतलिया और रामकी रानी सीताको हरले गया ॥ ५ ॥ जिसका भाई

कुम्भकर्ण था, सीता अशोकवन में रहती थीं, विभीषण ने विचार करके इस पापी नाचको छोड़ दिया ॥ ६ ॥ वह सहस्रबाहु से जीतागया था और सहस्रबाहु को परशुराम ने जीताथा वह रावण रामचन्द्र से मारागया और उसकी राज्यभी हर लीगई ॥ ७ ॥ तदनन्तर रामने उस बड़े बलवाले राज्ञसको संग्राम में जीता और हनूमान् ने लङ्का में जाकर वनको तोड़ा और राज्ञसों को मारा ॥ ८ ॥ रावण का लड़का अक्षकुमार भी हनूमान् से संग्राममें मारागया इस प्रकार रामायणके होनेपर और सीताके छूटनेपर ॥ ९ ॥ और रामको अयोध्या जानेपर हे पार्थ ! बड़े बलवाले हनूमान् महादेव के प्रणाम करने के वास्ते कैलासको गये ॥ १० ॥ तब नन्दीने

च ॥ ६ ॥ सजितः कर्त्तृवीर्येण सजितोजामदग्निना ॥ सहतोरामचन्द्रेण तस्यराज्यं हतन्तथा ॥ ७ ॥ ततोरामेण रज्जोपि जितस्संख्येमहाबलः ॥ वनं भग्नं हतोरज्जो गत्वा वायुसुतेन वै ॥ ८ ॥ रावणस्य सुतस्संख्ये हतश्चाक्षकुमारकः ॥ एवं रा मायणे जाते सीतामोक्षकृतेततः ॥ ९ ॥ अयोध्यायांगतेरामे हनूमांश्च महाबलः ॥ कैलासं हि गतः पार्थ प्रणामार्थं महेश्वरे ॥ १० ॥ तिष्ठतिष्ठेति चोक्तो वै नन्दिना वानरोत्तमः ॥ ब्रह्महत्यायुतस्त्वं हि राज्ञसानां वधेन हि ॥ ११ ॥ भैरवस्यास नंपुण्यं न गन्तासि महाबल ॥ हनूमानुवाच ॥ नन्दिस्तु त्वं हि वरं यच्छ पातकस्योपशान्तये ॥ १२ ॥ भूत्वानिष्पातको ह वै प्रणमामि महेश्वरम् ॥ नन्द्युवाच ॥ रुद्रदेहोद्भवा पुण्या नर्मदासरितांवरा ॥ १३ ॥ श्रवणाज्जन्मचरितं कीर्तनाद्विगुणं ब्रजेत् ॥ सप्तजन्मार्जितं पापं नश्येद्देवावगाहनात् ॥ १४ ॥ तस्मात्तीरे वसस्वश्च रेवासङ्गमदक्षिणे ॥ ध्यायमानो विरूपा क्षं विशूलकरसंस्थितम् ॥ १५ ॥ जटामुकुटसंकाशं व्यालयज्ञोपवीतकम् ॥ उमाद्वर्द्धधरन्देवं गोरान्जासनसंस्थि

हनूमान्ने कहा कि खड़े रहो २ तुम राज्ञसों के मारने से ब्रह्महत्यासे युक्त हो रहे हो ॥ ११ ॥ इससे हे महाबल ! पवित्र भैरवके आसनको तुम मत जाओ तब हनूमान् बोले कि हे नन्दिन् ! तुम हमारे पातक शान्त होने के वास्ते वर देवो ॥ १२ ॥ तो हम पापसे रहित होकर महादेवको नमस्कार करें तब नन्दी बोले कि नदियोंमें श्रेष्ठ व पुण्यावाली नर्मदा महादेव की देहमें पैदा हुई है ॥ १३ ॥ जिसके सुनने से एक जन्मका पाप नष्ट होता है और कहने से उससे दुना और नर्मदा के नहाने से सात जन्मोंका पाप नष्ट होजाता है ॥ १४ ॥ तिससे तीन नेत्रवाले व विशूल को हाथ में लिये हुये जटामुकुट को धरे हुये सप्तोक्त जनेऊ को पहने हुये व पार्वती को आधे अङ्ग

में धरेहुये व श्रेष्ठबैल के आसनपर बैठे हुये महादेव को ध्यावतेहुये तुम नर्मदा के दक्षिणवाले किनारे पर बसो ॥ १५ ॥ तब हनुमान् ने वही किया वहां बहुत में धरेहुये ध्यान करतेहुये उन हनुमान् से प्रसन्न हुये पार्वती के सहित महादेवजी वहां आये ॥ १७ ॥ और मेघों कीसी आवाज से भीठीवाणी को बोले कि हे वत्स ! वौतक ध्यान करतेहुये तुमको रहना पडा ॥ १८ ॥ तब पार्वती को आधेअङ्ग में धरेहुये वर्तमान महादेवजी को देख हनुमान् ने सब अङ्गोंसे नम्र होकर कहा कि हे तपस्या में बड़ेकष्ट से तुमको रहना पडा ॥ १९ ॥ अन्धके मारनेवाले व बाणासुर के मर्दन करनेवाले के लिये जयहो, भूतों के मालिकके लिये जयहो हे भैरवभूषण ! देव ! जयहो आपके लिये नमस्कार है ॥ २० ॥

तम् ॥ १६ ॥ वत्सरान्मुबह्न्यावच्छायतस्तस्यतत्र वै ॥ तत्रतुष्टोमहादेव आगतःसहभाय्यया ॥ १७ ॥ उवाचमधुरांवा
णीं मेघगम्भीरयागिरा ॥ साधुवत्सत्त्वाचात्र कष्टतपसिसंस्थितम् ॥ १८ ॥ हनुमांश्चहरन्दृष्ट्वा उमाद्वर्द्धधरंस्थितम् ॥
साष्टाङ्गप्रणतोभूत्वा जयदेवनमोस्तुते ॥ १९ ॥ जयचान्धकघाताय बाणासुरविमर्दिने ॥ जयभूतपनाथाय जयभै
रवभूषण ॥ २० ॥ जयकामविनाशाय गङ्गाशिरसिधारिणे ॥ एवंस्तुतोमहादेवो वरदोवानरस्यच ॥ २१ ॥ ईश्वर उवाच ॥
वरं प्रार्थयत्वंवत्स प्रार्थितंरभसंवद ॥ हनुमानुवाच ॥ ब्रह्मरक्षोवधाज्जाता ब्रह्महत्यामहेश्वर ॥ २२ ॥ निष्पापोहंभवेयं
वै गुणमत्सम्भाषणेनच ॥ ईश्वर उवाच ॥ नर्मदातीर्थमाहात्म्यध्यानयोगप्रभावतः ॥ २३ ॥ मन्मूर्तिदर्शनात्सद्यो नि
ष्पापोनान्नसंशयः ॥ इत्युक्त्वान्तर्दधेदेव उमासाद्विब्रिलोचनः ॥ २४ ॥ हनुमदीश्वरंतत्र स्थापयामासभक्तिः ॥ आ

आपकी जयहो ॥ २० ॥ कामदेव के नाश करनेवाले व गङ्गाको शिरपर धरनेवाले के लिये जयहो इस प्रकार हनुमान् को वर देनेवाले महादेवजी स्तुति कियेगये ॥
२१ ॥ नव महादेव बोले कि हे वत्स ! तुम वरको माँगो जो चाहते हो उसको जल्दी कहो तब हनुमान् बोले कि हे महेश्वर ! ब्रह्मराक्षसों के मारनेसे मुझको ब्रह्म-
हत्या हुई है ॥ २२ ॥ इससे अब आपके सम्भाषण से हम पापसे रहित होजावें तब महादेव बोले कि नर्मदातीर्थ के माहात्म्य व ध्यानयोगके प्रभाव ॥ २३ ॥ व हमारी
मूर्तिके दर्शनसे तुम शीघ्र पापों से छूटगये इसमें संशय नहीं है इतना कहकर पार्वती के सहित तीन आखोवाले महादेवजी अन्तर्धान होगये ॥ २४ ॥ तब वहा

हनुमान् ने हनुमदीश्वर को भक्तिसे स्थापित किया अपने योगबलसे व ब्रह्मचर्य के प्रभाव से ॥ २५ ॥ व महादेवके प्रभावसे कामनाओं के देनेवाले व जन्म मरणसे रहित व नहीं तर्क करने के योग्य व काटने के अयोग्य शिवको स्थापन किया ॥ २६ ॥ मार्कण्डेयजी बोले कि वहां हनुमदीश्वर में पहिले जो परिचय हुआ व द्वापर की आदिमें व त्रेताके अन्तमें हे नरेश्वर ! जो हाल हुआ सो सुनो ॥ २७ ॥ इस पृथिवीमें एक सुपर्णनाम के राजर्षि होतेहुये उनकी राज्य में सदा बड़ी उमरवाले मनुष्य होतेहुये और उनको हमेशा सुख होता हुआ ॥ २८ ॥ उनका पुत्र बड़ा पराक्रमी व सौ हार्योवाला होताहुआ हे नरेश्वर ! वह जप व ध्यान में हमेशा लगा रहता

तमयोगबलेनैव ब्रह्मचर्यप्रभावतः ॥ २५ ॥ ईश्वरस्यप्रभावेण कामदंस्थापितं शिवम् ॥ अच्छेद्यमप्रतर्क्यञ्च विनाशो
त्पत्तिर्वाज्जितम् ॥ २६ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ हनुमदीश्वरेतत्र प्रत्ययंयत्पुराभवत् ॥ यहत्तंद्वापरस्यादौ त्रेतान्तेचनरे
श्वर ॥ २७ ॥ सुपर्णोनामराजर्षिर्बभूववसुधातले ॥ तस्यराज्येसदासौख्यं दीर्घायुर्मानवस्सदा ॥ २८ ॥ शतबाहुर्बभू
वास्य पुत्रोभीमपराक्रमः ॥ आसक्तस्सदाकालं जपध्यानैरेश्वर ॥ २९ ॥ क्रीडतेपृथिवीं सर्वा पर्वतांश्वनानिच ॥ व
धार्थमृगयूथानामागतोविन्ध्यपर्वते ॥ ३० ॥ मृगजातिसमाकीर्णे हस्तिजातिसमाश्रिते ॥ हस्तिचित्रकशोभाढ्ये मृग
वाराहमंकुले ॥ ३१ ॥ क्रीडित्वाचततोराजा चासनेसंस्थितस्सच ॥ वनमध्येतदादृष्ट्वा भ्रमन्तं पिङ्गलं द्विजम् ॥ ३२ ॥
राजोवाच ॥ एकोवनेवनेकस्माद्भ्रमसेपुस्तिकाकरः ॥ इतश्चेतोनिरीक्षस्त्वं कथयस्वद्विजोत्तम ॥ ३३ ॥ ब्राह्मणउवा
च ॥ कान्यकुब्जात्समायातः प्रेषितो राजकन्यया ॥ राजोवाच ॥ कथयस्वप्रसादेन कस्मात्कार्यार्थाददप्रभो ॥ ३४ ॥

था ॥ २६ ॥ और सब पृथिवी व पर्वत व जङ्गलोंमें विहार करता था किसी समय हिरनोके मारनेके वास्ते विन्ध्यपर्वतपर आया ॥ ३० ॥ जोकि हिरनों व हाथियोंकी जाति से भराहुआ हाथियों के पकड़ने के वास्ते बनेहुये हाथियों के चित्रों की शोभामे युक्त हिरनों व सुवर्णों से भराहै ॥ ३१ ॥ वह राजा वहां विहारकर आसनपर बैठा तदनन्तर वनके बीचमें घूमतेहुये एक पिङ्गलव्राह्मण को देखा ॥ ३२ ॥ उससे राजा बोला कि हे द्विजोत्तम ! इधर उधर क्या देखतेहुये पुस्तक हाथमें लियेहुये अकेले वन वनमें तुम क्यों घूमतेहो सो कहो ॥ ३३ ॥ तब ब्राह्मण बोला कि हम कान्यकुब्ज से राजकन्या के भेजेहुये आये हैं तब राजा बोला कि हे प्रभो ! किस कामके वास्ते

आये हो सो अपनी दयासे कहो ॥ ३४ ॥ तब ब्राह्मण बोला कि राजा शिखण्डी कान्यकुब्ज देशको भोगता है वह राजा पुत्रों से खाली है बड़े मनोरथों से उसके एक कन्या हुई ॥ ३५ ॥ वह कन्या नर्मदाके प्रभाव से पूर्वजन्म की सुध रखनेवाली व उत्तम चालवाली है उसके पिताने उसको विवाहके लायक समझा और उससे कहा भी है ॥ ३६ ॥ पिताने कहा कि इस असारसंसारमें हम कन्यादान करेंगे तब कन्या बोली कि जिससमय मैं इच्छाकरूं उससमय मैं दीजाऊं ॥ ३७ ॥ तब कन्या के वचन से राजा विस्मय से युक्त मनवाला होगया और राजा शिखण्डी बोला कि हे महाभागे ! बतावो तो तुमने क्या कहा ॥ ३८ ॥ पिताने वचनसे वह बाला शिरसे

ब्राह्मण उवाच ॥ शिखण्डीचैव राजावै कान्यकुब्जम्बुमुच्यते ॥ अपुत्रस्समर्हीपालः कन्याजातामनोरथैः ॥ ३५ ॥ जातिस्मरशुभाचारा नर्मदायाः प्रभावतः ॥ पित्रोक्तासाचकन्यावै विवाहाय प्रकल्पिता ॥ ३६ ॥ असारैचाद्यसंसारै कन्यादानं दाम्यहम् ॥ कन्योवाच ॥ यस्मिन्काले ह्यलिप्से तस्मिन्काले प्रदीयताम् ॥ ३७ ॥ पुत्रीवाक्येन राजासौ विस्मयाविष्टचेतनः ॥ शिखण्डयुवाच ॥ कथ्यतां मे महाभागे भाषितं हित्वया कथम् ॥ ३८ ॥ पितृवाक्येन सा बाला शिरसाव नता भुवि ॥ कथयामास यद्दत्तं हनूमदीश्वरे नृप ॥ ३९ ॥ कलापिन्यस्म्यहन्ता तस्थिता भर्तुं सहा नृगा ॥ उरङ्गमेशसा न्निध्ये रेवाया उत्तरे तटे ॥ ४० ॥ हनूमतो वने पुण्ये क्रीडति स्म यद्दृच्छया ॥ भर्तुं युक्ता तत्र गृह्ये वञ्जुले सरले ह्रुमे ॥ ४१ ॥ आगता लुब्धकास्तत्र क्षुधातार्त्ता वनमुत्तमम् ॥ भर्तुं कोपयुतैः पार्पैर्हताहं पतिना सह ॥ ४२ ॥ ग्रीवां निमो टयामासुर्भक्षणात्पाटनं कृतम् ॥ हुताशनमुखे ते तु हसन्तश्चाशुलुब्धकाः ॥ ४३ ॥ भर्जयित्वा ततो मांसं भर्जयित्वा यथेच्छया ॥ सुप्ताः

भुँकी हुई है नृप ! हनूमदीश्वरमें हुये हालको कहती हुई ॥ ३९ ॥ कन्या कहती है कि हे तात ! इससे पहलेवाले जन्ममें मैं मोरकी स्त्री अर्थात् मयूरी अपने पतिके सहित नर्मदा के उत्तरवाले किनारे पर नागेश्वर के समीप रहती थी ॥ ४० ॥ उस गुप्तपुण्यवाले, हनूमदीश्वर के वनमें मोरसिरी और सरलके दूरस्थ के ऊपर अपने पतिके सहित इच्छापूर्वक विहार करती थी ॥ ४१ ॥ तबतक उस उत्तम वनमें भूँखे बहेलिया लोग आगये भरे पतिके ऊपर क्रोधसे भरे हुये उन पापियों ने मुझे पतिके सहित मार डाला ॥ ४२ ॥ मेरे गलेको मरोड़ दिया और खाने के वास्ते उसे तोड़ डाला तदनन्तर हँसते हुये वे लोग जल्दी आगमें ॥ ४३ ॥ भूनकर तदनन्तर इच्छासे

मांसको खाकर सब इन्द्रिया जिनकी ठीकहोगई ऐसे वे लोग रातमें सोये रात व्यतीत होगई ॥ ४४ ॥ उस मांसका जो कुछ हिस्सा बाकी रहगया वह गीदड़, गीध और कैवों में खाडालागया मांस और नसोंमें भरीहुई मेरी देहकी हड्डीको एक चिड़िया लेकर आसमान को उड़गई मांसके सहित उस पक्षी को देख और भी आगये ॥ ४५ ॥ चिड़ियों के झुण्डको आयाहुआ देख उसने हड्डी के टुकड़े को छोड़दिया दौड़ते व देखतेहुये उन सब चिड़ियोंके ॥ ४७ ॥ वह हड्डी हनुमदीश्वर के समीप नर्मदाके पानीमें गिरपड़ी मेरी हड्डीका टुकडा नर्मदाके जलमें गिरा ॥ ४८ ॥ उस तीर्थके प्रभावसे मैं क्षत्रियके कुलमें पैदाहुई किन्तु चन्द्रमा के समान सुखवाली स्वस्थेन्द्रियारत्नी विगताशर्वरीचयम् ॥ ४४ ॥ तन्मांसशेषजुष्टवै जम्बूकैर्गुधवायसैः ॥ मच्छरीरोद्भवंचास्थि स्नायुमांसेनसंयुतम् ॥ ४५ ॥ पत्रिणाण्डहचैकेन आकाशात्पततातदा ॥ सामिषपक्षिणंहृष्ट्वा पक्षिणोन्येसमागताः ॥ ४६ ॥

टुट्वा पक्षिसमूहन्तु अस्थिखण्डव्यसज्जयत् ॥ विहगानांसमस्तानां धावताञ्चापिपश्यताम् ॥ ४७ ॥ पतितनर्मदा तोये हनुमदीश्वरेनृप ॥ मदीयमस्थिखण्डञ्च पतितनर्मदाजले ॥ ४८ ॥ तस्यतीर्थप्रभावेण जाताहं क्षात्रियेकुले ॥ भूप कन्याप्यहंजाता सम्पूर्णशशिवन्मुखी ॥ ४९ ॥ जातिस्मरानरेन्द्रास्मि जाताहं क्षात्रियेकुले ॥ एतत्तेसर्वमाख्यातं कारणं नृपसत्तम ॥ ५० ॥ मदर्थविषमस्थानेशकुन्तमृगजातिषु ॥ यदिप्रेषयसेतात कमपिनर्मदाजले ॥ ५१ ॥ तस्याहंकथयिष्यामि स्थानचिह्नसमग्रकम् ॥ कन्यायावचनं श्रुत्वा शिखण्डीह्याहमांनृप ॥ ५२ ॥ ग्रामविशञ्चदास्यामि गच्छत्वं नर्मदातटे ॥ प्रेक्षणं प्रतिज्ञातमलक्ष्यापीडितेनतु ॥ ५३ ॥ गच्छत्वं नर्मदास्पृश्यां सर्वपापक्षयं करीम् ॥ अग्रजांसोमना

मैं राजाकी कन्याहुईहूँ ॥ ४६ ॥ हे नरेन्द्र ! मुझको अपने अगिले जन्मकी यादहै क्षत्रियके कुलमें पैदाहुईहूँ हे नृपसत्तम ! यह सब कारण आपसे कहागया ॥ ५० ॥ हे तात ! चिड़िया व हिरन जहा रहते है ऐसे कठिन स्थानको जो मेरे वास्ते नर्मदा जल के समीप किसीको भेजोगे ॥ ५१ ॥ तो उस से मैं अपने स्थानका सब चिह्न कहूंगी अपनी कन्या के वचन को सुनकर हे नृप ! शिखण्डी राजाने मुझसे कहा ॥ ५२ ॥ कि हम तुमको बीसगांव देवेगे तुम नर्मदा के तटको जावो हमने जिस बात की प्रतिज्ञा की है उसको तुम बेतकलीफ देखो ॥ ५३ ॥ उत्तम हनुमदीश्वर स्थानमें सोमनाथ की बड़ी बहन सब पापोंकी नाश करनेवाली व पुण्यवाली नर्मदा को

तुम जावो ॥ ५४ ॥ नर्मदा से अधिकोत्तक विस्तारवाले वरगद व कदम्ब के वृक्षों से घिरेहुये स्थानमें ॥ ५५ ॥ वरगदके समीप हड्डियोंका ढेर देखपड़ेगा उसमेंसे मिट्टी व हड्डीको लेकर हे द्विजोत्तम ! तुम नर्मदा को जाना ॥ ५६ ॥ कुँवार के उलियाले पाखकी चौदस को महोदेव को भक्तिसे स्नान कराने और रातमें जागरण करने ॥ ५७ ॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! प्रातःकाल नाभितक जलमें ठहर उस हड्डी व मिट्टीको पानीमें डालदेना यह कहकर कि जिसकी यह चीजहै उसकी सुगति होवे ॥ ५८ ॥ हड्डीको डालकर फिर पापोंके नाश करनेवाले स्नान को करना चाहिये इसतरह कन्याने जो कुछ कहा वह सब मैंने पुस्तकमें करलिया ॥ ५९ ॥ और हे नृपश्रेष्ठ ! महा-

शस्य हनूमदीश्वरेशुभे ॥ ५४ ॥ अर्द्धक्रोशेत्परेवाया विस्तीर्णेवटपादपैः ॥ कदम्बकवनेश्चैव संप्रधानेवनस्यच ॥ ५५ ॥
न्यग्रोधवटसान्निध्ये अस्थिलक्ष्यं प्रहृश्यते ॥ मृत्तिकामस्थिसंगृह्य गच्छरेवान्द्विजोत्तम ॥ ५६ ॥ आश्विनस्यसितेपक्षे
त्रिपुरारितीयौस्थिते ॥ स्नापयशूलिनम्मक्त्या रात्रौकुरुचजागरम् ॥ ५७ ॥ प्रभातेक्षिप्यतांशीघ्रं नाभिमात्रेजले
स्थितः ॥ इत्युच्चार्यद्विजश्रेष्ठ सुगतिस्तस्य जायते ॥ ५८ ॥ अस्थिक्षिप्त्वा पुनस्स्नानं कर्तव्यमघनाशनम् ॥ कथितं क
न्यायाय च तत्सर्वपुस्तकेकृतम् ॥ ५९ ॥ आगतो हं नृपश्रेष्ठ तस्मिंस्तीर्थे महालये ॥ साभिज्ञानं ततो दृष्ट्वा अस्थिगृह्य
नृपोत्तम ॥ ६० ॥ पूर्वोक्तेन विधानेन निचिप्तं नर्मदाजले ॥ पुष्पदृष्टिः पपाताथ साधुसाधिविति ब्राह्मण ॥ ६१ ॥ विमान
न्तु ततो दिव्यं दृष्ट्व हनुमदीश्वरे ॥ ततो ब्राह्मणराजानौ गृहीत्वाऽनशनं स्थितौ ॥ ६२ ॥ आत्मानं शोषयित्वा च ईश्वराराध
ने रतौ ॥ एवं सन्ध्यायतो देवं शतबाहुर्द्विजोत्तमः ॥ ६३ ॥ मासाद्धात्तु मृत्तोरजा शतबाहुर्महामतिः ॥ किङ्किणीजाल

लय (पितृपक्ष) में मैं उस तीर्थको आया और हे नृपोत्तम ! कहेहुये चिह्नको देख व हड्डीको लेकर ॥ ६० ॥ पहले कहेहुये विधान से नर्मदाके जलमें डालदी तदनन्तर ब्राह्मणपर फूलोंकी वर्षाहुई और कहागया कि हे ब्राह्मण ! वाह वाह ॥ ६१ ॥ तदनन्तर हनूमदीश्वर में एक दिव्य विमान देखपड़ा तदनन्तर ब्राह्मण और राजा दोनों अनशनव्रतको करतेहुये ॥ ६२ ॥ अपनेको सुखाकर ईश्वरके भजनमें तत्पर होतेहुये इस प्रकार भगवान्को ध्यावतेहुये शतबाहु राजा और ब्राह्मण दोनोंमें से ॥ ६३ ॥

पन्द्रह दिनके बाद बड़ी बुद्धिवाला राजा शतबाहु मरगया तब तुद्रघण्टिकाओं के जालकी शोभायुक्त एक विमान वहां आगया ॥ ६४ ॥ और उससे आवाज आई कि हे नृपश्रेष्ठ ! बाह २ आप विमानपर सवार हूजिये तब राजा बोला कि जवत्तक यह ब्राह्मण न चढ़ेगा तवत्तक हम ऊपरी रास्तेको नहीं जावेंगे ॥ ६५ ॥ क्योंकि यह द्विजोत्तम हमको उपदेश देनेवाला गुरुके बराबर है तब देवता बोले कि हे राजन् ! हनूमदीश्वर में जो मनुष्य मरते हैं ॥ ६६ ॥ वे सब पापों के क्षय करनेवाले शिवलोक को जाते हैं इससे हे नरेश्वर ! अभी इस ब्राह्मण के पापों का क्षय नहीं हुआ है ॥ ६७ ॥ अभी इस ब्राह्मण का मन मकान व ली व धन में शोभापूर्ण विमानंतनचागतम् ॥ ६४ ॥ साधुसाधुनृपश्रेष्ठ विमानरोहणंकुरु ॥ राजोवाच ॥ ऊर्द्धमार्गन्नगच्छामि विप्रोयवन्नसंस्थितः ॥ ६५ ॥ उपदेशप्रदोमह्यं गुरुरूपोद्विजोत्तमः ॥ देवाउचुः ॥ हनूमदीश्वरेराजन्ये मृतास्सन्ति मानवाः ॥ ६६ ॥ तेयान्तिशिवलोकैव सर्वपापक्षयश्चरम् ॥ नैवपापक्षयश्चास्य ब्राह्मणस्यनरेश्वर ॥ ६७ ॥ गृहञ्चगृहिणीवित्तं ब्राह्मणस्यप्रवर्तते ॥ शतबाहुस्ततोविप्रं भाषयामासभक्तिः ॥ ६८ ॥ त्यजमूलमधर्मस्य लोभमेकं द्विजोत्तम ॥ इत्युक्त्वाप्रययौ राजा स्वर्गस्वर्गिजनैस्सह ॥ ६९ ॥ दिनैःकैश्चिद्भूतोविप्रः स्वर्गसुखंतिभिस्सह ॥ बाहिन्याः कालं सुनीश्वर ॥ ७० ॥ आत्मनःकन्ययादत्ते पूर्वजन्माजितंतपः ॥ अष्टम्याञ्चचतुर्दश्यां सर्वका लं सुनीश्वर ॥ ७१ ॥ विशेषादाश्विनेमासे कृष्णपक्षेचतुर्दशी ॥ स्नापयेदीश्वरंभक्त्या चौद्रक्षीरेणसर्पिषा ॥ ७२ ॥ दध्नाचखण्डयुक्तेन तिलतोयेनवापुनः ॥ श्रीखण्डेनसुगन्धेन चार्चयेत्तमेदश्वरम् ॥ ७३ ॥ ततःसुगन्धपुष्पैश्च वि लगाहै तब शतबाहु राजाने ब्राह्मणसे कहा ॥ ६८ ॥ कि हे द्विजोत्तम ! अधर्मकी जड़ एक लोभ है तिसको तुम छोड़ो इतना कह देवताओं के सहित राजा स्वर्गको चलागया ॥ ६९ ॥ फिर योड़ेही दिनोंमें और धर्मात्माओंके साथ काशिराज की कन्या नर्मदानदी तीर्थके प्रभावसे व अपनी कन्या के दियेहुये उसके पूर्वजन्मके कर्माये हुये तपसे वह ब्राह्मण भी स्वर्गको चलागया इससे हे सुनीश्वर ! अष्टमी व चौदस को हमेशा ॥ ७० ॥ परन्तु कुँवारके कालेपाखमें जो चौदसहै उसमें विशेषकरके शहदूध और घी से भक्तिपूर्वक महादेवको नहवावे ॥ ७१ ॥ और शक्कर मिले दही व तिलोंके जलसे नहवावे फिर खुशबूदार चन्दन से उन महादेव का पूजनकरे ॥ ७२ ॥

तदनन्तर सुगन्धवाले फूलों व बेलपत्रों से पूजन करे और जो वेदपाठी व सब लक्षणों से युक्त व कुलीन व अपने कुटुम्ब की पालना करनेवाले ब्राह्मणों से वहां श्राद्धको कराता है और अन्न व वस्त्र व सुवर्ण से भक्तिपूर्वक ब्राह्मण को तुष्ट करता है ॥ ७४ ॥ ७५ ॥ यह कहकर कि हे ब्राह्मणो ! नरक में पड़ेहुये मेरे पितर स्वर्गको जावें और स्वर्गवाले और भी उत्तमलोकको जावें ऐसे कह ब्राह्मणों के नमस्कारकरे ॥ ७६ ॥ और पतित ब्राह्मणों को छोड़देवे जिसके घरमें वृषली होवे उस का पूजन न करे अपने वृष (पति) को छोड़ और वृषों से जो मैथुनकी इच्छाकरे ॥ ७७ ॥ देवता उसीको वृषली जानते है शूद्रा वृषली नहीं होती है इसप्रकार त्वपन्नैश्चपूजनम् ॥ श्राद्धयःकार्येत्तत्र ब्राह्मणैर्वेदपारगैः ॥ ७४ ॥ सर्वलक्षणसम्पूर्णैः कुलीनैर्गृहपालकैः ॥ तर्पयेद्ब्राह्मणंभक्त्या अन्नवस्त्राहिरण्यकैः ॥ ७५ ॥ नरकस्थान्दिव्यान्ति इत्युच्चार्यद्विजातयः ॥ स्वर्गस्थाःपरमंलोकमि त्युक्त्वाप्रणमेद्द्विजान् ॥ ७६ ॥ पतितान्वर्जयेद्विप्रान्वृषलीयस्यमन्दिरे ॥ स्ववृषन्तुपरित्यज्य वृषैरन्यैर्वृषायते ॥ ७७ ॥ वृषलीन्तांविदुर्देवा नशूद्रावृषलीभवेत् ॥ ब्रह्महत्यासुरापानं गुरुदारनिषेवणम् ॥ ७८ ॥ सुवर्णहरणंतस्यमित्र द्रोहभवन्तथा ॥ नश्यन्तिपातकास्सर्वे इत्येवंशङ्करोब्रवीत् ॥ ७९ ॥ वाक्प्रलापेनकिंवत्स बहुनोक्तेनकिन्तुवा ॥ सर्व पापसमोपेतो दद्याद्दानंद्विजोत्तमे ॥ ८० ॥ सर्वदेवमयीधेनुस्सर्वदेवात्मिकास्थिता ॥ शृङ्गाग्रेषुमहीपाल शक्रोवसति नित्यशः ॥ ८१ ॥ हरिःस्कन्धेशिरोब्रह्मा ललाटेवृषवाहनः ॥ चन्द्राकौलोचनेज्ञेयौ जिह्वायान्तुसरस्वती ॥ ८२ ॥ मरु द्रूणास्सदासाध्यास्तस्याङ्गानिरेश्वर ॥ अङ्कारश्चतुरोवेदास्सषडङ्गपदक्रमाः ॥ ८३ ॥ ऋषयोरोमकूपेषु अस्थिरया श्राद्ध करनेवाले के ब्रह्महत्या व शराव पीना व गुरुकी स्त्रीका भोगकरना ॥ ७८ ॥ सुवर्ण चुराना व मित्रसे द्रोह करना ऐसे २ सब पाप नष्ट होजाते हैं ऐसा शङ्करजी ने कहाहै ॥ ७९ ॥ हे वत्स ! बहुत बकवाद व बहुत कहने से क्या है सभी पापोंसे युक्त भी पुरुष ब्राह्मण को दानदेवे तो उसको ऊपर कहा फल होवेगा ॥ ८० ॥ गर्जमें सब देवता होते हैं और गऊ मय देवताओं के रूपही से स्थित रहती है हे महीपाल ! उसके सींगोंकी नोकोंमें इन्द्र हमेशा रहतेहैं ॥ ८१ ॥ विष्णुभगवान् कन्धमें रहते हैं शिरमें ब्रह्मा और मस्तकमें महादेव रहते हैं चन्द्रमा और सूर्य नेत्रों में, सरस्वती जिह्वा में रहती है ॥ ८२ ॥ और हे नरेश्वर ! मरुत और साध्य सदा

उसके अङ्ग हैं व छहों अङ्ग व पद व क्रमों के सहित चारो वेद व उंकार ॥ ८३ ॥ व ऋषि लोग गौओं के छेदों में रहते हैं और हड्डियों में उत्तम पर्वत हैं कालदण्ड जिनके हाथ में हैं ऐसे भारी देहवाले, काले व श्वेत के सवार ॥ ८४ ॥ यमराज पीठ में हमेशा रहते हैं जो कि श्रौं के पाप व पुण्य के देखनेवाले हैं पुण्यवाले चारों समुद्र दूधकी धारा हो थनों में हैं ॥ ८५ ॥ विष्णुकी देहसे पैदा हुई गङ्गा दर्शनही से पापोंकी हरनेवाली हैं और जो ऐसे विद्यमान हो रही गऊ कि जिसकी देहमें सभी देवता हैं वह परितो से क्यो न मानने लायक होवे ॥ ८६ ॥ पवित्र व मङ्गलरूप लक्ष्मी जिसके गोबर में है वे पाण्डुनन्दन ! इसीसे गोबरसे सदा लोपना चाहिये ॥ ८७ ॥ गन्धर्व,

तामहानगाः ॥ दण्डहस्तो महाकायः कृष्णो महिपवाहनः ॥ ८४ ॥ पृष्ठभागस्थितो नित्यं शुभाशुभनिरीक्षकः ॥ च त्वारस्सागराः पुण्याः क्षीरधाराः स्तनेषु च ॥ ८५ ॥ विष्णुदेहोद्भवा गङ्गा दर्शनात्पापहारिणी ॥ एवं यामं स्थिता यस्मात्तस्मादेषा सदा बुधैः ॥ ८६ ॥ लक्ष्मीश्च गोमयेयस्याः पवित्रा सर्वमङ्गला ॥ गोमया त्लेपनं तस्मात्कर्तव्यं पाण्डुनन्दन ॥ ८७ ॥ गन्धर्वाप्सरसो गङ्गा गोखुरेषु च संस्थिताः ॥ अश्विनौ कर्णयोर्नित्यं वत्तेरविपुत्रकौ ॥ ८८ ॥ पृथिव्यां सागरान्तायां यानि तीर्थानि पाण्डव ॥ तानि सर्वाणि प्राप्तानि गवां पादेषु नित्यशः ॥ ८९ ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ सर्वतीर्थसमागवो गीर्वाणैस्समलंक्रताः ॥ एतत्कथय मे तात कस्माद्गोषु समाश्रिताः ॥ ९० ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ सर्वदेवमयो विष्णुर्गवो विष्णुशरीरजाः ॥ देयास्तस्मात्सदा वन्द्याः कल्पिता विबुधैर्जनैः ॥ ९१ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ सर्वदेवमयो विष्णुर्नन्दन ॥ सर्वासां क्षीरिणीर्गवः श्वेतवस्त्रावगुणैः ॥ ९२ ॥ कांस्यदोहनि कदेयास्स्वर्णशृङ्गा विभूषिताः ॥ हनूमदी अप्सरा और गङ्गा गौवों के खुरों में रहती हैं और कानों में सूर्य पुत्र अश्विनी कुमार सदा वसते हैं ॥ ८८ ॥ और हे पाण्डव ! समुद्रपर्यन्त पृथिवी में जितने तीर्थ हैं वे सब गौवों के पावों में सदा रहते हैं ॥ ८९ ॥ युधिष्ठिरजी बोले कि देवताओं ने सब तीर्थों के समान गौवों को अपने रहने से शोभित किया है हे तात ! गौवों के आश्रित देवता क्यो हुये सो सुझसे कहा ॥ ९० ॥ तब मार्कण्डेयजी बोले कि सब देवताओं का रूप विष्णुजी हैं और विष्णुकी देहमें गौवें पैदा हुई हैं इसमें परित लोगोंने उन को देने व हमेशा वन्दना करने लायक माना है ॥ ९१ ॥ सफेद हो व कपिला हो परन्तु हे पाण्डुनन्दन ! दूधवाली होवे सब गौवों में दूधकी देनेवाली व सफेद भूल से

सजीहुई ॥ ९२ ॥ काँसकी दोहनीवाली व मोने से मढ़े सींगोंवाली व अन्य भूषणों से भूषित गऊको हनूमदीश्वर के आगे भक्तिसे ब्राह्मणों को देवे ॥ ९३ ॥ सावधान हो अपने कल्याण की इच्छा करतेहुये पुरुषको ऐसी गऊ देना चाहिये उनको दण्ड देनेके लिये यमराज समर्थ नहीं हैं विन्तु वे विष्णुलोक को जातेहैं ॥ ९४ ॥ विष्णुलोकसे उतरकर ब्राह्मणों के मकान को जातेहैं वहाँ धन व विद्यासे युक्त पैदा होते हैं ॥ ९५ ॥ सब पापोंका हरेनेवाला कल्याणरूप हनूमदीश्वरतीर्थ है उसको जो सुनता है वह वर्णसङ्कर पापसे छूटजाता है ॥ ९६ ॥ जो अमावस को इसकी याद करता है वह भी पापोंसे छूटजाता है ॥ ९७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेप्राकृत

श्वरस्याग्रे भक्त्याविप्रेषुदापयेत् ॥ ९३ ॥ निसर्गस्थेनसादेया स्वर्गमात्मनइच्छता ॥ असमर्थोयमस्तेपां विष्णुलोकं प्रयान्तिते ॥ ९४ ॥ विष्णुलोकच्युतस्सोपि प्रयातिद्विजमन्दिरम् ॥ तत्रैवजायतेपुत्रो विद्वान्धनसमन्वितः ॥ ९५ ॥ सर्वपापहरंतीर्थं हनूमदीश्वरंशुभम् ॥ शृणोतिमुच्यतेपापाद्वर्णसङ्करसम्भवात् ॥ ९६ ॥ दर्शेसञ्चिन्तयेद्यस्तु मुच्यतेनात्रसंशयः ॥ ९७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेहनूमदीश्वरवर्णनोनामत्रयधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०३ ॥ *

मार्कण्डेयउवाच ॥ आश्चर्यं कथितं तात यदभून्नर्मदातटे ॥ सोमनाथस्यतीर्थं हि वाराणस्यासमन्तप ॥ १ ॥ युधिष्ठिरउवाच ॥ निमग्नोदुःखसंसारं हतराज्योद्विजोत्तम ॥ युष्मद्वाणीजलैस्सनातो निर्दुःखोहंसवान्धवः ॥ २ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ साधुसाधुमहाबाहो सोमवंशविभूषण ॥ पृष्टेतेदुर्लभंतीर्थं गुह्याद्गुह्यतरंयथा ॥ ३ ॥ आदौपितामहस्तात समस्तस्यजनस्यच ॥ मनसातस्यसञ्जाता ऋषयोदशपुङ्गवाः ॥ ४ ॥ मरीचिर्त्रयङ्गिरसौ पुलस्त्यःपुलहःक्र

भाषाऽनुवादेहनूमदीश्वरवर्णनोनामत्रयधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०३ ॥

मार्कण्डेयजी बोलें कि हे तात ! जो नर्मदा के तटमें आश्चर्य्य हुआ उसको मैंने कहा है नृप ! सोमनाथका तीर्थ काशीके बराबरहै ॥ १ ॥ तब युधिष्ठिरजी बोले कि हे द्विजोत्तम ! राज्य जिसकी छीनलगाई इसी से दुःखरूपी संसार समुद्र में डूबाहुआ भाइयों के सहित मैं आपकी चाणीरूप पानी से नहायाहुआ इससमय मैं दुःख से रहित होगयाहूँ ॥ २ ॥ तब मार्कण्डेयजी बोलें कि हे सोमवंशविभूषण, महाबाहो ! बाह २ गुप्तसे अतिगुप्त बड़ेदुर्लभतीर्थ को आपने पूछा ॥ ३ ॥ हे तात !

पहले सबके पितामह जो ब्रह्मा हैं उनके मनसे दश उत्तम ऋषि पैदाहुये ॥ ४ ॥ मरीचि, अत्रि, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, ऋतु, प्रचेता, वशिष्ठ, भृगु और नारद ये दश पुत्र हुये प्रचेता के बड़े तेजवाले दक्षप्रजापतिहुये और दक्षके पचास कन्याहुई ॥ ५ । ६ ॥ दक्षने दश कन्याओं को धर्मराज को दिया और तेरह कश्यपको और हे महाभाग ! इसीतरह सत्तार्दस चन्द्रमाको दी ॥ ७ ॥ उन सत्तार्दस कन्याओं में रोहिणी चन्द्रमा को अधिक प्यारीहुई उन्हीं के कारण से चन्द्रमा को दक्षने शाप दिया ॥ ८ ॥ चन्द्रमा प्रजापति के वचनसे क्षयरोगवाले होगये दक्षके शापके प्रभावसे चन्द्रमा तेजसे रहित होगये ॥ ९ ॥ तब चन्द्रमा कांपतेहुये ब्रह्माके तीरगये और

तुः ॥ प्रचेताश्चवशिष्ठश्च भृगुर्नारदएवच ॥ ५ ॥ जज्ञेप्रचेतसोदक्षो महातेजाःप्रजापतिः ॥ दक्षस्यापिपुताजाताः पञ्चाशत्कन्यकाःकिल ॥ ६ ॥ ददौमदशधर्माय कश्यपायत्रयोदश ॥ तथैवचमहाभाग सप्तविंशतिमिन्दवे ॥ ७ ॥ तासांहिरोहिणीचन्द्रस्याभीष्टासामवत्तदा ॥ तस्याश्चकारणंकृत्वाशप्तोदक्षेणचन्द्रमाः ॥ ८ ॥ क्षयरोग्यभवच्चन्द्रो विवक्षायाःप्रजापतेः ॥ दक्षशापप्रभावेण निस्तेजाःशर्वरीपतिः ॥ ९ ॥ गतःपितामहंसोमो वेपमानःप्रणम्यच ॥ ब्रह्मयोनौ नमस्तुभ्यं वेदगर्भनमोस्तुते ॥ १० ॥ ब्रह्मोवाच ॥ सर्वत्रदुर्लभारेवा त्रिषुस्थानेषुभारत ॥ अङ्कुरेचभृगुक्षेत्रे नर्मदाहुरगेश्वरे ॥ ११ ॥ काष्ठवत्संस्थितस्सोमो ध्यायतेपरमेश्वरम् ॥ यावद्वर्षशतंपूर्णं तावत्तुष्टोमहेश्वरः ॥ १२ ॥ प्रत्यक्षस्सोमनाथस्य वृषासनउमाद्विगः ॥ साष्टाङ्गप्रणतोभूत्वा जयदेवनमोस्तुते ॥ १३ ॥ जयशङ्करपापघ्नतान्तनमो जय

प्रणामकर ब्रह्मासे बोले कि हे ब्रह्मयौने, वेदगर्भ ! आपके लिये चारंवार नमस्कार है ॥ १० ॥ तब हे भारत ! ब्रह्माजी बोले कि नर्मदा तो सभी कहीं दुर्लभ है परन्तु तीन जगह बहुत कठिन है उन्कार, भृगुक्षेत्र और नागेश्वर मे ॥ ११ ॥ यह सुन चन्द्रमा नर्मदाको गये और काठकी तरह स्थित होकर परमेश्वर का ध्यान करतेहुये जबतक सौवर्ष पूरेहुये तबतक ध्यान किया तब महादेवजी प्रसन्नहुये ॥ १२ ॥ और पार्वती को आधेअङ्ग में लिये व बेलपर सवार चन्द्रमा के प्रत्यक्ष हुये तब चन्द्रमा साष्टाङ्ग प्रणामकर बोला कि हे देव ! जयहो आपके लिये नमस्कार है ॥ १३ ॥ हे पापोंको यमराज के समान, शङ्कर ! जयहो आपके लिये नमस्कार है हे ईश्वर !

हे नाथ ! जयहो आपके लिये वार २ नमस्कार है हे वासुकिनाग के गहनावाले ! हे भूतपते ! तुम्हारी जयहो, त्रिशूल और खप्पर के धारण करनेवाले के लिये नमस्कार है ॥ १४ ॥ हे अन्धकासुर के नाश करनेवाले ! जयहो तुम्हारे लिये नमस्कार है दानवोंकी देहके नाश करनेवाले के लिये नमस्कार है घटने से रहित व सब कला-श्री से संयुक्तकी जयहो व नमस्कार है कालके कर्तव्य के दमन करनेवालेकी जय हो व नमस्कार है ॥ १५ ॥ हे उमापते ! हे नीलकण्ठ ! आपकी जयहो हे सूक्ष्मरूप वाले व माया से रहित शब्दरूप ! आपके लिये नमस्कार है हे सबकी आदि व अपने आदि और अन्त से रहित ! आपके लिये नमस्कार है हे पिनाक धनुष व त्रिशूल

ईश्वरनाथनमोस्तुनमः ॥ जयवासुकिभूषणभूतपते जयशूलकपालधरायनमः ॥ १४ ॥ जयअन्धकदेहविनाशनमो जयदानवदेहवधायनमः ॥ जयनिष्कलसकलकलायनमोजयकालकलादमनायनमः ॥ १५ ॥ जयनीलकण्ठउमापते जयसूक्ष्मनिरञ्जनशब्दनमः ॥ जयआद्यअनाद्यअनन्तनमो जयपाणिपिनाकत्रिशूलनमः ॥ १६ ॥ एवंस्तुतो महादेवस्मोमनाथेनपाण्डव ॥ तुष्टस्तस्यनृपश्रेष्ठ उमयासहशङ्करः ॥ १७ ॥ ईश्वरउवाच ॥ वरंवरयभद्रन्ते यत्तेमन सिवर्तते ॥ सोमउवाच ॥ दक्षशापिनदग्धोहं क्षीणदेहोमहेश्वर ॥ १८ ॥ पापप्रशमनन्देव कुरुसर्वममैवतु ॥ महेश्वर उवाच ॥ भवद्भक्तिगृहीतोहं तुष्टश्चैवोमयासह ॥ १९ ॥ निष्पापस्मोमनाथस्य सञ्जातस्तीर्थसेवनात् ॥ इत्युक्त्वान्तर्दधेदेवस्मोमोध्यात्वात्वाक्षगणंनृप ॥ २० ॥ स्थापयामासलिङ्गन्तुसिद्धिदंप्राणिनांभुवि ॥ सर्वदुःखहरन्देवं ब्रह्महत्याविनाश

हार्यों में रखनेवाले ! जयहो व नमस्कार है ॥ १६ ॥ हे पाण्डव ! हे नृपश्रेष्ठ ! इसप्रकार चन्द्रमा से स्तुति किये गये 'पार्वती' सहित महादेवजी उनसे प्रमन्न हुये ॥ १७ ॥ महादेवजी बोले कि तुम्हारा कल्याण हो जो तुम्हारे मनमें वर्तताहो उस वरको तुम मांगलेनो तब चन्द्रमा बोले कि हे महेश्वर ! दत्तके शाप से मैं जलाहुआ व तुमली देहवाला होगयाहूँ ॥ १८ ॥ इस से हे देव ! मेरे सब पापकी क्षान्ति को आप करें तब महादेव बोले कि आपकी भक्ति से पकड़लिया गया मैं पार्वती के सहित प्रसन्नहूँ ॥ १९ ॥ तुम सोमनाथ के तीर्थकी सेवा से पापरहित होगये हो यह कहकर महादेव अन्तर्द्वान होगये हे नृप ! चन्द्रमा भी थोड़ीदेर ध्यानकर ॥ २० ॥

पृथिवी में सब प्राणियों को सिद्धिके देनेवाले व सब दुःखों के व ब्रह्महत्या के करनेवाले लिङ्गरूप महादेव का स्थापन किया ॥ २१ ॥ मार्कण्डेयजी बोले कि सोमनाथ के प्रभावको तुम से संक्षेप से कहते हैं एक शम्बर नामका राजाहुआ उसका त्रिलोचन नामका पुत्रहुआ ॥ २२ ॥ त्रिलोचन का पुत्र बहुत नीच, बड़ा पापी, कण्ठ नामका हुआ वनमें घूमते हुये उस कण्ठको हिरनों का भ्रूण देखपड़ा ॥ २३ ॥ तब त्रिलोचन के लड़के कण्ठने उस पूरे भ्रूणको मारा उस भ्रूण के बीचमें निर्जन वन में विचरता हुआ एक उत्तम ब्रह्मर्षि भी कण्ठ के हथियार से मारागया तब ब्रह्महत्यासे युक्त व तेज से रहित कण्ठ पृथिवी में घूमता हुआ ॥ २४ ॥ २५ ॥

नम् ॥ २१ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ सोमनाथप्रभावंच संक्षेपात्कथयामिते ॥ शम्बरोनामराजाभूत्तस्यपुत्रस्त्रिलोचनः ॥
२२ ॥ त्रिलोचनमुतःकण्ठः पापनिष्ठोमहाऽधमः ॥ वनेविभ्रमतस्तस्य मृगयूथन्त्वदृश्यत ॥ २३ ॥ मृगयूथंहतंसर्वं त्रि
लोचनमुतेनच ॥ मृगरूपीद्विजोमध्ये विचरन्निर्जनेवने ॥ २४ ॥ तदाहतस्तुशस्त्रेण कण्ठेनऋषिसत्तमः ॥ ब्रह्महत्यायु
तःकण्ठो निस्तेजाव्यचरन्महीम् ॥ २५ ॥ विचरन्नापिसंप्राप्तो नर्मदानागसङ्गमे ॥ कदम्बपाटलाकीर्णे बिल्वनारङ्गशो
भिते ॥ २६ ॥ चिञ्चिनीचम्पकोपेते अगस्तितरुशोभिते ॥ उन्मत्तभृङ्गसंयुक्ते तथासर्वत्रशोभिते ॥ २७ ॥ चित्रकैर्मृगमा
जैरःसिंहैस्सर्वत्रशूकरैः ॥ शशकैर्गवैर्युक्ते शिखण्डिरवनादिते ॥ २८ ॥ प्रविष्टस्तद्वनेकण्ठस्तृषार्तःश्रमकर्षितः ॥ स्ना
तोरैवाजलेषुण्ये सङ्गमेपापनाशने ॥ २९ ॥ पत्राणिचविचित्राणि भक्षयन्सहकिङ्करैः ॥ सुप्तःपादपछायायांश्रान्तोमृगव

विचरते हुये नर्मदा और नागेश्वर के सङ्गम में प्राप्तहुआ फिर कदम्ब और पंडरिया के वृक्षों से घने व बेल और नारङ्गी के वृक्षों से शोभित ॥ २६ ॥ अंबिली और चम्पाश्रों से युक्त, अगस्त्यके वृक्षों से सुहावने, मतवाले भौरों से युक्त इस प्रकार सबकहीं शोभावाला ॥ २७ ॥ व चीता, हिरन, बिलार, सिंह, सुवर, खरगोश और लीलगायों से युक्त और मोरोंकी आवाजों से भरेहुये ॥ २८ ॥ ऐसे वनमें प्यास के मारे विकल व थकावट से कष्टित कण्ठ पैठताहुआ पापों के नाश करनेवाले सङ्गम में पवित्र नर्मदा के जलमें स्नान करताहुआ ॥ २९ ॥ और अपने सिपाहियों के सहित रङ्ग २ के पत्तों को खाता हुआ व हिरनों के शिकार से थकाहुआ वृक्षकी छाया

में सोताहुआ ॥ ३० ॥ फिर हे युधिष्ठिर ! बड़ी भक्ति से सोमनाथ का पूजन करता हुआ फिर सब पापों के क्षय करनेवाले जलको अच्छी तरह पीताहुआ ॥ ३१ ॥ तब तक उसी श्रेष्ठ तीर्थ में सङ्गम नहाने के वास्ते तीर्थ में मनको लगाये हुये रास्तेमें एक ब्राह्मण आता था ॥ ३२ ॥ रास्तेमें एक वृक्षपर चढ़ीहुई एक बड़ी डरावनी स्त्री थी वह उस ब्राह्मण से बोली कि हे द्विजोत्तम ! खंडेरहो खंडेरहो ॥ ३३ ॥ हे नरेश्वर ! डराहुआ वह ब्राह्मण जबतक सब दिशाओं में देखे तबतक वृक्षपर चढ़ी हुई, लाले कपड़ों को पहने, लालेफूलों की मालाको पहने व छोटी उमरवाली व लालचन्दनसे शोभित व लाले जेवरोंकी शोभा से युक्त, फँसरी की हाथमें लिये धेनच ॥ ३४ ॥ आनर्चपरयाभक्त्या सोमनाथंयुधिष्ठिर ॥ पीत्वातोयंकण्ठमात्रं सर्वपापक्षयंकरम् ॥ ३५ ॥ तावत्तीर्थं वरेविप्रस्नानार्थसङ्गममप्रति ॥ मार्गगोब्राह्मणोभूयस्ततस्तद्गतमानसः ॥ ३६ ॥ मार्गेष्टक्षेसमारूढा स्त्रीचैकाचमयङ्करी ॥ उवाचब्राह्मणंसाहि तिष्ठतिष्ठद्विजोत्तम ॥ ३७ ॥ त्रस्तोनिरीक्षितेयावद्विशस्सर्वानरेश्वर ॥ तावद्वृक्षसमारूढां स्त्रियंरक्ताम्बरवृताम् ॥ ३८ ॥ रक्तपुष्पधरांवालां रक्तचन्दनचर्चिताम् ॥ रक्ताभरणशोभाढ्यां पाशहस्तान्ददर्शह ॥ ३९ ॥ सन्त्युवाच ॥ सन्देशंशृणुमेविप्र यदिगच्छसिसङ्गमम् ॥ मद्भर्तातिष्ठतेतत्र शीघ्रमेवविसर्जय ॥ ४० ॥ एकानि नीचतेभ्यार्या तिष्ठतेवनमध्यगा ॥ इत्याकर्ण्यगतोविप्रस्सङ्गमंसुरदुर्लभम् ॥ ४१ ॥ वृक्षच्छायास्थितंकण्ठं ब्राह्मणो हिददर्शह ॥ ब्राह्मणउवाच ॥ वनान्तेचमयादृष्टा बालाकमललोचना ॥ ४२ ॥ रक्ताम्बरधरातन्वी रक्तचन्दनचर्चिता ॥ रक्तमाल्यासुशोभाढ्या पाशहस्तामृगेक्षणा ॥ ४३ ॥ वृक्षारूढावद्वैक्यं भर्तारंप्रेषयस्वमाम् ॥ कण्ठउवाच ॥ कस्मिं हुये एकस्त्री को देखताहुआ ॥ ४४ ॥ ३५ ॥ वह स्त्री बोली कि हे विप्र ! जो तुम सङ्गम को जाते हो तो हमारे सन्देशको सुनो कि हमारा भर्ता वहाँ है सो उसको बहुत जल्द भेजो ॥ ४५ ॥ उससे कहना कि वनके बीचमें तुम्हारी स्त्री अकेली बैठी है यह सुनकर ब्राह्मण देवताओं के दुर्लभ संगम को गया ॥ ४६ ॥ वहा वृक्षकी छाया में बैठेहुये कण्ठको ब्राह्मण ने देखा तब ब्राह्मण बोला कि वनमें एक स्त्री को मैंने देखा जो कि छोटी उमरवाली व कमल से जिसके नेत्र हैं ॥ ४७ ॥ और लाले कपड़ों को पहने, सुक्ष्मांगी, लालचन्दन को लगाये, लालेफूलों की मालावाली, अतिशोभा से युक्त, हाथ में फँसरीवाली, हिरनकेसे नेत्रवाली ॥ ४८ ॥ और वृक्ष

पर बैठी हुई मुझसे कहा कि हमारे पतिको हमारे पाम भेज देना तब कण्ठ बोला कि हे विप्रेन्द्र ! वह मृगनयनी स्त्री किम जगह बैठी है ॥ ४० ॥ और किसकी स्त्री है व किस कार्य के वास्ते बुलाया है यह सब मुझसे कहो तब ब्राह्मण बोला कि हे विभो ! संगम से आधेकोस पर सुहावने वनमें ॥ ४१ ॥ तुमको चाहती हुई वह स्त्री बैठी है तब हे युधिष्ठिर ! उस कण्ठ राजाने अपने सेवक से कहा कि ॥ ४२ ॥ तुम जाओ और उससे पूछो कि तू कौन है और कहा से आई है और कहां को जावेगी तब वह बहुत जल्दगया कि जहां वह स्त्री बैठी थी ॥ ४३ ॥ हे नृपसत्तम ! वृक्षपर बैठी हुई स्त्री को देखा और उससे बोला कि हे बाले ! राजा तुमको पूछता नर्यानेतुविप्रेन्द्र तिष्ठते मृगलोचना ॥ ४० ॥ कस्यसायेनकार्येण एतत्सर्ववदस्वमे ॥ ब्राह्मण उवाच ॥ सङ्गमादद्भक्रो शेच उद्यानान्तेप्रशोभिते ॥ ४१ ॥ तत्र तिष्ठतिसानारी सोत्करिष्ठतमनाविभो ॥ ततोभृत्यमुवाचेदं कण्ठो राजायुधिष्ठिर ॥ ४२ ॥ पृच्छत्वं गच्छकाचासि आगता कगमिष्यसि ॥ ततः क्षिप्रगतस्तत्र यत्र नारी स्थिता भवत ॥ ४३ ॥ वृक्षस्थाददृशे बाला मुवाच नृपसत्तम ॥ त्वां राजापृच्छते बाले कासित्वं कगमिष्यसि ॥ ४४ ॥ मन्त्र्युवाच ॥ गुरुरात्मवतांशास्ता राजाशास्ता दुरात्मनाम् ॥ इह प्रच्छन्नपापानां शास्ता वैवस्वतोयमः ॥ ४५ ॥ ब्रह्महत्यास्य संजाता मृगरूपद्विजोद्धधात् ॥ मया युक्तोऽपि राजासौ मुक्तस्तीर्थप्रभावतः ॥ ४६ ॥ अत्राद्भक्रोऽशमात्रैव ब्रह्महत्यानसंविशेत् ॥ सोमनाथप्रभावाच्च तीर्थवाराणसीसमम् ॥ ४७ ॥ गच्छत्वं प्रेषयेः कण्ठं शीघ्रमेवनसंशयः ॥ समस्तं कथयामास तद्वृत्तान्तं नृपम्प्रति ॥ ४८ ॥ तस्य वादयेन राजासौ पपात धरणीतले ॥ भृत्य उवाच ॥ कस्मात्त्वं शोचसेनाथ पूर्वजातं शुभाशुभम् ॥ ४९ ॥ इत्याह किं तू कौन है और कहां को जावेगी ॥ ४४ ॥ तब वह स्त्री बोली कि बुद्धिवालों का सिखानेवाला गुरु होता है और दुष्टों का सिखानेवाला राजा होता है और यहां छिपे पापेवाले पापियों को सिखानेवाले यमराज हैं ॥ ४५ ॥ हिरनके रूपको धरे हुये ब्राह्मण के मारने मे इमको ब्रह्महत्या हुई है सो मुझ ब्रह्महत्या से युक्त भी यह राजा इरा तीर्थ के प्रभावसे छूट गया है ॥ ४६ ॥ यहां आधकोस से ब्रह्महत्या नहीं पैठ सकती है यह तीर्थ सोमनाथके प्रभावसे काशी के समान है ॥ ४७ ॥ इससे तुम जाओ और कण्ठ को निरसन्देह बहुत जल्द भेजो तब वह सेवक गया और राजासे उस सब हालको कहता हुआ ॥ ४८ ॥ उसकी बातसे यह राजा पृथिवी पर गिर

पडा तब सेवक बोला कि हे नाथ । पहलेहुये पाप पुण्य को आप क्यों सोचते हो ॥ ४६ ॥ उसके इस वचन को सुन वह राजा बोला कि यहां सोमनाथ के ममीप में अपने प्राणों का त्याग करूंगा ॥ ५० ॥ आग व बहुत ईधनको जलद लावो अपने वशमें होरहे सेवकों ने सब सामान भट से ला दिया ॥ ५१ ॥ तब पापों के नाश करनेवाले सङ्गम के अच्छे जलमें स्नानकर और हे नरेश्वर ! बड़ी भक्ति से सोमनाथ का पूजन ॥ ५२ ॥ व तीनवार प्रदक्षिणाको कर बरतीहुई आगमें राजा कण्ठ पैठगया और पीताम्बर व महामुकुट के धारण करनेवाले स्वामी जनार्दन भगवान् को अपने हृदय में करके कहा कि विष्णु के ध्यान से मेरी यही सुगति होजावे ॥

करण्यवचस्नस्य सराजातिविदमब्रवीत् ॥ ५० ॥ शीघ्रमानीयतां वहिरिन्ध
नानिब्रह्मन्यपि ॥ आनीतंतत्क्षणात्सर्वं भृत्यैः स्वैर्वशवर्तिभिः ॥ ५१ ॥ स्नानं कृत्वा शुभे तोये सङ्गमे पापनाशने ॥ अ
चित्वा परयाभक्त्या सोमनाथं नरेश्वरः ॥ ५२ ॥ त्रिःप्रदक्षिणं कृत्वा ज्वलिते जातवेदसि ॥ प्रविष्टः कण्ठराजस्तु हृदि
कृत्वा जनार्दनम् ॥ ५३ ॥ पीताम्बरधरे देवं महामुकुटधारिणम् ॥ विष्णोर्ध्यानं न चात्रैव सुगतिर्भवेत्त्विति ॥
५४ ॥ पपातपुष्पवृष्टिश्च साधुसाधु नृपात्मज ॥ आश्चर्यमनुलंघ्य द्वा निरीक्ष्य च परम्परम् ॥ ५५ ॥ हुतं तैः पावकैः भृत्यै
हृदि ध्यात्वा गदाधारम् ॥ विमानस्था दिवं सर्वे सङ्गताः पाण्डुनन्दन ॥ ५६ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ सोमनाथप्रभावोयं श्रु
तुष्वेकमनानृतप ॥ अष्टम्याञ्च चतुर्दश्यां सर्वकालेषु भेदिने ॥ ५७ ॥ विशेषाच्छुक्लपक्षे च सूर्यवारेण सप्तमी ॥ उपो
ष्य यो नरो भक्त्या रात्रौ कुर्वीत जागरम् ॥ ५८ ॥ पञ्चामृतेन गव्येन स्नापयेत्परमेश्वरम् ॥ श्रीखण्डले पनं कुर्यात्पुष्प

५३ । ५४ ॥ तब उसके ऊपर फूलोंकी वर्षा हुई और देवताओं ने कहा कि हे नृपात्मज ! वाह वाह फिर इस अतुल आश्चर्य को देख व आपसमें देख ॥ ५५ ॥ उन सेवकोंने भी गदाधर भगवान् को अपने मनमें ध्यानकर आग में अपने शरीर को होम दिया तब हे पाण्डुनन्दन ! वे सब विमानोंपर चढ़ेहुये स्वर्गको गये और कण्ठ से सब मिलते हुये ॥ ५६ ॥ मार्कण्डेयजी बोले कि हे नृप ! यह सोमनाथ का प्रभाव है इस को एकाग्र मन होकर सुनो हमेशा अष्टमी, चौदस व अच्छे दिन मे ॥ ५७ ॥ व उजियाले पाखमें इतवार सप्तमी को विशेषसे उपासकर जो मनुष्य भक्ति से रातमें जागरण करे ॥ ५८ ॥ और गरु के पञ्चामृत से महादेव को नहवावे तद-

नन्तर चन्दन से लेपन तथा फूल, धूप आदि करे ॥ ५९ ॥ घीसे दिया जलावे और गाना व नाच करावे फिर दूसरे दिन अर्थात् अष्टमी सोमवार को प्रातःकाल में ब्राह्मण का पूजन करे ॥ ६० ॥ वह ब्राह्मण कैसा होवे कि बुद्धिमान हो, क्रोधको जीते हो, किसी की निन्दा न करता हो, सब अङ्गों से सुन्दर हो, शान्त हो, अपनी स्त्री का पालनेवाला हो ॥ ६१ ॥ गायत्री को जपता हो और सदा कुकर्मों से रहित होवे और जिसके घरमें उदगी व वृषली और सूदिनि रहती हो ऐसे को ॥ ६२ ॥ और घाट बाढ़ अङ्गोवाले व जिनके आगे पीछे का पता नहीं है ऐसे ब्राह्मणों को व्रत, श्राद्ध व दानमें पण्डित लोग सदा छोंडेरहे ॥ ६३ ॥ दूसरे पुरुषके पास रहनेवाली जवान

धूपादिकं तथा ॥ ५९ ॥ घृतेन बोधयेद्दीपं गीतं नृत्यं च कारयेत् ॥ सोमवारेण चाष्टम्यां प्रभाते पूजयेद्विजम् ॥ ६० ॥ आत्मवन्तं जितक्रोधं द्विजनिन्दाविवर्जितम् ॥ सर्वाङ्गैरुचिरं शान्तं स्वदारपरिपालकम् ॥ ६१ ॥ गायत्री पठमानञ्च विकर्मरहितं सदा ॥ पुनर्भूर्वृषलीशूद्रो वर्तते यस्य सान्दरे ॥ ६२ ॥ हीनाङ्गास्त्वतिरिक्ताङ्गा येषां पूर्वापरं नहि ॥ व्रते श्राद्धे तथा दाने द्विजावर्ज्याः सदा बुधैः ॥ ६३ ॥ पुंश्चलीतरुणीभार्या द्विजः स्वाध्यायवर्जितः ॥ आत्मना सह दत्तारमघोनयति पाण्डव ॥ ६४ ॥ शाल्मलीनौकया तुल्याः स्वधर्मं निरता द्विजाः ॥ दत्तारं चैव मात्मानं तारयन्ति तरन्ति च ॥ ६५ ॥ श्राद्धं सोमं च वरे पार्थ यः कुर्यादुत्तमानवः ॥ पितरस्तस्य तृप्यन्ति यावदाभूतसम्प्लवम् ॥ ६६ ॥ अन्नं वस्त्रं हिरण्यञ्च यो दद्यादथ जन्मने ॥ स याति शाङ्करं लोकमिति मे सत्यमाषितम् ॥ ६७ ॥ हयं यो वै ददात्यत्र सम्पूर्णाभरणान्वितम् ॥ रक्तं वापीतवर्णं वा सर्वलक्षणलक्षितम् ॥ ६८ ॥ कुङ्कुमेन विलिप्ताङ्गमप्रजञ्च देदति ॥ स्नग्दामभूषितं कण्ठे सितव

स्त्री और वेद पढ़ने से खाली ब्राह्मण हे पाण्डव ! ये दोनों अपने के सहित देनेवाले को नरक में भेजते हैं ॥ ६४ ॥ और अपने धर्म में लगे हुये ब्राह्मण से मरकी नाव के समान होते हैं वे देनेवाले को तारते हैं और आप भी तरते हैं ॥ ६५ ॥ और हे पार्थ ! मोमंश्चरमें जो मनुष्य श्राद्ध करता है प्रलय तक उसके पितर तृप्त रहते हैं ॥ ६६ ॥ अन्न, वस्त्र और सोना जो ब्राह्मण को देता है वह महादेव के लोकको जाता है यह हमारा कहना सत्य है ॥ ६७ ॥ और सब जेवरों से सजे हुये घोड़े को जो यहा देता है वह घोड़ा लाल हो व पीला हो सब लक्षणों से युक्त हो ॥ ६८ ॥ उसकी देह केसर से रंगी हो और नकन्द हो ऐसे को देवे और कण्ठाको कण्ठ में पहने हो और सफेद कपड़े

की भूल ओढ़े होवे ॥ ६९ ॥ ऐसे घोड़े पर चढ़ने के वास्ते ब्राह्मण से कहे कि अपने पांवों को हमारे कन्धे पर रखो और हमारे घोड़े पर चढ़ो जब ब्राह्मण घोड़े पर सवार होजावे तब यह कहे कि सूर्यनारायण प्रसन्न होवे ॥ ७० ॥ वह घोड़े का देनेवाला सब पापों से छुटाहुआ शङ्करजी के लोकको जाता है और उस लोक से उतर फिर धार्मिक राजा होता है ॥ ७१ ॥ उसके वंश से हमेशा राज्य बनी रहती है कभी नष्ट नहीं होती है और उसका लड़का पूरी उमरवाला होता है उसकी स्त्री उसके वंशमें रहती है ॥ ७२ ॥ और सब दुःखों से रहित आपसी कुल अधिक सौ वर्ष जीता है इन्द्रियों को जीतेहुये चन्द्रग्रहण में जो वहांको जाता है ॥ ७३ ॥ और व्रतको किये

स्त्रावगुण्ठितम् ॥ ६९ ॥ अङ्घ्रिराधीयतांस्कन्धे मदीयंहयमारुह ॥ आरुढेब्राह्मणेभूयो भास्करः प्रीयतामिति ॥ ७० ॥
सयातिशङ्करलोकं सर्वपापविवर्जितः ॥ तस्माल्लोकान्च्युतश्चापि राजाभवति धार्मिकः ॥ ७१ ॥ तस्य वंशे सदा राज्यं
न नश्यति कदाचन ॥ दीर्घायुर्जायते पुत्रो भार्या च वंशवर्तिनी ॥ ७२ ॥ जीवद्वर्षशतं साग्रं सर्वदुःखविवर्जितः ॥ सोम
स्य चोपरगेतु योगच्छेद्विजितेन्द्रियः ॥ ७३ ॥ सोपवासोजितक्रोधो गान्तुदद्याद्विजन्मने ॥ सवत्सां क्षीरसंयुक्तां श्वेत
चर्णविलान्विताम् ॥ ७४ ॥ श्वर्लोपीतवर्णवाधून्नां वानीलकन्धराम् ॥ कपिलां वासवस्त्रां वा घण्टाभरणभूषिताम् ॥
७५ ॥ रौप्यसुरां कांस्यदोहां स्वर्णशृङ्गान्नरेश्वर ॥ श्वेतयावद्धर्तव्यं शो रक्तासौ भाग्यवर्द्धिनी ॥ ७६ ॥ श्वर्लोताम्प्रवर्णा
च दुःखमाचप्रकीर्तिता ॥ कपिला तु हरेरपापं त्रिजन्मभिरुपाजितम् ॥ ७७ ॥ तस्य लोकमवाप्नोति मान्धातुश्च जनेश्वर ॥

पुत्री व भ्रातृको श्रीनारायण को गऊ देता है गऊ कैसी होवे कि बछड़ा के सहित हो, दूधवाली हो; सफेद हो, ताकतवाली हो ॥ ७४ ॥ चितली व पीली व धुमेली व
कांस्य कांस्यकी व भाग्यवर्द्धिनी व श्वर्लोपीतवर्णवाधून्नां वानीलकन्धराम् ॥ कपिलां वासवस्त्रां वा घण्टाभरणभूषिताम् ॥
७५ ॥ रौप्यसुरां कांस्यदोहां स्वर्णशृङ्गान्नरेश्वर ॥ श्वेतयावद्धर्तव्यं शो रक्तासौ भाग्यवर्द्धिनी ॥ ७६ ॥ श्वर्लोताम्प्रवर्णा
च दुःखमाचप्रकीर्तिता ॥ कपिला तु हरेरपापं त्रिजन्मभिरुपाजितम् ॥ ७७ ॥ तस्य लोकमवाप्नोति मान्धातुश्च जनेश्वर ॥

संक्रान्ति ॥ ७८ ॥ घटादिन, गजच्छाया और सूर्यग्रहण में व देवताओं को दुर्लभ, रोहिणी नक्षत्र में निर्मल देहवाले जो वहां जाते हैं ॥ ७९ ॥ तो माताका मारने वाला, गुरुका मारनेवाला और आत्मघात करनेवाला जो दुपदादि मन्त्रको नित्य जपे व हे नृप ! प्राणायाम को करे ॥ ८० ॥ अथवा इच्छानुसारही वैष्णवी व सौरी व शैवी गायत्री को जपे तो वहभी पापों से छूटजाताहै ऐसा शङ्करजी ने कहाहै ॥ ८१ ॥ और जो कर्म करनेवाला वहां सोमनाथकी प्रदक्षिणा करताहै तो हे नरेन्द्र ! उसने मानो सम्पूर्ण जम्बूद्वीप की प्रदक्षिणा करली ॥ ८२ ॥ ब्रह्महत्या का करनेवाला, दारुपीनेवाला, गुरुकी स्त्री का भोग करनेवाला और गर्भ गिरानेवाला भी पक्षान्तेचव्यतीपाते वैधृतोरविसंक्रमे ॥ ८३ ॥ दिनक्षयेगजच्छाया ग्रहणेभास्करस्यच ॥ येव्रजन्तिविशुद्धाङ्गा वरि उच्येसुरदुर्लभे ॥ ८४ ॥ मातृहागुरुहायोहि आत्महातुविशेषतः ॥ दुपदाद्यंजपेन्नित्यंप्राणायामंतथानृप ॥ ८५ ॥ गायत्रीवैष्णवीचैव सौराशैवीयटुच्छया ॥ सोपिपापैःप्रमुच्येत इत्येवंशङ्करोब्रवीत् ॥ ८६ ॥ यःकुर्यात्सोमनाथस्य तत्र कर्ताप्रदक्षिणम् ॥ प्रदक्षिणीकृतान्तेन जम्बूद्वीपक्षरेऽवर ॥ ८७ ॥ ब्रह्महत्यासुरापानं गुरुदारनिषेवणम् ॥ भ्रूणहाशुद्ध्य तेतत्र एवमेव न संशयः ॥ ८८ ॥ तीर्थाख्यानमिदंपुण्यं यःशृणोतिजितेन्द्रियः ॥ व्याधितोराजरेगेन अतुलांश्रियमाप्नुयात् ॥ ८९ ॥ पुत्रार्थैलभतेपुत्रं निष्कामःस्वर्गमाप्नुयात् ॥ मुच्यतेसर्वपापेभ्यस्तीर्थैश्रुत्वावरन्नुप ॥ ९० ॥ एतत्तेसर्वमाख्यातं सोमनाथस्ययत्फलम् ॥ ९१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणरेवाखण्डे सोमनाथतीर्थमहिमानुवर्णनेनोनामचतुरधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०४ ॥

वहां शुद्ध होजाताहै ऐसाहीहै इसमें संशय नहीं है ॥ ८३ ॥ इन्द्रियों को जीतेहुये जो इस तीर्थकी पवित्र कथा को सुनता है वह राजरोगी भी हो परन्तु आराम हो कर बड़ी लक्ष्मी को पाताहै ॥ ८४ ॥ और पुत्रका चाहनेवाला पुत्रको पाताहै और जिसकी कोई कामना नहींहै वह स्वर्गको पाताहै इस उत्तम तीर्थ को सुन हे नृप ! सब पापों से छूटजाताहै यह सोमनाथ का जो फलहै वह सब तुम से कहागया ॥ ८५ ॥ ८६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणरेवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनुवादेसोमनाथतीर्थमहिमाऽनुवर्णनेनोनामचतुरधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०४ ॥

मार्कण्डेयजी बोले कि हे राजेन्द्र ! हे नृप ! तदनन्तर पिङ्गलावर्तक तीर्थको जावे वह नर्मदा के उत्तरवाले किनारे पर सङ्गम के समीप में है ॥ १ ॥ हे राजेन्द्र ! वहा अग्निने पिङ्गलेश्वर का स्थापन किया है तब युधिष्ठिरजी बोले कि हे विप्रेन्द्र ! अग्निने ईश्वर का स्थापन कैसे किया है ॥ २ ॥ तब मार्कण्डेयजी बोले कि जब महादेवके वीर्य से अग्नि तुम किये गये फिर सीधे स्वभाववाले रुद्र से अपनी देह को पाकर वे अग्नि चलेगये ॥ ३ ॥ अग्नि के मुखमें जब अतुलितेजस्वी महादेव जीने वीर्य को डालादिथा तब रुद्रके तेज से जलेहुये अग्नि तीर्थयात्रा करतेहुये ॥ ४ ॥ वायु का भोजन करतेहुये अग्नि कुछ अधिक सौ वर्षतक बड़ी भक्ति से उग्र

मार्कण्डेयउवाच ॥ ततो गच्छेत्तुराजेन्द्र पिङ्गलावर्तकं नृप ॥ सङ्गमस्य समीपस्थं रेवाया उत्तरे तटे ॥ १ ॥ हव्यवाहे नराजेन्द्र स्थापितः पिङ्गलेश्वरः ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ हव्यवाहेन विप्रेन्द्र स्थापितश्चेश्वरः कथम् ॥ २ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ रेतसा यदिरुद्रेण तपितो हव्यवाहनः ॥ प्राप्तो रुद्रेण सौम्येन देहं प्राप्य जगाम सः ॥ ३ ॥ हव्यवाहमुखे जिते रुद्रेणामित तेजसा ॥ रुद्रस्य तेजसा दग्धो तीर्थयात्रां करोति सः ॥ ४ ॥ चचार परयाभक्त्या ध्यानमुग्रं हुताशनः ॥ वायुमच्च शशं साग्रं यावदासीद् हुताशनः ॥ ५ ॥ तावत्तुष्टो महादेवो हुताशनमुवाच ह ॥ हव्यवाहवरं ब्रूहि यत्ते मनसि वर्तते ॥ ६ ॥ हुताशन उवाच ॥ नमस्ते सर्वलोकेश उग्ररूप नमोऽस्तुते ॥ युष्मद्रेतेन सम्प्लुष्टः कुब्जो जातो महेश्वर ॥ ७ ॥ शरीरातो ह्यहंकृष्णस्मंस्थितो नर्मदा तटे ॥ इत्युक्तवान्तर्दधे देवो नीरुजस्त्वं भविष्यसि ॥ ८ ॥ हव्यवाहे नराजेन्द्र स्थापितः पिङ्गलेश्वरः ॥ जितक्रोधोऽपि यस्तत्र उपवासं समाचरेत् ॥ ९ ॥ अतिरात्रफलं तत्र अन्ते रुद्रमवाप्नुयात् ॥ गुणान्विताय दीनाय कपि

ध्यान को करतेहुये जबतक ध्यान करें ॥ ५ ॥ तबतक महादेवजी प्रसन्नहुये और अग्निसे बोले कि हे हव्यवाह ! जो तुम्हारे मनमें हो उस वरको तुम मांगो ॥ ६ ॥ तब अग्नि बोले कि हे सब लोकों के मालिक ! आप के लिये नमस्कार है हे उग्ररूप ! आप के लिये नमस्कार है आपके वीर्यसे जला हुआ मैं कुबरा होगया हूं हे महेश्वर ! ॥ ७ ॥ शरीर से दुःखी काला होगया मैं नर्मदा के नटमें रहता हूं तब महादेवने कहा कि तुम रोग से रहित होजावोगे यह कहकर अन्तर्धान होगये ॥ ८ ॥ तब हे राजेन्द्र ! वहा अग्निने पिङ्गलेश्वर को स्थापन किया क्रोधको जीतेहुये जो वहां उपास करता है ॥ ९ ॥ उसको वहां अतिरात्र यज्ञका फल होता है और अन्त में रुद्र को

पाता है और हे भारत ! जो वहाँ बछड़ा व रूप से संयुक्त व कपड़ों से युक्त व जेवर से सजकर कपिलागङ्गा को गुणों से युक्त गरीब ब्राह्मण के लिये देता है वह परमपद को जाता है ॥ १० । ११ ॥ हे राजेन्द्र ! तदनन्तर ब्रह्मा के वंशमें पैदाहुय ब्रह्मर्षियों के थापेहुये अतिउत्तम तीर्थ को जावे ॥ १२ ॥ जो कि नर्मदा के तटमें विद्यमान ऋणमोचन नाम से प्रसिद्ध है जो मनुष्य वहाँ भक्ति से ब्रह्म महीने तक पितरों का तर्पण करता है ॥ १३ ॥ तो वह नर्मदा के जलमें नहाकर अपने किये हुये देवता, पितर और मनुष्यों के ऋण से उसी क्षण छूटजाता है ॥ १४ ॥ वहाँ रूपवाला होकर पाप प्रत्यक्ष देखपड़ता है इस से हे राजन् ! इन्द्रियों को जीतेहुये व एकाग्र

लांतात्रभारत ॥ १० ॥ अलंकृत्वा सवस्त्रांच सवत्सारां रूपसंयुताम् ॥ यः प्रयच्छति विप्राय सगच्छेत्परमं पदम् ॥ ११ ॥
ततो गच्छेत्तुराजेन्द्र तीर्थं परमशोभनम् ॥ स्थापितं ह्यृषिसङ्घैश्च ब्रह्मवंशोद्भवैर्द्विजैः ॥ १२ ॥ ऋणमोचनविख्यातं रेवा तटसमाश्रितम् ॥ परमांसमनुजो भक्त्या तत्र यस्तर्पयेत्पितॄन् ॥ १३ ॥ दिव्यैः पित्र्यैर्मनुष्यैश्च ऋणैरात्मकृतैस्सह ॥ मुच्यते तत्तज्ज्वात्सोऽथ स्नात्वा त्वावैनर्मदाजले ॥ १४ ॥ प्रत्यक्षं पातकं तत्र दृश्यते चैव रूपि च ॥ तत्र तीर्थे तु यो राजन्ने कचिन्नो जि तेन्द्रियः ॥ १५ ॥ स्नानं दानं नरो धीमान् कारयेद्भक्तितत्परः ॥ ऋणत्रयविमुक्तस्तु नाके मोदति वीर्यवान् ॥ १६ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ तस्यैवानन्तरं पार्थ कपिलातीर्थमुत्तमम् ॥ स्थापितं कपिलेनैव सर्वपापप्रणाशनम् ॥ १७ ॥ अष्टम्याञ्चासिते पक्षे चतुर्दश्यां नरेश्वर ॥ स्नापयेत्परया भक्त्या कपिलाक्षीं रसर्पिषा ॥ १८ ॥ मधुना खण्डयुक्तेन दध्यक्षत फलेन च ॥ कपिलेशं नृपश्रेष्ठ निशीथे तं जगत्प्रभुम् ॥ १९ ॥ श्रीखण्डेन सुगन्धेन गुणैश्च मेहेश्वरम् ॥ ततस्सुगन्ध

मनवाला जो बुद्धिमान् मनुष्य भक्ति में तत्पर हो उस तीर्थ में स्नान व दान को करता है तो वह बलवान् होकर तीनों ऋणों से छूटा हुआ स्वर्ग में आनन्द भोगता है ॥ १५ । १६ ॥ मार्कण्डेयजी बोले कि हे पार्थ ! उसके बाद उत्तम कपिला तीर्थ को जावे सब पापों के हरनेवाले उस तीर्थको कपिल ने स्थापन किया है ॥ १७ ॥ हे नरेश्वर ! हे नृपश्रेष्ठ ! उजियाले पाख में अष्टमी व चौदस को शहद, शक्कर व दही, अक्षत और फलों से युक्त कपिलागङ्गा के दूध और घी से बड़ी भक्तिसे अर्द्धरात्र में उन जगत्प्रभु, कपिलेश्वर महादेव को नहवावे ॥ १८ । १९ ॥ और सुगन्धित चन्दन से महादेवका लेपन करे हे नृपनन्दन ! तदनन्तर क्रोधको जीतेहुये जो मनुष्य

सुगन्धित सफेद फूलों से महादेवको पूजते हैं वे यमलोक को नहीं जाते हैं हे पार्थ ! कपिलेश्वर के अच्छी तरह पूजन क्रिये पर घोर असिपत्रवन व दारुण यमवह्नी को वे सुख से निकल जाते हैं व हे भारत ! पुण्यवाले नर्मदाके जलमें नहाकर गऊ, वस्त्र, अन्न, छाता और शय्याके दानसे अच्छे ब्राह्मणका पूजनकरे तो वह पृथिवीमें राजा होता है ॥ २०२१२२२३ ॥ रोग से रहित व बड़ा तेजवाला व जीतिपुत्रवाला व ध्यारी वार्ताका कहनेवाला होता है उसके वैराभी मित्र हो जाते हैं इसमें संशय नहीं है ॥ २४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणैरेवाखण्डे प्राकृतभाषाऽनुवादे कपिलेश्वरमहिमाऽनुवर्णनो नाम पञ्चाधिकाव्यततमोऽध्यायः ॥ १०५ ॥ ❀ ॥

पुष्पैश्च इवैतैश्च नृपनन्दन ॥ २० ॥ अर्चयन्ति जितक्रोधा न तेयान्ति यममालयम् ॥ असिपत्रवनंधोरं यमवह्नीसुदारुणा
म् ॥ २१ ॥ ते ब्रजन्ति सुखं पार्थ कपिलेशे सुपूजिते ॥ स्नात्वा रेवाजले पुण्ये पूजयेद् ब्राह्मणं शुभम् ॥ २२ ॥ गोप्रदानेन व
स्त्रेण अन्नेन किल भारत ॥ छत्रशय्याप्रदानेन भूमौ राजा भवेत्तु सः ॥ २३ ॥ नीरोगस्तीव्रतेजाश्च जीवत्पुत्रः प्रियंवदः ॥
शत्रवो मित्रतां यान्ति जायते नात्र संशयः ॥ २४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणैरेवाखण्डे कपिलेश्वरमहिमानुवर्णनो नाम प
ञ्चाधिकाव्यततमोऽध्यायः ॥ १०५ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

मार्कण्डेय उवाच ॥ ततो गच्छेत्तुराजेन्द्र पूतकेश्वरमुत्तमम् ॥ नर्मदादक्षिणकूले सर्वपापक्षयङ्करम् ॥ १ ॥ सुस्था
पितः शिवस्तत्र लोकानां हितकाम्यया ॥ यस्तत्र मनुजः शम्भुपूजयेत्पाण्डुनन्दन ॥ २ ॥ सर्वान्कामानवाप्नोति न स या
तियमालयम् ॥ कृष्णाष्टम्यां चतुर्दश्यां सर्वकामानराधिप ॥ ३ ॥ ये च यन्ति महाकालं न तेयान्ति यमालयम् ॥ नर्म

मार्कण्डेयजी बोले कि हे राजेन्द्र ! तदनन्तर नर्मदा के दक्षिणवाले किनारे पर विद्यमान सब पापों के हरनेवाले उत्तम पूतकेश्वर को जावे ॥ १ ॥ लोकों के हित की कामना से वहा महादेवजी थापे गये हैं हे पाण्डुनन्दन ! वहां जो मनुष्य महादेवका पूजन करता है ॥ २ ॥ वह सब कामों को प्राप्त होता है और यमलोक को नहीं जाता है कृष्णपक्षकी अष्टमी व चौदस को हे नराधिप ! हरणके कामनाओं के करनेवाले ॥ ३ ॥ जो मनुष्य महाकालजी का पूजन करते हैं वे यमलोक को नहीं

जाते हैं नर्मदाके उत्तरवाले किनारेपर उत्तम वैष्णवतीर्थ है जो कि जलशायी इस नामसे पृथिवी में प्रसिद्ध है वहां दानवों को मारकर जनार्दन भगवान् सोये हैं ॥ ४ । ५ ॥ वहां देवताओं के देवता विष्णुजी ने अपने चक्रको धोया है नर्मदा के जल के प्रभावसे सुदर्शनचक्र पापों से रहित होगया है ॥ ६ ॥ तब युधिष्ठिरजी बोले कि ऋषियों के समूह से सेये जाते चक्रतीर्थ को कहो और विष्णु का अतुलप्रभाव व नर्मदाका जो फल है उसको कहो ॥ ७ ॥ मार्कण्डेयजी बोले कि हे महाभाग, युधिष्ठिर ! बाह २ कि गुप्त से गुप्त इस तीर्थ को चक्रधारी विष्णुजी ने आपही बनाया है ॥ ८ ॥ सो हम तुमने उस पापों के नाश करनेवाली कथाको कहेंगे अगिले

ढायोत्तरेकूले वैष्णवंतीर्थमुत्तमम् ॥ ४ ॥ जलशायीतिनाम्नावै विख्यातंवसुधातले ॥ दानवानांवधंकृत्वा सुप्तस्तत्रज
नादैनः ॥ ५ ॥ चक्रंचत्नालितंतत्र देवदेवनशौरिणा ॥ सुदर्शनंचनिष्पापं रेवातोयप्रभावतः ॥ ६ ॥ युधिष्ठिरउवाच ॥
चक्रतीर्थसमाचक्ष्व ऋषिसङ्घेर्निषेवितम् ॥ विष्णोःप्रभावमतुलं रेवायाश्चैव यत्फलम् ॥ ७ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ साधु
साधुमहाभाग विष्णुनाचयुधिष्ठिर ॥ गुह्याद्गुह्यतरन्तीर्थं निर्मितंचक्रिणास्वयम् ॥ ८ ॥ तत्तेहंसम्प्रवक्ष्यामि कथांपाप
प्रणाशिनीम् ॥ आसीत्पुरा महादैत्यो नलमेघइति श्रुतः ॥ ९ ॥ तेन देवाजितास्सर्वे हतराज्या नराधिप ॥ नलमेघभया
त्पार्थ विष्णुरुद्रास्सवासवाः ॥ १० ॥ यमस्कन्दजले शग्निवायवौ वैधनेश्वरः ॥ वसुवाकपतिसिद्धाश्च प्रचेताश्चपिताम
हः ॥ ११ ॥ गता देवाः परं लोकं विष्णुरुद्रनमस्कृतम् ॥ स्तुवन्ति विविधैः स्तोत्रैर्वागीशप्रसुखास्सुराः ॥ १२ ॥ नमः
शिवमूर्तये तुभ्यं प्राकृष्टष्टैः केवलात्मने ॥ गुणत्रयविभागाय पश्चाद्भद्रमुपेयुषे ॥ १३ ॥ इन्द्रादिप्रसुखान् देवान् निवर्णान्

जमाने से एक नलमेघ इस नाम से प्रसिद्ध बडाभारी दैत्य होता हुआ ॥ ६ ॥ हे नराधिप ! राज्य जिनकी हरली गई ऐसे सब देवता उस दैत्यसे जीतलिये गये हे पार्थ ! नलमेघ के भयसे इन्द्रसहित विष्णु, रुद्र, ॥ १० ॥ यम, स्कन्द, वरुण, अग्नि, वायु, कुबेर, वसु, बृहस्पति, सिद्ध, प्रचेता और ब्रह्मा आदि ॥ ११ ॥ सब देवता, विष्णु और रुद्र से भी नमस्कार किये गये सर्वोत्तम लोक को जाते हुये और बृहस्पति आदि सब देवता अनेक प्रकार के स्तोत्रों से स्तुति करते हैं ॥ १२ ॥ कि सृष्टि के प्रहले एकही रूपवाले कल्याण की मूर्ति जो आपहो तिनके लिये नमस्कार है तीनोंगुणों के विभाग करनेवाले फिर पीछे से भेदको प्राप्त होनेवाले के

लिये नमस्कार है ॥ १३ ॥ तबतक हे अग्रनीपते ! इन्द्र आदि सब देवताओं को शोभासहित देख प्रसन्नमुखवाले ब्रह्मा देवताओं से बोले ॥ १४ ॥ कि दे देवता लोगो ! तुम्हारा आना बहुत अच्छा है परन्तु तुम्हारी पहली शोभा क्यों जाती रही है जैमे पालासे ढंका हुआ है प्रकाश जिनका ऐसे नवत्र देखपड़े ॥ १५ ॥ आप से आप चिनगारियों को नहीं उगलता हुआ यह इन्द्रका वज्र गोठिलसा देख पड़ता है ॥ १६ ॥ और वैरियों के रोंकने से नहीं रुकनेवाली व वरुणके हाथमें रहनेवाली यह फांसी मन्त्रों से ताकत जिसकी हरलीगई ऐसे सापकी तरह क्यों दीन होरही है ॥ १७ ॥ दूटे बजुसावाली यह कुबेरकी मुजा, दूटगईहे शाखा जिसकी ऐसे पेड़की

वनीपते ॥ प्रसादाभिमुखोदेवः प्रत्युवाचदिवौकसः ॥ १४ ॥ स्वागतं सुरसङ्घाश्च कान्तिर्नष्टापुरातनी ॥ हिमप्लुष्टप्रभा
णीव ज्योतिषाञ्चमुखानिवै ॥ १५ ॥ प्रसमादर्चिषामेतदनुद्गीर्णनसुरायुधम् ॥ वृत्रस्यहन्तुः कुलिशं कुरिठतश्रीवलक्ष्य
ते ॥ १६ ॥ किञ्चायमरिदुर्वारः पाणौपाशः प्रचेतसः ॥ मन्त्रोपहृतवीर्यस्य फणिनोदन्यमागतः ॥ १७ ॥ कुबेरस्य
मनश्शल्यं शंसतीवपराभवम् ॥ अपविद्धाद्भदोबाहुर्भग्नशाखइवहुमः ॥ १८ ॥ यमोपिव्यलिखद्भूमिं दण्डेनापिहतत्वि
षा ॥ कुरुतस्मै नमो देहनिर्विण्णोयातिलाघवम् ॥ १९ ॥ अमीचद्वादशादित्याः प्रतापक्षयशीतलाः ॥ चित्रन्यस्ताइव
गताः प्रकामालोकनीयताम् ॥ २० ॥ मयि सृष्टिश्च लोकानां रक्षा युष्मास्ववस्थिता ॥ ततो मन्दानिलोद्भूतकमलाकर
शोभिना ॥ २१ ॥ गुरुनेत्रसहस्रेण प्रेरयामास वृत्रहा ॥ सहिनेत्रो हरस्य चः सहस्रनयनाधिकौ ॥ २२ ॥ वाचस्पतिरु

तरह कुबेर के मनकी फांस व उनकी हारको बतलातीसी है ॥ १८ ॥ चमक जिसकी जाती रही ऐसे कालदण्ड से यमराज भी जमीनको खोद रहे हैं इससे उसके नम-
स्कार करो क्योंकि जिसको देहसे वैराग्य होता है वह हलकापन को प्राप्त होता है ॥ १९ ॥ और ये वारहों सूर्य अपने तेज के क्षीण होजाने से ठण्डे होरहे चित्रसारी में
लिखे सूर्योंकी तरह सबको सुशी से देखने लायक होरहे हैं ॥ २० ॥ लोकों की रचना हमारे अधीन है और उनकी रक्षा तुम लोगों के अधीन है तदनन्तर थोड़ी हवा के
चलने से डोलरहे कमलोंकी तरह शोभावाले ॥ २१ ॥ हजारनेत्रों से इन्द्रने वृहस्पति को इशारा किया क्योंकि दो नेत्रवाले वृहस्पति और तीन नेत्रवाले महोदय ये दोनों

इन्द्र से अधिक है ॥ २२ ॥ इस से हाथ जोड़कर बृहस्पति ब्रह्मा से यह बोले कि हे तात ! बड़ा बलवाला नलमेघ नाम का दानव आय के वंशमे पैदा हुआ है ॥ २३ ॥ उस दानवने सब देवताओंको हरा दिया है तब ब्रह्मा ने कहा कि मेरे चलने से देवताओं के मारने लायक नलमेघ नहीं होगा ॥ २४ ॥ विना विष्णु भगवान् के उसका मारना और किसीको साध्य नहीं है तब सब देवताओंने विष्णु की स्तुति की कि हे शङ्ख, पद्म और गदाको हाथोंमें रखनेवाले व चक्रके धारनेवाले हे प्रभो ! आयकीजयहे ॥ २५ ॥ इस देवताओं की स्तुतिको सुन भगवान् जागतेहुये और मेघोंकी तरह गहरीआवाज से भीठीवाणीको बोलतेहुये ॥ २६ ॥ कि हे ब्रह्मन् ! सब देवता व दैत्योसे हम क्यों जगये वाचेन्द्र प्राञ्जलिर्हसवाहनम् ॥ गुष्मदंशोद्भवस्तात नलमेघो महाबलः ॥ २३ ॥ तेनेदेवगणास्मर्वे निरस्तादानवेनच ॥

नलमेघोनवध्योतश्चलितेनमयामुरः ॥ २४ ॥ विनामाधवदेवेन साध्योभवतिनैवहि ॥ शङ्खपद्मगदापाणेजयचक्रधर प्रभो ॥ २५ ॥ इतिदेवस्तुतिं श्रुत्वा प्रबुद्धोजलशायिकः ॥ उवाचमधुरावाणो मेघगम्भीरयागिरा ॥ २६ ॥ किमर्थवो धितो ब्रह्मन्समस्तैश्चसुरामुरैः ॥ ब्रह्मोवाच ॥ नलमेघभयेनेहसम्प्राप्तास्तवमन्दिरम् ॥ २७ ॥ नवध्यः कस्यचित्पापो नलमेघोजनार्दन ॥ तवहस्तेनदुष्टात्मा मृत्युं प्राप्स्यतिनान्यथा ॥ २८ ॥ जनार्दनउवाच ॥ स्वस्थानंयान्तुर्गीर्वाणा वधिष्यामिमहाबलम् ॥ स्थानंशंसन्तुमेदेवा वसतेयत्रदुर्मतिः ॥ २९ ॥ देवाऽजुः ॥ हिमाचलगुहांकृष्ण वसतेदानवेऽश्वरः ॥ चतुर्विंशत्सहस्रस्तु कन्याभिस्तुसमावृतः ॥ ३० ॥ तुरङ्गैःस्यन्दनैश्चैव संख्यातेषान्नविद्यते ॥ भवनानिविचित्राणि अमंख्यानिबहून्यपि ॥ ३१ ॥ हिरदाःपर्वताकारा हयाश्चहिरदोपमाः ॥ महाबलोऽवसत्तत्र गीर्वाणभयदायकः ॥ ३२ ॥ श्रु

गये है तब ब्रह्मा बोले कि हे जनार्दन ! नलमेघके भयसे हम लोग यहाँ आपके मन्दिर में आसहुये हैं नलमेघ पापी किसी के मारने लायक नहीं है आपही के हाथसे वह दुष्टात्मा मृत्युको पावेगा और तब नहीं मरसक्ता है ॥ २७ ॥ २८ ॥ तब भगवान् बोले कि देवतालोग अपने स्थानों को जाँवे हम उस महाबलवान् दैत्य को मारेंगे जहाँ वह दुर्बुद्धि रहताहो उस स्थान को देवतालोग हमको बतलावें ॥ २९ ॥ तब देवतालोग बोले कि हे कृष्ण ! चौबीस हजार कन्याओं से युक्त वह दानवों का मालिक हिमाचलकी गुफामें रहताहै ॥ ३० ॥ घोड़े और रथोंकी कोई गिन्ती नहीं है और अनगिन्ती बहुत से चित्रविचित्र मकान बने है ॥ ३१ ॥ हाथी पर्वतों

केसे भारी और घोड़े हाथियोंकेसे हैं देवताओं को भयका देनेवाला वह बलवान् दैत्य वहां रहता है ॥ ३२ ॥ विकलबुद्धिवाले उन देवताओं के वचन को सुनकर भगवान् शत्रुओं के नाश करनेवाले गरुड़की याद करतेहुये ॥ ३३ ॥ तदनन्तर जनार्दन भगवान् हाथ से चक्रको लेकर व गदा, शङ्ख, शार्ङ्गधनुष व मूसर और हलको हाथों से लेकर ॥ ३४ ॥ दानवके मारने के वास्ते गरुड़ पर सवार होतेहुये तब हे-पार्थ ! उस दानव के घरमें बड़े डरावने उत्पात होने लगे ॥ ३५ ॥ गीदड़ और बुधू उसके घरमें पैठ आये और हवाके बिना उसकी ध्वजाका दण्ड गिरपड़ा ॥ ३६ ॥ मूश और सापकी व हाथी और शेरकी लड़ाई होती हुई भेवर जिनमें उठते हैं ऐसी

त्वादेवोवचस्तेषां देवानामातुरात्मनाम् ॥ गरुडं चिन्तयामास शत्रुसङ्घविदारणम् ॥ ३३ ॥ चक्रं करेण संगृह्य गदां शङ्खं ततः प्रभुः ॥ शार्ङ्गं च सुशलं मारं करैर्गृह्य जनार्दनः ॥ ३४ ॥ आरूढः पद्मिना जंतु वधार्थं दानवस्य च ॥ दानवस्य गृहे पार्थ उत्पातो घोरदर्शनाः ॥ ३५ ॥ गोमायुर्गृहमध्ये तु कपोतो गृहमाविशत् ॥ विनावो तेन तस्यैव ध्वजदण्डं पपात ह ॥ ३६ ॥ सर्पं मूषकयोर्युद्धं तथा केशरिना गयोः ॥ उन्मार्गाः सरितस्तत्र वहन्ते च क्रमाश्रिताः ॥ ३७ ॥ अकालेतरुषु पाणि दृश्यन्ते तत्र पर्वते ॥ ततः प्राप्सो जगन्नाथो हिमवन्तं न गेह्वरम् ॥ ३८ ॥ पाञ्चजन्यं च कृष्णेन धुरितं पुरसन्निधौ ॥ पाञ्चजन्यस्य शब्देन आरूढो दानवैश्वरः ॥ ३९ ॥ नलमेघ उवाच ॥ कोयं मृत्युवशं प्राप्तस्त्वज्ञानेन समावृतः ॥ धुन्धुमार ब्रजशीघ्रं स्वभैन्यपरिवारितः ॥ ४० ॥ बलादानयतं बद्धाममाग्नेवलशां लीनम् ॥ धुन्धुमार उवाच ॥ आनयांमिनसन्देहस्मुरपन्नांश्च साम्प्रतम् ॥ ४१ ॥ स्यन्दनैश्च समायुक्तो गजवाजिर्मर्दस्सह ॥ दृष्टस्ततो जगद्योनिस्सुपर्णस्थो महाबलः ॥ ४२ ॥

नदियां रास्ते को छोड़ बहनेलगीं ॥ ३७ ॥ और उस पर्वतपर बेममय के फूल देखपड़ने लगे तदनन्तर जगत् के स्वामी भगवान् पर्वतों में श्रेष्ठ हिमालय पर्वतपर पहुँचगये ॥ ३८ ॥ और श्रीकृष्णजी ने शहर के समीप में अपने पाञ्चजन्य शङ्ख को बजादिया तब पाञ्चजन्यकी आवाजसे दानवोंका मालिक सजग हुआ ॥ ३९ ॥ नलमेघ बोला कि अज्ञान से युक्त यह कौन पुरुष मौत के वश में पड़गया है हे धुन्धुमार ! अपनी सेना से युक्त तुम जल्द जाओ ॥ ४० ॥ जबरदस्ती उस बलवान् को बांधकर हमारे सामने लाओ तब धुन्धुमार बोला कि मैं देवताओं के सहायकों को अभी लाताहूँ इसमें सन्देह नहीं है ॥ ४१ ॥ फिर रथ, हाथी, घोड़े और म्पिपा-

हियों के सहित उसने गरुड़पर बैठेहुये महाबली भगवान् को देखा ॥ ४२ ॥ इसको पकड़ो २ जब सिपाहीलोग ऐसे कहेगये तब भगवान् के चारों तरफ सिपाही लोग घिरगये ॥ ४३ ॥ गरुड़ अग्निबाण से टींड़ीकी तरह मारेजाते हैं धुन्धुमार भी कृष्ण से बाणों की मार से मारागया ॥ ४४ ॥ छाती में मारागया वह रथके ऊपर गिरपड़ा तब लड़ने को तैयार सब दानव हाहाकार को करतेहुये ॥ ४५ ॥ तब रिससे भराहुआ व रथपर सवार होकर नलमेघ निकला और हे पार्थ ! शङ्ख, चक्र और गदाके धरनेवाले भगवान् को देखा ॥ ४६ ॥ तब नलमेघ बोला कि हे दानवो ! इस विष्णुको मारो जिसने धुन्धुमारको माराहे मेरे सेनापति को मारकर अब कहाँ

गृह्यतां गृह्यतामेष इत्युक्तास्तेचकिङ्कराः ॥ चतुर्दिक्षुचवर्तन्ते किङ्कराः केशवस्यच ॥ ४३ ॥ सुपर्णेनाग्निबाणेन ह न्यन्ते शूलभाइव ॥ धुन्धुमारोपिकृष्णेन शरघातेन ताडितः ॥ ४४ ॥ हतो वक्षस्थलोपान्ते पतितस्स्यन्दनोपरि ॥ हा हाकारं ततस्सर्वे दानवाश्चक्रुर्घृताः ॥ ४५ ॥ नलमेघस्ततः क्रुद्धो रथारूढो विनिर्गतः ॥ ददर्श केशवं पार्थ शङ्खचक्रगदा धरम् ॥ ४६ ॥ नलमेघ उवाच ॥ हन्यतां दानवाः कृष्णो निहतो येन दानवः ॥ हत्वा च मे चमूमुख्यमधुना चक्रयास्यति ॥ ४७ ॥ इत्युक्त्वा दानवः पार्थ धर्षया मासमायकैः ॥ दानवस्य शरांस्तत्र च्छेदयामास केशवः ॥ ४८ ॥ गरुत्मान्भक्षया मास तत्सैन्यमतिभीषणम् ॥ कृष्णेन द्विगुणास्तत्र प्रेषिता हि शिलीमुखाः ॥ ४९ ॥ द्विगुणा द्विगुणीकृत्य प्रेषयामास दानवः ॥ तेषां चाष्टगुणाः कृष्णं व्यादयामासुरोजसा ॥ ५० ॥ ततः क्रुद्धेन दैत्येन आग्नेयं प्रेषितन्तदा ॥ वारुणं प्रतिवायव्यं नलमेघोऽव्यसर्जयत् ॥ ५१ ॥ नारसिंहं नृसिंहोऽयं प्रेषयामास पाण्डव ॥ नारसिंहं ततो दृष्ट्वा नलमेघो महाबलः ॥ ५२ ॥

जाकेगे ॥ ४७ ॥ हे पार्थ ! इतना कहकर वह दानव बाणोंसे मारने लगा वहाँ दानव के बाणोंको भगवान् काट देतेहुये ॥ ४८ ॥ और गरुडभी उसकी बड़ी डरावनी सेना को खाते हुये और वहाँ भगवान् ने भी उस दानव के बाणों से दूने बाणों को चलाया ॥ ४९ ॥ तब दानव भी दूने से दूने कर बाणों को चलाता हुआ वे अठगुने बाण अपने अपने तेजसे कृष्ण को ढांक लेतेहुये ॥ ५० ॥ तदनन्तर रिस से भरेहुये दैत्य ने अग्निबाण को चलाया और वरुण व वायव्य बाण को भी नल-

मेघ छोड़ता हुआ ॥ ५१ ॥ हे पाण्डव ! तब भगवान् ने नारसिंह बाण को चलाया बलवान् नलमेघ नारसिंह बाण को देख ॥ ५२ ॥ भट रथसे उतरा और वडाबली दानव हाथसे तलवार लेकर भगवान् के मारने के वास्ते चलाता हुआ ॥ ५३ ॥ तब रिसका भरा हुआ वह दानव हे पार्थ ! कृष्ण के समीप आता हुआ और तलवार से गदा को हाथमें लिपेहुये जो भगवान् हैं तिनको मारता हुआ ॥ ५४ ॥ तदनन्तर प्रसन्नमनवाले भगवान् मण्डलके अगिले भाग को प्रहणकर बलवान् नलमेघ दैत्य की छाती में मारा ॥ ५५ ॥ तब वह दैत्य भगवान् को बाण से मारता हुआ तदनन्तर नलमेघपर बड़े क्रुद्ध होकर भगवान् ने हे नृप ! संग्राम में ॥ ५६ ॥ खाली न जावे

उत्तीर्णः स्यन्दनाच्छीघ्रं खड्गगृह्यकरेणतु ॥ प्रेषयामासकृष्णाय तंहन्तुंवलवत्तरः ॥ ५३ ॥ क्रुद्धोथदानवःपार्थ आग
तःकेशवंप्रति ॥ खड्गेनघातयामास गदापाणिंजनार्दनम् ॥ ५४ ॥ मण्डलाग्रंतोगृह्य केशवोहृष्टमानसः ॥ हतोवज्र
स्थलेदैत्यो नलमेवोमहाबलः ॥ ५५ ॥ जनार्दनंतदादैत्यो नाराचेनजघानह ॥ जनार्दनस्ततःक्रुद्धो नलमेघंमृधेनृप ॥
५६ ॥ अमोघंचक्रमादाय शिरस्तस्यन्यपातयत् ॥ पतताशिरसातस्य वसुधाचक्रप्रकम्पिता ॥ ५७ ॥ समुद्राःक्षुभिताः
पार्थ मयादन्मार्गगामिनः ॥ पुष्पवृष्टिततोदेवा वष्टुःकेशवोपरि ॥ ५८ ॥ अवध्यस्सुरसङ्घानां सहतःकेशवेनतु ॥ स्व
स्थानश्चगतोदेवो नलमेघेनिपातिते ॥ ५९ ॥ जनार्दनोपिकौन्तेय नर्मदातटमाश्रितः ॥ लक्ष्मीसमन्वितःकृष्णो वि
लीनोनर्मदातटे ॥ ६० ॥ चक्रंविमोचितंपापक्षालनायमलान्वितम् ॥ पतितंनर्मदातोये जलशायिसमन्वितम् ॥
६१ ॥ निर्धृतकल्मषंजातं नर्मदायाःपण्डितः ॥ नन्दमेघवभोग्गणं गन्पापंमनजाधिप ॥ ६२ ॥ तत्सर्वंक्षालितंशीघ्रं

पुण्यं चक्र को लेकर उसका शिर गिरा दिया गिरतेहुये उसके शिरसे पृथिवी कांपनेलगी ॥ ५७ ॥ और हे पार्थ ! खलभलाते हुये समुद्र भयसे उछलने लगे तदनन्तर
‘माराबान् के ऊपर देवतान्नोरा फूलोंकी वर्षा करनेहुये ॥ ५८ ॥ जो सब देवताओं को अवध्यथा वह भगवान् से मारा गया नलमेघ के मरनेपर भगवान् अपने स्थान
आ बसंगये ॥ ५९ ॥ हे कीर्त्तय ! जनार्दन भगवान्भी नर्मदा के किनारेपर बैठते हुये लक्ष्मी के सहित विष्णुभगवान् नर्मदा के तट में लीन होगये ॥ ६० ॥ और
अश्वि गोश्रेय चक्रको पापों के धोने के वास्ते छोड़ दिया वह सक्त भगवान्के सहित नर्मदा में गिरा ॥ ६१ ॥ नर्मदा के प्रभाव से चक्र पापों से रहित होगया हे मनुजा-

धिप ! नलमेघके मारने से जो पाप हुआथा ॥ ६२ ॥ वह सब नर्मदा के जल में शीघ्र धोडाला गया हे भारत ! तब से इस लोक व पृथिवी में वह तीर्थ जलशायी कहलाता है ॥ ६३ ॥ अनेक पापों के समूह के नाशकरनेवाले उस तीर्थको कोई चक्रतीर्थ कहते हैं हे महीपते ! इस भारतखण्ड विषे नर्मदा में वह तीर्थ प्रसिद्ध है ॥ ६४ ॥ हे नृप ! उस तीर्थ के प्रभावको एकाग्रचित्त होकर तुम सुनो जैसे नागों में शयनरायण हैं व देवताओं में जैसे विष्णु हैं ॥ ६५ ॥ और महीनों में जैसे अगहन है ऐसे ही नदियों में पुण्यवाली नर्मदा है अगहन के उजियाले पाखकी एकादशीको या और अर्धे दिन में ॥ ६६ ॥ काम और क्रोधसे रहित जो मनुष्य वहाँ जाकर राह दे रेवायाम्भसिभारत ॥ तदाप्रभृतिलोकेस्मिञ्जलशायीमहीतले ॥ ६३ ॥ चक्रतीर्थवदन्त्यन्ये अनेकाघौघनाशनम् ॥ विख्यातंभारतेवर्षे नर्मदायांमहीपते ॥ ६४ ॥ तत्तीर्थस्यप्रभावंवै शृणुष्वैकमनानृप ॥ नागानांचयथानन्तो गीर्वाणानांजनार्दनः ॥ ६५ ॥ मासानांमार्गशीर्षोपि नदीपुण्याहिनर्मदा ॥ मासिमार्गेमितेपक्षे एकादश्यांशुभेदिने ॥ ६६ ॥ गत्वायेमनुजास्तत्र कामक्रोधविवर्जिताः ॥ स्नापयन्तिश्रियःकान्तं नागपर्यङ्कशायिनम् ॥ ६७ ॥ राजेन्द्रपरायामक्त्या चौद्रसागरसर्पिषा ॥ गुडेनतोनयमिश्रेण जगद्योनिजनार्दनम् ॥ ६८ ॥ स्नापयमानञ्चपश्यन्ति येलोकागतपातकाः ॥ तेषान्तिपरमंलोकं सुरासुरनमस्कृतम् ॥ ६९ ॥ धृतेनबोधयेद्दीपमथवातैलमिश्रितम् ॥ रात्रौजागरणंकृत्वा देवःस्यान्नात्रसंशयः ॥ ७० ॥ कथाञ्चैवैरणवीभक्त्या येशृण्वन्तिनरोत्तमाः ॥ ब्रह्महत्यादिपापेभ्यो मुच्यन्तेनानात्रसंशयः ॥ ७१ ॥ प्रदक्षिणयेकुर्वन्ति जलशायिजगद्गुरुम् ॥ प्रदक्षिणीकृतन्तेन जम्बूद्वीपंनरेश्वर ॥ ७२ ॥ ततःप्रभाते दृष्ट्य और घीसे व गुडमिले जलसे हे राजेन्द्र ! बड़ी भक्तिसे लक्ष्मी के पति व नाग की शय्याके सोनेवाले व जगतकी योनि जो भगवान् हैं तिनको नहंवाते हैं ॥ ६७ ॥ ६८ ॥ व पापों से रहित जो लोग नहंवाये जाते हुये भगवान् को देखते हैं वे सब लोग देवता व दैत्योसे नमस्कार कियेगये उत्तम लोकको जाते हैं ॥ ६९ ॥ घीसे दिया को जलावे अथवा तेल मिले घीको जलावे और रातमें जागरण करके देवता होजावे इसमें संशय नहीं है ॥ ७० ॥ और जो उत्तम लोग बड़ा भक्तिने विष्णु की कथा को सुनते हैं वे ब्रह्महत्या आदि पापों से छूटजाते हैं इसमें संशय नहीं है ॥ ७१ ॥ जगत् के गुरु जलशायी भगवान्की जो प्रदक्षिणा करते हैं हे नरेश्वर ! वे मानो

जम्बूद्वीपकी प्रदक्षिणा करणुके ॥ ७२ ॥ तदनन्तर विर्मले प्रातःकाल में यक्ष से पितरों का तर्पण कर फिर हे पाण्डवसत्तम ! पूजने लायक ब्राह्मणों से श्राद्ध करावे ॥ ७३ ॥ वे ब्राह्मण कैसे होवें कि अपनी स्त्री में रतहोवें और शान्तहों, पराई स्त्री से विमुखहों, वेदमें अभ्यास करनेवालेहों, अपने कर्मों के करनेवालेहों, अश्वे हों ॥ ७४ ॥ हमेशा सज्जनों केसे स्वभाववाले हों, तीनों कालोंकी सन्ध्या के करनेवाले हों ऐसे ब्राह्मणों से श्राद्ध करावे जो अपने भलेको चाहते हों ॥ ७५ ॥ यहां मनुष्य लोक में वे मनुष्य धन्य व पुण्यवाले हैं कि जो सदा ब्रह्मके स्थान कुण्ड में वास करते हैं ॥ ७६ ॥ और देवताओं के मालिक जलशायी भगवान् को प्रत्यक्ष देखते

विमले पितृन्सन्तर्पयन्ततः ॥ श्राद्धवैब्राह्मणैस्तत्र पूज्यैः पाण्डवसत्तम ॥ ७३ ॥ स्वदारनिरतैः शान्तैः परदारविवर्जितैः ॥ वेदाभ्यसनशीलैश्च स्वकर्मनिरतैश्शुभैः ॥ ७४ ॥ नित्यं सज्जनशैलैश्च त्रिसन्ध्यापरिपालकैः ॥ तादृशैः कारयेच्छ्राद्धमिच्छेयुः श्रेयश्चात्मानम् ॥ ७५ ॥ ते धन्यामानुषेलोके पुण्याश्चैवात्र मानुषाः ॥ ये वसन्ति सदा कालं पदे ब्रह्माश्रये हरे ॥ ७६ ॥ जलशायिनश्च पश्यन्ति प्रत्यक्षं सुरनायकम् ॥ पक्षोपवासयेकोचिद्रुद्रं तं चान्द्रायणं शुभम् ॥ ७७ ॥ मासोपवासमुग्रं च तथान्यत्परमं व्रतम् ॥ तत्र तीर्थतुयः पार्थ कुर्यात्स्वर्गमवाप्नुयात् ॥ ७८ ॥ अतः परं प्रवक्ष्यामि तिलधेनोस्तु यत्फलम् ॥ तथायस्मिन्मन्त्रादेशं दानं तस्य श्रुतं फलम् ॥ ७९ ॥ एतत्कथान्तरे पुण्ये मुनीन्द्रैः पापनाशनम् ॥ श्रुतं हि नैमिषारण्ये नारदाद्यैरनेकधा ॥ ८० ॥ इदमाख्यानमायुष्यं पुण्यं कीर्तिविवर्द्धनम् ॥ विप्राणां श्रावयेद्यस्तु सर्वं तत्फलमाप्नुयात् ॥ ८१ ॥ बहूनां प्रदेयानि गोगृहं शयनं किल ॥ विभक्तं दक्षिणाह्येषा दातारं नोपतिष्ठति ॥ ८२ ॥ ए

हैं और जो लोग एक पात्र का व्रत करते व चान्द्रायण करते हैं ॥ ७७ ॥ व वहा कड़ा महीने भरका व्रत व और व्रतको उस तीर्थ में जो करता है हे पार्थ ! वह स्वर्ग को प्राप्त होता है ॥ ७८ ॥ अब इसके बाद तिलधेनुका जो फल है उसको हम कहेंगे वह दान जिसको दिया जावे व जो कुछ उसका फल सुना गया है उसको हम कहेंगे ॥ ७९ ॥ पापों के नाश करनेवाले इस दानको नैमिषारण्य में नारद आदि मुनीन्द्रोंने अनेक तरह से पवित्र कथा के बीच में सुना है ॥ ८० ॥ इस पुण्यवाले व श्रायुर्दाय और यशके बढ़ानेवाले श्राख्यानको जो ब्राह्मणोंको सुनाता है वह इस सम्पूर्ण फलको पाता है ॥ ८१ ॥ गऊ, मकान और शय्या बहुतों को नहीं देना

चाहिये अगर इनकी दक्षिणा बँटजावे तो देनेवाले को फल नहीं होता है ॥ ८२ ॥ हे युधिष्ठिर ! वह एकही को देनेलायक है बहुतों को नहीं अगर वह गऊ बैची जावे तो सात पीढ़ी तकको भरम करदेती है ॥ ८३ ॥ तिल सफेद, काले और भूँभी होते हैं गऊ और बछड़े के मोलभर तिलों के प्रमाणको करे ॥ ८४ ॥ बछड़ा के सहित तिलधेनु देना चाहिये सोभी बहुतों को नहीं विचारसे गऊके जिस स्थान में तिलोंका जितना प्रमाण हो ॥ ८५ ॥ उसी प्रमाणसे अन्नय फलका चाहनेवाला गऊ को बनावे और हे विभो ! चन्दन, फूल और अन्नतों से उसका यत्नसे पूजन करे ॥ ८६ ॥ गऊकी नाक में सब सुगन्धित चीजें रखे और उसकी जीभकी जगह षट् कर्मसाप्रदातव्या बहूनांनयुधिष्ठिर ॥ साचविक्रयमापन्नादेहासप्तसंकुलम् ॥ ८७ ॥ तिलाः श्वेतास्तथा कृष्णास्ति लाः प्रोक्ताश्च वर्णतः ॥ तिलानाञ्च प्रमाणानि धेनोर्वत्सस्य कारयेत् ॥ ८८ ॥ दातव्या वत्सकेनाथ बहूनां कामिनां न तु ॥ यस्मिन्देशे च यन्मानं तिलानाञ्च विचारतः ॥ ८९ ॥ तेन मानेन साकार्या अक्षयं फलमिच्छता ॥ अर्चनीया प्रयत्नेन गन्धपुष्पाक्षतैर्विभो ॥ ९० ॥ नासायां सर्वगन्धाश्च जिह्वायां षड्रसाधृताः ॥ मुक्ताफलानि वादन्तजङ्घापुच्छेषु योजयेत् ॥ ९१ ॥ कुक्षौ कार्पासकन्देयं नाभ्यां पद्मां सकाञ्चनम् ॥ ओष्ठे मधुघृतं दद्यात्कुर्यात्सर्पिषश्च रोमके ॥ ९२ ॥ कम्बले तथा ॥ यक्ष्मे पायसं दद्याद्घृतचौद्रसमन्वितम् ॥ ९३ ॥ गुडं चैव गुदे दद्याच्छोणं यामधुघृते कांस्यपात्रमुदोहना ॥ ९४ ॥ यत्तु बालकृतं पापं यद्वाकृतं कर्मकृतं मनसा यच्च चिन्तितम् ॥ ९५ ॥ रसों को घरे दांत, फीली और पूँछ में मोती लगावे ॥ ९६ ॥ कोखियों में कपास और तोड़ी में सोने के सहित कमल को देवे औंठों में घी और शहद देवे रोवों में घी लगावे ॥ ९७ ॥ गऊके गलेकी खालकी जगह कम्बल देवे मरतक में ताँबे के पत्रको लगावे कन्धे में उसी के तुक्ड़े व रीर में लोहे के दण्डको लगावे ॥ ९८ ॥ गुदा में गुड और पीछेवाले पुटों में घी और शहद देवे घासकी जगह खीर, घी और शहद के सहित देवे ॥ ९९ ॥ सोने से मढ़े सींगोंवाली व रूपेसे मढ़े खुरोंवाली व मोतियों से गुंधी पूँछवाली गऊ को देवे उसके साथ कपड़े, अन्न और कसिकी दोहनी को देवे ॥ १०० ॥ तो लडकपन में कियाहुआ व बेसमझ से कियागया व

वाणी, कर्म और मन से किया गया पाप ॥ ६२ ॥ व जलमें थूकने में व वृषली से मैथुन में व गुरुस्त्री के भोग में ॥ ६३ ॥ व कन्या के साथ भोग करने में व सोनेकी चोरी में व दारू के पीने में जो पाप होता है उसको तिलधेनु पवित्र कर देती है ॥ ६४ ॥ जो दिन रातके उपाससे मेरे कहनेके अनुसार विधिपूर्वक गऊ दीजावे तो यमराज के पुरमें जो वैतरणी नदी कही जाती है ॥ ६५ ॥ व बालूकी जगह जहाँ पापी पचता है व अवीचिनरक जहाँ जोरिहाँ दो पहाड़ हैं ॥ ६६ ॥ व जहाँ लोहे के मुँहवाले कौत्रा हैं व जहाँ डरावनी जगह है व जहाँ ताती बालू है ॥ ६७ ॥ इन सब स्थानों को सुख से नांघकर धर्म-जलमात्रेष्ठीवनेच मुशलेवाविलिङ्घिते ॥ ६८ ॥ कन्यायांगमनेचैव सुवर्णस्तेयएव च ॥ मुरापानञ्चयच्चापि तिलधेनुः पुनाति हि ॥ ६९ ॥ अहोरात्रोपवासेन विधिवत्सामयोदिता ॥ यामेयमपुरेचैव नदी वैतरणी स्मृता ॥ ७० ॥ बालुकायास्थलेचैव पच्यते यत्र दुष्कृती ॥ अवीचिनरकोपेतौ यौ वै युगलपर्वतौ ॥ ७१ ॥ यत्र लोहमुखाः काका यत्र स्थानं भयानकम् ॥ असिपत्रवनं यत्र यत्र तप्तं च बालुकम् ॥ ७२ ॥ तत्सुखेन व्यतिक्रम्य धर्ममरा जाश्रमं व्रजेत् ॥ धर्ममरा जस्तु तं दृष्ट्वा सुहृत्तं वा क्रयमब्रवीत् ॥ ७३ ॥ वितानं विततं योग्यं मणिरत्नविभूषितम् ॥ अत्रागच्छन् पश्रेष्ठ गच्छस्व परमाङ्गतिम् ॥ ७४ ॥ माचपापरतेदानं नतदानं परहितम् ॥ माविकाले विरूपे च न व्यङ्गे च तथैव च ॥ ७५ ॥ अवेदविदुषैश्चैव ब्राह्मणेभ्यो विदुषैश्च ॥ ७६ ॥ वेदान्तगायदातव्या तस्य तत्त्वं विजानते ॥ वेदान्तगेतुसादेया श्रोत्रियेऽभूतबालका ॥ ७७ ॥ सर्वाङ्गरुचिरे देया पवित्रे च प्रियंवदे ॥ पौर्णमास्याममावा

राज के स्थान को जाता है धर्मराज भी उसको देख मीठी व सच्ची बात कहते हैं ॥ ६८ ॥ कि मणि व रत्नों से सजाहुआ बड़ा योग्य सामियाना खड़ा है हे नृपश्रेष्ठ ! आप यहाँ आवें और फिर परमगति को जावें ॥ ६९ ॥ पापी को दान मत देवे क्योंकि वह दान अपना हित नहीं होता है और बेसमयमें कुरूप व बिगड़ी देहवाले को मत देवे ॥ ७० ॥ जो ब्राह्मण नशा खाता है और वेद नहीं पढ़ा है मित्रों का द्रोही व कुतन्त्र व ब्रतहीन है ऐसेको दान न देवे ॥ ७१ ॥ वेदान्त के पढ़नेवाले को व उसके तत्त्व के जाननेवाले को गऊ देना चाहिये वेदान्त के पढ़नेवाले व वेदपाठी ब्राह्मण को बेवखड़ा की नई गऊ देना चाहिये ॥ ७२ ॥ सब अङ्गों से सुन्दर व पवित्र

व प्यारी बातों के कहनेवाले को गऊ देना चाहिये पूर्णमासी, अमावस, कार्तिकी ॥ ३ ॥ वैशाखी, अगहन, चन्द्र व सूर्यका ग्रहण, उत्तरायण व दक्षिणायनका दिन विपुत्र (जिस समय में दिन और रात बराबर होते हैं) व्यतीपात, ॥ ४ ॥ षडशीतिमुख नामकी संक्रान्ति और गजच्छाया ये सब दानके समय हैं हे अनघ ! यह मैंने तुम से तिलधेनुके कल्पको कहा है ॥ ५ ॥ इस दान के करनेवाले सूर्यलोकको भेद कर विष्णुलोकको जाते हैं हे नृप ! चक्रतीर्थ के इस सम्पूर्ण फल को मैंने आपसे कहा ॥ ६ ॥ इसके सुनने व कहने से हजार गोदानके फलको पाता है ॥ १०७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणरेवाखण्डेचक्रतीर्थमाहात्म्यवर्णनोनामषडधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०६ ॥

स्यां कार्तिक्यांचापिभारत ॥ ३ ॥ वैशाख्यांमार्गशर्षेच ग्रहणेचन्द्रसूर्ययोः ॥ अयनेविषुवंचैव व्यतीपातेचमर्वथा ॥ ४ ॥ षडशीतिमुखैचैव गजच्छायासुमर्वदा ॥ एषतेकथितःकल्पस्तिष्ठेनोर्मयानघ ॥ ५ ॥ भित्त्वाचमास्करंलोकं हरि लोकंव्रजन्ति ॥ एतत्तेसर्वमाख्यातं चक्रतीर्थफलन्नृप ॥ ६ ॥ श्रवणात्कीर्तनाद्वापि गोसहस्रफलंलभेत् ॥ १०७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणरेवाखण्डे चक्रतीर्थमाहात्म्यवर्णनोनामषडधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०६ ॥ * ॥ * ॥

मार्कण्डेयउवाच ॥ ततो गच्छेत्तुराजेन्द्र तीर्थपरमशोभनम् ॥ चन्द्रादित्यंनृपश्रेष्ठ स्थापितंचण्डमुण्डयोः ॥ १ ॥ आसीत्पुरामहाभागौ चण्डमुण्डौतुदानवौ ॥ तपश्चरेत्तुस्तत्रनर्मदायांयुधिष्ठिर ॥ २ ॥ ध्यायतोभास्करन्देवं तमो नाशंजगद्गुरुम् ॥ ताभ्याञ्चतोषितस्सोपि सहस्रांशुरुवाचह ॥ ३ ॥ साधुसाध्वितितौपार्थ नर्मदायास्तटे शुभे ॥ चण्डमुण्डौवरंभूतंविशिष्टमनसेप्सितम् ॥ ४ ॥ चण्डमुण्डावूचतुः ॥ अजेयौचैवदेवेश सर्वपादेवतानृणाम् ॥ रोगैश्चैव

मार्कण्डेयजी बोले कि हे राजेन्द्र ! हे नृपश्रेष्ठ ! तदनन्तर चण्ड मुण्ड के थापेहुये अतिउत्तम चन्द्रादित्य नाम के तीर्थ को जावे ॥ १ ॥ हे युधिष्ठिर ! अगिले जमाने में बड़े भाग्यवाले चण्ड और मुण्ड नामके दो दानव वहां नर्मदामें तपस्या करतेहुये ॥ २ ॥ अन्धकारके नाश करनेवाले व जगत् के गुरु जो सूर्य हैं तिनका ध्यान करतेहुये उन दोनों से प्रसन्न कियेगये सूर्य बोलते हुये ॥ ३ ॥ उत्तम नर्मदा के तटमें हे पार्थ ! सूर्यने कहा कि हे चण्ड, मुण्ड ! वाह वाह तुम दोनों अपने मनके प्यारे वरको मागो ॥ ४ ॥ तब चण्ड मुण्ड बोले कि हे देवेश ! सब देवता व मनुष्यों के जीतने लायक हम न होंगे और हे दिनके करनेवाले ! रोगों से रहित

सदा सुखसे रहें ॥ ५ ॥ तब सूर्यने उन दोनोंसे अच्छे वाक्यको कहा कि ऐसाही होगा तदनन्तर सूर्य अन्तर्द्वान होगये फिर उन दोनों दानवों ने सूर्यका ॥ ६ ॥ स्थापन किया उनका जो कोई इन्द्रियों को जीतेहुये बड़ी भक्ति से पूजन करताहै वह मनुष्य वही देवभाव को प्राप्त होजाताहै ॥ ७ ॥ और सूर्य व ब्रह्मलोक में देवताओं के समीप रहताहै व हे नरेश्वर ! जो प्रत्येक छठिमें घी से दीपक जलाताहै ॥ ८ ॥ वह सब पापों से छूटजाताहै और मरकर सूर्यके पुरको जाता है हे नरोत्तम ! चन्द्रादित्य नामका यह तीर्थ वहां प्रसिद्ध है ॥ ९ ॥ जो लोग चन्द्रादित्य को जाते हैं वे सदा विजयको प्राप्त होते हैं ॥ १० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे रेवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनुवादेच-

परित्यक्तौ सविकाशोदिवाकर ॥ ५ ॥ तत्तथेतिशुभंवाक्यंभास्करस्ताववीवदत् ॥ ततश्चान्तर्दधेभानुर्दानवाभ्यांचभास्कर
रम् ॥ ६ ॥ स्थापितं परयाभक्त्या पूजयेद्योजितेन्द्रियः ॥ गीर्वाणतामनुष्यस्य प्राप्तातत्रैववर्तते ॥ ७ ॥ वसतेभास्करे
लोकै वैरिञ्चदेवसन्निधौ ॥ द्यूतेनबोधयेद्दीपं षष्ठ्याषष्ठ्यांनरेश्वर ॥ ८ ॥ मुच्यतेसर्वपापेभ्यो मृतोयातिपुरंरवेः ॥ च
न्द्रादित्यमितिख्यातं तत्रतीर्थंनरोत्तम ॥ ९ ॥ विजयन्तेसदाकालं चन्द्रादित्यं ब्रजन्तिनये ॥ १० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे
रेवाखण्डे चन्द्रादित्येश्वरमहिमानुवर्णनोनामसप्ताधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०७ ॥ * ॥

मार्कण्डेयउवाच ॥ ततो गच्छेत्तुराजेन्द्र यमहासमनुत्तमम् ॥ सर्वपापहरंपार्थ रेवायास्तटमाश्रितम् ॥ १ ॥ युधिष्ठि
रउवाच ॥ यमहासंकथंजातं पृथिव्यामुनिपुङ्गव ॥ एतत्सर्वसमाख्याहि ममकौतूहलंपरम् ॥ २ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥
साधुसाधुमहाभाग पृष्टन्तेधर्ममनन्दन ॥ स्नानार्थंनर्ममदायान्तु आगतस्तेपितापुरा ॥ ३ ॥ रजकेनयथाधौतं निम्नं

न्द्रादित्येश्वरमहिमाऽनुवर्णनोनामसप्ताधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०७ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

मार्कण्डेयजी बोले कि हे राजेन्द्र ! हे पार्थ ! तदनन्तर सब पापों के हरनेवाले व नर्मदा के तट में विद्यमान अत्युत्तम यमहास तीर्थ को जावे ॥ १ ॥ तब युधिष्ठिर
जी बोले कि हे मुनिपुङ्गव ! पृथिवी में यमहास कैसे हुआ सो सब आप कहो मुझको बड़ा आश्चर्य है ॥ २ ॥ तब मार्कण्डेयजी बोले कि हे महाभाग ! हे धर्म-

नन्दन ! बहुत अच्छा आपने पूछा आगे नर्मदा में स्नान करने को आपके पिताभी आयेथे ॥ ३ ॥ हे राजन् ! धोबी का धोया हुआ कपडा जैसा निर्मल होजावे ऐसाही साफ नर्मदा के अत्युत्तम जलको देखतेहुये ॥ ४ ॥ यमराज ने हैसदिया था तब वहां एक उत्तम लिङ्ग उठता हुआ तदनन्तर हेराजेन्द्र ! वहां आकाशवाणी हुई ॥ यमहास तीर्थ में कुँवारके अधियार पाखकी चौदस को ॥ ७ ॥ बड़ी भक्ति से उपास कर सब पापों से छुटजाता है रात में जागरण कर बीसे महादेव का दिया जलेंवसनंभवेत् ॥ तथैवपश्यताराजन् रेवाजलमनुत्तमम् ॥ ४ ॥ हास्यंकृतंयमेनाथ उत्थितंलिङ्गमुत्तमम् ॥ ततस्तदाहि राजेन्द्र वागुवाचाशरीरिणी ॥ ५ ॥ यमहासमिदंतीर्थं ख्यातियास्यतिसर्वदा ॥ स्यापयित्वाशिवंतत्र यमःस्वर्गजगाम ह ॥ ६ ॥ यमहासेतुराजेन्द्र जितक्रोधोजितेन्द्रियः ॥ विशेषादाश्विनेमासि कृष्णपक्षेचतुर्दशीम् ॥ ७ ॥ उपोष्यपरयाभक्त्या सर्वपापैःप्रमुच्यते ॥ रात्रौजागरणंकृत्वा दीपंदेवस्यबोधयेत् ॥ ८ ॥ दृतेनचैवराजेन्द्र शृणुतस्यैवयत्फलद्रोहद्रोहणे तथा ॥ १० ॥ स्नानमात्रेणतच्चैव नश्येत्पापमनेकधा ॥ यमलोकक्षपश्येच्च नत्यजेत्पाण्डुनन्दन ॥ ११ ॥ बहूनांपरमंगुप्तं तीर्थभूम्यांनृपात्मज ॥ तदक्षयफलंतेषां यमहासेप्रदायिनाम् ॥ १२ ॥ अमावास्यांजितक्रोधो यस्तु पूजयतेद्विजान् ॥ भूमिदानेनयोभक्त्या तिलदानेनभारत ॥ १३ ॥ कृष्णाजिनप्रदानेन तिलधेनुप्रदानतः ॥ वसुमेलावे तो हेराजेन्द्र ! उसके फलको सुनो कि जिस स्त्रीका संग्रह नहीं उचित है उसके संग्रह से पैदाहुये सब पापों से छुटजाता है ॥ ८ ॥ ९ ॥ नहीं खानेलायक चीज के खाने से व नहीं पीने लायक के पीनेसे व नहीं जोतने लायक के जोतने से व नहीं वैर करने लायक के साथमें वैर करने से जो अनेकप्रकार का पाप होताहै वह स्नानमात्र से नष्ट होजाताहै और हे पाण्डुनन्दन ! नहानेवाला यमलोकको नहीं देखता है चाहे पापको न भी छोड़े ॥ १० ॥ ११ ॥ हे नृपात्मज ! यह तीर्थ पृथिवी में बहुतोको छिपाहुआ है यमहास में दान करनेवालों को अक्षय फल होता है ॥ १२ ॥ हे भारत ! अमावस को क्रोधको जीतेहुये जो मनुष्य भक्तिसे पृथिवी, तिल,

सृगचर्म और तिलधेनु के दान से ब्राह्मणों का पूजन करता है अथवा धनिष्ठा नक्षत्र व वृद्धियोगमें जो लोग भक्तिसे देवों ॥ १४ ॥ व भात, जल, बैल, बड़े बलवाला घोड़ा, कन्या, कपड़ा, बोकरी, गऊ, भैस और घोड़ी को हे नृपश्रेष्ठ ! देते हैं वे यम के पास नहीं जाते हैं और हे युधिष्ठिर ! उनसे जन्ममें यमराजभी प्रसन्न रहते हैं ॥ १५ ॥ १६ ॥ और हे भारत, नृप ! यमकी सवारी भैसा, भैस और स्त्री के दानसे यमराज निरन्तर प्रसन्न रहते हैं ॥ १७ ॥ वह पापोंसे भी युक्त हो परन्तु यमलोकमें नहीं जाता है हे पार्थ ! इसी कारणसे भैसका दान बहुत उत्तम है ॥ १८ ॥ ऊनके दो कपड़े बनावे और उनको लोहमें लपेटकर यमराजके वास्ते ब्राह्मणको देवे व कहे कि हे

वृद्धियोगे च ये प्रदास्यन्ति भक्तिः ॥ १४ ॥ ओदनं वारिधूवाहं हयञ्चापि महाबलम् ॥ कन्यां वस्त्रमजंगवै महिषीम
थवा श्विनीम् ॥ १५ ॥ ये यच्छन्ति नृपश्रेष्ठ नोपसर्पन्ति ते यमम् ॥ यमोऽपि भवति प्रीतो जन्मजन्मयुधिष्ठिर ॥ १६ ॥ यम
स्य बाहनं स्त्री च महिषी तत्र भारत ॥ तस्य दानेन सततं यमः प्रीतो भवेन्नृप ॥ १७ ॥ न स याति यमलोकं यदि पापैस्समाश्रितः ॥
एतस्मात्कारणात् पार्थ महिषीदानमुत्तमम् ॥ १८ ॥ और्णवस्त्रद्वयं कार्यं लोहवर्णं च वेष्टितम् ॥ दापयेद्धर्मराजाय प्री
यतां मे द्विजोत्तम ॥ १९ ॥ अनेनैव तु दानेन यमः प्रीतोऽस्तु मे सदा ॥ इत्युच्चार्य द्विजस्य ग्रे यमलोकं भयावहम् ॥ २० ॥
असिपत्रवने घोरं यमवल्लीसुदारुणा ॥ रौद्रावैतरणी चिति कुम्भीपाकस्सुदारुणः ॥ २१ ॥ कालसूत्रं महाभीमं तथा यमल
पर्वतौ ॥ क्रकचनैल यन्त्रञ्च स्थाने गृध्रास्सुदारुणाः ॥ २२ ॥ अनिश्वासो महारौद्रो भीषणो रौरवस्तथा ॥ एते घोराश्च
नरकाः श्रूयन्तो द्विजसत्तम ॥ २३ ॥ तत्प्रसादेन ते सोम्यास्तीर्थस्यास्य प्रभावतः ॥ दानस्यास्य प्रभावेण यमहास्यप्रभाव

द्विजोत्तम ! सुश्रु प्रसन्न होवो ॥ १६ ॥ और ब्राह्मणके आगे यह भी कहे कि इस दानसे सुश्रु पर यमराज सदा प्रसन्न रहे क्योंकि यमलोक बड़ा डरावना है ॥ २० ॥ उसमें बड़ा घोर असिपत्रवन व बड़ी दारुण यमवल्ली व बड़ी भयानक दैतरणी नर्दा व अतिदारुण कुम्भीपाक ॥ २१ ॥ व बड़ा भयानक कालसूत्र व जोरिहों दो पहाड़ व आरा और कोल्हू व उसी स्थान में बड़े दारुण गीध ॥ २२ ॥ व महारौद्र अनिश्वास व बड़ा डरावना रौरव है हे द्विजसत्तम ! ये जो घोर नरक सुने जाते हैं ॥ २३ ॥

वे सब यमराज के प्रसाद व इस तीर्थके प्रभाव से सुख के देनेवाले होजाते है इस दानके प्रभावसे व यमहास तीर्थके प्रभाव से ॥ २४ ॥ यमलोक को नहीं जाता है और नरक को नहीं देखता है ॥ २५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणैरेवाखण्डे प्राकृतभाषाऽनुवादेयमहासमहिमाऽनुवर्णनोनामाष्टाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०८ ॥
मार्कण्डेयजी बोले कि हे राजेन्द्र ! तदनन्तर अत्युत्तम कोटीश्वर तीर्थ को जावे हे कुरुनन्दन ! वहाँ एक करोड़ ऋषिलोग आयेथे ॥ १ ॥ वहाँ सम्पूर्ण वेद के पढ़नेवाले ब्राह्मणों से मुनिश्रेष्ठ व्यासजी मोक्षके वास्ते विचारकर ॥ २ ॥ श्रद्धा व भक्ति से युक्तहो तिल मिले गऊ के पञ्चासुत से पितरो के तर्पण को कर विधान

तः ॥ २४ ॥ यमलोकन्नवैयाति नरकैवपश्यति ॥ २५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणैरेवाखण्डे यमहासमहिमानुवर्णनोना
माष्टाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०८ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

मार्कण्डेयउवाच ॥ ततो गच्छेत्तुराजेन्द्र कोटीश्वरमनुत्तमम् ॥ ऋषिकोटिस्समायाता तत्र वैकुरुनन्दन ॥ १ ॥ कृ
ष्णद्वैपायनस्तत्र मोक्षार्थमुनिपुङ्गवः ॥ मन्त्रयित्वा द्विजैस्सर्वेदमण्डलपारगैः ॥ २ ॥ पञ्चामृतेन गव्येन तिलमिश्रेण
तत्परः ॥ पितॄणां तर्पणं कृत्वा पिण्डदानं यथाविधि ॥ ३ ॥ श्रावणस्य तु मासस्य पूर्णिमायां विशेषतः ॥ प्राप्य ते चाक्षयात्
सिर्यावदाहूतसम्प्लवम् ॥ ४ ॥ पितॄणां परमं गुह्यं रेवाजलमुपाश्रितम् ॥ मोक्षदं सर्वभूतानां निर्मितं मुनिपुङ्गवैः ॥ ५ ॥ मा
र्कण्डेयउवाच ॥ ततो गच्छेत्तुराजेन्द्र व्यासतीर्थमनुत्तमम् ॥ दुर्लभं मनुजैः पार्थ अन्तरिक्षे व्यवस्थितम् ॥ ६ ॥ युधि
ष्ठिरउवाच ॥ कस्माद्वै व्यासतीर्थं नु अन्तरिक्षे व्यवस्थितम् ॥ एतदाचक्ष्व संक्षेपात्तत्र ग्रन्थस्य विस्तरः ॥ ७ ॥ मार्कण्डे

से पिण्डदान करतेहुये ॥ ३ ॥ सावनकी पूर्णमासी को विशेषसे इस कामको करे क्योंकि इस से पितरों को प्रलय तक अन्नच तृप्ति होती है ॥ ४ ॥ पितरों को बड़ा गुप्त नर्मदा का जल है सब प्राणियों के मोक्षका देनेवाला नर्मदाका जल मुनियों से बनाया गया है ॥ ५ ॥ फिर मार्कण्डेयजी बोले कि हे राजेन्द्र ! हे पार्थ ! तदनन्तर आकाश में विद्यमान व मनुष्यों को दुर्लभ व अत्युत्तम व्यासतीर्थ को जावे ॥ ६ ॥ तब युधिष्ठिर जी बोले कि व्यासका तीर्थ आकाशमे क्यों

स्थित हुआ संक्षेप से इसको आप कहें जिस में ग्रन्थका विस्तार न होवे ॥ ७ ॥ तब मार्कण्डेयजी बोले कि हे महाबाहो ! बाह २ आप बड़े धर्मात्मा व गुरु के प्यारे अपने धर्मके प्रेमी व तीर्थयात्रा के आदर करनेवालेहो हे पार्थ ! ॥ ८ ॥ हे नरेश्वर ! सब प्राणियोंको व्यास का तीर्थ बड़ा दुर्लभ है हम बुढ़ापे व विकलतासे हे नराधिप ! दूबेहुये ॥ ९ ॥ व बेहोश होरहे हैं तब भी कहते हैं हे पाण्डुनन्दन ! गुप्त में अतिगुप्त इस तीर्थ को हमने किसी से नहीं कहा है ॥ १० ॥ हे राजेन्द्र ! इन्द्रकी आज्ञा से वहा काल नहीं रहसक्ता है जिस से यह नर्मदा का चरित्र आकाश में होरहा है ॥ ११ ॥ ब्रह्माभी नर्मदा के गुणों को नहीं कहसक्ते हैं और व्यासतीर्थ को

यउवाच ॥ साधुसाधुमहाबाहो धर्मवान्गुरुवत्सलः ॥ स्वधर्मनिरतःपार्थ तीर्थयात्राकृतादरः ॥ ८ ॥ दुर्लभं सर्वजन्तूनां व्यासतीर्थं नरेश्वर ॥ धर्षितो दृढभावेन वैकल्येन नराधिप ॥ ९ ॥ गतचेतास्तु सज्जातस्तथाभोः पाण्डुनन्दन ॥ गुह्याद्गुह्यतरन्तीर्थं नाख्यातं कस्यचिन्मया ॥ १० ॥ कालस्तत्रैव राजेन्द्र नवसेद्वासवाज्ञया ॥ अन्तरिक्षे च सज्जातं रेवायाश्चैष्टितं यतः ॥ ११ ॥ विरञ्चिर्नैव शक्नोति रेवाया गुणकीर्तनम् ॥ व्यासतीर्थं विशेषेण श्रुतमात्रं वदाम्यहम् ॥ १२ ॥ प्रत्यक्षः प्रत्ययो यत्र दृश्यते हि कलौ युगे ॥ विहङ्गो गच्छते नैव भित्वा शूलं सुदारुणम् ॥ १३ ॥ तस्योत्पत्तिं समासेन कथयामि नृपात्मज ॥ आसीत्पूर्वमहाराज ऋषिश्चैव पराशरः ॥ १४ ॥ तेन चोग्रंतपस्तप्तं गङ्गाम्भसि तुभारत ॥ प्राणायामेन चातिष्ठत्प्रविष्टो जाह्नवीजले ॥ १५ ॥ पूर्णे च द्वादशे वर्षे निष्क्रान्तो जलमध्यतः ॥ भिन्नार्थे चागतो ग्रामं नावितत्रैव तिष्ठती ॥ १६ ॥ तत्र दृष्ट्वा परोत्सृष्टा बाला तेन मनोरमा ॥ ताञ्च दृष्ट्वा सकामार्तं उवाच मधुराक्षरम् ॥ १७ ॥ मां रमस्वाद्यत्वं

तो विशेषही नहीं कहसक्ते हैं मैं सुनेमात्र को कहता हूँ ॥ १२ ॥ जहा कलियुग में भी प्रत्यक्ष विश्वास देख पड़ता है जिस तीर्थ के अतिदारुण त्रिशूल को नाघकर पक्षी भी नहीं उड़सक्ता है ॥ १३ ॥ हे नृपात्मज ! उस तीर्थकी उत्पत्तिको हम साधारण रीति से कहते हैं हे महाराज ! आगे पराशर नाम के ऋषि होतेहुये ॥ १४ ॥ हे भारत ! उन्होंने गङ्गाके जल में उग्र तपस्या को किया गङ्गा के जलमें प्राणायाम करतेहुये स्थिर रहे ॥ १५ ॥ बारहवीं वर्षके पूरे होनेपर पानी के भीतर से निकले और भिन्नार्थके वास्ते गांवको गये वहां नौकापर बैठे ॥ १६ ॥ व किसी औरसे छौड़ी हुई मनकी रमानेवाली एक स्त्री उन पराशरको देखपड़ी उसको देख कामसे विकल

वे पराशर उससे मीठे अक्षरों से बोले ॥ १७ ॥ हे मृगलोचने ! तुम कौन हो मुझ कामी से आज रसो हे नावारूढे ! नदी के किनारे पर मेरे चित्त को मथ रही हो ॥ १८ ॥ उन महात्मासे ऐसे कहीं गई वह स्त्री ऋषिको नमस्कार कर बोली कि हे विप्र ! मैं नावकी रक्षा करनी हूँ और अपने स्वामीको नहीं जानती हूँ ॥ १९ ॥ और मेरी यह उमर है बाकी रहे हाल को आप जानो उस स्त्रीसे ऐसे कहे गये वे पराशरभी थोड़ी दूर ध्यान कर बोलते हुये ॥ २० ॥ कि हे भद्रे ! हम ज्ञानके बलसे तुम्हारी उत्पत्ति को जानते हैं आप केवटकी कन्या नहीं हो बल्कि सुन्दररूपवाली तुम राजाकी कन्या हो ॥ २१ ॥ तब कन्या बोली कि हे ब्रह्मन् ! हमारा पिता कौन है उसको आप कासि कामुकं मृगलोचने ॥ नावारूढेन दीतीरे ममचित्तप्रमाथिनी ॥ १८ ॥ एवमुक्ता तु सा तेन प्रणम्य ऋषिपुत्रसमम् ॥ नावंरत्नाभ्यहं विप्र जानामि स्वाभि नन्नतु ॥ १९ ॥ ममेदञ्च यो ब्रह्मच्छेपं त्वं ज्ञातुमर्हसि ॥ एवमुक्तस्तया सोऽपि क्षणं ध्यात्वा ब्रवीदिदम् ॥ २० ॥ अहं ज्ञानबलाद्भद्रे जानामि तव सम्भवम् ॥ कैवर्तपुत्रिकानत्वं राजपुत्री हि मुन्दरी ॥ २१ ॥ कन्यो वाच ॥ कः पिता कथ्यतां ब्रह्मन् कस्याहमुदरोद्भवा ॥ कस्मिन्वंशे प्रजाताहं कैवर्ततनया कथम् ॥ २२ ॥ पराशर उवाच ॥ कथयामि च ते तातं यत्वं मां परिपृच्छसि ॥ वसुनामा च राजा भूत्सोऽमन्वंशे प्रतापवान् ॥ २३ ॥ जम्बूद्वीपाधिपो भद्रे शत्रुसंवासनस्तथा ॥ शतानि सप्तमाय्याणां पुत्राणान्तुदशैव हि ॥ २४ ॥ धर्मैरेणपालिता लोकाः शिवपूजार्तस्सदा ॥ म्लेच्छास्तस्य विरोधेन शाकद्वीपनिवासिनः ॥ २५ ॥ तेषाञ्च साधनार्थाय गतो ह्यङ्घ्र्यमहोदधिम् ॥ संयुक्तः पुत्रभृत्यैश्च पौरुषे महति स्थितः ॥ २६ ॥ संग्रामस्तेऽस्मसारब्धश्चार्वाङ्गिवसुनासह ॥ जिता म्लेच्छास्समस्ताश्च वसुना ह्यवनीभुता ॥ २७ ॥ कहें और हम किसके पेटसे पैदा हुई हैं व किस वंश में हम पैदा हुई हैं और केवटकी कन्या हम कैसे हुई हैं ॥ २८ ॥ तब पराशर बोले कि हम तुम्हारे पिताको कहते हैं जिसको तुम हम से पूछती हो सोमवंश में बड़े प्रतापवाले वसुनाम के राजा होते हुये ॥ २९ ॥ हे भद्रे ! वे शत्रुओं को डरावनेवाले जम्बूद्वीपके मालि न हुये उनके सातसौ रानी व दश लड़के होते हुये ॥ ३० ॥ धर्म से लोकों की पालना की और शत्रुकी पूजा सदा करते थे तब तक शाकद्वीप के रहनेवाले म्लेच्छ उनके विरोधी होते हुये ॥ ३१ ॥ उनके जीतने के लिये समुद्र नाव कर वहां गये लड़के व सिपाहियों के सहित बड़े पराक्रम में स्थित होते हुये ॥ ३२ ॥ हे चारुङ्गि ! उन म्लेच्छों

व तुम्हारे पिता वसु से लड़ाई होती हुई राजा वसुने सब श्लेष्मोंको जीत लिया ॥ २७ ॥ राजाने सेवक व. सेना और सवारियों के समेत उन सबको कर देनेवाला कर लिया राजाकी बडीरानी मृगों केसे नेत्रोंवाली तुम्हारी माता ॥ २८ ॥ राजाके परदेश मे होनेपर राजस्वला होती हुई स्त्रियों को तो सदा कामदेव अधिक रहता है ॥ २९ ॥ परन्तु ऋतुसमय में काम के बाणोंसे बहुत पीड़ित होती है काम से जलती हुई वह उत्तम नेत्रोंवाली रानी विचार करती हुई ॥ ३० ॥ कि आज हम अपने राजा के समीप दूत को भेजें ऐसे विचार कर बड़े जल्द दूतको बुलाया और कहा कि तुम राजा के तीर जाओ ॥ ३१ ॥ तब दूत ने कहा कि हे देवि ! शत्रुओं के नाश करने

करदास्तेकृतास्तेन सभृत्यबलवाहनाः ॥ प्रधानातस्यमहिषी तवमातामृगेक्षणा ॥ २८ ॥ प्रवासस्थेचभूपालेसं
जाताचरजस्वला ॥ नारीणान्तुसदाकालेमन्मथोह्लाधिकोभवेत् ॥ २९ ॥ विशेषेणऋतौकालेभिद्यतेकामसायकैः ॥ मन्म
थेनतुसन्तप्ताचिन्तयत्साशुभेक्षणा ॥ ३० ॥ दूतंसम्प्रेषयाध्यवसुराजसमीपतः ॥ व्याहृतस्तत्वरौद्रुतोगच्छत्वंनृपस
न्निधौ ॥ ३१ ॥ दूतउवाच ॥ परराज्येवमुदेविगतोराजाद्विडन्तकृत् ॥ तत्रगन्तुन्नशक्येत जलयन्त्रैर्विनाशुभे ॥ ३२ ॥ जल
यानानिसर्वाणि नेयानिचपरेतटे ॥ तस्यवाक्येनसानारी विषण्णामदपीडिता ॥ ३३ ॥ राज्ञीदृष्ट्वासखीब्रूते कस्मा
त्त्वंपरिस्त्रिंघसे ॥ लेखोयंप्रेष्यतान्देवि शुकहस्तेयथातथा ॥ ३४ ॥ समुद्रंलङ्घयित्वातु शकुन्तोयातिसुन्दरि ॥ व्या
हृतोलेखकस्तत्रलिखलेखंममाज्ञया ॥ ३५ ॥ त्वांविनापट्टराज्ञीसा वसुराजनजीवति ॥ ऋतुकालश्चसम्प्राप्तस्समस्तं
चावधार्यताम् ॥ ३६ ॥ लिखितोभूर्जपत्रेच वृत्तस्सलेखकेनतु ॥ शुकःपञ्जरमध्यस्थ आनीतस्तत्रसन्निधौ ॥ ३७ ॥ उ

वाले राजावसु औरकी राज्यमें गये हैं इससे हे शुभे ! विना पानीवाली सवारी के वहां नहीं जाया जासकता है ॥ ३२ ॥ इससे जलकी सब सवारी किनारेपर लगाई जायें-तब उसके वचन से वह रानी मदसे पीड़ित होरही उदास होती हुई ॥ ३३ ॥ तब रानी को देख सखी कहती है कि तुम क्यों उदास होती हो हे देवि ! यह लेख अपने तोते के हाथ भेजो ॥ ३४ ॥ क्योंकि हे सुन्दरि ! पत्नी समुद्र को नांघ जाता है तब रानी ने लेखक को बुलवाया और कहा कि हमारी आज्ञासे हालको लिखो ॥ ३५ ॥ कि हे वसुराजन् ! तुम्हारे विना वह तुम्हारी पटरानी नहीं जीसकती है उसके ऋतुका समय प्राप्तहुआ है आप सब जानलें ॥ ३६ ॥ लेखकने भोजपत्र पर वह सब

हाल लिखकर रानीको दे दिया तब पिंजरा में बैठा हुआ तोता वहाँ रानी के समीप लाया गया ॥ ३७ ॥ तब रानीने तोते से कहा कि हे शुक ! हमारे लेखको लेकर तुम जावो तब वह पक्षी बहुत जल्द वसुराजा के समीप गया ॥ ३८ ॥ सत्यभामा रानी के भेजे हुये पत्रको तोते ने राजा के तीर फेंक दिया तब उसके वास्ते राजाने विचार किया फिर अपने वीर्य को लेकर ॥ ३९ ॥ पोढ़ी देनियाँ बनाकर नामी राजाने तोते को दे दी और कहा कि तुम रानी के पास जावो ॥ ४० ॥ तब वह तोता वसुराजाको प्रणामकर और वीर्य को लेकर उड़ा अपनी इच्छासे जाता हुआ सुआ समुद्र के ऊपर प्राप्त हुआ ॥ ४१ ॥ मांसके सहित तोते को जान उसके पीछे बाज दौड़ा

वाचराज्ञीतंतत्र गृह्यलेखंशुकव्रज ॥ गतःपक्षीततःशीघ्रं वसुराजसमीपतः ॥ ३८ ॥ जितोलेखःशुकैर्नैव सत्यभामावि
सर्जितः ॥ लेखार्थंचिन्तयामास वीर्यगृह्यनरेश्वरः ॥ ३९ ॥ अमोघपुटिकां कृत्वा प्रतिलोकेनविश्रुतः ॥ शुकस्यचाप्यप्या
मास गच्छराज्ञीसमीपतः ॥ ४० ॥ वसुराजंप्रणम्याथ वीजंगृह्यपपातह ॥ समुद्रोपरिसम्प्राप्तः शुकोयातियथेच्छया ॥
४१ ॥ सांमिषञ्चशुकं ज्ञात्वा श्येनस्तत्रापिधावितः ॥ हतश्चञ्चुप्रहारेण शुकःश्येनेनभारत ॥ ४२ ॥ मूर्च्छार्पणस्यत
द्दीर्घ्यं पतितंजलमध्यतः ॥ मत्स्येनगिलितंतत्र तद्दीर्घ्यंपार्थिवस्यच ॥ ४३ ॥ दाशैर्मत्स्योगृहृतश्च आनीतस्स्वगृहंप्र
ति ॥ यावत्तंपाटयामासुर्यमलंददृशेतदा ॥ ४४ ॥ शशिमण्डलसङ्काशं सूर्यतैजसमप्रभम् ॥ दृष्ट्वातेधापितास्सर्वे
कैवर्ताजाल्वीतटे ॥ ४५ ॥ हर्षितास्तेगतास्सर्वे प्रधानस्यचमन्दिरम् ॥ पुत्रराज्ञेप्रदायैव पुत्रींचप्रत्यपालयत् ॥ ४६ ॥
तत्त्वंदेविवरारोहे कैवर्तंकन्यकानहि ॥ ततस्साचिन्तयामास पराशरवचस्तदा ॥ ४७ ॥ एवमुक्तातुसातेन दत्त्वात्मानं

और हे भारत ! बाजने चोचसे तोनेको मारा ॥ ४२ ॥ मारने से मूर्च्छाको प्राप्त हो गये तोतेके मुँहसे छूट गयी वीर्य पानी में गिर पड़ा तब वहा उस राजा के वीर्यको मछली ने खालिया ॥ ४३ ॥ केवट लोग उस मछलीको पकड़ अपने घरमें लाये जब उसको फाड़ा तो उसके पेटमें एक जोड़ा देख पड़ा ॥ ४४ ॥ चन्द्रमाके मण्डल के समान निर्मल व सूर्य के समान तेजवाले लडके को देख सब धीवरलोग गङ्गाके किनारे चकचौंध गये ॥ ४५ ॥ फिर प्रसन्न होकर वे सब राजा के महल को गये पुत्र को राजाको देकर और कन्याको आप पालते हुये ॥ ४६ ॥ इससे हे वरारोहे ! हे देवि ! तुम केवटकी कन्या नहीं हो तब वह कन्या पराशरके वचनको विचारती हुई ॥ ४७ ॥

पराशर से ऐसे कहींगई वह सीधे स्वभाववाली कन्या हे नरेश्वर ! अपने को पराशर को देकर बोली कि हे ब्रह्मन् ! मेरे शरीरसे मखली का गन्ध जातारहे ॥ ४८ ॥ तदनन्तर अपने योगके बलसे उस कन्या को दिव्यगन्धसे बसादिया आगको जलाकर ॥ ४९ ॥ व उसकी प्रदक्षिणाकर कन्याको आगसे निकाललिया और आग के जलतेहुयेही उस स्त्रीके कामके स्थानोंको पराशर छूतेहुये ॥ ५० ॥ हे नृपनन्दन ! तब वह कन्या पराशरको कामसे अपने चाहनेवाले जानकर डगई और उनसे एकचारगी कहा कि एकतो दिनहै और दूसरे और लोगोंकी समीपताभी है ॥ ५१ ॥ तदनन्तर थोड़ीदेर पराशरने ध्यान किया तब हे तात ! दिशा और आकाशको ढांकती

नरेश्वर ॥ उवाचसाध्वीभोब्रह्मन्मत्स्यगन्धोनिवर्त्यताम् ॥ ४८ ॥ ततस्तेनतुसावाला दिव्यगन्धभिवासिता ॥ कृता योगबलेनैव ज्वालयित्वाविभावमुम् ॥ ४९ ॥ कृत्वाप्रदक्षिणंवेह्नुततेनसातदा ॥ ज्वलमानस्यमध्येतु कामस्था नानिसोऽस्पृशत् ॥ ५० ॥ ज्ञात्वाकामोत्सुकंविप्रं भीतासानृपनन्दन ॥ उवाचसहसावाला दिवाचलोकसन्निधौ ॥ ५१ ॥ ततस्तेनक्षणंध्याता पूरयन्तीदिगम्बरम् ॥ आगतातामसीतात ययाव्याप्तंसमन्ततः ॥ ५२ ॥ ततस्सविस्मयन्तेन र होवालामृगेक्षणा ॥ कामेनैवहितसेन स्त्रीसौख्यंकीडतातदा ॥ ५३ ॥ ततस्तेनमुहूर्तेनापत्यभारेणपीडिता ॥ बालकं तत्रजटिलं सुभगंदण्डधारकम् ॥ ५४ ॥ कमण्डलुधरंशान्तं मेखलाकटिभूषणम् ॥ धृतोपवीतकंस्कन्धे विष्णुमा याविवर्जितम् ॥ ५५ ॥ माताहिशङ्कितातत्र दृष्ट्वापुत्रस्यचापलम् ॥ वेपमानाततोवाला गतासाशरणमुनेः ॥ ५६ ॥ रत्नरत्नमुनिश्रेष्ठ पराशरमहामुने ॥ जातमत्यदुस्रुतंविप्रं कौपीनाम्बरमेखलम् ॥ ५७ ॥ दण्डहस्तंजटायुक्तमुत्तरीय

हुई अधेरी आगई जिससे सब व्यास होगया ॥ ५२ ॥ तदनन्तर पराशर ने एकान्तमें कामसे जलरहे आप उस हिरन कीसी नेत्रवाली स्त्री का भोग किया ॥ ५३ ॥ तब वह उसी समय में पुत्र के भारसे पीडित होतीहुई फिर वहां जटावाले व सुन्दररूपवाले व दण्डके धारण करनेवाले व कमण्डलुके धरनेवाले व शान्त व मेखलाको करिहोंव में पहने हुये व कन्धे में जनेऊ पहनेहुये व विष्णुकी मायासे रहित बालक को ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ व उसकी चपलताको देख माता बड़ी शङ्कितहुई और कांपती हुई वह स्त्री मुनिजी शरणको प्राप्तहुई ॥ ५६ ॥ और बोली कि हे मुनिश्रेष्ठ, महामुने, पराशर ! कौपीन व मेखला को पहने हुये व दण्डको हाथमें लिये व जटाओंसे युक्त

व अंचला से भूषित उत्पन्नहुये अतिअद्भुत इस ब्राह्मणकी रक्षाकरो ? तब पराशर बोले कि तुम डरो मत यह तुम्हारा पुत्र हुआ है तुम कन्याही बनी रहोगी ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ सत्यवती तुम्हारा नाम होगा और दूसरा गन्धयोजनाभी होगा और शन्तनु नाम का राजा तुम्हारा पति होगा ॥ ५९ ॥ तुम उसकी जेठीरानी चन्द्र-वंश का भूषण होगी इससे हे भद्रे ! अपने पहलेवाले रूप से युक्त तुम अपने आश्रमको जावो ॥ ६० ॥ तुम इस विकलताको मत प्राप्त होवो मैंने सब देख लिया है मुझको ज्ञानका बल है यह कहकर पराशर चलेगये वह स्त्री जलके बाहर आतीहुई ॥ ६१ ॥ नम्रता व बड़ी भक्तिसे अपने पुत्रको साष्टाङ्ग प्रणामकर फिर जातेहुये

विभूषितम् ॥ पराशर उवाच ॥ मा भैर्पीस्त्वं सुतो जातः कन्यैव त्वं भविष्यसि ॥ ५८ ॥ नाम्ना सत्यवती चेति द्वितीया गन्धयो-
जना ॥ शन्तनुर्नाम राजानैः स ते भर्ता भविष्यति ॥ ५९ ॥ प्रथमा महिषी तस्य सोमवंशविभूषणा ॥ गच्छ त्वं स्वाश्रमं भद्रे
पूर्वरूपेण संस्थिता ॥ ६० ॥ मा वै कल्यं कुरुष्वेदं दृष्टं ज्ञानस्य मे बलम् ॥ इत्युक्त्वा प्रययौ विप्रः सा बालास्थलमाश्रिता ॥
६१ ॥ नत्वा पुत्रं पराभक्त्या साष्टाङ्गं प्रणयेत् ॥ तत्प्रयान्तं मथालोक्य सत्यवत्यब्रवीत्सुतम् ॥ ६२ ॥ कामोदेयस्त्वया
भीष्टस्स्नेहो वैयदि मातरि ॥ किमप्युपादिश त्वं मां येन सिद्धिं मवाप्नुयाम् ॥ ६३ ॥ व्यास उवाच ॥ ईश्वराराधने यत्नं कु-
रुष्व त्वं सदा म्बिके ॥ ततस्सा पुत्रवाक्येन विपसा पाण्डुनन्दन ॥ ६४ ॥ योजनगन्धोवाच ॥ त्वद्वियोगादहं पुत्र पञ्चत्वं या-
मि नान्यथा ॥ नास्ति पुत्रसमः स्नेहो नास्ति भ्रातृसमं बलम् ॥ ६५ ॥ पुत्र उवाच ॥ मा निषादं कुरु त्वं हि सत्यवै पितृभाषि-
तम् ॥ आपत्काले त्वया ह वै स्मर्तव्यः कार्यसिद्धये ॥ ६६ ॥ आपदस्तारयिष्यामि क्षम्यतां मातरात्मजे ॥ इत्युक्त्वा तु

अपने पुत्रको देख सत्यवती पुत्र से बोली ॥ ६२ ॥ कि जो तुम्हारा अपनी माता में स्नेह हो तो मेरे मनका मनोरथ देने योग्य है कुछ मुझको बतावो जिससे मैं सिद्धि
को पाऊँ ॥ ६३ ॥ तब व्यासजी बोले कि हे अम्बिके ! ईश्वर के आराधन में तुम हमेशा यत्न करो हे पाण्डुनन्दन ! तब वह पुत्र के वचन से बड़ी उदास होगई ॥ ६४ ॥
और फिर योजनगन्धा बोली कि हे पुत्र ! तुम्हारे वियोगसे मैं मरजाजंगी यह झूठ नहीं है क्योंकि पुत्र के बराबर किसी में स्नेह नहीं होता है और भाई के बराबर
कोई बल नहीं है ॥ ६५ ॥ तब पुत्र बोला कि तुम विषाद को मत करो पिताजी का कहना सब सत्य होवेगा और विपत्ति के समय में अपने कार्यकी सिद्धिके लिये

तुम मेरा स्मरण करना ॥ ६६ ॥ मैं विपत्ति से तुमको पार करदेऊंगा हे मातः ! मुझ अपने पुत्र पर क्षमा करना इतना कहकर व्यास चलेगये और वह कन्याभी अपने पिता के घरको चलीगई ॥ ६७ ॥ पराशर के पुत्र व्यासजी वन में बैठते हुये तब त्रेताकी समाप्ति और द्वापर की आदि में हे नरेश्वर ! ॥ ६८ ॥ नारदने ब्रह्मा से कहा कि पराशर के पुत्र बड़े प्रभाववाले व्यासऋषि पैदाहुये ॥ ६९ ॥ केवटकी कन्या से गङ्गाके किनारे पर उत्पन्न हुये है यह आप जानें तब नारदके कहने से देवता लोग आतेहुये ॥ ७० ॥ सूर्य, ब्रह्मा और इन्द्र ऋषियों के सहित आशीर्वाद को देकर बाह २ ऐसे कहतेहुये ॥ ७१ ॥ फिर बालकरूप जो व्यास है उनके ब्रह्मा ने गर्भा-

ययौव्यासः कन्यासापिपितुर्गृहम् ॥ ६७ ॥ पराशरमुतस्तत्र निष्षोषेवनममध्यतः ॥ त्रेतायुगावसानेन तु द्वापरादौ नरेश्वर ॥ ६८ ॥ व्यासो विरञ्चये जात आख्यातो नारदेन च ॥ ऋषिर्महानुभावस्तु पुत्रः पाराशरस्य च ॥ ६९ ॥ केवते कन्यकाजातो जानीहि जाल्बवीतटे ॥ वाक्योक्त्यानारदस्यैव आगतास्तुरसत्तमाः ॥ ७० ॥ भानुः पिता महः शक्र ऋषिसङ्घैस्समावृतः ॥ आशीर्वादं पृथग्दत्त्वा साधुसाध्विवृतिमाषितः ॥ ७१ ॥ पितामहे नवालोसौ गर्भाधानादिसंस्कृतः ॥ द्वैपायनोक्षीपजन्मा पाराशर्यः पराशरात् ॥ ७२ ॥ कृष्णगात्रात्कृष्णनामा हव्यादातुर्विशिष्यति ॥ विरिञ्चिनाभिषिक्तोसौ ऋषिसङ्घैः पुनः पुनः ॥ ७३ ॥ व्यासस्त्वं सर्वलोकानामित्युक्त्वा प्रययुः पुनः ॥ तीर्थयात्रासमारब्धा कृष्णद्वैपायनेन तु ॥ ७४ ॥ गङ्गावगाहितातेन केदारं पुष्करन्तथा ॥ गयाचनौ भिषर्तार्थं कुरुक्षेत्रे सरस्वती ॥ ७५ ॥ उज्जयिन्यां महाकालं सोमनाथं ययौ ततः ॥ पृथिव्यां सागरान्तायां स्नातो व्यासो महासुनिः ॥ ७६ ॥ अटन्वैनर्ममदां प्राप्नो

धान आदि संस्कार किये गेती में पैदा होने से द्वैपायन व पराशर से पैदा होने से पाराशर्य ॥ ७२ ॥ व काली देहवाले होने से कृष्ण नामवाले व्यास हुये और अग्निसे भी विशेष तेजवाले हुये ब्रह्मा और ऋषियों के समूहमे वाररइनका अभिषेक किया गया ॥ ७३ ॥ और तुम सब लोगोंके व्यास हो ऐसे कहकर सबलोग चले गये तब व्यासजी ने फिर तीर्थयात्राका प्रारम्भ किया ॥ ७४ ॥ व्यासच प्रथम गङ्गा स्नान किया फिर केदार, पुष्कर, गया, नैमिष, कुरुक्षेत्र में सरस्वती ॥ ७५ ॥ और उज्जैन में महाकाल होकर फिर सोमनाथ को गये समुद्रपथ्यन्त पृथिवी के तीर्थों में महासुनि व्यास नहाते हुये ॥ ७६ ॥ फिर घूमते हुये महादेव की देहसे पैदाहुई

नर्मदा नदी को प्राप्त होते हुये हे पार्थिव ! नर्मदा को देख आनन्द से अपने चित्त को विश्राम देकर ॥ ७७ ॥ व नर्मदा के तटपर बैठकर बड़े तपको करते हुये श्रीम मे पञ्चाग्नि के बीच में और वर्षा में बाहर चौतरेपर बैठते हुये ॥ ७८ ॥ भोगे वस्त्रों को पहनेहुये हेमन्तऋतु में संसारकी रचना व संहारके करनेवाले व नाशरहित सदाशिव का ध्यान कर रहे ॥ ७९ ॥ हे पाण्डुनन्दन ! हमेशा सिद्धेश्वर लिङ्ग का पूजन करते हुये तब सिद्धलिङ्ग के पूजन व ध्यानयोगके प्रभाव से ॥ ८० ॥ व्यास के प्रत्यक्ष महादेवजी होतेहुये और कहा कि हे विप्र ! तुम ने हमको प्रसन्न किया है इस से अच्छे वरको मांग लेवो ॥ ८१ ॥ तब व्यास बोले कि हे देव ! जो मुझसे रुद्रदेहोद्भवांनदीम् ॥ साह्यादंनर्ममंदांष्टद्वा चित्तंविश्राम्यपार्थिव ॥ ७७ ॥ तपश्चचारविपुलं नर्ममंदातटमाश्रितः ॥

ग्रीष्मेपञ्चाग्निमध्यस्थो वर्षासुस्थण्डिलेशयः ॥ ७८ ॥ सार्द्रवासास्तुहेमन्ते ध्यायमानोमहेश्वरम् ॥ सृष्टिसंहारक तारमच्छेद्यंचसदाशिवम् ॥ ७९ ॥ नित्यंसिद्धेश्वरंलिङ्गं पूजयन्पाण्डुनन्दन ॥ अर्चनात्सिद्धलिङ्गस्य ध्यानयोगप्रभा वतः ॥ ८० ॥ प्रत्यक्षईश्वरोजातः कृष्णद्वैपायनस्यतु ॥ तोषितोहंत्वयाविप्र वरंप्रार्थयशोभनम् ॥ ८१ ॥ व्यासउवाच ॥ यदितुष्टोसिमदेव यदिदेयोवरोमम ॥ प्रत्यक्षोनर्ममंदातीरेस्वयंमेद्यमविष्यति ॥ ८२ ॥ अतीतानागतज्ञानं त्वत्प्रसादा न्महेश्वर ॥ ईश्वरउवाच ॥ एवंभवतुतेविप्र मत्प्रसादान्नसंशयः ॥ ८३ ॥ त्वयाभक्तिगृहीतोहं प्रत्यक्षोनर्ममंदातटे ॥ इत्युक्त्वाप्रययौदेवः कैलासंनगमुत्तमम् ॥ ८४ ॥ पत्नीसंग्रहणंजातं पुत्रोजातोयदास्यच ॥ देवैरध्यासितस्सर्वैस्सेन्द्रं ह्यपुरोगमैः ॥ ८५ ॥ पुत्रजन्मततोज्ञात्वा आगताऋषिमत्तमाः ॥ तीर्थयात्राप्रसङ्गेन पराशरपुरोगमाः ॥ ८६ ॥ मन्वन्नि

आप प्रमत्तहो और जो मुझे आपको वरदेनाहै और जो आज नर्मदाके तीर आप खुद मेरे प्रत्यक्ष हुये हो ॥ ८२ ॥ तो हे महेश्वर ! आप के प्रसाद से मुझको भूत और भविष्यका ज्ञान होजावे तब महादेव बोले कि हे विप्र ! मेरे प्रसाद से तुम्हारे सब ऐसाही होगा इसमें सन्देह नहीं है ॥ ८३ ॥ तुम्हारी भक्तिमे पकड़े हुये हम नर्मदा के तटमें प्रत्यक्षहुये इतना कह महादेव उत्तम कैलास पर्वत को चलेगये ॥ ८४ ॥ फिर जब व्यास के स्त्री का संग्रह व पुत्र भी हुआ तब इन्द्र और ब्रह्मा आदि सब देवताओं से फिरभी युक्त हुये ॥ ८५ ॥ तदनन्तर व्यास के पुत्र के जन्मको जान तीर्थयात्रा के प्रसङ्ग से पराशर आदि ऋषिश्रेष्ठ आतेहुये ॥ ८६ ॥ मनु, अग्नि

विष्णु, हारीत, याज्ञवल्क्य, उशाना, अङ्गिरा, यम, आपस्तम्ब, संवर्त, कात्यायन और बृहस्पति ॥ ८७ ॥ आदि, सब हजारों लाखों करोड़ों ब्राह्मण पुण्यवाले व्यासके सुन्दर आश्रममें प्राप्तहुये ॥ ८८ ॥ व्यासजी उन ब्राह्मणोंको देख उठे और पितापूर्वक सबको प्रणाम कर फिर उनसे बात करतेहुये ॥ ८९ ॥ हाथ जोड़ इस वचनको बोले कि आप से बोल चाल, व दर्शन से मेरा आनन्द उमड़ आया ॥ ९० ॥ अब जङ्गली शाक व फलों को मैं पितापूर्वक आप सब लोगों को देता हूँ ॥ ९१ ॥ इतना कह नियमों से युक्त उन सब हर एक ब्राह्मणोंको प्रणाम करतेहुये तदनन्तर वहां प्रणाम कर चुके व्यास ब्राह्मणको देख ॥ ९२ ॥ जय और आशीर्वादसे बढ़ाकर फिर आपस

विष्णुहारीतयाज्ञवल्क्योशनोङ्गिराः ॥ यमापस्तम्बसंवर्ताः कात्यायनबृहस्पती ॥ ८७ ॥ एवमादिसहस्राणि लक्षकोटिरनेकधा ॥ व्यासाश्रमेषु भेषुण्ये प्राप्तास्सर्वे द्विजोत्तमाः ॥ ८८ ॥ दृष्ट्वा व्यासस्तु विप्रेन्द्रानभ्युत्थाय कृतोद्यमः ॥ पितृपूर्वप्रणम्यादौ तेषां वार्तां प्रदापयन् ॥ ८९ ॥ कृताञ्जलिपुटो भूत्वा इदं वाक्यमुवाच ह ॥ उद्धृतन्तु ममानन्दं शुष्मत्सम्भवापदर्शनात् ॥ ९० ॥ आरण्यानि च शाकानि फलान्यारण्यकानि च ॥ तानि दास्यामि सर्वेषां शुष्मकंपितृपूर्वकम् ॥ ९१ ॥ नियमैस्संयुतान्सर्वान्प्रत्येकं प्रणामावच ॥ ततस्तं प्रणतं दृष्ट्वा तत्रैव पायनं द्विजम् ॥ ९२ ॥ वर्द्धयित्वा जयाशीर्भिस्ततो वीक्ष्य परस्परम् ॥ पराशरस्समस्तैश्च वीक्षितो मुनिपुङ्गवैः ॥ ९३ ॥ उत्तरन्दीयतां तात कृष्णद्वैपायनस्य च ॥ एवमुक्तस्तु तैस्सर्वैर्भगवांश्च पराशरः ॥ ९४ ॥ उवाच स्वात्मजं व्यासमृषिभिर्यच्चिकीर्षितम् ॥ नेच्छन्ति दक्षिणे कूले व्रतं भङ्गं भयात्सुत ॥ ९५ ॥ परं वै भोक्तुकामाश्च तव श्रद्धाविशेषतः ॥ करोमि भवतां युक्तमत्रैव स्थीयतां

में देख सब मुनिश्रेष्ठों ने पराशर को देखा ॥ ९३ ॥ और कहा कि हे तात ! आप व्यासको उत्तर देंगे उन सबों से ऐसे कहें गये भगवान् पराशर ॥ ९४ ॥ अपने पुत्र व्यास से ऋषियों के मनकी वार्ता को कहा कि हे सुत ! अपने व्रतभङ्ग होजाने के कारण ये लोग दक्षिण दिशावाले तटपर तुम्हारे सत्कार की इच्छा नहीं करते हैं ॥ ९५ ॥ परन्तु तुम्हारी विशेष श्रद्धा के कारणसे खानेकी इच्छा इनको जरूर है तब व्यास बोले कि आपलोग थोड़ी देर यहीं ठहरें हम आपके उचित कामको करते

हैं ॥ ९६ ॥ नदी के समीप जाकर जब तक हम विधिपूर्वक सब काम को ठीककरें ऐसे कह व पवित्र होकर नर्मदा के तटपर बैठे ॥ ९७ ॥ और सहसा स्तोत्र को पढ़ते हुये हे जनेश्वर ! आप उसको सुनो ॥ ९८ ॥ व्यास बोले कि हे वर व कल्याण की देनेवाली, हे देवि ! तुम्हारी जय हो हे त्रिशूल को हाथ में लिये, पापों की नाश करने स्वामिकांतिकेय के पिता महादेव की कन्या, हे वर की देनेवाली ! तुम्हारी जय हो हे देवताओं के शरीरों का समूहरूपवाली ! तुम्हारी जय हो और हे समुद्र में जाने-
क्षणम् ॥ ९६ ॥ यावदासाद्यसरितं करोमिविधिपूर्वकम् ॥ एवमुक्त्वा शुचिभूत्वा नर्मदा तटमाश्रितः ॥ ९७ ॥ स्तोत्रं जगाद सहसा तन्निबोधजनेश्वर ॥ ९८ ॥ व्यास उवाच ॥ जयदेवि नमो वरदेशिवदे जयपापविमर्दिनि शूलकरे ॥ जयभैरवदेहविलीनकरे जयदेवि पितामहसन्नमिते ॥ ९९ ॥ जयभास्करशक्रप्रदानमिते जयपण्मुखता तमुत्तरे ॥ जयदेवशरीरसमूहमये जयसागरगामिनि भूमिसुते ॥ १०० ॥ जयलोकसमस्तकृताभरणे जयदुःखदरिद्रविनाशकरे ॥ जयपुनकलत्रविष्टाङ्गिकरे जयदेवि सुदर्शनपापहरे ॥ १०१ ॥ एतद्व्यासकृतं स्तोत्रं यः पठेच्छिवसन्निधौ ॥ गृहे वा शुद्धभावेन कामक्रोधविवर्जितः ॥ व्यासस्तस्य भवेत्प्रीतः प्रीतो यं वृषवाहनः ॥ २ ॥ स्तुता च नर्ममर्दा देवी ततो वचनमब्रवीत् ॥ नर्ममर्दो वाच ॥ स्तुतिवादेन तुष्टास्मि भो भो व्यास महा मुने ॥ ३ ॥ यमिच्छसि वरं स्य कुरु तन्ते सर्वं ददाम्यहम् ॥ व्यास उवाच ॥ यदि तुष्टासि मे देवि यदि देयो वरो मम ॥ ४ ॥ आतिथ्यमुत्तरं कूले मम दातुं त्वमर्हसि ॥ नर्ममर्दो वाच ॥ अयुक्तं चिन्ति वाली ! हे भूमिसुते ! तुम्हारी जय हो ॥ १०० ॥ हे सब लोकों की शोभा करनेवाली व दुःख और दरिद्र को विनाश करनेवाली ! तुम्हारी जय हो हे स्त्री और पुत्रों की बढ़ाने वाली व शुभ दर्शन से पापों की हरनेवाली, हे देवि ! तुम्हारी जय हो ॥ १०१ ॥ व्यास के किये हुये इस स्तोत्र को जो महादेव के समीप पढ़ता है व अपने घर में काम क्रोध से रहित होकर सच्चे भाव से पढ़ता है उससे व्यास व महादेव दोनों प्रसन्न होते हैं ॥ २ ॥ तदनन्तर स्तुति की गई नर्मदा ने कहा कि हे महा-
मुने ! हे व्यास ! आप के स्तुति करने से हम प्रसन्न हैं ॥ ३ ॥ जिस शब्दे वर को तुम चाहते हो वह सब हम तुम्हें दे देंगी तब व्यास बोले कि हे देवि ! जो मुझसे

प्रसन्नहो और जो मुझे तुमको वर देना है ॥ ४ ॥ तो अपने उत्तरवाले किनारे पर मेरा अतिथि सत्कार करो तब नर्मदा बोली कि हे व्यास! तुमने अनुचित कामको विचार है और उलटे मार्ग में तुम प्रवृत्त होते हो ॥ ५ ॥ क्योंकि इन्द्र, चन्द्र और यमराज भी उलटे रास्ते से व्रह्म से हे वरद (प्यारे)! और जो कुछ इस पृथिवी में दुर्लभ हो उसे मांगो ॥ ६ ॥ तब देवी के ऐसे वचन को सुनकर व्यास मूर्च्छा को प्राप्त होगये क्योंकि उनको वृथा क्लेश हुआ इससे पृथिवी पर गिरपड़े ॥ ७ ॥ तब पर्वत व जलों और जङ्गलों के सहित सब पृथिवी कांपती हुई और मूर्च्छा को प्राप्त हुये पराशर के पुत्र व्यास को जान सब देवता ॥ ८ ॥

तंव्यास अमार्गेत्वंप्रवर्तसे ॥ ५ ॥ इन्द्रचन्द्रयमाःशक्ता उन्मार्गेणनवाहितुम् ॥ अन्ययाचस्वहेवत्स यत्किञ्चिद्भुविदुर्लभम् ॥ ६ ॥ एवंश्रुत्वावचोदेव्या व्यासोमूर्च्छाङ्गतस्तदा ॥ वृथाक्लेशश्चसज्जातः पतितोधरणीतले ॥ ७ ॥ धरणीकम्पितासर्वा सशैलेवनकानना ॥ मूर्च्छापन्नंततोव्यासं ज्ञात्वादेवाःपराशरम् ॥ ८ ॥ आयातादेवतास्सर्वे हाहाकारंप्रकुर्वतः ॥ उत्थापयन्तस्तेव्यासमूचुश्चसरितांवराम् ॥ ९ ॥ ब्राह्मणार्थन्तुसांक्लिष्टा नामहेतोस्सरिद्धरे ॥ गवार्थंब्राह्मणार्थंच सद्यःप्राणान्परित्यजेत् ॥ १० ॥ एवंसानर्ममदाप्रोक्ता ब्रह्माद्यैश्चसुरैर्दुतम् ॥ विकूलतार्विप्रददौसमन्ताद्रवाभिषिक्तस्सजलेनपूतः ॥ ११ ॥ सचेतनस्सत्यवतीसुतोयं ननामदैवैस्सहनर्मदान्तैः ॥ तीर्थसमस्तंत्वयिदेवतानां फलंप्रदिष्टमममन्दभाग्यम् ॥ १२ ॥ नर्ममदौवाच ॥ यतोयतोव्यासमहानुभावमुमेरुनामो धरणीधरस्य ॥ विन्ध्यस्य

आतेहुये हाहाकार को करते व व्यासको रटारहे वे सब देवता नदियों में श्रेष्ठ नर्मदा से बोले ॥ ९ ॥ कि हे सरिद्धरे! नाम के वास्ते ब्राह्मण के लिये बहुतों ने क्लेश को उठाया है क्योंकि कहा भी है कि गऊ और ब्राह्मण के वास्ते तुरन्त प्राणोंको छोड़देवे ॥ १० ॥ ब्रह्मा आदि देवताओं से ऐसे कहींगई नर्मदा शीघ्रही सब तरफ किनारों से रहित अर्थात् बराबर होगई तब नर्मदा से अभिषेक को प्राप्त व जल से पवित्र ॥ ११ ॥ व होश के सहित व्यास उन सब देवताओं के सहित नर्मदा को नमस्कार करते हुये और व्यास बोले कि सब तीर्थ आपही में हैं देवताओं को आपने फल दिया मेरा भाग्य बड़ा मन्द है ॥ १२ ॥ तब नर्मदा बोली कि हे महाशुभाव! हे

व्यास ! धर्म के धारण करनेवाले आपकी सुमेरु व विन्ध्याचल व अन्य पर्वत के समीप हो जिधर से रास्ता हो हम उसी रास्ते से जायेंगी और इसी में हम धन्य होवेंगी ॥ १३ ॥ ऐसे कहेगये बड़े तेजवाले सत्यवती के पुत्र व्यास अपने आश्रम से दक्षिण की तरफ मुनिश्रेष्ठों को चलाते हुये ॥ १४ ॥ हे नृपनन्दन ! दण्ड को हाथ में लिये बड़े तेजवाले व्यास हुङ्कारों से नर्मदाको चलाया व्यासकी हुङ्कार से डीहुई नर्मदा चलती हुई ॥ १५ ॥ व्यासजी दण्ड से रास्ते को दिखाते हैं नर्मदा उसी रास्ते से चली जाती है व्यासकी रास्ते में प्राप्त होगई नर्मदाको देख इन्द्र आदि सब देवता ॥ १६ ॥ व्यासके ऊपर फूलोंकी वर्षा करते हुये और किन्नर लोग

चान्यस्यचतोहि मार्गयास्यामिवैधर्मधरस्यधन्या ॥ १३ ॥ एवमुक्तोमहातेजा व्यासस्त्यवतीसुतः ॥ दक्षिणेचालया
मास स्वाश्रमान्मुनिपुङ्गवान् ॥ १४ ॥ दण्डहस्तोमहातेजाहुङ्कारैर्नृपनन्दन ॥ व्यासहुङ्कारभीताच चलितारुद्रनन्दि
नी ॥ १५ ॥ दण्डेनदर्शयन्मार्गं देवीतत्रप्रवर्तिता ॥ व्यासमार्गगतान्देवीं दृष्ट्वाचेन्द्रपुरोगमाः ॥ १६ ॥ पुष्पवृष्टिददु
व्यासे स्तुतिं कुर्वन्तिकिन्नराः ॥ प्रफुल्लनयनाजानाः पराशरसुखाद्विजाः ॥ १७ ॥ किंकुर्ममोत्रमहिष्नाते कर्ममृणातवर
ज्जिताः ॥ व्यासउवाच ॥ तपःकृत्वासुविपुलं दानं दत्त्वा महत्फलम् ॥ १८ ॥ एतदेव नरैः कार्यं साधूनां परितोषणम् ॥
सुविभक्तामहाभागा अनुग्राह्यस्य संप्रति ॥ १९ ॥ तस्मान्मम आश्रमे पुण्ये स्थीयतां नाना संशयः ॥ आतिथ्यं शाकप
णैश्च उदकेन विमिश्रितैः ॥ २० ॥ प्रतिपन्नं स मस्तैश्च पराशरसुखैर्द्विजैः ॥ श्रयध्वमाश्रमं पुण्यं नर्मदा योत्तरे तटे ॥ २१ ॥

स्तुति करते हैं पराशर आदि ब्राह्मण प्रसन्न नेत्रोंवाले होगये ॥ १७ ॥ ब्राह्मणोंने कहा कि यहां तुम्हारी महिमा व तुम्हारे कर्म से राजीहूये हमलोग तुम्हारा क्या काम करें तब व्यास बोले कि बड़े तपको कर व बड़े फलवाले दान को देकर ॥ १८ ॥ मनुष्यों को यही करना चाहिये कि जिससे साधुओं का परितोष होवे इस से इस समय बड़े भाग्यवाले आप लोग अलग २ अनुग्रह करने योग्य जो हम हैं ऐसे मेरे पुण्यवाले आश्रम में निरसन्देह स्थित होवो हम जल सहित शाक व पत्तियों में आपका अतिथि सत्कार करेंगे ॥ १९ ॥ २० ॥ इस से पराशर आदि सब ब्राह्मणों को उचित है कि नर्मदा के उत्तरवाले तट पर पुण्यवाले हमारे आश्रम के आश्रित

होवें ॥ २१ ॥ तब मार्कण्डेयजी बोले कि तब ब्राह्मणों ने स्नान और तर्पण आदि कर्मों को किया तदनन्तर व्यासकुण्ड में जाकर अच्छे प्रकार से होम करतेहुये ॥ २२ ॥ ध्यानसे युक्त बेल और बेलपत्रों से हवन करतहुये गौतम, भृगु, माण्डव्य, नारद, लोमश, ॥ २३ ॥ पराशर, शङ्ख, कौशिक, च्यवनमुनि, पिप्पलाद, वशिष्ठ, बड़े तपस्वी नाशिकेतु, ॥ २४ ॥ विश्वामित्र, अगस्त्य, उद्दालक, यम, शाण्डिल्य, जैमिनि, काव्य, याज्ञवल्क्य, उशना, अङ्गिरा, ॥ २५ ॥ अत्रि, शातातप, भरत, मुद्गल, बड़े तेजस्वी वात्स्यायन, संवर्त, शक्ति ॥ २६ ॥ जातूकर्ण, भरद्वाज और बालखिल्य आदि ब्राह्मण एकाग्रमन होकर हे राजन् ! मन्त्र और तन्त्र को करते

मार्कण्डेयउवाच ॥ स्नानतर्पणकृत्यानि कृतानिचिद्विजोत्तमैः ॥ व्यासकुण्डंततो गत्वा होमंसम्यगकारयन् ॥

२२ ॥ श्रीफलैर्विल्वपत्रैश्च ध्यानयुक्ताश्चजुह्वति ॥ गौतमोभृगुमाण्डव्यौ नारदोलोमशस्तथा ॥ २३ ॥ पराशर

स्तथाशङ्खः कौशिकश्च्यवनोमुनिः ॥ पिप्पलादोवशिष्ठश्च नाशिकेतुर्महातपाः ॥ २४ ॥ विश्वामित्रोह्यगस्त्यश्च उद्वा

लकयमौतथा ॥ शाण्डिल्योजैमिनिः काव्यो याज्ञवल्क्योशनः अङ्गिराः ॥ २५ ॥ अत्रिः शातातपश्चैव भरतोमुद्गलस्त

था ॥ वात्स्यायनोमहातेजास्संवर्तः शक्तिरेवच ॥ २६ ॥ जातूकर्णोभरद्वाजो बालखिल्यादयस्तथा ॥ एकचित्ताद्विजा

राजन्मन्त्रतन्त्रप्रकुर्वतः ॥ २७ ॥ ततः समुत्थितंलिङ्गं ज्वलत्कालानलप्रभम् ॥ साष्टाङ्गं प्रणतोव्यासो देवंदृष्ट्वात्रिलो

चनम् ॥ २८ ॥ आशीर्वादं पुनर्विप्रा दत्त्वाव्यासंतदाययुः ॥ ततः प्रभृतितत्त्वज्ञतीर्थव्यातन्तुपाण्डव ॥ २९ ॥ स्नानदान

विधानञ्च यस्मिन्कालेप्रतिष्ठितम् ॥ कथयामिसमस्तन्तेभ्रातृणाञ्चैवपाण्डव ॥ ३० ॥ कार्तिकस्यासितेपक्षे चतुर्दश्यां

नृपोत्तम ॥ उपोष्ययोनरोभक्त्यारात्रौ कुर्वीत जागरम् ॥ ३१ ॥ स्नापयेद्दीश्वरं भक्त्या क्षौद्रेण क्षीरसर्पिषा ॥ ३२ ॥ दधनाच

हुये ॥ २७ ॥ तदनन्तर जलतेहुये प्रलय के अग्निके समान लिङ्ग उठता हुआ त्रिनेत्र महादेवजी को देख व्यासजी साष्टाङ्ग प्रणाम करते हुये ॥ २८ ॥ फिर ब्राह्मणलोग व्यासको आशीर्वाद देकर चलेगये हे तत्त्वज्ञ, पाण्डव ! तब से यह व्यासतीर्थ प्रसिद्ध होता हुआ ॥ २९ ॥ अत्र हे पाण्डव ! जिस समय में स्नान व दानका विधान प्रतिष्ठित है वह सब हम आप व आप के भाइयों से कहते हैं ॥ ३० ॥ हे नृपोत्तम ! कार्तिकके अधिपारे पाखकी चौदस को उपासा रहकर जो मनुष्य भक्ति से

रातमें जागरण करे ॥ ३१ ॥ और भक्ति से शहद, दूध, घी, दही, शक्कर और कुशों के जल से महादेवको नहवावे और सुगन्धित चन्दन से महादेव का पूजन करे ॥ ३२ ॥ तदनन्तर सुगन्धित फूल व बेलपत्रों से पूजे कोका, कुन्द, कुश, फूल, अक्षत आदि ॥ ३३ ॥ धतूरे के फूल, रस और अत्युत्तम जङ्गली फूलों व बड़ी-भक्ति से अत्युत्तम द्वीपेश्वर का पूजन करे ॥ ३४ ॥ और मदार आदि के फूलों से परमेश्वर को पूजे गुड और मौड़ के देने से दिन भरका कमाया हुआ पाप ॥ ३५ ॥ उससे सौ गुने दानसे महीने भरका, हजारगुने से छह महीने का, दो हजार गुने से साल भरका पाप नाश होता है ॥ ३६ ॥ दशहजार गुने से जन्म भरका पाप नष्ट होजाता है हे

खण्डयुक्तेन कुशतोयेन वा पुनः ॥ श्रीखण्डेन सुगन्धेन पूजयेत महेश्वरम् ॥ ३३ ॥ ततः सुगन्धपुष्पैश्च विल्वपत्रैश्च पूजयेत् ॥ कुसुदेन च कुन्देन कुशपुष्पाक्षतैर्दिभिः ॥ ३४ ॥ उन्मत्तपुष्पैश्च रसैस्सौम्यैश्चैवाप्यनुत्तमैः ॥ अर्चयेत्परमाभक्त्या सार्जितं च नश्येत् गुडमण्डपदानेन पातकं दिवसाजितम् ॥ ३५ ॥ मन्दारादिकपुष्पैश्च पूजयेत्परमेश्वरम् ॥ गुडमण्डपदानेन पातकं दिवसाजितम् ॥ ३६ ॥ सा इयति ॥ पौर्णमास्यां नृपश्च स्नानं कुर्वीत भक्तिः ॥ ३७ ॥ मन्त्रोक्तेन विधानेन कृत्वा पापक्षयं कुरम् ॥ वारुणं च तथा ज्ञेयं सर्वपापक्षयं कुरम् ॥ ३८ ॥ देवान्पितॄन्मनुष्यांश्च विधिवत्तर्पयेन्नृप ॥ ऋचमेकां जपेत्स्नातः सामवेदफलं लभेत् ॥ ३९ ॥ यजुर्वेदमथर्वाणं गायत्र्या सर्वमाप्नुयात् ॥ जपेदष्टाक्षरं मन्त्रं सौरं च शैवमेव च ॥ अथ वा वैष्णवं मन्त्रं द्वादशाक्षरमेव च ॥ पूजयेद्ब्राह्मणान्भक्त्या सर्वलक्षणलक्षितान् ॥ ४० ॥ स्वधर्मनिरतान् विप्रान्दम्भलोभविजितान् ॥ हीनाङ्गा नृपश्चैष्ट ! पूर्णमासी को भक्तिसे स्नानकरे ॥ ४१ ॥ वेदमें कहेहुये विधान से किया गया स्नान पापों का क्षय करनेवाला वारुण स्नान भी जानना चाहिये ॥ ४२ ॥ हे नृप ! देवता, पितर और मनुष्यों का विधि से तर्पण करे और नहाकर एक मन्त्रको जपे तो सामवेद के फल को पाता है ॥ ४३ ॥ और गायत्री से यजुर्वेद और अथर्ववेद के सम्पूर्ण फलको पाता है अष्टाक्षर व सौर व शैव ॥ ४४ ॥ व वैष्णव द्वादशाक्षर मन्त्रको जपे और सब लक्षणों से युक्त ब्राह्मणों का भक्ति से पूजन करे ॥ ४५ ॥ ब्राह्मण कैसे होवें कि अपने धर्ममें रत हों, दम्भ व लोभसे रहित हों, अङ्गहीन व अधिक अङ्गवाले न हों और जो

पतितहों व शूद्रों के सेवकहों ॥ ४३ ॥ व शूद्रोंके अन्न से युक्तहों व जिसके मकानमें वृषली (शूद्री) रहती हो व उदरीसे पैदाहों व दुष्टहों व गुरुकी निन्दाके करने वाले हों ॥ ४४ ॥ व वेदके पढ़ने से रहितहो व तर्क के करनेवाले हों व कौवों कीसी वृत्तिवाले हों ऐसे ब्राह्मणों को श्राद्ध, दान और व्रतमें वर्जित रखे ॥ ४५ ॥ गायत्री-मात्र के पढ़ने से पढ़ा हुआ ब्राह्मण श्रेष्ठहै और जो सर्वभक्षी व सब चीजों का पढ़नेवाला हो तो चारोंवेदों का पढ़नेवाला भी हो परन्तु वह नहीं श्रेष्ठ है ॥ ४६ ॥ ऐसे ब्राह्मणों को श्राद्ध, व्रत और सोने के दानमें छोड़िरे व जूता, कपड़ा, पल्लेग, छाता और आसन को ॥ ४७ ॥ जो भक्ति से ब्राह्मणको दंतहै वहभी स्वर्ग में यूजित होता

नधिकाङ्गाश्चपतिताञ्छद्द्रुसेवितान् ॥ ४३ ॥ शूद्रान्नेनचसंयुक्ता वृषलीयस्यमन्दिरे ॥ पौनर्भवास्तथादुष्टा गुरुनिन्दा
परायणाः ॥ ४४ ॥ वेदाध्ययनहीनाश्च हेतुकाःकाकवृत्तयः ॥ ईदृशान्वर्जयेच्छ्राद्धे दानैश्चैवव्रतेतथा ॥ ४५ ॥ गायत्री
पाठमात्रेण वरंविप्रस्मुपगणितः ॥ नायंभृतचतुर्विधः सर्वाशीसर्वविक्रयी ॥ ४६ ॥ ईदृशान्वर्जयेच्छ्राद्धे व्रतेदानेहिर
ण्मये ॥ उपानहौचवस्त्रंच शय्यांवाङ्मन्त्रमासनम् ॥ ४७ ॥ योदद्याद्ब्राह्मणेभक्त्या सोपिस्वर्गमेमहीयते ॥ प्रत्यक्षासुर
भीतत्र तिलधेनुस्तथासमता ॥ ४८ ॥ तिलधेनुप्रदातारः स्वस्वदातारएवच ॥ कृष्णाजिनप्रदातारो दातारःकुञ्जरस्य
च ॥ ४९ ॥ कन्याविद्याप्रदातारोऽक्षयंलोकमवाप्नुयुः ॥ धूर्वहोदक्षिणायुक्तौ धान्योपस्करसंयुतौ ॥ ५० ॥ दापयेत्सर्व
कामाय इतिमेसत्यभाषितम् ॥ सूत्रेणवेष्टयेदीशमथवाजगतीरुहम् ॥ ५१ ॥ मन्दिरंपरयाभक्त्या अथवापरमेश्वर
म् ॥ अथप्रदक्षिणाकार्या विनाशूद्रेणमानवैः ॥ ५२ ॥ जम्बूप्लक्ष्याद्वयोद्घोषौ शाल्मलिश्चभवेन्नृप ॥ कुशःक्रौञ्चस्त

है वहां प्रत्यक्ष गऊ व तिलधेनु देनेको उचितहै ॥ ४८ ॥ तिलधेनु के देनेवाले, अपने धनके देनेवाले, मृगचर्म के देनेवाले, हाथी के देनेवाले, ॥ ४९ ॥ कन्या और विद्याके देनेवाले अक्षयलोकको प्राप्त होते हैं अन्न व और सामान व दक्षिणासे युक्त वैलों को ॥ ५० ॥ सब कामनाओंके वास्ते देवे यह हमारा कहना सत्य है सूतसे महादेव व वृक्ष ॥ ५१ ॥ व मन्दिर व परमेश्वर को बड़ी भक्तिसे लगेते तदनन्तर शूद्र को छोड़ और मनुष्यों को प्रदक्षिणा करना चाहिये ॥ ५२ ॥ जो ऐमा काम करता

है उसने मानो जम्बू, लङ्घ, शाल्मली, कुश, क्रौंच, शाक और सातवां पुष्करद्वीप व सातो समुद्रपर्यन्त पृथिवी को लपेटलिया है भारत ! हे राजेन्द्र ! द्वीपेश्वर मे जितेन्द्रिय मनुष्यों को वृषोत्सर्ग करना चाहिये ॥ ५३ ॥ क्योंकि बैल के छोंडेनेही से ईश्वरके लोकको पाताहै जिसका मुख, माथा, पांव सफेदहो ॥ ५४ ॥ व पूंछ और थूथन सफेद होंवें वह बैल स्वर्गका दिखानेवाला होताहै ऐमाही बैल नील कहा गयाहै उसको शुभस्वरूप द्वीपेश्वर मे देवे ॥ ५६ ॥ हे पार्थिव ! इसके देनेवाले अनगिन्ती भी नीच लोग स्वर्ग को जाते हैं अथवा सूर्य व चण्डेश्वर व विष्णुके लोक को जाते है ॥ ५७ ॥ व्यासतीर्थ के प्रभावसे वह अपनी इच्छासे इन लोको

थाशाकः पुष्करश्चेतिसप्तमः ॥ ५३ ॥ सप्तसागरपर्यन्ता वेष्टितातेनभारत ॥ द्वीपेश्वरेतुराजेन्द्र दृषोत्सर्गोजितेन्द्रियैः ॥ ५४ ॥ दृषस्यमोज्ञेनैव ऐश्वरंलोकमाप्नुयात् ॥ यस्तुवैपाण्डुरोवक्त्रे ललाटेचरणेतथा ॥ ५५ ॥ लाङ्गलेचमुखे शुभ्रस्सवैनाकस्यदर्शनः ॥ नीलोयमीदृशःप्रोक्तो दद्याद्द्वीपेश्वरेशुभे ॥ ५६ ॥ पामरास्तेध्यसंख्याता नार्केगच्छन्ति पार्थिव ॥ सौरचण्डेश्वरेलोके पुरैवैचक्रपाणिनः ॥ ५७ ॥ समुद्वेक्तेष्वेच्छयालोकं व्यासतीर्थप्रभावतः ॥ सपत्नीकांस्ततोविप्रान्पूजयेत्तत्रभक्तिः ॥ ५८ ॥ सितरत्नानिवस्त्राणि प्रदद्यादग्रजन्मने ॥ कृत्वाप्रदक्षिणायुगमं प्रीयतांमेजगद्गुरुः ॥ ५९ ॥ नास्तिविप्रसमोबन्धुरिहलोकपरत्रच ॥ यमलोकैमहाघोरे पतितंयोभिरक्षति ॥ ६० ॥ पुरुषाःपरयामक्त्या वेदशास्त्रार्थचिन्तकाः ॥ द्वीपेश्वरंमहादेवं संस्मरन्तिगृहेस्थिताः ॥ ६१ ॥ तेषांनजायतेशोको नहानिर्नचदुष्कृतम् ॥ प्रथमंपूजयेत्तत्र लिङ्गसिद्धेश्वरन्नृप ॥ ६२ ॥ यत्रासिद्धोमहाभागस्सत्यवत्याश्चनन्दनः ॥ अस्मैवार्चनतस्मिद्धो

को भोगताहै तदनन्तर वहा भक्तिसे सपत्नीक ब्राह्मणों का पूजनकरे ॥ ५८ ॥ सफेद रत्न व वस्त्रो को ब्राह्मण को देवे और दो प्रदक्षिणा करके कहे कि मुझ से जगत के गुरु प्रसन्न होंवें ॥ ५९ ॥ ब्राह्मण के वगवर इम लोक व परलोक में कोई हितकारी नहीं है जो महाघोर यमलोक में पड़ेहुये पापोंकी रक्षा करताहै ॥ ६० ॥ वेद और शास्त्र के अर्थ जाननेवाले जे पुरुष अपने घरमे बैठेहुये बड़ी भक्ति से द्वीपेश्वर महादेव को स्मरण करते है ॥ ६१ ॥ उनको शोक हानि और पाप नहीं होता है

हे नृप ! वहा पहले सिद्धेश्वर लिङ्गका पूजनकरे ॥ ६२ ॥ जहां बड़े भाग्यवाले सत्यवतीके पुत्र व्यास सिद्ध हुये हैं इसी लिङ्गके पूजनसे व्यासमुनि सिद्धहुये हैं ॥ ६३ ॥ हे राजन् ! उस तीर्थमें जे अपने प्राणोंका त्याग करतेहैं वे परमलोकको जातेहैं इसमें विचार नहीं करना चाहिये ॥ ६४ ॥ व जो जलमें प्रवेश कर मराहै वह हजार वर्ष तक स्वर्ग में रहताहै और भृगुपातमें सोलह हजार व युद्धमें साठहजार और गौवों के पीछे मरने से अरसीहजार और हे भारत ! अनशनमें अक्षय काल तक स्वर्ग में गति रहती है ॥ ६५ ॥ और योग सेभी अक्षय गति होती है सूर्यलोकको जाकर फिर वे शिवलोक को जाते हैं ॥ ६६ ॥ पिता, दादा और परदादा आते हुये अपने अपने गोत्र

पाराशर्योमुनिस्ततः ॥ ६३ ॥ तस्मिन्सतीर्थेनुराजन्प्राणत्यागं प्रकुर्वते ॥ तेयान्ति परमं लोकं नात्र काय्या विचारणा ॥ ६४ ॥ समासहस्राणि मृतो जले वै यो वै निमग्नः पतने च षोडश ॥ महाहवेषष्टिरशीतिगोष्ठे त्वनाशके भारत चाक्षया गतिः ॥ ६५ ॥ अथ योगेनेतेनैव प्राप्यते चाक्षया गतिः ॥ सूर्यलोकं ततो गत्वा शिवलोकं ब्रजन्ति ते ॥ ६६ ॥ पितापितामहश्चैव तथैव प्रपितामहः ॥ अनुभूतानिरीक्षन्ते आगच्छन्तं स्वगोत्रजम् ॥ ६७ ॥ तिष्ठते चैव गोत्रेषु यो दद्याच्च तिलोदकम् ॥ कार्तिक्याञ्च तथा माध्यां वैशाख्याञ्च विशेषतः ॥ ६८ ॥ स्वर्गं च ते प्रयान्त्यन्ते स्वस्वपुत्रप्रभावतः ॥ एतत्ते कथितं सर्वं द्वीपेश्वरफलं शुभम् ॥ ६९ ॥ यः पठेत्प्रातरुत्थाय यः शृणोति नरोत्तम ॥ सोऽपि पापैर्विनिर्मुक्तो मोदते शिवमन्दिरे ॥ ७० ॥ ईश्वरं सर्वतीर्थानां निर्ममन्तं ऋषिपुङ्गवैः ॥ कामदं सर्वजन्तूनां रेवायाञ्च नृपोत्तम ॥ ७१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे रेवास्य एडेहीपेश्वरव्यासतीर्थवर्णनो नाम नवाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०९ ॥ * ॥

वालेको देखते हैं ॥ ६७ ॥ और कहते हैं कि है कोई हमारे गोत्र में जो विशेष करके कार्तिकी व माघी व वैशाखी को यहां तिलोदक देवे ॥ ६८ ॥ वे लोग अपने २ पुत्रों के प्रभाव से अन्त में स्वर्गको जाते हैं यह सब उत्तम द्वीपेश्वर का फल तुम से कहा गया ॥ ६९ ॥ प्रातःकाल उठकर जो मनुष्य पढ़ता व सुनताहै पापों से छूटा हुआ वह निश्चय करके शिवके मन्दिर में आनन्द करता है ॥ ७० ॥ हे नृपोत्तम ! सब जीवोंकी कामनाओं का देनेवाला व सब तीर्थोंका राजा ऋषियोंका रचा हुआ नर्मदा पर व्यासतीर्थ है ॥ ७१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे रेवास्य एडेहीपेश्वरव्यासतीर्थवर्णनो नाम नवाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०९ ॥ ● ॥

मार्कण्डेयजी बोले कि हे राजेन्द्र ! तदनन्तर तीनों लोकों में प्रसिद्ध व उत्तम स्वर्गकी निसेनी के समान, उत्तम प्रभासेश्वर तीर्थको जावे ॥ १ ॥ तब युधिष्ठिजी बोले कि बड़े फलवाला प्रभास नाम तीर्थ जैसे हुआ हो व जैसे स्वर्ग मार्गकी निसेनी के बराबरहो वैसे संक्षेप से आप मुझ से कहिये ॥ २ ॥ तब मार्कण्डेयजी सालभर वायुका भोजन करतीहुई बनीरही हे पाण्डुनन्दन ! तब प्रसन्न हुये महादेव उस प्रभा से ॥ ४ ॥ बोले कि हे बाले ! तू क्यों तकलीफ उठाती है अपने मन

मार्कण्डेयउवाच ॥ ततो गच्छेत्तुराजेन्द्र प्रभासेश्वरमुत्तमम् ॥ विख्यातं त्रिषु लोकेषु स्वर्गसोपानमुत्तमम् ॥ १ ॥ युधिष्ठिरउवाच ॥ प्रभाससन्नामतीर्थं तु यथाजातं महाफलम् ॥ स्वर्गसोपानमर्गञ्च संक्षेपात्कथयस्व मे ॥ २ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ दुर्भंगारविपत्नीच प्रभानामेति विश्रुता ॥ तया चाराधितः शम्भुरुन्नेत पसाधुरा ॥ ३ ॥ वायुमन्त्रास्थिता वर्षं शिवध्यानपरायणा ॥ ततस्तुष्टो महादेवः प्रभां तां पाण्डुनन्दन ॥ ४ ॥ उवाच क्लिश्यते कस्माद्बाले त्वं ब्रूहि चेष्टितम् ॥ अहञ्च भास्करोपेतश्चा न्तरं नैव विद्यते ॥ ५ ॥ प्रभोवाच ॥ नान्यो देवस्तथा शम्भो भर्ता पुष्यति न कचित् ॥ सगुणो वापि चाख्यातो निर्गुणो द्रव्यरूपा भर्तुश्च तेन क्लिश्ये महेश्वर ॥ देवउवाच ॥ दुर्भगात्वेन दग्धाहं लोकमध्ये महेश्वर ॥ ७ ॥ अलब्धसौ तव वाक्येन भास्करेन भविष्यति ॥ वृथा क्लेशो भवेद्देव प्रभायास्तत्र का कथा ॥ ८ ॥ पार्वत्युवाच ॥ बल्लभा की बातको कह क्योंकि हम सूर्य से युक्त सदा रहते हैं हमारा और सूर्यका अन्तर नहीं है ॥ ५ ॥ तब प्रभा बोली कि हे शम्भो ! चाहे भर्ता अपनी स्त्रीका पोषण कभी न करे परन्तु स्त्रीका और देवता नहीं है चाहे वह सगुणहो व चाहे निर्गुण हो व द्रव्यसे रहितहो ॥ ६ ॥ चाहे प्रियहो और चाहे अग्रिय हो परन्तु स्त्रियोंका पतिही देवताहै हे महेश्वर ! मैं तो कुरूप होने के कारण से संसार में जल रही हूँ ॥ ७ ॥ हे महेश्वर ! पति से सुखको नहीं पाती हूँ इससे तपस्यासे कष्टित हो रही हूँ तब महादेव बोले कि हमारे प्रभाव से तुम सूर्यकी प्यारी होवोगी ॥ ८ ॥ तब पार्वती ने कहा कि हे देव ! यह तुम्हारे कहने से सूर्यकी प्यारी न होगी आपको वृथा क्लेश होगा वहां

प्रभाकी वार्ताभी नहीं है ॥ ९ ॥ पार्वती के कहने से महादेवने सूर्यका ध्यान किया तब नर्मदा के उष्णवाले किनारेपर आकाश से सूर्य आते हुये ॥ १० ॥ और सूर्य बोले कि हे अन्धकासुरनाशन, देव ! आपने मुझको क्यों बुलाया है तब महादेव बोले कि हे भानो ! बड़े सन्तोष से प्रभाको पालो ॥ ११ ॥ हे हिमनाशन ! प्रभा के मकान में हमेशा रहाकरो ऐसे महादेव से वरको प्राप्तहुई प्रभा महादेव को थापकर बोली ॥ १२ ॥ कि हे अनघ ! अपने अंश से यहां ठहरो और तीर्थ का प्रकाश करो मार्कण्डेयजी बोले कि हे पाण्डुनन्दन ! सब देवताओं का रूप जो लिंगहै सो स्थापन किया गया ॥ १३ ॥ प्रभासेश्वर नाम का यह लिंग सब लोकों में दुर्लभहै और

नाशनः ॥ आगतोगगनाद्भानुर्नर्मदायोत्तरतटे ॥ १० ॥ भानुरुवाच ॥ कस्मादाह्वानितोदेव अन्धकासुरनाशन ॥
देवउवाच ॥ प्रभांपालयहेभानो संतोषेणपरेणच ॥ ११ ॥ प्रभायामन्दिरनित्यं स्थीयतां हिमनाशन ॥ एवंलब्धवरा
देवात्प्रभास्थाप्याहशङ्करम् ॥ १२ ॥ स्वांशेनस्थीयतामत्रतीर्थमुन्मीलयानघ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ सर्वदेवमयलिङ्गं
स्थापितंपाण्डुनन्दन ॥ १३ ॥ प्रभासेश्वरनामेदं सर्वलोकैर्चदुर्लभम् ॥ अन्यानियानितीर्थानि कालेतेपिफलान्तिवै ॥
१४ ॥ प्रभासञ्चापिराजेन्द्र सद्यःपुण्यफलप्रदम् ॥ माघमासेचसप्तम्यां विशेषफलदंभवेत् ॥ १५ ॥ अश्वयोदापयेत्त
त्र यथोक्तंब्राह्मणेनृप ॥ इन्द्रस्यप्राप्यतेलोकमथवाभास्करं व्रजेत् ॥ १६ ॥ दौर्भाग्यनश्यतेतत्र स्नानमात्रेणपाण्डव ॥
तत्रतीर्थेतुयोभक्त्या कन्यादानंप्रयच्छति ॥ १७ ॥ ब्राह्मणायविवाहार्थं दापयेत्पाण्डुनन्दन ॥ समानवयमेविप्रे कुलीने
धनिनेतथा ॥ १८ ॥ योददातिमहाराज महापातकसंयुतः ॥ तस्यपापंचनश्येत उदकेलवणंयथा ॥ १९ ॥ स्वामिद्रोहो

जो तीर्थ हैं वे समय पर फल देते हैं ॥ १४ ॥ और हे राजेन्द्र ! प्रभास तो तत्कालमें पुण्य फलका देनेवाला है और माघ के महीने में सप्तमी को विशेष फलका देने वाला है ॥ १५ ॥ हे नृप ! जैसा कहाहै वैसे घड़े को जो ब्राह्मण को देताहै वह इन्द्र व सूर्यके लोकको जाता है ॥ १६ ॥ हे पाण्डव ! वहां स्नानमात्र से कुरूपता नष्ट होजाती है उस तीर्थ में भक्तिसे जो कन्यादान को देता है ॥ १७ ॥ हे पाण्डुनन्दन ! बराबर उमरवाले कुलीन व धनी ब्राह्मण को विवाह के वास्ते ॥ १८ ॥ हे महाराज ! जो कन्याको देता व दिलाता है वह महापातक से युक्तभी हो परन्तु उसका पाप नष्ट होजाताहै जैसे पानी में लोह पिघल जाताहै ॥ १९ ॥ स्वामी के साथ द्रोह

करने से जो पाप होता है व चोरी से जो होता है व झूठी गवाही से व चाण्डालों की सी चाल चलनेवालों को जो पाप होता है ॥ २० ॥ व पाखण्ड से व वृद्धों के काटने से व अगम्य स्त्री में गमन करने से व गांव भरके साथ छल करने से व विष के देने से व पाप के छिपाने से ॥ २१ ॥ व विद्या के बेचने में व प्रापियों का साथ करने से व स्त्री और सब से वैर करने से हे नृप ! ॥ २२ ॥ व ब्रह्महत्या से व जमीन छीननेवाले को व गोहत्या में व गुरु, अग्नि और ब्राह्मण के साथ अपराध करने से जो पाप होता है ॥ २३ ॥ व हे नृप ! जम्बू, लङ्का, शाल्मलि, कुश, क्रौंच, शाक और सातवें पुष्करद्वीप में जो पाप होता है ॥ २४ ॥ हे पाण्डव ! वह पाप कन्यादान से नष्ट

द्रवंपापं यत्पापं स्तेयसम्भवम् ॥ कूटसाक्ष्यप्रदंपांचाण्डालव्रतचारिणाम् ॥ २० ॥ दाम्भिकं वृक्षकच्छेदमगम्या
गमनोद्भवम् ॥ ग्रामकूटोद्भवं यच्च गरदंवाप्रवारकम् ॥ २१ ॥ विद्याविक्रयणे यच्च संसर्गोद्भवपातकम् ॥ पत्नीद्रोहो
द्भवं घोरं सर्वद्रोहोद्भवं नृप ॥ २२ ॥ ब्रह्महत्याचयत्पापं यत्पापं भूमिहारिणः ॥ गोवधै चैव यत्पापं गुर्वग्निब्राह्मणेषु च ॥
२३ ॥ जम्बू, पुच्छाक्ष्यौ द्वीपौ शाल्मलिश्च भवेन्नृप ॥ कुशक्रौञ्चस्तथा शाकः पुष्करश्चैव सप्तमः ॥ २४ ॥ तत्पापं विलयं या
ति कन्यादानेन पाण्डव ॥ भित्त्वाथ भास्करं लोकं शिवलोकं शुभं व्रजेत् ॥ २५ ॥ क्रीडते रुद्रलोकस्थो यावदिन्द्राश्चतु
र्दश ॥ सर्वपापक्षये जाते शिवो भवति भावतः ॥ २६ ॥ तावद्भ्रमति तत्तीर्थं प्रभासं पाण्डुनन्दन ॥ सोऽवमेधफलं प्राप्य
सत्यमीश्वरभाषितम् ॥ २७ ॥ गोदानं च महत्पुण्यं सर्वपापक्षयङ्करम् ॥ प्रत्यक्षं सुरभी तत्र जलधेनुं तथा दृतः ॥ २८ ॥
तिलधेनुप्रदाता च अश्वदाता तथैव च ॥ कन्याविद्याप्रदाता च अक्षयं लोकमाप्नुयात् ॥ २९ ॥ भूरिवस्त्रांचीरयुक्तां

होजाता है कन्यादान का करनेवाला सूर्यलोक को भेदकर शुभरूप शिवलोक को जाता है ॥ २५ ॥ जब तक चौदहो इन्द्र रहते हैं तब तक रुद्रलोक में टिकाहुआ विहार करता है फिर सब पापों के क्षय होजाने पर भावना से शिवही होजाता है ॥ २६ ॥ हे पाण्डुनन्दन ! तब तक मनुष्य अमता है जब तक प्रभासतीर्थ को नहीं पाता है उसको पाकर अश्वमेधके फलको पाता है ईश्वर का कहना सत्य है ॥ २७ ॥ गोदान सब पापोंका क्षय करनेवाला और बड़ी पुण्यवाला होता है वहां प्रत्यक्ष गऊ व

जलधेनु को आदरसे देवे ॥ २८ ॥ तिलधेनु, घोड़ा, कन्या व विद्या का देने वाला अक्षयलोक को पाता है ॥ २९ ॥ हे नृपसत्तम ! बहुत कपड़े व दुग्ध व अन्न व और सामान से युक्त गऊको सब कामनाओं के वास्ते देवे ॥ ३० ॥ तो उसने मानो सातो समुद्र पर्य्यन्त शुथिर्वी को लपेट लिया हे भारत ! हे राजेन्द्र ! द्वीपेश्वर में जितेन्द्रियों को वृषोत्सर्ग सब कालमें करना चाहिये और चौदसको तो विशेषही करना चाहिये ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेरेवाखण्डेप्राकृतभाषाऽनुवादप्रभास तीर्थमहिमाऽनुवर्णनोनामदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११० ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

धान्योपस्करसंयुताम् ॥ दापयेत्सर्वकामोथ सुरभीनृपसत्तम ॥ ३० ॥ सप्तसागरपर्य्यन्ता वेष्टितातेनभारत ॥ द्वीपेश्वर
रेतुराजेन्द्र वृषोत्सर्गजितेन्द्रियैः ॥ ३१ ॥ सर्वकालन्तुकर्तव्यं चतुर्दश्यांविशेषतः ॥ ३२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभा
सर्तीर्थमहिमानुवर्णनोनामदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११० ॥ * ॥ * ॥ * ॥

मार्कण्डेयउवाच ॥ ततो गच्छेत्तुराजेन्द्र नर्मदादक्षिणेतटे ॥ स्थापितंवासुकेर्नाम्ना अशेषाघौघनाशनम् ॥ १ ॥
युधिष्ठिरउवाच ॥ आः कस्मात्कारणात्तात स्थापितं दक्षिणेतटे ॥ तत्त्वं सर्वममाख्याहि त्वशेषं धर्मकारणम् ॥ २ ॥
मार्कण्डेयउवाच ॥ शृणु त्वं कुरुशार्दूल यः प्रश्नः क्रियते त्वया ॥ भैरवं रूपमास्थाय नृत्यं शम्भुश्चकार ह ॥ ३ ॥ तच्छ्रु
माज्जायते स्वेदो गङ्गातोयविमिश्रितः ॥ तत्रैव पन्नगः स्नातो हरतोयविमिश्रिते ॥ ४ ॥ मन्दाकिनी ततः क्रुद्धा व्यालस्या

मार्कण्डेयजी बोले कि हे राजेन्द्र ! तदनन्तर नर्मदा के दक्षिणवाले तटपर सबपापों के समूह के नाश करनेवाले व नाम से वासुकिनागके थापेहुये तीर्थको जावे ॥
१ ॥ तब युधिष्ठिरजी बोले कि हे तात ! नर्मदा के दक्षिणवाले तटपर लिङ्ग क्यों स्थापन किया गया सो सब आप मुझसे कहो क्योंकि यह सब धर्महीका कारण है ॥
२ ॥ तब मार्कण्डेयजी बोले कि हे कुरुशार्दूल ! जिस प्रश्नको आपने किया है उसको सुनो किसी समयमें भैरवरूप को धर महादेवने नाच किया ॥ ३ ॥ उसके थकावट से गंगाजल से मिलाहुआ पसीना आया उस महादेवके जलसे मिलेहुये जल में वासुकिनाग ने नहाया ॥ ४ ॥ हे भारत ! तब उस सर्पपर गंगा ने क्रोध किया और

तब सर्पसे कहा कि तू अजगर होजा ॥ ५ ॥ तब वासुकि बोला कि हे हरसम्भृते ! मैं पापी आपसे दया करने के योग्य हूँ हे शुभलक्षणे ! तुम तो तीनों लोकों की पवित्र करनेवाली पुण्य नदी हो ॥ ६ ॥ और संसार के काटनेवाली व कष्टों के कष्टकी हरेनेवाली हो स्वर्ग के फाटक पर ठहरी हुई हे देवि ! मेरे ऊपर दया करो ॥ ७ ॥ तब गंगा बोली कि हे नाग ! तुम महादेव के वास्ते बड़ी तपस्या करो तब वह ईश्वर का जिसमें परम आराधन है ऐसे तपको करता हुआ ॥ ८ ॥ तदनन्तर महादेव का ध्यान करता हुआ दम से युक्त होता हुआ तदनन्तर सौ वर्ष पूरे होनेपर महादेवजी प्रसन्न हुये ॥ ९ ॥ आकर उसके समीप खड़े होकर स्नेहकी आवाज से बोले कि हे परिभारत ॥ आजगरत्वमाप्नोषि उरगञ्चाब्रवीत्तदा ॥ ५ ॥ वासुकिरुवाच ॥ अनुग्राहोऽस्म्यहंपापो भवत्याहरसम्भृते ॥ त्रैलोक्यपावनीपुरया सरित्त्वंशुभलक्षणे ॥ ६ ॥ संसारच्छेदनकरी आर्तानामार्तिनाशिनी ॥ स्वर्गद्वारस्थितेदेवि दयां कुरुममोपरि ॥ ७ ॥ गङ्गोवाच ॥ चरत्वंविपुलज्ञाग तपोवैशङ्करप्रति ॥ ततस्तपश्चारासावीश्वराराधनं परम् ॥ ८ ॥ ततश्चध्यायतो देवं दमयुक्तो भवत्सच ॥ ततो वर्षशतेषूँ उपरुद्धोजगद्गुरुः ॥ ९ ॥ आगत्य तत्समीपस्थः झलक्ष्णांवा णीमुदाहरत् ॥ वरं वरयतु श्रेष्ठं पन्नगत्वं महाबल ॥ १० ॥ पन्नग उवाच ॥ यदि तुष्टोसि मे देव वरं दातुं निशूलभृत् ॥ तदा मे दीयतां स्थानं स्वकीयं वृषवाहन ॥ ११ ॥ ईश्वर उवाच ॥ प्रसन्नोऽहं महाबाहो रेवांगच्छ शुभां त्वरम् ॥ याम्ये चैव तटेषु एये स्नानं कृत्वा विधानतः ॥ १२ ॥ इत्युक्त्वान्तर्दधे देवो वासुकिस्त्वरिति न्वितः ॥ रूपेणाजगरेणाथ विवेश नर्मदाजले ॥ १३ ॥ मार्गेण तस्य तज्जातं जाह्नव्याः स्रोत उत्तमम् ॥ निर्धूतकल्मषस्सर्पस्सजातो नर्मदाजले ॥ १४ ॥ स्थापि पन्नग ! हे महाबल ! तुम श्रेष्ठ वरको मागो ॥ १० ॥ तब नाग बोला कि हे त्रिशूल के धारण करनेवाले, देव ! जो आप वर देनेको मुझ से प्रसन्न हो तो हे वृषवाहन ! मुझे अपने स्थान को देवो ॥ ११ ॥ तब महादेवजी बोले कि हे महाबाहो ! हम प्रसन्न हैं तुम कल्याणवाली नर्मदाको जल्द जावो और दक्षिणवाले किनारे पर विधान से स्नान करो ॥ १२ ॥ इतना कह महादेव अन्तर्धान हो गये और बड़ी जल्दी से नर्मदा के रूप से नर्मदा के जल में पैठे ॥ १३ ॥ उसकी रास्ते में गंगा

का उत्तम सोता निकल आया नर्मदा के जलमें पाप जिसके धो गये ऐसा वह नाग होगया ॥ १४ ॥ हे युधिष्ठिर ! उसने वहां नर्मदामें महादेव का स्थापन किया इसी से पृथिवी में नागेश्वर सब पापों के नाश करनेवाले हैं ॥ १५ ॥ अष्टमी व चौदस को शहद से महादेव को स्नान करावे तो जैसे आग होती है ऐसे सब पापोंसे छूटा हुआ होजाता है ॥ १६ ॥ और हे पार्थ ! पुत्रसे रहित जो मनुष्य संगममें स्नान करते हैं वे कर्त्तव्य के समान उत्तम पुत्रोंको पाते हैं ॥ १७ ॥ और हे नृप-नन्दन ! उपास किये हुये जो मनुष्य भक्ति से श्राद्ध को करते हैं वे अपने पितरों को नरक से तार देते हैं ॥ १८ ॥ विशेष कर आप के स्नेह से ऐसा मैंने कहा है

तश्चेश्वरस्तत्र नर्मदायां युधिष्ठिर ॥ तेन नागेश्वरो भूम्यां सर्वपापविनाशनः ॥ १५ ॥ अष्टम्यां च चतुर्दश्यां मधुना स्नापयेच्छिवम् ॥ विमुक्तस्सर्वपापेभ्यो जायते ह्यनलो यथा ॥ १६ ॥ अपुत्रायेनराः पार्थ स्नानं कुर्वन्ति सङ्गमे ॥ तेलमन्ते शुभान् पुत्रान् कर्त्तव्यीय्योपमानपि ॥ १७ ॥ श्राद्धं तत्रैव भक्त्या उपवासपरायणाः ॥ कुर्वन्ति तारयन्ति स्वान्नरका नृपनन्दन ॥ १८ ॥ एवमाख्यातवानस्मि तव स्नेहाद्विशेषतः ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ ततो गच्छेच्च राजेन्द्र मार्कण्डे इवमुत्तमम् ॥ १९ ॥ नर्मदादक्षिणकूले गीर्वाणैर्विन्दितं शुभम् ॥ गुह्याद्गुह्यतरन्तीर्थं नाख्यातं कस्यचिन्मया ॥ २० ॥ स्थापितञ्च मया पुण्यं स्वर्गभोगञ्च मुक्तिदम् ॥ ज्ञानं तत्रैव मे जातं प्रसादाच्छङ्करस्य च ॥ २१ ॥ अन्यसूक्तंच यो ध्यायेद्दुष्टदुष्टजले जपेत् ॥ सोऽपि घोरादघौघाच्च मुच्यते पाण्डुनन्दन ॥ २२ ॥ वाचिकैर्मानसैश्चापि कर्मजैरपि पाण्डव ॥ पञ्चेन्द्रियाण्यवष्टभ्य याम्यामाशाञ्च संस्थितः ॥ २३ ॥ योजयेत्सलिले भक्त्या इत्येवं शङ्करो ब्रवीत् ॥ श्राद्धं

फिर मार्कण्डेयजी बोले कि हे राजेन्द्र ! तदनन्तर उत्तम मार्कण्डेश्वर को जावे ॥ १९ ॥ जो कि नर्मदा के दक्षिणवाले तट पर देवताओं से भलीभांति नमस्कार किया गया गुप्त से गुप्त तीर्थ है जिसको मैंने किसी से नहीं कहा है ॥ २० ॥ स्वर्ग का भोग और भक्ति का देनेवाला व पुण्यवाला वह लिंग मेरा थापा हुआ है महादेव के प्रसाद से सुभक्तों वही ज्ञान पैदा हुआ है ॥ २१ ॥ अन्य सूक्त को जो ध्यात्रता है व दुष्टद मन्त्रों को जलमें जपता है हे पाण्डुनन्दन ! वह भी घोर पापों के समूह से छूटजाता है ॥ २२ ॥ और हे पाण्डव ! पाचो इन्द्रियों को रोक दक्षिण दिशामें बैठा हुआ ॥ २३ ॥ भक्ति से पानी में जो कहे हुये जपको करता है वह वाणी, मन और

शरीरसे किये हुये पापोंसे छूटजाता है ऐसा शङ्करजीने कहा है और है नृपनन्दन ! भक्ति से जो वहां आछ करताहै ॥ २४ ॥ उसके पितर प्रलयतक तृप्त रहतेहैं और, बेर, बेल, अजत और जलसे ॥ २५ ॥ जो प्रेतोंका तर्पण करता है उसके प्रेत शुभगतिको प्राप्त होते है ॥ २६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणरेखाखण्डेप्राकृतभाषानुवादसार्ङ्गण्डे-
श्वरमहिमानुवर्णनोनामैकादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११३ ॥ * * * * * ॥ * * * * * ॥
मार्कण्डेयजी बोले कि हे राजेन्द्र ! तदनन्तर नर्मदा के उत्तरवाले तटपर यज्ञवाटके बीच में विद्यमान बड़े सुन्दर तीर्थ को जावे ॥ १ ॥ पापों का नाश करनेवाला

त्रैवयोभक्त्याकुरुते नृपनन्दन ॥ २४ ॥ पितरस्तस्यैवैतृप्तायावदाहूतसम्प्लवम् ॥ आमर्लेर्वदरैर्विल्वैरक्षतैर्वाजलेनवा ॥
२५ ॥ तर्पयेत्तत्रयः प्रेतान्प्रेतायान्तिशुभाङ्गतिम् ॥ २६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणरेखाखण्डे मार्कण्डेयश्चरमहिमानुवर्णनो
नामैकादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११३ ॥ * * * * * ॥ * * * * * ॥

मार्कण्डेयउवाच ॥ ततो गच्छेत्तुराजेन्द्र तीर्थं परमशोभनम् ॥ उत्तरेनर्मदाकूले यज्ञवाटस्य मध्यतः ॥ १ ॥ सङ्क-
र्षणञ्च विख्यातं पृथिव्यां पापनाशनम् ॥ तपश्चर्याणि पुराणजन्मदायास्तटे शुभे ॥ २ ॥ बलभद्रेण राजेन्द्र प्राणिनामुप-
कारकम् ॥ गीर्वाणैश्चैव तत्रैव सन्निधौ नृपनन्दन ॥ ३ ॥ उमया सहित दशम्भुस्स्थितस्तत्रैव केरावः ॥ यस्तत्र स्नापये-
द्भक्त्या जितक्रोधो जितेन्द्रियः ॥ ४ ॥ एकादश्यां सिते पक्षे मन्त्रेण स्नापयेच्चिवम् ॥ आर्द्धं तत्र च यो भक्त्या प्रेतानां विप्र-
दापयेत् ॥ ५ ॥ स याति परमं स्थानं बलभद्रवचो यथा ॥ ततो गच्छेच्च राजेन्द्र मन्मथे श्वरमुत्तमम् ॥ ६ ॥ स्नानमात्रो

पृथिवी में वह सङ्कर्षण नाम से प्रसिद्ध है हे राजन् ! आगे नर्मदा के पवित्र तटमें प्राणियों के उपकार करनेवाले तपको बलभद्र ने किया है हे राजेन्द्र ! हे नृपनन्दन !
उसके समीप ही देवताओं के सहित व पार्वती के सहित महादेव और विष्णु दोनों विद्यमान है जो वहा क्रोध व इन्द्रियोंको जीतेहुये भक्तिसे नहाता है ॥ २ । ३ । ४ ॥
और उजियाले पाखकी एकादशी को मन्त्रसे शिवको स्नान कराता है व भक्ति से जो प्रेतोंको वहां आछ देता है ॥ ५ ॥ वह उत्तम स्थानको जाता है ऐसा बलभद्र का

वचन है हे राजेन्द्र ! तदनन्तर उत्तम मन्मथेश्वर को जावे ॥ ६ ॥ हे राजन् ! वहां स्नानमात्र का करनेवाला मनुष्य यमलोक को नहीं देखता है और हे पाण्डुनन्दन ! पुत्र से रहित जो स्त्री महादेव को स्नान करावे ॥ ७ ॥ तो हे पार्थ ! वह सच्चे और पौढ़े ब्रतवाले पुत्रको पाती है और हे राजन् ! मन को जीतेहुये व मौन होरहा मनुष्य वहां स्नान कर ॥ ८ ॥ व भक्ति से उपासकर गोसहस्रके फलको पाता है और भक्तिसे युक्त मनवाले जो मनुष्य वहां नाचते हैं ॥ ९ ॥ और गाने बजाने के सहित रात में जागरण करते हैं उनसे पार्वती के सहित मन्मथेश्वर महादेवजी प्रसन्न होते हैं ॥ १० ॥ उस पर नाराज होकर यमराज क्या करसके हैं उस को

नरैराजन्यमलोकन्नपश्यति ॥ अनपत्यातुयानारी स्नापयेत्पाण्डुनन्दन ॥ ७ ॥ पुत्रं सलभते पार्थ सत्यवन्तं दृढव्रतम् ॥ तत्र स्नात्वा नरो राजन्मुनिः प्रयतमानसः ॥ ८ ॥ उपोष्य परयाभक्त्या गोसहस्रफलं लभेत् ॥ तत्र नृत्यं प्रकुर्वन्ति येनराभक्तिमानसाः ॥ ९ ॥ गीतवादित्रसंयुक्तं रात्रौ जागरणं शुभम् ॥ सहाभ्विको महादेवस्तुष्टौ विमन्मथेश्वरः ॥ १० ॥ भक्तिरिष्यति संरुष्टो यमस्तं न च पश्यति ॥ कामेन स्थापितस्तत्र एतस्मात्कारणान्दृष्ट ॥ ११ ॥ अन्नदानेन भोजनकी विधि निश्चितमस्तम् ॥ सोपानं स्वर्गमार्गस्य पृथिव्यां मन्मथेश्वरः ॥ १२ ॥ विशेषात्तत्र संख्यातं श्राद्धदानेन भारत ॥ अन्नदानेन भोगाग्रन्कीर्तिं तत्फलमुत्तमम् ॥ १३ ॥ एतत्ते सर्वमाख्यातं तव भक्त्या तु भारत ॥ १४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वासवगण्डे मन्मथेश्वरमहिमानुवर्णनो नाम द्वादशोऽधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११२ ॥ * ॥

माकैंगण्डेयपुराण ॥ ततो गच्छेत्तुराजेन्द्र एरण्डीसङ्गमेश्वरम् ॥ प्रख्यातं सर्वलोकेषु ब्रह्महत्याप्रणाशनम् ॥ १ ॥ युदेव भी नहीं सके हैं हे राजा ! ब्रह्मी भाग्यसे कामदेव ने ब्रह्मा स्थापन किया है ॥ ११ ॥ हे राजन् ! अन्नके दानरो उत्तम फल कहा गया है पृथिवी में मन्मथेश्वर स्वर्गमार्गकी निसेनी हैं ॥ १२ ॥ हे राजा ! हे गान्धर्व ! यहाँ श्राद्धदान व अन्नदानसे उत्तम फल विशेषसे कहा गया है ॥ १३ ॥ हे भारत ! तुम्हारी भक्ति से यह सब मैंने ॥ १४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणो नाम द्वादशोऽधिकशततमोऽध्यायः ११२ ॥ * ॥

अन्धेयजी बोले कि तदनन्तर हे राजेन्द्र ! पृथिवी में मन्मथेश्वर को जावे जो कि सब लोकों से ब्रह्महत्या का नाश करनेवाला कहा गया है ॥ ३ ॥ तब युधिष्ठिर

बोले कि हम कारण को नहीं जानते हैं सो सब आप मुझसे कहिये बुद्धिवाले युधिष्ठिरसे ऐसे कहेंगये धर्मात्मा मार्कण्डेय ॥ २ ॥ ऋषियों के समूहसे युक्त उस सम्पूर्ण वृत्तान्तको कहते हुये मार्कण्डेयजी बोले कि जो पहले पार्वती, महादेव और ब्रह्माने कहा है ॥ ३ ॥ उसीको हम आपसे कहेंगे आप भाइयोंके सहित सुनिये महादेवने कहा है कि हे देव ! ब्रह्मा के मानस पुत्र अत्रिनाम के होते हुये ॥ ४ ॥ अग्निहोत्र के करनेवाले व देवता और अतिथि के पूजनेवाले हुये इस पर्वत पर उन्हीं ब्राह्मण ने चन्द्रमा का स्थापन किया है ॥ ५ ॥ अनसूया नामकी उनकी स्त्री गुणोत्तियुक्त व पतिव्रता व पतिही जिसके प्राण है व पति के काम व हितमें लगी रहने-

धिष्ठिरउवाच ॥ कारणैवज्ञैवजानेहं तत्सर्वकथयस्वमे ॥ एवमुक्तस्तुधर्मात्मा धर्मपुत्रेणधीमता ॥ २ ॥ कथयामास तत्सर्वमृषिसङ्घैस्समावृतः ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ कथितंचामयापूर्वं शम्भुनापरमेष्ठिना ॥ ३ ॥ तत्तेहंसस्पृक्ष्यामि श्रूयतांभ्रातृभिस्सह ॥ महेश्वरउवाच ॥ अत्रिर्नामाह्वयोदेवमानसोब्रह्मणस्सुतः ॥ ४ ॥ अग्निहोत्ररतोनित्यं देवतातिथिपूजकः ॥ सोमस्संस्थापितोत्रैव कृतोविप्रेणपर्वते ॥ ५ ॥ अनसूयतिनाम्नापै तस्यभार्यागुणान्विता ॥ पतिव्रतापतिप्राणा पत्युःकार्यहितेस्ता ॥ ६ ॥ एवंजातस्सदाकालो नपुत्रोनचपुत्रिका ॥ अपराह्मेमहाबाहो सुखासीनोतुतौक्कचि त् ॥ ७ ॥ वदतःसुखदुःखानि दैवदत्तानियानिच ॥ अत्रिरुवाच ॥ सौम्येशुभेप्रियेकान्ते सुरूपेप्रियभाषिणि ॥ ८ ॥ पूर्णचन्द्रनिभाकारे प्रियकामेनिरालसे ॥ नत्वयासदृशीलोके त्रैलोक्येसचराचरे ॥ ९ ॥ पतिपुत्रप्रियानारीसुहृज्जनहि तेरता ॥ पुत्रेणलोकाञ्जयति पुत्रेणपरमागतिः ॥ १० ॥ नास्तिपुत्रसमोबन्धुः पृथिव्याञ्चैवदृश्यते ॥ असिपत्रवनेधारे

वाली होती हुई ॥ ६ ॥ इसी तरह काल व्यतीत होता रहा उनके लड़का व लड़की कुछ न हुआ किसी समय तीसरे पहर हे महाबाहो ! वे दोनों कहीं सुखने बैठे थे ॥ ७ ॥ प्रारब्धके दियेहुये सुख दुःखको कह रहेथे अत्रि ने कहा कि हे सौम्ये ! हे शुभे ! हे प्रिये ! हे कान्ते ! हे सुरूपे ! हे प्रियभाषिणि ! ॥ ८ ॥ हे पूर्णचन्द्रमा के समान रूपवाली ! हे प्रियकामे ! हे निरालसे ! इन चराचर तीनों लोकों में तुम्हारे बराबर कोई नहीं है ॥ ९ ॥ स्त्री वही है कि जिसको पति और पुत्र प्यारे होवें और जो अपने सम्बन्धियों के हित में रत होवें पुत्र से लोकों को जीतता है व पुत्रही से परमगति होती है ॥ १० ॥ पुत्र के बराबर पृथिवी में कोई बन्धु नहीं देख पडता

हे जो कि घोर असिपत्रवन में गिरते हुये पिताकी रक्षा करता है ॥ ११ ॥ दुर्भिक्ष व गरीबी आदि व बुढ़ापे में पुत्रही रक्षा करता है हे भद्रे ! पुत्रकै विना जीते हुये धनियों से भी क्या होता है ॥ १२ ॥ रोगों से दबा हुआ व घर से विरक्त भी पुत्र लोक लज्जा व नीति से डरा हुआ पवित्र करसक्ता है ॥ १३ ॥ इन गुणों से युक्त चाहे निर्गुणहो व सगुणहो पुत्र जरूर होवे पुत्रसे हीन होने में इस लोक व परलोक में सुख कहां से होसक्ता है ॥ १४ ॥ दिन रात इस बातकी चिन्ता करहे जा हम है तिनके अङ्ग सूखेजाते हैं जैसे ग्रीष्मऋतु में छोटी नदियां सूखें ॥ १५ ॥ तब अनसूया बोली कि हे विप्र ! जो आपने मुझ से कहा वह सब मैं शोचा करती हूं आप

पतन्तं यो भिरजति ॥ ११ ॥ दुर्भिक्षेष्वपि दैन्यादौ वृद्धकालेऽपि पुत्रकः ॥ पुत्रं विना च किं भद्रे जीवितैः सधनैरपि ॥ १२ ॥
व्याधिभिः परिभूतोऽपि निर्विषोऽपि यदा सुतः ॥ लोकलज्जानयत्रस्तः पवित्रं कर्तुं महीति ॥ १३ ॥ एतद्गुणसमायुक्तो नि
गुणस्स गुणस्सुतः ॥ पुत्रहीने कुतस्सौख्यमिह लोकपरत्र च ॥ १४ ॥ अहश्च मध्यरात्रे च चिन्त्यमानश्च सर्वदा ॥ शुष्य
न्ति मम गात्राणि ग्रीष्मे कुसरितो यथा ॥ १५ ॥ अनसूयो वाच ॥ यत्त्वया सूचितं विप्र तत्सर्वं शोचयाम्यहम् ॥ तवोद्दिग
करं कार्यं तन्मे दहत्येति चेत्तसि ॥ १६ ॥ ये च पुत्रा भविष्यन्ति दीर्घायुर्गुणसंयुताः ॥ तत्कार्यं च समीक्ष्येहं येन तुष्टः प्रजाप
तिः ॥ १७ ॥ अत्रिरुवाच ॥ तपस्तप्तं मया भद्रे जन्म प्रभृति दुष्करम् ॥ व्रतोपवासैर्नियमैश्शकाकारेण सुन्दरि ॥ १८ ॥
क्षीणन्देहन्तु पश्यामि अशक्तोऽहं शुभानने ॥ स्थातुं शोचामि चात्मानं रहस्यं कथितं मया ॥ १९ ॥ अनसूयो वाच ॥ भर्तः
पतिव्रतानारी पतिपुत्रविवर्द्धिनी ॥ त्रिवर्गसाधनासाच सेव्या सा विपुलेजने ॥ २० ॥ जपस्तपस्तीर्थयात्रा पुत्रेज्याम

को धन्यदा देनेवाला काम मेरे चित्तको जलाता है ॥ १६ ॥ जिससे बड़ी उमरवाले व गुणों से संयुक्त पुत्र होवेंगे उस काम को हम करेंगी जिससे प्रजापति प्रसन्न होवेंगे ॥ १७ ॥ तब अत्रि बोले कि हे भद्रे ! हे सुन्दरि ! व्रत, उपास, नियम और शाक के भोजनसे मैंने जन्म से दुष्कर तप किया है ॥ १८ ॥ अब अपनी देहको मैं क्षीण देखता हूं इससे हे शुभानने ! मैं असक्त हूं अब अपने को खड़े होने में मुझको शोच विचार है क्योंकि मैंने गुप्त बात तुमसे कहदी है ॥ १९ ॥ तब अनसूया बोली कि हे भर्तः ! पतिव्रता जो स्त्री है वह पति और पुत्रोंकी बढ़ानेवाली होती है और धर्म, अर्थ और कामकी सिद्धिकी करनेवाली है इससे वह सबको पालन करने

लायक है ॥ २० ॥ जप, तप, तीर्थयात्रा और पुत्रेष्टि को गुरुलोग पुत्रका साधन कहते हैं वड़े लोगोंका कहना ठीक है ॥ २१ ॥ ऐसे दुःखमें मैं आप से आज्ञा पाऊँ तो दुष्कर तप को मैं करूँगी पुत्रकी चाहनेवाली बहुत दिनों के वास्ते अभी मैं विष्णुकी शरण जाती हूँ ॥ २२ ॥ तब अत्रि बोले कि हे महाप्राज्ञे ! मेरे भन्ताप की करनेवाली बाह २ हे भद्रे ! मेरी आज्ञाको पाओहुये तुम पुत्रके वास्ते तप करो ॥ २३ ॥ देवता, मनुष्य और पितरों से मुझको उन्नतण करो क्योंकि स्त्री के बराबर तीनों लोकों में हितकारी नहीं है ॥ २४ ॥ स्त्री के बिना सुखकी देवता तारीफ नहीं करते हैं क्योंकि पति के सम्मुख होने पर आपभी सम्मुख है और उसके विमुख

न्त्रसाधनम् ॥ वदन्तिगुरवस्सर्वे यथोक्तगुरुभाषितम् ॥ २१ ॥ अनुज्ञाताचतुःखेहं तपस्तप्स्यामिदुष्करम् ॥ पुत्रार्थी
नीबहुदिनान्यहंयामिसुरोत्तमम् ॥ २२ ॥ अत्रिरुवाच ॥ साधुसाधुमहाप्राज्ञे ममसन्तोषकारिणि ॥ अनुज्ञातामयाभद्रे पु
त्रार्थतपश्चाचर ॥ २३ ॥ देवानांचमनुष्याणां पितृणामनुणं कुरु ॥ नभार्यासदृशोवन्धुस्त्रिषुलोकेषुविद्यते ॥ २४ ॥ न
हिदेवाः प्रशंसन्ति भार्ययारहितं सुखम् ॥ सम्मुखेसम्मुखायाति विलोमेचपराब्जुखी ॥ २५ ॥ तेनभार्याप्रशंसन्ति स
देवासुरमानुषाः ॥ महाव्रतेमहाप्राज्ञे सत्यरूपेशुभेक्षणे ॥ २६ ॥ तपश्चरस्वश्रीध्रंत्वं पुत्रार्थंचममाज्ञया ॥ एतद्वाक्या
वसानेसा साष्टाङ्गप्रणताब्रवीत् ॥ २७ ॥ त्वत्प्रसादेनविप्रेन्द्रसर्वमेतदवाप्नुयाम् ॥ हंसलीलागतिर्यान्ती लोलाजीवरव
र्णिनी ॥ २८ ॥ विषमस्थानसूयातु प्राप्तमौनमर्मदानदीम् ॥ सोमनाथेनतत्तुल्यं नात्रकार्याविचारणा ॥ २९ ॥ येस्म
रन्तिदिवारात्रौ योजनानांशतैरपि ॥ मुच्यन्तेसर्वपापेभ्योरुद्रलोकेवसन्तिते ॥ ३० ॥ नर्मदायास्समीपेतु दैतदेवचयो
होने में आपभी विमुख है ॥ २५ ॥ इसीसे देवता, असुर और मनुष्य सब स्त्री की बड़ाई करते हैं इससे हे महाव्रते ! हे रात्ररूपे ! हे शुभेक्षणे ॥ २६ ॥
मेरी आज्ञासे पुत्र के वास्ते तुम जल्दी तप करो इतनी बात के समाप्त होने पर साष्टांग प्रणामकर अनसूया बोली ॥ २७ ॥ कि हे विप्रेन्द्र ! तुम्हारे प्रसादसे यह सब
मैं पाऊँगी इतना कह हंसकीसी चालवाली व चपलनेत्रोंवाली व उत्तम वर्णवाली ॥ २८ ॥ सङ्कटमें पड़ी हुई अनसूया नर्मदा नदी को प्राप्तहुई वह स्थान सोमनाथ
के बराबर है इसमें कुछ विचार नहीं करना चाहिये ॥ २९ ॥ दिन व रात में सौ योजन से भी जो इस स्थानका स्मरण करते हैं वे सब पापोंसे छूटजाते हैं व रुद्र-

लोक में रहते हैं ॥ ३० ॥ नर्मदा के समीप में दो योजनकी दो तरहँटी हैं वहाँ तप करने को नर्मदा में अनसूया ने प्रवेश किया ॥ ३१ ॥ जिसके दर्शनही से पापोंका समूह नष्ट होजाताहै तदनन्तर नर्मदा के उत्तरवाले तट पर पत्तों के भोजन करनेवाली पवित्र ॥ ३२ ॥ व शाकके आहारसे नियमों में लगी हुई बड़ नेत्रोंवाली सुन्दरी अनसूया उत्तम स्तोत्रों से देवताओं की स्तुति करती हुई ॥ ३३ ॥ महादेवी अनसूयाने ग्रीष्ममें पञ्चाग्नि का सेवन किया और वर्षा में भीगे कपड़े पहने हुये चान्द्रायण व्रत को करती हुई ॥ ३४ ॥ फिर हेमन्त के आने पर जलमें बास करती हुई प्रातःकाल व सायंकाल में स्नान व देवता आदिकों का तर्पण करती हुई ॥ ३५ ॥

जने ॥ प्रविशन्तीतपस्तत्र रेवायांवरवीणिनी ॥ ३१ ॥ यस्यादर्शनमात्रेण नश्यतेपापसंचयम् ॥ ततस्तस्योत्तरेतीरे परेप
र्णाशनाशुभा ॥ ३२ ॥ नियमस्थाविशालाक्षी शाकाहारेणसुन्दरी ॥ स्तुवन्तीतुततोदेवाञ्छुमस्तोत्रैश्चसंयता ॥
३३ ॥ ग्रीष्मेषुचमहादेवी पञ्चाग्निंसाधयेत्ततः ॥ वर्षाकालेसार्द्रवासाचरचान्द्रायणंव्रतम् ॥ ३४ ॥ हेमन्तेचततःप्रा
से तोयवासाभवत्ततः ॥ प्रातस्स्नानंततस्सान्ध्यं कुर्याद्दिव्यादितर्पणम् ॥ ३५ ॥ देवानामर्चनंकृत्वा होमंकृत्वायथा
विधि ॥ एवंवर्षशतेप्राप्ते विष्णुरुद्रपितामहाः ॥ ३६ ॥ सम्प्राप्ताद्विजल्पेण एरण्ड्यास्सङ्गममप्रति ॥ संस्थिताअग्रत
स्तस्या वेदमभ्युच्चरन्ति ॥ ३७ ॥ अनसूयाजपंत्यक्त्वा निरीचन्तीसुहृमुहुः ॥ उत्थितामाविशालाक्षी अर्धदत्त्वाय
थाविधि ॥ ३८ ॥ अद्यमेसफलंजन्म अद्यमेसफलंतपः ॥ दर्शनेनतुविप्राणां सर्वपापैःप्रसुच्यते ॥ ३९ ॥ प्रदक्षिणंत
तःकृत्वा साष्टाङ्गंप्रणताब्रवीत् ॥ कन्दमूलफलैर्दिव्यैरद्याहंतर्पयामिवः ॥ ४० ॥ विप्राउचुः ॥ तपसातुविचित्रेण तव

देवताओं का पूजन व विधान से होम करती हुई इस प्रकार सौ वर्ष होजानेपर विष्णु, महादेव और ब्रह्मा ॥ ३६ ॥ ब्राह्मणके रूप से एरण्डी के सङ्गम में प्राप्त होते हुये और अनसूया के आगे खड़े होकर वे सब वेदका उच्चारण करने लगे ॥ ३७ ॥ जपको छोड़ बार २ देखती हुई बड़े नेत्रोंवाली अनसूया विधि में अर्घ दे कर उठीं और बोली ॥ ३८ ॥ कि आज मेरा जन्म सफल होगया और आज मेरा तप सफल होगया क्योंकि ब्राह्मणों के दर्शन से सब पापोंमें छूटजाता है ॥ ३९ ॥ फिर प्रदक्षिणा व साष्टाङ्ग प्रणामकर बोलीं कि आज हम दिव्य कन्द, मूल और फलों से आप लोगों को तृप्त करेगी ॥ ४० ॥ तब ब्राह्मण बोले कि हे सुवने !

तुम्हारे विचित्र तप से व तुम्हारे रात्य से हम लोग सब मनोरथों से तृप्त हैं और तपस्विनी जो आपहो तिनके दर्शन से अधिक तृप्त है ॥ ४१ ॥ हम लोगों को आश्चर्य हुआ है कि तुम किसवारते तप कारती हो क्या स्वर्ग और मोक्षकी रक्षाके वास्ते तुम्हारे तप करती हो ॥ ४२ ॥ तब अनसूया बोली कि हे ब्राह्मणो ! तपस्या से स्वर्ग सिद्ध होता है व तपस्याही से परमगति है और तपस्यासे सभी कामों को प्राप्त होता है ॥ ४३ ॥ तब ब्राह्मण बोले कि दुबली देहवाली व थोड़ी उमरवाली व बड़े नेत्रोंवाली व चिकने अङ्गोंवाली व रूपसे भरी हुई बहसकीसी चालवाली तुम क्यों अपनेको सुखा रही हो ॥ ४४ ॥ तब अनसूया बोली कि जवानी ही में तप करना चाहिये सत्येनसुव्रते ॥ तृप्तवैसर्वकामैस्तु तपस्विन्याश्च दर्शनात् ॥ ४५ ॥ अस्माकं कर्तुं तु कंजातं किमर्थं तप्यते त्वया ॥ स्वर्गं मोक्षं च त्वर्थं तपस्तप्यसि दुष्करम् ॥ ४६ ॥ अनसूयोवाच ॥ तपसा सिद्ध्यते स्वर्गस्तपसा परमगतिः ॥ तपसा चैव भो विप्रा र्सर्वकाममवाप्नुयात् ॥ ४७ ॥ ब्राह्मणा ऊचुः ॥ तन्वीक्ष्यामविशालाचीं स्निग्धाङ्गीं रूपमंयुता ॥ हंसलीलागतिस्त्वं हि किञ्चात्मानं विशोषसि ॥ ४८ ॥ अनसूयोवाच ॥ युवत्वे च तपःकार्यं युवत्वे परमगतिः ॥ युवत्वे च मृतोत्पत्तिर्वृद्ध त्वे सर्वमाप्रियम् ॥ ४९ ॥ विप्रा ऊचुः ॥ साधुसाधु महाप्राज्ञे वरं प्रार्थय सुव्रते ॥ यत्त्वया चाभिलाषितं तत्सर्वं प्रददास्यहम् ॥ ५० ॥ अहं विष्णुरहं रुद्रो ह्यहं साचात्पितामहः ॥ गूढरूपधरा लोके स्वचिह्नैरुपलब्धिताः ॥ ५१ ॥ तस्यावाक्यवत्तानेतु स्वरूपं दर्शयन्ति ते ॥ स्वैस्वरूपैस्स्थिता देवाः सूर्यकोटिसमप्रभाः ॥ ५२ ॥ चतुर्भुजो वासुदेवः शङ्खचक्रगदाधरः ॥ अतसीषु षपवर्णस्तु पीतवासा जनार्दनः ॥ ५३ ॥ गरुत्मान्वाहनं यस्य श्रिया च सहितो हरिः ॥ प्रसन्नवदनः श्रीमान्निष्ठव व जवानी ही में परमगति होती है और जवानी ही में पुत्रोंकी उत्पत्ति होती है बुढ़ापे में सबही अप्रिय होजाता है ॥ ५४ ॥ तब ब्राह्मण बोले कि हे महाप्राज्ञे ! बाहर २ हे सुव्रते ! वरमागो जो तुमने अपने मनमें अभिलाष कियाहो वह सब हम देवेंगे ॥ ५५ ॥ हम तीनों ब्रह्मा, विष्णु और महादेव हैं अपने २ चिह्नों से युक्त लोक में गुप्तरूपको धरे हैं ॥ ५६ ॥ अनसूया की बातके समाप्त होने पर उन्होंने अपने २ रूपोंको दिखाया करोड़ों सूर्यों के समान तेजवाले तीनों देवता अपने २ रूपों से खड़े होगये ॥ ५७ ॥ चारभुजावाले व शंख, चक्र और गदा को धरेहुये, अलसीके फूल के समान रङ्गवाले व पीले वस्त्रवाले जनार्दन, वासुदेव ॥ ५८ ॥ गरुड़ जिन

का वाहन है और लक्ष्मी के सहित, प्रसन्नमुखवाले व शोभावाले कल्याणरूप विष्णु जी वर्त्तमान देखपड़े ॥ ५० ॥ और हे अनघ ! सफेद कपड़ेवाले व बड़े भाग्य वाले, चारमुखोंसे युक्त, हंसपर सवार, अक्षमालाका हाथमें लियेहुये ॥ ५१ ॥ लोकों के पितामह ब्रह्मा नर्मदाके तीर आतेहुये और बैलपर सवार दश भुजाओंसे सम्युक्त ॥ ५२ ॥ भस्म से धुरियाली देहवाले व पाच मुख और तीन नेत्रोंवाले व जटाओं के मुकुट से युक्त आधे चन्द्रमा को शिर पर धरे हुये ॥ ५३ ॥ ऐसे रूपको धरे हुये सर्वव्यापी महादेव देखपड़े देवताओं के दर्शन के बाद वहीं एकान्त में कांपती व बार २ उनको देखरहीं अनसूया देवी हम ब्रह्मा, हम विष्णु और हम रुद्र हैं ऐसे

रूपोव्यवस्थितः ॥ ५० ॥ सितवासामहाभागश्चतुर्वदनसंयुतः ॥ हंसोपरिसमारूढो ह्यक्षमालाकरोऽनघ ॥ ५१ ॥
आगतो नर्मदातीरे ब्रह्मलोकपितामहः ॥ दृषमन्तुसमारूढो दशबाहुसमन्वितः ॥ ५२ ॥ भस्मोद्धूलितगानस्तु प
ञ्चवक्त्रस्त्रिलोचनः ॥ जटामुकुटसंयुक्तश्चन्द्रार्द्धकृतशेखरः ॥ ५३ ॥ एतद्रूपधरो देवस्सर्वव्यापी महेश्वरः ॥ अनसूयातु त
त्रैव देवानां दर्शनात्परम् ॥ ५४ ॥ वेपमानारहस्ये तु तान्पश्यन्तीमुहुर्मुहुः ॥ अहं ब्रह्मा ह्यहं विष्णु रं हरुद्रः प्रकीर्तितः ॥
५५ ॥ आनन्दिता तु सा देवी दृष्ट्वैवैतान्महाव्रत ॥ किंव्यापाराश्च केयूरं विष्णुरुद्रपितामहाः ॥ ५६ ॥
तदहं श्रोतुमिच्छामि मंप्रश्नं कथयन्तु ते ॥ ब्रह्मोवाच ॥ प्राबृट्कालो ह्यहं प्रोक्त आपश्चैव प्रकीर्तितः ॥ ५७ ॥ मेघरूपो ह्यहं
प्रोक्तो वर्षाभिवसुधातले ॥ अहं सर्वाणि भूतानि प्राक्सन्ध्या ह्युदितेरवी ॥ ५८ ॥ एतस्मात्कारणाद्भाव रहस्यं कथितं म
या ॥ विष्णुरुवाच ॥ हेमन्तत्वाच्च विहितं विष्णुरूपं चरम् ॥ ५९ ॥ पालनीयं जगत्सर्वं विष्णोर्माहात्म्यमुत्तमम् ॥ रु

कहरहे उन देवताओंको देख आनन्दित होगई हे महाव्रत ! फिर अनसूया बोलीं विष्णु, रुद्र और ब्रह्मा जो आप लोग हैं तो तुम्हारा क्या व्यापार है और तुम कौन हो ॥
५४ । ५५ । ५६ ॥ सो हम सुनाचाहती हैं इस हमारे प्रश्न को आप कहें तब ब्रह्मा बोले कि इस वर्षाकाल कहेगये हैं और जल हमीं कहेगये हैं ॥ ५७ ॥ और
मेघरूप हमीं कहेगये हैं पृथिवी पर जल हमीं बरसते हैं सब प्राणी हमीं हैं और सूर्य के उदय होने पर प्रातःकालकी सन्ध्या हमीं हैं ॥ ५८ ॥ इसी कारण से हमने
अपने होने का गुप्त वृत्तान्त कहदिया तब विष्णु बोले कि हेमन्तऋतु होने से सब चराचर जगत् विष्णुरूपही है ॥ ५९ ॥ सब जगत् पालना करने के योग्य है यही

विष्णु का उत्तम माहात्म्य है तब महादेव बोले कि सब प्राणियों के क्षयकरनेवाले ग्रीष्मऋतु हभी कहेंगे हैं ॥ ६० ॥ हे तपस्विनि ! रुद्ररूप हम सब जगत् को सुखाते हैं इस प्रकार ब्रह्मा, विष्णु और रुद्रही हे महीपते ॥ ६१ ॥ तीनों सन्ध्या, तीनों देवता, तीनों काल और तीनों आग्नियाँ हैं फिर एक रूपको प्राप्त हो रहे ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र बोले ॥ ६२ ॥ कि हे भद्रे ! जो तुम्हारे मन में हो उस वरको हम तुम्हें देवों के तब अनसूया बोली कि दुनिया में लोग मुझे बाँझ कहते हैं ॥ ६३ ॥ सो जो ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र अपनी प्रसन्नता से सुसुख हैं अर्थात् बड़े तेजवाले भी तीनों देवता मुझपर प्रसन्न हैं ॥ ६४ ॥ और इस तीर्थ में मेरे समीप आवे है तो इस समय में मुझ द्रउवाच ॥ ग्रीष्मकालोत्थं प्रोक्तं सर्वभूतक्षयङ्करः ॥ ६० ॥ शोषयाभिजगत्सर्वं रुद्ररूपस्तपस्विनि ॥ एवं ब्रह्मा च विष्णुश्च रुद्रश्चैव महीपते ॥ ६१ ॥ तिस्रः सन्ध्यास्त्रयो देवास्त्रयः कालास्त्रयोऽग्नयः ॥ तथा ब्रह्मा च विष्णुश्च रुद्रश्चैकत्वमागताः ॥ ६२ ॥ वरंददामि ते भद्रे यत्ते मनसि वर्तते ॥ अनसूयो वाच ॥ वन्द्या लोके रहं लोके ख्याप्यमाना च सर्वदा ॥ ६३ ॥ ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च प्रसादात्सुमुखायतः ॥ परितुष्टास्त्रयो देवा दुर्द्धर्षाऽपि ममोपरि ॥ ६४ ॥ अस्मिंस्तीर्थे तु सान्निध्यं वरंददतु मेऽधुना ॥ देवा ऊचुः ॥ एवं भवतु ते वाक्यं यत्त्वया प्रार्थितं शुभे ॥ ६५ ॥ प्रत्यक्षा वैष्णवी माया एरण्डी चैव नामतः ॥ अ नसूयो वाच ॥ यदि तुष्टास्त्रयो देवा मम भक्तिप्रबोधिताः ॥ ६६ ॥ मम पुत्रा भवन्त्वत्र हरिरुद्रापितामहाः ॥ विष्णुस्त्वा च ॥ अथ दाः पुत्रतां यान्ति न कदाचिच्छ्रुतं मया ॥ ६७ ॥ भद्रं ददामि तान् पुत्रान् देवतुल्य पराक्रमान् ॥ पितृतुल्यगुणोपेतान् सो मया जिवद्भुतान् ॥ ६८ ॥ अनसूयो वाच ॥ इप्सितं तु प्रदातव्यं यन्मया प्रार्थितं हरि ॥ नान्यथा तच्च कर्तव्यं निवसन्तु को वरदेव तब देवता बोले कि हे शुभे ! ऐसा ही तुम्हारा वचन सत्य होवे जो तुमने प्रार्थना की है वह सब होगी ॥ ६५ ॥ एरण्डी जिसका नाम है ऐसी यह विष्णुकी माया प्रत्यक्ष है तब अनसूया बोली कि हमारी भक्ति में जगे हुये जो तीनों देवता मुझपर प्रसन्न होवें ॥ ६६ ॥ तो विष्णु, रुद्र और ब्रह्मा मेरे पुत्र होवें तब विष्णु बोले कि वर के देनेवाले पुत्र होते हैं ऐसा हमने कभी नहीं सुना है ॥ ६७ ॥ हे भद्रे ! हम ऐसे पुत्र तुमको देवों के जो देवताओं के तुल्य पराक्रमवाले व पिता के तुल्य गुणोंवाले व सोमयज्ञ के करनेवाले व बहुश्रुत होवें ॥ ६८ ॥ तब अनसूया बोली कि हे हरि ! जो मेरे मन में है व जो मैंने माँगा है वह देना चाहिये उससे उलटा नहीं

करना चाहिये आप लोग मेरे उदर में वास करें ॥ ६६ ॥ तब भगवान् बोले कि हे शोभने ! आगे भृगुके संवाद में मुझको गर्भवासके वास्ते कहागया था उसका पार हम नहीं देखते हैं ॥ ७० ॥ बलिक आगे के वृत्तान्त को सुधकरहे हम बार २ चिन्ता किया करते हैं ऐसेही विचार करहे ब्रह्मा और महादेव ने भी कहा ॥ ७१ ॥ कि हे सुशोभने ! बिना योनि से पैदाहुये हम तुम्हारे पुत्र होवेगे क्योंकि हे वरानने ! देवतालोग योनिवास को नहीं प्राप्त होते हैं ॥ ७२ ॥ इतना कह अनसूया के सहित प्रत्यक्ष हुये वे तीनों देवता चलेगये हे पार्थ ! नर्मदाके उत्तरवाले तटपर यह वृत्तान्त हुआ ॥ ७३ ॥ वरको पाये हुई अनसूया अपने पति के तीर माहेन्द्र पर्वत पर

ममोदरे ॥ ६९ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ पूर्वन्तुभृगुसंवादे गर्भवासउपाजितः ॥ तस्याहंचैवपारन्तु नचपश्यामिशोभने॥

७० ॥ स्मरमाणःपुरावृत्तं चिन्तयामिपुनःपुनः ॥ एवंसञ्चिन्त्यमानौहि पितामहमेहश्वरौ ॥ ७१ ॥ अयोनिजाभवि

ष्यामस्तवपुत्रास्सुशोभने ॥ योनिवासञ्चैवैवा नैवयान्तिवरानने ॥ ७२ ॥ इत्युक्त्वाचतयासार्द्धं प्रत्यक्षास्तेभवस्त

दा ॥ त्रयोदेवागताःपार्थ नर्मदायोत्तरेतटे ॥ ७३ ॥ प्राप्तावरन्तुसादेवी प्रियमाहेन्द्रपर्वते ॥ क्षीणदेहाचसानारी शुष्क

देहामुदारुणा ॥ ७४ ॥ कृतयज्ञोपवीतासा तपोनिष्ठाशुभेक्षणा ॥ शिलातलेनिषण्णसापश्यत्कान्तंमहाव्रतम् ॥ ७५ ॥

हृष्टातुष्टामहादेवी तिष्ठकान्तोतिचाब्रवीत् ॥ तान्दृष्ट्वासमुनिर्द्धामान्पुनःकान्तामुवाचह ॥ ७६ ॥ अत्रिरुवाच ॥ साधु

साधुमहाप्राज्ञे अनसूयेमहाव्रते ॥ असाध्यंसर्वनारीणां वरंप्राप्तांसिदुर्लभम् ॥ ७७ ॥ अनसूयोवाच ॥ त्वत्प्रसादान्मह

र्षेहं वरंप्राप्ताचदुर्लभम् ॥ तेनाहंतेप्रयच्छामि पुत्रानृषितपोधनान् ॥ ७८ ॥ एवमुक्त्वाततोदेवी हर्षेणमहतायुता ॥ आ

चलीगई दुबली, सूखी व खरखरी देहवाली व यज्ञोपवीत को पहने हुये तपकरनेवाली व अच्छे नेत्रोंवाली वे अनसूया शिलापर बैठी हुई बड़े व्रतवाले अपने पति को देखती हुई ॥ ७४ ॥ और बड़ी प्रसन्न व सन्तुष्ट अनसूया देवी हे कान्त ! खड़ेहो ऐसे कहती हुई उनको देख बड़े बुद्धिमान् अत्रिमुनि अपनी स्त्री से बोले ॥ ७६ ॥ अत्रि बोले कि हे महाप्राज्ञे ! हे महाव्रते ! हे अनसूये ! वाह २ सब स्त्रियों को असाध्य व दुर्लभ वरको तुमने पाया है ॥ ७७ ॥ तब अनसूया बोली कि हे महर्षे ! आपके प्रसादसे दुर्लभ वरको मैंने पाया है उससे ऋषि व तपस्याके करनेवाले पुत्रोंको हम तुमको देवेंगी ॥ ७८ ॥ ऐसे कह बड़े आनन्दसे युक्त व मङ्गलरूप अनसूयाने तब

अपने पतिको देखा ॥ ७६ ॥ देखतेही अत्रि के माथे पर एक शुभ मण्डल पैदा होगया जोकि नव हजार योजन तक प्रकाश करनेवाली किरणों के जालसे युक्त ॥ ८० ॥ व कदम्ब के गोलार्धके समान आकारवाला है उससे तिगुना उसका परिमण्डल होता हुआ उसके बीच में दिव्यरूपको धरेहुये देवताओं का स्वामी व सोने का सा रंगवाला व करोड़ों सूर्यों के समान प्रकाशवाला पुरुष देखपडा वे साक्षात् ब्रह्माही अनसूया के पहले पुत्र होतेहुये ॥ ८१ ॥ ८२ ॥ हे नृपात्मज ! चन्द्रमा व सोम नाम से प्रसिद्ध सोलह कलाओं से युक्त व सबसे श्रेष्ठ प्यारा पुत्र होताहुआ ॥ ८३ ॥ परेवा, दुइज, तीज, चौथि, पञ्चमी, छठ, सप्तमी तथा अष्टमी ॥ ८४ ॥ नवमी,

लोकयत्तदाकान्तं तेनापिशुभदर्शना ॥ ७९ ॥ दर्शनादेवसञ्जातं ललाटेमण्डलं शुभम् ॥ नवयोजनसाहस्ररश्मि जालसमावृतम् ॥ ८० ॥ कदम्बगोलकाकारं त्रिगुणपरिमण्डलम् ॥ तस्यमध्येतुदेवेशः पुरुषोदिव्यरूपधृक् ॥ ८१ ॥ हेमवर्णस्सवैदेवस्सूर्यकोटिसमप्रभः ॥ पूर्वपुत्रोऽनसूयायास्साक्षाद्देवः पितामहः ॥ ८२ ॥ चन्द्रमाहतिविख्यातः सोमः पुत्रो नृपात्मज ॥ इष्टः पुत्रो वरीयांस्तु कलाषोडशसंयुतः ॥ ८३ ॥ प्रतिपच्चद्वितीया च तृतीया चतुर्थानृप ॥ चतुर्थोपञ्चमीषष्ठी सप्तमीचाष्टमीतथा ॥ ८४ ॥ नवमीदशमिचैव तथाचैकादशीपरा ॥ द्वादशीचित्रयोदशी चतुर्दशीततः परम् ॥ ८५ ॥ ततः पञ्चदशीदेवी पूर्णमासी प्रकीर्तिता ॥ अमावास्यातु विख्याता अथ साषोडशीकला ॥ ८६ ॥ चतुर्विधस्य लोकस्य सूक्ष्मो भूत्वा वरानने ॥ आप्यायते जगत्सर्वं सोमोऽयं स चराचरम् ॥ ८७ ॥ सुरासुराश्च गन्धर्वा रक्षसाः पन्नगस्तथा ॥ पिशाचाश्च तथा दित्याः पितरश्च पितामहाः ॥ ८८ ॥ सर्वे तमुपजीवन्ति हतं द्रव्यं तु तस्मिन् स्थिता ॥ वनस्पतिगते सोमे यदिच्छन्त्या च वनस्पतिम् ॥ ८९ ॥ बुद्धेः केतुः खंचैव मूढो दहत्यब्दं कृतं शुभम् ॥ वनस्पतिगते सोमे यो भवेद्दन्तदशमी, एकादशी, द्वादशी, तेरस, चौदस ॥ ८५ ॥ तदनन्तर पदहवीं पूर्णमासी कहीगई है और सोलहवीं कला अमावस है ॥ ८६ ॥ हे वरानने ! यह चन्द्रमा सूक्ष्म होकर चार प्रकार के जीवोंवाले सम्पूर्ण चराचर जगत् को बढाता है ॥ ८७ ॥ देवता, दैत्य, गन्धर्व, राक्षस, सर्प, पिशाच, आदित्य, पितर और पितामह ॥ ८८ ॥ ये सब इसी से जीते हैं और होमीहुई चीज चन्द्रमाही में रहती है चन्द्रमा को वनस्पति में प्राप्तहुये पर जो वनस्पति को काटता है ॥ ८९ ॥ वह मूढ़ अपने सालभर के किये

हुये पुण्यको जलाता है और दुःख भोगता है व चन्द्रमाको वनरपति में प्राप्तहुये पर जो दत्तन करता है ॥ ६० ॥ उसने मानो चन्द्रमाको खाडाला और अपने पितरों के वंशको नाश करदिया और हे राजेन्द्र ! अमावस के दिन जो विधि से स्नान करता है ॥ ६१ ॥ तो हे विशालाक्षि ! उसके पितरोंकी सालभर तक परमगति रहती है सोना, चादी और कपड़ेको जो ब्राह्मणोंको देता है ॥ ६२ ॥ तो हे राजन् ! वह सब लाख गुनेको पाता है इसमें संशय नहीं है ऐसे गुणोंसे युक्त चन्द्रमारूप ब्रह्मा होते हुये ॥ ६३ ॥ अनसूया का आनन्द देनेवाला प्रथम पुत्र यह हुआ अब हे महाभाग ! दूसरा दुर्वासा नामका पुत्र ॥ ६४ ॥ सृष्टिके संहार करनेवाले स्वयं साक्षात् महा-

धावनम् ॥ ९० ॥ चन्द्रमाभक्षितस्तेन पितृवंशस्तुघातितः ॥ अमावास्यान्तुराजेन्द्र स्नानंकुर्याद्यथाविधि ॥ ९१ ॥

अवदमेकं विशालाक्षि पितृणां परमागतिः ॥ हिरण्यं रजतं वस्त्रं यो ददाति द्विजातिषु ॥ ९२ ॥ सर्वलक्ष्णं राजल्लभते नात्र संशयः ॥ एतद्गुणविशिष्टोऽसौ सोमरूपः प्रजापतिः ॥ ९३ ॥ सञ्जातः प्रथमः पुत्रोऽनसूयायास्तु नन्दनः ॥ द्वितीयस्तु महाभाग दुर्वासानामनामतः ॥ ९४ ॥ सृष्टिसंहारकर्ता च स्वयं साक्षान्महेश्वरः ॥ इन्द्रोऽपि शापितस्तेन द्वितीये नवरानने ॥ ९५ ॥ द्वितीयस्य तु पुत्रस्य सम्भवः कथितो मया ॥ दत्तान्नैयस्तु नाम्ना चैव तृतीयो मधुसूदनः ॥ ९६ ॥ जगद्वापी जगन्नाथस्स्वयन्देवो जनार्दनः ॥ अवतीर्णो महाभाग ब्रह्मशम्भु समन्वितः ॥ ९७ ॥ पुत्रप्राप्तिपदं तीर्थं नर्मदायां चरेत्तटे ॥ अनसूयाकृतं पार्थ सर्वपापक्षयकरम् ॥ ९८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे रेवाखण्डे एरण्डीतीर्थमहिमानुवर्णनो नाम त्रयोदशोऽधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११३ ॥

देवजी आपही होतेहुये उन द्वितीय पुत्र दुर्वासाजी ने इन्द्रको भी शाप दिया है ॥ ९५ ॥ दूसरे पुत्रकी उत्पत्ति मैंने कही तीसरे पुत्र दत्तात्रेय नाम से विष्णु होतेहुये ॥ ९६ ॥ जगत् के व्यापी व जगत् के नाथ स्वयं साक्षात् विष्णु भगवान् ब्रह्मा और महादेव समेत अवतार लेतेहुये हे महाभाग ! ॥ ९७ ॥ नर्मदा के उत्तरवाले तटपर पुत्रप्राप्तिपद नामका तीर्थ है हे पार्थ ! अनसूया का बनाया हुआ वह सब पापोंका क्षय करनेवाला है ॥ ९८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे रेवाखण्डे त्रयोदशोऽधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११३ ॥

मार्कण्डेयजी बोले कि हे पार्थ ! इसके बाद तीनों लोकों में प्रसिद्ध व सब पापोंका क्षय करनेवाला उत्तम सौवर्ण तीर्थ है ॥ १ ॥ उस सङ्गमके समीप नर्मदा मे स्नान दुर्लभ है और हे नराधिप ! उस पुण्यक्षेत्र में वह स्थान हाथ भर का है ॥ २ ॥ उस सुवर्णशिलक में स्नानकर बड़ी अच्छी शान्ति को प्राप्त होता है सूर्य की मूर्तिको बनाकर ॥ ३ ॥ वी मिले बेल व बहुत बेलपत्रों से अग्निमें हवनकरे और यह कहे कि जगतके नाथ इससे प्रसन्न होवे और मेरा रोग हमेशाको जाता रहे ॥ ४ ॥ अगर ब्राह्मणों से उसका जवाब देदिया जावे तो यज्ञके फलको पावे और वहाँ के दानसे मरकर प्रसन्नचित्त स्वर्ग को पाता है ॥ ५ ॥ और हे नृदेव ! उपास

मार्कण्डेयउवाच ॥ एतस्यानन्तरपार्थ सौवर्णतीर्थमुत्तमम् ॥ विख्यातं त्रिपुलोकैषु सर्वपापक्षयङ्करम् ॥ १ ॥ रेवा यां दुर्लभं स्नानं सङ्गमस्य समीपतः ॥ विभक्तं हस्तमानञ्च पुण्यक्षेत्रे नराधिप ॥ २ ॥ सुवर्णशिलके स्नात्वा शान्तियान्ति परां शुभाम् ॥ निर्मिता भास्करन्देवं होतव्यन्तु हुताशने ॥ ३ ॥ विल्वेन घृतमिश्रेण विल्वपत्रैश्च भूरिणा ॥ प्रीयतां हि जगन्नाथो व्याधिर्नश्यतु मे सदा ॥ ४ ॥ द्विजैश्च प्रयुक्तं स्याद्यागस्य फलमाप्नुयात् ॥ तत्र दानेन प्रीतात्मा मृतः स्वर्गमवाप्नुयात् ॥ ५ ॥ शुक्लपक्षे तथाष्टम्यां सोपवासो जितेन्द्रियः ॥ यस्तत्र कुरुते श्राद्धं नृदेव भक्तितो नरः ॥ ६ ॥ समुद्धरेत्कुले तत्र दशपूर्वान्दशापरान् ॥ काञ्चनवापियो दद्याद्धनुंच वसुशोभनाम् ॥ ७ ॥ सयाति परमं स्थानं यत्र देवो महेश्वरः ॥ पूजयित्वा शिवं तत्र शत्रूणां विजयो भवेत् ॥ ८ ॥ पुत्रवान्गुणवांश्चैव सर्वव्याधिविवर्जितः ॥ इत्येवं कथितं राजन्सौवर्णतीर्थमुत्तमम् ॥ ९ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ एतस्मिन्नन्तरे तीर्थं करण्डेश्वरमुत्तमम् ॥ प्रख्यातं सर्वलोकेषु नर्मदाया

क्रिये व इन्द्रियो को जीतेहुये जो मनुष्य उजियाले पाखकी अष्टमी को वहाँ भक्ति से श्राद्ध करता है ॥ ६ ॥ वह वहीं अपने कुलके आगे पीछेवाले दश २ पुरुषों को उद्धार करता है और जो सोना व अच्छी गऊको देता है ॥ ७ ॥ वह अति उत्तम स्थानको जाता है जहाँ महादेवजी हैं वहाँ महादेवका पूजन करके शत्रुओं का विजय होता है ॥ ८ ॥ और सब रोगों से रहित, पुत्र व गुणोंवाला होता है हे राजन् ! यह उत्तम सौवर्ण तीर्थ कहागया है ॥ ९ ॥ मार्कण्डेय जी बोले कि इसी बीच मे सब

लोकों में प्रसिद्ध नर्मदाके उत्तरवाले तटपर उत्तम करण्डेश्वर तीर्थ है ॥ १० ॥ जोकि सब पापों व सब दुःखोंका हरनेवाला व श्रेष्ठ कहागयाहै हे राजेन्द्र ! तदनन्तर मनूयों के पापोंके नाश करनेवाले अतिउत्तम दिव्य सौभाग्यकरण नाम के तीर्थ को जावे हे नृपनन्दन ! वहा जो अभागी स्त्री व पुरुष ॥ ११ ॥ १२ ॥ स्नानकर महादेव और पार्वती का पूजन करता है उसका सौभाग्य होजाता है इन्द्रियों को जतिहुये व तीजको दिनरातका उपास कियेहुये ॥ १३ ॥ वहां अच्छे रूपवाले सपत्नीक ब्राह्मण को निमन्त्रण करे और सुगन्धित मालाओं से उसे भूषित व फूल और धूप से अधिवासित कर ॥ १४ ॥ खीर व खिचड़ी को भक्ति से खिलावे योग्यता के

चरेतटे ॥ १० ॥ सर्वपापहरंप्रोक्तं सर्वदुःखघ्नमुत्तमम् ॥ ११ ॥ सौभाग्यकरणं दिव्यं नराणांपापनाशनम् ॥ तत्रयादुर्भगानारी नरोवा नृपनन्दन ॥ १२ ॥ स्नात्वाचयेदुर्मांरुद्रं सौभाग्यंतस्यजायते ॥ तृतीयायामहोरात्रं सोपवासोजितेन्द्रियः ॥ १३ ॥ निमन्त्रयेद्विजंतत्र सपत्नीकंमुरूपिणम् ॥ गन्धमाल्यैरलंकृत्य पुष्पधूपपाधिवासितम् ॥ १४ ॥ भोजयेत्पायसान्नेन कृशरेणाथभक्तितः ॥ भोजयित्वायथान्यायं प्रदक्षिणमथाचरेत् ॥ १५ ॥ त्वन्तुदेवोमहादेवसपत्नीकोदृषध्वज ॥ यथातेदेवदेवेश नवियोगःकदाचन ॥ १६ ॥ सोमनाथाख्यकार्पण्या संध्यायामीहचिन्तयन् ॥ ज्येष्ठेऽशुक्लेतृतीयायां सौभाग्येनर्मदाजले ॥ १७ ॥ स्नात्वादत्त्वाचसुभगा नप्रियेणवियुज्यते ॥ युधिष्ठिरउवाच ॥ नदौर्भाग्यंनदारिद्र्यं नशोकोनचदुर्गतिः ॥ १८ ॥ एतत्सर्वंभवेद्येन तत्सर्वंकथयस्वमे ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ दौर्भाग्यंदुर्गतिञ्चैव दारिद्र्यंशोकवर्द्धनम् ॥ १९ ॥ वैधव्यंसप्तजन्मानि जायतेनयुधिष्ठिर ॥ कर्ममणाय

साथ भोजन करवाके फिर उनकी प्रदक्षिणा करे ॥ १५ ॥ और कहे कि हे वृषध्वज, महादेव ! आप तो सपत्नीक देवहो हे देवदेवेश ! जैसे आपका कभी वियोग नहीं होता है वैसेही मेरा भी वियोग मतहोवे ॥ १६ ॥ क्योंकि हे सोमनाथाख्य ! मैं दीनता से आपही की चिन्ता व ध्यान करताहूँ जेठ सुदी तीजको सौभाग्य तीर्थत्रिपे नर्मदाके जलमें ॥ १७ ॥ स्नान व दान कर अपने पतिसे कभी वियोगको नहीं प्राप्त होती है तब युधिष्ठिरजी बोले कि कुरूपता, दरिद्र, शोक और दुर्गति ये सब जिससे नहीं होते है वह सब मुझ से कहो तब मार्कण्डेयजी बोले कि कुरूपता, दुर्गति, दरिद्र, शोक ॥ १८ ॥ और विधवापन सातजन्मतक नहीं होताहै हे युधिष्ठिर ! जिस कर्म से

पार्ष्णीका ज्ञाय होता है उसको हम तुमसे कहते हैं ॥ २० ॥ विशेष करके जेठ मासके उजियाले पाखकी तीजको वहां जो भक्ति से स्नानकर पञ्चाग्नि तापता है ॥ २१ ॥ वह भी सब पापों से छुटजाता है इसमें संशय नहीं है और महादेव व पार्वती के समीप जो गूगुल जलाता है ॥ २२ ॥ उस कामके करने पर ब्राह्मण को केहेहुये फल होते हैं और मरने पर स्वर्गको प्राप्त होता है ऐसा शङ्कर जी ने कहा है ॥ २३ ॥ सफेद, लाल और पीले अनेक अच्छे कपड़ों से ब्राह्मणी व ब्राह्मणों को पहिनाय व अनेक प्रकारके अत्युत्तम फूल, चन्दन, धागा और धूप से यथाविधि पूजन कर व गले में सूत्र (धजोपवीत) पहिनाय उनके केंसर लगावे ॥ २४ ॥ २५ ॥

नपापानां क्षयस्तच्चवदामिते ॥ २० ॥ ज्येष्ठे मासे सिते पक्षे तृतीयायां विशेषतः ॥ तत्र स्नात्वा तु यो भक्त्या पञ्चाग्निं सा धयेत्तपः ॥ २१ ॥ सोऽपि पापैरशेषैस्तु मुच्यते नात्र संशयः ॥ गुग्गुलुं दाहयेद्यस्तु गौरीशिवसमीपतः ॥ २२ ॥ तस्मिन्कर्मणि विप्रस्य उक्तानि भवते ततः ॥ देहपाते कृते स्वर्गमित्येवं शङ्करोऽब्रवीत् ॥ २३ ॥ इवेतैरकैस्तथापि तैर्वस्त्रैश्च विविधैः शुभैः ॥ ब्राह्मणी ब्राह्मणांश्चैव पूजयित्वा यथाविधि ॥ २४ ॥ पुष्पैर्नानाविधैश्चैव गन्धधूपैः सुशोभनैः ॥ कण्ठे सूत्रं समाधाय कुङ्कुमं ॥ कर्णवेष्टन् त्वद्गन्धं च काञ्चनीमुद्रिकां तथा ॥ सप्तधान्यं तथा देयं भोजनं नृपसत्तम ॥ २७ ॥ अन्यानि चैव दानानि तस्मिन् स्थीर्थे नरोत्तम ॥ सर्वदानैश्च यत्पुण्यं तत्पुण्यं त्रिगुणं भवेत् ॥ २८ ॥ तत्र साहस्रगुणितं नात्र कार्यं विचारणा ॥ शङ्करेण समन्तत्र भुङ्क्ते भोगाननुत्तमान् ॥ २९ ॥ सौभाग्यं तस्य विपुलं जायते नात्र संशयः ॥ अपुत्रो लभते पुत्रं निर्धनो धनं

स्त्री को पार्वती और ब्राह्मण को महादेव मानकर व भलीभाति आदर करके उनके लिये जल सहित दानको त्यागकर देवे ॥ २६ ॥ फिर हे नृपसत्तम ! कुण्डल, बज्रह्मा, सोनेकी अंगूठी, सतनजा और भोजन देवे ॥ २७ ॥ हे नरोत्तम ! उस तीर्थमें और दानों को भी देवे सब दानों से जो पुण्य होता है उससे तिगुना पुण्य तीर्थ में ॥ २८ ॥ और इस तीर्थ में हजार गुना होता है, इसमें कुछ विचार नहीं करना चाहिये और वह महादेवके समान वहां अत्युत्तम भोगों को भोगता है ॥ २९ ॥ और

उसका बड़ा सौभाग्य होता है इसमें संशय नहीं है पुत्र से रहित मनुष्य पुत्रको और निर्धन धन को पाता है ॥ ३० ॥ कामनाओं का देनेवाला यह तीर्थराज नर्भदा पर वर्त्तमान है ॥ ३१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेश्वरपञ्चमस्कृतमापाऽनुवादेसौभाग्यतीर्थमहिमाऽनुवर्णनोनामचतुर्दशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११४ ॥

मार्कण्डेयजी बोले कि हे राजेन्द्र ! तदनन्तर दारिद्र के नाशकरनेवाले व इक्कीस पीढ़ियों के तारनेवाले उत्तम भाण्डारतीर्थको जावे ॥ १ ॥ वहां कुबेर ने तप किया उससे ब्रह्माजी खुश हुये वही कुबेर ने अपने धनके दान से अक्षय धनको पाया ॥ २ ॥ वहां जाकर व स्नानकर जो धनका दान करताहै उसके धनका नाश

माप्नुयात् ॥ ३० ॥ कामदंतीर्थराजन्तु नमर्मदायां न्यवस्थितम् ॥ ३१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेश्वरपञ्चमस्कृतमापाऽनुवर्णनोनामचतुर्दशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११४ ॥ * ॥ * ॥

मार्कण्डेयउवाच ॥ ततो गच्छेत्तुराजेन्द्र भाण्डारं तीर्थसुत्तमम् ॥ दारिद्र्यभेदकरणं पुरुषांश्चेकविंशतिम् ॥ १ ॥ धनदेनतपरतप्तं प्रसन्नः पद्मसम्भवः ॥ तत्रैव स्वस्वदानेन प्राप्तं वित्तमनन्तकम् ॥ २ ॥ तत्र गत्वा तु यो भक्त्या स्नानं वा वित्तं प्रयच्छति ॥ तस्य वित्तपरिच्छेदो न भवेच्च कदाचन ॥ ३ ॥ तस्यैवानन्तरं राजन्नाहिणी तीर्थसुत्तमम् ॥ विख्यातं विष्णुलोकेषु सर्वपापहरं परम् ॥ ४ ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ रोहिणी तीर्थमाहात्म्यं सर्वपापप्रणाशनम् ॥ श्रोतुं भिच्छामि तत्त्वेन तन्मेत्वं वक्तुमर्हसि ॥ ५ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ तस्मिन्नेकाण्येवोरे नष्टे स्यात्परजङ्गमे ॥ तस्यादरे शयानस्य देवदेवस्य पाण्डव ॥ ६ ॥ नाभ्यामभ्युन्महतपद्मं रविमण्डलसन्निभम् ॥ कर्णिकाकेसरयुतं पत्रैश्च समलंकृतम् ॥ ७ ॥ तत्र ब्रह्मासमुत्पन्न

कभी नहीं होता है ॥ ३ ॥ हे राजन् ! उसीके बाद फिर सब पापोंका हरनेवाला व तीनों लोकों में प्रसिद्ध उत्तम रोहिणी तीर्थ है ॥ ४ ॥ तब युधिष्ठिर बोले कि सब पापों के नाश करनेवाले रोहिणी तीर्थ के माहात्म्यको हम तत्त्व से सुना चाहते हैं उसको तुम सुझाते कहने के योग्य होतेहो ॥ ५ ॥ तब मार्कण्डेयजी बोले कि घोर एकान्त व स्थावर और जङ्गम जीवों के नाश होने पर हे पाण्डव ! उस जलमें तोतेहुये भगवान् की ॥ ६ ॥ नाभि में डब्बो और केतरो से युक्त व पत्रों से सुहावना

सूर्यमण्डलके समान उत्तम कमल पैदाहुआ ॥ ७ ॥ उसमें कमल के समान चार मुखवाले ब्रह्मा पैदाहुये और चिन्ता करतेहुये भगवान्से कहा कि मैं क्या करू तब तक ब्रह्माकी देहसे ॥ ८ ॥ हे भरताधिप ! वहीं मरीचि भगवान् होतेहुये फिर मरीचि से सब सृष्टिके वनानेवाले कश्यप हुये ॥ ९ ॥ उसी समयमें दक्षके पचास कन्या होतीहुई दक्ष ने उनमें से दश धर्मको और तेरह कश्यप को देदी ॥ १० ॥ और सत्ताईस कन्या चन्द्रमा की दी उनके बीच में चन्द्रमा कीसी मुखवाली जो रोहिणी नामकी कन्या थी ॥ ११ ॥ वह सब स्त्रियों को प्यारी और अपने पतिको विशेष प्यारी थी हे नराधिप ! फिर रोहिणी तपस्या के अर्थ निश्चय किये हुये ॥ १२ ॥ श्वतुर्वदनपङ्कजः ॥ किङ्करोमीतिदेवेशं चिन्त्यमानःस्वदेहतः ॥ ८ ॥ भगवानभवत्तत्र मरीचिर्भरताधिप ॥ मरीचिःकश्यपोजातस्सर्वसृष्टिकरमततः ॥ ९ ॥ दक्षस्यापितदाजाताः पञ्चाशत्कन्यकारुवै ॥ ददौसदशधर्माय कश्यपाय त्रयोदश ॥ १० ॥ तथैवचपराःकन्याः सप्तविंशतिभिन्दवे ॥ रोहिणीनामयातासां मध्येताराधिपानना ॥ ११ ॥ अभीष्टासर्वनारीणां भर्तुश्चापिविशेषतः ॥ ततस्सानिश्चर्यभूता तपसेमोनराधिप ॥ १२ ॥ ततस्सानन्मर्मदातीरेचचारविपुलं तपः ॥ एकराजंहरात्रञ्च षड्दवादशतथापरैः ॥ १३ ॥ पक्षमासोपवासैश्च कर्षयन्तीकलेवरम् ॥ आराधयन्तीसततं महिषासुरमर्दिनीम् ॥ १४ ॥ स्नात्वास्नात्वाजलेनित्यं नर्ममदायाःशुचिस्मिता ॥ ततरुष्टामहाभागा देवीनारायणीनृप ॥ १५ ॥ प्रसन्नातेमहाभागे ब्रतेननियमेनच ॥ ददामितेनसन्देहो वरंष्टुण्यथोप्सितम् ॥ १६ ॥ एवंश्रुत्वाबुवचनं रोहिणी शशिनःप्रिया ॥ वरं व्रजेततोदेवीसिद्धं वचनभद्रवीत् ॥ १७ ॥ सर्वासांचसपत्नीनामधिकाशशिनःप्रिया ॥ यथाभवानिह्य नर्मदा के तटमें बड़े तपका करती हुई एक रात, दो रात, छह दिन, बारह दिन, एक पाख और महीनों के उपासों से अपने शरीर को दुबला कर रही व निरन्तर दुर्गाजीका आराधन कर रही ॥ १३ ॥ १४ ॥ उस पवित्र सुसकयानवाली ने नर्मदाके जलमें नित्य नहाय २ कर नियमों को किया हे नृप ! तब बड़े भारयवाली देवी भगवती प्रसन्न हुई ॥ १५ ॥ और बोलीं कि हे महाभागे ! तुम्हारे ब्रत व नियमोंसे प्रसन्न हो रही हूँ तुमको वर देवेंगी इससे तुम अपने मनके वरको निरसं देह मांगो ॥ १६ ॥ ऐसे वचनको सुन चन्द्रमा की प्यारी रोहिणी ने वरमांगा तदनन्तर देवी से इस वचन को बोली ॥ १७ ॥ कि जैसे सब सौतियों के बीचमें 'आधिक व चन्द्रमा

की प्यारी आपके प्रसादसे हम जल्द होजावें वैसा करौ ॥ १८ ॥ तब पार्वतीसे वे रोहिणी कहीगई कि ऐसाही हो और भक्तिसे परायण देवताओंस रतुति कीगई वहीं अन्तर्द्धान होगई ॥ १९ ॥ हे नृपसत्तम ! तब से रोहिणी देवी चन्द्रमा की प्यारी व सब लोकों की प्यारी होगई ॥ २० ॥ उस तीर्थमें जो स्त्री व पुरुष भक्ति से स्नान करता है तो वह स्त्री अपने पतिको रोहिणी की तरह प्यारी होती है ॥ २१ ॥ और उस तीर्थमें जो कोई प्राणों को त्यागकरता है उसका सातजन्मों तक वियोग नहीं होताहै ॥ २२ ॥ मार्कण्डेयजी बोले कि हे राजेन्द्र ! तदनन्तर सब पापोंके क्षयकरनेवाले व सेनापुर नाम से प्रसिद्ध अत्युत्तम चक्रतीर्थको जावे ॥ २३ ॥ वहां सेना-

चिरात्प्रसादात्तथाकुरु ॥ १८ ॥ एवमारित्वतिसाप्रोक्ता भवान्याभक्तितपरैः ॥ रतूयमानासुरगणैस्तन्नेवान्तरधीय
त ॥ १९ ॥ तद्वाप्रभुतिसादेवी रोहिणीशशिनःप्रिया ॥ संजातासर्वलोकरस्य बल्लभानृपसत्तम ॥ २० ॥ तत्रतीर्थेतुया
नारी नरोच्चारनातिभक्तितः ॥ बल्लभाभवतेसातु भर्तुर्वरोहिणीयथा ॥ २१ ॥ तत्रतीर्थेषुयःकश्चित्प्राणत्यागं करोतिच ॥
सप्तजन्मनितस्यैव वियोगो नैव जायते ॥ २२ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ ततो गच्छेत्तुराजेन्द्र चक्रतीर्थमनुत्तमम् ॥ सेनापुरे
तिविख्यातं सर्वपापक्षयंकरम् ॥ २३ ॥ सेनापत्येभिषिक्तेन देवदेवेन चक्रिणा ॥ अभिषिक्तो महासेनस्स देवेन्द्रपुरेणमैः ॥
२४ ॥ दानवस्य वधार्थाय विजयायादिवौकसाम् ॥ भूमिदानेन विप्रेन्द्रांस्तर्पयित्वा यथाविधि ॥ २५ ॥ शङ्खभेरीनिना
देन पटहानाञ्च निःस्वनैः ॥ वीणाभिश्च मृदङ्गैश्च भाल्यैः कांस्यतालकैः ॥ २६ ॥ तच्छ्रुत्वा निनदंघोरं दानवो बलदर्पितः ॥
सुराणामाविधातार्थमभिषेकस्य चाग्रतः ॥ २७ ॥ हस्त्यश्वस्य पत्न्याद्यैः परिपूर्णैरवाकुलैः ॥ २८ ॥ ततस्तु तारोद्भवस्य

पति होने के वारते अभिषेक को प्राप्त हुये देवताओं के देवता विष्णुजी ने इन्द्र आदि देवताओं के सहित स्वामिकारिकेय का अभिषेक किया है ॥ २४ ॥ तारकासुर
दानव के मारने के वारते व देवताओं के विजयके वारते पृथिवी के दानसे ब्राह्मणों को विधिपूर्वक तृप्तकर ॥ २५ ॥ शङ्ख, भेरी, पटह, वीणा, मृदङ्ग, भालरी, भाल्य,
और तालियों को बजाया ॥ २६ ॥ अपने बलसे अभिमान को प्राप्त दानव उस घोर बाजोंके शब्दको सुनकर देवों के नाश करनेके वारते अभिषेकके आगे ॥ २७ ॥

राजदोसे भरेहुये हार्थ, घोड़े, रथ और पैदल आदि से संयुक्त आताहुआ ॥ २८ ॥ तदनन्तर उस भयानक सेनाको महारमा विष्णुर्जा ने शार्ङ्गधनुष से छूटेहुये अति
पैने बाणों से हार्थ, घोड़े और रथोको विध्वंसकर चक्रको छोड़ा ॥ २९ ॥ स्वामिकात्तिकेय जी चारों तरफ व्याप्त भयानक चक्रको देख वहा का रहना छोड़ बड़े
तपको करतेहुये ॥ ३० ॥ लोकोके धारण करनेवाले विष्णु ने दैत्योंके नाशके वास्ते चक्रको छोड़ा उसने विह्वल सेनाको जलाया और आप निर्मल जलमें गिरपड़ा ॥
३१ ॥ नर्मदा के प्रभाव से वह चक्र पापरहित होगया वर्षाञ्जल के उजियाले पाखकी द्वादशी को हे भारत ! ॥ ३२ ॥ क्रोधको जोतेहुये विष्णुजी के प्यारे चक्रतीर्थ
वाहिनी शारस्वशाङ्गोत्तिभक्तकैस्सुतीक्ष्णैः ॥ विध्वंस्यहरस्य दवरथान्महारमा चक्रंविमुक्तंमधुघातिनाच ॥ २९ ॥ दृष्ट्वा
तुभीषणंचक्रमभिन्नासंषट्पाननः ॥ त्यक्त्वातत्राप्यवस्थानंचकारविपुलंतपः ॥ ३० ॥ चक्रंमुक्तंविनाशाय हरिणालोक
धारिणा ॥ विह्वलादाहयामास पपातिवमलेजले ॥ ३१ ॥ निष्पापंतत्त्वसंजातं नर्मदायाःप्रभावतः ॥ प्रावृट्कालेशुभे
पर्वे द्वादश्यांचैवभारत ॥ ३२ ॥ यश्चयातिजितक्रोधश्चक्रतीर्थहरिप्रियम् ॥ सोऽपिपापैःप्रमुच्येत यमंघोरंनपश्यति ॥
३३ ॥ राज्ञोजागरणंहुत्वा दीपदेवस्यदापयेत् ॥ कथाञ्चवैष्णवीतत्र देवदेवंसमाहितः ॥ ३४ ॥ भीमव्रतंचपाराकं कृ
च्छ्रंचान्द्रायणंतथा ॥ व्रतंसान्तपनंदेवत्रिरात्रव्रतकंभृशम् ॥ ३५ ॥ तरेहैतरणीमन्तेभीमंचक्रमहर्निशम् ॥ कूटशा
लमल्लिहृत्तांश्चक्रदांचिन्नैवपश्यति ॥ ३६ ॥ एतत्तेकथितंसर्वंचक्रतीर्थस्ययत्फलम् ॥ ३७ ॥ इति श्रीमकन्दपुराणरेवाय
एते चक्रतीर्थमहिमावुवर्णनोनामपञ्चदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११५ ॥

को जो जाताहै वह भी पापोंसे छूटजाता और घोर यमराजको नहीं देखताहै ॥ ३३ ॥ रातको जागरण कर विष्णु को दीपदान करे और सावधान होकर वही विष्णु को
स्मरण करताहुआ विष्णु की कथा को सुने ॥ ३४ ॥ और भयानक व्रत पाराक, कृच्छ्र, चान्द्रायण, सान्तपन और देवत्रिरात्रव्रत को अत्यन्त करे ॥ ३५ ॥ तो अन्त
में वैतरणी को तरजाता है और दिन रात घूम रहे भयानक चक्र, कूट और यमलोकके शालमली वृक्ष को कर्मा नहीं देखता है ॥ ३६ ॥ यह जो चक्रतीर्थका फल है
सो सश्रु तुम से कहगया ॥ ३७ ॥ इति श्रीमकन्दपुराणरेवायएतेचक्रतीर्थमहिमाऽनुवर्णनोनामपञ्चदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११५ ॥

मार्कण्डेयजी बोले कि तदनन्तर पूर्वकाल में विष्णु के वनायेहुये चक्रतीर्थ के समीप में महापार्षो के नाश करनेवाले धूमपात नाम के तीर्थ को जावे ॥ १ ॥ किसी समय में तीनों लोकों को पवित्र करनेवाली इस श्रेष्ठ देवी नर्मदा को अपने रनिवास के सहित जलके राजा वरुण ॥ २ ॥ हाथों के जेवरों से युक्त व निर्मल छविवाले व पुण्यवाले, सज्जन और प्यारे, अर्धपात्रसे संयुक्त अपने भाइयों के सहित आते हुये ॥ ३ ॥ चन्द्रमण्डल के समान व मोतियों से युक्त व मृंगाश्रोंकी लताओं से युक्त व इन्द्रनीलसखियों से युक्त ॥ ४ ॥ अर्धको नर्मदाके वारते नदियों के रज्ज्वा वरुण देतेहुये तब गङ्गा आदि सब नदिया और तारपी, पयोष्णी, ॥ ५ ॥ नन्दिनी

मार्कण्डेयउवाच ॥ धूमपाततोलोच्येन्महापातकनाशनम् ॥ समीपेचक्रतीर्थस्य विष्णुनानिर्मितम्पुरा ॥ १ ॥ मेकलापरमानन्दवीसिमांनैलोक्यपावनीम् ॥ कदाचित्पयसांराजा सान्तःपुरपरिच्छदः ॥ २ ॥ शिष्टैरिष्टैर्वन्धुभिश्च अर्धपात्रेणसंयुतैः ॥ हस्ताभरणसंयुक्तैः पुण्यैरमलकान्तिभिः ॥ ३ ॥ चन्द्रमण्डलमानैश्च युक्तैर्मुक्ताफलैस्तथा ॥ प्रवाललतिकामिश्च इन्द्रनीलसमन्वितैः ॥ ४ ॥ अर्धददौतदातस्यैवरुणस्मरितांपतिः ॥ गङ्गाद्यास्मरितस्सर्वास्तापीचापिपयोष्णिका ॥ ५ ॥ नन्दिनीनलिनीपुण्या सर्वमर्धददुस्तदा ॥ नर्मदोवाच ॥ मदीयेसङ्गमेदिव्ये स्नात्वासान्तर्पर्यान्तये ॥ ६ ॥ तस्यसप्तकुलोत्पन्नास्तारयामिनसंशयः ॥ जलाञ्जलिततोदत्त्वा समुद्रोवाक्यमब्रवीत् ॥ ७ ॥ धन्योहंकृतकृत्योहं त्वयादेविवरानने ॥ समायातासिमद्रन्ते सांचानपावनंकुरु ॥ ८ ॥ नर्मदोवाच ॥ पवित्रोसिमहाभाग एकाकीत्वंमहोदधे ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ एवंभगवतीराजन्मर्मदामेकलाशुभा ॥ ९ ॥ पूजितासागरेणापि शुभेसिंहासनस्थिता ॥ पाणिब्रह्मं

और पुण्यवाली नलिनी आदि सब नदिया अर्ध देतीहुई तब नर्मदा बोली कि हमारे दिव्य सङ्गममें स्नान कर जो तर्पण करते हैं ॥ ६ ॥ उनके सातकुलों में उत्पन्न हुये पुरषों को हम तारदेती है इम में संशय नहीं है तदनन्तर जलाञ्जलि देकर समुद्र वचन बोला कि ॥ ७ ॥ हे वरानने, देवि ! आपसे मैं धन्य और कृतकृत्य हूँ आप आईहो आपका कल्याण हो यहां मुझको पवित्र करो ॥ ८ ॥ तब नर्मदा बोली कि हे महाभाग, महोदधे ! तुम आपही पवित्रहो मार्कण्डेयजी बोले कि हे राजन् !

॥ १३ ॥ कल्याण देवताली, भगवती नर्मदा ॥ ६ ॥ उत्तम शिक्षासन पर वैठी हुई सभ्र से भी पूजीगई और हे भारत ! पुरुकुत्स राजासे वे व्याहीगई ॥
 कीहुई पुराणकी वर्षा होतीहुई और नर्मदाका वहां स्वयंवरभी हुआ ॥ १२ ॥ वहा जो आढ पितरोंका तर्पण करताहै और स्थान बनवाताहै वह लाख यज्ञों के फलको
 पाकर सुक्तहोजाताहै इसमें संशय नहीं है ॥ १३ ॥ इसप्रकार तीनोंलोकोंकी पवित्र करनेवाली नर्मदा तीनोंलोकसे पूजनेयोग्यहै हे महाभुज ! उसका अतुल माहात्म्य
 हीतासा पुरुकुत्सेनभारत ॥ १० ॥ पुरुकुत्सस्यभार्यासाग्रहभर्षणसंयुता ॥ सदाधैवततेराजंस्तत्रैवसङ्गमेष्टुमे ॥ ११ ॥
 पुष्पहृष्टिस्तदाह्यासीजिदशानामहोत्सवे ॥ तत्रस्वयंवरश्चासीत्सहितःपृथिवीपते ॥ १२ ॥ तत्रयःकुरुतेशाढं स्थानं
 चपितृतर्पणम् ॥ लज्जयज्ञफलंप्राप्य समुक्तोनात्रसंशयः ॥ १३ ॥ एवंत्रैलोक्यपूज्याते नर्मदालोकपावनी ॥ तस्यासा
 हात्म्यमतुलं कीर्तितंहिमहाभुज ॥ १४ ॥ भक्त्याश्रुत्वामहामाग रुद्रलोकेमहियते ॥ आदिमध्यावसानेषु रेवामाहा
 त्म्यसुतमम् ॥ १५ ॥ यःकश्चिच्छृणुयाद्भक्त्या तस्यस्याद्वाञ्छितंफलम् ॥ श्रुत्वामाहात्म्यमतुलं योन्नरोहिजितेन्द्रि
 यः ॥ १६ ॥ दानंकुर्यात्तदातस्य सर्वकामार्थसिद्धयः ॥ पुस्तकंपूजयित्वातु धूपदीपकचन्दनैः ॥ १७ ॥ दानंतत्रप्रक
 र्त्तव्यं ब्राह्मणांपिपूजयेत् ॥ श्रवणेनतुदानेन सुप्रीताननर्मदाभवेत् ॥ १८ ॥ तीर्थतीर्थेचकथितं तत्पूर्वंपाण्डुनन्दन ॥
 पुण्यंश्रुत्वामाहात्म्यं तद्दानेनैवपाण्डव ॥ १९ ॥ एतस्मात्कारणादानं श्रुत्वादानंहिकारणम् ॥ तच्छ्रुत्वारोजशार्द
 आपस कहागया ॥ १४ ॥ हे महाभाग ! इस को भक्तिसे सुनकर रुद्रलोकमें सत्कार पाताहै इस खण्डमें आदि, मध्य और अन्तमें नर्मदाहीका उत्तम माहात्म्यहै ॥
 १५ ॥ उसको जो कोई भक्तिसे सुनताहै उसको वाञ्छित फल होताहै इन्द्रियोंको जीते हुये जो मनुष्य नर्मदाके अतुलमाहात्म्यको सुनकर ॥ १६ ॥ दान करताहै तब
 उसकी सब काम और अर्थकी सिद्धियां होती हैं व धूप, दीप और चन्दन आदि से पुस्तक का पूजन कर ॥ १७ ॥ वहां दान करना चाहिये और ब्राह्मणों का भी पूजन
 करे सुनने और दानमें नर्मदा अतिप्रसन्न होती है ॥ १८ ॥ हे पाण्डुनन्दन ! तीर्थ तीर्थ में कहेहुये पुण्य व माहात्म्यको सुनकर हे पाण्डव ! उसको दानही से पूरा

करे ॥ १९ ॥ इसी कारणसे दानको सुन दान अवश्य करे क्योंकि पुण्यका कारण दानही है इस मार्कण्डेय के कहने को सुन राजाओं में उत्तम युधिष्ठिरजी ॥ २० ॥
 रीति से अर्घको देकर व ऋषियों का पूजनकर घोंडे, हाथी, रत्न और माहयों के सहित धर्मराज ॥ २१ ॥ राजा युधिष्ठिर नर्मदा में तीर्थयात्रा शीघ्रही करत हुये उत्तर
 लो मार्कण्डेयस्वभाषितम् ॥ २० ॥ अर्धदत्तवायथान्यायं पूजयित्वा ऋषीन्सदा ॥ अर्धैर्गजैस्तथारत्नैर्भार्तुभिस्सह
 र्मराद् ॥ २१ ॥ तीर्थयात्रांचकाराशु नर्मदायां युधिष्ठिर ॥ उत्तरेदक्षिणेतीरे स्नानपानावगाहनम् ॥ २२ ॥ इति श्री
 स्कन्दपुराणैवाखण्डे युधिष्ठिरमार्कण्डेयसंवादे नर्मदाचारित्रवर्णनो नाम षोडशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११६ ॥
 इति स्कन्दपुराणस्य रेखाखण्डः ॥

और दक्षिणाले तटपर स्नान, जलपान और अवनगाहन करतेहुये ॥ २२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणैरेवाखण्डे प्राकृतभाषाऽनुवादयुधिष्ठिरमार्कण्डेयसंवादे नर्मदाचारितवर्णनो
 नाम षोडशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११६ ॥

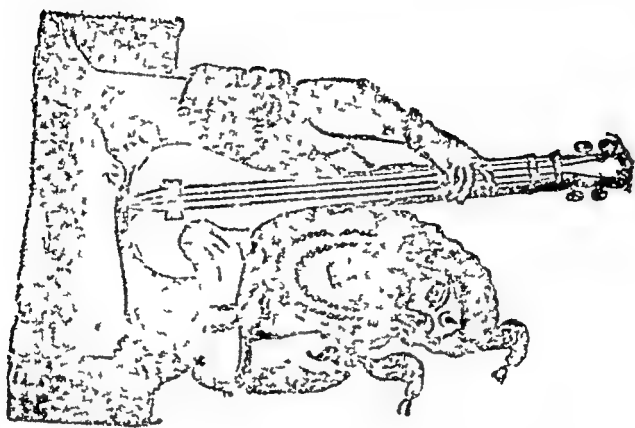
शुभसप्तमभूमितेऽब्दवृन्दे शुभ इषगारयसिते दले कतिध्याम् ॥ गुरुचरणकृतिर्हि मांशुवारेऽवसिति मगाज्जननी गिरा गरिष्ठा ॥ १ ॥
 मातृभाषानुवादोऽयं शोधितश्च सुसुहृदुः ॥ विद्वद्व्याप्रसादेन सर्वेषां मोदहेतवे ॥ १ ॥ शुभमस्तु ॥

प्रथमवार



नमोस्तु

सुपरिटेंडेंट दावू मनोहरलाल भार्गव के प्रबन्ध से
 हुंशी नवलकिशोर (सी, आई, ई) के छापेखाने में छपा
 सन् १९०८ ई०।





इति स्कन्दपुराणविरचसप्तमः ॥

आथ स्कन्दपुराणअवन्तीखण्डः प्रारम्भः ॥

स्कन्दपुराणरेखाखण्डान्तर्गताऽवन्तीखण्डस्य सूचीपत्रं व्याख्यायते ॥

अ०	पृ०	विषयः	अ०	पृ०	विषयः
१	५	मुनिनायक समकुमार को व्यासजी से महाकाल का प्रभाव कहना	१	५०	चारो समुद्र का माहात्म्य व सातो क्षीरों की सम्बाई व चौझाई का उपाख्यान
२	१३	ब्रह्माजी के पाँचवें क्षीर को शिवजीका छेदन करना	१५	७६	शङ्करादित्य के अद्भुत प्रभाव का निरूपण करना
३	२०	ब्रह्माजी से विष्णुजी को प्रायश्चित्त का विधान कहना	१७	८३	पितरों की सन्तुष्ट करनेहारी नीलगंगा व गन्धवतीनामक नदी का माहात्म्य कहना
४	३१	मुनीश्वर समकुमारको ब्रह्मासे अग्निकी उत्पत्ति कहना	१८	८४	दशरथमेघ तीर्थ का परम प्रभाव व महिमा का निरूपण करना
५	३८	कुर्यादथली के बनेके बाँचमें सदाशिवको कपाल का त्यागना	१९	८८	त्रैलोक्यविख्यात एकान्तया भगवती का माहात्म्य कहना
६	५१	ब्रह्मा के कपाल को शिवका छोड़ना व देवताओं को भयभीतहोना	२०	९०	सिद्धिदायक हरसिद्धिनामक देवी का प्रभाव कहना
७	६०	महाकाल वनवासी जनोंको फलका निरूपण करना	२१	९०	महासिद्धिदायक वटयक्षिणनामक देवी का निरूपण करना
८	६३	कलिमलनाशक विख्यात तीर्थ का माहात्म्य कहना	२२	९२	चतुर्दशी में पिशाचतीर्थ के स्नान करनेका प्रभाव कहना
९	६६	अप्सरकुण्ड के अमित प्रभाव का निरूपण करना	२३	९५	हनुमान् को हनुमत्केश्वर लिङ्गका स्थापन करना
१०	७१	महिष कुण्ड व रुद्रसरतीर्थ का माहात्म्य कहना	२४	९६	शिखोक्तदायक यमेश्वर लिङ्गका माहात्म्य कहना
११	७२	कुटुम्बेश्वर तीर्थ को अपार महिमा का निरूपण करना	२५	९७	रुद्रसरनामक तीर्थका परम प्रभाव कहना
१२	७४	गन्धर्व नामक तीर्थ की अतिमहिमा का निरूपण करना	२६	१०१	पुण्यबोक्तदायक महाकालकी यात्रा का विधान कहना
१३	७५	कामदायक विख्यात मर्कटेश्वर तीर्थ का प्रभाव कहना	२७	१०६	बालमीकिपूजित बालमीकेश्वर देवका प्रभाव कहना
१४	७५	स्वर्गद्वार नामक तीर्थ का माहात्म्य निरूपण करना	२८	१०७	शुक्रेश्वर, गणेश्वर, कामेश्वर और चण्डेश्वर का माहात्म्य कहना

विषया	अ०	पृ०	विषया	अ०	पृ०
विधिसमेत पञ्चशती यात्राका माहात्म्य कहना	२६	११०	अगस्त्येश्वर लिङ्गको अपार महिमा का कीर्तन करना	४६	१६६
सप्तदेवियों की अपार महिमाका निरूपण करना	३०	१११	अन्धकासुर के नाश होनेपर दिवाकर को नरदीप्तरूप से प्रकट होना	४७	१०५
अक्रेश्वर का दर्शनकर काञ्चनदान का फल कहना	३१	१११	आनन्ददायक अक्रेश्वर की महिमाका वर्णन करना ...	४८	२१०
ब्रह्माकी यज्ञमें याज्ञिक ब्रह्मणों के लिये शिवको शाप व वरदान देना व मन्दकिन्ती का माहात्म्य कहना	३२	१२०	शरणमें प्राप्त अन्धकासुरके लिये शिवजी को वरदान देना	४६	२१६
श्रीकृष्णचन्द्र व बलराम को मुक्त गुरुपुत्र को प्राप्त करना व अङ्गपदनामकतीर्थ का माहात्म्य कहना	३३	१२३	महाकालनामक शिवदेव का अतिमाहात्म्य कहना ...	५०	२१७
चन्द्रादित्य तीर्थकी अनन्त व अपार महिमाका निरूपण करना	३४	१२४	अवन्तीपुरी को कनकशृङ्ग नाम से विख्यात होना	५१	२२०
कल्याणदायक करभेश्वर जीके दर्शन का फल कहना	३५	१२५	अवन्तीपुरी को कुशस्थली नामसे विख्यात होना	५२	२२४
लङ्काकाहारी विघ्नविदारी गणनायक धिनायक का माहात्म्य कहना	३६	१२६	उज्जयिनीपुरी कोही अवन्ती नामसे विख्यात होना	५३	२२६
कुसुमेश्वर व जयेश्वरादि लिङ्गोंका प्रभाव कहना	३७	१२६	अवन्तीपुरी कोही उज्जयिनी नामसे प्रख्यात होना	५४	२२६
सोमवतीनामक तीर्थ व सोमेश्वर लिङ्गका माहात्म्य कहना	३८	१२७	अवन्तीपुरी कोही अमरावती नाम से विख्यात होना	५५	२४०
नरकेश्वर का माहात्म्य व पापियों के लिये नरकों का निरूपण करना	३९	१२८	अवन्तीपुरी कोही विशाला नाम से विख्यात होना	५६	२४३
शिवाजी से शिवजीको दीपदान का फल कहना	४०	१६१	अवन्तीपुरी कोही प्रतिकल्पा नाम से प्रख्यात होना ...	५७	२४६
केदारेश्वर व रामेश्वर तीर्थ की महिमाका निरूपण करना	४१	१६६	अवन्तीपुरी कोही विद्यानाम से विख्यात होना	५८	२४९
सुखदायक सौभाग्येश्वर तीर्थकी अनन्त महिमा को कहना	४२	१७०	अवन्तीपुरी कोही माहेशान्वर को शान्त होना	५९	२४९
महावीर रणधीर अर्जुन को नरादित्य का स्थापन करना	४३	१८२	शिवानदी के प्रभाव से दमनक राजा की मुक्तिहोना	६०	२६१
कल्याणदायक केशवादित्यका अनन्त माहात्म्य कहना	४४	१८४	शिवानदीको अमृतोद्गवा नाम से विख्यात होना	६१	२६७
शक्तिभेद तीर्थ व स्कन्दजी के अष्टाभद्र का निरूपण करना	४५	१६४	पृथ्वी को उच्चार करने के लिये विष्णुको वाराह रूप धरना	६२	२७२
	पिशाचमोचन व सुन्दरकुण्ड का प्रभाव कहना	६३	२८०
		६४	२८६

क्र०	पृ०	विषयः	क्र०	पृ०	विषयः
७५	३५६	शैरवनामक तीर्थ व शैरवाष्टक का निरूपण करना	६५	२६०	नीलगंगा को ब्रह्माजी से निजदाल का कहना
७६	३६२	अमितमाहात्म्य युक्त नाम तीर्थ का प्रभाव कहना	६६	२६४	उज्जयिनी पुरी में विष्णुवासिनी देवीजी का आना
७७	३६६	अनुब माहात्म्ययुक्त त्रीसहतीर्थ का प्रभाव कहना	६७	३०१	साता सगम का विचित्र माहात्म्य कहना
७८	३६६	कुटुम्बेरा तीर्थ में अमित फल का निरूपण करना	६८	३०५	अमितसुखदायक गयातीर्थ का माहात्म्य कहना
७९	३६२	खण्डेश्वरदेवकी अपार महिमा का कीर्तन करना	६९	३११	पितरों के कथाप्रसंग में गयाश्राद्ध का विधान कहना
८०	३७२	कर्कराज तीर्थ की अमित व अनन्त महिमा का निरूपण करना	७०	३१५	गयातीर्थ के समस्त तीर्थों का निरूपण करना
८१	३८२	देवतीर्थ की यात्रा करने से अनुपम फल का होना	७१	३२२	मलमास में श्रृंगुखयोत्सम देवका पूजन विधान कहना
८२	३८१	अवन्ती तीर्थ की यात्रा करने से अतिसुखदायक फलका होना	७२	३२३	पुरुषोत्तम सरकी अमित अपार महिमा को निरूपण करना
८३	४३०	अवन्ती तीर्थ में जिस तीर्थ का जो फल होनाहै उसका निरूपण करना	७३	३२७	गोमतीकुण्ड की अनन्त महिमाको कहना
			७४	३५५	वामनकुण्डकी महिमा व विष्णुजी के सहस्रनामों का कीर्तन करना

इति श्रीमदक्षिणवर्णितशतगणितसप्तमीभागद्वयवृषिर्नरसामिभगनादितिमिश्रः ॥

स्कन्दपुराणरेखाखण्डान्तर्गत

अवन्तीखण्ड सटीक

देहा ॥ सिद्धिसदन गजवदनके, चरण कमल शिरनाय । यहि श्रवन्ति माहात्म्य कर, तिलक करहुँ सुखदाय ॥ १ ॥ पूँछधो व्यास मुनीश सन, महाकाल परभाव । सनतकुमार सोई कह्यो, प्रथम माहि प्रभाव ॥ २ ॥ प्रजाओं के रचनेवाले भी देवता प्रबल संसार के भय से जिनको प्रणाम करते हैं और सावधान मनवाले व ध्यान संयुत चित्तवालों के चित्तमें जो भलीभाति पैठे हुये हैं और वे लोकों के आदिदेव श्रीमहाकाल नामक शिवजी उत्कर्ष को प्राप्तहोवैं जोकि

सृष्टारोपिप्रजानां प्रबलभवभयाद्यनमस्यन्तिदेवा यश्चित्सम्प्रविष्टोप्यवहितमनसां ध्यानयुक्तात्मनांच ॥ लो कानामादिदेवः सजयतुभगवाञ्छ्रीमहाकालनामां विश्राणःसोमलेखामहिवलययुतंव्यक्तलिङ्गकपालम् ॥ १ ॥ उमोवाच ॥ पृथिव्यांयानितीर्थानि पुण्याश्चसरितस्तथा ॥ कथ्यतांतानियत्नेन श्राद्धयेषुप्रदीयते ॥ २ ॥ ईश्वरउवाच ॥ अस्तिलोकेषुविख्याता गङ्गात्रिपथगानदी ॥ सेवितादेवगन्धर्वैर्मुनिभिश्चनिषेविता ॥ ३ ॥ तपनस्यसुतादेवी यमुनालोकपावनी ॥ पितृणांवल्लभादेवि महापातकनाशिनी ॥ ४ ॥ चन्द्रभागावितस्ताच नर्मदाऽमरकण्टकम् ॥

चन्द्रमाकी कला व सर्पके कंकण संयुत व प्रकट चित्तवाले कपाल को धारण कियेहैं ॥ १ ॥ श्रीपार्वतीजी बोलीं कि पृथ्वीमें जो तीर्थ व पवित्र नदियाँहैं उनको यलसे कहिये कि जिनमें श्राद्ध दीजाती है ॥ २ ॥ महादेव जी बोले कि तीन मार्गोंसे चलनेवाली गंगा नदी सब लोकोंमें प्रसिद्ध हैं जोकि देवताओं व गंधर्वाँ से सेवित तथा मुनियों से सेवित है ॥ ३ ॥ व हे देवि ! लोकों को पवित्र करनेवाली तथा बड़ेभारी पापों को नाशनेवाली सूर्यकी कन्या यमुना देवीजी पितरों को प्यारी हैं ॥ ४ ॥

और हे देवि ! चन्द्रभागा, वितस्ता, नर्मदा, अमरकण्टक, कुरुक्षेत्र, गया, प्रभास व नैमिष ॥ ५ ॥ हे देवि ! केदार, पुष्कर व काथावरोहण तथा उत्तम महाकालवन अत्यन्त पवित्र है ॥ ६ ॥ जहां पर पापरूपी ईधन को जलाने के लिये अग्नि श्रीमहाकालीजी हैं वह चार कोस तक क्षेत्र ब्रह्महत्यादि पातकोका विनाशक है ॥ ७ ॥ और वह क्षेत्र सुखदायक व मुक्तिदायक तथा कलियुग के पातकों का विनाशक है व हे देवि ! प्रलय में अविनाशी तथा देवताओं को भी दुर्लभ है ॥ ८ ॥ पार्वती जी बोलीं कि हे महेश्वर देवजी ! इस क्षेत्रके माहात्म्य को कहिये क्योंकि वहां पर जो तीर्थ हैं और जो लिंग हैं ॥ ९ ॥ उनको मैं सुनना चाहता हूं क्योंकि मुझको बहुत

कुरुक्षेत्रगंगादेवि प्रभासंनैमिषन्तथा ॥ ५ ॥ केदारपुष्करश्चैव तथाकायावरोहणम् ॥ तथापुण्यतममन्देविमहाकाल वनंशुभम् ॥ ६ ॥ यत्रास्तेश्रीमहाकालः पापेन्धनहुताशनः ॥ क्षेत्रयोजनपर्यन्तं ब्रह्महत्यादिनाशनम् ॥ ७ ॥ मुक्तिदंमुक्तिदंक्षेत्रं कलिकल्मषनाशनम् ॥ प्रलयेप्यक्षयंदेवि दुष्प्रापंनिदशैरपि ॥ ८ ॥ उमोवाच ॥ प्रभावःकथ्यता न्देव क्षेत्रस्यास्यमहेश्वर ॥ यानितीर्थानिविद्यन्ते यानिलिङ्गानिसन्तिवै ॥ ९ ॥ तान्यहंश्रोतुमिच्छामि परंकौतूहलंहि मे ॥ १० ॥ महादेवउवाच ॥ शृणुदेविप्रयत्नेन प्रभावंपापनाशनम् ॥ क्षेत्रमाद्यंमहादेवि सर्वपापप्रणाशनम् ॥ ११ ॥ श्रीमेरोस्सन्निधाने यच्छिखरंरत्नचित्रितम् ॥ वैराजभवनन्नाम ब्रह्मणःपरमात्मनः ॥ १२ ॥ तत्रदिव्याङ्गनागी तमधुरस्वरनादिता ॥ पारिजाततरुच्छन्नमञ्जरीदामशोभिता ॥ १३ ॥ बहुवाद्यसमुत्पन्नसुमहास्वननादिता ॥ लय तालयुतानेकगीतवादित्रनादिता ॥ विन्यस्ताकोटिभिःस्तम्भैर्निर्मलादर्शशोभिता ॥ १४ ॥ अप्सरोनृत्यविन्यासवि

आश्चर्य्य है ॥ १० ॥ महादेवजी बोले कि हे देवि ! पापनाशक प्रभावको बड़े यत्नसे सुनिये हे महादेवि ! सशस्त पातकों का नाशक वह आदि क्षेत्र है ॥ ११ ॥ श्री सुमेरुगिरि के समीप जो गह्वों से बनाहुआ शिखर परमात्मा ब्रह्माजी का वैराजनामक मन्दिर है ॥ १२ ॥ वहा पर देवांगनाओं के गान से मधुर ध्वनि करके शब्दित व पारिजात वृक्षोंसे आच्छादित तथा मञ्जरी की मालाओं से शोभित ॥ १३ ॥ और बहुत से वाजाओं से उत्पन्न बड़े भारी शब्दों से ध्वनित तथा लय व ताल से संयुत अनेक गीतों व बाजनों से शब्दित व करोड़ों स्तम्भोंसे शोभित तथा निर्मल शीशोंसे शोभित ॥ १४ ॥ और अप्सराओं के नृत्य करने के विलास (लीला)

तथा हर्षसे शोभित कांतिमती नामक सभा देवों को आनन्द देनेवाली है ॥ १५ ॥ उस सभामें बैठे हुये व ब्रह्मा तथा शिवजी के आराधन में परायण ब्रह्मा के मानसी पुत्र ब्रह्मर्षि मनत्कुमार जीको ॥ १६ ॥ मुनियों के मध्य से उठकर पराशरजीके पुत्र कृष्णद्वैपायन (व्यास) मुनिने विधिपूर्वक प्रणामकर ॥ १७ ॥ व जुड़ेहुये हाथोंवाले होकर शिवजी की भक्ति में शुद्ध चित्तवाले और प्रसन्न रोम व मुखवाले उन्होंने ने बड़ी प्रसन्नतासे प्राणियों के मोहको नाशनेवाले महाकालजी के माहात्म्य को पूँछा व्यासजी बोले कि हे भगवन् ! महाकालजी के क्षेत्र के माहात्म्य को कहिये ॥ १८ ॥ १९ ॥ कि सब से उत्तम महाकालवन किस लिये कहा जाता है और ऊपरसमेत

लासोल्लासशोभिता ॥ सभाकान्तिमतीनाम्नी देवानां हर्षदायिका ॥ १५ ॥ तस्यां निविष्टं वागीश शङ्कराश्रमनेरतम् ॥
 सनत्कुमारं ब्रह्मर्षिं ब्रह्मणो मानसं सुतम् ॥ १६ ॥ मुनिमध्यात्स सुत्थाय कृष्णद्वैपायनो मुनिः ॥ पराशरसुतो व्यासः
 प्राणिपत्ययथाविधि ॥ १७ ॥ कृताञ्जलिपुटो भूत्वा भवमकृत्यानुभाविताः ॥ पप्रच्छ परयातुष्व्या हृषितांगरुडाननः ॥
 १८ ॥ महाकालस्य माहात्म्यं प्राणिनां मोहनाशनम् ॥ व्यास उवाच ॥ भगवन् क्षेत्रमाहात्म्यं महाकालस्य कथयताम् ॥
 १९ ॥ महाकालवनं कस्मात् प्रोच्यते सर्वतो वरम् ॥ कथं गुह्यवनं प्रोक्तं पीठं स ऊपरन्तथा ॥ २० ॥ फलयथास्य क्षेत्रस्य
 मृतानाञ्च गतिर्यथा ॥ स्नानेन यद्भवेत्पुण्यं दानेनापि च यत्फलम् ॥ २१ ॥ कथमेतच्छानञ्च क्षेत्रं प्रोक्तं यथा तथा ॥
 पृष्टो मे शङ्करे भक्तिं ब्रूहि त्वं शास्त्रकोविद ॥ २२ ॥ सन्त्कुमार उवाच ॥ क्षीयते पातकं यस्मात् तेनेदं क्षेत्रमुच्यते ॥ यस्मा
 तस्थानञ्च मातृणां पीठन्तेनैव कथ्यते ॥ २३ ॥ मृताः पुनर्न जायन्ते तेनेदमूर्परं स्मृतम् ॥ गुह्यमेतत्प्रियन्नित्यं क्षेत्रं श
 र्पीठं न गुह्यवनं किस कारण कहा गया है ॥ २० ॥ और जिस प्रकार इस क्षेत्र का फल होवै और मेरे प्राणियोंकी जिस भाति गति होती है व स्नान से जो पुण्य होती है और दान से भी जो फल होता है उसको कहिये ॥ २१ ॥ और कैसे यह स्नान क्षेत्र कहा गया है हे शास्त्रकोविद ! जिस प्रकार तुम पूँछोगे हो उसी भाति सदाशिवजी में भक्ति को कहिये ॥ २२ ॥ सन्त्कुमारजी बोले कि जिस लिये पातक नष्ट होता है उसी कारण यह क्षेत्र कहा जाता है और जिसलिये मातृगणों का स्थान है उस कारण पीठ कहा जाता है ॥ २३ ॥ व जिस लिये यहां मरहुये पुरुष फिर उत्पन्न नहीं होते हैं उससे यह ऊपर कहा गया है और महात्मा सदाशिव जी

समेत आकाश हुआ ॥ ७ ॥ उस समय बीचमें पांच मुखोंवाले व चारभुजाओंवाले ब्रह्मा हुये इसके अनन्तर महादेवजीने अनुमानकर इनको सृष्टिमें युक्त किया ॥ ८ ॥ कि हे महाबाहो ! मेरी दयासे विचित्र सृष्टि कीजिये यह कहकर कहीं भी अन्तर्द्धान होगये और ब्रह्मा ने नहीं जाना ॥ ९ ॥ प्रेरणा कियेहुये भी ब्रह्मा जी सृष्टि करने के लिये समर्थ न हुये और उन्होंने शिवदेव जीको चिन्तन किया व ब्रह्मा मे ध्यान किये जातेहुये भगवान् शिवजीने ज्ञानके लिये ॥ १० ॥ ब्रह्माकी तपस्यासे प्रसन्न होकर छह अङ्गोंवाले वेद को दिया व वेदके मिलनेपर भी वे ब्रह्माजी बहुत दिनों तक सृष्टि करने क लिये न समर्थ हुये ॥ ११ ॥ फिर ब्रह्माजी ने शिवजी को

अतुष्टुजः ॥ महेश्वरोनुमान्यैतमयोजयदनन्तरम् ॥ ८ ॥ कुरुसृष्टिमहाबाहो विचित्रांमदनुग्रहात् ॥ इत्युक्तवान्तर्हि
तःकापि देवोब्रह्मानज्ञातवान् ॥ ९ ॥ प्रयंमाणोपिवैस्रष्टु नाभूद्देवमचिन्तयत् ॥ ब्रह्मणाध्यायमानश्च ज्ञानार्थंभगवा
न्भवः ॥ १० ॥ ब्रह्मणस्तपसातुष्टः प्रादाद्देदंषडङ्गकम् ॥ लब्ध्वेदेपिनचिरात् सृष्टिकर्तुंशशाकसः ॥ ११ ॥ तपसाराध
यदृभूयः समाराधयितुंभवम् ॥ नापश्यत्सयदादेवं तदातुष्टावभावतः ॥ १२ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ नमःशिवायामलसत्त्वचे
तसे गुणत्रयातीतविसारितेजसे ॥ षडङ्गवेदस्यममापिवेधसः परस्यरूपानुभवायचक्षुषे ॥ १३ ॥ नमोस्तुतेसृष्टिविधौ
रजोजुषे जगत्स्थितौसत्त्वमधिष्ठितायते ॥ विनाशहेतौतमसोपयोगिने शिवायनिर्वाणसुखप्रदायिने ॥ १४ ॥ अशेष
भूतप्रकृतेःपरायैव परात्मरूपायनमःशिवायैव ॥ ननुब्धहङ्कारमनोविधाय धान्नेचषड्विंशकरूपकाय ॥ १५ ॥ भूवायु

आराधनके लिये तपस्या से आराधन किया और उन्होंने जब शिवदेवजीको नहीं देखा तब भक्तिसे स्तुति किया ॥ १२ ॥ ब्रह्माजी बोले कि निर्मल व सत् चित्तमान तथा तीनों गुणों से परे व फैले हुये तेजवाले शिवजी के लिये प्रणाम है और रूपके अनुभव (ज्ञान) के लिये षडङ्गवेद व सुक्त परमात्मा ब्रह्मा के नेत्ररूप शिवजी के लिये प्रणाम है ॥ १३ ॥ और सृष्टि करने मे रजोगुणसेवी तुम्हारे लिये प्रणाम है व संसार के पालन में सत्त्वगुण मे स्थित आप के लिये प्रणाम है और विनाश के लिये तमोगुण से युक्त तथा मोक्षसुखके देनेवाले शिवजी के लिये प्रणाम है ॥ १४ ॥ समस्त प्राणियों की प्रकृति से परे व परमात्मारूप शिवजी के लिये प्रणाम है

और मनुष्यों की बुद्धि अहङ्कार व मनको विधान करनेवाले विधाता के लिये तथा लक्ष्मीस तत्त्वात्मकरूपवाले शिवजी के लिये प्रणाम है ॥ १५ ॥ व पृथ्वी, पवन, अग्नि, आकाश, जल, चन्द्रमा व सूर्य तथा यजमानात्मकरूपी जिनके शरीरों से यह भूत, भविष्य, वर्तमान संसार व्याप्त है उन शिवजी के लिये प्रणाम है ॥ १६ ॥ इस संसार में जो तेज व लोक है तथा जो भूत, भविष्य कारण हैं वे सृष्टि में होते हैं और प्रलय में जिनके शरीर में नाशको प्राप्त होते हैं उनको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ १७ ॥ सनत्कुमार जी बोले कि हे व्यासजी ! इस प्रकार रक्षति करतेहुये ब्रह्माजी से अन्तर्द्वान में प्राप्त भगवान् शिवजी यह बोले कि हे ब्रह्मन् ! वरदान को मांगिये ॥ १८ ॥

वक्ष्यन्वरचारिचन्द्रसूर्यात्मरूपाभिरिदंतनुभिः ॥ व्यासंजगद्यस्यनमोस्तुतस्मै भूतंभविष्यंत्यवर्तमानम् ॥ १६ ॥ या नीहतेजांसिजगन्तियानि भूतानिभव्यान्यथकारणानि ॥ भवन्तिमृष्टौविलयंविनाशो ब्रजन्तियस्यात्मनिंतनमामि ॥ १७ ॥ सनत्कुमारउवाच ॥ एवंसंस्तुवतोव्यास ब्रह्मणोभगवान्परः ॥ अन्तर्हितउवाचेंदं ब्रह्मन्संवाच्यतांवरः ॥ १८ ॥ सर्वत्रेमनसापुत्रं भवंगौरवकारणात् ॥ विज्ञायान्तर्गतंतस्य परमेशउवाचतम् ॥ १९ ॥ यस्मान्ममनसापुत्रं चतुर्मुखस मीहसे ॥ कर्हिमश्चित्कारणेतस्मादहंछेतस्यामितेशिरः ॥ २० ॥ अयाच्ययाचितंयस्मान्ममंशोनीललोहितः ॥ रूद्रो भविष्यतिसुतः सचतेहिंस्यतिप्रभाम् ॥ २१ ॥ अन्यद्यस्मात्समृतोभक्त्या त्वयाहंपितृभावतः ॥ परब्रह्मस्वरूपेण जिज्ञासाममयाकृता ॥ २२ ॥ तस्माद्ब्रह्मेतिलोकेत्र नामख्यातंभविष्यति ॥ पितामहत्ययेनापि ततोह्यासिपितामहः ॥ २३ ॥

उने ब्रह्माजी ने गौरव के कारण शिवजी से मन करके पुत्रको मांगा व उनके चित्त में प्राप्त कारण को जानकर परमात्मा शिवजी ने उनसे कहा ॥ १६ ॥ कि हे चतुरानन जी ! जिसलिये मुझ से तुम मन करके पुत्रको चाहते हो इस लिये मैं किसी कारण में तुम्हारा मस्तक काटूंगा ॥ २० ॥ जिस लिये न मागने योग्य वर मांगा गया इस कारण मेरा अंश नीललोहितरुद्र पुत्र होगा और वह तुम्हारी प्रभामको नाश करेगा ॥ २१ ॥ और जिस लिये तुमने मुझको पिताके भाव से स्मरण किया व परब्रह्म के स्वरूप से जो मेरे जानने की इच्छा कीगई ॥ २२ ॥ उसकारण इस संसार में ब्रह्मा ऐसा नाम प्रासिद्ध होगा और जिस लिये मुझमें पितामह

का भाव किया गया उससे पितामह हो ॥ २३ ॥ इस प्रकार शाप व वरदानको पाकर उन्होंने पुत्रोंकी सृष्टि किया और अपने तेज से पैदा हुई अग्नि में हवन करते हुये इन ब्रह्माजी के पसीना बहचला ॥ २४ ॥ और समिधा संयुत हाथसे मरुतकको पोंछतेहुये इनका मरुतक छिदगया व उससे रक्तका एक बूंद अग्नि में गिरपड़ा ॥ २५ ॥ और वह बड़ाभारी, नीललोहित हुआ व तदनन्तर शिवजी की आज्ञा से वह रुद्र पुत्र प्राप्तहोकर समीप उतरता भया ॥ २६ ॥ जोकि पांच मुखोंवाला व दश मुजाओंवाला तथा त्रिशूल, धनुष, तलवार व शक्तिको लिये और पन्द्रह नेत्रोंवाला और भयंकर व सपोंके जनेऊ को पहने था ॥ २७ ॥ और चन्द्रमा समेत

लब्धवाशापवरावेवं पुत्रसृष्टिचकारसः ॥ स्वतेजोजनितंवह्निं लुक्तःस्वेदआवहत ॥ २४ ॥ समिधुक्तेनहस्तेन
ललाटंमार्जतोभवत् ॥ छिन्नंभृष्टस्तोरक्तबिन्दुरेकोविभावसौ ॥ २५ ॥ सनीललोहितोभूयात्सचरुद्रोभवाज्ञया ॥ त
दनन्तरमासाद्य उत्तारसुतोन्तिकात् ॥ २६ ॥ पञ्चवक्त्रोदशमुखो शूलचापासिशक्तिमान् ॥ त्रिपञ्चनयनोरोद्रो व्या
लयज्ञोपवीतकः ॥ २७ ॥ सेन्दुकपट्विभ्राणः सिंहचर्मधरोवरः ॥ जातमेवंसुतंदृष्ट्वा ब्रह्मानामाकरोत्तदा ॥ २८ ॥ नी
ललोहितनामेति भवरुद्रपिनाकधृक् ॥ ततःप्रववृत्तेसृष्टिः स्रष्टुर्लोकपितामहात् ॥ २९ ॥ सप्तादौमानसाञ्जज्ञे सन
कादींस्ततोपरान् ॥ मरीचिदक्षप्रभृतीन्मन्वादींश्चततोसृजत् ॥ ३० ॥ अष्टभेदान्मुरान्कृत्वा तिर्यग्योनिस्रपञ्चधा ॥ म
नुष्यानेकभेदांश्च सृष्टिमेवंससर्जह ॥ ३१ ॥ सृष्टिःसुरादिकाजाता कृत्वाब्रह्माणमप्यधः ॥ प्रणम्याथसिषेवुस्ते केवलं

जटाजूटको धारे और सिंहके चर्मको धारण किये व उत्तमथा उस समय पैदा हुये ऐसे पुत्रको देखकर ब्रह्माने नाम किया ॥ २८ ॥ कि हे रुद्र, पिनाकधारी! तुम नील-
लोहित ऐसे नामवाले होवो तदनन्तर लोकोंके पितामह ब्रह्माजीसे सृष्टि वर्तमान हुई ॥ २९ ॥ पहले सात मानसी पुत्रोंको पैदा कियातदनन्तर अन्य सनकादिकोंको
उत्पन्नकिया उसके उपरान्त मरीचि व दक्षादिकोंको व मनु आदिकोंको रचा व पांच प्रकारकी तिर्यक्योनियां याने पशु आदिकों
को रचा और एक भेदवाले मनुष्योंको रचा इसभांति सृष्टिको उत्पन्न किया ॥ ३१ ॥ ब्रह्मा को भी नीचेकर देवादिक सृष्टि उत्पन्न हुई और उन्होंने केवल नीललोहित

को प्रणाम कर सेवा किया ॥ ३२ ॥ तदनन्तर ब्रह्मा ने रुद्रजी मे कहा कि तुमने मुझको अपूजनीय किया जिस लिये अपने तेजसे आप पूजनीय हो उसी कारण हिमालयको जाइये ॥ ३३ ॥ नीललोहित भी उन ब्रह्माजी से यह कह कर कि आपने मुझको नहीं पूजा तदनन्तर ये शिवजी वहां गये जहां कि भगवान् शिवजी थे ॥ ३४ ॥ तदनन्तर रजोगुणसे बढेहुये ब्रह्माजी मूढ होगये और अपकारी सृष्टिको मानते हुये ब्रह्माने तेजसे संतप्त किया ॥ ३५ ॥ मेरे तुल्य देवता नहीं है कि जिसने देवता, दैत्य, गंधर्व, पशु व पक्षियों से व्याप्त सृष्टिको बढाया ॥ ३६ ॥ इसप्रकार वे पांच मुखोवाले ब्रह्माजी सृष्टि से गर्वित हुये और उन ब्रह्माजी का सुन्दर शन्दवाला

नीललोहितम् ॥ ३२ ॥ ततो ब्रह्मावदद्द्रुमपूज्यो हन्तव्याकृतः ॥ स्वतेजसा भवान्पूज्यो यतो याहि हिमालयम् ॥ ३३ ॥ तन्नो ललोहितोऽप्युक्त्वा भवतानां चितो ह्यहम् ॥ ततो जगाम रुद्रोऽसौ स यत्र स गवान्मूढो रजसा चोपवृंहितः ॥ ततापते जसा सृष्टिं मन्यमानो ह्यपाकृताम् ॥ ३४ ॥ मतुल्यो नास्ति वै देवो येन सृष्टिः प्रवर्द्धिता ॥ स देवासु रगन्धर्वपशुपक्षिमृगाकुला ॥ ३५ ॥ एवं मूढस्स पञ्चास्यो विरश्चिः सृष्टिर्दपितः ॥ प्राग्वक् क्रसुस्वरंतस्य ऋग्वेदस्य प्रवर्तकम् ॥ ३६ ॥ द्वितीयं वदनंतस्य यजुर्वेदप्रवर्तकम् ॥ ३७ ॥ वेदानधीत्यवक्रेण पञ्चमेन ससर्ज सः ॥ तस्यासु थर्ववेदप्रवर्तकम् ॥ साक्षो पाद्मेतिहासांश्च सरहस्यान्संग्रहान् ॥ ३८ ॥ वेदानधीत्यवक्रेण पञ्चमेन ससर्ज सः ॥ तस्यासु रासुरास्सर्वे वक्रस्याद्भुततेजसः ॥ ३९ ॥ तेजसान प्रकाशन्ते दीपास्सूर्योदये यथा ॥ सप्तवाअपिसोद्वेगा बभूवुर्नष्टचे तसः ॥ ४० ॥ नाभिगन्तुन्नद्रष्टुं च चिरन्ते नोपसर्पितुम् ॥ अभिभूता मिवात्मानं मन्यमाना अविद्विषः ॥ ४१ ॥ सर्वे ते

पहला मुख ऋग्वेद का प्रवर्तक हुआ है ॥ ३७ ॥ और उन ब्रह्माजी का दूसरा मुख यजुर्वेद का प्रवर्तक (उत्पन्न करनेवाला) हुआ है व उनका तीसरा मुख सामवेद का प्रवर्तक हुआ ॥ ३८ ॥ और इन ब्रह्माजीको चौथा मुख अथर्ववेदका प्रवर्तक हुआ है और रहस्यों समेत व संग्रहों सहित तथा अंगों व उपगों समेत इतिहासों को ॥ ३९ ॥ व वेदोंको पांचवें मुखसे पढ कर उन ब्रह्माजी ने रचा है और अद्भुततेजवाले उस मुखके तेजसे समस्त देवता व दैत्य नहीं प्रकाशित होते थे जैसे कि सूर्योदय में दीपक नहीं शोभित होते हैं पुत्रों समेत भी वे देवता नष्ट ज्ञानवाले होकर उद्वेग (दुःख) समेत हुये ॥ ४० ॥ ४१ ॥ और बहुत देर तक वे सामने जाने

के लिये व देखने के लिये तथा समीप में जाने के निमित्त न समर्थ हुये और अपना को तिरस्कृतसे मानते हुये शत्रुवासे रहित ॥ ४२ ॥ उन सब देवताओं ने अपने हितकी सम्मति किया कि ब्रह्मा के तेजसे बुद्धिरहित हम लोग सदाशिवजी की शरण में प्राप्त होते हैं ॥ ४३ ॥ क्या उसके स्थान को हम नहीं जानते हैं कि जहां पर स्थित उन सदाशिवजीको इस समय हम लोग भक्ति से देखेंगे अन्य किसी उपाय से न देखेंगे ॥ ४४ ॥ इस प्रकार सम्मति कर उस समय हाथोंको जोड़कर उन देवताओं ने उत्तम स्वर की संपदा से शिवजी की स्तुति किया ॥ ४५ ॥ देवता बोले कि हे देवदेवेश ! तुम्हारे लिये नमस्कार है हे महेश्वरजी ! आपके लिये नम-

मन्त्रयामासुर्देवावैहितमात्मनः ॥ गच्छामशरणन्देवं निष्प्रज्ञाब्रह्मतेजसा ॥ ४३ ॥ कितस्यैव न जानीमः स्थानं यत्र व्यवस्थितम् ॥ तम्भीममन्नद्रक्ष्यामो भक्त्या नान्येन केनचित् ॥ ४४ ॥ एवं संमन्यते देवाः कृताञ्जलिपुटास्तदा ॥ चक्रुः स्तोत्रं महेशस्य परयास्वरसम्पदा ॥ ४५ ॥ देवा ऊचुः ॥ नमस्ते देवदेवेश महेश्वर नमो नमः ॥ न विद्वाः परमं मूढा अभिधानं तवातुलम् ॥ ४६ ॥ यद्योगेन परं ब्रह्म भूतानां त्वं सनातनः ॥ प्रतिष्ठा सर्वभूतानां हेतुस्सर्वस्य सर्जन ॥ ४७ ॥ विभर्तै चैव नेत्रस्थानसोमसूर्यविभावसून् ॥ नामसंस्कर्तुना देव मुच्यन्ते जन्तवोऽशुभात् ॥ ४८ ॥ पृथिव्यम्ब्वग्निचन्द्रार्कव्योमवायूपलक्षणाः ॥ मूर्तयस्ते महादेव व्याप्तमाभिरशेषतः ॥ ४९ ॥ रजः सत्त्वतमो भावैर्भ्राम्यमाणं त्वया जगत् ॥ नावबुध्यति सर्वेश सर्वमूर्तिधरो यतः ॥ ५० ॥ ब्रह्मादीनां सुरेशानां सम्मोहनविमोहनः ॥ त्वङ्करोषि युगावर्तं काले काले च

स्कार है नमस्कार है हम लोग मूढ़ तुम्हारे अभित तथा उत्तम नामको नहीं जानते हैं ॥ ४६ ॥ कि जिसके योग से परब्रह्म से लगाकर प्राणियों के तुम सनातन देव हो और सब प्राणियोंकी प्रतिष्ठा व सबके रचने में कारण हो ॥ ४७ ॥ और नेत्रोंमें टिके हुये चन्द्रमा सूर्य व अग्नि को धारण या पालन करते हो व आपके नाम की कीर्तन करने से प्राणी अशुभमे छूटजाते हैं ॥ ४८ ॥ हे महादेवजी ! पृथ्वी, जल, अग्नि, चन्द्रमा, सूर्य, आकाश व पवन लक्षणोंवाली तुम्हारी मूर्तियां हैं व इन से सब व्याप्त है ॥ ४९ ॥ हे सर्वेश ! तुम से रजोगुण, सत्त्वगुण व तमोगुणभावसे भ्रमाया हुआ संसार ज्ञानको नहीं प्राप्त होता है क्योंकि सब मूर्तियों के धारनेवाले

हो ॥ ५० ॥ और तुम ब्रह्मादिक देवियों का संमोह व विमोह याने अज्ञान व ज्ञान करते हो और समय समय में असह्य युगावर्तको करते हो ॥ ५१ ॥ सनत्कुमारजी बोले कि देवता, ऋषि, पितर व मनुष्यों से इस प्रकार भलीभाति स्तुति किये जातेहुये ये सदाशिवजी अन्तर्द्वान होकर यह बोले कि हे देवताओं ! जैसा मनोरथ हो वैसा कहिये ॥ ५२ ॥ देवता लोग बोले कि हे शिवजी ! हमलोग सदैव तुम्हारे प्रत्यक्ष दर्शनकी प्रार्थना करते हैं और दयासे हम लोगोंको आप वरदान भी दीजिये ॥ ५३ ॥ क्योंकि हम लोगों का बड़ा प्रभाव था और हमलोगों का जो पराक्रमथा वह सब पांच मुखोंवाले ब्रह्मा के तेज से ग्रसित होगया ॥ ५४ ॥ हे महेश्वर,

दुस्सहम् ॥ ५१ ॥ सनत्कुमारउवाच ॥ एवं संस्तूयमानोसौ देवर्षिपितृमानवैः ॥ अन्तर्हितउवाचेदं देवानृतयथेप्सितम् ॥ ५२ ॥ देवाञ्जुः ॥ प्रत्यक्षं दर्शनं स्थाणो प्रार्थयामस्सदातव ॥ त्वया कारुण्यतोस्माकं वरश्चापि प्रदीयताम् ॥ ५३ ॥ यदस्माकं महद्दीर्घं यश्चास्माकं पराक्रमः ॥ तत्सर्वं ब्रह्मणोऽग्रस्तं पञ्चमास्यस्य तेजसा ॥ ५४ ॥ विनेशुस्सर्वेतेजांसि त्वत्प्रसादात्पुनर्विभो ॥ जायन्ते तद्यथा पूर्वं तथा कुरु मे हे श्वर ॥ ५५ ॥ सनत्कुमारउवाच ॥ प्रत्यक्षं दर्शनं दत्त्वा देवानामनुकम्पया ॥ प्रसन्नवदनो भूत्वा देवैश्चापि नमस्कृतः ॥ ५६ ॥ आश्वास्य च सुखान् सर्वान् सह देवैर्महेश्वरः ॥ प्रत्यक्षमेत्यप्यश्वाच्च चलिताः शर्व एव हि ॥ ५७ ॥ जगाम तत्र यत्रासौ रजोहङ्कारमूर्तिमान् ॥ देवाः स्तुवन्तो देवेशं परिवार्य उपाविशन् ॥ ५८ ॥ ब्रह्मा तमागतन्देवं न जज्ञेत मसावृतः ॥ सूर्यकोटि सहस्राणां तेजसारञ्जयज्जगत् ॥ ५९ ॥ तदा दृश्यत विभवा

विभो ! सब तेज नष्ट होगये जिस प्रकार तुम्हारी प्रसन्नता से पहलेकी नाई फिर तेज उत्पन्न होवै वैसाही कीजिये ॥ ५५ ॥ सनत्कुमारजी बोले कि देवताओं को दयासे प्रत्यक्ष दर्शन देकर प्रसन्नमुखवाले होकर देवताओं से प्रणाम कियेगये ॥ ५६ ॥ और सब देवताओं को आश्वासन कर प्रत्यक्ष में प्राप्त होकर पश्चात् देवताओं समेत महादेवजी चले ॥ ५७ ॥ और ये शिवजी वहां गये जहां कि रजोगुण से अहंकार की मूर्तिको धारण किये ब्रह्माजी थे और देवेश शिवजीकी स्तुति करते हुये देवता घेर कर समीप बैठ गये ॥ ५८ ॥ अज्ञानसे धिरेहुये ब्रह्माजीने उन आयेहुये शिवदेवजीको न जाना और उन शिवजी ने करोड़ों हजार सूर्यों के तेज से संसार

को रंगदिया ॥ ५६ ॥ उस समय विश्वभोगी व विद्वात्मा तथा विश्वभावन शिवजी देख पड़े और उन शिवजी ने बैठे हुये ब्रह्मा व सब देवमण्डल को तेज से तिरस्कार करते हुये ब्रह्माके आगे स्थित हुये और शिवजीके तेजसे तिरस्कृत ब्रह्माका मुख नहीं शोभित होताथा ॥ ६० ॥ ६१ ॥ जैसे कि रात्रिमें प्रकाशसंयुत किरणों वाला चन्द्रमा सूर्योदय में नहीं शोभित होता है इसके अनन्तर अहंकार समेत ब्रह्माजी ने सनातन शिव देव पुत्रको देखकर ॥ ६२ ॥ उनके तेज से धिरेहुये उन्होंने ने हाथही से उन शिवदेवजी को प्रणाम किया तदनन्तर भगवान् चन्द्रभालजीने श्रद्धाहास छोड़ा ॥ ६३ ॥ व सब देवताओं के देखते व सुनतेहुये भयंकर वचन कहा

त्मा विश्वसुगिविश्वभावनः ॥ सपितामहमासीनं सकलन्देवमण्डलम् ॥ ६० ॥ तेजसाभिभवन्नद्रः स्वयम्भोरग्रतःस्थितः ॥ रुद्रतैजोभिभूतञ्च ब्रह्मवक्त्रं नराजते ॥ ६१ ॥ रात्रौ प्रकाशकिरणश्चन्द्रसूर्योदयेयथा ॥ सगर्वोत्थात्मजं दृष्ट्वा रुद्रन्देवं सनातनम् ॥ ६२ ॥ अभिवन्दे करैरेव देवतत्तेजसाहृतः ॥ ततोऽदृष्ट्वा संभगवान् मुमोच शशिशेखरः ॥ ६३ ॥ पश्यतां स वेदेवानां शृण्वतां वाचमुत्कटाम् ॥ तेनादृष्ट्वा सशब्देन मोहयित्वा पितामहम् ॥ ६४ ॥ तेजोराशिः शशाङ्कामः शशाङ्काकां ग्निलोचनः ॥ वामाङ्गुष्ठनखाग्रेण ब्रह्मणः पञ्चमं शिरः ॥ ६५ ॥ चकर्त कदलीगर्भे नरः कररुहैरिव ॥ द्विद्यमानं च वक्त्रं च बुबुधेन पितामहः ॥ ६६ ॥ रुद्रस्य तेजसा तस्मान्मोहितो न न तिङ्गतः ॥ विन्नतस्य शिरः पश्चाद् रुद्रहस्ते स्थितं तदा ॥ ६७ ॥ अपश्यद्देवतैः सार्द्धैर्द्रव्चातिभयाज्ज्वलत् ॥ महेश्वरकरान्तस्थं नखैर्वक्त्रं विराजते ॥ ६८ ॥ ग्रहमण्डलमध्यस्थो

व उस अदृष्टास के शब्द से ब्रह्मा को मोहकर ॥ ६४ ॥ चन्द्रमा के समान शोभावाले व तेजों की राशि तथा चन्द्रमा, सूर्य व अग्नि नेत्रोंवाले शिवजी ने बायें अंगूठे के नखके अग्रभागसे ब्रह्माके पांचवें मस्तकको काट डाला ॥ ६५ ॥ जैसे कि मनुष्य नखों से केला के अन्तर्भागको काट डालता है और काटेजाते हुये मुखको ब्रह्मा ने नहीं जाना ॥ ६६ ॥ इसलिये शिवजी के तेजसे मोहित ब्रह्माजी नतिको न प्राप्त हुये याने उन्होंने प्रणाम नहीं किया उस समय उनका कटाहुआ मस्तक शिवजी के हाथमें स्थितहुआ ॥ ६७ ॥ और देवताओं समेत उन्होंने बड़े भयसे जलतेहुये उस भयानक मस्तकको देखा कि शिवजीके हाथमें प्राप्त मुख नखोंसे शोभित है ॥ ६८ ॥

मानो ग्रहों के मण्डलके मध्य में स्थित दूमरा चन्द्रमा है कपालसे संयुत चन्द्रभालजी ने उसको ऊपर ५ नृत्य किया ॥ ६६ ॥ जैसे कि शिखर पै स्थित सूर्यसे कैलास पर्वत होवै तदनन्तर मस्तक कट जाने पर हृष्टपुष्ट देवता वृषध्वज ॥ ७० ॥ देवदेव कपालधारी शिकी अनेक भाँति कंस्तोत्रोंसे स्तुति किया देवता लोग बोले कि कपाली व शंखधारी महाकालजीके लिये नित्यही प्रणामहै ॥ ७१ ॥ ऐश्वर्य व ज्ञानसे संयुत तथा स सुखोंको देनेवाले व गर्भविनाशक तथा सर्व देवमय के लिये नमस्कारहै ॥ ७२ ॥ तुम कालके संहार करनेवाले हो उसीकारण महाकाल हो और भक्तोंके दुःखोंके करनेवाले हो उसीसे दुःखसे विकल मनुष्य रुचता

द्वितीयश्चन्द्रमाः ॥ उत्तिष्ठत्यतत्कपालेन ननर्तशशिशेखरः ॥ ६९ ॥ शिखरेनसूर्येण कैलासइवपर्वतः ॥ छिन्नेव
ऋततोदेवा हृष्टपुष्टावृषध्वजम् ॥ ७० ॥ तुष्टुबुर्विविधैःस्तोत्रैर्देवदेवंकपालिनः देवाऊचुः ॥ नमःकपालिनेनित्यं
महाकालायशङ्घिने ॥ ७१ ॥ ऐश्वर्यज्ञानयुक्ताय सर्वभोगप्रदायिने ॥ नमोदर्पभाशाय सर्वदेवमयायच ॥ ७२ ॥
कालसंहारकर्तात्वं महाकालस्ततोहासि ॥ भक्तानांदुःखशमनो दुःखार्तस्तेनरेते ॥ ७३ ॥ शङ्करोप्याशुभक्तानां
तेनत्वंशङ्करःस्मृतः ॥ छित्त्वाब्रह्मशिरोयस्मात्कपालंचविभर्तिच ॥ ७४ ॥ तेनत्वंकपालीत्वं स्तुतोह्यद्यप्रसीदनः ॥
एवंस्तुतःप्रसन्नात्मा देवानुत्थायशङ्करः ॥ ७५ ॥ वृन्दारकेशोभगवांस्तत्रैवान्तरायत ॥ ७६ ॥ शशिशकलमयू
खैर्मांसितोयत्कपर्दस्त्वमलगनगङ्गातोयवीचीविचयः ॥ विधृतसितकपालोमालयश्चकास्ति सजयतिजितवेधाऊ
र्जितःप्राज्यतेजाः ॥ ७७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे ब्रह्मशिरश्छेदोनामद्वितीप्रोष्ठयायः ॥ २ ॥ *

है ॥ ७३ ॥ और शीघ्रही भक्तोंका कल्याण करनेवाले हो उसीसे शंकर कहेगये हो और जिस लिये ब्रह्माका मस्तक काटकर ग्वालको धारण करते हो ॥ ७४ ॥ उस कारण हे देव ! तुम कपालीहो आज स्तुति किये हुये तुम हम लोगोंके ऊपर प्रसन्न होवो इसप्रकार स्तुति किये हुये प्रसन्न मनवाले सदाशिवजी देवताओंको उठाकर ॥ ७५ ॥ भगवान् देवेश शिवजी वहाँ अन्तर्द्धान् होगये ॥ ७६ ॥ चन्द्रखण्डकी किरणों से जिनका जटाजूट प्रकाशित है व निर्मल ओकाशगंगा के जल की लहरियों में डूबने योग्य व श्वेत कपाल को धारे व माला से शोभितहै ब्रह्मा को जीतेहुये व बड़ेभये वे बहुत तेजवाले शिवजी जयको प्राप्तहोवें ॥ ७७ ॥ इति द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

दो० । ब्रह्मासन जिमि विष्णुजी, प्रायश्चित्त विधान ! कछो तीसरे में सोई, चरित प्रमोद निधान ॥ सनत्कुमारजी बोले कि तदनन्तर मस्तक कटने पर क्रोध व मोह से धिरे ब्रह्माजी ने मस्तक में उपजेहुये पसीने को लेकर पृथ्वी में पटक दिया ॥ १ ॥ और उनके पसीने से कुण्डलों को धारण किये व धनुष समेत तथा बड़े भारी तरकस समेत और सोने की कवच समेत पुरुष पैदा हुआ और वह बोला कि मैं क्या करूं ॥ २ ॥ शिवजी को दिखलते हुये ब्रह्माजीने उससे कहा कि पराक्रम से इस दुर्बुद्धि को मारडालो कि जिस प्रकार फिर न उत्पन्न होवै ॥ ३ ॥ ब्रह्माके वचन को सुनकर बड़े क्रोध को धारण किये व बाण को हाथ में लिये वह वीर

सनत्कुमारउवाच ॥ अग्निवक्त्रेततोब्रह्मा क्रोधेनतमसावृतः ॥ ललाटेस्वेदमुत्पन्नं हीत्वाताडयद्भुवि ॥ १ ॥ तत्स्वे दात्कुण्डलीजज्ञे सधनुस्समहेषुधिः ॥ सस्वर्णकवचोवीरः किङ्करोमीत्युवाचह ॥ २ ॥ तमुवाचविराञ्चिस्तु दर्शयन्नद्र मोजसा ॥ वध्यतामेषदुर्बुद्धिर्जायतेनयथापुनः ॥ ३ ॥ ब्रह्मणोवचनंश्रुत्वा धनुरुद्यम्यष्टतः ॥ सप्रतस्थेमहेशस्य बाण हस्तोतिरोषभृत् ॥ ४ ॥ सदृष्ट्वापुरुषंचोग्रमभवद्विस्मितोभवः ॥ दिव्यबाणधनुर्हर्षवेगविक्रान्तगामिनम् ॥ ५ ॥ म यानवध्योतिबलो सखाविष्णोर्भविष्यति ॥ अनुग्राह्योह्यहन्तेन सख्यर्थतपसिस्थिः ॥ ६ ॥ चिन्तयन्नित्थमीशोपि विष्णोराश्रममभ्यगात् ॥ हुङ्कारध्वनिनाब्रह्मन् मोहयित्वाततोन्नरम् ॥ ७ ॥ प्रयावतदाहृष्टः क्रीडांकुर्वज्जगत्स्थितौ ॥ यन्नारायणः श्रीमांस्तपस्तेपेप्रतापवान् ॥ ८ ॥ अदृश्यस्सर्वभूतानां विःस्माविश्वसृग्बिभुः ॥ तत्रप्राप्तोवि

धनुष को चढ़ाकर शिवजीके पीछे चला ॥ ४ ॥ और दिव्य बाण व धनुष को हाथमें धारे तथा वेगसे बहुत चलते भयंकर पुरुषको देखकर सदाशिवजी विस्मित हुये ॥ ५ ॥ और उन्होंने यह विचार किया यह बड़ा बलवान् मुक्त से मारने योग्य नहीं है और यह विष्णुमेव होगा व उन विष्णुजी से मित्रता के लिये तपस्या में स्थित मैं दया करने के योग्य हूं ॥ ६ ॥ इस प्रकार चिन्तन करते हुये शिव भी विष्णुजी के आश्रयगये तदनन्तर हे ब्रह्मन् ! हुंकारके शब्दसे नरको मोहित कर ॥ ७ ॥ संसार के पालन में क्रीड़ा करते हुये प्रसन्न शिवजी उस समय चलेही जाते थे जहां कि श्रव प्रतापवान् नारायणजी ने तप किया है ॥ ८ ॥

जोकि समस्त प्राणियों के अदृश्य व विश्वात्मा तथा संसारको रचनेवाले व समर्थथे वहां पर प्राप्तहोकर साजी ने विष्णुजीको देखा ॥ ९ ॥ जोकि पृथ्वी में एक अंगूठे से स्थित व तपस्या में परायण तथा व्याधिरहित थे और युगान्त में हजारसूर्यों के तेज से घिरे व अरूप थे ॥ १० ॥ पवित्र आधार (आसन) से संयुत पुराणपुरूपोत्तम नारायणजी को देखकर सदाशिव देवजी ने कपाल को आगे दिखलाकर यह कहा कि को दीजिये विष्णुजी ने जलती हुई अग्निके समान स्थित व कपाल को हाथमें लिये रुद्रजी को देखकर चिन्तन किया ॥ ११ ॥ १२ ॥ कि इस समय भिक्षा दानव्य अन्य कौन भिक्षुक है यह योग्य है ऐसा सङ्कल्प

रूपाक्षो ददर्शमधुसूदनम् ॥ ९ ॥ एकाङ्गुष्ठस्थितम्भूमौ तपोरतमनातुरम् ॥ आन्तार्कसहस्रस्य तेजसावृतमदृशु तम् ॥ १० ॥ पुरयाधारसमायुक्तं पुराणपुरुषोत्तमम् ॥ दृष्ट्वानारायणंदेवो भिन्देहीत्युवाचह ॥ ११ ॥ कपालंद्रु शयित्वाग्रं ज्वलज्ज्वलनवात्स्थितम् ॥ कपालपाणिंसमप्रक्ष्य रुद्रं विष्णुरचिन्त ॥ १२ ॥ कोन्योगोग्योभवेद्भिक्षु भिक्षादानस्यसाम्प्रतम् ॥ योग्योयमितिसङ्कल्प्य दक्षिणंभुजमपयत् ॥ १३ ॥ भेदान्तर्गतज्ञस्तं शूलेनशशिशेखरः ॥ ततोप्रवाहउत्पन्नश्शोणितस्यविमोर्भुजात् ॥ १४ ॥ जाम्बूनदरसाकारो वज्रवालेवनिर्मलः ॥ निष्पपातकपालान्तः शम्भुनासंप्रतीच्छता ॥ १५ ॥ ऋज्वीगेववतीक्षिप्रा दीधितिवाम्बरेखेः ॥ अश्वाशद्योजनादीर्घा विस्तारेदशयोजना ॥ १६ ॥ दिव्यवर्षसहस्रंसा समुवाहहरेर्भुजात् ॥ कियन्तंकालमीशोहि भिन्नांजग्राहभावितः ॥ १७ ॥ दत्ता

नारायणेनाथ सत्पत्रेपात्रउत्तमे ॥ ततो नारायणः प्राह हरंपरमिदंवचः ॥ १८ ॥ सम्पूर्णतवपात्रं हि ततोवैपरमेश्वरः ॥ कर दाहिनी मुजाको दिया ॥ १३ ॥ व चित्तके भीतर के जाननेवाले चन्द्रमालजीने त्रिशूल से उस भुजाको छेदन किया तदनन्तर व्यापक विष्णुजी की मुजा से रक्तका प्रवाह पैदाहुआ ॥ १४ ॥ और सुवर्णके समान आकारवाला व अग्निकी ज्वालाके समान निर्मल प्रवाह कपाल केभीतर गिरा और ग्रहण करते हुये उन शिव जीसे ॥ १५ ॥ वह सीधी तथा वेगवती क्षिप्रा नदी पचास योजन लम्बी व दशयोजन चौड़ी आकाश में सूर्यनारायणकी किरणकी नाई शोभित हुई ॥ १६ ॥ और देवताओं के हजार वर्षतक वह नदी विष्णुजी की मुजा से बही और कितेक समयतक शुद्ध चित्तवाले शिवजी ने नारायण से उत्तम पात्र में दीहुई भिक्षाको ग्रहण

किया तदनन्तर विष्णुजी ने महादेवजी से इस उत्तम वचन को कहा ॥ १७ ॥ १८ ॥ कि तुम्हारा पात्र पूर्ण होगया तदनन्तर परमेश्वर सदाशिवजी जल समेत मेघके समान विष्णुजी का वचन सुनकर ॥ १९ ॥ व चन्द्रमा सूर्य तथा अग्नि नेत्रोवाले और मस्तक में चन्द्रमा से शोभित व अंगुली से घोटते हुये शिवजी ने तीनों नेत्रों से दृष्टिको कपाल से लगाकर विष्णुजी से कहा कि कपाल बहुत पूर्ण होगया विष्णुजीने शिवजी का वचन सुनकर रक्तकी धाराको हरलिया ॥ २० ॥ २१ ॥ व सदाशिवजी ने कपाल में स्थित विष्णुजीके रक्तको देवताओं के हजार वर्षोंतक दृष्टिपातपूर्वक याने दृष्टिको लगाकर अपनी अंगुली से मथा ॥ २२ ॥ तदनन्तर रुधिर के

सतोयाम्बुदनिर्घोषं श्रुत्वावाक्यंहरहरः ॥ १९ ॥ शशिसूर्याग्निनयनः शशिशेखरशंभितः ॥ कपालेदृष्टिमावेक्ष्य त्रिभिर्नैर्वर्जनादर्नम ॥ २० ॥ अङ्गुल्याघट्टयन्प्राह कपालं चातिपूरितम् ॥ श्रुत्वाहारिशम्भुवाक्यं रक्तधारां समाहरत् ॥ २१ ॥ कपालस्थं हररीशः स्वाङ्गुल्यारुधिरन्तथा ॥ दिव्यवर्णसहस्रं च दृष्टिपातमभयत् ॥ २२ ॥ मथ्यमानैततोरक्ते कललं बुद्बुदं क्रमात् ॥ बभूवचततः पश्चात् किरीटी सशरासनः ॥ २३ ॥ सहस्रवर्त्तकाजो धनुर्ज्योत्संस्पृशन्मुहुः ॥ बभूवतूणीरधरो वृषस्कन्धोऽङ्गुलित्रवान् ॥ २४ ॥ पुरुषोर्जुनसङ्काशो दिव्यमूर्तिर्दिवह ॥ तन्दृष्ट्वा भगवान् विष्णुः प्राह रुद्रमिदं वचः ॥ २५ ॥ कपाले भगवन्वकोयं प्रादुर्भूतो भवन्नरः ॥ उक्तिं श्रुत्वा हररीशमुवाच हरेश्च ॥ २६ ॥ नरो नामेति पुरुषः परमास्त्रविदां नरः ॥ यस्त्वयोक्तो नर इति नरस्तस्माद्भविष्यति ॥ २७ ॥ नरनयणौ चोभौ युगे ख्यातौ भविष्यतः ॥

मथने पर कलल व बुद्बुद क्रमसे हुआ तदनन्तर पश्चात् किरीट को धारण किये व धनुष समेत पुरुष उत्पन्ना ॥ २३ ॥ व धनुषकी पनचको बार २ स्पर्श करता हुआ वह हजार मुजाओवाला व वृष के समान कन्धेवाला और अरुण नेत्रोवाला तथा तरकस को धारण किये था ॥ २४ ॥ अर्जुन के समान दिव्य मूर्तिवाला वह पुरुष हुआ व उसको देखकर भगवान् विष्णुजीने रुद्रजी से यह वचन कहा ॥ कि हे भगवन् ! कपालमें यह कौन पुरुष प्रकट हुआ है विष्णुजी के वचन को सुनकर उनसे बोले कि हे हरे ! छुनिये ॥ २६ ॥ कि नर नामक ऐसा पुरुष पर का जाननेवाला है जो तुमसे नर ऐसा कहा गया

उससे नर होगा ॥ २७ ॥ और नर नारायण दोनों युग में अखण्ड होवेंगे देवकायोंके होने पर समर में वत्के पालन में ॥ २८ ॥ हे नारायणजी ! यह नर तुम्हारा मित्र होगा व तुम्हारे इकल्ले महासुनि की मित्रतामें तपस्याके ॥ २९ ॥ व विज्ञान की परीक्षा के बिसार में तेज होगा अधिक तेजवाला यह ब्रह्मा का दिव्य पंचम शिर ॥ ३० ॥ ब्रह्मा के तेज से प्रकाशित है और तुम्हारी मुजाके रक्तसे व मेरी दृष्टिके पड़ने से तीन तेजहैं इस कारण ॥ ३१ ॥ उनके संयोग से उत्पन्न यह युद्धमें शत्रुओं को जीतैगा और जो तुम्हारे अवस्थ होंगे और अन्य जो इन्द्र के दुःख से जीतनेवा होंगे उन दैत्योंको यह भयंकर होगा इस प्रकार

संग्रामेदेवकार्येषु लोकानांपरिपालने ॥ २८ ॥ एषनारायणसखा नरस्तवर्भागति ॥ तवएकाकिनःसख्ये तपसश्च
महामुनेः ॥ २९ ॥ विज्ञानस्यपरीक्षायै तेजोलोकेभविष्यति ॥ तेजोधिकमिदंयं ब्रह्मणःपञ्चमंशिरः ॥ ३० ॥ तेज
साब्रह्मणोदीप्तं भुजस्यतवशोणितात् ॥ ममदृष्टिनिपातचत्रीणितेजांसियान्यत ३१ ॥ तत्संयोगात्समुत्पन्नः शत्रून्
युद्धेजयिष्यति ॥ अबध्यायेभविष्यन्ति दुर्जयास्तवचापरे ॥ ३२ ॥ शक्रस्यचामरीणां तेषामेपभयङ्करः ॥ एवमुक्तव
तश्शम्भोर्विस्मितस्तस्यतेजसा ॥ ३३ ॥ हररपिसतत्रैव तुष्टावहरकेशवौ ॥ नमोद्धरेतुभ्यं नमःशङ्करविष्णवे ॥ ३४ ॥
नमस्तेशूलहस्ताय नमस्तेखड्गपाणये ॥ नमोनमस्तेमेध्याय हृषीकेशनमोस्तुते ३५ ॥ नमोस्तुवाचांपतये श्रीधरा
यनमोनमः ॥ एवंस्तुवन्तंतंव्यास कृताञ्जलिपुटन्नरम् ॥ ३६ ॥ तथैवाञ्जलिसंबद्धंहीत्वाधुकरद्वयम् ॥ उद्धृत्याथक
पालातु पुनर्वचनमब्रवीत् ॥ ३७ ॥ यएवपुरुषोरौद्रो ब्रह्मणःस्वेदसम्भवः ॥ सतुहुङ्कारवद्देन मोहनिद्रामुपागतः ॥ ३८ ॥

कहते हुये उन सदाशिवजी के व विष्णुजी के भी तेज से विस्मय में प्राप्त उसने वही पर महादेव व विष्णुजीकी स्तुति किया कि हे हर, हे ! तुम्हारे लिये नमस्कार है व शङ्कर तथा विष्णुजी के लिये प्रणाम है ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ त्रिशूल हाथवाले तुम्हारे लिये प्रणाम है व तलवा को हाथ में धारे हुये तुम्हारे लिये नमस्कार है पवित्ररूप आपके लिये प्रणाम है हे हृषीकेश ! तुम्हारे लिये प्रणाम है ॥ ३५ ॥ वाचस्पति आपके लिये प्रणाम है व श्रीधर आपके लिये नमस्कार है हे व्यासजी ! हाथोंको जोड़े इस प्रकार स्तुति करते हुये उस नरके ॥ ३६ ॥ वैसेही अंजली में बंधेहुये दोनों हाथों को पकड़कर व कपालसे ऊपर निकालकर फिर शिवजी वचन

बोले ॥ ३७ ॥ कि ब्रह्मा के पसीने से उपजा हुआ जो भयंकर पुरुष है वह हुंकार के शब्द से मोहिनिद्राको प्राप्त हुआ है ॥ ३८ ॥ उसको शीघ्रही जगावो ऐसा कहकर शिवजी अन्तर्द्धान होगये और नारायणके सामने शीघ्रही बाये चरण से मारकर उसको जगाया और वह नर क्रोधसे उठा व पसीना तथा रक्तसे उपजे हुये उन दोनों का बडा भारी युद्ध हुआ ॥ ३९ । ४० ॥ कि जिस युद्धमें चढ़ाये हुये धनुषों के शब्दों से सब भूतल शब्दयमान होगया पसीना से उपजे हुये नरके एक कवच व रक्तसे उपजे हुये पुरुषके दो मुजायें क्षोप रहीं ॥ ४१ ॥ इसप्रकार हे सुद्विज ! तुल्य होने के कारण पृथ्वी दिव्य युद्ध हुआ व तीन वर्ष कम दश सौ वर्षों

निबोधतंचत्वरितमित्युक्तवान्तर्दधेहरः ॥ नारायणस्यप्रत्यक्षं बोधयामासस्त्राङ्गनरम् ॥ ३९ ॥ वामपादेनतंहत्वा समुत्तस्थौनरोरुषा ॥ तयोर्युद्धंसमभवत्स्वेदरक्तजयोर्महत ॥ ४० ॥ विस्फारितधनुश्शब्दोदितारोषभूतलम् ॥ कवचंस्वेदजस्यैकं रक्तजस्यतथासुजौ ॥ ४१ ॥ एवंसमेनवैयुद्धं दिव्यंजातन्तुभूतले ॥ त्रिवर्षोनिवर्षाणां शतानिदशसुद्विज ॥ ४२ ॥ युद्धवतोस्समतीतानि स्वेदरक्तजयोर्युने ॥ रक्तजोद्विभुजोदृष्ट्वा कवचैकेनदृजम् ॥ ४३ ॥ बिभेदबाणवेगेनब्रह्मणःस्वेदजंनरम् ॥ ससंभ्रममुवाचेदं ब्रह्माणंमधुसूदनः ॥ ४४ ॥ मन्त्ररेणोच्छित्तंस्त्वदीयोविनिपातितः ॥ श्रुत्वा तदाकुलोब्रह्मा बभाषेमधुसूदनम् ॥ ४५ ॥ हरैन्यजन्मनिनरो मदीयोयदिहीय ॥ तदासहाय्यंकर्तव्यं वचनान्मम माधव ॥ ४६ ॥ तेनतुष्टेनसम्प्रोक्तं हरिणैवमविष्यति ॥ ततस्तयोरणमपि निवार्यमुवाचह ॥ ४७ ॥ अथान्यजन्मनि

तक याने नवसै सत्तानवे वर्ष स्वेदज व रक्तज के युद्ध करते हुये बीत गये हे मुने ! रक्त से उपजे हुये दो मुजाले नर ने एक कवच से संयुत पसीना से उपजेहुये पुरुषको देखकर ॥ ४२ । ४३ ॥ बाणों के वेगसे ब्रह्माके स्वेद से उपजे हुये नर को काट डाला और मधुसूदण्जीने संभ्रम समेत ब्रह्माजीसे यह कहा ॥ ४४ ॥ कि हे ब्रह्मन् ! मेरे नर से तुम्हारा बडा हुआ मनुष्य गिरा दिया गया उस वचन को सुनकर व्याकुल ब्रह्मार्गे विष्णुजी से कहा ॥ ४५ ॥ कि हे माधव ! यदि अन्य जन्म में मेरा नर हीन होवै तो हे माधवजी ! मेरे वचन से तुमको सहाय करना चाहिये ॥ ४६ ॥ उन्गे विष्णुजीने कहा कि ऐसाही होगा तदनन्तर उन

दोनो के युद्धको मनाकर उन से कहा ॥ ४७ ॥ कि इसके अनन्तर अन्य जन्ममें कलियुगमें मेरा नर होगा तब महासमर होनेपर वहाँ मैं उसको युक्त करूंगा ॥ ४८ ॥ इसके अनन्तर विष्णुजी ने दिनेश (सूर्य) व सुरेश (इन्द्र) जीको बुलाकर तदनन्तर आपही कहा कि पसीना से उत्पन्न व रक्त से पैदा हुये अपने अंशवाले ये भयंकर नर तुम से पृथ्वी में पालन करने योग्य है और ह्वापर के अन्तमें अपने अंश से उपजे हुये पृथ्वी में तुमसे युक्त करने योग्य हैं ॥ ४९ ॥ ५० ॥ तदनन्तर उस समय सुरेश इन्द्रजी, विष्णुजी से दुःखित वचन बोले कि हे देव, हरे ! इस मन्वन्तर में त्रेतानामक युगमें ॥ ५१ ॥ सूर्यपुत्र (सुग्रीव) के हितको चाहनेवाले

नरो मदीयौ भविता कलौ ॥ ततो महारणे जाते तत्राहं योजयामितम् ॥ ४८ ॥ विष्णुनाथ समाहूय दिनेश्वर सुरेश्वरौ ॥ उक्ताविमोनरौ रौद्रौ पालनीयौ स्वयन्ततः ॥ ४९ ॥ स्वेदजातोऽप्यसृग्जातः स्वकीयांशो धरातले ॥ स्वांशभूतोऽप्यरान्ते नियोज्यौ भूतले त्वया ॥ ५० ॥ ततो ब्रवीत्तदा विष्णुं सुरेशोऽदुःखितं वचः ॥ अस्मिन्मन्वन्तरे देव त्रेतानाम्नि युगे हरे ॥ ५१ ॥ तद्रूपेणैव महता सूर्यपुत्रा हि तार्थिना ॥ बालीनाम महाबाहुस्सुग्रीवार्थे निपातितः ॥ ५२ ॥ तेन दुःखेन तप्तोऽहं नाहंशु लामितेनरम् ॥ अग्राह्यमाणं देवेशं कारणान्तरवादिनम् ॥ ५३ ॥ विष्णुः प्रोवाच मघवन् सुवोभारावतारणे ॥ अवतारं करिष्यामि मर्त्यलोकेऽप्यहं विभो ॥ ५४ ॥ ततो हृष्टोऽभव च्छक्रो विष्णुर्भावेन तेन वै ॥ प्रतिगृह्य नरं हृष्टस्सत्यमस्तु वचस्तव ॥ ५५ ॥ इत्युक्त्वा तुरवीन्द्रोऽस प्रेषयित्वा च तौ पुनः ॥ गत्वा च पुण्डरीकाक्षो ब्रह्माणं ब्रह्मवैश्वमनि ॥ ५६ ॥ उवाच वा

बड़े भारी तुम्हारे ही रूपसे बालि नामक महाबाहुवानर सुग्रीवके लिये मारा गया है ॥ ५२ ॥ उस दुःख से मैं संतप्त हूँ इस लिये तुम्हारे नर को नहीं ग्रहण करूंगा दूसरे कारण को कहते व न ग्रहण करते हुये सुरेशजी से ॥ ५३ ॥ विष्णुजीने कहा कि हे विभो, मघवन् ! पृथ्वी के भार को उतारने में मैं भी सृष्ट्युलोक में अवतार करूंगा ॥ ५४ ॥ तदनन्तर उस विष्णुभाव याने विष्णुजी के होनेसे इन्द्रजी प्रसन्न हुये और प्रसन्न होकर नरको पकड़कर कहा कि तुम्हारा वचन सत्य होवै ॥ ५५ ॥ ऐसा कहकर उन सूर्यनारायण व इन्द्रजी को पठाकर फिर उन कमललोचन व धर्मज्ञ विष्णुजी ने ब्रह्माके मन्दिर में जाकर उस प्रातक की शुद्धिके लिये ब्रह्माजी

से कहा कि हे ब्रह्मन् ! रुद्रको मारनेकी इच्छा करते हुये तुमने निन्दित कर्म किया ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ हे देवदेवेश ! तुमने जिस लिये क्रोध से पुरुष से कहा इसकारण पाप की शुद्धि के लिये उत्तम प्रायश्चित्त को कीजिये ॥ ५८ ॥ हे ब्रह्मन् ! तीनि अग्नियोंको ग्रहण करते हुये तुम अग्निहोत्रके उपासक होवो एक गार्हपत्य दूसरी हवनीय ॥ ५९ ॥ न तीसरी दक्षिणाग्नि है इनको तीनि खंडों में कल्पित करो और गोल वेदी पै अपना को व धनुषाकार वेदी पै मुझको स्थापित करो ॥ ६० ॥ और चौकोन वेदी पै ऋग्, यजुः व साम वेदके नामों से सदाशिवजी को स्थापित करो और तपस्या से अग्नि में हवन कर उसी क्षण विष्णु से अर्पण कीजिये ॥ ६१ ॥

चंधर्मज्ञस्तस्यपापविशुद्धये ॥ कृतंजुगुप्सितकर्म ब्रह्मन्नीशं जिघांसता ॥ ५७ ॥ यत्स्वयादेवदेवेश पुमान्कोपेनभाषितः ॥ शुद्धयर्थमेवपापस्य प्रायश्चित्तंपरंकुरु ॥ ५८ ॥ गृह्णन्वह्नित्रयंब्रह्मन्नाग्निहोत्रमुपासकः ॥ एकोवैगार्हपत्यस्तु द्वितीयोहवनीयकः ॥ ५९ ॥ दक्षिणाग्निस्तृतीयस्तु त्रिखण्डेषुप्रकल्पय ॥ वर्तुलेस्थापयात्मानं मामथोधनुषाकृतौ ॥ ६० ॥ चतुष्कोणेहरंदेवं ऋग्यजुःसामनामभिः ॥ हुत्वात्वग्निञ्चतपसा हरावर्पयतक्षणात् ॥ ६१ ॥ दिव्यंवर्षसहस्रंतु हुत्वाग्निं सिद्धिमाप्स्यासि ॥ प्रायश्चित्तविशुद्धात्मा प्रतिपद्यमहेऽवरम् ॥ ६२ ॥ ततोनिष्कल्मषोभूत्वा विषादस्तेगमिष्यति ॥ ६३ ॥ इत्येवमुक्त्वाहरिरुग्रतेजा गतःस्वकीयंनिलयंमहात्मा ॥ ब्रह्मापिचित्तंपसेनिधाय समादधेऽसर्वमथाच्युतोत्तम ॥ ६४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेप्रायश्चित्तनामतृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

देवताओं के हजार वर्षोंतक अग्नि में हवनकर तुम सिद्धि को पावोगे और प्रायश्चित्त से शुद्ध चित्त वाले तुम महादेवजी को प्राप्त होकर तदनन्तर पाप रहित होकर तुम्हारा दुःखजाँवगा ॥ ६२ ॥ ६३ ॥ उग्र तेजवाले महात्मा विष्णुजी यह कहकर अपने स्थान को चले गये व ब्रह्माने भी तपस्या के लिये चित्त धरकर इस के अनन्तर विष्णुजीसे कहे हुये सब कर्म को किया ॥ ६४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायाभाषाटीकायां ब्रह्मणे विष्णुनाप्रायश्चित्तनिरूपणं नामतृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

दो० । कछो अग्नि उत्पत्ति को, सनतकुमार मुनीश । सोड चौथे अध्याय में, वर्णित चरित बरीश ॥ व्यासजी बोले कि जो यह नर नामक धनुषधारी पुरुष कपाल में पैदा हुआ था क्या वह विश्वकर्मा की उत्पत्ति में इस समय ऐसा उत्पन्न हुआ है ॥ १ ॥ व स्वामी शिवजी से बुद्धिपूर्वक कैसे उत्पन्न हुआ है और भगवान् विष्णुजी से ब्रह्मासे भेद के कारण कैसे उत्पन्न हुआ है ॥ २ ॥ शिव, विष्णु व ब्रह्माके मध्यमें किससे किस उत्पन्न हुआ है और जो हिरण्यगर्भ ब्रह्माजी हैं जोकि चार मुखवाले पैदा हुये थे ॥ ३ ॥ उनके भी पांचवों अद्भुत मुख कैसे प्राप्त हुआ है और किसप्रकार रुद्र में मन को धारते हुये वे भगवान् ब्रह्माजी स्थित हुये हैं ॥ ४ ॥ कि जिन मूढ़

व्यासउवाच ॥ योसौकपालउत्पन्नो नरोनामधनुर्धरः ॥ किमेवंसोधुनाजात उत्पत्तौविश्वकर्मणः ॥ १ ॥ कथंरुद्रेण जनितः प्रमुण्णबुद्धिपूर्वकम् ॥ विष्णुनावाभगवता ब्रह्मणाभावभेदतः ॥ २ ॥ केनकस्मात्समुत्पन्नः शङ्कराच्युतब्रह्माणाम् ॥ ब्रह्माहिरण्यगर्भो योजातश्चतुर्मुखः ॥ ३ ॥ अद्भुतंपञ्चमंवक्त्रं कथंतस्याप्युपस्थितम् ॥ सतस्थोभगवान्ब्रह्मा कथंरुद्रेमनोदधन् ॥ ४ ॥ मूढात्मनानरोयेन हन्तुंसप्रहितोहरम् ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ महेश्वरहरीणौद्वावेवव्यासतिष्ठतः ॥ तयोरविदितनास्ति सिद्धासिद्धमहात्मनोः ॥ ५ ॥ ब्रह्मणःपञ्चमंवक्त्रं यत्तदासीन्महात्मनः ॥ तस्यैवमानसः सोग्निः शिरसातेनैवधृतः ॥ ६ ॥ योनरोब्रह्मणाप्रोक्तः सोप्यग्निस्तस्यमानसः ॥ दधारतंमहादेवः कृताङ्गुल्यन्तरान्तरे ॥ ७ ॥ पूर्वेष्टृद्व्यासमुत्पत्तिमेवंतस्यमहात्मनः ॥ तस्मात्कपालादङ्गुल्या घट्यमानादजायत ॥ ८ ॥ सतंहत्वाशरेणा

विष्णु ब्रह्माजीने शिवजी को मारने के लिये नर को पठाया है सनत्कुमारजी बोले कि हे व्यासजी ! महादेवजी व विष्णुजी दोनों स्थित रहते हैं और उन महात्माओं को सिद्ध व अग्नि उत्पत्ति (अग्रकट) नहीं होता है ॥ ५ ॥ उस समय महात्मा ब्रह्माजी का जो पंचम मुख था उसी की वह मानसी अग्नि मस्तक से धारण की गई है ॥ ६ ॥ और जो नर ब्रह्माजी से कहा गया है वह भी उनकी मानसी अग्नि है अंगुली के मध्य में किये हुये उसी पुरुष को महादेवजी ने धारण किया है ॥ ७ ॥ पुरातन समय उन महात्मा की उत्पत्ति को इसप्रकार देखकर अंगुली से चलाये हुये उस कपाल से नर उत्पन्न हुआ ॥ ८ ॥ उसने समर में उसको मारकर

ब्रह्माके रजोगुण धारण किया और रजोगुणसे सत्त्वगुण मोहित हुआ क्योंकि प्रभु स्वच्छन्दतासे कार्य करनेवाले हैं ॥ ९ ॥ व्यासजी बोले कि हे मुनियोसे प्रणाम किये हुये भगवन् सनत्कुमारजी ! अग्नि कैसे उत्पन्न हुई है जिसको शिवजी ने धारण किया इसको विस्तारसे कहिये ॥ १० ॥ सनत्कुमारजी बोले कि पहले अव्यक्तादि-
कों को रचा और वह अण्ड होगया और सुवर्ण के समान शोभावाले लोकों के पितामह ब्रह्माजी पैदा हुये हैं ॥ ११ ॥ वे ब्रह्माजी देवताओं के हजार वर्षों तक बड़ी तपस्या कर भली भांति स्थित हुये इसके अनन्तर उन्होंने भूसुतः स्वः इस श्रुतिको कहा ॥ १२ ॥ पश्चात् श्रुति के योग से मनसे अग्नि उत्पन्न हुई जब पृथ्वी

जो ब्रह्मणोनिहितंरजः ॥ सुमोहरजसासत्त्वं यदृच्छाकृत्प्रभुर्यतः ॥ ९ ॥ व्यासउवाच ॥ कथमग्निःसमुत्पन्नो योनिःश-
र्वेणधारितः ॥ विस्तरणसमाचक्ष्व भगवन्नुनिवन्द्ित ॥ १० ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ अव्यक्तादीन्ससर्जादावण्डहितदजा-
यत ॥ जज्ञेसौवर्णवर्णाभो ब्रह्मालोकपितामहः ॥ ११ ॥ स्वयम्भूःसतपस्तत्त्वा दिव्यवर्षशतंमहत् ॥ संतस्थोव्याजहा-
राथभूर्भुवःस्वरितिश्रुतिः ॥ १२ ॥ श्रुतियोगात्तुमनसः पश्चादग्निरजायत ॥ अधोमुखःपपाताग्निः पृथिवीनिर्दहन्व्य-
दा ॥ १३ ॥ पाणिभ्यांब्रह्मणासोऽग्निर्भूमेरूधर्वनिवेशितः ॥ ततोदक्षिणहस्तेन वेद्यामग्निःप्रणीयते ॥ १४ ॥ पुरापतन्नधो-
ज्वाल ऊर्ध्वज्वालोयतोऽधुतः ॥ उत्तानश्चकृतोयस्माद्ब्रह्मणानिर्मितस्त्रिधा ॥ १५ ॥ ज्वालाभिःप्रज्वलन्नुर्ध्वं सर्वश-
ब्दःस्फुलिङ्गवान् ॥ हिरण्यवर्णब्रह्माणं सउवाचाग्निरुत्कटम् ॥ १६ ॥ किमर्थं तु मया देव भूमिभक्ष्यं निवारितम् ॥ बुभु-
क्ष्याहमाविष्ट आहारो मे प्रदीयताम् ॥ १७ ॥ एवमुक्तोऽग्नये ब्रह्मा स्वरोमाणि जुहावसः ॥ कृशश्च खादन्नग्निस्तु सर्वरो

को जलाती हुई अग्नि नीचे मुखकर गिरी ॥ १३ ॥ तब उस अग्निको ब्रह्माने हाथोंसे भूमि के ऊपर धारण किया उसी कारण वेदी के ऊपर दाहिने हाथसे अग्नि लाई जाती है ॥ १४ ॥ पहले गिरती हुई नीचे ज्वालावाली अग्नि जिसलिये ऊपर ज्वालावाली धारण की गई व जिस लिये उत्तान की गई उसी कारण ब्रह्मा से तीन प्रकार की अग्नि निर्माण की गई ॥ १५ ॥ ज्वालाओं से ऊपर जलती हुई चिनगारियोंवाली व सब शब्दोंवाली अग्नि ने सुवर्ण के समान रंगवाले उन ब्रह्मा से उग्रतापूर्वक कहा ॥ १६ ॥ कि हे देव ! मुझ से भूमि में भक्षण करने योग्य वस्तु किसलिये मना की गई मैं तुम्हा से संयुत हूँ इस लिये मुझको भोजन

दिया जावे ॥ १७ ॥ इसप्रकार कहे हुये उन ब्रह्माजीने अग्निके लिये अपने रोसो को हवन किया और ब्रह्माके सब रोमोको खाते हुये दुबले अग्नि देवजी ॥ १८ ॥ बोले कि मेरी न तृप्ति हुई और न मेरे शरीर को आनन्द हुआ तब ब्रह्मा ने त्वचाको हवन किया व अग्नि ने उसको खालिया ॥ १९ ॥ तदनन्तर अग्नि ने उन ब्रह्माजी से कहा कि मेरी तृप्ति न हुई तब ब्रह्माजी ने त्वचा से काटकर अपने मांसों को हवन किया ॥ २० ॥ अग्नि जी बोले कि मेरी तृप्ति न हुई और न मेरे शरीर को आनन्द हुआ तब ब्रह्माजी ने अस्थियों को हवन किया व उन अस्थियोंको खाते हुये अग्निजी बुधित रहे ॥ २१ ॥ तदनन्तर शरीरधारी ब्रह्माजी अग्नि

माणिब्रह्मणः ॥ १८ ॥ अब्रवीच्चनमेतृप्तिर्नचमेदेहनिर्धृतिः ॥ त्वचं जुहाव ब्रह्मास चखादाग्निस्तमेव च ॥ १९ ॥ अब्रवीत्तं ततो वह्निस्तृप्तिर्नास्ति ममैव हि ॥ जुहावस्वानि मां सानि त्वचोत्कृत्य प्रजापतिः ॥ २० ॥ अब्रवीच्चनमेतृप्तिर्नचमेदेहनिर्धृतिः ॥ ततो वह्निस्तृप्तिर्नचमेदेहनिर्धृतिः ॥ ततो ब्रह्मा हुताशेन कृतो देही विधातुकः ॥ तमदेहमथो वह्निं ब्रह्माणमवदक्षसः ॥ २२ ॥ अहो ब्रह्मन्नमेतृप्तिर्नचमेदेहनिर्धृतिः ॥ कुट्टेन ब्रह्मणा सोग्निर्हृकोरेण द्विधाकृतः ॥ २३ ॥ आह तूरुदतावग्नी आहारार्थं प्रजापतिम् ॥ हुंकारेण पुनर्ब्रह्मा द्विधैकैकं चकार वै ॥ २४ ॥ त्रयस्तेषां रुदन्ति तस्म रूद्रमेको हि संश्रितः ॥ क्रुद्धेन ब्रह्मणा व्यास हुंकारेणैव ताडितः ॥ २५ ॥ रोरूयमाणे चाग्नौ तु पुनर्ब्रह्मा कृपान्वितः ॥ आह कामाभिभूतानां भुङ्क्ष्व त्वं देहातवः ॥ २६ ॥ तैकांते लब्धकामस्य साद्यतिः संप्रकल्पिता ॥ अकाराग्निं सन्निविष्टं दृष्ट्वा मनसिमान

से धातुवों रहित किये गये इसके अनन्तर उन अग्निजी ने शरीरहित ब्रह्माजी से कहा ॥ २२ ॥ कि अहो ब्रह्मन् ! मेरी तृप्ति न हुई और न मेरे शरीरको आनन्द हुआ क्रोधित ब्रह्माजी ने हुंकार मे उस अग्नि को दो खण्ड किये ॥ २३ ॥ और रोते हुए उन अग्नियोंने भोजन के लिये ब्रह्माजी से कहा फिर ब्रह्माजी ने हुंकार से ताड़ित किया ॥ एक एक के दो दो खण्ड किये ॥ २४ ॥ उनके मध्यमें से तीन रोंने लगे व एक शिवजी के आश्रित हुआ वे व्यासजी ! क्रोधित ब्रह्माजीने हुंकार से ताड़ित किया ॥ २५ ॥ व अग्नि के बहुत रोंनेपर फिर ब्रह्मा जी दयासंयुक्त होकर कहा कि काम से तिरस्कृत पुरुषों की धातुवों को तुम भोजन करो ॥ २६ ॥ समय में पाई हुई

कामनावाले तुम्हारी वह जीविका कल्पित की गई मन में भलीभांति बैठे हुये मानस अकाराग्नि को देखकर ॥ २७ ॥ उकाराग्नि जल उठी और यह क्या है ऐसा कहा ब्रह्माजीने उससे कहा कि तुम भी इच्छा के अनुकूल जीविका के आश्रित होवो ॥ २८ ॥ उन ब्रह्माजीसे ऐसा कहे हुये उसने देवताओं के मध्यमें या बाहर व मुनियों के आश्रयों में इस वृत्ति (जीविका) की रुचि किया ॥ २९ ॥ तब ब्रह्माजी ने बार २ कहा कि मैं ऐसेही दूंगा जिस लिये कि हुंकार से यह दूसरी अग्नि हुई है ॥ ३० ॥ इसलिये अपमान व अभिमान समेत हुंकार जहां कहा जावै मेरी आज्ञा के शान्त होने के लिये वह जीविका होवै ॥ ३१ ॥

सम ॥ २७ ॥ अकाराग्निः प्रज्ज्वाल किमेतदिति चाब्रवीत् ॥ ब्रह्मातमाह त्वमपि यथेष्टां वृत्तिमाश्रय ॥ २८ ॥ देवमध्यै बहिर्वापि मुनीनामाश्रयेषु च ॥ इत्येवमुक्तस्तेनाशु वृत्तिमेतामरोचयत् ॥ २९ ॥ अहमेवंप्रदास्यामि पुनः पुनरुवाचह ॥ यस्मादेष द्वितीयो ग्निर्हुंकारात्समजायत ॥ ३० ॥ साभिमानोऽपमानो वा हुंकारो यत्र कथ्यते ॥ सा च वृत्तिर्ममादेशाद्बुभुक्षान्तयेतव ॥ ३१ ॥ इकाराग्निः समाहूय ब्रह्मावचनमब्रवीत् ॥ भवतोऽग्ने रियं वृत्तिरन्नमुक्तं देहरिति ॥ ३२ ॥ उकाराग्निः समाहूय ब्रह्मावचनमब्रवीत् ॥ यत्पृथिव्यां मरुस्थानं भगवंस्तत्त्वमाश्रय ॥ ३३ ॥ अहंतवविधास्यामि स्थानमाहारमेव च ॥ इत्युक्तः स तु तेनाग्निर्यः पृथिव्यां शिलाचयः ॥ ३४ ॥ यतो ग्निर्व्यासते नोक्तो गिरौ दुर्गे महा मुने ॥ उकाराग्निः स चाप्येष समुद्रे वडवामुखः ॥ ३५ ॥ सोऽपि भिन्नः समाहूतो ब्रह्मणा स्थानलिप्सया ॥ त्वञ्चक्षुः सर्वलोकस्य

इकाराग्नि को बुलाकर ब्रह्माजीने वचन कहा कि आप अग्नि की यह वृत्ति है कि भोजन किये हुये अग्नि को भस्म कीजिये ॥ ३२ ॥ व उकाराग्नि को बुलाकर ब्रह्मा ने वचन कहा कि हे भगवन् ! पृथ्वी में जो मरु (निर्जल) स्थान हो उसमें तुम आश्रित होवो ॥ ३३ ॥ मैं तुमको स्थान व आहार विधान करूंगा उन ब्रह्माजी से ऐसा कहे हुये वे अग्निदेव जी जो पृथ्वी में शिला समूह या उसमें आश्रित हुये ॥ ३४ ॥ हे महा मुने, व्यासजी ! जिस लिये कठिन पर्वत में उन व्यासजी से वह अग्नि कही गई उसी कारण वह उकाराग्नि समुद्र में वडवामुख है ॥ ३५ ॥ स्थान पाने की इच्छा से ब्रह्माने उसको भी भिन्न बुलाया और ब्रह्माजी वचन बोले कि

तुम समस्त मनुष्यों के नेत्रहो ॥ ३६ ॥ इस लिये तुम ब्राह्मणों की संस्कृतवाणी को प्रकाशित करो क्योंकि संस्कार कीहुई वाणी दैवी याने देवताओंवाली व पुण्य-
दायिनी होती है और असंस्कृतवाणी आयुर्बल को नाश करती है ॥ ३७ ॥ इस लिये ब्राह्मण की प्रकाशित वाणी पुण्यदायिनी ज्ञाननेयोग्य है और वाणी ब्राह्मणों
की माता है वह मुखमें भलीभांति स्थित है ॥ ३८ ॥ भूँटे अक्षरों के बोलने से असंस्कृतवाणी वक्ताको नाश करती है इस लिये अग्नि सदैव सं-
स्कृतवचनवाला ब्राह्मण है ॥ ३९ ॥ फिर नेत्ररहित अकाराग्नि को बुलाकर यही कहा और उसने भी नेत्रोंको मँदकर उस देववाणी को कहा ॥ ४० ॥ और अग्निने

ब्रह्मावचनमब्रवीत् ॥ ३६ ॥ तस्मात्त्वं संस्कृतांवाणीं द्विजातीनांप्रकाशय ॥ दैवीपुण्यासंस्कृताच आयुष्यंहन्त्यसंस्कृ-
ता ॥ ३७ ॥ तस्माद्द्विजातेर्विशेषा वाणीपुण्याप्रकाशितावाक्चमाताद्विजातीनां मुखेसासंप्रतिष्ठिता ॥ ३८ ॥ अनृता
क्षरविन्यासादमङ्गल्याह्यसंस्कृता ॥ वक्तांरंहन्त्यतोह्यग्निः सदासंस्कृतवाग्द्विजः ॥ ३९ ॥ आहूयभूयोकाराग्नि प्रजा-
पतिरचक्षुषम् ॥ तादेववाणीमवदत्सोपिसंमीलितेक्ष्णः ॥ ४० ॥ ब्रह्माणमाहवह्निस्तु वाचोहमुखमास्महे ॥ स्थानंमम
प्रयच्छस्व सर्वतेजोवरं परम् ॥ ४१ ॥ ब्रह्मातमाहयस्मात्त्वंतेजःस्थानंसमीहसे ॥ तस्मात्तेजोमययत्ते रविस्थानंभविष्य-
ति ॥ ४२ ॥ यस्मात्प्रपद्यतेतेजश्चभुर्भवतिदुर्बलम् ॥ तस्मात्त्वंतेजसायुक्तं पश्येदनिमिषञ्चकः ॥ ४३ ॥ इकारमथसंभि-
न्नमग्निमाहपितामहः ॥ सौम्यदृष्ट्यातुब्रह्माणं समुद्धीक्ष्यह्युपागतः ॥ ४४ ॥ यस्मान्छीघ्रंमहामत्त्व सौम्यदृष्टिरिहाग-
तः ॥ तस्मादास्याम्यहंस्थानं सर्वभूतमनोरमम् ॥ ४५ ॥ त्वंसितात्माश्चेतरश्चन्द्रमास्त्वंभविष्यसि ॥ सर्वतेजो

ब्रह्माजी से कहा कि मैं वाणीके मुखमें स्थित हूँ व समस्ततेजों में श्रेष्ठ उत्तमतेजको मुझे दीजिये ॥ ४१ ॥ ब्रह्माजी ने उससे कहा कि जिसलिये तुम तेजके स्थान को
चाहेतेहो उसी लिये जो तेजोमय सूर्यनारायणजी का स्थान है वह तुम्हारा स्थान होगा ॥ ४२ ॥ व जिस कारण तुम्हारे तेजको प्राप्त होकर नेत्र दुर्बल होताहै उस
लिये तेजसे संयुत तुमको बिन पलकभांजे कौन देखताहै ॥ ४३ ॥ इसके अनन्तर पितामहजी ने भिन्न अग्नि इकार से कहा और वह सौम्यदृष्टि से ब्रह्माको देखकर
समीप आया ॥ ४४ ॥ इससे ब्रह्माजी ने उससे कहा कि हे महाबलवान् ! जिसलिये सौम्यदृष्टिवाले तुम शीघ्रही यहां आयेहो इस कारण समस्त प्राणियों के मनोहर

स्थान को मैं दूंगा ॥ ४५ ॥ और तुम श्वेतात्मक सूर्य व चन्द्रमा होगे जोकि समस्त तेजों से अधिक, दिव्य, सौम्य व बहुतही प्रकाशितहै ॥ ४६ ॥ और उसमें स्थित होकर तुम तेजसे सबतेजोंको तिरस्कार करोगे ऐमा कहकर उसके विदाकर उसको बुलाया ॥ ४७ ॥ व यहां आइये आइये इस प्रकार हँकर मस्तक में बिठाया और वहा स्थित होकर यह पाँचवां मुख ऊपर हुआ ॥ ४८ ॥ इसप्रकारके रूपवाली अग्नि यह उकाराग्नि प्रतिष्ठित हुई इसलिये इन अग्नि व सूर्यको सूर्य निर्देश करै ॥ ४९ ॥ शिव व अग्निरूपी उत्तमदेव ने ब्रह्मासे यह कहा कि मुझको भी यथायोग्य सुन्दरस्थान को दीजिये ॥ ५० ॥ ब्रह्माने उससे कहा कि पृथ्वीतलमें

धिकोदिव्यः सौम्यः परमभासुरः ॥ ४६ ॥ तत्रस्थः सर्वतेजांसि तेजसाभिभविष्यति ॥ इत्युक्त्वा तं विसर्ज्याथ उकाराग्निं मथाह्वयत् ॥ ४७ ॥ इहैहो हीति शिरसि समादाय न्यवेशयत् ॥ तत्रस्थः पञ्चमं वक्रमूर्ध्वमेतदजायत ॥ ४८ ॥ एष एवं रूपव ह्निस्काराग्निः प्रतिष्ठितः ॥ तस्मादग्निश्च सूर्यश्च रुद्रावेतौ विनिर्दिशेत् ॥ ४९ ॥ भवाग्निरूपः परमो ब्रह्माणमिदमब्रवीत् ॥ ममापि सचिरं स्थानं प्रयच्छस्व यथा तथम् ॥ ५० ॥ ब्रह्मा तमाह कतमत् स्थानं तेरोचते तले ॥ अग्निस्तु प्रत्युवाचे दं स्थानं कथय मे परम् ॥ ५१ ॥ स्थानं नैवास्ति नो भव्यं ततो ह्येवं भविष्यति ॥ अत्र त्वास्थानुमिच्छामि यदि संरोचते तव ॥ ५२ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ लोके नित्यसमाचार लोकसंस्थिते हेतुक ॥ सम्भवार्थमिहा सत्त्वं निजसत्त्वं पराक्रमः ॥ ५३ ॥ यदि हत्वं महाज्वालस्ताभिः कलितशोभनः ॥ प्राप्स्यसे सर्वजन्तूनां भासुरन्त्वं समुत्तमम् ॥ ५४ ॥ तर्ह्येष धर्मश्चैवाद्यो मायामोहित काम्यया ॥ इत्युक्तो ब्रह्मणा सोऽपि प्रज्ज्वालसहस्रशः ॥ ५५ ॥ ततो ह्यनन्तज्वालाभिर्नानावर्णादिभिः श्रितः ॥ अकारेका

तुमको कौन स्थान रुचताहै तब अग्निने यह कहा कि मुझसे उत्तम स्थानको कहिये ॥ ५१ ॥ मेरे कल्याणदायक स्थान नहीं है उसलिये ऐसा होगा कि मैं यहां टिकने की इच्छा करता हूँ यदि तुमको रुचता हो ॥ ५२ ॥ ब्रह्माजी बोले कि हे लोकमें नित्य आचारवाले, संसारकी मर्यादाके कारण ! अपने सत्त्व व बलवाले तुम उत्पत्ति के लिये यहाँ स्थित होवो ॥ ५३ ॥ यदि बड़ी ज्वालाओंवाले तुम उन ज्वालाओं से शोभित छत्रिवाले होगे और समस्त प्राणियों के मध्य में तुम प्रकाशित उत्तम स्थान को पावोगे ॥ ५४ ॥ तो मायासे मोहित कामनाके कारण यह आदिवाला धर्महै ब्रह्मासे इस प्रकार कहेहुये वे अग्निदेव भी हजारों भाँतिसे जलतेभये ॥ ५५ ॥ तदनन्तर

अनेक रङ्गादिकोंवाली अभित उवालाओं से आश्रित हुये इसके अनन्तर ब्रह्माने अकार, इकार व उकारसे उस अग्निको शान्त किया ॥ ५६ ॥ परन्तु यह अग्नि शान्तता को न प्राप्त हुई किन्तु फिर भी बड़ी और रुद्राग्निसे तिरछा ऊपर व नीचे सब व्याप्त होगया ॥ ५७ ॥ सब और ज्वालाओं से अपना को ऊपर फेंके हुये देखकर तदनन्तर चिन्तनकर ब्रह्माजी विशेषतासे डरगये ॥ ५८ ॥ और तेजनिधान व सर्वोके स्वामी रुद्राग्निजी को जानने की इच्छा करते हुये ब्रह्माजी ने मस्तक पे अञ्जलीको धरकर प्रणामकर ऋग्, यजुः व सामवेदमें कहे हुये वेदोक्त स्तोत्रोंसे स्तुति किया ॥ ५९ ॥ ब्रह्माजी बोले कि हे सत्यतेजवाले ! परस्पर महात्मा आपके लिये प्रणाम है और अद्भुत

रोकारैश्च ब्रह्मातमथ शान्तवान् ॥ ५६ ॥ नैवासौ शान्ततां याति वह्निर्भूयोप्यवर्द्धत ॥ व्याप्तं भवाग्निना सर्वं तिर्यग्धूर्ध्वमथ स्तथा ॥ ५७ ॥ ज्वालाभिरुपरि क्षिप्तं दृष्ट्वात्मानं समन्ततः ॥ चिन्तयित्वा ततो ब्रह्मा भीतश्चैव विशेषतः ॥ ५८ ॥ शिरस्यञ्जलिमाधाय तुष्टावाथ प्रणम्य तम् ॥ तेजो निधिञ्च सर्वं शं ज्ञातुमिच्छन् प्रजापतिः ॥ निगमोक्तरहस्यैश्च ऋग् यजुः सामभाषितैः ॥ ५९ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ सत्यतेजो नमस्तेस्तु परस्परमहात्मने ॥ अद्भुतानां प्रतिश्रोत्रे तेजसां निधिरव्ययः ॥ ६० ॥ बीजं यो विश्वभावानां संमोहनविमोहनम् ॥ अन्धकारो युगावर्तं कालेकाले च दुःसहम् ॥ ६१ ॥ ऊर्ध्ववक्त्रनमस्तेस्तु सत्त्वात्मकधरात्मक ॥ ज्वलज्वालोत्पन्नजल जलजेश जलेश्वर ॥ ६२ ॥ जलजोत्फुल्लपत्राच्च ज्वलदेवदुताश न ॥ कृष्णकान्तःकृष्णमार्गः स्वर्गमार्गप्रदायकः ॥ ६३ ॥ यज्ञाहुतिसमाचार यज्ञरूपनमोनमः ॥ स्वर्णगर्भशर्मागर्भजयदेवसनातन ॥ ६४ ॥ नमोहारमहाहार स्वाहाप्रियतमो हर ॥ प्रदीप्तरोचिषे देव चित्रमानो नमोस्तुते ॥ ६५ ॥ वैश्वा

जनोंके प्रतिश्रोता के लिये नमस्कार है तुम तेजनिधान व अविनाशी हो ॥ ६० ॥ जो विश्वभावों का संमोहन व विमोहन बीजहो और अन्धकार व समय समय में दुःसह युगावर्त हो ॥ ६१ ॥ हे सत्त्वात्मक, धरात्मक, ऊर्ध्वानन ! तुम्हारे लिये प्रणाम है हे ज्वाला से उत्पन्न जलवाले, जलजेश, जलेश्वर ! प्रज्वलित होवो ॥ ६२ ॥ हे फूले हुये कमलपत्रके समान नेत्रवाले, अग्निदेवजी ! प्रज्वलित होवो आप श्याम शोभावाले श्याममार्गवाले तथा स्वर्गमार्ग को देनेवाले हो ॥ ६३ ॥ हे यज्ञाहुति-समाचार, यज्ञरूप ! आपके लिये नमस्कार है हे स्वर्णगर्भ, शर्मागर्भ, सनातन, देवजी ! आपकी जयहो ॥ ६४ ॥ हे हार, महाहार, स्वाहाप्रिय, अन्धकार !

आपके लिये प्रणाम है हे चित्रभानो, देव ! प्रकाशित ज्वालाओंवाले आपके लिये प्रणाम है ॥ ६५ ॥ हे दैत्यानर, अनल, विभो, ऊर्ध्वपावक, सर्वव्यापिन्, विभावसो, महाभाग, कृष्णवर्त्म ! आपके लिये प्रणाम है प्रणाम है ॥ ६६ ॥ सनत्कुमारजी बोले कि उससमय इसभाति स्तुति कियेहुये वे अग्निदेवजी ब्रह्मसे वचन बोले कि 'हे ब्रह्मन् ! मैं आपसे प्रसन्न हूं तुम्हारे प्रयोजन का कर्म सिद्धहोवै ॥ ६७ ॥ उससमय ऐसा कहेहुये ब्रह्माजीने बार २ प्रणामकर कहा कि हे देव ! ऐश्वर्यवान्, तुम कौनहो यह मैं जानना चाहता हूं ॥ ६८ ॥ इसके अनन्तर उसने ब्रह्माजी से कहा कि तुम प्रजापति पुरुषहो जो उत्तमरूप जाननेयोग्य है उस योगसे मुझको देखिये ॥ ६९ ॥

नरानलविभो ऊर्ध्वपावकसर्वग ॥ विभावसोमहाभाग कृष्णवर्त्मनमोनमः ॥ ६६ ॥ सनत्कुमारउवाच ॥ एवंस्तुतस्तदा
सोग्निर्विरश्चिमब्रवीद्वचः ॥ तुष्टोहंभवताब्रह्मन् भवत्कर्मप्रसिद्धतु ॥ ६७ ॥ एवमुक्तस्तदाब्रह्मा नमस्कृत्वापुनःपुनः ॥
ज्ञातुमिच्छाम्यहं देव कोसित्वंभगवानिति ॥ ६८ ॥ अब्रवीत्सोथब्रह्माणं पुरुषस्त्वंप्रजापतिः ॥ यज्ञेयं परमंरूपं तेनयो
गेनपश्यमे ॥ ६९ ॥ अथापश्यत्सदिव्येन भगवन्तंसनातनम् ॥ सर्वज्ञविधिकर्तारमीश्वरंसदसत्परम् ॥ ७० ॥ ज्वलनं
गगनम्भूमिर्दृश्यादृश्यम्परम्पदम् ॥ भूतम्भव्यंभविष्यञ्चजगत्स्थावरजङ्गमम् ॥ ७१ ॥ सदेवःकुरुतेविश्वं भुङ्क्तेसर्वंय
तःप्रभुः ॥ ततःसम्भूतिभव्येन स्तोत्रेणापिप्रजापतिः ॥ ७२ ॥ तुष्टावदेवःप्रणतः पुराणमजमव्ययम् ॥ ततोनिरुक्तवर्णञ्च
दृष्ट्वादेवःप्रजापतिः ॥ ७३ ॥ विश्वतोबाहुचरणं विश्वतोग्निशिरोमुखम् ॥ व्यक्ताव्यक्तप्रणेतारं प्रणम्यशिरसास्व
यम् ॥ ७४ ॥ तुष्टावचनमस्तेस्तु तुभ्यंविश्वभवात्मने ॥ पृथिवीवायुराकाशं यचान्यद्भुवनत्रयम् ॥ ७५ ॥ लोकालोके
इसके अनन्तर उन ब्रह्माजी ने सर्वज्ञ व विधि (ब्रह्मा) को रचनेवाले तथा कार्यकारण से परे ईश्वर व सनातन अग्निभगवान् को दिव्यदृष्टि से देखा और आकाश,
भूमि, दृश्यादृश्य, परम्पद, भूत, भव्य, भविष्य और स्थावर, जङ्गम समेत संसार को देखा ॥ ७०।७१ ॥ जिस लिये वे प्रभुदेवजी सब संसार को रचते व भोगते हैं
उसीकारण उत्पत्ति से कल्याणदायक स्तोत्रकरके ब्रह्मादेवजी ने प्रणामकर अज व अविनाशी पुराणपुरुष की स्तुति किया तदनन्तर निरुक्तवर्णवाले तथा सबओर बाहु
व चरणवाले व सब ओर अग्नि, शिर व मुखवाले और प्रकट व अप्रकट के प्रणेतार ईश्वरदेवजी को देखकरके आपही मस्तक से प्रणामकर ॥ ७२।७३।७४ ॥

कि संसारोत्पत्त्यामक तुम्हारे लिये प्रणाम है पृथ्वी, पवन, आकाश और जो त्रिलोक है ॥ ७५ ॥ व लोकालोकेश्वर, रथावर, जह्म संसार, तत्त्वसृष्टि व भूतसृष्टि व भाव-सृष्टि ॥ ७६ ॥ और आपही से नेत्रके द्वारा ब्रह्मतेजोमयात्मक को भलीभाति देखतेहुये जो कुछ वस्तु उत्पन्न है वह सब चर व अचर आपही का रूप है ॥ ७७ ॥ उस समय इस प्रकार स्तुति क्रियेहुये वे ईश अनादि भगवान् प्रभुजी ब्रह्मा से बोले कि तुमने यथायोग्य देखा ॥ ७८ ॥ नम्रतासे संयुत सो तुम इस समय सब प्रजाओं को रचो लोकोंकी स्थिति के कारण मैं कर्त्ता हूँ और तुम अनुकार करनेवाले हो ॥ ७९ ॥ पहलेही मुझ से रचाहुआ वह संसार वैसाही होनेयोग्य है उसको कीजिये ऐसा

इवरंचैव जगत्स्थावरजह्मम् ॥ तत्त्वसर्गभूतसर्ग भावसर्गतथैव च ॥ ७६ ॥ ब्रह्मतेजोमयात्मानं सम्पश्यंश्चक्षुषास्वतः ॥
यत्किञ्चिद्ब्रह्मस्तुजातंहि तत्सर्वमचरंचरम् ॥ ७७ ॥ एवंस्तुतः सतुतदा अनादिभगवान्प्रभुः ॥ अथेशः प्राह ब्रह्माणं त्वया दृश्यथातथम् ॥ ७८ ॥ सृजेदानीं प्रजाः सर्वाः सचत्वं विनयान्वितः ॥ कर्ता हि मनुकर्ता त्वं लोकानां स्थितिकारणम् ॥ ७९ ॥
कुरुष्व तत्तथा भाव्यं मया पूर्वं विनिर्मितम् ॥ इत्युक्तो देवदेवेशो ब्रह्मा वचनमब्रवीत् ॥ ८० ॥ नमस्तुभ्यं महादेव भवशर्वं नमोस्तुते ॥ त्वत्प्रसादात्प्रजासर्गं कुर्वतो मे महेश्वर ॥ ८१ ॥ सखायं प्राप्नुमिच्छामि त्वया दत्तं जगत्पते ॥ महेश्वर उवाच ॥ तुष्टस्ते ध्यायतः पुत्रकामस्य भगवन्नहम् ॥ ८२ ॥ विधातः कल्पितां देव ममोत्पत्तिं यदीच्छसि ॥ पुत्रत्वं प्राप्य हीरास्ते द्वेत्स्यामि पञ्चमं शिरः ॥ ८३ ॥ तत्र चोत्पादयिष्यामि नरनारायणानुभौ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ कथं नारायणो देवस्तपसा नन्यचेतनः ॥ ८४ ॥ कीर्तयस्व सखाधन्यः समेष्टुज्यो भविष्यति ॥ अथापश्यत्ततो ब्रह्मा तेजसा हरि मच्युतम् ॥ ८५ ॥

कहे हुये देवदेवेश ब्रह्माजी वचन बोले ॥ ८० ॥ कि हे महादेवजी ! तुम्हारे लिये प्रणाम है हे भव, शर्व ! तुम्हारे लिये प्रणाम है महादेवजी तुम्हारी प्रशंसा से मेरे ऊपर प्रसन्न होवें ॥ ८१ ॥ हे जगत्पते ! तुमसे दियेहुये मित्रको मैं पाने के लिये चाहता हूँ महादेवजी बोले कि जिसलिये पुत्रकी कामनावाले व सृष्टिको चाहनेवाले तथा ध्यान करतेहुये तुम्हारे ऊपर मैं प्रसन्न हूँ ॥ ८२ ॥ हे विधाता, देव ! यदि कल्पित कीहुई मेरी उत्पत्तिको चाहतेहो तो पुत्रता को प्राप्त होकर ईश्वर मैं पांचवे मस्तकको काटूंगा ॥ ८३ ॥ व उसमें दोनों नरनारायणको उत्पन्न करूंगा ब्रह्माजी बोले कि तपस्यासे सावधान बुद्धिवाले नारायणदेवजी ॥ ८४ ॥ जोकि पूजनीय व प्रशंसनीय हैं वे

किस प्रकार मेरे मित्र होंगे यह कहिये इसके अनन्तर तेजसे उन अच्युत विष्णुजीको जोकि सर्वव्यापी व जानेयोग्य तथा शिवनारायणात्मक हैं देखा तदनन्तर नारायणप्रभुजी ने महेश्वरजी के सत्त्वतेज को किया तदनन्तर वहापर श्रीयुक्त व शक्तिसे सम्मित उन देवजी ने अंगुली से स्पर्श करते ब्रह्मासे वचन कहा ॥ ८५ ॥ ८६ ॥ कि तुम्हारा उत्तम ब्रह्मा नाम होगा व नारायण का अनुगामी ऋषि मनुष्यों के देखने के लिये होगा जोकि सब धनुषधारियों में श्रेष्ठ है ॥ ८८ ॥ हे महाबल, नारायणजी ! यह मेरी शक्ति है ऐसा कहकर भगवान् देवजीने उस अग्नि को हाथ से पकड़ लिया ॥ ८९ ॥ व दाहिने हाथकी अंगुली के नखके मध्यमें स्थित किया तं सर्वगामिनं गम्यं शिवनारायणात्मकम् ॥ महेश्वरस्य ते जोहि सत्त्वं नारायणः प्रभुः ॥ ८६ ॥ चकार सततस्तत्र श्रीयुक्तः शक्तिसम्मितः ॥ अङ्गुल्या संस्पृशन् देवो ब्रह्माणमब्रवीद्वचः ॥ ८७ ॥ ब्रह्माते परमं नाम ऋषिर्नारायणानुगः ॥ भविता लोकवीक्षार्थं श्रेष्ठः सर्वधनुष्मताम् ॥ ८८ ॥ नारायणमहावीर्यं शक्तिरेषामदीयका ॥ इत्युक्त्वा भगवान् देवस्तमर्गिनपाणिनाग्रहीत ॥ ८९ ॥ दक्षहस्ताङ्गुलिनखमध्यस्थं समचीकरत् ॥ इति संस्कृत्य सततं नरञ्चैव महेश्वरम् ॥ ९० ॥ ब्रह्मणो दर्शयित्वाथ तत्रैवान्तरधीयत् ॥ अथाब्रवीत्ततो ब्रह्मा अग्निं तच्च युगक्षये ॥ ९१ ॥ स्पृशन् दक्षिणवामाभ्यां शान्तयन्निवर्तंगिरा ॥ पुत्रौ च भृगुवङ्गिरसौ भवितारौ न संशयः ॥ ९२ ॥ वंशविख्यातकर्माणौ वैवभववतां तव ॥ द्विधा सम्भज्यते नाग्निं स्पृष्ट्वै ज्ञो भविष्यति ॥ ९३ ॥ भवन्तौ तिष्ठतस्तत्र पृथिव्यां दानमाश्रितौ ॥ ९४ ॥ तस्मादेवं विधातव्यौ निर्मथ्यविधिपूर्वकम् ॥ अतोऽवत्थेशमीगर्भे संयोगस्तत्र पठ्यते ॥ ९५ ॥ मार्गवोऽङ्गिरसश्चैव द्विविधो देव उच्यते ॥ तस्मात्सुरहितः

इस प्रकार संस्कार कर सदैव नर व महेश्वरजी को ॥ ९० ॥ ब्रह्माको दिखलाकर वहीपर अन्तर्द्वान होगये तदनन्तर युगके प्रलयमें दाहिने व बायें हाथसे स्पर्श करते हुये ब्रह्माजीने वाणीसे शान्त करते हुये से उस अग्निसे बोले कि भृगु व अङ्गिरा पुत्र होंगेंगे इसमें सन्देह नहीं है ॥ ९१ ॥ और यहीपर वे तुम्हारे वंशके विख्यातकर्म वाले होंगेंगे इस लिये अग्निके दो विभागकर सृष्टिकी यज्ञहोणी ॥ ९३ ॥ और उस पृथ्वी में दानमें आश्रित होकर आपलोग स्थित होवो ॥ ९४ ॥ इन लिये विधिपूर्वक मथकर इस प्रकार उन दोनोंको करना चाहिये इसीकारण उस विषय में पीपल व शमीके गर्भमें संयोग पड़ा जाता है ॥ ९५ ॥ और मार्गव व अङ्गिरस दो प्रकार

का देव कहा जाता है उसी कारण देवताओं का हित चौथा श्रेष्ठ ऐसा कहा जाता है ॥ ६६ ॥ हे व्यासजी ! इस प्रकार पूर्वजन्म में यह नर उत्पन्न हुआ है व इस प्रकार ब्रह्मा के पाचवां मुख प्राप्त हुआ है ॥ ६७ ॥ इस प्रकार जो मनुष्य अति उत्तम तेज की सृष्टि को जानता है वह शान्त, दान्त व जितेन्द्रिय ब्रह्मा की सालोक्य नामक मुक्तिको प्राप्त होता है ॥ ६८ ॥ हे व्यासजी ! चिन्त में उत्तम बुद्धिवाला जो पुरुष पशुपति महादेवजी के माहात्म्य को सूचित करनेवाली इस अग्नि की उत्पत्ति को सुनता है और जो श्रद्धा से शुद्धचित्तवाला होता है व जो ब्राह्मणों तथा देवताओं को भक्ति से सुनाता है वह शिवजी से शुद्धचित्तवाला पुरुष शिवलोक में देवताओं से भलीभांति पूजा

श्रेष्ठ श्रुतार्थ इति कथ्यते ॥ ९६ ॥ एवं व्याससमुत्पन्नो नरोऽसौ पूर्वजन्मनि ॥ एवं तु ब्रह्मणो वक्रं पञ्चमं समपद्यत ॥ ९७ ॥ एवं विबुध्यते यो वै तेजःसर्गमनुत्तमम् ॥ ब्रह्मणो याति सालोक्यं शान्तो दान्तो जितेन्द्रियः ॥ ९८ ॥ एतद्योगिनसमुद्भवंपशुपतेर्माहात्म्यसंमुखं चित्ते साधुमतिः शृणोति स तं यः श्रद्धया भावितः ॥ यो व्यासद्विजदेवताप्रमुखतः संश्रावयेद्भक्तिः सोऽत्यर्थं भवभावितः शिवपुरे समपूज्यते देवतैः ॥ ९९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेऽग्नेरुत्पत्तिर्नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥
व्यास उवाच ॥ बुद्धे निवारिते तत्र रक्तस्वेदजयोः पुरा ॥ किंकृतं ब्रह्मणा तत्र प्रायश्चित्तं ह्यकर्मणा ॥ १ ॥ जनार्दनेन किं कर्म शङ्करेण च यन्मुने ॥ एतत्सर्वं समाख्याहि प्रसीद वदतावर ॥ २ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ ब्रह्माकरोदग्निहोत्रं वनोषधिफलच्छदैः ॥ शस्तैः कुशसमिद्धिश्च यथोक्तं हरिणा पुरा ॥ ३ ॥ बदर्याश्रममासाद्य नरनारायणादृषी ॥ तेषु तस्तौ त

जाता है ॥ ९६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां अग्नेरुत्पत्तिवर्णनं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥
दो० । कुशस्थली वन मध्य महें, छोडवो ईश कपाल । सोइ पंचम अध्याय में वर्णित चरित रसाल ॥ व्यासजी बोले कि पुरातन समय वहां पर रक्त व पसीने से उपजे हुये नरोका मुद्द मना करने पर कर्म रहित ब्रह्माने वहां क्या प्रायश्चित्त किया है ॥ १ ॥ विष्णुजीने क्या कर्म किया है व हे मुने ! शिवजीने जो कर्म किया हो इस सबको कहिये हे वदतावर ! प्रसन्न होवो ॥ २ ॥ सनत्कुमारजी बोले कि पुरातन समय जिस प्रकार विष्णुजीने कहा था उसीभांति वन की ओपधि, फल व पत्तों में तथा उत्तम

कुशों व समिधाओं से ब्रह्माने अग्निहोत्र किया ॥ ३ ॥ और बदरिकाश्रममें प्राप्त होकर उन नरनारायण ऋषियोंने समस्त प्राणियोंके हितके लिये भयंकर तप किया ॥ ४ ॥ और इस पृथ्वीमें घूमतेहुये देवेश सदाशिवजी कपालको हाथमें लिये कुशस्थलीमें प्राप्त होकर उसके उत्तम वनमें पैठते भये ॥ ५ ॥ जो कि अनेक भांतिके वृक्षों व लताओंसे व्याप्त तथा अनेकप्रकारके पुष्पोंसे शोभित व अनेक भांतिके पक्षियोंसे व्याप्त और अनेकप्रकारके मृगोंसे संयुतथा ॥ ६ ॥ और जोकि पवनसे वृक्षोंमें पुष्प भारके आमोद (बहुत सुगन्ध) से वासित था और बुद्धिपूर्वक मानो धरेहुये फलों व फल्लोंसे पूजित था ॥ ७ ॥ व पक्ष, कच्छ फलोंसे उपजेहुये अनेकप्रकारकी सुगन्ध

पश्वोग्रं हितार्थसर्वदेहिनाम् ॥ ४ ॥ कपालपाणिर्देवेशः पर्यटन्वसुधामिमाम् ॥ कुशस्थलीसमासाद्य प्रविष्टस्तद्वनोत्तमम् ॥ ५ ॥ नानाद्रुमलताकीर्णं नानापुष्पोपशोभितम् ॥ नानापक्षिसमाकीर्णं नानामृगसमाकुलम् ॥ ६ ॥ द्रुमपुष्पभरामोदवासितंयत्सुवायुना ॥ बुद्धिपूर्वमिवन्यस्तफलपुष्पैस्सुपूजितम् ॥ ७ ॥ नानागन्धरसाद्यैश्च पक्वापक्कफलोद्भवैः ॥ फलैस्सुवर्णरूपाढ्यैरासमन्तान्मनोरमैः ॥ ८ ॥ जीर्णपत्रवृणादीनिशुष्ककाष्ठफलानिच ॥ बहिःक्षिपतिजातानि मारुतानुग्रहादिव ॥ ९ ॥ नानापुष्पसमूहानां गन्धमादायमारुतः ॥ शीतलोवातितंभूमिदेशंयत्रविवासयन् ॥ १० ॥ हरितस्निग्धनिच्छिद्रद्रुमाणान्त्रकोटरैः ॥ वृक्षैरनेकसङ्घैश्च भूषितंशिखरान्वितैः ॥ ११ ॥ अरोगिदर्शनयैश्चसुवृत्तैःक्वचिदुद्भूतैः ॥ कुटुम्बमिवविप्राणां सिद्धिर्वैभातिसर्वतः ॥ १२ ॥ शोभनैर्वायुसङ्कीर्णैर्ङ्कुरैश्चावृताहुमाः ॥ कुलीनैरिवनिच्छिद्रैः स्वगुणैःप्रावृतानराः ॥ १३ ॥ पवनोद्धूतशिखरैःस्पर्शयन्तिपरस्परम् ॥ आरात्पतन्तिचान्योन्यंपुष्पाःशा

व रसादिकों से तथा सुवर्णस्वरूपसे संयुत फलों से सब ओर घिराथा ॥ ८ ॥ और पुराने पत्तों व तृणादिकों को तथा सूखे काष्ठों व फलोंको पवन मानो दयासे बाहर फकता था ॥ ९ ॥ और जहाँपर अनेक भांतिके पुष्पसमूहोंकी सुगन्धको लेकर उस भूमिस्थान को वासित करताहुआ शीतल पवन चलता था ॥ १० ॥ और हरित व चिकने छिद्ररहित वृक्षोंके खोडोंसे और शिखरसे संयुत अनेक संख्यक वृक्षोंसे शोभित था ॥ ११ ॥ और कहीं उत्पन्न हुये रोगरहित मनोहर व गोल वृक्षोंसे ब्राह्मणोंके कुटुम्बकी नाई सब ओर सिद्धि शोभित थी ॥ १२ ॥ व पवनसे व्याप्त सुन्दर अंकुरोंसे वृक्ष विरेथे जैसे कि छिद्ररहित कुलीन अपने गुणोंसे संयुत मनुष्य होवें ॥ १३ ॥

और पवनसे कंपयेहुये शिखरों से वृक्ष आपस में स्पर्श करते थे व शाखाओंके अवतंस (सुमके) रूपी पुष्प आपसमें लगकर सर्मापही गिरतेथे ॥ १४ ॥ और कहीं अमरों से संयुत केसरोवाले पुष्पोंसे नागोंके वृक्ष श्यामतारकावाले श्वेत नयनोंकी नाई शोभित थे ॥ १५ ॥ व कहीं पुष्पोंसे संयुत शिखरोंवाले कर्णिकारके वृक्ष वैसेही शोभितथे जैसे कि विवाह में स्त्री पुरुष मलीभांति शोभित होते हैं ॥ १६ ॥ उत्तमपुष्पों के आच्छादनो से मेउड़ी की पंक्तियां शोभित हैं जैसे कि मूर्तिमान् वनदेवता पूजित होकर शोभित होते हैं ॥ १७ ॥ कहीं २ उत्तम पुष्परूपी गहनो से श्वेत कुन्दकी लतायें शोभित हैं जैसे कि प्रत्येक दिशाओं में उदय हुये बाल चन्द्रमा शोभित

स्वावतंसकाः ॥ १४ ॥ नागवृक्षाः क्वचित्पुष्पैर्भ्रमरालीनकेशरैः ॥ नयनैरिवशोभन्ते धवलैः कृष्णतारकैः ॥ १५ ॥ पुष्पसम्पन्नशिखराः कर्णिकारद्रुमाः क्वचित् ॥ यथैवहि विवाहे च शोभते साधुदम्पती ॥ १६ ॥ सुपुष्पविभवाटोपैः सिन्धुवा रम्यपङ्क्तयः ॥ मूर्तिमन्त्यइवामान्ति पूजितावनदेवताः ॥ १७ ॥ क्वचित्क्वचित्कुन्दलताः सुपुष्पाभरणोज्ज्वलाः ॥ दिक्षुदिक्षुचशोभन्ते बालचन्द्रा इवोदिताः ॥ १८ ॥ अतीवदुर्गमार्गेषु कान्तारादुत्थितालताः ॥ पुष्पिताः पुष्पविटपैर्वीजयन्ति इवोत्थिताः ॥ १९ ॥ शालार्जुनाः क्वचिद्भ्रान्ति वनोद्देशेषु पुष्पिताः ॥ धौतकौशेयवासोभिः प्रावृताः पुरुषोत्तमाः ॥ २० ॥ अभियुक्ताः सुवल्लीभिः पुष्पितास्तुद्रुमास्तथा ॥ उपगूढाविराजन्ते नारीभिरिवसुप्रियाः ॥ २१ ॥ चूताश्च तिलकाश्चैव मञ्जरीभिः करैरिव ॥ वायुनुन्नाभिरन्योन्यं दौकन्तीव हि सज्जनाः ॥ २२ ॥ परस्परञ्च संयुक्तैस्तिलकाशोकपल्लवैः ॥ हस्तैर्हस्तान् स्पृशन्तीव सुहृदश्चित्तसङ्गताः ॥ २३ ॥ फलपुष्पनतावृक्षाः पैशल्येनैव सज्जनाः ॥ अन्योन्यमर्पयन्तीव

होते हैं ॥ १८ ॥ अत्यन्त कठिन मार्गोंमें दुर्गम मार्गसे उठीहुई फूली लतायें पुष्पवाले वृक्षोंसे पवन डुलातीहुई सी उठी हैं ॥ १९ ॥ व कहींपर वनके स्थानोंमें फूले हुये सांखू व अर्जुनके वृक्ष शोभितहैं जैसे कि धोयेहुये ऊनी वस्त्रोंसे धिरेहुये उत्तम पुरुष होंवें ॥ २० ॥ और उत्तम लताओंसे संयुत फूलेहुये वृक्ष शोभित हैं जैसे कि स्त्रियोंसे आलिङ्गित उत्तम प्रिय सोहतेहैं ॥ २१ ॥ और आम्र व तिलकके वृक्ष पवनसे प्रेरित मञ्जरियोंके द्वारा आपसमें चलते हैं जैसे कि हाथोंके द्वारा सज्जन चलते हैं ॥ २२ ॥ आपसमें मिलेहुये तिलक व अशोकके पत्तोंसे मानो चित्तमें प्राप्त मित्र हाथों से हाथोंको स्पर्श करतेहैं ॥ २३ ॥ फलों व फूलोंसे झुंकेहुये वृक्ष मानो चतुरता

से सज्जन लोग आपसमें उत्तम फूलों व फलोंको अर्पण करते हैं ॥ २४ ॥ और पवनके भिलापसे छोड़ेहुये ठण्डेजलों से वृक्ष मानो संसारमें भलीभांति आयेहुये सत् पुरुषोको प्रीतिके देनेके लिये स्थित है ॥ २५ ॥ और पुष्पोंके भारसे मानो अपनी शोभाके लिये प्राप्त होतेहैं जैसे कि समान प्रभाववाले पुरुषको प्राप्त होकर पुरुष ईर्ष्यासे चलते हैं ॥ २६ ॥ और उत्तम मत्तकों से संयुत मतवाले पक्षी पुष्पादिकों के शोभारूपी गहनोंवाले कंभसंयुक्त शिखरों से नाचते हैं ॥ २७ ॥ और अमृतवल्ली याने गुर्च की लता के आश्रित अमर पवन से चलायेहुये होकर वल्ली समेत नाचते हैं मानो प्यारी समेत मनुष्य हैं ॥ २८ ॥ कहींपर पुष्ट कुन्दलताओं से घिरेहुये वृक्ष वैसेही शोभित

मुपुष्पाणिफलानिच ॥ २४ ॥ मारुताङ्गिलिष्टिनिर्मुक्तैः पादपाःशीतवारिभिः ॥ आर्यान्समागताल्लोकैः प्रीतिंदातुमि
वस्थिताः ॥ २५ ॥ पुष्पाणामिवभारेण स्वशोभार्थैर्व्रजन्तिवै ॥ समप्रभावमासाद्य पुरुषाःस्पृह्येवहि ॥ २६ ॥ पुष्पादि
शोभाभरणैः शिखरैःकम्पसंयुतैः ॥ नृत्यन्तिपक्षिणोमत्तायुक्ताःशोभनशेखरैः ॥ २७ ॥ भृङ्गाःपवनविक्षिप्तामृतवल्ली
लताश्रिताः ॥ सवल्लीकाःप्रनृत्यन्ति मानवाइवसंप्रियाः ॥ २८ ॥ पुष्पाभिःकुन्दवल्लीभिः पादपाःक्वचिदावृताः ॥ भान्ति
तारागणैश्चित्रैः शरदीवनभस्तलम् ॥ २९ ॥ इमाणामप्यथाग्रेषु पुष्पितामाधवीलताः ॥ शिखराइवशोभन्ते रचिता
बुद्धिपूर्वकम् ॥ ३० ॥ हरिताःकाञ्चनच्छायाः फलिताःपुष्पिताद्रुमाः ॥ सौहार्ददर्शयन्तीवनराःसाधुसमागमैः ॥ ३१ ॥
पुष्पकिञ्जल्कबहुलाःकिञ्जल्कबहुलोदराः ॥ किञ्जल्कमत्तभ्रमरा विशदाइवसारिकाः ॥ ३२ ॥ शिरीषपुष्पसङ्काशाः
शुकामिथुनतःक्वचित् ॥ कीर्तयन्तिगिरिश्चित्राः पूजिताब्राह्मणायथा ॥ ३३ ॥ संयुक्ताःसहचारिएया मयूराश्चित्रबहि

हैं जैसे कि शरद्वृक्ष में विचित्र नक्षत्रगणों से आकाश शोभित होता है ॥ २९ ॥ और वृक्षा के ऊपर भागों में फूलीहुई नेवारीकी लतायें बुद्धिपूर्वक रचेहुये शिखरों की नाई शोभित हैं ॥ ३० ॥ हरित व सुवर्णके समान छायावाले तथा फले व फूले हुये वृक्ष मानो सज्जनके रंगयोग में पुरुष मित्रता को दिखलाते हैं ॥ ३१ ॥ पुष्पों में बहुत केसरवाले व मध्य में बहुत केसरवाले तथा केसर से मत्त भ्रमरोंवाले वृक्ष उत्तम सारिकाओं की नाई शोभित हैं ॥ ३२ ॥ कहीं पर मिथुन याने खी के संयोग से सिरसा के फूल की नाई सुवा विचित्र वचनों को कहते हैं जैसे कि पूजेहुए ब्राह्मण होवें ॥ ३३ ॥ और विचित्र पंखोंवाले मयूर सहचारिणी याने साथ

चलनेवाली स्त्री समेत वन के मध्य में घूमते हैं मानो लोकों के अन्त में स्थित हैं ॥ ३४ ॥ और अनेक भाँति के अद्भुत शब्दोंवाले पक्षियों के समूह बोलते हैं मानो मनोहर उत्तम वनको रमण करने योग्य करते हैं ॥ ३५ ॥ अनेक प्रकार के मृगों से व्याप्त व सदैव प्रसन्न पक्षियोंवाला वह वन नन्दनवन के समान मनको व दृष्टिको बढ़ानेवाला है ॥ ३६ ॥ वैसे रूपवाले तथा नन्दनवन के समान उत्तमवनको कपाल हाथवाले भगवान् शिवजीने सौम्यदृष्टिसे देखा ॥ ३७ ॥ व भलीभाँति आयेहुये शिवजीको देखकर उन सब वृक्षकी पंक्तियों ने शिवजी के लिये भक्तिसे पुष्पों की संपदाको निवेदन कर छोड़ा है ॥ ३८ ॥ वृक्षों के पुष्पों को ग्रहण कर उन

- एणः ॥ वनान्तरे संचरन्ति लोकान्त इव संस्थिताः ॥ ३४ ॥ कृजन्ति पत्रि सङ्घाता नानाद्रुता विरविणः ॥ कुर्वन्ति रमणीयं हि रमणीयं वनं शुभम् ॥ ३५ ॥ नाना मृगसमार्कीर्णं नित्यं समुदिताण्डजम् ॥ तद्वनं नन्दनसमं मनोदृष्टि विवर्द्धनम् ॥ ३६ ॥ कपालपाणिर्भगवांस्तथारूपं वनोत्तमम् ॥ ददर्श शङ्करो दृष्ट्वा सौम्ययानन्दनोपमम् ॥ ३७ ॥ तावत्पङ्क्तयस्सर्वा दृष्ट्वा रुद्रं समागतम् ॥ निवेद्य शम्भवे भक्त्या मुमुक्षुः पुष्पसम्पदाम् ॥ ३८ ॥ पुष्पप्रतिग्रहं कृत्वा पादपानां महेश्वरः ॥ वरं वृणीध्वं भद्रं वः पादपानित्युवाच सः ॥ ३९ ॥ एवमुक्ते भगवता तस्मै निरवग्रहाः ॥ उचुः प्राञ्जलयस्सर्वे नमस्कृतत्वा महेश्वरम् ॥ ४० ॥ वरं ददामि देवेश प्रपन्नजनवत्सल ॥ इहैव विपिने नित्यं भगवन्सन्निहितो भव ॥ ४१ ॥ एतन्परमः कामो देवदेवनमोस्तुते ॥ त्वंचेह ससिर्देवेश वनेऽस्मिन् विश्वावना ॥ ४२ ॥ सर्वात्मना प्रसन्नास्त्वां याचामो ब्रुतमं वरम् ॥ इत्युक्तः पादपैस्सर्वैश्शरणागतवत्सलः ॥ ४३ ॥ वरन्ददौ पादपैर्भ्यः प्रोच्यमानं मया शृणु ॥ महेश्वर उवाच ॥ वाढम्मे मनसा वा

महादेवजी ने वृक्षों से यह कहा कि तुम लोगों का कल्याण होवै वरदानको मांगिये ॥ ३९ ॥ शिवजी से ऐसा कहनेपर हठरहित सब वृक्ष हाथों को जोड़ महादेवजी को प्रणाम कर बोले ॥ ४० ॥ कि हे शरणागतजनप्रिय देवेशजी ! यदि वर देतेहो तो हे भगवन् ! इसी वनमें सदैव स्थित होवो ॥ ४१ ॥ हे देवदेव ! हम लोगों की यही उत्तम कामना है हे विश्वभावन्, देवेशजी ! यदि तुम इस वनमें बसोगे ॥ ४२ ॥ तो सर्वात्मा से प्रसन्न होतेहुए हमलोग उत्तम वरदान को मांगेंगे सब वृक्षोंसे इस प्रकार कहेहुये उन शरणागतप्रिय शिवजीने ॥ ४३ ॥ वृक्षों के लिये वरदान दिया कि मुझसे कहेहुये वचनको सुनिये महादेवजी बोले कि बहुत अच्छा

इस उत्तम वनमें मेरा सदैव मनसे निवास होगा ॥ ४४ ॥ और फिर तुमलोगोंको मैं वरदान देता हूँ क्योंकि मेरा दर्शन वृथा नहीं होता है न अग्नि, न पवन, न जल, न सूर्यनारायणकी किरणोंका घाम ॥ ४५ ॥ और न विजली न वज्रपात न शीत तुमलोगोंके रोग उत्पन्न करेंगा और इच्छाके अनुकूल जानवाले व इच्छाके अनुसार रूपवाले तथा इच्छाके अनुकूल फल देनेवाले ॥ ४६ ॥ व तपस्या और संन्यासे ज्वलित लोचनवाले पुरुषों को इच्छाके अनुकूल दर्शनवाले तथा मेरी प्रसन्नता से उत्तम शोभासे संयुक्त होंगे ॥ ४७ ॥ इसप्रकार उन वरदायक सदाशिवजीने वृक्षोंके ऊपर दयाकिया और हजारवर्ष टिककर कपालको भूमिमें फेंक दिया ॥ ४८ ॥

सो नित्यमन्नवनोत्तमे ॥ ४४ ॥ वरन्ददामिभूयोवो नवथादर्शनम्मम ॥ नाग्निर्नवायुर्नजलं नसूर्यकिरणतपः ॥ ४५ ॥ नविद्युदशनिश्शतं रुजंवोजनयिष्यति ॥ कामगाःकामरूपफलप्रदाः ॥ ४६ ॥ कामसन्दर्शनाः पुंसां तपःसन्ध्याज्वलद्दृशाम् ॥ श्रियापरमयायुक्ता मत्प्रसादाद्भविष्यथ ॥ ४७ ॥ एवंसवरदःशम्भुरनुजग्राहपादपात्र ॥ स्थित्वावर्षसहस्रन्तु कपालंचाक्षिपद्भुवि ॥ ४८ ॥ जितिन्निपततातेन चकम्पेचरसातलम् ॥ विवशास्तत्यजुर्वेलांसागराःक्षुभितोर्मयः ॥ ४९ ॥ शक्राशनिहतानीव व्याघ्रव्यालान्वितानिच ॥ शिखराणिव्यशीर्यन्तपर्वतानांसहस्रशः ॥ ५० ॥ देवसिद्धविमानानि गन्धर्वनगराणिच ॥ प्रस्फुरन्तिविनिषेपेवुर्विनेशुश्चधरातले ॥ ५१ ॥ कल्पान्तमेघाश्चात्यन्तं जगतसङ्घातदर्शनाः ॥ ज्योतिर्ग्रहाञ्छादयन्तो बभूवुस्तीर्णभास्कराः ॥ ५२ ॥ महतातस्थशब्देन जडान्धवधिरंक्रतम् ॥ बभूवव्याकुलंसर्वत्रैलोक्यंसचराचरम् ॥ ५३ ॥ सुरासुराणांसर्वेषां शरीराणिमनांसिच ॥ अवसेदुश्चकम्पुश्च

और पृथ्वीमें गिरतेहुये उससे रसातल कांपउठा व चलायमान लहरियेवाले समुद्रोंने विवशा होकर मर्यादाको छोड़ दिया ॥ ४९ ॥ और व्याघ्रों व सर्पोंसे समुत पर्वतोंके हजारों शिखर इन्द्रके वज्रसे मारेहुयेसे टूटगये और देवताओं व सिद्धोंके विमान तथा चमकते हुये गंधर्वोंके नगर पृथ्वीमें गिरपड़े व नाश होगये ॥ ५० ॥ और अत्यन्त संसारके नाश में दर्शनवाले कल्पान्त के मेघ ज्योतिर्ग्रहों की आच्छादन करतेहुये सूर्यको उल्लंघन करनेवाले हुये ॥ ५१ ॥ और उसके बड़ेभारी शब्द से जड अन्ध व बधिर किया हुआ रथावर जंगम समेत सब संसार व्याकुल होगया ॥ ५२ ॥ और सब देवताओं तथा दैत्योंके शरीर व मन दुःखित हुये व कांपउठे और

यह क्या है ऐसा उन्होंने कहा ॥ ५४ ॥ और इन्द्र आदिक सब भी देवता धीरे की अवलम्बनकर भलीभांति आकर व अहलोक में प्राप्त होकर अन्धासे यह बोले ॥ ५५ ॥ कि हे भगवन् ! यह कारणसे उत्पातका दर्शन क्या है इसको कहिये कि जिससे काल व कर्म से संयुत समस्त त्रिलोक कपाया गया ॥ ५६ ॥ और समुद्रों की भिन्नमयी देवाला कल्पान्त होगया किन्तु न चलनेवाले चारों भी दिग्गज चलयमान होगये ॥ ५७ ॥ और किस कारण सातों समुद्रों के जलसे पृथ्वी धिरगई व हे भगवन् ! विन प्रयोजन सबकी उत्पत्ति नहीं है ॥ ५८ ॥ जैसा यह शब्द सुनागया है वैसा न हुआ है न सुनागया है कि जिस बड़े भारी भयंकर शब्दसे त्रिलोक विकल

किमेतदिति विब्रिरे ॥ ५४ ॥ धैर्यमालम्ब्य सर्वेपि समागम्येन्द्रपूर्वकाः ॥ ब्रह्मलोकं समासाद्य ब्रह्माणमिदमूचिरे ॥ ५५ ॥ किमेतद्भगवन् ब्रूहि निमित्तोत्पातदर्शनम् ॥ त्रैलोक्यं कम्पितं येन संयुक्तं कालकर्मणा ॥ ५६ ॥ जातं कल्पावसानञ्च भिन्नमर्यादसागरम् ॥ चत्वारो दिग्गजाः किन्तु बभूवुरचलाश्चलाः ॥ ५७ ॥ धरा समावृता कस्मात्सप्तसागरवारिणा ॥ उत्पत्तिर्नास्ति सर्वस्य भगवन् निष्प्रयोजनम् ॥ ५८ ॥ यादृशो यं श्रुतः शब्दो न भूतो नापि विश्रुतः ॥ त्रैलोक्यमाकुलं येन कृतं तैरद्रेण भूयसा ॥ ५९ ॥ एवं मुक्तो ब्रवीद्ब्रह्मा परमेशानुभावितः ॥ ६० ॥ मत्पृष्ठममराः सर्वे शृणुध्वंतत्र कारणम् ॥ निश्चयेनात्र विज्ञेयं श्रद्धधानैर्यथाविधि ॥ ६१ ॥ सुखं छित्तवानस्वाग्रेण मद्देहात्पञ्चमं शिरः ॥ कपालपाणिर्भगवान् विष्णो राश्रममभ्यगात् ॥ ६२ ॥ ययांचि पात्रमादाय भिजानारायणमप्रति ॥ उत्पत्पातमुनिस्तत्र नरो नाम धनुर्धरः ॥ ६३ ॥ ततः कुशस्थलीमेत्य भगवांस्तद्वनोत्तमम् ॥ विवेश तस्मार्गेण पुष्पामोदाभिनन्दितम् ॥ ६४ ॥ अनुग्राह्याथ भगवान् व

होगया ॥ ५६ ॥ इस प्रकार कहे हुये व परमेश सदाशिवजी से बुद्धिका निश्चय किये हुये ब्रह्माजी बोले ॥ ६० ॥ कि हे देवताओ ! उस विषयमें मुझसे पूछे हुये कारणको सब लोग सुनो और विधिपूर्वक निश्चय से इस विषयमें श्रद्धावानोंको जानना चाहिये ॥ ६१ ॥ कि भगवान् शिवजी नल के अग्रभागमें मेरे शरीर से पांचवें मस्तकको सुखपूर्वक काटकर कपालको हाथमें लिये वे विष्णुजीके आश्रमको गये ॥ ६२ ॥ और उन्होंने पात्रको लेकर नारायणसे भिक्षा मांगा व उस कपालमें धनुष-धारी नर नामक मुनि उत्पन्न हुआ ॥ ६३ ॥ तदनन्तर भगवान् शिवजीने द्वारकापुरी में आकर पुण्यकी अत्यन्त मनोहर सुगन्धसे प्रशंसित उस उत्तम वन में वृजो के

मार्गसे प्रवेश किया ॥ ६५ ॥ और सर्वत्र प्राप्त पक्षियोंवाले उस वनके ऊपर दयाकर संसारके ऊपर कृपा करनेके लिये भगवान् शिवजीने वहाँके निवासकी रीति किया ॥ ६५ ॥ और हाथमें स्थित जो कपालथा उसको भगवान् शिवजीने पृथ्वी में धर दिया उसीसे यह भूमि कर्पाई गई व त्रिलोक विकल होगया ॥ ६६ ॥ उसकी रक्षाके लिये तुमलोग मेरे साथ शिवजीके समीप प्राप्त होवो और आराधन कियेहुये वे भगवान् शिवजी तुम लोगों को वरदान देवेंगे ॥ ६७ ॥ ऐसा कहकर भगवान् ब्रह्मा जी उन देवता, दैत्यों समेत उस वनस्थानको गये जहाँ कि वृषध्वज शिवजी थे ॥ ६८ ॥ और शिवजीको चाहनेवाले तथा प्रसन्न मनवाले उन सर्वोंने पुण्यासे संयुत

नंतत्सर्वगण्डजम् ॥ जगतोत्तुग्रहार्थाय तत्रवासमरोचयत् ॥ ६५ ॥ तत्कपालंकरस्थंयन्यस्तंभगवताक्षितौ ॥ तेनै
षाकम्पिताभूमिः कृतवैलोक्यमाकुलम् ॥ ६६ ॥ तद्रक्षार्थं विरूपाक्षं प्रापद्यतमयासह ॥ आराध्यमानो भगवान् प्रदा
स्यति वरं हि वः ॥ ६७ ॥ इत्युक्त्वा भगवान् ब्रह्मा सह तैर्देवदानैर्वै ॥ जगाम तद्वनोद्देशं यत्रास्ते वृषभध्वजः ॥ ६८ ॥ प्रहृष्ट
मनसस्सर्वे कोकिलालापलापितम् ॥ पुष्पान्वितं वनं तद्वै विविशुश्शङ्करेण सवः ॥ ६९ ॥ सम्प्राप्तं सर्वदेवैस्तद्वनं नन्दनसं
मितम् ॥ सुवल्लीगृहशोभाढ्यं सुदृढं शुशुभे तदा ॥ ७० ॥ दृष्ट्वा तद्वनमुत्तमं तनुभृतां प्रोह्वासकंचेतसां नानासु फलपुष्प
पादपवनैरासेवितं सर्वतः ॥ ब्रह्मन्बर्हिणं हंससारसरैर्वर्मैर्गङ्गकमत्स्यान्वितं द्रक्ष्यामो हरमत्र चेतसिसुराः प्राप्सुर्दंते तदा ॥
७१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे देवागमो नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

उस वनमें प्रवेश किया ॥ ६५ ॥ नन्दनवनके समान देवताओं से प्राप्तहुआ वह उत्तम लतागृहों की शोभासे संयुत वन उससमय बहुत दृढतापूर्वक शोभित हुआ ॥ ७० ॥ हे ब्रह्मन् ! देहधारियों के चित्तोंको आनन्ददायक व अनेक भांतिके उत्तम फल फूलवाले वृक्षों के वनोसे सब ओर सेवित तथा मयूर, हंस व सारसोंके शब्दों से तथा मेढकों व मछलियोंसे संयुत उस उत्तम वनको देखकर उससमय उन देवताओंने चित्तमें आनन्द पाया कि हमलोग यहाँ सदाशिवजीको देखेंगे ॥ ७१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे देवीदयालुमिश्राधिरचितायां भाषाटीकायां पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

दो० १। छोड़ो ब्रह्म कपाल शिव, डरे सकल सुर वृन्द । सोइ छठे अध्याय मे, कथा ग्रहे सुखकन्द ॥ सनत्कुमारजी बोले कि इसके अनन्तर समस्त पुष्पांसे शोभित वनमें पैठकर देखनेकी इच्छावाले वे देवता यहां शिव देवजी हैं यहा शिव देवजी हैं यह कहकर पैठतेभये ॥ १ ॥ व महादेवजीको द्वंद्वतेहुये उन देवताओंने अद्भुत वन के अन्तको नहीं देखा और देवताओंने बहुत वनको देखा ॥ २ ॥ उनसे शिवजी बोले कि तुम लोगोंका कल्याण होवै और विना तपस्या के तुम लोग नहीं देखोगे महादेवजी को द्वंद्वतेहुये भी तुम शंकरजीको नहीं देखोगे ॥ ३ ॥ तदनन्तर उत्तम योग्य वचनको हृदयमें स्मरणकर ब्रह्माजी देवताओं से बोले कि सदैव उन शिव

सनत्कुमारउवाच ॥ प्रविश्याथवनन्देवाः सर्वपुष्पोपशोभितम् ॥ इहदेवोन्नदेवोत्र विविशुस्तोदिदृक्षवः ॥ १ ॥ अद्भुतस्यवनस्यान्तं नतेददृशिरेशुराः ॥ विचिन्वन्तोमहादेवं देवैर्बहुविलोकितम् ॥ २ ॥ तानुवाचमुभद्रवो नद्रक्ष्यथतपोविना ॥ विचिन्वन्तोविरूपाक्षं नैवापश्यतशङ्करम् ॥ ३ ॥ मुमुक्षुहृदयेस्मृत्वा ब्रह्मादेवांस्ततोब्रवीत् ॥ त्रिविधोदर्शनोपायस्तस्यदेवस्यसर्वदा ॥ ४ ॥ श्रद्धाज्ञानेनतपसा योगेनैवनिगद्यते ॥ सकलंनिष्कलंवापि देवंपश्यन्तियोगिनः ॥ ५ ॥ तपस्विनस्तुसकलं ज्ञानिनोनिष्कलंपरम् ॥ समुत्पन्नेपिविज्ञाने मन्दश्रद्धोनपश्यति ॥ ६ ॥ भक्त्यापरमयोपेतः परंपश्यन्तियोगिनः ॥ द्रष्टव्योनिर्विकारोसौ प्रधानपुरुषेश्वरः ॥ ७ ॥ नादीक्षितैरतोदेवाः शैवदीक्षांप्रपद्यथ ॥ कर्मणामनसावाचा नित्ययुक्तामहेश्वरे ॥ ८ ॥ तपश्चरथभद्रवो रुद्राराधनतत्पराः ॥ शिवदीक्षांप्रपन्नानां भक्तानांचतपस्विनाम् ॥ ९ ॥

देवजीके दर्शनका उपाय तीनभांतिका है ॥ १ ॥ याने श्रद्धापूर्वक ज्ञान, तपस्या व योगसे कहा जाता है कला समेत या कलारहित शिव देवजी को योगीलोग देखते हैं ॥ ५ ॥ व तपस्वी लोग कला समेत शिवजीको देखते हैं और ज्ञानोलोग कलारहित शिवजीको देखते हैं और ज्ञान उत्पन्न होने पर भी न्यून श्रद्धावाला पुरुष नहीं देखता है ॥ ६ ॥ और उत्तम भाँतिसे संयुक्त योगी लोग परम पुरुषको देखते हैं विकाररहित ये प्रधान पुरुषेश्वर दीक्षारहित जनों से नहीं देखने योग्य है इसलिये देवताओं ! शिवजीकी दीक्षामें प्राप्त होवो और कर्म, मन व वचनसे शिवजीमें नित्ययुक्त होकर ॥ ७ ॥ शिवजी के आराधनमें तत्पर तुम लोग तपस्या

करो तुम लोगों का कल्याण होवै शिवदीक्षामें प्राप्त भक्तों व तपस्वियोंको ॥ ९ ॥ सब समयमें मुझे दर्शन देना चाहिये ब्रह्माके हित वचनको सुनकर शिवजीके देखनेमें पड़े हुये मनवाले उन्होंने ब्रह्मासे यह कहा कि हे सुरोत्तम, ब्रह्मन् ! सर्वोको मार्ग व विधिसे शिवदीक्षाको दीजिये क्योंकि हम लोगों के उस विषयमें आप कारणहो शिवदीक्षासे दीक्षादेनेकी इच्छावाले ब्रह्माने सुनकर इसके अनन्तर विचारेहुये वचनको शीघ्रहीदेवताओंसे कहा कि हेदेवताओ ! शिवयज्ञके लिये बहुतही सामग्रियोंको लाइये ॥ १० ॥ १३ ॥ व यहां वेदी बनाइये और अष्टमूर्तिवाले शिवजी पूजने योग्य हैं इसके अनन्तर देवताओं ने ब्रह्मा के वचनको सुनकर सब किया ॥ १४ ॥ नम्रवेशोवाले देवता

सर्वकालविशेषेण दातव्यं दर्शनम् मया ॥ ब्रह्मणो वचनं श्रुत्वा हितमेव तदाचते ॥ १० ॥ शिवेक्षा विष्टमतयो ब्रह्माणमिदं मब्रुवन् ॥ मार्गेण विधिना चैव शिवदीक्षां सुरोत्तम ॥ ११ ॥ प्रयच्छ ब्रह्मन् सर्वेषां तत्र नः कारणं भवान् ॥ श्रुत्वाथ वचनं ब्रह्मा प्रत्युवाच विचारितम् ॥ १२ ॥ सन्दिदीक्षयिषुः क्षिप्रममराञ्छिवदीक्षया ॥ शिवयज्ञार्थं सम्भारानानयध्वमलंसु राः ॥ १३ ॥ वेदीप्रकल्प्यतामत्र यष्टव्योऽष्टतनुश्शिवः ॥ पद्मयोनिवचः श्रुत्वा चक्रुस्सर्वमतस्मुराः ॥ १४ ॥ विनीतवै शाः प्रणता अनेनोक्तं समन्वयः ॥ शिवप्रसादसम्प्राप्त्यै षण्कलज्ञानमीरितम् ॥ १५ ॥ यज्ञं चकार विधिना दीक्षां चन्द्रा धधारिणः ॥ पद्मयोनिं पुरस्कृत्य तदा दीक्षां प्रयोगतः ॥ १६ ॥ अनुजग्राह देवांस्तान् परेच्छां प्रेरितः क्वचित् ॥ ततो ब्रतानां प्रवरं व्रतं दिव्यं महाप्रभुः ॥ १७ ॥ तेभ्यो ददौ देवताभ्यो सतदप्यविरोधवित् ॥ पथ्यते शिवशाखायां महापाशुपतं व्रतम् ॥ १८ ॥ शैवं यथादितं यच्च आगमाचारचेष्टितम् ॥ शिवाराधनमुख्यानां मुनीनां तीव्रतेजसाम् ॥ १९ ॥ सदानु

प्रणाम कर इनसे कहेहुये वचन के अनुगामी हुये व शिवजी की प्रमदताके लिये बहुत ज्ञान कहागया ॥ १५ ॥ विधिसे चन्द्रार्धधारी शिवजीकी यज्ञकिया व दीक्षाको ग्रहणकिया ब्रह्माको अगाडीकर उस समय दीक्षाके प्रयोगसे ॥ १६ ॥ कभी उत्तम इच्छासे प्रेरणा किये हुये शिवजीने उन देवताओं के ऊपर दयाकिया तदनन्तर वैर को न जाननेवाले उन महाप्रभु शिवजीने व्रतोंक मध्यमें उस उत्तम व्रतको उनके लिये दिया शिवशाखा में महापाशुपत व्रत पढ़ा जाता है ॥ १७ ॥ १८ ॥ जो

कि शास्त्रों के आचारमें चेष्टित यथोदित दैवव्रत है और तीव्र तेजवाले व शिवजीके आराधनमें मुख्य मुनियोंके ऊपर ॥ १९ ॥ शिवजी सदैव दया करनेवाले हैं इस लिये साथही बुद्धिसे वह रौद्र शिवव्रत प्रार्थना किया गया ॥ २० ॥ और विस्मयको छोड़कर सुवर्ण के अण्डेसे उपजेहुये ब्रह्मने उनके लिये भस्म नामक उस कामिक व्रतको दिया जो कि कहाहुआ सदैव शुभ होता है ॥ २१ ॥ व पापोंका नाशक दुःखविनाशक तथा पुष्टि, लक्ष्मी व बलको बढ़ानेवाला है और सिद्धिदायक, यशकारक व सुन्दर तथा कलियुग के पापों को छुड़ानेवाला है ॥ २२ ॥ इसलिये सब यज्ञसे भस्मस्नान करतेहुये सावधान मनुष्य इन्द्रियों को दमन करनेवाले व

ग्राहकः शम्भुः सर्वदैवैः प्रकल्पितम् ॥ तदेवंप्रार्थितंबुद्ध्या व्रतरौद्रशिवंसमम् ॥ २० ॥ न तेभ्यो विस्मयं त्यक्त्वा प्रायच्छ
त्कनकाण्डजः ॥ कामिकं भस्मनामानं सर्वदा कीर्तितं शुभम् ॥ २१ ॥ पापघ्नं दुःखशमनं पुष्टिमावलंबद्धं नम् ॥ सिद्धिदं
कीर्तिकृतकान्तं कलिकल्मषमोक्षकम् ॥ २२ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन भस्मस्नानं समाहिताः ॥ कुर्वन्तो मानवादान्ताः
शान्ताश्च सुजितेन्द्रियाः ॥ २३ ॥ सर्वेकमण्डलुधरास्सर्वैरुद्राक्षधारिणः ॥ अनिष्टदर्शनालापसङ्गत्यागविवर्जिताः ॥
२४ ॥ एवं व्रतधरास्सर्वे वने तस्मिन्महेश्वरम् ॥ आराधयंस्तमीशानं व्रतेनैव उमाधवम् ॥ २५ ॥ भक्त्या परमया युक्ता वि
धिना परमेण च ॥ कालेन महता ध्यानाद्देवं ज्ञात्वा मनोगतम् ॥ २६ ॥ सद्रथानाग्निनिर्दग्धकल्मषाश्च श्रियान्विताः ॥ तदा
गत्वा सुराञ्छम्भुः प्रत्यक्षो भगवानभूत् ॥ २७ ॥ स नत्कुमार उवाच ॥ ब्रह्मदत्तवरा देवास्सर्वे शर्वानुभाविताः ॥ समचीकरं

शान्त और इन्द्रियोंको जीनेवाले होते हैं ॥ २३ ॥ सब देवता कमंडलुको धारे व सब रुद्राक्षको धारण किये और अशुभ के दर्शन, वार्तालाप, संग व दानसे रहित हुये ॥ २४ ॥ इस प्रकार उस वनमें व्रतोंको धारण कियेहुये सर्वों ने पार्वतीके पति शिवजी को व्रतहीसे आराधन किया ॥ २५ ॥ और परमभक्ति से संयुत वे उत्तम विधिसे व बहुत समय के कारण ध्यानसे सदाशिव देवजीको मनमें प्राप्त जानकर ॥ २६ ॥ शिवजीके ध्यान की अग्निसे जलेहुये पापोंवाले व लक्ष्मीसे संयुत हुये तब देवताओं के समीप जाकर भगवान् शिवजी प्रत्यक्ष हुये ॥ २७ ॥ सनत्कुमारजी बोले कि ब्रह्मासे दियेहुये वरदानवाले सब देवताओं ने शिवजी से शुद्ध चित्तवाले

होकर वहांपर तपकिया व ईशान (सदाशिव) जी से भावित याने शुद्धचित्तवाले ब्रह्माने भी तपस्या किया ॥ २८ ॥ और देवताओं के हज़ारवर्ष बीतनेपर उत्पन्न दया वाले वे देवेश्वरेश्वर शिवजी अनेक भाति के भूषणों से भूषित व अनेक भाति केगणों समेत प्रज्वलित होकर देवताओं के दर्शन को प्राप्तहुये जो गण कि अपने बलसे गर्वको नाश करनेवाले व भयंकर तथा भयानक जंतुओंको नाश करनेवाले थे ॥ २९ ॥ ३० ॥ व इच्छा के अनुकूल रूपवाले व कामनारहित तथा सब काम-नाओंसे संयुत थे व हाथियों के समान शरीरवाले थे ॥ ३१ ॥ और अणिमादिक दिव्यगुणोंवाले और योगैश्वर्य नामवाले व चलतेहुये केश, जिह्वा व दाढ़ों के कट-

स्तपस्तत्र ब्रह्मापीशानभावितः ॥ २८ ॥ गतेवर्षसहस्रेस दिव्येदेवेश्वरेश्वरः ॥ जातानुकम्पोदेवानां दीप्तोदर्शनमेयिवा
न ॥ २९ ॥ गणैर्नानाविधैस्सार्द्धं नानाभूषणभूषितैः ॥ स्वबलेन च दक्षैर्घोरैर्घोरविधातिभिः ॥ ३० ॥ कामरूपैरकामैश्च सर्व
कामसमन्वितैः ॥ करीन्द्रवरटाटोपपाटनैः सिंहदेहिभिः ॥ ३१ ॥ अणिमादिगुणैर्दिव्यैर्गोमयैर्गन्धर्व्यादिनामभिः ॥ व्यालो
लकेशरसनादंष्ट्राकटकटोभ्रकैः ॥ ३२ ॥ व्याघ्रव्यालानलैर्द्विः काककङ्कमुखैस्तथा ॥ अरूपैः समरूपैश्च सुरूपैर्वेदुरूप
कैः ॥ ३३ ॥ एकद्वित्रिशिरोभिश्च बहुशीर्षैश्च बहुशीर्षैश्चैव नानारूपविराजितैः ॥ ३४ ॥ बहुनेत्रैरनेत्रैश्च
एकद्वित्रिविलोचनैः ॥ एककर्णैर्द्विकर्णैश्च बहुकर्णैरकर्णकैः ॥ ३५ ॥ एकद्वित्रिपुनासैश्च बहुनासैरनासकैः ॥ एकजङ्घैर्द्विजङ्घै
श्च बहुजङ्घैरजङ्घकैः ॥ ३६ ॥ एकपादद्विपादैश्च बहुपादैरपादकैः ॥ गौरश्यामैः श्यामगौरैः सितैः कर्बुरकैस्तथा ॥ ३७ ॥

कटाने से भयंकर थे ॥ ३२ ॥ और व्याघ्रों व सर्पोंके समान मुखवाले तथा भयंकर व कौवा और कंक पक्षी के समान मुखवाले थे और रूपरहित व समान रूपवाले तथा सुन्दर रूपवाले व बहुत रूपोंवाले थे ॥ ३३ ॥ और एक, दो, तीन, मस्तकोंवाले व बहुत शिरोवाले तथा शिररहित व एक, दो, तीन शिखाओंवाले व अनेकभाति के रूपों से शोभित थे ॥ ३४ ॥ और बहुत नेत्रोंवाले व नेत्ररहित तथा एक, दो, तीन लोचनोंवाले और एक कानवाले व दो कानोंवाले और बहुत कानोंवाले व कानों से हीन थे ॥ ३५ ॥ और एक, दो, तीन नासिकाओंवाले व बहुत नासिकाओंवाले और नासिकारहित थे व एक जङ्घावाले तथा दो जङ्घावाले व बहुत जङ्घों

वाले और जङ्घों से हीन थे ॥ ३६ ॥ व एक पांववाले, दो पैरोंवाले व बहुत पांववाले और चरणहीन थे व गौर व श्याम रंगवाले तथा श्याम गौर रङ्गवाले व श्वेत तथा विचित्र रङ्गवाले थे ॥ ३७ ॥ और सर्पों के हार व कङ्कणोंवाले व सर्पों के जनेऊवाले और त्रिशूल, तलवार व पट्टिश अस्त्रको धारे तथा मुशुएडी (बन्दूक) व परिघ (दहमर्दा) अस्त्रोंवाले थे ॥ ३८ ॥ और चक्र, आरा, धनुष, कालदण्ड अस्त्रोंको हाथमें लिये व गदा, मुद्गर, पत्थर व सुसल को हाथमें लिये थे ॥ ३९ ॥ और वज्र, शक्ति, अशनि, प्राप्तवाले थे ॥ ४० ॥ और चक्र, आरा, धनुष, कालदण्ड अस्त्रोंको धारण करनेवाले और भस्मा व नगरों को बजाते हुये तथा बीणा, पणव व गोमुख बाजोंको बजाते थे ॥ ४० ॥ व मृदङ्ग, मर्दल, ढोल, डमरू, डिंडिम व भाला शस्त्रोंको धारण करनेवाले और भस्मा व नगरों को बजाते हुये तथा बीणा, पणव व गोमुख बाजोंको बजाते थे ॥ ४० ॥ व मृदङ्ग, मर्दल, ढोल, डमरू, डिंडिम

मुजङ्गहार व लयैर्नाग यज्ञोपवीतकैः ॥ शूलासिपट्टिशधरैर्भुशुरिडपरिघायुधैः ॥ ३८ ॥ चक्रकचक्रोदण्डकालदण्डास्त्रपाणिभिः ॥ गदामुद्गरपाषाणमुसलायुधहस्तकैः ॥ ३९ ॥ वज्रशक्त्यशनिप्रासकुन्तशस्त्रविधारिभिः ॥ भस्माभेरीर्वादयद्भिर्वाणापणवगोमुखान् ॥ ४० ॥ मृदङ्गमर्दलान्वक्त्रासङ्खुडिरिडमर्भरान् ॥ हङ्गकान्पणवाद्यांश्च वाद्यान् वादद्भिरचक्रैः ॥ ४१ ॥ एवं नानाविधैरौद्रैर्भीमैर्भूमपरक्रमैः ॥ गणेश्वरैः सुदुर्द्वर्षैर्वृतः सूर्याग्रहेरिव ॥ ४२ ॥ आविर्भवमभवान् सगणैः परिवारितः ॥ संपश्यतां तदा व्यासब्रह्मादीनां दिवौकसाम् ॥ ४३ ॥ अथ ब्रह्मादयो देवा दृष्ट्वा ग्रेण ननायकम् ॥ तेजसाध्यासितास्तस्य बभूवुर्भ्रान्ततेजसः ॥ ४४ ॥ ततो बलम्ब्यते धैर्यं दृष्ट्वा देवं यथा विधि ॥ षडङ्गवेदयो गेन हृष्टचित्तवपुर्धराः ॥ ४५ ॥ शिरो गतैरञ्जलिभिः पादेभ्यश्च मर्हीकृतैः ॥ तुष्टुबुःसृष्टिसंहारस्थितिकर्तारभीश्वरम् ॥ ४६ ॥ देवा ऊचुः ॥ नमः शिवाय शान्ताय सगणाय सनन्दिने ॥ वृषासनाय साम्याय शक्तिशूलधराय च ॥ ४७ ॥

भस्माभ, हुडुक व पणवादिक बाजोंको बजाते हुये पूजन करनेवाले थे ॥ ४१ ॥ इस प्रकार अनेक प्रकारके भयङ्कर व भयानक बलवाले, दुर्धर्ष शैव गणनायकों से शिव जी धिरे थे जैसे कि ग्रहोंसे धिरे हुये सूर्यनारायण होवे ॥ ४२ ॥ हे व्यासजी ! उस समय देखते हुये ब्रह्मादिक देवताओं के मध्यमें गणोंसे धिरे हुये वे भगवान् सदाशिव जी प्रकट हुये ॥ ४३ ॥ इसके अनन्तर ब्रह्मादिक देवता गणनायक को आगे देखकर उनके तेजसे, स्थित होते हुये अभितते जवाले हुये ॥ ४४ ॥ तदनन्तर धैर्यको अवलम्बन कर सदाशिवजीको देखकर मस्तक पै प्राप्त अञ्जलियोंसे व पृथ्वी में प्राप्त चरणों से, उपलक्षित व प्रसन्नचित्त तथा शरीर को धारे हुये उन देवताओं ने सृष्टि

संहार व पालन करनेवाले महादेवजी की स्तुति किया ॥ ४५ ॥ देवता बोले कि गणोंसमेत व नन्दीसमेत शान्त शिवजी के लिये नमस्कार है व धूप पै आसन वाले, सौम्य व शक्ति तथा त्रिशूल को धारनेवाले शिवजी के लिये प्रणाम है ॥ ४७ ॥ और दिशायें तथा चर्मवस्त्रवाले व उत्तमचित्त तथा तीव्रतेजवाले के लिये प्रणाम है और ब्रह्म व ब्रह्मशरीरवाले तथा ब्रह्मसे योजित शिवजी के लिये प्रणाम है ॥ ४८ ॥ अन्धकविनाशक के लिये व सुरेशजी के लिये नमस्कार है और पंचमुखवाले तथा समस्त रोगों के हरनेवाले रुद्रजी के लिये प्रणाम है ॥ ४९ ॥ व गिरिश, सुरेश तथा ईशानजी के लिये नमस्कार है व भीम, उग्रस्वरूप व विजय के लिये नमस्कार है नमस्कार है ॥ ५० ॥ देवताओं व दैत्यों के स्वामी व संन्यासियों के स्वामी के लिये प्रणाम है और शुण्ड व प्रचण्डदण्डवाले तथा उत्तम

नमोदिक्चर्मवस्त्राय मुचेतस्तीव्रतेजसे ॥ ब्रह्मणेब्रह्मदेहायब्रह्मणायोजितायच ॥ ४८ ॥ नमोऽन्धकविनाशाय सुरेशायनमोनमः ॥ रुद्रायपञ्चवक्त्राय सर्वरोगापहारिणे ॥ ४९ ॥ गिरिशायसुरेशाय ईशानायनमोनमः ॥ भीमायोग्रस्वरूपाय विजयायनमोनमः ॥ ५० ॥ सुरासुराधिपतये यतीनांपतयेनमः ॥ शुण्डायचण्डदण्डाय वरखट्वाङ्गधारिणे ॥ ५१ ॥ विरूपाक्षशुभाख्याय विश्वरूपायैवैनमः ॥ शान्तायचनमोज्ञाय त्रिनेत्रायनमोनमः ॥ ५२ ॥ वेधसेविश्वरूपाय विश्वसंहारिणेनमः ॥ भक्तानुकम्पिनेत्यर्थं रुद्रज्ञानपरायच ॥ ५३ ॥ विरूपायसुरूपाय रूपानांशतधारिणे ॥ पञ्चास्यायशुभास्याय चन्द्रास्यायनमोनमः ॥ ५४ ॥ वरदायवरार्हाय सुकर्मयनमोनमः ॥ त्रिनेत्रत्राणमस्माकं त्रिपुरघ्नविधीयताम् ॥ ५५ ॥ वाञ्छनःकायभावैस्त्वां प्रपन्नानांमहेश्वर ॥ सनत्कुमारउवाच ॥ एवंस्तुतस्तदादेवैर्विरञ्ज्याद्यैस्तथा

स्वदाङ्ग को धारनेवाले शिवजी के लिये नमस्कार है ॥ ५१ ॥ व विरूपाक्ष तथा शुभाख्य के लिये व विश्वरूप के लिये नमस्कार है व शान्त तथा विद्वान् के लिये प्रणाम है व त्रिलोचनजी के लिये नमस्कार है नमस्कार है ॥ ५२ ॥ और विश्वरूप ब्रह्म के लिये व संसार के संहार करनेवाले के लिये प्रणाम है और अत्यन्त ही भक्त के ऊपर दया करनेवाले व रुद्रज्ञान में परायण के लिये प्रणाम है ॥ ५३ ॥ व विरूप तथा सुरुप और सैकड़ों रूपों के धारनेवाले के लिये प्रणाम है और पञ्चमुख, शुभानन तथा चन्द्राननजी के लिये प्रणाम है ॥ ५४ ॥ और वरदायक, वरकेयोग्य व उत्तम कर्मवाले के लिये प्रणाम है प्रणाम है हे त्रिपुरविनाशक, त्रिलोचन, महेश्वरजी !

वचन, मन व शरीर की चेष्टाओं से तुम्हारी शरणमें प्राप्त हमलोगोंकी रक्षाकीलिये सनत्कुमारजी बोले कि उस समय ब्रह्मादिक देवताओंसे स्तुति कियेहुये सदाशिव ॥ ५५॥ ५६ ॥ सुरेश्वरजी ईश्वरने ब्रह्मादिक देवताओंके दुबले शरीरों को देखकर और दिव्य प्रतापको धारण कियेहुये तीनप्रकार के अन्तःकरण से आराधन को देखकर कहा कि हे महाभागो ! बहुत अच्छा बहुत अच्छा तुम लोगोंने सदैव व्रतकी उपासना कियैहै ॥ ५७॥ ५८ ॥ और मेरे दर्शनकी इच्छा से आपलोगोंने बहुतही श्रद्धासे इस वैश्वविधि से मेरा अत्यन्त आराधन कियैहै ॥ ५९॥ व्रतमें टिकेहुये मनुष्य व देवता भी मुझको देखते हैं यदि मैं तुमलोगों को किसी उत्तम वरदानों को दूँ ॥ ६०॥

इस वैश्वविधि से मेरा अत्यन्त आराधन कियैहै ॥ ५९॥ व्रतमें टिकेहुये मनुष्य व देवता भी मुझको देखते हैं यदि मैं तुमलोगों को किसी उत्तम वरदानों को दूँ ॥ ६०॥
ह्रः ॥ ५६ ॥ शरीराणिविलोक्येशः कृशान्यथदिवौकसाम् ॥ दिव्यप्रतापधारेण त्रिविधेनान्तरात्मनाम् ॥ ५७ ॥ आ
राधनंसमीक्ष्याह ब्रह्मादीनांसुरेश्वरः ॥ साधुसाधुमहाभागाः शश्वद्ब्रतमुपासितम् ॥ ५८ ॥ देवेनानेनविधिना अशमा
राधितोह्यहम् ॥ भवद्भिः श्रद्धयात्यर्थं ममदर्शनकाङ्क्षया ॥ ५९ ॥ व्रतस्थामाहिपश्यन्ति मानुषादेवता अपि ॥ यद्यहंच
प्रयच्छामि कांश्चिद्वोहिवराञ्छुमान् ॥ ६० ॥ एकैकशोद्वित्रिशोवा समस्तेभ्यस्समेनतत् ॥ सर्वकामप्रसिद्ध्यर्थं दास्या
मिहोषदेवताः ॥ ६१ ॥ हितायभवतान्देवा आगत्योज्जयिनीम्प्रति ॥ त्रिसंकपालंचमया किम्पुनर्भद्रमस्तुवः ॥ ६२ ॥
देवाञ्जुः ॥ किंकृतंहितमस्माकं कपालंक्षिपतात्वया ॥ किमर्थकम्पिताभूमिलोकैवैव्याकुलीकृतम् ॥ ६३ ॥ नैतंनिरर्थं
कन्देव कथ्यतामत्रकारणम् ॥ ईश्वरउवाच ॥ युष्मद्वितार्थमेतद्देव भयंविनिहितंकृतम् ॥ ६४ ॥ देवानामनुरक्षार्थं श्रूय
तामत्रकारणम् ॥ असुरेन्द्रोहयोनानामवलवान्योगमाधिकः ॥ ६५ ॥ अविस्थितोन्ववष्टभ्य रसातलतलाश्रयम् ॥ तस्यदे
हो एक एक या दो तीनको दूंगा इस लिये हे देवताओ ! तुल्यता से सबके लिये समस्त कामनाओं की सिद्धिके लिये यह मैं दूंगा ॥ ६१ ॥ हे देवताओ ! आपलोगों के
हितके लिये उज्जयिनीपुरी में आकर मैंने कपालको फेंकदिया तुमलोगोंका कल्याण होवै और फिर क्या चाहतेहो ॥ ६२ ॥ देवता बोले कि कपाल को फेंकतेहुये
तुमने हमलोगोंका क्या हित किया और किसलिये पृथ्वी केपाईगई व लोक विकल कियागया ॥ ६३ ॥ हे देव ! यह विन प्रयोजन नहींहै इस विषयमें कारण कहिये महा-
देवजी बोले कि तुमलोगोंके हितके लिये यह भय नाश कीगई है ॥ ६४ ॥ इस विषयमें देवताओं की रत्नाके लिये कारण को सुनिये कि बलवान् व योगमायावाला

हयनामक दैत्येन्द्र ॥ ६५ ॥ गर्वित होकर रसातल के नीचे आश्रित होकर स्थित था उस दैत्यके बलवान् व शत्रुपुत्रों को जीतनेवाले वे बहुत से दैत्य तुमलोगोंको तपस्यामें स्थित जानकर आये व इन्द्रसमेत देवताओंको मारनेके लिये इच्छा करतेहुये मायासे छिपेहुये शरीरोंवाले ॥ ६६॥ ७ ॥ व अस्त्रोंको उवायेहुये वे दैत्य उद्यतहो कर देवताओंको मारनेके लिये सुवर्णके शृंगोंसे संयुत, मुख्य कुशस्थलीपुरीको आये ॥ ६८ ॥ व कपाल गिरनेके कारण बड़े भयङ्कर शब्दसे तथा पृथ्वीके कापनेसे उनके शरीर से प्राण निकल गये ॥ ६९ ॥ संसार की स्थिति के नाशने के लिये उनका उद्यम हुआथा उसी से राज्य के ऐश्वर्य से गर्वित उन दैत्यों को मैंने माराहै ॥ ७० ॥

त्यस्यबलिनो दैत्याः परपुरञ्जयाः ॥ ६६ ॥ युष्माञ्ज्ञात्वा तपःस्थान्वै आययुर्वहवोहिते ॥ सेन्द्रान्निहन्तुमिच्छन्तो माया प्रच्छन्नविग्रहाः ॥ ६७ ॥ पुरीकनकशृङ्गाढ्यामेकामधिकुशस्थलीम् ॥ समुद्ययुस्सुरान्हन्तुमुद्यताउद्यतायुधाः ॥ ६८ ॥ शब्देनचातिघोरेण भूमिनिष्कम्पेनच ॥ तेषांकपालपातेन देहात्प्राणविनिर्ययुः ॥ ६९ ॥ लोकस्थितिविनाशार्थं ते षामासीत्समुद्यमः ॥ राज्यैश्वर्येणदपिष्ठास्तेनतेनिहतामया ॥ ७० ॥ देवाऊचुः ॥ विश्वस्तानां त्वयाचैव नोवाचानुग्रहः कृतः ॥ देवानुग्रहकर्त्तात्वं गुणस्मृतिनिषेवितः ॥ ७१ ॥ दिव्यदृष्टिभिरत्यर्थं यशार्थंभीमपूजितः ॥ इत्युक्त्वाप्रणतान्देवानुत्थायोचेषुनर्भवः ॥ ७२ ॥ शिवउवाच ॥ परिचर्याभिसंयुक्तं नित्यमुग्रनिषेविणम् ॥ ध्यानसाधननिष्पन्नं यदन्येषान्नाविद्यते ॥ ७३ ॥ मनोवाक्कायभावेन दुष्करंदुश्चरन्तपः ॥ अनेनतपसादेवाः कष्टेनदुस्सहेनच ॥ ७४ ॥ समन्तादभिवर्धन्तां युष्मत्तेजस्तथाधिकम् ॥ सनत्कुमारउवाच ॥ इत्युक्तादेवदेवेन देवाब्रह्मपुरोगमाः ॥ ७५ ॥ ऊचुरुन्नम्यवक्रा

देवता बोले कि विश्वासमें प्राप्त हम लोगोंके ऊपर तुमने वचनसे दिया किया क्योंकि गुणों के स्मरण से सेवित तुम वेवताओं के ऊपर दया करनेवालेहो ॥ ७१ ॥ हे भीम ! दिव्यदृष्टिवाले जनोसे अपयशके लिये बहुतही पूजित होते हो यह कहकर प्रणाम कियेहुये देवताओंको उठाकर फिर शिवजी बोले ॥ ७२ ॥ महादेवजीने कहा कि सेवा से संयुत व ध्यान के साधन से सिद्ध नित्य शिवजी की सेवा जिसलिये अन्यजनों के नहीं विद्यमान है ॥ ७३ ॥ उसीकारण मन, वचन व शरीर के भाव से दुःख से करनेयोग्य तप कठिन है हे देवताओं ! इस तप से व असंख्य कष्ट से ॥ ७४ ॥ तुमलोगों का तेज सबओर से बढ़े व अधिक होवै सनत्कुमारजी बोले कि

देवदेव शिवजी से इसप्रकार कहेहुये ब्रह्मादिक देवता ॥ ७५ ॥ छुट्टुओ से स्थित होकर व मुखोंको ऊपर उठाकर बहुतसमय में इकट्ठा कीहुई वड़ी तपस्या से प्रसन्न शिवजीसे बोले देवता बोले कि हे देव ! तुम तपस्यासे प्राणदायक व कारण देखेजातेहो इसलिये तुम्हारे ध्यानमें परायण हमलोगोंको वरदायक होवो ॥ ७६ ॥ ७७ ॥ हे भक्तों को अभयकरनेवाले देवेश ! रत्नाकीजिये महादेवजी बोले कि उपाय व विधिसे तुम लोगोंको प्रकट दर्शन दियागया ॥ ७८ ॥ हे सुरोत्तमो ! कहिये हम तुमलोगों को बहुत वरदानों को देवोंगे भगवान् शिवजीसे ऐसा कहने पर देवताओंके आगे खड़े होकर ब्रह्माजी ने शास्त्रके शब्दसे उपजेहुये वचन को सदाशिवजी

णि स्थिताजानुभिरीश्वरम् ॥ महातातपसानुष्टं बहुकालार्जितेनच ॥ ७६ ॥ देवाउचुः ॥ प्राणदस्त्वंकारणस्त्वं तपसादेव दृश्यसे ॥ तदस्माकंप्रवृत्तानां तवध्यानैवरप्रदः ॥ ७७ ॥ रत्नांकुरुष्वदेवेश भक्तानामभयङ्कर ॥ ईश्वरउवाच ॥ यत्नेन विधिनादत्तं सुव्यक्तं दर्शनं हि वः ॥ ७८ ॥ त्रियताम्भोः सुरश्रेष्ठा दास्यामो वीवरान्वहन् ॥ एवमुक्ते भगवता ब्रह्मावचनम ब्रवीत् ॥ ७९ ॥ देवानामग्रतः स्थित्वा श्रुतशब्दोद्भवं भवम् ॥ प्राप्तोयंचाद्य भगवन् सुपर्याप्तो महावरः ॥ ८० ॥ दीयता न्नस्मै ईश्वर्यं तेषां स्थानमथाक्षयम् ॥ शिवउवाच ॥ लोकेस्मिन्ममयेभक्ता मया विनिहताश्च ये ॥ ८१ ॥ नैव ते दुर्गतिं या न्ति लभन्ते सुगतिं पराम् ॥ सार्द्धं तत्र जटाजूटैः शिरोभिश्च शूलपाणयः ॥ ८२ ॥ भान्ति मद्दामपाश्वस्था इमे ते द्रोहिणाङ्ग णाः ॥ एषां विनिग्रहार्थाय युष्मत्सम्बोधनाय च ॥ ८३ ॥ सविकारं मया क्षिप्तं कपालं धरणीतले ॥ कृतो मे नुग्रहस्तेषां भ क्तानां भक्तिमिच्छताम् ॥ ८४ ॥ वनेस्मिन्नित्यवा सोमे वृक्षैर्भ्यर्च्यते न च ॥ महाकालवने देवा आगतस्य ममानघाः ॥ ८५ ॥

से कहा कि हे भगवन् ! आज भलीभांति परिपूर्ण यह महावरदान पायागया ॥ ७६ ॥ और हमलोगों को ऐश्वर्य्य व उनको अविनाशी स्थान दिया जावे शिवजी बोले कि इस संसारमें जो मेरे भक्त हैं व जो मुझसे मारोग्य हैं ॥ ८१ ॥ वे दुर्गति को नहीं प्राप्त होते हैं किन्तु वहाँपर उत्तम सुगति को पाते हैं व जटाजूटों समेत मस्तक से उपलब्धित व त्रिशूल हाथमें लिये ॥ ८२ ॥ मेरे बायें और समीपमें स्थित ये वे वैरियों के गण शोभित हैं इनके दण्डके लिये व तुमलोगों के ज्ञानके निमित्त ॥ ८३ ॥ विकार समेत कपालको मैंने पृथ्वीमें फेंक दिया और भक्ति को चाहते हुये उन भक्तोंके ऊपर मैंने दिया किया ॥ ८४ ॥ और वृक्षोंसे याचित मुझसे इस महाकालवनमें

सदैव निवास किया जायगा हे पापरहित देवताओ ! महाकालवनमें आयेहुये मेरे ॥ ८५ ॥ व तपस्या करतेहुये आपलोगोंके उसीकारण दो नामोंसे संयुत गुप्त महाकाल वन संसारमें प्रसिद्ध होगा ॥ ८६ ॥ गुह्यवन व इमशान क्षेत्रोंके मध्यमें बड़ा श्रेष्ठ है और मैंने इस कपालव्रतचर्याको कहा है ॥ ८७ ॥ कपालरूपी पात्रमें भोजन करता हुआ व कपालव्रत के भूषणवाला और कपालको हाथमें लिये व भिक्षाव्रतसे संयुत पुरुष सन्तुष्ट होता है ॥ ८८ ॥ व इमशान में स्थानवाला, रौद्र तथा व्रत से उन्मत्त व मूढ़बुद्धिवाला नर सदैव समस्त प्राणियों में प्रिय व अप्रिय में समान होकर प्रसन्न होता है ॥ ८९ ॥ और भस्म से भूषित सब अङ्गोंवाला व विशेषकर ज्ञानी, जिते-

तपस्यताश्च भवतां महाकालवनन्ततः ॥ नामद्वययुतं गुह्यं लोके ख्यातं भविष्यति ॥ ८६ ॥ गुह्यं वनं इमशानञ्च वै
त्राणां प्रवरं महत् ॥ कपालव्रतचर्या च मया ह्येषा प्रकीर्तिता ॥ ८७ ॥ कपालपात्रे भुञ्जानः कपालव्रतभूषणः ॥ कपाल
पाणिस्सन्तुष्टो भिक्षाव्रतसमन्वितः ॥ ८८ ॥ इमशाननिलयोरौद्रो व्रतोन्मत्तविमूढधीः ॥ नन्दितस्सर्वभूतेषु प्रियाप्रियस
मस्सदा ॥ ८९ ॥ भस्मभूषितसर्वाङ्गो ज्ञानी चैव विशेषतः ॥ जितेन्द्रियस्सर्वसङ्गी मृद्भस्मोदकसंग्रही ॥ ९० ॥ नित्ययु
क्तस्सदा जापी जपार्जितवरासनः ॥ पुण्यतीर्थाश्रमोपेतश्शनैर्देवैस्समाहितः ॥ ९१ ॥ लोकातीतपरं ज्ञानं महापाशुपतं त्र
तम् ॥ कपालव्रतमास्थाय पुराचीर्णमया स्वयम् ॥ ९२ ॥ कपालं परमं गुह्यं पवित्रं पापनाशनम् ॥ कपालव्रतमेतद्धि दु
र्द्धरं परमाद्भुतम् ॥ ९३ ॥ अत्यन्तमुत्कटं रौद्रमघोरं रोमहर्षणम् ॥ महाव्रतं द्विषन्मोहात्पापैर्नैव स्थितो नरः ॥ ९४ ॥ न
मुच्यते स पापेन जन्मकोटिशतैरपि ॥ महापाशुपतं तस्मान्न हन्यान्न च दूषयेत् ॥ ९५ ॥ एकस्मिन्निहते यस्मात्कोटिर्भ

न्द्रिय, सबका सङ्ग करनेवाला व मिट्टी, भस्म और जलका संग्रह करनेवाला ॥ ९० ॥ तथा सदैव योगमें प्राप्त व सदा जप करनेवाला और जपसे उत्तम आसनोको इक-
ट्ठा किये व पवित्र तीर्थों तथा आश्रमों से संयुत पुरुष धीरे से देवमें सावधान होता है ॥ ९१ ॥ पुरातन समय कपालव्रत में स्थित होकर मैंने आपही लोकोंसे परे ज्ञान
व महापाशुपत व्रतको किया है ॥ ९२ ॥ कपालव्रत बहुतही गुप्त, पवित्र व पापनाशक है और यह कपालव्रत दुर्द्धर व बड़ा आश्चर्यमय है ॥ ९३ ॥ और अत्यन्त
उग्र, भयंकर, अघोर व लोगोंको प्रसन्न करनेवाले महाव्रत को मोह से छेप कर ताड़ुआ मनुष्य पापही से स्थित होता है ॥ ९४ ॥ और वह करोड़ों से वर्षोंसे भी पातक

से नहीं छूटता है इसलिये महाशैवको न मारै और न दूषित करै ॥ ६५ ॥ क्योंकि एक के मारने पर करोड़ मारे हुये होते हैं व शब्दासंयुत जो पुरुष एक महाव्रतीको भोजन करता है ॥ ६६ ॥ उससे वेददर्शी करोड़ ब्राह्मण भोजन कराये हुये होते हैं जो मनुष्य यतियोंको कपाल पूर्ण करनेवाली भिक्षा देता है ॥ ६७ ॥ समस्त पातकोमे छूटा हुआ यह दुर्गतिको नहीं प्राप्त होता है कपालमें भोजन श्रेष्ठ है और ब्रह्मसे उपजा हुआ यह मार्ग है ॥ ६८ ॥ लोकों व वेदोंमें प्रणाम किये हुये व देवताओं तथा दानवों से पूजित और प्राणियों के मोह करानेवाले कपाल को जो ब्राह्मण धारण करेंगे ॥ ६९ ॥ हे ब्रह्मन् ! मेरे तुल्य वे भूतल में भ्रमण करैगे महाव्रत में परायण व कपाल से किये

वतिघातिता ॥ एकं महाव्रतं यस्तु भोजयेच्छुद्धयान्वितः ॥ ९६ ॥ तेन भुक्ता भवेत्कोटिर्विप्राणां वेददर्शिनाम् ॥ कपाल पूरणं भिक्षां यतीनां यः प्रयच्छति ॥ ९७ ॥ विमुक्तस्सर्वपापेभ्यो नासौ दुर्गतिमाप्नुयात् ॥ कपालभोजनं श्रेष्ठं मार्गो यं ब्रह्मसम्भवः ॥ ९८ ॥ वन्दितं लोकवेषु पूजितं देवदानवैः ॥ धारयिष्यन्ति ये विप्राः कपालं भूतमोहनम् ॥ ९९ ॥ मम तुल्यास्तु ते ब्रह्मन् विचरन्ति महीतले ॥ महाव्रते रता धीराः कपालकृतभूषणाः ॥ १०० ॥ महापाशुपताल्लोके रुद्रास्संसारतारकाः ॥ धर्माधर्मविमुक्ताश्च कृत्याकृत्यविवर्जिताः ॥ १ ॥ दीक्षयानेन योगेन प्राणिनस्तारयन्ति ते ॥ यानि तीर्थानि लोके स्मिन् यज्ञकोटिशतानि च ॥ २ ॥ विशुद्धस्य हि ज्ञानस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥ यथाहं सर्वदेवानां सम्पूज्योस्मि अपि तामह ॥ ३ ॥ तथैव सर्वयोगेभ्यः सम्पूज्योऽयं महाव्रतः ॥ संसारबन्धमोक्षार्थं शिवगुह्यामिदं व्रतम् ॥ ४ ॥ यदेतत्सर्वधर्मेण अपुनर्भवकारणम् ॥ कपालव्रतमादाय यस्त्यजेदजितेन्द्रियः ॥ ५ ॥ रौरवं संप्रयात्याशु प्रणीतो यमकिङ्करैः ॥

हुये भूषणवाले विद्वान् ॥ १०० ॥ महाशैव लोग संसार में रुद्ररूप होकर संसार को तारनेवाले हैं धर्म व अधर्म से छूटे हुये तथा कार्य व अकार्यमें रहित ॥ १ ॥ वे लोग दीक्षासे इस योग करके प्राणियोंको तारते हैं इस संसारमें जो तीर्थ हैं वे और करोड़ों से यज्ञ ॥ २ ॥ पवित्र ज्ञानकी सोलहवीं भावा के योग्य नहीं होते हैं हे पितामह ! सब देवताओं के मध्यमें जैसे मैं भलीभांति पूजने योग्य हूँ ॥ ३ ॥ वैसेही सब योगों से यह महाव्रत पूजने योग्य है संसार के बन्धन व मोक्षके लिये यह शिव गुप्तव्रत है ॥ ४ ॥ क्योंकि सब धर्म से यह फिर न जन्म होनेका कारण है कपालव्रतको लेकर जो अजितेन्द्रियनर त्यागता है ॥ ५ ॥ यमदूतोंसे लेगा हुआ वह पुरुष

शीघ्रही रौरवनरक को प्राप्त होता है जो स्वभाव से आलाप करता है और कर्म नहीं करता है ॥ ६ ॥ वह स्नेहसे शृङ्गारचित्तवाला है धर्मका प्रियकारक नहीं है और एकत्र भोजन करनेवाला व मिष्टभोजी तथा जो निष्कपट प्रिय नहीं है ॥ ७ ॥ और कुगाव व कुनगरमें वसनेवाला तथा कृपी व वाणिज्य का सेवक इत्यादिक उस दुष्ट दोषके सम्भाषण से भी ॥ ८ ॥ मनुष्य नरकगामी होता है क्योंकि वह मेरे व्रतका दूषक होता है अथवा दुष्टको देखकर महाव्रत को धारनेवाला पुरुष ॥ ९ ॥ अङ्गसे अङ्गको न छुवै और छूकर जलसे स्नानकरै इस प्रकार तुम लोगों से कपालका छोड़ना कहा गया ॥ १० ॥ जिस प्रकार कि मैंने यहांपर कपालको छोड़ा व आपही दैत्य

आलापयतिभावेन नतुकर्मकरोति यः ॥ ६ ॥ सरगचित्तशृङ्गारी नचधर्मप्रियङ्करः ॥ एकत्रभोजीमिष्टाशी नैकैतववचःप्रियः ॥ ७ ॥ कुग्रामेनगरेवासी कृषिवाणिज्यसेवकः ॥ इत्यादिदुष्टदोषस्य तस्यसम्भाषणादपि ॥ ८ ॥ नरोनरकगामीस्याद्यतोमद्गतदूषकः ॥ दृष्ट्वातुदुष्टमथवा महाव्रतधरोनरः ॥ ९ ॥ नस्पृशेदङ्गमङ्गेन स्पृष्ट्वास्नायातुचाम्बुभिः ॥ एवंवस्सर्वमाख्यातं कपालस्यचमोक्षणम् ॥ १० ॥ यथामयात्रनिक्षिप्तं चासुरानिहताःस्वयम् ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ एवमुक्त्वासभगवान् ब्रह्माद्यैरमरैस्सह ॥ ११ ॥ क्षेत्रनिर्वासयामास यथावत्कथयामिते ॥ आद्यमेतच्छशा नञ्च पठ्यतेमुनिसत्तमैः ॥ १२ ॥ महाकालवनंव्यासयत्रसन्निहितोहरः ॥ अनुग्रहस्यभुवनं भूमिभागेनशम्भुना ॥ १३ ॥ अनुग्रहार्थभूतानां क्षेत्रतन्मृत्युधर्मिणाम् ॥ सुवर्णवज्ररचिता वेदिकाचमहीकृता ॥ १४ ॥ विचित्रकुसुमारलैः कारितासर्वशोभना ॥ स्वर्णवज्राङ्किततरा श्रेष्ठाहरितशादृता ॥ १५ ॥ त्रिशच्चत्वारिसम्पूर्णाः कलशाःशोभनाःस्थिताः ॥

मारोग्ये सनत्कुमारजी बोले कि इस प्रकार कहकर उन भगवान् सदाशिवजी ने ब्रह्मादिक देवताओं समेत ॥ ११ ॥ क्षेत्रको बसाया उसको मैं तुमसे यथायोग्य कहता हूँ यह पहला इमशान मुनिश्रेष्ठों से पढ़ा जाता है ॥ १२ ॥ और जहांपर सदाशिवजी टिके हैं वह महाकालवन है और शिवजी से भूमिभाग करके वह दयाभुवन किया गया है ॥ १३ ॥ और मृत्युधर्मी याने मरनेवाले प्राणियों के ऊपर दयाके लिये वह क्षेत्र किया गया है व सुवर्ण तथा हीरोसे रची हुई वेदी व पृथ्वी की गई है ॥ १४ ॥ जोकि रत्नोंसे विचित्र पुष्पोवाली सबसे उत्तम है और सोने व हीरोसे अत्यन्तही चिह्नित तथा श्रेष्ठ व हरित बालतृणोंवाली थी ॥ १५ ॥ और सुन्दर चौतीस

कलश सम्पूर्ण स्थित है और उसमें चार अनमोल द्वार तपते हैं ॥ १६ ॥ व उसमें स्थित कलश उदयहुये सूर्यनारायणकी नाई शोभित है वहांपर वनोंके मध्यमें उत्तम वनमें भगवान् शिवजी कीड़ा करते हैं ॥ १७ ॥ त्रेतायुगमें धर्ममें तत्पर ब्रह्मचारी तपस्वीलोग रहते हैं और नन्दीसमेत व कालदण्डासे संयुत देवगणनायक (स्वामि-कार्तिकेय) जी हैं ॥ १८ ॥ यह सब सत्ययुगमें प्रत्यक्ष देखपड़ता है और द्वापर में धर्मशील तथा वेद व विज्ञान से शोभित पुरुष वहां देख पड़ते हैं ॥ १९ ॥ और कलियुगमें शुद्ध विज्ञानसे शोभित अधिक तपवाले पुरुष कल्याणकारक व भक्तदुःखहारक देवदेव सदाशिवजी को देखते हैं ॥ २० ॥ जोकि महाकालवन में नित्य

द्वाराणितत्रचत्वारि प्रवर्ग्याणितपन्तिच ॥ १६ ॥ कुम्भाःशोभन्तितत्रस्था उदिताभास्कराद्व ॥ रमतेतत्रभगवान् वनानामुत्तमेवने ॥ १७ ॥ त्रेतायांधर्मनिरतास्तापसाब्रह्मचारिणः ॥ सनन्दीदेवगणपः संयुतःकालदण्डिना ॥ १८ ॥ एतत्कृतयुगेसर्वं प्रत्यक्षंदृश्यतेवने ॥ द्वापरेधर्मशीलाश्च श्रुतिविज्ञानशालिनः ॥ १९ ॥ कर्त्तातुशुद्धविज्ञानशालिनःशङ्करंहरम् ॥ तपोधिकाःप्रपश्यन्तिदेवदेवंमहेश्वरम् ॥ २० ॥ महाकालवनेनित्यं शूलपट्टिशधारिणम् ॥ एतत्तेतथ्यमाख्यातं लोकानुग्रहकारकम् ॥ २१ ॥ संहितानुक्रमेणात्र मन्त्रैश्चविधिपूर्वकम् ॥ समर्चयन्तियेविप्रा भक्त्याशम्भुमघापहम् ॥ २२ ॥ वसन्तीहसमीपन्ते महाकालानुभावतः ॥ २३ ॥ पठतिग्रहलोकै तस्यसंस्थानमेतत् प्रथितगुणगणौघै रर्चितंदोषहन्तु ॥ शुभमतिरभिषिक्तः सोमैरर्च्यमानो ब्रजतिहरपुरं वै यःशृणोत्येकचित्तः ॥ १२४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे कपालमोक्षणन्नामषष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ * * *

ही शूल व पट्टिशको धारण किये हैं तुमसे यह संसारके ऊपर दयाकारक सत्यवृत्तान्तकहागया ॥ २१ ॥ यहांपर संहिता के क्रमसे विधिपूर्वक मन्त्रोंके द्वारा जो ब्राह्मण भक्तिसे पापविनाशक सदाशिवजीको भलीभांति पूजते हैं ॥ २२ ॥ वे महाकालजीके प्रभावसे यहां मेरे समीप वसते हैं ॥ २३ ॥ इस संसारमें प्रसिद्ध गुणगणोंसे पूजित व दोषोंको नाश करनेवाले उन महादेवजीके इस चरित्रको जो पढ़ता है देवताओंसे अभिषेक कियाहुआ वह उत्तम बुद्धिवाला पुरुष पूजित होता है और वह शिवलोक को जाता है जोकि सावधान चित्त होकर सुनता है ॥ १२४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचितायां भाषाटीकायाकपालमोक्षणं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

सृष्टिके लिये प्रधान त्रिगुणात्मक है साधर्म्य व आत्म्य व ऐश्वर्य व प्रपाध व विधर्मि याने अन्य धर्मवाला ॥ २० ॥ और यह रुद्रका कारण है व यह काम्यता कही जाती है सब कही कर्तृत्व है और रुद्रपुरुष में भी श्रवर्तृत्व है ॥ २१ ॥ और प्रधानपुरुष में अचैतन्य है और वह यह तत्त्व कहाराया है और अन्य तत्त्वसे कार्य व कारण छूटजाते हैं ॥ २२ ॥ और तत्त्व की संख्यासे प्रयोजक में विधर्मता को देखकर संख्या है यह रुद्रके तत्त्वार्थचिन्तकों से कहा जाता है ॥ २३ ॥ इस प्रकार उनका तत्त्वभाव है और तत्त्वसे तत्त्वोंकी संख्या है व विद्वानों ने रुद्रतत्त्व से भी अधिक ज्ञानतत्त्व को कहा है ॥ २४ ॥ उसी कारण सांख्ययोग में यह भक्ति विद्वानों से आध्यात्मिकी मानी

चा ॥ २० ॥ कारणं तच्च रुद्रस्य काम्यत्वमिदमुच्यते ॥ सर्वत्र कर्तृता रुद्रे पुरुषे चाप्यकर्तृता ॥ २१ ॥ अचैतन्यं प्रधाने च तच्च तत्त्वमिदं स्मृतम् ॥ तत्त्वान्तरेण मुच्यते कार्यकारणमेव च ॥ २२ ॥ प्रयोजके च वैजात्यं ज्ञात्वा तत्त्वस्य संख्यया ॥ संख्यास्तीत्युच्यते प्राज्ञे रुद्र तत्त्वार्थचिन्तकैः ॥ २३ ॥ इति तस्म्य तत्त्वभावं तत्त्वसंख्या च तत्त्वतः ॥ रुद्र तत्त्वाधिकं चापि ज्ञान तत्त्वं विदुर्बुधाः ॥ २४ ॥ सांख्ये ततो भक्तिरेषा सद्गिराध्यात्मिकी मता ॥ यौगिकी मपि मे भक्त्या शृणु भक्तिं महासुराः ॥ २५ ॥ प्राणायामपरो नित्यं ध्यायेत नित्येन्द्रियः ॥ धारणां हृदये घृत्वा ध्यायेत यो महेश्वरम् ॥ २६ ॥ हृत्कञ्जकर्णिकासीनं पञ्चवक्त्रं त्रिखोस रुद्रभक्तिः परास्मृता ॥ २८ ॥ य एवं भक्तिमान् रुद्रे रुद्रभक्तः स उच्यते ॥ विधिन्युशृणु मे व्यास यः स्मृतः क्षेत्रवासिनाम् ॥ २९ ॥ स्वयं रुद्रेण विहितो ब्रह्मादीनां समागमे ॥ कथितो विस्तरात्पूर्वं पूर्वेषां तत्र सन्निधौ ॥ ३० ॥ निर्ममानि रहङ्गा

गई है और हे महासुरो ! योगवाली भक्तिको भी मुझ से भक्तिसे सुनिये ॥ २५ ॥ कि प्राणायाम में परायण होकर इन्द्रियोंको जीतेहुये पुरुष नित्यही ध्यानकरे हृदय में धारणा धरकर हृदयके कमलपै बैठे पंचमुख त्रिनेत्र और दशमुजाओंवाले व चन्द्रमा से प्रकाशित जटावाले तथा सर्पों से आच्छादित कटितटवाले और गौरवर्ण व वरदायक तथा अभय हाथोंवाले कल्याणरूप सदाशिवजीको जो ध्यान करता है वे व्यासजी ! उसके योगमें उपजीहुई उत्तम शिवभक्ति कहीगई है ॥ २६ ॥ २७ ॥ २८ ॥ जो इसप्रकार शिवमें भक्तिमान है वह शिवभक्त कहा जाता है व हे व्यासजी ! क्षेत्रवासियोंको जो निधि कही है उसको मुझसे सुनिये ॥ २९ ॥ जो कि ब्रह्मादिकों

के संयोग में आपही शिवजी से कहीगई है व पुरातन समय वहापर पहलेवाले जनों के समीप विस्तार से कहीगई है ॥ ३० ॥ ममतारहित, गर्वविहीन, सङ्गरहित तथा स्त्रीआदिकों से रहित और बन्धुवर्गमें स्नेहरहित तथा डेला, पत्थर व सुवर्ण में समभाववाले ॥ ३१ ॥ और नित्य तीनभांति के कर्मोंसे प्राणियों को अभय देनेवाले व सांख्ययोग की विधिको जाननेवाले, धर्मज्ञ तथा सशयरहित ॥ ३२ ॥ जो क्षेत्रवासी ब्राह्मण अनेक भांति के यज्ञोंसे महाकालवन में शिवजी को पूजते हैं मरेहुये उनलोगों को जो फल होता है उसको सुनिये ॥ ३३ ॥ कि वे पुरुष बहुतही दुर्लभ व अक्षय ब्रह्मसायुष्य मुक्तिको प्राप्तही होतेहैं और अक्षयमोक्ष को प्राप्तहोकर फिर

रा निरसङ्गानिष्पारिग्रहाः ॥ बन्धुवर्गचनिःस्नेहाः समलोष्टाश्मकाश्चनाः ॥ ३१ ॥ भूतानां कर्मभिर्नित्यं त्रिविधैरभयप्रदाः ॥ साङ्ख्ययोगविधिज्ञाश्च धर्मज्ञाश्छिन्नसंशयाः ॥ ३२ ॥ यजन्तेविविधैर्यज्ञैर्विप्राः क्षेत्रवासिनः ॥ महाकालवनेतेषां मृतानां यत्फलं शृणु ॥ ३३ ॥ ब्रजन्त्येवमुदुष्टप्रापं ब्रह्मसायुज्यमक्षयम् ॥ सम्प्राप्य न पुनर्जन्म लभन्ते मोक्षमक्षयम् ॥ ३४ ॥ पुनरावर्तनं हित्वा विधिमाहिंश्चरं स्थिताः ॥ पुनरावृत्तिरन्येषां प्रपञ्चाश्रमवासिनाम् ॥ ३५ ॥ गार्हस्थ्यविधिमामासाद्य पट्कर्मनिरताः सदा ॥ वेदोक्तविधिना सम्यग्मन्त्रस्तोत्रनियन्त्रिताः ॥ ३६ ॥ अधिकं फलमाप्नोति सर्वदुःखविजितः ॥ सर्वलोकेषु चान्यत्र गतिस्तस्य नहन्यते ॥ ३७ ॥ दिव्येनैश्वर्ययोगेन सुरुटः सुपरिश्रहः ॥ बहुसूर्यप्रकाशेन विमानेन सुवर्चसा ॥ ३८ ॥ वृतः स्त्रीणां सहस्रैश्च स्वच्छन्दगमनालयः ॥ विचरत्यविचारेण सर्वलोकान् दिवौकसाम् ॥ ३९ ॥

जन्मको नहीं प्राप्तहोते हैं ॥ ३४ ॥ और वे फिर पुनरागमन को छोड़कर शिवजी की विधिमें स्थित होतेहैं और प्रपञ्चाश्रम में बसेनेवाले अन्य नरों का पुनरागमन होताहै ॥ ३५ ॥ और गृहस्थी की विधिमें स्थित होकर वेदोक्तविधि से सदैव पट् (छह) कर्मोंमें परायण और भलीभांति मन्त्रों व स्तोत्रोंसे बंधाहुआ ॥ ३६ ॥ ब्राह्मण समस्त दुःखों से रहित होकर अधिक फलको प्राप्त होता है और सब लोकोंमें व अन्यत्र उसकी गति नहीं नष्ट होती है ॥ ३७ ॥ और दिव्य ऐश्वर्य के योगसे पुष्ट व उत्तम परिवारवाला तथा इच्छाके अनुसार स्थानोंमें गमनवाला वह पुरुष हजारों स्त्रियोंसे घिरकर बहुत सूर्यों के समान प्रकाशवाले तथा उत्तम तेजवाले विमान के द्वारा

देवताओं के सब लोकोंमें विचाररहित अमण करता है ॥ ३८३६ ॥ और पुरुषों के मध्यमें बहुतही चाहनेयोग्य और सब जातियों से उत्तम व धनी होताहै और स्वर्ग से अष्टहुआ पुरुष बडेभारी कुलमें उत्पन्न होकर रूपवान् होताहै ॥ ४० ॥ और धर्म का जाननेवाला व शिवभक्त तथा समस्त विद्याओं के अर्थका पारगामी होताहै और ब्रह्मचर्य्य व गुरुकी सेवासे ॥ ४१ ॥ और वैसेही वेदपाठ से संयुत तथा भिक्षासे जीविका करनेवाला और इन्द्रियजित होताहै और नित्यसत्यरूपी व्रत में संयुत और अपने धर्ममें हर्षवान् होताहै ॥ ४२ ॥ और मराहुआ वह पुरुष कामनाओं से बडेहुये व समस्तसुखों को अवलम्बन करनेवाले दूसरे सूर्यकी नाई विमान से शोभित होता

स्पृहणीयतमःपुंसां सर्ववर्णोत्तमोधनी ॥ स्वर्गाच्छ्रुतःप्रजायेत कुलेमहतिरूपवान् ॥ ४० ॥ धर्मज्ञोरुद्रभक्तश्च सर्वविद्या
र्थपारगः ॥ तथैवब्रह्मचर्येण गुरुशुश्रूषणेनच ॥ ४१ ॥ वेदाध्ययनसंयुक्तो भिन्नवृत्तिर्जितेन्द्रियः ॥ नित्यंसत्यव्रतेयु
क्तः स्वधर्मेचप्रमोदवान् ॥ ४२ ॥ मृतःकामसमृद्धेन सर्वभोगावलम्बिना ॥ सूर्येणैवद्वितीयेन विमानेनविराजितः ॥ ४३ ॥
गुह्यकानामरुद्रस्य गणाःपरमसम्मताः ॥ अप्रमेयबलैश्वर्या देवदानवपूजिताः ॥ ४४ ॥ तेषांचसमतांयाति तुल्यैश्व
र्यसमन्वितः ॥ देवदानवमर्त्येषु सचपूज्यतमोभवेत् ॥ ४५ ॥ वर्षकोटिसहस्राणि वर्षकोटिशतानिच ॥ एवमैश्वर्यंसंयु
क्तोरुद्रलोकमर्हयते ॥ ४६ ॥ उपित्वासौविभूत्यावै यदावैच्यवतेनरः ॥ रुद्रलोकोच्छ्रुतोभूमौ वसतेनात्रसंशयः ॥ ४७ ॥
महाकालवनेक्षेत्रे ब्रह्मचर्याश्रमेस्थितः ॥ महेश्वरपरोनित्यंवसेद्वाग्निप्रयतेषां ॥ ४८ ॥ मृतोसौयातिदिव्यैव विमानेसू

॥ ४३ ॥ और बहुतही मानेहुये तथा अमित बल व ऐश्वर्य्यवाले और देवताओं तथा दानवों से पूजित जो गुह्यकानामक शिवजीके गणहैं ॥ ४४ ॥ उनके तुल्य ऐश्वर्य्यो
से संयुत पुरुष उनकी समता को प्राप्तहोता है और देवता, दानव व मनुष्यों के बीचमें वह अत्यन्त पूजनीय होताहै ॥ ४५ ॥ व करोड़ों हजारों वर्षोंतक और करोड़ों
से वर्षोंतक इसीभांति ऐश्वर्य्य से संयुक्त पुरुष शिवलोक में पूजित होताहै ॥ ४६ ॥ और वहां बसकर यह पुरुष जब ऐश्वर्य्य से च्युत (पृथक्) होताहै तब शिवलोक
से गिराहुआ वह भूमिमें बसता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ४७ ॥ और ब्रह्मचर्य्य के आश्रम में स्थित शिवमें तत्पर वह पुरुष महाकालवन नामक क्षेत्रमें बसताहै या मरता

है ॥ ४८ ॥ और मराहुआ यह पुरुष सूर्यके समान तेजवाले दिव्य विमान पै प्राप्त होता है और वह पूर्णचन्द्रमाके समान प्रकाश से चन्द्रमा की नाई प्रियदर्शनीवाला होता है ॥ ४९ ॥ और शिवलोक में प्राप्त होकर वह गुह्यकों के साथ आनन्द करता है और सब संसारका स्वामी वह बड़े ऐश्वर्यको भोग करता है ॥ ५० ॥ और हजारों युगों तक भोगकर शिवलोक में पूजित होता है और फिर क्रमसे उस शिवलोक से अष्टहुआ पुरुष ॥ ५१ ॥ नित्यही प्रसन्न होता हुआ वहां व्याधिरहित लोकको भोग कर ब्राह्मणों के बड़ेभारी उत्तमवंशमें पैदा होता है ॥ ५२ ॥ और सब मनुष्यों के बीचमें रूपवान् होकर बसता है और स्त्रियोंके अत्यन्तही चाहनेयोग्य व महासुखों

यंत्रचर्चासि ॥ पूर्णचन्द्रप्रकाशेन शशिविप्रियदर्शनः ॥ ४९ ॥ रुद्रलोकंसमासाद्य गुह्यकैस्सहमोदते ॥ ऐश्वर्यचमहद्गुह्यै
सर्वस्यजगतःप्रभुः ॥ ५० ॥ भुक्त्वायुगसहस्राणि रुद्रलोकैर्महीयते ॥ प्रच्युतस्तपुनस्तस्माद्गुद्रलोकात्क्रमेणतु ॥ ५१ ॥
नित्यंप्रसुदितस्तत्र भुक्त्वालोकमनामयम् ॥ द्विजानामुत्तमैर्चैव कुलेमहतिजायते ॥ ५२ ॥ मानुषेषु च सर्वेषु वसेद्भू
त्वासुररूपवान् ॥ स्पृहणीयवपुःस्त्रीणां महाभोगपतिर्भवेत् ॥ ५३ ॥ दानप्रस्थसमाचारो वनौषधिनिषेवकः ॥ शीर्णपत्र
समाहारः फलपुष्पाम्बुभोजनः ॥ ५४ ॥ कणाशेनाश्मकुट्टेन दन्तील्लखलकेन च ॥ येन केनाप्युपायेन जीर्णवल्कल
वस्त्रतः ॥ ५५ ॥ जटीत्रिषण्णस्नायी मुक्तकेशश्च दण्डवान् ॥ जलशायी पञ्चतपा वर्षास्वभ्रशयी तथा ॥ ५६ ॥ कीट
कण्टकपाषाणभूम्यान्तुशयनंतथा ॥ स्थानवीरासनरतः संविभार्गीदृढव्रतः ॥ ५७ ॥ अरयौषधिभोक्ता च सर्वभूता

का स्वामी होता है ॥ ५३ ॥ और वानप्रस्थ आश्रम के आचरणवाला पुरुष वनकी ओषधियों को सेवन करनेवाला व गिरेंहुये पत्तोंका आहार करनेवाला तथा फल, फूल व जलको भोजन करता है ॥ ५४ ॥ और कणभोजन व पत्थर में कुटने से और दन्तरूपी ओखली से व जिस किसी उपाय से भी प्राचीन बकलों के बदनसे युक्त होकर ॥ ५५ ॥ जटावान् व त्रिकाल स्नान करनेवाला तथा बालोंको छोड़ेहुये और दण्ड धारण किये जलमें शयन करनेवाला व पञ्चाग्नि तापनेवाला और वर्षा ऋतुमें आकाश में शयन करनेवाला होवै ॥ ५६ ॥ और कीट, कंटक, पत्थर व भूमिमें शयनकरै और स्थानमें वीरासनमें तत्पर होवै और भलीभांति विभाग करने

वाला व दृढ़ नियमोंवाला होत्रै ॥५७॥ और वनकी ओषधियों को भोजन करनेवाला व समस्त प्राणियोंको अभय देनेवाला व नित्यही धर्ममें तत्पर, मौनी, क्रोधको जीते हुये व इन्द्रियजित् ॥ ५८ ॥ शिवभक्त महाकालवन में बसनेवाला मुनिहोवै युवा सूर्यनारायण के समान प्रकाशवान् व वेदिकाओं के स्तम्भों से शोभित ॥ ५९ ॥ और इच्छा के अनुकूल चलनेवाले विमान के द्वारा शिवभक्त जाता है और वह आकाशमें दूसरे चन्द्रमाकी नाई शोभित होता है ॥ ६० ॥ और गाने बजाने के शब्द समेत अप्सरासमूहों से घिराहुआ पुरुष कुछ अधिक करोड़ सौ वर्षोंतक शिवलोक में पूजाजाता है ॥ ६१ ॥ और रुद्रलोक से अष्टमी वह पुरुष विष्णुलोक में पूजा

भयप्रदः ॥ नित्यन्धर्मपरोमौनी जितक्रोधोजितेन्द्रियः ॥ ५८ ॥ रुद्रभक्तः क्षेत्रवासी महाकालवनेमुनिः ॥ तरुणार्कप्रकाशेन वेदिकास्तम्भशोभिना ॥ ५९ ॥ रुद्रभक्तो विमानेन यातिकामप्रचारिणा ॥ विराजमानो नभसि द्वितीयइव चन्द्रमाः ॥ ६० ॥ गीतवादित्रशब्देन संवृतोऽप्सरसाङ्गणैः ॥ वर्षकोटिशतं साग्रं रुद्रलोकैर्महीयते ॥ ६१ ॥ रुद्रलोकोऽच्युतश्चापि विष्णुलोकैर्महीयते ॥ विष्णुलोकोऽपि ब्रह्मलोकं सगच्छति ॥ ६२ ॥ तस्मादपि च्युतः स्थानाद्भीषेषु साहि जायते ॥ स्वर्गेऽपुचतथान्येषु भोगान्मुङ्क्तेयथेच्छया ॥ ६३ ॥ सुक्त्वैश्वर्यं नरस्तेषु मर्त्यो मर्त्येषु जायते ॥ राजा वाराजतु ल्योवा जायते धनवान् सुखी ॥ ६४ ॥ सूरूपः सुभगः कान्तः कीर्तिमान् रुद्रभाविनः ॥ ब्राह्मणः क्षत्रियवैश्याः शूद्रावा जे त्रवासिनः ॥ ६५ ॥ स्वधर्मनिरता व्यास स्ववृत्त्याचारजीविनः ॥ सर्वात्मनारुद्रभक्ता भूतानुग्रहकारिणः ॥ ६६ ॥ महा

जाता है व विष्णुलोकमें च्युत होकर वह पुरुष ब्रह्मलोकको जाता है ॥ ६२ ॥ और उस स्थान से भी अष्टहुआ वह पुरुष द्वीपोंमें उत्पन्न होता है व स्वर्गमें तथा अन्य स्थानों में इच्छा के अनुकूल सुखोंको भोगता है ॥ ६३ ॥ और पुरुष उनमें ऐश्वर्यको भोगकर मनुष्यलोकों में मनुष्य होता है व राजा या राजाके समान धनवान् व सुखी होता है ॥ ६४ ॥ और सुन्दर रूपवान् व उत्तम ऐश्वर्यवान्, मनोहर, यशस्वी तथा शिवजी से शुद्धचित्तवाला होता है क्षेत्रमें बसनेवाले ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य व शूद्र ॥ ६५ ॥ हे व्यासजी! अपने धर्ममें परायण व अपनी जीविका व आचार से जीनेवाले तथा सर्वात्मासे शिवभक्त व प्राणियों के ऊपर दया करनेवाले ॥ ६६ ॥ जो मुक्तिकी इच्छावाले महाकालवन

नामक क्षेत्रमें बसते हैं मरेहुये वे पुरुष अप्सरासमूहों से संयुत तथा इच्छा के अनुकूल जानेवाले व इच्छा के अनुसार रूपवाले उत्तम विमाना क द्वारा शिवभवन को प्राप्त होते हैं अथवा पायेहुये ज्ञानरूपी अग्निमें जो शरीरको हवन करता है ॥ ६७ ॥ रुद्राध्याय पढ़नेवाला व महाबलवान् वह शिवभवनमें बसता है और रुद्र-लोकसे उनका नाश होनेपर गुह्यकों समेत पिशाच ॥ ६६ ॥ सब लोकोंसे उत्तम व मनोहर लोक में प्रिय प्राप्तिका साधन करनेवाला होता है और महाकालवन में जो मनुष्य अनशनव्रत में प्राणोंको छोड़ते हैं ॥ ७० ॥ हे व्यासजी ! उन महात्माओंको भी अविनाशी शिवलोक होता है और वे सांख्ययोगवाले पुरुष सब दुःखोंसे

कालवनं क्षेत्रं येवसन्तिमुमुक्षवः ॥ मृतास्तेरुद्रभवनं विमनैर्यान्तिशोभनैः ॥ ६७ ॥ अप्सरोगणसंयुक्तैः कामगैः कामरूपिभिः ॥ अथवासंविदग्नौ शरीरं विबुधोत्तियः ॥ ६८ ॥ रुद्राध्यायी महासत्त्वः सरुद्रभवनं वसेत् ॥ रुद्रलोकं तज्यते तेषां पिशाचो गुह्यकैस्सह ॥ ६९ ॥ सर्वलोकोत्तमेरम्ये भवतीष्टासि साधकः ॥ येत्यजन्ति महाकाले प्राणाननशनैरनराः ॥ ७० ॥ तेषामप्यक्षयो व्यास रुद्रलोको महात्मनाम् ॥ साङ्ख्यास्तिष्ठन्ति ते रुद्र सर्वदुःखविवर्जिताः ॥ ७१ ॥ सर्वा मरुतन्देवं नन्दी देवगणैर्युतम् ॥ अनाशकमृताः शूद्रा महाकालवनैरनराः ॥ ७२ ॥ सिंहयुक्तैस्तु ते यान्ति विमानैरर्कसन्निभैः ॥ नानावर्णमुखैश्च पुष्पगन्धादिवासितैः ॥ ७३ ॥ अर्नोपम्यगुणैरम्यैरप्सरोगीतवाद्यैकैः ॥ रुद्रलोकं नरानार्यः सर्वेऽप्यनशनैर्मृताः ॥ ७४ ॥ तत्रोषित्वा चिरङ्कालं भोगान्भुक्त्वा यथेप्सितान् ॥ धनी विप्रकुले भोगी जायते मर्त्यमागतः ॥ ७५ ॥ करीषं साधयेद्यस्तु महाकालवनैरनरः ॥ सर्वरोगविनिमुक्तो रुद्रलोकं स गच्छति ॥ ७६ ॥ रुद्रलोकं वसेत्तावद्या

रहित होकर शिवजी के समीप टिकते हैं ॥ ७१ ॥ जो शिवदेव कि समस्त देवताओं से संयुत व नन्दी तथा देवगणों से युक्त हैं व महाकाल वन में विन भोजन किये मरेहुये शूद्र मनुष्य ॥ ७२ ॥ वे सिंहसंयुत तथा सूर्यनारायणके समान व अनेक रंगके उत्तम रंगोंसे व पुष्पकी सुगन्धादिकोंसे सुगन्धित विमानोंके द्वारा जाते हैं ॥ ७३ ॥ और अनशनव्रत में मरेहुये सबभी स्त्री पुरुष अनूपगुणवाले और मनोहर अप्सराओं के गीत व बाजाओं समेत शिवलोकमें बसते हैं ॥ ७४ ॥ और वहां बहुत समय तक बसकर व चाहेहुये सुखोंको भोगकर मृत्युलोक में आयाहुआ पुरुष विप्रवंशमें धनी व सुखी उत्पन्न होता है ॥ ७५ ॥ और जो मनुष्य महाकालवनमें करीष

(सखे गोमय) को साधन करता है समस्त रोगों से छुटा हुआ वह शिवलोक को जाता है ॥ ७६ ॥ और तदन्तक शिवलोकमें बसता है जबतक कल्पका अन्त न होता है और वहां महासुखोंको भोगकर यहां उत्पन्न होकर मनुष्य सब पृथ्वीका राजा होता है व रूपवान् और उत्तम ऐश्वर्यवान् होता है ॥ ७७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्ती खण्डे देवीदयालुमिश्रविरचितायाभाषाटीकायां महाकालवननिवासविधिवर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

दो० । कलिनाशन तीरथ यथा भयो अति हि विख्यात । सो अष्टम अध्याय में वर्णित चरित सुहात ॥ व्यासजी बोले कि आचार मुख्यधर्म है और अपने धर्ममें

वत्कल्पज्जयो भवेत् ॥ तत्र भुक्त्वा महाभोगानि हजातो महीपतिः ॥ ७७ ॥ पृथिव्यास्स कलायाश्च रूपवान्मुभगोनरः ॥

७८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे महाकालवननिवासविधिवर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ * ॥

व्यास उवाच ॥ आचारः प्रथमो धर्मस्सर्वधर्मपरायणः ॥ स्वधर्मे निरतश्चैव जितक्रोधो जितेन्द्रियः ॥ १ ॥ रुद्रलोकं जेतुं नात्र चिन्ता मतेर्मम ॥ असंशयश्च गच्छन्ति लोकानन्याञ्छशिप्रभैः ॥ २ ॥ विनापि क्षेत्रवासैर्न तथैव नियमेन च ॥ स्त्रियो म्लेच्छाश्च शूद्राश्च पशवः पक्षिणो मृगाः ॥ ३ ॥ मूका जडान्धवधिरास्तपो नियमवर्जिताः ॥ एतेषां कागतिर्विप्रमहाकालवने मृताः ॥ ४ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ स्त्रियो म्लेच्छाश्च शूद्राश्च पशवः पक्षिणो मृगाः ॥ कालेनैव मृता व्यास रुद्रलोकं व्रजन्ति ते ॥ ५ ॥ शरीरैर्दिव्यरूपैश्च सर्वभोगसमन्विताः ॥ ६ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ अस्मिन् महाकालवने

तत्पर तथा क्रोधको जीते व इन्द्रियों को जीते हुये ॥ १ ॥ पुरुष शिवलोक को जाता ही है इस विषय में मेरी बुद्धि को चिन्ता नहीं है, क्योंकि क्षेत्रवास के बिना वैसे ही नियम से निरसन्देह पुरुष चन्द्रमा के समान विमानों के द्वारा अन्यलोकों को जाते हैं और स्त्रियां, म्लेच्छ, शूद्र, पक्षी व मृग ॥ २ ॥ और गूंगे, जड, अन्ध व बधिर जो कि तपस्या व नियम से रहित होकर महाकालवन में मरे हैं वे विप्रजी ! इनकी क्या दशा होती है ॥ ३ ॥ सनत्कुमारजी बोले कि हे व्यासजी ! स्त्रियां, म्लेच्छ, शूद्र, पक्षी, पक्षी, मृग कालही से मरे हुये वे सब सुखोंसे संयुत होकर दिव्यरूपवाले शरीरों से शिवलोकको प्राप्त होते हैं ॥ ५ ॥ सनत्कुमारजी बोले कि हे व्यासजी !

इस महाकालवन में शिवजी सदैव बसते हैं एक दिन सीला करने के लिये उन पार्वती व प्रेतों से संवृत रम्यान में बसते हुये उन शिवजी ने पार्वती से हे कालि ! जहां आहूये इत्यादिक वचनों को कहा ॥७॥ इसप्रकार जब शिवजी ने पार्वतीको काली ऐसा कहा तब क्रोधित होती हुई उन पार्वतीने शिवजी से कटुवचन कहा ॥ ६ ॥ इस प्रकार जहांपर शिव व पार्वती का कलह हुआ वहांपर कलकलेश्वरनामक शिवजी उत्पन्न हुये हैं ॥१०॥ और उस समय कलहनाशन नामक कुण्ड आगे किया गया है हे व्यासजी ! उसमें स्नान करनेपर कलहकारिणी स्त्री नहीं होती है ॥११॥ उस तीर्थमें नष्टकर व महादेवजीको पूजकर तथा एकरात्रि उपासकर मनुष्य सौ पुत्रियोंको तारता

शिवोवसतिसर्वदा ॥ एकस्मिन्दिवसेदेवो लीलाङ्गवृंशिवाप्रति ॥ ७ ॥ ऊंचेकालिसमागच्छेत्यादीनिवचनानिसः ॥
तयासहवसन्व्यास इमशानेप्रेतसंकुले ॥ ८ ॥ इत्थमुक्तातुशर्वेण कालीतिपार्वतीयदा ॥ तदासाकुपितादेवी कट्ट्वेश
ङ्करमप्रति ॥ ९ ॥ एवन्तुकलहोजातः शिवगौर्योर्द्वियत्रतु ॥ देवस्तत्रसमुद्भूतो नाम्नाकलकलेश्वरः ॥ १० ॥ कृतमप्रेत
दाकुण्डं नाम्नाकलहनाशनम् ॥ स्नानेतत्रकृतेव्यास नस्यात्कलहिनीप्रिया ॥ ११ ॥ तस्मिंस्तीर्थेनरःस्नात्वा पूज
यित्वा महेश्वरम् ॥ उपोष्यरजनीमिकां कुलानांतरयेच्छतम् ॥ १२ ॥ तत्रयच्छतियोदानं त्रुटिमात्रञ्चचन्दनम् ॥
आत्मनत्तारितास्तेन दशपूर्वेदशापरे ॥ १३ ॥ भूमिदानंचयस्तत्र प्रदास्यतिनरोमुने ॥ अपिगोचर्ममात्रेण सर्वभूम्य
धिपोभवेत् ॥ १४ ॥ गामेकारक्तकामेवभूमेरप्येकमङ्गुलम् ॥ यःप्रदास्यतिभक्त्याहि सवैराज्यमविष्यति ॥ १५ ॥ धे
नुमश्वांस्तिलान्वस्त्रं भाजनंताम्रदोहनम् ॥ उपानहश्चव्रत्रश्च तथाचैषेष्टपादुके ॥ १६ ॥ येप्रदास्यन्तिविप्रेभ्यस्तेपांलो

है ॥१२॥ व जो पुरुष वहांपर लवमात्र चन्दन दान देता है उससे अपना समेत दश पहलेवाले व दश पीछेवाले पितर तार दिये जाते हैं ॥१३॥ हे मुने ! जो पुरुष वहांपर भूमि दान देवैगा गऊ के चर्ममात्र भूमिसे भी वह समस्त पृथ्वीका स्वामी होता है ॥ १४॥ और एक अरुणगऊ व भूमिके एक अंगुल को भी जो भक्तिसे देवैगा वह निरवयकर राजा होगा ॥१५॥ और गऊ घोड़े, तिल, वसन व तांबे का दोहनपात्र, पनहीं, छत्र व प्रिय खड़ाउर्वोको ॥१६॥ जो ब्राह्मणों के लिये देवैगे उनके लोक सदैव

अविनाशी होंगे और उस कुण्डके दाहिने बगल में पृष्ठमाता देवता हैं ॥ १७ ॥ और वे देवी सब लोकों के पातकों को नाश करनेवाली हैं और वहां मणिक-
णिकनामक उत्तम तीर्थ जाननेयोग्य है ॥ १८ ॥ उस में नहाकर जो पुरुष, पृष्ठमाता ऐसे नामवाली भगवती का दर्शन करता है वह समस्त पातकों से छूटकर चाही
हुई सिद्धिको पाता है ॥ १९ ॥ और उसका दर्शनकर मार्गमें यात्राकरै तो उसको चोरोंसे डर नहीं होता है और राजसों व भूतोंका डर नहीं होता है ॥ २० ॥ और अपने देशमें
व परदेश में तथा पर्वतों व जङ्गलों में और समुद्रमें उसको डर नहीं होता है और न दुष्टभावना होती है ॥ २१ ॥ और सब ग्रहपीड़ाओं में व राजभयादिकों में जो ब्राह्मण

काः सदा चयाः ॥ तस्य दक्षिणपार्श्वे च पृष्ठमाता च देवता ॥ १७ ॥ सा चैव सर्वलोकानां देवीदुरितहारिणी ॥ तत्र तीर्थन्तु
विज्ञेयं मणिकणिकमुत्तमम् ॥ १८ ॥ तस्मिन् स्नात्वा तु यः पश्येत् पृष्ठमातेति संज्ञिताम् ॥ समुक्तस्सर्वपापेभ्यः सिद्धिमाप्नो-
ति वाञ्छिताम् ॥ १९ ॥ तस्यास्तु दर्शनं कृत्वा मार्गे गमनमाचरेत् ॥ नमयंतस्य चोरेभ्यो रक्षोभूतमयंतथा ॥ २० ॥ स्वदेश-
परदेशो वा पर्वतेष्वटवीषु च ॥ नममुद्रेभ्यंतस्य तथा वैदुष्टभावनाम् ॥ २१ ॥ ग्रहपीडासु सर्वासु तथा राजभयादिषु ॥ वस्तं
वायदिवाभेषं महिषं वा पिघातयेत् ॥ २२ ॥ देवीमुद्दिश्य यो विप्रः सो भीष्टं फलमश्नुते ॥ आश्विनस्य सिताष्टम्यां पूजनं
चार्द्धरात्रिके ॥ २३ ॥ यः स्नाति पुरतो देव्याः स सिद्धिं लभते पराम् ॥ मृतपुत्रा तु यानारी कुण्डे स्नात्वा स भर्तृका ॥ २४ ॥
स्नाति वैयदिकुम्भेन अग्रे देव्या विधानतः ॥ स्नात्वा नान्यमुखं पश्येत् कुम्भस्नानं विना मुने ॥ २५ ॥ तस्यास्सञ्जाय-
ते पुत्रो यथा देवः षडाननः ॥ पृष्ठमातुः पुरा पुण्यं तीर्थं मप्सु सांशुभम् ॥ २६ ॥ रूपसौभाग्यसम्पन्नस्तत्र स्नातो भवेन्नरः ॥

देवीको उद्देशकर छाग या मेप (भैंसा) अथवा भैंसेका बलिप्रदान करता है वह चाहेहुये फलको भोग करता है और कुँवारके शुक्लपक्षकी अष्टमी तिथिमें जो मनुष्य
आधीरात को उन भगवती का पूजन करता है ॥ २१ ॥ और जो देवीजी के आगे स्नान करता है वह उत्तम सिद्धिको प्राप्त होता है और जिसके पुत्र मरजाते हैं
पतिसमेत वह कुण्ड में नहाकर ॥ २४ ॥ देवीके आगे यदि कुम्भसे विधिपूर्वक स्नान करती है और हे मुने ! कुम्भस्नान के बिना अन्यके मुखको नहीं देखती है ॥
२५ ॥ तो जैसे वह मुखोंवाले स्वामिकात्तिकेयजी हैं वैसाही पुत्र उसके पैदा होता है और पृष्ठमाता के आगे अप्सराओं का उत्तमतीर्थ है ॥ २६ ॥ उसमें नहायाहुआ

पुरुष रूप व सौभाग्यसे संयुत होता है हे न्यासजी ! पुरातन समय इस तीर्थ के प्रभाव से उर्वशी ने ॥ २७ ॥ पुरूरवाको पति पाया है जो ये कि संसार में राजा थे ॥ २८ ॥
इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां तीर्थमाहात्म्ये कलहनाशनादितोर्थमहिमवर्णनं नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥
दो० । भयो अप्सराकुण्ड कर यथा अभित परभाव । सोऽह नवम अध्यायमें चरित आहे सुखचाव ॥ व्यासजी बोले कि हे महामुने ! वहापर अप्सराओं का तीर्थ कैसे उरपन्न हुआ है जिस प्रकार जिस कारणसे व जिस समयमें प्रतिष्ठित हुआ हो ॥ १ ॥ उसको वैसेही विस्तार समेत व रहस्यसमेत वर्णन करिये और जो ये पुरूरवा थे उन्होंने

उर्वश्यावै पुराव्यास तीर्थस्यास्य प्रभावतः ॥ २७ ॥ भर्ता पुरूरवा लब्धो लोकयोसौ महीपतिः ॥ २८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे
ऽवन्तीखण्डे तीर्थमाहात्म्ये कलहनाशनादितोर्थमहिमवर्णनं नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ * ॥

व्यास उवाच ॥ कथमप्सरसां तीर्थं कलहनाशनादितोर्थमहिमवर्णनं नामाष्टमोऽध्यायः ॥ १ ॥ तथा तन्मे
सविस्तारं सरहस्यं प्रकीर्तय ॥ कथं पुरूरवाश्चासौ भाय्यते न वराप्सराः ॥ २ ॥ उर्वशीनामकासातु केन जाता वराहना ॥
सर्वमेतद्यथावृत्तं ब्रूहि कौतूहलाहिमे ॥ ३ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ नरनारायणोऽपूर्वं यत्र वैते पतुस्तपः ॥ वदरिकाश्रमस्थौ
तौ तेनेन्द्रो भयमागतः ॥ ४ ॥ सर्वा अप्सरसो हृद्या रूपयौवनदर्पिताः ॥ आदिष्टायामघवता विघ्नार्थं च समागताः ॥ ५ ॥
तौ दृष्ट्वा पसरसस्तत्र रमन्त्यो मदविह्वलाः ॥ विघ्नार्थं ह आयातास्तदा देवौ प्रजल्पतुः ॥ ६ ॥ अस्माकन्नस्त्रियः सन्ति तेन वै
विघ्नकारणम् ॥ एवं संजल्प्य च नरो नारायणमुवाच ॥ ७ ॥ करिष्याम्यहमेकान्तामासां वै रूपतोधिकाम् ॥ मञ्जयांस

कैसे उत्तम अप्सराको स्वीपाया है ॥ २ ॥ और वह उर्वशीनामक उत्तमस्त्री कौन है और किससे पैदा हुई है इस यथार्थ वृत्तान्तको कहिये मेरे आश्चर्य है ॥ ३ ॥ सनत्कु-
मारजी बोले कि पुरातन समय जहांपर वदरिकाश्रममें स्थित उन नरनारायण ने तप किया है उस से इन्द्रजी भयको प्राप्त हुये ॥ ४ ॥ इन्द्रने जिनको आज्ञा दिया वे रूप
व यौवन से गर्वित सब अप्सरायें विघ्नके लिये वहां आई ॥ ५ ॥ मदसे विह्वल तथा क्रीडा करती हुई व विघ्नके लिये वहां एकान्त में आई अप्सराओं को देखकर उस
समय उन्होंने कहा ॥ ६ ॥ कि हम लोगों के स्त्रियां नहीं है उससे विघ्नका कारण है इस प्रकार कहकर नरनारायणजीसे बोले ॥ ७ ॥ कि इनके मध्यमें रूपमें अधिक

उस स्त्रीको करूंगा यह कहकर जङ्घों से सहकार (अतिसुगन्धित आम) की मछरीसमेत स्त्रीको उत्पन्ना किया ॥ ८ ॥ संसार में रूपसे असमान याने सबसे उत्तम रूपवाली व सब गहनों से शोभित और अग्निके समान प्रकाशवती तथा बड़ीहुई उस स्त्रीको देखकर उत्तम स्त्रियोंने ॥ ९ ॥ जाकर इन्द्रजी से कहा कि हमलोग उनको लुभाने के लिये न समर्थ हुई उनका वचन सुनकर मस्तक पै अञ्जलीको धरेहुये इन्द्रजी प्रणामसे मुँकेहुये होकर जाकर नरनारायण देवताओं से बोले कि मैं इस स्त्रीका याचक हूँ यह प्रसन्नता कीजावै ॥ १० ॥ तदनन्तर परमेश्वरदेवजीने उस उर्वशीको इन्द्रकेलिये दिया व कहा कि हमारे वचनकी सामर्थ्यसे तुम इस उर्वशी

हकारस्य स्त्रीमूरुभ्यांचकारह ॥ ८ ॥ रूपेणाप्रतिमालोके सर्वाभरणभूषिताम् ॥ उच्छ्रितांप्रमदांदृष्ट्वा ज्वलनाभांवरा
ङ्गनाम् ॥ ९ ॥ गत्वाशशंसुस्ताःशक्रं नतौलोभयितुंक्षमाः ॥ शक्रस्तासांवचःश्रुत्वा गत्वादेवाबुवाचह ॥ १० ॥ प्रणामा
वनतोभूत्वा शिरस्यञ्जलिमादधन् ॥ अहमर्थीस्त्रियश्चास्याःप्रसादःक्रियतामिति ॥ ११ ॥ ततस्तान्ददतुदेवाविन्द्रायपर
मेश्वरी ॥ अस्मद्वचनसामर्थ्याद् गृहाणेमांत्वमुर्वशीम् ॥ १२ ॥ ऊरुभ्यांजनितायस्मान्नरेण्यं वराङ्गना ॥ मञ्जर्यासहका
रस्य तेनेयमुर्वशीमता ॥ १३ ॥ पुरन्दरोगृहीत्वातामुर्वशींपरमाङ्गनाम् ॥ शिञ्जाञ्चक्रियतांचित्रपथानृत्येविचक्षणा ॥
१४ ॥ क्रियतामचिरादेषा यत्नमास्थायशोभनम् ॥ एवमुक्तेतुचित्रेण कृतातेनविचक्षणा ॥ १५ ॥ बहुप्रवीणासाजा
ता नृत्येगीतेचकोविदा ॥ एवंसान्यवसत्तत्र पुरासद्धानिसुन्दरी ॥ १६ ॥ गतेबहुतिथेकाले तत्रागात्सनरेश्वरः ॥ इ
लस्यपुत्रोधर्मात्मा नाम्नाचैवपुरूरवाः ॥ १७ ॥ इन्द्रस्याद्धांसनगतो नृत्यं पश्यतितत्रह ॥ नृत्यन्तीवासवस्याग्रे उर्वशी

को ग्रहणकरो ॥ १२ ॥ जिसलिये नरसे यह उत्तमस्त्री सहकारकी मछरीसमेत ऊरुओं से पैदाहुई है उससे यह उर्वशी जानीगई ॥ १३ ॥ इन्द्रने उस उत्तमस्त्री उर्वशीको लेकर चित्रगन्धर्वसे कहा कि उस प्रकार शिञ्जा कीजावै कि जिसमांति नृत्यमें चतुर होवै ॥ १४ ॥ उत्तम यत्नमें स्थित होकर यह शीघ्रही वैसी कीजावै ऐसा कहनेपर उस चित्रसे चतुर कीगई ॥ १५ ॥ और नृत्य व गानमें चतुर यह बहुतही प्रवीण हुई इसप्रकार पुरातन समय वह सुन्दरी वहां मन्दिरमें बसती भई ॥ १६ ॥ और बहुत दिनों वाले समयके बीतनेपर वहापर इनके पुत्र पुरूरवा नामक धर्मात्मा वे राजा आये ॥ १७ ॥ और इन्द्रके आधे आसनपर बैठेहुये वे नृत्यको देखतेथे व इन्द्रके आगे नाचती

हुई उर्वशीको देखकर कामी ॥ १८ ॥ राजने उससे हरेहुये चित्तवाले होकर किसी वस्तुको न प्राप्तहुये अर्थात् चित्तके हरजाने से उन्होंने कुछ न जाना और चित्तमें धैर्य धरकर कुछ देरतक बैठे रहे ॥ १९ ॥ और उस समय उनके दर्शन से हरेहुये चित्तवाली उर्वशी उस स्थानसे निकलकर कामसे विकल होतीहुई अत्यन्त विह्वल हुई ॥ २० ॥ और उन्नत सभामण्डल से वह भूमिमें गिरपड़ी इसके अनन्तर अपना को जानकर वह पृथ्वीमण्डलसे उठी ॥ २१ ॥ और अनाथकी नाई बहुतही पीड़ित श्रेष्ठ राजने उसको देखा व उसीको मनसे स्मरण करतेहुये पुरुरवा पृथ्वीपै गये ॥ २२ ॥ व श्रेष्ठ राजा पुरुरवाको स्मरण करतीहुई वहभी घरको चलीगई और चित्रांगद के

वीक्ष्यकामुकः ॥ १८ ॥ हतचित्तस्तयाराजा न किंचित्प्रत्यपद्यत ॥ धैर्यचित्तेसमावेद्य मुहूर्तपर्यवस्थितः ॥ १९ ॥ उर्वशीचतदातस्य दर्शनाहतचेतसा ॥ तत्प्रदेशाद्विनिष्क्रम्यकामार्ताचातिविह्वला ॥ २० ॥ भूमौ सापतिताबाला उच्छिन्नताद्रङ्गमण्डलात् ॥ अथात्मानञ्च संवेद्य उत्थिताभूमिमण्डलात् ॥ २१ ॥ दृष्टासाराजसिंहेन मन्मथेन प्रपीडिता ॥ गतः पुरुरवाभूमिं तामेव मनसा स्मरन् ॥ २२ ॥ स्मरन्ती राजशार्दूलं गता साप्युर्वशी गृहम् ॥ चित्राङ्गदगृहे गत्वा द्रुतं साथचकार ह ॥ २३ ॥ चित्राङ्गदेन सानीता रात्रौ यत्र पुरुरवाः ॥ उर्वश्या रहितः स्वर्गः शून्योऽप्यासीद्विवेकसाम् ॥ २४ ॥ रात्रावेव च सा तेन आनीता त्रिदिवं पुनः ॥ तया विरहितः सोऽपि शून्यचित्तः परिभ्रमन् ॥ २५ ॥ उन्मत्ततां गतो व्यास षष्टि वर्षाणि पार्थिवः ॥ परिभ्रमन्सतीर्थानि महाकालवनङ्गतः ॥ २६ ॥ गन्धर्वेणोर्वशीस्वर्गे नीता सा परमाप्सराः ॥ नापि शीतेन चाश्नाति हेराजन्नितिजल्पति ॥ २७ ॥ तावदप्सरसस्सर्वास्ताः प्राप्ता यत्र चोर्वशी ॥ रम्भा च मेनका चैव प्रम्लोचा

घरमें जाकर इसके अनन्तर उसने उसको दूत किया ॥ २३ ॥ और चित्रांगद उसको बहां ले गया जहां कि पुरुरवा थे व उर्वशीसे रहित देवताओंका स्वर्ग भी शून्य हो गया ॥ २४ ॥ और रात्रिही में फिर वह चित्रांगद उसको स्वर्गको ले आया व उससे रहित घूमनेहुये शून्यचित्तवाले वे पुरुरवा भी ॥ २५ ॥ हे व्यासजी ! उन्मत्तताको प्राप्तहुये और साठ हजार वर्षतक तीर्थों में घूमनेहुये वे महाकालवनको गये ॥ २६ ॥ और गन्धर्व से स्वर्ग में लाईहुई वह उत्तम अप्सरा उर्वशी भी न सोतीथी और न

भोजन करती थी किन्तु हे राजन् ! ऐसा बकती थी ॥ २७ ॥ तब तक वे सब अप्सरायें वहां प्राप्त हुई जहां कि उर्वशी थी रंभा, मेनका, प्रमलोचा व पुंजिकस्थली ॥ २८ ॥
व जलपूर्णा, अंशुकपूर्णा, वसन्ता व चन्द्रिका, सूर्यदत्ता, विशालाक्षी, चन्द्रा व चन्द्रप्रभा ॥ २९ ॥ साथ ही आकर उन्होंने उर्वशी से वचन कहा कि हे वराहो, सु-
लोचने ! मनुष्य के लिये क्यों रोती हो ॥ ३० ॥ उनके उस वचन को सुनकर उर्वशी वचन बोली कि स्त्री पुरुषों के सङ्गसे जो सुख होता है उसको नपुंसक नहीं
जानता है ॥ ३१ ॥ इस उपमासे उसके लिये कियेहुये निश्चयवाली में जाननेयोग्य है उसके इस वचन को सुनकर सावधान होती हुई वे सम्मतिकर ॥ ३२ ॥ और

पुंजिकस्थली ॥ २८ ॥ जलपूर्णाशुकापूर्णा विमन्ता चन्द्रिका तथा ॥ सूर्यदत्ता विशालाक्षी चन्द्रा चन्द्रप्रभा तथा ॥ २९ ॥
आगत्य तास्तुसाहिता उर्वशी वाक्यमब्रुवन् ॥ किरोदिषिवरारोहे मर्त्यहेतोः सुलोचने ॥ ३० ॥ तद्वाक्यमुर्वशी तासां श्रु-
त्वा वचनमब्रवीत् ॥ सौख्यं षण्डेन जानाति सङ्गात् स्त्रीपुंसयोर्हितम् ॥ ३१ ॥ अनयोपमयाज्ञेया तस्यार्थैकतनिश्चया ॥
श्रुत्वा चेति वचस्तस्यास्तास्संमन्य समाहिताः ॥ ३२ ॥ अज्ञातास्ताश्च देवानां महाकालवने गताः ॥ नृपञ्चददृशुस्तत्र
युषि ॥ ३३ ॥ दृष्ट्वा गत्यनृपसर्वा भृशं जातास्सुविक्लाः ॥ दृष्ट्वा तथा विधास्सर्वाः कामार्तास्सुर-
योषिताः ॥ ३४ ॥ मूढचित्ताः प्रहस्यैव मुर्वशी वाक्यमब्रवीत् ॥ उर्वशुवाच ॥ अयं स पुरुषव्याघ्रो विनायेनाहर्मादृशी ॥ ३५ ॥
एतः पुरुरवानाम विख्यातो जगतीपतिः ॥ एवं ब्रुवन्त्या वै तस्यामुर्वश्यामप्सरो गणः ॥ ३६ ॥ मौनीभूताश्चिरं तस्मै
लज्जयानतकन्धरः ॥ एतस्मिन्नन्तरे प्रायाद्भगवांस्तत्र नारदः ॥ ३७ ॥ दृष्ट्वा तथा गतास्सर्वा उर्वश्यासहितं नृपम् ॥
देवताओंसे न जानी हुई वे महाकालवनमें गई और वहांपर उन्होंने ने वृक्षोंकी छाया से सेवित राजाको देखा ॥ ३३ ॥ और सब आकर राजाको देखकर बहुत ही विह्वल
होगई वैसी कामसे विकल तथा मूढ़चित्तवाली व कामसे विकल सब देवस्त्रियोंको देखकर उर्वशी हँसकर ऐसा वचन बोली कि यह वही श्रेष्ठ पुरुष है कि
जिसके बिना मैं ऐसी हूँ ॥ ३४ ॥ यह इलाका पुत्र पुरुरवा नामक राजा प्रसिद्ध है उस उर्वशीके इस प्रकार कहनेपर अप्सराओं के गण ॥ ३६ ॥ लज्जासे नीचे
झुकेहुये कन्धोवाले व चुप होकर बहुत देर तक खड़े रहे इसी अवसर में वहांपर भगवान् नारदजी आये ॥ ३७ ॥ व वैसीही आई हुई सब अप्सराओं को देखकर व

उर्वशी समेत राजा को देखकर तदनन्तर उन्होंने कहा कि वैसे मनोहर तथा उत्तम इन्द्र के स्थान को छोड़कर मौन होती हुई तुम सब यहां किस लिये आई हो और शीघ्र ही वरदान को मांगिये वियोग न होवेगा ॥ ३८ ॥ और नारदजीने इस तीर्थका माहात्म्य कहा कि इस तीर्थ में जो दुर्भगा स्त्री या पुरुष भी स्नान करता है ॥ ४० ॥ वह भलीभांति सौभाग्य को प्राप्त होता है वैसेही सब उत्तम सुखों को प्राप्ता है और जो यहांपर तिलो से व लोने से अपने शरीर को तैलता है ॥ ४१ ॥ और पार्वतीदेवी को उद्देश्यकर चित्तशाठ्य से रहित पुरुष बहुत शर्करा से और गुड़ व शहद से अपने शरीर को तैलवै ॥ ४२ ॥ लोने से स्वरूप से संयुत स्त्री होती है और तिलों से

सम्प्रेक्ष्य च ततः प्राह किं यूयमिह निःस्वनाः ॥ ३८ ॥ त्यक्त्वा तथा विधं रम्यमिन्द्रस्यालयमुत्तमम् ॥ वरञ्च ब्रियतां शीघ्रं वियोगो न भविष्यति ॥ ३९ ॥ माहात्म्यञ्चास्य तीर्थस्य कथयामास नारदः ॥ अस्मिन् यादुर्भगार्थे स्नायात्स्त्री पुरुषोऽपि वा ॥ ४० ॥ सौभाग्यं लभते सम्यक् सर्वभोगांस्तथोत्तमान् ॥ आत्मानन्तोलयेद्यस्तु तिलैर्वालवणेन वा ॥ ४१ ॥ शर्कराभिश्च बह्वीभिर्वित्तशाल्याव्यविवर्जितः ॥ गुडेन मधुना वापि देवीमुद्दिश्य पार्वतीम् ॥ ४२ ॥ लवणेन स्वरूपाढ्या तिलैस्सुवर्द्धशोभना ॥ द्रव्यवृद्धिः शर्करया गुडेनां द्वेषपूर्णता ॥ ४३ ॥ मधुना चैव सौभाग्यं तीर्थस्यास्य प्रभावतः ॥ द्वादशैव तु युग्मानि देव्या देवस्य भोजयेत् ॥ ४४ ॥ कार्त्तुं मुखरिणि दद्यात् ताटङ्गमुकुराञ्जनम् ॥ जौमजांकञ्चुकीञ्चैव वस्त्रेको सुम्भके तथा ॥ ४५ ॥ श्वेता नुलेपनं पुंसां स्त्रीणां दद्याच्च कुङ्कुमम् ॥ आषाढे श्रावणे वापि मासि भाद्रपदे तथा ॥ ४६ ॥ शुक्लां शिवनतृतीयायां मुत्तमं व्रतं माचरेत् ॥ उत्तमां जायते नारी यथा देवी तथैव च ॥ ४७ ॥ उमामाहे श्वरौ कार्त्तौ सौवर्णौ सब अङ्गों में सुन्दरी होती है और शर्करा से द्रव्य की बढ़ती होती है व गुड से अङ्गों में पूर्णता होती है ॥ ४३ ॥ और इस तीर्थ के प्रभाव से शहद से सौभाग्य होता है और देवी पार्वतीजी व शिवदेवजी की प्रीतिके लिये बारह युग्म याने चौबीस स्त्री पुरुषों को भोजन करावै ॥ ४४ ॥ और बजती हुई जुद्ध वारिष्ठा का व भूमकों को व दर्पण, अञ्जन तथा रेशमी वस्त्र से उपजी हुई कञ्चुकी और कुसुम से रंगे हुये वस्त्रों को देवै ॥ ४५ ॥ और पुरुषों को श्वेत चन्दन व स्त्रियों को कुङ्कुम देवै और आषाढ, श्रावण में व भाद्रपद में ॥ ४६ ॥ और कुँवार में शुक्ल पक्षवाली तीज में उत्तम व्रत करे तो जैसी पार्वतीदेवीजी हैं वैसी ही उत्तम स्त्री होती है ॥ ४७ ॥ और अपनी शक्तिसं सोने के पार्वती महादेव बनवा ॥

चाहिये और स्त्री से उन देवोंको तुलाके शिकहर पै विधिसे धरे ॥ ४८ ॥ और अनेकभांति के शाकों व फलोंको देना चाहिये और वहां दियाहुआ दान व हवन और जप सब कोटिगुना होताहै ॥ ४९ ॥ उस तीर्थ में इस प्रकार सावधान होतीहुई जो स्त्री करती है वह मरकर गन्धर्वों व अप्सराओं के लोकको जाती है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ५० ॥ और इस तीर्थमें देवताओं व दानवों से पूजित दो लिंगहैं उनको देखकर स्त्री पुरुष उत्तम सिद्धिको प्राप्तहोते हैं ॥ ५१ ॥ और वहां कार्तिकी में जागरणकर व चन्दन तथा पुष्पों से भलीभांति पूजकर मनुष्य विशेषकर शिवलोक को प्राप्तहोताहै ॥ ५२ ॥ जैसे देवीके स्वरूप से कभी वियोग नहीं देखाजाता है वैसेही चस्वशक्तिः ॥ धार्योनार्याहितौदेवी तुलाशिकयेविधानतः ॥ ४८ ॥ फलानिचैवदेयानि शाकानिविविधानिच ॥ तत्रदत्तंहृतंजप्तं सर्वकोटिगुणंभवेत् ॥ ४९ ॥ एवंयाकुरुतेतत्रतीर्थेनारीसमाहिता ॥ गन्धर्वाप्सरसांलोकं मृतायातिनसंशयः ॥ ५० ॥ अत्रतीर्थेचद्वेलिङ्गे पूजितेदेवदानवैः ॥ दृष्ट्वातेपरमांसिद्धिं प्राप्नुतोदम्पतीतथा ॥ ५१ ॥ कार्तिकयान्तु विशेषेण कृत्वातत्रप्रजागरम् ॥ सम्पूज्यगन्धपुष्पैश्च रुद्रलोकमवाप्नुयात् ॥ ५२ ॥ यथादेव्याःस्वरूपेण वियोगो नैवदृश्यते ॥ तथातयोर्वियोगश्च दृश्यतेनकदाचन ॥ ५३ ॥ एवंकृत्वापिताविप्र सर्वाश्चात्रिविङ्गताः ॥ उक्तमप्सरसां तीर्थं तीर्थान्तरमथोच्यते ॥ ५४ ॥ दक्षिणेपृष्ठेदेव्यावै माहिषंकुण्डमुच्यते ॥ माहिषोदानवःपूर्वं निहतोगणनायकैः ॥ ५५ ॥ तत्रतीर्थेनरःस्नात्वा मातृसम्पूज्ययत्नतः ॥ प्रतरक्षःपिशाचानां पीडयासविमुच्यते ॥ ५६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेऽप्सरःकुण्डमहिमवर्णनन्नामनवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

उन स्त्री पुरुषों का वियोग कभी नहीं देखपड़ताहै ॥ ५३ ॥ हे विप्रजी ! ऐसाकर वे सभी अप्सरायें स्वर्गको चलीगई यह अप्सराओंका तीर्थ कहागया इसके अनन्तर अन्यतीर्थ कहाजाता है ॥ ५४ ॥ पृष्ठदेवीके दक्षिण ओर माहिषकुण्ड कहाजाता है पुरातन समय जहां गणनायकों ने माहिषासुरको माराहै ॥ ५५ ॥ उस तीर्थमें नहाकर वह मनुष्य यक्ष से मातृगुणों को भलीभांति पूजकर प्रेत, राजस व पिशाचोंकी पीड़ासे छूटजाता है ॥ ५६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदेवीदयालुमिश्रविचितायां भाषाटीकायामप्सरःकुण्डमहिमवर्णनन्नामनवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

दो० । महिषकुण्ड अरु रुद्रसर तीर्थ भये जिमि दोह । यहि दशवें अध्यायमें चरित अहै सबसोइ ॥ व्यासजी बोले कि वह महिषकुण्ड किसप्रकार हुआहै और मातृगणों का आवरण कैसे हुआहै व क्षेत्रमें शिवजी ने कैसे महिषासुर को माराहै ॥ १ ॥ सनत्कुमारजी बोले कि क्रीडा करतेहुये जगदीश महादेवजी ने अतिप्रकाशमान व कान्तिसे जलतेहुये से ब्रह्मतेजोमय कपालके दिव्यखण्डको लेकर देवताओं को मोहित किया और योगात्मा शिवजी ने पलभर में योगलीलासे इस लोक में ॥ २ ॥ ३ ॥ प्राप्तहोकर जहां अत्यन्त पवित्र क्षेत्र स्थित था वहां देवताओं के स्वामी महाप्रभु शिवजी ने जलतीहुई प्रभावाले बड़े दिव्यकपाल को गणों के

व्यासउवाच ॥ कथंतन्महिषं कुण्डं मातृणामावृतिः कथम् ॥ रुद्रेण तु कथं क्षेत्रे महिषोदानवोहतः ॥ १ ॥ सनत्कुमारउवाच ॥ कापालं खण्डमादाय महादेवोऽप्यतिप्रभम् ॥ ब्रह्मतेजोमयं दिव्यं ज्वलन्तमिव च त्विषा ॥ २ ॥ क्रीडमानोजगन्नाथो मोहयामास वै सुरान् ॥ निमेषात्सहस्रं लोकं योगात्मा योगलीलया ॥ ३ ॥ प्राप्य पुण्यतमं क्षेत्रं यत्रातिष्ठ नमहाप्रभुः ॥ तत्र तत्र महादिव्यं कपालं देवताधिपः ॥ ४ ॥ स्थापयामास दीप्ताचिंगणानामग्रतः प्रभुः ॥ तत्स्थापितमथो दृष्ट्वा गताः सर्वे महौजसः ॥ ५ ॥ विनदन्तो महानादं नादयन्तो दिशो दश ॥ ध्रुवार्णवाशनिप्रख्यं नभोयेन विदीर्यते ॥ ६ ॥ तेन शब्देन घोरं दानवो देवकण्टकः ॥ हालाहल इति ख्यातो देशंतमभिधावितः ॥ ७ ॥ असृश्यमानः क्रोधातो दुरात्मदुर्जयस्मुरैः ॥ ब्रह्मदत्तवरश्चैव महिषं पुरा स्थितः ॥ ८ ॥ दैत्यैः परिवृतो घोरैः कीटिभिः प्रोद्यतायुधैः ॥ तमाया न्तन्तु स क्रोधं महिषं देवकण्टकम् ॥ ९ ॥ समावेक्ष्या ह वै देवो गणान्सर्वान् पिनाकधृक् ॥ मायावीगणपौ दैत्यैश्चैल्लोक्य

आगे स्थापित किया इसके अनन्तर थापेहुये उस कपाल को देखकर बड़ा शब्द करते व दशों दिशाओं को शब्दायमान करतेहुये बड़े पराक्रमवाले सब गण चले गये क्रोभित समुद्र व वज्रके समान वह शब्द कि जिससे आकाश फटताथा ॥ ४ ॥ ५ ॥ उस भयङ्कर शब्दसे देवताओं को कण्टकरूप हालाहल ऐसा प्रसिद्ध दानव उस देशके सामने दौड़ा ॥ ७ ॥ और क्रोध से विकल व दुष्टचित्तवाला तथा देवताओं से दुःखकरके जीतनेयोग्य व ब्रह्मासे दियेहुये वरदानवाला बिन विचारे हुये वह दैत्य भैसे के स्वरूपमें स्थित हुआ ॥ ८ ॥ जोकि उवायेहुये अस्त्रोंवाले करोड़ों भयङ्कर दैत्यों से घिराथा क्रोधसमेत व देवताओं के कण्टकरूप आतेहुये उस

महिषासुर को ॥ ६ ॥ देखकर पिनाकधारी सदाशिवदेवजी मंत्र गणोंसे बोले कि त्रिलोक का भी कण्टकरूप यह मायावी गणनाथकद्वैत्य ॥ १० ॥ शीघ्रतासंयुत चला आताहै इसलिये कपालकी गति में आश्रित तुम सब गणनाथक इसको मारो ॥ ११ ॥ तदनन्तर वंड शब्दसे गर्जते और महाप्रकाशवान् तथा अमते व उस आतेहुये महादैत्यको डरेहुये देवगणोंने ॥ १२ ॥ त्रिशूलसमूहा से व तलवारों तथा मुसलों से विदारण किया और बाणोंके समूहसे मोहितकर तदनन्तर उन्होंने पृथ्वीमें गिरा दिया ॥ १३ ॥ उसके मरनेपर उससमय महादेवजी देवताओंसे बोले कि अतिमूर्ख के अहंकारको आश्चर्यहै और गर्व से वह नाशको प्राप्तहुआ ॥ १४ ॥ इसी अवसर

स्यापिकण्टकः ॥ १० ॥ आयातित्वरितोयुयं तस्मादेनं विनिघ्नथ ॥ कपालस्य गर्तिसर्वे आश्रिता गणनायकाः ॥ ११ ॥ ततो देवगणाभीतास्तमायान्तं महासुरम् ॥ गर्जमानं महानादं भ्रममाणं महाप्रभम् ॥ १२ ॥ विभिदुःशूलसङ्घातै रसिभिर्मुसलैस्तथा ॥ सम्मोह्य शरजालेन ततो भूमौ न्यपातयन् ॥ १३ ॥ हते तस्मिन् महादेवो देवान् प्रोवाच वै तदा ॥ अ होद पोति मूढस्य दर्पेण निधनङ्गतः ॥ १४ ॥ एतस्मिन्नन्तरे व्यास तत्कपालात्सुभरवाः ॥ दीप्तास्यामातरस्सर्वाः प्रचण्डास्त्रामहावलाः ॥ १५ ॥ अभ्यधावंस्तमुद्देशं महादेवं न्यवेदयन् ॥ दैत्यन्ताभजयन्ति स्म भित्त्वा भित्त्वा महाबलम् ॥ १६ ॥ कपालमातरस्तस्मात् ख्याताः क्षेत्रे महाबलाः ॥ महाकपालस्तस्माद्वै सदृशः परिकीर्तितः ॥ १७ ॥ स्थापितस्य कपालस्य भित्त्वा तदभवत्पुरा ॥ ख्यातां शिवतडागञ्च सर्वपापप्रणाशनम् ॥ १८ ॥ तदद्यापि महादिव्यं सरस्तत्र प्रकाशयते ॥ त्रिषु लोकेषु विख्यातं गन्धर्वगणसेवितम् ॥ १९ ॥ पात्रस्थमुद्धृतं वापि शीतोष्णं कथितं जलम् ॥ पुनाति रौद्रं मे हे व्यासजी ! उस कपालसे जलतेहुये आननवाली व प्रचण्ड अस्त्रवाली तथा बड़ी बलवती व भयंकर सब मातृकायें ॥ १५ ॥ उस स्थान को दौड़ी व महादेवजी से निवेदन किया और काटकाटकर उन बड़ी बलवती स्त्रियोंने भक्षण किया ॥ १६ ॥ इसलिये क्षेत्र में महाबलवती कपालमातायें प्रसिद्ध हैं और उसी कारण महाकपाल सदृश कहा गया है ॥ १७ ॥ पुरातन समय थापेहुये कपाल को फोडकर समस्त पातकोंको नाशक शिवतडाग प्रसिद्ध हुआ है ॥ १८ ॥ वहांपर गन्धर्वगणोंसे सेवित आज भी वह बड़ा दिव्य तडाग प्रकाशित है जो कि तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध है ॥ १९ ॥ और पात्रमें स्थित व ऊपर लाया हुआ तथा ठंडा व गरम और काथ किया हुआ रुद्र-

तडागका जल पवित्र करता है जैसे कि अश्वमेधयज्ञका अवशुश्रू (यज्ञान्तरान्न) पवित्र करता है ॥ २० ॥ सैकड़ों देवताओं से विरेहय्रे प्रज्ञा भी उस स्थान को आयें हैं और आपही ब्रह्माजीने उसको स्वर्गकी सीढ़ी कहा है ॥ २१ ॥ जो मनुष्य यहां प्राणों को छोड़ते हैं वे शिवलोकको जाते हैं हे व्यासजी ! महाकालवन में टिँकेहुये मनुष्य मृत्युलोक में धन्य हैं ॥ २२ ॥ और रुद्रतडाग में जो स्नान करते हैं व जो जलको भी पीते हैं अपने धर्म व आचारमें स्थित वे पुरुष ईश्वर महादेवजी को देखते हैं ॥ २३ ॥ इस कारण स्वर्गमें प्राप्त देवता नित्यही यह अभिलाष करते हैं ॥ २४ ॥ यह सदैव देवताओं से पूजित तथा उत्तम व दिव्य और महापातकोंका नाशक महाकपाल

सरसोऽश्वमेधावभृथोयथा ॥ २० ॥ प्रागाद्ब्रह्मापितदेशं देवतानां शतैर्वृतः ॥ स्वर्गलोकस्य निश्रेणी कीर्तिता ब्रह्मणा स्वयम् ॥ २१ ॥ अत्रत्यजन्ति ये प्राणान् रुद्रलोकं ब्रजन्ति ते ॥ धन्या व्यासनरामर्त्ये महाकालवने स्थिताः ॥ २२ ॥ रौद्रसरसि ये स्नान्ति जलं वापि पिवन्ति ये ॥ स्वधर्माचारनिरताः पश्यन्ती शानमीश्वरम् ॥ २३ ॥ इति स्वर्गगता देवाः सृष्टं हांकुर्वन्ति नित्यशः ॥ २४ ॥ इदं शुभं दिव्यमधर्मनाशनं महाकपालं सुरपूजितं सदा ॥ महाप्रभं पापहरं सनातनं सुरेश लोकादिषु दुर्लभं सदा ॥ २५ ॥ तपो रतैस्सिद्धगणैरभिष्टुतं यथानभःस्थं दिननाथमण्डलम् ॥ एकाग्रचित्तः शृणुयात्प्रसादतस्त्रिविष्टपंगच्छति सोऽभिनिन्दतः ॥ २६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे माहिषकुण्डरुद्रसरोमाहात्म्य नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ * * * ॥ * * * ॥

सनत्कुमार उवाच ॥ अथातस्सम्प्रवक्ष्यामि तीर्थत्रैलोक्यविश्रुतम् ॥ स्वयंभूतं महेशस्य कुटुम्बेश्वरनामकम् ॥ १ ॥ बड़ा प्रभावान् व पापहारक तथा सनातन व सुरेशलोकालोकों में सदैव दुर्लभ है ॥ २५ ॥ जैसे कि तपस्यामें परायण सिद्धगणों से स्तुति किया हुआ आकाशमें सूर्यमण्डल है इस चरित्रको साबधान चित्तवाला जो पुरुष सुनता है वह प्रशंसित नर स्वर्ग को प्राप्त होता है ॥ २६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे देवीदशालुभिश्चरित्रचितायां भाषाटीकायां माहिषकुण्डरुद्रसरोमहिमवर्णनं नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ * * * ॥ * * * ॥

दो० । कुटुम्बेश्वरकतीर्थ की महिमा अभित अपार । गेरहवें अध्याय में चरित सोइ सुखकार ॥ सनत्कुमारजी बोले कि इसके अनन्तर आपही से उपजेहुये कुटुम्बे

इवरनामक त्रिलोक में प्रसिद्ध शिवजी के तीर्थको कहूंगा ॥ १ ॥ श्रद्धासंयुत जो मनुष्य उस तीर्थमें स्नान करता है वह सातजन्मों में भी कियेहुये पातकों से छूट जाता है ॥ २ ॥ व पवित्र होकर जो पुरुष विधिपूर्वक श्राद्धकर शिवदेवजी को देखताहै वह सब लोकोंको नांधकर शिवलोक को जाताहै ॥ ३ ॥ और इस तीर्थ के किनारे जो पुरुष सब शार्कोंको और अनेक भांति के कर्दोंको देताहै वह उत्तम गतिको प्राप्तहोता है ॥ ४ ॥ पौषमें शुक्लपक्ष की परेवा या अष्टमी तिथिमें सावधान चित्तवाला पुरुष एकही उपाससे अश्वमेधयज्ञ के फलको प्राप्तहोताहै ॥ ५ ॥ और कुंवारकी पौर्णमासी में जो पवित्र मनुष्य शिवजी के पट्टबन्धको देखता है वह पाप

तस्मिंस्तीर्थेनरःस्नानं करोतिश्रद्धयान्वितः ॥ मुच्यतेसर्वपापेभ्यः सप्तजन्मकृत्तरपि ॥ २ ॥ शुचिःपश्यतियोदेवं
कृत्वाश्राद्धंयथाविधि ॥ सर्वल्लोकानतिक्रम्य शिवलोकंसगच्छति ॥ ३ ॥ यस्तुसर्वाणिशाकानि कन्दानिविविधानि
च ॥ तीरेचास्यप्रयच्छेत्तु संप्राप्नोतिपराङ्गतिम् ॥ ४ ॥ पौषेसितप्रतिपदे अष्टम्यांवासमाहितः ॥ एकैर्नवोपवासेन अश्व
मेधफलंलभेत् ॥ ५ ॥ आश्विन्यांपौर्णमास्याञ्च शुचिःपश्यतिमानवः ॥ पट्टबन्धंमहेशस्य सविपाप्मादिवंब्रजेत् ॥
६ ॥ चैत्रेमासिसितेपक्षे पञ्चम्यांसमुपोषितः ॥ कर्पूरकुङ्कुमञ्चैव मृगनाभिसचन्दनम् ॥ ७ ॥ निवेदयतिदेवाय नैवेद्यं
घृतपायसम् ॥ सुरूपञ्चैवविप्रेन्द्रं समार्यभोजयेद्भिजम् ॥ ८ ॥ रुद्रलोकमवाप्नोति यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥ अतःपरंप्रव
क्ष्यामि तीर्थविद्याधरस्यतु ॥ ९ ॥ तत्रस्नात्वाशुचिर्भूत्वा विद्याधरपतिर्भवेत् ॥ १० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीख
ण्डेकुटुम्बेश्वरतीर्थमाहात्म्यनामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

रहित पुरुष स्वर्गको प्राप्तहोता है ॥ ६ ॥ और चैत महीने में शुक्लपक्ष में पञ्चमी तिथिमें उपास कियेहुये जो पुरुष कर्पूर, कुङ्कुम व चन्दन समेत करतूरी को ॥ ७ ॥ और घृतसंयुत खीरकी नैवेद्य को शिवदेवजी के लिये निवेदन करता है व स्त्रीसमेत सुन्दर रूपवाले द्विजेन्द्र ब्राह्मण को भोजन कराताहै ॥ ८ ॥ वह तत्रतक शिव-लोकको प्राप्तहोता है कि जबतक चौदह इन्द्र रहते हैं इसके उपरान्त मैं विद्याधरके तीर्थको कहताहूँ ॥ ९ ॥ उसमें नहाकर व पवित्र होकर पुरुष विद्याधरों का स्वामी होता है ॥ १० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदेवीदयालुमिश्रत्रिचितायाभापाटीकायाकुटुम्बेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णननामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

हों। अतिमहिमा संयुत वंछो तीर्थ गन्धर्व नाम। बारहवें अध्याय में मोई चरित ललाम ॥ व्यासजी बोले कि हे ब्रह्मन्, महाभुने ! इस क्षेत्रमें यह तीर्थ कैसे उत्पन्न हुआ है इस समय इसको सुभसे प्रसन्नतासे कहिये मैं सुना चाहता हूँ ॥ १ ॥ सनत्कुमारजी बोले कि पुरातन समय कोई स्वरूपवान् विद्याधरों का स्वामी हुआ है उसने पारिजातकी सुन्दरीमालाको रचा ॥ २ ॥ और वह उस मालाको लेकर इन्द्रके मन्दिरमें गया व इन्द्रके आगे नाचती हुई मेनकाको उसने देखा ॥ ३ ॥ और उस समय नाचकी सभामें उसने उस मेनकाके लिये उस मालाको दे दिया और वह मेनका उस स्थानमें मालासे मोहित होगई ॥ ४ ॥ तब क्रोधसे संयुत इन्द्र

व्यासउवाच ॥ कथंतीर्थमिदं क्षेत्रं जातमत्रमहाभुने ॥ प्रसादाद्ब्रूहिमेब्रह्मच्छ्रेतुमिच्छामिसाम्प्रतम् ॥ १ ॥ सनत्कुमारउवाच ॥ विद्याधरपतिः कश्चिदासीद्गुह्यधरः पुरा ॥ ग्रथितापारिजातस्य मालातेन मनोरमा ॥ २ ॥ गृहीत्वास च तां मालां गतो वासव इह मनि ॥ नृत्यन्ती वासवस्य ग्रेष्ठे दृष्टेन च मेनका ॥ ३ ॥ दत्ता तस्यैतदतः सा माला नृत्य संसदि ॥ सामेनका तु तस्थाने मालया मोहिता सती ॥ ४ ॥ कोपाविष्टेन शक्रेण शप्तो विद्याधरो ब्रवीत् ॥ पृथिव्यांगच्छपापिष्ठ नृत्य मङ्गस्त्वया कृतः ॥ ५ ॥ विद्याधरपदं त्यक्त्वा मम शापाच्च साम्प्रतम् ॥ एवमुक्तस्तु शक्रेण वाक्यं विद्याधरो ब्रवीत् ॥ ६ ॥ अजानता मयानाथ अपराधः कृतो धुना ॥ अनुग्रहमता देव कुरु मे त्वं प्रसादतः ॥ ७ ॥ एवमुक्तस्तु शक्रेण विद्यते तीर्थमुत्तमम् ॥ ख्यातं तत्रिषु लोके च ॥ गच्छावन्ती त्वमद्यैव यत्रास्ते गङ्गाद्वीपगुहा ॥ ८ ॥ तस्याश्चोत्तरभागे तु विद्यते तीर्थमुत्तमम् ॥ अतस्त्वमापितत्रैव कुरु स्नानं प्रयत्नं पु नान्ना विद्याधरं शुभम् ॥ ९ ॥ भक्त्या तत्र कृतो स्नाने विद्याधरपतिर्भवेत् ॥ अतस्त्वमापितत्रैव कुरु स्नानं प्रयत्नं

ने विद्याधरों को शाप दिया कि हे पापिष्ठ ! तুম इस समय विद्याधरके स्थान को छोड़कर मेरे शापसे पृथ्वीको जावो क्योंकि तुमने नृत्यको भग कर दिया इन्द्रसे इस प्रकार कहे हुये विद्याधर ने वचन कहा ॥ ५ ॥ ६ ॥ कि हे नाथ ! इस समय न जानते हुये मैंने अपराध किया है इसलिये हे देव ! तুম प्रसन्नतासे मेरे ऊपर दया करो ॥ ७ ॥ इस प्रकार कहे हुये वे इन्द्रजी विद्याधरसे बोले कि तूम आज ही अवन्ती (उज्जयिनी) पुरीको जावो जहापर किं गांगटी गुह है ॥ उसके उत्तरभागमें उत्तम तीर्थ विद्यमान

है वह तीनोंलोकोंमें विद्याधर नामक उत्तम तीर्थ प्रसिद्ध है ॥ ६ ॥ भक्ति से उसमें स्नान करनेपर विद्याधरोंका स्वामी होताहै इसीकारण तुम भी यत्नसे उसीमें स्नान करो ॥ १० ॥ इसप्रकार इन्द्रजीसे कहाहुआ वह अवन्तीके मण्डलमें आया व उसने उस सुन्दर तीर्थ में स्नान किया ॥ ११ ॥ और उस तीर्थ के प्रभाव से वह विद्याधरोंका स्वामीहुआ हे व्यासजी ! इसप्रकार उत्तम विद्याधरतीर्थ प्रसिद्ध हुआ है ॥ १२ ॥ वहाँपर पुण्यों को व चन्दनलेपन को जो पुरुष देता है वह इस लोकमें व परलोक में सब सुखोंको प्राप्त होता है ॥ १३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदेवीव्यालुमिश्रचितायांभाषाटीकायांविद्याधरतीर्थमहिमवर्णनमद्वादशोऽध्यायः १२

तः॥१०॥ एवमुक्तःसशक्रेण आगतोवन्तिमण्डले ॥ स्नानंकृतञ्चतेनैव तीर्थेतस्मिन्मनोरमे ॥ ११ ॥ प्रभावात्तस्यतीर्थस्य सविद्याधरपोऽभवत् ॥ एवंव्याससमाख्यातं तीर्थंविद्याधरंशुभम् ॥ १२ ॥ तत्रपुष्पाणियोदद्याच्चन्दनञ्चविलेपनम् ॥ लभेत्समस्तभोगान्सहलोकैकेपरत्रच ॥ १३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेविद्याधरतीर्थमाहात्म्यनाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

सनत्कुमारउवाच ॥ अतःपरंप्रवक्ष्यामि मर्कटेश्वरमुत्तमम् ॥ तत्रतीर्थंचविख्यातं सर्वकामप्रदायकम् ॥ १ ॥ तस्मिन्तीर्थेनरःस्नात्वा गोशतस्यफलंलभेत् ॥ विस्फोटानांप्रशान्त्यर्थं बालानाञ्चैवकारणे ॥ २ ॥ माषेणमिश्रिता नृत्वा मसूरांस्तत्रकुट्टयेत् ॥ शीतलायाःप्रभावेण बालाःसन्तुनिरामयाः ॥ ३ ॥ येष्यन्तिनरामक्त्या शीतलान्दु

दो० । मर्कटेश्वरक तीर्थकर, अहै जौन परभाव । तेरहवें अध्याय में, सोई चरित सुहाव ॥ सनत्कुमारजी बोले कि इसके उपरान्त वहाँपर मर्कटेश्वर ऐसे प्रसिद्ध समस्त कामनाओंको देनेवाले उत्तम तीर्थ को कहूंगा ॥ १ ॥ उस तीर्थ में नहाकर मनुष्य गोशतके फल को प्राप्त होताहै और बालकों के कारण विस्फोटकों की शांति के लिये ॥ २ ॥ उड़दसे मिश्रितकर मसूराको वहाँ कुटायै तो शीतलाके प्रभाव से बालक निरोग होवेंगे ॥ ३ ॥ हे द्विजोत्तम ! जो मनुष्य पापमाशिनो शीतलाजी को

भक्तिसे देखते हैं उनको कुछ पातक नहीं होता है और न दरिद्रता होती है ॥ ४ ॥ और न उनको रोगका डर होता है न ग्रहोंकी पीड़ा होती है ॥ ५ ॥ इति श्रीस्कन्द पुराणेऽवन्तीखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितार्थाभाषाटीकायांशीतलामाहात्म्यं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

दो० । अहै अमित माहात्म्ययुत, तीरथ स्वर्गद्वार । चौदहवें अध्यायमें, ताकर चरित उदार ॥ सनत्कुमारजी बोले कि जो मनुष्य स्वर्गद्वारमें नहाकर व भैरवदेवको देखकर और पितरोंको उद्देशकर वहाँपर भक्तिसे आह्वन करे ॥ १ ॥ हे व्यासजी ! वह अपना समेत पितरोंको तारता है और स्वर्गद्वारसे वह शिवजीके परमपदको प्राप्त होता

रितापहाम् ॥ नतेषांदुष्टकृतं किञ्चिन्नदारिद्र्यं द्विजोत्तम ॥ ४ ॥ नचरोगभयन्तेषां ग्रहपीडातथैवच ॥ ५ ॥ इति श्रीस्कन्द पुराणेऽवन्तीखण्डेशीतलामाहात्म्यं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

सनत्कुमार उवाच ॥ स्वर्गद्वारेनरः स्नात्वा दृष्ट्वा देवञ्च भैरवम् ॥ श्राद्धं तत्रैव कुर्वीत पितृनुद्दिश्य भक्तिः ॥ १ ॥ पितृश्रस नरो व्यास तारयेदात्मना सह ॥ स्वर्गद्वारेण सोभ्येति रुद्रस्य परमं पदम् ॥ २ ॥ भैरवस्याग्रतो देवी पूर्वतिष्ठति चाम्बिका ॥ तान्तु दृष्ट्वानरः स्त्री वा मुच्यते सर्वपातकैः ॥ ३ ॥ महानवम्यां पुरुषः कृत्वा वस्तमयं बलिम् ॥ महिषं वा सुरां मांसं मा ताम्बिल्वमर्यां शुभाम् ॥ ४ ॥ भक्त्या निवेदयेद्देव्यै सर्वसिद्धिमवाप्नुयात् ॥ तत्र स्नात्वा नरो भक्त्या पूजां कृत्वा शिवस्य च ॥ ५ ॥ स्वर्गद्वारेण सोभ्येति रुद्रस्य भवनं द्विज ॥ ६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे स्वर्गद्वारमाहात्म्यं नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

है ॥ २ ॥ भैरवजीके आगे पूर्वदिशामें अम्बिकादेवी स्थित हैं उनको देखकर स्त्री या पुरुष सब पातकों से छूटजाता है ॥ ३ ॥ और महानवमी में जो पुरुष छागमय व भैरवकी बलिकके मदिरा, मांस व बिल्वमयी उत्तम मालाको ॥ ४ ॥ भक्तिसे देवीजीके लिये निवेदन करता है वह सब सिद्धिको प्राप्त होता है उसमें नहाकर मनुष्य भक्तिसे शिवजी का पूजन कर ॥ ५ ॥ हे द्विज ! स्वर्गद्वार के द्वारा वह पुरुष शिवजीके मन्दिर को प्राप्त होता है ॥ ६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचितार्थाभाषाटीकायां स्वर्गद्वारमाहात्म्यं नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

दों । तीर्थ चतुःसमुद्रकर चरित सहित विस्तार । पन्द्रहवें अध्याय में कहो पुरयदातार ॥ सनत्कुमारजी बोले कि चतुःसमुद्र नामक तीर्थ में महाकर मनुष्य राजस्थल शिवको देखे कि जिसके दर्शनही से मनुष्य पुत्रवान् होता है ॥ १ ॥ जार, दुग्ध, दधि व इत्र ये जो चार समुद्र हैं वे उन शिवजी के समीप सुद्युम्नसे थापे गये हैं ॥ २ ॥ व्यासजी बोले कि लाख योजनतक उत्तम जम्बूद्वीप है उसकी मर्यादा में यह चारनामक समुद्र स्थापित है ॥ ३ ॥ और दोलजयोजन शाकद्वीपमें वह क्षीरसागर प्रतिष्ठित है और चार लाख कुशद्वीपमें दधिसमुद्र स्थित है ॥ ४ ॥ और शालमलिद्वीप में आठ लाख इक्षुरसका समुद्र प्रतिष्ठित है और वे चार समुद्र पृथ्वीमण्डलमें

सनत्कुमारउवाच ॥ स्नात्वा चतुःसमुद्रे तु पश्येद्राजस्थलं शिवम् ॥ यस्य दर्शनमात्रेण पुत्रवाञ्छा येतेनरः ॥ १ ॥ समुद्रा स्मन्ति च त्वारः चारु चरिदधी च वः ॥ समीपे तस्य देवस्य सुद्युम्नेन प्रतिष्ठिताः ॥ २ ॥ व्यास उवाच ॥ लक्षयोजनपर्यन्तं जम्बूद्वीपं मुशोभनम् ॥ मर्यादायां स्थापितो यं समुद्रः चारसंज्ञितः ॥ ३ ॥ शाकद्वीपे हिलजे तु चौराब्धिसं प्रतिष्ठितः ॥ दध्यब्धिश्च कुशद्वीपे चतुर्लक्षे प्रतिष्ठितः ॥ ४ ॥ शालमले त्विक्षुजलधिर्ह्यष्टलक्षे प्रतिष्ठितः ॥ चत्वारस्ते समाख्याताः समुद्रा भूमि मण्डले ॥ ५ ॥ राजस्थल समीपे तु कथमेकत्र ताङ्गताः ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ सुद्युम्नो नाम राजासीत् पुराकल्पे पुधाभिकः ॥ ६ ॥ तस्य पत्नी वरारोहा नाम्ना ख्याता सुदर्शना ॥ सा दालभ्यं मुनिदृष्ट्वा पप्रच्छ सुतकाम्यया ॥ ७ ॥ भगवन्कनदानेन स्नानेन विधिनाथवा ॥ सर्वलक्षणसम्पूर्णः पुत्रो लभ्यो मया कथम् ॥ ८ ॥ दालभ्य उवाच ॥ विहितस्ते पुराणुनि सर्वपुत्रेषु सत्तमः ॥ स्वयम्भूतेन देवेन ब्रह्मणालोककारिणा ॥ ९ ॥ तेभ्यो शङ्करन्देवमाराध्य तत्प्रसा

कहे गये हैं ॥ ५ ॥ और राजस्थल के समीप वे कैसे एकत्रता को प्राप्त हुये हैं सनत्कुमार जी बोले कि पुरातन समय कल्पों में सुद्युम्न नामक धर्मवान् राजा हुआ है ॥ ६ ॥ उसकी उत्तम कटिवाली सुदर्शना नामक स्त्री थी उसने दालभ्य मुनिको देखकर पुत्रकी कामना से पूछा ॥ ७ ॥ कि हे भगवन् ! किस दानसे व स्नान या विधि से समस्त लक्षणोंसे सम्पूर्ण पुत्र मुझको कैसे प्राप्त होने योग्य है ॥ ८ ॥ दालभ्यजी बोले कि हे पुत्रि ! लोकों के रचनेवाले व आपही से उपजे हुये ब्रह्माजी ने पहलेही सब पुत्रोंमें उत्तम तुम्हारे पुत्रको किया है ॥ ९ ॥ यदि तुम्हारा पति सदाशिव देवजी को आराधक उनकी प्रसन्नतासे चारों समुद्रों को स्वरूप से अवन्तीपुरी में

लोचनी ॥ १० ॥ तो उनमें राजाके स्नान करनेपर तुम्हारे पुत्र होगा इसलिये हे पुत्रि ! शिवजी के आराधन में पतिकी प्रेरणा कीजिये ॥ ११ ॥ दालभ्यके वचन से व विचित्र आख्यान से उसने शंकरजीके आराधन करनेमें पतिको पठाया ॥ १२ ॥ और उसने गंधमादन पर्वत पर जाकर शिवजीको प्रसन्न कराया व प्रसन्न होतेहुये चन्द्रमा, सूर्य व अग्नि लोचनोवाले शिवजी बोले ॥ १३ ॥ कि हे राजेन्द्र ! उज्जैनीपुरीको जाइये उत्तम पुत्रको पावोगे और मेरी आज्ञासे समुद्र कुशस्थली (अवन्ती) पुरीको जावोगे ॥ १४ ॥ हे नर श्रेष्ठ, राजेन्द्र ! मरुरूप याने निर्जल स्थल में शंकरजी के समीप तुम भलीभाति प्राप्तहुये समुद्रोंको देखोगे ॥ १५ ॥ और तुमसे याचना

दतः ॥ आनयिष्यत्यवन्त्यांचेच्चतुरोवधीन्स्वरूपतः ॥ १० ॥ तेषुराज्ञाकृतस्नाने तवपुत्रोभविष्यति ॥ शङ्कराराधनेषु त्रितस्मात्प्रेरयवह्नुभम् ॥ ११ ॥ दालभ्यस्यैववाक्येन विचित्राख्यानकेनच ॥ प्रस्थापयामासपतिं शङ्कराराधनेषुच ॥ १२ ॥ सगत्वातोषयामास शङ्करगन्धमादने ॥ सन्तुष्टः शङ्करः प्राह शशिसूर्याग्निलोचनः ॥ १३ ॥ अवन्तीगच्छराजेन्द्र पुत्रं प्राप्स्यसि शोभनम् ॥ मन्त्रासनाज्जलधरा गमिष्यन्ति कुशस्थलीम् ॥ १४ ॥ मरुरूपस्थले राजन् समीपे शङ्करस्यच ॥ द्रक्ष्यसि त्वं नर श्रेष्ठ जलधीस्तत्र सङ्गतान् ॥ १५ ॥ अभ्यर्थितास्त्वया तत्र स्थास्यन्ति कलत्रासदा ॥ एवमुक्त्वा महादेवो जगामादर्शनं विभुः ॥ १६ ॥ सुद्युम्नो भार्यया साद्धमाजगाम कुशस्थलीम् ॥ आगतांस्तुकुशस्थल्या समुद्रांश्च ददर्श ह ॥ १७ ॥ तांस्तुष्टुद्वानमश्चक्रे राजस्थलसमीपतः ॥ तवैष्टुद्वान्च सुद्युम्न प्रणतं भक्तवत्सलाः ॥ १८ ॥ प्रोचुर्वारिधयस्सर्वे वरं वरयसुव्रत ॥ सर्वव्रेमनसापुत्रं सर्वलक्षणसंयुतम् ॥ १९ ॥ उवाच च पुनराज्ञा यावत्तिष्ठति मे दिनी ॥

कियेहुये वे वहां सदैव कला से टिकेंगे ऐसा कहकर महादेव स्वामी अन्तर्धान होगये ॥ १६ ॥ और सुद्युम्न स्त्री समेत कुशस्थली को आये और कुशस्थली में आये हुये समुद्रोंको उसने देखा ॥ १७ ॥ और राजस्थलके समीप उनको देखकर उसने प्रणाम किया व प्रणाम किये उन सुद्युम्नको देखकर भक्तिप्रिय ॥ १८ ॥ सब समुद्र बोले कि हे सुव्रत ! वरदान मांगिये उसने मनके द्वारा सबस्त लक्षणों से संयुत पुत्रको मांगा ॥ १९ ॥ और फिर राजा बोले कि जबतक पृथ्वी स्थित रहै तबतक

राजस्थलके समीप तुम सबों को यहींपर टिकना चाहिये ॥ २० ॥ समुद्र बोले कि जबतक कल्पान्त होगा तबतक हम सब यहीं टिकेंगे और इसमें तुम्हारे स्नानमात्र से तुम्हारे समस्त लक्षणोंसे संयुत पुत्रहोगा इसलिये स्नान करिये और हे राजन् ! इस उत्तम स्थलमें कला समेत हम सब टिकेंगे ॥ २१ ॥ २२ ॥ हे व्यासजी ! इस प्रकार सुशुभ्रसे समुद्र उत्पन्न किये गये उनमें जो यात्रा करता है उसके पुण्यके फलको सुनिये ॥ २३ ॥ कि महापुण्यदायक क्षारसमुद्र में स्नानकर तदनन्तर हे व्यासजी ! पितरों की भक्ति में तत्पर पुरुष श्राद्ध करे ॥ २४ ॥ और स्थल में टिके हुये पार्वती जीके पति महादेवजी को पूजै तदनन्तर वेदके पारगामी ब्राह्मण के

स्थातव्यं तावदत्रैव राजस्थलसमीपतः ॥ २० ॥ समुद्राञ्जुः ॥ तावत्स्थायामेवात्र यावत्कल्पावसानकम् ॥ भविष्यति च तेषु पुत्रः सर्वलक्षणसंयुतः ॥ २१ ॥ अत्र ते स्नानमात्रेण तस्मात्स्नानं समाचर ॥ स्थले चात्र शुभे राजन् स्थायामः कलया सह ॥ २२ ॥ एवं व्यास समुद्राश्च सुशुभ्रमेनावतारिताः ॥ कुरुते तेषु यो यात्रां तस्य पुण्यफलं शृणु ॥ २३ ॥ स्नानं कृत्वा महापुण्ये समुद्रे चारसंज्ञके ॥ कुर्याच्छ्राद्धं ततो व्यास पितृणां भक्ति तत्परः ॥ २४ ॥ पूजयेच्च महादेवं स्थलस्थं पार्वतीपतिम् ॥ मण्डनानि ततो दद्याद्ब्राह्मणे वेदपारगे ॥ २५ ॥ पात्रं ताम्रमयं कार्यं लवणेन प्रपूरितम् ॥ सहिरण्यञ्च दातव्यं ब्राह्मणे वेदपारगे ॥ २६ ॥ सप्तधान्यसमायुक्तं वेणुजं वस्त्रवेष्टितम् ॥ सदा क्षिणं फलैर्युक्तमर्घ्यं दद्यात्प्रयत्नतः ॥ २७ ॥ क्षीराब्धिं च ततो गत्वा स्नानं कुर्याच्च पूर्ववत् ॥ क्षीरं तत्र प्रदातव्यं ताम्रपात्रे प्रपूरितम् ॥ २८ ॥ दध्यब्धौ च तथा कृत्वा दद्याद्दध्योदनं शुभम् ॥ इक्षुवब्धौ च तथा कृत्वा दद्याद्विप्रेणुदं शुभम् ॥ २९ ॥ यात्रां कृत्वा तु वै व्यास गाञ्च निमित्त आभूषणो को देवैः ॥ २५ ॥ और ताम्रमयपात्र करना चाहिये व लोहसे पूरित तथा सुवर्ण समेत उस पात्रको वेदोंके पारगामी ब्राह्मणके निमित्त देना चाहिये ॥ २६ ॥ और सप्तधान्य से संयुत व वसन से लपेटे हुये दक्षिणा समेत व फलों से संयुत बांससे उपजे हुये पात्रका अर्घ्य बड़े यत्नसे देना चाहिये ॥ २७ ॥ तदनन्तर क्षीरसमुद्र को जाकर व पहले की नाई स्नानकर वहां तबिके पात्र में भगे हुये दूधको देना चाहिये ॥ २८ ॥ वैसेही दधिसमुद्र में करके उत्तम दही भातको देना चाहिये और ऊँबके रसके समुद्र में वैसेही करके ब्राह्मण के निमित्त उत्तम गुड़को देना चाहिये ॥ २९ ॥ व हे व्यासजी ! यात्रा करके दूधवाली गऊको देवै इस प्रकार जो

मनुष्य राजस्थल के समीप यात्रा करता है ॥ ३० ॥ वह कह्याणमयी लक्ष्मी व सुन्दर पुत्रों को पाता है और मरकर स्वर्गको प्राप्त होता है जबतक कि चौदह इन्द्र रहते हैं ॥ ३१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदेवीव्यालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांराजस्थलेश्वरसमीपेचतुःसमुद्रमाहात्म्यवर्णनंनमपञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥
दो० । कह्यो शङ्करादित्यकर अति अद्भुत परभाव । सोलहवें अध्याय में सोई चरित सुहाव ॥ सनत्कुमारजी बोले कि हे व्यासजी ! शंकरवापिका नामक महा-
तीर्थ को सुनिये कि क्रीड़ा करतेहुये शिवदेवजी ने उत्तम तीर्थका निर्माण कियाहै ॥ १ ॥ देवदेव शिवजी ने कपाल को धोनेवाले जलको फेंक दिया और जिस लिये

दद्यात्पयस्विनीम् ॥ एवंयःकुरुतेयात्रां राजस्थलसमीपतः ॥ ३० ॥ भव्यांहिलभतेलक्ष्मीं पुत्रांश्चापिमनोरमान् ॥ मृ-
तःस्वर्गमवाप्नोति यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥ ३१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे राजस्थलेश्वरसमीपेचतुस्समुद्रमा-
हात्म्यन्नामपञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥ * * * * *

सनत्कुमारउवाच ॥ शृणुव्यासमहातीर्थं नाम्नाशङ्करवापिका ॥ क्रीडमानेनदेवेन निर्मितंतीर्थमुत्तमम् ॥ १ ॥ प्र-
क्षिप्तंदेवदेवेन कपालक्षालनंजलम् ॥ वापीगतंकृतंयस्मादतःशङ्करवापिका ॥ २ ॥ अर्काष्टम्यांनरःस्नात्वा दिशासु
विदिशासुच ॥ पूर्वादिक्रमतोयाच्च वापीमध्येतथैवच ॥ ३ ॥ हविष्यान्नयुतान्व्यास दद्याच्चकरकान्नवान् ॥ शाकमूलां
श्वप्रेभ्यस्तस्यपुण्यफलंशृणु ॥ ४ ॥ परत्रचेहयेलोकाः सर्वभोगसमन्विताः ॥ तत्रतत्रसमायान्ति भुक्त्वैश्वर्यमनुत्त-
मम् ॥ ५ ॥ येनराःकीर्त्तयिष्यन्ति माहात्म्यमतिभावुकाः ॥ रुद्रलोकेपितेपूज्यास्तेभ्योस्तुसततन्नमः ॥ ६ ॥ सनत्कुमा-

वह बावली में प्राप्त कियागया इसीसे शंकरवापिका हुई ॥ २ ॥ अर्काष्टमीमें बावलीके मध्यमें पूर्वादिक क्रमपूर्वक जल से दिशाओं व विदिशाओं में नहाकर ॥ ३ ॥ हे
व्यासजी ! हविष्यानन से संयुत नवीन कमण्डलुवोंको देवै व ब्राह्मणों के लिये शाकों व मूलोंको देवै उसके पुण्यके फलको सुनिये ॥ ४ ॥ कि परलोकमें व इस लोक
में समस्त सुखोंसे संयुत जो लोक हैं वहां वहां अति उत्तम ऐश्वर्य को भोगकर वे मनुष्य भली भांति प्राप्त होते हैं ॥ ५ ॥ अत्यन्त कुशल जो मनुष्य इस माहात्म्य

को कहेंगे वे भी शिवलोक में पूजनीय होंगे और उन के लिये सदैव प्रणाम होवै ॥ ६ ॥ सनत्कुमारजी बोले कि तदनन्तर-पिनाक नामक धनुषको धारण करनेवाले वृषध्वज देवदेवेश जीने पवित्र होकर देवदेव सूर्यनारायणजी की स्तुति किया ॥ ७ ॥ और सूर्यनारायणजी आये व प्रसन्न होते हुये वे सदाशिवजी से बोले सूर्य-नारायणजी बोले कि हे भूतेशजी ! वरदानको मांगिये मैं वरदायक हूँ तुम्हें वरदानको दूंगा ॥ ८ ॥ उनसे शिवजी बोले कि यदि तुम वरदायक हो तो मुझ से याचना की हुई वस्तुको कीजिये कि समस्त शरीरधारियों के हितके लिये यहां अंशसे स्थित होवों ॥ ९ ॥ महादेवजी का वचन सुनकर वहापर सूर्यनारायणजी

रउवाच ॥ ततोवैदेवदेवेशः पिनाकीवृषभध्वजः ॥ तुष्टावप्रयतोभूत्वा देवदेवदिवाकरम् ॥ ७ ॥ आजगामदिवानाथः
सन्तुष्टः प्राहशङ्करम् ॥ सूर्य्यउवाच ॥ वरं वरय भूतेश वरदोस्मि ददामि ते ॥ ८ ॥ तमाह वरदश्चेत्त्वं आच्यमानं कुरुष्व
मे ॥ अंशेन स्थायतामत्र हितार्थं सर्वदेहिनाम् ॥ ९ ॥ अवतीर्णो रविस्तत्र श्रुत्वामाहे इव रंचः ॥ ततो देवाधिदेवेशो य
यौ ख्यातिं महामतिः ॥ १० ॥ शङ्करादित्यनामेति लोकानां शान्ति कारकः ॥ देवैर्देव्याश्च गन्धर्वा विस्मितास्सह
किन्नरैः ॥ ११ ॥ अहो धन्यमिदं स्थानं यत्रास्ते त्रिपुरान्तकः ॥ भास्करोऽपि च तत्र स्थस्तीर्थमाहात्म्यवर्णने ॥ १२ ॥ तत
स्तुष्टाश्च ते सर्वे ब्रह्माद्यास्सुरसत्तमाः ॥ देवेशं पूजयामासुर्देवमादित्यशङ्करम् ॥ १३ ॥ मूर्तिमन्तश्च ते देवा अवतीर्य्य च
शोभनम् ॥ स्थापयित्वा ब्रुवन्वाक्यं येत्वांस्तोष्यन्ति मानवाः ॥ १४ ॥ ननुः खं जायते तेषां जरामरणदुःखजम् ॥ सर्व

ने अवतार लिया उसी कारण देवाधिदेवेश व महाबुद्धिमान् तथा लोकों के शान्ति कारक सूर्यनारायणजी शंकरादित्य ऐसे नाम से प्रसिद्धि को प्राप्त हुये और देवता, देव्य व किन्नरों समेत गन्धर्व विस्मयको प्राप्त हुये ॥ १० ॥ ११ ॥ कि अहो यह स्थान धन्य है कि जहांपर त्रिपुरके विनाशक सदाशिवजी हैं और वहां टिके हुये सूर्यनारायण भी तीर्थ के माहात्म्यके वर्णन में हैं ॥ १२ ॥ तदनन्तर प्रसन्न होते हुये उन ब्रह्मादिक सुरेश्वरों ने देवेश आदित्य शंकरजी का पूजन किया ॥ १३ ॥ और मूर्त्तिमान् वे देवता अवतार लेकर व उनको स्थापित कर उत्तम वचन बोले कि जो मनुष्य तुम्हारी स्तुति करेंगे ॥ १४ ॥ उनको वृद्धता व मरणसे उपजा हुआ

यज्ञेषु यत्पुण्यं सर्वदानेषु यत्फलम् ॥ १५ ॥ तस्माच्चैवाधिकं ह्यत्र शङ्करादित्यदर्शनात् ॥ व्याधयो नाधयश्चैव दारिद्र्य
न्नकदाचन ॥ १६ ॥ ऐश्वर्यञ्चातुलंतेषां जायते सुविसर्वदा ॥ नरोगो न च दारिद्र्यं वियोगो न च वन्धुभिः ॥ १७ ॥ जायते मु
निशार्दूल शङ्करादित्यदर्शनात् ॥ इत्येव देवदेवेन पुरा वैशूलपाणिना ॥ १८ ॥ स्थापितं परमं तर्थां स्वनाम्ना मुनि सत्त
* ॥ १६ ॥

म ॥ १९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्ताखण्डे शङ्करादित्यमाहात्म्यनामोऽष्टोत्तरशतिकाश्चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥ प्र

सनत्कुमारउवाच ॥ एकास्मिन्समयव्यास कपालक्षेत्रे ॥ १ ॥
ब्रह्मणोऽधिरणापि परिपू
ज्वालयचाक्षिपद्भूमौ तत्रतीर्थमनुत्तमम् ॥ नाम्नागन्धवतीपुण्या नदीत्रैलोक्यविश्रुता ॥ २ ॥ ब्रह्मणोऽधिरणापि परिपू
र्णोभवत्क्षणात् ॥ तस्यांस्नानं सदाशस्तं स्वयन्देवेनभाषितम् ॥ ३ ॥ श्राद्धं कृतं तर्पणञ्च तत्सर्वंचान्नयं भवेत् ॥ वायुभू
तास्तु पितरस्तस्यास्तीरेतुदक्षिणे ॥ ४ ॥ तिष्ठन्ति मुनिशार्दूल चिन्तयन्ति स्वगोत्रजम् ॥ आगमिष्यति पुत्रो नो नष्टा
दो ॥ पितर तृप्तिदायकं चरितं गन्धवतीं करजौ न । सत्रहर्षे अर्ध्यायमे बरणात है सब तौ न ॥ सनत्कुमारजी बोले कि हे व्यासजी ! एक समय महोदेवजीने कपाल
को धोने के लिये शुद्ध जलको लेकर व उसको प्रक्षालन कर भूमि में फेंक दिया वहाँपर अति उत्तम तीर्थ होगया नामसे गन्धवती नामक पुण्यदायिनी नदी त्रिलोक
में प्रसिद्ध हुई ॥ १ । २ ॥ वही ब्रह्माके रक्तते क्षणभरमे पूर्ण होगई उसमें आपही सदाशिवदेवजीने सदैव स्नानको उत्तम कहा है ॥ ३ ॥ और किया हुआ श्राद्ध व
तर्पण वह सब अन्नय होत्र है और उसके दक्षिण किनारे पै पवनभूत पितर ॥ ४ ॥ टिके है व हे मुनिश्रेष्ठ ! वे अपने गोत्रसे उपजेहुये पुरुषको चिन्तन करते हैं कि

हम लोगोंकी संतानमें पुत्र या नाती यहां आवैगा ॥ ५ ॥ और वह शुद्धिया या खीर भी व सांवां और उत्तम तिन्नी फसही को और सत्, गृहद व तिलोसे संयुक्त पिंड को कब देवैगा ॥ ६ ॥ उन पिंड के देने से अविनाशिनी तृप्ति होती है और चन्द्रग्रहण में स्नान कर जो मनुष्य वहा पिंड को देता है ॥ ७ ॥ उसके पितर बारह वर्ष तक तृप्ति को प्राप्त होते हैं हे द्विज ! यहापर जो उत्तम विद्वान् मनुष्य आकर ॥ ८ ॥ पितरों को तृप्त करेगा उनको सदैव अक्षयस्वर्ग होगा वहा जो लवमात्र सुवर्णदान दिया जाताहै ॥ ९ ॥ उसका वह आपही उपजेहुये ब्रह्माजीसे अक्षय कहानया है और हरिद्वार, प्रयाग, कुरुक्षेत्र व पुष्कर में ॥ १० ॥ और काशी व गया में

वासन्तताविह ॥ ५ ॥ संयावंपायसंवापि श्यामाकंसन्निवारकम् ॥ सप्ततुर्जौद्रतिलैर्युक्तं पिण्डं दास्यति वै कदा ॥ ६ ॥ ते न पिण्डप्रदानेन तृप्तिर्भवति चाक्षया ॥ यस्तु स्नात्वा च वै पिण्डं दद्याद्वै चन्द्रपर्वणि ॥ ७ ॥ पितरो द्वादशाब्दानि तृप्तिं यास्यन्ति तस्य वै ॥ ये त्रागत्य सुविद्वांसो मानवा वै तथा द्विज ॥ ८ ॥ पितृन् सन्तर्पयिष्यन्ति स्वर्गस्तेषां सदाक्षयः ॥ तत्र यद्दीयते दानं त्रुटिमात्रं तु काञ्चनम् ॥ ९ ॥ अक्षयं तस्य तत्प्रोक्तं ब्रह्मण वै स्वयम्भुवा ॥ गङ्गाद्वारे प्रयागे च कुरुक्षेत्रे च पुष्करे ॥ १० ॥ वाराणस्यांगयायाञ्च मासात् तृप्तिर्भविष्यति ॥ तुष्टाश्च पितरो नृणां दास्यन्ति काङ्क्षितान्वरान् ॥ ११ ॥ यो यमुद्विश्य वै काममिह श्राद्धं करिष्यति ॥ तस्य तज्जायते सर्वमृतस्य परमा गतिः ॥ १२ ॥ अष्टमी नवमी चैवामावस्यावा थ पूर्णिमा ॥ सर्वास्वेता सुवैव्यास रवेः संक्रमणे तथा ॥ १३ ॥ ब्रह्मेन्द्र रुद्र देवाश्च सूर्याग्निब्रह्मदेवताः ॥ विश्वे देवान्सगन्धर्वान् यक्षांश्च मनुजान् पशून् ॥ १४ ॥ सरीसृपान् पितृगणान् यच्चान्यद्भुवि संस्थितम् ॥ श्राद्धवै श्रद्धया कुर्वन् प्रीणय

जो तृप्ति होती है वह तृप्ति होगी और प्रसन्न होते हुये पितर मनुष्यों को चाहे हुये वरदानों को देंगे ॥ ११ ॥ जो मनुष्य जिस मनोरथ को उद्देश कर यहां श्राद्ध करेगा उसका वह सब होगा और मरे हुये पुरुष की उत्तम गति होगी ॥ १२ ॥ हे व्याम जी ! अष्टमी, नवमी व अमावस और पूर्णिमा इन सब तिथियों में व सूर्य की संक्रान्ति में ॥ १३ ॥ ब्रह्मा, इन्द्र व रुद्र देवताओं को तथा सूर्य, अग्नि व ब्रह्मदेवताओं को और गंधर्वों समेत विश्वदेवों तथा यक्षों व मनुष्यों और पशुओं

को ॥ १६ ॥ और सपों, पितृगणों को व अन्य जो भूमि में स्थित है उसको श्राद्ध करता हुआ पुरुष सब भंसार को तृप्त करता है ॥ १५ ॥ इति श्रौतम् !
प्रत्येक महीने में शुक्लपक्ष में पौर्णमासी में और चन्द्रक्षय (अमावस) में जब अनुराधा, विशाखा व रोहिणी होवै ॥ १६ ॥ तब श्राद्ध में पूजेहुये पितरसमूह तृप्ति को प्राप्त होते हैं और धनिष्ठा व पूर्वाभाद्रपद नक्षत्र में तृप्ति को चाहते हुये पितरोंकी ॥ १७ ॥ भक्तिसे श्राद्ध करै उससे पितर तृप्त होते हैं व यह कहते हैं कि कुल में उपजे हुये भी वे धन्य हैं हमलोगों की तृप्ति के कारण ॥ १८ ॥ कि जो श्राद्धकरते हैं व पिंडों को देते हैं उस पिंडदान से हमलोगों की अन्नय तृप्ति होती

त्यखिलंजगत् ॥ १५ ॥ मासिमासिसितेपक्षे पञ्चदश्याद्विजोत्तम ॥ इन्दुर्जयेयदामैत्रं विशाखाचैवरोहिणी ॥ १६ ॥ आ
द्धेपितृगणास्तृप्तिं प्रयान्तिचतथार्चिताः ॥ वासवाजैकपादर्जे पितृणांतृप्तिमिच्छताम् ॥ १७ ॥ भक्त्याश्राद्धंप्रकुर्वीत
पितरस्तेनतर्पिताः ॥ अपिधन्याःकुलेजाता अस्माकंतृप्तिहेतवे ॥ १८ ॥ येकुर्वन्तिचवैश्राद्धं पिण्डान्येनिर्वपन्तिच ॥
तेनपिण्डप्रदानेन तृप्तिर्नोभविताक्षया ॥ १९ ॥ इहेत्यवैपुण्यजलेषुसम्यक्स्नात्वानरःस्वानुलभेतकामान् ॥ यान्
प्राप्यचप्रेतगणैःसमेतः समोदतेदेववृत्तार्थसिद्धः ॥ २० ॥ चित्तञ्चचित्तञ्चयशोविशुद्धं देशस्तुकालःकथितोविधिश्च ॥
पात्रंयथोक्तंपरमाञ्चभक्तिं नृणांप्रयच्छन्तिहिवाञ्छितानि ॥ २१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेनीलगङ्गागन्धवती
प्रभाववर्णनंनमस्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ * ॥ * ॥

सनत्कुमारउवाच ॥ दशाश्वमोधिकेस्नात्वाष्टद्वादैवंमहेश्वरम् ॥ दशानामश्वमेधानां फलंप्राप्तनोतिमानवः ॥ १ ॥
है ॥ १६ ॥ यहां आकर व पवित्र जलों में भली भांति नहाकर मनुष्य अपने मनोरथों को प्राप्त होता है कि जिनको पाकर देवताओं से धिरा हुआ वह सिद्ध प्रयोजन
वाला मनुष्य प्रेतगणों समेत प्रसन्न होता है ॥ २० ॥ शुद्धचित्त, धन, यश, देश, काल व कहीं हुई विधि और यथोक्त पात्र ये सब मनुष्यों को उत्तम भक्ति व चाहे
हुये मनोरथों को देते हैं ॥ २१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभापाटीकायानीलगङ्गागन्धवतीप्रभाववर्णनंनमस्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

दो० अति उत्तम माहात्म्ययुत तीर्थ दशाश्वकमेध । अतारहे अध्यायमें बरण्यों सोइ सुमेध ॥ सनत्कुमारजी बोले कि दशाश्वमेध तीर्थमें नहाकर व शिवदेवजी को

देखकर मनुष्य दश अश्वमेधों के फलको प्राप्त होता है ॥ १ ॥ मनुजैन्द्र मनु व राजा गयाति, रघु, उशना और लौमश महर्षि ने ॥ २ ॥ व अत्रि भृगु तथा बुद्धिमान् दत्तात्रेयजी व पुराणरूप पुरुरवा, नहुष और नल ने ॥ ३ ॥ इस तीर्थ में स्नान से दश अश्वमेध यज्ञों के फलको पाया है वैसेही द्वापर का अन्त प्राप्त होने पर बाष्कलि राजाने ॥ ४ ॥ हे द्विजोत्तम ! दश अश्वमेध यज्ञों के फल को पाया है वैसेही कृष्णवर्ण लिंग भक्ति से सदैव पूजित है ॥ ५ ॥ मनुष्य उन देवको दे-खकर व स्पर्श कर पहले कहे हुये फलको प्राप्त होता है चैत महर्षि ने शुक्रपक्षकी अष्टमी में भक्ति से उन देव को भलीभांति पूजकर ॥ ६ ॥ सुन्दर रूपवाले व

मनुनामानवेन्द्रेण राज्ञाचैवययातिना ॥ रघुणोशनसाचैवल्लोमशेनमहर्षिणा ॥ २ ॥ अत्रिणाभृगुणाचैव दत्तात्रेयेण धीमता ॥ पुरुरवसापुण्येन नहुषेणनलेनच ॥ ३ ॥ अत्रस्नानेनसंप्राप्तं दशाश्वमेधिकंफलम् ॥ संप्राप्तेद्वापरस्यान्ते राज्ञाबाष्कलिनातथा ॥ ४ ॥ दशानामश्वमेधानां फलंप्राप्तं द्विजोत्तम ॥ कृष्णवर्णैतथालिङ्गं पूजितंभक्तिःसदा ॥ ५ ॥ दृष्ट्वाभृष्टद्वाचतंदेवं प्राणुक्कंलभतेफलम् ॥ चैत्रेमासिसिताष्टम्यां देवंसंपूज्यभक्तिः ॥ ६ ॥ अश्वंदद्याच्चविप्राय सुरूपंच गुणान्वितम् ॥ याचन्तितस्यरोमाणि गणयन्तेसंख्ययाद्विज ७ ॥ तावद्वर्षसहस्राणिशिवलोकेमहीयते ॥ शिवलोकात्परिभ्रष्टःसर्वभौमोभवेद्भुवि ॥ ८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदशाश्वमेधमाहात्म्यनामाष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

सनत्कुमारउवाच ॥ एकानंशानमस्कृत्य देवत्रैलोक्यविश्रुताम् ॥ पूजांकृत्वाविधानेन सर्वसिद्धिफलंलभेत् ॥ १ ॥ आपिमादिगुणान्सर्वान् गुटिकांसिद्धमञ्जनम् ॥ खड्गंचपादुकेचैवविलवांसंरसायनम् ॥ २ ॥ सर्वतुष्टाप्रयच्छेत्तु नात्रका गुणों से संयुक्त घोडे को ब्राह्मण के लिये दैत्रे हे द्विज ! उस अश्वके जितने रोम गिने जाते है ॥ ७ ॥ उतने हजार वर्षों तक वह शिवलोक में पूजित होता है और शिवलोक से भ्रष्ट हुआ वह पुरुष पृथ्वी में चक्रवर्ती राजा होता है ॥ ८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदशाश्वमेधमाहात्म्यनामाष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥ दो० । एकानंशा भगवती का उत्तम आख्यान । उनीरावें अध्याय में कीन्हो चरित बखान ॥ सनत्कुमार जी बोले कि त्रिलोक में प्रसिद्ध एकानंशा देवीजी को प्रणामकर व विधि से पूजनकर मनुष्य सब सिद्धियों के फलको प्राप्त होता है ॥ १ ॥ और अणिमादिक सब गुणों को व गोली तथा मिह्रअञ्जन व तलवार

पादुका तथा धितमें वास और रसायन ॥ २ ॥ इस सब वस्तुको प्रसन्न होती हुई वे भगवतीजी देती हैं इस विषय में विचार न करना चाहिये मदिरा व मांस के उपहारों से तथा मक्ष्य व भोजनों से पूजी हुई ॥ ३ ॥ प्रसन्न देवी जी मनुष्योंको सदैव सब कामनाओं को देती हैं और महानवमी में जो पुरुष भैसे के द्वारा देवी को पूजता है ॥ ४ ॥ व लाभ के अनुकूल मेष (भेड़े) से याने भेड़े के बलिप्रदान से जो उन देवी जी को पूजता है वह समस्त मनोरथों को प्राप्त होता है व्यासजी बोले कि एकानंश। ऐसी प्रसिद्ध देवी कैसे उत्पन्न हुई हैं ॥ ५ ॥ समस्त पातकों के विनाशक उस वृत्तान्त को मैं सुना चाहता हूं सनत्कुमारजी बोले कि पुरातन समय

र्याविचारणा ॥ सुरामांसोपहारैश्चमक्ष्यभोज्यैश्चपूजिता ॥ ३ ॥ सर्वान्कामान्मृणादिवी तुष्टादद्याच्चसर्वदा ॥ महानवम्यांयोदेवीं महिषेणप्रपूजयेत् ॥ ४ ॥ मेषेणचयथालाभं सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥ व्यासउवाच ॥ कथं देवीसमुत्पन्ना एकानंशोतिविश्रुता ॥ ५ ॥ तत्सर्वश्रोतुमिच्छामि सर्वपापप्रणाशनम् ॥ सनत्कुमारउवाच ॥ पुराकृतयुगस्यादौ ब्रह्मालोकपितामहः ॥ ६ ॥ निशांसंस्मारभगवान् स्वांतनुपूर्वसम्भवाम् ॥ ततोभगवतारात्रिरुपतस्थेपितामहम् ॥ ७ ॥ तांविचिकेसमालोक्य ब्रह्मोवाचविभावराम् ॥ विभावरिमहाकायै व्यवधानेष्टुपस्थिते ॥ ८ ॥ यत्कर्तव्यं त्वयादेवि शृणुचार्यस्यनिश्चयम् ॥ तारकोनामदैत्येन्द्रः सुरशत्रुरनिर्जितः ॥ ९ ॥ तस्माद्भयेनवैदेवास्त्रस्तास्सर्वदिवौकसः ॥ तस्माद्भद्रे महेशोवै जनयिष्यतिचेद्वरम् ॥ १० ॥ सुतंसभवितातस्य तारकस्यान्तकः किल ॥ शङ्करस्याभवत्पत्नी सतीदत्तमुता

सतयुगके आदिमें लोकों के पितामह भगवान् ब्रह्मार्जनि पहले उपजी हुई अपनी देहरूपिणी रात्रि को स्मरण किया तदनन्तर भगवान् ब्रह्माजी से स्मरण की हुई रात्रि ब्रह्माजी के समीप प्राप्त हुई ॥ ६७ ॥ उस रात्रिको एकान्त में देखकर ब्रह्मा जी बोले कि हे महाशरीरे, विभावरि ! व्यवधान (अंतर्धान) प्राप्त होने पर ॥ ८ ॥ हे देवि ! जो तुमको करना चाहिये उस प्रयोजनके निश्चय को सुनिये कि दैत्येन्द्र तारकनामक देवताओं का शत्रु नहीं जीतागया है ॥ ९ ॥ इसकारण स्वर्ग में रहनेवाले सब देवता भय से डरे हुये हैं इसलिये हे भद्रे ! यदि सदाशिवजी उत्तम पुत्र को पैदा करेंगे तो वह प्रसिद्ध में उस तारक का मारक होगा दत्तजीकी कन्या सती जी जो

शंकरजी की स्त्री हुई हैं ॥ १० । ११ ॥ हे भद्रे ! वे किसी कारण के मध्य मे पिता से क्रोधित हुई थीं और लोकों को पवित्र करनेवाली वे ही हिमाचल की कन्या होवेंगी ॥ १२ ॥ व उनके वियोग से सदाशिवजीने त्रिलोक को शून्य मानकर सिद्धों से सेवित हिमाचल की कन्दरा में तप किया है ॥ १३ ॥ और उसका जन्म परखते हुये वे शिवजी वहा कुछ समय तक बसैगे भलीभांति तपस्या किये हुये उन शिवजी से जो महाप्रभु होवेंगे ॥ १४ ॥ वे तारक दैत्य के निवारक याने मना करनेवाले होवेंगे पैदा होते ही अल्पसज्ञावाली वे सुन्दरी देवीजी ॥ १५ ॥ वियोग से उत्कंठित होकर शिवजी के संयोग की लालसावाली होवेंगी और भलीभांति तुया ॥ ११ ॥ सापितुःकुपितामद्रे कस्मिंश्चित्कारणान्तरे ॥ भवित्रीहिमशैलस्य दुहितालोकपावनी ॥ १२ ॥ विरेहेण हरस्तस्या मत्वाशून्यं जगत्त्रयम् ॥ अतपद्धिमशैलस्य कन्दरे सिद्धसेविते ॥ १३ ॥ प्रतीक्षमाणस्तज्जन्म किञ्चित्कालं वसिष्यति ॥ तस्मात्सुतस्तपसो भविता यो महाप्रभुः ॥ १४ ॥ समविष्यति दैत्यस्य तारकस्य निवारकः ॥ जातमात्रा तु सा देवी स्वल्पसंज्ञैव मामिनी ॥ १५ ॥ विरहोत्कण्ठिता बाहुं हरसङ्गमलालसा ॥ तयोस्सुतस्तपसोऽस्संयोगः स्यात्सुगुप्तयोः ॥ १६ ॥ पार्वती हरयोस्तस्मात्सुराणां शक्तिकारिणम् ॥ विघ्नं त्वया विधातव्यं यथा ताभ्यां तथा शृणु ॥ १७ ॥ गर्भस्थिते यतान्देवी स्वनरूपेण रञ्जय ॥ ततो रहसि शर्वस्तां विभिन्नानन्दपूर्वकम् ॥ १८ ॥ भर्त्सयिष्यति कालीति ततस्मात्कुपितासती ॥ प्रयास्यति तपः कर्तुं ततस्सातपसा युता ॥ १९ ॥ जनयिष्यति यं शर्वादिन्दुवज्ज्योतिमण्डलम् ॥ समविष्यति हन्ता वै सुरारीणान्नसंशयम् ॥ २० ॥ त्वयापिदानवादे वि हन्तव्यालोकदुर्जयाः ॥ यावच्च न सती देहे सं तपस्या किये व गुप्त पार्वती महादेवजी का संयोग होवेगा इस लिये उन दोनों के लिये तुमको जिस प्रकार देवताओं के शक्तिकारक विघ्न को करना चाहिये वैसेही सुनिये ॥ १६ । १७ ॥ कि गर्भ के स्थित होनेपर इसके अनन्तर तुम उन देवीजी को अपने रूपसे रंग देवो उसी कारण एकान्त में सदाशिवजी उनको बिन आनन्दपूर्वक ॥ १८ ॥ काली है इस कारण से निन्दा करेंगे तदनन्तर क्रोधित होती हुई वे तपस्या करने के लिये जावेंगी उसके उपरान्त तपस्यासे संयुत वे पार्वतीजी ॥ १९ ॥ शिवजी के सकाश से चन्द्रमा की नाई जिस प्रकार मंडलवाले पुत्र को पैदा करेंगी वह निस्संदेह देववैरियों का नाशक होगा ॥ २० ॥ व हे देवि !

तुमको भी मनुष्यों से दुर्जय दानवों को मारना चाहिये और जबतक सती जी के शरीर में धिरे हुये गुणगणोंवाला पुत्र उन शिवजी के संगम से न होगा तबतक दैत्यवंश होगा हे देवि ! तुम्हारे ऐसा करने पर कालीजी तप करेंगी ॥ २१ ॥ २२ ॥ और समाप्तनियमोंवाली वे कालीजी जब गौरी होवेंगी तब पार्वतीजी तुमको धैर्यवंश होगा हे देवि ! तुम्हारे ऐसी कारण तुम्हारी भी सहोदरी वे एक अंशरहित होवेंगी और रूप व अश से रहित तुम पार्वती होवेंगी ॥ २४ ॥ हे वरदायिनि ! अपने रूपत्वको देंगी ॥ २३ ॥ उसी कारण तुम्हारी व कामनाओं को साधन करनेवाली तुमको मनुष्य एकानंशा ऐसे नाम से पूजेंगे ॥ २५ ॥ ॐकार सुखवाली ब्रह्म-बहुत भक्ति के आकारवाले भेदोंसे सर्वव्यापिनी व कामनाओं को साधन करनेवाली तुमको मनुष्य एकानंशा ऐसे नाम से पूजेंगे ॥ २५ ॥ ॐकार सुखवाली ब्रह्म-

तुमको भी मनुष्यों से दुर्जय दानवों को मारना चाहिये और जबतक सती जी के शरीर में धिरे हुये गुणगणोंवाला पुत्र उन शिवजी के संगम से न होगा तबतक दैत्यवंश होगा हे देवि ! तुम्हारे ऐसा करने पर कालीजी तप करेंगी ॥ २१ ॥ २२ ॥ और समाप्तनियमोंवाली वे कालीजी जब गौरी होवेंगी तब पार्वतीजी तुमको धैर्यवंश होगा हे देवि ! तुम्हारे ऐसी कारण तुम्हारी भी सहोदरी वे एक अंशरहित होवेंगी और रूप व अश से रहित तुम पार्वती होवेंगी ॥ २४ ॥ हे वरदायिनि ! अपने रूपत्वको देंगी ॥ २३ ॥ उसी कारण तुम्हारी व कामनाओं को साधन करनेवाली तुमको मनुष्य एकानंशा ऐसे नाम से पूजेंगे ॥ २५ ॥ ॐकार सुखवाली ब्रह्म-बहुत भक्ति के आकारवाले भेदोंसे सर्वव्यापिनी व कामनाओं को साधन करनेवाली तुमको मनुष्य एकानंशा ऐसे नाम से पूजेंगे ॥ २५ ॥ ॐकार सुखवाली ब्रह्म-

तुमको भी मनुष्यों से दुर्जय दानवों को मारना चाहिये और जबतक सती जी के शरीर में धिरे हुये गुणगणोंवाला पुत्र उन शिवजी के संगम से न होगा तबतक दैत्यवंश होगा हे देवि ! तुम्हारे ऐसा करने पर कालीजी तप करेंगी ॥ २१ ॥ २२ ॥ और समाप्तनियमोंवाली वे कालीजी जब गौरी होवेंगी तब पार्वतीजी तुमको धैर्यवंश होगा हे देवि ! तुम्हारे ऐसी कारण तुम्हारी भी सहोदरी वे एक अंशरहित होवेंगी और रूप व अश से रहित तुम पार्वती होवेंगी ॥ २४ ॥ हे वरदायिनि ! अपने रूपत्वको देंगी ॥ २३ ॥ उसी कारण तुम्हारी व कामनाओं को साधन करनेवाली तुमको मनुष्य एकानंशा ऐसे नाम से पूजेंगे ॥ २५ ॥ ॐकार सुखवाली ब्रह्म-बहुत भक्ति के आकारवाले भेदोंसे सर्वव्यापिनी व कामनाओं को साधन करनेवाली तुमको मनुष्य एकानंशा ऐसे नाम से पूजेंगे ॥ २५ ॥ ॐकार सुखवाली ब्रह्म-

समुद्रोंकी तुम महाबलहो और विलासी जनोका तुम विलासहो व पदार्थोंकी तुम उत्पत्तिहो और लोकों से शोभित जनोकी तुम स्थितिहो ॥ ३० ॥ हे वरदायिनि, देवि ! इस भाँति अनेक प्रकार के रूपोंसे तुम लोकों में पूजितहो और जो तुमको देखते हैं व जो पूजन करेंगे ॥ ३१ ॥ वे निश्चयकर सब मनोरथो को पावेंगे इसमें सन्देह नहीं है इस प्रकार ब्रह्मा से भलीभाँति स्तुति कीहुई वे देवीजी उत्पन्न हुई हैं ॥ ३२ ॥ और वे एकानंशा महादेवी भी भक्ति से ध्यान करने योग्य है ॥ ३३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायामेकानंशामाहात्म्यवर्णनमैकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

लासिनाम् ॥ सम्भूतिस्त्वंपदार्थानां स्थितिस्त्वंलोकशालिनाम् ॥ ३० ॥ इत्यनेकविधैर्देवि रूपैल्लोकैषुचार्चिता ॥ येत्वां पश्यन्तिवरदे पूजयिष्यन्तिवापिये ॥ ३१ ॥ तेसर्वकामानाप्स्यन्ति नियतन्नात्रसंशयः ॥ इत्येवंसासमुत्पन्ना ब्रह्मणामं स्तुतासती ॥ ३२ ॥ एकानंशामहादेवी ध्यातव्यासापिभक्तिः ॥ ३३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेएकानंशा माहात्म्यन्नामैकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

सनत्कुमारउवाच ॥ अथातस्मप्रवक्ष्यामि हरसिद्धिसुसिद्धिदाम् ॥ पार्वत्याहरणेयत्र सिद्धिःप्राप्ताहरेणच ॥ १ ॥ बलिनीदानवौजातौ नाम्नाचण्डप्रचण्डकौ ॥ उत्साद्यन्निदिवंसर्व गिरिकेलासमागतौ ॥ २ ॥ दृष्ट्वातत्रगिरीशन्तु उद्यतोच्चैकहस्तकम् ॥ पिनाकंवरखट्वाङ्गं गृहीत्वादचिणेकरे ॥ ३ ॥ देविदेवीतिजल्पन्तं दासस्तेस्मीतिवादिनम् ॥ या वदेकन्तुफलकं तावदूद्यन्तंप्रवर्तताम् ॥ ४ ॥ ऋणीभूतेतदादेवतौप्राप्तौदेवकण्टकौ ॥ उत्सादिताःशिवगणानन्दिनाप्रति दो० । अहं सुमग माहात्म्य युत देवी जिमि हरसिद्धि । सोइ बीस अध्यायमें वर्णित चरित प्रसिद्धि ॥ सनत्कुमार जी बोले कि इसके उपरान्त उत्तम सिद्धिदायिनी हरसिद्धि देवीजी को कहूंगा जहा पर कि सदाशिव देवजी ने पार्वती के हरने में सिद्धि को पाया है ॥ १ ॥ अण्ड, प्रचण्ड नामक बली दानव हुये हैं वे सब स्वर्गको उजाड़ कर कैलास पर्वत पर आये ॥ २ ॥ वहां पर दाहिने हाथ में पिनाक धनुष व उत्तम खट्वांग को लेकर एक हाथमें उठाये हुये पांसा को लिये सदाशिवजी को देखकर ॥ ३ ॥ जो शिव कि हे देवि ! हे देवि ! ऐसा कहते हुये और जब तक एक पांसा है तबतक द्यूत (जुत्ता) वर्तमान होत्रै मैं तुम्हारा दास हूं ऐसा कहते थे ॥ ४ ॥

उस समय सदाशिव देवजी के 'ऋणी' होने पर देवताओं के कण्टकरूप वे दैत्य प्राप्त हुये और उन्होंने शिवगणों को ह्वेसित किया और नन्दी ने उनको मना किया ॥ ५ ॥ तदनन्तर उस समय उन्होंने ने शूलों से नन्दीको विदीर्ण किया और दाहिने व बायें अंगसे साथही बहुत रक्त बहचला ॥ ६ ॥ उस समय सत्क्रिय के पुत्र नन्दी जीको लण्डित देखकर शिवजी से ध्यान की हुई वे देवी प्रणामकर आगे स्थित हुई ॥ ७ ॥ और वे बड़े भारी दैत्य मारे जावें शिवजी के ऐसा कहने पर वे देवी वचन बोली कि मैं मारती हूँ जब उन देवीजी से पराक्रम से गर्वित वे दैत्य मारे हुये देखे गये ॥ ८ ॥ तब शिवजी ने उससे कहा कि हे चण्डि ! तुमने दुष्ट

पेधितौ ॥ ५ ॥ ततस्ताभ्यांतदानन्दीशुलाभ्यांप्रविदारितः ॥ समंसव्यदक्षिणाभ्यां सुस्नाचरुधिरंबहु ॥ ६ ॥ नन्दिनंता
डितंतृष्ट्वा तदासत्क्रियनन्दनम् ॥ ध्याताहरेणसादेवी प्रणताप्राक्ततःस्थिता ॥ ७ ॥ वध्यतान्तौमहादैत्यौ वधामीति
वचोब्रवीत् ॥ यदातयाहतौदृष्टौ दानवौबलगर्वितौ ॥ ८ ॥ हरस्तामाहचण्डि संहतौदुष्टदानवौ ॥ हरसिद्धिरतोलोकै
नाम्नाख्यातिगमिष्यसि ॥ ९ ॥ ततःप्रभृतिसादेवीहरसिद्धिप्रदायिनी ॥ हरसिद्धिरितिख्याता महाकालेबभूवह ॥ १० ॥
यःपश्येत्परयाभक्त्या हरसिद्धिन्नरोत्तमः ॥ सोक्षयाल्लभतेकामान् मृतःशिवपुरं व्रजेत् ॥ ११ ॥ आदिसिद्धिमहा
देवी नित्यंव्योमस्वरूपिणीम् ॥ हरसिद्धिप्रपश्येद्यस्सोभीष्टलभतेफलम् ॥ १२ ॥ यःस्मरेद्धरसिद्धीति मन्त्रञ्चचतुरश
रम् ॥ ॥ नवैरिणोभयंतस्य दारिद्र्यन्नैवजायते ॥ १३ ॥ नरोमहानवभ्यांयोहरसिद्धिप्रपूजयेत् ॥ महिषञ्चबलिदद्यात्सम

दानवों का संहार किया इसलिये नाम से हरसिद्धि तुम प्रसिद्धिको प्राप्त होगी ॥ ६ ॥ तब से लगाकर हरसिद्धि को देनेवाली वे देवी महाकालवन में हरसिद्धि ऐसी प्रसिद्ध हुई हैं ॥ १० ॥ जो उत्तम मनुष्य हरसिद्धि देवीजी को परम भक्ति से देखता है वह अक्षय मनोरथों को प्राप्त होता है और मर कर शिवपुर को जाता है ॥ ११ ॥ आदिसिद्धि व आकाशरूपिणी हरसिद्धि महादेवीजी को जो मनुष्य नित्य देखता है वह प्रिय मनोरथ को प्राप्त होता है ॥ १२ ॥ व जो मनुष्य हरसिद्धि ऐसे चार अक्षरांचाले मंत्र को स्मरण करता है उसके शत्रु का भय नहीं होता है न दरिद्रता होती है ॥ १३ ॥ व महानवमी को जो मनुष्य हरसिद्धि को पूजता है और

भैसे को बलि देता है वह पृथ्वी में राजा होता है ॥ १४ ॥ हे व्यास जी ! नवमी में पूजी हुई हरप्रिया हरसिद्धि देवीजी प्रसन्न होकर मनुष्यों को सदैव सम्पूर्ण फलको देती हैं ॥ १५ ॥ वे पुण्यरूपिणी हैं और वे पवित्र हैं तथा वे समस्त सुखों को देनेवाली हैं व स्मरण पूजन तथा दर्शन कीहुई वे देवी धन, पुत्र व सुखों को देनेवाली हैं ॥ १६ ॥ हे व्यासजी ! महानवमी में जो महिषादिक मारे जाते हैं व सब स्वर्ग की गति को प्राप्त होते हैं और मारनेवालों को पातक नहीं होता है ॥ १७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायाभाषटीकायांहरसिद्धिमाहात्म्यं नामविंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

वेद्मपतिर्भुवि ॥ १४ ॥ नवम्यांपूजितादेवी हरसिद्धिर्हरप्रिया ॥ तुष्टानृणांसदाव्यास ददात्यनवमंफलम् ॥ १५ ॥ सापु
ण्यासापवित्राच सासर्वसुखदायिनी ॥ स्मृतासम्पूजितादृष्टा धनपुत्रसुखप्रदा ॥ १६ ॥ महानवम्यांयेव्यास हन्यन्ते
महिषादयः ॥ सर्वेतेस्वर्गतिंयान्ति भ्रतांपापपद्मविद्यते ॥ १७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे हरसिद्धिमाहात्म्यन्ना
मविंशोऽध्यायः ॥ २० ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

सनत्कुमारउवाच ॥ मासमेकन्नरोभक्त्या पश्येद्योवटयक्षिणीम् ॥ पूजयेत्स्वर्णपुष्पैश्च तस्यसिद्धिर्महीयते ॥ १ ॥
इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेवटयक्षिणीमाहात्म्यन्नामैकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥ * ॥ * ॥
सनत्कुमारउवाच ॥ पिशाचकेनरःसनात्वा चतुर्दश्यांविशेषतः ॥ तिलान्ददातियोभक्त्या नपिशाचःप्रजायते ॥ ३ ॥

दो० । वटयक्षिणि इमि भगवती कर माहात्म्य रसाल । इकीसवें अध्याय में सोइ चरित्र विशाल ॥ सनत्कुमार जी बोले कि जो मनुष्य भक्ति से एक महीने तक वटयक्षिणी भगवतीको देखताहै व धतूर के पुष्पों से पूजता है उसकी सिद्धि नहीं न्यून होती है ॥ १ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषटीकायांवटयक्षिणीमाहात्म्यं नामैकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

दो० । अहै चतुर्दश यात्रा कर जिमि परम प्रभाव । वाइसेवें अध्याय में सोइ चरित सुखपाव ॥ सनत्कुमारजी बोले कि चौदसि तिथि में पिशाचक तीर्थ में विशेष

कर नहाकर जो मनुष्य भक्तिसे तिलों को देता है वह पिशाच नहीं होता है ॥ १ ॥ और जिससे उद्देश कर जो दिया जाता है वह बहुतही अन्नय होता है और उसका वंश पिशाचता से छूट जाता है इस में सन्देह नहीं है ॥ २ ॥ जिसके नाम से मनुष्य नहाता है वह पिशाचता से छूट जाता है और जो यहाँ दही समेत कुंभों व कमंडलुओं को देता है ॥ ३ ॥ उसकी निरंतरवाली मुक्ति होती है और उसके वंशमें प्रेत नहीं होता है व शिवभक्त जितेन्द्रिय नर शिप्रागुतेश्वरजी को देखकर ॥ ४ ॥ सब पापों से वैसेही छूट जाता है जैसे कि केबुलि से सर्प छूट जाता है और स्नान कर बड़ी भक्ति से जो मनुष्य अगस्त्येश्वर जी को देखता है ॥ ५ ॥ हे

येनचोद्दिश्ययद्दत्तं तदक्षयतरं भवेत् ॥ तत्कुलं हि पिशाचत्वा न्मुच्यते नात्र संशयः ॥ २ ॥ यस्य नाम्नानरः स्नाति पिशाचत्वात्समुच्यते ॥ कुम्भान्वाकरकान्वापि योत्र दद्यात्समण्डकान् ॥ ३ ॥ तस्य वैशाश्वती मुक्तिः कुले प्रेतो न जायते ॥ शिप्रागुतेश्वरं दृष्ट्वा रुद्रभक्तो जितेन्द्रियः ॥ ४ ॥ मुच्यते सर्वपापेभ्यः कञ्चुकैर्न फणीयथा ॥ स्नात्वा गस्त्येश्वरं पश्येद्योतिभक्त्या तथैव मानवः ॥ ५ ॥ त्यक्त्वा यमगृहं व्यासरुद्रलोकं स गच्छति ॥ शिप्रायां यो नरः स्नात्वा पश्येद्दुण्डु श्वरं शिवम् ॥ ६ ॥ सोऽश्वमेधफलं व्यासलभते नात्र संशयः ॥ देवेनात्र पुरा व्यासवादि तौ डमरुर्नृतः ॥ ७ ॥ देवस्तेन समाख्यातो नाम्ना डमरुकेश्वरः ॥ भक्त्या पश्येन्नरो यस्तु देवं डमरुकेश्वरम् ॥ ८ ॥ नैव व्याधिभयं तस्य मृतः शिवपुरं ब्रजे त् ॥ अनादिकल्पे शं यस्तु भक्त्या पश्यति मानवः ॥ ९ ॥ राज्यं सलभते स्वर्गं यथा देवः पुरन्दरः ॥ देवानामप्यसौ व्या

व्यासजी ! वह यमराज के मन्दिर को छोड़कर शिवलोक को जाता है व शिप्रा नदी में नहाकर जो मनुष्य दुण्डुश्वर शिवजी को देखता है ॥ ६ ॥ हे व्यासजी ! वह अश्वमेध यज्ञ के फल को प्राप्त होता है इसमें सन्देह नहीं है हे व्यासजी ! जिस लिये सदाशिवदेवजी ने यहाँ डमरु को बजाया है ॥ ७ ॥ उसी से डमरुकेश्वर भक्त शिवदेवजी कहे गये हैं जो मनुष्य भक्तिसे डमरुकेश्वर देवजी को देखता है ॥ ८ ॥ उसके रोगों का डर नहीं होता है और मरकर वह शिवलोक को जाता है ॥ ९ ॥ वह स्वर्ग के राज्य को प्राप्त होता है जैसे कि इन्द्र देवजी हैं और हे व्यासजी ! यह पुरुष देव-
(मनुष्य भक्ति से अनादिकल्पेश जी को देखता है ॥ ९ ॥ वह स्वर्ग के राज्य को प्राप्त होता है जैसे कि इन्द्र देवजी हैं और हे व्यासजी ! यह पुरुष देव-

ताओं के भी ईर्ष्या करने योग्य होता है ॥ १० ॥ और कुछ अधिक सौ कल्पों तक सुखों से युक्त होकर आनन्द करता है और जो सिद्धेश्वर वीरभद्र व चण्डिकाजी को देखता है ॥ ११ ॥ वह मनुष्य यहीं पर सिद्धि को प्राप्त होता है व सब कहीं जीत को प्राप्त होता है और त्रिविष्टपतीर्थ में नहाकर स्वर्णजालेश्वरजी को देखकर ॥ १२ ॥ धतुर से शिवदेवजी को पूजता है वह सब पापों से छूटजाता है और स्नान कर जो मनुष्य भक्ति से कर्कटेश्वर शिवजी को देखता है ॥ १३ ॥ उस को सर्व से डर नहीं होता है और न दरिद्रता होती है और जो मनुष्य उत्तम भक्तिसे सनातनी माया को देखता है ॥ १४ ॥ विष्णुजी की माया से छूटकर वह परम

स स्पर्द्धनीयस्सदाभवेत् ॥ १० ॥ कल्पकोटिशतसाग्रं भोगयुक्तस्तुमोदते ॥ पश्येत्सिद्धेश्वरं यस्तु वीरभद्रञ्च चण्डिकां काम् ॥ ११ ॥ सौत्रैवल्लभते सिद्धिं जयं सर्वत्र ज्ञानवः ॥ स्वर्णजालेश्वरं दृष्ट्वा स्नात्वा तीर्थैः त्रिविष्टपे ॥ १२ ॥ स्वर्णेन पूजयेद्देवं सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ स्नात्वा पश्येन्नरो भक्त्या यः शिवं कर्कटेश्वरम् ॥ १३ ॥ सर्पतो न भयं तस्य दारिद्र्यं नैव जायते ॥ यः पश्येत्परया भक्त्या महामायां सनातनीम् ॥ १४ ॥ विष्णुमायां विनिर्मुक्तस्स याति परमं पदम् ॥ अर्चयेत्परया भक्त्या यः कपालेश्वरन्नरः ॥ १५ ॥ समुच्यते महापापैर्यद्यपि ब्रह्महा भवेत् ॥ स्वर्गद्वारे नरस्स्नात्वा दृष्ट्वा देवञ्च भैरवम् ॥ १६ ॥ दर्शनात्तस्य देवस्य शतयज्ञफलं लभेत् ॥ १७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे चतुर्दशयात्रानामष्टाविंशति तमोऽध्यायः ॥ २२ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

सनत्कुमार उवाच ॥ अथान्यत्सम्प्रवक्ष्यामि देवं त्रिदशपूजितम् ॥ हनुमत्केश्वरन्नाम भुक्तिमुक्तिफलप्रदम् ॥ १॥ पद को प्राप्त होता है और जो मनुष्य उत्तम भक्ति से कपालेश्वर देवजी को देखता है ॥ १५ ॥ वह यद्यपि ब्रह्मघाती भी होवै तथापि महापातकों से छूट जाता है और स्वर्गद्वार में नहाकर मनुष्य भैरवदेवजी को देखकर ॥ १६ ॥ उन देव के दर्शन से सौ यज्ञों के फलको प्राप्त होता है ॥ १७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे देवीदयालुमिश्रविचितायां भाषाटीकायां चतुर्दशयात्रानामष्टाविंशतितमोऽध्यायः ॥ २२ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

दो० । हनुमत्केश्वरलिंगको ध्यायो जिमि हनुमान ॥ तेइसवै अध्यायमें सोई कानि बखान ॥ सनत्कुमारजी बोले कि इस के अनन्तर देवताओं से पूजित व भुक्ति

मुक्ति को देनेवाले अन्य हनुमत्केशवर नामक देवजी को कहूंगा ॥ १ ॥ जो मनुष्य शिवजी के तडाग में नहाकर हनुमत्केशवरजी को देखता है वह करोड़ों हजार वर्षों तक पवनलोक में प्रसन्न रहता है ॥ २ ॥ व्यासजी बोले कि हे अनघ ! पुरातन समय तुम ने जिन हनुमत्केशवरजी को कहा है इनकी पुरातन समय वर्तमान होनेवाली सनातनी कथा को कहिये ॥ ३ ॥ सनत्कुमारजी बोले कि पुरातन समय त्रिलोक का कण्टकरूप रावण नामक राक्षस श्रीरामचन्द्ररूपी विष्णुजी से लंकापुरी में मारा गया है ॥ ४ ॥ उस दुष्ट को मारकर श्रीरामजी श्रीजानकीजी को लेकर ऋत्यों व वानरों समेत अपनी पुरी को आये हैं ॥ ५ ॥ वहां राज्य को

शैवेश्वरसियःस्नात्वा पश्येद्धनुमत्केश्वरम् ॥ कल्पकोटिसहस्राणिवायुलोकैःसमोदते ॥ २ ॥ व्यासउवाच ॥ हनुमत्के
श्वरोयस्तु ह्युक्तःपूर्वस्त्वयानघ ॥ कथांकथयह्येतस्य व्रतपूर्वासनातनीम् ॥ ३ ॥ सनत्कुमारउवाच ॥ त्रैलोक्यकण्ट
कःपूर्वो रावणोनामराक्षसः ॥ विष्णुनारामरूपेण लङ्कायांविनिपातितः ॥ ४ ॥ घातयित्वातुतन्दुष्टं सीतामादायजान
कीम् ॥ वानरैस्सहऋक्षैश्च नगरींस्वामुपागतः ॥ ५ ॥ तत्रराज्यमनुप्राप्य ऋषिभिःपरिवारितः ॥ कथावसाने रामेण
ह्यगस्त्योमुनिसत्तमः ॥ ६ ॥ पृष्टोधिकोद्वयोर्वापि शम्भुवातजयोस्तुकः ॥ तदादाशरथिप्राह अगस्त्योमुनिसत्तमः ॥
७ ॥ अनौपम्योयथादेवो युद्धेशौयैर्महेश्वरः ॥ ज्ञेयोवायुसुतस्तद्वत्सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ॥ ८ ॥ एवंश्रुत्वाथहनुमान्य
चिक्वेनोपमामम ॥ कृतामुनिवरेणैह प्रत्यक्षंराघवस्यहि ॥ ९ ॥ गमिष्येनगरींलङ्कां लिङ्गमेकंप्रयाचितुम् ॥ राक्षसेन्द्र

प्राप्त होकर उन श्रीरामचन्द्रजी को ऋषियों ने घेर लिया और कथाओं के अन्त में श्रीरामचन्द्रजीने मुनिश्रेष्ठ अगस्त्य जी से ॥ ६ ॥ पूछा कि शिव व पवनसुत हनुमान्जी इन दोनों के मध्य में कौन अधिक है उस समय मुनिश्रेष्ठ अगस्त्यजीने दशरथ के पुत्र श्रीरामचन्द्रजी से कहा ॥ ७ ॥ कि जैसे युद्ध व शूरता में महा-
देवजी उपमारहित हैं वैसेही पवनपुत्र हनुमान् जी जानने योग्य हैं मैं तुम से यह सत्य कहता हूं ॥ ८ ॥ इस प्रकार सुनकर इसके उपरान्त हनुमान् जी बोले कि जिस लिये यहां मुनिश्रेष्ठ अगस्त्यजी ने श्रीरामचन्द्रजी के सामने मेरी उपमा शिवजीसे किया ॥ ९ ॥ इस लिये महाभाग्यवान् व पापरहित तथा राज्ञसोंके राजा

विभीषण जी से एक लिंग को मांगने के लिये मैं लंकापुरी को जाऊंगा ॥ १० ॥ तदनन्तर लंका को गये हुये वे हनुमान्जी विभीषण से बोले कि हे महाभाग ! मुझको तुम एक उत्तम लिंग को देवो ॥ ११ ॥ राक्षसेन्द्र विभीषण ने कहा कि रुचि के अनुरार इस को ग्रहण कीजिये ये छह लिंग रावण के थोपे हुये हैं ॥ १२ ॥ मेरे भाई महात्मा रावण ने त्रिलोक को जीतने के पहले इनको थापा है हे सुव्रत ! इन में तुमको जो प्रिय हो उस लिंग को कहिये ॥ १३ ॥ हे वानर ! उस को मैं तुमको आजही दूंगा यह सत्य है तदनन्तर हनुमान्जीने मोती के समान लिंगको ग्रहण किया ॥ १४ ॥ व कहा कि हे अनघ, वीर ! जो यह लिंग देख पडता

महाभागं विभीषणमकल्मषम् ॥ १० ॥ ततो गतस्सलङ्कायां विभीषणमुवाच ॥ देहिमेतं महाभाग लिङ्गमेकञ्च शोभ-
नम् ॥ ११ ॥ उक्तञ्च राजसेन्द्रेण गृहाणैतद्यथारुचि ॥ एतानिषड्वैलिङ्गानि रावणस्थापितानि वै ॥ १२ ॥ त्रैलोक्यवि-
जयात्पूर्वं मम भ्रात्रा महात्मना ॥ एतेषु यदभीष्टन्ते लिङ्गं कथय सुव्रत ॥ १३ ॥ तत्प्रयच्छामि ते दैव सत्यमेतत्पुनश्च ॥
ततो जग्राह हनुमालिङ्गं भौतिकसन्निभम् ॥ १४ ॥ यदेतद्दृश्यते वीर तत्प्रयच्छ ममानघ ॥ श्रुत्वा हनुमतो वाक्यम-
थोवाच विभीषणः ॥ १५ ॥ दत्तमेतन्महावीर लिङ्गं यत्कृतवानसि ॥ श्रूयते हि पुरा वृत्तं लिङ्गमेतद्धर्षनेश्वरः ॥ १६ ॥ रुद्रम-
क्त्या समा युक्तस्त्रिकालमप्यपूजयत् ॥ रावणेन यदा बद्धस्तदानीं हि धनेश्वरः ॥ १७ ॥ लिङ्गस्यास्य प्रभावेण विमुक्तस्स-
मपद्यत ॥ प्रसादात्तस्य लिङ्गस्य धनेशोधनरत्नकः ॥ १८ ॥ गृहीत्वा तन्महालिङ्गं स्वस्थो जातो वानरः ॥ सनत्कुमार उ-
वाच ॥ गृहीत्वा तु तालिङ्गं प्रस्थितो विमलेम्बरे ॥ १९ ॥ सप्तमे दिवसे चैव सम्प्राप्तो विनितकां पुरीम् ॥ संस्थाप्य रुद्रसरस-

है उसको मुझे दीजिये हनुमान् जी का वचन सुनकर इसके अनन्तर विभीषणजी बोले ॥ १५ ॥ कि हे महावीर ! जिस लिंग को तुमने मागा है यह दिया गया पुरातन का वृत्तान्त सुना जाता है कि शिवजी की भक्ति से संयुक्त धनेश कुबेरजी ने इस लिंग को त्रिकाल में भी पूजा है जब रावण ने कुबेर को बांधा है ॥ १६ ॥ तब इस लिंगके प्रभाव से छूटे हुये प्राप्त होगये और उस लिंगके प्रभावसे धनेश कुबेरजी धनके रत्नक हुये हैं ॥ १७ ॥ इस के अनन्तर उस महालिंग को लेकर वानर हनुमान्जी स्वस्थ हुये सनत्कुमारजी बोले कि तदनन्तर उस लिंग को लेकर हनुमान्जी निर्मल आकाश में चले ॥ १८ ॥ और सातवें दिन अवन्तीपुरी

में प्राप्त हुये और रुद्रतडाग के किनारे उसको भलीभांति धाकर उन्हां ने स्नान किया ॥ २० ॥ और महाकालजी के पूजन के लिये गमन को चिन्तन किया और उस लिंग को उठाने की इच्छावाले वे उठाने के लिये न समर्थ हुये ॥ २१ ॥ तदनन्तर विशेषता से टिके हुये शिवदेवजी उन पवनपुत्र हनुमान्जी से बोले कि हे हनुमान्जी ! इस क्षेत्र में तुम अपने नाम से थापकर पूजन करो ॥ २२ ॥ और सप्ताह में यह हनुमत्केश्वर लिंग प्रसिद्ध होगा पवनपुत्र हनुमान्जी ने पर्वत की नाई ऊँचे लिंग को स्थापित किया ॥ २३ ॥ जो मनुष्य शनिवार को हनुमत्केश्वर शिवजी को देखता है उसके शत्रुका भय नहीं होता है और समर में वह जीतको

स्तीरेस्नानमथाकरोत् ॥ २० ॥ महाकालस्य पूजार्थं गमनं प्रत्यचिन्तयत् ॥ उद्धतुकामस्तल्लिङ्गमुद्धतुं न शक्यः ॥ २१ ॥ ततोऽव्यवस्थितो देवः प्राह तं वायुनन्दनम् ॥ अस्मिन् क्षेत्रे हनुमंस्त्वं स्वनाम्ना स्थाप्य पूजय ॥ २२ ॥ हनुमत्केश्वरश्चाथ लोके ख्यातं भविष्यति ॥ शैलवचोन्नतं लिङ्गं स्थापितं वायुसुनुना ॥ २३ ॥ शनौ पश्येन्नरीयस्तु हनुमत्केश्वरं शिवम् ॥ तस्य शत्रुभयन्नास्ति संग्रामे जयमाप्नुयात् ॥ २४ ॥ न च चौरभयं तस्य न दारिद्र्यन्नदुर्गतिः ॥ तैलाभिषेकं यः कुर्याद्धनुमत्केश्वरं शिवम् ॥ २५ ॥ तस्य रोगाः प्रलीयन्ते ग्रहपीडान जायते ॥ येष यन्ति नरा भक्त्या तेषां मोक्षो भविष्यति ॥ २६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे हनुमत्केश्वरमाहात्म्य नाम त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥ *

सनत्कुमार उवाच ॥ यमेश्वरन्तु यः पश्येत्सनापयित्वा तिलांभसा ॥ कुङ्कुमेन समालिप्य पूजयेद्दुत्पलैस्ततः ॥ १ ॥

प्राप्त होता है ॥ २३ ॥ और उसके चौरों का भय नहीं होता है व न दरिद्रता होती है और न दुर्गति होती है जो मनुष्य हनुमत्केश्वर शिवजी के तैल का अभिषेक करता है ॥ २५ ॥ उसके रोग नाश होजाते हैं व ग्रहों की पीडा नहीं होती है व जो मनुष्य भक्ति से देखते हैं उनका मोक्ष होगा ॥ २६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां हनुमत्केश्वरमाहात्म्यवर्णनं नाम त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥ * ॥ दो० । अहं यथा माहात्म्यं श्रुतं सुभग यमेश्वर देव । चौबिसवें अध्याय में सोइ चरित सुखदेव । सनत्कुमारजी बोले कि तिल मिले हुये जलसे स्नान कराकर जो

मनुष्य यमेश्वरजी को देखता है और कुंकुम से भलीभांति लेपन कर तदनन्तर कमलोंसे पूजन करता है ॥ १ ॥ व कालागुरु को जलाता है और तिलों व चावलों को देता है व जो मनुष्य त्रिशूल हाथवाले सदाशिव देवजीको इस प्रकार पूजता है ॥ २ ॥ जहां कहीं मेरे हुये भी उस पुरुष के यमराज पिता के समान होते हैं ॥ ३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांयमेश्वरमाहात्म्यवर्णनं नामचतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥ * ॥ २ ॥ दो० । अति उत्तम माहात्म्य युत तीर्थं रुद्रसर नाम । पर्वीसर्वे अध्याय मे कबो चरित अभिराम ॥ सनत्कुमार जी बोले कि हे व्यासजी ! मैं तीर्थों में उत्तम श्रेष्ठ

देहेत्कृष्णगुरुंभूपं दापयेत्तिलतण्डुलान् ॥ यएवमर्चयेद्देवमीश्वरंशूलहस्तकम् ॥ २ ॥ यत्रकुत्रमृतस्यापि यमःपितृ समोभवेत् ॥ ३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे यमेश्वरमाहात्म्यन्नामचतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥ *

सनत्कुमारउवाच ॥ कथयामिपरंव्यास तीर्थतीर्थेषुचोत्तमम् ॥ नाभ्यारुद्रसरःप्रोक्तं त्रिषुलोकेषुविश्रुतम् ॥ १ ॥ तत्रस्नात्वाशुचिर्भूत्वा पश्येत्कोटिवरंशिवम् ॥ मुच्यतेसर्वपापेभ्यो रुद्रलोकंसगच्छति ॥ २ ॥ श्राद्धं तत्रैवकृत्वा तु शृणु यत्फलमाप्नुयात् ॥ दशानामश्वमेधानां वाजपेयशतस्य च ॥ ३ ॥ फलं कोटिगुणं व्यास लभतेनात्र संशयः ॥ पितृनु द्विश्य यत्किञ्चित्कोटितीर्थे प्रदीयते ॥ ४ ॥ तत्सर्वं कोटिगुणितं जायतेनात्र संशयः ॥ कोटितीर्थेन रस्नात्वा ध्यायेद्यः परमाक्षरम् ॥ ५ ॥ मुच्यते सर्वपापेभ्यो निर्मोकेन यथोरगः ॥ प्रातरुत्थाय यो विप्र तत्र स्नानं करोति वै ॥ ६ ॥ दृष्ट्वा देवं

तीर्थ को कहता हू जो कि नाम से रुद्रसर ऐसा कहा हुआ तीनों लोकों में प्रसिद्ध है ॥ १ ॥ उस तीर्थ में नहाकर व पवित्र होकर जो मनुष्य कोटिवर शिवजी को देखता है वह सब पापों से छूटता है और शिवलोक को जाता है ॥ २ ॥ और वहीं श्राद्ध कर जिस फल को प्राप्त होता है उसको सुनिये कि हे व्यासजी ! वह दश अश्वमेधों के व सौ वाजपेय यज्ञों के कोटिगुने फल को प्राप्त होता है इस में सन्देह नहीं है पितरोंको उद्देश कर जो कुछ कोटितीर्थ में दिया जाता है ॥ ३॥ वह सब कोटिगुना है इस में सन्देह नहीं है कोटितीर्थ में नहाकर जो मनुष्य परमाक्षर को ध्यान करता है ॥ ५ ॥ वह सब पापों से छूट जाता है जैसे कि केंचुलिसे सोंप

छूटजाता है हे विप्र जी ! प्रातःकाल उठकर जो मनुष्य उसमें स्नान करता है ॥ ६ ॥ वह महाकाल शिव देवजी को देखकर हजार मोदान के फल को प्राप्त होता है और कोटितीर्थ में नहाकर सात रात्रियों तक उपास किये पवित्र ॥ ७ ॥ पुरुष हजार चान्द्रायण व्रत के फलको प्राप्त होता है और जो पुरुष वहां जागरण करता है वह अनन्त फल को भोगता है ॥ ८ ॥ और उपवास समेत जितेन्द्रिय जो पुरुष महा स्नानपूर्वक चन्दन व पुष्पों से पूजन कर इस प्रकार रात्रि को व्यतीत करता है ॥ ९ ॥ वह समस्त मनोरथ को प्राप्त होता है जो कि देवताओं को भी दुर्लभ है वहां कार्तिकी व वैशाखी में शिवदेवजी को समय में उपजे हुये गंध पुष्पों से व

महाकालं गोसहस्रफलं लभेत् ॥ कोटितीर्थे नरः स्नात्वा सप्तरात्रोषित इशुचिः ॥ ७ ॥ चान्द्रायणसहस्रस्य फलं प्राप्नोति मानवः ॥ जागरंतत्र कुर्याद्यो ह्यनन्तं फलमश्नुते ॥ ८ ॥ गन्धपुष्पांचनं कृत्वा महास्नपनपूर्वकम् ॥ य एवं नयते रात्रिं सोपवासो जितेन्द्रियः ॥ ९ ॥ लभते सर्वकामित्वं यत्सुरैरपि दुर्लभम् ॥ कार्तिक्यामथ वैशाख्यां देवं तत्र प्रपूजयेत् ॥ १० ॥ गन्धपुष्पैश्च कालीनैस्तथा वस्त्रैस्सुशोभनैः ॥ कर्पूरकुसुमंचैव श्रीखण्डमगुरुं तथा ॥ ११ ॥ समभागानि कृत्वा तु शिलां पृष्ठे च पेयेत् ॥ अनुलिप्य महाकालं रुद्रस्यानुचरो भवेत् ॥ १२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे रुद्रसरमाहात्म्ये नाम पञ्चविंशतितमोऽध्यायः ॥ २५ ॥ * * * * *

सनत्कुमार उवाच ॥ अथ यात्रां प्रवक्ष्यामि महाकालस्य यत्नतः ॥ शिवश्रेयस्करां पुण्यां पुण्यलोकप्रदायिनीम् ॥ १ ॥ स्नात्वा सरसिरुद्रस्य दृष्ट्वा कोटीं श्वरं शिवम् ॥ नमस्कृत्य ततो गच्छेन्महाकालं सनातनम् ॥ २ ॥ गन्धैः पुष्पैर्नमस्कारैः

सुन्दर बसनों से पूजन करे और कपूर, कुसुम, चन्दन व अगुरु ॥ १० ॥ इनको बराबर भागवाले कर पत्थरके पृष्ठ पर पैसे और महाकाल जी के अनुलेपन कर शिवजी का दास होवै ॥ १२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां रुद्रसरमाहात्म्यवर्णननाम पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥ * * * * *
दो० । महाकाल शिवदेवकी यात्रा कर सुविधान । छबिसवें अध्याय में कीन्हों चरित वखान ॥ सनत्कुमार जी बोले कि इस के अनन्तर यत्न से महाकालजी की यात्रा को कहता हूँ जो कि कल्याण व पुण्यकारिणी तथा पवित्र व पवित्रलोकों को देनेवाली है ॥ १ ॥ रुद्रसर में नहाकर व कोटीश्वर शिवजी को देखकर

व प्रणाम कर तदनन्तर सनातन महाकालजी के समीप जावै ॥ २ ॥ और चन्दन व पुष्पों से तथा नमस्कारों से त्रिदशेश्वर जी को भलीभांति पूजकर व प्रणामकर तदनन्तर कपालमोचन देवजी के समीप जावै ॥ ३ ॥ वहाँ पर देवदेवेश शिवजीने पृथ्वी में कपाल को धरा है कपाल धरने पर उसी क्षण समस्त पातकों का नाशक कपालमोचन नामक उत्तम लिंग हुआ है और वहापर सौ पल धी से स्नान करावै ॥ ४५ ॥ या वित्तशास्त्रसे रहित पुरुष उसके आधेसे आधे भागकरके व चौथाई भाग से स्नानकरावै तो हे द्विजेन्द्र ! वह पुरुष पूर्ण समयमें शिवलोकमें पूजित होता है ॥ ६ ॥ तदनन्तर प्रणामकर उत्तम कपिलेश्वरको जावै उन देवजी के दर्शनसे ब्रह्मघाती स्मम्पूज्यत्रिदशेश्वरम् ॥ प्रणिपत्यततो गच्छेद्देवं कपालमोचनम् ॥ ३ ॥ तत्रैव देवदेवेशः कपालं न्यस्तवान्चितौ ॥ कपाले तत्त्वणान्न्यस्ते तत्राभूद्विद्भुत्तमम् ॥ ४ ॥ कपालमोचननाम सर्वपापप्रणाराधनम् ॥ तत्रैव स्नपनं कुर्यादाज्यं पलशतन्तुवै ॥ ५ ॥ तदर्धाधेन पादेन वित्तशास्त्रविवर्जितः ॥ काले पूर्णैः सविप्रेन्द्र शिवलोकं महीयते ॥ ६ ॥ नमस्कृत्य ततो गच्छेत्कपिलेश्वरमुत्तमम् ॥ दर्शनात्तस्य देवस्य मुच्यते ब्रह्मघातकः ॥ ७ ॥ हनुमत्केश्वरन्देवं ततो गच्छेत्समाहितः ॥ ऐश्वर्यमनुलं व्यास दर्शनादस्य जायते ॥ ८ ॥ ततो गच्छेन्महादेवं पिप्पलादं सनातनम् ॥ यस्य दर्शनमात्रेण सुक्तिः स्याद्विजसत्तम ॥ ९ ॥ स्वप्नेश्वरं ततो गच्छेद्भक्तिश्रद्धासमन्वितः ॥ दर्शनादस्य देवस्य दुःस्वप्नञ्च विनश्यति ॥ १० ॥ ततो गच्छेन्महादेवमीशानं विश्वतोमुखम् ॥ यस्य दर्शनमात्रेण विश्वस्यैव पतिर्भवेत् ॥ ११ ॥ सोमेश्वरन्ततो गच्छेज्जितक्रोधो जितेन्द्रियः ॥ कुष्ठरोगादिदोषेभ्यो दर्शनादस्य मुच्यते ॥ १२ ॥ वैश्वानरेश्वरं व्यास ततो गच्छेत्समाहितः ॥ सुक्तं हो जाता है ॥ ७ ॥ तदनन्तर सावधान चित्तवाला पुरुष हनुमत्केश्वरको जावै हे व्यास जी ! इन के दर्शन से अतुल ऐश्वर्य होता है ॥ ८ ॥ तदनन्तर हे द्विजोत्तम ! सनातन पिप्पलाद महादेव जी के समीप जावै जिनके दर्शनही से मुक्ति होती है ॥ ९ ॥ तदनन्तर भक्ति व श्रद्धा से संयुत पुरुष स्वप्नेश्वर को जावै इस देवता के दर्शन से दुःस्वप्न नष्ट हो जाता है ॥ १० ॥ तदनन्तर विश्वतोमुख ईशान महादेव जी को जावै कि जिनके दर्शन ही से संसार भर का स्वामी होता है ॥ ११ ॥ तदनन्तर क्रोध को जीते हुये जितेन्द्रिय पुरुष सोमेश्वर जी के समीप जावै इनके दर्शन से मनुष्य कुष्ठ रोगादिकों के दोषों से छूट जाता है ॥ १२ ॥ तदनन्तर

हे व्यासजी ! सावधान होता हुआ पुरुष वैद्वाननेश जीके समीप जावै उनके दर्शन से उस मनुष्य की सदैव बढ़ती होती है ॥ १३ ॥ तदनन्तर बीजपूरक (बिजौरा निम्बू) हाथ वाले लकुलीश्वर जी के समीप जावै उनके दर्शन से रुद्रत्व होता है इस में संदेह नहीं है ॥ १४ ॥ तदनन्तर उत्तम गणपेश्वरजी के समीप जावै जिन के दर्शनही से समस्त सिद्धियां होती हैं ॥ १५ ॥ सिद्धियों के कारण याचना कियेहुये सदैव देवताओं से पूजित हुये हैं उस कारण ये अभ्यर्थित पूरक विघ्ननायक प्रसिद्ध हैं ॥ १६ ॥ तदनन्तर वयोवृद्ध सनातन महाकालजी के समीप जावै उनके दर्शन से न रोग होता है न वृद्धता होती है और न व्याधि होती है इसमें संदेह प्रसिद्ध है ॥ १६ ॥

तस्यवृद्धिस्सदालोकं जायतेतस्यदर्शनात् ॥ १३ ॥ बीजपूरकहस्तन्तु लकुलीशंततोव्रजेत् ॥ रुद्रत्वंदर्शनानात्तस्य जायतेनाबसंशयः ॥ १४ ॥ ततो गच्छेन्महादेवं गणपेश्वरमुत्तमम् ॥ यस्यदर्शनमात्रेण जायन्तेसर्वसिद्धयः ॥ १५ ॥ अभ्यर्थितस्सदादेवैः पूजितस्सिद्धिकारणात् ॥ तेनाभ्यर्थितपूरोयं विख्यातोविघ्ननायकः ॥ १६ ॥ वयोवृद्धंततो गच्छेन्महाकालंसनातनम् ॥ नरोगो नजरव्याधिर्दर्शनान्नात्र संशयः ॥ १७ ॥ विघ्ननाशंततो गच्छेत्प्राणीशन्देवमुत्तमम् ॥ स्नानं शतघटैस्तस्य कुर्याद्भक्त्या समाहितः ॥ १८ ॥ तस्यैव कृते स्नाने लभ्यन्ते सर्वसिद्धयः ॥ स्वर्गश्चापि सदा व्यासदर्शनादस्य जायते ॥ १९ ॥ मार्गे गतमनुवृद्धय दण्डपाणिततो व्रजेत् ॥ यस्य दर्शनमात्रेण यमलोकोन दृश्यते ॥ २० ॥ पुष्पपद्मैर्न नो गच्छेद्भक्तिश्रद्धासमन्वितः ॥ यस्य दर्शनमात्रेण मुच्यते सर्वपातकैः ॥ २१ ॥ गुह्यं चैव महाकालं ततो गच्छेत्समाहितः ॥ यस्य दर्शनमात्रेण गुह्यपापैः प्रमुच्यते ॥ २२ ॥ ततो गच्छेत्समाधिस्थो दुर्वासिश्चरमुत्तमम् ॥ यस्य

नहीं है ॥ १६ ॥ तदनन्तर उत्तम प्राणीश विघ्ननाशक देवजी के समीप जावै व सावधान होता हुआ पुरुष सौ षडों से उनका स्नान करावै ॥ १८ ॥ क्योंकि उनके स्नान करावे पर भाग्यन भक्तियां मिलती हैं व हे व्यासजी ! इनके दर्शन से स्वर्गभी होता है ॥ १९ ॥ तदनन्तर मार्ग में प्राप्त दण्डपाणि जी को उलंघन कर उनके समीप जावै कि जिनके दर्शनमात्र से यमलोक नहीं देखा जाता है ॥ २० ॥ तदनन्तर भक्ति व श्रद्धासंयुक्त पुरुष पुष्पपद्मदेवजी के समीप जावै जिनके दर्शन ही से मनुष्य सब पातकों से छुट आता है ॥ २१ ॥ तदनन्तर सावधान होता हुआ पुरुष गुह्य महाकाल जी के समीप जावै जिनके दर्शनमात्र से पुरुष गुप्त पातकों से

छूट जाता है ॥ २२ ॥ तदनन्तर समाधि में स्थित मनुष्य उत्तम दुर्वासिेश्वरजी के समीप जावै जिनके दर्शनमात्र से मनुष्य कृतकृत्य होजाता है ॥ २३ ॥ और दुर्वासिेश्वर जीके समीप श्वास को रोककर और महादुर्गा गौरीजी के समीप जाकर इसके अनन्तर श्वास को छोड़ै ॥ २४ ॥ वहां ऊर्ध्व श्वासको छोड़ना चाहिये और सावधान होता हुआ मनुष्य उन भगवती को पूजै तदनन्तर देवदेव कालेश्वर महादेवजी के समीप जावै ॥ २५ ॥ जिनके दर्शनमात्र से मनुष्य यमलोकको नहीं देखता है तदनन्तर देवदेव बधिरेश्वर महादेवजी के समीप जावै ॥ २६ ॥ जिनके दर्शनही से बधिरता नहीं होती है तदनन्तर यात्रा के पूर्ण फल को देनेवाले यात्रे-

दर्शनमात्रेण कृतकृत्योनरोभवेत् ॥ २३ ॥ श्वासावरोधनंकृत्वा दुर्वासस्यसमीपतः ॥ गौरीङ्गत्वामहादुर्गां त्यजेच्छ्वा
समनन्तरम् ॥ २४ ॥ तत्रोच्छ्वासोविमोक्तव्यस्तामर्चत्सुसमाहितः ॥ कालेश्वरन्ततोगच्छेद्देवदेवमहेश्वरम् ॥ २५ ॥
यस्यदर्शनमात्रेण यमलोकन्नपश्यति ॥ बधिरेशंतोगच्छेद्देवदेवमहेश्वरम् ॥ २६ ॥ यस्यदर्शनमात्रेण बधिरत्वन्नजा
यते ॥ यात्रेश्वरन्ततोगच्छेद्यात्रापूर्णफलप्रदम् ॥ २७ ॥ कीर्त्तयेदात्मनोनाम स्थानंगोत्रञ्चतत्रवै ॥ नकीर्त्तयेद्यदानाम
सायात्राविफलीभवेत् ॥ २८ ॥ देवस्याग्नेततोव्यास उपविश्यसमाहितः ॥ भक्तियुक्तः स्तुतिं ब्रूयान्नमस्कृत्वा पुनः पुनः ॥
२९ ॥ मयासमर्पितायात्रा त्वत्प्रसादान्महेश्वर ॥ संसारसागराद्घोरान्मासुद्धरजगत्पते ॥ ३० ॥ अनेनविधिनायस्तु
महाकालंप्रदत्तयेत् ॥ प्रदक्षिणीकृतातेन सप्तद्वीपावसुन्धरा ॥ ३१ ॥ गोलक्षं द्विजवर्याय दत्त्वायल्लभतेफलम् ॥ त
त्फलं देवदेवस्य सकृत्कृत्वा प्रदक्षिणम् ॥ ३२ ॥ भक्त्या परमया युक्तो महाकालंप्रदत्तयेत् ॥ पदे पदे यज्ञफलमिति मेश
श्वरजी के समीप जावै ॥ २७ ॥ और वहां पर अपने नाम व स्थान व गोत्र को कहै यदि नाम न कहै तो वह यात्रा निष्फल होती है ॥ २८ ॥ तदनन्तर हे व्यास
जी ! सावधान होता हुआ भक्तिसंयुक्त पुरुष उन देव के आगे बैठकर व बार २ प्रणाम कर स्तुति कहै ॥ २९ ॥ कि हे महेश्वरजी ! तुम्हारी प्रसन्नता से मैंने यात्रा
को समर्पण किया है जगदीश्वरजी ! भयकर संसारसागर से मुझको उधारिये ॥ ३० ॥ इस विधि से जो मनुष्य महाकाल जी की प्रदक्षिणा करता है उस से सातों
द्वीपोंवाली पृथ्वी प्रदक्षिणा कीगई ॥ ३१ ॥ द्विजोत्तम के लिये लाख गौवों को देकर मनुष्य जिस फलको प्राप्त होता है उस फलको देवदेव महाकालजी की एक

बार प्रदक्षिणा करके पाता है ॥ ३२ ॥ बड़ी भक्ति से संयुक्त जो पुरुष महाकालजीकी प्रदक्षिणा करता है उसको पगर पै यज्ञ का फल होता है यह मुझसे सदाशिव जी ने कहा है ॥ ३३ ॥ यहा पर यात्रेश्वर जी के पूजन से साठ करोड़ हजार व साठ करोड़ सौ लिंग पूजित होते हैं ॥ ३४ ॥ शिवजी के ध्यान में तत्पर जो पुरुष इस प्रकार यात्रा को करता है और वस्त्रों समेत दक्षिणा को देता है उसके पुण्य के फलको सुनिये ॥ ३५ ॥ कि वह सात जन्मों में कियेहुये पातक से छूट जाता है इस में सन्देह नहीं है इस प्रकार यात्रा को समाप्त कर इसके अनन्तर मनुष्य अपने घरको जाकर ॥ ३६ ॥ यात्रा के देवताओं की संख्याबाले शिवभक्त तथा शिवजी

ह्वरौ ब्रवीत् ॥ ३३ ॥ षष्टिकोटिसहस्राणि षष्टिकोटिशतानि च ॥ पूजितानि भवन्त्यत्र यात्रेश्वरसमर्चनात् ॥ ३४ ॥ यए वंकुरुते यात्रां शिवध्यानपरायणः ॥ सर्वस्वान्दक्षिणां दद्यात्तस्य पुण्यफलं शृणु ॥ ३५ ॥ सप्तजन्मकृतात्पापान्मुच्यते नात्र संशयः ॥ एवं यात्रां समाप्याथ गत्वा च स्वगृहं नरः ॥ ३६ ॥ यात्रादेवतसंख्यानै षड्विंशतिद्विजोत्तमान् ॥ भोजये च्छिवभक्तांश्च शिवध्यानपरायणान् ॥ ३७ ॥ सर्वस्वां दक्षिणां दत्त्वा प्राप्यानुज्ञां विसर्जयेत् ॥ यात्राक्रमेणैकैकं तीर्थान्तरमनुव्रजेत् ॥ ३८ ॥ धर्मोपदेशकैश्चात् सर्वोपस्करसंयुताम् ॥ धेनुं पयस्विनां दद्याद्वित्तशाल्याविवर्जितः ॥ ३९ ॥ भुञ्जीताथ स्वयं व्यास सर्वभृत्यसमन्वितः ॥ दीनानाथदरिद्रान्धविकलांश्चापि भोजयेत् ॥ ४० ॥ यदत्र फलमुद्दिष्टं तद्दामशृणुष्व मे ॥ कुलानां शतमुद्धृत्य मातापित्रोस्समाहितः ॥ ४१ ॥ कल्पकोटिसहस्राणि शिवलोकैः समोदते ॥ ४२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे महाकालयात्रामाहात्म्यनाम षड्विंशतितमोऽध्यायः ॥ २६ ॥ *

के ध्यान में परायण बम्बीस द्विजोत्तमों को भोजन करावै ॥ ३७ ॥ और वस्त्रों समेत दक्षिणा को देकर व आज्ञापाकर बिदा करै व यात्रा के क्रम से एक एक तीर्थ के अनन्तर से पदचात् जावै ॥ ३८ ॥ और पदचात् वित्तशाल्य से वर्जित नर धर्मोपदेशक तीर्थ में सब उपस्करों से संयुत दूधवाली गऊ को दैवै ॥ ३९ ॥ इसके अनन्तर हे व्यासजी ! समस्त सेवकों समेत आप भी भोजन करै और दीन, अनाथ, निर्धनी, अन्ध व विकल मनुष्यों को भी भोजन करावै ॥ ४० ॥ यहांपर जो फल

कहा गया है उसको कहता हूं तुम मुझसे सुनो कि वह सावधान चित्तवाला पुरुष माता व पिता के सौकुलों को उच्चारकर कराड़ों हजार कल्पों तक शिवलोक में प्रसन्न रहता है ॥ ४३ । ४२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेऽद्विद्व्यालुमिश्रविरचितांभाषाटीकायां महाकालयात्रामाहास्यवर्णनं नाम षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥ ७ ॥

दो० । बाल्मीकि पूज्यो यथा बाल्मीकिश्वर देव । सत्ताइस अध्याय में सोई चरित सुभेव ॥ सनत्कुमारजी बोले कि हे व्यासजी ! मौन व ध्यान में तत्पर होकर जो पुरुष भक्ति से बाल्मीकिश्वर देवजी को पूजै वह उत्तम कवित्व को प्राप्त होता है ॥ १ ॥ व्यासजी बोले कि यहां वे कैसे उत्पन्न हुये हैं और बाल्मीकिश्वर स्वामी कौन हैं कि जिनके दर्शनही से कवित्व होता है ॥ २ ॥ सनत्कुमारजी बोले कि हे व्यासजी ! पुरातन समय भृगुवंश में उपजे हुये सुमति नामक ब्राह्मण हुये हैं और रूप व

सनत्कुमार उवाच ॥ बाल्मीकिरीश्वरं व्यास भक्त्या देवं प्रपूजयेत् ॥ मौनी ध्यानपरो भूत्वा सुकवित्वमवाप्नुयात् ॥

१ ॥ व्यास उवाच ॥ कथमत्र समुत्पन्नो को बाल्मीकिश्वरः प्रभुः ॥ यस्य दर्शनमात्रेण कवित्वमुपजायते ॥ २ ॥ सनत्कु

मार उवाच ॥ आसीद्व्यासपुराविप्रः सुमतिर्भृगुवंशजः ॥ रूपयौवनसम्पन्ना तस्य भार्याथ कौशिकी ॥ ३ ॥ तस्य पुत्रः

समुत्पन्नस्त्वग्निशर्मतिनामतः ॥ सपित्रा प्रोच्यमानोऽपि वेदाभ्यासं न मन्यते ॥ ४ ॥ ततो वहतिथे काले अनावृष्टिरजाय

त ॥ तदापि बहवश्चासौ दक्षिणामाश्रितो दिशम् ॥ ५ ॥ ततोऽसौ सुमतिर्विप्रः सभार्यः समुत्तथा ॥ विदिशं काननं प्रा

प्तः कृत्वा चाश्रममाश्रितः ॥ ६ ॥ आभारैर्दस्युभिः सार्द्धं सङ्गो भूदग्निशर्मणः ॥ आगच्छति यथा तेन यस्तंहन्ति स पाप

कृत् ॥ ७ ॥ स्मृतिर्नष्टा गता वेदा गंतो गता श्रुतिः ॥ कस्मिंश्चिदथ काले तु तीर्थयात्रा प्रसङ्गतः ॥ ८ ॥ समर्पयः पथा

यौवन से सम्पन्न कौशिकी नामक उनकी स्त्री हुई है ॥ ३ ॥ उनके अग्निशर्मा नामक पुत्र उत्पन्न हुआ है पिता से कहा जाता हुआ भी वह वेदाभ्यास को नहीं मानता था ॥ ४ ॥ तदनन्तर बहुत दिनोंवाले समय में अनावृष्टि हुई उस समय भी बहुत से मनुष्य व यह दक्षिण दिशा में आश्रित हुआ ॥ ५ ॥ तदनन्तर स्त्रियों समेत व पुत्रों सहित यह सुमति ब्राह्मण विदिशा में वनको प्राप्त होकर आश्रम बनाकर स्थित हुआ ॥ ६ ॥ और अहीरों व चोरों के साथ अग्निशर्मा का संग हुआ उम गरता से जो आताथा उसको वह पापकारी अग्निशर्मा मारता था ॥ ७ ॥ स्मरण नष्ट हो गया व वेद जातिरेह और गोत्र जातिरेह इसके अनन्तर किसी समय में तीर्थ-

यात्रा के प्रसंग से ॥ ८ ॥ उत्तम व्रतोंवाले ससर्पिलोग ससी मार्ग से उपस्थित हुये इसके अनन्तर मारने की इच्छावाला अग्निशर्मा उनको देखकर यह बोला ॥ ९ ॥ कि इन वस्त्रों को व छतुरी तथा पनहियों को छोड़देवो क्योंकि यमस्थानको जानेवाले तुम लोग मुझसे मारने योग्यहो ॥ १० ॥ उसके उस वचनको सुनकर अग्निजी वचन बोले कि हमारी पीड़ासे उपजा हुआ पाप तुम्हारे हृदयमें कैसे वर्तमान है ॥ ११ ॥ हम लोग तपस्वी होकर तीर्थयात्रा में उद्यम किये हैं अग्निशर्मा बोले कि मेरे माता व पिता तथा पुत्र व प्यारी स्त्री है ॥ १२ ॥ उनको मैं सदैव पोषण करता हूँ यह मेरे हृदयमें स्थित है अग्नि जी बोले कि अपने इकट्ठा किये हुये कर्म के

तेन सुव्रताः समुपस्थिताः ॥ अग्निशर्मार्थतान् दृष्ट्वा हन्तुकामो ब्रवीद्विदिदम् ॥ ९ ॥ वस्त्राणि मानि मुञ्चध्वं छत्रकोपान्
हौतथा ॥ हन्तव्या हि मया यूयं गन्तारो यमसादने ॥ १० ॥ तस्य तद्वचनं श्रुत्वा अत्रिर्वचनमब्रवीत् ॥ अस्मत्पीडनं जंषा
पं कथं ते हृदि वर्तते ॥ ११ ॥ वयं तपस्विनो भूत्वा तीर्थयात्राकृतोद्यमाः ॥ अग्निशर्मो वाच ॥ ममास्ति माता यः पिता सुतो
भार्या गरीयसी ॥ १२ ॥ पोषयामि सदा तांस्तु एतन्मे हृदि संस्थितम् ॥ अत्रिरुवाच ॥ पित्रा दीननुपृच्छत्वं स्वकर्मोपा
जितं प्रति ॥ १३ ॥ यद्युष्मदर्थं क्रियते पापं तत्कस्य कथयताम् ॥ चेन्न ते कथयन्ति तस्म मा मृषा प्राणिनो वधीः ॥ १४ ॥ अग्नि
शर्मो वाच ॥ न कदाचिन्मया ते तु संपृष्टा ईदृशं वचः ॥ गुण्माकं वचसामेव प्रतिबोधः प्रवर्तते ॥ १५ ॥ गत्वा पृच्छामि ता
न्सर्वान् कस्य भावश्च कीदृशः ॥ यूयमत्रैव तिष्ठध्वं यावदागमनं मम ॥ १६ ॥ इत्युक्त्वा ता जगामाशु पितरं स्वमुवाच ह ॥
धर्मस्य प्रतिघातेन प्राणिनां पीडनेन च ॥ १७ ॥ सुमहदृदश्यते पापं कस्यैतत्कथयतां मम ॥ पिता प्राहाय तन्माता नापु
त्रिषयमेव तुम पितादिकोंसे पूछो ॥ १३ ॥ कि तुम लोगों के लिये जो पातक किया जाता है वह किसको होता है यह कहिये यदि तुमसे उन्होंने न कहा हो तो क्या प्राणि-
यों को मत मारिये ॥ १४ ॥ अग्निशर्मा बोले कि मैंने उनसे कभी ऐसे वचन को नहीं पूछा है आज तुम लोगों के वचन से मेरे ज्ञान वर्तमान है ॥ १५ ॥ जाकर मैं
उन सबोंसे पूछूंगा कि किसका कैसा अभिप्राय है तबतक तुम लोग यहीं टिको कि जबतक मेरा आगमन होवे ॥ १६ ॥ उनसे ऐसा कहकर शीघ्र ही गया व अपने
पिता से बोला कि धर्म के नाश से व प्राणियों को दुःख देने से ॥ १७ ॥ बड़ा भारी पाप देख पड़ता है यह किसको होता है उसको मुझ से कहिये इसके अनन्तर

पिता व उसकी माता ने कहा कि हम दोनों को इसमें पाप नहीं है ॥ १८ ॥ जिसको करते हो उसको तुम जानो और किया हुआ कर्म तुमसे भोगने योग्य होगा उन के उस वचन को सुनकर स्त्री से वचन बोला ॥ १९ ॥ व उसने भी कहा कि मुझको पाप नहीं होगा किन्तु यह पातक तुम्हीं को होगा और उस वचन को पुत्र से कहा व उसने कहा कि मैं बालक हूँ ॥ २० ॥ उनके वचन व व्यवहारको यथार्थसे जानकर मैं नष्ट होगया और तपस्वीलोग मेरी शरण (रक्षक) हैं यह मानता हुआ वह अग्निशर्मा ॥ २१ ॥ उस दण्डको पृथ्वी में फेंककर जिससे कि प्राणी मारेगये थे हे कृष्ण (व्यास) जी ! बालोंको फैलाकर शीघ्रता संयुत होकर ऋषियों के

एयमावयोरिह ॥ १८ ॥ त्वंजानासिकुरुषे यत्कृतंभोग्यंपुनस्त्वया ॥ तयोस्तद्वचनंश्रुत्वा भार्यावचनमब्रवीत् ॥ १९ ॥
तयाप्युक्तंनमेपापं पापमेतत्तवैवतु ॥ तद्वाक्यमब्रवीत्पुत्रं बालोहमिति सोब्रवीत् ॥ २० ॥ तज्ज्ञात्वाभाषितन्तेषां चेष्टित
अवतत्त्वतः ॥ नष्टोहमितिमन्वानः शरणंमेतपस्विनः ॥ २१ ॥ क्षिप्त्वाथलकुटंकृष्ण येनवैजन्तवोद्वताः ॥ प्रकीर्यकेशां
स्त्वरितो ऋषीणामग्रतःस्थितः ॥ २२ ॥ प्रणम्यदण्डपतेन ततोवचनमब्रवीत् ॥ नमेमातानचपिता नभार्यानचमेसु
तः ॥ २३ ॥ सर्वैस्तैःपरित्यक्तोहं भवतांशरणङ्गतः ॥ सुष्टूपदेशदानान्मां नरकात्रातुमर्हथ ॥ २४ ॥ एवंतवादिनंद
पद्मा ऋषयोत्रिमथान्ब्रुवन् ॥ भवतोवचनादस्य प्रतिबोधस्समागतः ॥ २५ ॥ भवतायमनुग्राह्यः शिष्योभवतुतेमुने ॥ त
थैत्युक्त्वाथतम्प्राह इमन्ध्यानयोगेन पापपुञ्जंप्रणाशय ॥ संस्थितोवृत्तमूलत्वं परांसि

आगे स्थित हुआ ॥ २२ ॥ और दण्डवत् गिरकर प्रणामकर तदनन्तर उसने वचन कहा कि न मेरे माताहै न पिता है और न स्त्री है न पुत्र है ॥ २३ ॥ उन सबों से छोड़ा हुआ मैं आप लोगों की शरण में प्राप्त हूँ तुमलोग उत्तम उपदेश के दानसे मेरी नरकसे रक्षा करने के योग्यहो ॥ २४ ॥ इसप्रकार कहतेहुये उसको देखकर इसके अनन्तर ऋषियों ने अविज्जी से कहा कि आपके वचन से इसके ज्ञान आगया ॥ २५ ॥ हे मुने ! आपसे यह दया करने योग्यहै और तुम्हारा यह शिष्य होवै वैसाही होगा यह कहकर अविज्जी उस अग्निशर्मासे बोले कि तुम इस ध्यानको करो ॥ २६ ॥ और वृत्तकी जड़में भलीभांति बैठेहुये तुम इस ध्यान के योगसे

पापकी राशि को नाश करो और परमसिद्धि को प्राप्त होवोगे ॥२७॥ यह कहकर वे सब चलेगये और कामना समेत वह योगी भी वहां तेरह वर्ष तक उस ध्यान में स्थित हुआ ॥ २८ ॥ और उस मार्ग से लौटहुये उन मुनियों ने बैबौरि में उससे कहेहुये शब्द को सुना व विस्मय से संयुत हुये ॥ २९ ॥ तदनन्तर उस बैबौरि को देखकर मुनियों ने दारुभूतकीलों के द्वारा उस नीतिसंयुत अग्निशर्मा को देखकर उठायो ॥ ३० ॥ इसके अनन्तर उस अग्निशर्मा को प्रणाम किया व प्रणत होकर तपस्या से प्रकाशित तेजबाले उन मुनियों से कहा ॥ ३१ ॥ कि आप लोगों की प्रसन्नता से आज मैंने उत्तम ज्ञान को पाया और पातक के

द्विगमिष्यसि ॥ २७ ॥ इत्युक्त्वा ते ययुस्सर्वे सकामः सोऽपि तत्र वै ॥ तद्ध्यानस्थो भवद्योगी वत्सराणि त्रयोदश ॥ २८ ॥ निवृत्तास्तु यथा तेन मुनयस्तत्प्रशुश्रुवुः ॥ उदीरितध्वनिन्तेन बल्मीके विस्मयान्विताः ॥ २९ ॥ ततस्तु दृष्ट्वा बल्मीकं काष्ठीभूतोरुशङ्कुभिः ॥ तन्दृष्ट्वा तथाप्यामासुर्मुनयोनयसंयुतम् ॥ ३० ॥ नमश्चक्रेथ तान्सर्वान् समुनिर्मुनिपुङ्गवान् ॥ तान्प्राह प्रणतो भूत्वा तपसा दीप्तेजसः ॥ ३१ ॥ प्रसादाद्भवतामद्य ज्ञानं लब्धं मया शुभम् ॥ दीनो हमुद्धृतस्सर्वमग्नो ह पापकर्दमे ॥ ३२ ॥ श्रुत्वा तस्यैतत्तद्वाक्यमूचुः परमधार्मिकाः ॥ बल्मीकेस्मिन् स्थितः पुत्र यतस्त्वमेकचित्ततः ॥ ३३ ॥ बाल्मीकिरिति तेनामं भुवि ख्यातं भविष्यति ॥ इत्युक्त्वा मुनयोजग्मुः स्वान्दिशं तपसान्विताः ॥ ३४ ॥ गतेषु मुनिषु ख्येषु बाल्मीकिस्तपतांवरः ॥ कुशस्थल्यामथागम्य समाराध्य महेश्वरम् ॥ ३५ ॥ तस्मात्कवित्वमासाद्य चक्रेकाव्यमनोरमम् ॥ रामायणञ्च यत्प्राहुः कथासु प्रथमं स्थितम् ॥ ३६ ॥ ततः प्रभृति देवेशो बाल्मीकेश्वरसंज्ञकः ॥ ख्यातो व

कीचक में हुआ हुआ मैं दीन आप सबों से उधारा गया हूं ॥ ३२ ॥ उसके उस वचन को सुनकर परमधर्मवान् उन ऋषियों ने कहा कि हे पुत्र ! जिसलिये तुम एक विससे इस बैबौरि में स्थित हुये हो ॥ ३३ ॥ इसलिये बाल्मीकि ऐसा तुम्हारा नाम पृथ्वी में प्रसिद्ध होगा यह कहकर तपस्या से संयुत मुनिलोग अपनी दिशा को चले गये ॥ ३४ ॥ मुख्य मुनियों के जाने पर इसके अनन्तर तपस्वियों में श्रेष्ठ बाल्मीकि जीने कुशस्थली में आकर व महादेवजी को आराधन कर ॥ ३५ ॥ उनसे कविता को पाकर मनोहर काव्य किया कि जिसको रामायण कहते हैं व जो कथाओं में प्रथम स्थित है ॥ ३६ ॥ हे व्यासजी ! तब से लगाकर बाल्मीकेश्वर नामक

प्रणाम कर मनुष्य वियोगि को नहीं प्राप्त होता है और धर्मबुद्धिवाला होता है ॥ ७ ॥ व कृष्णपक्ष की अष्टमी में उपास कियेहुये वह मनुष्य चण्डेश्वरजी को पूजकर नि-
र्मल्यके नौघनेसे उपजे हुये पातकसे नहीं लिप्त होता है ॥ ८ ॥ महादेवजी के इत्यादिक सब पवित्र तीर्थोंको जाकर पृथ्वीमें शुद्ध आत्मा व विशुद्ध चित्तवाला मनुष्य
सदाशिवजी के मनोहर मन्दिर को प्राप्त होता है ॥ ९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायाभापाटीकार्यातीर्थमाहात्म्यं नामाष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥
दो० ॥ पंचेशानीयात्राकर विधि सहित प्रभाव । उन्तिमवें अध्याय में सोई चरित सुहाव ॥ व्यासजी बोले कि हे मुने ! तुमने गुह्यस्थान में पवित्र तीर्थोंको कहा आज
म्यामुपोषितः ॥ निर्माल्योल्लङ्घनोत्थेन सशोकेन न लिप्यते ॥ ८ ॥ इत्यादि तीर्थानि महेश्वरस्य पुण्यानि सर्वाणि नरोभि-
गम्या ॥ विशुद्धचित्तो मुविभावित आत्मा प्रयाति शम्भो भवं न सुरम्यम् ॥ ९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे तीर्थमाहात्म्य
॥ * ॥ * ॥ * ॥

ज्ञानमाष्टाविंशतितमोऽध्यायः ॥ २८ ॥ * ॥ * ॥ * ॥
व्यास उवाच ॥ गुह्यस्थाने पवित्राणि कीर्तितानि त्वयामुने ॥ प्रमाणं कथय स्वाद्य महाकालवनस्य मे ॥ १ ॥ सनत्कु-
मार उवाच ॥ यथा श्रुतं मया पूर्वं गदतो ब्रह्मणस्स्वयम् ॥ तत्ते हं संप्रवक्ष्यामि शृणु त्वंगदतो मम ॥ २ ॥ योजनस्यैव प-
र्यन्तं चतुर्दिक्षु पशो भित्तम् ॥ सौवर्णेस्तोरणैश्चैव मुक्तादामविलम्बिभिः ॥ ३ ॥ द्वाराणि तत्र शोभन्ते काञ्चनैः कलशैः स्थि-
तैः ॥ सितपद्ममुखैर्द्वारैर्नैर्कर्मणि मण्डितैः ॥ ४ ॥ महेश्वरप्रशुक्ताश्च दाराध्यक्षा महाबलाः ॥ द्वारेषु ते पुशो भन्ते लोका-
नुग्रहकारकाः ॥ ५ ॥ पिङ्गलेशः स्थितः पूर्वं बालरूपो विभावसुः ॥ तीर्थस्याभिमुखे गौरो गुरुर्गणरथानुगः ॥ ६ ॥ दक्षि-
मुख से महाकालवन का प्रमाण कहिये ॥ १ ॥ सनत्कुमारजी बोले कि मैंने पुरातन समय जिस प्रकार आपही कहते हुये ब्रह्माजी से सुना है उसको मैं तुमसे कहूंगा तुम
कहते हुये मुझ से सुनो ॥ २ ॥ कि मोती की झालर जिन में लटकती हैं उन सुवर्ण के बाहरी द्वारों से योजन भरतक चारों दिशाओं में शोभित है ॥ ३ ॥ और
उस में धरे हुये सुवर्ण के कलशों से द्वार शोभित है और अनेक मणियों से शोभित श्वेतकमलमुखद्वारों से शोभित है ॥ ४ ॥ व उन द्वारों में महादेवजीसे नियोजित
बड़े बलवान् द्वारपाल हैं जोकि लोकों के ऊपर दयाकरनेवाले हैं ॥ ५ ॥ तीर्थ के सामने बालरूपी विभावसु पिङ्गलेशजी स्थित हैं जो कि गौरवर्ण व गुरु तथा गणों

के रथों के अनुगामी हैं ॥ ६॥ व दक्षिण दिशा में भी कायावरोहणनामक महायोगी स्थित हैं और क्षेत्र के सामने स्थित बिल्वेशजी पश्चिम द्वार पै हैं ॥ ७ ॥ जो कि महादेवजी से नियुक्त कियेहुये पश्चिम दिशा में स्थित हैं और उत्तर दिशा में आश्रित होकर उत्तरेश्वर जी स्थित हैं ॥ ८ ॥ शिवजीसे आज्ञा दियेहुये वे समस्त कार्यो के साधन करनेवाले हैं इस क्षेत्र के मध्यमें उत्तम धर्मवान् जो मनुष्य बसते हैं ॥ ९ ॥ वे मरकर सब कामनाओंवाले विमानों के द्वारा शिवपुर को जाते हैं कृष्णपत्त की चौदसि व सूर्यनारायण तथा चन्द्रमा के संयोग याने अमावस में ॥ १० ॥ पञ्चेशानीजी को प्रणामकर और महादेवजी को ध्यान करताहुआ एकदिनसे विलोम व

एपिमहायोगी नाम्नाकायावरोहणः ॥ बिल्वेशः पश्चिमेद्वारे क्षेत्रस्याभिमुखं स्थितः ॥ ७ ॥ नियुक्तो वै महेशेन वारुणी
 न्दिशमास्थितः ॥ उत्तरान्दिशमाश्रित्य स्थितश्चैवोत्तरेश्वरः ॥ ८ ॥ साधकस्सर्वकार्याणामादिष्टशङ्करेणसः ॥ मा
 नवायेव सन्त्यत्र क्षेत्रमध्ये सुधार्मिकाः ॥ ९ ॥ मृत्तारुद्रपुरं यान्ति विमानैस्सर्वकामिकैः ॥ कृष्णपक्षे चतुर्दश्यामथवा
 कन्दुसङ्गमे ॥ १० ॥ पञ्चेशानीं नमस्कृत्य प्रतिलोमानुलोमतः ॥ उपोषितो दिनैकेन ध्यायमानो महेश्वरम् ॥
 ११ ॥ मुच्यते सर्वपापैस्तु बहुजन्मकृतेरपि ॥ एवं च विप्रयोगात्रां पञ्चेशानीं समारभेत् ॥ १२ ॥ अनेनैव स्वदेहेन रुद्रलो
 कं सगच्छति ॥ पञ्चेशानीमथान्यान्ते सुखेन क्रियते यथा ॥ १३ ॥ तथा शृणु प्रवक्ष्यामि सर्वपापप्रणाशिनीम् ॥ प्रातः
 स्नात्वा रुद्रसरस्येकादश्यां समाहितः ॥ १४ ॥ श्राद्धं कृत्वा महाकालं नत्वा ईशानमीश्वरम् ॥ पिङ्गले शन्ततः प्राप्य
 स्नात्वा श्राद्धं समाचरेत् ॥ १५ ॥ उपगम्य ततो देवं गणेशं पिङ्गलेश्वरम् ॥ गन्धैः पुष्पैश्च धूपैश्च तमभ्यर्च्य निवर्तयेत् ॥ १६ ॥

अनुलोम याने तीनदिन उपासकर मनुष्य ॥ ११ ॥ बहुतजन्मों में कियेहुये भी सब पातकों से छूटजाता है इसप्रकार है विप्रजी ! जो पञ्चेशानी यात्रा को प्रारम्भ करता है ॥ १२ ॥ वह इसी देह से शिवलोक को जाता है इस के अनन्तर समस्त पातकों को नाशनेवाली अन्य पञ्चेशानी यात्राको तुम से कहता हूँ जिसप्रकार वह यात्रा सुख से कीजाती है वैसेही सुनिये कि सावधान होताहुआ पुरुष एकादशीतिथि में प्रातःकाल रुद्रसर में नहाकर ॥ १३ ॥ १४ ॥ श्राद्धकर व महाकालेश्वर ईशानजी को प्रणामकर तदनन्तर पिङ्गलेश्वरजी को प्राप्तहोकर नहाकर श्राद्धकरै ॥ १५ ॥ तदनन्तर पिङ्गलेश्वर गणनायकजी के समीप जाकर और गन्ध, पुष्प व

धूपोंसे उनको पूजकर निवृत्त होवै ॥ १६ ॥ १७ ॥ महाकालेश्वरजीको प्राप्तहोकर फिर स्नान कियेहुये जितेन्द्रिय पुरुष आपही से उपजेहुये सनातन देवदेवेशजी को पूजे ॥ १७ ॥ और ईशान में रात्रिको व्यतीत करै व रात्रि में भोजन कर महेशजी को ध्यान करताहुआ पुरुष भूमि में शरीर को धरकर ॥ १८ ॥ द्वादशी में सब पहले की नाई करके प्रातःकाल नहाकर मनुष्य गमन करै और कायावरोहण तीर्थ मे जाकर पिङ्गलेश्वर की नाई पूजे ॥ १९ ॥ इसके अनन्तर तेरसि में भी इस प्रकार पञ्चिचममें बिल्वेशजी का पूजन करै वैसेही चौधसि तिथि में उत्तर दिशामें उत्तेश्वरजी को पूजे ॥ २० ॥ और अमावस तिथि में नहाकर पवित्र होताहुआ पुरुष महा-

महाकालेश्वरप्राप्य भूयस्सनातो जितेन्द्रियः ॥ अर्चयेद्देवदेवेशं स्वयंभृतंसनातनम् ॥ १७ ॥ ईशानेगमयेद्रात्रिं कृत्वावैनक्तभोजनम् ॥ ध्यायमानोमहेशानं भूमौ विन्यस्य विग्रहम् ॥ १८ ॥ द्वादश्यापूर्ववत्सर्वं प्रातस्सनात्वाव्रजेन्नरः ॥ कायावरोहणे गत्वा पिङ्गलेश्वरवद्यजेत् ॥ १९ ॥ त्रयोदश्यामथाप्येवं बिल्वेशपश्चिमे चयेत् ॥ चतुर्दश्यां तथा सौम्ये पूजयेत्तुत्तरेश्वरम् ॥ २० ॥ अमायान्तु शुचिस्सनातो महाकालेश्वरं व्रजेत् ॥ गन्धैः पुष्पैश्च धूपैश्च नैवेद्यैर्विविधैस्तथा ॥ २१ ॥ गीतनृत्यादिकं कृत्वा प्राणिपत्यक्षमापयेत् ॥ यात्रां कृत्वा तु पूर्वोक्तां ततो निजगृहं व्रजेत् ॥ २२ ॥ ब्राह्मणान् भोजयेत्तपश्च शिवभक्तिपरायणान् ॥ प्रणम्य देवरूपांश्च महाकाले पितान् द्विजान् ॥ २३ ॥ पूजयित्वा हिरण्येन सुक्ष्मवस्त्रैस्तथानवैः ॥ रथं पिङ्गलके दद्याद्भुजं कायावरोहणे ॥ २४ ॥ दत्त्वा बिल्वेश्वरे चाश्वं वृषं दत्त्वाथ चोत्तरे ॥ धेनुं दद्यान्महाकाले सर्वोपस्कारसंयुताम् ॥ २५ ॥ य एवं कुरुते व्यास तस्य पुण्यफलं शृणु ॥ पितृकर्मार्तुकैस्सार्द्धं कुलैस्समादिविमो

कालेश्वरजी को जावै और गन्ध, धूप, पुष्प, धूप और अनेक भाति के नैवेद्यों से पूजन करै ॥ २१ ॥ और गीत नृत्यादिक कर प्रणाम कर क्षमापन करावै व पूर्वोक्त यात्रा करके तदनन्तर अपने घरको जावै ॥ २२ ॥ और शिवजी की भक्तिसे तत्पर पांच ब्राह्मणों को भोजन करावै व महाकालमें भी उन देवरूपी ब्राह्मणों को प्रणाम कर ॥ २३ ॥ और सुवर्ण से व नवीन रेशमी वस्त्रोंसे पूजकर पिङ्गलकमें रथ देवै व कायावरोहण तीर्थ मे हाथी देवै ॥ २४ ॥ व बिल्वेश्वरमें अश्वको देकर और उत्तर में वृषको देकर महाकालमें सब उपस्कारों समेत गऊको देवै ॥ २५ ॥ हे व्यासजी ! जो मनुष्य इसप्रकार करता है उसके पुण्यका फल सुनिये कि अप्सराओं के गीत

व नृत्य से संयुत सब कामनाओंवाले विमानों से पिता व मातावाले कुलों समेत वह स्वर्ग में आनन्द करता है ॥ २६ । २७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदेवी
दयालुमिश्रचितायांभाषाटीकायांपञ्चेशानीयाग्रामाहात्म्यंनमैकोनत्रिंशोऽध्यायः॥ २६ ॥ * ॥ * ॥
दो० । कहीं सात देवीनकी महिमा अतिहि अमान । सोइ तीस अध्याय में कीन्हों चरित बखान ॥ सनत्कुमारजी बोले कि नियम से जो कुशस्थली (उज्जैनी)
की प्रदक्षिणा करता है उससे सातहोपेवाली पृथ्वी प्रदक्षिणा कीगई ॥ १ ॥ जो मनुष्य पद्मावतीजी के दर्शन करता है व कमलों से पूजता है तथा नैवेद्य समेत

दत्ते ॥ २६ ॥ अप्सरोगीतनृत्याढ्यौर्विमानैस्सार्धकामिकैः ॥ २७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे पञ्चेशानीयात्रामा
हात्म्यन्नामैकोनत्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ २९ ॥ * ॥ * ॥

सनत्कुमारउवाच ॥ यस्तुप्रदक्षिणांकुर्यान्नियमेनकुशस्थलीम् ॥ प्रदक्षिणीकृतातेन सप्तद्वीपावसुन्धरा ॥ १ ॥ य
स्तुपद्मावतीपश्येदर्चयेत्पङ्कजैर्नरः ॥ दद्याद्धूपंसनैवेद्यं मृतोब्रह्मपुरं ब्रजेत् ॥ २ ॥ स्वर्णशृङ्गाटिकांव्यास कुसुमैस्स्वर्णस
न्निभैः ॥ समभ्यर्च्यमहाभक्त्या सयातिशिवमन्दिरम् ॥ ३ ॥ अवन्तिकान्त्युयःपश्येद्देवीत्रैलोक्यविश्रुताम् ॥ कामगे
नविमानेनयातिपौरन्दरंपदम् ॥ ४ ॥ अर्चयेत्पङ्कजैर्भक्त्यायोदेवीममरावतीम् ॥ अमरैस्सहसंहृष्टो मोदतेदिविसर्वदा ॥
५ ॥ देवीमुज्जयिनींभक्त्या यःपश्यतिसमाहितः ॥ सर्वैश्वर्यसमायुक्तो रुद्रलोकेमहीयते ॥ ६ ॥ विशालाचिवयःपश्ये

घुपकों देताहै वह मरकर ब्रह्मलोकको जाता है ॥ २ ॥ व हे व्यासजी ! सोने के समान पुष्पों से स्वर्णशृङ्गाटिका देवीजी को षडी भक्ति से भलीभांति पूजकर वह
मनुष्य शिवमन्दिर को जाता है ॥ ३ ॥ और त्रिलोक में प्रसिद्ध अवन्तिका देवीजी को जो देखता है वह इच्छा के अनुकूल जानेवाले विमान के द्वारा इन्द्रपुर
को जाता है ॥ ४ ॥ और जो मनुष्य भक्ति से अमरावती देवीजी को कमलों से पूजता है वह देवताओं समेत प्रसन्न होकर सदैव स्वर्ग में आनन्द करताहै ॥ ५ ॥
और सावधान होताहुआ जो पुरुष उज्जयिनी देवीजीको देखाहै सब ऐश्वर्यो से संयुत वह शिवलोक में पूजा जाता है ॥ ६ ॥ व जो सावधान मनुष्य शिवभक्ति से

विशाला देवीजी को देखता है वह तीनों प्रकार के पातकों से छूटजाता है इसमें विचार न करना चाहिये ॥ ७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदेवीदयालुमिश्र
विरचिताभाषाटीकायासप्तदेवीनामहिमवर्णनं नाम त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

दो० । अक्रूरेश्वरदेव को अहै जौन परभाव । इकतिसवें अध्याय में सोई चरित सुहाव ॥ सनत्कुमारजी बोले कि हे व्यासजी ! अक्रूरेश्वर ऐसे नामवाले पवित्र
महातीर्थ को सुनिये जोकि ब्रह्मा से पूजाग्या है और जहां पर ब्रह्माजी सिद्धहुये हैं ॥ १ ॥ कृष्णपत्नकी अष्टमी में उपास कियेहुये इन्द्रियों को जीते व पवित्र तथा

दुद्रभक्त्यासमाहितः ॥ मुच्यतेत्रिविधैःपापैर्नात्रकार्याविचारणा ॥ ७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे सप्तदे
वीनामहिमवर्णनन्नामत्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३० ॥

सनत्कुमारउवाच ॥ शृणुव्यासमहातीर्थं पुरयंयदब्रह्मणार्चितम् ॥ अक्रूरेश्वरमित्याख्यं यत्रसिद्धःपितामहः ॥
१ ॥ तत्रदेवार्चनं कृत्वा कृष्णाष्टम्यामुपोषितः ॥ जितेन्द्रियश्शुचिर्दान्तो रुद्रलोकमवाप्नुयात् ॥ २ ॥ नवदेत्केनचि
त्साईं नरःप्रातस्समुत्थितः ॥ दृष्ट्वाक्रूरेश्वरन्देवं हेमदानफलंलभेत् ॥ ३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेऽक्रूरेश्व
रमहिमवर्णनन्नामैकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

सनत्कुमारउवाच ॥ यस्तुपश्यतिब्रह्माणं शुचिस्मनातोजितेन्द्रियः ॥ मुच्यतेपातकाद्घोराद् ब्रह्मलोकमतोव्रजेत् ॥
१ ॥ पद्मासनस्थितोब्रह्मा ध्यायमानःपरम्पदम् ॥ वशिष्ठार्घ्यमुनिवरैर्विज्ञप्तःकर्मसम्भवात् ॥ २ ॥ ऋषयऊचुः ॥ आ

शान्त पुरुष वहां देवपूजन कर शिवलोक को प्राप्तहोता है ॥ २ ॥ किसी के साथ वार्तालाप न करै और प्रातःकाल उठकर मनुष्य अक्रूरेश्वर देवको देखकर सुवर्ण
दान के फलको प्राप्तहोता है ॥ ३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायामक्रूरेश्वरमहिमवर्णनं नामैकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

दो० । शिवयाज्ञिक ब्राह्मणन कहैं दीन्हों वर अरु शाप । वात्तिसवें अध्याय में सोई चरित संलाप ॥ सनत्कुमारजी बोले कि नहाया हुआ पवित्र व जितेन्द्रिय जो
पुरुष ब्रह्मादेवजी को देखता है वह भयंकर पातकसे छूटजाता है व इसकें उपरान्त ब्रह्मलोक को जाता है ॥ १ ॥ पद्मासन से बैठे व परमपद को ध्यान करतेहुये ब्रह्मा

जी से वशिष्ठादिक मुनिश्रेष्ठों ने कर्मके संभव से विनय किया ॥ २ ॥ ऋषिलोग बोले कि आदित्य, मरुत, साध्य, वसु व दोनों आश्विनीकुमार तथा जो लोकोंके पितर पृथ्वीमें मनुष्योंसे पूजे जातेहैं ॥ ३ ॥ और ग्रह, सूर्यनारायण, तारा, यक्ष, दिग्गज, अग्नि व पवन ये देवता और हम सब तुम्हारे अंशसे पहेजातेहैं ॥ ४ ॥ हे देवेश ! तुम किस को ध्यान करते हो यह सब हमलोगों से कहिये ब्रह्माजी बोले कि तत्त्वरूपिणी जो परा व अपरा दो विद्या है ॥ ५ ॥ वे सदैव मूर्त्ति व मूर्तात्मिका मेरे स्वरूपसे जानने योग्य हैं ऋषिलोग बोले कि हे पितामह जी ! आपको परमप्रभु हमलोग कैसे जानैं ॥ ६ ॥ कि जिससे तुम्हारे दर्शन से हम लोगों की उत्तम सिद्धि होवै ॥ ७ ॥

दित्यामरुतस्साध्या वसवश्चाश्विनावुभौ ॥ पितरोयेचलोकानां पूज्यन्तेभुविमानवैः ॥ ३ ॥ ग्रहाकार्कस्तारकाग्रजा दिग्ग
जाश्चानलानिलाः ॥ अग्नीदेवावयंसर्वे प्रपृथ्व्यन्तेत्वदंशतः ॥ ४ ॥ कवैध्यायसिदेवेश एतत्सर्ववर्वाहिनः ॥ ब्रह्मोवाच ॥ हे
विद्येतत्त्वरूपे पराचैवापरा तथा ॥ ५ ॥ ज्ञेयममस्वरूपेण मूर्त्तमूर्त्तात्मिकेसदा ॥ ऋषय ऊचुः ॥ पितामह कथं विष्णो भ
वतः परमं विभुम् ॥ ६ ॥ येनास्माकंपरासिद्धिर्जायते तव दर्शनात् ॥ ७ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ माहेश्वरं परं क्षेत्रं कुशस्थलीति श
ब्दितम् ॥ यज्ञार्थिनामया देवः श्रीकण्ठः पार्वतीपतिः ॥ ८ ॥ याचितस्तेन देवेन उक्ते हंतव्यश्मभुना ॥ समन्ताद्योजनं सा
ग्रं क्षेत्रमेतत्पितामह ॥ ९ ॥ मया दत्तं तव विभो महाकालवनादृते ॥ वारितोपिमया तत्र वने गुप्तो हिरोषतः ॥ १० ॥ आ
रब्धो वै ततो यज्ञो नारायणपरिग्रहात् ॥ ज्ञातस्तथापि मे यज्ञो देवदेवनश्मभुना ॥ ११ ॥ यज्ञवाटकपर्दां शस्ततो भिक्षा
र्थमागतः ॥ यान्निकैस्सोथतत्रोक्तो मात्रतिष्ठजुगुप्सितः ॥ १२ ॥ कर्पदिना च ते तत्र उक्तायास्याम तत्पुनः ॥ एवमुक्त्वा क

ब्रह्माजी बोले कि कुशस्थली ऐसा कहाहुआ माहेश्वर उत्तम क्षेत्र है यज्ञके प्रयोजनवाले मैंने पार्वती के पति सदाशिवजी से याचना किया उन शिवदेवजी ने वहां मुझ से कहा कि हे पितामहजी ! सब और कुछ अधिक योजन भर यह क्षेत्र ॥ ८ ॥ हे विभो ! महाकालवन को छोड़कर मैंने तुमको दिया और उस वनमें मुझ से मना किये हुये भी वे क्रोधसे गुप्त होगये ॥ १० ॥ तदनन्तर नारायणके परिग्रह से मैंने यज्ञको प्राप्त किया तो भी देवदेव शिवजीने मेरी यज्ञको जाना ॥ ११ ॥ तदनन्तर भिक्षा के लिये शिवजी यज्ञवाट को आये इसके अनन्तर वहां यज्ञ करानेवालों ने उनसे कहा कि हे निन्दित ! यहां मत स्थित होवो ॥ १२ ॥ फिर वहां

शिवजी ने उनसे कहा कि तो हम जाते हैं ऐसा कहकर वहां भूमि में कपाल को धरकर ॥ १३ ॥ जटाधारी परमेश्वरजी नहाने के लिये शिप्रानदी को गये और जटाधारी शिवजी जब शिप्रानदी को गये तब ब्राह्मणों ने कहा ॥ १४ ॥ कि सभा में कपाल के स्थित होने पर कैसे होम किया जाता है क्योंकि पुरातन समय विद्वानों ने कपालरहित अग्नियों को पवित्र कहा है ॥ १५ ॥ उम कपाल को आपही सामाजिक ने फेंक दिया व उसके फेंकने पर अन्य हुआ व बार २ फेंकने पर फिर हुआ ॥ १६ ॥ इसप्रकार मुनिश्रेष्ठों को कपाल का अन्त नहीं मिलता था वे जटाधारी शिवजी को प्रणाम कर शरण में प्राप्त हुये ॥ १७ ॥ तदनन्तर भक्तिसे प्रसन्न

पालन्तु भूमौ संस्थाप्य तत्र हि ॥ १३ ॥ स्नातुन्नदीयौ शिप्रां कपर्दी परमेश्वरः ॥ उक्तं तस्मिन् गतेशिप्रां कपर्दिनि द्विजातिभिः ॥ १४ ॥ कथं हि क्रियते होमः कपाले सदसि स्थिते ॥ अकपालानि शौचानि पुरा प्रोक्तानि सूरिभिः ॥ १५ ॥ तत्कपालं सदस्येन उत्तुल्य संपाणिना स्वयम् ॥ तस्मिन् क्षिप्तेऽभवच्चान्यत्क्षिप्तेऽभवत्पुनः ॥ १६ ॥ एवन्नान्तःकपालानां प्राप्य ते मुनि सत्तमैः ॥ रुद्रं कपर्दिनं नत्वा शरणन्ते समागताः ॥ १७ ॥ ततस्स दर्शनं प्रादाद्भक्त्या तुष्टो महेश्वरः ॥ कपालपाणिर्भगवान् मासुवाच पुनः प्रभुः ॥ १८ ॥ वरं वरय भो ब्रह्मन् यत्ते मनसि वर्तते ॥ नास्त्यदेयं मया तुभ्यं सर्वदा स्यामि तत्त्वतः ॥ १९ ॥ ब्रह्मोत्तरमिदं स्थानं मया दत्तं चतुर्मुख ॥ कारयस्व यथाकामं तथा वर्णं चतुष्टयम् ॥ २० ॥ एवं वदन्तं वरदमीशानं परमेश्वरम् ॥ तथेति चोक्त्वा सदसि नममान्यो वरोदृतः ॥ २१ ॥ उज्जयिनीति वनाम कुशस्थल्या निवेशितम् ॥ कुण्डं मन्दाकिनी तत्र मया कृतमनन्तरम् ॥ २२ ॥ तत्र विप्रकृते स्नाने सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ तस्यां संस्था

महादेवजी ने दर्शन दिया और कपाल हाथवाले भगवान् सदाशिव प्रभुजी फिर मुक्त से बोले ॥ १८ ॥ कि हे ब्रह्मन् ! जो तुम्हारे मन में वर्तमान हो उस वरदान को मांगिये मुझ से तुम्हारे लिये कुछ न देने योग्य नहीं है मैं सबको तत्त्व से दूंगा ॥ १९ ॥ हे चतुराननजी ! मैंने इस ब्रह्मोत्तर स्थान को दिया जैसी इच्छा होवे वैसेही चारों वरों को कीजिये ॥ २० ॥ इसप्रकार कहते हुये उन वरदायक परमेश्वर महादेवजी से वैसाही होगा यह कहकर मैंने सभा में अन्य वरदानको नहीं मांगा ॥ २१ ॥ और मैंने कुशस्थली समेत उज्जयिनी ऐसा नाम धरा इसके अनन्तर मैंने वहा मन्दाकिनी कुण्ड निर्माण किया ॥ २२ ॥ हे विप्रजी ! उसमें स्नान

करने पर मनुष्य सब पातकोंसे छूटजाता है और उस पुरीमें दिशाओं में चार उत्तम घटों को स्थापित करे ॥ २३ ॥ और तिलों समेत व वसनों सहित व फलों समेत तथा आभूषणों समेत उन घटों को कार्तिकी व माघी में चारों वेदों के जाननेवालों के लिये देवे ॥ २४ ॥ पूर्वका घट ऋग्वेद के लिये व दक्षिण घटको यजुर्वेद के लिये और पश्चिम घट सामवेदके लिये व उत्तर का घट अथर्वण वेदके लिये देवे ॥ २५ ॥ वेदोंको इसप्रकार उद्देशकर कि मेरे ऊपर पितामह देवजी प्रसन्न होवें इस प्रकार करने पर जो पुण्य होताहै उसको सावधान होतेहुये सुनिये ॥ २६ ॥ कि सब तीर्थों में जो पुण्य मिलताहै वैसेही मन्दाकिनी में होताहै और स्नान हजार

पयेदिष्टु चतुरोथघटाञ्छुमान् ॥ २३ ॥ सतिलांस्तान्सवस्त्रांश्च सफलान्मण्डनैस्सह ॥ कार्तिक्यामथमाध्याञ्च च सुर्विदूभ्यःप्रदापयेत् ॥ २४ ॥ प्रथमंचऋग्वेदाय यजुर्वेदायदक्षिणम् ॥ पश्चिमंसामवेदाय अथर्वणेत्तथोत्तरम् ॥ २५ ॥ वेदानुद्दिश्यचाप्येवं प्रीयतांमेपितामहः ॥ कृतेचैवंहियत्पुण्यं तच्छृणुध्वंसमाहिताः ॥ २६ ॥ सर्वतीर्थेषुयत्पुण्यं मन्दाकिन्यां तथाभवेत् ॥ सहस्रगुणितंस्नानं जाप्यंलक्षगुणंभवेत् ॥ २७ ॥ दानंकोटिगुणंज्ञेयं मन्दाकिन्यान्नसंशयः ॥ कार्तिकेमासिसम्प्राप्ते गोदानंतत्रकारयेत् ॥ २८ ॥ द्रुतधेनुञ्चकार्तिक्यां माध्यांतिलमयीतथा ॥ जलधेनुन्तुवैशाखां दत्त्वा मुच्येतपातकात् ॥ २९ ॥ वाचिकंमानसंपापं कर्मजंयच्चदुष्कृतम् ॥ विनश्येत्किल्बिषंसर्वं मन्दाकिन्यास्तुदर्शनात् ॥ ३० ॥ मन्दाकिनीसमन्तीर्थं पृथिव्यान्नैवदृश्यते ॥ यस्यदर्शनमात्रेण ब्रह्मलोकैसमोदते ॥ ३१ ॥ मन्दाकिन्या न्तुयस्स्नानं कृत्वाश्राद्धंप्रदास्यति ॥ दर्शंचर्षूणिमायांवा पितृलोकैसमोदते ॥ ३२ ॥ पितामहन्तुयोभक्त्या नित्यं गुणा व जप लाख गुना होवै है ॥ २७ ॥ और मन्दाकिनी में दान कोटिगुना जाननेयोग्यहै इसमें सन्देह नहीं है कातिक महीना प्राप्तहोने पर वहां गोदान करावै ॥ २८ ॥ कार्तिकी में घी की गऊ व माघी में तिलमयी गऊ और वैशाखी में जल की गऊको देकर मनुष्य पातक से छूटजाता है ॥ २९ ॥ व वाचिक और मानस पाप तथा कर्म से उपजाहुआ जो पातकहै वह सब पातक मन्दाकिनी जाके दर्शन से नाश होजाता है ॥ ३० ॥ मन्दाकिनी के समान तीर्थ पृथ्वी में नहीं देखपडता है जिसके दर्शनही से वह मनुष्य ब्रह्मलोकमें आनन्द करता है ॥ ३१ ॥ और जो मनुष्य मन्दाकिनी में स्नान कर अभावस व पौर्णिमासी में श्राद्ध देताहै वह पितृ-

लोकमें प्रसन्न होता है ॥ ३२ ॥ जो मनुष्य भक्तिसे नित्य ब्रह्माजी को देखता है वह हजार अश्वमेध और सौ राजसूययज्ञ से ॥ ३३ ॥ युक्त होता है इसमें सन्देह नहीं है हे तपोधनो ! यह सत्य है तदनन्तर मन्वन्तर बीतने पर जब फिर वैवस्वत मनु प्राप्त हुआ तब फिर ॥ ३४ ॥ उसी उन्मत्त वेप से ऊर्ध्वजटाओंवाले महादेवजी ब्रह्मा की यज्ञ में पड़े और उन द्विजोत्तमों ने देखा ॥ ३५ ॥ ब्राह्मणलोग उनको शाप देते थे व कोई निन्दा करते थे व अन्य ब्राह्मण धूलियों से उनके लिंग को मारते थे और कोई ब्राह्मण शाप देते थे ॥ ३६ ॥ और बल से गर्विष्ठ कोई मनुष्य उनको देलों व दण्डों से मारते थे और अन्य कोई ब्राह्मण जटाओं के

पश्यतिमानवः ॥ अश्वमेधसहस्रेण राजसूयशतेन च ॥ ३३ ॥ युज्यते नात्र सन्देहः सत्यमेतत्तपोधनाः ॥ ततो मन्वन्तरे ती
ते प्राप्तैव स्वर्ते पुनः ॥ ३४ ॥ तेनैवोन्मत्तवेषेण ऊर्ध्वशोफो महेश्वरः ॥ प्रविष्टो ब्राह्मसन्नेतु दृष्टस्तैर्द्विजसत्तमैः ॥ ३५ ॥
तं ब्राह्मणाः शपन्ति स्म निन्दां कुर्वन्ति चापरे ॥ अपरे पांशुभिः शिश्नं घ्नन्ति तस्यांशपन् द्विजाः ॥ ३६ ॥ लोष्टैर्लेगुडकै
श्चान्यैर्घ्नन्ति तं बलगर्विताः ॥ जटा मुकुटकैश्चिह्नुत्वा कर्षन्ति चापरे ॥ ३७ ॥ पृच्छन्ति व्रतचर्यां वै व्रतकेन प्रदर्शित
म् ॥ अत्र चैव स्त्रियस्सन्ति कथमेवं त्वया कृतम् ॥ ३८ ॥ ब्रह्मणा चेदृशी चर्या विष्णुना वा कृतांस्वयम् ॥ गिरिशो नापि
देवेन केनेदं दुष्कृतं कृतम् ॥ ३९ ॥ मा विडम्बय देवेशं बद्धो ह्यसि त्वमद्य नः ॥ एवन्तैर्हन्यमानस्तु ब्राह्मणैस्तत्र शङ्करः ॥
४० ॥ स्मितं कृत्वा ब्रवीत्सर्वान् ब्राह्मणान् परमेश्वरः ॥ समाभिघ्नन्ति किं यूयमुन्मत्तं नष्टचेतसम् ॥ ४१ ॥ यूयं कारु
णिकास्सर्वे मित्रभावेन व्यवस्थिताः ॥ तमेवं वादिनन्देवं जालमरूपधरं हरम् ॥ ४२ ॥ मा यया तस्य देवस्य मोहितास्ते हि

मुकुटको पकड़कर खींचते थे ॥ ३७ ॥ और कोई व्रतचर्याको पूछते थे कि किससे यह व्रत दिखलाया गया है और यहां स्त्रियां हैं तुमने कैसे ऐसा किया ॥ ३८ ॥
ब्रह्मा ने व आपही विष्णु या गिरिश शिवजी ने ऐसी चर्या (कर्तव्यता) किया किसने इस पापको किया है ॥ ३९ ॥ देवेश शिवजीकी मत विडम्बना कीजिये आज
हम लोगों से तुम बेधगये इस प्रकार बड़ा पर उन ब्राह्मणों से मारे जाते हुये सदा शिव ॥ ४० ॥ परमेश्वरजी मुसकराकर सब ब्राह्मणों से बोले कि नष्टचित्तवाले मुझ
उन्मत्तको तुम लोग क्यों मारते हो ॥ ४१ ॥ तुम लोग सब दयावान् व मित्रता में स्थित हो इस प्रकार कहते हुये उन जालम (नीच) रूपधारी शिवदेवजी को

देखकर ॥ ४२ ॥ वे ब्राह्मणलोग उन शिवदेवजी की मायासे मोहित हुये और उन ब्राह्मणों ने फिर जटाधारी शिवजी को हाथ व पांवसे मारा ॥ ४३ ॥ उन ब्राह्मणों से मारेजाते हुये शिवजी बड़े क्रोधको प्राप्तहुये तदनन्तर शिवदेवजी ने उनको शाप दिया कि तुमलोग वेदसे रहित होवो ॥ ४४ ॥ और ऊपर जटाजूटवाले व दण्ड समेत तथा पराई स्त्री से जीविकावाले और जुया व वेश्या में परायण होवो और पिता, मातासे रहित होवो ॥ ४५ ॥ और पुत्र में पिताका धन व विद्याभी न होगी जिनन्होंने मेरी जटा को नाश कियाहै वे सब इन्द्रियोंसे रहित होवें ॥ ४६ ॥ व भिक्षाको मांगतेहुये वे भयंकर पुरुष पराई पीड़ा से जीविकावाले होवें व धन धान्य

जातयः ॥ पुनः कपर्दिनं जघ्नुः पाणिपादेन वै द्विजाः ॥ ४३ ॥ ताड्यमानस्तु तैर्विप्रैः परं कोपमुपागमत् ॥ ततो देवेन तेशां
युयं वेदविवर्जिताः ॥ ४४ ॥ ऊर्ध्वजूटास्सलगुडाः परदारोपजीविनः ॥ रताद्यतेच वेश्यायां पितृमातृविवर्जिताः ॥
४५ ॥ न पुत्रे पितृवित्तं च विद्यावापि भविष्यति ॥ शोफो मम हतो यैश्च ते सर्वेन्द्रियवर्जिताः ॥ ४६ ॥ रौद्राभिक्षान्तु
भिक्षन्तः परपीडोपजीविनः ॥ आत्मानं वर्णयिष्यन्ति धनधान्यविवर्जिताः ॥ ४७ ॥ यैश्च तत्र कृता विप्रैर्हन्यमाने कृपा
मयि ॥ तेषां धनञ्च पुत्राश्च दासीदासादयश्च वै ॥ ४८ ॥ कुलोत्पन्नाश्च वै नार्यो भविष्यन्ति वरान्मम ॥ एवं शापं वरन्द
त्वा गतो नन्तर्हानिमीश्वरः ॥ ४९ ॥ ततो द्विजागते देवे मत्वा तं शङ्करं विभुम् ॥ अन्वेषयन्तो यत्नेन महाकालवनङ्गताः ॥
५० ॥ स्नात्वा सरसि रुद्रस्य जपन्तः शतरुद्रियम् ॥ जाप्यावसाने तान् देवोऽशरीरिण्यगिरा ब्रवीत् ॥ ५१ ॥ अन्ततन्मया
प्रोक्तं क्लेशेष्वपि कुतस्सुखे ॥ भूयोऽप्यनुग्रहं विप्रा गुह्यमाकंकरवाण्यहम् ॥ ५२ ॥ शान्तादान्ताश्च ये विप्रा भक्तिमन्तो म
से रहित वे लोग अपना को वर्णन करेंगे ॥ ४७ ॥ और वहाँपर मारेजाते हुये मेरे ऊपर जिन ब्राह्मणों ने दया किया उनके धन, पुत्र, दासी व दासादिक ॥ ४८ ॥
और कुलमें सपजी हुई स्त्रियां मेरे वरदान से होवेंगी इस प्रकार शाप व वरदानको देकर सदाशिवजी अन्तर्हानि होगये ॥ ४९ ॥ तदनन्तर शंकरदेवजीके चले जानेपर
उन प्रभुको शिव जानकर यत्न से ढूँढते हुये ब्राह्मण महाकालवनको गये ॥ ५० ॥ और रुद्रसर में नहाकर शतरुद्रियको जपते हुये उनसे सदाशिवदेवजी जप के
अन्तमें आकाशवाणी से बोले ॥ ५१ ॥ कि मैंने क्लेशों में भी भूँट नहीं कहाहै फिर सुखमें क्या कहना है हे ब्राह्मणों ! मैं फिर भी तुमलोगों के ऊपर दया करता

हैं ॥ ५२ ॥ कि जो इन्द्रियों को दमन किये व शान्त ब्राह्मण मुझ में भक्तिमान् स्थित हैं उनका वंश नहीं नाश होता है और न धन न सन्तान नाश होती है ॥ ५३ ॥ और अग्निहोत्र में परादय जो विष्णुजी में भक्तिमान् हैं व ब्रह्मा तथा तेजराशि दिननायकजी को पूजते हैं ॥ ५४ ॥ उनके अशुभ नहीं विद्यमान होता है कि जिनकी बुद्धि समता में स्थित है इतना कहकर जगत् के स्वामी देवेश शिवजी चुपहोगये ॥ ५५ ॥ इसप्रकार देवदेव महादेवजी से शाप व वरदान को पाकर सब साथही वहां आये जहां कि ब्रह्मादेवजी थे ॥ ५६ ॥ इसके अनन्तर ज्यों से ब्रह्मा को प्रसन्न कराते हुये वे आगे स्थित हुये और प्रसन्न होते हुये ब्रह्माजीने उनसे कहा कि मुझसे

यिस्थिताः ॥ न तेषां छिद्यते वंशो न धनं न च सन्ततिः ॥ ५३ ॥ अग्निहोत्रराये च भक्तिमन्तो जनार्दन ॥ पूजयन्ति च ब्रह्माणं तेजो राशिन् दिवाकरम् ॥ ५४ ॥ नाशुर्भविष्यते तेषां येषां साम्ये स्थिता मतिः ॥ एतावदुक्त्वा देवेशो तूष्णीमासी ज्जगत्प्रभुः ॥ ५५ ॥ एवं शापं वरं लब्ध्वा देवदेवान् महेश्वरात् ॥ आजगमुस्सहितास्सर्वे यत्र देवः पितामहः ॥ ५६ ॥ विरश्चिमथ ते जाप्यस्तोषयन्तः पुरःस्थिताः ॥ बृष्टस्तान ब्रवीद्ब्रह्मा मत्तोपि त्रियतां वरः ॥ ५७ ॥ ब्रह्मणस्तेन वाक्येन तुष्टाः सर्वे द्विजोत्तमाः ॥ को वरो याच्यतां विप्राः परितुष्टे पितामहे ॥ ५८ ॥ एकैतन्नाबुवन् विप्रा वेदान् वैष्टुणवामहे ॥ ततो न्यै श्रधनं धान्यं वृतमेवाविशङ्कितैः ॥ ५९ ॥ अन्ये प्राहुः किमस्माकं धनैस्तुष्टे पितामहे ॥ अग्निहोत्रादिवेदाश्च शास्त्रा णिविविधानि च ॥ ६० ॥ शान्ता आढ्याश्च ये लोका वरदानाद्भवन्तुतः ॥ एवं प्रजल्पतां तत्र विप्राणां कोप आविशत् ॥ ६१ ॥ परस्परं वरार्थं युद्धं कर्तुं समुद्यताः ॥ युध्यन्ते सायुधाः केचित् केचित् तत्रोपसर्पकाः ॥ ६२ ॥ उदासीनाश्च ये विप्रास्ते

भी वरदान मांगिये ॥ ५७ ॥ ब्रह्मा के उस वचन से प्रसन्न होते हुये सब द्विजोत्तम आपसमें बोले कि हे ब्राह्मणों ! ब्रह्मा के प्रसन्न होने पर कौन वरदान मांगा जावे ॥ ५८ ॥ वहां पर कितने ब्राह्मण लोग बोले कि हमलोग वेदों को मांगते हैं तदनन्तर अन्य ब्राह्मणों ने धन धान्यको मांगा ॥ ५९ ॥ और अन्य बोले कि ब्रह्मा के प्रसन्न होने पर हमलोगों का धनों से क्या प्रयोजन है और अग्निहोत्रादिक व वेद तथा अनेक प्रकार के शास्त्र ॥ ६० ॥ और शान्त व धनवान् जो लोक हैं वे वरदान से हमलोगों के होवें वहां इसप्रकार कहने लगे ब्राह्मणों के क्रोध ने प्रवेश किया ॥ ६१ ॥ इसके अनन्तर वर के लिये आपस में युद्ध करने के लिये तैयार हुये अस्त्रों

समेत कोई शुद्ध करते थे और कोई वहां भगगये ॥ ६२ ॥ और जो ब्राह्मण उदासीन थे वे मौन से स्थित हुये इसप्रकार शुद्ध करतेहुये ब्राह्मणोंको देखकर भगवान् ब्रह्माजी बोले ॥ ६३ ॥ कि जिसलिये शाला में बाहर टिकेहुये ब्राह्मण भगगये उसीकारण हे ब्राह्मणो ! वह गुल्म युद्धमें मूलसे लगाकर याने पहलेही से भागनेवाला होवे ॥ ६४ ॥ और जो उदासीन गुल्म (सेनाभेद) वृत्ति (जीविका) हीन होगा उसके वेद होवेंगे जोकि मौन स्थित हुआहे ॥ ६५ ॥ और ब्रह्मों समेत व युद्ध करने की इच्छावाला जो तीसरा गुल्म है हे ब्राह्मणो ! जीविकाहीन वह चारप्रकार का होगा ॥ ६६ ॥ कि पराई स्त्रियोंमें, वेदयात्रोंमें, जुत्रामें व चोरीमें सदैव परायणहोगा

चमौनेनसंस्थिताः ॥ दृष्ट्वैवभगवान्प्राह विप्रानयुद्धं प्रकुर्वतः ॥ ६३ ॥ यस्मादुपद्रुतं विप्रैः शालायां ब्राह्मसंस्थितैः ॥ तस्मा दामूलतो विप्रा गुल्मो युद्धे विसर्पकः ॥ ६४ ॥ उदासीनं स्त्रुयो गुल्मो वृत्तिहीनो भविष्यति ॥ वेदास्तस्य भवेयुर्वै यस्त्वा सीन्मौनसंस्थितः ॥ ६५ ॥ तृतीयस्मायुधो गुल्मो योऽहुकामस्तुयः स्थितः ॥ चातुर्विधस्स वै विप्रा वृत्तिहीनो भविष्यति ॥ ६६ ॥ परदारामुवेदयायां द्यूते चौर्ये सदारतः ॥ न ज्ञानं न च मोक्षः स्यात्तेषां विदुष्टचेतसाम् ॥ ६७ ॥ एवमुक्त्वा ययौ ब्रह्मा वैराजं भवनोत्तमम् ॥ एवं मे परमं क्षेत्रं मुनयो वन्ति मण्डले ॥ ६८ ॥ आन्देवनगरीं लोके प्रवदन्तीह मानवाः ॥ तस्यान्तु ये द्विजाश्शान्ता वसन्ति क्षेत्रवासिनः ॥ ६९ ॥ न तेषां दुर्लभं किञ्चिन्मम लोके भविष्यति ॥ कोकामुखेऽकुरुक्षेत्रे नैमिषेषु ष्करेषु च ॥ ७० ॥ वाराणस्यां प्रयागे च तथा बदरिकाश्रमे ॥ गङ्गाद्वारे प्रभासे च गङ्गासागरसंज्ञमे ॥ ७१ ॥ रुद्रकोट्यां विरू पाक्षे मित्रस्यापि तथावने ॥ तीर्थेष्वेतेषु क्षेत्रेषु यासिद्धिर्द्वादशाब्दि का ॥ ७२ ॥ प्राप्य ते मानवैर्लोके यामासे नैवलभ्य और उन दुष्टचित्तवाले द्विजों के न ज्ञान होगा न मोक्ष होगा ॥ ६७ ॥ यह कहकर ब्रह्माजी उत्तम वैराज मन्दिरको गये इसप्रकार हे मुनियो ! अच्युतों के मण्डल में मेरा उत्तम क्षेत्र है ॥ ६८ ॥ इस लोकमें जिसको मनुष्य देवनगरी कहते हैं उसमें जो क्षेत्रवासी शान्त ब्राह्मण बसते हैं ॥ ६९ ॥ उनको मेरे लोकमें कुछ दुर्लभ न होगा कोकामुख, अकुरुक्षेत्र, नैमिष व पुष्कर में ॥ ७० ॥ और काशी, प्रयाग व बदरिकाश्रममें तथा हरिद्वार, प्रभास व गंगासागर के संगम में ॥ ७१ ॥ और रुद्र-कोटि में व विरूपाक्षमें तथा मित्रके भी वन में इन क्षेत्रों में जो बारह वर्षवाली याने बारह वर्ष में सिद्धि होती है ॥ ७२ ॥ वह सिद्धि संसार में मनुष्यों को उज्ज-

यिनी में एकही महीने में मिलती है यदि ब्रह्मचर्यमें मन होता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ७३ ॥ तीर्थोंके मध्य में यह उत्तम तीर्थ है व क्षेत्रोंके बीचमें भी उत्तम है और हे मुनिश्रेष्ठो ! यह तीर्थ मुझको सदैव मनोहर है ॥ ७४ ॥ हे द्विजोत्तमो ! मन्दाकिनी का माहात्म्य व क्षेत्रकी उत्तम उत्पत्ति कही गई फिर आपलोग अन्य क्या सुनना चाहते हो ॥ ७५ ॥ सनत्कुमारजी बोले कि हे व्यासजी ! ब्रह्मा के इस वैसे वचन को सुनकर वे वशिष्ठादिक मुनिलोग उत्तम ध्यानको प्राप्त हुये ॥ ७६ ॥ और बहुत समयतक ध्यानकर उन्होंने ने वहा निवास में मनको धारण किया और अग्निहोत्र समेत व स्त्रियों समेत वे अवन्ती के मण्डल में गये ॥ ७७ ॥ और महाकाल-

ते ॥ उज्जयिन्यान्नसन्देहो ब्रह्मचर्यमनोयदि ॥ ७३ ॥ तीर्थानांप्रवरन्तीर्थं क्षेत्राणामपि चोत्तमम् ॥ सदाभिरुचिरं म
ह्यमेतद्वै मुनिसत्तमाः ॥ ७४ ॥ मन्दाकिन्यास्तु माहात्म्यं क्षेत्रस्योत्पत्तिरुत्तमा ॥ भूयः किमन्यदिच्छन्ति श्रोतुं वै द्विज
सत्तमाः ॥ ७५ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ एतत्ते ब्रह्मणो वाक्यं श्रुत्वा व्यासतथाविधम् ॥ वशिष्ठाद्याश्च मुनयः परन्ध्यानम
थोगताः ॥ ७६ ॥ ध्यात्वा तु मुचिरं कालं तत्र वासे मनोदधुः ॥ साग्निहोत्रास्स पत्नीका गताश्चावन्ति मण्डले ॥ ७७ ॥ म
हाकालं वनं दृष्ट्वा शिप्राञ्चैव महानदीम् ॥ इमशानमूखरञ्चैव नदीं गन्धवतीं तथा ॥ ७८ ॥ कोटितीर्थमुपस्पृश्य चक्रुर्वा
सञ्चतत्र वै ॥ स्मृत्वा तद्ब्रह्मणो वाक्यं रुचिस्तेषां तदाभवत् ॥ ७९ ॥ अरुन्धत्या वशिष्ठश्च गमनं प्रतिमोदितः ॥ उवाच
तां महात्मासौ स्वांभार्या मुनि सत्तमः ॥ ८० ॥ महाकालः सरिन्धिप्रागतिश्चैव मुनिर्मला ॥ उज्जयिन्यां विशालाक्षी
सः कस्य नरोचते ॥ ८१ ॥ स्नानं कृत्वा नरो यस्तु महानद्यां हि दुर्लभम् ॥ महाकालं नमस्कृता नैव मृत्युं सशोचयेत् ॥ ८२ ॥

व शिप्रा महानदी तथा इमशान, ऊखर व गन्धवती नदीको देखकर ॥ ७८ ॥ कोटितीर्थ को स्पर्श कर उन्होंने वहां निवास किया व ब्रह्मा के उस वचन उस समय उनकी रुचि हुई ॥ ७९ ॥ और अरुन्धती ने वशिष्ठजीको जाने के लिये प्रेरणा किया व इन महात्मा मुनिश्रेष्ठजीने उस अपनी स्त्री से कहा ॥

हाकाल व शिप्रानदी तथा अतिनिर्मलगति व विशालाक्षीदेवी जहां है उस उज्जयिनी में किसको निवास नहीं रुचता है ॥ ८० ॥ जो मृत्यु महानदी

में दुर्लभ स्नानकर महाकालजी को प्रणाम करता है वह मृत्युको नहीं शोचता है ॥ ८२ ॥ और कीट या पतंग मरकर शिवजीका सेवक होता है जहां पर यह मुक्ति सुनी जाती है वह मुक्त से कैसे छोड़ जावे ॥ ८३ ॥ इस प्रकार कहकर इसके अनन्तर मुनियों में मुख्य वशिष्ठजी ने अचानक ही वहीं निवास किया और वनकी संपदा को कहते हुये वे मुख्य मुनियों समेत इसी उज्जयिनी में स्थित हुये ॥ ८४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचितायाभाषाटकायामन्दाकिनीमाहात्म्यवर्णनमैहिकान्तिशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥

मृतः कीटः पतङ्गो वा रुद्रस्यानुचरो भवेत् ॥ यत्रैषाश्नयते मुक्तिः कथं सा त्यज्यते मया ॥ ८३ ॥ एवं प्रजल्प्याथ मुनिप्रधानस्तत्रैव वासं सहसा चकार ॥ वनस्य व्युष्टिपरि कीर्तयंस्तु स्थितस्सहवात्र मुनिप्रधानैः ॥ ८४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे मन्दाकिनीमाहात्म्यवर्णनमोऽध्यायः ॥ ३२ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

सनत्कुमार उवाच ॥ अवन्त्यामङ्गपादाख्ये पश्येद्रामजनार्दनौ ॥ ययोर्दर्शनमात्रेण यमलोकत्रपश्यति ॥ १ ॥ व्यास उवाच ॥ कथं तावङ्गपादाख्ये यातावत्र महामुने ॥ न पश्येद्यमलोकं स यद्यपि ब्रह्महा भवेत् ॥ २ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ भारावतारणार्थाय देवैरामजनार्दनौ ॥ अत्रतीर्णोऽयदोर्वेशो दिव्यरूपो महाद्युती ॥ ३ ॥ कंसं हत्वा यचाणूरमुग्रसेनं नराधिपम् ॥ अभिषिच्य स्वयं राज्ये यदुर्मिह उवाच तम् ॥ ४ ॥ किं कार्यते मया ब्रूहि कर्तव्यन्ते सुते हते ॥ एवमुक्तस्स

दो० । आन्यो मृत गुरुपुत्र को यथा कृष्ण धरुवेव । तैतिसर्वे अध्यायमें सोइ चरित सुखदेव ॥ सनत्कुमारजी बोले कि अवन्ती में अंकपाद नामक क्षेत्र में मनुष्य बलराम व जनार्दन (श्रीकृष्ण) जी को देखै कि जिनके दर्शनही से पुरुष यमलोकको नहीं देखता है ॥ १ ॥ व्यासजी बोले कि हे महामुने ! यहां अङ्गपाद नामक क्षेत्रमें वे किस प्रकार प्राप्त हुये हैं कि जिनके देखनेसे मनुष्य यमलोकको नहीं देखता है यद्यपि वह ब्रह्मघाती होवे ॥ २ ॥ सनत्कुमारजी बोले कि भारको उतारने के लिये दिव्यरूपवाले व महाव्यवहारे बलभद्र व श्रीकृष्णजी ने यदु के वंशमें अवतार लिया है ॥ ३ ॥ इसके अनन्तर कंस व चाणूर को मारकर तथा उग्रसेन राजा

को राज्यके अभिषेककर आपही शत्रुवंशमें सिंहरूप श्रीकृष्णजी उनसे बोले ॥ ४ ॥ कि मुझसे तुम्हारे पुत्रके भारने पर मुझको तुम्हारा क्या कार्य करना चाहिये यह कहिये इस प्रकार कहेहुये उस राजा उग्रसेनने यह कहा ॥ ५ ॥ कि हे श्रीकृष्णजी ! आपको सब वस्तु प्राप्त है कुछ दुर्लभ नहीं है और तुम दोनों भी विशेष कर जाने हुये समस्त विज्ञानवाले होवोगे ॥ ६ ॥ तुम दोनों उवजयिनी पुरीको जाओ और विद्यावान् होवोगे तदनन्तर बलराम व श्रीकृष्णजी सांदीपनि ब्राह्मण के समीप गये ॥ ७ ॥ और वेदोंको कण्ठस्थ किया व उन्होंने समस्त आचार व रहस्य समेत तथा संहार समेत धनुर्यद को पढ़ा ॥ ८ ॥ हे द्विज ! चौसठ दिनरातों से वह श्रद्धयुत

राजावै उग्रसेनोब्रवीदिदम् ॥ ५ ॥ सर्वसम्पत्स्यतेकृष्ण भवतोहिनदुर्लभम् ॥ विज्ञाताखिलविज्ञानो भविताराबुभाव
पि ॥ ६ ॥ गच्छेतामुज्जयिन्यावै कृतविद्यौभविष्यथः ॥ ततस्सान्दीपनिविप्रं जग्मतुरामकेशवौ ॥ ७ ॥ कण्ठस्थंश्च
ऋतुर्वेदानाचारमखिलञ्चतौ ॥ सरहस्यंधनुर्वेदं संसंहारं तथैव च ॥ ८ ॥ अहोरात्रैश्चतुःषष्ट्या तदद्भुतमभ्युद्विज ॥ सा
न्दीपनिरसम्भाव्यं तयोः कर्मातिमानुषम् ॥ ९ ॥ विचिन्त्यतौ तदामेने प्राप्तौ चन्द्रद्रिवाकरौ ॥ ततः किञ्चित्सनोवाचस्ना
तुंतीर्थमथोययौ ॥ १० ॥ शिष्यैस्तु सहितो विप्रो महाकालमथाविशत् ॥ शिष्यैस्सहप्रविष्टौ तदा तौरामकेशवौ ॥ ११ ॥
वन्द्यमानो महाकालस्तदा केशवमब्रवीत् ॥ त्वयानाथेन देवानां मनुष्यत्वे हतिष्ठता ॥ १२ ॥ सुखमासीच्च साधूनामज्ञा
नानाञ्च सर्वदा ॥ जनपीडाकरायेतु सदा वा बलदर्पिताः ॥ १३ ॥ युवाभ्यां ते हतास्सर्वे कंसप्रमुखतो नृपाः ॥ मुनिसिद्धसुरा

होगया और सांदीपनि ने मनुष्यों के न करने योग्य व संभावना के अयोग्य उन दोनोंके कर्मको देखकर ॥ ९ ॥ व चिन्तन कर उस समय उनको प्राप्त हुये चन्द्रमा व सूर्य माना तदनन्तर वे कुछ न बोले इसके अनन्तर नहाने के लिये चले गये ॥ १० ॥ इसके अनन्तर शिष्यों समेत वे विप्रजी ! महाकालवन में बैठे और उस समय शिष्यों समेत वे बलभद्र व श्रीकृष्णजी दोनों ने प्रवेश किया ॥ ११ ॥ व प्रणाम किये जाते हुये महाकालजी उस समय कृष्णजीसे बोले कि मनुजता में टिके हुये तथा देवताओं के स्वामी तुम से ॥ १२ ॥ साधुओं को व अज्ञानियों को सदैव सुखहुआ है और जो मनुष्यों के पीड़ाकारक व सदैव बल से गर्वित थे ॥ १३ ॥

वे कंसादिक सब राजा तुम दोनोंसे मारेगये हे अनघ ! तुमको मुनि व सिद्ध तथा देवतादिकों की स्थिति (पालन) करना चाहिये ॥ १४ ॥ करुंगा उनसे यह कह कर प्रणाम करने योग्य वे चलेगये सांदीपनि को देखकर प्रतिदिन शिष्यलोग ऐसा कहते थे ॥ १५ ॥ परन्तु कोई भी नहीं श्रद्धा करता था क्योंकि उनके वचन बहुत ही श्रद्धालु थे तदनन्तर शिष्यों से कहेहुये आश्चर्यको देखने के लिये आपही गये ॥ १६ ॥ तदनन्तर वैसाही शब्द उठा व उन दोनों को मिलाप हुआ और वहां घर में आये हुये उन दोनोंसे गुरुजी वचन बोले ॥ १७ ॥ कि यदि यदुवंश में उपजे हुये तुम दोनों वीर हो तो मुझसे नहीं जानेगये तदनन्तर श्रीकृष्णजी

दीनां स्थितिः कार्यात्त्वयानघ ॥ १४ ॥ करिष्यामिति मित्युक्त्वासनमस्यस्ततो ययौ ॥ दृष्ट्वा सान्दीपनिं शिष्या ऊचुरेवंदि
नेदिने ॥ १५ ॥ कोपिनाश्रद्धधत्तेषां वचस्त्वत्यङ्गुतं यतः ॥ स्वयं ययौ ततो द्रष्टुमाश्रयिं शिष्यमाषितम् ॥ १६ ॥ ततस्त
थोत्थितः शब्दः संश्लेषश्च तथा तयोः ॥ तावागतौ गृहंतत्र गुरुर्वचनमब्रवीत् ॥ १७ ॥ नवैज्ञातौ मया वीरौ यदि दृष्टिं कु
लोद्भवौ ॥ ततस्सान्दीपनिं कृष्णः कृतकृत्यो ब्रवीद्वचः ॥ १८ ॥ गुर्वर्थं किन्ददामीति सहस्रमेणहर्षितः ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं
हृद्यं गुरुः प्रोवाच हर्षितः ॥ १९ ॥ पुत्रमिच्छाम्यहं त्वत्तो यो मृतो लवणाम्भसि ॥ पुत्र एको हि मे जातस्स चापि तिमिनाह
तः ॥ २० ॥ प्रभासे तीर्थयात्रायां त्वमेव तमिहानय ॥ तथेति चाब्रवीत्कृष्णो रामस्यानुमते गतः ॥ २१ ॥ तंसमुद्र उवा
चेदं दैत्यः पञ्चजनो महान् ॥ तिमिरूपेण तं बालं अस्तवान्मयि संस्थितः ॥ २२ ॥ ततः पञ्चजनं हत्वा ग्राहरूपं महाबल

सांदीपनि से वचन बोले ॥ १८ ॥ कि बलमद्र, समेत प्रसन्न में गुरुके लिये क्या देऊं उस मनोहर वचन को सुनकर प्रसन्न होते हुये गुरुजी बोले ॥ १९ ॥ कि जो चारसमुद्र में मरगया है उस पुत्रको मैं तुमसे चाहता हूं मेरे एक पुत्र पैदा हुआ था उसको भी तीर्थयात्रा में तिमिनामक मत्स्यने प्रभासेक्षेत्र में मार डाला उसको तुम्हीं यहां ले आओ बलभद्रजीके मत में प्राप्त श्रीकृष्णजी ने यह कहा कि वैसाही होगा ॥ २० ॥ २१ ॥ उनसे समुद्र ने यह कहा कि पंचजन नामक बड़े भारी दैत्य ने तिमिमत्स्य के रूपसे उस बालक को ग्रस लिया है जोकि मुझ में टिका है ॥ २२ ॥ तदनन्तर ग्राहरूपी बड़े बलवान् पंचजन दैत्यको मारकर उसके

बीचमें स्थित शंखको ग्रहण किया जोकि पहले जल के बीचमें स्थित ग्राहसे बड़ीलीला से प्रसित हुआ था जब उसके पेटमें श्रीकृष्णजी ने बालक को न देखा ॥ २३ ॥ २४ ॥ तब यममन्दिर में प्राप्त यममन्दिर से कहा कि हे जलजन्तुओं के स्वामी, भगवन् ! मुझको बड़ा भारी रथ दीजिये ॥ २५ ॥ कि जिससे समर में उनको मारकर प्रेतों के पति यमराज को देखूँ पुरातन समय मैंने जिस रथ से संग्राम में बलसे गर्वित दैत्यों व दानवों को मारा है आज मुझको उसी रथ को दीजिये हे जल के स्वामी ! जब समर समाप्त होगया था तब मैंने न्यासभूत याने धरोहर की नाई जिस रथको तुम्हारे समीप धरा है उसको दीजिये यह सुनकर

म ॥ तन्मध्यस्थं च जग्राह शङ्खं प्रस्ताहियः पुरा ॥ २३ ॥ जलमध्यस्थितेनैव ग्राहेणातीवलीलाया ॥ तस्योदरे यदा बालं न ददर्श जनार्दनः ॥ २४ ॥ यमालय गतं मत्वा तदा वरुणमब्रवीत् ॥ भगवन् यादसामि शरथो मे दीयताम् महान् ॥ २५ ॥ येनाहो वेहिताञ्जित्वा पश्येयं प्रेतपंथमम् ॥ पुराजिरेह तादृत्या दानवा बलदर्पिताः ॥ २६ ॥ मया येन रथेनाद्य समह्यं दीयतां रथः ॥ न्यासभूतो रथो यस्ते विधृतो परतेरणे ॥ २७ ॥ मया धर्मपुरस्कृत्य दीयतां सहायाम्पते ॥ एतच्छ्रुत्वा प्रहृष्टात्मा ज्ञात्वा कार्यार्थिनं हारिम् ॥ २८ ॥ ददौ तुरथमजोभ्यं रथे तस्मै सुरासुरैः ॥ ततो हरिस्समालोक्य रथं रत्नपरिष्कृतम् ॥ २९ ॥ द्वापि चर्मपरीधानं त्रैयाघ्रपरिवारितम् ॥ नानाचित्रविचित्राङ्गं गरुडध्वजराजितम् ॥ ३० ॥ संयुक्तं शैब्यसुग्रीवमेघपुष्पवलाहकैः ॥ अजेयन्देवदेवेन्द्रदानवासुराक्षसैः ॥ ३१ ॥ अनेकायुधसम्पूर्णं मणिविद्रुमभूषितम् ॥ सहस्रसूर्यप्रतिमं चारुवक्रं चतुर्युगम् ॥ ३२ ॥ किङ्किणीशतशोभाढ्यं घण्टाचामरचन्द्रिकम् ॥ संवत्तकारविषमं खण्डे प्रसन्नचित्तबालवरुणजी ने कार्यार्थी श्रीकृष्णजी को जानकर ॥ २६ ॥ २७ ॥ २८ ॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ जोकि चीते के चर्म से नीचे बिछौनेवाला व व्याघ्रचर्म से घिरा था व अनेक प्रकार के चित्र विचित्र अगौवाला तथा गरुड के ध्वजा से शोभित ॥ ३० ॥ व शैब्य, सुग्रीव, मेघपुष्प व बलाहक नामक घोड़ोंसे संयुत था और देवता, देवेन्द्र, दानव, असुर व राक्षसों से न जीतने योग्य था ॥ ३१ ॥ व अनेक अस्त्रों से सम्पूर्ण तथा मणियों व भूगों से भूषित था और हजार सूर्यों के समान प्रकाशमान तथा सुन्दर धुरी व चार

जुआँवावाला था ॥ ३२ ॥ व सैकड़ों घंटियों से शोभासंयुत व घंटा और चामरकी चन्द्रिकावाला था व प्रलय के समान आकार से विषम और उत्तम गरुड़ के ध्वजावाला था ॥ ३३ ॥ उस रथको देखकर बलभद्र समेत श्रीकृष्णजी विस्मयरहित होकर प्रसन्न हुये और प्रदक्षिणापूर्वक जाकर व देवताओं के लिये प्रणाम कर ॥ ३४ ॥ जन्मरहित श्रीकृष्णजी बड़े भाई समेत विमान के समान रथ पै चढ़े ॥ ३५ ॥ तदनन्तर संसार के निवासभूत श्रीकृष्णजी शीघ्रतासंयुत होकर यम-लोकके आश्रित दिशाको गये और उन अच्युत श्रीकृष्णजी ने हजारों किरणों से घिरीहुई पुरीको देखा और शंखको लेकर ॥ ३६ ॥ तलवार व धनुषको धारण किये

न्द्रवरकेतनम् ॥ ३३ ॥ दृष्ट्वाकृष्णस्सरामस्तु मुमुदेर्वीतविस्मयः ॥ प्रदक्षिणमुपागत्य देवताभ्यःप्रणम्यच ॥ ३४ ॥
आरुरोहरथंविष्णुर्विमानंसाग्रजोऽजनः ॥ ३५ ॥ ततो जगामत्वरितोजनार्दनो जगन्निवासोयमलोकमाश्रिताम् ॥ दिशं
सहस्रैःकिरणैर्द्वैताम्पुरीं ददर्शशङ्खंपरिगृह्यचाच्युतः ॥ ३६ ॥ तत्रप्रधमापयामास शङ्खंखड्गधनुर्धरः ॥ तेनशब्देनविब्र
स्ताः कृतान्तालयवासिनः ॥ ३७ ॥ नरकान्तर्गतामर्त्याः पापाचारपरायणाः ॥ सुखमापुःप्रशान्ताश्च बह्वयःकृष्णद
र्शनात् ॥ ३८ ॥ शस्त्राणिकुण्डलापुष्पानि विविधानि च ॥ विदीर्णानितदाचाशु देवदेवस्यदर्शनात् ॥ ३९ ॥
असिपत्रवनन्नाम शीर्णपणमजायत ॥ रौरवन्नामनरकमभैरवमभूत्तदा ॥ ४० ॥ अभैरवंभैरवाख्यं कुम्भीपाकमपाचि
कम् ॥ शृङ्गाटंशृङ्गसदृशं लोहसूच्यप्यसूचिका ॥ ४१ ॥ दुस्तरासुतराजाता नदीवैतरणीनृणाम् ॥ नरकान्तेतदाजाते

श्रीकृष्णजी ने शंख को बजाया उस शब्दसे यमलोकनिवासी डरगये ॥ ३७ ॥ और पापके आचरण में परायण नरकमध्यगामी पुरुषों ने श्रीकृष्णजी के दर्शन से सुख पाया व अग्नियों शान्त होगई ॥ ३८ ॥ और उस समय देवदेव श्रीकृष्णजीके दर्शन से शीघ्रही शंख कुण्डलाको प्राप्तहुये और अनेक भांतिकेयन्त्र फटगये ॥ ३९ ॥ व असिपत्र नामक वन गिरेहुये पत्तोंवाला याने पत्तों से हीन होगया और उस समय रौरव नामक नरक अभयानक होगया ॥ ४० ॥ व भैरव नामक नरक अभैरव हुआ और कुम्भीपाक बिन पचानेवाला हुआ तथा शृगाट नरक सूचीरहित हुआ ॥ ४१ ॥ और दुःख से उतरे योग्य वैतरणी नदी

मनुष्योंको सुखसे उतरनेवाली हुई उस समय जब व्यापक जगदीशजी वहां गये तब नरकों का अन्त होनेपर ॥ ४२ ॥ तदनन्तर पापोंके क्षय होने के कारण वे सब मनुष्य नरक से छूटगये अविनाशी स्थान पै प्राप्तहोकर अज्ञाननाशक श्रीकृष्णजी को देखकर ॥ ४३ ॥ वे पुरुष सब और हजारों विमानों पै चढ़े और कमललोचन श्रीकृष्णजी को देखकर वे सब पाप से छूट गये ॥ ४४ ॥ तदनन्तर हे मुने ! उन विश्वरूपी श्रीकृष्णदेवजी के दर्शन से सब नरकमण्डल शून्य होगया ॥ ४५ ॥ तदनन्तर विकलतारहित यमराज के दूतों ने नरकों में पैठते हुये युद्धकारक श्रीकृष्णजी को मना किया ॥ ४६ ॥ दूत बोले कि हे वीर ! इस मार्ग से रथ

गतेविश्वेश्वरेविमौ ॥ ४२ ॥ पापक्षयात्ततस्सर्वे तेमुक्तानरकान्नराः ॥ पदमव्ययमासाद्य दृष्ट्वाविष्णुं तमोपहम् ॥ ४३ ॥ विमानेषु सहस्रेषु ह्यारूढास्ते समन्ततः ॥ समीक्ष्य गुण्डरीकाब्जं मुक्तास्ते सर्वपातकात् ॥ ४४ ॥ ततश्शून्यं मुने जातं सर्वानिरयमण्डलम् ॥ दर्शनात्तस्य देवस्य विष्णोर्विश्वस्वरूपिणः ॥ ४५ ॥ ततो दूताः कृतान्तस्य कृष्णञ्च युद्धकारिणम् ॥ वारयामासुरव्यग्रा विशन्तं नरकान्प्रति ॥ ४६ ॥ किङ्करा ऊचुः ॥ मार्वीरनेन मार्गेण रथमानयमानवाः ॥ प्रयान्त्यधोगतिं पापात्परस्त्रीस्वापहारकाः ॥ ४७ ॥ यमादिष्टानराः पापाद्ये मोच्या वर्षकोटिभिः ॥ दृष्ट्वा तएव सद्यस्त्वां गतास्स्वर्गमावाहताः ॥ ४८ ॥ एतच्छ्रुत्वा वचस्तेषां कृपया पीडितो भृशम् ॥ पुनः प्रोवाच मधुहा मोक्षायाह मुपागतः ॥ ४९ ॥ सर्वेषां स्वर्गदाता हं यमलोकनिवारकः ॥ अञ्जसाय मराड्दुता यमायाख्यातमेव च ॥ ५० ॥ एतच्छ्रुत्वा वचोदूतास्मत्स्वराय ममागताः ॥ सर्वमाचजिरेवृत्तं यथानारकिमोज्ज्वलम् ॥ ५१ ॥ ततो यमो रुषाविष्टः प्राह तान्यमकिङ्करान् ॥ यः कश्चिदागतो म

को मत लाइये क्योंकि पराई स्त्री व धन को हरनेवाले मनुष्य पाप से अधोगति को प्राप्त होते हैं ॥ ४७ ॥ यमराज से आज्ञा दिये हुये जो मनुष्य पाप से करोड़ों वर्षों में छोड़ने योग्य थे पापों से घिरे हुये वेही तुमको देखकर उसी क्षण स्वर्ग को प्राप्त हुये ॥ ४८ ॥ उनके इस वचन को सुनकर दया से बहुतही पीड़ित मधुदैत्य नाशक श्रीकृष्णजी फिर बोले कि मैं मोक्ष के लिये आया हूँ ॥ ४९ ॥ और मैं यमलोक का निवारक व सबों को स्वर्गदायक हूँ हे यमराज के दूतों ! तुमलोग शीघ्रही मेरे वचन को यमराज से कहिये ॥ ५० ॥ इस वचनको सुनकर शीघ्रता समेत दूत यमराजके समीप आये व उन्होंने नारकी जनोके मौजूबाले सब वृत्तान्त

को कहा ॥ ५१ ॥ तदनन्तर क्रोध से संयुत यमराजजी उन यमदूतों से बोले कि जो कोई मर्यादा का भेदकारक मृत्युलोकवाला मनुष्य आया हो ॥ ५२ ॥
 उसको जाकर मना करिये और पकड़ कर यहा ले आइये और दूतों समेत यह नरांतक नामक दूत जावै ॥ ५३ ॥ यमराज से इसप्रकार कहे हुये उस नरांतक दूत
 ने जाकर उग्र बचनों से उन श्रीकृष्णजी को मना किया ॥ ५४ ॥ जब मना किये हुये श्रीकृष्णजी न स्थित हुये तब नरान्तक क्रोधित हुआ और उसने बहुतही उग्र
 बाणों से श्रीकृष्णजी को मारा ॥ ५५ ॥ और समर में बलभद्र भी अनेक मांतिके बाणों से ताड़ित हुये व भयंकर यमराजके दूतों से सब ओर वे दोनों ताड़ित
 त्यों मर्यादाभेदकृन्नरः ॥ ५२ ॥ तंगत्वावारयध्ववै गृहीत्वानीयतामिह ॥ अयन्नरान्तकोयातु किङ्करस्सहकिङ्करैः ॥
 ५३ ॥ एवमुक्तोयमेनाथ किङ्करस्सनरान्तकः ॥ गत्वांतवारयामास वाग्भिरुग्राभिरच्युतम् ॥ ५४ ॥ यदानवारितस्त
 स्थौ तदाक्रुद्धोनरान्तकः ॥ तदाशरैरतविग्रेस्ताडितस्तेनकेशवः ॥ ५५ ॥ बलदेवोपिसमरे ताडितोविविधैश्शरैः ॥
 तावुभौताडितौघोरैः समन्ताद्यमकिङ्करैः ॥ ५६ ॥ आदायधनुर्षीदिव्ये जन्नतुर्यमकिङ्करान् ॥ बाणैरनेकसाहस्रैः क्रुद्धौरा
 मजनार्दनौ ॥ ५७ ॥ नरान्तकोपिसमरे बलेनबलिनार्दितः ॥ पपातगदयामिन्नो मूर्ध्निननिर्गतलोचनः ॥ ५८ ॥ ततो न
 रान्तकेवीरे पतितयमकिङ्करे ॥ किङ्कराणामभूत्सैन्यमार्तरणपराङ्मुखम् ॥ ५९ ॥ तेदूतारामकृष्णाभ्यां हन्यमानाभ
 यातुराः ॥ यमायकथयामामुनरान्तकनिपातनम् ॥ ६० ॥ ततोयमोययौक्रुद्धः समन्तात्किङ्करैर्द्वृतः ॥ ततःप्राहयमःक्रु
 द्धोनोजितोहंपुरापरैः ॥ ६१ ॥ ततोवादित्रयोपैस्तु सुरजानकगोमुखैः ॥ नानाडुमरुकौघैश्चचित्रगुप्तैश्चगच्छति ॥ ६२ ॥
 हुये ॥ ५६ ॥ और दिव्य धनुर्षोंको लेकर उन क्रोधित बलभद्र व श्रीकृष्णजी ने अनेक हजार बाणों से यमदूतों को मारा ॥ ५७ ॥ और बलिष्ठ बलभद्रजी से युद्ध में
 नरांतक भी विकल हुआ व गदा से भिन्नमस्तकवाला व निकले हुये लोचनवाला वह गिरपडा ॥ ५८ ॥ तदनन्तर यमदूत नरांतक वीर के गिरनेपर दूतों की विक-
 ल सेना युद्ध से विमुख हुई ॥ ५९ ॥ बलभद्र व श्रीकृष्णजी से मारे हुये भय से विकल उन दूतों ने यमराज से नरांतक का नाश कहा ॥ ६० ॥ तदनन्तर सब
 ओर दूतों से घिरे हुये क्रोधित यमराजजी गये उसके उपरान्त क्रोधित यमराज ने कहा कि पुरातन समय शत्रुओं ने मुझको नहीं जीता है ॥ ६१ ॥ उसके उपरान्त

सुरज, डोल व गोमुख और अनेक भांति के डमरू आदिक बाजाओं के शब्दों से चित्रगुप्त के जाने पर ॥ ६२ ॥ देवता, विद्याधर व सिद्ध यमराज के समर में क्षोभ-
रहित व कामपालक जगदीश व बड़े बलवान् श्रीकृष्णजी को देखने के लिये प्राप्त हुये ॥ ६३ ॥ तदनन्तर चित्रगुप्त से प्रेरणा किये हुये दूतोंने शरसमूहों से सब ओर
रथको घेरकर समर में बलभद्र व श्रीकृष्णजी को पीड़ित किया और चित्रगुप्त के देखते हुये समर में अनेक भांतिके बाणोंसे उन दोनों ने भी मारा ॥ ६४ ॥ ६५ ॥
और सब ओर से हजारों दूतों को विदारण कर यमराजकी सेनाके बीच में समर में दुर्धर्ष व काम से पालित श्रीकृष्णजी यमराजकी नाई घूमने लगे ॥ ६६ ॥ ६७ ॥

देवाविद्याधराः सिद्धाद्रष्टुं प्राप्तामहाबलम् ॥ कृतान्तस्यरणेऽज्जोभ्यं कामपालं जगत्पतिम् ॥ ६३ ॥ ततस्ते किङ्कराः सर्वे
चित्रगुप्तेन नोदिताः ॥ रथमावृत्य बाणैर्धैः प्रबबाधुस्समन्ततः ॥ ६४ ॥ बलञ्च केशवं संख्ये जघनतुस्तावुभा वपि ॥ रणे
च विविधैर्बाणैश्चित्रगुप्तस्य पश्यतः ॥ ६५ ॥ विदार्य च सहस्राणि किङ्कराणां समन्ततः ॥ कृन्तातानी किनीमध्ये कृतान्त
इव केशवः ॥ ६६ ॥ चचारणदुर्द्धर्षः कामपालेन पालितः ॥ ६७ ॥ ततश्चित्रगुप्तो रणे किङ्करौघं विदीर्णं निरीक्ष्यार्त
नादं चकार ॥ शरैः पञ्चभिः कृष्णमायान्तमाजौ जघानाष्टभिर्वक्रदेशे समिञ्चः ॥ ६८ ॥ शरार्तैरथोपस्थ आसीत्तदानीं
तमालोक्य भिन्नं रणे नष्टसंज्ञम् ॥ रथं स्वं समादाय यातः कृतान्तस्ततश्चित्रगुप्ते शरार्ते प्रसुप्ते ॥ ६९ ॥ रणे कीर्तितं लुप्ते भयज्जो
भयुक्ताः स्वसैन्यैश्च युक्ता भयार्तानिषण्णाः ॥ प्रधानाश्च भगनाविचित्राश्च भगनास्ततश्चित्रगुप्तं निशम्याथ भग्नम् ॥ ७० ॥

तदनन्तर युद्ध में दूतगणों को विदीर्ण देखकर चित्रगुप्त ने दुःखित शब्दको किया और समर में आते हुये श्रीकृष्णजी को पांच बाणों से मारा और वे चित्रगुप्त आठ
बाणों से मुख में भेदित हुये ॥ ६८ ॥ और बाणों से विकल चित्रगुप्त रथ पै स्थित हुये उस समय समर में नष्टचेतनावाले व विदीर्ण उन चित्रगुप्त को देखकर अ-
पने रथको लेकर यमराजजी प्राप्त हुये तदनन्तर समर में लुप्त यशवाले व बाण से विकल चित्रगुप्त के मूर्च्छित होने पर भय व क्षोभ से संयुत व अपनी सेनाओं से
युक्त मुख्य यमदूत भग्न व भय से विकल होकर स्थित होगये व विचित्र गण विदीर्ण हुये तदनन्तर चित्रगुप्त को विदीर्ण देखकर इसके अनन्तर ॥ ६९ ॥ ७० ॥

उन यमराजजी ने दूरही से आते हुये देवारिशत्रु श्रीकृष्णजी को देखकर उत्तमसेना को लेकर युद्ध किया जैसे कि प्रलय में प्रजाओं के नाश के लिये ज्वालाओंसे बड़ाहुआ वडवानल वर्तमान होवै ॥ ७१ ॥ आतेहुये उन करालकाल को देखकर श्रीकृष्णजी ने कालके समान बाणों से यमराजको आच्छादित किया और उन यमराजजी ने भयंकर दण्डको लेकर सब देवताओं के देखते हुये श्रीकृष्णजी के ऊपर छोड़ा ॥ ७२ ॥ तदनन्तर प्रजाओं का नाशकारक वह कालदण्ड श्रीकृष्ण जीके सर्पीप प्राप्तहुआ तदनन्तर देवता, गन्धर्व, यक्ष व मुनीन्द्रोंने बलभद्रजी को देखकर बड़े विस्मयको प्राप्तहुये ॥ ७३ ॥ और शेषमूर्तिवाले उन बलभद्रजीने जलते

सकालस्तमायान्तमालोक्यद्वाराहरं सैन्यमादाय देवारिशत्रुम् ॥ विनाशाययुध्यद्युगान्तेप्रजानां यथावाडवा
ज्वालवृद्धः प्रवृत्तः ॥ ७१ ॥ तमायान्तमालोक्यकालंकरालं शरैरावृणोदन्तंकंकालकल्पैः ॥ सकालः करालंसमा
दायदण्डं मुमोच।च्युतेपश्यतान्देवतानाम् ॥ ७२ ॥ ततः कालदण्डः प्रजानां विनाशो हरस्सन्निकाशं समभ्याजगाम ॥
ततोदेवगन्धर्वयक्षामुनीन्द्राः परं विस्मयं प्रापुर्न्वीक्ष्यरामम् ॥ ७३ ॥ ज्वलन्तञ्चजग्राहकालस्यदण्डं सरामोवरंली
लयानन्तमूर्तिः ॥ कालदण्डे गृहीते वलेनाहवे मोक्तुकामे पुनः कालनाशाय वै ॥ ७४ ॥ तूर्णमध्येत्यतत्रान्तरेपद्मजस्तं
रणेवारयामासकृष्णं तदा ॥ ७५ ॥ मां मुञ्चेत्यब्रवीद्धेयाः कालं कालायुधं बल ॥ त्वया बलवता वीर चराचरधराधर ॥ धा
र्यते शिरसा देव संसारनास्ति ते समः ॥ ७६ ॥ त्वया विश्वपतिर्विष्णुस्तस्मिन्नेन सदोह्यते ॥ कोन्योस्ति त्वत्समो राम यो
जगद्ग्रहे नैज्जमः ॥ ७७ ॥ जगत्स्रष्टा जगद्गोप्ता जगद्धर्ता जगत्पतिः ॥ पाल्यते यस्त्वया सोऽपि विष्णुर्विभूवैकनायकः ॥ ७८ ॥

हुये उस कालके उत्तम दण्डको खेलही से पकड लिया जब समर में बलभद्र ने कालदण्डको ग्रहण किया व फिर यमराजके लिये छोड़ने की इच्छा किया ॥ ७४ ॥
तब उसी मध्य में शीघ्रही ब्रह्माजी ने आकर उस समय समर में उन श्रीकृष्णजीको मना किया ॥ ७५ ॥ कि हे बलभद्रजी ! कालके समान ब्रह्मको यमराज के
ऊपर मत छोड़िये ऐसा ब्रह्माजी ने कहा हे चराचर समेत पृथ्वी को धारनेवाले, वीर, देव ! तुम बलवान् से शिरके द्वारा सब पृथ्वी धारण कीजाती है संसारमें तुम्हारे समान
कोई नहीं है ॥ ७६ ॥ तुम सदैव गोक्षीसे जगदीश विष्णुजी को धारण करते हो हे राम ! अन्य कौन है जोकि संसार के धारण करने में समर्थ है ॥ ७७ ॥ तुम संसार

को रचनेवाले व संसार की रक्षा करनेवाले तथा संसार को हरनेवाले और संसारके स्वामी हो जो तुम से पालन किये जाते हैं वे विष्णु भी संसार के एकही स्वामी हैं॥ ७८॥ यहा तुम्हारी स्तुति करनेवाला कौन है और कौन गुणोंको जानने के लिये योग्य है और उसी कारण विष्णुजी की नाभि से उपजे हुये कनल स्थानवाले हम लोग तुम्हारी गोदी में स्थित हैं ॥ ७९॥ ऐसा बलभद्रजीसे कहकर फिर देवताओं से घिरे हुये चतुराननजी स्तुतिपूर्वक श्रीकृष्णजी से वचन बोले ॥ ८०॥ कि हे भयानक मुखवाले कृष्ण ! हे श्रीकृष्णजी ! इस काल के ऊपर दया कीजिये क्योंकि हे जगदीशजी ! आते हुये आपको यह संसारके एकही स्वामी व नरकसमुद्र से

कस्ते स्तुतिकरोऽस्तीह को गुणान्वेत्तुमर्हति ॥ ततो वयं त्वदङ्गस्था विष्णुना भिभवायनाः ॥ ७९ ॥ इत्युक्त्वा बले देव
अ वासुदेवं पुनर्वचः ॥ उवाच चतुरास्यस्तु स्तुतिपूर्ववृत्तस्मरैः ॥ ८० ॥ कृष्णकृष्णकरालास्य कालस्यास्य कृपां कु
रु ॥ यतो भवन्तमायान्तं विष्णुं विद्वैकनायकम् ॥ ८१ ॥ वेत्ति नायं जगन्नाथ नरकार्णवतारकम् ॥ त्वया वै भगवन्पूर्वं
यमः संस्थापितः पदे ॥ ८२ ॥ नृणां दुष्कृतकर्तॄणां नरकाय यमः प्रभो ॥ तस्मादस्य जगन्नाथ ज्ञम्यतां पुरुषोत्तम ॥ ८३ ॥
विभो कृतापराधस्य ब्रूहि यत्ते विवर्जितम् ॥ एतच्छ्रुत्वा ब्रवीत्कृष्णो धातः शृणु गुरोर्मम ॥ ८४ ॥ सान्दीपनेन स्समानो त
स्सुतस्तेनागता विह ॥ समर्प्यतां गुरु श्रेष्ठ श्रेष्ठाय गुरुदक्षिणा ॥ ८५ ॥ आवाभ्यां या प्रतिज्ञाता तस्मात्सा पात्यतां वि
भो ॥ एतत्पितामहः श्रुत्वा यमं समरनिर्जितम् ॥ ८६ ॥ समाहूया ब्रवीद्विष्णुर्ग्रन्थं द्वितीयं त्रितीयं च ॥ तच्छ्रुत्वा धर्म

तारनेवाले विष्णु नहीं जानता है हे भगवन् ! पहले तुम ने यमराजको स्थान पै भलीभांति स्थापित किया है ॥ ८१ ॥ ८२ ॥ हे प्रभो ! जो यमराजजी पाप करनेवाले मनुष्यों के नरकके लिये हैं इसलिये हे पुरुषोत्तम, जगदीशजी ! इनका अपराध क्षमाकीजिये ॥ ८३ ॥ हे विभो ! किये हुये अपराधवाले यमराज से जो तुम्हारे कहने की इच्छा होवे उसको कडिये इस वचन को सुनकर श्रीकृष्णजी बोले कि हे विधाता ! सुनिये मेरे गुरु ॥ ८४ ॥ सादीपनि का पुत्र लाया गया है उसी से हम दोनों यहा आये हैं श्रेष्ठ गुरुओं के मध्य में उत्तम सांदीपनि के लिये गुरुदक्षिणा दीजावे ॥ ८५ ॥ हे विभो ! हम दोनों से जो प्रतिज्ञा की गई वह उसी कारण पालन की जावे

इस वचन को सुनकर ब्रह्माजी ने युद्धमें जीतेहुये यमराजको बुलाकर कहा कि जो श्रीकृष्णजी कहते हैं उसको कीजिये उस वचनको सुनकर धर्मराजने ब्रह्मासे यह कहा ॥ ८६ ॥ ८७ ॥ कि हे विश्वकृत, भगवन् ! यह मार्ग तुमसे नहीं कियागया है कि यमलोक को प्राप्त शरीररहित प्राणी ॥ ८८ ॥ शरीर समेत जाँवै यह यहां नहीं प्राप्तहोताहै उसकोसुनकर फिर इस संसारके स्वामी आपही ब्रह्माजी बोले ॥ ८९ ॥ कि जिस लिये ये संसार को रचनेवाले व संसारको हरनेवालेहैं उसकारण जो चाहते है उसको कैरौ और तुम सादीपनि मुनि के पुत्रको अर्पण कीजिये ॥ ९० ॥ व हे महामते ! फिर मनुष्य शरीर करके उनको ले आइये उस वचन को सुनकर धर्मराज राजस्तुविरश्चिमिदमब्रवीत् ॥ ८७ ॥ भगवन्विश्वकृल्लोकैर्नैपमार्गस्त्वयाकृतः ॥ यमलोकमनुप्राप्तः कायहीनःशरीरवान् ॥ ८८ ॥ शरीरसहितोयाति नैतदत्रप्रपद्यते ॥ तच्छ्रुत्वाहिपुनर्ब्रह्मा विश्वस्यास्यविभुःस्वयम् ॥ ८९ ॥ विश्वकुद्विश्वहृद्यस्माद्यदिच्छतिकरोतुतत् ॥ तस्मादर्पयन्नुत्वं मुनेस्सान्दीपनेश्चवै ॥ ९० ॥ नरकायंपुनःकृत्वा तञ्चानयमहामते ॥ तच्छ्रुत्वाधर्मराजस्तु पुत्रंसान्दीपनेस्तथा ॥ ९१ ॥ ससर्जबालरूपञ्च तदात्मानंतदुद्भवम् ॥ अर्पयामासकृष्णाय बालंरूपसमन्वितम् ॥ ९२ ॥ समक्षन्देवतानाञ्च तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ततःप्राप्यगुरोःपुत्रं प्रभुःप्रीतःप्रजापतिम् ॥ ९३ ॥ प्राहप्राप्तोमयाब्रह्मन् स्वरूपोद्विजदारकः ॥ श्रीकृष्णउवाच ॥ अद्यप्रभृतिलोकेश देशेमच्चरणाङ्किते ॥ ९४ ॥ अ वन्त्यामङ्कपादारूपे मृतानेक्षन्ति तेयमम् ॥ महाकालोत्तरेदेवमाद्यैवपुरुषोत्तमम् ॥ ९५ ॥ विश्वरूपञ्चगोविन्दं शङ्खोद्धारंचकेशवम् ॥ येपश्यन्तिकुशस्थत्यामेतेषामूर्तिपञ्चकम् ॥ ९६ ॥ तेनरानगमिष्यन्ति विरञ्चेनिरयंकचित् ॥ तथैने सादीपनि के पुत्र ॥ ९७ ॥ जोकि तदात्मक वं उन से उपजा हुआ था उस बालकरूपी पुत्रको विदा किया व रूपसे संयुत बालक को श्रीकृष्णजी के लिये अर्पण किया ॥ ९८ ॥ देवताओं के सामने वह अद्भुतसा होगया तदनन्तर गुरुजी के पुत्रको पाकर प्रसन्न होतेहुये प्रभु श्रीकृष्णजी ब्रह्माजी से ॥ ९९ ॥ बोले कि हे ब्रह्मन् ! मैंने स्वरूपवाले द्विज बालक को पायाहै श्रीकृष्णजी बोले कि हे लोकेश ! आजसे लगाकर उज्जयिनी में मेरे चरणों से चिह्नित अंकपाद नामक देश (स्थान) में जो मरै वे पुरुष यमराज को न देखें और महाकालजी के उत्तर में पुरुषोत्तम आदिदेवको ॥ ९९ ॥ व विश्वरूप, गोविन्द तथा शङ्खोद्धार व केशव

मूर्तियों को जो पुरुष कुशस्थली याने उज्जयिनी में देखते हैं ॥ ६६ ॥ हे ब्रह्मन् ! वे पुरुष कभी नरक को न जायेंगे वैसेही मेरे व बलभद्रजी के यहां आने से नरक वाले जो लोग हैं ॥ ६७ ॥ वे सब तुमसे भयंकर नरक से छूटकर स्वर्गको प्राप्त होवें ऐसा वचन कहने पर प्रसन्न ब्रह्माजी श्रीकृष्णजी से बोले ॥ ६८ ॥ कि हे श्रीकृष्णजी ! तुमने जो कहा है वह सब सदैव होवै और जो आदिपुरुष व श्रेष्ठ तुम पुरुषोत्तमजी को ॥ ६९ ॥ प्रणामकर और जो रुद्रसर में नहाकर देवों व जो अधोज्वल महाकालजी को देखता है वह अश्वमेधके फलको प्राप्त होता है ॥ १०० ॥ इसप्रकार कहेहुये श्रीकृष्णजी पुत्र को लेकर बलभद्र समेत ॥ १ ॥ श्रीब्रह्मादेवजी

वागमनादत्र ममरामस्यनारकाः ॥ ९७ ॥ विमुक्तास्तेत्वयाधोरात् प्राप्नुवन्त्यखिलादिवम् ॥ इत्युक्तेवचनैवेधाः प्रोवाच प्रीतिमान्हरिम् ॥ ९८ ॥ यत्स्वयोक्तं चः कृष्ण तदस्तु सकलंसदा ॥ ये च त्वामादिपुरुषं प्रथमं पुरुषोत्तमम् ॥ ९९ ॥ प्रणम्य ये च द्रक्ष्यन्ति स्नात्वा शिवसरस्यपि ॥ अधोज्वलं महाकालं सोऽवमेधफलं मेतु ॥ १०० ॥ एवमुक्तो हरिः पुत्रमादाय बलेन सह ॥ १ ॥ आपृच्छ यवेधसन्देवमारुरोहरथं ततः ॥ शङ्खमाधूरयामास कृतकार्यो जनार्दनः ॥ २ ॥ मोक्षार्थं निरयस्थानं नृणामैव पापकर्मणाम् ॥ ततस्ते शङ्खशब्देन स्मरणेनाच्युतस्य च ॥ ३ ॥ दिव्यानि विमानानि रुह्य दिवमेवाखिलागताः ॥ शून्यं तन्मण्डलं जातं नारायणसमागमे ॥ ४ ॥ कालोऽपि दण्डमासाद्य बलदेवात्पुनः पुनरम् ॥ प्रविशततोधाता तत्रैवान्तरधीयत ॥ ५ ॥ कृष्णोऽपि बलवान्वीरः प्राप्त उज्जयिनीपुरीम् ॥ बलदेवसहायस्तु सरथेनाशुगामिना ॥ ६ ॥ ततस्सान्दीपनेः पुत्रमर्पयामास केशिहा ॥ गुरवे यत्प्रतिज्ञातं स तस्मादनुगोभवत् ॥ ७ ॥ एवं सान्दीपनेः

से पूँछकर तदनन्तर रथ पै सवार हुये और कार्य किये हुये श्रीकृष्णजी ने नरक में टिकेहुये पापकर्मी जनों के मोक्षके लिये शङ्खको बजाया तदनन्तर शङ्ख के शब्द से व श्रीकृष्णजी के स्मरणसे वे पुरुष ॥ २।३ ॥ उत्तम विमानों पै चढ़कर सब स्वर्गही को चलेगये और नारायण के समागम में उस नरकका मण्डल शून्य हो गया ॥ ४ ॥ और यमराज ने भी दण्डको लेकर बलभद्र से पहले नगर में प्रवेश किया तदनन्तर ब्रह्माजी वहीं अन्तर्द्वान् होगये ॥ ५ ॥ और बलभद्रकी सहायवाले बलवान् वीर वे श्रीकृष्णजी शीघ्रगामी रथ के द्वारा उज्जयिनी पुरीको प्राप्तहुये ॥ ६ ॥ तदनन्तर केशवजी ने सान्दीपनि के पुत्र को अर्पण किया और गुरु से जो

प्रतिज्ञा किया था उससे वे श्रीकृष्णजी उन्मुख हुये ॥ ७ ॥ इसप्रकार फिर आये हुये सांदिपनि के पुत्रको देखकर वहां नगरवासी व राजा बड़े विस्मय को प्राप्तहुये ॥ ८ ॥ और उन्होंने देवोत्तमों में उत्तम मानकर उन वीरों का पूजन किया और सांदिपनिने उन बलभद्र व श्रीकृष्णजी से यह कहा ॥ ९ ॥ कि कल्पपर्यन्त यहांपर तुम्हारा यश स्थित रहैगा और हे यदुपुत्रो ! हमलोग इस स्थान में टिकेंगे ॥ १० ॥ मैंने यदुवंश में उपजे देवकार्य के लिये आयेहुये तुम दोनों नर नारायण देव वीरों को नहीं जाना ॥ ११ ॥ और यदि यहां जो पुरुष नहाता है तो उसकी अल्पमृत्यु नहीं होती है और न रोग होताहै न दुर्दशा होती है तथा स्वर्ग में प्राप्त होताहै और स्वर्ग-

पुत्रं दृष्ट्वाचपुनरागतम् ॥ नागरास्तत्रराजाच विस्मयं परमं ययुः ॥ ८ ॥ तौ वीरावर्चयामासुर्मत्वा देवोत्तमोत्तमौ ॥ सा न्दीपनिरुवाचेदं तौ च रामजनार्दनौ ॥ ९ ॥ इह स्थास्यति वः कीर्तिर्या विदाभूतसम्पुवम् ॥ स्थाने तु वयमेतस्मिन् स्थाने मोयदुनन्दनौ ॥ १० ॥ न विज्ञातौ मया वीरौ यदुष्टाणि कुलोद्भवौ ॥ नरनारायणौ देवौ देवकार्यार्थमागतौ ॥ ११ ॥ ना त्पमृत्युर्भवेत्तस्य न व्याधिर्न च दुर्गतिः ॥ प्राप्नोत्यत्र च स्नातश्चेत् स्वर्गलोके महीयते ॥ १२ ॥ शङ्खिर्न विश्वरूपञ्च माधवञ्चाक्रिणं तथा ॥ चत्वारि विष्णु क्षेत्राणि शृङ्गपादस्तु पञ्चमः ॥ १३ ॥ एषां यानां प्रवक्ष्यामि यथाकार्यामनीषिभिः ॥ मन्दाकिन्यां कृतस्नानो दृष्ट्वा रामजनार्दनौ ॥ १४ ॥ शङ्खोद्धारे ततस्स्नात्वा प्रपश्येद्बलकेशवौ ॥ स्नानं कृत्वा ततः कुण्डे गोविन्दश्च समर्चयेत् ॥ १५ ॥ चक्रिणञ्च ततो दृष्ट्वा विश्वरूपं ततो व्रजेत् ॥ तस्याग्रतः करी कुण्डे स्नानं कृत्वा यथाविधि ॥ १६ ॥ पुनस्तेन प्रकारेण प्रपश्येद्बलकेशवौ ॥ स्नानं कृत्वा ततः कुण्डे गोविन्दञ्च समर्चयेत् ॥ १७ ॥

लोकमें पूजाजाता है ॥ १२ ॥ और शङ्खी, विश्वरूप, माधव व चक्री चार विष्णुजी के क्षेत्र हैं व अंकपाद पांचवा क्षेत्र है ॥ १३ ॥ इनकी यात्रा को कहताहूँ कि जिस प्रकार वह विद्वानो को करना चाहिये कि मन्दाकिनी में स्नानकर राम व जनार्दन जी को देखकर ॥ १४ ॥ तदनन्तर शङ्खोद्धार में नहाकर बलराम व केशवजी को देखै उमके उपरान्त कुण्ड में नहाकर गोविन्दजी को भलीभांति पूजै ॥ १५ ॥ तदनन्तर चक्रीजी को देखकर उसके उपरान्त विश्वरूपजी के समीप जावै उनके आगे करी कुण्ड में विधिपूर्वक नहाकर ॥ १६ ॥ फिर उसी विधि से बलभद्र और केशवजी को देखै उसके उपरान्त कुण्ड में नहाकर गोविन्दजी को पूजै ॥ १७ ॥

वैसेही चक्र हाथोंवाले उस दोनोंको देखकर केशवजी के समीपजावै व शिप्रानदीके जलमें नहाकर मनुष्य भक्तिसे केशवजीको पूजकर ॥ १८ ॥ अंकपादमें लौटकर वह पवित्र पुरुष उसरात्रिको व्यतीतकरै और प्रातःकाल उत्तम व्रतोंवाले पांच ब्राह्मणोंको भोजनकरावै ॥ १९ ॥ य शङ्खी के लिये गऊ दक्षिणा व विद्वरूपजी के लिये अश्व तथा गोविन्दजी के लिये हाथी कहागयाहै और केशवजी को सब कुछ देवै ॥ २० ॥ व हे विप्रजी ! जो पुरुष द्वादशी को उपासकर अंकपादजी को चन्दन, पुष्प, धूप व अनेक भांति के नैवेद्यों से पूजता है ॥ २१ ॥ व जो श्राद्ध करता है उसके सब पुण्यके फलको सुनिये कि सौ कुलोंको उद्धारकर सब कामनाओंवाले विमानों

तथैवचक्रहस्तौतौ दृष्ट्वाकेशवमात्रजेत् ॥ शिप्रामभिसिनरस्नात्वा भक्त्यासम्पूज्यकेशवम् ॥ १८ ॥ परावृत्त्याङ्कपादे तु तांरात्रिह्रमयेच्छुचिः ॥ प्रातर्वैभोजयेत्तत्र पञ्चविप्रांश्चमुव्रतान् ॥ १९ ॥ गोदक्षिणाशङ्खिनेतु विश्वरूपायवैहयः ॥ गोविन्दायगजः प्रोक्तस्सर्वदद्याच्चकेशवम् ॥ २० ॥ उपोष्यद्वादशीं विप्रायाङ्कपादं समर्चयेत् ॥ गन्धपुष्पैश्च धूपैश्च नैवेद्यैर्विविधैस्तथा ॥ २१ ॥ श्राद्धयः कुरुते सर्वं तस्य पुण्यफलं शृणु ॥ कुलानां शतमुद्धृत्य विमानैस्सर्वकामिकैः ॥ २२ ॥ गीतनृत्यादिभोगैश्च वैकुण्ठे सुचिरं वसेत् ॥ पुनर्लोकमिमं प्राप्य पवित्रे जायते कुले ॥ २३ ॥ प्राप्नोत्यनन्तसन्तानं विष्णुलोकं पुनर्ब्रजेत् ॥ २४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेऽङ्कपादमाहात्म्यत्रयस्त्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३३ ॥ *

सनत्कुमार उवाच ॥ अथान्यसम्प्रक्ष्यामि देवत्रैलोक्यविश्रुतम् ॥ चन्द्रादित्यमिति ख्यातं चन्द्रादित्याचितम्पुरा ॥ यस्तं समर्चयेद्देवं सुरासुरनमस्कृतम् ॥ गन्धैः पुष्पैस्तथा धूपैर्नैवेद्यैर्विविधैस्तथा ॥ २ ॥ चन्द्रादित्यादिसालोक्यं

के द्वारा जाकर ॥ २२ ॥ वह गीत नृत्यादिके भोगोंसे वैकुण्ठमें सदैव वसताहै फिर इस लोकको प्राप्तहोकर पवित्र कुलमें उत्पन्न होताहै ॥ २३ ॥ व अमितसन्तानको प्राप्तहोताहै फिर विष्णुलोकको जाताहै ॥ २४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेऽवन्तीखण्डे देवीदयालुमिश्रविचितायां भापाटीकायामङ्कपादमाहात्म्यत्रयं त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥ दो० । चन्द्रादित्य महात्म्य जिमि अहै अनंत अपार । चौतिसवे अध्याय में सोई चरित उदार ॥ सनत्कुमारजी बोले कि इसके अनन्तर पुरातन समय चन्द्रमा व र्य से पूजे चन्द्रादित्य ऐसे कहेहुये त्रिलोकमें प्रसिद्ध अन्यदेवको कहताहूँ ॥ १ ॥ देवता व दैत्यों से प्रणाम किये हुये उन देव को गंध, पुष्प, धूप व अनेक प्रकार के

नैवेद्यों से जो पुरुष पूजता है ॥ २ ॥ वह सब कामनाओंवाले तथा सूर्य के समान विमानों के द्वारा चन्द्रमा व सूर्यादिकों की सलोकताको तबतक प्राप्त होता है जबतक कि चन्द्रमा व सूर्य रहते हैं ॥ ३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचितायां पाटीकायां चन्द्रादित्यमाहात्म्यं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥

दो० । करभेश्वर नामक यथा भये सदाशिवदेव । पैतिसर्वे अध्यायमें सोई है सब भेव ॥ सनत्कुमारजी बोले कि तदनन्तर देवदेव करभेश महेश्वरजी के समीप जावै कि जिनके दर्शनही से मनुष्य दुष्टयोनि में नहीं उत्पन्न होता है ॥ १ ॥ व्यासजी बोले कि हे देव ! मैं यथार्थ से करभेशजी की कथा को सुना चाहता हूँ कि करभेश प्रयाति सार्वकामिकः ॥ विमानैस्सूर्यसङ्काशैर्यावच्चैन्दुदिवाकरौ ॥ ३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे चन्द्रादित्यमाहात्म्यं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥ * * *

सनत्कुमार उवाच ॥ करभेशं ततो गच्छेद्देवदेवं महेश्वरम् ॥ यस्य दर्शनमात्रेण कुर्यान्नौ नैव जायते ॥ १ ॥ व्यास उवाच ॥ करभेशकथान्देव श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ॥ कथन्देवस्समुत्पन्नः करभेशो तिसंज्ञितः ॥ २ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ पुरा देवगणैस्सार्द्धं देवदेवो महेश्वरः ॥ वनेस्मिन् क्रीडयामास परमाह्लादसंयुतः ॥ ३ ॥ क्रीडन्बहुतिथे काले शङ्करः करभोभवत् ॥ न ज्ञायते सर्वदेवैः शङ्करः करभाकृतिः ॥ ४ ॥ अन्वेषयन्ति तन् देवास्ततो विस्मयसंयुताः ॥ न पश्यन्ति यदा तत्र तन् देवं शूलपाणिनम् ॥ ५ ॥ देवैः पृष्टस्ततो ब्रह्मा कास्ति देवो महेश्वरः ॥ ध्यातोऽपि ब्रह्मणा दृष्टो गुप्तयोगप्रसुहरः ॥ ६ ॥ देवैस्सार्द्धं ततो ब्रह्मा पप्रच्छ गणनायकम् ॥ न दृष्टश्शङ्करोऽस्माभिर्गतः कुत्र विनायक ॥ ७ ॥ कथयस्व नमस्तुभ्यं भेश एषे संज्ञक देव कैसे उत्पन्न हुये हैं ॥ २ ॥ सनत्कुमारजी बोले कि पुरा तन समय देवगणों समेत बड़े आनन्द से संयुत देवदेव महेश्वरजी ने इस वनमें क्रीड़ा किया है ॥ ३ ॥ और बहुत दिनोंवाले समयके बीतने पर खेलते हुये शङ्करजी करभ याने ऊंट के बच्चे के समान हुये और करभआकारवाले शिवजी को समस्त देवताओं ने नहीं जाना ॥ ४ ॥ तदनन्तर विस्मयसे संयुत देवता उनको ढूँढ़ने लगे और जब वहाँ पर विशाल हाथवाले उन शिवदेवजी को नहीं देखा ॥ ५ ॥ तब देवताओं ने ब्रह्मा से पूछा कि महेश्वरदेवजी कहाँ हैं ब्रह्मासे ध्यान किये हुये भी गुप्तवोगवाले महादेव स्वामीजी न देखे गये ॥ ६ ॥ तदनन्तर देवताओं समेत ब्रह्माजी ने गणेश

जीमे पूछा कि हे विनायकजी ! हमलोगों ने शिवजी को नहीं देखा वे कहा गये ॥ ७ ॥ हे विभो ! यह कहिये तुम्हारे लिये नमस्कार है हमलोग तुम्हें लड़्डुवों को देंगे उस समय ऐसा कहेहुये गणेशजी प्रसन्न होकर बोले ॥ ८ ॥ कि हे देवोत्तमो ! इन करभरूपो महादेवजी को देखिये ऐसे वचन को सुनकर प्रसन्न होतेहुये देवता ऊंटके बच्चे के समीपगये ॥ ९ ॥ और हमलोगों ने आपही महादेवजी को जानलिया यह कहते हुये वे सब जाकर तदनन्तर आपही चारों दिशाओं में स्थित हुये ॥ १० ॥ मैं कैसे जानागया यह चिन्तन कर शिवजी विस्मयको प्राप्तहुये इस के अनन्तर ऊंटके बच्चे के रूपको छोड़कर देवदेव महेश्वरजी ने ॥ ११ ॥ जो कर-

दास्यामोलङ्घकान्विमो ॥ एवमुक्तस्तदाहृष्टः प्रोवाचगणनायकः ॥ ८ ॥ करभोयंमहादेवो दृश्यतांविबुधोत्तमाः ॥ श्रु
त्वाचैवंचोदेवाः प्रहृष्टाःकरभंययुः ॥ ९ ॥ ज्ञातोस्माभिर्महादेवो जल्पन्तइतितेस्वयम् ॥ गत्वाचैवततःसर्वे चतुर्दिक्षु
स्थितास्स्वयम् ॥ १० ॥ विचिन्त्येतिकथंज्ञातः शङ्करोविस्मयङ्गतः ॥ त्यक्त्वाथकारभंरूपं देवदेवोमहेश्वरः ॥ ११ ॥
लिङ्गमुत्पादयामास देवंयत्करभेश्वरम् ॥ तन्दृष्ट्वाथसुरास्सर्वे साष्टाङ्गप्रणतिंस्थिताः ॥ १२ ॥ ततःप्रभृतिविख्यात
इशङ्करःकरभेश्वरः ॥ स्नात्वाचैवशुचिर्भूत्वा यस्तमर्चयतेशिवम् ॥ १३ ॥ गन्धपुष्पैश्चनैवेद्यैः शृणुतेषाञ्चयत्फलम् ॥
सर्वभेषेषुयत्पुण्यं सर्वदानेषुयत्फलम् ॥ १४ ॥ ततोधिकंसलभते नात्रकार्याविचारणा ॥ १५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणोऽ
वन्तीखण्डे करभेश्वरमाहात्म्यनामपञ्चविंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३५ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

भेश्वर देव हैं उस लिंगको उत्पन्न किया उसको देखकर इसके अनन्तर सब देवता साष्टांग प्रणाम में स्थित हुये ॥ १२ ॥ तब से लगाकर करभेश्वर शिवजी प्रसिद्ध हुये हैं नहाकर व पवित्र होकर जो पुरुष उन शिवजीको गन्ध, पुष्प व नैवेद्यो से पूजताहै उनको जो फल होताहै उसको सुनिये कि सबयज्ञोंमें जो पुण्य होताहै और समस्त दानों में जो फल होताहै ॥ १३ ॥ १४ ॥ उससे अधिक फलको वह पाताहै इसमें विचार न करना चाहिये ॥ १५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणोऽवन्तीखण्डेद्वीदयालु मिश्रविरचिताभाषाटीकाकारभेश्वरमाहात्म्यवर्णननामपञ्चविंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥

दो० । अति उत्तम माहात्म्य युत अहै यथा गणनाथ । छत्तिसवै अध्यायमें सोई वरणत गाथ ॥ सनत्कुमारजी बोले कि तदनन्तर देवताओंने लड्डुवोंसे गणेशजी को भलीभांति पूजा है तब से लगाकर लड्डुकप्रिय विघ्नेश जी प्रसिद्ध हुये हैं ॥ १ ॥ जो पुरुष उनको भक्तिसे पूजता है उसके विघ्न नहीं होता है व प्रसन्न होतेहुये गणेशजी उसके लिये समस्त अभिलाषों को देते हैं ॥ २ ॥ और चौथि तिथि में रात्रिको भोजन करनेवाला मनुष्य शिप्रानदी में विशेष कर नहाकर और अरुणवसन-धारी होकर मन्त्रों के द्वारा लाल चन्दन से मिलेहुये जल से स्नानपूर्वक उन गणेशजीके लाल चन्दन से विलेपन कर लाल फूलों से पूजन करै ॥ ३४ ॥ व

सनत्कुमारउवाच ॥ लड्डुकैश्चततोदैर्विघ्ननाथस्समर्चितः ॥ तदाप्रभृतिविख्यातो विघ्नेशलड्डुकप्रियः ॥ १ ॥
यस्समर्चयेत्तभक्त्या तस्यविघ्नन्नजायेत ॥ तस्मैददातिसन्तुष्टस्सर्वकामान्विनायकः ॥ २ ॥ नक्ताहारश्चतुर्थ्याच स्ना-
त्वाशिप्रांविशेषतः ॥ रक्ताम्बरधरोभूत्वा रक्तपुष्पैर्विनायकम् ॥ ३ ॥ रक्तचन्दनतोयेन मन्त्रैस्सनपनपूर्वकम् ॥ चन्दनेना-
पिरक्तेन तं विलेप्य प्रपूजयेत् ॥ ४ ॥ धूपं दद्यात्तथा दिव्यं सुगन्धलड्डुकप्रियम् ॥ नैवेद्ये लड्डुकादेया आज्यखण्डप-
रिप्लुताः ॥ ५ ॥ नतस्य जायते व्यास भयं विघ्नं कदाचन ॥ लभते च तथा भीष्टं मृतांश्चिवपुं व्रजेत् ॥ ६ ॥ अवतीर्णः पुन-
र्लोकं जायते वसुधाधिपः ॥ मतिमान् पुत्रवाञ्छरो नात्र कार्या विचारणा ॥ ७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे ग-
णेशमाहात्म्यनाम षट्त्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३६ ॥

सनत्कुमारउवाच ॥ कुसुमेशं सुरद्वारे सुरासुरनमस्कृतम् ॥ श्रद्धया पूजयेद्यस्तु शिवलोकैः समोदते ॥ १ ॥ जयेद्भव-
लड्डुकप्रिय गणेशजी को उत्तम गन्धवाली दिव्य धूप दैवै और नैवेद्य में धी व राक्षसों से संयुत लड्डुओं को देना चाहिये ॥ ५ ॥ हे व्यासजी ! उसके कभी विघ्न नहीं होता है और वैसेही मनोरथको प्राप्त होता है व मरकर शिवपुरको जाता है ॥ ६ ॥ और फिर जगत्में अवतार लेकर वह पुरुष भपति होता है व बुद्धिमान्, पुत्रवान् और शूर होता है इसमें विचार न करना चाहिये ॥ ७ ॥ इति श्री स्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचिनायाभाषायां षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥
दो० । सोमेश्वर आदिकन कर अहै यथा परभाव । सैतिसवै अध्याय में सोई चरित सुहाव ॥ सनत्कुमारजी बोले कि सुरद्वार में देवताओं व दैत्यों से प्रणाम किये

हुये कुसुमेशजी को जो मनुष्य श्रद्धा से पूजता है वह शिवलोक में आनन्द करता है ॥ १ ॥ जो मनुष्य देवदेव जयेश्वर महेश्वरजी को देखता है वह समस्त कार्यों में जयवान् होता है और शिवलोकको प्राप्त होता है ॥ २ ॥ और यदि शिवद्वारमें मनुष्य शिवलिङ्गको पूजता है तो विमानके द्वारा स्वर्ग को प्राप्त होता है और गणाध्यक्षताको प्राप्त होता है ॥ ३ ॥ इसके अनन्तर अन्य उत्तम मार्कण्डेश्वरजी को कहता हूँ जहापर कि मार्कण्डेयजी ने बहुत तप किया है ॥ ४ ॥ उन शङ्करदेवजी को देखकर मनुष्य वाजपेय यज्ञ के फलको प्राप्त होता है और सब पापोंसे शुद्धचित्तवाला पुरुष बहुत आयुर्वलवान् होता है ॥ ५ ॥ हे व्यासजी ! इस पुरी में उत्तम महास्थानको सुनिये रन्तुयः पश्येद्देवदेवमहेश्वरम् ॥ जयीस्यात्सर्वकार्येषु शिवलोकंसगच्छति ॥ २ ॥ शिवद्वारे शिवलिङ्गमर्चयेन्मानवो यदि ॥ त्रिदिव्यातियानेन गाणपत्यञ्च विन्दति ॥ ३ ॥ अथान्यसम्प्रक्ष्यामि मार्कण्डेश्वरमुत्तमम् ॥ मार्कण्डेयो मुनिर्यत्र तप्तवान्मुमहतपः ॥ ४ ॥ दृष्ट्वा तं शङ्करन्देवं वाजपेयफलं लभेत् ॥ सर्वपापविशुद्धात्मा चिरायुर्जायते नरः ॥ ५ ॥ शृणु व्यास महास्थानमस्यां पुर्यां समुत्तमम् ॥ यत्र तिष्ठतिसादेवी ब्रह्माणंहं सवाहिनी ॥ ६ ॥ भक्तानां पूरयेदारां पुत्रवत्परिपालयेत् ॥ यथामाता तथा देवी दृष्ट्वा शान्तिपरैरपि ॥ ७ ॥ अर्चिता ब्रह्मणा सा तु स्तुता देवी सुरोत्तमैः ॥ अर्चयेद्गन्धपुष्पैश्च नैवेद्यैः सर्वसिद्धिदाम् ॥ ८ ॥ अपिया ब्रह्मणः पूर्वमभूद्देवी सुसिद्धिदा ॥ यस्नात्वा ब्रह्मसरसि पश्येद्ब्रह्मेश्वरं शिवम् ॥ ९ ॥ भवबन्धविनिर्मुक्तो ब्रह्मलोकं समोदते ॥ अथान्यत्सम्प्रक्ष्यामि यज्ञवापीमनुत्तमाम् ॥ १० ॥ यत्र वै ब्रह्मणा पूर्वमिष्टो यज्ञस्स दक्षिणः ॥ यज्ञार्थं यत्कृतं कुण्डं यज्ञवापी च सा स्मृता ॥ ११ ॥ पशुश्रृपातितो यस्मात्तस्मात्प जहां पर कि हंसवाहिनी ब्रह्माणीजी स्थित हैं ॥ ६ ॥ शान्ति में तत्पर पुरुषों से देखाहुई वे देवी माता की नाई भक्तोंकी आज्ञाको पूर्ण करती हैं और पुत्रकी नाई पालन करती हैं ॥ ७ ॥ उन देवीजी को ब्रह्माने पूजा है व सुरोत्तमोंने स्तुति किया है उन सब सिद्धिदायिनी को गन्ध, पुष्पों से व नैवेद्योंसे पूजन करै ॥ ८ ॥ पहले जो कि ब्रह्माको भी उत्तम सिद्धिदायिनी हुई है ब्रह्मसर में नहाकर जो पुरुष ब्रह्मेश्वर शिवजी को देखता है ॥ ९ ॥ वह संसारके बन्धन से छूटकर ब्रह्मलोक में प्रसन्न होता है इसके अनन्तर अति उत्तम अन्य यज्ञवापीको मैं कहता हूँ ॥ १० ॥ जहां पर कि पुरातन समय दक्षिणा समेत यज्ञ किया है यज्ञके लिये जो कुण्ड किया गया था

वह देववापी कहीं गई है ॥ ११ ॥ और जिसलिये पशु पातित किया गया है उसी कारण वे पशुपति कहे गये हैं उसमें नहाकर पवित्र होकर जो पुरुष पशुपतिजी को देखता है ॥ १२ ॥ वह पशुयोनिमें प्राप्त भी पितरोंको उच्चारता है और सुवर्ण, मणि व मुंगाओं से संयुत व सब कामना प्राप्तवाले विमानों के द्वारा ॥ १३ ॥ दिव्य शिवपुर को जाता है जहां कि महेश्वर देवजी हैं वैसेही मनुष्य रूपकुंड में नहाकर सुरुपवान् होता है ॥ १४ ॥ और स्वर्ग में सदैव गंधर्वों से चाहने योग्य शरीरवाला होता है और अंगकुंड में नहाकर व पवित्र होकर जो सावधान मनुष्य ॥ १५ ॥ पहले कामदेव से पूजेहुये देवदेवेश शिवजी को देखता है वह चाहेहुये मनोरथ को प्राप्त

शुपतिः स्मृतः ॥ तस्यां स्नात्वा शुचिर्भूत्वा पश्येत्पशुपतिं न्युयः ॥ १२ ॥ उद्धरेत्सपितृन्व्यास पशुयोनिगतानपि ॥ सुवर्णमपि मुक्ताढ्यैर्विमानैस्सर्वकामैः ॥ १३ ॥ याति रुद्रपुरं दिव्यं यत्र देवो महेश्वरः ॥ रूपकुण्डे नरस्स्नात्वा सुरू पो जायेते तथा ॥ १४ ॥ स्वर्गसदैव गन्धर्वैस्सृष्टहृणीयवपुर्भवेत् ॥ कुण्डे स्नात्वा प्यनङ्गे यश्शुचिर्भूत्वासमाहितः ॥ १५ ॥ पश्येच्च देवदेवेश मनङ्गेनाचिंत्य भूरा ॥ कामं सलभते भीष्टं नृतोयाति शिवालयम् ॥ १६ ॥ आघाटे लुसिताष्टम्यां जागरं यस्तु कारयेत् ॥ केदारयत्फलं प्रोक्तं तत्समानमवाप्नुयात् ॥ १७ ॥ करीकुण्डे नरस्स्नात्वा विश्वरूपं नृतुयोर्ययेत् ॥ मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं सगच्छति ॥ १८ ॥ अजागन्धे नरः स्नात्वा दृष्ट्वा ब्रह्मेश्वरं शिवम् ॥ ब्रह्महत्यासंमपां तत्क्षणं तस्य व्यपोहति ॥ १९ ॥ चक्रतीर्थं नरस्स्नात्वा चक्रस्वामिं नमस्करयेत् ॥ जायेते स नरो व्यास चक्रवर्ती सदाशु वि ॥ २० ॥ सिद्धेश्वरश्च यः पश्येत् स्नात्वा सुविधिपूर्वकम् ॥ कामिकेन विमानेन रुद्रलोकं सगच्छति ॥ २१ ॥ सोमव

होता है और मरकर शिवजी के स्थान को जाता है ॥ १६ ॥ और वहापर आषाढ़ महीने में शुक्लपक्षकी अष्टमी में जो जागरण करता है वह केदारक्षेत्र में जो फल कहा गया है उसके समान फल को पाता है ॥ १७ ॥ व जो पुरुष करीकुण्ड में नहाकर विश्वरूप शिवजी को पूजता है वह सब पापों से छुट जाता है और विष्णु जी के लोकको प्राप्त होता है ॥ १८ ॥ व अजागन्ध नामक तीर्थ में नहाकर व ब्रह्मेश्वर शिवजी को देखकर वह ब्रह्महत्या के समान पातक को उसीक्षण नाश करता है ॥ १९ ॥ और जो पुरुष चक्रतीर्थ में नहाकर चक्रस्वामी शिवजी को पूजता है वह हे व्यास जी ! सदैव चक्रवर्ती के समान पृथ्वी में होता है ॥ २० ॥ और जो

मनुष्य भलीभाँति विधिपूर्वक नहाकर सिद्धेश्वरजी को देखता है वह कामनासंयुत विमान के द्वारा शिवलोक को जाता है ॥ २१ ॥ और सोमवतीतीर्थ में नहा कर इसके अनन्तर जो पुरुष सोमेश्वर जी को देखता है वह चन्द्रमा के समान निर्मल होकर चन्द्रलोक में प्रसन्न होता है ॥ २२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदेवीदयाभिरुचितायांभापाटीकायासोमेश्वरादिवर्णननामसप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥

॥ • ॥

दो० । सोमवती नामक यथा भयो तीर्थ विख्यात । अतिसर्वे अध्याय में सोइ चरित आख्यात ॥ व्यास जी बोले कि सोमवती नामक तीर्थ व सोमेश्वर नामक

त्यान्नरस्नात्वा सोमेश्वरमथार्चयेत् ॥ सोमवन्निर्मलोभृत्वा सोमलोकैसमोदते ॥ २२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे सोमेश्वरादिवर्णननामसप्तत्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३७ ॥ * ॥ * ॥

व्यासउवाच ॥ तीर्थसोमवतीनाम लिङ्गसोमेश्वरन्तथा ॥ अभूदेतत्कथन्नाम श्रोतुमिच्छामितत्त्वतः ॥ १ ॥ सनत्कुमारउवाच ॥ शृणुव्यासयथोत्पन्नं सोमतीर्थमुशोभनम् ॥ सोमेश्वरन्तथालिङ्गमेतत्सत्यंवदामिते ॥ २ ॥ योदेवो भगवान्सोमो लोकस्याप्यायनं परम् ॥ आसीत्तस्यपुराव्यास पिताविप्रोमहातपाः ॥ ३ ॥ अवन्त्याञ्चमहाभागो यो त्रिनामातपोनिधिः ॥ वर्षाणां त्रीणि दिव्यानि सहस्राणितपोमहत ॥ ४ ॥ ऊर्ध्वबाहुस्सर्वैतेपे ब्रह्मध्यानपरायणः ॥ ऊर्ध्वगंतंततोव्यास ब्रह्मतेजोमहात्मनः ॥ ५ ॥ नेत्राभ्यांतस्यसुखाव काशयंश्चादिशोदश ॥ तेजस्तत्सहसादृष्ट्वा त

लिंग यह कैसे नाम हुआ है इसको मैं यथार्थ सुना चाहता हूँ ॥ १ ॥ सनत्कुमार जी बोले कि हे व्यासजी ! सुनिये कि जिस प्रकार अति उत्तम सोमतीर्थ उत्पन्न हुआ है व जिस भाँति सोमेश्वर लिंग हुआ है यह तुमसे सत्य कहता हूँ ॥ २ ॥ हे व्यास जी ! जो भगवान् सोमदेवजी लोक के परमवृत्तिकारक हैं पुरातन समय उनके पिता विप्र बड़े तपस्वी हुये हैं ॥ ३ ॥ जो तपस्या के निधान महाभाग अत्रि नामक उज्जैनी पुरीमें हुये हैं ब्रह्मध्यान में तत्पर उन ऊर्ध्वबाहु मुनिने देवताओं की तीन हजार वर्षोंतक बड़ी तपस्या किया है तदनन्तर हे व्यास जी ! उन महात्मा का ब्रह्मतेज ऊपर गया ॥ ४ ॥ और दशों दिशाओं को शोभित करता हुआ

वह तेज उनके नेत्रों से बह चला तदनन्तर आपही से देशों में उपजे हुये उस तेज को देखकर अचानकही ॥ ६ ॥ जब उस सबको धारण करने के लिये दिशायें न समर्थ हुई तब हे व्यास जी ! वह असह्य तेज दिशाओं से बह चला ॥ ७ ॥ और सब लोकों को प्रकाशित करता हुआ वह पृथ्वी में गिर पड़ा तदनन्तर उससे शीतल किरणोंवाला तथा मनुष्यों को प्यारा चन्द्रमा पैदा हुआ ॥ ८ ॥ व हे व्यास जी ! उसी तेजसे सोमानदी उत्पन्न हुई और अमृत से बहुतही पूरित वह नदी शिप्रा नदी में पैठ गई ॥ ९ ॥ उसी कारण बहुत पुण्यदायिनी सोमवती शिप्रा प्रसिद्ध है सोम से युक्त शिप्रा नदी को देखकर मनुष्य पातक को नाश करता

तो देशोद्भवंस्वतः ॥ ६ ॥ दिशश्चतस्रदव्यास सर्वान्धर्तुमशक्नुवन् ॥ सुश्रावचतदादिग्भ्यस्तद्धितेजोतिदुस्सहम् ॥
७ ॥ लोकांश्चमासयन्सर्वान् धरण्यावैपपातह ॥ सोमोजातस्ततस्तेन शीतांशुश्चजनप्रियः ॥ ८ ॥ सरिस्सोमासमुत्पन्ना व्यासतेनैवतेजसा ॥ प्रविष्टासानदीशिप्रा ममृतेनातिपूरिता ॥ ९ ॥ ततस्सोमवतीशिप्रा विख्याताह्यतिपुरयदा ॥ सोमयुक्तानदीशिप्रां दृष्ट्वापापंव्यपोहति ॥ १० ॥ ख्याताचत्रिषुलोकेषु पापिनांपुण्यदायिनी ॥ ब्रह्महावासुरापोवा स्तेयोवागुरुस्तल्पगः ॥ ११ ॥ चत्वारोप्यत्रपापेन मुच्यन्तेदर्शनाद्भुवम् ॥ अमासोमौयदायुक्तौ सोमवत्यांतदामुने ॥ १२ ॥ स्नानंदानंचयोधीमाज्जपहोमंसमाचरेत् ॥ अक्षयंतस्यतत्सर्वं यावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥ १३ ॥ तिलोदकप्रदानेन पिण्डदानेनकालिज ॥ अकालेकालिकीर्तुषि पितृणाञ्चयथोदिता ॥ १४ ॥ सर्वत्रदुर्लभाशिप्रा सोमस्सोमग्रहस्तथा ॥

॥ १० ॥ और पापियों को पुण्यदायिनी वह नदी तीनों लोकों में प्रसिद्ध है ब्रह्मघाती या मदिरा पीनेवाला व चोर अथवा गुरुकी शय्या पर बैठनेवाला या गुरु की स्त्री से व्यभिचार करनेवाला मनुष्य ॥ ११ ॥ चारों भी यहाँ दर्शन से निश्चय कर पातक से छूट जाते हैं हे मुने ! अमावस व सोमवार जब युक्त हों तब सोमवती में ॥ १२ ॥ जो बुद्धिमान् मनुष्य स्नान व दान, जप तथा होम करता है उसका वह सब तबतक अक्षय होता है जबतक कि चन्द्रमा व सूर्य रहते हैं ॥ १३ ॥ हे कालिज ! यद्वापर असमय में तिल व जल के दान से तथा पिण्डदान से पितरों की समयवाली यथोक्त तृप्ति होती है ॥ १४ ॥ सब कहीं शिप्रा नदी दुर्लभ है

और सोम व सोमग्रह तथो सोमेश्वर व सोमवार पांच सकार दुर्लभ है ॥ १५ ॥ हे व्यासजी ! शिप्रानदी व सोमतीर्थ का जल कोटितीर्थों के फलको देनेवाला है और अमावस व सोमवार के संयोगमें पितृतीर्थ के समान कहा गया है ॥ १६ ॥ यदि अमावस तिथिमें सोमवार व व्यतीपात होवै तो गयासे सौगुना फल सोमवती में कहा गया है ॥ १७ ॥ इस प्रकार हे महामुने ! यहां पर सोमवतीतीर्थ उत्पन्न हुआ है इसके अनन्तर पृथ्वी में गिरेहुये सोम को देखकर हे व्यासजी ! उन जगद्गुरु व वेदमय तथा धर्मज्ञ और सत्यसंग्रह ब्रह्माजी ने लोकों के हितकी कामना से उनको रथपै स्थापित किया ॥ १८ ॥ १९ ॥ उस समय हजार घोड़ों से संयुत रथ ब्रह्माजी

सोमेश्वरसोमवारससकाराः पञ्चदुर्लभाः ॥ १५ ॥ शिप्रामोमजलंव्यास कोटितीर्थफलप्रदम् ॥ अमामोमसमायोगे पितृतीर्थसमंस्मृतम् ॥ १६ ॥ अमायांसोमवारश्चेद् व्यतीपातोयदाभवेत् ॥ शतगुणंगयायास्तु सोमवत्यांप्रकीर्तितः ॥ १७ ॥ एवं सोमवतीतीर्थं जातमत्रमहामुने ॥ सोमं दृष्ट्वा तथपतितं त्रितौ ब्रह्मा जगद्गुरुः ॥ १८ ॥ रथे तं स्थापयामास लोकानां हितकाम्यया ॥ स तु वेदमयो व्यास धर्मज्ञ सत्यसंग्रहः ॥ १९ ॥ युक्तो वाजिसहस्रेण ब्रह्मणा प्रेरितस्तदा ॥ दृष्ट्वा सोमं ततो देवा रथे तं ब्रह्मणा युतम् ॥ २० ॥ तुष्टुबुधस्सर्वभावेन हृष्टाः सर्वे समाहिताः ॥ तस्य संस्तूयमानस्य तेजस्सोमस्य भास्वरम् ॥ २१ ॥ आप्यायमानं त्रील्लोकान् पपात धरणीतले ॥ ब्रह्मा तेन रथेनाथ सागरान्तां वसुन्धराम् ॥ २२ ॥ त्रिसप्तकृत्वोतिशयाच्चकार सप्रदक्षिणम् ॥ तस्य यत्पतितं तेजो व्याससोमस्य शीतलम् ॥ २३ ॥ तदेवौपधयो दिव्या जाता सुविमुनिर्मलाः ॥ याभिर्धियाँ ह्ययं लोकः प्रजाश्चैव चतुर्विधाः ॥ २४ ॥ तुष्टोथ भगवान्सोमो जगतस्सर्वदोमुने ॥ से प्रेरित हुआ तदनन्तर रथपै ब्रह्मा से संयुत चन्द्रमा को देखकर सावधान होतेहुये सब देवताओंने समस्तभाव से प्रसन्न होकर स्तुति किया स्तुति किये जातेहुये उन चन्द्रमा का प्रकाशवान् तेज ॥ २० ॥ २१ ॥ जो कि तीनो लोकों को तृप्तिकारक था वह पृथ्वी में गिरपड़ा इसके अनन्तर उस रथ से समुद्र अन्तवाली पृथ्वीकी ॥ २२ ॥ अतिशय से इक्कीसवार उन्होंने ने प्रदक्षिणा किया हे व्यासजी ! उन चन्द्रमा का गिरा हुआ जो शीतल तेज था ॥ २३ ॥ वही पृथ्वी में बहुत निर्मल व दिव्य ओषधिया हुई जिनसे कि यह संसार व चार प्रकार के प्रजा धारण किये जाते हैं ॥ २४ ॥ इसके अनन्तर हे मुने ! ससार को सब कुछ देनेवाले भगवान्

चन्द्रमाजी ने प्रसन्न होकर दश हजार वर्षों तक बड़ा असह्य तप किया ॥ २५ ॥ तदनन्तर लोकों के पितामह (ब्रह्मा) जी ने उन चन्द्रमाके लिये स्वाभिताको दिया और बीजों व श्रोषधियों का चन्द्रमा राजा हुआ ॥ २६ ॥ और प्रचेता के पुत्र दत्त जीने चन्द्रमा के लिये नक्षत्रसंज्ञक महाव्रतवाली सत्चाईम दाक्षायणी स्त्रियों को दिया ॥ २७ ॥ उस समय उस बड़ी भारी राज्यको पाकर स्त्रियों से संयुत चन्द्रमा ने हजारों व सैकड़ों दक्षिणावाले राजसूय यज्ञका प्रारम्भ किया ॥ २८ ॥ उस में भगवान् आत्रिजी होता व भगवान् भृगुजी अध्वर्यु (यजुर्वेदी) और हिरण्यगर्भ ब्रह्माजी उद्गाता (सामवेदी) व ब्रह्मा ब्रह्मता को प्राप्तहुये ॥ २९ ॥ और सनका-
दशवर्षसहस्राणि तेषेतिदुस्सहंतपः ॥ २५ ॥ ततस्तस्मैददौस्वाम्यं ब्रह्मलोकपितामहः ॥ वीजौषधीनांविप्राणां सोमोराजावभूवह ॥ २६ ॥ सप्तविंशतिसोमाय दाक्षायण्योमहाव्रताः ॥ पत्न्यःप्राचेतसोदत्तो ददौनक्षत्रसंज्ञकाः ॥ २७ ॥ सतत्प्राप्यमहद्राज्यं सोमोभार्यायुतस्तदा ॥ समारेभेराजसूयं सहस्रशतदक्षिणम् ॥ २८ ॥ होताचभगवान्त्रिरध्वर्युर्भगवान्भृगुः ॥ हिरण्यगर्भश्चोद्गाता ब्रह्माब्रह्मत्वमेयिवान् ॥ २९ ॥ सदस्योभगवान्विष्णुस्सनकादिमुखैर्वृक्षमीस्तं देव्योदिव्यास्मिषेवरे ॥ ३० ॥ सिनीवालीकुहूश्चैव द्युतिःपुष्टिःप्रभावसुः ॥ कीर्तिर्धृतिश्चलन्दिशः ॥ ३१ ॥ तस्यतत्प्राप्यदुष्प्राप्यमैश्वर्यमृषिसंस्कृतम् ॥ अतीवराजतेचन्द्रो दशप्रोद्भासयस्पतेस्तदाभार्या तारानाम्नोयशस्विनीम् ॥ जहारतमसासाध्वीमवमान्याङ्गिरस्सुतम् ॥ ३२ ॥ वाच्यमानस्तदासोमो
दिकों से संयुत भगवान् विष्णुजी सदस्य हुये उन चन्द्रमा ने सावधान होकर तीन लोक दक्षिणा दिया ॥ ३० ॥ और सिनीवाली, कुहू, द्युति, पुष्टि, प्रभाव, वसु, कीर्ति, धृति व लक्ष्मी इन दिव्य देवियों ने उन चन्द्रमा की सेवा किया ॥ ३१ ॥ और सब देवियों से पूजित तथा विकलतारहित चन्द्रमा ने अवभृथ याने यज्ञान्त स्नानको पाकर दशों दिशाओंको प्रकाशित करताहुआ शोभित भया ॥ ३२ ॥ हे व्यास जी! ऋषियों से संस्कार कियेहुये उस दुर्लभ ऐश्वर्यको प्राप्त होकर उससमय उन अमृतमय चन्द्रमा की बुद्धि अभित होगई ॥ ३३ ॥ तब आङ्गिराके पुत्र बृहस्पतिजी को अपमान कर उन बृहस्पति की तारा नामक यशस्विनी तथा उत्तम आचरण

वाली स्त्रीको अज्ञान से हरलिया ॥ ३४ ॥ उस समय देवताओं तथा देवर्षियों से निन्दा किये जातेहुये चन्द्रमा ने उन अङ्गिरा के पुत्र बृहस्पति जी के लिये तारा को नहीं विदाकिया ॥ ३५ ॥ उसके उपरान्त इन्द्र ने क्रोधसे बृहस्पति का पत्न लिया क्योंकि वे बड़े तेजस्वी इन्द्रजी पितापूर्वक बृहस्पतिजी के शिष्य थे ॥ ३६ ॥ तदनन्तर हे व्यासजी ! ब्रह्मा पर इन्द्र व बृहस्पति का तथा देवताओं व दैत्यों का भयानक तथा भयङ्कारक बड़ा भारी युद्धहुआ ॥ ३७ ॥ तदनन्तर डरहेये मन्त्र देवता ब्रह्मा के शरणमें गये और उन्होंने ब्रह्माके आगे चन्द्रमा व इन्द्र के युद्धको कहा ॥ ३८ ॥ देवताओं के वचन को सुनकर देवताओं समेत ब्रह्माजी ने युद्धके समय में

देवैर्देवर्षिभिस्तथा ॥ नैवव्यसर्जयत्तारां तस्माद्वाङ्गिरसायच ॥ ३५ ॥ बृहस्पतेस्ततः पद्मं शक्रोजग्राहकोपतः ॥ सहि शिष्योमहातेजाः पितुः पूर्वबृहस्पतेः ॥ ३६ ॥ ततोयुद्धमभूत्तत्र सुधोरंशक्रसोमयोः ॥ देवानां दानवानाञ्च व्यासत्रासं क्लृप्तमहत् ॥ ३७ ॥ सर्वेभीतास्ततो देवा ब्रह्माणं शरणङ्गताः ॥ अग्रतो ब्रह्मणो युद्धं कथितं सोमशक्रयोः ॥ ३८ ॥ देवानां वचनं श्रुत्वा मादुर्दैवैः पितामहः ॥ आगत्य युद्धसमये वारयद्देवानवान् ॥ ३९ ॥ वारितास्ते स्थितास्तत्र युद्धं त्यक्त्वा सुरासुराः ॥ तारामादाय सतदा ददावाङ्गिरसे द्विज ॥ ४० ॥ ताञ्च सप्रसवां दृष्ट्वा आहभार्यं बृहस्पतिः ॥ अन्यदीयोनतेयोन्यां गर्भार्थं धार्यः कथञ्चन ॥ ४१ ॥ उत्ससर्जतस्तारा कुमारन्देवरूपिणम् ॥ ऐषिकां स्त्रिममादाय ज्वलन्तमिव पावकम् ॥ ४२ ॥ स तेजो जातमानोऽपि देवानामाक्षिप धराः ॥ ततस्संशयमापन्ना ऊचुस्तारा न्दिवौकसः ॥ ४३ ॥ कस्यायं ब्रूहि सु

आकर देवताओं तथा दानवों को मना किया ॥ ३५ ॥ वहां पर मना कियेहुये वे देवता व दैत्य युद्धको छोड़कर स्थित हुये और हे द्विज ! उस समय उन चन्द्रमा ने तारा को लेकर बृहस्पति के लिये दिया ॥ ४० ॥ और प्रसव समेत याने गर्भिणी उस स्त्री को देखकर बृहस्पति जी बोले कि अन्य पुरुष का गर्भ तुमको योनि में किसी प्रकार न धारण करना चाहिये ॥ ४१ ॥ तदनन्तर देवरूपी कुमार को ताराने त्याग दिया जैसे कि ऐषिक स्त्रको लेकर जलतेहुये अग्निजी हों ॥ ४२ ॥ पैदा होतेही उस बालक ने देवताओं के तेज व यशको आक्षेप किया तदनन्तर संशय को प्राप्त होतेहुये देवताओं ने तारासे कहा ॥ ४३ ॥ कि हे सुभगे ! यह पुत्र किसका है

चन्द्रमाका या बृहस्पति कहै ताराने देवताओं से न कहा फिर ब्रह्माने उससे पूछा ॥ ४४ ॥ कि हे तारे ! इस विषयमे जो सत्य हो उसको कहिये कि यह किसका पुत्र है हाथों को जोड़े हुई वह तारा वरदायक व व्यापक ब्रह्मा जी से यह बोली ॥ ४५ ॥ कि देवताओंके समान यह महासौम्य कुमार चन्द्रमा का है ब्रह्मा जीने चन्द्रमा के उस पुत्र को जानकर लिपटाकर ॥ ४६ ॥ उससमय उस पुत्र का बुध ऐसा नाम किया पराई स्त्रीके हरने से जो शरीर को असह्य पाप था ॥ ४७ ॥ उससे चन्द्रमा जी उससमय क्षयरोगसे संयुत होकर कुष्ठी हुये तदनन्तर विधिपूर्वक राज्यपै अपने पुत्रको स्थापितकर ॥ ४८ ॥ जितेन्द्रिय सोमजी सोमवारके दिन अमावसके संयोग

भगे सोमस्याथबृहस्पतेः ॥ नाचचक्षेदेवतानां वेधाःप्रच्छताम्पुनः ॥ ४४ ॥ यदन्नसत्यंतद्ब्रूहि तारेकस्यसुतोह्ययम् ॥ साप्राञ्जलिरुवाचेदं ब्रह्माणंवरदंविभुम् ॥ ४५ ॥ सोमस्येतिमहासौम्यः कुमारोदेवसन्निभः ॥ सोमस्यतंसुतंज्ञात्वा परिष्वज्यपितामहः ॥ ४६ ॥ बुधइत्यकरोन्नाम तस्यपुत्रस्यवैतदा ॥ परदारापहाराच्च यत्पापंतनुदुस्सहम् ॥ ४७ ॥ तेन सोमोभवत्कुष्ठीक्षयरोगयुतस्तदा ॥ ततोराज्येस्वकंपुत्रंस्थापयित्वायथाविधि ॥ ४८ ॥ अवन्तीमाजगामाशु सोमोदेव दिदृक्षया ॥ सोमाहेसोमवत्याञ्च अमायोगेजितेन्द्रियः ॥ ४९ ॥ स्नात्वासस्पृजयामास सोमस्सोमेइवरततः ॥ तस्यभक्त्याचसन्तुष्टः प्राहसोमंमहेइवरः ॥ ५० ॥ मत्प्रसादाद्वपुःकान्तं तवसोमभविष्यति ॥ सोमेइवरमितिख्यातं भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ॥ ५१ ॥ एवन्तुव्यासतत्तीर्थं लिङ्गंचैवातिदुर्लभम् ॥ कथितंतथ्यभावेन मयातुष्टेनसाम्प्रतम् ॥ ५२ ॥ श्रावणंप्राप्ययोमासं सोमनाथंजितेन्द्रियः ॥ नित्यंपश्येन्नरोव्यास तस्यपुण्यफलंशृणु ॥ ५३ ॥ सौराष्ट्रेसोमना

में सोमवती में शिवदेवजी के दर्शनकी इच्छासे अवन्ती (उज्जैनी) पुरीमें शीघ्रही गये ॥ ४९ ॥ तदनन्तर सोमवती तीर्थ में नहाकर चन्द्रमाने सोमेश्वरजीको पूजन किया उनकी भक्तिसे प्रसन्न होतेहुये महेइवर देवजी चन्द्रमा से बोले ॥ ५० ॥ कि हे सोमजी ! मेरी प्रसन्नतासे तुम्हारा सुन्दर शरीर होगा भुक्ति व मुक्ति का देनेवाला सोमेश्वर ऐसा लिङ्ग प्रसिद्ध है ॥ ५१ ॥ इसप्रकार हे व्यासजी ! उस तीर्थ व अतिदुर्लभ लिङ्गको प्रसन्न होतेहुये मैंने इस समय सत्यता से कहा है ॥ ५२ ॥ हे व्यास जी ! श्रावणमास को प्राप्त होकर जो जितेन्द्रिय पुरुष नित्य सोमनाथजीको देखताहै उसके पुण्य का फल सुनिये ॥ ५३ ॥ कि सौराष्ट्रदेश में सोमनाथ के प्रतिदिन

पूजन के फलको वह मनुष्य पाता है हे व्यासजी ! इस विषय में विचार न करना चाहिये ॥ ५४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचितायाभाषा ॥

टीकायासोमवतीतीर्थमाहात्म्यनामाष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥

दो० । प्रापिजन जेहि नरक में जो दुख पावत जाय । उन्तालिसवें में कछो सोइ चरित सुखदाय ॥ सनत्कुमार जी बोले कि इस समय इस नरकतीर्थ के माहात्म्य को सुनिये कि नरकतीर्थ में नहाकर व महेश्वर देव जी को देखकर ॥ १ ॥ मनुष्य कभी नरक को नहीं देखता है यद्यपि ब्रह्मवाती भी होवै व्यास जी बोले कि

थस्य पूजायाः प्रत्यहं फलम् ॥ लभते स नरोऽन्यास नात्र कार्या विचारणा ॥ ५४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे सोमवतीतीर्थमाहात्म्यनामाष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

सनत्कुमार उवाच ॥ तीर्थस्य नरकस्यास्य माहात्म्यं शृणु साम्प्रतम् ॥ तीर्थे च नरके स्नात्वा दृष्ट्वा देवं महेश्वरम् ॥ १ ॥ न पश्येन्नरकं कापि यद्यपि ब्रह्महा भवेत् ॥ व्यास उवाच ॥ कियन्तो नरकास्तात कस्मिन् स्थाने प्रतिष्ठिताः ॥ २ ॥ तन्ति केन पापेन पापिनस्तेषु दुःखिताः ॥ तत्कथं प्राणिनस्तत्र गच्छन्ति पापकारिणः ॥ ३ ॥ एतत् सर्वं समाख्याहि यदि तुष्टोसि मे प्रभो ॥ ४ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ शृणुष्व नरकान्यास यावन्तो यत्र संस्थिताः ॥ न लभ्यन्ते यथा ते तु सत्यमेतद् दामिते ॥ ५ ॥ पातालानि लयास्सर्वे विख्याता दुःखदास्सदा ॥ पुण्यप्लावेन ते सर्वे तिर्यग्यान्ति स्वकर्मभिः ॥ ६ ॥

शैरवशूकरो रौद्रस्तालो विनशकस्तथा ॥ तप्तकुम्भस्तु तप्तायो महाज्वालस्तथैव च ॥ ७ ॥ कुम्भीपाकः क्रकचनस्तथा हे तात ! कितने नरक हैं व किस स्थान में प्रतिष्ठित है ॥ २ ॥ और किस पाप से दुःखित पापी लोग उन में गिरते हैं और वह कैसा है कि पापकारी प्राणी वहां को जाते हैं ॥ ३ ॥ हे प्रभो ! यदि मेरे ऊपर प्रसन्न हो तो इस सब वृत्तान्त को कहिये ॥ ४ ॥ सनत्कुमार जी बोले कि हे व्यासजी ! जहां पर जितने स्थित हैं उन नरकों को सुनिये कि जिस प्रकार वे नहीं मिलते हैं यह मैं तुमसे सत्य कहता हूं ॥ ५ ॥ कि पाताल में स्थानवाले वे सब सदैव दुःखदायक प्रसिद्ध हैं और पुण्य के नाश से वे सब अपने कर्मों से तिर्यग्योनि में प्राप्त होते हैं ॥ ६ ॥ शैरव, शूकर, रौद्र, ताल, विनशक, तप्तकुम्भ, तप्ताय और महाज्वाल ॥ ७ ॥ व. कुम्भीपाक, क्रकचन और

अतिदारुण, कुमिसुक्ति, रत्नाख्य, लालामन्त्रक व गंडक ॥ ८ ॥ अधोमुख, आस्थिभंग, यंत्रपीडनक, संदेश, रुधिरांग, असिपत्र व कुभोजन ॥ ९ ॥ इत्यादिक सब नरक बहुतही भयङ्कर है जो कि यमराज के स्थान में भयदायक प्रसिद्ध हैं ॥ १० ॥ उन में वे पुरुष गिरते हैं जो कि पापकर्मों में परायण होते हैं और गिरहुये वे पुरुष कर्मों के अनुसार पचते हैं ॥ ११ ॥ व विचित्र पीडाओं से बहुतही भयङ्कर कर्मका नाश होता है तर्चीहुई शृङ्खला (जंजीर) से हाथों को दृढ़तापूर्वक बाँधकर मनुष्य ॥ १२ ॥ बड़े भारी वृक्ष के शिखरों में यमदूतों से लटकाये जाते हैं और अपने कर्मों को शोचते हुये वे पुरुष निश्चल होकर चुप-चैवातिदारुणः ॥ कुमिसुक्तिश्चरत्ताख्यो लालामन्त्रश्चगण्डकः ॥ ८ ॥ अधोमुखश्चास्थिभङ्गो यन्त्रपीडनकस्तथा ॥ सन्दंशोरुधिराङ्गश्च असिपत्रकुभोजनौ ॥ ९ ॥ इत्येवमादयस्सर्वे नरकाभ्युदाहरणाः ॥ यमस्य विषये सन्ति श्रुता हि भयदायिनः ॥ १० ॥ पतन्ति पुरुषास्तेषु पापकर्मरताश्च ये ॥ पतिताश्च प्रपच्यन्ते नराः कर्मानुरूपतः ॥ ११ ॥ यातनाभिर्विचित्रा भीरौद्रकर्मक्षयोभृशम् ॥ सुगाढं हस्तयोर्वद्धा तप्तशृङ्खलया नराः ॥ १२ ॥ महावृक्षस्य शृङ्गेषु लम्ब्यन्ते यमकिङ्करैः ॥ शोचन्तः स्वानिकर्माणि तूष्णीं तिष्ठन्ति निश्चलाः ॥ १३ ॥ अग्निवर्णैः शङ्कुभिश्च लोहदण्डैस्सकण्टकैः ॥ हन्यन्ते किङ्करैर्धौरैस्समन्तात्पापकारिणः ॥ १४ ॥ ततः क्षणात्प्रतप्यन्ते वह्निना च विशेषतः ॥ समन्ततः प्रक्षिप्यन्ते कृत्ताश्च जर्जरीकृताः ॥ १५ ॥ कूटसाक्ष्यं तथा सम्यक्पक्षपातेन यो वदेत् ॥ यश्चान्यदन्तं ब्रूयात्स नरो याति रौरवम् ॥ १६ ॥ सुरापो ब्रह्माहर्ता सुवर्णस्य च शूकरम् ॥ प्रयान्ति नरकश्चैव तैस्संसर्गमुपेतियः ॥ १७ ॥ अणूना गुरुहन्ता च गोघ्नश्च मुनिसत्तम ॥ चापस्थितो होते है ॥ १३ ॥ और पापकारी पुरुष अग्नि के समान कीलों से व कौटों समेत दण्डों के द्वारा भयानक यमदूतों से सब ओर मारे जाते हैं ॥ १४ ॥ तदनन्तर क्षण भरमें विशेषकर अग्निसे तचाये जाते हैं व काटे तथा जर्जर किये हुये वे नर सब ओर फेंके जाते हैं ॥ १५ ॥ वैसेही जो पुरुष पक्षपात से भूठी गवाही कहता है और जो अन्य भूँठ कहता है वह पुरुष रौरव नरक को प्राप्त होता है ॥ १६ ॥ और मदिरा पीनेवाला व ब्रह्मघाती तथा सुवर्ण को चुरानेवाला और जो पुरुष उनसे संसर्ग (मेल) को प्राप्त होता है वे नर शूकर नामक नरकको जाते हैं ॥ १७ ॥ व हे मुनिश्रेष्ठ ! गर्भघाती, गुरुघाती व गोघाती ये पुरुष रौद्रनामक नरकको जाते

हैं और जो विद्वामघाती हैं वे भी गैडनरकको प्राप्त होते हैं ॥ १८ ॥ और स्वर्णको चुरानेवाला नर वैतालनामक नरक में जाता है और जो निन्दितकर्म करता है व जो गौवों को मना करता है ॥ १९ ॥ वह पुरुष अतिभयानक विनशक नामक नरक में जाता है और जो स्वामी से द्रोह करनेवाला भयंकर पुरुष है वह तप्तकुम्भ नरक में गिराया जाता है ॥ २० ॥ और जो भक्तको छोड़ता है वह तप्तलोह नरक में पचता है व जो पतोहू तथा कन्या से संग करता है वह महाज्वाल नामक नरक में गिराया जाता है ॥ २१ ॥ और देवताओं के दूषक व वेदों के बेचनेवाले पुरुष ऊपर पांवों से उपलब्धित होकर नीचे सुखकरके कुम्भीपाक

यान्त्येतेनरकरोद्रं येचविश्वामघातकाः ॥ १८ ॥ स्वर्णस्तेयीचवेताले तथेवशुस्तल्पगः ॥ करोतिकर्मैवेनिन्द्यं यश्चगाः प्रति
पेधयेत् ॥ १९ ॥ नरोविनशकेयाति नरकेभृशदारुणे ॥ स्वामिद्रोहीचयोरौद्रस्तप्तकुम्भेसपात्यते ॥ २० ॥ तप्तलोहेषुप
च्येत यस्तुभक्तं परित्यजेत् ॥ स्नुषां सुताञ्च योगच्छेन्महाज्वाले सपात्यते ॥ २१ ॥ कुम्भीपाके प्रयात्येव पादैरुद्ध्वैर
धोमुखः ॥ देवदूषयितारश्च वेदविक्रयकास्तथा ॥ २२ ॥ परस्त्रीगामिनो ये च यान्तिककचनेतुते ॥ चौरौ तिदारुणे याति
मर्यादाभेदकस्तथा ॥ २३ ॥ देवद्विजपितृहेष्टा रत्नदूषयिताचयः ॥ सयातिक्रिमिभक्षैर्वै रक्ताख्ये च पतन्ति वै ॥ २४ ॥ पि
तृदेवगुरूणाञ्च सपर्योनकरोतियः ॥ लालाभक्षे सयात्युग्रैः कूटकर्मकरोतियः ॥ २५ ॥ अन्त्यजेभ्योऽग्रहीता च नरकेया
त्यधोमुखे ॥ अस्थिमङ्गप्रयात्येव एकोमिष्टान्नमुद्गरः ॥ २६ ॥ कृतघ्नः पिशुनः क्रूरः कूटमानी विडम्बकः ॥ यन्त्रपी

नरक में जाता है ॥ २२ ॥ और जो पराई स्त्री के निकट जानेवाले हैं वे क्रकचन नामक नरक को जाते हैं और मर्यादा को तोड़नेवाला व चोर अतिदारुण नरक में प्राप्त होता है ॥ २३ ॥ और देवता, ब्राह्मण व पितरों से वैर करनेवाला और जो स्त्रियों को दूषण देनेवाला होता है वह क्रिमिभक्ष नरक में और रक्तनामक नरक में प्राप्त होता है ॥ २४ ॥ और पितर, देवता व गुरुवर्गों को सेवा नहीं करता है व जो कूट याने कपटके कर्मको करता है वह लालाभक्ष नामक उग्र नरक में जाता है ॥ २५ ॥ और चाण्डालों से धन ग्रहण करनेवाला पुरुष अधोमुख नामक नरक में जाता है और एकही मिष्टान्न भोजन करनेवाला पुरुष अस्थिभग नामक नरक में जाता है ॥ २६ ॥

और कृतघ्न, दुगुल, क्रूर व कपटसे मान करनेवाला, विडम्बना करनेवाला और अन्यकी द्विपीहुई वस्तुको प्रकाश करनेवाला पुरुष यन्त्रगीडन नामक नरक में प्राप्त होता है ॥ २७ ॥ और लाज, मास व रसोंको बेचनेवाला और तिलोंका व रसका बेचनेवाला ब्राह्मण सेंदश नरकमें जाता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ २८ ॥ और मधुहा शाने शहद की मक्खियों को मारनेवाला व ग्रामनाशक पुरुष वैतरणी नदी में प्राप्त होता है और जो नर कर्म, मन व वचन से वर्ण व आश्रम के विरुद्ध कर्मको करते है वे महानदी में प्राप्त होते है और गुरुओं को अपमान करनेवाला व जो शालोंका दूषण देनेवाला है ॥ २९ ॥ ३० ॥ वैसेही पर्वोंका उल्लंघन करनेवाला पुरुष असिप-

डनकेयाति परगुह्यप्रकाशकः ॥ २७ ॥ लान्नामांसरसानाञ्च तिलानाञ्चरसस्यच ॥ विक्रयीब्राह्मणोयाति सन्दंशे
नान्नसंशयः ॥ २८ ॥ मधुहाग्रामहन्ताच यातिवैतरणीनदीम् ॥ वर्णाश्रमविरुद्धं कर्मकुर्वन्ति येनराः ॥ २९ ॥ कर्म-
णामनसावाचा महानद्यांप्रयान्ति ते ॥ गुरुणामवमन्ताचशाल्मदूषयिताचयः ॥ ३० ॥ असिपत्रेप्रयात्येवतथापर्ववि-
लङ्घकः ॥ धनयौवनमत्ताये मर्यादाभेदिनोनराः ॥ ३१ ॥ तेयान्तिनरकेधोरे असिपत्रेतिदारुणे ॥ असंस्कृतश्चर्यो
विप्रो दृषलीसेवतेतुवै ॥ ३२ ॥ दृषलीमिथुनाच्चैव पततस्ताबुभावपि ॥ उच्छिष्टायेस्पृशन्तीह गामग्निजननीहि
जान् ॥ ३३ ॥ तेपच्यन्तेकुभोज्येहि मित्रद्वेषीविशेषतः ॥ पङ्क्तिभेदंदिवास्वप्नं येनराब्रह्मचारिणः ॥ ३४ ॥ पुत्रैर
ध्यापितायेवै तेपतन्ति कुभोजने ॥ एतेचान्येचनरकाः शतशोथसहस्रशः ॥ ३५ ॥ तत्रदुष्कृतकर्माणः पच्यन्तेया

त्रवननामक नरक में प्राप्त होता है और धन व यौवननो मत्त व मर्यादाको तोड़नेवाले जो पुरुष होते हैं ॥ ३१ ॥ वे असिपत्र नामक बड़े भयंकर व घोर नरक में प्राप्त होते हैं और संस्काररहित जो ब्राह्मण शूद्रा स्त्री को सेवता है ॥ ३२ ॥ शूद्राके मिथुनसे वे दोनों भी नरक में पतित होते है और इस ससारमें जो जुंटे पुरुष गऊ, अग्नि, माता व ब्राह्मणों का स्पर्श करते हैं ॥ ३३ ॥ वे कुभोज्य नामक नरक में पचते हैं और मित्रसे द्वेष करनेवाला नर विशेषकर उस नरक में पचता है और जो ब्रह्मचारी पुरुष पंक्तिभेद व दिनसे शयन करते हैं ॥ ३४ ॥ और जो पुत्रों से पढ़ाये जाते हैं वे कुभोजन नामक नरकमें पतित होते है ये और अन्य सैकड़ों व हजारों नरक

कं.पुं १४३

दो० । अहै दीपकें दानकर जौन सुभग माहात्स्य । चालिसवें अर्ध्यायमें सोइ चारत सवात्स्य ॥ व्यासजी बाल कि ह तात ! दत्त शर में जब और जिस विधि से वह दिया जाता है उस सब उत्तम चरित्र व दीपक की उत्पत्तिको मुझ से कहिये ॥ १ ॥ सनत्कुमारजी बोले कि पुरातन समय सतयुग में जब शिवजी पार्वतीजी से याचना करने के लिये गये तब उन पार्वतीने भी उन सदाशिवजी से याचना किया ॥ २ ॥ पार्वतीजी बोलीं कि हे शम्भो ! मेरे शरीर में रूप

को हरनेवाली श्यामता है इसलिये हे दिव्यनयन, शङ्करजी ! मैं बहुतही याचना करतीहूँ कि प्रसन्न हूँजिये ॥ ३ ॥ शिवजी ने उनसे कहा कि तुम मुझको बहुतही उत्तम लगती हो जैसे कि पद्म याने पलकों की पंक्तिसे सदैव लोचन बहुतही शोभित होते हैं ॥ ४ ॥ व जैसे श्वेत कमल पै भलीभांति बैठाहुआ अमर उसको शोभित करता है उन पार्वतीजी वृषासन धूर्जटि इन शिवजी से वैसेही याचना किया ॥ ५ ॥ कि विरूप व रूपके करनेवाले तुम जब मेरे वचन को न सुनोगे तब मैं उत्तम वैराग्यसे कठिन तप करूंगी ॥ ६ ॥ उन पार्वतीजी से कहेहुये शिवजीने भी उसके हाथको पकड़लिया और कभी शिवदेवजी ने उन प्यारी पार्वतीजी से रति

अतीवशोभनामम ॥ लोचनेपक्षमपङ्क्त्यैव शोभतेतितरांसदा ॥ ४ ॥ सिताब्जसंस्थितोभृङ्गो यथाशोभयतेचतम् ॥
तयातथायाचितोसौ धूर्जटिर्दृष्टभासनः ॥ ५ ॥ विरूपरूपकर्तात्वं नशृणोषिवचोयदा ॥ तदात्वहंसुवैराग्याच्चरयंदु
ष्करन्तपः ॥ ६ ॥ भवस्तयापिचोक्तस्तु तस्यावैपाणिमग्रहीत् ॥ कदाचिच्चङ्करोदेवो रतियाचितवान्प्रियाम् ॥ ७ ॥ रतिद
त्तवतीसातु जहांसनामर्कतयन् ॥ सुदुःखिताभवत्सातु तंविहायपराङ्मुखी ॥ ८ ॥ उवाचरोषसंयुक्ता स्मरन्तीदेवभाषि
तम् ॥ तपोवनं व्रजाम्यद्य सुगौरत्त्वोपलब्धये ॥ ९ ॥ सुवर्णरूपरूपिणी यदापुनर्भवामिचेत्तदातवानुरागिणी भवामिचै
वनान्यथा ॥ १० ॥ इतीदमेवजल्पती जगामविन्ध्यपर्वतं हरश्शुशोचतान्ततो गताक्कसाविहायमाम् ॥ ११ ॥ स्मरत्त
देवचेष्टितं यदेवपूर्वभाषितं तदैवमेवमथामतिर्मुदायदानमानिता ॥ १२ ॥ यतोमयाहिमाद्रिजा समस्तलोकमुन्दरी

मांगा ॥ ७ ॥ और उन पार्वतीजीने रति दिया व नाम कहेतेहुये शिवजी हसे और बहुत दुःखित होतीहुई वे पार्वतीजी उनको छोडकर विमुख हुई ॥ ८ ॥ और शिव देवजी के वचन को स्मरण करती हुई क्रोधसंयुत पार्वतीजी बोली कि आजही मैं उत्तम गौराको पानेके लिये तपोवनको जातीहूँ ॥ ९ ॥ यदि मैं सोनेके समान रूपवती फिर जब होऊंगी तब तुम्हारी प्रेमवती होऊंगी अथवा न होऊंगी ॥ १० ॥ इसप्रकार इसी वचनको कहतीहुई पार्वतीजी विन्ध्याचल पर्वत पै गई तदनन्तर शिवजीने उन का शोचकिया कि वे पार्वतीजी मुझको छोडकर कहाँ गई ॥ ११ ॥ शिवजीने उसी कर्मका स्मरणकिया जोकि पहले कहा था तभी मेरी बुद्धि वृथा होगई थी जब कि

मैंने हर्षसे उनको नहीं माना था ॥ १२ ॥ जिसलिये मैंने सब लोकों में सुन्दरी हिमालयकी कन्याकी पहलेही प्रशंसा नहीं किया इसीकारण मुझको छोड़कर वे चली गई ॥ १३ ॥ उन शिवजी ने यही कहा तदनन्तर अन्तर्द्धान होगये कि मैं प्यारी पार्वतीजी के ऐसे भारी वियोग को सहने के लिये नहीं उत्साह करता हूँ ॥ १४ ॥ तदनन्तर उससमय संसार बड़े भय से सयुत हुआ और देवता, दैत्य वं महर्षिलोग बड़े विपादको प्राप्त हुये ॥ १५ ॥ और घरोंको छोड़कर वे बड़े दुःखको प्राप्त हुये तथा उन्होंने विष्णुजी की अद्भुत उपमावाली उत्तम स्तुति किया ॥ १६ ॥ सनत्कुमारजी बोले कि जब बालचन्द्रमा भालवाले शिवदेवजी न देखपड़े तब

पूरेवनामिनन्दिता गताविहायमामिति ॥ १३ ॥ इतीदमेवसोवदद्गतस्त्वदर्शनंततः ॥ प्रियावियोगमीदृशं गुरुन्नसोऽहमुत्सहे ॥ १४ ॥ ततो जगत्तदाभवन्महाभयेन संयुतम् ॥ सुरासुरामहर्षयः परं विषादमभ्यगुः ॥ १५ ॥ विहायमन्दिराणिते परं विषादमागताः ॥ हरेस्स्तुतिं पराञ्चते प्रचक्रुर्द्धतोपमाम् ॥ १६ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ न दृश्यते यदारुद्रो देवो बालेन्दुशखरः ॥ नष्टालोकं जगत्सर्वं कान्तारमभवत्तदा ॥ १७ ॥ त्रीणि नेत्राणि रुद्रस्य यतस्सूर्येन्दुवह्नयः ॥ गते रुद्रे न ते भान्ति जगत्पस्मिन् शराचरे ॥ १८ ॥ ततस्तमसि दुस्तारे सम्भूते लोमहर्षणे ॥ अन्योन्यं हि न पश्यन्ति सुरा दैत्यास्तमो वृताः ॥ १९ ॥ एषा बुद्धिस्ततस्तेषामुत्पन्ना कार्यसिद्धये ॥ यथा बुद्ध्या जगन्नाथो ज्ञायते पार्वतीपतिः ॥ २० ॥ न ह्यालोको विना ते न शशिसूर्याग्निचक्षुषा ॥ परं परं ब्रुवन्ति तस्मद्दुःखितास्ते विसंज्ञया ॥ २१ ॥ हे देव हे सुने सिद्ध हे ऋषे हे निशा

नष्ट प्रकाशवाला समस्त संसार वन होगया ॥ १७ ॥ जिसलिये कि सूर्य, चन्द्रमा व अग्नि ये तीन शिवजी के नेत्र हैं उसीकारण शिवजीके अन्तर्द्धान होनेपर इस चराचर संसार में वे नहीं प्रकाश करते थे ॥ १८ ॥ तदनन्तर रामहर्षण व दुःखसे पार होनेवाले अन्धकार के उत्पन्न होनेपर अन्धकार से घिरे हुये देवता, दैत्य आपस में नहीं देखते थे ॥ १९ ॥ तदनन्तर कार्यकी सिद्धिके लिये उनके वह बुद्धि उत्पन्न हुई कि जिस बुद्धि से जगदीश व पार्वतीजी के पति शिवजी जाने जाते हैं ॥ २० ॥ चन्द्रमा, सूर्य व अग्नि नेत्रवाले उन शिवजी के बिना प्रकाश नहीं है इसप्रकार अचैतन्यतासे दुःखित होते हुये उन्होंने ने आपस में ऐसा कहा ॥ २१ ॥

कि हे देव, हे मुने, हे सिद्ध, हे ऋषे, हे निशाचर, हे दैत्य, हे दनुश्रेष्ठ, हे मनुष्यनिदेशक ! ॥ २२ ॥ हे तात ! तुम किस दिशाको चलेगये हे विभो ! तुम ने किस को पाया और तुम्हारे विश्राम का स्थान कहीं है व तुम्हारा क्या अवलम्ब है ॥ २३ ॥ और तुम्हारे कुछ मार्गव्यय है और कहां तुम स्थानवाले हो और प्रकाश, बाहन, छत्र, भोजन, शयन व घर ॥ २४ ॥ व निवास कहां है और तुम्हारे चित्तको आनन्द किसप्रकार होता है व हे तात ! बन्धु या पुत्र है और उत्तम व शीतल वृक्षों की छाया है ॥ २५ ॥ इसप्रकार आपस में करुणापूर्वक वचन भलीभांति कहकर फिर इन्द्र आदिक सब देवता चिन्तामें तत्परहुये ॥ २६ ॥ पृथ्वी के बिलमें आश्रित चर ॥ हे दैत्यहे दनुश्रेष्ठ हे मनुष्यनिदेशक ॥ २२ ॥ गतौसिकान्दिशंतात कोबालवधस्तवयाविभो ॥ कचविश्रामभू मिस्ते किंस्विदालम्बनन्तव ॥ २३ ॥ पार्थेयमस्ति किञ्चित्तेदैशिकोवाथकुत्रचित् ॥ प्रकाशंवाहनंछत्रमशनंशयनंगृह म् ॥ २४ ॥ कचवासःकथन्तेचाप्यथवाचित्तनिवृत्तिः ॥ बन्धुःपुत्रोस्तिवातात वृक्षच्छायासुशीतला ॥ २५ ॥ एवंप्र कारंकरुणं समाभाष्यपरस्परम् ॥ भूयश्चिन्तापरास्सर्वे देवाश्चेन्द्रपुरोगमाः ॥ २६ ॥ भूमेर्विवरमाश्रित्य प्राणिनोयेव सन्त्यपि ॥ रसातलेचदैतयास्संस्थिताःपद्मगाश्चये ॥ २७ ॥ नतेषांविद्यतेसूयो नेन्दुर्नान्येमहाग्रहाः ॥ नाग्निर्देवमुखं विद्युन्नैवतारककोटयः ॥ २८ ॥ केनालोकैकपश्यन्ति समानिविषमाणिच ॥ नरकस्थानरालोकं केनपश्यन्त्यलोकना त् ॥ २९ ॥ विचरंस्तुसनःकोवा मनोरथशतप्रदः ॥ तृष्णाम्भःक्षुधितान्नञ्च श्रान्तानामथवाहनम् ॥ ३० ॥ श्रमेशय्या जलेनौश्च रागेस्तत्परिचारकः ॥ श्रेष्ठौषधिरसद्रोगे सम्पदोव्याधिसङ्कटे ॥ ३१ ॥ सुहृद्विदेशेऽव्यायोषणे निर्धूमश्शिशि होकर जो प्राणी बसते हैं व रसातल में जो दैत्य व नाग भलीभांति टिके थे ॥ २७ ॥ उनके सूर्य, चन्द्रमा व बडेभारी ग्रह नहीं विद्यमान हैं व देवताओं का मुख अग्नि प्रकाशित नहीं है और न बिजली प्रकाशित है और न करोड़ों नक्षत्र प्रकाशित हैं ॥ २८ ॥ तो वे सम व विषम वस्तुओंको किससे देखते हैं और न देखपडने के कारण नरकमें टिकेहुये पुरुष किससे लोकको देखते हैं ॥ २९ ॥ व अमण करताहुआ वह कौन सैकड़ों मनोरथों को देनेवाला है और तृषाका जले व क्षुधितका अन्न व थकेहुये पुरुषोंका जो वाहन है ॥ ३० ॥ और परिश्रममें शय्या व जल में नौका व स्नेहमें उत्तम सेवक तथा दुष्ट रोगमें उत्तम औषधि व व्याधि के संकट में संपदा ॥ ३१ ॥

व विदेश में भित्र तथा धूप में छाया व शिशिर ऋतु में धूसरहित अग्नि व बड़े डर में रक्षा और महारात्रि में प्रकाश ॥ ३२ ॥ और सदैव हम सबों को सैकड़ों मनोरथों को देनेवाला जो एकही है उसको हमलोग नहीं जानते है ॥ ३३ ॥ हे व्यासजी ! इसप्रकार कहतेहुये उन्होंने आकाश के मध्य से अतुलकर्मवाले विष्णु जी की पहले सुनीहुई मीठी वाणी को सुना ॥ ३४ ॥ और वे यह नहीं जानते थे कि व्यापक विष्णुजी कहां स्थित होकर कहते हैं इस वचन को उन्होंने सुना कि सावधान होतेहुये तुम सब लोग सुनो ॥ ३५ ॥ कि सदैव चिन्तामणिके समान एक दान भलीभाति कहागया है कि सबही दानों के मध्यमें दीपदान उत्तमहै ॥ ३६ ॥

रेशिखी ॥ महाभयेपरित्राणं प्रकाशश्चमहानिशि ॥ ३२ ॥ सर्वदाचैवसर्वेषां मनोरथशतप्रदः ॥ एकएवभवेद्योनस्तन्न जानीमहेवयम् ॥ ३३ ॥ ब्रुवन्तस्तद्वतिव्यास शुश्रुबुर्मधुराङ्गिरम् ॥ श्रुतपूर्वानभोमध्याद्विष्णोरतुलकर्मणः ॥ ३४ ॥ नजानन्तिस्थितःकुत्र भाषतेकेशवोविभुः ॥ शृणुध्वमितिमेवाक्यं सर्वैचैवसमाहिताः ॥ ३५ ॥ दानमेकंसदासम्यक् चिन्तामणिसमंस्मृतम् ॥ सर्वेषामेवदानानां दीपदानंप्रशस्यते ॥ ३६ ॥ तच्चदेयमतस्सर्वे शृणुध्वन्तत्त्वतोभृशम् ॥ मयारसातलेपूर्वं नागानामनुकम्पया ॥ ३७ ॥ उत्पादितोदीपवरो येनध्वस्त्वमिदन्तमः ॥ एवंभूतस्तुवायूनामप्रध्वष्योमहाप्रभः ॥ ३८ ॥ निष्कम्पोनिर्मलोहृद्यः सुन्दरोभास्करप्रभः ॥ नात्युष्णोनातिशीतश्च दिव्ययोगसमुद्भवः ॥ ३९ ॥ तेनदीपप्रकाशेन गोकर्णानिर्हृतिंययुः ॥ नागादेशोषादयस्सर्वे नोद्यमानाश्चसङ्क्षयः ॥ ४० ॥ तदादीपसहस्राणि ददुस्तेवैशिवाग्रतः ॥ पर्वतेषुसमुद्रेषु वनेषूपवनेषुच ॥ ४१ ॥ नदीतीरेषुसर्वत्र दीपान्प्रज्ज्वाल्यरेमिरे ॥ भुञ्जानाःफलमू

इसलिये उसको देना चाहिये और सबलोग यथार्थता से सुनिये कि पुरातन समय मैंने रसातलमें नागों के ऊपर बहुतही दयासे ॥ ३७ ॥ उत्तम दीपको उत्पन्न किया कि जिससे यह अन्धकार नाश होगया जो दीप ऐसाथा कि पवनोसे धर्पणा न करने योग्य व महाप्रकाशवान् ॥ ३८ ॥ तथा कम्परहित व निर्मल, मनोहर, सुन्दर व सूर्य के समान प्रभावान् और न अति उष्ण व न बहुत शीत और दिव्य योगसे उपजा हुआथा ॥ ३९ ॥ उस दीपके प्रकाश से गोकर्णे (सर्पविशेष) आनन्द को प्राप्त हुये और प्रेरणा कियेहुये शेषादिक उन सर्पसमूहों ने ॥ ४० ॥ उससमय शिवजी के आगे हजारों दीपोंको दिया पर्वतों में व समुद्रोंमें तथा वनो व उपवनो में ॥ ४१ ॥

और नदी के किनारों में सब कहीं दीपों को जलाकर निव्य फलों व मूलों को तथा ऊँखके रसको भोजन करनेहुये उन्होंने क्रीडा किया ॥ ४२ ॥ और परमाज्ञायाने खीर पूरी व मास मकरन्द (पुष्पमधु) तथा घी भात व चन्द्रमाके समान शाली (जड़हनधान) से उपजेहुये भात व सात प्रकार को प्रात तावूल ॥ ४३ ॥ और स्त्री से पीकर बचीहुई आठ प्रकारकी मदिरा को पीकर आपस में उद्वेष्टन करते हुये उन सब साँपोंने बड़ी मोलवाली शय्याओं पै व मनोहर वनकी पंक्तियों में तथा वनकी छाया से समीप शोभित वृक्षाकी जड़ों में रमण किया ॥ ४४ ॥ व कामतन्त्रमें कहेहुये चुरन्नादिक व्यवहारों से क्रीडा किया और वे सूर्यनारायण के

लानि दिव्यानीधुरसन्तथा ॥ ४३ ॥ परमाज्ञासांसानि मकरन्दघृतोदनम् ॥ चन्द्रशालिभवंभक्तं ताम्बूलसंमधागतम् ॥ ४३ ॥ मद्यमष्टप्रकारन्तु भार्यापीतावशेषकम् ॥ शयनेषुमहार्हेषु हृद्यासुवनराजिषु ॥ ४४ ॥ वृक्षमूलेषुसर्वेषु वनच्छायोपशोभिषु ॥ रमन्तेस्मचतेसर्वे उद्वेष्टन्तः परस्परम् ॥ ४५ ॥ कामतन्त्रोपदिष्टैस्तु चेष्टितैश्चुम्बनादिसिः ॥ सूर्यतापभयान्मुक्ताश्चन्द्रशिमभयाच्चते ॥ ४६ ॥ विमुक्ताश्चभयाद्घोरात् पिपीलिकोद्धवात्तथा ॥ सूर्यतापेनदाहसस्याच्छी तंचन्द्रमरीचिभिः ॥ ४७ ॥ मथूरनकुलाद्यैश्च पिपीलीसरणाद्भयम् ॥ सौवर्णान्दीपकान्कृत्वा द्विजेभ्यस्तेददुःपुनः ॥ ४८ ॥ तेनपातालमाश्रित्य कृत्वाभोगवतीम्पुरीम् ॥ वसन्तिसुखिनस्तत्र स्वर्गादष्टगुणान्सदा ॥ ४९ ॥ एवमन्धतमोदेवाः पातालादीपतोगतम् ॥ एतद्गुह्यंमयाख्यातं भवतांचानुकम्पया ॥ ५० ॥ दीपदानमतोसूयं कुरुध्वंसुसमाहि

तापसे व चन्द्रमा की किरणों के भयसे छूटेहुयेथे ॥ ४६ ॥ और पिपीलिकासे उपजेहुये भयंकर भयसे मुक्त थे सूर्यनारायण के तापसे दाह (जलन) होतीहै व चन्द्रमा की किरणों से शीत होता है ॥ ४७ ॥ और मथूर व नेडलाआदिक तथा पिपीलिकाके गमन से भय होताहै फिर उन नागों ने सुवर्ण क दीपोंको बनाकर ब्राह्मणों के लिये दिया ॥ ४८ ॥ उमी रो पाताल में आश्रित होकर स्वर्ग से अठगुने सुखेवाली भोगवती नामक पुरी को बनाकर उसमें सदैव सुखी नाग बसते हैं ॥ ४९ ॥ इसप्रकार हे देवताओं ! दीपके कारण पाताल रो बहुत अन्धकार जातारहा मैंने आपलोगोंके ऊपर दयाके कारण इस गुप्त चरित्रको कहाहै ॥ ५० ॥ इसलिये साव-

धान होतेहुये तुमलोग दीपदान करो क्योंकि दीपरूपी अग्निके बिना अन्धकाररूपी अग्नि नहीं जलती है ॥ ५१ ॥ इसके अनन्तर नारायण में परायण देयतालोग सुनकर प्रसन्न व सावधान होतेहुये फिर उन सबोंने व्यापक विष्णुजीसे पूछा ॥ ५२ ॥ कि हे जगदीश ! हमलोगों से अग्नि को कहिये कि जिससे वह दीप उत्पन्न होता है भयंकर अन्धकार में डूबेहुये हमलोग अग्निको नहीं जानते हैं ॥ ५३ ॥ इसके अनन्तर श्रीकृष्णजीने देवताओंसे मानसी अग्निको कहा व उससे दीपकको जला कर शिवजीमें परायण उनदेवताओं ने समस्त मनोरथों के फलको देनेवाले सदाशिवजीको उद्देश कर दिया तदनन्तर दीप देनेपर अदृश्य शिवजी प्रसन्न हुये ॥ ५४ ॥ ५५ ॥

ताः ॥ दीपाग्निरविना नैव तमोदारुप्रदह्यते ॥ ५१ ॥ नारायणपरादेवा निशम्याथ समाहिताः ॥ पप्रच्छुस्ते पुनरुत्सर्वे ह
ष्टादामोदरविभुम् ॥ ५२ ॥ ब्रूहि नोऽग्निजगन्नाथ सदीपो येन जायते ॥ द्योरेतमसिधेमज्जना गग्निजानीमहे वयम् ॥ ५३ ॥
देवानां मानसो वह्निरथ कृष्णेन कीर्तितः ॥ तेन दीपं च प्रज्वाल्य देवाः शिवपरायणाः ॥ ५४ ॥ ददुस्ते शिवमुद्दिश्य सर्वा
भीष्टफलप्रदम् ॥ दत्ते दीपे ततो देवैर्नष्टो हृष्टो महेश्वरः ॥ ५५ ॥ तिमिरं तद्गतं चापि जगद्येन जडोक्तम् ॥ ततो देवास्तु
खंप्रापुस्त्वर्गैर्सेन्द्रपुरोगमाः ॥ ५६ ॥ दीपदानफलं ज्ञात्वा दैतेयाश्चापि विस्मिताः ॥ राज्यं भोगान्वितमप्राप्य सार्द्धं स्त्री
भिश्चरेमिरे ॥ ५७ ॥ तथैव तत्फलं ज्ञात्वा व्यासयज्ञाश्च विस्मिताः ॥ पूजयित्वा महादेवं पुष्पैश्च निर्मलैर्जलैः ॥ ५८ ॥
ददुर्दीपसहस्राणि सर्वे शिवपरायणाः ॥ स्वस्थानेष्वामवन्सर्वे दीपदानाच्च शोभनात् ॥ ५९ ॥ स्वेच्छया मुञ्जते भोगान्
बन्धुभृत्यादिसंयुताः ॥ निराहारास्ततो व्यास पिशाचा वै निराश्रयाः ॥ ६० ॥ दीपदानफलं ज्ञात्वा सर्वे ते परि विस्मिताः ॥

और वह अन्धकार भी जातारहा कि जिससे संसार जड कर दिया गया था तदनन्तर इन्द्र समेत देवताओंने स्वर्ग में सुख पाया ॥ ५६ ॥ और दीपदान के फलको जानकर दैत्य भी विस्मित हुये और सुखों से संयुत राज्यको पाकर उन्होंने ने स्त्रियों समेत रमण किया ॥ ५७ ॥ हे व्यासजी ! वैसेही उस फलको जानकर यज्ञ लोग विस्मितहुये और पुष्पा तथा निर्मल जलों से महादेवजी को पूजकर ॥ ५८ ॥ शिवजी में परायण उन सर्वों ने हजारों दीपोंको दिया और उत्तम दीपके दान से सब अपने स्थान में हुये ॥ ५९ ॥ और बंधुओं व सेवकों से संयुत वे अपनी इच्छा से सुखोंको भोगते हैं उसके उपरान्त हे व्यासजी ! आश्रयरहित व निराहार

पिशाच ॥ ६० ॥ दीपदानके फलको जानकर वे सब विरहितहुये और चाण्डाल से अग्निको भँगाकर शिवजी में तरपर उन्हींने दीपको दिया ॥ ६१ ॥ और दीपदान के फलसे वे पुत्रों व स्त्रियों से संयुतहुये व निरस भोजन किये जातेहुये अन्नको व दुर्गन्धिसंयुत तथा पर्युषित ॥ ६२ ॥ व उच्छिष्ट तथा सूतिका याने सँवरिवाली स्त्री से छुयेहुये व अशुद्ध तथा नोधिहुये अन्नको भोजन करतेहुये वे प्रसन्न राजस सदैव दुष्ट भूमियों में रमण करते हैं ॥ ६३ ॥ और शिवजी में मनको लगायेहुये विद्याधर, मनुष्य व सिद्धोंने दीपदान के फल को जानकर शिवजीके आगे दीपको दिया ॥ ६४ ॥ तदनन्तर दीपदान से सब समस्त सुखों से संयुत होकर सुखी व

चाण्डालादग्निमानीय ददुर्दीपंशिवेरताः ॥ ६१ ॥ दीपदानफलान्तैव पुत्रदारसमन्विताः ॥ लिह्यमानंगतरसं प्रीति पर्युषितं तथा ॥ ६२ ॥ उच्छिष्टं सूतिकास्पृष्टममेध्यञ्चातिलङ्घितम् ॥ भुञ्जानास्ते सदा हृष्टा रमन्ते दुष्टभूमिषु ॥ ६३ ॥ विद्याधरास्तथामर्त्याः सिद्धाश्च शिवमानसाः ॥ दीपदानफलं ज्ञात्वा ददुर्दीपंशिवाग्रतः ॥ ६४ ॥ दीपदानात्तत्सर्वे सर्वभोगसमन्विताः ॥ स्थानेषु मुदितास्त्वेषु रमन्ते मुखिनस्सदा ॥ ६५ ॥ तिमिरं तद्गतैव व्यासलोकैषु दीपतः ॥ त तोषोरं स्थितं सम्यक् प्रेतलोकैषु सर्वदा ॥ ६६ ॥ प्रेतलोकान्तदा हृष्टा घोरैण तमसा वृतम् ॥ दामोदरं जगन्नाथमूच्छुस्सर्वे सुरोत्तमाः ॥ ६७ ॥ घोरं चैव तमो हत्वा प्रसन्नास्ते तदा विभो ॥ गन्धर्वाश्च तथा यक्षाः सिद्धा विद्याधरो रगाः ॥ ६८ ॥ वयञ्चै व तथा मर्त्यास्सर्वे भोगैश्च संयुताः ॥ स्थानेषु च सदा स्त्वेषु रमन्ते मुखिनो भूयम् ॥ ६९ ॥ प्रेतलोकैर्नरा येन घोरैण तमसा वृताः ॥ वसन्ति च जगन्नाथ वर्तन्ते चातिदुःखिताः ॥ ७० ॥ नतैः कृतं शुभं कर्म कृष्णालं पापमोहितैः ॥ न तेषां विद्यते किञ्चि प्रसन्न होते हुये सदैव अपने स्थानोंमें रमण करते हैं ॥ ६५ ॥ हे व्यासजी ! लोकों में दीपसे वह अन्धकार जातारहा तदनन्तर वह घोर अन्धकार सदैव प्रेतलोकों में भलीभाँति स्थितहुआ ॥ ६६ ॥ उससमय भयंकर अन्धकार में धिरेहुये प्रेतलोकको देखकर सब सुरोत्तमों ने संसारके स्वामी विष्णुजीसे कहा ॥ ६७ ॥ कि हे विभो ! भयंकर अन्धकार को नाशकर वे गन्धर्व, यक्ष, सिद्ध व विद्याधर सदैव प्रमन्न रहते हैं ॥ ६८ ॥ और सुखों से संयुत हमलोग व मनुष्य बहुतही सुखी होकर मदैव अपने स्थानोंमें रमण करते हैं ॥ ६९ ॥ हे जगदीश ! प्रेतलोकमें जो मनुष्य वसते हैं भयंकर अन्धकारसे धिरेहुये वे बहुतही दुःखी वर्तमान हैं ॥ ७० ॥ हे श्रीकृष्णजी !

बहुतही पापसे मोहित उन्हींने शुभ कर्म नहीं किया है और उसके कुछ नहीं वर्तमान है जोकि प्रकाश करै ॥ ७१ ॥ वे घोर अन्धकार में मग्न हैं क्योंकि वहाँ सूर्य, चन्द्रमा व अग्नि नहीं हैं और न सहाय है न यह स्त्री है और न आलम्ब है न देशाला है ॥ ७२ ॥ और न वाहन है न शय्याहै केवल बड़ा अन्धकार है और वहाँ पर अट्टाईस नरकभूमिया प्रसिद्ध है ॥ ७३ ॥ और वे सब अन्धकारमय तथा पापियों को सदैव भयदायक हैं हे श्रीकृष्णजी ! वहाँ पर दुःखित मनुष्य किस प्रकार सुखको पाते हैं ॥ ७४ ॥ जोकि दरिद्रता, दुःख, रोग, माया व मोहसे सदैव संयुत होते हैं ॥ ७५ ॥ सनत्कुमारजी बोले कि इसप्रकार देवताओं की प्रार्थना को

द्यत्प्रकाशं करोति च ॥ ७१ ॥ घोरतमसितेमगनास्तत्र नार्कन्दुवह्नयः ॥ नसहायोनजायेयं नालम्बोनचदैशिकः ॥ ७२ ॥ नवाहनन्नशय्याच केवलन्तुमहत्तमः ॥ तत्राष्टाविंशतिः ख्याता घोरानरकभूमयः ॥ ७३ ॥ तमोमयाश्चतास्सर्वाः पापिनां भयदास्सदा ॥ सुखं तत्र कथं कृष्ण लभन्ते दुःखितानराः ॥ ७४ ॥ दारिद्र्यदुःखरोगैश्च मायामोहैश्च सर्वदा ॥ ७५ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ इति श्रुत्वा तु देवानां प्रार्थनां गरुडध्वजः ॥ उवाच वचनं हृद्यं मनोरथफलप्रदम् ॥ ७६ ॥ शृणु ध्वं त्रिदशास्सर्वे यत्प्रबक्ष्यामि वो वचः ॥ अवन्त्यां वर्तेते तीर्थं सद्यः पापहरं परम् ॥ ७७ ॥ अनर्काख्यं महापुण्यं सर्वतीर्थोत्तमोत्तमम् ॥ कार्तिकस्यासितेपक्षे चतुर्दश्यां समाहितः ॥ ७८ ॥ तत्र स्नात्वा नरो यस्तु यमध्यानपरायणः ॥ संगृह्य वै तिलान् कृष्णान् पितृभक्तोजितेन्द्रियः ॥ ७९ ॥ दक्षिणाभिमुखो भूत्वा मध्याह्ने सुरसत्तमाः ॥ अपसव्यन्तथा भूत्वा मनत्रैस्सन्तर्पयेद्यमम् ॥ ८० ॥ यमाय धर्मराजाय मृत्यवे चान्तकाय च वैवस्वताय कालाय दत्त्वा यमनवे तथा ॥ ८१ ॥

मुनकर विष्णुजी मनोरथ के फलको देनेवाले व मनोहर वचनको बोले ॥ ७६ ॥ कि हे समस्त देवताओ ! मैं जिस वचन को तुम लोगों से कहता हूँ उसको सुनिये कि अवन्ती पुरी में शीघ्रही पापहारक उत्तम तीर्थ वर्तमान है ॥ ७७ ॥ जोकि अनर्क नामक व महापवित्र तथा समस्त तीर्थोत्तमोंमें उत्तम है कार्तिकके कृष्णपक्ष में चौद-सितिथि में सावधान होता हुआ ॥ ७८ ॥ यमराजके ध्यान में तत्पर व पितरों का भक्त तथा जितेन्द्रिय जा मनुष्य उस तीर्थ में नहाकर काले तिलों को लेकर ॥ ७९ ॥ हे सुरोत्तमो ! दुपहरके समय में दक्षिण मुख होकर व अपसव्य होकर मन्त्रों से यमराजको भलीभांति तर्पण करै ॥ ८० ॥ यम, धर्मराज, मृत्यु, अन्तक, वैवस्वतः

काल, दक्ष व मनुके लिये ॥ ८३ ॥ और कृष्ण व प्रेतलोक में परायण कृष्णगुप्त हरि व यमुनाजी के सहोदर भाई सूर्यपुत्र के लिये ॥ ८२ ॥ वैसेही श्राद्धदेव व पितरों के पति के लिये इन नमः अन्तर्वाले व ॐकार आदिवाले उत्तम मन्त्रोंके द्वारा ॥ ८३ ॥ तिलोंसे संयुत व कुश समेत जलकी अञ्जली को देवै और यमदेव को भलीभांति तर्पण करै और सावधान होताहुआ विद्वान् पुरुष विच्छाद्य से रहित होकर तिलके पात्रको ब्राह्मणके लिये देवै इस विधि से जो पुरुष यमराज स्वामी को तर्पण करताहै ॥ ८४ ॥ ८५ ॥ उसके वे पितर मुक्त होजाते हैं कि जो नरक में भी होते हैं इसके अनन्तर वहा यश संयुत मनुष्य रात्रि को भलीभांति पाकर ॥ ८६ ॥

कृष्णाय कृष्णगुप्ताय प्रेतलोकपराय च ॥ हरये रविपुत्राय कालिन्दीसोदराय च ॥ ८२ ॥ तथा वै श्राद्धदेवाय पितृणां प तये तथा ॥ मन्त्रैरेभिर्नमः प्रान्तैरोङ्काराद्यैस्सुशोभनैः ॥ ८३ ॥ जलाञ्जलिसदभावै दद्यात्तु तिलसंयुताम् ॥ सन्तर्पये द्यमन्देवं तिलपात्रं समाहितः ॥ ८४ ॥ प्राज्ञो विप्राय वेदद्याद्वित्तशाल्यविवर्जितः ॥ अनेन विधिन आयस्तु तर्पयेच्च यमं विभुम् ॥ ८५ ॥ पितरस्तस्य मुच्यन्ते निरये ये गता अपि ॥ रात्रिं तत्राथ सम्प्राप्य मानवः कीर्तिं संयुतः ॥ ८६ ॥ नमः पितृभ्यः प्रेतैर्भ्यो नमो धर्माय विष्णवे ॥ नमस्सूर्याय रुद्राय कान्तारपतये नमः ॥ ८७ ॥ एभिर्मन्त्रैर्यमन्दीपं यो दद्याद्दधृत पूरितम् ॥ कार्तिकन्तु समग्रन्तु वर्द्धन्ते तस्य सम्पदः ॥ ८८ ॥ सम्पूर्णैर्कार्तिकै चैव दीपोद्यापनमारभेत् ॥ ८९ ॥ दिवा कराहेस्त भित्ते च सूर्ये दीपस्य वृत्तिपुरुषप्रमाणम् ॥ यूपार्कतियज्ञियदारुणा च करोति धीमान् यमभक्तिचित्तः ॥ ९० ॥ निक्षिप्य भूमावथ हस्तमात्रं मूर्ध्नि द्विहस्ताष्टदलान्विताश्च ॥ धार्याश्च तस्मिन् शुभपट्टिकाश्च छिद्रे प्रयुक्ताश्च तुरङ्गुलेन ॥ ९१ ॥ त

पितरों के लिये प्रणाम है व धर्म के लिये तथा विष्णुजी के लिये नमस्कार है और सूर्य व रुद्र के लिये प्रणाम है और कान्तारपति के लिये नमस्कार है ॥ ८७ ॥ इन मन्त्रों से जो पुरुष समस्त कार्तिक मास भर घृत से भरेहुये दीपको यमराज को देताहै उसकी समस्त संपदायें बढ़ती हैं ॥ ८८ ॥ और सब कार्तिक भर दीपोद्यापन का प्रारम्भ करै ॥ ८९ ॥ रविवारके दिन सूर्यनारायण अस्तहोनेपर दीपको वर्तमान करै और यमराज की भक्तिमें चित्तवाला बुद्धिमान् मनुष्य यज्ञवाले काष्ठ से पुरुषके प्रमाण भर याने तीन हाथ यूपकार याने खम्भा का आकार बनावे ॥ ९० ॥ इसके अनन्तर भूमि में हाथ भर गाड़कर दो हाथ ऊपर रखे और आठदलोंसे संयुत

चार उत्तम पट्टिकाओं को चार अंगुल बिद्र में युक्त करै ॥ ९१ ॥ और उसकी कर्णिका (गुजरी) में महाप्रकाशवान् दीपको परमभक्ति से देना चाहिये और उस के दलों में घीसे भरेहुये आठ उत्तम दीप दिशाओं के सामने धरना चाहिये ॥ ९२ ॥ और अंगवल्ली से चिह्नित वसनका खण्ड नवीन व अरुण अथवा श्वेत वस्त्र बाती के लिये देना चाहिये उसके उपरान्त चिकनी व समान व उत्तम दो वर्तिकाओं को दैवै ॥ ९३ ॥ और उमदीपको जड़हन चावलों के पिसानके ऊपर वैसेही धरकर जिसप्रकार न निकलै और न कोंपै और सब से तिगुने प्रमाणभर दीपराजको मध्य में स्थित करना चाहिये ॥ ९४ ॥ और दलोंमें बहुतही शोभा

त्वर्णिकायान्तुमहाप्रकाशो देयोहिदीपः परयाचमक्त्या ॥ दिगुन्मुखादीपवरास्तथाष्टौ दलेषु तस्यावृतपूर्यमाणः ॥
 ९२ ॥ अनङ्गवत्स्यङ्कितवस्त्रखण्डं नवंसुररक्तं ह्यवासुशुक्लम् ॥ वर्यैः प्रदेयञ्चततो हि दद्यात्स्निग्धे त्वखण्डे मुसमे प्रश
 स्ते ॥ ९३ ॥ तच्छालिपिष्टोपरि सन्निभाय यथाननिर्यातिनकम्पते च ॥ कृत्स्नात्प्रकार्यं स्निग्धप्रमाणो मध्यास्थितः स्यादथ
 दीपराजः ॥ ९४ ॥ दलेषु शोभार्थं मतीव कुर्यान्मनोरथप्रत्युपलब्धये च ॥ घण्टाष्टकं लम्बितपुष्पदामसवस्त्रशोभा
 निवनमञ्चकार्यम् ॥ ९५ ॥ संलिप्य भूमित्वथ गोमयेन पुनः सुगन्धेन जलेन लिप्त्वा ॥ कुर्याद्विचित्रं त्वथ मण्डलञ्च दला
 प्रकयेकमलम्परम्यम् ॥ ९६ ॥ ततो जलं शीतलमानयित्वा आपूर्य चाष्टौ कलशान्स्तुरम्यान् ॥ निधाय मूर्ध्नि नक्रमशो हि
 धीमान् फलानि मूलानि तथेष्टकाणि ॥ ९७ ॥ मध्वाज्ययुक्तादधिदुग्धधूपानैर्ऋत्य कोणादथ दक्षिणान्तम् ॥ धर्माय
 दद्यात्तथा शङ्कराय दामोदरायाः प्रथमे च ॥ ९८ ॥ प्रजापतिभ्यः क्रमशो हि भक्त्या प्रेतभ्य इन्द्राय तथा पितृभ्यः ॥ हे
 तिन्येव मन्त्राश्च कथान्तेन कथिते योषोका कोशोऽथ फलैः को मालावाले तथा वस्त्र समेतं च शोभासे संयुतं आठ घण्टोको करना चाहिये ॥
 ९९ ॥ इसके अनन्तर शीतल जल में लीपकर इसके उपरान्त आठ दलवाला मण्डल व सुन्दर कमल को बनावै ॥ १०० ॥ उसके
 चारों ओर व गुलाबों के फूलों को मरकर बुद्धिमान् मस्तक पै धरकर क्रमसे फूल, मूल व ऊँख ॥ १०१ ॥ तथा शहद व घसि संयुक्त
 करके, दुग्ध व गुलाबों के फलों को मरकर बुद्धिमान् मस्तक पै धरकर क्रमसे फूल, मूल व ऊँख ॥ १०२ ॥ और भक्तियों

क्रमपूर्वक प्रजापतियों के लिये व प्रेतों के निमित्त तथा इन्द्र व पितरों के लिये देवै और दक्षिणा समेत तिलोंसे भरेहुये सुवर्णादि के पात्रको ब्राह्मणों को देवै ॥ ६६ ॥ गौवै, सुवर्ण, चादी, वस्त्र, फल, मूल, यव, धान्य, गृह, रथ हाथी, घोड़ा और ऐसे ही हृदय में जो अन्य सुन्दर वस्तु होवै ॥ १०० ॥ उसको अधिक विद्यावाले द्वि-जोत्तमों के लिये व पुराण वाचनेवाले ब्राह्मणों के लिये देवै और यहां पर दलों में स्थित दीपों से यमादिकों के मध्यमें एक एक को तर्पण करै ॥ १ ॥ इसके अनन्तर अपने गुरुके सकाशसे आज्ञाको पाकर धर्मराजके लिये मध्यवाला दीप देना चाहिये और नृत्य व उत्तम गान तथा उत्तम वाजन से संयुत उत्साहको करावै ॥ २ ॥

मादिपान्त्रितलपूर्णमेव दद्याद्विजानांचसदक्षिणञ्च ॥ ६६ ॥ गावोहिरण्यंरजतंचवस्त्रं फलानिमूलानिनयनाश्चधान्यम् ॥
गृहंरथंकुञ्जरमश्वमेव मनोज्ञमन्यंहृदयेहियञ्च ॥ १०० ॥ विद्याधिकेभ्योद्विजसत्तमेभ्यः पौराणिकेभ्यश्चतथाद्विजेभ्यः ॥
एकैकसंप्रीणनमत्रकुर्वाद्दोर्पैर्दलस्थैश्चयमादिकानाम् ॥ १ ॥ धर्मायदेयस्त्वयमध्यदीप आज्ञांचलव्धवास्वगुरोःसका-
शात् ॥ नृत्येनगीतेनसुशोभेनैव गुक्तंसुवाद्येनचकारयेच्च ॥ २ ॥ एतत्समग्रंविधिवच्चकुर्यात्स्वशक्तिमादौस्वधनंसमी-
क्ष्य ॥ आहूयविप्राञ्छुभभावयुक्तान् वदेच्चधीमान्परयाचभक्त्या ॥ दीपान्समग्रानपिवर्जयित्वा सर्वनयेयुःस्थितम-
त्रविप्राः ॥ ३ ॥ प्रदक्षिणीकृत्यविमृज्यविप्रांस्ततोभवेद्वैसचनक्तमोजी ॥ एवंकृतेनागलोकाद्विशिष्टं सुखंभवेत्प्रेतलो-
केस्थितानाम् ॥ ४ ॥ एवमेवनरोव्यास दीपदानं करोति यः ॥ तस्यैवयत्फलंप्रोक्तं तदिहैकमनाःशृणु ॥ ५ ॥ विमानैःका-

पहले अपनी शक्ति व अपने धनको देखकर विधिपूर्वक इस सब वस्तु को करै और सुन्दर भावसे संयुत ब्राह्मणोंको बुलाकर बुद्धिमान् मनुष्य उत्तम भक्तिसे कहै और समस्त दीपोंको वर्जितकर सब स्थित वस्तुको यहां ब्राह्मणलोग लावै ॥ ३ ॥ और प्रदक्षिणाकर ब्राह्मणों को विदा करके तदनन्तर वह रत्रिभोजी होवै ऐसा करने पर प्रेतलोकमें स्थित मनुष्यों को नागलोकसे विशेष सुख होताहै ॥ ४ ॥ इसीप्रकार हे व्यासजी ! जो मनुष्य दीपदान करताहै उसको जो फल कहागयाहै उसको यहां

एकमनवाले होकर सुनिये ॥ ५ ॥ कि अपराधों के गणों से सेवित व कामनाओंवाले दिव्य विमानों पे चढ़ा हुआ पुरुष तबतक स्वर्गमें प्राप्तहोताहै जबतक कि चन्द्रमा व सूर्य रहते हैं ॥ १०६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदेवीदयालुभिश्चाविरचितायाभाषाटीकायादीपदानमाहात्म्यनामचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥

दो० । जिमि रामेश्वर तीर्थ कर अहै सुभग परभाव । इकतालिसवे में कह्यो सोइ चरित सुखपात्र ॥ सनत्कुमारजी बोले कि इसके अनन्तर मैं अन्य उत्तम कैदारेश्वरजी को कहूंगा जोकि समस्त तीर्थोंमें उत्तम व तीनोंलोकों में प्रसिद्ध है ॥ १ ॥ उस तीर्थ में नहाकर व पवित्र होकर जो मनुष्य महादेवजीको देखताहै वह उस

मिकैर्दिव्यैरप्सरोगणसेवितैः ॥ उह्यमानोदिवंयातियावचन्द्रदिवाकरौ ॥ १०६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे दीपदानमाहात्म्यनामचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

सनत्कुमार उवाच ॥ अथान्यं सप्रवक्ष्यामि केदारेश्वरमुत्तमम् ॥ प्रवरं सर्वतीर्थानां सर्वलोकेषु विश्रुतम् ॥ १ ॥ तत्र स्नात्वा शुचिर्भूत्वा यः पश्यति महेश्वरम् ॥ केदारैर्यत्फलं प्रोक्तं तदत्रापि लभेन्नरः ॥ २ ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तः स्वर्कायकुलसंयुतः ॥ विमानेनार्कवर्णेन शिवलोकैः समोदते ॥ ३ ॥ जटाशृङ्गेनरः स्नात्वा शुचिर्भूत्वा जितेन्द्रियः ॥ दृष्ट्वा जटेश्वरं देवं ततः पापाद्बिमुच्यते ॥ ४ ॥ महास्नपनमादौ च कृत्वा गच्छेच्छिवमप्रति ॥ मातृकैपतुकंचैव कुलानां तारयेच्छतम् ॥ ५ ॥ इन्द्रतीर्थेनरः स्नात्वा दृष्ट्वा चैन्द्रेऽश्वरं शिवम् ॥ विमुक्तः सर्वपापेभ्यः शक्रलोकैः महीयते ॥ ६ ॥ कुण्डेश्वरं तु यः पश्येच्छिवध्यानपरायणः ॥ लभते स नरोऽन्यास शिवदीक्षाफलं शुभम् ॥ ७ ॥ गोपतीर्थेनरः स्नात्वा दृष्ट्वा गोपेश्वरं

फलको यहां भी पाताहै जोकि केदारक्षेत्रमें कहागया है ॥ २ ॥ और सब पापों से छूटा हुआ वह मनुष्य अपने वंशसे संयुत होकर सूर्य वर्ण (रंग) वाले विमान समेत शिवलोकमें प्रसन्न होताहै ॥ ३ ॥ व जटाशृङ्गतीर्थ में नहाकर जितेन्द्रिय मनुष्य पवित्रहोकर जटेश्वर देवजी को देखकर तदनन्तर पातक से छूटजाताहै ॥ ४ ॥ जो मनुष्य पहले महास्नान कर शिवजी के समीप जाताहै वह माता व पिता के सौ कुलोंको तारता है ॥ ५ ॥ व इन्द्रतीर्थ में नहाकर व इन्द्रेश्वर शिवजीको देख कर मनुष्य समस्त पापों से छूटकर इन्द्रलोकमें पूजाजाता है ॥ ६ ॥ और हे व्यासजी ! शिवजी के ध्यान में तत्पर जो पुरुष कुण्डेश्वरजी को देखताहै वह शिवजी

की दीक्षाके उत्तम फलको प्राप्तहोताहै ॥ ७ ॥ व गोपतीर्थ में नहाकर गोपेश्वर शिवजी को देखकर वह पुरुष शिवलोकको जाता है जैसे कि अमृत से देवता स्वर्ग को प्राप्तहोताहै ॥ ८ ॥ और हे मुनिश्रेष्ठ ! चिपिटातीर्थ में नहाकर व शिवदेवजी को प्रणामकर पुरुष तिर्यग्योनि में नहीं जाताहै ॥ ९ ॥ व विजय नामक तीर्थ में नहाकर आनन्देश्वरजी के पूजनसे समस्त पापों से छूटाहुआ पुरुष स्वर्गलोक में विजयवान् होताहै ॥ १० ॥ इसके अनन्तर हे व्यामजी ! कुशस्थली याने उज्जयिनी पुरी में निर्मित व मुक्ति, मुक्तिको देनेवाले अन्य रामेश्वर देवजी को मैं कहताहूँ ॥ ११ ॥ कि पुरातन समय जानकी व लक्ष्मणजी समेत श्रीरामजी ने चित्रकूट से

रंशिवम् ॥ शिवलोकं सर्वेयाति ह्यमृतादमरोयथा ॥ ८ ॥ स्नात्वा तु चिपिटातीर्थे शिवदेवंप्रणम्य च ॥ तिर्यग्योनिनरो
नैव प्रयाति मुनिपुङ्गव ॥ ९ ॥ विजयेचनरः स्नात्वा आनन्देश्वरपूजनात् ॥ विसुक्तः सर्वपापेभ्यः स्वर्गलोके विजयी भवेत् ॥
१० ॥ अथान्यं संप्रवक्ष्यामि कुशस्थल्यां विनिर्मितम् ॥ देवं रामेश्वरं व्यास भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ॥ ११ ॥ चित्रकूटा
त्पुरारामो मैथिल्या लक्ष्मणेन च ॥ अत्र रामं समागत्य पप्रच्छ मुनि सत्तमम् ॥ १२ ॥ रामोवाच ॥ कानि तीर्थानि पुराया
नि किंवाचेन महासुने ॥ यत्र गत्वानचाप्नोति वियोगः सहजान्धवैः ॥ १३ ॥ अनेन वनवासने मरणेन पितुः प्रभो ॥ भरत
स्य वियोगेन प्रतप्येह त्रिभिर्मुने ॥ १४ ॥ तद्वाक्यं राघवेणोक्तं श्रुत्वा विप्रवर्षमस्तदा ॥ ध्यात्वा तु सुचिरं कालमिदं वचनमब्र
वीत् ॥ १५ ॥ साधुपुष्टन्त्वया वीर रघूणां वंशवर्धन ॥ मम पित्रा हृतं क्षेत्रं प्रयाच्य शिवमादरात् ॥ १६ ॥ अवन्तीविषये
राम पुरातस्मिन् कुशस्थली ॥ उज्जयिनीति वैनारुणा ख्यातिलोके गता विभो ॥ १७ ॥ तस्यांगत्वाद्दशरथं पिण्डदानेन

यहाँ आकर मुनिश्रेष्ठ पशुरामजी से पूछा ॥ १२ ॥ श्रीरामजी बोले कि हे महासुने ! कौन क्षेत्र व कौन तीर्थ पुरयदायक है कि जहाँ जाकर मनुष्य वन्धुवोके साथ वियोगको नहीं प्राप्तहोताहै ॥ १३ ॥ हे प्रभो, सुने ! इम वनवास व पिताका मरण तथा भरत का वियोग इन तीनों से मैं रातसहूँ ॥ १४ ॥ श्रीरामजी से कहहुये उस वचन को सुनकर उस समय द्विजश्रेष्ठ ने बहुत समय तक ध्यानकर इस वचन को कहा ॥ १५ ॥ कि हे रघुवोके वंशको बढ़ानेवाले, वीर ! तुमने बहुत अच्छा पूछा मेरे पिताने शिवजीसे आदर समेत याचना कर क्षेत्रको रचाहै ॥ १६ ॥ हे निभो ! श्रीरामजी ! पुरातन समय उस अवन्ती देशमें कुशस्थली उज्जयिनी ऐसे नाम से

संसारमें प्रसिद्धि को प्राप्त हुई है ॥ १७ ॥ उस पुरी में जाकर दशरथजी को पिण्डदान से सुसकरो वहाँ पर देवताओं व दैत्योंके गुरु महाकालजी ठिके हैं ॥ १८ ॥ जो सदाशिवदेवजी चाहेंहुये फलको देनेवाले हैं उन जगदीशजी के देखनेपर वियोग नहीं होता है ॥ १९ ॥ वहाँ जो ब्राह्मण व बड़े बलवान् राजा लोग जातेहैं वे उत्तम स्थान को पाते हैं जहाँ कि सदाशिवदेवजी हैं ॥ २० ॥ हे विष्णो ! अवन्ती के मण्डल में वह तीर्थोंके मध्य में भी तीर्थ है तदनन्तर श्रीरामजी अवन्ती पुरीको गये जहाँ कि वह पुण्यदायिनी शिप्रानदी है ॥ २१ ॥ उसमें नहाकर तदनन्तर श्रीरामजीने पहले उपजेहुये पितरोंको तर्पण किया जब श्रीरामजी ने महाकालजी को

तर्पय ॥ मुरासुरगुरुस्तत्र महाकालोऽव्यवस्थितः ॥ १८ ॥ देवः सदाशिवो राजन् वाञ्छितार्थफलप्रदः ॥ दृष्टे तस्मिञ्जग
न्नाथे वियोगो नैव जायते ॥ १९ ॥ तत्र गच्छन्ति ये विप्रा राजानो वै महाबलाः ॥ लभन्ते ते परं स्थानं यत्र देवो महेश्वरः ॥
२० ॥ तीर्थानामपि तत्तीर्थं भो विष्णो वन्ति मण्डले ॥ आजगाम ततो वन्ती सा शिप्रा यत्र पुण्यदा ॥ २१ ॥ तस्यां स्ना
त्वा तंतो रामस्तर्पयामास पूर्वजान् ॥ महाकालं यदा द्रष्टुं प्रतस्थे रघुनन्दनः ॥ २२ ॥ वाण्यां ततो शरीरिण्या देवदेवे
न भाषितम् ॥ भो भो राघव भद्रन्ते स्वनाम्ना स्थापय स्वमाम् ॥ २३ ॥ अत्र स्थानं मया दत्तं मा विचारय राघव ॥ ततो हृष्टम
नारामो लक्ष्मणं वाक्यमब्रवीत् ॥ २४ ॥ अनुगृहीतः सौमित्रे देवदेवेन शम्भुना ॥ तस्मात्स्थापयतीथिं स्मिल्लिङ्गरामे
श्वरं शुभम् ॥ २५ ॥ वाक्यं तल्लक्ष्मणः श्रुत्वा स्थापयामास शङ्करम् ॥ दृष्ट्वा देवं पुरो रामो लक्ष्मणं वाक्यमब्रवीत् ॥ २६ ॥
एहिलक्ष्मणशीघ्रन्तं शिप्राया जलमानय ॥ करिष्यामि यतोऽत्र देवस्य स्नपनं शुभम् ॥ २७ ॥ लक्ष्मणस्तत्र वीढ्वा
देखने के लिये प्रयाण किया ॥ २२ ॥ तब देवदेव शिवजीने आकाशवाणीसे कहा अहो राघवजी ! तुम्हारा कल्याण होवै अपने नामसे मुझको स्थापन करियो ॥ २३ ॥
मैंने यहाँ पर स्थानको दिया हे राघवजी ! मत विचारिये तदनन्तर प्रसन्न मनवाले श्रीरामजी लक्ष्मणजी से वचन बोले ॥ २४ ॥ कि हे सौमित्रे ! देवदेव शिवजी ने
मेरे ऊपर दयाकिया है इसलिये इस तीर्थ में रामेश्वर देवजी को स्थापित कीजिये ॥ २५ ॥ उस वचनको सुनकर लक्ष्मणजीने शिवजीको स्थापित किया आगे शिव
देवजी को देखकर श्रीरामजी लक्ष्मणजी से बोले ॥ २६ ॥ कि हे लक्ष्मण जी ! शीघ्रही आइये और तुम शिप्रानदी के जलको लावो क्योंकि हे भाई ! मैं शिवदेव

जीको उत्तम स्नान कराङ्गा ॥ २७ ॥ लक्ष्मणजी बोले कि सीता से तुम क्या करोगे हे श्रीरामजी ! मैं सदैव तुम्हारी सेवकाई नहीं करूँगा ॥ २८ ॥ यह सीता पुष्ट व दृढ़ तथा मुझसे भी मोटी है इसलिये हे राघवजी ! सत्यतासे कहिये कि तुम इससे क्या करोगे ॥ २९ ॥ पहले लक्ष्मणजी से कहेहुये उस वचन को सुनकर उदासीन राघवजी व उत्तम मुखवाली सीताजी स्थितहुई ॥ ३० ॥ इसके अनन्तर जो लक्ष्मणजीने कहा उसको जानकीजी ने किया और नहाकर व भोजनकर वे दीर महाकालजी के समीप आये ॥ ३१ ॥ और वहा रात्रिको व्यतीतकर जाने के लिये मन धारण किया व कहा कि हे वरत, सौमित्रे ! उठिये हम दक्षिण दिशाको जाते

कयं सीतया किं करिष्यसि ॥ रामनाहं सर्वकालं दासभावं करोमि ते ॥ २८ ॥ इयं च पुष्टा सुदृढा पीवराचममाप्यतः ॥ वदराघ वसत्येन अनया किं करिष्यसि ॥ २९ ॥ श्रुत्वा पूर्वहितद्वाक्यं लक्ष्मणेन प्रभाषितम् ॥ विमनाराधवस्तस्थौ सीताचापिवरा नना ॥ ३० ॥ यदुक्तं लक्ष्मणेनाथ तच्च सीताचकार ह ॥ स्नात्वा भुक्त्वा च तौ वीरौ महाकालमुपागतौ ॥ ३१ ॥ नीत्वा वि भावरोतत्र गमनाय मनोदधे ॥ उत्तिष्ठ वत्स सौमित्रे ब्रजामोदजिणिं दिशम् ॥ ३२ ॥ सौमित्रिरब्रवीद्वाक्यं नाहंगन्ताक यञ्चन ॥ ब्रजत्वमनया सार्द्धं भार्यया कमलेक्ष्ण ॥ ३३ ॥ नाहमग्रे वनं यामि नवायोध्यां कथञ्चन ॥ एवं ब्रुवाणं सौमि त्रिमुवाच रघुनन्दनः ॥ ३४ ॥ कथं पूर्वमयोध्याया निर्गतोऽसिमया सह ॥ वने वसाम्यहं राम नववर्षाणि पञ्च च ॥ ३५ ॥ प्रसादः क्रियतां मह्यं नयमामपि राघव ॥ इदानीं त्वमर्द्धपथे कथं स्थितासि शत्रुहन् ॥ ३६ ॥ लक्ष्मणस्त्वब्रवीद्वाक्यं नाहं गन्ता वनं पुनः ॥ लक्ष्मणं विदुः शत्रुहन् ॥ ३७ ॥ मामनुब्रज सौमित्रे एकोयास्यामि काननम् ॥ द्विती

है ॥ ३२ ॥ लक्ष्मणजी वचन बोले कि मैं किसी प्रकार नहीं जाऊँगा हे कमललोचन ! तुम इस स्त्री समेत जावो ॥ ३३ ॥ मैं आगे न वनको जाऊँगा और न किसी प्रकार अयोध्याको जाऊँगा ऐसा कहेतेहुये लक्ष्मणजी से श्रीरामजी बोले ॥ ३४ ॥ कि पहले मेरे साथ अयोध्या से क्यों निकले थे हे रामजी ! मैं नव व पांच वर्ष तक वन में बसूँगा ॥ ३५ ॥ हे श्रीरघुनाथजी ! मेरे ऊपर प्रसन्नता कीजाय मुझ को भी ले चालिये हे शत्रुहन् ! इस समय तुम आधेमार्ग में कैसे टिकोगे ॥ ३६ ॥ लक्ष्मणजी वचन बोले कि मैं फिर वनको न जाऊँगा विकार में प्रात लक्ष्मणजी वचन बोले ॥ ३७ ॥ कि हे सौमित्रे ! मेरे पीछे चालिये मैं

अकेले वनको जाऊंगा और दूसरी यह जानकीजी हैं इसप्रकार श्रीरामजी ने लक्ष्मणजी से कहा ॥ ३८ ॥ और उस समय धनुषको लेकर उदासीन लक्ष्मणजी उठे व शत्रुओं के सन्तापक वे दोनों क्षेत्रकी सीमाको प्राप्तहुये ॥ ३९ ॥ और श्रीरामजी बोले कि हे सौमित्रे ! मुझको धनुष देवो तुम लौटजावो श्रीरामजी के वचन को सुनकर लक्ष्मणजी सीतासे बोले ॥ ४० ॥ कि मैं किसलिये छोडागया और मैंने क्या अपराध कियाहै श्रीरामजीसे छोडाहुआ मैं निरसन्देह प्राणोंको त्यागूंगा ॥ ४१ ॥ तदनन्तर जानकीजी श्रीरामजीसे बोलीं कि हे देव ! सुमित्राजीके आनन्दको बढ़ानेवाले लक्ष्मणजी को तुम किसलिये छोड़तेहो ॥ ४२ ॥ श्रीरामजी ने सीताजी से

याचत्वियंसीता उक्तोरामेणलक्ष्मणः ॥ ३८ ॥ धनुःसंगृह्यविमना उत्तस्थौलक्ष्मणस्तदा ॥ प्राप्तौप्राकारमर्यादां क्षेत्रसी
मांपरंतपौ ॥ ३९ ॥ त्वंनिवर्तस्वसौमित्रे समर्पयचमेधनुः ॥ रामवाक्यमुपश्रुत्य सीतावैलक्ष्मणोब्रवीत् ॥ ४० ॥ किमर्थं
हिपरित्यक्तः कोपराधःकृतोमया ॥ रामेणचपरित्यक्तः प्राणस्त्यक्ष्याम्यसंशयम् ॥ ४१ ॥ रामंततोब्रवीत्सीता किम
र्थंलक्ष्मणस्त्वया ॥ देवसन्त्यज्यतेवीरः सुमित्रानन्दवर्धनः ॥ ४२ ॥ राघवस्त्वब्रवीत्सीतां नाहंत्यक्ष्यामिलक्ष्मण
म् ॥ नकदाचिदपिस्वप्ने लक्ष्मणस्येदृगप्रियम् ॥ ४३ ॥ श्रुतपूर्वन्तुसुश्रोणि क्षेत्रस्यास्यविचेष्टितम् ॥ अस्मिन्क्षेत्रे
न सौभ्रात्रं सर्वोहिस्वार्थतत्परः ॥ ४४ ॥ परस्परंनमन्यन्ते स्वार्थनिष्ठैकहेतवः ॥ नशृण्वन्तिपितुःपुत्राः पुत्राणाञ्चतथा
पिता ॥ ४५ ॥ नचशिष्योऽगुरोर्वाक्यं गुरुर्वाशिष्यकर्मच ॥ अर्थानुबन्धिनीप्रीतिर्नकश्चित्कस्यचित्प्रियः ॥ ४६ ॥ एव
मुक्त्वाययौरामो लक्ष्मणोजानकीतथा ॥ लिङ्गंतत्रप्रतिष्ठाप्य स्वनाम्नारघुनन्दनः ॥ ४७ ॥ रामतीर्थेनरःस्नात्वा दृ

कहा कि मैं लक्ष्मणजी को नहीं छोड़ूंगा हे सुन्दर कटिवाली, जानकीजी ! मैंने कभी स्वप्नमें भी लक्ष्मणजीके ऐसे अप्रिय वचनको नहीं सुनाथा इस क्षेत्रके व्यवहार को मैंने पहले सुना था कि इस क्षेत्रमें सुबन्धुता नहीं है क्योंकि सब मनुष्य स्वार्थमें तत्पर होताहै ॥ ४३ ॥ और स्वार्थ में केवल सिद्धिरूप कारणवाले मनुष्य आपस में नहीं मानते हैं पिताके वचन को पुत्र नहीं मानते हैं और न पुत्रोंके वचन को पिता सुनते हैं ॥ ४५ ॥ और शिष्य गुरु के वचन को नहीं सुनता है न गुरु शिष्य के कर्मको सुनताहै प्रयोजनके सम्बन्धवाली प्रीति होती है कोई किसी का प्यारा नहीं है ॥ ४६ ॥ ऐसा कहकर वहांपर अपने नामसे लिङ्गको स्थापितकर श्री-

यवकीत के शप से वह पिता उनसे मारा गया और हे व्यासजी ! तीर्थ से तीर्थमें घूमतेहुये ब्रह्महत्यासे संयुत ॥ ८ ॥ वे ब्राह्मण किंपुनक तीर्थ में नहाकर धारातीर्थ में गये तदनन्तर कपिलधारा में आपही चित्तसे चिन्तनकर ॥ ९ ॥ कि मेरा ब्रह्महत्याका पाप कैसे शान्तिताको प्राप्तहोगा इसप्रकार चिन्तन करताहुआ वह ब्राह्मण फिर अवन्ती पुरी में आया ॥ १० ॥ और जबतक इस तीर्थ में स्नान करे तबतक उसने इस वाणी को सुना कि हे ब्रह्मन् ! जिसलिये कि तुमने स्नान किया है इसकारण फिर क्या ध्यान करते हो ॥ ११ ॥ तुम्हारे ब्रह्महत्या नहीं है क्योंकि वह तीर्थस्नानसे नाश कीगई हे विप्रजी ! पापहीन तुम सुखपूर्वक घरको जावो ॥ १२ ॥

नघातितः ॥ ब्रह्महत्यां न्वितो व्यास तीर्थात्तीर्थपरिभ्रमन् ॥ ८ ॥ तीर्थे किंपुनके स्नात्वा धारतीर्थे गतो द्विजः ॥ ततः कपिल धारायां चिन्तयित्वा तस्मात्स्वयम् ॥ ९ ॥ कथं मे ब्रह्महत्याया यायात्पापं प्रशान्तिताम् ॥ एवं हि चिन्तयन् सोऽथ पुनरा यादवन्तिकाम् ॥ १० ॥ अत्र तीर्थे पुनः स्नाति यावद्वाणीं ततोऽशृणोत् ॥ किंपुनर्ध्यायसे ब्रह्मन् येन स्नातो द्विजोत्तमः ॥ ११ ॥ न ते स्ति ब्रह्महत्या वै तीर्थस्नानेन नाशिता ॥ गच्छशीघ्रं गृहं विप्र पापहीनो यथा सुखम् ॥ १२ ॥ पुनरन्यप्रवक्ष्यामि पत्तनेश्वरमुत्तमम् ॥ तत्र स्थित्वामहेशेन पुनः पत्तनमीक्षितम् ॥ १३ ॥ पत्तनेश्वर इत्याख्यो देवदेवो महेश्वरः ॥ यस्तु गन्धैश्च पुष्पैश्च धूपैर्दोषमनोरमैः ॥ १४ ॥ भावयुक्तो नरो व्यास पूजयेद्विधिवत्सदा ॥ यथावत्तिष्ठते लिङ्गं वंशच्छेदो न जायते ॥ १५ ॥ हंसयुक्तेन यानेन शिवलोकं संगच्छति ॥ तथान्यत्संप्रवक्ष्यामि तीर्थत्रैलोक्यविश्रुतम् ॥ १६ ॥ दुर्धर्षमिति विख्यातं ब्रह्महत्याविमोचनम् ॥ पुरा दिवाकरो व्यास चक्रदुर्धर्षनामतः ॥ १७ ॥ तीर्थमस्मिन्नदीतीरे विख्यातं सूर्यसं

फिर मैं अन्य उत्तम पत्तनेश्वरजी को कहता हूँ वहां पर टिककर सदा शिवजी ने फिर नगरको देखा है ॥ १३ ॥ पत्तनेश्वर ऐसे नामक देवदेव महेशजी हैं हे व्यासजी ! भक्ति संयुत जो मनुष्य सदैव उस लिंगको विधिपूर्वक सुन्दर चन्दन, पुष्प, धूप व दीपोंसे पूजता है वह यथायोग्य स्थित रहता है और उसके वंशका नाश नहीं होता है ॥ १४ ॥ १५ ॥ व हंसोंसे संयुत विमान के द्वारा वह शिवलोकको जाता है वैसे ही त्रिलोकमें प्रसिद्ध अन्य तीर्थको मैं कहता हूँ ॥ १६ ॥ जोकि ब्रह्महत्याको छुड़ाने वाला दुर्धर्ष ऐसा प्रसिद्ध है पुरातन समय हे व्यासजी ! सूर्यनारायण से संस्कार किया हुआ जोकि इस

नदीके किनारे प्रसिद्ध है गन्धर्वगणों से पूजित वह तेजराशि लिंग हुआ है ॥ १८ ॥ सप्तमी, अष्टमी, संक्रान्ति व रविवारको उस तीर्थ में नहाकर व पवित्र होकर तीन रातों तक उपास कियेहुये पुरुष ॥ १९ ॥ वहां शिप्रानदी के किनारे स्थित महादेवजी को देखकर व भक्तिभाव से पूजनकर जिस फलको प्राप्तहोताहै उसको मुझ से सुनिये ॥ २० ॥ किं समस्त पिता व माताके वंशको भलीभांति उधारकर शिवजी के समीप प्राप्तहोताहै वहापर जो विशेषकर गऊ व सुवर्णादिक दान को देताहै ॥ २१ ॥ उसका वह तबतक अक्षय होताहै जबतक कि चन्द्रमा व सूर्य रहते हैं वैसेही अन्य उत्तम गोपीन्द्रतीर्थ को कहताहूं ॥ २२ ॥ जहां पर गौतमजी ने शाप से रक्ततम ॥ तेजःपुञ्जोभवलिङ्गं गणगन्धर्वपूजितम् ॥ १८ ॥ सप्तम्यामथवाष्टम्यां संक्रान्तौ रविवासरे ॥ तत्र स्नात्वा शुचि भूत्वा सुत्रिरात्रमुपोषितः ॥ १९ ॥ दृष्ट्वा महेश्वरं तत्र शिप्राकूलेऽवस्थितम् ॥ पूजयित्वा तु भावेन यत्फलं तच्छृणुष्व मे ॥ २० ॥ पितृमातृकुलं सर्वं समुद्धृत्य शिवं व्रजेत् ॥ तत्र यच्छ्रित्योदानं गोहेमादिविशेषतः ॥ २१ ॥ तावत्तदक्षयं लोके यावच्चन्द्रदिवा करौ ॥ तथान्यत्संप्रवक्ष्यामि गोपीन्द्रतीर्थमुत्तमम् ॥ २२ ॥ गौतमेन पुरायत्र इन्द्रः शापाद्भगीकृतः ॥ भगव्रीडायुतः शक्रः प्रविश्य वनमुत्तमम् ॥ २३ ॥ अतोऽप्यत्तदोऽग्रेण तपसा शङ्करम्पुरा ॥ तुष्टेन शम्भुना विप्र ये भगास्तच्छरीरगाः ॥ २४ ॥ गोसहस्रीकृतास्तेन गोपीन्द्रभित्तिकथ्यते ॥ तत्र स्नात्वा दिव्यातिशक्रतुल्यपराक्रमः ॥ २५ ॥ ये मृतास्ते पुनर्जन्म नाप्नुवन्ति महीतले ॥ गङ्गातीर्थे नरः स्नात्वा पुण्यं प्राप्नोति पुष्कलम् ॥ २६ ॥ ज्येष्ठशुक्ल शम्यान्तु गङ्गायाः फलमादिशेत् ॥ गङ्गातीर्थे नरः स्नात्वा दृष्ट्वा पुष्कररण्डकम् ॥ २७ ॥ पुष्पकेण विमानेन प्रयाति इन्द्र के भग कियाहै और भगकी लज्जा से संयुत इन्द्रजी ने उत्तम वन में पैठकर ॥ २३ ॥ पुरातन समय तत्र उग्र तपसे शङ्करजीको प्रसन्न कियाहै हे विप्रजी ! उन इन्द्र के शरीर में जो भग प्राप्त थे वे उन प्रसन्न शिवजी से हजार नेत्र किये गये इससे वह गोपीन्द्र ऐसा तीर्थ कहाजाता है उस तीर्थ में नहाकर इन्द्र के तुल्य बलवाला मनुष्य स्वर्गको प्राप्तहोताहै ॥ २४ ॥ और जो वहा मरजाते हैं वे फिर पृथ्वीतल में जन्म नहीं पाते हैं और गङ्गा नामक तीर्थ में नहाकर मनुष्य बड़े पुण्य को प्राप्तहोताहै ॥ २६ ॥ और ज्येष्ठ शुक्ल दशमी तिथि में गङ्गाजी के फलको आदेश करै है और गङ्गातीर्थ में नहाकर व पुष्कररण्डक तीर्थको देखकर मनुष्य ॥ २७ ॥

पुण्यक विमान के द्वारा प्रयाण करता है व स्वर्ग में प्रसन्न होता है और उत्तरेश्वर तीर्थ में नहाकर मनुष्य शीघ्रही पितरों को नरक से उधारता है ॥ २८ ॥ और प्रियसुखों से संयुत वह मनुष्य निस्सन्देह स्वर्ग को जाता है और भूतेश्वर तीर्थ में नहाकर इस के अनन्तर भूतेश्वर जी को चन्दन पुष्पादिक व नैवेद्यों से पूजे तो मरकर सुरपुर को जाता है और शिवा नदी में नहाकर जो मनुष्य कैलास को प्रणाम करता है ॥ २९ ॥ ३० ॥ उसका पाप वैसेही नाश होजाता है जैसे कि सूर्यनारायणसे नष्ट किया हुआ अन्धकार होवे और जो पुरुष समाधि के नियम से अंबालिका देवी जी को देखता है ॥ ३१ ॥ वह सब पापों से वैसेही छूट

दिविमोदते ॥ नरकादुद्धरत्याशु नरःस्नात्वोत्तरेश्वरे ॥ २८ ॥ इष्टभोगसमापन्नो यातिस्वर्गनसंशयः ॥ भूतेश्वरेनरःस्नात्वा भूतेश्वरमथार्चयेत् ॥ २९ ॥ गन्धपुष्पादिनैवेद्यैर्मृतःसुरपुरं व्रजेत् ॥ शिप्रायान्तुनरःस्नात्वा कैलासन्तुनमस्य ति ॥ ३० ॥ सूर्याहतंतमोयद्वत्तद्वत्पापंप्रणश्यति ॥ अम्बालिकांचयःपश्येत् समाधिनियमेनच ॥ ३१ ॥ समुक्तःसर्व पापेभ्यः कञ्चुकेनफणीयथा ॥ घण्टेश्वरंप्रवक्ष्यामि यत्सुरैरपिपूजितम् ॥ ३२ ॥ यत्रकूपोदकम्पीत्वा सौभाग्यमतुलं लभेत् ॥ अर्चयेद्यस्तुदेवेशं गन्धपुष्पैरनुक्रमात् ॥ ३३ ॥ शिवलोकैवसेत्तावद्याविन्द्राश्चतुर्दश ॥ पुण्येश्वरन्तुयः पश्येच्छुचिःस्नातोऽजितेन्द्रियः ॥ ३४ ॥ सगणपत्यमाप्नोति यत्सुरैरपिदुर्लभम् ॥ लुम्पेश्वरेनरःस्नात्वा समभ्यर्च्य महेश्वरम् ॥ ३५ ॥ नयातिनरकमर्त्यः स्वर्गलोकैर्महीयते ॥ तथान्यत्संप्रवक्ष्यामि यत्सुरैरपिदुर्लभम् ॥ ३६ ॥ पूजितं ब्र

जाता है जैसे कि केंचुलि से सांप छूटता है व घण्टेश्वर जी को मैं कहता हूँ जोकि देवताओं से भी पूजित है ॥ ३२ ॥ और जहां कूपका जल पीकर अतुल सौभाग्य को प्राप्त होता है और जो मनुष्य कमसे चन्दन तथा पुष्पों से देवेश जी को पूजता है ॥ ३३ ॥ वह तबतक शिवलोक में बसता है कि जब तक चौदह इन्द्र रहते हैं और इन्द्रियों को जीतेहुये नहाकर जो पवित्र पुरुष पुण्येश्वरजी को देखता है जोकि देवताओंको भी दुर्लभ है और लुम्पेश्वर तीर्थ में नहाकर मनुष्य महादेवजी को भलीभांति पूजकर ॥ ३५ ॥ नरकको नहीं जाता है और वह मनुष्य स्वर्गलोकमें पूजाजाता है वैसेही अन्य तीर्थको कहता

हं जोकि देवताओं को भी दुर्लभ है ॥ ३६ ॥ पुरातन समय ब्रह्माने रथविर नामक गणेशजीको पूजाहै उस तीर्थमें नहाकर व पवित्र होकर जो मनुष्य विनायकजी को गन्ध, धूप, पुष्प, भक्ष्य व भोज्योंसे पूजताहै उसके फलको सुनिये कि चाही हुई सिद्धि होती है और मरकर शिवपुरको जाता है ॥ ३७ ॥ जो विद्वान् मनुष्य नवनदी के समीप पार्वतीजी को गन्ध, पुष्प व धूपों से पूजै वह अतुल सौभाग्यको पावे ॥ ३८ ॥ और कामोदक तीर्थ में नहाकर रतिके प्यारे कामदेवजी को देखकर मनुष्य स्वर्ग में देवता व गन्धर्वों के वाहने योग्य शरीरवाला होताहै ॥ ४० ॥ और प्रयागतीर्थ में नहाकर जो मनुष्य प्रयागेशजीको देखताहै वह सब लोकोंको नाघ

ह्यणापूर्वं स्थविराख्यं विनायकम् ॥ तत्र स्नात्वा शुचिर्भूत्वा पूजयेद्यो विनायकम् ॥ ३७ ॥ गन्धधूपैश्च पुष्पैश्च मध्यैर्भोज्यैः फलं शृणु ॥ समीहिता भवेत्सिद्धिर्भूतः शिवपुरं व्रजेत् ॥ ३८ ॥ नवनद्याः समीपे तु पार्वतीं पूजयेद्बुधः ॥ गन्धपुष्पैश्च धूपैश्च सौभाग्यमतुलं लभेत् ॥ ३९ ॥ कामोदके नरः स्नात्वा दृष्ट्वा कामं रतिप्रियम् ॥ स्वर्गं च देवगन्धर्वस्पृहणीयवपुर्भवेत् ॥ ४० ॥ प्रयागे तु नरः स्नात्वा प्रयागेशं नुपश्यति ॥ सर्वलोकानतिक्रम्य शिवलोके महीयते ॥ ४१ ॥ इति श्री स्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे सौभाग्यतीर्थमाहात्म्यं नाम द्विचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ४२ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

सनत्कुमार उवाच ॥ अथान्यं संप्रवक्ष्यामि नरादित्यं दिवाकरम् ॥ यस्य दर्शनमात्रेण सर्वरोगैर्विमुच्यते ॥ १ ॥ स्थापनान्ते प्रवक्ष्यामि नरादित्यस्य यादृशी ॥ युद्धे निवारिते तस्मिन् रक्तस्वेदजयोः पुरा ॥ २ ॥ नरनारायणौ देवाववतीर्णौ धरातले ॥ कुन्त्यान्देव्यां सुदेवक्यां मथुरायां समागतौ ॥ ३ ॥ एव तौ भवतो लोके कान्तौ दृष्टिम्पराङ्गतौ ॥ अन्यस्मा

कर शिवलोकमें पूजा जाताहै ॥ ४१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां सौभाग्यतीर्थमाहात्म्यं नाम द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४२ ॥ दो० । नरादित्यको थप्यो जिमि स्तुति करि अर्जुनवीर । तैत्तलिसर्व में सोई कह्यो चरित मतिधीर ॥ सनत्कुमारजी बोले कि इसके अनन्तर अन्य नरादित्य नामक सूर्यनारायणको कहताहूं कि जिनके दर्शनही से मनुष्य सब रोगों से छूटजाताहै ॥ १ ॥ नरादित्यजी की जैसी स्थापना है वैसी मैं तुमसे कहूंगा पुरातन समय रक्त व पसीने से उपजंहुये पुरुषों का युद्ध निवारण करने पर ॥ २ ॥ नरनारायणदेवजीने पृथ्वी में अवतार लियाहै जोकि कुन्तीदेवी में व मथुरामें देवकीजीमें भलीभांति

प्राप्तहुये हैं ॥ ३ ॥ इसप्रकार परमवृद्धि को प्राप्त वे लोकमें मनोहर हुये श्रीकृष्णजी अन्य हेतुसे उत्पन्नहुये और अर्जुनजी अन्य कारणसे पैदाहुये ॥ ४ ॥ उन श्रीकृष्णजी ने युद्धमें कंसादिक सब दानवों को माराहै तदनन्तर पृथाके पुत्र अर्जुन जी इन्द्र से अल्लोकी सिद्धिके लिये स्वर्ग में प्राप्तहुये हैं ॥ ५ ॥ और अल्लोको सीखे हुये अर्जुन वीरने सुरराजसे दक्षिणाको कहा और देवताओंके राजा इन्द्रने उस दक्षिणाको मांगा ॥ ६ ॥ कि हे अर्जुनजी । हिरण्यपुरमें बसनेवाले उग्र निवातकवच नामक दैत्यों को शीघ्रही मारिये यह मेरी गुरुदक्षिणा है ॥ ७ ॥ अर्जुन ने उन दुष्टात्मा दैत्यों के मारनेकी प्रतिज्ञा किया और भयंकर रथ पे चढ़कर व बाण समेत

त्कारणात्कृष्णोन्यस्माज्जातो धनञ्जयः ॥ ४ ॥ कंसादीन् दानवान् सर्वान् निजघानरणे हि सः ॥ स्वर्गगतस्ततः पार्थो वासवादस्त्रसिद्धये ॥ ५ ॥ कृतास्त्रेण तु वीरेण देवराजस्तु दक्षिणाम् ॥ संस्तुतो देवराजेन दक्षिणा सा तु याचिता ॥ ६ ॥ निवातकवचाह्वया हिरण्यपुरवासिनः ॥ वध्यतामर्जुनक्षिप्रमेघमगुरुदक्षिणा ॥ ७ ॥ अर्जुनेन प्रतिज्ञातो वधस्तेषां दुरात्मनाम् ॥ रौद्रं सरथमास्थाय गृहीत्वा सशरंधनुः ॥ ८ ॥ निहत्य तांस्ततः पार्थः कृत्वा कर्मसुदुष्करम् ॥ प्रीतिमुत्पादयामास सर्वेषां च दिवौकसाम् ॥ ९ ॥ कृतकार्यं तदा शक्रस्तवर्जुनं वाक्यमब्रवीत् ॥ यत्ते भिरुचिरं वीर मर्त्यलोके सुदुर्लभम् ॥ १० ॥ मनसा काङ्क्षितं पार्थ वरन्तं वरयोत्तमम् ॥ सवत्रे प्रतिमेद्वेतुये च्छिते ब्रह्मणा स्वयम् ॥ ११ ॥ ब्रह्मणा प्रीतियुक्तेन दत्ताय प्रीतिपादिते ॥ दक्षेणापियुगं साग्रं पूजितेति मिरापहे ॥ १२ ॥ सुराणामसुराणाञ्च विग्रहे समुपस्थिते ॥ दानवैर्निर्जितः श

धनुषको लेकर उन ॥ ८ ॥ अर्जुनजीने उन दैत्योंको मारकर न कठिन कर्म करके तदनन्तर सब देवताओं के प्रीति उत्पन्न किया ॥ ९ ॥ उस समय कार्यको किये हुये अर्जुनजी से इन्द्र ने वचन कहा कि हे वीर, अर्जुनजी ! मृत्युलोकमें दुर्लभ व मनोहर जो तुम्हारे ॥ १० ॥ मनसे चाहा गया हो उस उत्तम वरदान को मांगिये उन्हें ने दो प्रतिमाओंको मांगा कि जिनको आपही ब्रह्माजीने पूजा था ॥ ११ ॥ व प्रीतिसंयुत ब्रह्माजीने दक्षजिके लिये उन मूर्तियोंका प्रतिपादन किया और दक्षजीने भी कुछ अधिक युग भरतक अन्धकारनाशक (दिननायक) की मूर्तियों का पूजन किया ॥ १२ ॥ जब देवताओं व दैत्योंका वैर उपस्थित हुआ तब दानवोंसे जीते व

हरीहुई राउयवाले इन्द्रजी वनको चलेगये ॥ १३ ॥ व इन्द्रजीने एक चरणसे स्थितहोकर देवताओं के हजार वर्षोंतक असह्य तप किया और बृहस्पतिजीने उनको देखा ॥ १४ ॥ व उन इन्द्रको देखकर बृहस्पतिजी बोले कि हे इन्द्रजी ! स्वर्ग को छोडकर तुम क्यों इस वन में आयेहो ॥ १५ ॥ अकेले वन में टिकेहुये तुमसे शत्रु साधन योग्य नहीं हैं ऐसा जानकर हे सुरराज ! तुम शीघ्रही दक्षजी के आश्रमको जावो ॥ १६ ॥ पूजन के लिये पारिजात से उपजीहुई जिन मूर्तियों को ब्रह्माने दिया है व जिनको विश्वकर्माने रचा है उनको प्रजापति (दक्ष) जी से मांगिये ॥ १७ ॥ उन मूर्तियोंके पूजन व प्रसाद से शत्रुओंका विनाशहोगा बृहस्पतिजी के उस वचन

क्रोहतराज्योवनंगतः ॥ १३ ॥ तपश्चचारदुर्धर्षमेकपादःशतक्रतुः ॥ दिव्यवर्षसहस्रन्तु धिषणस्तंददर्शह ॥ १४ ॥
दृष्ट्वातन्देवराजन्तु बृहस्पतिरुवाचह ॥ हित्वात्रिदिवमायातः कथंशक्रत्विदंवनम् ॥ १५ ॥ एकाकिनावनस्थेन नसा
ध्याःशत्रवस्त्वया ॥ ज्ञात्वैवन्देवराजत्वं शीघ्रिंदत्त्वाश्रमंव्रज ॥ १६ ॥ पूजार्थेब्रह्मणादत्ते पारिजातसमुद्भवे ॥ चकार
विश्वकर्मायेते याचस्वप्रजापतिम् ॥ १७ ॥ शत्रूणांचक्षयोभावी प्रसादादर्चनानात्तयोः ॥ गुरोस्तुतेनवाक्येन हृष्टोदेवइश
तक्रतुः ॥ १८ ॥ जगामसत्वरस्तत्र यत्रदत्त्वाःप्रजापतिः ॥ विनयावनतोभूत्वा ययाचिप्रतिमेह्युमे ॥ १९ ॥ ददौतस्मैत
तोदक्षःशक्रायप्रतिमेशुमे ॥ पूजितेप्रतिमेव्यास शक्रेणशरदांशतम् ॥ २० ॥ तयोस्तुतेजसासर्वे विनाशदानवाग
ताः ॥ प्रतिमेचोचतुःशक्रं वरयस्ववरोत्तमम् ॥ २१ ॥ भक्त्यानयापरन्तुष्टा आवांजानीहिवासव ॥ वरंवब्रेतदाश
क्रःप्रसन्नात्माद्विजोत्तम ॥ २२ ॥ अस्माकंप्रतिपक्षायै दानवाःपापचेतसः ॥ सर्वेतेनाशमायान्तु वरएषमतोमम ॥ २३ ॥

से इन्द्रदेवजी प्रसन्नहुये ॥ १८ ॥ और जहां पर दक्षप्रजापति थे वहां शीघ्रही गये व दिनयसे भूँकेहुये होकर उन्होंने दोनों प्रतिमाओंको मांगा ॥ १९ ॥ तदनन्तर दक्षजी ने उन इन्द्र के लिये उत्तम प्रतिमाओं को दिया व हे व्यासजी ! सौ वर्ष तक उन प्रतिमाओं को इन्द्र ने पूजा ॥ २० ॥ और उनके तेजसे सब दानव नाश को प्राप्तहुये व प्रतिमाओंने इन्द्रजीसे कहा कि उत्तम वरदानको मांगिये ॥ २१ ॥ हे वासवजी ! इस भक्तिसे हम दोनोंको बहुत प्रमत्त जानो तदनन्तर हे व्यासजी ! उस समय प्रसन्न चित्तवाले इन्द्रजीने वरदानको मांगा ॥ २२ ॥ कि पाप चित्तवाले जो दानव हम लोगों के शत्रुहैं वे सब नाशको प्राप्तहोवैं यह वरदान मेरा सम्मतहै ॥ २३ ॥

और जबतक मैं इन्द्र होऊँ तबतक मैं तुम दोनों को पूजना चाहता हूँ बहुत अच्छा ऐसा कहकर वे प्रतिमार्थें स्वर्गको चली गई ॥ २४ ॥ वरके लिये उन दोनों प्रतिमाओं को मांगना चाहिये इन्द्रजी बोले कि हे अर्जुनजी ! बहुत अच्छा बहुत अच्छा बयोंकि तुम ऐसा कहते हो ॥ २५ ॥ व हे अर्जुनजी ! इन प्रतिमाओं को महात्मा सदाशिवजीने अरुण कमलोंसे ब्रह्माके दिन पर्यन्त पूजा है ॥ २६ ॥ व पुरातन समय श्रीविष्णुजी ने त्रिलोककी रक्षाके लिये कमलों व सुगन्धों से हज़ारों वर्ष तक इन दो मूर्तियों को पूजा है ॥ २७ ॥ तदनन्तर सावधान होतैहुये सृष्टि करने की इच्छावाले ब्रह्माजी ने उत्तम लाल कमलोंसे प्रतिमाओं का पूजन किया है ॥ २८ ॥

युवांपूजितुमिच्छामि यावदिन्द्रोभवाभ्यहम् ॥ तथेतिचोक्त्वाप्रतिमे तेनाकंप्रतिजग्मतुः ॥ २४ ॥ तत्तुयाच्यमव
इयार्थे वरार्थेप्रतिमाद्वयम् ॥ इन्द्रउवाच ॥ साधुपार्थपुनस्साधु यतश्चेत्थंत्वयोच्यते ॥ २५ ॥ इमेचप्रतिमेपार्थ
शङ्करेणमहात्मना ॥ सुरक्तैःशतपत्रैश्च पूजितेब्रह्मणोदिनम् ॥ २६ ॥ त्रैलोक्यपालनार्थं च पूजितेविष्णुनापुरा ॥ नीलो
त्पलैस्सुगन्धैश्च सहस्रपरिवत्सरान् ॥ २७ ॥ ततःप्रजापतिस्सृष्टिं कर्तुकामस्समाहितः ॥ पूजयामासप्रतिमे पद्मैरक्तो
त्पलैश्शुभैः ॥ २८ ॥ त्वमेवहिकथंपार्थ मृत्युलोकन्नायिष्यसि ॥ एताभ्यारहितस्स्वर्गस्तृणतुल्योभविष्यति ॥ २९ ॥
आदातुकामंदेवेन्द्रं प्रणिपत्यतमज्जुनः ॥ उवाचचाहमर्थस्मि वरेणानेनवैप्रभो ॥ ३० ॥ ततःशक्रःपुनःपार्थमुवा
चमुनिपुङ्गव ॥ गृहीत्वात्वमिमेर्वीर कुशस्थल्यानिवेशय ॥ ३१ ॥ शिप्रायाउत्तरेतीरे केशवार्कन्तुकेशवः ॥ स्थापयि
ष्यतिवैतत्र सर्वपापप्रणाशनम् ॥ ३२ ॥ भविष्यतिसदायात्रा आषाढीचाथकार्तिकी ॥ आगमिष्याम्यहंतत्र सहितो

हे पार्थ ! तुम्हीं कैसे मृत्युलोकको ले जाओगे इन दो मूर्तियोंसे रहित स्वर्गलोक तितुका के समान होगा ॥ २९ ॥ लेनकी इच्छावाले सुरेन्द्र को प्रणामकर अर्जुनजी बोले कि हे प्रभो ! मैं इसी वरदान से अर्थी (प्रयोजनवान्) हूँ ॥ ३० ॥ तदनन्तर हे मुनिश्रेष्ठ ! इन्द्रजीने फिर अर्जुनजी से कहा कि हे वीर ! तुम इन मूर्तियोंको ले कर उज्जयिनी पुरीमें स्थापितकरो ॥ ३१ ॥ वहां शिप्रा नदी के उच्चर किनारे पै विष्णुजी समस्त पापोंके विनाशक केशवार्कजीको थापेंगे ॥ ३२ ॥ और सदैव आषाढी व

कार्तिकी यात्रा होगी और वहां पर अप्सराओंके गणों समेत मैं आऊंगा ॥ ३३ ॥ और विजलियों समेत मेघ व पवन आवैंगे व मेघोंके समूह में उत्पन्न मेरे वहां बरसने पर ॥ ३४ ॥ मनुष्य कहेंगे कि इन्द्रदेवजी प्राप्तहुये ब्रह्मादिक देवताओं से पूजित व्यापक सूर्यनारायणजी को प्रणामकर ॥ ३५ ॥ हे अर्जुनजी ! फिर भी जिस प्रकार आया था उसीभांति लौटजाऊंगा इसप्रकार विष्णुकी दोनों प्रतिमाओंको अर्जुनजीके लिये देकर ॥ ३६ ॥ हे पाण्डवजी ! पुत्र समेत पृथ्वीलोकको पठाया और श्रीकृष्ण जीके बुलाने के कारण द्वारकापुरी में नारदजी ने ॥ ३७ ॥ सुरराज के चरित्र समेत उस वचन को श्रीकृष्णजी को सुनाया व हे द्विजेन्द्र ! यह कहा कि हे कृष्णजी !

पसरसाङ्गणैः ॥ ३३ ॥ मरुतश्चागमिष्यन्ति मेघाश्चैवसविद्युतः ॥ मेघखण्डेसमुद्भूते मयितत्रप्रवर्षति ॥ ३४ ॥ प्रवदिष्यन्तिवैलोकाः प्राप्तोदेवः पुरन्दरः ॥ भास्करन्तुनमस्कृत्यब्रह्माद्यैः पूजितंविभुम् ॥ ३५ ॥ प्रतियामितुर्वाभत्सो पुनरेव यथागतम् ॥ एवंमूर्तिद्वयंशौरिर्दत्त्वापार्थायवासवः ॥ ३६ ॥ भूलोकंप्रेषयामास सुतेनसहपाण्डव ॥ नारदोद्वारकाया न्तु कृष्णस्याह्वानकारणात् ॥ ३७ ॥ देवराजस्यतद्वाक्यं सरहस्यञ्चकेशवम् ॥ श्रावयामासविप्रेन्द्र एहिकृष्णकुशस्थ लीम् ॥ ३८ ॥ अर्चस्वपारिजातस्य विश्वकर्मसुकारिते ॥ इन्द्रेणाथप्रदत्तैर्वै तंतुभ्यंपाण्डवायच ॥ ३९ ॥ श्रुत्वाशौरिस्तुतद्वाक्यं प्रतस्थेवन्तिकाम्पुरीम् ॥ अवातरच्चहाकाशात्तमालिङ्ग्यचपाण्डवम् ॥ ४० ॥ प्रीतः प्रोवाचवचनं परिष्वज्यचफाल्गुनम् ॥ जन्ममेसफलंजातं प्रीतिर्मेह्यतुलाजुन ॥ ४१ ॥ यतोमेप्रीतिरतुला क्रियातांकार्यमुत्तमम् ॥ इत्युक्त्वातौतदाव्यास समायातौकुशस्थलीम् ॥ ४२ ॥ पार्थप्राहतदाकृष्णस्सुसम्पूर्णमनोरथः ॥ गत्वाजुनदिशंप्राचीं मूर्ति

अवन्तीपुरीको आइये ॥ ३८ ॥ व विश्वकर्मासे रचीहुई पारिजातकी प्रतिमाओंको पूजिये क्योंकि इन्द्रने उन मूर्तियोंको तुम्हारे व पाण्डवजीके लिये दियाहै ॥ ३९ ॥ श्रीकृष्णजी उस वचनको सुनकर उज्जयिनी पुरीको चले व आकाशमे नीचे उतरे और उन पाण्डव (अर्जुन) जी को लिपटाकर ॥ ४० ॥ प्रसन्नहुये व अर्जुनजी को लिपटाकर यह वचन बोले कि हे अर्जुनजी ! मेरा जन्म सफल होगया और मेरे बहुत प्रीति हुई ॥ ४१ ॥ जिस लिये मेरे बहुत प्रीति है उसीकारण उत्तम कार्य को कीजिये ऐसा कहकर उस समय हे व्यासजी ! वे दोनों अवन्ती पुरीको भलीभांति आये ॥ ४२ ॥ उस समय सम्पूर्ण मनोरथवाले श्रीकृष्णजी अर्जुनजी से बोले

कि हे अर्जुनजी ! पूर्वदिशाको जाकर एक मूर्तिको स्थापित कीजिये ॥ ४३ ॥ हे मुने ! दुपहरके इसपार उत्तम मनोहर लग्न होगी मैं भी स्थापनाके लिये उत्तरदिशा को नदीके समीप जाऊंगा ॥ ४४ ॥ और तुम मेरे शंखके शब्दसे सूर्यनारायणको स्थापितकरो तदनन्तर पूर्वदिशाको जाकर अर्जुनजीने उत्तम स्थानको देखा ॥ ४५ ॥ व हे व्यासजी ! सुस्थिर अर्जुनजीने दिननायककी उस मूर्तिको स्थापित किया जबतक पाण्डव अर्जुनजी ने यह ध्यान किया कि देवको कहां स्थापितकरूं ॥ ४६ ॥ तबतक उस मूर्तिने कारणसे उत्तम देवस्थानको कहा व अर्जुनजीके लिये अपने तेजसे असह्य स्थानको दिखलाया ॥ ४७ ॥ तदनन्तर बोलतीहुई उस मूर्तिको देख तबतक उस मूर्तिने कारणसे उत्तम देवस्थानको कहा ॥ ४८ ॥ म

मेकान्निवेशय ॥ ४३ ॥ पूर्वाह्ने हि शुभं लग्नं भविष्यति मनोरमम् ॥ अहमप्युत्तरांयास्ये स्थापनार्थेन दामुने ॥ ४४ ॥ म
मशङ्कस्य नादेन प्रतिष्ठापय मास्करम् ॥ पूर्वज्ञत्वा ततः पार्थः शुभं स्थानं व्यलोकयत् ॥ ४५ ॥ व्यासतां स्थापयामास
दिन नार्थस्य सुस्थिरः ॥ कदेवं स्थापयामीति यावद्दध्यौ च पाण्डवः ॥ ४६ ॥ तावत्साह्यब्रवीद्वैवस्थानं कारणशोभनम् ॥
दर्शयामास पार्थाय तेजसां स्वेन दुस्सहम् ॥ ४७ ॥ सव्यमाचीततो भीतो दृष्ट्वा च्छान्तां प्रजल्पतीम् ॥ तेजस्त्वसहमानो
वै देवं वचनमब्रवीत् ॥ ४८ ॥ कदेवत्वां प्रमुञ्चामि किं स्थानं तवरोचते ॥ सौम्यरूपस्सुदर्शश्च प्रजाभ्यो भवगोपते ॥
४९ ॥ दिवि संस्थाश्रये देवा नागाः पातालसंश्रयाः ॥ भुवि स्थामानवाः पूता भवन्तु तव दर्शनात् ॥ ५० ॥ सोऽर्जुन मब्रवी
द्देवो मा भैस्त्वं मम दर्शनात् ॥ दक्षिणेन करेणाय ह्यभयेनाभयप्रदः ॥ ५१ ॥ समाश्वास्यार्थं तं शान्तस्सौम्यमूर्तिर्वभू
वह ॥ प्रभाकरेण देवेन निजन्तेजः प्रदर्शितम् ॥ ५२ ॥ ततस्सूर्यो ब्रवीत्स्थानमेतदेवाचलं मम ॥ प्राप्ते लगने च हरिणा श
कर तेजको न सहते हुये उरे हुये अर्जुनजी सूर्यदेवजीसे वचन बोले ॥ ४८ ॥ कि हे देव ! मैं तुमको कहाँ स्थापित करूँ तुमको कौन स्थान रुचता है हे गोपते ! सौम्य
रूपवाले और सुन्दर दर्शनावाले होवो ॥ ४९ ॥ स्वर्ग में स्थित जो देवता हैं और पाताल में टिके हुये जो नाग हैं वे और पृथ्वी में टिके हुये मनुष्य तुम्हारे दर्शन से
पवित्र होंगे ॥ ५० ॥ उन सूर्यदेवजी ने अर्जुनजी से कहा कि मेरे दर्शन से तुम मत डरो इसके अनन्तर दाहिने अभय हाथ से अभय देनेवाले ॥ ५१ ॥ सूर्यनारा-
यणजी उनको भलीभाँति आश्वासन कर शान्त व सौम्य मूर्तिवाले हुये सूर्यदेवजीने अपने तेजको दिखलाया ॥ ५२ ॥ तदनन्तर सूर्यनारायणजीने कहा कि मेरा यह

अचल स्थान है और लगन प्राप्त होने पर विष्णुजीने बड़े भारी शङ्ख को बजाया ॥ ५३ ॥ और नर (अर्जुन) जी ने देवताओं से प्रशंसा किये हुये सूर्यनारायण को स्थापित किया ॥ ५४ ॥ अर्जुनजी बोले कि प्रकाशमान सूर्यनारायणजी जयको प्राप्त होवें जो कि सात घोड़ोंवाले व सब लोकों में तेजवाले तथा पूर्वदिशा के अन्त में अट्टहासवाले हैं और जिनके कीर्तन से बहुत दोषों से ग्रसे हुये मनुष्योंका अंग पापरहित होता है ॥ ५५ ॥ ब्रह्मादिक मुनियों से स्तुति किये हुये सूर्यनारायणजीका पूरा स्तुति करने के लिये कौन पुरुष चाहता है तौ भी उच्चम ज्ञानवाला मैं विस्तारसे स्तुति करता हूँ क्या चन्द्रमाके उदय होने पर दीप जलता है ॥ ५६ ॥ शास्त्रोंके अर्थ

ह्वश्चापूरितो महान् ॥ ५३ ॥ नरेण च सर्वसूर्यस्थपितो मरसंस्तुतः ॥ ५४ ॥ अर्जुन उवाच ॥ नयति किरणमाली भासुरसप्तसप्तिसकलभुवनधामा प्राग्दिगन्तादृहासः ॥ भवति विगतपापं कीर्तनादेव यस्य प्रचुरकलुषदोषैर्ग्रस्तमङ्गनराणाम् ॥ ५५ ॥ ब्रह्माद्यैर्मुनिभिरभिष्टुतं पतङ्गं कस्तो तुं कविरभिवाञ्छति प्रकामम् ॥ स्तोष्ये हंतदपि सुविस्तरात्सुबुद्धः किं दीपो ज्वलति हि प्रोदिता शङ्का ॥ ५६ ॥ शास्त्रार्थकामनिपुणैर्मुनिभिः स्तुतस्य किं वस्तु यन्नरचितं विविधैः प्रयोगैः ॥ हे पायन प्रभृतिभिर्मुनिभिः पुराणैरापीतसारा मिह मातिजगत्समस्तम् ॥ ५७ ॥ कामं तथाप्यहमतीव विचार्य बुद्ध्या भानो नि लोकगुरुं पूजितपादयुग्मम् ॥ वृत्तैस्स्फुटार्थमधुरान्नरसन्धियुक्तैस्त्वाविविचित्रगतिभिः परिकीर्तयिष्ये ॥ ५८ ॥ तावज्जगद्भ्रवति निश्चलमेव सर्वं तावत्क्रियाश्च विविधानचर्या न्तिसिद्धिम् ॥ यावच्च नाथ कमलामण्डलस्त्वं नोत्तिष्ठसे व्यपनयनिकरणैस्तमांसि ॥ ५९ ॥ यावन्न भान्ति शिखराणि महीरुहाणां शुच्छान्य फुल्लतनुर्मालितलोचनानि ॥ मुष्टानि बोधयसि

में चतुर मुनियों से स्तुति किये हुये सूर्यनारायणजी की वह कौन वस्तु है जो कि अनेक भौतिके प्रयोगों से नहीं रचित है और व्यासादिक मुनियों से पिये हुये सारांश वाला सब संसार यहाँ शोभित है ॥ ५७ ॥ तौ भी हे सूर्यनारायणजी ! त्रिलोक में गुरुओं से पूजित शुगल चरणोंवाले तुमको बहुत ही बुद्धि से विचारकर प्रकट अर्थ व मीठे अक्षरों से संधिसंयुत व विचित्र गतियोंवाले श्लोकों से तुम्हारा कीर्तन करता हूँ ॥ ५८ ॥ तबतक सब संसार अचल ही होता है और तबतक अनेक भौतिके कर्म सिद्धि को नहीं प्राप्त होते हैं जबतक कि हे नाथ ! किरणों से अन्धकारोंको दूर कर देते हुये कमलके समान निर्मल मण्डलवाले तुम नहीं उदय होते हो ॥ ५९ ॥ जब

तक कि वृत्तों के शिखर नहीं शोभित होते हैं व जबतक बिनफूले हुये शरीररूप मूँदे हुये नेत्रोंवाले व अमरों से व्याप्त व सोते हुये गुच्छोंको अति उत्तम प्रकाशों से नहीं जगते तब तक यह संसार नहीं शोभित होता है ॥ ६० ॥ आकाशमें उदयको प्राप्त तुमको देवताओं व सिद्धों के समूह व ब्रह्मा समेत दैत्य, मुनि, किन्नर, नाग और यक्ष तथा देवता प्रणाम किये हुये मस्तकों से व शोभित किरीट की मणिओं को अति उत्तम प्रकाशों से पूजते हैं ॥ ६१ ॥ तुम्हारे अस्त होजानेपर संसार सुप्त होजाता है और फिर तुम्हारे तपने पर बोधको प्राप्त होता है इस प्रकार हे भगवन्, वरदायक ! सदैव लोकोंके हितके लिये एक तुम्हीं अन्धकार के नाशक हो ॥ ६२ ॥ उत्साह, शक्ति,

पद्मचरणकुलानि आवन्नभाभिरनुत्तमाभिः ॥ ६० ॥ उद्यन्तमम्बरतले सुरसिद्धसङ्घास्स ब्रह्मदैत्यमुनिकिन्नरनाग
यक्षाः ॥ त्वामर्चयन्ति विबुधाः प्रणतैः शिरोभिश्च चत्किरीटमणिभिरनुत्तमाभिः ॥ ६१ ॥ अस्तंगते त्वयि जगद्भवति प्र
सुप्तं भूयस्त्वयि प्रतपति प्रतिबोधमेति ॥ एवं सदा वरलोकहितार्थे हेतोरैकस्त्वमेव भगवंस्ति भिरस्यहन्ता ॥ ६२ ॥ उ
त्साहशक्तिनयशौर्यसमन्वितानां सेवाप्रयोगरचनाविधितत्पराणाम् ॥ कार्याणि यन्न फलदानि भवन्ति पुंसां हेतुस्त्वम
क्तिरिह नाथ तवेति नूनम् ॥ ६३ ॥ यत्संयुगेषु रथकुञ्जरकुन्तशक्तिनाराचक्रशरतोमरभीमखड्गैः ॥ जिप्रनरास्समुप
यान्ति विजित्य शत्रून्सर्वसदा प्रणतवत्सत्तु चेष्टितन्ते ॥ ६४ ॥ कान्तारदुर्गविषमेष्वपि वर्तमाना ऋक्षेभ्यो सिंहबहुकराटक
तस्करेषु ॥ कष्टान्विताश्च बहुशोकविमूढाश्चित्तास्त्वत्कर्तृना द्विगतमृत्युभया भवन्ति ॥ ६५ ॥ तेजोराशे त्वमिह शरणं स

नीति व शूरता से संयुत तथा सेवाप्रयोगकी रचनाकी विधि में तत्पर मनुष्यों के जो कार्य फलदायक नहीं होते हैं इस विषय में हे नाथ ! निश्चय कर तुम्हारी अभक्ति कारण है ॥ ६३ ॥ और युद्धों में जो रथ, हथौड़ी, भाला, शक्ति, नाराच, चक्र, बाण, तोमर व भयंकर तलवारों से मनुष्य शीघ्र ही शत्रुओंको जीतकर सब वस्तु को प्राप्त होते हैं हे प्रणतप्रिय ! वह तुम्हारी चेष्टा है ॥ ६४ ॥ ऋक्ष, हाथी, सिंह व बहुत कांटों तथा चोरों से संयुत दुर्गम पन्थ व किला और विषम स्थानों में वर्तमान तथा कष्ट से संयुत व बहुत शोकसे मूढ़चित्तवाले पुरुष तुम्हारे कर्तृनसे मृत्युके भयसे रहित होजाते हैं ॥ ६५ ॥ हे तेजराशि ! इस संसारमें सब ओरसे दुःखितजनोके

तुम रत्नकहो और सब संसार में तुम्हारे समान अन्य कोई दयालु नहीं है और खोजी जातीहुई सब भक्ति तुम्हीं एक में होतीहै और तुमको प्राप्तहोकर मनुष्यों को रोगोंका दुःख कहाँ से होताहै याने कहाँ से भी नहीं होताहै ॥ ६६ ॥ कौन कुष्ठ से पीड़ित मनुष्य व शत्रुर्वो से भी तथा रोगादिकों से पीड़ित कौन नर और लेंगडे, अन्ध व जड़ तथा नष्ट चरणोंवाले कौन व कौन निर्धन तथा कौन क्रियारहित पुरुष इसीप्रकार देखकर हे देव ! दयाके कारण दोषसे रक्षा करतेहो जैसी तुम्हारी पराये उपकार से परायण यह चेष्टाहै वैसी अन्य कौनकी है ॥ ६७ ॥ सेवा कियाहुआ यह धर्म प्रसिद्धि में परलोकमें टिकताहै व देवता अन्य समय से वरदायक होते हैं

वर्तोटोदुःखितानां त्वत्तुल्योन्योजगतिस्त्रयकलेनास्तिकश्चिद्दयालुः ॥ त्वय्येकस्मिन्भवतिसकला भक्तिरन्विष्यमाणा त्वा मासाद्यप्रभवतिकुतोव्याधिदुःखद्वाराणाम् ॥ ६६ ॥ कःकुष्ठाभिहतोनरोरिभिरपि व्याध्यादिभिःपीडितःकपङ्गवन्धज डाश्चशीर्णचरणाःकोवाधनःकोक्रियः ॥ इत्येवंप्रसमीक्ष्यदेवकृपयादोषात्परित्रायसे कस्यान्यस्यपरोपकारनिरता चेष्टायथैषातव ॥ ६७ ॥ धर्मःपरत्रकिलतिष्ठतिसेवितोसौ कालान्तरेणविबुधावरदाभवन्ति ॥ त्वंसेवितःप्रणतवत्सल भूतिकामैस्सद्यःप्रयच्छसिफलंयदमीप्सितन्तैः ॥ ६८ ॥ विभ्रान्तकान्तहरिणीसदृशेक्षणाभिरङ्गपुहारमणिकुरण्डलमेखलाभिः ॥ तेषांभवन्तिभवनानिविलासिनीभिर्येषांनृणांत्वमसिर्वैवरदःप्रसन्नः ॥ ६९ ॥ यैस्त्वन्नरैस्ससकृदपिप्रणतःकथंचिद्भ्यातोऽथवाभुवननाथतथान्तकाले ॥ निष्कलमपाजगतिदुष्कृतिनोभवन्ति तेनिर्मलास्सुकृतिनोगतिमाप्नुवन्ति ॥ ७० ॥ येत्वांकुतर्कमतिभिर्ननमन्तिभक्त्या रोमाञ्चकञ्चुकशताकुलितैश्शरीरैः ॥ तेनिर्धनाःपरगृहेष्वभवभूतम

व हे प्रणतप्रिय ! ऐश्वर्यकी इच्छावाले पुरुषों से सेवित तुम शीघ्रही उम फलको देतेहो जोकि उनसे चाहाजाता है ॥ ६८ ॥ जिन मनुष्यों के ऊपर वरदायक तुम प्रसन्न होतेहो उनके मन्दिर अमित व सुन्दरी मृगी के समान नेत्रोंवाली तथा अंगों में हार, मणि, कुरण्डल व क्षुद्रघण्टिकाओंवाली स्त्रियों से संयुत होते हैं ॥ ६९ ॥ हे सुवननाथ ! जिन मनुष्यों ने किसीप्रकार एकबार भी तुम्हारा प्रणाम किया है व अन्तकालमें ध्यान किया है वे पापी पातकोंसे रहित होतेहैं व निर्भल होकर पुण्यवान् की गतिको प्राप्तहोते हैं ॥ ७० ॥ जो मनुष्य भक्तिसे कुतर्कवाली बुद्धियों के द्वारा रोमांचरूपी सँकड़ों कवचों से आकुल शरीरों से तुमको नहीं प्रणाम करते हैं

लुधा से दुबले कण्ठवाले वे निर्धनी पुरुष पराये घरों में अपमान कियेहुये अन्न की याचना करते हैं ॥ ७१ ॥ व समुद्र के जलकी लहरियों के क्षोभकी नाई चञ्चल युगल नेत्रोंवाले और सैकड़ों उत्तम मणियों की किरणों से रोमित व जिह्वाओंको लपलपातेहुये प्रणाम किये शिरोवाले मुख्य नागों में तुम अनुपम व बड़ीभारी खूतियों से सदैव स्तुति कियेजातेहो ॥ ७२ ॥ हे सुरेत्तम, सूर्यनारायणजी ! जब तुम उदयको प्राप्तहोतेहो तब सुगन्दी गंगाजी के कमलोंसे उत्पन्न व पवनों के द्वारा सोने के समान कमलों की धूरिसे रंगेहुये भ्रमरोंके समूह उडते हैं ॥ ७३ ॥ हे भगवन् ! तत्त्व का ध्यान करने के लिये समुद्र के मध्य में स्थितहोकर जीविका

नं धुत्क्षामकण्ठवदनाःपरितङ्कयन्ति ॥ ७१ ॥ उदधिजलतरङ्गक्षोभलोलाचियुग्मैस्सुमणिशंतमयूखोद्भासितैर्ललिह

क्रिः ॥ प्रपिपतितशिरोभिर्नागमुखैरजस्रं श्रुतिभिरनुपमाभिस्तूयसेषुष्कलाभिः ॥ ७२ ॥ तवसुरवरगच्छतोप्युदेतुंविद

कनककमलैर्द्रवानिवातैः ॥ कनककमलैरेणुरज्जितानिभ्रमरकुलानिपतङ्गउत्पतन्ति ॥ ७३ ॥ तत्त्वध्यानं कर्तुं जलनिधि

आर्जीवार्यैः प्रतपसिभगवन्कस्तेतुल्यस्त्रिभुवनमध्ये ॥ ७४ ॥ उदयाद्रिनितम्बसंस्थित

किरणस्तपनीयसम्प्रभास्ते विलसन्तस्तडितोविडम्बयन्ति ॥ ७५ ॥ यथायथाव्र

चक्रवाककलहंसमेखलाम् ॥ तथातथाधुभितमहानिलैरितः प्रतीयतेमुहुरिवदुन्दुभिर्यथा ॥ ७६ ॥

कामिनीमिवरतिश्रमालसान्तां विबोधयसिपद्मिनीङ्करैः ॥ त्वत्प्रभाभिरनुरागरज्जितं पद्मारागमिवशोभतेभृश

उदयोर्मे उदयाचल के पृष्ठभाग में स्थित व अस्तमयो में विरेहुये तुम्हारी सोने के चक्रवाक कलहंस मेखला में ॥ ७५ ॥ उदयोर्मे उदयाचल के पृष्ठभाग में स्थित व अस्तमयो में विरेहुये तुम्हारी सोने के

प्रतीयते मुहुरिव दुन्दुभिर्यथा ॥ ७६ ॥ प्रतीयेते मुहुरिव दुन्दुभिर्यथा ॥ ७६ ॥ प्रतीयेते मुहुरिव दुन्दुभिर्यथा ॥ ७६ ॥

होवो

पण्डीके लिये न...
इस स्तोत्र से प्रसन्न हूं व जो तुम्हारे मन में वर्तमान है उस...
बोध्य नहीं है ॥ ८९ ॥ अर्जुनजी बोले कि वरों के मध्य में उत्तम...

हुआ तथा नील व चञ्चल और अतिसुन्दर और तुम्हारी प्रभाओं से अनुराग समेत रंगाहुआ कमल पद्मरागकी नाई बहुत शोभित होता है ॥ ७८ ॥ शोभायमान चन्द्रमा के समान हारकी नाई निर्मल व तुम्हारी किरणों से पूर्ण आकाश बहुतही शोभित होता है जोकि वडाभारी व खूब तथा अरुणवर्ण है ॥ ७९ ॥ इस संसारमे तबतक तुम उदय होकर मनुष्यों के सन्ताप को हरतेहो जबतक कि तुम्हारी किरणों से यह संसार पूर्ण होता है हे वरदायक ! सदैव वेदके मार्ग में तत्पर उदार बुद्धिवाले ऋषि मुनियों से तुम्हारे गुणोंकी स्तुति नहीं आशय कीजासकी है ॥ ८० ॥ तुम विष्णुहो तुम चन्द्रमाहो और दैत्यों के मथनेवाले स्वामिकारिकेयहो और तुम

म ॥ ७८ ॥ स्फुरच्छशाङ्कहारनिर्मलत्वंदंशुश्रुतिम् ॥ विभात्यतीवकान्तमम्बरं वृहच्चपाटलम् ॥ ७९ ॥ हरसित्वमेवताप मिहतावदुदेत्यनृणां भवतिचयावेदवीकरणैस्तवपूर्णमिदम् ॥ ऋषिमुनिभिरुदारधीभिरनिशंश्रुतिमार्गपरैर्वरदनशक्य तेतवगुणस्तुतिराश्रयितुम् ॥ ८० ॥ त्वंविष्णुस्त्वंशशाङ्कस्त्वमसुरमथनःषण्मुखस्त्वंधनेशस्त्वंकालस्त्वञ्चधाताच्चि तिधरमृदपामाश्रयस्त्वंहुताशः ॥ अङ्कारस्त्वंद्विजानां त्वमिहजलनिधिस्त्वं यमस्त्वंचरुद्रस्त्वं शक्रस्त्वंपयोदो व्रतयम नियमास्त्वंजगत्सर्वमेव ॥ ८१ ॥ त्वमनिन्द्यगोपतेत्रिपुरमथनमन्मथदाहकस्त्वमसुरभीमदर्पहा ॥ त्रिदशाधिपकम लवराननस्त्वमिहदेवगुरुर्भगवंस्त्रिभुवनमण्डलेस्तिक्तमस्तवतुल्यगुणः ॥ ८२ ॥ आदित्यभास्करदिवाकरसप्तमसे मार्तण्डसूर्यहरिदम्बपतङ्गमानो ॥ अश्रान्तवाहनस्वरूपगभस्तिमालिस्त्वांलोकनाथशरणंप्रणिपद्यतेसौ ॥ ८३ ॥

कुबेरहो व तुम कालहो और तुम विधाता, पर्वत, मिट्टी व जलोंके आश्रयहो और तुम अग्निहो व तुम ब्राह्मणोंके मध्यमे ॐकारहो और इस संसार मे तुम ममुद्रहो, तुम यमहो, तुम रुद्रहो और तुम इन्द्रहो व मेवहो और तुम व्रत, यम व नियमहो और तुम सब संसारहो ॥ ८१ ॥ और हे त्रिपुरमथन, गोपते, अग्निन्दनीय ! तुम कामदेवके सन्तापकारकहो और तुम भयंकर दैत्योंके गर्वविनाशकहो हे सुराधीश, भगवन् ! कमल के समान उत्तम मुखवाले तुम यहां देवताओंके गुरुहो त्रिलोक के मध्यमें तुम्हारे समान गुणवाला कौन पुरुष है ॥ ८२ ॥ हे आदित्य, भास्कर, दिवाकर, सप्ताश्व, मार्तण्ड, सूर्य, हरिदम्ब, पतंग, मानो, अश्रान्तवाहनस्वरूप,

किरणमालिन, लोकनाथ ! यह संसार तुम्हारी शरणमें प्राप्त है ॥ ८३ ॥ हे पूर्वदिशा रूपी स्त्री के तिलकरूप ! व हे प्रकाशमान कर्णपूर ! हे मन्दकिर्णप्रिय, नाथ, संसार-दीपक, कनकाचलतापन, आकाश के हारके रत्न ! हे सन्धारूपी स्त्रीके वदनराग ! तुम्हारे लिये नमस्कार है नमस्कार है ॥ ८४ ॥ हे ब्रह्मण्य, सत्य, शुभ, मंगल, जगदीश, आकाश व कमलेश ! हे मुनियों से स्तुति कियेहुये, विद्वन्मूर्ते ! हे दुःखित जनके शोकहारक, सेवकपालक ! हे भगवन् ! शरण में आयेहुये मेरे ऊपर प्रसन्न होवो ॥ ८५ ॥ हे देव, प्रभो ! जिसलिये कमलकलीरूपी हाथों से मरतक पै अंजली करके तुम भलीभाति भाँकि से यहां आज स्तुति कियेगये उसी कारण मेरे ऊपर

प्राग्दिग्वधूतिलकभासुरकर्णपूरमन्दाकिनीदयितनाथजगत्प्रदीप ॥ हेमाद्रितापननभस्तलहाररत्नसन्ध्याह्ननावदन
रागनमोनमस्ते ॥ ८४ ॥ ब्रह्मण्यसत्यशुभमङ्गललोकनाथ व्योमाम्बुजेशमुनिसंस्तुतविद्वन्मूर्ते ॥ आर्तस्यशोकह
रकिङ्करपालकश्च त्वम्प्रसीदभगवञ्चरणगतस्य ॥ ८५ ॥ कृत्वाञ्जलिं शिरसिपङ्कजकुङ्कुमलाभ्यां यत्संस्तुतस्त्वमि
हदेवमयाद्यभक्त्या ॥ तेनप्रभोभवममोपरिसौम्यमूर्त्तिर्धर्ममतिकुरुसदाश्रियमूर्जिताम् ॥ ८६ ॥ नमस्सवित्रेजगदेकच
क्षुषेजगत्प्रसूतिस्थितिनाशहेतवे ॥ त्रयीमयायत्रिगुणात्मधारिणे विरञ्चिनारायणशङ्करात्मने ॥ ८७ ॥ सूर्यउवाच ॥
तुष्टोहमधुनापार्थ स्तोत्रेणानेनसुव्रत ॥ वरंदास्यामियत्नेनयत्तेमनसिवर्त्तते ॥ ८८ ॥ महर्शनंहिविफलं नकदाचित्प्र
जायते ॥ शूराणाञ्चविशेषेण हृदयं नास्ति यत्नतः ॥ ८९ ॥ अर्जुनउवाच ॥ एषोऽथ वरोमह्यं वराणामुत्तमोत्तमः ॥ अत्र
सान्निहितो देव सर्वकालं भवप्रभो ॥ ९० ॥ ये च त्वां मानवाभक्त्या स्तोष्यन्ते प्रणतास्सदा ॥ तेषां न्यन्तश्चान्यञ्च पुत्रदा

सौम्यमूर्ति होवो व धर्म में बुद्धि करो और सदैव बर्द्धिहुई लक्ष्मी कीलिये ॥ ८६ ॥ संसार के एक नेत्ररूपी व संसार की उत्पत्ति, पालन और नाश के कारणरूप सूर्य-
नारायणजीके लिये नमस्कार है व वेदत्रयीमय, त्रिगुणात्मधारी, ब्रह्मा, विष्णु, शिवात्मकके लिये प्रणाम है ॥ ८७ ॥ सूर्यनारायणजी बोले कि हे सुव्रत, पार्थ ! इस समय
में इस स्तोत्र से प्रसन्न हूँ व जो तुम्हारे मन में वर्तमान है उस वरदान को यत्न से दूंगा ॥ ८८ ॥ कभी मेरा दर्शन व्यर्थ नहीं होता है और शूरोंको विशेषकर यत्न से
न देने योग्य नहीं है ॥ ८९ ॥ अर्जुनजी बोले कि वरों के मध्य में उत्तमोत्तम यही मेरा वरदान है कि हे देव, प्रभो ! सब समयमें तुम यहां स्थित होवो ॥ ९० ॥ और

जो मनुष्य सदैव भक्तिसे प्रणामकर सदा तुम्हारी स्तुति करें उनको धन, धान्य व पुत्र, स्त्री आदिक धन ॥ ६१ ॥ और मनका सम्पूर्ण अभिलाष देना चाहिये, यह मेरा वरदान है इसके उपरान्त सूर्यनारायणजी नर (अर्जुन) जीसे उत्तम वचन बोले ॥ ६२ ॥ कि दे अर्जुन ! बड़ी भक्तिसे मुझको पूजकर जो मनुष्य इस स्तोत्र से मेरी स्तुति करेगा, उनको लक्ष्मीजी से वियोग न होगा यह मेरा वरदान है ॥ ६३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचिताया भाषाटीकायां नारादित्यमाहात्म्यनामत्रित्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥

रादिकं वसु ॥ ६१ ॥ मनसश्चेप्सितं सर्वं दातव्यं हिवरो मम ॥ अथादित्यो नरन्देव उवाच वचनं शुभम् ॥ ६२ ॥ ये मां स्तु वन्त्यनेनाङ्ग पूजयित्वातिभक्तिः ॥ श्रियानविच्युतिस्तेषां भवेदेष वरो मम ॥ ६३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे नरादित्यमाहात्म्यनामत्रित्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ४३ ॥

सनत्कुमार उवाच ॥ नारायणोऽपि संस्थाप्य शङ्खं प्रथमाय यत्नतः ॥ तुष्टावप्रयतो भूत्वा स्तोत्रेणानेन भास्करम् ॥ १ ॥ आदित्यं भास्करं भानुं रविं सूर्यं दिवाकरम् ॥ प्रभाकरं नन्दिवानाथं तपनं तपतांवरम् ॥ २ ॥ वरेण्यं वरदं विष्णुमनघं वासवानुजम् ॥ बलवीर्यं सहस्रांशुं सहस्रकिरणद्युतिम् ॥ ३ ॥ मयूखमालिनं विश्वं मार्तण्डं चण्डरोचिषम् ॥ सदागतिं सुभास्वन्तं सप्तसप्तिसुखोदयम् ॥ ४ ॥ देवदेवमहिर्बुध्न्यं धाम्नाग्निधिमनुत्तमम् ॥ तपोब्रह्ममया लोकं लोकपालमपास्पतिम् ॥ ५ ॥ जगत्प्रबोधकन्देवं जगद्दीपं जगत्प्रभुम् ॥ अर्कन्निःश्रेयसपरं कारणं श्रेयसाम्परम् ॥ ६ ॥ इदं प्रभाविनं

दो ॥ यथा केशवादित्यकर अहं सुभग माहात्म्य । चक्षालिसे अध्याय में सोइ चरित याथात्म्य ॥ सनत्कुमारजी बोले कि विष्णुजी ने भी यल से शङ्खको बजाकर व भलीभांति स्थापन कर पवित्र होकर इस स्तोत्र से सूर्यनारायणकी स्तुति किया ॥ १ ॥ कि आदित्य, भास्कर, भानु, रवि, सूर्य, दिवाकर, प्रभाकर, दिवानाथ, तपन, तपतांवर ॥ २ ॥ व. वरेण्य, वरद, विष्णु, अनघ, वासवानुज, बल, वीर्य, सहस्रांशु, सहस्रकिरणद्युति ॥ ३ ॥ मयूखमाली, विश्व, मार्तण्ड, चण्डरोचि, सदागति, सुभास्वान्, सप्तसप्ति, सुखोदय ॥ ४ ॥ देवदेव, महिर्बुध्न्य, धामनिधि, अनुत्तम, तप, ब्रह्ममया लोक, लोकपाल व जगत्प्रभु ॥ ५ ॥ जगत्प्रबोधक, देव, जगद्दीप, जगत्प्रभु,

अर्क, निःश्रेयसपद, कारण, श्रेयसांपर ॥ ६ ॥ इन्द्र, प्रभात्री, पुण्य, पतंग, पतंगैश्वर्य व चाहैह्ये अर्थोंके दायक और देखे व न देखेह्ये, फलों के दायक ॥ ७ ॥ प्रह, प्रहकर, वंस, हरिदश्व, हुताशन, मंगल्य, मंगल, मेध्य, ध्रुव, धर्मप्रबोधन ॥ ८ ॥ भवसंभावित, भाव, भूतभव्य, भवात्मक, दुर्गम, दुर्गतिहारक, हरेनेत्र, त्रयीमय ॥ ९ ॥ श्रेयोभयनिलक, तीर्थ, तरणि, सर्वतोमुख, तेजराशि, सुनिर्वाण, विश्वेश, शाश्वत धाम ॥ १० ॥ कल्प, कर्त्तृपानल, काल, कालचक्र, कर्तृप्रिय, भूषण, मरुत, सूर्य, सविद्यग्न, सुलोचन ॥ ११ ॥ त्वष्टा, विष्टर, विश्व, सदस्तकर्मसाक्षी, सविता, सहस्रलोचन, प्रजापाल, आश्रोक्षज्ञ ॥ १२ ॥ ब्रह्मा, वासारात्म्य, रक्तवर्ण, महाधुति व मध्य

पुण्यं पतङ्गपतंगेश्वरम् ॥ दातारं वाञ्छितार्थानां दृष्टादृष्टफलप्रदम् ॥ ७ ॥ ग्रहं ग्रहकरं हंसं हरिदश्वं हुताशनम् ॥ मङ्ग-
ल्यं मङ्गलमेधं ध्रुवं धर्मप्रबोधनम् ॥ ८ ॥ भवसम्भावितं भावं भूतभव्यं सवात्मकम् ॥ दुर्गमं दुर्गतिहरिं हरनेत्रत्रयीमय-
म् ॥ ९ ॥ त्रैलोक्यतिलकं तीर्थं तरणिं सर्वतोमुखम् ॥ तेजोराशिं सुनिर्वाणं विश्वेशन्धामशाश्वतम् ॥ १० ॥ कल्पं क-
ल्पानलकालं कालचक्रं कतुप्रियम् ॥ भूषणं मरुतंसूर्यं मणिरत्नं सुलोचनम् ॥ ११ ॥ त्वष्टारं विष्टारं विश्वं सदसत्कर्म-
साश्रिणम् ॥ सवितारं सहस्रालं प्रजापालमधोक्षजम् ॥ १२ ॥ ब्रह्माणं वासरारम्भं रक्तवर्णं महाद्युतिम् ॥ सूक्तं मध्यदिने
मृदं दयामभिष्णुदिनजये ॥ १३ ॥ नाम्नास्पृशतं दिव्यं विष्णुना समुदाहृतम् ॥ यद्दंप्रयतो भूत्वा पठेद्भक्त्या समाहि-
तः ॥ १४ ॥ ननम्य विपदः कापि सर्वत्रापि शुभागतिः ॥ धनधान्यसुखावाप्तिः पुत्रलाभश्च जायते ॥ १५ ॥ तेजः प्रज्ञापरं
ज्ञानं बुद्धिश्च परमागतिः ॥ पञ्चश्रुत्वा जगन्नाथो जगन्मादर्शनन्ततः ॥ १६ ॥ केशवार्कमुखं दृष्ट्वा पद्मारागसमप्रभम् ॥

॥ ३६ ॥ कश्वाकमुखदृष्ट्वा पद्मरागसमप्रसम् ॥

मुखको देखकर सब पापोंसे छूटा हुआ पुरुष सूर्यलोकमें पूजा जाता है ॥ १७ ॥ और दशाश्वमेधतीर्थ के मध्य में रेणुतीर्थ कहा जाता है उसको देखकर मनुष्य सब पापोंसे छूट जाता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ १८ ॥ केशवार्कजी के समीप रेणुतीर्थ कहा गया है ॥ १९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचितायां भादो० । शक्तिभेद अस तीर्थ जिमि भयो भूमि विख्यात । पैतालिस अध्याय में सोइ चरित है ख्यात ॥ सनत्कुमारजी बोले कि शक्तिभेद ऐसे कहेहुये अन्य तीर्थ

विमुक्तस्सर्वपापेभ्यस्सूर्यलोकेमर्हीयते ॥ १७ ॥ दशाश्वमेधमध्येतु रेणुतीर्थप्रचक्ष्यते ॥ तद्दृष्ट्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः ॥ १८ ॥ केशवार्कसमीपे तु रेणुतीर्थप्रकीर्तितम् ॥ १९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे केशवादि सनत्कुमार उवाच ॥ तीर्थमन्यत्तथावक्ष्ये शक्तिभेदमितस्मृतम् ॥ स्कन्दस्य च जटाभद्रं च क्रेथात्र पुराशिवः ॥ १ ॥

तारकश्च तथा दैत्यं हत्वा तत्र मुरद्विषम् ॥ शक्तिस्कन्दस्स्वयंकुद्धो निचिन्नेपमर्हीतले ॥ २ ॥ व्यास उवाच ॥ भगवन्ब्रूहि के निजितादानवैस्सुराः ॥ दिवंत्यक्त्वादिशोजाताः शक्राद्याभयविह्वलाः ॥ ३ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ पुरा देवासुरेभ्यु आराधितो महादेव स्यम्बकस्त्रिपुरान्तकः ॥ ४ ॥ ततस्तुष्टो महादेवः शक्रस्याभिमुखः स्थितः ॥ उवाच वचनं श्लक्ष्णं व को मैं कहूंगा यहांपर सदाशिवजी ने स्वामिकार्त्तिकेयजी का जटाभद्र (चौर) किया है ॥ १ ॥ और वहां पर देवताओं के वैरी तारकासुर को मारकर क्रोधित होते हुये आपही स्वामिकार्त्तिकेयजी ने शक्तिको भूतल में फेंक दिया ॥ २ ॥ व्यास जी बोले कि हे भगवन्, महामुने ! यत्से कहिये मेरे सन्देह है और मैं यह जाननेकी इच्छा करता हूं कि स्वामिकार्त्तिकेयजी कैसे उत्पन्न हुये हैं ॥ ३ ॥ सनत्कुमारजी बोले कि पुरातन समय देवासुरसंग्राम में दानवों ने देवताओं को जीता भय से विकल इन्द्रादिक देवता स्वर्गको छोड़कर दिशाओंको चले गये ॥ ४ ॥ तदनन्तर हे कालिज ! मुरराज इन्द्रजी ने उग्र तपस्या से त्रिपुरविनाशक त्रिलोचन महादेवजी की

आराधना किया है ॥ ५ ॥ तदनन्तर प्रसन्न होतेहुये महादेवजी इन्द्रके सामने स्थितहोकर कोमल वचन बोले कि मैं तुमको प्यारे वरदान को दूंगा ॥६॥ इन्द्रजी बोले कि हे भगवन्, शङ्करजी ! दयासे यदि मेरे ऊपर तुम प्रसन्न हो तो हे परमेश्वर, देव ! महासेनापतिको दीजिये ॥ ७ ॥ महादेवजी बोले कि हे देवेन्द्र ! सब अर्थ से बड़ेहुये पुत्रको उत्पन्न करो जोकि महासेन नामक देवताओं के भयहारक हैं ॥ ८ ॥ सनत्कुमारजी बोले कि ऐसा कहकर समस्त प्राणियों के स्वामी शिवदेवजी अन्तर्धान होगये और पुत्रकी चिन्ता में परायण सदाशिवदेवजी हिमाचलको चलेगये ॥ ९ ॥ व देवदारु के वन में टिकतेभये और ज्ञान व ध्यान में तत्परहुये हे मुने !

रमिष्टददामिते ॥ ६ ॥ शक्रउवाच ॥ यदितुष्टोसिभगवन्कारुण्यान्ममशङ्कर ॥ महासेनापतिन्देव प्रयच्छपरमेश्वर ॥
७ ॥ हरउवाच ॥ उत्पादयामिदेवेन्द्रं सर्वार्थाद्विजितं सुतम् ॥ नामतोयोमहासेनस्मुराणं भयहारकः ॥ ८ ॥ सनत्कुमारउवाच ॥ इत्युक्त्वान्तर्दधे देवस्सर्वभूतपतिर्हरः ॥ सुतचिन्तापरो देवो जगाम च हिमालयम् ॥ ९ ॥ देवदारुवने तस्थौ ज्ञानध्यानपरो भवत् ॥ ब्रह्मादयोऽपि यन्देवं योगिनोऽध्यानचिन्तकाः ॥ १० ॥ ध्यायन्ति नित्यतात्मानः प्राणायामपरा मुने ॥ लिङ्गमूर्तिश्च यो नित्यं पूज्यते सर्वजन्तुभिः ॥ ११ ॥ सध्यायति किमर्थन्तं न विद्वान् परमार्थतः ॥ एवं ध्यानपरे देवे देवी हिमवतो गृहे ॥ १२ ॥ मध्ये वयसि वर्तन्ती यासीद्वाचा यणी सती ॥ पितुर्गृहे निजो देहो यया योगाद्वि सज्जितः ॥ १३ ॥ निमन्त्रितो न मे भर्ता इतिकोपं चकार या ॥ तान् देवी हिमवाञ्छुत्वा पूर्वन्देवर्षि नारदात् ॥ १४ ॥ भवभार्या भवित्रीति

प्राणायाम में परायण पवित्र चित्तवाले व ध्यान के चिन्तन करनेवाके ब्रह्मादिक योगी भी जिनको ध्यान करते हैं और लिङ्गमूर्तिवाले जो नित्य समस्त प्राणियों से पूजेजाते हैं ॥ १०। ११ ॥ वे किसलिये उनको ध्यान करते हैं हम परमार्थ से, उसको नहीं जानते हैं इसप्रकार जब सदाशिवदेवजी ने ध्यान किया तब देवी पार्वती जी हिमाचलके घरमें ॥ १२ ॥ मध्य (युवा) अवस्था में वर्तमान थीं जोकि दक्षजी की कन्या सती जी हुई हैं और जिन्होंने पिताके घरमें योग से अपने शरीर को त्याग दिया था ॥ १३ ॥ मेरे पतिको निमन्त्रण नहीं किया गया इसकारण जिन्होंने क्रोध किया था उन पार्वती देवीजीको पहले देवर्षि नारदजीसे यह सुनकर कि शिव

जी की स्त्री होवैगी उन्होंने अन्य वरदानको नहीं चिन्तन किया जोकि शिवजी के लिये तप करती थीं वे सखियों से संयुक्त थीं ॥ १४१ ॥ १५ ॥ किसप्रकार शङ्कर देवजी मेरे पति होवेंगे जबतक इसप्रकार हिमयान्की कन्या पार्वतीदेवी शिवदेवजीके समीप गई ॥ १६ ॥ तबतक बलसूदन (इन्द्र) जी को आगेकर देवता भली भांति प्राप्तहुये और अत्रिनाशी ब्रह्माजी को देखने के लिये पवित्र ब्रह्मसभाको गये ॥ १७ ॥ और उन देवताओंने खुतिकर इस वचनको कहा कि यानवोंसे जीते हुये देवताओंके रक्तक होवो ॥ १८ ॥ तदनन्तर ब्रह्माजी देवताओंसे बोले कि मैंने समस्त कार्यको जाना परन्तु इन शंभुजीके वीर्यके विना कार्यकी सिद्धि न होगी ॥ १९ ॥

नान्यं वरमचिन्तयत ॥ यातपस्यति रुद्राय सा सखिभ्यां समन्विता ॥ १५ ॥ कथं हि शङ्करो देवो मम भर्ता भविष्यति ॥
यावदेवं गता देवं देवी हिमवतस्सुता ॥ १६ ॥ ततस्समागता देवाः कृत्वा ब्रह्मसूदनम् ॥ जगमुब्रह्मसदः पुण्यं द्रष्टुं ब्रह्मा
णमद्वयम् ॥ १७ ॥ तेसुराश्च स्तुतिं कृत्वा वाक्यमेतत्समब्रुवन् ॥ शरणं भवदेवानां दानं वैर्विजितात्मनाम् ॥ १८ ॥ त
तो वोचत्सुरान् ब्रह्मा ज्ञातं कार्यमया खिलम् ॥ नैतच्छम्भो विना रीत्या त्कार्ये सिद्धिर्भविष्यति ॥ १९ ॥ तथापतध्वन्द्वेशो
यथावाञ्छति पार्वतीम् ॥ इत्युक्त्वान्तर्दधे ब्रह्मा स्वप्ने लब्धं नयथा ॥ २० ॥ ततो मेरुसमागत्य पुनर्मत्तं प्रचक्रिरे ॥ तेषां
माहेदृशं शक्रस्तुष्टोशम्भुः पुरामम ॥ २१ ॥ प्रतिज्ञातञ्च देवेन स्वाह्वात्सेनापतिम्प्रति ॥ तस्मादेव हते कार्ये कारणं म
करध्वजम् ॥ २२ ॥ इति सञ्चिन्त्य देवेशो काममाहूय सत्वरम् ॥ उवाच वचनं हृद्यं देवानामनुकम्पया ॥ २३ ॥ यथा देवो

तुमलोग उस प्रकार यत्न करो कि जिस भांति देवेश सदा शिवजी पार्वतीजी की इच्छा करें ऐसा कहकर ब्रह्माजी अन्तर्द्धान होगये जैसे कि स्वप्न में पाया हुआ ध्वन अन्तर्द्धान होजाता है ॥ २० ॥ तदनन्तर सुमेरु गिरिपै भलीभांति आकर उन देवताओं ने सम्मति किया और इन्द्रजी ने उन देवताओं से ऐसा वचन कहा कि पुरातन समय मेरे ऊपर शिवजी प्रसन्न हुये ॥ २१ ॥ और शिवदेवजी ने अपने अंग से सेनापति के विषयमें प्रतिज्ञा किया है इसलिये इसप्रकार कार्य के प्रतर्होने पर मकरध्वज (कामदेव) कारण है ॥ २२ ॥ ऐसा भलीभांति चिन्तनकर देवताओं के ऊपर दया की कामनासे सुरेश (इन्द्र) जीने शीघ्रही कामदेवको बुलाकर

मनोहर वचन कहा ॥ २३ ॥ कि हे कामदेव ! जिसप्रकार सदाशिवदेवजी देवी पार्वती जीको भर्ज वैसाही कीजिये क्योंकि देवताओं का यह बडाभारी कारण प्राप्त हुआ है ॥ २४ ॥ इन्द्रका वचन सुनकर कामदेव ने हँसकर कहा कि मैं सब ऐसा करूंगा यदि वसंत मेरा मित्र होवे ॥ २५ ॥ इसके अनन्तर उस क्षणमें कामदेवजी के वचन के उपरान्त इन्द्र ने वसंत को आज्ञादिया कि शीघ्रही कामदेवके सेवक होवो ॥ २६ ॥ कामदेव वसन्तको मित्र पाकर स्त्री समेत चला और पुष्पोंके धनुष को बढाकर व बाणको हाथ में लेकर सावधान हुआ ॥ २७ ॥ जिस देवदारुवन में देवाधिदेवेश शिवजी स्थित थे वहापर ध्यान किये नन्दीश्वर द्वारपालजी टिके

भजेहैंवीं तथाकामंविधीयताम् ॥ कारणंमहदेतद्वै देवानांसमुपस्थितम् ॥ २४ ॥ कामोवाक्यंहरेश्रुत्वा प्रहस्यैवमुवाच
ह ॥ करिष्येसर्वमेवंहि सखाचेन्मोभवेन्मधुः ॥ २५ ॥ तस्मिन्क्षणेथशक्रेण कामवाक्यादनन्तरम् ॥ समादिष्टोमधुःजि
प्रं कामस्यानुचरोभव ॥ २६ ॥ लब्ध्वाकामोमधुमित्रं प्रतस्थेभार्ययासह ॥ कृत्वासंजंजधनुर्वाणं पौष्पपाणोसमाहि
तः ॥ २७ ॥ यत्रदेवाधिदेशो देवदारुवनेस्थितः ॥ नन्दीश्वरःप्रतीहारः कृतध्यानोवतिष्ठते ॥ २८ ॥ चूतवृक्षाश्रितः
कामो यावद्बाणंसमोहनम् ॥ सन्दधत्यन्तरेचास्मिन् देवीप्रापभवाश्रमम् ॥ २९ ॥ त्यक्तध्यानव्रतोदेवो हृष्टश्चाह्ला
दचेतनः ॥ ततोविलोकयामास दिशस्सर्वाःप्रयत्नतः ॥ ३० ॥ चूतवृक्षाश्रितंकाममपश्यत्संरुषान्वितः ॥ भस्मीकृतस्तृ
तीयाक्षणा वह्निज्वालाकुलेनसः ॥ ३१ ॥ देवोप्यन्तर्दधेतस्मात् स्थानादाशुगणैस्सह ॥ पार्वतीविस्मितासाध्वी लज्जि
तादुःखिताभवत् ॥ ३२ ॥ हिमवांस्तांसमुत्थाप्य निनायाशुनिजगृहम् ॥ गतेदेवेचदेव्याञ्च कामपत्नीसुदुःखिता ॥ ३३ ॥

थे ॥ २८ ॥ आमके वृक्षके आश्रित कामदेव जबतक मोहनबाणको संधानकरै उसी समय में देवी पार्वतीजी शिवजी के आश्रम में प्राप्तहुई ॥ २९ ॥ तदनन्तर ध्यान व्रतोंको छोड़ेहुये आनन्द बुद्धिवाले प्रगन्न शिवजी ने बड़े यत्न से सब दिशाओंको देखा ॥ ३० ॥ और क्रोधसंयुत उन्होंने आश्रवृक्षके आश्रित कामदेवजीको देखा और अग्निकी ज्वालामे आकुल तीसरे नेत्रसे उसको भस्म करदिया ॥ ३१ ॥ और गर्णोंसमेत सदाशिवदेवजी भी उस स्थान से अन्तर्द्वान होगये और पतिव्रता पार्वती जी विस्मित होकर लज्जित व दुःखितहुई ॥ ३२ ॥ हिमाचलजी उन पार्वतीजीको उठाकर शीघ्रही अपने घरको लेआये सदाशिवजीके जानेपर जब पार्वतीजी

चलीगई तब कामदेवकी स्त्री रति दुःखित हुई ॥ ३३ ॥ और भस्म कियेहुये पति को देखकर बहुत दुःखित होतीहुई रति ने विलाप किया व दुःख से विकल रति को देखकर आकाशवाणी ने कृपासे दुःखित सखी की नाई समझतीहुईसी कहा कि हे उत्तमापांगि ! तुम मत रोवो तुम्हारा पति बिन अंगवाला भी होकर भित्रके कार्यकी विधि से सब कार्योंको करेगा और जब ये महादेवजी पार्वतीजी का व्याह करैगे ॥ ३४३५३६ ॥ तब शिवजी के ध्यान से उठेगा इसमें सन्देह नहीं है और द्वापरके अन्तमें जब श्रीकृष्णजी द्वारकामें बसैगे ॥ ३७ ॥ तब हे देवि ! उनका पुत्र प्रद्युम्न नामक तुम्हारा पति होगा इसप्रकार कहीहुई उस रतिने आकाशसे पैदाहुई

भस्मीकृतपतिनृष्ट्वा विललापसुदुःखिता ॥ दृष्ट्वारतिसुदुःखार्तां वागुवाचाशरीरिणी ॥ ३४ ॥ आश्वासयन्तीकृपया सखीभिवसुदुःखिताम् ॥ मार्गेदीस्त्वंशुभापाङ्गितवभर्ताकरिष्यति ॥ ३५ ॥ सर्वकार्यारण्यनङ्गोपि भित्रकार्यविधानतः ॥ यदाचापमहादेवः परिणेष्यतिपार्वतीम् ॥ ३६ ॥ तदाशम्भोरनुध्यानानुत्थास्यतिनसंशयः ॥ द्वारकायां यदाकृष्णो द्वापरान्तेनिवत्स्यति ॥ ३७ ॥ तत्पुत्रोभवितादेवि प्रद्युम्नोनामतेपतिः ॥ इत्युक्त्वासाजहाच्छोकमाकाशाज्जातयागिरा ॥ ३८ ॥ अचिन्तयत्तदादेवी उमापिहिमवद्गृहे ॥ कामस्यदहनंतेजश्शम्भोर्यत्तदनुत्तमम् ॥ ३९ ॥ कथंभर्ताभवेदीशः कामस्योत्थापनंकथम् ॥ नैतत्तपोविनाकार्यं कचित्कस्यापिसिद्ध्ये ॥ ४० ॥ एवंसञ्चिन्तयित्वाथ सखीभिस्सहिताततः ॥ तपश्चकारसुमहत पित्रादेशाच्छुभव्रता ॥ ४१ ॥ वर्षास्वभावकाशस्था हेमन्तेजलशायिनी॥ग्रीष्मेपञ्चाग्निनत्प्राज्ञी तपस्युग्रेसमास्थिता ॥ ४२ ॥ तान्दृष्ट्वातपसोपेतां ब्रह्मचारिविपुर्हरः ॥ आजगामाश्रमन्देव्याः कृता

वाणी से शोकको त्यागदिया ॥ ३८ ॥ और उस समय हिमवान् के घरमें पार्वती देवी ने भी चिन्तन किया कि शिवजी का जो तेज कि कामदेवको जलानेवाला है वह बहुत उत्तम है ॥ ३९ ॥ और ईश्वर शिवजी कैसे पति होवेंगे व कामदेवका उत्थापन (उठाना) किस भांति होगा कहीं पर यह कार्य बिना तपके किसी की भी सिद्धिके लिये नहीं हुआहै ॥ ४० ॥ इसप्रकार चिन्तन कर तदनन्तर सखियों समेत उत्तम व्रतवाली पार्वती जीने पिताकी आज्ञासे बड़ीभारी तपस्या किया ॥ ४१ ॥ कि वर्षाऋतु में आकाशस्थ व हेमन्तमें जलशायिनी तथा ग्रीष्मऋतुमें पञ्चाग्नि से तच्चेहुये अंगोवाली पार्वती जी उग्र तपस्यामें स्थितहुई ॥ ४२ ॥ तपस्या से संयुत

उन पार्वती जी को देखकर ब्रह्मचारी शरीरवाले महादेवी पार्वतीजीके आश्रम को आये व किये आतिथ्य (पहुनई) बोले शिवजी यह बोले ॥ ४३ ॥ कि हे सेहमकटिवाली, कुशापाणि, नवयौवने, कल्याणि ! तुम किसके लिये व क्यों तप करतीहो कारण को कहिये ॥ ४४ ॥ उन पार्वतीजी ने सत्य व मीठे उत्तर को कहे कहा कि हे ब्रह्मचारी जी ! मुझ से तपस्या का प्रारम्भ शिवजी की प्राप्ति के लिये कियाजाता है ॥ ४५ ॥ यह सुनकर व विचारकर अपने कर्मकी निन्दा करते हुये शिवजी ने विचार किया कि पर्वतकी कन्या पार्वतीजी भक्तिकी परीक्षा के प्रयोजन को नहीं सहेगी ॥ ४६ ॥ उस स्थान से जानेकी इच्छावाली पार्वतीजी के समीप

तिथ्योब्रवीदिदम् ॥ ४३ ॥ कृशमध्येकशापाङ्गि किमर्थन्नवयौवने ॥ तपःकरोषिकल्याणि कस्यार्थेकारणंवद ॥ ४४ ॥
उवाचचोत्तरंसावै सत्यञ्चमधुरन्तथा ॥ वटोतपस्समारम्भःक्रियतेशङ्कराप्तये ॥ ४५ ॥ विचार्यचहरःश्रुत्वा निन्दयन्
कार्यमात्मनः ॥ उमाभक्तिपरीक्षार्थन्नसहेतगिरिस्मृता ॥ ४६ ॥ गन्तुकामामुमांमत्वा तस्मात्स्थानान्महेश्वरः ॥ स्वं
पुद्गेश्यामास त्रिनेत्रंशूलपाणिनम् ॥ ४७ ॥ लज्जिताभूद्भवानीशं दृष्ट्वातस्थवधोमुखी ॥ विवाहायार्थयागेन्द्रं यथा
मेत्वांसयच्छति ॥ ४८ ॥ इत्युक्त्वान्तर्दधेदेवो देव्यगाच्चपितुर्गृहम् ॥ देवीलामयसप्तर्षीन् सस्मारस्मरशासनः ॥ ४९ ॥
प्रणमुस्तेतथागम्य संस्मृताःपरमेश्वरम् ॥ ऊचुश्चप्राञ्जलिपुटाः कुर्मःकिंशाधिनोद्रुतम् ॥ ५० ॥ ततोब्रवीन्मुनीनीश
स्समस्तांश्चगिरैर्गृहम् ॥ गत्वातथाकुरुध्वमे पार्वतीस्याद्यथाप्रिया ॥ ५१ ॥ तथेतिचप्रतिज्ञाय सङ्केतंशम्भुनास्वयम् ॥

जाकर तीन नेत्रवाले व त्रिशूल हाथवाले अपने शरीर को दिखलाया ॥ ४७ ॥ व शिवजी को देखकर लजितहुई और नीचे मुखकरके खड़ी होगई विवाह के लिये हिमाचलजीसे प्रार्थना करिये कि जिसप्रकार मुझे तुमको देवें ॥ ४८ ॥ ऐसा कहकर शिवदेवजी अन्तर्द्वान होगये और पार्वती देवीजी पिताके घरको गई व कामदेव-विनाशक शिवजीने पार्वतीदेवीजी के मिलने के लिये सप्तर्षियों को स्मरण किया ॥ ४९ ॥ वैसेही स्मरण कियेहुये वे सप्तर्षिलोग आकर शिवजी को प्रणाम करते भये व हाथों को जोडकर बोले कि हमलोग क्या करें शीघ्रही हमलोगों को आशा दीजिये ॥ ५० ॥ तदनन्तर शिवजी सब मुनियोंसे बोले कि हिमाचलके घर

जाकर तुम लोग वैसाही कीजिये कि जिस प्रकार पार्वतीजी मेरी प्यारी होवें ॥ ५१ ॥ वैसाही होगा यह प्रतिज्ञाकर व आपही शिवजीसे सकेत कर स्त्रियोसमेत वे सप्तर्षि हिमाचलके स्थानको गये ॥ ५२ ॥ व हिमाचलसे दिये अर्घवाले तथा आसनों को ग्रहण कियेहुये वे सप्तर्षि हिमालयसे बोले कि याचना करते हुये शिवजी के लिये प्यारी पार्वतीजी को दीजिये ॥ ५३ ॥ दीगई ऐसा हिमाचलसे कहेहुये सप्तर्षिलोग विवाह के दिनको निरूपणकर व आज्ञाको पाकर बहा आये जहा कि महादेवजी थे ॥ ५४ ॥ और उन्होंने शिवदेवजीसे कहा कि हिमवान् ने पार्वतीजी को देदिया और कियेहुये कार्यवाले वे सब जिसभाति आये थे वैसेही चलेगये ॥ ५५ ॥ और

कृत्वा जगमुष्मपत्नीका गिरीन्द्रस्य निवेशनम् ॥ ५२ ॥ दत्तार्घ्याभूधरेन्द्रेण कृतासनपरिग्रहाः ॥ ऊचुरद्विमुमांयच्छ शं
ङ्करायार्थिने प्रियाम् ॥ ५३ ॥ दत्तेत्युक्ता गिरीन्द्रेण निरूप्योदाहवासरम् ॥ लब्धवानुज्ञां समायाता यत्रास्ते समहेद्वरः ॥
५४ ॥ ऊचुस्ते शङ्करं सर्वे दत्ता हिमवता शिवा ॥ कृतकार्याश्च सर्वेपि वज्रजुस्ते यथागताः ॥ ५५ ॥ चक्रुर्विवाहसामग्रीं ब्रह्म
वस्विन्द्रनारदाः ॥ वृषासनं जगामाशु नन्दीशप्रमुखैर्गणैः ॥ ५६ ॥ मातु दुन्दुभिनादैश्च ब्रह्माद्यैरमरैस्सह ॥ प्राप्यागे
न्द्रालयं शम्भुः कृतकौतुकमङ्गलः ॥ ५७ ॥ विवाहानां विधानेन जगाम स्वालयम्पुनः ॥ तत्रैकान्तरतिर्देवो यावत्तिष्ठति
कामवान् ॥ ५८ ॥ तावन्नस्ते स्मुरैरग्निः प्रेषितो गान्महेद्वरम् ॥ अग्नौ तत्र गते देवो रतित्यक्त्वामहेद्वरः ॥ ५९ ॥ नि
चिन्नेपमुखे वह्नेः स्वरेतो ब्रीडितो भूशम् ॥ रेतसा तेन तप्तो ग्निर्गङ्गातो येव्यचिच्छिपत् ॥ ६० ॥ हरैरतो ग्निर्नोदीर्णं गङ्गाम

ब्रह्मा, वसु, इन्द्र व नारद ने विवाहकी सामग्री को किया व नन्दीश आदिक गणों समेत शिवजी वृष के आसन पै शीघ्रही गये ॥ ५६ ॥ व माताओं की दुन्दुभियों के शब्दोंसे ब्रह्मादिक देवताओं समेत कियेहुये कौतुकपूर्वक मंगलवाले शिवजी हिमाचल के स्थान को प्राप्त होकर ॥ ५७ ॥ विधिसे इन पार्वतीजी को व्याहकर फिर अपने स्थान को चलेगये वहां पर एकान्त में रतिवाले कामी शिवदेवजी जबतक स्थित हुये ॥ ५८ ॥ तबतक डरेहुये देवताओं से पठाये हुये अग्निजी महादेवजी के समीप गये वहां अग्नि के जानेपर रतिको छोड़कर महादेवजी ने ॥ ५९ ॥ बहुतही लज्जित होकर अपने वीर्यको अग्नि के मुखमें फेंक दिया और उस वीर्य से तबेहुये

अग्निजी ने गंगाजी के जल में फेंक दिया ॥ ६० ॥ व अग्निजी से उगिला हुआ शिवजी का वीर्य गंगाजी के बीच में गिरा और उसके तेज से जली हुई उन गंगाजी ने उसको अपने किनारे पै धर दिया ॥ ६१ ॥ और सप्तर्षियों की छह खियां नहाने के लिये गंगाजी के समीप गई व स्नान किये हुई शीत से विकल वे किनारे पै जलते हुये तेजको देखकर ॥ ६२ ॥ अग्नि मानकर तापने की इच्छावाली वे सब भलीभांति प्राप्त हुई व उन खियों के तापने पर हे मुने ! वह वीर्य छह मुखवाला होगया और कटिके द्वार से शीघ्र ही चढ़ गया और अग्नि के आगे स्थित वे खिया जब आपस में ऊपर फेंकने के लिये न समर्थ हुई ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ तब उस भय से मुनियों के

ध्येयपातह ॥ तथा तु स्वतटेन्यस्तं दग्धया तस्य तेजसा ॥ ६१ ॥ सप्तर्षीणां च षट्पत्न्यः स्नानार्थं जाह्नवीययुः ॥ शीतात्वा स्ताः कृतस्नाना दृष्ट्वा ते जस्तटे ज्वलत् ॥ ६२ ॥ मत्वाग्निमिति तास्वस्तपुक्ता मास्समाययुः ॥ तपन्तीनाञ्च वैता सां तद्वीर्यमभवन्मुने ॥ ६३ ॥ पडाननं समारूढं श्रोणिद्वारेण सत्वरम् ॥ यदान्योन्यमुत्पतितुं शक्तानाग्नेः पुरःस्थिताः ॥ ६४ ॥ चिन्तामणुस्तदा सर्वा मुनित्रासात्ततोभयात् ॥ ततश्च तपसो वीर्याद्विकृष्यस्वोदरात्ततः ॥ ६५ ॥ षड्विंशत्समापन्नं श्वेतपर्वतमस्तके ॥ मध्ये शराणां विवृत्तं निक्षिप्तं वीर्यमुत्तमम् ॥ ६६ ॥ शुक्लायां प्रतिपद्यासीद्वितीयायां समीकृतः ॥ तृतीयायां वसाकारस्सर्वलक्षणलक्षितः ॥ ६७ ॥ चतुर्थ्यां परिपूर्णः षण्मुखोद्वादेशे क्षणः ॥ अलंकृतस्तुपञ्चम्यां षष्ठ्यां च सप्तमुत्थितः ॥ ६८ ॥ तेजसास्वेन तीव्रेण ततापसजगत्त्रयम् ॥ जातमित्थं समाकर्ण्य सर्वशक्रं मुखाः सुराः ॥ ६९ ॥ समा

उरके कारण वे सब चिन्ताको प्राप्त हुई तदनन्तर तपस्या के बल से अपने पेट से खींचकर उसके उपरान्त ॥ ६५ ॥ श्वेतपर्वत (कैलास) के बीच में वृहों ने एकता में प्राप्त किया और रामसरों के बीच में समस्त उत्तम वीर्य को शुक्लपक्षवाली परेवा में फेंक दिया और दुइज में सम किया गया व तीज में समस्त लक्ष्णों से लक्षित वह वसा के आकारवाला होगया ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ और चौथि में छह मुख व बारह नेत्रोंवाला वह पूर्ण अंगोंवाला होगया व पञ्चमी में अलंकार किया हुआ वह छठि में उठता भया ॥ ६८ ॥ और उसने अपने तीव्र तेज से त्रिलोकको सन्तप्त किया इस प्रकार पैदा हुये उनको मुनकर इन्द्रादिक सब देवताओं ने ॥ ६९ ॥ आकर ब्रह्मा ने

इनका विधिपूर्वक संस्कार किया और प्रसन्न पार्वतीश शिवजी ने उत्तम व दृढ़ शक्ति दिया ॥ ७० ॥ तदनन्तर पार्वतीजी ने मयूर को वाहन में कल्पित किया व अग्निने छाग दिया व समुद्र ने कुक्कुट (मुर्गी) को दिया ॥ ७१ ॥ तदनन्तर पुत्र की कामना से कृत्तिकाओं ने उसको बढ़ाया उसके उपरान्त संस्कारको प्राप्त व ब्रह्मादिक देवताओं से प्रणाम कियेहुये ॥ ७२ ॥ शक्ति हाथवाले व सुरसेनासे घिरे हुये उनका अभिषेक हुआ और विष्णाधिप, महासेन, पावक, षण्मुख व अंशज ॥ ७३ ॥ गांगेय, कार्तिकेय, गुह, स्कन्द, उमासुत, देवसेनापति, स्वामी, सेनानी व शिखिध्वज ॥ ७४ ॥ कुमार और शक्तिधारी उनके सोलह नामोंको जो मनुष्य भक्तिसे

गत्यास्यसंस्कारं ब्रह्माचक्रेयथाविधि ॥ तुष्टेनपार्वतीशेनशक्तिर्दत्तादृढाशुभा ॥ ७० ॥ ततोर्गौर्यामयूरश्च वाहनेपरिकल्पितः ॥ छागश्चैवाग्निनादत्तः कुक्कुटं सरिताम्पतिः ॥ ७१ ॥ ततस्सकृत्तिकाभिश्च वर्द्धितः पुत्रकाम्यया ॥ ततस्तुप्राप्तसंस्कारो ब्रह्माद्यैरभिवन्दितः ॥ ७२ ॥ शक्तिहस्तोभिषिक्तस्तु देवसेनासमावृतः ॥ वित्ताधिपोमहासेनः पावकः षण्मुखोऽंशजः ॥ ७३ ॥ गाङ्गेयः कार्तिकेयश्च गुहस्कन्द उमासुतः ॥ देवसेनापतिः स्वामी सेनानी च शिखिध्वजः ॥ ७४ ॥ कुमारः शक्तिधारी च तस्य नामानि षोडश ॥ यः पठेन्मानवो भक्त्या बाधातस्य न जायते ॥ ७५ ॥ एवं जातो महासेनो दानवानां क्षयङ्करः ॥ कुशस्थल्यां समानीतः शम्भुना स्थानकारणात् ॥ ७६ ॥ अभिषिक्तः स तेनासौ भद्रितस्सजटः पुरा ॥ तेन भद्रजटो नाम देवतीर्थं च कथ्यते ॥ ७७ ॥ कृताभिषेकं लब्ध्वा ब्रह्मासेनं महेश्वरः ॥ तमुवाच समधुरं सर्वदेवसमागमे ॥ ७८ ॥ रक्षाकार्या त्वया पुत्र सामरस्यशतक्रतोः ॥ देवानां बाधकास्सर्वे निहन्तव्याः सुरद्विषः ॥ ७९ ॥ इत्थं

पढ़ता है उसके बाधा नहीं होती है ॥ ७५ ॥ इसप्रकार दानवों के क्षयकारक महासेनजी पैदा हुये हैं और स्थान के कारण शिवजी से कुशस्थली उज्जैनी में लाये गये हैं ॥ ७६ ॥ और पुरातन समय उन शिवजी से ये महासेनजी अभिषेक किये गये और जटाओं समेत भद्रित (मुखिलत) हुये उस कारण भद्रजट नाम हुआ और देवतीर्थ कहा जाता है ॥ ७७ ॥ अभिषेक किये व अस्त्रों को पाये हुये उन स्वामिकार्तिकेयजीसे महादेवजी ने सर्व देवताओं के संयोग में मधुरतापूर्वक कहा ॥ ७८ ॥

कि हे पुत्र ! तुमको देवताओं समेत इन्द्रकी रक्षा करना चाहिये और देवताओं को बाधा करनेवाले सब दैत्योंको मारना चाहिये ॥ ७६ ॥ इसप्रकार उस प्रथमसागर में बड़ा उत्सव होने पर पातालतल में टिकीहुई सब मातार्ये आई ॥ ८० ॥ और सदाशिवजी ने उनके भोजनों की संज्ञासे जिन नामों को किया है हे मुनिश्रेष्ठ ! उनको तुम सुनो ॥ ८१ ॥ कि बरगदको भोजनकी इच्छावाली जो मातार्ये वे वटमाताहुई और जिन्होंने चिर्भटी (ककड़ी) को खाया वे चिर्भटमातृका हुई ॥ ८२ ॥ व शिवजी के साथ क्रीडा के लिये जो मांस भोजन में प्राप्तहुई वे सब छानवे मातार्ये पलमाता हुई ॥ ८३ ॥ हे मुने ! उन सर्वोंका पुण्यदर्शन गृह के भूतों का

महोत्सवेजाते तत्रप्रथमसागरे ॥ मातरोन्वागतास्सर्वाः पातालतलसंस्थिताः ॥ ८० ॥ तासामाहारसंज्ञाभिश्चक्रे नामा निशङ्करः ॥ यानितानिप्रवक्ष्यामि शृणुत्वमुनिपुङ्गव ॥ ८१ ॥ वटभोजनकामाया ज्ञयास्तावटमातरः ॥ भुक्तातुचिर्भ टीयाभिस्तावैचिर्भटमातरः ॥ ८२ ॥ क्रीडार्थंशम्भुनाचाथप्राप्तायाःपलभोजनैः ॥ पण्णवतिर्मातरश्चासन् सर्वास्ताःप लमातरः ॥ ८३ ॥ सर्वासान्दर्शनंपुण्यं गृहभूतविनाशकम् ॥ तायत्नतस्सदादैव्यो द्रष्टव्यामानवैमुने ॥ ८४ ॥ लब्ध्वा शक्तिमहासेनो देवसेनासमावृतः ॥ जघानदानवेन्द्रन्तं तारकं तारसातदा ॥ ८५ ॥ दत्त्वा राज्यं तथेन्द्राय स्फीतं निहतकण्टकम् ॥ कुशस्थलीं समागम्य तत्रवासं समाचरेत् ॥ ८६ ॥ एवं निहत्य दैत्येन्द्रं सगङ्गो यो महाबलः ॥ शक्तिं शि प्राजले मुञ्चत्पातालं च विभेदसा ॥ ८७ ॥ ततो भोगवती व्यास शक्तिभेदेन निर्गता ॥ वन्दिता सर्वदैवैश्च मुनिभिश्च तपो धनैः ॥ ८८ ॥ पृथिव्यां यानि तीर्थानि समुद्रादि गतानि च ॥ शक्तिभेदे तु न्यस्तानि शतकोटि सहस्रशः ॥ ८९ ॥ अतो

विनाशक है सदैव यल से उन देवियोंको मनुष्यों को देखना चाहिये ॥ ८४ ॥ देवताओं की सेनासे बिरुद्धे स्वामिकार्तिकेयजी ने शक्तिको पाकर उस समय वेग से असुरेन्द्र तारक को मारा है ॥ ८५ ॥ व नष्टकण्टकोवाली तथा समुद्रराज्यको इन्द्र के लिये देकर उज्जैनी में आकर उन स्वामिकार्तिकेयजी ने वहां निवास किया ॥ ८६ ॥ इसप्रकार असुरेन्द्र तारकको मारकर उन महाबलवान् स्वामिकार्तिकेयजी ने शक्तिको शिप्रानदी के जलमें फेंक दिया और उसने पातालको विदारण किया ॥ ८७ ॥ तदनन्तर हे व्यासजी ! शक्तिके भेदसे भोगवती (सर्पपुरी) निकली जोकि सब देवताओं व तपस्धारूपी धनवाले मुनियों से प्रणाम कीहुई थी ॥ ८८ ॥

समुद्रादिको में प्राप्त जो तीर्थ पृथ्वी में हैं वे सैकड़ों करोड़ हजार तीर्थ शक्तिभेद तीर्थ में न्यास किये गये हैं ॥ ८९ ॥ इसलिये त्रिलोकमें कोटितीर्थ अतिपवित्र कहा गया है और ब्रह्माने वहां कोटितीर्थेश्वर सदाशिवजी को थापा है ॥ ९० ॥ कोटि तीर्थ में नहाकर मनुष्य कोटीश्वर शिवजी को देखकर सब पातकोसे छूटजाता है जैसे कि केंचुलि-से सांप छूटजाता है ॥ ९१ ॥ हे मुने ! पितरों का भक्त जो मनुष्य वहा श्राद्ध करता है वह दश अश्वमेधों के समस्त फलको प्राप्तहोता है ॥ ९२ ॥ व पितरों को उद्देश कर जो कुछ कोटितीर्थ में दियाजाता है वह सब कोटिगुना होताहै इसमें सन्देह नहीं है ॥ ९३ ॥ उस तीर्थ में जो मनुष्य दूधवाली गऊको

तिपुरण्यत्रैलोक्ये कोटितीर्थमुदाहृतम् ॥ ब्रह्मणाम्यापितस्तत्र कोटितीर्थेश्वरः शिवः ॥ ९० ॥ कोटितीर्थेनरस्सनात्वा दृष्ट्वा कोटीश्वरं शिवम् ॥ मुच्यते सर्वपापेभ्यो निर्मोकादिवपन्नगः ॥ ९१ ॥ श्राद्धं करोति यस्तत्र पितृभक्तो नरो मुने ॥ दशानामश्वमेधानां प्राप्नोति सकलं फलम् ॥ ९२ ॥ पितृनुद्दिश्य यत्किञ्चित् कोटितीर्थे प्रदीयते ॥ तत्सर्वं कोटिगुणितं जायते नात्र संशयः ॥ ९३ ॥ तत्र तीर्थेनरो यस्तु गान्ददाति पयस्विनीम् ॥ सर्वलोकानतिक्रम्य सगच्छेत्परमाङ्गतिम् ॥ ९४ ॥ यावन्त्यङ्गेपि रोमाणि तत्प्रसूति कुलेषु च ॥ तावद्युगसहस्राणि ब्रह्मलोकं महीयते ॥ ९५ ॥ पौर्णमास्यां समावस्यां पश्येच्छक्तिधरन्तु यः ॥ नापुत्रीनाधनो रोगी सप्तजन्मनि जायते ॥ ९६ ॥ जलप्रवेशं यः कुर्यात्तत्र तीर्थेनरोत्तमः ॥ सोक्षयं लभते लोके यावच्चन्द्रार्कयोस्सुखम् ॥ ९७ ॥ दृषोत्सर्गन्तु यः कुर्यात् पितृभक्तो नरो मुने ॥ सोक्षयं लभते स्थानं यत्सुरैरपि दुर्लभम् ॥ ९८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे शक्तिभेदमाहात्म्ये नाम पञ्चचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ४५ ॥ *

देता है वह सब लोकों को नोंधकर उत्तम गतिको प्राप्तहोता है ॥ ९६ ॥ व उसकी सन्तानके वंशोंमें जितने रोम होते हैं उतने हजार युगों तक वह ब्रह्मलोकमें पूजा जाताहै ॥ ९५ ॥ पौर्णमासी व अमावसमें जो मनुष्य शक्तिधर (महासेन) जीको देखताहै वह सातजन्मोंतक पुत्ररहित व निर्धनी नहीं होताहै ॥ ९६ ॥ व उसतीर्थ में जो उत्तम मनुष्य जलमें प्रवेश करताहै वह संसारमें तबतक अविनाशी सुखको प्राप्तहोताहै जबतक कि चन्द्रमा व सूर्य रहतेहैं ॥ ९७ ॥ हे मुने ! जो पितरोंका भक्त मनुष्य वहा दृषोत्सर्ग करताहै याने बैलको छोड़ताहै वह अक्षय स्थानको प्राप्तहोताहै जोकि देवताओं को भी दुर्लभहै ॥ ९८ ॥ इति पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥

अगस्त्येश शिव देवकर अति अद्भुत परभाव । छियालिसें अध्याय में कह्यो मुनीश सचाव ॥ सनत्कुमार जी बोले कि स्वर्णलुर तीर्थमें नहाकर व महेश्वर देवजी को देखकर सौ कपिलादान से भी अधिक फल होता है ॥ १ ॥ और जो जितेन्द्रिय पुरुष ब्रह्माकी बावली में स्नान करता है वह हंसों से संयुत विमान के द्वारा ब्रह्मलोक को जाना है ॥ २ ॥ व रात्रि में तैल नामक मातृगणों को जो बलि देता है उसकी शीघ्रही सिद्धि होती है व मरकर वह शिवलोक को जाता है ॥ ३ ॥ और चैत व फागुन में विष्णुवापी में नहाकर उपवास समेत जो जितेन्द्रिय पुरुष जागरण करता है ॥ ४ ॥ वह सब पापों से छूटजाता है व विष्णुलोक को प्राप्त होता है ॥

सनत्कुमार उवाच ॥ स्वर्णधुरे नरस्मनात्वा दृष्ट्वा देवं महेश्वरम् ॥ कपिलाशतदानस्य फलमप्यधिकं भवेत् ॥ १ ॥
वाप्यापितामहस्यापि यस्मनायाद्विजितेन्द्रियः ॥ हंसयुक्तेनयनेन ब्रह्मलोकं सगच्छति ॥ २ ॥ तैलाभिधानमातृणां रात्रौ यो यच्छते बलिम् ॥ तस्य सिद्धिर्भवेत्सद्यो मृतः शिवपुरं व्रजेत् ॥ ३ ॥ विष्णुवाप्यान्नरस्मनात्वा चैत्रे वा फाल्गुने तथा ॥ जागरं यस्तु कुर्वीत सोपवासो जितेन्द्रियः ॥ ४ ॥ मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं सगच्छति ॥ अभयेश्वरदेवस्य भक्त्या नियतमानसः ॥ ५ ॥ पटुबन्धमथो दृष्ट्वा रुद्रलोकं सगच्छति ॥ लोकैस्तु जायते दाता सार्वभौमो महीपतिः ॥ ६ ॥ यस्त्वगस्त्येश्वरं गच्छेदेकचित्तो नरो मुने ॥ दृष्ट्वा गस्त्येश्वरन्देवं सोपवासो जितेन्द्रियः ॥ ७ ॥ अगस्त्योदयवेलायां मुच्यते सर्वपातकैः ॥ कृत्वा गस्त्यञ्च सौवर्णैरौप्यं वाथ स्वशक्तिः ॥ ८ ॥ पञ्चरत्नसमायुक्तं वस्त्रेण च समन्वितम् ॥ तत्कालीनैः फलैः पुष्पैः पूजनीयो विधानतः ॥ ९ ॥ विधानंतस्य वक्ष्यामि चातुर्वर्ग्यं द्विजोत्तम ॥ सप्तधान्यानि मुख्यानि तां

और मनको गेके हुये पुरुष भक्तिसे अभयेश्वर देवजी के ॥ ५ ॥ पटुबन्धको देखकर इसके उपरान्त वह शिवलोक को जाता है और लोक में वह दाता व चक्रवर्ती राजा होता है ॥ ६ ॥ व हे मुने ! सावधान चित्तवाला जो मनुष्य अगस्त्येश्वरजी के समीप जाता है वह उपवास समेत जितेन्द्रिय पुरुष अगस्त्यजी के उदयकी वेला में अगस्त्येश्वर देवजी को देखकर समस्त पातकों से छूटजाता है व अपनी शक्ति के अनुसार सुवर्ण व चांदी के अगस्त्यजी को निर्माणकर ॥ ७ ॥ ८ ॥ व पंचरत्न से संयुत व वस्त्रसे संयुत कर उस समय वाले फलों व फूलों से विधिपूर्वक पूजन करना चाहिये ॥ ९ ॥ हे द्विजोत्तम ! उन अगस्त्यजी की चारों वर्णवाली विधि

को कहता हूँ कि सात धान्य व उतनेही फल मुख्य हैं ॥ १० ॥ हे मुने ! पहले एक धान्य व एक फल त्यागने योग्य होता है इसी प्रकार सात वर्षोतक ऐसाही व्रत करे ॥ ११ ॥ व हे काशपुष्पके समान, अग्नि व पवनसे उत्पन्न, मित्रावरुण के पुत्र, कुम्भयोने ! तुम्हारे लिये नमस्कार है ॥ १२ ॥ इस मन्त्र से अर्घ देने पर हे व्यासजी ! जो फल होता है उसको सावधानचित्तवाले होकर सुनिये कि वह पुत्रवान् व धनवान् होता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ १३ ॥ और मरकर वह स्वर्ग को जाता है व फिर मृत्युलोकमें प्राप्त होकर सम्पन्न (धनवान्) कुल में पैदा होता है और महायोगीश्वर होता है ॥ १४ ॥ सावधान होता हुआ जो मनुष्य इस

वन्त्येवफलानिच ॥ १० ॥ एकंधान्यंफलंचैकमग्रेत्याज्यंभवेन्मुने ॥ यावद्वैसप्तवर्षाणि व्रतमेवंसमाचरेत् ॥ ११ ॥

काशपुष्पप्रतीकाशवह्निमारुतसम्भव ॥ मित्रावरुणयोःपुत्र कुम्भयोनेनमोस्तुते ॥ १२ ॥ दत्तेर्घ्यत्फलंव्यास तद्वह्ने
कमनाःशृणु ॥ पुत्रवान्धनवांश्चैव जायतेनावसंशयः ॥ १३ ॥ मृतस्स्वर्गमवाप्नोति सम्पन्नेजायतेकुले ॥ मर्त्यलोके
पुनःप्राप्य महायोगीश्वरोभवेत् ॥ १४ ॥ यश्चैतच्छृणुयान्नित्यं पठेद्वासुसमाहितः ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तो मुनिलोकेस
मोदते ॥ १५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेऽगस्त्येश्वरमाहात्म्यनामषट्त्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ४६ ॥

व्यासउवाच ॥ महाकालंकिमर्थन्तु किवाशिवपदंस्मृतम् ॥ कोटीश्वरंकिमर्थन्तु पावकंततकिमुच्यते ॥ १ ॥ नर
दीपःकिमर्थन्तु द्वितीयावदमातरः ॥ अभयेश्वरंकिमर्थन्तुशङ्खोद्धारणमेवच ॥ २ ॥ शुलेश्वरंकिमर्थन्तु किमोद्धार

चरित्र को नित्य सुनता व पढ़ता है समस्त पापों से छूटा हुआ वह पुरुष मुनि (आगरत्य) जीके लोक में प्रसन्न होता है ॥ १५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्ती
खण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायामगस्त्येश्वरमाहात्म्यंनामषट्त्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥

दो० । नरदीपक नामक यथा भे दिननायक देव । सैतालिसर्वे में कह्यो सोइ चरित सुखसेव ॥ व्यासजी बोले कि महाकाल किस लिये हैं और कौन शिवस्थान
कहागया है व कोटीश्वर किस लिये हैं और वह पावक क्या कहाजाता है ॥ १ ॥ व नरदीप किस लिये हैं और दूसरी वटमातृका किस लिये हैं और अभयेश्वर

किस लिये हैं व शखोद्धारण किस लिये हैं ॥ २ ॥ व शूलेश्वर किस-लिये हैं और उ०कार क्यों कहा जाता है व धृतपाप किस लिये है वैसेही अंगारेश्वर किस-निमित्त हैं ॥ ३ ॥ और दिव्य उज्जयिनी पुरी किस लिये सात कल्पोंवाली कही गई है हे मुनिश्रेष्ठ ! उसके जो नाम है उनको कहिये ॥ ४ ॥ सनत्कुमार जी बोले कि हे व्यासजी ! सुनिये कि जिस प्रकार दिव्य पुरी उत्तम पुण्यदायिनी है पहले में स्वर्णशृङ्गा व दूसरे कल्प में कुशस्थली ॥ ५ ॥ तीसरे में अवन्तिका कही गई है व चौथे कल्प में अमरावती और पांचवें में चूड़ामणि ऐसी पुरी प्रसिद्ध हुई है ॥ ६ ॥ व छठे में पद्मावती जानने योग्य है व सातवें कल्प में उज्जयिनी पुरी कही गई है और

स्तु कथयते ॥ धृतपापं किमर्थं न्तु किमङ्गारेऽश्वरन्तथा ॥ ३ ॥ पुरीचोऽजयिनी दिव्या सप्तकल्पाकथं स्मृता ॥ कथयस्व मुनिश्रेष्ठ तस्यानामानि यानि च ॥ ४ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ शृणु व्यासयथाख्याता पुरी दिव्या मुपुण्यदा ॥ स्वर्णशृङ्गा तु प्रथमे द्वितीये तु कुशस्थली ॥ ५ ॥ तृतीये वन्तिका प्रोक्ता चतुर्थे त्वमरावती ॥ विख्याता पञ्चमे कल्पे पुरी चूडामणीति च ॥ ६ ॥ षष्ठे पद्मावती ज्ञेया उज्जयिनी सप्तमे पुरी ॥ पुनरन्ते तु कल्पस्य स्वर्णशृङ्गादिका स्मृता ॥ ७ ॥ एतानि सप्तनामानि प्रातरुत्थाय यः पठेत् ॥ सप्तजन्मकृतात्पापान्मुच्यते नात्र संशयः ॥ ८ ॥ उज्जयिन्यां पुरी राजा वभूव किल चान्धकः ॥ तस्य पुत्रो महावीर्यो नाम्ना कनकदानवः ॥ ९ ॥ युद्धार्थे समहावीर्यः शक्रं युद्धे समाह्वयत् ॥ क्रोधादिन्द्रेण संग्रामं युज्यमानो निपातितः ॥ १० ॥ निहत्य दानवंशक्रोभया दन्धासुरस्य तु ॥ जगाम शङ्करान्वेषी कैलासं शङ्करालयम् ॥ ११ ॥ दृष्ट्वा प्राणम्य देवेशं चन्द्रार्द्धकृतशेखरम् ॥ भीतो विज्ञापयामास सहस्राकुललोचनः ॥ १२ ॥ अभयन्देहि मे देव

फिर कल्प के श्रान्त में स्वर्णशृङ्गादिका कही गई है ॥ ७ ॥ प्रातःकाल उठकर जो मनुष्य इन सात नामों को पढ़ता है वह सात जन्मों में किये हुये पातक से छूट जाता है इस में संन्देह नहीं है ॥ ८ ॥ पुरातन समय उज्जयिनी में अन्धक राजा हुआ है उसका बड़ा बलवान् पुत्र कनकदानव नामक हुआ है ॥ ९ ॥ उस महाबलवान् ने युद्ध के लिये समर में इन्द्र को बुलाया और संग्राम में युद्ध करते हुये उसको इन्द्र ने क्रोधसे गिरा दिया ॥ १० ॥ व दानव को मारकर अन्धक के डर ने शिवजी को दृढ़ करनेवाले इन्द्रजी कैलास नामक शिवजी के स्थान को गये ॥ ११ ॥ व अर्द्धचन्द्रमा को मस्तक में किये देश शिवजी को देखकर तदनन्तर

हजार विकल लोचनों वाले इन्द्र ने विनय किया ॥ १२ ॥ कि हे देव ! अन्धक दानव से मुझको अभय दीजिये इस प्रकार इन्द्र के वचन को सुनकर शरणागत-
प्रिय इन शिवजी ने ॥ १३ ॥ अभय दिया कि तुम अन्धक से मत डरो और महादेवजीने विश्वरूप व भयङ्कर रूप कर ॥ १४ ॥ जो कि भयङ्कर शब्द करते हुये व
पातालकी नाई उदररूपवाले तथा विप से उग्र व पैनी दाढ़ीवाले व अतिभयंकर और जिह्वाओं को लपलपाते हुये सपोंसे उपलब्धित था ॥ १५ ॥ व बहुत शर्बा को
धारेहुये अनेक हजार मुजाओं से संयुत था और सिंहचर्मको पहने व व्याघ्रचर्म को कोंधासूती दुपट्टा डाले ॥ १६ ॥ व हार्थिकं चर्मको आच्छादन किये तथा चन्द्रमा

दानवादन्धकाच्चैव ॥ शक्रस्येतथैवचःश्रुत्वा शरणागतवत्सलः ॥ १३ ॥ ददावभयमेवासौ माभैस्त्वमन्धकाद्विव ॥ कृ
त्वारूपंमहादेवो विश्वरूपंमुभैरवम् ॥ १४ ॥ संपूर्णहस्त्रैस्तुग्रैस्तीक्ष्णदंष्ट्रैर्विषोल्बणैः ॥ पातालोदररूपैश्च भैरवाराव
नादिभिः ॥ १५ ॥ भुजैरनेकसाहस्रैर्वहुशस्त्रधृतैस्तथा ॥ सिंहचर्मपरीधानं व्याघ्रत्वगुत्तरायकम् ॥ १६ ॥ गजाजिन
कृताटोपं चन्द्राग्निरविलोचनम् ॥ महामहीध्रतुल्याभिर्जङ्घाभिर्भूषितंसदा ॥ १७ ॥ चोभयंश्चालयन्सर्वान् पाताल
स्यतलावधि ॥ ईदृशपंविधायेशो दनुदैत्यभयावहम् ॥ १८ ॥ अवातरन्महर्षीभिः पादेनैकेनशङ्करः ॥ तत्रैवहिहदोजा
तः सर्वदैवतवन्दितः ॥ १९ ॥ ख्यातंशिवपदं तद्विद्यत्पदाक्रान्तवान्विभुः ॥ यस्मादत्रपुराकोटिः पादाङ्गुष्ठस्यधारिता ॥
२० ॥ कोटितीर्थमतःख्यातं सर्वपापप्रणाशनम् ॥ अगस्त्येनतथाकोटिस्तार्थानामत्रधारिता ॥ २१ ॥ अतोपीदृक्शुभं
लोकं कोटितीर्थसदास्मृतम् ॥ दृष्ट्वातुन्निदशास्सर्वे स्नातावैहितकाम्यया ॥ २२ ॥ महाकालंकृतरूपं महाकालस्ततः

अग्निं व सूर्यं लोचनोवाले और सदैव महापर्वतोंके समान जंघाओं से भूषित ॥ १७ ॥ और पाताल के नीचे तक सब जन्तुओं को क्षोभित करते व केंपाते थे दानवों व
दैत्यों के भय हारक ऐसे रूपको बनाकर ईश्वर ॥ १८ ॥ सदाशिवजी एक चरणसे पृथ्वीमें उतरे वहीं पर सब देवताओं से प्रणाम कियाहुआ कुण्ड हुआ ॥ १९ ॥ वह
शिवपद कहागया जिसको कि व्यापक शिवजी ने चरण से आक्रमण किया जिसलिये पहले चरण के अंगूठेकी कोटि धारण कीगई ॥ २० ॥ इसी कारण सब पापों
का विनाशक कोटितीर्थ कहागया है वैसेही यहांपर अगस्त्य जीने कोटितीर्थों को धारण किया है ॥ २१ ॥ इसीकारण संसार में सदैव ऐसा उत्तम कौटितीर्थ

कहा गया है उसको देखकर सब देवता हितकी कामना से नहाते भये ॥ २२ ॥ जिस लिये महाकालरूप किया गया उसी कारण महाकाल कह गये हैं अन्धकासुर दैत्य ने भी युद्धमें मरेहुये पुत्रको सुनकर ॥ २३ ॥ बड़े क्रोध से संयुत होकर समर में तुरहियों को बजाया और सेना समेत निकलकर वहां प्राप्त हुआ जहां कि रथों व हाथियोंसे संयुत बड़ी सेना समेत वे देवता स्थित थे उसी समय महायुद्धमें किये हुये उद्यमवाले दानवों को देखकर ॥ २४ ॥ २५ ॥ कापतेहुये वे सैयार देवता शिवजी की शरण में गये व त्रिलोचन महाकालजी ने देवताओं से कहा कि मत डरो ॥ २६ ॥ क्रोध के कारण दाढ़ों से ओष्ठों को काटतेहुये शिवजी त्रिशूल को लेकर

स्मृतः ॥ अन्धामुरोपिदनुजःपुत्रंश्रुत्वाहंतयुधि ॥ २३ ॥ क्रोधेनमहताविष्टो रणतूर्याण्यवादयत् ॥ समैन्योनिर्गतःप्राप्तो
यत्रतेत्रिदशाःस्थिताः ॥ २४ ॥ महत्यासेनयासार्द्धं रथवारणयुक्तया ॥ तदैवदानवान्वीक्ष्य महाहवकृतोद्यमान् ॥
२५ ॥ वेपन्तस्तेसुसन्नद्धाः शम्भुशरणमाययुः ॥ माभैषतमहाकालो देवानूचोत्रिलोचनः ॥ २६ ॥ गृहीत्वाशूलमातिष्ठ
दंष्ट्रादष्टाधरोरुषा ॥ कोपयुक्तेविरूपाक्षे ज्वालाभिःपूरितन्नमः ॥ २७ ॥ अन्धकेनाथरुष्टेन शरकोटिस्तुदुस्सहा ॥ मुक्ता
जगामदेवानां नाशायशलभाकृतिः ॥ २८ ॥ विम्फुलिङ्गाचिषंवह्निं मुञ्चमानःपिनाकधृक् ॥ शतशशकलीचक्रे त
ञ्चबाणैरताडयत् ॥ २९ ॥ अन्धकोपिहियुद्धस्थो शिथिलःशिथिलयुधः ॥ निरुद्धशम्भुनाबाणैरलिभिःपङ्कजंयथा ॥
३० ॥ तस्यसैन्यञ्चबहुधा स्वगणैर्युद्धयोधिभिः ॥ योध्वरैर्हंतदिव्यैस्स्थाणुसान्निध्यमाश्रितैः ॥ ३१ ॥ ततोन्धकेनस

स्थित हुये जब शिवजी क्रोध से संयुक्त हुये तब ज्वालाओंसे आकाश पूर्ण होगया ॥ २७ ॥ इसके अनन्तर क्रोधित अन्धक से छोडेहुये असंख्य करोड बाण जोकि पांखी के समान आकारवाले थे देवताओं के नाशके लिये गये ॥ २८ ॥ त्विनगरी व ज्वालाओंवाली अग्नि को छोडतेहुये पिनाकधारी शिवजीने सैकड़ों खण्ड किये और उस अन्धक को बाणोंसे ताडित किया ॥ २९ ॥ और शिथिल अस्त्रोंवाला व युद्धमें टिकाहुआ अन्धक भी शिथिल हुआ और शिवजीसे बाणोंके द्वारा आच्छा-
दिन कियागया जैसे कि अमरों से कमल आच्छादित होताहै ॥ ३० ॥ और निज गण व शिवजी की समीपता में आश्रित तथा युद्धमें लडनेवाले दिव्य उत्तम

योधाओं से उस अन्धककी सेना बहुत खण्ड कीगई ॥ ३१ ॥ तदनन्तर अन्धकने देवताओं से कटीहुई अपनी सेनाको देखकर व शिवजी से करोड़ों वारों करके अपना को वेधित देखकर सैकड़ों मायावों में चरुर व विकल कीहुई देहवाले इसने भय में प्राप्तहोकर वेगसे तामसौ (अन्धकारवाली) माया किया ॥ ३२।३३ ॥ व उसमायासे अन्तर्द्धान शरीरवाला यह दैत्य उत्तर दिशाको चलागया व शिवजीके भयहारक रूपको धारण करताहुआ भिन्नहृदयवाला यह दैत्य पृथ्वी में अमता भया ॥ ३४ ॥ जिस मार्गसे दैत्य (अन्धक) गया था उसीसे वार २ यह कहतेहुये शिव देवजी गये कि यह दुष्ट नहीं देखगइताहै कहां गया ॥ ३५ ॥ और जिसभांति

न्यंस्वं भिन्नदृष्ट्वा तथामुरैः ॥ आत्मानञ्चमहेशेन विद्धं च वाणकोटिभिः ॥ ३२ ॥ विकलीकृतदेहोसौ भयमाश्रित्य वे गतः ॥ चकार तामसौ मायाशतविशारदः ॥ ३३ ॥ तयान्तर्हितदेहोसौ जगाम दिशमुत्तराम् ॥ शम्भोर्भीतिहरं विभ्रद्भ्रामभुविभिन्नहृत् ॥ ३४ ॥ येनाध्वनागतो दैत्यस्तेन देवो जगाम ह ॥ वदन्न दृश्यते कासौ गतो दुष्टः पुनः पुनः ॥ ३५ ॥ उवाच चान्धक इशब्दं तथोवाच महेश्वरः ॥ तत्र तीर्थं मथोत्पन्नं वागन्धकमिति श्रुतम् ॥ ३६ ॥ तत्र स्नात्वा शुचिभू त्वा यो वै दद्यात्स शर्करम् ॥ नवम्यां मार्गशीर्षस्य शुक्लायां श्रद्धयान्वितः ॥ ३७ ॥ अक्षयं तद्भवेत्सर्वं दाता शिवपुरं ब्रजे त ॥ पितृनुद्दिश्य यत्किञ्चिद्दीयते भक्तिदिशवे ॥ ३८ ॥ तस्मांस्तिष्ठन्ति ते तावद्यावदाभूतसम्प्लवम् ॥ तमसा द्वादिता दे वां सं बभूवुस्समाकुलाः ॥ ३९ ॥ सम्भ्रान्तमनसस्सर्वे न किञ्चिदपि मे निरे ॥ एतस्मिन्नन्तरे व्यास नरादित्यस्स्वते जसा ॥ ४० ॥ उत्तम्यौ नररूपेण कुर्वन्विति मिरादिशः ॥ नष्टे तमसि दैत्येण प्रकाशे प्रकटे सति ॥ ४१ ॥ देवामुदमवा

अन्धक बोला वैसेही महादेवजी ने शब्दको कहा वहापर वागन्धक ऐसा प्रसिद्ध तीर्थ उत्पन्न हुआ ॥ ३६॥ उसमें नहाकर व पवित्र होकर श्रद्धासंयुत जो पुरुष अगहनकी शुक्लपलवाली नवमी में शर्करा समेत दान देताहै ॥ ३७॥ वह सब अक्षयहोताहै और दाता शिवपुरको जाता है शिवजी में भक्ति से पितरो को उद्देशकर जो कुछ दिया जाताहै ॥ ३८ ॥ तो वे पितर तृप्तहोकर तबतक स्थित होते हैं जबतक कि प्रलय होती है व अज्ञानसे आच्छादित देवता विकलहुये ॥ ३९ ॥ और अभितमनवाले सर्वों ने कुछ भी नहीं जाना इसी अवसर में हे व्यासजी ! अपने तेज से दिशाओंको अन्धकार रहित करते हुये नरादित्यजी मनुष्य के रूपसे उठे अन्धकार व दैत्य

के भी नाश होनेपर व प्रकाश प्रकट होनेपर ॥ ४० ॥ नेत्रों से अनन्तजीको देखकर अनेक भांति के स्तोत्रों से मनुष्यरूपी सूर्यनारायणजी की स्तुति करते हुये उन देवताओं ने आनन्द पाया ॥ ४२ ॥ जिसलिये प्रकाशित सूर्यनारायणजी नररूप से उठे उसी कारण उन समर्थ देवताओं ने इनका नरदीप ऐसा नाम किया ॥ ४३ ॥ जो मनुष्य भक्तिसे नरदीप सूर्यनारायणजी को देखता है वह यद्यपि ब्रह्मघाती भी होवै तथापि समस्त पापोंसे छूटजाता है ॥ ४४ ॥ हे विप्रजी ! रविवार में छठि व सप्तमी तिथि में उपवास करनेवाला पुरुष दिनक्षय में संक्रान्ति में व ग्रहण तथा विषुवत (दिन रात बराबरवाले समय) में ॥ ४५ ॥ कुराड में नहाकर

पुस्ते दृष्ट्वानन्तन्तुलोचनैः ॥ स्तुवन्तोविविधैस्तोत्रैर्नररूपं दिवाकरम् ॥ ४२ ॥ उत्तम्यौनररूपेण दीप्तोयस्माद्विवाकरः ॥ तेनास्यनामतेचकुर्नरदीपइतीश्वराः ॥ ४३ ॥ यः पश्यति नरोभक्त्या नरदीपं दिवाकरम् ॥ मुच्यते सर्वपापेभ्यो यद्यपि ब्रह्महाभवेत् ॥ ४४ ॥ षष्ठ्यामर्कदिने विप्र सप्तम्यामुपवासकृत् ॥ दिनक्षयेथसंक्रान्तौ ग्रहणे विषुवत्यथ ॥ ४५ ॥ कुराडे स्नात्वा शुचिर्भूत्वा जपन्नियतमानसः ॥ नरदीपं नरः पश्येत्स्तोत्रवादित्रमङ्गलैः ॥ ४६ ॥ गन्धैर्धूपैस्तथादीपैर्नैवैर्द्यैर्विविधैस्तथा ॥ गीतवाद्यं पुराकृत्वा प्रणम्याष्टाङ्गमेव च ॥ ४७ ॥ प्रातर्मध्ये पराङ्गिवा कृत्वा कंस्यप्रदक्षिणाम् ॥ समुक्तस्सर्वपापैस्तु सप्तजन्मकृतैरपि ॥ ४८ ॥ सूर्यकोटिप्रतीकां शीर्विमानैस्सर्वकामिकैः ॥ सूर्यलोकं प्रयात्याशु यत्सुरैरपि दुर्लभम् ॥ ४९ ॥ शक्रात्प्राप्य पुरायस्माद्भानुरवप्रतिष्ठितः ॥ नरैव प्रसादेन नरदीपस्ततो ह्ययम् ॥ ५० ॥ तदैवास्य पुरा व्यास या

व पवित्र होकर नियम में प्राप्त मनवाला पुरुष जपताहुआ मनुष्य स्तोत्र व वाद्यादिक मंगलों से नरदीपजी को देखै ॥ ४६ ॥ और गंध, धूप, दीप व अनेक भांति के नैवेद्यों से पूजकर व आगे गीतवाद्यकर व अष्टांग प्रणामकर ॥ ४७ ॥ प्रातःकाल मध्याह्न व दुपहरके उसपर सूर्यनारायणजी की प्रदक्षिणाकर वह सातजन्मों में भी कियेहुये सब पातकों से छूटजाता है ॥ ४८ ॥ और करोड़ों सूर्योंके समान सब कामनाओंवाले विमानों के द्वारा शीघ्रही सूर्यलोकको जाता है जोकि देवताओंकी भी दुर्लभ है ॥ ४९ ॥ पुरातन समय जिसलिये इन्द्र से पाकर नरजी ने वहाँपर प्रसन्नतासे सूर्यनारायण को थापाहै उसकारण ये नरदीपजी है ॥ ५० ॥ हे व्यासजी !

पुरातन समय तभी इन्द्र ने यात्रा किया है और यह कहा कि हे पार्थ ! ज्येष्ठ बीतने पर सदैव सावधान होताहुआ मैं देवताओं समेत आर्जुना और संसार में देवकी चृष्टि से बहा आयाहुआ मैं जानने योग्य हूँ ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ उसके उपरान्त देवालय में जो देवता प्राप्त थे वे आकर प्रकाशकारक वैसे नरदीप देवजी को पूजकर ॥ ५३ ॥ और यात्राकर तदनन्तर देवयात्रा के अन्त में वे जाते थे जो मनुष्य रथ पै स्थित नरदीपदेवजी को देखता है ॥ ५४ ॥ सब पापोंसे छूटाहुआ वह सूर्यलोक में पूजाजाता है इसके उपरान्त फिर जो नरदीपजी की रथयात्रा है उसको कहताहूँ ॥ ५५ ॥ कि उसको करके उस पुण्यको मनुष्य प्राप्तहोता है जोकि मुनियों से

त्राशक्रेणनिर्मिता ॥ आगमिष्याम्यहंपार्थ सार्द्धन्दैवैस्समाहितः ॥ ५१ ॥ ज्येष्ठेतीतेद्वितीयायां नरदीपेत्तुसर्वदा ॥ तत्राहमागतोज्ञेयो लोकैर्देवस्यवर्षणात् ॥ ५२ ॥ ततो नन्तरमागम्य देवायेत्रिदशालये ॥ इष्ट्वादेवंतथारूढं नरदीपं सुदीपनम् ॥ ५३ ॥ कृत्वायात्राञ्चतेयान्ति देवयात्रात्ययेततः ॥ यःपश्येन्मानवोभक्त्या नरदीपंरथस्थितम् ॥ ५४ ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तस्सूर्यलोकमर्हायते ॥ रथयात्रामथोवक्ष्ये नरदीपस्ययापुनः ॥ ५५ ॥ तां कृत्वाचैवयत्पुण्यं मुनिभिः परिकीर्तितम् ॥ ज्येष्ठेतीतेद्वितीयायां रथस्थोहिदिवाकरः ॥ ५६ ॥ कुशस्थल्याद्विजश्रेष्ठैर्बाहुचैपैःप्रणीयते ॥ उत्तरा न्दिशमायान्तं यःपश्यतिदिवस्पतिम् ॥ ५७ ॥ अग्निष्टोमस्ययज्ञस्य लभतेसोखिलंफलम् ॥ निवृत्तंकेशवाकांक्षो रथंपश्यतिमानवः ॥ ५८ ॥ मुण्डीरस्वामिनोयात्रा कृतातेननसंशयः ॥ रथमाकर्षतेयस्तु रज्ज्वाकर्षेणवैमुने ॥ ५९ ॥ कुलमुद्धरतेसोपि पूर्वान्निपतृपितामहान् ॥ दक्षिणाभिमुखंयान्तं नरदीपंद्विजोत्तम ॥ ६० ॥ येसंयताःप्रपश्यन्ति तेया

कहागयाहै ज्येष्ठ बीतने पर द्वितीया तिथिमें रथपै स्थित सूर्यनारायणजी ॥ ५६ ॥ उज्जैनीपुरी में द्विजोत्तमों से मुजाक्षेपके द्वारा प्राप्तकियेजाते हैं उत्तर दिशामें आते हुये सूर्यनारायणजी को जो देखताहै ॥ ५७ ॥ वह अग्निष्टोम यज्ञके समस्त फलको प्राप्तहोताहै व केशवाकर्जसि लौटेहुये रथको जो मनुष्य देखताहै ॥ ५८ ॥ उसने मुण्डीर स्वामीकी यात्राकिया इसमें सन्देह नहीं है व हे मुने ! जो मनुष्य रसिके आकर्षणसे रथको खींचता है ॥ ५९ ॥ वह भी वंशको उद्धारता है व पहलेवाले पिता

पितामहादिकों को उच्चारता है हे द्विजोत्तम ! दक्षिण दिशा के सामने जातेहुये नरदीपजी को ॥ ६० ॥ संयम में प्राप्त जो पुरुष देखते हैं वे स्वर्गको प्राप्तहोते हैं व जो मनुष्य सूत्र से क्षेत्र, रथ व देव (नरदीप) जी को घेरताहै ॥ ६१ ॥ वह सब मनोरथों को प्राप्तहोताहै व कीहुई पुण्यबाला होताहै और जो मनुष्य भक्तिसे सूर्यनारायणजी की प्रदक्षिणा करते हैं ॥ ६२ ॥ उनसे सात हीपात्राली पृथ्वी प्रदक्षिणा कीगई व प्रातःकाल उठकर मौनहो जो मनुष्य सूर्यनारायणजी के समीप जाता है ॥ ६३ ॥ व हे द्विजोत्तम ! पूर्वद्वारासे देखकर और प्रणामकर और दक्षिणही द्वार से प्रवेश कर रथचक्रको पूजे ॥ ६४ ॥ तदनन्तर उम द्वारसे निकल कर गमन

न्तिचत्रिविष्टपम् ॥ सूत्रेणवेष्टतेक्षेत्रं रथन्देवमथापिवा ॥ ६१ ॥ सर्वकामानवाप्नोति कृतपुण्यस्सजायते ॥ प्रदक्षिणा
न्तुसूर्यस्य भक्त्याकुर्वन्ति येनराः ॥ ६२ ॥ प्रदक्षिणीकृतास्तु सप्तदीपवसुन्धरा ॥ प्रातरुत्थाययोभक्त्या मौनीया
तिदिवाकरम् ॥ ६३ ॥ दृष्ट्वातुपूर्वद्वारेण नमस्कृत्यद्विजोत्तम ॥ प्रविश्यदक्षिणेनैव रथचक्रंप्रपूजयेत् ॥ ६४ ॥ तेनद्वारे
णनिष्क्रम्य प्राणिपत्यव्रजेत्ततः ॥ पश्चिमंद्वारमाश्रित्य रथस्थंसूर्यमर्चयेत् ॥ ६५ ॥ चामरेचवितानञ्च घण्टांवापिनि
वेदयेत् ॥ पूर्वद्वारेतुगौर्देया तथाश्चश्चैवदक्षिणे ॥ ६६ ॥ पश्चिमेचगजःप्रोक्त उत्तरेरथएवच ॥ कुर्यादिवन्तुयोयात्रां
रथदीपस्यमानवः ॥ ६७ ॥ गोसूर्यशिवशक्राणां स्वालोक्ष्यंलभतेसुखम् ॥ प्रदक्षिणामहामेरोः कृतातेनभवेन्मुने ॥
६८ ॥ दद्याद्गवासहस्रंयो व्यतीपातशतेनच ॥ अश्वानाञ्चसहस्रेण यात्रायांतत्फलंलभेत् ॥ ६९ ॥ नरदीपेरथारूढे व

करै व पश्चिम द्वार में प्राप्तहोकर रथ पै स्थित सूर्यनारायण का पूजन करै ॥ ६५ ॥ चौर दो चक्र, वितान (चंदोबा) व घण्टाको भी निवेदन करै और पूर्वद्वार में गऊ देनाचाहिये वैसेही दक्षिणद्वार में अश्वदेनाचाहिये ॥ ६६ ॥ व पश्चिम में हाथी कहांगया है और उत्तर में रथही देना चाहिये जो मनुष्य इसप्रकार नरदीप जी की रथयात्रा करता है ॥ ६७ ॥ वह गोलोक तथा सूर्य, शिव व इन्द्रकी सलोक्ततावाले सुखको पाताहै व हे मुने ! इससे महामेरुकी प्रदक्षिणा कीहुई होतीहै ॥ ६८ ॥ और जो मनुष्य सौ व्यतीपात योगों में गोसहस्र देताहै और हजार घोड़ों के दान से जो फलहोताहै उस फलको मनुष्य यात्रासे पाताहै ॥ ६९ ॥ व नरदीप

जीके रथ पै चढ़ने पर जो मनुष्य जौर कराता है उसका लक्ष्मीजी से बिछोह नहीं होता है और वह सूर्यलोक में पूजा जाता है ॥ ७० ॥ और जो मनुष्य सूर्यनारायण जी के आगे बावली में महीनाभरतक नित्यस्नान कर उन नरदेवजी को देखता है उसका दुःस्वप्न नाश होजाता है ॥ ७१ ॥ हे व्यासजी ! भक्तिसे प्रतिदिन जो मनुष्य नरदीपजी को देखता है वह उत्तम स्थानको प्राप्त होकर पुत्रों व पौत्रों से संयुक्त होता है ॥ ७२ ॥ और भाइयों समेत क्रीड़ा कर मरकर वह मनुष्य सूर्यलोक को जाता है हे विप्रजी ! अन्धकार नाश होने पर व सब कहीं उत्तम प्रकाश होने पर ॥ ७३ ॥ व तीन शिखावाले शूल याने त्रिशूल से अन्धकासुर को महादेवजी

पनंकारयेत्तुयः ॥ श्रियानविच्युतिस्तस्य सूर्यलोकमहीयते ॥ ७० ॥ सूर्यस्य पुरतोवाप्यां मासत्रित्यं विगाह्य च ॥ यस्त
मालोके ते मर्त्यो दुस्स्वप्नं तस्य नश्यति ॥ ७१ ॥ भक्या यो नुदिनं व्यास नरदीपं प्रपश्यति ॥ उत्तमं स्थानमासाद्य पुत्रपौ
त्रसमन्वितः ॥ ७२ ॥ प्रक्रीड्य बन्धुभिस्साद्धं मृतस्सूर्यपुरं व्रजेत् ॥ प्रणष्टेति मिरे विप्र जाते सर्वत्र सुप्रभे ॥ ७३ ॥ हतेन्धके
महेशेन शूलेन त्रिशूलेनैव ॥ प्रहृष्टाश्च सुरास्सर्वे ब्रह्मेन्द्रप्रमुखास्तदा ॥ ७४ ॥ शङ्खं दध्मौ तदा विष्णुस्सुराणां हितका
म्यया ॥ तत्र तीर्थमथोत्पन्नं शङ्खोद्धारणसंज्ञकम् ॥ ७५ ॥ तत्र सन्निहितो विष्णुर्लिङ्गं चैव चतुर्मुखम् ॥ अनाद्यञ्चैव विप्रे
न्द्रलिङ्गस्य च समीपतः ॥ ७६ ॥ देवस्य दक्षिणे भागे शूलेनालक्षितः स्थितः ॥ चतुर्दृश्यान्तथाष्टम्यां येष्यन्ति जितेन्द्रि
याः ॥ ७७ ॥ ते क्षीणाशेषपापौघाः प्राप्स्यन्ति परमाङ्गतिम् ॥ योगिनीनां वलियस्तु यथावत्संप्रदास्यति ॥ ७८ ॥ भूत
प्रेतपिशाचाद्यैर्नासो कैनापि बाध्यते ॥ द्वादशोऽसमुपोष्यैव स्नात्वा देवं जनार्दनम् ॥ ७९ ॥ यः पश्येच्च ह्यङ्घ्रिं नन्देवं सो

के मारने पर उस समय ब्रह्मा व इन्द्रादिक सब देवता प्रसन्न हुये ॥ ७४ ॥ तब देवताओंके हितकी कामना से विष्णुजी ने शंख को बजाया इसके अनन्तर वहांपर शंखोद्धारण नामक तीर्थ उत्पन्न हुआ ॥ ७५ ॥ हे द्विजेन्द्र ! वहांपर विष्णुजी भलीभांति स्थित हैं व अनादि चतुर्मुख लिंग है और लिंगके समीप ॥ ७६ ॥ देवजी के दक्षिण भाग में त्रिशूल से लक्षित शिवजी स्थित हैं जो जितेन्द्रिय पुरुष चौदसि व अष्टमीमें उनको देखते हैं ॥ ७७ ॥ वे नष्ट समस्त पातकोंवाले पुरुष उत्तमगति को प्राप्त होते हैं और जो मनुष्य योगिनियों को यथायोग्य बलि देता है ॥ ७८ ॥ यह भूत, प्रेत, पिशाचादिकों से व किसी से भी नहीं घृणित होता है और द्वादशी

को उपासकर व नहाकर जनार्दन देवजी को ॥ ७६ ॥ व शंखधारी देवजीको जो देखताहै वह अच्युतजीके स्थानको प्राप्तहोताहै ॥ ८० ॥ जो स्थूल व सूक्ष्म वस्तुओंमें प्रकट प्रकाशवान् है और जो सर्वभूतमय है और सर्वभूत नहीं है व जिससे संसारहोताहै व जो जगत का कारण है उस पुरुषोत्तमके लिये नमस्कार है ॥ ८३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदेवीदयालुमिश्रित्रिचितायाभाषाटीकायांविष्णुमाहात्म्यंनमस्तत्त्वारिंशोऽध्यायः ॥ ७७ ॥

दो० । अंगारश्वर कर अहै अति अद्भुत माहात्म्य । अर्तोलिसवें में कह्यो सोइचरित याथात्म्य ॥ सनत्कुमारजी बोले कि शिवजी के त्रिशूलसे जब अन्धकासुर

च्युतंस्थानमाप्नुयात् ॥ ८० ॥ यस्स्थूलसूक्ष्मप्रकटप्रकाशोयस्सर्वभूतानचसर्वभूतः ॥ विश्वंयतश्चैवहिविश्वहेतुर्नमोस्तु तस्मैपुरुषोत्तमाय ॥ ८३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेविष्णुमाहात्म्यन्नामसप्तचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ४७ ॥ सनत्कुमारउवाच ॥ भिन्नेन्धकेत्रिशूलेन ध्वनीरुद्रस्यनिर्गतः ॥ तत्रोङ्कारस्समुत्पन्नो देवदेवोमहेश्वरः ॥ १ ॥ तत्र स्नात्वाशुचिर्भूत्वा समाधिनियमेनच ॥ दृष्ट्वाङ्कारंमहादेवं मुच्यतेसर्वपातकैः ॥ २ ॥ हत्वान्धकंत्रिशूलस्तु भोगवत्या जलेययौ ॥ दृष्ट्वाशूलंमुतेजस्कं हाटकोविस्मयद्गतः ॥ ३ ॥ पप्रच्छकेनकार्येण भवानिहसमागतः ॥ कथयामासशूलोसौ शङ्करेणाहमीरितः ॥ ४ ॥ अन्धकस्यवधार्थाय पापवृत्तेस्सुदुर्मतेः ॥ भित्त्वातमहमायातो भोगवत्याजलेशुभे ॥ ५ ॥ गमिष्यामिपुनस्तत्र यत्रतिष्ठतिशङ्करः ॥ शूलोक्तंवचनंश्रुत्वा परमेशदिदृक्षया ॥ ६ ॥ हाटकश्शूलमार्गेण निर्ज

विदारण कियागया तब शब्द निकला वहां पर देवदेव अंकार महेश्वरजी उत्पन्न हुये हैं ॥ १ ॥ वहां नहाकर व पवित्रहोकर समाधि तथा नियम से अंकार महादेवजी को देखकर मनुष्य सब पातकों से छूटजाता है ॥ २ ॥ अन्धकासुर को मारकर त्रिशूल भोगवती के जलमें प्राप्तहुआ और उत्तम तेजस्वी त्रिशूल को देखकर हाटकेश्वरजी विस्मयको प्राप्तहुये ॥ ३ ॥ और उन्होंने पूछा कि आप यहां किस कार्य से आयेहो इस शूल ने कहा कि पाप आचरणवाले व दुर्बुद्धि अन्धकासुर के मारने के लिये शिवजीने मुझको पठाया था उसको काटकर मैं भोगवतीके उत्तम जलमें आयाहूं ॥ ४ ॥ और फिर वहां जाऊंगा जहां कि सदाशिवजी स्थित हैं त्रिशूलसे

कहेहुये वचन को सुनकर परमेश्वर शिवजीके देखनेकी इच्छा से ॥ ६ ॥ वे हाटकेश्वरजी वेग से त्रिशूल मार्ग के द्वारा निकले बहुत सुखों से संयुत व उत्तम प्रभावान् तथा मनोहर ॥ ७ ॥ उन शूलेश हाटकेश्वरजी को फूले कमलकी नाई देखकर सब देवता प्रसन्न रोंमोंवाले होगये ॥ ८ ॥ श्रीर ब्रह्मा व विष्णु आदिक देवताओं ने अनेक भांति के स्तोत्रोंसे स्तुति किया जो हाटकेश्वर नामक पातालमें टिकेथे ॥ ९ ॥ वे शूल के मार्ग से निकले उसीकारण शूलेश्वर कहेगये हैं और देवदेव जी के उत्तर में धूतपाप नामक तीर्थ है ॥ १० ॥ वहां पर वह पराक्रमी व पापी दैत्येन्द्र शूल से मारागया है उसकारण हे व्यासजी ! यह धूतपाप तीर्थ कहाजाता

गामजवेनसः ॥ बहुवक्रसमाकीर्णं सुप्रभंसुमनोरमम् ॥ ७ ॥ तन्दृष्ट्वा त्रिदशास्सर्वे शूलेशं हाटकेश्वरम् ॥ प्रणम्य हृष्टरोमाणो यथा प्रोत्फुल्लपङ्कजम् ॥ ८ ॥ तुष्टुर्विविधैः स्तोत्रैर्ब्रह्मविष्णुपुरोगमाः ॥ हाटकेश्वरनामासीत् पाताले यो व्यवस्थितः ॥ ९ ॥ निर्गतश्शूलमार्गेण तेन शूलेश्वरस्मृतः ॥ धूतपापञ्चतीर्थञ्च देवदेवस्य चोत्तरे ॥ १० ॥ तत्र पापस्स दैत्येन्द्रो धूतश्शूलेन वीर्यवान् ॥ तेन तीर्थमिदं व्यास धूतपापं प्रचक्ष्यते ॥ ११ ॥ अष्टम्यां वा पौर्णमास्यां चतुर्दश्यां शनौ तथा ॥ उपोष्य रजनीमैकां शिवभक्तोजितेन्द्रियः ॥ १२ ॥ धूतपापन्तु यः पश्येद्देवदेवं महेश्वरम् ॥ विमुक्तस्सर्वपापेभ्यः सप्तजन्मकृत्तैरपि ॥ १३ ॥ कुलानां शतमुद्धृत्य शिवलोकं स गच्छति ॥ कृत्वा भिषिकं यः पश्येत् पौषमासि स वै नरः ॥ १४ ॥ शूलेश्वरप्रभावेण मुच्यते ब्रह्महत्यया ॥ विमानानां सहस्रेण मृतो याति परम्पदम् ॥ १५ ॥ इति चान्धकशूलोऽयं यावद्भोगवतीङ्गतः ॥ तावत्समुत्थिता घोरा असुरा रुधिरोद्भवाः ॥ १६ ॥ खड्गहस्ता महावीर्या अनेकशतसंख्यया ॥ च

है ॥ ११ ॥ अष्टमी, पौर्णमासी, चौदसि व शनैश्चर दिन में एकत्रि उपवास कर शिवभक्त व जितेन्द्रिय ॥ १२ ॥ जो पुरुष धूतपाप नामक देवदेव महेश्वरजी को देखता है वह सातजन्मों में कियेहुये पातको से छूटजाता है ॥ १३ ॥ और सौ कुलों को उद्धारकर वह शिवलोकको जाता है और स्नानकर जो मनुष्य पौष महोने में उन शिवजी को देखता है वह पुरुष ॥ १४ ॥ शूलेश्वरजी के प्रभाव से ब्रह्महत्याकरके छूटजाता है और मरकर वह हजार विमानों के द्वारा परमपदको प्राप्त होता है ॥ १५ ॥ इसप्रकार अन्धकासुरका यह शूल जबतक भोगवती को गया तबतक रक्तोंसे उपजेहुये भयकर दैत्य उठे ॥ १६ ॥ जोकि बड़े बलवान् व तलवार हाथी-

वाले अनेक सौ संख्यकथे चारों दिशाओं में स्थित भयंकर दानवों से मारेजातेहुये व उन दुष्टात्माओं से पीडित महादेवजी ने सिंहनाद छोड़ा याने गरजे और सिंहनाद से मूर्च्छित होकर वे पापी पृथ्वी में गिरपड़े ॥ १७।१८ ॥ और फिर उठकर वे देवदेव महेश्वरजीके समीपगये तदनन्तर उरेहुये ब्रह्मा व विष्णु आदिक हितैषी देवता उनको असाध्य मानकर सम्मतिकर तदनन्तर विचार कर स्त्रीको रचै यह आपही ॥ १९।२० ॥ कहकर ब्रह्मा ने हंस पै बैठीहुई व चारमुखोवाली तथा चार हाथोवाली और ब्रह्मणी के रूपको धारनेहारी उत्तम स्त्रीको पैदा किया ॥ २१ ॥ और स्वामिकार्त्तिकेयजीने उत्तम मयूरवाहनवाली कौमारी स्त्री को उत्पन्न किया जो

तुद्धिभुस्थितैर्वैरैर्हन्यमानोमहेश्वरः ॥ १७ ॥ सिंहनादमुमोचाथपीडितस्तैर्दुरात्माभिः ॥ सिंहनादेनतेतेपापामूर्च्छिताः पतिताभुवि ॥ १८ ॥ पुनस्समुत्थिताजमुदेवदेवंमहेश्वरम् ॥ विव्रस्ताश्रततोदेवा ब्रह्मविष्णुपुरोगमाः ॥ १९ ॥ असाध्यांस्तांस्तथामत्वा मन्त्रं कृत्वा हितैषिणः ॥ ततोदेवाविचार्याथ स्त्रीसृजामइतिस्वयम् ॥ २० ॥ इत्युक्त्वोत्पादयामास ब्रह्माहंसासनांशुभाम् ॥ चतुर्वक्त्रांचतुर्हस्तां ब्रह्मणीरूपधारिणीम् ॥ २१ ॥ कुमारश्चैव कौमारी मयूरवरवाहनाम् ॥ रत्नमाल्याम्बरधरां शक्तिस्रङ्गचधारिणीम् ॥ २२ ॥ पुनः कुमारः कौमारीं पद्मीन्द्रवरवाहनाम् ॥ कृष्णांकरालदशनां धर्मराजस्तथासृजत ॥ २३ ॥ दैत्यदेहप्रमथिर्नोदण्डमुद्गरधारिणीम् ॥ ललाटलोचनां नीलां कपालकरभूषिताम् ॥ २४ ॥ सिंहाननधरां कृष्णां सर्वभूषणभूषिताम् ॥ कर्तृहस्तांसखद्वाङ्गां खड्गखेटकधारिणीम् ॥ २५ ॥ चर्मास्थिकेशवपुषं चा मुण्डामसृजत्प्रभुः ॥ वटस्यनिकटेपूर्वं निर्मितालोकमातरः ॥ २६ ॥ ततो लोकैषु विख्याताः प्रत्यक्षावटमातरः ॥ त

कि अरुणमालाओं व वसनो को धार तथा शक्ति व तलवारको धारण किये थीं ॥ २२ ॥ और फिर स्वामिकार्त्तिकेयजी ने काली व कराल दातोवाली तथा उत्तम गण्ड वाहनवाली कौमारी शक्तिको रचा और वैसेही धर्मराज ने रचा ॥ २३ ॥ और दैत्योके देहको मथनेवाली तथा दण्ड व मुद्गरको धारनेहारी व मस्तकमें नेत्रवाली और नीलवर्ण व कपाल से शोभित हाथवाली ॥ २४ ॥ व सिंहमुखधारिणी, काली तथा सब भूषणोंसे भूषित व कतरनी हाथवाली और खट्वाग समेत व तलवार और खेटक अस्रको धारनेहारी ॥ २५ ॥ और चर्म, अस्थि व केश संयुत शरीरवाली चामुण्डाजी का प्रभु (शिव) जीने रचा पहले बरगदके समीप लोकमातृकाओं को

चाहिये ॥ ४७ ॥ और ताम्र पात्रसे संयुक्त पांच कर्मंडलु बनवाना चाहिये और उनको गुडपिंडमय व लालवस्त्रों से संयुक्त करना चाहिये ॥ ४८ ॥ और उनको लाल चन्दन से संयुक्त व लाल फूलों से पूजितकरै व उनमें एक कर्मंडलुको तिलों व चावलों से पूर्णकरै ॥ ४९ ॥ और दूसरेको लड्डुवों से पूर्णकरै व तीसरे को दुग्ध से और चौथे को तीर्थों के जलों से व पांचवेंको मूलों से पूर्णकरै ॥ ५० ॥ इसप्रकार करके विधिपूर्वक इस मंत्रसे अर्घ्य निवेदनकरै कि कुजके लिये व लोहितांग तथा ग्रहों के मध्य में स्थित के लिये ॥ ५१ ॥ और कार्तिकेयानुरूप व सूरूपवान् के लिये वार २ नमस्कार है हे शिवजी के ललाट से उपजेहुये, पृथ्वी के गर्भ से उत्पन्न ! ॥ ५२ ॥

पञ्चवैकरकाः कार्यास्ताम्रपात्रेण संयुताः ॥ गुडपिण्डमयाः कार्या रक्तवस्त्रसमन्विताः ॥ ४८ ॥ रक्तचन्दनसंयुक्ता रक्तपुष्पैश्च पूजिताः ॥ तिलतण्डुलसम्पूर्णमेकतत्रैव कारयेत् ॥ ४९ ॥ द्वितीयं लड्डुकैश्चैव तृतीयं पयसा तथा ॥ तीर्थाम्बुभिश्च तृथञ्च पञ्चमं मूलकैस्तथा ॥ ५० ॥ कृत्वा ह्येवं विधानेन मन्त्रेणार्घ्यं निवेदयेत् ॥ कुजाय लोहिताङ्गाय ग्रहमध्यास्थिताय च ॥ ५१ ॥ कार्तिकेयानुरूपाय सूरूपाय नमो नमः ॥ शिवलालाटसम्भूत धरणीगर्भसम्भव ॥ ५२ ॥ रूपार्थन्त्वांप्रपन्नोऽस्मि गृहाणार्घ्यं नमोऽस्तुते ॥ ज्वलिताङ्गारवर्णमस्मि गन्धविद्रुमभासुर ॥ ५३ ॥ पुत्रार्थन्त्वांप्रपन्नोऽस्मि गृहाणार्घ्यं धरात्मज ॥ आवन्त्यमण्डलजातो धरण्याञ्च शिवे न वै ॥ ५४ ॥ धनन्दे हियशोदेहि रूपन्देहि नमोऽस्तुते ॥ एवं सम्पूजिते भौमे चतुर्थ्यां द्विजसत्तम ॥ ५५ ॥ भुक्त्वा भोगांस्तथा पुत्रान् प्राप्य वै क्षितिमण्डले ॥ मृतस्त्वर्गमवाप्नोति यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥ ५६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वृन्ती खण्डे द्वारेश्वरमाहात्म्यनामाष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४८ ॥

मैं रूपके लिये तुम्हारी शरण में प्राप्त हूँ अर्घ्यको ग्रहण कीजिये हे जलतेहुये अंगारके समान वर्णवाले, चिक्कण मूंगों के समान प्रकाशवान् ! ॥ ५३ ॥ हे पृथ्वी-पुत्र ! मैं पुत्रके लिये तुम्हारी शरण में प्राप्त हूँ अर्घ्यको ग्रहण कीजिये अवन्ती के मडल में शिवजीसे पृथ्वी मे पैदाहुयेहो ॥ ५४ ॥ धनको दीजिये, यशको दीजिये व रूपको दीजिये तुम्हारे लिये नमस्कार है हे द्विजोत्तम ! मंगलचतुर्थी में इसप्रकार पूजेनपर ॥ ५५ ॥ पृथ्वीमंडल मे भोगों को भोगकर व पुत्रोंको प्राप्तहोकर मरकर तबतक स्वर्गको प्राप्तहोताहै जबतक कि चौदह इन्द्र रहते हैं ॥ ५६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वृन्तीखण्डे भाषाटीकायामङ्गारेश्वरमाहात्म्ये नामाष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४८ ॥

दो० । दियो अन्धकासुरहिं जिमि श्री शिवजी वरवान । उंचसर्वे अध्याय में सोई कियोबखान ॥ सनत्कुमारजी बोलै कि राक्षसों का पियाजाताहुआ रक्त जब शेषनरहा तब चामुण्डाका अरुणमुख प्रकाशितहुआ ॥ १ ॥ ओं कि कृष्णवर्ण व प्राणियो का अन्तकारक कराल दातों व ओंठोवाला और जलतीहुई अग्निके समान केशान्तवाला तथा प्रज्वलित अग्निके समान लोचनोवाला था ॥ २ ॥ और भयंकरवर्धुर शब्द से बड़ेहुये फेत्कार से विस्तरथा व गरुड़पक्षका मुकुट किये तथा पैनी दाढ़ों के अंकुरों से उज्ज्वल था ॥ ३ ॥ उस मुखमें कपाल के अग्रभाग को धरकर क्रोधित मुखवाली व प्रचण्ड भुजदण्डों से शोभित चाण्डिका ने रक्त पिया ॥ ४ ॥

सनत्कुमारउवाच ॥ नास्तिशेषंयदारक्तं पीयमानञ्चरत्नसाम् ॥ चामुण्डायास्ततो रक्त मभूदास्यञ्चभास्वरम् ॥

१ ॥ कृष्णंभूतान्तकल्पान्तकरालदशनाधरम् ॥ प्रज्वलद्वह्निकेशान्तं ज्वलज्ज्वलनलोचनम् ॥ २ ॥ घोरवर्धुरनिर्घोषस्फीतफेत्कारविस्वरम् ॥ ताक्ष्यपक्षकृतापीडं तीक्ष्णदंष्ट्राङ्कुरोज्ज्वलम् ॥ ३ ॥ तस्मिन्मुखेकपालाग्रं निधायरुषिता नना ॥ अपिबहुधिरञ्चण्डी चण्डदोर्हण्डमण्डिता ॥ ४ ॥ तथापिवन्त्यादैत्येन्द्रशरीरेरुक्शताद्गतः ॥ सर्वासंहृत्यमायाया बलक्षीणमथाकरोत् ॥ ५ ॥ तीव्रभयंसमासाद्य प्राणत्राणपरायणः ॥ दृष्ट्वानान्याङ्गतिंलोकं दैत्यस्तुष्टावशङ्करम् ॥ ६ ॥ कृताञ्जलिपुटोभूत्वा रोमाञ्चितशरीरकः ॥ सात्त्विकंभावमापन्नस्त्यक्त्वाचैवरजस्तमः ॥ ७ ॥ लोकानांकारणान्देवं विबुधाधिपतिविभुम् ॥ शश्वदुबुध्यान्वितोभक्त्या निर्मलेनान्तरात्मना ॥ इलाध्यंशिवंचचतुष्टाय देवंचन्द्रार्द्धशेखरम् ॥ ८ ॥ कुत्स्नस्यशोऽस्यजगतःसचराचरस्य कर्ताकृतस्यचतयासुखदुःखदाता ॥ संसारहेतुरपियःपुनरन्तकाल

पीती हुई उन चाण्डिका से दैत्येन्द्र अन्धक शरीर में दुर्बलताको प्राप्तहुआ इसके अनन्तर जो भायार्थी उन सर्वको संहारकर बलको क्षीणकिया ॥ ५ ॥ व तीक्ष्ण भयको प्राप्तहोकर प्राणों की रक्षा में तत्पर दैत्य ने अन्यगति को न देखकर शिवजी की स्तुति किया ॥ ६ ॥ हाथोंको जोड़कर रोमांचित देहवाला वह दैत्य रजोगुण व तमोगुणको छोड़कर सात्त्विक भावको प्राप्तहुआ ॥ ७ ॥ व निरन्तर बुद्धि से संयुत उस दैत्य ने निर्मल चित्तसे लोकों के कारण, देवपति, प्रशंसनीय व व्यापक तथा अर्द्धचन्द्रमाल शिवदेवजी की स्तुति किया ॥ ८ ॥ कि समस्त चराचर इस संसार का जो कर्ता है व किये कर्म का जो सुख दुःखदायक है व संसारका कारण भी हो-

कर जो अन्तकाल है उन शरणदायक शंकरजी की शरण में मैं प्राप्तहोताहूँ ॥ ९ ॥ सावधान मनवाले व निवृत्त कामनाओंवाले और मोह, तम व रजसे रहित समस्त बुद्धिवाले योगी लोग जिन अमित व दिव्य मूर्तिवाले शिवजी का ध्यान करते हैं उन शरणदायक शंकरजी की शरण में मैं प्राप्तहोताहूँ ॥ १० ॥ और शोभित शिरोवाले निर्मल चन्द्रखण्डको बांधकर जो सदैव मस्तक से गंगाजीको धारण करते हैं और जिन्होंने वाये अंग में गिराजकुमारी को धारण किया है उन शरणदायक शंकरजी की शरण में मैं प्राप्तहोताहूँ ॥ ११ ॥ और सिद्धों व चारणों से सेवित चरणकमलवाले जिन्हो ने बड़ी लहरियोंसे विपम व आकाशसे गिरती तथा त्रि-

स्तंशङ्करंशरणदंशरणं ब्रजामि ॥ ९ ॥ ययोगिनोविगतमोहतमोरजस्का भक्त्यैकतानमनसोविनिवृत्तकामाः ॥ ९ ॥ यन्तिचाखिलधियोमितदिव्यमूर्तिं तंशङ्करंशरणदंशरणं ब्रजामि ॥ १० ॥ यश्चन्द्रखण्डममलं विलसन्मयूखं वङ्गा सदासुरधुनीं शिरसा विभर्ति ॥ वामाङ्गके विधृतवान् गिराजपुत्रीं तंशङ्करंशरणदंशरणं ब्रजामि ॥ ११ ॥ यस्मिन् चारणनिषेवितपादपद्मो गङ्गामहोर्मि विषमांगगनात्पतन्तीम् ॥ मूर्ध्ना दधेऽस्त्रजमिव त्रिजगत्पुनन्तीं तंशङ्करंशरणदंशरणं ब्रजामि ॥ १२ ॥ कैलासगोत्रशिखरेपरिक्मपमाने कैलासशृङ्गसदृशेन दशाननेन ॥ यः पादपद्मपरिपीडनसेव्यमानस्तंशङ्करंशरणदंशरणं ब्रजामि ॥ १३ ॥ दक्षाध्वरेतुनयने च तथा भगस्य पूष्णस्तथा दशनपङ्क्तिमशातयद्यः ॥ व्यस्तम्भयत्कुलिशहस्तमथेन्द्रमर्मांशं तंशङ्करंशरणदंशरणं ब्रजामि ॥ १४ ॥ येनासकृद्विदितुताश्चदनोऽस्मृताश्च विद्याधरोऽगगणाश्च व

लोकको पवित्र करतीहुई गंगाजी को मस्तक से मालाकी नाई धारण किया है उन शरणदायक शंकरजी की शरण में मैं प्राप्तहोताहूँ ॥ १२ ॥ और सब ओर से कोपते हुये कैलासपर्वत के शिखर पे कैलास शिखर के समान दशमस्तकोंवाले रावण से जो चरणकमल के पीडन से सेवा किये जाते हैं उन शरणदायक शंकरजी की शरण में मैं प्राप्तहोताहूँ ॥ १३ ॥ व जिन्होंने दक्ष के यज्ञमें भगवत्पता के नेत्रों को व पूषा के दातों की पंक्तिको गिरा दिया है व वज्रहाथवाले ईश्वर इन्द्रजी को स्तभित किया है उन शरणदायक शंकरजी की शरण में मैं प्राप्त होना हूँ ॥ १४ ॥ व जिन्होंने दिति के पुत्र (दैत्य) व वसु के पुत्र (दानव) तथा विद्याधर व नाग-

गण सब उत्तम वरदानों से युक्त कियेगये व फल मूल खानेवाले मुनिशिववरों से संयुक्त कियेगये हैं उन शरणदायक शंकरजी की शरणमें मैं प्राप्त होता हूँ ॥ १५ ॥
व ऐसा करने पर भी विषयोंमें लगेहुए भाववाले पुरुष जिनसे ज्ञान व शास्त्रों के गुणों से भी युक्त होकर जिनके भलीभांति आश्रित मनुष्य सुखके भोगी होते हैं उन शरणदायक शंकरजी की शरणमें मैं प्राप्त होता हूँ ॥ १६ ॥ और स्वामिकार्तिकेय समेत ब्रह्मा, इन्द्र, विष्णु व मरुत देवताओं को जिन भगवान् महेशजी ने बहुत वरदानोंको दिया है व जिन्होंने सूतको मृत्युके सुखसे फिर उद्धारा है उन शरणदायक शंकरजी की शरणमें मैं प्राप्त होता हूँ ॥ १७ ॥ और हिमाचल के कुक्षमें

रैरसमग्राः ॥ संयोजितामुनिवराः फलमूलभक्षास्तंशङ्करं शरणदंशरणं ब्रजामि ॥ १५ ॥ एवं कृतोपविषयेष्वपि सक्तभावा
ज्ञानेन च श्रुतगुणैरपियेन युक्ताः ॥ यंसंश्रितास्सुखभुजः पुरुषाः भवन्ति तंशङ्करं शरणदंशरणं ब्रजामि ॥ १६ ॥ ब्रह्मेन्द्रवि
ष्णुमस्तांच सप्तमुखानां योदाहरान्मुबहुशो भगवान्महेशः ॥ सूतञ्च मृत्युवदनात्पुनरुज्जहार तंशङ्करं शरणदंशरणं ब्रजामि ॥ १७ ॥ आराधितस्तु तपसा हिमवन्निकुञ्जे धूम्राद्यैर्मेव भगवान्भुवनानि सप्त नानानदीविहगपादपमण्डितानि ॥ स
त्मा तंशङ्करं शरणदंशरणं ब्रजामि ॥ १८ ॥ क्रीडार्थमेव भगवान्भुवनानि सप्त नानानदीविहगपादपमण्डितानि ॥ स
ब्रह्मकानि ससृज सुकृताभिधानि तंशङ्करं शरणदंशरणं ब्रजामि ॥ १९ ॥ यस्सव्यपाणिकमलाग्रनखेन देवस्तत्पञ्चमं प्रस
भमेव करालरन्ध्रम् ॥ ब्राह्मर्याशिरस्तरणिपद्मानि भञ्चकतं तंशङ्करं शरणदंशरणं ब्रजामि ॥ २० ॥ यत्वांसुरोत्तमगुरुं पुरु

तपस्या से आराधना कियेहुये व धूम्र से घिरे से तप से भी अन्यजनों से अगम्य जिन महात्मा ने भृगुजी के लिये संजीविनी विद्याको दिया है उन शरणदायक शंकरजी की शरण में मैं प्राप्त होता हूँ ॥ १८ ॥ व जिन भगवान् शिवजी ने अनेक प्रकारकी नदी, पक्षी व वृक्षों से शोभित तथा पुण्यनामवाले ब्रह्मलोक समेत सात लोकोंको क्रीड़ाही के लिये रचा है उन शरणदायक शंकरजी की शरण में मैं प्राप्त होता हूँ ॥ १९ ॥ व जिनदेवजी ने बांये हस्तकमल के अग्रनख से सूर्य व कमलके रामान तथा भयंकर छिद्रवाले उस ब्रह्माके पांचवे शिरको हठही से काटडाला है उन शरणदायक शंकरजी की शरणमें मैं प्राप्त होता हूँ ॥ २० ॥ हे सुरोत्तम ! जो मृद

पुरुष चराचर समेत इस संसार के गुरु तुमको नहीं जानते हैं हे महेशजी ! ऐश्वर्य व मान के विनाशके कारण वे पदचात पीडाको भोगते हैं जैसे कि मैं हूँ ॥ २१ ॥ पवित्र कर्मवाला जो शिवभक्त पुरुष सदैव इस स्तोत्रको पढ़ता है ब्राह्मणों की समा में सदैव शुभ कर्मवाला वह अक्षण्ड शिवलोक को प्राप्त होता है ॥ २२ ॥ सनत्कुमारजी बोले कि इसप्रकार स्तुति करते हुये उनके पूर्ण सौ वर्षके अन्तमें शूल हाथ वाले वृषध्वज शिवदेवजी प्रसन्न होकर बोले ॥ २३ ॥ कि हे पुत्र ! मैं प्रसन्न हूँ तुम्हारा कल्याण होवै इस समय तुम निर्मल हुये हो तुमको मैं दिव्यनेत्रको देता हूँ ज्वरहित तुम मुझको देखो ॥ २४ ॥ हे दानवोत्तम ! तुम्हारे मन से भी जो कुछ

षा विमूढा जानन्ति नास्य जगत्स चराचरस्य ॥ ऐश्वर्यमानविगमेन महेशपश्चात्तेयातनामनुभवन्ति यथाहमेव ॥ २१ ॥ यः पठेत्स्तवमिदं शुचिकर्मा यः शृणोति स तं शिवभक्तः ॥ विप्रसंसदि सदा शुभकर्मा स प्रयाति शिवलोकमखण्डम् ॥ २२ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ तस्यैवं स्तुवतो देवः शूलपाणिर्वृषध्वजः ॥ पूर्णवर्षशतस्यान्ते प्रीतः प्रोवाच शङ्करः ॥ २३ ॥ पुत्रतुष्टोस्मि भद्रन्ते जातस्त्वं निर्मलोऽधुना ॥ दिव्यं ददामि ते चक्षुः पश्य मामविगतज्वरः ॥ २४ ॥ यच्च ते मनसा वापि किञ्चिच्चाकाङ्क्षितं फलम् ॥ तत्ते सर्वं प्रदाम्यामि ब्रूहि दानवसत्तम ॥ २५ ॥ अन्धक उवाच ॥ ब्राह्मण्यैषण्वमेन्द्रवापद्मावृत्तिलक्षणम् ॥ विदितं मम तत्सर्वं मनागपि न काङ्क्षये ॥ २६ ॥ यदि तुष्टोसि देवेश गाणपत्यं ददस्व मे ॥ सविशेषं विशुद्धञ्च तदचरञ्च सर्वदा ॥ २७ ॥ शिव उवाच ॥ अमरो जरायात्यक्तस्सर्वदुःखविवर्जितः ॥ भविष्यसि गणाध्यक्षस्सर्वलोकनमस्कृतः ॥ २८ ॥ कामरूपी महायोगी महासत्त्वो महाबलः ॥ अपि मादिगुणैर्युक्तः प्रियश्च मम सर्वदा ॥ २९ ॥ सनत्कुमा

चाहा हूँ आ फल होवै उस सब को तुम्हें दूंगा कहिये ॥ २५ ॥ अन्धक बोला कि ब्रह्मा, विष्णु, व इन्द्रका जो आवृत्तिलक्षणवाला स्थान है उस सबको मैं जानता हूँ इससे कुछ भी नहीं चाहता हूँ ॥ २६ ॥ हे देवेश ! यदि प्रसन्न हो तो मुझको गणाध्यक्षता की दीजिये जो कि विशेषता समेत तथा पवित्र और सदैव अक्षय हो ॥ २७ ॥ शिवजी बोले कि अमर व बुद्धतासे छोड़े हुये तथा सब दुःखों से रहित और सब मनुष्यों से नमस्कार किये हुये गणाध्यक्ष होवो ॥ २८ ॥ व कामरूपी महा-

उत्तम ऐश्वर्यवान्, सुखी व सब शास्त्रों में चतुर होता है ॥ ३८ ॥ और वह पुरुष हंससंयुत विमान के द्वारा जाकर पितृलोकमें पूजा जाता है प्रति कल्पमें क्रमसे तुम सब इस पुरी की रक्षा करो ॥ ३९ ॥ ऐसा कहकर दैत्यों व देवताओं के गणेश्वरों तथा रुद्रगणों से स्तुति किये जाते हुये देवेश शिवजी कैलासपर्वत को चले गये ॥ ४० ॥ जो पुरुष कहनेयोग्य इस कीर्ति को श्रद्धा से कहता व सुनता है वह दैत्यों व देवगणों का नायक होता है और देवगणों व दनुजनाथों से पूजित तथा समस्त सुखोंके निधान अनन्त शिवलोक को जाता है ॥ ४१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचितायां भापाटीकायामन्धकवृत्तान्तं नामैकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ४६ ॥

कल्पेकमेणतु ॥ ३९ ॥ एवमुक्त्वा च देवेशो गतः कैलासपर्वतम् ॥ स्तूयमानो गणैरौद्रदेत्यामरगणेश्वरैः ॥ ४० ॥ असुर
सुरगणानां नायकस्यानुकीर्तिं कथयतिकथनीयां श्रद्धयायः शृणोति ॥ सकलसुखनिधानं रुद्रलोकं सकान्तं सुरगणद
नुनाथैरर्चितं यात्यनन्तम् ॥ ४१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे अन्धकवृत्तान्तं नामैकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ४६ ॥
व्यास उवाच ॥ भगवन् ज्ञेयमाहात्म्यं कथितञ्च यथा तथम् ॥ तीर्थानां सुत्तमन्तीर्थं पुरायानां पुण्यवर्द्धनम् ॥ १ ॥
कतिसन्त्यत्र तीर्थानि लिङ्गानि च तथा कति ॥ कथयस्व प्रसादेन पृच्छतो मम सांप्रतम् ॥ २ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ ष
ष्टिकोटिसहस्राणि षष्टिकोटिशतानि च ॥ महाकालवने व्यास लिङ्गसंख्यानविद्यते ॥ ३ ॥ अकामो वासकामो वा जाय
ते यो व्रतमानवः ॥ महाकालवने रम्ये शिवलोकं महीयते ॥ ४ ॥ कर्कराजादि तीर्थानि प्रासादाय तनानि च ॥ तेषु रूना

दो० । महाकाल शिव देवकर अति अद्भुत माहात्म्य । पचासवें अध्यायमें सोइ चरितयाथात्म्य ॥ व्यासजी बोले कि हे भगवन् । आपने क्षेत्र के माहात्म्य को यथा योग्य कहा जो कि पवित्र तीर्थों के मध्यमें उत्तम तीर्थ है व पुराय को बढानेवाला है ॥ १ ॥ यहां पर कितने तीर्थ व कितने लिङ्ग हैं इस समय पूछेंते हुये मुझसे इस को प्रसन्नतासे कहिये ॥ २ ॥ सनत्कुमारजी बोले कि हे व्यासजी । साठकरोड़ हजार व माठकरोड़ सौ महाकाल वन में तीर्थ है और लिङ्गों की संख्या नहीं विद्यमान है ॥ ३ ॥ जो कामना रहित व कामना समेत मनुष्य इस सुन्दर महाकाल वन में उत्पन्न होता है वह शिवलोकमें पूजा जाता है ॥ ४ ॥ जो कर्कराजादिक तीर्थ व देव

मन्दिर हैं उनमें नहाकर य पवित्रहोकर 'मनुष्य' शिवलोक में पूजा जाता है ॥ ५॥ जो पवित्र सब तीर्थ हैं व सम्पूर्णता से सिद्धचेत्र हैं उनमें इसको बहुत मुख्यक्षेत्र व उत्तम तीर्थ जानिये ॥ ६ ॥ जो बड़ी भक्तिसे इस चरित्रको सुनता है वह उत्तमगतिको प्राप्तहोताहै ॥ ७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचिते ॥

तायाभापाटीकायांमहाकालमाहात्म्यं नाम पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५० ॥
दो० । भयो अवन्ती पुरी कर कनक शृंग जिमि नाम । इक्यावनवें में कछो सोई चरित ललाम ॥ व्यासजी बोले कि हे भगवन् ! संसारके भयको नाशनेवाले त्वाशुचिर्भूत्वा शिवलोकमें महीयते ॥ ५ ॥ पुण्यानिसर्वतीर्थानि सिद्धचेत्राणिसर्वतः ॥ तेषामुख्यतमं विद्धि चेव्रंती ॥

र्थतथोत्तमम् ॥ ६ ॥ यः शृणोति महाभक्त्या स याति परमाह्वतिम् ॥ ७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे महाकाल माहात्म्यं नाम पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५० ॥ * ॥ * ॥ * ॥
व्यासउवाच ॥ भगवन्भवतासर्वं भवभीतिविनाशकम् ॥ १ ॥ ईश्वरस्थानमाख्यातं समंतात्साग्रयोजनम् ॥ यत्र नैत्रे मृता मर्त्यास्सदाचारास्तथेतर ॥ २ ॥ विमानस्थापुरे नूने मेश्वरे ते वसन्ति च ॥ यत्र कीटपतङ्गाद्या मृता यान्ति पराङ्गतिम् ॥ ३ ॥ कितीर्थपुण्यमन्यच्च महाकालवनादृतं ॥ तस्माद्ब्रूहि ममैकन्तु प्रश्रुतं श्येनसाम्प्रतम् ॥ ४ ॥ कथं कनकशृङ्गेति ख्याता ह्येषा पुरामुने ॥ कुशस्थली कथन्नाम तथाऽवन्ती कथं साधो कथमुज्जयिनी तथा ॥ नाम्नाहेतुमथाप्येषां ब्रूहि त्वं मुनिसत्तम ॥ ६ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ शृणु न्यासप्रवक्ष्यामि यथापूर्वविरञ्चिनी तथा ॥

सब शिवस्थानको कहा जोकि सब श्रोतसे कुछ अधिक योजन भर है उत्तम आचारवाले व अन्य मनुष्य जिस क्षेत्रमें मरकर ॥ १ ॥ विमानों पे स्थित होकर निश्चयकर शिवलोक में वसते हैं व कीट पतंगादिक जहां मरकर उत्तम गतिको प्राप्तहोते हैं ॥ २ ॥ महाकाल वन के सिवाय अन्य कौन पवित्र तीर्थ है इसलिये इस समय मुझ से एक प्रश्नको सत्यता से कहिये ॥ ४ ॥ हे मुने ! पुरातन समय यह कनकशृंगा ऐसी कैसे प्रसिद्ध हुई व कैसे कुशस्थली नाम हुआ और किस कारण अवन्ती कहागई है ॥ ५ ॥ हे साधो ! कैसे पद्मावती और कैसे उज्जयिनी कहीगई है हे मुनिश्रेष्ठ ! इन नामोंका तुम कारण कहो ॥ ६ ॥ सनत्कुमारजी बोले कि हे व्या-

सजी ! सुनिये मैं कहता हूँ कि जिसप्रकार पहले ब्रह्मा ने पुरातन गौरकल्पमें वामदेवजी के लिये कहा है ॥ ७ ॥ और भगवान् महादेवजी ने व ब्रह्माजी ने इन हेतुओं में कहा है व्यासजी बोले कि पृथ्वी में स्वर्ग से गिरे व निवसतेहुये मनुष्यों को किस कारण सुखहोता है ॥ ८ ॥ और अपनी इच्छाके अनुकूल आचार व विहारवाले पुरुषों को किस प्रकार स्वर्ग की प्राप्तिहोती है और बहुत पुण्यवान् और पापहारी कौन श्रेष्ठ देश है ॥ ९ ॥ व हे भगवन् ! कहा बसते हुये मनुष्यों को किस कारण सुख होता है व हे लोकेश ! कहा बसतेहुये मनुष्यों को इस लोक व परलोकवाला आनन्द होता है ॥ १० ॥ हे भगवन् ! सब देहधारियोंके हितके लिये मुझसे यह कहिये

ना ॥ कथितं वामदेवाय गौरकल्पे पुरातने ॥ ७ ॥ महेश्वरश्च भगवान् विधाता चात्र हेतुषु ॥ व्यास उवाच ॥ जगत्यां स्व
इच्छुतानाञ्च कुतो निवसतां सुखम् ॥ ८ ॥ स्वर्गप्राप्तिश्च भवति स्वेच्छाचारविहारिणाम् ॥ कोतिपुण्यतमः श्रेष्ठः प्रदे
शः पापहारकः ॥ ९ ॥ कुतो निर्धृतिर्भगवन् जायते वसतां कचित् ॥ वसतामपि लोकेश ऐहिकी पारलौकिकी ॥ १० ॥
एतन्मम भगवन् ब्रूहि हितार्थं सर्वदेहिनाम् ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ एवमादौ पुराकल्पे प्रोक्तः पृष्टस्स शम्भुना ॥ ११ ॥ प्रो
वाच पार्वती कान्तं प्रभुः प्रीतः पितामहः ॥ भगवन् सर्वकर्ता त्वं सर्वदर्शी सदाशिवः ॥ १२ ॥ अजानं निवत्सवं सर्वं मां पृच्छसि
सनातन ॥ यत्र कल्पान्तको वल्लि रधोऽज्वालः प्रतिष्ठितः ॥ १३ ॥ सत्त्वमेव महाकाल सर्वं च ज्ञायते त्वया ॥ नाथये मानवास्तत्र
सदाचारास्तथा परे ॥ १४ ॥ निवसन्ति न ते मर्त्या सुरास्ते न च मानुषाः ॥ लभन्ते च पुनः स्वर्गं मृता वै कालपर्यये ॥ १५ ॥

सनत्कुमारजी बोले कि पुरातन समय इसीप्रकार पहले कल्प में शिवजी से पूछे हुये जब उन ब्रह्मा ने कहा है ॥ ११ ॥ प्रसन्न होतेहुये ब्रह्मा स्वाधी ने पार्वती के पति शिवजी से कहा कि हे भगवन् ! आप सदाशिवजी सब करनेवाले व सब को देखनेवाले हो ॥ १२ ॥ हे सनातन ! न जानतेहुये से तुम मुझ से सब पूछतेहो नीचे ज्वालावाली कल्पान्तक अग्नि जिसमें प्रतिष्ठित है ॥ १३ ॥ हे महाकालजी ! वह तुम्हींहो और तुम से सब जाना जाता है हे नाथ ! उत्तम आचारवाले तथा अन्य जो मनुष्य वहां ॥ १४ ॥ बसते हैं वे मनुष्य नहीं हैं किन्तु वे देवता हैं मनुज नहीं हैं और कालके उल्लंघन में मरकर वे फिर स्वर्गको पाते हैं ॥ १५ ॥

और वहां पर सुन्दर मन्दिरोंवाली उत्तम पुरी वर्तमान है उसमें अनेक भांति के विचित्र मन्दिर शोभित हैं ॥ १६ ॥ और सोने के शिखरवाले मन्दिरों को विश्वकर्मा ने रचा है व जहां पर कि देवता तथा अनेक भांति के तीर्थ सदैव विद्यमान रहते हैं ॥ १७ ॥ मैं पहले कल्प में वहा स्थित था जहां-कि तुम व केशवजी थे और उसी अवन्ती पुरी को देखनेके लिये सब लोग ॥ १८ ॥ व देवर्षि, सिद्ध, यक्ष, किन्नर, व दानव कमलयोनि ब्रह्मा व शिवजी समेत आये ॥ १९ ॥ वैसेही देवताओं की प्यारी सुन्दरीभी हजारों स्त्रियां अति अद्भुत पुरीको देखनेके लिये आई ॥ २० ॥ उससमय देवताओं समेत महेशदेवजीने सुन्दरी नगरीको देखने के लिये आकर

वर्ततेचपुरीतत्र रम्यहर्म्यमुशोभना ॥ तस्यांभान्तिविचित्राणि हर्म्याणिविविधानिच ॥ १६ ॥ स्वर्णशृङ्गाश्चप्रासा
दाः विहिताविश्वकर्मणा ॥ देवास्सन्तिसदायत्र तीर्थानिविविधानिच ॥ १७ ॥ पूर्वकल्पेस्थितोहञ्च यत्रत्वंकेशवस्त
था ॥ तामेवचपुरीद्रष्टुं सर्वलोकाह्वयन्तिकाम् ॥ १८ ॥ तथादेवर्षयःसिद्धा यत्तकिन्नरदानवाः ॥ आजगमुस्स्थाणुना
सार्द्धं वेधसापद्मयोनिना ॥ १९ ॥ तथैवचवरानार्यो देवानामपिवल्लभाः ॥ समापेतुस्सहस्राणि द्रष्टुमत्यद्भुताम्पुरी
म् ॥ २० ॥ आगत्यचतदादेवस्सहदैवमहेश्वरः ॥ वीजितुंनगरीरम्या मपश्यदावृतान्तथा ॥ २१ ॥ प्रासादैस्स्वर्ण
शृङ्गाढ्यैर्मणिरत्नविभूषितैः ॥ विश्वरूपोहिमगवान् राजाविश्वैकनायकः ॥ २२ ॥ तत्रास्तेशोभनेदिव्ये प्रासादेमणि
भूषिते ॥ सेव्यमानस्सुरैस्सिद्धैर्मुनिविद्याधरैरगैः ॥ २३ ॥ ततोमहेशश्चपितामहश्च समेत्यतंविश्वपतिवन्ददतुः ॥ स
मचितौतौविधिनासमादरात् सहानुगावागमनंत्वपृच्छत् ॥ २४ ॥ किमागतौवैत्रिदिवान्महीतलं सहानुगावीशकजेश

वैसेही सोने के शृंगों से संयुत व मणियों तथा रत्नों से मन्दिरों से घिरी हुई देखा और संसार के एकही स्वामी भगवान् विश्वरूप राजा ॥ २१ ॥ २२ ॥ वहा मणियों से भूषित दिव्य उत्तम मन्दिर में स्थित हैं जोकि देवता, सिद्ध, मुनि, विद्याधर व नागों से सेवा कियेजाते थे ॥ २३ ॥ तदनन्तर महादेव व ब्रह्माजी ने भलीभांति आकर उन जगदीशजी को प्रणाम किया और सेवकों समेत विधि से आदरपूर्वक पूजेहुये उनसे आगमन पूछा ॥ २४ ॥ कि हे ईश ! हे जलजेश ! अनुगामियों समेत

तुम दोनों आकाश से पृथ्वी में किसलिये आये हो यह कहिये तदनन्तर वे कमल से उपजेहुये ब्रह्मा व ईश्वर बोले कि जहाँ एकान्त में आपहो वहाँ हम दोनों को स्नेह है ॥ २५ ॥ और तुम्हारे विना देवालय (स्वर्ग) व पृथ्वी तथा रसातलमें सुख नहीं है और तुमने स्वर्ण शिखरवाली तथा मन्दिरवाली विचित्र घुरीको कब स्थापित किया है ॥ २६ ॥ हे ईश ! मैंने तुम्हारे ही लिये समस्त गुणोंकी खानि व विशेष कर शोभित घुरीको रचा है तुम यहांपर हम दोनोंको स्थान दीजिये तदनन्तर प्रसन्न मनवाले शिवजी शीघ्रही बोले ॥ २७ ॥ कि तुम दोनों को मैं यहांपर प्रियस्थानको दूंगा कि ब्रह्माके उत्तर ओर तुम्हारी स्थिति होगी हे महेश्वरजी ! तुम दक्षिणस्थान

कथयताम् ॥ ततस्तुतावुचतुरब्जेश्वरौ भवान्नहोयत्रचतत्रनौरतिः ॥ २५ ॥ त्वया विनानैवसुरालयेसुखं महीतलेवापि रसातलोस्ति ॥ कदात्वयाकाञ्चनशेखरापुरी निवेशितावेमभवतीविचित्रा ॥ २६ ॥ त्वदर्थमेवेशविशेषशालिनी सृष्टाहिवैसर्वगुणाकरामया ॥ प्रयच्छस्थानंत्वमिहावयोरिह ततो जगादाशुप्रसन्नमानसः ॥ २७ ॥ ददाम्यभीष्टंयुवयो रिहालयं प्रजापतेरुत्तरतस्तवस्थितिः ॥ महेश्वरत्वंब्रजदक्षिणालयं स्थानंमुदत्तंयुवयोस्सुशोभनम् ॥ २८ ॥ महाका लोह्यधोज्ज्वाल अगादात्मप्रभुस्सदा ॥ गणैरेकसाहस्रैरावृतः परमेश्वरः ॥ २९ ॥ क्रीडितानगरीसृष्टा सर्वभूतहितैषि णा ॥ मयायद्युवयोर्दत्ता विवाहालयमात्मनः ॥ ३० ॥ भवद्भ्यांहिमशृङ्गेति यस्माच्चसमुदीरिता ॥ घुरीकनकशृङ्गेति लोकेख्याताभविष्यति ॥ ३१ ॥ एवंकनकशृङ्गेति प्रथमन्नामकथ्यते ॥ जपन्तश्चस्थितायत्र ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥ ३२ ॥ नित्यंरमन्तिभक्तानां सर्वाभीष्टफलप्रदाः ॥ ३३ ॥ इति श्रीकनकशृङ्गाभिधानन्नामैकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५१ ॥

को जावो मैंने तुम दोनों को उत्तम स्थानदिया ॥ २८ ॥ और अनेकों हजार गणों से घिरेहुये व सदैव नीचे ज्वालाओंवाले तथा आत्मस्वामी सदाशिव परमेश्वरजी आये ॥ २९ ॥ और समस्त प्राणियों के हितैषी तथा क्रीड़ा करतेहुये मैंने नगरी को रचा है और मैंने जिसलिये अपने विवाह स्थानको तुम दोनों को दिया ॥ ३० ॥ और आप दोनोंसे जिसलिये हेमशृंगा कहींगई उस कारण संसारमें कनकशृंगा ऐसी घुरी प्रसिद्ध होगी ॥ ३१ ॥ इस प्रकार कनकशृंगा ऐसा पहला नाम कहाजा-

ताहै और जपतेहुये ब्रह्मा, विष्णु व महादेवजी जहां पर स्थित हैं ॥ ३२ ॥ और भक्तोंको समस्त मनोरथोंके देनेवाले ये नित्यही रमण (क्रीड़ा) करते हैं ॥ ३३ ॥
इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डदेवीदयालुमिश्रचरित्रतायाभापाटीकायाकनकशृङ्गाभिधानंनौमैकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५१ ॥

दो० । भयो अवन्ती पुरी कर कुशस्थली जिमि नाम । वावनवै ग्रन्थार्थ में सोइ चरित सुलधाम ॥ सनत्कुमारजी बोले कि हे व्यासजी ! जिसप्रकार यह कुशस्थली कहीजाती है उसको सुनिये ॥ १ ॥ कि ब्रह्मा ने दैत्यों व दानवों तथा राक्षसोंवाले संसारको रचा है जोकि आपस में अहंकार से मत्त व परस्पर में सदैव द्वेषका-रक है ॥ २ ॥ देवता, दानव व राजस नित्यही ईर्ष्या संयुत हुये व मनुष्यों के साथ तथा सिद्ध विद्याधरों के साथ ईर्ष्या संयुक्त हुये ॥ ३ ॥ व चारण किन्नरों के साथ

सनत्कुमारउवाच ॥ शृणुव्यासयथेयन्तु प्रोच्यतेहिकुशस्थली ॥ १ ॥ वेधसामृजितंविश्वं दैत्यदानवराजसम् ॥
अन्योन्यमदसंमत्त मन्योन्यद्वेषिणंसदा ॥ २ ॥ देवाश्चदानवारजो नित्यंस्पृह्यासमन्विताः ॥ मनुष्यामनुजैस्साद्धं
सिद्धाविद्याधरैस्सह ॥ ३ ॥ चारणाःकिन्नरैस्साद्धं मेवन्तेद्वेषतत्पराः ॥ युद्धंकुर्वन्तिसततं संविस्पृष्टार्थयागिरा ॥ ४ ॥
सर्वैचैवन्तुवलिनो दुर्बलैर्मनुजैस्सह ॥ पशवःपशुभिस्साद्धंपक्षिणस्सहपक्षिभिः ॥ ५ ॥ एवमन्योन्यमन्यैश्च निर्मर्या
दमिदंजगत् ॥ तस्माद्विश्वस्म्यकर्तारं विष्णुंविश्वेश्वरंपरम् ॥ ६ ॥ ब्रजामिशरणन्देवं शरणात्तिहरंहरिम् ॥ एवमन
सिसन्धाय दध्यौध्यानेनमाधवम् ॥ ७ ॥ ततोध्यातोमहायोगी विश्वरूपधरोहरिः ॥ लोहदण्डधरःश्रीमानिदमाह
पितामहम् ॥ ८ ॥ ब्रह्मन्ध्यातस्त्वयासम्यक् ध्यानयोगेनपश्यमाम् ॥ समायांतयथाध्यातं जनतांपातुमुद्यतम् ॥ ९ ॥

स्पृह्या संयुक्त हुये इसप्रकार शत्रुता में तत्पर वे सदैव प्रकटवाणी से युद्ध करतेथे ॥ ४ ॥ इसी प्रकार सब बलवान् दुर्बल मनुष्यों के साथ व पशुवों से पशु तथा प-
क्षियों से पक्षी युद्ध करते थे ॥ ५ ॥ इस प्रकार आपस में अन्य प्राणियों से भी यह संसार मर्याद रहित होगया इसलिये ब्रह्माने चिन्तवन किया कि मैं संसार के रचने-
वाले परम विश्वेश्वर विष्णुजी की ॥ ६ ॥ शरण में प्राप्तहोऊ जो विष्णुदेवजी कि शरणागत दुःखहारक हैं इसप्रकार मन में विचारकर उन्होंने ध्यान से विष्णुजीका
ध्यान किया ॥ ७ ॥ तदनन्तर ध्यान कियेहुये विश्वरूपधारी श्रीमान् विष्णु महायोगीने लोहके दण्डको धारण कर ब्रह्माजी से यह कहा ॥ ८ ॥ कि हेब्रह्मन् ! तुम

ने मुझको ध्यान योगसे भलीभांति ध्यान किया इस लिये भलीभांति आये व ध्यान किये हुये तथा प्राणिगणों की रक्षा करने के लिये उद्यत मुझको देखिये ॥ ९ ॥ तदनन्तर ब्रह्मा ने इस वचन को सुनकर व ध्यानको छोड़ देखकर सावधान मन से आगे पूजन करते हुये उठकर प्रणाम किया ॥ १० ॥ पाद्य आचमनीय व मधुपर्क से अभ्युत विष्णुजी को पूजकर फिर कमल से उपजेहुये ब्रह्माजी ने कहा ॥ ११ ॥ कि हे देवदेव, जगदीशजी ! मुझ से रचाहुआ यह संसार हे विष्णो, हरे ! स्थित होने के लिये नहीं योग्य है ॥ १२ ॥ इस पवित्र संसारके तुम्ही पालकहो अन्य नहीं है तुमसे यह समस्त संसार है इसलिये तुम पालन करो ॥ १३ ॥ यक्षः

ततोधातानिशम्यैतत्त्यक्त्वाध्यानमवेक्ष्य च ॥ समुत्थायैकमनसा नमश्चक्रेऽर्चयन्पुरः ॥ १० ॥ पाद्येनाचमनीयेन मधुपर्केणकेशवम् ॥ पूजयित्वापुनर्वाक्य मुवाचान्युतमब्जजः ॥ ११ ॥ देवदेवजगन्नाथ जगत्सृष्टिमिदंमया ॥ ऋतेत्वयाहरेविष्णो नैवावस्थ्यातुमर्हति ॥ १२ ॥ शास्तात्वमस्यविश्वस्य विशुद्धस्यचनापरः ॥ त्वत्तोस्तीदंजगत्सर्वं तस्मात्त्वमनुशासय ॥ १३ ॥ देवदानवगन्धर्वाः सद्यत्तौगराक्षसाः ॥ परस्परंविनिघ्नन्ति तांश्चत्वंरक्षितुंक्षमः ॥ त्वामृते पुरन्दरीकाक्ष व्यापिताशेषविग्रहम् ॥ १४ ॥ त्वमस्यविश्वस्यचराचरस्य स्थितस्सदाप्राणभृदात्मरूपी ॥ त्वयाधृतं सर्वमिदंजगद्वै यतस्ततोसित्वमुपेन्द्रसञ्ज्ञः ॥ १५ ॥ प्रवेशनव्याप्तिविधायकोसि त्वमुच्यसेविष्णुरतोमुनीन्द्रैः ॥ निवासितंविश्वमिदंत्वयायद्वसेश्चधातोरितिवासुदेवः ॥ १६ ॥ तवानुगंविश्वमिदंविभुस्त्व मशेषविश्वस्यविभासिराजा ॥ सेनानुरूपंजगदेवयस्सादतस्समृतस्त्वंकिलविश्वसेनः ॥ १७ ॥ विलेखनादस्यचराचरस्य कृषेद्वचधातोस्त्वमतोसिकृष्णः ॥ नाग व राजसौ समेत देवता, दानव व गन्धर्व आपस में युद्ध करते हैं उनको तुमरक्षा करने के लिये योग्यहो हे कमललोचन ! व्यापित समस्त शरीरवाले तुम्हारे बिना इस संसार का कोई रक्षक नहीं है ॥ १४ ॥ इस चराचर संसारके प्राणधारी व आत्मरूपी तुम स्थितहो और जिसलिये इस संसारको तुमने धारणकियाहै उसी कारण तुम उपेन्द्र संज्ञकहो ॥ १५ ॥ और तुम प्रवेश व व्याप्ति करनेवाले हो इसी कारण मुनीन्द्रोसे विष्णु कहेजातेहो ॥ और जिसलिये तुमसे यह संसार निवासित है उसी कारण वसि धातु से वासुदेवहो ॥ १६ ॥ यह संसार तुम्हारा अनुगामी है और तुम व्यापकहो व समस्त संसारके राजा प्रकाशित हो जिस लिये संसार सेना

के अनुरूप है इसीसे तुम विश्वसेन कहे गयेहो ॥ १७ ॥ इस चराचर संसारके विलेखन (आकर्षण या विदारण) के कारण कृषि धातुसे तुम कृष्ण हो व हे देव ! जिस लिये तुमने त्रिलोकको जीता है उसी कारण जिधातु से तुम जिष्णुहो ॥ १८ ॥ इसलिये ग्रहों व लोकपालों वाला तथा सब समय में नाशवाला यह सब संसार तुम्हारा है व इस सब संसार के तुम आदि राजा होवो और तुम्हारा अद्वितीय सिंहासन होवै ॥ १९ ॥ दक्षिणावर्तवाला शंख तुम्हारे हाथ में स्थित है इसलिये तुम पुरुषोत्तमहो और सुदर्शन नामक तुम्हारा चक्र है इसलिये तुम चक्रीहो अन्य अचक्री (चक्र रहित) है ॥ २० ॥ और विष्णुदेवजी का

जितन्त्वया देवजगत्रयं जये श्रधातोस्त्वमतोसि जिष्णुः ॥ १८ ॥ तस्मात्समस्तं ग्रहलोकपालं जगत्तैव तल्लय सर्व कालम् ॥ त्वमस्य सर्वस्य भवादिराजा तवास्तु भद्रासनमद्वितीयम् ॥ १९ ॥ प्रदक्षिणावर्त्तनं अस्ति शङ्खः करस्थितोतः पुरुषोत्तमोसि ॥ सुदर्शनन्नामतवास्ति चक्रं चक्राह्वतस्त्वं ह्यपरस्त्वचक्री ॥ २० ॥ ध्वजोस्ति देवस्य सुपर्णसेवितस्तथा सुवर्णच्छदनोस्ति वाहनः ॥ तुरङ्गमास्सन्ति तवारिसंहरास्तथा हृषीकेश सुमत्तदन्तिनः ॥ २१ ॥ किरीटनिष्काङ्गदकर्णपूरं केयूरहारोत्तमहेमसूत्रैः ॥ विचित्रवस्त्रोत्तररक्तमाल्यैर्विभूषितस्त्वं भवभीमसेन ॥ २२ ॥ श्रियाकदाचिच्च न मुच्यते भवान् भवन्ति ते नित्यमन्तसम्पदः ॥ तवानुगाभक्तिरिहास्त्वैसतां मुकुन्दभक्तेस्त्वमतः प्रसीद ॥ २३ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ स एव मुक्तस्तु पुरा दिवौ कसां विभुः प्रसन्नस्ति त्वदमब्रवीद्धरिः ॥ विरिञ्चमेदर्शय शुद्धमण्डलं त्वया विमुक्तं

ध्वजा गरुड से सेवित है व सुवर्णके समान पंखोंवाले गरुड़वाहन हैं और हे हृषीकेश ! तुम्हारे शत्रु विनाशक अश्व हैं व मतवाले हाथी हैं ॥ २१ ॥ हे भवभीमसेन ! किरीट, अशर्फी, बज्रुल्ला, कर्णपूर, केयूर व उत्तमहार स्वर्ण सूत्रोंसे और विचित्र उत्तरीय वस्त्र और लाल मालाओंसे तुम भूषितहो ॥ २२ ॥ आप कभी लक्ष्मीसे विमुक्त नहीं होतेहो और तुम्हारे सदैव अमित संपदार्थे होती हैं इस संसार में सज्जनों के तुम्हारी अनुगामिनी भक्ति होवै इसलिये हे मुकुन्द ! भक्त के ऊपर तुम प्रसन्न होवो ॥ २३ ॥ सनत्कुमारजी बोले कि पुरातन समय इसप्रकार कहेहुये व्यापक विष्णुजी प्रसन्न होकर देवताओं के मध्यमे यह बोले कि हे त्रिभो, ब्रह्मन् !

सुझको शुद्ध मण्डल दिखलाइये जोकि तुम से न छोड़ाहुआहो'व सदैव कल्याणमय होवै ॥ २४ ॥ जहां पर कि स्थिर स्थित होकर मैं संसारको रचूं तदनन्तर ब्रह्मा ने कुशों की मूर्तीको लिया और उस समय पवित्र देशके दिखलाने के लिये पवित्र वनाश्रमको गमन किया ॥ २५ ॥ तदनन्तर देवताओं समेत सम्मति कर व अति उन्नत स्थली को पाकर ब्रह्मा ने आदरसे विष्णुजी से कहा कि तुम्हारी उत्पत्ति के लिये यहां पवित्र मण्डल है ॥ २६ ॥ सदैव देवताओं से पूजित तुम्हीं विष्णुहो और मुनीन्द्रो से वही तुम विष्टरश्रवा कहेगये हो हे कुशेश्वर, जगदीश ! कुशों समेत बैठिये इस प्रकार कहेहुये विष्णुजी उस समय बैठगये ॥ २७ ॥ तदनन्तर ब्रह्मा व

चसदाशिवंविभो ॥ २४ ॥ स्थिरःस्थितोयत्रजगत्करोम्यहंततोविरञ्चिःकुशमुष्टिमाददे ॥ पवित्रदेशस्यनिदर्शनाय जगामपुरयञ्चवनाश्रमन्तदा ॥ २५ ॥ संमन्त्र्यदैवैस्सहितोमुकुन्दस्ततःस्थलीमुच्चतरामवाप्यवै ॥ पितामहःकेशवमाह चादरात्स्वदुर्द्धवायात्रपवित्रमण्डलम् ॥ २६ ॥ त्वमेवविष्णुर्विबुधान्वितस्सदास्मृतोमुनीन्द्रैस्सचविष्टरश्रवाः ॥ निषीदविश्वेशकुशैःकुशेश्वर तदाश्रितोमाधवएवमुक्तः ॥ २७ ॥ ततोविधाताभगवान् पुराणःपुरुषोत्तमः ॥ कुशस्थली तु तस्यास्तु चक्रतुर्नामतावुभौ ॥ २८ ॥ तत्रविश्वपतिःश्रीमान् विश्वेशोविश्वक्कृद्भिः ॥ विश्वंशशासविश्वात्मा सर्वविश्वविनायकः ॥ २९ ॥ एवंकुशस्थलीख्याताहेमशृङ्गेतियापुरा ॥ व्यासाकुशैर्यतोधात्रा कुशस्थलीततःस्मृता ॥ ३० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे कुशस्थलीनामहेतुकथनन्नामद्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५२ ॥ *

भगवान्, पुराण पुरुषोत्तमजी उन दोनों ने उसका कुशस्थली नाम किया ॥ २८ ॥ वहां पर विश्वपति, श्रीमान्, विश्वेश व व्यापक विश्वकारी, विश्वात्मा तथा सर्व संसार के स्वामी विष्णुजीने संसार का पालन किया ॥ २९ ॥ इस प्रकार वह कुशस्थली प्रसिद्ध हुई है जोकि पहले हेमशृंगा नामक थी व जिसलिये विधाताने कुशों से व्याप्त किया उसी कारण कुशस्थली कहेगई है ॥ ३० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायाकुशस्थलीनामहेतुकथनन्नामद्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५२ ॥

दो० । जिमि उज्जयिनी पुरी कर भयो अवन्ती नाम् । तिरपनत्रो अध्यायमे सोइ चरित अभिराम ॥ सनत्कुमारजी बोले कि पुगतन समय ईशानकल्पमें जिसप्रकार अवन्ती पुरी कही गई है वैसेही सुनिये कि दैत्योंकीसेनासे पराजित सब देवता ॥ १ ॥ वन के कुञ्ज व गुहाओं से धिरेहुये सुमेरु गिरि के शिखर पे प्राप्तहुये और वहां जाकर हे द्विजोत्तम ! उद्यत होतेहुये उन्होंने सम्मति किया ॥ २ ॥ व आपस में प्राप्तहोकर और परस्पर भलीभांति पूजकर सब देवगण वहां गये जहां कि ब्रह्मा देवजी थे ॥ ३ ॥ और वहां आने के सब कारण को उन्होंने कहा उन देवताओं के उस वचन को सुनकर वे ब्रह्माजी ॥ ४ ॥ देवताओं समेत देवदेव शिवजीके समीप

सनत्कुमार उवाच ॥ पुराचेशानकल्पे तु स्मृतावन्ती यथापुरी ॥ तथा शृणु सुरैस्सर्वे दैत्यसैन्यपराजितैः ॥ १ ॥ आश्रितम् मेरुशिखरं वनकुञ्जगुहावृतम् ॥ तत्र गत्वा द्विजश्रेष्ठ मन्त्रं च कुस्समुद्यताः ॥ २ ॥ अन्योन्यञ्च समासाद्य समभ्यर्च्य परस्परम् ॥ जगुस्सर्वे सुरगणा यत्र ब्रह्मा प्रजापतिः ॥ ३ ॥ वेदयाञ्च क्रिरे सर्वं तत्रागमनकारणम् ॥ तेषां तद्वचनं श्रुत्वा देवानां सप्रजेश्वरः ॥ ४ ॥ जगाम त्रिदशैस्साकं देवदेवं महेश्वरम् ॥ स चापि ह्यगमत्तत्र वैकुण्ठे धामयत्र वै ॥ ५ ॥ ऋद्धि सिद्धिप्रदं नित्यं मुनिचारणसेवितम् ॥ किन्नरैर्गीयमानञ्च ह्यप्सरोगणसेवितम् ॥ ६ ॥ ऋषिभिर्मार्गवाद्यैश्च देवपिनारदादिभिः ॥ सिद्धगन्धर्वमुख्यैश्च कुमारैस्सनकादिभिः ॥ ७ ॥ प्रजापतिगणाकीर्णं मानवैश्च चतुर्दशैः ॥ वसुभिर्विश्वदेवैश्च पितृणामुत्तमैर्गणैः ॥ ८ ॥ सदासेव्यं सदाचारैः पुण्यवद्भिर्जनैस्तथा ॥ दिव्यं दिव्याद्यभिप्रायैर्दिव्यपादपशोभितम् ॥ ९ ॥ माणिभीरत्नसोपानैस्सरो दिव्यं सुशोभितम् ॥ हंसकारण्डवाकीर्णं यत्र तिष्ठति भास्वरम् ॥ १० ॥ षड्भिर्म

गये और वे भी बहा गये जहां कि वैकुण्ठ में मन्दिर था ॥ ५ ॥ जोकि ऋद्धियों व सिद्धियों का दायक तथा नित्यही मुनियों व चारणों से सेवित और किन्नरों से गाया जाता हुआ व अप्सरा समूहों से सेवित था ॥ ६ ॥ व भार्गवादिक ऋषियों तथा नारदादिक देवर्षियों और मुख्य सिद्धों व गन्धर्वों से तथा सनकादिक कुमारों से संयुत था ॥ ७ ॥ व प्रजापति गणों से व्याप्त तथा चौदह मनुवों से संयुत व वसु विश्वदेवता तथा पितरों के उत्तमगणों से संयुक्त था ॥ ८ ॥ और उत्तम आचारवाले व पुण्यवान् जनोसे सदैव सेवनीय था व दिव्यादिक अभिप्रायोंसे दिव्य तथा वृक्षोंसे शोभित था ॥ ९ ॥ और मणियों तथा रत्नों के सोपानों से दिव्य

व सुशोभित व हंसों तथा कार्दव पक्षियों, व्यास तथा प्रकाशवान् तड़ाग जहाँ स्थित था ॥ १० ॥ व छाऊर्मियों से रहित तथा वैर विहीन पशु पक्षियोंवाला स्थान था वहा विष्णुजी के देखने की इच्छा से सब देवताओं ने जाकर ॥ ११ ॥ देवदेव जगदीशजी की स्तुति करने के लिये आरम्भ किया देवता बोले कि बृहत व अनंतजी के नमस्कार है तथा कूर्मजी (कच्छपजी) के लिये नमस्कार है नमस्कार है ॥ १२ ॥ व उग्र नृसिंहरूपके लिये प्रणाम है और वाराहरूपधारीके लिये नमस्कार है व राघव श्रीरामचन्द्रजी के लिये तथा अनंतशक्तिवाले ब्रह्माके लिये प्रणाम है ॥ १३ ॥ व शान्त वासुदेवजीके लिये तथा पशुपतिके लिये प्रणाम है व शुद्ध बुद्धजी

रहितस्थानं निर्वरपशुपतिकम् ॥ तत्रगत्वासुरास्सर्वे वासुदेवदिदृक्षुः ॥ ११ ॥ स्तुतिभारिभिरैकतुं देवदेवजगत्पतेः ॥ देवाऊचुः ॥ नमोनन्तायबृहते कूर्मायैव नमोनमः ॥ १२ ॥ नृसिंहरूपायो ग्राय नमो वाराहरूपिणे ॥ राघवाय च रामाय ब्रह्मणे नन्तशक्तये ॥ १३ ॥ वासुदेवाय शान्ताय पशूनाम्पतये नमः ॥ नमो बुद्धाय शुद्धाय कल्कि म्लेच्छान्तकारिणे ॥ १४ ॥ इति स्तवाभियुक्तानां वागुवाचा शरीरिणी ॥ श्रूयताम्भोसुरास्सर्वे सम्भूयैकाग्रमानसाः ॥ १५ ॥ महाकालवनं रम्यं ब्रह्मर्षिगणसेवितम् ॥ तत्र पुण्यापुरी ह्येका सर्वकामफलप्रदा ॥ १६ ॥ नाम्ना कुशस्थलीरम्या सिद्धगन्धर्वसेविता ॥ कल्पादौ कल्पमध्ये वा यत्र सन्निहितो हरः ॥ १७ ॥ कल्पक्षये क्षयं यान्ति स्थावराणि चराणि च ॥ तीर्थानि चैव सर्वाणि पुण्यान्यायतनानि च ॥ १८ ॥ सरितस्सागरास्सर्वे सरांस्युपवनानि च ॥ औषधि वृक्षवल्थश्च यन्वमन्त्रशुभाशुभम् ॥ १९ ॥

के लिये प्रणाम है और म्लेच्छों के अन्तकारक कल्कीजीके लिये प्रणाम है ॥ १४ ॥ इस प्रकार स्तुति से संयुत देवताओं से आकाशवाणी बोली कि हे सब देवताओं ! एकाग्रमनवाले होकर तुम लोग सुनो ॥ १५ ॥ कि ब्रह्मर्षियों के गणों से सेवित सुन्दर महाकाल वन है वहाँ समस्त कामनाओं के फलों को देनेवाली एक पवित्रपुरी है ॥ १६ ॥ जो सुन्दरी व नाम से कुशस्थली ऐसी प्रसिद्ध और सिद्धों व गन्धर्वों से सेवित है और जहाँ पर कि कल्पके आदि व मध्यमें महादेवजी टिके रहते हैं ॥ १७ ॥ कल्पान्त में स्थावर व जंगम प्राणी क्षयको प्राप्त होते हैं और सब तीर्थ व पवित्रदेव मन्दिर नाश हो जाते हैं ॥ १८ ॥ नदियां व सब समुद्र तथा तड़ाग, उपवन, औषधी,

वृत्त, लता, यन्त्र, मन्त्र, शुभाशुभ वरु ॥ १६ ॥ प्रकाश, चन्द्रमा, सूर्य सब संसार विष्णुमय है व उन सबों का बीज, पुण्य व जीवि तथा कर्मका आशय ॥ २० ॥ सबको लेकर भगवान् शिवजी वहा स्थित रहते हैं गंगा समस्त तीर्थ मयी हैं और विष्णुजी समस्त देवमय है ॥ २१ ॥ व नेत्र सर्वयज्ञमय है व दया समस्त धर्ममयी है और पृथ्वी में नदियों में श्रेष्ठ नर्मदा नदी अधिक पुण्यमयी है ॥ २२ ॥ हे सुरोत्तमो ! उससे हितकारक कुरुवों का क्षेत्र है उससे दशगुना उत्तम प्रयाग तीर्थको मैं मानता हूँ ॥ २३ ॥ व उससे दशगुनी काशी और काशीसे दशगुनी अति पुण्यदायिनी कुशस्थली कही गई है ॥ २४ ॥ हजार ग्रहण

ज्योतीषिचन्द्रसूयौ च सर्वविष्णुमयं जगत् ॥ तेषां बीजं च पुण्यञ्च जीविकर्माशयन्तथा ॥ २० ॥ सर्वमादाय भगवा
ज्ज्वंकरस्तत्र तिष्ठति ॥ सर्वतीर्थमयी गङ्गा सर्वदेवमयो हरिः ॥ २१ ॥ सर्वयज्ञमयो वैदस्सर्वधर्ममयी दया ॥ रेवा च
सरितां श्रेष्ठा सुविपुण्यमया धिका ॥ २२ ॥ तस्माद्वितकरं क्षेत्रं कुरूणैव सुरोत्तमाः ॥ तस्माद्दशगुणं मन्ये प्रयागं ती
र्थमुत्तमम् ॥ २३ ॥ तस्माद्दशगुणा काशी काश्या दशगुणा प्राक्ता कुशस्थल्यतिपुण्यदा ॥ २४ ॥
उपरागसहस्राणि व्यतीपातायुतानि च ॥ अमालं च कुशस्थल्याः कलानां हन्ति षोडशीम् ॥ २५ ॥ लक्षमिन्दुक्षये
दानं सहस्रं चायनद्वये ॥ व्यतीपाते च कोटिस्स्याद्राकायाश्च ह्यनन्तकम् ॥ २६ ॥ तस्माद्वितकरी देवाः पुरीहिषा कुशस्थ
ली ॥ अनन्तानन्तसङ्ख्यातं दानं किञ्चित्कृतन्नरैः ॥ २७ ॥ श्रूयतां भो सुरश्रेष्ठास्सर्वतच्चाक्षयं भवेत् ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्ने
न यूयं यातहि माचिरम् ॥ २८ ॥ क्षीणपुण्या भवन्तो विबाधन्ते तेन वीसुराः ॥ महाकालवने रम्ये पुरीहिषा कुशस्थली ॥ २९ ॥

व दश हजार व्यतीपात और लक्ष अमावस तिथियां कुशस्थली की सोलहवीं कलाके योग्य नहीं होती हैं ॥ २५ ॥ क्योंकि वहां अमावस में लक्ष दान और दोनों अ-
यनों में हजार तथा व्यतीपात में करोड़ और पौर्णमासी में अनन्त दान होता है ॥ २६ ॥ इसलिये हे देवताओ ! यह कुशस्थली पुरी हितकारिणी है क्योंकि यहां मनुष्यों
से कुछ भी किया हुआ दान अनन्तानन्त संख्यक होता है ॥ २७ ॥ व हे सुरोत्तमो ! सुनिये कि वह सब दान अक्षय होता है इसलिये तुम लोग सब यत्न से वहां जावो
देर मत करो ॥ २८ ॥ आप लोग क्षीण पुण्यवाले हो। इसलिये दैत्य तुम लोगों को पीड़ित करते हैं सुन्दर महाकाल वन में यह कुशस्थली पुरी है ॥ २९ ॥

पृथ्वी में वहां जाकर आप लोग उत्तम विधि से स्नान दानादिकको कीजिये तब पुण्य सेस्वर्गको पावोगे ॥ ३० ॥ उस आकाशवाणी के इस वचन को सुनकर ब्रह्मा व शिव अग्रगामीवाले सब देवता उस वाणी के लिये मस्तक से प्रणामकर फिर वहांगये जहां कि महादेवजी का वन था और हे द्विजोत्तमो ! समस्त कामनाओं के फलों को देनेवाली पुरी को गये ॥ ३१ ॥ जोकि चारों वणोंसे व्याप्त व ऋषियों तथा गन्धर्वों से सेवित व पुण्यवान् जनो से पूर्ण तथा सिद्धों व चारणों से सेवित थी ॥ ३३ ॥ और एकही निर्धनी, अन्ध, जड़, मूर्ख नहीं देख पड़ता था और न रोगी न ईर्ष्यावान् न मानसी पीड़ा समेत और न अपकारी देख पड़ता था ॥ ३४ ॥

तत्र गत्वा भवन्तो वै स्नान दानादिकं भुवि ॥ आचरन्ध्वं सुविधिना पुण्यात्स्वर्गमवाप्स्यथ ॥ ३० ॥ एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्याः वारयाश्चाकाशगाहिते ॥ प्रणम्य शिरसा तस्यै ब्रह्मा भवपुरोगमाः ॥ ३१ ॥ पुनर्जग्मुस्सुरास्सर्वे यत्र माहेश्चरन्वन् ॥ पुरीञ्चैव द्विजश्रेष्ठ सर्वकामफलप्रदाम् ॥ ३२ ॥ चतुर्वर्णसमाकीर्णं सृषिगन्धर्वसेविताम् ॥ पुण्यवद्भिर्जनैः पूर्णं सिद्धचारणसेविताम् ॥ ३३ ॥ दरिद्रोन्धजडो मूर्खो नरोगी न च मत्सरी ॥ न साधिनापकारी च जनः क्वचित्प्रदृश्यते ॥ ३४ ॥ दान्ताश्शान्तास्सुरीलाश्च जरारोगविवर्जिताः ॥ स्वधर्मनिरतानित्यं सदाचारातिथिप्रियाः ॥ ३५ ॥ निवसन्ति नरा यत्र नार्यश्चैव पतिव्रताः ॥ महोत्सवसुगीतानि हव्यकव्यं गृहे गृहे ॥ ३६ ॥ ईदृशीञ्च पुरीन्दृष्ट्वा देवाहर्षपरङ्गताः ॥ तत्र तीर्थसमाख्यातं नाम्नापैशाचमोचनम् ॥ ३७ ॥ पुण्यवद्भिस्सदासेव्यं सर्वतीर्थनिषेवितम् ॥ तस्मिन्स्नात्वा च जप्त्वा च हुत्वा दत्त्वा च देवताः ॥ ३८ ॥ पुण्यं चाप्यक्षयं लब्ध्वा पुनर्यातासुरालयम् ॥ जित्वासुरान्महादुष्टान् स्थानं प्राप्तास्स्व

और इन्द्रियों को दमन किये व शान्त, सुशील और वृद्धता व रोगसे रहित तथा नित्य अपने धर्मसे तत्पर व उत्तम आचार व अतिथि प्रिय लोग जहां बसते थे ॥ ३५ ॥ व पतिव्रता स्त्रिया जहां बसती थी और बड़े उत्साह के उत्तम गीत और हव्य कव्य घर घर में होते थे ॥ ३६ ॥ ऐसी पुरी को देखकर देवता बड़े हर्षको प्राप्त हुये वहां पर पिशाच मोचन नामक महादुष्टा तीर्थ है ॥ ३७ ॥ जोकि पुण्यवानोंसे सदैव सेवनीय व समस्त तीर्थों से सेवित है उसमें नहाकर जपकर और हवन व दानकर

देवता ॥ ३८ ॥ अक्षय पुण्यको पाँकर फिर सुरालय (स्वर्ग) को चलेगये और बड़े दुष्ट दानवों को जीतकर अपने २ स्थान को प्राप्तहुये ॥ ३९ ॥ जो महाभाग्यवान् पुरुष अवन्ती पुरी में स्नान, दान व पूजन, हवन और तर्पण करते हैं उनका वह सब अनन्त होताहै ॥ ४० ॥ इसलिये सब यज्ञसे विद्वानों को यह सदैवकरना चाहिये जिसलिये कि देवता, तीर्थ, औषधि, बीज व प्राणियों का पालन ॥ ४१ ॥ कल्प कल्प में जिसमें होताहै उससे वह अवन्ती पुरी कीगई है आज से लगाकर यह कुशस्थली पुरी अवन्ती नामक होवै ॥ ४२ ॥ यह कहकर उस समय देवता अपने उत्तम स्थानको चलेगये तब से लगाकर हे द्विजोत्तम ! पृथ्वी में अवन्ती

कंस्वकम् ॥ ३९ ॥ येवन्त्यान्तुमहाभागास्नानंदानंतथार्चनम् ॥ हवनंतर्पणंचैव तत्सर्वस्यादनन्तकम् ॥ ४० ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन एतत्कार्यंसदाबुधैः ॥ देवतीर्थैषधीबीजं भूतानाञ्चैवपालनम् ॥ ४१ ॥ कल्पेकल्पेचयस्यावै तेनावन्ती पुरीस्मृता ॥ अद्यारभ्यपुरीह्येषा नाम्नावन्तीकुशस्थली ॥ ४२ ॥ इत्युक्त्ववैतदादेवास्स्वधामपरमज्ञताः ॥ तदारभ्य द्विजश्रेष्ठ हवन्तीभुविविश्रुता ॥ ४३ ॥ यएताञ्चकथां दिव्यां पुर्यांवैपापहारिणीम् ॥ शृणुयाच्छ्रावयेद्यौवै सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ४४ ॥ अपुत्रोत्तमतेपुत्रमधनमाप्नुयात् ॥ वाजपेयसहस्राणां राजसूयशताधिकम् ॥ ४५ ॥ पुण्यं लब्धवानरो नित्यं शिवलोकं महीयते ॥ ४६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेऽवन्त्यभिधानकथननामत्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५३ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

सनत्कुमारउवाच ॥ एतस्मिन्नन्तरेव्यास यथासोज्जयिनीस्मृता ॥ तथाहंसप्रवक्ष्यामि श्रूयतांतत्समाहितः ॥ १ ॥ प्रसिद्ध हुई है ॥ ४३ ॥ जो पुरुष इस पापहारिणी तथा पुण्यदायिनी दिव्य कथाको सुनता है और जो सुनता है वह सब पापोंसे छूटजाता है ॥ ४४ ॥ और विन पुत्रवाला पुरुष पुत्रको पाताहै व निर्धनी धनको प्राप्तहोता है व हजार वाजपेय और सौ राजसूय यज्ञों से अधिक ॥ ४५ ॥ पुण्यको पाकर मनुष्य नित्य शिवलोकमें पूजाजाताहै ॥ ४६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेऽवन्त्यभिधानकथननामत्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५३ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

दो० । यथा अवन्ती पुरी कर भो उज्जयिनी नाम । चौवनवे अध्यायमें सोइ चरित सुखधाम ॥ सनत्कुमारजी बोले कि हे व्यासजी ! इसी अवसरमें जिसमें इति वह

उज्जयिनी कहींगई है वैसेही मैं भलीभांति कहूंगा सावधान होकर सुनिये ॥ १ ॥ कि सब दैत्य जनोके स्वामी त्रिपुरनामक महादैत्यने ब्रह्माजी की प्रसन्नताके लिये बड़ा कठिनतप किया है ॥ २ ॥ कि आतप (धूप) मैं वह अग्निसेवी हुआ और वर्षा में आकाश में टिका याने मन्दिरादिको के बाहर रहा और शीतकाल में उस समय चित्तको दमनकर जलाशय में रहा ॥ ३ ॥ गिरेहुये पत्तों को व जलको भोजन करनेवाला वह पवनभक्ती होकर आश्रय रहित हुआ और गायत्री के व्रत में टिककर सब परिवार को उसने छोड़ दिया ॥ ४ ॥ इसप्रकार हजार वर्षतक उसने कठिन तप किया और हजार वर्ष पूर्ण होने पर प्रसन्न मनवाले ब्रह्माजी बोले ॥ ५ ॥

त्रिपुराख्योमहादैत्यो सर्वदैत्यजनेश्वरः ॥ तपस्तेपेसुदुर्द्धर्षं ब्रह्मणस्तुष्टिकारणात् ॥ २ ॥ आतपेचाग्निसेवीवै प्रा
वृष्याकाशसुस्थिरः ॥ दमयित्वातदात्मानं शीतकालेजलाशये ॥ ३ ॥ शीर्णपत्रजलाहारो वायुभक्तीनिराश्रयः ॥
गायत्रीव्रतमास्थाय त्यक्तसर्वपरिग्रहः ॥ ४ ॥ एवंवर्षसहस्रन्तु तपस्तप्तंसुदुश्चरम् ॥ पूर्णवर्षसहस्रेतु ब्रह्माप्रीतमनाब्र
वीत् ॥ ५ ॥ त्रियताम्भोसुरश्रेष्ठ वरंमत्तोभिकाङ्क्षितम् ॥ तत्सर्वसाम्प्रतंलोकै वरंतुभ्यंददामिते ॥ ६ ॥ एवमुक्तस्सवि
धिना दैत्यस्त्रिपुरसञ्ज्ञितः ॥ उवाचवचनंसद्यो ब्रह्माणंशंसितव्रतम् ॥ ७ ॥ त्रिपुरउवाच ॥ यदितुष्टमनाःब्रह्मन्वरम्मे
दातुमिच्छसि ॥ देवदानवगन्धर्वपिशाचोरगराक्षसैः ॥ ८ ॥ अवध्योहंभवेयवै वरमेतद्वृणोम्यहम् ॥ ब्रह्मोवाच ॥ ए
वंभवतुभोवत्स विचरस्वाकुतोभयम् ॥ ९ ॥ एत्युक्त्वासहस्राब्रह्मातत्रैवान्तरधीयत ॥ तदारभ्यमहादैत्यो देवानांकद
नंमहत ॥ १० ॥ चकारकोपपूर्णवै पूर्वैरमनुस्मरन् ॥ वासयित्वायत्रतत्र ग्रामाणिनगराणिच ॥ ११ ॥ तत्रयेन्यवस

कि हे सुरोत्तम ! मुझ से चाहे हुये वरदान को मांगिये उस सब वर को मैं इस समय संसार में तुमको दूंगा ॥ ६ ॥ इसप्रकार ब्रह्मा से कहाहुआ वह त्रिपुरनामक दैत्य प्रशंसितव्रतवाले ब्रह्मा से शीघ्रही वचन बोला ॥ ७ ॥ त्रिपुर बोला कि हे ब्रह्मन् ! यदि प्रसन्न मनवाले तुम मुझको वर देना चाहते हो तो देवता, दानव, गन्धर्व, पिशाच, नाग व राक्षसों से ॥ ८ ॥ मैं अवध्य होऊँ इस वरदानको मैं मांगता हूँ ब्रह्माजी बोले कि हे वत्स ! ऐसा होवै तुम सब कहीं से निडर होकर भ्रमण करो ॥ ९ ॥ ऐसा कहकर अचानकही ब्रह्माजी वहाँ पर अन्तर्द्वान होगये तब से लगाकर पहले के वैरको स्मरण करतेहुये कोपसे पूर्ण त्रिपुरमहासुरने देवताओं का

बड़ा विनाश किया और जहाँ तहाँ ग्रामो व नगरों को बसाकर ॥ १०। ११ ॥ वहाँ जो सब वर्यो व आश्रमों में तत्पर मनुष्य बसते थे उनको पापवृद्धिवाले उस त्रिपुर ने अनेकों उपाय से नाशकिया ॥ १२ ॥ उस दुष्टवासी पुर में वेदके पारगामी ब्राह्मण हवन नहीं करते थे और न कभी अग्निहोत्र व सोमपान होता था ॥ १३ ॥ और भयंकर दैत्य किसी कारण से पुण्यकर्मको नहीं करते थे जोकि स्वाहाकार स्वधाकार व वषट्कारसे वर्जित थे ॥ १४ ॥ और किसीके घरमें विस्तारको प्राप्त उत्सव नहीं देखपड़ता था व जहा पर देव मन्दिर नहीं था और न शिवपूजन होता था ॥ १५ ॥ और न यज्ञ, न दान और न गऊ ब्राह्मण का पूजन होता था और उत्तम

न्मर्षे वर्णाश्रमपराजनाः ॥ तेषाँ वै कदनञ्चक्रे नानोपायेन पापधीः ॥ १२ ॥ तस्मिन्पुरे दुष्टवासे ब्राह्मणवेदपारगाः ॥ न जुह्वत्यग्निहोत्रं वै सोमपानन्नर्हिति ॥ १३ ॥ कुतश्चित्सुकृतं कर्म नैव कुर्वन्ति भैरवाः ॥ स्वाहाकारस्वधाकारवषट्कारविवर्जिताः ॥ १४ ॥ नोत्सवं दृश्यते गेहे कस्यचिद्भुवि विस्तृतम् ॥ देवतायतनन्नास्ति यत्र नो शिवपूजनम् ॥ १५ ॥ नास्ति यज्ञो न दानानि न गोब्राह्मणपूजनम् ॥ सदाचारो जनो नास्ति दयादानविवर्जितः ॥ १६ ॥ न दानी नोपकारी च तपस्वी नैव दृश्यते ॥ एवं व्यासपुरे तस्मिन् नष्टप्रायमिदं जगत् ॥ १७ ॥ प्रजानां ब्राह्मणो मूलं वेदमूलं हि ब्राह्मणाः ॥ वेदमूलपरायज्ञा यज्ञमूला हि देवताः ॥ १८ ॥ तस्माद्वासहतं सर्वं कृतन्ते न दुरात्मना ॥ तेन देवगणैः सर्वं हतप्रायाहतौजसः ॥ १९ ॥ विचरन्ति यथामर्थ्या भुवितेन पराजिताः ॥ अन्योन्यकृतसन्धाना मन्त्रंकृत्वासमाहिताः ॥ २० ॥ जग्मुस्ते तत्र यत्रास्ते प्रजापतिरकल्मषः ॥ त्रिदशाः कथयामासुरात्मव्यसनकारणम् ॥ २१ ॥ तज्ज्ञात्वासहस्रोत्थाय ब्रह्मालोकपितामहः ॥

आचारवाला मनुष्य न था व दया और दान से रहित था ॥ १६ ॥ और न दानी न उपकारी और न तपस्वी देख पड़ता था हे व्यासजी ! उस नगर के ऐसा होने पर यह संसार नष्टसा होगया ॥ १७ ॥ प्रजाओं की जड़ ब्राह्मण हैं और वेदमूलवाले ब्राह्मण होते हैं व वेदमूल में तत्पर यज्ञ हैं व यज्ञमूलवाले देवता होते हैं ॥ १८ ॥ इसलिये हे व्यासजी ! उस दुष्टात्मा तारकने सब नाशकिया और उससे मारे हुये सब देवगण नष्टवलवाले हुये ॥ १९ ॥ और उससे हारे हुये देवता पृथ्वी में मनुष्यों की नाई विचरने लगे व आपस में मेलकर सावधान होते हुये वे देवता सम्मतिकर वहाँ गये जहाँ कि पाप रहित ब्रह्माजी थे और देवताओं ने अपनी विपत्ति का

कारण कहा ॥ २० ॥ २१ ॥ उसको जानकर व अचानकही उठकर लोकोके पितामह ब्रह्माजी देवताओं समेत उत्तम महाकाले वेनको गये ॥ २२ ॥ जहाँ कि पावती समेत मदाशिवदेवजी सदैव टिके रहते हैं व जहाँ पर समस्त तीर्थोंसे सेवित दिव्यअवन्ती पुरी है ॥ २३ ॥ वहाँ देवताओं समेत चतुर्मुख ब्रह्माजी आकर उस समय रुद्रसरमे स्नान, दान, जप व हवन कर ॥ २४ ॥ और महाकालजी को पूजकर ब्रह्माजी वचन बोले ब्रह्मा बोले कि हे भक्तों को अभय करनेवाले, देवदेव, महादेव जी ! ॥ २५ ॥ हे सुरोत्तम ! अति उत्तम देवकार्य को सुनिये कि त्रिपुरनामक दैत्येन्द्र देवताओं का बड़ा विनाश ॥ २६ ॥ सदैव करता है और वेदों व ब्राह्मणों का

जगामत्रिदशैस्साङ्गं महाकालवनोत्तमम् ॥ २२ ॥ यत्रास्तेसततन्देवो उमयासहितश्शिवः ॥ यत्रावन्तीपुरीदिव्या स
वर्तीर्थनिषेविता ॥ २३ ॥ तत्रागत्यसुरैस्साकं स्वयम्भूश्चतुराननः ॥ स्नानं दानं जपं होमं कृत्वा रुद्रसरैरुदा ॥ २४ ॥ पू
जयित्वा महाकालं ब्रह्मावचनमब्रवीत् ॥ ब्रह्मोवाच ॥ देवदेव महादेव भक्तानामभयङ्कर ॥ २५ ॥ श्रूयताम्भोसुरश्रेष्ठ
देवकार्यमनुत्तमम् ॥ त्रिपुरोनाम दैत्येन्द्रो देवानां कदनं महत् ॥ २६ ॥ करोतिसततन्दैत्यो वेदब्राह्मणनिन्दकः ॥ वास
यित्वा पुरत्रीणि विस्तीर्णानि चरत्यथ ॥ २७ ॥ तत्र स्थितानि भूतानि नाशयान्ति दुरात्मना ॥ एवं कृत्वा प्रजास्सर्वां च
यंतीताश्चराचराः ॥ २८ ॥ उद्वासितानि द्वापानि ग्रामाणि नगराणि च ॥ ऋषीणामाश्रमास्सर्वे यतीनामाश्रमास्तथा ॥
२९ ॥ एवं कृत्वा सुरास्सर्वे अष्टराज्याः पराजिताः ॥ विचरन्ति यथामर्थ्यास्त्रिपुरेण दुरात्मना ॥ ३० ॥ ब्रह्मलब्धवरोनि

त्यं ब्रजत्येवाकुतोभयम् ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन वधस्तस्य विचिन्त्यताम् ॥ ३१ ॥ इति श्रुत्वा वचस्तस्य ब्रह्मणश्शंसिता
निन्दक वह दैत्य तीन विस्तारित पुरों को बसाकर इसके अनन्तर अमण करता है ॥ २७ ॥ और वहाँ टिकेहुये प्राणी दुष्टात्मा तारक से नाशको प्राप्त होते हैं और ऐसा
करके चराचर सब प्रजा नाश किये गये ॥ २८ ॥ और द्वीप ग्राम व नगर उजाड़ दिये गये व ऋषियों के सब आश्रम और संन्यासियों के आश्रम उजाड़ दिये गये ॥
२९ ॥ ऐसा कर दुष्टात्मा त्रिपुरसे हारेहुये व अष्टराज्यवाले सब देवता मनुष्यों की नाई घूमते हैं ॥ ३० ॥ और ब्रह्मा से पाये हुये वरदानवाला वह सब कहीं से
निडर होकर विचरता है इसलिये सब उपायसे उसका वध विचार किया जावे ॥ ३१ ॥ इसप्रकार उन प्रशंसित चित्तवाले ब्रह्मा का वचन सुनकर महादेवजी बहुत देर

तक ध्यानकर उन ब्रह्मात्मे बोले ॥ ३२ ॥ महादेवजी बोले कि हे ब्रह्मन् ! व इन्द्रादिक सुरोत्तमो ! सुनिये इस दुष्टात्मा दैत्यको जीतने का उपाय करूंगा ॥ ३३ ॥ और अपने जयको चाहनेवाले तुम लोग तपस्या करो अवन्ती पुरीमें जो हवन व दियाहुआ दान होताहै वह सब अक्षय होवै है ॥ ३४ ॥ सब देवताओं से यह कहकर शिवजी वहीं अन्तर्द्धान होगये और भूतों व प्रेतों से सेवित श्मशानस्थान में जाकर ॥ ३५ ॥ उस दुष्टात्मा त्रिपुर दैत्यको जीतने के लिये वहां सुरोत्तमों ने चामुण्डा, जी की उपासना किया ॥ ३६ ॥ और भैरव व महामेर्वो (बड़े भेड़ों) से तथा पशु (बालि) पुष्प, और अनेकमांति की बलियों से व धूप, दीप और अग्निहोत्रों से ॥

त्मनः ॥ चिरन्धयात्वामहादेवो ब्रह्माणन्तमुवाचह ॥ ३२ ॥ महादेवउवाच ॥ श्रूयताम्भोसुरश्रेष्ठा ब्रह्मइन्द्रपुरोगमाः ॥ जयोषायंकरिष्यामि दैत्यस्यास्यदुरात्मनः ॥ ३३ ॥ तपश्चरतयूयं वै आत्मनोजयकाङ्क्षिणः ॥ अवन्त्यायद्धुतंदत्तं तत्सर्वं चाक्षयम्भवेत् ॥ ३४ ॥ इत्युक्त्वासर्वदेवानां तत्रैवान्तर्हितश्शिवः ॥ गत्वाश्मशाननिलये भूतप्रेतनिषेविते ॥ ३५ ॥ जयार्थं तस्य दैत्यस्य त्रिपुरस्य दुरात्मनः ॥ उपासाञ्चक्रिरेतत्र चामुण्डायास्सुरेश्वराः ॥ ३६ ॥ महिषैश्च महामेषैः पशुषुष्पार्धतर्पणैः ॥ बलिभिर्विविधैर्दानैर्धूपदीपाग्निहोत्रकैः ॥ ३७ ॥ पूजयित्वा तदा देवीं तामीडेष्टुषमध्वजः ॥ दुर्गाभगवतीं भद्रां दुर्गसंसारतारिणीम् ॥ ३८ ॥ त्रिपुरान्तकरीं कृत्यांचण्डमुण्डवधोद्यमाम् ॥ दैत्यान्तकां मदोन्मत्तां रक्ताख्यां रक्तदन्तिकाम् ॥ ३९ ॥ रक्ताम्बरधरान्धीरं रक्तपुष्पावतंसिनीम् ॥ महिषवाहिनीं श्यामां पद्मासनपरिग्रहाम् ॥ ४० ॥ द्वीपिचर्मपरीधानां शुष्कमांसातिभैरवाम् ॥ पूजयित्वा प्रसन्नात्मा ध्यानमादाय संस्थितः ॥ ४१ ॥ तदा भगवती भद्राय

३७ ॥ उन देवीजी को पूजकर उस समय वृषध्वज शिवजी ने स्तुति किया और कल्याणकारिणी तथा दुर्गरूपी संसार से तारनेवाली दुर्गाजी को ॥ ३८ ॥ व चण्ड मुण्ड के वध में उद्यमवाली त्रिपुरान्तकारिणी कृत्या व दैत्यों को नाशनेवाली और मद से उन्मत्त व रक्तनामवाली रक्तदंतिकाजी को ॥ ३९ ॥ तथा लाल पुष्पों से कण्ठभूषणवाली व अरुण वसनों को धारे हुई भैरव पर सवार व चतुर तथा श्यामा व पद्मासन से बैठी हुई ॥ ४० ॥ व व्याघ्र चर्मको पहने और सूखे मांस से बहुतही

भयकारिणी भगवतीजी को पूजकर प्रसन्न चित्तवाले शिवजी ध्यानको ग्रहण कर भलीभांति बैठे ॥४१॥ तब जो इस संसारको धारे हैं उन प्रसन्न मुखवाली कल्याण कारिणी भगवती चण्डिकाजी ने प्रत्यक्षहोकर कहा ॥ ४२ ॥ देवीजी बोलीं कि हे सुरश्रेष्ठ ! मुझ से चाहेहुये वरदानको मांगिये मैं लोको के उपकारक तुमसेकहेहुये उस सब वरको दूंगी ॥ ४३ ॥ श्रीमहादेवजी बोले कि हे देवि ! यदि तुम प्रसन्नहोतो मुझको उत्तम वर दीजिये कि जिससे देवताओं के कण्टकरूपी त्रिपुर महादैत्य को मारूं ॥ ४४ ॥ श्रीदेवीजी बोली कि हे सुरश्रेष्ठ ! मुझसे दियेहुये दैत्यों के नाशकारक उत्तम पाशुपत अस्त्रको ग्रहण कीजिये इस महादैत्य को तुम जीतोगे ॥४५॥

येदंधार्यतेजगत ॥ प्रसन्नवदनाभूत्वा प्रत्यक्षंप्राहचण्डिका ॥ ४२ ॥ देव्युवाच ॥ त्रियताम्भोसुरश्रेष्ठ वरंमत्तोभिर्वाञ्छितम् ॥ ददामिसर्वत्वयोक्तं जगतामुपकारकम् ॥ ४३ ॥ श्रीहरउवाच ॥ परितुष्टासिचहेवि देहिमेवरमुत्तमम् ॥ येनहन्मिमहादैत्यं त्रिपुरन्देवकण्टकम् ॥ ४४ ॥ श्रीदेव्युवाच ॥ जयस्येनंमहादैत्यं गृहाणपाशुपतंपरम् ॥ मयादत्तंसुरश्रेष्ठ दैत्यनाशकरम्परम् ॥ ४५ ॥ महापाशुपतंशस्त्रं करेकृत्वाचशङ्करः ॥ उज्जहारतदाशम्भुर्दैत्यनाशायसत्वरम् ॥ ४६ ॥ महाडम्बरकोभूत्वा सर्वप्राणिभयङ्करः ॥ स्तुतिकृत्वाजयैशशब्दैः पृष्ठतोनुययुरसुराः ॥ ४७ ॥ शरैर्षौकेनैवैरुद्रो जघानतंस हासुरम् ॥ मायिनन्तंविधाभिन्त्वा मायायुद्धेनशङ्करः ॥ ४८ ॥ पुनरगात्पुरीमेतामवन्तीसुरसेविताम् ॥ जयाशिषंप्रयुजाना ऋषयस्सिद्धचारणाः ॥ ४९ ॥ तुष्टुबुश्वतदादेवं जयशब्देनहर्षिताः ॥ अप्सराननृतुस्तत्र गन्धर्वालालितंजगुः ॥ ५० ॥

महापाशुपत शस्त्रको हाथमें धारणकर उस समय कल्याण कारक शिवजीने दैत्य के नाशने के लिये शीघ्रही ऊपर उठाया ॥ ४६ ॥ और समस्त प्राणियों को भयकारक जुम्माऊ नगाड़ा की गर्जन होकर देवता लोग जय शब्दों से स्तुति कर पक्षिसे चले ॥ ४७ ॥ और शिवजी ने एक बाण से उस महादैत्यको मारा व मायाके युद्धसे उस मायावी के तीन खण्डकर शंकरजी ॥ ४८ ॥ फिर देवताओं से सेवित इस अवन्ती पुरी को आये व जयपूर्वक आशीर्वादको युक्त करतेहुये ऋषि, सिद्ध व चारणोंने ॥ ४९ ॥ उस समय शिवदेवजीकी स्तुति किया और जयके शब्दसे प्रसन्न होतीहुई अप्सरायें वहां नाचने लगीं और गन्धर्व लोगोंने सुन्दर गान किया ॥ ५० ॥

व उस समय मनुष्यों को सुखदायक अति पवित्र पवन चलने लगा और प्राणियों के घर घर में उस समय जयका शब्द हुआ ॥ ५१ ॥ और अग्नियों शान्त होगई व दिशाओंमें उत्पन्न शब्द शान्त होगये और उस समय बड़े उत्सव व दक्षिणाओंवाले यज्ञ वर्तमान हुये ॥ ५२ ॥ और देवता बिपेहुये अपने स्थानको फिर प्राप्त हुये जिसलिये कि दानव उच्चप्रकारसे जीतागया व जिससे त्रिलोक स्थापन किया गया ॥ ५३ ॥ इसलिये सब सुरोत्तमों व सनकादिक ऋषियों से भक्तोंके पापका विनाशक श्रवन्तीनामक स्थान स्थापित कियागया ॥ ५४ ॥ और पुरातन समय सबकामनाओं व वरों को देनेवाली अवन्ती पुरी कहीगई है हे व्यासजी ! तब से

ववौतदापुण्यतमो वायुसुखप्रदोन्मेषः ॥ जयशब्दस्तदाजातः प्राणिनाञ्चगृहेगृहे ॥ ५१ ॥ जज्वलुश्चाग्नय
इशान्ताइशान्तादिगजनितस्वनाः ॥ प्रवर्तन्तेतदायज्ञा महोत्सवसदन्विताः ॥ ५२ ॥ देवाप्रपेदिरेस्थानं स्वकीयं पुन
रावृतम् ॥ उज्जितोदानवोयस्मात् त्रैलोक्यंस्थापितंयतः ॥ ५३ ॥ तस्मात्सर्वैस्सुरश्रेष्ठ ऋषिभिस्सनकादिभिः ॥ स्था
पितं नामावन्त्याख्यं सान्त्वतांपापनाशनम् ॥ ५४ ॥ श्रवन्तीचपुराप्रोक्ता सर्वकामवरप्रदा ॥ तत्प्रभृतिपुरीव्यास उ
ज्जयिनीसमाश्रिता ॥ ५५ ॥ येमुष्यांस्नानदानानि भुविकुर्वन्तिमानवाः ॥ नतेषांदुष्कृतांकिञ्चिद्देहेतिष्ठतिपापजम् ॥
५६ ॥ विद्यार्थीगिरीशंधनार्थीधनेशं सुतार्थीसुरेशंदिनेशंसुखार्थी ॥ धियोर्थागणेशंप्रियार्थीचशेषं गिरापूजमानोज
नश्चोज्जयिन्याम् ॥ ५७ ॥ यएतस्यांमहाभागस्सदावसतिमानवः ॥ भुक्त्वाकामान्मनोभीष्टान्मृतादिशवपुंरंज
त ॥ ५८ ॥ तत्रैववसतेनित्यं कल्पकोटिशताधिकम् ॥ यैर्नैषाचकथापुण्या पठ्यतेश्रूयतेथवा ॥ ५९ ॥ मुच्यतेसर्वपा

लगाकर उज्जयिनी भलीभांति स्थितहुई है ॥ ५५ ॥ जो मनुष्य पृथ्वीपर इसमें स्नानदानादिक करते हैं उनके शरीर में पापसे उपजा हुआ कुबू दुष्कृत नहीं होताहै ॥
५६ ॥ विद्याको चाहनेवाला पुरुष महादेवजी को वा धन चाहनेवाला नर धनेश कुबेरजी व पुत्र चाहनेवाला मनुष्य सुरेश (इन्द्रजी) को और सुख चाहनेवाला
पुरुष सूर्यनारायणजी को व बुद्धि चाहनेवाला नर गणेश को तथा प्रिय चाहनेवालापुरुष शेषजी को वाणी से पूजता हुआ उज्जयिनी पुरी में बसे ॥ ५७ ॥ जो बड़ा
पुरुषवान् पुरुष इसमें सदैव बसता है वह मन से चाहीहुई कामनाओं को भोगकर मरकर शिवपुर को जाता है ॥ ५८ ॥ और वही पर वह सदैव करोड़ों सौ कल्या

से भी अधिकतक बसता है और जो मनुष्य इस पवित्र कथा को पढ़ता या सुनता है ॥ ५६ ॥ वह सब पापोंसे छूटजाता है और गौ सहस्र के फलको प्राप्त होता है ॥ ६० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेश्वरान्तोखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायां भावटीकायां मुञ्जयिन्यभिधानकथननामचतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५४ ॥

दो० । भयो अवन्ती पुरी कर जिमि पद्मावति नाम । पचपनवें अध्याय में सोई चरित ललाम ॥ सनत्कुमारजी बोले कि इसके अनन्तर जिस प्रकार वह पद्मावती ऐसी हुई है उसको मैं भलीभांति कहता हूँ हे व्यासजी ! बहुत पुण्य करनेवाली कथाको आदर से सुनिये ॥ १ ॥ कि एक समय उन दुष्टात्मा दुष्ट दानवों से सब रत्नों पेभ्यो गौसहस्रफलंलभेत ॥ ६० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेश्वरान्तोखण्डे उज्जयिन्यभिधानकथननामचतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५४ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

सनत्कुमारउवाच ॥ अथातस्सम्प्रवक्ष्यामि यथापद्मावतीतिसा ॥ श्रूयतामादृतोव्यास बहुपुण्यकृताङ्कथाम् ॥

१ ॥ एकदासर्वरत्नानां हानिर्जातादुरात्मभिः ॥ धर्मग्लानिनिरोधश्चजातस्तर्दुष्टदानवैः ॥ २ ॥ तदासुरासुरैस्सर्वमिलित्वामथितोर्णवः ॥ मेरुर्वशोर्णवःपात्रं रज्जुर्वासुकिपन्नगः ॥ ३ ॥ कूर्मंष्ट्रेऽचलंकृत्वा रत्नानिदुहुस्तदा ॥ आदौलक्ष्मीविनिर्याता कृष्णायप्रतिपादिता ॥ ४ ॥ तेनैवचविवादोभूद्देवदानवयोस्तदा ॥ एतस्मिन्नन्तरप्राप्तो नारदोदेवदर्शनः ॥ ५ ॥ वारितःकलहस्तेन देवैर्दयसमुद्भवः ॥ महाकालवनेतत्र पद्मासिन्धुसमुद्भवा ॥ ६ ॥ सागरान्तेचरत्नानि तिष्ठन्ति विविधानिच ॥ तानिसर्वाणिचादाय यावत्तुभ्यंददाम्यहम् ॥ ७ ॥ मथ्यतामुदधिदृशीघ्रं नात्रकार्याविचारणा ॥ पुनस्ते

का नाशहोगया और धर्मकी हानि व बिनाश हुआ ॥ २ ॥ तब सब देवता व दैत्योंने मिलकर समुद्र को मथा और सुमेरु वंश (मथानी) हुआ व समुद्र पात्र हुआ और वासुकि सर्प रज्जु याने नेती हुआ ॥ ३ ॥ उस समय उन्होंने कच्छपके पृष्ठपै पर्वत को करके रत्नों को दुहा पहले लक्ष्मीजी निकली और वे श्रीकृष्णजी को दी गई ॥ ४ ॥ उसी कारण उस समय देवताओं व दानवों का विवाद हुआ इसी अवसर में देवदर्शन नारदजी प्राप्त हुये ॥ ५ ॥ और उन्होंने देवताओं व दैत्यों से उपजा हुआ कलह (झगड़ा) मना किया व कहा कि उस महाकाल वन में समुद्र में उपजी हुई लक्ष्मी हैं ॥ ६ ॥ और समुद्र के मध्य में अनेक भांति के रत्न हैं उन

सबों को लेकर जबतक मैं तुमको देऊँ ॥ ७ ॥ तबतक शीघ्रही समुद्र मथाजावै इस विषय में विचार नकरना चाहिये फिर उन देवताओं व दैत्यों ने रत्नों के लिये उद्यम किया ॥ ८ ॥ और उनके समुद्र मथने पर कौस्तुभ मणि प्राप्तहुई पश्चात् पारिजात वृक्ष हुआ तदनन्तर मदिरा उत्पन्न हुई ॥ ९ ॥ इसके उपरान्त धन्वंतरि पैदाहुये तदनन्तर चन्द्रमा उत्पन्न हुआ उसके उपरान्त कामधेनु प्राप्तहुई तदनन्तर उत्तम हाथी हुआ ॥ १० ॥ और उत्तम घोडा उच्चैःश्रवा तदनन्तर सुधा उसके उपरान्त रंभा अप्सराहुई तदनन्तर सब अस्त्रोंकी उत्पत्तिवाला शार्ङ्ग धनुष हुआ ॥ ११ ॥ और मुरदानवके वैरी विष्णुजी के हाथमें पाचजन्य नामक शख स्थितहुआ

तूयमंचक्रुर्नार्थैवसुरासुराः ॥ ८ ॥ मथ्यमानेनिधौतेषां मणिःप्राप्तश्चकौस्तुभः ॥ पारिजाततरुःपश्चात्सुराजाताततः परम् ॥ ९ ॥ धन्वन्तरिरथोत्पन्नश्चन्द्रोजातोपिवैततः ॥ कामधेनुस्समाप्राप्ता गजरत्नंततःपरम् ॥ १० ॥ उच्चैःश्रवाहय श्रेष्ठस्सुधारम्भाततस्ततः ॥ ततःपरञ्चशार्ङ्गं धनुस्सर्वास्त्रसम्भवम् ॥ ११ ॥ पाञ्चजन्यनामाशङ्खः करेतिष्ठन्मुरद्धि षः ॥ निधिरेषमहापद्मो विषंहालाहलन्ततः ॥ १२ ॥ चतुर्हृशानिरत्नानि प्राप्तानिविविधानिच ॥ समादायगतास्तत्र यत्रमाहेश्वरंवनम् ॥ १३ ॥ गत्वातेतुसमासीना मन्त्रंचक्रुस्समुद्यताः ॥ अहंपूर्वमहंपूर्वमिति ते समयंत्रिताः ॥ १४ ॥ को लाहलोह्यथोत्पन्नः पुनर्नारद अभ्यगात् ॥ तेषांकलिमलं दृष्ट्वा विष्णुमाराधयत्ततः ॥ १५ ॥ मोहिनीरूपमास्थाय नारीभूत्वाभ्यगाद्धरिः ॥ अतिरूपवतीं तन्वीं तामालोक्य महासुराः ॥ १६ ॥ विह्वलाङ्गाः कृतास्सर्व्वे कामबाणवशंग ताः ॥ एतस्मिन्नन्तरेतेषां सुरान्दत्त्वासुरेश्वरः ॥ १७ ॥ हस्तलाघवयोगेन देवानाममृतन्ददौ ॥ एतस्मिन्नन्तरेव्यासरा

व यह महापद्म निधिहुई और तदनन्तर हलाहल विष पैदा हुआ ॥ १२ ॥ इसप्रकार प्राप्तहुये अनेक भांतिके चौदह रत्नों को लेकर देवता वहां गये जहां कि माहे-
श्वर वन था ॥ १३ ॥ और जाकर बैठेहुये उन्होंने उद्यत होकर सम्मति किया व मैं पहले मैं पहले इसप्रकार कहकर वे साथही यंत्रितहुये ॥ १४ ॥ इसके अनन्तर कोलाहल पैदाहुआ और फिर नारदजी आये तदनन्तर उनके कलिमल (विवाद) को देखकर उन्होंने विष्णुजी का आराधन किया ॥ १५ ॥ और मोहिनीरूपमें टिक कर स्त्री होकर विष्णुजी आये व अतिरूपवती उस स्त्रीको देखकर महादैत्य ॥ १६ ॥ विह्वलअंगवाले होकर सब कामदेवके बाण के वशमें प्राप्तहुये इसी अवसर में उन

को मदिरा देकर सुरेश्वर विष्णुजी ने ॥ १७ ॥ हस्त लावव याने हाथोंकी शीघ्रता के संयोग से देवताओं को अमृत दिया इसी अवसर में हे व्यासजी ! उन देवताओं के रूपको धरनेवाले राहुने ॥ १८ ॥ उनके बीचमें प्राप्तहोकर उत्तम अमृतको पीलिया उसको जानकर विष्णुजी ने शीघ्रही चक्रसे मस्तक को काटडाला ॥ १९ ॥ उस समय अमृतके स्पर्श के प्रसंग से असुर राहु नहीं मरा व हे सत्तम व्यासजी ! पृथ्वी में इस क्षेत्रमें राहु व केतु ऐसा प्रसिद्धहुआ ॥ २० ॥ और राहुके शरीर से उपजाहुआ बहुत रुधिर बहा व उस क्षेत्रमें उस दोषको नाशनेवाला महातीर्थ हुआ ॥ २१ ॥ उसमें नहाकर पवित्रहोकर जो राहुके दर्शन में तत्पर होताहै उसके कभी

हस्तद्रूपधारकः ॥ १८ ॥ तेषामन्तरतोभूत्वा पपौचामृतमुत्तमम् ॥ तज्ज्ञात्वाचद्रुतंविष्णुर्दशरश्चक्रेणप्राचिच्छनत् ॥
१९ ॥ सुधास्पर्शप्रसङ्गेन नममारासुरस्तदा ॥ राहुःकेतुरितिख्यातो ज्ञेवैस्मिन्भुविसत्तम ॥ २० ॥ राहुकायात्समुद्भूतं
बहुमुखावशोणितम् ॥ तस्मिन्क्षेत्रेवमहातीर्थं जातंदोषनाशनम् ॥ २१ ॥ तत्रस्नात्वाशुचिर्भूत्वा राहोर्दर्शनतत्परः ॥
नतस्यजायतेकाचिद् राहुपीडाकदाचन ॥ २२ ॥ वाञ्छितार्थमवाप्नोति गोसहस्रफलंभवेत् ॥ ततस्तानिचरत्नानि म
हाकालवनेसुराः ॥ २३ ॥ विभज्यभागन्तेसर्वे ततोरत्नभुजोऽभवन् ॥ मणिपद्मांधनुश्शङ्खं ददौसातत्रविष्णवे ॥ २४ ॥
सूर्यायचददौचाश्वं मोहिनीसाब्धिसम्भवम् ॥ ऐरावतंगजश्रेष्ठं वासवायसमर्पयत् ॥ २५ ॥ दिविषद्गणांश्चपीयूषं
ददौचन्द्रं चशम्भवे ॥ पारिजातंरुश्रेष्ठं रम्भाञ्चैववराङ्गनाम् ॥ २६ ॥ इन्द्रःक्रीडावनेरम्ये नन्दनेचसमर्पयत् ॥ ऋषी

कोई राहुकी पीडा नहीं होती है ॥ २२ ॥ और चाहेहुये प्रयोजन की प्राप्ति होतीहै व गोसहस्र का फल होता है तदनन्तर महाकाल वन में देवता उन रत्नों को ले-
कर ॥ २३ ॥ व भागको बाटकर तदनन्तर वे सब रत्न भोगीहुये और वहां पर उनमोहनजीने मणि, लक्ष्मी, धनुष और शंखको विष्णुजी के लिये दिया ॥ २४ ॥
और उन मोहनजी ने समुद्र से उपजेहुये अश्वको सूर्यनारायणजी के लिये दिया और इन्द्रजी के लिये उत्तम हाथी ऐरावत को दिया ॥ २५ ॥ और देवगणों
को अमृत व शिवजी के लिये चन्द्रमाको दिया और वृक्षोंमें श्रेष्ठ पारिजात को व उत्तम स्त्री रम्भाको ॥ २६ ॥ इन्द्र ने सुन्दर क्रीडागन नन्दन में भलीभांति अर्पण

किया और यज्ञकी सिद्धिके लिये श्रुतियों को कामधेनु गऊ दिया ॥ २७ ॥ और यह महापद्मानिधि कुबेरजीके घरको गई और जो हलाहल विष कहागयाहै उसको किसीने भी आदर न किया ॥ २८ ॥ क्योंकि जहा जहा वह फैलता था वहा वहां प्राणी नाशको प्राप्तहोते थे लोकोंके हितकी कामनासे उस विषको शिवजीने धारण किया ॥ २९ ॥ तबसे लगाकर महादेवजी नीलकण्ठ ऐसे कहेगये जो मनुष्य रत्नकुण्ड में नहाकर नीलकण्ठजी को देखताहै ॥ ३० ॥ वह सब पापों से छुटकर सब रत्नों का भोगी होताहै और सौ अश्वमेध यज्ञों के पुण्यको पाकर शिवलोकको जाताहै ॥ ३१ ॥ हे व्यासजी ! उस समय हर्षसे पूर्ण मनवाले ब्रह्मा व विष्णु आदिक

पाञ्चाददाद्धेनुं कामदोग्ध्रीयज्ञसिद्धये ॥ २७ ॥ निधिरेषमहापद्मः कुबेरभवनेगतः ॥ यत्तद्बालाहलंप्रोक्तं विषंकेनापिनाटतम् ॥ २८ ॥ यतोयतःप्रसरति प्रलयंयान्तिजन्तवः ॥ दधारतद्विषंशम्भुर्जंगतांहितकाम्यया ॥ २९ ॥ तत्प्रभृतिमहादेवो नीलकण्ठइतिस्मृतः ॥ रत्नकुण्डेनरस्नत्वा नीलग्रीवञ्चपश्यति ॥ ३० ॥ समुक्तस्सर्वपापेभ्यो भवेच्चसर्वरत्नमुक् ॥ शताश्वमेधिकंपुण्यं लब्ध्वाशिवपुरं व्रजेत् ॥ ३१ ॥ तदादायमुरास्सर्वे ब्रह्मविष्णुपुरोगमाः ॥ स्वयं मृदुस्तदाव्यास हर्षनिर्भरमानसाः ॥ ३२ ॥ उज्जयिनीसमासाद्य जातारत्नमुज्ज्वलयम् ॥ यस्मात्सर्वेषुकालेषु पद्मावसतिनिश्चला ॥ ३३ ॥ अद्यप्रभृतिपुण्येषा पद्मावतिरितिस्मृता ॥ यएतस्यामहाभागास्स्नानंदानंतथाचनम् ॥ ३४ ॥ तर्पणंचैवदेवानां पितृणांवाविशेषतः ॥ नतस्यदुष्कृतंकिञ्चिन्नदारिद्र्यन्नदुर्गतिः ॥ ३५ ॥ शतंकुलानिसर्वाणि तारयेन्निरयार्णवात् ॥ धनार्थीवाचपुत्रार्थी विद्यार्थीबहुकामुकः ॥ ३६ ॥ यत्रकुत्रस्थितोभूत्वा पद्मावतिरितिस्मरेत् ॥ सर्वान्

गव देवतार्थों ने उसको लेकर आपही कहा कि ॥ ३२ ॥ उज्जयिनी को भलीभांति प्राप्तहोकर हमलोग रत्नोंके भोगीहुये और जिसलिये यहां सब समयों में श्रवण लक्ष्मी यमती है ॥ ३३ ॥ इस कारण आजसे लगाकर यह पुरी पद्मावती ऐसी कहीजावे वड़े ऐश्वर्यवाले जो पुरुष इस पुरी में स्नान, दान व पूजन करते हैं ॥ ३४ ॥ और देवतार्थों व विशेषकर पितरों का तर्पण करते हैं उसके कुछ पाप व दरिद्रता और दुर्गति नहीं होतीहै ॥ ३५ ॥ और वह नरकों के समुद्र से सौ कुलों को तारता है व धन चाहेनाना तथा पुत्रों को चाहनेवाला और विद्यार्थी व बहुत कामनाओंवाला पुरुष ॥ ३६ ॥ जहां कहीं स्थित होकर पद्मावति ऐसा स्मरण करता

है वह मनुष्य समस्त कामनाओं को पाता है व साक्षात् शिवहोता है ॥ ३७ ॥ हे व्यासजी ! यह नाम का फल है और बहुत दिनोंके सेवने से क्या कहना है जो पुरुष इस पवित्र कथाको सुनते हैं और जो नित्य सुनाता है ॥ ३८ ॥ उसके कुछ पातक नहीं रहता है और वह अश्वमेध यज्ञके फलको प्राप्त होता है ॥ ३९ ॥ इति श्रीस्कन्द पुराणेऽवन्तीखण्डेऽवीन्द्रयालुमिश्रचरितायां भाषाटीकाया पद्मावतीनाम कथनं नाम पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५५ ॥

दो० । भयो अवन्ती पुरीकर कुमुदती जिमि नाम । छप्पनवें अध्याय में सोइ चरित सुखधाम ॥ सनत्कुमारजी बोले कि हे व्यासजी ! सावधान होकर पापहारिणी कामानवाप्नोति शिवस्मान्नाद्भवेन्नरः ॥ ३७ ॥ एतद्व्यासफलं नाम्नः किञ्चिरं सेवनेन वै ॥ ये शृण्वन्ति कथां पुण्यां यः श्रावयति नित्यशः ॥ ३८ ॥ न तस्य पातकं किञ्चिदश्वमेधफलं लभेत ॥ ३९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे पद्मावतीनाम कथनं नाम पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५५ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

सनत्कुमार उवाच ॥ शृणुष्व अवहितो व्यास कथां पापहरां पराम् ॥ एषा कुमुदती जाता यथा पद्मावती पुरा ॥ १ ॥ लोमश उवाच ॥ एकदा तीर्थयात्रायां गतो ह वै कुशस्थलीम् ॥ गुह्यादुगुह्यतमं स्थानं यत्र सन्निहितो हरः ॥ २ ॥ यस्य दर्शनमात्रेण ब्रह्महत्याव्यपोह्यते ॥ यत्र तत्र स्थिता विप्रा ब्रह्मघोषं च कुर्वते ॥ ३ ॥ यज्ञांश्चैव तथा चित्रानृत्विजो द्वारकर्मच ॥ ऋषयश्च यथा भागा प्रकुर्वन्ति समाहिताः ॥ ४ ॥ ऋषिपत्न्यस्तथा सा द्रव्यः परिचारं प्रकुर्वते ॥ दशविंशवच्च प्रख्याता स्तत्रैव निवसन्ति ते ॥ ५ ॥ सद्रात्रिका दशप्रोक्ता द्वादशार्कास्तथैव च ॥ अष्टौ च वसवः ख्याता विश्वेदेवास्त्रयोदश ॥ ६ ॥

उत्तम कथा को सुनिवे जिस प्रकार कि पुरातन समय यह पद्मावती पुरी कुमुदती हुई है ॥ १ ॥ लोमश ऋषि बोले कि एक समय मैं तीर्थ यात्रामें कुशस्थली पुरी को गया जो कि गुप्तसे भी अत्यन्त गुप्तस्थान है और जहां पर सदा शिवजी टिके हुये हैं ॥ २ ॥ जिनके दर्शनही से ब्रह्महत्या नाश होजाती है और जहां पै टिके हुये ब्राह्मण लोग वेदध्वनि करते हैं ॥ ३ ॥ और ऋत्विक् लोग त्रिचित्र यज्ञों को व द्वारकर्मको करते हैं व बड़े ऐश्वर्यवान् ऋषि लोग सावधान होकर यज्ञोंको करते हैं ॥ ४ ॥ वैसेही पतिव्रता ऋषियोंकी स्त्रियां सेवा करती हैं और वहींपर वे प्रसिद्ध दशविंशु बसते हैं ॥ ५ ॥ और गेरह रुद्र कहे गये हैं व बारह सूर्य तथा आठ वसु व तेरह विश्वे-

देवा प्रसिद्ध हैं ॥ ६॥ और वे आठ दिग्गज तथा चौदहमनु और वेसब पवनगण तथा इन्द्रादिक देवता वहाँ बसते हैं ॥ ७ ॥ और हे व्यासजी ! गंधर्व अप्सरा, किन्नर, नाग व राक्षस, सिद्ध व तपस्वी वहाँ पर भलीभाँति प्राप्त हैं ॥ ८ ॥ व आठ भैरव कहे गये हैं और चार पवनपुत्र तथा ये ऋषि विनायक व चौबिस देवियाँ हैं ॥ ९ ॥ ये देवताओं के गण व रुद्रगण कहे गये हैं और वेदों के जाननेवालों में श्रेष्ठ ब्रह्मा, मरीचि, और कश्यप आदिक ॥ १० ॥ और प्रजापतियों में श्रेष्ठ दक्षजी व देवताओं की माता अदिति और श्रुतियों से सम्मत गाइयाँ व स्थावर जंगम प्राणी ॥ ११ ॥ व जो सब तीर्थ हैं व नदियाँ, झरना और पृथ्वी में जो अति पवित्र सब क्षेत्र हैं ॥ १२ ॥ और सातपुरी, तीन ग्राम व

अष्टौतेदिग्गजाश्चैव मनवश्चचतुर्दश ॥ मरुद्गणाश्चैतसेर्वे तत्र चेन्द्रपुरोगमाः ॥ ७ ॥ गन्धर्वाप्सरसश्चैव किन्नरोरगरा
राक्षसाः ॥ सिद्धास्तपस्विनो व्यास तत्रैव समुपस्थिताः ॥ ८ ॥ अष्टौ च भैरवाः ख्याताश्च त्वारः पवननात्मजाः ॥ विनायकाः
षडेते च देव्यश्च चतुर्विंशतिः ॥ ९ ॥ एते देवगणाः प्रोक्ता रौद्राश्चैव तथैव च ॥ ब्रह्मा वेदविदां श्रेष्ठो मरीचिः कश्यपादयः ॥
१० ॥ दक्षः प्रजापतिः श्रेष्ठोऽदितिर्वेदेवमातृका ॥ श्रुतिभिस्संमता गावः स्थावराणि चराणि च ॥ ११ ॥ तीर्थानि यानि स
र्वाणि नद्यः प्रस्रवणानि च ॥ क्षेत्राणि चैव सर्वाणि भुवि पुण्यतमानि वै ॥ १२ ॥ समपुण्यं स्रयो ग्रामा नवार्ण्यानि चैव तु ॥
चतुर्दशानि गुह्यानि मुक्तिद्वाराणि भूतले ॥ १३ ॥ समुद्राश्चैव चत्वारो रत्नानि विविधानि च ॥ राजर्षयोऽमलाश्शान्ता
ब्राह्मणा वेदपारगाः ॥ १४ ॥ वेदाः पुराणस्मृतयो गाथागीतिः प्रहेलिकाः ॥ उपासाञ्च क्रिंतस्य तदानोचाप्युमापतेः ॥
१५ ॥ तस्य दर्शनमात्रेण जातो हं विज्वरोऽमलः ॥ दीर्घायुर्दीर्घतपसा जरारोगविवर्जितः ॥ १६ ॥ स्नातो हं सर्व तीर्थेषु
शुचिर्भूत्वा समाहितः ॥ प्रसन्नमानसो जातस्सर्वपापपराङ्मुखः ॥ १७ ॥ दृष्ट्वा पद्मावतीं शुभ्रां सर्वकामवरप्रदाम् ॥ न
नववन और चौदहगुप्त पृथ्वी में मुक्ति के द्वार हैं ॥ १३ ॥ व चार समुद्र तथा अनेक भाति रत्न व निर्मल राजर्षि और वेदों के पारंगामी शान्त ब्राह्मण ॥ १४ ॥
व वेद, पुराण, स्मृतियाँ और कथाओं का गान व प्रहेलिकाओं ने उस समय उन उमानाथ की उपासना किया ॥ १५ ॥ उनके दर्शन ही से मैं निर्मल व उन्नत रहित
होगया और बड़े तप से बहुत आयुर्वलवाला व बुद्धता तथा रोग से रहित हुआ ॥ १६ ॥ और सावधान होता हुआ प्रसन्नमनवाला मैं समस्त तीर्थों में नहाकर

व पवित्र होकर समस्त पापों से रहित हुआ ॥ १७ ॥ जहांपर समस्त कामनाओं व वरोंको देनेवाली उत्तम पद्मावतीजी को देखकर कोई मनुष्य शोक व रोगसे सं-
युक्त नहीं देख पड़ता है ॥ १८ ॥ और न दुःखी न दरिद्री न मूर्ख न अजितेन्द्रिय होता है व जहां पर आपस में वैरी और न व्रतहीन देख पड़ता है ॥ १९ ॥ और
जहां पर आपस में सब मित्र व परस्पर में उपकारी व इन्द्रियोंको दमन करनेवाले व सब विद्याके उपदेशक हैं ॥ २० ॥ और सुन्दर बर्गीचे व वन तथा उपवन और
सब सुन्दर मन्दिर पंक्तियों से बंधे हुये हैं ॥ २१ ॥ जो कि अनेक भांतिके रत्नों से संयुक्त सुन्दर स्वर्ण घंटोंसे और गीतों व बाजाओं के बड़े भारी उल्लाहों से विचित्र

यत्र दृश्यते कश्चिच्छोक रोग परोनरः ॥ १८ ॥ न दुःखी न च दरिद्री न मूर्खो न अजितेन्द्रियः ॥ परस्परं विरोधी च नाव्रती
यत्र दृश्यते ॥ १९ ॥ अन्योन्यं सर्वमित्राणि अन्योन्यैश्चोपकारिणः ॥ सर्वदान्ताश्च शान्ताश्च सर्वविद्योपदेशिनः ॥ २० ॥
उद्यानानि च रम्याणि वनान्युपवनानि च ॥ हर्म्याणि चैव शुभ्राणि श्रेणिबद्धानि सर्वशः ॥ २१ ॥ नानारत्नसमाकीर्णं हं
कुम्भैस्सुशोभनैः ॥ विराजन्ते विचित्राणि गीतवाद्यमहोत्सवैः ॥ २२ ॥ सदैव वसते यत्र उमया सह शङ्करः ॥ चन्द्रचूडा
कृतिव्यास चिताभस्माङ्गलेपनः ॥ २३ ॥ चन्द्रज्योत्स्ना कलापूर्णमरीचिस्सर्वतोवर्भा ॥ नयनकृष्णपद्मो भूत्रामाव
स्यानवैतमः ॥ २४ ॥ सदैव पुष्पिताश्यामा बाल्यैरूपवती यथा ॥ हर्म्यपृष्ठे गवाक्षे च द्वारजिरगृहान्तरे ॥ २५ ॥ गिरि
गङ्गाकुञ्जेषु गुहाध्वान्तान्तरेषु च ॥ आश्रमेषु च रम्येषु वनेषु पवनेषु च ॥ २६ ॥ गृहदीर्घिकासुरम्यासु शालामालासुस

शोभित है ॥ २२ ॥ और जहांपर पार्वती समेत सदाशिवजी सदैव बसते हैं जोकि हे व्यासजी ! चन्द्रचूड़ आकारवाले व चिताके भरसे अंग लेपवाले हैं ॥ २३ ॥
और जो कि सब ओर से चन्द्रमा की चन्द्रिका से संयुक्त कलाओं से पूर्ण किरणोंवाले शोभित थे और जहांपर न कृष्णपद्म हुआ न अमावस हुई और न अन्धकार
हुआ ॥ २४ ॥ और जो पुरी सदैव प्रफुल्लित थी जैसे कि बाल्यावस्था में रूपवती श्यामा स्त्री होत्रे और मन्दिरके पृष्ठ पैं व भरोखा में तथा द्वार अंगनाई और घरके
भीतर ॥ २५ ॥ व पर्वतोंकी गुफाओं व कुंजों तथा कन्दराओं के अन्धकारके मध्योंमें व सुन्दर आश्रमों और वनों व उपवनों में ॥ २६ ॥ व सुन्दरी घरकी बावलियों में और

सब और से शालाओं की मालाओं में चन्द्रमाकी उजियाली से भलीभांति पूर्ण दिशायें देख पड़ती हैं ॥ २७ ॥ और जिन में फूलेहुये कुमुदवाले तड़ाग शोभित हैं जैसे कि शरदऋतु में नक्षत्र गणों से व्याप्त आकाशस्थल होवे ॥ २८ ॥ और नदियां व सब तड़ाग तथा छोटे तड़ाग कुमुदती (कुमुदिनी) से व्याप्त होकर पु-
 श्वी मानो चन्द्रमा से संयुत हुई ॥ २९ ॥ जिसलिये सब समयों में कुमुदिनी प्रफुल्लित हुई उसी कारण यह कुमुदिनी पुरी हुई ॥ ३० ॥ सावधान होते हुये जो मनुष्य कुमुदती पुरी में श्राद्ध करते हैं उनके पितर कभी स्वर्ग से नहीं अलग होते हैं ॥ ३१ ॥ व अन्त्य श्राद्धको प्राप्त होता है और पितरोंको दियाहुआ दान अक्षय्य
 वर्तः ॥ चन्द्रज्योत्स्नासमापूर्णा दृश्यन्तेधवलीदिशः ॥ २७ ॥ कुमुदतीप्रफुल्लानि तडागानि विरेजिरे ॥ ज्योतिर्गणसमा
 कीर्णं शरदीवनभःस्थलम् ॥ २८ ॥ नद्यःसरांसिसर्वाणि वापीकूपसुपल्वलाः ॥ कुमुदत्यासमाकीर्णा आसीच्चन्द्रमसो
 मही ॥ २९ ॥ यस्मात्सर्वेषुकालेषु प्रफुल्लाचकुमुदती ॥ तस्मात्पद्मावतीह्येषा पुरीजाताकुमुदती ॥ ३० ॥ कुमुदत्यां
 नरायेतु श्राद्धंकुर्युःसमाहिताः ॥ नतेषांपितरःस्वर्गाच्चयवन्तेवैकदाचन ॥ ३१ ॥ अक्षयंलभतेश्राद्धं पितृणांदत्तमक्षय
 म् ॥ स्नानंदानंतथाहोमं देवताराधनंतथा ॥ ३२ ॥ यत्किञ्चित्क्रियतेकर्म तत्सर्वंचाक्षयंभवेत् ॥ एवंकुमुदतीजाता पु
 रीव्याससनातना ॥ ३३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेकुमुदतीप्रभावकथनं नामषट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५६ ॥
 सनत्कुमारउवाच ॥ अमरावतीयथाजाता पुरीह्येषाकुशस्थली ॥ शृणुव्यासमहाप्राज्ञ यथाब्रह्माब्रवीत्सुरान् ॥ १ ॥
 तथाहंसप्रवक्ष्यामि विस्तरेणतपोधन ॥ एकदाब्रह्मणादिष्टो प्रजार्थैर्ऋषिसत्तमः ॥ २ ॥ मारीचःकश्यपस्तेपे तपःप
 र्णोत्तमस्तपःपराधन ॥ ३१ ॥ जो कुछ कर्म इस कुमुदती पुरी में किया जाता है वह सब अक्षय होता है हे व्यासजी ! इस प्रकार
 होता है व स्नान, दान, होम तथा देवता का आराधन ॥ ३२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायंकुमुदतीप्रभावकथनं नामषट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५६ ॥
 सनातन कुमुदती पुरी हुई है ॥ ३३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायंकुमुदतीप्रभावकथनं नामषट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५६ ॥
 दो० । भयो अवन्तीपुरीकर जिमिअमरावति नाम । सत्तावनैवें में कछो सोइ चरित अभिराम ॥ सनत्कुमारजी बोले कि हे महाप्राज्ञ, व्यासजी ! जिसप्रकार यह
 कुशस्थलीपुरी अमरावती हुई है उसको मुनिये और जिसप्रकार ब्रह्माने देवताओं से कहा है ॥ १ ॥ हे तपोधन ! उसीप्रकार मैं विस्तार से भलीभांति कहूंगा एक

समय सन्तान के लिये ब्रह्मा से आज्ञा दियेहुये ऋषिश्रेष्ठ ॥ २ ॥ मरीचि के पुत्र कश्यपजीने बड़ा कठिन तप किया है व मनोहर महाकाल वनमें देवी समेत महर्षि कश्यप जीने ॥ ३ ॥ जितेन्द्रिय व पवन भक्षी तथा गिरेहुये पत्तोंको भोजन करनेवाले होकर तपस्या किया है और हजारवर्ष पूर्णहोनेपर आकाशवाणी बोली ॥ ४ ॥ कि हे द्विजोत्तम ! मेरे अतिउत्तम वचनको सुनिये हे सुव्रत ! जिसलिये फलको उद्योग कर तुम्हारी तपस्या तीव्रहुई है ॥ ५ ॥ उसीकारण तुम्हारी सन्तान तबतक रहैगी जबतक कि चन्द्रमा सूर्यरहैगे व तुम्हारी सन्तान तबतक यश समेत व पुत्रों तथा पौत्रों समेत पृथ्वी में रहैगी ॥ ६ ॥ और जिसलिये तुम्हारी पति-

रमदुष्करम् ॥ महाकालवनेरम्ये देव्यासहमहानृषिः ॥ ३ ॥ शीर्षपत्राशनस्तेपे वायुमर्द्धाजितेन्द्रियः ॥ पूर्णवर्षस हस्सेतु वाणुवाचाशरीरिणी ॥ ४ ॥ श्रूयतांभोद्विजश्रेष्ठ ममवाक्यमनुत्तमम् ॥ यस्मात्तेस्तितपस्तीव्रं फलमुद्यम्यमुब्र त ॥ ५ ॥ तस्मात्तेसन्ततिस्तावदू यावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥ तावत्तिष्ठतिमिदन्यां यशसापुत्रपौत्रकैः ॥ ६ ॥ अदितिस्तेस तीभार्या त्वयासहाचरत्तपः ॥ तस्मात्सर्वेषुकालेषु छायाभूतायशस्विनी ॥ ७ ॥ भविष्यन्तिसुराःसर्वे विष्णुचन्द्रपुरोग माः ॥ अमरानिज्जर्जरदेवा दिविख्याताभवन्त्विति ॥ ८ ॥ त्वंचापीहिऋषिश्रेष्ठ प्रजापतिरकल्मषः ॥ भविष्यसिनस न्देहो ममवाक्याद्द्विजोत्तम ॥ ९ ॥ इत्युक्त्वाचपुनर्देवीतत्रैवान्तरधीयत ॥ तदारभ्यपुरीव्यास कुशस्थलीमनुत्तमा म् ॥ १० ॥ कश्यपःसहदानिण्यासाग्निकःसमुपाश्रितः ॥ प्रजापिवदधेतस्मात्सदेवासुरमानुषा ॥ ११ ॥ मरीचिःकश्य

व्रता स्त्री अदितिजीने तुम्हारे साथ तप किया है उसीकारण सब समयों में वे यशस्विनी छायाभूत याने छायाकी नाई अनुगामिनी होवेंगी ॥ ७ ॥ और विष्णु व चन्द्रमादिक सब देवता अमर व वृद्धतारहित होवेंगे और देवता स्वर्ग में प्रसिद्ध होवेंगे ॥ ८ ॥ व हे ऋषिश्रेष्ठ, द्विजोत्तम ! तुम भी मेरे वचनसे पाप रहित प्रजापति होवेंगे इसमें सन्देह नहीं है ॥ ९ ॥ ऐसा कहकर फिर वहाँ पर देवी अन्तर्धान होगई तबसे लगाकर हे व्यासजी ! अतिउत्तम कुशस्थली पुरी में ॥ १० ॥ दत्त की कन्या अदिति समेत व अग्निसहित कश्यप जी आश्रित हुये हैं उसी कारण देवता दैत्य व मनुष्यों समेत प्रजा बढ़ते भये ॥ ११ ॥ मरीचि से कश्यप वैदाहुये

व उन से सब प्रतिष्ठित हुआ है व्यासजी ! जिसलिये देवताओं ने अमृत को पिया है उसी कारण अमर किये गये हैं ॥ १२ ॥ और उसी उत्तम महाकाल वन में नन्दनवन को प्राप्त होकर मनोरथ के वरदान को देनेवाली कामधेनु भलीभांति कहीं गई है ॥ १३ ॥ और वह भी सदैव यहापर महाकाल महेश्वर जी को सेवती है और वृक्षों में श्रेष्ठ पारिजात व प्रफुल्लित कमलोंवाला ॥ १४ ॥ बिन्दुसर कहा गया है और उत्तम मानस तड़ाग है जो कि हंसों व सारसों से व्याप्त तथा सदैव सिद्धों से सेवित है ॥ १५ ॥ व जो कि मोती व मणिगणों से संयुत तथा रत्नों के सोपानों से शोभित है और लालकमलों व कोकाबेली से उज्ज्वल यह महापद्म निधि है ॥ १६ ॥ और

पोजज्ञे ततः सर्वप्रतिष्ठितम् ॥ सुधापानकरादेवा व्यासतेनामराः कृताः ॥ १२ ॥ नन्दनंप्राप्य तत्रैव महाकालवनोत्तमे ॥ कामधेनुः समाख्याता मनोरथवरप्रदा ॥ १३ ॥ साप्यत्रैव सदा सेवेन महाकालं महेश्वरम् ॥ पारिजातं तत्तु श्रेष्ठं तथा चाम्लानपङ्कजम् ॥ १४ ॥ बिन्दुसरः समाख्यातं मानसं सरउत्तमम् ॥ हंससारसं सर्काणं सदा सिद्धनिषेवितम् ॥ १५ ॥ मुक्तामणिगणासक्तं रत्नसोपानशोभितम् ॥ निधिरेष महापद्मः कल्हारकुमुदोज्ज्वलः ॥ १६ ॥ यानिया निचिदिव्या नि सन्ति ब्रह्माण्डगोलके ॥ तानि सर्वाणि तिष्ठन्ति महाकालवने शुभे ॥ १७ ॥ तेनेतेनात्मयोगेन मानवाश्चात्र संस्थिताः ॥ तत्तद्देहास्तदाचारास्तद्रूपस्तत्पराक्रमाः ॥ १८ ॥ अन्योन्यंच समाकीर्णाः सर्वे चामरसन्निभाः ॥ विचरन्ति यथा देवाः पुरीमे तांजनाभुवि ॥ १९ ॥ सुराङ्गना समानार्थः सदैव स्थिरयौवनाः ॥ ईदृशीं च पुरो हृद्वा भुवि व्याससनातनाम् ॥ २० ॥ देवदानवगन्धर्वः किन्नरो रगराक्षसम् ॥ मुक्तिमुक्तिप्रदानित्या बहुकालफलप्रदा ॥ २१ ॥ अमराणां स्थिति

ब्रह्माण्ड गोलक में जो जो दिव्य वस्तु हैं वे सब उत्तम महाकाल वन में स्थित हैं ॥ १७ ॥ और उस उस आत्मयोग से मनुष्य यहापर भलीभांति स्थित हैं जो कि उस उस देहवाले और उनके आचारवाले तथा उनके रूपवाले और उनके पराक्रमवाले हैं ॥ १८ ॥ और आपस में मिले हुये सब देवताओं के समान हैं पृथ्वी पे इस पुरी में मनुष्य वैसेही धूमते हैं जैसे कि देवता हों ॥ १९ ॥ हे व्यासजी ! पृथ्वी में ऐसी सनातन पुरी को देखकर सदैव निश्चल यौवनवाली स्त्रियां देवांगनाओं के समान हैं ॥ २० ॥ और देवता, दानव, गन्धर्व, किन्नर, नाग व राक्षसोंको यह सनातन पुरी मुक्ति, मुक्ति दायिनी व बहुत कालतक फलको देनेवाली है ॥ २१ ॥ जिस

लिये यहां अमरों (देवताओं) की स्थिति है उसी कारण अमरावती हुई प्रसंग से आया हुआ बहुत ऐश्वर्यवाला जो पुरुष इस पुरी में ॥ २२ ॥ स्नान दानादिक करके सदाशिवदेवजीको देखता है उसको पुत्र से या धनसे भी कुछ दुर्लभ नहीं होता है ॥ २३ ॥ और समस्त सुखोंको पाता है व मरकर वह पुरुष शिवलोकको जाता है और इस चरित्रके पढ़ने व सुनने से भी मनुष्य शतरुद्रीके फलको प्राप्त होता है ॥ २४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचितायां भाषाटीकायामग रावतीनाम कथननाम सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५७ ॥

ह्यत्र तस्माज्जातामरावती ॥ एतस्यां महाभागः प्रसङ्गेन समागतः ॥ २२ ॥ स्नान दानादिकं कृत्वा पश्येद्देवं महेश्वरम् ॥ नतस्य दुर्लभं किञ्चित् पुत्रतो धनतोपि वा ॥ २३ ॥ सर्वभोगानवाप्नोति मृतश्चि शिवपुरं व्रजेत् ॥ पठनाच्छ्रवणाद्वापि शतरुद्रीफलं भेत् ॥ २४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेऽमरावतीनाम कथननाम सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५७ ॥

सनत्कुमार उवाच ॥ शृणु व्यास महाभाग पुरीक्षिषामरावती ॥ विशालाच समाख्याता सर्वलोकैषु गीयते ॥ १ ॥ तथाहं सम्प्रवक्ष्यामि ब्रह्मणा कथितम्पुरा ॥ गुह्याद्गुह्यतरं क्षेत्रं सर्वपापप्रणाशनम् ॥ २ ॥ उमयासहितो देव एक एवाभवद्वने ॥ ततो भूतगणास्सर्वे पश्चात्सर्वे सुरासुराः ॥ ३ ॥ विष्णुर्देशाकृतिर्यत्र देवस्यैलोक्यमातरः ॥ विनायकाश्च वैतालाः कूष्माण्डाभैरवादयः ॥ ४ ॥ कल्पोद्भेदाश्च लिङ्गाश्च चतुराशीतिज्योतिषाः ॥ चेन्नाणि चेन्नपालाश्च ऋद्धिस्सिद्धिस्त

दो० । यथा अवन्ती पुरीकर भयो विशाला नाम । अट्टावन अध्याय में सोइ चरित शिवधाम ॥ सनत्कुमारजी बोले कि महाभाग, व्यासजी ! सुनिये कि जिस प्रकार विशाला ऐसी कही हुई यह अमरावती पुरी सब लोकों में गानकी जाती है ॥ १ ॥ वैसेही मैं कहूंगा पुरातन समय ब्रह्माने सब पापोंको नाशनेवाले व गुप्तसे भी अधिक गुप्तक्षेत्र को कहा है ॥ २ ॥ पार्वती समेत एकही शिवदेवजी वनमें हुये हैं तदन्तर समस्त भूतगण पश्चात् सब देवता व दैत्य हुए हैं ॥ ३ ॥ और जहापर दश आकारवाले विष्णुजी व त्रिलोक की माताएं देवियां हैं व विनायक, वैताल, कूष्मांड व भैरवादिक हैं ॥ ४ ॥ व कल्पोद्भेद तथा चौरासी ज्योतिर्लिङ्ग हैं और क्षेत्र, क्षेत्रपाल-

ऋद्धि व सिद्धि है ॥ ५ ॥ और पितर, लोकपाल, सिद्ध व जो सिद्धिदायक हैं वे और बड़े ऐश्वर्यवान् ऋषि व निर्मल आशयवाली ऋषियों की स्त्रियाँ हैं ॥ ६ ॥ और किन्नर, देवता, गंधर्व व वरांगना अप्सराएं तथा जो सब पवनगण हैं व जो साध्यों के गण हैं ॥ ७ ॥ और यज्ञ व गुह्यक संज्ञक तथा पिशाच, नाग, राक्षस, चर व अचर प्राणियों ने ध्यान व मौन में भलीभांति आश्रित होकर ॥ ८ ॥ उन देवदेव पार्वती के पति शिवजीकी उपासना किया है उस समय उनको देखकर तब वे गिरिनिन्दनी पार्वती जी ॥ ९ ॥ संसारके आश्रयरूप शिवजीसे नम्र वचनसे बोलीं पार्वती जी बोलीं कि हे संसारधारक, संसारस्वामिन्, देवदेव, जगदीशजी ! ॥ १० ॥

किं वच ॥ ५ ॥ पितरोलोकपालाश्च सिद्धास्सिद्धिप्रदाश्च ये ॥ ऋषयश्चमहाभागा ऋषिपत्न्योमलाशयाः ॥ ६ ॥ किन्नरादेवगन्धर्वा अप्सरसोवराङ्गनाः ॥ मरुद्गणाश्च ये सर्वे साध्यानांचगणाश्च ये ॥ ७ ॥ यक्षागुह्यकसंज्ञाश्च पिशाचोरग राक्षसाः ॥ स्थावराजङ्गमास्सर्वे ध्यानमौनसमाश्रिताः ॥ ८ ॥ उपासाञ्चक्रेतस्य देवदेवस्योमापतेः ॥ तान्दृष्ट्वासात दादेवी पार्वतीगिरिजातदा ॥ ९ ॥ उवाचश्लक्षण्यावाचा शङ्करंजगदाश्रयम् ॥ पार्वत्युवाच ॥ देवदेवजगन्नाथजगद्धा रजगत्प्रभो ॥ १० ॥ पश्यएतान्महाभागान् ध्यायमानांस्तवाश्रितान् ॥ नतुपेक्ष्यान्पितात्वञ्च तपमानांस्तपोर्दिता न् ॥ ११ ॥ कल्पयत्वंमहाभाग एतेषामात्मनोहितम् ॥ यथायोग्यंवासनार्थं स्थानं परमशोभनम् ॥ १२ ॥ पुरीं कल्पय मेनाथ वासार्थं सर्वकामदाम् ॥ एषामेवासनास्वामिन् भवतांथदिरोचते ॥ १३ ॥ इति श्रुत्वा वचस्तस्याः पार्वत्याः पुरमेश्वरः ॥ कल्पयामासचपुरीं रम्यां सर्वमनोरमाम् ॥ १४ ॥ आत्मनोपमितां पुर्यां शम्भुस्सर्वात्मना तदा ॥ बहुयो

तुम पिताहो इन बहुत ऐश्वर्यवाले व ध्यान करतेहुए प्राणियों को देखिये जो कि छोड़ने योग्य नहीं हैं और तपस्या करते हुये व तपसे विकल हैं ॥ ११ ॥ हे महाभाग ! इनके व अपने बसने के लिये अति उत्तम व हितकारक यथायोग्य स्थानको कल्पित कीजिये ॥ १२ ॥ व हे नाथ ! मेरे बसने के लिये सब कामनाओं को देनेवाली पुरी को कल्पित कीजिये हे स्वामिन् ! यदि आपको रुचै तो यह मेरी इच्छा है ॥ १३ ॥ उन पार्वतीजी के ऐसे वचन को सुनकर उस समय सब यल

से परमेश्वर शिवजीने सबसे मनोहर सुन्दरी पुरीको निर्माण किया जोकि अपने समान व पुरयदाविनी तथा बहुत योजन चौड़ी व दिव्य और दिव्यजनको प्यारी ॥ १४ ॥ १५ ॥ व दिव्य अभिप्रायसे संयुत और दिव्य स्थानोंसे सुन्दरी तथा समस्त दिव्यगुणों से संयुक्त व विशाल तथा निर्मल और उत्तम है ॥ १६ ॥ व क्रय विक्रय (मोल ब बेच) से संयुत व बाज़ार, और अटारी चौतरोंवाली है और मन्दिर वगुहोंसे व्याप्त तथा राजमन्दिरों की पंक्तियों से शोभित है ॥ १७ ॥ व स्फटिक मणियों की भित्तियों से रचित तथा वैदूर्यमणिकी भूभिवाले और मूंगाओंके खम्भों से श्रेष्ठ तथा स्वर्ण के भूषणों से पूर्ण है ॥ १८ ॥ व कुब्ज अरुण मणिकी देहलीवाली

जनविस्तीर्णा दिव्यां दिव्यजनप्रियाम् ॥ १५ ॥ दिव्याभिप्रायसंयुक्तां दिव्यस्थानमनोरमाम् ॥ दिव्यसर्वगुणोपेतां विशालां विरांशुभाम् ॥ १६ ॥ क्रयविक्रयसम्पन्नां हृद्वाङ्मलकचत्वराम् ॥ बहुहर्म्यगृहाकीर्णां सौधपङ्क्तिविराजिताम् ॥ १७ ॥ स्फटिकाभित्तिरचितां वैदूर्यमणिभूमिकाम् ॥ प्रवालस्तम्भप्रवरां हेमाभरणसम्भराम् ॥ १८ ॥ आरक्तमणिदेहल्यां द्वारशाखाभिमण्डिताम् ॥ जाम्बूनदकपाटाभ्यां वज्रार्गलसुसंस्कृताम् ॥ १९ ॥ मणिरत्नसमाभूषितां जिरगृहान्तराम् ॥ घोषजालानिरम्याणि मुक्तादामविलम्बिनीम् ॥ २० ॥ हेमस्तम्भध्वजोपेतां पताकाचगृहेण कलशाश्च विराजन्ते मणिहेमयुतागृहे ॥ २१ ॥ वर्षीकूपतडागानि सरांसि विमलानि च ॥ पद्मकिञ्जल्कगन्धीनिराजन्ते जलजन्तुभिः ॥ २२ ॥ हंसकारण्डवाकीर्णां शिखरिण्डगणसेविताम् ॥ जलयन्त्रकृताधारां गृहवापीवनाकराम् ॥ २३ ॥

व द्वारशाखाओं से शोभित तथा सुवर्णके कण्टों से व हीरेकी अर्गला (जञ्जीर) से संस्कार की हुई है ॥ १६ ॥ और मणियों व रत्नोंके समान भूमि, द्वार, अंगनाई व घरके भीतरवाली है और जहां सुन्दर वज्रसमूह हैं और जिसमें मोतियोंकी झालर लटकती है ॥ २० ॥ और सुवर्ण के खम्भोंसे व ध्वजाओं से संयुक्त है और घर में पताका हैं व घर में मणियों व सुवर्णसे संयुक्त कलशा शोभित हैं ॥ २१ ॥ और बावली, कूप तड़ाग व कमलके केसरसे सुगन्धवाले निर्मल तड़ाग जल जन्तुओं से शोभित हैं ॥ २२ ॥ और हंसा व कारण्डव पक्षियोंसे व्याप्त तथा मयूरगणोंसे सेवित और जलयन्त्रों (फुहारों) से कियेहुये आधारवाली तथा गृह, बावली

व वनोंकी खानिवाली है ॥ २३ ॥ कहीं मयूर नाचते हैं व कहीं कोकिलायें कूजती हैं व झमरासे भक्षित पुष्पगुच्छोंवाली वनकी पंक्तियां हैं ॥ २४ ॥ व पुरुषों तथा स्त्रियों के समूहोंसे व्याप्त व वर्णों और आश्रमों से सेवित है और सुन्दर मन्दिरों के भीतर प्राप्त स्त्रियां देखने में तत्पर होकर शोभितहुई ॥ २५ ॥ और चन्द्रशाला याने अटारी के ऊपर बनेहुये मन्दिरों से कीहुई पंक्ति बन्दनवारोंकी नाई शोभितहै हे व्यासजी ! इसप्रकार अपने योगसे बसाईहुई सुंदरी पुरी है ॥ २६ ॥ जहां पर कुबेरके मन्दिर से चिह्नित व सुन्दरी तथा श्वेत अलका पुरी है जोकि राक्षसों से व्याप्त व पक्षियों से शोभित है ॥ २७ ॥ और वहापर उत्तम वरुणजी का स्थान व भयंकर

कचिन्मयूरानृत्यन्ति कचिक्कूजन्तिकोकिलाः ॥ २४ ॥ नरनारीगणकी
णीं वर्णाश्रमनिषेविताम् ॥ सुहर्म्यान्तर्गतानार्यो विलोकनपरावसुः ॥ २५ ॥ चन्द्रशालाकृताश्रेणी तोरणानीवशोभ
ते ॥ एवंव्यासपुरीरम्या आत्मयोगेनवासिता ॥ २६ ॥ यत्रालकापुरीरम्या कुबेरभवनाङ्किता ॥ धवलापुण्यजनैःकीर्णा
पक्षिभीरुपशोभिता ॥ २७ ॥ तत्रभोगवतीदिव्या वरुणलयमुत्तमम् ॥ नागकन्याभीरुद्राभिर्नागस्त्रीभिश्चसंकुला ॥
२८ ॥ संयमिनीपुरीश्रेष्ठा धर्मराजेनपालिता ॥ अनाचारजनैःपूर्णा कृताभूतविगर्हितैः ॥ २९ ॥ देवतानांपुरीरम्या
वामवेनाभिपालिता ॥ पुण्यस्त्रीनृगणाकीर्णा किन्नरोद्गीतमण्डिता ॥ ३० ॥ एवंविधानिरम्याणि बहुपुण्यतराणिच ॥
कचिद्रम्भाकृतद्वारा यवाङ्कुरघटाशुभा ॥ ३१ ॥ कचिद्वायन्तिगन्धर्वाः कचिन्तृयतिनर्तकी ॥ कचिद्वालाःपठन्ति
स्म वेदाध्ययनकाद्विजाः ॥ ३२ ॥ कचित्यज्ञानयजन्तिस्म यजमानास्सऋत्विजः ॥ कचिच्चावभृथस्नाने तद्दानानिप्र

नागकन्याओं तथा नागपक्षियों से संयुत नागपुरी है ॥ २८ ॥ और धर्मराज से पालित उत्तम यमपुरी है जोकि प्राणियों से निन्दित व आचार रहित जनोसे पूर्ण है ॥ २९ ॥ इस
२६ ॥ व इन्द्र से पालित सुन्दरी देवताओं की पुरी है जोकि पवित्र स्त्रियों व मनुष्यगणों से व्याप्त तथा किन्नरों के उच्चप्रकार के गानसे शोभित है ॥ ३० ॥ इस
प्रकार के बहुत पवित्र व सुन्दर स्थान हैं और कहीं कदली से किये द्वारावाली व यवों के अंकुरों से संयुत कलशोंवाली उत्तम पुरी है ॥ ३१ ॥ कहीं गन्धर्व गाते हैं व
कहीं नर्तकी (नाचनेवाली वेश्या) नाचती हैं और कहीं वेदाध्ययनवाले बालक ब्राह्मण पढ़ते हैं ॥ ३२ ॥ और कहीं ऋत्विजों समेत यजमान यज्ञोंको करते हैं व

कहीं यज्ञान्त स्नान में उसके दानों को करते हैं ॥ ३३ ॥ कहीं यज्ञोपवीत कर्महोताहै व कहीं विवाह और अग्निका परिग्रहण होताहै व कहीं अग्नीचादिक तथा पूर्त (तड़ागादि खनन) होताहै और कहीं यात्राकानिश्चय होताहै ॥ ३४ ॥ वैसेही कहीं पर विधिपूर्वक वावली, कूप व तड़ागोंका कर्म होताहै और कहीं वाचक कथाके प्रसंगों को कहताहै ॥ ३५ ॥ व उत्तम नगर में कहीं पर कविलोग कथा कहते हैं व कहीं मल्ल विरोध करते हैं कहीं नट नाचने में तत्पर हैं ॥ ३६ ॥ और मणियोंकी सोपान पंक्तियोंवाले तड़ाग शोभित है व सोलह वर्षवाली चञ्चल चपल वाला ॥ ३७ ॥ वहां जलके हरने में तत्पर है जोकि मणियों व सुवर्णके घटोंसे शोभित है हे व्यास

कुर्वते ॥ ३३ ॥ कचित्तूपनयनं कचिद्दिवाहाग्निपरिग्रहम् ॥ कचिदारामपूतैवै कचिद्यात्रावधारणम् ॥ ३४ ॥ वापीकूपत
डागानां तथैवविधिपूर्वकम् ॥ कचित्कथाप्रसङ्गाश्च वाचकःपरिशंसति ॥ ३५ ॥ कचिद्वाथाः प्रकुर्वन्ति कवयः पुरउत्त
मे ॥ कचिन्मल्लाविसृज्यन्ति नटानाट्यपराः कचित् ॥ ३६ ॥ तड़ागाश्चविराजन्ते मणिसोपानपङ्क्तयः ॥ चञ्चलाचपला
बालाश्यामाषोडशवर्षिकी ॥ ३७ ॥ वारिहारपरातत्र मणिहेमघटोत्कटा ॥ एवंव्यासपुरीरम्या निर्मितायोगमायया ॥
३८ ॥ शम्भुनासर्वपापघ्नी प्रियाप्रियचिकीर्षया ॥ विशालाबहुविस्तीर्णा पुण्यापुण्यजनाश्रया ॥ ३९ ॥ तस्मात्सर्वेषु
कालेषु सर्वलोकेषुगीयते ॥ विशालेतिसमाख्याता पुरीरम्यासनातनी ॥ ४० ॥ यत्रकुत्रस्थितोवापि सर्वावस्थाङ्ग
तोपिवा ॥ विशालेतिवदन्नित्यं शिवलोकमहीयते ॥ ४१ ॥ ईदृशीनपुरीव्यास सुविब्रह्माण्डगोलके ॥ विशालासदृ
शीचान्या भुक्तिमुक्तिप्रदान्तराम् ॥ ४२ ॥ पितृनुद्दिश्यकुर्वन्ति श्राद्धकालेनरास्तुयत ॥ तदक्षयंभवेतेषां पितृकल्पे

जी ! इसप्रकार शिवजी ने प्रिय करने की इच्छा से योगमायाके द्वारा सब पापों को नाशनेवाली व ध्यारी सुन्दरी पुरीको निर्माण किया जोकि विशाल व बहुत चौड़ी तथा पवित्र व पवित्रजनों से आश्रयवाली है ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ इसलिये सब कालोंमें विशाला ऐसी कहींहुई सुन्दरी व सनातनी पुरी सब लोकोंमें गानकीजाती है ॥ ४० ॥ जहां कहां भी स्थित व सब दशामें प्राप्तभी नित्य विशाला ऐसा कहताहुआ मनुष्यशिवलोक में पूजाजाता है ॥ ४१ ॥ हे व्यासजी ! पृथ्वी पै ब्रह्माण्ड गोलक में विशाला के समान मनुष्यों को भुक्ति मुक्तिदायिनी ऐसी अन्य पुरी नहीं है ॥ ४२ ॥ श्राद्धके समयमें पितरोंको उद्देश कर मनुष्य जो करते हैं उनका वह श्रद्धय होताहै

और पितृकल्प में गान किया जाता है ॥ ४३ ॥ जिन्होंने विशाला पुरी में प्रसंग से स्नान दानादिक किया है जहां कहीं भी प्राप्त वे मनुष्य मरकर शिवजी के स्थान को प्राप्त होते हैं ॥ ४४ ॥ वे धन्य व अत्यन्त पवित्र हैं कि जिनका प्रीति सदैव विशालापुरी में निश्चल रहती है और विशाला के फलको कहने के लिये सदैव शेषजी भी नहीं समर्थ हैं ॥ ४५ ॥ कथा के सुननेही से व कहे जाने से उसी क्षण महापातक से उपजा हुआ पाप छूट जाता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ४६ ॥ हे व्यासजी ! इस प्रकार कुरास्थली पुरी विशाला हुई है और प्रति कल्प में जिस प्रकार हुई है वैसे ही कहते हुये मुझसे सुनिये ॥ ४७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेऽष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५८ ॥

चर्गीयते ॥ ४३ ॥ स्नानदानादिकं यैस्तु विशालायां प्रसङ्गतः ॥ यत्र कुत्र गतास्ते वै मृतायान्ति शिवक्षयम् ॥ ४४ ॥ धन्याः पुण्यतमालोके प्रीतिर्षांसदाचलाः ॥ विशालायाः फलं शश्वच्चैषो वक्तुं शक्नुयात् ॥ ४५ ॥ कथाश्रवणमात्रेण वाच्यमानेन तत्त्वज्ञात् ॥ महापापोद्भवंपापं मुच्यते नात्र संशयः ॥ ४६ ॥ एवं व्यासपुरी जाता विशाला च कुशस्थली ॥ प्रतिकल्पं यथा जाता तथा मे शृणु माषत ॥ ४७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे विशालाभिधानकथननामोऽष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५८ ॥ * * * * *

माष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५८ ॥ * * * * *
सनत्कुमार उवाच ॥ शृणुष्व वावहितो व्यास कथामेकाग्रमानसः ॥ मया व्यासमुखात् प्राप्ता कल्पभेदकथा शुभा ॥ १ ॥ गुह्याद्गुह्यतरा श्रेष्ठा देया यस्य न कस्यचित् ॥ नास्तिकायकृतघ्नाय नाशिष्याय कदाचन ॥ २ ॥ एषा पुण्यतमा व्यास कथा पापहरा परा ॥ यस्याः श्रवणमात्रेण कल्पदोषो न बाधते ॥ ३ ॥ प्रमाणं कल्पपर्यन्तं ब्रह्मणः परमैष्ठिनः ॥ म

दो० । यथा अवन्ती पुरी कर प्रतिकल्पा भो नाम । उस ठीकें अध्याय में सोइ चरित अभिराम ॥ सनत्कुमारजी बोले कि हे व्यासजी ! एकाग्र मनवाले होकर व सावधान होते हुये तुम कथाको सुनो मैंने व्यासजी के मुखसे कल्पके भेदकी उत्तम कथाको पाया है । १ ॥ जोकि गुप्त से भी अधिक गुप्त व श्रेष्ठ है और जिस किसी को देने योग्य नहीं है और नास्तिक, कुतन्त्र व विनाशिय के लिये कभी न देना चाहिये ॥ २ ॥ हे व्यासजी ! यह कथा अति पवित्र व उत्तम तथा पापहरिणी है

कि जिसके सुननेहीसे कल्पका दोष बाधा नहीं करता है ॥ ३ ॥ सब मन्वन्तरों में व कहणों तथा कल्पान्तरों में परमेष्ठी ब्रह्माका कल्पपर्यन्त प्रमाण है ॥ ४ ॥ हेसत्तम ! जितनी संख्या प्रमाण कही गई है उसको सुनिये कि सूर्यनारायणजी मनुष्यों व देवताओं के दिनरात्रिका विभाग करते हैं ॥ ५ ॥ हे द्विजोत्तम ! उस गणना को ग्रहण कर संख्याको सुनिये कि पन्द्रह निमेषों की काष्ठा होती है और उनतीस काष्ठाओं की कला होती है ॥ ६ ॥ व तीस कलाओं का मुहूर्त होता है और उन तीस मुहूर्तोंसे विद्वानोंने दिनरात ऐसा कहा है व चन्द्रमा सूर्यकी गति कही गई है ॥ ७ ॥ नित्यइन सर्वा में सूर्यनारायणकी गतिके भेदसे मनुष्यों का वह दिनहोता है और वैसेही न्वन्तरेषुसर्वेषु कल्पकल्पान्तरेषुच ॥ ४ ॥ यावत्सङ्ख्यापरिमिता तावतीशृणुसत्तम ॥ अहोरात्रविभजतेसूर्योमानुषदैवतम् ॥ ५ ॥ तामुपादायगणनां शृणुसङ्ख्याद्विजोत्तम ॥ निमिपैःपञ्चदशभिः काष्ठास्त्रिंशत्तुताःकलाः ॥ ६ ॥ त्रिंशत्कलोमुहूर्तस्तु त्रिंशद्भिस्तैर्मनीषिणः ॥ अहोरात्रमितिप्राहुश्चन्द्रादित्यगतस्तथा ॥ ७ ॥ रवेर्गतिविशेषेण सर्वेष्वेतेषुनित्यशः ॥ तदहस्तुमनुष्याणां रात्रिश्चैवतुतादृशी ॥ ८ ॥ पञ्चामासाऋतूरव्दमयनंचप्रकीर्तितम् ॥ पितृणाञ्चैवदेवानांब्रह्मणश्चयथातथम् ॥ ९ ॥ यावत्सङ्ख्यासमाख्याता आयुरन्तश्चतादृशः ॥ अहोरात्राःपञ्चदश पक्षइत्यभिशाब्दितः ॥ १० ॥ पक्षौद्वौतौकृतोमासो मासौद्वावृत्तुरुच्यते ॥ अयनं तैस्त्रिभिः प्रोक्तमव्देहैश्चयनेस्मृतः ॥ ११ ॥ दक्षिणंचोत्तरञ्चैवं सङ्ख्यातत्त्वविशारदः ॥ मानेनानेनयोमासः पक्षद्वयसमन्वितः ॥ १२ ॥ पितृणांतदहोरात्रमितिकालविदोविदुः ॥ शुक्लपक्षस्त्वहस्तेषां कृष्णपक्षस्तुशर्वरी ॥ १३ ॥ कृष्णपक्षेत्विहश्राद्धं पितृणांवर्ततेततः ॥ मानुषेनतुमानेन यौवैसंवत्सरात्रि होती है ॥ ८ ॥ और पितरो, देवताओं व ब्रह्माका पक्ष, मास, ऋतु, वर्ष व अयन यथायोग्य कहा गया है ॥ ९ ॥ व जितनी संख्या कही गई है वैसेही आयुर्वल का अन्त है पन्द्रह दिनरात्रांका पक्ष ऐसा कहा गया है ॥ १० ॥ और उन दो पक्षोंका मास कहा गया है व दो महीनों की ऋतु कही जाती है और उन तीन ऋतुओं से अयन कहा गया है व संख्याके यथार्थ जाननेमें चतुर लोगोंने दक्षिण व उत्तर दो अयनों का वर्ष कहा है इस प्रमाणसे दो पक्षोंसे संयुक्त जो महीना है ॥ ११ ॥ १२ ॥ वह पितरों का दिन रात होता है ऐसा कालके जाननेवालोंने कहा है शुक्लपक्ष उन पितरों का दिन है व कृष्णपक्ष रात्रि है ॥ १३ ॥ उसीकारण इस संसार में

कुष्णपद्म में पितरों की श्राद्ध वर्तमान होती है मनुष्योंवाले प्रमाण से जो वर्ष कहा गया है ॥ १४ ॥ वह देवताओं का दिन रात्रि होता है और उत्तरायण दिन है व यथार्थ जाननेवाले विद्वानों से दक्षिणायन रात्रि कही गई है ॥ १५ ॥ और देवताओंवाला सौगुना वर्ष मनुका दिनरात्रि कहा गया है व दशगुना दिनरात्रि मनुका पक्ष कहा जाता है ॥ १६ ॥ पक्षसे दशगुना महीना होता है और बारहगुने महीनों से यथार्थ दर्शी विद्वानों ने मनुष्यों की ऋतु कहा है ॥ १७ ॥ और उन छा ऋतुओं से वर्ष कही गई है उसीसे संख्या बांधी जाती है व चारही हजार वर्ष सतयुग होता है ॥ १८ ॥ और उत्तनीही सन्ध्या होती है व वैसाही सन्ध्यांश होता है और

रस्मृतः ॥ १४ ॥ देवानांतदहोरात्रं दिवाचैवोत्तरायणम् ॥ दक्षिणायनं स्मृतारात्रिः प्राज्ञैस्तत्त्वार्थकोविदैः ॥ १५ ॥ दिव्यमबंशतगुणमहोरात्रं मनोस्मृतम् ॥ अहोरात्रं दशगुणं मानवः पक्ष उच्यते ॥ १६ ॥ पञ्चादशगुणो मासो मासं द्वादशभिर्गुणैः ॥ ऋतुर्मनूनां सम्प्रोक्तः प्राज्ञैस्तत्त्वार्थदर्शिभिः ॥ १७ ॥ षड्भिस्तैर्वर्षाख्यातस्तेन सङ्ख्या निबध्यते ॥ चत्वार्येव सहस्राणि वर्षाणान्तु कृतं युगम् ॥ १८ ॥ तावती तु भवेत्सन्ध्या सन्ध्यांशश्च तथा विधः ॥ त्रीणिवर्षसहस्राणि त्रेतायाः परिमाणतः ॥ १९ ॥ तस्याश्च तावती सन्ध्या सन्ध्यांशश्च तथा विधः ॥ तथा वर्षसहस्रे द्वे द्वापरं परि कीर्तितम् ॥ २० ॥ तस्यापि तावती सन्ध्या सन्ध्यांशश्च तथा विधः ॥ कलिर्वर्षसहस्रन्तु संख्यातो व्रमनीषिभिः ॥ २१ ॥ तस्य तावतिकासन्ध्या सन्ध्यांशश्च तथा विधः ॥ एषा द्वादशसहस्री युगसंख्या प्रकीर्तिता ॥ २२ ॥ दिव्येनानेन मानेन युगसंख्या निबोधमे ॥ ससर्जसपुनस्तात जगत्सर्वमिदं तम् ॥ २३ ॥ कृतं त्रेता द्वापरञ्च कलिञ्चैव चतुर्गुणम् ॥ युगं तदेकसप्त

तीन हजार वर्ष त्रेताका प्रमाण है ॥ १९ ॥ और उसकी उत्तनीही सन्ध्या होती है व वैसाही सन्ध्यांश होता है और दो हजार वर्ष द्वापर कहा गया है ॥ २० ॥ और उसकी भी उत्तनीही सन्ध्या व वैसाही सन्ध्यांश है और इस विषय में विद्वानों ने हजार वर्ष कलियुगकी संख्या किया है ॥ २१ ॥ और उसकी उत्तनीही सन्ध्या व वैसाही सन्ध्यांश है यह बारह हजार युगकी संख्या कही गई है ॥ २२ ॥ इस दिव्य याने देवतावाले प्रमाणसे सुझसे युगकी संख्या को जानिये हे तात ! फिर उन ब्रह्मा ने

इस सब विस्तारित संसारको रचा है ॥ २३ ॥ हे द्विजोत्तम ! सतयुग, त्रेता, द्वापर व कलियुग यह चारों युग हैं और इकहत्तर से गुना किया हुआ वह युग ॥ २४ ॥ गणना के प्रयोजन में चतुर मनुष्यों से मन्वन्तर ऐसा कहा गया है और वह अयन भी कहा गया है व दक्षिण, उत्तर दो अयन होते हैं ॥ २५ ॥ हे संसार के स्वामी ! इसके भलीभांति प्राप्त होने पर मनु नाश होजाते हैं तदनन्तर इतनेही समयनक अयन मनु होता है ॥ २६ ॥ और नृपेन्द्र मनु के कीर्तने पर वह संवत्सर कहा गया है और यथार्थदर्शी मनु ने उसीको अयन कहा है ॥ २७ ॥ और वही ब्रह्मा का दिन कहा गया है व कल्प ऐसा कहा जाता है और विद्वानों से हजार युगतक वह रात्रि

त्या गुणितां द्विजसत्तम ॥ २४ ॥ मन्वन्तरमिति प्रोक्तं संख्यानार्थं विशारदः ॥ अयनं चापि तत्प्रोक्तं द्वयनेदक्षिणोत्तरे ॥ २५ ॥ मनुः प्रलीयते ह्यत्र सम्प्राप्ते जगतः प्रभो ॥ ततोपरो मनुः कालमेतावन्तं भवत्युत ॥ २६ ॥ समतीते तुराजेन्द्रे प्रोक्तस्सं वत्सरस्सर्वे ॥ तदेव चायनं प्रोक्तं मुनिना तत्त्वदर्शिना ॥ २७ ॥ ब्रह्मणस्तदहः प्रोक्तः कल्पश्चोत्तिसमुच्यते ॥ सहस्रयुगपर्यन्तं सानिशा प्रोच्यते बुधैः ॥ २८ ॥ निमज्जत्यथ तत्रोर्वी स शैलवनकानना ॥ तस्मिन् युगसहस्रे तु पूर्णैर्मरुतसत्तम ॥ २९ ॥ ब्राह्मणो दिवसपर्यन्तं कल्पो निःशेष उच्यते ॥ युगानि समतीतानि साग्राणिकथितानि ते ॥ ३० ॥ कृतत्रेता नित्युक्तानि मनोरन्तरमुच्यते ॥ चतुर्दशैते मनवः कथिताः कीर्तिवर्द्धनाः ॥ ३१ ॥ वेदेषु सपुराणेषु सर्वेषु प्रभवैः प्रजानाम्पतयो व्यास धन्यमेषां प्रकीर्तितम् ॥ ३२ ॥ मन्वन्तरेषु संहारास्संहरान्तेषु सम्भवाः ॥ नशक्यमन्तस्तेषां वै वक्तुं वर्षशतैरपि ॥ ३३ ॥ विसर्गाश्च प्रजानां वै संहारोऽस्य च भारत ॥ मन्वन्तरेषु संहारः श्रूयते भरतर्षभ ॥ ३४ ॥

कही जाती है ॥ २८ ॥ हे भरतोत्तम ! इसके अनन्तर उस रात्रि में पर्वत, जल व वनों समेत पृथ्वी डूब जाती है और उस हजार युग के पूर्ण होने पर ॥ २९ ॥ दिन पर्यन्त ब्रह्मा का समस्त कल्प कहा जाता है कुछ अधिक बीते हुये युग तुमसे कहे गये ॥ ३० ॥ और सतयुग व त्रेता संयुक्त युग मन्वन्तर कहा जाता है यश के बढ़ाने वाले ये चौदह मनु कहे गये ॥ ३१ ॥ हे व्यासजी ! पुराणों समेत सब वेदों में प्रजाओं के पति समर्थ हैं और इनका कीर्तन धन्य है ॥ ३२ ॥ व मन्वन्तरों में संहार और संहार के अन्तों में उत्पत्तियां होती हैं व उनका अन्त सैकड़ों वर्षों से भी नहीं कहा जा सकता है ॥ ३३ ॥ हे भारत ! प्रजाओं की सृष्टियां व उनका संहार होता है और

हे अरतर्षभ ! मन्वन्तरी में संहार सुनाजाता है ॥ ३४ ॥ जहां कि तपस्या, ब्रह्मचर्य व शाल से संयुक्त सब देवता सप्तर्षियों समेत स्थित होते हैं ॥ ३५ ॥ ब्रह्मर युग पूर्ण होने पर सब कल्प कहाजाता है उसमें समस्त प्राणी सूर्यनारायण की किरणों से जलजाते हैं ॥ ३६ ॥ और ब्रह्मा को आगे कर आदित्यगणों समेत ब्राह्मण (सप्तर्षि) सुरोत्तम प्रभु नारायण विष्णुजी में प्रवेश करते हैं ॥ ३७ ॥ वे अव्यक्त तथा सनातन देवजी कल्पान्तों में बार २ सब प्राणियों के रचनेवाले हैं और उनका यह सब संसार है ॥ ३८ ॥ हे व्यासजी ! महादेव व ब्रह्मा संयुक्त वही विष्णुजी विद्यमान रहते हैं व उस ईश्वर ने मजोहर महाकाल व्रज में निवास किया है ॥ ३९ ॥ हे व्यास

यत्र तिष्ठन्ति तैव देवास्सर्वे सप्तर्षिभिस्सह ॥ तपसा ब्रह्मचर्येण श्रुतेन च समन्विताः ॥ ३५ ॥ पूर्ण युग सहस्रे तु कल्पो निश्शेष उच्यते ॥ तत्र सर्वाणि भूतानि दधान्यादित्यरश्मिभिः ॥ ३६ ॥ ब्रह्माणमग्रतः कृत्वा सहादित्यगणैर्द्विजाः ॥ प्रविशन्ति सुरश्रेष्ठं हरिन्नारायणं प्रभुम् ॥ ३७ ॥ सप्तष्टासर्वभूतानां कल्पान्तेषु पुनः पुनः ॥ अव्यक्तं शश्वतो देवस्तस्य सर्वमिदं जगत् ॥ ३८ ॥ स एव विद्यते व्यास महेश विधि संयुतः ॥ महाकालवने रम्ये वासं चक्र स ईश्वरः ॥ ३९ ॥ प्रलयो न बाधते व्यास महाकालवने उत्तमे ॥ कल्पे कल्पे च वै रम्या पुरी ह्येषा कुशस्थली ॥ ४० ॥ निरामया निरातङ्का निर्विकारा युगे युगे ॥ मार्कण्डेयोपदिष्टानि कल्पानि सम्भवन्ति च ॥ ४१ ॥ अत्रैव च वने रम्ये ब्रह्मलोकपितामहः ॥ प्रजानां पतयो ये ते देवाः प्राचेतसस्तथा ॥ ४२ ॥ मरीचिः कश्यपो रुद्रो ये चान्ये भार्गवा दयः ॥ कल्पादौ सृजते लोकाश्चराचर यथा तथा ॥ ४३ ॥ एवमादौ पुरा व्यास कल्पं कल्पान्तं कंसदा ॥ वाराहो वामनो विष्णुः पितृणां वितथैव च ॥ ४४ ॥ कल्पभेदा

जी ! महाकाल नामक उत्तम वन में प्रलय बाधा नहीं करता है और प्रतिकल्प में यह कुशस्थली पुरी सुन्दरी होती है ॥ ४० ॥ व युग २ में व्याधिरहित व शंकाहीन तथा विकार रहित होती है और मार्कण्डेयजी से आज्ञा दिये हुये कल्प होते हैं ॥ ४१ ॥ इसी सुन्दर वन में लोकों के पितामह ब्रह्माजी हैं और जो प्रजाओं के पति हैं वे प्रचेताओं के पुत्र देवजी हैं ॥ ४२ ॥ व मरीचि, कश्यप, रुद्र व जो अन्य रुद्रादिक हैं वे वर्तमान हैं कल्प के आदि में वे ब्रह्माजी यथायोग्य चराचर लोकों को रचते हैं ॥ ४३ ॥ हे व्यासजी ! पुरातन समय इसी प्रकार पहले सदैव कल्प व कल्पान्त होता है वाराह, वामन व विष्णु ये पितरों के ॥ ४४ ॥ कल्प भेद उत्तम महाकाल

वनमें कहेगये हैं हे द्विजोत्तम ! चौरासी कल्प हुये हैं ॥ ४५ ॥ व हे सत्तम ! उतनेही ज्योतिर्लिङ्ग वन में स्थित हैं और मही सागर व पर्वत फिर उत्पन्न होते हैं व फिर नाश होजाते हैं ॥ ४६ ॥ और बार २ होवेंगे व यह पुरी अचल कहीगई है उसीकारण सब कालों में व सब लोकोंमें गान कीजाती है ॥ ४७ ॥ व हे व्यासजी ! पृथ्वी में प्रतिकल्पा संज्ञक ऐसी वह पुरी होवैगी कि जिसमें इन्द्रियों के दमन करनेवाले मनुष्य हैं व स्नान, दानादिक ॥ ४८ ॥ और जप व होम तथा जिन पितरों को उद्देश कर श्राद्ध दियाजाता है करोड़ों सौ कल्पोंसे भी उनकी श्रावृत्ति नहीं होतीहै ॥ ४९ ॥ वैशाख महीने में पूर्णमासी तिथिमें मनुष्य प्रतिकल्पा पुरीमें प्राप्तहोकर

स्समाख्याता महाकालवनेशुभे ॥ चतुराशीतिकल्पानि सञ्जातानिद्विजोत्तम ॥ ४५ ॥ तावन्तिज्योतिर्लिङ्गानि व नेतिष्ठन्तिसत्तम ॥ पुनर्जातापुनर्नष्टा महीसागरपर्वताः ॥ ४६ ॥ पुनःपुनर्भविष्यन्ति पुरीह्येषाचलास्मृता ॥ तस्मात्सर्वेषुकालेषु सर्वलोकेषुगीयते ॥ ४७ ॥ प्रतिकल्पेति संज्ञासा भुवि व्यासमभविष्यति ॥ यस्याञ्चमानवादान्ताः स्नानदानादिकंतथा ॥ ४८ ॥ जपं होमं तथा श्राद्धं पितृनुद्दिश्य दीयते ॥ न तेषाम्पुनरावृत्तिः कोटिकल्पशतैरपि ॥ ४९ ॥ प्रतिकल्पा मनुप्राप्य दृष्ट्वा देवं महेश्वरम् ॥ वैशाखे पूर्णमास्यां वै स्नापयेदेकवासरम् ॥ ५० ॥ प्रसङ्गतोरजः क्लान्तो क्षिप्राम्भसि च मानवः ॥ न तस्य दुष्कृतं किञ्चिद्विष्णुलोकं गच्छति ॥ ५१ ॥ मन्वन्तरसहस्रेषु काशीवासेन यत्फलम् ॥ तत्फलं प्राप्नुते जन्तुः प्रतिकल्पाक्षणादपि ॥ ५२ ॥ प्रतिकल्पे च कल्पान्ते सदैवासीति पुरीशुभा ॥ तस्मात्सर्वजनैः ख्याता प्रति कल्पाद्विजो म ॥ ५३ ॥ य एतस्यां महाभागाः प्रीतिं कुर्वन्ति मानवाः ॥ न तेषां कल्पभेदोऽयं स्वप्नवज्जायते क्षणात् ॥ ५४ ॥

न तक नहवात्रै ॥ ५० ॥ और धूलिसे ग्लानिको प्राप्त जो मनुष्य प्रसंग से शिप्रानर्दीके जलमें स्नान करता है उसके कुछ पातक नहीं जाताहै ॥ ५१ ॥ हजारों मन्वन्तरोंमें काशीवाससे जोफल मिलता है उसी फलको प्राणी प्रतिकल्पा पुरी क्षणभर से भी प्राप्तहोताहै ॥ ५२ ॥ कल्पान्त में सदैव यह उत्तम पुरी हुई है उसी कारण सब मनुष्यों से प्रतिकल्पा कही गई है ॥ ५३ ॥ बहुत ऐश्वर्यवाले जो

पुरुष इराभे प्रीति करते हैं उनके यह कल्पभेद नहीं होता है और क्षणभर में स्वप्न की नाई होता है ॥ ५४ ॥ और प्रतिकल्पा से उपजी हुई पवित्र व उत्तम कथा को जो मनुष्य सुनता है व बड़े यत्न से सुनाता है वह ब्रह्महत्या को नाश करता है ॥ ५५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणऽवन्तीखण्डेवीदयलुमिश्रविरचितायां भाषाटीका ॥
याप्रतिकल्पाभिधानकथनं नमैकोनषष्ठितमोऽध्यायः ॥ ५६ ॥ * ॥ * ॥ * ॥
दोहा । वैष्णव अरु माहेश ज्वर भे शिप्रा महं शान्त । सोइ साठि अध्याय में वर्णित चरित सुकान्त ॥ सनत्कुमारजी बोले कि हे अनघ व्यास जी ! इसप्रकार

यः शृणोति कथां पुण्यां प्रतिकल्पोद्भवां शुभाम् ॥ श्रावयेद्वा प्रयत्नेन ब्रह्महत्यां व्यपोहति ॥ ५५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे

॥ * ॥ * ॥

ऽवन्तीखण्डे प्रतिकल्पाभिधानकथनन्नामैकोनषष्ठितमोऽध्यायः ॥ ५९ ॥ * ॥
सनत्कुमार उवाच ॥ एवं व्यास पुरीषम्या नाम भूतासनातनी ॥ युगेयुगे यथा जाता तथा ख्याता मयानघ ॥ १ ॥ व्यास उवाच ॥ भूयस्तु श्रोतुमिच्छामि तत्तत्वेदविदांवर ॥ शिप्रायाश्च कथां पुण्यां पवित्रां पापहारिणीम् ॥ २ ॥ सुन्दरकण्ड समाख्यातं पिशाचमोचनं तथा ॥ नीलगङ्गाहतिप्रोक्ता कर्कराजमतः परम् ॥ ३ ॥ पुष्कराणि च सर्वाणि गयातीर्थमनुत्तमम् ॥ गोमती कुण्डमाख्यातं नाम्ना धर्मसरस्तथा ॥ ४ ॥ ख्यातं सङ्गमजं तीर्थं शनेर्जन्म कथाशुभा ॥ च्यवनाश्रमं च यावार्ता तथा नागालये शुभे ॥ ५ ॥ पुरुषोत्तममहिमानं कालेकेन कथं भवेत् ॥ एतद्देदितुमिच्छामि यत्ते मनसि वर्तते ॥ ६ ॥

यः पवित्र व हुयेनामवाली व मनोहर तथा सनातनी पुरी प्रतियुग में जिसप्रकार हुई है उसी भांति सुभक्ते कहींगई ॥ १ ॥ व्यासजी बोले कि हे वेदविदांवर ! मैं पवित्र व पुण्यदायिनी तथा पापहारिणी शिप्रा की कथा को तुमसे फिर सुनना चाहता हूँ ॥ २ ॥ कि सुन्दरकण्ड व पिशाचमोचन तीर्थ कहा गया है और नीलगंगा ऐसी कही हुई व इसके उपरान्त कर्कराज तीर्थ कहा गया है ॥ ३ ॥ और सब पुष्कर व अतिउत्तम गयातीर्थ तथा गोमती कुण्ड कहा गया है व धर्मसर नामक है ॥ ४ ॥ और संगम से उपजाहुआ तीर्थ कहा गया है व शनिश्चर के जन्म की उत्तम कथा और च्यवन के आश्रम में व उत्तम नागस्थान में जो वार्ता हुई है ॥ ५ ॥ और पुरुषोत्तम

की महिमा को कहिये कि वह समय में किससे किसप्रकार होती है मैं इसको जानना चाहता हूँ जो कि तुम्हारे मनमें वर्तमान है ॥ ६ ॥ सनत्कुमारजी बोले कि हे महाभाग व्यासजी ! पापहारिणी उत्तम कथा को सुनिये कि जिसप्रकार उत्तम महाकाल वनमें शिप्रानदी हुई है ॥ ७ ॥ हे वत्स ! भूतल में शिप्रानदी समान नदी नहीं है कि जिसके किनारे ज्ञानभर में मुक्ति होजाती है बहुत दिनोंतक सेवा से क्या है ॥ ८ ॥ वैकुण्ठ में ज्ञिप्रा व स्वर्ग में ज्वरम्भी नामक होती है और यमद्वार में पापघ्नी व पाताल में श्रमृत संभवा नामक है ॥ ९ ॥ और वाराहकल्प में विष्णुदेहा ऐसे नाम से कही गई है व श्रवन्तीपुरी में कामधेनु से उपजाहुई शिप्रानदी कहीगई है ॥ १० ॥

सनत्कुमारउवाच ॥ शृणुव्यासमहाभाग कथांपापहरांपराम् ॥ यस्मिन्कालेयथाजाता महाकालवनेशुभे ॥ ७ ॥
नास्तिवत्समहीपृष्ठे शिप्रायाः सदृशी नदी ॥ यस्यास्तीरे ज्ञानमुक्तिः किञ्चिरात्सेवनेनैव ॥ ८ ॥ वैकुण्ठे जायते क्षिप्रा
ज्वरम्भी च सुरालये ॥ यमद्वारे च पापघ्नी पातालेश्च मृतसम्भवा ॥ ९ ॥ वाराहकल्पे प्रोक्ता विष्णुदेहेति नामतः ॥ शिप्रा व
न्यांसमाख्याता कामधेनुसमुद्भवा ॥ १० ॥ व्यासउवाच ॥ विचित्रमिदमाख्यातं भगवन् नृषिसत्तम ॥ वक्तुमर्हसि चि
प्रायस्समासेन कथां शुभाम् ॥ ११ ॥ सनत्कुमारउवाच ॥ ब्रह्मकपालमादाय भिचार्यव्यचरन्महीम् ॥ महादेवो विशु
द्धात्मा सर्वलोकेषु सर्वतः ॥ १२ ॥ अप्राप्तमिच्छो भिचार्यो वैकुण्ठमगमद्विभुः ॥ गतस्त्वातिथ्यवेलायां भ्रमन्देवो यत
स्ततः ॥ १३ ॥ लोकनिन्दाप्रः क्रुद्धः क्षुधितो बहुवासरैः ॥ भिजान्देहीति भो ब्रह्मन् क्षुधितो हंसमागतः ॥ १४ ॥ कपालं
चक्रे कृत्वा इत्युवाच पुनः पुनः ॥ गृह्यतां हरिभिर्ज्ञान्ते ददामीति हरिस्तदा ॥ १५ ॥ इत्युक्त्वा करमुद्यम्य तर्जन्यङ्गुलिमद
व्यासजी बोले कि हे ऋषिश्रेष्ठ, भगवन् ! यह विचित्र कहागया और तुम क्षिप्रानदी की उत्तम कथा को संक्षेप से कहने योग्य हो ॥ ११ ॥ सनत्कुमारजी बोले कि
पवित्र चित्तवाले महादेवजी ब्रह्मा के कपाल को लेकर भिक्षा के लिये सब लोकों में सब ओर भ्रमते भये ॥ १२ ॥ और भिक्षा को न पायेहुये भिन्नार्थी स्वामी शिव-
देवजी जहाँ तहाँ घूमते हुये आतिथ्य समय में वैकुण्ठ को गये ॥ १३ ॥ जो कि लोक की निन्दा में तत्पर व क्रोधित तथा बहुत दिनों से क्षुधित थे उन्होने यह कहा
कि हे ब्रह्मन् ! भिक्षा को दीजिये मैं क्षुधित आया हूँ ॥ १४ ॥ हाथ में कपाल को कर के यह बार २ कहा व हे शिवजी ! ग्रहण कीजिये मैं भिक्षा तुम को देता हूँ उस

समय विष्णुजी ने ॥ १५ ॥ यह कहकर व हाथ को उठाकर तर्जनी (अंगूठे के पासवाली) अंगुली को दिखलाया तब क्रोधित शिवजीने क्रोधसे त्रिशूलसे नारा ॥ १६ ॥ तब अंगुली से उपजाहुआ बहुत रक्त बहचला और उससे शिवजीके हाथ में स्थित पात्र शीघ्रही पूर्ण होगया ॥ १७ ॥ तब उबलते हुये पात्रसे सब ओर धारा उत्पन्न हुई और उस स्थानसे रक्त की धारसे उपजी हुई शिप्रानदी उत्पन्न हुई ॥ १८ ॥ और त्रिलोक को पवित्र करनेवाली नदी शीघ्रही वैकुण्ठ से उत्पन्नहुई इसप्रकार नदियों में श्रेष्ठ शिप्रानदी तीनों लोकोंमें प्रसिद्धहुई ॥ १९ ॥ व हे व्यासजी ! जिस प्रकार ज्वरघ्नी कही गई है मैं वैसेही कहता हूँ कि जब अनिरुद्ध से अपमान किये शयत ॥ तदारुद्रस्समाधमातस्त्रिशूलेनाहनद्रुषा ॥ १६ ॥ तदाङ्गुलिसमुद्भूतं बहुशुश्रावशोणितम् ॥ पूर्णपात्रंचतेनाशु शङ्करस्यकरेस्थितम् ॥ १७ ॥ तदोद्वेलितपात्राद्दे धाराजातासमन्ततः ॥ तत्रस्थानात्समुद्भूता चिप्रासुग्धारसम्भवा ॥ १८ ॥ वैकुण्ठाच्चाभवत्सद्यो नदीत्रिलोक्यंपावनी ॥ एवंशिप्रासरिच्छेष्टा त्रिषुलोकेषुविश्रुता ॥ १९ ॥ ज्वरघ्नीचयथा प्रोक्ता तथाव्यासब्रवीम्यहम् ॥ यदाबाणासुरोदैत्यः कृष्णेनसहसंयुगे ॥ २० ॥ योधयामासदैत्येन्द्रोऽनिरुद्धकृतहेतु नः ॥ सहस्रबाहुभिर्वीरो नानाप्रहरणोद्यतः ॥ २१ ॥ तस्मात्कुद्धोवासुदेवः चक्रमादायसत्वरः ॥ चिच्छेददोस्सहस्रन्तु क्षुरप्रेणाशुगामिना ॥ २२ ॥ सतदाभग्नसङ्कल्पश्चिन्नदोश्चरणार्दितः ॥ युद्धात्पराङ्मुखोभूत्वा शङ्करंशरणंययौ ॥ २३ ॥ तदागतंमहादैत्यं समीपेभयविक्लमम् ॥ विलोक्यकृपयाविष्टो गतस्सङ्ग्राममूर्द्धनि ॥ २४ ॥ क्षित्वाबाहुमहस्रं वै दैत्यराजस्यसंयुगे ॥ क्रुद्धःकृष्णोमहाबाहुः परमेनान्तकोबली ॥ २५ ॥ स्थितोयत्राचलोव्यास गतस्तत्रमहेश्वरः ॥ हुये बाणासुर दैत्यने समर में कृष्णके साथ हजार मुजाओं से युद्ध किया जो कि दैत्यो में श्रेष्ठ व वीर तथा अनेक भांतिके अस्त्रों को उत्राये था ॥ २० ॥ २१ ॥ तब उसी कारण शीघ्रता समेत क्रोधित वासुदेवजी ने चक्रको लेकर शीघ्रगामी क्षुरप्र अस्त्र से हजार मुजाओं को काटडाला ॥ २२ ॥ तब नष्ट संकल्पवाला व कटी मुजाओंवाला व पादपीडित तथा समर से विकल बाणासुर युद्धसे विकल होकर शंकरजी की शरण में गया ॥ २३ ॥ तब डरसे विकल समीप आयेहुये महादैत्य को देखकर दया रंयुत महादेवजी समर शिरसे गये ॥ २४ ॥ दैत्यराज बाणासुर की हजार मुजाओंने काटकर शत्रु सेनाके नाशक व बलवान् महाभुज श्रीकृष्णजी क्रोधितहुये ॥ २५ ॥

हे व्यासजी ! जहांपर निश्चल श्रीकृष्णजी स्थित थे जहांपर महादेवजी गये और शरसमूहों को फेंकतेहुये उन्होंने ने श्रीकृष्णजी को मनाकिया ॥ २६ ॥ वे दोनों प्राप्तहोकर समस्त प्राणियों को भयंकर तथा बड़ेविकराल शस्त्रास्त्रों से आपसमें भयानक युद्धकर ॥ २७ ॥ उस समय श्रीकृष्णजी ने शिवजी को मारने की इच्छा से वैष्णव अस्त्र को संधानकिया तब श्रीकृष्णजी के प्राणोंको हरने में उत्कण्ठित शिवजीने सबको संहार करनेवाले पाशुपत नामक अस्त्रको सन्धान किया तब सब लोकों में हाहाकार उत्पन्न हुआ सुनाजाता था ॥ २८ ॥ फिर श्रीकृष्णजी ने महादेवजी के ऊपर मोहन अस्त्र को छोड़ा तब देवमाया के कारण उस अस्त्र से शिवजी वारयामासंकृष्णवै शरौघांश्रसमाकिन् ॥ २६ ॥ अन्योन्यंतौसमासाद्य युद्धं कृत्वा चदारुणम् ॥ शस्त्रास्त्रैश्च महाघोरैस्सर्वप्राणिभयङ्करैः ॥ २७ ॥ वैष्णवास्त्रं तदा कृष्णस्सन्दधे हरजिघांसया ॥ पाशुपतञ्च नामास्त्रं सर्वसंहारकारकम् ॥ २८ ॥ सन्दधे वै तदा शम्भुः कृष्णप्राणहरोत्सुकः ॥ हाहाकारस्तदा जातस्सर्वलोकेषु श्रूयते ॥ २९ ॥ मोहनास्त्रपुनः कृष्णो हरो परिमुमोच ह ॥ तेनास्त्रेण तदा शम्भुर्माहितो देवमायया ॥ ३० ॥ जृम्भमाणः स्थितस्संख्ये किञ्चित्कालं मुहुर्मुहुः ॥ लब्धसंज्ञः पुनर्जातो यदा रुद्रो महाहवे ॥ ३१ ॥ तदा क्रोधाभिभूतेन कृतो माहेश्चरो ज्वरः ॥ ललाटफलकात्सद्यो वीरभद्रो महाबलः ॥ ३२ ॥ त्रिनत्रस्त्रिशिरोहस्वस्त्रिपादो वक्त्राकृतिः ॥ क्षुद्रोजटिलभस्माङ्गो महाव्याधिदुरत्ययः ॥ ३३ ॥ कृष्णसेनां समासाद्य महादेवेन प्रेरितः ॥ प्राणिनां कदनं चक्रे सर्वेषां कृष्णसङ्गिनाम् ॥ ३४ ॥ पराङ्मुखपराभगना ज्वराभिघातपीडिता ॥ वभूव सहसा व्यास सेनाकृष्णेन प्रालिता ॥ ३५ ॥ तथाभूतां समा लोक्य जृम्भमाणं रुजादिताम् ॥ स्वमोहितं हुये ॥ ३० ॥ तब बार बार जमुहातेहुये शिवजी समर में कुछ समय तक स्थित रहे और जब महायुद्धमें शिवजी फिर प्राप्त चैतन्यतावाले हुये ॥ ३१ ॥ तब क्रोध से तिरस्कृत शिवजी ने माहेश्चरस्त्र को निर्माण किया व मस्तक से शीघ्रही महाबलवान् वीरभद्रजी उत्पन्न हुये ॥ ३२ ॥ और त्रिलोचन, त्रिभाल, लघु, त्रिचरण व अजाकार, लुद्र तथा जटावान् व भस्म अंगवाले और दुःखसे उल्लंघन करने योग्य महारोग ने ॥ ३३ ॥ महादेवजी से प्रेरित होकर श्रीकृष्णजी की सेना में प्राप्त होकर समस्त श्रीकृष्णजी के साथी प्राणियों का विनाश किया ॥ ३४ ॥ हे व्यासजी ! श्रीकृष्णजी से पालित व ज्वरकी चोटसे पीड़ित सेना भग्न होकर अचानकही विमुख

भेत्तपरहुई ॥ ३५ ॥ रोगसे विकल व नष्ट संकल्पवाली, जमुहातीहुई तथा शिवजीके ज्वरसे पीडित वैसी सेना को देखकर ॥ ३६ ॥ बड़े क्रोधी श्रीकृष्णजीने वैष्णव ताप को रचा और विष्णुजी के उस ज्वरसे व माहेश्वर ज्वरसे ॥ ३७ ॥ श्रापस में बहुतही भयंकर युद्धहुआ व बहुत सग्रामकर माहेश्वर ज्वर विकलहुआ ॥ ३८ ॥ व समस्त लोकों में जाकर शान्ति को न प्राप्त हुआ और उससे पीडित वह सुन्दर महाकाल वनेमें प्राप्तहुआ ॥ ३९ ॥ व क्षिप्रानदी में मग्नहोगया तदनन्तर उत्तम शान्ति को प्राप्तहुआ और बड़े क्रोधी माहेश्वरज्वरको शान्तदेखकर ॥ ४० ॥ वैष्णव ज्वर ने भी प्राप्तहोकर उस नदी में स्नानकिया और उसके प्रभावसे विष्णु व शिवजी से उपजे

सेनांभग्नसङ्कल्पां माहेशज्वरपीडिताम् ॥ ३६ ॥ ससर्जवैष्णवन्तापं कृष्णः परमकोपनः ॥ तैनसहवैष्णवस्य माहेश्वरज्वरेण च ॥ ३७ ॥ अन्योन्यमभवद्युद्धं घोरं घोरतरं महत् ॥ सङ्ग्रामं बहुलं कृत्वा भग्नो माहेश्वरो ज्वरः ॥ ३८ ॥ सर्वलोकेषु गत्वा वै नशान्तिप्रतिजग्मिवान् ॥ महाकालवनेरम्ये प्राप्तस्तेनाभिपीडितः ॥ ३९ ॥ निमग्नश्चैव जिप्रायां तदंशान्तिपरं ययौ ॥ दृष्ट्वा माहेश्वरं शान्तं ज्वरं परमकोपनम् ॥ ४० ॥ वैष्णवोपि समासाद्य तस्यां मज्जनमाचरत् ॥ तस्याः प्रभावसन्नेष्टौ ज्वरौ हरिहरोद्भवौ ॥ ४१ ॥ तस्मात्सर्वेषु कालेषु ज्वरघ्नी सा भवत्क्षणात् ॥ ज्वराभिभूता ह्यासाद्य जनाः परमदुःखिताः ॥ ४२ ॥ निमज्जन्ति च शिप्रायां वसन्ति च समाहिताः ॥ नतेषां बाधते पीडा ज्वरोद्भूता कदाचन ॥ ४३ ॥ सत्यमुक्तं ददा व्यास ब्रह्मन् हरिहरेण च ॥ येश्चैव न्तिकथां दिव्यां नराश्चैकाग्रमानसाः ॥ ४४ ॥ नतेषां जायते किञ्चिज्ज्वरसन्तापं भयम् ॥ ४५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे क्षिप्रामाहात्म्ये ज्वरानुग्रहो नाम षष्ठितमोऽध्यायः ॥ ६० ॥

हुये ज्वर नष्ट होगये ॥ ४१ ॥ उस कारण सब कालोंमें वह क्षणभरमें ज्वरघ्नी हुई ज्वर से विकल व बड़े दुःखित जो मनुष्य वहा प्राप्त होकर ॥ ४२ ॥ सावधान होकर क्षिप्रा नदीमें स्नानकरतहैं व बसतहैं उनको कभी ज्वर से उपजी हुई बाधापीडा नहीं करती हैं ॥ ४३ ॥ उस समय हे ब्रह्मन्, व्यासजी ! विष्णु व माहेश्वरजी ने, सत्य कहा है व सावधान मनवाले जो मनुष्य इस उत्तम कथा को सुनते हैं ॥ ४४ ॥ उनको ज्वर व सन्ताप से उपजा हुआ कुछ भय नहीं होता है ॥ ४५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे देवीद्वयानुमिश्रविचितायाभाषाटीकायां क्षिप्रामाहात्म्ये ज्वरानुग्रहो नाम षष्ठितमोऽध्यायः ॥ ६० ॥

दो० । क्षिप्रानदी प्रभाव सन भई दमन की मुक्ति । इकसठिके अध्याय में सोइ कथा की उक्ति ॥ सनत्कुमारजी बोले कि हे परंतप ! जिसप्रकार क्षिप्रानदी पाप-नाशिनी प्रसिद्ध हुई है वैसीही मैं संक्षेप से कहता हूँ ॥ १ ॥ हे व्यासजी ! पुरातन समय सतयुग में बड़ा क्रोधी दमन राजा कीकट देशों में हुआ है ॥ २ ॥ जो कि सब धर्मों का नाशनेवाला व गऊ तथा ब्राह्मणों का निन्दक व मदिरा पीनेवाला, सुवर्ण छुरानेवाला और गुरुकी शय्यापै बैठनेवाला तथा अन्य के शुभमें द्वेष करने-वाला था ॥ ३ ॥ और प्रजाओंका सर्वस्व हरनेवाला व पराई स्त्रीसे प्रसंग करनेवाला तथा धूर्त व कपटी को संग करनेवाला, तुगल व चोर के आकारवाला था ॥ ४ ॥

सनत्कुमार उवाच ॥ पापनाशिनी विख्याता यथा क्षिप्रपयस्विनी ॥ तथा हंसप्रक्ष्यामि समासेन परन्तप ॥ १ ॥
पुराकृतयुगे व्यास दमनो नामैव नृपः ॥ कीकटेषु समाख्यातोर राजा परमकोपनः ॥ २ ॥ उत्थायी सर्वधर्माणां गोब्राह्मणानि
निन्दकः ॥ सुरापानीहेमहारी गुस्तल्पगमत्सरी ॥ ३ ॥ प्रजासर्वस्वहर्ता च परदाराभिमर्शकः ॥ धूर्तको धूर्तसङ्गी च पि
शुनस्तस्कराकृतिः ॥ ४ ॥ गोशृङ्गपुरभेदी च निन्द्यो निन्द्यजनप्रियः ॥ कुत्सितः कोपपूर्णश्च वेदशास्त्रविवर्जितः ॥ ५ ॥
साधुसङ्गपरित्यागी दुष्टो दुष्टजनप्रियः ॥ कुलाङ्गनापरित्यागी परस्त्रीवृषलीपतिः ॥ ६ ॥ धर्मनिन्दाकरो नित्यगधर्मे
मते मतिः ॥ नहूयन्तेन पूज्यन्ते न श्रूयन्ते कथाबुधैः ॥ ७ ॥ वेदायज्ञाश्च देवानां पुरंहृत् च ताड्यते ॥ एवं दुष्टतरो राजा
न भूतो न भविष्यति ॥ ८ ॥ स एकदा वने धौरे मृगया वनगोचरः ॥ इतस्ततो भ्रममाणो व्याधैः परितुष्टः खलः ॥ ९ ॥ नल

और गऊ गृह व नगरों को भेदन करनेवाला तथा निन्दनीय व निन्द्यजन उसको प्रिय थे और निन्दित व क्रोध से परिपूर्ण तथा वेद शास्त्र से रहित था ॥ ५ ॥ व साधु के साथ को छोड़नेवाला, दुष्ट व दुष्टलोग उसको प्यारे थे और कुल स्त्री को त्याग करनेवाला तथा पराई स्त्री व शूद्रा का पति था ॥ ६ ॥ और धर्म की निन्दा करनेवाला व नित्यही अधर्म में उसकी बुद्धि रमती थी और हवन नहीं किये जाते थे व देवता नहीं पूजे जाते थे और विद्वान् लोग कथाओं को नहीं सुनते थे ॥ ७ ॥ और वेद व यज्ञ तथा देवताओं का नगर व बाजार नाश की जाती थी ऐसा अधिक दुष्ट राजा न हुआ है और न होगा ॥ ८ ॥ इधर उधर घूमता हुआ व बहेलियों से

धिरा वह दुष्ट राजा एकसमय भयकर वनमें शिकार के लिये वनगोचर हुआ ॥ ९ ॥ कुछ शिकार न मिला और लुधार्त, दुःखित व दुष्ट तथा संगरहित वह अकेला राजा महाकालवन के समीप आया ॥ १० ॥ वहाँ, भयंकर प्राणियों से सेवित व भयानक रात्रि प्राप्तहुई तब लुधा से विकल व सोने की इच्छावाला राजा वृक्ष की जड़में लौटकर ॥ ११ ॥ उस वृक्षमें घोंड़ को बांधकर आप भी बैठगया उसी समय वृक्ष से उसके मस्तक पै सर्प गिरपड़ा ॥ १२ ॥ यह क्या है व कहां से आश्चर्य प्राप्त हुआ यह कहकर हाथ से मनाकिया व उससमय उस दुष्ट सांपने राजा के अंगूठे में काट खाया ॥ १३ ॥ और काटनेहीपर दुःखित होताहुआ राजा पृथ्वी में प्राप्त हुआ

व्यंखेटकं किञ्चित् शुधातौ दुःखितः खलः ॥ एकाकी सङ्गविगतो महाकालवनान्तिके ॥ १० ॥ रात्रिस्समागता तत्र घोरं
घोरनिषेविता ॥ वृक्षमूलमुपावृत्य शयनार्थं शुधादितः ॥ ११ ॥ तत्राश्वं विटपे बध्वा स्वयमेव न्यषादत ॥ तदैव काले
वृक्षाद्वै तस्य शीष्ण्युरगोपतत ॥ १२ ॥ किमिदं कुत आश्चर्यं कृत्वा हस्तेन वारितः ॥ तेन दुष्टेन वै राजा दष्टोङ्गप्रेतदाहिना ॥
१३ ॥ दष्टमात्रे तु नृपतिर्व्यथितः चिन्तिमागतः ॥ कियत्काले व्यथ्य विष्टो मुमोह चोत्पीणमङ्गलः ॥ १४ ॥ तत्क्षणात्प्रेतभू-
तो सो घोरे नरकसञ्चये ॥ यमदूतैस्ताल्पमानो विविधास्त्रैस्स्वकर्मजैः ॥ १५ ॥ हर्षिताश्च गणास्सर्वे यमराजस्य किङ्कराः ॥
दष्टो बहुतरकाले पापिष्ठो यममन्दिरं ॥ १६ ॥ एतस्मिन्नन्तरे व्यास क्रव्यादैः खादितं शवम् ॥ किञ्चिच्छेषतरं प्राप्तं वाय-
सेनाभिलक्षितम् ॥ १७ ॥ तत्र गत्वानयन्मांसं तु एतेन वियतङ्गतः ॥ ततो न्यैर्वायसैर्भग्नो भ्राम्यमाण इतस्ततः ॥ १८ ॥ तत्राग-

व कुछ समय तक पीड़ा संयुक्त व नष्ट संगलवाला राजा मोहित हुआ ॥ १४ ॥ व उसी क्षण मरकर यह राजा भयंकर नरक में यमदूतों से अपने कर्मों से उपजेहुये
अनेक भालि के अस्त्रों के द्वारा ताड़ित हुआ ॥ १५ ॥ और यमराज के सेवक सब गण प्रसन्न हुये कि बहुतही समय में यह पापी यमराज के मन्दिर में देख पड़ा ॥
१६ ॥ इसी अवसर में हे व्यासजी ! मांसभक्षी प्राणियों ने मुर्दे को खाडाला और कुछ बचेहुये मुर्दे को कौवा ने देखा ॥ १७ ॥ व वहाँ जाकर चोंचसे मांस को ग्रहण
करताहुआ वह कौवा आकाश में प्राप्तहुआ तदनन्तर अन्य कौवों से इधर उधर भ्रमाया जाताहुआ वह कौवा ताड़ित हुआ उसके उपरान्त ॥ १८ ॥ वहाँ आया जहाँ

किं क्षिप्रानदी थी और कुल्लूकर्म के फल से उस कौवा का मांस जाता रहा ॥ १९ ॥ और उस राजा के शरीर से उपजाहुआ वह मांस उस क्षिप्रानदी में गिरपडा व उस पुण्य के प्रभाव से वह उसीक्षण शिव होगया ॥ २० ॥ त्रिलोचन व जटाजूट तथा व्याघ्र चर्म से विरा और त्रिशूल हाथवाला व बैलपै चढाहुआ, चन्द्रमाल, पार्वती-पति-शिवरूप होगया ॥ २१ ॥ इस आश्चर्यमय रूप को देखकर उन शिवजी के गणों से मारे व भगेहुये तिरस्कृत दूतोंने सभा में यमराज से कहा ॥ २२ ॥ कि हे महाराज, धर्मराज ! तुम्हारे लिये नमस्कारहै दूतों का बहुत आश्चर्यमय व परम सुन्दर जो वचन है उसको सुनिये ॥ २३ ॥ कि कीकट देशो का स्वामी, मूर्ख,

तोहियत्रास्ते दिव्याक्षिप्रापयस्विनी ॥ किञ्चित्कर्मविपाकेन वायसस्यगतंपलम् ॥ १९ ॥ पतितवैजलेतस्याः क्षिप्रा
यास्तस्यकायजम् ॥ तेनपुण्यप्रभावेन तत्क्षणात्सोभवच्छिवः ॥ २० ॥ त्रिनेत्रश्चजटाजूटव्याघ्राम्बरपरीवृतः ॥
शूलहस्तोवृषारूढो भालचन्द्रोह्युमापतिः ॥ २१ ॥ इत्याश्चर्यमयंरूपं दृष्ट्वादूताश्चर्यर्षिताः ॥ तद्गुणैस्ताडिताभगना धर्म
राजायमंसदि ॥ २२ ॥ श्रूयताम्भोमहाराज धर्मराजनमोस्तुते ॥ दूतानांयद्वचोरम्यं ब्रह्माश्चर्यमयम्परम् ॥ २३ ॥
कीकटाधिपतिर्मन्दो पापिष्ठावृषलीपतिः ॥ मदनोनामराजाभूत्समस्तेक्षितिमण्डले ॥ २४ ॥ यानिकानिचपागानि
ब्रह्महत्यासमानिच ॥ तानिसर्वाणितेनापि कृतानिभुविसत्तम ॥ २५ ॥ मर्यादाभेदकोमूढो वर्णाश्रमविभेदकः ॥ कुस
ङ्गीधूर्तकोन्मादी बहुव्यूङ्गभरःखलः ॥ २६ ॥ यमदण्डपरःपापी ह्यस्माकंहर्षवर्द्धनः ॥ सकथंशिवरूपीस्यात् किमाश्चर्यं
मतःपरम् ॥ २७ ॥ यावन्तःपतिताःपूर्वं पापिनस्सर्वएवहि ॥ कृष्णेनतारितास्सर्वे ब्रह्मपुत्रार्थिनातदा ॥ २८ ॥ तदाप्र

पापी व शूद्रा का पति मदन नामक समस्त पृथ्वी में राजा हुआहै ॥ २४ ॥ हे सत्तम ! ब्रह्महत्याके समान जो कोई पातकहै उन सबको भी उसने पृथ्वीमें कियाहै ॥ २५ ॥
और जो मर्यादा को नष्ट करनेवाला, मूर्ख तथा वर्णों व आश्रमों का निन्दक, दुष्टसगी, कपटो, मतवाला व बहुत व्यंगोंको धारण करनेवाला और दुष्ट था ॥ २६ ॥
और यमराज के दण्ड से पूर्ण व पापी तथा हमलोगों के आनन्दको बढ़ानेवाला था वह कैसे शिवरूपी होवैहै इससे अन्य क्या आश्चर्य होवै ॥ २७ ॥ पहले जितने

पापी पतित हुयेथे वे सबही उस समय ब्रह्माके पुत्र सनकादिकों को चाहनेवाले श्रीकृष्णजी से तौरगये ॥ २८ ॥ बड़े खेदकी बात है कि तबसे लोगोकर नरकके सब कुंड सूखे देखपड़तेहैं जैसे कि ग्रीष्म ऋतु के अन्तमें कुण्ड होवें ॥ २९ ॥ तुम्हारे मन्दिर में दुःखित लोगों का कोई शब्द नहीं सुनपड़ता है हम लोगोका जीवन नहीं है इससे हम सबों से किमी उपाय को कहिये ॥ ३० ॥ दैवके बलसे संसार में एकही हमलोगों की जीविका को देनेवाला आया था वह भी शिवताको प्राप्त होगया तो हमलोगों का जीवन किससे व किसप्रकार होगा ॥ ३१ ॥ उस समय धर्मराजने दूतों के उत्तम वचन को सुनकर व बहुत देरतक ध्यानकर अपने गणों से देश व

भूतिसर्वाणि कुण्डानिनरकस्यैव ॥ शुष्काणिवतदृश्यन्ते ग्रीष्मान्तैर्वैहृदायथा ॥ २९ ॥ नैवार्तानां रवः कश्चिच्छ्रूयते तवमन्दिरं ॥ अस्माकं जीवन्नास्ति कमुपायं वदस्व नः ॥ ३० ॥ एकएवागतोलोके वृत्तिदोनो विधेर्वलात् ॥ सोपिशिवत्वमापन्नः कस्मान्नो जीवितं कथम् ॥ ३१ ॥ धर्मराजस्तदाश्रुत्य किङ्कराणां परंवचः ॥ चिरन्ध्यात्वास्वकान् प्रोचै देशकालोचितंवचः ॥ ३२ ॥ धर्मराजोवाच ॥ शृण्वन्तु भोगास्सर्वे भूत्वचैकाग्रमानसाः ॥ येन पुण्यप्रभावेन पापिष्ठुडिशवताङ्गतः ॥ ३३ ॥ भुवि पुण्यतमदेशे महाकालवने शुभे ॥ क्षिप्रानामसरिच्छेष्टा सर्वपापहरापरा ॥ ३४ ॥ येषां क्षिप्रोदकस्पर्शा जायते भुविकिङ्कराः ॥ न तेषां पातकं किञ्चिन्मृतस्मरं पुरं व्रजेत् ॥ ३५ ॥ मनसा वपुषा वाचा पापानि विविधानि च ॥ तत्क्षणं त्रलंभयान्ति क्षिप्रासरिन्निषेवणात् ॥ ३६ ॥ क्षिप्रानि प्रेतियो ब्रूते यत्र कुत्रापि मानवः ॥ स एव शिवतां याति न

समय के योग्य वचन को कहा ॥ ३२ ॥ धर्मराज बोले कि हे समस्तगणो ! सावधान मनवाले होकर सुनिये कि जिस पुण्य के प्रभाव से पापी शिवत्व को प्राप्त हुआ है ॥ ३३ ॥ कि पृथ्वीपै अत्यन्त पवित्र देश में महाकाल नामक उत्तम वनमें समस्त पापों को हरनेवाली क्षिप्रानामक उत्तम श्रेष्ठ नदी है ॥ ३४ ॥ हे दूतो ! पृथ्वी में जिनको क्षिप्रानदी के जलका स्पर्श होता है उनके कुछ पातक नहीं रहता है और वह मरकर स्वर्ग को जाता है ॥ ३५ ॥ क्षिप्रानदी के सेवन से मन, देह व वचन से किये हुये अनेकभ्रांति के पातक उसी क्षण नाशको प्राप्त होतेहैं ॥ ३६ ॥ जहा कहीं भी जो मनुष्य क्षिप्रा क्षिप्रा ऐसा कहता है वही शिवता को प्राप्त हो-

ताहै और स्नान से उपजे हुये फलको मैं नहीं जानताहूँ ॥ ३७ ॥ जहांपर कीट पतंगादिक व जो क्षिप्रानदी के जलचारी जन्तुहैं और जो महापातकी होतेहैं वे भी यहां मरकर शिवस्थान में प्राप्त होतेहैं ॥ ३८ ॥ वैशाख महीना प्राप्तहोनेपर जो उत्तम मनुष्य क्षिप्रानदीमें स्नान करतेहैं उनको कोई नरक नहीं होताहै और वे शिवरूप होकर विचरते हैं ॥ ३९ ॥ अपराध कियेहुये उस राजा के मांस को कौताने हरलिया और क्षिप्रानदी के गहरे जलमें फेंकदिया उस विषयमें क्या शोच है ॥ ४० ॥ बावली, कूप व तड़ागादिकों में जो, अधिक फल कहागया है उससे दशगुना पुण्य नदियों में होता है ॥ ४१ ॥ उससे दशगुनी तापी नदी है और उससे अधिक

जानेस्नानजंफलम् ॥ ३७ ॥ यत्रकीटपतङ्गाद्याः क्षिप्रावारिचराश्चये ॥ महापातकिनोयेते मृतायान्तिशिवालये ॥ ३८ ॥ माधवेमासिसम्प्राप्ते निमज्जन्तिनरोत्तमाः ॥ नतेषांन्निरयः कश्चिच्छिवरूपाश्चरन्ति ॥ ३९ ॥ वायसेनाहृतं मांसं तस्य राज्ञः कृतागसः ॥ क्षिप्रागाधजलेक्षिप्तं कातत्रपरिदेवना ॥ ४० ॥ वापीकूपतडागादिष्वधिकं यत्फलं स्मृतम् ॥ तस्माद्दशगुणं पुण्यं नदीषु ह्युपजायते ॥ ४१ ॥ तस्माद्दशगुणा तापी गोदापुण्याततोधिका ॥ तस्माद्दशगुणरेवा गङ्गा पुण्याततोधिका ॥ ४२ ॥ तस्माद्दशगुणा क्षिप्रा पवित्रा पापनाशिनी ॥ दमनस्य शरीरस्य मांसं क्षिप्रासमागतम् ॥ ४३ ॥ तेन पुण्यप्रभावेन शिवरूपधरो भवत् ॥ ईदृशी च नदीरम्या अवन्त्यां भुवि वर्तते ॥ ४४ ॥ वाञ्छन्ति देवतास्सर्वा दुर्लभं तस्य दर्शनम् ॥ धर्मराजवचश्चुत्वा गणा विस्मयमागताः ॥ ४५ ॥ मनसा च निरतङ्काः क्षिप्राशरणमागताः ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ तदा प्रभृति समाख्याता क्षिप्रेयं पापनाशिनी ॥ ४६ ॥ गीयते च पुराणेषु तस्या माहात्म्यमुत्त

पुण्यदायिनी गोदावरीहै उससे दशगुनी रेवा (नर्मदा) और उससे अधिक पुण्यदायिनी गंगा नदी है ॥ ४२ ॥ व उससे दशगुनी पवित्र व पाप नाशिनी क्षिप्रानदी है दमनके शरीर का मांस क्षिप्रानदीमें प्राप्तहुआ ॥ ४३ ॥ उस पुण्यके प्रभावसे वह शिवरूपधारी हुआ पृथ्वीपर ऐसी सुन्दरी नदी अवन्ती पुरीमें वर्तमान है ॥ ४४ ॥ और सब देवता उसके दुर्लभ दर्शन की इच्छा करते हैं धर्मराज के वचन को सुनकर गण विस्मय को प्राप्तहुये ॥ ४५ ॥ और मन से निश्चिन्त होकर क्षिप्रा नदी की शरण में आये सनत्कुमारजी बोले कि तबसे लगाकर यह क्षिप्रा पापनाशिनी कहीगई है ॥ ४६ ॥ और उसका उत्तम माहात्म्य व दमन राजा की सुक्ति पुराणोंमें

गाई जाती है और क्षिप्रा नदी के उत्तम माहात्म्यको ॥ ४७ ॥ यमदूतों के संवाद में सुनकर निरसंदेह मुक्ति होती है ॥ ४८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे देवीदयालुमि
श्रविरचितायां भाषाटीकायां क्षिप्रामाहात्म्यवर्णनमैकषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६१ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥
दो० । क्षिप्रा नदिंकर भयोजिमि अमृतोद्भवा सुनाम । बासठि के अध्याय में सोइ कथा अभिराम । सनत्कुमारजी बोले कि हे महाबुद्धे, व्यासजी ! क्षिप्रानदी के
उत्तम माहात्म्य को सुनिये कि जिसप्रकार नागों से संमत पाताल में अमृतभवा कहीं गई है ॥ १ ॥ एक समय बुधित शिवजी भिक्षा के लिये हाथ में कपालको लेकर
मम ॥ दमनस्य च निमुक्तिः क्षिप्रामाहात्म्यमुत्तमम् ॥ ४७ ॥ संवादयमदूतानां श्रुत्वा मुक्तिर्न संशयः ॥ ४८ ॥ इति श्री
स्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे क्षिप्रामाहात्म्यवर्णनमैकषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६१ ॥ * ॥

सनत्कुमार उवाच ॥ शृणु व्यास महाबुद्धे क्षिप्रामाहात्म्यमुत्तमम् ॥ यथा मृत भवाख्याता पातालैनागसम्मते ॥
१ ॥ एकदारुद्रो भिक्षार्थं नागलोकैर्बुभुक्षितः ॥ करे कपालमादाय भोगवत्यां समागतः ॥ २ ॥ भिक्षां देहि वचो दीनमि
त्युवाच गृहे गृहे ॥ भिक्षा के नापिनोदत्ता बुधितस्य च धूर्जटे ॥ ३ ॥ तदा क्रोधो धाभि रक्ताक्षः शूलपाणिः क्षुद्रादितः ॥ अ
मित्राच पुरीं सर्वा शनैर्बाहिर्विनिययौ ॥ ४ ॥ एकविंशतिकुण्डानि पीयूषस्य द्विजोत्तम ॥ यत्र तिष्ठन्ति सर्वाणि नागलो
कस्य रक्षणे ॥ ५ ॥ तत्र गत्वा स भगवाञ्छ्वम्भुस्सर्वात्मसम्भवः ॥ अपि वन्नेत्रमार्गेण तृतीयेन च शङ्करः ॥ ६ ॥ रिक्तान्य
मृतकुण्डानि कृत्वा तत्रैव सोत्थितः ॥ कम्पितञ्च तदालोकं नागानां सर्वतो मुखम् ॥ ७ ॥ कस्येदं कर्म किञ्जातं सुधाय
नागलोकं भोगवती पुरी में भलीभांति आये ॥ २ ॥ और भिक्षाको दीजिये ऐसे दीनवचन को उन्होंने घर २ में कहा व बुधित शिवजी को किसीने भी भिक्षा नहीं
दिया ॥ ३ ॥ तब क्रोध से लालनेत्रवाले व त्रिशूल हाथवाले तथा बुवा से निकल शिवजी सब पुरी में धीरे धीरे घूमकर बाहर निकले ॥ ४ ॥ हे द्विजोत्तम ! जहाँपर
नागलोक की रक्षा में अमृत के सब इक्षीस कुण्ड स्थित हैं ॥ ५ ॥ वहाँ जाकर सर्वात्मसम्भव (सर्वव्यापी) उन कल्याणकारक शिव भगवान् ने तीसरे नेत्रमार्ग से
अमृत के कुंडोंको पी लिया ॥ ६ ॥ और वहाँपर अमृत के कुंडों को शून्य कर वे शिवजी उठे और उस समय सब और मुखवाला नागों का लोक कंपित हुआ ॥ ७ ॥

और किस का यह कर्म है व क्या हुआ कि जिससे यहां से अमृत जातारहा यह कह कर तदनन्तर वासुकि आदिक सब नाग ॥ ८ ॥ बड़े अति क्रमसे शंक्ति होकर वे नगरसे बाहर निकले व यह बोले कि क्याकरै व कहां जावैं किसने यह अपमान किया ॥ ९ ॥ कि जिस क्रोधित ने उचम अमृत को व हमलोगों के जीवन को नाश किया इसलिये हे नागो ! हमलोग कैसे जियेंगे ॥ १० ॥ यह कहकर स्त्री बालक व परिवार समेत सब नाग शंक्ति होकर मनसे विष्णुजी की शरण में गये ॥ ११ ॥ उनके अनुग्रह के लिये आकाशवाणी बोली कि हे सब नागो ! सुनिधे तुम लोगों ने देवता का अपमान किया ॥ १२ ॥ जुधा से विकल व कपाल

स्मादितोगता ॥ इत्युक्त्वाचततस्सर्वे नागावासुकिपुरोगमाः ॥ ८ ॥ महदतिक्रमाशङ्काः पुरात्तेचवहिर्ययुः ॥ किंकुर्मः कचगच्छामः केनेदंहेलनंकृतम् ॥ ९ ॥ येनास्माकंप्रकुप्तेन हतंचासृतमुत्तमम् ॥ अस्माकंजीवनंतस्मात्कथंजीवाम पन्नगाः ॥ १० ॥ इत्युक्त्वापन्नगास्सर्वे सस्त्रीबालपरिग्रहाः ॥ हरिंप्रजमुद्गरणं मनसापरिशङ्किताः ॥ ११ ॥ तेषामनुग्रहार्था य वागुवाचाशरीरिणी ॥ श्रूयतांचोरगास्सर्वे युष्माभिर्देवहेलनम् ॥ १२ ॥ भिक्षार्थमागतश्शम्भुः क्षुधार्तश्चगृहेगृहे ॥ विदित्वातिथिवेलांस कपालकरभिक्षुकः ॥ १३ ॥ सादत्ताहिनकेनापि भोगवत्यापिनाकिनः ॥ तदावहिर्यतोनाथः क्षु धितोधर्मविग्रहः ॥ १४ ॥ तेननष्टासुधासर्वा कुण्डान्तेपन्नगोत्तमाः ॥ यूयंप्रयातपातालान्महाकालवनोत्तमे ॥ १५ ॥ तत्रैकैवैसरिच्छेष्टा क्षिप्रानामेतिविश्रुता ॥ त्रैलोक्यपावनीह्येषा सर्वकामफलप्रदा ॥ १६ ॥ यस्यादर्शनमात्रेण स र्वपापक्षयोभवेत् ॥ तत्रगत्वाभवाद्भिश्च स्नानंकार्यंयथाविधि ॥ १७ ॥ भजनन्देवदेवस्य ततःपूताभविष्यथ ॥ भजनान्दे हाथवाले वे भिक्षुक शिवजी अतिथि समय को जानकर घर घर में भिक्षा के लिये आयेथे ॥ १३ ॥ जब पिनाकधारी शिवजी को भोगवती पुरीमें किसी ने भी उस भिक्षा को नहींदिया तब क्षुधित व धर्मशरीरवाले शिवजी बाहर चलेगये ॥ १४ ॥ हे नागोत्तमो ! उसीसे कुण्डों के मध्यमें सब अमृत नाश होगया तुम लोग पाताल से महाकाल नामक उत्तम वनमें जाओ ॥ १५ ॥ वहां क्षिप्रा ऐसे नामसे प्रसिद्ध एक श्रेष्ठनदी है और यह नदी त्रिलोक को पवित्र करनेवाली व सब कामनाओंके फल को देनेवालीहै ॥ १६ ॥ जिसके दर्शनही से सब पापों का क्षय होताहै वहां जाकर आप लोगोंको विधिपूर्वक स्नान करना चाहिये ॥ १७ ॥ व देवदेव शिवजी का भजन करो

तदनन्तर पवित्र होवोगे देवदेव शिवजी के भजनसे व क्षिप्रा नदी के जलमें स्नान से ॥ १८ ॥ हे नागो ! उसके उपरान्त तुम लोगोंके लोकमें अमृत होगा उन नागों से ऐसा कहकर हे व्यासजी ! उस समय लोकसाक्षिणी दिव्यवाणी अचानकही वहीं अन्तर्द्धान होगई देवतासे कही हुई वाणीको सुनकर व वैमाही होगा यह कहकर श्री, बालक व वृद्धों समेत नाग महाकालवन को गये और वहाँ जाकर त्रिलोकसे प्रणाम की हुई नदी को उन्होंने न देखा ॥ १९ । २० । २१ ॥ जो कि सब कहीं कुशों से व्याप्त व वृक्षों की छाया से परिश्रम रहित तथा हंसों व कारण्डव पक्षियों से पूर्ण व मणि, मोती और मृंगाओंवाली थी ॥ २२ ॥ और मणियों के सोपानों से

वदेवस्य शिप्रासलिलमज्जनात् ॥ १८ ॥ भविष्यतिततस्सद्यस्सुधालोकेतुवोरगाः ॥ इतिसम्भाष्यतान्नागान् तत्रैवान्तर्धायत ॥ १९ ॥ वाणीव्यासतदादिव्या सहसालोकसाक्षिणी ॥ श्रुत्वादेवैरितांवाणीं तथेत्युक्त्वाचपन्नगाः ॥ २० ॥ सस्त्रियोबालवृद्धाश्च महाकालवनंययुः ॥ तत्रगत्वाददृशुस्तेनर्दानैलोक्यवन्दिताम् ॥ २१ ॥ सर्वत्रकुशसमाकीर्णी तरुच्छायागतश्रमाम् ॥ हंसकारण्डवाकीर्णी मणिमुक्ताप्रवालकाम् ॥ २२ ॥ मणिसोपानरचितां पद्मखण्डैश्चमण्डिताम् ॥ सायंप्रातःस्थिताविप्रास्सन्ध्योपासनतत्पराः ॥ २३ ॥ ऋषयश्चमहाभागा भृगुराक्षिरसादयः ॥ सगन्धर्वाश्चतत्रैव नारदाद्यास्सुरर्षयः ॥ २४ ॥ वसवश्चतथादित्यावश्विनौमरुतस्तथा ॥ रुद्रास्साध्याश्चदेवाश्च पितरोविमलाशयाः ॥ २५ ॥ उपासतेचक्षिप्रां वै सन्ध्याकालेसमाहिताः ॥ ऋषिपत्नीमहाभागा देवकन्याप्सरोगणाः ॥ २६ ॥ पतिव्रतामहाभागास्तत्रैवपतिनासह ॥ उपासन्तेसदाचारा वर्णाश्रमपुरोगमाः ॥ २७ ॥ राजर्षयस्समासीना निर्वाणपदवीर्जिताः ॥

रचित व कमलसमूहों से शोभित थी और वहाँ सायंकाल व प्रातःकाल में सन्ध्योपासन में परायण ब्राह्मण स्थित थे ॥ २३ ॥ व बड़े ऐश्वर्यवाले भृगु व आगिरस आदिक ऋषिलोग स्थित थे और वहीं पर गंधर्वोंसमेत नारदादिक देवर्षि थे ॥ २४ ॥ वसु, आदित्य, अश्विनो कुमार व पवन, रुद्र, साध्य, देवता और निर्मल आशयवाले पितर ॥ २५ ॥ सावधान होकर संध्या समय क्षिप्रानदी की उपासनाकरते हैं और ऋषिलियां व बड़े ऐश्वर्यवाली देवकन्या व अप्सराओं के समूह ॥ २६ ॥ और महाऐश्वर्यवती पतिव्रता स्त्रियां पतिसेमेत वहीं उपासना करती हैं व वर्णों तथा आश्रमों के अग्रगामी उत्तम आधारवाले ॥ २७ ॥ बैठेहुये राजर्षिलोग

मोक्षकी पदवी को प्राप्त होकर वहां धर्मों की व सब महादानोंको करते हैं ॥ २८ ॥ और सिद्ध व शान्त योगेश्वर तथा प्रशंसित नियमोंवाले तपस्वी व अनेक प्रकार के देशों में उपजे हुये यात्रीलोग आकर ॥ २९ ॥ पुरुषों व स्त्रियों से संयुक्त वे क्षिप्रानदी के किनारे बैठे हैं हे व्यासजी ! त्रिलोक से बन्धित ऐसी अमृतमयी सब नदी को देखकर नाग बड़े प्रसन्न हुये और स्नान, दानादिक को करके उन्होंने महादेवकी उपासना किया ॥ ३० ॥ ३१ ॥ और सब नागोत्तमों ने वेदोक्त विधि से यज्ञ-कर्म (कर्पूर अगुरु, कस्तूरी व कंकाल से रचित वस्तु) का लेपन व पंचांगपूर्वक स्नान किया ॥ ३२ ॥ और अनेक प्रकार के पुष्पों व अन्नतों समेत और बसन, माला,

कुर्वतेतत्रधर्माणि महादानानिसर्वशः ॥ २८ ॥ सिद्धायोगेश्वराश्शान्तास्तापसास्मंशितव्रताः ॥ नानादेशोद्भवालोका
यात्रिणास्समुपागताः ॥ २९ ॥ क्षिप्राकूलेसमासीना नरनारीसमन्विताः ॥ एवंविधांसमालोक्य व्यासत्रैलोक्यवंदिता
म् ॥ ३० ॥ नदींसुधामयींसर्वां नागाःपरमहर्षिताः ॥ स्नानदानादिकंकृत्वा महादेवमुपासिरे ॥ ३१ ॥ वेदोक्तविधिनास
र्वं चक्रुःपन्नगसत्तमाः ॥ पञ्चाङ्गपूर्वकंस्नानं यक्षकर्मलेपनम् ॥ ३२ ॥ अम्लानपङ्कजांमालां नानापुष्पाक्षतैस्तथा ॥
वासःस्नानुलेपाद्यैश्चन्दनैर्गन्धधूपैकैः ॥ ३३ ॥ दीपदानादिनैवेद्यैस्ताम्बूलमथदक्षिणाम् ॥ कर्पूरार्तिकरास्सर्वे महा
देवमुपागताः ॥ ३४ ॥ स्तुतिमारोभिरेकर्तुं सुधाकामास्तदोरगाः ॥ सर्पाञ्जुः ॥ नमोनन्तायबृहते सर्वदेवनमोनमः ॥
३५ ॥ चन्द्रचूडनमस्तेस्तु जटामुकुटधारिणे ॥ शेषहारनमस्तेस्तु चिताभस्माङ्गधारिणे ॥ ३६ ॥ कृत्तिवासनमस्तेस्तु
घस्मरायनमोनमः ॥ त्रिपुरघ्ननमस्तेस्तु स्मरान्तकनमोस्तुते ॥ ३७ ॥ मृगव्याधनमस्तेस्तु गिरीशायनमोनमः ॥

अनुलेपनादिकों से व चन्दन, गंध तथा धूपोंसहित प्रफुल्लित कमलोंवाली माला को लेकर ॥ ३३ ॥ और दीप दानादिक नैवेद्यों समेत तांबूल व दक्षिणा को लेकर
कर्पूर की आरतीको हाथमें लिये सब नाग महादेवजीके समीप आये ॥ ३४ ॥ व उस समय असुत की इच्छावाले नागोंने स्तुतिकरने के लिये प्रारंभ किया सर्प
बोले कि बृहत् व अनन्तके लिये नमस्कारहै व हे सर्वदेव ! तुम्हारे लिये नमस्कारहै ॥ ३५ ॥ हे चन्द्रचूड ! जटा मुकुटको धारनेवाले तुम्हारे लिये नमस्कारहै
हे शेषहार ! चिताभस्माङ्गधारी तुम्हारे लिये नमस्कारहै ॥ ३६ ॥ हे कृत्तिवास ! तुम्हारे लिये नमस्कारहै व घस्मर के लिये नमस्कारहै ॥ ३७ ॥ हे त्रिपुर

नाशक ! तुम्हारे लिये नमस्कार है हे कामदेवविनाशक ! आपके लिये नमस्कार है हे मृगव्याध ! तुम्हारे लिये नमस्कार है व गिरिशजी के लिये नमस्कार है नमस्कार है हे सर्वकामफलप्रद, शङ्करात्मन् ! तुम्हारे लिये नमस्कार है ॥ ३८ ॥ हे सर्वबीजसमुद्भव, सर्वसाक्षिन् ! तुम्हारे लिये प्रणाम है हे विष्वक्सा ! तुम्हारे लिये नमस्कार है और अमृतस्रवके लिये प्रणाम है ॥ ३९ ॥ हे काम्य काम, सर्व कामवरप्रद ! तुम्हारे लिये नमस्कार है व शान्तरूप शिवजी के लिये प्रणाम है तथा पशुपतिजी के लिये नमस्कार है ॥ ४० ॥ दान्त मृड (शिव) जी के लिये प्रणाम है व शान्तरूप के लिये प्रणाम है इसप्रकार नागोंसे प्रसन्न करायेहुये भगवान् शिवजी ॥ ४१ ॥ प्रत्यक्षही प्रसन्न

शङ्करात्मन्नमस्तेस्तु सर्वकामफलप्रद ॥ ३८ ॥ सर्वसाक्षिन्नमस्तेस्तु सर्वबीजसमुद्भव ॥ दिव्यहासनमस्तेस्तु नमोमृतस्रवा
यच ॥ ३९ ॥ काम्यकामनमस्तेस्तु सर्वकामवरप्रद ॥ नमश्शिवायशान्ताय पशूनांपतयेनमः ॥ ४० ॥ नमोमृडा
यदान्ताय शान्तरूपायैवैनमः ॥ एवंप्रसादितोनागैर्भगवान्पृषमध्वजः ॥ ४१ ॥ प्रसन्नवदनोभूत्वा प्रत्यक्षंप्राहपन्नगा
न् ॥ ४२ ॥ श्रीमहादेवउवाच ॥ श्रूयतामुरगास्सर्वे वचस्तथ्यंवदामिवः ॥ ४३ ॥ एकदानांगलोकैस्तु भिक्षणार्थंगतो
स्म्यहम् ॥ गृहेगृहेभोगवत्यां विचरन्धुधितोभृशम् ॥ ४४ ॥ कपालंचकरेकृत्वा धृत्वाकन्थांसुचीरकाम् ॥ अप्राप्तमि
क्षोभिच्चार्य्यो पुनरागात्ततोऽगृहम् ॥ ४५ ॥ तेनपापप्रसङ्गेन सुधानष्टातदालयात् ॥ किञ्चित्पुण्यप्रसङ्गेन महाकालवनो
त्तमे ॥ ४६ ॥ यूयंप्राप्तामहाभागा हित्वानागालयोत्तमम् ॥ बालवृद्धैःस्त्रिमिस्साकं दृष्टाशिप्रासरिवरा ॥ ४७ ॥ यस्या

मुखहोकर नागोंसे बोले ॥ ४२ ॥ श्रीमहादेवजी बोले कि हेसमस्तनागो ! सुनिये मैं तुमलोगोंसे सत्य वचनको कहताहूँ ॥ ४३ ॥ एक समय नाग लोकमें मैं भिक्षा
के लिये गया व भोगवती पुरी में घर घर घूमताहुआ मैं बहुतही क्षुधित हुआ ॥ ४४ ॥ तदनन्तर कपालको हाथमें कर व उत्तम बसनवाली गुदडी को धरकर भिक्षा
को न पाकर भिक्षा को चाहनेवाला मैं फिर घरको आया ॥ ४५ ॥ तब उसी पापके प्रसंग से अमृत स्थान से नष्ट होगया और कुछ पुण्यके प्रसंग से बड़े ऐश्वर्य-
वाले तुमलोग उत्तम नागस्थान को छोड़कर महाकाल नामक उत्तम वन में प्राप्त हुये और बालक, वृद्ध व स्त्रियोंसेमेत तुम सभी ने क्षिप्रानामक उत्तम नदी को

देखा ॥ ४६।४७ ॥ कि पुरातन समय जिसके दर्शनहीं में मैं पाप रहित हुआ हूँ क्षिप्रा के स्नान से उपजा हुआ पुण्य किसी से नहीं कहाजासक्ता है ॥ ४८ ॥ हे नागो ! पृथ्वी में इसके दर्शन से मनुष्य उसी क्षण शिवहोजाता है उसी कारण सब नागोत्तमों ने क्षिप्रा नदी में स्नानकिया ॥ ४९ ॥ और उम पुण्यके प्रभाव से तुम लोगों के घर घरमें अमृत होवैगा। क्षिप्रा नदी के पवित्र जलको लेकर कुंडों में छिड़क दीजिये ॥ ५० ॥ उससे हे नागोत्तमो ! ये इक्कीस स्थिर कुण्ड अमृतसे पूर्ण होजावेंगे ॥ ५१ ॥ वैसाही होगा यह कहकर ये सब महोदेवजी को प्रणाम कर व हाथोंसे क्षिप्रानदी के जलको धरकर अपने लोकको चलेगये ॥ ५२ ॥ तबसे लगाकर वह

दर्शनमात्रेण निष्पापोस्मिअहंपुरा ॥ क्षिप्रायाःस्नानजंपुण्यं वक्तुंशक्यन्नकेनचित् ॥ ४८ ॥ दर्शनाज्जायतेशम्भुस्तत्त्वणाद्भुविपन्नगाः ॥ तस्मात्स्नानंकृतंसर्वैः क्षिप्रायांपन्नगोत्तमैः ॥ ४९ ॥ तेनपुण्यप्रभावेन सुधावोस्तुष्टहेगृहे ॥ नीत्वाक्षिप्रोदकंपुण्यं कुण्डेषुपरिषेचय ॥ ५० ॥ तेनैतानिहिकुण्डानि अमृतैर्नैकविंशतिः ॥ सम्पूर्णानिभविष्यन्ति स्थिराणिपन्नगोत्तमाः ॥ ५१ ॥ तथेत्युक्त्वाचतेसर्वे धृत्वाक्षिप्रोदकंकरैः ॥ गतास्तैवैस्वकंलोकं नमस्कृत्वामहेश्वरम् ॥ ५२ ॥ ततःप्रभृतिसाक्षिप्रा जातानागेमृतोद्भवा ॥ सर्वलोकैषुविख्याता व्यासक्षिप्रामृतोद्भवा ॥ ५३ ॥ यएतस्यांप्रकुर्वन्ति नराःस्नानादिकंभुवि ॥ नतेषान्दुष्कृतंकिञ्चिन्नापदोनचदुर्गतिः ॥ ५४ ॥ नवियोगोभवेत्तेषां पुत्रदारादिकैःकदा ॥ नचमित्राणिदुष्यन्ति नरोगोनदरिद्रता ॥ ५५ ॥ कथापापहरापुण्या सर्वकामवरप्रदा ॥ पठनाच्छ्रवणाद्वापि गोसहस्रफलंलभेत् ॥ ५६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेक्षिप्राया अमृतोद्भवानामकथनंनमद्विषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६२ ॥

क्षिप्रा अमृतोद्भवा हुई और हे व्यासजी ! क्षिप्रा सबलोकों में अमृतोद्भवा प्रसिद्ध हुई ॥ ५३ ॥ पृथ्वी में जो मनुष्य इसमें स्नान, दानादिक करतेहैं उनके कुछपातक नहीं रहताहै और न आपत्तियां होतीहैं न दुर्दशा होतीहै ॥ ५४ ॥ और पुत्रों व स्त्री आदिकों से उनका कभी वियोग नहीं होताहै और मित्र विकारको नहीं प्राप्तहोते हैं व रोग तथा दरिद्रता नहीं होती है ॥ ५५ ॥ यह कथा पापहरिणी व पवित्र तथा सब कामनाओं को देनेवाली है इसके पढ़ने व सुनने से मनुष्य गोसहस्र के फल को प्राप्त होताहै ॥ ५६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदेवीदयालुमिश्राविरचितायांभाषाटीकायांअमृतोद्भवानामकथनंनमद्विषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६२ ॥

दो० । विष्णु भूमि उद्धरन् हित धत्तो वराहास्वरूप । तिरसित्वे अध्याय में सोई चरित श्रुत्वा ॥ सनत्कुमारजी बोले कि हे महाभाग ! क्षिप्रके उत्तम माहात्म्यको फिर सुनिये कि जिसके सुननेही से अक्षरमेव यज्ञका फल होता है ॥ १ ॥ क्षिप्रा नदी सबकहीं पुण्यदायिनी व अतिपवित्र तथा पापहारिणी है और अवन्ती पुरीमें क्षिप्रा नदी विशेष कर पाप धारिणी है ॥ २ ॥ तथापि उसकी उत्पत्ति को विस्तार से कहतेहुये मुझसे सुनिये कि जिसप्रकार विष्णुजी की देहसे उपजी हुई कल्याणकारिणी क्षिप्रानदी बाराह की कन्या हुई है ॥ ३ ॥ हे व्यासजी ! पुराणवाली पवित्र व उत्तम कथा को सुनिये पुरातनसमय बड़ा बलवान् हिरण्यक्ष महादैत्य हुआ है ॥ ४ ॥

सनत्कुमार उवाच ॥ भूयःशृणुमहाभाग क्षिप्रामाहात्म्यसुत्तमम् ॥ यस्यश्रवणमात्रेण हयमेधफलं लभेत ॥ १ ॥ क्षिप्रार्सर्वत्रपुण्यातिपवित्रापापहारिणी ॥ अवन्त्यांचविशेषेण क्षिप्रवैपापहारिणी ॥ २ ॥ तथापितत्समुत्पत्तिं विस्तारदत्तौ मम ॥ यथावाराहतनया विष्णुदेहोद्भवा शिवा ॥ ३ ॥ शृणुव्यासमहापुण्यां कथाम्पौराणिकीं शुभाम् ॥ पुरा महासुरोजातो हिरण्याक्षो महाबलः ॥ ४ ॥ स इमांसकलां पृथ्वीं वशीकृत्वा चकार ह ॥ राज्यं च सार्वभौमानां दानवैश्च दुरात्मभिः ॥ ५ ॥ जित्वा च सकलौल्लोकान् सुरानिन्द्रपुरोगमान् ॥ दिक्पालान् वसुपालांश्च तिरस्कृत्या सुराधिपः ॥ ६ ॥ सर्वैश्च सर्वकामेभ्यः स्वयमेवाधितिष्ठति ॥ स्वर्गान् निराकृताः सर्वे तेन देवगणाभुवि ॥ ७ ॥ विचरन्ति यथा मर्त्या भ्रष्टराज्याः पराजिताः ॥ अलब्धशरणाः सर्वे ब्रह्माणं शरणं ययुः ॥ ८ ॥ तत्र गत्वा नमस्कृत्वा दैत्यकृत्यं न्यवेदयन् ॥ भगवन् किमिदं कार्यं भवता परमेष्विना ॥ ९ ॥ येन देवगणाः सर्वे नष्टप्रायाश्च तत्क्षणात् ॥ हिरण्याक्षेण दैत्येन हतं स्वर्गमकण्ट

दुष्ट दानवों समेत उसने इस सब पृथ्वी को वश कर सार्वभौमों की राज्य किया है ॥ ५ ॥ और सबलोकों को जीतकर व इन्द्रादिक दिक्पाल देवताओं को तथा सब वसुपालों को तिरस्कार कर यह असुरेश समस्त कामनाओं समेत स्थित हुआ है उसने देवगणों को स्वर्गसे भूमि में निकाल दिया ॥ ६ ॥ और छेदेहुये राज्यवाले वे पराजित देवता मनुष्यों की नाई विचरने लगे व शरणको न पाकर सब ब्रह्माकी शरण में गये ॥ ७ ॥ वहां जाकर प्रणामकर उन्होंने दैत्यकी कर्तव्यताको कहा कि

हे भगवन् ! आपब्रह्मा ने यह क्या कार्यकिया ॥ ९ ॥ कि जिससे सब देवगण उसी क्षण नष्ट होगये हिरण्याक्षने निष्कण्टक स्वर्ग को नष्ट करदिया ॥ १० ॥ और जो सब यज्ञभाग है उनको वह दैत्य भिन्न भिन्न भोजन करताहै हमलोग किस उपाय से लिये व कैसे पृथ्वी में स्थित होवें ॥ ११ ॥ देवताओं के ऐसे विकलता में प्राप्त वचन को सुनकर उन ब्रह्माजी ने उस समय समयके योग्य सुन्दर वचन को कहा ॥ १२ ॥ ब्रह्माजी बोले कि हे सुरोत्तम ! पुरातन समय अतुल तेजवाले विष्णुजी के मनोहर वैकुण्ठभवन में विजय से संयुत सावधान होता हुआ यह महाबाहु जय नामक श्रेष्ठ पार्षद द्वारापालक था ॥ १३ ॥ १४ ॥

कम् ॥ १० ॥ यज्ञभागाश्चयेसर्वे उपाशनातिप्रथक्पृथक् ॥ केनोपायेनजीवाम कथंतिष्ठामभूतले ॥ ११ ॥ इतिविक्रं
वितंश्रुत्वा देवानांसपितामहः ॥ उवाचवचनंरम्यं तत्कालेसमयोचितम् ॥ १२ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ शृण्वन्तुभोसुरश्रेष्ठा यूयं
सर्वेसमाहिताः ॥ पुरायंपार्षदश्रेष्ठो द्वापरपालःसमाहितः ॥ १३ ॥ वैकुण्ठभवनैरम्ये विष्णोरतुलतेजसः ॥ जयोनानाममहाबाहु
विजयेनचसंयुतः ॥ १४ ॥ द्वावेवसचिवौदान्तौ विष्णुवेषधराबुभौ ॥ आत्तयष्टीचविक्रान्तौ तिष्ठतोद्धारिसर्वदा ॥ १५ ॥
एकदर्वैमुनिश्रेष्ठ ब्रह्मणोमानसात्मजाः ॥ स्वैरंचरन्तोलोकेषु विष्णोर्भवनमागताः ॥ १६ ॥ सनकादयोंमहाभागा वि
ष्णुदर्शनलालसाः ॥ ताभ्यांनिवारिताःसर्वे प्रपेतुर्धरणीतले ॥ १७ ॥ मुमुहश्चतदाव्यास कुमारामृशदुःखिताः ॥ त
तोगात्समहाबाहुर्भगवान्कमलेक्षणः ॥ १८ ॥ ददर्शसहस्राविष्णुः कुमारान्मुविदुःखितान् ॥ उत्थाप्यैकंसमारोप्य

इन्द्रियों को दमन किये हुये दोनोंही मंत्री व दोनों विष्णुवंपथारी थे और दण्ड को लिये हुये वे दोनों पराक्रमी सदैव द्वार पै टिके रहते थे ॥ १५ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! एक समय लोकों में अपनी इच्छा से घूमते हुए ब्रह्मा के मानसी पुत्र विष्णुजी के मन्दिर को आये ॥ १६ ॥ और विष्णुजी के दर्शन की लालसावाले बड़े ऐश्वर्य-वान् सब सनकादिक उन दोनों से निवारित होकर पृथ्वी में गिरपड़ ॥ १७ ॥ वहे व्यासजी ! उस समय बहुतही दुःखित सनकादिक कुमार मोहित हुये तदनन्तर वे कमललोचन महाबाहु विष्णु भगवान् आये ॥ १८ ॥ और पृथ्वी में दुःखित वालकों को श्रीविष्णुजी ने अचानकही देखा व एकको उठाकर मधुसूदनजी ने गोदी

में बिठाकर लिपटा लिया ॥ १९ ॥ व मस्तकमें संघुकर तथा मुजाओं से लिपटाकर विष्णुजी बोले कि किसकारण तुम लोगोंको यह कष्टहुआ व किससे बहुत दुःखी हो ॥ २० ॥ हे धर्मके श्रेष्ठ बालको ! उस सब कारणको हम से कहिये कुमार बोले कि हे महाराज ! हम लोगोंके ऐसे दुःखको सुनिये ॥ २१ ॥ कि जिससे हे सुव्रत, मदान ! हमलोग इस दशाको प्राप्त हुये हे रमानाथ ! आपके दर्शन के लिये अभिलाष समेत व दैत्यों से विकल ये चारोंमाई जो कि लोकों में प्रसिद्ध हैं आये और धर्मके वय दारपालों से अचानकही मना किये गये ॥ २२ ॥ उसी कारण आप से परिपालित यह दशा प्राप्त हुई अब से लगाकर इस स्थान में इनकी मनातनी

मम्य मेममुदनः ॥ १९ ॥ मूर्ध्निचाध्रायबाहुभ्यां परिष्वज्य उवाचह ॥ कस्मादः कश्मलमिदं केनापिदुःखिताभुश
म ॥ २० ॥ मर्वत्तत्कारणं बाला व्रतनोधर्मवित्तमाः ॥ कुमार उचुः ॥ श्रूयतामभो महाराज अस्माकंदुःखमीदृशम् ॥
२१ ॥ येन प्रामावयं ब्रह्मन् दशमेतां सुव्रत ॥ आयाता भ्रातरौ ह्येते चत्वारो लोकविश्रुताः ॥ २२ ॥ दर्शनार्थं रमानाथ
नः प्रभुनिभ्यानेभिन् स्थितिर्नास्ति च शाश्वती ॥ २३ ॥ तेन च यं दशा प्राप्ता भवता परिपालिता ॥ अ
न्याम आभृगं योनिं कृत्स्नताम् ॥ २४ ॥ एतस्मादाभृगं योनिं प्राप्नुतां सुसमाहितौ ॥ सद्यः प्राप्नोतदा
ममानीभिः ॥ २५ ॥ जयश्च विजयाख्यश्च दुष्टभावं समश्रितौ ॥ जन्मान्तरसहस्रेण तपोदान
विध्यनिचर्वागमविष्णुभक्तिः परास्मृता ॥ जन्मजन्मान्तरैर्जातौ तामसीयोनिमुद्धतौ ॥ २६ ॥ हिरण्यकशिपुश्चैव

२७ ॥ उसी कारण उचम कही हुई विष्णुजी की भक्ति तुम दोनों के होगी वे दोनों गर्वित जन्म जन्मान्तरों
२८ ॥ उसी कारण उचम कही हुई विष्णुजी की भक्ति तुम दोनों के होगी वे दोनों गर्वित जन्म जन्मान्तरों
२९ ॥ उसी कारण उचम कही हुई विष्णुजी की भक्ति तुम दोनों के होगी वे दोनों गर्वित जन्म जन्मान्तरों
३० ॥ उसी कारण उचम कही हुई विष्णुजी की भक्ति तुम दोनों के होगी वे दोनों गर्वित जन्म जन्मान्तरों

में तामसी (आसुरी) योनि को प्राप्त हुए ॥ २८ ॥ हिरण्यकशिपु व महाबलवान् हिरण्याक्ष वैसेही कुंभकर्ण नामक और लोकों की रत्ननेवाला रावण ॥ २९ ॥ और दन्तवक्र व शिशुपाल इसप्रकार तीनजन्मों में कहेगये हैं व जो यह महाबलवान् दैत्य हिरण्याक्ष ऐसा कहा गयाहै ॥ ३० ॥ देवता व ब्राह्मणों की निन्दा करनेवाला व दुष्टभाव में प्राप्त वह सब देवताओं को जीतकर आपही स्थित हुआ ॥ ३१ ॥ और छूटे राज्यवाले व उससे पराजित सब देवता स्वर्ग से निकाल दिये गये और वे मनुष्यों की नाई घूमते थे ॥ ३२ ॥ व स्वधाकार, वषट्कार और स्वाहाकार नहीं देख पड़ता है और देवताओं का पूजन अर्चन नहीं होताहै व विशेषकर ब्राह्मणों

हिरण्याक्षोमहाबलः ॥ तथैवकुम्भकर्णश्च यो रावणोलोकरावणः ॥ २९ ॥ दन्तवक्रः शिशुपाल एवंजन्मत्रयेस्मृताः ॥ योसौमहाबलौदैत्यौ हिरण्याक्षइतिस्मृतः ॥ ३० ॥ दुष्टभावंसमापन्नो देवब्राह्मणनिन्दकः ॥ जित्वाचसकलान्देवान् स्वयमेवाधितिष्ठति ॥ ३१ ॥ स्वर्गान्निराकृताः सर्वे अपराज्याः पराजिताः ॥ विचरन्ति यथा मर्त्यास्तेन देवगणायुवि ॥ ३२ ॥ स्वधाकारो वषट्कारः स्वाहाकारेन दृश्यते ॥ देवपूजा च न नास्ति ब्राह्मणानां विशेषतः ॥ ३३ ॥ नैव तीर्थानि काशान्ते पुण्यान्यायतनानि च ॥ आश्रमेषु च सर्वेषु ऋषीणां च महात्मनाम् ॥ ३४ ॥ अत्यदसुतं प्रकुर्वन्ति दुष्टदैत्याः प्रहारिणः ॥ वर्या श्रमवतां धर्माः स्त्रीणां चैव सुशीलता ॥ ३५ ॥ उच्छिन्नाहितदाजाता तस्मिन् राज्ञि दुरात्मनि ॥ दुष्टाचारादुरात्मानो मायिनो बहुमानिनः ॥ ३६ ॥ पाखण्डिनो विक्रमिणः सर्वधर्मवहिर्मुखाः ॥ पशुधर्मगताह्येते सर्वब्रह्मेति शंसिनः ॥ ३७ ॥ बहुम्लेच्छा बहुकेशा बहुबाधावनिष्कृता ॥ कोवेदः कास्मृतिः पुण्याको यज्ञः काचदक्षिणा ॥ ३८ ॥ तमोभूतं जगत्सर्वं दृश्यते का पूजन नहीं होता था ॥ ३३ ॥ और तीर्थ व पवित्र देव मन्दिर नहीं शोभित होते थे व ऋषियों तथा महात्माओं के सब आश्रमों में ॥ ३४ ॥ प्रहार करनेवाले दुष्ट दैत्य अतिश्रद्धुत कर्मको करते थे और वर्ण व आश्रमवाले जनों के धर्म व स्त्रियों की सुशीलता ॥ ३५ ॥ तब नष्ट होगई जब कि वह दुष्टराजा हुआ और दुष्ट आचारवाले व दुरात्मा, मायावी तथा बहुत मानी ॥ ३६ ॥ पाखण्डी, पराक्रमी व सब धर्मों से विमुख तथा सब ब्रह्महै ऐसा कहनेवाले ये दैत्य पशुधर्मत्वको प्राप्त हुये ॥ ३७ ॥ और बहुत म्लेच्छ बहुत केश व बहुत पीड़ाओंवाली पृथ्वी कीगई कौन कौन और यज्ञ और कौन दक्षिणा है ॥ ३८ ॥ पृथ्वी तलमें सब संसार

अन्धकारभूत देख पड़ता था हे व्यासजी ! जब देखा सब त्रिलोक ऐसा होगया ॥ ३६ ॥ तब जब जब धर्मकी ग्लानि होती है और अधर्म की बढ़ती होती है तब हे श्रुजनी ! मैं अपना को रचता हूँ या ने अवतार को धारण करता हूँ ॥ ४० ॥ ऐसा जानकर आत्मवान् महाविष्णुजीने लीला से श्वेतद्वीप के समान दिव्य व उत्तम वाराहशरीर को धारण किया ॥ ४१ ॥ जो कि यज्ञ स्तंभरूपी दाढ़ीवाला व हव्य गन्धिवाला और बीज व औषधीरूप रोमोंवाला तथा वेदरूपी चरणोंवाला था स्मृति इन वाराहजी की नासिकाथी व जिह्वा अग्नि और तालु आहुतिथी ॥ ४२ ॥ और वे वाराहजी भीतर मुख के प्रकाश से आटोप (गर्व) वाले व यज्ञशरीर

वसुधातले ॥ एवं व्यासयदाजातं दृष्टं सर्वजगन्नयम् ॥ ३६ ॥ यदायदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ॥ अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥ ४० ॥ इति ज्ञात्वा महाविष्णुर्वाराहं पुरात्मवान् ॥ दधारलीलाया दिव्यं श्वेतद्वीपं पमं शुभम् ॥ ४१ ॥ यूगदंष्ट्रो ह विगन्धो बीजौषधितनूरुहः ॥ वेदपादः स्मृतिर्घोषा जिह्वाग्निस्तालुचाहुतिः ॥ ४२ ॥ अन्तरास्यरुचाटो पोयज्ञकायः सुदक्षिणः ॥ उद्गमो घुर्धुरो नादो विहारो ऋत्विजाकृतिः ॥ ४३ ॥ श्वेतः श्वासपरो दक्षः सदस्यावयवः स्मृतः ॥ पुच्छः कर्मासनो नित्यं यजतां बहुमानदः ॥ ४४ ॥ वेदीपल्वलसंतारो ब्रह्माध्वर्युर्वृषणाकरे ॥ लोककल्पो लोकसाक्षी परावरवहः शुचिः ॥ ४५ ॥ आद्यः पुरुष ईशानः पुरुहूतः पुरुषदुतः ॥ तेनासौ निहतो दैत्यो हिरण्याक्षो दुरासदः ॥ ४६ ॥ संग्रामान् सुबहून् कृत्वा बहुकष्टेन विष्णुना ॥ दैत्येन पीडिता पृथ्वी रसातलतलंगता ॥ ४७ ॥ उद्धृता च वराहे

तथा उत्तम दक्षिणावाले थे इनका घुर्धुर शब्द उच्चगान था य विहार ऋत्विज के समान आकाशवाला था ॥ ४३ ॥ व ये वाराहजी श्वेत श्वास में तत्पर व प्रवीण और सामाजिक अंगोंवाले कहे गये हैं व इनकी पुच्छ कर्म का आसन है जो कि पूजन करनेवालों को बहुत मानदायक है ॥ ४४ ॥ और वाराहजीका छोटे तड़ागों का उतरना वेदी है और वन व खानि ब्रह्मा अध्वर्यु (यजुर्वेदी) है व लोकों की कल्पना करनेवाले तथा लोकसाक्षी तथा कार्य व कारण के धारनेवाले और पवित्र हैं ॥ ४५ ॥ जो वाराहजी आदि पुरुष व ईशान तथा बहुत नामोंवाले व बहुतों से स्तुति किये हुये हैं उन विष्णुजी से बहुत संग्रामों को कर बड़े कष्ट से यह

हिरण्याल दुरासद दैत्य मारा गया दैत्य से पीड़ित पृथ्वी रसातल के नीचे चली गई थी ॥ ४६ ॥ उसको वाराहजी चन्द्रमा की रेखा के समान दाढ़ से ऊपर लाये हैं और वे सब दानव मारे गये व शेष पाताल को प्राप्त हुये ॥ ४८ ॥ तब पवित्र पवन चलने लगे व सूर्य सुन्दर प्रकाशवाले हुये और शान्त हुई अग्नियां जल उठीं व दिशाओं में उत्पन्न शब्द शान्त होगये ॥ ४९ ॥ और नदियां मार्ग में बहने लगीं व समुद्र प्रकृति को प्राप्त हुये याने जैसे कि पहले थे वैसेही होगये हे व्यासजी ! वाराहदेवजी ! सब संसार को देखकर प्रसन्न प्रसन्न चित्त हुये ॥ ५० ॥ वाराहमूर्तिवाले भगवान् सब कामनाओं के फलों को देनेवाले हैं और आनन्द से पूर्ण वाराहदेवजी

एतदं प्रयाचन्द्रेखया ॥ हतास्तेदानवाः सर्वशेषाः पातालमाययुः ॥ ४८ ॥ वहुः पुरयास्तदावाताः सुप्रभो भूहिवाकरः ॥ जज्वलुश्चाग्नयः शान्ताः शान्तादिगजनि तस्वनाः ॥ ४९ ॥ सरितो मार्गवाहिन्यः सागराः प्रकृतिगताः ॥ दृष्ट्वा देवोऽखिलं व्यासप्रसन्नात्मा बभूव ह ॥ ५० ॥ वाराहमूर्तिर्भगवान् सर्वकामफलप्रदः ॥ आनन्दनिर्भरो देवो हतदैत्यो वरप्रदः ॥ ५१ ॥ तस्यापि हृदयाज्जाता नदी हिषासनातनी ॥ आनन्दजलसम्पूर्णा सर्वानन्दवरप्रदा ॥ ५२ ॥ बहुयोजनविस्तारा बहुलाकामचारिणी ॥ पद्माकरसमाकीर्णा हंसकारण्डवाकुला ॥ ५३ ॥ सरिता रत्नामाया यत्नगन्धर्वसेविता ॥ किन्नरीभिर्गीयमाना गीयमाना खगालिभिः ॥ ५४ ॥ नृत्यन्त्यप्सरसो नित्यं स्तूयमाना महर्षिभिः ॥ हुताग्निभिर्गुतानित्यं राजर्षिभिस्समाश्रिता ॥ ५५ ॥ वृद्धस्तनभराक्रान्तवरस्त्रीभिः समावृता ॥ कचिक्करिवरापते रम्यमाणा विराजिता ॥ ५६ ॥

दैत्यों को मारनेवाले व वरदायक हैं ॥ ५१ ॥ उनके भी हृदय से यह सनातनी नदी उत्पन्न हुई है जो कि आनन्द जल से पूर्ण व सब आनन्दों तथा वरों को देनेवाली है ॥ ५२ ॥ और बहुत योजन चौड़ी बहुत व इच्छा के अनुकूल चलनेवाली है और कमलों की खानि से व्याप्त व हंसों तथा कारुण्ड पक्षियों से संयुक्त है ॥ ५३ ॥ और रत्नों समेत व चंचला माया रहित तथा यक्षों व गंधर्वों से सेवित है और किन्नरों से गाई जाती व पक्षियों तथा अमरों से गान की जाती है ॥ ५४ ॥ जहांपर सदैव अप्सरायें नृत्य करती हैं व महर्षियों से स्तुति की जाती तथा हवन की हुई अग्नियों से नित्यही संयुत व राजर्षियों से भलीभांति आश्रित है ॥ ५५ ॥ और उन्नत

स्तनों के भारसे धिरीहुई स्त्रियोंसे भलीभांति धिरी है और कहींपर उत्तम हाथियों के बच्चोंसे कीड़ा की जातीहुई वह नदी शोभित है ॥ ५६ ॥ और प्रशंसित चित्तवाले ऋषियों व वेदज्ञ ब्राह्मणों से सदैव सेवने योग्य तथा मनुष्यों को सब समय में ऋद्धि, सिद्धि, दायिनी है ॥ ५७ ॥ मनोहर महाकाल पुरी में सुन्दरी पद्मावती पुरी है व हे व्यासजी ! उत्तम सुन्दर कुण्ड बहुत सुन्दर व प्राचीन है ॥ ५८ ॥ जिसमें नहाकर मनुष्य सनातन शिवलोक को जाते हैं हे व्यासजी ! लोकोको पवित्र करनेवाली उत्तम क्षिप्रा नदी उसमें लीन होगई है ॥ ५९ ॥ वाराहजीने सब दुष्ट दैत्यों का विनाश किया है और उन वाराहमूर्त्तिवाले विष्णुजी ने देवताओं को ताप व शूका वेदविद्भिर्द्विजैस्सेव्या ऋषिभिर्दशसितात्मभिः ॥ सर्वदासर्वकालेच ऋद्धिसिद्धिप्रदानृणाम् ॥ ५७ ॥ महाकालपुरे रम्यैरम्यापद्मावतीपुरी ॥ सुन्दरकुण्डपरंव्यासरम्यंप्राचीनकंशुभम् ॥ ५८ ॥ यत्रस्नात्वनारायांति शिवलोकंसनातनम् ॥ तत्रलीनापराव्यासक्षिप्रवैलोकपावनी ॥ ५९ ॥ वाराहेणकृतंसर्वदुष्टदैत्यनिवर्हणम् ॥ तेनदेवानिरांतकाः कृता वाराहमूर्त्तिना ॥ ६० ॥ भूत्वाप्राञ्जलयःसर्वे देवाइन्द्रपुरोगमाः ॥ स्तुतिंकृत्वामहाविष्णुं सन्नताःपुरतःस्थिताः ॥ ६१ ॥ देवदेवजगन्नाथ पुण्यश्रवणकीर्तन ॥ किंदानंकिंतपःपुण्यं किंतीर्थंकाचदेवता ॥ ६२ ॥ येनपुण्यप्रभावेन पुनःस्वर्गोह्यवाप्यते ॥ एवंनिश्चित्यनोब्रूहि सर्वगुह्यतरंविभो ॥ ६३ ॥ श्रीवाराह उवाच ॥ श्रूयतांभोसुराःसर्वे युष्मा कंसिद्धिकारणम् ॥ गुह्याद्गुह्यतरंपुण्यं महाकालवनेशुभम् ॥ ६४ ॥ ममदेहोद्भवाच्चिप्रा यत्रलीनापयस्विनी ॥ नील गङ्गासरिच्छ्रेष्ठा यत्रप्राचीसरस्वती ॥ ६५ ॥ पुष्करं च गयातीर्थं पुरुषोत्तमसरःशुभम् ॥ तद्यूयंगच्छतच्चिप्रां पुनर्लोकं रहितं, किया है ॥ ६० ॥ व इन्द्रादिक सब देवता हाथों को जोड़ आगे स्थित होकर स्तुति कर मद्धानिष्णुजी को भलीभांति प्रणाम करते भये ॥ ६१ ॥ देवता बोले कि हे पवित्र श्रवण व कथनवाले देवदेव जगदीशजी ! कौन दान है कौन तप है व कौन पवित्र तीर्थ है और कौन देवता है ॥ ६२ ॥ कि जिस पुण्य के प्रभाव से फिर स्वर्ग मिले है विभो ! ऐसा निश्चय कर अत्यन्त गुप्त सब वृत्तान्त को कहिये ॥ ६३ ॥ श्री वाराहजी बोले कि हे समस्तदेवताओं ! सुनिये कि गुप्त से भी गुप्त व पवित्र तथा उत्तम तुमलोगों की सिद्धि का कारण महाकाल वनमें है ॥ ६४ ॥ मेरे शरीर से उत्पन्न क्षिप्रानदी जिसमें लीनहुई है वह नीलगंगा उत्तम नदी है जहां कि

प्राची सरस्वती है ॥ ६५ ॥ व पुष्कर, गया तीर्थ और उत्तम पुरुषोत्तम तड़ाग है इसलिये तुमलोग क्षिप्रानदी को जावो फिर लोकोको प्राप्त होवोगे ॥ ६६ ॥ वहां देव-
देव जगद्गुरु वाराहजी के इस प्रकार उत्तम वचन को सुनकर ब्रह्मा इन्द्रादिक सब देवगण ॥ ६७ ॥ जहां क्षिप्रा उत्तम नदी थी वहां सुन्दर महाकाल वनमें गये
और स्नान दानादिक कर यथा योग्य श्राद्ध कर ॥ ६८ ॥ उस पुराय के प्रभाव से देवता अपने लोकोको गये इस प्रकार हे व्यासजी ! क्षिप्रा लोकापवनी कही
गई है ॥ ६९ ॥ व अतुल तेजवाले वाराहविष्णुजी का तड़ाग हुआ है कि जिसके दर्शन मात्र से ब्रह्म हत्या नाश होजाती है ॥ ७० ॥ उसमें नहाकर जल पीकर व

नवाप्स्यथ ॥ ६६ ॥ इति श्रुत्वा परं वाक्यं देवदेवजगद्गुरोः ॥ तत्र देवगणाः सर्वे ब्रह्महन्द्रपुरोगमाः ॥ ६७ ॥ महाकालवनेर
म्ये यत्र क्षिप्रामरिहरा ॥ स्नानदानादिकं कृत्वा श्राद्धं कृत्वा यथोचितम् ॥ ६८ ॥ तेन पुरायप्रभावेन स्वकौल्लोकान् गताः
सुराः ॥ एवं व्याससमाख्याता क्षिप्रैवैलोकपावनी ॥ ६९ ॥ जातंसरो वराहस्य विष्णोरतुलतेजसः ॥ यस्य दर्शनमात्रे
ण ब्रह्महत्याव्यपोह्यते ॥ ७० ॥ तत्र स्नात्वा पयः पीत्वा श्राद्धं कृत्वा यथोचितम् ॥ पयस्विनीं च गन्तवा विष्णुलोकं
हीयते ॥ ७१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे क्षिप्रामाहात्म्यं नाम त्रिषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६३ ॥
सनत्कुमार उवाच ॥ पृथिव्यां यानि तीर्थानि तानि सर्वाणि सुव्रत ॥ अवन्त्यां सुन्दरं तीर्थं तिष्ठन्ति सर्वदा मुनि ॥ १ ॥
व्यास उवाच ॥ किमिदं सुन्दरं कुण्डं कदा काले भवति त्वितौ ॥ निर्मितं केन को देवः किं वा तस्य फलं स्मृतम् ॥ २ ॥ सनत्कु

यथा योग्य श्राद्धकर और दूधवाली गऊ को देकर मनुष्य विष्णुलोक में पूजा जाता है ॥ ७१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे देवीदयालुमिश्राविरचितायां भाषाटीका
यां क्षिप्रामाहात्म्यं नाम त्रिषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६३ ॥
दो० । जिमि पिशाच मोचन तथा सुन्दर कुण्डप्रभाव । चौसठिवें अध्याय में सोई चरित सुहाव ॥ सनत्कुमारजी बोले हे सुव्रत ! पृथ्वीमें जो तीर्थ हैं वे सब पृथ्वी
पर अवन्ती पुरीमें सुन्दर कुण्ड में सदैव स्थित रहते हैं ॥ १ ॥ व्यासजी बोले कि यह कौन सुन्दर कुण्ड पृथ्वी में किस समय हुआ है और किसने निर्माण किया है व

उसका कौन फल कहा गया है ॥ २ ॥ सनत्कुमारजी बोले कि सुनिये कि जब अत्यन्त पवित्र तीर्थ में सब पापों का नाशक व चाहेहुए मनोर्थके फलदायक सुन्दर नामक कुण्ड हुआ है ॥ ३ ॥ कि जिसके सुननेही से ब्रह्महत्या नाश होजाती है व अश्व सेध से अधिक तथा सौ वाजपेय यज्ञों से अधिक पुण्य होता है ॥ ४ ॥ हे व्यासजी ! पुरातन समय जब कल्पान्त में प्रचण्ड पवन व बरसने से पृथ्वी नष्ट होगई और सुमेरु गिरि कांपडठा ॥ ५ ॥ तब इस भयंकर, गुप्त, विकार रहित व अचल महाकाल वनमें वैकुण्ठनामक वह उत्तम शिखर गिरा है ॥ ६ ॥ शिखर गिरने पर उसी क्षण रत्नों के सोपानों से निर्मल व मोतियों की बालू से पूर्ण निश्चित कुण्ड हुआ ॥ ७ ॥

मार उवाच ॥ शृणु पुण्यतमे चैत्रे सुन्दराख्यं यदाभवत् ॥ सर्वपापप्रशमनं वाञ्छितार्थफलप्रदम् ॥ ३ ॥ यस्य श्रवणमात्रेण ब्रह्महत्याव्यपोह्यते ॥ अश्वमेधाधिकं पुण्यं वाजपेयशताधिकम् ॥ ४ ॥ पुराकल्पक्षये व्यास नष्टकल्पाचमेदिनी ॥ प्रचण्डवातवर्षाभ्यां घूर्णितो मेरुपर्वतः ॥ ५ ॥ तदा त्रपतितैव कुण्ठाख्यं तच्छिखरोत्तमम् ॥ महाकालवने घोरं गुह्यं चैवाव्यये ध्रुवे ॥ ६ ॥ तत्क्षणात्पतितेशुद्धे कुण्डं जातं मुनिश्चितम् ॥ रत्नसोपानसुस्वच्छं मुक्तासैकतपूरितम् ॥ ७ ॥ जाम्बूनदकुतारो हं हेमपद्मविराजितम् ॥ कल्पद्रुमकृतच्छायां चिन्तामणिसमुच्छितम् ॥ ८ ॥ हंसकारण्डवाकीर्णं महर्षिगणमेवितम् ॥ बीजौषधिगणार्कीर्णं सर्वतत्त्वाभिसंयुतम् ॥ ९ ॥ कल्पक्षये न जीयन्ते यानि तत्त्वानि सर्वदा ॥ तानि तत्र प्रतिष्ठन्ति मूर्त्तिमन्ति पराणि च ॥ १० ॥ वेदशास्त्रपुराणानि गाथागीत्यक्षराः स्वराः ॥ अकारश्च वषट्कारः गायत्री त्रिपदी परा ॥ ११ ॥ कलाकाष्ठानि लवण्टिपलकाघटिः ॥ अहर्निशश्च यामाश्च पक्षौ मासौ ऋतुस्तथा ॥ १२ ॥ संव

जो कि सुवर्ण मे रचित आरोहवाला व सुवर्ण के समान कमलों से शोभित तथा कल्पवृक्ष से की हुई छायावाला और चिन्तामणि से उन्नत था ॥ ८ ॥ व हंसों तथा क्रांन्डव पक्षियों से व्याप्त तथा महर्षिगणोंसे मेवित और बीजों व औषधियोंसे पूर्ण तथा सब तत्त्वों से संयुत था ॥ ९ ॥ जो तत्त्व कल्पान्त में नहीं नष्ट होते हैं वे मूर्त्तिमान् उत्तम तत्त्व सदैव उसमें प्रतिष्ठित रहते हैं ॥ १० ॥ और वेद, शास्त्र, पुराण, गाथा, गान, अक्षर, स्वर, अकार, वषट्कार व त्रिपदी परम गायत्री ॥ ११ ॥

और कला, काष्ठा, सुहर्त, लव, त्रुटि, पल, घटी, दिनरात, पहर, पक्ष, महीना व ऋतु ॥ १२ ॥ और मूर्तिमान् संवत् व युग कुंड में स्थित हैं और देवता, यज्ञ, नाग, गुह्यक व किन्नर ॥ १३ ॥ कल्प के दोष के भयसे आतुर गन्धर्व, अप्सरा, यज्ञ, सिद्ध व किंपुरुषोंने उस कुण्ड की उपासना किया है ॥ १४ ॥ और ब्रह्मा, रुद्र, काल व बड़े पराक्रमी लोकपाल तथा ध्यान में परायण कोई सिद्ध व प्रशंसित नियमोंवाला तपस्वी ॥ १५ ॥ हे व्यासजी ! ये बहुत युगोंतक तब तक उसमें टिकते हैं जबतक कि कल्प समाप्त होता है और सुदर्शन चक्र के समान आकारवाला व अमृत जलों से पूर्ण ॥ १६ ॥ व दिव्य अभिप्रायों से संयुत और पारिजात के गुणोंसे

त्सरोयुगश्चैव कुण्डेतिष्ठतिमूर्तिमान् ॥ देवायज्ञाश्चनागाश्चगुह्यकाः किन्नरास्तथा ॥ १३ ॥ गन्धर्वाप्सरसोयज्ञाः सिद्धाः किंपुरुषास्तथा ॥ उपासाञ्चक्रिरेतस्य कल्पदोषभयातुराः ॥ १४ ॥ ब्रह्मारुद्रश्चकालश्च लोकपालामहोजसः ॥ केचिद्ध्यानपराः सिद्धास्तपस्वीशंसितव्रतः ॥ १५ ॥ तिष्ठन्ति बहुयुगं व्यास यावत्कल्पः समाप्यते ॥ सुदर्शनसमाकारं पूरितं चामृताम्बुभिः ॥ १६ ॥ दिव्याभिप्राय संयुक्तं पारिजातगुणान्वितम् ॥ दिव्यस्त्रीस्नानगन्धो देवांसितुसदैव हि ॥ १७ ॥ कचिन्मयूरानृत्यन्ति कचित्कूजन्तिकोकिलाः ॥ कचिच्चक्रेकाभिरवाः कचिद्घोषसमाकुलं ॥ १८ ॥ सुन्दरं सुन्दराकारं सुन्दरं तत्तथोच्यते ॥ बहुपुण्यकरं व्यास सर्वपापहरं परम् ॥ १९ ॥ यत्र सन्निहितो विष्णुः शिवः शक्त्या युतो वशी ॥ उपासाञ्चक्रिरे शशवत् सर्वकालेषु सर्वदा ॥ २० ॥ क्षणाद्विक्षणमेकं च सुन्दरकुण्डे नरो वसेत् ॥ वैकुण्ठेनियतं वासः यावत् कल्पशतं भवेत् ॥ २१ ॥ पतङ्गाः पक्षिणः कीटा मृतायान्ति शिवालये ॥ किंपुनर्मनवा लोके स्नानपूतास्तुतज्जले ॥ २२ ॥

संयुत तथा दिव्यस्त्रियों के स्नान के कारण सुगन्धित जलों से सदैव वासित है ॥ १७ ॥ कहीं मयूर नाचते हैं और कहीं कोकिलाएं कुजती हैं कहीं मयूर की वाणी होरही हैं, कहीं सब्दों से संयुत है ॥ १८ ॥ सुन्दर व सुन्दर आकारवाला वह तड़ाग सुन्दर कहा जाता है हे व्यासजी ! जो कि बहुत पुण्यकारक व समस्त पातकों का हारक तथा उत्तम है ॥ १९ ॥ जहापर विष्णुजी स्थित हैं व शक्तिसे संयुत कान्तिमान् शिवजी सदैव रहते हैं इन सबोंने सदैव सब समयों में उसकी उपासना किया है ॥ २० ॥ आधा क्षण व क्षणभर जो मनुष्य सुन्दर कुण्ड में वसता है उसको तबतक वैकुण्ठ में निश्चय कर निवास होता है कि जबतक सौ कल्प होते हैं ॥ २१ ॥

और पतंग, पक्षी व कीट वहाँ भरकर शिवजीके स्थान को प्राप्त होते हैं फिर संसार में उसके जल में स्नान से पवित्र मनुष्यों को क्या कहना है ॥ २२ ॥ जो मनुष्य तिल, धेनु, हारी, घोड़ा, रथ व पृथ्वी को देता है और दासी, दास, सुवर्ण व अनेक भाँति के रत्नों को देता है ॥ २३ ॥ और शय्यादान, विमान व अनेक भाँति के दानों को देता है हे व्यासजी ! मैं नहीं जानता हूँ कि उसके दान से उपजाहुआ क्या फल होता है ॥ २४ ॥ हे व्यासजी ! कहे हुये सुन्दरकुंडके उत्तम फलको फिर सुनिधे कि एक समय बहुत पाप से पापी योनियों में पतित ॥ २५ ॥ पिशाच मोक्षको प्राप्त होकर शिवरूपधारी वह चलागया पिशाचमोचन तीर्थ में नहाकर व सदा-

योददातितिलान्धेनुं गजंवाजिरथावनीम् ॥ दासीदाससुवर्णं च रत्नानिविविधानि च ॥ २३ ॥ शय्यादानविमानानि दानानिविविधानि च ॥ नतस्य दानजंवेद्वि कीदृग्व्यासफलं भवेत् ॥ २४ ॥ भूयः शृणु परं व्यास सुन्दरकुण्डफलं स्मृतम् ॥ एकदा बहुपापेन पतितः पापयोनिषु ॥ २५ ॥ पिशाचो मोक्षमापन्नः शिवरूपधरो गतः ॥ पिशाचमोचने स्नात्वा दृष्ट्वा देवं महेश्वरम् ॥ २६ ॥ मुच्यते सर्वपापेभ्यो यद्यपि ब्रह्महा भवेत् ॥ व्यास उवाच ॥ कः पिशाच इति ख्यातः किं तेन दुष्कृतं कृतम् ॥ २७ ॥ येन पापप्रसङ्गेन पिशाचत्वं समागतः ॥ कथं तीर्थं प्रसङ्गोऽस्य जातौ विद्विजसत्तम ॥ २८ ॥ एतद्वेदितुमिच्छामि त्वत्तो ब्रह्मविदांवर ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ शृणु व्यास महाख्यानं तीर्थमाहात्म्यमुत्तमम् ॥ २९ ॥ यस्य श्रवणमात्रेण सर्वपापक्षयो भवेत् ॥ ब्राह्मणो देवलोनाम दाक्षिणात्यो द्विजाधमः ॥ ३० ॥ सदा पापपरतो लोभी कूट साक्षी चलम्पटः ॥ गुरुश्रुत्वा तवोद्धृतो भ्रूणहा गुरुतल्पगः ॥ ३१ ॥ हे महारिसुरापी च ब्रह्महास्वामिद्रोहकः ॥ अभक्ष्य

शिव देवजीको देखकर ॥ २६ ॥ यद्यपि ब्रह्मघाती होत्रे तथापि वह मनुष्य सब पापों से छूट जाता है व्यासजी बोले कि पिशाच ऐसा कहा हुआ कौन है व उसने क्या पाप किया था ॥ २७ ॥ कि जिस पाप के प्रसंग से पिशाचत्व को प्राप्त हुआ है व हे द्विजोत्तम ! तीर्थ में इसका कैसे प्रसंग हुआ है ॥ २८ ॥ हे ब्रह्मविदांवर ! मैं तुमसे इसको जानना चाहता हूँ सनत्कुमारजी बोले कि हे व्यासजी ! उत्तम तीर्थमाहात्म्यरूप महाकथानक को सुनिये ॥ २९ ॥ कि जिसके सुननेही से सब पापों का नाश होता है ब्राह्मणों में नीच देवल नामक दाक्षिण में रहनेवाला ब्राह्मण हुआ है ॥ ३० ॥ जो कि सदैव पाप में पराश्रय, लोभी, भूँटी गवाही देनेवाला

लम्पट, गुरुद्रोही, कपटी, धूर्त, गर्भघाती व गुरुशय्यागामी था ॥ ३१ ॥ व सुवर्ण को चुरानेवाला, मदिश पीनेवाला और ब्रह्मघाती व स्वामिद्रोही, अभद्र्य को भोजन करनेवाला और वेदों व शास्त्रोंसे रहित था ॥ ३२ ॥ और बहुत जन्मोंसे इकट्ठा किये पापवाला व सब धर्मोंसे अलग कियाहुआ, विश्वासघाती, मानी व चोरों के साथमें लगाहुआ तथा दुष्टथा ॥ ३३ ॥ चोरोंके कार्यके प्रयोजन को साधन करनेवाला वह मूर्ख अन्यदेश को चलागया और मार्गमें उस पाप आचरणवाले आणी से बहुत लोग मारेगये ॥ ३४ ॥ और पापकारी लोगोंके प्रसङ्गसे वह दुष्ट मगधदेशमें गया वहांपर वेदों व वेदाङ्गों का जाननेवाला एक दान्त (इन्द्रियों को दमन

भक्तकश्चैव वेदशास्त्रविवर्जितः ॥ ३२ ॥ बहुजन्मजितपापी सर्वधर्मबहिष्कृतः ॥ विश्वासघातकोमानी चोरसङ्घरतः खलः ॥ ३३ ॥ देशान्तरगतोमन्दश्चौरकार्यार्थसाधकः ॥ बहवोनिहतामार्गे पापचारेणजन्तुना ॥ ३४ ॥ मगधेषु गतो दुष्टः प्रसङ्गात्पापकारिणाम् ॥ तत्रैकोब्राह्मणोदान्तो वेदवेदाङ्गपारगः ॥ ३५ ॥ साग्निकःशुद्धसत्त्वस्थो ब्रह्मकर्मरतःसदा ॥ इवशुरगृहस्थिताभार्यातामादाययशस्विनीम् ॥ ३६ ॥ चलितोमार्गमारुह्य तेनपापेनघातितः ॥ तस्यस्त्रीचवराशोहारू पलावणयशालिनी ॥ ३७ ॥ पतिव्रतामहाभागा पूतचित्ताशुचिस्मिता ॥ हतेभर्तोरिदुःखार्तापत्युर्विरहकातरा ॥ ३८ ॥ वनेघोरैरभिभ्रष्टा काष्ठमादायभामिनी ॥ आरुरोहचितादीप्तां पतिनाशुद्धमानसा ॥ ३९ ॥ सचदुष्टतरःसर्वं तस्यवि प्रस्यजीवनम् ॥ गृहीत्वाचलितोमार्गे गृहीतोरजकिङ्करैः ॥ ४० ॥ निर्गडित्वातुवित्तेन वेदितोरजसन्निधौ ॥ घातितो

करनेवाला) ब्राह्मण रहताथा ॥ ३५ ॥ जोकि साग्निक व शुद्ध सत्त्वमें स्थित और सदैव ब्रह्मकर्म में परायण था वह इवशुरके घरमें स्थित उस यशस्विनी स्त्रीको लेकर ॥ ३६ ॥ चला और मार्गको रोककर उसको उस पापीने मारडाला उसकी स्त्री उत्तम कटिवाली व रूप तथा लावण्यसे शोभितथी ॥ ३७ ॥ और पतिव्रता, महाभाग्यवाली, पवित्र चित्तवाली व पवित्र मुसक्यानवाली थी पतिके मरजानेपर वह पतिके वियोगसे डरकर दुःख से विकलहुई ॥ ३८ ॥ भयङ्करवन में छूटी हुई वह शुद्ध मनवाली स्त्री ईधनको लेकर पतिसमेत जलतीहुई चिता पै चढ़ी ॥ ३९ ॥ और वह अत्यन्त दुष्ट उस ब्राह्मण के सब प्राणको लेकर चला व मार्ग में राजदूतों से पकड़

लिया गया ॥ ४० ॥ और द्रव्यके कारण जंजीरोंसे बाँधकर राजाके समीप बतलाया गया व वृत्तके खोदरमें रस्सीसे गलेमें बाँधकर मारा गया ॥ ४१ ॥ और कुत्तेको पचाने वाले चाण्डालों ने उसको इधर उधर भूमिमें धिसलाया व उस कर्मके फलसे वह रौरवनरकको गया ॥ ४२ ॥ साठिहजार वर्षतक विष्टामें कीटाता को प्राप्त हुआ तदनन्तर यमराजकी आज्ञा करनेवालों से नरकमें प्राप्त होनेपर ॥ ४३ ॥ वैतरणी से पीडित व कुम्भीपाकमें प्राप्त वह रोताथा इस भाँति वह पापी बहुत प्रकार के नरकोंको दुःखसे भोगकर ॥ ४४ ॥ तदनन्तर पचहचरि युगोंतक प्रेतयोनिमें प्राप्त हुआ जोकि सूजीके समान सुखवाला तथा बड़े शरीरवाला, बड़ीध्वनिवाला व बड़े पेटवाला

वेगलेबद्धा रज्जुनावृचकोटरे ॥ ४१ ॥ चाण्डालैर्वृष्टितोभूमापितश्चेतःश्वपाकिभिः ॥ तेनकर्मविपाकेन रौरवनरकंगतः ॥ ४२ ॥ षष्टिवर्षमहसाणि विष्टायांकृमितांगतः ॥ ततोहिनरकंप्राप्ते यमशासनकारकैः ॥ ४३ ॥ कुम्भीपाकगतो गौति वैतरण्याप्रपीडितः ॥ एवंबहुविधान्नरकान्भुक्त्वापापीसदुःखतः ॥ ४४ ॥ ततःप्रेतत्वमापन्नो युगानांपञ्चसप्ततिम् ॥ सूचीमुखोमहाकायो महारावोमहोदरः ॥ ४५ ॥ धुधातृपापराक्रान्तो मरुदेशसमाश्रितः ॥ ततःकष्टतरंप्राप्य पिशाचीतनुमाश्रितः ॥ ४६ ॥ कुटिलोदुष्टभावश्च दुष्टाचारीदिगम्बरः ॥ विष्टामूत्रकृताहारो प्रृतिपर्यक्तभोजनः ॥ ४७ ॥ इमशानेविट्प्रभोजीच कृत्तिवासविलोचनः ॥ भग्नवाप्यांतडागेच शुष्कवृक्षेचनिर्जले ॥ ४८ ॥ प्राकारपरिधाकारे शून्यागारेनदीतटे ॥ निवासोरोचतेतस्य सर्वदासर्वसन्धिषु ॥ ४९ ॥ एवंबहुयुगेयाते महाकालवनेगतः ॥ यत्रमाहेइवरा

था ॥ ४५ ॥ और लुधा व प्यास से आक्रामित वह मरुदेशमें प्राप्त हुआ तदनन्तर बहुत कष्टको पाकर पिशाचवाले शरीर में प्राप्त हुआ ॥ ४६ ॥ जो कि कुटिल व दुष्टस्वभाव दुष्ट आचरणवाला तथा दिगम्बर (वसनहीन) और विष्टा मूत्रको आहार करनेवाला व दुर्गन्धिसंयुत वस्तुको भोजन करनेवाला हुआ ॥ ४७ ॥ और इमशानमें विष्टा खानेवाला व चर्मवसनवाला, नेत्रहीन था व फूटीवावली व तड़ाग में और सूखेवृक्ष व निर्जल स्थान में ॥ ४८ ॥ और छहरदिवाली व परिघ के समान आकारवाले तथा शून्य घरमें व नदीके किनारे सदैव सब सन्धिषों (सन्ध्याओं) में उसको निवास रूचताथा ॥ ४९ ॥ इस प्रकार बहुत युग बीतनेपर वह महाकालवनमें गया जहाँ

कि शिवजी का लिंग व अद्भुत सुन्दरकुण्ड था ॥ ५० ॥ वहाँपर भी क्षणभर में सिंहेने मारडाला और उस पापीको मारकर जलको चाहेनेवाला सिंह कुण्ड में पैठ गया ॥ ५१ ॥ और दाढ़ोके लीचमें प्राप्त अस्थि (हड्डी) उसके मुख से जलमें गिरपड़ी उस पुण्यके प्रभावसे सब पाप नाशको प्राप्तहुआ ॥ ५२ ॥ और उस समय मरनेही पर वह लिंग नेत्रोंके मध्यमें प्राप्तहुआ व पिशाचके शरीर को छोड़कर ज्योति उस लिंगमें पैठ गई ॥ ५३ ॥ तब से लगाकर हे व्यासजी ! उत्तम पिशाचमोचन तीर्थहुआ और पिशाचमोचनेश नामक शिवजी पृथ्वीमें प्रसिद्धिको प्राप्तहुये ॥ ५४ ॥ मदसे मतवाले हाथियों की नाई पातक तबतक गरजते हैं जबतक कि मनुष्य क्षिप्रानदी

लिङ्गः सुन्दरं कुण्डमद्भुतम् ॥ ५० ॥ तत्रापि क्षणमात्रेण सिंहेन विनिपातितः ॥ घातयित्वा च तं पापं जलार्थं कुण्डमा
विशत् ॥ ५१ ॥ दंष्ट्रान्तरगतं चास्थिपतितं तन्मुखाज्जले ॥ तेन पुण्यप्रभावेण सर्वपापं च यंगतम् ॥ ५२ ॥ मृतमात्रे च
लिङ्गन्तन्नेत्रान्तरगतं तदा ॥ हित्वा पैशाचकंदं हे ज्योतिस्तल्लिङ्गमाविशत् ॥ ५३ ॥ तदारभ्य परं व्यास तीर्थं पैशाचमो
चनम् ॥ पिशाचमोचनेशाख्यो भुवि विख्यातताङ्गतः ॥ ५४ ॥ तावद्गर्जन्ति पापानि मदोन्मत्ता गजा इव ॥ याव
न्नायाति क्षिप्रायां तीर्थं पैशाचमोचने ॥ ५५ ॥ पिशाचमोचने स्नात्वा शुचिर्भूत्वासमाहितः ॥ पिशाचमोचने शाख्यं पू
जयित्वा यथाविधि ॥ ५६ ॥ सर्वपापविशुद्धात्मा जायेते नात्र संशयः ॥ पिशाचमोचने व्यास महादानानि कारयेत् ॥ ५७ ॥
न तस्य पुनरावृत्तिः शिवलोकात्कदाचन ॥ पिशाचमोचनकथां पवित्रां पापहारिणीम् ॥ ५८ ॥ पठनाच्छ्रवणञ्चैव हयमेध
फलं लभेत् ॥ ५९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे सुन्दरकुण्डपिशाचमोचनमाहात्म्यं नाम चतुःषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६० ॥
में पिशाचमोचनतीर्थ में नहीं आता है ॥ ५५ ॥ सावधान होताहुआ मनुष्य पिशाचमोचनतीर्थ में नहाकर और विधिपूर्वक पिशाचमोचनेश्वर नामक शिवजीको पूज
कर ॥ ५६ ॥ सब पापोंसे शुद्धचित्तवाला होता है इसमें सन्देह नहीं है हे व्यासजी ! जो नर पिशाचमोचनतीर्थ में महादानोको करे ॥ ५७ ॥ उसकी कभी शिवलोकासे
पुनरावृत्ति नहीं होती है याने वह शिवलोकासे फिर कभी नहीं लौटता है पवित्र व पापहारिणी पिशाचमोचन की कथा के ॥ ५८ ॥ पढ़ने व सुनने से मनुष्य अश्वमेध
यज्ञके फलको प्राप्त होता है ॥ ५९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे मापाटीकायां सुन्दरकुण्डपिशाचमोचनमाहात्म्यवर्णनं नाम चतुःषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६० ॥

दो० । कह्यो नीलगङ्गा यथा ब्रह्मा सौ निजहाल । पैसठिँ अध्याय में सोई चरित रसाल ॥ व्यासजी बोले कि हे वेदविदावर, ब्रह्मन् । मैं फिर तुममे यह सुना चाहताहूँ कि नीलगंगा किस समय क्षिप्रकुण्ड में भलीभाति प्राप्तहुई हैं ॥ १ ॥ सनत्कुमारजी बोले कि हे व्यासजी । समस्त तीर्थोंके फलको देनेवाले नहातीर्थ को सुनिये कि नीलगंगा में नहाकर मनुष्य संगमेश्वरजीको पूजै ॥ २ ॥ तो उसके दुष्टसंगसे उपजेहुये दोष कभी नहीं होते हैं एक समय तीनों लोकोंको पवित्र करतीहुई त्रिपथगा (तीनमार्गोंसे गमन करनेवाली) श्रीगंगानदी नीलवसनवाली तथा शोचसे विकल होकर ब्रह्मलोकमें गई व बोली कि हे ब्रह्मन् ! पहले मेरा कियाहुआ यह

व्यासउवाच ॥ भूयस्तु श्रोतुमिच्छामि त्वत्तोब्रह्मविदांवर ॥ नीलगङ्गाकदाब्रह्मन् क्षिप्रकुण्डेसमागता ॥ १ ॥ सनत्कुमारउवाच ॥ शृणुव्यासमहातीर्थं सर्वतीर्थफलप्रदम् ॥ नीलगङ्गाद्वारःस्नात्वा सङ्गमेश्वरमर्चयेत् ॥ २ ॥ दुष्टसङ्गोद्वा दोषा न भवन्ति कदाचन ॥ एकदाब्रह्मलोकैवे गङ्गा त्रिपथगानदी ॥ ३ ॥ गतापुनन्ती त्रील्लोकान्नीलवासाशुचाहिता ॥ भगवन् किमिदं जातं पातकं मे कृतम्पुरा ॥ ४ ॥ दुष्टाचारपरामेघ येनैषा प्रापिता दशा ॥ सर्वलोकेषु यत्किञ्चिज्जनानां पातकम्भुवि ॥ ५ ॥ तत्सर्वम् मयि तिष्ठेत्तु सर्वेषामपि देहिनाम् ॥ तेनाहं वै भराक्रान्ता नो शक्ता च लितुन्धराम् ॥ ६ ॥ नीलवासाविवर्णा च सर्वधर्मवहिर्मुखैः ॥ यत्किञ्चित्क्रियते कर्म शुभं वा यदि वा शुभम् ॥ ७ ॥ मयित्यक्त्वा पुनन्ती मे जन्तवः सर्वशोभलाः ॥ तिष्ठन्ति पुण्यलोकेषु भुक्तिमुक्तिप्रदेषु च ॥ ८ ॥ अस्माकंच महत्कष्टं जातं धातः परम्मलम् ॥ न हि शर्मनैव शान्तिर्न निद्रान च निवृत्तिः ॥ ९ ॥ न हि लोके स्थितिर्भेद्य पापिष्ठायामनातनी ॥ दुष्टसङ्गोद्भवैर्दोषैः प्लावि

क्या पाप उत्पन्न हुआ है ॥ ३ । ४ ॥ कि जिसमें आज दुष्टआचारमें तत्पर यह दशा प्राप्तकी गई पृथ्वीपर सब लोकोंमें मनुष्यों का जो कुछ पातक होता है ॥ ५ ॥ सबभी प्राणियोंका वह सब पाप मुझमें स्थित होता है उस कारण भाससे धिरीहुई व नीलवसनवाली व उदासीन मैं पृथ्वीमें चलने के लिये नहीं समर्थहूँ क्योंकि सब धर्मोंसे पृथक्जनों से जो कुछ शुभ या अशुभकर्म किया जाता है ॥ ६ । ७ ॥ उसको मुझमें छोडकर ये सब निर्मल प्राणी पवित्र होते हैं व भुक्ति, मुक्तिदायक पुण्यलोकों में स्थित होते हैं ॥ ८ ॥ हे विधातः ! हमको बड़ा कष्ट है क्योंकि बहुत मल होगया इससे न कल्याण है न शान्ति है न निद्रा आती है और न सुख होता है ॥ ९ ॥ हे

जगद्गुरो ! जो सनातनी स्थितिथी वह आज मेरी पापिनी स्थिति संसार में न होगी क्योंकि दुष्टसंग से उपजेहुये दोषोंसे मैं डूबीहुई हूं ॥ १० ॥ क्या करूं व कहांजाऊं कि जिमसे मेरी शान्तिहोवै मेरे लिये क्या तपहै व क्या दान, कौन तीर्थ और कौन यज्ञहै ॥ ११ ॥ कि जिससे पापसे संयुत अंगवाली मैं पहलेकी प्रकृति (दशा) को प्राप्तहोऊं ऐसा जानकर हे महायोगिन् ! जैसा योग्यहो वैसा कीजिये ॥ १२ ॥ ब्रह्मा बोले कि हे सरिदुत्तमे ! पापनाशक कारणको सुनिये कि महाकालनामक सुन्दर वन में यह अमरावती पुरी है ॥ १३ ॥ भूमिमें वहा क्षिप्रानामक पवित्रकारिणी नदी वर्त्तमान है उसके दर्शनमात्रसे समस्त पापोंका क्षयहोवै है ॥ १४ ॥ हे महाभागो ! ताहंजगद्गुरो ॥ १० ॥ किङ्करोमिक्कगच्छामि येनशान्तिर्भवेन्मम ॥ किंतपःकिञ्चदानम्मे किंतीर्थंकिंचसाधनम् ॥

११ ॥ येनाहंपपलिप्ताङ्गी पूर्वप्रकृतिमाप्नुयाम् ॥ एवंज्ञात्वामहायोगिन् यथायोग्यंतथाकुरु ॥ १२ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ श्रूयताम्भोःसरिच्छ्रेष्ठे कारणंपापनाशनम् ॥ महाकालवनेरम्ये पुरीह्येषामरावती ॥ १३ ॥ तत्रचिप्रासरिच्छ्रेष्ठा वर्तते सुविपावनी ॥ तस्यादर्शनमात्रेण सर्वपापक्षयोर्भवेत् ॥ १४ ॥ तत्रगच्छमहाभागे सद्यश्चात्मविशुद्ध्ये ॥ ब्रह्मणेदं समाख्यातं श्रुत्वागङ्गासरिद्वरा ॥ १५ ॥ तमभिज्ञायसंप्राप्ता महाकालवनंशुभम् ॥ पुष्करस्याग्रमार्गेच यत्रदेवोमस्तसुतः ॥ १६ ॥ विन्ध्यस्यचोत्तरेभागे अञ्जन्याश्रमसुतमम् ॥ सापुत्रेणतपस्तेपे पवित्राब्रह्मचारिणी ॥ १७ ॥ पतिव्रताभिःसर्वाभिः पतिभिर्व्रह्मचारिभिः ॥ देवाङ्गनाभिर्बहुभिः क्रीडाद्भिर्बालकुञ्जरैः ॥ १८ ॥ सरसीफुल्लकल्लारैर्मत्तालिकुलनादितम् ॥ निर्वैरजन्तुभिःसेव्यं ब्रह्मर्षिगणसेवितम् ॥ १९ ॥ मनश्चाल्हादकंपुण्यं पवित्रंपापनाशनम् ॥ तत्रप्रवेशमात्रेण

अपनी शुद्धिके लिये वहा शीघ्रही जावो ब्रह्मासे इस कहैहुये वचन को सुनकर श्रेष्ठनदी श्रीगंगाजी ॥ १५ ॥ उसको जानकर उत्तम महाकालवनमें आसहुई पुष्कर के आगे मार्गमें जहां पवनसुत (हनुमान्) जी हैं ॥ १६ ॥ वहां विन्ध्याचल के उत्तरभागमें उत्तम अञ्जनीका आश्रम है पुत्रसमेत ब्रह्मचारिणी व पवित्र उस अंजनी ने वहा तप कियाहै ॥ १७ ॥ जो आश्रम कि ब्रह्मचारी पतियों समेत सब पतिव्रता स्त्रियों से संयुत व खेलतेहुये बहुत बालगजों व देवांगनाओं से संयुत था ॥ १८ ॥ व तड़ाग में फूलहुये कमलों से व मतवाले अमरसमूहों से शब्दितथा और वैरहित प्राणियों से सेवनेयोग्य व ब्रह्मर्षिगणों से सेवित ॥ १९ ॥ व मनको आनन्द-

जोकि दुग्धकुंड ऐसा कड़ाहुआ तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध है ॥ २६ ॥ जो कि सब पापोंको हरेनेवाला व समस्त कामनाओंके धरको देनेवाला है पुरातन समय धर्म की मूर्ति पृथु ने पृथ्वी देवीको दुहाई ॥ ३० ॥ सब हव्यों को उपजानेवाले व सबों को जीवनदायक दुग्धको इस कुंडमें धरकर उन्होंने दिया है उसीकारण दुग्धतडाग कहा गया है ॥ ३१ ॥ इस कुंडमें नहाकर जलको पीकर व दूधवाली गजको देकर मनुष्य सब पीड़ाओं से छूट जाता है सब समयों में धन, धान्य से संयुत होता है और मरकर स्वर्गलोक को जाता है तदनन्तर पुष्करतीर्थ को प्राप्त होकर स्नान बानादिक करे ॥ ३२ । ३३ ॥ तो सब पापों से शुद्ध चित्तवाला पुरुष पुष्कर के फल को प्राप्त होता

कुण्डमितिख्यातं त्रिषुलोकेषु विश्रुतम् ॥ २६ ॥ सर्वपापहरं पुण्यं सर्वकामवरप्रदम् ॥ पुरा दुग्धाधरा देवी पृथुना धर्ममूर्तिना ॥ ३० ॥ दुग्धं सर्वहविर्भाव्यं सर्वेषां जीवनप्रदम् ॥ दत्तं निधाय कुण्डे सिंमस्तेन दुग्धसरः स्मृतम् ॥ ३१ ॥ कुण्डे स्नात्वा पयः पीत्वा दत्त्वा गाञ्च पयस्विनीम् ॥ सर्वबाधाविनिर्मुक्तो धनधान्यसमन्वितः ॥ ३२ ॥ जायते सर्वकालेषु मृतः स्वर्गपुरं व्रजेत् ॥ ततः पुष्करमासाद्य स्नानदानादिकं चरेत् ॥ ३३ ॥ सर्वपापविशुद्धात्मा पुष्करस्य फलं लभेत् ॥ ३४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वन्तीखण्डे नीलगङ्गामाहात्म्यं नाम पञ्चषष्ठितमोऽध्यायः ॥ ६५ ॥ * ॥

व्यास उवाच ॥ कोसौ विन्ध्यगिरि ब्रह्मन् कदाकाले समागतः ॥ महाकालवने रम्ये केन वा प्रेषितः पुरा ॥ १ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ पुरारे वा जलैर्व्यास स्यान्नितैषावमुन्धरा ॥ तदा सर्वसुरैरेव मगस्तिमुनिसत्तमः ॥ २ ॥ आराधितो महाभाग धरणीत्राणकारणात् ॥ तदा गत्यगिरौ रम्ये विन्ध्ये समुनिसत्तमः ॥ ३ ॥ एकाग्रमानसो भूत्वा भवानीं विन्ध्यवासिनी ॥ ३४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे वन्तीखण्डे देवीदयालुमिश्रचरितार्थाभाषाटीकायां नीलगङ्गामाहात्म्यं नाम पञ्चषष्ठितमोऽध्यायः ॥ ६५ ॥ *

दो० । जिम् उज्जयिनी पुरी मई विन्ध्यवासिनी देवि । आई छल्लि में कल्यो सोइ चरित सुखसेवि ॥ व्यास जी बोले कि हे ब्रह्मन् ! यह विन्ध्याचल कौन है व सुन्दर महाकालवन में किस समय आया है व पहले किससे पठाय गया है ॥ १ ॥ सनत्कुमार जी बोले कि हे व्यास जी ! पुरातन समय जब नर्मदा के जलों से यह पृथ्वी डुबाई गई तब सब देवताओं ने सुनिश्रेष्ठ अगस्त्यजीको ॥ २ ॥ पृथ्वी की रक्षा के कारण आराधन किया तब है महाभाग ! सुन्दर विन्ध्याचल है

आकर उन मुनिश्रेष्ठ ने ॥ ३ ॥ एकाग्रमनबले होकर उससमय उन देवीजी से वरदान की इच्छा से विन्ध्यवासिनी भगवती का आराधन किया ॥ ४ ॥ जो कि कंस को भगानेवाली व दैत्यों को नाश करनेवाली तथा भार उतारनेवाली, पुण्यरूपिणी व उत्तम और बलदेव जीकी बहन हैं ॥ ५ ॥ व यशोदा जी के गर्भ से उत्पन्न और चाणूर के बल को मर्दन करनेवाली, बिजली के समान रूपवती, आकाश में स्थित, कृष्ण और कालिय सर्प को मर्दनेवाली हैं ॥ ६ ॥ और स्वामि-कार्तिकेय जीकी माता, कनियों की वाणी की देवता, मुख्य ब्राह्मणों की गायत्री व छंदों के मध्य में उत्तम बृहतीछन्द हैं ॥ ७ ॥ और सुरेन्द्र की सहस्रनयना व ऋषि

म ॥ आराधनंतदाचक्रै तस्यादेव्यावरेप्सया ॥ ४ ॥ कंसविद्रावणकरीमसुराणांजयंकरीम ॥ भारावतारणीपुण्यां बलस्यभगिनीशुभाम् ॥ ५ ॥ यशोदागर्भसम्भूतां चाणूरबलमर्दिनीम् ॥ विद्युद्रूपांनभस्थान्तु कृष्णांकृष्णाहिमर्दिनीम् ॥ ६ ॥ जननीदेवसेनस्य कवीनांवाक्यदेवताम् ॥ गायत्रीद्विजमुख्यानां बृहतीछन्दसांवराम् ॥ ७ ॥ सहस्राक्षी सुरेन्द्रस्य ऋषेश्वररुन्धतीम्पराम् ॥ गवांकामदुहांश्यामालतामधुतमाप्रियाम् ॥ ८ ॥ अदितिस्सर्वमातृणां पार्वतीसर्वयोपिताम् ॥ ज्योत्स्नाञ्चान्द्रमसीबालां सर्वकामवरप्रदाम् ॥ ९ ॥ शारदांक्रतुवेलायां वृन्दावनचरींवराम् ॥ मायिनां वैष्णवीमायां सर्वदैत्यविमोहिनीम् ॥ १० ॥ महालक्ष्मींश्रीमभीष्टां यक्षिणींधनदार्चिताम् ॥ महोदधींप्सितांवेलां राज्ञां कायेषुचक्रिणीम् ॥ ११ ॥ वेदिकांयज्ञशालानां वराहस्यावनींशुभाम् ॥ दक्षिणांसर्वदीक्षाणां सर्वकामफलप्रदाम् ॥ १२ ॥

की उत्तम अरुन्धती स्त्री हैं तथा गौवों के मध्य में कामदुघा श्यामा स्त्री व अत्यन्त मधुप्रिया लता हैं ॥ ८ ॥ व सब माताओंके मध्यमें अदिति और सब स्त्रियों के मध्य में पार्वती, चन्द्रमा की चन्द्रिका, बाला व सब कामनाओं के वरको देनेवाली हैं ॥ ९ ॥ व यज्ञसमय में शारदा, वृन्दावनचारिणी, उत्तमा व सब दैत्यों को मोहने वाली मायाविद्योंकी वैष्णवी माया हैं ॥ १० ॥ व महालक्ष्मी, लक्ष्मी व कुम्भर से पूजित प्यारी यक्षिणी, समुद्रकी प्रियवेला (मर्यादा) और राजाओं के शरीरों में चक्रधारिणी हैं ॥ ११ ॥ व यज्ञमन्दिरोंकी वेदी व वराहजीकी उत्तम पृथ्वी तथा सब दीक्षाओंकी दक्षिणा व समस्त कामनाओं के फलों को देनेवाली हैं ॥ १२ ॥

उस समय इसप्रकार स्तुतिकी हुई व प्रसन्नता से सुमुखी विन्ध्यवारिनी देवी प्रत्यक्ष होकर ऋषियों के मध्यमें श्रेष्ठऋषि अगस्त्यजी से बोलीं ॥ १३ ॥ कि हे द्विजोत्तम ! जो तुमको प्रियहो उस मनोरथ को सुम्न को मांगिये क्योंकि हे वत्स ! तुमने बहुत दिनोत्तक मेरी स्तुति की है ॥ १४ ॥ अगस्तिजी बोले कि हे देवताओं का उपकार करनेवाली, मातः ! यदि वर देने योग्य है तो संसार में सबलोकों को भयदायिनी यह नर्मदा बड़ी है ॥ १५ ॥ उसने इस संसारको डुबादिया उस को निग्रह (दण्ड) कीजिये उस समय महर्षि अगस्तिजी से इसप्रकार प्रार्थना कीहुई वे ॥ १६ ॥ उत्तम आचरणवाली विन्ध्यवासिनी देवी उस समय हे व्यासजी !

एवंस्तुतातदादेवी प्रत्यक्षाविन्ध्यवासिनी ॥ प्राहप्रसादसुमुखी ऋषीणांप्रवरंऋषिम् ॥ १३ ॥ त्रियताम्भोद्विज श्रेष्ठ तदस्मत्तोभिवाञ्छितम् ॥ यदीप्सितं त्वया वत्स स्तुतिर्मे सुचिरंकृता ॥ १४ ॥ अगस्तिरुवाच ॥ यदि मातर्वरो देयो देवानामुपकारिणि ॥ रेवेयं वद्धितालोकं सर्वलोकभयप्रदा ॥ १५ ॥ तथेदं प्रवितं विद्मं तस्यानिग्रहणंकुरु ॥ इति सा प्रार्थिता तेन तदा काले महर्षिणा ॥ १६ ॥ अगात्साध्वी तदा व्यास महाकालवनं शुभम् ॥ सान्त्वपूर्ववचः पथ्यमगस्तिमिदमब्रवीत् ॥ १७ ॥ वारयिष्ये परान् देवीं वद्धमानां द्रुतं ऋषे ॥ तावत्त्वं ऋषिभिः साकं विन्ध्यस्य च महागिरिः ॥ १८ ॥ परमे त्रिकुटे द्वारे स्थास्यसि ऋषिसत्तम ॥ पुरीक्षे षामुनि श्रेष्ठ त्रिषु लोकेषु विश्रुता ॥ १९ ॥ अत्रैव सुचिरं कालं मातृभिर्निवसाम्यहम् ॥ तत्रापित्वं सदा सिद्धचेत्राधिपतिमाप्नुहि ॥ २० ॥ मत्सरो निर्मलं पुण्यं विमलोदन्तु विश्रुतम् ॥ यत्र पुण्यवतां वासो देव्यस्तिष्ठन्ति कोटिशः ॥ २१ ॥ तस्मिन् स्तीर्थे नराः स्नात्वा भूत्वा चैव समाहिताः ॥ यजन्ति चैव माम्भक्त्या धूप

उत्तम महाकालवनको गई व प्रियवचनपूर्वक अगस्तिजी रो इस पथ्य वचनको बोली ॥ १७ ॥ कि हे ऋषे ! मैं बड़ी हुई उत्तम देवीजी को शीघ्रही मनाकरूंगी और तब तक तुम ऋषियों समेत विन्ध्य नामक महापर्वत के ॥ १८ ॥ उत्तम त्रिकुट द्वार पर स्थित होवो हे ऋषिसत्तम, मुनि श्रेष्ठ ! यह पुरी तीनों लोकों में प्रसिद्ध है ॥ १९ ॥ यहीं पर मैं बहुत समय तक मातृकाश्रमों समेत बसूंगी और वहाँ पर तुम भी सदैव सिद्धचेत्राधिपति को प्राप्त होवोगे ॥ २० ॥ और पवित्र व निर्मल विमलोद ऐसा प्रसिद्ध मेरा तड़ाग है जहाँ कि पुण्यवानों का निवास है व करोड़ों देविया स्थित हैं ॥ २१ ॥ उस तीर्थ में नहाकर व सावधान होकर जो पुरुष सुम्नको भक्तिये

धूप, दीप व अग्निर्तर्पण (हवन) से पूजतेहैं ॥ २२ ॥ और दूध, शक्कर व घी के भोजनों से विधिपूर्वक ब्राह्मणों को भोजन कराते हैं उनको तीनों लोकों में कुछ दुर्लभ नहीं होताहै ॥ २३ ॥ और वह मनुष्य धन, धान्य, पृथ्वी, ऐश्वर्य व पुत्र स्त्रीआदि की संपदा और देवताओं को भी दुर्लभ अनेक भांति के सुखों को प्राप्तहोता है ॥ २४ ॥ और उनको शत्रुमे व चोरों से तथा राजा से भय नहीं होताहै और न शत्रु, अग्नि व जलराशि से कभी भय होवेगा ॥ २५ ॥ और दीर्घ आयुर्वैजाला व बुद्धिमान् तथा सब पापों से शुद्ध चित्तवाला वह मनुष्य संसार में सैकड़ों वर्षोंतक निवासकर मरकर शिवपुर को जाताहै ॥ २६ ॥ हे व्यासजी ! इसप्रकार मनो-

दीपाग्निर्तर्पणैः ॥ २२ ॥ क्षीरस्वण्डाज्यभोज्यैश्च भोजयेद्विधिवद्विजान् ॥ न तेषां दुर्लभं किञ्चित् त्रिषु लोकेषु विद्यते ॥ २३ ॥ धनधान्यधरैश्च पुत्रदारादिसम्पदः ॥ प्राप्नोति विविधान् भोगान् देवानामपि दुर्लभान् ॥ २४ ॥ न शत्रुतोभयं तेषां न द्रुमभ्यो वानराजतः ॥ न शस्त्रानलतो योधा त्कदाचित्सम्भविष्यति ॥ २५ ॥ दीर्घायुर्बुद्धिर्मातुल्लोके उपित्वाशा इवतीः समाः ॥ सर्वपापविशुद्धात्मा मृतः शिवपुरं व्रजेत् ॥ २६ ॥ एवं व्यासपुरीम् प्राप्य रम्यां चोज्जयिनीं शुभाम् ॥ समाश्रिता तदा देवी सततं विन्ध्यवासिनी ॥ २७ ॥ तस्मिन् स्तूर्थे नरः स्नात्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ स्त्रियो वारजदोषाक्ता व न्ध्यवैकाकबन्ध्यका ॥ २८ ॥ दुर्भगाशीलहीना च सर्वकामविवर्जिता ॥ विमलोदेषिताः स्नात्वा दृष्ट्वा वै विन्ध्यवासिनीम् ॥ २९ ॥ मुच्यते सर्वदोषैस्तु नात्र कार्या विचारणा ॥ अपुत्राः प्राप्नुयुः पुत्रान् कन्या वीरं पतिं वरा ॥ ३० ॥ प्राप्यते सर्वसौभाग्यं सर्वकामवरप्रदम् ॥ विद्यावाञ्छायते विप्रः क्षत्रियो विजयी भवेत् ॥ ३१ ॥ वैश्यश्च बहुलाभाढ्यः शूद्रस्तु

हर व उत्तम उज्जयिनी पुरी को प्राप्तहोकर उस समय विन्ध्यवासिनी देवी सदैव स्थितहुई ॥ २७ ॥ उस तीर्थ में नहाकर मनुष्य सब पापों से छूटजाताहै रज के दोष से संयुत स्त्रियां, बंध्या व काकबंध्या ॥ २८ ॥ दुर्भगा, शीलरहित व जो सब कामनाओं से रहितहैं वे भी विमलोद कुण्ड में नहाकर व विन्ध्यवासिनी देवी जी को देखकर ॥ २९ ॥ सब दोषों से छूटजातीहैं इस विषय में विचार न करना चाहिये व विन पुत्रवाली स्त्रियां पुत्रों को प्राप्तहोतीहैं और पतिको स्वीकार करने वाली कन्या पतिको पाती है ॥ ३० ॥ व सब कामनाओं के वरदायक समस्त सौभाग्य को पाती है व ब्राह्मण विद्यावान् होता है और क्षत्रिय विजयवान् होता

है ॥ ३१ ॥ और वैश्य बहुत लाभ से संयुत होता है व शूद्र सुखको भोगता है इस समस्त कामनाओं के वरोंको देनेवाली कथा के ॥ ३२ ॥ पढ़ने व सुनने से भी मनुष्य गोसहस्र के फल को प्राप्त होता है ॥ ३३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेभाषाटीकायांविन्ध्यवासिनीविमलोदतीर्थमाहात्म्यनामषष्ठिप्रश्नोऽध्यायः ॥ ६६ ॥ दो० । क्षानासंगम तीर्थकर जो माहात्म्य विचित्र । सरसठिर्वे अध्यय में सोइ रसाल चरित्र ॥ सनत्कुमारजी बोले कि हे व्यासजी ! ज्ञातानदी के संगम से उपजा हुआ अन्य तीर्थ है कि जिसके स्नानही से पुरुष बड़े पातकों से छूटजाताहै ॥ १ ॥ जब शनैश्चरदिन समेत अमावस तिथि आवै तब सावधान होता हुआ सुखमश्नुते ॥ कथाम्पुण्यवतीमेतां सर्वकामवरप्रदाम् ॥ ३२ ॥ पठनाच्छ्रवणाद्वापि गोसहस्रफलंलभेत् ॥ ३३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेविन्ध्यवासिनीविमलोदतीर्थमाहात्म्यनामषष्ठिप्रश्नोऽध्यायः ॥ ६६ ॥ *

सनत्कुमारउवाच ॥ तीर्थमन्यतरंव्यास ज्ञातासङ्गमसम्भवम् ॥ यस्यतुस्नानमात्रेण महापापैःप्रमुच्यते ॥ १ ॥ अमावैशनिवारेण यदायातिसमाहितः ॥ पितृनुद्दिश्ययःकुर्याच्छ्राद्धंचैवतिलोदकम् ॥ २ ॥ पश्येच्छन्नैश्चरंदेवं स्थावरंलिङ्गमुत्तमम् ॥ तस्यशानिश्चरीपीडा नभवेत्तुक्दाचन ॥ ३ ॥ व्यासउवाच ॥ महतीर्थसमाख्यातं महाकाल वनेशुभे ॥ भूयस्तुश्रोतुमिच्छामि विस्तरेणतपोधन ॥ ४ ॥ सनत्कुमारउवाच ॥ श्रूयतांभोद्विजश्रेष्ठ कथांपौराणिकींशु भाम् ॥ यस्याःश्रवणमात्रेण महापापक्षयोभवेत् ॥ ५ ॥ रेवाचर्मणवती ज्ञातातिस्रोतयःपुरानघ ॥ त्रैलोक्यपावनी ज्ञातामुविचामरकण्टकात् ॥ ६ ॥ पुण्याःपुण्यजलारम्याःपवित्राःपापहारिणीः ॥ पुनन्त्यःसर्वलोकान्हि पापिनःपाप जो पुरुष तिलोदक श्राद्धको करता है ॥ २ ॥ व उत्तम शनैश्चरदेव स्थावर लिंग को देखता है उसके शनैश्चर से उपजीहुई पीडा कभी नहीं होती है ॥ ३ ॥ व्यास जी बोले कि हे तपोधन ! महातीर्थ ऐसे कहेहुये तीर्थको मैं फिर विस्तार से सुनना चाहताहूँ ॥ ४ ॥ सनत्कुमारजी बोले कि हे द्विजोत्तम ! पुराण वाली उत्तम कथाको सुनिये कि जिसके सुननेहीसे बड़े पातकों का नाश होताहै ॥ ५ ॥ हे अनघ ! तीनों लोकों को पवित्र करनेवाली नर्मदा, चर्मणवती व क्षाता तीन नदियां पुरातन समय अमरकण्टक से पृथ्वीपर हुई हैं ॥ ६ ॥ जोकि पुण्यदायिनी व पवित्रजलवाली तथा सनोहर, पवित्र व पापोंको हरनेवाली हैं और पापकारी व

पापी सब मनुष्यों को पवित्र करती है ॥ ७ ॥ एक समय मान्धाता के उत्तमनेत्र में सुन्दर उपवन में आपस में जीतने की इच्छा से प्रसन्न होती हुई वे परस्पर में
क्रीडा करती थीं ॥ ८ ॥ और कुछ दोषके प्रसङ्गसे आपस में भेदहुआ व नर्मदासंग को छोड़कर व उत्तम विन्ध्याचल को भेदनकर ॥ ९ ॥ सुन्दर महाकालवन में
भलीभांति आई जहाँ कि नदियों में उत्तम व महापुण्यदायिनी क्षिप्रानदी व यह अमरावतीपुरी है ॥ १० ॥ वहाँ सब तीर्थोंमें श्रेष्ठ व रुद्रसर ऐसा कहाहुआ उत्तमतीर्थ
है जो कि मुक्ति, मुक्तिका दायक व नित्य सिद्धिर्बिगणों से सेवित है ॥ ११ ॥ जहाँ पुरातन समय आकर ज्ञातानदी क्षिप्रके सङ्गम से धिरीहै वहाँ क्षातासङ्गम संज्ञक
कारिणः ॥ १२ ॥ एकदोपवनेरम्ये मान्धातुर्जेव उत्तमे ॥ मिथोरमन्तिसंहृष्टाः परस्परजिगीषया ॥ १३ ॥ किञ्चिद्वोषप्रस
ङ्गेन मिथोभेदोह्यजायत ॥ रेवासङ्गपरित्यज्य भित्वा विन्ध्यगिरिवरम् ॥ १४ ॥ महाकालवनेरम्ये समयातासरिद्वरा ॥
यत्राक्षिप्रामहापुण्या पुरीहोषामरावती ॥ १५ ॥ सर्वतीर्थवरं श्रेष्ठं नाम्नारुद्रसरः स्मृतम् ॥ मुक्तिमुक्तिप्रदं नित्यं सिद्धिर्बि
गणसेवितम् ॥ १६ ॥ यत्रागत्य पुराक्षाता क्षिप्रसङ्गसमावृता ॥ तत्रतीर्थपरं जातं ज्ञातासङ्गमसंज्ञितम् ॥ १७ ॥ यत्र
धूतरजोजातः सद्यः प्रोक्तो विभावसुः ॥ व्यास उवाच ॥ कथं सूर्यस्त्वया प्रोक्तो विरजोऽस्मिन् पुराभवत् ॥ १८ ॥ एतद्वेदि
तुमिच्छामि त्वत्तो ब्रह्मविदांवर ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ पुरा तु संज्ञां सावित्री त्वष्टा स्वतनयान्ददौ ॥ १९ ॥ पतिधर्म
रतानित्यं सवित्रेलोकचक्षुषे ॥ तस्यावैमिथुनं जज्ञेलोकसाक्षि विभावसोः ॥ २० ॥ यमौ वैवस्वतो जातो यमुनालोक
पावनी ॥ ततः संज्ञा ब्रवीच्छायां स्वकीयां सुनृतां गिरम् ॥ २१ ॥ मिथुनं मे तवोत्सङ्गे धृतं तत्परिपालय ॥ यावत्त्वहमितश्छा
उत्तमतीर्थ उत्पन्न हुआ है ॥ २२ ॥ जहाँ कि उत्तीक्ष्ण रजरहित कहेहुये सूर्यनारायणजी हुये हैं व्यासजी बोले कि तुमसे कहेहुये सूर्यनारायणजी पुरातनसमय इस
क्षेत्रमें किस प्रकार रजरहित हुये हैं ॥ २३ ॥ हे वेदविदांवर ! मैं तुमसे यह जानना चाहता हूँ सनत्कुमारजी बोले कि पुरातन समय त्वष्टा (विश्वकर्मा) जीने अपनी
कन्या सावित्री संज्ञाजी को लोकोंके नेत्ररूप सूर्यनारायणजी के लिये दिया जो कि नित्यही पतिके धर्ममें परायण थीं उन संज्ञा में लोकसाक्षी सूर्यनारायणजी के एक
कन्या व एक पुत्र पैदा हुआ ॥ २४ ॥ २५ ॥ याने वैवस्वत यमराज व लोकोंको पवित्र करनेवाली यमुनानदी हुई तदनन्तर संज्ञाने अपनी छायासे प्रिय व सत्य वचन

को कहा ॥ १६ ॥ कि तुम्हारी गोदीमें मेरे धरेहुये उस कन्या व पुत्रको परिपालन कीजिये हे छाये ! जबतक मैं यहां अपने पिताके घरमें बसूं ॥ १७ ॥ तबतक सूर्य-
नारायणकी भक्तिमें तत्पर होतीहुई तुम मेरे घरमें रहो और पिताके मकान में गई हुई मैं कभी सूर्यनारायण से कहनेयोग्य नहींहूं ॥ १८ ॥ इस प्रकार प्रतिज्ञाकर वे
सावित्रीजी उस समय चलीगई सूर्यनारायणके भयसे विकल वे बालासंज्ञाजी पिता के घरको चलीगई ॥ १९ ॥ और पितासे मनाकीहुई उन संज्ञाने घोड़ीके रूपको
धारणकर बहुत जलवाले व घास से हरित मनोहरयनमें अमण किया ॥ २० ॥ एक समय उन लुधित यमराजजी से याचना कीहुई उन संज्ञाने मांगतेहुये यमराज के

ये वत्स्यामिस्वपितुर्गृहे ॥ १७ ॥ रविभक्तिरतातावच्चरत्स्वममेवम् ॥ नोवाच्याहंकदाद्याये पितुर्वेदमगतारवेः ॥
१८ ॥ एवंसासमयंकृत्वा सावित्रीह्यगमत्तदा ॥ पितुर्वेदमगताबाला सवितुर्भयविह्वला ॥ १९ ॥ पित्रानिवारितासालु
वडवारूपधारिणी ॥ विचचारवनेरम्ये बहुलोदकशङ्खले ॥ २० ॥ एकदायाचितातेन सायमेनबुभुक्षुणा ॥ नौदनैवैत
यादत्तं याचमानायतक्षणात् ॥ २१ ॥ तदापदाहतातेनद्धायातंचशशापह ॥ यस्मात्पादेनमेघातं कृतवान्बलभा
वतः ॥ २२ ॥ तस्मात्स्वन्तुपदाखञ्जो भविष्यसिनसंशयः ॥ एवंशप्तोरुजाक्रान्तो विललापशुचादितः ॥ २३ ॥ एत
स्मिन्नन्तरेव्यास परिभूयवसुन्धराम् ॥ भावयन्सकलाल्लोकान् ग्रहचारीविभावसुः ॥ २४ ॥ दृष्ट्वाचतनयम्पङ्गुमि-
त्युवाचतदायमम् ॥ किमिदंवत्सतेकष्टं कुतःप्राप्तंवयानघ ॥ २५ ॥ इतिपृष्टोयदातेन सवित्रालोकभावनः ॥ उवाचग

लिये उर्सीक्षण भातको नहीं दिया ॥ २१ ॥ तब उन यमराज से पांवसे मारीहुई छाया ने उनको शापदिया कि जिसलिये बलहोने के कारण तुमने चरणसे मेरे प्रहार
किया ॥ २२ ॥ उस कारण तुम पैरसे खंज होजावोगे इसमें सन्देह नहीं है इस प्रकार शापित व रोगसे आक्रामित तथा शोचसे निकल यमराज ने विलाप किया ॥
२३ ॥ इसी अवसर में हे व्यासजी ! पृथ्वीको तिरस्कारकर सब लोकोंकी भावना करतेहुये ग्रहचारी सूर्यनारायणजी ने ॥ २४ ॥ पुत्रको पंगु देखकर उस समय यह
कहा कि हे अनघ, वत्स ! यह तुम्हारे क्या कष्ट है व तुमको कहाते प्राप्तहुआ ॥ २५ ॥ जब इस प्रकार लोकोंकी भावना करनेवाले यमराजजीसे सूर्यनारायणजी ने पूछा

तत्र सयमिनीपुरी के स्वामी व गद्गद वचनवाले यमराजजी बोले ॥ २६ ॥ कि हे नाथ ! मैंने माताके समीप प्रातःकाल भोजन के लिये मांगा और उसने शीघ्रही भोजन न दिया व मैंने शिशुता से मारा ॥ २७ ॥ और माताके शापसे तिरस्कृत मेरे चरण शीघ्रही गिरपड़े उस वचन को सुनकर ध्यान में तत्पर सूर्यनारायणजी मोहको प्राप्तहुये ॥ २८ ॥ व मोताके शापका कारण यह त्रिचित्र कहागया इम प्रकार बहुत समयतक ध्यानकर किरणोंवाले सूर्यनारायणजी ने जाना ॥ २९ ॥ कि लोको को पवित्र करनेवाली यह वह सुन्दर नेत्रान्तोवाली त्वष्टाकी कन्या नहीं है यह कौनहै व कहाँसे आई है हे शुचिस्मिते ! तुम कौनहो यह कहिये ॥ ३० ॥ छाया बोली कि

द्वादवचा यमःसंयमिनीपतिः ॥ २६ ॥ प्रातराशायमेनाथ याचितंमातुरन्तिकात् ॥ नोदत्तम्भोजनंक्षिप्रं बालभावेनता
डिता ॥ २७ ॥ पादौमेगलितौसद्यो मातुःशापतिरस्कृतौ ॥ तच्छ्रुत्वामोहमापन्नो रविर्ध्यानपरायणः ॥ २८ ॥ विचित्र
मिदमाख्यातं मातुःशापस्यकारणम् ॥ एवंध्यात्वाचिरङ्कालं ज्ञातवानरुविरंशुमान् ॥ २९ ॥ नेयंसारुचिरापाङ्गी त्वा
ष्ट्रीलोकस्यपावनी ॥ केयंवाकुतआयाता कात्वंवदशुचिस्मिते ॥ ३० ॥ द्वायोवाच ॥ नसासंज्ञामहाराज द्यायातादात्म्यस
म्भवा ॥ गतावैसापितुर्गेहे वारिताहंतयानघ ॥ ३१ ॥ सवित्रैवैववक्तव्यं द्वायेकिञ्चित्कथञ्चन ॥ एषमेसमयोनाथ ते
नाहंमौनमास्थिता ॥ ३२ ॥ तच्छ्रुत्वाभगवांस्त्वष्टुः समीपंरथमास्थितः ॥ जगामसहसामानुर्वहुरोषममन्वितः ॥ ३३ ॥
तन्मृष्ट्वासहसोत्थाय त्वष्टालोकपितामहः ॥ पाद्यार्धाचमनीयादिमधुपर्कैरपूजयत् ॥ ३४ ॥ नत्वापादौपरिक्रम्य
बहुमानपुरःसरम् ॥ ऊचेमधुरयावाचा प्रियन्तेकरवामकिम् ॥ ३५ ॥ रविस्वाच ॥ कसातुसंज्ञासावित्री ममविप्रियका
हे महाराज ! वह संज्ञा नहीं है और उसके शरीर से उपजीहुई मैं द्वायाहूं हे अनघ ! वह पिताके घरको गई और उसने सुभक्तो मना कियाथा ॥ ३६ ॥ कि हे द्वाये !
सूर्यनारायण के लिये कुछ किसी प्रकार न कहना चाहिये हे नाथ ! यह मेरी प्रतिज्ञा है उससे मैं मौनमें स्थितहूं ॥ ३७ ॥ उस वचन को सुनकर बहुत कोधने संयुत
सूर्यनारायणजी रथपै बैठकर अचानकही त्वष्टा के समीप गये ॥ ३८ ॥ उनको देखकर अचानकही उठकर लोकोंके पितामह त्वष्टाजी ने षाद्य, अर्घ, आचमनीय व
मधुपर्क से पूजन किया ॥ ३९ ॥ और बहुत मानपूर्वक परिक्रमाकर चरणों को प्रणामकर मधुर वचन से कहा कि मैं तुम्हारा क्या प्रिय करूं ॥ ४० ॥ सूर्यनारायणजी

बोले कि हे तात ! मेरा अप्रिय ! करनेवाली व मेरे मार्गको भेदन करनेवाली वह संज्ञा कहां है जोकि तुम्हारे घर आई थी ॥ ३६ ॥ त्वष्टाजी बोले कि हे तात ! हम तुम्हारी प्यारी के गमन व आगमन को नहीं जानते हैं त्वष्टाजी से ऐसा वचन कहनेपर दुःखित मनवाले सूर्यनारायणजी ने कहा ॥ ३७ ॥ कि क्या करूं कहां जाऊं तुमको स्त्री प्रियहो तो तेजको शान्तकरो ॥ ३८ ॥ सूर्यनारायणजी बोले कि हे पितामहजी ! यदि मेरा ऐसा अपूर्व दुःसह तेज है तो जैसा तुमको भलीभांति रुचता रिणी ॥ आगताते गृहं तात मम मार्गानुभेदिनी ॥ ३९ ॥ त्वष्टोवाच ॥ नहि जानीमहे तात प्रियायास्ते गतागतम् ॥ इत्युक्ते वचने त्वष्टा रविर्दुःखितमानसः ॥ ४० ॥ किङ्करोमिक्कगच्छामि कचप्रियतरामम् ॥ इति सम्भाषमाणे तु त्वष्टा वाक्यमथा ब्रवीत् ॥ ४१ ॥ तव तेजः परिभ्रष्टा भगनाकापि गतां वला ॥ यदि ते बहुभाभार्या तेजस्त्वम्परिशामय ॥ ४२ ॥ सूर्य उवाच ॥ यद्येवन्दुः सहं तेजो ममापूर्वपितामह ॥ यथा तेरोचते सम्यक् तथा मेघर्षणं कुरु ॥ ४३ ॥ इति सूर्यवचः श्रुत्वा शाण्डकृत्वा सुदर्शनम् ॥ दृषितः क्षुरधारेण लघीयान्निर्मलो भवत् ॥ ४४ ॥ तस्य घर्षितमात्रेण त्वष्टालोकविवस्वतः ॥ शाण्डसुदर्शनं चक्रे सैकतामणिजातयः ॥ ४५ ॥ तदा त्वष्टा ब्रवीद्वाक्यं मधुरं सूर्यसन्निधौ ॥ महाकालवने रम्ये वडवारूपधारिणी ॥ ४६ ॥ गृह्यतां भोः सुरश्रेष्ठ शीघ्रं गच्छतु शङ्खले ॥ यत्र क्षिप्रामरिच्छेष्टा यत्र चातासमागता ॥ ४७ ॥ उभयोः सङ्गमो यत्र तत्र मुक्तिर्न संशयः ॥ तत्र सा सुभगा पत्नी प्राप्य ते तेन संशयः ॥ ४८ ॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा सविता सर्वतापनः ॥ तत्रागच्छ होवैसाही वर्षण कीजिये ॥ ४९ ॥ इस प्रकार सूर्यके वचनको सुनकर उत्तम दर्शनवाली शानको कर लुरकी धारसे घिसा तो सूर्यनारायणजी अत्यन्त लघु व निर्मल हुये ॥ ५० ॥ लोकोंके विवस्वतः सूर्यनारायण के घिसेहुये तेजसे त्वष्टाने शान व सुदर्शनचक्र को बनाया व चालू सम्बन्धिनी मणिजातियोंको निर्माण किया ॥ ५१ ॥ उस समय त्वष्टाने सूर्यनारायणके समीप मधुरवचन कहा कि सुन्दर महाकालवने में घोड़ीके रूपको धारण करनेवाली ॥ ५२ ॥ संज्ञाको हे सुरश्रेष्ठ ! शीघ्रही ग्रहण कीजिये और घाससे हरितस्थानमें जाइये जहां नदियोंमें श्रेष्ठ क्षिप्रानदी व जहां क्षातानदी भलीभांति आई है ॥ ५३ ॥ व जहां दोनोंका सङ्गम है वहां निस्सन्देह मुक्ति है और वहांपर

वह सुभगासंज्ञा तुमको प्राप्त होगी इसमें सन्देह नहीं है ॥ ४५ ॥ उनके इस वचनको सुनकर सबको सन्ताप करानेवाले सूर्यनारायणजी वहां आये जहां कि महाकाल जीका पवित्रकारकवन है ॥ ४६ ॥ ज्ञाताके सङ्गम से संयुत क्षिप्रानदी जहा है वहा मुक्ति व मुक्ति और धन, धान्यका सङ्गम होता है ॥ ४७ ॥ वहांपर अश्वरूपधारी सूर्यनारायणजीने घोड़ीके रूपको चारण करनेवाली उन प्यारी, श्यामासंज्ञा स्त्रीको देखा फिर ॥ ४८ ॥ नासिकाके संघनेहीसे जो उत्पन्नहुये देखनेयोग्य व सुकुमार अङ्गोवाले वे दोनों अश्विनीकुमार देवताओंके वैद्य हुये ॥ ४९ ॥ और हे द्विजोत्तम ! वहापर संज्ञाने एक पुत्र व कन्याको पैदा किया और उस छात्रानेभी सब लोकोंको

द्वनंयत्र महाकालस्यपावनम् ॥ ४६ ॥ ज्ञातासङ्गमसंयुक्तायत्र क्षिप्रपयस्विनी ॥ तत्र भुक्तिश्च मुक्तिश्च धनधान्यसमा
गमः ॥ ४७ ॥ तत्रागत्य प्रियाम्भार्या वद्वर्शताम्पुनः श्यामां हरिरूपधरो हरिः ॥ ४८ ॥ नासिका
घ्राणमात्रेण यौजातावाश्विनावुभौ ॥ दर्शनीयसुकुमाराङ्गौ भिषजौ तौ दिवौ कसाम् ॥ ४९ ॥ संज्ञाचमुषुवेतत्र मिथुनं द्वि
जसत्तमम् ॥ सापिशनैश्चरैश्चैव सर्वलोकप्रतापनम् ॥ ५० ॥ शनियोगेयदामावै जायते सर्वकामदा ॥ तदास्नानंतदादा
नं श्राद्धं चैव तु कारयेत् ॥ ५१ ॥ तस्य हस्तगतालक्ष्मीर्जायते सर्वदामुवि ॥ यः ज्ञाता सङ्गमस्नात्वा दानं दद्याच्च शक्तितः ॥
५२ ॥ स्थावरेश्चरभ्यर्च्य तस्य पापक्षयो भवेत् ॥ सौरिः शनैश्चरो मन्दः कृष्णो नन्तो न्तको यमः ॥ ५३ ॥ पिङ्गश्छायासु
तो बभ्रुः स्थावरः पिप्पलायनः ॥ एतानि शनिनामानि प्रातः काले पठेन्नरः ॥ ५४ ॥ तस्य शनैश्चरी पीडा न भवेत्तु कदाच
न ॥ धर्मोपि साक्षादत्रैव तपस्तेपे सुदुस्तरम् ॥ ५५ ॥ यज्ञकुण्डोत्तरे भागे यत्र तिष्ठति मारुतिः ॥ धर्मसर इति ख्यातं

ताप करानेवाले शनैश्चर को उत्पन्न किया है ॥ ५० ॥ जब शनैश्चरके योगमें सबकामनाओंको देनेवाली अमावस होती है तब स्नान व दान व श्राद्धको जो पुरुष करता है ॥ ५१ ॥ पृथ्वीपर सदैव उसके हाथमें लक्ष्मी प्राप्त होती है जो मनुष्य क्षातानदी के सङ्गममें नहाकर शक्तिके अनुसार दान देता है ॥ ५२ ॥ स्थावरेश्चरजी को पूजकर उसके पातकोंका नाश होता है और सौरि, शनैश्चर, मन्द, कृष्ण, अनन्त, अन्तक व यम ॥ ५३ ॥ पिङ्ग, छायासुत, बभ्रु, स्थावर, पिप्पलायन इन शनैश्चरके नामोंको जो मनुष्य प्रातःकाल उठकर पढ़ता है ॥ ५४ ॥ उसके शनैश्चरसे उपजी हुई पीड़ा कभी नहीं होती है और साक्षात् धर्मराज ने भी यहां कठिन तप

किया है ॥ ५५ ॥ जहां यज्ञकुण्ड के उत्तरभाग में पवनपुत्र हनुमान्जी स्थित हैं वहां नामसे धर्मसर ऐसा प्रसिद्ध अतिउत्तम तीर्थ है ॥ ५६ ॥ जहांपर पवनपुत्र हनुमान्जी तपस्या से उत्तम सिद्धि को प्राप्तहुये हैं उस तीर्थ में नहाकर कांस्यपात्र को देकर ॥ ५७ ॥ व मणियों तथा मोतियों समेत सुवर्ण से भूषित उत्तम वसनको आदर समेत जो पुरुष भूषित ब्राह्मणों के लिये व वेद-जाननेवाले द्विजों के लिये देता है ॥ ५८ ॥ वह मातृलोक से उत्तीर्ण होकर ब्रह्मलोक में पूजाजाता है श्रावण महीने में शुक्लपक्ष में एकादशी तिथि में उत्तम आचारशाला जो पुरुष धर्मतीर्थ में स्नान व दानादिक कर्मों को करता है उसको सदैव सनातन विष्णुलोक होता

नाम्नातीर्थमनुत्तमम् ॥ ५६ ॥ यत्रसिद्धिम्परांप्राप्तपमापवनात्मजः ॥ तस्मिंस्तीर्थेनरःस्नात्वा दत्तवैकांस्यभाजनम् ॥ ५७ ॥ सुवासोमणिमुक्ताभिः काञ्चनालंकृतंवरम् ॥ ब्राह्मणेभ्योलंकृतेभ्यो वेदविद्भ्यश्चसादरात् ॥ ५८ ॥ मातृलोकसमुत्तीर्णो ब्रह्मलोकमहीयते ॥ श्रावणेधवलेपक्षे एकादश्यान्तुयोनरः ॥ ५९ ॥ धर्मतीर्थेसदाचारी स्नानंदानादिकाःक्रियाः ॥ करोतिसततंस्य विष्णुलोकंसनातनम् ॥ ६० ॥ च्यवनाश्रमेनरःस्नात्वा च्यवनेशं विलोकयेत् ॥ यत्रसिद्धिगतौपुण्यावाश्विनौभिषजांवरी ॥ ६१ ॥ च्यवनस्यप्रसादेन देवपङ्क्तिमवापतुः ॥ च्यवनेनपुरादृष्टिः प्राप्ता वैदेवमैपजात् ॥ ६२ ॥ तस्मिंस्तीर्थेद्विजश्रेष्ठ देवदृष्टिर्भवेन्नरः ॥ अत्रैवप्राप्तवान्सूर्यः साग्निहोत्राश्रमम्परम् ॥ ६३ ॥ ततःसंज्ञामहाभागा सावित्रीलोकविश्रुता ॥ सूर्यलोकंसमासाद्य बुभुजेविपुलांश्रियम् ॥ ६४ ॥ तस्माद्वासपरंतीर्थं ज्ञाता सङ्गमसंज्ञितम् ॥ सर्वपापहरम्पुण्यं सर्वकामवरप्रदम् ॥ ६५ ॥ यत्तांसुकथाम्पुण्यां शृणोतिस्तुविभक्तिः ॥ पठेद्वा

है ॥ ५६।६० ॥ च्यवनजी के आश्रममें मनुष्य नहाकर च्यवनेशजीको देखे जहापर कि वैद्योंमें श्रेष्ठ व पुण्यरूप अश्विनीकुमार सिद्धि को प्राप्तहुये हैं ॥ ६१ ॥ व च्यवन जीकी प्रसन्नता में उन्होंने देवपङ्क्ति को पाया है और पुरातन समय वहांपर च्यवन जीने देवताओं के वैद्य अश्विनीकुमार जीसे दृष्टि को पाया है ॥ ६२ ॥ हे द्विजोत्तम ! उम तीर्थ में मनुष्य देवदृष्टि होता है यहीपर सूर्यनारायण जी ने उत्तम साग्निहोत्राश्रम को पाया है ॥ ६३ ॥ उसी कारण महाभाग्यवती व लोक में प्रसिद्ध संज्ञा सावित्री जीने सूर्यलोक को प्राप्तहोकर बड़ी लक्ष्मी को भोग किया है ॥ ६४ ॥ उसी कारण हे व्यासजी ! क्षाता सगम सन्नक उत्तम तीर्थ है जो कि सब धर्मों को

हर्नेवाला व पवित्र तथा समस्त कामनाओं के वरदान का देनेवाला है ॥ ६५ ॥ पृथ्वी में जो मनुष्य इस पवित्र उत्तम कथा को भक्ति से सुनता है व जो प्रातःकाल उठकर पढ़ता है उसके पुण्यका फल सुनिये ॥ ६६ ॥ किं हज्जार कपिला गऊ दान का जो फल पर्व में होता है उस फल को वह मनुष्य प्राप्त होता है इसमें विचार न करना चाहिये ॥ ६७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायां भापाटीकायां क्षातासङ्गममाहात्म्यनाम सप्तपटितमोऽध्यायः ॥ ६७ ॥ *
दो० । गयातीर्थ माहात्म्य जिमि अहै अस्मित सुखदाय । अरसठिनें अध्याय में सोइ चरित्र सुहाय ॥ सनत्कुमार जी बोले कि हे व्यास जी ! इसके उपरान्त एक

प्रातरुत्थाय तस्य पुण्य फलं शृणु ॥ ६६ ॥ कपिलागोसहस्रेण फलं भवति पर्वणि ॥ तत्फलं समवाप्नोति नात्र कार्या विचारणा ॥ ६७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे क्षातासङ्गममाहात्म्यनाम सप्तपटितमोऽध्यायः ॥ ६७ ॥ *
सनत्कुमार उवाच ॥ शृणु व्यास प्रवक्ष्यामि तीर्थमेकमतः परम् ॥ १ ॥ तीर्थानामुत्तमं तीर्थं गयानामतिनामतः ॥ यत्र स्नात्वा नरो नित्यं मुच्यते चक्रं णवयात् ॥ २ ॥ देवान् पितॄन्समभ्यर्च्य विष्णुलोकं संगच्छति ॥ व्यास उवाच ॥ कीकटेषु गया पुण्या नदीषु एयां पुनः पुनः ॥ ३ ॥ तीर्थानामुत्तमं तीर्थं पुण्यो राजगिरिस्तथा ॥ सकथं विदितो देशो महा कालवने शुभे ॥ ४ ॥ एतद्देदितुमिच्छामि विस्तरणं तपोधन ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ शृणु व्यास कथां शुण्यं पवित्रां पापहारिणीम् ॥ ५ ॥ यस्याः श्रवणमात्रेण पितरो यान्ति सद्गतिम् ॥ पुराकृतं शुण्ये युगादि देवनामतः ॥ ६ ॥ राजा

तीर्थ को कहता हूँ उसको सुनिये ॥ १ ॥ जो कि तीर्थों के मध्य में नामसे गया नामक तीर्थ है कि जिसमें नित्य स्नान कर मनुष्य तीनों ऋणों से छूट जाता है ॥ २ ॥ और देवताओं व पितरों को भलीभांति पूजकर वह मनुष्य विष्णुलोक को जाता है व्यास जी बोले कि कीकट देशों में गया पुण्यदायिनी है व पुनः पुनः नदी पुण्यरूपिणी है ॥ ३ ॥ व तीर्थों के मध्य में उत्तम तीर्थ पुण्यरूप राजगिरि है वह कैसे उत्तम महाकालवन में विदिन हुआ है ॥ ४ ॥ हे तपोधन ! मैं इसको विस्तार से जानना चाहता हूँ सनत्कुमार जी बोले कि हे व्यास जी ! पवित्र व पापहारिणी तथा पुण्यरूपिणी कथा को सुनिये ॥ ५ ॥ कि जिसके सुननेही से पितर उत्तम

गति को प्राप्त होते हैं पुरातन समय पुण्यरूप सत्ययुगमें युगादिदेव नाम से ॥ ६ ॥ राजाहुआ है वह धर्मात्मा पवित्र श्रवण व कीर्तनवाला था और सपुत्रों की नाई भलीभाँति पालतेहुये उसके प्रजालोक ॥ ७ ॥ सब ओर से बढ़ते हुये सब वस्तुमें संपन्न हुये और उस राजा के पालन करनेपर नित्यही धर्म चारों चरणों से वर्तमान था ॥ ८ ॥ और मेघ समय में बरसते थे व ऋतुवें अपने धर्म से आचरण करती थी और बहुत अन्न व फलोंवाली पृथ्वी थी व गाइयां बहुत दुग्ध देनेवाली थी ॥ ९ ॥ और ब्राह्मण वेद के बाद में तत्पर थे व क्षत्रिय मुजाओं से शोभित थे और वैश्य नित्यही धनमें परायण थे और शूद्र सेवा में तत्पर थे ॥ १० ॥ और सब

सीत्सतुधर्मात्मा पुण्यश्रवणकीर्तनः ॥ तस्यपालयतःसम्यक् प्रजाःपुत्रानिवारसान् ॥ ७ ॥ बभूवुःसर्वसम्पन्ना वद्धमा
नाःसमन्ततः ॥ धर्मश्चतुष्पदनित्यंतस्मिन्नराज्ञिप्रशासति ॥ ८ ॥ कालेवर्षीचपञ्जन्यो ऋतवःस्वाङ्गचारिणः ॥ बहुसम्य
फलापृथ्वी गावश्चबहुदुग्धदाः ॥ ९ ॥ वेदवादरताविप्राः क्षत्रियावाहुशालिनः ॥ वैश्याधनपरानित्यं शूद्राःशुश्रूषणेर
ताः ॥ १० ॥ वर्णाश्रमरताःसर्वे सर्वधर्मोपदेशकाः ॥ श्रुतिस्मृतिपरोधर्मो हृष्टपुष्टजनाकरः ॥ ११ ॥ नाधिव्याध्यभि
सम्भूता लक्ष्यन्तेकेपिमानवाः ॥ दुःशीलादुर्भगानार्योविधवानोतथैवच ॥ १२ ॥ बहुपुत्राल्पपुत्राश्च सृतपुत्रानबन्ध्य
काः ॥ रूपशीलशुणोपेताः पतिव्रतपरायणाः ॥ १३ ॥ सुमार्गकरसंकीर्णो दस्युदोपविवर्जितः ॥ ह्ययताम्सुज्यतांशश्च
दीयताञ्चगृहेगृहे ॥ १४ ॥ जपदानतपोहोमस्तुतियज्ञक्रियापराः ॥ जनाःसर्वत्रदृश्यन्ते सर्वधर्मपरायणाः ॥ १५ ॥ च

लोग वर्णों व आश्रमों में रत्न तथा सब धर्म के उपदेश करनेवाले थे और जनों को हृष्टपुष्ट करनेवाला धर्म श्रुतियों व स्मृतियों में तत्पर था ॥ ११ ॥ और आधि व व्याधि से तिरस्कृत कोई भी प्राणी नहीं देखपड़ते थे व दुःशीलवती और दुर्भगा स्त्रियां नहीं देखपड़ती थीं न विधवा देवी जाती थी ॥ १२ ॥ और बहुत पुत्र व थोड़े पुत्रोंवाली तथा मरे पुत्रोंवाली व बंध्य स्त्री नहीं होती थीं और रूपशील व शुणो से संयुत तथा पतिव्रतधर्म में परायण थीं ॥ १३ ॥ और उत्तम मार्ग करने वाले जनों से व्याप्त तथा चारों के दोष से रहित धर्म था और हवन किया जाय, भोजन कियाजाये व सदैव दियाजाय यह शब्द घर २ में सुन पड़ता था ॥ १४ ॥

और जप, दान, तपस्या, हवन, स्तुति व यज्ञकर्मों में तरफर तथा सब धर्मों में पराग्रण मनुष्य सब कहीं देख पड़ते थे ॥ १५ ॥ और धर्म चार चरण से चलता था व अधर्म एक चरण से युत शरीरवाला था इसप्रकार युगादिदेव संज्ञक वह राजा धर्मात्मा था ॥ १६ ॥ जिसने इस पृथ्वी को पालन किया और धर्म से प्रजाश्री को बढ़ाया व हे व्यास जी ! उसने पुरातनसमय श्रवन्तीपुरी में कोटियज्ञों को किया है ॥ १७ ॥ उससमय अतिपरकभी तुहुण्ड नामक दानव हुआ है उसने इस सब चराचर संसार को वश किया ॥ १८ ॥ और उस दुष्ट ने भयंकर व पुण्यरूप तपस्या कर ब्रह्मासे वरदानको पाया है और न देवता न यज्ञ हुये तथा वह दानव वेद-

तुष्टपदचरोधर्मो ह्यधर्मः पादविग्रहः ॥ एवं राजासधर्मात्मा युगादिदेवसंज्ञितः ॥ १६ ॥ येन यं पालिता पृथ्वी धर्मेण वर्द्धिताः प्रजाः ॥ श्रवन्त्यांच पुरा व्यास यज्ञकोटि समाचरत् ॥ १७ ॥ तस्मिन् कालेति विक्रान्तस्तुहुण्डो नाम दानवः ॥ ते न सर्ववशं नीतं चराचरमिदं जगत् ॥ १८ ॥ योरं तत्पत्वा तपःपुण्यं ब्रह्मलब्धवतः खलः ॥ नैव देवानयज्ञाश्च वेदमार्गं विवर्जितः ॥ १९ ॥ देवता पूजनं नास्ति स्वधास्वाहान दृश्यते ॥ उत्सन्नो धर्ममार्गो यं शाश्वतो वैदुरा सदः ॥ २० ॥ नष्टप्रायाः सुरास्तेन कृताः सर्वोत्तमोत्तमाः ॥ ब्रह्माणं शरणं जग्मुः पितृणां सहसा धुभिः ॥ २१ ॥ किंकुर्मः कंच गच्छामस्तुहुण्डे न पराजिताः ॥ इति श्रुत्वा वचस्तेषां ब्रह्मलोकपितामहः ॥ २२ ॥ समुत्थाय ततः सर्वे विष्णुलोकं जगामह ॥ तत्र गत्वा समाराध्य विष्णुं देवगणैः सह ॥ २३ ॥ स्तुतिपुरुषसूक्तेन विष्णोरनुजते जसः ॥ प्रचक्रुस्तु सर्व एते ह्यात्मनो भ्युदयाय च ॥ २४ ॥ तदा ते पांशाभिच्छ्रन्ती वैष्णवी चाशरीरिणी ॥ श्रूयताम्भोः सुरश्रेष्ठा भवतां श्रेय उत्तमम् ॥ २५ ॥ यूयं यात

मार्ग से रहित था ॥ १६ ॥ न देवताओं का पूजन होता था और न भवधा, स्वाहा देख पड़ता था सनातन व कठिन यह धर्म का मार्ग त्याग किया गया ॥ २० ॥ उस से नष्ट से किये हुये सब से उत्तमोत्तम देवता पितरों व साधुओं समेत ब्रह्मा की शरण में गये ॥ २१ ॥ व यह बोले कि तुहुण्ड से पराजित हमलोग क्या करें व कहां जायें उनके इसप्रकार वचन को सुनकर लोकों के पितामह ब्रह्माजी ॥ २२ ॥ उठकर तदनन्तर सर्वों समेत विष्णुलोक को गये और वहा जाकर देवगणों समेत विष्णु जी को भलीभांति आराधन कर ॥ २३ ॥ अपने ऐश्वर्य के लिये इन सर्वों ने श्रुतल तेजवाले विष्णु जी की पुरुषसूक्त से स्तुति किया ॥ २४ ॥ उससमय

उनके कल्याण को चाहतीहुई विष्णु जीकी अशरीरिणी (आकाशवाणी) बोली कि हे सुरोत्तमो ! जो आपलोगों का उत्तम कल्याण है उसको सुनिये ॥ २५ ॥ कि तुमलोग शीघ्रही पृथ्वी में महाकालवन को जावो जो कि गुप्त से भी अत्यन्त गुप्त व पुण्यरूप तथा पवित्र व पापनाशक है ॥ २६ ॥ पृथ्वी में जहांपर मायाविगों की माया नहीं प्रकाशित होती है वह समस्त तीर्थमय तीर्थ कोटितीर्थों के वरको देनेवाला है ॥ २७ ॥ जहां कि सब कामनाओं के फलों को देनेवाली श्रेष्ठ क्षिप्रानदी है जो कि दैत्यों का अन्त करनेवाली, दिव्य, महाकाली व कुलेश्वरी है ॥ २८ ॥ कोटि कोटि गणों से व्याप्त वह मातृकाओं की शक्ति को बढ़ानेवाली है व जहापर महा-

चित्तोच्चिप्रं महाकालवनं प्रति ॥ गुह्यादगुह्यतरं पुण्यं पवित्रं पापनाशनम् ॥ २६ ॥ नयत्रमायिनां माया प्रकाशय
तिभूतले ॥ सर्वतीर्थमयं तीर्थं कोटितीर्थं वरप्रदम् ॥ २७ ॥ यत्र क्षिप्रसिन्धुश्चा सर्वकामफलप्रदा ॥ दैत्यान्तकारि
णी दिव्या महाकाली कुलेश्वरी ॥ २८ ॥ कोटिकोटिगणकीर्णा मातृणां शक्तिवर्द्धनी ॥ गयायत्रमहापुण्या फलशुश्रू
षामहानदी ॥ २९ ॥ पुरुषोत्तमगिरिः श्रेष्ठो यत्र बुद्धगया स्मृता ॥ तथैव च गच्छ्याता त्रिषु लोकेषु विश्रुता ॥ ३० ॥ विष्णोः
षोडशपदी तीर्थं गदाधरविनिर्मितम् ॥ सर्वपापहरा पुण्या यत्र प्राची सरस्वती ॥ ३१ ॥ महासुरनदी प्रोक्ता पञ्चतिष्ठन्ति
पुण्यदाः ॥ न्यग्रोधश्चाक्षयोनित्यः पुरा प्रोक्तो महर्षिणा ॥ ३२ ॥ तत्रैव साशिला प्रोक्ता प्रेतमोक्षकरी शुभा ॥ तत्रैव वसते
सर्वा देवताः पितृकल्पजाः ॥ ३३ ॥ सर्वाक्षरमयोङ्कारः सर्वदेवमयो हरिः ॥ सर्वतीर्थमयं देवा गयातीर्थमनुत्तमम् ॥ ३४ ॥

पुण्यदायिनी गया व फल्गू महानदी है ॥ २९ ॥ और जहांपर श्रेष्ठ पुरुषोत्तमगिरि व बुद्धगया कही गई है वैसेही तीनों लोकों में प्रसिद्ध गया कही गई है ॥ ३० ॥ और गदाधर से निर्माण कियाहुआ विष्णु जी का षोडशपदी तीर्थ है और जहांपर सब पापों को हरनेवाली व पुण्यदायिनी प्राची सरस्वती है ॥ ३१ ॥ और महासुरनदी कही गई है ये पांच पुण्यदायक स्थित हैं व पुरातन समय महर्षि जीने अक्षय व सनातन वट कहा है ॥ ३२ ॥ और वही पर प्रेतों को मोक्ष करनेवाली वह उत्तम शिला कही गई है व वही पर पितृकल्प में उपजेहुये समस्त देवता वसते हैं ॥ ३३ ॥ हे देवताओं ! उ०कार सब अक्षरमय है व विष्णुजी सब देवमय हैं और अति उत्तम गया

तीर्थ समस्ततीर्थमय है ॥ ३४ ॥ वहाँपर तुमलोग शीघ्रही जाओ क्योंकि उत्तम सिद्धिको पावोगे जहाँ कि प्रवेशमात्र से जो नरकगामी पितरहें ॥ ३५ ॥ वे सब स्वर्ग को प्राप्त होते हैं और वह ब्रह्म होने के लिये समर्थ होता है ॥ ३६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽनन्तीखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायां भापाटीकायांगयातीर्थमाहात्म्ये गयातीर्थप्रशसावर्णनंनामाष्टपष्ठितमोऽध्यायः ॥ ६८ ॥

दो० । पितरन की उत्तम कथा गया श्राद्ध सुविधान । उनहचरि अध्याय में कीन्हों सुखद वखान ॥ व्यासजी बोले कि हे भगवन् । इस विचित्र गयाजी के माहात्म्य

शीघ्रंगच्छततत्रैव परांसिद्धिमवाप्स्यथ ॥ यत्रप्रविष्टमात्रेण पितरोनिरयगामिनः ॥ ३५ ॥ ते सर्वस्वर्गमायान्ति ब्रह्मभू-
यायकल्पते ॥ ३६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽनन्तीखण्डे गयातीर्थप्रशसानामाष्टपष्ठितमोऽध्यायः ॥ ६८ ॥
व्यासउवाच ॥ विचित्रभिदमाख्यातं गयामाहात्म्यमुत्तमम् ॥ भगवन्भवतासर्वं विदितं विश्वमूर्तिना ॥ १ ॥ तत्सर्वं श्रो-
तुमिच्छामि श्राद्धस्य फलमुत्तमम् ॥ क्षेत्रस्य च द्विजश्रेष्ठ विस्तरेण तपोधन ॥ २ ॥ कियन्तः पितरो नित्यं तृप्ता यान्ति
सुरालयम् ॥ केषांके पितरः प्रोक्ताः केत आसन् पुरानव ॥ ३ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ धन्योसि कृतकृत्योसि यस्य तेनैष्टि की-
मतिः ॥ तथापि श्रूयतां वत्स श्राद्धस्य विधिमुत्तमम् ॥ ४ ॥ श्राद्धे प्रकल्पिता लोकाः श्राद्धे धर्मः प्रतिष्ठितः ॥ श्राद्धे यज्ञाहिति-
ष्ठन्ति सर्वकामफलप्रदाः ॥ ५ ॥ श्राद्धे यद्दीयते किञ्चिद्देवविप्राग्निन तर्पणम् ॥ श्राद्धं तद्विजानीयात्पुराप्रोक्तं महर्षिणा ॥ ६ ॥

को आपने कहा व आपही विश्वमूर्ति से सब जाना गया है ॥ १ ॥ हे तपोधन, द्विजोत्तमजी ! श्राद्ध के उस उत्तम फलको व क्षेत्र के फलको मैं विस्तार से सुना चाहता हूँ ॥ २ ॥ हे अनव ! कितने पितर नित्य तप होकर येनालय को जाते हैं और किनके कौन पितर कहे गये हैं व पहले वे कौन हुये हैं ॥ ३ ॥ सनत्कुमार जी बोले कि तू धन्य व कृतकृत्य हो कि जिनकी तुम्हारी भिक्षुकी श्रद्धा तथापि हे वत्स ! श्राद्धकी उत्तम विधिको सुनिये ॥ ४ ॥ श्राद्ध में लोक कल्पित है व श्राद्ध में धर्म स्थित है व श्राद्ध में सब कामनाओं के फलको देनेवाले यज्ञ विप्रादि ॥ ५ ॥ कि श्राद्ध में जो कुछ देवता, ब्राह्मण व अग्नि को तृप्तिकारक दिया जाता है उसको श्राद्ध जानै

यह पहिले मुहर्षि जी ने कहा है ॥ ६ ॥ मनुष्य, सब ऋषि, देवता, सिद्ध, मनुष्य, गन्धर्व, किन्नर, नाग, ब्रह्मा शिव व सुरेश ॥ ७ ॥ सावधान होकर तीन तीन पिंडों को उद्देश कर श्राद्ध देकर हे व्यामजी ! मनमें प्राप्त सब कामनाओं को प्राप्त होते हैं ॥ ८ ॥ व इमप्रकार परापर सनातन मार्ग में वर्तमान होते हैं तथापि ये पितर तपस्विनो समेत कहे गये हैं ॥ ९ ॥ उस सब को मैं कहूंगा जिस प्रकार सुना गया है वैसेही उस सब को मैं भलीभांति कहूंगा जैसे ये पितर देवता हैं वैसेही देवता भी पितर होते हैं ॥ १० ॥ ये देवता पितृगणों समेत आपस में पितर हैं हे द्विजोत्तम ! पुरातन समय मार्कण्डेयजीने इस प्रश्नको पूछा है ॥ १० ॥ हे व्यासजी ! पहलेसे लगाकर उस सब को तुमसे

मनुष्याऋषयः सर्वे सुरसिद्धाश्च मानवाः ॥ गन्धर्वाः किन्नरानागा ब्रह्मभवसुरेश्वराः ॥ ७ ॥ त्रींस्त्रीन्पिण्डान्मुमुक्षुश्च श्राद्धं दत्त्वा समाहिताः ॥ प्राप्नुवन्त्यखिलान् कामान् सर्वान् व्यासमनोगतान् ॥ ८ ॥ एवं परापरमार्गं प्रवर्तन्ते सनातनम् ॥ तथापि पितरो ह्येते समाख्यातास्तपस्विभिः ॥ ९ ॥ तत्सर्वं संप्रवक्ष्यामि यथा श्रुतं तथा शृणु ॥ यथैते पितरो देवा देवाश्च पितरस्तथा ॥ १० ॥ अन्योन्यं पितरो ह्येते देवाः पितृगणैः सह ॥ मार्कण्डेन पुराष्टुष्टं प्रश्नमेतं द्विजोत्तम ॥ ११ ॥ निबोधयामि ते व्यास निखिलं सर्वमादितः ॥ यावन्तस्ते पितृगणास्तस्मिन्लोकैश्च ते गताः ॥ १२ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ सप्तैते यजतां श्रेष्ठाः सर्वे पितृगणाः स्मृताः ॥ चत्वारो ब्रूहि मन्तो वै त्रयस्तेषामममूर्तयः ॥ १३ ॥ तेषां लोकं विसर्गञ्च कीर्तयिष्यामि तच्छृणु ॥ प्रभावत्वं महत्त्वं च विस्तरणतपो धन ॥ १४ ॥ धर्ममूर्तिधरास्तेषां त्रयो येष परमागणाः ॥ तेषां नामानि लोकांश्च कीर्तयिष्यामि तच्छृणु ॥ १५ ॥ लोकाः सनातनानाम यत्र तिष्ठन्ति भास्वराः ॥ अमूर्तयः पितृगणा

बोध कराता हूं कि जितने वे पितरों के गण हैं वे उस लोक में प्राप्त हुये हैं ॥ १२ ॥ सनत्कुमारजी बोले कि यज्ञ करनेवालों में श्रेष्ठ वे सात पितरगण कहे गये हैं उन में चार मूर्तिमान हैं व तीन मूर्त्तिगिहत हैं ॥ १३ ॥ हे तपोधन ! उनके लोक, उत्पत्ति, प्रभावत्व व महत्त्व को मैं विस्तारसे कहता हूं उसको सुनिये ॥ १४ ॥ उनके मध्य में जो मूर्तिधारी तीन उत्तम गण हैं उनके नामों व लोकों को कहता हूं उसको सुनिये ॥ १५ ॥ कि प्रसिद्ध में वे सनातन लोक हैं जहां कि प्रकाशवान् वे पितर टिके हैं

और जो मूर्तिरहित पितरों के गण हैं वे हे द्विजोत्तम ! विराज प्रजापति के पुत्र वैराज हैं ऐसा हमलोगोंने सुना है उनको देवगण त्रिधि से देखेहुये कर्मसे पूजते हैं ॥ १६ ॥ १७ ॥ योग से अष्ट ये सनातन लोकों को प्राप्त होकर फिर हजार युगों के अन्त में ब्रह्मवादी होते हैं ॥ १८ ॥ फिर उस स्मरणको प्राप्त होकर व अतिउत्तम सांख्ययोग को पाकर पुनरावृत्ति याने पुनर्जन्म दुर्लभवाले व सिद्धयोगकी गति को प्राप्त होते हैं ॥ १९ ॥ हे तात ! योगियों के योगको बढ़ानेवाले ये पितर हैं जो कि पहले योगबल से चन्द्रमा को तृप्त करते हैं ॥ २० ॥ हे द्विजोत्तम ! इसलिये योगियों को श्राद्ध दीजाती हैं सोमपान ऐसा प्रसिद्ध यह प्रथम कल्प है ॥ २१ ॥

स्तेवैपुत्राः प्रजापतेः ॥ १६ ॥ विराजस्यद्विजश्रेष्ठ वैराजाइतिनः श्रुतम् ॥ यजन्तेतान् देवगणा विधिदृष्टेन कर्मणा ॥ १७ ॥ एतैवैयोगविभ्रष्टा लोकान् प्राप्य सनातनान् ॥ पुनर्युगसहस्रान्ते जायन्ते ब्रह्मवादिनः ॥ १८ ॥ ते प्राप्य तां स्मृतिं मभूयः सांख्ययोगमनुत्तमम् ॥ यान्ति योगगतिं सिद्धाः पुनरावृत्तिदुर्लभाः ॥ १९ ॥ एते स्युः पितरस्तात योगिनां योगवर्द्धनाः ॥ आप्याययन्ति ये पूर्वं सोमयोगबलेन वै ॥ २० ॥ तस्माच्छ्राद्धानि दीयन्ते योगिनां द्विजसत्तम ॥ एष वै प्रथमः कल्पः सोमपानमिति श्रुतम् ॥ २१ ॥ एतेषां मानसी कन्या मेनानाम महागिरिः ॥ पत्नी हिमवतः श्रेष्ठा यस्यां मेना कउच्यते ॥ २२ ॥ मेना कस्य सुतः श्रीमान् कौञ्चो नाम महागिरिः ॥ अग्निष्वत्ताः पितृगणास्तत्र तिष्ठन्ति भास्कराः ॥ २३ ॥ याम्यां बर्हिषदा आसन् यमाद्याश्चैव पश्रिमाम् ॥ सोमपाश्चोत्तरां प्राप्ता दिशं धनदपालिताम् ॥ २४ ॥ अमूर्तिमन्तश्चाकाशे कव्यवाडनलाः क्षिप्तौ ॥ यत्नरक्षः पिशाचाश्च यजन्ते भावितात्मनः ॥ २५ ॥ साध्या देवान् यजन्ति तस्म विद्म देवान्

इनकी मेना नामक मानसी कन्या हिमवान् महाचल की श्रेष्ठ स्त्री हुई है जिसका पुत्र मेनाक कहा जाता है ॥ २२ ॥ और मेनाक का पुत्र श्रीमान् कौञ्च नामक महाचल है उसपै प्रभाकर अग्निष्वत्ता नामक पितृगण टिके हैं ॥ २३ ॥ बर्हिषद पितर दक्षिण दिशा में प्राप्त हुये हैं व यमादिक पश्चिम दिशा में तथा सोमपानामक पितरों के गण कुबेर से पालित उत्तर दिशाको प्राप्त हुये हैं ॥ २४ ॥ और विन मूर्तिवाले पितरों के गण आकाश में व कव्यवाड और नलनामक पितरगण पृथ्वी में

प्राप्त हुये हैं व शुद्ध चित्तवाले यज्ञ, राक्षस व पिशाच ॥ २५ ॥ और साध्यदेवता देवताओं को व विदेवदेवों तथा ऋषियों को पूजते हैं और मनुजों आदिदेव को ऋषि सनातन ब्रह्मको पूजते हैं ॥ २६ ॥ इस प्रकार आदि सनातन धर्म परम्परा से प्राप्त है और पितृकार्य देवकार्य से उत्तम कार्य है व विशेष है ॥ २७ ॥ आदि के धर्म में तत्पर भरद्वाज जी के सात पुत्र जातिकी स्मरणता को प्राप्त होकर मोक्ष की पदवी को प्राप्त हुये हैं ॥ २८ ॥ और दूध देनेवाली गुरुकी गज को मारकर ये सातों ब्राह्मणों में नीचहुये और पितरों को उद्देशकर सब मांसको भक्षण करते हुये वे जुधासे विकल सब ॥ २९ ॥ योग से अष्ट होकर उस पुरण्यके प्रभाव से स्वर्ग

ऋषींस्तथा ॥ मनवः आदिदेवश्च ऋषयो ब्रह्मसनातनम् ॥ २६ ॥ एवं परम्पराप्राप्तं आदिधर्मसनातनम् ॥ देवकार्यात्परं कार्यं पितृकार्यं विशिष्यते ॥ २७ ॥ भरद्वाजात्मजाः सप्त आदिधर्मपरायणाः ॥ जातिस्मरत्त्वमापन्ना निर्वाणपदवीं गताः ॥ २८ ॥ गुरोर्दोर्गन्धीन्तु गंहत्वा सप्तैवैद्विजाधमाः ॥ पितृनुद्दिश्यते सर्वं भक्षयन्तः क्षुधादिताः ॥ २९ ॥ तेन पुरण्य प्रभावेण योगअष्टादिवङ्गताः ॥ सप्तजातिषु सर्वे ते योगयुक्तास्तथैव ते ॥ ३० ॥ तस्माच्छ्राद्धं परम्प्रोक्तं सूरिभिः परमात्मभिः ॥ आदिप्रतिष्ठिता लोकाः आदियोगः परंतपः ॥ ३१ ॥ एवं ते पितरः प्रोक्ताः आदिस्य च विधिं शृणु ॥ ब्रह्मचर्यं रतोदानं न क्रोधी न च मत्सरी ॥ ३२ ॥ शौचाचारपरोधीरः शास्त्रदृष्टिर्जितेन्द्रियः ॥ एवं यः कुरुते श्राद्धं तीर्थैश्चैव विशेषतः ॥ ३३ ॥ ततोधिकतराप्रोक्ता तृप्तिर्व्यासन्नयेह नि ॥ वृद्धिश्चादृतथाप्रोक्तं महालयशताधिकम् ॥ ३४ ॥ ततोदशगुणाप्रोक्ता

गे प्राप्तहुये हैं और वैसेही वे सब सात जातियों में योगसंयुत हुये हैं ॥ ३० ॥ इसलिये उत्तम चित्तवाले विद्वानों ने आदि को उत्तम कहा है व आदि में लोक प्रतिष्ठित हैं और आदि योग है व आदि उत्तम तप है ॥ ३१ ॥ इस प्रकार वे पितर कहे गये हैं और आदि की विधिको सुनिये कि ब्रह्मचर्य में परायण व इन्द्रियों को दमन करनेवाला पुरुष क्रोधी न होवै और न ईर्ष्यावान् होवै ॥ ३२ ॥ और शौच के आचार में परायण, विद्वान् व शास्त्रदृष्टिवाला तथा जितेन्द्रिय जो पुरुष तीर्थ में विशेषकर आदि करता है ॥ ३३ ॥ उससे बहुतही अधिक हे व्यासजी ! क्षयाह में तृप्ति होती है वैसेही सौ महालय आदियों से अधिक वृद्धिश्चादि कहा गया है ॥ ३४ ॥

और तीर्थों के मध्य में जो गया कही गई है वह उससे दशगुना अधिक है हे व्यासजी ! उससे दशगुना अधिक महाकालवनमें कहा गया है ॥ ३५ ॥ अवन्ती पुरी में सब ओर से गया तीर्थ सदैव पुण्यदायक है क्योंकि जन्म जन्म में जो पितर नरक में प्राप्त हुये हैं ॥ ३६ ॥ उनके उधारने के लिये यह दुर्लभ तीर्थ है यहां एक ही बार स्मरण करने से पितरों को दिया हुआ अक्षय होता है ॥ ३७ ॥ चौथे आश्रम के मध्यमें टिके हुये जो पितरों के वंशसे रहित हैं और जो गर्भपात में मरे हैं और जो नाम व गोत्रसे अलग हैं ॥ ३८ ॥ और अपने गोत्र व पराये गोत्र में व जो अन्य आत्मघातसे मरे हैं उनके उधारने के लिये यहां श्राद्ध की जावे ॥ ३९ ॥ ऊपरके बंधन से जो मरे हैं

या तीर्थेषु गया स्मृता ॥ ततो दशाधिकं व्यास महाकालवनेशु मे ॥ ३५ ॥ अवन्त्यां सर्वतः पुण्यं गया तीर्थं च सर्वदा ॥ ये वै निरयमापन्नाः पितरो जन्मजन्मनि ॥ ३६ ॥ तेषामुद्धरणार्थाय तीर्थमेतत्सुदुर्लभम् ॥ सकृत्स्मरणमात्रेण पितॄणां दत्तमनुयम् ॥ ३७ ॥ चतुर्थीश्रममध्यस्थाः पितृवंशविवर्जिताः ॥ गर्भपाते मृता ये च नाम गोत्रच्युतास्तथा ॥ ३८ ॥ स्वर्गो नैपरगोत्रे वा आत्मघातमृताः परे ॥ तेषामुद्धरणार्थाय अत्र श्राद्धं विधीयताम् ॥ ३९ ॥ उद्धन्धनमृता ये च विषशस्त्रहताश्च ये ॥ दंष्ट्रिभिश्च हता ये वै ब्राह्मणैश्चादिताश्च ये ॥ ४० ॥ तेषामुद्धरणार्थाय अत्र श्राद्धं विधीयताम् ॥ अग्निदग्धाश्च ये जीवा नाग्निदग्धास्तथा परे ॥ ४१ ॥ विद्युद्घातेन ये केचिन्मुद्गरैश्च हताः परे ॥ ते ॥ ४२ ॥ रौरवे चान्धतामिसे कालसूत्रे च ये गताः ॥ अनेकयातना संस्थाः प्रेतलोकैश्च ये गताः ॥ ते ॥ ४३ ॥ असिपत्रवने घोरे कुम्भीपाकेषु ये गताः ॥ पशुयोनि गता ये च पक्षि कीट सरीसृपाः ॥ ते ॥ ४४ ॥ उदकेषु मृता ये च नार्यः सूतिमृतास्तथा ॥ अश्वशूकरैश्चैव शृङ्गिभिः

व विष तथा शस्त्रों से जो मारे गये हैं और शूकरों से जो मारे गये हैं व ब्राह्मणों से जो दुःखित होते हैं ॥ ४० ॥ उनके उधारने के लिये यहां श्राद्ध की जावे और जो प्राणी अग्नि में जले हैं व अन्य जो अग्नि में नहीं जले हैं ॥ ४१ ॥ और बिजली के गिरने से जो कोई मरे हैं व अन्य जो मुद्गरों से मारे गये हैं उनके उधारने के लिये यहां श्राद्ध की जावे ॥ ४२ ॥ और रौरव, अन्धतामिस व कालसूत्र में जो प्राप्त हैं व अनेक पीड़ाओं में स्थित जो प्रेतलोक में प्राप्त हैं उनके उधारने के लिये यहां पर श्राद्ध की जावे ॥ ४३ ॥ भयंकर असिपत्रवन में व कुम्भीपाक में जो प्राप्त हैं और पशुयोनियों में जो प्राप्त हैं व पक्षी, कीट और जो क्षुद्र सर्प हैं उनके उधारने के लिये यहां श्राद्ध की

जावै ॥ ४४ ॥ और जो जलों में मरगयेहैं व पुत्र पैदा होनेपर जो स्त्रियां मरीहैं और घोडा, शूकर व सींगवाले प्राणियों से तथा गाड़ियों से जो मरेहैं उनके उधारने के लिये यहां श्राद्ध कीजावै ॥ ४५ ॥ और वनके दौरहा में शस्त्रादिकों से व व्याघ्र, मर्ग, हाथी, राजा और शलभों (पाखियों) से तथा बछी व शूकर तथा राक्षसों से जो मारे गयेहैं उनके उधारने के लिये यहां श्राद्ध कीजावै ॥ ४६ ॥ और अटारीपर शय्यापै जो मरेहैं और जो शौच व आचार से रहितहैं व विस्त्रविकारोग से जो मरेहैं व जो भ्रम तथा अतीसार से मरेहैं उनके उधारने के लिये यहां श्राद्ध कीजावै ॥ ४७ ॥ व जो साकिनी आदिक ग्रहों से ग्रस्त हुयेहैं और जो जलके मध्य में मरेहैं व न छूने के योग्य पुरुष के स्पर्श से जिन्होंने संसर्ग कियाहै व जो पतित व सन्तान में रहितहैं ॥ ४८ ॥ और अपने कर्म से जो हजारों जन्मोंतक भ्रमतेहैं व जिनको मनुज शकटैहैंताः ॥ ते० ॥ ४५ ॥ वनदावेचशस्त्राद्यैर्व्याघ्राहिगजभूमिपैः ॥ शलभैर्वृश्चिकैर्दंष्ट्रिचैरक्रव्यादघातिताः ॥

ते० ॥ ४६ ॥ अदृशय्यामृतायेच शौचाचारविवर्जिताः ॥ विस्त्रचिकामृतायेच भ्रमातीसारतोमृताः ॥ ते० ॥ ४७ ॥ शा किन्यादिग्रहैर्ग्रस्ता जलमध्यैचयेमृताः ॥ अस्पश्यस्पर्शसंसृष्टाः पतितापत्यवर्जिताः ॥ ४८ ॥ जन्मान्तरसहस्राणि भ्रमन्तिस्वेनकर्मणा ॥ मानुषंदुर्लभंयेषां तेभ्यःश्राद्धंविधीयताम् ॥ ४९ ॥ यैवान्धवान्धवाये येन्यजन्मनिवान्ध वाः ॥ यानिमित्राण्यमित्राये मित्रमित्रास्तथापरे ॥ ते० ॥ ५० ॥ पितृवंशेमृतायेच मातृवंशेतथैवच ॥ गुरुश्चशुरवन्धू नां येचान्यैवान्धवाःस्मृताः ॥ ते० ॥ ५१ ॥ येमेकुलेलुसपिएडाः पुत्रदारादिवर्जिताः ॥ क्रियालोपगतायेच जात्य न्धाःपद्मवस्तथा ॥ ५२ ॥ काणाःकुब्जाविरूपाश्च आमगर्भाश्चयेमृताः ॥ येज्ञातायेपिचाज्ञाता ज्ञाताज्ञाताःकुलेमम ॥

शरीर दुर्लभहैं उनके लिये श्राद्ध कीजावै ॥ ४९ ॥ और जो बाधव तथा अबाधवहैं व जो अन्य जन्म में बाधव हुयेहैं और जो मित्रहैं व जो अभिन्नहैं तथा अन्य जो मित्रों के मित्रहैं उनके उधारने के लिये यहां श्राद्ध कीजावै ॥ ५० ॥ और जो पिता के वंश में मरेहैं व जो माता के वंश में मरे हुयेहैं और जो गुरु व श्वशुर के बंधुओं के अन्य बाधव कहेंगेयेहैं उनके उधारने के लिये यहां श्राद्ध कीजावै ॥ ५१ ॥ और पुत्र व स्त्री से रहित जो मरे वंश में लुप्तपिंडवालेहैं व जो कर्म के लोप को प्राप्त हुयेहैं और जो जाति से अन्ध व पंगुहैं ॥ ५२ ॥ व जो बाने, कुबडे, कुरूप और जो कच्चे गर्भवाले मरेहुयेहैं व जो जानेहुये और जो विनजाने हुयेहैं तथा जो

ते० ॥ ५३ ॥ आब्रह्मभुवनेयेचाप्यन्यैर्दुर्मरणैर्मृताः ॥ तृपार्त्ताः क्षुधिताश्चैव हापिताश्चैव ये मृताः ॥ ५४ ॥ प्रेतयोनिङ्गता
श्चैव म्लेच्छयोर्निगताश्च ये ॥ ते० ॥ ५५ ॥ एवं श्राद्धविधिव्यास यस्मिंस्तथैव समाचरेत् ॥ ऋणत्रयविनिर्मुक्तो वाञ्छि
तार्थलभेत्तुमः ॥ ५६ ॥ गयायाञ्च समासाद्य सुराहन्द्रपुरोगमाः ॥ चक्रुश्च विधिवत्सर्वे यदुक्तं देवभाषया ॥ ५७ ॥ इति श्री
स्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे गायामाहात्म्ये श्राद्धविधिर्नामैकोनसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ६६ ॥ * ॥

स नत्कुमार उवाच ॥ ततः सुरगणाः सर्वे धूतपापाः समाहिताः ॥ पुनर्योगबलं प्राप्य स्वाधिकारान्नययुः पुरा ॥ १ ॥ एवं व्यासगयातीर्थं कुमुद्वत्यामुनिश्चितम् ॥ गयायां यानि तीर्थानि पुण्यान्यायत नानि च ॥ २ ॥ अस्मिंस्तीर्थे नरः स्नात्वा तत्तत्तीर्थफलं लभेत् ॥ तथैव च गयाक्षेत्रं गयाश्राद्धफलप्रदम् ॥ ३ ॥ फल्गुश्च सरितां श्रेष्ठा तथैव फलदायिनी ॥ आ

ॐ अधिनिर्भोको नमस्तत्तमोऽध्यायः ॥ ६५ ॥

दो० । गयातीर्थ के तीर्थ सब अरु उत्तम परभाव । सचरिके अध्याय में कह्यो कथा सतिभाव ॥ सनकुमारजी बोले कि तदनन्तर पाषाणित सब देवगण सावधान होकर फिर योगबलको पाकर पुरातन समय अपने अधिकारोंको प्राप्तहुये है ॥ १ ॥ हे व्यासजी ! इसप्रकार कुमुदती पुरीमें भलीभांति निश्चित गयातीर्थहै और गया में जो तीर्थ व पवित्र देवगन्दिर हैं वे हैं ॥ २ ॥ इस तीर्थ ने नदाकर मनुष्य उस उस तीर्थ के फलको प्राप्तहोताहै और वैसेही गयाक्षेत्र गया में श्राद्ध के फलको देने ॥

वाला है ॥ ३ ॥ वैसेही नदियों में श्रेष्ठ व फलदायिनी फल्गूनदी है व आदिगया, बुद्धगया व विष्णुपदी कही गई है ॥ ४ ॥ और वैसेही कोष्ठक कहा गया है व गदाधर-पद और सोलह वेदिका वैसेही अक्षयवट कहा गया है ॥ ५ ॥ वैसेही नित्यही प्रेतों को मुक्ति करनेवाली शिला कही गई है और अच्छोदा नदी कही गई है व पितरों का उत्तम आश्रम कहा गया है ॥ ६ ॥ वैसेही किन्नरों समेत देवता, दानव, यक्ष व सब नागों का उत्तम आश्रम कहा गया है ॥ ७ ॥ इन सब स्थानों में स्नान दानादिक कर्म करना चाहिये व विधिपूर्वक श्राद्ध देना चाहिये जो ऐसा करता है उसको तीर्थ का फल होता है ॥ ८ ॥ पितरों के मध्य में गयाजी में आपही विष्णुजी

दिगया बुद्धगया तथा विष्णुपदी स्मृता ॥ ४ ॥ कोष्ठकस्तु तथा प्रोक्तो गदाधरपदानि च ॥ वेदिकाः षोडश प्रोक्तास्तथैव
चाक्षयो वटः ॥ ५ ॥ प्रेतमुक्तिकरी नित्यं शिला चोक्ता तथैव च ॥ अच्छोदानि मन्नागप्रोक्ता पितृणाञ्चाश्रमोत्तमः ॥ ६ ॥
देवानां दानवानाञ्च यक्षाणां सह किन्नरैः ॥ पन्नगानाञ्च सर्वेषां तथैवाश्रममुत्तमम् ॥ ७ ॥ एतत्स्थानेषु सर्वेषु स्नानदा-
नादिकाः क्रियाः ॥ श्राद्धञ्च विधिवद्देयं तस्य तीर्थफलम् भवेत् ॥ ८ ॥ गयायां पितृलोकैषु स्वयमेव जनार्दनः ॥ तन्ध्या-
त्वा पुण्डरीकाक्षं मुच्यते च ऋणत्रयात् ॥ ९ ॥ एवं व्यासगया तीर्थं पुरावन्त्यां प्रतिष्ठितम् ॥ पश्चात्तु कार्कजं यत्र
सन्निहितो मुरः ॥ १० ॥ तदारभ्य द्विजश्रेष्ठ गयातत्र प्रतिष्ठिता ॥ गदाधरपदाघातं महादेव्यनिपातितः ॥ ११ ॥ तत्पदे
महिमानं च जनार्दनसमर्पितम् ॥ पञ्चक्रोशं गयाक्षेत्रं क्रोशमेकं गयाशिरः ॥ १२ ॥ यत्र यत्र स्मरिष्यामि पितृणां दत्त
मक्षयम् ॥ सर्वदा सर्वकालेषु गयाश्राद्धं विधीयते ॥ १३ ॥ संवत्सरे परं व्यास पक्षमेकं प्रतिष्ठितम् ॥ कन्यास्थे च दिवानाथे

हैं उन कमललोचनजी को ध्यान कर मनुष्य तीनों ऋणों से छूट जाता है ॥ ९ ॥ हे व्यासजी ! इस प्रकार पुरातन समय अश्वत्थी पुरी में गया तीर्थ प्रतिष्ठित हुआ है पदचात कार्कज देश में हुआ है जहां कि असुर भलीभांति टिका है ॥ १० ॥ तब से लगाकर हे द्विजश्रेष्ठ ! वहां पर गया प्रतिष्ठित हुई है गदाधरजी के चरणप्रहारों से जहा महादेव्य मारा गया है ॥ ११ ॥ उसी स्थान पर जनार्दनजी से समर्पित महिमा है गयाक्षेत्र पांच कोस है व एक कोस गयाशिर है ॥ १२ ॥ उसको जहा जहां में स्मरण करूं वहा वहां पितरों का दिया हुआ अक्षय होता है सदैव सब समयों में गया श्राद्ध कीजानी है ॥ १३ ॥ परन्तु हे व्यासजी ! वर्षभर में एक दिन प्रतिष्ठित

है कि हस्तनक्षत्र से संयुक्त जब विमनाथ सूर्यनोरियण कन्याराशि में स्थित होवे ॥ १४ ॥ तब वह महालय ऐसा कहा गया है उसमें पितरों को दिया हुआ अक्षय होता है सदैव सब समयोंमें गयाश्राद्ध की जाती है ॥ १५ ॥ परन्तु हे व्यास जी ! वर्षभर में एक पक्ष प्रतिष्ठित है इसप्रकार हे व्यासजी ! स्नान दानादिक कर्मों में अवन्तीपुरी मनोहर है ॥ १६ ॥ फिर मैं बड़े अद्भुत माहात्म्यको कहता हूँ सुभक्त कहेहुये उस पवित्र व पापनाशक माहात्म्यको सुनिये ॥ १७ ॥ कि सातर्षियों की जो सात पतिव्रता स्त्रियाँ थीं भाग्यसे अष्टहुई वे अग्नि से दूषित हुई ॥ १८ ॥ और ऋषियों से छोड़ी हुई वे वनसे वनमें अमती भई इस भाँति बहुत समय बीतने

हस्तनक्षत्रसंयुते ॥ १४ ॥ महालयेतितत्प्रोक्तं पितृणां दत्तमक्षयम् ॥ सर्वदा सर्वकालेषु गयाश्राद्धविधीयते ॥ १५ ॥ संवत्सरे परं व्यासं पक्षमेकं प्रतिष्ठितम् ॥ एवं व्यासपुरीरम्या स्नानदानादिकर्मसु ॥ १६ ॥ भूयस्तु संप्रवक्ष्यामि माहात्म्यं परमाद्भुतम् ॥ तच्छृणुष्व मया ख्यातं पवित्रम् पापनाशनम् ॥ १७ ॥ सप्तर्षीणामनुयाभार्या सप्तपत्न्यः पतिव्रताः ॥ तास्तु दैवपरिभ्रष्टा दूषिताः पावकेन च ॥ १८ ॥ ऋषिभिः परित्यक्तास्ता वभ्रमुश्रवनाद्बनम् ॥ एवं बहुगते काले नारदो देवदर्शनः ॥ १९ ॥ तासान् तु प्रियमन्विच्छन् समायातो वनान्तरे ॥ ताभिः ससत्कृतो नित्यं समासीनो धृतवृतः ॥ २० ॥ उवाच श्लक्ष्णयावाचा देशकालोचितं वचः ॥ किमिदं क्रियते जातो भवतीनाम् पराभवः ॥ २१ ॥ कस्मात्तु ऋषिभिस्त्यक्ता लोका कमातु पतिव्रताः ॥ ऋषिपत्न्य ऊचुः ॥ न जाने हि वयं तात येन दोषेण तापसैः ॥ २२ ॥ विमुक्ताः साग्निकैर्विप्रैः कार्तिकेय प्रसङ्गतः ॥ लोकापवादं किञ्चिज्जातं दिष्टवशादधम् ॥ २३ ॥ किं कुर्मः कच गच्छामः किंतपः कच देवता ॥ यस्याराधनपु

पर देवदर्शन नारदजी ॥ १९ ॥ उनके प्रिय को चाहतेहुये वनके मध्यमें भलीभाँति आये और उन सबों से सत्कार कियेहुये वे नित्य धारेहुये नियमवाले नारदजी बैठगये ॥ २० ॥ और देश व समय के योग्य वचनको नम्रवाणी से बोले कि यह क्या किया जाता है जो कि आप सबोंका अनादर हुआ ॥ २१ ॥ और किस कारण ऋषियों से लोकों की माता व पतिव्रता तुम सब छोड़ी गई हो ऋषियों की स्त्रिया बोलों कि हे तात ! हम सब यह नहीं जानती हैं कि जिस दोषसे हमलोग साग्निक ब्राह्मणों से छोड़ी गई हैं भाग्यके वशसे कार्तिकेय जी के प्रसंग से कुछ संसारके अपवाद (कलंक) से उपजा हुआ पातक हुआ है ॥ २२ ॥ २३ ॥ हम सब क्या करें व

कहां जावे क्या तप व कौन देवता है कि जिसके आराधन के पुण्य से फिर आश्रमको जावे ॥ २४ ॥ यह निश्चय कर हे ब्रह्मन् ! कहिये क्योंकि तुम यथार्थ जानते हो उस समय इस भांति उन ऋषिस्त्रियों से पूछे हुये नारदजी ॥ २५ ॥ बहुत देर तक ध्यानकर उनके कल्याण के लिये बोले नारदजी बोले कि हे ऋषिस्त्रियो ! आप सबोंके लिये जो श्रेष्ठतप है उसको सुनिये ॥ २६ ॥ कि मनोहर महाकालवनमें अतिउत्तम गयातीर्थ है वहींपर वृक्षों में श्रेष्ठ अक्षय नामक वट है ॥ २७ ॥ वहाँ आगमनमात्रसे पापरहित होवोगी क्योंकि वह तीर्थ सब दोषोंका हरनेवाला व सब कामनाओं के वरदान को देनेवाला है ॥ २८ ॥ और सब सुखों का करनेवाला एयेन व्रजामः पुनराश्रमम् ॥ २४ ॥ एतन्निश्चित्यमो ब्रह्मन् ब्रूहि त्वं वेत्सि तत्त्वतः ॥ इतिष्ठष्टस्तदाताभिर्ऋषिस्त्रीभिश्च नारदः ॥ २५ ॥ उवाचसुचिरंध्यात्वा तासां शर्मस्य हेतवे ॥ नारद उवाच ॥ श्रूयताम्भोस्तपःश्रेष्ठम्भवतीनाञ्चकारणम् ॥ २६ ॥ महाकालवनेरम्ये गयातीर्थमनुत्तमम् ॥ तत्रैव चान्नयोनौ नम न्यग्रोधः शाखिनां वरः ॥ २७ ॥ तत्रागमनमात्रेण धूतदोषाभविष्यथ ॥ सर्वदोषहरं तीर्थं सर्वकामवरप्रदम् ॥ २८ ॥ सर्वसौख्यकरं पुण्यं तत्र गच्छतमाचिरम् ॥ नारदस्य वचः श्रुत्वा ऋषिपत्न्यः सुचोदिताः ॥ २९ ॥ महाकालवने व्यास इच्छन्त्यः प्रियमात्मनः ॥ जगमुस्तास्तुतदा तत्र यत्र तीर्थं गयाभिधम् ॥ ३० ॥ तत्र गत्वा शुचिभूत्वा स्नानदानादिकाः क्रियाः ॥ कृतास्ताभिश्च पुण्याभिर्नमस्यस्यासिते तरे ॥ ३१ ॥ गयायां ऋषिपत्नीभिः पञ्चम्यां सुचिरं कृतम् ॥ उपोष्य चैकरात्रञ्च जागरं चैव योगतः ॥ ३२ ॥ कृतमात्रेव त्रेव्या स निष्पापां ह्यभवन् क्षणात् ॥ भर्तृकोपपरिभ्रष्टा सद्यः प्राप्ता गृहाश्रमम् ॥ ३३ ॥ ऋषिभिः स्वागतं दत्तं पूर्ववदृषिसत्त व पवित्र है वहा शीघ्रही जावो नारदजी के वचन को सुनकर अपने प्रियको चाहती हुई भलीभांति प्रेरित वे ऋषियों की स्त्रियां उस समय हे व्यासजी ! उस महाकाल वनमें गईं जहाँ कि गया नामक तीर्थ है ॥ २९ ॥ वहाँ जाकर पवित्र होकर उन पुण्यरूपिणी ऋषिस्त्रियों ने पवित्र होकर गया तीर्थमें भाद्रपदके शुक्लपक्षमें पंचमी तिथि में स्नान दानादिक कर्मों को किया और एक रात्रि उपासकर योग से बहुत दिनों तक जागरण किया ॥ ३१ ॥ हे व्यासजी ! व्रत के करनेहीपर क्षणभर में पापरहित होगई और पतिके क्रोध से भ्रष्ट वे ऋषिस्त्रियां शीघ्रही गृह के आश्रम को प्राप्त हुई ॥ ३३ ॥ व हे ऋषिश्रेष्ठजी ! ऋषियों ने पहले की नाई स्वागत दिया तब

से लगाकर इस संसार में वह तिथि ऋषिपंचमी प्रसिद्ध हुई ॥ ३४ ॥ हे व्यासजी ! उस तिथिमें जो मनुष्य इस व्रत को करता है और जो सावधान होता हुआ पवित्र होकर नीवार (तिन्नीफसही) का आहार करता है ॥ ३५ ॥ उसको कुछ आपत्तिका दुःख कभी नहीं होता है व स्त्रियों की दुर्भगता नहीं होती है और न पतियों से वियोग होता है ॥ ३६ ॥ और न कभी पुत्र व 'धन' से भी वियोग होवैगा हे व्यासजी ! जो तुमने उत्तम पूँछा वह इस प्रकार भलीभाँति कहा गया ॥ ३७ ॥ हे सत्तम ! पृथ्वीपर अवन्तीपुरी में ऐसा तीर्थ वर्तमान है कि वैयास पुण्यदायक कोई तीर्थ ब्रह्माण्डगोलक में नहीं है ॥ ३८ ॥ इस तीर्थ में जो कोई मनुष्य महादानोंको करता है

म ॥ तदाप्रभृतिलोकेस्मिन् सातिथिर्ऋषिपञ्चमी ॥ ३४ ॥ योनरोव्यासतस्यैव व्रतमेतद्भरोति च ॥ नीवाराहारकंकुर्या
च्छुचिर्भूत्वासमाहितः ॥ ३५ ॥ नतस्य जायते किञ्चिदापद्दुःखं कदाचन ॥ दुर्भगत्वं नारीणां न वियोगश्च भर्तुभिः ॥ ३६ ॥
पुत्रतो धनतो वापि कदाचित्सम्भविष्यति ॥ एवं व्याससमाख्यातं यत्स्वयाष्टमुत्तमम् ॥ ३७ ॥ अवन्त्यामीदृशं तीर्थं
वर्तते सुविसत्तम ॥ तादृशं पुण्यदं किञ्चिन्नास्ति ब्रह्माण्डगोलके ॥ ३८ ॥ अस्मिंस्तीर्थे नरः कश्चिन्महादानानि कारयेत्
॥ अक्षयंतस्य भवति विष्णुलोकमहीयते ॥ ३९ ॥ यो वै नियतवान्भूत्वा कथामेतां शृणोति वा ॥ पर्वचसततं व्यास
स हयमेधफलं भवेत् ॥ ४० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे गंगार्तीर्थमाहात्म्य नाम सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७० ॥

व्यास उवाच ॥ पुरुषोत्तम कर्तार्यन्तव्याप्रोक्तं पुरानघ ॥ महिमा तस्य तीर्थस्य विस्तराद्ददमे प्रभो ॥ १ ॥ एतत्तु श्रोतु
मिच्छामि त्वत्तो ब्रह्मविदांवर ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ श्रूयताम् भो द्विजश्रेष्ठ कथां पापहराम्पराम् ॥ २ ॥ यस्याः श्रवणमा

उमका वह अक्षय होता है और वह विष्णुलोक में पूजा जाता है ॥ ३९ ॥ हे व्यासजी ! जो पुरुष नियमवान् होकर इस कथा को सुनता है वह सदैव जो पर्व में सुनता है वह अक्षयमेधयज्ञ के फलको पाता है ॥ ४० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे देवीदयालुमिश्रचरित्यापाटीकायां गंगार्तीर्थमाहात्म्यं नाम सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७० ॥
दो० ॥ पूत्रै ज्जिमी मलमास मे श्रीपुरुषोत्तम देव । इकहचरित आध्याय में सोइ चरित सुखसेव ॥ व्यामजी ! बोले कि हे अनघ, प्रभो ! पुरातन समय तुमने पुरुषोत्तम तीर्थको कहा है मुझसे उस तीर्थ की महिमाको विस्तार से कहिये ॥ १ ॥ हे ब्रह्मविदांवर ! मैं तुमसे यह सुनना चाहता हूँ सनत्कुमारजी बोले कि हे द्विजोत्तम !

पापहारिणी! उत्तम कथा को सुनिये ॥ २ ॥ कि जिसके सुननेही से महापातकोंका नाश होता है हे अर्हन् ! पहले कल्पों में निर्मल व उत्तम वैकुण्ठ में पार्षद तथा उत्तम वर्णवाले सनकादिक महर्षियों व पितामह आदिक देवताओं समेत रमानाथ विष्णुजी बैठे थे ॥ ३ ॥ ४ ॥ जो कि ऋद्धि, सिद्धियों के गुणों से संयुत उन महदादिक तत्त्वों से व गण तथा गन्धर्वममूहों से सब ओर सेवित थे ॥ ५ ॥ और किन्नरों के उच्चप्रकार के गान व सम्मान से उत्तम आगन में नृत्य होनेपर और चिन्तामणि के गृहद्वार व सुन्दर अँगनाई की भूमियों में ॥ ६ ॥ कल्पवृक्ष से कीहुई छायावाले मुरशत्रु विष्णुजी के बैठनेपर ब्रह्ममार्ग में भलीभांति निश्चय किये हुये राज धर्म

त्रेण महापापक्षयोभवेत् ॥ पुराकल्पेपुर्वैब्रह्मन् वैकुण्ठेविमलेशुभे ॥ ३ ॥ समासीनोरमानाथः पार्षदैः सनकादिभिः ॥ महर्षिभिश्च सदृणैः पितामहपुरोगमैः ॥ ४ ॥ ऋद्धिसिद्धिगुणोपेतैस्तत्त्वैर्महदादिभिः ॥ गणगन्धर्वसङ्घैश्च सेव्यमानः समन्ततः ॥ ५ ॥ किन्नरोद्गानसम्मानैर्नृत्यमानेवराङ्गणे ॥ चिन्तामणिगृहद्वारललिताङ्गणभूमिषु ॥ ६ ॥ कल्पद्रुमकृतच्छायाआसीनेहिमुरद्विषि ॥ धर्मवादरताः सर्वे ब्रह्ममार्गमुनिश्चिताः ॥ ७ ॥ तेषामध्येपराभूषां कमलातमपृच्छत ॥ पुरयकानांविधिनाथ श्रोतुमिच्छामितत्त्वतः ॥ ८ ॥ सर्वज्ञोसिमहाप्राज्ञ प्रोच्यतांयदिरोचते ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ दा नंस्नानंतपस्तप्तं सदाशस्तंहिशोभने ॥ ९ ॥ तथापिविधिनाप्राप्तं तत्सर्वं चाक्षयम्भवेत् ॥ देशेकालेचपर्वेच तीर्थेप्राप्ते चगोपदे ॥ १० ॥ दानंस्नानंतपःश्राद्धं मुनिभिः परिकीर्तितम् ॥ पूर्णिमायाममावास्यां संक्रान्तौग्रहणे तथा ॥ ११ ॥ वैधृतौचव्यतीपाते दानमृद्धिपरंस्मृतम् ॥ गङ्गायांभास्करक्षेत्रेष्वेवचपुष्करे ॥ १२ ॥ गोदावर्य्यागयायाञ्च तीर्थेचामरक

के वाद में पराग्रह थे ॥ ७ ॥ उनके मध्य में लक्ष्मीजी ने उन विष्णुजी से उत्तमवचन को पूछा कि हे नाथ ! मैं पुराणों की विधिको यथार्थ सुनना चाहती हूँ ॥ ८ ॥ हे महाप्राज्ञ ! तुम सर्वज्ञ हो यदि तुमको रुचता हो तो कहिये श्रीभगवान् बोले कि हे शोभने ! दान, स्नान व किया हुआ तप सदैव शुभ होता है ॥ ९ ॥ तथापि विधि से प्राप्त वह सब अक्षय होता है देश, काल व पर्व में गोपदीर्घ प्राप्त होनेपर ॥ १० ॥ दान, स्नान, तप व श्राद्ध मुनियों से कहा गया है पौर्णमासी, अमावस, संक्रान्ति व ग्रहण में ॥ ११ ॥ और वैधृति व व्यतीपातयोग में दान ऋद्धिदायक कहा गया है व गंगा, भास्करक्षेत्र, अरुणक्षेत्र व पुष्कर में ॥ १२ ॥ और गोदा-

वरी व गयतीर्थ में तथा अमरकंटक व अवन्तीपुरी में जो हवन किया व दिया हुआ होता है वह सब अक्षय होता है ॥ १३ ॥ इरालिये राव यल से पूर्वतीर्थ करे न्योंकि तीर्थ पर्व से अष्ट मनुष्य निश्चयकर कुवसना, दुर्भग, मूर्ख, जड व रंगसे संयुत होता है लक्ष्मीजी बोलीं कि कौन योग व कौन कर्म है इस सबको सम्पूर्णता से कहिये ॥ १४ ॥ १५ ॥ श्रीभगवान् बोले कि हे अनघे, भद्रे, प्रिये ! तुमने पुण्यों के मध्य में बहुत अच्छा पूछा मलमास प्राप्त होनेपर जो मनुष्य व्रतसे रहित होते है ॥ १६ ॥ हे शोभने ! उनके जन्म जन्म में दरिद्रता होती है लक्ष्मीजी बोलीं कि मलमास कैसा होता है और किस योगसे होता है ॥ १७ ॥ व किस समय

एटक ॥ अवन्त्याञ्चहुतंदत्तं तत्सर्वं चान्नयम्भवेत् ॥ १३ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन पर्वतीर्थसमाचरेत् ॥ कुचैलोदुर्भगोमूर्खो जडोरोगसमन्वितः ॥ १४ ॥ तीर्थपर्वपरिभ्रष्टो नरोभवति निश्चितम् ॥ श्रीरुवाच ॥ केचयोगाश्च कर्माणि ब्रूहि सर्वविशेषतः ॥ १५ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ साधुष्टन्त्वया भद्रे पुण्यकानां प्रिये नघे ॥ मलमासे समायाते येन रात्रतवर्जिताः ॥ १६ ॥ जन्मजन्मनिदारिद्र्यं तेषाम्भवति शोभने ॥ श्रीरुवाच ॥ कीदृशो हि मलो मासः केन योगेन जायते ॥ १७ ॥ कदाकाले समायाति एतन्नो वद विस्तरात् ॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ युक्तमुक्तं त्वया देवि प्रश्नकालो यमीदृशः ॥ १८ ॥ देवतापितृकार्याणि विधिना हिमलिङ्गुचे ॥ नौरिमौञ्जीविवाहादि व्रतोपवासकं तथा ॥ १९ ॥ विशेषेण गृहस्थानां वज्र्यमुनिवरोत्तमैः ॥ संवत्सरत्रयान्ते च मासो यमधिगच्छति ॥ २० ॥ असंक्रमणं रेवस्मिन्मासमादधिकमासकः ॥ अधिमासाधिपत्यो हं सदैव पुरुषोत्तमः ॥ २१ ॥ ममाभिधानं मेतीर्थं महाकालवने शुभम् ॥ पुरुषोत्तमाख्यं मेधाम सदैवावसुतिष्ठ

प्राप्त होता है इसको मुझसे विस्तार से कहिये श्रीकृष्णजी बोले कि हे देवि ! तुमने योग्य कहा यह ऐसाही प्रश्न का समय है ॥ १८ ॥ मलमास में विधिसे देवता व पितरों के कार्य, मुण्डन, यज्ञोपवीत, विवाहादिक, व्रत व उपास ॥ १९ ॥ गृहस्थोंको विशेष कर वर्जित करना चाहिये यह मुनिश्रेष्ठों ने कहा है और तीन वर्ष के अन्त में यह मास आता है ॥ २० ॥ इम महीने में सूर्यका सक्रमण नहीं होता है इसी कारण अधिक मास होता है मैं पुरुषोत्तम सदैव अधिमासका स्वामी हूं ॥ २१ ॥

महाकालवनमें मेरे नामवाला मेरा उत्तम तीर्थ है यहाँपर सदैव पुरुषोत्तम नामक मेरा स्थान स्थित रहता है ॥ २२ ॥ इसलिये सब यलसे तुम समेत जाना चाहिये जहाँ महाकालवन है वहाँ मेरे नामवाला तीर्थ है ॥ २३ ॥ हे प्रिये, देवि ! जो मनुष्य स्नान के लिये वहाँ भलीभाँति आते हैं उनको कुछ मेरे न देने योग्य कभी न होवेगा ॥ २४ ॥ और धन, धान्य व ली आदिक तथा पुत्रों का सुख सदैवही रहता है संक्रान्तिरहित मास प्राप्त होनेपर मनुष्य मुझको उद्देशकर व्रत करे ॥ २५ ॥ पुरुषोत्तम मैं सदैव अधिमास का स्वामी हूँ स्नान, दान, जप, होम, निज वेदपाठ व पितरों का तर्पण ॥ २६ ॥ व जो उत्तम मनुष्य दुपहर में देवता का पूजन करते

ति ॥ २२ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन गन्तव्यं हित्वयासह ॥ महाकालवनं यत्र तत्र तीर्थं ममाभिधम् ॥ २३ ॥ प्राणिनो ये समायांन्ति मज्जनार्थं प्रिये ध्रुवम् ॥ तेषां देवि ममादेयं न कदापि भविष्यति ॥ २४ ॥ धनधान्यकलत्रादिपुत्रसौख्यं सदैव हि असंक्रान्तेऽपि संप्राप्ते मामुद्दिश्य व्रतं चरेत् ॥ २५ ॥ अधिमासाधिपत्योऽहं सदा वै पुरुषोत्तमः ॥ स्नानं दानं जपो होमः स्वाध्यायः पितृ तर्पणम् ॥ २६ ॥ देवाचनं च मध्याह्ने ये कुर्वन्ति नरोत्तमाः ॥ अक्षयं स्यात्तु तत्सर्वं तेषां वै कर्मले ध्रुवम् ॥ २७ ॥ मलमासो गतः शून्यो येषां देवि प्रमादतः ॥ दारिद्र्यञ्च सदा तेषां शोकरोगविवर्द्धनम् ॥ २८ ॥ अधिमासे नरा ये चाप्यवन्त्यां व्रतकारकाः ॥ तेषां नन्दाम्यहं प्रीत्या त्वामिव तु न संशयः ॥ २९ ॥ स्वल्पं दानं मम लेकार्यं यत्किञ्चिद्विद्विहयत्कृतम् ॥ तत्सर्वं मत्प्रसादेन ह्यनन्तं प्रियदर्शने ॥ ३० ॥ श्रीरुवाच ॥ ईदृशो हित्वया प्रोक्तस्त्वधिमासस्य सुव्रत ॥ महिमा ह्यपिलोकानां सर्वकामवरप्रदः ॥ ३१ ॥ अधिमासव्रतं मृणयं कथयस्व प्रसादतः ॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ असंक्रान्तो यदा मासः

हे लक्ष्मी जी ! उनका वह सब निश्चय कर अक्षय होता है ॥ २७ ॥ हे देवि ! असावधानतासे जिनका मलमास शून्य व्यतीत होता है उनके सदैव दरिद्रता होती है और शोक व रोगों की वृद्धि होती है ॥ २८ ॥ और जो मनुष्य अवन्तीपुरी में मलमास में व्रत करनेवाले हैं उनको मैं प्रीति से तुम्हीं को देता हूँ इस में सन्देह नहीं है ॥ २९ ॥ मलमास में यहाँ जो कुछ थोड़ा भी होवे उसको दान करे क्योंकि हे प्रियदर्शने ! यहाँ जो दान किया होता है वह सब मेरी प्रसन्नता से अनन्त होता है ॥ ३० ॥ लक्ष्मी जी बोली कि हे सुव्रत ! तुमने मनुष्यों को सब कामनाओं को वरदायक ऐसी मलमास की महिमा को कहा ॥ ३१ ॥ और मलमास के पुण्यदायक

व्रतको प्रसन्नतासे कहिये श्रीकृष्णजी बोले कि हे प्रिये ! बिन सर्कांतिवाला (मलमास) जब मनुष्यों को प्राप्त होवै ॥ ३२ ॥ तब आगमन में हित चाहनेवाले पुरुषों को बड़ा भारी उत्सव करना चाहिये हे सुरेश्वरि ! कृष्णपक्ष में चौदसि व नवमी में ॥ ३३ ॥ और अष्टमी में यथालाभ उपहार से शोकविनाशक व्रत करना चाहिये व मलमासमें ॥ ३४ ॥ पुण्य दिनमें प्रातःकाल उठकर पूर्वाह्णवाले कर्मको करके न नियम ग्रहणकर पश्चात् हृदयमें विष्णुजी को स्मरण करताहुआ पुरुष ॥ ३५ ॥ हे मानिनि ! उपवास, नक्तव्रत व एकमुक्त व्रतों में से एकका निश्चयकर तदनन्तर ब्राह्मणों का निमन्त्रण करै ॥ ३६ ॥ जो कि सपत्नीक, उत्तम आचारशाले

प्राप्यतेमानवैः प्रिये ॥ ३२ ॥ महोत्सवस्तदाकार्यं आगमेहितकाङ्क्षिभिः ॥ कृष्णपक्षे चतुर्दश्यां नवम्यां वा सुरेश्वरि ॥ ३३ ॥ अष्टम्याञ्चाथ कर्तव्यं व्रतशोकविनाशनम् ॥ यथालाभोपहारेण मासे चापि मलिम्लुचे ॥ ३४ ॥ पुण्याहे प्रातरुत्थाय कृत्वा पूर्वाह्णिकीं क्रियाम् ॥ गृहीत्वानियमं पश्चाद्वाहासु देवं हृदि स्मरन् ॥ ३५ ॥ उपवासश्च नक्तञ्च एकमुक्तश्च मानिनि ॥ एकमुक्त्या निश्चयं कृत्वा ततो विप्रान्निमन्त्रयेत् ॥ ३६ ॥ सपत्नीकान्सदाचारान् कुलीनाञ्चाति सम्भवान् ॥ ततो मध्याह्न समये लक्ष्मीगुक्तं सनातनम् ॥ ३७ ॥ स्थापयेदव्रणे कुम्भे वेदमन्त्रौ द्विजातिभिः ॥ पूजयेत्परया भक्त्या गोत्रं भित्सपि तामहम् ॥ ३८ ॥ गन्धतोयेन संस्थाप्य पञ्चासृतेस्तथैव च ॥ मिष्टान्नैर्विविधैश्च नैवेद्यैर्धूपदीपकैः ॥ ३९ ॥ आच्छादनैश्च वस्त्रैश्च पीतकौशेयकैस्तथा ॥ घण्टामृदङ्गनिहादैर्दिव्यघोषसमन्वितैः ॥ ४० ॥ आरातिकं व्रती कुर्यात् कर्पूरागुरुचन्दनैः ॥ अलामेतूलकैश्चापि फलस्यानन्तहेतवे ॥ ४१ ॥ ताम्रपात्रस्थितैस्तोयैश्चन्दनाञ्चितपुष्पकैः ॥ अर्धदद्यात्सप

कुलीन व ज्ञाति में उत्पन्न होवै तदनन्तर मध्याह्न समय में लक्ष्मी समेत सनातन पुरुष को ॥ ३७ ॥ ब्राह्मणों से वेदमंत्रों के द्वारा व्रणरहित (बिन फूटे) कुम्भमें स्थापित करावै और इन्द्र व ब्रह्मा समेत बड़ी भक्ति से पूजन करै ॥ ३८ ॥ व भलीभांति स्थापित कर सुगन्धजल व पंचामृतों से तथा अनेक भाति के नैवेद्यों व धूप दीपों से ॥ ३९ ॥ और आच्छादन व पीत रेशमी वस्त्रों से तथा दिव्य शब्द से संयुत घंटा व मृदंग के शब्दों से ॥ ४० ॥ व्रती पुरुष कर्पूर, अंगूर व चन्दन से आरती करै और इनके न मिलनेपर अनन्त फलके कारण रुई की बाँतियों से आरती करै ॥ ४१ ॥ और स्त्री समेत व्रती पुरुष प्रसन्नचित्त से चन्दन, अक्षत व पुष्पों समेत

ताँबे के पात्र में स्थित जल से अर्घ्य देवै ॥ ४२ ॥ याने छुटनुवाँ को पृथ्वी में कर शिवभक्ति से संयुत पुरुष हाथों से उसको लेकर पंचरत्नों से संयुत जलों से अर्घ्य देवै ॥ ४३ ॥ हे देव ! तुम सब प्राणियों में दयावान् व संसार को आनन्दकारकहो अर्घ्य को ग्रहण कीजिये व सम्पूर्ण फलों के दायक हूजिये यह अर्घ्य का भंड है ॥ ४४ ॥ अभिततेजवाले आप स्वयम्भू व ब्रह्माकेलिये नमस्कार है व हे श्रियानन्द, ब्रह्मानन्द, कृपाकर ! तुम्हारे लिये प्रणाम है यह प्रार्थना का मंत्र है ॥ ४५ ॥ नहाकर व पवित्र होकर इसप्रकार गोविन्दजी की प्रार्थना कर लक्ष्मीनारायण को स्मरण करताहुआ पुरुष आपही पत्नी समेत ब्राह्मणों को पूजै ॥ ४६ ॥ विधि से पूजकर घी

बीकः प्रहृष्टेनान्तरात्मना ॥ ४२ ॥ पञ्चरत्नैः समायुक्तैर्जानुनीकृत्यभूतले ॥ समादायचपाणिभ्यां सर्वभक्तिसमन्वि-
तः ॥ ४३ ॥ कृपावान्सर्वभूतेषु जगदानन्दकारकः ॥ गृहाणाध्यमिदं देव सम्पूर्णफलदोभव ॥ इत्यध्यमन्त्रः ॥ ४४ ॥
स्वयम्भुवेनमस्तुभ्यं ब्रह्मणेमिततेजसे ॥ नमोस्तुते श्रियानन्द ब्रह्मानन्दकृपाकर ॥ इति प्रार्थनामन्त्रः ॥ ४५ ॥ एवंसे
प्रार्थ्यगोविन्दं पूजयेद्ब्राह्मणान्स्वयम् ॥ सपत्नीकाञ्छुचिः स्नात्वा लक्ष्मीनारायणौ स्मरन् ॥ ४६ ॥ पूजयित्वा विधानेन
भोजयेद्दधृतपायसैः ॥ भोजयित्वा विधानेन सपत्नीकं यथोचितम् ॥ ४७ ॥ विद्याविनयसम्पन्नं स्वयापत्न्या समन्वि-
तम् ॥ परिस्थाप्य यथाशक्त्या वस्त्रालङ्कारकुङ्कुमैः ॥ ४८ ॥ गोस्तन्यासकपित्थैश्च खज्जूरैः कदलीफलैः ॥ पनसैर्नारि-
कैलैश्च नारङ्गदण्डिमैस्तथा ॥ ४९ ॥ दधृतपकान्नगोधूमैः शुभैर्मिष्टान्नैरपि ॥ शर्कराघृतपूरैश्च फाणितैः खण्डमण्डि-
तैः ॥ ५० ॥ उर्वारुक्कट्टीशार्कैः शृङ्गवेरैः समूलकैः ॥ अन्यैश्च विविधैः शार्कैरामैः पकैः पृथक् पृथक् ॥ ५१ ॥ भक्ष्यभो-

व खीर से भोजन करवै और विद्या व विनय से संयुत अपनी स्त्री समेत सपत्नीक ब्राह्मण को विधि से यथोचित भोजन कराकर व बिठाकर यथाशक्ति से वसन, अलंकार व कुकुम से पूजन करै ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ व मुनक्का और कैथा समेत खजूर व केला के फलों से तथा कटहर, नारियल, नारंगी व अनारों से पूजन करै ॥ ४९ ॥ और घी में पकेहुये गोघूमाद्य व उत्तम मिष्ठानों से और शर्करा व घृत से पूर्ण भोजनों से और राब व खांड से शोभित जैवेद्यों से ॥ ५० ॥ और ककड़ी के शाको से व

मूत्री समेत अदरलों से तथा नैक भाँति के अन्य कच्चे व पके अलग अलग शाकों से भोजन करावै ॥ ५३ ॥ व विशेष कर भक्ष्य, भोज्य, लेह्य (चाटने योग्य पदार्थ) व पीनेयोग्य वस्तुओं को और कंद व सुवासित गोरसों को परोसकर कोमल वचन कहताहुआ पुरुष यह कहै ॥ ५२ ॥ कि हे प्रभो ! यह स्वादुरसवाला भोजन आपके लिये रचागया है जो रुचताहैवै उसको माँगिये जो कि मैंने पकाया है ॥ ५३ ॥ मैं धन्यहूँ व अनुग्रह कियागयाहूँ और मन्दिर सार्थ कियागया तदनन्तर तांबूल व दक्षिणा को देकर ब्राह्मणों को विदाकरै ॥ ५४ ॥ हे देवि ! चार वस्तुओं से मिलेहुये, प्रिय तांबूल को जो पुरुष मुझको देता है हे द्विजोत्तम ! वह मनुष्य

उत्थलेह्यपेयकन्दकानिविशेषतः ॥ सुवासितान्गोरसांश्च परिवेष्यमृदुवृषन् ॥ ५२ ॥ इदंस्वादुरसंभोज्यम्भवदर्थप्रकल्पितम् ॥ याच्यतांरोचयेद्यच्च यन्मयापाचितं प्रभो ॥ ५३ ॥ धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि कृतं सार्थञ्च मन्दिरम् ॥ विमर्जयेत्ततो विप्रान् दत्त्वा ताम्बूलदक्षिणाः ॥ ५४ ॥ चतुर्भिर्मिलितन्देवि ताम्बूलम् ममवल्लभम् ॥ यो ददाति द्विजश्रेष्ठ स भवेत्सुभगो नरः ॥ ५५ ॥ सुभगा च सदा चारा वल्लभा स्वजने सदा ॥ पुत्रसौभाग्ययुक्ता च ताम्बूलैर्जायते प्रिये ॥ ५६ ॥ पत्रैस्तु केशवः प्रीतः पूगैरीशः सहो मया ॥ चूर्णं केनरमा प्रीता खादरेण च मन्मथः ॥ ५७ ॥ चतुर्भिर्विश्वरूपोऽसौ यः पुष्पातिजगन्नयम् ॥ परितोऽप्यसपत्निकान् हस्ते देयाश्च मोदकाः ॥ ५८ ॥ आसीमान्तमनुव्रज्य भुञ्जीत सहबन्धुभिः ॥ अमंक्रान्तिव्रतं नारी याकरोतीह सुप्रिये ॥ ५९ ॥ दारिद्र्यं पुत्रशोकञ्च वैधव्यं नानुयात्कचित् ॥ नरो वायदिवानारी यः

उत्तम ऐश्वर्यवान् होता है ॥ ५५ ॥ व हे प्रिये ! तांबूलों से स्त्री सुभगा व उत्तम आचारवाली तथा सदैव अपने जनों में प्रिय और पुत्र व सौभाग्य से संयुत होती है ॥ ५६ ॥ पत्नों से विष्णुजी प्रसन्न होते हैं और सुपारी से पार्वती समेत महादेवजी प्रसन्न होते हैं व चून से लक्ष्मीजी प्रसन्न होती है और खैर से कामदेव प्रसन्न होते हैं ॥ ५७ ॥ और चारों से ये विश्वरूप विष्णुजी प्रसन्न होते हैं जो कि त्रिलोक को पालन करते हैं स्त्री समेत ब्राह्मणों को प्रसन्नकर हाथ में लड्डुओं को देना चाहिये ॥ ५८ ॥ और हृदके अन्ततक उनके पीछे जाकर भाइयों समेत भोजन करे हे सुप्रिये ! इस संसार में जो स्त्री संक्रान्तिरहित (मलमास) व्रतको करती है ॥ ५९ ॥ यह

कभी दरिद्रता, पुत्रशोक व वैधव्यता को नहीं प्राप्त होती है व जो पुरुष या स्त्री मलमास में व्रत करती है वह सब मनोरथों को प्राप्त होती है ॥ ६० ॥ इस संसार में मलमास को प्राप्त होकर जिन मनुष्यों ने मुक्त नारायण को परम भक्ति से नहीं पूजा है उनके सुख व पुत्र संपत्ति और मित्र तथा स्त्री अपने गुणों से संयुत कैसे होवेंगी ॥ ६१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदेवीदयालुमिश्रचिन्तायाभापाटीकायपुरुषोत्तममाहात्म्यं नामैकसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७३ ॥ ॐ ॥ ६० ॥ ॐ ॥

दो० । पुरुषोत्तम सर की अहै महिमा अमित अपार । बहतरिखें अध्यायमें सोई चरित सुखार । सनत्कुमारजी बोले कि मलमास प्राप्त होनेपर जो मनुष्य महाकाल

कुर्याच्चमलिम्लुचे ॥ ६० ॥ मलिम्लुचंप्राप्यनपूजितोयैनारायणोऽहंपरयेहभक्त्या ॥ कथम्भवेद्युःसुखपुत्रसम्पत्सुहृत्सु
भार्याःस्वगुणैरुपेताः ॥ ६१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेपुरुषोत्तममाहात्म्यं नामैकसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७३ ॥
सनत्कुमारउवाच ॥ अधिमासेसमायाते यश्चान्यत्रस्थितिंनरः ॥ करोतिसनरोमूर्खो महाकालवनादृते ॥ १ ॥
अधिमासेनरोव्यास तीर्थपुरुषोत्तमाभिधे ॥ स्नात्वादद्याच्चदानानि तस्यलोकाःसनातनाः ॥ २ ॥ पुरुषोत्तमंसमभ्यर्च्य
रमालालितपादकम् ॥ तथैवचउमांदेवी शङ्करेणचपूजयेत् ॥ ३ ॥ वाञ्छितार्थशतान्प्राप्य विष्णुलोकेमर्हायते ॥
भाद्रपदेसितेपक्ष एकादश्यांसमाहितः ॥ ४ ॥ पुरुषोत्तममरःस्नाति तस्यपुण्यफलंशृणु ॥ पुत्रदाराधनंसम्यगायुरारो
ग्यसम्पदः ॥ ५ ॥ नतेषान्दुर्लभंकिञ्चित् त्रिषुलोकेषुविद्यते ॥ तस्यपूर्वतटेभागे जलेऽश्वरमहेऽश्वरौ ॥ ६ ॥ तिष्ठतस्त

वनके मित्राय अन्यत्र स्थिति करता है वह मूर्ख है ॥ १ ॥ हे व्यामजी ! मलमास में जो मनुष्य पुरुषोत्तम नामक तीर्थ में नहाकर दानों को देता है उसके सनातन लोक होते हैं ॥ २ ॥ लक्ष्मीजी से लालित चरणवाले पुरुषोत्तमजी को भलीभांति पूजकर वैसेही शिवजी समेत पार्वती देवी को पूजें ॥ ३ ॥ तो सैकड़ों चाहेहुये मनोरथों को प्राप्त होकर वह विष्णुलोक में पूजाजाता है भाद्रपदके शुक्लपक्ष में एकादशीतिथि में सावधान होताहुआ जो पुरुष ॥ ४ ॥ पुरुषोत्तम तडाग को नहाता है उसके पुण्य के फलको सुनिये कि पुत्र, स्त्री, धन व भलीभांति आयुर्बल, आरोग्य व संपदा होती हैं ॥ ५ ॥ और उनको तीनों लोकों में कुछ दुर्लभ नहीं होता है उसके पूर्व

नदियों में श्रेष्ठ कौशिकी नदी है ॥ ९।१० ॥ उममें नहाकर मनुष्य इत्या कदापि राहित होता है और तपस्वियों को मनुष्यत्व प्राप्त करने में श्रेष्ठ ॥ ९।११ ॥ मन्दापान्नमामानि न्ये सर्वलो कसुखाय वै ॥

॥ * ॥
 त्वानरजातहत्यादाषिविवाजतः ॥ रामश्वरसमाणाभव हूत ॥ ७१ ॥
 ॥ * ॥
 द्विममृतिवमोऽध्यायः ॥ ७२ ॥
 ॥ * ॥

नमिषारण्यब्राह्मणाः ॥ कथयान्तिकथानुहं ॥ ७२ ॥

इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदेवीदयालुमिश्रात्रिचतायाभाषाटीकायापुरुषोत्तमश्वरमादिस्वरगणाद्यां भाष्यम् ॥ १० ॥

श्रीरामकृष्णजी की आज्ञा का पालन करना ही हमारा धर्म है। जो भक्त रामकृष्णजी के आज्ञा-पथ पर चलेंगे वे ही मुक्ति प्राप्त करेंगे। रामकृष्णजी ने कहा कि गोमतीकुण्ड दो० । श्रद्धा गोमतीकुण्ड की महिमा यथा अनन्त । तिहतरवे अध्याय में सोई कथा अनन्त ॥ व्यासजी बोले कि पुरातन समय मनातन ब्रह्म गोमतीकुण्ड कहा गया है वह कम और किसममय हुआ है उसको हमसे विस्तार से कहिये ॥ १ ॥ सनत्कुमारजी बोले कि हे महाप्राज्ञ ! पापहारिणी उत्तम कथाको सुनिये जो कि गोमतीकुण्ड गया है वहाँ पुण्यदायिनी तथा पहले शिवजी से कही गई है ॥ २ ॥ नैमिषारण्यमें बैठहुये शौनकादिक ऋषि सब तीर्थोंसे उपजी हुई व पुण्यदायिनी उत्तम कथाको मेरे उपजी हुई व पुण्यदायिनी तथा पहले शिवजी से कही गई है ॥ २ ॥

कहते थे ॥ ३ ॥ उस पुण्यदायक समय में नारदजी ने पवित्र व पापहारक, उत्तम काशीजी के माहात्म्य को कहा ॥ ४ ॥ कि पुण्य व पापोंकी ऊपर भूमि काशीपुरी धन्य है जहाँ कि चाण्डाल व पण्डित निश्चयकर उत्तम मोक्षको पाते हैं ॥ ५ ॥ असी व वरणाके बीचमें पांच कोसका क्षेत्र बड़ा फलदायक है जहाँ कि देवता मरने की इच्छा करते हैं फिर अन्य मनुष्यों को क्या कहना है ॥ ६ ॥ ऐसा सुनकर उस समय हे व्यासजी ! सब देवताओं व ऋषियों के सुनतेहुये परंतप ब्रह्माजीने कहा ॥ ७ ॥ कि गोमती के समान नदी नहीं है और कृष्ण के समान देवता नहीं है और सब पाताल व पृथ्वी के बीचमें द्वारका के समान पुरी नहीं है ॥ ८ ॥ ऐसा निश्चय

काशीमाहात्म्यमुत्तमम् ॥ कथितवैनारदेन पवित्रं पापहारकम् ॥ ४ ॥ ऊपरः पुण्यपापानां धन्यावाराणसीपुरी ॥ ध्रुवं लभन्ते मोक्षश्च शुभं चाण्डालपण्डिताः ॥ ५ ॥ असीवरणयोर्मध्ये पञ्चक्रोशं महत्फलम् ॥ अमरामरणमिच्छन्ति काकथाइतरेजनाः ॥ ६ ॥ इति श्रुत्वा तदा व्यास स्वयम्भूः प्रत्यभापत ॥ शृण्वतां सर्वदेवानां ऋषीणाञ्च परन्तपः ॥ ७ ॥ नदीनगोमतीतुल्या कृष्णतुल्यो न देवता ॥ सर्वपातालभूमध्ये द्वारकानसमापुरी ॥ ८ ॥ इति ते निश्चयं ज्ञात्वा ऋषयः शौनकादयः ॥ यत्र तत्र स्थिताः सर्वे प्रातः सन्ध्यामुपासनम् ॥ ९ ॥ तत्रैव गोमतीतीरे चक्रुस्ते वै धृतव्रताः ॥ सान्दीपनोपि तत्रैव प्रातः सन्ध्यां समाचरत् ॥ १० ॥ एवं बहुतिथे काले चरतस्तस्यैव व्रतम् ॥ सान्दीपनस्य प्राग्व्यास अवन्तीपुरवासि नः ॥ ११ ॥ तस्यैव कामपूर्णार्थं वीरौरामजनार्दनौ ॥ आयातौ सुकुमाराङ्गौ सततं ब्रह्मचारिणौ ॥ १२ ॥ निवासं च क्रतुस्तस्य गुरोर्गोहे परंतप ॥ तस्य पाठस्य तौ सम्यग्विद्यां जगदुत्तराम् ॥ १३ ॥ उपस्युषसितत्रैव दृश्यते न यदा गुरुः ॥

आनकर व्रत को धारण किने जहाँ तहाँ बैठेहुये उन सब शौनकादिक ऋषियों ने प्रातःकाल सन्ध्यापासन किया और सान्दीपनने भी वहीं प्रातःकाल सन्ध्या किया ॥ १० ॥ हे व्यासजी ! इस प्रकार बहुत समयतक पहले अवन्तीपुरवासी उन सान्दीपनजी के व्रत करनेपर ॥ ११ ॥ उन्होंनेकी कामनाके पूर्ण होनेके लिये सुकुमार अङ्गवाजने व सदैव ब्रह्मचारी बलभद्र व श्रीकृष्णजी आये ॥ १२ ॥ व हे परंतप ! उन्होंने उन सान्दीपन गुरु के घर में निवास किया व उन अध्यापक के सकाश से बलीभांति उत्तम विद्या को ग्रहण किया ॥ १३ ॥ और जब नित्य प्रातःकाल के समय में वहीं गुरुजी न देखपड़ते थे तब यह पूछते थे कि यह विद्या के उपदेश

का समय है हमारे श्रेष्ठ गुरुजी कहां गये ॥ १४ ॥ उनके इस प्रकार पूछने पर गुरुकी स्त्री बोली कि हे वत्स ! वे सदैव प्रातःकाल सन्ध्योपासन करते हैं ॥ १५ ॥ और वहीं पर तुम्हारे गुरु नित्य स्नान के लिये जाते हैं द्वाराका में पवित्रकारिणी श्रेष्ठ गोमती नदी है ॥ १६ ॥ ऐसा सुनकर उस समय बलभद्र समेत श्रीकृष्णजी ने विचार किया कि हमको यहां क्या अपना उत्तम हित करना चाहिये ॥ १७ ॥ मैं यहीं पर स्थित होकर गुरु का आगमन चाहता हूं इसी समय में सांकीयनिजी घर को आये ॥ १८ ॥ तदनन्तर उठकर गुरु का प्रणाम करते पर वे वीर नम्रता से मुँक कर गुरु से वचन बोले ॥ १९ ॥ कि हे महाशक्तिगिन् ! हमारे निवास का

विद्योपदेशकालौघं कगतोनोगुरुर्वरः ॥ १४ ॥ इतिष्टुष्टेतयोरेवं गुरुपत्नी उवाचह ॥ सदैवकुरुतेवत्स प्रातःसन्ध्यामुपास
नम् ॥ १५ ॥ नित्यंगच्छतितत्रैव गुरुस्तेस्नानकारणात् ॥ गोमतीवैसरिच्छेष्टा द्वाकायांचपावनी ॥ १६ ॥ इतिश्रुत्वा
तदाकृष्णो रामेणमहसंयुतः ॥ किं कर्त्तव्यमिहास्माभिरात्मनोहितमुत्तमम् ॥ १७ ॥ गुरोरागमनंकाङ्क्षे अत्रैवस्थि
तिमाश्रितः ॥ एतस्मिन्नेवकाले तु सान्दीपनिरगाद्गृहम् ॥ १८ ॥ ततउत्थायतोषीरो गुरोरावन्दनेकृते ॥ प्रश्रया
वनतौभूत्वा ह्यब्रूतांवचनंगुरोः ॥ १९ ॥ श्रूयताम्भोमहायोगिन्नस्माकंवासकारणम् ॥ विद्यार्थमिहसंप्राप्तो युष्माकञ्च
गृहोत्तमे ॥ २० ॥ प्रातःकालेचतेब्रह्मन् समयोनास्तिवैप्रभो ॥ एतच्छ्रुत्वावचस्तस्य कृष्णस्यचचलस्यच ॥ २१ ॥
उवाचभगवन्व्यास आत्मनोव्रतकारणम् ॥ अस्माकंपरमंवत्स व्रतंतच्छाश्वतंगतम् ॥ २२ ॥ कर्त्तव्यंगोमतीस्नानं
प्रातःकालेसदाबुधैः ॥ तत्रैवोपासनंषुण्यं सन्ध्यायामितिनिश्चितम् ॥ २३ ॥ इतिविश्वस्यभगवन् यथायोग्यंतथाकुरु ॥

कारण सुनिये कि तुम्हारे उत्तम घरमें मैं विद्यार्थके लिये प्राप्त हुआ हूं ॥ २० ॥ व हे ब्रह्मन्, प्रभो ! प्रातःकालमें तुमको समय नहीं होता है उन श्रीकृष्ण व बलभद्रजी के इस वचन को सुनकर ॥ २१ ॥ हे भगवन्, व्यासजी ! उन सांदीपनिने अपने व्रतका कारण कहा कि हे वत्स ! हमारा वह उत्तम व्रत शाश्वत (सदैवचाला) माना गया है ॥ २२ ॥ सदैव प्रातःकाल में पण्डितों को गोमती स्नान करना चाहिये और वहींपर सन्ध्यासमय में पुण्यदायिनी उपासना करणा चाहिये यह निश्चय

क्रियागया है ॥ २३ ॥ हे भगवन् ! ऐमा विदवासकर जैसा योग्यहो वैसा कीजिये ऐसा सुनकर कारण से मनुजरूपधाले भगवान् विष्णुजी ने ॥ २४ ॥ हे द्विजोत्तम ! कुशस्थली में गोमतीजी का आराधन किया जहाँ कि विश्वेश्वर देव और अतिउत्तम यज्ञकुण्ड है ॥ २५ ॥ और कुण्डेश्वर के उत्तरभाग में वे गोमतीजी भलीभाति प्राप्तहुई और पातालतल को भेदनकर सरस्वतीजी से संयोग को प्राप्तहुई ॥ २६ ॥ प्रातःकाल उठकर उन सबोंने व्यासजी के आश्रम में प्राप्त नदियोंमें श्रेष्ठ सुन्दर नेत्रान्तों वाली गोमतीजी को देखा ॥ २७ ॥ हे ब्रह्मन् ! नदियों में श्रेष्ठ गोमतीजी यहींपर प्राप्तहुई हैं व यहींपर मनुष्य स्नान, दानादिक सब करते हैं ॥ २८ ॥ और यज्ञकुण्ड

तच्छ्रुत्वा भगवान् विष्णुः कारणमानुषरूपवान् ॥ २४ ॥ गोमत्याराधनंचक्रे कुशस्थल्यां द्विजोत्तम ॥ यत्र विश्वेश्वरो देवो यज्ञकुण्डमनुत्तमम् ॥ २५ ॥ कुण्डेश्वरस्योत्तरेभागे गोमतीसासमागता ॥ पातालतलमभेद्य सरस्वत्या तु सङ्गता ॥ २६ ॥ प्रातरुत्थायेत सर्वे गोमतीं सरितां वराम् ॥ ददर्श रुचिरा पाङ्गी व्यासस्य श्रमभागीनीम् ॥ २७ ॥ अत्रैव चागता ब्रह्मन् गोमती सरितां वरा ॥ स्नानदानादिकं सर्वमत्रैव समुपासते ॥ २८ ॥ गोमती च समालीना यज्ञकुण्डे सरस्वती ॥ तदा प्रभृतिलोकैस्मिन् गोमती कुण्डमुच्यते ॥ २९ ॥ सर्वेषामपि लोकानां मार्गैर्नैव च विद्यते ॥ तस्माद्वा समहापुण्यम् भुवि तीर्थमनुत्तमम् ॥ ३० ॥ गोमती कुण्डमाख्यातं सर्वपापप्रणाशनम् ॥ भाद्रपदेऽसिताष्टम्यां कृष्णजन्मसमुद्भवे ॥ ३१ ॥ तत्र स्नात्वा नरो नित्यं रात्रौ जागरणं चरेत् ॥ उपोष्य विधिवद् व्यासमर्चयेत् ॥ ३२ ॥ वैष्णवांश्च नरांश्चैव कृष्णजन्मोत्सुकान् वरान् ॥ नानासुगन्धपुष्पाढ्यैर्वस्त्रालङ्कारसंयुतैः ॥ ३३ ॥ गोब्राह्मणानां पूजाञ्च कुर्वते

में गोमती व सरस्वतीजी मिली हैं तब से लगाकर इस संसार में गोमती कुण्ड कहा जाता है ॥ २६ ॥ और यहींपर सब लोकों का मार्ग विद्यमान है इसलिये हे व्यासजी ! पृथ्वीमें अतिउत्तम तीर्थ महापुण्यदायक है ॥ ३० ॥ सब पापों का विनाशक गोमती कुण्ड कहा गया है भाद्रपदमें कृष्णपक्ष की अष्टमी में कृष्णजी का जन्म होनेपर ॥ ३१ ॥ हे व्यासजी ! उसमें नहाकर सबैव मनुष्य रात्रिमें जागरण करे और विधिपूर्वक उपासकर शिष्य समेत व्यासको पूजन करे ॥ ३२ ॥ और श्रीकृष्ण जन्ममें उत्कण्ठित उत्तम वैष्णव नरों को अनेक भांतिके सुगन्धवाले पुष्पोंसे संयुत व वस्त्रों तथा आभूषणों से युक्त वस्तुओं से पूजन करे ॥ ३३ ॥ और सावधान होते

हुये जो पुरुष गौ व आक्यों का पूजन करते हैं उनको सब लोकोंमें कुछ दुर्लभ नहीं होता है ॥ ३४ ॥ और गोमती के स्नान से उपजाहुआ पुण्य व वासुदेवजी का समागम तथा मनोरथकी प्राप्ति होता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ३५ ॥ और चैत्रके शुक्लपक्षमें जब एकादशी होवे उस दिन गोमतीमें विशेषकर स्नानकर मनुष्य ॥ ३६ ॥ रात्रिमें जागरण कर विष्णुजी का पूजन करे तदनन्तर आमलकी यात्राकरै तो प्रदक्षिणा के पग २ पै उनको गोमहसका फल मिलता है इसमें सन्देह नहीं है जो मनुष्य इस पवित्र व पापहारिणी कथाको सुनता है ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ वह सब पापोंसे छूटकर विष्णुलोकमें पूजाजाता है ॥ ३९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे

येसमाहिताः ॥ नतेषांदुर्लभांकिञ्चित् सर्वलोकेषुविद्यते ॥ ३४ ॥ गोमतीस्नानजम्पुण्यं वासुदेवसमागमम् ॥ मनोरथसंप्राप्तिर्जायतेनात्रसंशयः ॥ ३५ ॥ तथाचैत्रमितेपक्षेयदाचैकादशीभवेत् ॥ तद्दिनेचनरःस्नात्वा गोमत्यांचविशेषतः ॥ ३६ ॥ रात्रौजागरणंकृत्वा विष्णुपूजांतथैवच ॥ आमलकीततोयात्राप्रदक्षिणपदेपदे ॥ ३७ ॥ गोमहसफलंतेषांप्राप्यतेनात्रसंशयः ॥ यःशृणोतिकथाम्पुण्यां पवित्रांपापहारिणीम् ॥ ३८ ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोकैर्महीयते ॥ ३९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेगोमतीकुण्डमाहात्म्यनामत्रिसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७३ ॥ * ॥

सनत्कुमारउवाच ॥ कुण्डेश्वरइतिख्यातं यत्तुतीर्थमनुत्तमम् ॥ तत्रतीर्थेनरःस्नात्वा दृष्ट्वादिवंमहेश्वरम् ॥ १ ॥ मुच्यतेसर्वपापेभ्यः शुचिःप्रयतमानसः ॥ विमानशतसंयुक्तः शिवलोकैर्महीयते ॥ २ ॥ भुविधन्यतरंतीर्थं सर्वपापहरम्परम् ॥ स्वर्गङ्गासङ्गमोयत्र गङ्गेश्वरसर्मापतः ॥ ३ ॥ महापापहरम्पुण्यं महापुण्यफलप्रदम् ॥ आकाशात्पतिता य

देवीदयालुमिश्रविरचितयांभाषाटीकायांगोमतीकुण्डमाहात्म्यनामत्रिसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७३ ॥

दो० । वामनकुण्ड कथा तथा सहस्रविष्णुक नाम । चौहत्तरि अध्यायमें वर्णित चरित ललाम ॥ सनत्कुमारजी बोले कि कुण्डेश्वर ऐसा प्रसिद्ध जो अतिउत्तम तीर्थ है उस तीर्थ में नहाकर व महेश्वरदेवजी को देखकर मनुष्य ॥ १ ॥ सब पापों से छूटजाता है व पवित्र तथा शुचिमानवाला वह पुरुष सौ विमानों से संयुत होकर शिवलोकमें पूजाजाता है ॥ २ ॥ और पृथ्वीमें वहां सब पापोंको हरनेवाला बड़ा धन्य व उत्तमतीर्थ है जहां कि गङ्गेश्वरजी के समीप आकाशगङ्गाजीका संगम है ॥ ३ ॥ वह

तीर्थ महापापहारक व पवित्र तथा महापुण्य के फलको देनेवाला है जहां कि त्रिलोक को पवित्र करनेवाली गङ्गाजी आकाश में गिरी हैं ॥ ४ ॥ उनको शम्भु महादेवजीने उसीक्षण मस्तकको धारण किया है उस तीर्थमें नहाकर मनुष्य गंगेश्वरजीको देखे ॥ ५ ॥ तो गंगाजीके स्नानके फलको पाकर वह विष्णुलोकमें पूजा जाता है व विदेवेश्वरजीको प्राप्त होकर जो मनुष्य उस तीर्थमें निवास करे वह सब पापको से शुद्धचित्त होकर विष्णुजी के लोकको प्राप्त होता है और महर्षियों से पृथ्वीमें महापवित्र अन्यतीर्थ कहा गया है ॥ ६, ७ ॥ वामनकुण्ड ऐसा प्रसिद्ध है और जिसके दर्शनही से ब्रह्महत्या नाश हो जाती है ॥ ८ ॥ व भैरवों

ब्रगङ्गात्रैलोक्यपावनी ॥ ४ ॥ विधृताशिरसासद्यो महादेवेन शम्भुना ॥ तस्मिंस्तोर्थे नरः स्नात्वा गङ्गेशमवलोकयेत् ॥ ५ ॥ गङ्गास्नानफलं प्राप्य विष्णुलोकं महीयते ॥ विदेवेश्वरमनुप्राप्य तस्मिंस्तोर्थे नरो वसेत् ॥ ६ ॥ सर्वपापविनाशकं विष्णुलोकं मवाप्नुयात् ॥ तीर्थमन्यन्महापुण्यं सुविख्यातं महर्षिभिः ॥ ७ ॥ वामनकुण्डेति विख्यातं त्रिषु वाच ॥ कदाकाले समुत्पन्नं वामनाख्यम् पुरानघ ॥ ८ ॥ तत्सर्वं श्रोतुमिच्छामि त्वत्तो ब्रह्मविदां वर ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ श्रूयताम् भो द्विज श्रेष्ठ कथाम् पापहराम् पराम् ॥ ९ ॥ यस्याः श्रवणमात्रेण सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ दैत्येन्द्रश्च पुराप्रो १२ ॥ धैर्येण च धृतालोकाः क्षमया विधृता मही ॥ गाम्भीर्येणार्णवा दिव्याः शौर्येण शत्रुसङ्घकाः ॥ १३ ॥ प्रश्रयेण भ्या

मनोरथों को पाकर परचात वह विष्णुलोक को जाता है व्यासजी बोले कि हे अनघ ! पुरातन समय वामननामक कुण्ड किस समय उत्पन्न हुआ है ॥ ६ ॥ हे ब्रह्मविदा वर ! मैं उस सबको तुमसे सुना चाहता हूं मनत्कुमारजी बोले कि हे द्विजोत्तम ! पापहारिणी उत्तम कथाको सुनिये ॥ १० ॥ कि जिसके सुननेही से मनुष्य सब पापों से जीतीमई ॥ ११, १२ ॥ व धैर्य से लोक धारण कियेगये हैं व क्षमामे पृथ्वी धारण कीगई है और गम्भीरतासे दिव्य समुद्र व शूरतासे शत्रुओंके मक्ष जीतेगये ॥ १३ ॥

और उन महात्माने नम्रता से अतिथियों को जीता और दक्षिणाओं से बड़ा जीतीगई व हठसे अग्नि जीतीगई ॥ १४ ॥ और पवित्रता व आचार से वे शुद्धचित्तवाले तथा तपस्यासे बट अमङ्गलवाले थे और इन प्रह्लादजी से भोजन व आच्छादनादिकों से व दान, मानसे ब्राह्मण जीतेगये ॥ १५ ॥ व संस्कार से जन्म जीतागया और दमसे सनातन आत्मा जीतागया तथा प्राणायामसे पवन जीतागया व योग और ध्यान से विष्णुजी जीतेगये ॥ १६ ॥ और इन्द्रके तुल्य वे महायोगी, सत्य व धर्ममें तत्पर हुये प्रह्लादके समान ज्ञानी न हुआहै और न होगा ॥ १७ ॥ कि जिनके उत्तम आचारवाले पौत्र बलि ऐसे कहेजाते हैं मलीमांनि पालन करते

गताश्च जितास्तेनमहात्मना ॥ दक्षिणानिर्जितोयज्ञो हविषाहव्यवाहनः ॥ १४ ॥ शौचाचारविशुद्धात्मा तपसाचहता शुभः ॥ दानमानजिताविप्रा भोजनाच्छादनादिभिः ॥ १५ ॥ संस्कारेणजितंजन्म दमेनात्मासनातनः ॥ प्राणायामजितोवायुर्योगध्यानजितोहरिः ॥ १६ ॥ इन्द्रतुल्योमहायोगी सत्यधर्मपरायणः ॥ प्रह्लादेनसमोधीरो नभूतो नम विद्यति ॥ १७ ॥ यस्यपौत्रःसदाचारी बलिरित्यभिधीयते ॥ तस्यपालयतःसम्यक् प्रजानित्यंविबद्धिताः ॥ १८ ॥ ना ल्पायुर्नजडोमूर्खो नरोगीनचमत्सरी ॥ अपुत्रो धनहीनश्च कोपिनास्तिमहीतले ॥ १९ ॥ महाराजोमहीपालो यज्वा विषुलदक्षिणः ॥ सप्तद्वीपवतीतेन पालितावसुधासदा ॥ २० ॥ एकदाचसमासीने सभामध्येवरानने ॥ जयशब्देव तस्माने गन्धर्वललितंजगुः ॥ २१ ॥ वाद्यमानेषुवाद्येषु नचतुश्चाप्सरोगणाः ॥ कथ्यमानेकयांदिव्याम्पौराणस्मृतिसंमिताम् ॥ २२ ॥ सूतावैतालिकाःसिद्धाश्चाणश्रवहृश्रुताः ॥ ऋषयश्चसमायातास्तत्रैवद्विजसत्तम ॥ २३ ॥ सुन्दोप

हुये उनके प्रजा नित्यही बढ़तेभये ॥ १८ ॥ और पृथ्वी में कोईभी मनुष्य न थोड़ीआयुवाला, अड़, मूर्ख, रोगी और न ईर्ष्यावान् था और कोई पुत्ररहित व धनसे हीन न था ॥ १९ ॥ और यज्ञकर्त्ता व बहुत दक्षिणावाले वे प्रह्लाद भूपति महाराजथे और उनसे सात द्वीपवाली पृथ्वी सदैव पालन कीगई ॥ २० ॥ एक समय उत्तममुख वाले वे बलि जब सभाके बीचमें बैठेथे तब जयशब्द वर्तमान होनेपर गन्धर्वलोग धियपूर्वक मानेलेगे ॥ २१ ॥ और बाजनों के धजनेपर अप्सराओंके गण नाचने लगे व पुराणों व स्मृतियों में कहीहुई दिव्यकथा के कहने पर ॥ २२ ॥ हे द्विजोत्तम ! सूत, ऋष्यकर, सिद्ध व चाण तथा बहुत शास्त्रवाले ऋषिस्वयेग बर्हीपर भली

भांति आये ॥ २३ ॥ और सुंद, उपसुंद, हुंडादिक व भयङ्कर महिषासुर और शुम्भ, निशुम्भ, धूम्राक्ष व कालकेय दानव ॥ २४ ॥ व कालनेमि, विक्रान्तसौहृद, मूषक, यम, निकुम्भ, कुम्भ, विपद व महाबलवान् अन्धक ॥ २५ ॥ और शङ्ख, जलंधर, रौद्र व अधिक बलवाला वातापी, सर्वजिह्व, हंता, कामचारी, हलायुध ॥ २६ ॥ ये व दानवों के वंशको बढ़ानेवाले अन्य बहुतसे दानव उन पापरहित बलि राजाकी उपासना करतेभये ॥ २७ ॥ व सिद्ध, नाग, यक्ष, किन्नर व किंपुरुष, आकाशचारी, भूमिचारी, बाल व भयङ्कर राक्षस ॥ २८ ॥ ये व अन्य बहुतसे लोग राजा बलि की उपासना करते थे हे द्विजोत्तम ! वहांपर महादिव्य सभा शोभित हुई ॥ २९ ॥

सुन्दहण्डाद्या महिषासुरकोल्बणः ॥ शुम्भनिशुम्भधूम्राक्षकालकेयाश्च दानवाः ॥ २४ ॥ कालनेमिश्च विक्रान्तसौहृदो मूषकोयमः ॥ निकुम्भकुम्भो विपदो ह्यन्धकश्च महाबलः ॥ २५ ॥ शङ्खोजलंधरौ रौद्रौ वातापी च बलाधिकः ॥ स वैजिह्वश्च हन्ता च कामचारी हलायुधः ॥ २६ ॥ एते चान्ये च बहवो दनुवंशविवर्द्धनाः ॥ उपासाञ्च क्रिरेतवै बलिराजमकलमषम् ॥ २७ ॥ सिद्धानागाश्च यक्षाश्च किंपुरुषास्तु किन्नराः ॥ खेचराभूचराबाला राजसाश्चैव दारुणाः ॥ २८ ॥ एते चान्ये च बहवो राजानं पृथुपांसे ॥ सभातत्र महादिव्या शुशुभे च द्विजोत्तम ॥ २९ ॥ ग्रहैरुज्ज्वलितैः कीर्णैः शरदीवनमस्त्यक्षम् ॥ तस्यां सभायामासीनो राजबलिराट् तथा ॥ ३० ॥ महद्भिरिव संवीतो वासवो दिवि देवतैः ॥ एकदा च सभामध्ये नारदो देवदर्शनः ॥ ३१ ॥ आगतस्तेषु सर्वेषु दानवेषु सभाङ्गणे ॥ दृष्ट्वा तमागतं सर्वे उत्तस्थुर्दितिनन्दनाः ॥ ३२ ॥ ववन्दुः सर्वशः पूर्वं बलिनः किन्नरोत्तमाः ॥ स तत्कृत्य चासनं दत्त्वा पप्रच्छ कुशलं नृपः ॥ ३३ ॥ कृतातिथ्यः समासीनो नारदः

जैसे कि शरदृऋतुमें उज्ज्वल ग्रहों से व्याप्त आकाशस्थल होवै, वैसेही उस सभामें बैठाहुआ राजा बलि शोभित भया ॥ ३० ॥ जैसे कि स्वर्गमें पवन देवताओं से घिरेहुये इन्द्रहोवै एक समय सभाके बीचमें देवदर्शन नारदजी ॥ ३१ ॥ सभा के आंगन में उन सब दानवों के मध्यमें आये व आयेहुये उन नारदजी को देख कर सब दैत्य उठे ॥ ३२ ॥ और पहलेही सब बलवान् दैत्य व किन्नरोत्तमोंने प्रणाम किया और सत्कारकर आसन देकर राजाने कुशल पूछा ॥ ३३ ॥ और कीहुई पटु-

नईवाले बैठेहुये नारदजीने सत्तम बलिजी से कहा नारदजी बोले कि हे दितिजोत्तम ! सुमित्रे कि मैं इन्द्रके मन्दिर में गया था ॥ ३४ ॥ वहां सुन्दरी देवसमा थी और उसम अभिप्रायसे संयुत गन्धर्वा समेत इन्द्रादिक देवता वहां ॥ ३५ ॥ बैठे हुये आपसमें पवित्र कथाको कहतेथे तदनन्तर मुझसे कहीहुई उसम कथाको उन्हों ने नहीं सहा ॥ ३६ ॥ कि पुरातन समय हिरण्यकशिपु प्रजापति दैत्य नेता व त्रिलोकको जीतनेवाला हुआ है कि जिसने इस पृथ्वीको जीता है ॥ ३७ ॥ और सब लोकों को बराबरके उसने पृथ्वीको भोगा है बड़ेतेज से संयुत महाबलवान् व पराक्रमी ॥ ३८ ॥ और सुन्दर व सब कहीं जानेवाला और कामी वह हिरण्यकशिपु नृसिंह

प्राहसत्तमम् ॥ नारदउवाच ॥ श्रूयतां दितिजश्रेष्ठगतो हं षष्ठमन्दिरं ॥ ३४ ॥ तत्र देवसमारम्या दिव्याभिप्रायसंयुताः ॥ तत्र देवाः सगन्धर्वाः पुरन्दरपुरोगमाः ॥ ३५ ॥ समासीनाः कथाम्पुण्यां कथयन्तः परस्परम् ॥ ततस्ते तु कथां शुभ्रां मया ख्यातान्नसेहिरे ॥ ३६ ॥ हिरण्यकशिपुर्दैत्यः पुरासीत्तु प्रजापतिः ॥ त्रैलोक्यविजयी नेता येनेयं वसुधाजिता ॥ ३७ ॥ सर्वलोकान् वशीकृत्य बुभुजे च वसुन्धराम् ॥ अतीव तेजः सम्पन्नो महाबलपराक्रमी ॥ ३८ ॥ वशीच सर्वगः कामी नृसिंहेन निपातितः ॥ बलिः कियद्बलीलोकं नारदत्वं प्रशंससि ॥ ३९ ॥ इति मान्धर्षयित्वा च विडौ जालोकं संग्रही ॥ बहुधा चाकरोद्वादान् कटुकान् दानवोत्तम ॥ ४० ॥ तस्मात्तु दानवश्चेष्ट पितृपर्यागतां महीम् ॥ विजित्वा सर्वभौमत्वं लभस्व वसुधाधिप ॥ ४१ ॥ कियद्बल्युतालुब्धा देवाश्च दनुजोत्तम ॥ पलायनपरादान्ताः सदा समरभीरवः ॥ ४२ ॥ मम वाक्यपरोभूत्वा त्रैलोक्याधिपतिर्भव ॥ नारदस्य वचः श्रुत्वा बलिर्वैरोचनस्तदा ॥ ४३ ॥ चकार कोपमतुलं त्रैलोक्यविजये

जीसे मारा गया है हे नारदजी ! बलि कितना बलवान् है कि जिसकी तुम प्रशंसा करते हो ॥ ३९ ॥ हे दानवोत्तम ! इस प्रकार मेरी धर्षणा कर लोकोंका संग्रह करने वाले इन्द्रजी ने बहुत से कटुवादानों को किया ॥ ४० ॥ इसलिये हे दानवश्चेष्ट, भूषते ! पितरोंकी परंपरासे आईहुई पृथ्वीको जीत कर चक्रवर्तित्वको प्राप्त होवो ॥ ४१ ॥ हे दानवोत्तम ! लोभी दानव कितने बलवान् हैं जोकि भागने में तत्पर व इन्द्रियोंको दमन किये तथा सदैव समर से डरते हैं ॥ ४२ ॥ मेरे वचन में तत्पर होकर त्रिलोक के स्वामी होवो उस समय नारदजी के वचन को सुनकर विरोचन के पुत्र बलिने ॥ ४३ ॥ हे द्विज ! त्रिलोक के विजय के निमित्त बड़ा कोप किया सब

दैत्योसे सम्मतिकर समस्त दैत्योके स्वामी बलिने ॥ ४४ ॥ बलवान् इन्द्रके साथ बड़ा तीव्र समर किया और इन्द्रसमेत सब देवताओंको जीतकर वशकिया ॥ ४५ ॥
व विरोचन का पुत्र बलि सबलोकोका स्वामी हुआ और देवता छूटे राउयवाले व हारेहुये तथा हरे हुये अधिकारवाले हुये ॥ ४६ ॥ उस समय देवताओंके गण मनुष्यों की नाई पृथ्वी में विचरनेलगे और कुछ समयतक प्राप्तहोकर ब्रह्माजी की शरणमें गये ॥ ४७ ॥ व बोले कि हे परंतप, ब्रह्मन् ! हमलोग बलिसे सुरलोक से अलग किये गये क्या करें व कहां जावैं और क्या यत्न करें ॥ ४८ ॥ ब्रह्माजी बोले कि हे सुरोत्तम ! तुमलोगों का जो उत्तम यत्न है उसको सुनिये कि हे सुरोत्तमो ! तुम

द्विज ॥ मन्त्रयित्वाऽसुरान्मर्वान् सर्वदैत्यजनेश्वरः ॥ ४४ ॥ संग्राममकरोत्तीव्रवासवेनबलीयमा ॥ जित्वाचसकलान्देवान् वशीचक्रेसवासवान् ॥ ४५ ॥ सर्वलोकेश्वरोजातो बलिवैरोचनोऽसुरः ॥ हताधिकारास्त्रिदशा भष्टराज्याःपराजिताः ॥ ४६ ॥ विचरन्ति यथामर्त्यास्तदादेवगणामुवि ॥ किञ्चित्कालं समासाद्य ब्रह्माणं शरणं ययुः ॥ ४७ ॥ ब्रह्मन् हिव खिना भ्रष्टा देवलोकान् परंतप ॥ किंकुर्मः कचगच्छामः किमुपायश्च कुर्महे ॥ ४८ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ श्रूयताम्भोः सुरश्रेष्ठा युष्माकं साधनं परम् ॥ पद्मावतीम्पुरीं ग्यांयूयं यातामरोत्तमाः ॥ ४९ ॥ तत्र तीर्थं वरं श्रेष्ठं नाम्नाचोत्तरमानसम् ॥ यत्राष्ट सिद्धिदाख्याता महासिद्धिप्रदानृणाम् ॥ ५० ॥ निधिश्च पद्मप्रभृतिस्तत्र तिष्ठति मत्तम ॥ तस्यैव दक्षिणे भागे विष्णुतीर्थं मनुत्तमम् ॥ ५१ ॥ तत्र स्नात्वा नरः पश्येत्सिद्धेशीयः सुसिद्धिदाम् ॥ ऋद्धिसिद्धिपरो भूत्वा विष्णुलोकं महीयते ॥ ५२ ॥ आश्विनस्य सिनेपक्षे दशम्यां दिवसे तथा ॥ अष्टसिद्धिशमीमूले गणेशमभिपूजयेत् ॥ ५३ ॥ विजयी सर्वकामेषु जाय

ल्लोग सुन्दरी पद्मावतीपुरी को जावो ॥ ४९ ॥ वहां उत्तरमानस नामक तीर्थों में श्रेष्ठ उत्तमतीर्थ है जहां कि मनुष्यों को महासिद्धियों को देनेवाली अष्टसिद्धिदा भगवती प्रसिद्ध है ॥ ५० ॥ व हे सत्तम ! वहां पद्मादिक निधि स्थित हैं और उसी के दक्षिणभाग में अति उत्तम विष्णुतीर्थ है ॥ ५१ ॥ उसमें नहाकर जो मनुष्य सुसिद्धिदायिनी सिद्धेशीजी को देखता है वह ऋद्धि सिद्धि से संयुत होकर विष्णुलोक में पूजा जाता है ॥ ५२ ॥ कुँवार के शुक्लपक्ष में दशमी के दिन जो मनुष्य अष्टसिद्धि व शशीवृक्ष की जड़ में गणेशजी को पूजता है ॥ ५३ ॥ वह सब कामों में विजयवान् होता है इसमें सन्देह नहीं है शमीवृक्षके मूलमें स्थित

ऋद्धि, सिद्धियों के वरको देनेवाली सनातनी भगवती जी को ॥ ५४ ॥ और समस्त कामनाओं के देनेवाले गणेशजी को जो मनुष्य नित्य पूजता है वह समस्त कामनाओं के वरको पाकर पुत्रवान् व धनवान् होता है ॥ ५५ ॥ इसलिये सब यज्ञसे महाकालवन को जात्रे जहाँ कि विष्णुसर तीर्थ है वहाँ शीब्रही जाइये ॥ ५६ ॥ हे सुरोत्तमो ! अतुल तेजवाले विष्णुजी की उपासना कीजिये वे सुरश्रेष्ठ विष्णुजी सब दुःखोंसे रक्षक होंगे ॥ ५७ ॥ यहाँ आकर व पवित्र होकर विष्णुजी को भक्तिमें परायण सिद्ध होने स्नान दानादिक कर्मोंसे उपासना किया है ॥ ५८ ॥ उन महात्मा ब्रह्माजी के इस प्रकार वचन को सुनकर उस समय उन सुरोत्तमों ने उन ब्रह्मादेव

तेनात्रमंशयः ॥ शमीमूलस्थितां नित्यां ऋद्धिसिद्धिवरप्रदाम् ॥ ५४ ॥ पूजयेद्देनरो नित्यं गणेशं सर्वकामदम् ॥ सर्व कामवरं लब्ध्वा पुत्रवान् धनवान् भवेत् ॥ ५५ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन महाकालवनं व्रजेत् ॥ यत्र विष्णुसरस्तीर्थं तत्र गच्छथ माचिरम् ॥ ५६ ॥ उपासनां सुरश्रेष्ठा विष्णोरतुल्यतेजसः ॥ सतुर्वै सर्वदुःखेभ्यस्त्राता भावी सुरोत्तमः ॥ ५७ ॥ अत्राण त्यशुचिर्भूत्वा स्नानदानादिकर्मभिः ॥ उपासाच्च क्रिरे सिद्धा विष्णुभक्तिपरायणाः ॥ ५८ ॥ इति श्रुत्वा वचस्तस्य ब्रह्मणः शंसितात्मनः ॥ ब्रह्माणंतं तदा देवमृदुः सर्वे सुरोत्तमाः ॥ ५९ ॥ देवा ऊचुः ॥ ब्रह्मन् केन प्रकारेण विष्णुभक्तिपरो भवेत् ॥ तत्सर्वं श्रोतुमिच्छामस्व ततो ब्रह्मविदां वर ॥ ६० ॥ ब्रह्मोवाच ॥ श्रूयताममो सुरश्रेष्ठा विष्णुभक्तिमनुत्तमाम् ॥ शुक्लाम्बरधर देवं शशि वर्णं चतुर्भुजम् ॥ ६१ ॥ प्रसन्नवदनं ध्यायेत् सर्वविघ्नोपशान्तये ॥ लाभस्तेषां जयस्तेषां कुतस्तेषां पराजयः ॥ ६२ ॥ येषां मिन्दीवरश्यामो हृदयस्थो जनार्दनः ॥ अर्भीप्सितार्थसिद्ध्यर्थं पूज्यते यः सुरैरपि ॥ ६३ ॥ सर्वविघ्नहर

जीसे कहा ॥ ५९ ॥ देवता बोले कि हे ब्रह्मन् ! किस विधिसे मनुष्य विष्णुजीकी भक्तिमें तत्पर होवै हे वेदविदों में उत्तम ! उस सबको मैं तुमसे सुना चाहता हूँ ॥ ६० ॥ ब्रह्मा जी बोले कि हे सुरोत्तमो ! अति उत्तम विष्णुजी की भक्तिको सुनिये कि श्वेतवसनको धारें व चन्द्रमा के समान वर्णवाले तथा चार मुजाओंवाले व प्रसन्नमुखवाले विष्णुजी को सब विघ्नोंके शान्त होनेके लिये ध्यान करें क्योंकि उनको लाभ होता है व उनकी जीत होती है और उनका पराजय कहीं से होता है ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ किं जिन के हृदयमें श्यामकमल की नाई श्याम विष्णुजी स्थित हैं चाहेहुये प्रयोजन की सिद्धिके लिये जो देवताओं से भी पूजेजाते हैं ॥ ६३ ॥ और जो सब विघ्नोंको

नाशनेवाले हैं उन गणेशजी के लिये प्रणाम है कल्प के आदिमें सृष्टिकी इच्छावाले विष्णुजी ने मेरी प्रेरणा किया ॥ ६४ ॥ और विष्णुजी के ध्यानमें लगाहुआ मैं प्रजाओं के रचने के लिये न समर्थ हुआ इसी अवसर में मार्कण्डेय महर्षिजी शीघ्रही आगये ॥ ६५ ॥ जोकि सब सिद्धोंके स्वामी, दान्त, दीर्घायु व इन्द्रियों को जीतेनेवाले थे वे प्रफुल्लित लोचनोंवाले होकर और अन्योन्य सत्कारकर ॥ ६६ ॥ और उत्तम कल्याण को पूँछतेहुये वे सुरोत्तम सुखपूर्वक बैठे तब मैंने पूँछा कि हे भगवन् ! मुझसे कीहुई प्रजा किस प्रकार होवैगी ॥ ६७ ॥ हे मुनिवन्दित, भगवन् ! वह सब मैं सुना चाहताहूँ श्रीमार्कण्डेयजी बोले कि सब दुःखोंको नाशनेवाली

स्तस्मै गण।धिपतयेनमः ॥ कल्पादौसृष्टिकामेन प्ररितोहञ्चशौरिणा ॥ ६४ ॥ नशक्तोहंप्रजाःकर्तुं विष्णुध्यानपराय
णः ॥ एतस्मिन्नन्तरेसद्यो मार्कण्डेयोमहाऋषिः ॥ ६५ ॥ सर्वसिद्धेश्वरोदान्तो दीर्घायुर्विजितेन्द्रियः ॥ प्रफुल्लनयनो
भूत्वा सत्कृत्यचेतरेतरम् ॥ ६६ ॥ पृच्छमानोपरम्भद्रं सुखासीनोसुरोत्तमौ ॥ भगवन्कनप्रकारेण प्रजामेविहिताभ
वेत् ॥ ६७ ॥ तत्सर्वंश्रोतुमिच्छामि भगवन्मुनिवन्दित ॥ श्रीमार्कण्डेयउवाच ॥ विष्णुभक्तिःपरानित्या सर्वातिदुःख
नाशिनी ॥ ६८ ॥ सर्वपापहराणुया सर्वप्रीतिप्रदायिनी ॥ एषाब्राह्मीमहाविद्या नदेयायस्यकस्यचित् ॥ ६९ ॥ कृत
व्रायह्यशिष्याय नास्तिकायानृतायच ॥ ईर्षकायचरून्नायकामुकायकदाचन ॥ ७० ॥ तद्गतं हन्ति तज्ज्ञानं यतो धर्मं
सनातनम् ॥ एतद्गुह्यतमंशस्त्रं सर्वपापप्रणाशनम् ॥ ७१ ॥ पवित्रञ्चपवित्राणां पावनानाञ्च पावनम् ॥ विष्णोर्नामसह
सञ्च विष्णुभक्तिरंशुभम् ॥ ७२ ॥ सर्वसिद्धिकरं नृणां भुक्तिमुक्तिप्रदं शुभम् ॥ ७३ ॥ अस्य श्रीविष्णुसहस्रनामस्तोत्रस्य
उत्तम विष्णुभक्तिः ॥ ६८ ॥ जोकि सद्य पापोंको हरनेवाली व पुण्यदायिनी तथा सब आनन्दों को देनेवाली है यह ब्राह्मीविद्या जिस किसीको न देना चाहिये ॥ ६९ ॥
कृतज्ञ, अशिष्य, नास्तिक व असत्य तथा ईर्षान्, अविनीत व कामीके लिये कभी न देना चाहिये ॥ ७० ॥ क्योंकि उसमें प्राप्त वह ज्ञान सनातनधर्मको नाश करता
है यह शास्त्र सब पापोंको नाशनेवाला व अत्यन्त गुप्त है ॥ ७१ ॥ और पवित्रों के मध्यमें पवित्र व पवित्र करनेवालों में पवित्रकारक है और विष्णुसहस्रनाम उत्तम व
विष्णुभक्तिकारक है ॥ ७२ ॥ जोकि मनुष्योंको सद्य सिद्धिकारक व भुक्ति, मुक्तिका, दायक तथा उत्तम है इस विष्णुसहस्रनाम स्तोत्रके ब्रह्माश्रयि हैं विष्णु देवता हैं अनुष्टुप्

कुन्द है और सब कामनाओं की प्राप्तिके लिये अप से विनियोग किया जाता है ॥ अब ध्यान कहते हैं कि जलसमेत मेघके समान नीलवर्णवाले और उदारस्कमानीको दिखलानेहारे, हाथमें पर्यंत को लिये व वेणु के बजानेमें प्रवीण तथा ब्रजवासीजनोंके पालक व कामिनी स्त्रियोंकी क्रीड़ामें बखल और नवीन तुलसीकी मालाको पहने हुये गोपालबालक श्रीकृष्णजीको भैं प्रणाम करताहूँ ॥ ७३ ॥ संसारमें व्यापक, जयशीलवाले, इन्द्रियोंके स्वाधी, सबोंकी आत्मा, सबको उत्पन्न करनेवाले, सर्वत्र व्याप्त, सर्वविनाश, प्राणीगणों के आशय के आशय ॥ ७४ ॥ आदिअन्तरहित, क्रीड़ा करनेवाले, सर्वज्ञाता, सबोंको उत्पन्न करनेवाले, सर्वव्यापी, संसारको पोषण करने

ब्रह्मा ऋषिर्विष्णुर्देवता अतुष्टुः ब्रह्मन्दः सर्वकामावाप्त्यर्थं जपे विनियोगः ॥ अथ ध्यानम् ॥ सजलजलदनीलं दशि
तोदारशीलं करतलधृतशीलं वेणुवाद्योरसालम् ॥ ब्रजजनकुलपालं कामिनीकेलिलोलं तरुणतुलसिमालं नौमिगोपा
लबालम् ॥ ७३ ॥ अविष्णुर्जिष्णुर्हृषीकेशः सर्वगः सर्वरीनाथो भूतग्रामाशयाशयः ॥ ७४ ॥ अ
मादिनिधनोदेवः सर्वज्ञः सर्वसम्भवः ॥ सर्वव्यापी जगद्धाता सर्वशक्तिधरो नयः ॥ ७५ ॥ जगद्बीजं जगत्स्रष्टा जगदीशो
जगन्पतिः ॥ जगद्गुरुर्जगन्नाथो जगद्धाता जगन्मयः ॥ ७६ ॥ सर्वाकृतिधरः सर्वो विश्वरूपी जनार्दनः ॥ अजन्माशा
रूपतोभिर्यो विश्वाधारो विभुः प्रभुः ॥ ७७ ॥ बहुरूपैकरूपश्च सर्वरूपधरो हरः ॥ महार्णवो महामेघो जलबुद्बुदसम्भवः ॥
सर्वकामी भिक्खुसौमरस्यो महामत्स्यस्तिभिर्जितः ॥ ७८ ॥ अनन्तो वासुकिः शेषो वाराहो धर्माधिपः ॥ पयःवीरिविविक्षा

वाजे, सब शक्तियोंकी धारणवाले, पापहित ॥ ७५ ॥ संसार के बीज, संसारको रचनेवाले, जगदीश व जगत् के गुरु, जगन्नाथ, जगत् को धारनेवा
ला, मेसारमय ॥ ७६ ॥ सब आकृतियों के धारनेवाले, सर्व, संसाररूपी, जनोंके दुःखहारक, जन्मरहित, सनातन, नित्य, संसार के आधार, व्यापक, समर्थ ॥ ७७ ॥
बहुतरूपीवाले, एक रूपवाले, सब प्रकारको धारनेवाले, भक्तदुःखहारक, महासमुद्र, महामेघ, जलके बुल्लेसे उत्पत्तिवाले, संस्कार कियेहुये, विकार को प्राप्त, मत्सररूप,
महामत्स्यरूपवाले व तिमिरिण नामे मत्सीधारी मछली के स्वरूपवाले ॥ ७८ ॥ अनन्त, वासुकि, शेष, वाराहरूप, पृथ्वीको धारनेवाले व पानी और दूधके अलग

करनेमें हंसरूप और कनकाचल पै आसन करनेवाले ॥ ७६ ॥ हयग्रीव, विशाललोचन, अश्वकर्ण, अश्वकार, मथन, रत्नहारी, कूर्मरूप, अश्वधराधर ॥ ८० ॥ निद्रा-
रहित, निद्रामें प्राप्त, अनन्त, सुनन्दी, नन्दन, प्रिय ॥ ८१ ॥ और नाभिमें कमलनालवाले, आपही से उत्पन्न, चतुर्मुख, प्रजापतियों में परायण, दत्त, सृष्टिकारक,
प्रजाकारक ॥ ८२ ॥ मरीचि, कश्यप, वत्स व देवता और दैत्योंके गुरु, कवि, वामनरूप, वामभागी, कर्मोंके कर्मरूप और बड़े शरीरवाले ॥ ८३ ॥ और त्रिलोक
को नापनेवाले, दयावान्, बलिके यज्ञके विनाशक, यज्ञहर्ता, यज्ञकर्ता, यज्ञके स्वामी, यज्ञको भोगनेवाले, व्यापक ॥ ८४ ॥ हजार किरणोंवाले, भगदेवरूप, प्रकाश-

यां हंसौहमगिरासनः ॥ ७६ ॥ हयग्रीवोविशालाक्षो हयकर्णोहयाकृतिः ॥ मथनोरत्नहारीच कूर्मोऽश्वधराधरः ॥
८० ॥ विनिद्रोनिद्रितोनन्तः सुनन्दीनन्दनः प्रियः ॥ ८१ ॥ नाभिनालमृणालीच स्वयम्भूश्चतुराननः ॥ प्रजापतिपरो
दत्तः सृष्टिकर्ताप्रजाकरः ॥ ८२ ॥ मरीचिः कश्यपोवत्सः सुरासुरगुरुः कविः ॥ वामनोवामभागीच कर्मकर्मामृहहृपुः ॥
८३ ॥ त्रिलोक्यक्रमणोदायो बलियज्ञविनाशनः ॥ यज्ञहर्तायज्ञकर्ता यज्ञेशोयज्ञभुग्विभुः ॥ ८४ ॥ सहस्रांशुर्भगोभा
नुर्विषस्वानुरविंशुमान् ॥ तिग्मतेजाल्पतेजाश्च कर्मसाक्षीमनुर्यमः ॥ ८५ ॥ देवराजोसुरपतिर्दानवारिः शचीपतिः ॥
रविर्वायुसखोवह्निर्वरुणोयादमाम्पतिः ॥ ८६ ॥ नैऋतोनन्दनोनादी रक्षोयक्षोधनाधिपः ॥ कुबेरोवित्तवान्वेगो वसु
पालविलासकृत् ॥ ८७ ॥ अमृतः श्रावणः सोमः सोमपानकरः सुधीः ॥ सर्वौषधिकरः श्रीमान् निशाकारोदिवाकरः ॥
८८ ॥ विषहाविषहर्ताच विषकण्ठधरोगिरिः ॥ नीलकण्ठोवृषारुद्रो भालचन्द्रोह्युमापतिः ॥ ८९ ॥ शिवः शान्तोवशी

कारक, विश्वान्, सूर्यनारायण, किरणोंवाले, तीक्ष्ण तेजवान्, थोड़े तेजवाले, कर्मोंके साक्षी, मनुरूप, यमराजरूप ॥ ८५ ॥ देवताओंके राजा, दैत्योंके स्वामी, दानवों
के शत्रु, इन्द्राणीके पति, रवि, पवनमित्र, अग्नि, वरुण व जलजन्तुओंके स्वामी ॥ ८६ ॥ निर्वृत्ति, आनन्दको देनेवाले, शब्दकारक, राक्षस, यक्ष व धनके स्वामी, कुबेर,
धनवान्, वेग और वसुपालकोंसे विलास करनेवाले ॥ ८७ ॥ मोक्षरूप, श्रावण, सोम व सोमपान करनेवाले तथा भलीभांति ध्यान करनेवाले, सब औषधियोंको करनेवाले,
लक्ष्मीवान्, रात्रिकारक, दिनकारक ॥ ८८ ॥ विषनाशक, विषहारक, विषकण्ठधारी, पर्वतरूप, नीलकण्ठ, वृषवाले, रुद्र, चन्द्रभाल, पर्वतोंके पति ॥ ८९ ॥ कल्याण-

कपल, कपलरूप, सुन्दरस्वरूपवाले, बरि, ध्यान करनेवाले, मान करानेवाले, मृगहा मृगवत्सल, कृमिकीटोत्सल, मृगमयी केनेवाले, मृगप्रिय ॥ १० ॥ वटुक, डेरक, बाल, कपलघाटी, वृण्डसेयुत शरीरवाले, रमशानमें बसनेवाले, मांससोजी, कपूर में भोजन करनेवाले व कामदेवनसल ॥ ११ ॥ कोमिमियों को डरानेवाले, कोणी, ध्यानमें स्थित व ध्यान वासनावाले, सेनाध्यक्ष, सेनाशाक, स्वामिकारिक, महाकालस्वरूप, गणनायक ॥ १२ ॥ आदिदेव, गणेश, विष्णुनाथ व विष्णु-विनयन, नित्य ऋद्धिसिद्धिदायक, हस्ती, गजमुख ॥ १३ ॥ नृसिंह, उग्र वादवाले, नखवाले, दानवोंको नाश करनेवाले, प्रह्लादका पोषण करनेवाले व सर्वदेवत्वधर्मों के

वीरो ध्यानीमानीचमानदः ॥ कृमिकीटोमृगव्याधो मृगहामृगवत्सलः ॥ १० ॥ वटुकोभैरवोबालः कपलीदण्ड-
विग्रहः ॥ इमशानवासिमांसाशी खर्पराशीस्मरान्तकृत् ॥ ११ ॥ योगिनीत्रासकयोगी ध्यानस्थोध्यानवासनः ॥ मे-
नानीसेनहास्कन्दो महाकालोगणाधिपः ॥ १२ ॥ आदिदेवगणपतिविघ्नहाविघ्ननाशनः ॥ ऋद्धिसिद्धिप्रदानिरयं द-
न्तीचैवगजाननः ॥ १३ ॥ नृसिंहउग्रदंष्ट्रश्च नखीदानवनाशकृत् ॥ प्रह्लादपोषकतोच सर्वदैत्यजनेश्वरः ॥ १४ ॥ श-
खभःसागरःसाक्षी कल्पद्रुमविकल्मषी ॥ हेमदेहेमभागीच हिमकर्ताहिमाचलः ॥ १५ ॥ भूधरोभूमिदोमरुः कैला-
सःशिखरोगिरिः ॥ लोकालोकान्तरालोकी विलोकीसुवनेश्वरः ॥ १६ ॥ दिक्पालोदिक्पतिर्दिव्यो दिव्यकायोजिते-
न्द्रियः ॥ विरूपोरूपवान् रागी नृत्यगीतविशारदः ॥ १७ ॥ हाहाह्रह्रश्चित्ररथो देवर्षिनारदःसखा ॥ विश्वदेवाःसाध्यदे-
वा घृताशीचाचलश्चलः ॥ १८ ॥ कपिलोजल्पकोवादी दत्तोहेहयहंसराट् ॥ वसिष्ठःकामदेवश्च सप्तर्षिप्रवरोभृगुः ॥ १९ ॥

स्वामी ॥ १४ ॥ शलभ, सागररूप, साक्षी, कल्पवृक्ष, पारहित, स्वर्णदायक, स्वर्णभाभी, पालाको करनेवाले, हिमाचलरूप ॥ १५ ॥ पृथ्वीको धरनेवाले, भूमिदायक, कुमेक, कैलास, शिखररूप, पर्वतरूप और जो लोकालोक के मध्यको देखनेवाले, लोकहित, लोकोंके स्वामी ॥ १६ ॥ दिशाओं के पालक, दिशाओं के स्वामी, दिव्य व दिव्य शरीरवाले, इन्द्रियजित, रूपरहित, रूपवान्, अदुराग करनेवाले व नाचने और गानेमें वतुर ॥ १७ ॥ और हाहा, ह्रह्र व चित्ररथ गन्धर्व स्वरूप, देवर्षि, नाथरूप, संसाररूप, विश्वदेवा, साध्यदेवता, घृतभोजी, अचल, चल ॥ १८ ॥ कपिलदेवरूप, व्यक्तवचन कहनेवाले, वाष् करनेवाले, वृचात्रेयस्वरूप, हेहयार्जुनरूप व हेमसलः,

वसिष्ठस्वरूप, कामदेवस्वरूप व सप्तर्षियों में श्रेष्ठ, भृगु ॥ ६९ ॥ जमदग्निस्वरूप, महावीरस्वरूप, क्षत्रियों का विनाश करनेवाले, सत्यवादी, हिरण्यकशिपुस्वरूप, हिरण्यकशिपुस्वरूप, हरिप्रिय ॥ १०० ॥ अगस्ति, पुलह, रत्न, पौलस्ति, रावण, घट, देवताओं के शत्रु, तपस्वी, ताप करनेवाले व हरिप्रिय विभीषणस्वरूप ॥ १ ॥ तेजवाले, तेजनाशक, तेजराशि, राजाओं के स्वामी, प्रसु, दशरथ के पुत्र, राघव, श्रीरामचन्द्र, रघुवंश को बढ़ानेवाले ॥ २ ॥ जानकीनाथ, रक्षक, लक्ष्मीवान्, ब्राह्मणों को माननेवाले, भक्तप्रिय, संनद्ध, कवचधारी, तलवारको धारनेवाले, चीर वसन पहने व दिगम्बर याने नग्न ॥ ३ ॥ किरीट को धारनेवाले, कुण्डलों को धारे बाणको

जमदग्निर्महावीरः क्षत्रियान्तकरोऽऋषिः ॥ हिरण्यकशिपुश्चैव हिरण्याक्षो हरिप्रियः ॥ १०० ॥ अगस्तिः पुलहोरत्नः पौलस्तीरावणो घटः ॥ देवारिः तापसस्तापी विभीषण हरिप्रियः ॥ १ ॥ तेजस्वी तेजहातेजराशिराजपतिः प्रभुः ॥ दाशरथीराघवोरामो रघुवंशविवर्द्धनः ॥ २ ॥ सीतापतिः पतिः श्रीमान् ब्रह्मण्यो भक्तवत्सलः ॥ संनद्धः कवचीस्रङ्गी चौरवासादिगम्बरः ॥ ३ ॥ किरीटीकुण्डलीचापि शरीचक्रो गदाधरः ॥ कौशल्यानन्दनोरामो भूमिशायी गुरुप्रियः ॥ ४ ॥ सौमित्रो भरतोवालः शत्रुघ्नो भरताग्रजः ॥ लक्ष्मणः परवीरघ्नः स्त्रीसहायः कपीश्वरः ॥ ५ ॥ हनुमान् ऋक्षराजश्च सुग्रीवो वालिनाशनः ॥ दीनप्रियो दानवारिः रङ्गदत्तांबरः ॥ ६ ॥ वनध्वंसी वनीवेगी वानरो वानरध्वजः ॥ लाङ्गुलीचनस्वीदंष्ट्री लङ्काहाहाकरो वरः ॥ ७ ॥ भवसेतुर्महासेतुर्वद्धसेतुरमेश्वरः ॥ जानकीवल्लभः कामी किरीटीकुण्डलीखगः ॥ ८ ॥

लिये, चक्रको धारहुये और गदाको धारण करनेवाले, कौशल्यार्जा के पुत्र, रमण करनेवाले, भूमि में सोनेवाले व गुरुओं को प्यारे ॥ ४ ॥ सुमित्रा के पुत्र लक्ष्मणस्वरूप, भरत, बालक, शत्रुघ्न व भरत के जेठभाई, लक्ष्मण, शत्रुवीरनाशक, स्त्रीसहायवाले, वानरों के स्वामी ॥ ५ ॥ हनुमान्, ऋक्षराज (जाम्बवान्), सुग्रीवस्वरूप व बालिको नाशनेवाले, दुःखीजनप्रिय, दानवों के शत्रु, अङ्गदस्वरूप व कहनेवालों में श्रेष्ठ ॥ ६ ॥ वनविनाशक, वनवाले, वेगवान्, वानर व वानर के ध्वजावाले, पुच्छवाले, नखवाले, दाढ़ीवाले व लङ्का में हाहाकार करनेवाले, श्रेष्ठ ॥ ७ ॥ संसार के सेतु (पुल) रूप, महासेतु, सेतु बांधनेवाले, रमानाथ, जानकीजी के प्यारे, कामी,

किरीटधारक, कुण्डल धारनेवाले, आकाशगामी ॥ ८ ॥ कमल के नाई चौड़ेनेत्रवाले, महाभुज, मेघस्वरूप, चञ्चल, चपल, कामी, सुन्दरतावाले व वामाङ्गप्रिय ॥ ९ ॥ स्त्रीप्रिय, स्त्रीमें तत्पर, स्नेह व स्त्री के बायें अङ्ग में बसनेवाले, शत्रुओंको जीतनेवाले, क्रोधको जीतनेवाले, कामदेव को जीतनेवाले और इन्द्रियोंको जीतनेवाले ॥ १० ॥ शान्तस्वरूप, इन्द्रियों को दमन किये दयामें रमण करनेवाले, एक स्त्रीके नियमको धारनेवाले, सत्त्वगुणवाले व सत्त्वगुणमें टिकेहुये, कामदेव, क्रोधी, क्रोधी, बहुत राक्षसोंसे विरह व सब राक्षसोंको नाशकरनेवाले रावणकेवैरी व समरमें छुट दश मस्तकोंको काटनेवाले ॥ १२ ॥ राज्य करनेवाले, यज्ञ करनेवाले, दानी, भोगी व तपस्यारूपधनवाले, अयो-

धिर व सब राक्षसोंको नाशकरनेवाले रावणकेवैरी व समरमें छुट दश मस्तकोंको काटनेवाले ॥ १२ ॥ राज्य करनेवाले, यज्ञ करनेवाले, दानी, भोगी व तपस्यारूपधनवाले, अयो-

पुरंदरीकविशालाक्षो महाबाहुर्धनाकृतिः ॥ चञ्चलश्चपलः कामी वामीवामाङ्गवत्सलः ॥ ९ ॥ स्त्रीप्रियः स्त्रीपरः स्नेहः
स्त्रियोवामाङ्गवासकः ॥ जितवैरीजितक्रोधोजितकामोजितेन्द्रियः ॥ १० ॥ शान्तोदान्तोदयाराम एकस्त्रीव्रतधारकः ॥
सात्त्विकः सत्त्वसंस्थानो मदनः क्रोधनः खरः ॥ ११ ॥ बहुराक्षससंवीतः सर्वराक्षसनाशकृत् ॥ रावणारीरणक्षुद्रदशम
स्तकञ्चदकः ॥ १२ ॥ राज्यकारीयज्ञकारी दाताभोक्तातपोधनः ॥ अयोध्याधिपतिः कान्तो वैकुण्ठोऽकुण्ठविग्रहः ॥
स्तकञ्चदकः ॥ १२ ॥ राज्यकारीयज्ञकारी दाताभोक्तातपोधनः ॥ अयोध्याधिपतिः कान्तो वैकुण्ठोऽकुण्ठविग्रहः ॥
१३ ॥ सत्यव्रतोव्रतीशूरस्तपीसत्यः फलप्रदः ॥ सर्वसाक्षीसर्वसङ्गः सर्वप्राणहरोऽव्ययः ॥ १४ ॥ प्राणोपानः समानश्च
व्यानोदानः समानकः ॥ नागः कृकलकूर्मश्च देवदत्तो धनञ्जयः ॥ १५ ॥ सर्वप्राणविदव्यापी योगधारणधारकः ॥ तत्त्व
वित्तत्त्वदस्तत्त्वी सर्वतत्त्वविशारदः ॥ १६ ॥ ध्यानस्थो ध्यानशीली च मनस्वी योगवित्तमः ॥ ब्रह्मज्ञो ब्रह्मज्ञानी च ब्रह्महा
ब्रह्मसम्भवः ॥ १७ ॥ अध्यात्मविज्जगद्दीपो ज्योतीरूपो निरञ्जनः ॥ ज्ञानदो ज्ञानहज्जानी गुरुशिष्योपदेशकः ॥ १८ ॥

ध्याके स्वामी, सुन्दर, वैकुण्ठस्वरूप व कुण्ठशरीरवाले ॥ १३ ॥ सत्यव्रतवाले, नियमवान्, शूर, तपस्वी, सत्य, फलदायक, सबोंके साक्षी, सबके सङ्गवाले, सबोंके प्राण-
नाशक, विकाररहित ॥ १४ ॥ व प्राणरूप, अपानस्वरूप, समानस्वरूप, उदानरूप, नागरूप, कृकलरूप, कूर्मस्वरूप, देवदत्तरूप व धनञ्जयस्व-
रूप ॥ १५ ॥ सबोंके प्राणोंको जाननेवाले, अव्यापी, योगकी धारणा को धारनेवाले, तत्त्वज्ञ, तत्त्वदायक, तत्त्ववान्, सब तत्त्वोंके जानने में चतुर ॥ १६ ॥ ध्यानमें
स्थित, ध्यानस्वभाववाले, मनस्वी व योगके ज्ञाता, ब्रह्मको जाननेवाले, ब्रह्मज्ञानी, ब्रह्महा, ब्रह्म से उत्पत्तिवाले ॥ १७ ॥ अध्यात्म को जाननेवाले, संसार के दीपक,

अयोतिस्वरूप, निरञ्जन, ज्ञानदायक, ज्ञाननाशक, ज्ञानवान्, गुरु व शिष्यको उपदेश करनेवाले ॥ १८ ॥ उत्तम शिक्षा के योग्य, शिक्षाको प्राप्त, शोभित व सीखने योग्य शिक्षामें चतुर, मन्त्रको देनेवाले, मंत्रनाशक, मन्त्रवाले, तन्त्रवाले और तन्त्रवाले लोगोंके प्रिय ॥ १९ ॥ उत्तम मन्त्रवाले, मन्त्रके ज्ञाता, मन्त्री व यन्त्रों तथा मन्त्रों के एकही तोड़नेवाले, मारण, मोहन, मोहवाले, स्तम्भनवाले, उच्चाटन करनेवाले, खल ॥ २० ॥ बहुत मायाओंवाले, मायारहित, महामायावाले, मोहरहित, मोक्षदायक, बाधनेवाले, कारागृह व आकर्षण, विकर्षण ॥ २१ ॥ ह्रींकार, बीजस्वरूप, ह्रींकारवाले, कीलक के स्वामी, सौंकार, शक्तिमान्, शक्ति, सब शक्तियों को धारनेवाले, पर्वत

सुशिक्ष्यः शिबितः शाली शिक्ष्य शिचा विशारदः ॥ मन्त्रदोमन्त्रहामन्त्री तन्त्री तन्त्रजनप्रियः ॥ १९ ॥ सन्मन्त्री मन्त्रविन्मन्त्री यन्त्रमन्त्रैकभञ्जनः ॥ मारणोमोहनोमोहीस्तम्बुच्चाटकरः खलः ॥ २० ॥ बहुमायोविमायश्च महा मायीविमोहकः ॥ मोक्षदोबन्धकोवन्दी ह्याकर्षणविकर्षणः ॥ २१ ॥ ह्रींकारोबीजरूपी च ह्रींकारी कीलकाधिपः ॥ सौंकारो रः शक्तिमाञ्छक्तिः सर्वशक्तिधरोधरः ॥ २२ ॥ अकारोकारईकार छन्दोगायत्रिसम्भवः ॥ वेदोवेदविदोवेदी वेदाध्यायी सदाशिवः ॥ २३ ॥ ऋग्यजुः सामचाथर्वः सामगानकरः करी ॥ त्रिपदोबहुपादी च सत्पथः सर्वतोमुखः ॥ २४ ॥ प्राकृतः संस्कृतो योगी गीतग्रन्थप्रहेलिकः ॥ सगुणो विगुणो च्छन्दः निःसङ्गो विगुणो गुणी ॥ २५ ॥ निर्गुणो गुणवान्सङ्गी कर्मधर्मात्त्वकर्मदः ॥ निष्कर्मा कामकर्माच निःसङ्गः सङ्गवर्जितः ॥ २६ ॥ निर्लोभी निरहङ्कारी निष्किञ्चनजनप्रियः ॥ २७ ॥

स्वरूप ॥ २२ ॥ अकार, उकार, ईकार स्वरूप व गायत्री से उत्पन्न छन्दस्वरूप, वेदरूप, वेदज्ञ, वेदवान्, वेदाध्ययन करनेवाले, सदाशिवस्वरूप ॥ २३ ॥ ऋक्, यजुः, साम व अथर्वस्वरूप, सामगान करनेवाले, हस्तीस्वरूप, तीन चरणोंवाले, बहुत चरणोंवाले, उत्तममार्ग व सबमार्ग व सबओर मुखवाले ॥ २४ ॥ और प्राकृत (बनाहुआ) संस्कृत (संस्कार कियाहुआ) योगी व गीता ग्रन्थ के चलानेवाले, गुणोंसमेत, निर्गुण, स्वच्छन्द, सङ्गरहित, गुणरहित, गुणवान् ॥ २५ ॥ निर्गुण, गुणवान्, सङ्ग करनेवाले, कर्म धर्मवाले व अकर्मदायक, कर्मरहित, कामनाओं को चाहनेवाले, सङ्गरहित व सङ्गसे वर्जित ॥ २६ ॥ लोभरहित, अभिमानहीन व अकिञ्चनजनप्रिय ॥ २७ ॥

व सर्वोसे साथ करनेवाले, -अनुरागी, सबको छोड़नेवाले, बाहर चलनेवाले, एकचरणवाले, दोचरणवाले, बहुते चरणवाले, थोड़े चरणवाले ॥ २८ ॥ द्विचरण, त्रिचरण, चरणवाले व चरणोंसे रहित, चरणोंके संग्रहवाले, आकाशगामी, भूमिगामी, ऐश्वर्यवान् व भृङ्गकीटमधुप्रिय ॥ २९ ॥ ऋतुरूप, वर्षस्वरूप, मासरूप, अयनस्वरूप, पक्षरूप, दिनरात्रिग्वरूप, ॥ ३० ॥ सत्ययुगरूप, त्रैतार्युगरूप, कलियुगरूप, द्वापरस्वरूप व चारों आकारवाले, देशकालको करनेवाले, कालस्वरूप, वंशके धर्मरूप, सदैव रहनेवाले ॥ ३१ ॥ कलारूप, काष्ठास्वरूप, पलारूप व नाडीरवरूप, प्रहररूप, पक्षस्वरूप, देवतकृष्णरूप, युगस्वरूप, युगको धारनेवाले, योग्य व युगोंके धर्मको

सर्वसङ्गकरोरागी सर्वत्यागीवहिश्चरः ॥ २८ ॥ द्विपदस्त्रिपदःपादौ विपादीपादसंग्रहः ॥ स्वेचरोभूचरोभागी भृङ्गकीटमधुप्रियः ॥ २९ ॥ ऋतुःसंवत्सरोमासोऽयनःपक्षोह्यहर्निशः ॥ ३० ॥ कृतस्त्रेताकलिश्चैव द्वापरश्चतुराकृतिः ॥ देशकालक्षुःकालःकुलधर्मःसनातनः ॥ ३१ ॥ कलाकाष्ठापलानाड्यो यामःपद्मःसितासितः ॥ युगोयुगन्धरोयोग्यो युगधर्मप्रवर्तकः ॥ ३२ ॥ कुलाचारःकुलकरःकुलदैवकरोकुली ॥ चतुराश्रमचारीच गृहस्थोह्यतिथिप्रियः ॥ ३३ ॥ वनस्थोवनचारीच वानप्रस्थाश्रमाश्रमी ॥ वटुकोब्रह्मचारीच शिखासूत्रःकमण्डलुः ॥ ३४ ॥ त्रिजटीध्यानवान्ध्यानी वट्रिकाश्रमवासकृत ॥ हेमाद्रिप्रभवोहेमा हेमराशिर्हिंसाकरः ॥ ३५ ॥ महाप्रस्थानकोविप्रो विरागीरागवान्गृही ॥ नरनारीयणोरार्गीकेदारोदारविग्रहः ॥ ३६ ॥ गङ्गाद्वारतपःपारो तपोवनतपोनि

वर्तमान करनेवाले ॥ ३२ ॥ कुलके आचारस्वरूप वंशकारक, कुलदैवकारक व कुलरहित, चारों आश्रमों में गमन करनेवाले, गृहस्थरूप व अतिथिप्रिय ॥ ३३ ॥ वनमें स्थित, वनमें चलनेवाले, वानप्रस्थाश्रम के आश्रमवाले, वटुस्वरूप, ब्रह्मचारीरूप, शिखासूत्रस्वरूप, कमण्डलुरूप ॥ ३४ ॥ तीन जटाश्रवाले, ध्यानेवाले, ध्यानी व वट्रिकाश्रम में निवास करनेवाले, कनकाचल से उत्पन्न, सुवर्णरूप, सुवर्णकी-राशि, हिंस्रानि ॥ ३५ ॥ महाप्रस्थान करनेवाले, विप्ररूप, श्रुतार, ग्रहहित, अनुरागी, गृहवाले, नर व नारायणस्वरूप, अनुरागवान्, क्षेत्रस्वरूप, स्त्रीरूपवाले ॥ ३६ ॥ व हरिद्वार में तपस्या में तप्य, तपोवन व तपस्या के

विधान, यह महापद्म निधि व तडाग की लक्ष्मी के स्थान ॥ ३७ ॥ कमलनाभ, सर्वव्यापी, संन्यासीरूप, पुरुषों में उत्तम, पुराण, परमानन्दरूप, सम्राट व राजर्षियों के राजा ॥ ३८ ॥ चक्रमें स्थित, चक्रपालों में स्थित, चक्रवर्ती, नरेश, आयुर्वेद के जाननेवाले, वैद्य, चलनेवाले, धन्वन्तरिस्वरूप व ग्रहण करनेवाले ॥ ३९ ॥ और ओषधी व बीजोंको उत्पन्न करनेवाले व रोगीके रोगको नाश करनेवाले, चैतन्यरूप, अचेत, चिन्तन के योग्य, चित्तकी चिन्ता के विनाश करनेवाले ॥ ४० ॥ इन्द्रियों से परे, सुखको स्पर्श करनेवाले, चर प्राणियों में गमन करनेवाले, आकाशगामी, गरुडस्वरूप, पक्षियोंके राजा, प्रशस्त लोचनवाले, विनताके पुत्र ॥ ४१ ॥

धिः ॥ निधिरेषमहापद्मः पद्माकरश्रियालयः ॥ ३७ ॥ पद्मनाभःपरीतात्मा परित्राट्पुरुषोत्तमः ॥ पुराणःपरमानन्दः स
आदराजर्षिराजकः ॥ ३८ ॥ चक्रमथश्चक्रपालस्थश्चक्रवर्तीनराधिपः ॥ आयुर्वेदविदोवैद्यश्चरो धन्वन्तरिग्रहः ॥ ३९ ॥
ओषधीबीजसम्भूतो रोगिरोगविनाशकृत् ॥ चेतनोचेतकोचिन्त्यश्चिन्ताविनाशकृत् ॥ ४० ॥ अतीन्द्रियःसुख
स्पर्शश्चरचारीविहङ्गमः ॥ गरुडःपक्षिराजश्च चाक्षुषोविनतात्मजः ॥ ४१ ॥ विष्णुर्यानविमानस्थो मनोमयतुरङ्गमः ॥
बहुवृष्टिकरोवर्षी ऐरावणविराणौ ॥ ४२ ॥ उच्चैःश्रवाहयोगामी हरिदश्चोहरिप्रियः ॥ प्रावृषोभेममालीच गजरत्नपुर
न्दरः ॥ ४३ ॥ वसुदोवसुधारश्च निद्रालुःपद्मगाशनः ॥ शेषशायीजलेशायी व्यासःसत्यवतीसुतः ॥ ४४ ॥ वेदव्यास
करोवाग्मी बहुशास्त्राविकल्पकः ॥ स्मृतिःपुराणधर्मार्थी पारावरकविःकृतिः ॥ ४५ ॥ सहस्रशर्पासहस्राक्षः सहस्रव

व्यापक, वाहन व विमान पै स्थित, मनोमय अश्वरूप, बहुत वृष्टि करनेवाले, न बरसनेवाले, ऐरावतस्वरूप, शब्द करनेवाले ॥ ४२ ॥ व उच्चैःश्रवा अश्वरूप, गमन करनेवाले, हरित् अश्ववाले, इन्द्रप्रिय, वर्षाके समय में मेघोकी पक्षिवाले, गर्जोमें रत्नरूप, इन्द्रस्वरूप ॥ ४३ ॥ धनको देनेवाले, धनको धारनेवाले, निद्रा-
वान्, सर्पभोजी, शेषजी के ऊपर शयन करनेवाले, जलमें सोनेवाले, सत्यवतीजी के पुत्र व्यासस्वरूप ॥ ४४ ॥ वेदोंका विस्तार करनेवाले व प्रशस्त वचनवाले, ब-
हुत शास्त्रों के भेदकारक, स्मृतिरूप, प्राचीन धर्मको चाहनेवाले, कार्य व कारण के विद्वान्, पुराणवान्रूप ॥ ४५ ॥ हजार-सहस्रकोवाले, हजार लोचनवाले व हजार

मुखोंसे उज्ज्वल, हज़ार मुजाओंवाले, हज़ार किरणोंवाले व हज़ार किरणोंसे उभरत ॥४६॥ बहुत मस्तकोंवाले, एक मस्तकवाले, तीन मस्तकोंवाले, शिररहित, शिखावान, जटाधारी, भस्ममें अनुराग करनेवाले, दिव्य वस्त्रों को धारे व पवित्र ॥ ४७ ॥ सूक्ष्मस्वरूप, स्थूलरूप, रूपरहित, विकसक आकारवाले, समुद्रको मथामेवाले, मथने वाले, सब रत्नोंको हरनेवाले, भक्तदुःखहारक ॥ ४८ ॥ हीरा व वैडूर्यमणिवाले व चिन्तामणिमहामणिस्वरूप, मूल्यरहित, बड़े मूल्यवाले, निर्मूल्य, सरम (मृगभेद) स्वरूप व सुखी ॥ ४९ ॥ पितारूप व मातास्वरूप, बालकरूप, विधातारूप, त्वष्टा देवतारूप, अग्निरूप, भीतरस्थित, बाहर कार्य

दनोज्ज्वलः ॥ सहस्रबाहुःसहस्रांशुःसहस्रकिरणोन्नतः ॥ ४६ ॥ बहुशीर्षैकशीर्षश्च त्रिशिराविशिराःशिखी ॥ जटि
लोभस्मरणीच दिव्याम्बरधरःशुचिः ॥ ४७ ॥ अपुरूपोऽहहृपो विरूपोविकराकृतिः ॥ समुद्रमाथकोमार्थी सर्वरत्नहरो
हरिः ॥ ४८ ॥ वज्रवैडूर्यकोवज्री चिन्तामणिमहामणिः ॥ अनिमूल्योमहामूल्यो निर्मूल्यःसरमःसुखी ॥ ४९ ॥ पि
तामाताशिशुर्वन्धुर्धातात्वष्टाहुताशनः ॥ अन्तःस्थोबाह्यकारीच बहिःस्थोवैबहिश्चरः ॥ ५० ॥ पावनःपावकःपाकी स
र्वभक्षीहुताशनः ॥ भगवान्भगहामार्गी भगभञ्जभयङ्करः ॥ ५१ ॥ कायस्योच्चार्यकारीच कार्यतर्ककरप्रदः ॥ ए
कधर्माद्विधर्माच सुखीदूतोपजीवकः ॥ ५२ ॥ पालकोजारकस्त्राता कालमूषकभक्षकः ॥ संजीवनोजीवकर्ता सजीवो
जीवसम्भवः ॥ ५३ ॥ षड्विंशकोमहाविष्णुः सर्वव्यापीमहेश्वरः ॥ दिव्याद्भ्रदोमुक्तमाली श्रीवत्सोमकरध्वजः ॥ ५४ ॥

करनेवाले, बाहर स्थित व बाहर विचरनेवाले ॥ ५० ॥ पवित्रकारक, अग्नि, पचानेवाले, सब कुछ भोजन करनेवाले, हुतभोजी, ऐश्वर्यवान्, ऐश्वर्यनाशक, अंशवाले, ऐश्वर्यको भक्षण करनेवाले व भयङ्कर ॥ ५१ ॥ शरीर में स्थित व अन्न अर्थको करनेवाले, कार्यमें तर्क करनेवाले, कादयक, एक धर्मवाले, दो धर्मोंवाले, सुखी व दुःखोंको जीविका देनेवाले ॥ ५२ ॥ पालक, परस्त्री भोग करनेवाले, रत्नक व कालरूपी मूसको भक्षण करनेवाले, भलीभांति जिलानेवाले, जीव करनेवाले, जीव समेत व जीवको उत्पन्न करनेवाले ॥ ५३ ॥ व छद्मोंसर्व महाविष्णु, सब में व्याप्त, महेश्वररूप, उत्तम बजुल्ले को धारण किये व मोतियों की मालाको पहने

व भृगुलताको धारे व मकरध्वजावाले ॥ ५४ ॥ श्याम शरीरवाले, घन के समान श्यामरंगवाले, पीले वसनवाले, उत्तम मुखधारे, चीर वसनवाले, वसनरहित व भूतों तथा दानवों को प्यारे ॥ ५५ ॥ अमृतरूप, अमृतके अंशवाले, मोहनीरूपको धारनेवाले, दिव्यदृष्टिवाले, समानदृष्टिवाले व देवताओं तथा दानकों को खलने वाले ॥ ५६ ॥ कबंध याने शिरके विहीन शरीररूप, केतुको करनेवाले, राहुरूप, चन्द्रमा को सन्तापकारक, ग्रहोंके राजा, ग्रहण करनेवाले, ग्राह्यस्वरूप, सब ग्रहों को छुड़ानेवाले ॥ ५७ ॥ दान, मान, जप व होमस्वरूप, अनुकूलता समेत शुभग्रहस्वरूप, विघ्नकारक व हारक, विघ्ननाशक, विनायकस्वरूप ॥ ५८ ॥ अपकार

श्याममूर्तिर्धनश्यामः पीतवासाः शुभाननः ॥ चीरवासाविवासाश्चभूतदानववल्लभः ॥ ५५ ॥ अमृतोमृतमार्गीच मोहनीरूपधारकः ॥ दिव्यदृष्टिः समदृष्टिर्देवदानववञ्चकः ॥ ५६ ॥ कबन्धः केतुकारीच स्वर्भानुश्चन्द्रतापनः ॥ ग्रहराजो ग्रहीग्राहः सर्वग्रहविमोचकः ॥ ५७ ॥ दानमानजपोहोमः सानुकूलशुभग्रहः ॥ विघ्नकर्तापहर्ताचविघ्ननाशोविनायकः ॥ ५८ ॥ अपकारोपकारीच सर्वसिद्धिफलप्रदः ॥ सेवकः सामदानीच भेदीदण्डीचमत्सरी ॥ ५९ ॥ दयावान्दानशीलश्च दानीचैवप्रतिग्रही ॥ हविरग्निश्चरुस्थाली समिधश्चित्तोयवः ॥ ६० ॥ होतोद्गाताशुचिः कुण्डः सामगोवैकृतिः सवः ॥ द्रव्यम्पान्नाणिसाकल्यो मूसलोद्धारणिः कुशः ॥ ६१ ॥ दीक्षितोमण्डपोदेवो यजमानपशुः क्रतुः ॥ दक्षिणास्वस्तिमान्स्वस्तिराशीर्वादः शुभप्रदः ॥ ६२ ॥ आदिवृक्षोमहावृक्षोदेववृक्षोवनस्पतिः ॥ प्रयागोवैणिमान्वेणी न्यग्रोधश्चाक्षयो

रूप व अपकार करनेवाले, सब सिद्धियोंके फलों को देनेवाले, सेवकरूप, साम व दान करनेवाले, भेदकरनेवाले, दंडदेनेवाले, अन्यके शुभमें द्वेषकरनेवाले ॥ ५६ ॥ दयावान्, दानकेस्वभाववाले, दानी व दानको ग्रहण करनेवाले, हविरूप, अग्निस्वरूप, चरुस्थालीस्वरूप, समिधारूप, तिलरूप व यवस्वरूप ॥ ६० ॥ हवनकरने वाले, उद्गाता (सामवेदी), पवित्रकुंड, सामनेदको गानकरनेवाले, विकृतिरूप, यज्ञरूप, पात्ररूप, साकल्यस्वरूप, मूसलरूप, अग्निस्वरूप, कुशरूप ॥ ६१ ॥ दीक्षितरूप, मंडपस्वरूप, क्रीड़ा करनेवाले यजमानके पशुरूप, यज्ञस्वरूप, दक्षिणारूप, कल्याणवान्, कल्याणस्वरूप, आशीर्वादस्वरूप, मंगलदायक ॥ ६२ ॥

आदिदूध, बड़ेभारी घृक्षरूप, देववृद्धरवरूप, वनस्पतिरूप, प्रयागरूप, वेणीवान् व वेणीस्वरूप, बरगदरूप व अक्षयवटस्वरूप ॥ ६३ ॥ उत्तम तीर्थ व तीर्थ करने वाले, तीर्थों के राजा, व्रतवान् व व्रतस्वरूप, व्रतवाले, दानस्वरूप, पृथुरूप, पात्ररूप, दुहनेवाले, गऊ व बछड़ास्वरूपवाले ॥ ६४ ॥ दुग्धरूप व दूधको बहाने वाले, दूधवाले व दूध और पानीके विभाग को जाननेवाले, राज्यके भागको जाननेवाले, ऐश्वर्यवाले व सब भागों के भेद करनेवाले ॥ ६५ ॥ प्राप्तकरनेवाले, प्राप्त करानेवाले, वेगरूप, पदको कहनेवाले, चैतन्यमें विचरनेवाले, गोचरणरूप, रक्षाकरनेवाले व गोपोंकी कन्याओं से विहार करनेवाले ॥ ६६ ॥ वसुदेव के पुत्र, विशाललोचन, कृष्णरूप, गोपीजनो को प्रिय, देवकीजीके पुत्र, समृद्धिकरनेवाले, नन्द गोपके घरमें आश्रम करनेवाले ॥ ६७ ॥ यशोदाजीके पुत्र, मालाओं

वटः ॥ ६३ ॥ सुतीर्थस्तीर्थकारीच तीर्थराजोव्रतीव्रतः ॥ व्रतीदानंष्टुःपात्रो दोग्धागौर्वत्सएवच ॥ ६४ ॥ क्षीरक्षीर वंहःक्षीरी क्षीरनीरविभागवित् ॥ राज्यभागविदोभागी सर्वभागविकल्पकः ॥ ६५ ॥ वहनोवाहकोवेगः पदवाचींचित् श्ररः ॥ गोपदोगोपकोगोपी गोपकन्याविहारकृत् ॥ ६६ ॥ वसुदेवोविशालाक्षः कृष्णोगोपीजनप्रियः ॥ देवकीनन्दनो नन्दी नन्दगोपगृहाश्रमी ॥ ६७ ॥ यशोदानन्दनोदामी दामोदरउल्लखली ॥ पूतनारिस्तृणावतंहारीशकटभञ्जकः ॥ ६८ ॥ नवनीतप्रियोवाग्मी वत्सपालकबालकः ॥ वत्सरूपधरोवत्सी वत्सहाधेनुकान्तकृत् ॥ ६९ ॥ वकारिवनवासीच वनक्रीडाविशारदः ॥ कृष्णवर्णाकृतिःकान्तो वेणुवेत्रविधारकः ॥ ७० ॥ अन्धमोक्षकरोमोक्षयो यमुनापुलिनेचरः ॥ मायावत्सकरोमार्या ब्रह्ममायापमोहकः ॥ ७१ ॥ आत्मसारविहारश्च गोपदारकदारकः ॥ गोचरोगोपतिगोपो गोवर्द्ध

को पहने, दामोदर, उल्लूखलवाले, पूतनाकेशनु, तृणावर्तको हरनेवाले, शकटविनाशक ॥ ६८ ॥ नवनीत (नैन्) प्रियवाले, प्रशस्त वचनवाले, वत्सपालक के बालक, वत्सरूप को धरनेवाले, वत्सवान्, वत्सनाशक, धेनुक को नाशकरनेवाले ॥ ६९ ॥ वकासुरके शत्रु, वनमें बसनेवाले, वनकी क्रीड़ा में चतुर श्यामवर्णके आकारवाले, सुन्दर व वेणु तथा बेंत को धारनेवाले ॥ ७० ॥ अन्धकासुर को मोक्ष करनेवाले, मोक्ष के योग्य, यमुनाजी के किनारे चलनेवाले, माया के बछड़ों को करनेवाले, मायावाले व ब्रह्मा की माया को मोहनेवाले ॥ ७१ ॥ व अपनेही सारांशमें विहार करनेवाले, गोपपुत्र के बालक, इन्द्रियों के सामने प्राप्त होनेवाले, गौत्रों

के स्वामी, गौवों की रक्षा करनेवाले, गोविर्धन को धारनेहारे व बलवान् ॥ ७२ ॥ इन्द्रद्युम्न के यज्ञको विध्वंस करनेवाले, वृष्टिनाशक, गोपों के रक्षक, देवताओं की रक्षा करनेवाले, द्रवों के पान करनेवाले, कलिस्वरूप ॥ ७३ ॥ कालियनाग को मर्दन करनेवाले, कालीरूप व यमुनाजी के कुण्ड में विहार करनेवाले, बलभद्ररूप, बलसे प्रशंसा करनेयोग्य, बलदेवस्वरूप, हल आस्त्रवाले ॥ ७४ ॥ हल धारण करनेवाले, मुसल धारण करनेवाले, चक्रों को धारण करनेवाले, योगियों के रमण करने योग्य, रोहिणी जी के पुत्र, यमुनाजी को खींचनेवाले व उधारनेवाले, नीलवसनवारे व हल को धारण करनेहारे ॥ ७५ ॥ रेवतीजी में रमण करनेवाले, चंचल, बहुत मान करनेवाले उत्तम व धेनुकासुर के शत्रु, महावीर व गोपकन्याओं के विदूषक ॥ ७६ ॥ कामदेव का धान करनेवाले, कामी व गोपियों के वसनों के चुगानेवाले, वेणु को बजाने नंधरोबली ॥ ७७ ॥ इन्द्रद्युम्नमखध्वंसी वृष्टिहागोपरत्नकः ॥ सुराणां त्राणकर्ता च दावपानकरः कलिः ॥ ७८ ॥ का

लीयमर्दनः काली यमुनाहदक्रीडकः ॥ सङ्कर्षणो बलश्लाघ्यो बलदेवो हलायुधः ॥ ७९ ॥ लाङ्गली मूसलीचक्री रामो रोहिणीनन्दनः ॥ यमुनाकर्षणोद्धारो नीलवासाहलीतया ॥ ८० ॥ रेवतीरमणोलो बहमानकरः परः ॥ धेनुकारिर्महावीरो गोपकन्याविदूषकः ॥ ८१ ॥ काममानकरः कामी गोपीवासोपतस्करः ॥ वेणुवादीचनादीच नृत्यगीतविशारदः ॥ ८२ ॥ गोपीमोहकरो गानी रासकोरजनीचरः ॥ दिव्यमालीविमालीच वनमालाविभूषितः ॥ ८३ ॥ कैटभारिश्चकंसारिर्मधुहामधुसूदनः ॥ चाणूरमर्दनोमहो मुष्टिमुष्टिकनाशकृत् ॥ ८४ ॥ मुरहामोदकोमोदो मानीचनरकान्तकृत् ॥ विद्याधयायीभूमिशायी सुदाम्नश्च सखासखा ॥ ८५ ॥ शकलो विकलो विद्यः कलितो विकलानिधिः ॥ विशालशा

वाले, नाद करनेवाले व नाचने तथा गाने में चतुर ॥ ७७ ॥ गोपियों को मोह करनेवाले, गान करनेवाले, रासकरनेहारे व रात्रि में चलनेवाले, दिव्य मालाओं को पहने व मालाओं से रहित तथा वनमाला से शोभित ॥ ७८ ॥ कैटभ दैत्य के शत्रु, कंस के शत्रु, मधुदैत्य को मारनेवाले व मधुसूदन, चाणूर को मर्दन करनेवाले, मल्लरूप व मुष्टिक को घूसा से नाश करनेवाले ॥ ७९ ॥ मुरदैत्य को नाश करनेवाले, आनन्द करनेवाले, आनन्दरूप, मानी व नरकासुर को नाशनेवाले, विद्या के पढ़नेवाले, पृथ्वी में सोनेवाले व सुदामा के मित्र व सखारूप ॥ ८० ॥ खण्डरूप, कलाओं से रहित, विद्यावान्, शोभित व कलाओं के निधिरूप, विशाल

से शोभित व शोभावान् तथा माता, पिताको छुडानेवाले ॥ ८१ ॥ रुक्मिणी जी में स्मरण करनेवाले, रमणीय व यमुनाजी के पति तथा शंखदैत्यको नाशने-
वाले, पांचजन्यरूप, महापद्मानिधिरूप व बहुत नायकों के स्वामी ॥ ८२ ॥ ध्रुव दैत्य को मारनेवाले, निकुंभ के नाशक, कामदेव को नाश करनेवाले, रतिप्रिय,
प्रद्युम्नरूप, अनिरुद्धस्वरूप, देवनाश्रों के स्वामी अर्जुनरूप ॥ ८३ ॥ फाल्गुन, गुडाकेश, सब्यसाची व धनंजयरूप, किरीटमाली, धनुष को हाथ में लिये व धनुष
विषा में चतुर ॥ ८४ ॥ शिखंडीरूप, सात्यकिस्वरूप, सेवा के योग्य, भयंकररूप व भयंकर पराक्रमवाले, पांचालरूप, भयंकर क्रोधवाले, सौमद्रूप व द्रौपदी के

लीशालीच मातृपितृविमोक्षकः ॥ ८१ ॥ रुक्मिणीरमणोरम्यः कालिन्दीपतिशङ्कहा ॥ पाञ्चजन्योमहापद्मो बहुना
यकनायकः ॥ ८२ ॥ ध्रुवमारोनिकुम्भघ्नः स्मरान्तकरतिप्रियः ॥ प्रद्युम्नश्चानिरुद्धश्च सात्वताम्पतिरर्जुनः ॥ ८३ ॥
फाल्गुनश्चगुडाकेशः सब्यसाचीधनञ्जयः ॥ किरीटमालीधनुष्पाणिर्धनुर्वेदविशारदः ॥ ८४ ॥ शिखण्डीसात्यकिः
सेव्यो भीमोभीमपराक्रमः ॥ पाञ्चालोभीममन्युश्च सौमद्रोद्रौपदीपतिः ॥ ८५ ॥ युधिष्ठिरोधर्मराजः सत्यवादीशुचित्र
तः ॥ नकुलःसहदेवश्च कर्णोदुर्योधनोघृणा ॥ ८६ ॥ गाङ्गेयश्चगदापाणिर्भीष्मोभागीरथीसुतः ॥ प्रज्ञाचक्षुर्धृतराष्ट्रो भा
रद्वाजोऽथगौतमः ॥ ८७ ॥ अश्वत्थामाविकर्णश्च जङ्गयुद्धविशारदः ॥ सीमन्तकिर्गदीगाल्वो विश्वामित्रोदुरासदः ॥
८८ ॥ दुर्वासोदुर्विनीतश्च मार्कण्डेयोमहामुनिः ॥ लोमशोनिर्मलोलोमी दीर्घायुश्चचिरोचिरी ॥ ८९ ॥ पुनर्जोऽव्यमृतो
मावीभूतोभव्योभविष्यता ॥ त्रिकालज्ञस्त्रिलिङ्गश्च त्रिनेत्रस्त्रिपदीपतिः ॥ ९० ॥ यादवोऽयाज्ञवल्क्यश्च यदुवंशविचर्द्धनः ॥

पति ॥ ८५ ॥ युधिष्ठिररूप, धर्मराजस्वरूप, सत्य बोलनेवाले, पवित्र नियमवाले, नकुलरूप, सहदेवस्वरूप, कर्णरूप, दुर्योधनरूप, दयावान् ॥ ८६ ॥ गंगाजी के
पुत्र, गदा को हाथ में लिये, भीष्मरूप, भागीरथीजीके पुत्र, बुद्धिरूपी नेत्रवाले, धृतराष्ट्रस्वरूप, भारद्वाजरूप व गौतमस्वरूप, विकर्णरूप,
जह्नुस्वरूप व युद्धमें चतुर, सीमन्तकिरूप, गदाको धारनेवाले, गाल्वरूप, विश्वामित्रस्वरूप, दुरासद ॥ ८८ ॥ दुर्वासारूप, दुर्विनीत, मार्कण्डेयरूप, महामुनि, लोमशस्व-
रूप, निर्मल, लोमोवाले, दीर्घआयुर्बलवाले, चिर व अचिरवाले ॥ ८९ ॥ फिर जीनेवाले, अमृतस्वरूप, होनेवाले, भूतरूप, कल्याणरूप व भविष्य समेत तीनों

काल के जानेवाले, तीन लिङ्गोंवाले, तीननेत्रोंवाले, तीनचरणोंवाले व रत्ना करनेवाले ॥ ६० ॥ यदुवंश में उत्पन्न, याज्ञवल्क्यस्वरूप, यदुवंश को बढ़ाने वाले, शल्य से क्रीडा करनेवाले, क्रीडारहित, याद्यों के विनाशक, कलिस्वरूप ॥ ६१ ॥ दया समेत व दुष्टहृदयवाले के द्रोही, भागरहित व उत्तम भाग के भागी समुद्ररूप, पृथ्वीरूप, नीलवर्णवाले व पर्वत पै निवासकरनेवाले ॥ ६२ ॥ एक रंगवाले, वर्णरहित व सब वर्णों से बाहर चलनेवाले, यज्ञकी निन्दा करनेवाले, वेदनिन्दक, वेद से बाहर, बलभद्ररूप, बलिस्वरूप ॥ ६३ ॥ बौद्धरूप, बाधाकरनेवाले, बाधी, जगदीश व संसार के स्वामी, भक्तिरूप, भगवान् के सम्बन्धी, अंशवाले, विशेषकर भक्त व ऐश्वर्यवानों को प्रिय ॥ ६४ ॥ तीनग्रामरूप, नववनस्वरूप व गुप्त उपनिषदों से आसनवाले, शालिग्राम शिला से युक्त, वि-

शल्यक्रीडीविक्रीडश्च यादवान्तकरःकलिः ॥ ९१ ॥ सद्योहृदयोदग्रद्रोहदायःसुदायमाक् ॥ महोदधिर्महीपृष्ठो नीलः
पर्वतवासकृत् ॥ ९२ ॥ एकवर्णोविवर्णश्च सर्ववर्णवहिश्ररः॥यज्ञनिन्दोवेदनिन्दो वेदबाह्योबलोबलिः ॥ ९३ ॥ बौद्धश्चवा
धकोबाधी जगन्नाथोजगत्पतिः ॥ भक्तिर्भागवतोभागी विभक्तोभगवत्प्रियः ॥ ९४ ॥ त्रिग्रामश्चनवारण्यो गुह्योपनि
षदासनः ॥ शालिग्रामशिलायुक्तो विशालोगण्डकाश्रमः ॥ ९५ ॥ श्रुतदेवःश्रुतःश्रावी श्रुतबोधःश्रुतश्रवाः ॥ कलिकःका
लैकलःकल्को दुष्टम्लेच्छविनाशकृत् ॥ ९६ ॥ कुङ्कुमीधवलधीरः क्षमाकरवृषाकपिः ॥ किङ्करःकिन्नरःकारवः के
कीर्तिकेपुरुषाधिपः ॥ ९७ ॥ एकरोमाविरोमाच बहुरोमाबृहत्कविः ॥ वज्रप्राणहरोवज्री वृत्रहावासवानुजः ॥ ९८ ॥ बहु
तीर्थकरोतीर्थः सर्वतीर्थजनेश्वरः ॥ व्यतीपातःप्रयागश्च दानवृद्धिकरःशुभः ॥ ९९ ॥ असंख्येयोप्रमेयश्च संख्याकारो

शाल व गंडकी नदी में आश्रमवाले ॥ ९५ ॥ असिद्ध देवता, सुनेहुये व सुनानेवाले, शाल के बोधवाले, सुनेहुये यशवाले, कलिकस्वरूप, काल के विनाशक, कल्करूप व दुष्ट म्लेच्छों के नाश करनेवाले ॥ ९६ ॥ कुंकुम रंगवाले श्वेत, बुद्धिदायक, क्षमा करनेवाले व कामनाओं को देनेवाले तथा पातकों को नाशनेवाले, किंकर, किन्नररूप, करबसंबन्धी व मयूर वचनवाले तथा किपुरुषों के स्वामी ॥ ९७ ॥ एकरोमावाले, रोमरहित, बहुत रोमोवाले, बड़ेभारी कवि, वज्र से प्राणों को हरनेवाले, वज्र को धारनेवाले, वृत्रासुरविनाशक, इन्द्रानुज ॥ ९८ ॥ बहुत तीर्थों का करनेवाले, तीर्थरहित व सब तीर्थों तथा मनुष्यों के स्वामी, व्यतीपातयोगस्वरूप, प्रयागतीर्थरूप,

दानकी वृद्धि करनेवाले, शुभ ॥ ६६ ॥ संख्या से रहित, अप्रमाण, संख्या करनेवाले व संख्याविहीन, मिहिर (सूर्य) स्वरूप, तारनेवाले, उर्ध्वकारस्वरूप, ब-
लिरूप, चन्द्रस्वरूप, अमृतकी खानि ॥ २०० ॥ किंवर्ण, कीदृश, किंचितस्वरूप, किमाश्रय, 'लोकसे रहित, आकारहीन, बहुत आकारवाले व एकही
करनेवाले ॥ १ ॥ नाती के पुत्ररूप, पौत्रस्वरूप, नातीरूप, वंश को धारनेवाले, न धारनेवाले, नम्रभूत, दयावान्, सब सिद्धियों के देनेवाले, मणिस्वरूप ॥ २ ॥
आधारभूत, धारनेवाले, पृथ्वी के पुत्र, सुसंगलरूप, मंगलमय, मंगल आकारवाले, मंगलरूप व सर्वमंगलस्वरूप ॥ ३ ॥ अतुल, तेजवाले विष्णुजी के इस

विसंख्यकः ॥ मिहिरस्तरकस्तारो बलिश्चन्द्रः सुधाकरः ॥ २०० ॥ किंवर्णः कीदृशः किञ्चित् किंस्वभावः किमाश्रयः ॥
निर्लोकश्च निराकारी बह्माकारैककारकः ॥ १ ॥ दौहित्रपुत्रकः पौत्रो नप्तावंशधरो धरः ॥ द्रवीभूतो दयालुश्च सर्वसिद्धि
प्रदो मणिः ॥ २ ॥ आधारभूतो धारश्च धराः सुनुः सुर्मङ्गलः ॥ मङ्गलो मङ्गलाकारो माङ्गल्यः सर्वमङ्गलः ॥ ३ ॥ नाम्नांसह
स्रकमिदं विष्णोरतुलतेजसः ॥ सर्वसिद्धिकरं काम्यं पुण्यं हरिहरैः कृतम् ॥ ४ ॥ यः पठेत् प्रातरुत्थाय शुचिभूत्वासमाहि
तः ॥ यश्चेदं शृणुयान्नित्यं नरो निश्चलमानसः ॥ ५ ॥ त्रिसन्ध्यं श्रद्धया युक्तः सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ मोदते पुत्रपौत्रैश्च दा
रभृत्यैश्च पूजितः ॥ ६ ॥ प्राप्यते विपुलां लक्ष्मीं मुच्यते सर्वसङ्कटात् ॥ सर्वान् कामानवाप्नोति लभते विपुलं यशः ॥ ७ ॥ वि
द्यावाञ्जायते विप्रः क्षत्रियो विजयि भवेत् ॥ वैश्यो धनसुलभाढ्यः शूद्रः सुखमवाप्नुयात् ॥ ८ ॥ एषो वै विवादे च व्यापा

पुण्यदायकः सहस्रनाम को हरिहरने किया है जो कि समस्त सिद्धियों को देनेवाला व मनोरथों का दायक है ॥ ४ ॥ प्रातःकाल उठकर सावधान होता हुआ जो
मनुष्य पवित्र होकर इसको धृता है व अचल मनवाला जो श्रद्धासंयुत मनुष्य इसको तीनों संध्याओं में मित्य सुनता है वह सब पापों से छूट जाता है और स्त्रियों
व संवकों से पूजित होकर पुत्रों व पौत्रों समेत आनन्द करता है ॥ ५ ॥ ६ ॥ और बहुत लक्ष्मी को प्राप्त होता है व सब दुःख से छूट जाता है व सब मनोरथों
को प्राप्त होता है और बहुत यश को पाता है ॥ ७ ॥ ब्राह्मण विद्यावान् होता है और क्षत्रिय विजयवान् होता है तथा वैश्य धनके उत्तम लोभ से संयुत होता है और

शूद्र सुखको पाता है ॥ ८ ॥ और भयंकर समर व विवाद तथा पराये अधीन व्यापार में विजयवान् मनुष्य सदैव सब कर्मों में जीत को प्राप्त होता है ॥ ९ ॥
और एकबार, दशबार, सौबार व हजार बार जो मनुष्य इसको नित्य पढ़ता है वह वैसेही फलको भोगता है ॥ १० ॥ पुत्रको चाहनेवाला नर पुत्रों को पाता है व धन को चाहनेवाला पुरुष अविनाशी धनको पाता है व मोक्ष को चाहनेवाला पुरुष मोक्ष को पाता है और धर्म को चाहनेवाला मनुष्य धर्मसंचय को प्राप्त होता है ॥ ११ ॥
और कन्या को चाहनेवाला पुरुष कन्या को प्राप्त होता है व ज्ञानी देवताओं को भी जो दुर्लभ है उस ज्ञान को पाता है और योगी योगों में युक्त होता है ॥ १२ ॥

रेपारतन्त्रके ॥ विजयीजयमामोति सर्वदासर्वकर्मसु ॥ ९ ॥ एकधादशधाचैव शतधाचसहस्रधा ॥ पठेच्चयोनरोनित्यं
तथैवफलमश्नुते ॥ १० ॥ पुत्रार्थीलभतेपुत्रान् धनार्थीधनमव्ययम् ॥ मोक्षार्थीलभतेमोक्षं धर्मार्थीधर्मसञ्चयम् ॥
११ ॥ कन्यार्थीलभतेकन्यां दुर्लभांयत्सुरपि ॥ ज्ञानंचलभतेज्ञानीयोगीयोगेषुयुज्यते ॥ १२ ॥ महोत्पातेषुघोरेषु दुर्भिक्षेरा
जविग्रहे ॥ महामारीसमुद्भूते दारिद्र्यदुःखपीडिते ॥ १३ ॥ अरण्येप्रान्तरेवापि दावाग्निपरिवारिते ॥ सिंहव्याघ्राभिभू
तेपि वनहस्तिसमाकुले ॥ १४ ॥ राज्ञाकुद्धेनचाज्ञप्तो दस्युभिस्सहसङ्गमे ॥ विद्युत्पातेषुघोरेषु स्मर्तव्यंहिसदानरैः ॥
१५ ॥ ग्रहपीडामुचोग्रासु वधवन्धगतोपिवा ॥ महार्णवेमहानद्यां पोतस्थेषुचनापदः ॥ १६ ॥ रोगग्रस्ताविविषांश्च ग
तकेशनखत्वचः ॥ पठनाच्छ्रवणाद्वापि दिव्यकायाभवन्तिवै ॥ १७ ॥ तुलसीवनसंस्थाने तडागेचसुरालये ॥ बद्रिका

बड़े भयंकर उत्पातों में व दुर्भिक्ष तथा राजाओं के वैर में और महामारी उत्पन्न होनेपर व दरिद्रता तथा दुःख से पीड़ित होनेपर ॥ १३ ॥ वनमें व दूरतक
शून्य मार्ग में व दावाग्नि से घिरेनेपर और सिंहों व व्याघ्रों से तिरस्कृत होनेपर व वन के हाथियों से आकुल होने में ॥ १४ ॥ और क्रोधित राजा से आज्ञा देनेपर
व चोरों से समागम होनेपर और भयंकर बिजली के गिरने में मनुष्यों को सदैव स्मरण करना चाहिये ॥ १५ ॥ ग्रहों की उग्र पीड़ाओं में व वध या बंधन में प्राप्त
होनेपर और महासमुद्र व महानदी में जहाज पै स्थित होनेपर विपत्तियां नहीं होती हैं ॥ १६ ॥ रोग से जैसे व रंगहीन तथा केश, नख व त्वचा से रहित पुरुष इसके

पढ़ने व सुनने से भी उत्तम शरीरवान् होता है ॥ १७ ॥ और तुलसीजी के वनस्थान में व तड़ाग तथा देवालय में व उत्तम बद्रिकाश्रम स्थान में और हरिद्वार में तपोवन में ॥ १८ ॥ व मधुवन, प्रयाग और द्वारका व महाकालवनमें सावधान होकर सब कामनाओंवाले व जितेन्द्रिय भक्तिमान् जो पुरुष नियम में प्राप्त होकर इसको सौबार पढ़ने हैं वे सिद्ध पुरुष ससार में सिद्धिदायक होकर पृथ्वीमें घूमते हैं ॥ १९ ॥ और आपसमें भेदके भेदोंका यह उत्तम मैत्रीकरण है और मोहनोंका मोहन है व पवित्र तथा पापनाशक है ॥ २० ॥ और बालकों के ग्रहोंके नाशनेकेलिये उत्तम शान्तिकारक है व दुष्ट आचरणों तथा पापों की बुद्धिका नाशक उत्तम है ॥ २१ ॥

श्रमे शुभे देशे गङ्गाद्वारे तपोवने ॥ १८ ॥ मधुवने प्रयागे च द्वारकायां समाहिताः ॥ महाकालवने चैव नियतास्सर्वकामुकाः ॥ १९ ॥ ये पठन्ति शतावर्तं भक्तिमन्तो जितेन्द्रियाः ॥ ते सिद्धाः सिद्धिदालोके विचरन्ति महीतले ॥ २० ॥ अन्योन्यभेदभेदानां मैत्रीकरणमुत्तमम् ॥ मोहनं मोहनानाञ्च पवित्रं पापनाशनम् ॥ २१ ॥ बालग्रहविनाशाय शान्तीकरणमुत्तमम् ॥ दुर्वृत्तानाञ्च पापानां बुद्धिनाशकरं परम् ॥ २२ ॥ पतङ्गमां च वन्द्या च स्त्राविणिका कबन्धिका ॥ अनायासे न सततं पुत्रमेव प्रसूयते ॥ २३ ॥ पयःपुष्कलदा गावो बहुधान्यफलाकृषिः ॥ स्वामिधर्मपराभृत्या नारी पतिव्रता भवेत् ॥ २४ ॥ अकालमृत्युनाशाय तथा दुःस्वप्नदर्शने ॥ शान्तिकर्मणि सर्वत्र स्मर्तव्यञ्च सदानरैः ॥ २५ ॥ यः पठेत्स्वन्वहं मर्त्यः शुचिमान् विष्णुसन्निधौ ॥ एकाकी च जिताहारो जितक्रोधो जितेन्द्रियः ॥ २६ ॥ गरुडारूढसम्पन्नः पीतवासाश्चतुर्भुजः ॥ वाञ्छितं प्राप्य लोके स्मिन् विष्णुलोकं स गच्छति ॥ २७ ॥ एकतस्स कलाविद्या एकतस्स कलन्तपः ॥

और पतित गर्भवाली, बन्ध्या व जिसके रक्त बहता हो व काकबन्ध्या बिन परिश्रमके सदैव पुत्रहीको पैदा करती है ॥ २३ ॥ गौवें बहुत दूध देनेवाली व खेती बहुत धान्य फलवाली और सेवक स्वामीके धर्ममें तत्पर व स्त्री पतिव्रता होती है ॥ २४ ॥ अकालमृत्युके नाश होनेके लिये व दुःस्वप्न के देखने में और शान्तिकर्म में सब कहीं मनुष्योंको इसका स्मरण करना चाहिये ॥ २५ ॥ आहारको जीते व क्रोधको जीते और जितेन्द्रिय जो पवित्र पुरुष अकेले विष्णुजी के समीप इस सहस्रनामको प्रतिदिन पढ़ता है ॥ २६ ॥ इस लोकमें मनोरथको पाकर गरुड़जी पै चढ़कर पीतवसन पहने व चार मुजाओंको धारण किये वह विष्णुजीके लोकको जाता है ॥ २७ ॥

एकश्रोर सब विद्या है व एकश्रोर सब तप है तथा एकश्रोर सब धर्म है और एकश्रोर विष्णुजी का नाम है ॥ २८ ॥ जो ब्राह्मण मुझको हजार नामों से स्तुति किया चाहै सो मैं एकही श्लोकसे स्तुति किया होता हूँ इसमें सन्देह नहीं है ॥ २९ ॥ हे सहस्रमुख ! आप हजार लोचनोवाले व हजार चरणोवाले तथा हजार मुखों से उज्ज्वल हो व अनन्त लोचनोवाले और हजार नामोवाले हो तुम्हारे लिये नमस्कार है ॥ ३० ॥ यह विष्णुसहस्रनाम प्राचीन व वेदों से संमित है सब मंगलों का मंगलमय यह स्तोत्र भक्तिमें पढ़ना चाहिये ॥ ३१ ॥ हे द्विज ! इस स्तोत्रसे युक्त देवताओंसे वहाँ वरदायकोंको भी वर देनेवाले भगवान् विष्णुजीने प्रत्यक्ष होकर कहा ॥ ३२ ॥

एकतस्सकलो धर्मो नाम विष्णोश्च एकतः ॥ २८ ॥ यो मां नामसहस्रेण स्तोतुमिच्छति वै द्विजः ॥ सो ह मे केन श्लोकेन स्तु त एव न संशयः ॥ २९ ॥ सहस्राक्षस्सहस्राङ्घ्रिस्सहस्रवदनो ज्ज्वलः ॥ सहस्रभुजतेनमः ॥ ३० ॥ विष्णोर्नामसहस्रन्तु पुराणं वेदसम्मितम् ॥ पठितव्यं सदा भक्त्या सर्वमङ्गलमङ्गलम् ॥ ३१ ॥ इति स्तवाभियुक्तानां देवानां तत्र वै द्विज ॥ प्रत्यक्षं प्राह भगवान् वरदो वरदानपि ॥ ३२ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ त्रियताम्भोः सुरास्सर्वे वरं मत्तो भिवाञ्छितम् ॥ तत्सर्वं सम्प्रदास्यामि नात्र कार्यं विचारणा ॥ ३३ ॥ देवा ऊचुः ॥ वरदोसि यदा विष्णो वरमेतं ददस्वनः ॥ अदितेर्गर्भं सम्भूतः शक्रस्याप्यनुजो भव ॥ ३४ ॥ इति सम्प्रार्थितो देवैर्ब्रह्मशक्रपुरोगमैः ॥ तथेत्युक्त्वा च भगवांस्तत्रैवा न्तरधीयत ॥ ३५ ॥ ततः कतिपयेकाले भगवान् दितिनन्दनः ॥ विष्णुरूपधरो नन्तो वामनत्वाच्च वामनः ॥ ३६ ॥ वल्लिर्वरोचनो व्यास वाजिमेधशतेन च ॥ ईजे द्विजवरश्रेष्ठ इन्द्रराज्यजिर्होषिष्या ॥ ३७ ॥ ऋत्विजं कश्यपं कृत्वा होतारं

श्रीभगवान् बोले कि हे सब देवताओ ! मुझसे चाहेहुये वरदान को मांगिये मैं उस सबको दूंगा इसमें विचार न करना चाहिये ॥ ३३ ॥ देवता बोले कि हे विष्णो ! यदि वरदायक हो तो हम लोगों को यह वर दीजिये कि अदितिजी के गर्भ में उत्पन्न होकर तुम इन्द्रके भी छोटे भाई होवो ॥ ३४ ॥ ब्रह्मा व इन्द्रादिक देवताओं से इस प्रकार प्रार्थना कियेहुये भगवान् वैसाही होगा यह कहकर वहीं अन्तर्धान होगये ॥ ३५ ॥ तदनन्तर कुछ समयमें विष्णुरूपधारी अनन्त भगवान् अदितिजी के पुत्र होकर वामन (लघुरूप) होने के कारण वामन नामक हुये ॥ ३६ ॥ हे द्विजोत्तम ! विरोचनके पुत्र बलिने इन्द्र का राज्य हरने की इच्छासे सौ अश्वमेध यज्ञोंसे पूजन

किया ॥ ३७ ॥ कश्यप को ऋत्विक् व भृगुश्रेष्ठ शुक्राचार्यजी को होता (ऋग्वेदी) करके उस यज्ञ में आपही पितामहजी ब्रह्मा हुये ॥ ३८ ॥ व हे मुनिश्रेष्ठ ! भगवान् अत्रिजी अध्वर्यु (यजुर्वेदी) हुये और नारदजी उद्गाता (सामवेदी) हुये व वसिष्ठजी सभासद हुये ॥ ३९ ॥ जो जिस स्थानमें किये गये थे वे सब मुनीश्वर वहां वहां बैठे व हे व्यासजी ! राजाओंमें श्रेष्ठ बलिजी वहा दीक्षित हुये ॥ ४० ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! इसप्रकार यज्ञों के वर्तमान होनेपर हवन किया जाय, भोजन किया जाय, दिया जाय व धारा जाय ॥ ४१ ॥ ये उत्तम वचन बहापर सुन पडते थे व हे द्विजोत्तम ! उस विचित्र समय में पवित्र मुसक्यानवाले वामनजी आये ॥ ४२ ॥ हे नृपेन्द्र ! मुलने

भृगुसत्तमम् ॥ ब्रह्मातत्राभवच्चैव स्वयमेव पितामहः ॥ ३८ ॥ अध्वर्युर्भगवानत्रिर्वभूवमुनिसत्तम ॥ उद्गातानारदश्चैव वसिष्ठश्च सभासदः ॥ ३९ ॥ येयत्र विहितास्सर्वे तत्र तत्र मुनीश्वराः ॥ बलिस्तत्राभवद्वास दीक्षितो राजसत्तमः ॥ ४० ॥ एवं प्रवर्तमानेषु यज्ञेषु मुनिसत्तम ॥ हूयतां भुज्यताश्चैव दीयतां धीयतान्तथा ॥ ४१ ॥ इति वाच इशुभास्तत्र श्रूयन्ते च द्विजोत्तम ॥ तस्मिन्काले मुचिन्नेतु वामनो गच्छु विस्मितः ॥ ४२ ॥ पठमानो मुखाग्रेण चतुरो वेदपांशुः ॥ द्वारेतिष्ठ तिराजेन्द्र वामनो द्विजसत्तमः ॥ ४३ ॥ प्रतीहारं तु व्यास सर्वं राज्ञे निवेदितम् ॥ उत्थाय च महाराजो बलिर्वरोचनस्त दा ॥ ४४ ॥ अध्वर्यमादाय तत्सर्वं तं जगाम सभासदः ॥ पूजयित्वा यथान्यायं वामनं लोकभावनम् ॥ ४५ ॥ आनीयित्वा सभामध्ये दत्त्वा मनपरिग्रहम् ॥ कुत आगमनं ब्रह्मन् किन्तो भीष्टं ददाम्यहम् ॥ ४६ ॥ वामन उवाच ॥ राजराजा खिला सृष्टिर्ब्रह्मणः परमेश्ठिनः ॥ ततो ह मागतो भूमन् यज्ञन्ते वै दिदृक्षया ॥ ४७ ॥ वरुणस्य च यज्ञो वै सुदृष्टो मे पुरा न घ ॥ यक्षा

चारों वेदों को पढ़ता हुआ वेदों का पाशगामी वामनरूप द्विजोत्तम द्वार पै स्थित है ॥ ४३ ॥ हे व्यासजी ! जब इसप्रकार द्वारपालने, सब वृत्तान्त को राजा से निवेदन किया तब विरोचनके पुत्र महाराज बलिजी उठकर ॥ ४४ ॥ अध्वर्य व उस सब वस्तुको लेकर सभासदों समेत उनके समीप गये व लोकोंको उत्पन्न करनेवाले वामनजी को यथायोग्य पूजकर ॥ ४५ ॥ सभा के बीचमें आनकर व आसन को देकर बलि बोले कि हे ब्रह्मन् ! कहाँसे तुम्हारा आगमन हुआ और तुमको क्या प्रिय वस्तु देऊं ॥ ४६ ॥ वामनजी बोले कि हे राजराज ! परमेशी ब्रह्माजीकी सब सृष्टि है उसी कारण हे भूमन् ! तुम्हारे यज्ञके देखने की इच्छासे मैं आया हूँ ॥ ४७ ॥ हे अनघ ! पुरातन

समय मैंने वरुण के यज्ञको भलीभांति देखा है और वैसेही यज्ञोंके स्वामी कुबेरजीके यज्ञको मैंने देखा है ॥ ४८ ॥ और राजर्षियों के यज्ञोंको मैंने देखा है और वे बड़े नियमवान् थे परन्तु हे महाराज ! जैसे इस तुम्हारे यज्ञको मैंने देखा है ॥ ४९ ॥ हे राजराजेन्द्र ! ऐसा यज्ञ न हुआ है न होगा इसलिये हे अनघ, राजन् ! मांगने के लिये मैं यहा आया हूँ ॥ ५० ॥ बलि बोले कि हे द्विजोत्तम ! तुम मांगो तुम्हारा क्या मनोरथ है उसको मैं देऊँ वामनजी बोले कि हे राजराजेन्द्र ! यदि तुमको रुचता हो तो हे नृपोत्तम ! बसनेके लिये आज मुझको तीन पग पृथ्वीको दीजिये बलिबोले कि हे विप्रजी ! तुमने यह थोड़ा क्या मांगा मुझको नहीं अच्छा लगा ॥ ५१ ॥ ५२ ॥

धिप्रस्यचतथा यज्ञश्च दृष्टवानहम् ॥ ४८ ॥ राजर्षिणाञ्च मे यज्ञा दृष्टास्तेति महाव्रताः ॥ यादृशोयं महाराज यज्ञस्ते दृष्टवानहम् ॥ ४९ ॥ ईदृशो राजराजेन्द्र नभूतो न भविष्यति ॥ तस्मादिहागतो राजन् याचनार्थं त्वथानघ ॥ ५० ॥ बलिरुवाच ॥ याचस्व त्वं द्विजश्रेष्ठ किन्ते भीष्टं ददाम्यहम् ॥ वामन उवाच ॥ देहि मे राजराजेन्द्र पादानि त्रीणि मे दिनीम् ॥ ५१ ॥ वासार्थं रोचते तेद्य यदि पार्थिव सत्तम ॥ बलिरुवाच ॥ किमिदं याचितं विप्र स्वल्पन्ते नहि मे परम् ॥ ५२ ॥ रत्नानि विविधानित्वं गजवाजिरथान् भुवम् ॥ दासदासीर्वरारोहाः स्त्रीर्यानि निवसूनि च ॥ ५३ ॥ द्रव्याणि वाससीशुक्ले याचस्व त्वं द्विजोत्तम ॥ पात्रोसि कृतकृत्योसि वेदवेदाङ्गपारग ॥ ५४ ॥ वामन उवाच ॥ न मे किञ्चित् स्पृहाराजन् विद्यते भुवि मानद ॥ देहित्वं त्रिपदाम्भूमिं यदि श्रद्धास्ति ते धुना ॥ ५५ ॥ गृहाण त्रिपदाम्भूमिं वासस्यार्थं हि मानद ॥ इत्युक्त्वा वै स राजर्षिर्ददौ भूमिं द्विजाय वै ॥ ५६ ॥ वारितोयं तदा व्यास भृगुणा देव नोदितः ॥ दत्तमात्रे जले सद्यो ब्रह्माण्डमाक्रमद्धरिः ॥ ५७ ॥

तुम अपनेको प्रकारके गन्ध, दार्थी, घोड़े, रथ व पृथ्वी, दास, दासी और उत्तम कटिवाली स्त्री, सवारी व धनोको मांगो ॥ ५३ ॥ हे वेदवेदांगपारग, द्विजोत्तम ! द्रव्य व रत्न व सनोको तुम मुझसे मांगो क्योंकि पात्रहो और कृतकृत्यहो ॥ ५४ ॥ वामनजी बोले कि हे मानद, राजन् ! पृथ्वी मैं मेरी कुछ इच्छा नहीं है यदि इस समय तुम्हारे श्रद्धा होवे तो तीन पग पृथ्वीको दीजिये ॥ ५५ ॥ हे मानद ! निवास के लिये तीन पग पृथ्वीको लीजिये यह कहकर उन राजर्षि बलिने ब्राह्मण के लिये पृथ्वीको दिया ॥ ५६ ॥ तब हे व्यासजी ! शुक्राचार्यजीने देवसे प्रेरित इन बलि को मना किया और जल देनेही पर उसीक्षण विष्णुजीने ब्रह्माण्डका आक्रमण किया ॥ ५७ ॥

हे व्यासजी ! पर्वत, वन व काननों समेत यह पृथ्वी उससमय ढाईपग हुई और बलिने शरीर को अर्पण किया ॥ ५८ ॥ वामनरूपधारी विष्णुजीने सब असुर-
गणोंको जीतकर व इन्द्रको राज्यदेकर पश्चात् कुमुदतीपुरी में प्राप्त हुए ॥ ५९ ॥ हे व्यासजी ! ऋद्धि सिद्धिदायक उस पवित्र स्थान पर अपना से उपजेहुये, तीर्थको
करके सुरश्रेष्ठ वामनजी ने वहीं निवास किया ॥ ६० ॥ वामनजी से कियाहुआ तीर्थ वामनकुण्ड कहा जाता है भादों मही ने में शुक्लपक्षमें श्रवण नक्षत्र से संयुत
द्वादशी तिथि ॥ ६१ ॥ कोटि हत्याओं को नाशनेवाली वामनद्वादशी कह गिई है इस तीर्थमें नहाकर मनुष्य एकदशी जतकर ॥ ६२ ॥ व रात्रि में जागरणकर ब्रह्म

सार्द्धपादद्वयंजाता सशैलवनकानना ॥ वसुधेयंतदाव्यास बलिनाचापितंवपुः ॥ ५८ ॥ जित्वासुरगणान्सर्वान् राज्यं द-
त्त्वाशतक्रतोः ॥ पश्चात्कुमुदतीं प्राप्नो विष्णुर्वा मनरूपधृक् ॥ ५९ ॥ ऋद्धिसिद्धिप्रदेपुण्ये तीर्थकृत्वा त्समम्भवम् ॥ नि-
वासमकरोद्व्यास तत्रैवसुरसत्तमः ॥ ६० ॥ वामनेन कृतं तीर्थं वामनं कुण्डमुच्यते ॥ भाद्रमासि सिते पक्षे द्वादशी श्रवणा-
न्विता ॥ ६१ ॥ वामनद्वादशी प्रोक्ता हत्याकोटिविनाशिनी ॥ अस्मिन्तीर्थे न रस्नात्वा उपोष्यैकादशीं तिथिम् ॥
६२ ॥ रात्रौ जागरणं कृत्वा ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥ द्वादश्यां विविशेषेण महादानानि कुर्वते ॥ ६३ ॥ न तेषां दुर्लभं किञ्चित्
त्रिषु लोकेषु विद्यते ॥ व्यासैव वामनं तीर्थं पुरा प्रोक्तं महर्षिणा ॥ ६४ ॥ सर्वपापहरं पुण्यं सर्वकामवरप्रदम् ॥ ६५ ॥ इति
श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे वामनकुण्डमहिमावर्णननाम चतुस्सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७४ ॥ *

सनत्कुमार उवाच ॥ अतः परं प्रवक्ष्यामि वीरेश्वरमथो शृणु ॥ तस्मिन्तीर्थे न रस्नात्वा वीरलोकमवाप्नुयात् ॥ १ ॥
होनेके लिये समर्थ होता है जो मनुष्य द्वादशी तिथिमें विशेषकर महादानोंको करता है ॥ ६३ ॥ तीर्थो लोकों में उसको कुल दुर्लभ नहीं होता है हे व्यासजी ! पुरातन
समय इसप्रकार व्यासजीने वामनतीर्थ को कहा है ॥ ६४ ॥ जोकि सब पापोंको हरनेवाला व पवित्र तथा सब कामनाओं के वरको देनेवाला है ॥ ६५ ॥ इति श्रीस्कन्दपु-
राणेऽवन्तीखण्डे देवीदयालुमिश्राविरचितायां भाटीकायां चतुःसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७४ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥
दो० । वक्षो भैरवाष्टक यथा तीरथ भैरव नाम । पचहचरि आध्यायमें सोई चरित जलाम ॥ सनत्कुमारजी बोले कि अब इसके उपरान्त वीरेश्वर तीर्थको कहूंगा उस

को सुनिये कि उस तीर्थ में नहार्कर मनुष्य दीरलोकको प्राप्त होता है ॥ १ ॥ और सब कामनाओं का वरदायक नागों का उत्तम तीर्थ है व जो कालभैरवजी कहेगये हैं उनका उत्तमतीर्थ कहागया है ॥ २ ॥ कि जिसके दर्शनही से मनुष्य सब दुःखोंसे छूटजाता है व्यासजी बोले कि हे मुनिवर ! श्रेष्ठ कालभैरव संज्ञक तीर्थ किस समय प्रसिद्ध हुआ है इसको विस्तार से कहिये सनत्कुमारजी बोले कि पुरातन समय यह भैरव योगी योगिनियों को भयकारक था ॥ ३ ॥ ४ ॥ उस समय कालचक्र से की हुई कृत्या व जो योगिनीगण थे उनके मध्य में काली ऐसी प्रसिद्ध योगिनी अति उत्तम थी ॥ ५ ॥ उससे यह भैरव उस समय नित्य पुत्रकी नाई पा-

नागानांप्रवरन्तीर्थं सर्वकामवरप्रदम् ॥ कालभैरवआख्यातस्तस्यतीर्थपरंस्मृतम् ॥ २ ॥ यस्यदर्शनमात्रेण सर्वदुःखातिगोभवेत् ॥ व्यासउवाच ॥ कस्मिन्कालेहिविख्यातं कालभैरवसंज्ञितम् ॥ ३ ॥ तीर्थमुनिवरश्रेष्ठमेतद्विस्तरतोवद ॥ सनत्कुमारउवाच ॥ पुराणैर्भैरवयोगी योगिनीत्रासकारकः ॥ ४ ॥ कालचक्रकृताकृत्या योगिनीनांगणास्तादा ॥ तासांकालीतिविख्याता योगिनीपरमोत्तमा ॥ ५ ॥ तयायंपालितो नित्यं पुत्रवद्भैरवस्तदा ॥ तेनैतेवैविनिर्धूतादोषोत्पाताश्चसत्तम ॥ ६ ॥ त्रिविधाभुवि विख्यातास्सर्वविघ्नकराः पराः ॥ कालकृत्याखिलातेन अंशितापरमात्मना ॥ ७ ॥ महामारीपूतनाच कृत्याशकुनिरेवच ॥ कोटरीतामसीमाया एतेमातृगणास्स्मृताः ॥ ८ ॥ दुष्टदोषवहादुष्टास्सर्वप्राणिभयङ्कराः ॥ वशीचक्रेसधर्मात्मा सर्वकामवरप्रदः ॥ ९ ॥ क्षिप्रातीरेस्थितो नित्यं कूलेचोत्तरतश्शुभे ॥ आखरस्यपरेपूर्वे सोपतिष्ठतिसर्वदा ॥ १० ॥ आषाढस्यसितेपक्षे रविवारेसमाहिताः ॥ नवमीञ्चाष्टमीप्राप्य चतुर्दश्यांविशेषतः ॥ ११ ॥

लित रहताथा हे सत्तम ! उसी से ये दोषों के उत्पात नष्ट कियेजाते थे ॥ ६ ॥ पृथ्वी में सब विघ्नों को करनेवाले श्रेष्ठ तीनप्रकार के प्रसिद्ध हैं उस परमात्मा से सबकाल कृत्या अष्ट की गई ॥ ७ ॥ महामारी, पूतना, कृत्या, शकुनि, कोटरी, तामसी, माया ये मातृगण कहेहैं ॥ ८ ॥ जो कि दुष्टदोषों को प्राप्त करनेवाले व दुष्ट तथा सब प्राणियों को भयंकर हैं सब कामनाओं के वरदायक उस धर्मात्मा ने इन सबों को वशकिया ॥ ९ ॥ और क्षिप्रातरी के उत्तर ओर उत्तम किनारे पै वे नित्य स्थित हैं और आखर स्थान के पश्चिम व पूर्व में भी वे भैरवजी सदैव दिकेरहतेहैं ॥ १० ॥ आषाढ के शुक्लपक्ष में रविवार को नवमी व अष्टमी तिथिको पाकर

सावधान होतेहुये जो कोई निरचल मनवाले मनुष्य पूजन करते हैं वे अपने मनोरथ को प्राप्त होते हैं और विवाह, पुत्र जन्म व उत्तम मंगल कार्य में ॥ ११ ॥ १२ ॥ पत्र, पुष्प, अर्घ, गंध व अनेक भाति के नैवेद्यों से तथा सुगन्ध संयुत तांबूलों से वरदरूपी भैरवजी को पूजे ॥ १३ ॥ और ब्राह्मणों के भोजनों से तथा हवनो से सदैव व्यापक भैरवजी को तृप्त करे तदनन्तर परम कल्याण व परम मंगल को प्राप्त होवै है ॥ १४ ॥ और उन देवकों प्रणामकर व स्तुतिकर सब कामनाओं की अर्थ सिद्धिके लिये होता है ॥ १५ ॥ सब पातकों के हरनेवाले व धूर्तों तथा दुष्टोंके नाशक व उत्तम आचार व चरित पै चलनेवाले तथा मुंडों की माला को धारण कर-

पूजांकुर्वन्ति ये केचिन्नरानिश्चलमानसाः ॥ विवाहेपुत्रजनने माङ्गल्येचशुभे तथा ॥ १२ ॥ पत्रपुष्पाधिगन्धैश्च नैवेद्यैर्विविधैस्तथा ॥ ताम्बूलैर्वासुगन्धाढ्यैः पूजयेद्भद्ररूपिणम् ॥ १३ ॥ विप्राणां भोजनैर्हर्मैस्तर्पयेत्सततं विभुम् ॥ ततः परमकल्याणमियात्परममङ्गलम् ॥ १४ ॥ नत्वास्तुत्वाचतन्देवं सर्वकामार्थसिद्धये ॥ १५ ॥ सकलकलुषहारी धूर्तदुष्टान्तकारी सुचरचरितचारी मुण्डमालाप्रधारी ॥ करकलितकपाली कुण्डलीदण्डपाणिस्समभवत्सुखकारी भैरवस्त्रासहारी ॥ १६ ॥ विविधरासविलासविलासितं नवधूपप्रविधूतपराक्रमम् ॥ मदविधूणितयुग्मविलोचनं भयहरंसततं भवजंस्मरे ॥ १७ ॥ अमलकमलनेत्रं चारुचन्द्रावतंसं सकलगुणवरिष्ठं कामिनीकामरूपम् ॥ परिधुतपरितापं डाकिनीनाशहेतुं भजजनशिवरूपं भैरवंभूतनाथम् ॥ १८ ॥ सकलवलविघातं क्षेत्रपालैकपालं विकटकाटिकरालं साह

नेवाले व जिनके हाथ में कपाल शोभित है और कुण्डलों को धारण किये व दण्डको हाथ में लिये हैं वे भयहारक भैरवजी सुखकारक होवें ॥ १६ ॥ अनेक भाति के रास व विलास से शोभित और नवीन नारियों से कंपित पराक्रमवाले तथा मदसे घूमतेहुये युगल लोचनोवाले, भयहारक, शिवपुत्र (भैरव) जी को मैं सदैव स्मरण करता हूँ ॥ १७ ॥ निर्मल कमल के नाई नेत्रवाले व सुन्दर चन्द्रमारूपी अवतंस (शिरोभूषण) को धारण किये, सबगुणों से श्रेष्ठ व कामिनियों के लिये कामदेवरूप व सब ओर से सन्ताप को नाशकरनेवाले, और डाकिनियों के नाश के कारण व सेवकों के लिये कल्याणरूप भूतनाथ भैरवजी को भजिये ॥ १८ ॥

सब बलों को नष्ट करनेवाले व क्षेत्रपाल के एकही पालक तथा विकट कटि से करालरूप, अट्टहास समेत विशालरूप व हाथ में तलवार को लिये तथा साँपों का यज्ञोपवीत पहनेहुये जनके लिये शिवरूप भूतनाथ भैरवजी को भजिये ॥ १९ ॥ संसार के भयको हरनेवाले, योगिनियों को भयकारक, सब सुराणों के स्वामी व सुन्दर चन्द्रमा, सूर्य नेत्रवाले, मस्तकपै मुकुट को रचेहुये व विशाल मोतियों की मालको पहने जनके लिये कल्याणरूप भूतनाथ भैरवजी को भजिये ॥ २० ॥ चारमुजाओं को धारे व शंख तथा गदा इत्यादिक शस्त्रों को धारण किये, पीतवसनवाले तथा सघन मेघों के समान सुन्दर, श्रीवत्स चिह्नवाले, जिनके गल में कौरुभ

ह्रासं विशालम् ॥ करगतकरवालं नागयज्ञोपवीतं भजजनशिवरूपं भैरवं भूतनाथम् ॥ १९ ॥ भवमयपरिहारं योगिनी
त्रासकारं सकलसुरगणेशं चारुचन्द्रार्कनेत्रम् ॥ मुकुटरचितमालं मुक्तमालं विशालं भजजनशिवरूपं भैरवं भूतनाथ
म् ॥ २० ॥ चतुर्भुजं शङ्खगदाधरायुधं पीताम्बरसान्द्रपयोदसौभगम् ॥ श्रीवत्सलक्ष्मणलेशोभिकौस्तुभं शिवप्रदं शङ्कर
रत्नकम्भजे ॥ २१ ॥ लोकाभिरामं वचनाभिरामं प्रियाभिरामं यशसाभिरामम् ॥ कीर्त्याभिरामं तपसाभिरामं तम्भूत
नाथं शरणं प्रपद्ये ॥ २२ ॥ आद्यं ब्रह्मसनातनं शुचिपरं सिद्धिप्रदं कामदं सेव्यं भक्तिसमन्वितं सुरवरं सेव्यं सुभक्त्या सदा ॥
योग्यं योगविचारितं युगधरं योग्याननं योगिनं वन्दे हंसकलङ्करहितं सत्सेवितम् भैरवम् ॥ २३ ॥ भैरवाष्टकमिदं पुर्यं
प्रातः काले पठेन्नरः ॥ दुःस्वप्ननाशनं तस्य वाञ्छितार्थफलं भवेत् ॥ २४ ॥ राजद्वारे विवादे च सङ्ग्रामे सङ्कटे तथा ॥ राजा

शोभित है उन कल्याण दायक व शंकरजी को रत्ना करनेवाले भैरवजी की मैं भजता हूँ ॥ २१ ॥ देखने में सुन्दर व वचन से मनोहर तथा प्रियसे सुन्दर व यश
से मनोहर, कीर्ति से सुन्दर, तपस्या से मनोहर उन भूतनाथजी के शरण में मैं प्राप्त होता हूँ ॥ २२ ॥ आदिमें होनेवाले सनातन ब्रह्म, पवित्रता में तत्पर, सिद्धि
दायक, कामनाओं को देनेवाले, सेवा के योग्य व भक्ति से संयुत, सुरश्रेष्ठ तथा सदैव उत्तम भक्ति से सेवने योग्य व यथार्थ योग को विचारनेवाले, युगधारी व
योग्य मुखवाले, कलाओं समेत व कलंकरहित, उत्तम जनों से सेवित भैरवयोगी को मैं प्रणाम करता हूँ ॥ २३ ॥ इस पवित्र भैरवाष्टक को जो मनुष्य प्रातः काल पुनः

आगे कहूंगा ॥ ३ ॥ कि जिसके सुननेही से मनुष्य शाप से छूटजाता है हे परंतप ! पुरातन समय माता के शाप से जो नागभ्रष्टहुये ॥ ४ ॥ जनमेजय से जलायेहुये वे आस्तिक से छुड़ायेगये उस समय उन्होंने ने जरत्कारके पुत्र द्विजोत्तम आस्तिकजी से पूछा ॥ ५ ॥ नाग बोले कि हे ब्रह्मन् ! सुराज के समीप जनमेजय के इस यज्ञमें हमलोग तुम्हारी प्रसन्नतासे अग्निसे छुड़ायेगये ॥ ६ ॥ हे परंतप, ब्रह्मन् ! जब जिस स्थान में अभय निवासहोत्रे हमारे निवास के लिये ऐश्वर्य को चाहते हुये तुम वहां निवास बतलावो ॥ ७ ॥ आस्तिकजी बोले कि हे मातुलोमें श्रेष्ठ ! तुम लोगोंका जो उत्तम हित है उसको सुनिये कि मनोहर महाकाल वनमें जो कुशस्थली

वेन्नरः ॥ पुरानागाः परिभ्रष्टा मातुशपापात्परन्तप ॥ ४ ॥ जनमेजयेन दग्धास्ते मोक्षिता ह्यास्तिकेन च ॥ पप्रच्छुस्ते द्विज श्रेष्ठ जरत्कार्वात्मजंतदा ॥ ५ ॥ नागा ऊचुः ॥ हे ब्रह्मन् त्वत्प्रसादेन मोक्षिता हव्यवाहनात् ॥ जनमेजयस्य यज्ञेस्मिन्देव राजस्य सन्निधौ ॥ ६ ॥ अस्माकं भूतिमन्विच्छन् वासस्यार्थे परन्तप ॥ यस्मिन् स्थाने यदा ब्रह्मन् निवासो जायते भयः ॥ ७ ॥ आस्तिक उवाच ॥ श्रूयतां मातुलश्रेष्ठा युष्माकं हितमुत्तमम् ॥ महाकाल वनरम्ये यावैकुशस्थली स्मृता ॥ ८ ॥ त स्याद्विदक्षिणे भागे पूर्वतीर्थसनातनम् ॥ नागालयः पुराप्रोक्तो यत्र सन्निहितो हरः ॥ ९ ॥ योगनिद्रां समासाद्य शीते ब्रह्म सनातनः ॥ बकदाल्भ्योऽक्रुषिस्तत्र तपस्तेषु सनातनम् ॥ १० ॥ लोमशश्च महातेजास्तत्रैव सतु तिष्ठति ॥ दीर्घायुस्त्वं समा पन्नो मार्कण्डेयो महासुनिः ॥ ११ ॥ कालचक्रप्रवर्ती च महाकालप्रतापनः ॥ कपिलः सिद्धिमापन्नो यत्र तर्थावरोत्तमे ॥ १२ ॥ हरिश्चन्द्रो विमुक्तो भूत्वा एडालालयगर्हणात् ॥ सप्तर्षिप्रवराह्यते निर्वाणपदवर्गताः ॥ १३ ॥ एतस्मात्तत्कार

पुरी कहीगई है ॥ ८ ॥ उसके दक्षिण भाग में पहले सनातन तीर्थहुआ है पुरातन समय वहा नागस्थान कहागया है जहां कि महादेवजी भलीभांति ठिके हैं ॥ ९ ॥ और वहीं पर सनातन ब्रह्म योगनिद्राको प्राप्तहोकर सोते हैं व व्रतको धारण किये बकदाल्भ्य ऋषिने वहां तपस्याकिया है ॥ १० ॥ और इसी भांति बड़े तेजस्वी वे लोमशजी वहां ठिके हैं व महासुनि मार्कण्डेयजी बड़े आयुर्वल को प्राप्तहुये हैं ॥ ११ ॥ व महाकालको सन्ताप करनेवाले व कालचक्र के प्रवर्तक कपिलदेव जो जिस उत्तमोत्तम तीर्थ में सिद्धिका प्राप्तहुये हैं ॥ १२ ॥ व जहांपर हरिश्चन्द्रजी निन्दित चाण्डाल के घरसे मुक्त हुये हैं और ये श्रेष्ठ सप्तर्षिलोग जहां मोक्ष

पृथ्वीको प्राप्तहुये हैं ॥ १३ ॥ इसीकारण हे नागो ! बर्हिपर विरामकिया जावै क्योंकि वहाँ पर माताके शाप से उपजाहुआ दोष तुम लोगों को नहीं पीड़ितकौगा ॥ १४ ॥
आस्तिक ऋषि के इस वचनको सुनकर उस समय वे नागोत्तम निवास के लिये गये ॥ १५ ॥ एलापन्न, मल, कर्कोटक, घनंजय व नागों में श्रेष्ठ वासु कि, तत्त्वक व नील ॥ १६ ॥ पद्मक और प्रसिद्ध अर्बुद बहुत दिनोंतक नियमोंवाले उनसबों ने यहाँ आकर अपने स्थानों को किया ॥ १७ ॥ हे सत्तम ! वहाँ पर उत्तम व मनोहर तीर्थहुये हैं और तीर्थभूत नवीनकुण्ड हुये हैं ॥ १८ ॥ जो कि विद्वानों से महापुण्यवायक व महापातकों के इनेवाले कहेजाते हैं और जहाँ पर सिद्ध,

एान्नागास्तत्रैवचविरम्यताम् ॥ मातुःशापोद्भवोदोषोऽप्युष्माकमैवबाधते ॥ १४ ॥ एतत्तुवचनं श्रुत्वा ऋषेरास्तिक
कस्यच ॥ आगच्छन्तुतदातेवै वासार्थं पन्नगोत्तमाः ॥ १५ ॥ एलापन्नो मलश्चैव कर्कोटकधनञ्जयौ ॥ वासुकिः पन्नगश्रेष्ठ
स्तक्षको नील एवच ॥ १६ ॥ पद्मकोर्बुदविख्यातो नागास्ते सर्व एव हि ॥ अत्रागत्य स्वस्थानानि चक्रुस्ते सुचिरव्रताः ॥
१७ ॥ तत्र रम्याणि तीर्थानि जाता निपरमाणि च ॥ नवानि च मुकुण्डानि तीर्थभूतानि सत्तम ॥ १८ ॥ महापुण्यप्रदान्या
हुर्महापापहराणि च ॥ यत्र सिद्धाश्च गन्धर्वा ऋषयः शंसितव्रताः ॥ १९ ॥ अप्सरोगणसङ्घश्च सेवितं च सदा वरैः ॥ यत्र शो
षो महानागः पुरा प्रोक्तो महर्षिभिः ॥ २० ॥ शेषशायी ह्ययं विष्णुर्भगवान् कमलेश्वरः ॥ तत्र सर्वाणि तीर्थानि तिष्ठन्ति
भुविसर्वदा ॥ २१ ॥ श्वेतद्वीपेति विख्याता माणिक्यकान्तमूर्धिका ॥ यत्र पुण्यानिष्ठानि पुष्पितानि च सर्वशः ॥ २२ ॥
हंसकारण्डकादि पिकको किल सारसाः ॥ मयूराणां गणास्तत्र नृत्यन्ति चरमन्ति च ॥ २३ ॥ निधिभिर्व्याप्तमखिलं

गंधर्व व प्रसंसित नियमोंवाले ऋषिलोक हैं ॥ १६ ॥ व जो तीर्थ सर्वैव अप्सराओं के गणों से सेवित हैं और जहाँ पर पहले महार्षियों से महानागशेषजी कहे
गये हैं ॥ २० ॥ व ये कमललोचन शेषशायी भगवान् विष्णुजी जहाँ पर हैं वहाँ सर्वैव सब तीर्थ पृथ्वी में स्थित हैं ॥ २१ ॥ मणियों से आक्रामित भूमिवाली श्वेत-
द्वीपा ऐसी पृथ्वी प्रसिद्ध है जहाँ सब और फूलेहुये पुण्यमय वृक्ष हैं ॥ २२ ॥ और वहाँपर हंस, कारण्डव, काकादि, पिक, कोकिल, सारस व मयूरों के गण नाचते व

रमण करते हैं ॥ २३ ॥ और जो सब स्थान निधियों से व्याप्त व कमलों की सुगन्ध से वासित तथा उत्तमता से किन्नरों के उच्चशब्द से संयुत है ॥ २४ ॥ व जहांपर संस्कार कियेहुई स्त्रियां मित्रगणों के साथ विहार करती हैं व सुन्दरी नागकन्याओं से जोवड़ा अद्भुतस्थान शोभित है ॥ २५ ॥ जिस तीर्थ में नहाकर मनुष्य वैकुण्ठनामक उत्तम स्थान को प्राप्त होता है व उसमें नित्य नहाकर मनुष्य श्रीमान् होता है अन्यथा नहीं होता था ॥ २६ ॥ इसप्रकार हे व्यासजी ! सब पापोंको हरनेवाला उत्तम स्थान है व यहीपर उत्तमतीर्थरूप बलिका अद्भुत आश्रम है ॥ २७ ॥ यहां स्नानादिक करना चाहिये जहां कि विष्णुजी स्थित हैं क्योंकि उसीक्षण मनुष्य सब

नीलोत्पलसुगन्धिना ॥ वासित्वागुनाद्युभ्रं किन्नरोच्चविनादितम् ॥ २४ ॥ यत्रवैसंस्कृतानार्यो विहरन्तिमुहृद्गणैः ॥
रम्याभिर्नागकन्याभिर्मण्डितम्परमाद्भुतम् ॥ २५ ॥ यत्रस्नात्वानरोयाति वैकुण्ठाख्यंचशोभनम् ॥ तत्रस्नात्वानरो
नित्यं श्रीमान्भवतिनान्यथा ॥ २६ ॥ एवंयामपरंस्थानं सर्वपापहरं परम् ॥ अत्रैवचपरंतीर्थं बलेराश्रममद्भुतम् ॥
२७ ॥ अत्रस्नानादिकंकार्यं यत्रसन्निहितोहरिः ॥ सर्वपापविशुद्धात्मानरोभवतितत्त्वणात् ॥ २८ ॥ कियत्प्रमाण
मात्राञ्च योददातिवसुन्धराम् ॥ तनुरुहाणियावन्ति तावन्तिकालसङ्ख्यया ॥ २९ ॥ असङ्ख्यालभतेवृद्धिं तस्यलो
कःसनातनः ॥ श्रावणेमासिशुक्लेच पञ्चम्यांसोमवासरे ॥ ३० ॥ नागानांपूजनंकार्यं श्राद्धंदर्शविधीयते ॥ अक्षयझायते
श्राद्धं वाञ्छितार्थोभवेत्ततः ॥ ३१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेनागतीर्थमहिमानामष्टमस्तितमोऽध्यायः ॥ ७६ ॥

पापों से शुद्ध चित्त होता है ॥ २८ ॥ और जो मनुष्य कुछ प्रमाणपर, पृथ्वीको देता है तो जितने रोम होते हैं उतनेही वर्षोंतक कालकी संख्यासे ॥ २९ ॥ वह असंख्य वृद्धि को प्राप्त होता है और उसको सनातन लोक होता है श्रावण के महीने में शुक्लपक्ष में पंचमी व सोमवार में ॥ ३० ॥ नागों का पूजन करना चाहिये और अभावस में श्राद्ध किया जाता है तो अक्षय श्राद्ध होता है व उससे चाहाहुआ प्रयोजन होता है ॥ ३१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषा टीकायांनागतीर्थमहिमावर्णननामष्टमस्तितमोऽध्यायः ॥ ७६ ॥

दो० । अहै अतुल माहात्म्य युत तीर्थ नृसिंहक नाम । सतहचरि अथायमें सोइ चरित सुख धाम ॥ सनत्कुमारजी बोले कि हे व्यासजी ! तीर्थों के मध्य में जो उत्तम तीर्थ है वह सब पापों का नाशक तीर्थ महात्मा नृसिंहजी का है ॥ १ ॥ जिस के दर्शनमात्र से मनुष्य सब पापों से छूटजाता है पुरातन समय हिरण्यक-शिपु दैत्यराज कहागया है ॥ २ ॥ उस दुष्टात्मा ने इस सब पृथ्वी को पाया है और दुष्टदैत्यसेनाओं से व्याप्त तथा भारसे आक्रामित तथा शोच से विकल ॥ ३ ॥ दुःखित पृथ्वी आंसुओं से संयुत सुखवाली गऊ होकर ब्रह्मा की शरण में गई भार से आक्रामित पृथ्वी को देखकर लोकों के पितामह ब्रह्माजी ॥ ४ ॥ उसके परिश्रम

सनत्कुमार उवाच ॥ भूयःशृणु परं व्यास तीर्थानां मुत्तमं च यत् ॥ तर्तीर्थं सर्वपापघ्नं नृसिंहस्य महात्मनः ॥ १ ॥ यस्य दर्शनमात्रेण सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ दैत्यराजः समाख्यातो हिरण्यकशिपुः पुरा ॥ २ ॥ तेन यं वसुधासर्वा संप्राप्ता च दुर्दान्तरात्मना ॥ दुष्टदैत्यबलैर्व्याप्ता भाराक्रान्ता शुचादिता ॥ ३ ॥ गौर्भूत्वा श्रमुर्लुखित्वा ब्रह्माणं शरणं ययौ ॥ भाराक्रान्तान्धरात्मना ॥ दुष्टदैत्यबलैर्व्याप्ता भाराक्रान्ता शुचादिता ॥ ४ ॥ उवाच श्लक्ष्णयावाचा तच्छ्रमं व्यपोहितुम् ॥ श्रूयतां भो वनेषु एये भवत्या उपकारकम् ॥ ५ ॥ वचोददामि ते तथ्यं देशकालोचितन्तथा ॥ पुरानेन तपश्चाणं दुष्करं सर्वदैहिनाम् ॥ ६ ॥ गायत्र्युपासनं तेन कृतञ्चावहितात्मना ॥ ब्रह्मणा च वरोदत्तः प्रीतियुक्तेन चेतसा ॥ ७ ॥ नदिवानतथारात्रौ नान्तरिक्षेन भृतले ॥ नातिशुष्केण चार्द्धेण न च शस्त्रास्त्रघातिकैः ॥ ८ ॥ मानवैः पक्षिसङ्घैश्च न मेमृत्युर्भवेदिति ॥ एकपाणितलाघातैः सामात्यबलवाहनम् ॥ ९ ॥ मारुतिष्यति यो वीरः समेमृत्युर्भविष्यति ॥ तथैत्युक्त्वा तिहृष्टात्मा ब्रह्मालोकपितामहः ॥ १० ॥

को नाश करने के लिये, नम्र वचन से बोले कि हे पुण्यरूपे, पृथिवी ! जो तुम्हारा उपकारक है उसको सुनिये ॥ ५ ॥ मैं देश व समय के योग्य सत्यवचन को तुम्हें देता हूँ कि पहले इस दैत्य ने सब देहधारियों के कठिन तप को किया है ॥ ६ ॥ व सावधान मनवाले इसने गायत्री की उपासना किया है और प्रीतिसंयुत चित्त से ब्रह्मा ने वरदान दिया है ॥ ७ ॥ न दिनमें न रात्रि में न आकाश में न पृथ्वी में न बहुत-सूखे से न भीगे से और न शस्त्रास्त्रों के मारने से ॥ ८ ॥ और मनुष्यों तथा पक्षीगणों से मरीमृत्यु न होवे और एकही चपोंटे के मारने से मंत्री, सेना व सवारी समेत सुभक्तों ॥ ९ ॥ जो वीर मरै वही मरीमृत्यु होवै बहुत अच्छा ऐसा

में मनुष्य नहार्कर व उत्तम दानको देकर आठ सौभाग्यों से सम्पूर्ण व वंसन समेत वांसेके पात्रको ॥ ३१ ॥ जो कि सप्तधान्य से संयुत व पंचरत्नों से शोभित हवे और ऊनीसूत्र से संयुत मालाओं व सुगन्धि इत्यादिकों को ॥ ३२ ॥ व हे परंतप ! शक्तिके अनुसार सोने की सावित्री बनाकर जो मनुष्य वेदवेदांग के जाननेवाले ब्राह्मण के लिये देता है ॥ ३३ ॥ वह बहुत सुखों को करनेवाली बहुत उत्तम लक्ष्मीको प्राप्तहोकर और अनेक भांति के भोगों को भोगकर फिर स्वर्गको पावेगा ॥ ३४ ॥ सावित्रीजी का व्रत करनेवाली स्त्री पति को प्यारी होती है और पतिव्रता व बड़े ऐश्वर्यवाली होती है ॥ ३५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीख

त्वा दत्त्वादानञ्चसौभगम् ॥ अष्टसौभाग्यसम्पूर्णं वंशपात्रं सवस्त्रकम् ॥ ३१ ॥ सप्तधान्यसमोपेतं पञ्चरत्नपरिष्कृतम् ॥ सौगन्ध्यादीनिमाल्यानि ऊर्णसूत्रसमायुतम् ॥ ३२ ॥ सावित्रीहाटकीकृत्वा यथाशक्तिपरन्तप ॥ यो वै ददाति विप्राय वेदवेदाङ्गगज्ञानिने ॥ ३३ ॥ लभते विपुलां लक्ष्मीं बहुभोगकरीं शुभाम् ॥ मुक्तावैविविधान्भोगान् पुनः स्वर्गमवाप्स्यते ॥ ३४ ॥ सावित्रीव्रतकृन्नारी जायते पतिवल्लभा ॥ पतिव्रता महाभागा विधवानकदाचन ॥ ३५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे नृसिंहतीर्थयात्रामहिमानामसप्तसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७७ ॥ * ॥

सनत्कुमार उवाच ॥ शृणु व्यास परंतीर्थं भुवि विख्यातं विख्यातः फलदो यो महेश्वरः ॥ १ ॥ तस्य तीर्थवरं तीर्थं सर्वतीर्थफलप्रदम् ॥ यस्मिंस्तीर्थे नरः स्नात्वा कुटुम्बं लभते ध्रुवम् ॥ २ ॥ कुटुम्बार्थं तपस्तेपे पुरा दत्तः प्रजापतिः ॥ नारदेन पुरा व्यास पुत्रा षष्टिर्विवासिताः ॥ ३ ॥ प्रजो कामः स धर्मात्मा सुचिरं व्रतमाचरत् ॥ सपत्नीको

एडे देवी दयालु मिश्र चित्तायां भाषाटीका यांचुं सिंह तीर्थ यात्रा महिमा वर्णन नाम सप्तसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७७ ॥ * ॥ दो० ॥ कुटुम्बेश तीर्थ महे मिलत अहे फल जौन । अठहत्तरि अध्याय में कथित कथा सब तौन ॥ सनत्कुमारजी बोले कि पृथ्वी में प्रसिद्ध कारक उत्तम तीर्थ को सुनिये कि कुटुम्बेश्वर ऐसे प्रसिद्ध जो फलदायक महादेवजी हैं ॥ १ ॥ उनका सब तीर्थों के फलको देनेवाला; तीर्थों में उत्तम तीर्थ है कि जिस तीर्थ में नहार्कर मनुष्य निरचर्यकर कुटुम्ब को पाता है ॥ २ ॥ पुरातन समय दक्षप्रजापतिजी ने कुटुम्ब के लिये तप किया है व्यासजी ! पहले नारदजी ने उनके साठ पुत्रों को

विशेष भेज दिया ॥ ३ ॥ सन्तान की इच्छावाले, बड़े तेजवान् व जितेन्द्रिय ठन धर्मात्मा वृक्षजी ने स्त्रीसमेत निराहार होकर बहुत दिनों तक यहा व्रत किया है ॥ ४ ॥ इस तीर्थ में नहाकर पवित्र होकर उन्होंने सनातनब्रह्म को जपा और हे व्यासजी ! दशहजार वर्ष तक कठिन तप किया है ॥ ५ ॥ उस तीर्थ के प्रसाद से उन दक्ष जी ने बहुत प्रजा को पाया है व प्रतापवान् दक्षजी प्रजापति ऐसे प्रसिद्ध हुये ॥ ६ ॥ और ब्रह्मा ने भी वहीं बहुतकठिन तपस्या कर उसीक्षण निष्कलंक व निर्मल रूप को पाया है ॥ ७ ॥ और वहींपर महादेव ने भी ब्रह्मा के स्थान को पाया है हे सत्तम ! चतुर्मुखधारी लिंग आजभी देखपड़ता है ॥ ८ ॥ हे व्यासजी ! वहींपर सिं-

महातेजा निराहारोजितेन्द्रियः ॥ ४ ॥ अस्मिंस्तीर्थेशुचिस्नातो जयद्ब्रह्मसनातनम् ॥ वर्षाणामयुतंव्यास तपस्तेपे सुदारुणम् ॥ ५ ॥ तेन तीर्थप्रसादेन सलेभे बहुलां प्रजाम् ॥ प्रजापतिरिति ख्यातो जातो दक्षः प्रतापवान् ॥ ६ ॥ ब्रह्मापि तत्रैव तपः कृत्वा सुबहुदुष्करम् ॥ निष्कलङ्कमलं रूपं प्राप्तवानेव तत्त्वणात् ॥ ७ ॥ महादेवोपितत्रैव प्राप्तवान् ब्रह्मणः पदम् ॥ चतुर्मुखधरं लिङ्गं दृश्यते चापि सत्तम ॥ ८ ॥ भद्रपीठस्थिता देवी भद्रकालीति विश्रुता ॥ तत्रैव च सदा व्यास क्रीडते स्म घृतव्रता ॥ ९ ॥ द्वारेतिष्ठति तत्रैव भैरवः क्षेत्रपालकः ॥ पादेन खञ्जतां यातः पुरादैत्यवरादितः ॥ १० ॥ पुत्रवत्पालितो देव्या सदातिष्ठति च त्वरे ॥ येते देवगणाः सर्वे तस्मिंस्तीर्थे प्रतिष्ठिताः ॥ ११ ॥ ऋषयोपि महाभागाः सदा पूर्वाणि पर्वणि ॥ आयायान्ति चैव सन्ध्यार्थं बहु पुत्रप्रदेसरे ॥ १२ ॥ अस्मिंस्तीर्थे सदा चाराः स्नानं कुर्वन्ति ये नराः ॥ न ते पांडुर्लभं किञ्चिज्जायते जन्म जन्मनि ॥ १३ ॥ महाव्याधिषु घोरसु महामारीषु तत्रैव ॥ हवनं क्रियते नित्यं सर्वपापैर्लाजितैर्य-

हासन पै स्थित व्रतको धारण किये भद्रकाली ऐसी प्रसिद्ध देवी सदैव क्रीडा करती है ॥ ६ ॥ वहींपर क्षेत्रपालक भैरवजी द्वारपै ठिके हैं जो कि उत्तम दैत्य से दुःखित होकर पुरातन समय चरण से खंजता को प्राप्त हुये हैं ॥ १० ॥ देवीजी से पुत्रकी नाई पाले हुये वे सदैव चौतरे पै स्थित हैं और जो देवगण हैं वे सब उस तीर्थ में प्रतिष्ठित हैं ॥ ११ ॥ व महात्मा ऋषिलोग भी सदैव पर्व पर्व में बहुत पुराणदायकतङ्गा में संध्या करने के लिये आते हैं ॥ १२ ॥ इस तीर्थ में उत्तम आचारवाले जो पुरुष स्नान करते हैं उनको जन्म जन्म में कुछ दुर्लभ नहीं होता है ॥ १३ ॥ और भयंकर बड़ी व्याधियों में व महामारियों में व महामारियों में वहां सब पुरासियों से इकट्ठा कि-

येहुये यवों से व पायस (खीर) से नित्य हवन किया जाता है और अनेक भांतिके रोगों से उनको दोष नहीं होता है दुर्भिक्ष व राज्य के अष्ट होनेपर तथा बहुत ही कठिन युद्ध होनेपर ॥ १४। १५ ॥ व सब आपत्तियों में सावधान होता हुआ जो मनुष्य क्षेत्रपालजी को पूजता है वह सब दुःखों से छूट जाता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ १६ ॥ कुटुंबकतीर्थ में नहाकर व महादेवजी को पूजकर तपस्वी ब्राह्मणके लिये सुवर्ण, मणि, मुक्ता व वसन समेत कूभाडको दान देवे तो मनुष्य कुटुंबमें धन व अन्न से संयुत होता है ॥ १७। १८ ॥ हे व्यासजी ! फागुन में कृष्णपक्ष में तैरसिसंयुत जो चौदसि होती है वह शिवरात्रि कहा जाती है ॥ १९ ॥ उनदिन मनुष्य

वैः ॥ १४ ॥ पायसैर्विविधैरौगैस्तेपांदोषोनजायते ॥ दुर्भिक्षेराज्यभ्रंशे च सङ्ग्रामेभृशदारुणे ॥ १५ ॥ पूजयेत्क्षेत्रपालं च सर्वापदिसमाहितः ॥ सर्वदुःखविनिर्मुक्तो जायेतेनावसंशयः ॥ १६ ॥ स्नात्वाकुटुम्बकेतीर्थे पूजयित्वा महेन्द्ररमं दानंकूष्माण्डकंदद्याद्ब्राह्मणाय तपस्विने ॥ १७ ॥ सौवर्णमणिमुक्ताभिर्वासोलङ्कारसंयुतैः ॥ धनधान्यसमायुक्तः कुटुम्बे जायेतेनरः ॥ १८ ॥ फाल्गुने चासिते पक्षे भवेद्यावै चतुर्दशी ॥ त्रयोदशीयुता न्यास शिवरात्रिस्तु प्रोच्यते ॥ १९ ॥ तद्दिने च नरः स्नात्वा रात्रौ जागरणं चरेत् ॥ विल्वोदकमुगन्धेन बहुपुष्पफलेन वा ॥ २० ॥ धूपदीपैश्च नैवेद्यैर्वार्वासोलङ्कारकादिभिः ॥ पूजयेद्योनरे नित्यं गिरिशं सगणं परम् ॥ २१ ॥ तस्य पापं क्षयं याति शिवलोके महीयते ॥ अश्वमेधाधिकं पुण्यं लभते भुवि मानवः ॥ २२ ॥ अश्वमेधफलं तस्य जागरे च क्षणे क्षणे ॥ ततस्तु प्रातस्तथा यस्नानदानादिकाः क्रियाः ॥ २३ ॥ कृत्वा तु विधिवद्ब्यास शिवपूजा च नंतथा ॥ विप्रांश्च भोजयेत्तप्तं तस्य पुण्यफलं शृणु ॥ २४ ॥ कपिलायाः

उस तीर्थ में नहाकर रात्रि में जागरण करे और विल्वपत्र व सुगन्धित जलसे तथा बहुत धूप व फलसे ॥ २० ॥ और धूप, दीप, नैवेद्य, वसन व अलंकारादिकों से जो मनुष्य नित्य गणोंसमेत उच्चम शिवदेवजी को पूजता है ॥ २१ ॥ उसका पाप नाश हो जाता है और वह शिवलोक में पूजा जाता है और पृथ्वी में मनुष्य अश्वमेध से अधिक फलको प्राप्त होता है ॥ २२ ॥ और जागरण में उसको क्षणक्षणमें अश्वमेध यज्ञका फल होता है तदनन्तर प्रातःकाल उठकर स्नान दानादिक कार्य ॥ २३ ॥ करके हे व्यासजी ! विधिपूर्वक शिवजीका पूजन करे और सात ब्राह्मणों को भोजन करावे उसके पुण्यका फल सुनिये ॥ २४ ॥ कि बखड़ा समेत चौदह

हजार कपिलागौवों के दान का फल व हजार वाजपेय यज्ञ का फल होता है अन्यथा नहीं है ॥ २५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे देवीदयालुमिश्रविचितायां
भाषाटीकायां कुटुम्बेश्वरतीर्थयात्रामाहात्स्यनामाष्टमस्तितमोऽध्यायः ॥ ७८ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥
दो० । है खण्डेश्वर देवकी महिमा श्रमिता अपार । उन्नासी श्रध्यायमें चरित सहित विस्तार ॥ सनत्कुमारजी बोले कि हे व्यासजी ! महापुण्यवान् व अति उत्तम-
तीर्थको सुनिये जो कि सब पातकों का विनाशक देवप्रयाग ऐसा कहा गया है ॥ १ ॥ हे परंतप ! जहां तीर्थ है वहां देवताओं का उत्तम स्थान है सोमतीर्थ के उत्तर भा-
सवत्सायाः सहस्राणि चतुर्दश ॥ वाजपेयसहस्रस्य फलं भवति नान्यथा ॥ २५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे कुटुम्बे
श्वरतीर्थयात्रामाहात्म्यनामाष्टमस्तितमोऽध्यायः ॥ ७८ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

सनत्कुमार उवाच ॥ शृणु व्यास महापुण्यं तीर्थं परमशोभनम् ॥ देवप्रयागमाख्यातं सर्वपापप्रणाशनम् ॥ १ ॥
देवानाञ्च परं स्थानं यत्र तीर्थं परंतप ॥ सोमतीर्थोत्तरे भागे प्रयागस्य च दक्षिणे ॥ २ ॥ क्षिप्रायाः पूर्वभागे च तत्र तीर्थं प्रतिष्ठि-
तम् ॥ तत्र तीर्थे नरः स्नात्वा दृष्ट्वा चैव सुरोत्तमम् ॥ ३ ॥ देवमाधव विख्यातो भुवि सर्वफलप्रदः ॥ ददाति तस्य देवेन्द्रो वा
द्वितीर्थं जगत्पतिः ॥ ४ ॥ आनन्द भैरवस्तत्र सर्वदेवनमस्कृतः ॥ यस्य दर्शनमात्रेण सर्वपापक्षयो भवेत् ॥ ५ ॥ नत
स्य जायते व्यास यातना भैरवी कदा ॥ स्वर्गद्वारे सदा व्यास जायते निर्भयः पुमान् ॥ ६ ॥ जेष्ठमासे सिते पक्षे दशम्यां बुध
हस्तयोः ॥ दशहरा जायते व्यास गङ्गाजन्मपरः शुचिः ॥ ७ ॥ तद्दिने च नरः स्नात्वा सर्वतीर्थफलं लेभेत् ॥ अपरञ्च परं तीर्थं

गमें व प्रयाग के दक्षिण में ॥ २ ॥ व क्षिप्रानदी के पूर्वभागमें वहां तीर्थ अतिष्ठित है उस तीर्थ में नहाकर व सुरोत्तमजी को देखकर ॥ ३ ॥ पृथ्वी में सब फलको देनेवाले
देवमाधव ऐसे प्रसिद्ध जगदीश देवेन्द्रजी उसको चाहेहुये मनोरथ को देते है ॥ ४ ॥ वहाँपर सब देवताओंसे प्रणाम कियेहुये आनन्द भैरवजी है कि जिनके दर्श-
नहीं सब पातकों का नाश होता है ॥ ५ ॥ और उसको कभी भैरवजी की पीड़ा नहीं होती है व हे व्यासजी ! स्वर्गद्वारमें मनुष्य निर्भय होता है ॥ ६ ॥ हे व्यासजी !
जेठमहीने में शुक्लपक्ष में दशमी तिथि को बुधदिन व हस्तनक्षत्र का योग होनेपर दशहरा होता है उसदिन गंगा जन्म में परायण व पवित्र मनुष्य श्री गंगाजी में

नहाकर सब तीर्थोंके फल को पाताहै इसके उपरान्त हे व्यासजी ! अन्य उत्तम तीर्थ को सुनिये ॥ ७८ ॥ कि जिनके सुननेहीसे व्रतका भंग नहीं होता है हे ब्रह्मन् ! पुरातन समय ब्रह्मविदोत्तम व उत्तम आचारवाला धर्मशर्मा ऐसा प्रसिद्ध ब्राह्मण था जो कि पवित्र व बहुत व्रतों को धारण करनेवाला तथा दान्त व वेद-वेदाङ्गों का पारगामी था ॥ ६१० ॥ कुछदोष के प्रसंगसे उसका व्रत पूर्ण नहीं होताथा इसप्रकार बहुत दिनोंवाले समय में देव दर्शन नारदजी ॥ ११ ॥ महा तपस्वी पहुनई के लिये हे ब्रह्मन् ! उसके घरको आये तब शीघ्रही उठकर ब्राह्मणने बहुत मानपूर्वक ॥ १२ ॥ सत्कार कर हे भूम्न ! विधिमे देखेहुये कर्म से मुनिश्रेष्ठ नारद

शृणुव्यासअतःपरम् ॥ ८ ॥ यस्यश्रवणमात्रेण व्रतभङ्गोनजायते ॥ एकएवपुराब्रह्मन् ब्राह्मणोब्रह्मवित्तमः ॥ ९ ॥ धर्म शर्मेतिविख्यातः सदाचारतःशुचिः ॥ बहुव्रतधरोदान्तो वेदवेदाङ्गपारगः ॥ १० ॥ किञ्चिदोषप्रसङ्गेन व्रतपूर्णनजाय ते ॥ एवंबहुतिथेकाले नारदोदेवदर्शनः ॥ ११ ॥ तस्यगेहागतोब्रह्मन्नातिथ्यार्थमहातपाः ॥ तदोत्थायद्विजःशीघ्रं व हुमानपुरःसरम् ॥ १२ ॥ सत्कृत्यनारदंभूम्न विधिदृष्टेनकर्मणा ॥ पूजयित्वाद्विजश्रेष्ठः पप्रच्छमुनिसत्तमम् ॥ १३ ॥ भगवन्भवतासर्वं विदितंज्ञानचक्षुषा ॥ अस्माकंचपरोदोषःकश्चिज्जातःपुरानघ ॥ १४ ॥ येनपापप्रसङ्गेन व्रतभङ्गोभवद्ब्रुवम् ॥ कारणंब्रूहिमेनाथ कोदोषोत्रतुगणयते ॥ १५ ॥ नारद उवाच ॥ श्रूयतांभोद्विजश्रेष्ठ भवद्भिश्चपुराकृतम् ॥ महाराष्ट्रेसुविख्यातो ब्राह्मणोधनसञ्चकः ॥ १६ ॥ ब्रह्मदत्तेतिनाम्नावै वेदब्राह्मणनिन्दकः ॥ धनलोभपराकान्तः सर्व धर्मबहिर्मुखः ॥ १७ ॥ नास्तिकोदेवतीर्थेषु परद्रव्यापहारकः ॥ परस्त्रीरमतेनित्यं द्यूतवादीचतस्करः ॥ १८ ॥ एवमा

जी को पूजकर द्विजोत्तमने पूछा ॥ १३ ॥ कि हे भगवन् ! आपने ज्ञानदृष्टि से सबजाना है हे अनघ ! पुरातन समय मेरा कोई बडा दोष हुआ है ॥ १४ ॥ कि जिन पाप के प्रसंग से निश्चयकर व्रतका भंग होता है हे नाथ ! इसकारण को कहिये कि इसमें मेरा कौन दोष गिनाजाता है ॥ १५ ॥ नारदजी बोले कि हे द्विजोत्तम ! पहले जो तुमसे कियागयाहै उसको सुनिये कि महाराष्ट्र देशमें धनका संचयकरनेवाला ब्रह्मदत्त नाम से प्रसिद्ध ब्राह्मण रहताथा जो कि वेदों व ब्राह्मणों की निन्दा करनेवाला व धन के लोभ से धिरा तथा सब धर्मों से विमुख ॥ १६१७ ॥ व नास्तिक और देवतीर्थों में पराये द्रव्यको हरनेवाला था वह नित्यही पराई स्त्री से

रमित तथा धूतवादी व चोरथा ॥ १८ ॥ इसप्रकार आयुर्वेल से क्षीण वह धनहीन होगया तब इधर उधर घूमताहुआ अष्ट होकर गोदानदी के किनारे प्राप्त वह चोरके कर्म व आचारवाला द्विज यात्रिकों के साथ संयोगको प्राप्तहुआ व कुछ समय में रोग से विकल वह मोह (मृत्यु) को प्राप्तहुआ ॥ १९२० ॥ उमी समय हे द्विज ! वह यमदूतों से यमपुरी में प्राप्त कियागया और यमराज के पुर में प्राप्त बहुत पापकारी व पाप में परायण इस ब्राह्मण को उस समय यमराज ने देखा व देखकर अचानकही दूतों से धर्मदायक वचन को कहा ॥ २१ । २२ ॥ कि हे दूतो ! सावधान मननाले होकर तुमलोग सब सुनो कि इसने सब पातक व दुष्कर्म

युःपरिचीणो धनहीनोभवत्तदा ॥ इतस्ततोऽभमन्भ्रष्टो गोदातीरेसुविह्वलः ॥ १९ ॥ गतश्चोरक्रियाचारी यान्त्रिकैःस हसद्भतः ॥ किञ्चित्कालेषुदुःशीलो मोहंप्राप्तोरुजादितः ॥ २० ॥ नीतःसंयमिर्नोविप्र तत्कालंयमकिङ्करैः ॥ यमराज पुरंप्राप्तो बहुपापकरोद्विज ॥ २१ ॥ दृष्टोसौधर्मराजेन तदापापपरायणः ॥ निरीक्ष्यसहसोवाच किङ्करान्वधर्मदं वचः ॥ २२ ॥ श्रूयतांकिङ्कराःसर्वे यूयमेकाग्रमानसाः ॥ अनेनाचरितंसर्वं दुष्कर्मसर्वंकिल्बिषम् ॥ २३ ॥ गोदातीरेमृतःपापी तत्रैवकारणममहत ॥ तिस्रःकोट्योद्धकोटिश्च यानितीर्थानिभूतले ॥ २४ ॥ आयान्तिगतमीतीरे सिंहस्थेपिचहस्प तौ ॥ तेषान्तुवायुस्पर्शेन जातोऽस्यान्तःकलेवरं ॥ २५ ॥ तस्यपुण्यप्रभावेन नोऽस्माकङ्कारणंकचित् ॥ नोग्राह्योभवता चायं मुच्यतांभोपुरस्मराः ॥ २६ ॥ एवंतैर्मोचितोविप्रःपुनर्व्रह्मगतिद्वतः ॥ तेनपापप्रसङ्गेन व्रतभङ्गीगतोऽयुवि ॥ २७ ॥ ब्राह्मण उवाच ॥ ब्रह्मन्केनप्रकारेण सर्वपापक्षयोभवेत् ॥ किंतपःकिंचदानञ्च किंतीर्थंव्रतसेवनम् ॥ २८ ॥ येनपुण्य

को किया है ॥ २३ ॥ और यह पापी गोदा के किनारे मराहै उसमें बड़ा कारणहै क्योंकि तीनकोड़ व अर्धकोड़ याने साढ़ेतीन करोड़ जो तीर्थ पृथ्वी में हैं ॥ २४ ॥ वे बृहस्पति के सिंहराशि में स्थित होनेपर गौतमी नदी के किनारे आते हैं इसके शरीर में उनके पवन के स्पर्श से यह नाशहोगया ॥ २५ ॥ उसके पुण्य के प्रभावसे हमलोगों का कहीं कारण नहीं है हे अग्रगामियो ! आपको इसे पकड़ना न चाहिये छोड़ दीजिये ॥ २६ ॥ इसप्रकार उन दूतोंसे छोड़ाहुआ ब्राह्मण फिर ब्रह्मकी गति को प्राप्तहुआ उसी पाप के प्रसंग से तुम पृथ्वी में व्रतभंग करनेवाले हुये ॥ २७ ॥ ब्राह्मण बोला कि हे ब्रह्मन् ! किस भांति से सब पापों का नाश होगा क्या तपहै

तीर्थको फिर सुनिये जिसको पहले पूछते हुये मार्कण्डेयजी से ब्रह्माने कह है ॥ १ ॥ हे वत्स ! सुनिये कि महींतल पै जो अनूपम क्षिप्रानदी है उसके किनारे पै कर्क-
राज ऐसा प्रसिद्ध तीर्थ है ॥ २ ॥ कि जिसके भलीभांति दर्शनही से महापातकोंका नाश होताहै मनके सब विकार होते हैं और चंद्रमा मनसे उत्पन्न हुआ है ॥ ३ ॥
उसके स्थान (कर्कराशि) में प्राप्त उत्तम सूर्यनारायणजी यास्यायन करते हैं वे तीन ऋतुवें धूम्र व प्रकाशरहित कहींगई हैं ॥ ४ ॥ उस दक्षिणायन में मरेहुये योगी
भी संसारमें वर्तमान होते हैं हे परंतप ! चौमासेमें विष्णुजी के सोने पर जे मनुष्य व्रत से रहित होते हैं ॥ ५ ॥ हे वत्स ! उनकी उत्तमगति नहीं होती है यह मैं

णुवत्समहीपृष्ठे क्षिप्रायासदृशीनदी ॥ तस्यास्तीरेवरंतीर्थं कर्कराजेतिविश्रुतम् ॥ २ ॥ यस्यदर्शनमात्रेण महापापञ्च
योभवेत् ॥ विकारामानसास्सर्वे चन्द्रोमानससम्भवः ॥ ३ ॥ तस्यस्थानेगतोभानुर्याभ्यायनकरःपरः ॥ ऋतुत्रयंसमा
ख्यातं धूम्रोनार्चिस्तदुच्यते ॥ ४ ॥ तत्रमृत्वाप्रवर्तन्ते योगिनोपिपरन्तप ॥ चातुर्मास्येहरौसुप्ते येनरात्रतवर्जिताः ॥
५ ॥ नतेषांसद्गतिर्वत्स सत्यमेवब्रवीमि ते ॥ चातुर्मास्येमृतायेच येमृतादक्षिणायने ॥ ६ ॥ तेषामुद्धारणार्थाय तीर्थमेत
द्विनिर्मितम् ॥ कर्कराजइतिख्यातं सर्वलोकेपुगीयते ॥ ७ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ भगवन्भवतासर्वनिर्मितंविश्वमूर्तिना ॥
चराचरमिदंविश्वं जगत्सर्वजगत्पते ॥ ८ ॥ चातुर्मास्येहरौसुप्ते धर्माचारविधिःस्मृतः ॥ तदहंश्रोतुमिच्छामि त्वत्तो
ब्रह्मविदांवर ॥ ९ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ शृणुवत्सपरंपुरणं चातुर्मास्यफलंशुभम् ॥ यच्छ्रुत्वाभारतेखण्डे नृणांमुक्तिर्नदुर्लभा ॥
१० ॥ मुक्तिप्रदोयंभगवान् संसारोत्तमकारणः ॥ यस्यस्मरणमात्रेण सर्वपापक्षयोभवेत् ॥ ११ ॥ मानुषंदुर्लभंलोके

तुम से सत्य कहताहूं जो चौमासे में मरे हैं और जो दक्षिणायन में मरे हैं ॥ ६ ॥ उनके उधारने के लिये यह तीर्थ बनाया गया है जो कि कर्कराज ऐसा प्रसिद्ध
सबलोकों में गायाजाता है ॥ ७ ॥ मार्कण्डेयजी बोले कि हे भगवन् ! विश्वमूर्ति आपने सब निर्माण कियाहै व हे जगत्पते ! चराचर ! यह सब संसार आपहीसे होता
है ॥ ८ ॥ हे ब्रह्मविदांवर ! चौमासे में विष्णुजी के सोनेपर जो धर्म व आचारकी विधि कहींगई है उसको मैं तुमसे सुना चाहताहूं ॥ ९ ॥ ब्रह्माजी बोले कि हे वत्स !
परम पुण्यवाला चौमासे का उत्तम फल सुनिये कि जिसको सुनकर भरतखण्ड में मनुष्यों को मुक्ति दुर्लभ नहीं होती है ॥ १० ॥ क्योंकि संसार के उत्तम कारण-

भूत ये भगवान् मुक्तिदायक हैं जिनके स्मरणही से सब पातकों का नाश होता है ॥ ११ ॥ संसार में मनुष्य होना दुर्लभ है व उसमें भी कुलीनता दुर्लभ है और उस कुलीनता में भी संयम होना व उसमें भी सज्जनों का उत्तम समागम दुर्लभ है ॥ १२ ॥ जहाँपर सज्जनों का समागम व विष्णुजीकी भक्तिके व्रत नहीं हैं वहाँ चौमासेमें विशेषकर विष्णुजी के व्रतको करनेवाला उत्तम होता है ॥ १३ ॥ चौमासेमें जो नियमरहित होता है उसका पुराय निरर्थक होता है सब तीर्थ, दान व पवित्र देवमन्दिर ॥ १४ ॥ चौमासा आनेपर विष्णुजीके आश्रित होकर टिकते हैं और वे विष्णुजी सदैव कर्कराजनामक उत्तमतीर्थ में टिके हैं ॥ १५ ॥ उच्चम पुष्टिवाले शरीरसे

तत्रापिचकुलीनता ॥ तत्रापिसंयमत्वञ्च तत्रसत्सङ्गमःशुभः ॥ १२ ॥ सत्सङ्गमोनयत्रास्ति विष्णुभक्तिव्रतानिच ॥ चा
तुर्मास्येविशेषेण विष्णुव्रतकरःशुभः ॥ १३ ॥ चातुर्मास्येऽव्रतीयस्तु तस्यपुण्यंनिरर्थकम् ॥ सर्वतीर्थानिदानानि पुण्या
न्यायतनानिच ॥ १४ ॥ विष्णुमाश्रित्यतिष्ठन्ति चातुर्मास्येसमागते ॥ सविष्णुराश्रितो नित्यं कर्कराजेसुतीर्थके ॥
१५ ॥ सुषुष्टिकेनदेहेन जीवितंतस्यशोभनम् ॥ चातुर्मास्येसमायाते हरियेनचित्तस्तदा ॥ १६ ॥ कृतार्थास्तस्यवि
बुधा यावज्जीवंप्रदाः ॥ सम्प्राप्यमानुषन्देहं चातुर्मास्येपराब्धुखः ॥ १७ ॥ तस्यपापशतान्याहुर्देहस्थानिनसंश
यः ॥ मानुषंदुर्लभंलोकं हरिभक्तिश्चदुर्लभा ॥ १८ ॥ चातुर्मास्येविशेषेण सुप्तेदेवजनार्दने ॥ चातुर्मास्येनराःस्नात्वा
कर्कराजेद्विजोत्तम ॥ १९ ॥ सर्वक्रतुफलंप्राप्य देववद्विभोदते ॥ विशेषेणतुतस्नानं कर्कस्थेपिदिवाकरे ॥ २० ॥ हु

उसका जीवन उत्तम है कि जिसने उस चौमासे में विष्णुजीको पूजा है ॥ १६ ॥ उसके ऊपर जीवनपर्यंत प्रसन्न होतेहुये देवता नरदायक होते हैं मनुष्य के शरीरको प्राप्त होकर जो चौमासे में नियम से विमुख होता है ॥ १७ ॥ उसके शरीर में स्थित सैकड़ों पाप कहेगये हैं इसमें सन्देह नहीं है संसार में मनुष्य होना व विष्णुजी की भक्ति दुर्लभ है ॥ १८ ॥ और चौमासे में विष्णुदेवजी के सोनेपर विशेषकर दुर्लभ है हे द्विजोत्तम ! चौमासे में कर्कराजतीर्थ में नहाकर मनुष्य ॥ १९ ॥ सब यज्ञों के फलको पाकर स्वर्ग में देवताओं की नाई प्रसन्न रहता है और सूर्यनारायणजी के कर्कराशि में टिकनेपर विशेषकर उसका स्नान करना चाहिये ॥ २० ॥ देवता,

दैत्यों व मनुष्योंसमेत सब प्राणियोंको उसका स्नान दुर्लभ है क्योंकि पहले देहकी पवित्रता करके मनुष्य मुक्तिके मार्ग को पाता है ॥ २१ ॥ तथापि भ्रान्ता, क्रूर, तड़ाग व सरोवर में भी जो मनुष्य नित्य नहाता है उसके पाप का नाश होता है ॥ २२ ॥ इसलिये देवताओं व दैत्यों से बावली पुण्यदायिनी नहीं कही गई है किन्तु पुष्कर व प्रयागमें और जहाँ कहीं बहुत जलमें ॥ २३ ॥ जो पुरुष चार महीनोंमें नहाताहै उसके पुण्यकी संख्या उससे अधिक होतीहै और नर्मदामें व भास्कर-क्षेत्र में तथा प्रार्चीसरस्वती व गंगासागर के सङ्गम में ॥ २४ ॥ चौमासे में जो मनुष्य एक दिन भी स्नान करता है वह दुःखभागी नहीं होता है जगदीशदेवजी

ल्लभंसर्वजन्तूनां ससुरासुरमानुषैः ॥ देहगुह्निविधायादौ मुक्तिमार्गमवाप्नुयात् ॥ २१ ॥ तथापिनिर्भरेकूपे तडागेवास रस्यपि ॥ यःस्नातिर्वैनरोनित्यं तस्यपापक्षयोभवेत् ॥ २२ ॥ तस्मान्नदीर्घिकापुण्या समाख्यातासुरासुरैः ॥ पुष्करेचप्र यागेच यत्रक्वापिमहाजले ॥ २३ ॥ चातुर्मास्येषुयःस्नाति पुण्यसङ्ख्याततोधिका ॥ रेवायांभास्करेक्षेत्रे प्राच्यांसागर सङ्गमे ॥ २४ ॥ एकाहमपियस्नाति चातुर्मास्येनदुःखभाक् ॥ दिनत्रयश्चयस्नाति नर्मदायांसमाहितः ॥ २५ ॥ सुप्तेदेवे जगन्नाथे पापंयातिसहस्रधा ॥ पक्षमेकश्चयस्नाति गोदावर्य्यादिनोदये ॥ २६ ॥ समित्त्वाकर्मजदेहं यातिविष्णोःसलो कताम् ॥ अवन्त्याङ्ककंराजेतु साक्षाद्विष्णुर्भवेन्नरः ॥ क्षणमेकंक्षणाद्ध्वा चातुर्मास्येनलङ्घयेत् ॥ २७ ॥ तिलोदकेना मलसंयुतेन बिल्वोदकेनापिचमज्जयेद्यः ॥ नतस्यजानामिफलाधिकं वै किन्तस्यकीदृच्छुनिभिःप्रणीतम् ॥ २८ ॥ गङ्गांस्मरतियोनित्यमुदपानसमीपतः ॥ तद्गङ्गेयञ्जलंजातं तेनस्नानंसमाचरेत् ॥ २९ ॥ गङ्गापिदेवदेवस्य चरणान्छु

के सोने पर सावधान होताहुआ जो मनुष्य तीन दिनतक नर्मदा में स्नान करताहै उसका पाप सहस्रखंड होजाता है और दिनके उदय में जो मनुष्य एक पक्षभर गोदावरी में स्नान करता है ॥ २५ ॥ २६ ॥ वह कर्म से उपजेहुये शरीरको नाशकर विष्णुजी की सलोकता को प्राप्त होता है अवन्तीपुरी में कर्कराजतीर्थ में मनुष्य साक्षात् विष्णु होताहै एक क्षण व आधा क्षण चौमासे में नियम से उल्लङ्घन करना न चाहिये ॥ २७ ॥ आँवलासे संयुत तिल मिलेहुये जलसे व बिल्व से मिश्रित जलसे जो मनुष्य स्नान करताहै उसके अधिक फलको मैं नहीं जानता हूं कि मुनियों से वह कैसा कहागया है ॥ २८ ॥ जो मनुष्य नित्य कूप के समीप

ब्रह्माजी ने इस प्रकार कहा है इस लिये सब यत्न से महाकालवनको जाइये ॥ ४८ ॥ वहीं पर हमलोगों का भी अति उत्तम स्थान है चौमासे में विष्णुजी के सोनेपर जब तक बोधिनी एकादशी नहीं आती है ॥ ४९ ॥ उतने समय तक वहां मुक्ति है इस में सन्देह नहीं है व चौमासे में विष्णुजी के सोनेपर यदि वहां जो मनुष्य शरीर को छोड़ता है ॥ ५० ॥ तो यमलोक में इसका निवास नहीं होता है इस में सन्देह नहीं है इसलिये तुलसी के सर्माप व शालग्राम के सर्माप तथा देवालय में ॥ ५१ ॥ आत्माको प्रणयन कर उसी में जबतक योजित करै जब तक कि प्रबोधिनी द्वादशी होवै ॥ ५२ ॥ पश्चात् घृत व सुवर्ण से आत्माको छुड़ाकर

तत्रैव स्थानम्परमशोभनम् ॥ चातुर्मास्येहरौसुप्ते यावन्नायातिबोधिनी ॥ ४९ ॥ तावत्कालंहितव्रास्ति मुक्तिरेवनसंशयः ॥ चातुर्मास्येहरौसुप्ते जहातिचेत्कलेवरम् ॥ ५० ॥ यमलोकेनास्यवासो जायतेनावसंशयः ॥ तस्मात्तुलसीसर्मापे शालग्रामेसुरालये ॥ ५१ ॥ आत्मानंप्रणयीकृत्य तत्रैवसन्नियोजयेत् ॥ यावत्प्रबोधिनीचेति द्वादशीद्विजसत्तम ॥ ५२ ॥ पश्चाद्घृतसुवर्णेन मोचयित्वास्वकन्नयेत् ॥ चातुर्मास्योद्भवोदोषो बाधतेमुन्नमानवम् ॥ ५३ ॥ यस्यक्षिप्रोदके स्नानं कर्कराजेषुजायते ॥ एवंव्यासवरन्तीर्थं सर्वतीर्थफलप्रदम् ॥ ५४ ॥ पृथिव्यांयानितीर्थानि सरितस्सागराश्चये ॥ तेचसर्वेसमायान्ति चातुर्मास्येद्विजोत्तम ॥ ५५ ॥ तस्माच्चतद्वरन्तीर्थं कर्कराजेतियत्स्मृतम् ॥ यएतावैकथाम्पुण्यां शृण्वन्तिश्रावयन्तिच ॥ ५६ ॥ नतेषांजायतेदोषश्चातुर्मास्योद्भवःकदा ॥ ५७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेकर्कराजतीर्थमहिमवर्णनब्रामाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८० ॥

ले श्रावै चातुर्मास्य से उपजाहुआ दोष इस मनुष्यको नहीं पीड़ित करता है ॥ ५३ ॥ कि जिसका स्नान क्षिप्रानदी के जलमें व कर्कराजतीर्थों में स्नान होता है हे व्यास जी ! इस प्रकार सब तीर्थों के फलको देनेवाला उत्तम तीर्थ है ॥ ५४ ॥ पृथ्वी में जो तीर्थ व नदियां और जो समुद्र हैं हे द्विजोत्तम ! वे सब चौमासेमें इस तीर्थ में भली भांति आते हैं ॥ ५५ ॥ उमीकारण वह उत्तम तीर्थ है जो कि कर्कराज ऐसा कहा गया है जो मनुष्य इस पुण्यकथाको सुनते व सुनते हैं ॥ ५६ ॥ उनको कभी चौमासेसे उपजा हुआ दोष नहीं होता है ॥ ५७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायां कर्कराजतीर्थमहिमवर्णनब्रामाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८० ॥

दो० । देवतीर्थ यात्रा किये जो फल होते अनूप । इक्यासी अध्याय में कक्षोसोई मुनिभूष ॥ सनत्कुमारजी बोले कि सुमेरुगिरिके दक्षिणभाग में व दुरधकुंडक उच्चर में ऋषभनामक श्रेष्ठपर्वत देवताओं व गंधर्वों से सेवित है ॥ १ ॥ जहांपर हे द्विज ! सदैव सुन्दरी देवांगना क्रीड़ा करती हैं वहांपर सब कामनाओं को देने वाला रम्यनामक तड़ाग स्थित है ॥ २ ॥ उस तीर्थ में नहाकर मनुष्य निश्चयकर उत्तम ऐश्वर्यवान् होता है जहांपर देवता क्रीड़ा करते हैं वह उत्तमतीर्थ पृथ्वी में प्रसिद्ध है ॥ ३ ॥ भादों महीने में अनुराधा नक्षत्र से संयुत शुक्लपक्ष की अष्टमी में उसदिन यहां आकर जो मनुष्य स्नान दानादिक कर्मों को ॥ ४ ॥ सदैव करते हैं

सनत्कुमारउवाच ॥ मेरोश्रदक्षिणभागे दुग्धकुण्डोत्तरेतथा ॥ ऋषभाख्योगिरिश्रेष्ठो देवगन्धर्वसेवितः ॥ १ ॥
यत्रदेवाङ्गनारम्याः क्रीडन्तिसततंद्विज ॥ तत्ररम्यंसरोनाम तिष्ठतिसर्वकामदम् ॥ २ ॥ तत्रतीर्थेनरःस्नात्वा सुभगो
जायतेध्रुवम् ॥ यत्रदेवाश्चक्रीडन्ति भुवि विख्यातकंपरम् ॥ ३ ॥ भाद्रेमासिसिताष्टम्यां युक्तायामनुराधया ॥ तद्दिनेत्र
समागम्य स्नानदानादिकाःक्रियाः ॥ ४ ॥ कुर्वन्तिसततंव्यास तेषांलोकाःसनातनाः ॥ मेरोश्चसानुकेतीर्थं दिव्यम्प
रमशोभनम् ॥ ५ ॥ बिन्दुसारोतिविख्यातं सर्वकामवरप्रदम् ॥ गङ्गासरस्वतीपुण्या सरयूश्चतपस्विनी ॥ ६ ॥ एताःस
रिद्धराःप्राप्ता राजन्मृत्यवतीसुत ॥ येसिद्धायेचसाधर्मीश्च महात्मानस्तपस्विनः ॥ ७ ॥ उपासाञ्चक्रिरेतस्मिस्तत्रतो
र्थेहिसर्वदा ॥ तत्रतीर्थेनरःस्नात्वा सर्वार्थान्प्राप्नुतेध्रुवम् ॥ ८ ॥ भाद्रेमासिचशुक्लौ चतुर्थीयाप्रकीर्तिता ॥ सिद्धासा
सर्वदाप्राप्ता यत्रजातो गणाधिपः ॥ ९ ॥ कामेश्वरइतिख्यातः सर्वकामवरप्रदः ॥ तस्यतीरेनरःस्नात्वा दृष्ट्वादिवंगणे

दे व्यामजो ! उनको सनातन लोकेंहोते हैं और सुमेरुगिरिके शिखरपै, अति उत्तम दिव्यतीर्थ है ॥ ५ ॥ बिन्दुमार ऐसा प्रसिद्ध वह सब कामनाओं के वरों को देनेवाला है गंगा व सरस्वती तथा तपस्विनी व पुण्यदायिनी सरयूजी ॥ ६ ॥ हे सत्यवती के पुत्र, राजन् ! ये उत्तम नदियां वहां पर प्राप्त हैं जो सिद्ध, साध्य व महात्मा तपस्वी लोग हैं ॥ ७ ॥ उन्होंने सदैव वहां उसतीर्थ में उपासना किया है उसतीर्थ में नहाकर मनुष्य निश्चयकर सब अर्थों को प्राप्त होता है ॥ ८ ॥ भादों महीने में जो शुक्लपक्षवाली चौथि कहींगई है वह सदैव सिद्ध कही गई है जिसमें कि गणेशजी पैदा हुए हैं ॥ ९ ॥ और कामेश्वर ऐसे प्रसिद्ध सब कामनाओं के वरों

की देनेवाले हैं उनके तीर्थ में मनुष्य नहाकर व गणेशदेवजी को देखकर ॥ १० ॥ सैकड़ों मनोरथों को पाकर मनुज कामचारी होता है ॥ ११ ॥ व्यासजी बोले कि हे ऋषिश्रेष्ठ, व्यास जी ! पापहारिणी उत्तम कथा को सुनिये हे महामुने ! उज्जयिनी पुरी में जो तीर्थ हैं ॥ १२ ॥ उन सबों को साठहजार वर्षों से भी कहने के लिये चारमुखवाले ब्रह्मा भी कभी समर्थ नहीं हैं ॥ १३ ॥ मेघमालाओं के जितने जलके वृंद गिरते हैं व पृथ्वी में जितनी तृणकी संख्या है व भूमि में जितने बालू के किनके हैं ॥ १४ ॥ और आकाश के नक्षत्रों की संख्या को कहने के लिये कोई भी नहीं समर्थ है वैसेही हे तपोधन ! अवन्तीपुरी में तीर्थों की संख्या नहीं

इवरम् ॥ १० ॥ मनोरथशतम्प्राप्य कामचारीभवेन्नरः ॥ ११ ॥ व्यासउवाच ॥ शृणुव्यासऋषिश्रेष्ठ कथाम्पापहरा
म्पराम् ॥ उज्जयिन्याञ्चतीर्थानि यानिसन्तिमहामुने ॥ १२ ॥ तानिसर्वाण्यसौदेवः स्वयम्भूश्चतुराननः ॥ वर्षाणामयु
तैःषड्भिर्नचक्नुंकदाचन ॥ १३ ॥ यावन्तिमेघमालानां पतन्तिजलविन्दवः ॥ धरित्र्यांतृणसंख्यावै पृथिव्यांसिकतास्त
था ॥ १४ ॥ नभसोज्योतिषांसङ्ख्यां वक्तुंकोपिनशक्नुयात् ॥ नतीर्थानांतथासङ्ख्या संत्यवन्त्यांतपोधन ॥ १५ ॥ अन्त
रिक्षेचमदिन्यां तीर्थभूतापुणित्वियम् ॥ वापीकूपतडागादि प्रस्नावोभरणानिच ॥ १६ ॥ नदीसरांसिखाताड्यच तीर्थभूत
हिसर्वशः ॥ तथापिदेवयात्रात्वं प्रसङ्गेननिबोधमे ॥ १७ ॥ यानिकानिचमुख्यानि तानितुभ्यंवदाम्यहम् ॥ यज्ज्ञात्वामो
क्ष्यसे नित्यंसर्वाचारैः शुभाशुभैः ॥ १८ ॥ प्रातरुत्थाययोनित्यंशुचिःप्रयतमानसः ॥ श्रुत्ववैसर्गंधादि तिलाक्षतसम
न्वितः ॥ १९ ॥ स्नात्वा रुद्रसरेतात तथैवव्रतमाचरेत् ॥ ऊर्जेचमाघमासेवै वैशाखाषाढयोस्तथा ॥ २० ॥ शिवरा

है ॥ १५ ॥ आकाश व पृथ्वीमें यह पुरी तीर्थभूतहै बावली, कूप, तडागादिकों का प्रवाह व भरना ॥ १६ ॥ और नदी, तडाग व खात ये सब वहां तीर्थभूत हैं तो भी तुम प्रसंग से तीर्थयात्रा को मुझसे सुनो ॥ १७ ॥ जो कोई मुख्य हैं उनको मैं तुमसे कहता हूँ कि जिसको जानकर नित्य शुभाशुभ सब आचारोंसे छुटोगे ॥ १८ ॥ नित्य प्रातःकाल उठकर पवित्रमनवाला जो पवित्र मनुष्य इसको सुनकर सब गंधादिक, तिल व अक्षतोंसे संयुत होकर ॥ १९ ॥ हे तात ! रुद्रसर में नहाकर वैसे

ही व्रत करता है वह सब पापों से छुटजाता है और कार्तिक व माघ महीने में तथा वैशाख व आषाढ में ॥ २० ॥ व विशेषकर शिवरात्रि में देवअन्न प्रशस्त है जिस देवता का जो तीर्थ है उस देवता के समीप ॥ २१ ॥ वहां अभिषेक व देवता का पूजन करना चाहिये जो विधिपूर्वक यात्रा करता है वह सब फलको भोगता है ॥ २२ ॥ इसलिये सब थल से मनुष्य देवयात्रा करे ॥ २३ ॥ व्यासजी बोले कि हे ब्रह्मन् ! मनुष्य किसप्रकारसे देवयात्रा करे हे तपोधन ! उस सबको मैं विस्तार से सुना चाहता हूँ ॥ २४ ॥ सनत्कुमारजी बोले कि हे व्यासजी ! जैसा सुनागया है वैसेही परम गुप्तचरित्र को मैं कहूंगा उसको सुनिये ॥ २५ ॥ पार्वती व महादेव व्याविशेषेण देवयात्राप्रशस्यते ॥ यस्य देवस्य यत्तीर्थं तस्य देवस्य समन्निधौ ॥ २६ ॥ तत्राभिषेकं कार्यं देवतायाश्च पूजजनम् ॥ विधिवदाचरेद्यस्तु सकलं फलमश्नुते ॥ २७ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन देवयात्रां समाचरेत् ॥ २८ ॥ व्यास उवाच ॥ ब्रह्मन् केन प्रकारेण देवयात्राञ्चरेन्नरः ॥ तत्सर्वं श्रोतुमिच्छामि विस्तरेण तपोधन ॥ २९ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ शृणु व्यास परं गुह्यं प्रवक्ष्यामि यथा श्रुतम् ॥ ३० ॥ उमा महेशसंवादं देवयात्रादिकर्मसु ॥ उमोवाच ॥ प्रभातः कथ्यतां देव क्षेत्रस्यास्य महेश्वर ॥ ३१ ॥ यानि तीर्थानि विद्यन्ते यानि लिङ्गानि सन्ति वै ॥ तान्याहुतो देवभूमन् वदस्व वदतांवर ॥ ३२ ॥ ईश्वर उवाच ॥ शृणु देवि प्रयत्नेन प्रभावं पापनाशम् ॥ क्षेत्रमाद्यं महादेवि ममातीर्षा प्रियंसदा ॥ ३३ ॥ यत्र चिप्रा महापुण्या दिव्यानवनदी प्रिया ॥ नीलगङ्गा प्रियामेव तथा गन्धवती नदी ॥ ३४ ॥ चत्वारो मे प्रियानद्यः कुमुदृत्या हि सुव्रते ॥ ईश्वराश्च तुराणीतिस्तथाष्टौ सन्ति भैरवा ॥ ३५ ॥ एकादश तथा रुद्रा आदित्या द्वादश स्मृताः ॥ षड्वैविनाय जी का जो संवाद कि देव यात्रादिक कर्मों में हुआ है पार्वतीजी बोलीं कि हे महेश्वर, देवजी ! इस क्षेत्र के प्रभाव को कहिये ॥ ३६ ॥ हे भूमन्, देव ! जो तीर्थ व जो लिङ्ग विद्यमान हैं हे वदतांवर ! उनको आदर से कहिये ॥ ३७ ॥ महादेवजी बोले कि हे देवि ! बड़े यत्ने से पापनाशक प्रभाव को सुनिये हे महादेवि ! वह आदितीर्थ मुझको सदैव बड़ा प्यारा है ॥ ३८ ॥ जहां कि महापुण्यदायिनी दिव्यक्षिप्रानदी व प्यारी नवनदी है नीलगंगा व गंधवती नदी मुझको प्यारी है ॥ ३९ ॥ हे सुव्रते ! कुमुदती पुरी में मुझको प्यारा चार नदियां हैं व चौरासी महादेव तथा आठ भैरव हैं ॥ ४० ॥ वैसेही गेरह रुद्र व बारह आदित्य (सूर्य) कहे गये हैं और

यहां छा विनायक व चौबिस देविया हैं ॥ ३१ ॥ हे भद्र ! जिसलिये उत्तम महाकाल वनमें मैं आया उसी कारण हे शुभे ! यहींपर विष्णु व ब्रह्मादिक सब उपस्थित हुये ॥ ३२ ॥ हे देवि ! योजन भरकी प्रमाण को प्राप्त यह क्षेत्र देवातओं से व्याप्त है जो दशविष्णु कहेगये हैं उनके नामों को मुझमें सुनिये ॥ ३३ ॥ कि वासुदेव, अनन्त, बलराम, जनार्दन, नारायण, हृषीकेश, वाराह, धरणीभर, ॥ ३४ ॥ व वामनरूप से विष्णुजी तथा लक्ष्मीजी के स्थान शेषशायी भगवान् ये उत्तम दश विष्णु सब पातकों के हरनेवाले कहेगये हैं ॥ ३५ ॥ पार्वतीजी बोलीं कि हे भगवन् ! मनोहर महाकाल वनमें जो देवेश बसते हैं उन देवताओं के चरित्रों को क्रमसे

काश्चान्न देव्यश्चचतुर्विंशतिः ॥ ३१ ॥ यतोहमागतोऽद्रेमहाकालवनोत्तमे ॥ विष्णुब्रह्मादयःसर्वे ह्यत्रैवनिहिताःशु
भे ॥ ३२ ॥ देवैर्व्याप्तमिदंक्षेत्रं देवियोजनमागतम् ॥ दशविष्णवआख्यातास्तेषानामानिमेष्टृणु ॥ ३३ ॥ वासुदेवो
ह्यनन्तश्च बलरामोजनार्दनः ॥ नारायणोहृषीकेशो वाराहोधरणीधरः ॥ ३४ ॥ विष्णुर्वामनरूपेण शेषशायीरमाल
यः ॥ दशैतेविष्णवःप्रोक्ताः सर्वपापहराःपराः ॥ ३५ ॥ उमोवाच ॥ भगवञ्छ्रोतुमिच्छामि देवानामनुपूर्वशः ॥ महा
कालवनेरम्ये येषसन्तिमुखरेश्वराः ॥ ३६ ॥ विनायकाभैरवाश्च दैत्यायेपवनात्मजाः ॥ रुद्रादित्यास्तथाचान्ये तेषां
नामानिमेप्रभो ॥ ३७ ॥ ईश्वरउवाच ॥ ऋद्धिदःसिद्धिदोनित्यं कामदैवैगणाधिपः ॥ विघ्नहाचप्रमोदीच चतुर्थव्रत
काप्रियः ॥ ३८ ॥ षडैतैवसमाख्याता विघ्ननाशकराःपराः ॥ उमाचण्डीश्वरीगौरी ऋद्धिदासिद्धिदानृणाम् ॥ ३९ ॥ वटय
क्षिणीवीरभद्रेत्यष्टौतामातरःस्मृताः ॥ महामायासतीख्याता कपालमातृकातथा ॥ ४० ॥ अम्बिकाशीतलाचैव एका

लगाकर सुनना चाहता हूँ ॥ ३६ ॥ विनायक, भैरव, दैत्य व जो पवन कुमार हैं व रुद्र, आदित्य तथा अन्य जो कोई हैं हे प्रभो ! मुझसे उनके नामोंको कहिये ॥ ३७ ॥
महादेवजी बोले कि ऋद्धिदायक, सिद्धिदायक व नित्यही कामदायक, गणनायक, विघ्ननाशक, आनन्दी व चतुर्थी व्रतप्रिय ॥ ३८ ॥ ये छः उत्तम विघ्ननाशक
कहेगये हैं और उमा, चण्डी, ईश्वरी, गौरी व मनुष्यों को ऋद्धिदायिनी तथा सिद्धिदायिनी ॥ ३९ ॥ और वटयक्षिणी व श्रीरभद्रा ये आठ वे मातृका कहीगई हैं महा-

माया सती कही गई हैं और कपाल मातृका ॥ ४० ॥ व अंबिका शीतला तथा एका, अनन्ता, अष्टसिद्धिदायिनी, ब्रह्माणी, पार्वती व योगसे शोभित योगिनी ॥ ४१ ॥
 कौमारी, भगवती व छा कृत्तिकाएँ ये चर्पटमातृका व वटमातृका कही गई हैं ॥ ४२ ॥ और सरस्वती कही गई हैं व प्रसिद्ध महालक्ष्मी ये योगिनी मातृका कही गई हैं
 और चौंसठिमातृका कही गई हैं ॥ ४३ ॥ और कालिका, महाकाली, ब्रह्मचारिणी, चामुण्डा व वैष्णवी कही गई हैं और वाराही, विन्ध्यवासिनी ॥ ४४ ॥ और अंबा
 अंबालिका ये उत्तम चौबीस मातृकाएँ हैं व हनुमान्, ब्रह्मचारी, कुमारेण व महाबली ॥ ४५ ॥ इनचार पवनपुत्रोंको मैंने तुमसे कहा और पराक्रमी दंडपाणि व

नन्ताष्टसिद्धिदा ॥ ब्रह्माणीपार्वतीचैव योगिनीयोगशालिनी ॥ ४१ ॥ कौमारीभगवतीचैव षट्कृत्तिकास्तथैवच ॥ च
 पटमातृकाः ख्याता वटमातरस्तथैवच ॥ ४२ ॥ सरस्वतीतथाख्याता महालक्ष्मीश्चविश्रुता ॥ योगिनीमातृकाः ख्या
 ताश्चतुःषण्मातृकाः स्मृताः ॥ ४३ ॥ कालिकाचमहाकाली चामुण्डाब्रह्मचारिणी ॥ वैष्णवीचसमाख्याता वाराहा
 विन्ध्यवासिनी ॥ ४४ ॥ अम्बाचाम्बालिकाचैव चतुर्विंशतिकाः पराः ॥ हनूमान्ब्रह्मचारीच कुमारेणोमहाबली ॥
 ४५ ॥ चत्वारोवैसमाख्याता मयातेपवनात्मजाः ॥ दण्डपाणिश्चविक्रान्तो महाभैरवमंजितः ॥ ४६ ॥ वटुकोबाल
 कौनन्दी षट्पञ्चाशतकोपरः ॥ कालभैरवविख्यातो महापापहरः परः ॥ ४७ ॥ कपर्दीचकपालीच कलानाथावृषाम
 नः ॥ त्र्यम्बकः शूलपाणिश्च चीरवासादिगम्बरः ॥ ४८ ॥ गिरीशः कामचारीच शर्वः सर्वाङ्गभूषणः ॥ रुद्राश्चैकादशप्रो
 क्ताः सर्वशत्रुविनाशनाः ॥ ४९ ॥ अरुणः सूर्यवेदाङ्गो भानुश्चरविंशुमान् ॥ सुवर्णरेताहः कर्ता भित्रोविष्णुः सनातनः ॥
 ५० ॥ इत्येतेद्वादशादित्याः सर्वरोगहराः पराः ॥ अगस्त्येऽश्वरमुख्यानां लिङ्गानाश्चतुराशिनाम् ॥ ५१ ॥ हिमाचल

महाभैरव नामक ॥ ४६ ॥ वटुक, बालक, नन्दी व अन्य षट्पञ्चाशतक तथा प्रसिद्ध कालभैरव व अन्य महापापहारक हैं ॥ ४७ ॥ और कपर्दी, कपाली, कलानाथ,
 वृषसन, त्रिलोचन, शूलपाणि, चीरवासा, दिगंबर ॥ ४८ ॥ गिरीश, कामचारी व शर्व, सर्वाङ्गभूषण ये सब शत्रुओं के विनाशकारक गेरह रुद्र कहेंगे हैं ॥ ४९ ॥
 अरुण, सूर्य, वेदाङ्ग, भानु, रवि, अशुमान्, सुवर्णरेता, दिनकर्ता, मित्र, विष्णु, सनातन ॥ ५० ॥ ये सब रोगोंके हरनेवाले उत्तम बारह आदित्य हैं हे हिमालय-

कन्यके ! अगस्त्येश्वर जिनमें मुख्य हैं उन चौरासी लिंगों के नामों को कहतेहुये मुझसे सदैव सुनिये कि अगस्त्येश्वर कहेगये हैं तदनन्तर गुहेश्वर ॥ ५१॥ ५२ ॥ तदनन्तर हे भामिनि ! दुर्गेश्वर व डमरुकेश्वर कहेगये हैं और अनादिकल्पेश शिवजी हैं व अन्य स्वर्णजालेश्वर हैं ॥ ५३ ॥ और त्रिविष्टपेश्वर वैव व कपालेश्वरसंज्ञक तथा कर्कोटकेश्वर शिव तदनन्तर सिद्धेशजी ॥ ५४ ॥ व स्वर्गद्वारेश रुद्र तथा अन्य लोकपालेश्वरजी व कामेश्वर ऐसे प्रसिद्ध हैं तदनन्तर कुटुंबेश्वरजी कहेगये हैं ॥ ५५ ॥ तदनन्तर इंद्रधुमेश्वर कहेगये हैं व ईशानेशजी तथा अप्सरेश्वर विख्यात हैं व उसके उपरान्त कलकलेश्वरजी हैं ॥ ५६ ॥ व दिनके पाप को हरने-

सुतेनित्यं नामानि गतः शृणु ॥ अगस्त्येश्वर आख्यातो गुहेश्वरस्ततः परम् ॥ ५२ ॥ दुर्गेश्वरस्ततः प्रोक्तो डमरुकेश्वरश्च भामिनि ॥ अनादिकल्पेशः शम्भुः स्वर्णजालेश्वरः परः ॥ ५३ ॥ त्रिविष्टपेश्वरो देवः कपालेश्वरसंज्ञकः ॥ कर्कोटकेश्वरः शम्भुः सिद्धेशश्च ततः परम् ॥ ५४ ॥ स्वर्गद्वारेश्वरो रुद्रो लोकपालेश्वरः परः ॥ कामेश्वर इति ख्यातः कुटुंबेश्वरस्ततः परम् ॥ ५५ ॥ इन्द्रधुमेश्वरः ख्यात ईशानेशस्ततः परम् ॥ अप्सरेश्वर विख्यातः कलकलेशस्ततः परम् ॥ ५६ ॥ नागचण्डेश्वरो देवो दिवापापहरः परः ॥ प्रतिहारेश्वरश्चैव कुक्कुटेशो ह्यतः परम् ॥ ५७ ॥ मेघनादेश्वरः पुण्यः महाकालेश्वरः परः ॥ मुक्तेश्वरः समाख्यातः सोमेशश्च ततः परम् ॥ ५८ ॥ खण्डेश्वरः समाख्यातः पतनेशः परः स्मृतः ॥ आनन्देशस्ततः प्रोक्तः कुसुमेशस्ततः परम् ॥ ५९ ॥ इन्द्रेश्वर इति ख्यातो मार्कण्डेयेश्वरः परः ॥ शिवेश्वर इति प्रोक्तः कुसुमेशस्ततः परम् ॥ ६० ॥ अक्रूरेश इति प्रोक्तः कुण्डेशश्च ततः परम् ॥ लुम्पेश्वरः समाख्यातस्ततो

वाले अन्य नागचण्डेश्वरजी हैं व प्रतिहारेश्वर तथा इसके उपरान्त कुक्कुटेशजी हैं ॥ ५७ ॥ व पुण्यदायक मेघनादेश्वर व अन्य महाकालेश्वरजी हैं और मुक्तेश्वर कहेगये हैं व तदनन्तर सोमेशजी हैं ॥ ५८ ॥ और खण्डेश्वर कहेगये हैं व अन्य पतनेशजी कहेगये हैं तदनन्तर आनन्देश व उसके उपरान्त कुसुमेशजी कहेगये हैं ॥ ५९ ॥ व इन्द्रेश्वर ऐसे प्रसिद्ध तथा अन्य मार्कण्डेयेश्वरजी व शिवेश्वर ऐसे कहेगये हैं ॥ ६० ॥ और अक्रूरेश ऐसे कहेगये हैं

तदनन्तर कुंडेशजी व लुंपेश्वरजी कहंगये उसके उपरान्त गंगेश्वरजी हुये हैं ॥ ६१ ॥ व शूलेश्वर ऐसे प्रसिद्ध हैं तदनन्तर अंकारेशजी कहंगये हैं व कंटकेश महाह्रद व उसके उपरान्त सिंहेशजी कहंगये हैं ॥ ६२ ॥ व घटेश्वरपूर्वक उत्तम रेवन्तेश्वर देवजी हैं व प्रयागेश्वर महादेवजी और तदनन्तर सिद्धेश्वरजी हैं ॥ ६३ ॥ व अन्य मातंगेश्वर देव तदनन्तर सौभाग्येशदेवजी कहंगये और प्रसिद्ध रूपेश्वरदेवजी व इसके उपरान्त ब्रह्मेश्वरजी कहंगये हैं ॥ ६४ ॥ और षष्ठिजलेश्वरदेव व केदा-
रेश्वरजी कहंगये हैं और पिशाचेश्वर शंभु तदनन्तर संगमेशजी कहंगये हैं ॥ ६५ ॥ और प्रसिद्ध दुर्ध्वेश्वर व चन्द्रादित्येश्वर कहंगये हैं तदनन्तर पुष्पदन्तेश्वर

गङ्गेश्वरोभवत् ॥ ६१ ॥ शूलेश्वरेति विख्यात अंकारेशस्ततः स्मृतः ॥ कण्टकेशोमहारुद्रः सिंहेशश्चततः परम् ॥ ६२ ॥
रेवन्तेशः परोदेवो घण्टेश्वरपुरस्सरः ॥ प्रयागेशोमहादेवः सिद्धेश्वरस्ततः परम् ॥ ६३ ॥ मातङ्गेशः परोदेवः सौभा-
ग्येशस्ततः परः ॥ रूपेश्वरोऽपि विख्यातो ब्रह्मेश्वरोऽपि विख्यातः परम् ॥ ६४ ॥ षष्ठिजलपेश्वरोदेवः केशरेश्वर एव च ॥ पिशा-
चेश्वरशम्भुश्च सङ्गमेशस्ततः परः ॥ ६५ ॥ दुर्ध्वेश्वरविख्यातश्चन्द्रादित्येश्वरः स्मृतः ॥ पुष्पदन्तेश्वरोदेवश्च
विमुक्तेश्वरस्ततः ॥ ६६ ॥ करभेश्वरः परः प्रोक्तो राजस्थलेश्वरः शिवः ॥ वटेश्वरस्ततः प्रोक्तो ऋद्धेश्वरस्ततः परम् ॥
६७ ॥ नीलकण्ठ इति विख्यातः स्थानेश्वरोऽपि विख्यातः प्रतिहारेश्वरः परः ॥ ६८ ॥ पाशुपतेश्वरः
प्रोक्तो विश्वेश्वरस्ततः परः ॥ सुवर्णेश इति विख्यातः कामनेशस्ततः परः ॥ ६९ ॥ दुर्वासेशः परं लिङ्गं सौभाग्येशमतः पर-
म् ॥ स्वर्णेशः परः शम्भुब्रह्मचारीश्वरस्ततः ॥ ७० ॥ पातालेशः समाख्यातो ह्यतो गुप्तेश्वरः स्मृतः ॥ कपिलेश्वर इ-

देवजी और अत्रिमुक्तेश्वरजी कहंगये हैं ॥ ६६ ॥ अन्य करभेश्वरजी कहंगये व राजस्थलेश्वर शिवजी कहंगये हैं तदनन्तर वटेश्वरजी कहंगये उसके उपरान्त सिद्ध-
ेश्वरजी कहंगये हैं ॥ ६७ ॥ व नीलकण्ठ ऐसे कहंगये और इसके उपरान्त स्थानेश्वरजी व कामेश्वर ऐसे कहंगये तथा अन्य प्रतिहारेश्वरजी कहंगये हैं ॥ ६८ ॥
तदनन्तर पाशुपतेश्वर व अन्य विश्वेश्वरजी कहंगये उसके उपरान्त सुवर्णेश्वर ऐसे प्रसिद्ध व कामनेश्वरजी कहंगये हैं ॥ ६९ ॥ और उत्तम दुर्वासेश्वर लिङ्ग व
इसके उपरान्त सौभाग्येश लिङ्ग है व अन्य स्वर्णेश्वर शिव और तदनन्तर ब्रह्मचारीश्वर कहंगये हैं ॥ ७० ॥ व इसके उपरान्त पातालेश्वर कहंगये व गुप्तेश्वरजी

कहेगये हैं व. कपिलेश्वर ऐसे प्रसिद्ध तथा इसके उपरान्त योगेश्वर कहेगये हैं ॥ ७३ ॥ व भीमेश्वर ऐसे कहेगये और धनुःसाहस्रनामक हैं व तदनन्तर अग्नीश्वर और तदनन्तर देवेशजी कहेगये हैं ॥ ७२ ॥ व द्वादशार्कजी कहेगये हैं और दशाश्वमेधिकेश्वर व गदाधरेश्वर तथा वैजनाथ ऐस शंभुराज कहेगये हैं ॥ ७३ ॥ और तदनन्तर सोमनाथेश्वर व कुसुमेशजी कहेगये हैं उसके उपरान्त भीमशंकरनामक तथा घटेशजी कहेगये हैं ॥ ७४ ॥ तदनन्तर औषधेश्वर शंभु व नरादित्य जी कहेगये हैं और अन्य केशवार्क व शक्तिभेदेश्वर कहेगये हैं ॥ ७५ ॥ अन्य रामेश्वरदेव व बाल्मीकेश्वर शिव कहेगये तदनन्तर जालेश्वर शिव व अभयेश्वर

तिरुयातो ह्यतोयोगेश्वरः स्मृतः ॥ ७१ ॥ भीमेश्वर इतिरुयातो धनुःसाहस्रनामकः ॥ अग्नीश्वरः परः प्रोक्तो देवेशश्च ततः परम् ॥ ७२ ॥ द्वादशार्कः समाख्यातो दशाश्वमेधिकेश्वरः ॥ गदाधरेश्वरः ख्यातो वैजनाथेति शम्भुराट् ॥ ७३ ॥ सोमनाथेश्वरः ख्यातः कुसुमेशस्ततः परम् ॥ भीमशङ्करनामा च घटेशश्च ततः परम् ॥ ७४ ॥ औषधेश्वर शम्भुश्च जालेश्वरः शिवः प्रोक्तोऽभयेश्वरस्ततः परम् ॥ शक्तिभेदेश्वरः परः ॥ ७५ ॥ रामेश्वरः परो देवो बाल्मीकेश्वर शङ्करः ॥ ख्यातो विश्वेशश्च ततः परम् ॥ ७६ ॥ विघ्नहर्तेश्वरः प्रोक्तश्च चलेश्वरनामकः ॥ पुरुषोत्तम इति वि परम् ॥ ७८ ॥ अविमुक्तेश्वरः प्रोक्तो हनुमत्केश्वरः परः ॥ अनन्तेश्वर विख्यातः कोटेशश्च ततः केशस्ततः प्रोक्तो बालकेश्वरसंज्ञकः ॥ विमलेश्वर इति विख्यातश्चन्द्रेशश्च ततः परम् ॥ ७९ ॥ बिन्दु जी कहेगये हैं ॥ ७६ ॥ और विघ्नहर्तेश्वर व चंचलेश्वर नामक कहेगये हैं तदनन्तर पुरुषोत्तम ऐसे प्रसिद्ध व विश्वेश्वरजी कहेगये हैं ॥ ७७ ॥ तदनन्तर कर्णेश्वर ऐसे प्रसिद्ध व पृथुकेश्वरजी कहेगये हैं उसके उपरान्त अनन्तेश्वर ऐसे प्रसिद्ध व कोटेश्वरजी कहेगये हैं ॥ ७८ ॥ और अविमुक्तेश्वर व अन्य हनुमत्केश्वरजी कहेगये तदनन्तर विमलेश्वर ऐसे प्रसिद्ध व चन्द्रेश्वरजी हैं ॥ ७९ ॥ तदनन्तर बिंदुकेश्वर व बालकेश्वर संज्ञक कहेगये हैं व सहस्रलिंगके देव और अन्य संख्यासंख्येश्वर

जो कहेगये हैं ॥ ८० ॥ हे सत्त्व ! जो कोई तीर्थ व जो लिंग हैं वे सब पूजनीय व प्रणाम करने योग्य वहां स्थित हैं ॥ ८१ ॥ और सब चार द्वारपाल महात्माओं को विदित हैं उनमें पिंगलेश्वर ऐसे प्रसिद्ध द्वारपाल पश्चिम के द्वार पे दिके हैं ॥ ८२ ॥ तदनन्तर उत्तरसंज्ञक द्वार पे उत्तरेशजी हैं ये व अन्य बहुत से सुवनेश्वर लिंग ॥ ८३ ॥ मनोहर महाकालवन में पवित्रकारक कहेगये हैं जो कि साठकरोड़ जार व साठकरोड़ सौ हैं ॥ ८४ ॥ हे व्यासजी ! महाकालवन में लिंगों की संख्या नहीं है तो भी मैंने यहां मुख्यता से कहा है ॥ ८५ ॥ जिस देवताका जो तीर्थ है उसका नाम कहागया है उनमें नहाकर व उस दानको देकर उसको तीर्थ का फल

निलिङ्गानिसत्तम ॥ तिष्ठन्ति तत्र पूज्यानि तानि वन्द्यानि सर्वशः ॥ ८६ ॥ चत्वारो विदिताः सर्वे द्वारपाला महात्मभिः ॥
पिङ्गलेश्वर आख्यातः पश्चिमद्वारमाश्रितः ॥ ८७ ॥ उत्तरे शस्ततः प्रोक्तो द्वारे चोत्तरसंज्ञकः ॥ एते चान्ये च बहवो लि
ङ्गानि सुवनेश्वराः ॥ ८८ ॥ महाकालवनेरग्ये समाख्याता हि पावनाः ॥ षष्टिकोटि सहस्राणि षष्टिकोटि शतानि च ॥
८९ ॥ महाकालवनेन्यास लिङ्गसंख्यानविधते ॥ तथापि च प्राधान्येन मया त्रपरि कीर्तितम् ॥ ९० ॥ यस्य देवस्य य
तीर्थतन्नाम परि कीर्तितम् ॥ स्नात्वा दत्त्वा च तद्दानं तस्य तीर्थफलं भवेत् ॥ ९१ ॥ तथानवग्रहाः पुण्यास्समाख्याताः पु
रानव ॥ तेषां नामानि पुण्यानि तीर्थानि चैव भेश्रुणु ॥ ९२ ॥ शङ्करादित्य विख्यातः सोमेश्वरश्च ततः परम् ॥ मङ्ग
लेश्वर आख्यातो बुधेश्वरश्च ततः परम् ॥ ९३ ॥ बृहस्पतीश्वरः प्रोक्तस्तथा शुक्रेश्वरः शिवः ॥ शनीश्वरो महादेवः स
माख्यातो मुनीश्वरः ॥ ९४ ॥ राहुकेतुसमाख्यातो तयोस्तीर्थे हि सत्तम ॥ तयोः स्खलनः स्नात्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ९५ ॥

होता है ॥ ८६ ॥ वैसे ही हे अनव ! पुगतन समय पुण्यदायक नवग्रह कहेगये हैं उनके पवित्रनामों व तीर्थों को मुझसे सुनिये ॥ ८७ ॥ कि शंकरादित्य ऐसे प्रसिद्ध हैं व तदनन्तर सोमेशजी और मंगलेश्वर व तदनन्तर बुधेशजी कहेगये हैं ॥ ८८ ॥ और बृहस्पतीश्वर व शुक्रेश्वर शिवजी कहेगये हैं व हे मुनीश्वर ! शनीश्वर महादेवजी कहेगये हैं ॥ ८९ ॥ हे सत्त्व ! जो राहु, केतु कहेगये हैं उनके जो तीर्थ हैं उनमें नहाकर मनुष्य निश्चयकर सब पापों से छूटजाता है ॥ ९० ॥ ग्रह राज्यको

कालवन मे ॥ २ ॥ हे सुव्रत ! यहां कितने भक्षक तीर्थ विद्यमान हैं सनत्कुमारजी बोले कि हे द्विजोत्तम ! पापहरिणी उत्तम कथाको सुनिये ॥ ३ ॥ हे द्विजोत्तम ! बुद्धिमान् नारदजी का व पार्वती, शिवजी का संवाद हुआ है पुरातन समय-नारदजीने इस प्रश्न को पूछा है ॥ ४ ॥ नारदजी बोले कि हे भगवन् ! उत्तम महाकाल-वन मे जो तीर्थ विद्यमान हैं उनको मुझसे विस्तार से कहिये मैं सुनना चाहता हूँ ॥ ५ ॥ हे अनघ, विप्रजी ! पहले उस समय इसप्रकार पूछेहुये पार्वती समेत सदा-शिवजी नम्रवाणी से बोले ॥ ६ ॥ श्रीमहादेवजी बोले कि हे सुव्रत, श्रविश्रेष्ठ ! सुनिये कि उत्तम महाकालवन मे जो तीर्थ स्थित हैं उनको मैं कहूंगा ॥ ७ ॥ पृथ्वी

सुव्रत ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ श्रूयतां भो द्विजश्रेष्ठ कथां पापहरां पराम् ॥ ३ ॥ उमामहेशसंवादो नारदस्य चर्धमतः ॥
नारदेन पुरा पृष्टे प्रश्नमेतं द्विजोत्तम ॥ ४ ॥ नारद उवाच ॥ भगवञ्छौ तु मिच्छामि महाकालवने शुभे ॥ तीर्थानि यानि
विद्यन्ते तानि नो वद विस्तरात् ॥ ५ ॥ इति पृष्टस्तदा विप्र नारदेन पुरा नघ ॥ उवाच श्लक्ष्णया वाचा उमया सहितो हरः ॥
६ ॥ श्रीमहादेव उवाच ॥ शृणुष्व मो ऋषिश्रेष्ठ महाकालवने शुभे ॥ तीर्थानि यानि तिष्ठन्ति तानि वक्ष्यामि सुव्रत ॥ ७ ॥
पुष्कराद्यानि तीर्थानि यानि कानि महतीं तले ॥ तानि सर्वाणि वर्तन्ते महाकालवने उत्तमे ॥ ८ ॥ असङ्ख्यात सहस्राणि
कोटिकोटीनि सत्तम ॥ स्रस्तेरे निमज्जन्ति कोटितीर्थं तथोच्यते ॥ ९ ॥ नीहार कर्णिकां वृष्टिं रौप्यं तिकिन्नरः ॥ हि
मान्ते चैव दृश्यन्ते तार्थैः पश्यान्मोचने ॥ १० ॥ न हि सङ्ख्यां विजानामि तीर्थानां मुनि सत्तम ॥ कियन्ति सन्ति तीर्थानि
लिङ्गानि च तथैव च ॥ ११ ॥ तथापि तु प्राधान्येन कथयिष्यामि सत्तम ॥ संवत्सरस्य यावन्ति अहानि च द्विजोत्तम ॥ १२ ॥

में पुष्करादिक जो कोई तीर्थ हैं वे सब उत्तम महाकालवन में वर्तमान हैं ॥ ८ ॥ हे सत्तम ! असंख्य हजार व करोड़ों कोटि तीर्थ रुद्रसर मे स्नान करते हैं इससे
वह कोटि तीर्थ कहा जाता है ॥ ९ ॥ और पर्वतों के किन्नर कुहर से व्याप्त वृष्टि को करते हैं और हेमन्त ऋतु के अन्त में सब तीर्थ पिशाच मोचन नामक तीर्थ में देख पड़ते
हैं ॥ १० ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! मैं तीर्थों की संख्या को नहीं जानता हूँ कि कितने तीर्थ व लिङ्ग हैं ॥ ११ ॥ तथापि हे सत्तम ! प्रधानता से कहूंगा हे द्विजोत्तम ! वर्ष भर

के जितने दिन होते हैं ॥ १२ ॥ हे परंतप ! उतने प्रसिद्ध तीर्थों को मनुष्य नित्य प्राप्त होता है और वर्षपूर्ण होनेपर अवन्तीपुरी की यात्रा होती है ॥ १३ ॥ उमको विधिपूर्वक जो करता है वह साक्षात् देवताओं में उत्तम होता है और हजारों मन्वन्तरों तक काशीजी के निवास में जो फल होता है ॥ १४ ॥ वह फल वैशाख महर्नि में अवन्तीपुरी में पाच दिनों से होता है इसलिये मोक्ष प्राप्तिवाले पुरुषको बड़े यत्न से अवन्तीपुरी को जाना चाहिये ॥ १५ ॥ और वैशाख महर्नि में विशेषकर मनुष्य अवन्ती में स्नानकरै हे व्यामजी ! जो मनुष्य अवन्तीपुरी में वैशाख महर्नि को प्राप्त होकर ॥ १६ ॥ विधिपूर्वक वर्षभरतक प्रत्येक तीर्थमें नहाता है वह सब दानों

तावन्ति प्राप्नुते नित्यं प्रसिद्धानि परंतप ॥ संवत्सरपणिपूणे जायेते वन्ति यात्रिका ॥ १३ ॥ विधिवत्कृते यस्तु सान्नात्स विबुधोत्तमः ॥ मन्वन्तरमहस्रेषु काशीवासिचयत्फलम् ॥ १४ ॥ तत्फलं जायेते वन्त्यां वैशाखेष्वभिदिनैः ॥ तस्माद वन्ती गन्तव्या प्रयत्नेन मुमुक्षता ॥ १५ ॥ माधवोपविशेषेण ह्यवन्ती स्नानमाचरेत् ॥ यैर्वैशाखमासाद्य ह्यवन्त्यां व्या समानवः ॥ १६ ॥ संवत्सरं प्रति स्नातस्तो र्थे तीर्थे यथाविधि ॥ दत्त्वा दानानि सर्वाणि सकलं फलमश्नुते ॥ १७ ॥ सु क्त्वा भोगान्मविषुनाञ्छिन्नलोके महीयते ॥ यत्र कुत्रापि यो नित्यं नरो निश्चलमानसः ॥ १८ ॥ शृणोत्येकमनाः पुण्यां पूजयित्वा च वाचकम् ॥ संकृत्य विधिवद्दत्स वामालङ्कारभूषणैः ॥ १९ ॥ अन्यैश्च विविधभोगैः प्रदानैर्वत्सरेण च ॥ नत स्य दुर्लभं किञ्चिद्विद्यते सुविमत्तम् ॥ २० ॥ एवं व्यामपुरा शम्भुनारदाय सुधीमते ॥ उवाच परमाख्यानमवन्तीव्रत मुत्तमम् ॥ २१ ॥ तेन प्रख्यापितं पुण्यं सर्वलोकेषु मत्तम् ॥ एतत्ते सर्वमाख्यातं मया सत्यव्रती सुत ॥ २२ ॥ अवन्ती तीर्थ

को देकर समस्त फल को भोगता है ॥ १७ ॥ और बहुत सुखों को भोगकर वह शिवलोकमें पूजा जाना है व जहां कहीं भी नित्य अचल मनवाला जो मनुष्य ॥ १८ ॥ सावधान मन होकर वांचनेवाले को पूजकर पुण्यदायिनी कथा को सुनता है वह व्रतस ! विधिपूर्वक, वसन, अलंकार व भूषणों से सत्कार कर ॥ १९ ॥ व अनेक प्रकार के अन्य भोगों के दानों से जो वाचक को पूजता है हे सत्तम ! उसको पृथ्वीमें मालभर में कुछ दुर्लभ नहीं होता है ॥ २० ॥ इसप्रकार हे व्यामजी ! पुरातन समय सदाशिवजी ने बुद्धिमान् नारदजी से अवन्ती पुरी के उत्तम व्रतरूपी परमकथानक का कहा है ॥ २१ ॥ व उन्होंने ने हे सत्तम ! सब लोकों में इस पुण्यमय

कथानकके। कहलै हे छत्वावलीसुख । कैने इस सब चरित्रको तुमसे कहा ॥ २२ ॥ जोकि अवन्तीतीर्थ यात्राका सनातन आख्यान था हे द्विजोत्तम ! फिर तुम्हारे क्या सुनने की इच्छा है ॥ २३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणमाहात्म्यत्रयर्णननामद्वयशीतिलोऽध्यायः ॥ ८२ ॥
 दो०। जेहि तीरथ में जौन फल मिलत अवन्ती मध्य । तिरासिबे अभ्यासमें सोइ चरित सुख मय्य ॥ व्यासजी बोले कि हे ब्रह्मविदांवर ! अवन्ती पुरीकी बहुतपुण्य-
 वाली महिमा को मैंने तुम से सुना और तुमसे फिर सुना चाहता हूं ॥ १ ॥ हे द्विजोत्तम ! ब्रह्म के जाननेवाले तुमने ब्रह्मचारियों के इस तीर्थ के वर्षभर व्रत के पा-

यात्रायाः कथाख्यानं सनातनम् ॥ भूयः किं श्रोतुमिच्छाते वतते द्विजसत्तम ॥ २३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीख
 रण्डेऽवन्तीतीर्थयात्रामाहात्म्यं नाम द्वयशीतिलोऽध्यायः ॥ ८२ ॥ * ॥ * ॥

ठयास उवाच ॥ भूयस्तु श्रोतुमिच्छामि त्वत्तो ब्रह्मविदांवर ॥ अवन्त्याश्च परंपुरं यं महिमानं श्रुतं मया ॥ १ ॥ त्वया
 ब्रह्मविदाप्रोक्तं वत्सरव्रतपारणम् ॥ तीर्थस्यास्य सुविस्तारस्नातकानां द्विजोत्तम ॥ २ ॥ अचिरं एतु कालेन तीर्थस्य फ
 लमश्नुते ॥ सिद्धो मृत्वा नरो याति तद्वदस्व द्विजोत्तम ॥ ३ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ गुह्याद्गुह्यतरं वत्स पृच्छासि त्वं ममान
 घ ॥ तस्मै हंसप्रक्षयामि शृणुष्व त्वं समाहितः ॥ ४ ॥ महाकालं ततो गच्छेन्नियतो नियतात्मना ॥ कोटितीर्थेन रस्मना
 त्वा पुनर्जन्म न विद्यते ॥ ५ ॥ नास्ति वत्स महीं पृष्ठे क्षिप्रायास्स दृशी नदी ॥ यस्या निरीक्षणं मुक्तिः किञ्चिरात्सेवनेन
 वै ॥ ६ ॥ माधवे मामि यो देवं पूजयेत्पुरुषोत्तमम् ॥ मोचने मुच्यते नित्यं तर्पणादेकवासरात् ॥ ७ ॥ अवन्त्यामङ्गपा

रण को विस्तारसे कहा है ॥ २ ॥ हे द्विजोत्तम ! जिससे मनुष्य थोड़ेही समयमें तीर्थ के फल को भोगता है व सिद्ध होकर शिवलोकको जाता है उसको कहिये ॥ ३ ॥
 सनत्कुमारजी बोले कि हे अनघ, वत्स ! तुम मुझसे गुप्तमें भी अधिक गुप्त चरित्रको पूछते हो उसको मैं तुमसे कहूंगा सावधान होकर सुनिये ॥ ४ ॥ कि तदनन्तर
 नियम में प्राप्त मनुष्य सावधान चित्त से महाकाल वनको जावे क्यों कि नियम में प्राप्त चित्त से कोटितीर्थ में नहाकर मनुष्य फिर जन्म को नहीं प्राप्त होता है ॥ ५ ॥
 हे वत्स ! पृथ्वी में क्षिप्रा के समान नदी नहीं है कि जिसके देखनेही से मुक्तिहोती है बहुत दिनों के सेवन में क्या है ॥ ६ ॥ वैशाख महीने में जो पुरुष पुरुषो-

त्तम (विष्णु) जी को सदैव पूजता है वह मोचनतीर्थ में एकही दिनके तर्पण करने से पातकों से छूट जाता है ॥ ७ ॥ अवन्तीपुरी में अंगपात नामक विष्णुजी को जे मनुष्य देखते हैं उनकी सैकड़ों करोड़ कल्पों से पुनरावृत्ति (फिर जन्म) नहीं होती है ॥ ८ ॥ हे व्यासजी इस वचनको वाराह, मत्स्य, कन्दादिक व लोमश महा-मुनि ये सब महात्मा कहते हैं ॥ ९ ॥ तथापि पुण्य के समान तीर्थ की विधि को फिर सुनिये कि जो पुरुष थोड़ेपुण्य से तीर्थ के फलको चाहता है ॥ १० ॥ हे तपोधन ! उस सबके फलको कहूँगा इसको सुनिये कि पवित्रमन व सब तीर्थों के फलको चाहनेवाला पवित्र पुरुष ॥ ११ ॥ जोकि स्नान के नियमवाला होवे वह

ताख्यं येपश्यन्तिजनार्दनम् ॥ नतेषांपुनरावृत्तिः कल्पकोटिशतैरपि ॥ ८ ॥ इतिव्यासवचस्सर्वे वदन्तिनियतात्म-
नः ॥ वाराहमत्स्यकन्दाद्या लोमशश्चमहामुनिः ॥ ९ ॥ विधितथापितीर्थस्य शृणुपुण्यसमम्भुनः ॥ योर्वैस्वल्पेनपु-
रयेन तीर्थस्यफलमिच्छति ॥ १० ॥ तस्यसर्वस्यवक्ष्यामिशृणुष्वेदंतपोधन ॥ सर्वतीर्थफलाकाङ्क्षी शुचिःप्रयतमान-
सः ॥ ११ ॥ अवगाहव्रतीयाति तीर्थानिचाष्टविंशतिः ॥ ऊर्जमाधेतथाषाढे वैशाखेचविशेषतः ॥ १२ ॥ यदाकदापुरीं
प्राप्य कर्तव्यंतीर्थमञ्जनम् ॥ सर्वतीर्थफलंप्राप्य शिवलोकमर्हायते ॥ १३ ॥ सनत्कुमारउवाच ॥ त्रिप्रातीरेहिवर्तन्ते
पुराख्यातानिसूरिभिः ॥ पुण्यानितीर्थमुख्यानि तानिमेगदतःशृणु ॥ १४ ॥ पापादितद्दशुचिर्भूत्वा विष्णुविष्णुरिति
स्मरन् ॥ आदायनियमंसर्वं स्नातकानांचसत्तम ॥ १५ ॥ स्नात्वारुद्रसरेनित्यं कृत्वाश्राद्धादिकंतथा ॥ यथाशक्तिपरां
वत्स गान्दत्त्वाचैवकाञ्चनीम् ॥ १६ ॥ तीर्थराजनमस्तुभ्यं निजतीर्थविगाहने ॥ अनुज्ञान्देहिमेनित्यं करिष्यामितवा

अट्टाईस तीर्थोंको जावै कार्तिक, माघ, आपाढ व विशेषकर वैशाख में ॥ १२ ॥ व जब कभी पुरीको पाकर तीर्थस्नान करना चाहिये क्योंकि इस तीर्थमें स्नान करने वाला पुरुष सब तीर्थोंके फलको पाकर शिवलोकमें पूजा जाताहै ॥ १३ ॥ सनत्कुमारजी बोले कि पहले विद्वानों से कहेहुये जो पवित्र व मुख्यतीर्थ त्रिप्रातरी के तटपै वर्तमान हैं उनको कहेतेहुये मुझसे सुनिये ॥ १४ ॥ हे सत्तम ! पापसे विकल मनुष्य पवित्र होकर विष्णु, विष्णु ऐसा स्मरण करताहुआ ब्रह्मचारियों के सब नियमको ग्रहणकर ॥ १५ ॥ यद्रतङ्गामे नित्य नहाकर तथा श्राद्धादिक करके हे वत्स ! शक्तिके अनुसार सोने की गऊ को देकर ॥ १६ ॥ हे तीर्थराज ! तुम्हारे लिये प्रणाम है अपने तीर्थ

10

सब कार्यों के प्रयोजन की सिद्धि के लिये दासी व दास को देना चाहिये ऐसा करनेवाला पुरुष संसारमें धनवान् व पुत्रवान् होकर मरकर मोक्षको प्राप्त होता है ॥ २७ ॥ तदनन्तर हे विप्रजी ! वतवान् पुरुष केदारनामक उत्तमतीर्थ को जावै व उसमें नहाकर ब्राह्मणों के लिये महादान को दै ॥ २८ ॥ और उत्तम गऊ के युग याने एक गऊ व एक बैल को देकर वहां विधिपूर्वक कार्य करै हे सत्तम ! वहांपर कंवल मृगचर्म व वसनो को देना चाहिये ॥ २९ ॥ ऐसा करके मनुष्य सब पापों से शुद्धचित्त होकर शिवलोक में पूजा जाता है व चक्रतीर्थ में नहाकर मनुष्य चक्रपाणिजी को भलीभाति पूजै ॥ ३० ॥ हे सत्तम ! वहापर शंख, शस्त्र व वि-

लोक मृतोमोक्षमवाप्नुयात् ॥ २७ ॥ ततो गच्छेद्ब्रती विप्रकेदारं तीर्थमुत्तमम् ॥ तत्र स्नात्वा महादानं ब्राह्मणेभ्यस्समर्पयेत् ॥ २८ ॥ शुभङ्गो मिथुनं दत्त्वा विधिवत्तत्र कारयेत् ॥ कम्बलाजिनवासांसि तत्र देयानि सत्तम ॥ २९ ॥ सर्वपापविशुद्धात्मा शिवलोकमर्हयते ॥ चक्रतीर्थे नरस्नात्वा चक्रपाणिसमर्चयेत् ॥ ३० ॥ शङ्खशस्त्रविमानानि तत्र देयानि सत्तम ॥ मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकमर्हयते ॥ ३१ ॥ सोमतीर्थे नरः स्नात्वा द्रष्ट्वा सोमेश्वरं शिवम् ॥ निर्मलाङ्गो नरो भाति कुष्ठरोगो न बाधते ॥ ३२ ॥ इक्षुधेन्वादि कंदानं तत्र देयं द्विजातये ॥ देवप्रयागं गच्छेच्च स्नानार्थं द्विजसत्तम ॥ ३३ ॥ तत्र स्नात्वा शुचिर्भूत्वा देवं माधवमर्चयेत् ॥ गुडधेनुः प्रदातव्या विधिदृष्टेन कर्मणा ॥ ३४ ॥ सर्वपापविशुद्धात्मा देवलोकमर्हयते ॥ प्रयागे परमं व्यास वेणीतीर्थमनुत्तमम् ॥ ३५ ॥ तत्र स्नानं च कर्तव्यं तिला मलकं संयुतम् ॥ प्रयागे शमथभ्यर्च्य

मानोंको देना चाहिये ऐसा करनेवाला पुरुष सब पापोंसे छूट जाता है व विष्णुलोकमें पूजा जाता है ॥ ३१ ॥ व सोमतीर्थ में नहाकर मनुष्य सोमेश्वर शिवजीको देखकर निर्मल अंगवाला मनुष्य शोभित होता है और उसको कुष्ठरोग बाधा नहीं करता है ॥ ३२ ॥ वहां ब्राह्मण के लिये ऊख व गऊ आदिक दानको देना चाहिये व हे द्विजोत्तम ! स्नान के लिये देवप्रयागजी को जावै ॥ ३३ ॥ उस तीर्थ में नहाकर पवित्र होके मनुष्य माधवदेवजीको पूजै और वहांपर विधिसे देखेहुये कर्मसे गुड़ की गऊको देना चाहिये ॥ ३४ ॥ ऐसा करनेवाला पुरुष सब पापों से शुद्ध चित्तवाला होकर देवलोक में पूजा जाता है हे व्यासजी ! प्रयाग में अति उत्तम वेणी-

तीर्थ है ॥ ३५ ॥ वहांपर तिलों व आंवलों से संयुक्त स्नान करना चाहिये इसके उपरान्त प्रयागेशजी को पूजकर मनुष्य सब फलको प्राप्त होता है ॥ ३६ ॥ और वहांपर विधिपूर्वक द्विजोत्तम के लिये तिलकी गऊ देना चाहिये जो ऐसा करता है वह सब कामनाओं के वरको पाकर विष्णुलोकमें पूजा जाता है ॥ ३७ ॥ तदनन्तर फिर व्रतवान् पुरुष अति उत्तम योगतीर्थ को जावै व उसमें स्नानकर पवित्र होकर योगिनीश्वरजी को पूजे ॥ ३८ ॥ उसके उपरान्त जलकी गऊको देवै तो दीर्घ आयुर्बलवाला व सुखी होता है तदनन्तर मनुष्य कपिलाश्रम नामक उत्तम तीर्थको जावै ॥ ३९ ॥ और स्नान दानादिक करके कपिलेश्वरजीको पूजे तो वह सबपापों

सकल फलमश्नुते ॥ ३६ ॥ तिलधेनुः प्रदातव्या विधिवद्द्विजपुङ्गवे ॥ सर्वकामवरप्राप्य विष्णुलोकं समोदते ॥ ३७ ॥ ततो गच्छेद्भूयो योगतीर्थं मनुत्तमम् ॥ तत्र स्नात्वा शुचिभूत्वा योगिनीश्वरमर्चयेत् ॥ ३८ ॥ जलधेनुं ततो दद्याद्दोषा गुश्च सुखी भवेत् ॥ कपिलाश्रमं परन्तीर्थं नरोगच्छेत्ततः परम् ॥ ३९ ॥ स्नान दानादिकं कृत्वा कपिलेश्वरमर्चयेत् ॥ मुच्यते सर्वपापेभ्यस्तपोलोकं स गच्छति ॥ ४० ॥ घृतकुल्या परन्तीर्थं क्षिप्राकूले च परन्तीर्थं ॥ तत्र स्नात्वा नरो नित्यं घृतधारैश्च रंशिवम् ॥ ४१ ॥ पूजयेद्द्विधिवद्विप्र घृतधेनुं समर्पयेत् ॥ प्राप्य पुण्यकृतौ लोकां सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ४२ ॥ मधुकुल्यां नरस्नात्वा पूजयित्वा महेश्वरम् ॥ मधुदानं प्रकुर्वीत इधुधेनुं ततः परम् ॥ ४३ ॥ ऊषरं परमं तीर्थं सर्वतीर्थं फलप्रदम् ॥ तत्र स्नात्वा नरः पश्येन्महेश्वरम् ॥ ४४ ॥ फलमूलादिकं देयं प्राप्य ते मोक्षोत्तमः ॥ नरादित्यः स्थि

तः ॥ ४५ ॥ क्षिप्रा नदी के पश्चिम किनारे पै घृतकुल्या नामक उत्तम तीर्थ है उसमें नित्य नहाकर मनुष्य घृतधारैश्चर से छूट जाता है और तपोलोक में जाता है ॥ ४० ॥ और क्षिप्रा नदी के पश्चिम किनारे पै घृतकुल्या नामक उत्तम तीर्थ है उसमें नित्य नहाकर मनुष्य घृतधारैश्चर से छूट जाता है ॥ ४१ ॥ विधिपूर्वक पूजे व है विप्रजी ! घृत की गऊको देवै तो वह पुण्य से कियेहुये लोकों को प्राप्त होकर सब पापों से छूट जाता है ॥ ४२ ॥ मधुकुल्या तीर्थ में नहाकर व महेश्वरजी को पूजकर मनुष्य शहदका दान करे उसके उपरान्त ऊँखकी गऊकी देवै ॥ ४३ ॥ और सब तीर्थों के फलको देनेवाला उत्तम ऊषर तीर्थ है उसमें नहाकर मनुष्य ऊषरेश्वर महादेवजी को देवे ॥ ४४ ॥ और वहां फल, मूलादिक देना चाहिये ऐसा करनेपर उत्तम मोक्ष मिलती है और जहां नरा

दित्यजी स्थित हैं वहां उत्तमतीर्थ कहागया है ॥ ४५ ॥ उसमें नहाकर मनुष्य श्रेष्ठेवादित्येश्वरजीको पूजै तदनन्तर रथ दानको देकर वह नर लोकमें जाता है ॥ ४६ ॥
वा अन्य केशवार्क देवजी हैं उनका उत्तमतीर्थ कहागया है उसमें स्नान व केशवार्कजी का पूजन करना चाहिये ॥ ४७ ॥ हे द्विजोत्तम ! उस तीर्थ में बहुत प्रकार का अन्न देना चाहिये उस तीर्थ में कालभैरवजी कहेगये हैं महाव्रती ॥ ४८ ॥ पुरुष उसमें नित्य नहाकर कालभैरवजी देखकर पूर्ण महादान को देवे तो वह यमलोक को नहीं जाता है ॥ ४९ ॥ और क्षिप्रानदी के दक्षिण किनारे पै द्वादशार्क ऐसा प्रसिद्धतीर्थ सब पापों को हरनेवाला व सब कामनाओंके वरको देनेवाला

तोयत्र तत्रतीर्थपरंस्मृतम् ॥ ४५ ॥ तत्रस्नात्वापरःपश्येत् जेवादित्येश्वरं परम् ॥ रथदानंततोदत्त्वा नरलोकैसगच्छ
ति ॥ ४६ ॥ केशवार्कपरोदेवस्तस्यतीर्थपरंस्मृतम् ॥ तत्रस्नानंविधेयञ्च केशवार्कसमर्चनम् ॥ ४७ ॥ अन्नं बहुविधं
देयं तत्रतीर्थेद्विजोत्तम ॥ कालभैरवाख्यातस्तत्रतीर्थमहाव्रती ॥ ४८ ॥ तत्रस्नात्वा नरो नित्यं दृष्ट्वा भैरवमन्तक
म् ॥ दद्यात्पूर्णमहादानं नगच्छेद्यमशासनम् ॥ ४९ ॥ द्वादशार्कंतिविख्यातंजिप्राकूलेचदक्षिणे ॥ तीर्थञ्चसर्वपापघ्नं स
र्वकामवरप्रदम् ॥ ५० ॥ तत्रस्नात्वा शुचिर्भूत्वा द्वादशार्कसमर्चयेत् ॥ अजादानंचदेयं वै वासोलङ्कारसंयुतम् ॥ ५१ ॥
आरोग्यं सर्वदा देहे तस्य सम्पत्पदे ॥ तत्रापि ऋषयो देवाः सन्ध्योपासनतत्पराः ॥ ५२ ॥ उपासाञ्च किरितस्य प्रातः का
ले सदैव हि ॥ तत्रतीर्थनरः स्नात्वा शुचिर्भूत्वा समाहितः ॥ ५३ ॥ एकानंशेति विख्याता भवानीपापनाशिनी ॥ तामर्चयेद्
द्विजश्रेष्ठ दशाश्वमेधपशिवम् ॥ ५४ ॥ तत्र देयं महादानं श्वेताश्वं समलङ्कृतम् ॥ विप्राय वेदविदुषे विधिवद्विषि सत्तम ॥ ५५ ॥

है ॥ ५० ॥ उसमें नहाकर व पवित्र होकर द्वादशार्कजी को पूजै और वसनों व भूषणों से संयुत छागदान देना चाहिये ॥ ५१ ॥ जो मनुष्य ऐसा करता है उसके शरीरमें सदैव निरोगता होती है व पशु पक्षि संपत्ति होती है और वहापर भी सन्ध्योपासन में परायण ऋषियों व देवताओं ने ॥ ५२ ॥ सदैव प्रातःकाल में उसकी उपासना किया है उस तीर्थ में नहाकर व पवित्र होकर सावधान होता हुआ मनुष्य ॥ ५३ ॥ जो एकानंशा ऐसी प्रसिद्ध पापनाशिनी भवानी है उनको पूजै व हे द्विजोत्तम ! दशाश्वमेधेश शिवजीको पूजै ॥ ५४ ॥ व हे ऋषिश्रेष्ठ ! वहा वेदज्ञद्विजके लिये भलीभांति श्रलंकार किया हुआ श्वेतघोड़ा विधिपूर्वक देना चाहिये ॥ ५५ ॥

क्योंकि सब पापों से शुद्ध चित्तवाला यह पुरुष स्वर्गलोक में पूजा जाता है और पृथ्वीके पुत्र जो ये मंगलदेवजी प्रसिद्ध हैं ॥ ५६ ॥ हे व्यासजी ! सब तीर्थों के फल को देनेवाला उनका उचमतीर्थ है उस तीर्थ में नहाकर मनुष्य मंगलेश्वरजी को पूजै ॥ ५७ ॥ और गुह, अन्न व वसन समेत अलंकार किया हुआ लाल बैल अलंकृत आश्विणी के लिये जो सावधान होकर देता है ॥ ५८ ॥ उसके हाथमें लक्ष्मी प्राप्त होती है और पुत्र, दारादिक संपदाएं होती हैं गङ्गाजीके भेद से संयुत आकाश गंगा संगमतीर्थ है ॥ ५९ ॥ उस तीर्थ में नहाकर मनुष्य गंगेश्वर शिवजीको देखकर सब पापोंसे छूटजाता है और वह विष्णुलोक में पूजा जाता है ॥ ६० ॥

सर्वपापविशुद्धात्मा स्वर्गलोकमें महीयते ॥ योसावद्भारकोदेवो विख्यातोवैधरात्मजः ॥ ५६ ॥ तस्यतीर्थंपरंव्यास
सर्वतीर्थफलप्रदम् ॥ तत्रतीर्थेनरःस्नात्वा मङ्गलेश्वरमर्चयेत् ॥ ५७ ॥ गुडान्नवृषभरक्तं सवासःसमलङ्कृतम् ॥ स्व
लङ्कतेभ्योविप्रेभ्यो योददातिसमाहितः ॥ ५८ ॥ तस्यहस्तगतलक्ष्मीः पुत्रदारादिसम्पदः ॥ खगङ्गासङ्गमतीर्थं ग
ङ्गोद्भेदसमन्वितम् ॥ ५९ ॥ तत्रतीर्थेनरःस्नात्वा दृष्ट्वागङ्गेश्वरंशिवं ॥ मुच्यतेसर्वपापेभ्यो विष्णुलोकमेंमहीयते ॥
६० ॥ तिलपात्रंप्रदातव्यं विधिवत्काञ्चनान्वितम् ॥ सर्वसौख्यकरंदानं सर्वपापहरंपरम् ॥ ६१ ॥ ऋणमोचनकंतीर्थं
सर्वपापहरंस्मृतम् ॥ तत्रतीर्थेनरःस्नत्वा ऋणैर्तेश्वरमर्चयेत् ॥ ६२ ॥ घृतश्राद्धंप्रकुर्वीत दत्त्वास्वर्णं चशक्तिः ॥ ऋण
त्रयविनिर्मुक्तः स्वर्गलोकमेंमहीयते ॥ ६३ ॥ ततो गञ्जेत्रोनित्यं शक्तिभेदमकल्मषम् ॥ तीर्थानाञ्चैव सर्वेषामुत्तमंपाप
नाशनम् ॥ ६४ ॥ तत्रस्नात्वानरोव्यास शुचिःप्रयतमानसः ॥ मातृकानाञ्च सर्वेषां दर्शनंकारयेद्बुधः ॥ ६५ ॥ को

वहां सुवर्णसंयुत तिलका पात्र विधिपूर्वक देना चाहिये क्योंकि यह दान सब सुखोंको करनेवाला व सब पापोंका हरनेवाला कहागया है ॥ ६३ ॥ व मन्त्र पापों को
हरनेवाला ऋणमोचन तीर्थ कहागया है उस तीर्थ में नहाकर मनुष्य ऋणेश्वरजी को पूजै ॥ ६२ ॥ और शक्तिके अनुसार सुवर्ण को देकर घृतका श्राद्ध करे तो
तीनों ऋणों से छूटाहुआ यह स्वर्गलोकमें पूजा जाता है ॥ ६३ ॥ तदनन्तर मनुष्य नित्यही पापरहित शक्तिभेद तीर्थ जो जाँवें जो कि सब तीर्थोंके मध्य में उत्तम व

पापनाशक है ॥६४॥ हे व्यासजी ! उसमें नहाकर पवित्र य बुद्धिमान् पुरुष सब मातृकाओं का दर्शन करे ॥६५॥ कौमारी व कार्तिकी माता, चर्पटा व वट मातृका वैसेही भगवती देवी व स्वाभिकार्तिकेयजी को पूजे ॥ ६६ ॥ हे सत्तम ! वहां विधिपूर्वक श्राद्ध देना चाहिये और शय्यादिक दान व कांस की गऊ और अन्य दान को देकर ॥ ६७ ॥ माता के ऋण को उल्लंघनकर मनुष्य सायुज्य मुक्तिको पाता है और जो वह पापमोचन नामक श्रेष्ठ व उत्तमतीर्थ है ॥ ६८ ॥ उसमें नहाकर हे सत्तम ! मनुष्यों को व्यादातन देना चाहिये ऐसा करनेवाला पुरुष सब पापों से शुद्ध वित्तवाला होता है ॥ ६९ ॥ तदनन्तर हे व्यासजी ! त्रिलोक में प्रसिद्ध

मारीकार्तिकीमाता चर्पटावटमातरः ॥ तथा भगवतीर्देवी स्कन्दचैव समर्चयेत् ॥ ६६ ॥ तत्र श्राद्धानि देयानि विधिवद् द्विजसत्तम ॥ दत्त्वा शय्यादिकं दानं कांस्यधेनुं तथैतरद् ॥ ६७ ॥ मातृर्ऋणं समुत्तीर्य सायुज्यं लभते नरः ॥ यत्तत्तीर्थं वरं श्रेष्ठं पापमोचनं संज्ञकम् ॥ ६८ ॥ तत्र स्नात्वा नरैर्देयं व्यादातनं च सत्तम ॥ सर्वपापविशुद्धात्मा जायते भुवि मानवः ॥ ६९ ॥ ततः परं परं व्यास तीर्थैत्रैलोक्यविश्रुतम् ॥ प्रेतशिलेति विख्यातं प्रेतमोक्षकरम् परम् ॥ ७० ॥ तत्र स्नात्वा नरं रोदध्या च्छ्राद्धं द्विजसमाहितः ॥ तिलोदकप्रदानेन पितरो यान्ति सद्गतिम् ॥ ७१ ॥ घटदानं ततो देयं ह्यत्रोपानत्समन्वितम् ॥ म हिषीञ्च ततो दद्याद्वासांसि विविधानि च ॥ ७२ ॥ अन्नदानं ततो देयं रसेन लवणान्वितम् ॥ यमेश्वरं समभ्यर्च्य निरये नाधिगच्छति ॥ ७३ ॥ पितरस्तस्य सन्तुष्टा यान्ति ब्रह्मसनातनम् ॥ पितृदोषान् बाधन्ते तेषाञ्च द्विजसत्तम ॥ ७४ ॥ तीर्थानामुत्तमं तीर्थं भुवि त्रैलोक्यवन्दितम् ॥ नवनदीसङ्गमो यत्र तत्र तिष्ठति पार्वती ॥ ७५ ॥ तत्र स्नात्वा नरो नित्यं शु

प्रेतशिला नामक तीर्थ, प्रेतों को मोक्षकारक व श्रेष्ठ है ॥ ७० ॥ उसमें नहाकर हे द्विज ! सावधान होता हुआ पुरुष श्राद्ध को देवै क्योकि तिलसमेत जलके देनेसे पितर उत्तमगतिको प्राप्त होते हैं ॥ ७१ ॥ उसके उपरान्त छत्र व पनही समेत घटदान देवै तदनन्तर भैस व अनेकभातिके वस्त्रों को देना चाहिये ॥ ७२ ॥ उसके उपरान्त रस व लोह से संयुत अन्नदान देना चाहिये यमेश्वरजीको पूजकर मनुष्य नरक में नहीं जाता है ॥ ७३ ॥ और प्रसन्न होते हुये उसके पितर सनातन ब्रह्मको प्राप्त होते हैं और हे द्विजोत्तम ! उनको पितरों के दोष नहीं बाधा करते हैं ॥ ७४ ॥ और पृथ्वी में त्रिलोक से प्रणाम किया हुआ तीर्थों के मध्य में उत्तम

तीर्थ है जहांपर नवनदी का संगम है वहापर पार्वतीजी स्थित हैं ॥ ७५ ॥ उसमें नहाकर तदनन्तर पवित्र होकरके सावधान होताहुआ पुरुष कल्याणकारिणी भगवती पार्वतीजी को विधिपूर्वक पूजै ॥ ७६ ॥ और महादानों को करे व हाथी की सवारी, पृथ्वी और तिलोंको व दुग्धसमेत गऊको द्विजोत्तम के लिये देवै ॥ ७७ ॥ तो सब पापों से शुद्ध चित्तवाला पुरुष साक्षात्शिव होता है उसके उपरान्त अपने कार्य की शुद्धि के लिये मन्दाकिनीजीको जावै ॥ ७८ ॥ व उसमें नहाकर व पवित्र होकर जो मनुष्य सदाशिवजी को पूजता है व गाड़ी तथा अन्नादि को देकर द्रोणप्रमाण भर तिल देवै ॥ ७९ ॥ तो सब पापों से शुद्धचित्तवाला पुरुष कुबेर के समान चिभूत्वासमाहितः ॥ पूजयेद्भगवतीं भद्रां पार्वतीं विधिवत्ततः ॥ ७६ ॥ महादानानि कुर्याच्च हस्तिपान्नधरान्ति लान् ॥ सुरभीदुग्धसहितां दद्याद्भिज्वराय च ॥ ७७ ॥ सर्वपापविशुद्धात्मा साक्षाच्छम्भुर्भवेन्नरः ॥ मन्दाकिनीं ततो गच्छेदात्मकार्यविशुद्धये ॥ ७८ ॥ तत्र स्नात्वा शुचिभूत्वा पूजयेद्यः सदाशिवम् ॥ दत्त्वा शकटमन्नाद्यं तिलद्रोणं प्रदापयेत् ॥ ७९ ॥ सर्वपापविशुद्धात्मा धनाधिपसमो भवेत् ॥ ततो गच्छेद्दूर्ती विप्र तीर्थं पैतामहं परम् ॥ ८० ॥ तत्र स्नात्वा शुचिभूत्वा विधिवत्स्नानमाचरेत् ॥ दत्त्वा दानानि सर्वाणि त्रीणि तत्र विशेषतः ॥ ८१ ॥ यथाशक्ति प्रदेयाणि पृथ्वीगावस्सुवर्णकम् ॥ विप्रांश्च भोजयेन्नित्यं विधिवद्भूरिदक्षिणैः ॥ ८२ ॥ ततस्तु पुनरागम्य रुद्रसरमनुत्तमम् ॥ तस्मिन् स्नात्वा च नत्वा च दृष्ट्वा देवं महेश्वरम् ॥ ८३ ॥ पूजयित्वा यथान्यायं यात्रेश्वरमनुत्तमम् ॥ तुलसीविल्वपत्रैश्च पुष्पैर्विविधवासकैः ॥ ८४ ॥ धूपदीपादिनैवेद्यैर्मुखवासोत्तरच्छदैः ॥ पूजयित्वा महादेवं यात्रेश्वरमुमापतिम् ॥ ८५ ॥ प्रार्थयेद्देवदेवेशं व्रत होता है तदनन्तर हे विप्रजी ! व्रतवान् पुरुष पितामहजी के उत्तमतीर्थ को जावै ॥ ८० ॥ और उसमें स्नानकर व पवित्र होकर विधिपूर्वक स्नान करै व सब दानों को देकर वहां तीन दानों को विशेषकर ॥ ८१ ॥ शक्तिके अनुकूल देना चाहिये याने पृथ्वी, गऊ व सुवर्ण को देवै और विधिपूर्वक बहुत दक्षिणाओं समेत नित्य ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिये ॥ ८२ ॥ तदनन्तर फिर अति उत्तम रुद्रसर को आकर व उसमें स्नानकर व महेश्वर देवको देखकर के प्रणाम कर ॥ ८३ ॥ न्यायपूर्वक अति उत्तम यात्रेश्वर को लाली, सि, बिहिवपत्र व अनेकभांति के सुगंधित पुष्पों से पूजकर ॥ ८४ ॥ और धूप दीपादिक व नैवेद्यों तथा तुल व बादर

या दुपट्टे से उमापति यात्रेश्वर महादेवजी को पूजकर ॥ ८५ ॥ व्रतके पूर्ण होनेकेलिये देवदेवेश शिवजी की प्रार्थना करै कि हे जगदीश, पार्वतीनाथ, यात्रेश्वरजी ! तुम्हारे लिये नमस्कार है ॥ ८६ ॥ हे प्रभो ! तुम्हारी प्रसन्नता से की हुई मेरी यात्रा को सफल कीजिये ॥ ८७ ॥ सनत्कुमारजी बोले कि हे द्विजोत्तम ! इसप्रकार जो मनुष्य अवन्तीपुरी की यात्रा करता है उसको अवन्ती में निवास से उपजा हुआ पुण्य मिलता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ८८ ॥ और बहुत सुखोंको व धन, स्त्री आदिकी संपदा को भोगकर सब पापों से शुद्धचित्तवाला वह मरकर शिवलोकको जाता है ॥ ८९ ॥ जो मनुष्य पवित्र व पाप हरिणी तथा पुण्यदायिनी कथा सम्पूर्णहेतवे ॥ यात्रेश्वरनमस्तुभ्यमुमानाथजगत्पते ॥ ९० ॥ त्वत्प्रसादात्कृतांयात्रां सफलं कुरु मे प्रभो ॥ ९१ ॥ स नत्कुमारउवाच ॥ एवं यः कुरुते यात्रामवन्त्याश्च द्विजोत्तम ॥ अवन्तीवासजं पुण्यं प्राप्य तेनात्र संशयः ॥ ९२ ॥ भुक्त्वा च विपुलान्भोगान् धनदारादिसम्पदम् ॥ सर्वपापविशुद्धात्मा मृतः शिवपुरं व्रजेत् ॥ ९३ ॥ ये शृण्वन्ति कथां पुण्यां विवर्धनञ्च ॥ यः श्रावयेद्वा शृणुयाच्च भक्त्या कुलं समुद्धृत्य हरैः पदं व्रजेत् ॥ ९४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे तीर्थमहिमानामत्र्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ९५ ॥ इत्यवन्तीजे त्रमाहात्म्यं समाप्तम् ॥ शुभं भूयात् ॥ * ॥

को सुनते हैं उनको इसलोक व परलोक में कुछ दुर्लभ नहीं मिलता है ॥ ९० ॥ यशको करनेवाले व पुण्य को बढ़ानेवाले तथा शिवभक्ति को बढ़ानेवाले इस माहात्म्य को जो सुनाता है व जो भक्तिमे सुनता है वह कुलको उधारकर विष्णुजी के स्थानको जाता है ॥ ९१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽवन्तीखण्डे द्विदश्यालुभिश्चरिचि तायां भाषाटीकायां तीर्थमहिमानामत्र्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ९५ ॥

प्रथमवार

लखनऊ

सुपरिन्टेंडेंट बाबू मनोहरलाल भार्गव के प्रगन्ध से
मुंगी नवलकिशोर (मी. आई. ई) के छापेखाने में छपा सन् १९०६ ई० ॥



इति स्कन्दपुराणावन्तीखण्डः समाप्तः ॥

